दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ५

(मई)

पृष्ठ १ से २६२१

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित

इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३.श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१०. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रितिंकर दिवाकर	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
६. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनीत कुमार	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री अत्तउ रहमान मसूदी	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम समशेरी
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा- प्रथम	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवार
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४७. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार गुप्ता
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री जहाँगीर जमशेद मुनीर	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. गौतम चौधरी
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा

६५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन इदरिशी
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायन मिश्रा
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद क़मर हसन रिज़वी
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
९४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
९५. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
९६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
९७. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
९८. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
९९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल

अंजलि चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1491

अखिलेश सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1552

अजीत राजभर बनाम श्रीमती बादामी देवी एवं अन्य 155

अजीत सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1092

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई बनाम विजय अग्रवाल 2083

अनिल कुमार गुप्ता @ राजेंद्र गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1983

अनुकूल प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2359

अन्नपूर्णा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 510

अफजल अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 1673

अब्बास अंसारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 534

अमन @ मोनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1357

अमर पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 710

अमर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 679

अमरनाथ गुप्ता बनाम श्रीमती उषा शर्मा 886

अमित शर्मा बनाम श्रीमती शिक्ष 1435

अमृता नंद@त्रिभुवन अरजरिया@बाबा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1775

अमृता भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1010

अर्पित सक्सेना बनाम श्रीमती नैंसी सक्सेना 137

अवतार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1667

अशरफ अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 515

अशोक कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 825

अशोक कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1645

असलम नूर खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1267

अहमद शेर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1814

अनुवादित

आजाद अहमद एवं अन्य बनाम राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन.सी.पी.सी.आर.) एवं अन्य 923

आज़ा पाल सरीन बनाम ए.डी.एम., जी.बी. नागर एवं अन्य 1966

आलोक कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 575

आसिफ अहमद सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 37

इंडिया ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड लखनऊ बनाम वाणिज्यिक न्यायालय-I, लखनऊ एवं अन्य 334

इंद्र पल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 769

इंद्रमणि यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1157

इमरान खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2089

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मो. जांबाज आलम 494

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राज कुमार सिंह 2048

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राम जी सिंह 489

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम श्रम न्यायालय गोरखपुर एवं अन्य 1882

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अजय मिश्रा @ टैनी एवं अन्य 2584

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पन्ना लाल 1850

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, उ.प्र., बरेली एवं अन्य 2459

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुख्तार अंसारी 12

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, आगरा बनाम श्री भूरी सिंह एवं अन्य 1922

उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, लखनऊ बनाम भगवान श्री कृष्णा विराजमान और अन्य 401

उदित आर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2426

उपरेंद्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 123

उमाशंकर और अन्य बनाम श्रीमती कुसुमलता एवं अन्य 266

उर्मिला देवी पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1461

अनुवाद

उषा कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2030

एल.आई.सी., गोरखपुर एवं अन्य बनाम स्थायी लोक अदालत, आजमगढ एवं अन्य 935

एलिजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1287

ओम प्रकाश @गुड्डू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 552

ओम प्रकाश जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 143

कपिल वाधवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1690

कफील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2571

कमल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1750

कमलेश कुमार बनाम राजस्व बोर्ड लखनऊ एवं अन्य 2019

कालिका प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1661

किशोर- एक्स लीगल गुसर्डियन/ विनोद पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1727

कुँवर पाल @ कुमार पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2192

कुलदीप अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1441

गंगा राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1127

गौरव शर्मा उर्फ सोनू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1163

चंद्रभान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 812

छोटू@राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 598

छोटे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1743

जगदंबा सिंह बनाम डी.डी.सी., अयोध्या एवं अन्य 1503

जगदीश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1121

जगदेव सिंह एवं अन्य बनाम हजारीलाल और अन्य 330

जफर अब्बास जैदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 543

जय बाजपेयी @ जयकांत बाजपेयी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2532

जयदेव सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2075

अनुवादित

जिला बेसिक शिक्षा कार्यालय, गोरखपुर एवं अन्य बनाम प्रबंधन समिति करवल देवी कन्या लघु माध्यमिक विद्यालय करवल मझगवां, गोरखपुर एवं अन्य 1864

ज्ञानेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 808

झब्बू दुबे @ प्रदीप कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 722

टाटा ए.आई.जी. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, अलीगढ बनाम विष्णु एवं अन्य 257

डी.बी. कौसर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1535

डॉ अरुण कुमार सिंघल बनाम श्रीमती तारावती 800

डॉ. अशोक कुमार तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2130

डॉ. आर.एम.एल. इन्स. मेडिकल साइंस, लखनऊ एवं अन्य बनाम डॉ. चारु महाजन और अन्य 2238

डॉ. राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2278

डॉ. हैदर अली बनाम अखिलेश कुमार सिंह एवं अन्य 478

दिनेश चंद्र @ दिनेश चंद्र तिवारी एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, सुल्तानपुर एवं अन्य 410

दिनेश बाबू बनाम प्रबंधक, मेसर्स कंडिया जमशेदपुर ट्रांसपोर्ट कंपनी, एवं अन्य 1834

दीपेंद्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 815

नगर क्षेत्र समिति, सादाबाद, मथुरा बनाम कंचन सिंह और अन्य 303

नरेंद्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1326

नरेंद्र कुमार और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद एवं अन्य 435

नवीन कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1611

नीलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2124

नेत्र पाल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1007

पन्ना लाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 742

पीपीएस इंटरनेशनल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य 1023

अनुवादित

पीयूष प्रभाकर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1420

प्रकाश नारायण शर्मा @ बबली बनाम यूपी राज्य 584

प्रदीप कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 110

प्रदीप बिंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1803

प्रबंध निदेशक, उ.प्र. राज्य सेतु निगम लि., लखनऊ एवं अन्य बनाम प्रभात कुमार झा 500

प्रबंधन समिति, महर्षि दयानंद सरस्वती वैदिक शिक्षा समिति, मेरठ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1975

प्रभात कुमार तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2096

प्रशांत त्यागी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 61

प्रशांत त्यागी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2524

प्रशांत त्यागी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2492

प्रशांत त्यागी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 54

प्रशांत त्यागी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 68

प्राची एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1826

प्रीतम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1595

प्रीतम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1713

प्रेम चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 876

फूल कुमार बनाम श्याम सिंह एवं अन्य 1620

बब्लू @दिनेश सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 830

बल्लू मल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 654

बृजेश यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1720

ब्रह्मानंद पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1511

ब्रिजेश कुमार तिवारी@पंकज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2483

भगवान श्रीकृष्ण विराजमान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड एवं अन्य 902

भवानी प्रसाद साहू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1472

अनुवादित

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड बनाम दीपक कुमार एवं अन्य 1991

मंजू बंसल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 1367

मदन कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2118

मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लि. बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 462

मनोज कुमार बठला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2415

महाप्रबंधक, आई.ओ.सी.एल., बल्क ऑयल टर्मिनल, चंदौली एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1055

महेंद्र शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2035

मीना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 930

मेसर्स ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड, हरि नगर, मेरठ बनाम राम किशन अग्रवाल और अन्य 287

मेसर्स चौधरी प्रॉपर्टीज और अन्य बनाम श्रीमती लक्ष्मी देवी 2224

मेसर्स डायमंड स्टील, फतेहपुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1853

मेसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुरेश और अन्य 245

मेसर्स लारी आलमीरा हाउस, गोरखपुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1858

मेसर्स विश्वलीला स्टील ट्यूब इंडस्ट्रीज, गाजियाबाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2551

मेसर्स शालीमार पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड, मुजफ्फरनगर बनाम विशेष न्यायाधीश/ई.सी. अधिनियम, मुजफ्फरनगर एवं अन्य 1978

मेसर्स श्री भूमि फूड बेवरेजेस प्राइवेट लिमिटेड बनाम ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण एवं अन्य 998

मैसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड बनाम श्री अमर कुमार सिंह एवं अन्य 1568

मैसर्स ब्यूरो चीफ राष्ट्रीय सहारा एवं अन्य बनाम श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश एवं अन्य 961

मो. अजीम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1275

मो. आरिफ़@आरिफ़ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1077

मो. इसहाक बनाम ए.डी.जे./विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. एक्ट), झांसी एवं अन्य 2135

अनुक्रमणिका

मो. नाइम बनाम अपर आयुक्त, प्रशासन, गोंडा एवं अन्य 2188

मोहरपाल मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1112

युवराज नाग बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 794

यू.पी.एस.आर.टी.सी., लखनऊ बनाम अशोक कुमार शर्मा 183

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ बनाम श्रीमती शीला एवं अन्य 207

योगराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1654

योगेन्द्र नाथ उपाध्याय एवं अन्य बनाम शैलेश कुमार सिंह एवं अन्य 1838

रंगेश यादव बनाम अधीक्षक जिला जेल, आजमगढ एवं अन्य 856

रणजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 107

रणवीर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2057

रमाकांत दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1187

रमेश दुग्गल@पप्पू बनाम पं. राम शंकर मिश्रा ट्रस्ट मुख्य कार्यालय, कानपुर नगर 342

रविकांत और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1106

रविन्द्र कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 644

राकेश मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1637

राज कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1424

राज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1955

राजकरन पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2401

राजकेश्वर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 131

राजे @ राजेश @ संतोष कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 668

राजेंद्र एवं अन्य बनाम मो. शाहिद 375

राजेश गोंड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1734

राजेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 579

अनुवादित

राम कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1531

राम रतन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 611

राम रतन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 88

राम शबद यादव बनाम हरिलाल एवं अन्य 191

रामजी प्रसाद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 791

रिंकू @ प्रेमपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 753

रोहित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1928

ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2478

वसीम खा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1137

विक्रम चतुर्वेदी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 298

विजय पल और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 2108

विजय मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 590

विनोद चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 699

विशाल (नाबालिग) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1831

वीरपाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1295

वीरेंद्र कसौधन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1415

वेद प्रकाश मित्तल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2151

शबाना बानो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 17

शहजादी माही @ सहर नकवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2433

शांति स्वरूप एवं अन्य बनाम ओंकार प्रसाद मृतक एवं अन्य 2322

शिक्षा प्रसार समिति, कानपुर एवं अन्य की प्रबंधन समिति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1915

शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा बनाम भारत संघ एवं अन्य 838

शिशुपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1346

शेखर राममूर्ति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2499

शेषनाथ सिंह बनाम देवेन्द्र प्रताप सिंह 2389

अनुवादित

शैलेश खंडेलवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2258

श्री महिला हितकारिणी आर्य महापरिषद, वाराणसी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1909

श्री होती लाल एवं अन्य बनाम लखपत सिंह और अन्य 2001

श्रीमती उर्मीला देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 572

श्रीमती कमलेश एवं अन्य बनाम राजेंद्र कुमार एवं अन्य 253

श्रीमती कामिनी एवं अन्य बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बरेली और अन्य 276

श्रीमती चंदा देवी बनाम उत्तर प्देश राज्य एवं अन्य 451

श्रीमती जीरा देवी एवं अन्य बनाम ए.डी.जे. कोर्ट सं. 12 वाराणसी एवं अन्य 2195

श्रीमती नीटू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1822

श्रीमती नीलम देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 820

श्रीमती नीलोफर बनाम श्रीमती सारिका अरोरा एवं अन्य 269

श्रीमती पूजा एवं अन्य बनाम विजय कुमार तिवारी एवं अन्य 150

श्रीमती फ़ारूक़ी बेगम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2342

श्रीमती बिंदु सिंह बनाम हरि प्रताप सिंह एवं अन्य 227

श्रीमती मालती देवी और अन्य बनाम वीरेंद्र कुमार और अन्य 239

श्रीमती मीना एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2005

श्रीमती मोनिका सरवनन बनाम आर सरवनन 2010

श्रीमती राजवती एवं अन्य बनाम इफको टोकियो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली एवं अन्य 280

श्रीमती राम बेटी एवं अन्य बनाम सुरेश चंद्रा एवं अन्य 222

श्रीमती लक्ष्मी देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2379

श्रीमती श्याम सुंदरी देवी बनाम अजय कुमार गुप्ता एवं अन्य 241

श्रीमती सबिता शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1581

अनुवादित

श्रीमती सावित्री देवी और अन्य बनाम उप निदेशक, चकबंदी, वाराणसी एवं अन्य 2023

श्रीमती सुमन सिंह बनाम अध्यक्ष, राम मनोहर लोहिया संस्थान, चिकित्सा विज्ञान, एलकेओ एवं अन्य 2066

श्रीमती सुरेंद्र कौर और अन्य बनाम विवेक गुप्ता और अन्य 393

संजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1792

संजय कुमार मोदी एवं अन्य बनाम उदयराज और अन्य 1426

संजय मिश्रा@आशु बनाम मगन पांडे और अन्य 362

संदीप कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य 103

संयुक्त निदेशक कृषि (विस्तार) एवं अन्य बनाम श्री छोटे लाल 1939

सतीश केवलानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1901

सत्ता@सत्य प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1761

सत्य नारायण दुबे बनाम भारत संघ एवं अन्य 2103

सदाराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2014

सरफराज अली जाफरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 604

सल्लाहुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1084

सार्थक चौबे बनाम भारत संघ एवं अन्य 1898

साहिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2397

सुजान सिंह बुंदेला एवं अन्य बनाम कृपाल सिंह यादव एवं अन्य 2184

सूर्यांश खरबंदा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2439

सैयद मोहम्मद मंजर बनाम उत्तर प्रदेश वक्फ न्यायालय जवाहर भवन तृतीय तल लखनऊ एवं अन्य 77

सोनम राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1380

सोनम राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1394

सोनी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 524

सोवरन सिंह आढती एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2615

हरि सागर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1972

अनुवाद

हरिश्चंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1407

हवलदार सिंह और अन्य बनाम जिला उपसंचालक चकबंदी, आजमगढ़ एवं अन्य 425

हेमराज पटवा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2218

****

अनुवादित

(2023) 5 ILRA 10

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 903/2023

उत्तर प्रदेश राज्य ...आवेदक

बनाम

मुख्तार अंसारी ...विपरीत पक्ष

अधिवक्ता आवेदक: श्री रत्नेन्दु कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षी पक्ष:

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 307, 506 और 120-बी, उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022 - अध्याय-14 - आपराधिक कैदी दो वर्गों में वर्गीकृत (1) सुपीरियर; और (2) साधारण - पैराग्राफ 257 - उच्च न्यायालय किसी आपराधिक कैदी को परीक्षण, विवेचना, अपील या पुनरीक्षण के लिए उच्च वर्ग में अनुशंसित कर सकता है, पैराग्राफ 258 - उच्च वर्ग आमतौर पर अध्याय V-A, VI, VII, VIII, धारा 161 और अध्याय XII, XV, XVI, XVII और XVIII भारतीय दंड संहिता के साथ-साथ अन्य अधिनियमों में वर्णित गंभीर अपराधों के आरोपी कैदियों के लिए अनुशंसित नहीं है। (पैरा - 3,6)

अभियुक्त-विपक्षी कुख्यात गैंगस्टर - दुर्दांत अपराधी एवं बाहुबली अभियुक्त-विपक्षी के विरुद्ध गंभीर अपराधों के मामले दर्ज हैं, विचारण न्यायालय ने जिला कारागार के वरिष्ठ अधीक्षक को अभियुक्त को उच्च श्रेणी प्रदान करने का निर्देश दिया है - उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल की धारा 287 के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए - कहा गया है कि जेल मैनुअल को उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022 द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा। (पैरा - 2)

निर्णय: आक्षेपित आदेश न केवल अधिकार क्षेत्र से बाहर है बल्कि गुण-दोष के आधार पर भी पुष्टि योग्य नहीं है; निरस्त किए जाने योग्य है। धारा 307, 506 और 120-बी आईपीसी के तहत पारित आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है। (पैरा - 12)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान याचिका राज्य द्वारा प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, एम.पी./एम.एल.ए, गाजीपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-10-ए वर्ष 2010 में पारित आदेश दिनांक 15.3.2022 को धारा 307, 506 और 120-बी भ०द०वि०, थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर के तहत दायर की गई है।

2. विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के तहत जिला जेल, बांदा के वरिष्ठ अधीक्षक को आरोपी मुख्तार असारी को उच्च श्रेणी प्रदान करने का निर्देश दिया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल की धारा 287 के प्रावधान को ध्यान में रखा है। हालाँकि, उक्त जेल

मैनुअल को अब उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022 से बदल दिया गया है और संबंधित प्रावधानों को उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022 के अध्याय-14 में शामिल किया गया है।

3. उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल के तहत, आपराधिक कैदियों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है; (1) श्रेष्ठ; और (2) साधारण। उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022 के पैराग्राफ-257 में उच्च वर्ग के लिए सिफारिश का प्रावधान है जैसा कि न्यायालयों द्वारा पुराने मैनुअल के पैराग्राफ-279 के तहत किया गया था।

4. सुविधा के लिए, उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022 के पैराग्राफ-257 में निम्नानुसार पढ़ा जाता है: -

"257. (क) दांडिक कैदी के संबंध में, जो उसके समक्ष अभियुक्त है, चाहे विचारण, पूछताछ, अपील या पुनरीक्षण में हो और नियम 259 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय राज्य सरकार को और जिला मजिस्ट्रेट को उच्चतर वर्ग में उसके प्रवेश के लिए सत्र न्यायालय की सिफारिश कर सकेगा।
(ख) राज्य सरकार के आदेश की प्राप्ति होने तक उच्च न्यायालय संबंधित जेल अधीक्षक को यह निदेश दे सकेगा कि वह कैदी को अनंतिम रूप से उच्चतर श्रेणी में प्रवेश दे और कारागार अधीक्षक ऐसे निदेश का अनुपालन करेगा।
5. पुरानी नियमावली के तदनुरूपी पैराग्राफ-258, कैदी को उच्चतर श्रेणी प्रदान करने के लिए शर्तें निर्धारित करता है, जो निम्नानुसार हैं: -

"258. (1) उच्चतर वर्ग साधारणतया ऐसे कैदी को नहीं दिया जाएगा जिसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय VIII के अधीन निरुद्ध किए जाने का आदेश दिया गया है या जिसे निम्नलिखित में से किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है-

(क) अध्याय V-क, VI, VII और VIII के अंतर्गत अपराध धारा 161; भारतीय दंड संहिता के अध्याय XII, XV, XVI, XVII और XVIII;
(ख) आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 और 27 के तहत अपराध:
(ग) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के तहत अपराध;
(घ) विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 के तहत अपराध;
(ङ) नियंत्रण अधिनियम, 1970 के तहत अपराध;
(च) खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के तहत अपराध
(छ) ऊपर वर्णित अपराधों में से किसी के दुष्प्रेरण के तहत अपराध;
(ज) विदेशी विषयक अधिनियम, 1946 की धारा 14 के तहत अपराध
(i) हिंसा या नैतिक अधमता से संबंधित कोई अन्य अपराध।
(ञ) महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अपराध।
(ट) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर अधिनियम, असामाजिक क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 1986।
(ठ) आतंक, विध्वंसक गतिविधियों या संगठित अपराध से संबंधित कोई विशेष कार्य।
(2) यदि जिला मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि कैदी, शिक्षा, चरित्र और पूर्ववर्ती, किए गए अपराध

की प्रकृति और उसके उद्देश्य कैदी के लिए बेहतर वर्ग के उपचार को उचित ठहराते हैं, तो वह, या तो अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या सत्र न्यायालय या मजिस्ट्रेट द्वारा समझौते के खंड (क) के तहत की गई सिफारिश के रूप में उच्च वर्ग में ठहरा सकते हैं- (ए) उप-नियम (1) द्वारा कवर नहीं किए गए कैदी को और (बी) नियम (1) द्वारा कवर किए गए कैदी को लेकिन बहुत ही असाधारण मामलों में।

(3) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जिन आधारों पर उच्चतर वर्ग को प्रदान किया जाता है, उन्हें स्पष्ट करने वाली एक संक्षिप्त टिप्पणी राज्य सरकार को दी जाएगी।

(4) राज्य सरकार, स्वयं अपने प्रस्ताव पर या उच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफारिश के रूप में, लिखित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, किसी कैदी को उच्चतर वर्ग प्रदान कर सकेगी, यदि उसका समाधान हो जाता है कि उसकी शिक्षा, चरित्र और पूर्ववृत्त, किए गए अपराध की प्रकृति और उसके लिए उसके उद्देश्य उसे न्यायोचित ठहराते हैं।

6. पैराग्राफ-257 के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि एक आपराधिक कैदी के संबंध में, जो अदालत के समक्ष एक अभियुक्त है, चाहे वह विचारण, पूछताछ, अपील या पुनरीक्षण में हो, उच्च न्यायालय राज्य सरकार और सत्र न्यायालय को जिला मजिस्ट्रेट को ऐसे कैदी के प्रवेश के लिए सिफारिश कर सकता है। कैदी के प्रवेश के लिए शर्तें जैसा कि ऊपर कहा गया है, पैराग्राफ 258 में निर्धारित की गई हैं, जो विशेष रूप से कहता है कि अध्याय V-A, VI, VII और VIII में उल्लिखित गंभीर अपराधों के आरोपी कैदी को वरिष्ठ वर्ग की सिफारिश आमतौर पर नहीं की जाएगी। धारा 161 ; (ग) उक्त धारा में उल्लिखित अन्य अधिनियमनों के अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता के अध्याय XII, XV, XVI, XVII और XVIII में संशोधन किए गए हैं।

7. यह भी ध्यान में रखा जाए कि आपराधिक कैदी को उच्च श्रेणी प्रदान करने की सिफारिश पर विचार करते समय, राज्य सरकार को निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना होगा: -

(क) आपराधिक कैदी की शिक्षा;

(बी) चरित्र;

(ग) आपराधिक पूर्ववृत्त;

(घ) किए गए अपराध (अपराधों) की प्रकृति; और

(e) अपराध करने का मकसद।

8. याचिकाकर्ता राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रत्नेंदु कुमार सिंह ने पूर्व निर्धारित याचिका के समर्थन में दो गुना प्रस्तुतियाँ दी हैं। सबसे पहले, वह प्रस्तुत करते हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है क्योंकि न्यायालय के पास कैदी को बेहतर वर्ग देने के लिए केवल सिफारिश करने की शक्ति है और वरिष्ठ वर्ग को अनुदान देने या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार राज्य सरकार में निहित है, जैसा भी मामला हो। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि जघन्य अपराधों के आरोपी-प्रतिपक्षी के लंबे आपराधिक इतिहास को देखते हुए, एक ज्ञात गैंगस्टर

और सबसे खूंखार अपराधी अन्यथा उच्च वर्ग के लिए हकदार नहीं है। इसलिए, वह प्रस्तुत करते हैं कि आक्षेपित आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है और योग्यता के आधार पर भी अभियुक्त अपने लंबे आपराधिक इतिहास को देखते हुए श्रेष्ठ वर्ग

का हकदार नहीं है और वह अध्याय-XVI के तहत अपराधों के लिए आरोपी होने के नाते, वह ऐसे अपराधी को श्रेष्ठ वर्ग देने पर रोक लगाने वाले पैराग्राफ-258 के अनुदान का हकदार नहीं है।

9. श्री उपेंद्र उपाध्याय, प्रतिपक्षी के अधिवक्ता कानूनी स्थिति पर विवाद करने की स्थिति में नहीं हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय के पास केवल सिफारिश करने की शक्ति है, और शक्ति अंततः राज्य सरकार के पास निहित है कि वह जेल मैनुअल के पैराग्राफ-258 में उल्लिखित प्रासंगिक कारकों पर विचार करने पर दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए श्रेष्ठ स्थिति प्रदान या अस्वीकार कर दे। वह इस बात से भी इनकार नहीं कर सकता है कि आरोपी पक्ष अध्याय XVI के तहत अपराधों के लिए मुकदमे का सामना कर रहा है और यदि ऐसे व्यक्ति पर अध्याय XVI के तहत अपराधों का आरोप लगाया जाता है, तो आमतौर पर उसे उच्च वर्ग के लिए अनुशंसित नहीं किया जाना चाहिए।

10. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता की ओर से दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

11. आरोपी प्रतिपक्षी ज्ञात गैंगस्टर, खूंखार अपराधी और बाहुबली है। आरोपी-प्रतिपक्षी के खिलाफ निम्नलिखित आपराधिक मामले दर्ज किए गए हैं: -

"1. एनसीआर संख्या-219 वर्ष 1978, धारा 506 भ०द०वि० के तहत;
2. केस अपराध संख्या-169 वर्ष 1986, धारा 302 भ०द०वि० के तहत,
3. केस अपराध संख्या-106 वर्ष 1988, धारा 302 भ०द०वि० के तहत,
4. केस अपराध संख्या-410 वर्ष 1988, धारा 147, 148, 149, 302 और 307 भ०द०वि०,
5. एनसीआर संख्या-233 वर्ष 1988, धारा 504 और 506 भ०द०वि०,
6. केस अपराध संख्या-124 वर्ष 1990, धारा 364, 395 और 397 भ०द०वि०
7. केस अपराध संख्या-399 वर्ष 1990, धारा 147, 148, 149 और 307 भ०द०वि०,
8. केस अपराध संख्या-682 वर्ष 1990, धारा 147 और 506 भ०द०वि०,
9. केस अपराध संख्या-266 वर्ष 1990, धारा 467, 468, 420, 120-बी भ०द०वि०
10. केस अपराध संख्या-44 वर्ष 1991, धारा 302 भ०द०वि०
11. केस अपराध संख्या-172 वर्ष 1991, धारा 147, 148 और 302 भ०द०वि०,
12. केस अपराध संख्या-294 वर्ष 1991, भ०द०वि० की धारा 307 और 302 के तहत,
13. केस अपराध संख्या-229 वर्ष 1991, धारा 147, 148, 149 और 302 भ०द०वि०,
14. केस अपराध संख्या-456 वर्ष 1993, धारा 365 और 387 भ०द०वि०,

15. केस अपराध संख्या-503 वर्ष 1993, धारा 5 टाडा के तहत,

16. केस अपराध संख्या-834 वर्ष 1995, धारा 353, 504 और 506 भ०द०वि०,

17. केस अपराध संख्या-165 वर्ष 1996, धारा 323, 352 और 307 भ०द०वि०

18. प्रकरण अपराध क्रमांक 192 वर्ष 1996, धारा 3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट

19. केस अपराध संख्या-264 वर्ष 1996, एनएसए,

20. मुकदमा अपराध संख्या-237 वर्ष 1996, धारा 120, 135, 136 लो.प्र.अधि.;

21. केस अपराध संख्या-19 वर्ष 1997, धारा 364 ए, 365, 302, 120-बी और 34 भ०द०वि०

22. एनसीआर संख्या-19 वर्ष 1997, धारा 506 भ०द०वि० के तहत,

23. केस अपराध संख्या-121 वर्ष 1997, धारा 364 ए भ०द०वि० के तहत;

24. केस अपराध संख्या-377 वर्ष 1997, भ०द०वि० की धारा 506 के तहत;

25. केस अपराध संख्या-58 वर्ष 1998, एनएसए;

26. केस अपराध संख्या-33 वर्ष 1999, एनएसए;

27. केस अपराध संख्या-17 वर्ष 1999, भ०द०वि० की धारा 506 के तहत;

28. केस अपराध संख्या-60 वर्ष 1999, धारा 419, 420, 109 और 120-बी भ०द०वि०

29. केस अपराध संख्या-106 वर्ष 1999, धारा 307, 302 और 120-बी भ०द०वि०

30. केस अपराध संख्या-126 वर्ष 1999, धारा 506 भ०द०वि०

31. प्रकरण अपराध क्रमांक 428 वर्ष 1999, उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट की धारा 2/3 के अंतर्गत;

32. केस अपराध संख्या-66 वर्ष 2000, धारा 147, 336, 353 और 506 भ०द०वि०;

33. केस अपराध संख्या-209 वर्ष 2002, धारा 3/7/25 आर्म्स एक्ट के तहत;

34. केस अपराध संख्या-131 वर्ष 2003, धारा 353, 504 और 506 भ०द०वि०;

35. मामला अपराध संख्या-9 ए वर्ष 2004, धारा 147, 148, 149, 307 भ०द०वि०

36. केस अपराध संख्या-808 वर्ष 2004, धारा 147, 148, 149, 393, 307, 507, 506,
504 और 342 भ०द०वि० के तहत;

37. केस अपराध संख्या-493 वर्ष 2005, धारा 302, 506 और 120-बी भ०द०वि०;

38. धारा 147, 148, 149, 302, 307, 404, 120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या-589 वर्ष 2005;

39. केस अपराध संख्या-1580 वर्ष 2005, धारा 147, 148, 149, 302, 435, 436, 153 ए भ०द०वि० के तहत;

40. प्रकरण अपराध क्रमांक 1051 वर्ष 2007, धारा गैंगस्टर अधिनियम के तहत;

41. मुकदमा अपराध संख्या-361 वर्ष 2009, धारा 302, 120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम के तहत;

42. केस अपराध संख्या-1182 वर्ष 2009, धारा 307, 506 और 120-बी भ०द०वि०;

अनुवादित

43. केस अपराध संख्या-66 वर्ष 2009, धारा 3 मकोका अधिनियम के तहत;

44. धारा 147, 148, 149, 307, 302, 325, 404, 120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम के तहत मुकदमा अपराध संख्या-1866 वर्ष 2009;

45. केस अपराध संख्या-399 वर्ष 2010, धारा 302, 307, 120-बी, 34 भ०द०वि०,

धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम और धारा 25 शस्त्र अधिनियम

46. प्रकरण अपराध क्रमांक 482 वर्ष 2010, धारा 3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के अंतर्गत;

47. प्रकरण अपराध क्रमांक 891 वर्ष 2010, उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के तहत;

48. मुकदमा अपराध संख्या-20 वर्ष 2014, धारा 147, 148, 149, 302, 307, 506,

120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम

49. केस अपराध संख्या-05 वर्ष 2019, भ०द०वि० की धारा 386 और 506 के तहत;

50. केस अपराध संख्या-04 वर्ष 2020, धारा 419, 420, 467, 468, 471,

120B भ०द०वि० धारा 30 आर्म्स एक्ट के तहत;

51. प्रकरण अपराध क्रमांक 160 वर्ष 2020, धारा 3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के अंतर्गत;

52. केस अपराध संख्या-236 वर्ष 2020, धारा 468, 471, 120-बी भ०द०वि०

और धारा 3 Sa.Sa.Nu, अधि के तहत;

53. केस अपराध संख्या-55 वर्ष 2021, धारा 3(1) यूपी गैंगस्टर एक्ट के तहत;

54. केस अपराध संख्या-369 वर्ष 2021, धारा 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी, 506,

177 भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून पुनरीक्षण अधिनियम के तहत;

55. केस अपराध संख्या-121 वर्ष 2021, धारा 25/26 आर्म्स एक्ट के तहत;

56. केस अपराध संख्या-185 वर्ष 2021, धारा 419, 420, 467, 468, 471 120-बी भ०द०वि०

57. केस अपराध संख्या-287 वर्ष 2022, धारा 3(1) गैंगस्टर एक्ट के तहत; और

58. केस अपराध संख्या-08 वर्ष 2022, धारा 3(1) गैंगस्टर एक्ट के तहत।

12. उपरोक्त तथ्यों और कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि वर्तमान याचिका में आक्षेपित आदेश न केवल अधिकार क्षेत्र के बिना है, बल्कि गुण-दोष के आधार पर भी अस्थिर है, इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

13. इस प्रकार, याचिका की अनुमति दी जाती है और प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, एम.पी./एम.एल.ए., गाजीपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-10-ए वर्ष 2010 में पारित आक्षेपित आदेश, धारा 307, 506 और 120-बी भ०द०वि०, थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर के तहत केस अपराध संख्या-1182 वर्ष 2009 से उत्पन्न, एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 14

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 3559/2023

शबाना बानो ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

अप्रमाणित

अधिवक्ता आवेदक: श्री शोभित प्रताप सिंह, श्री मुजीब खान, श्री नवीन कुमार
अधिवक्ता विपक्षी पक्ष: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति -धारा 125- पत्नियों, माता-पिता का भरण-पोषण, धारा 126 (2) - बच्चों के लिए आदेश और धारा 125 के तहत कार्यवाही किसी भी व्यक्ति के खिलाफ किसी भी जिले में की जा सकती है - जहां वह या उसकी पत्नी निवास करती है सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 11 - पुनः न्यायिक- एक विवाद जो सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा सुना गया और अंततः तय किया गया है, जो ऐसे विवाद को तय करने के लिए सक्षम है, एक बाद के वाद में पुनः न्यायिक के रूप में काम करेगा - धारा 125 सीआरपीसी के तहत आवेदन द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के प्रावधान यानी पुनः न्यायिक के सिद्धांत लागू होंगे। (पैरा 25,35)

आवेदक का विवाह विपरीत पक्ष क्रमांक 2 के साथ संपन्न हुआ - पति ने दहेज की मांग की - दंपत्ति 2013 में अलग हो गए - पति ने आवेदक को तलाकनामा भेजा - आवेदक ने धारा 125 सीआरपीसी के तहत अपने और अपने बच्चों के भरण-पोषण के लिए आवेदन दायर किया- अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया- आवेदक ने एक अन्य आवेदन दायर किया- जिसे पारिवारिक न्यायालय ने पुनः न्यायिक सिद्धांत के आधार पर निरस्त कर दिया - आवेदक को सुनवाई का अवसर देने के बाद भी उस पर अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया (अर्थात गुण-दोष के आधार पर) - इसलिए आवेदन प्रस्तुत किया है। (पैरा-3,37)

निर्णय:- पुनः न्यायिक का सिद्धांत केवल दूसरे वाद में लागू होता है जहां सीधे और मूल रूप से विवाद पिछले आवेदनों में विवाद रहा है। यदि पहले के वाद में अंतिम रूप से या बिना योग्यता के निर्णय नहीं लिया गया है, तो उसी राहत के लिए दूसरा वाद पोषणीय होगा, और पुनः न्यायिक का सिद्धांत लागू नहीं होगा। धारा 125 सीआरपीसी के तहत पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को निरस्त कर दिया गया, जिसमें पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद छह महीने के भीतर एक तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैरा-30,38)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. डेनियल लतीफी बनाम भारत संघ ., (2001) 7 एससीसी 740
2. कैप्टन रमेश चंद्र कौशल बनाम वीना कौशल, एआईआर 1978 एससी 1807
3. चतुर्भुज वीएस सीता बाई, (2008) 2 सी सी 316
4. शबाना बानो बनाम इमरान खान, (2010) 1 एससीसी 666
5. शमीम बानो बनाम असरफ खान, (2014) 12 एससीसी 636
6. शमीमा फारूकी वीएस शाहिद खान, (2015) 5 सी सी 705

7. बादशाह वीएस सौ. उर्मिला बादशाह गोडसे, एयर 2014 एससी 869

8. म. नागभूषण वीएस कर्नाटक राज्य., (2011) 3 सी सी 408

9. नागेंद्रप्पा नाटिकर बनाम नीलमम्मा, एआईआर 2013 एससी 1541

10. जसवंत सिंह बनाम निष्क्रांत संपत्ति संरक्षक, (2004) 3 एससीसी 277

11. प्रेम किशोर एवं अन्य बनाम ब्रह्म प्रकाश एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 356

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता श्री नवीन कुमार, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत यह आवेदन आवेदिका की ओर से धारा 125 दं.प्र.सं. के तहत अपराधिक वाद संख्या 387/2019 (शबाना बानो बनाम अलीरज़ा), थाना-दुद्धी, जिला-सोनभद्र, में प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20 मई, 2022 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिससे आवेदिका द्वारा धारा 125 दं.प्र.सं. के तहत किया गया आवेदन खारिज कर दिया गया है।

<u>आवेदिका का मामला</u>

3. मौजूदा वाद का तथ्यात्मक मैट्रिक्स, जिसे आवेदिका ने उजागर किया है, वह आवेदिका और विपक्षी संख्या 2 की शादी 4.5.2002 को दुद्धी, सोनभद्र में मुस्लिम रीति-रिवाजों के अनुसार हुई थी और उक्त विवाह में दहेज की पूर्ति के लिए आवेदिका के परिवार के सदस्यों द्वारा इंडिका कार के साथ लगभग 40 लाख रुपये विपक्षी संख्या 2 को दिए गए थे। शादी के बाद आवेदिका अपने ससुराल आ गई लेकिन शादी के कुछ दिन बाद पति (विपक्षी संख्या 2) और उसके परिवार के सदस्यों ने फिर से आवेदिका के परिवार के सदस्यों से 20 लाख रुपये की मांग की। उपरोक्त विवाह से तीन लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुआ। जब आवेदिका के परिवार वालों ने दहेज की उपरोक्त 20 लाख रूपये की अतिरिक्त मांग पूरी नहीं की तो विपक्षी संख्या 2 और उसके परिवार के सदस्यों ने 18.11.2013 को आवेदिका को उसके बच्चों सहित उसके वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया और 2.12.2013 को विपक्षी संख्या 2 ने आवेदिका को तलाकनामा भेज दिया चूंकि आवेदिका एक अकुशल गृहिणी/महिला है, वह अपने और अपने बच्चों के लिए आजीविका कमाने में असमर्थ है, इसलिए उसने अपने और अपने बच्चों के

भरण-पोषण के लिए धारा 125 दं.प्र.सं. के तहत अपराधिक वाद संख्या 21/2014 (शबाना बानो बनाम अली रजा) दायर किया लेकिन उक्त आवेदन निचली अदालत द्वारा 1.3.2017 को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था। धारा 125 दं.प्र.सं. के तहत उक्त आवेदन को खारिज करने के बाद, आवेदिका ने धारा 126 (2) दं.प्र.सं. के तहत प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र के अपराधिक वाद संख्या 138/2017 के समक्ष एक और आवेदन दायर किया। जिसे 8 फरवरी, 2018 को अभियोजन के अभाव में विद्वान प्रधान न्यायाधीश परिवार न्यायालय, सोनभद्र द्वारा भी खारिज कर दिया गया है। उसके बाद आवेदिका ने प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र के समक्ष धारा 125 दं.प्र.सं. के तहत एक नया आवेदन दायर किया, जिसे अपराधिक वाद संख्या 387/2019 (शबाना बानो बनाम अली रजा) के रूप में क्रमांकित किया गया है। आवेदिका द्वारा धारा 125 दं.प्र.सं. के तहत दायर इस आवेदन को परिवार न्यायालय ने 20 मई, 2022 के आदेश के तहत पुनर्न्याय के सिद्धांत पर फिर से खारिज कर दिया है। इसी आदेश के विरुद्ध यह आवेदन दाखिल किया गया है।

<u>आक्षेपित आदेश पारित करते समय प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र का निष्कर्ष और निष्कर्ष:</u>

4. आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले, परिवार न्यायालय ने एक वैचारिक मुद्दा तैयार किया है कि क्या 1 मार्च, 2017 और 8 फरवरी 2018, के आदेशों के तहत अभियोजन की कमी के कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 और 126 (2) के तहत आवेदिका के आवेदनों को खारिज कर दिया गया है धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नया आवेदन अपराधिक संख्या 387/2019 (शबाना बानो बनाम अली रजा) कानूनी रूप से बनाए रखने योग्य है या नहीं तथा आवेदिका को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-125 के अन्तर्गत नये सिरे से आवेदन दाखिल करने का अधिकार है अथवा नहीं?

5. परिवार न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में दर्ज किया है कि आवेदिका की अनुपस्थिति के कारण, आवेदिका द्वारा धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किया गया पहला आवेदन 01.03.2017 को खारिज कर दिया गया है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 126 (2) के तहत आवेदन 8 फरवरी, 2018 को खारिज कर दिया गया

है। कानूनी दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि आवेदिका द्वारा पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा-125 के संबंध में सभी अधिकारों का प्रयोग किया गया है और न्यायालय द्वारा दो बार अंतिम निर्णय लिया गया है। आगे यह भी दर्ज किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-125 की कार्यवाही अर्ध-सिविल प्रकृति की है। आवेदिका की अनुपस्थिति के कारण दो बार मामला खारिज होने के बाद आवेदिका को नए वाद के तहत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 लागू करने का अधिकार मिल गया। प्रश्नगत प्रकरण में उक्त वैचारिक प्रश्न विधि का प्रश्न है, जिसका निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जा रहा है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत वर्तमान आवेदन में उल्लिखित तथ्यों पर तब तक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि वे कानूनी रूप से पोषणीय न हों।

6. प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-125 की कार्यवाही अर्ध-सिविल प्रकृति की है। पारिवारिक न्यायालय नियम, 2006 की धारा-36 के अनुसार, भरण-पोषण भत्ते के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय-IX के तहत पारित आदेश को धारा-60 और आदेश- X X I में दिए गए अनुसार वेतन की कुर्की करके न्यायालय द्वारा निष्पादित किया जा सकता है दंड प्रक्रिया संहिता, धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता की उप-धारा 3 में प्रदान की गई वसूली की विधि के अलावा। यह भी उल्लेखनीय है कि जुर्माना वसूली का वारंट दंड प्रक्रिया संहिता के अंत में उल्लिखित प्रारूप संख्या 44 में जिला कलेक्टर को भी भेजा जाता है। यहां यह बताना भी जरूरी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-125 के तहत औपचारिक साक्ष्य हलफनामे में दिया जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश X V III नियम-4(1) के अनुसार मुख्य परीक्षा शपथ पत्र पर होगी। इस प्रकार सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत प्रकीर्ण मामले में भी लागू होते हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-125 के तहत मुकदमा प्रकृति में अर्ध-सिविल मुकदमा है। प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि 1 मार्च, 2017 के आदेश में धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदिका के आवेदन को खारिज कर दिया गया था और आदेश दिनांक 8 फरवरी, 2018 को धारा 126 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत

आवेदिका के आवेदन को खारिज कर दिया गया। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा-11 को आकर्षित करें, जैसा कि उपर्युक्त दोनों प्रकीर्ण अनुप्रयोगों में है यानी धारा 125 और 126 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत और धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत ताजा प्रकीर्ण आवेदन, पक्ष, न्यायालय और विवादास्पद तथ्य समान हैं। इस तरह के निष्कर्ष के आधार पर, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत अपराधिक वाद संख्या 387/2019 होने के कारण सिविल प्रक्रिया संहिता के धारा 11 में सन्निहित पुनर्न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है।

7. उपरोक्त के अलावा, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय ने भी राय दी है कि धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन 2018 के लगभग डेढ़ साल बाद दायर किया गया है और आवेदिका द्वारा अपने वाद पत्र में उस देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और आवेदिका द्वारा तथ्यों का भी उल्लेख नहीं किया गया है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-126(2) में भरण-पोषण की मांग के लिए उसका आवेदन खारिज हो जाने के बाद न्यायालय के समक्ष धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नया आवेदन लाने का कोई कानूनी औचित्य नहीं है।

8. उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र ने माना है कि धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नया आवेदन, अपराधिक वाद संख्या 387/2019 (शबाना बानो बनाम अली रजा) कानूनी रूप से रखरखाव योग्य नहीं होने के कारण खारिज करने योग्य है।

9. <u>आवेदक के लिए विद्वान वकील का प्रस्तुतीकरण</u>

(i) इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत आवेदन प्रकृति में अपराधिक है, लेकिन आवेदिका के वाद में नागरिक प्रक्रियाओं के कुछ प्रावधान लागू होते हैं जैसे कि पूर्व न्यायिक सिद्धांत। हालाँकि, रेस ज्यूडिकाटा की परिभाषा के अनुसार, यह केवल उस वाद में लागू होगा जब समान कारण और उसी आधार पर पहले के मामले का अंतिम निर्णय/अस्वीकार कर दिया गया हो। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 126 (2) के तहत आवेदिका के आवेदन का निर्णय गुण-दोष के आधार पर नहीं किया गया है और

अभियोजन के अभाव में इसे खारिज कर दिया गया है।

(ii) विपक्षी संख्या 2 के माध्यम से, जो न्यायपालिका में बहुत ऊंचे पद पर है और एक अमोघ व्यक्ति भी है, वर्तमान में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के पद पर तैनात है, अपने प्रभाव का फायदा उठाकर आवेदिका के आवेदनों को बार-बार खारिज करवा रहा है।

(iii) आवेदिका द्वारा धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर पहला आवेदन गैर-उपस्थिति के आधार पर खारिज कर दिया गया था, लेकिन निर्दोष गृहिणी होने के नाते आवेदिका को उसके अधिवक्ता द्वारा सूचित न किए जाने के कारण उसके मामले में तारीख के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

(iv) आवेदिका के पास आय का कोई स्रोत नहीं है तथा वह 18.11.2013 से अपने पैतृक घर में अकेली रह रही है तथा उसके माता एवं पिता की भी मृत्यु हो चुकी है।

(v) निचली अदालत ने धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदिका के आवेदन को रखरखाव के आधार पर खारिज करके कानून की स्पष्ट त्रुटि की है।

10. अपने वाद के समर्थन में, आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है

(i) सुप्रीम कोर्ट ने प्रीतम सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य के मामले में एआईआर 1956 एससी 415 में रिपोर्ट दी; (ii) दवलसाब बनाम खाजासाब के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 2009 में रिपोर्ट दी 0 सुप्रीम (एससी) 1239; और (iii) पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने मनीष टंडन बनाम अंकिता भूटानी के मामले में 2017 मुकदमा (पी एंड एच) 2449 में रिपोर्ट की; (iv) खेम चंद कटारिया वी.एस.शकुंतला देवी के वाद में दिल्ली उच्च न्यायालय ने II (1983) डी.एम.सी 201 में रिपोर्ट दी; और राजस्थान उच्च न्यायालय ने जगदीश चंद्र बनाम हेमलता और अन्य के मामले में 1986 मुकदमा (रा) 526 में रिपोर्ट की।

उपरोक्त की संचयी शक्ति के आधार पर, आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि परिवार न्यायालय द्वारा पारित आदेश को कानूनी रूप से बरकरार नहीं रखा जा

सकता है और इसे रद्द किया जा सकता है।

<u>विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ राज्य के लिए</u>

11. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता आवेदिका के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों का खंडन करता है कि कोई भी वाद/मामला, जिसका निर्णय गुण-दोष के आधार पर अर्थात अंतिम रूप से या अन्यथा किया गया हो, दूसरा वाद/मामला पुनर्न्याय के सिद्धांत पर चलने योग्य नहीं होगा। उनकी याचिका के समर्थन में, अपर शासकीय अधिवक्ता ने 1966 एससीसी ऑनलाइन पैट 38 में रिपोर्ट किए गए महंथ गिरजानंद भगत और अन्य बनाम भगवान भगत और अन्य के मामले में (i) पटना उच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है; (ii) मैसूर उच्च न्यायालय केम्पेगौड़ा बनाम अनेगौड़ा और अन्य की रिपोर्ट 1950 एससीसी ऑनलाइन कार 42 में दी गई; और (iii) सी. सुब्रमण्यम बनाम सी. सुमति और अन्य ने 2003 में रिपोर्ट किया (2) एएलडी सीआरआई 905।

उपरोक्त की संचयी ताकत पर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का मानना है पारिवारिक न्यायालय द्वारा धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदिका के आवेदन को न्यायिक आधार पर खारिज करने के आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, क्योंकि वर्तमान आवेदिका के पास कोई योग्यता नहीं है और उसे बर्खास्त किया जा सकता है।

12. मैंने आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना है और आक्षेपित आदेश सहित वर्तमान आवेदन के अभिलेखों का अध्ययन किया है।

<u>दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत कार्यवाही का उद्देश्य और उद्देश्य</u>

13. पक्षों द्वारा स्थापित मामले के गुण-दोष पर आने से पहले यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के लक्ष्य और उद्देश्य पर आता है।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 एक सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिनियमित की गई है और इसका उद्देश्य आवारागर्दी को

रोकना है और निराश्रित होना और परित्यक्त या तलाकशुदा पत्नी, नाबालिग बच्चों और कमजोर माता-पिता को भोजन, कपड़े और आश्रय और किसी के जीवन की न्यूनतम जरूरतों के मामले में त्वरित उपचार प्रदान करना। सुप्रीम कोर्ट का हमेशा से मानना रहा है कि पत्नी को गुजारा भत्ता देना लैंगिक न्याय का मुद्दा है और पति का दायित्व इससे भी ऊपर है।

15. (2001) एससीसी 740 में रिपोर्ट किए गए **डेनियल लतीफी बनाम भारत संघ** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार राय दी है:

"उन प्रावधानों की व्याख्या करते समय जहां वैवाहिक संबंध शामिल हैं, हमें अपने समाज में प्रचलित सामाजिक स्थितियों पर विचार करना होगा। हमारे समाज में, चाहे वे बहुसंख्यक समूह के हों या अल्पसंख्यक समूह के, यह स्पष्ट है कि एक पुरुष और एक महिला के बीच आर्थिक संसाधन के मामले में बड़ी असमानता मौजूद है। हमारा समाज आर्थिक और सामाजिक रूप से पुरुष प्रधान है और महिलाओं को हमेशा एक आश्रित भूमिका सौंपी जाती है, चाहे वह समाज के किसी भी वर्ग से आती हो। विवाह के बाद अक्सर एक महिला, भले ही उच्च शिक्षित हो, अपने अन्य सभी व्यवसाय छोड़ देती है और खुद को पूरी तरह से परिवार के कल्याण के लिए समर्पित कर देती है, विशेष रूप से वह अपने पति के साथ अपनी भावनाओं, संवेदनाओं, मन और शरीर को साझा करती है और विवाह में उसका निवेश उसके पूरे जीवन में उसके व्यक्तिगत आत्म का एक पवित्र बलिदान है और यह पैसे के संदर्भ में मापने के लिए बहुत बड़ा है। जब इस तरह का कोई रिश्ता टूटता है, तो जहां तक भावनात्मक फ्रैक्चर या निवेश के नुकसान का सवाल है, हम किस तरह से उसकी भरपाई कर सकते हैं, इसका कोई जवाब नहीं हो सकता है। यह कहना एक छोटी सी सांत्वना है कि ऐसी महिला को उसकी आजीविका के लिए धन के रूप में मुआवजा दिया जाना चाहिए और ऐसी राहत जो लिंग और सामाजिक न्याय को सुरक्षित करने के लिए बुनियादी मानवाधिकारों का हिस्सा है, सभी धर्मों से संबंधित व्यक्तियों द्वारा सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त है और यह समझना मुश्किल है कि मुस्लिम कानून वैवाहिक जीवन से असंबद्ध लोगों जैसे कि वारिसों को, जिन्हें उसके या वक्फ बोर्ड से संपत्ति विरासत में मिलने की संभावना थी, को सौंपकर एक अलग तरह की जिम्मेदारी प्रदान करने का इरादा रखता है। ऐसा दृष्टिकोण हमें सामाजिक तथ्यों का एक प्रकार से विरूपण प्रतीत होता है। बुनियादी मानवाधिकारों, संस्कृति, गरिमा के क्षितिज से संबंधित सार्वभौमिक परिमाण की ऐसी सामाजिक समस्याओं का समाधान और जीवन की शालीनता और सामाजिक न्याय की खोज में आवश्यकता के निर्देशों को हमेशा धर्म या धार्मिक विश्वास या मान्यताओं या राष्ट्रीय, सांप्रदायिक, नस्लीय या सांप्रदायिक बाधाओं के अलावा अन्य विचारों पर निर्णय लेने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। इस पहलू को ध्यान

में रखते हुए, हमें संबंधित अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करनी होगी।

16. एआईआर 1978 एससी 1807 में रिपोर्ट किए गए **कैप्टन रमेश चंद्र कौशल बनाम वीणा कौशल** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की:

"महिलाओं और बच्चों जैसे कमजोर वर्गों के लिए संवैधानिक सहानुभूति की विचारशील उपस्थिति को सामाजिक प्रासंगिकता के लिए व्याख्या को सूचित करना चाहिए।"

17. (2008) 2 एससीसी 316 में दर्ज **चतुर्भुज बनाम सीता बाई** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विचार व्यक्त किया कि धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता की सामाजिक न्याय का एक उपाय है और विशेष रूप से महिलाओं की सुरक्षा के लिए अधिनियमित किया गया है। बच्चों और यह किसी व्यक्ति के अपनी पत्नी, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के मौलिक अधिकारों और प्राकृतिक कर्तव्यों को प्रभावी बनाता है, जब वे अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ होते हैं।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

" दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 सामाजिक न्याय का एक उपाय है और विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए अधिनियमित किया गया है और जैसा कि कैप्टन रमेश चंदर कौशल बनाम वीना कौशल (1978) 4 एससीसी 70 में इस न्यायालय ने उल्लेख किया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 द्वारा प्रबलित अनुच्छेद 15(3) के संवैधानिक दायरे में आता है। इसका उद्देश्य सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त करना है। इसका उद्देश्य आवारागर्दी और गरीबी को रोकना है। यह परित्यक्त पत्नी को भोजन, कपड़े और आश्रय की आपूर्ति के लिए एक त्वरित उपाय प्रदान करता है। यह किसी व्यक्ति के अपनी पत्नी, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के मौलिक अधिकारों और प्राकृतिक कर्तव्यों को प्रभावी बनाता है, जब वे अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ होते हैं। उपरोक्त स्थिति को सविताबेन सोमाभाई भाटिया बनाम गुजरात राज्य (2005) 3 एससीसी 636 में उजागर किया गया था।"

18. **शबाना बानो बनाम इमरान खान** में (2010) 1 एससीसी 666 में धारा 125 के तहत भरण-पोषण की याचिका में, पति द्वारा उठाई गई आपत्तियों में से एक थी कि उसने मुस्लिम कानून के अनुसार और मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रावधानों के तहत याचिका दायर करने से पहले ही पत्नी को तलाक दे दिया है। वह तलाक के बाद और इद्दत अवधि की समाप्ति के बाद किसी भी रखरखाव की हकदार नहीं है हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अधिनियम की धारा 3 के तहत आवेदन के निपटान के बाद भी, तलाकशुदा पत्नी इद्दत अवधि से परे और पुनर्विवाह होने तक धारा 125 के तहत रखरखाव का दावा करने की हकदार है।

शमीम बानो बनाम असरफ खान (2014) 12 एससीसी 636 में रिपोर्ट किए गए मामले में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

19. उसी दृष्टिकोण को दोहराते हुए, **शमीमा फारूकी बनाम शाहिद खान** (2015) 5 एससीसी 705 में रिपोर्ट की गई**,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है**:**

"यह स्पष्ट कर दिया जाए कि भरण-पोषण का अर्थ मात्र जीवित रहना नहीं है और न ही कभी इसकी अनुमति दी जा सकती है। एक महिला, जो वैवाहिक घर छोड़ने के लिए बाध्य है, को यह महसूस करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह अनुग्रह से गिर गई है और भरण-पोषण की व्यवस्था करते हुए इधर-उधर भटकती रहती है। कानून के मुताबिक, वह उसी तरह जीवन जीने की हकदार है जैसे वह अपने पति के घर में रहती और यहीं पर पति की स्थिति और स्तर मायने रखता है और यहीं पर पति का कानूनी दायित्व प्रमुख हो जाता है। जब तक पत्नी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के मापदंडों के तहत भरण-पोषण पाने की हकदार माना जाता है, तब तक यह पर्याप्त होना चाहिए ताकि वह सम्मान के साथ रह सके जैसे कि वह अपने वैवाहिक घर में रहती है। उसे बेसहारा या भिखारी बनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।" जब महिला वैवाहिक घर छोड़ती है, तो स्थिति काफी अलग होती है। वह कई सुख-सुविधाओं से वंचित है। कभी-कभी जिंदगी पर भरोसा कम हो जाता है। कभी-कभी उसे लगता है कि उसने सबसे कोमल दोस्त खो दिया है। ऐसा महसूस हो सकता है कि उसका निडर साहस उसके लिए दुर्भाग्य लेकर आया है। इस स्तर पर, कानून केवल यही सांत्वना दे सकता है कि पति आर्थिक सुविधा देने के लिए बाध्य है। यही एकमात्र सुखदायक कानूनी मरहम है, क्योंकि उसे नियति से इस्तीफा देने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

20. एआईआर 2014 एससी 869 में रिपोर्ट किए गए **बादशाह बनाम सौउर्मिला बादशाह गोडसे** के मामले में, हालांकि यह संहिता की धारा 125 के तहत एक मामले में कानूनी विवाह के प्रमाण के मानक से संबंधित था, सुप्रीम कोर्ट ने दायरे के संबंध में एक बहुत ही जोरदार टिप्पणी की और संहिता की धारा 125 द्वारा प्रदान किए गए कानून का उद्देश्य।

21. वर्तमान आवेदन के अभिलेखों के साथ-साथ आक्षेपित आदेश से, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र के समक्ष आवेदिका द्वारा दायर पहले के दो आवेदन अनुपस्थिति रूप से/अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिए गए हैं, जिसका अर्थ है कि उन पर अंतिम रूप से यानी गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं लिया गया है।

<u>मुद्दों का निर्धारण</u>

22. वर्तमान आवेदन के अभिलेखों से उत्पन्न कानूनी मुद्दे, जिन्हें पार्टियों के विद्वान अधिवक्ता ने भी स्वीकार किया है, निम्नानुसार हैं:

(अ) क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत कार्यवाही में दंड प्रक्रिया संहिता धारा 11 के प्रावधान यानी पूर्व न्यायिक सिद्धांत लागू होंगे या नहीं?;

(आ) और क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत आवेदिका के मामले में न्यायिक निर्णय का सिद्धांत लागू होगा?;

(इ) क्या आवेदिका द्वारा धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर नया आवेदन विचारणीय है या नहीं, धारा 125 और 126 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसके दो आवेदन अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिए गए हैं।

<u>अंक संख्या (अ) पर उत्तर</u>

23. पहले मुद्दे यानी (अ) की जांच करने के लिए, इस न्यायालय के लिए धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही की प्रकृति के बारे में चर्चा करना आवश्यक है। निस्संदेह, यह उन महिलाओं/बच्चों/माता-पिता की सुरक्षा के लिए एक सामाजिक कानून है, जिन्हें सहायता की आवश्यकता है। जब भरण-पोषण के लिए इस तरह का दावा व्यक्तिगत कानून के तहत किया जाता है, तो परित्याग और उपेक्षा के पीड़ितों की तत्काल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, भरण-पोषण के ऐसे दावों का शीघ्र निपटान करने के उद्देश्य से, अधिकार का निर्णय सिविल न्यायालय द्वारा किया जाता है। ऐसा प्रावधान करते समय, संसद ने पीड़ितों को अपराधिक न्यायालय के माध्यम से भरण-पोषण का दावा करने में सक्षम बनाने के प्रावधान को शामिल करना उचित समझा। इस प्रकार, हालांकि धारा 125 (1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक याचिका/आवेदन अपराधिक न्यायालय के समक्ष किया जाता है जैसा कि धारा 6 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत परिभाषित किया गया है, उक्त अदालत द्वारा तय किया गया अधिकार पूरी तरह से प्रकृति में नागरिक है। इसलिए, निस्संदेह, भरण-पोषण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 (1) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा दिया गया आदेश किसी व्यक्ति के ऐसे नागरिक अधिकार की पराकाष्ठा है। लेकिन, संहिता की धारा 125 (3) न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 (1) के तहत दिए गए ऐसे आदेश का पालन करने में विफलता की स्थिति में कारावास की सजा देने का अधिकार देती है। इस हद तक, कार्यवाही प्रकृति में अपराधिक है। व्यापक रूप से कहें तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत शुरू की गई कार्यवाही अर्ध-सिविल और अर्ध- अपराधिक है। शीर्ष अदालत ने कई फैसलों में ऐसा कहा है।

अनुवाद

भरण-पोषण के लिए न्यायालय के समक्ष दावा करने की प्रक्रिया के संबंध में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 (1) के तहत जो दायर किया गया है वह एक शुद्ध और सरल याचिका/आवेदन है और कोई शिकायत नहीं है जैसा कि संहिता की धारा 2 (डी) में परिभाषित है। यह फिर से संकेत देगा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत कार्यवाही को अर्धसैनिक और अर्ध अपराधिक कार्यवाही के रूप में माना जाता है।

24. (2011) 3 एससीसी 408 में रिपोर्ट किए गए **एम. नागभूषण बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पुनर्न्याय का सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से लागू होगा। यह न्याय के हित और कई मुकदमों को सुरक्षित करने के लिए नागरिक और अपराधिक दोनों कार्यवाही पर लागू होगा। शीर्ष न्यायालय की टिप्पणी को यहां नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"न्यायिक निर्णय का सिद्धांत सार्वभौमिक अनुप्रयोग के हैं *क्योंकि यह दो पुराने सिद्धांतों पर आधारित है, अर्थात्, 'इंटरेस्ट रिपब्लिका यूट सिट फ़िनिस लिटियम' जिसका अर्थ है कि यह राज्य के हित में है कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए और दूसरा सिद्धांत है 'निमो डिबेट हिज वे एरी, सी कॉन्सेट क्यूरी क्वॉड सिट प्रो अन एट एडेमन कॉज' जिसका अर्थ यह है कि किसी भी मुकदमे में किसी को भी दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए अगर यह अदालत को लगता है कि यह एक और एक ही कारण के लिए है । **न्यायिक निर्णय का यह सिद्धांत न्यायशास्त्र की सभी सभ्य प्रणालियों के लिए इस हद तक आम है** कि सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा उचित सुनवाई के बाद दिए गए निर्णय को मुकदमेबाजी के प्रश्नों का अंतिम और निर्णायक निर्धारण माना जाना चाहिए और विवाद को हमेशा के लिए शांत कर देना चाहिए।*

*15. मुकदमे की अंतिमता का सिद्धांत सार्वजनिक नीति के उच्च सिद्धांत पर आधारित है। ऐसे सिद्धांत के अभाव में कानून के रंग और दिखावे के तहत बड़े पैमाने पर उत्पीड़न हो सकता है, यहां तक कि मुकदमेबाजी का कोई अंत नहीं होगा और एक अमीर और दुर्भावनापूर्ण वादी बार-बार मुकदमों और कार्यों से अपने प्रतिद्वंद्वी को असीमित रूप से परेशान करने में सफल हो जाएगा। इससे कमज़ोर पक्ष को अपना अधिकार छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ सकता है। ऐसी अराजकता को रोकने के लिए न्यायिक निर्णय का सिद्धांत विकसित किया गया है। इसीलिए यह माना जाता है कि न्यायिक निर्णय का सिद्धांत दलील कोई तकनीकी सिद्धांत नहीं है बल्कि एक मौलिक सिद्धांत है जो मुकदमेबाजी में अंतिमता सुनिश्चित करने में कानून के शासन को कायम रखता है। **यह सिद्धांत ईमानदारी और न्याय के निष्पक्ष प्रशासन को बढ़ावा देना चाहता है और उन मुद्दों पर आंदोलन के लिए अदालत तक पहुंचने के मामले में दुरुपयोग को रोकना है जो पार्टियों के बीच अंतिम हो गए हैं।***

(जोर दिया गया)

25. उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय की दृढ़ राय है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत आवेदन द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में, नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के प्रावधान यानी पुनर्निर्णय का सिद्धांत लागू होंगे।

<u>अंक संख्या (बी) और (सी) पर उत्तर दें।</u>

26. दूसरे और तीसरे मुद्दे यानी (बी) और (सी) की जांच के लिए, इस न्यायालय के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 का संदर्भ लेना महत्वपूर्ण है जिसमें पुनर्निर्णय का सिद्धांत को परिभाषित किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"11 कोई भी न्यायालय ऐसे किसी मुकदमे या मुद्दे की सुनवाई नहीं करेगा जिसमें वाद सीधे तौर पर और पर्याप्त रूप से संबंधित हो और समान पार्टियों के बीच, या उन पार्टियों के बीच, जिनके तहत वे या उनमें से कोई दावा करता है, एक ही शीर्षक के तहत मुकदमा करते हुए, ऐसे बाद के मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सक्षम न्यायालय में या उस मुकदमे में, ***जिसमें इस तरह के मुद्दे को बाद में निपटाया गया है, पिछले मुकदमे में महत्वपूर्ण रूप से मुद्दा उठाया है,और ऐसे न्यायालय द्वारा सुना गया है और अंततः निर्णय लिया गया है।***

स्पष्टीकरण I-- अभिव्यक्ति पूर्व वाद एक ऐसे वाद को सूचित करेगा जिसका निर्णय संबंधित वाद से पहले किया जा चुका है, चाहे वह उससे पहले संस्थित किया गया हो या नहीं।

स्पष्टीकरण II.-- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी न्यायालय की क्षमता ऐसे न्यायालय के निर्णय के खिलाफ अपील के अधिकार के किसी भी प्रावधान के बावजूद निर्धारित की जाएगी।

स्पष्टीकरण III.-- उपरोक्त उल्लिखित मामला पूर्व मुकदमे में एक पक्ष द्वारा आरोपित किया गया होगा और दूसरे द्वारा, स्पष्ट रूप से या निहित रूप से, अस्वीकार या स्वीकार किया गया होगा।

स्पष्टीकरण IV -- कोई भी मामला जिसे ऐसे पूर्व मुकदमे में बचाव या हमले का आधार बनाया जा सकता था और बनाया जाना चाहिए था, उसे ऐसे मुकदमे में सीधे और महत्वपूर्ण रूप से मुद्दा माना जाएगा।

स्पष्टीकरण V -- वादपत्र में दावा किया गया कोई भी राहत, जो डिक्री द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है, इस धारा के प्रयोजनों के

लिए, अस्वीकार कर दिया गया माना जाएगा।

स्पष्टीकरण V I.-- जहां व्यक्ति सार्वजनिक अधिकार या अपने लिए आम तौर पर दावा किए गए निजी अधिकार के संबंध में सद्भावना से मुकदमा करते हैं और अन्य, ऐसे अधिकार में रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियों को, इस धारा के प्रयोजनों के लिए, मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के तहत दावा करने के लिए समझा जाएगा।

स्पष्टीकरण V II.-- इस धारा के प्रावधान किसी डिक्री के निष्पादन की कार्यवाही पर लागू होंगे और इस धारा में किसी भी मुकदमे, मुद्दे या पूर्व मुकदमे के संदर्भ को क्रमशः डिक्री के निष्पादन के लिए कार्यवाही, ऐसी कार्यवाही में उत्पन्न होने वाले प्रश्न और उस डिक्री के निष्पादन के लिए पूर्व कार्यवाही के संदर्भ के रूप में माना जाएगा।

स्पष्टीकरण V III.-- कोई मुद्दा सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा सुना गया और अंतिम रूप से तय किया गया, जो ऐसे मुद्दे पर निर्णय लेने में सक्षम है, बाद के मुकदमे में पूर्व न्यायिक के रूप में काम करेगा, भले ही सीमित क्षेत्राधिकार वाला ऐसा न्यायालय ऐसे बाद के मुकदमे की सुनवाई के लिए सक्षम नहीं था या वह मुकदमा जिसमें इस तरह का मुद्दा बाद में उठाया गया है।

27. "पुनर्न्याय का सिद्धांत" का शाब्दिक अर्थ है "निर्णयित चीज़" या "एक मुद्दा जिसे न्यायिक निर्णय द्वारा निश्चित रूप से सुलझाया गया है"। यह सिद्धांत एक ही मुद्दे को एक बार फिर से आज़माने के लिए एक बाधा के रूप में कार्य करता है। इसका उद्देश्य कार्यवाहियों की बहुलता को रोकना है और एक मुद्दे को अंतिम रूप देना है, जो सीधे और महत्वपूर्ण रूप से समान पक्षों या उनके निजी लोगों के बीच पूर्व मुकदमे में उत्पन्न हुआ था और निर्णय लिया गया था और अंतिम बन गया है, ताकि पार्टियों को दो बार परेशानी न हो; कष्टप्रद मुकदमेबाजी समाप्त हो जाती है और अदालत का बहुमूल्य समय बच जाता है।

28. एआईआर 2013 एससी 1541 में रिपोर्ट किए गए **नागेंद्रप्पा नाटिकर बनाम नीलमम्मा** में, सवाल यह था कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता (सि.प्र.सं.) के आदेश X X III, नियम **3** के तहत पति और पत्नी द्वारा स्थायी गुजारा भत्ता के लिए एक समेकित राशि के लिए समझौता किया

गया था और इस तरह दंड प्रक्रिया संहिता (दं.प्र.सं.) की धारा 125 के तहत कार्यवाही में अदालत द्वारा स्वीकार किए गए भरण-पोषण के लिए किसी भी भविष्य के दावे को छोड़ देना, पत्नी को हिंदू दत्तक ग्रहण की धारा 18 के तहत दायर मुकदमे में भरण-पोषण का दावा करने से रोक देगा और रखरखाव अधिनियम, 1956? इस मामले में, समझौते के आधार पर याचिका का निपटारा होने के बाद, प्रतिवादी पत्नी ने पहले के आदेश को रद्द करने और भविष्य में भरण-पोषण देने के लिए परिवार न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 127 के तहत एक प्रकीर्ण आवेदन दायर किया। जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 127 के तहत आवेदन लंबित था, प्रतिवादी पत्नी ने भी हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम की धारा 18 के तहत पारिवारिक न्यायालय के समक्ष 2,000 रुपये प्रति माह की दर से भरण-पोषण का दावा करते हुए मुकदमा दायर किया। दोनों याचिकाओं का पति ने यह कहते हुए विरोध किया कि गुजारा भत्ता के दावे के संबंध में दोनों पक्ष पहले ही समझौता कर चुके हैं। रख-रखाव का प्रश्न प्रारंभिक मुद्दे के रूप में उठाया गया था। परिवार न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 15.9.2009 द्वारा माना कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत कार्यवाही में पक्षों के बीच हुआ समझौता अधिनियम की धारा 18 के तहत मुकदमे पर विचार करने में बाधा नहीं बनेगा। अंततः 30.9.2010 को मुकदमे की सुनवाई हुई और परिवार न्यायालय ने मुकदमे पर फैसला सुनाते हुए कहा कि प्रतिवादी मुकदमा दायर करने की तारीख से प्रतिवादी पति से 2,000 रुपये प्रति माह के मासिक रखरखाव का हकदार है। हाई कोर्ट ने भी इसकी पुष्टि की।

29. उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बताया कि अनुबंध अधिनियम की धारा 25 में प्रावधान है कि कोई भी समझौता जो सार्वजनिक नीति का विरोध करता है, कानून की अदालत में लागू नहीं किया जा सकता है और ऐसा समझौता शून्य है, क्योंकि उद्देश्य गैरकानूनी है। **कोर्ट ने कहा कि ' दंड**

अनुवाद

प्रक्रिया संहिता की धारा 125 **के तहत कार्यवाही सारांश प्रकृति की है और इसका उद्देश्य पत्नी को त्वरित उपचार प्रदान करना है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा** 125 **के तहत समझौता या अन्यथा पारित कोई भी आदेश** 1956 **अधिनियम की धारा** 18(2) **के तहत पत्नी को उपलब्ध उपचार को रोक नहीं सकता है और कहा**:

*"धारा 125, दंड प्रक्रिया संहिता सामाजिक कानून का एक हिस्सा है जो उस पत्नी को भरण-पोषण के माध्यम से संक्षिप्त और त्वरित राहत प्रदान करता है जो अपना और अपने बच्चों का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। धारा **125** का उद्देश्य पूर्ण प्रावधान करना नहीं है और पार्टियों की स्थिति और व्यक्तिगत अधिकारों का अंतिम निर्धारण, जो एक नागरिक कार्यवाही की प्रकृति में है, हालांकि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **125** के तहत दिया गया आदेश अस्थायी है और सिविल अदालत में अधिकारों के अंतिम निर्धारण के अधीन है।"*

30. (2004) 3 एससीसी 277 में रिपोर्ट किए गए **जसवन्त सिंह बनाम निष्क्रांत संपत्ति** के संरक्षक मामले में**,** सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण निर्धारित किया है कि क्या बाद के मुकदमे को पूर्व न्याय द्वारा वर्जित किया गया है**:**

*"14....न्यायालय की रक्षा सफल हो सके, इसके लिए यह दिखाना आवश्यक है कि न केवल कार्रवाई का कारण वही था, बल्कि यह भी कि वादी को **राहत पाने का अवसर मिला था, जिसे वह अब पिछली कार्यवाही में चाह रहा है।** परीक्षण यह है कि क्या बाद के मुकदमे या कार्यवाही में दावा वास्तव में कार्रवाई के उसी कारण पर आधारित है जो पिछले मुकदमे या कार्यवाही की नींव थी।*

31. **नागेन्द्रप्पा नाटिकर और जसवन्त सिंह (सुप्रा)** दोनों मामलों में शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट किया है यदि पहले के मुकदमे का निर्णय गुण-दोष के आधार पर नहीं किया गया है, तो इसका अर्थ यह है कि मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना समझौते के आधार पर निर्णय लिया जाता है। और दावेदार/आवेदिका को सुनवाई का अवसर दिए बिना, उसी राहत के लिए दूसरा मुकदमा/मामला सुनवाई योग्य होगा।

32. इसी तरह, इसी मुद्दे से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 356 में रिपोर्ट किए गए **प्रेम किशोर और अन्य बनाम ब्रह्म प्रकाश और अन्य** के मामले में अपने नवीनतम

फैसले में, पैराग्राफ संख्या 37 और 38 में इस प्रकार कहा है:

"37. उपरोक्त अधिकारियों के अवलोकन पर, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11(डी) के तहत एक आवेदन पर निर्णय लेने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है: -

(i) किसी वाद को इस आधार पर अस्वीकार करने के लिए कि मुकदमा किसी भी कानून द्वारा वर्जित है, केवल वाद पत्र में दिए गए कथनों का ही उल्लेख करना होगा;

(ii) आवेदन की गुणवत्ता तय करते समय मुकदमे में प्रतिवादी द्वारा किए गए बचाव पर विचार नहीं किया जाना चाहिए;

(iii) यह निर्धारित करने के लिए कि क्या कोई मुकदमा पूर्व न्याय द्वारा वर्जित है, यह आवश्यक है (i) 'पिछला मुकदमा' तय हो गया है, (ii) बाद के मुकदमे के मुद्दे सीधे और काफी हद तक पिछले मुकदमे में थे; (iii) पहला मुकदमा उन्हीं पार्टियों या पार्टियों के बीच था जिनके माध्यम से वे दावा करते हैं, एक ही शीर्षक के तहत मुकदमा कर रहे हैं; और (iv) कि इन मुद्दों पर निर्णय लिया गया और अंततः अगले मुकदमे की सुनवाई के लिए सक्षम अदालत द्वारा निर्णय लिया गया; और

(iv) चूंकि पुनर्निर्णय की याचिका पर निर्णय के लिए 'पिछले मुकदमे' में दलीलों, मुद्दों और निर्णय पर विचार की आवश्यकता होती है, ऐसी याचिका आदेश 7 नियम 11 (डी) के दायरे से परे होगी, जहां केवल वादपत्र में दिए गए बयानों का अध्ययन करना होगा। (देखें: श्रीहरि हनुमानदास तोताला बनाम हेमंत विट्ठल कामत। (2021) 9 एससीसी 99)

38. *सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के तहत पुनर्निर्णय के सामान्य सिद्धांत में निर्णय की निर्णायकता के नियम शामिल हैं, लेकिन पुनर्निर्णय को लागू करने के लिए, बाद के मुकदमे में सीधे और महत्वपूर्ण रूप से मुद्दा वही मामला होना चाहिए जो सीधे तौर पर था और पूर्व मुकदमे में काफी हद तक मुद्दा है। इसके अलावा, मुकदमे का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना चाहिए था और निर्णय को अंतिम रूप मिलना चाहिए था। जहां पूर्व मुकदमे को ट्रायल कोर्ट द्वारा क्षेत्राधिकार के अभाव में, या वादी की उपस्थिति में चूक के कारण, या पार्टियों के गैर-जुड़ने वाले या गलत-जोड़ के आधार पर या विविधता के आधार पर, या इस आधार पर खारिज कर दिया जाता है कि मुकदमा बुरी तरह से तैयार किया गया था, या किसी तकनीकी गलती के आधार पर, या वादी की*

ओर से प्रोबेट या प्रशासन पत्र या उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने में विफलता के लिए जब वादी को डिक्री का अधिकार देने के लिए, या लागत के लिए सुरक्षा प्रस्तुत करने में विफलता के लिए, या अनुचित मूल्यांकन के आधार पर, या किसी वाद पर अतिरिक्त अदालती शुल्क का भुगतान करने में विफलता के लिए कानून द्वारा इसकी आवश्यकता होती है जिसका कम मूल्यांकन किया गया था, या कार्रवाई के कारण के अभाव में, या इस आधार पर कि यह समय से पहले है और अपील में बर्खास्तगी की पुष्टि की गई है (यदि कोई हो), तो निर्णय, गुण-दोष पर नहीं होने के कारण, बाद के मुकदमे में न्यायिक नहीं होगा।"

33. पूर्वोक्त न्यायिक सिद्धांत की गहन जांच से और सिविल प्रक्रिया संहिता पर **सर दीनशाह फरदुनजी मुल्ला (18वां संस्करण-2011)** द्वारा दी गई टिप्पणी के अनुसार, इस न्यायालय का मानना है कि न्यायिक निर्णय का सिद्धांत केवल तभी लागू होगा जब किसी मामले को "सुना गया और अंततः निर्णय लिया गया" कहा जाएगा। इसके बावजूद कि पहले का मामला/मामला/मुकदमा निम्नलिखित में से किसी भी तरीके से निपटाया गया था:

(i) एक पक्षीय; या

(ii) आदेश X V II, नियम 3 के तहत बर्खास्तगी द्वारा, लेकिन तब नहीं जब बर्खास्तगी आदेश X V I, नियम 1 के तहत स्थगन लागत का भुगतान करने में विफलता के लिए हो; या

(iii) किसी पुरस्कार पर डिक्री द्वारा; या

(iv) भारतीय शपथ अधिनियम, 1873 की धारा 8 के तहत दी गई शपथ द्वारा; या

(v) सुनवाई में साक्ष्य प्रस्तुत करने में वादी की विफलता के कारण बर्खास्तगी द्वारा।

34. पुनर्न्याय का सिद्धांत तब लागू नहीं होगा जब पहले के मामले/मामले/मुकदमे की सुनवाई नहीं हुई हो और अंतिम निर्णय नहीं हुआ हो और उसे खारिज कर दिया गया हो:

(i) *क्षेत्राधिकार के अभाव में; या*

(ii) ***आदेश IX, नियम 8 के तहत वादी की उपस्थिति में चूक के लिए। (लेकिन, कार्रवाई के उसी कारण पर एक नया मुकदमा आदेश IX, नियम 9 के तहत वर्जित किया जा सकता है);*** *या*

(iii) *पार्टियों के गैर-जुड़ने, या पार्टियों के गलत जुड़ने के आधार पर, या बहुविधता;* ***या इस आधार पर कि मुकदमा आदेश IX, नियम 8 (लेकिन, कार्रवाई के उसी कारण पर एक नया मुकदमा आदेश IX, नियम 9 के तहत वर्जित हो सकता है);*** *के तहत वादी की उपस्थिति में गंभीर रूप से चूक के कारण था। फंसाया गया," या किसी तकनीकी गलती के आधार पर; या*

(iv) *वादी की ओर से प्रोबेट या प्रशासन पत्र या उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने में विफलता के लिए जब वादी को डिक्री का अधिकार देने के लिए कानून द्वारा इसकी आवश्यकता होती है; या*

(v) *आदेश X X V, नियम 2 के तहत लागत के लिए सुरक्षा प्रदान करने में विफलता के लिए; या*

(vi) *अनुचित मूल्यांकन के आधार पर, या कम मूल्यांकित वादपत्र पर अतिरिक्त अदालती शुल्क का भुगतान करने में विफलता के लिए; या*

(vii) *कार्रवाई के कारण के अभाव में; या*

(viii) *नोटिस के अभाव में; या*

(ix) *इस आधार पर कि यह समयपूर्व है;*

(x) *जैसे दबाया नहीं गया;*

(xi) *निष्फल हो गया है;*

(xii) *समझौते के आधार पर समझौता हो गया है, या समाप्त हो गया है।"*

"जोर दिया गया"

35. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में ही **यह प्रावधान है कि किसी मुद्दे की सुनवाई और अंतिम निर्णय सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा किया जाता है,** जो ऐसे मुद्दे पर निर्णय लेने में सक्षम है, वह बाद के मुकदमे में न्यायिक निर्णय के रूप में कार्य करेगा।

<u>निष्कर्ष</u>

36. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि पुनर्निर्णय का सिद्धांत केवल दूसरे मामले/आवेदन में लागू होगा जिसमें वाद सीधे और पर्याप्त रूप से विवादित रहा हो और समान पक्षों यानी शबाना बानो और अली रज़ा के बीच पिछले आवेदनों (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 और 126 (2) के तहत) में काफी हद तक विवाद है, जिसके तहत आवेदिका ने ऐसे बाद के आवेदन/मामले की सुनवाई के लिए सक्षम न्यायालय में रखरखाव भत्ते का दावा किया था। जिसमें इस तरह का दावा बाद में उठाया गया है, और सुना गया है और अंतिम रूप से ऐसे न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया है, लेकिन यदि पहले मामले का निर्णय अंतिम रूप से नहीं किया गया है या बिना योग्यता के या आवेदिका को सुनवाई का अवसर दिए बिना, उसी राहत के लिए दूसरा वाद /आवेदन यानी रखरखाव भत्ता कायम रहेगा और पुनर्निर्णय का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

37. यह एक स्वीकृत पद है आवेदिका द्वारा धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता और 126 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर पहले के दो मामले क्रमशः 2014 के अपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 21 और 2017 के अपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 138 हैं, जिन्हें अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया है और आवेदिका को सुनवाई का अवसर देने के बाद भी अंतिम रूप से निर्णय नहीं लिया गया है। इस प्रकार, इस न्यायालय की दृढ़ राय है कि भले ही आवेदिका द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत दायर नया आवेदन अपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 387/2019 है, जो समान राहत/कार्रवाई के कारण के लिए दायर किया गया है लेकिन

यह विचारणीय है क्योंकि इसमें पूर्व न्यायिक सिद्धांत लागू नहीं होगा। दोनों मुद्दों का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

38. नतीजतन, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र द्वारा अपराधिक मामला संख्या 387/2019 **(शबाना बानो बनाम अलीरज़ा)**, धारा 125 दं.प्र.सं., थाना-दुद्धी, जिला-सोनभद्र में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20 मई, 2022 को कानूनी रूप से बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाता है। अपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 387/2019 (शबाना बानो बनाम अली रजा) को उसके मूल क्रमांक पर बहाल किया जाता है। प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सोनभद्र को निर्देश दिया जाता है कि वे संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर, कानून के अनुसार, एक तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश के माध्यम से गुण-दोष के आधार पर इस पर नए सिरे से विचार करें और निर्णय लें, यदि संभव हो तो दिन-प्रतिदिन के आधार पर, किसी भी पक्ष को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना।

39. वर्तमान आवेदन सफल होता है और इसमें ऊपर की गई टिप्पणियों के अधीन अनुमति दी जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 27

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5500/2023

आसिफ अहमद सिद्दीकी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपरीत पक्ष

अधिवक्ता आवेदक: डीआर. सी.पी. उपाध्याय

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री हरबंश प्रसाद पांडे, श्री प्रदीप कुमार मिश्रा

(ए) दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482- अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएं -323, 363, 328, 376 घ (का), 377, 504, 506, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 5/6 - अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में प्रस्तुत साक्ष्य पर न्यायालय द्वारा, आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, गौर नहीं किया जा सकता - यदि अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित अपराध के तत्वों का

खुलासा करते हुए प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता। (पैरा - 11,23)

(बी) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161,164,173(2), 200, 202, 319 और 190 (1)(बी)- मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधों का संज्ञान - ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर - धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190(1)(बी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस आशय की हो कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। (पैरा - 21)

धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता का बयान दर्ज किया गया -आरोपी-आवेदक को तलब किया गया- मजिस्ट्रेट ने वास्तविक वादी के स्वतंत्र आवेदन पर - आवेदक की सहभागिता के लिए सामग्री पाई- आरोप-पत्र में लिप्त न होने के बावजूद - पुलिस रिपोर्ट, आरोप-पत्र या एफ.आई.आर. से परे संलिप्तता निर्धारित करने के लिए उपलब्ध सामग्रियों की जांच किए - मजिस्ट्रेट अपराध संज्ञान पर व्यक्तियों को सम्मन जारी करता है। (पैरा - 31)

निर्णय:-तथ्यों के विवादित प्रश्नों पर निर्णय, ट्रायल कोर्ट द्वारा किया जा सकता है। विचरण प्रारंभ होने से पहले पूर्व विचरण करना उचित नहीं है। अभियोजन पक्ष के वाद की सच्चाई कानून के अनुसार विचरण के दौरान ही स्थापित की जानी चाहिए। ऐसा वाद नहीं है जिसमें अभियोजन पक्ष को संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए ही रोक दिया जाना चाहिए। (पैरा - 30,32)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 5 एससीसी 295
2. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य व अन्य, 2019 0 सुप्रीम (एससी) 454
3. राजीव कौरव बनाम बालासाहब एवं अन्य, 2020 0 सुप्रीम (एससी) 143
4. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एआईआर 604
5. नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) एससीसी ऑनलाइन 315
6. महेंद्र के.सी. बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, एआईआर 2021 एससी 5711
7. शफिया खान @ शकुंतला प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 4 एससीसी 549
8. परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य, (2017) 9 एससीसी 641
9. रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 484
10. नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 295

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. सुना है श्रीमान डॉ सी.पी. उपाध्याय वादी पक्ष के वकील संक्षिप्त धारण करते हुए प्रदीप कुमार मिश्रा, सूचना देने वाले के वकील हरबंश प्रसाद पाण्डे राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री अमित सिंह चौहान।
2. वर्तमान 482 सी.आर.पी.सी. अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश। विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम द्वारा इलाहाबाद द्वारा धारा के अन्तर्गत 323, 363, 328, 376घ (क), 377, 504, 506 आई.पी.सी. तथा धारा 5/6 पाक्सो अधिनियम थाना - शंकगढ, जिला - प्रयागराज के तहत अपराध सं०- 173/2022 से उत्पन्न विशेष सत्र परिक्षण सं० 2/2023 में पारित आदेश दिनांक 30.01.2023 को रद्द करने के लिए आवेदन दायर किया है।
3. रिट याचिका में बताए गए संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है-
    i. अकबर अली द्वारा 26.06.2022 को 19.23 बजे एफ.आई.आर दर्ज की गई थी 366, 504 आई.पी.सी. धारा के अन्तर्गत 0173/2022 पंजीकरण किया गया है तीन व्यक्तियों नाजिम, हाशिम और खुर्शीद के विरूद्ध दर्ज किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि सूचना देने वाले की पुत्री 15 वर्षीय को नाजिम ने बहला-फुसलाकर भगा ले गया था। दिनांक 21.06.2022 को नारी बारी निवासी के पुत्र समसुद्दीन मो०नं० 9198997737 नाजिम अपने आवास पर उपलब्ध नही था और उसका मो.न. भी बन्द था। जब सूचना देने वाला नाजिम के घर गया तो उसका हाशिम और बहनोई, खुर्शीद ने अपशब्दों का प्रयोग किया और सूचना देने वाले की पुत्री के बारे में बुरी बात कही। बेटी को ढूढ़ने का प्रयास करने के बाद एक आवेदन दिया गया, जिस पर वर्तमान में एक एफ.आई.आर. दर्ज की गया है।
    ii. जांच के दौरान पीडिता का बयान सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के अन्तर्गत 25.08.2022 को रिकार्ड किया गया, जिस सी.डी. में जगह मिली है पर्चा नं. - 6 (एफ.आई.आर. के दो महीने से अधिक समय बाद) जिसमें उसने खुद बताया है उसके पिता का नाम अकबर अली है और वह सुरवल चन्देल, नारी बारी थाना - शंकरगढ़ प्रयागराज की निवासी है। उसकी उम्र लगभग 19 वर्ष है तथा अपने भाई बहन से झगड़ा करने के कारण उसे अपनी माँ ने डाटा था जिससे नाराज होकर वह दिनांक 22.06.2022 को लगभग 01.00 बजे अपना घर छोड़कर अजमेर शरीफ चली गयी। इसके बाद उसने अपनी बहन से टेलीफोन पर बात की और पता चला कि उसके पिता ने एफ.आई.आर. दर्ज कराई है, इसीलिए वह खुद ही वापस प्रायगराज लौट आई।
    iii. इसके बाद, पीड़िता नाजिया की 27.08.2022 को चिकित्सकीय जाँच की गई और चिकित्सा परीक्षण के

अप्रमाणित

दौरान, उसके डॉक्टर के सामने कहा कि सह-अभियुक्त नाजिम 22.06.2022 को उसके घर आया जब वह सो रही थी, तो उसके साथ जबरजस्ती की गई। उसे कोई नशीला पदार्थ सुंघा दिया जिससे वह बेहोश हो गई और होश में आने के बाद खुद को इलाहाबाद में पाया जहां आसिफ नाम का एक व्यक्ति मौजूद था। उसने यह भी कहा कि दोनों व्यक्ति, नाजिम, आसिफ ने दो दिनों तक जबरजस्ती बलात्कार किया बाद में उसे जम्मु ले गए, जहां उसे दो दिन रखा गया और उसके साथ जबरजस्ती सम्बन्ध स्थापित किए गए। दिनांक 25.08.2022 को नाजिम और तीन अज्ञात व्यक्तियों ने पीड़िता थाने के पास छोड़कर चले गए।

iv. इसके बाद पीड़िता का सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत बयान कराया गया। 30.08.2022 को रिकार्ड किया गया जिसे सी.डी. नंo 7 की जगह पर पाया गया, जिसमे उसने कहा है कि वह 15 वर्ष की है। दिनांक 22.06.2022 को रात्री लगभग 2.00 बजे वह अपने घर पर सो रही थी तभी नारी बारी निवासी असिफ सिद्दीकी तथा खुर्शीद वहां आये और उसे नशीला पदार्थ सुंघा दिया जिससे वह बेहोश हो गयी तथा होस में आने पर उसने खुद को इलाहाबाद जहां उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया था और उपरोक्त व्यक्तियों ने उसके साथ जबरजस्ती शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किए। उसे दो दिन तक इलाहाबाद में रखा गया, इसके बाद नाजिम पीड़िता को धमका कर जम्मु ले गया, जहाँ दो महीने तक लगातार उसके साथ दुष्कर्म करता रहा। उसकी इच्छा को पूरी करने से इनकार करने पर नाजिम ने उसे और उसके पिता को जान से मारने की धमकी भी देता था। जब वह बार-बार जबरजस्ती यौन उत्पीड़न के कारण बीमार पड़ गई, तो आरोपी नाजिम ने उसे इलाहाबाद छोड़ दिया, जिसके बाद नियाज खुर्शीद उसे शंकरगढ़ पुलिस स्टेशन ले गया, जिसने उसे वही छोड़ दिया। धारा 164 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत बयान दर्ज करने के बाद, पीड़िता को उसके पिता को सौंप दिया गया, जैसा कि आवेदन के पेज 47 से स्पष्ट है।

v. इसके बाद पीड़िता की माँ (सूचक की पत्नी) का बयान 06.09.2022 को दर्ज किया गया, जो सी.ड़ी. पर्चा नंo 1x में है जिसमें उसने कहा कि उसकी 15 वर्षीय बेटी को आसिफ सिद्दीकी पुत्र कमल निवासी नई बाजार करमा पुलिस स्टेशन घूरपुर जिला - प्रयागराज और खुर्शीद पुत्र अब्दुल रज्जाक निवासी बड़ोखर थाना - कोरांव जिला - प्रायगराज ने दिनांक 22.06.2022 लगभग रात के 02.00 बजे पीड़िता को कोई

नशीला पदार्थ सुंघा दिया गया जिससे वह बेहोश हो गई और उसके बाद उसे नारी बारी बाजार ले जाया गया, जहाँ उसे चाय दी गई जिसमें उसे नशीला पदार्थ मिलाया गया था जिसे पीने के बाद वह बेहोश हो गई। फिर उसे इलाहाबाद ले जाया गया। जहाँ उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया और आसिफ सिद्दीकी और नाजिम पुत्र समसुद्दीन निवासी नारी बारी थाना शंकरगण प्रायगराज ने जबरदस्ती शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किया। उन्होने पीड़िता को मारा और जबरदस्ती प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किया। उसे दो दिन तक इलाहाबाद में रखा गया और उसके बाद नाजिम उसे जम्मू ले गया, जहाँ नाजिम ने उसके साथ दो महीने तक गलत काम किया और धमकी दी कि अगर वह उसे ऐसा नही करने देगी तो वह उसे और उसके पिता को जान से मार देगा। नाजिम द्वारा बार-बार यौन शोषण किए जाने के बाद वह बीमार हो गई तो नाजिम उसे इलाहाबाद छोड़ गया जहाँ उसे खुर्शीद थाना शंकरगढ़ ले गया और वहां छोड़ दिया यह भी कहा गया है कि घटना के बारे में उपरोक्त सारी बाते पीड़िता ने अपनी माँ को बतायी थी।

vi. जांच के बाद पुलिस द्वारा केवल खुर्शीद के खिलाफ 2022 के आरोप पत्र सं. 188 के रूप मे पहला आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है अन्य आरोपी नाजिम को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। इस बीच, सूचक ने निष्पक्ष और अंशिक जांच के लिए 2022 में एक आपराधिक रिट याचिका सं. 19896 दायर करने इस न्यायालय के समक्ष सम्पर्क किया है जिसमें इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 20.12.2022 के आदेश के माध्यम से उत्तरदाताओं को निर्देश दिया शीघ्र निष्पक्ष अंशिक जांच के लिए निर्देश देने की कृपा की।

vii. इसके बाद, जांच अधिकारी ने उपरोक्त आरोपी व्यक्तियों सहित अन्य लोगो की सी.डी.आर. के लिए अनुरोध किया। दिनांक 16.12.2022 पर्चा नं. VI जैसा आवेदक की एस.सी.डी. से स्पष्ट है।

viii. आवेदक द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें उल्लेख किया गया था कि सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता का बयान, पीड़िता की मां और सी.डी.आर. के बारे में सभी तथ्यों में विरोधाभास है जैसा कि पर्चा नं. VI में बताया गया है। दिनांक 16.12.2022 आवेदक पर पीड़िता की मां का दूसरा बयान 17.12.2022 को दर्ज किया गया, जो एस.सी.ड़ी. तथा पर्चा नं. VII मे है। जिसमें धारा 164 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत

पीड़िता के बयान का सम्बन्ध में जांच अधिकारी द्वारा विशिष्ट प्रश्न उठाया गया था, जिसमें पीड़िता ने आसिफ सिद्दीकी नारी बारी के बारे में बताया है, जब कि पीड़िता की माँ ने अपने बयान में कहा कि आसिफ सिद्दीकी पुत्र कमल निवासी नारी बारी बाजार करमा थाना घूरपुर प्रायगराज। सवाल यह कि पीड़िता की मां आसिफ को कैसे पहजाना और किस आधार पर उसने पता नारी बारी की जगह करमा बताया है उसने कहा कि वह आसिफ के बारे में नही जानती और उसने जो कुछ बताया है वही सब बताया है जो उसके पति ने आसिफ के बारे में बताया था उसने विशेष रूप से यह भी कहा है कि असिफ उसका रिश्तेदार नही है, उसने आसिफ का पता वही दिया है जो उसके पति ने बताया था। उसके पति के भतीजे मो. अख्तर नई बाजार, करमा में रहते है।

ix. इसके बाद, नाजिम और हासिम के खिलाफ दूसरा आरोप पत्र 2022 का आरोप पत्र सं. 188ए दिनांक 27.12.2022 प्रस्तुत किया गया है। इसलिए एफ.आई.आर. में नामित सभी तीन आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है। वर्तमान वाद में आवेदक पर आरोप पत्र दायर नहीं किया था क्योंकि उपरोक्त अपराध में उसकी संलिप्तता के लिए उसके खिलाफ कोई सबूत नही था।

x. एफ.आई.आर. में नामित सभी आरोपियों के खिलाफ उपरोक्त आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद आरोपी आवेदक को बुलाने के लिए सी आर.पी.सी. की धारा 190 (1)(बी) के अन्दर्गत अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश प्रायागराज के समक्ष सूचक एक आवेदन दायर किया गया था। उसमें कहा गया है कि सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता के बयान के आधार पर आवेदक की संलिप्तता स्पष्ट है और आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टतया मामला स्तापित होता है। सम्बन्धित मजिस्ट्रेट ने अपने न्यायिक दिमाग का उपयोग किए बिना और केवल सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता के बयान पर भरोसा किया, अनाप-शनाप एवं अतार्किक आदेश दिनांक 30.01.2023 पारित कर आवेदक को तलब किया। इसलिए वर्तमान बाद दर्ज किया गया है।

4. वादी के विद्वान वकील ने सम्मन आदेश के साथ-साथ पूरी कार्यवाही को निम्नलिखित आधारों को चुनौती दी है-

i. आपेक्षित समन दिनांक 30.01.2023 को न्यायिक दिमाग के उपयोग के बिना, केवल सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता के

बयान पर निर्भर करते हुए पारित किया गया है।

ii. जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामाग्री से आवेदक के खिलाफ कोई प्रथम दृष्टया मामला नही बनता है।

iii. सम्बन्धित अदालत ने आवेदक को सम्मन जारी किया, घटना की तारीख के सम्बन्ध में विरोधाभासो को समझे बिना, नारी बारी मे अपना पता बताते समय वादी की पहचान के साथ-साथ घटना का वर्णन करते समय उसके संस्करण में परिवर्तन किया।

iv. आवेदक का नाम एफ.आई.आर. में नही है, उसका नाम सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के अन्तर्गत पीड़िता के बयान में नही है और यह पहली बार है, जब डॉक्टर के सामने अपना बयान देते हुए वह भी ए के रूप मे अपने माता-पिता और पते का खुलासा किए बिना घटना में शामिल होने के बारे मे बताया गया है।

v. सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता के बयान मे वादी के नाम का खुलासा किया गया है। असिफ सिद्दिकी जो नारी बारी का है इस प्रकार उपरोक्त से जो वादी है असिफ निवासी नई बजार चक घन श्याम पोस्ट करमा थाना घूरपुर का सम्मिलित होना साबित नही कर सकता है

vi. वादी को झूठा फसाने और कमी को पूरा करने के लिए, पीड़िता की माँ का पहला बयान 06.09.2022 को दर्ज किया गया था, जिसमें पहली बार वादी का उचित नाम माता-पिता और पता बताया गया था। पीड़िता ने अपनी माँ को बताया जब कि अपने दूसरे बयान में, उसने कहा कि वह वादी को नही जानती है और न ही वह उससे सम्बन्धित है और आगे कहा है कि उसने वादी के बारे में खुलासा किया है जैसा कि अकबर अली (उसके पति) ने बताया था।

vii. जांच अधिकारी द्वारा एकत्रित विवरण में भी वादी की संलिप्तता सी.ड़ी.आर. में स्थापित नही है।

viii. उन व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिनका नाम एफ.आई.आर में है। वादी को दोष मुक्त कर दिया गया है, उसके खिलाफ कोई सबूत नही है लेकिन सूचक वादी पर सी.आर.पी.सी. की धारा 190 (1)(बी) के अन्तर्गत वादी को बुलाया गया है, जो कानून की स्थापित स्थिति के खिलाफ है।

5. वादी के विद्वान वकील ने आगे कहा कि आरोपी व्यक्तियो के खिलाफ प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट पर विचार करते समय, जिसमें वादी को दोषमुक्त कर दिया गया था, सूचक को दो उपाय प्रदान किए गए है या तो आगे की जांच के लिए विरोध याचिका दायर करे, या एक आवेदन दायर करें। धारा

319 सी.आर.पी.सी. अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच के बाद वादी को तलब करने के लिए। सम्बन्धित मजिस्ट्रेट ने सी.आर.पी.सी. की धारा 190(1)(बी) के अन्तर्गत सूचक के आवेदन पर विचार किया है और उपरोक्त तथ्य पर विचार किए बिना वादी को तलब किया।

6. वादी के विद्वान वकील ने आगे कहा है कि समबन्धित मजिस्ट्रेट ने वादी को तथ्य की उत्पत्ती में प्रवेश किए बिना, साक्ष्य का मूल्यांकन किए बिना बुलाया है और केवल सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता के बयान पर भरोसा किया है।

7. वादी के विद्वान वकील के आगे कहा कि मामले में, पीड़िता का बयान सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत होगा। समग्रता में विश्वास किया जाए तो वादी के स्थान पर नारी-बारी थाना - शंकरगढ़ प्रयागराज बाजार करमा थाना - घूरपुर प्रायागराज का निवासी है इसीलिए वादी इसमे सम्मिलित है, उपरोक्त मामले साबित नही किया जा सकता।

8. वह आगे कहते है कि विभिन्न स्थानों पर भिन्नताओ को देखते हुए, यह साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नही है, कि वादी ही वह व्यक्ति है जिसकी घटना में सम्मिलित पाई गई है और वह भी पूरी तरह से सी.आर.पी.सी. की धारा - 164 के अन्तर्गत निर्भर है। **नाहर सिंह बनाम यू.पी. राज्य के मामले मे सर्वोच्तम न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए(2022) 5 एस.सी.सी. 295**, में रिपोर्ट की गई, उनका मानना है कि मजिस्ट्रेट को पुलिस के आधार पर किसी अपराध पर संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है। धारा 190(1)(बी) सी.आर.पी.सी. के सन्दर्भ में समय रहते रिपोर्ट करें और उन व्यक्तियों को समन जारी करे, जिन्हे आरोप पत्र में आरोपी के रूप में आरोपित नहीं किया गया है और केवल जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के आधार पर।

9. वादी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि इसीलिए वादी के खिलाफ शुरू की गई वर्तमान आपराधिक कार्यवाही न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है। उपरोक्त दलीलों को संचयी ताकत के आधार पर उपरोक्त आपराधिक वाद की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है।

10. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ सूचक के विद्वान वकील का कहना है इस तथ्य के सम्बन्ध में विवाद है कि वादी के नाम के सम्बन्ध में भिन्नताएं है जिसका नाम एफ.आई.आर. में नही है और साथ ही उसके पते के सम्बन्ध में भिन्नताएं है, माता-पिता और इस सम्बन्ध मे यह साबित करने के लिए कोई सबूत नही है कि वादी ही वह व्यक्ति है जिसने अपराध किया है, पीड़िता इस तथ्य के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है कि वादी असिफ सिद्दिकी द्वारा उसका यौन शोषण किया गया था। जिसके बारे में उसने सी.आर.पी.सी. की धारा 104 के अन्तर्गत अपने बयान में बताया है साथ ही डॉक्टर के सामने बयान दिया है, इसीलिए मामूली विरोधाभास यह साबित नही कर सकता है कि वादी निर्दोष है। उन्होने आगे कहा कि सी.आर.पी.सी. धारा

190(1)(बी) में निहित प्रावधानों के अनुसार मजिस्ट्रेट को यह देखना होगा कि वादी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बन रहा है या नही। सम्बन्धित मजिस्ट्रेट ने सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत पीड़िता के बयान पर विचार करने के बाद सूचक ने वादी को उचित रूप से स्वीकार कर लिया है, मौजूदा वाद में, साथ ही जांच अधिकारी द्वारा गवाहों के बयान सहित एकत्र किए गए साक्ष्य भी शामिल है। उन्होने आगे कहा कि वादियों के वकील द्वारा उठाया गया अन्य सभी तर्क तथ्य के विवादित प्रश्नों से सम्बन्धित है।

11. अन्त में, विद्वान ए.जी.ए. साथ ही सूचक के वकील का कहना कि उच्च न्यायालय पूरे अपराधी धारा 482 सी.आर.पी.सी. के कार्यवाही की खारिज नही कर सकता है। प्री-ट्रायल चरण में जिसके लिए उन्होने मोहम्मद वाद में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा किया है। **मो. अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य और अन्य ने 2019 सुप्रीम (एस.सी.) 454,** में रिपोर्ट दी, जिसमें शीर्ष अदालत ने माना है कि उच्च न्यायालय पास सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत कार्यवाही के साक्ष्य की सराहना करने का अधिकार नही था। क्योंकि क्या गवाहो के बयानों मे विरोधाभास या असंगतताएं है यह साक्ष्य की सराहना से समबन्धित एक आवश्यक मुद्रा है और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमे के दौरान इस पर विचार किया जा सकता है जब पूरे साक्ष्य पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए जाते है। हाँलाकि वर्तमान वाद में उक्त चरण आना बाकी है। उन्होने **राजीव कौरव बनाम वाद में शीर्ष अदालत** के फैसले पर भरोसा किया है। बाला साहब व और अन्य **2020 सुप्रीम (एस.सी.) 143**, में रिपोर्ट की, जिसमें शीर्ष अदालत ने माना है कि यह अब एकीकृत नही है कि आपराधिक कार्यवाही रद्द करने के लिए सी.आर.पी.सी. धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग केवल तभी होता है जब एफ.आई.आर. या एफ.आई.आर. में आरोप लगाया जाता है। आरोप-पत्र कथित अपराध। अपराधी की सामग्री का गठन करता है। सी.आर.पी.सी. की 482 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी कानून या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए है। यह स्थापित कानून है कि आपराधिक कार्यवाही के प्रारम्भिक चरण में, बहुत असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों पर अदालत द्वारा गौर नही किया जा सकता है। यह घिसा-पिटा कानून है कि उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही रद्द करने के लिए सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के तहत दायर याचिका पर विचार करते समय सबूतों की सराहना नही कर सकता है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध कथित अपराध की सामग्री का खुलासा करने वाला प्रथम

अनुवाद

दृष्टया मामला बनता है, तो न्यायालय कार्यवाही को रद्द नही कर सकता है।

12. उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर विद्वान ए.जी.ए. साथ ही सूचक के विद्वान वकील का कहना है कि यह न्यायालय सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत वर्तमान वाद में अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नही कर सकता है, और इसीलिए वर्तमान आवेदन खारिज करने योग्य है।

13. मैनें पक्षों के विद्वान वकील द्वारा की गई दलीलों पर विजार किया है और वर्तमान आवेदन के रिकार्ड का अध्ययन किया है।

14. आगे की कार्यवाही से पहले सी.आर.पी.सी. की धारा 190 क सन्दर्भ देना उचित होगा, जो प्रकार है-:

" **190 मजिस्ट्रेटो द्वारा अपराधों का संज्ञान-:**

i. इस अध्याय के प्रावधानों के अधीन, प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, और उपधारा(2) के तहत इस सम्बन्ध में विशेष रुप से सशक्त दिव्तीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है-

a) उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते है,

b) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर,

c) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर, या अपने स्वयं के ज्ञान पर, कि ऐसा अपराध किया गया है।

ii. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट दिव्तीय श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराध की उपधारा (1) के तहत संज्ञान लेने का अधिकार दे सकता है, जिनकी जांच या सुनवाई करना उनकी क्षमता के भीतर है।

15- उपरोक्त धारा की बारीकी से जांच के बाद, न्यायालय पाता है सी.आर.पी.सी. की धारा 190 (1)(बी) में यह नहीं कहा गया है कि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान केवल तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच में आरोपी के खिलाफ वाद बन गया है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजर अन्दाज कर सकता है और स्वतन्त्र रूप से जांच से सामने आने वाले तथ्यों पर अपना दिमाग लगा सकता है और वाद का संज्ञान ले सकता है, यदि वह उचित समझता है, धारा 190 (1)(बी) के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और अभियुक्त की प्रक्रिया जारी करने का निर्देश दे सकता है।

16- यह न्यायालय विपक्षी संख्या 2 के विद्वान वकील के साथ-साथ विद्वान ए.जी.ए. द्वारा उठाए गए विवाद में तथ्य पाता है। प्रथम दृष्टया वादी के विरुद्ध कथित अपराध का वाद बनता है। पीड़िता के बयान में सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के अन्तर्गत वाद दर्ज किया गाय है। साथ ही डॉक्टर के समक्ष दिए गया बयान में वादी

अप्रमाणित

के खिलाफ पीड़िता के साथ यौन उत्पीड़न के सम्बन्ध मे विशिष्ट आरोप है।

17- वादी के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए पहले तर्क के सम्बन्ध में वादी के नाम व उसके पते और वंशावली में विरोधाभासो के सम्बन्ध में न्यायालय ने अवलोकन किया कि जिस पीड़िता के साथ ऐसी घटना हुई है, वह सदमें की भावना में है और घटना का विवरण ठीक से बताने की मनः स्थिति में नही है। कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास है जिन्हें यहां नही देखा जा सकता, वादी के पास मुकदमें के दौरान अपनी बेगुनाही साबित करने के पर्याप्त अवसर होगा क्योंकि उसके खिलाफ लगाए गए आरोप को इस स्तर पर खारिज नही किया जा सकता है। संज्ञान लेते समय मजिस्ट्रेट को केवल यह देखना होता है कि प्रथम दृष्टया प्रक्रिया जारी करने के लिए ठोस कारण है या नहीं।

18- दूसरे निवेदन के सम्बन्ध में कि मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने के समय अन्य अभियुक्तों को नही बुला सकता है भले ही सामग्री मौजूद हो, इसमें कोई बल नहीं है और **नाहर सिंह (सुप्रा)** के मामले मे शीर्ष अदालत ने इसे दोहराया है। जिस पर वादी के विद्वान वकील ने भरोसा किया है जहाँ इस न्यायालय की विभिन्न पीठों के अलग-अलग विचारों पर चर्चा करते हुए यह माना गया है कि उन व्यक्तियों को बुलाने का सवाल, जिन्हे आरोप-पत्र या पुलिस रिपोर्ट में आरोपी के रूप में सूचीबद्ध नही किया गया है। ऐसे व्यक्तियों को बुलाने के लिए कारक का निर्धारण नही कर सकता है और ऐसी श्रेणियों के व्यक्तियों के सम्बन्ध मे संज्ञान लेने की अदालत की ऐसी शक्ति के प्रयोग को बाधित नही करता है।

19- पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा इस बात पर कोई विवाद नही है कि मजिस्ट्रेट को तीन आकास्मिताओं किसी एक में सी.आर.पी.सी. की धारा 190 (1) के अन्तर्गत संज्ञान लेने का अधिकार है-:

a) उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो अपराध का गठन करते है
b) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर
c) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर या अपने स्वयं के ज्ञान पर, कि ऐसा अपराध किया गया है।

20. अपराध का संज्ञान इस आधार पर ले सकता है पुलिस रिपोर्ट सी.आर.पी.सी. की धारा 190(1) के खण्ड बी मे परिकल्पित है। जांच अधिकारी धारा 161 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत सामग्री को एकत्र तथा गवाहो के बयान दर्ज किए जाने पर प्रथमा दृष्टया कोई वाद नही बनता है। मजिस्ट्रेट की सम्मति आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ प्रथम दृष्टया वाद बनाने के लिए पर्याप्त है।

21. इस प्रकार स्थिति बहुत स्पष्ट और अच्छी तरह से तय है कि दारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190 (1)(बी) के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, यद्यपि पुलिस रिपोर्ट का आशय है कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नही बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा जांचे गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत किए

गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का आदेश दे सकता है। ***190(1)(बी) में यह नही कहा गया है कि एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान केवल तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच में आरोपी के खिलाफ मामला बन गया है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजर अन्दाज कर सकता है और स्वतन्त्र रूप से जांच से सामने आए तथ्यों पर अपना दिमाग लगा सकता है और वाद का संज्ञान ले सकता है, अगर वह धारा 190 (1)(बी) के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करना उचित समझता है और अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने का निर्देश दे।*** ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट धारा 190 (1)(ऐ) के अन्तर्गत किसी वाद का संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाद्धय नही है, हांलाकि धारा 200 या 202 के अन्तर्गत भी कार्य करना उसके लिए खुला है।

22. कानूनी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है एक बार किसी निकाय के खिलाफ अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है और साथ ही दूसरों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया जाता है, यदि मजिस्ट्रेट आरोप पत्र के आधार पर संज्ञान लेता है और अन्तिम रिपोर्ट स्वीकार करता है, तो एक विरोध याचिका दायर न्यायिक स्थिति स्पष्ट है। जब किसी व्यक्ति के खिलाफ अन्तिम रिपोर्ट और दूसरों के खिलाफ एक चार्जशीट प्रस्तुत की जाती है, और यदि मजिस्ट्रेट चार्जशीट के आधार पर संज्ञान लेता है और अन्तिम रिपोर्ट को स्वीकृत करता है, तो एक प्रतिवाद पिटीशन दाखिल किया जा सकता है यदि प्रतिवाद पिटीशन क्रिमिनल प्रक्रिया संहिता के धारा 2(डी) के अनुसार होता है, तो इसे एक शिकायत के रूप में देखा जा सकता है, जिससे धारा 200 और 202 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत प्रक्रिया शुरू हो सकती है। मजिस्ट्रेट फिर कानून के अनुसार एक आदेश पास कर सकता है। उन के सेसे में जहां चार्जशीट कुछ आरोपितो के खिलाफ प्रस्तुत की गई है और दूसरों को मुफ्त किया गया है, मजिस्ट्रेट को अन्वेषण अधिकारी के निष्कर्ष के साथ बाधित नही किया जाता है। न्यायिक विवेचना लागू करने के बाद, मजिस्ट्रेट तबादला कर सकता है और तापर उक्त कर्ता के आवेदन के आधार पर प्रक्रिया शुरू कर सकता है।

23. इस मामले मे यह न्यायालय तय कर रहा है कि क्या यह सुनिश्चित है कि यह सर्वोच्च न्यायालय के रूप में इसके पास शक्ति है कि धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत अपने अधिकार का प्रयोग करके आपराधिक प्रक्रिया पत्र और प्रक्रिया को समाप्त करें जब मजिस्ट्रेट ने केवल अपराधी के खिलाफ प्रक्रिया शरू की है और याचिकाओं के वकील द्वारा यह दावा किया गया है कि विरोधी पत्र संख्या-2 द्वारा प्रारम्भ किए गया वर्तमान आपराधिक मामले केवल दुर्भाग्यपूर्ण नही है, बल्कि विधि की दुरूपयोग भी है। यह स्थिति नही है कि धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अधीन शक्तियों का अभ्यास केवल तब किया जा सकता है।

जब एफ.आई.आर. या चार्जशीट में किए गए आरोप में आरोप शामिल है। धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत न्यायालय का हस्तक्षेप उस समय किया जाता है जब अभियुक्त द्वारा उसकी रक्षा में प्रस्तुत की गई सबूत को न्यायालय द्वारा देखा नही जा सकता, केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में, अपराधिक प्रक्रिया की प्रारंम्भिक चरण में। यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से स्पष्ट है कि यति अभियुक्त खिलाफ के आपोप में आरोपित अपराध के घटकों को खुलासा करता है, तो न्यायालय एक आपराधिक प्रक्रिया को समाप्त नहिं कर सकता है।

24. **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल मामले में 1992 एफ.आई.आर. 604**, रिपोर्ट के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 102 में इस न्यायालय द्वारा धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकने वाला श्रेणियों को सूचीबद्ध किया है।

102. विभिन्न की वयाख्या की पृष्ठभूमि में अध्याय XIV के तहत संहिता के प्रासंगिक प्रावधान और अनुच्छेद - 226 के तहत अंतनिर्हित शक्तियों से समेबन्धित निर्णयों की एक श्रंख्ला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धान्त, जिन्हे हमने निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है। ऊपर हम उदाहरण के माध्यम में मामलों की निम्नलिखित श्रेणिया देते है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी अदालत की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अन्त को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक निर्धारण करना संभव नही हो सकता है, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलयुक्त और अनन्य दिशा निर्देश या कठोर सूत्र और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

1. जब तक पहली जानकारी रिपोर्ट या शिकायत में की गई आरोप यदि वे उनके चेहरे के मूल्य मे लिए जाएं और पूरी तरह से स्वीकृत किए जाएं, तब तक प्राथमिक रूप से किसी अपराध को स्थापित नही करते या आरोपी के खिलाफ मामला नही बनाते।
2. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री में आरोप एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नही करते है यदि कोई हो, तो मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है। संहिता की धारा 155(2) के दायरे में।
3. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नही करते है और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते है।
4. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट मे लगाए गए आरोप संज्ञान अपराध नही है, बल्कि केबल गैर संज्ञेय अपराध है, संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जाँच की अनुमति नहीं दी जाती है।
5. यहां एफ.आई.आर. या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक

रूप से असंभव है जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नही पहुच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

6. जहां संहिता या संबन्धित अधिनियम। जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है। के किसी भी प्रावधान में संस्था और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और या जहां कोई विशिष्ट प्रावधान है संहिता या सम्बन्धित अधिनियम पीड़िता पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।
7. जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से भाग लिया जाता है। दुर्भावना से और या जहां कार्यवाही आरोपी से प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से और निजी और दृष्टि से दुर्भावनापूर्ण ढंग से शुरू की गई है।
8. उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों का नीहार इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य (20) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की न्यायाधीश पीठ के हालिया फैसले में लगातार पालन किया गाय है।
25. उपरोक्त मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों का **निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले** में शीर्ष न्यायालय की तीन न्यायाधीश पीठ हालिया फैसले में लगातार पालन किया गया।**(2021) एस.सी.सी. ऑन लाइन 315** जिसमें यह माना गया है कि इस तथ्य से कोई इनकार नही है कि धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन जैसा कि इस न्यायालय ने यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों की श्रृख्ला में देखा है, व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता होती है और यह न्यायालय पर एक कठिन और मेहनती कर्तव्य डालता है। इसीलिए साधारण मामलों में जब उच्च न्यायालय इसे उचित समझता है, तो रद्द करने के मापदंड़ो और कानून द्वारा लगाए गए आत्म संयम को ध्यान में रखते हुए, उचित अंतरिम आदेश पारित कर सकता है, जैसा कि कानून में उचित माना जाता है हांलाकि उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण बताने होगें जो प्रासंगिक तथ्यों पर अदालत द्वारा दिमाग के आवेदन को प्रतिबिंबित करेंगे।
26. यह घिसा-पिटा कानून है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए और वह दुर्लभतय मामलों में और इस न्यायालय के लिए विश्वासनीयता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच शुरु करना उचित नही था। अंतिम रिपोर्ट शिकायत में लगाए गए आरोप। ऐसे मामले में जहां अभियोजन द्वारा भरोसा की गई सामग्री की सत्याता पर निष्कर्ष सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के लिए विचारणीय नही है। यह दृष्टिकोण **महेन्द्र के.सी. बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य ए.आई.आर.एस.सी. 5711** में रिपोर्ट किया गया मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पुष्ट होता है।

27. **(2022) 4 एस.सी.सी. 549** में रिपोर्ट किए गए **साफिया खान @ शंकुलता प्रजापति बनाम यू.पी. राज्य** के मामले सर्वोच्च न्यायालय के हालिया प्रासंगिक फैसले में, इसे निम्नानुसार देखा गया-:

"इसमें कोई संदेह नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतय मामलों में और विश्वनीयता के बारे में जांच शुरू करना न्यायालय के लिए उचित नही था। एफ.आई.आर. या शिकायत में लगाए गए आरोपो की वास्तविकता या अन्यथा और अंतनिर्हित शक्तिया न्यायालय को उसकी सनक और पसंद के अनुसार कार्य करने के लिये कोई मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नही करती है।

28. **पर्वतभाई अहीर बनाम स्टेट गुजरात राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय व एस.सी.सी. 641** में रिपोर्ट की है, जिसमें विभिन्न कारणों का जिक्र करते हुए धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियों को नियन्त्रित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों का सारांश दिया गया है-:

15. इसे विषय पर उदाहरण से जो व्यापक सिद्धान्त सामने आते है, उन्हे निम्नलिखित प्रस्तावों में संक्षेपित किया जा सकता है।

i. धारा 482 किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय की अनृनिर्हित शक्तियों को संरक्षित करती है। यह प्रावधान नई शक्तियां प्रदान नही करता है। यह केवल उन शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षत करता है जो उच्च न्यायालय में निहित है;

ii. उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आहान इस आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर देता है कि अपराधी और पीड़ित के बीच समक्षौता हो गया है यह समक्षौते के प्रयोजन के लिए क्षेत्राधिकार के आहान के समान नहीं है।

iii. एक राय बनाने में कि क्या आपराधिक कार्यवाही है या धारा 482 के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए शिकायत को रद्द कर दिया जाना चाहिए उच्च न्यायालय को यह मुल्यांकन करना जाहिए कि क्या न्याय का उद्देश्य अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराएगा;

iv. जब कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का दायरा व्यापक और प्रचुर है; इसका प्रयोग किया जाना चाहिए; (i) न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए या (ii) किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग रोकने के लिए;

v. किसी शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर रद्द कर दिया जाना चाहिए कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद सुलक्षा लिया है; यह निर्णय अंततः प्रत्येक मामले के

तथ्यो और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सिद्धान्तों का कोई विस्तृत विवरण तैयार नही किया जा सकता है;

vi. धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय और दलील से निपटते समय कि विवाद का निपटारा हो गया है उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित ध्यान रकना चाहिए। मानसिक विकृति से जुड़े जघन्य और गंम्भीर अपराधो या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे अपराधो को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है भले ही पीड़िता या पीड़िता के परिवार ने विवाद सुलक्षा लिया हो। सही मायने में ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते बल्कि समाज पर गंम्भीर प्रभाव डालते है। ऐसे वाद में मुकदमा जारी रखने का निर्णय गंम्भीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के सर्वोपरी तत्व पर आधारित है;

vii. गंभीर अपराधो से अलग, ऐसे आपराधिक मामले भी हो सकते है। जिनमे नागरिक विवाद का तत्व अत्याधिक प्रबव हो। जहां तक रद्द करने की अन्तर्निहित शक्ति के प्रयोग का सवाल है, वे एक अलग पायदान पर खड़े है,

viii. ऐसे आपाराधिक मामले जिनमे वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या अनिवार्य रूप से नागरिक स्वाद वाले सामान लेन-देन से उत्पन्न अपराध शामिल है, उपयुक्त परिस्थितियो मे रद्द किए जा सकते है, जहां पार्टियो ने विवाद सुलझाया ,वहाँ कानून रद्द किया जा सकता हैष

ix. ऐसे वाद मे उच्च न्यायालय अपराधी को बर्खास्त कर सकता है आगे बढ़ना यदि विवादकर्ताऔ के बीच समझौते को ध्यान मे रखते हुए, दोषसिद्धि की संभावना दूर है और आपराधिक कार्यवाही जारी रहने से उत्पीड़न ओर पूर्वाग्रह पैदा होगा, औऱ (x) ऊपर दी गई सिद्धान्तो मे एक अपवाद है 8th और 9th मे निर्दिष्ट सिद्धान्त मे एक अपवाद अभी है। ऐसे आर्थिक अपराध जो राज्य के वित्तीय और आर्थिक कल्याण से सम्बन्धित है, उनके परिणाम सिर्फ निजी विवाद के परिधि के बीच से परे है। जहां अपराधी एक वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या अनैतिक कृत्य से सम्बन्धित है, वहां उच्च न्यायालय को समर्थन करना उचित है या निरस्त करने से इन्कार करना उचित होगा। जिस कृत्य के बारे मे शिकायत की गई है उसके परिणाम वित्तीय या आर्थिक व्यवस्था पर भारी पड़ेगे।

29. **रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य** मे रिपोर्ट दी गई **2022 एस सी सी ऑनलाइन एस सी 484**, वाद

मे शीर्ष अदालत के फैसले मे इसे नियमानुसार आयोजित किया गया है।

39. हमारी सुविचारित राय मे सी आर पी सी की धारा 482 के अन्तर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को शुरू मे ही खत्म नही किया जा सकता है। केवल इसलिए क्योकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिदेद्वी द्वारा दर्ज कराई गई है। संभव है कि किसी राजनीतिक प्रतिद्वंदी के इशारे पर झूठी शिकायत दर्ज करायी गयी हो हांलाकि सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत अपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए हस्तक्षेप को उचित ठहराया जाए, ऐसी संभावना नही होगी। पहले के आपराधिक वाद को बन्द करने के बाद, कथित कृत्यो द्वारा याचिका कर्ताऔ की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इन्कार नही किया जा सकता है। शिकायत मे लगाए गए आरोप अत्याचार अधिनियम के अन्तर्गत अपराध है। आरोप सही या झूठ, इसका फैसला मुकदमे मे होगा। सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी शिकायत मे आरोपो की सत्यता की जांच नही करता है, असाधारण दुर्लभ वादो को छोड़कर जहां तक यह स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ है या किसी अपराध का खुलासा नही करते है। शिकायत वाद संख्या 19/2018 ऐसा वाद नही है जिसे बिना किसी सुनवाई के शुरूआत मे ही रद्द कर दिया जाए। उच्च न्यायालय ने सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत को सही ढ़ंग से खारिज कर दिया।

30. पूर्वोत्तर को मद्दे नजर, इस न्यायालय ने पाया कि वादी के विद्वान वकील द्वारा दी गई दलीले तथ्य के शुद्ध विवादित प्रश्नो पर न्याय निर्णयन की मांग करती है जिनपर केवल ट्रायल कोर्ट द्वारा ही पर्याप्त रूप से फैसला सुनाया जा सकता है औऱ ऐसा करते समय भी दी गई दलीले इस वाद ने ट्रायल कोर्ट द्वारा कानून के बिन्दुओ पर भी अधिक उचित ढ़ंग से विचार किया जा सकता है। यह न्यायालय इसे उचित नही मानता है, और इसीलिए वास्तविक सुनवाई शुरू होने से पहले प्री ट्रायल राजी नही किया जा सकता है पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना आस्वीकार की गई है क्योकि मुझे न्यायालय की प्रक्रिया कोई दुरूपयोग नही दिख रहा है।

31. वर्तमान वाद मे धारा 164 सी आर पी सी के तहत दर्ज पीड़िता के बयान मे आरोपी-वादी के नाम प्रकाश मे आया है। वादी को सी आर पी सी की धारा 164 अन्तर्गत बयान के आधार पर समन करते समय, मजिस्ट्रेट ने वास्तविक शिकायत कर्ता द्वार दायर एक स्वतन्त्र आवेदन के आधार पर कार्यवाही की और पाया कि उसके सामने वादी कि मिली भगत को दर्शाने वाली पर्याप्त समाग्री थी। उपरोक्त वाद मे हालाकि उनका नाम आरोप पत्र मे नही पाया गया। इस प्रकर किसी अपराध का संज्ञान लेने पर व्यक्तियो को बुलाने के लिए मजिस्ट्रेट को इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उपलब्ध समाग्रियो को जांच करनी होती है पुलिस द्वारा भेजे गए लोगो के अलावा, कुछ अन्य व्यक्ति भी अपराध मे शामिल है इन समाग्रियो को पुलिस रिपोर्ट , आरोप पत्र, एफ.आई.आर. तक सीमित रहने की आवश्यकता नही है,

संहिता की धारा 164 के अन्तर्गत दिए गए बयान पर भी ऐसे उद्देश्य के लिए विचार किया जा सकता है जैसा कि **नाहर सिंह बनाम यू.पी. राज्य के और अन्य ने (2022) 5 एस.सी.सी 295** मे रिपोर्ट किया वाद मे सर्वोर्ट न्यायालय ने माना है।

32. हांलाकि, यह न्यायालय स्पष्ट कर सकता है कि इस निर्णय मे जो कुछ भी कहा गया है वह पूरी तरह से अस्थायी है और कार्यवाही के साथ-सात विवादित आदेशो को रद्द करने की प्रार्थना के मूल्य का आकलन करने के उद्देश्य तक सीमित है। इस ट्रायल कोर्ट द्वारा साक्ष्य के बारे मे किसी भी प्रकार की टिप्पणी या मूल्यांकन के रूप मे नही जाना चाहिए जो अभी तक परीक्षण के दौरान सामने नही आया है। अभियोजन वाद की सच्चाई को कानून के अनुसार मुकदमे मे सन्देह से परे स्थापित किया जाना चाहिए। हांलाकि इस न्यायालय की राय है कि ऐसा वाद नही है, जहाँ अभियोजन को संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियो का प्रयोग करते हुए रोक दिया जाना चाहिए।

33. उपरोक्त टिप्पणियो के सात वर्तमान आवेदन धारा 482 सी.आर.पी.सी के अन्तर्गत। **तद्नुसार खारिज किया जाता है।**

(2023) 5 ILRA 39

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 11661/2018

प्रशांत त्यागी और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री अमरेन्द्र नाथ राय, श्री संजय सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिनव गौड़, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री विभु राय

(ए) दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482- अंतर्निहित शक्ति -परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1981 - धारा 138 - खातों में धन की कमी आदि के कारण चेक का अनादर - यदि अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के आधार पर, जो संदेह या शंका से परे हैं - उसके विरुद्ध आरोप कि पुष्टि नहीं की जा सकती हैं, तो यह न्याय का उपहास होगा यदि अभियुक्त को मुकदमे में भेजा जाता है और उसे विचारणीय न्यायालय के समक्ष अपना बचाव सिद्ध करने के लिए कहा जाता है - न्याय को बढ़ावा देने या अन्याय या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए न्यायालय प्रथम दृष्टया चरण में महत्वपूर्ण सामग्रियों की जांच कर सकता है। (पैरा - 21)

आवेदक क्रमांक 1 ने चेक जारी होने से पहले ही कंपनी से त्यागपत्र दे दिया था - चेक पर उनके हस्ताक्षर नहीं थे - आवेदक केवल शेयरधारक थे - कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार में उनकी कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी - परिवाद में आरोपी कंपनी के कारोबार के लिए आवेदक की जिम्मेदारी या प्रभारी का उल्लेख नहीं किया गया है। (पैरा-23)

अभिलेख से प्रतीत होता है कि आवेदकों के कंपनी के दैनिक कामकाज में भागीदारी अनुपस्थित है। इसलिए, ऐसे लोगों को अभियोजन का सामना करने के लिए लिप्त करना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके अनादर से संबंधित नहीं हैं। आवेदक को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट की धारा 138 के तहत विचरण में तलब करना सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का उल्लंघन किया है। तलबी आदेश निरस्त किया गया। (पैरा - 23,24,25)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम यूपी राज्य, 2016 (94) एसीसी 90
2. सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम मेसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या 10396/2019 से उत्पन्न]
3. एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89,
4. हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले एवं अन्य, (2011) 3 एससीसी 351
5. पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के लिए अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को स्थानांतरित करके, अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 25.11.2016 को धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत सी.सी संख्या-70/2016 में पारित सम्मन आदेश को रद्द करने और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-19 वर्ष 2017 में पारित आदेश दिनांक 22.02.2018 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

मामले के तथ्यों के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा 13.10.2016 को आवेदकों और छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ इस संस्करण के साथ शिकायत दर्ज की गई थी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक लिमिटेड कंपनी थी और विजय कुमार पुत्र स्वर्गीय श्री सतपाल कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 खरीदने, बेचने और संपत्तियों के निर्माण के व्यवसाय में लिप्त था। प्रतिपक्षी संख्या- 1 (शिकायत में) मेसर्स सी.एस. के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एक पंजीकृत कंपनी थी। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 इसके निदेशक और अधिकारी थे और प्रतिपक्षी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 9 सभी दिन-प्रतिदिन के कारोबार और

प्रतिपक्षी संख्या-1, मेसर्स सी.एस. के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के लेनदेन के लिए जिम्मेदार थे।

प्रतिपक्षियों (शिकायत में) ने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को आश्वासन दिया था कि वे शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को उचित मूल्य पर जमीन उपलब्ध कराएंगे। प्रतिपक्षियों में विश्वास करते हुए शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 16.08.2014 को प्रतिपक्षियों को 5,00,00,000/- रुपये का भुगतान किया, जो प्रतिपक्षियों द्वारा प्राप्त किए गए थे। जब उनके आश्वासन के अनुसार प्रतिपक्षी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के लिए भूमि की व्यवस्था नहीं कर सके और शिकायतकर्ता ने उन्हें प्राथमिकी दर्ज करने की धमकी दी, तो प्रतिपक्षियों ने ब्याज के साथ 5,00,00,000/- रुपये की मूल राशि के अनुसरण में 7,00,00,000/- रुपये का भुगतान करने का वादा किया। प्रतिपक्षियों ने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में 1,00,00,000/- का चेक दिया। दिनांक 30.07.2016 को 1,00,00,000/- रुपये मूल्य का यह चेक संख्या-000285 अस्वीकृत हो गया, जबकि प्रतिपक्षियों ने इसे भुनाने का आश्वासन दिया था। जिसकी जानकारी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को 29.08.2016 को प्राप्त हुई थी और उचित प्रक्रिया के बाद, शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा कंपनी सहित नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 420 भ०८०वि० के तहत शिकायत दर्ज की गई थी।

धारा 200 द०प्र०स० और धारा 202 द०प्र०स० के तहत बयानों के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.11.2016 के आदेश के तहत सभी नौ आरोपियों को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट 1881 की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। दिनांक 25.11.2016 के इस आदेश के विरुद्ध, प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी नामक तीन पक्षों/वर्तमान आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे दिनांक 22.02.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 22.02.2018 से व्यथित महसूस करते हुए, वर्तमान आवेदन आवेदक प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी द्वारा केवल इस संस्करण के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1, जो पहले मेसर्स सी.एस. के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक थे, ने 26.09.2014 को, प्रतिपक्षी संख्या-2 को दिनांक 30.07.2016 को चेक संख्या-000285 जारी करने से बहुत पहले, अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने इस आशय के लिए फॉर्म डीआईआर-12 (जिसे पहले फॉर्म 32 के नाम से जाना जाता था) की प्रमाणित प्रति दाखिल की है। उसने न तो चेक पर हस्ताक्षर किए थे और न ही उसके बैंक खाते में राशि प्राप्त हुई थी, इस प्रकार, आवेदक संख्या-1 आरोपी कंपनी में पूर्व निदेशक है। आवेदक संख्या-2 और 3 आवेदक संख्या-1. की मां और बहन हैं। उनका आरोपी कंपनी के कामकाज से किसी भी तरह से कोई

संबंध नहीं था। वे कंपनी के आचरण और व्यवसाय के लिए प्रभारी और जिम्मेदार नहीं हो सकते थे। बिना किसी विशिष्ट कथन के कि उन्होंने आरोपी कंपनी के कामकाज और व्यवसाय में क्या भूमिका निभाई है, उन्हें धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए नहीं फंसाया जा सकता है। सम्मन आदेश एन.आई. अधिनियम की धारा 141 पर विचार किए बिना पारित किया गया है, इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ सभी आवेदक कंपनी के शेयरधारक हैं और एक ही परिवार से संबंधित हैं। वर्तमान आवेदक प्रशांत त्यागी राम सेवक त्यागी का पुत्र है, आवेदक संख्या-2 श्रीमती नीता त्यागी राम सेवक त्यागी की पत्नी है और आवेदक संख्या-3 श्रीमती श्वेता त्यागी, गौरव की पत्नी है/राम सेवक त्यागी और राम सेवक की पुत्री है, वह व्यक्ति है जो आरोपी कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है और उसने 30.07.2016 को शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में चेक जारी किया था। जब 30.08.2013 को वार्षिक आम बैठक बुलाई गई थी तो विवादित कंपनी के सभी शेयरधारकों के शेयर निम्नानुसार थेः-

राम सेवक त्यागी के पास 20000 शेयर थे, प्रशांत त्यागी आवेदक संख्या 1 के पास 25000 शेयर थे, श्रीमती नीता त्यागी के पास 20000 थे और श्रीमती श्ववेता त्यागी के पास 10000 शेयर थे और राम किशन के पास 5000 शेयर थे, इस प्रकार, यहाॅ सभी आवेदक आरोपी कंपनी के शेयरधारक हैं।

सभी आवेदक राम सेवक त्यागी के रक्त संबंधी हैं और राम किशन राम सेवक का बहनोई है, जो उक्त धोखाधड़ी का मास्टर माइंड है। राम सेवक कंपनी के अन्य निदेशकों और शेयरधारकों के साथ कंपनी के वितीय और लेखा मामलों को संभाल रहे थे और निदेशकों, अधिकृत प्रतिनिधियों के साथ-साथ कंपनी के अन्य शेयरधारकों की ओर से कंपनी के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के प्रभारी हैं। निचली अदालत ने आवेदकों के पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया था। आवेदक संख्या-1 कंपनी का संयुक्त निदेशक है और अभी भी कंपनी का निदेशक है और बहुत कम समय के लिए वह निदेशक मंडल में नहीं था। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय/कार्यों की देखभाल करने वाले और कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि होने के नाते सभी आवेदक अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इसलिए, अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया है।

आवेदकों ने एक प्रत्युतर हलफनामा दायर किया जिसमें जवाबी हलफनामे के संस्करण से इनकार किया गया था और शिकायत के संस्करण को दोहराया गया था।

आवेदकों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारंण न्यायालय ने एन.आई. अधिनियम की धारा 141 का अध्ययन नहीं किया है, जो कंपनियों द्वारा अपराधों से संबंधित है। इस धारा को देखे बिना आक्षेपित आदेश को पूर्ण

और भावात्मक आदेश नहीं कहा जा सकता है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1 ने 26.09.2014 को इस्तीफा दे दिया था, जबकि कहा जाता है कि चेक 30.07.2016 को जारी किया गया था। उनके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर-12 दाखिल किया गया है, जो एक सार्वजनिक दस्तावेज है। आवेदक संख्या- 2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं और महिलाएं हैं। उनकी भागीदारी को कंपनी में सक्रिय नहीं कहा जा सकता है और शिकायत में यह स्पष्ट कथन है कि आरोपी संख्या-2 से 6 कंपनी के निदेशक और शेयरधारक होने के नाते आरोपी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 सहित आरोपी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार तीनों आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के सभी लेनदेन और समग्र व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन कोई विवरण या व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका, जिसे शिकायत में स्पष्ट किया जाना चाहिए, स्पष्ट नहीं किया गया है। जाहिर है कि चेक किसी भी आवेदक द्वारा जारी नहीं किया गया था। आवेदक संख्या-2, आवेदक संख्या-1 की मां एक वरिष्ठ नागरिक है। इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

जबकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदकों के अधिवक्ता के संस्करण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक कंपनी में शेयरधारक हैं और राम सेवक के परिवार के सदस्य हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विवादित चेक जारी किया है और चेक जारी करने वाले व्यक्ति की पत्नी, बेटे और बेटी होने के नाते सभी आवेदकों को राम सेवक त्यागी द्वारा किए गए कार्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिकायत में आरोपी संख्या-7 चूंकि पूरी धोखाधड़ी/छल आवेदकों की सहमति और मिलीभगत से की गई है, इसलिए एन. आई अधिनियम की धारा 141 की मदद से सभी आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे। सम्मन के इस चरण में आवेदकों के बचाव का निर्णय नहीं किया जा सकता है। आवेदकों की देयता केवल साक्ष्य के बाद ही तय की जा सकती है, क्योंकि अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 2 के अनुसार यदि अपराध आवेदकों की सहमति या मिलीभगत से किया गया साबित होता है तो वे भी इसके लिए उत्तरदायी होंगे और तदनुसार दंडित किए जाएंगे। इस प्रकार आवेदकों के अपराध को साबित करने के लिए पक्षकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हैं और इस प्रारंभिक अवस्था में आवेदकों की देयता तय नहीं की जा सकती है।

श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 (94) ए.सी.सी. 90 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्तों को बुलाने के चरण में, बचाव जो वे बाद में जोड़ सकते हैं, नहीं देखा जा सकता क्योंकि इस तरह के संभावित बचाव को देखने का कोई अवसर नहीं था, जो तब आ सकता है जब आरोपी पेश होंगे और मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला रखेंगे। सम्मन जारी करने के चरण में न्यायालय को

यह देखना होता है कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध दिखाया गया है और उन अभियुक्त व्यक्तियों को तलब करने को न्यायोचित ठहराने के लिए उपयुक्त सामग्री आई है जिनके विरुद्ध शिकायत की गई है। आवेदकों को स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में सौंपी गई भूमिका को शिकायत के पैराग्राफ 4 में संदर्भित किया गया है, कि सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और कामकाज के लिए जिम्मेदार हैं।

इस निर्णय के आधार पर, यह आगे तर्क दिया गया है कि कंपनी के सभी अधिकारी कंपनी के नाम पर किए गए कृत्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन कृत्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाने की मांग की जाती है जिसके परिणामस्वरूप कंपनी के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई की जा रही है। इस प्रकार, यह दावा किया जाता है कि सभी आवेदक पूर्वोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

आवेदकों के अधिवक्ता ने सुनीता पलिता और अन्य बनाम मैसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या-2006 में दिए गए निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान आकषत किया। वर्ष 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या-10396 वर्ष 2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को फैसला किया गया और एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एस.सी.सी. 89 में निर्णय का उल्लेख किया गया है, जिसमें पैरा 10 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि- कंपनी ने कहा, 'कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा। यह केवल वे व्यक्ति हैं जो अपराध के कमीशन के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार थे, जो आपराधिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी कंपनी का निदेशक जो प्रभारी नहीं था और प्रासंगिक समय पर कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार नहीं था, तो प्रावधान के तहत उत्तरदायी नहीं होगा। देयता प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने से उत्पन्न होती है जब अपराध किया गया था और केवल किसी कंपनी में पदनाम या कार्यालय रखने के आधार पर नहीं। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो किसी कंपनी में कोई कार्यालय या पदनाम नहीं रखता है, यदि वह प्रासंगिक समय पर किसी कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने की मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है, उत्तरदायी हो सकता है। देयता किसी कंपनी के मामलों में निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करती है न कि पदनाम या स्थिति पर।

न्यायालय का ध्यान आगे हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतीलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 351 में फैसले की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि शिकायतकर्ता बैंकर के माध्यम से चेक का अनादरण उसके इस्तीफे के बाद था, इसलिए आवेदक आवेद संख्या-1 को उस समय कंपनी के साथ कोई चिंता नहीं कहा जा सकता है।

आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि शिकायत में महज सादा कथन कि "आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए, वे किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी हैं" अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह कथन किसी भी विवरण. से रहित है।

पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2014) 16 एस.सी.सी. के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 141 के तहत प्रत्यावर्ती दायित्व को बांधने के लिए, उस सुसंगत समय पर वह व्यक्ति कंपनी के मामलों के शीर्ष पर होगा, जो कंपनी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की सक्रिय रूप से देखभाल करता है और विशेष रूप से अपने व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार है। सिर्फ इसलिए कि एक व्यक्ति एक कंपनी का निदेशक है..... कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा।

इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक संख्या-1 उस तारीख को कंपनी का निदेशक नहीं था जब चेक जारी किया गया था और उसके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर-12 रिकॉर्ड पर रखा गया है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं। उन्हें कंपनी के कामकाज में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता का तर्क है कि इस संबंध में बहस के समय आवेदकों का बचाव देखा जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय ने हर्षेद्र कुमार डी बनाम रेबटिलता कोले और अन्य (उपरोक्त) के फैसले में कहा कि यदि अभियुक्त द्वारा रखे गए दस्तावेजों के चेहरे पर, उसके खिलाफ आरोप टिक नहीं सकते, यह न्याय का उपहास होगा यदि आरोपी को मुकदमे में धकेल दिया जाता है और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बचाव साबित करने के लिए कहा जाता है। ऐसे मामले में, न्याय को बढ़ावा देने के लिए या प्रक्रिया के अन्याय या दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय उन सामग्रियों को देख सकता है जिनका प्रथम दृष्टया स्तर पर मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यदि हम श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में प्रतिपक्षी संख्या- 2 के अधिवक्ता द्वारा दिए गए फैसले को देखते हैं, तो उस मामले के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से अलग हैं, जिसमें उस मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता और अन्य निदेशकों की उपस्थिति में चेक जारी किए गए थे, जबकि प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता की उपस्थिति में चेक कभी जारी नहीं किए गए थे, बल्कि तब तक आवेदक संख्या-1 ने कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जबकि श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों के अनुसार इस्तीफे के संबंध में दस्तावेजों को जाली दस्तावेज होने का आरोप लगाया गया था, लेकिन आवेदक संख्या-1 के इस्तीफे के मामले में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा ऊपर दिए गए विभिन्न सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की

उपस्थिति में इस न्यायालय के फैसले का लाभ नहीं उठा सकते हैं।

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया जाता है कि आवेदक संख्या-1 ने चेक जारी करने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जाहिर है, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी करने की तारीख को आवेदक कंपनी के शेयरधारक मात्र थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरीके से प्रभारी थे या आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड के आधार पर, आवेदकों की भागीदारी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि साक्ष्य के समय बचाव को देखा जाएगा, अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए व्यक्तियों को घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके जारी करने से जिसको अस्वीकृत किया जा रहा है, किसी भी तरह से जुड़े नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए आवेदकों को समन करना उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के जनादेश के खिलाफ पाया गया है।

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित दिनांक 22.02.2018 के निर्णय को रद्द किया जाता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 5 ILRA 45

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 11749/2018

प्रशांत त्यागी और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री अमरेन्द्र नाथ राय, श्री संजय सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिनव गौड़, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री विभु राय

(ए) दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482- अंतर्निहित शक्ति -परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1981 - धारा 138 - खातों में धन की कमी आदि के कारण चेक का अनादर - यदि अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के आधार पर, जो संदेह या शंका से परे हैं - उसके विरुद्ध आरोप कि पुष्टि नहीं

की जा सकती हैं, तो यह न्याय का उपहास होगा यदि अभियुक्त को मुकदमे में भेजा जाता है और उसे विचारणीय न्यायालय के समक्ष अपना बचाव सिद्ध करने के लिए कहा जाता है - न्याय को बढ़ावा देने या अन्याय या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए न्यायालय प्रथम दृष्टया चरण में महत्वपूर्ण सामग्रियों की जांच कर सकता है। (पैरा - 21)

आवेदक क्रमांक 1 ने चेक जारी होने से पहले ही कंपनी से त्यागपत्र दे दिया था - चेक पर उनके हस्ताक्षर नहीं थे - आवेदक केवल शेयरधारक थे - कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार में उनकी कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी - परिवाद में आरोपी कंपनी के कारोबार के लिए आवेदक की जिम्मेदारी या प्रभारी का उल्लेख नहीं किया गया है। (पैरा-23)

अभिलेख से प्रतीत होता है कि आवेदकों के कंपनी के दैनिक कामकाज में भागीदारी अनुपस्थित है। इसलिए, ऐसे लोगों को अभियोजन का सामना करने के लिए लिप्त करना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके अनादर से संबंधित नहीं हैं। आवेदक को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट की धारा 138 के तहत विचरण में तलब करना सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का उल्लंघन किया है। तलबी आदेश निरस्त किया गया। (पैरा - 23,24,25)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम यूपी राज्य, 2016 (94) एसीसी 90
2. सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम मेसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या 10396/2019 से उत्पन्न]
3. एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89,
4. हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले एवं अन्य, (2011) 3 एससीसी 351
5. पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के लिए अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को स्थानांतरित करके, अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 25.11.2016 को धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत सी.सी संख्या-70/2016 में पारित सम्मन आदेश को रद्द करने और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-19 वर्ष 2017 में पारित आदेश दिनांक 22.02.2018 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

मामले के तथ्यों के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा 13.10.2016 को आवेदकों और छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ इस संस्करण के

साथ शिकायत दर्ज की गई थी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक लिमिटेड कंपनी थी और विजय कुमार पुत्र स्वर्गीय श्री सतपाल कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 खरीदने, बेचने और संपत्तियों के निर्माण के व्यवसाय में लिप्त था। प्रतिपक्षी संख्या-1 (शिकायत में) मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एक पंजीकृत कंपनी थी। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 इसके निदेशक और अधिकारी थे और प्रतिपक्षी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 9 सभी दिन-प्रतिदिन के कारोबार और प्रतिपक्षी संख्या-1, मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के लेनदेन के लिए जिम्मेदार थे।

प्रतिपक्षियों (शिकायत में) ने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को आश्वासन दिया था कि वे शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को उचित मूल्य पर जमीन उपलब्ध कराएंगे। प्रतिपक्षियों में विश्वास करते हुए शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 16.08.2014 को प्रतिपक्षियों को 5,00,00,000/- रुपये का भुगतान किया, जो प्रतिपक्षियों द्वारा प्राप्त किए गए थे। जब उनके आश्वासन के अनुसार प्रतिपक्षी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के लिए भूमि की व्यवस्था नहीं कर सके और शिकायतकर्ता ने उन्हें प्राथमिकी दर्ज करने की धमकी दी, तो प्रतिपक्षियों ने ब्याज के साथ 5,00,00,000/- रुपये की मूल राशि के अनुसरण में 7,00,00,000/- रुपये का भुगतान करने का वादा किया। प्रतिपक्षियों ने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में 1,00,00,000/- का चेक दिया। दिनांक 30.07.2016 को 1,00,00,000/- रुपये मूल्य का यह चेक संख्या-000285 अस्वीकृत हो गया, जबकि प्रतिपक्षियों ने इसे भुनाने का आश्वासन दिया था। जिसकी जानकारी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को 29.08.2016 को प्राप्त हुई थी और उचित प्रक्रिया के बाद, शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा कंपनी सहित नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 420 भ०द०वि० के तहत शिकायत दर्ज की गई थी।

धारा 200 द०प्र०स० और धारा 202 द०प्र०स० के तहत बयानों के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.11.2016 के आदेश के तहत सभी नौ आरोपियों को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट 1881 की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। दिनांक 25.11.2016 के इस आदेश के विरूद्ध, प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी नामक तीन पक्षों/वर्तमान आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे दिनांक 22.02.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 22.02.2018 से व्यथित महसूस करते हुए, वर्तमान आवेदन आवेदक प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी द्वारा केवल इस संस्करण के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1, जो पहले मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के

अदालत

निदेशक थे, ने 26.09.2014 को, प्रतिपक्षी संख्या-2 को दिनांक 30.07.2016 को चेक संख्या-000285 जारी करने से बहुत पहले, अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने इस आशय के लिए फॉर्म डीआईआर-12 (जिसे पहले फॉर्म 32 के नाम से जाना जाता था) की प्रमाणित प्रति दाखिल की है। उसने न तो चेक पर हस्ताक्षर किए थे और न ही उसके बैंक खाते में राशि प्राप्त हुई थी, इस प्रकार, आवेदक संख्या-1 आरोपी कंपनी में पूर्व निदेशक है। आवेदक संख्या-2 और 3 आवेदक संख्या-1 की मां और बहन हैं। उनका आरोपी कंपनी के कामकाज से किसी भी तरह से कोई संबंध नहीं था। वे कंपनी के आचरण और व्यवसाय के लिए प्रभारी और जिम्मेदार नहीं हो सकते थे। बिना किसी विशिष्ट कथन के कि उन्होंने आरोपी कंपनी के कामकाज और व्यवसाय में क्या भूमिका निभाई है, उन्हें धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए नहीं फंसाया जा सकता है। सम्मन आदेश एन.आई. अधिनियम की धारा 141 पर विचार किए बिना पारित किया गया है, इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ सभी आवेदक कंपनी के शेयरधारक हैं और एक ही परिवार से संबंधित हैं। वर्तमान आवेदक प्रशांत त्यागी राम सेवक त्यागी का पुत्र है, आवेदक संख्या-2 श्रीमती नीता त्यागी राम सेवक त्यागी की पत्नी है और आवेदक संख्या-3 श्रीमती श्वेता त्यागी, गौरव की पत्नी है/राम सेवक त्यागी और राम सेवक की पुत्री है, वह व्यक्ति है जो आरोपी कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है और उसने 30.07.2016 को शिकायतकर्ता /प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में चेक जारी किया था। जब 30.08.2013 को वार्षिक आम बैठक बुलाई गई थी तो विवादित कंपनी के सभी शेयरधारकों के शेयर निम्नानुसार थे: -

राम सेवक त्यागी के पास 20000 शेयर थे, प्रशांत त्यागी आवेदक संख्या-1 के पास 25000 शेयर थे, श्रीमती नीता त्यागी के पास 20000 थे और श्रीमती श्वेता त्यागी के पास 10000 शेयर थे और राम किशन के पास 5000 शेयर थे, इस प्रकार, यहां सभी आवेदक आरोपी कंपनी के शेयरधारक हैं।

सभी आवेदक राम सेवक त्यागी के रक्त-संबंधी हैं और राम किशन राम सेवक का बहनोई है, जो उक्त धोखाधड़ी का मास्टर माइंड है। राम सेवक कंपनी के अन्य निदेशकों और शेयरधारकों के साथ कंपनी के वित्तीय और लेखा मामलों को संभाल रहे थे और निदेशकों, अधिकृत प्रतिनिधियों के साथ-साथ कंपनी के अन्य शेयरधारकों की ओर से कंपनी के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के प्रभारी हैं। निचली अदालत ने आवेदकों के पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया था। आवेदक संख्या-1 कंपनी का संयुक्त निदेशक है और अभी भी कंपनी का निदेशक है और बहुत कम समय के लिए वह निदेशक मंडल में नहीं था। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय/कार्यों की देखभाल करने वाले और कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि होने के नाते सभी

आवेदक अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इसलिए, अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया है।

आवेदकों ने एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया जिसमें जवाबी हलफनामे के संस्करण से इनकार किया गया था और शिकायत के संस्करण को दोहराया गया था।

आवेदकों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने एन.आई. अधिनियम की धारा 141 का अध्ययन नहीं किया है, जो कंपनियों द्वारा अपराधों से संबंधित है। इस धारा को देखे बिना आक्षेपित आदेश को पूर्ण और भावात्मक आदेश नहीं कहा जा सकता है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1 ने 26.09.2014 को इस्तीफा दे दिया था, जबकि कहा जाता है कि चेक 30.07.2016 को जारी किया गया था। उनके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर-12 दाखिल किया गया है, जो एक सार्वजनिक दस्तावेज है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं और महिलाएं हैं। उनकी भागीदारी को कंपनी में सक्रिय नहीं कहा जा सकता है और शिकायत में यह स्पष्ट कथन है कि आरोपी संख्या-2 से 6 कंपनी के निदेशक और शेयरधारक होने के नाते आरोपी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 सहित आरोपी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार तीनों आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के सभी लेनदेन और समग्र व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन कोई विवरण या व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका, जिसे शिकायत में स्पष्ट किया जाना चाहिए, स्पष्ट नहीं किया गया है। जाहिर है कि चेक किसी भी आवेदक द्वारा जारी नहीं किया गया था। आवेदक संख्या-2, आवेदक संख्या-1 की मां एक वरिष्ठ नागरिक है। इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

जबकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदकों के अधिवक्ता के संस्करण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक कंपनी में शेयरधारक हैं और राम सेवक के परिवार के सदस्य हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विवादित चेक जारी किया है और चेक जारी करने वाले व्यक्ति की पत्नी, बेटे और बेटी होने के नाते सभी आवेदकों को राम सेवक त्यागी द्वारा किए गए कार्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिकायत में आरोपी संख्या-7 चूंकि पूरी धोखाधड़ी/छल आवेदकों की सहमति और मिलीभगत से की गई है, इसलिए एन.आई अधिनियम की धारा 141 की मदद से सभी आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे। सम्मन के इस चरण में आवेदकों के बचाव का निर्णय नहीं किया जा सकता है। आवेदकों की देयता केवल साक्ष्य के बाद ही तय की जा सकती है, क्योंकि अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 2 के अनुसार यदि अपराध आवेदकों की सहमति या मिलीभगत से किया गया साबित होता है तो वे भी इसके लिए उत्तरदायी होंगे और तदनुसार दंडित किए जाएंगे। इस प्रकार आवेदकों के अपराध को साबित करने के लिए पक्षकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हैं और इस प्रारंभिक अवस्था में आवेदकों की देयता तय नहीं की जा सकती है।

श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 (94) ए.सी.सी. 90 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्तों को बुलाने के चरण में, बचाव जो वे बाद में जोड़ सकते हैं, नहीं देखा जा सकता क्योंकि इस तरह के संभावित बचाव को देखने का कोई अवसर नहीं था, जो तब आ सकता है जब आरोपी पेश होंगे और मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला रखेंगे। सम्मन जारी करने के चरण में न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध दिखाया गया है और उन अभियुक्त व्यक्तियों को तलब करने को न्यायोचित ठहराने के लिए उपयुक्त सामग्री आई है जिनके विरुद्ध शिकायत की गई है। आवेदकों को स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में सौंपी गई भूमिका को शिकायत के पैराग्राफ 4 में संदर्भित किया गया है, कि सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और कामकाज के लिए जिम्मेदार हैं।

इस निर्णय के आधार पर, यह आगे तर्क दिया गया है कि कंपनी के सभी अधिकारी कंपनी के नाम पर किए गए कृत्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन कृत्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाने की मांग की जाती है जिसके परिणामस्वरूप कंपनी के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई की जा रही है। इस प्रकार, यह दावा किया जाता है कि सभी आवेदक पूर्वोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

आवेदकों के अधिवक्ता ने सुनीता पलिता और अन्य बनाम मैसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या-2006 में दिए गए निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान आकषत किया। वर्ष 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या-10396 वर्ष 2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को फैसला किया गया और एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एस.सी.सी. 89 में निर्णय का उल्लेख किया गया है, जिसमें पैरा - 10 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि-

कंपनी ने कहा, 'कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा। यह केवल वे व्यक्ति हैं जो अपराध के कमीशन के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार थे, जो आपराधिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी कंपनी का निदेशक जो प्रभारी नहीं था और प्रासंगिक समय पर कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार नहीं था, तो प्रावधान के तहत उत्तरदायी नहीं होगा। देयता प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने से उत्पन्न होती है जब अपराध किया गया था और केवल किसी कंपनी में पदनाम या कार्यालय रखने के आधार पर नहीं। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो किसी कंपनी में कोई कार्यालय या पदनाम नहीं रखता है, यदि वह प्रासंगिक समय पर किसी कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने की मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है, उत्तरदायी हो सकता है। देयता किसी कंपनी के मामलों में निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करती है न कि पदनाम या स्थिति पर।

न्यायालय का ध्यान आगे हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतीलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 351 में फैसले की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि शिकायतकर्ता बैंकर के माध्यम से चेक का अनादरण उसके इस्तीफे के बाद था, इसलिए आवेदक संख्या-1 को उस समय कंपनी के साथ कोई चिंता नहीं कहा जा सकता है।

आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि शिकायत में महज़ सादा कथन कि "आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए, वे किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी हैं" अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह कथन किसी भी विवरण से रहित है।

पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2014) 16 एस.सी.सी. के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 141 के तहत प्रत्यावर्ती दायित्व को बांधने के लिए, उस सुसंगत समय पर वह व्यक्ति कंपनी के मामलों के शीर्ष पर होगा, जो कंपनी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की सक्रिय रूप से देखभाल करता है और विशेष रूप से अपने व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार है। सिर्फ इसलिए कि एक व्यक्ति एक कंपनी का निदेशक है ..... कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा।

इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक संख्या-1 उस तारीख को कंपनी का निदेशक नहीं था जब चेक जारी किया गया था और उसके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर - 12 रिकॉर्ड पर रखा गया है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं। उन्हें कंपनी के कामकाज में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता का तर्क है कि इस संबंध में बहस के समय आवेदकों का बचाव देखा जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय ने हर्षेंद्र कुमार डी बनाम रेबटिलता कोले और अन्य (उपरोक्त) के फैसले में कहा कि यदि अभियुक्त द्वारा रखे गए दस्तावेजों के चेहरे पर, उसके खिलाफ आरोप टिक नहीं सकते, यह न्याय का उपहास होगा यदि आरोपी को मुकदमे में धकेल दिया जाता है और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बचाव साबित करने के लिए कहा जाता है। ऐसे मामले में, न्याय को बढ़ावा देने के लिए या प्रक्रिया के अन्याय या दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय उन सामग्रियों को देख सकता है जिनका प्रथम दृष्टया स्तर पर मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यदि हम श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा दिए गए फैसले को देखते हैं, तो उस मामले के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से अलग हैं, जिसमें उस मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता और अन्य निदेशकों की उपस्थिति में चेक जारी किए गए थे, जबकि प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता की उपस्थिति में चेक कभी जारी नहीं किए गए थे, बल्कि तब तक आवेदक

संख्या-1 ने कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जबकि श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों के अनुसार इस्तीफे के संबंध में दस्तावेजों को जाली दस्तावेज होने का आरोप लगाया गया था, लेकिन आवेदक संख्या-1 के इस्तीफे के मामले में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा ऊपर दिए गए विभिन्न सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की उपस्थिति में इस न्यायालय के फैसले का लाभ नहीं उठा सकते हैं।

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया जाता है कि आवेदक संख्या-1 ने चेक जारी करने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जाहिर है, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी करने की तारीख को आवेदक कंपनी के शेयरधारक मात्र थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरीके से प्रभारी थे या आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड के आधार पर, आवेदकों की भागीदारी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि साक्ष्य के समय बचाव को देखा जाएगा, अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए व्यक्तियों को घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके जारी करने से जिसको अस्वीकृत किया जा रहा है, किसी भी तरह से जुड़े नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए आवेदकों को समन करना उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के जनादेश के खिलाफ पाया गया है।

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित दिनांक 22.02.2018 के निर्णय को रद्द किया जाता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 5 ILRA 50

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 11753/2018

प्रशांत त्यागी और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री अमरेन्द्र नाथ राय, श्री संजय सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिनव गौड़, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री विभु राय

(ए) दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482- अंतर्निहित शक्ति -परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1981 - धारा 138 - खातों में धन

की कमी आदि के कारण चेक का अनादर - यदि अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के आधार पर, जो संदेह या शंका से परे हैं - उसके विरुद्ध आरोप कि पुष्टि नहीं की जा सकती हैं, तो यह न्याय का उपहास होगा यदि अभियुक्त को मुकदमे में भेजा जाता है और उसे विचारणीय न्यायालय के समक्ष अपना बचाव सिद्ध करने के लिए कहा जाता है - न्याय को बढ़ावा देने या अन्याय या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए न्यायालय प्रथम दृष्टया चरण में महत्वपूर्ण सामग्रियों की जांच कर सकता है। (पैरा - 21)

आवेदक क्रमांक 1 ने चेक जारी होने से पहले ही कंपनी से त्यागपत्र दे दिया था - चेक पर उनके हस्ताक्षर नहीं थे - आवेदक केवल शेयरधारक थे - कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार में उनकी कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी - परिवाद में आरोपी कंपनी के कारोबार के लिए आवेदक की जिम्मेदारी या प्रभारी का उल्लेख नहीं किया गया है। (पैरा-23)

अभिलेख से प्रतीत होता है कि आवेदकों के कंपनी के दैनिक कामकाज में भागीदारी अनुपस्थित है। इसलिए, ऐसे लोगों को अभियोजन का सामना करने के लिए लिप्त करना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके अनादर से संबंधित नहीं हैं। आवेदक को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट की धारा 138 के तहत विचरण में तलब करना सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का उल्लंघन किया है। तलबी आदेश निरस्त किया गया। (पैरा - 23,24,25)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम यूपी राज्य, 2016 (94) एसीसी 90
2. सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम मेसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या 10396/2019 से उत्पन्न]
3. एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89,
4. हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले एवं अन्य, (2011) 3 एससीसी 351
5. पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत इस आवेदन को दायर करके धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत मुकदमा अपराध संख्या 69/2016 में

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है और अपराधिक पुनरीक्षण संख्या 17 / 2017 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 15, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.02.2018 को भी निरस्त किया जाए।

मामले के तथ्यों के अनुसार, 13.10.2016 को विपक्षी संख्या 2 द्वारा आवेदकों और छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ एक शिकायत दर्ज की गई थी, जिसमें कहा गया था कि विपक्षी संख्या 2 कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक सीमित कंपनी थी और स्वर्गीय श्री सतपाल के पुत्र विजय कुमार को कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत किया गया था। विपक्षी संख्या 2 संपत्तियों की खरीद, बिक्री और निर्माण के व्यवसाय में लिप्त था। विपक्षी संख्या 1 (शिकायत में) मेसर्स सी.एस.के इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एक पंजीकृत कंपनी थी। विपक्षी संख्या 2 से 6 इसके निदेशक और अधिकारी थे और विपक्षी संख्या 7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि थे। विपक्षी संख्या 2 से 9 तक विपक्षी संख्या 1, मेसर्स सी.एस.के इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के सभी दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और लेनदेन के लिए जिम्मेदार थे। विपक्षीयों ने (शिकायत में) शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 को आश्वासन दिया था कि वे शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 को उचित मूल्य पर जमीन उपलब्ध कराएंगे। विपक्षीगणों पर विश्वास करते हुए शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 ने दिनांक 16.08.2014 को विपक्षीगणों को 5,00,00,000/- रूपये का भुगतान किया, जो विपक्षीगणों को प्राप्त हुए। जब कि उनके आश्वासन के अनुसार विपक्षीगण परिवादी/विपक्षी संख्या 2 के लिए भूमि की व्यवस्था नहीं कर सके और शिकायतकर्ता ने उन्हें एफआईआर दर्ज करने की धमकी दी, तब विपक्षी ने मूल राशि 5,00,00,000/- रुपये ब्याज सहित 7,00,00,000/- रुपये देने का वादा किया विपक्षी दलों ने शिकायतकर्ता/ विपक्षी संख्या 2 के पक्ष में 1,00,00,000/- रुपये का चेक जारी किया। यह चेक संख्या 000282, जिसका मूल्य रु. 1,00,00,000/- दिनांक 15.06.2016 है, विपक्षीयों के आश्वासन के बावजूद कि यह भुनाया जाएगा, अनादरित हो गया। जिसकी सूचना दिनांक 29.08.2016 को परिवादी/विपक्षी संख्या 2 को प्राप्त हुई और उचित प्रक्रिया के बाद, शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 द्वारा कंपनी सहित नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत शिकायत दर्ज की गई थी।

अप्रतिदत्त

दं.प्र.सं. की धारा 200 और दं.प्र.सं. की धारा 202 के तहत बयानों के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.11.2016 के आदेश के तहत सभी नौ आरोपियों को परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया। दिनांक 25.11.2016 के इस आदेश के खिलाफ, प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी नाम के तीन विरोधी पक्षों/वर्तमान आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे आदेश दिनांक 22.02.2018 द्वारा खारिज कर दिया गया।

समन आदेश दिनांक 25.11.2016 एवं पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 22.02.2018 से व्यथित महसूस करते हुए, वर्तमान आवेदन आवेदक प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी द्वारा केवल इस संस्करण के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या 1, जो पहले मेसर्स सी.एस.के इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक थे, उन्होंने विपक्षी संख्या 2 को चेक संख्या 000282 दिनांक 15.06.2016 जारी करने से बहुत पहले 26.09.2014 को अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने इस आशय के लिए फॉर्म डीआईआर-12 (जिसे पहले फॉर्म 32 के नाम से जाना जाता था) की एक प्रमाणित प्रति दाखिल की है। उन्होंने न तो चेक पर हस्ताक्षर किए थे और न ही उनके बैंक खाते में राशि प्राप्त हुई थी, इस प्रकार, आवेदक संख्या 1 आरोपी कंपनी में पूर्व निदेशक है। आवेदक संख्या 2 और 3 आवेदक संख्या 1 की मां और बहन हैं। उनका आरोपी कंपनी की कार्यप्रणाली से किसी भी तरह से कोई संबंध नहीं था। वे कंपनी के आचरण और व्यवसाय के प्रभारी और जिम्मेदार नहीं हो सकते। बिना किसी विशिष्ट कथन के कि उन्होंने आरोपी कंपनी के कामकाज और व्यवसाय में क्या भूमिका निभाई है, उन्हें धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत अपराध के लिए नहीं फंसाया जा सकता है। सम्मन आदेश परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 पर विचार किए बिना पारित किया गया है, इसलिए तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

विपक्षी संख्या 2 की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि सभी आवेदक सह-अभियुक्त व्यक्तियों के साथ कंपनी के शेयरधारक हैं और एक ही परिवार के हैं।

वर्तमान आवेदक प्रशांत त्यागी राम सेवक त्यागी के पुत्र हैं, आवेदक संख्या 2 श्रीमती नीता त्यागी राम सेवक त्यागी की पत्नी हैं और आवेदक संख्या 3 श्रीमती श्वेता त्यागी

अनुवादित

गौरव की पत्नी हैं/राम सेवक त्यागी और राम सेवक की बेटी हैं, वह व्यक्ति है जो आरोपी कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है और उसने 15.06.2016 को शिकायतकर्ता/ विपक्षी संख्या 2 के पक्ष में चेक जारी किया था। जब 30.08.2013 को वार्षिक आम बैठक बुलाई गई तो विवादित कंपनी के सभी शेयरधारकों के शेयर इस प्रकार थे: -

राम सेवक त्यागी के पास थे 20000 शेयर, प्रशांत त्यागी आवेदक संख्या 1 के पास 25000, श्रीमती नीता त्यागी के पास 20000 और श्रीमती श्वेता त्यागी के पास 10000 और राम किशन के पास 5000 शेयर बताए गए हैं, इस प्रकार, यहां सभी आवेदक आरोपी कंपनी के शेयरधारक हैं।

सभी आवेदक राम सेवक त्यागी के सगे रिश्तेदार हैं और राम किशन, राम सेवक का बहनोई है, जो उक्त धोखाधड़ी का मास्टर माइंड है। राम सेवक कंपनी के अन्य निदेशकों और शेयरधारकों के साथ कंपनी के वित्तीय और लेखा मामलों को संभाल रहे थे और निदेशकों, अधिकृत प्रतिनिधियों के साथ-साथ कंपनी के अन्य शेयरधारकों की ओर से कंपनी के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी आवेदक कंपनी के दैनिक व्यवसाय के समग्र प्रभारी हैं। विचारण न्यायालय द्वारा आवेदकों के एक पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया था। आवेदक संख्या 1 कंपनी का संयुक्त निदेशक है और अभी भी कंपनी का निदेशक है और बहुत कम समय के लिए वह निदेशक मंडल में नहीं था।

कंपनी के रोजमर्रा के व्यवसाय/कार्यों की देखभाल करने वाले और कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि होने के नाते सभी आवेदक अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इसलिए, न्यायालय द्वारा सही ढंग से संज्ञान लिया गया है।

आवेदकों ने एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया जिसमें जवाबी हलफनामे के संस्करण को अस्वीकार कर दिया गया और शिकायत के संस्करण को दोहराया गया।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 का अध्ययन नहीं किया है, जो कंपनियों द्वारा किए गए अपराधों से संबंधित है। इस धारा को पढ़े बिना आक्षेपित आदेश को पूर्ण एवं प्रभावशाली आदेश नहीं कहा जा सकता।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या 1 ने 26.09.2014 को इस्तीफा दे दिया था, जबकि कहा गया है कि चेक 15.06.2016 को जारी

किया गया था। उनके इस्तीफे को लेकर फॉर्म डीआईआर-12 दाखिल किया गया है, जो एक सार्वजनिक दस्तावेज है । आवेदक संख्या 2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं और महिलाएं हैं।

उनकी भागीदारी को कंपनी में सक्रिय नहीं कहा जा सकता है और शिकायत में यह दावा किया गया है कि आरोपी संख्या 2 से 6 कंपनी के निदेशक और शेयरधारक होने के नाते आरोपी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार के लिए जिम्मेदार हैं।

आवेदक संख्या 2 और 3 सहित आरोपी संख्या 7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार तीनों आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के सभी लेनदेन और समग्र व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन व्यक्तियों की कोई विशेष भूमिका या विशिष्ट भूमिका, जिसे शिकायत में स्पष्ट किया जाना चाहिए, नहीं बताया गया है।

माना कि किसी भी आवेदक द्वारा चेक जारी नहीं किया गया था। आवेदक संख्या 2, आवेदक संख्या 1 की माता वरिष्ठ नागरिक हैं। अत: प्रार्थना तदनुसार की जाती है।

जबकि, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के संस्करण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक कंपनी में शेयरधारक और राम सेवक के परिवार के सदस्य हैं। जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विवादित चेक जारी किया था और चेक जारी करने वाले व्यक्ति की पत्नी, बेटा और बेटी होने के नाते सभी आवेदकों को शिकायत में आरोपी संख्या 7 राम सेवक त्यागी द्वारा किए गए कार्यों के बारे में जानकारी होनी चाहिए। चूंकि पूरी धोखाधड़ी/धोखाधड़ी आवेदकों की सहमति और मिलीभगत से की गई है, इसलिए एनआई अधिनियम की धारा 141 की सहायता से सभी आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कृत्यों के लिए उत्तरदायी होंगे। सम्मन के इस चरण में आवेदकों के बचाव पर निर्णय नहीं दिया जा सकता है। साक्ष्य के बाद ही आवेदकों का दायित्व तय किया जा सकता है, क्योंकि अधिनियम की धारा 141 की उपधारा 2 के अनुसार यदि अपराध आवेदकों की सहमति या मिलीभगत से किया गया **साबित** पाया जाता है तो वे भी इसके लिए उत्तरदायी होंगे और तदनुसार दंडित होंगे। इस प्रकार आवेदकों के अपराध को साबित करने के लिए विपक्षीयों के साक्ष्य जोड़े जाने होंगे और इस प्रारंभिक चरण में आवेदकों का दायित्व तय नहीं किया जा सकता है।`

श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम यूपी राज्य, 2016 (94) एसीसी 90 में

इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि सम्मन के चरण में, अभियुक्तों का बचाव जो वे बाद में पेश कर सकते हैं, नहीं देखा जा सकता क्योंकि ऐसे संभावित बचाव पर गौर करने का कोई अवसर नहीं था। जो तब आ सकता है जब आरोपी उपस्थित होंगे और मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला रखेंगे। समन जारी करने के चरण में न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध होना दर्शाया गया है और जिन आरोपियों के खिलाफ शिकायत की गई है, उन्हें समन करने को उचित ठहराने वाली उचित सामग्री आई है।

शिकायत के पैराग्राफ 4 में आवेदकों को स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में सौंपी गई भूमिका का उल्लेख किया गया है, कि सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और कामकाज के लिए जिम्मेदार हैं।

इस निर्णय के आधार पर, यह आगे तर्क दिया गया है कि कंपनी के सभी अधिकारी कंपनी के नाम पर किए गए कृत्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन कृत्यों के लिए उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाने की मांग की गई है जिसके परिणामस्वरूप कंपनी के खिलाफ अपराधिक कार्रवाई की गई है। इस प्रकार, यह दावा किया जाता है कि सभी आवेदक उपरोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान **सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम एम/एस पंचमी स्टोन कौरी** मामले के फैसले की ओर आकर्षित किया **अपराधिक अपील संख्या 2022 [(सीआरएल) संख्या 10396/2019 एसएलपी से उत्पन्न], 01.08.2022** को निर्णय लिया गया और **एस.एम.एस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89** में निर्णय का उल्लेख किया गया है

जिसमें पैरा-10 में शीर्ष न्यायालय ने कहा कि-

"कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा। केवल वे व्यक्ति जो किसी अपराध के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के प्रभारी और जिम्मेदार थे, अपराधिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होंगे। इससे यह पता चलता है कि यदि किसी कंपनी का कोई निदेशक, जो प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी नहीं था और जिम्मेदार नहीं था, प्रावधान के तहत उत्तरदायी नहीं होगा। दायित्व प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के प्रभारी और

जिम्मेदार होने से उत्पन्न होता है, न कि किसी कंपनी में केवल एक पदनाम या कार्यालय रखने के आधार पर। इसके विपरीत, कोई व्यक्ति जिसके पास कंपनी में कोई पद या पद नहीं है, वह उत्तरदायी हो सकता है यदि वह प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने की मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है। दायित्व किसी कंपनी के मामलों में व्यक्ति की भूमिका पर निर्भर करता है, पदनाम या स्थिति पर नहीं।"

न्यायालय का ध्यान **हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 351** में फैसले की ओर आकर्षित किया गया है। जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि चूंकि शिकायतकर्ता बैंकर के माध्यम से चेक का अनादर उसके इस्तीफे के बाद हुआ था, इसलिए आवेदक संख्या 1 को उस समय कंपनी के साथ कोई चिंता नहीं थी।

आवेदकों के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि शिकायत में केवल यह कहा गया है कि "आवेदक कंपनी के रोजमर्रा के कारोबार की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए, वे किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी हैं"। अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है. यह कथन किसी विवरण से रहित है।

पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2014) 16 एससीसी 1 के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 141 के तहत किसी व्यक्ति पर प्रतिनियुक्त दायित्व तय करने के लिए, उस भौतिक समय में वह व्यक्ति कंपनी के मामलों के शीर्ष पर रहा होगा, जो सक्रिय रूप से कंपनी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की देखभाल करता है। और अपने व्यवसाय के संचालन के लिए विशेष रूप से जिम्मेदार है। सिर्फ इसलिए कि एक व्यक्ति किसी कंपनी का निदेशक है... कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा।

इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि आवेदक संख्या 1 उस तारीख को कंपनी का निदेशक नहीं था जब चेक जारी किया गया था और उसके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर - 12 रिकॉर्ड पर रखा गया है। आवेदक संख्या 2 और 3 निश्चित रूप से कंपनी में केवल शेयरधारक हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वे कंपनी के कामकाज में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

जहां तक इस संबंध में विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि बहस के समय आवेदकों का बचाव देखा जाएगा, शीर्ष

न्यायालय ने **हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले और अन्य (सुप्रा)** के फैसले में यह राय दी यदि अभियुक्त द्वारा रखे गए दस्तावेज़ संदेह या संदेह से परे हैं, तो उसके विरुद्ध आरोप टिक नहीं सकते, यह न्याय का मखौल होगा यदि आरोपी को मुकदमे में धकेल दिया जाए और उसे ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपना बचाव साबित करने के लिए कहा जाए। ऐसे मामले में, न्याय को बढ़ावा देने या अन्याय या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय उन सामग्रियों पर गौर कर सकता है जिनका प्रथम दृष्टया स्तर पर मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यदि हम **श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम स्टेट ऑफ यूपी (सुप्रा)** मामले में विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए फैसले को देखें, तो उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से अलग हैं जिसमें उस मामले के तथ्यों के अनुसार चेक याचिकाकर्ता और अन्य निदेशकों की उपस्थिति में जारी किए गए थे, जबकि वर्तमान मामले में चेक कभी भी शिकायतकर्ता की उपस्थिति में जारी नहीं किए गए थे, बल्कि तब तक आवेदक संख्या 1 ने कंपनी से इस्तीफा दे दिया था जबकि **श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम स्टेट ऑफ यूपी (सुप्रा)** के मामले के तथ्यों के अनुसार, इस्तीफे और इस्तीफे के संबंध में दस्तावेजों पर जाली दस्तावेज होने का आरोप लगाया गया था, लेकिन मौजूदा मामले में आवेदक संख्या 1 के इस्तीफे को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा ऊपर दिए गए शीर्ष न्यायालय के विभिन्न निर्णयों की उपस्थिति में, विपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता इस न्यायालय के फैसले का लाभ नहीं उठा सकते हैं।

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया गया कि आवेदक संख्या 1 ने चेक जारी होने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था।

माना कि चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी करने की तिथि पर आवेदक कंपनी के मात्र शेयरधारक थे। रोजमर्रा के कामकाज में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और कंपनी के लेन-देन और शिकायत में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरह से प्रभारी थे या अपने व्यवसाय के संचालन के लिए आरोपी कंपनी के प्रति जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि अभिलेख पर है, कंपनी के दैनिक कामकाज में आवेदकों की भागीदारी नहीं पाई गई है। इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि साक्ष्य के समय बचाव देखा जाएगा, उन व्यक्तियों को अभियोजन का सामना

अप्रमाणित

करने के लिए घसीटना न्याय का उपहास होगा, जिनका चेक जारी करने या उसके अनादर होने से कोई लेना-देना नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, आवेदकों को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाना शीर्ष अदालत द्वारा उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून के आदेश के खिलाफ पाया गया है।

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 तथा अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 15, गाजियाबाद द्वारा अपराधिक पुनरीक्षण में पारित निर्णय दिनांक 22.02.2018 को निरस्त किया जाता है।

दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत आवेदन **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 56

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

सिविल पुनरीक्षण संख्या 12/2023

सैयद मोहम्मद मंजर ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश वक्फ न्यायालय जवाहर भवन तृतीय तल लखनऊ एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: साबिर अली, मोहम्मद मंसूर

अधिवक्ता विपक्षी: सैयद आफताब अहमद, मोहम्मद एहतेशाम खान, एसएए रिजवी

सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 43 - नियम 1, (5(1), - वक्फ अधिनियम, 1995 - धारा 83 और 83(9): सिविल पुनरीक्षण- आदेश को चुनौती देना - एक वक्फ वाद में - जिसके तहत न्यायाधिकरण ने अस्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए वादी- पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर आवेदन को विभिन्न निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त करते हुए निरस्त कर दिया - अधिनियम, 1995 की धारा 83(9) के तहत पुनरीक्षण की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति - क्योंकि, आपत्तिजनक आदेश प्रकृति में मध्यवर्ती है क्योंकि कोई अपील या पुनरीक्षण स्थिरता योग्य नहीं है - न्यायालय ने कहा कि, एक अधिनियम के प्रावधान के पहलुओं और महत्व पर विचार करते हुए, यह इस प्रकार स्पष्ट है कि हाफिज अब्दुल्ला और अन्य और शकील अहमद (जिस पर विपरीत पक्ष ने भरोसा किया) के बाद में पूर्व निर्णय ने अधिनियम की धारा 83(9) में प्रावधान के पहलू पर विचार नहीं किया है, इसे उस पहलू पर एक बाध्यकारी विधि व्यवस्था नहीं कहा जा सकता है - क्योंकि यह स्पष्ट है कि, अस्थायी निषेधाज्ञा देने या निरस्त करने वाला आवेदन न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित प्रश्न के संबंध में अंतिमता का जाल होगा - इसलिए

अधिनियम की धारा 83(9) के तहत एक संशोधन, तदनुसार इसकी योग्यता के आधार पर इस न्यायालय के आदेश के समक्ष-पुनरीक्षण की अनुमति है। (10, 27, 38 के लिए)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भारत संघ एवं अन्य बनाम प्रियंकन शरण एवं अन्य (एआईआर 2009 (एससी) सप्प. 972),
2. शाह बाबूलाल खमजी बनाम जयाबेन कानिया (एआईआर 1981 एससी 1786),
3. शाहन शान एवं अन्य बनाम सिविल जज (एसडी) संड कबीर नगर एवं अन्य (2012 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2881),
4. मौली मोइनुद्दीन और अन्य बनाम मकबूल हसन और अन्य (2008 एससीसी ऑनलाइन सभी 193),
5. हाफ़िज़ अब्दुल्ला और अन्य बनाम अकबर अली एवं अन्य। (2002 (5) एडब्ल्यूसी 3829),
6. यूपी सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ बनाम शकील अहमद और अन्य (2004 (2) एडब्ल्यूसी 1768 (एलबी),

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद मंसूर, विपक्षी संख्या 1,2,3 और 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.ए. रिज़वी, और विपक्षी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद एम.ई. खान को सुना गया।

2. वक्फ वाद संख्या 113/2020 में पारित आदेश दिनांक 12.12.2022 के विरुद्ध दीवानी पुनरीक्षण वाद दायर किया गया है, जिसके तहत अस्थायी निषेधाज्ञा देने के आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यद्यपि यूपी शिया सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.07.2019 और 26.02.2020 को रद्द करने के लिए प्रार्थना की गई है। लेकिन चूंकि उपरोक्त आदेश पहले से ही वक्फ न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती के अधीन हैं, इसलिए वह उपरोक्त आदेशों के संबंध में अपनी प्रार्थना पर जोर नहीं दे रहे हैं और पुनरीक्षण दिनांक 12.12.2022 के आदेश को चुनौती देने तक ही सीमित रहेगा।

4. सर्वप्रथम, प्रतिवादी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83 (9) के तहत पुनरीक्षण की संधार्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति की और कहा कि आक्षेपित आदेश प्रकृति में अंतर्वादीय/अंतर्वर्ती है, जिसके विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण सुनवाई योग्य नहीं है।

5. पुनरीक्षण की संधार्यता को सुनिश्चित करने के लिए, वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 83 (9) के प्रावधानों पर विचार किया जाना आवश्यक है और ये इस प्रकार हैं:-

"वक्फ अधिनियम, 1995 में धारा 83(9):-

(9) न्यायाधिकरण द्वारा किए गए किसी भी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध, चाहे वह अंतरिम हो या अन्यथा, कोई अपील नहीं की जा सकती:

परन्तु उच्च न्यायालय, स्वप्रेरण पर या बोर्ड या किसी पीड़ित व्यक्ति के आवेदन पर, किसी भी ऐसे विवाद, प्रश्न या अन्य मामले से जिसका न्यायाधिकरण द्वारा अवधारण किया गया हो संबंधित अभिलेखों की मांग और जांच, ऐसी अवधारणा की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से, कर सकता है, तथा ऐसी अवधारणा की पुष्टि, संशोधन अथवा विपरीत या विवेकानुसार कोई अन्य आदेश पारित कर सकता है जो वह उचित समझे।"

6. उपरोक्त के संबंध में, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने इस न्यायालय की समन्वय पीठों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया है जो प्रथमदृष्टया विरोधाभासी प्रतीत होते हैं।

7. ***यूपी सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड बनाम शकील अहमद एवं अन्य 2004 (2) एडब्ल्यूसी 1768 (एलबी)*** के मामले में यह माना गया है कि 1995 के अधिनियम की धारा 83 (9) के तहत पुनरीक्षण केवल तभी पोषणीय होगा जब विवाद, प्रश्न अथवा अन्य मुद्दे न्यायाधिकरण द्वारा अवधारित किए गए हों। उक्त मामले में, पुनरीक्षण पोषणीय नहीं माना गया तत्पश्चात ***मौली मोइनुद्दीन और अन्य बनाम मकबूल हसन और अन्य, एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 193 2008*** में प्रतिवेदित एवं ***शाहीन शाह एवं अन्य बनाम सिविल जज (एस.डी.) संत कबीर नगर, एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2281, 2012*** में प्रतिवेदित, के मामलों में अस्थाई निषेधाज्ञा की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के विरुद्ध पुनरीक्षण को पोषणीय माना गया है।

8. यह एक प्रासंगिक तथ्य है कि ***मौली मोइनुद्दीन और अन्य बनाम मकबूल हसन और अन्य*** एवं ***शाहीन शाह और अन्य बनाम सिविल जज (एस.डी.) संत नगर और अन्य*** के निर्णयों में पुनरीक्षण की संधार्यता पर विचार करते समय, ***शकील अहमद*** (सुप्रा) के मामले में दिए गए पहले के निर्णय पर विचार नहीं किया गया।

9. यह भी देखा गया है कि एक अन्य निर्णय में ***हाफ़िज़ अब्दुल्ला और एक अन्य बनाम अकबर अली और अन्य, एडब्ल्यूसी 3829 2002(5)*** में प्रतिवेदित, के वाद में भी, एक अंतर्वादीय/अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं माना गया।

10. इस बिंदु पर पूर्वोक्त निर्णयों पर विचार करने पर यह पता चलता है कि, ***हाफिज अब्दुल्ला और अन्य*** (सुप्रा) के मामले में अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए आवेदन पर निर्णय लंबित होने तक अंतरिम निषेधाज्ञा की अनुमति देने वाले आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया गया था, जो विद्वान न्यायाधीश के अनुसार यह केवल अंतर्वादीय प्रकृति का था और इसलिए पुनरीक्षण पोषणीय नहीं माना गया।

11. ***शकील अहमद*** (सुप्रा) के मामले में विद्वान न्यायाधीश ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि पुनरीक्षण में दिया गया आदेश अस्थायी निषेधाज्ञा देने से संबंधित था जिसे समय-समय पर बढ़ाया गया था। इसके बाद

वक्फ अधिनियम की धारा 83(9) के प्रावधानों को परंतुक के साथ उद्धृत किया गया है, लेकिन बाद में इसे इस प्रकार माना गया है: -

"7. धारा 83(9) के तहत पुनरीक्षण की संधार्यता के लिए, एक आक्षेपित आदेश होना चाहिए, जिसके द्वारा कोई भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामला न्यायाधिकरण द्वारा अवधारित किया गया हो। मुझे लगता है कि आक्षेपित आदेश से मुतवल्ली और वक्फ बोर्ड के बीच विवाद का अवधारण नहीं हुआ है।"

12. संपूर्ण निर्णय में, ऐसा प्रतीत होता है कि वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83(9) के निहित परंतुक पर ध्यान दिए बिना केवल उसके प्राथमिक प्रावधान पर जोर दिया गया है, और इसलिए यह माना गया है कि की अनुरक्षण के लिए पुनरीक्षण में एक आक्षेपित आदेश होना चाहिए जिसके तहत किसी प्रश्नगत प्रश्न या अन्य मामले का अवधारण किया गया हो।

13. अतः यह स्पष्ट है कि शकील अहमद (सुप्रा) मे पारित आदेश मे अधिनियम की धारा 83(9) के परंतुक की अनदेखी कर के मात्र प्राथमिक प्रावधान पर ध्यान दिया गया।

14. हालाँकि उपरोक्त पहलू पर इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए ***मौली मोइनुद्दीन और अन्य बनाम मकबूल हसन और अन्य 2008*** में प्रतिवेदित ***एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 193*** के निर्णय में निम्नानुसार विस्तार से विचार किया गया है:

"6. अन्य बिंदु यह है कि अंतरिम आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं है। इस संबंध में, इस न्यायालय के एक प्राधिकारी ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड बनाम अब्दुल रशीद और अन्य 991 एडब्ल्यूसी 620 यूपी, 1991 में प्रतिवेदित, का हवाला दिया गया है। हालांकि उक्त मामले में, पुनरीक्षण एक आदेश के खिलाफ निर्देशित किया गया था जिसके माध्यम से न्यायाधिकरण द्वारा पहले के आदेश को वापस ले लिया गया था। इसी प्रकार, अन्य प्राधिकारी द्वारा 2002 में प्रतिवेदित एडब्ल्यूसी 1430 हफीज अब्दुल्ला बनाम अकबर अली में भी अस्थायी निषेधाज्ञा पर न्यायाधिकरण द्वारा अंतिम निर्णय नहीं लिया गया था। उक्त के पैरा-6 का अंतिम वाक्य नीचे उद्धृत किया गया है:

आदेश पूर्णतया अंतर्वादीय/अंतर्वर्ती है एवं आदेश के क्रियान्वयन होने या न होने के प्रश्न विचारण न्यायालय द्वारा ही निर्णीत किया जाएगा।

7. वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83(9) के तहत, किसी भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के न्यायाधिकरण द्वारा अवधारण के विरुद्ध पुनरीक्षण का निर्देश दिया जाता है। मेरी राय में, अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन का अंतिम निष्पादन एक ऐसा अवधारण है, जो उपरोक्त धारा के तहत उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अधीन है।"

15. ***शाहीन शाह और अन्य बनाम सिविल जज (एस.डी.) संत कबीर नगर और अन्य*** के मामले में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने 1995

की धारा 83 के दायरे की तुलना में 1960 के अधिनियम की धारा 76 के तहत पुनरीक्षण के प्रावधान पर विचार किया है और उसके बाद निष्कर्ष निकाला है कि 1995 के अधिनियम की धारा 83(9) का दायरा 1960 के अधिनियम के पुनरीक्षण प्रावधानों से बहुत व्यापक है।

16. विपरीत पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने 2022 के सिविल पुनरीक्षण संख्या 23 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 13.06.2022 का भी हवाला दिया है, जिसमें कहा गया है कि अंतरिम राहत देने वाला आदेश पूरी तरह से अंतर्वादीय आदेश है जो किसी भी क्षेत्राधिकार या विधिक त्रुटि से ग्रस्त नहीं है ताकि वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 83 (9) के तहत पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

17. ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त निर्णय में इससे पहले पारित समन्वय पीठों द्वारा दिए गए किसी भी निर्णय को ध्यान में नहीं रखा गया है। बल्कि यह निर्णय कोई पुनर्स्थापना प्रतीत नहीं होता है कि अंतरिम राहत देने वाला एक अंतर्वादीय आदेश इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, इसके विपरीत इस आधार पर पुनरीक्षण हस्तक्षेप से इनकार कर दिया है कि यह आदेश न केवल प्रकृति में पूरी तरह से अंतर्वादीय है बल्कि किसी न्यायिक या विधिक त्रुटि से भी ग्रस्त नहीं है। उपरोक्त निर्णय का अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि एक अंतर्वादीय आदेश जो क्षेत्राधिकार या कानूनी त्रुटि से ग्रस्त है, 1995 के अधिनियम की धारा 83(9) के तहत पुनरीक्षित किया जा सकता है।

18. इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती निर्णयों, ***हाफ़िज़ अब्दुल्ला और अन्य*** (सुप्रा) और ***शकील अहमद*** (सुप्रा) को एक प्रस्थापना नहीं कहा जा सकता है कि वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83 (9) के तहत अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करने वाले आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं होगा।

19. अस्थायी निषेधाज्ञा की स्वीकृति या अस्वीकृति के विरुद्ध पुनरीक्षण के संसाधन का पहलू धारा 83(9) के परंतुक के अवलोकन से काफी स्पष्ट होगा जो प्राथमिक सिद्धांतों पर स्पष्ट रूप से न्यायाधिकरण द्वारा निर्णीत किसी भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले से संबंधित अभिलेख की जांच करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को इंगित करता है। उक्त प्रावधान स्वयं स्पष्ट रूप से न केवल किसी विवाद बल्कि न्यायाधिकरण द्वारा निर्णीत प्रश्न या अन्य मामले के संबंध में भी पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार की उच्च न्यायालय की समान शक्ति को इंगित करता है। यह प्रावधान कि न केवल विवाद बल्कि किसी प्रश्न या अन्य मामले जो कि न्यायाधिकरण द्वारा निर्णीत किए गए हों प्रासंगिक है, जिसे उसी परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है।

20. यह प्रश्न कि अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए किसी आवेदन की स्वीकृति या अस्वीकृति को 'निर्णय' के बराबर कब माना जा सकता है को,

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***एआईआर 1981 एससी 1786*** में प्रतिवेदित, ***शाह बाबूलाल खिमजी बनाम जयाबेन कानिया*** के मामले में निम्नलिखित तरीके से उत्तरित किया गया है।:-

"113 अतः, नागरिक आचार संहिता के तहत, एक निर्णय में न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के कारण और आधार शामिल होते हैं। जिस प्रकार एक निर्णय डिक्री के कारणों का उल्लेख करता है, यह निश्चित रूप एक औपचारिक अधिनिर्णयन होना चाहिए जो विवाद में निर्णायक रूप से सभी या किसी भी मामले के संबंध में पक्षों के अधिकारों को निर्धारित करता हो। नागरिक आचार संहिता द्वारा परिभाषित निर्णय की अवधारणा अपेक्षाकृत संकीर्ण प्रतीत होती है और धारा 2 की उपधारा (2) द्वारा दी गई सीमाओं को लेटर्स पेटेंट के खंड 15 में प्रयुक्त शब्द "निर्णय" की परिभाषा के अर्थों में नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि लेटर्स पेटेंट में समझ-बूझकर कहीं भी "आदेश" या "डिक्री" शब्दों का उपयोग नहीं किया गया है। अतः लेटर्स पेटेंट देने वालों का इरादा यह था कि "निर्णय" शब्द को नागरिक आचार संहिता में प्रयुक्त शब्द "निर्णय" की तुलना में अधिक व्यापक और उदार व्याख्या प्राप्त होनी चाहिए। साथ ही यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी विचारण न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा पारित कोई भी आदेश एक निर्णय होगा, अन्यथा ऐसे आदेशों की संख्या का कोई अंत नहीं होगा जिनके विरुद्ध लेटर्स पेटेंट के तहत अपील की जा सकेगी। हमें ऐसा लगता है कि "निर्णय" शब्द में निस्संदेह ही अंतिमता की अवधारणा संकीर्ण नहीं बल्कि व्यापक अर्थों मे है। दूसरे शब्दों में, एक निर्णय तीन प्रकार का हो सकता है: -

1. अंतिम निर्णय : *जहां तक विचारण न्यायालय के न्यायाधीश का प्रश्न है, एक अंतिम निर्णय वह है जो कि विवाद मे शामिल सभी मुद्दों और प्रश्नों को निर्णीत करता है और कुछ भी अनिर्णीत नहीं छोड़ता। इसका तात्पर्य है की वादी द्वारा दाखिल वाद इस निर्णय के आधार पर आंशिक या पूर्ण रूप से निरस्त अथवा डिक्री होता है। ऐसा आदेश निर्विवाद एवं निश्चित रूप से लेटर्स पेटेंट के अर्थ में एक निर्णय है और यहां तक कि एक डिक्री के समान है जिसके विरुद्ध एक अपील खंडपीठ में की जा सकती है।*

2. ***प्रारम्भिक निर्णय :*** *इस प्रकार का निर्णय दो रूपों में हो सकता है (ए) जहां विचारण न्यायालय का न्यायाधीश एक आदेश द्वारा केवल प्रतिवादी या विरोधी पक्ष द्वारा वाद की संधार्यता पर उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति के आधार पर, वाद के गुण-दोष पर विचार किए बिना वाद को निरस्त कर देता है। यहां भी, चूंकि वाद का अंतिम निर्णय किसी न किसी तरह से हो चुका है, जहां तक विचारण न्यायालय के न्यायाधीश का संबंध है इस प्रकार का आदेश अंततः कारण तय करने वाला निर्णय होगा, और इसलिए, बड़ी न्यायपीठ के समक्ष अपील की जा सकती है, (बी) एक अन्य रूप जो प्रारंभिक निर्णय ले सकता है, वह यह है कि जहां विचारण न्यायालय का न्यायाधीश वाद की संधार्यता से संबंधित प्रतिवादी द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपतियों, जैसे कि, क्षेत्राधिकार की बाधा, पुनर्निर्णय, मुकदमे में*

एक स्पष्ट दोष, धारा 80 के तहत नोटिस की अनुपस्थिति आदि को सुनने के बाद एक आदेश पारित करता है, और इन आपत्तियों का निस्तारण न्यायाधीश द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय लेकर किया जाता है, वाद समाप्त नहीं होता है बल्कि जारी रहता है और गुण-दोष के आधार पर वाद को सुना जाना चाहिए परन्तु इस प्रकार विचारण न्यायालय का न्यायाधीश द्वारा प्रतिवादी की वैध आपत्तियों को निरस्त करने का आदेश निस्संदेह रूप से प्रतिवादी के मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, जो कि प्रारंभिक आधार पर वाद को निरस्त करवाने का अधिकारी है। इस प्रकार, यद्यपि इस तरह का आदेश वाद को जीवित रखता है, निस्संदेह वाद के एक महत्वपूर्ण पहलू का निर्णय करता है जो प्रतिवादी के महत्वपूर्ण अधिकार को प्रभावित करता है और इसलिए, इसे एक निर्णय माना जाना चाहिए ताकि एक बड़ी न्यायपीठ में अपील की जा सके।

*3. **मध्यस्थ या अंतर्वादीय/अंतर्वर्ती निर्णय:** अधिकांश अंतर्वर्ती आदेश जिनमें अंतिमता की गुणवत्ता शामिल है, आदेश 43, नियम 1 के खंड (ए) से (डब्ल्यू) में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट हैं और हमारे द्वारा लेटर्स पेटेंट के अर्थ के अंतर्गत वे सभी पहले से ही एक निर्णय माने गए हैं और, इसलिए, अपील योग्य हैं। ऐसे अंतर्वर्ती आदेश भी हो सकते हैं जो आदेश 43, नियम 1 द्वारा प्राच्छन्न नहीं हैं, लेकिन जिनमें अंतिमता की लक्षण और विशेषताएं हैं, ऐसे आदेश पक्ष के मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं या एक सहायक कार्यवाही के तहत वाद के एक महत्वपूर्ण पहलू पर निर्णय ले सकते हैं। इससे पहले कि ऐसा आदेश कोई निर्णय बने, संबंधित पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव अप्रत्यक्ष या दूरस्थ के बजाय प्रत्यक्ष और तत्काल होना चाहिए।.....*

115. अतः, दूसरे शब्दों में, प्रत्येक अंतर्वर्ती आदेश को निर्णय नहीं माना जा सकता है, बल्कि केवल वे आदेश ही निर्णय होंगे जो क्षणिक मामलों का निर्णय करते हैं या पक्षों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करते हुए गंभीर अन्याय करते हैं। इसी प्रकार, किसी दस्तावेज़ की स्वीकार्यता या प्रासंगिकता के प्रश्न पर निर्णय लेने वाले विचारण न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा पारित आदेशों को भी निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि इस मुद्दे पर शिकायत को अंतिम निर्णय के विरुद्ध अपील में अपीलीय अदालत द्वारा ठीक किया जा सकता है।"

21. उपरोक्त निर्णय इस बिंदु पर विधि की एक प्रमुख प्रतिस्थापना है कि, यहां तक कि अंतिमता की विशेषताओं और लक्षणों वाले या किसी पक्ष के मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करने वाले या मुख्य या सहायक कार्यवाही में किसी वाद के महत्वपूर्ण पहलुओं को तय करने वाले अंतरिम आदेश भी 'निर्णय' होंगे।

22. उपरोक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि एक आवेदन जो कि अस्थायी निषेधाज्ञा देता या अस्वीकार करता है न्यायाधिकरण के द्वारा अधिनिर्णयन के लिए संदर्भित किसी प्रश्न का निर्णायक अवधारण होगा और चूंकि इस तरह के आदेश से जहां तक संदर्भित प्रश्न का संबंध है, विवाद के एक

पक्ष के किसी मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है जिसका प्रभाव अप्रत्यक्ष या दूरस्थ के बजाय प्रत्यक्ष और तत्काल होता है, उसमें अंतिमता की विशेषताएं और लक्षण होंगे। उस अर्थ में, यहां तक कि अस्थायी निषेधाज्ञा देने या अस्वीकार करने वाले आवेदन में भी स्पष्ट रूप से अंतिमता की संभावना होती है और इसलिए यह न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित विवाद, प्रश्न या अन्य मामले की तरह ही होगा।

23. यह इंगित करना भी प्रासंगिक होगा कि जहां अधिनियम की धारा 83(9) का पहला भाग न्यायाधिकरण द्वारा किसी अंतरिम या अन्य निर्णय अथवा आदेश के विरुद्ध अपील की अपोषणीयता के बारे में है परन्तु इसका परंतुक उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण न्यायालय के समान क्षेत्राधिकार को इंगित करता है।

24. यह एक स्थाई कानून/नियम है कि किसी अधिनियम के मुख्य भाग के साथ परंतुक को समझने और पढ़ने की आवश्यकता होती है, जो कि मुख्य प्रावधान के लिए एक अपवाद होता है और एक सामान्य अधिनियम के बाद आने वाले प्रावधान का सामान्य और उचित कार्य सामान्य अधिनियम की प्रयोज्यता सीमित करना है. इसलिए परंतुक की अवधारणा स्पष्ट रूप से मुख्य अधिनियम से पृथक और विशिष्ट है, हालांकि इसे समान शर्तों में पढ़ा जाना आवश्यक है, लेकिन यह मुख्य अधिनियम के लिए एक अपवाद है।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***एआईआर 2009 एससी(Supp) 972*** में प्रतिवेदित वाद ***यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम प्रियंकन शरण और अन्य*** में परंतुकों के विषय में निम्नलिखित अवधारित किया :

"12. एक परंतुक का सामान्य कार्य अधिनियम से कुछ वर्जित करना या उसमें अधिनियमित किसी चीज़ को अर्हता प्रदान करना है जो कि परंतुक के अलावा अधिनियम के दायरे में होगा। जैसा कि मुलिन्स बनाम ट्रेजरर ऑफ़ सर्वे [1880 (5) क्यूबीडी 170, शाह भोजराज कुवेरजी ऑयल मिल्स एंड जिनिंग फैक्ट्री बनाम सुभाष चंद्र योगराज सिन्हा (एआईआर 1961 एससी 1596) और कलकत्ता ट्रामवेज कंपनी लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन ऑफ कलकत्ता (एआईआर 1965 एससी 1728) में संदर्भित)में कहा गया था; जब कोई किसी धारा के लिए एक परंतुक ढूँढता है तो यह एक स्वाभाविक पूर्वधारणा है कि परंतुक के अतिरिक्त, धारा के अधिनियमित भाग में परंतुक की विषय वस्तु भी शामिल होगी। परंतुक का उपयुक्त कार्य वर्जना करना और ऐसे वाद का समाधान करना है जो कि अन्यथा मुख्य अधिनियमन की सामान्य भाषा से प्राच्छन्न होता और इसका प्रभाव उस मामले तक ही सीमित रहता है। यह पूर्ववर्ती अधिनियम की एक योग्यता है जिसे काफी सटीक होने के लिए बहुत सामान्य शब्दों में व्यक्त किया जाता है। एक सामान्य नियम के रूप में, अधिनियमन के तत्व में एक परंतुक को अर्हता प्रदान करने या अपवाद बनाने के लिए जोड़ा जाता है और आमतौर पर, एक परंतुक की व्याख्या एक सामान्य नियम बताने के रूप में नहीं की जाती है। लॉर्ड वॉटसन ने " वेस्ट डर्बी यूनियन बनाम मेट्रोपॉलिटन लाइफ एश्योरेंस कंपनी (1897 एसी 647)(एचएल) में कहा है "यदि क़ानून के अधिनियमित भाग की

भाषा में वे प्रावधान शामिल नहीं हैं जिनके इसमें होने के बारे में कहा गया है तो आप इन प्रावधानों को किसी परंतुक के निहितार्थ से प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आम तौर पर, एक परंतुक उस मुख्य प्रावधान से आगे नहीं बढ़ता है जिसके लिए वह एक परंतुक है। यह मात्र उस मुख्य प्रावधान के लिए एक अपवाद प्रस्तुत करता है जिसके लिए इसे एक परंतुक के रूप में अधिनियमित किया गया है और किसी अन्य के लिए नहीं। (ए.एन. सहगल और अन्य बनाम राजे राम शेओराम और अन्य (एआईआर 1991 एससी 1406), त्रिभोवनदास हरिभाई तम्बोली बनाम गुजरात राजस्व न्यायाधिकरण और अन्य (एआईआर 1991 एससी 1538) और केरल राज्य हाउसिंग बोर्ड और अन्य बनाम रामप्रिया होटल (पी) लिमिटेड और अन्य (1994 (5) एससीसी 672) देखें।"

26. किसी अधिनियम के परंतुक के पहलुओं और महत्व पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि ***हाफ़िज़ अब्दुल्ला और अन्य*** (सुप्रा) और ***शकील अहमद*** (सुप्रा) के मामलों में पहले दिए गए निर्णयों में अधिनियम के धारा 83(9) में परंतुक के पहलू पर विचार नहीं किया गया है, को इस आधार पर बाध्यकारी निर्णय नहीं कहा जा सकता।

27. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, चूंकि यह स्पष्ट है कि अस्थायी निषेधाज्ञा देने या अस्वीकार करने वाले आवेदन में न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित प्रश्न के संबंध में अंतिमता की संभावना होगी, यह माना जाता है कि अधिनियम की धारा 83 (9) के तहत पुनरीक्षण इस न्यायालय के समक्ष पोषणीय होगा।

28. मामले के गुण-दोष के आधार पर, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि प्रारंभ में गाटा संख्या 491 से संबंधित संपत्ति जिसका क्षेत्रफल एक बीघे आठ बिस्वा है, वक्फ कर्बला अब्दुल्लापुर अकबरपुर के नाम से वक्फ के निर्माण से संबंधित है। यह कहा गया है कि उपरोक्त वक्फ, शिया वक्फ बोर्ड के साथ वक्फ संख्या 2018 के रूप में पंजीकृत था। इस तथ्य पर ध्यान आकर्षित किया गया है कि विपक्षी संख्या 5 के पिता सैयद अमीर हसन वक्फ डीड के वक़िफ़ में से एक थे। यह कहा गया है कि अनजाने में राजस्व अभिलेख में वक्फ का सही नाम नहीं दर्शाया गया था जो कि मुतवली के व्यक्तिगत नाम पर दर्ज किया गया था और इसलिए राजस्व अभिलेख में वक्फ के नाम के सुधार के लिए दिनांक 26.01.1988 को एक प्रतिवेदन विशेष रूप से यह इंगित करते हुए प्रस्तुत किया गया था, कि पूर्व आदेश दिनांक 31.12.1987 के अनुसार, उपरोक्त वक्फ को राजस्व अभिलेखों में वक्फ कर्बला कब्रिस्तान शिया सादात के रूप में गलत तरीके से दर्ज किया गया है। यह कहा गया है कि उपरोक्त रिपोर्ट को संबंधित लेखपाल द्वारा दिनांक 30.03.2018 की अगली रिपोर्ट में दोहराया गया था, लेकिन रिपोर्ट में अनुशंसित वास्तविक सुधार नहीं किए गए थे और बाद के आदेश दिनांक 13.05.2022 के तहत वाद संख्या 03816 वर्ष 2018 में सब डिविजनल मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में वक्फ का गलत नाम तो हटा दिया गया लेकिन सही

नाम दर्शाने के बजाय सिर्फ मुतवली यानी सैयद अमीर हसन का नाम अंकित कर दिया गया।

29. यह कहा गया है कि इस बीच, एक नसीम बानो को वक्फ का मुतवली नियुक्त किया गया था, जिसे न्यायाधिकरण के समक्ष विपक्षी संख्या 4 द्वारा चुनौती दी गई थी और उक्त कार्यवाही के फलस्वरूप, पुनरीक्षण संख्या 37 वर्ष 2019 इस न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था। जिसमें दिनांक 08.05.2019 के आदेश द्वारा यह निर्देशित किया गया था कि किरायेदारी अधिकार सहित किसी भी तीसरे पक्ष का कोई अधिकार किसी भी पक्ष द्वारा नहीं बनाया जाएगा। यह कहा गया है कि इस बीच दिनांक 31.07.2019 के आदेश के माध्यम से, वक्फ बोर्ड ने वक्फ की प्रकृति को वक्फ ALAL- खैर से बदलकर वक्फ ALAL-औलाद कर दिया, यह तथ्य इस न्यायालय के ध्यान में लाया गया, जिसने अपने आदेश दिनांक 07.11.2019 में इसका संज्ञान लिया और वक्फ बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता की दलील को दर्ज किया कि दिनांक 31.07.2019 का आदेश इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए अंतरिम निर्देशों की जानकारी के बिना पारित किया गया था और इसलिए उनका तर्क कि उक्त आदेश पर दोबारा विचार किया जाएगा भी अभिलेख पर लिया गया।

30. यह कहा गया कि इस न्यायालय के समक्ष अग्रेषित किए गए तर्कों के परिणामस्वरूप, दिनांक 31.07.2019 के आदेश को उसके बाद के दिनांक 14.11.2019 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। इसके क्रम में उक्त पुनरीक्षण का भी निस्तारण कर दिया गया।

31. यह कहा गया कि उपरोक्त पुनरीक्षण का निस्तारण हो जाने के बाद, वक्फ बोर्ड ने अपने प्रस्ताव दिनांक 26.02.2020 के माध्यम से 31.07.2019 के पहले के आदेश को फिर से पुनर्जीवित किया, जिसे वक्फ बोर्ड के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता द्वारा चुनौती दी गई थी, यद्यपि जिस पर आरंभ में अंतरिम आदेश दिया था, किन्तु कालांतर में दिनांक 12.12.2022 के प्रश्नगत आदेश के माध्यम से लिखित बयान दाखिल करने के लिए समय दिए जाने के साथ ही अंतरिम निषेधाज्ञा के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया है।

32. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि एक बार यह स्वीकार कर लिया गया कि वक्फ को एक विशेष नाम पर वक्फ बोर्ड के साथ पंजीकृत किया गया है, तो बोर्ड द्वारा इसके लिए ठोस कारण बताए बिना इसे परिवर्तित नहीं जा सकता था। यह कहा गया कि दिनांक 16.04.1968 के विक्रय-पत्र जो कि कथित तौर पर विरोधी पक्ष संख्या 5 के पिता के पक्ष में था, पर, प्रश्नगत आदेश में की गई निर्भरता अपने आप में गलत थी क्योंकि विरोधी पक्ष संख्या 5 के पिता को वक़िफ़ के तौर पर अच्छी तरह से वक्फ विलेख द्वारा बनाए गए वक्फ की प्रकृति का पता था और उपरोक्त विक्रय-पत्र के माध्यम से उनके द्वारा अपने व्यक्तिगत अधिकारों का मामला कभी स्थापित नहीं किया गया, जिसे उत्तरदाई विपक्षी द्वारा केवल वर्ष 2018 में प्रस्तुत किया गया ।

33. विपक्षी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवकता द्वारा दी गई दलीलों को इस दलील के साथ खारिज कर दिया कि वक्फ विलेख स्वयं इसकी प्रकृति को ALAL-औलाद के रूप में इंगित करता है क्योंकि वक्फ विलेख में एक कथन स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि वक्फ के लाभार्थी प्रारंभिक लाभार्थियों के उत्तराधिकारी होंगे और इसलिए वक्फ डीड में दर्शाया गया गलत नाम केवल एक चूक है और डीड का आशय वक्फ डीड में उल्लिखित उपरोक्त कथन से देखा जाना चाहिए। यह उस परिपेक्ष्य में कहा गया कि उनका कहना है कि विशेष रूप से विपक्षी संख्या 5 के पिता के पक्ष में दिनांक 16.04.1968 को बिक्री-विलेख के मद्देनजर वक्फ डीड को ALAL-औलाद के रूप में माना जाना आवश्यक था।

34. यह भी कहा गया कि, प्रश्नगत आदेश में यह सही दर्ज किया गया है की उक्त विक्रय विलेख एक पंजीकृत अभिलेख है, जिसे किसी भी व्यक्ति द्वारा अभी तक चुनौती नहीं दी गई है एवं इसकी प्रामाणिकता साक्ष्य अधिनियम के मानकों के अनुसार सही प्रकार से सिद्ध है।

35. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने और अभिलिखित उपलब्ध सामग्री के अवलोकन के बाद, यह एक स्वीकृत तथ्य है कि वक्फ का निर्माण गाटा संख्या 491 पर किया गया था, जिसका क्षेत्रफल एक बीघा, आठ बिस्वा था। यह भी स्वीकार किया गया है कि वक्फ डीड में स्पष्ट रूप से वक्फ का नाम वक्फ कर्बला अब्दुल्लापुर अकबरपुर दर्शाया गया है। कोई भी पक्ष उक्त वक्फ डीड के निष्पादन से इनकार नहीं कर रहा है। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि उक्त विलेख वक्फ बोर्ड के पास वक्फ संख्या 2018 के रूप में दर्ज है। राजस्व अधिकारियों की रिपोर्ट भी इस तथ्य की ओर इशारा करती है कि वक्फ का नाम अनजाने में राजस्व अभिलेखों में गलत दर्ज हो गया था और इसलिए उन्हें सुधारने के लिए सिफारिश की गई थी। हालाँकि उपरोक्त अनुशंसाओं पर कोई ठोस आदेश पारित नहीं किया गया और वाद संख्या 3816 वर्ष 2018 में पारित आदेश दिनांक 13.05.2022 के माध्यम से, वक्फ का नाम वक्फ कर्बला कब्रिस्तान शिया सादात को हटाते हुए, मुतवाली का नाम दर्ज किया गया था।

36. प्रश्नगत आदेश का परिशीलन करने पर, यह उस सामग्री का साक्ष्य नहीं देता है जो वक्फ बोर्ड के समक्ष थी जिससे वह इस चरण पर यह निष्कर्ष निकाल सके कि वक्फ डीड ने अनजाने में इसे वक्फ अल-औलाद के रूप में इंगित करने के लिए छोड़ दिया था। वक्फ डीड में उपरोक्त विरोधाभास को न्यायाधिकरण के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करके सिद्ध करना आवश्यक है और इस स्तर पर न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज प्रथम दृष्टया निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित प्रतीत नहीं होता है।

37. ऐसा भी प्रतीत होता है कि इस तथ्य को कि, 16.04.1968 को एक विक्रय-पत्र विपक्षी संख्या 5 के पिता के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जो एक पंजीकृत विलेख था और इसे

किसी ने चुनौती नहीं दी है, न्यायाधिकरण ने विशेष महत्व दिया है । उक्त पहलू को साक्ष्य द्वारा संपुष्टि और प्रमाणीकरण की भी आवश्यकता होगी। न्यायाधिकरण को इस चरण पर वक्फ डीड और पूर्वोक्त विक्रय विलेख में प्रथम दृष्टया विरोधाभास पर विचार करने की आवश्यकता थी और, ऐसा परिलक्षित होता है कि न्यायाधिकरण द्वारा गलत तरीके से उक्त विक्रय विलेख पर अत्यधिक निर्भरता दिखाई बिना इस तथ्य पर ध्यान दिए कि अंतरिम निषेधाज्ञा देने के चरण में रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री नहीं दिखाई देती है जिसके द्वारा यह माना जाएगा कि वक्फ विलेख के वाकिफ ने जानबूझकर या चूक से वक्फ का गलत नाम और उद्देश्य दर्ज किया है।

38. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के दृष्टिगत, वक्फ न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा वक्फ वाद संख्या 113 वर्ष 2020 में पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 12.12.2022, जो की प्रत्यक्षतः अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के विपरीत है, को अपास्त किया जाता है। वक्फ डीड ,विक्रय विलेख एवं राजस्व अभिलेखों की वैद्यता का पहलू निश्चित रूप से साक्ष्यों का विषय है जो कि अग्रिम कानूनी कार्यवाही के दौरान देखा जाएगा।

39. यह अवलोकन किया गया कि इस आदेश में उल्लिखित घटनाएं एवं तथ्य जिनका कि वर्णन किया गया है, न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य के अधीन होगा।

40. पुनरीक्षण सफल होता है और **स्वीकार** किया जाता है। पक्षों द्वारा अपना व्यय स्वयं वहन किया जाए।

(2023) 5 ILRA 65

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 16/2023

राम रतन **पुनरीक्षणकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **... विपक्षी**

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री विजय बहादुर शिवहरे, श्री राम ललित चौधरी, श्री विजय कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 397/401 -पुनरीक्षण - खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 -धारा 97 (4)- समय पर लागू किसी भी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, अदालत इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के बाद निरसित अधिनियम या आदेशों के तहत अपराध का संज्ञान लेगी - खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 (निरस्त), खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 2006 - धारा 2 (एम), 2 (एन), 2 (आईए) (एम), 7/16, 13 (2), 16, धारा 13 - लोक विश्लेषक की रिपोर्ट, धारा 16 ए - वाद को संक्षेप में आजमाने की अदालत की शक्ति - अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 4।

(बी) सामान्य खंड अधिनियम, 1897- धारा 6 - लंबित कार्यवाहियों को अप्रभावित छोड़ने का

अधिदेश देता है जो अप्रतिबंधित प्रावधानों के तहत शुरू होती हैं, जब तक कि धारा 6 (सी) के विपरीत आशय व्यक्त न किया जाए - सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 (सी) का उद्देश्य निरस्त अधिनियम के तहत अर्जित किसी भी अधिकार या विशेषाधिकार की सुरक्षा सुनिश्चित करना है -अपवाद - विधायी आशय विपरीत- निरसन अधिनियम स्पष्ट रूप से प्रदान कर सकता है या यह निहित रूप से ऐसे अधिकार, दायित्व या दायित्व के जारी रहने के विरुद्ध प्रावधान कर सकता है। (पैरा-13)

दूध का नमूना मिलावटी पाया गया - जो निर्धारित मानक के अनुरूप नहीं था - दूध में वसा की मात्रा निर्धारित मानक से 13 प्रतिशत कम पाई गई - मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया - मजिस्ट्रेट ने निर्णय सुनाया - नमूना 03.03.2010 को लिया गया था - अदालत ने 17.08.2010 को अधिनियम के लागू होने के 3 वर्षों के भीतर संज्ञान लिया - विचारणीय न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला - खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 2006 क्षेत्राधिकार के भीतर था - खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं थे - आरोपी को धारा 7/16 पी.एफ. अधिनियम के तहत आरोप के लिए दोषी ठहराया गया - आरोपी पुनरीक्षणकर्ता ने दोष और सजा के विचारणीय न्यायालय के निर्णय की अपील की - जिसे सत्र न्यायाधीश ने पुष्टि की - वर्तमान पुनरीक्षण समवर्ती निर्णयों के खिलाफ पेश किया गया (पैरा -2,3,4)

निर्णय:- वाद अधिनियम की धारा 2(एम) के दायरे में आता है। नमूना निर्धारित मानक के अनुरूप नहीं था, इसलिए धारा 2(ia)(एम) के अर्थ में मिलावटी पाया गया। धारा 97(4) अधिनियम 2006 के लागू होने के 3 वर्ष के भीतर संज्ञान लेने से बचाती है। प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा संज्ञान लेना कानून के तहत अवैध या वर्जित नहीं है। विचारणीय और अपीलीय न्यायालयों ने दोषसिद्धि के फैसले या निर्णय दर्ज करते समय कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं की, जिसके कारण मामले खारिज किए गए और आदेशों की पुष्टि की गई। अधिनियम की धारा 16(ए) संशोधनवादियों को उप-धारा 1 के तहत अपराधों के सारांश परीक्षणों के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 262 और 265 के प्रावधानों को लागू करने की अनुमति देती है। ट्रायल कोर्ट की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई। पुनरीक्षणकर्ता की सजा को 3 महीने के कारावास में संशोधित किया गया। (पैरा- 17,20,21,22,29,31)

पुनरीक्षण आंशिक रूप से स्वीकृत (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अविनाश चंद्र बाजपेयी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 (1) एफएसी 497

2. रूपेश कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 (2) एफएसी 33

3. अंबालाल साराभाई एंटरप्राइजेज लेफ्टिनेंट बनाम अमृत लाल एंड कंपनी (2001) 8 एससीसी 397

4. गुरचरण सिंह बलदेव सिंह बनाम यशवन्त सिंह ए.आई.आर. 1992 एससी 1186

5. नेमी चंद बनाम राजस्थान राज्य (2018) 17 एससीसी 448

6. टी. बरई बनाम हेनरी आह हो और अन्य 1983(1) एससीसी 177

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. आपराधिक अपील संख्या-106/2019 (राम रतन बनाम विवेक कुमार और अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या-8, कानपुर नगर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20.12.2022 के खिलाफ धारा 397/401 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया है, जिसके तहत विद्वान मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा 28.06.2019 को मामला संख्या-3872 वर्ष 2010 में आरोपी अपीलकर्ता राम रतन के खिलाफ धारा 7/16 खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के तहत आरोप के लिए पारित दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की गई है। विचारण न्यायालय के 28.06.2019 के फैसले और आदेश को भी चुनौती दी गई है।

2. प्रस्तुत आपराधिक अपील में प्रासंगिक मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 05.03.2010 को, शिकायतकर्ता खाद्य निरीक्षक ने स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी के आदेश पर काम करते हुए थाना- भिडन्, गाथमपुर रोड, जिला-कानपुर नगर के पास 09:15 बजे एक दूध विक्रेता को रोका, जो अपनी साइकिल में 4 कंटेनरों में दूध ले जा रहा था, जिसमें लगभग 20 लीटर दूध था इसलिए वह गाय और भैंस का कुल 80 लीटर मिश्रित दूध ले जा रहा था। खाद्य निरीक्षक ने नमूना के रूप में 36 रुपये में 1500 मिलीलीटर दूध खरीदा और विक्रेता/उपस्थित आरोपी से पावती प्राप्त की। शिकायतकर्ता ने स्थानीय गवाहों को शामिल करने की कोशिश की लेकिन उन्होंने न तो अपना नाम बताया और न ही गवाह बनने के लिए सहमत हुए। नमूने को समान मात्रा में 3 सूखी और खाली छोटी बोतलों में रखा गया था और विधिवत सील किया गया था, लेबल लगाया गया था और टैग किया गया था और नमूने की प्रत्येक बोतल पर विक्रेता के हस्ताक्षर लिए गए थे। प्रपत्र 7 की प्रतियां तैयार की गई थी और नमूने का एक सेट स्पीड पोस्ट के माध्यम से लोक विश्लेषक, लखनऊ को परीक्षा के लिए भेजा गया था। जन विश्लेषक की रिपोर्ट स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी, कानपुर के कार्यालय में दिनांक 04.06.2010 को परीक्षण रिपोर्ट संख्या-3518 दिनांक 17.04.2010 के रूप में प्राप्त हुई थी, जिसमें दूध के नमूने में मिलावट पाई गई थी। शिकायतकर्ता खाद्य निरीक्षक, विवेक कुमार ने डी.एम, कानपुर नगर, श्री मुकेश मेश्राम से अभियोजन के लिए मंजूरी प्राप्त की और प्रस्तुत शिकायत दर्ज की। लोक विश्लेषक की रिपोर्ट में नमूना में 13 प्रतिशत दूध वसा से कम पाया गया था और नमूना

निर्धारित मानक के अनुरूप नहीं पाया गया था और इस प्रकार इसे मिलावटी पाया गया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने खाद्य निरीक्षक द्वारा शिकायत दर्ज करने के बाद अपराध का संज्ञान लिया, अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया और आरोप का सार उसे समझाया गया जिससे उसने इनकार कर दिया और मुकदमा चलाने का दावा किया। अभियोजन साक्ष्य में अ०सा०-1 श्री विवेक कुमार, परिवाद (खाद्य निरीक्षक), अ०सा०-2 ओम जी श्रीवास्तव, खाद्य लिपिक की जांच की गई और साक्ष्य के दौरान 8 दस्तावेज स्वीकार किए गए। आरोपी ने सुनवाई के दौरान कोई मौखिक साक्ष्य पेश नहीं किया था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने पक्षकारों के वकीलों की प्रस्तुतियों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर साक्ष्य की मूल्यांकन करने के बाद पाया कि प्रस्तुत मामले में, नमूना 05.03.2010 को भरा गया था और मामले का संजान 17.08.2010 को न्यायालय द्वारा लिया गया था जो अधिनियम के शुरु होने की तारीख से 3 साल के भीतर है, जैसा कि खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम की धारा 97(4) के तहत प्रावधान किया गया है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय की राय में, अदालत खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 2006 के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर सही थी और मामले के तथ्यों पर खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं थे।

3. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के अधिवक्ता की इस दलील को खारिज कर दिया कि जिला मजिस्ट्रेट ने यांत्रिक तरीके से अभियोजन के लिए मंजूरी दी और मंजूरी देने के लिए आवेदन के साथ प्रस्तुत किसी भी दस्तावेज का अवलोकन नहीं किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी कहा कि जिला मजिस्ट्रेट ने संबंधित दस्तावेजों के साथ-साथ लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के आलोक में अभियोजन के लिए मंजूरी दे दी। उसे अ०सा०-1 की गवाही पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं मिला, जिसने जिरह में कहा कि आरोपी ने उसे बताया था कि वह दूध विक्रेता है और दूध बेचने जा रहा है। उन्होंने आरोपी पक्ष के इस प्रस्ताव को भी खारिज कर दिया कि नमूना नियमों के अनुसार नहीं लिया गया था और शिकायतकर्ता, खाद्य निरीक्षक की गवाही के इस अंश पर, केवल इस आधार पर कि निरीक्षण और नमूने की प्रक्रिया में कोई सार्वजनिक गवाह शामिल नहीं था, अविश्वास करने का कोई अवसर नहीं था। अभियुक्त को दिनांक 17.08.2010 को शिकायत दर्ज करने के 3 दिनों के भीतर धारा 13(2) पी.एफ. अधिनियम के तहत नोटिस दिया गया था और नोटिस वैध पाया गया है। ऐसा कुछ भी नहीं माना

जा सकता है कि आरोपी को गलत पते पर नोटिस भेजा गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अ०सा०-1, खाद्य निरीक्षक और अन्सा०-२ ओम जी श्रीवास्तव, खाट्य लिपिक के साक्ष्य पर विचार करने के बाद, नोटिस जारी करने और परीक्षण के दौरान सबूत के रूप में प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा करने के बाद, यह माना कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोप को साबित करने में सफल रहा है और धारा 7/16 पी.एफ. अधिनियम के तहत आरोप के लिए अभियुक्त की दोषसिद्धि दर्ज की गई है, और उसे डिफॉल्ट क्लॉज़ के साथ 6 महीने के साधारण कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई।

4. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए अपराध और सजा के फैसले से व्यथित महसूस करते हुए, आरोपी पुनरीक्षणकर्ता ने सत्र न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील दायर की, जिसका निर्णय अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-8 कानपुर नगर ने दिनांक 20.12.2022 के आक्षेपित निर्णय द्वारा किया था, जिन्होंने अभिलेखों की जांच की और रिकॉर्ड पर साक्ष्य के प्रकाश में और अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए कानूनी सबमिशन को संबोधित किया। विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्ष और निर्णय के साथ अपनी सहमति व्यक्त की और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश की पुष्टि की। अभियुक्तों द्वारा निचली अदालत के समवर्ती निर्णयों के विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण दायर की गई है।

5. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता, और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

6. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपील/सत्र न्यायालय द्वारा दिनांक 20.12.2022 के आक्षेपित निर्णय पारित होने के बाद से अभियुक्त को जेल हिरासत में रखा गया है, जिससे उसे उस मामले में दोषी के रूप में 4 महीने से अधिक समय तक जेल हिरासत में रखा गया है, जहां से वर्तमान पुनरीक्षण उद्भूत हुआ है। निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और आदेश, कानून के प्रावधानों और रिकॉर्ड पर साक्ष्य की ताकत के खिलाफ हैं।

7. अभियोजन पक्ष विचारण के दौरान पेश किए गए साक्ष्यों के आधार पर अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा, क्योंकि खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 16 के तहत पुनरीक्षणकर्ता के

खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। निचली अदालत ने दोनों मामलों में आरोपी पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ अपराध का फैसला दर्ज करते समय रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों का गलत मूल्यांकन किया और उनके निष्कर्ष टिकाऊ पुख्ता नहीं हैं क्योंकि खाद्य सुरक्षा मानक अधिनियम, 2006 के शुरू होने के बाद, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम को निरंस्त कर दिया गया था और प्रस्तुत मामले में धारा 7/16 खाद्य अपमिश्रण अधिनियम के तहत संज्ञान कानून के तहत ही वर्जित था। इसलिए, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमति दिए जाने योग्य है और निचली अदालत द्वारा पारित आदेश रद्द किया जाना चाहिए।

8. प्रति प्रतिरोध, राज्य प्रतिपक्षी संख्या-1 के लिए उपस्थित अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है जो निचली दोनों अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों के खिलाफ प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण में हस्तक्षेप कर सकता है जिसमें आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध का फैसला दर्ज किया गया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के के खिलाफ कानून के अनुसार कारावास की न्यूनतम सजा सुनाई है, इसलिए, न तो दोषसिद्धि और नही सजा प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण में हस्तक्षेप करने योग्य है।

9. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने अविनाश चंद्र बाजपेयी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 (1) एफ.ए.सी. 497 का हवाला दिया और निर्णय दिया जो पी.एफ.ए अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के तहत आरोप के लिए संज्ञान/सम्मन आदेश से संबंधित है, उस मामले में छोले/चना मसाला (भोला इंडिस) का नमूना 09.02.2011 को पुनरीक्षणकर्ता की दुकान से लिया गया था, जिसके आधार पर धारा 7/16 पी.एफ. अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज की गई थी। खाद्य निरीक्षक द्वारा दायर आपराधिक शिकायत पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने उसके विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया और विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान लिया। इस न्यायालय ने उस मामले में माना कि खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 को 29.07.2010 से निरस्त कर दिया गया है, जबकि भारत के असाधारण राजपत्र में अधिसूचना अनुलग्नक संख्या-2 पर है; खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 29 जुलाई, 2010 से लागू हो गया है और पुराने अधिनियम, यानी खाद्य

अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के निरस्त होने के बाद, खाद्य और मिलावट निवारण अधिनियम की धारा 07/16 अधिनियम के तहत शिकायत सुनवाई योग्य नहीं थी और पुराने और पहले से ही निरस्त अधिनियम के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता था। इस न्यायालय ने माना कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों पर ध्यान दिए बिना संज्ञान का आक्षेपित आदेश पारित किया है और गैर-मौजूदा अधिनियम के तहत अपराध के लिए पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ गलत तरीके से जारी की गई प्रक्रिया पर कार्रवाई की है। खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 के प्रवर्तन के बादः नए अधिनियम के तहत प्रक्रिया को पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ अपनाया जाना है और पुराने और पहले से ही निरस्त अधिनियम के तहत अपराध का कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता है। संज्ञान का आक्षेपित आदेश गलत और अवैध था और इसे स्थायित्व की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रथम दृष्टया न्यायालय से वर्तमान पुनरीक्षण न्यायालय तक अभियुक्त पक्ष द्वारा लगातार उठाई गई कानूनी दलील के संबंध में, खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के निरसन खंड के प्रावधानों की जांच की जा सकती है। खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 के उद्देश्य और कारण में कहा गया है कि खाद्य से संबंधित कानूनों को समेकित करने और खाद्य वस्तुओं के लिए विज्ञान आधारित मानक निर्धारित करने और मानव उपभोग के लिए सुरक्षित और पौष्टिक खाद्य की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए विनिर्माण, भंडारण, वितरण, विक्री और आयात को विनियमित करने के लिए भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण की स्थापना करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए एक अधिनियम है।

11. अधिनियम की विभिन्न धाराएं अलग-अलग तारीखों पर लागू की गई। र लागू की गई। अधिनियम की धारा 97 को केंद्र सरकार द्वारा जारी एसओ 1855 (ई दिनांक 29.07.2010) के माध्यम से 29.07.2010 को लागू किया गया था। धारा 97 में निम्नानुसार प्रावधान है:

97. निरसन और बचत

(1) ऐसी तारीख से, जो केन्द्रीय सरकार इस निमित नियत करे, दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियमन और आदेश निरसित हो जाएँगे परन्तु ऐसा निरसन निम्नलिखित को प्रभावित नहीं करेगा:-

(i) निरसन के अधीन अधिनियमन और आदेशों के पिछले प्रचालन या उसके अधीन सम्यक् रूप से की गई या पीड़ित कोई बात नहीं तो

(iii) निरसन के अधीन अधिनियमन और आदेशों के विरुद्ध किए गए किन्हीं अपराधों के संबंध में उपगत कोई शास्ति, जब्ती या दंड, नहीं तो

(iv) ऐसी किसी शास्ति, जब्ती या दंड के संबंध में कोई अन्वेषण या उपाय और ऐसी कोई जांच, विधिक कार्यवाहियां या उपाय संस्थित किए जा सकेंगे, जारी रखे जा सकेंगे या प्रवर्तित किए जा सकेंगे और ऐसी कोई शास्ति, जब्ती या दंड अधिरोपित किया जा सकेगा, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया हो:

(2) यदि इस अधिनियम के तदनुरूप किसी राज्य में तत्समय प्रवृत कोई अन्य विधि है तो वह इस अधिनियम के प्रारंभ पर निरसित हो जाएगी और ऐसी दशा में साधारण खंड अधिनियम, 1897 (10 वर्ष 1897) की धारा 6 के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो राज्य विधि के ऐसे उपबंध निरसित कर दिए गए हों।

(3) पूर्वोक्त अधिनियमन और आदेशों के निरसन के होते हुए भी, ऐसे किसी अधिनियमन या आदेश के अधीन जारी किए गए अनुज्ञप्ति, जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को प्रवृत हैं. सभी प्रयोजनों के लिए उनकी समाप्ति की तारीख तक प्रवृत रहेंगे, मानो वे इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के अधीन जारी किए गए हों।

(4) तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई न्यायालय निरसित अधिनियम या आदेशों के अधीन किसी अपराध का संजान इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं लेगा। Lega

12. रूपेश कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 (2) एफ.ए.सी. 33 मामले में आवेदकों के परिसरों पर दिनांक 25.04.2011 को छापा मारा गया था और उसी तारीख को खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006 लागू हुआ था और इस प्रकार आवेदक पर केवल खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006 के उपबंधों के अधीन ही मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। पी.एफ. अधिनियम, 1954 में 27.06.2011 को शिकायत दर्ज की गई थी और 27.06.2011 को समन आदेश जारी किया गया था। इस न्यायालय ने सम्मन आदेश दिनांक 27.06.2011 को रद्द कर दिया क्योंकि इस मामले में सभी कार्यवाही अधिनियम वर्ष 2006 के प्रवर्तन के बाद की गई थी। इस न्यायालय ने कहा कि अधिनियम वर्ष 2006 के लागू होने के बाद, आवेदक पर केवल अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। जबकि इस न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्तों के खिलाफ पारित सम्मन आदेश को रद्द करते हुए उत्तरदाताओं को अधिनियम वर्ष 2006 के प्रावधानों के तहत पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी।

13. सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 का अधिदेश केवल लंबित कार्यवाहियों को अप्रभावित छोड़ना है जो निरसित प्रावधानों के तहत शुरू होती हैं, जब तक कि विपरीत इरादा व्यक्त नहीं किया जाता है। "अंबालाल साराभाई एंटरप्राइजेज लेफ्टिनेंट बनाम अमृत लाल एंड

कंपनी (2001) 8 एस.सी.सी. 397 गुरचरण सिंह बलदेव सिंह बनाम यशवंत सिंह ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 1186, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 6 सामान्य खंड अधिनियम 1897 के दायरे पर विचार करते हुए, जो एक केंद्रीय अधिनियम या विनियमन के निरसन के प्रभाव से संबंधित है, ने कहा कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 (सी) का उद्देश्य अधिनियम को निरस्त कर दिया। इसका एकमात्र अपवाद इसके विपरीत विधायी इरादा है। अर्थात्, निरसन अधिनियम स्पष्ट रूप से प्रदान कर सकता है या यह निहित रूप से इस तरह के अधिकार या दायित्व को जारी रखने के खिलाफ प्रदान कर सकता है।

14. प्रस्तुत मामले में, अ०सा०-1 विवेक कुमार, शिकायतकर्ता ने निचली अदालत के समक्ष शिकायत मामले की सुनवाई के दौरान अ०सा०-1 के रूप में अपने साक्ष्य द्वारा मामले के तथ्यात्मक पहलुओं को साबित किया है। अ०सा०-2, ओम जी श्रीवास्तव, खाद्य लिपिक ने अपने साक्ष्य में कहा है कि दिनांक 16092013 को स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकरण ने नमूना सं-2013 भेजा था। केएन-2010/362/वीएस-7 ने अभियुक्त को लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के साथ, उन्होंने प्रदर्श क-4 और एलएचए फॉर्म संख्या-13 (2) के रूप में प्रदर्श क-9 के रूप में रजिस्ट्री की प्राप्ति को साबित किया। इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में यह नहीं माना जा सकता है कि खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 13 (2) के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था।

धारा 13 में निम्नानुसार प्रावधान है:

13. लोक विश्लेषक की रिपोर्ट

(1) लोक विश्लेषक, ऐसे रूप में, जो जो विहित किया जाए, विश्लेषण के लिये उसे प्रस्तुत की गई खाद्य की किसी वस्तु के विश्लेषण के परिणाम की स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी को रिपोर्ट देगा। - 3[(1) लोक विश्लेषक, ऐसे रूप में, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, विश्लेषण के लिए उसे प्रस्तुत किए गए भोजन के किसी भी लेख के विश्लेषण के परिणाम के स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकरण को एक रिपोर्ट वितरित करेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन विश्लेषण के परिणाम की इस आशय की रिपोर्ट प्राप्त होने पर कि खाद्य वस्तु मिलावटी है, स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी, उन व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनसे भोजन की वस्तु का नमूना लिया गया था और उस व्यक्ति, यदि कोई हो, जिसका नाम, अभियोजन संस्थित करने के पश्चात् धारा 14-क के अधीन ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को, जैसा भी मामला हो, विश्लेषण के परिणाम की रिपोर्ट की एक प्रति, अग्रेषित की गई है, ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को सूचित करते हुए कि यदि यह ऐसा वांछित है, तो उनमें से कोई एक या दोनों न्यायालय में आवेदन कर सकते हैं स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी द्वारा रखे गए भोजन की वस्तु के नमूने का केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला द्वारा विश्लेषण कराने के लिए रिपोर्ट की प्रति।

(2क) जब उपधारा (2) के अधीन न्यायालय को कोई आवेदन किया जाता है तब न्यायालय स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी से उक्त

प्राधिकारी द्वारा रखे गए नमूने के भाग या भागों को अग्रेषित करने की अपेक्षा करेगा और ऐसा अनुरोध किए जाने पर, उक्त प्राधिकारी नमूने के भाग या भागों को ऐसी मांग की प्राप्ति की तारीख से पांच दिन की अवधि के भीतर न्यायालय को अग्रेषित करेगा।

(2ख) उपधारा (2क) के अधीन स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी से नमूने के भाग या भागों की प्राप्ति पर, न्यायालय पहले यह सुनिश्चित करेगा कि धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथा उपबंधित चिन्ह और मुहर या बन्धन यथावत हैं और यथास्थिति, हस्ताक्षर या अंगूठे के निशान से छेड़छाड़ नहीं की गई है, और भाग या, जैसा भी मामला हो, नमूने के किसी भाग को अपनी स्वयं की मुहर के तहत केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक को प्रेषित करेगा जो विश्लेषण के परिणाम को विनिर्दिष्ट करते हुए नमूने के भाग की प्राप्ति की तारीख से एक माह के भीतर निर्धारित प्रपत्र में न्यायालय को प्रमाणपत्र भेजेगा।

(2ग) जहां नमूने के दो भाग न्यायालय को भेजे जा चुके है और न्यायालय द्वारा नमूने का केवल एक भाग उपधारा (2ख) के अधीन केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक को भेजा गया है वहां न्यायालय यथासाध्य शीघ्र, शेष भाग स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी को लौटाएगा और वह प्राधिकारी, जब केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक से प्रमाणपत्र प्राप्त हो चुका हो, उस भाग को नष्ट कर देगा। परंतु जहां न्यायालय द्वारा केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक को भेजे गए नमूने का भाग खो जाता है या क्षतिग्रस्त हो जाता है वहां न्यायालय स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी से यह अपेक्षा करेगा कि वह नमूने का वह भाग, यदि कोई हो, न्यायालय को अग्रेषित करे और उसके प्राप्त होने पर न्यायालय उपधारा (2ख) में उपबंधित रीति से कार्यवाही करेगा।

(2घ) केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक से विश्लेषण के परिणाम का प्रमाणपत्र प्राप्त होने तक, न्यायालय अभियोजन के संबंध में उसके समक्ष लंबित कार्यवाहियों को जारी नहीं रखेगा।

(2ड.) यदि खाद्य निरीक्षक की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् या अन्यथा, स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकारी की यह राय है कि उपधारा (1) के अधीन लोक विश्लेषक द्वारा दी गई रिपोर्ट त्रुटिपूर्ण है तो उक्त प्राधिकारी अपने द्वारा रखे गए नमूने के किसी भाग में से किसी एक भाग को विश्लेषण के लिए किसी अन्य लोक विश्लेषक को अग्रेषित करेगा और यदि उसके द्वारा नमूने के उस भाग के विश्लेषण के परिणाम की रिपोर्ट अन्य लोक विश्लेषक इस आशय के हैं कि खाद्य पदार्थ मिलावटी है, उप-धारा (2) से (2 डी) के प्रावधान, जहां तक हो सकता है, लागू होंगे।

(3) उपधारा (2ख)) के अधीन केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक द्वारा जारी किया गया प्रमाण-पत्र) उपधारा (1) के अधीन लोक विश्लेषक द्वारा दी गई रिपोर्ट का अधिक्रमण करेगा।

(4) जहां केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक से (उपधारा (2ख) के अधीन] अभिप्राप्त प्रमाणपत्र इस अधिनियम के अधीन या

अनुवाद

भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 272 से धारा 276 के अधीन किसी कार्यवाही में प्रस्तुत किया जाता है वहां ऐसी कार्यवाही में विश्लेषण के लिये, हासिल किए गए भोजन के नमूने के किसी भाग को प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होगा।

(5) लोक विश्लेषक द्वारा हस्ताक्षरित रिपोर्ट होने का तात्पर्यित कोई दस्तावेज, जब तक कि उसे उपधारा (3) के अधीन अधिक्रमित न कर दिया गया हो या केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र होने का तात्पर्थित कोई दस्तावेज, इस अधिनियम के अधीन या भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 272 से धारा 276 के अधीन किसी कार्यवाही में उसमें बताए गए तथ्यों के साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त किया जा सकेगाः [परन्तु केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र होने का तात्पर्यित कोई दस्तावेज (धारा 16 की उपधारा (1क) के परंतुक में निर्दिष्ट खाद्य की किसी वस्तु के नमूने के भाग के विश्लेषण के संबंध में प्रमाणपत्र न होने के कारण] उसमें वर्णित तथ्यों का अंतिम और निश्चायक साक्ष्य होगा। [स्पष्टीकरण-इस धारा में, और धारा 16 की उपधारा (ठ) के खंड (च) में, "केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक के अंतर्गत इस धारा के प्रयोजनों के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी खाद्य प्रयोगशाला (जो भी पदनाम से वह ज्ञात है) का तत्समय भारसाधक अधिकारी सम्मिलित होगा।

15. अतः उपरोक्त वैधानिक प्रावधानों के अवलोकन पर, अ०सा०-2 के साक्ष्य के आलोक में, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त को स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकरण द्वारा रखे गए भोजन के नमूने का केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला द्वारा विश्लेषण करवाने का अवसर दिया गया है, लेकिन अभियुक्त अवसर का लाभ उठाने में विफल रहा।

16. अधिनियम की धारा 7 उल्लंघन के संबंध में प्रावधान करती है जो अधिनियम की धारा 16 के तहत दंडनीय होगा। धारा 2 के तहत (1) "मिलावट" का अर्थ है कोई भी सामग्री जो मिलावट के प्रयोजनों के लिए नियोजित की जा सकती है या की जा सकती है:।

4 [(क)] "मिलावटी" - खाद्य की कोई वस्तु अपमिश्रित समझी जाएगी-

(ए) यदि किसी विक्रेता द्वारा बेची गई वस्तु क्रेता द्वारा मांगी गई प्रकृति, पदार्थ या गुणवता की नहीं है और उसके पूर्वाग्रह के लिए है, या प्रकृति, पदार्थ या गुणवत्ता की नहीं है जिसका वह अभिप्राय है या प्रतिनिधित्व किया जाता है;

----------(ड) यदि वस्तु की गुणवत्ता या शुद्धता विहित मानक से कम हो या उसके संघटक ऐसी मात्राओं में विद्यमान हों जो परिवर्तनशीलता की निर्धारित सीमाओं के भीतर न हो किंतु जो उसे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न बनाती हौः परन्तु जहां वस्तु की गुणवत्ता या शुद्धता, प्राथमिक भोजन होने के कारण, विहित मानकों से कम हो गई है या उसके संघटक ऐसी मात्राओं में विद्यमान हैं जो किसी भी दशा में परिवर्तनशीलता की विहित

सीमाओं के भीतर नहीं हैं, केवल प्राकृतिक कारणों से और मानव एजेंसी के नियंत्रण से परे है, तो, इस तरह के लेख को इस उप- खंड के अर्थ के भीतर मिलावटी नहीं माना जाएगा।

17. इस प्रकार, प्रस्तुत मामला अधिनियम की धारा 2 (एम) के दायरे में आता है, क्योंकि अभियुक्त के खिलाफ प्रस्तुत मामले में मुख्य आरोप यह है कि उसके पास से लिया गया दूध का नमूना निर्धारित मानकों से कम पाया गया था क्योंकि दूध में वसा की मात्रा निर्धारित मानक से 13 प्रतिशत कम पाई गई थी, और चूंकि नमूना निर्धारित मानक के अनुरूप नहीं था, इसलिए इसे धारा 2 (आईए) (एम) के तहत मिलावटी माना गया।

18. प्रस्तुत मामले में, धारा 2 (आईए) (एम) आकर्षित होती है जो अधिनियम की धारा 16(1) के तहत दंडनीय है जिसके लिए 6 महीने की कैद की न्यूनतम सजा, जो 3 साल तक हो सकती है और जुर्माना 1,000 रुपये से कम नहीं है। प्रस्तुत मामले में, जिला मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त के अभियोजन के लिए मंजूरी आदेश पारित किया है जो अ०सा०-1 द्वारा साबित किया गया है।

19. जहां तक अधिवक्ता का तर्क है कि खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 के अधिनियमन के बाद खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के निरसन के मद्देनजर और अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामले में संज्ञान आदेश को चुनौती देने का संबंध है। अधिनियम वर्ष 2006 की धारा 97(1) में यह प्रावधान है कि उस तारीख से, जिसे केन्द्र सरकार इस निमित नियत करे, दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियमन और आदेश निरसित माने जाएंगे। धारा 97 की उपधारा 1 में परिकल्पित तारीख को अधिसूचना संख्या- एफ.नं. पी-15025/41/2011- डी.एफ. क्यू.सी- दिनांक 4 अगस्त, 2011 के माध्यम से 5.08.2011 के रूप में निर्दिष्ट किया गया है, जिसका अर्थ है कि खाद्य अपमिश्रण अधिनियम, 1954, 05.08.2011 को निरस्त हो जाएगा। धारा 97(2) के प्रावधान स्वयं दिनांक 29-07-2010 को लागू किए गए थे जो निरसन और बचत से संबंधित है। प्रस्तुत मामले में, अपराध की तारीख का उल्लेख किया गया है जो 05.03.2010 को साबित किया गया है, जब आरोपी को अ०सा०-1 द्वारा रोका गया था और उसके कब्जे में घटिया दूध पाया गया था और पी.एफ. अधिनियम की धारा 7/16 के तहत उसके खिलाफ अभियोजन के लिए मामले में जांच के बाद शिकायत दर्ज की गई थी। इस प्रकार, निरसित अधिनियम के तहत कार्यवाही, नमूना और निरीक्षण अधिनियम के निरसन से पहले ही शुरु कर दिया गया था जो 05.08.2011 को हुआ था। यहां तक कि मामले में संजान 17.08.2010 को निचली अदालत द्वारा लिया गया था, उस तारीख से पहले जब पी.एफ. अधिनियम निरस्त हो गया था। इसलिए पुनरीक्षणकर्ता के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि मामले में संजान कानून के तहत वर्जित था। यहां तक कि खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 की धारा 97(4) में भी निम्नानुसार प्रावधान है:

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई न्यायालय निरसित

अधिनियम या आदेशों के अधीन किसी अपराध का संज्ञान इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं लेगा।

धारा 97 दूसरी अनुसूची में निर्दिष्ट अधिनियमन या आदेशों को उस तारीख से तुरंत निरस्त करने का प्रयास करती है जिस तारीख को अधिनियम अधिनियमित किया गया है और लागू होता है, बशर्ते कि ऐसा निरसन प्रभावित नहीं करेगा।

(i) निरसन के अधीन अधिनियमन और आदेशों के पिछले प्रचालन या उसके अधीन सम्यक् रूप से की गई या पीड़ित कोई बात नहीं तो

(ii) निरसन के अधीन किसी अधिनियमन या आदेशों में से किसी के अधीन अर्जित, उपार्जित या उपगत कोई अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व, नहीं तो

(iii) निरसन के अधीन अधिनियमन और आदेशों के विरुद्ध किए गए किन्हीं अपराधों के संबंध में उपगत कोई शास्ति, जब्ती या दंड नहीं तो

(iv) ऐसी किसी शास्ति, समपहरण या दंड के संबंध में कोई अन्वेषण या उपाय और ऐसी कोई जांच, विधिक कार्यवाहियां या उपाय संस्थित किए जा सकेंगे, जारी रखे जा सकेंगे या प्रवर्तित किए जा सकेंगे और ऐसी कोई शास्ति, समहरण या दंड अधिरोपित किया जा सकेगा, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया हो।

(2) यदि इस अधिनियम के तदनुरूप किसी राज्य में तत्समय प्रवृत कोई अन्य विधि है तो वह इस अधिनियम के प्रारंभ पर निरसित हो जाएगी और ऐसी दशा में साधारण खंड अधिनियम, 1897 (10 वर्ष 1897) की धारा 6 के उपबंध इस प्रकार लागू होंगे मानो राज्य विधि के ऐसे उपबंध निरसित कर दिए गए हो।

20. इस प्रकार, धारा 97(4) को ध्यान में रखते हुए, मामले में संज्ञान को बचाया जाएगा क्योंकि यह अधिनियम वर्ष 2006 के प्रारंभ की तारीख से 3 वर्ष की अवधि के भीतर लिया गया था।

21. इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में, प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा मामले में संज्ञान किसी भी तरह से अवैध या कानून के तहत वर्जित नहीं है।

22. पुनरीक्षण योग्यता से रहित है और विद्वान विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय पारण न्यायालय की ओर से उसके खिलाफ लगाए गए आरोप के लिए अपराध के फैसले को रिकॉर्ड करते समय और साथ ही अपीलीय अदालत के फैसले में कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि या साक्ष्य का दुरुपयोग नहीं पाया गया है, जिसके तहत अपील खारिज कर दी गई थी और विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई थी।

23. जहां तक सजा का संबंध है, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने 07.04.2023 को पुनरीक्षणकर्ता की ओर से दायर पूरक हलफनामे में की गई दलीर्ता का उल्लेख किया

और आगे प्रस्तुत किया कि लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के अनुसार, दूध के नमूने में केवल वसा की मात्रा निर्धारित सीमा के 13% से कम पाई गई और वह नमूना मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं था। खाद्य अपमिश्रण अधिनियम की धारा 13(2) के तहत नोटिस कभी भी पुनरीक्षित/अभियुक्त को नहीं दिया गया था, अधिनियम की धारा 7 के प्रावधानों के अनुसार नमूने लेने की प्रक्रिया नहीं की गई थी। पुनरीक्षणकर्ता का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए, कम से कम उसके मामले को कुछ उदारता के साथ माना जा सकता है, जहां तक सजा का संबंध है, उसे अपीलीय न्यायालय के आक्षेपित निर्णय की तारीख से 20.12.2022 से जेल हिरासत में रखा गया है, उसे अपराधी अधिनियम की परिवीक्षा की धारा 4 या धारा 360 द०प्र०स०, जैसा भी मामला हो, का लाभ दिया जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्ता को दी गई सजा को बिताई गई अवधि तक कम किया जा सकता है क्योंकि वह पहले ही आक्षेपित निर्णय में दी गई सजा का पर्याप्त हिस्सा बिता चुका है।

24. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या-214 वर्ष 2016 में नेमी चंद बनाम राजस्थान राज्य (2018) 17 एस.सी.सी. 448 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया।

25. मैंने उस मामले में नेमी चंद बनाम राजस्थान राज्य (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का अध्ययन किया है, अपीलकर्ता पर विचारण न्यायालय द्वारा धारा 7/16 पी.एफ. अधिनियम के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया था और दोषी ठहराया गया था और उसे 6 महीने के कठोर कारावास के साथ-साथ 1,000 रुपये का जुर्माना और डिफ़ॉल्ट रूप से एक महीने के लिए और कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। इस आदेश को अपीलकर्ता ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपील दायर करके चुनौती दी थी, जिसे 11.09.1996 को खारिज कर दिया गया था, जिससे विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि हुई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह विवाद में नहीं है कि अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप केवल माल के घटियाकरण का था। यह देखा गया कि टी. बरई बनाम हेनरी हो और अन्य 1983 (1) एस.सी.सी. 177 में इस न्यायालय के फैसले में, इस न्यायालय ने माना कि खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम में पुनरीक्षण के बाद से, धारा 16ए को केंद्रीय अधिनियम 34 वर्ष 1976 के माध्यम से पी.एफ. अधिनियम में जोड़ा गया था और यह आरोपी व्यक्तियों के लिए फायदेमंद था। इसे पहले के मामलों के संबंध में भी लागू किया जा सकता है जो न्यायालय में लंबित हैं।

26. नेमी चंद मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आरोपी दोषी को नई जोड़ी गई धारा 16 (ए) का लाभ दिया और उसकी सजा को इस हद तक संशोधित किया कि उसे 50,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया और विचारण न्यायालय द्वारा उसे दी गई 6 महीने की कारावास की सजा और जो प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की गई सजा को रद्द कर दिया गया था।

27. प्रस्तुत मामले में भी, हालांकि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषी ठहराने और सजा देने के लिए मामले में समन ट्रायल की प्रक्रिया को अपनाया, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (ए) के प्रावधानों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है जो निम्नानुसार प्रदान करते हैं:

16क. मामलों का सरसरी तौर पर विचारण करने की न्यायालय की शक्ति--

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी, धारा 16 की उपधारा (1) के अधीन सभी अपराधों का विचारण प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा, जो राज्य सरकार द्वारा या किसी महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा विशेष रूप से सशक्त किया गया है, संक्षिप्त रीति से किया जाएगा और उक्त संहिता की धारा 262 से धारा 265 (दोनों सहित) के उपबन्ध, जहां तक हो सकता है, इस तरह के परीक्षण पर लागू करें:

परन्तु इस धारा के अधीन किसी संक्षिप्त विचारण में किसी दोषसिद्धि की दशा में, मजिस्ट्रेट के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए कारावास का दण्डादेश पारित करेः परन्तु यह और कि जब इस धारा के अधीन किसी संक्षिप्त विचारण के प्रारंभ में या उसके दौरान मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि मामले का स्वरूप ऐसा है कि किसी अवधि के लिए कारावास का दण्डादेश है एक वर्ष से अधिक समय तक पारित किया जाना चाहिए या यह कि किसी अन्य कारण से, मामले को सरसरी तौर पर विचारण करना अवांछनीय है, मजिस्ट्रेट, पक्षकारों को सुनने के बाद, उस आशय का आदेश अभिलिखित करेगा और उसके बाद किसी भी गवाह को वापस बुलाएगा, जिसकी जांच की गई हो और उक्त संहिता द्वारा प्रदान की गई रीति से मामले की सुनवाई या पुन सुनवाई करने के लिए आगे बढ़ेगा।

28. वर्तमान अपराध भी धारा 16 (1) (ए) (i) के तहत दंडनीय है। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आरोपी से एकत्र किए गए पेय (दूध) के सवाल में नमूना किसी भी तरह से उपभोक्ता के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक था। यह अपराध अपने आप में तकनीकी प्रकृति का है क्योंकि दूध में वसा की मात्रा निर्धारित मानक से केवल 13 प्रतिशत कम पाई गई। इस प्रकार, इस मामले में भी आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ मुख्य आरोप केवल पेय (दूध) के घटियाकरण का था जो कथित तौर पर अन्सा०-1 द्वारा निरीक्षण की तारीख और समय पर बेचने के लिए उसके द्वारा ले जाया गया था।

29. इसलिए, नेमी चंद बनाम राजस्थान राज्य (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में, अधिनियम की धारा 16 (ए) का लाभ, पुनरीक्षणकर्ता को दिया जा सकता है, उस मामले में जो प्रदान करता है कि धारा 16 की उप-धारा 1 के तहत सभी अपराधों का सारांश तरीके से विचारण किया जाएगा, और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 262 और 265 (दोनों समावेशी) के प्रावधान जहां तक इस तरह के परीक्षण के लिए लागू

किया जा सकता है। धारा 262 (2) में प्रावधान है कि समरी-विचारर्णा में, सम्मन-मामले के विचारण के लिए इस संहिता में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा, सिवाय इसके कि इसके बाद उल्लेख किया गया है और इस अध्याय के अधीन किसी दोषसिद्धि के मामले में तीन मास से अधिक अवधि के कारावास का कोई दण्डादेश पारित नहीं किया जाएगा।

30. चूंकि अभियुक्त पुनरीक्षणकर्ता का मामला भविष्य निधि अधिनियम की धारा 16 (1) के तहत आता है, इस तथ्य के संबंध में कि न्यायालय ने मामले में सारांश विचारण की प्रक्रिया नहीं अपनाई है, वह अधिनियम की धारा 16 (ए) के प्रावधानों का लाभ उठाने का हकदार है, जो अपराध की तारीख को मौजूद था और धारा 262 (2) द०प्र०स० के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए उसकी मूल सजा यथा उपबंधित 3 माह कम किया जाने योग्य है।

31. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, पुनरीक्षण की आंशिक रूप से अनुमति है। पुनरीक्षण के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है। पुनरीक्षणकर्ता को दी गई सजा को संशोधित किया जाता है और उसे साधारण 3 महीने का कारावास दिया जाता है। हालांकि, निचली अदालत द्वारा दिया गया 5,000 रुपये का जुर्माना बरकरार रहेगा। चूंकि पुनरीक्षणकर्ता पहले ही 3 महीने के कारावास की इस संशोधित सजा को काट चुका था, इसलिए यदि वह आक्षेपित निर्णय में दिए गए जुर्माने का भुगतान करता है या जुर्माना के भुगतान में चूक में दी गई सजा से गुजरता है, जैसा भी मामला हो, उसे वर्तमान मामले के संबंध में तुरंत जेल हिरासत से रिहा किया जाएगा।

32. इस आदेश की एक प्रति अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 77

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 523 / 2023

संदीप कुमार ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: सुधीर कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 397/401 -पुनरीक्षण, धारा 319 -अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग दण्डादेश सुनाए जाने से पूर्व किया जा सकता है। (पैरा-13)

सीआरपीसी की धारा 319 के तहत सजा से पहले आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता को विचारणीय न्यायालय द्वारा गलत तरीके से तलब करने को चुनौती देते हुए याचिका दायर की गई है। (पैरा-12)

निर्णय:- न्यायालय ने पाया कि विचारणीय न्यायालय ने निर्णय सुनाए जाने से पूर्व

सीआरपीसी की धारा 319 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया गया। विचारणीय न्यायालय ने सजा सुनाए जाने से पहले अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया, जिससे यह संकेत मिलता है कि विवादित निर्णय और आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। (पैरा-13)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य, 2023 (1) एससीसी 289

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

(I) पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधीर कुमार सिंह, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री गिरिजेश द्विवेदी को सुना गया तथा अभिलेख में रखी गई सामग्री का अवलोकन किया गया।

(II) वर्तमान आवेदन के माध्यम से, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, बाराबंकी, सत्र परीक्षण संख्या 273/2012, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राकेश द्वारा पारित दिनांक 31.03.2023 के आक्षेपित आदेश को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने की सीमा तक रद्द करने और कमल कांत श्रीवास्तव, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, बाराबंकी, सत्र परीक्षण संख्या 273/2012, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राकेश द्वारा पारित दिनांक 31.03.2023 के आक्षेपित आदेश के संचालन और कार्यान्वयन को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने की सीमा तक रोकने के लिए प्रार्थना की गई है।

(III) चूँकि इस मामले में विशुद्ध विधिक प्रश्न शामिल है, अतः विपक्षी पक्ष संख्या 2 को नोटिस जारी करने से छूट दी जाती है।

(IV) पुनरीक्षणकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रारम्भ में वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें जाँच के पश्चात वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को अपराध करने में संलिप्त नहीं पाया गया, अतः उसका नाम हटा दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि इसके बाद, मुकदमा शुरू हुआ और निर्णय की घोषणा की तारीख पर, मुकदमे के समापन के समय, विद्वान विचारण न्यायालय ने दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को तलब किया, यद्यपि, दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत उसे बुलाने के लिए पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई ठोस सामग्री नहीं थी।

(V) अपनी दलीलें जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि इस वर्ष मुकदमे के दौरान मात्र अभियोजन पक्ष का गवाह 1, 2 और 5 ने ही वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता का नाम लिया

है। उन्होंने आगे कहा कि बहुत जल्दबाजी में और संतुष्टि दर्ज किए बिना, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को बुलाया गया है, यद्यपि, वह कभी भी किसी अपराध में शामिल नहीं थे और ऐसी कोई सामग्री नहीं है, जो दिखा सके कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अधिक मजबूत मामला उपलब्ध है।

(VI) अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने **2023 (1) सर्वोच्च न्यायालय केसेस 289 सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य** में रिपोर्ट किए गए निर्णय की ओर ध्यान आकर्षित किया है और प्रस्तर 39 (1) का उल्लेख किया है और कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने एक संदर्भ का उत्तर देते हुए माना है कि दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग सजा के आदेश की घोषणा से पूर्व किया जाना चाहिए, जहाँ अभियुक्त की दोषसिद्धि का निर्णय हो। पुनः यह भी कहा गया है कि यदि आदेश उसी दिन पारित किया जाता है, तो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर इसकी जाँच करनी होगी और यदि ऐसा समन आदेश दोषसिद्धि के मामले में बरी करने या सजा सुनाने के आदेश के बाद पारित किया जाता है, तो वह जारी रखने योग्य नहीं होगा।

(VII) प्रस्तर 39 (1) अधोउद्धृत है:-

क्या विचारण न्यायालय को धारा 319 दं०प्र०सं० के तहत अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने का अधिकार है, जब अन्य सह-अभियुक्तों के संबंध में विचारण समाप्त हो गया है और समन आदेश सुनाने से पूर्व उसी तारीख को दोषसिद्धि का निर्णय सुनाया गया है?

धारा 319 दं०प्र०सं० के तहत शक्ति का प्रयोग सजा के आदेश की घोषणा से पूर्व किया जाना है, जहाँ अभियुक्त को दोषी ठहराया गया हो। दोषमुक्ति के मामले में, दोषमुक्ति का आदेश सुनाए जाने से पूर्व शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। अतः, दोषसिद्धि के मामले में सजा सुनाए जाने से पूर्व समन आदेश जारी किया जाना चाहिए। यदि आदेश उसी दिन पारित किया जाता है, तो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर इसकी जाँच करनी होगी और यदि ऐसा समन आदेश दोषसिद्धि के मामले में दोषमुक्ति या सजा के आदेश के बाद पारित किया जाता है, तो वह टिकाऊ नहीं होगा।

(VIII) पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि चूँकि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई ठोस सबूत नहीं है और दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत क्षेत्राधिकार लागू करने के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया गया है, अतः, 31.03.2023 को

(IX) पारित निर्णय और आदेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के विरुद्ध है।

(X) इसके अतिरिक्त, दलील यह है कि 31.03.2023 के आरोपित आदेश को दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत पुनरीक्षणवादी-आरोपी को बुलाने की सीमा तक रद्द किया जा सकता है।

(XI) राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त प्रस्तुतियों का पुरजोर विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने तथ्यों और परिस्थितियों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद, दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को तलब किया है, जो कि स्वयं निर्णय के आंतरिक पृष्ठ 22 से शुरू होकर दिनांक 31.03.2023 के निर्णय और आदेश से स्पष्ट है। उन्होंने कहा कि इस बिन्दु पर विधि बिल्कुल स्पष्ट है कि जहाँ अभियुक्त को दोषी करार दिया गया है, वहाँ सजा के आदेश से पूर्व अभियुक्त को बुलाने के लिए विचारण न्यायालय दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि वर्तमान मामला यह है कि पुनरीक्षणवादी-अभियुक्त को सजा के आदेश से पूर्व दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत तलब किया गया है। उन्होंने सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य (सुप्रा) में संविधान पीठ के निर्णय की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है और कहा है कि संदर्भ का उत्तर देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने भी माना है कि जहाँ अभियुक्त को दोषी ठहराए जाने का निर्णय हो, वहाँ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग सजा के आदेश की घोषणा से पूर्व किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि उपरोक्त मामला भी अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन करता है।

(XII) अपनी दलीलों को समाप्त करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 31.03.2023 के निर्णय और आदेश में कोई विकृति या अवैधानिकता नहीं है और इसलिए कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

(XIII) पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद यह पता चला है कि 31.03.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए एक याचिका दायर की गई है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी-संशोधनकर्ता को समन करते समय दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का त्रुटिपूर्ण प्रयोग किया है। निर्णय एवं आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सजा के आदेश से पूर्व विद्वान विचारण न्यायालय ने निर्णय के

(XIV) आंतरिक पृष्ठ 22 से आगे के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता को दं०प्र०सं० की धारा 319 के अंतर्गत तलब किया है। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का पहला समूह यह था कि घोषणा की तारीख पर, विचारण न्यायालय को दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार को लागू करने का अधिकार नहीं है और तर्क का दूसरा समूह यह है कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई भौतिक सबूत नहीं था जो यह दिखा सकता था कि दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार को लागू करते समय पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने के लिए बहुत मजबूत मामला था।

(XV) जब यह न्यायालय पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क के प्रथम समूह की जाँच करता है कि विद्वान विचारण न्यायालय को निर्णय सुनाते समय दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, तो यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य** के मामले में प्रतिपादित विधि से पूरी तरह स्पष्ट है, जिसका उत्तर प्रस्तर 39(आई) में दिया गया था कि दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग सजा के आदेश की घोषणा से पूर्व किया जा सकता है और जहाँ तक वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के मामले का संबंध है, विद्वान विचारण न्यायालय ने सजा के आदेश से पूर्व दं०प्र०सं० की धारा 319 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया है और इस प्रकार, विवादित निर्णय और आदेश में कोई त्रुटि नहीं है।

(XVI) जहाँ तक विचारण न्यायालय के साथ चर्चा किए गए तथ्यों और परिस्थितियों के भौतिक साक्ष्य के संबंध में विवेक का प्रयोग न करने के संबंध में तर्क के दूसरे समूह का संबंध है, पृष्ठ 22 से, साक्ष्यों की विस्तृत चर्चा के साथ-साथ अपराध में पुनरीक्षणकर्ता की संलिप्तता के संबंध में गवाहों के बयान भी हैं और इस प्रकार, विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश में विवेक के प्रयोग के संबंध में कोई गैरकानूनी बात नहीं लगती है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध बहुत मजबूत मामला उपलब्ध था और अतः, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क के दूसरे समूह में कोई सार या बल नहीं है।

(XVII) परिणामस्वरूप, वर्तमान पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं है और इसे **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 80

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 564 / 2023

रणजीत सिंह ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री ललित कुमार शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323, 504 एवं 304 भाग-1 - न्यायालय को धारा 216 के प्रावधानों की आड़ में पुनरीक्षण समीक्षा या अपने आदेश को वापस लेने की अनुमति नहीं है, जिसके अनुसार मामले के किसी भी स्तर पर आरोप को बदला जा सकता है। (पैरा-6)

वाद द्वारा एफआईआर दर्ज की गई - आरोप - उनका भाई आरोपियों के साथ मैच खेल रहा था - मैच के दौरान, एक विवाद हुआ - क्रिकेट के बल्ले से हमला किया गया - जिससे उसकी मृत्यु हो गई - धारा 302, 323, 504 आईपीसी के तहत दायर आरोप पत्र पर सत्र परीक्षण शुरू हुआ- सत्र न्यायालय ने धारा 302/34, 323/34 और 504 आईपीसी के तहत आरोप तय किया - आरोपियों ने धारा 323, 504 और 34 आईपीसी में आरोप को परिवर्तित करने के लिए आवेदन किया - सत्र न्यायाधीश ने निष्कर्ष निकाला - प्रथम दृष्टया धारा 323, 504 और 304 भाग-1 आईपीसी के तहत अपराध स्थापित होता है। (पैरा -3)

निर्णय: विचारणीय न्यायालय नए साक्ष्य के आधार पर आरोप बदल सकता है, लेकिन परिस्थितियों में बदलाव के बिना साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यह सीआरपीसी की धारा 362 के तहत स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि यह न्यायिक कार्यवाही में अव्यवस्था और अराजकता पैदा करता है। जबकि अच्छे आधार मौजूद हो सकते हैं, इसे अच्छे कारणों से आरोपों को बदलने के खिलाफ निषेध के रूप में नहीं समझा जा सकता है। (पैरा -8)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ललित कुमार शुक्ला और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री ओ.पी. मिश्रा को सुना। प्रतिवादी संख्या 2 के द्वारा नोटिस की तामील के बावजूद कोई भी उत्तर नहीं दिया गया।

2. इस आपराधिक पुनरीक्षण के माध्यम से, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), मथुरा द्वारा अपराध संख्या 57/2022 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 740/2022 (राज्य बनाम जीतू @ जीतेंद्र) में धारा 323, 504, 304 भाग-1 आईपीसी, थाना फरह, जिला मथुरा मामले से उत्पन्न एक निर्णय और आदेश दिनांक 22.11.2022 पारित किया गया जिसको चुनौती दी गई है।

3. प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

पहल सूचनादाता(यहाँ तत्काल पुनरीक्षणकर्ता) द्वारा एफआईआर में जीतू, जगवीर और कुछ अन्य लोगों के नाम के साथ दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसका भाई मनवेंद्र आरोपी व्यक्तियों के साथ मैच खेल रहा था; मैच के दौरान दोनों पक्षों के बीच कुछ विवाद हो गया; आरोपी व्यक्तियों जीतू और जगवीर ने उसके भाई मानवेंद्र के सिर पर क्रिकेट के बल्ले से हमला किया और बाद में चोट लगने से उसकी मृत्यु हो गई; सत्र परीक्षण धारा 302, 323, 504 आईपीसी के तहत दायर आरोप पत्र के आधार पर शुरू हुआ; विद्वान सत्र न्यायालय ने धारा 302/34, 323/34 और 504 आईपीसी के तहत आरोप तय किया, उसके बाद आरोपी व्यक्तियों की ओर से दायर एक आवेदन के आधार पर कहा कि धारा 302 आईपीसी के तहत कोई अपराध नहीं बनता है और आरोप लगाया जा सकता है। धारा 323, 504, 34 आईपीसी के तहत आरोप में परिवर्तित कर दिया गया, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दोनों पक्षों को सुना और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रथम दृष्टया धारा 323, 504, 304 भाग-1 आईपीसी के तहत अपराध बनता है और केवल उन्ही धाराओं के तहत मुकदमा कायम करने के लिए मामला तय किया है।

4. पुनरीक्षणकर्ता (प्रथम सूचनादाता) की ओर से यह तर्क दिया गया है कि इस मामले में, विद्वान विचारण न्यायालय ने आईपीसी की धारा 323, 504 और 302 के तहत संज्ञान लिया और उन धाराओं के तहत आरोप तय किया; इसके बाद आरोपी की ओर से दिए गए एक आवेदन के आधार पर विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोप को आईपीसी की धारा 302 से 304(1) में बदल दिया।

5. पुनरीक्षणकर्ता द्वारा कुछ तथ्य बताये गये हैं जो केस डायरी का हिस्सा हैं; कुछ व्यक्तियों द्वारा दिए गए बयानों के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि हमला सुनियोजित तरीके से और पूर्वचिन्तन के साथ किया गया था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि मौत का कारण बनने का कोई इरादा नहीं था।

6. मेरे विचार में जब अदालत ने धारा 302 आईपीसी के तहत अपराध के लिए संज्ञान लेने का फैसला किया और उसके बाद धारा 302 आईपीसी और कई अन्य धाराओं के तहत आरोप तय करने के लिए आगे बढ़ी, तो यह माना जा सकता है कि सक्षम न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों का अवलोकन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रथम दृष्टया ऐसे-ऐसे अपराध बनते हैं; माना जाता है कि न तो संज्ञान आदेश और न ही आरोप तय करने के आदेश को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष किसी भी पक्ष द्वारा चुनौती दी गई थी; बचाव पक्ष द्वारा दिए गए एक साधारण आवेदन के आधार पर आरोप को बदल दिया गया है; मेरे दृढ़ विचार में, अदालत को धारा 216 के प्रावधानों की आड़ में अपने ही आदेश की पुनरीक्षण समीक्षा करने या वापस लेने की अनुमति नहीं है कि मामले के किसी भी चरण में आरोप में बदलाव किया जा सकता है।

7. मेरी राय में, इस समय सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज आरोपों या सबूतों के

सूक्ष्म विवरण में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है और इस अदालत के समक्ष तत्काल विवाद को निपटाने के संबंध में मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर ध्यान देना। इसमें विवादास्पद मुद्दा यह है कि क्या अदालत अपने ही आदेश की समीक्षा कर सकती है या उसे वापस ले सकती है या रद्द कर सकती है।

8. मुझे इस तर्क में दम नजर आता है कि एक बार आरोप तय हो जाने के बाद, यह माना जाएगा कि विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सभी सबूतों को देखने और यह निष्कर्ष निकालने के बाद ऐसा किया कि प्रथम दृष्टया कुछ धाराओं के तहत अपराध बनता है; हालाँकि विचारण न्यायालय के पास विचारण के दौरान उसके सामने आने वाली उपयुक्त सामग्री के आधार पर आरोप को बदलने की पर्याप्त शक्ति है, लेकिन परिस्थितियों में कोई बदलाव या बीच में कोई सामग्री पाए बिना, विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर साक्ष्य का दोबारा मूल्यांकन नहीं कर सकता है। एक अलग निष्कर्ष निकालने के लिए सीआरपीसी की धारा 362 के प्रावधानों के तहत इस तरह की कार्रवाई स्पष्ट रूप से स्वीकार्य नहीं है। यदि इस तरह की कार्रवाई की अनुमति दी जाती है तो यह न्यायिक कार्यवाही में अव्यवस्था और अराजकता पैदा करेगी और निश्चित रूप से न्यायिक अनुशासनहीनता का कारण बनेगी। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि आरोप में बदलाव के लिए कुछ अच्छे आधार हो सकते हैं लेकिन साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के बाद उचित चरण में इस पर विचार किया जा सकता है। मेरी राय में इस तरह से चार्ज में बदलाव की कानूनन अनुमति नहीं है. इसका मतलब यह नहीं लगाया जा सकता है कि विचारण न्यायालय किसी अच्छे कारण के लिए आरोप को बदलने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है, जो विचारण के दौरान उसके सामने आने वाली किसी भी नई सामग्री/सबूत के आधार पर किसी भी बाद के चरण में सामने आ सकता है।

9. उपरोक्त चर्चा के आधार पर दिनांक 22.11.2022 का विवादित आदेश अपास्त किया जाता है तथा पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है।

विद्वान निचली अदालत पहले के आरोप के आधार पर मामले को आगे बढ़ाएगी।

(2023) 5 ILRA 82

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 991 / 2015

प्रदीप कुशवाहा .. पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री शैलेश कुमार यादव, श्री अतुल कुमार शाही

अधिवक्ता विपक्षी: शासकीय अधिवक्ता, श्री अशोक कुमार त्रिपाठी, (अब, श्री कार्तिकेय शुक्ला, श्री एस.पी.के. त्रिपाठी, श्री संजय कुमार शुक्ला

(ए) दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 397/401 -पुनरीक्षण -धारा 125 -पत्नी, बच्चों एवं माता-पिता के भरण-पोषण हेतु आदेश, हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम, 1956- धारा 20(3) - नाबालिग लड़की के वयस्क होने के पश्चात विवाह होने तक माता-पिता से भरण-पोषण पाने के अधिकार को हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम की धारा 20(3) में मान्यता दी गई है। (पैरा-14)

आवेदक संख्या 1 (विपक्षी संख्या 2) द्वारा अपने पति (पुनरीक्षणकर्ता) के विरुद्ध भरण-पोषण का मामला दायर किया गया - विपक्षी संख्या 2 और उसकी दो नाबालिग बेटियों को भरण-पोषण प्रदान किया गया - पुनरीक्षणकर्ता की याचिका के अनुसार, नौकरी छूट जाने के कारण वह भरण-पोषण देने में असमर्थ है - प्रतिवादी संख्या 3, धारा 125 सीआरपीसी के अंतर्गत विचाराधीन रहने के दौरान वयस्क हो जाने के कारण भरण-पोषण का हकदार नहीं है - पुनरीक्षण कर्ता और निजी प्रतिवादी एक ही घर में रहते हैं, टेम्पो चलाने जैसे कुछ छोटे-मोटे काम करके जीविका कमाते हैं और अल्प राशि कमाते हैं - जिसकी वास्तविक आय का खुलासा नीचे की अदालत के समक्ष नहीं किया गया है - विचारणीय न्यायालय द्वारा दिए गए भरण-पोषण के भुगतान में कई बार भूल हुई है। (पैरा-2 से 12,15)

निर्णय:- पुनरीक्षणकर्ता सक्षम शरीर वाला है, इसलिए वैध साधनों से कमाने तथा अपनी पत्नी और नाबालिग बच्चे का भरण-पोषण करने के लिए बाध्य है। पुनरीक्षणकर्ता की नौकरी चली गई, वह अपनी पत्नी और बच्चों का भरण-पोषण नहीं कर सकता, यह उचित नहीं है। प्रतिवादी संख्या 3 (पुनरीक्षणकर्ता की बेटी) को विचाराधीन अवधि के दौरान वयस्क होने के कारण भरण-पोषण से वंचित नहीं किया जाएगा। न्यायालय बदली हुई परिस्थितियों और पुनरीक्षणकर्ता की नौकरी चले जाने के कारण प्रतिवादी संख्या 2 से 4 के लिए भरण-पोषण आदेश को संशोधित करने पर विचार कर रहा है। (पैरा-11,15)

पुनरीक्षण याचिका निस्तारित। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अंजू गर्ग एवं अन्य बनाम दीपक कुमार गर्ग, आपराधिक अपील संख्या 1693/2022 (एसएलपी(सीआरएल) संख्या 10353/2018 से उत्पन्न)
2. जगदीश जुगतावत बनाम मंजू लता एवं अन्य एसएलपी (क्रिमिनल) संख्या 905/2001

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर रखी गई सामग्री का अध्ययन किया।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण वाद, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, गोरखपुर द्वारा विविध वाद संख्या.526 वर्ष 2011, (विनीता मौर्य बनाम प्रदीप) अंतर्गत धारा 125 द.प्र.सं., पुलिस स्टेशन शाहपुर, जिला गोरखपुर में पारित आक्षेपित निर्णय आदेश दिनांक 21.1.2015 के विरुद्ध योजित की गई है।

जिसके द्वारा प्रतिपक्षी पक्ष संख्या.2 विनीता मौर्य और उनकी दो नाबालिग बेटियों को क्रमशः रु.7000-और 4000/- प्रति माह के हिसाब से भरण-पोषण प्रदान किया गया था, जो आदेश की तारीख से प्रत्येक महीने की 10 तारीख को देय है।

3. उक्त आक्षेपित आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, पुनरीक्षणवादी, जो उक्त भरण-पोषण मामले में अनावेदक पक्ष था, जिसके विरुद्ध भरण-पोषण प्रदान किया गया था, ने 13.2.2015 को वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया, जिसमें इस न्यायालय द्वारा एक अंतरिम आदेश जारी किया गया था कि *"इस शर्त के अधीन कि पुनरीक्षणवादी यदि भरण-पोषण के पूरे अवशेष को जमा करता है जैसा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिया गया है जिसकी गणना रु० 8000/- प्रति माह जो आज से एक महीने की अवधि के भीतर आज तक देय हो सकता है और मौजूदा मासिक भरण-पोषण राशि रुपये 8000/- प्रति माह की दर से प्रत्येक महीने की 10 तारीख तक जमा करना जारी रखता है तो उक्त पुनरीक्षण विचाराधीन रहने के दौरान उसके विरुद्ध कोई उत्पीड़क कार्रवाई नहीं की जाएगी। उक्त राशि का भुगतान विचारण न्यायालय द्वारा उचित सत्यापन के बाद प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 से 4 को किया जाएगा।यह स्पष्ट किया जाता है कि भुगतान करने में चूक होने पर, जैसा कि ऊपर निर्देश दिया गया है, मौजूदा अंतरिम आदेश अपने आप रद्द हो जाएगा।"*

4. मौजूदा आपराधिक पुनरीक्षण के लिए प्रासंगिक मामले का तथ्यात्मक ताना बाना यह है कि आवेदक संख्या 1 (यहाँ पर प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2) ने अपनी और अपनी दो नाबालिग बेटियों वंशिका और निहारिका की ओर से अपने पति के विरुद्ध धारा 125 द.प्र.सं. के अधीन भरण-पोषण का मामला दायर किया था, जो यहाँ पर पुनरीक्षणवादी है,यह कि अनावेदक पक्ष के साथ उसका विवाह हिंदू संस्कारों और अनुष्ठानों के अनुसार 5.2.1998 को रचाया गया था, जिसमें उसके माता-पिता ने अपनी वित्तीय स्थिति के अनुसार उपहार और दहेज दिया था।शादी के बाद उसे उसके वैवाहिक घर भेज दिया गया और अनावेदक पक्ष के साथ उसके जुड़ाव से दो बेटियों का जन्म हुआ। उसके पति उस समय विदेश में काम करते थे और साल में एक बार घर वापस आते थे।आवेदक के पति की अनुपस्थिति में, उसके परिवार के सदस्य अतिरिक्त दहेज की मांग को पूरा न करने के कारण उसे परेशान और प्रताड़ित करते थे। अनावेदक पक्ष संख्या 1 एक कृषक है और विदेश में अपनी नौकरी से 1 लाख रुपये कमाता है। अनावेदक पक्ष संख्या 1 का व्यवहार भी समय के साथ आवेदक के प्रति बिगड़ता गया और वह उसे पीटता और प्रताड़ित करता था और पिछले छह वर्षों से उसे शारीरिक और मानसिक क्रूरता का शिकार बनाता था और अंततः उसे वर्ष 2011 में अपने वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया गया था। उसके पति स्नातकोत्तर हैं और उन्होंने चंडीगढ़ से एयर कंडीशनिंग में डिप्लोमा किया है। आवेदक भी स्नातक है । उसने वर्ष 2011 में कुछ समय के लिए एल.आई.सी. में एक एजेंट के रूप में काम किया, लेकिन उसके बाद उसकी एजेंसी ने उन्हें बर्खास्त कर दिया। एल.आई.सी. की एजेंसी में उसके द्वारा अर्जित राशि बहुत कम थी और उसकी जरूरतों को पूरा

करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। अनावेदक पक्ष उपस्थित हुआ और जबाब दावा दायर किया जिसमें उसने कहा कि आवेदक उसके खिलाफ झूठे आरोप लगा रही है, जो निराधार हैं। आवेदक को उसके माता-पिता ने गुमराह किया और वह स्वयं उसे शारीरिक और मानसिक रूप से उत्पीड़न कर रही थी।वास्तव में आवेदक संख्या 1 और उसकी माँ का इरादा है कि अनावेदक पक्ष के माता-पिता शहर में अपना घर छोड़कर गाँव चले जाएं, ताकि आवेदक अपनी माँ के साथ अपने वैवाहिक घर पर राज कर सके। अनावेदक अपने ही घर में रहता है। सुनवाई के दौरान, आवेदक संख्या 1 का बयान आवेदक गवाह-1 के रूप में और अनावेदक पक्ष (वर्तमान पुनरीक्षणवादी) का बयान अनावेदक गवाह-1 के रूप में दर्ज किया गया, जिसमें आवेदक ने अपने अभिवचनों का समर्थन किया और उसने कहा कि उसका पति पुर्तगाल में काम कर रहा था और उसकी वार्षिक आय 5 लाख रुपये है। जिरह में, उसने कहा है कि उसने कभी भी आर.पी.एम., गोरखपुर में अध्ययन नहीं किया या पढ़ाया नहीं था। उसके पति ने विदेश जाने के बाद उसे कोई पैसा नहीं भेजा। उसके ससुर को मस्तिष्क रक्तस्राव हुआ और वर्तमान में वह अपने वैवाहिक घर में रह रही है। उसकी शादी से पहले गोरखपुर में एक जमीन खरीदी गई थी। जिस घर में वह रह रही है, उसका निर्माण उसकी शादी के बाद किया गया था। वह अपने पति और सास-ससुर के साथ उस घर में रहती है। आवेदक और उसके बच्चों का खर्च उसके पति की आय से पूरा नहीं होता है। वह 2012 से अपने मामा इंद्रदेव प्रसाद कुशवाहा से ऋण ले रही है। अनावेदक गवाह -1 ने अपने साक्ष्य में कहा कि वह पुर्तगाल में एक मजदूर के रूप में काम कर रहा है। उसने 25.11.2008 को कागज संख्या 16-ख के रूप में एक एनकैश्ड सर्टिफिकेट दाखिल किया है। उसने अपने पिता के नाम पर एचडीएफसी बैंक से एक बीमा पॉलिसी ली थी, जिसका वार्षिक प्रीमियम 99999 है। हालाँकि, वह पॉलिसी अब बंद हो गई है, क्योंकि इसका प्रीमियम केवल तीन साल के लिए भुगतान किया गया था। उसने पुर्तगाल में कोई शादी नहीं की है। जब वह पुर्तगाल में रह रहा था, तब उसकी पत्नी ने अपने बच्चों का स्कूल बदल दिया। उसकी पत्नी उसके माता-पिता के साथ रहने के लिए तैयार नहीं है। उसके पिता ने उसे अपनी संपत्ति से बाहर कर दिया है। वह अब अपने पिता के साथ अपने घर में रह रहा है। वह भी कुछ समय के लिए उसी गाँव में रहता है। वह अपनी बेटियों की फीस संरचना से अवगत नहीं है।

5. सुनवायी के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करते हुए और पक्षकारों के अभिवचनों के आलोक में साक्ष्यों की गुणदोष विवेचना करते हुए, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, गोरखपुर ने आवेदकों की भरण-पोषण याचिका को रुपये 15000/-के लिए अनुमति दी, जिसे आवेदक संख्या 1, 2 और 3 के बीच मासिक भरण-पोषण के रूप में क्रमशः 7,000 रुपये, 4,000 रुपये और 4,000 रुपये के रूप में वितरित किया गया जिसे अनावेदक संख्या 1, जो इस न्यायालय के समक्ष मौजूदा पुनरीक्षणवादी है, द्वारा उन्हें दिया जाना था। देखें आक्षेपित आदेश दिनांक 21.1.2015 ।

6. आक्षेपित आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, पुनरीक्षणवादी ने मौजूदा पुनरीक्षण में यह रुख अपनाया है कि वह अनुबंध के आधार पर पुर्तगाल में एक मजदूर के रूप में काम कर रहा था और जब उसे इस तथ्य के बारे में पता चला कि उसके परिवार के सदस्यों को उसकी पत्नी द्वारा परेशान किया जा रहा है, तो वह विदेश में अपनी नौकरी का अनुबंध तोड़कर अपने घर वापस आ गया और अब वह बेरोजगार है और कृषि कार्य करते हुए अपने माता-पिता के घर में रहता है।वह अपनी पत्नी और बच्चों को मासिक भरण-पोषण के रूप में प्रति माह रु.15,000/- का भुगतान करने की स्थिति में नहीं है।

7. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणवादी वर्तमान में बेरोजगार है। वह ऑटो चलाकर और कुछ इधर उधर का काम करके अपनी आजीविका कमाता है। आपराधिक मामले के संबंध में, न्यायालय में उसके द्वारा अपने पासपोर्ट को सरेंडर कर दिया गया है। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिनांक 2.11.2021 के आदेश के तहत, भरण-पोषण आदेश पारित करने के बाद, बकाया भरण-पोषण राशि की प्राप्ति के लिए रुपये 553,000/- का उगाही वारंट जारी किया गया और फिर 30.6.2022 को, आवेदक के एक प्रार्थनापत्र (18-क) पर रुपये 6,30,000/- का उगाही वारंट पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध जारी किया गया, जिसकी एक प्रति प्रत्युत्तर शपथपत्र के साथ दाखिल है। इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के अनुपालन में, पुनरीक्षणवादी ने बकाया राशि की पूरी राशि 8,000/- रुपये प्रति माह की दर से जमा की है और इसके बाद 27.4.2015 से 8,000/- रुपये जमा किए हैं। उसने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत तलाक की याचिका भी दायर की थी, जिसके विरुद्ध इस न्यायालय में प्रथम अपील लंबित है। प्रतिपक्षीपक्ष संख्या 3 निहारिका, जो पुनरीक्षणवादी और प्रतिपक्षीपक्ष संख्या 2 की बेटी है, ने वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी और अब वह 21 वर्ष की हो गई है। वह भरण-पोषण के लिए पात्र नहीं है और उस कारण से, आवेदक ने आवेदन की प्रति और आवेदक संख्या 1 श्रीमती विनीता मौर्य द्वारा दायर निष्पादन याचिका की प्रति शपथ पत्र के संलग्नक संख्या 5 के रूप में दाखिल की थी , जो वंशिका की आयु लगभग 21 वर्ष और निहारिका की आयु 15 वर्ष दर्शाती है। प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 (विनीता मौर्य) भी सी. एस. सी., कुशीनगर में ब्लॉक सामुदायिक प्रबंधक के पद पर काम करती है और उसे प्रति माह Rs.40,000/- का वेतन मिलता है। पुनरीक्षणवादी ने प्रत्युत्तर शपथ पत्र में सी. एस. सी., हाटा, कुशीनगर के अनुबंध कर्मचारी की एक प्रति दाखिल की है, जिसमें प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 विनीता मौर्य का नाम बी.सी.पी.एम. के पद पर अनुबंध कर्मचारी के रूप में उल्लिखित है।

8. इसके विपरीत, प्रतिपक्षी पक्ष संख्या.2 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 की दोनों बेटियाँ अभी भी उस पर निर्भर हैं और इसलिए, उन्हें पुनरीक्षणवादी से भरण-पोषण की आवश्यकता है। निचले न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने के बाद प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 को सी. एस. सी., हाटा

में बी. सी. पी. एम. पर नौकरी मिली थी और कहा कि अगस्त, 2022 में नौकरी समाप्त कर दी गई। पुनरीक्षणवादी ऑटो नहीं चलाता है लेकिन वह ऑटो रिक्शा चलाता है। न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई दुर्बलता, अनियमितता या अवैधता नहीं है और मौजूदा पुनरीक्षण में इसकी संपुष्टि की जा सकती है। निचले न्यायालय ने पुनरीक्षणवादी द्वारा अपने पिता से विरासत छीनने की दलील को स्वीकार नहीं किया है। प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 स्वयं अपने बच्चों की ट्यूशन फीस वहन करती है।

9. पुनरीक्षणवादी की इस दलील को ध्यान में रखते हुए कि पुर्तगाल में नौकरी छूटने के कारण, नियमित रोजगार की कमी के बदले में, पुनरीक्षणवादी विद्वान निचले न्यायालय द्वारा आदेशित भरण-पोषण प्रदान करने की स्थिति में नहीं है। **अंजू गर्ग और एक अन्य बनाम दीपक कुमार गर्ग, दाण्डिक अपील संख्या 1693 वर्ष 2022 (एस.एल.पी.(क्रिमिनल)संख्या 10353 वर्ष 2018 से उत्पन्न),** के मामले में शीर्ष न्यायालय के हाल के निर्णय दिनांक 28.9.2022 में कानून अच्छी तरह से तय किया गया है। जहाँ पर उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया था, जिसमें जिला न्यायाधीश, परिवार न्यायालय-1, फरीदाबाद, हरियाणा द्वारा धारा 125 के अधीन एक याचिका में पारित आदेश को चुनौती दी गई थी। उक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 9 और 10 में निम्नानुसार देखा गया: -

> *9) शुरुआत में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि द.प्र.सं. की <u>धारा 125</u> की कल्पना एक महिला की पीड़ा, वेदना व अन्य वितीय कष्टों को कम करने के लिए की गई थी, जिसे वैवाहिक घर छोड़ने की आवश्यकता होती है, ताकि उसे स्वयं अपना व बच्चों का भरण-पोषण करने में सक्षम बनाने के लिए कुछ उपयुक्त व्यवस्था की जा सके, जैसा कि इस न्यायालय ने <u>भुवन मोहन सिंह बनाम मीना व अन्य</u> मामले में कहा था,1.उक्त मामले में इस न्यायालय ने पहले के फैसलों का उल्लेख करने के बाद, कानून के सिद्धांत को दोहराया है कि <u>धारा 125</u> द.प्र.सं. के तहत कार्यवाही से न्यायालय को कैसे निपटना है।यह निम्नलिखित रूप में अवधारित किया गयाः*
>
> *"दुख्तर जहाँ बनाम मोहम्मद फारूक में। [(1987) 1 एस. सी. सी. 624:*
>
> *1987 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 237] न्यायालय ने राय दी किः(एस. सी. सी. पृष्ठ 631, प्रस्तर 16)*
>
> *16."... <u>[संहिता की] धारा 125</u> के तहत कार्यवाही, यह अवश्य याद रखना चाहिए, कि एक संक्षिप्त प्रकृति की होती है और इसका उद्देश्य बेसहारा पत्नियों और बच्चों को, चाहे वे वैध हों या अवैध, त्वरित रीति से भरण-पोषण प्राप्त करने में सक्षम बनाना है।"*

"8. तीन न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ ने, विमला (के.) बनाम वीरास्वामी (के.) [(1991) 2 एस. सी. सी. 375:1991 एस. सी. सी. (क्रिमिनल)442] में संहिता की धारा 125 के तहत मूल उद्देश्य के बारे में चर्चा करते हुए कहा किः

(एस सी सी पृष्ठ . 378, प्रस्तर 3)

3."दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 का उद्देश्य सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त करना है।इसका उद्देश्य भटकाव और अभाव को रोकना है।यह परित्यक्त पत्नी को भोजन, कपड़े और आश्रय की आपूर्ति के लिए एक त्वरित उपचार प्रदान करता है।" 1 (2015) 6 एस. सी. सी. 353

9. कीर्तिकांत डी. वडोदरइआ बनाम गुजरात राज्य [(1996) 4 एस. सी. सी. 479 :1996 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 762 मामले में दो-न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने संहिता की धारा 125 के पीछे के प्रमुख उद्देश्य की ओर ध्यान करते हुए व्यवस्था दी किः (एस. सी. सी.] पृष्ठ 489, प्रस्तर 15)

15."... संहिता की धारा 125 में निहित प्रावधान के क्षेत्र और सीमा से निपटने के दौरान, यह ध्यान में रखना होगा कि प्रमुख और प्राथमिक उद्देश्य महिला, बच्चे और कमजोर माता-पिता आदि को सामाजिक न्याय देना है और उन लोगों को मजबूर करके अभाव और भटकाव को रोकना है जो उन लोगों का सहारा बन सकते हैं वे जो अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं लेकिन सहारे के लिए नैतिक दावा करते हैं। धारा 125 के प्रावधान उन महिलाओं, बच्चों और बेसहारा माता-पिता को त्वरित उपचार प्रदान करते हैं जो संकट में हैं। धारा 125 के प्रावधानों का उद्देश्य इस विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना है। धारा 125 में निहित परोपकारी प्रावधानों के पीछे प्रमुख उद्देश्य स्पष्ट रूप से यह है कि पत्नी, बच्चे और माता-पिता को संकट, अभाव और भुखमरी की असहाय स्थिति में नहीं छोड़ा जाना चाहिए।"

10. चतुर्भुज बनाम सीता बाई [(2008) 2 एस. सी. सी. 316:(2008) 1 एस. सी. सी. (सिविल) 547:(2008) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 356], में न्यायालय ने कानूनी स्थिति को दोहराते हुए अवधारित किया : (एस. सी. सी. पृष्ठ. 320, प्रस्तर 6)

6."... धारा 125 द.प्र.सं. सामाजिक न्याय का एक उपाय है और विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए

अधिनियमित किया गया है और जैसा कि इस न्यायालय ने कैप्टन रमेश चंदर कौशल बनाम वीणा कौशल [(1978) 4 एस. सी. सी. 70:1978 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 508] में उल्लेख किया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 द्वारा प्रवर्तित अनुच्छेद 15 (3) के संवैधानिक दायरे में आता है। इसका उद्देश्य एक सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त करना है। इसका उद्देश्य भटकाव और अभाव को रोकना है। यह परित्यक्त पत्नी को भोजन, कपड़े और आश्रय की आपूर्ति के लिए एक त्वरित उपचार प्रदान करता है।यह अपनी पत्नी, बच्चों और माता-पिता को बनाए रखने के लिए एक पुरुष के मूल अधिकार और प्राकृतिक कर्तव्यों को प्रभावी बनाता है जब वे खुद को बनाए रखने में असमर्थ होते हैं। उपरोक्त स्थिति को सविताबेन सोमाभाई भाटिया बनाम गुजरात राज्य [(2005) 3 एस. सी. सी. 636 :2005 एस. सी. सी. (क्रिमिनल)787]" में उजागर किया गया था।

11. हाल ही में, नागेंद्रप्पा नटिकर बनाम नीलम्मा [(2014) 14 एस. सी. सी. 452:(2015) 1 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 407:(2015) 1 एस. सी. सी. (सिविल) 346], में यह कहा गया है कि यह सामाजिक कानून का एक हिस्सा है जो एक ऐसी पत्नी को भरण-पोषण के माध्यम से संक्षिप्त और त्वरित राहत प्रदान करता है जो अपना और अपने बच्चों का पालन-पोषण करने में असमर्थ है।"

10) इस न्यायालय ने उपरोक्त टिप्पणियां की थीं क्योंकि न्यायालय ने महसूस किया था कि उक्त मामले में परिवार न्यायालय ने संहिता की धारा 125 के अधीन, उद्देश्यों और कारणों और प्रावधानों की भावना को ध्यान में रखे बिना कार्यवाही का संचालन किया था। हाथ लगे इस मामले में भी इस न्यायालय द्वारा ऐसी धारणा पायी गई है। परिवार न्यायालय ने कानून के मूल सिद्धांत की अवहेलना की थी कि पत्नी और नाबालिग बच्चों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, पति का पवित्र कर्तव्य है। पति को शारीरिक श्रम से भी धन अर्जित करने की आवश्यकता होती है, यदि वह एक सक्षम व्यक्ति है, और अधिनियम में उल्लिखित विधिक रूप से अनुमेय आधारों को छोड़कर, अपने दायित्व से बच नहीं सकता है। चतुर्भुज बनाम सीता बाई में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भरण-पोषण की कार्यवाही का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उसकी

पिछली उपेक्षा के लिए दंडित करना नहीं है, बल्कि एक परित्यक्त पत्नी को भोजन, कपड़े और आश्रय का त्वरित उपचार प्रदान करके उसके अभाव और भटकाव को रोकना है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा तय किया गया है, धारा 125 सामाजिक न्याय का एक उपाय है और विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए अधिनियमित है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 द्वारा प्रबलित अनुच्छेद 15 (3) के संवैधानिक दायरे में भी आता है।"

10. माननीय शीर्ष न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि न्यायालय प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुत दलीलों से प्रभावित नहीं है कि उसके पास आय का कोई स्रोत नहीं है क्योंकि उनका पार्टी व्यवसाय बंद हो गया है। प्रतिवादी शारीरिक रूप से समर्थ होने के कारण, वह वैध साधनों से कमाने और अपनी पत्नी और नाबालिग बच्चे का पालन-पोषण करने के लिए बाध्य है।

11. परिवार न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षणवादी की पत्नी के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और अभिलेख पर अन्य साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि यद्यपि अनावेदक के पास आय का पर्याप्त स्रोत था और वह शारीरिक रूप से समर्थ था, लेकिन वह असफल रहा और उसने आवेदकों के भरण पोषण में उपेक्षा की।

12. जहां तक पुनरीक्षणवादी और प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 की बेटी, प्रतिपक्षी पक्षसंख्या 3 वंशिका द्वारा वयस्कता प्राप्त करने के संबंध में पुनरीक्षणवादी के तर्क का संबंध है, पुनरीक्षणवादी की ओर से एक दलील ली गई थी कि धारा 125 के तहत याचिका विचाराधीन रहने के दौरान वयस्कता प्राप्त करने के बाद, प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 3 वंशिका,भरण-पोषण की हकदार नहीं है, धारा 125 के प्रावधानों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा सकता हैः-

"125. पत्नियों, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश.

(1) यदि कोई पर्याप्त साधन रखने वाला व्यक्ति उपेक्षा करता है या भरण-पोषण करने से इनकार करता है

(क) अपनी पत्नी, जो अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है, या

(ख) अपना वैध या अवैध अवयस्क बच्चा, चाहे वह विवाहित हो या न हो, जो अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है, या

(ग) अपना वैध या अवैध बच्चा (जो विवाहित बेटी नहीं है) जो वयस्क हो गया है, जहां ऐसा बच्चा किसी शारीरिक या मानसिक असामान्यता या चोट के कारण अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है, या

(घ) उसका पिता या माँ, जो अपना भरण-पोषण करने में

असमर्थ है, तो प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, ऐसी उपेक्षा या इनकार के प्रमाण पर, ऐसे व्यक्ति को अपनी पत्नी या ऐसे बच्चे, पिता या माँ के भरण-पोषण के लिए मासिक भत्ता देने का आदेश दे सकता है, जो कुल मिलाकर पाँच सौ रुपये से अधिक नहीं हो, जिसे मैजिस्ट्रैट ठीक समझे ,मासिक भत्ता दे और उस भत्ते का संदाय ऐसे व्यक्ति को करे जिसको संदाय करने का मैजिस्ट्रैट समय समय पर निदेश दे : बशर्ते कि मजिस्ट्रेट खंड (ख) में निर्दिष्ट अवयस्क लड़की के पिता को ऐसा भत्ता देने का आदेश दे सकता है, जब तक कि वह अपना वयस्कता प्राप्त नहीं कर लेती है, यदि मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि ऐसी अवयस्क लड़की के पति, यदि विवाहित है, के पास पर्याप्त साधन नहीं हैं।स्पष्टीकरण।- इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए,-

(क) "अवयस्क" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 (1875 का 9) के प्रावधानों के तहत अपना वयस्कता प्राप्त नहीं कर पाया है

(ख) "पत्नी" में एक ऐसी महिला शामिल है जिसका अपने पति से तलाक हो गया है या जिसने तलाक ले लिया है और जिसने पुनर्विवाह नहीं किया है।

(2) ऐसा भत्ता आदेश की तारीख से, या यदि ऐसा आदेश दिया जाता है, तो भरण- पोषण के लिए आवेदन की तारीख से देय होगा।

(3) यदि इस प्रकार, आदेश दिया गया कोई व्यक्ति, आदेश का पालन करने में पर्याप्त कारण के बिना विफल रहता है, तो ऐसा कोई मजिस्ट्रेट, आदेश के प्रत्येक भंग के लिए, जुर्माना लगाने के लिए प्रदान किए गए तरीके से देय राशि वसूल करने के लिए वारंट जारी कर सकता है, और ऐसे व्यक्ति को, वारंट के निष्पादन के बाद बिना भुगतान किए गए प्रत्येक महीने के भत्तों के पूरे या किसी भी हिस्से के लिए, एक अवधि के लिए कारावास की सजा दे सकता है जो एक महीने तक या जल्द भुगतान किए जाने तक हो सकती हैःबशर्ते कि इस खंड के तहत देय किसी भी राशि की वसूली के लिए कोई वारंट तब तक जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि अदालत को उस तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर ऐसी राशि वसूल करने के लिए आवेदन नहीं किया जाता है जिस दिन वह देय हुई थीःबशर्ते कि यदि ऐसा व्यक्ति अपनी पत्नी को उसके साथ रहने की शर्त पर रखने की पेशकश करता है, और वह उसके

साथ रहने से इनकार करती है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट उसके द्वारा बताए गए इनकार के किसी भी आधार पर विचार कर सकता है, और इस तरह के प्रस्ताव के बावजूद इस खंड के तहत आदेश दे सकता है, यदि वह संतुष्ट है कि ऐसा करने के लिए उचित आधार है। स्पष्टीकरण।- यदि किसी पति ने किसी अन्य महिला के साथ विवाह किया है या किसी मालकिन को रखा है, तो यह उसकी पत्नी द्वारा उसके साथ रहने से इनकार करने के लिए उचित आधार माना जाएगा।

(4) कोई भी पत्नी इस खंड के तहत अपने पति से भत्ता प्राप्त करने की हकदार नहीं होगी यदि वह व्यभिचार में रह रही है, या यदि, बिना किसी पर्याप्त कारण के, वह अपने पति के साथ रहने से इनकार करती है, या यदि वे आपसी सहमति से अलग रह रहे हैं।

(5) इस बात के प्रमाण पर कि कोई भी पत्नी जिसके पक्ष में इस खंड के तहत आदेश दिया गया है, व्यभिचार में रह रही है, या कि पर्याप्त कारण के बिना वह अपने पति के साथ रहने से इनकार करती है, या कि वे आपसी सहमति से अलग रह रहे हैं, मजिस्ट्रेट आदेश को रद्द कर देगा।"

13. धारा 125 (1) (ग) द.प्र.सं. के प्रावधान और उससे जुड़े स्पष्टीकरण के आधार पर, उपरोक्त तर्क पुनरीक्षणवादी की ओर से दिए गए हैं।

14. माननीय शीर्ष न्यायालय ने इस मामले पर **जगदीश जुग्तावत बनाम मंजू लता और अन्य**, विशेष अनुमति याचिका (अपराधिक) संख्या 905 वर्ष 2001,निर्णीत दिनांक 23.4.2002, में विचार किया था। उस मामले में, प्रतिवादी संख्या 3, जो अपीलकर्ता की अवयस्क, अविवाहित लड़की थी, हालांकि, समय के साथ, उसने वयस्कता प्राप्त कर लिया और उसकी पत्नी मंजुलता प्रतिवादी नं.1, अपीलकर्ता की पत्नी और प्रतिवादी नं. 3 की माँ, ने अपने और अपने दो बच्चों के लिए भरण-पोषण का दावा करते हुए परिवार न्यायालय के समक्ष धारा 125 द.प्र.सं. के तहत याचिका दायर की, परिवार न्यायालय ने दिनांक 22.7.2000 के आदेश द्वारा प्रत्येक आवेदक को रु.500-प्रति माह की दर से भरण-पोषण प्रदान किया। यहाँ पर याचीगण, ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर परिवार न्यायालय के आदेश को चुनौती दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 3 केवल तब तक भरण-पोषण का हकदार था जब तक कि वह वयस्क नहीं हो जाती और उसके बाद नहीं। इस बिन्दु पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस कानूनी स्थिति को स्वीकार किया कि धारा 125 के तहत, एक नाबालिग केवल तब तक अपने माता-पिता से भरण-पोषण का हकदार है जब तक कि वह वयस्क नहीं हो जाती है, लेकिन हिंदू दत्तक-ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम की धारा

20 (3) से संकेत लेते हुए परिवार न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर देता है, जिसके तहत नाबालिग बेटी को उसकी शादी तक भरण-पोषण का अधिकार दिया जाता है।विद्वान एकल न्यायाधीश को कार्यवाही की बहुलता से बचने के दृष्टिगत परिवार न्यायालय के आदेश को बनाए रखने के लिए राजी किया गया था, इस टिप्पणी के साथ कि न्यायालय प्रतिवादी संख्या 3 को इस आधार पर भरण-पोषण देने वाले परिवार न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है कि वह वयस्कता प्राप्त करने के बाद धारा 125 के प्रावधानों का लाभ प्राप्त करना बंद कर देगी। यद्यपि वह अधिनियम/व्यक्तिगत कानून के तहत प्रदान किए गए लाभों का दावा करने की हकदार होगी, क्योंकि आदेश के परिणामस्वरूप न्याय का गर्भपात नहीं होता है, बल्कि आदेश में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादी संख्या 3 को बहुत असुविधा होगी क्योंकि वह आगे के भरण-पोषण आदि के लिए अधिनियम की धारा 20 की उप-धारा (3) के तहत एक और याचिका दायर करने के लिए मजबूर होगी। माननीय शीर्ष न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए निष्कर्ष और अवलोकन की संपुष्टि की और कहा कि हस्तागत इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर सिद्धांत को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि एक अवयस्क लड़की का वयस्क हो जाने पर विवाह तक उसके माता-पिता से भरण-पोषण का अधिकार हिंदू दत्तक-ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम की धारा 20 (3) में मान्यता प्राप्त है। इसलिए, परिवार न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बनाए रखने के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय/आदेश में कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है जो हिंदू दत्तक-ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम की धारा 20 (3) और धारा 125 द.प्र.सं. के संयुक्त पठन पर आधारित है। पूर्वोक्त कारणों से हमारा विचार है कि तथ्यों पर और मामले की परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय आदेश में कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

15. इस प्रकार, उपरोक्त मामलों में माननीय शीर्ष न्यायालय की घोषणाओं के आलोक में, इस न्यायालय की राय है कि पुनरीक्षणवादी की ओर से उठाई गई दलील कि अपनी नौकरी खोने और किसी भी नियमित रोजगार से वंचित होने के कारण, पुनरीक्षणवादी अपनी पत्नी और बच्चों को बनाए रखने के दायित्व से भारित नहीं हो सकता है, मान्य नहीं है। इसी तरह, प्रतिपक्षी संख्या 3 वंशिका, जो पुनरीक्षणवादी और प्रतिपक्षी संख्या 2 की बेटी है, केवल इस आधार पर विद्वान परिवार न्यायालय द्वारा दिए गए भरण-पोषण से वंचित नहीं होगी कि कार्यवाही विचाराधीन रहने के दौरान, उसने वयस्कता प्राप्त कर लिया था। हालाँकि, यह न्यायालय इस तथ्य से अनजान नहीं है कि जब परिवार न्यायालय के विद्वान प्रधान न्यायाधीश द्वारा भरण-पोषण का आदेश दिया गया था, देखें आदेश दिनांक 21.1.15, तो पुनरीक्षणवादी अपनी आजीविका के संबंध में पुर्तगाल में रह रहा था और इस प्रकार इस तथ्य से इनकार नहीं किया जाता है कि अब उसने विदेश में अपनी नौकरी खो दी है और अपने माता-पिता के स्थान पर वापस आ गया है। यह भी स्वीकृतमान्य स्थिति है कि पुनरीक्षणवादी और निजी प्रतिपक्षीगण एक ही

घर में रह रहे हैं, जिसे पुनरीक्षणवादी के माता-पिता द्वारा बनाया गया कहा जाता है। उसने एक दलील ली है कि वह कुछ विषम नौकरियों जैसे टेम्पो चलाने जैसा से आजीविका कमाता है और अल्प राशि में कमाता है, जबकि निजी प्रतिपक्षी पक्षगण के लिए विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों और निजी प्रतिपक्षी पक्षगण की ओर से दायर जवाबी शपथ पत्र में किए गए अभिकथनों के अनुसार, उसके आश्रित बच्चों की शुल्क संरचना समय के साथ बढ़ाई गई है और वे निजी गृह शिक्षक द्वारा ट्यूशन भी ले रहे हैं; इसमें यह भी कहा गया है कि यह कहना गलत होगा कि पुनरीक्षणवादी की कोई कमाई नहीं है और वह बेरोजगार हो गया है । पुनरीक्षणवादी ने धारा 125 द.प्र.सं. के तहत कार्यवाही में निचले न्यायालय के समक्ष अपनी वास्तविक आय का खुलासा नहीं किया है। उसने इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश द्वारा संशोधित, निचले न्यायालय द्वारा दिए गए भरण-पोषण के भुगतान में कई चूक की हैं।

16. पुनरीक्षणवादी से संबंधित परिवर्तित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसने उसकी कमाई को प्रभावित किया है क्योंकि उसने पुर्तगाल में अपनी नौकरी खो दी है, इस न्यायालय का विचार है कि प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 से 4 के भरण-पोषण के लिए विद्वान निचले न्यायालय द्वारा आदेशित राशि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में संशोधन किए जाने योग्य है। मौजूदा पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध निजी प्रतिपक्षी पक्षगण को भरण-पोषण प्रदान करने के लिए निचले न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को नीचे उल्लिखित सीमा तक संशोधित किया जाता हैः-

(1) पुनरीक्षणवादी प्रतिपक्षी पक्ष संख्या 2 विनीता मौर्य को 5,000/- रुपये की दर से और उसकी बेटियों वंशिका और निहारिका को - प्रत्येक को Rs.2500 की दर से- मासिक भरण-पोषण भत्ता का भुगतान करेगा ,जो कि 1.1.2015 से प्रभावी होगा, यह आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन निचले न्यायालय द्वारा विहित रीति से जब कभी भी देय होगा।

(2) भरण-पोषण के बकाया की गणना उपरोक्त निर्देश संख्या 1 के अनुसार, 1.1.2015 से की जाएगी और प्रतिपक्षी पक्षगण को 10 समान और मासिक किश्तों में देय होगी, जो संबंधित न्यायालय के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के दिनांक से एक महीने की अवधि से शुरू होगी।

(3) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय के अधिनिर्णय के संदर्भ में या इस न्यायालय के अंतरिम आदेश दिनांक 25.3.2015 के संदर्भ में, प्रतिपक्षी पक्षगण 2 से 4 को देय भरण-पोषण भत्ता के लिए पुनरीक्षणवादी द्वारा जमा की गई किसी भी राशि को पुनरीक्षणवादी द्वारा देय राशि में समायोजित किया जाएगा। पुनरीक्षणवादी द्वारा देय राशि 10 मासिक किश्तों में विस्तारित होगी जैसा कि ऊपर बताया गया है। हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि आदेश के किसी भी हिस्से का अनुपालन करने में पुनरीक्षणवादी की ओर से विफलता की स्थिति में, उस स्तर से उत्पीड़क उपायों को पुनर्जीवित किया जाएगा और कानून के अनुसार वसूली की जाएगी।

17. तदनुसार, पुनरीक्षण याचिका का निस्तारण

इस तरीके से किया जाता है और निचले न्यायालय द्वारा दिए गए भरण-पोषण को उपरोक्त सीमा तक, तदनुसार, संशोधित होगा।

18. इस आदेश की एक प्रति, जानकारी और आवश्यक कार्रवाई के लिए, संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 90

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1416 / 2023

उपरेंद्र और अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री रविकान्त शुक्ल

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री मानवेन्द्र सिंह

(ए) दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3),161,164 एवं 397/401 - पुनरीक्षण - धारा 319 - अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा-506 एवं 376डी लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा-7/8 - सामग्री प्रथम दृष्टया मामले से अधिक होनी चाहिए जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया जाता है, लेकिन इस सीमा तक संतुष्टि की कमी कि साक्ष्य का खंडन न किए जाने पर दोषसिद्धि हो जाएगी - गवाह की अल्पवयस्कता ही उसकी गवाही को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकती यदि वह अपनी गवाही को समझने के लिए काफी परिपक्व है। (पैरा-18)

वादी (पीड़िता के पिता) का धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया - पुनरीक्षणकर्ताओं को वाद का सामना करने के लिए बुलाया गया, इसलिए पुनरीक्षण योजित किया गया। (पैरा - 2)

(बी) दंड विधि - दंड संहिता प्रक्रिया, 1973 - धारा 319 - विचरण के समय उपलब्ध सामग्री भी धारा-319 सीआरपीसी के प्रयोजन के लिए साक्ष्य है - विचरण के दौरान केवल वही सामग्री उपलब्ध हो सकती है जो विवेचक द्वारा विवेचना के दौरान धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए एकत्रित की गई सामग्री है - परीक्षण के दौरान दर्ज साक्ष्य के अतिरिक्त, संज्ञान लेने के बाद और परीक्षण शुरू होने से पहले अदालत द्वारा प्राप्त की गई कोई भी सामग्री धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति को लागू करने के लिए अदालत द्वारा दर्ज साक्ष्य का समर्थन करने और पुष्टि के लिए उपयोग की जा सकती है। (पैरा - 11,12)

निर्णय:-अभियोजन पक्ष द्वारा विवेचना के समय उपलब्ध जांच एजेन्सी के साक्ष्य तथा परीक्षण के दौरान पीडब्लू-1 का बयान से एकत्रित सामग्री, अपराध में अभियोक्ताओं की संलिप्तता स्थापित करने के लिए धारा-319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभियोक्ताओं को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब करने के लिए पर्याप्त नहीं है। (पैरा-19)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य., (2014) 3 सी सी 92
2. सागर बनाम यूपी राज्य, (2022) 6 एससीसी 389

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल, द्वारा प्रदत्त.)

(I) पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रविकांत शुक्ला एवं विपक्षीय संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मानवेंद्र सिंह तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

1. इस पुनरीक्षण के माध्यम से पुनरीक्षणकर्ता जो संख्या में 2 हैं, ने विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (बलात्कार एवं पाक्सो अधिनियम) न्यायालय संख्या 1 फतेहपुर द्वारा विशेष सत्र विचारण संख्या 101 सन 2019 में पारित आदेश दिनांकित 4-2- 2023 को चुनौती दी है। जिसके द्वारा धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रथम सूचनादाता (पीड़िता के पिता) के प्रार्थनापत्र को स्वीकार किया गया तथा पुनरीक्षणकर्ता को धारा 506 व 376 (डी) भारतीय दंड संहिता सपठित धारा 7/8 बालकों का लैंगिक संरक्षण अधिनियम 2012 के अंतर्गत विचारण हेतु आहूत किया गया।
2. पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध अधिवक्ता का तर्क यह है कि दिनांक 25-2-19 की घटना के लिए पीड़िता के पिता के द्वारा थाना बिंदकी जनपद फतेहपुर में अपराध संख्या 83 सन 2019 पर यह आरोप लगाते हुए की पवन रैदास ने उसके 13 वर्षीय पुत्री रेनू देवी को बहला फुसला कर घर से भगा ले गया तथा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने भी उसके उक्त अपराध में सहयोग किया। दिनांक 6-9-2019 को प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत कराई गई। विवेचना के मध्य पीड़िता का बयान अंतर्गत धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता अभिलिखित किया गया। तत्पश्चात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अंतर्गत बयान अभिलिखित किया गया। लेकिन पीड़िता ने वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई भी आरोप नहीं लगाये। बल्कि इसके विरुद्ध उसने स्वीकार किया कि वह पवन को पसंद करती है इसलिए अपनी इच्छा से उसके साथ भागी थी। विवेचना के दौरान पीड़िता का चिकित्सीय परीक्षण किया गया जिसमें लैंगिक हमले के संबंध में कोई राय नहीं दी गई । तथा सीएमओ ने रेडियोलॉजिकल परीक्षण के आधार पर अपना प्रमाणपत्र दिनांक अंकित 4-4-2019 में पीड़िता रेनू देवी की आयु 19 वर्ष उल्लिखित किया । उसके पश्चात विवेचक ने दिनांक 1-6-2019 को सहअभियुक्त पवन रैदास के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया। तथा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता की संलिप्तता गलत पाई गई । यह भी कहा गया की विवेचना के मध्य सहअभियुक्त पवन तथा पीड़िता रेनू देवी तथा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने भी जनपद फतेहपुर बिंदकी पुलिस थाने में दर्ज अपराध संख्या 83 सन 2019 पर दर्ज प्रथम सूचना

रिपोर्ट का आपराधिक प्रकीर्ण याचिका 7322 वर्ष 2019 के माध्यम से माननीय न्यायालय में चुनौती दी थी । उसे रिट याचिका में पीड़िता रेनू देवी ने शपथ पत्र दाखिल किया था जिसमें उल्लेख किया था कि वह पवन के साथ अपनी मर्जी से भागी थी तथा उसने उससे शादी कर ली है । पीड़िता रेनू देवी के पूर्वोक्त शपथ पत्र के आधार पर रिट याचिका सभी याचिकर्ताओं जिसमें वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता भी शामिल था आरोप पत्र दाखिल होने तक गिरफ्तारी से अंतरिम सुरक्षा प्रदान करते हुए निस्तारण कर दी गई।

3. आगे यह भी कहा गया कि यह सभी अभिलेख निचले न्यायालय के समक्ष जांच के दौरान मौके पर थे और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर सह अभियुक्त पवन रैदास के विरुद्ध आरोप विरचित किए थे । विचारण के दौरान अभियोजन साक्षी संख्या 1 (पीड़िता) अपने बयान से पलट गई और कहा कि वर्तमान निरीक्षणकर्ता और सह अभियुक्त पवन रैदास ने उसे बोलेरो कर पर जबरदस्ती बैठाया और धमकी दिया कि उसे पवन के साथ शादी करनी पड़ेगी। उसके बाद उन्होंने उसे महाराजपुर में रखा व कई दिनों तक बार-बार बलात्कार किया । उसके बाद पवन ने सादे कागज पर दस्तखत करने के लिए विवश किया। पुलिस ने जब उसके घर पर दबिश दी तो पीड़िता को बिंदकी , ललौली चौराहे में छोड़कर भाग गए । जहां पर पुलिस ने उसे बरामद किया । आगे यह भी तर्क दिया गया कि पी डब्लू 1 का बयान उसके पिता जो की प्रथम सूचना दाता हैं कि ? कहने पर अभिलिखित किया गया को परीक्षणकर्ता की चाची (आंटी) गुड़िया देवी ने 13-11-2007 को 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया । जो कि परिवाद संख्या 57 सन 2018 के रूप में दर्ज किया गया । जिसमें तलबी आदेश दिनांक 19-7-22 पारित किया गया । पी डब्लू 1 के पिता (जय करन निषाद) को तलब करके 19-7-22 को प्रथम सूचना दाता के विरुद्ध 18-9-17 की घटना के लिए लज्जा भंग करने तथा उसके तथा उसके परिवारजनों को मारने व चोट पहुंचाने के लिए आरोप विरचित किया गया।

4. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंतिम समय तक यह प्रस्तुत किया कि धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत तलब किए जाने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं है । 3-11-20 को पी डब्लू 1 के न्यायालय में अभिलिखित किए गए बयान के आधार पर केवल पूर्व में दिए गए 161 एवं 164 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभिलिखित किए गए बयान से पलट जाना ही नहीं है बल्कि पी डब्लू 1 के बयान में गंभीर विरोधाभास था । अतः आक्षेपित आदेश को रद्द किए जाने की याचना की ।

5. दूसरी ओर विपक्षी संख्या 2 ने कहा कि पुनरीक्षणकर्ता की चाची (आंटी) द्वारा दाखिल किया गया कथित परिवाद पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध प्रथम सूचना दाता (पीड़िता के पिता) के द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद दर्ज कराई

गई। आगे यह प्रस्तुत किया गया की पी डब्लू 1 के बयान एवं स्कूल प्रमाण पत्र के अनुसार उसकी जन्म तिथि 15.1.2006 है इसलिए घटना के समय पीड़िता नाबालिग थी । इसलिए उसका 161 व 164 सीआरपीसी के अंतर्गत अभिलिखित किए गए बयान का कोई साक्ष्यात्मक मूल्य नहीं है।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी यह कहा कि पी डब्लू 1 के बयान के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता को धारा 319 के अंतर्गत तलब किए जाने हेतु पर्याप्त सामग्री अभिलेख पर है । इसलिए प्रस्तुत पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है ।
7. उभयपक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने एवं अभिलेखों के परिशीलन के उपरांत पहला सवाल यह उठता है कि क्या विवेचना के दौरान जैसे 161 एवं 164 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत बयान व जांच के दौरान एकत्र सामग्री , चिकित्सीय परीक्षण आख्या व सीएमओ का आयु निर्धारण प्रमाण पत्र एवं विचारण के दौरान अभिलिखित किए गए साक्ष्य के आधार पर धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभियुक्त को तलब करने के लिए विचार में लिया जा सकता है ।
8. दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या विचारण के दौरान पी डब्लू 1 के कथन के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता को तलब करने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।
9. **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014) 3 एससीसी 92** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पैराग्राफ नंबर 54 में प्रेषण किया गया था जिसे नीचे उल्लिखित किया जा रहा है -

'54. मेरी राय में जांच का प्रक्रम साक्ष्य के अपने कठोर कानूनी भाव की परिकल्पना नहीं करता और न तो विधायिका ने ही इसकी परिकल्पना की थी। क्योंकि साक्ष्य का प्रक्रम अभी आया नहीं है । न्यायालय के समक्ष केवल वही सामग्री है जो सामग्री अभियोजन द्वारा एकत्र की गई है और न्यायालय इस स्तर पर अपने मस्तिष्क का प्रथमदृष्टया प्रयोग यह ज्ञात करने के लिए कर सकता है कि एक व्यक्ति जो अभियुक्त हो सकता है उसे अभियोजन एजेंसी द्वारा त्रुटिवश आरोपित नहीं किया गया है या उसे जानबूझकर अलग किया गया है । यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या अभियोजन एजेंसियों ने उन व्यक्तियों को जो विचारण किए जाने योग्य हैं न्यायालय के सामने लाने में और जानबूझकर उन व्यक्तियों को बचाए जाने से रोकने के लिए जिनका की विचारण किया जाना चाहिए निष्पक्षता से काम किया है । न्याय प्रणाली में विश्वास जगाने के लिए यह सब और भी आवश्यक है जिसके लिए जांच के स्तर पर भी न्यायालय को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार दिया जाना चाहिए । और यही कारण है कि विधायिका ने सचेत हो धारा 319 में जांच एवं विचारण में अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया है। माननीय उच्चतम न्यायालय के

परीक्षण से स्पष्ट है कि धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्य के लिए जांच के प्रक्रम पर उपलब्ध सामग्री भी साक्ष्य है।

10. माननीय उच्चतम न्यायालय के प्रेक्षण से स्पष्ट है की धारा 319 दंड प्रकिया संहिता के उद्देश्य के लिए जांच के प्रक्रम पर उपलब्ध सामग्री भी साक्ष्य है। यह भी स्पष्ट है कि जांच के मध्य केवल वही सामग्री उपलब्ध हो सकती है जो विवेचक द्वारा विवेचना के दौरान एकत्र की जाती है। क्योंकि उस समय कोई और सामग्री अभिलेख पर नहीं लाया जा सकता था। धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्य के लिए शक्तियों का प्रयोग करने वाली जांच के मध्य उपलब्ध सामग्री की सुसंगतता का प्रश्न उत्पन्न होता है। लेकिन इसका उत्तर भी माननीय उच्चतम न्यायालय के वाद **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (उक्त)** पैराग्राफ 85 में दिया गया है जो नीचे उल्लिखित किया गया है -

85. यहां ऊपर की गई चर्चा एवं निकाले गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए पूर्व में उठाए गए प्रश्न का उत्तर यह है कि विचारण के दौरान अभिलिखित किए गए साक्ष्य के अलावा कोई सामग्री जो न्यायालय द्वारा संज्ञान लिए जाने के बाद व विचारण शुरू होने से पहले प्राप्त की जाती है का उपयोग धारा 319 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने के लिए न्यायालय द्वारा अभिलिखित साक्ष्य की पुष्टि व समर्थन के लिए की जा सकती है। साक्ष्य केवल विचारण के दौरान अभिलिखित किए गए साक्ष्य तक सीमित हैं।

11. इसलिए धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विचारण के मध्य अभिलिखित किए गए साक्ष्य के अलावा कोई सामग्री जो संज्ञान लेने के बाद व विचारण प्रारंभ होने के पूर्व न्यायालय द्वारा प्राप्त की गई हो का उपयोग धारा 319 की शक्ति का प्रयोग करने के लिए न्यायालय द्वारा अभिलिखित साक्ष्य की पुष्टि व समर्थन के लिए की जा सकती है ।
12. इस प्रकार परीक्षण के दौरान दर्ज साक्ष्य साक्ष्य तक ही सीमित है लेकिन पूछताछ के दौरान जो साक्ष्य उपलब्ध है इसकी पुष्टि या समर्थन किया जा सकता है।
13. जहाँ तक दूसरे प्रश्न पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने के लिए पर्याप्त सामग्री की उपलब्धता के संबंध में है उस उद्देश्य के लिए परीक्षण के समय दर्ज किए गए पी डब्लू 1 के बयान का आधार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उल्लिखित किया है। **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (उक्त)** के पैराग्राफ संख्या 105 व 106 में विस्तृत दिशा निर्देश पहले ही जारी किए जा चुके हैं जिन्हें नीचे उद्घत किया गया है -

105 - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है । इसका प्रयोग संयमित रूप से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियों उचित हो । इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना

चाहिए चूंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उसे अपराध को करने का दोषी हो सकता है । जब किसी व्यक्ति के खिलाफ न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों से मजबूत और ठोस प्रमाण मिलते हैं केवल तभी ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए न कि आकस्मिक और लापरवाह तरीके से ।

106 - इस प्रकार हमारा मानना है कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों से केवल प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है , जरूरी नही कि प्रति परीक्षा के आधार पर परीक्षण किया जाए । इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना की तुलना में कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है। जो प्रथम दृष्टा मामले से अधिक है वह लागू किया जाना है। जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था । लेकिन साक्ष्य में इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि यदि खंडन नहीं किया जाता है तो दोष सिद्ध हो जाएगी । इस तरह की संतुष्टि के अभाव में न्यायालय को धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान करने का उद्देश्य स्पष्ट है कि यदि साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति ने जो आरोपी नहीं है कोई अपराध किया है तो ऐसे व्यक्ति पर अभिव्यक्त के साथ-साथ मुकदमा चलाया जा सकता है । जो शब्द प्रयोग किए गए हैं वह उसके लिए नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को दंडित किया जा सके । इसलिए धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत न्यायालय द्वारा अभियुक्त के अपराध की कोई राय बनाने की गुंजाइश नहीं है ।

14. इसी प्रकार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 6 एससीसी 389** में भी उसी प्रकार धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत पर्याप्त सामग्री के साथ-साथ शक्ति से संबंध में भी अवलोकन किया गया । उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नंबर 9 निम्न अनुसार उद्घत किया गया है -

9. संविधान पीठ ने चेतावनी दी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग संयमित रूप से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले के परिस्थितियाँ इतनी आवश्यक हो जैसा कि ऊपर देखा गया है। इसका लागू किया जाना प्रथम दृष्टया मामले से अधिक होना चाहिए जैसा कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किया गया था । लेकिन साक्ष्य में इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि यदि वह अप्रमाणित हो जाता है तो दोषसिद्धि हो जाएगी। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 को लागू करते

समय इस न्यायालय द्वारा निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों पर भी विचार करने में विफल रहा है । जिस पर विद्वान परीक्षण न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 30 जनवरी 2018 के तहत विचार किया है।

15. धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता से यह स्पष्ट है कि पूछताछ या परीक्षण के दौरान रिकार्ड पर आने वाली सामग्री के आधार पर किसी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है । त्वरित संदर्भ के लिए धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता नीचे के अनुसार उद्घत किया जा रहा है -

319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति -

(I) जहां किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है, जिसके लिये ऐसे व्यक्ति का अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है, वहां न्यायालय उस व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिये जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, कार्यवाही कर सकता है।

30. जहाँ ऐसा व्यक्ति न्यायालय में हाजिर नहीं है वहां पूर्वोत प्रयोजन के लिये उसे मामले की परिस्थितियों को अपेक्षानुसार गिरफ्तार या समन किया जा सकता है।

31. कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार या समन न किये जाने पर भी न्यायालय में हाजिर है, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध के लिये, जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है. जांच या विचारण के प्रयोजन के लिये निरुद्ध किया जा सकता है -

32. जहाँ न्यायालय किसी व्यक्ति के विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही करता है, वहां-

(क) उस व्यक्ति के बारे में कार्यवाही फिर से प्रारम्भ की जायेगी और साक्षियों को फिर से चुना जायेगा:

(ख) खण्ड (क) के उपबन्धों के अधीन रहते हुये मामले में ऐसे कार्यवाही की जा सकती है, मानो कि वह व्यक्ति उस समय अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान किया था जिस पर जांच या विचारण प्रारम्भ किया गया था।

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 का उद्देश्य न्यायालय को यह कर्तव्य अधिरोपित करने में सक्षम बनाना है ताकि ऐसी किसी भी स्थिति को शामिल किया जा सके जिससे न्यायालय को अपराध की सुनवाई के लिए आगे बढ़ाने के दौरान निपटना पड़ सकता है। जिससे वह ऐसे व्यक्ति को अनुमति न दे जो मुकदमे में दोषी ठहराए जाने की बजाय अनुरक्षण पाने की कोशिश करने का हकदार है। उसकी मिलीभगत की संभावना के बारे में अभियोजन द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज से पता लगाया जा सकता है। न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार है और कानून के शासन को

बनाए रखने का कर्तव्य उस पर डाला गया है। और इसलिए आपराधिक न्याय प्रणाली में न्यायालय के पास ऐसी शक्ति के अस्तित्व को नकारना अनुचित होगा। यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक आरोपी कभी-कभी जांच या अभियोजन एजेंसी के साथ छेड़छाड़ करके बच जाता है । एक आरोपी जांच या पूछताछ के चरण में खुद को दोष मुक्त करवाने का प्रयास करता है । भले ही वह अपराध के कमीशन से जुड़ा हो । अतः धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता में प्रयुक्त शब्द साक्ष्य को परीक्षण व पूछताछ के स्तर पर हमें इसे इसके व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए। इसलिए यह समझा जाना चाहिए की अदालत के पास किसी भी व्यक्ति को उसके समक्ष प्रस्तुत ऐसी किसी भी सामग्री के आधार पर समन करने के बाद इसके खिलाफ आगे बढ़ने की शक्ति है । मुकदमे के दौरान साक्ष्य पेश किए जाने के बाद ऐसी सामग्री पर सावधानी से ऐसी शक्ति लागू करने पर न्यायालय का कर्तव्य और दायित्व अधिक कठिन हो जाता है।

17. अब हम दूसरे प्रश्न पर आते हैं कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत परीक्षण के दौरान दर्ज किए गए पी डब्लू 1 के बयान के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने के लिए पर्याप्त सामग्री है। अपने बयान में पी डब्लू 1 ने स्वीकार किया कि किसी भी हमले के उद्देश्य के साथ-साथ उसकी उम्र के निर्धारण के उद्देश्य से भी उसकी चिकित्सीय जांच की गई थी। और उसका बयान मजिस्ट्रेट के द्वारा दर्ज किया गया था। लेकिन उसने कहा था कि उसका बयान धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत सह अभियुक्त पवन और उसके पिता हरिलाल की धमकी के तहत लिखा गया। अपने बयान के एक चरण में पी डब्लू 1 ने कहा है कि केवल पवन उसके साथ कमरे में रह रहा था और कोई अन्य व्यक्ति वहां नहीं था। लेकिन बाद में उसने कहा की सभी व्यक्ति उसके साथ कमरे में रह रहे थे। मुख्य परीक्षा में उसने कहा कि सभी व्यक्तियों ने उसके साथ बार-बार बलात्कार किया । लेकिन जिरह में पी डब्लू 1 ने कहा कि पवन को छोड़कर केवल पुनरीक्षणकर्ता नंबर 1 ने उसके साथ बलात्कार किया और किसी अन्य व्यक्ति ने उसके साथ बलात्कार नहीं किया। परीक्षण के दौरान केवल पी डब्लू 1 का बयान था जो आक्षेपित आदेश पारित करने का आधार था और रिकॉर्ड पर कोई अन्य सबूत नहीं था जो यह दर्शाता हो कि किसी अन्य व्यक्ति ने उपरोक्त घटना देखी है जैसा कि पी डब्लू 1 द्वारा कहा गया है । पी डब्लू 1 के बयान की समग्रता के साथ-साथ पूछताछ के समय उपलब्ध सामग्री यानी धारा 161 और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान के साथ इसकी पुष्टि पर विचार करने पर पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने के लिए साक्ष्य पर्याप्त नहीं है। क्योंकि स्थापित कानून के अनुसार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परीक्षण यह है कि सामग्री प्रथम दृष्टया मामले से अधिक होनी चाहिए जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था। लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी थी कि यदि साक्ष्य अप्रमाणित हो गए तो

दोषसिद्ध हो जाएगा। जहां तक विपक्षी नंबर 2 के अधिवक्ता की दलील है कि पीड़िता के स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र के अनुसार वह नाबालिग है इसलिए उसका बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 और 164 के तहत दर्ज किया गया है प्रासंगिक नहीं है । वह भी गलत धारणा है क्योंकि यदि इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है तो पी डब्लू 1 के रूप में परीक्षण के दौरान उसका बयान भी साक्ष्य के रूप में नहीं माना जाएगा । अन्यथा यह भी कानून की स्थापित स्थित है कि किसी गवाह का कम आयु का होना ही उसकी गवाही को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता है यदि वह अपनी गवाही को समझने के लिए काफी परिपक्व है।

18. इसलिए समग्रता में जांच के दौरान अभियोजन एजेंसी द्वारा एकत्र की गई सामग्री और जांच के दौरान दर्ज किए गए पी डब्लू 1 के बयान पर अतिरिक्त शक्ति के प्रयोग में विचार करना धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता अपराध में इसकी संलिप्तता स्थापित करने के लिए आरोपी के रूप में पुनरीक्षणकर्ता को बुलाने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

19. ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों के साथ-साथ **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त)** के साथ-साथ **सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश दिनांक 04-02-2023 को रद्द किया जाता है और वर्तमान पुनरीक्षण स्वीकार किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 97

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1738 / 2013

राजकेश्वर ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, श्री गणेश

अधिवक्ता विपक्षी: शासकीय अधिवक्ता, श्री एन.डी. उपाध्याय, श्री विनय भूषण

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 397/401 -पुनरीक्षण -धारा 145 - प्रक्रिया जहां भूमि या जल से संबंधित विवाद से शांति भंग होने की संभावना हो, धारा 146 - विवाद के अधीन कुर्की करने और रिसीवर नियुक्त करने की शक्ति जब सिविल वाद लंबित हो और पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने के निर्देश दिए गए हों _ धारा 145 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही प्रारंभ करना अनुचित है - शांति भंग के लिए धारा 107 सीआरपीसी लागू की जा सकती है, लेकिन संपत्ति को कुर्क नहीं किया जा सकता। (पैरा-14)

राजस्व न्यायालय में विचाराधीन संपत्ति - यथास्थिति बनाए रखने के लिए अंतरिम

स्थगन आदेश के साथ - एसडीएम ने एसएचओ को निर्देश दिया - धारा 145 और 146 सीआरपीसी के तहत नीलामी के लिए रिपोर्ट प्रेषित करना - जो कानून के प्रावधानों के विरुद्ध है - वरिष्ठ अधिकारी ने एसएचओ को एक सकारात्मक रिपोर्ट भेजने का निर्देश दिया - संबंधित रिपोर्ट एसएचओ द्वारा भेजी गई थी - धारा 145 सीआरपीसी के तहत उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश पारित किया गया था _ भूमि, कुल 1.0.912 हेक्टेयर, धारा 146 (1) सीआरपीसी के तहत कुर्क की गई थी - इसलिए आपराधिक पुनरीक्षण। (पैरा - 2,12)

निर्णय:-आक्षेपित आदेश पुष्टि योग्य नहीं है। धारा 146(1) सीआरपीसी के तहत उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है। (पैरा - 15,16)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य, 2013 (3) एससीसी 366
2. मनिका साहू बनाम दंडपाणि साहू, 1986 CrLJ 287
3. सुरेश कुमार बनाम विजय कुमार, 1988 सी.आर.एल.जे. 977
4. दिल्ली राम सुमेर पुरी बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1985 एससी 472
5. इकबाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 1985 सी.आर.एल.जे. 1757 (पी एंड एच)
6. आनंद राम बनाम दिल्ली राज्य, 1986 सी.आर.एल.जे. 2008
7. मोहिंदर सिंह बनाम दिलबाग राय, 1977 सीआरएलजे 1029

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री गणेश एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना। मामले पर बहस करने के लिए विपक्षी पक्षकार संख्या 2 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण विपक्षी पक्षकार संख्या 2/उपजिलाधिकारी, राबर्ट्सगंज, जिला सोनभद्र द्वारा मुकदमा संख्या 39 वर्ष 2013 (श्रीमती प्रेमा देवी बनाम राजकेश्वर यादव) अन्तर्गत धारा 145 सीआरपीसी, थाना कोन, जिला सोनभद्र में पारित आदेश दिनांकित 02.05.2013 के विरूद्ध दायर किया गया है, जिसके अंतर्गत दं.प्र.सं की धारा 146 (1) के तहत भूमि अराजी संख्या 4, 5, 11, 15, 313, 721 722, 749, 767/1 एवं 267/202, कुल 11 गाटा क्षेत्रफल 1.0.912 हेक्टेयर को कुर्क किया गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि थाना प्रभारी, पुलिस स्टेशन कोन की रिपोर्ट पर कि उपरोक्त भूखंड संख्या के संबंध में शांति भंग हुई है और दं.प्र.सं. की धारा 146 (1) के तहत उपरोक्त

अनुवादित

भूखंडों की कुर्की की आवश्यकता है। उपजिलाधिकारी ने संबंधित थाना प्रभारी की रिपोर्ट से आश्वस्त होकर दिनांक 02.05.2013 के आदेश के तहत दं.प्र.सं. की धारा 146(1) के तहत उपरोक्त भूखंडों को कुर्क कर लिया। संबंधित उपजिलाधिकारी द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 145(1) के तहत एक प्रारंभिक आदेश भी पारित किया गया था। उपजिलाधिकारी के आदेश से व्यथित होकर यह पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की गयी है।

4. मामले के तथ्य यह हैं कि प्रेमा देवी ने विपक्षी पक्षकार संख्या 3 के तहत संबंधित उपजिलाधिकारी के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 145 के तहत एक आवेदन दिया था, जिसमें कहा गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 7, जग नारायण (अब मृतक) पुत्र तुलसी के पास प्रश्नगत संपत्ति में 1/5 हिस्सा था जो उनके उपयोग और व्यवसाय में था, बाद में प्रेमा देवी द्वारा क्रय कर लिया गया और राजस्व अभिलेख में उनका नाम भी बदल दिया गया। विपक्षी पक्षकार संख्या 2 से 5, 7 और 8 वास्तविक खाताधारक हैं और प्रत्यर्थी संख्या 1-राजकेश्वर भी तुलसी के बेटे सत्य नारायण और राज नारायण से बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद सह-खाताधारक दर्ज किए गए हैं। प्रत्यर्थी संख्या 6 और 9 ने क्रमशः प्रत्यर्थी संख्या 8 और प्रत्यर्थी संख्या 2 से 5 के पिता शिव प्रसाद से बिक्री विलेख के माध्यम से एक हिस्सा क्रय किया और सह-खाताधारक बन गए। गाटा संख्या 773(क) कोन से तेलगुड़वा रोड के मुख्य पिच रोड पर एक मूल्यवान संपत्ति है जिसमें सभी भाइयों और खरीददारों का हिस्सा और स्वामित्व है।

5. धन एवं बाहुबल के बल पर विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने तुलसी के दो पुत्रों से जमीन खरीद कर जून 2011 से सड़क से सटी जमीन के हिस्से पर कब्जा करने का प्रयास किया। प्रेमा देवी द्वारा बंटवारे का मुकदमा भी दायर किया गया था जिसमें अंतरिम स्थगन आदेश भी पारित किया गया है लेकिन विपक्षी पक्षकार संख्या 1 किसी भी तरीके से संबंधित संपत्ति की प्रकृति को बदलने के लिए अड़ा हुआ है और ऐसा न करने के अनुरोध पर, वह अपराध करने और उसे और उसके परिवार के सदस्यों को चोट पहुंचाने पर अड़ा है, इसलिए यदि प्रश्नगत संपत्ति कुर्क नहीं की गई तो किसी भी समय कोई अप्रिय घटना घटित हो सकती है।

6. आवेदन पर उपजिलाधिकारी द्वारा विचार किया गया और थाना प्रभारी, कोन, सोनभद्र को दं.प्र.सं. की धारा 145/146 के तहत संबंधित संपत्ति की कुर्की के लिए एक रिपोर्ट भेजने का निर्देश दिया गया। रिपोर्ट संबंधित थाना प्रभारी द्वारा प्रस्तुत की गई थी और उसके बाद, उपजिलाधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, जो इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन है।

7. इस पुनरीक्षण में, पुनरीक्षणवादी ने यह आधार लिया है कि पुलिस रिपोर्ट स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि पुनरीक्षणवादी के पास विचाराधीन संपत्ति का कब्जा है, इसलिए इसकी कुर्की का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। दं.प्र.सं. की धारा 145(1) के तहत आदेश और दं.प्र.सं. की धारा 146(1) के तहत आदेश एक ही दिन यानि दिनांक 02.05.2013 को पारित किया गया है, इस प्रकार दं.प्र.सं. की धारा 145(1) के तहत आदेश पूरी तरह से अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना है। लिखित बयान की प्रतीक्षा किए बिना आक्षेपित आदेश एक पक्षीय आदेश है। यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 176 के तहत मुकदमा संख्या 235 वर्ष 2021 में यथास्थिति बनाए रखने का आदेश भी दिनांक 26.04.2011 को पारित किया गया है। दरअसल, ऐसी कोई परिस्थिति मौजूद नहीं थी जिसमें किसी आपात स्थिति को समाप्त करते हुए उपरोक्त आदेश पारित किया जा सके। दोनों आदेश कानून की दृष्टि से गलत हैं क्योंकि एक ही भूमि के संबंध में राजस्व न्यायालय द्वारा एक ही पक्ष के बीच यथास्थिति बनाए रखने का आदेश भी पारित किया गया था, इसलिए आक्षेपित आदेश रद्द होने योग्य है और इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य 2013 (3) एससीसी 366** मामले के निर्णय पर अवलम्ब लिया जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि मजिस्ट्रेट दं.प्र.सं. की धारा 145 और 146 के तहत तभी कार्रवाई कर सकता है, जब वह यह तय करने में असमर्थ हो कि कब्जा किस पक्ष का है। जैसा कि दं.प्र.सं. की धारा 146 सीआरपीसी के तहत विचार किया गया है, संपत्ति को केवल आपातकाल की स्थिति में ही कुर्क किया जा सकता है और और यदि कोई मुकदमा लंबित है, तो केवल शांति भंग की आशंका दं.प्र.सं. की धारा 146 के तहत आदेश पारित करने का आधार नहीं हो सकती है। यह सिविल न्यायालय को तय करना है कि मुकदमा दायर करने की तारीख पर कब्जा किसका था।

9. विपक्षी पक्षकार संख्या 1 और 2 की ओर से एक प्रति शपथपत्र दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि चूंकि आक्षेपित आदेश पारित होने से पहले ही राजकेश्वर का कब्जा था और प्रश्नगत संपत्ति प्रेमा देवी को बेच दी गई थी, इसलिए, दोनों पक्षों के बीच मारपीट हुई और इसके लिए दो आपराधिक मामले दोनों पक्षों द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 523, 504, 506 और 325 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 210 वर्ष 2012, और भा.दं.सं. की धारा 323, 504, 506 और 308 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 210ए वर्ष 2012 दर्ज की गई थी, जिसमें जांच के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, हालांकि यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 176 के तहत मुकदमा संख्या 235 वर्ष 2011 भी

लंबित था, जिसमें पक्षकारों को विचाराधीन भूमि पर यथास्थिति बनाए रखने के लिए निर्देशित किया गया था, लेकिन पुनरीक्षणवादी ने उस पर जबरन कब्ज़ा प्राप्त करने का प्रयास किया, जिसके कारण, पक्षों के बीच शांति भंग होने की आशंका थी, इसलिए, थाना प्रभारी, कोन ने दोनों पक्षों के बीच शांति भंग होने की आशंका के संबंध में विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी और दं.प्र.सं. की धारा 146(1) के तहत तलाशी कार्यवाही करना आवश्यक था।

10. विपक्षी पक्षकार संख्या 2 ने रिपोर्ट पर विचार करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि दोनों पक्षों के बीच कोई भी अप्रिय घटना घटित हो सकती है, इसलिए आदेश दिनांक 02.05.2013 द्वारा प्रश्नगत संपत्ति को कुर्क कर लिया गया और थाना प्रभारी को निर्देश दिया गया कि उक्त संपत्ति को किसी भी सुपुर्दगार की कब्जे में शर्त के साथ दिया जाए कि आज तक प्रश्नगत संपत्ति पुलिस स्टेशन कोन की निगरानी में रहेगी। विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा पारित आदेश न्यायसंगत, उचित और कानूनी आदेश है जो किसी भी अवैधता या दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है। इसलिए आवेदन खारिज किया जाए।

11. आवेदक द्वारा प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया गया है जिसमें प्रति शपथपत्र के आरोपों से इनकार किया गया है कि विवादित भूमि के संबंध में यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 176 के तहत मुकदमा संख्या 235 वर्ष 2011 लंबित है जिसमें यथास्थिति बनाए रखने का आदेश दिनांक 24.06.2011 को उपजिलाधिकारी, रॉबर्ट्सगंज द्वारा पारित किया गया है और यह अभी भी प्रभावी है। फसली वर्ष 1427-1431 के राजस्व अभिलेख में पुनरीक्षणवादी का नाम हस्तांतरणीय अधिकार सहित भूमिधर दर्शाया गया है। आवेदक के तर्क एवं प्रत्युत्तर शपथ पत्र के आधार पर दिनांक 02.05.2013 का आदेश निरस्त किये जाने योग्य है।

12. उपरोक्त चर्चा से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में राजस्व न्यायालय में विभाजन का वाद लंबित है, विभाजन का एक वाद राजस्व न्यायालय में लंबित है जिसमें यथास्थिति बनाए रखने के लिए अंतरिम स्थगन आदेश भी पारित किया गया है और अभी भी लागू है। अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि थाना प्रभारी, पुलिस स्टेशन कोन द्वारा विद्वान उपजिलाधिकारी को कोई रिपोर्ट प्रेषित नहीं की गई थी कि शांति भंग होने की कोई आशंका थी, बल्कि विद्वान उपजिलाधिकारी ने स्वयं विपक्षी पक्षकार संख्या 3 से रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद एसओ, कोन को दं.प्र.सं. की धारा 145 एवं 146 के तहत कार्रवाई हेतु रिपोर्ट भेजने के लिए निर्देशित किया था जो कानून के प्रावधानों के विरूद्ध है। इस प्रकार, यह पता चलता है कि चूंकि वरिष्ठ अधिकारी ने थाना प्रभारी को एक सकारात्मक रिपोर्ट भेजने का निर्देश

दिया था, इसलिए संबंधित रिपोर्ट थाना प्रभारी, कोन द्वारा भेजी गई थी, जिस पर उपजिलाधिकारी ने आक्षेप्त आदेश पारित किया था।

13. यह न्यायालय यह भी समझने में असमर्थ है कि जब राजस्व न्यायालय ने प्रश्नगत संपत्ति का संज्ञान लिया था और स्थगन आदेश पारित किया था, तो दं.प्र.सं. की धारा 145 और 146 के तहत मामले को आगे बढ़ाने के लिए उपजिलाधिकारी के लिए उपलब्ध नहीं था। जब किसी न्यायालय का अंतरिम स्थगन आदेश पहले से ही अस्तित्व में था, तो राजस्व न्यायालय द्वारा कानून के अनुसार उसका अनुपालन किया जा सकता था और एसडीएम के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत कर्तव्य का पालन करने का कोई अवसर नहीं था। हालाँकि यह भी पता चला है कि दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के विरूद्ध एफआईआर दर्ज कराई थी और दोनों पक्षों को कुछ शर्तों पर जमानत मिल गई होगी, इसलिए निकट भविष्य में फिर से शांति भंग होने की कोई संभावना नहीं दिखती है। यह भी उल्लेखनीय है कि दं.प्र.सं. की धारा 145 और 146 के तहत दोनों आदेश एक साथ और एक ही दिन यानी दिनांक 02.05.2013 को पारित किए गए हैं, जो कानून के प्रावधानों के विरूद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपजिलाधिकारी ने पहले ही आक्षेपित आदेश पारित करने का मन बना लिया था, इसलिए विद्वान उपजिलाधिकारी द्वारा पुनरीक्षणवादीओं को अवसर दिए बिना दोनों आदेश एक साथ पारित कर दिए गए।

14. उपरोक्त निष्कर्षों को निम्नलिखित न्यायिक उदाहरणों से भी समर्थन मिलता है जो इस प्रकार हैं:-

(क) **मनिका साहू बनाम दंडपाणि साहू, 1986 सीआरएलजे 287** मामले में**,** यह अवधारित किया गया है कि जब पक्षकारों के बीच सीमांकन के आधार पर कोई विभाजन नहीं हुआ है, फिर भले ही सुविधा के लिए किसी भूमि पर किसी का कब्ज़ा हो पर यह सभी सह-हिस्सेदारों का कब्ज़ा है।

(ख) **सुरेश कुमार बनाम विजय कुमार, 1988 सीआरएलजे 977 दिल्ली**, मामले में यह अवधारित किया गया है कि एक संपत्ति जो संयुक्त कब्जे में है वह दं.प्र.सं. की धारा 145 के दायरे से बाहर है। मजिस्ट्रेट संयुक्त कब्जे के प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकता।

(ग) **राम सुमेर पुरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1985 एससी 472**, यह अवधारित किया गया है कि जहां संपत्ति के लिए एक नागरिक मुकदमा लंबित है, जहां कब्जे का सवाल शामिल है, तो आपराधिक न्यायालय में समानांतर कार्यवाही न्यायोचित नहीं है। ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही को रद्द कर दिया और पक्षकारों के लिए निषेधाज्ञा या रिसीवर या इस तरह की किसी भी चीज़ के लिए सिविल न्यायालय से संपर्क करने की छूट दे दी।

(घ) **इकबाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 1985 सीआरएलजे 1757 (पी एंड एच)**, मामले में यह अवधारित किया गया है कि जब सिविल न्यायालय यथास्थिति बनाए

रखने का निर्देश देता है, तो यह मानता है कि सिविल न्यायालय को यह निश्चित नहीं है कि किस पक्ष का कब्ज़ा है। यह वस्तुतः निर्देश देता है कि यदि उनमें से किसी एक का तर्क कथित रूप से सही था तो उस स्थिति को जारी रखा जाना चाहिए। इस पृष्ठभूमि में मजिस्ट्रेट यह तय करने के लिए कार्यवाही शुरू कर सकता है कि किस पक्ष का कब्ज़ा था। शांति भंग करने पर वह दं.प्र.सं. की धारा 107 लागू कर सकता है। यद्यपि वह संपत्ति कुर्क नहीं कर सकता।

(ङ) **आनंद राम बनाम दिल्ली राज्य, 1986 सीआरएलजे 2008**, मामले में यह अवधारित किया गया है कि जब कोई सिविल मुकदमा लंबित हो और पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया हो, तो यह अनुचित है कि दं.प्र.सं. की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की जाती है।

(च) **मोहिंदर सिंह बनाम दिलबाग राय, 1977 सीआरएलजे 1029**, मामले में यह अवधारित किया गया है कि कब्जे के विवाद के मामलों में सिविल न्यायालय तीन प्रकार के आदेश पारित कर सकती है- (क) रिसीवर की नियुक्ति; (ख) किसी पक्षकार के विरूद्ध निषेधाज्ञा देना; और (ग) यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देना। पहले प्रकार के मामलों में दं.प्र.सं. की धारा 145 के तहत कार्यवाही के लिए कोई विवाद नहीं हो सकता है। दूसरे प्रकार के मामलों में आपराधिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है और यदि आवश्यक हो तो मजिस्ट्रेट को समानांतर कार्यवाही शुरू करनी पड़ सकती है, लेकिन केवल आक्रामक को सिविल न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करने की अनुमति न देकर सिविल न्यायालय के आदेश का बचाव करना होगा। तीसरे प्रकार के मामलों में मजिस्ट्रेट हस्तक्षेप कर सकता है लेकिन केवल यथास्थिति बनाए रखते हुए सिविल न्यायालय के आदेश का बचाव करने के लिए।

15. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय इस सुविचारित निष्कर्ष पर है कि आक्षेपित आदेश बरकरार रहने योग्य नहीं है।

<u>आदेश</u>

16. तदनुसार, इस आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है और दं.प्र.सं. की धारा 146(1) के तहत मुकदमा संख्या 39 वर्ष 2013 (श्रीमती प्रेमा देवी बनाम राजकेश्वर यादव) में उपजिलाधिकारी, रॉबर्ट्सगंज, जिला सोनभद्र द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.05.2013 को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 101

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2581 / 2022

अर्पित सक्सेना ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

श्रीमती नैंसी सक्सेना ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री प्रमोद कुमार सिन्हा

अधिवक्ता विपक्षी: श्री अरविन्द श्रीवास्तव तृतीय

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण, धारा 125 - पत्नियों, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश - न्यायालय को पत्नी की आय का आकलन करना चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि क्या वह पति के घर में अपना भरण-पोषण कर सकती है - धारा 125 के अनुसार भरण-पोषण का अर्थ जीवित रहना नहीं है - भरण-पोषण का दावा करने का अधिकार आवेदन दाखिल करने के समय से ही होना चाहिए, क्योंकि लंबित भरण-पोषण की कार्यवाही आवेदक के नियंत्रण में नहीं है - अंतरिम भरण-पोषण देते समय दावेदार पत्नी के रोजगार और पति के आर्थिक संसाधनों पर विचार किया जाना चाहिए, उसकी आय वास्तविक आवश्यकताएं और जीवन स्तर पर विचार करना चाहिए। (पैरा - 11,12)

विपक्षी ने अपने पति के खिलाफ धारा 125 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर किया - आवेदक (विपरीत पक्ष) द्वारा धारा 18 ए के तहत संशोधित आवेदन आंशिक रूप से स्वीकार किया गया - पुनरीक्षण आवेदन को विपक्षी को आवेदन दायर करने की तारीख से मासिक आधार पर 4,000 रुपये रखरखाव के रूप में भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। (पैरा -3)

निर्णय:- न्यायालय ने धारा 125 सीआरपीसी के तहत पुनरीक्षणकर्ता/पति के विरुद्ध अपनी याचिका में विपक्षी पक्ष को भरण-पोषण के लिए अंतरिम राशि के रूप में 4,000/- रुपए दिए। यह पुनरीक्षणकर्ता के लिए अनुचित, अत्यधिक या अनुचित नहीं है। पुरस्कार में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं है, और पुनरीक्षण में योग्यता का अभाव है। (पैरा-13,)

पुनरीक्षण निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अंकुर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (5) एडीजे 640
2. किरण तोमर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1865/2022

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणवादी के विद्वान वकील और प्रतिवादी के विद्वान वकील को सुना गया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, रामपुर द्वारा आपराधिक विविध वाद संख्या 596/2019 (श्रीमती नैंसी सक्सेना बनाम अर्पित सक्सेना) धारा 125 सीआरपीसी के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 24.5.2022 के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके तहत आवेदक (विपरीत पक्ष) द्वारा धारा 18ए के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को आंशिक रूप से अनुमति दी

गई है और पुनरीक्षणकर्ता को निर्देश दिया गया है कि वह आवेदन दाखिल करने की तिथि से लेकर धारा 125 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन के लंबित रहने के दौरान प्रति माह 4,000/- रुपये भरण-पोषण के रूप में विरोधी पक्ष श्रीमती नैंसी सक्सेना को भुगतान करे।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विपक्षी ने अपने पति- पुनरीक्षणवादी के खिलाफ प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय के समक्ष धारा 125 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया कि आवेदक और विपक्षी का विवाह 9.5.2017 को रामपुर में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था और शादी में पक्षों के बीच कोई दहेज नहीं सहमत हुआ था, हालांकि, शादी के बाद विपक्षी और उसके परिवार के सदस्यों ने दिल्ली में एक प्लॉट खरीदने के बहाने दहेज की मांग शुरू कर दी और जब आवेदक ने अपने पिता पर अपने पति और ससुराल वालों की मांग पूरी करने में असमर्थता जताई, तो उन्होंने उसे मानसिक और शारीरिक पीड़ा दी और विपक्षी ने आवेदक की इच्छा के खिलाफ उसके साथ अप्राकृतिक शारीरिक संबंध बनाए और अंततः उसे अपने ससुराल से निकाल दिया; वह वर्तमान में अपने माता-पिता के स्थान पर रह रही है; वह उसे अपने घर से बाहर रखने के बाद उसके भरण-पोषण के लिए एक भी पैसा नहीं दे रहा है, इसलिए आवेदन दाखिल करने की तारीख से अंतरिम भरण-पोषण प्रदान करने का अनुरोध किया गया है, जिसे 24.5.2022 को आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता को आवेदक को 4,000/- रुपये प्रति माह अंतरिम भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण एवं टिकाऊ नहीं है क्योंकि इसे अभिलेख पर रखी गई सामग्री पर विचार किए बिना पारित किया गया था; आक्षेपित आदेश में दर्ज निष्कर्ष तथ्यों की गलत व्याख्या और अवैध अनुमान पर आधारित हैं; आक्षेपित आदेश में निष्कर्ष है कि पति द्वारा प्रस्तुत आयकर रिटर्न 2021-22 के अनुसार उसकी वार्षिक आय 2,59,000/- रूपये है, इसलिए प्रथम दृष्टया उसके पास पर्याप्त आय है; उक्त आयकर रिटर्न 2021-22 से स्पष्ट है कि आयकर अधिनियम की धारा 44एडी के अंतर्गत पति की उसके व्यवसाय/मेडिकल दुकान से वार्षिक आय मात्र 79,000/- रूपये है और वेतन का बकाया 2,50,000/- रूपये है। निजी संस्था में पहले दी गई सेवाओं के लिए उन्हें जो 1,80,000/- मिले थे, उन्हें धारा 44ADA के तहत दिखाया गया है जो उनकी नियमित आय नहीं है, लेकिन विवादित आदेश पारित करते समय पारिवारिक न्यायालय ने अवैध रूप से दोनों आय (धारा 44AD और धारा 44ADA के तहत उल्लिखित) को उनकी नियमित आय में जोड़ दिया है। आयकर रिटर्न में उस विशेष निर्धारण वर्ष में आयकर की गणना के उद्देश्य से कुल आय को जोड़ा गया है; यह पति की नियमित आय नहीं है। आरोपित आदेश में पारिवारिक न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि पत्नी एक शिक्षिका के रूप में काम कर

रही है और उसे 13,000 रुपये प्रतिमाह वेतन मिल रहा है, इसलिए, यह अवर न्यायालय के लिए आवश्यक था कि वह अंतरिम भरण-पोषण देने से पहले पति की आय का आकलन करे और उसकी तुलना पत्नी की आय से करे, लेकिन उसने पूरी तरह से अवैध रूप से यह टिप्पणी की है कि "उसकी आय पर्याप्त है" जो गलत धारणा है और कानून के स्थापित प्रस्ताव के विरुद्ध है। रिकार्ड से यह स्पष्ट है कि पत्नी की मासिक आय पति की आय से अधिक है और वह अपना भरण-पोषण स्वयं करने में सक्षम है, इसलिए वह भरण-पोषण पाने की हकदार नहीं है। पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध दायर वर्तमान मामले सहित तीन मामले जिला न्यायालय रामपुर में विचाराधीन हैं, जो मध्य प्रदेश के जिला भोपाल से बहुत दूर है और विभिन्न तारीखों पर पति भारी धनराशि खर्च करके मामलों की सुनवाई के लिए भोपाल से रामपुर आता है और उन तारीखों पर वह अपनी दवा की दुकान बंद रखता है, अर्थात वह उन दिनों एक भी पैसा नहीं कमा पाता है, जो उसके लिए बहुत बड़ी प्रताड़ना है।

उन्होंने अन्त में दलील दी कि पत्नी की मनमानी और अनुचित आचरण के कारण पुनरीक्षणवादी मानसिक रूप से परेशान हो गया और नौकरी के अयोग्य हो गया और अन्ततः उसे नौकरी से त्यागपत्र देना पड़ा; वह स्ट्रेटेजिक अलायंस कम्पनी एण्ड मैनेजमेंट प्राइवेट लिमिटेड में मैनेजर के पद पर कार्यरत था, जहां वह विवाह के समय भी कार्यरत था और अब वह एक छोटी सी मेडिकल दुकान चला रहा है, जहां उसे 8,500 रूपये प्रतिमाह मिलते हैं, जो उसके स्वयं के जीवन-यापन और विपक्षी के कहने पर उसके विरूद्ध दायर अनेक मुकदमों का खर्च वहन करने के लिए पर्याप्त नहीं है; अवर न्यायालय द्वारा दी गई अन्तरिम भरण-पोषण की धनराशि बहुत अधिक और अत्यधिक तथा अनुपातहीन है और वह उसे वहन करने की स्थिति में नहीं है; विपक्षी सुशिक्षित और कुशल महिला है, जो स्वयं अपना भरण-पोषण करने की स्थिति में है और इस प्रकार वह अन्तरिम भरण-पोषण पाने की हकदार नहीं है, अतः वर्तमान पुनरीक्षण को स्वीकार किया जाए और अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाए।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश आवेदक द्वारा धारा 125 सीआरपीसी के तहत भरण-पोषण के मामले में अंतरिम भरण-पोषण के लिए दिए गए आवेदन पर पारित किया गया है; अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश एक अंतरिम उपाय के रूप में है, जो पक्षों की दलीलों और रिकॉर्ड पर दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के बाद पारित किया गया है, तथ्यों की खोज को पुनरीक्षण में बाधित या हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं है; अंतरिम भरण-पोषण की राशि कम है क्योंकि आवेदक ने अपने आवेदन में अंतरिम भरण-पोषण के रूप में 3500/- रुपए मांगे थे, धारा 125 सीआरपीसी के तहत विविध भरण-पोषण के मामले में अदालत ने अंतरिम भरण-पोषण के रूप में केवल 4000/- रुपए प्रदान किए हैं और यह विपरीत पक्ष द्वारा अवर न्यायालय के

अतुलवादी

समक्ष दायर पुनरीक्षण में हस्तक्षेप करने योग्य नहीं है; यह समझ में नहीं आता है कि पुनरीक्षणवादी जो कथित रूप से मेडिकल रिटेल की दुकान चलाता है, वह 1000/- रुपए कमा रहा है। जबकि यह स्वीकृत तथ्य है कि उसने बी. फार्मा तथा कुछ डिप्लोमा भी किया है; प्रत्यर्थी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा घरेलू हिंसा की शिकार है; उसे उसके पति ने वैवाहिक घर से निकाल दिया था तथा उसे अपने माता-पिता पर निर्भर रहना पड़ा जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा उसका भरण-पोषण करते हैं, जबकि उसका पिता स्वयं वर्तमान में बेरोजगार है।

प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने अंकुर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (5) एडीजे 640 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया, जिसमें इस न्यायालय ने माना कि सीआरपीसी की धारा 125 के तहत दी गई मौद्रिक राहत पर्याप्त, निष्पक्ष और उचित होगी और पीड़ित व्यक्ति के जीवन स्तर के अनुरूप होगी, जिसका सिर्फ इसलिए आदी हो जाना कि पत्नी कमाने में सक्षम है, विपरीत पक्ष संख्या 2 की नाबालिग बेटियों को अदालत द्वारा दिए गए भरण-पोषण के दावे को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। किरण तोमर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में आपराधिक अपील संख्या 1865/2022 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-10 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:-

" प्रथम पहलू पर, यह बात सर्वविदित है कि आयकर रिटर्न आवश्यक रूप से वास्तविक आय का सटीक मार्गदर्शन नहीं करता। विशेषकर, जब पक्षकार वैवाहिक विवाद में लगे होते हैं, तो आय को कम आंकने की प्रवृत्ति होती है। इसलिए, पारिवारिक न्यायालय को साक्ष्य के समग्र मूल्यांकन के आधार पर यह निर्धारित करना है कि दूसरे प्रतिवादी की वास्तविक आय क्या होगी ताकि अपीलकर्ता उस स्थिति में रह सकें जिसके वे उस समय के आदी थे जब वे एक साथ रह रहे थे। दोनों बच्चों की उम्र क्रमशः 17 और 15 वर्ष है, और उनकी ज़रूरतों को विधिवत पूरा किया जाना चाहिए।"

वर्तमान मामले में, पुनरीक्षणवादी द्वारा दाखिल आयकर रिटर्न 2021-22 में, उन्होंने अपनी वार्षिक आय 2,59,000/- रुपये दर्शायी है, जिसे आवेदक/विपक्षी को अंतरिम भरण-पोषण प्रदान करते समय अवर न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा गया है; पुनरीक्षणवादी का मामला यह है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में शपथ पत्र के रूप में दाखिल अपनी संपत्ति और आय के विवरण में विरोधी पक्ष ने अपनी मासिक आय 13,000/- रुपये बताई है; पुनरीक्षणवादी के अनुसार, आवेदक व्हाइटहॉल पब्लिक स्कूल, रामपुर में एक शिक्षक के रूप में काम करता है।

आयकर रिटर्न एवं कर निर्धारण वर्ष 2021-22 में पुनरीक्षणकर्ता ने धारा 44 AD के अन्तर्गत अपनी आय 79,000/- रूपये तथा धारा 44ADA के अन्तर्गत आय 1,80,000/- रूपये दर्शायी है, जो कि उस कर निर्धारण वर्ष में कुल आय 2,59,000/- रूपये दर्शायी गयी है। आयकर अधिनियम की धारा 44एडी के तहत एक व्यवसायी के लिए प्रकल्पित कराधान योजना प्रदान की जाती है, जबकि धारा

44एडीए के तहत एक पेशेवर के लिए प्रकल्पित आय प्रदान की जाती है; इस प्रकार भले ही यह मान लिया जाए कि 1,80,000/- रुपये की आय पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अपनी पिछली नौकरी से प्राप्त वेतन के बकाए से अर्जित आय थी और उसकी मेडिकल दुकान से अर्जित आय 79,000/- रुपये वार्षिक दिखाई गई है, इसे वास्तविक वार्षिक आय नहीं माना जा सकता क्योंकि धारा स्वयं एक छोटे व्यवसायी के लिए प्रकल्पित आय को कवर करती है, जिसका टर्नओवर 2020 के बजट से पहले 20 करोड़ से कम है; पुनरीक्षणकर्ता अच्छी तरह से योग्य फार्मासिस्ट है और इस आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि वह दुकान से प्रति माह केवल 8,500/- रुपये कमाता है और इसे अंतरिम रखरखाव के लिए आवेदन पर फैसला करने के चरण में अंतिम रूप से नहीं माना जा सकता आवेदक द्वारा संपत्ति और देनदारियों के रूप में दायर हलफनामे 13kha को ध्यान में रखते हुए विपक्षी पक्ष को 4,000/- का भुगतान करने का आदेश दिया गया है; उसने यह भी कहा है कि शिक्षक के रूप में उसे स्कूल से मिलने वाला वेतन उसकी नियमित आय नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता ने अपने इस दावे के समर्थन में कोई बैंक स्टेटमेंट दाखिल नहीं किया है कि वह अल्प आर्थिक संसाधनों वाला व्यक्ति है।

परित्यक्त पत्नी के लिए स्वयं का भरण-पोषण करने के लिए भरण-पोषण का दावा करना सबसे शक्तिशाली साधनों में से एक है, और इस प्रकार यह सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। न्यायालयों ने इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक चेतावनियाँ स्थापित की हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रजनेश बनाम नेहा, (2021) 2 एससीसी 324 के मामले में अपने फैसले में कुछ दिशानिर्देश स्थापित किए गए हैं। उक्त मानदंडों में पक्षों की स्थिति, आवेदक की (इस मामले में पत्नी की) जरूरतें, और प्रतिवादी की आय और संपत्ति, दावेदार की देनदारियां और वित्तीय जिम्मेदारियां, पक्षों की आयु और रोजगार की स्थिति, पक्षों की आवासीय व्यवस्था, पक्षों के नाबालिग बच्चों का भरण-पोषण, और बीमारी या विकलांगता आदि शामिल हैं।

रजनेश (सुप्रा) में यह माना गया है कि यदि पत्नी कुछ आय अर्जित कर रही है, तो यह पति द्वारा भरण-पोषण दिए जाने पर रोक नहीं लगा सकती है।" न्यायालय का कर्तव्य है कि वह स्वयं उसकी आय पर गौर करे और उसके आधार पर यह निर्धारित करे कि क्या वह अपने पति के घर में जिस तरह की जीवनशैली की आदी है, उस तरह से अपना भरण-पोषण करने में सक्षम है या नहीं। भरण-पोषण (धारा 125 के प्रावधानों के अनुसार) का अर्थ जीवित रहना नहीं है और न ही इसे जीवित रहने की अनुमति दी जा सकती है। भरण-पोषण का दावा करने का अधिकार आवेदन दाखिल करने के समय से ही होना चाहिए क्योंकि जिस अवधि के दौरान भरण-पोषण की कार्यवाही लंबित रही, वह आवेदक के नियंत्रण में नहीं है। इस प्रकार, रोजगार दावेदार पत्नी को स्पष्ट नहीं करता है और अंतरिम भरण-पोषण के पुरस्कार के प्रश्न पर निर्णय करते समय दावेदार पत्नी की आय, उसके रोजगार की प्रकृति, पति के आर्थिक संसाधन, पत्नी की वास्तविक आवश्यकताएं, जीवन स्तर, वह उस

समय कैसे जीवनयापन करती थी जब वह अपने पति के साथ नहीं रहती थी, इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

इसलिए, मेरी सुविचारित राय में, संशोधनकर्ता/पति के खिलाफ धारा 125 सीआरपीसी के तहत उसकी याचिका में अंतरिम भरण-पोषण के रूप में विपक्षी को दी गई उचित राशि 4,000 रुपये संशोधनकर्ता के लिए अनुचित, अत्यधिक या अनुचित नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध दिए गए भरण-पोषण की राशि तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अवर न्यायालय द्वारा पारित किए गए विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई उचित आधार नहीं दिखाई देता है तथा पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है।

तदनुसार पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

हालाँकि, दिनांक 24.5.2022 के आपत्तिजनक आदेश के पारित होने से पहले अंतरिम भरण-पोषण की बकाया राशि आवेदक/विपक्षी को इस आदेश की प्रमाणित प्रति को अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की तारीख से छह समान मासिक किस्तों के रूप में देय होगी, बशर्ते कि पुनरीक्षणकर्ता विपक्षी को मासिक आधार पर अंतरिम भरण-पोषण की राशि का भुगतान करेगा। तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां केवल वर्तमान पुनरीक्षण पर निर्णय लेने के उद्देश्य से हैं तथा यह भरण-पोषण आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय करते समय अवर न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं होंगी।

(2023) 5 ILRA 106

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4598 / 2009

ओम प्रकाश जैन और अन्य . पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षण: श्री विद्या प्रकाश सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: शासकीय अधिवक्ता, श्री अक्षत सिन्हा, श्री वाई. के. सिंह

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 397/401 - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा-498-ए, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961- धारा 3/4, ऐसे मामले जहां मृत्यु का तथ्य विवादित हो, वहां सावधानी बरती जानी चाहिए यदि कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता है - तो एक अलग विविध मामला पंजीकृत किया जा सकता है और अधिकारियों को साक्ष्य प्रदान करने का निर्देश दिया जा सकता है- अपील को केवल इसलिए लंबित नहीं रखा जा सकता कि कोई संपार्श्विक विवाद या मात्र प्रक्रियागत महत्व का प्रश्न सामने आया है जिसके लिए आगे साक्ष्य की आवश्यकता हो सकती है तथा जांच की आवश्यकता हो सकती है। (पैरा-6)

सभी आरोपियों को अपराध के लिए दोषी ठहराने वाला मामला - दोषियों ने अपील दायर

की - अपीलकर्ताओं में से एक (पीड़िता का पति) की मृत्यु हो गई - पीड़िता ने आवेदन संख्या 55-बी दायर किया - जिसमें कहा गया कि उसका पति अभी भी जीवित है - उसके खिलाफ मामला बंद करने के लिए अपीलकर्ताओं की ओर से जाली और फर्जी कागजात दिए गए। (पैरा-3)

निर्णय:- अपीलीय न्यायालय को एक अपीलकर्ता की मृत्यु का निर्धारण करने के लिए एक अलग विविध मामला शुरू करना चाहिए था और बाकी की अपील पर आगे बढ़ना चाहिए था। यदि जाली कागज प्रस्तुत किए गए हैं, तो न्यायालय सीआरपीसी की धारा 340 के तहत जांच शुरू कर सकता है या परिस्थितियों के अनुसार एफआईआर दर्ज कर सकता है। न्यायालय ने अपीलकर्ता के मामले को अलग करने और उसकी मृत्यु की जांच करने का निर्देश दिया, जबकि बाकी अपीलकर्ता (पुनरीक्षणकर्ता) विधिनुसार आगे बढ़ेंगे। (पैरा - 7,8)

पुनरीक्षण निस्तारित। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक अपील संख्या 81/1977
2. अमर नाथ एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 124/1977

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

I. परिचय

1. वर्तमान अपील विद्वान मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर द्वारा दिनांक 13.09.2018 को मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 994/2013 (श्रीमती पूजा शुक्ला और अन्य बनाम विनय कुमार तिवारी और अन्य) में दावेदारों के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार किए जाने के निर्णय से उत्पन्न होती है।

II. विद्वान अधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रतिवादियों का मामला:

2. विद्वान अधिकरण के समक्ष दावेदारों का मामला संक्षेप में यह था कि मृतक की मृत्यु दिनांक 14.08.2013 को पंजीकरण संख्या यूपी 78 सीएन 7323 वाले जेएसए लोडर द्वारा गलत तरीके से लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण कारित दुर्घटना में लगी चोटों से हुई थी। अपराधी वाहन का बीमा प्रतिवादी संख्या 2-यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा किया गया था। दावेदार मृतक अमित शुक्ला के आश्रित हैं। मृतक नमकीन बनाने वाली एक इकाई चलाता था। मृत्यु के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी।

III. विद्वान अधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा:

3. विद्वान अधिकरण ने दिनांक 13.09.2018 के आक्षेपित आदेश में मुआवज़ा दिया, जिसे नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:

क्रमांक	मद	अधिकरण द्वारा दी गई राशि
	मासिक आय	3000
1.	वार्षिक आय	36,000
2.	भविष्य की संभावनाएं	36000 का 25% =9000
3.	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं	36000+9000=45000
4.	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती	45000 का 1/3 =15000
5.	निर्भरता का वार्षिक नुकसान	45000-15000=30000
6.	गुणक	17
7.	निर्भरता का कुल नुकसान	30,000x17=510000
8.	पारंपरिक खर्चे (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) संपति का नुकसान (सी) अंतिम संस्कार व्यय	55,000
9.	कुल मुआवजा	5,10,000+55000 = 5,65,000
10.	ब्याज	7%

4. दावेदार वर्तमान अपील के माध्यम से मुआवजे में वृद्धि की मांग करते हैं।

IV. विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रखर टंडन ने यह तर्क देते हुए आदेश की आलोचना की कि विद्वान अधिकरण ने आयकर रिटर्न पर विचार करने की उपेक्षा करके त्रुटि की, जो मृतक की वास्तविक आय को दर्शाता है। दूसरे,व्यक्तिगत खर्चों में त्रुटिपूर्ण कटौती की गई। विद्वान विचारण न्यायालय ने भविष्य की संभावनाओं और पारंपरिक खर्चों को प्रदान करने में भी विधिक गलती की, जो **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप है।

6. मृतक के चार आश्रित थे। विद्वान अधिकरण द्वारा व्यक्तिगत खर्चों के लिए की गई एक तिहाई की कटौती अत्यधिक थी। मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती योग्य राशि 1/4 है।दावेदार अधिक राशि के हकदार थे।

7. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुभव सिन्हा का तर्क है कि निर्णय उचित और वैध था। हालाँकि, उनका तर्क है कि भविष्य की संभावनाओं का निर्णय **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले से भिन्न था। इसी तरह, व्यक्तिगत खर्चों पर भी विवाद नहीं किया जा सकता।

V. विचार के लिए मुद्दे:

8. अपने तर्कों को आगे बढ़ाने के बाद, संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए आते हैं:

क्या मुआवजे का निर्धारण करते समय विद्वान अधिकरण ने कानूनी रूप से इन शीर्षकों के तहत रकम की गणना की है: आय, भविष्य की संभावनाएं, कटौती, गुणक का अनुप्रयोग, पारंपरिक मद और ब्याज?

अनुवादित

VI. आश्रितों की संख्या और खर्चों के लिए कटौती:

9. दावेदार-प्रतिवादी मृतक पर आश्रित के रूप में निम्नलिखित व्यक्तियों का दावा करते हैं:

क्रम संख्या	नाम	आयु	संबंध
(I)	श्रीमती पूजा शुक्ला	33	पत्नी
(II)	श्रीमती माधुरी शुक्ल	63	माता
(III)	श्री ओम प्रकाश शुक्ल	68	पिता
(IV)	कु. श्रेया शुक्ला	13	पुत्री

10. मृतक पर चार आश्रित (पिता, माता, पत्नी एवं एक नाबालिग बच्चे) थे। विद्वान अधिकरण द्वारा व्यक्तिगत खर्चों के लिए की गई एक तिहाई की कटौती अत्यधिक थी। मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती योग्य राशि 1/4 है।

11. इस निर्णय को अधिकारियों द्वारा पुख्ता किया गया है। व्यक्तिगत खर्चों में कटौती के मुद्दे पर निर्णय लेते समय,उच्चतम न्यायालय ने **(श्रीमती) सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** के मामले में स्थापित किया:

> "30. हालांकि कुछ मामलों में व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए की जाने वाली कटौती की गणना त्रिलोक चंद्र [1996 4 एससीसी 362] में दर्शाई गई इकाइयों के आधार पर की जाती है, सामान्य व्यवहार मानकीकृत कटौतियां लागू करना है। इस न्यायालय के कई बाद के निर्णयों पर विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि जहां मृतक विवाहित था, वहां मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए कटौती एक तिहाई (1/3) होनी चाहिए, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 2 से 3 है, एक-चौथाई (1/4) होनी चाहिए, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4 से 6 है, और एक-पांचवां (1/5) होनी चाहिए, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या छह से अधिक है।"

12. **सरला वर्मा (उपरोक्त)** को बाद में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** में मंजूरी दी गई। (प्र. 37 देखें)।

VII. विभिन्न मदों के अंतर्गत मुआवज़े की गणना का मुद्दा:

a. मृतक का वेतन:

13. दावेदारों द्वारा उनके दावे का समर्थन करने के लिए दायर किए गए आयकर रिटर्न पर विचार करने में विफल रहने के कारण विद्वान अधिकरण से त्रुटि हुई। यह स्थापित हो गया है कि मृतक एक लघु कौशल उद्यमी था। उन्होंने नियमित रूप से अपना आयकर रिटर्न दाखिल किया। उनकी मृत्यु के बाद दाखिल किया गया आयकर रिटर्न पूरी तरह से विश्वसनीय था और इसे कानूनी प्रतिनिधियों/दावेदारों द्वारा आयकर अधिनियम की धारा 159 के तहत अपने दायित्व के निर्वहन में दाखिल किया गया था। प्रासंगिक प्रावधान यहां दिया गया है:

"कानूनी प्रतिनिधि

159. (1) जहां एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, उसका कानूनी प्रतिनिधि ऐसी किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा जिसे मृतक भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होता यदि उसकी मृत्यु नहीं हुई होती, उसी तरह और मृतक के समान ही।"

14. आयकर रिटर्न के अवलोकन से पता चलता है कि ऐसे आयकर रिटर्न विश्वसनीय प्रकृति के थे और मृतक की वास्तविक आय दर्शाते थे। मृतक की आय, 1,95,855/- रुपये प्रति वर्ष,आंकी गई है, जैसा कि आयकर रिटर्न में दर्शाया गया है।

15. विद्वान अधिकरण ने बिना किसी अच्छे कारण के आयकर रिटर्न को खारिज करके कानूनी गलती की थी।

b. भविष्य की संभावनाएँ:

16. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के अनुसार की जानी चाहिए। नियमावली का नियम 220A-3(iii) प्रासंगिक है और इसे नीचे यहाँ प्रस्तुत किया गया है:

"(3) भविष्य की संभावनाएँ मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा: "(i) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50%।"

17. यूपी नियम, 1998 सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य** में विचार के लिए आया। **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर **उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त)** में न्यायालय ने स्थापित किया:

"10. प्रणय सेठी में इस बिंदु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल व्यवहार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के मामले में ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने का निर्णय नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधानिकता को कोई चुनौती नहीं दी गई थी। उन मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा है, को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी निर्धारक सिद्धांत के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। ***यदि किसी वैधानिक साधन ने कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन अन्यथा अमान्य न पाया जाए।"***

(जोर दिया गया)

18. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली के नियम, 1998 **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** या **श्रीमती सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में भविष्य की संभावनाएं यूपी नियम, 1998 पर ध्यान दिए बिना निर्धारित की गईं। इस तथ्य को **उर्मीला शुक्ला (उपरोक्त)** में उल्लेखित किया गया था:

> "8. श्री राव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रणय सेठी मामले में निर्णय यह नहीं दर्शाता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3(iii) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो वेतन में 15% की तुलना में 20% जोड़ने पर विचार करता है, जिसे प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में कहा गया है। उनके निवेदन में, चूंकि वैधानिक साधन स्थापित किया गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी के मामले में निर्णय को ऐसे वैधानिक नियम के प्रयोग को सीमित करने वाला नहीं माना जाना चाहिए।"

19. यूपी नियम, 1998 प्रकृति में वैधानिक हैं और उनके संचालन को **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** द्वारा बाधित नहीं किया गया है। यूपी नियम, 1998 में कानून की शक्ति है और यह उचित मामलों में पूर्ण शक्ति से लागू होगा। यूपी नियम, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी(उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में अधिक फायदेमंद हैं। **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निर्धारित किए गए तथ्य, पात्र लाभार्थियों को यूपी नियम, 1998 द्वारा प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकते।

20. इसके मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि, जैसा कि यूपी नियम, 1998 में कहा गया है, दावेदार/प्रतिवादी भविष्य की संभावनाओं के मद में वेतन में 50% वृद्धि के हकदार हैं। निर्णय में आवश्यक परिवर्तन तदनुसार किए जाएंगे।

C. गुणक:

21. दुर्घटना के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी। **(श्रीमती) सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** के अनुसार लागू गुणक **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** के साथ पढ़ा गया जो 17 है।

D. पारंपरिक मदों की गणना:

22. विवादित निर्णय में पारंपरिक मदों के तहत निर्धारित राशि **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** से भिन्न है। पारंपरिक मदों को **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निम्नानुसार तय किया गया था:

> "54.....कहने की जरूरत नहीं है कि पारंपरिक मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उन मदों की मात्रा को परिमाणित करना होगा। किसी भी मात्रा निर्धारण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे

अनजान नहीं रह सकती है। यह इस पहलू में एक सामान्य नियम है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक सामान्य नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, अधिकरण और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के दिशाहीन बने रहने की संभावना है। इसलिए, हम उचित रकम तय करना यथोचित समझते हैं। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय के उचित आंकड़े क्रमशः रु. 15,000/-, रु. 40,000/- और रु.15,000/- होने चाहिए।"

23. **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निर्धारित पारंपरिक मदों के तहत आंकड़ा इस मामले के तथ्यों पर लागू होगा। निर्णय तदनुसार संशोधित किया गया है।

E. ब्याज:

24. विद्वान अधिकरण द्वारा तय किया गया भुगतान का तरीका एवम 7% का ब्याज उचित और वैध है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

VIII. मुआवजे का निर्धारण जिसके लिए दावेदार-प्रतिवादी हकदार हैं:

25. पिछली चर्चा के मद्देनजर, मुआवजे की वह राशि जिसके लिए दावेदार हकदार हैं और जो एतद द्वारा प्रदान किए गये हैं, उसे यहां सारणीबद्ध किया गया है:

i. दुर्घटना की तिथि - 14.08.2013

ii. मृतक का नाम - अमित शुक्ला

iii. मृतक की आयु - 30 वर्ष

iv. मृतक का व्यवसाय - लघु उद्यमी

v. मृतक की आय - 1,95,855 प्रति वर्ष

vi. दावेदारों का नाम, आयु और मृतक के साथ संबंध:

क्रम संख्या	नाम	आयु	संबंध
	श्रीमती पूजा शुक्ला	33	पत्नी
1.	श्रीमती माधुरी शुक्ल	63	माता
2.	श्री ओम प्रकाश शुक्ल	68	पिता
3.	कु. श्रेया शुक्ला	13	पुत्री

vii. **मुआवजे की गणना**

क्रम संख्या	मद	राशि (रुपये में)
1.	मासिक आय (ए)	रु. 16,321/-
2.	वार्षिक आय (बी) (ए x 12 = बी)	रु. 1,95,852/-
3.	भविष्य की संभावनाएं (सी)	1,95,852/- का 50% = 97,926/-
4.	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं (बी+सी=डी)	1,95,852+ 97,926/- = 2,93,778/-
5.	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (ई)(डी का ¼)	2,93,778/- का ¼= 73,444/-

6.	वार्षिक निर्भरता का नुकसान (D-E = F)	2,93,778-73,444/-= (F) 2,20,334/-
7.	गुणक (G)	17
8.	निर्भरता का कुल नुकसान (F x G)	2,20,334 x 17 = 37,45,678/-
9.	पारंपरिक मद: (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) संपत्ति की हानि (सी) अंत्येष्टि व्यय	70,000/-
10.	कुल मुआवजा	38,15,678/-
11.	ब्याज	7%

IX. निष्कर्ष एवं निर्देश:

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

27. मुआवजे की राशि जो दावेदारों को प्रदान की गई है, बीमा कंपनी द्वारा विद्वान अधिकरण के समक्ष तीन महीने की अवधि के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान अधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी कर देगा। दावेदारों को पहले ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को समायोजित किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 108

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 17/2019

श्रीमती पूजा एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

विजय कुमार तिवारी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री प्रखर टंडन

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अनुभव सिन्हा

ए. सिविल विधि- मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 176-दावे में वृद्धि को चुनौती- मृतक अपनी पत्नी व तीन बच्चों को छोड़कर मरा- न्यायाधिकरण ने मृतक की आय 16,321/- प्रतिमाह के स्थान पर 3000/- प्रतिमाह मानी तथा भविष्य में आय की हानि नहीं मानी- दावेदार उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 के अनुरूप भविष्य की संभावनाओं के लिए वेतन में 50% वृद्धि के हकदार हैं- कुल मुआवजा 38,15,678/- रुपए होगा तथा ब्याज दर 7% होगी- बीमा कंपनी 3 माह के भीतर धनराशि जमा करेगी। (पैरा 1 से 13)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. एनआईसीएल बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680
2. न्यू इंडिया असुर कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
3. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

I. परिचय

1. वर्तमान अपील विद्वान मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर

द्वारा दिनांक 13.09.2018 को मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 994/2013 (श्रीमती पूजा शुक्ला और अन्य बनाम विनय कुमार तिवारी और अन्य) में दावेदारों के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार किए जाने के निर्णय से उत्पन्न होती है।

।।. विद्वान अधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रतिवादियों का मामला:

2. विद्वान अधिकरण के समक्ष दावेदारों का मामला संक्षेप में यह था कि मृतक की मृत्यु दिनांक 14.08.2013 को पंजीकरण संख्या यूपी 78 सीएन 7323 वाले जेएसए लोडर द्वारा गलत तरीके से लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण कारित दुर्घटना में लगी चोटों से हुई थी। अपराधी वाहन का बीमा प्रतिवादी संख्या 2- यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा किया गया था। दावेदार मृतक अमित शुक्ला के आश्रित हैं। मृतक नमकीन बनाने वाली एक इकाई चलाता था। मृत्यु के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी।

।।।. विद्वान अधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा:

3. विद्वान अधिकरण ने दिनांक 13.09.2018 के आक्षेपित आदेश में मुआवज़ा दिया, जिसे नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:

क्रमांक	**मद**	**अधिकरण द्वारा दी गई राशि**
11.	मासिक आय	3000
12.	वार्षिक आय	36,000
13.	भविष्य की संभावनाएं	36000 का 25% =9000
14.	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं	36000+9000=45000
15.	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती	45000 का 1/3 =15000
16.	निर्भरता का वार्षिक नुकसान	45000-15000=30000
17.	गुणक	17
18.	निर्भरता का कुल नुकसान	30,000x17=510000
19.	पारंपरिक खर्चे (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) संपत्ति का नुकसान (सी) अंतिम संस्कार व्यय	55,000
20.	कुल मुआवजा	5,10,000+55000 = 5,65,000
21.	ब्याज	7%

4. दावेदार वर्तमान अपील के माध्यम से मुआवजे में वृद्धि की मांग करते हैं।

IV. विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रखर टंडन ने यह तर्क देते हुए आदेश की आलोचना की कि विद्वान अधिकरण ने आयकर रिटर्न पर विचार करने की उपेक्षा करके त्रुटि की, जो मृतक की वास्तविक आय को दर्शाता है। दूसरे,व्यक्तिगत खर्चों में त्रुटिपूर्ण कटौती की गई। विद्वान विचारण न्यायालय ने भविष्य की संभावनाओं और पारंपरिक खर्चों को प्रदान करने में भी विधिक गलती की, जो **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला**

शुक्ला और अन्य और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप है।

6. मृतक के चार आश्रित थे। विद्वान अधिकरण द्वारा व्यक्तिगत खर्चों के लिए की गई एक तिहाई की कटौती अत्यधिक थी। मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती योग्य राशि 1/4 है।दावेदार अधिक राशि के हकदार थे।

7. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुभव सिन्हा का तर्क है कि निर्णय उचित और वैध था। हालाँकि, उनका तर्क है कि भविष्य की संभावनाओं का निर्णय **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले से भिन्न था। इसी तरह, व्यक्तिगत खर्चों पर भी विवाद नहीं किया जा सकता।

V. विचार के लिए मुद्दे:

8. अपने तर्कों को आगे बढ़ाने के बाद, संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए आते हैं:

क्या मुआवजे का निर्धारण करते समय विद्वान अधिकरण ने कानूनी रूप से इन शीर्षकों के तहत रकम की गणना की है: आय, भविष्य की संभावनाएं, कटौती, गुणक का अनुप्रयोग, पारंपरिक मद और ब्याज?

VI. आश्रितों की संख्या और खर्चों के लिए कटौती:

9. दावेदार-प्रतिवादी मृतक पर आश्रित के रूप में निम्नलिखित व्यक्तियों का दावा करते हैं:

क्रम संख्या	नाम	आयु	संबंध
(II)	श्रीमती पूजा शुक्ला	33	पत्नी
(III)	श्रीमती माधुरी शुक्ल	63	माता
(IV)	श्री ओम प्रकाश शुक्ल	68	पिता
(V)	कु. श्रेया शुक्ला	13	पुत्री

10. मृतक पर चार आश्रित (पिता, माता, पत्नी एवं एक नाबालिग बच्चे) थे। विद्वान अधिकरण द्वारा व्यक्तिगत खर्चों के लिए की गई एक तिहाई की कटौती अत्यधिक थी। मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती योग्य राशि 1/4 है।

11. इस निर्णय को अधिकारियों द्वारा पुख्ता किया गया है। व्यक्तिगत खर्चों में कटौती के मुद्दे पर निर्णय लेते समय,उच्चतम न्यायालय ने **(श्रीमती) सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** के मामले में स्थापित किया:

> "30. हालांकि कुछ मामलों में व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए की जाने वाली कटौती की गणना त्रिलोक चंद्र [1996 4 एससीसी 362] में दर्शाई गई इकाइयों के आधार पर की जाती है, सामान्य व्यवहार मानकीकृत कटौतियां लागू करना है। इस न्यायालय के कई बाद के निर्णयों पर विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि जहां मृतक विवाहित था, वहां मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए कटौती एक तिहाई (1/3) होनी चाहिए, जहां आश्रित

परिवार के सदस्यों की संख्या 2 से 3 है, एक-चौथाई (1/4) होनी चाहिए, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4 से 6 है, और एक-पांचवां (1/5) होनी चाहिए, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या छह से अधिक है।"

12. **सरला वर्मा (उपरोक्त)** को बाद में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** में मंजूरी दी गई। (प्र. 37 देखें)।

VII. विभिन्न मदों के अंतर्गत मुआवज़े की गणना का मुद्दा:

a. मृतक का वेतन:

13. दावेदारों द्वारा उनके दावे का समर्थन करने के लिए दायर किए गए आयकर रिटर्न पर विचार करने में विफल रहने के कारण विद्वान अधिकरण से त्रुटि हुई। यह स्थापित हो गया है कि मृतक एक लघु कौशल उद्यमी था। उन्होंने नियमित रूप से अपना आयकर रिटर्न दाखिल किया। उनकी मृत्यु के बाद दाखिल किया गया आयकर रिटर्न पूरी तरह से विश्वसनीय था और इसे कानूनी प्रतिनिधियों/दावेदारों द्वारा आयकर अधिनियम की धारा 159 के तहत अपने दायित्व के निर्वहन में दाखिल किया गया था। प्रासंगिक प्रावधान यहां दिया गया है:

> **"कानूनी प्रतिनिधि**
>
> 159. (1) जहां एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, उसका कानूनी प्रतिनिधि ऐसी किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा जिसे मृतक भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होता यदि उसकी मृत्यु नहीं हुई होती, उसी तरह और मृतक के समान ही।"

14. आयकर रिटर्न के अवलोकन से पता चलता है कि ऐसे आयकर रिटर्न विश्वसनीय प्रकृति के थे और मृतक की वास्तविक आय दर्शाते थे। मृतक की आय, 1,95,855/- रुपये प्रति वर्ष,आंकी गई है, जैसा कि आयकर रिटर्न में दर्शाया गया है।

15. विद्वान अधिकरण ने बिना किसी अच्छे कारण के आयकर रिटर्न को खारिज करके कानूनी गलती की थी।

b. भविष्य की संभावनाएँ:

16. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के अनुसार की जानी चाहिए। नियमावली का नियम 220A-3(iii) प्रासंगिक है और इसे नीचे यहाँ प्रस्तुत किया गया है:

> "(3) भविष्य की संभावनाएँ मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा:
> "(i) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50%।"

17. यूपी नियम, 1998 सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य** में विचार के लिए आया। **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर **उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त)** में न्यायालय ने स्थापित किया:

"10. प्रणय सेठी में इस बिंदु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल व्यवहार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के मामले में ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने का निर्णय नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधानिकता को कोई चुनौती नहीं दी गई थी। उन मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा है, को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी निर्धारक सिद्धांत के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। ***यदि किसी वैधानिक साधन ने कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन अन्यथा अमान्य न पाया जाए।***"

(जोर दिया गया)

18. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली के नियम, 1998 **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** या **श्रीमती सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में भविष्य की संभावनाएं यूपी नियम, 1998 पर ध्यान दिए बिना निर्धारित की गईं। इस तथ्य को **उर्मीला शुक्ला (उपरोक्त)** में उल्लेखित किया गया था:

"8. श्री राव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रणय सेठी मामले में निर्णय यह नहीं दर्शाता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3(iii) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो वेतन में 15% की तुलना में 20% जोड़ने पर विचार करता है, जिसे प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में कहा गया है। उनके निवेदन में, चूंकि वैधानिक साधन स्थापित किया गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी के मामले में निर्णय को ऐसे वैधानिक नियम के प्रयोग को सीमित करने वाला नहीं माना जाना चाहिए।"

19. यूपी नियम, 1998 प्रकृति में वैधानिक हैं और उनके संचालन को **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** द्वारा बाधित नहीं किया गया है। यूपी नियम, 1998 में कानून की शक्ति है और यह उचित मामलों में पूर्ण शक्ति से लागू होगा। यूपी नियम, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी(उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में अधिक फायदेमंद हैं। **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निर्धारित किए गए तथ्य, पात्र लाभार्थियों को यूपी नियम, 1998 द्वारा प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकते।

20. इसके मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि, जैसा कि यूपी नियम, 1998 में कहा गया

है, दावेदार/प्रतिवादी भविष्य की संभावनाओं के मद में वेतन में 50% वृद्धि के हकदार हैं। निर्णय में आवश्यक परिवर्तन तदनुसार किए जाएंगे।

C. गुणक:

21. दुर्घटना के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी। **(श्रीमती) सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** के अनुसार लागू गुणक **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** के साथ पढ़ा गया जो 17 है।

D. पारंपरिक मदों की गणना:

22. विवादित निर्णय में पारंपरिक मदों के तहत निर्धारित राशि **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** से भिन्न है। पारंपरिक मदों को **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निम्नानुसार तय किया गया था:

> "54.....कहने की जरूरत नहीं है कि पारंपरिक मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उन मदों की मात्रा को परिमाणित करना होगा। किसी भी मात्रा निर्धारण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे अनजान नहीं रह सकती है। यह इस पहलू में एक सामान्य नियम है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक सामान्य नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, अधिकरण और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के दिशाहीन बने रहने की संभावना है। इसलिए, हम उचित रकम तय करना यथोचित समझते हैं। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय के उचित आंकड़े क्रमशःरु. 15,000/-, रु. 40,000/- और रु.15,000/- होने चाहिए।"

23. **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निर्धारित पारंपरिक मदों के तहत आंकड़ा इस मामले के तथ्यों पर लागू होगा। निर्णय तदनुसार संशोधित किया गया है।

E. ब्याज:

24. विद्वान अधिकरण द्वारा तय किया गया भुगतान का तरीका एवम 7% का ब्याज उचित और वैध है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

VIII. मुआवजे का निर्धारण जिसके लिए दावेदार-प्रतिवादी हकदार हैं:

25. पिछली चर्चा के मद्देनजर, मुआवजे की वह राशि जिसके लिए दावेदार हकदार हैं और जो एतद द्वारा प्रदान किए गये हैं, उसे यहां सारणीबद्ध किया गया है:

i.	दुर्घटना की तिथि	- 14.08.2013
ii.	मृतक का नाम	- अमित शुक्ला
iii.	मृतक की आयु	- 30 वर्ष

iv. मृतक का व्यवसाय - लघु उद्यमी

v. मृतक की आय - 1,95,855 प्रति वर्ष

vi. दावेदारों का नाम, आयु और मृतक के साथ संबंध:

क्रम संख्या	नाम	आयु	संबंध
4.	श्रीमती पूजा शुक्ला	33	पत्नी
5.	श्रीमती माधुरी शुक्ल	63	माता
6.	श्री ओम प्रकाश शुक्ल	68	पिता
7.	कु. श्रेया शुक्ला	13	पुत्री

vii मुआवजे कि गणना

क्रम संख्या	मद	राशि(रूपये में)
1	मासिक आय (ए)	रु. 16,321/-
2	वार्षिक आय (बी) (ए x 12 = बी)	रु. 1,95,852/-
3	भविष्य की संभावनाएं (सी)	1,95,852/- का 50% = 97,926/-
4	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं (बी+सी=डी)	1,95,852+ 97,926/- = 2,93,778/-
5	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (ई)(डी का ¼)	2,93,778/- का ¼= 73,444/-
6	वार्षिक निर्भरता का नुकसान (F) (D-E = F)	2,93,778- 73,444/-= 2,20,334/-
	गुणक (G)	17
	निर्भरता का कुल नुकसान (F x G)	2,20,334 x 17 = 37,45,678/-
	पारंपरिक मद: (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) संपति की हानि (सी) अंत्येष्टि व्यय	70,000/-
	कुल मुआवजा	38,15,678/-
	ब्याज	7%

IX. निष्कर्ष एवं निर्देश:

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

27. मुआवजे की राशि जो दावेदारों को प्रदान की गई है, बीमा कंपनी द्वारा विद्वान अधिकरण के समक्ष तीन महीने की अवधि के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान अधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी कर देगा। दावेदारों को पहले ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को समायोजित किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 114

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 70/2019

अजीत राजभर ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती बादामी देवी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अखिलेश चंद्र श्रीवास्तव, श्री रमेश चंद्र पाठक, श्री आदित्य सिंह परिहार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री विजय कुमार दुबे, श्री मनीष कुमार पांडे

ए. सिविल कानून- मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 176-चुनौती-क्या मोटर वाहन का

मालिक, जो इसे मरम्मत के लिए मैकेनिक को सौंपता है, मरम्मत के उद्देश्य से सार्वजनिक स्थान पर मैकेनिक द्वारा मोटर वाहन के उपयोग के कारण तीसरे पक्ष को चोट लगने पर नुकसान के लिए उत्तरदायी होगा-यदि मालिक वास्तव में किसी सार्वजनिक स्थान पर बिना बीमा वाले वाहन को चलाता है या अपने नौकर या एजेंट के माध्यम से इसे चलवाता है, जिससे किसी तीसरे पक्ष को चोट पहुंचती है, तो मालिक तीसरे पक्ष को हुई चोट या हानि के लिए क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा-जब वाहन को सेवा या मरम्मत के उद्देश्य से मैकेनिक जैसे किसी स्वतंत्र ठेकेदार को सौंपा जाता है, तो इसे मैकेनिक या मरम्मत करने वाले द्वारा जमानत के अनुबंध के तहत रखा जाता है, इसे मालिक के नौकर या एजेंट के रूप में नहीं रखा जाता है-इसलिए, निक्षेप अनुबंध के तहत मैकेनिक या मरम्मत करने वाले द्वारा मोटर वाहन को सार्वजनिक स्थान पर उपयोग करने से उत्पन्न किसी तीसरे पक्ष को होने वाली किसी भी चोट या हानि के लिए, निक्षेपिती तीसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति या प्रतिपूर्ति के लिए जो उत्तरदायी होगा, वह स्वामी नहीं होगा। (पैरा 1 से 53)

अपील निरस्त। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नवीन कुमार बनाम विजय कुमार एवं अन्य (2018) 3 एससीसी 1
2. सीताराम मोतीलाल कलाल बनाम शांतनुप्रसाद जयशंकर भट्ट (1966) एआईआर एससी 1697
3. मीनू बी. मेहता और अन्य बनाम बालकृष्ण रामचंद्र नयन और अन्य (1977) 2 एससीसी 441
4. पुष्पाबाई पुरुषोत्तम उदेशी अन्य अन्य बनाम रंजीत जिनिंग एंड प्रेसिंग कंपनी (पी) लिमिटेड अन्य अन्य (1977) 2 एससीसी 745
5. के. आनंदन बनाम अम्मलु गोमती एवं अन्य। (1988) एयर केर 117
6. रामू तोलाराम बनाम अमीचंद हंसराज गुप्ता और अन्य (1988) एआईआर बॉम 304
7. द मोटर एंड जनरल फाइनेंस (इंडिया) लिमिटेड बनाम मैरी मोनी एंड ऑर (1990) एससीसी ऑनलाइन केर 229
8. देविंदर सिंह बराड़ बनाम मंगल सिंह और अन्य (1981) एआईआर पी एंड एच 53
9. गुरु गोवेकर बनाम फिलोमेना एफ. लोबो मिस (1988) 3 एससीसी 1
10. उपनाम बनाम ई.एम. पॉल एवं अन्य. (2004) वाटर केर 214
11. पार्टनर नंबर 15, ईगल ब्रांड सोपनट कंपनी, पेरिया कम्मला स्ट्रीट, तिरुचिरापल्ली-8 बनाम रंगासामी और अन्य द्वारा (1997) एससीसी ऑनलाइन मैड 67

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 173 के तहत यह अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 7, गोरखपुर के मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 145 सन् 2012 में दिनांक 31 मई 2017 के श्री राकेश कुमार के निर्णय और आदेश के खिलाफ निर्देशित किया गया है, जिसमें अपीलार्थी को एक घातक मोटर दुर्घटना के लिए दावेदार-प्रतिवादी संख्या 1 को मुआवजा देने का आदेश दिया गया है।

2. इस अपील में शामिल विवादास्पद प्रश्न यह है कि: क्या मोटर वाहन का मालिक, जो इसे मरम्मत के लिए मैकेनिक को सौंपता है, किसी तीसरे पक्ष को मरम्मत के उद्देश्य से सार्वजनिक स्थान पर मैकेनिक द्वारा मोटर वाहन के उपयोग के कारण चोट लगने पर क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा?

3. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य ये हैं:

दिनांक 13.02.2012 को इन्द्र कुमार गुप्ता उर्फ कुम्भे अपनी साइकिल से खलीलाबाद जा रहे थे। दोपहर करीब एक बजे जैसे ही वह थाना बखिरा, जिला संतकबीर नगर की स्थानीय सीमा के अंतर्गत बेनी माधव इंटर कॉलेज से आगे स्थित एक तालाब के पास पहुंचे, मोटरसाइकिल सवार, जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर यूपी-58डी-4362 है, अपने मोटरसाइकिल को तेज गति और लापरवाही से चलाते हुए आया और बिना हॉर्न बजाए उस साइकिल को टक्कर मार दी जिस पर गुप्ता चला रहे थे। टक्कर के परिणामस्वरूप गुप्ता को गंभीर चोटें आईं। उन्हें चिकित्सीय सहायता के लिए खलीलाबाद के एक अस्पताल ले जाया जा रहा था, लेकिन रास्ते में ही उनकी मौत हो गई। गुप्ता की पत्नी श्रीमती बादामी देवी द्वारा दायर दावा याचिका में ये दावे हैं। दावा याचिका में बादामी देवी एकमात्र दावेदार और इस अपील की प्रतिवादी हैं। एतस्मिनपश्चात उसे 'दावेदार' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

4. दावेदार का मामला है कि यद्यपि उसके पति की असामयिक मृत्यु के कारण हुए नुकसान की भरपाई पैसे से नहीं की जा सकती, लेकिन फिर भी वह मुआवजे की हकदार है। बताया जाता है कि मृतक प्रति माह 8000/- रुपये कमाता था, जिसे वह अपने परिवार पर खर्च करता था। दावेदार का यह भी दावा है कि उनके असामयिक निधन से कंपनी भी छूट गई। तदनुसार, दावा याचिका के कॉलम नंबर 22 में दिए गए विवरण के अनुसार, दावेदार ने मुआवजे के रूप में 18,21,000/- रुपये की मांग की है।

5. आपत्तिजनक मोटरसाइकिल के मालिक राम चंद्र साहनी हैं, जिन्हें दावा याचिका में विपक्षी पक्ष संख्या 1 के रूप में रखा गया है। वह इस अपील के दूसरे प्रतिवादी हैं। इसके बाद उन्हें 'मालिक' के रूप में कहा जाएगा। मालिक ने आम तौर पर दावा याचिका में दिए गए कथनों को नकारते हुए एक लिखित बयान दिया। अतिरिक्त दलीलों में, उन्होंने कथित तारीख, समय और स्थान पर अपनी मोटरसाइकिल से हुई दुर्घटना से इनकार किया है। मालिक के अनुसार, उन्होंने दुर्घटना से पहले सर्विस कराने के लिए अजीत राजभर नामक व्यक्ति को आपत्तिजनक मोटरसाइकिल सौंपी थी। अजीत राजभर मालिक की अनुमति के बिना मोटरसाइकिल चला रहा था, तभी उसने दुर्घटना को अंजाम दिया। एक सप्ताह बीत जाने तक मालिक को हादसे की कोई जानकारी नहीं थी। यह मालिक का मामला है कि चूंकि अजीत राजभर (संक्षेप में, 'मैकेनिक') मालिक की सहमति के बिना मोटरसाइकिल चला रहा था, इसलिए अधिकरण की राय है कि यदि यही वह आपत्तिजनक मोटरसाइकिल थी जो दुर्घटना में शामिल थी, तो उसे दिए गए मुआवजे को पूरा करने का भार वहन करना होगा।

6. मैकेनिक, जिसे दावा याचिका में विरोधी पक्ष संख्या 2 के रूप में रखा गया था और वह यहां अपीलार्थी है, ने अपना अलग लिखित बयान दिनांक 13.04.2016 को दिया। दावा याचिका में उसने आमतौर पर आरोपों से इनकार किया। अतिरिक्त दलीलों में, यह उसका मामला है कि दिनांक 03.02.2012 या किसी अन्य तारीख को, वह आपत्तिजनक वाहन नहीं चला रहा था, लेकिन जिस समय दुर्घटना हुई, उसके पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था, जिसका नंबर ए294715केएन/05 था। उक्त ड्राइविंग लाइसेंस उसे दिनांक 07.07.2005 को परिवहन अधिकारी, संत कबीर नगर द्वारा जारी किया गया था। दिनांक 13.02.2012 को मैकेनिक द्वारा लापरवाहीपूर्वक एवं असावधानीपूर्वक मोटरसाइकिल चलाने के कारण कोई दुर्घटना नहीं हुई। दावेदार ने केवल मुआवजा मांगने के उद्देश्य से यह दावा किया है। मैकेनिक ने हादसे में अपनी संलिप्तता से इनकार किया है।

7.पक्षकारों की दलीलों पर, अधिकरण ने निम्नलिखित मुद्दे तय किए (अंग्रेजी से हिंदी में अनुवादित):

"1. क्या दिनांक 13.02.2012 को जब मृतक इंद्र कुमार गुप्ता उर्फ कुंभे साइकिल से खलीलाबाद जा रहा था और दोपहर करीब 1:00 बजे थाना बखिरा, जिला संतकबीर नगर की स्थानीय सीमा के अंतर्गत बेनी माधव इंटर कॉलेज से थोड़ा आगे पहुंचा था कि मोटरसाइकिल, जिसका पंजीकरण संख्या यूपी-58डी-4362 है, जिसे उसका सवार तेजी और लापरवाही से और बिना हार्न बजाए चला रहा था, आयी और मृतक की मोटरसाइकिल से टकरा गई, जिससे उसे गंभीर चोटें आईं, जिससे अस्पताल ले जाते समय उसकी मृत्यु हो गई?

2. क्या उक्त दुर्घटना की तिथि और समय पर, उक्त मोटरसाइकिल, जिसका पंजीकरण संख्या यूपी-58डी-4362 है, के सवार के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था?

3. क्या दुर्घटना की तिथि व समय पर उक्त मोटरसाइकिल संख्या यूपी-58डी-4362 का बीमा किसी बीमा कंपनी से कराया गया था?

4. क्या दावेदार किसी मुआवज़े का हकदार है, यदि हाँ, तो कितना और किससे?"

8. दावेदार की ओर से, दावेदार ने स्वयं पीडब्लू-1 के रूप में कटघरे में प्रवेश किया, इसके अलावा एक अन्य कृष्ण कुमार से पीडब्लू-2 के रूप में पूछताछ की। मालिक ने भी गवाह बॉक्स में प्रवेश किया और डडब्लू-1 के रूप में गवाही दी। दावेदार की ओर से तीन सूचियों के माध्यम से दस्तावेजी साक्ष्य दाखिल किये गये। इस अपील के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक साक्ष्य का उल्लेख इस निर्णय के दौरान किया जाएगा।

9. विवाद्यक संख्या 1 पर, रिकॉर्ड पर मौजूद सभी सबूतों पर विचार करने के बाद, अधिकरण ने माना कि जिस समय दुर्घटना हुई, उस समय अपराधी मोटरसाइकिल को मैकेनिक चला रहा था। मालिक के अलावा एक चश्मदीद गवाह पीडब्लू-2 की गवाही पर विचार करने के बाद निष्कर्ष दर्ज किया गया है। इस

बात का भी संज्ञान लिया गया है कि मैकेनिक को मोटरसाइकिल समेत मौके पर ही पकड़ लिया गया और थाने ले जाया गया। मैकेनिक की दुकान घटना स्थल से 200 मीटर की दूरी पर स्थित है। मालिक ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि उसने मैकेनिक को अपनी अनुपस्थिति में अपनी मोटरसाइकिल चलाने या परीक्षण करने से मना किया था, लेकिन अपने जिरह में मालिक ने कहा है कि उसने मैकेनिक को कोई लिखित निर्देश नहीं दिया था। मैकेनिक को उसकी अनुपस्थिति में मोटरसाइकिल न चलाने या परीक्षण न करने को कहा गया है। अधिकरण ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि मालिक ने पुलिस को मोटरसाइकिल चलाने के दौरान दुर्घटना का कारण बनने वाले मैकेनिक के बारे में सूचित किया था, और इसके अलावा पुलिस ने संबंधित आपराधिक मामले में मैकेनिक के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया है। इस प्रकार, अधिकरण द्वारा यह माना गया कि दुर्घटना की तारीख पर, आपत्तिजनक मोटरसाइकिल को मैकेनिक द्वारा चलाये जाने के दौरान दुर्घटना का कारण बना, और उक्त दुर्घटना में गुप्ता को चोटें लगीं जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

10. विवाद्यक संख्या 2 पर, अधिकरण ने एक निष्कर्ष दिया है कि दुर्घटना की तारीख पर, मैकेनिक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। जहां तक विवाद्यक संख्या 3 का सवाल है, निष्कर्ष यह है कि दुर्घटना की तारीख और समय पर, हमलावर मोटरसाइकिल का बीमा नहीं किया गया था।

11. सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष विवाद्यक संख्या 4 के हैं। यहां, मुआवजे की मात्रा, जिसके लिए दावेदार को हकदार पाया गया है, को समाप्त करने के अलावा अधिकरण ने इस सवाल का भी फैसला किया है कि मालिक और मैकेनिक के बीच, कौन इसकी भरपाई के लिए उत्तरदायी होगा। अधिकरण ने कहा है कि चूंकि मालिक ने मैकेनिक को उसकी अनुपस्थिति में वाहन चलाने से मना किया था, इसलिए यह स्पष्ट है कि दुर्घटना तब हुई जब मैकेनिक इसे अपने किसी काम के लिए इस्तेमाल कर रहा था। इसलिए, दिए गए मुआवज़े की भरपाई करने की जिम्मेदारी मैकेनिक के कंधे पर आ जाएगी; मालिक के नहीं।

12. इन टिप्पणियों के साथ, अधिकरण ने दावा याचिका पर फैसला सुनाया और दावा याचिका शुरू होने की तारीख से 6% ब्याज के साथ 1,88,000/- रुपये का मुआवजा देने का फैसला सुनाया। मुआवज़ा देने का दायित्व पूरी तरह से मैकेनिक के कंधों पर डाल दिया गया था। मालिक को दायित्व से मुक्त कर दिया गया।

13. इससे व्यथित होकर, मैकेनिक ने वर्तमान अपील दायर की है, और दायित्व को मालिक पर स्थानांतरित करने के लिए कहा है। इसी संदर्भ में इस निर्णय के शुरुआती भाग में प्रस्तुत प्रश्न उठा है।

14. मैकेनिक के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र पाठक के होल्डिंग ब्रीफ श्री आदित्य सिंह परिहार और मालिक के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय कुमार दुबे के होल्डिंग ब्रीफ श्री मनीष कुमार पांडे को सुना। दावेदार की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

15. मैकेनिक के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य सिंह परिहार ने तर्क दिया है कि उन्होंने अपनी दलीलों को विवाद्यक संख्या 4 पर अधिकरण के निष्कर्षों के उस हिस्से की आलोचना तक सीमित कर दिया है, जहां यह माना गया है कि मुआवजे का भुगतान करने के लिए कौन उत्तरदायी होगा। निर्णय दिया गया कि अधिकरण ने यह मानने में पूरी तरह से गलती की है कि मैकेनिक उत्तरदायी है। यह बहुत जोर देकर तर्क दिया गया है कि अधिकरण इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि जिस समय दुर्घटना हुई, मैकेनिक आपत्तिजनक मोटरसाइकिल का परीक्षण कर रहा था, जो उपनिधान के संविदा का हिस्सा था, यानी आपत्तिजनक मोटरसाइकिल की सर्विस जिसके तहत उसे मालिक द्वारा दी गई इसकी हिरासत थी। यह भी तर्क दिया गया है कि अधिकरण की यह टिप्पणी कि मैकेनिक अपने उपयोग के लिए आपत्तिजनक मोटरसाइकिल चला रहा था, किसी भी सबूत से रहित है। यह तर्क दिया गया है कि यह तथ्य कि दुर्घटना मैकेनिक की दुकान से लगभग 200 मीटर की दूरी पर स्थित एक स्थान पर हुई थी, परिस्थितिजन्य रूप से मैकेनिक के रुख को मजबूत करता है कि वह आपत्तिजनक मोटरसाइकिल का परीक्षण कर रहा था। श्री आदित्य सिंह परिहार ने तब कहा कि अधिनियम के तहत मुआवजे की भरपाई करने का दायित्व आपत्तिजनक मोटरसाइकिल के पंजीकृत मालिक का होगा। अपने दलीलों के समर्थन में **उन्होंने नवीन कुमार बनाम विजय कुमार और अन्य, (2018) 3 एससीसी 1** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है, जिसे निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"13.उपरोक्त निर्णयों से जो सुसंगत तर्क उभरता है वह यह है कि धारा 2(30) में अभिव्यक्ति "मालिक" की परिभाषा के दृष्टिगत, यह वह व्यक्ति है जिसके नाम पर मोटर वाहन पंजीकृत है, जो अधिनियम के प्रयोजनों के लिए "मालिक" माना जाएगा। हालाँकि, जहां कोई व्यक्ति नाबालिग है, वहां नाबालिग के अभिभावक को मालिक माना जाएगा। जहां एक मोटर वाहन किराया खरीद, पट्टे या दृष्टिबंधक के समझौते के अधीन है, उस समझौते के तहत वाहन के कब्जे वाले व्यक्ति को मालिक माना जाता है। ऐसी स्थिति में, जहां पंजीकृत मालिक ने वाहन को स्थानांतरित करने का दावा किया है, लेकिन वाहन के मालिक के रूप में पंजीकरण प्राधिकारी के रिकॉर्ड में दर्शित होता रहता है, तो वह दायित्व से मुक्त नहीं होगा। संसद ने जानबूझकर धारा 2(30) में अभिव्यक्ति "मालिक" की परिभाषा पेश की है, जो 1939 के पहले के अधिनियम की धारा 2(19) के प्रावधानों से हटकर है। धारा 2(30) के प्रावधानों में अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि मोटर दुर्घटना के शिकार व्यक्ति या, मृत्यु के मामले में, मृत पीड़ित के कानूनी उत्तराधिकारियों को अनिश्चितता की स्थिति में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। मुआवज़े के दावेदार पर क्रमिक हस्तांतरणों का बोझ नहीं डाला जाना चाहिए, जो पंजीकरण प्राधिकारी के साथ पंजीकृत नहीं हैं। अन्यथा यह मानना अधिनियम के हितकारी उद्देश्य और उद्देश्य को विफल करना होगा। इसलिए, रखी जाने

वाली व्याख्या से कानून के उद्देश्य की पूर्ति में सहायता मिलनी चाहिए। वर्तमान मामले में, पहला प्रतिवादी धारा 2(30) के अर्थ के अंतर्गत दुर्घटना में शामिल वाहन का "मालिक" था। मुआवज़ा देने का दायित्व उस पर तय हो गया है। स्वीकार्य रूप से वाहन का बीमा नहीं था। उच्च न्यायालय ने रेशमा [एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम रेशमा] (2015) 3 एससीसी 679: (2015) 2 एससीसी (सिव) 379: (2015) 2 एससीसी (क्रि.) 408] और पूर्ण कला देवी [पूर्ण कला देवी बनाम असम राज्य, (2014) 14 एससीसी 142: (2015) 1 एससीसी (सिव) 251: (2015) 1 एससीसी (सीआरआई) 304] मामले में इस न्यायालय के निर्णयों की गलत व्याख्या पर कार्यवाही की है।

14. याचिकाकर्ता का कहना है कि स्थानांतरण की सूचना देने में विफलता पर केवल धारा 50(3) के तहत जुर्माना लगाया जाएगा, लेकिन वाहन का स्थानांतरण अमान्य नहीं होगा। टी.वी. जोस [टी.वी. जोस बनाम चाको पी.एम., (2001) 8 एससीसी 748: 2002 एससीसी (सीआरआई) 94] मामले में इस न्यायालय ने पाया कि कार की कीमत और डिलीवरी के भुगतान से स्वामित्व का हस्तांतरण हो सकता है। लेकिन अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, वह व्यक्ति जिसका नाम पंजीकरण प्राधिकारी के रिकॉर्ड में दर्शित होता है, वह मालिक है। धारा 2(30) के तहत मालिक क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है। कानून का आदेश पूरा किया जाना चाहिए।"

16. दूसरी ओर, मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष कुमार पांडे का कहना है कि मालिक ने डीडब्ल्यू-1 के रूप में कठघरे में प्रवेश किया और अपनी गवाही में विशेष रूप से कहा है कि उसने लिखित रूप से मैकेनिक को मरम्मत के बाद आपत्तिजनक मोटरसाइकिल चलाने से मना नहीं किया था, लेकिन मौखिक रूप से उसकी अनुपस्थिति में उसे मोटरसाइकिल का उपयोग न करने का निर्देश दिया था। यह तर्क दिया गया है कि मैकेनिक ने लिखित बयान में यह दलील नहीं दी है कि वह मरम्मत के बाद खराब मोटरसाइकिल का परीक्षण कर रहा था। बल्कि, उसने कहा है कि उसने कभी दुर्घटना नहीं की, यह तथ्य गलत साबित हो चुका है। श्री पांडे के अनुसार, यह स्पष्ट नहीं है कि मैकेनिक खराब मोटरसाइकिल को मरम्मत करने के बाद चला रहा था या मरम्मत करने से पहले चला रहा था। यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या वह वास्तव में इसका उपयोग अपने उद्देश्य के लिए कर रहा था। यह प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया गया है कि यह दलील कि मैकेनिक मोटरसाइकिल का परीक्षण कर रहा था, अधिकरण के समक्ष विशेष रूप से नहीं उठाया गया है और इसलिए, पहली बार इस न्यायालय के समक्ष प्रचारित नहीं किया जा सकता है। यदि उक्त याचिका को स्वीकार किया जाता है, तो यह बिना किसी दलील या सामग्री के, केवल अनुमान पर आधारित होगी।

17. मालिक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि मैकेनिक ने कठघरे में प्रवेश नहीं किया है और अधिकरण के समक्ष गवाही नहीं दी है। उसने मालिक के रुख का खंडन करने के लिए कोई गवाह भी पेश नहीं किया है। यह कहा गया है कि चूंकि मैकेनिक ने अपनी दलील में या कठघरे में किसी भी

तरह से मालिक के मामले का खंडन नहीं किया है, इसलिए मालिक की गवाही अप्रतिबंधित है। यह दलीलों और सबूतों के उपरोक्त आधार पर है कि अधिकरण ने उचित रूप से माना है कि मैकेनिक मालिक की अनुमति के बिना दुर्घटना की तारीख और समय पर आपत्तिजनक मोटरसाइकिल चला रहा था। उनका कहना है कि इन परिस्थितियों में मालिक को दावेदार के पति की मृत्यु के लिए मैकेनिक के अपकृत्य के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

18. मालिक के विद्वान अधिवक्ता ने **सीताराम मोतीलाल कलाल बनाम शांतनुप्रसाद जयशंकर भट्ट, एआईआर 1966 एससी 1697; मीनू बी मेहता और अन्य बनाम बालकृष्ण रामचन्द्र नयन एवं अन्य, (1977) 2 एससीसी 441; और, पुष्पाबाई पुरूषोतम उदेशी और अन्य बनाम रंजीत गिन्निंग एवं प्रेसिंग कंपनी (प्रा.) लिमिटेड और अन्य** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है। श्री मनीष कुमार पांडे द्वारा इन अधिकारियों से तर्क दिया गया है कि मालिक अपने नौकर या ड्राइवर की दुर्घटना या लापरवाही के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी होगा, यदि ड्राइवर अपने मालिक के रोजगार के दौरान और अपने मालिक के किसी काम के उद्देश्य से वाहन चला रहा है या प्रयोग कर रहा है। लेकिन, यदि दुर्घटना के समय नौकर या ड्राइवर नौकरी के दौरान काम नहीं कर रहा है या गाड़ी नहीं चला रहा है, बल्कि अपने लिए कुछ कर रहा है, तो मालिक उत्तरदायी नहीं होगा। यहां, यह प्रस्तुत किया गया है कि साक्ष्य के आधार पर, यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि मैकेनिक मालिक के उद्देश्य से मोटरसाइकिल चला रहा था। इस प्रकार, वाहन का संचालन उसके अधिकार के सीमित दायरे से परे था, और वास्तव में मालिकों के निर्देशों के विपरीत था जिससे दुर्घटना हुई।

19. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि **नवीन कुमार (उपरोक्त)** में निर्णय का अनुपात, जिस पर श्री आदित्य सिंह परिहार ने यह कहने के लिए अवलम्ब लिया है कि यह हमेशा आपत्तिजनक मोटरसाइकिल का पंजीकृत मालिक होता है, जो उत्तरदायी होगा, यह एक पूरी तरह से अलग संदर्भ में निर्धारित सिद्धांत है। उनका कहना है कि यह सिद्धांत हस्तांतरिती को कब्जे को देने के साथ वाहन के हस्तांतरण के संदर्भ में निर्धारित किया गया है, जहां हस्तांतरण अधिनियम के तहत दर्ज नहीं किया गया है। यह उन मामलों में है कि यह निर्धारित किया गया है कि वाहन के खरीदार के बावजूद, जो अभी तक दुर्घटना का कारण बनने वाला उसका पंजीकृत मालिक नहीं बना है, दिए गए मुआवजे की भरपाई करने का दायित्व अभी भी पंजीकृत मालिक का होगा; अपंजीकृत अंतरिती का नहीं।

20. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से दी गई दलीलों पर गहनता से विचार किया और रिकॉर्ड का परिशीलन किया।

21. इस मामले में साक्ष्य से पता चलता है कि दोनों पक्षों के बीच कोई मतभेद नहीं है कि नियमित सर्विस कराने के उद्देश्य से मालिक द्वारा मैकेनिक को मोटरसाइकिल सौंपी गई थी। कहीं-कहीं इसे मरम्मत के तौर पर भी

सुझाया गया है। यह बहुत स्पष्ट नहीं है, लेकिन इससे बहुत फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक मोटर वाहन की नियमित सर्विस कराने में हमेशा कुछ मरम्मत कार्य शामिल हो सकते हैं। इस तथ्य के बारे में पेश किए गए सबूतों पर दोनों पक्षों में तीव्र विवाद है, यदि मालिक ने उसकी अनुपस्थिति में मैकेनिक को आपत्तिजनक मोटरसाइकिल चलाने या चलाने से मना किया था। अपने मुख्य परीक्षण में मालिक ने यह रुख अपनाया है कि उसने अपनी अनुपस्थिति में मैकेनिक को इसे चलाने से मना किया है। लेकिन, अपने जिरह में मालिक ने माना है कि उन्होंने लिखित तौर पर मैकेनिक को ऐसा करने से मना नहीं किया था।

22. यह कहा जाना चाहिए कि इस मामले में शामिल प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है कि कानून के तहत मोटर वाहन के मालिक के बीच संबंध की प्रकृति क्या है, जो इसे सर्विस या मरम्मत के लिए मैकेनिक को सौंपता है। क्या यह मालिक और नौकर का, प्रधान और एजेंट का या उपनिधाता और जमानती का है?

23. ऐसे निर्णय हैं, जिन्होंने मोटर वाहन के मालिक और मरम्मत आदि के लिए सौंपे गए मैकेनिक के बीच के रिश्ते को मालिक और नौकर या प्रिंसिपल और एजेंट के रूप में माना है, और कुछ ने इसे उपनिधाता और उपनिधाता के रूप में माना है।

24. हमारी राय में, इन निर्णयों को यह पता लगाने के लिए संदर्भित किया जाना चाहिए कि क्या मोटर वाहन की मरम्मत के लिए सौंपे गए मैकेनिक को मालिक के साथ नौकर के रिश्ते में माना जा सकता है, जो मालिक है। यदि किसी भी तरह से यह कानून की स्थिति सही थी, तो अपने नौकर के कार्य के लिए मालिक के प्रतिपूरक दायित्व के संबंध में कानून का पूरा हिस्सा, तीसरे पक्ष की तुलना में, मालिक पर लागू हो सकता है, बशर्ते कि नौकर अपने रोजगार के दौरान और मालिक के निर्देशों के अनुसार कार्य कर रहा हो। उस स्थिति में, वर्तमान मामले में, मालिक द्वारा मैकेनिक को जारी किए गए निर्देश जो उसने अपने साक्ष्य में दिखाए हैं कि मैकेनिक को उसकी अनुपस्थिति में उसकी मोटरसाइकिल चलाने से मना किया गया है, बहुत प्रासंगिक होगा। इसके विपरीत, यदि मैकेनिक वास्तव में उपनिधाता है, तो वह एक स्वतंत्र ठेकेदार होगा, मालिक के निर्देशों के अधीन वाहन नहीं रखेगा। निःसंदेह, उपनिधाता के रूप में पूर्व अनुबंधकर्ता के हितों की रक्षा करना उसके कर्तव्य होंगे।

25. जैसा कि वर्तमान में दिखाया गया है, टॉर्ट्स के कानून के तहत कोई उपनिधाता जमानत के तहत सामान या संपत्ति रखने के दौरान अपने अपमानजनक कृत्य के लिए तीसरे पक्ष के प्रति जवाबदेह है, जो यहां मोटर वाहन है। हालाँकि, अपकार को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के तहत स्थिति अधिनियम के प्रावधानों के कारण जमानत के तहत मोटर वाहन रखने वाले उपनिधाता के संदर्भ में भी थोड़ी भिन्न हो सकती है। फिर भी, यह निर्धारित करना होगा कि क्या मैकेनिक मालिक की ओर से अपने नौकर या एजेंट के रूप में या उपनिधाता के रूप में मरम्मत के लिए वाहन रखता है; और यदि वह वास्तव में इसे उपनिधाता के रूप में रखता है, क्या मालिक

अपकृत्य सिद्धांतों, या क़ानून के तहत तीसरे पक्ष के साथ अपने अत्याचारपूर्ण कृत्यों के लिए जवाबदेह होगा, यानी अधिनियम मालिक को तीसरे पक्ष की तुलना में उपनिधाता के कृत्यों के लिए उत्तरदायी बनाता है।

26. **के. आनंदन बनाम अम्मलु गोमती और अन्य एआईआर 1988 कर 117** का मामला एक ऐसा मामला था जहां मालिक, जिसने अपने स्कूटर को मरम्मत के लिए एक मैकेनिक को सौंपा था और जिसने अपनी लापरवाही से तीसरे पक्ष को घायल कर दिया था, उसको मालिक और नौकर के सिद्धांत पर मैकेनिक के नुकसान के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था। **के. आनंदन (ऊपरोक्त)** मामले में निम्नलिखित अवधारित किया गया था:

"4. <u>यह पहले प्रतिवादी का मामला है कि उसने स्कूटर को मरम्मत के लिए वर्कशॉप को सौंपा था और दूसरे प्रतिवादी को सडक पर इसका उपयोग करने के लिए कभी अधिकृत नहीं किया था और इसलिए उसे आवेदक द्वारा दावा किए गए मुआवजे के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है।</u> जिस प्रश्न पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या पहले प्रतिवादी को उसके दायित्व से इस आधार पर मुक्त किया जा सकता है कि दूसरा प्रतिवादी उसके अधीन कर्मचारी नहीं था। यहां तक कि पहले प्रतिवादी के अनुसार, वाहन को वर्कशॉप में दिया गया था और दुर्घटना तब हुई जब दूसरा प्रतिवादी मरम्मत के बाद परीक्षण के लिए वाहन को सड़क पर ले गया। वाहन के मालिक (पहले प्रतिवादी) ने वाहन को वर्कशॉप को सौंपा था और दूसरे प्रतिवादी, वर्कशॉप के एक मैकेनिक ने वाहन को सड़क पर इस्तेमाल किया और तभी दुर्घटना हुई। आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि दुर्घटना तब हुई जब दूसरे प्रतिवादी ने <u>मरम्मत के बाद परीक्षण के लिए सड़क पर वाहन का इस्तेमाल किया, इसलिए पहला प्रतिवादी अपने गंभीर दायित्व से इनकार नहीं कर सकता। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि पहले प्रतिवादी ने वर्कशॉप के मालिक को मरम्मत के बाद परीक्षण के लिए वाहन चलाने की अनुमति नहीं देने का निर्देश दिया था।</u>

5.जब किसी वाहन को मरम्मत के लिए किसी वर्कशॉप को सौंपा जाता है तो काम के हिस्से के रूप में उसे टेस्ट ड्राइविंग के लिए ले जाने की अनुमति का अनुमान लगाना उचित है। यह साबित करना पहले प्रतिवादी का काम है कि वर्कशॉप मालिक के कर्मचारी द्वारा वाहन चलाने का कार्य उसके अधिकार से अधिक था। यह स्थापित कानून है कि वाहन के मालिक पर यह साबित करने की जिम्मेदारी है कि उसने संबंधित व्यक्ति को वाहन चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया है। सीताराम बनाम शांतनुप्रसाद, एआईआर 1966 एससी 1697 मामले के निर्णय का संदर्भ लेना उपयोगी है जहां इसे इस प्रकार अवधारित किया गया:

"एक मालिक अपने रोजगार के दौरान अपने नौकर द्वारा किए गए कृत्यों के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी होता है। जब तक कार्य रोजगार के दौरान नहीं किया जाता है, नौकर का कार्य नियोक्ता को उत्तरदायी नहीं बनाता है। दूसरे शब्दों में, मालिक का दायित्व उत्पन्न होने के लिए, कार्य मालिक द्वारा अधिकृत एक

गलत कार्य होना चाहिए या मालिक द्वारा अधिकृत कुछ कार्य करने का एक गलत और अनधिकृत तरीका होना चाहिए। मालिक के कार्य पर कार ले जाने वाला कार चालक यदि कोई दुर्घटना करता है तो वह उसे परोक्ष रूप से उत्तरदायी बनाता है। लेकिन यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि दुर्घटना के समय नौकर, अपने रोजगार के दौरान कार्य नहीं कर रहा है, बल्कि अपने लिए कुछ कर रहा है, तो मालिक उत्तरदायी नहीं है। एक धारणा है कि एक वाहन मालिक के व्यवसाय और उसके अधिकृत एजेंट या नौकर द्वारा चलाया जाता है लेकिन धारणा को पूरा किया जा सकता है।"

चूंकि दूसरे प्रतिवादी ने सड़क पर स्कूटर का उपयोग किया था, जब तक कि इसका खंडन न किया जाए, यह अनुमान लगाया जाएगा कि उसने पहले प्रतिवादी के अधिकार के साथ इसका उपयोग किया था। चूंकि वाहन को मरम्मत के लिए वर्कशॉप को सौंपा गया था, इसलिए इसकी पूरी संभावना थी कि मरम्मत के बाद इसका परीक्षण किया जाएगा। ऐसी संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यह मानना संभव नहीं है कि दूसरे प्रतिवादी ने मरम्मत के बाद परीक्षण के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए सड़क पर वाहन का उपयोग किया। यदि इसके विपरीत सबूत है तो पहले प्रतिवादी को बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। चूंकि हमेशा यह धारणा होती है कि मैकेनिक ने उचित अनुमति के साथ मालिक के व्यवसाय पर वाहन चलाया, यह तर्क देना व्यर्थ है कि पहले प्रतिवादी पर परोक्ष दायित्व का बोझ नहीं डाला जा सकता है।

6. 1978 एसीसी सीजे 53 (पंजाब और हरियाणा), (तारा सिंह बनाम मंगला सिंह) एक ऐसा मामला है जहां वाहन मालिक द्वारा मरम्मत के लिए दिया गया था। एक बिना लाइसेंस वाले कर्मचारी ने ट्रक चलाया और दुर्घटना का कारण बना। उस निर्णय में यह माना गया कि चूंकि वाहन वर्कशॉप के कर्मचारी द्वारा चलाया गया था, इसलिए इसे रोजगार के दौरान चलाया गया माना जाना चाहिए। गोपालकृष्णन एम्ब्रांटदिरी बनाम कृष्णनकुट्टी, 1966 एसीसी सीजे 262 मामले में इस न्यायालय के पास एक ऐसे मामले पर विचार करने का अवसर था जहां मरम्मत के लिए दिया गया वाहन मैकेनिक द्वारा चलाया गया था और दुर्घटना का कारण बना। उस निर्णय में यह अवधारित किया गया कि वाहन चलाने का कार्य उसकी नौकरी के लिए आकस्मिक था और चूंकि यह उसके रोजगार के दायरे में था, इसलिए नियोक्ता को इसके परिणामों के लिए जवाब देना होगा। सावित्री कुमारी दास बनाम उड़ीसा राज्य, 1976 एसीसी सीजे 341 भी एक ऐसा ही मामला है, जहां वाहन मरम्मत के लिए दिया गया था और दुर्घटना तब हुई जब मैकेनिक वाहन को टेस्ट ड्राइव के लिए ले गया। चूंकि उसने वाहन को तेजी और लापरवाही से चलाया और एक व्यक्ति को टक्कर मार दी, इसलिए मालिक को परोक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया गया। चूँकि वाहन की मरम्मत के बाद टेस्ट ड्राइव करना आवश्यक था और चूँकि यह मालिक के लाभ के लिए किया गया था इसलिए मालिक का दायित्व

कभी भी विवाद का विषय नहीं हो सकता। प्रीतम कौर बनाम दल सिंह, 1977 एसीसी सीजे 326 (पंजाब और हरियाणा) में इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"यह स्थापित कानून है कि यदि कोई व्यक्ति वाहन चलाता हुआ पाया जाता है तो यह माना जाएगा कि वह वाहन मालिक के वैध प्राधिकार के साथ ऐसा कर रहा है और यदि मालिक का आरोप है कि उसने उस व्यक्ति को अपने वाहन चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया है तो जिम्मेदारी उस पर है।"

चूंकि पहले प्रतिवादी के पास कोई विशिष्ट मामला नहीं है कि वाहन का अनधिकृत रूप से दूसरे प्रतिवादी द्वारा उपयोग किया गया था, इसलिए उसे यह कहते हुए नहीं सुना जा सकता है कि वह किसी भी तरह से दावे के लिए उत्तरदायी नहीं है। चूंकि यह स्थापित करने की जिम्मेदारी पहले प्रतिवादी पर है कि उसने दूसरे प्रतिवादी को वाहन चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया है और चूंकि उस जिम्मेदारी का निर्वहन नहीं किया गया है, इसलिए यह तर्क देना व्यर्थ है कि अधिकरण द्वारा उस पर गलत तरीके से दायित्व थोपा गया है।

7. इस प्रकार स्थापित कानूनी स्थिति यह है कि यह धारणा है कि वाहन मालिक के व्यवसाय पर संचालित होता है। निःसंदेह साक्ष्य जोड़कर इसे निरस्त किया जा सकता है। जब तक ऐसा नहीं किया गया तब तक अनुमान को खारिज नहीं किया जा सकता। (1977) 3 एससीआर 372: (एआईआर 1977 एससी 1735), (पुष्पाबाई बनाम रंजीत गिन्निंग कंपनी) मामले में इसे इस प्रकार बताया गया है (एआईआर के पृष्ठ 1744 पर):

"निष्कर्ष निकालने से पहले, हम यह बताना चाहेंगे कि कानून में हालिया प्रचलन मालिक को उन कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाने की है जो "रोजगार के दौरान" शीर्ष के अंतर्गत नहीं आते हैं जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। हमने सीताराम मोतीलाल कलाल बनाम शांतनुप्रसाद जयशंकर भट्ट, (एआईआर 1966 एससी 1697) का उल्लेख किया है जहां इस न्यायालय ने ऑरमरोड बनाम क्रॉसविले मोटर सर्विसेज लिमिटेड, (1953 (2) ऑल ई.आर. 753) में लॉर्ड डेनिंग द्वारा प्रतिपादित कानून को स्वीकार किया कि मालिक न केवल चालक की लापरवाही के लिए उत्तरदायी है यदि वह चालक उसका नौकर है जो उसके रोजगार के दौरान कार्य कर रहा है, बल्कि तब भी जब चालक मालिक की सहमति से मालिक के व्यवसाय के लिए या मालिक के उद्देश्यों के लिए कार चला रहा हो। इस आयाम को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।"

निर्विवाद स्थिति यह है कि मालिक अपने ड्राइवर की लापरवाही के लिए न केवल उत्तरदायी है, यदि उसने अपने रोजगार के दौरान कार्य किया हो, बल्कि यदि उसने अपने व्यवसाय या अन्य उद्देश्यों के लिए अपनी मौन या निहित सहमति से वाहन चलाया हो।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

27. **रामू तोलाराम बनाम अमीचंद हंसराज गुप्ता और अन्य, एआईआर 1988 बॉम 304**

मामले में यह मुद्दा मरम्मत के लिए एक गैरेज को सौंपे गए मोटर वाहन के संदर्भ में उठा था। मरम्मत पूरी होने के बाद कार को गैरेज में पार्क कर दिया गया और चाबियाँ एक स्वतंत्र ऑटो इलेक्ट्रीशियन को सौंप दी गईं, जो गैरेज के लिए काम करता था और वहीं रहता था। किसी अज्ञात व्यक्ति ने कार निकाल कर चार लोगों को टक्कर मार दी, जिनमें से एक की मौत हो गई। सवाल यह था कि क्या गैरेज के मालिक, जो तीन भागीदार थे, या मोटर वाहन के मालिक को तीसरे पक्ष को हुई चोटों के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में, यह **रामू तोलाराम (उपरोक्त)** में अवधारित किया गया था:

"श्री म्हामने इस बिंदु पर सही हो सकते हैं। लेकिन विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि यह मानते हुए भी कि कंपनी प्रतिवादीगण संख्या 2 से 4 की लापरवाही के लिए , वास्तविक या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं थी, यह प्रतिवादी संख्या 1 कार के मालिक के दायित्व के लिए उत्तरदायी होगी, और यहीं पर न्यायालय को इस बात पर विचार करने के लिए रुकना चाहिए कि क्या प्रतिवादी संख्या 1 प्रतिवादीगण संख्या 2 से 4 की चूक के कृत्यों के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं था। ऐसा भी हो सकता है कि प्रतिवादी संख्या 1 अज्ञात ड्राइवर के कारण होने वाले नुकसान के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होगा, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 के पास उस समय कार का नियंत्रण नहीं था, इसलिए नियंत्रण प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा वैध रूप से प्रतिवादीगण संख्या 2 से 4 को स्थानांतरित कर दिया गया था। जब वाहन के मालिक द्वारा कार को मरम्मत के लिए गैरेज में दिया जाता है, तो कार का नियंत्रण निश्चित रूप से गैरेज के मालिक को हस्तांतरित हो जाता है। लेकिन मुद्दा यह है कि ऐसे मामले में गैराज के मालिक को कार का मालिक अपना एजेंट बनाता है। एजेंट द्वारा किया गया या नहीं किया गया हर काम कुछ ऐसा होगा जिसके लिए मालिक परोक्ष रूप से उत्तरदायी होगा। एजेंट द्वारा किए गए या किए जाने से छोड़े गए कार्यों के लिए यह मालिक का दायित्व है। मैंने श्री म्हमाणे को एक उदाहरण दिया। गैराज का मालिक कार की मरम्मत के उद्देश्य से विभिन्न खरीदारी करता है। कार के मालिक को उन खरीदारी के लिए भुगतान करना होगा। ऐसा केवल इसलिए हो सकता है क्योंकि गैरेज का मालिक कार के मालिक का एजेंट है और पूर्व द्वारा की गई खरीदारी बाद वाले के एजेंट के रूप में है। यदि एजेंसी का सिद्धांत इस स्थिति तक विस्तारित है, तो कोई कारण नहीं है कि इसे अन्य स्थिति तक विस्तारित न किया जाए जहां एजेंट द्वारा कार को गैरेज से बाहर जाने की अनुमति दी जाती है। ऐसे मामले में एजेंट का दायित्व मूलधन पर भी अप्रत्यक्ष रूप से थोपा जाना होगा।

(iv) श्री म्हमाणे ने इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश के 1984, महाराष्ट्र एलजे, पृष्ठ 456 (वी.जे. आचार्य बनाम रतिलाल फूलचंद शाह) के फैसले पर अवलम्ब लिया, सबसे पहले इस प्रस्ताव के समर्थन में कि गैरेज का मालिक निश्चित रूप से कार द्वारा किसी भी व्यक्ति को होने वाली क्षति के लिए उत्तरदायी है, जबकि वह गैरेज के मालिक के कब्जे में है और दूसरा उनके इस तर्क के

समर्थन में कि एक बार कार के मालिक द्वारा गैरेज के मालिक को कार का नियंत्रण स्थानांतरित कर दिए जाने के बाद, वाहन का मालिक किसी भी स्थिति में गैरेज के मालिक के कार्यों या चूक के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता है।

मामले के तथ्य इस प्रकार थे:-

एक कार सड़क पर रुक गई और इसलिए कार मालिक गैरेज में गया और मालिक को शिकायत के बारे में बताया। शिकायत की स्थिति को सुनकर गैराज मालिक ने अपने मैकेनिक को कार मालिक के साथ उस स्थान पर जाने के लिए कहा जहां कार पार्क की गई थी। मैकेनिक के पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। लेकिन फिर भी, वह कार को गैरेज तक ले गया और वह भी लापरवाही से, इस तरह दावेदार को नीचे गिरा दिया। अधिकरण ने गैराज के मालिक और वाहन के मालिक दोनों के खिलाफ हर्जाना दिया। इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि मैकेनिक को कार चलाने के लिए मालिक द्वारा अधिकृत किया गया था या नहीं, उसके कर्मचारियों की ओर से लापरवाही के लिए परोक्ष दायित्व पूरा था। हालाँकि, न्यायालय ने आगे कहा कि मैकेनिक कार के मालिक का एजेंट नहीं था। इसलिए, यह माना गया कि मैकेनिक की ओर से हुई लापरवाही के लिए कार मालिक को दंड नहीं दिया जा सकता।

(v) जहां तक पहले प्रस्ताव का सवाल है, मैं उससे पूरी तरह सहमत हूं। लेकिन जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, रिकॉर्ड की स्थिति और भी अधिक मालिक के लिए कार की तलाश करती है। अक्सर वह मालिक की खातिर कार को बाहर भी चलाता है। किसनलाल के पास कोई साधारण लाइसेंस नहीं था। इस मामले में, दूसरे प्रतिवादी का यह साक्ष्य कि किसनलाल के पास कार चलाने का कोई अधिकार नहीं था, अविश्वसनीय है और इसके अलावा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दूसरे प्रतिवादी ने विशेष समय पर कार चलाने वाले व्यक्ति की पहचान के बारे में बहुत स्पष्ट रूप से चुप्पी साध रखी है, यह इस संबंध में उसके साक्ष्य को दर्शाता है। लेकिन उपरोक्त निर्णय इस प्रश्न का अधिकार नहीं है कि गैराज का मालिक कार के मालिक का एजेंट था या नहीं। फैसले के अवलोकन से पता चलता है कि न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि क्या मैकेनिक के पास कार चलाने का कोई लाइसेंस नहीं था और जिसने लापरवाही से कार चलाई थी, वह कार के मालिक का एजेंट था या नहीं। सम्मान के साथ, मैं विद्वान एकल न्यायाधीश के इस विचार से पूरी तरह सहमत हूं कि मैकेनिक ड्राइवर को सीधे तौर पर मालिक का एजेंट नहीं माना जा सकता है। लेकिन मुद्दा यह है कि जब कार को मरम्मत के लिए कार मालिक द्वारा गैराज के मालिक को दिया जाता है, तो गैराज का मालिक विभिन्न उद्देश्यों के लिए कार के मालिक का एजेंट बनता है और उस कार्य को करते समय गैराज का मालिक कार के मालिक का एजेंट होता है। गैराज को स्वयं या अपने एजेंट के माध्यम से गैराज के अंदर और बाहर कार चलाने की आवश्यकता होती है। इसमें कोई शक नहीं कि गैराज का ऐसा मालिक एक स्वतंत्र ठेकेदार है। लेकिन एक

स्वतंत्र ठेकेदार भी उस मालिक का एजेंट होता है जिसके द्वारा ठेका सौंपा गया है। मैं यहां उल्लेख कर सकता हूं कि कार के मालिक के प्रतिवर्ती दायित्व के इस पहलू पर इस न्यायालय के समक्ष आग्रह नहीं किया गया था जब इस न्यायालय द्वारा अपील का फैसला किया गया था। आग्रह यह किया गया था कि मैकेनिक सीधे तौर पर कार मालिक का एजेंट था, न कि गैरेज का मालिक कार मालिक का एजेंट था। वर्तमान मामले में, मैंने माना है कि गैराज का मालिक संबंधित ड्राइवर की लापरवाही के लिए उत्तरदायी है। एक बार जब हम एक कदम आगे बढ़ जाते हैं और मान लेते हैं कि गैराज का मालिक कार के मालिक का एजेंट था, तो मालिक यानी कार के मालिक को परोक्ष दायित्व के अधीन रखा जाना चाहिए। चूँकि इस बिंदु पर इस न्यायालय के समक्ष आग्रह भी नहीं किया गया था और चूँकि इस न्यायालय के पास 1984 एमएलजे पृष्ठ 456 मामले में निर्णय में प्रश्न के इस पहलू पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था, इसलिए प्रश्न पर एक प्राधिकारी के रूप में श्री म्हामने द्वारा उस निर्णय पर अवलम्ब नहीं किया जा सकता है। गैराज मालिक कार मालिक का एजेंट था या नहीं..."

28. **राम् तोलाराम** मामले में न्यायालय ने गैराज मालिकों को अपना एजेंट बनाकर मालिक को उत्तरदायी ठहराया। एजेंसी के सिद्धांत को लागू किया गया, जिससे मालिक को मालिक के असाइनमेंट के निर्वहन में एजेंट के कार्य के लिए उत्तरदायी बनाया गया।

29. इस प्रकार, जबकि **के. आनंदन** मामले यह अवधारित किया गया है कि कार की मरम्मत के लिए मालिक द्वारा सौंपे गए एक मैकेनिक को मालिक के नौकर के रिश्ते में माना जाता है, **राम् तोलाराम** मामले में कार के मालिक द्वारा उसकी मरम्मत के लिए सौंपे गए गैरेज के मालिक को उसका एजेंट माना गया है।

30. इस न्यायालय को उन तीन निर्णयों पर ध्यान देना चाहिए, जिन पर मैकेनिक के विद्वान अधिवक्ता ने यह दावा करने के लिए अवलम्ब लिया गया था कि मालिक और मैकेनिक मालिक और नौकर के रिश्ते में खड़े हैं, ताकि रोजगार के दौरान मैकेनिक द्वारा किए गए कार्यों के कारण लगी चोटों के मुआवजे के लिए मास्टर को तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके। मालिक की ओर से अवलम्ब लेते हुए, सीताराम मोतीलाल कलाल (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय, रोजगार के दौरान एक नौकर द्वारा किए गए कृत्यों के लिए मालिक के प्रतिवर्ती दायित्व के संदर्भ में कानून का एक विवरण है और उस दायित्व पर प्रभाव के बारे में, यदि नौकर को रोजगार के दौरान कार्य करना होता है, जहां वह तीसरे पक्ष को चोट पहुंचाता है। उक्त निर्णय में मालिक के दायित्व के बारे में भी टिप्पणियाँ हैं, यदि एजेंट मालिक के लिए कार्य करते समय, लेकिन उसकी एजेंसी के दायरे से परे, किसी तीसरे पक्ष को चोट पहुँचाता है। उस मामले में मोटर वाहन के उपयोग के संदर्भ में भी प्रश्न उठा था। दो अन्य निर्णय भी इसी प्रकार हैं, जो तीसरे पक्ष के मुकाबले अपने नौकर के कपटपूर्ण कृत्यों के लिए स्वामी के प्रतिउत्तरीय दायित्व के संदर्भ में दिए गए हैं।

31. इनमें से कोई भी निर्णय किसी मैकेनिक या गैराज मालिक के कपटपूर्ण कृत्यों के संदर्भ

में नहीं दिया गया था, जिसने मालिक की ओर से मरम्मत के लिए मोटर वाहन को अपने पास रखा था और उस अवधि के दौरान दुर्घटना हुई थी। यही कारण है कि उक्त निर्णय, यद्यपि अपने नौकर के कृत्यों के लिए मालिक के दायित्व के संबंध में गहन मार्गदर्शन के सिद्धांत निर्धारित करना, इस बिंदु पर अधिक प्रासंगिक नहीं हो सकता है कि क्या एक मैकेनिक नौकर की स्थिति में है या वाहन मालिक के एजेंट के रूप में खड़ा है, जब मरम्मत के लिए वाहन की अभिरक्षा सौंपी गई।

32. यहां, जो मुद्दा उठता है वह समान हो सकता है या उस कानून से कुछ समानता ले सकता है जो मालिकों और नौकरों, मालिकों और एजेंटों पर लागू होता है, लेकिन मालिक और मैकेनिक के बीच का संबंध अलग होता है। अपने वाहन के मालिक द्वारा मैकेनिक को सौंपा गया काम अनुबंध के कानून में उपनिधान के रूप में जाना जाता है। मालिक उपनिधाता है और मैकेनिक उपनिहिती है। उपनिहित वस्तु या उसे सौंपी गई चल वस्तुओं को संभालते समय उपनिहिती के अधिकार का दायरा क्या है, यह न्यायिक व्याख्या का विषय रहा है। उपनिधान को भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 148 के तहत परिभाषित किया गया है। धारा 148 में लिखा है:

"148. "उपनिधान" एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को किसी प्रयोजन के लिए इस संविदा पर माल का परिदान करना है कि जब वह प्रयोजन पूरा हो जाए तब वह लौटा दिया जाएगा; या उसे परिदान करने वाले व्यक्ति के निदेशों के अनुसार अन्यथा व्ययनित कर दिया जाएगा। माल का परिदान करने वाला व्यक्ति "उपनिधाता" कहलाता है। वह व्यक्ति, जिसको वह परिदत्त किया जाता है "उपनिहिती" कहलाता है।

स्पष्टीकरण- यदि वह व्यक्ति, जो किसी अन्य के माल पर पहले से ही कब्जा रखता है, उसका धारण उपनिहिती के रूप में करने की संविदा करता है तो वह तद्द्द्वारा उपनिहिती हो जाता है और माल का स्वामी उसका उपनिधाता हो जाता है यद्यपि वह माल उपनिधान के तौर पर परिदत्त न किया गया हो ।

33. एक मैकेनिक, जिसे किसी भी प्रकार का मोटर वाहन सेवा या मरम्मत के लिए दिया जाता है, निश्चित रूप से इसे उपनिहिती के रूप में रखता है, क्योंकि उपनिधान के सभी आवश्यक तत्व मौजूद हैं। मरम्मत आदि के लिए मैकेनिक को मोटर वाहन की देखरेख सौंपी जाती है। जब उक्त उद्देश्य पूरा हो जाता है, तो मैकेनिक मोटर वाहन को मालिक को वापस करने के लिए बाध्य होता है और मैकेनिक को उसकी डिलीवरी का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

34. एक मोटर वाहन के संदर्भ में, एक उपनिहिती के रूप में एक मैकेनिक के अधिकार और उसके द्वारा किया गया अपकृत्य, यदि वह उपनिधान किये गए मोटर वाहन का उपयोग किसी तीसरे पक्ष की तुलना में करता है, तो मालिक तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी होगा, यह **दि मोटर एण्ड जनरल फाइनेंस (इंडिया) लिमिटेड बनाम मैरी मोनी और अन्य,**

1990 एससीसी ऑनलाइन केर 229 मामले में केरल उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के समक्ष विचार का विषय था। **मैरी मोनी** (उपरोक्त) मामले में हुआ यह था कि, स्टेज कैरिज के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली एक बस को उसके मालिक ने मरम्मत के लिए दि मोटर एंड जनरल फाइनेंस (इंडिया) लिमिटेड को सौंप दिया था, जो मोटर वाहनों की मरम्मत और सर्विस के व्यवसाय में लगी हुई थी। वाहन सर्विसिंग के लिए अपीलार्थी के गैरेज में था, जो अभी भी अपीलार्थी द्वारा रखे गये वर्करों द्वारा किया जा रहा था। दावेदार का पति, जो बस का मालिक था, वह भी गैरेज में था। चालक की सीट पर बैठे वर्करों में से एक ने इंजन चालू कर दिया, जिससे बस पलट गई और गैरेज के परिसर की दीवार से टकरा गई। इससे दावेदार का पति बस और गैराज की दीवार के बीच दब गया। वह गंभीर रूप से घायल हो गया और उसे चिकित्सा सहायता के लिए ले जाया गया। एक सर्जरी की गई, लेकिन ऑपरेशन असफल रहा। दावेदार के पति ने चोटों के कारण दम तोड़ दिया। इस मामले में, उपनिहिती दि मोटर एंड जनरल फाइनेंस (इंडिया) लिमिटेड था, जो केरल उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता था, और यह अपकृत्य उनके एक नौकर और स्वयं उपनिधाता द्वारा किया गया था, जबकि मोटर वाहन उपनिधान के अनुबंध के तहत सर्विस और मरम्मत के लिए उनके पास था। निर्णय में जो सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं, वे स्वयं उपनिहिती द्वारा उपनिहित माल के उपयोग से उत्पन्न होने वाले तीसरे पक्ष के प्रति उपनिहिती के दायित्व या उसके नौकरों में से एक ने उपनिधान निष्पादित करने के संबंध में है, इस तथ्य के बावजूद कि तीसरा पक्ष वास्तव में मालिक था। फैसले को पढ़ने से ऐसा लगता है कि मोटर वाहन उपनिधान की संविदा के तहत उपनिहिती के कब्जे में था, मालिक को लगी चोट को उस सीमित अवधि के लिए मालिक के रूप में उपनिहिती के संबंध में तीसरे पक्ष की चोट के रूप में बताया गया था।

35. जमानत पर दिए गए माल के उपनिहिती के दायित्व के संबंध में कानून को उजागर करते हुए, न्यायमूर्ति वर्गीस कलियथ ने बेंच के लिए बोलते हुए, घायल तीसरे पक्ष या उसके उत्तराधिकारियों को वाहन देने के विषय पर कानून की व्यापक समीक्षा की और यह अवधारित किया:

"9. स्वीकृत रूप से, वाहन अपीलार्थी के कस्टडी में था और वह कस्टडी उपनिहिती की थी। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 148 उपनिधान को परिभाषित करती है। उपनिधान किसी उद्देश्य के लिए एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को माल की डिलीवरी है, एक संविदा पर कि उद्देश्य पूरा होने पर उन्हें वापस कर दिया जाएगा या उन्हें वितरित करने वाले व्यक्ति के निर्देशों के अनुसार अन्यथा निस्तारित किया जाएगा। माल पहुंचाने वाले व्यक्ति को उपनिधाता कहा जाता है। जिस व्यक्ति को वे सौंपे जाते हैं उसे उपनिहिती कहा जाता है।

एक उपनिहिती के दायित्व और जिम्मेदारी को भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 151 में चित्रित किया गया है और यह बताता है कि उपनिधान के सभी मामलों में, उपनिहिती उसे

उपनिहित माल की उतनी ही देखभाल करने के लिए बाध्य है जितना एक सामान्य विवेकशील व्यक्ति, समान परिस्थितियों में, उपनिहित माल के समान थोक, गुणवत्ता और मूल्य के अपने माल की देखभाल करेगा। सभी आशय और उद्देश्य जब तक उपनिहित की संविदा जारी रहती है, तब तक उपनिहिती को उपनिहित माल का स्वामी मानने में कुछ भी गलत नहीं है। हम उपनिहिती के कर्मचारी द्वारा की गई मोटर दुर्घटना के प्रभाव पर इस सवाल पर विचार करने के बाद अधिक विस्तार से विचार करेंगे कि क्या मृतक के कानूनी प्रतिनिधि अधिनियम के तहत मुआवजे के लिए अपीलकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करने के हकदार हैं।

26. हमने कहा है कि मुआवजे का भुगतान करने का दायित्व अपकृत्य के सामान्य कानून के तहत एक दायित्व है। हमने पैराग्राफ 10 में पहले ही इस मामले में अपीलकर्ता की स्थिति एक उपनिहिती के रूप में निर्धारित कर दी है; जो हुआ वह स्पष्ट है। उपनिहिती के एक कर्मचारी ने अपनी लापरवाही से दुर्घटना कारित की। कर्मचारी को चालक की सीट पर बैठने की अनुमति देना भी अपीलकर्ता की ओर से अविवेक और लापरवाही का कार्य है। यदि दुर्घटना उसी तरह हुई है जैसे इस मामले में हुई है, और यदि पीड़ित वाहन का मालिक नहीं, बल्कि स्टैंडर है, तो उपनिहिती के लिए यह कहना मुश्किल होगा कि वह मुआवजे के लिए उत्तरदायी नहीं है। शायद उस अजनबी पीड़ित के पास वाहन मालिक के खिलाफ भी हेतुक हो सकता है। यदि वाहन के मालिक पर दायित्व बांधने की परिस्थितियां सामने आती हैं या यदि मालिक अपवादों के आधार पर खुद को दायित्व से मुक्त कराने में विफल रहता है, जिसका दावा तब किया जा सकता है जब दुर्घटना जमानतदार की लापरवाही के कारण हुई हो मालिक और जमानतदार घायल या मृतक के कानूनी प्रतिनिधियों को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं।

यदि वाहन के मालिक पर दायित्व बांधने की परिस्थितियां सामने आती हैं या यदि मालिक अपवादों के आधार पर खुद को दायित्व से मुक्त कराने में विफल रहता है, जिसका दावा तब किया जा सकता है जब दुर्घटना उपनिधाता की लापरवाही के कारण हुई हो मालिक और उपनिधाता घायल या मृतक के कानूनी प्रतिनिधियों को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं। वैसे भी, सामान्य कानून में ड्राइवर की सीट पर बैठे व्यक्ति की लापरवाही के लिए उत्तरदायित्व का पता लगाना मुश्किल नहीं है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि जो व्यक्ति ड्राइवर की सीट पर था, वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह जिम्मेदार था और वह अपीलार्थी का कर्मचारी था। हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि जिस व्यक्ति ने वास्तव में अपनी लापरवाही से दुर्घटना का कारण बना, उसके पास मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व से बचने का कोई बचाव नहीं है। वह अपनी लापरवाही का हिसाब देने के लिए बाध्य है। यदि वह व्यक्ति जो मुख्य रूप से लापरवाही के लिए ज़िम्मेदार है, अपीलार्थी का कर्मचारी है, तो अपीलार्थी भी अपने कर्मचारी की लापरवाही के लिए उत्तरदायी है।

27. इस आशय के निर्णय हैं जो दर्शाते हैं कि उपनिहिती का एकमात्र हित अनिवार्य रूप से स्वामित्व है और यह किसी अजनबी के खिलाफ व्यक्तिगत नुकसान के सबूत के बिना माल की क्षति की भरपाई करने की उसकी क्षमता से प्रदर्शित होता है और आम तौर पर उपनिधान के सिद्धांतों के अनुरूप है। तत्काल कब्जे के अधिकार को वास्तविक कब्जे के बजाय रचनात्मक उत्पन्न करने के रूप में जाना जाता है।

28. मंगन बनाम लेरी (1877) 3 एन.जेड. जूर. (एन.एस.) सी.ए. 10 में 16 पर न्यायमूर्ति गिलीस के अनुसार:

"जब तक मैंने श्री मैकासी के सक्षम और सरल तर्क को नहीं सुना, मुझे कभी भी संदेह नहीं हुआ कि कानून यह है कि या तो उपनिहिती या उपनिधाता संपत्ति को हुए पूरे नुकसान के लिए गलत काम करने वाले पर मुकदमा कर सकता है। और अधिकारियों के तर्क और परीक्षण पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, मैं अपनी पिछली राय पर कायम हूं।"

29. इसमें कोई विवाद नहीं है कि उपनिहिती का कब्ज़ा एक शर्त है या यह संभावित योग्यता के कई आधारों में से एक है। उसके पूर्ण स्वामित्व की कमी उसे संपत्ति का पूरा मूल्य या उसकी हानि की पूरी लागत वसूलने से नहीं रोकती है; ऐसी परिस्थितियों में नियम यह है कि "गलत काम करने वाले के विरुद्ध कब्ज़ा स्वामित्व है"। (द विंकफील्ड, (1902) पी. 42 एट 60 और बेलमेंट बाई पामर (1979) संस्करण पेज 177 द्वारा।

30. पामर ने अपनी पुस्तक 'बेलमेन्ट' में कहा है कि "यह केवल वर्तमान सदी में ही हुआ था कि किसी गलत काम करने वाले के खिलाफ कार्रवाई के उपनिधाता के अधिकार अंततः स्थापित हो गए थे। यद्यपि माल के पूर्ण मूल्य के लिए उसे ट्रॉवर में कार्रवाई की अनुमति देने के निर्णयों का पता 19वीं शताब्दी की शुरुआत से लगाया जा सकता है, पहले तो यह स्पष्ट नहीं था कि क्या उसका इसका उपयोग या कोई उपाय जमानतदार के प्रति उसके दायित्व पर सशर्त था; यदि ऐसा नहीं होता, तो वह जितना खोया था, उससे अधिक की वसूली कर सकता था, जबकि गलत करने वाला अपनी तत्काल क्षति की सीमा से अधिक खो रहा होता।"

31. हमने अब केवल उपनिधाता के अधिकार पर विचार किया है कि वह जमानत पर दिए गए माल के संबंध में गलत काम करने वाले से हर्जाना वसूल सके। लेकिन, जिस प्रश्न पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए वह तीसरे पक्ष के प्रति उपनिधाता का दायित्व है। फिर से हम पृष्ठ 966 पर पामर द्वारा बेलमेंट पर अवलम्ब लेते हैं। निर्णीत मामलों का जिक्र करते हुए, विद्वान लेखक ने नियम को इस प्रकार वर्णित किया है: -

"चैटटेल द्वारा जमानत के लिए किसी अजनबी को पहुंचाई गई चोट या हानि के लिए उपनिहिती की जिम्मेदारी लापरवाही या अतिचार के सामान्य कानून का एक सरल पहलू है और इसके लिए विस्तृत चर्चा की आवश्यकता नहीं है। यदि स्वयं या उसके नौकरों द्वारा अपने रोजगार के दौरान संपत्ति के लापरवाहीपूर्ण दुरुपयोग के माध्यम से, किसी

तीसरे पक्ष को जबरदस्ती घायल किया जाता है या संपत्ति को जबरदस्ती नुकसान पहुंचाया जाता है, तो वह उत्तरदायी होगा।"

32. हमारा मानना है कि अपीलार्थी, जिसकी स्थिति इन परिस्थितियों में उपनिहिती की है, अपने कर्मचारी की लापरवाही के लिए जिम्मेदार है। इसलिए, आवश्यक रूप से, हमें यह मानना होगा कि अपीलार्थी दावेदारों को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है।

36. यह निर्णय तीसरे पक्ष को हुई चोटों के लिए उपनिहिती के दायित्व को निर्धारित करने से आगे नहीं जाता है, जबकि एक संपत्ति, मोटर वाहन की तरह, इसके संबंध में कुछ काम करने के लिए उसके कब्जे में है। यह उपनिहिती को कुछ काम करने के लिए उसके कब्जे में दिए गए मोटर वाहन के उपयोग से होने वाली किसी भी चोट के लिए तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी मानता है। हालाँकि, निर्णय तार्किक रूप से उपनिहित सामान या संपत्ति, यानी मोटर वाहन के मालिक के दायित्व पर विचार नहीं है, क्योंकि मामले के बहुत ही अजीब तथ्य हैं, जहां मोटर वाहन का मालिक, जबकि यह स्वयं उपनिहिती के नियंत्रण और कब्जे में था, उपनिहिती के नौकर की लापरवाही का शिकार हो गया। इसलिए, मालिक की देनदारी का सवाल ही नहीं उठता। आख़िरकार मालिक घायल तीसरा पक्ष था।

37. जब मोटर वाहन को किसी मैकेनिक या गैरेज को मरम्मत के लिए सौंपा गया था, तब लगी चोटों के लिए तीसरे पक्ष के प्रति मोटर वाहन के मालिक के दायित्व के मुद्दे पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **देविंदर सिंह बराड़ बनाम मंगल सिंह और अन्य, एआईआर 1981 पी एंड एच 53** मामले में विचार किया था। **देविंदर सिंह (उपरोक्त)** के तथ्यों को माननीय न्यायमूर्ति के शब्दों में सर्वोत्तम रूप से दोहराया जा सकता है:

"2. दिनांक 23 फरवरी, 1968 को दोपहर के समय घायल प्रतिवादी मंगल सिंह, मोगा शहर के भीतर अपनी साइकिल से जा रहे थे, तो ट्रक संख्या पीएनएफ-8078 से टकरा गए और उन्हें गंभीर चोटें आईं। उन्हें तुरंत सिविल अस्पताल, मोगा ले जाया गया, जहां चिकित्सीय गवाह ने पाया कि अन्य चोटों के अलावा, दाहिने पैर और दाहिनी जांघ के बाहरी हिस्से को पूरी तरह से खुरसठ और दाहिनी जांघ और दाहिने टखने की हड्डियाँ टूट गई थीं। वाहन चालक के खिलाफ पुलिस स्टेशन मोगा में मामला भी दर्ज किया गया है। मंगल सिंह को बाद में निचली और दाहिनी जांघ के कंपाउंड फ्रैक्चर और दाएं मीडियल मैलेलेलस के कंपाउंड फ्रैक्चर के बेहतर इलाज के लिए चंडीगढ़ के पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट में ले जाया गया। आंशिक रूप से ठीक होकर उन्हें अस्पताल से छुट्टी दे दी गई।
3. प्रतिवादी मंगल सिंह ने प्रतिवादी मंगल सिंह ने चोटों से आई विकलांगता और अपनी कमाई के नुकसान के लिए 60,000 रुपये के मुआवजे के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया।

4. दावे के आवेदन का विरोध करते हुए, अपीलार्थी, देविंदर सिंह बराड़ ने दलील दी कि उसने अपने ट्रक को मरम्मत के लिए पूरी तरह से मोगा में बेहोन वर्कशॉप को सौंप दिया था,

जो स्पष्ट रूप से प्रतिवादी जरनैल सिंह की मालिकाना जिम्मेदारी थी। यह उनका स्पष्ट रुख था कि उन्होंने कभी भी उक्त जरनैल सिंह या अपने किसी कर्मचारी को सड़क पर इसे चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया था। उन्होंने आगे दलील दी कि दुर्घटना के समय ट्रक धीमी गति से चलाया जा रहा था और किसी भी मामले में दुर्घटना प्रतिवादी मंगल सिंह की लापरवाही के कारण हुई, जिसने अचानक अपनी साइकिल एक तरफ घुमा दी।

38. विचार के लिए उठे मुद्दे का उत्तर देते समय डिवीजन बेंच के माननीय न्यायमूर्ति ने यह अवधारित किया:

"14. अपीलार्थी - मालिक के विद्वान अधिवक्ता श्री जी. आर. मजीठिया ने इस आधार पर उपरोक्त दृष्टिकोण का सम्मानपूर्वक विरोध किया है कि यहां अपीलार्थी और तारा सिंह के बीच मालिक और नौकर के किसी भी रिश्ते का कोई सवाल ही नहीं उठता है। इसलिए, स्वाभाविक परिणाम के रूप में यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता के रोजगार के दौरान वाहन की वास्तविक या समझी गई ड्राइविंग का कोई मुद्दा आकर्षित नहीं किया जाएगा। अपीलार्थी की ओर से दलील का मूल यह है कि अपीलार्थी-मालिक ने अपने वाहन को मरम्मत के लिए एक स्वतंत्र ठेकेदार को सौंपा था और इसलिए, बाद में हुई गलती, यदि कोई हो, के लिए वह किसी भी तरह से जिम्मेदार नहीं है।

15. उपरोक्त विवाद पर, जो मुद्दा सबसे पहले उठता है वह यह है कि क्या प्रतिवादी जरनैल सिंह, जो मोगा में बेहोन वर्कशॉप का मालिक है और जिसे वाहन मरम्मत के लिए सौंपा गया था, वह मालिक का एक एजेंट या कर्मचारी था या केवल एक स्वतंत्र ठेकेदार था, जो अपीलकर्ता के किसी भी नियंत्रण या निर्देश से मुक्त था। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर स्पष्ट है। किसी भी परीक्षण से आंका जाए तो ट्रक के मालिक और वर्कशॉप के मालिक, जिसे इसकी मरम्मत का काम सौंपा गया है, के बीच का रिश्ता मालिक और नौकर का नहीं हो सकता। यह सर्वविदित है कि एक स्वतंत्र ठेकेदार वह होता है जो किसी दिए गए परिणाम उत्तरदायित्व लेने या किसी विशेष कार्य को करने का कार्य करता है, लेकिन उस कार्य के वास्तविक निष्पादन में वह उस व्यक्ति के आदेश या नियंत्रण के अधीन नहीं है जिसके लिए वह कार्य किया गया है और वह अपने विवेक और निर्णय का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र है। इस परीक्षण को लागू करने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी संभवतः अपने वाहन की मरम्मत के तरीके को निर्देशित और नियंत्रित नहीं कर सका। आम तौर पर भी, यह मानना संभव नहीं लगता कि ऑटोमोबाइल वर्कशॉप के मालिक मरम्मत के लिए सौंपी गई कारों या लॉरियों के मालिकों के संबंध में मालिक और नौकर के रिश्ते में खड़े हैं।

16. एक बार जब यह माना जाता है कि प्रतिवादी जरनैल सिंह एक स्वतंत्र ठेकेदार था, तो यह अनिवार्य रूप से इसका पालन करेगा कि अपीलकर्ता को उसके कार्यों के लिए या किसी अजनबी या स्वतंत्र ठेकेदार के कर्मचारी द्वारा उसकी कस्टडी में रहते हुए वाहन के अनधिकृत उपयोग के लिए ज़िम्मेदार नहीं

ठहराया जा सकता है। यह महत्वपूर्ण है कि इसमें तथ्यात्मक निष्कर्ष यह है कि यह स्वतंत्र ठेकेदार नहीं था जो वास्तविक समय में ट्रक चला रहा था, बल्कि एक अलग व्यक्ति, अर्थात् प्रतिवादी तारा सिंह था, जिसे कहीं से भी वाहन के मालिक द्वारा इसे चलाने के लिए अधिकृत नहीं माना जा सकता है।

17. मैं इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हूं कि स्थापित नियम यह है कि एक नियोक्ता एक स्वतंत्र ठेकेदार की लापरवाही के लिए उत्तरदायी नहीं है, इसमें कुछ अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवाद हैं। हालाँकि, रायलैंड्स बनाम फ्लेचर के पूर्ण नियम को संभवतः मोटर वाहन जैसी रोजमर्रा की कामकाजी संपत्ति के मामले में संदर्भित नहीं किया जा सकता है। एक सदी पहले कानून की स्थिति चाहे जो भी रही हो, पर आज यह नहीं माना जा सकता है कि एक मोटर वाहन स्वाभाविक रूप से इतना खतरनाक और हानिकारक है कि मरम्मत के लिए इसे दूसरे को सौंपने पर भी मालिक के अपने जोखिम पर दायित्व का पूर्ण नियम लागू होगा। दूसरी ओर, प्राधिकरण का मानना है कि एक मोटर वाहन अपने आप में कोई खतरनाक या हानिकारक संपत्ति नहीं है जिससे रायलैंड बनाम फ्लेचर के सिद्धांत को संदर्भित किया जा सके।

18. मैं जो दृष्टिकोण अपनाने को इच्छुक हूं, वह बी. गोविंदराजुलु चीती बनाम एम.एल.ए. गोविंदराजा मुदलियार [1966 ए.सी.जे. 153] मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के निर्णय का पर्याप्त, यदि निर्णायक नहीं, तो समर्थन करता प्रतीत होता है। उसमें, इस बिंदु पर केस कानून की एक विस्तृत जांच की गई है और उसी आधार पर दोबारा जाना स्पष्ट रूप से गलत होगा। यह ध्यान देना पर्याप्त है कि बी. गोविंदराजुली चेट्टी (उपरोक्त) के मामले में विद्वान न्यायाधीशों ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला था:

"इस निर्णय से यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि मोटर वाहन के मामले में किसी व्यक्ति के खिलाफ दायित्व केवल इस सबूत पर तय किया जा सकता है कि वह लापरवाह था और वह लापरवाही संबंधित दुर्घटना के लिए जिम्मेदार थी। यह मानना असंभव है कि पहले प्रतिवादी पर कोई कर्तव्य था या मरम्मत के लिए वर्कशॉप को सौंपे जाने के बाद लॉरी के बारे में कोई नियंत्रण कर सकता था या कोई सावधानी बरत सकता था। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसा कोई कानून नहीं है जो मालिक पर यह अनुमान लगाने और सोचने का दायित्व डालता है कि कोई अनधिकृत व्यक्ति लॉरी को मरम्मत करने वाले के गैरेज से बाहर ले जाएगा। यह आवश्यक प्राकृतिक परिणामों में से एक नहीं है जो मरम्मत के लिए लॉरी को सौंपने के मामले में उत्पन्न होने की उम्मीद की जाएगी।"

39. प्रश्न फिर से थोड़े अलग संदर्भ में, लेकिन निश्चित रूप से **गुरु गोवेकर बनाम फिलोमेना एफ लोबो मिस, (1988) 3 एससीसी 1** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मरम्मत के लिए रखे गए एक उपनिहिती द्वारा मोटर वाहन के उपयोग के संदर्भ में उठा। उस मामले में जो प्रश्न उठा, उसे रिपोर्ट के शुरुआती भाग में माननीय न्यायमूर्ति के शब्दों पर छोड़ देना बेहतर होगा। उनके अनुसार:

"क्या एक बीमाकर्ता जिसने पॉलिसी में निर्दिष्ट किसी भी व्यक्ति को किसी भी दायित्व के खिलाफ बीमा करने के लिए पॉलिसी जारी की है, जो किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति के नुकसान के संबंध में उसके किसी सार्वजनिक स्थान पर किसी मोटर वाहन का उपयोग करने के कारण या उससे उत्पन्न हो सकती हो, तो ऐसे तीसरे पक्ष या उसके कानूनी प्रतिनिधि, जैसा भी मामला हो, मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है जब मोटर वाहन मरम्मतकर्ता के हिरासत में होने पर दायित्व उत्पन्न होता है।"

40. **गुरु गोवेकर (उपरोक्त)** में, प्रश्न का उत्तर माननीय न्यायमूर्ति द्वारा इस प्रकार दिया गया था:

"12. हम मोंक बनाम वारबे [(1935) 1 केबी 75] मामले में व्यक्त विचार से सहमत हैं। भारत में मोटर वाहन के बीमाकर्ता के दायित्व पर राय विभाजित दिखाई देती है जब दावे को जन्म देने वाली दुर्घटना तब होती है जब मोटर वाहन मरम्मत करने वाले की कस्टडी में होती है। विजयनगरम नरसिम्हा राव बनाम घनश्याम दास तापड़िया [(1986) 2 एसीजे 850] में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति रामास्वामी ने अवधारित किया कि एक बार जब मालिक ने मोटर वाहन को मरम्मत के लिए लाइसेंस प्राप्त मैकेनिक को सौंप दिया था, परीक्षण प्रभावी मरम्मत का अभिन्न अंग था और वाहन के परीक्षण के दौरान दुर्घटना हुई थी, तो आवश्यक निष्कर्ष यह था कि मैकेनिक ने अपने अधिकार की सीमा के भीतर और रोजगार के दौरान मालिक के लिए और उसकी ओर से काम किया। इसलिए, मालिक को मैकेनिक के कृत्यों के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी होना चाहिए। तदनुसार, उन्होंने अवधारित किया कि मालिक और बीमा कंपनी दोनों तीसरे पक्ष को मुआवजे के भुगतान के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी थे, जिन्हें अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर चोट लगी थी। शांतिबाई बनाम प्रिंसिपल, गोविंदराम सक्सेरिया टेक्नोलॉजिकल इंस्टीट्यूट, इंदौर [1972 एसीजे 354] मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय भी इसी प्रभाव का है। न्यायमूर्ति जी.एल. ओजा, जैसा कि वह उस समय थे, ने उक्त निर्णय के दौरान छूट खंड के आधार पर बीमा कंपनी के तर्क को खारिज कर दिया, जिसने बीमा कंपनी को उस अवधि के दौरान दुर्घटना से उत्पन्न होने वाले दायित्व से छूट दी थी जब मोटर वाहन "किराए के लिए या संगठित रेसिंग, गति-निर्माण, विश्वसनीयता गति परीक्षण" के लिए उपयोग किया जाता है, जो वर्तमान मामले में हमारे सामने आग्रह किए गए विवादों में से एक था, हालांकि इस मामले की परिस्थितियों में उक्त विवाद का आग्रह नहीं किया जा सका। हम डी राजपति बनाम मदुरै विश्वविद्यालय [1980 एसीजे 113] के निर्णय से सहमत नहीं हैं जिसमें यह अवधारित किया गया है कि परोक्ष दायित्व के सिद्धांत को उस मामले तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है जहां दुर्घटना एक स्वतंत्र ठेकेदार द्वारा नियोजित ड्राइवर की लापरवाही के कारण हुई थी, भले ही दावा अपकृत्य कानून के तहत नहीं बल्कि अधिनियम के प्रावधानों के तहत किया गया हो। जैसा कि हमने पहले देखा है हालाँकि यह सच हो सकता है कि अपकृत्य कानून के

तहत मालिक परोक्ष दायित्व के सिद्धांत पर उत्तरदायी नहीं हो सकता है, बीमाकर्ता ऊपर उल्लिखित अधिनियम की धारा 94 और धारा 95 के प्रावधानों के आधार पर मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा।"

41. यह ध्यान में रखना होगा कि इस अधिनियम में मोटर वाहनों के समग्र विनियमन से संबंधित कई उद्देश्यों में से एक सामाजिक कल्याण उद्देश्य है, जो मोटर दुर्घटना के पीड़ित को एक विशेष मंच, जो कि अधिकरण है, के समक्ष प्रदान किए गए सारांश उपाय के माध्यम से प्रभावी ढंग से मुआवजे के प्रावधान के बारे में है। वे व्यक्ति, जिनके विरुद्ध अधिकरण द्वारा निर्णय पारित किया जा सकता है, अधिनियम की धारा 168 में निर्दिष्ट हैं, जो दावा अधिकरण के निर्णय के बारे में बताता है। इसके अनुसार:

"168. दावा अधिकरणों का अधिनिर्णय -(1) घाटा 166 के अधीन किए गए प्रतिकर के लिए आवेदन की प्राप्ति पर, दावा अधिकरण बीमाकर्ता को आवेदन की सूचना देने और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् (जिसके अंतर्गत बीमाकर्ता भी है), यथास्थिति, दावे की या दावों में से प्रत्येक की जांच करेगा तथा, [धाटा 163] के उपबंधों के अधीन रहते हुए अधिनिर्णय देगा जिसमें प्रतिकर की उतनी रकम अवधारित होगी, जितनी उसे न्यायसंगत प्रतीत होती है तथा वह व्यक्ति या वे व्यक्ति विनिर्दिष्ट होंगे जिन्हें प्रतिकर दिया जाएगा, और अधिनिर्णय देते समय दावा अधिकरण वह रकम विनिर्दिष्ट करेगा जो, यथास्थिति, बीमाकर्ता द्वारा या उस यान के जो दुर्घटना में अंतर्ग्रस्त था, स्वामी या ड्राइवर द्वारा, अथवा उन सब या उनमें से किसी के द्वारा दी जाएगी।

(2) दावा अधिकरण अधिनिर्णय की प्रतियां संबंधित पक्षकारों को शीघ्र ही, और किसी भी दशा में अधिनिर्णय की तारीख से पन्द्रह दिन की अवधि के भीतर, परिदत्त करने की व्यवस्था करेगा।

(3) जहां इस धारा के अधीन कोई अधिनिर्णय किया जाता है वहां वह व्यक्ति जिससे ऐसे अधिनिर्णय के निबन्धनों के अनुसार किसी रकम का संदाय करने की अपेक्षा की जाती है, दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय घोषित करने की तारीख से तीस दिन के भीतर अधिनिर्णीत समस्त रकम, ऐसी रीति से जैसी दावा अधिकरण निर्दिष्ट करे, जमा करेगा।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

42. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि अधिकरण मुआवजे का निर्देश देने वाला एक अधिनिर्णय पारित कर सकता है, जो उचित प्रतीत होता है और यह आदेश देता है कि अधिकरण बीमाकर्ता, मालिक या ड्राइवर द्वारा देय मुआवजे की राशि निर्दिष्ट करेगा। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विशेष उपाय, जो संक्षेप प्रकृति का है, मोटर दुर्घटना के पीड़ित को अधिकरण द्वारा बीमाकर्ता, मालिक या ड्राइवर को उत्तरदायी ठहराते हुए एक अधिनिर्णय पारित करने के लिए निवेश करने से पहले प्रदान किया जाता है। अधिकरण को यह निर्देश देने का अधिकार दिया गया है कि

उनमें से कौन और किस अनुपात में अधिनिर्णय के तहत उत्तरदायी होगा और उनमें से किसी एक या सभी के खिलाफ अधिनिर्णय पारित किया जा सकता है।

43. मैकेनिक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए एक तर्क पर ध्यान देना आवश्यक होगा कि मालिक की ओर से जिन निर्णयों पर अवलम्ब लिया गया उनमें से अधिकांश 1939 के अधिनियम के संदर्भ में दिए गए हैं, जबकि वर्तमान मुद्दा अधिनियम के संदर्भ में उत्पन्न हुआ है, जो एक उत्तराधिकारी क़ानून है और अपने पूर्ववर्ती से बहुत अलग है, जिसमें बीमा कंपनी के अधिकारों और देनदारियों से संबंधित प्रावधान शामिल हैं। यह कहना पर्याप्त है कि 1939 के अधिनियम की धारा 94 और 95 के प्रावधान मोटे तौर पर अधिनियम की धारा 146 और 147 के प्रावधानों के बराबर हैं, हालांकि कुछ मुद्दों पर विवरण के महत्वपूर्ण अंतर हैं। लेकिन, 1939 के अधिनियम की धारा 94 और 95 के प्रावधानों और वर्तमान क़ानून में संबंधित प्रावधानों में अंतर का यहां शामिल मुद्दे पर बहुत कम प्रभाव है।

44. वर्तमान अपील में शामिल प्रश्न पर 1939 के अधिनियम के तहत दिए गए निर्णयों को अप्रासंगिक और समकालीन वैधानिक संदर्भ से दूर नहीं कहा जा सकता है। मोटे तौर पर, 1939 के अधिनियम की धारा 94 और 95 के प्रावधान और अधिनियम की धारा 146 और 147 के प्रावधान यह अनिवार्य बनाते हैं कि कोई भी व्यक्ति, जो सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का उपयोग करता है या कराता है, वह ऐसा तब तक नहीं करेगा जब तक कि उस वाहन के संबंध में संबंधित क़ानून की आवश्यकताओं का अनुपालन करने वाली कोई बीमा पॉलिसी लागू न हो। पॉलिसी को जो सुनिश्चित करना चाहिए, उसे दोनों क़ानूनों के तहत संबंधित प्रावधानों द्वारा भी वर्णित किया गया है और पॉलिसी के लिए तीसरे पक्ष के जोखिम को कवर करना अनिवार्य है, जिसमें किसी व्यक्ति की मृत्यु या गंभीर चोट शामिल है।

45. 1939 के अधिनियम की धारा 95 के आधार पर बीमाकर्ता को उत्तरदायी ठहराने वाले सिद्धांत के अंतिम भाग के लिए **गुरु गोवेकर** मामले के निर्णय का केरल उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने **अलियास बनाम ई.एम. पॉल और अन्य, एआईआर 2004 केआर 214** मामले में, और इससे भी पहले, **ईगल ब्रांड सोपनट कंपनी द्वारा प्रतिनिधित्व उनके पार्टनर नंबर 15, पेरिया कम्मला स्ट्रीट, तिरुचिरापल्ली-8 बनाम रंगासामी और अन्य, 1997 एससीसी ऑनलाइन मैड 67** मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पालन किया था। ये निर्णय, वास्तव में, बीमा कंपनी की क्षतिपूर्ति के दायित्व के बारे में थे जब मोटर वाहन किसी मैकेनिक या मरम्मत करने वाले की कस्टडी में था। ये निर्णय इस मुद्दे के बारे में नहीं हैं कि क्या जमानत के संविदा के तहत संपत्ति की हिरासत रखते समय किसी तीसरे पक्ष को घायल करने में उपनिहिती के कृत्य के लिए उपनिधाता/मालिक तीसरे पक्ष को नुकसान के लिए उत्तरदायी होगा। ये प्राधिकरण उस दायित्व के बारे में नहीं हैं जो अपकृत्य के तहत

उत्पन्न होता है, बल्कि उस दायित्व के बारे में है जो बीमाकर्ता के लिए अधिनियम के तहत उत्पन्न होता है जब एक उपनिहिती की कस्टडी में एक मोटर वाहन किसी तीसरे पक्ष को चोट पहुंचाता है।

46. **गुरु गोवेकर** मामले के निर्णय से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपकृत्य को नियंत्रित करने वाले सामान्य सिद्धांतों के तहत, मालिक बेलमेंट की संविदा के तहत अपनी संपत्ति रखते समय तीसरे पक्ष के मुकाबले उपनिहिती जैसे स्वतंत्र ठेकेदार के कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं है। उस स्थिति में, केवल उपनिहिती ही घायल तीसरे पक्ष के प्रति जवाबदेह है, जहां तक अपकृत्य को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों का संबंध है। लेकिन, **गुरु गोवेकर** के मामले का निर्णय, जिसके बाद केरल उच्च न्यायालय और मद्रास उच्च न्यायालय ने इसका अनुसरण किया, बीमा कंपनी को वैधानिक दायित्व के तहत उत्तरदायी ठहराने के लिए 1939 के अधिनियम की धारा 94 और 95 के प्रावधानों पर आधारित है, जहां एक विधिवत बीमाकृत मोटर वाहन को मरम्मत के लिए एक स्वतंत्र ठेकेदार को सौंपा गया है, एक मैकेनिक की तरह एक उपनिहिती, इसे चलाते समय तीसरे पक्ष को चोट पहुंचाता है।

47. यह सच है कि 1939 के अधिनियम, अर्थात अधिनियम को तब से वर्तमान क़ानून द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, मालिक, बीमाकर्ता और तीसरे पक्ष के बीच अधिकारों और देनदारियों की मुख्य विशेषताएं अधिनियम के तहत अपरिवर्तित रहती हैं, जिसमें धारा 146 और 147 में संबंधित प्रावधान हैं।

48. इसलिए, सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग से तीसरे पक्ष के संबंध में अधिनियम की धारा 146 और 147 के तहत बीमा कंपनी का दायित्व उत्पन्न होता है। यदि किसी मोटर वाहन का उपयोग सार्वजनिक स्थान पर किया जाता है, जो अधिनियम की धारा 146 के तहत अनिवार्य बीमा द्वारा कवर नहीं किया जाता है तो क्या होगा। वास्तव में, धारा 196 के तहत, अधिनियम की धारा 146 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए, यानी बिना बीमा के मोटर वाहन चलाना या चलाने की अनुमति देना जुर्माना और कारावास दोनों से दंडनीय अपराध है। यहां, यह मालिक ही है, जिसने वाहन को मरम्मत के लिए स्वतंत्र ठेकेदार, उपनिहिती, जो मैकेनिक है, के हाथों में सौंप दिया, जबकि यह बीमा पॉलिसी द्वारा कवर नहीं किया गया था। यह मान लिया जाएगा कि मैकेनिक को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। मालिक की ओर से ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे यह पता चले कि उसने मैकेनिक को सूचित किया था कि वाहन वैध बीमा कवर के बिना था, जैसा कि अधिनियम के तहत आवश्यक है। शायद इसी कारण से मालिक ने मैकेनिक को उसकी अनुपस्थिति में मोटर वाहन का उपयोग न करने के लिए कहा था। हालाँकि, यह वाहन के बीमा रहित होने के बारे में मैकेनिक को बताने या उपनिधान की संविदा के तहत इसे रखने वाले एक स्वतंत्र ठेकेदार के रूप में उसकी स्थिति को बदलने वाला तथ्य नहीं हो सकता है।

49. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यद्यपि सार्वजनिक स्थान पर बिना बीमा के वाहन चलाना अधिनियम द्वारा पूर्णतः निषिद्ध है और यह कानून द्वारा दंडनीय अपराध भी है, यदि मालिक वास्तव में किसी सार्वजनिक स्थान पर बिना बीमा वाला वाहन चलाता है या उसे अपने नौकर या एजेंट के माध्यम से चलवाता है, जिससे कोई तीसरा पक्ष घायल हो जाता है, तो मालिक उस चोट या नुकसान के लिए तीसरे पक्ष को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी होगा। हालाँकि, जब वाहन को सेवा या मरम्मत के उद्देश्य से मैकेनिक जैसे एक स्वतंत्र ठेकेदार को सौंपा जाता है, तो इसे उपनिधान की संविदा के तहत मैकेनिक या मरम्मत करने वाले द्वारा रखा जाता है। इसे मालिक के नौकर या एजेंट के रूप में नहीं रखा जाता है। लगातार अधिकारियों द्वारा यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि जब तक उपनिहिती, मैकेनिक या मरम्मत करने वाले के पास मोटर वाहन है, मालिक का उस पर कोई नियंत्रण नहीं है।

50. इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में भले ही मालिक एक स्वतंत्र ठेकेदार को वाहन सौंपते समय, एक उपनिहिती, जैसे गैरेज मालिक या एक स्वतंत्र मैकेनिक या मरम्मत तकने वाले को सार्वजनिक स्थान पर वाहन का उपयोग न करने के लिए कुछ निर्देश देता है, तो वे उपनिहिती की स्थिति को मालिक के एजेंट या नौकर में नहीं बदलेंगे। और, इसलिए, मैकेनिक या मरम्मत करने वाले द्वारा सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न होने वाली किसी तीसरे पक्ष को किसी भी चोट या हानि के लिए, जबकि वह उपनिधान की संविदा के तहत मोटर वाहन रखता है, तो उपनिहिती तीसरे पक्ष को नुकसान या मुआवजे के लिए उत्तरदायी होगा।

51. न्यायालय की समझ के अनुसार, यह **गुरु गोवेकर** मामले में सर्वोच्च न्यायालय की राय से स्पष्ट है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह माना गया कि अपकृत्य के कानून के तहत, मालिक किसी स्वतंत्र ठेकेदार या उपनिहिती, जैसे मरम्मत करने वाले या मैकेनिक, द्वारा अनुबंध या जमानत के तहत वाहन रखने से तीसरे पक्ष को लगी चोट के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होगा। यह बिल्कुल दूसरी बात है कि **गुरु गोवेकर** मामले में, माननीय न्यायमूर्ति ने बीमाकर्ता को क़ानून के तहत उत्तरदायी ठहराया, जो किसी तीसरे पक्ष के प्रति बीमाकर्ता के दायित्व का प्रावधान करता है, इस तथ्य से स्वतंत्र कि मालिक वाहन का उपयोग कर रहा था या उपनिहिती, जिसे मालिक ने इसे मरम्मत आदि के लिए सौंपा था। इस प्रकार, **गुरु गोवेकर** मामले का सिद्धांत उस स्थिति में स्वतंत्र ठेकेदार के तीसरे पक्ष के प्रति दायित्व का भी समर्थन करेगा, जहां वाहन का बीमा नहीं है। इस न्यायालय की सुविचारित राय में, स्वतंत्र ठेकेदार, यानी मैकेनिक, दावेदार-प्रतिवादी नंबर 1 को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी होगा, जैसा कि ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए फैसले के तहत निर्देशित किया गया है।

52. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

53. परिणामस्वरूप, यह अपील **विफल** होती है और **खारिज** की जाती है।

54. लागत के सम्बन्ध मे कोई आदेश नहीं है।

(2023) 5 ILRA 134

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 73/2003

यू.पी.एस.आर.टी.सी., लखनऊ ...अपीलकर्ता

बनाम

अशोक कुमार शर्मा ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सी.पी. श्रीवास्तव, श्री अमित मनोहर, श्री अनुभव चंद्रा, श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री ए.के. सक्सेना

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री जी.एल., त्रिपाठी, श्री बी.डी. शुक्ला, श्री सौरभ रॉय

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 176-चुनौती-मुआवजे की राशि अत्यधिक अत्यधिक है-दावेदार को 75% विकलांगता हुई है-न्यायाधिकरण ने 6,56,331/- रुपए की राशि निर्धारित की है तथा भविष्य में आय की हानि नहीं मानी है-इस प्रकार, निर्धारित मुआवजा राशि उच्चतर नहीं कही जा सकती है तथा ब्याज दर 9% होगी, इसलिए निर्धारित राशि में हस्तक्षेप का कोई प्रश्न नहीं है। (पैरा 1 से 13)

बी. यह समग्र लापरवाही का मामला है, जहां संयुक्त अपकृत्य करने वालों के संयुक्त गलत कार्य द्वारा दावेदारों को चोटें पहुंचाई गई हैं। संयुक्त अपकृत्य करने वालों की लापरवाही से हुई दुर्घटना के मामले में, गलत कार्य करने में सहायता करने या परामर्श देने या निर्देश देने या शामिल होने वाले सभी व्यक्ति उत्तरदायी होते हैं। ऐसे मामले में, दायित्व हमेशा संयुक्त और अलग-अलग होता है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्य करने वालों की लापरवाही की सीमा दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए महत्वहीन है और इसे न्यायालय द्वारा निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 10)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य एफएएफओ संख्या 1818/2012
2. राइलैंड्स बनाम फ्लेचर (1868) 3 एचएल (एलआर) 330
3. जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य (2005) 0 एसीजे एससी 1840
4. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया असुर. कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2015) वाद एस.सी. 469
5. टी.ओ. एंथोनी बनाम करवर्नन और अन्य (2008) (3) एससीसी 748

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के.सक्सेना और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।
2. यह अपील, यू.पी.एस.आर.टी.सी. के निर्देश पर, एम.ए.सी.टी./11-अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर (इसके बाद "न्यायाधिकरण" के रूप में

संदर्भित) द्वारा एम.ए.सी.पी संख्या 568/1999 में पारित निर्णय और अधिनिर्णय दिनांक 18.09.2002 को चुनौती देती है। यह तथ्य कि 25.11.1998 को हुई दुर्घटना में वाहन शामिल है, विवाद में नहीं है, इसलिए, वाहन की भागीदारी विवाद में नहीं है। अब केवल विवाद घायलों की अंशदायी लापरवाही और मुआवजे की मात्रा तथा पक्षों की कुसंयोजन को लेकर है।

3. अभिलेखों से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 25.11.1998 को लगभग 12:15 बजे, अशोक कुमार शर्मा अपने वेस्पा स्कूटर संख्या यू.पी. 81एफ-4862 से अपने व्यवसाय के सिलसिले में हाथरस जा रहे थे। यू.पी.एस.आर.टी.सी. के ड्राइवर ने तेजी और लापरवाही से स्कूटर को टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप अशोक कुमार शर्मा को गंभीर चोटें आईं और उनका पैर कई जगहों से टूट गया। घायल को हाथरस में उपचार दिया गया लेकिन गंभीर चोटें होने के कारण उसे इंद्रप्रस्थ सरिता विहार, दिल्ली संदर्भित कर दिया गया।

4. दुर्घटना के समय मृतक की उम्र 35 वर्ष थी और वह मेसर्स जनार्दन शर्मा एंड कंपनी में काम करता था और 5000/- रुपये मासिक कमाता था। वह एक विवाहित व्यक्ति था जिसके दो नाबालिग बच्चे और एक पत्नी थी। न्यायाधिकरण ने 6,56,331/- रुपये की एकमुश्त राशि मंजूर की है।

5. चुनौती का आधार यह है कि दिए गए मुआवजे की मात्रा अवैध, मनमानी और अत्यधिक है। यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण को दावेदार की अंशदायी लापरवाही के सवाल पर विचार करना चाहिए था क्योंकि दुर्घटना बस के पिछले हिस्से में हुई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि बस का चालक लापरवाह नहीं था और प्रत्यर्थी द्वारा ड्राइविंग लाइसेंस और बीमा पॉलिसी प्रस्तुत नहीं की गई थी और इसलिए दावा याचिका पक्षों के शामिल न होने के आधार पर खारिज करने योग्य थी।

6. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि दावेदार जो घायल है, उसने यह बताने के लिए कोई दस्तावेजी सबूत पेश नहीं किया है कि उसकी आय क्या थी, मेडिकल वाउचर किसी भी डॉक्टर द्वारा सत्यापित नहीं किए गए हैं।

7. लापरवाही शब्द का अर्थ दूसरों के प्रति देखभाल करने में विफलता है जो एक उचित और विवेकपूर्ण व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या ऐसा कदम उठाना जो ऐसा उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है जो सामान्यतः आकस्मिक होती है। विशेष रूप से, यह लापरवाह ड्राइविंग को दर्शाता है और

घायल को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों पक्ष लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदायी है अन्यथा "रेस इप्सा लोकिटुर" का सिद्धांत लागू होगा जिसका अर्थ है "चीजें खुद बोलती हैं"

8. अंशदायी लापरवाही के सिद्धांत पर बार-बार चर्चा की गई है। वह व्यक्ति जो दुर्घटना में योगदान देता है या उसका कारक है, दुर्घटना घटित होने में अपने योगदान के लिए उत्तरदायी होगा।

9. ***आदेश से प्रथम अपील संख्या 1818 / 2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह और अन्य)*** में इस न्यायालय की **खण्ड न्यायपीठ** ने 19.7.2016 को फैसला सुनाया:

"16. लापरवाही का अर्थ है एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित देखभाल और सावधानी बरतने में विफलता। लापरवाही कुछ ऐसा करने में चूक है जो एक उचित व्यक्ति, विचारों पर निर्देशित होकर, जो आम तौर पर मानवीय मामलों के संचालन को नियंत्रित करता है, करेगा, या कुछ ऐसा करना जो एक विवेकपूर्ण और उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रश्न नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला एक अनुमान है। लापरवाही कोई निरपेक्ष शब्द नहीं है, बल्कि सापेक्ष शब्द है। यह एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है वह दूसरे मामले में नहीं हो सकती। जहां देखभाल करने का कोई कर्तव्य नहीं है, वहां लोकप्रिय अर्थों में लापरवाही का कोई कानूनी परिणाम नहीं होता है। जहां देखभाल करना कर्तव्य है, वहां ऐसे कृत्यों या चूक से बचने के लिए उचित देखभाल की जानी चाहिए, जिससे व्यक्ति को शारीरिक चोट लगने की उचित संभावना हो। बेशक, आवश्यक देखभाल का स्तर प्रत्येक मामले में तथ्यों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों पर ड्राइवरों की लापरवाही का आकलन आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से अंशदायी लापरवाही के लिए सबूत का बोझ विरोधियों को उठाना होगा। दुर्घटना की व्याख्या करना अपराधी वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमी गति से चलें और यदि चालक ने चौराहे पर गति धीमी नहीं की, बल्कि ध्यान दिए बिना तेज गति से आगे बढ़ना जारी रखा कि कोई दूसरा वाहन पार कर रहा था, तो चालक के आचरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह वाहन तेजी से और लापरवाही से चला रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम से जुड़ी 10वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने के लिए वैधानिक नियम शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा हैं।

ऐसे विनियमन के खंड-6 में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वाहन की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन में प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह इससे किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा।

केवल, क्योंकि ट्रक का ड्राइवर सड़क के बायीं ओर वाहन चला रहा था, वह सड़क के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो जाएगा, खासकर तब जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था, वह चौराहे की ओर आ रही थी।

19. यातायात की तेज और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक ***रायलैंड्स बनाम फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) 330*** *में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत माना जा सकता है। पैदल चलने वालों की दृष्टि से मोटर वाहनों के प्रयोग से इस देश की सड़कें अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। 'हिट एंड रन' के मामले जहां दुर्घटनाएं करने वाले मोटर वाहनों के ड्राइवर अज्ञात हैं। दरअसल ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है.*

जहां कोई पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही किए बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे वह लापरवाही से हो या नहीं, यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ होना चाहिए तो, जैसा भी मामला हो, उसे या उसके कानूनी प्रतिनिधियों को हर्जाना वसूलने का हकदार होना चाहिए।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110ए और धारा 110बी) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पार्टियों के अधिकारों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा निर्मित कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजाति में नया, अपनी गुणवत्ता में नया, अपने सिद्धांतों में नया था। हर तरह से यह नया था । मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने के लिए अधिनियम, 1988 के तहत कानूनी प्रतिनिधियों को दिया

गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत किसी कार्रवाई की सीमाओं से रोका नहीं जा सकता है। नई स्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपायों की आवश्यकता होती है।

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही न्यायालय व्याख्या द्वारा कानून के उन सिद्धांतों को विस्थापित न करें जिन्हें अच्छी तरह से स्थापित माना जाता है और, इसलिए, न्यायालयों मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में लापरवाही के सबूत से पूरी तरह छूट नहीं दे सकती है, कानून को निम्नलिखित तर्ज पर आगे विकसित करना संभव है; जब कोई मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा है, तो आमतौर पर यह दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और, इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में रेस-इप्सा लोकिटर का नियम मोटर दुर्घटना के मामलों में सामान्य सिविल मुकदमों की तुलना में अधिक आवृत्ति के साथ लागू किया जा सकता है ***(जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840).में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के अनुसार)***

22. उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में प्रत्यर्थी पर सबूत का बोझ आम तौर पर यह साबित करने के लिए डाला जा सकता है कि मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा था या दूसरे पक्ष की ओर से भी उतनी ही लापरवाही हुई है।

<u>महत्व जोड़ें</u>

10. ***खेनेई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2015 लॉ-सूट (एससी) 469*** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार फैसला दिया है:

"4. यह समग्र लापरवाही का मामला है जहां संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के संयुक्त गलत कार्य के कारण दावेदारों को चोटें आई हैं। संयुक्त अपकृत्य कर्ताओं की लापरवाही के कारण हुई दुर्घटना के मामले में, वे सभी व्यक्ति जो किसी गलत कार्य में सहायता या सलाह देते हैं या निर्देशन करते हैं या उसमें शामिल होते हैं, उत्तरदायी हैं। ऐसे मामले में देनदारी हमेशा संयुक्त और अनेक होती है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्य कर्ता की लापरवाही की सीमा वादी/दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए महत्वहीन है और इसे अदालत द्वारा निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ता न्यायालयों के समक्ष हैं, तो यह उचित स्तर पर उनके बीच अंतर-इक्विटी को समायोजित करने के उद्देश्य से उनके दायित्व की सीमा निर्धारित कर सकता है। वादी/दावेदार की तुलना में प्रत्येक

संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संयुक्त और कई दायित्व है। समग्र लापरवाही के मामले में, वादी को भुगतान करने के लिए अपकृत्य करने वालों के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है क्योंकि वादी/दावेदार को सबसे आसान लक्ष्य/विलायक प्रत्यर्थी से पूरी राशि वसूल करने का अधिकार है।

14. अंशदायी और समग्र लापरवाही के बीच अंतर है। अंशदायी लापरवाही के मामले में, एक व्यक्ति जिसने खुद इस हद तक योगदान दिया है, वह अपनी लापरवाही की सीमा तक दुर्घटना में लगी चोटों के लिए मुआवजे का दावा नहीं कर सकता है; जबकि समग्र लापरवाही के मामले में, पीड़ित व्यक्ति ने दुर्घटना में योगदान नहीं दिया है, बल्कि दो या दो से अधिक अन्य व्यक्तियों की लापरवाही के संयोजन का परिणाम है। ***टी.ओ. एंथोनी बनाम करवर्नन और अन्य [2008 (3) एससीसी 748]*** *में इस न्यायालय ने माना है कि अंशदायी लापरवाही के मामले में, घायल को प्रत्येक गलत कर्ता की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक गलत कर्ता के दायित्व की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। यह केवल अंशदायी लापरवाही के मामले में है कि दुर्घटना में घायल ने स्वयं अपनी लापरवाही से योगदान दिया है। उसकी लापरवाही की सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता है क्योंकि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति को उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम किया जाना चाहिए। प्रासंगिक भाग यहां निकाला गया है:*

"6. 'समग्र लापरवाही' का तात्पर्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों की ओर से की गई लापरवाही से है। जहां एक व्यक्ति दो या दो से अधिक गलत काम करने वालों की ओर से लापरवाही के परिणामस्वरूप घायल हो जाता है, ऐसा कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन गलत काम करने वालों की समग्र लापरवाही के कारण घायल हुआ था। ऐसे मामले में, प्रत्येक गलत कर्ता, संपूर्ण क्षति के भुगतान के लिए घायल के प्रति संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होता है और घायल व्यक्ति के पास उनमें से सभी या किसी एक के खिलाफ कार्यवाही करने का विकल्प होता है। ऐसे मामले में, घायल को प्रत्येक ग़लती करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक ग़लती करने वाले की ज़िम्मेदारी की सीमा अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जहां किसी व्यक्ति को आंशिक रूप से किसी

अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से लापरवाही के कारण चोट लगती है,

और आंशिक रूप से उसकी अपनी लापरवाही के परिणामस्वरूप, फिर घायल के उस हिस्से की लापरवाही जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, को उसकी अंशदायी लापरवाही के रूप में जाना जाता है। जहां घायल कुछ लापरवाही का दोषी है, नुकसान के लिए उसका दावा केवल उसकी ओर से लापरवाही के कारण पराजित नहीं होता है, बल्कि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम हो जाती है।

7. इसलिए, जब दो वाहन दुर्घटना में शामिल होते हैं, और उनमें से एक चालक लापरवाही का आरोप लगाते हुए दूसरे चालक से मुआवजे का दावा करता है,

और दूसरा ड्राइवर लापरवाही से इनकार करता है या दावा करता है कि घायल दावेदार खुद लापरवाह था, तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार लापरवाह था और यदि हां, तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह या आंशिक रूप से ज़िम्मेदार था और उसकी ज़िम्मेदारी की सीमा, यह उसकी अंशदायी लापरवाही है। इसलिए जहां घायल स्वयं आंशिक रूप से उत्तरदायी है, वहां 'समग्र लापरवाही' का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही कोई स्वचालित अनुमान लगाया जा सकता है कि लापरवाही 50:50 थी जैसा कि इस मामले में माना गया है। न्यायाधिकरण को अपीलकर्ता की अंशदायी लापरवाही की सीमा की जांच करनी चाहिए थी और इस तरह समग्र लापरवाही और अंशदायी लापरवाही के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटि को सुधारने में विफल रहा है।"

*18. **चल्ला भरतम्मा और नंजप्पन (पूर्वोक्त)** में इस न्यायालय ने मालिक द्वारा पॉलिसी शर्तों के उल्लंघन से निपटा है जब बीमाकर्ता को न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित मुआवजे का भुगतान करने के लिए कहा गया था और बीमाकर्ता के बीच विवाद होने पर उसे वसूलने का अधिकार संबंधित निष्पादन न्यायालय में बीमाकर्ता को दिया गया था और मालिक न्यायाधिकरण के लिए निर्धारण का विषय-वस्तु था और इस मुद्दे का निर्णय बीमाधारक के पक्ष में किया गया है।*

यही सादृश्य तत्काल मामलों पर भी लागू किया जा सकता है क्योंकि संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व संयुक्त और अनेक है। मौजूदा मामले में, संबंधित ड्राइवरों के 2/3 और 1/3 की लापरवाही की सीमा तक समग्र

अनुवादित

लापरवाही की पारस्परिक देयता का निर्धारण होता है। इस प्रकार, वाहन - ट्रेलर-ट्रक जिसका बीमाकर्ता के पास बीमा नहीं था, 2/3 की सीमा तक लापरवाह था। दावेदार को भुगतान करने के बाद बस का बीमा करने वाला बीमाकर्ता निष्पादन कार्यवाही में ट्रेलर-ट्रक के मालिक से उपरोक्त सीमा तक राशि वसूल करने के लिए खुला होगा। यदि साक्ष्य के अभाव में पारस्परिक दायित्व का कोई निर्धारण नहीं किया गया था या अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ता को पक्षकार नहीं बनाया गया था,

इस तरह के विवाद को निपटाने और निष्पादन कार्यवाही में राशि की वसूली के लिए यह खुला नहीं था, लेकिन इसका उपाय कानून के अनुसार एक और मुकदमा या उचित कार्यवाही दायर करना होगा।

उपरोक्त चर्चा से जो बात निकलकर सामने आती है वह इस प्रकार है:

(i) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार दोनों या संयुक्त अपकृत्य दाताओं में से किसी एक पर मुकदमा करने और पूरे मुआवजे की वसूली करने का हकदार है क्योंकि संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व संयुक्त और कई है।

(ii) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार की तुलना में दो अपकृत्यकर्ताओं के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार उनमें से किसी से भी संपूर्ण क्षति की वसूली कर सकता है।

(iii) यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को पक्षकार बना दिया गया है और साक्ष्य पर्याप्त है, तो यह न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए खुला है कि वह ड्राइवरों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित कर सके।

हालाँकि, संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के बीच लापरवाही की सीमा का निर्धारण केवल उनके पारस्परिक दायित्व के उद्देश्य से है ताकि एक व्यक्ति वादी/दावेदार को पूरा भुगतान करने के बाद दूसरे से उस सीमा तक राशि वसूल कर सके, जिस हद तक उसने दूसरे के दायित्व को पूरा किया है। यदि उन दोनों को पक्षकार बनाया गया है और उनकी लापरवाही का बंटवारा/सीमा न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई है, तो मुख्य मामले में एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे से राशि वसूल कर सकता है।

(iv) न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को दोषी ठहराए जाने की अनुपस्थिति में दो वाहनों के चालकों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित करे। ऐसे मामले में, डिक्री या अधिनिर्णय के पारित

होने के बाद स्वतंत्र कार्यवाही में अन्य संयुक्त अपकृत्य व्यवहारकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए, यदि वह चाहे तो, पक्षकार संयुक्त अपकृत्य व्यवकर्ता को छोड़ दिया जाना चाहिए।

महत्व जोड़ें

11. **खेनेई (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय ने लापरवाही को अधिक विशेष रूप से समग्र/अंशदायी लापरवाही पर विचार करने के बारे में एक और पहलू रखा है। यह दिखाया जाना चाहिए कि मृतक या संबंधित व्यक्ति ने दुर्घटना में योगदान दिया है और यदि उसने सावधानी बरती होती तो पीड़ित पर दुर्घटना के प्रभाव को कम किया जा सकता था।

12. न्यायाधिकरण बहुत स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि रोडवेज की बस का चालक तेजी और लापरवाही से बस चला रहा था। यू.पी.एस.आर.टी.सी. ने न्यायाधिकरण के समक्ष अपने जवाब में तर्क दिया कि ऐसी कोई दुर्घटना नहीं हुई थी और इसके विपरीत स्कूटर ने बस को पीछे से टक्कर मार दी थी। डी.डब्ल्यू.-2 और स्कूटर चालक का साक्ष्य न्यायाधिकरण द्वारा दावेदार से विस्तृत चर्चा की गई है। जहां तक लापरवाही की बात है तो तथ्यों की खोज में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

13. प्रभाव ऐसा था कि दावेदार 75% विकलांगता का शिकार हो गया। यह इस न्यायालय को मुआवज़े तक ले जाता है। दिया गया मुआवजा अधिक नहीं कहा जा सकता। न्यायाधिकरण ने भविष्य में आय के नुकसान की मद में कोई राशि मंजूर नहीं की है। बल्कि क्वांटम निचले स्तर पर है। जैसा कि विद्वान अधिवक्ता श्री विद्या कांत शुक्ला प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए, लेकिन कोई प्रति-आपत्ति नहीं उठाई गई, इसलिए, जो राशि प्रदान की गई है, उसमें हस्तक्षेप का कोई सवाल ही नहीं है।

14. वर्ष 2003 में ब्याज दर 9% थी जिसमें भी किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

15. तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

16. अभिलेखों को न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाए, यदि कोई स्टे है, तो उसे निरस्त कर दिया जाए।

17. सावधि जमा में रखी गई राशि दावेदार को दी जाए क्योंकि इस अपील को दायर करने की तारीख से 20 वर्ष बीत चुके हैं।

18. यह न्यायालय इस न्यायालय की सहायता करने के लिए दोनों विद्वान अधिवक्ताओं का आभारी है।

(2023) 5 ILRA 140

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 217/2018

राम शबद यादव ...अपीलकर्ता

बनाम

हरिलाल एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सत्येन्द्र पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री प्रेम चंद श्रीवास्तव, श्री राहुल सहाय, श्री आदित्य सिंह परिहार

ए. सिविल कानून- मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 176-मृतक की मृत्यु ट्रक चालक की लापरवाही और तेज गति से वाहन चलाने के कारण दुर्घटना से हुई चोटों के कारण हुई - विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया कि बीमा पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन किया गया था, इसलिए बीमा कंपनी को इस आधार पर अपने दायित्व से मुक्त कर दिया गया कि चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और मुआवजा देने का दायित्व मालिक का है - आधारभूत तथ्यों को साबित करने का भार मालिक पर है, लेकिन आधारभूत तथ्यों को स्थापित करने में वह विफल रहा, क्योंकि मालिक यह साबित करने के लिए गवाह के कठघरे में उपस्थित नहीं हुआ कि ड्राइविंग लाइसेंस उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया था और वह चालक की नियुक्ति के समय इसकी वास्तविकता से संतुष्ट था - बीमा कंपनी को तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जब ट्रक के मालिक द्वारा आधारभूत तथ्यों का तर्क दिया जाए और उन्हें साबित किया जाए - यदि बीमा कंपनी यह साबित करने में सक्षम है कि मालिक को पता था या उसे सूचना थी कि लाइसेंस फर्जी या अमान्य है और फिर भी उसने व्यक्ति को वाहन चलाने की अनुमति दी, तो बीमा कंपनी अब उत्तरदायी नहीं रहेगी - इसलिए, आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 1 से 29)

बी. **फॉर्म 54 एक सार्वजनिक दस्तावेज अर्थात ड्राइविंग लाइसेंस के राज्य रजिस्टर की प्रमाणित प्रति है, इसलिए इसे गवाह से पूछताछ करके साबित करने की आवश्यकता नहीं है। एक बार जब धारा 26(1) के तहत बनाए गए रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों की प्रमाणित प्रति नियम 23 के साथ फॉर्म-54 में जारी कर दी जाती है, तो यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 77 के तहत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होती है और गवाहों की जांच करके मौखिक साक्ष्य द्वारा फॉर्म 54 को और अधिक सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है। (पैरा 27)**

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. यूनाइटेड इंडिया इंस. कंपनी लिमिटेड बनाम लेहरू एवं अन्य (2003) 0 एससी 251
2. एनआईसीएल बनाम स्वर्ण सिंह एवं अन्य (2004) एआईआर एससी 1531
3. पेप्सू रोड ट्रांस. कॉर्पोरेशन बनाम नेशनल इंस. कंपनी (2013) 10 एससीसी 217
4. पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा एवं अन्य (2018) 3 एससीसी 208
5. प्रेम कुमारी बनाम प्रह्लाद देव (2008) 3 एससीसी 193
6. निर्मला कोठारी बनाम यूनाइटेड इंडिया इंस. लिमिटेड (2020) 4 एससीसी 49
7. ऋषि पाल सिंह बनाम न्यू इंडिया असुर. कंपनी लिमिटेड और अन्य MANU/SC/1303/2022
8. केदार सिंह बनाम सरला देवी एवं अन्य। मनु/यूपी/1726/2021
9. ओरिएंटल इंस. कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती पूनम केसरवानी एवं अन्य (2009) 0 एडीजे 1

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. आदेश से यह प्रथम अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, महाराजगंज द्वारा मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 114 (हरिलाल एवं अन्य बनाम राम शाबद यादव एवं अन्य) में दिनांक 13.10.2017 को पारित निर्णय एवं अधिनिर्णय से उत्पन्न हुई है।

2. मालिक-अपीलकर्ता मुआवजे का भुगतान करने की देयता का विरोध करता है।

3. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों का संक्षेप में मामला यह था कि मृतक भानमती की मृत्यु 02.05.2014 को हुई दुर्घटना में लगी चोटों के कारण हुई थी और यह पंजीकरण संख्या यूपी-52एफ-0405 के ट्रक के चालक के तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। उल्लंघन करने वाले वाहन का बीमा प्रतिवादी बीमा कंपनी द्वारा किया गया था। दावेदार मृतक पर निर्भर थे। हादसे के वक्त मृतक की उम्र 44 साल थी।

4. आक्षेपित पुरस्कार में विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदारों के लिए पाया कि उल्लंघन करने वाले ट्रक के चालक ने लापरवाही से गाड़ी चलाई और दुर्घटना के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार था जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हो गई। विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया कि बीमा पोलिसी की शर्तों का उल्लंघन किया गया था। बीमा कंपनी को इस आधार पर अपनी देयता से मुक्त कर दिया गया था और मालिक को अधिनिर्णीत मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया था।

अनुवादित

5. अपीलकर्ता-मालिक के विद्वान वकील श्री सतेंद्र पांडे का तर्क है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व से बीमा कंपनी को मुक्त करके कानून में गलती की। यह निष्कर्ष कि अपीलकर्ता-मालिक ने बीमा पोलिसी की शर्तों का का उल्लंघन किया था क्योंकि वीमित वाहन एक ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, विकृत है। अधिनिर्णय अवैध था और इसे इसे अलग रखा जा सकता है।

6. श्री आदित्य सिंह परिहार, प्रतिवादी-बीमा कंपनी के विद्वान वकील श्री राहुल सहाय के विद्वान वकील का तर्क है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय वैध है और इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं है। मुआवजे का करने की देयता मालिक पर है क्योंकि बीमा पॉलिसी का उल्लंघन हुआ था।

7. अपने तर्कों को आगे बढ़ाने के बाद, दोनों पक्षों के विद्वान वकील इस बात से सहमत हैं कि हालांकि कई आधारों की वकालत की गई है, इस अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए आते हैं:

क्या इस मामले के तथ्यों के आधार पर विद्वान न्यायाधिकरण ने उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक पर मुआवजे का भुगतान करने की जिम्मेदारी तय करके कानून में गलती की है?

8. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पाए गए ये तथ्य निर्विवाद हैं। दुर्घटना ट्रक के तेज और लापरवाही से चलाने के कारण हुई। उल्लंघन करने वाले ट्रक का बीमा प्रतिवादी-बीमा कंपनी द्वारा किया गया था।

9. बीमा कंपनी ने दावा याचिका की शुरुआत के बाद से उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक के लाइसेंस की वैधता का लिखित बयान दायर करके विरोध किया। लिखित बयान में कहा गया है कि न केवल लाइसेंस नकली था, बल्कि मालिक इन तथ्यों से पूरी तरह अवगत था।

10. मालिक के साथ-साथ ड्राइवर ने लिखित बयान में दावा किया कि ड्राइवर ड्राइविंग में कुशल था और उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था।

11. तथ्यों से यह स्पष्ट है कि बीमा कंपनी ने लाइसेंस की वैधता से स्पष्ट रूप से इनकार किया और वैध ड्राइविंग लाइसेंस के बिना ड्राइवर को ड्राइव करने की अनुमति देने में मालिक की संज्ञानता और दायित्व का तर्क दिया है। न तो मालिक और न ही ड्राइवर यह स्थापित करने के लिए गवाह के कटघरे में पेश हुए कि मालिक ने यह सुनिश्चित करने के लिए उचित परिश्रम किया था कि चालक के पास आवश्यक ड्राइविंग कौशल था और उसके पास वैध

ड्राइविंग लाइसेंस था। इस संबंध में मालिक/अपीलकर्ता द्वारा अपेक्षित दलीलें भी अनुपस्थित हैं।

12. अपनी ओर से बीमा कंपनी ने संबंधित आरटीओ कार्यालय द्वारा जारी फॉर्म 54 पेश किया ताकि यह स्थापित किया जा सके कि वाहन के मालिक के साथ-साथ चालक द्वारा साक्ष्य में दिया गया ड्राइविंग लाइसेंस नकली था। फॉर्म-54 को मालिक द्वारा कभी विरोध नहीं किया गया था।

13. इन स्थापित तथ्यों के साथ यह देखा जाना बाकी है कि क्या बीमा कंपनी को अपनी देयता से मुक्त किया जा सकता है और क्या मुआवजे का भुगतान करने की पूरी देयता मालिक-अपीलकर्ता द्वारा वहन की जानी है।

14. वैध ड्राइविंग लाइसेंस न होने की वजह से बिमा कवर से इंकार करना या पूरी जिम्मेदारी गाडी के मालिक पे थोप देना यह विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के समक्ष कई मामलों में मुद्दा था। इन्हें बार में उद्धृत किया गया था।

15. चर्चा में अच्छे अधिकारियों का लाभ था जो अपील के परिणाम को भी निर्धारित करेगा।

16. यह प्रश्न कि क्या बीमा कंपनी को केवल इस आधार पर अपनी देयता से बचने की अनुमति दी जा सकती है कि दुर्घटना के समय उल्लंघन करने वाले वाहन के चाहक को यथाविधि लाइसेंस प्राप्त नहीं था, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लेहरु और अन्य में मुद्दा था। लेहरू (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि बीमा कंपनी को अपने संविदात्मक और वैधानिक दायित्व से केवल तभी मुक्त किया जा सकता है जब वह बीमाधारक द्वारा पॉलिसी की शर्त जानबूझकर उल्लंघन इस प्रकार स्थापित करती है:-

"20. जब कोई मालिक ड्राइवर को काम पर रख रहा होता है तो उसे यह जांचना होगा कि ड्राइवर के पास ड्राइविंग लाइसेंस है या नहीं। यदि चालक एक ड्राइविंग लाइसेंस का उत्पादन करता है जो कि इसके चेहरे पर वास्तविक दिखता है, तो मालिक से यह पता लगाने की उम्मीद नहीं की जाती है कि लाइसेंस वास्तव में सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया है या नहीं। इसके बाद मालिक ड्राइवर की परीक्षा लेगा। यदि वह पाता है कि चालक वाहन चलाने के लिए सक्षम है, तो वह चालक को काम पर रखेगा। हमें यह अजीब लगता है कि बीमा कंपनियां मालिकों से आरटीओ के साथ पूछताछ करने की उम्मीद करती हैं, जो पूरे देश में फैले हुए हैं,

चाहे उन्हें दिखाया गया ड्राइविंग लाइसेंस वैध है या नहीं। इस प्रकार, जहां मालिक ने खुद को संतुष्ट कर लिया है कि चालक के पास लाइसेंस है और वह सक्षम रूप से गाड़ी चला रहा है, वहां धारा 149 (2) (ए) (ii) का कोई उल्लंघन नहीं होगा। तब बीमा कंपनी को दायित्व से मुक्त नहीं किया जाएगा। यदि अंततः यह पता चलता है कि लाइसेंस नकली था, तो बीमा कंपनी तब तक उत्तरदायी बनी रहेगी जब तक कि वे यह साबित नहीं करते कि मालिक/बीमित व्यक्ति को पता था या उसने देखा था कि लाइसेंस नकली था और फिर भी उस व्यक्ति को ड्राइव करने की अनुमति दी थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे मामले में भी बीमा कंपनी निर्दोष तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी रहेगी, लेकिन यह बीमाधारक से उबरने में सक्षम हो सकती है। यह वह कानून है जो स्कैंडिया के सोहन लाल पासी और कमला के मामले में निर्धारित किया गया है। हम उसमें व्यक्त किए गए विचारों से पूरी तरह सहमत हैं और एक अलग दृष्टिकोण लेने का कोई कारण नहीं दिखता है।

17. क्या नकली या जाली लाइसेंस अपने आप में बीमा पॉलिसी की शर्तों का जानबूझकर उल्लंघन करने के लिए पर्याप्त था या बीमा का अनुबंध नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य में विचार के लिए उत्पन्न हुआ था। स्वर्ण सिंह (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने ड्राइवर के लाइसेंस की वैधता की जांच करने के लिए मालिक की ओर से "उचित सावधानी" के महत्व को रेखांकित कियाः

"2. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इन याचिकाओं में कानून के शुद्ध प्रश्न शामिल हैं, प्रत्येक मामले से संबंधित व्यक्तिगत तथ्य को विज्ञापित करना आवश्यक नहीं है। हालांकि, यह इंगित करना पर्याप्त है कि याचिकाकर्ताओं के साथ बीमित वाहन दुर्घटनाओं में शामिल थे, जिसके परिणामस्वरूप मृतक (मृतकों) या घायल व्यक्ति (व्यक्तियों) के संबंधित कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा दावा आवेदन दायर किए गए थे, जैसा भी मामला हो।

3. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 149 (2) (ए) (ii) के संदर्भ में दावा याचिकाओं में याचिकाकर्ता कंपनी द्वारा उठाए गए बचाव थेः (ए) वाहन के चालक या मालिक द्वारा उत्पादित ड्राइविंग लाइसेंस नकली थाः (बी) ड्राइवर के पास कोई लाइसेंस नहीं थाः (ग) लाइसेंस, हालांकि संबंधित चालक को दिया गया था, लेकिन उसकी समाप्ति पर, उसका नवीकरण नहीं किया गया थाः (घ) चालकों को दिया गया अनुज्ञप्ति जो वाहन के एक वर्ग या

विवरण के लिए है किन्तु दुर्घटना में अंतर्वलित यान भिन्न श्रेणी या विवरण का था; और (ई) विचाराधीन वाहन एक लर्नर लाइसेंस वाले व्यक्ति द्वारा चलाया गया था।

34. मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 96 की उपधारा (2) के अनुरूप अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) में परिकल्पित बचाव की स्थिति में एक बीमाकर्ता अपनी देयता से बच सकता है या नहीं, यह प्रश्न बड़ी संख्या में मामलों में निर्णयों का विषय रहा था।

35. यह किसी भी संदेह या विवाद से है कि अधिनियम की धारा 149 (2) के तहत एक बीमाकर्ता, जिसे मुआवजे के लिए किसी भी कार्यवाही को लाने की सूचना दी गई है, उसमें उल्लिखित किसी भी आधार पर कार्रवार्ड का बचाव कर सकता है।

36. हालांकि, खंड (क) शब्दों के साथ शुरू होता है "कि वहाँ नीति की एक निर्दिष्ट शर्त का उल्लंघन किया गया है", जिसका अर्थ है कि बीमाकर्ता की कार्यवाई की रक्षा नीति की शर्तों पर निर्भर करेगा. उक्त उप-खंड में विच्छेदात्मक चरित्र की तीन शर्तें हैं, अर्थात्, बीमाकर्ता को दायित्व से दूर कर सकता है जब (ए) एक नामित व्यक्ति वाहन चलाता है; (बी) इसे ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास यथाविधि रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त नहीं थीः और (सी) चालक एक व्यक्ति है जिसे ड्राइविंग लाइसेंस रखने या प्राप्त करने के लिए अयोग्य घोषित किया गया है।

37. हम इस तथ्य पर भी ध्यान दे सकते हैं कि जबकि धारा 3 में इस्तेमाल किए गए शब्द 'प्रभावी लाइसेंस' हैं, इसे धारा 149 (2) में अलग तरह से यानी 'यथाविधि लाइसेंस प्राप्त' लिखा गया है। यदि किसी व्यक्ति के पास दुर्घटना की तारीख को प्रभावी लाइसेंस नहीं है, तो वह अधिनियम की धारा 141 के संदर्भ में अभियोजन के लिए उत्तरदायी हो सकता है लेकिन धारा 149 तीसरे पक्ष के जोखिमों के संबंध में बीमा से संबंधित है।

38. एक क़ानून का एक प्रावधान जो प्रकृति में दंडात्मक है, एक प्रावधान जो किसी तीसरे पक्ष के लिए लाभकारी है, की अलग तरह से व्याख्या की जानी चाहिए। सर्वविदित है कि विभिन्न अभिव्यक्तियों में निहित प्रावधानों को आमतौर पर अलग-अलग तरीके से समझा जाता है।

39. धारा 3 में प्रयुक्त शब्द 'प्रभावी लाइसेंस', इसलिए, हमारी राय में मोटर वाहन अधिनियम की धारा 149 की उप-धारा (2) के लिए आशय नहीं

लिया जा सकता है। हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि धारा 149 की उप-धारा (2) में प्रयुक्त 'यथाविधि लाइसेंस' शब्द भूतकाल में उपयोग किए जाते हैं।

40. इस प्रकार, एक व्यक्ति जिसका लाइसेंस आमतौर पर मोटर वाहन अधिनियम और उसके तहत बनाए गए बावजूद कि अंतराल अवधि तारीख, उसके पास नि संदर्भ में नवीनीकृत किया जाता है, इस तथ्य के दुर्घटना हुई और लाइसेंस की समाप्ति की नहीं था, वह निर्धारित अवधि के दौरान उसके नवीकरण के लिए आवेदन कर सकता था और बिना किसी और परीक्षण से गुजरे या स्वचालित रूप से प्राप्त कर सकता था इसके लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। धारा 14 में संलग्न परंतुक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि लाइसेंस अपनी समाप्ति के दिन से तीस दिनों की अवधि के लिए वैध रहता है।

64. कानून का प्रस्ताव अब एकीकृत नहीं है कि उल्लंघन का आरोप लगाने वाले व्यक्ति को ही साबित करना होगा। इस प्रकार, बीमा कंपनी को ठोस साक्ष्य द्वारा उक्त उल्लंघन को स्थापित करने की आवश्यकता है। यदि बीमा कंपनी यह साबित करने में विफल रहती है कि बीमित व्यक्ति की ओर से पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ है, तो बीमा कंपनी को उसकी देयता से मुक्त नहीं किया जा सकता है। (देखें, सोहन लाल पासी (सुप्रा)

65. उपरोक्त के अलावा, हम आगे कुछ भी निर्धारित करने का इरादा नहीं रखते हैं यानी सबूत की डिग्री जो उपरोक्त आवश्यकता को पूरा करेगी क्योंकि यह निर्विवाद रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यह बीमा के अनुबंध की शर्तों पर भी निर्भर करेगा। प्रत्येक मामला अलग-अलग समस्या पैदा कर सकता है जिसे मामले जिसे मामले को नियंत्रित करने वाले बड़ी संख्या में कारकों के कारण हल किया जाना चाहिए, जिसमें सूचित करने के कर्तव्य के संबंध में पक्षकारों का आचरण, सही प्रकटीकरण, दमन, बीमाकर्ता पर धोखाधड़ी आदि शामिल हैं। यह इस तथ्य पर भी निर्भर करेगा कि वाहन का मालिक कौन है और किन परिस्थितियों में वाहन को ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया। जा रहा था जिसके पास कोई वैध और प्रभावी लाइसेंस नहीं है। इसके लिए कोई कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। यदि किसी दिए गए मामले मले में बीमाकर्ता या बीमाधारक के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है, तो न्यायाधिकरण ऐसा कर सकता है।

वो पक्ष जो उल्लंघन का आरोप लगा रहे हैं उनको सबूतों का भर वहन

करते हुए सफलतापूर्वक ये स्थापित करना क चाहिए कि बीमाकर्ता ने अनुबंध पर लिखित शर्तों का उल्लंघन किया किया है। है। इसमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिकरण को अभिलेखों में उपलब्ध सामग्री के आधार पर निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए।

87. यह सच हो सकता है जैसा कि याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया है कि नकली या जाली लाइसेंस उतना ही अच्छा है जितना कि कोई लाइसेंस नहीं है, लेकिन यहां सवाल यह है कि क्या बीमाकर्ता को यह साबित करना होगा कि मालिक बीमा पॉलिसी की शर्तों या बीमा के अनुबंध के जानबूझकर उल्लंघन का दोषी था। लेहरू के मामले (सुप्रा) में, इस मामले पर कुछ विवरणों पर विचार किया गया है। हम बेंच के दृष्टिकोण के साथ सामान्य रूप से सहमत हैं, लेकिन हम यह इंगित करने का इरादा रखते हैं कि उसमें की गई टिप्पणियों को कानून की आवश्यकताओं के आलोक में समझा जाना चाहिए, जिसके संदर्भ में बीमाकर्ता को बीमाधारक की ओर से जानबूझकर उल्लंघन स्थापित करना है न कि किसी भी बचाव को उठाने से इसकी हकदारी के उद्देश्य से या न कि मालिकों को किसी भी दायित्व से मुक्त किया जाना चाहिए। हम इस मामले के इस पहलू के साथ थोड़ी देर बाद कुछ विवरणों पर चर्चा करेंगे।

94. जहां तक कमला (सुप्रा) और लेहरू (सुप्रा) के निर्णयों में कथित टकराव का संबंध है, हम यह बताना चाहते हैं कि वाहन चलाने वाले व्यक्ति द्वारा रखा लाइसेंस नकली था, बीमा कंपनियों के लिए उपलब्ध होगा, लेकिन क्या इसके बावजूद, मालिक की ओर से चूक की दलील स्थापित की गई है या नहीं, यह होगा जिसे प्रत्येक मामले में निर्धारित करना होगा।

95. हालांकि, लेहरु (सुप्रा) मालिक का किसी भी परिस्थिति में अदालत को यह नहीं पढ़ना चाहिए कि वाहन के में कोई जांच करने का कोई कर्तव्य नहीं है। वही, हालांकि, फिर से एक सवाल होगा जो प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में विचार के लिए उठेगा। 105. इन याचिकाओं में उठाए गए विभिन्न मुद्दों के लिए हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है:

X xxxxxxxxxxxxxx

(ii) बीमाकर्ता, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163 ए या धारा 166 के तहत दायर दावा याचिका में बचाव का हकदार है और अन्य बातों के साथ-साथ उक्त

अधिनियम की धारा 149 (2) (ए) (ii) में भी बचाव का हकदार है ।

(iii) पॉलिसी की शर्त का उल्लंघन, उदाहरण के लिए चालक की अयोग्यता या चालक का अमान्य ड्राइविंग लाइसेंस, जैसा कि धारा 149 की उप-धारा (2) (ए) (ii) में निहित है, बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए बीमाधारक द्वारा प्रतिबद्ध साबित किया जाना चाहिए। केवल अनुपस्थिति, नकली या अमान्य ड्राइविंग लाइसेंस या प्रासंगिक समय पर ड्राइविंग के लिए ड्राइवर की अयोग्यता, बीमाधारक या तीसरे पक्ष के खिलाफ बीमाकर्ता के लिए उपलब्ध बचाव नहीं हैं। बीमित व्यक्ति के प्रति अपनी देयता से बचने के लिए, बीमाकर्ता को यह साबित करना होगा कि बीमित व्यक्ति लापरवाही का दोषी था और यथाविधि लाइसेंस प्राप्त चालक या जो प्रासंगिक समय पर ड्राइव करने के लिए अयोग्य नहीं था, द्वारा वाहनों के उपयोग के संबंध में पॉलिसी की शर्त को पूरा करने के मामले में उचित देखभाल करने में विफल रहा।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने पूरा दायित्व से बचने के उददेश्य से न केवल उक्त कार्यवाहियों में उठाए गए उपलब्ध बचाव (रक्षाओं) को स्थापित करना चाहिये बल्कि वाहन के मालिक की ओर से उल्लंघन भी स्थापित करना चाहिये सबूत का बोझ उन पर होगा।

(v) न्यायालय इस इस बारे में कोई मानदंड निर्धारित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का निर्वहन कैसे किया जाएगा, क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

(vii) यह प्रश्न कि क्या मालिक ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि चालक द्वारा प्रस्तुत किया गया ड्राइविंग लाइसेंस (जाली या अन्यथा) कानून की अपेक्षाओं को पूरा करता है अथवा नहीं, प्रत्येक मामले में इसका निर्धारण करना होगा।

18. पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी में बीमा कंपनी ने बचाव पक्ष को लेकर अपनी देयता का विरोध किया कि दुर्घटना में शामिल वाहन के चालक को यथाविधि लाइसेंस नहीं दिया गया था। पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन (सुप्रा) में मामले के संक्षिप्त तथ्य पैरा 2 में निम्नानुसार बताए गए थेः .

"2. स्वर्गीय गुरजिंदर सिंह मोदी की विधवा और दो नाबालिग बेटे वर्ष 2002 में दायर एम.ए.सी.टी संख्या 63/481 में मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, चंडीगढ़ के समक्ष

दावेदार हैं। आरोप यह था कि गुरजिंदर सिंह मोदी की मृत्यु 04-10-2001 को पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन के (संक्षेप में, 'पीआरटीसी'), पटियाला, की बस नं पीवी-11-के-8512 की लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई एक मोटर दुर्घटना में हुई थी। मुआवजे के रूप में 30,00,000/- रुपये का दावा किया गया था। लापरवाही साबित हुई। अधिकरण ने मुआवजे के रूप में 11,03,404/- रुपए का आदेश दिया। हालांकि, बीमा कंपनी को उसकी देनदारी से मुक्त कर दिया गया क्योंकि चालक 5 को जारी लाइसेंस फर्जी पाया गया। बीमा कंपनी स्थानीय आयुक्त को लाइसेंसिंग प्राधिकारी, दार्जिलिंग, पश्चिमी बंगाल ले गई और उपलब्ध रिकार्डों के सत्यापन के बाद यह सूचित किया गया कि दार्जिलिंग स्थित उक्त लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा चालक के पास मौजूद ऐसा कोई लाइसेंस जारी नहीं किया गया है। इस प्रकार, व्यथित होकर, वाहन के मालिक, पीआरटीसी, पटियाला अपील में आए हैं।

19. पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन (सुप्रा) में, बीमा का लाभ उठाने के लिए ड्राइवर को नियुक्त करते समय मालिक की जिम्मेदारी इस प्रकार बताई गई थी:

"10. मुआवजे के दावे में, यह निश्चित रूप से धारा 149 (2) (ए) (ii) के तहत बीमाकर्ता के लिए यह बचाव करने के लिए खुला है कि दुर्घटना में शामिल वाहन के चालक को यथाविधि लाइसेंस नहीं दिया गया था। एक बार ऐसा बचाव करने के बाद, जिम्मेदारी बीमाकर्ता पर होती है। लेकिन यह साबित हो जाने के बाद भी कि ड्राइवर के पास जो लाइसेंस था वह फर्जी था, क्या बीमाकर्ता पर देयता है, यह विवादास्पद प्रश्न है। जहां तक वाहन के मालिक का संबंध है, जब वह किसी ड्राइवर को काम पर रखता है, तो उसे यह जांचना होता है कि ड्राइवर के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस है या नहीं। इसके बाद उसे ड्राइवर की क्षमता के बारे में खुद को संतुष्ट करना होगा। यदि उस संबंध में भी संतुष्ट हैं, तो यह कहा जा सकता है कि मालिक ने एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने में उचित सावधानी बरती है जो वाहन चलाने के लिए योग्य और सक्षम है। मालिक से, ड्राइवर की सेवाएं लेने से पहले लाइसेंसिंग प्राधिकारी के साथ ड्राइविंग लाइसेंस की वास्तविकता को सत्यापित करने की सीमा से आगे जाने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। हालांकि, स्थिति अलग होगी होगी यदि वाहहन के बीमा के समय या उसके बाद बीमा कंपनी वाहन के मालिक को लाइसेंस प्राधिकारी से यथाविधि सत्यापित लाइसेंस प्राप्त करने की आवश्यकता होती है या यदि वाहन के मालिक का ध्यान अन्यथा

इस आरोप की ओर आकर्षित किया जाता है कि उसके द्वारा नियोजित चालक को जारी किया गया लाइसेंस नकली है और फिर भी मालिक उचित कार्रवाई नहीं करता है। स्वर्ण सिंह के मामले (सुप्रा) में यही समझाया गया है। यदि मालिक के साथ ऐसी जानकारी के बावजूद कि उसके ड्राइवर के पास लाइसेंस नकली है, बीमाधारक द्वारा उचित सत्यापन के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जाती है, तो बीमाधारक की गलती होगी और ऐसी परिस्थितियों में, बीमा कंपनी मुआवजे के लिए उत्तरदायी नहीं है।

20. धारा 149 (2) (ए) के तहत शर्तों का उल्लंघन जो बीमाकर्ता को बिमा कराये जाने के उसके दायित्व से मुक्त करता है, और धारा 142 (2) (ए) के तहत ड्राइविंग लाइसेंस के बारे में शर्तों को एक बार फिर पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य में सुप्रीम कोर्ट की वि तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष पेश किया गया था। पप्पू (सुप्रा) में, एक वाहन मालिक से उच्चतर परिश्रम की उम्मीद की गई थी, जब बीमा कंपनी ने यह कहते हुए अपनी देयता पर विवाद किया कि बीमा पॉलिसी का उल्लंघन किया गया था और उल्लंघन करने वाला वाहन वैध ड्राइविंग लाइसेंस वाले व्यक्ति द्वारा नहीं चलाया गया था। पप्पू (सुप्रा) ने मालिक को विशिष्ट दलीलें लेने और इस संबंध में सहायक साक्ष्य देने की आवश्यकता पर जोर दियाः

"13. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी नंबर 1 के मालिक ने लिखित बयान में केवल एक अस्पष्ट दलील दी कि उल्लंघन करने वाला वाहन DIL-5955 वैध ड्राइविंग लाइसेंस रखने वाले व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था। उन्होंने ड्राइवर के नाम और उसके अन्य विवरणों का खुलासा नहीं किया। इसके अलावा, प्रतिवादी नंबर 1 ने इस याचिका के समर्थन में गवाह के कठघरे में प्रवेश नहीं किया और न ही किसी गवाह से पूछताछ की। प्रतिवादी नंबर 2 इंश्योरेंस कंपनी ने लिखित बयान में उस दलील का स्पष्ट रूप से खंडन किया है और यह भी कहा है कि उल्लंघन करने वाला वाहन अधिकृत व्यक्ति द्वारा था और ना ही उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक प्रतिवादी नंबर 1 ने जोगिंदर सिंह के ड्राइविंग लाइसेंस को छोड़कर कोई सबूत पेश नहीं किया, विना किसी विशेष स्टैंड के दलीलों या सबूतों में कोई विशिष्ट स्टैंड स्टैंड लिए बिना कि यही जोगिंदर सिंह वास्तव में प्रासंगिक समय पर वाहन चलाने के लिए अधिकृत था। इसके बाद ही प्रतिवादी नंबर 2 इंश्योरेंस कंपनी को इस सबूतों का खंडन करने और अपने बचाव को साबित करने के लिए अन्य सबूत पेश करने की आवश्यकता होगी।

उल्लंघन करने वाले ट्रक के संबंध में केवल एक वैध बीमा प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना प्रतिवादी नंबर 1 के लिए बीमा कंपनी को अपने वाहन निर्वहन करने चालक द्वारा तेज और लापरवाही से ड्राइविंग से उत्पन्न अपनी देयता का के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए पर्याप्त नहीं था। बीमा कंपनी को वैध बीमा पॉलिसी के आधार पर देयता के साथ तभी बांधा जा सकता है जब उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक द्वारा बुनियादी तथ्यों की दलील दी जाती है और स्थापित किया जाता है - कि वाहन न केवल यथाविधि बीमा किया गया था, बल्कि यह भी कि यह एक अधिकृत व्यक्ति द्वारा चलाया गया था जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था। लिखित बयान में ड्राइवर के नाम का खुलासा किए बिना या इस तथ्य को साबित करने के लिए कोई सबूत पेश किए बिना कि समर्थन में पेश किए गए ड्राइविंग लाइसेंस की प्रति एक ऐसे व्यक्ति की थी, जो वास्तव में, प्रासंगिक समय पर आपत्तिजनक वाहन चलाने के लिए अधिकृत था, वाहन के मालिक को यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने खुद को उसकी देयता से निकाला है। बीमा कंपनी तभी उत्तरदायी बनेगी जब इस तरह के मूलभूत तथ्यों की दलील दी जाएगी और उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक द्वारा सावित किया जाएगा। (जोर दिया गया)

21. प्रेम कुमारी बनाम प्रहलाद देव में, सुप्रीम कोर्ट ने एक बार फिर दायित्व को दोहराया कि वह उसे नियुक्त करने के समय ड्राइविंग कौशल और ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता के बारे में खुद को संतुष्ट करेः

"7. उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि जब मालिक सत्यापन के बाद खुद को संतुष्ट करता है कि चालक के पास वैध लाइसेंस है और दुर्घटना के समय सक्षम रूप से वाहन चला रहा है, तो धारा 149 (2) (ए) (ii) का कोई उल्लंघन नहीं होगा, उस स्थिति में, बीमा कंपनी को दायित्व से मुक्त नहीं किया जाएगा। यह भी स्पष्ट है कि लाइसेंस के फर्जी होने के मामले में भी बीमा कंपनी तब तक उत्तरदायी बनी रहेगी जब तक कि वे यह साबित नहीं कर देती कि मालिक को पता था या उसने देखा कि लाइसेंस नकली था और फिर भी उसे गाड़ी चलाने की अनुमति दी।

22. अपनी देयता के खिलाफ बीमा कंपनी की रक्षा को हराने के लिए एक ड्राइवर को काम पर रखते समय एक मालिक द्वारा किए जाने वाले सत्यापन की प्रकृति निर्मला कोठारी बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस लिमिटेड में सीधे और काफी हद तक जारी की गई थी। विचार करने पर और पिछले पैराग्राफ में चर्चा किए गए अधिकारियों के प्रकाश में, सुप्रीम कोर्ट

ने निर्मला कोठारी (सुप्रा) में कानूनी स्थिति को इस प्रकार दोहरायाः

"12. ड्राइवर को काम पर रखते समय नियोक्ता से यह सत्यापित करने की अपेक्षा की जाती है कि ड्राइवर के पास ड्राइविंग लाइसेंस है या नहीं। यदि चालक एक लाइसेंस का उत्पादन करता है जो इसके चेहरे पर वास्तविक दिखता है, तो नियोक्ता से लाइसेंस की प्रामाणिकता की आगे जांच करने की उम्मीद नहीं की जाती है जब तक कि अन्यथा विश्वास करने का कारण न हो। यदि नियोक्ता पाता है कि ड्राइवर वाहन चलाने के लिए सक्षम है और उसने खुद को संतुष्ट किया है कि ड्राइवर के पास ड्राइविंग लाइसेंस है, तो धारा 149 (3) (ए) (ii) का कोई उल्लंघन नहीं होगा और बीमा कंपनी पॉलिसी के तहत उत्तरदायी होगी। ड्राइविंग लाइसेंस की सत्यता का पता लगाने के लिए पूरे देश में आरटीओ के साथ पूछताछ करने के लिए बीमाधारक पर इतना अधिक भार डालना अनुचित होगा। हालांकि, अगर बीमा कंपनी यह साबित करने में सक्षम है कि मालिक / बीमित व्यक्ति को पता था या उसने नोटिस किया था कि लाइसेंस नकली या अमान्य था और फिर भी व्यक्ति को ड्राइव करने की अनुमति दी गई थी, तो बीमा कंपनी अब उत्तरदायी नहीं रहेगी।

23. इसी प्रकार ऋषि पाल सिंह बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य में ड्राइवर को नियुक्त करते समय मालिक की जिम्मेदारी निम्नलिखित शब्दों में बताई गई थी:-

"10. वाहन के मालिक से ये उम्मीद की जाती है कि ड्राइवर को नियुक्त करने से पहले ड्राइविंग की कौशलता कि जांच करे न कि ड्राइविंग लाइसेंस की वास्तविकता को सत्यापित करने के लिए लाइसेंसिंग प्राधिकरण के पास जाये। इसलिए, एक बार जब मालिक संतुष्ट हो जाता है कि चालक वाहन चलाने के लिए सक्षम है, तो उसके बाद मालिक से चालक को जारी किए गए ड्राइविंग लाइसेंस की वास्तविकता को सत्यापित करने की उम्मीद नहीं की जाती है।

24. केदार सिंह बनाम सरला देवी और अन्य में इस न्यायालय के निर्णयों पर जिन निर्विवाद तथ्यों की नींव रखी गई थी, वे ये हैं। हादसे के समय चालक का ड्राइविंग लाइसेंस फर्जी पाया गया था। मालिक ने केवल ड्राइविंग लाइसेंस की फोटोकॉपी दिखाई। ट्रक के मालिक ने चालक से पूछताछ नहीं की और न ही मालिक ने विटनेस बॉक्स में प्रवेश किया। बीमा कंपनी ने फॉर्म 44 दायर किया जिसमें स्थापित किया गया कि मालिक द्वारा रिकॉर्ड में लाई गई लाइसेंस की फोटोकॉपी नकली थी।

25. न्यायमूर्ति सिद्धार्थ द्वारा इन तथ्यों में पाया गया कि मालिक ने

ड्राइवर को नियुक्त करते. समय उचित सावधानी नहीं की थी और निम्नलिखित द्वारा धारित किया गया का लाभ उठाने के लिए कानून में उसके लिए आवश्यक बुनियादी तथ्यों को साबित करने में विफल रहा थाः

"29. न्यायाधिकरण द्वारा ट्रक चालक के ड्राइविंग लाइसेंस ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता के लिए विद्वान वकील अदालत ने पाया कि ड्राइवर, भोला के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा न्यायाधिकरण की वैधता को रद्द करने के दूसरे सबमिशन के संबंध में, इस के ड्राइविंग लाइसेंस की केवल फोटोकोपी को रिकॉर्ड पर लाया गया था। वाहन मालिक न्यायाधिकरण के सामने कभी भी गवाह के कटघरे में पेश नहीं हुआ ताकि यह साबित हो सके कि ड्राइविंग लाइसेंस उसके ड्राइवर भोला ने उसे दिया था और वह संतुष्ट था कि यह असली है। उन्होंने भी साबित नहीं किया कि उन्होंने यह देखने के लिए प्रयास किए कि ड्राइवर ड्राइव करने के लिए सक्षम है। उन्हें न्यायाधिकरण के समक्ष यह साबित करने की आवश्यकता थी कि उन्होंने चालक को नियुक्त करने में उचित सावधानी बरती थी, जो वाहन चलाने के लिए योग्य और सक्षम था। बीमाकर्ता और बीमित व्यक्ति के बीच देयता योग्य और सक्षम चालक को नियुक्त करते समय वाहन के मालिक द्वारा की गई उचित सावधानी पर निर्भर करती है। इन बुनियादी तथ्यों को वाहन के मालिक द्वारा न्यायाधिकरण के समक्ष साबित किया जाना आवश्यक है ताकि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष बीमा कंपनी जैसे दायित्व से खुद को बचाया जा सके।

30. वर्तमान मामले में बीमा कंपनी ने न्यायाधिकरण के समक्ष फॉर्म 54 पेश किया, जिसने साबित किया कि ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा पेश किया गया ड्राइविंग लाइसेंस उसके ड्राइवर भोला का नहीं था, बल्कि यह एक अन्य व्यक्ति, कृष्ण गोपाल का था। ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से यह साबित नहीं किया कि उसके चालक ने उसे ड्राइविंग लाइसेंस की नकली/जाली प्रति प्रदान की थी क्योंकि ट्रक के मालिक अपीलकर्ता, भोला के चालक को सही तथ्यों की गवाही देने के लिए न्यायाधिकरण के समक्ष पेश नहीं किया गया था।

31. बीमा कंपनी के विद्वान वकील ने पप्पू और अन्य (सुपा) के मामले में फैसले की ओर सही इशारा किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि बीमा कंपनी को केवल तभी उतरदायी ठहराया जा सकता है जब न्यायाधिकरण के समक्ष ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक द्वारा मूलभूत तथ्यों की वकालत की जाती है और साबित होती है।

26. बीमा कंपनी की ओर से दलील दी गई कि फॉर्म-54 साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं होने के कारण खारिज किया जा सकता है। बीमा कंपनी द्वारा साक्ष्य के रूप में पेश की गई फॉर्म 54 सकता है। की प्रमाणित प्रति ने स्थापित किया कि ड्राइविंग लाइसेंस, उक्त दस्तावेज को सफलतापूर्वक चुनौती नहीं दी गई थी और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा इसे सही पाया गया था।

27. केदार सिंह (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले ने ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती पूनम केसरवानी और अन्य में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया और उद्धरण कियाः

"16. बीमा कंपनी ने अपनी ओर से ड्राइविंग लाइसेंस (डीएल नंबर 2222/आरजे/2005) की वैधता की जांच की और इसके परिणामस्वरूप न्यायाधिकरण के समक्ष फॉर्म 54 के तहत संबंधित आरटीओ से प्राप्त रिपोर्ट दायर की। फॉर्म 54 पर प्राप्त रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि ड्राइविंग लाइसेंस नंबर 2222/आरजे/2005 एक कृष्ण गोपाल के पक्ष में जारी किया गया था, न कि कथित अपराधी चालक यानी भोला के नाम पर। इस प्रकार, ट्रक के मालिक/अपीलकर्ता द्वारा दायर भोला के ड्राइविंग लाइसेंस की फोटोकॉपी एक फर्जी दस्तावेज थी। यह कानून का एक स्थापित प्रस्ताव है कि फॉर्म-54 एक सार्वजनिक दस्तावेज है जिसमें गवाह की जांच करके औपचारिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय ने ओरिएंटल लिमिटेड बनाम श्रीमती पूनम केसरवानी और अन्य के पैराग्राफ नंबर 12 में रिपोर्ट किया गया है, तदनुसार उद्धरण कियाः

"फॉर्म-54 एक सार्वजनिक दस्तावेज की प्रमाणित प्रति है, अर्थात् ड्राइविंग लाइसेंस के राज्य रजिस्टर, को गवाह की जांच करके साबित करने की आवश्यकता नहीं है। एक बार नियम 23 के साथ पठित धारा 26 (1) के तहत बनाए गए रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों की प्रमाणित प्रति फॉर्म -54 में जारी की जाती है, तो यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 77 के तहत साक्ष्य में स्वीकार्य होती है और गवाहों की जांच करके मौखिक साक्ष्य द्वारा फॉर्म 54 के और प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है।

17. बीमा कंपनी ने अपनी ओर से फॉर्म-54 (जिसे एक सार्वजनिक दस्तावेज माना गया है) दाखिल करके अपने बोझ का यथाविधि निर्वहन किया था, जो स्पष्ट रूप से संदेह से परे है कि मालिक/अपीलकर्ता द्वारा रिकॉर्ड पर लाया गया ड्राइविंग लाइसेंस

की फोटोकॉपी एक नकली दस्तावेज था, इसलिए, पॉलिसी की शर्त का उल्लंघन पूरी तरह से प्रमाणित था जिसके लिए बीमा कंपनी/अपीलकर्ता पर कोई दायित्व नहीं लगाया जा सकता था।

28. ड्राइवर की नियुक्ति से पहले उसके लाइसेंस की प्रामाणिकता की संतुष्टि सहित मूलभूत तथ्यों को साबित करने का दायित्व मालिक पर है। इस दायित्व को पहले चर्चा किए गए बिंदुओं में अधिकारियों द्वारा प्रदान किए गए मानकों और मानदंडों के प्रकाश में निर्वहन किया जा सकता है।

29. हालांकि, पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि मालिक उपरोक्त मूलभूत तथ्यों को स्थापित करने में विफल रहा था। मालिक यह साबित करने के लिए गवाह के कटघरे में पेश नहीं हुआ कि ड्राइवर का ड्राइविंग लाइसेंस उसके सामने पेश किया गया था और वह ड्राइवर की नियुक्ति के समय इसकी वास्तविकता से संतुष्ट था। इसके अलावा, विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष मालिक अपीलकर्ता द्वारा दर्ज की गई दलीलें भी इस संबंध में कम हैं।

30. आक्षेपित अधिनिर्णय में हस्तक्षेप के लिए कोई मामला नहीं बनता है। **अपील खारिज की जाती है।**

(2023) 5 ILRA 150

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

आदेश से प्रथम अपील संख्या 238/2022

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती शीला एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: तरूण कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: राज कुमार विश्वकर्मा, फिरोज अहमद खान, जगजीत सोढ़ी

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 -धारा 176-दावे को चुनौती-न्यायाधिकरण ने दावेदार के पक्ष में 18,69,280/- रुपए की राशि प्रदान की-उक्त पुरस्कार बीमा कंपनी के खिलाफ पारित किया गया-बीमा कंपनी ने इस आधार पर मामले को आगे बढ़ाया है कि दोषी गैस टैंकर के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था-भले ही चालक के पास लाइसेंस था - लेकिन चूंकि उसके पास मोटर वाहन अधिनियम में दिए गए अपेक्षित समर्थन नहीं था, जो चालक को खतरनाक/संकटग्रस्त माल ले जाने वाले वाहन को चलाने की अनुमति देता है-इसलिए, पुरस्कार को बीमा कंपनी द्वारा दावेदार-प्रतिवादी के रूप में संतुष्ट किया जाना है, लेकिन अपीलकर्ता-बीमा कंपनी बीमा उल्लंघन करने वाले वाहन का मालिक (बीमित) से राशि वसूलने की हकदार है। इस प्रकार,

अनुवादित

न्यायाधिकरण ने मामले पर निर्णय लेने तथा बीमाकर्ता को वसूली का अधिकार दिए बिना बीमा कंपनी पर संपूर्ण दायित्व थोपने में गलती की है। (पैरा 1 से 32)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एनआईसीएल वीएस-स्वरन सिंह (2004) 3 सी सी 297

2. गौतम फिलिंग स्टेशन बनाम मुन्नू सिंह एवं अन्य (2016) 34 एलसीडी 1669

3. सिब्बल सिंह बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एफ.ए.एफ.ओ. (दोषपूर्ण) संख्या 378/2010

4. यूनाइटेड इंडिया इंस. कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विमला देवी एवं अन्य एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 845/2006 (2021 नवीनतम केस लॉ 8677 एएलएल)

5. ओरिएंटल इंस. कंपनी लिमिटेड बनाम नंजप्पन एवं अन्य (2004) 13 एससीसी 224

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

(I) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री तरूण कुमार मिश्रा और दावेदारान-प्रतिवादीगण संख्या 5 एवं 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री फिरोज अहमद खान तथा दावाकर्ता-विपक्षीगण 1 से 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री जगजीत सिंह सोढ़ी को सुना गया।

20. अपीलकर्ता बीमा कंपनी ने दावा याचिका संख्या 564 सन् 2017 में मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण (दक्षिणी), लखनऊ द्वारा पारित अधिनिर्णय दिनांकित 18.11.2021 के विरुद्ध उपरोक्त अपील संस्थित की है, जिसके तहत दावा न्यायाधिकरण ने दावाकर्ता-विपक्षीगण संख्या 1 से 4 के पक्ष में आवेदन की तारीख से रुपये 18,69,280/- की राशि भुगतान की तारीख तक 7% ब्याज के साथ उक्त अधिनिर्णय बीमा कंपनी के विरुद्ध पारित किया गया है।

21. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए एकमात्र तर्क उठाया है। उनकी दलीलों का मुख्य बिंदु यह है कि दुर्घटनाकारक गैस टैंकर क्रमांक यूपी 17 ए टी 1890 की तेज और लापरवाही से चलने के कारण दुर्घटना हुई थी। हालांकि, उपरोक्त निष्कर्ष के संबंध में मालिक और चालक द्वारा कोई अपील संस्थित नहीं की गई है, लेकिन बीमा कंपनी ने इस आधार पर मामले को बढ़ा दिया है कि आक्रामक गैस टैंकर के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, क्योंकि दुर्घटना की तारीख यानी 29.07.2017 को, उक्त गैस टैंकर के चालक राजेश कुमार के पास अपने ड्राइविंग लाइसेंस पर खतरनाक सामान रखने वाले परिवहन वाहन चलाने के लिए आवश्यक अनुमति नहीं था।

22. आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि ट्रिब्यूनल द्वारा एक विशिष्ट मुद्दा इस आशय से निर्धारित किया गया था कि क्या उक्त टैंकर के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था और उसी

का उत्तर देते हुए, ट्रिब्यूनल ने माना कि उक्त टैंकर के चालक के पास वैध लाइसेंस था और बीमा कंपनी को दायित्व सौंपा। इसका यह विचार था कि चूंकि दुर्घटना किसी रिसाव या उक्त टैंकर में रखे गए खतरनाक सामान के प्रत्यक्ष परिणाम के कारण नहीं हुई थी, इसलिए बीमा कंपनी को उसके दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता है।

23. यह भी निवेदन किया कि ट्रिब्यूनल ने खुद को पूरी तरह से दिग्भ्रमित कर लिया, क्योंकि उसने इस बात पर विचार नहीं किया कि चालक के पास खतरनाक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चलाने के प्राधिकरण के संबंध में लाइसेंस पर आवश्यक अनुमोदन नहीं था और ऐसे किसी अनुमोदन के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता कि चालक को प्राधिकृत किया गया था, इसलिए, यह केंद्रीय मोटर वाहन नियमावली, 1989 के प्रासंगिक नियम 9 (3) के विपरीत होने के कारण, जो मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 14 (2) (ए) के साथ पढ़ा जाता है, यह इंगित करेगा कि चालक को प्राधिकृत नहीं किया गया था जो वास्तव में बिना प्राधिकार के वाहन चलाने के समान है और इस तरह बीमा कंपनी को उपरोक्त दायित्व के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता था और इसके अलावा ट्रिब्यूनल ने वसूली अधिकार भी न देने में और त्रुटि की है जिसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय हुआ है।

24. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री फिरोज अहमद खान का तर्क है कि विचाराधीन वाहन का विधिवत बीमा किया गया था और चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था और साथ ही इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि दुर्घटना हुई थी और मृत्यु खतरनाक सामान के उपयोग या परिणाम के कारण नहीं हुई थी, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि ट्रिब्यूनल द्वारा लिया गया दृष्टिकोण गलत था। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 5 का ड्राइविंग लाइसेंस वैध और विद्यमान था। अतः, अपील खारिज किए जाने योग्य है।

25. दावाकर्ता-प्रतिवादीगण संख्या 1 से 4 के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि यद्यपि अधिनिर्णय दावाकर्ता-प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के पक्ष में पारित किया गया है, फिर भी 21.06.2022 को अपील में पारित अंतरिम आदेश के कारण, दावाकर्ता-प्रतिवादीगण संख्या 1 से 4 को एक भी पैसा प्रदान नहीं किया गया है। भले ही उन्होंने अपने कमाने वाले परिवार के सदस्य को खो दिया हो और इसलिए यह अपील खारिज किए जाने योग्य है।

26. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख में मौजूद सामग्री का भी अवलोकन किया है।

27. पक्षकारों के द्वारा प्रस्तुत तर्कों का उल्लेख करने से पूर्व इस प्रकरण के उत्पत्ति संबंधी तथ्यों को निम्नानुसार संज्ञान में लिया जाता है:-

28. दावाकर्ता-प्रतिवादीगण संख्या 1 से 4 ने मोटर दुर्घटना दावा ट्रिब्यूनल (दक्षिण), लखनऊ के समक्ष दावा याचिका संख्या 564/2017 इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत

किया कि दि० 29.07.2017 को दोपहर करीब 12:30 बजे सुश्री अरुणिमा चंद्रा (मृतका) जिला उन्नाव के सीएचसी से अपने क्षेत्रीय कार्यों में शामिल होने के लिए बाहर निकल रही थीं, तभी उनको यूपी 17 एटी 1890 नंबर की गैस टैंकर ने टक्कर मार दी और टक्कर के कारण उन्हें गंभीर चोटें आईं, जिससे उनकी मौके पर ही मौत हो गई। यह भी बताया गया कि वह मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय में बीएलपी के पद पर कार्यरत थीं और उनकी मासिक आय रु. 15,600/- थी।

29. उपरोक्त दुर्घटनाकारक गैस टैंकर के चालक और मालिक ने दुर्घटना से इनकार करते हुए अपना अलग-अलग लिखित विवरण दाखिल किया। हालांकि, मालिक ने यह जिरह किया कि उक्त टैंकर का एक वैध फिटनेस प्रमाण पत्र था जो मार्च, 2023 तक वैध था और राष्ट्रीय परमिट भी दिनांक 21 मार्च, 2017 से 20 मार्च, 2022 तक और वाहन मान्य था, का दिनांक 24.02.2017 से 23.02.2018 तक अपीलकर्ता-कंपनी के साथ विधिवत बीमित था और इस प्रकार, यदि कोई अधिनिर्णय दिया जाता है, तो उसका बीमा कंपनी द्वारा संतुष्ट होने याेग्य है।

30. दूसरी ओर, चालक ने अपने लिखित बयान में मालिक द्वारा लिए गए रुख को दोहराया, लेकिन यह भी अतिरिक्त दावा किया कि उसके पास एक वैध और विद्यमान ड्राइविंग लाइसेंस था।

31. वहीं दूसरी ओर, बीमा कंपनी ने अपना लिखित बयान दाखिल करते समय इस आधार पर अधिनिर्णय का सम्मान करने से इनकार कर दिया कि चालक के पास वैध लाइसेंस नहीं था।

32. उपरोक्त दलीलों के आलोक में, ट्रिब्यूनल ने चार मुद्दे निर्धारित किए और साक्ष्यों पर विचार करने के बाद यह माना कि दुर्घटना गैस टैंकर चालक की तेज और लापरवाही से चलने का परिणाम थी, जिसकी संख्या यूपी 17 एटी 1890 थी, जिसके कारण अरुणिमा चंद्रा की मृत्यु हो गई। यह भी पाया गया कि वाहन के पास आवश्यक फिटनेस प्रमाण पत्र, परमिट और बीमा पॉलिसी थी जो प्रासंगिक अवधि के लिए वैध थी। मुद्दा संख्या 3 से संबंधित होते हुए, यह माना गया कि चालक का लाइसेंस वैध था और चूंकि दुर्घटना खतरनाक सामान के कारण नहीं हुई थी, इसलिए बीमाकर्ता की दायित्व को माफ नहीं किया जा सकता था और उसके बाद मुआवजे के मुद्दे पर विचार करने के बाद, इसने दावा याचिका को अनुमति दी और दावाकर्ता-प्रतिवादियों संख्या 1 से 4 को 7% वार्षिक ब्याज के साथ रु. 18,69,280/- की राशि प्रदान की।

33. यह वही अधिनिर्णय है जो उपरोक्त वर्णित आधारों पर वर्तमान अपील में चुनौती के अधीन है।

34. विचारण हेतु केवल एक मात्र बिन्दु है कि क्या प्रतिवादी संख्या 5 का ड्राइविंग लाइसेंस वैध था और चूंकि वह गैस टैंकर चला रहा था तो क्या लाइसेंस में खतरनाक सामानों के परिवहन के वाहन चलाने के लिए उसे प्राधिकृत करने वाला आवश्यक अनुमोदन (एंडोर्समेंट) होना चाहिए था और इसके अभाव में क्या

अधिनिर्णय बीमा कंपनी पर डाला जा सकता था।

35. उपरोक्त मुद्दे का उत्तर देने के लिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 और केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 के तहत बनाए गए प्रासंगिक धाराओं और साथ ही नियमों पर एक नज़र डालना उचित होगा। प्रासंगिक धाराओं को निम्नानुसार पुनरुत्पादित किया गया है:-

"धारा 3. ड्राइविंग लाइसेंस की आवश्यकता.- (1) *कोई भी व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन नहीं चलाएगा जब तक कि उसके पास उसे वाहन चलाने के लिए प्राधिकृत करने वाला एक प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस न हो; और कोई भी व्यक्ति किसी परिवहन वाहन [मोटर कैब या मोटर साइकिल के अलावा] को अपने स्वयं के उपयोग के लिए किराए पर लेने या धारा 75 के उप-धारा (2) के तहत बनाई गई किसी योजना के अंतर्गत किराए पर लेने के अलावा ऐसा नहीं करेगा जब तक कि उसका ड्राइविंग लाइसेंस उसे विशेष रूप से ऐसा करने का हक न देता हो।"*

(2) वे शर्तें जिनके अधीन उप- धारा (1) किसी मोटर वाहन चलाने के निर्देश प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर लागू नहीं होगी, यह वही होंगी जो कि केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

----------***----------***

"धारा 14. मोटर वाहन चलाने के लाइसेंस की अवधि.- (1) *इस अधिनियम के तहत जारी किया गया शिक्षार्थी लाइसेंस, इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, लाइसेंस जारी करने की तिथि से छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी होगा।"*

(2) इस अधिनियम के तहत जारी या नवीनीकृत किया गया ड्राइविंग लाइसेंस,--

(क) परिवहन वाहन चलाने के लाइसेंस के मामले में, जो तीन वर्ष की अवधि के लिए प्रभावी होगा: 1[***]

"2[परन्तु यह उपबंध है कि खतरनाक या जहरीले स्वरूप का सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चलाने के लाइसेंस के मामले में, यह लाइसेंस एक वर्ष की अवधि के लिए प्रभावी होगा और इसके नवीनीकरण के लिए यह शर्त होगी कि चालक निर्धारित पाठ्यक्रम का एक दिवसीय पुनश्चर्या पाठ्यक्रम पूरा करेगा,]"

(ब) x x x

(i) x x x

(अ) x x x

(ब) x x x

x x x

x x x

--------***

धारा 56. परिवहन वाहनों की उपयुक्तता प्रमाणपत्र.-- *(1) धारा 39 और 60 के उपबंधों के अधीन, किसी परिवहन यान को धारा 39 के प्रयोजनों के लिए विधिवत रूप*

से पंजीकृत नहीं माना जाएगा, जब तक कि वह केंद्रीय सरकार द्वारा विहित प्रपत्र में ऐसे ब्योरे और सूचनाओं से युक्त उपयुक्तता प्रमाणपत्र धारित न करे, जो विहित प्राधिकारी द्वारा या उप-धारा (2) में उल्लिखित प्राधिकृत परीक्षण केंद्र द्वारा जारी किया गया हो, यह प्रमाणपत्र इस आशय का होना चाहिए कि वाहन वर्तमान समय में इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों की सभी आवश्यकताओं का अनुपालन करता है: परंतु यह उपबंध है कि जहां विहित प्राधिकारी या "अधिकृत परीक्षण केंद्र" ऐसा प्रमाणपत्र जारी करने से इंकार कर देता है, तो वह वाहन के स्वामी को ऐसे इंकार के लिखित कारणों से अवगत कराएगा।

(2) x x x

(3) x x x

(4) x x x

(5) x x x

*----------******-*

-

***66. परमिट की आवश्यकता-(1)** मोटर वाहन का कोई स्वामी किसी सार्वजनिक स्थान पर परिवहन वाहन के रूप में वाहन का उपयोग नहीं करेगा या उपयोग की अनुमति नहीं देगा, भले ही वह वाहन वास्तव में यात्रियों या सामान का परिवहन कर रहा हो, सिवाय इसके कि क्षेत्रीय या राज्य परिवहन प्राधिकरण या किसी अन्य निर्धारित प्राधिकरण द्वारा प्रदत्त या प्रतिहस्ताक्षरित परमिट की शर्तों के अनुसार उसे उस स्थान पर वाहन के उपयोग के लिए प्राधिकृत किया गया हो, जिस तरीके से वाहन का उपयोग किया जा रहा है: बशर्ते यह कि एक स्टेज कैरिज परमिट, परमिट में निर्दिष्ट किसी भी शर्त के अधीन, वाहन के उपयोग को अनुबंध कैरिज के रूप में अधिकृत करेगा: और यह भी कि एक स्टेज कैरिज परमिट, परमिट में निर्दिष्ट किसी भी शर्त के अधीन, यात्रियों को ले जाते समय या नहीं ले जाते समय वाहन के माल परिवहन के रूप में उपयोग को अधिकृत कर सकता है: यह भी कि एक माल परिवहन परमिट, परमिट में निर्दिष्ट किसी भी शर्त के अधीन, धारक को उसके द्वारा किए गए व्यापार या व्यवसाय के लिए या उसके संबंध में माल के परिवहन के लिए वाहन का उपयोग करने के लिए अधिकृत करेगा।*

*----------******----------*

-

***धारा 147. पॉलिसियों की आवश्यकताएं और दायित्व की सीमाएं--(1)** इस अध्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन करने*

के लिए, बीमा पॉलिसी वह पॉलिसी होनी चाहिए जो–

(क) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी की गई है जो एक अधिकृत बीमाकर्ता है, और

(ख) पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों का बीमा की उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक करता है-

(i) किसी भी दायित्व के विरुद्ध जो उसे किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट 27 (शारीरिक चोट में वाहन में ले जाए जा रहे माल के मालिक या उसके अधिकृत प्रतिनिधि शामिल है) या किसी तीसरे पक्ष की संपत्ति को हुए नुकसान के संबंध में हो सकता है, जो सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न होता है।

(ii) किसी सार्वजनिक सेवा वाहन के किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के विरुद्ध, जो सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न होती है।

बशर्ते, किसी पॉलिसी की आवश्यकता नहीं होगी -

(i) पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में दायित्व को कवर करने के लिए, जो उसके नियोजन के दौरान और उसके फलस्वरूप हुई हो, या ऐसे कर्मचारी द्वारा उसके रोजगार के दौरान और उसके फलस्वरूप उठाई गई शारीरिक चोट के संबंध में, सिवाय वर्कमेन्स कंपनसेशन एक्ट, 1923 (8 / 1923) के तहत किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में उत्पन्न होने वाली दायित्व के अलावा–

(क) वाहन चलाने में लगा हुआ, या

(ख) यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है जो वाहन के चालक के रूप में कार्यरत है या वाहन में टिकटों की जांच करने में लगा हुआ है, या

(ग) यदि यह एक माल परिवहन वाहन है, जो वाहन में ले जाया जा रहा है, या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को कवर करने के लिए।

***स्पष्टीकरण.--** संदेहों को दूर करने के लिए, यह घोषित किया जाता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति को हुए नुकसान को सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न माना जाएगा, भले ही वह व्यक्ति जो मृत या घायल हुआ हो या जो संपत्ति क्षतिग्रस्त हुई हो, दुर्घटना के समय सार्वजनिक स्थान पर न हो, यदि वह कार्य या चूक जिसके कारण दुर्घटना हुई, वह सार्वजनिक स्थान पर हुई।*

(2) उप-धारा (1) के परन्तुक के अधीन, उप-धारा (1) में उल्लिखित बीमा पॉलिसी, किसी भी दुर्घटना के संबंध में निम्नलिखित सीमाओं तक किसी भी दायित्व को कवर करेगी, अर्थात्:--

(क) धारा (ख) प्रदत्त प्रावधान के अनुसार, वह राशि जो दायित्व में आई है:-

(ख) किसी तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति को हुए नुकसान के संबंध में, छह हजार रुपये की सीमा:

बशर्ते इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पहले, किसी सीमित दायित्व के साथ जारी की गई और लागू किसी भी बीमा पॉलिसी को इस तरह के प्रारंभ के बाद चार महीने की अवधि के लिए या ऐसी पॉलिसी की समाप्ति की तिथि तक, जो भी पहले हो, प्रभावी रहना जारी रहेगा।

(3) xxx

(4) xxx

(5) किसी भी समय लागू किसी कानून में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन बीमा की पॉलिसी जारी करने वाला बीमाकर्ता पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों को किसी भी दायित्व के संबंध में क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा, जिसे पॉलिसी उस व्यक्ति या उन वर्गों के मामले में कवर करने का दावा करती है।

9.खतरनाक या जोखिम भरे सामान ले जाने वाले माल गाड़ियों के चालकों के लिए शैक्षणिक योग्यताएं:

***[(1)** केंद्रीय मोटर वाहन (संशोधन) नियम, 1993 के प्रारंभ की तिथि से एक वर्ष बाद, कोई भी व्यक्ति जो खतरनाक या मानव जीवन के लिए जोखिम भरे स्वरूप का सामान ले जाने वाली मालगाड़ी चला रहा है, उसे परिवहन वाहन चलाने के लिए ड्राइविंग लाइसेंस धारक होने के साथ-साथ, [संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट] में से कम से कम एक भारतीय भाषा और अंग्रेजी पढ़ने और लिखने की क्षमता भी होनी चाहिए और साथ ही ऐसे सामानों के परिवहन से जुड़े पाठ्यक्रम और आवधिकता से युक्त पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पास करने का प्रमाणपत्र भी होना चाहिए:-*

प्रशिक्षण अवधि 3 दिन

प्रशिक्षण का स्थान

राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त

पाठ्यक्रम

(I) सुरक्षात्मक ड्राइविंग

प्रश्नावली अ व ब

के लिए प्रशिक्षण की अवधि -

1 और 2 दिन

दुर्घटनाओं के कारण

दुर्घटनाएं, आंकड़े

चालक का व्यक्तिगत स्वास्थ्य

कार की स्थिति

ब्रेकिंग दूरी

हाईवे ड्राइविंग

सड़क/ पैदल यात्री चौराहा

रेलवे क्रॉसिंग

मौसम के अनुकूल ढलना

आमने-सामने टक्कर

रीड-इंड-कोलिशन

रात्रि ड्राइविंग

फिल्में और चर्चा

ब. उन्नत ड्राइविंग कौशल और प्रशिक्षण

(i) चर्चा प्रारंभ करने से पहले चेकलिस्ट

-----वाहन के बाहर / नीचे / पास

-----उत्पाद पक्ष

वाहन के अंदर

ड्राइविंग के दौरान-----सही गति/गियर

-----संकेत

-----लेन नियंत्रण

-----ओवरटेकिंग/ साइड देते हुए

-----गति सीमा/ सुरक्षित दूरी

-----ढलानों पर ड्राइविंग

रुकने से पहले की स्थिति -----सुरक्षित रुकने का स्थान, संकेत, सड़क की चौड़ाई,

रुकने के बाद -----वाहन की गतिविधि को रोकना

-----व्हील क्लॉक्स

वाहन उपस्थिति

रात्रि ड्राइविंग -----अनिवार्य बिजली की आवश्यकताएं

--हेडलैंप संरेखण

--डिप्ड बीम का उपयोग]

(ii) फील्ड परीक्षण/प्रशिक्षण -----

एक समय में एक चालक

स. उत्पाद सुरक्षा संयुक्त राष्ट्र वर्गीकरण

तीसरे दिन (स) के

संयुक्त राष्ट्र पैनल -----हैज़चैम कोड

लिए प्रशिक्षण की

-----विषाक्तता अवधि

-----ज्वलनशीलता

-----अन्य परिभाषाएं

उत्पाद की जानकारी -----ट्रेमकार्ड्स

----- सीआईएस/एमएसडीएस

----- तापमान दबाव, स्तर का महत्व

-----उपकरण के बारे में ज्ञान

-----संचार

-----रिसाव से निपटना

-----व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों का उपयोग

-----अग्निशमन

-----प्राथमिक उपचार

-----विषाक्त रिलीज नियंत्रण

-----कुएं, नदियों, झीलों आदि की सुरक्षा

-----सुरक्षात्मक उपकरणों का उपयोग

-----वाल्व आदि के बारे में ज्ञान

---

(2) अपने ड्राइविंग लाइसेंस में आवश्यक प्रविष्टियां करने के लिए, न्यूनतम शैक्षिक

योग्यता रखने वाले ड्राइविंग लाइसेंस के धारक या उप-नियम (1) में उल्लिखित प्रमाणपत्र, अपने ड्राइविंग लाइसेंस और प्रासंगिक प्रमाणपत्र के साथ सादे कागज पर लिखित आवेदन उस क्षेत्राधिकार के लाइसेंसिंग प्राधिकरण को करेंगे जहां वे रहते हैं और यदि ड्राइविंग लाइसेंस फॉर्म 7 में है, तो आवेदन के साथ [नियम 32 की तालिका में विनिर्दिष्ट] शुल्क जमा करना होगा।

(3) लाइसेंसिंग प्राधिकरण, उप-नियम (2) में उल्लिखित आवेदन प्राप्त होने पर, आवेदक के ड्राइविंग लाइसेंस में यह प्रमाणित करने के लिए एक टिप्पणी करेगा कि वह खतरनाक या मानव जीवन के लिए हानिकारक प्रकृति के सामान ले जाने वाले मालवाहक गाड़ी चलाने के लिए अधिकृत है।

(4) कोई अन्य लाइसेंसिंग प्राधिकरण, जो मूल लाइसेंसिंग प्राधिकरण नहीं है, यदि ऐसा कोई भी अनुमोदन करता है, तो उसे इस तथ्य की सूचना मूल लाइसेंसिंग प्राधिकरण को देनी होगी।

नियम 132. परिवहनकर्ता या मालवाहक गाड़ी के मालिक की जिम्मेदारी.–

(1) xxx

(2)xxx

(3) xxx

(4)xxx

(5) मालिक का यह दायित्व होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि खतरनाक या हानिकारक सामान ले जाने वाले मालवाहक गाड़ी का चालक इन नियमावली के नियम 9 के प्रावधानों के अनुसार ड्राइविंग लाइसेंस रखता है।"

18. उपरोक्त प्रावधानों के संयुक्त पाठ से यह स्पष्ट है कि जहां तक भारी मालवाहक मोटर वाहनों का सवाल है, ऐसे व्यक्ति को जारी किया गया लाइसेंस तीन साल की अवधि के लिए वैध होता है। हालांकि, जहां कोई चालक खतरनाक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चला रहा है, ऐसे वाहनों के लिए, चालक के पास एक अलग अनुमोदन होना चाहिए और उक्त अनुमोदन को समय-समय पर संबंधित चालक द्वारा किए गए आवेदन पर 1988 के अधिनियम के तहत बनाए गए प्रावधानों और नियमों के अनुसार नवीनीकृत करना होगा।"

19. प्रासंगिक प्रावधानों पर एक नज़र डालने के बाद, अब उस लाइसेंस पर एक नज़र डालना उपयुक्त होगा जिसे प्रतिवादी सं० 5 द्वारा पेपर सं० C-17/1 वाले दस्तावेजों की सूची के साथ रिकॉर्ड पर रखा गया था।

20. उपरोक्त ड्राइविंग लाइसेंस के अवलोकन से, यह संकेत मिलता है कि यूपी 86 20130003803 नंबर का ड्राइविंग लाइसेंस राजेश कुमार पुत्र छत्रपाल के नाम पर 03.07.2013 को जारी किया गया था और 02.07.2033 तक वैध था और यह भी इंगित करता है कि राजेश कुमार को हल्के मोटर वाहन और एमसीडब्ल्यूजी (गियर वाले मोटर वाहन) चलाने के लिए प्राधिकृत किया गया था। चालक को परिवहन वाहन चलाने के लिए भी प्राधिकृत किया गया है, हालांकि, यह अनुमोदन 22.09.2014 से प्रभावी था। उक्त ड्राइविंग

लाइसेंस उत्तर प्रदेश राज्य के हाथरस में आरटीओ कार्यालय से जारी किया गया है।

21. उपरोक्त दस्तावेजों के अवलोकन से यह संकेत नहीं मिलता है कि केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 के तहत बनाए गए नियम 9 और 132 के साथ पढ़े गए अधिनियम 1988 की धारा 14 के अनुसार खतरनाक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चलाने के लिए कोई अनुमोदन है। अतः उपरोक्त से स्पष्ट होगा कि इस बात में कोई विवाद नहीं है कि चालक को परिवहन वाहन चलाने के लिए प्राधिकृत किया गया था, हालांकि, यह इंगित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ नहीं है कि उसे खतरनाक/हानिकारक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चलाने की भी अनुमति थी। टैंकर जो पेट्रोल, गैस और अन्य ज्वलनशील पदार्थ ले जाते हैं और उन्हें ऐसे सामानों के परिवहन और सार्वजनिक सड़कों पर चलने की अनुमति है, कानून ने कुछ नियम और प्रावधान बनाए हैं और उसी का पालन करने के बाद ही ऐसे वर्ग के वाहन को कानून के अनुसार प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा चलाया जा सकता है। सार्वजनिक स्थान पर वाहन चलाने का प्राधिकरण या लाइसेंस मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत वैधानिक आवश्यकता का अनुपालन है। मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत मुआवजे का हकदार तभी बनता है, जब यह साबित हो जाए कि अपराध करने वाले वाहन का चालक लापरवाही और उतावलापन कर रहा था, जबकि मुआवजे के भुगतान के लिए कौन उत्तरदायी है, यह स्थिति पर निर्भर करता है। प्राथमिक रूप से मालिक और चालक जिम्मेदार होते हैं, लेकिन मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के अध्याय 11 के तहत बीमा कवरेज के मद्देनजर, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 149 के तहत बीमा कंपनी द्वारा दायित्व की क्षतिपूर्ति की जाती है।

22. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि दो अलग-अलग स्थितियाँ हो सकती हैं, (i) जहां कोई व्यक्ति गाड़ी चलाने में लापरवाही बरत सकता है, लेकिन साथ ही, उसे कानून के अनुसार किसी विशेष प्रकार के वाहन को चलाने के लिए प्राधिकृत होना चाहिए और दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि कोई चालक गाड़ी चलाते समय लापरवाह न हो, लेकिन उक्त मोटर वाहन के उपयोग के कारण दुर्घटना हो सकती है, लेकिन फिर भी चालक को उस विशेष श्रेणी के वाहन को चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं होना चाहिए।

(ii) मोटर दुर्घटना की घटना और ड्राइविंग लाइसेंस की वैधता बीमा कंपनी की देयता को प्रभावित करेगी और इस पहलू पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***राष्ट्रीय बीमा कंपनी बनाम स्वर्ण सिंह (2004) 3 एससीसी 297*** में विस्तार से विचार किया गया है।

23. जबकि बीमित और बीमा कंपनी के बीच बीमा अनुबंध "*पूर्णसद्भावसंविदा*" पर आधारित होता है, यह एक ऐसा अनुबंध है जिसका अक्षरशः और भावनानुसार पालन किया जाना चाहिए।

24. मामले के उपरोक्त पहलू पर ध्यान देते हुए और यह देखते हुए कि आग लगाने वाले

गैस टैंकर के चालक के पास खतरनाक/जोखिम भरे सामान ले जाने वाले भारी माल वाहन को चलाने या उपयोग करने के लिए आवश्यक अनुमोदन नहीं था, यह इंगित करता है कि कानून उसे सार्वजनिक स्थान पर उक्त वाहन चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं करता था। गैस टैंकर के मालिक ने एक ऐसे व्यक्ति को कानून के उल्लंघन में सार्वजनिक स्थान पर खतरनाक/जोखिम भरे सामान ले जाने वाले उक्त भारी माल वाहन का उपयोग करने की अनुमति दी, और यह अपने आप में पॉलिसी शर्त का उल्लंघन है।

25. दुर्घटना जिस तरह से हुई, वह मालिक की देयता को खत्म करने के लिए आवश्यक नहीं हो सकती है, लेकिन इस मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय की ***समन्वय पीठ द्वारा गौतम फिलिंग स्टेशन बनाम मुन्नू सिंह और अन्य; 2016 (34) LCD 1669*** के मामले में विचार किया गया है। पैराग्राफ 26 और 27 में, निम्नानुसार कहा गया है:-

"26. इस प्रकार, यदि उपरोक्त वर्णित वैधानिक आवश्यकताओं को मामले के तथ्यों या दुर्घटना के तथ्य के आधार पर नजरअंदाज किया जाता है या कमजोर किया जाता है, यह कहते हुए कि वाहन का चालक लापरवाही का दोषी था और बीमा कंपनी को यह बचाव लेने की अनुमति नहीं है कि ऐसी वैधानिक आवश्यकताएं पूरी नहीं की गईं, तो यह 1988 के अधिनियम की धारा 149 के तहत बीमा कंपनी को दी गई सीमित सुरक्षा को रद्द करने के समान होगा।

27. मामले के इस दृष्टिकोण को देखते हुए, मेरी राय में, धारा 149 कंपनी को उपलब्ध वैधानिक सुरक्षा का प्रावधान करती है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उप-धारा (1) के तहत किसी भी निर्णय या पुरस्कार के संबंध में बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि देय नहीं होगी और बीमाकर्ता धारा 149 के तहत प्रदान किए गए आधार पर कार्रवाई का बचाव कर सकता है जिसमें यह भी शामिल है कि यदि वाहन चलाने वाला व्यक्ति विधिवत लाइसेंसीकृत नहीं था तो वह अपनी देयता से बच सकता है। इस उद्देश्य के लिए, यह कहना निरर्थक है कि 1988 के अधिनियम की धारा 3 और धारा 14 और केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 के नियम 9 और नियम 132(5) की आवश्यकता, जिनका ऊपर पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और जिन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है, वैध लाइसेंस रखने के लिए पूरी की जानी चाहिए या उनका पालन किया जाना चाहिए।"

26. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर भी भरोसा किया है, ***सिब्बल सिंह बनाम द यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड,, एफ.ए.एफ.ओ. (दोषपूर्ण) संख्या 378 of 2010, दिनांक 13.08.2012*** को निर्णीत किया गया, हालांकि, उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि सिब्बल सिंह (उपरोक्त) के मामले में, हालांकि, यह कानून

के सभी प्रावधानों से नहीं निपटता है, फिर भी यह ***गौतम फिलिंग स्टेशन (उपरोक्त)*** के मामले में देखे गए समान निष्कर्ष पर पहुंचता है।

27. इस न्यायालय ने ***यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विमला देवी और अन्य; एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 845 ऑफ 2006 दिनांक 27.07.2021 (2021 लेटेस्ट केस लॉ 8677 एएलएल)*** के मामले में एक समान मुद्दे पर विचार करने का अवसर प्राप्त किया और जिसमें पहले के फैसलों को ध्यान में रखते हुए, यह पाया गया कि भले ही चालक के पास लाइसेंस था, लेकिन चूंकि उसमें मोटर वाहन अधिनियम में प्रावधान के अनुसार आवश्यक अनुमोदन नहीं था, जो चालक को खतरनाक/हानिकारक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन को चलाने की अनुमति देता है, इसलिए, न्यायालय ने अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और बीमा कंपनी को वसूली अधिकार प्रदान कर दिया।

28. ***गौतम फिलिंग स्टेशन (उपरोक्त) और विमला देवी (उपरोक्त)*** के मामले में दिए गए अनुपात को ध्यान में रखते हुए और सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, यह दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट होगा कि हालांकि प्रतिवादी संख्या 5, गैस टैंकर का चालक परिवहन वाहन चलाने के लिए अधिकृत था, लेकिन इस बात का कोई सबूत नहीं है कि उसे खतरनाक/हानिकारक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चलाने का प्राधिकार था। यह भी प्रतिवादीगण संख्या 5 और 6 श्री फिरोज अहमद खान के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आक्षेपित नहीं है कि जिस तारीख को दुर्घटना हुई थी, यानी 29.07.2017 को, चालक के पास ऐसा कोई प्राधिकार नहीं था और न ही उसके लाइसेंस पर इस आशय का कोई अनुमोदन था। इस तरह की कोई सामग्री इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाई गई है और न ही यह नीचे ट्रिब्यूनल के रिकॉर्ड में दर्ज है। इस प्रकार, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गैस टैंकर के गैस चालक के ड्राइविंग लाइसेंस ने उसे खतरनाक/हानिकारक सामान ले जाने वाले परिवहन वाहन चलाने के लिए अधिकृत नहीं किया था।

29. अब यह सवाल उठता है कि क्या बीमा कंपनी अपनी देयता से खुद को मुक्त कर सकती है, हालांकि, ***स्वर्ण सिंह (उपरोक्त)*** के संविधान पीठ के फैसले के आलोक में यह तय हो चुका है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने ड्राइविंग लाइसेंस में विभिन्न प्रकार की विसंगतियों पर विचार किया है और मामले से कैसे निपटा जाना चाहिए, इस पर विस्तार से विचार किया गया है और उसके प्रासंगिक अंश को निम्नानुसार पढ़ा जा सकता है:-

"110. इन याचिकाओं में उठाए गए विभिन्न मुद्दों पर हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है:

"(i) मोटर वाहन अधिनियम, 1988 का अध्याय XI तृतीय-पक्ष जोखिमों के खिलाफ वाहनों के अनिवार्य बीमा का प्रावधान करने वाला एक सामाजिक कल्याण कानून है, जिसका उद्देश्य मोटर वाहनों के उपयोग से होने वाली दुर्घटनाओं के पीड़ितों को मुआवजे द्वारा राहत प्रदान करना है। सभी वाहनों के अनिवार्य बीमा कवरेज के

प्रावधान इसी प्रमुख उद्देश्य के साथ हैं और अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए ताकि उक्त उद्देश्य को पूरा किया जा सके।

(ii) एक बीमाकर्ता 1988 के मोटर वाहन अधिनियम की धारा 163-ए या धारा 166 के तहत दायर दावे की याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(ए)(i) के संदर्भ में बचाव का अधिकार उठाने का हकदार है।

(iii) धारा 149 की उप-धारा (2)(ए)(ii) में शामिल, जैसे कि चालक की अयोग्यता या चालक का अमान्य ड्राइविंग लाइसेंस जैसी पॉलिसी शर्त का उल्लंघन, बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए बीमित द्वारा किया गया होना साबित करना होगा। केवल अनुपस्थिति, फर्जी या अमान्य ड्राइविंग लाइसेंस या प्रासंगिक समय पर वाहन चलाने के लिए चालक की अयोग्यता अपने आप में बीमाकर्ता के लिए बचाव नहीं है, जो या तो बीमित या तृतीय पक्षों के खिलाफ उपलब्ध हैं। बीमाधारक के प्रति अपनी देयता से बचने के लिए, बीमाकर्ता को यह साबित करना होगा कि बीमाधारक लापरवाही का दोषी था और विधिवत लाइसेंस प्राप्त चालक या उस समय वाहन चलाने के लिए अयोग्य नहीं होने वाले चालक द्वारा वाहनों के उपयोग के संबंध में पॉलिसी की शर्त को पूरा करने के मामले में उचित सावधानी बरतने में विफल रहा।

(iv) हालांकि, बीमा कंपनियां, अपनी देयता से बचने के लिए, न केवल उक्त कार्यवाही में उठाए गए उपलब्ध बचाव पक्षों को स्थापित करना चाहिए, बल्कि वाहन के मालिक की ओर से 'उल्लंघन' भी स्थापित करना चाहिए; इसके सबूत का बोझ उन पर होगा।"

(v) न्यायालय यह निर्धारित नहीं कर सकता है कि उक्त बोझ कैसे पूरा किया जाएगा, क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा वैध लाइसेंस रखने या प्रासंगिक अवधि के दौरान वाहन चलाने की उसकी योग्यता से संबंधित पॉलिसी शर्त के उल्लंघन को साबित करने में सक्षम है, वहां तक बीमाकर्ता को बीमाधारक के प्रति अपनी देयता से बचने की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि ड्राइविंग लाइसेंस की शर्त का उल्लंघन या उल्लंघन इतना मौलिक न हो जाए कि दुर्घटना के कारण में योगदान देने वाला पाया जाए। ट्रिब्यूनल पॉलिसी शर्तों की व्याख्या करते समय "मुख्य उद्देश्य के नियम" और "मूलभूत उल्लंघन" की अवधारणा को लागू करेंगे ताकि अधिनियम की धारा 149(2) के तहत

बीमाकर्ता के लिए उपलब्ध बचाव की अनुमति दी जा सके।

(vii) यह प्रश्न कि क्या मालिक ने यह पता लगाने के लिए उचित सावधानी बरती है कि चालक द्वारा प्रदर्शित ड्राइविंग लाइसेंस (नकली या अन्यथा) कानून की आवश्यकताओं को पूरा करता है या नहीं, यह प्रत्येक मामले में निर्धारित किया जाना होगा।

(viii) यदि दुर्घटना के समय किसी वाहन को लर्नर लाइसेंसधारी व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था, तो बीमा कंपनियां डिक्री को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होंगी।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के तहत गठित दावा अधिकरण मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न होने वाले तीसरे पक्ष की मृत्यु या शारीरिक चोट या संपत्ति के नुकसान से संबंधित दुर्घटनाओं के संबंध में सभी दावों का निपटारा करने के लिए सशक्त है। ट्रिब्यूनल की उक्त शक्ति दावों का फैसला करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि एक ओर दावेदार या दावेदारों और दूसरी ओर बीमित, बीमाकर्ता और चालक के बीच परस्पर विवादों का भी फैसला करती है। मुआवजे के दावे का न्याय निर्णयन करने और बीमाकर्ता के लिए बचाव या बचाव की उपलब्धता तय करने के क्रम में, ट्रिब्यूनल में विवादों को तय करने की शक्ति और अधिकार क्षेत्र आवश्यक रूप से है। दावेदारों द्वारा मुआवजे के दावे के न्याय निर्णयन के दौरान बीमाकर्ता और बीमित के बीच दावों और आपसी विवादों पर दिया गया निर्णय और उस पर किया गया पुरस्कार उसी तरह से लागू करने योग्य और निष्पादन योग्य है, जैसा कि अधिनियम की धारा 174 में दावेदारों के पक्ष में पुरस्कार के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए प्रदान किया गया है।

(x) जहां अधिनियम के तहत दावे के न्याय निर्णयन पर ट्रिब्यूनल इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि बीमाकर्ता ने उप-धारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के प्रावधानों के अनुसार अपने बचाव को संतोषजनक ढंग से साबित कर दिया है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर व्याख्या की गई है, ट्रिब्यूनल यह निर्देश दे सकता है कि बीमाकर्ता को मुआवजे और अन्य राशियों के लिए बीमित द्वारा प्रतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाए, जो इसे ट्रिब्यूनल के पुरस्कार के तहत तीसरे पक्ष को भुगतान करने के लिए मजबूर किया गया है। ट्रिब्यूनल द्वारा दावे का ऐसा निर्धारण लागू करने योग्य होगा और बीमाकर्ता को बीमित से प्राप्त राशि अधिनियम की धारा 174 के तहत उसी तरह से कलेक्टर को ट्रिब्यूनल द्वारा जारी प्रमाण पत्र पर देय होगी, जैसे भू-राजस्व का बकाया। राशि की वसूली के लिए प्रमाण पत्र केवल तभी जारी किया

जाएगा, जब भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली की आवश्यकता हो, जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उप-धारा (3) द्वारा अपेक्षित है, यदि बीमित ट्रिब्यूनल द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से तीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में दिए गए पुरस्कार की राशि जमा करने में विफल रहता है।

(xi) उप-धारा (4) में उसके उपबंध के साथ और उप-धारा (3) के प्रावधान, जिनका उद्देश्य बीमाकर्ता को बीमित की ओर से बीमा अनुबंध के तहत भुगतान की गई राशि की वसूली करने के लिए उल्लिखित आकस्मिकताओं को कवर करना है, का ट्रिब्यूनल द्वारा सहारा लिया जा सकता है और दावों और बचावों तक विस्तारित किया जा सकता है। बीमित के खिलाफ बीमाकर्ता नियमित अदालत के समक्ष उपचार के लिए उन्हें सौंपकर उन मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में उनके दावों के आपसी निर्णय से पीड़ितों के दावों के निर्णय में देरी हो सकती है।"

30. ***स्वर्ण सिंह (उपरोक्त)*** के उपरोक्त निर्णय के आलोक में, यह स्पष्ट होगा कि बीमा कंपनी अपनी देयता को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर सकती है, हालांकि, चालक के पास लाइसेंस था, इसलिए, पुरस्कार का भुगतान बीमा कंपनी द्वारा दावेदार-प्रतिवादी के संबंध में किया जाना है, लेकिन अपीलकर्ता-बीमा कंपनी क्षतिग्रस्त वाहन के मालिक (बीमित) से राशि वसूलने की हकदार है।

31. उपरोक्त विस्तृत चर्चा के मद्देनजर,इस न्यायालय स्पष्ट रूप से यह मत है कि ट्रिब्यूनल ने विषय संख्या 3 का निर्णय लेने और बीमा कंपनी को वसूली का अधिकार दिए बिना संपूर्ण देयता बीमा कंपनी पर थोपने में भूल की है।

32. उपरोक्त के मद्देनजर, दिनांक 18.11.2021 का अधिनिर्णय, जहां तक यह मात्रा सहित सभी निष्कर्षों से संबंधित है, इस संशोधन के साथ पुष्टि की गई है कि बीमा कंपनी पुरस्कार की क्षतिपूर्ति करेगी और प्रतिवादी संख्या 5 से उसी की वसूली करने के लिए स्वतंत्र होगी, जो कि अपमानजनक वाहन का मालिक है, जैसा कि कानून के अनुसार ***ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नंजप्पन और अन्य; (2004) 13 एससीसी 224*** में प्रदान किया गया है। उपरोक्त के अधीन, दिनांक 18.11.2011 का पुरस्कार बनाए रखा जाता है। ***अपील*** उपरोक्त शर्तों में ***आंशिक रूप से*** स्वीकार की जाती है। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा। ट्रिब्यूनल का रिकॉर्ड शीघ्र वापस कर दिया जाएगा।

——

(2023) 5 ILRA 161

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 303/1995

श्रीमती राम बेटी एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

सुरेश चंद्रा एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री पी.के. सक्सेना, श्री एस.सी. केसरवानी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एस. कुमार, श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा, श्री स्वप्निल कुमार

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 176- दावे में वृद्धि को चुनौती- मृतक अपनी पत्नी व बच्चों को छोड़कर मर गया- न्यायाधिकरण ने 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित 61,160 रुपये की धनराशि मुआवजे के रूप में देने का आदेश दिया तथा भविष्य में आय की हानि को स्वीकार नहीं किया- दावेदार उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 के अनुरूप भविष्य की संभावनाओं के लिए वेतन में 40 प्रतिशत वृद्धि के हकदार हैं- कुल मुआवजा 3,32,400 रुपये होगा तथा ब्याज की दर दावा याचिका दाखिल करने की तिथि से लेकर पुरस्कार तक 7.5 प्रतिशत तथा उसके बाद 6 प्रतिशत होगी- बीमा कंपनी 8 सप्ताह के भीतर धनराशि जमा कराएगी। (पैरा 1 से 18)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एनआईसीएल बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) वाद एससी 1093
2. श्रीमती सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 6 एससीसी 121
3. एनआईसीएल बनाम प्रणय सेठी (2014) 4 टीएसी 637 एससी
4. श्रीमती सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 2 टीएसी 677 एससी
5. कुर्वन अंसारी @ कुर्वन अली और अन्य. बनाम श्याम किशोर मुर्मू और अन्य (2021) 4 टीएसी एससी
6. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल (2012) 1 जीएलएच एससी 442
7. श्रीमती हंसगुरी पी. लधानी बनाम ओआईसीएल (2007) 2 जीएलएच 291
8. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. इस अपील के माध्यम से, अपीलकर्ताओं ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण / तृतीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, एटा (इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.12.1994/14.12.1994 को एम.ए.सी.पी. संख्या 115 सन् 1992 (श्रीमती राम बेटी व एक अन्य बनाम सुरेश चंद्र व अन्य) में 61,160/- रु. रुपये की राशि का पुरस्कार दावा याचिका दायर करने की तारीख से 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ दावेदारों/अपीलकर्ताओं को मुआवजे के रूप में देने को चुनौती दी है।

2. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दावेदार-अपीलकर्ताओं ने 13.1.1991 को सड़क दुर्घटना में राम बिलास की मौत के लिए मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत मुआवजे का दावा

अनुवादित

करने के लिए ट्रिब्यूनल के समक्ष मोटर दुर्घटना दावा याचिका दायर की। मृतक राम बिलास अपनी साइकिल से अम्बारी गांव से अपने गांव जा रहा था। जब वह गांव कथौली के पास पहुंचा तो एक स्कूटर नं. यू.पी. 82 2296, जिसे उसके चालक द्वारा बहुत तेजी एवं लापरवाही से चलाया जा रहा था। इस प्रकार चलाये जा रहे उक्त स्कूटर ने मृतक की साइकिल को टक्कर मार दी। इस दुर्घटना में मृतक को बहुत गंभीर चोटें आईं और 14.1.1991 को अस्पताल में इलाज के दौरान उसकी मृत्यु हो गई।

4. मुख्य रूप से दिए गए मुआवज़े से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने यह अपील दायर की है।

5. दुर्घटना विवाद में नहीं है. लापरवाही का मुद्दा अंतिम रूप ले चुका है क्योंकि न तो बीमा कंपनी और न ही वाहन के मालिक ने मौखिक दलीलों में भी इस पर विवाद किया है। उक्त वाहन के चालक के पास दुर्घटना दिनांक को वैध एवं प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था, यह भी एक निश्चित तथ्य है। वाहन का बीमा होना और पॉलिसी शर्तों का उल्लंघन न होना एक निष्कर्ष है, जो अंतिम रूप ले चुका है। निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र मुद्दा ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे की मात्रा है।

6. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने माना है कि मृतक की आय 2,000/- रुपये प्रति माह होगी, जिसमें 40% भविष्य की आय हानि के लिए जोड़ा जाएगा और 1/2 व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती की जाएगी। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने चिकित्सा व्यय के लिए 5,000/- रुपये की राशि प्रदान की है। आगे कहा गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने गैर आर्थिक क्षति के मद में कोई राशि नहीं दी है। दुर्घटना के समय मृतक की आयु 25 वर्ष थी, इसलिए, लागू गुणक 18 होगा। उपरोक्त तर्कों के समर्थन में, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 लासूट(एससी) 1093 और सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम, (2009) 6 एससीसी 121** के निर्णय पर भरोसा किया है।।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादी-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई मुआवजे की मात्रा न्यायसंगत और उचित है। जो आय मांगी गई है उसे साबित करने के लिए किसी सबूत के अभाव में आय नहीं दी जा सकती। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दुर्घटना के वर्ष में, गुणक माता-पिता का लागू किया जाना था।

8. यह न्यायालय प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकता कि राशि न्यायसंगत और उचित है और गुणक माता-पिता का है जिसे लागू किया जाना चाहिए। इस बिंदु पर कानून अब अच्छी तरह से तय हो गया है कि गुणक मृतक का होगा।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मृतक की आय 2,000/- रुपये प्रति माह यानी 24,000/- रुपये प्रति वर्ष मानी जा सकती है। मृतक स्व-रोजगार की श्रेणी में आएगा और

दुर्घटना के समय उसकी उम्र 25-30 वर्ष के बीच थी, इसलिए, आय का 40% भविष्य में होने वाली आय हानि के लिए जोड़ा जाएगा और 1/2 व्यक्तिगत खर्चों के लिए काट लिया जाएगा जैसा कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी [2014 (4) टीएसी 637 (एससी)]** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया था। मृतक की आयु को ध्यान में रखते हुए, **श्रीमती सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम [2009 (2) टीएसी 677 (एससी)]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में 18 का गुणक स्वीकार्य होगा।

10. जहां तक गैर-आर्थिक क्षति का सवाल है, ट्रिब्यूनल ने गैर-आर्थिक क्षति के लिए कोई राशि नहीं दी है। **कुरवन अंसारी उर्फ कुरवन अली और अन्य बनाम श्याम किशोर मुर्मू और अन्य [2021 (4) टीएसी (एससी)]** के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय के फैसले के आलोक में माता-पिता/दावेदार कंसोर्टियम के नुकसान के लिए 30,000/- रुपये पाने के हकदार होंगे।

11. इसलिए, उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, अपीलकर्ताओं-दावेदारों को देय मुआवजे की कुल राशि की गणना यहां नीचे की जा रही है:

(i) वार्षिक आय: रु.24,000/- प्रति वर्ष (रु.2,000 x 12)

(ii) भविष्य की संभावनाओं का प्रतिशत 40%: रु. 9,600/-

(iii) कुल आय: रु. 24,000/- + रु. 9,600/- = रु. 33,600/-

(iv) कटौती के बाद आय 1/2: रु.33,600/- - रु.16,800/- = रु.16,800/-

(v) गुणक लागू : 18

(vi) निर्भरता का नुकसान: रु. 16,800/- X 18 = रु.3,02,400/-

(vii) गैर आर्थिक मद के तहत राशि: रु. 30,000/-

(viii) कुल मुआवजा: रु. 3,02,400/- + रु. 30,000/- = रु. 3,32,400/-

12. बढ़ी हुई राशि पर 12% ब्याज की दर नहीं दी जा सकती। दावा याचिका दाखिल करने की तारीख से फैसला आने तक ब्याज दर 7.5% और उसके बाद 6% होगी।

13. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय और डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 8 सप्ताह के भीतर राशि जमा कर देगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाएगा।

14. रिकॉर्ड और कार्यवाही तुरंत ट्रिब्यूनल को वापस भेजी जाए। दावेदारों को राशि का भुगतान किया जाएगा और कोई भी राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

15. ट्रिब्यूनल की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले अदालती फीस में कमी की राशि, यदि कोई हो, काटने का निर्देश दिया जाता है। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442, में रिपोर्ट की**

गई के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

16. श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007 (2) जीएलएच 291 में रिपोर्ट की गई के मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष से वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि ब्याज किसी भी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय रु. 50,000/- से अधिक होने पर, बीमा कंपनी/मालिक धारा 194ए (3) (ix) के तहत 'स्रोत पर कर कटौती' उचित राशि काटने का हकदार है/हैं। आयकर अधिनियम, 1961 और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। उपरोक्त दृष्टिकोण को इस उच्च न्यायालय द्वारा फर्स्ट अपील फ्राम आर्डर संख्या 23 सन् 2001 (श्रीमती सुदेस्ना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य) की रिव्यू एप्लिकेशन संख्या 1 सन् 2020 में राशि का वितरण करते समय में दोहराया गया है। उक्त निर्णय को उच्च न्यायालय गुजरात द्वारा के आर/विशेष सिविल आवेदन संख्या 4800 सन् 2021 (द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयकर आयुक्त (टीडीएस) में निर्णित दिनांक 5.4.2022 में भी दोहराया गया है।

17. यहां किए गए संशोधन के अनुसार ट्रिब्यूनल द्वारा उपरोक्त याचिका के अनुसार नई क्षतिपूर्ति निकाला जाएगा। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जहां तक संवितरण का सवाल है, इसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और ए.वी. पद्मा (सुप्रा) के फैसले पर गौर करना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना चाहिए।

18. ट्रिब्यूनल **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य में पारित आदेश दिनांक 27.1.2022** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। लम्बी अवधि बीत जाने के कारण धनराशि दावेदारों के राष्ट्रीयकृत बैंक के बचत खाते में बिना एफ.डी.आर. के जमा करायी जाये।

(2023) 5 ILRA 164

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 404/2001

श्रीमती बिंदु सिंह ...अपीलकर्ता

बनाम

हरि प्रताप सिंह एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राम सिंह, श्री अमित कुमार सिन्हा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अमरेश सिन्हा, श्री अबुभव सिन्हा

ए. **सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 -धारा 173 - न्यायाधिकरण ने इस आधार पर दावा खारिज कर दिया कि दावेदार ने ढाई महीने बाद एफआईआर दर्ज कराई, गवाह पति और पत्नी है तथा चिकित्सीय-कानूनी साक्ष्य को भी झुठलाता है - बल्कि, चिकित्सीय-कानूनी साक्ष्य दावेदार के वाद का समर्थन करते हैं क्योंकि चोटें ताजा पाई गईं, रिपोर्ट मोटर दुर्घटना के मामले में प्रारंभिक और आपातकालीन जांच के बिल्कुल अनुकूल है - दावेदार का मामला इसलिए निरस्त नहीं हो जाता क्योंकि उपचार के दौरान किसी अन्य बीमारी या समस्या का पता चला - केवल इसलिए कि दावेदार के साथ वाहन में सवार किसी अन्य घायल को पेश नहीं किया गया, दावेदार के मामले को संदिग्ध नहीं बनाता, जहां बाहरी साक्ष्य से यह सिद्ध हो जाता है - दावेदार के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं है - वाद को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया गया।** (पैरा 1 से 32)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 173 (संक्षेप में, 'अधिनियम') के अंतर्गत अपीलकर्ता की अपील है, जो मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण / 10वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा 1996 के एमएसीपी संख्या 584 में 02.09.2000 को पारित एक फैसले और निर्णय से उत्पन्न हुई है, जिसमें दावा याचिका को खारिज कर दिया गया था।

2. दावाकार - अपीलकर्ता श्रीमती बिंदु सिंह (संक्षेप में, दावेदार') द्वारा मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण / जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष 04.09.1996 को इस मामले के साथ एक दावा याचिका दायर की गई थी कि 15.06.1996 को दावेदार अपने परिवार के सदस्यों के साथ जीप में इलाहाबाद (अब प्रयागराज) से रीवा की ओर यात्रा कर रही थी, जिसका पंजीकरण संख्या यूपी-70एफ-1028 था। । शाम करीब 9 बजे जब जीप इलाहाबाद-रीवा मार्ग पर चल रही थी और थाना कौंधियारा, जिला इलाहाबाद की स्थानीय सीमा के भीतर ग्राम बरेठी नामक स्थान पर पहुंची ही थी कि जीप चालक ने तेज गति और लापरवाही से वाहन चलाते हुए पीछे की तरफ खड़े एक ट्रक को टक्कर मार दी। ट्रक रीवा की ओर जा रहा था और सड़क पर एक जगह खड़ा था, जहां अंधेरा था। ट्रक के टेल लैंप नहीं जल रहे थे और न ही यह अपनी स्थिर स्थिति के बारे में कोई अन्य संकेत प्रदर्शित कर रहा था। जीप चालक ने अपनी लापरवाही के कारण जीप के बाईं ओर से ट्रक को टक्कर मार दी। टक्कर लगने से जीप बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई। जीप के बाएं हाथ की ओर बैठी दावेदार को गंभीर चोटें आईं और उसके बगल में बैठे उसके बेटे समीर कुमार सिंह और दावेदार के पीछे बैठे एक अन्य हरीश चंद्र उर्फ़ लल्लन, जो बाएं हाथ की तरफ ही बैठे थे, को भी चोटें आईं।

3. दावेदार का दावा है कि वह एक शिक्षित महिला है और अनौपचारिक शिक्षा के लिए राज्य सरकार की एक योजना के तहत अनुदेशिका के रूप में घर से काम सकती थी । उक्त कार्य अंशकालिक था। इसके अतिरिक्त, वह अपना दूध की आपूर्ति का व्यवसाय कर सकती थी, अपने परिवार की देखभाल कर सकती थी और साथ ही कृषि भी कर सकती थी। दुर्घटना में लगी चोटों के कारण, दावेदार को भविष्य में कोई भी उत्पादक कार्य करने में असमर्थ छोड़ दिया गया है। दावेदार ने यह भी दावा किया है कि वह एक स्वस्थ व्यक्ति थी, लेकिन दुर्घटना के बाद, वह अब अपने परिवार या बाहर के लिए काम करने की स्थिति में नहीं है, जैसा कि वह पहले कर सकती थी । उसका शरीर विकृत हो गया है और चोटों ने उसे एक उदास महिला बना दिया है। अपने निजी जीवन में, उन्हें कठिनाइयों और उलटफेर का सामना करना पड़ता है। उसे चोटों के कारण मानसिक और शारीरिक झटका लगा है जो शायद उसके पूरे जीवन में उसके साथ रहने की संभावना है।

4. दावेदार का मामला यह है कि दुर्घटना के बाद, जीप के मालिक और बीमाकर्ता ने कोई कार्रवाई नहीं की। उसने इस मामले की सूचना पुलिस अधीक्षक, यमुनापार इलाहाबाद को व्यक्तिगत रूप से दिनांक 23.08.1996 को उनके समक्ष उपस्थित होकर दी। पुलिस अधीक्षक उपरोक्त ने दिनांक 23.08.1996 के अपने आदेश द्वारा पुलिस स्टेशन कौंधियारा, जिला इलाहाबाद में सक्षम अधिकारी को दुर्घटना के बारे में एक रिपोर्ट दर्ज करने का आदेश दिया। इसके बाद 1996 का अपराध संख्या 130, भारतीय दंड संहिता की धारा 279, 337 के तहत 01.09.1996 को पुलिस स्टेशन कौंधियारा, जिला इलाहाबाद दर्ज किया गया, जहां दावेदार के पति अशोक कुमार सिंह सूचना देने वाले हैं। हरि प्रताप सिंह को दावा याचिका में विपरीत पक्ष नंबर 1 के रूप में शामिल किया गया था, जो जीप के मालिक हैं। इसके बाद उसे 'मालिक' के रूप में संदर्भित किया जाएगा। यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 5ए, सरदार पटेल मार्ग, सिविल लाइंस, इलाहाबाद अपने शाखा प्रबंधक के माध्यम से दावा याचिका के विपरीत पक्ष संख्या 2 हैं। उक्त बीमा कंपनी जीप की बीमाकर्ता हैं। बीमा कंपनी को अपील के लिए प्रतिवादी नंबर 2 के रूप में शामिल किया गया है। उपर्युक्त बीमा कंपनी को इसके बाद 'बीमाकर्ता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

5. मालिक की ओर से दिनांक 30.07.1997 को एक लिखित बयान दायर किया गया था, जिसमें पेपर नंबर 10-ए था। मालिक ने सामान्यतः दावा याचिका में आरोपों से इनकार किया। मालिक ने दलील दी कि दावेदार का यह आरोप गलत तथा आधारहीन है कि जीप चालक द्वारा तेज गति एवं लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण दुर्घटना हुई। उन्होंने अपने लिखित बयान के पैराग्राफ नंबर 11 में दुर्घटना के तथ्य से इनकार किया; और विशेष रूप से पैराग्राफ संख्या 12 में । इस बात से इनकार नहीं किया गया कि मालिक जीप का पंजीकृत मालिक है। इस बात से भी इंकार नहीं किया गया कि उपर्युक्त जीप का बीमाकर्ता के साथ बीमा किया गया था, जहां पॉलिसी 17.12.1995 से 16.12.1996 तक प्रभावी थी।

यह भी दलील दी गई थी कि वाहन, किसी भी मामले में, विधिवत अधिकृत चालक द्वारा चलाया जा रहा था, निश्चित रूप से, इस रुख को बनाए रखते हुए कि संबंधित जीप किसी भी दुर्घटना में शामिल नहीं थी।

6. बीमाकर्ता की ओर से दिनांक 10 जुलाई, 1998 को एक अलग लिखित विवरण दायर किया गया था, जिसमें पेपर नंबर 17-ए था। दावा याचिका में लगाए गए आरोपों को आम तौर पर बीमाकर्ता की दलीलों के पहले भाग में खारिज कर दिया गया था, और अतिरिक्त कथन में, यह कहा गया था कि पंजीकरण पुस्तिका, ड्राइविंग लाइसेंस और वाहन का रूट परमिट, अन्य कागजात के अतिरिक्त, दावा याचिका के साथ दायर नहीं किया गया है। बीमाकर्ता के लिखित बयान के पैराग्राफ नंबर 24 में एक अजीब वाक्य है, जिसमें कहा गया है कि 'याचिका निरर्थक और अस्पष्ट होने के कारण खारिज किये जाने योग्य है'। लिखित बयान पर एक वकील द्वारा हस्ताक्षर किए जा रहे हैं, जिन्होंने निश्चित रूप से इसकी सामग्री का अध्ययन किया होगा, कोई भी इस तरह की निरर्थक दलील की उम्मीद नहीं करेगा। इसके बाद मालिक की तर्ज पर बीमाकर्ता की ओर से यह दलील दी जाती है कि जीप से जुड़ी कोई दुर्घटना कभी नहीं हुई। एक दलील यह भी है कि दुर्घटना के समय वाहन बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों के खिलाफ चलाया जा रहा था। बीमाकर्ता की ओर से एक दलील है कि दुर्घटना के समय जीप को टैक्सी के रूप में चलाया जा रहा था, और इस प्रकार, दावा याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। आवश्यक पक्षों के शामिल न होने के बारे में भी एक दलील है, जो कि इस तथ्य के आधार पर आग्रह किया गया है कि ट्रक के मालिक और बीमाकर्ता को शामिल नहीं किया गया है। ऐसा कहा गया कि दुर्घटना के समय, वाहन के चालक के पास विशेष प्रकार के वाहन को चलाने के लिए वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। बीमाकर्ता ने अनुरोध किया है कि, इसलिए, वे उत्तरदायी नहीं हैं।

7. पक्षकारों की उपर्युक्त दलीलों पर अधिकरण ने निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए हैं (जिसका हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है):

"1. क्या कथित दुर्घटना की तारीख यानी 15.06.1996 को वाहन का चालक, जिसका पंजीकरण संख्या यूपी-70एफ-1028 था, के कारण यह दुर्घटना हुई (वाहन के साथ, पंजीकरण संख्या CPA/3812)। तेज गति से और लापरवाही से वाहन चलाने के कारण? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

2. क्या उक्त जीप के चालक के पास, जिसका पंजीकरण संख्या यूपी-70एफ-1028 था, दुर्घटना के समय वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था? प्रभाव?

3. क्या जीप बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों का उल्लंघन करके चलाई जा रही थी? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

4. दावेदार मुआवजे की कितनी राशि प्राप्त करने का हकदार है और किस विपक्षी पक्ष से?

5. क्या दावा याचिका वाहन संख्या CPA/3812 के मालिक को शामिल न किए जाने के कारण खराब है?? प्रभाव?"

8. दावेदार ने पीडब्ल्यू -1 के रूप में अपने मामले के समर्थन में गवाही देने वाले गवाह-बॉक्स में प्रवेश किया। उनके पति अशोक कुमार सिंह की जांच पीडब्ल्यू-2 के रूप में की गई थी। दस्तावेजों की एक सूची द्वारा, पेपर नंबर 20-ग, दिनांक 01.09.1996 की एफआईआर की एक कार्बन कॉपी, बीमाकर्ता के समक्ष प्रस्तुत किए गए दिनांक 02.08.1996 के आवेदन की एक प्रति, 23.08.1996 को एस.एस.पी., इलाहाबाद को भेजी गई जानकारी की एक कार्बन कॉपी और दवाओं की खरीद आदि को दर्शाने वाला एक कैश-मेमो दायर किया गया था। मालिक ने जीप के पंजीकरण प्रमाण पत्र के अलावा चालक के ड्राइविंग लाइसेंस और बीमा पॉलिसी की फोटोस्टेट कॉपी दाखिल की।

9. इस न्यायालय ने नोटिस किया कि साक्ष्य के सारांश के अलावा, जिसे ट्रिब्यूनल ने अपने फैसले में नोट किया है, रिकॉर्ड पर अन्य दस्तावेज भी हैं, जैसे कि अल्ट्रासाउंड स्कैन रिपोर्ट और आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, एसआरएन अस्पताल, इलाहाबाद द्वारा जारी 16.06.1996 की चोट रिपोर्ट, जिसमें दावेदार व्यक्ति पर तीन चोटों का उल्लेख किया गया है, जिसमें टिप्पणी की गई है कि चोटों को निगरानी में रखा जाए और एक्स-रे परीक्षण की सलाह दी गई है । रिकॉर्ड पर राज नर्सिंग एंड मैटरनिटी होम से एक्स-रे प्लेटें भी हैं। इसके अतिरिक्त, डा. ए. के. प्रधान, प्लास्टिक एवं पुनर्निर्माण सर्जन, वाराणसी का दिनांक 16-09-1996 का एक पर्चा है जिसमें इसे दुर्घटनावश लगी चोट का मामला बताया गया है जिसका इलाहाबाद में पहले ही उपचार किया जा चुका है। अन्य डॉक्टरों के पर्चे भी हैं।

10. ट्रिब्यूनल ने मुद्दा संख्या 1 पर अपने निष्कर्षों पर वापस आते हुए इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि संबंधित जीप दुर्घटना में शामिल है या वाहन से जुड़ी दुर्घटना से इनकार कर दिया गया है। यह टिप्पणी की गई है कि दुर्घटना और वहां लगी चोटों को साबित करने का भार दावेदार पर होगा। ट्रिब्यूनल ने कहा है कि दावेदार ने खुद को पीडब्ल्यू -1 और उसके पति अशोक कुमार ने पीडब्ल्यू -2 के रूप में गवाही दी है। ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि दोनों गवाह इच्छुक गवाह हैं। यह नोट किया गया है कि दोनों गवाह 15-06-1996 को शाम 9 बजे जीप पर यात्रा कर रहे थे, जब कहा जाता है कि दुर्घटना हुई थी, जिसमें ट्रक नंबर सीपीए / 3812 शामिल था। । ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि दुर्घटना के बारे में किसी भी वाहन के चालक द्वारा त्वरित प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है। अशोक कुमार सिंह ने अपनी पहली लिखित रिपोर्ट 01.09.1996 को दी है, यानी दुर्घटना के लगभग ढाई महीने बाद। इस देरी को स्पष्ट करने के लिए कोई कारण नहीं दिखाया गया है।

11. ट्रिब्यूनल ने कहा है कि दुर्घटना के बाद कार्रवाई का स्वाभाविक तरीका यह है कि चालक या घायल को पुलिस में प्राथमिकी दर्ज करनी होगी। इसलिए, एफआईआर दर्ज करने में

देरी, ट्रिब्यूनल की राय में एक ऐसी स्थिति की ओर ले जाती है, जहां गवाह-बॉक्स में दावेदार की गवाही को उससे कोई समर्थन नहीं मिलता है। ट्रिब्यूनल ने कहा है कि पीडब्ल्यू -1 ने अपनी गवाही में कहा है कि वह अपने परिवार के साथ सतना, मध्य प्रदेश जा रही थी और पीडब्ल्यू -2, अशोक कुमार ने भी कहा है कि परिवार इलाहाबाद से सतना जा रहा था। ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि अशोक कुमार सिंह द्वारा पुलिस में दर्ज दिनांक 01.09.1996 की प्राथमिकी में यह उल्लेख किया गया है कि परिवार इलाहाबाद से मैहर जा रहा था। इसके विपरीत, ट्रिब्यूनल ने पाया कि दावा याचिका में यह कहा गया है कि परिवार इलाहाबाद से रीवा जा रहा था। ट्रिब्यूनल ने राय दी है कि यह एक विरोधाभास है जो दावेदार के मामले को संदिग्ध बनाता है।

12. पीडब्ल्यू-2, अशोक कुमार को ट्रिब्यूनल ने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि दो गवाहों के अलावा, उनके परिवार के सदस्य भी जीप पर यात्रा कर रहे थे और दुर्घटना में, उनकी पत्नी और हरीश चंद्र अकेले घायल हो गए। हालांकि, हरीश चंद्र की चोटों से संबंधित कोई चोट रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं रखी गई है। दावेदार की ओर से हरीश चंद्र से गवाह के रूप में पूछताछ भी नहीं की गई है। ट्रिब्यूनल ने राय दी है कि दावेदार ने इस प्रकार, एक मुख्य और महत्वपूर्ण गवाह पेश नहीं किया है।

13. ट्रिब्यूनल ने कहा है कि दावेदार ने अपनी गवाही में कहा है कि दुर्घटना के बाद, वह बेहोश हो गई थी और 16.06.1996 को 1.05 बजे एसआरएन अस्पताल, इलाहाबाद में उसकी जांच की गई थी। ट्रिब्यूनल ने कहा है कि मेडिकल जांच रिपोर्ट में केवल तीन चोटें दिखाई गई हैं, लेकिन इस तथ्य को दर्ज नहीं किया गया है कि दावेदार बेहोश हो गयी थी। चोटों को ध्यान में रखते हुए, ट्रिब्यूनल रिकॉर्ड करता है कि मेडिको-लीगल रिपोर्ट के अनुसार, दावेदार के माथे और गाल के बीच चोट थी, जिसकी माप 1.5 सेमी x 3 सेमी थी, जो एक खुला घाव था। उसकी ठोड़ी पर एक हड्डी का गहरा घाव था - 8 x 2 सेमी का, और उसकी छाती पर 25x25 सेमी की सूजन थी। ट्रिब्यूनल के अनुसार, रिपोर्ट में कहा गया है कि सभी चोटें प्रकृति में सरल हैं, जो एक कुंद वस्तु के कारण होती हैं। चोट की रिपोर्ट में इस तथ्य को दर्ज नहीं किया गया है कि चोटें मोटर दुर्घटना में लगी हैं। यह टिप्पणी की गई है कि चिकित्सा जांच के समय, दावेदार ने यह नहीं कहा था कि उसे मोटर दुर्घटना में चोटें आई हैं। ट्रिब्यूनल ने माना है कि इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मेडिको-लीगल साक्ष्य दुर्घटना के बारे में दावेदार के मामले का समर्थन नहीं करता है।

14. ट्रिब्यूनल ने तब एफआईआर दर्ज करने में दावेदार द्वारा की गई देरी के कारण की जांच की है। यह नोट किया गया है कि यह दावेदार का मामला है कि विचाराधीन वाहन के मालिक ने दावेदार से वादा किया था कि वह यह सुनिश्चित करेगा कि बीमाकर्ता देय मुआवजे का भुगतान करे और यह उक्त कारण है कि दावेदार ने प्राथमिकी दर्ज नहीं की। ट्रिब्यूनल ने दावेदार की इस दलील पर ध्यान दिया है कि दावा याचिका में दावेदार द्वारा उपरोक्त दावे को प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित बयानों में विशेष रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है।

जाहिर तौर पर इस दावे से इनकार नहीं किया जा रहा है। हालांकि, ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश V और VI के प्रावधान अधिनियम के तहत दावे की सुनवाई के लिए उचित शक्ति लागू नहीं करते हैं। इस प्रकार, ट्रिब्यूनल की राय में उक्त दलील का कोई खास महत्व नहीं है।

15. ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि मालिक ने अपने अतिरिक्त कथन में विशेष रूप से दुर्घटना में वाहन की भागीदारी से इनकार किया है। दलीलों की इस स्थिति में यदि दावेदार यह साबित करना चाहती है कि उसने बीमाकर्ता के समक्ष दावा किया था, तो इसे साबित करने का दायित्व उस पर था। ट्रिब्यूनल ने पाया है कि उक्त दायित्व के पालन के अनुक्रम में, दावेदार ने अपनी ओर से अशोक कुमार द्वारा बीमाकर्ता के समक्ष किए गए एक आवेदन की एक प्रति दायर की है, लेकिन उक्त आवेदन, जो पेपर नंबर 20- ग /4 है, कानून के अनुसार साबित नहीं हुआ है। ट्रिब्यूनल द्वारा एक टिप्पणी है कि यह आवेदन मालिक द्वारा बीमाकर्ता को नहीं किया गया है, और इसलिए, यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि मालिक ने दावेदार से वादा किया था कि वह बीमाकर्ता से उसके लिए मुआवजा सुरक्षित करेगा। ट्रिब्यूनल द्वारा एक मिश्रित टिप्पणी है जिसमें कहा गया है कि यदि इस तरह की स्थिति में, दावेदार इस तथ्य से लाभ उठाना चाहती है, तो उसे विशेष रूप से इसे साबित करना होगा।

16. इस निष्कर्ष में उल्लिखित तथ्य, जिसके बारे में ट्रिब्यूनल का कहना है, सभी को मालिक द्वारा दावा किए गए वादे के बारे में प्रतीत होता है कि वह यह सुनिश्चित करेगा कि बीमाकर्ता दावेदार को मुआवजे का भुगतान करे। ट्रिब्यूनल ने अगली टिप्पणी की कि दावेदार द्वारा उक्त कथन साक्ष्य के अभाव में स्वीकार करने योग्य नहीं है। ट्रिब्यूनल का कहना है कि यह उल्लेखनीय है कि बीमाकर्ता को आवेदन करने वाले अशोक कुमार की पीडब्ल्यू-2 के रूप में जांच की गई थी, लेकिन उन्होंने उक्त आवेदन को साबित नहीं किया है। इसलिए, दावेदार के मामले में दी गई दलील और उसके सबूत अलग हैं।

17. ट्रिब्यूनल द्वारा दावेदार के मामले पर अविश्वास करने का अगला कारण यह दिया गया है कि दावेदार आगे की सीट पर नहीं बैठी थी, बल्कि एक के पीछे बैठी थी, जबकि विचाराधीन वाहन का मालिक और दावेदार का बेटा ड्राइवर के बगल में आगे की सीट पर बैठे थे । ट्रिब्यूनल द्वारा यह टिप्पणी की गई है कि दावेदार ने मालिक और उसके बेटे समीर को लगी चोटों के बारे में बात नहीं की है, जो ड्राइवर के बगल में सामने की सीट पर बैठे थे, और यह अस्वाभाविक है कि उन्हें चोटें नहीं आएंगी। ट्रिब्यूनल ने यह माना है कि उपरोक्त तथ्य से पता चलता है कि दावेदार की गवाही कल्पना पर आधारित है।

18. ट्रिब्यूनल द्वारा यह देखा गया है कि पीडब्ल्यू -2, अशोक कुमार ने अपनी गवाही में कहा है कि सामने की सीट पर, ड्राइवर, मालिक, हरीश चंद्र और एक अन्य व्यक्ति बैठे थे, लेकिन दावेदार द्वारा इनमें से किसी भी व्यक्ति को सबूत के रूप में पेश नहीं किया

गया है। यह भी देखा गया है कि खड़े ट्रक के ड्राइवर, क्लीनर या अन्य व्यक्ति, जिन्होंने दुर्घटना देखी थी, को भी गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया है। अधिकरण ने राय दी है कि उक्त साक्ष्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उक्त जीप दुर्घटना में शामिल थी, जो कि 15.06.1996 को चालक की गलती और लापरवाही के कारण हुई थी और जिसमें दावेदार को चोटें आई थीं।

19. ट्रिब्यूनल ने उपरोक्त टिप्पणी के साथ मुद्दे संख्या 1 पर अपनी राय समाप्त नहीं की, बल्कि बीमाकर्ता की ओर से पेश हुए विद्वान वकील द्वारा कुछ अनावश्यक प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ा है। ट्रिब्यूनल ने बीमाकर्ता के विद्वान वकील की इस दलील पर ध्यान दिया है कि दावेदार मुआवजे के लिए दावे करने में अभ्यस्त है। अपनी दलील के समर्थन में, ट्रिब्यूनल के समक्ष बीमाकर्ता के वकील एक मामले के साथ आए थे कि दावेदार ने ऋण प्राप्त करने के बाद मवेशी खरीदे थे। उसने मवेशियों को मरा हुआ दिखाया था और बीमा कंपनी से मुआवजा प्राप्त किया था। मवेशियों की मौत के कारण होने वाले नुकसान से संबंधित कागजात पेपर संख्या 20- ग /13 से 20- ग /16 के रूप में देखे गए हैं।

20. इसके बाद बीमाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा एक और तर्क पर ध्यान दिलाया गया है, जिसमें कहा गया है कि जीवन ज्योति अस्पताल में दावेदार द्वारा किए गए उपचार से संबंधित कागजात स्तन कैंसर से संबंधित हैं और दवाओं के लिए खरीद वाउचर भी उन दवाओं से संबंधित हैं, जो कैंसर के इलाज के लिए हैं। ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि दावेदार दुर्घटना में लगी चोटों के कारण कैंसर से पीड़ित है। यदि दावेदार यह साबित करना चाहती थी कि चोटों के कारण उसे कैंसर हुआ था, तो चिकित्सा साक्ष्य द्वारा इसे साबित करने का बोझ उस पर था। ट्रिब्यूनल ने टिप्पणी की है कि स्पष्ट रूप से दावेदार को दुर्घटना के परिणामस्वरूप स्तन कैंसर का सामना नहीं करना पड़ा है। इन अतिरिक्त टिप्पणियों के आधार पर, अधिकरण ने अपनी राय को दोहराया है कि 15-06-1996 को जीप से संबंधित कथित दुर्घटना कभी हुई ही नहीं।

21. बीमाकर्ता द्वारा साक्ष्य की प्रतीक्षा में, बीमाकर्ता के खिलाफ मुद्दा संख्या 2 और मुद्दा संख्या 3 पर भी निर्णय लिया गया है। मालिक और बीमाकर्ता के खिलाफ मुद्दा संख्या 5 भी तय किया गया है, जिसमें कहा गया है कि ट्रक का मालिक और बीमाकर्ता आवश्यक पक्ष नहीं हैं। मुद्दा संख्या 4 दावेदार के खिलाफ तय किया गया है, जो मुद्दा संख्या 1 पर निष्कर्षों के अनुरूप है, यह मानते हुए कि दुर्घटना कभी नहीं हुई थी।

22. दावेदार के विद्वान वकील श्री राम सिंह की ओर से श्री अमित कुमार सिन्हा अधिवक्ता और बीमाकर्ता के विद्वान वकील श्री अमरेश सिन्हा अधिवक्ता की ओर से श्री अनुभव सिन्हा को सुना । मालिक की ओर से कोई पेश नहीं हुआ । निचली अदालत के रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया है।

23. ट्रिब्यूनल ने बिना किसी अच्छे कारण के संदेह के आधार पर पीडब्ल्यू -1 और पीडब्ल्यू -2 की गवाही की सराहना शुरू कर दी है। ट्रिब्यूनल ने पाया है कि दोनों गवाह इच्छुक गवाह हैं, हालांकि उसके बाद बहुत कुछ नहीं कहा गया है। ऐसा लगता है कि ट्रिब्यूनल की इस टिप्पणी ने दो चश्मदीद गवाहों की गवाही की सराहना करने में अपनी दृष्टि को रंग दिया है। पीडब्ल्यू-1 घायलों में से एक है और उसने दुर्घटना के तरीके के बारे में विस्तार से गवाही दी है, जिसकी पुष्टि पीडब्ल्यू -2, अशोक कुमार, उसके पति, जो वाहन में सवार एक यात्री भी हैं, की गवाही से काफी हद तक पुष्टि हुई है। ऐसा कोई सिद्धांत या यहां तक कि विवेक का कोई नियम नहीं है जिसके द्वारा दुर्घटनाग्रस्त वाहन में सवार दो यात्रियों की गवाही को केवल इसलिए संदिग्ध माना जाए क्योंकि वे पुरुष और पत्नी हैं और उनमें से एक दावेदार है। यह दावेदार का मामला है कि वह अपने परिवार के साथ दुर्घटनाग्रस्त वाहन में यात्रा कर रही थी। अपनी गवाही में, उसने परिवार के सदस्यों का विवरण दिया है, जो यात्रा कर रहे थे। इसमें उनके पति पीडब्ल्यू-2 अशोक कुमार के अलावा उनके दो बेटे शामिल हैं। इन परिस्थितियों में, ट्रिब्यूनल का पीडब्ल्यू -1 और पीडब्ल्यू -2 की गवाही पर संदेह करना सही नहीं था क्योंकि वे पुरुष और पत्नी हैं।

24. अगला निष्कर्ष, जो पहले निष्कर्ष की तुलना में अधिक प्रभावी है, यह है कि दावेदार के पति अशोक कुमार सिंह द्वारा 01.09.1996 को दर्ज की गई एफ.आर., जिसमें दुर्घटना के बारे में पहले कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी, दावेदार के मामले का समर्थन नहीं करती है। ट्रिब्यूनल का यह निष्कर्ष, हालांकि इस तथ्य के बारे में सच है कि घटना के ढाई महीने बाद एफआईआर दर्ज की गई थी, टिकाऊ नहीं है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि कॉलम नंबर 23 के तहत दावा याचिका के पैराग्राफ नंबर 6 में, एक विशिष्ट शिकायत है कि पुलिस के साथ जानकारी दर्ज नहीं की गई थी, क्योंकि मालिक और उसके बेटे आर.के. जायसवाल, जो क्षेत्र में उच्च प्रतिष्ठा के पुरुष हैं, ने दावेदार और उसके पति को आश्वासन दिया था कि वे दावेदार को मुआवजे का भुगतान सुनिश्चित करेंगे। जिसे बाद में उन्होंने पूरा नहीं किया; और मालिक की ओर से दायर लिखित बयान में या उस मामले के लिए बीमाकर्ता की ओर से दायर किए गए लिखित बयान में इस कथन को कम से कम रूप में अस्वीकार या खंडन नहीं किया गया है। न्यायाधिकरण ने यह कहते हुए अपनी बात को छोटा कर दिया है कि आदेश V और VI सीपीसी के सिद्धांत ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही के लिए उचित शक्ति लागू नहीं करते हैं। किसी मुख्य तथ्य को अस्वीकार न करना, चाहे वह सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा शासित सिविल क्षेत्राधिकार की अदालत के समक्ष कार्यवाही में हो या अन्यथा, एक ही परिणाम की ओर ले जाएगा। एक गैर-यात्रा से यह निष्कर्ष निकलता है कि मालिक और उसके बेटे द्वारा दावेदार से किसी प्रकार का वादा किया गया था कि वे मुआवजे का भुगतान सुनिश्चित करेंगे। यदि उन परिस्थितियों में, चोट लगने के मामले में, एक साधारण व्यक्ति तुरंत एफआईआर दर्ज नहीं करता है, जहां दुर्घटना के होने के बारे में अन्य ठोस सबूत हैं, तो देरी दावेदार के मामले को बदनाम करने के लिए काम नहीं करेगी।

एफआईआर दर्ज करना एक आम आदमी के लिए सुखद काम नहीं है। यह सामान्य अनुभव है कि जब तक अपराध गंभीर नहीं होता है, तब तक दुनिया के पुरुष सूचना दर्ज करने के लिए पुलिस के साथ बातचीत करने से बचते हैं, हालांकि यहां स्पष्टीकरण नहीं है। इस न्यायालय की राय में, मालिक और उसके बेटे द्वारा किए गए वादे के बावजूद कि चोटों के लिए उसे मुआवजा सुनिश्चित किया जाएगा, पुलिस को तुरंत दुर्घटना की सूचना नहीं देने में दावेदार के आचरण का न्याय करना निश्चित रूप से एक प्रासंगिक कारक है। उक्त कारण के लिए इस न्यायालय की राय में एफआईआर को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, हालांकि इसका प्रामाणिक मूल्य पुलिस के साथ तुरंत दर्ज की गई जानकारी से बहुत कम हो सकता है।

25. अगला निष्कर्ष, जिसे ट्रिब्यूनल ने दावेदार के मामले पर अविश्वास करने के लिए दर्ज किया है, वह यह है कि अपनी गवाही में पीडब्ल्यू -1 और पीडब्ल्यू -2 ने कहा है कि वे इलाहाबाद से सतना जा रहे थे, जबकि पीडब्ल्यू -2 द्वारा 01.09.1996 को दर्ज की गई एफआईआर में, यह आरोप लगाया गया है कि दावेदार और उसका परिवार मैहर जा रहे थे; इसके विपरीत दावा याचिका में कहा गया है कि दावेदार रीवा जा रहा था। यह सब एक विरोधाभास माना गया है जो दावेदार के मामले को अविश्वसनीय और संदिग्ध बनाता है। पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 की गवाही के अवलोकन से पता चलता है कि परिवार इलाहाबाद से सतना जा रहा था, लेकिन एफआईआर के संदर्भ में इसमें विरोधाभास पाया गया, क्योंकि इसमें उल्लेख किया गया है कि दावेदार और उसका परिवार मैहर जा रहे थे, यह वास्तविक होने के बजाय सबूतों के एक सैद्धांतिक अध्ययन पर आधारित है। मैहर मध्य प्रदेश में सतना जिले की एक तहसील है, जो तीर्थ स्थान के रूप में अपनी स्थिति के लिए प्रतिष्ठित है। इसलिए, यदि दावेदार और उसके गवाहों ने अपनी गवाही में अपने गंतव्य का उल्लेख सतना के रूप में किया है, लेकिन पीडब्ल्यू -2 ने दर्ज एफआईआर में इसे मैहर के रूप में वर्णित किया है, तो यह बिल्कुल विरोधाभास नहीं हो सकता है। यह विरोधाभास होगा, अगर प्रतिवादियों ने एफआईआर में उनके पिछले बयान के संदर्भ में पीडब्ल्यू -2 का सामना किया था, और उन्होंने संतोषजनक ढंग से समझाया नहीं था कि गंतव्य को अलग तरीके से क्यों वर्णित किया गया था। चूंकि ऐसा नहीं किया गया था, इसलिए साक्ष्य को दावेदार के पक्ष में उदारतापूर्वक देखा जाना चाहिए, जब तक कि विसंगति अकथनीय न हो। इसे उदारतापूर्वक देखा जाना चाहिए, क्योंकि आखिरकार मोटर दुर्घटना का दावा कानून के एक लाभकारी टुकड़े के तहत एक कार्यवाही है, जिसे मनी सूट के हठी दृष्टिकोण के साथ नहीं आजमाया जाना है।

26. जहां तक इस संबंध में दलील का संबंध है, ट्रिब्यूनल ने स्पष्ट त्रुटि में पाया है कि दावा याचिका में, दावेदार ने दावा किया है कि परिवार इलाहाबाद से रीवा जा रहा था। कॉलम नंबर 9 में दुर्घटना स्थल 'इलाहाबाद-रीवा रोड' बताया गया है। कॉलम संख्या 26 में, जहां मामले को वर्णनात्मक रूप से निर्धारित किया गया है, दलील यह है: 'जीप वाहन सं0 यूपी-

70एफ-1028 जिसमे याचिनी अपने परिवार के सदस्यों के साथ इलाहाबाद से रीवा की तरफ यात्रा कर रही थी'. उक्त याचिका यह नहीं दिखाती है कि दावेदार ने दावा किया है कि वह और उसका परिवार इलाहाबाद से गंतव्य रीवा के लिए आगे बढ़ रहे थे। बल्कि यह कहा गया है कि वाहन रीवा की ओर बढ़ रहा था। यह एक न्यायिक नोटिस लिया जाना चाहिए कि मैहर, जो जिला सतना में स्थित है, जाने के लिए, किसी को इलाहाबाद-रीवा रोड लेना होगा, तहसील मैहर में प्रवेश करने से पहले रीवा पहुंचना होगा, तीर्थ सतना से 42 किलोमीटर दूर स्थित है। साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ने से, कोई भी स्पष्ट रूप से अनुमान लगा सकता है कि दावेदार की गवाही में उनके गंतव्य के बारे में कोई विरोधाभास नहीं है। दावा याचिका में, यह रीवा का प्रासंगिक संदर्भ हो सकता है और अन्य जगहों पर गंतव्य का अधूरा संदर्भ हो सकता है। ट्रिब्यूनल ने इन तथ्यों को पूरी तरह से खो दिया है और इस बिंदु पर दावेदार के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय वास्तविकता से संपर्क खो दिया है। गंतव्य के बारे में विरोधाभास के आधार पर ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

27. दुर्घटना के बारे में दावेदार की गवाही पर अविश्वास करने का दूसरा कारण यह है कि दावेदार ने हरीश चंद्र को पेश नहीं किया है, जो उसके अलावा बोर्ड पर दूसरे यात्री थे, जिन्हें चोटें आई थीं। यह माना गया है कि उपरोक्त गवाह को पेश करने में विफलता महत्वपूर्ण सबूतों को रोकने का कारण बनती है। इससे, हालांकि स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है, एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया है। उक्त निष्कर्ष भी टिकाऊ नहीं है। केवल इसलिए कि दावेदार के साथ वाहन पर सवार एक अन्य घायल को पेश नहीं किया गया है, दावेदार के मामले को संदिग्ध नहीं बनाएगा, जहां साक्ष्य से यह साबित होता है। इसके अलावा, दावेदार के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि दुर्घटनाग्रस्त वाहन पर सवार एक अन्य घायल को गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया है।

28. ट्रिब्यूनल द्वारा यह माना गया है कि दावेदार का मामला मेडिको-लीगल साक्ष्य द्वारा झूठा है। यह टिप्पणी की जाती है कि दावेदार ने अपनी गवाही में कहा है कि वह दुर्घटना के समय बेहोश हो गई थी, लेकिन एसआरएन अस्पताल से 16.06.1996 को रात 1.05 बजे दर्ज मेडिकल रिपोर्ट में यह नहीं कहा गया है कि दावेदार बेहोश थी। इस तरह के डॉक्टर की ओर से चूक को इस बात पर अविश्वास करने के लिए नहीं पढ़ा जा सकता है कि दावेदार को कभी चोट नहीं लगी।

29. चिकित्सा-कानूनी साक्ष्य के बारे में इस निष्कर्ष की एक और विशेषता यह है कि ट्रिब्यूनल ने चोटों के विवरण के बाद, माना है कि सभी चोटें प्रकृति में सरल पाई गईं, जो एक कठोर और कुंद वस्तु के कारण हुईं। निष्कर्ष का उक्त हिस्सा रिकॉर्ड के प्रथमदृटया स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है। आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, एसआरएन अस्पताल, इलाहाबाद द्वारा मूल रूप में लिखी गई दिनांक 16.06.1996 की रिपोर्ट (जिसे कुछ स्थानों पर एक दस्तावेज फाड़ दिया गया था) के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि

चोट एक कठोर और कुंद वस्तु के कारण लगी थी, जिसे एक्स-रे जांच के लिए सलाह के साथ निगरानी में रखा जाना था। अवधि ताजा है। रिपोर्ट में आगे लिखा है कि मरीज को भर्ती किया जाए। इसमें यह भी कहा गया है कि पुलिस और आरएसओ को सूचित किया गया था। रिपोर्ट के इस सभी हिस्से को ट्रिब्यूनल द्वारा पूरी तरह से गलत पढ़ा गया है। मेडिको-लीगल रिपोर्ट में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि चोट साधारण है। इसके बजाय, इसने इसे एक ऐसा माना है जिसे एक्स-रे परीक्षा के लिए सलाह के साथ निगरानी में रखा जाना था। पुलिस को भी सूचित किया गया है कि चोटों का चिकित्सकीय-कानूनी स्वरूप क्या है। यदि, इसलिए, डॉक्टर ने यह उल्लेख करना छोड़ दिया है कि मामला मोटर दुर्घटना से संबंधित है, तो फिर चूक डॉक्टर द्वारा की जाती है और दावेदार के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । इसलिए, ट्रिब्यूनल ने यह कहते हुए गलती की है कि मेडिको-लीगल रिपोर्ट में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है कि चोटें मोटर दुर्घटना में लगी थीं, दावेदार के मामले पर संदेह पैदा करता है। ट्रिब्यूनल द्वारा निष्कर्ष का अंतिम भाग जो कहता है कि दावेदार का मामला चिकित्सा-कानूनी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, ऊपर दिए गए सभी कारणों के लिए, बिल्कुल भी टिकाऊ नहीं है। बल्कि, मेडिको-लीगल साक्ष्य दावेदार के मामले का समर्थन करते हैं क्योंकि चोटें ताजा देखी गईं और डॉक्टर ने पुलिस को सूचित करने का निर्देश दिया। चोटों को निगरानी में रखा गया था और एक्स-रे जांच की सलाह दी गई थी। रिपोर्ट मोटर दुर्घटना के मामले में प्रारंभिक और आपातकालीन परीक्षा के साथ बिल्कुल संगत है। तदनुसार, इसे आयोजित किया जाता है।

30. ट्रिब्यूनल ने दावेदार के मामले को भी खारिज कर दिया है, क्योंकि दावेदार के पति अशोक कुमार सिंह द्वारा मुआवजे का दावा करने के लिए बीमाकर्ता के समक्ष 02.08.1996 को एक आवेदन पेश किया गया था, हालांकि रिकॉर्ड पर दायर किया गया था, साबित नहीं हुआ है। यहां तक कि अगर उक्त दस्तावेज पीडब्ल्यू - 2 द्वारा गवाह-बॉक्स में साबित नहीं किया गया है, तो इसे सबूत से बाहर रखा जा सकता है, लेकिन यह अपने आप में दावेदार के मामले को ख़राब नहीं करेगा, जो अन्यथा दोनों गवाहों के पैरोल साक्ष्य से अच्छी तरह से साबित होता है। वाहन में सवार दोनों गवाह मोटे तौर पर सबूतों के बारे में सुसंगत हैं, जो न केवल शुरू में किए गए मेडिको-लीगल परीक्षण द्वारा, बल्कि अन्य चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित है। डॉ. ए. के. प्रधान, सर्जन द्वारा दिनांक 16.09.1996 को एक उपचार-सह-पर्चे ज्ञापन है, जिन्होंने अपने पर्चे में उल्लेख किया है कि यह मामला आकस्मिक चोट का है। उक्त नुस्खा एक प्लास्टिक सर्जन द्वारा किया गया है, जिसे बाद में पुनर्निर्माण सर्जरी के लिए परामर्श दिया गया था। मरीज का अधिकांश इलाज राज नर्सिंग होम, इलाहाबाद और एनईएमए आई हॉस्पिटल, वाराणसी में किया गया है। एनईएमए आई हॉस्पिटल के डॉक्टर के पर्चे में फिर से इसे दुर्घटना का मामला बताया गया है। पीडब्ल्यू-1 ने अपनी परीक्षा-इन-चीफ में गवाही दी है कि उसका इलाज 16.06.1996 से 30.06.1996 तक राज नर्सिंग होम, इलाहाबाद में और उसके

बाद एक बाहरी रोगी के रूप में किया गया था। उल्लेखनीय है कि वाराणसी के डॉ. शिव प्रसाद गुप्ता अस्पताल के डॉ. एके प्रधान ने भी उनका इलाज किया था। राज नर्सिंग होम के मेडिकल प्रिस्क्रिप्शन और मेडिसिन वाउचर और डॉ. प्रधान के पर्चे से साबित होता है कि दावेदार का पहले उसकी चोटों के लिए इलाज किया गया था और फिर कुछ पुनर्निर्माण चेहरे की सर्जरी के लिए उपचार किया गया था। उसे अपनी आंखों के संबंध में कुछ उपचार से भी गुजरना पड़ा। यह सभी सबूत यह दिखाने के लिए माने जाएंगे कि दुर्घटना, जिसे दावेदार दावा करती है कि एक वास्तविकता थी। यह तमाशा नहीं है जैसा कि न्यायाधिकरण ने कहा है। ट्रिब्यूनल की यह टिप्पणी कि दावेदार का कैंसर का इलाज किया गया था, पूरी तरह से गलत है। मेडिकल रिकॉर्ड से पता चलता है कि कहीं न कहीं किसी तरह की गांठ थी, जिस पर संदेह था और एफएनएसी ने सलाह दी थी। ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष कि उसे स्तन कैंसर के लिए दवाएं निर्धारित की गई थीं, बिल्कुल भी उचित प्रतीत नहीं होता है। किसी भी मामले में, दुर्घटना के परिणामस्वरूप हुई चोटों के उपचार के साथ-साथ बाद की समस्या या मौका खोज का विकास, मालिक या बीमाकर्ता को लाभ नहीं पहुंचा सकता है। दुर्घटना और उसमें लगी चोटों के बारे में दावेदार का मामला ख़राब नहीं होगा, क्योंकि उपचार के दौरान किसी अन्य बीमारी या समस्या का पता चला था, जिसका भी इलाज किया गया था, अगर ऐसा था।

31. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, मुद्दा संख्या 1 पर ट्रिब्यूनल द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष कायम नहीं रह सकते हैं। उक्त मुद्दे पर निष्कर्षों को दरकिनार कर दिया गया है। तदनुसार, मुद्दा संख्या 1 का उत्तर दावेदार के पक्ष में और मालिक और बीमाकर्ता के खिलाफ दिया जाता है। ट्रिब्यूनल द्वारा दावेदार के पक्ष में मुद्दे संख्या 2, 3 और 5 का पहले ही उत्तर दिया जा चुका है। इस न्यायालय द्वारा प्रस्तावित आदेश के परिणामस्वरूप इस न्यायालय या अधिकरण द्वारा इनकी आगे जांच किए जाने की आवश्यकता नहीं है। यह इस न्यायालय को चौथे मुद्दे के साथ छोड़ देता है, जिसके बारे में ट्रिब्यूनल द्वारा कोई टिप्पणी नहीं की गई है। मुद्दा संख्या 1 पर निष्कर्षों के परिणामस्वरूप इस मुद्दे की बिल्कुल भी जांच नहीं की गई है। चूंकि इस न्यायालय द्वारा मुद्दा संख्या 1 पर निष्कर्षों को उलट दिया गया है, इसलिए मुद्दा संख्या 4 को पहले न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाना आवश्यक है और रिकॉर्ड के साक्ष्य के आधार पर निर्णय लिया जाता है। पार्टियों को आगे सबूत रखने की स्वतंत्रता होगी, अगर वे अकेले मात्रा के मुद्दे पर चाहें। ट्रिब्यूनल द्वारा किसी अन्य मामले को पुनर्निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है।

32. परिणाम में, यह अपील सफल होती है और आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। दिनांक 02.09.2000 के आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय को निरस्त किया जाता है। इस मामले को मुद्दे संख्या 4 पर नए सिरे से पक्षकारों को सुनने के लिए ट्रिब्यूनल के पास भेजा जाता है और उचित मुआवजे का निर्धारण करने वाले कानून के अनुसार में एक निर्णय पारित किया जाता है। ट्रिब्यूनल द्वारा इस

निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से अगले तीन महीने की अवधि के भीतर मामले पर नए सिरे से निर्णय लिया जाएगा।

33. रिकॉर्ड को तुरंत ट्रिब्यूनल को भेजा जाए, जिसके पास अब इस मामले में अधिकार क्षेत्र है।

(2023) 5 ILRA 174

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 560/1997

श्रीमती मालती देवी और अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

वीरेंद्र कुमार और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री माधव जैन

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अमरेश सिन्हा, श्री अमरेश सिंह, श्री अनुभव सिन्हा

ए. **सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173** - नाबालिग बच्चे के मुआवजे की राशि को चुनौती दी गई है - न्यायाधिकरण ने 14 वर्ष की आयु के मृतक बच्चे की काल्पनिक आय 300/- प्रतिमाह मानी तथा अंततः कुल मुआवजा 12% ब्याज सहित 52,000/- निर्धारित किया - दुर्घटना वर्ष 1994 में घटित हुई थी - इसलिए 1,56,000/- रुपए की राशि न्यायसंगत तथा उचित होगी, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में कहा है - इसके अतिरिक्त, ब्याज दर भी है, जिसे पुरस्कार राशि में पर्याप्त वृद्धि करने के पश्चात 7.5% तक संशोधित किया गया है। (पैरा 1 से 13)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. कुर्वन अंसारी @ कुर्वन अली बनाम श्याम किशोर मुर्मू (2021) 0 एससी 687
2. आर.के.मलिक और अन्य बनाम किरण पाल और अन्य (2009) 0 एससी 1113
3. सरला दीक्षित बनाम बलवंत यादव (1996) 3 SCC 179
4. स्वर्गीय वाधवा बनाम बिहार राज्य (2001) 8 एससीसी 197
5. किशन गोपाल और अन्य बनाम लाला और अन्य। (2014) 1 एससीसी 244
6. एनआईसीएल बनाम मन्नत जोहल और अन्य (2019) 2 टीएसी 705 एससी
7. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी) 442,
8. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता-दावेदारों, जो उस नाबालिग बच्चे के माता-पिता हैं जिसकी 14 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई थी, के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन को सुना गया और प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेश सिन्हा की ओर से उपस्थित विद्वान

अधिवक्ता श्री अनुभव सिन्हा को सुना गया।

2. यह अपील, दावेदारों के कहने पर, एम.ए.सी.पी संख्या 81/1994 में एम.ए.सी.टी./दसवें-अपर जिला न्यायाधीश, आगरा द्वारा (इसके बाद "ट्रिब्यूनल" के रूप में संदर्भित) पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.03.1997 को चुनौती देती है, जिसमें 12% की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 52,000/- रुपये की राशि का मुआवजा दिया गया।

3. दावेदारों के पक्ष में पांच मुद्दे दिए गए हैं। दुर्घटना विवाद में नहीं है। ट्रिब्यूनल द्वारा तय की गई लापरवाही का मुद्दा विवाद में नहीं है और उत्तरदाताओं के खिलाफ फैसला किया गया था। इस मुद्दे का भी अपीलकर्ता के पक्ष में उत्तर दिया गया कि क्या वाहन का बीमा किया गया था और पॉलिसी का कोई उल्लंघन हुआ था। प्रतिवादी-बीमा कंपनी ने उन पर लगाए गए दायित्व को चुनौती नहीं दी है। निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र मुद्दा मुआवजे की मात्रा है।

4. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 27.01.1994 को, मृतक राकेश कुमार एक बस पंजीकरण संख्या यू.पी.-80ई-9416 में यात्रा कर रहे थे, जो जल्दबाजी के कारण हुई और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण दुर्घटना हुई जिसके परिणामस्वरूप मृतक राकेश कुमार को गंभीर चोटें आईं। राकेश कुमार को एस.एन अस्पताल, आगरा में भर्ती कराया गया जहां 29.01.1994 को उनको आई चोटों के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

5. ट्रिब्यूनल इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मृतक की उम्र 14 वर्ष थी और इसलिए वह दावेदारों की आय में योगदान नहीं दे रहा था और इसलिए अनुमानित आय 600/- रुपये प्रति माह मानी गई, लेकिन इसके बाद यह माना गया कि उसकी आय 300/- रुपये प्रति माह होगी, यानी 36,00/- रुपये प्रति वर्ष, 15 का गुणक दिया गया जो 36,000/- रुपये होगा और बिना गलती दायित्व के तहत राशि के रूप में जानी जाने वाली राशि 50,000/- रुपये दी गई, अंतिम संस्कार के लिए 2000/- रुपये दिए गए और अंततः 12% ब्याज के साथ कुल मुआवजा 52,000/- रुपये होने का आकलन किया गया।

6. दुर्घटना 27.01.1994 को हुई। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन ने तर्क दिया कि दुर्घटना के वर्ष यानी 1994 में भी, कानून यह था कि 2,25,000/- रुपये की राशि स्वीकार्य थी आगे प्रस्तुत किया गया है कि हाल ही में शीर्ष न्यायालय ने **कुर्वन अंसारी उर्फ कुर्वन अली बनाम**

श्याम किशोर मुर्मू, 2021 0 (एससी) 687 के मामले में सभी निर्णयों पर चर्चा की माना गया है कि 7 साल के बच्चे के लिए भी कोर्ट ने 4,70,000/- रुपये की राशि मंजूर की है। नाबालिग बच्चों की मौत के लिए मुआवजा देने के सवाल पर सभी निर्णयों पर चर्चा करने के बाद उन्होंने **आर.के. मलिक और अन्य बनाम किरण पाल और अन्य, 2009 0 एससी 1113** के फैसले पर काफी भरोसा किया है।

7. इसके विपरीत, बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि दुर्घटना वर्ष 1994 में हुई थी। जिसे **उपहार कांड** के नाम से जाना जाता है, उस मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर विचार किया जाए। **सरला दीक्षित बनाम बलवंत यादव, (1996) 3 एससीसी 179 और लता वाधवा बनाम बिहार राज्य, (2001) 8 एससीसी 197** के फैसले पर विचार किया जाए। उन्होंने आगे अधोहस्ताक्षरी के फैसले पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि दुर्घटना के वर्ष में 1,56,000/- रुपये की राशि उचित और न्यायोचित होगी।

8. मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, आदेश 43 नियम 1 सी.पी.सी. के तहत उठाई गई मौखिक आपत्ति पर प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आपत्ति जताई कि 12% ब्याज दर बहुत अधिक है, वर्ष 1997 में ब्याज दर पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है। यह राशि वर्ष 1994 में 14 वर्ष के नाबालिग बच्चे के लिए होगी, जहां 45 और 47 वर्ष की आयु वाले माता-पिता के लिए 1,56,000/- रुपये होगी, जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने निर्णयों के अनुसार तय किया है। **कुर्वन अंसारी (सुप्रा) और किशन गोपाल और अन्य बनाम लाला और अन्य (2014) 1 एससीसी 244** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्ष 2000 के बाद की दुर्घटना से संबंधित है।

9. जहां तक ब्याज दर का सवाल है, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल और अन्य, 2019 (2) T.A.C 705 (S.C.)** में शीर्ष न्यायालय के नवीनतम निर्णय के मद्देनजर यह 7.5% होगी। जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है

> "13. उपरोक्त विशेषताएं ब्याज दर के संबंध में दावेदारों की ओर से दिए गए तर्कों पर समान रूप से लागू होती हैं। ट्रिब्यूनल ने 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दिया था, लेकिन इन मामलों में आमतौर पर जो सोचा जाता है, उसकी तुलना में यह दर बहुत अधिक थी। उच्च न्यायालय ने पुरस्कार राशि में पर्याप्त वृद्धि करने के बाद, 7.5% प्रति वर्ष की उचित दर पर ब्याज घटक को संशोधित किया

और हमें इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अनुमत दर से अधिक किसी भी दर पर ब्याज की अनुमति देने का कोई कारण नहीं मिला।"

10. जब मामले की सुनवाई हुई तो मौखिक रूप से किसी अन्य आधार का आग्रह नहीं किया गया।

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित पुरस्कार और डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर राशि जमा की जानी चाहिए। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाएगा।

12. ट्रिब्यूनल की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काटने का निर्देश दिया जाता **है ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** में रिपोर्ट किए गए के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

13. यहां किए गए संशोधन के अनुसार ट्रिब्यूनल द्वारा उपरोक्त याचिका के अनुसार नया पुरस्कार निकाला जाएगा। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जहां तक संवितरण का सवाल है, इसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के फैसले पर गौर करना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना चाहिए।

14. ट्रिब्यूनल **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ** और अन्य मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 27.1.2022 के माध्यम से जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। लम्बी अवधि बीत जाने के कारण धनराशि दावेदारों के राष्ट्रीयकृत बैंक के बचत खाते में बिना एफ.डी.आर. के जमा करायी जाये।

15. रिकॉर्ड तुरंत ट्रिब्यूनल को वापस भेजा जाए।

16. यह न्यायालय दोनों विद्वान अधिवक्ताओं का इस न्यायालय की सहायता करने के लिए आभारी है।

(2023) 5 ILRA 177

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 616/1996

श्रीमती श्याम सुंदरी देवी ...अपीलकर्ता

बनाम

अजय कुमार गुप्ता एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री आर.सी. श्रीवास्तव, श्री एस.के. श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एच.एन. सिंह, श्री बी.एन. सिंह

सिविल कानून - मोटर दुर्घटना दावा - अपीलकर्ता वादी हैं-दुर्घटना और लापरवाही विवाद में नहीं है-मुआवजे की मात्रा विवादित है-मृतक की आयु 28 वर्ष थी-होमगार्ड के रूप में कार्यरत-उसकी विधवा और दो बेटे हैं-आय कम से कम 1500 रुपये प्रति माह होनी चाहिए- 1/3 कटौती की जाएगी-भविष्य की हानि के लिए आय का 50% जोड़ा जाएगा-17 का गुणक और आर्थिक क्षति की गणना की जाएगी।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442
2. श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291
3. (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) के विरुद्ध आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 में पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1/2020

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान वकील और प्रतिवादी के विद्वान वकील को सुना गया। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी के अधिकारी उपस्थित हैं।
2. यह अपील, दावेदारों के कहने पर, एम.ए.सी.टी./आई-अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, मऊ (जिसे आगे "ट्रिब्यूनल" कहा जाएगा) द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 54/1992 में पारित दिनांक 24.04.1996 के निर्णय और डिक्री को चुनौती देती है। दुर्घटना पर कोई विवाद नहीं है। दुर्घटना में उनकी मृत्यु विवाद का विषय नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा तय की गई लापरवाही का मुद्दा विवाद का विषय नहीं है। तय किया जाने वाला एकमात्र मुद्दा यह है कि मुआवजा कितना दिया जाए।
3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह प्राप्त हुए कि मृतक वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव थाना नेतपुरा, जिला वाराणसी में होमगार्ड के पद पर कार्यरत थे। दिनांक 07.06.1992 को प्रातः लगभग 4:00 बजे जब मृतक वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव मऊ से अपना कार्य समाप्त कर जीप पंजीकरण संख्या एम.पी. 7बी/0927 से उपनिरीक्षक केदारनाथ पाण्डेय के साथ वापस आ रहे थे, तो डांडी गांव के निकट सीमेंटेड रोड पर राजदेव राम बाग के निकट मऊ से गोरखपुर की ओर जा रहे ट्रक पंजीकरण संख्या यूआरक्यू-6354 ने अपने चालक द्वारा तेजी व लापरवाही से चलाकर जीप में टक्कर मार दी, जिससे मृतक तथा उसके साथ यात्रा कर रहे

तीन अन्य व्यक्तियों की मौके पर ही मृत्यु हो गयी।

4. दुर्घटना के समय मृतक की आयु 28 वर्ष थी तथा वह थाना नैतपुरा, जिला वाराणसी में होमगार्ड के पद पर कार्यरत था। उनके परिवार में उनकी विधवा और दो बेटे रह गये। समय बीत गया है और उनकी विधवा आज 63 वर्ष की हो गई है और उनके बेटे जो दुर्घटना के समय नाबालिग थे, वे भी वयस्क हो गए हैं, ऐसा हो सकता है। वह होमगार्ड के तौर पर 600 रुपये प्रतिमाह कमा रहा था और दवा बेचने के अपने कारोबार से 1400 रुपये प्रतिमाह कमा रहा था, जो कुल मिलाकर 2000 रुपये प्रतिमाह होता है। न्यायाधिकरण ने 64,800 रुपये की एकमुश्त राशि मंजूर की है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया कि न्यायाधिकरण ने मृतक की आय पर विचार किया है, लेकिन जहां तक मुद्दों का संबंध है, 64,800 रुपये की एकमुश्त राशि प्रदान की है।

6. पक्षों के वकीलों को सुनने तथा निर्णय और आदेश का अवलोकन करने के पश्चात, इस न्यायालय को लगता है कि मृतक होमगार्ड था, इसलिए उसकी आय कम से कम 1500 रुपए प्रतिमाह मानी जानी चाहिए, जिसमें से एक तिहाई की कटौती की जानी चाहिए। चूंकि दुर्घटना के समय मृतक की आयु 28 वर्ष थी, इसलिए मृतक की भविष्य की आय हानि के रूप में 50% आय को जोड़ना होगा, गुणक 17 का होगा तथा 50,000/- रुपए को गैर-आर्थिक क्षति के रूप में माना जा सकता है।

7. इसके अलावा, इस न्यायालय को लगता है कि राशि/मुआवजे की पुनर्गणना की आवश्यकता है। इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवज़ा नीचे गणना की गई है:

i. आय : रु.1500/- प्रति माह

ii. भविष्य की संभावनाओं के प्रति प्रतिशत: 50% अर्थात रु.750/-

iii. कुल आय : रु. 1500 + 750 = रु. 2250/-

iv. 1/3 कटौती के बाद आय: रु. 1500/-

v. वार्षिक हानि : रु. 1500 x 12 = रु. 18,000/-

vi. लागू गुणक : 17

vii. कुल हानि : रु. 18,000 x 17 = रु. 3,06,000/-

xii. गैर-आर्थिक मद के अंतर्गत राशि : रु.50,000/-

xiii. कुल मुआवजा : 3,56,000/-

8. चूंकि पक्षों ने मामले को निपटाने का निर्णय लिया है, इसलिए ब्याज दर दावा याचिका दायर करने की तिथि से बढ़ी हुई राशि जमा होने तक बढ़ी हुई राशि पर 6% होगी।

9. मामले की सुनवाई के दौरान मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं बताया गया।

10. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पंचाट पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित अतिरिक्त राशि जमा करेगी।

11. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। ए.वी. पद्मा

बनाम वेणुगोपाल, रिपोर्ट 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक / दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही ग्रामीण हैं।

12. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में, 2007(2) जीएलएच 291 में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) में राशि वितरित करते समय पुनर्विलोकन आवेदन संख्या 1/2020 में दोहराया गया है।

13. उपरोक्त याचिका में न्यायाधिकरण द्वारा इसमें किए गए संशोधन के अनुसार नया निर्णय दिया जाएगा। राज्य के न्यायाधिकरणों को इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करना चाहिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता तथा ए.वी. पद्मा (सुप्रा) के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए यही बात लागू की जानी चाहिए।

14. न्यायाधिकरण अब कोई भी राशि सावधि जमा में नहीं रखेगा, क्योंकि दावा याचिका दायर करने की तिथि से 30 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है।

15. रिकार्ड न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाए।

16. यह न्यायालय इस न्यायालय की कुशलतापूर्वक सहायता करने के लिए विद्वान अधिवक्ताओं के प्रति आभारी है।

(2023) 5 ILRA 179

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 651/1996

मेसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ...अपीलकर्ता

बनाम

सुरेश और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अनुभव सिन्हा, श्री विपुल कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ए.के. सिंह

सिविल कानून - मोटर दुर्घटना दावा - प्रतिवादी घायल-बीमा कंपनी द्वारा इनकार किया गया-लापरवाही के विवाद पर निर्णय लिया गया -

चालक लापरवाह-समग्र लापरवाही दावेदार के रूप में जो वाहन पर क्लीनर था -चालक लापरवाह था-घायल की उम्र 26 वर्ष थी-40% विकलांगता का सामना करना पड़ा-गणना की गई राशि सिर्फ मुआवजा है।

अपील निरस्त (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. आदेश से प्रथम अपील संख्या 1818/2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य) निर्णय दिनांक 19.7.2016
2. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2015 वाद (एससी) 469

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अनुभव सिन्हा, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना। प्रतिवादी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है।
2. यह अपील, मेसर्स यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के आदेश पर, छठे अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, एटा द्वारा दावा याचिका संख्या 252/1995 में पारित दिनांकित 31.5.1996 के फैसले और निर्णय को चुनौती देती है, जिसके तहत विद्वान अधिकरण ने अपीलकर्ता को उपरोक्त भुगतान करने के निर्देश के साथ 10% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 1,72,800/- रुपये का निर्णय सुनाया है।
3. जैसा भी हो, चूंकि 27 वर्ष बीत चुके हैं, यह न्यायालय इस अपील पर निर्णय करना उचित समझता है जहाँ न्यायालय ने दिनांक 4.3.1997 के आदेश द्वारा स्थगन दिया था।
4. अभिलेख से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी-घायल सुरेश कुमार एक अन्य व्यक्ति जसवीर सिंह के साथ उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन यानी 27/28.7.1995 को प्रतिवादी संख्या 2 के स्वामित्व वाले ट्रक में यात्रा कर रहे थे। सुबह करीब 03:00 बजे वे कासगंज से टाटा 407 संख्या एचआर 290/9974 में सामान लादकर गाजियाबाद जा रहे थे। वाहन को एक छोटे सिंह नामक व्यक्ति चला रहा था, जिसने वाहन को तेजी और लापरवाही से चलाया। जब वाहन सिकंदराबाद-दिल्ली रोड पर बुलंदशहर के पास पहुंचा, तो टाटा 407 एक स्टेशनरी ट्रक से टकरा गया, जिससे प्रतिवादी और जसवीर सिंह घायल हो गए। जहां से दोनों को आनन-फानन में सिकंदराबाद प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पहुंचाया गया है। वहां 24 घंटे तक इलाज के बाद घायल को हड्डी रोग विशेषज्ञ डॉ. वीरेंद्र पाल के पास लाया गया जिन्होंने उसका इलाज किया।
5. दावा याचिका दायर होने पर, बीमा कंपनी ने अपना जवाब दाखिल किया जो इनकार करने वाला था, उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि

वाहन का बीमा उसके पास था। वाहन के मालिक ने भी जवाब दाखिल किया जो इनकार का था लेकिन उन्होंने स्वीकार किया कि सुरेश कुमार एक कर्मचारी/सफाईवाला था और उसे प्रति माह 500/- रुपये का भुगतान किया जा रहा था। हालाँकि, सफाईवाला के रूप में उनकी स्थायी आंशिक विकलांगता से इनकार किया गया है। उन्होंने तर्क दिया है कि चूंकि दूसरे वाहन के मालिक और बीमा कंपनी को पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए दावा याचिका को खारिज किया जा सकता है। अधिकरण ने मामले तय किए और दावेदार के पक्ष में लापरवाही का फैसला सुनाया और माना कि टाटा 407 का ड्राइवर लापरवाह था।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि यह निर्णय कानून की नजर में गलत है क्योंकि अन्य वाहन के मालिक और बीमा कंपनी को पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया है। आगे यह भी कहा गया है कि जहां तक लापरवाही का सवाल है, अधिकरण का निष्कर्ष गुणहीन है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे की मात्रा भी अधिक है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए लापरवाही के मुद्दे पर विचार करते समय अंशदायी लापरवाही तय करने के सिद्धांतों पर चर्चा करना प्रासंगिक होगा और इसके लिए लापरवाही पर विचार करने के सिद्धांतों पर भी ध्यान देना होगा।

8. लापरवाही शब्द का अर्थ है दूसरों के प्रति देखभाल करने में विफलता जो एक यथोचित और विवेकशील व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या ऐसी कार्रवाई करना जो ऐसा यथोचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है, हालाँकि यह सामान्यतः आकस्मिक होती है। विशेष रूप से, यह लापरवाह ड्राइविंग को दर्शाता है और घायल को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों पक्ष लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदायी है अन्यथा "रेस इप्सा लोकिटूर" का सिद्धांत जिसका अर्थ है "चीजें अपने लिए बोलती हैं" लागू होगा।

9. अंशदायी लापरवाही के सिद्धांत पर बार-बार चर्चा की गई है। एक व्यक्ति जो या तो दुर्घटना में योगदान देता है या सह-लेखक है, दुर्घटना घटित होने में अपने योगदान के लिए उत्तरदायी होगा और यदि वह घायल हो जाता है तो वह राशि उसे और दुर्घटना में मृत्यु होने पर उसके कानूनी प्रतिनिधियों को देय मुआवजे से काट ली जाएगी।

10. इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने 19.7.2016 को निर्णीत **आदेश से**

अहमदाबाद

प्रथम अपील संख्या 1818/2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह और अन्य) में निम्नानुसार धारण किया है:

"16. लापरवाही का अर्थ है एक विवेकशील चालक से अपेक्षित आवश्यक देखभाल और सावधानी बरतने में विफलता। लापरवाही कुछ ऐसा करने में चूक है जो एक समझदार व्यक्ति, विचारों पर निर्देशित होकर, जो आम तौर पर मानवीय मामलों के संचालन को विनियमित करते हैं, करेगा या कुछ ऐसा करेगा जो एक विवेकशील और समझदार व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रश्न नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला एक अनुमान है। लापरवाही कोई निरपेक्ष शब्द नहीं है, बल्कि एक सापेक्ष शब्द है। यह बल्कि एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है वह दूसरे में नहीं हो सकती है। जहां देखभाल करने का कोई कर्तव्य नहीं है, वहां लोकप्रिय अर्थों में लापरवाही का कोई कानूनी परिणाम नहीं होता है। जहां देखभाल करना कर्तव्य है, वहां ऐसे कृत्यों या चूक से बचने के लिए उचित देखभाल की जानी चाहिए, जिससे व्यक्ति को शारीरिक चोट लगने की उचित संभावना हो। बेशक, आवश्यक देखभाल की डिग्री प्रत्येक मामले में तथ्यर्थों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों पर ड्राइवरों की लापरवाही का आकलन आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से अंशदायी लापरवाही के लिए सबूत का बोझ विरोधियों को उठाना होगा। दुर्घटना की व्याख्या करना आक्रमणकर्ता वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमी गति से चले और यदि चालक ने चौराहे पर गति धीमी नहीं की, लेकिन यह ध्यान दिए बिना कि कोई अन्य वाहन पार कर रहा है, तेज गति से आगे बढ़ना जारी रखता है, तो चालक के आचरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह वाहन तेजी से और लापरवाही से चला रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम से जुड़ी 10वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने के लिए वैधानिक अधिनियम शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा है। ऐसे अधिनियम का खंड-6 स्पष्ट रूप से निर्देशित करता है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या सड़कों के संगम पर या सड़क के मोड़ पर वाहन को धीमा करना होगा। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या संगम में प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह इससे किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल, क्योंकि ट्रक का ड्राइवर सड़क के बार्थी ओर वाहन चला रहा था, इसलिए वह सड़कों के चौराहे पर पहुंचते ही वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकता, खासकर जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था, चौराहे के पास आ रहा था।

19. यातायात की तेज़ और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक रायलैंड्स बनाम फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) 330 में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत

माना जा सकता है। पैदल चलने वालों की दृष्टि से, मोटर वाहनों के प्रयोग से इस देश की सड़कें अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। 'मारो और भागो कानून' के मामले से मोटर वाहनों के ड्राइवर अज्ञात हैं जो दुर्घटनाएं करने का कारण बने। दरअसल ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है। जहां एक पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही किए बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे वह लापरवाही से हो या नहीं, तो जैसा भी मामला हो, उसे या उसके कानूनी प्रतिनिधियों को हर्जाना वसूलने का हकदार होना चाहिए, यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ होना चाहिए।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम , 1988 की धारा 110ए और धारा 110बी) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पक्षकारों के अधिकारों को मूल रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा निर्मित कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजाति में नया, अपनी गुणवत्ता में नया, अपने सिद्धांतों में नया था। यह हर तरह से नया था। मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने के लिए अधिनियम, 1988 के तहत कानूनी प्रतिनिधियों को दिया गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत किसी कार्रवाई की सीमाओं से रोका नहीं जा सकता है। नई स्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपचारों की आवश्यकता होती है।

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही अदालतें व्याख्या द्वारा कानून के उन सिद्धांतों को विस्थापित न करें जिन्हें अच्छी तरह से स्थापित माना जाता है और इसलिए, अदालत मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में लापरवाही के सबूत से पूरी तरह छूट नहीं दे सकती है, कानून को निम्नलिखित तर्ज पर आगे विकसित करना संभव है; जब एक मोटर वाहन को उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा है, तो यह आमतौर पर दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में रेस-इप्सा लोकिटर का नियम सामान्य नागरिक मुकदमों की तुलना में मोटर दुर्घटना के मामलों में अधिक आवृति के साथ लागू किया जा सकता है (जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840 में तीन-न्यायाधीशों की बेंच)।

22. उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में यह साबित करने के लिए सबूत का बोझ आम तौर पर प्रतिवादी पर डाला जा सकता है कि मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा था या दूसरे पक्ष की ओर से भी उतनी ही लापरवाही हुई है।"

बल दिया

11. **खेनेई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2015 मुकदमा (एससी) 469** में शीर्ष न्यायालय ने निम्नानुसार धारण किया है:

"4. यह समग्र लापरवाही का मामला है जहां संयुक्त अपकृत्यकर्ता के संयुक्त गलत कार्य के कारण दावेदारों को चोटें आई हैं। संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं की लापरवाही के कारण हुई दुर्घटना के मामले में, वे सभी व्यक्ति जो

किसी गलत कार्य में सहायता या सलाह देते हैं या निर्देशन करते हैं या उसमें शामिल होते हैं, उत्तरदायी हैं। ऐसे मामले में, दायित्व हमेशा कई और संयुक्त होता है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्यकर्ता की लापरवाही की सीमा वादी दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए महत्वहीन है और इसे न्यायालय द्वारा निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ता न्यायालय के समक्ष हैं, तो यह उचित स्तर पर उनके बीच अंतर-इक्विटी को समायोजित करने के उद्देश्य से उनके दायित्व की सीमा निर्धारित कर सकता है। वादी दावेदार की तुलना में प्रत्येक संयुक्त अपकृत्यकर्ता का दायित्व विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह कई और संयुक्त दायित्व है। समग्र लापरवाही के मामले में, वादी को भुगतान करने के लिए अपकृत्यकर्ताओं के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है क्योंकि वादी/दावेदार को सबसे आसान लक्ष्य/विलायक प्रतिवादी से पूरी राशि वसूल करने का अधिकार है। 14. अंशदायी और समग्र लापरवाही के बीच अंतर है। अंशदायी लापरवाही के मामले में, एक व्यक्ति जिसने खुद इस हद तक योगदान दिया है, वह अपनी लापरवाही की सीमा तक दुर्घटना में लगी आघातों के लिए मुआवजे का दावा नहीं कर सकता है; जबकि समग्र लापरवाही के मामले में, एक व्यक्ति जिसने कष्ट सहा है दुर्घटना में योगदान नहीं है बल्कि दो या दो से अधिक अन्य व्यक्तियों की लापरवाही के संयोजन का परिणाम है। टी.ओ. एंथोनी बनाम करवर्नन और अन्य [2008 (3) एससीसी 748] में इस न्यायालय ने माना है कि अंशदायी लापरवाही के मामले में, घायल को प्रत्येक दोष कर्ता की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, और न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक दोष कर्ता के दायित्व की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। यह केवल अंशदायी लापरवाही के मामले में है कि दुर्घटना में घायल ने स्वयं अपनी लापरवाही से योगदान दिया है। उसकी लापरवाही की सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता है क्योंकि आघातों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति को उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम किया जाना चाहिए। प्रासंगिक भाग यहां निकाला गया है:

"6. 'समग्र लापरवाही' का तात्पर्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों की ओर से की गई लापरवाही से है। जहां एक व्यक्ति दो या दो से अधिक दोषियों की ओर से लापरवाही के परिणामस्वरूप घायल हो जाता है, ऐसा कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन दोषी कर्ताओं की समय लापरवाही के कारण घायल हुआ था। ऐसे मामले में, प्रत्येक दोषी, संपूर्ण क्षति के भुगतान के लिए घायल के प्रति संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होता है और घायल व्यक्ति के पास उनमें से सभी या किसी एक के खिलाफ कार्यवाही करने का विकल्प होता है। ऐसे मामले में, घायल को प्रत्येक दोषी कर्ता की जिम्मेदारी की सीमा अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही अदालत के लिए प्रत्येक दोषी कर्ता की जिम्मेदारी की सीमा अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जहां किसी व्यक्ति को आंशिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से लापरवाही के कारण और आंशिक रूप से अपनी लापरवाही के परिणामस्वरूप चोट लगती है, तो

घायल के उस हिस्से की लापरवाही, जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, को उसकी अंशदायी लापरवाही कहा जाता है। जहां घायल कुछ लापरवाही का दोषी है, नुकसान के लिए उसका दावा केवल उसकी ओर से लापरवाही के कारण परास्त नहीं होता है, बल्कि आघातों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम हो जाती है।

7. इसलिए, जब दो वाहन दुर्घटना में शामिल होते हैं, और उनमें से एक चालक लापरवाही का आरोप लगाते हुए दूसरे चालक से मुआवजे का दावा करता है, और दूसरा चालक लापरवाही से इनकार करता है या दावा करता है कि घायल दावेदार खुद लापरवाह था, तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार लापरवाह था और यदि हां, तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह या आंशिक रूप से जिम्मेदार था और उसकी जिम्मेदारी की सीमा, यह उसकी अंशदायी लापरवाही है। इसलिए जहां घायल स्वयं आंशिक रूप से उत्तरदायी है, वहां 'समग्र लापरवाही' का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही कोई स्वचालित अनुमान लगाया जा सकता है कि लापरवाही 50:50 थी जैसा कि इस मामले में माना गया है। अधिकरण को अपीलकर्ता की अंशदायी लापरवाही की सीमा की जांच करनी चाहिए थी और इस तरह समग्र लापरवाही और अंशदायी लापरवाही के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटि को सुधारने में विफल रहा है।"

18. ***चल्ला भरतम्मा और नंजप्पन (उपरोक्त)*** *में इस न्यायालय ने मालिक द्वारा पॉलिसी शर्तों के उल्लंघन पर विचार किया है जब बीमाकर्ता को अधिकरण द्वारा निर्धारित मुआवजे का भुगतान करने के लिए कहा गया था और उसे वसूलने का अधिकार संबंधित निष्पादन न्यायालय में बीमाकर्ता को दिया गया था यदि बीमाकर्ता और मालिक के बीच विवाद न्यायाधिकरण के लिए निर्धारण का विषय था और मुद्दे का निर्णय बीमाधारक के पक्ष में किया गया है। यही सादृश्य तत्काल मामलों पर भी लागू किया जा सकता है क्योंकि संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व संयुक्त और अनेक है। मौजूदा मामले में, संबंधित ड्राइवरों के 2/3 और 1/3 की लापरवाही की सीमा तक समग्र लापरवाही की पारस्परिक देयता का निर्धारण होता है। इस प्रकार, वाहन-ट्रेलर-ट्रक जिसका बीमाकर्ता के पास बीमा नहीं था, दो-तिहाई की सीमा तक लापरवाह था। दावेदार को भुगतान करने के बाद बस का बीमा करने वाला बीमाकर्ता निष्पादन कार्यवाही में ट्रेलर-ट्रक के मालिक से उपरोक्त सीमा तक राशि वसूल करने के लिए खुला होगा। यदि साक्ष्य के अभाव में पारस्परिक दायित्व का कोई निर्धारण नहीं किया गया था या अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ता को पक्षकार नहीं बनाया गया था, तो ऐसे विवाद को निपटाने और निष्पादन कार्यवाही में राशि की वसूली करना संभव नहीं था, लेकिन इसका उपाय कानून के अनुसार एक और मुकदमा या उचित कार्यवाही दायर करना होगा। उपरोक्त चर्चा से जो बात निकलकर सामने आती है वह इस प्रकार है:*

(i) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी दावेदार दोनों या संयुक्त अपकृत्य दाताओं में से किसी एक पर मुकदमा करने और पूरे मुआवजे की वसूली करने का हकदार है

क्योंकि संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व संयुक्त और कई है।

(ii) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी दावेदार की तुलना में दो अपकृत्यकर्ताओं के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार उनमें से किसी से भी संपूर्ण क्षति की वसूली कर सकता है।

(iii)यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को पक्षकार बना दिया गया है और साक्ष्य पर्याप्त है, तो यह अदालत/न्यायाधिकरण के लिए खुला है कि वह ड्राइवरों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित कर सके। हालाँकि, संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के बीच लापरवाही की सीमा का निर्धारण केवल उनके पारस्परिक दायित्व के उद्देश्य से है ताकि एक व्यक्ति वादी दावेदार को पूरा भुगतान करने के बाद दूसरे से उस सीमा तक राशि वसूल कर सके, जिस हद तक उसने दूसरे के दायित्व को पूरा किया है। यदि उन दोनों को पक्षकार बनाया गया है और उनकी लापरवाही का बंटवारा/सीमा अदालत/न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई है, तो मुख्य मामले में एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे से राशि वसूल कर सकता है।

(iv)अदालत/न्यायाधिकरण के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को पक्षकार बनाने के अभाव में दो वाहनों के चालकों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित करे। ऐसे मामले में, डिक्री या अधिनिर्णय के पारित होने के बाद स्वतंत्र कार्यवाही में अन्य संयुक्त अपकृत्य व्यवहारकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए, यदि वह चाहे तो, पक्षकार संयुक्त अपकृत्य व्यवकर्ता को छोड़ दिया जाना चाहिए।

<u>बल दिया</u>

12. तथ्यात्मक कथनों को देखते हुए, लापरवाही तय करने के सिद्धांत का उचित मूल्यांकन किया गया है। जिस वाहन में घायल यात्रा कर रहा था वह स्टेशनरी ट्रक से टकरा गया। जब घटना घटी तब सुबह का समय था। चालक अनुपस्थित हो गया है। मौखिक गवाही सच्ची है और बीमा कंपनी द्वारा इसके विपरीत कुछ भी साबित नहीं किया गया है। अतः, निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है।
13. अगला निवेदन यह है कि दुर्घटना में शामिल अन्य वाहन के मालिक और चालक को पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया था। उक्त आधार विफल हो जाता है क्योंकि यह उस दावेदार के लिए समय लापरवाही का मामला था जो उस वाहन पर सफाईकर्मी था जिसके चालक ने लापरवाही से वाहन चलाया था।
14. घायल की उम्र 26 साल थी। वह 40% विकलांगता का शिकार हो गया था। वह एक सफाईकर्मी था। घायल के दांत टूट गए, आंख की रोशनी खराब

15. हो गई। अधिकरण द्वारा गणना की गई राशि सिर्फ मुआवजा है और इसमें किसी निष्कर्ष की आवश्यकता नहीं है।
16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह अपील खारिज की जाती है। अभिलेख और कार्यवाही तुरंत अधिकरण को वापस भेजी जाए। सावधि जमा में रखी गई राशि तुरंत प्रतिवादी संख्या 1 को वितरित की जाए।
17. यह न्यायालय इस पुराने मामले का निपटारा कराने के लिए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अनुभव सिन्हा का आभारी है।

(2023) 5 ILRA 185

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 962/1994

श्रीमती कमलेश एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

राजेंद्र कुमार एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वाई.एस. बोहरा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अरविंद कुमार, श्री अनुभव सिन्हा

सिविल कानून - मोटर दुर्घटना दावा - आक्षेपित निर्णय - दुर्घटना और लापरवाही का मुद्दा विवाद नहीं - मुआवजे की राशि पर निर्णय लिया जाना - मृतक की आयु 27 वर्ष थी - न्यायाधिकरण - मासिक आय का गलत आकलन 600 रुपये किया गया - दुर्घटना के वर्ष में यह कम से कम 900 रुपये प्रति माह होगी - मृतक की आयु 26 वर्ष थी - 30 - 40% की छूट दी जा सकती है - 1/3 कटौती दी गई - गुणक 17 होगा - कोई आर्थिक क्षतिपूर्ति नहीं दी गई।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 वाद (एससी) 1093
2. सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम एवं अन्य, 2009 वाद (एससी)
3. गोबल्ड मोटर सर्विस लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुस्वामी एवं अन्य, 1962 एससीआर(1) 929
4. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल एवं अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.)
5. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442
6. श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291
7. (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) के विरुद्ध आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 में पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1/2020
8. आर/स्पेशल सिविल एप्लीकेशन संख्या 4800/2021 (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयकर आयुक्त (टीडीएस) 5.4.2022 को तय किया गया।
9. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वाई.एस. बोहरा, प्रतिवादी - बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुभव सिन्हा को सुना गया तथा आक्षेपित निर्णय और आदेश का अवलोकन किया गया। मालिक के लिए कोई भी प्रकट नहीं होता है।

2. यह अपील, दावेदार के कहने पर, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर (जिसे आगे न्यायाधिकरण कहा जाएगा) द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 29/1984 में पारित दिनांक 11.05.1994 के निर्णय और पंचाट को चुनौती देती है, जिसमें 12% की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 85,000/- रुपये की राशि का आदेश दिया गया था।

3. दुर्घटना पर कोई विवाद नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा तय लापरवाही का मुद्दा भी विवाद में नहीं है। निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र मुद्दा यह है कि मुआवजा कितना दिया जाना चाहिए।

4. दुर्घटना 08.07.1984 को घटित हुई। मृतक की उम्र 27 वर्ष थी और वह कृषक था। मृतक नानक चंद जो 27 वर्ष के थे, अपने पीछे अपनी विधवा और तीन नाबालिग बच्चों को छोड़ गए हैं, जिस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है। न्यायाधिकरण ने उनकी आय 600 रुपये प्रति माह मानी, 20 का गुणक दिया और इस प्रकार न्यायाधिकरण ने कुल मुआवजे की गणना 85,000 रुपये की है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री वाई.एस. बोहरा ने कहा कि मृतक की आय कम से कम 1,500 रुपये प्रति माह मानी जानी चाहिए। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया कि न्यायाधिकरण ने भविष्य में आय की हानि के शीर्ष के तहत कोई राशि नहीं जोड़ी है, जिसे **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 लॉसूट (एससी) 1093** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर प्रदान किया जाना चाहिए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण ने 20 का गुणक लागू किया है, जो कि **सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम एवं अन्य, 2009 मुकदमा (एससी)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर 17 होगा।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादी बीमा कंपनी के विद्वान वकील श्री अनुभव सिन्हा ने तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया 20 का गुणक बहुत अधिक है और यह गैर-आर्थिक हानि और आय की भावी हानि के मद में राशि न देने के लिए पर्याप्त होगा। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश राज्य में दुर्घटना के वर्ष में कोई भावी संभावना प्रदान नहीं की गई थी। विद्वान वकील ने आगे कहा कि दुर्घटना के वर्ष 1984 में भी रेपो दर 12% नहीं थी और 12% की दर से दिया गया ब्याज बहुत अधिक है।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा तथ्यात्मक आंकड़ों पर विचार किया गया। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि बीमा कंपनी ने निर्णय को स्वीकार कर लिया है तथा

उसे चुनौती नहीं दी है। इस न्यायालय ने पाया कि दुर्घटना 08.07.1984 को हुई थी, जिससे नानक चंद की मृत्यु हो गई, जो दुर्घटना के समय 27 वर्ष का था। न्यायाधिकरण ने उनकी आय 600 रुपये प्रति माह आंकी है, जो इस न्यायालय के अनुसार, दुर्घटना के वर्ष में कम से कम 900 रुपये प्रति माह होगी, क्योंकि वह किसान थे। चूंकि मृतक की आयु 26-30 वर्ष थी, इसलिए प्रणय सेठी (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर आय का 40% जोड़ना होगा। गोबल्ड मोटर सर्विस लिमिटेड और अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुस्वामी और अन्य, 1962 एससीआर (1) 929 में भी सामान्य प्रवृत्ति को देखते हुए, 40% की वृद्धि दी जा सकती है और 1/3 कटौती दी जानी होगी। मामले की लंबितता को देखते हुए, जो 30 वर्षों से अधिक समय से लंबित है, गुणक 17 होगा। गैर-आर्थिक क्षति के मद में 1,00,000/- रुपए दावेदारों के लिए पर्याप्त होंगे।

8. अतः अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजा नीचे गणना की गई है:

i. वार्षिक आय रु.10,800/- (रु.900/- प्रति माह)

ii. भविष्य की संभावनाओं के प्रति प्रतिशत : 40% अर्थात रु.4,320/-

iii. कुल आय : रु.10,800/- + रु.4,320/- = रु.15,120/-

iv. व्यक्तिगत व्यय के लिए 1/3 कटौती के बाद आय: रु.10,080/-

v. लागू गुणक : 17

vi. निर्भरता की हानि: रु.10,080 x 17 = रु.1,71,360/-

vii. गैर-आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि : रु.1,00,000/-

viii. कुल मुआवजा : रु.2,71,360/-

9. जहां तक ब्याज दर के मुद्दे का सवाल है, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल और अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.) में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय के मद्देनजर यह 7.5% होनी चाहिए, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"13. उपर्युक्त विशेषताएं ब्याज दर के संबंध में दावेदारों की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्कों पर भी समान रूप से लागू होती हैं। न्यायाधिकरण ने 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज देने का आदेश दिया था, लेकिन यह इन मामलों में सामान्यतः निर्धारित दर की तुलना में बहुत अधिक था। उच्च न्यायालय ने पुरस्कार राशि में पर्याप्त वृद्धि करने के बाद ब्याज घटक को 7.5% प्रति वर्ष की उचित दर पर संशोधित किया और हमें इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अनुमत दर से अधिक ब्याज की अनुमति देने का कोई कारण नहीं मिला।"

10. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और डिक्री पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित मानी जाएगी। प्रतिवादी-बीमा कंपनी

आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित राशि जमा करेगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाए। रिकॉर्ड और कार्यवाही तुरंत ट्रिब्यूनल को वापस भेज दी जाए।

11. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काटने का निर्देश दिया जाता है। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक / दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

12. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में, 2007(2) जीएलएच 291 में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील आदेश संख्या 23/2001 (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) में राशि वितरित करते समय समीक्षा आवेदन संख्या 1/2020 में दोहराया गया है। उक्त निर्णय को उच्च न्यायालय गुजरात द्वारा आर/विशेष सिविल आवेदन संख्या 4800/2021 (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयकर आयुक्त (टीडीएस) दिनांक 5.4.2022 को तय) में भी दोहराया गया है।

13. उपरोक्त याचिका में न्यायाधिकरण द्वारा इसमें किए गए संशोधन के अनुसार नया निर्णय दिया जाएगा। राज्य के न्यायाधिकरणों को इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करना चाहिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता तथा **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए यही बात लागू की जानी चाहिए।

14. न्यायाधिकरण बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश में जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रोके रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि

लंबी अवधि बीत चुकी है, इसलिए राशि एफ.डी.आर. के बिना राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जानी चाहिए।

15. यह न्यायालय इस मामले का निर्णय कराने के लिए दोनों वकीलों का आभारी है।

(2023) 5 ILRA 188

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1109/2019

टाटा ए.आई.जी. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, अलीगढ़ ...अपीलकर्ता

बनाम

विष्णु एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ए. टी. पांडेय, श्री अनुपम श्याम द्विवेदी, श्री सुधीर दीक्षित, श्री उत्कर्ष दीक्षित, श्री आशुतोष पांडे

सिविल कानून- मोटर दुर्घटना दावा-दावेदार-प्रतिवादी घायल हुआ-40% तक स्थायी विकलांगता हुई-साक्ष्य के लागू मानक द्वारा स्थापित-रिकॉर्ड में साक्ष्य की अटूट श्रृंखला दुर्घटना, चोटों, चिकित्सा उपचार और स्थायी विकलांगता को जोड़ती है-दुर्घटना वाहन के कारण हुई-स्थायी विकलांगता के कारण आय की नियमित हानि हुई-दावेदार एक सार्वजनिक कलाकार है-दावेदार भविष्य की संभावनाओं के लिए हकदार है-मुआवजा 5,00,800 रुपये से बढ़ाकर 6,77,920 रुपये किया गया।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. पप्पू देव यादव बनाम नरेश कुमार, 2020 0 एआईआर (एससी) 4424
2. एपीएसआरटीसी का प्रतिनिधित्व उसके महाप्रबंधक बनाम एम. रामादेवी एवं अन्य, 2008 (3) एससीसी 379
3. चोलामंडलम मेसर्स जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड अपने शाखा प्रबंधक के माध्यम से बनाम सुमित्रा एवं अन्य, 2018 (2) एसीसी 826
4. जितेंद्र किमशंकर त्रिवेदी और अन्य बनाम कसम दाउद कुंभार और अन्य, (2015) 4 एससीसी 237
5. अरुण कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, (2010) 9 एससीसी 218
6. महंत धंगीड़ और अन्य बनाम मदन मोहन एवं अन्य, एआईआर 1988 एससी 54
7. दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी, एआईआर 2000 एससी 43
8. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी एवं अन्य, आदेश से प्रथम अपील संख्या 2389/2016
9. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती सुमन मिश्रा एवं अन्य, 2019 (5) एडीजे 669

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. यह वर्तमान यह तात्कालिक अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/13वें अपर जिला न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 731/2014 (विष्णु बनाम टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य) में दिनांक 22.2.2019 को दिए गए

निर्णय और डिक्री/अधिनिर्णय से उत्पन्न हई है।

I. मामले के तथ्यः

2. संक्षेप में, विदवान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों-प्रतिवादियों का मामला यह था कि दावेदार-प्रतिवादी 26.8.2014 को एक दुर्घटना में घायल हो गया था, जो कि बोलेरो जीप संख्या यूपी 81-एक्स/0168 के अपराधी चालक की तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुआ था। दुर्घटना में गंभीर चोटों के अलावा प्रतिवादी-दावेदार को स्थायी विकलांगता भी हुई। दावेदारों-प्रतिवादियों को हुए नुकसान में स्थायी विकलांगता के कारण होने वाली आय की भारी हानि भी शामिल थी। बीमा कंपनी ने दलीलें दायर करके विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष प्रतिवादी-दावेदार के दावे का विरोध किया।

3. दोनों पक्षों ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किये। विद्वान न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और उत्तरदाताओं- दावेदारों को मुआवजा दिया, जिसे नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:-

क्र.सं. ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए:-

क्र.	मद	ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए निर्णय
1	मासिक आय (ए)	रु. 5,000/-
2	वार्षिक आय (ए x 12 = बी)	रु. 60,000/-
3	भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए आय का प्रतिशत (सी)	शून्य
4	वार्षिक आय भविष्य की संभावनाएं (बी+सी =डी)	रु. 60,000/-
5	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (ई)	--
6	निर्भरता की वार्षिक हानि / आय (डी-ई =एफ)	वार्षिक आय का 41%) = रु. 24,600/-
7	गुणांक (जी)	18
8	निर्भरता की कुल हानि / आय	रु.,42,800/-
9	चिकित्सा व्यय (यदि कोई हो)	रु. 48,000/-
10	प्यार, स्नेह और भागीदारी की हानि	शून्य
11	संपति की हानि	शून्य
12	दर्द	रु. 10,000/-
13	कुल मुआवजा	रु. 5,00,800/-
14	ब्याज	7.00%

II. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की दलील:

4. अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा का

कहना है कि यद्यपि अपील के ज्ञापन में विभिन्न आधार उठाए गए हैं, केवल दो आधारों पर जोर दिया जा रहा है। सबसे पहले, यह अंशदायी. लापरवाही का मामला था जिसे विद्वान न्यायाधिकरण लापरवाही पर विचार करने में विफल रहा। दूसरे, प्रतिवादी-दावेदार को दी गई आय की हानि अत्यधिक थी और साक्ष्य से उचित नहीं ठहराई जा सकती।

5. प्रतिवादी-दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष पांडे ने एक मौखिक आपति उठाई और कहा कि जो मुआवजा दिया गया था उसमें भविष्य की संभावनाओं को भी जोड़ा जा सकता है। विद्वान न्यायाधिकरण ऐसा करने की उपेक्षा करके उचित मुआवजा देने में विफल रहा है और उसने **पप्पू देव यादव बनाम नरेश कुमार** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार भी काम किया है।

6. उन्होंने आगे तर्क दिया कि यदि यह स्थापित न्यायिक अधिकारियों द्वारा दिए गए मुआवजे के अनुदान के लंबे समय से चले आ रहे मानकों के अनुरूप नहीं है, तो यह न्यायालय क्रॉस अपील की अनुपस्थिति में भी पुरस्कार को सही कर सकता है। **एपीएसआरटीसी में इसके महाप्रबंधक बनाम एम. रमादेवी और अन्य और चोलामंडलम मे. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा इसके शाखा प्रबंधक बनाम सुमित्रा और अन्य** के माध्यम से प्रस्तुत सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया गया है।

7. कुछ तर्की के बाद, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता संयुक्त रूप से तर्क देते हैं कि इस अपील में निम्नलिखित मुद्दे विचार के लिए आते हैं: -

"क). क्या वह दुर्घटना जिसमें घायल को चोट लगी थी, अंशदायी लापरवाही का परिणाम था जिसके लिए अकेले बीमा कंपनी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है?

ख) क्या विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित आय की हानि अत्यधिक थी?

ग) क्या अपीलकर्ता अपील के चरण में मौखिक प्रति-आपति उठा सकता है?

घ) क्या अपीलकर्ताओं को उचित मुआवजा देते समय भविष्य की संभावनाओं की गणना की जानी चाहिए? "

III. अंशदायी लापरवाही का मुद्दाः

8. घटना के तथ्य और अपराधी वाहन की लापरवाही को स्थापित करने के लिए दावेदार-प्रतिवादी पीडब्लू-1 के रूप में उपस्थित हुआ।

9. पीडब्लू-1 विष्णु ने गवाही दी कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वह रागिनी प्रदर्शन के बाद लौट रहा था। वह बस से उतरा और दाहिनी ओर कच्चे रास्ते पर चलने लगा। आक्रामक वाहन, जो तेजी और लापरवाही से चलाया जा रहा था, अचानक मुख्य सड़क से हटकर कच्चे रास्ते पर आ गया और उसके ऊपर चढ़ गया। दुर्घटना के बाद उन्हें गंभीर चोटें आई और अस्पताल में भर्ती कराया गया। उन्होंने हमलावर वाहन को मोटर साइकिल से टकराते हुए भी देखा। मोटरसाइकिल पर सवार दो लोगों

की घटनास्थल पर ही मौत हो गयी. दुर्घटना के बाद चालक मौके से भाग गया, हालांकि, उसने मोटर वाहन का नंबर दर्ज कर लिया। हादसे के करीब 15-20 मिनट बाद पुलिस मौके पर पहुंची. गवाह की गवाही पर न तो महाभियोग लगाया गया और न ही जिरह के तहत उसकी साख को नुकसान पहुँचाया गया। विद्वान न्यायाधिकरण ग ने गवाह के आचरण को देखकर उसे एक विश्वसनीय गवाह पाया और उसकी गवाही पर विश्वास विश्व किया।

10. दावेदार ने पुलिस जांच के दौरान पुलिस अधिकारियों द्वारा तैयार की गई साइट योजना को भी सबूत के तौर पर पेश किया। साइट योजना ट्रिब्यूनल के समक्ष चश्मदीदों की गवाही की पुष्टि करती है।

11. इस प्रकार ये तथ्य रिकॉर्ड में साक्ष्य द्वारा और सबूत के लागू मानकों के अनुसार स्थापित किए जाते किए जाते हैं। दावेदार-प्रतिवादी एक पैदल यात्री था, जो सड़क के सही ओर चल रहा था। हमलावर वाहन तेज़ गति से चल रहा था और उक्त वाहन का चालक तेजी से और लापरवाही से काम कर रहा था। हमलावर वाहन ने लगातार तीन लोगों को कुचल दिया। दो लोगों की घटनास्थल पर ही मौत हो गई, जबकि दावेदार गंभीर रूप से घायल हो गया। दुर्घटना के लिए प्रतिवादी दावेदार को किसी भी तरह से दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दुर्घटना के लिए बोलेरो कार का अपराधी चालक पूरी तरह से जिम्मेदार था। यह अंशदायी लापरवाही का मामला नहीं है.

12. वाहन का बीमा अपीलकर्ता-बीमा कंपनी द्वारा किया गया था और अपीलकर्ता प्रतिवादी-दावेदारों को मुआवजा देने के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है।

IV. ट्रिब्यूनल निष्कर्ष- चर्चाः

13. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा की दलील है कि यह अंशदायी लापरवाही का मामला है क्योंकि प्रतिवादी-दावाकर्ता मोटरसाइकिल के आगे चल रहा था जो कि आक्रामक वाहन से टकरा गई थी। यह तर्क न केवल ग़लत है बल्कि दावेदार-प्रतिवादी के मामले का समर्थन भी करता है। बोलेरो वाहन को अनुमेय गति सीमा और विवेकपूर्ण ड्राइविंग के मानदंडों का घोर उल्लंघन करते हुए चलाया जा रहा था और रुकने से पहले उसने लगातार तीन लोगों को कुचल दिया था।

14. मुझे डर है कि पिछली चर्चा के मद्देनजर, तर्क पूरी तरह से गलत हैं और खारिज कर दिए गए हैं। अंशदायी लापरवाही का मामला अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के खिलाफ और उत्तरदाताओं-दावेदारों के पक्ष में पाया जाता है।

V. कमाई के नुकसान का मुद्दाः

15. घायल-दावेदार ने विकलांगता की प्रकृति और परिणामी आय की हानि को स्थापित करने के लिए दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य दोनों पेश किए हैं। जिस शिवम केयर सेंटर में दुर्घटना के बाद घायल ने अपने पैर के फ्रैक्चर का इलाज कराया था, उसका डिस्चार्ज बिल विधिवत प्रमाणित हो गया है। प्रतिवादी-दावेदार की छुट्टी के तुरंत बाद शारीरिक प्रमाणित हो

गया है विकलांगता बोर्ड पीड प्वारा जारी विकलांगता प्रमाण पत्र में दर्ज है कि स्थायी शारीरिक विकलांगता की सीमा 41% है। विकलांगता प्रमाण पत्र भी प्रमाणित हो चुका है।

16. पीडब्लू-2 -डॉ. एच.एन. सिंह पुंडीर ने गवाही दी थी कि वह एक ऑर्थो सर्जन हैं और विकलांगता बोर्ड के सदस्य हैं, जिसने प्रतिवादी-दावेदार को विकलांगता प्रमाण पत्र जारी किया था। उन्होंने विकलांगता प्रमाण पत्र पर अपने हस्ताक्षर की विधिवत पहचान की है। पीडब्लू-2 ने कहा है कि विकलांगता प्रमाण पत्र में घायल के शरीर के साथ-साथ एक विशेष हिस्से में हुई कमजोरी को दर्शाया गया है। विकलांगता फ्रैक्चर के कारण हुई थी। जिरह में पीडब्लू-2 की गवाही पर दोषारोपण नहीं किया गया। ट्रायल कोर्ट, जिसे गवाह का अवलोकन करने का लाभ मिला, ने राय दी कि वह विश्वास के योग्य है और उसकी गवाही पर भरोसा किया जा सकता है।

17. इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय पीडब्लू -2 डॉ. एच.एन. सिंह पुंडीर के विश्वास पर कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने के लिए राजी नहीं है।

18. इसके मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि स्थायी विकलांगता जिसमें प्रतिवादी-दावेदार का दाहिना पैर 40% की सीमा तक है, साक्ष्य के लागू मानकों द्वारा स्थापित किया गया है। रिकॉर्ड में सबूतों की अटूट श्रृंखला दुर्घटना, चोटों, चिकित्सा उपचार और स्थायी विकलांगता को जोड़ती है। विकलांगता सीधे तौर पर हमलावर बोलेरो वाहन के कारण हुई दुर्घटना से संबंधित है।

19. प्रतिवादी-दावेदार ने दावा किया है कि स्थायी विकलांगता के कारण आय की नियमित हानि हुई है। प्रतिवादी-दावेदार एक सार्वजनिक कलाकार है जो विभिन्न विभिन्न सार्वजनिक नृत्य गतिविधियों को समारोहों में गाता और नृत्य करता है। विकलांगता उनकी लयबद्ध बाधित करेगी और उनकी सार्वजनिक अपील को कम कर देगी।

20. विद्वान न्यायाधिकरण ने मुआवजे का निर्धारण करने के लिए अनुमानित आय के रूप में 5,000/- रुपये का पुरस्कार दिया है। उक्त निष्कर्ष पर विवाद करने के लिए रिकॉर्ड से कुछ भी नहीं दिखाया गया है। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा गणना की गई आय को बरकरार रखा गया है।

21. विद्वान न्यायाधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं के मद में कोई भी राशि देने की उपेक्षा की । प्रतिवादी-दावेदार **पप्पू देव** यादव (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले में निर्धारित स्थायी विकलांगता के कारण 40% की सीमा तक भविष्य की संभावनाओं का हकदार है।

22. पप्पू देव यादव (सुप्रा) में संबंधित होल्डिंग नीचे दी गई है:

"21. इस अदालत की यह भी राय है कि निचली अदालतों ने अपीलकर्ता द्वारा अर्जित आय के संबंध में प्रस्तुत किए गए सबूतों को

अनावश्यक रूप से नजरअंदाज कर दिया। अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते हुए, यानी दिल्ली में कोर्ट परिसर में टाइपिस्ट डेटा एंट्री ऑपरेटर के रूप में, 12,000/- रुपये कमाने के उनके दावे को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता था, बल्कि इसे घटाकर 8,000/- रुपये प्रति माह किया जा सकता था।। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसे स्व-नियोजित पेशेवर निर्धारण वर्ष 2011-2012 के लिए आयकर रिटर्न दाखिल करने के लिए बाध्य नहीं थे, जब प्रति वर्ष ₹ 1,60,000/- से कम आय वाले किसी भी व्यक्ति के लिए कोई लेवी मौजूद नहीं थी। 29 जिस अधिवक्ता ने अपीलकर्ता की कमाई के बारे में गवाही दी थी, उस पर इस हद तक विश्वास किया गया था कि ट्रिब्यूनल ने अपीलकर्ता की मासिक कमाई ₹8,000/- तय कर दी थी। यदि कोई कुशल श्रमिकों के लिए समकालीन न्यूनतम वेतन (जो कि र 8,500/- की सीमा में था) को ध्यान में रखता है तो वास्तविक आंकड़ा र 10,000/- प्रति माह होगा। भविष्य की संभावनाओं को 40%30 पर जोड़ने पर, आय होनी चाहिए मुआवजे की गणना के उद्देश्य से ₹14,000 के रूप में लिया जाएगा। तदनुसार, इस अदालत ने पाया कि एक हाथ की हानि (65% पर मूल्यांकन) की विकलांगता के लिए देय मुआवजा ₹19,65,600/- (यानी, 14,000/- x 12 x 65% x 18) या उन्नीस लाख पैंसठ हजार छह सौ रुपये होगा।"

23. प्रतिवादी-दावेदार के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष पांडे ने इस हद तक प्रति- आपत्ति उठाई है कि अधिकरण ने मुआवजे का निर्धारण करते समय भविष्य की संभावनाओं की गणना करने की उपेक्षा की और इस पर विचार किया जाना चाहिए।

VI. मौखिक प्रतिवाद का मुद्दाः

24. यह प्रश्न कि क्या अपील के स्तर पर मुआवजे में वृद्धि के लिए मौखिक आपतियां उठाई जा सकती है, अच्छे अधिकारियों द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है।

25. किसी पक्ष को अनुमति देने के लिए अपीलकर्ता किसी पक्ष अदालत का अधिकार क्षेत्र मौखिक आपतियों लेना सीपीसी के आदेश XLI नियम 33 में उल्लिखित अपील की अदालत की शक्ति का पता लगाने योग्य है। सीपीसी के आदेश XLI नियम 33 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"नियम 331 अपील की अदालत की शक्ति- अपीलीय न्यायालय किसी भी डिक्री को पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी जो पारित किया जाना चाहिए या किया जाना चाहिए और **ऐसी अन्य डिक्री या आदेश पारित करने या बनाने की शक्ति होगी जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है,** और आदेश का प्रयोग न्यायालय द्वारा अपील किए जाने के बावजूद किया जा सकता है। केवल डिक्री के भाग के रूप में और सभी या किसी भी उतरदाताओं या पार्टियों के पक्ष में प्रयोग किया जा सकता है, उन्होंने कोई अपील या आपति दायर नहीं की है और हो सकता है, जहां क्रॉस सूट में डिक्री हुई हो या जहां दो या दो से अधिक डिक्री पारित की गई हों सभी या किसी डिक्री के संबंध में एक मुकदमा चलाया

जाएगा, हालांकि ऐसी डिक्री के खिलाफ अपील दायर नहीं की गई होगी।" (जोर दिया गया)

26. प्रावधान का दायरा यह सुनिश्चित करता है कि कानून के हाथ अन्याय तक पहुंचने के लिए काफी लंबे हैं, और न्यायालय के हाथ न्याय दिलाने के लिए पर्याप्त हैं। उपरोक्त प्रावधान से अपनी शक्ति प्राप्त करते हुए, अपीलीय अदालत न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदेश पारित कर सकती है।

27. विशेष रूप से कानून की लाभकारी प्रकृति और मोटर वाहन अधिनियम, वैधानिक आदेश अपीलीय अदालत को उचित मुआवजा 1988 का देने के लिए आदेश 41 नियम 33 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का आदेश देता है। [देखें: जीतेंद्र किमशंकर त्रिवेदी और अन्य बनाम कसम दाउद कुंभार और अन्य, अरुण कुमार अग्रवाल और अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य]

28. सीपीसी के आदेश 41 नियम 33 का दायरा सुप्रीम कोर्ट ने **महंत धनगीर और अन्य बनाम मदन मोहन और अन्य** में कहा:-

"11. विचार के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या सह-प्रतिवादी मदन मोहन के खिलाफ प्रति-आपति कायम थी, और यदि नहीं, तो क्या न्यायालय सहायता के लिए आदेश 41 नियम 33 सीपीसी को बुला सकता है। विवाद की सराहना करने के लिए यहां क्रम 41 के आर. 22 और आर. 33 को निर्धारित करना उपयोगी होगा:

"आर. 22 सुनवाई पर, प्रतिवादी डिक्री पर आपति कर सकता है जैसे कि उसने अलग अपील की हो। (1) कोई भी प्रतिवादी, भले ही उसने डिक्री के किसी भी हिस्से से अपील न की हो, न केवल डिक्री का समर्थन कर सकता है (बल्कि यह भी कह सकता है कि किसी भी मुद्दे के संबंध में नीचे के न्यायालय में उसके खिलाफ निष्कर्ष उसके पास होना चाहिए था) डिक्री पर पक्ष, और कोई प्रति-आपत्ति भी ले सकता है) जिसे वह अपील के माध्यम से ले सकता था, बशर्ते उसने उसे या उसके अधिवक्ता को नोटिस की तामील की तारीख से एक महीने के भीतर अपीलीय न्यायालय में ऐसी आपति दायर की हो। अपील की सुनवाई के लिए निर्धारित दिन, या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जिसे अपीलीय न्यायालय अनुमति देना उचित समझे।

आर. 33 अपील न्यायालय की शक्ति अपीलीय न्यायालय को किसी भी डिक्री को पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी जो पारित किया जाना चाहिए या किया जाना चाहिए और मामले की आवश्यकता के अनुसार ऐसी e अन्य डिक्री या आदेश पारित करने या बनाने की शक्ति होगी, और इस आदेश का प्रयोग न्यायालय द्वारा इसके बावजूद किया जा सकता है। अपील केवल डिक्री के एक भाग के रूप में है और सभी या किसी भी उत्तरद्वाता या पार्टियों के पक्ष में की जा सकती है, हो सकता है कि उन्होंने कोई अपील या आपत्ति

दायर न की हो और जहां क्रॉस सूट में डिक्री हुई हो या जहां दो या दो से अधिक डिक्री किया जा सकता है। एक मुकदमे में पारित किए गए हैं सभी या किसी भी डिक्री के संबंध में प्रयोग किए जा सकते हालांकि ऐसे डिक्री के खिलाफ अपील दायर नहीं की गई हो सकती है।"

29. **दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी** में भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया था।

30. सीपीसी के आदेश XLI नियम 33 के तहत शक्तियों की सीमा का विस्तार करते हुए, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी और अन्य** में इस न्यायालय ने इस प्रकार कहाः

"अपील की अदालत की शक्ति निर्धारित करने वाले सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश एक्सएलआई नियम 33 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अपीलीय अदालत के पास कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी जिसे मामले की आवश्यकता के अनुसार पारित किया जाना चाहिए या बनाया जाना चाहिए, और इस शक्ति का प्रयोग सभी या किसी भी उत्तरदाताओं या पार्टियों के पक्ष में किया जा सकता है, भले ही उन्होंने कोई क्रॉस अपील या आपति दर्ज न की हो।"

31. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती सुमन मिश्रा व अन्य में विद्यावती देवी (सुप्रा) का अनुसरण किया गया। जहां न्यायमूर्ति ठाकर ने अधिवक्ताओं को मौखिक आपत्तियां उठाने की अनुमति दी और अपील में लिखित प्रति-आपत्तियों के अभाव में भी मुआवजा बढ़ायाः

"44. यह प्रस्तुत किया गया है कि जो राशि दी गई है वह सिर्फ मुआवजा नहीं है और यह मौखिक रूप से प्रस्तुत किया गया है कि 2016 के आदेश संख्या 2389 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी और 2 अन्य) की पहली अपील में इस उच्च उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले के आलोक में मुआवजे की राशि को बढ़ाने की आवश्यकता है, जिसमें 27.7.2016 को निर्णय लिया गया था माना जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 के तहत, कोई लिखित अपील या लिखित क्रॉस आपति न होने पर भी मुआवजे की राशि बढ़ाई जा यह इस मामले पर भी लागू होता है, हाल ही में उत्तर पूर्व कर्नाटक में शीर्ष अदालत ने यह व्यवस्था दी है सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता, एआईआर 2018 एससी 5593 कि लाभकारी कानून के लिए न्यायालय को वृद्धि प्रदान करनी चाहिए, भले ही दूसरा पक्ष मौजूद न हो।

45. न्यायोचित मुआवजा देने से संबंधित कानून के सिद्धांतों का न्यायाधिकरण द्वारा पालन नहीं किया गया है, इसलिए इसे 27.7.2016 को पारित प्रथम अपील आदेश संख्या 2389/2016 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी एवं 2 अन्य) के अनुसार पुनः तय करना होगा।"

32. जब प्रति आपतियां उठाने के लिए पूर्व शर्तें पूरी हो गई, तो **विद्यावती देवी (सुप्रा)** में इस न्यायालय ने प्रति आपतियों को स्वीकार करने में कमी नहीं पाई और इस प्रकार निर्णय दियाः

"हमारा यह मानना है कि आदेश XLI नियम 33 के प्रावधानों में निर्धारित शर्तें वर्तमान मामले में पूरी होती हैं। दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि जब ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हों, जिनमें नियम 33 द्वारा दिए गए विवेकाधिकार का प्रयोग करना आवश्यक हो, तो न्यायालय को अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में कोई कमी नहीं दिखाई जा सकती।"

33. मद्देनजर पूर्ववर्ती चर्चा और बिंदु में अधिकारियों के अनुसार, दावेदारों-प्रतिवादियों की ओर से मौखिक क्रॉस आपतियां सुनी जाने योग्य हैं। यह न्यायालय किसी भी पक्ष के पूर्वाग्रह को दूर करने के लिए राहत को उचित रूप से ढाल सकता है।

34. भविष्य की संभावनाओं का मुखिया अच्छे अधिकारियों द्वारा अच्छी तरह से तय किया जाता है। इस मामले में उक्त प्राधिकारियों की प्रयोज्यता और भविष्य की संभावनाओं के लिए दावेदार-प्रतिवादी । के अधिकार के के बारे में कोई विवाद नहीं है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में में भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के लिए साक्ष्य की किसी गहन जांच या विस्तृत तर्क की आवश्यकता नहीं है। यह एक साधारण प्राथमिक स्तर है।

35. इस मद्देनजर, दावेदार प्रतिवादी की ओर से मौखिक प्रति आपतियों पर विचार किया जाना चाहिए और ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जानी चाहिए।

VII. मुआवजे का निर्धारण जिसके लिए दावेदार-प्रतिवादी हकदार है:

36. पिछली चर्चा के मद्देनजर, दावेदार-प्रतिवादी को दी गई मुआवजे की राशि नीचे सारणीबद्ध है

i. दुर्घटना की तिथि 26.08.2014 रात्रि 8.00 बजे
ii. घायल का नाम विष्णु
iii. घायलों की उम्र 21 वर्ष
iv. मृतक का व्यवसाय जागरण कार्यक्रम में गाना
v. घायलों की आय - 10,000/- रुपये
vi. दावेदार का नाम, उम और मृतक घायल के साथ संबंध

क्र.सं.	नाम	आयु	संबंध
1	विष्णु	21	

क्र. सं	शीर्ष	राशि (रुपये में)
1.	मासिक आय (ए)	रु. 5,000/-
2.	वार्षिक आय (ए x 12 = बी)	रु. 60,000/-
3.	भविष्य की संभावनाएं (सी)	रुपये 60,000/- का 40% (रु. 24,000/-)
4.	वार्षिक आय भविष्य की संभावनाएं (बी+सी =डी)	60,00 + 24,000 = रु. 84,000/-
5.	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (ई)	
6.	निर्भरता की वार्षिक हानि / आय (डी-ई =एफ)	वार्षिक आय का 41%) = रु. 34,440/-
7.	गुणांक (जी)	18
8.	निर्भरता की कुल हानि / आय की	रु.,6,19,920/-
9.	चिकित्सा व्यय (यदि कोई हो)	रु. 48,000/-

10	प्यार, स्नेह और भागीदारी की हानि	शून्य
11	संपति की हानि	शून्य
12	दर्द	रु. 10,000/-
13	कुल मुआवजा	रु. 6,77,920/-
14	ब्याज	7.%

VIII. निष्कर्ष और निर्देशः

37. मुआवजे की वह राशि जिसके लिए दावेदार-प्रतिवादी को हकदार पाया गया है, निगम द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष तीन महीने के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी कर देगा। दावेदारों को पहले ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को विधिवत समायोजित किया जाएगा।

38. उपरोक्त निर्देशों के साथ, यह अपील आंशिक रूप से **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 195

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1938/2010

उमाशंकर और अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती कुसुमलता एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री नमित कुमार शर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: ज्योत्सना श्रीवास्तव, श्री एस.डी. ओझा

सिविल कानून- मोटर दुर्घटना दावा - मृतका गृहिणी थी- उसके छह माह का बेटा और पति हैं- आय 2000 रुपये प्रतिमाह मानी जा सकती है- स्वरोजगार की श्रेणी- आयु वर्ग- 20-25 वर्ष- भविष्य की हानि के लिए आय का 40 प्रतिशत जोड़ा जाएगा- व्यक्तिगत व्यय के लिए 1/2 की कटौती होगी- 18 का गुणक- गैर आर्थिक क्षति के लिए भी हकदार- ब्याज दर- 7.5 प्रतिशत।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी [2014 (4) टीएसी 637 (एससी)]
2. श्रीमती सरला वर्मा बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन [2009 (2) टीएसी 677 (एससी)
3. कुर्वन अंसारी @ कुर्वन अली और अन्य बनाम श्याम किशोर मुर्मू एवं अन्य [2021 (4) टीएसी (एससी)]
4. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल एवं अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.)
5. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442
6. श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291
7. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य, निर्णय दिनांक 27.1.2022

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.डी. ओझा को सुना गया।

यह दुर्घटना वर्ष 2009 में घटित हुई थी। मृतका एक गृहिणी थी, जिसके पीछे छह माह का बेटा और उसका पति है। मृतक की आय 2000/- रूपये प्रति माह अर्थात 24,000/- रूपये प्रतिवर्ष मानी जा सकती है। मृतका स्वरोजगार की श्रेणी में आएगी और दुर्घटना के समय उसकी आयु 20-25 वर्ष के बीच थी, इसलिए, भविष्य की आय की हानि के लिए आय का 40% जोड़ा जाएगा और 1/2 व्यक्तिगत खर्चों के लिए काटा जाएगा जैसा कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी [2014 (4) टीएसी 637 (एससी)]** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया था क्योंकि यह उसका नाबालिग बच्चा था जहां मृतक की आयु को ध्यान में रखते हुए, **श्रीमती सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम [2009 (2) टीएसी 677 (एससी)]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में 18 का गुणक स्वीकार्य होगा।

जहां तक गैर-आर्थिक क्षति का सवाल है, **दावेदार कुर्वन अंसारी उर्फ कुर्वन अली और अन्य बनाम श्याम किशोर मुर्मू और अन्य [2021 (4) टीएसी (एससी)]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में संघ के नुकसान के लिए 70,000 रुपये पाने के हकदार होंगे।

अतः, उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर अपीलकर्ताओं-दावेदारों को देय मुआवजे की कुल राशि की गणना नीचे की जा रही है:-

(i) वार्षिक आय : रु.24,000/- प्रतिवर्ष (रु.2,000 x 12)

(ii) भविष्य की संभावनाओं के प्रति प्रतिशत 40% : रु.9,600/-

(iii) कुल आय : रु. 24,000/- + रु. 9,600/- = रु. 33,600/-

(iv) कटौती 1/2 के बाद आय: रु.33,600/- - रु.16,800/- = रु.16,800/-

(v) लागू गुणक : 18

(vi) निर्भरता की हानि : रु. 16,800/- x 18 = रु. 3,02,400/-

(vii) गैर-आर्थिक मद के अंतर्गत राशि : रु. 70,000/-

(viii) कुल मुआवजा: रु.3,02,400/- + रु.70,000/- = रु.3,72,400/-

जहां तक ब्याज दर के मुद्दे का सवाल है, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल और अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.)** में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय के मद्देनजर यह 7.5% होनी चाहिए, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"13. उपर्युक्त विशेषताएं ब्याज दर के संबंध में दावेदारों की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्कों पर भी समान रूप से लागू होती हैं। न्यायाधिकरण ने 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का आदेश दिया था, लेकिन यह दर इन मामलों में सामान्य रूप से निर्धारित की गई दर की तुलना में बहुत अधिक थी। उच्च न्यायालय ने, पुरस्कार राशि में पर्याप्त वृद्धि करने के बाद, ब्याज घटक को 7.5% प्रति वर्ष की उचित दर पर संशोधित किया और हमें इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा दी गई दर से अधिक ब्याज की अनुमति देने का कोई कारण नहीं मिला।"

उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और डिक्री पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित मानी जाएगी। प्रतिवादी-बीमा कंपनी उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित राशि तत्काल जमा करेगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाएगा।

रिकार्ड और कार्यवाही तुरन्त न्यायाधिकरण को वापस भेजी जाए। यह राशि दावेदारों को दी जाएगी तथा कोई भी राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, रिपोर्ट 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही ग्रामीण हैं।

माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में, 2007(2) जीएलएच 291 में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील आदेश संख्या 23/2001 (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) में राशि वितरित करते समय पुनर्विलोकन आवेदन संख्या 1/2020 में दोहराया गया है। उक्त निर्णय को उच्च न्यायालय गुजरात द्वारा आर/विशेष सिविल आवेदन संख्या 4800/2021 **(ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयकर आयुक्त (टीडीएस)** दिनांक 5.4.2022 को तय) में भी दोहराया गया है।

उपरोक्त याचिका में न्यायाधिकरण द्वारा इसमें किए गए संशोधन के अनुसार नया निर्णय दिया जाएगा। राज्य के न्यायाधिकरणों को इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करना चाहिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता तथा **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए यही बात लागू की जानी चाहिए।

न्यायाधिकरण बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश में जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रोके रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि लंबी अवधि बीत चुकी है,

इसलिए राशि बिना एफडीआर के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जाए।

(2023) 5 ILRA 197

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 2155/2017

श्रीमती नीलोफर ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती सारिका अरोरा एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री बिजय प्रकाश तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सुश्री आरुषि खरे

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 176 - दावे में वृद्धि को चुनौती - मृतक अपनी पत्नी को छोड़कर मरा - न्यायाधिकरण ने मृतक की आय 10,000/- प्रतिमाह के स्थान पर 3000/- प्रतिमाह मानी तथा भविष्य में आय की हानि को स्वीकार नहीं किया - दावेदार/पत्नी उत्तर प्रदेश नियम, 1998 के अनुरूप भविष्य की संभावनाओं के लिए वेतन में 50% वृद्धि के हकदार हैं - कुल मुआवजा 19,74,000/- रूपये होगा तथा ब्याज दर 7% होगी - बीमा कंपनी 3 माह के भीतर राशि जमा करेगी। (पैरा 1 से 13)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एनआईसीएल बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680
2. न्यू इंडिया असुर कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822
3. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

<u>माननीय अजय भनोट, जे.</u>

1. अपील मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 4, कानपुर नगर द्वारा 2013 की दावा याचिका संख्या 75 (नीलोफर बनाम सारिका अरोड़ा और अन्य) में दिए गए दिनांक 03.04.2017 के फैसले और पुरस्कार से उत्पन्न हुई है।) दावेदार के दावे को आंशिक रूप से अनुमति देना । यह अपील दावेदार/अपीलकर्ता द्वारा न्यायाधिकरण द्वारा आक्षेपित फैसले में दी गई राशि को बढ़ाने के लिए दायर की गई है।

2. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदार का संक्षिप्त मामला यह था कि मृतक की मृत्यु 14.08.2012 को एक दुर्घटना में हुई थी, जो पूरी तरह से पंजीकरण संख्या यूपी-टी/1360 वाले ट्रक के चालक की लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, मृतक मोटरसाइकिल चला रहा था जब ट्रक ने उसे टक्कर मार दी । मृत्यु के समय मृतक की आयु 28 वर्ष थी। दावेदार-अपीलकर्ता मृतक पर आश्रित था।

I. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा:

3. विद्वान न्यायाधिकरण ने आक्षेपित निर्णय में दिनांक 03.04.2017 को मुआवजा दिया गया जो कि यहां नीचे सारणीबद्ध प्रपत्र: दर्शाया गया है |

क्रमांक.	शीर्षक	राशि (रुपये में)
1.	मासिक आय (ए)	3000/-
2.	वार्षिक आय (ए + बी =12)	3000 x 12 = 36,000/-
3.	भविष्य की संभावनाएं (सी)	36,000 का 50% =18,000
4.	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (बी+सी=डी)	36,000+ 18,000/- = 54,000/-
5.	कटौती के बाद कुल आय (ई)	54,000/- का 1/3 =18,000/-
6.	निर्भरता की वार्षिक हानि (डी-ई=एफ)	54,000- 18,000/- =36,000/-
6.	गुणक (जी)	18
7.	निर्भरता का कुल नुकसान (एफ x जी = एच)	36000 x 18 =6,48,000/-
8.	मुआवज़ा (एच)	6,48,000/-
9.	परम्परागत प्रमुख: (1) (ए) प्यार और स्नेह की हानि (बी) कंसोर्टियम का नुकसान (सी) संपत्ति का नुकसान (डी) अंतिम संस्कार	15,000/-
10.	कुल मुआवज़ा (एच +आई = जे)	6,63,000/-
11.	ब्याज	7.00%

4. अपीलकर्ता-दावेदार के विद्वान अधिवक्ता श्री बिजय प्रकाश तिवारी और प्रतिवादी-बीमा कंपनी की विद्वान अधिवक्ता सुश्री आरुषि खरे इस बात से सहमत हैं कि इस अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए आते हैं: -

ए. क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने रिकॉर्ड में मृतक की आय का सही निर्धारण किया था?

बी. क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने इन विभिन्न शीर्षकों के तहत मुआवजे की सही गणना की है:-

(i) पारंपरिक प्रमुख,

(ii) भविष्य की संभावनाएँ,

(iii) गुणक, और

(iv) मुआवजे की गणना करते समय ब्याज?

4.(ए) मृतक की आय :

5. दावेदार ने दावा याचिका में कहा कि मृतक कपड़ों की बिक्री का काम करता था। मृतक की अपने व्यवसाय से आय 15,000/- रूपये प्रति माह थी । दावेदार-अपीलकर्ता ने मृतक की आय स्थापित करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्य पेश किए । विद्वान न्यायाधिकरण ने मृतक की आय रु. 3000/- प्रति माह आंकी। विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदार द्वारा दावा की गई आय को स्वीकार करने से इनकार करते हुए निम्नानुसार माना:

"32. माननीय उच्च न्यायालय और भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रति गहरा सम्मान रखते हुए, मेरी राय है कि उपरोक्त

दोनों मामले कानून दावेदार की उतनी मदद नहीं करते हैं, जितनी आयकर रिटर्न से संबंधित कागजात नहीं करते हैं । विशेष रूप से दलील दी गई है और सबूत दलीलों से परे हैं।

33. उनके व्यवसाय के संबंध में कोई सहायक साक्ष्य भी नहीं है । यदि मृतक व्यवसाय में लगा हुआ था, तो कपड़ों की बिक्री और खरीद के संबंध में साक्ष्य होना चाहिए था । सेल्स टैक्स में कोई रजिस्ट्रेशन नहीं है । कोई हिसाब-किताब, बिल वाउचर, बैलेंस शीट आदि नहीं है। किसी भी सहायक साक्ष्य के अभाव में, मृतक की आय का स्रोत दावेदार द्वारा साबित नहीं किया जा सका।

34. आय का स्रोत न होने की स्थिति में भी यह नहीं कहा जा सकता कि एक युवा वयस्क व्यक्ति कुछ भी नहीं कमा रहा होगा । मृतक अपने और अपने परिवार की आजीविका के लिए उचित आय अर्जित कर रहा होगा । भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लक्ष्मी देवी और अन्य बनाम मोहम्मद मामले में फैसला सुनाया है । तब्बर 2008(2) टी.ए.सी. 304 (एससी) कि आय के स्रोत के अभाव में आय का आकलन 100 रुपये प्रतिदिन की दर से किया जा सकता है। इस स्थापित कानून को ध्यान में रखते हुए, मृतक की आय 3000/- रुपये प्रति माह आंकी जाती है और इसे 12 से गुणा करने पर वार्षिक आय 36000/- रुपये हो जाती है।"

6. पी.डब्लू.1- नीलोफर (मृतक की पत्नी) ने अपनी गवाही में स्वीकार किया कि उसे मृतक के व्यवसाय के विभिन्न विवरणों जैसे फर्म का नाम, पंजीकरण प्रमाण पत्र, वैधानिक लाइसेंस और क्या मृतक मालिक था, के बारे में जानकारी नहीं थी। या दूसरों के साथ साझेदारी में लगे हुए हैं। उसने जिरह के दौरान यह भी स्वीकार किया कि वह कोई हिसाब-किताब या व्यवसाय से संबंधित कोई दस्तावेज देने की स्थिति में नहीं है।

7. दावेदार ने मृतक का आयकर रिटर्न भी पेश किया था जो उसकी मृत्यु से कुछ महीने पहले विद्वत न्यायाधिकरण के समक्ष साक्ष्य के रूप में दाखिल किया गया था। P.W.1 ने बताया कि उसे आयकर रिटर्न के बारे में तभी पता चला जब उसे अपने पति की मृत्यु के बाद आयकर प्राधिकरण से नोटिस मिला।

8. पी.डब्ल्यू.1 श्रीमती नीलोफर मृतक की पत्नी की गवाही का अवलोकन सच्ची है । कई परिवारों में महिलाओं को अक्सर व्यवसाय के विवरण या उससे संबंधित दस्तावेजों के बारे में जानकारी नहीं होती है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि दावेदार व्यवसाय से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा और इसे दावेदार के खिलाफ नहीं ठहराया जा सकता है। हालाँकि, यह उल्लेखनीय है कि पी.डब्लू. 1 को कभी भी इस सवाल का सामना नहीं करना पड़ा कि मृतक वास्तव में कपड़ा व्यवसाय चला रहा था या नहीं। दावा याचिका में इस दावे को कभी चुनौती नहीं दी गई कि मृतक एक कपड़े की दुकान चलाता था और इस पर विश्वास किया जा सकता है।

9. उनकी आय से जुड़ा सवाल थोड़ा ज्यादा पेचीदा है. हालाँकि, उचित आरंभ बिंदु आयकर

रिटर्न है जिसे साक्ष्य के रूप में पेश किया गया था और कागज संख्या 77 (सी) के रूप में चिह्नित किया गया था। मृतक की मृत्यु से कुछ महीने पहले रिटर्न दाखिल किया गया था। आयकर रिटर्न मृतक की सकल कुल आय को दर्शाता है। खाते का विवरण जो व्यवसाय चलाने के दौरान किए गए दिन-प्रतिदिन के खर्चों को रिकॉर्ड करता है, प्रस्तुत नहीं किया गया है। गारमेंट्स व्यापार में व्यवसाय को चालू रखने के लिए कुछ नियमित व्यय शामिल होते हैं। इस प्रकार खर्च की गई राशि सकल रिटर्न से कटौती योग्य है जिसे आयकर रिटर्न में दर्शाया गया है। इनकम टैक्स रिटर्न एक विश्वसनीय दस्तावेज है | हालाँकि परिवहन, भंडारण, कर्मचारियों के वेतन और इस तरह की कटौती के बाद वास्तविक आय का पता लगाया जा सकता है।

10. इन मुद्दों पर विचार करने पर, इस न्यायालय द्वारा मृतक की मासिक आय 10,000/- रुपये प्रति माह आंकी गई है।

11. इस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में, आयकर रिटर्न के संबंध में दावेदार-अपीलकर्ता की विशिष्ट दलीलों को लेने में विफलता को P.W.1- निलोफर ने अदालत के समक्ष अपने बयान में विश्वसनीय रूप से समझाया था। माना जाता है कि दावेदार ने आयकर रिटर्न प्रस्तुत किया था जिसकी प्रामाणिकता निर्विवाद है। आय निर्धारित करने के लिए आयकर रिटर्न एक विश्वसनीय आधार है। दावे में याचिका में आयकर रिटर्न के संबंध में एक विशिष्ट खंड को खाली छोड़ दिया गया था। पीटीआई. आयकर से संबंधित कॉलम में "लागू नहीं" शब्द लिख दिया गया है | पिछली चर्चा के मद्देनजर, ऊपर चर्चा की गई कमियों से दावेदार के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। विद्वान न्यायाधिकरण ने इस मुद्दे पर कानून और तथ्य में गलती की है।

4.(बी) (i) पारंपरिक प्रमुखों की गणना :

12. पारंपरिक मदों के तहत निर्धारित राशि विवादित पुरस्कार **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** से भिन्न है । पारंपरिक प्रमुखों को **प्रणय सेठी (सुप्रा)** में निम्नानुसार तय किया गया था:

"54.....कहने की जरूरत नहीं है कि पारंपरिक और पारंपरिक शीर्षों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षों को मात्रा निर्धारित करना होगा। किसी भी मात्रा का निर्धारण आवश्यक होगा एक उचित आधार है। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे अनजान नहीं रह सकती है। इसमें एक अंगूठे का नियम रहा है यह पहलू। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अंगूठे का नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, ट्रिब्यूनल और

अदालतों द्वारा पारित आदेशों की संभावना है दिशाहीन रहें। इसलिए, हमें लगता है कि यह उचित रकम तय करने जैसा प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े रु. 15,000/-, रु. 40,000/- होने चाहिए । अंतिम संस्कार का खर्च रु. 15,000/- रु. 40,000/- और रु. क्रमशः 15,000/-।"

13. पारंपरिक शीर्षों के अंतर्गत आंकड़ा निर्धारित किया गया है

1 2017 (16) एससीसी 680

प्रणय सेठी (सुप्रा) इस मामले के तथ्यों पर लागू होंगे। पुरस्कार तदनुसार संशोधित किया गया है।

4.(बी)(ii) भविष्य की संभावनाएं :

14. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 19982 के अनुसार की जानी चाहिए। नियमों का नियम 220A-3(i) प्रासंगिक है और यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"(3) मृतक की भविष्य की संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा-

(iii) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50% ।

15. यूपी रूल्स, 1998 **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य** मामले में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचार के लिए आया। **प्रणय सेठी (सुप्रा)** सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर **उर्मिला शुक्ला (सुप्रा)** में कहा गया:

"10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के मामले में ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने का निर्णय नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को किसी के तहत नहीं रखा गया था चुनौती । उन मामलों में 15% का निर्धारण जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी ने कहा है, को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी शासी सिद्धांत के अभाव में यह केवल संकेत के रूप में था। <u>यदि किसी वैधानिक उपकरण ने कोई ऐसा फॉर्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक उपकरण को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक उपकरण अन्यथा अमान्य न पाया जाए।</u>" (जोर दिया गया)

2 (इसके बाद "यूपी नियम, 1998 के रूप में संदर्भित)

3 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822

16. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 के नियम **प्रणय सेठी (सुप्रा)** या **सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** मामले में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। **प्रणय सेठी (सुप्रा)** में भविष्य की संभावनाएं यूपी पर

ध्यान दिए बिना निर्धारित की गईं । नियम, 1998। इस तथ्य को उर्मिला शुक्ला (सुप्रा) में विज्ञापित किया गया था:

"8. श्री राव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रणय सेठी मामले में निर्णय यह नहीं दर्शाता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3(iii) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो 15 के बजाय वेतन में 20% जोड़ने पर विचार करता है। % जिसे प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में बताया गया था। उनके प्रस्तुतीकरण में, चूंकि वैधानिक साधन स्थापित किया गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, इसलिए प्रणय सेठी के निर्णय को ऐसे वैधानिक नियम के आवेदन को सीमित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए।"

17. उ.प्र. नियम, 1998 प्रकृति में वैधानिक हैं और उनका संचालन प्रणय सेठी (सुप्रा) द्वारा बाधित नहीं किया गया है। यू.पी. नियम, 1998 में कानून की शक्ति है और यह उचित मामलों में पूरी ताकत से लागू होगा। यू.पी. नियम, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (सुप्रा) में किए गए प्रावधानों की तुलना में उनके लिए अधिक फायदेमंद हैं। प्रणय सेठी (सुप्रा) में हिस्सेदारी यूपी द्वारा प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकती । पात्र लाभार्थियों पर नियम, 1998।

18. इस न्यायालय ने पाया कि दावेदार-अपीलकर्ता यूपी नियम, 1998 के अनुरूप, भविष्य की संभावनाओं के लिए वेतन में 50% वृद्धि का हकदार है। पुरस्कार में आवश्यक परिवर्तन तदनुसार किए जाएंगे।

4 2009 (6) एससीसी 121

19. इस मद्देनजर, यह न्यायालय भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के मुद्दे पर अपीलकर्ता-दावेदार की तलाश करता है।

4 (बी) (iii) गुणक :

20. मृत्यु के समय मृतक की आयु 28 वर्ष थी। 17 के गुणक को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सही ढंग से लागू किया गया है और यह **प्रणय सेठी (सुप्रा) और सरला वर्मा (सुप्रा)** के अनुरूप है

4 (बी) (iv) ब्याज

21. 7% ब्याज और भुगतान के तरीके में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, दावेदार-अपीलकर्ता इस फैसले में निर्धारित बढ़ी हुई आय पर ब्याज का हकदार नहीं होगा।

II. मुआवजे का निर्धारण जिसके लिए दावेदार-अपीलकर्ता हकदार है:

22. पिछली चर्चा के मद्देनजर, दावेदार-अपीलकर्ता को दी गई मुआवजे की राशि नीचे सारणीबद्ध है:

i.दुर्घटना की तिथि	-14.08.2012
ii. मृत्यु तिथि	-14.08.2012
iii. मृतक का नाम	-शाहबान अहमद
iv. मृतक की उम्र	-28 वर्ष
v.मृतक का कब्ज़ा	गारमेंट की दुकान
vi. मृतक की आय	- रु.10,000/-

vii. दावेदारों का नाम, उम्र और मृतक के साथ संबंध |

क्रमांक.	नाम	आयु	रिश्ता
7.	श्रीमती नीलोफर	26	पत्नी

viii. मुआवज़े की गणना

क्रमांक.	शीर्षक	राशि (रुपये में)
1.	मासिक आय (ए)	10,000/-
2.	वार्षिक आय (ए + 12 = बी)	10,000/ - x 12 = 1,20,000/-
3.	भविष्य की संभावनाएं (सी)	1,20,000/- का 40% = 48,000/-
4.	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (बी+सी=डी)	1,20,000 + 48,000/- =1.68.000/-
5.	कटौती के बाद कुल आय (ई)	1/3 का 1,68,000/- =56000/-
6.	निर्भरता की वार्षिक हानि (डी-ई=एफ)	1,68,000-56000 =1,12,000/-
7.	गुणक (जी)	17
8.	निर्भरता का कुल नुकसान (एफ x जी = एच)	1,12,000/-x 17 =19,04,000/-
8.	मुआवज़ा (एच)	19,04,000/-
9.	परम्परागत प्रमुख: (1) (ए) प्यार और स्नेह की हानि (बी) कंसोर्टियम का नुकसान (सी) संपत्ति का नुकसान (डी) अंतिम संस्कार	70,000/-
10.	कुल मुआवज़ा (एच +आई = जे)	19,74,000/-
11.	ब्याज	7.00%

III. निष्कर्ष एवं दिशा-निर्देश :

23. मुआवजे की राशि, जिसके लिए दावेदार-अपीलकर्ता को इस प्रकार हकदार पाया गया है, निगम द्वारा विद्वत न्यायाधिकरण के समक्ष तीन महीने के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदार-अपीलकर्ता को राशि जारी कर देगा। दावेदार को पहले ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को विधिवत समायोजित किया जाएगा।

24. अपील संस्थित करते समय अपीलकर्ता-दावेदार द्वारा जमा की गई रु. 25,000/- की राशि होगी । तुरंत विद्वान न्यायाधिकरण को भेज दिया गया । 25. जैसा कि ऊपर बताया गया है, तत्काल अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है ।

(2023) 5 ILRA 203

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 2740/2006

श्रीमती कामिनी एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बरेली और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री शिवेन्द्र सिंह, श्री मो. नौशाद सिद्दीकी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री आदित्य सिंह परिहार, श्री आदित्य सिंह परिहार

अनुवादित

सिविल कानून - मोटर दुर्घटना दावा- आपेक्षित अनुतोष -दुर्घटना और लापरवाही का मुद्दा विवाद नहीं-मुआवजे की राशि तय की जाएगी-मृतक की आयु 40 वर्ष थी-उत्तर प्रदेश सहकारी संघ की सेवा में था-अधिकरण ने 7000 रुपये प्रतिमाह की आय निर्धारित की-लेकिन वेतन पर्ची के अनुसार मासिक आय 7974 रुपये होगी-कर निर्धारण गलत-मृतक की आयु 36-40 वर्ष थी-आय का 50 प्रतिशत जोड़ा जाएगा-व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती-सात आश्रितों के रूप में एक तिहाई-गैर-आर्थिक मद के लिए पात्रता प्लस 10 प्रतिशत वृद्धि-ब्याज दर 6 प्रतिशत के स्थान पर 7.5 प्रतिशत होगी।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 वाद (एससी) 1093
2. सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम एवं अन्य, 2009 वाद (एससी)
3. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 वाद (एससी) 1093
4. विमल कंवर एवं अन्य बनाम किशोर दान एवं अन्य, 2013 (3) T.A.C. 6 (एस.सी.)
5. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल एवं अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.)
6. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442
7. श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291
8. (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) के विरुद्ध आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 में पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1/2020
9. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री मोहम्मद नौसाद सिद्दीकी को सुना, अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य सिंह परिहार तथा निर्णय और आदेश का अवलोकन किया। स्वामी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह अपील, दावेदारों के आदेश पर, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/जिला न्यायाधीश, बरेली (इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा 2001 के एमएसीपी नंबर 375 दिनांक 18.9.2004 को पारित फैसले और पुरस्कार 6% की दर से ब्याज सहित मुआवजे के रूप में 6,20,800/- रुपये की राशि को चुनौती देती है।

3. दुर्घटना विवाद में नहीं है। ट्रिब्यूनल द्वारा तय की गई लापरवाही का मुद्दा भी विवाद में नहीं है। निर्णय लिया जाने

वाला एकमात्र मुद्दा मुआवजे की मात्रा है।

4. दुर्घटना 22.4.2001 को हुई। मृतक की उम्र 40 वर्ष थी और वह यूपी को-ऑपरेटिव फेडरेशन में केंद्र प्रभारी के पद पर कार्यरत थे। ट्रिब्यूनल ने उनकी आय 7000/- रुपये प्रति माह मानी, मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 की कटौती की, 11 का गुणक दिया और गैर आर्थिक क्षति के लिए 5,000/- रुपये दिए। ट्रिब्यूनल ने कानूनी प्रतिनिधि को देय कुल मुआवजे की गणना 6,20,800/- रुपये की है।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि मृतक की आय वेतन पर्ची के अनुसार कम से कम 7974/- रुपये प्रति माह मानी जानी चाहिए। ट्रिब्यूनल द्वारा की गई कटौतियों पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि पीएफ अंशदान में कटौती नहीं की जा सकती। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि ट्रिब्यूनल ने भविष्य में आय के नुकसान के मद में कोई राशि नहीं जोड़ी है जिसे मंजूर किया जाना चाहिए। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 मुकदमा (एससी) 1093 ने भविष्य में आय के नुकसान के अनुदान के लिए दिशानिर्देश सुझाए हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ट्रिब्यूनल ने 11 का गुणक लागू किया है। हालांकि यह साबित हो गया है कि मृतक की उम्र 40 वर्ष थी। व्यक्तिगत खर्चों के लिए एक तिहाई की कटौती भी गलत है, एक चौथाई होनी चाहिए क्योंकि मृतक के सात आश्रित थे जो एकमात्र कमाने वाले थे। सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, 2009 मुकदमा (एससी) में शीर्ष न्यायालय के फैसले के मद्देनजर गुणक 15 होना चाहिए।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि गैर आर्थिक क्षति के तहत दी गई राशि निचले स्तर पर है और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 मुकदमा (एससी) 1093 के फैसले के मद्देनजर इसे बढ़ाया जाना आवश्यक है।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंतिम रूप से प्रस्तुत किया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई ब्याज दर निचली तरफ है और यह उन दिनों प्रचलित रेपो दर के अनुसार होनी चाहिए।

8. इसके विपरीत, प्रतिवादी-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि ट्रिब्यूनल ने भविष्य में आय के नुकसान के मद में किसी भी राशि पर विचार नहीं किया है क्योंकि दावेदारों द्वारा यह साबित नहीं किया गया है कि वेतन में कितनी वृद्धि होगी। प्रतिवादी-बीमा कंपनी के अधिवक्ता ने

यह प्रस्तुत किया है कि ट्रिब्यूनल ने मृतक की उम्र के अनुसार 11 के गुणक पर विचार किया है जो उचित है क्योंकि यह उस दिन प्रचलित कानून था जब दुर्घटना हुई थी। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने अंततः तर्क दिया कि ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया मुआवजा उचित है और इसमें इस न्यायालय के किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि दुर्घटना वर्ष 2001 की है जबकि ट्रिब्यूनल का निर्णय प्रणय सेठी (सुप्रा) के निर्णय से पहले का है और इसलिए, आय के भविष्य के नुकसान को न जोड़ना उचित है।

10. पक्षों के विद्वान वकीलों को सुना और तथ्यात्मक आंकड़ों पर विचार किया। इस न्यायालय ने पाया कि दुर्घटना 22.4.2001 को हुई, जिससे भानु प्रताप सिंह की मृत्यु हो गई, जो दुर्घटना के समय 40 वर्ष का था। ट्रिब्यूनल ने उनकी आय 7000/- रुपये प्रति माह आंकी है. जो इस न्यायालय के अनुसार, दुर्घटना के वर्ष में, उनकी वेतन पर्ची को देखते हुए 7974/- रुपये प्रति माह होगी, इसलिए, आय का आकलन करने के लिए ट्रिब्यूनल द्वारा 7,000/- रु. का प्रावधान, विमल कंवर और अन्य बनाम किशोर दान और अन्य, 2013 (3) टीएसी 6 (एससी) के मामले में शीर्ष न्यायालय के आदेश के मद्देनजर गलत है। मृतक की उम्र 36-40 के बीच थी, प्रणय सेठी (सुप्रा) मामले में शीर्ष अदालत के फैसले के मद्देनजर आय का 50% जोड़ना होगा। मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती एक तिहाई होगी क्योंकि मृतक अपने पीछे सात आश्रित छोड़ गया है।

11. जहां तक गैर-आर्थिक मदों के तहत राशि का सवाल है, अपीलकर्ता प्रणय सेठी (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर हर तीन साल में 70,000/- रुपये और 10% वृद्धि के हकदार होंगे और, इसलिए, हम इस मद के तहत इस आंकड़े को 1,00,000/- रुपये तक बढ़ाते हैं।

12. इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजे की गणना नीचे दी गई है:

i. आय : रु.7974/- प्रति माह (रु.95688 प्रति वर्ष)
ii. भविष्य की संभावनाओं का प्रतिशत 50% अर्थात् रु.47844/-
iii. कुल आय : रु.95688 रु.47844 रु.143532/-
iv. व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 की कटौती के बाद आय रु. 95,688/-
v. गुणक लागू : 15
vi. निर्भरता का नुकसान : रु.95,688 x 15 रु.14,35,320/-
vii. गैर आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि रु. 1,00,000/-

अप्रमाणित

viii. कुल मुआवज़ा: रु. 15,35,320/-.

13. जहां तक ब्याज दर का सवाल है जो 6% दी गई है, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल और अन्य, 2019 (2) टीएसी 705 (एससी) में शीर्ष न्यायालय के नवीनतम निर्णय को देखते हुए यह 7.5% होनी चाहिए। जिसमें शीर्ष न्यायालय ने इस प्रकार कहा है :

"13. उपरोक्त विशेषताएं ब्याज दर के संबंध में दावेदारों की ओर से आग्रह कि गए तर्को पर समान रूप से लागू होती हैं। ट्रिब्यूनल ने कहा था 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दिया गया, लेकिन इन मामलों में आमतौर पर जो परिकल्पना की गई है, उसकी तुलना में यह दर बहुत अधिक थी। उच्च न्यायालय ने पुरस्कार राशि में पर्याप्त वृद्धि करने के बाद, उचित दर पर ब्याज घटक को संशोधितकिया 7.5% प्रति वर्ष की दर और हमें इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अनुमत दर से अधिक किसी भी दर पर ब्याज की अनुमति देने का कोई कारण नहीं मिलता है।"

14. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय और डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर राशि जमा करेगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाएगा। रिकॉर्ड और कार्यवाही तुरंत ट्रिब्यूनल को वापस भेजी जाए।

15. ट्रिब्यूनल की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काटने का निर्देश दिया जाता है। ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 में रिपोर्ट की गई (1) जीएलएच (एससी), 442, के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात पर विचार करते हुए निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

16. श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007 (2) जीएलएच 291 के मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए रिपोर्ट की गई, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वितीय वर्ष से वितीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि ब्याज किसी भी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय रु. 50,000/- से अधिक होने पर,

बीमा कंपनी/मालिक धारा 194ए (3) (ix) के तहत 'स्रोत पर कर कटौती' के प्रमुख के तहत उचित राशि काटने का हकदार है। हैं। आयकर अधिनियम, 1961 और यदि किसी वितीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। उपरोक्त दृष्टिकोण को इस उच्च न्यायालय द्वारा 2001 के आदेश संख्या 23 (श्रीमती सुदेस्ना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य) की प्रथम अपील में राशि का वितरण करते समय 2020 के समीक्षा आवेदन संख्या 1 में दोहराया गया है।

17. यहां किए गए संशोधन के अनुसार ट्रिब्यूनल द्वारा उपरोक्त याचिका के अनुसार नया पुरस्कार निकाला जाएगा। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जहां तक संवितरण का सवाल है, इसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और ए.वी. पद्मा (सुप्रा) के फैसले पर गौर करना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना चाहिए।

18. ट्रिब्यूनल बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश के तहत जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि लंबी अवधि बीत चुकी है, राशि बिना एफ.डी.आर के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जाएगी।

19. यह न्यायालय इस मामले का फैसला करने के लिए दोनों वकीलों का आभारी है।

(2023) 5 ILRA 206

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 3389/2018

श्रीमती राजवती एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

इफको टोकियो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली एवं अन्य .. .प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री संजय सिंह, श्री अमरेन्द्र नाथ राय

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री प्रांजल मेहरोत्रा, श्री आशीष गुप्ता

सिविल कानून- उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998- वृद्धि के लिए अपील- मृतक सब्जी विक्रेता है-साक्ष्य प्रस्तुत किए गए- न्यायाधिकरण ने साक्ष्य को गलत पढ़ा- मृतक अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में काम करता था- जहां खाता बही आदि नहीं रखी

जाती- ऐसे दस्तावेजों की अनुपस्थिति आय के निर्धारण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकती- निर्धारित आय को अलग रखा जाता है- भविष्य की संभावनाओं की गणना की जा सकती है- प्रणय सेठी में दिए गए फैसले यू.पी. नियम, 1998 द्वारा दिए गए लाभों को कम नहीं कर सकते- दावेदार भविष्य की संभावनाओं के लिए मजदूरी में 50% वृद्धि का हकदार है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 (16) एससीसी 680
2. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 822
3. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी एवं अन्य, 2009 (6) एससीसी 121

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह और प्रतिवादी-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांजल मेहरोत्रा का पक्ष रखते हुए विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष गुप्ता को सुना गया।

2. यह अपील मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/जिला न्यायाधीश, बरेली द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 452/2015 (श्रीमती राजवती एवं अन्य बनाम इफको टोकियो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य) में दिनांक 02.05.2018 को दिए गए निर्णय एवं पंचाट से उत्पन्न हुई है, जिसमें दावेदारों के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया है। यह अपील दावेदारों/अपीलकर्ताओं द्वारा न्यायाधिकरण द्वारा विवादित निर्णय में दी गई राशि में वृद्धि के लिए दायर की गई है।

3. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों-अपीलकर्ताओं के संक्षिप्त तथ्य यह थे कि मृतक की मृत्यु दिनांक 22.08.2015 को हुई दुर्घटना में लगी चोटों के कारण हुई थी, जो कि पूरी तरह से टाटा-407 मॉडल पंजीकरण संख्या यूके-08-सीए/3528 के दोषी वाहन के चालक की लापरवाही व तेज गति से वाहन चलाने के कारण हुई थी। मृतक मोटरसाइकिल चला रहा था, तभी वाहन ने उसे टक्कर मार दी। दोषी वाहन का बीमा प्रत्यर्थी -बीमा कंपनी द्वारा कराया गया था। दावेदार मृतक पर आश्रित हैं। मृतक सब्जी बेचने का काम करता था।

I. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा:

4. विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 03.04.2017 के आक्षेपित निर्णय में मुआवजा दिया, जिसे नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:

क्र. सं.	**शीर्षक**	**राशि (रुपये में)**
1	मासिक आय (ए)	3600/-
2	वार्षिक आय (बी) (ए x 12 = बी)	3600 x 12 =43,200/-
3	भविष्य की संभावनाएं (सी)	43,200/- का 40% =17,280/-

अनुवादित

4	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (बी + सी = डी)	43,200 + 17,280/- =60,480/-
5	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (ई)	60,480/- का 1/4 = 15,120/-
6	निर्भरता की वार्षिक हानि (डी-ई = एफ)	60,480-15,120/- =45,360/-
6	गुणक (जी)	17
7	निर्भरता का कुल नुकसान (एफ x जी = एच)	45,360 x 17 =7,71,120/-
8	मुआवज़ा (एच)	7,71,120/-
9	पारंपरिक शीर्षक: (आई) (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) प्यार, स्नेह की हानि (सी) संपत्ति की हानि (डी) अंत्येष्टि व्यय	70,000/-
10	कुल मुआवज़ा (एच+आई = जे)	7,71,120/- + 70,000/- = 8,41,120/-
11	ब्याज	7.00%

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह का तर्क है कि ट्रिब्यूनल ने मृतक की आय का गलत निर्धारण करके और विभिन्न शीर्षों के तहत राशि का फैसला करके कानून में गलती की है, जो कि स्थापित अधिकारियों के साथ भिन्न थे।

6. प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांजल मेहरोत्रा के तर्क को प्रस्तुत करते हुए विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष गुप्ता ने तर्क दिया कि दिया गया मुआवजा न्यायसंगत, वैध था तथा इसमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

7. अपनी दलीलें पेश करने के बाद दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात पर सहमत हुए कि इस अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्नों पर ही विचार किया जाना चाहिए:-

क. क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने रिकॉर्ड में मृतक की आय का सही निर्धारण किया था?

ख. क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने इन विभिन्न शीर्षकों के तहत मुआवजे की सही गणना की है:-

(i) पारंपरिक शीर्ष,

(ii) भविष्य की संभावनाएँ,

(iii) गुणक, और

(iv) मुआवजे की गणना करते समय ब्याज?

7.(क) मृतक की आय:

8. दावेदार-अपीलकर्ताओं ने विशेष रूप से दलील दी कि मृतक एक सब्जी विक्रेता था जो प्रतिदिन 600/- से 700/- रुपये कमाता था। अपीलकर्ता-दावेदारों ने मृतक की आय स्थापित करने के लिए एक गवाह भी पेश किया। पीडब्लू1- राजवती ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाही दी कि उसका पति सब्जी विक्रेता के रूप में काम करता था। पूरा परिवार उनकी आय पर निर्भर था। जिरह के तहत गवाह ने कहा कि मृतक ने अपने व्यवसाय का कोई दस्तावेज जैसे बिक्री वाउचर की रसीद, नगर निगम के साथ पंजीकरण आदि नहीं रखा था। जिरह के तहत पीडब्लू 1-राजवती की साख बरकरार रही। उसकी गवाही स्पष्ट रूप से स्थापित करती है कि मृतक एक सब्जी विक्रेता था और उसके परिवार का भरण-पोषण उसकी आय से होता था। विद्वान न्यायाधिकरण, जिसे आचरण का अवलोकन करने का लाभ मिला, ने भी गवाही को अस्वीकार नहीं किया क्योंकि यह सब्जी बेचने के व्यवसाय में लगे मृतक से संबंधित है।

9. विद्वान न्यायाधिकरण ने साक्ष्यों को स्पष्ट रूप से गलत पढ़ा और पीडब्लू 1 की स्वीकारोक्ति पर भरोसा करते हुए आय का निर्धारण किया कि मृतक के व्यवसाय का दस्तावेजीकरण नहीं किया गया था।

10. मृतक अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में सब्जी विक्रेता के रूप में काम करता था। इस क्षेत्र में गतिविधियाँ अक्सर अप्रलेखित होती हैं। सब्जी विक्रेताओं द्वारा चालू खाता बही, या बिक्री वाउचर की रसीद, नगर निगम के साथ पंजीकरण आदि का रखरखाव नहीं किया जाता है। ऐसे मामलों में ऐसे दस्तावेजों की अनुपस्थिति आय के निर्धारण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकती है। सब्जी विक्रेताओं को व्यवसाय करने के लिए एक निश्चित कौशल की आवश्यकता होती है जिसमें सब्जियों की पहचान करना, बाजार को समझना और सही बिक्री स्वरूप देना शामिल है। ये कौशल अधिकतर नौकरी पर हासिल किए जाते हैं। मृतक की आय की जांच सब्जी विक्रेता के रूप में आजीविका कमाने के लिए आवश्यक कौशल के आधार पर की जाएगी। मृतक की आय का निर्धारण करते समय विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त विचारों को शामिल नहीं किया गया था। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित आय तदनुसार अपास्त की जाती है।

11. राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी सभी प्रासंगिक विचारों को ध्यान में रखती है और जांच को आगे बढ़ाने के लिए एक विश्वसनीय मार्गदर्शिका है। सब्जियों की बारहमासी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मृतक के पास रोजगार का एक नियमित स्रोत था। कुशल श्रमिकों के लिए प्रासंगिक समय पर राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित न्यूनतम वेतन 8,298/- रुपये है।

12. पूर्ववर्ती चर्चा के परिप्रेक्ष्य में मृतक की कुल मासिक आय रू0 8,500/- प्रतिमाह निर्धारित है।

7.(ख)(i) पारंपरिक शीर्षों की गणना:

13. आक्षेपित अवार्ड में पारंपरिक मदों के तहत निर्धारित राशि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य** से भिन्न है। पारंपरिक शीर्षों को **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निम्नानुसार तय किया गया था:

> "54. ...कहने की जरूरत नहीं है कि औपचारिक और पारंपरिक शीर्षों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को मात्राबद्ध करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में एक अचूक नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक अंगूठे का नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण और अदालतों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन

होने की संभावना है। इसलिए, हमारा मानना है कि यह उचित रकम तय करने जैसा प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये होने चाहिए, तथा अंतिम संस्कार व्यय क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और 15,000 रुपये होने चाहिए।"

14. **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** में निर्धारित पारंपरिक शीर्षों के तहत आंकड़े इस मामले के तथ्यों पर लागू होंगे। अवार्ड तदनुसार संशोधित किया गया है।

7.(ख)(ii) भविष्य की संभावनाएं:

15. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के अनुसार की जानी चाहिए। नियमावली का नियम 220क-3(i) प्रासंगिक है और यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"(3) मृतक की भविष्य की संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा-

(i) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50%।

16. **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य** मामले में उ.प्र. नियमावली, 1998 को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ लाया गया। **उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त)** मामले में **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद न्यायालय ने अवधारित किया:

"10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेत वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में लिए गए निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने वाला नहीं माना जा सकता है, विशेष रूप से तब जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के तहत नहीं रखा गया हो। प्रणय सेठी मामले में मृतक की आयु 50-60 वर्ष के बीच होने के मामले में 15% का प्रावधान अधिकतम नहीं माना जा सकता। वैधानिक व्यवस्था में किसी भी नियामक सिद्धांत के अभाव में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। *यदि किसी वैधानिक उपकरण ने ऐसा फार्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे वैधानिक उपकरण को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक उपकरण को अन्यथा अवैध न पाया जाए।*

(प्रभाव वर्धित)

17. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के नियम **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** या **सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में भविष्य की संभावनाओं का

निर्धारण उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 को ध्यान में रखे बिना किया गया था।

"8. श्री राव ने प्रस्तुत किया कि प्रणय सेठी मामले में दिए गए निर्णय से यह पता नहीं चलता कि न्यायालय का ध्यान विशिष्ट नियमों जैसे नियम 3(iii) की ओर आकर्षित किया गया था, जिसमें वेतन में 20% जोड़ने की बात कही गई है, जबकि प्रणय सेठी मामले में 15% जोड़ने का उपाय बताया गया था। उन्होंने कहा कि चूंकि वैधानिक साधन लागू किया गया है, जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, इसलिए प्रणय सेठी के निर्णय को ऐसे वैधानिक नियम के अनुप्रयोग को सीमित करने वाला नहीं माना जाना चाहिए।"

18. उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 वैधानिक प्रकृति की है तथा प्रणय सेठी (उपरोक्त) द्वारा इसके क्रियान्वयन पर कोई रोक नहीं लगाई गई है। उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 में कानून का बल है तथा यह समुचित मामलों में पूर्ण बल के साथ लागू होगी। उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998, दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में अधिक लाभकारी है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में जोत, पात्र लाभार्थियों को उत्तर प्रदेश नियम, 1998 द्वारा प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकती।

19. इस न्यायालय का मानना है कि दावेदार-अपीलकर्ता उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 के अनुरूप भविष्य की संभावनाओं के लिए वेतन में 50% वृद्धि के हकदार हैं। तदनुसार अवार्ड में आवश्यक परिवर्तन किए जाएंगे।

20. इसके मद्देनजर, यह न्यायालय भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के मुद्दे पर अपीलकर्ताओं के दावेदारों का पता लगाता है।

7.(ख)(iii) गुणक:

21. मृत्यु के समय मृतक की आयु 28 वर्ष थी। 17 के गुणक को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सही ढंग से लागू किया गया है और यह **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** और **सरला वर्मा (उपरोक्त)** के अनुरूप है।

7.(iv) ब्याज:

22. 7.50% ब्याज और भुगतान के तरीके में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, दावेदार अपीलकर्ता इस फैसले में निर्धारित बढ़ी हुई आय पर ब्याज के हकदार नहीं होंगे।

II. मुआवजे का निर्धारण जिसके दावेदार-प्रत्यर्थी हकदार हैं:

23. पिछली चर्चा के मद्देनजर, दावेदारों-अपीलकर्ताओं को दी गई मुआवजे की राशि नीचे दी गई है:

i. दुर्घटना की तिथि 22.08.2015
ii. मृत्यु तिथि - 22.08.2015
iii. मृतक का नाम -विजय राज
iv. मृतक की आयु -28 वर्ष
v. मृतक का व्यवसाय - सब्जी विक्रेता
vi. मृतक की आय - 8,500 रुपये प्रति माह
vii. दावेदारों का नाम, उम्र और मृतक के साथ संबंध

क्र.सं.	**नाम**	**आयु**	**रिश्ता**
1	श्रीमती रायवती	28	पत्नी
2	कु. रोशनी	4	बेटी

3	विशाल	2	बेटा
4	श्रीमती नेमवती	58	माँ
5	ख्यालराम	60	पिता

viii. मुआवज़े की गणना

क्र.सं.	शीर्षक	राशि (रुपये में)
1	मासिक आय (ए)	8500
2	वार्षिक आय (बी) (ए x 12 = बी)	8500 x 12 = 1,02,000/-
3	भविष्य की संभावनाएँ (सी)	1,02,000 का 50% =51,000/-
4	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएँ (बी + सी = डी)	1,02,000 + 51,000/- = 1,53,000/-
5	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (ई)	1,53,200/- का 1/4 =38,300/-
6	निर्भरता की वार्षिक हानि (डी-ई=एफ)	1,53,000-38,300 =1,14,700/-
7	गुणक (जी)	17
8	निर्भरता का कुल नुकसान (एफ x जी = एच)	17 x 1,14,750 = 19,49,900/-
9	मुआवज़ा (एच)	19,49,900/-
10	पारंपरिक शीर्षक: (I) (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) प्यार, स्नेह की हानि (सी) संपत्ति की हानि (डी) अंत्येष्टि व्यय	70,000/-
11	कुल मुआवज़ा (एच+आई = जे)	19,49,900/- + 70,000/- = 20,19,900/-
12	ब्याज	7.50%

III. निष्कर्ष एवं दिशा-निर्देश:

24. मुआवजे की वह राशि जिसके लिए दावेदार अपीलकर्ता इस प्रकार हकदार पाए गए हैं, निगम द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष तीन महीने के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी कर देगा। दावेदारों को पहले ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को विधिवत समायोजित किया जाएगा।

25. अपील दायर करते समय अपीलकर्ताओं-दावेदारों द्वारा जमा की गई 25,000/- रुपये की राशि तुरंत विद्वान न्यायाधिकरण को भेज दी जाएगी। यह राशि दावाकर्ताओं-अपीलकर्ताओं को प्रदान की गई मुआवजा राशि के हिस्से के रूप में भुगतान की जाएगी।

26. जैसा कि ऊपर बताया गया है, त्वरित अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(2023) 5 ILRA 212

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 4116/2017

और

अन्य संबंध वाद

मेसर्स ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड, हरि नगर, मेरठ ....अपीलकर्ता

बनाम

राम किशन अग्रवाल और अन्य ....प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एस. के. जायसवाल, श्री एन. के श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री के. एस. अमिष्ट

अनुवादित

ए. सिविल कानून- मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173-संयुक्त लापरवाही-इस वाद में, संबंधित चालकों के 2/3 और 1/3 की लापरवाही की सीमा तक संयुक्त लापरवाही के पारस्परिक दायित्व का निर्धारण किया गया है-वाहन-ट्रेलर-ट्रक जो बीमाकर्ता के पास बीमाकृत नहीं था, 2/3 की सीमा तक लापरवाह था-बस का बीमाकर्ता होने के नाते बीमाकर्ता के लिए दावेदार को भुगतान करने के बाद निष्पादन कार्यवाही में ट्रेलर-ट्रक के मालिक से उक्त सीमा तक राशि वसूल करना खुला होगा-यदि साक्ष्य के अभाव या अन्य संयुक्त अपकार के कारण पारस्परिक दायित्व का निर्धारण नहीं किया गया होता और दावेदार को अभियोगी नहीं बनाया गया होता, तो ऐसे विवाद का निस्तारण करना और निष्पादन कार्यवाही में राशि वसूलना खुला नहीं था, बल्कि उपाय यह होगा कि कानून के अनुसार एक और मुकदमा या उचित कार्यवाही दायर की जाए-खेनयेई में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय में एक अन्य तथ्य यह है कि मृतक या संबंधित व्यक्ति को दुर्घटना में योगदान करते हुए दिखाया जाना चाहिए और पीड़ित पर दुर्घटना के प्रभाव को कम किया जा सकता था यदि उसने ध्यान रखा होता तो यह न्यूनतम होता - यहां तक कि दिए जा रहे मुआवजे पर भी उठाया गया आधार अधिक है, इसलिए सफल नहीं हो सकता क्योंकि दिया गया मुआवजा भविष्य में आय की हानि के कारण कोई लाभ दिए बिना, बस चालक के उत्तराधिकारियों को दी गई राशि अल्प है, दावेदारों से कोई वसूली नहीं की जाएगी- इसलिए, ये सभी अपीलें विफल हो जाती हैं- (पैरा 1 से 24)

अपीलें निरस्त की जाती हैं। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य.. एफएएफओ संख्या 1818/2012
2. राइलैंड्स बनाम फ्लेचर (1868) 3 एचएल (एलआर) 330
3. जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य (2005) 0 एसीजे (एससी) 1840
4. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया अस्सर कंपनी लिमिटेड और अन्य (2015) वाद (एससी) 469
5. टी.ओ. एंथोनी बनाम करवर्नन और अन्य (2008) 3 एससीसी 748

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. मामलों के इस समूह को ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के प्रतिवादियों ने दुर्घटना में शामिल वाहन चलाने वाले ड्राइवर की लापरवाही के दावे में प्राथमिकता दी है।

2. बीमा कंपनियों ने ड्राइविंग लाइसेंस का मुद्दा उठाया है, लेकिन न्यायाधिकरण ने माना है कि उन्होंने न्यायाधिकरण के समक्ष इसे दोषपूर्ण साबित नहीं किया है, जो न्यायाधिकरण को उन्हें दोषमुक्त करने की अनुमति देगा। बीमा कंपनियों ने यह साबित नहीं किया है कि पॉलिसी शर्तों का उल्लंघन हुआ है। दोनों अपीलकर्ताओं-बीमा कंपनियों द्वारा उठाया गया दूसरा तर्क यह है कि न्यायाधिकरण ने दोनों वाहनों के ड्राइवरों की लापरवाही को शामिल नहीं किया।

न्यायाधिकरण ने लापरवाहों का बँटवारा नहीं किया है, ड्राइवर के उत्तराधिकारियों द्वारा प्राप्त राशि में कटौती नहीं की गई है जो कि विधि में गलत है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 19.6.1988 को लगभग 11.15 बजे, बस संख्या यूआरजे 7389, जिसमें सभी मृतक/घायल व्यक्ति अन्य यात्रियों के साथ यात्रा कर रहे थे, बिजौली तिराहा, मेरठ में दुर्घटनाग्रस्त हो गई- हापुड रोड, थाना खरखौदा, जिला मेरठ के घेरे में ट्रक संख्या डीएचएल 3616 के साथ आमने-सामने की टक्कर हो गई, बस मेरठ से हापुड जा रही थी, जबकि ट्रक विपरीत दिशा से मेरठ की ओर आ रहा था, तभी यह दुर्घटना हुई। टक्कर का नतीजा यह हुआ कि उक्त बस बायीं ओर पलट गयी. इस दुर्घटना के कारण कुमारी कौशल्या देवी, अजय कुमार अग्रवाल, श्रीमती मिथलेश अग्रवाल, बशीर, हरिया, देवेन्द्र और अशरफ की मृत्यु हो गई, जबकि दावेदार श्रीमती उर्मिला, कुमारी लवी, श्याम लाल, रघुवीर और राजेंद्र सिंह को कई चोटें आईं, जिनका वर्णन बाद में किया जाएगा। याचिकाकर्ताओं ने आरोप लगाया है कि विचाराधीन दुर्घटना, दुर्घटना में शामिल ड्राइवरों की ओर से वाहन चलाने में घोर लापरवाही और लापरवाही का परिणाम है।

4. बस नंबर यूआरजे 7389 के मालिकों ने मुख्य रूप से इस आधार पर दावा याचिकाओं का विरोध किया है कि उनका ड्राइवर-अशरफ, जिसकी भी दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, दुर्घटना को अंजाम देने में उतावला और लापरवाह नहीं था। दूसरी ओर, मोटर ट्रक संख्या डीएचएल 3616 के चालक की लापरवाही से यह दुर्घटना हुई और वह गलत दिशा में बस संख्या यूआरजे 7389 से टकरा गया।

5. दावा याचिकाएं मृतक के विधिक प्रतिनिधियों और घायल व्यक्तियों द्वारा मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 92-ए और 110-ए के अन्तर्गत मुआवजे के लिए पुलिस स्टेशन खरखौदा, जिला मेरठ दायर की गई थीं, जो 19.6.1988 को सुबह लगभग 11.15 बजे मेरठ-हापुड़ रोड पर बिजौली तिराहा पर सर्कल के भीतर हुई मोटर दुर्घटना में घायल हो गए थे।

6. यह कहा जा सकता है कि चूंकि उसी दुर्घटना से संबंधित दावा याचिकाएं, दिनांक 17.1.1990 के एक आदेश द्वारा दावा याचिका संख्या 197/88, 198/88 और 230/88 को समेकित कर दिया गया था और दावा याचिका संख्या 197/88 पर विचार किया गया था। अग्रणी मामले के रूप में, दिनांक 22.5.1990 के आदेश द्वारा एमएसी संख्या 154/88, 155/88 और 156/88 को एमएसी संख्या 197/88 के साथ समेकित किया गया था, दिनांक 8.11.1995 के आदेश द्वारा एमएसी संख्या 312/88 को एमएसी संख्या 197/ के साथ समेकित किया गया था। 88. एमएसी संख्या 243/88 को एमएसी संख्या 243/88 में दिनांक 29.7.1991 के आदेश के अन्तर्गत एमएसी संख्या 197/88 के साथ समेकित किया गया था। एमएसी नंबर 298/88, 299/88 और 311/88 को दिनांक 4.7.1991 के आदेश के जरिए प्रमुख केस नंबर 197/88 के साथ समेकित किया गया था, एमएसी नंबर

28/1989 को दिनांक 22.9 के आदेश के जरिए प्रमुख केस एमएसी नंबर 197/88 के साथ समेकित किया गया था। 1993 की सुनवाई एक साथ होनी थी.

7. मोटर ट्रक संख्या डीएचएल 3616 के मालिकों ने दावा याचिकाओं का विरोध नहीं किया है।

8. न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बस यूआरजे 7389 की बीमाकर्ता है, बीमा कंपनी ने मुख्य रूप से इस आधार पर दावा याचिकाओं का विरोध किया है कि कथित दुर्घटना मोटर ट्रक संख्या डीएचएल 3616 के चालक की लापरवाही और लापरवाही के कारण हुई।

9. मोटर ट्रक डीएचएल नंबर 3616 की बीमाकर्ता होने के नाते ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी ने इस आधार पर दावा याचिकाओं का विरोध किया है कि मोटर ट्रक डीएचएल नंबर 3616 के चालक के पास दुर्घटना की तारीख पर उक्त ट्रक को चलाने के लिए कोई वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। इसलिए बीमा कंपनी मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 96 के अनुसार क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं थी।

10. आवेदक मेसर्स ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने कुछ संबंधित अपीलों में न्यायाधिकरण के सामान्य निर्णय/निर्णय को चुनौती देने के लिए निम्नलिखित आधार उठाए हैं।

"(i) अपीलकर्ता की ओर से विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया क्षतिपूर्ति अवैधता और विकृति से ग्रस्त है, यह विशेष रूप से अतिरिक्त लिखित बयान के माध्यम से अनुरोध किया गया था कि ट्रक संख्या डीएचएल *3616* के चालक जाहिद हुसैन के पास कोई वैध ड्राइविंग नहीं थी लाइसेंस। मोटर वाहन अधिनियम की धारा *96* के मद्देनजर और बीमा की पॉलिसी के संदर्भ में अपीलकर्ता/बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं था। यदि कोई दायित्व था, तो तय किया गया था, ट्रक मालिक उत्तरदायी थे।

(ii) विद्वान न्यायाधिकरण तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चलाने पर निष्कर्ष देने में विफल रहा। बस में सवार सभी यात्रियों ने बताया कि बस काफी तेज रफ्तार में थी।

(iii) विद्वान न्यायाधिकरण अपीलकर्ता और बस के बीमाकर्ता न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी पर तय दायित्व की मात्रा के बारे में स्पष्ट निष्कर्ष देने में विफल रहा। इस प्रकार यह परिणाम को दूषित कर देता है।

(iv) न्यायाधिकरण ने विधि की गलती की क्योंकि उसने उक्त ट्रक के ड्राइवर के पास नहीं होने वाले ड्राइविंग लाइसेंस के संबंध में महत्वपूर्ण तर्कों को अनदेखा कर दिया। हालाँकि ड्राइविंग लाइसेंस की प्रमाणित सत्य प्रतियाँ और कार्यालय से उसका सत्यापन विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

(v) अपीलकर्ता की ओर से दायर एक लिखित तर्क में यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के मद्देनजर, बीमा कंपनी *(*अपीलकर्ता*)* बीमाधारक को क्षतिपूर्ति देने से मुक्त है। ट्रक के चालक के

पास वैध लाइसेंस *(ड्राइविंग लाइसेंस)* नहीं था

(vi) अन्यथा भी विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निष्कर्ष गलत, मनमाने ढंग से और विधि के अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत के विरुद्ध हैं और इसलिए रद्द किए जाने योग्य हैं।"

11. अपीलकर्ता-न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने संबंधित अपील में निम्नलिखित आधारों पर पुरस्कार को चुनौती दी है:

(i) एक बार अवर न्यायालय ने पाया कि दुर्घटना बस संख्या यूआरजे *7389* और ट्रक संख्या डीएचएल*3 3616* द्वारा दोनों वाहनों की लापरवाही के कारण हुई थी और इस तरह अवर न्यायालय को देय राशि के बंटवारे के बाद एक पुरस्कार पारित करना चाहिए था। प्रत्येक वाहन के बीमाकर्ता द्वारा भुगतान नहीं किया जाना, अवर न्यायालय का निर्णय पूरी तरह से अवैध और गलत है।

(ii) दुर्घटना *19.6.1988* को हुई थी और उस समय मोटर वाहन अधिनियम, *1939* लागू किया गया था और मोटर वाहन अधिनियम, *1939* की धारा *92* के अन्तर्गत बीमा पॉलिसी की अवधि के अनुसार अपीलकर्ता की अधिकतम वैधानिक देनदारी रुपये तक तय की जा सकती थी। *15,000/-* प्रति यात्री और चूँकि यह अंशदायी लापरवाही का वाद था, न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता का दायित्व केवल *7,500/-* प्रति यात्री होगा, लेकिन न्यायाधिकरण द्वारा इसके विपरीत लिया गया दृष्टिकोण पूरी तरह से अवैध और गलत है।

(iii) निचली न्यायालय ने अत्यधिक मुआवजा दिया है, हालांकि अपीलकर्ता के विरुद्ध अधिकतम मुआवजा *7500/-* रुपये दिया जा सकता था, इस मामले को देखते हुए माननीय न्यायालय ट्रिब्यूनल का निर्णय अत्यधिक है और इसे रद्द किया जा सकता है।

(iv) अपीलकर्ता के खिलाफ दिए गए मुआवजे का भुगतान केवल मृतक या घायल के आश्रितों को किया जा सकता है और जहां कोई निर्भरता नहीं थी, वहां कोई राशि का भुगतान नहीं किया जा सकता था जब तक कि अवर न्यायालय के समक्ष दावा साबित न हो जाए कि वे मृतक पर निर्भर थे या घायल हुए हैं और इस मामले में क्षतिपूर्ति की मात्रा अत्यधिक है।

(v) बस संख्या यूआरजे *7389,* जिसका बीमा अपीलकर्ता द्वारा किया गया था, की बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों के अनुसार बस का बीमा *69* यात्रियों को ले जाने के लिए किया गया था और मालिक से प्रीमियम शुल्क केवल *828/-* रुपये था। अधिनियम और नियमों के अन्तर्गत प्रति यात्री *12/-* रुपये और तदनुसार अपीलकर्ता का दायित्व अधिकतम *15,000/-* रुपये प्रति यात्री था। आगे कहा गया है कि तीसरे पक्ष के जोखिम को बढ़ाने के लिए अपीलकर्ता द्वारा *75/-* रुपये का शुल्क लिया गया था और इसका यात्रियों के लिए क्षतिपूर्ति में वृद्धि से कोई लेना-देना नहीं था, लेकिन नीचे की न्यायालय द्वारा इसके विपरीत लिया गया दृष्टिकोण पूरी तरह से अवैध और गलत है।

(vi) नीचे के न्यायालय ने वर्तमान मामले में गुणक प्रणाली को गलत तरीके से लागू किया है।

(vii) मुआवज़े की मात्रा और ब्याज की दर अत्यधिक है और इस माननीय न्यायालय द्वारा इसे रद्द किया जा सकता है।

(viii) बस का ड्राइवर किसी मुआवजे का हकदार नहीं था क्योंकि वह कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत बस के मालिक से क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता था।

(ix) दावेदार उत्तरदाता घातक दुर्घटना अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान की गई परिवार की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं और किसी भी क्षतिपूर्ति का दावा करने के हकदार नहीं हैं।

(x) ट्रिब्यूनल का निर्णय और पुरस्कार पूरी तरह से अवैध है और इस मामले के रिकॉर्ड पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के विरुद्ध है और इसे रद्द किया जा सकता है।

12. अपीलकर्ता-बीमा कंपनियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना। दोनों बीमा कंपनियों द्वारा चुनौती का सामान्य आधार दुर्घटना में शामिल वाहनों के चालकों की लापरवाही से संबंधित है, आइए निर्धारित विधि के परिप्रेक्ष्य से लापरवाही के प्रश्न पर विचार करें और जहां दो वाहन शामिल हैं।

13. लापरवाही शब्द का अर्थ दूसरों के प्रति देखभाल करने में विफलता है जो एक उचित और विवेकपूर्ण व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या ऐसा कदम उठाना जो ऐसा उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है जो सामान्यतः आकस्मिक होती है। विशेष रूप से, यह लापरवाह ड्राइविंग को दर्शाता है और घायल को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों पक्ष लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदायी है अन्यथा "रेसिप्सा लोकिटूर" का सिद्धांत लागू होगा जिसका अर्थ है " घटना स्वयं बोलती हैं"।

14. लापरवाही शब्द पर बार-बार चर्चा होती रही है। एक व्यक्ति जो या तो दुर्घटना में योगदान देता है या लेखक या सह-लेखक है, दुर्घटना घटित होने में अपने योगदान के लिए उत्तरदायी होगा।

15. **2012** के आदेश संख्या **1818 (**बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह और अन्य**)** की पहली अपील में इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने 19.7.2016 को निर्णय सुनाया:

> *"16.* लापरवाही का अर्थ है एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित अपेक्षित देखभाल और सावधानी बरतने में विफलता। लापरवाही कुछ ऐसा करने में चूक है जो एक उचित व्यक्ति, विचारों पर निर्देशित होकर, जो आम तौर पर मानवीय मामलों के संचालन को नियंत्रित करता है, करेगा, या कुछ ऐसा करना जो एक विवेकपूर्ण और उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रश्न नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला एक अनुमान है। लापरवाही कोई निरपेक्ष शब्द नहीं है,

बल्कि सापेक्ष शब्द है। यह एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है वह दूसरे मामले में नहीं हो सकती। जहां देखभाल करने का कोई कर्तव्य नहीं है, वहां लोकप्रिय अर्थों में लापरवाही का कोई विधिक परिणाम नहीं होता है। जहां देखभाल करना कर्तव्य है, वहां ऐसे कृत्यों या चूक से बचने के लिए उचित देखभाल की जानी चाहिए, जिससे व्यक्ति को शारीरिक चोट लगने की उचित संभावना हो। बेशक, आवश्यक देखभाल की डिग्री प्रत्येक मामले में तथ्यों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों पर ड्राइवरों की लापरवाही का आकलन आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से अंशदायी लापरवाही के लिए सबूत का बोझ विरोधियों को उठाना होगा। दुर्घटना को स्पष्ट करना अपराधी वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को काटती हैं, तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह गति धीमी करें और यदि चालक ने चौराहे पर गति धीमी नहीं की, बल्कि कार के बिना तेज गति से आगे बढ़ना जारी रखा- यदि आपको पता चलता है कि कोई अन्य वाहन सड़क पार कर रहा है, तो चालक के आचरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह वाहन तेजी से और लापरवाही से चला रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम से जुड़ी *10*वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने के लिए वैधानिक नियम शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा हैं। ऐसे विनियमन के खंड-*6* में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वाहन की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन में प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह इससे किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल, क्योंकि ट्रक का चालक सड़क के बाईं ओर वाहन चला रहा था, वह सड़कों के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो जाएगा, खासकर जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था , चौराहे के पास आ रहा था।

19. यातायात की तेज और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक रायलैंड्स बनाम फ्लेचर, ***(1868) 3*** एचएल *(*एलआर*)* ***330*** में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत माना जा सकता है। पैदल चलने वालों की दृष्टि से इस देश की सड़कें मोटर वाहनों के प्रयोग से अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। हिट एंड रन' के मामले जहां दुर्घटनाएं करने वाले मोटर वाहनों के ड्राइवर अज्ञात हैं। दरअसल ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है. जहां एक पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही किए बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे लापरवाही से या नहीं, तो उसे या

उसके विधिक प्रतिनिधियों को, जैसा भी वाद हो, नुकसान की वसूली करने का अधिकार होना चाहिए, यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ होना चाहिए बिल्कुल भी।

20. ये प्रावधान *(*मोटर अधिनियम, *1988* की धारा *110*ए और धारा *110*बी*)* केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पार्टियों के अधिकारों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, *1855* द्वारा निर्मित कार्रवाई का अधिकार अपनी प्रजाति में नया, अपनी गुणवत्ता में नया, अपने सिद्धांतों में नया था। हर तरह से यह नया था. मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने के लिए अधिनियम, *1988* के अन्तर्गत कानूनी प्रतिनिधियों को दिया गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। घातक दुर्घटना अधिनियम, *1855* के अन्तर्गत किसी कार्रवाई की सीमाओं से इस अधिकार को रोका नहीं जा सकता है। नई स्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपचारों की आवश्यकता होती है।

21.

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही अदालतें व्याख्या द्वारा विधि के सिद्धांतों को विस्थापित न करें, जिन्हें अच्छी तरह से स्थापित माना जाता है और इसलिए, न्यायालय सभी मामलों में लापरवाही के सबूत से छूट नहीं दे सकती है। मोटर वाहन दुर्घटनाओं के संबंध में कानून को निम्नलिखित आधार पर आगे विकसित करना संभव है*;* जब एक मोटर वाहन को उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा है, तो यह आमतौर पर दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में रेस-इप्सा लोकिटर का नियम मोटर दुर्घटना के मामलों में सामान्य सिविल मुकदमों की तुलना में अधिक आवृत्ति के साथ लागू किया जा सकता है *(* प्रति तीन-जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य**,** ***2005 0*** एससी*)* ***1840)*** में न्यायाधीश पीठ।

22. उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में प्रतिवादी पर सबूत का बोझ आम तौर पर यह साबित करने के लिए डाला जा सकता है कि मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा था या दूसरे पक्ष की ओर से भी उतनी ही लापरवाही हुई है।*"*

<u>महत्व जोड़ें</u>

16. खेनेई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य**, 2015** मुकदमा **(**एससी**) 469** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"4. यह समग्र लापरवाही का वाद है जहां संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के

संयुक्त गलत कार्य के कारण दावेदारों को चोटें आई हैं। संयुक्त अपकृत्य कर्ताओं की लापरवाही के कारण हुई दुर्घटना के मामले में, वे सभी व्यक्ति जो किसी गलत कार्य में सहायता या सलाह देते हैं या निर्देशन करते हैं या उसमें शामिल होते हैं, उत्तरदायी हैं। ऐसे मामले में देनदारी हमेशा संयुक्त और अनेक होती है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्य कर्ता की लापरवाही की सीमा वादी/दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए महत्वहीन है और इसे न्यायालय द्वारा निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ता न्यायालय के समक्ष हैं, तो यह उचित स्तर पर उनके बीच पारस्परिक इक्विटी को समायोजित करने के उद्देश्य से उनके दायित्व की सीमा निर्धारित कर सकता है। वादी/दावेदार की तुलना में प्रत्येक संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संयुक्त और कई दायित्व है। समग्र लापरवाही के मामले में, वादी को भुगतान करने के लिए अपकृत्य करने वालों के बीच क्षतिपूर्ति का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है क्योंकि वादी/दावेदार को सबसे आसान लक्ष्य/विलायक प्रतिवादी से पूरी राशि वसूल करने का अधिकार है।

14. अंशदायी और समग्र लापरवाही के बीच अंतर है। अंशदायी लापरवाही के मामले में, एक व्यक्ति जिसने खुद इस हद तक योगदान दिया है, वह अपनी लापरवाही की सीमा तक दुर्घटना में लगी चोटों के लिए क्षतिपूर्ति का दावा नहीं कर सकता है; जबकि समग्र लापरवाही के मामले में, पीड़ित व्यक्ति ने दुर्घटना में योगदान नहीं दिया है, बल्कि दो या दो से अधिक अन्य व्यक्तियों की लापरवाही के संयोजन का परिणाम है। टीओ एंथोनी बनाम करवर्नन और अन्य *[2008 (3)* एससीसी *748]* में इस न्यायालय ने माना है कि अंशदायी लापरवाही के मामले में, घायल को प्रत्येक गलत कर्ता की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही न्यायालय के लिए यह निर्धारित करना आवश्यक है। प्रत्येक गलत कर्ता के दायित्व की सीमा अलग-अलग। यह केवल अंशदायी लापरवाही के मामले में है कि दुर्घटना में घायल ने स्वयं अपनी लापरवाही से योगदान दिया है। उसकी लापरवाही की सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता है क्योंकि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति को उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम किया जाना चाहिए। प्रासंगिक भाग यहां निकाला गया है:

"6. 'समग्र लापरवाही' का तात्पर्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों की ओर से की गई लापरवाही से है। जहां एक व्यक्ति दो या दो से अधिक गलत काम करने वालों की ओर से लापरवाही के परिणामस्वरूप घायल हो जाता है, ऐसा कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन गलत

काम करने वालों की समग्र लापरवाही के कारण घायल हुआ था। ऐसे मामले में, प्रत्येक गलत कर्ता, संपूर्ण क्षति के भुगतान के लिए घायल के प्रति संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होता है और घायल व्यक्ति के पास उनमें से सभी या किसी एक के खिलाफ कार्यवाही करने का विकल्प होता है। ऐसे मामले में, घायल को प्रत्येक ग़लती करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक ग़लती करने वाले की ज़िम्मेदारी की सीमा अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जहां किसी व्यक्ति को चोट लगती है, आंशिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से लापरवाही के कारण, और आंशिक रूप से अपनी लापरवाही के परिणामस्वरूप, तो घायल के उस हिस्से की लापरवाही, जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, को संदर्भित किया जाता है। उसकी अंशदायी लापरवाही के रूप में। जहां घायल कुछ लापरवाही का दोषी है, नुकसान के लिए उसका दावा केवल उसकी ओर से लापरवाही के कारण पराजित नहीं होता है, बल्कि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम हो जाती है।

7. इसलिए, जब दो वाहन दुर्घटना में शामिल होते हैं, और उनमें से एक चालक लापरवाही का आरोप लगाते हुए दूसरे चालक से मुआवजे का दावा करता है, और दूसरा चालक लापरवाही से इनकार करता है या दावा करता है कि घायल दावेदार खुद लापरवाह था, तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार लापरवाह था और यदि हां, तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह या आंशिक रूप से जिम्मेदार था और उसकी जिम्मेदारी की सीमा, यह उसकी अंशदायी लापरवाही है। इसलिए जहां घायल स्वयं आंशिक रूप से उत्तरदायी है, वहां 'समग्र लापरवाही' का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही कोई स्वचालित अनुमान लगाया जा सकता है कि लापरवाही *50:50* थी जैसा कि इस मामले में माना गया है। न्यायाधिकरण को अपीलकर्ता की अंशदायी लापरवाही की सीमा की जांच करनी चाहिए थी और इस तरह समग्र लापरवाही और अंशदायी लापरवाही के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटि को सुधारने में विफल रहा है।"

18. चल्ला भरतम्मा और नंजप्पन *(*सुप्रा*)* में इस न्यायालय ने मालिक द्वारा पॉलिसी की शर्तों के उल्लंघन से निपटा है जब बीमाकर्ता को ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित मुआवजे का भुगतान करने के लिए कहा गया था और उसे पुनर्प्राप्त करने का अधिकार बीमाकर्ता को दिया गया था। संबंधित निष्पादन न्यायालय यदि बीमाकर्ता और मालिक के बीच विवाद न्यायाधिकरण के लिए

निर्धारण का विषय था और मुद्दा बीमाधारक के पक्ष में तय किया गया है। यही सादृश्य तत्काल मामलों पर भी लागू किया जा सकता है क्योंकि संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व संयुक्त और अनेक है। मौजूदा मामले में, संबंधित ड्राइवरों के *2/3* और *1/3* की लापरवाही की सीमा तक समग्र लापरवाही की पारस्परिक देयता का निर्धारण होता है। इस प्रकार, वाहन - ट्रेलर-ट्रक जिसका बीमाकर्ता के पास बीमा नहीं था, *2/3* की सीमा तक लापरवाह था। दावेदार को भुगतान करने के बाद बस का बीमा करने वाला बीमाकर्ता निष्पादन कार्यवाही में ट्रेलर-ट्रक के मालिक से उपरोक्त सीमा तक राशि वसूल करने के लिए खुला होगा। यदि साक्ष्य के अभाव में पारस्परिक दायित्व का कोई निर्धारण नहीं किया गया था या अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ता को पक्षकार नहीं बनाया गया था, तो ऐसे विवाद को निपटाने और निष्पादन कार्यवाही में राशि की वसूली करना संभव नहीं था, लेकिन उपाय एक और मुकदमा दायर करना होगा या विधि के अनुसार उचित कार्यवाही।

उपरोक्त चर्चा से जो बात निकलकर सामने आती है वह इस प्रकार है*:*

(i) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार दोनों या संयुक्त अपकृत्य दाताओं में से किसी एक पर मुकदमा करने और पूरे क्षतिपूर्ति की वसूली करने का हकदार है क्योंकि संयुक्त अपकृत्य कर्ता का दायित्व संयुक्त और कई है।

(ii) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार की तुलना में दो अपकृत्य दाताओं के बीच क्षतिपूर्ति का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार उनमें से किसी से भी संपूर्ण क्षति की वसूली कर सकता है।

(iii) यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को पक्षकार बना दिया गया है और साक्ष्य पर्याप्त है, तो यह न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए खुला है कि वह ड्राइवरों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित कर सके। हालाँकि, संयुक्त अपकृत्य दाताओं के बीच लापरवाही की सीमा का निर्धारण केवल उनके पारस्परिक दायित्व के प्रयोजन के लिए है ताकि एक वादी/दावेदार को पूरा भुगतान करने के बाद उस सीमा तक राशि की वसूली कर सके जिस हद तक वह संतुष्ट है। दूसरे का दायित्व. यदि उन दोनों को पक्षकार बनाया गया है और उनकी लापरवाही का बंटवारा /सीमा न्यायालय/ न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई है, तो मुख्य मामले में एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे से राशि वसूल कर सकता है।

(iv) न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को दोषी ठहराए जाने की अनुपस्थिति में दो वाहनों के चालकों की समग्र लापरवाही

की सीमा निर्धारित करे। ऐसे मामले में, डिक्री या पुरस्कार के पारित होने के बाद स्वतंत्र कार्यवाही में अन्य संयुक्त अपकृत्य व्यवहारकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए, यदि वह चाहे तो, पक्षकार संयुक्त अपकृत्य व्यवकर्ता को छोड़ दिया जाना चाहिए।"

<u>महत्व जोडें</u>

17. खेनेई (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय ने लापरवाही को अधिक विशेष रूप से समग्र/अंशदायी लापरवाही पर विचार करने के बारे में एक और पहलू रखा है। यह दिखाया जाना चाहिए कि मृतक या संबंधित व्यक्ति ने दुर्घटना में योगदान दिया है और यदि उसने सावधानी बरती होती तो पीड़ित पर दुर्घटना के प्रभाव को कम किया जा सकता था।

18. अभिलेखों को देखने से यह स्पष्ट है कि नीचे दिए गए न्यायाधिकरण ने लापरवाही का बंटवारा नहीं किया है। यात्रियों के लिए लापरवाही की मात्रा निर्धारित करना अपेक्षित नहीं था, यह समग्र लापरवाही का वाद था, यह माना जाता है कि न्यायाधिकरण ड्राइवरों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित नहीं कर सकता है। इसमें संयुक्त टॉर्ट फेसर्स दोनों का आरोप है और अन्य टॉर्ट फेसर्स इसके हिस्से के लिए उत्तरदायी होंगे और यह 50% होगा क्योंकि समान परिमाण के दो वाहन एक-दूसरे से टकरा गए थे। हालाँकि, बस में सवार यात्री इस दुर्घटना के सह-लेखक नहीं थे। इन अपीलों में, दावेदारों द्वारा कोई क्रॉस अपील नहीं की जाती है। इसलिए, इस न्यायालय ने दिए गए मुआवजे को हड़प लिया और दिए गए मुआवजे को अधिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि न्यायाधिकरण ने दावेदारों के मामले पर विचार नहीं किया है और भविष्य में आय के नुकसान के मद में कोई राशि नहीं दी गई है।

19. जहां तक ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी का प्रश्न है, चुनौती का मुख्य आधार यह है कि ट्रक संख्या डीएचएल 3616 के चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और इसलिए, बीमा कंपनी को मालिक को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता था और उन्होंने मोटर वाहन अधिनियम, 1931 की धारा 96 के अन्तर्गत नीतिगत शर्तों के उल्लंघन का दावा किया है।

20. मालिक ने ड्राइवर का ड्राइविंग लाइसेंस पेश कर दिया है। न्यायाधिकरण के समक्ष बीमा कंपनी ने अपना ड्राइविंग लाइसेंस दिखाने की कोशिश की कि वाहन किसने चलाया है। दुर्भाग्य से, जांच प्राधिकारी बल्कि सर्वेक्षक एक जहीर अहमद के लाइसेंस के साथ आरटीओ गए थे, जिनके पिता भी अलग हैं, अर्थात् हाफ़िज़ अली अज़ीज़। हमारे कई मामलों में ड्राइवर के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसके पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। न्यायाधिकरण के निर्णय में गलती नहीं पाई जा सकती और इस आधार पर बीमा कंपनियों की अपील को विफल करना होगा।

21. इस प्रकार, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी द्वारा की गई अपील सफल नहीं हो सकती। यह न्यायालय अब न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की इस दलील पर निर्णय करता है

कि उनकी देनदारी एक सीमित देनदारी थी। हालाँकि, न्यायाधिकरण के समक्ष कभी भी इस पर अमल नहीं किया गया बल्कि तीसरे पक्ष का जोखिम अधिक लेने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा अतिरिक्त 70 रुपये का शुल्क लिया गया।

22. मामले के उस दृष्टिकोण में, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड का तर्क यह है कि यह एक सीमित पॉलिसी थी जिसे एक बार पार्टियों द्वारा असीमित देयता के लिए अनुबंध करने पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

23. अतः, ये सभी अपीलें विफल हो जाती हैं। दिए जा रहे क्षतिपूर्ति पर भी जो आधार उठाया गया है वह उच्च स्तर पर है, यह सफल नहीं हो सकता क्योंकि दिया गया मुआवज़ा भविष्य में आय के किसी भी नुकसान की भरपाई के बिना है। उक्त निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। अपीलों का निपटारा किया जाता है क्योंकि बस के चालक के उत्तराधिकारियों को दी गई राशि कम है, दावेदारों से कोई वसूली नहीं की जाएगी।

24. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, ये सभी अपीलें योग्यता से रहित होने के कारण खारिज की जाती हैं।

25. अभिलेख न्यायाधिकरण को प्रेषित किया जाए। न्यायाधिकरण इस न्यायालय के आदेशों के अनुसार सावधि जमा में रखी गई सभी राशियों का वितरण करेगा। उच्च न्यायालय में जमा की गई राशि,

---

(2023) 5 ILRA 220

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,

प्रथम अपील संख्या 85/2023

विक्रम चतुर्वेदी ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: शिखर चौबे, सौभाग्य मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सिविल कानून- हिंदू विवाह अधिनियम, 1955- धारा 24 - लंबित भरण-पोषण और कार्यवाही का खर्च - मुद्दा - 'क्या पति द्वारा उठाए गए तलाक याचिका के लंबित रहने के दौरान पत्नी के दूसरे विवाह का आरोप न्यायालय को पत्नी को निहित वैधानिक अधिकार प्रदान करने से रोकेगा': आयोजित, विद्वान प्रधान न्यायाधीश ने सही ढंग से लिखित बयान दाखिल करने के खर्च के लिए 2000/- रुपये की एकमुश्त राशि और यात्रा व्यय, मुकदमेबाजी व्यय और वाद के निस्तारण तक अंतरिम भरण-पोषण के लिए 3000/- रुपये प्रति माह का आदेश दिया। पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध केवल पत्नी के दूसरे विवाह का आरोप लगाया गया है, और यह एक ऐसा तथ्य है जिसे संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए पति द्वारा ठोस सबूत पेश करके साबित किया जाना बाकी है। यदि ऐसी स्थिति को स्वीकार नहीं किया जाता है, तो हर वाद में, एक बेईमान पति या पत्नी, जैसा भी मामला हो, मुकदमेबाजी व्यय और अंतरिम

भरण-पोषण का भुगतान करने के किसी भी दायित्व से बचने के लिए हमेशा पति या पत्नी के विरुद्ध ऐसा आरोप लगा सकता है, जो इस तरह के विधि को लागू करते समय अधिनियम, 1955 में लाभकारी प्रावधान के लिए विधायी आशय नहीं होगी। (पैरा 12)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

जितेन्द्र प्रताप सिंह बनाम निधि सिंह, प्रथम अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 17/2023, दिनांक 11.04.2023

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री शिखर चौबे को सुना गया। पक्षकारों की सूची से प्रत्यर्थी संख्या- 1 को हटाने की मांग करने वाले आवेदन में किए गए कथनों को ध्यान में रखते हुए, आवेदन स्वीकार किया जाता है।

(2) प्रत्यर्थी संख्या- 1 का नाम पक्षकारों की सूची से हटा दिया जाए और प्रत्यर्थी संख्या- 2 को प्रत्यर्थी संख्या- 1 के रूप में पुनः नामित किया जाए। अपील के ज्ञापन में आवश्यक सुधार अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आज शामिल किए जाएंगे।

<u>अपील पर आदेश</u>

(3) पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 (1) के तहत वर्तमान प्रथम अपील के माध्यम से, **विक्रम चतुर्वेदी** ने विद्वान प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 06.02.2023 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके अंतर्गत हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी (श्रीमती प्रियंका उर्फ रोली) द्वारा नियमित वाद संख्या- 884/2021, विक्रम चतुर्वेदी बनाम श्रीमती प्रियंका चतुर्वेदी में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अंतर्गत दायर आवेदन को स्वीकार कर लिया गया है और उन्हें हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अंतर्गत मुकदमे के निपटारे तक लिखित बयान दाखिल करने के व्यय के लिए 2000/- रुपये, यात्रा व्यय, वाद व्यय और अस्थायी भरण-पोषण के लिए प्रति माह ₹3000/- की एकमुश्त राशि दी गई है।

(4) हमारे समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड से मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी/पति ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (जिसे संक्षिप्तता के लिए **'अधिनियम, 1955'** के रूप में संदर्भित किया गया है) के अंतर्गत तलाक की मांग करते हुए एक मुकदमा दायर किया है, जिसे नियमित मुकदमा संख्या- 884/2021 के रूप में क्रमांकित किया गया है। उपरोक्त मुकदमे में, प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी ने अधिनियम, 1955 की धारा 24 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें उसने दलील दी कि उसका विवाह हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार 01.12.2020 को अपीलार्थी के साथ हुआ था; 30.08.2021 को अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों ने उसे उसके वैवाहिक घर से निकाल दिया और उसे छोड़ दिया है और वैवाहिक घर से निकाले जाने के बाद वह अपने माता-पिता के साथ रह रही है। प्रत्यर्थी

संख्या- 1/पत्नी ने आगे दलील दी कि उसका पति (अपीलार्थी) नई दिल्ली में एक लिमिटेड कंपनी में काम करता है, जिससे उसे 50,000/- रुपये वेतन मिलता है और इसके अलावा, उसे 20,000/- रुपये की अतिरिक्त कृषि आय भी है। प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी ने आगे दलील दी है कि उसके पास आय का कोई स्रोत नहीं है और न ही उसके पास कोई ऐसा कौशल है जिससे वह अपना भरण-पोषण कर सके। इस पृष्ठभूमि में, प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी ने लिखित बयान दाखिल करने के खर्च के लिए 5000/- रुपये और 5000/- प्रतिमाह अधिवक्ता की फीस एवं कानूनी खर्च आदि के लिए देने की प्रार्थना की।

(5) अपीलार्थी ने अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अन्तर्गत उक्त आवेदन के विरूद्ध आपत्ति दाखिल की, जिसमें उसने इस तथ्य को स्वीकार किया कि प्रत्यर्थी संख्या- 1 उसकी पत्नी है। अपीलार्थी ने अपनी आपत्ति में आगे कहा है कि पैतृक घर में रहने के दौरान प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी के माता-पिता ने उसकी शादी सुनील कुमार तिवारी उर्फ गुड्डू तिवारी पुत्र स्व. राम सकल तिवारी निवासी- अरिसिया, टोला- संवरधीर, थाना- हैदरगंज, जिला- अयोध्या से करा दी तथा दूसरी शादी की जानकारी होने पर अपीलार्थी द्वारा कहा गया है कि उसने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 190 के अन्तर्गत

आपराधिक वाद संख्या- 557/2022, विक्रम बनाम प्रियंका व अन्य धारा 494, 504, 506 आई.पी.सी. के अन्तर्गत अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट संख्या 18, थाना लम्भुआ, जिला सुल्तानपुर के समक्ष परिवाद दाखिल किया है। अपीलार्थी ने यह भी कहा है कि वर्तमान में उसकी पत्नी/प्रत्यर्थी संख्या- 1 लगभग पांच महीने की गर्भवती है। अपीलार्थी ने अपनी आपत्ति में उक्त सुनील कुमार के साथ अपनी पत्नी/प्रत्यर्थी संख्या- 1 की एक तस्वीर भी संलग्न की है। इस पृष्ठभूमि में, अपीलार्थी ने अपनी पत्नी/प्रत्यर्थी संख्या-1 द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत दायर आवेदन को अस्वीकार करने की प्रार्थना की है।

(6) स्पष्टतः, दिनांक 06.02.2023 के आदेश के माध्यम से, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सुल्तानपुर ने प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी के अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत आवेदन को स्वीकार कर लिया है, तथा अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अंतर्गत नियमित वाद के निपटारे तक लिखित बयान दाखिल करने के व्यय के लिए 2000/- रुपये तथा यात्रा व्यय, मुकदमेबाजी व्यय तथा अंतरिम भरण-पोषण के लिए 3000/- रुपये प्रतिमाह की एकमुश्त राशि प्रदान की है।

(7) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान प्रथम अपील के अनुलग्नक संख्या- 6 के रूप में संलग्न प्रश्नावली की ओर आकृष्ट किया है और तर्क दिया है कि आपराधिक वाद संख्या- 236/2022 में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.09.2022 के अनुपालन में, स्टेशन हाउस ऑफिसर, लम्भुआ ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 202 (i) के तहत मामले की जांच की है और अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट संख्या 37, सुल्तानपुर के

समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें कहा गया है कि अभियुक्त-प्रियंका *उर्फ रोली* (प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी) ने दूसरी शादी की है लेकिन उसके पति का नाम, जिससे उसने शादी की है, जांच के दौरान पता नहीं चल सका। निवेदन यह है कि थाना प्रभारी, लम्भुआ की उपरोक्त रिपोर्ट से *प्रथम दृष्टया* यह स्थापित होता है कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी/प्रत्यर्थी संख्या- 1 के मध्य विवाह विच्छेद से पूर्व ही प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी ने श्री सुनील कुमार तिवारी उर्फ गुड्डू तिवारी के साथ दूसरा विवाह कर लिया था, अतः अपीलार्थी का अपनी पत्नी को भरण-पोषण देने का कोई दायित्व नहीं है, किन्तु विद्वान प्रधान न्यायाधीश, सुल्तानपुर ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय उपरोक्त तथ्यों तथा इस तथ्य पर भी विचार नहीं किया कि प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अन्तर्गत दण्डनीय द्विविवाह का अपराध किया है, अतः उपरोक्त पृष्ठभूमि में आक्षेपित आदेश दिनांक 06.02.2023 संधारणीय नहीं है तथा अपास्त किये जाने योग्य है।

(8) हमने अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रार्थनाओं पर विचार किया है तथा इस अपील पर हमारे समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का भी अवलोकन किया है।

(9) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का विश्लेषण करने से पूर्व अधिनियम, 1955 की धारा 24 के आशय पर चर्चा करना समीचीन होगा। इस प्रयोजन के लिए अधिनियम, 1955 की धारा 24, जो वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक है, इस प्रकार है:-

"24. वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय *- जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवदेन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत होती हो।"*

(10) उपर्युक्त प्रावधान के पठन से पता चलता है कि विधानमंडल की मंशा यह है कि जहां किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पत्नी या पति, जैसा भी मामला हो, के पास अपने भरण-पोषण और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त स्वतंत्र आय नहीं है, तो वह प्रत्यर्थी को कार्यवाही के व्यय और कार्यवाही के दौरान मासिक भरण-पोषण का भुगतान करने का आदेश दे सकता है। इन शब्दों से विधानमंडल की मंशा बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि यदि वाद या कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अधिनियम, 1955 की धारा 24 के तहत प्रदान की गई आवश्यकता पूरी हो जाती है, तो न्यायालय को सहायता प्रणाली के रूप में व्यय की अनुमति देनी होगी।

(11) अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत मामला दायर करने के लिए कार्रवाई का कारण तभी उत्पन्न होगा जब पति या पत्नी द्वारा वैवाहिक कार्यवाही शुरू की गई हो। अतः अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत भरण-पोषण का दावा करने की प्राथमिक आवश्यकता वैवाहिक कार्यवाही का लंबित रहना है। इस प्रावधान को कार्यवाही में किसी पक्ष को "सहायता और भरण-पोषण" सुनिश्चित करने के महत्वपूर्ण उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया था ताकि ऐसी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान वह अपना भरण-पोषण कर सके। यह प्रावधान न्यायालय को वैवाहिक कार्यवाही के संचालन के उद्देश्य से उचित राशि प्रदान करने की भी अनुमति देता है। अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत भरण-पोषण देने के उद्देश्य से कोई अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की गई है। अधिनियम, 1955 की धारा 24 मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मुकदमे के दोनों पक्षों के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है क्योंकि यह ऐसे पक्ष के लिए सहायता और भरण-पोषण के रूप में भुगतान का प्रावधान करती है जो खराब आर्थिक स्थिति के कारण भरण-पोषण करने और कार्यवाही का परिश्रमपूर्वक मुकाबला करने के लिए असुविधाजनक स्थिति में है।

(12) इस मामले में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, हमारे सामने सवाल यह है कि *क्या पति/अपीलार्थी द्वारा उठाए गए तलाक की याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी के दूसरे विवाह का आरोप, अदालत को पत्नी को दिए गए वैधानिक अधिकार को देने से रोकेगा।* इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी के दूसरे विवाह का आरोप केवल अपीलार्थी/पति द्वारा प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी के खिलाफ लगाया गया है और यह एक ऐसा तथ्य है जिसे अपीलार्थी/पति द्वारा संबंधित अदालत की संतुष्टि के लिए ठोस सबूत पेश करके साबित किया जाना बाकी है। इसलिए, परिवार न्यायालय, सुल्तानपुर के विद्वान प्रधान न्यायाधीश द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 24 के प्रावधान द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के मद्देनजर एक पक्ष को दिए गए विशेष लाभ की अनुमति देने के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण को इस साधारण कारण से गलत नहीं ठहराया जा सकता है कि अपीलार्थी द्वारा लगाए गए आरोप बहुत ही प्रारंभिक चरण में हैं, जिनकी सत्यता की जांच अभी भी सक्षम न्यायालय द्वारा की जानी है और किसी भी मामले में यदि ऐसी स्थिति को स्वीकार नहीं किया जाता है, तो हर मामले में एक बेईमान पति या पत्नी, जैसा भी मामला हो, मुकदमे के खर्च और अंतरिम भरण-पोषण का भुगतान करने के किसी भी दायित्व से बचने के लिए हमेशा पति या पत्नी के खिलाफ ऐसा आरोप लगा सकता है, जो इस न्यायालय के अनुसार, अधिनियम, 1955 में इस तरह के लाभकारी प्रावधान को लागू करते समय विधायी मंशा नहीं होगी।

(13) हाल ही में, इस न्यायालय को प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या- *17/2023* ***(जितेंद्र प्रताप सिंह बनाम निधि सिंह)*** में, दिनांक *11.04.*2023 के आदेश के अंतर्गत अधिनियम, 1955 की धारा 24 के आशय और महत्व के अर्थ का अवलोकन करने का अवसर मिला। जो

वर्तमान मामले पर पूर्णतः लागू है। इस न्यायालय ने उपरोक्त मामले के पैरा-14 में निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:-

"14. यह उल्लेख करना उचित है कि अधिनियम, 1955 की धारा 24 के प्रावधान लाभकारी कानून का एक हिस्सा हैं और इस प्रकार, न्यायालय पर यह कर्तव्य है कि वह मुकदमे की कार्यवाही के दौरान सहायता और भरण-पोषण के लिए राशि प्रदान करने में अपने विवेक का

प्रयोग करे, ताकि निर्धन पति या पत्नी को उस धनी पति या पत्नी के कहने पर कष्ट न उठाना पड़े, जिसने अधिनियम, 1955 के किसी भी प्रावधान के तहत कार्यवाही दायर की है। अंतरिम भरण-पोषण का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आश्रित पति या पत्नी विवाह की

विफलता के कारण निराश्रित या आवारागर्दी की स्थिति में न आ जाए। अधिनियम, 1955 की धारा 24 के तहत अंतरिम भरण-पोषण के लिए आवेदन की योग्यता के अनुसार न्यायालय को

प्रतिद्वंद्वी दावेदार की कमाई क्षमता के बारे में प्रथम दृष्टया निर्धारण करना होगा। निर्धारण सटीकता के साथ नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अनिवार्य रूप से प्रकृति में अंतरिम है। न्यायालय से आवेदक को दी जाने वाली राशि पर संक्षेप में विचार करने के लिए कहा जाता है।"

(14) यहां यह जोड़ना प्रासंगिक है कि अधिनियम, 1955 के तहत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान भरण-पोषण और व्यय का दावा करने का अधिकार, अधिनियम, 1955 की धारा 13 के तहत मुख्य राहत के परिणाम के बावजूद, वंचित पति या पत्नी को दिया गया एक विशेष अधिकार है। इसलिए, वर्तमान मामले में, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सुल्तानपुर द्वारा आक्षेपित आदेश के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या- 1/पत्नी के अंतरिम भरण-पोषण एवं वाद-व्यय के दावे को स्वीकार करना गलत नहीं है, क्योंकि यह कानूनी रूप से संधारणीय है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

(15) उपरोक्त सभी कारणों से, वर्तमान प्रथम अपील विफल हो जाती है एवं तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 225

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायाधीश जे. जे. मुनीर,

द्वितीय अपील संख्या 108/2008

एवं

द्वितीय अपील संख्या 26/2020

नगर क्षेत्र समिति, सादाबाद, मथुरा

... अपीलकर्ता

बनाम

कंचन सिंह और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री क्षितिज शैलेंद्र, श्री वी. एम. जैदी, श्री वी. के. अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री वी.के. श्रीवास्तव, श्री अनिल कुमार, श्री जे.बी. सिंह, श्री जे. सिंह, श्री जीवन सिंह, श्री प्रीत पाल राठौर, श्री वी.ए. अग्रवाल, श्री विनोद कुमार अग्रवाल

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 41 नियम 33- अपीलीय न्यायालय ने आदेश 41 नियम 33 के तहत

शक्ति का प्रयोग करके विध्वंस के आदेश को बदल दिया और इसे वादी को उठाए गए निर्माणों के लिए भुगतान करने के निर्देश द्वारा प्रतिस्थापित किया- निर्माण, निचले न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों पर, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा बिना शीर्षक के बनाए गए थे, जिससे वादी का कब्जा बाधित हो रहा था- प्रतिवादियों में से प्रतिवादी संख्या 4 से 7 , जिन्होंने मुकदमा लड़ा, ने विचारणीय न्यायालय के आदेश की अपील नहीं की- यह प्रतिवादी संख्या 1 था जिसने अकेले आदेश की अपील की, इसलिए निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 से 7 को कुछ लाभ देने का निर्देश देना बिल्कुल आधारहीन है अर्थात संहिता के आदेश 41 नियम 22 के तहत 'आपत्ति' की अनुपस्थिति में- 4 से 7 निर्माण की लागत वादी से वसूलने के लिए - निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को निरस्त किया जाता है। (पैरा 1 से 74)

अपीलों निस्तारित।(ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम बमदेब पाणिग्रही और अन्य (1971) एआईआर ओरी 227
2. ध्यान सिंह सोभा सिंह और अन्य बनाम भारत संघ (1958) एआईआर एससी 274
3. मुनुस्वामी चेट्टी और अन्य बनाम कमांडर.एच.आर. एवं सी.ई. (प्रशासन) मद्रास (1993) एआईआर मैड 144
4. ए.पी. राज्य और अन्य बनाम पायनियर बिल्डर्स, ए.पी. (2006) 12 एससीसी 119
5. के. मुथुस्वामी गौंडर बनाम एन. पलानीअप्पा गौंडर (1998) 7 एससीसी 327
6. बनारसी और अन्य बनाम राम फल (2003) 9 एससीसी 606

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. यह निर्णय द्वितीय अपील संख्या 108/2008 और द्वितीय अपील संख्या 26/2020 को निर्णीत करेगा, जो दोनों एक ही मुकदमे से उत्पन्न होते हैं। मुकदमे का निर्णय निचली अदालत ने एक ही निर्णय में किया, जिससे एक प्रतिवादी द्वारा मूल डिक्री से एकल अपील की गई। निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से वादी और प्रतिवादी दोनों असंतुष्ट हैं, जिससे ये दो अपीलें, अपीलीय डिक्री से उत्पन्न हुईं।

2. मूल वाद संख्या 389/1986, दिनांक 14.11.1986 को कंचन सिंह और मान सिंह द्वारा, दोनों बाबू लाल के पुत्र, मथुरा के पूर्व-न्यायालय सिविल जज (अब सिविल जज, वरिष्ठ खंड) में सात प्रतिवादियों के खिलाफ दायर किया गया था, जिन्हें शीघ्र ही निर्दिष्ट किया जाएगा।

3. उक्त वाद में, वादी ने स्थायी प्रतिषेधात्मक निषेधाज्ञा की राहत मांगी, जिसके तहत प्रतिवादियों को नीलकंठ गांव, जिला मथुरा में स्थित खसरा नंबर 216, -61 दशमलव, खेवट नंबर 1 में वादियों के हक या कब्जे में हस्तक्षेप से रोकने, या उनके बीच बनाए गए अधिकारों के आधार पर (किसी निर्माण) को ढहाने या नींव खोदने और उस परिसर में कुछ

भी निर्माण करने या उक्त संपत्ति के चारों ओर एक सीमा दीवार उठाने में वादियों के हस्तक्षेप को रोकने और आगे वादियों के कब्जे में किसी भी तरह से हस्तक्षेप करने या स्वयं संपत्ति का कब्जा लेने से परहेज करने की मांग की।

4. वाद के प्रतिवादी हैं - नगर क्षेत्र समिति, सादाबाद, इसके प्रभारी अधिकारी के माध्यम से। उपरोक्त नगर क्षेत्र समिति तब मथुरा जिले में शामिल थी, लेकिन अब यह हाथरस जिले का हिस्सा है। जिला मजिस्ट्रेट, मथुरा मुकदमे के दूसरे प्रतिवादी हैं, जबकि तीसरे प्रतिवादी उत्तर प्रदेश सरकार है, जिसे मथुरा के कलेक्टर द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है। मुकदमे के चौथे प्रतिवादी थे - थानाध्यक्ष, थाना सादाबाद, जिला मथुरा (अब जिला हाथरस)। मुकदमे के पांचवें प्रतिवादी थे पुलिस अधीक्षक, मथुरा। छठे प्रतिवादी थे- पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अंतिम प्रतिवादी थे - पुलिस उप महानिरीक्षक, आगरा रेंज, आगरा।

5. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि हालांकि मुकदमे के लंबित रहते हुए, कई प्रतिवादी बदल गए होंगे, क्योंकि टाउन सादाबाद को हाथरस जिले में शामिल किया गया था, लेकिन मुकदमा प्रतिवादी संख्या 1 और 4 द्वारा ही विवादित किया गया था, जिन्होंने अपने लिखित बयान दिए और साक्ष्य प्रस्तुत किया। अन्य प्रतिवादियों ने कोई लिखित बयान नहीं दिया या अन्यथा विवाद नहीं किया। निचली अदालत द्वारा प्रतिवादियों द्वारा भुगती गई हार के बाद, केवल प्रतिवादी संख्या 1 ही था, जिसने जिला न्यायाधीश को मूल डिक्री की अपील की, और वहाँ हारने के बाद, द्वितीय अपील संख्या 108/2008 को ले गया। प्रतिवादी संख्या 4 ने निचली अदालत के निर्णय के बाद मुकदमा लड़ना छोड़ दिया।

6. द्वितीय अपील संख्या 108/2008, जिसे अग्रणी मामला माना जा रहा है, में नगर क्षेत्र समिति, सादाबाद, जिला मथुरा के माध्यम से इसके अधिकारी प्रभारी/अध्यक्ष, एकमात्र प्रतिवादी-अपीलकर्ता है। इसके बाद, प्रतिवादी-अपीलकर्ता को प्रतिवादी संख्या 1 के रूप में संदर्भित किया जाएगा। इस अपील के प्रतिवादी संख्या 1 और 2 वादी हैं। मुकदमे के अन्य प्रतिवादियों को वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी संख्या 3, 4, 5, 6, 7 और 8 के रूप में समूहीकृत किया गया है, और उन्हें प्रतिवादी/ प्रोफार्मा प्रतिवादियों के रूप में वर्णित किया गया है। उपरोक्त प्रतिवादियों को आगे संदर्भ के लिए प्रतिवादी संख्या 2, 3, 4, 5, 6 और 7 के रूप में कहा जाएगा।

7. द्वितीय अपील संख्या 26/2020 में, कंचन सिंह और मान सिंह दो वादी-अपीलकर्ता हैं और प्रतिवादी संख्या 1 से 7 वाद में प्रत्यर्थी संख्या 1 से 7 हैं। कंचन सिंह का निधन द्वितीय अपील संख्या 108/2008 के लंबित रहते हुए और द्वितीय अपील संख्या 26/2020 शुरू होने से पहले हो गया। दोनों वादी अब अपने वारिसों और एलआर्स द्वारा रिकॉर्ड पर प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्होंने इन अपीलों को विवादित और आगे बढ़ाया, वादियों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए, संदर्भ की सुविधा के लिए, वादियों को 'वादी' के रूप में संदर्भित किया जाएगा, जहाँ भी सामूहिक संदर्भ हो और व्यक्तिगत संदर्भ आवश्यक हो, उन्हें उनके

नामों 'कंचन सिंह' या 'मान सिंह' से उल्लेखित किया जाएगा, इसे समझा जाएगा कि इसका संदर्भ अब रिकॉर्ड पर उनके वारिस और एलआर्स से है।

8. वादियों का मामला है कि वे खेवट नंबर 1, खसरा नंबर 16 के हिस्से वाली संपत्ति के मालिक हैं, जिसका माप -61 दशमलव है, गांव नीलकंठ, परगना सादाबाद, जिला मथुरा में स्थित है जिसकी सीमाएँ पहचानने के लिए निर्धारित हैं, जो वाद के अंत में निर्दिष्ट है। उक्त संपत्ति को इसके बाद 'वाद संपत्ति' कहा जाएगा। यह वादियों का मामला है कि वाद संपत्ति पहले किसान स्वरूप, रमण बिहारी, जैवीर सिंह, बनके लाल के पुत्रों, और राम औतार और राम कुमार सोहन लाल के पुत्रों के स्वामित्व में थी, जो उसी के कब्जे में थे। वादियों के विक्रेताओं का और विस्तृत उल्लेख बाद में किया जाएगा, वंशावली की रेखा को इंगित करते हुए, क्योंकि वादियों के विक्रेताओं ने वाद संपत्ति को पैतृक बताया। वाद संपत्ति को वादियों के विक्रेताओं के नाम पर 'पजावा' के रूप में दर्ज किया गया था। वादियों के विक्रेता इस ईंट भट्ठे को जलाएंगे, जिसका उत्पादन राख होता था, जो वाद संपत्ति पर एकत्रित होती थी। तब के मालिक एकत्रित राख को बिक्री के लिए अनुबंध पर देंगे।पूर्व मालिक पहले और वादी वर्तमान में, अब भी वाद संपत्ति पर पड़ी राख को बेचते हैं।

9. वादियों का मामला यह भी है कि ईंट भट्ठे से बड़ी मात्रा में राख जमा होने के कारण वाद संपत्ति अनियमित हो गई है और उन्होंने इसका एक हिस्सा समतल किया है। वादियों ने 15.03.1979 को अपने विक्रेताओं से वाद संपत्ति खरीदने के लिए एक अनुबंध किया, जिसमें 2000/- रुपये की गंभीर राशि दी गई। वादियों का मामला है कि उन्होंने वाद संपत्ति की -13 ¼ दशमलव के हिस्से के लिए अपने पक्ष में एक बिक्री दस्तावेज बनवाया, जिसे भगवती प्रसाद, राज बहादुर, चंद्र प्रकाश, बनके लाल के सभी पुत्रों ने निष्पादित किया। उपरोक्त बिक्री दस्तावेज को 23.03.1979 को कुल बिक्री विचारणीय के रूप में 6000/- रुपये के लिए निष्पादित और पंजीकृत किया गया। वादियों ने 43-4/7 दशमलव का एक क्षेत्र 16.05.1979 को निष्पादित एक पंजीकृत दस्तावेज के माध्यम से किसान स्वरूप, रमण बिहारी, जैवीर सिंह, बनके लाल के पुत्रों और राम औतार, राम कुमार सोहन लाल के पुत्रों से खरीदा, कुल बिक्री विचारणीय के रूप में 20,000/- रुपये के लिए।

10. उपरोक्त विक्रेताओं ने वादियों को इस प्रकार स्थानांतरित वाद संपत्ति के कब्जे में रखा। वादियों का नाम उपरोक्त बिक्री दस्तावेजों के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड में उचित रूप से परिवर्तित किया गया। वादियों ने पैसे खर्च किए और वाद संपत्ति के उत्तर-पूर्वी हिस्से में 15' लंबा और 12' चौड़ा एक कमरा बनवाया। वादियों ने वाद संपत्ति के एक हिस्से को समतल करवाया और निर्माण के उद्देश्य से शेष हिस्से के लिए ऐसा ही करने की योजना बनाई। वाद संपत्ति वादियों के विक्रेताओं और प्रतिवादियों के संयुक्त कब्जे में थी, इसमें प्रतिवादियों का कोई लेना-देना नहीं हो सकता था। वादियों का मामला है कि पंचम सिंह के पुत्र रणवीर सिंह, वेदई निवासी, तहसील सादाबाद और रोशन लाल ने एक बनावटी

विवाद उत्पन्न किया, क्योंकि वे वादियों से पैसे ऐंठना चाहते थे। अंतिम उल्लेखित दो पुरुषों के खिलाफ अपने अधिकारों को साबित करने के लिए, वादियों को जिला मथुरा, मुन्सिफ की अदालत में ओ.एस. संख्या 152/1979, कंचन सिंह और अन्य बनाम रणवीर सिंह और अन्य के शीर्षक से एक मुकदमा दायर करना पड़ा।

11. वादियों का कहना है कि उन्हें ऋण उठाने की आवश्यकता थी और इसलिए उन्होंने वाद संपत्ति को भारतीय स्टेट बैंक, सादाबाद शाखा के साथ गिरवी रखा, जिसके पास वाद संपत्ति के -61 दशमलव की सभी अधिकार हैं। वादियों ने वाद संपत्ति का एक हिस्सा रणवीर सिंह को बेच दिया, जिसे उन्हें बाद में मुकदमा करना पड़ा और उसे अपने कृत्य के अनुसार खुलेआम कब्जा सौंप दिया। रणवीर सिंह के पक्ष में वादियों द्वारा निष्पादित बिक्री दस्तावेज, उस हिस्से से संबंधित था जिस पर उन्होंने एक कमरा बनाया था। वादियों का कहना है कि सादाबाद के कुछ पुरुष उनके खिलाफ द्वेष और दुर्भावना रखते हैं और नगर क्षेत्र समिति, सादाबाद (प्रतिवादी संख्या 1) के कुछ कर्मचारी वादियों को परेशान करने के लिए झुकाव रखते हैं। तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 1 वाद संपत्ति पर कब्जा करने की योजना बना रहे हैं और उन्होंने प्रतिवादी संख्या 2 को गलत जानकारी दी है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी संख्या 1 की है।

12. वादियों का आगे का मामला यह है कि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 अपने बीच लिखित अनुबंध के माध्यम से कुछ हस्तांतरण कर रहे हैं और वे वाद संपत्ति को निर्माण के उद्देश्य से प्रतिवादी संख्या 5, 6 और 7 को सौंपने का इरादा रखते हैं। उपरोक्त प्रतिवादियों (संख्या 1 और 2) के पास ऐसा करने का अधिकार नहीं है। वादी यह दावा करते हैं कि प्रतिवादी संख्या 4 अनावश्यक रूप से वाद संपत्ति के उपयोग में वादियों के साथ हस्तक्षेप कर रहा है। वादियों ने आरोप लगाया कि वाद संपत्ति पर एक सीमा दीवार खड़ी की गई, जिसमें प्रतिवादी संख्या 4 ने हस्तक्षेप किया और निर्माण को अवैध रूप से रोक दिया, वादियों को गिरफ्तारी और जेल में निरुद्ध करने की धमकी दी। कहा जाता है कि सभी प्रतिवादी मिलीभगत में हैं, जिसके कारण, उन्हें वाद में प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया है।

13. वादियों का मामला यह है कि वे प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 6 से डरते हैं, क्योंकि वे वादियों को धमकी दे रहे हैं, उनसे प्रतिवादी संख्या 1-3 और 4-6 के पक्ष में अधिकार स्थानांतरित करने के लिए कह रहे हैं, ताकि वे वहाँ जल्दी से कोतवाली का निर्माण कर सकें। स्थानीय पटवारी प्रतिवादी संख्या 2 से डरता है और इसी कारण से सच नहीं बोलता है। वाद में यह दावा है कि यदि वादी सीपीसी की धारा 80 के तहत एक नोटिस देते और वाद दायर करने से पहले दो महीने की वैधानिक अवधि का इंतजार करते, तो वाद दायर करने का उद्देश्य व्यर्थ हो जाता। प्रतिवादी संख्या 1-3, 5, 6 और 7 आपस में, आवश्यक कागजी कार्यवाही कर, वाद संपत्ति पर निर्माण करेंगे, वादियों को बेदखल कर देंगे, जिससे वादियों को अपूरणीय क्षति और चोट पहुंचेगी। यह भी कहा गया है कि इसी कारण से, वादियों को बिना वैधानिक नोटिस की सेवा के और दो महीने की वैधानिक अवधि का इंतजार किए बिना वाद दायर करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

उपरोक्त कारण से अभिप्रेरित कार्रवाई का उल्लेख करते हुए, वादियों ने इस अपील को उत्पन्न करने वाले वाद को दायर किया, स्थायी निषेधाज्ञा के लिए राहत मांगते हुए पहले ही निर्दिष्ट विवरणों के अनुसार।

14. प्रतिवादी संख्या 1 ने एक लिखित बयान दायर किया। उपरोक्त प्रतिवादी ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि वाद संपत्ति वास्तव में खसरा नंबर 216 में स्थित थी, लेकिन इनकार किया कि वादी इसके मालिक थे। प्रतिवादी संख्या 1 ने यह भी स्वीकार किया कि राजस्व रिकॉर्ड में, वाद संपत्ति को पजावा के रूप में दर्ज किया गया था और इस प्रविष्टि के बारे में, यह टालने की युक्ति में कहा गया है कि इसे उन रिकॉर्डों में गलत तरीके से बनाया गया है। वाद में अन्य आरोपों का इनकार किया गया और यह दलील दी गई कि न तो वादी और न ही उनके हस्तांतरकर्ता वाद संपत्ति के मालिक हैं; न ही उनमें से कोई भी कब्जे में था। वादियों के पूर्वजों द्वारा वाद संपत्ति पर एक ईंट भट्ठा चलाने के मामले को, जिससे वहाँ राख का ढेर लग गया, पूरी तरह से इनकार किया गया। पूरी वाद संपत्ति के लिए बिक्री दस्तावेजों के निष्पादन की तथ्यात्मकता का भी इनकार किया गया। यह भी इनकार किया गया कि वादियों के हस्तांतरकर्ता पूरी वाद संपत्ति के मालिक थे। यह तर्क दिया गया कि इस कारण से, उनके पास पूरी वाद संपत्ति को वादियों को हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं था। वादियों के वहाँ एक कमरा बनाने के मामले को भी इनकार किया गया है। इसके पीछे का कारण यह बताया गया है कि वादियों ने उस निर्माण को उठाने की अनुमति देने के लिए प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष कोई भवन योजना प्रस्तुत नहीं की।

15. प्रतिवादी संख्या 1 का मामला है कि वादियों द्वारा आधारित खेवत की समीक्षा से पता चलता है कि पूरा क्षेत्रफल 2.80 दशमलव है। बनके लाल, कन्हैया लाल के पुत्र और सोहन लाल, जगन्नाथ के पुत्र (वादियों के हस्तांतरकर्ताओं के पूर्वज) को कुल 35 49/107 दशमलव के क्षेत्रफल पर दर्ज किया गया है। राजस्व रिकॉर्ड्स से पता चलता है कि संबंधित व्यक्तियों ने वहाँ जाली प्रविष्टियां बनवाई हैं। इसके बाद प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से तर्क दिया गया है कि उनके पूर्व अध्यक्ष के माध्यम से, उन्होंने राजस्व रिकॉर्ड्स के संशोधन के लिए यू.पी. भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 39 के तहत एक आवेदन किया, जिसे मामला संख्या 8 का 1975-76 के रूप में पंजीकृत किया गया। खसरा संख्या 240, 241 और 242 के संबंध में रिकॉर्ड्स के संशोधन के लिए आवेदन किया गया था, सभी गांव नीलकंठ में स्थित हैं। भगवती प्रसाद और अन्य उक्त मामले के पक्षकार थे।

16. इसके बाद तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 ने उपरोक्त प्लॉट नंबरों को अन्य प्लॉट नंबरों के साथ प्राप्त किया, जैसा कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी, मथुरा के आदेश से प्रतीत होता है। यह भी तर्क दिया गया है कि बनके लाल, सोहन लाल और अन्य, जिन्हें टेन्योर होल्डर के रूप में दर्ज किया गया था, उन्हें मुआवजा भी दिया गया था। तदनुसार, नगर क्षेत्र समिति को 30.05.1953 को वाद संपत्ति पर कब्जा दिया गया। यह पूर्व लेखपाल

के साथ मिलीभगत के कारण है कि वादियों के पूर्वजों के नाम उन्हें अनुचित लाभ देने के उद्देश्य से खेवत में दर्ज किए गए थे। यह प्रतिवादी का मामला है कि 1376 फसली से संबंधित प्रविष्टि गलत है।

17. यह भी तर्क दिया गया है कि 20.12.1975 को पारित आदेशों के अनुसार नामांतरण मामला संख्या 8 का 1975-76 में भगवती प्रसाद, बिशन स्वरूप, राज बहादुर, बनके लाल, सोहन लाल और अन्य के नामों को नामांतरित किया गया और उक्त आदेश के खिलाफ उनकी संशोधन याचिका अतिरिक्त आयुक्त, आगरा विभाग, आगरा द्वारा उनके आदेश दिनांक 25.08.1976 के अनुसार खारिज कर दी गई थी। पहले, गांव गढ़ी नीलकंठ ग्राम सभा कूपा का हिस्सा था और नगर क्षेत्र की सीमाओं के विस्तार के बाद, वाद संपत्ति नगर क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर आ गई। गाँव सभा की सभी संपत्तियाँ नगर क्षेत्र समिति में विलीन हो गईं।

18. प्रतिवादी संख्या 1 का यह भी मामला है कि रिकॉर्ड्स में, वादियों के पूर्वज कभी कब्जे में दर्ज नहीं थे। वादियों ने एक बिक्री दस्तावेज के आधार पर कब्जा लिया है, जो उन्हें कोई शीर्षक प्रदान नहीं करता है। प्रतिवादी संख्या 1 के अनुसार, दस्तावेजी साक्ष्य से स्पष्ट है कि प्लॉट संख्या 240, 241 और 242 के पुराने नंबर 139, 131, 132 और 133 थे। प्रतिवादी संख्या 1 का यह भी मामला है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी संख्या 1 के लिए अधिग्रहित भूमि से सटी हुई है। वादियों ने, अपने विक्रेताओं के साथ मिलीभगत करके, अपने पक्ष में एक बिक्री दस्तावेज निष्पादित करवाया है और उस दोषपूर्ण आधार पर खुद को वाद संपत्ति के शीर्षकधारकों के रूप में दावा किया है, जो पूरी तरह से गलत है। पूर्व मालिकों द्वारा वादियों के पक्ष में निष्पादित बिक्री दस्तावेज शून्य है और उन पर कोई शीर्षक प्रदान नहीं करता है। वादी खसरा संख्या 216 के पूरे न ही मालिक हो सकते हैं और न ही उसमें सह-शेयरधारक।

19. वादियों ने 02.12.1985 को सीपीसी की धारा 80 के तहत प्रतिवादी संख्या 1 पर गलत आधार पर एक नोटिस तामील कराया, और नोटिस अवधि के समाप्त होने का इंतजार किए बिना, मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी संख्या 1 के अनुसार, मथुरा के कलेक्टर, उनके प्रशासक हैं और उनके निर्देशों पर ही वाद संपत्ति को पुलिस विभाग को सौंपा गया है। निर्णय स्थानीय आबादी के हित में लिया गया है, जिसे वादी इस मुकदमे को प्रस्तुत करके विफल नहीं कर सकते हैं। मुकदमा दायर करने के समय, वादी कब्जे में नहीं थे। मुकदमा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34 द्वारा निषिद्ध है। मुकदमा कम मूल्यांकित है। पूरी वाद संपत्ति की कीमत कम से कम 2,50,000/- रुपये है। अदालती शुल्क अपर्याप्त है। वादियों ने राजस्व रिकॉर्ड्स में गलत प्रविष्टियां बनवाई हैं और आवश्यक कानूनी सलाह मांगने के बाद रिकॉर्ड्स को सही करने के उपयुक्त कदम उठाए जा रहे हैं। यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 वाद संपत्ति पर वादियों के

अनुवादित

शीर्षक को स्वीकार नहीं करता है। मुकदमा गलत तथ्यों पर दायर किया गया है, जिसे खर्च के साथ खारिज किया जाना चाहिए।

20. प्रतिवादी संख्या 4 ने वाद के आरोपों का इनकार करते हुए एक अलग लिखित बयान दायर किया, लेकिन यह स्वीकार किया कि वाद संपत्ति खसरा संख्या 216 में स्थित है। इनकार किया गया है कि वादियों के लिए इस मुकदमे को दायर करने का कोई कारण उत्पन्न हुआ है, जो प्रतिवादी संख्या 4 के अनुसार गलत आधारों पर आधारित है। वादी वाद संपत्ति के स्वामित्व कब्जे में नहीं हैं। वे उक्त संपत्ति के कभी मालिक नहीं थे। वादियों के विक्रेताओं के पास कभी वाद संपत्ति का शीर्षक नहीं था। यह प्रतिवादी संख्या 1 है, जो हमेशा वाद संपत्ति का शीर्षकधारक था और उसके कब्जे में था, और अब, यह प्रतिवादी संख्या 4 है, जो कब्जे में है।

21. प्रतिवादी संख्या 4 के अनुसार, तहसील सादाबाद की आबादी में काफी वृद्धि हुई है। मौजूदा पुलिस स्टेशन बहुत छोटा है, जिससे काम ठीक से नहीं हो पाता है। इस तथ्य को देखते हुए उचित समझा गया कि पुलिस स्टेशन का विस्तार किया जाए और एक नया बनाया जाए। पुलिस अधीक्षक ने, कुछ भूमि सुरक्षित करने के उद्देश्य से, राज्य सरकार का ध्यान आकर्षित किया, जिसे कलेक्टर द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया। तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 3 (कलेक्टर) ने वाद संपत्ति को प्रतिवादी संख्या 4 को दे दिया, क्योंकि संबंधित समय में, प्रतिवादी संख्या 1 कलेक्टर के नियंत्रण में था, जिसके पास प्रतिवादी संख्या 1 की भूमि को प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में हस्तांतरित करने का सभी अधिकार था।

22. एक नए पुलिस स्टेशन का निर्माण करने के लिए, निविदाएं आमंत्रित की गईं और इस उद्देश्य के लिए एक सी.पी. सिंह चौधरी के पक्ष में 8 लाख रुपये की राशि का अनुबंध प्रदान किया गया। अनुबंध के तहत, तय राशि में से उसे 2 लाख रुपये का भुगतान किया गया। ठेकेदार ने साइट पर काम शुरू किया और चार कमरों, एक बरामदे, एक शौचालय और एक स्नानघर के निर्माण के लिए नींव रखी। ठेकेदार के स्वामित्व वाली 2 लाख रुपये की निर्माण सामग्री साइट पर ढेर है। वादियों का वाद संपत्ति से कोई सरोकार नहीं है और न ही उन्होंने कभी उसका शीर्षक या कब्जा रखा है। वादियों ने सीपीसी की धारा 80 के प्रावधानों का पालन नहीं किया है। वादियों का मुकदमा बनाए रखने योग्य नहीं है।

23. यहाँ, यह देखा जा सकता है कि वाद लंबित रहते हुए, वादियों ने एक मामला पेश किया कि प्रतिवादी संख्या 2 से 7, प्रतिवादी संख्या 1 के साथ मिलीभगत करके, वादियों के पक्ष में लागू अस्थायी निषेधाज्ञा आदेश का उल्लंघन करते हुए, वाद संपत्ति का जबरन कब्जा ले लिया और उस पर निर्माण किया, जो उनके पास करने का कोई अधिकार नहीं है। इस परिस्थिति में, वादियों को वाद संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने का अधिकार है, निर्माण को ध्वस्त करने की स्वतंत्रता के साथ, और प्रतिवादियों को निर्माण सामग्री को दूर ले जाने की अनुमति है।

24. वादियों ने एक आवेदन के माध्यम से उपरोक्त प्रभाव के लिए संशोधन की मांग की, जो 29.01.1991 के आदेश द्वारा स्वीकृत की गई। राहत खंड में एक और संशोधन की मांग की गई थी, जहां स्थायी प्रतिषेधात्मक निषेधाज्ञा की राहत को हटाने के बाद, वादियों ने प्रतिवादियों द्वारा बनाए गए निर्माण के ध्वस्तीकरण के बाद कब्जे की राहत की मांग की, उन्हें निर्माण सामग्री को दूर ले जाने की स्वतंत्रता के साथ। कब्जे की राहत पर अदालती शुल्क अद वैलोरम पर चुकाया गया।

25. प्रतिवादी संख्या 1 और 4 ने संशोधनों के माध्यम से वादियों द्वारा उठाए गए तर्कों के उत्तर में दो अतिरिक्त लिखित बयान दायर किए हैं। दोनों प्रतिवादियों ने अपने अतिरिक्त लिखित बयानों में संशोधित तर्कों का इनकार किया, जिसमें यह दावा शामिल है कि प्रतिवादियों ने आपस में मिलीभगत करके, अस्थायी निषेधाज्ञा के उल्लंघन में बलपूर्वक वाद संपत्ति का कब्जा ले लिया और वहां निर्माण किया। यह तर्क दिया गया कि वाद संपत्ति के मालिक प्रतिवादी संख्या 1 थे और यही प्रतिवादी है, जिसने उत्तर प्रदेश सरकार को कब्जा दिया था। यह भी तर्क दिया गया कि वाद संपत्ति पर, पुलिस स्टेशन सादाबाद को घर बनाने के लिए एक इमारत पहले ही बनाई गई है, जिसमें सरकार ने 5 लाख रुपये खर्च किए हैं। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि वादियों को कब्जे की राहत का हकदार नहीं है।

26. पार्टियों की याचिकाओं पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

"(1) क्या वादी विवादित संपत्ति के मालिक हैं?

(2) क्या मुकदमे के दिन वादी वाद संपत्ति के कब्जे में थे?

(3) क्या मुकदमा कम मूल्यांकित है?

(4) क्या मुकदमा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 34 द्वारा निषिद्ध है?

(5) वादी किस राहत के हकदार हैं?

(6) क्या प्रतिवादियों ने मुकदमे के लंबित रहने के दौरान वादियों को बेदखल किया?

(7) क्या मुकदमा कम मूल्यांकित है और अदालती शुल्क अपर्याप्त है?"

27. वादियों की ओर से छह गवाहों की गवाही ली गई, जिसमें मान सिंह, वादी संख्या 1, जिन्होंने पीडब्ल्यू-1 के रूप में गवाही दी, मुंशी गफ्फूर के पुत्र के रूप में पीडब्ल्यू-2, उदय राम, अहलमद, सिविल कोर्ट, मथुरा पीडब्ल्यू-3 के रूप में गवाही दी, किशन स्वरूप बनके लाल के पुत्र के रूप में पीडब्ल्यू-4, सुल्तान सिंह पचौरी पीडब्ल्यू-5 के रूप में गवाही दी और चंद्रभान गौतम, अधिवक्ता पीडब्ल्यू-6 के रूप में गवाही देने के लिए उपस्थित हुए।

28. प्रतिवादियों की ओर से चार गवाहों की गवाही ली गई: राम किशन, डीडब्ल्यू-1 और पुसाराम संतोषी, डीडब्ल्यू-2, दोनों ये गवाह प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से परीक्षित किए गए; और, उप-निरीक्षक आर.पी. त्यागी और चंद्रपाल सिंह, निरीक्षक सी.बी. सी.आई.डी., आगरा, क्रमशः डीडब्ल्यू-3 और डीडब्ल्यू-4 के रूप में प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से परीक्षित किए गए। वादियों की ओर से एक बड़ी मात्रा में दस्तावेजी साक्ष्य पेश किया गया, जिनका विवरण निचली अदालतों के निर्णयों में संक्षेप में दिया गया है; विशेष रूप से, निचली

अदालत का। प्रतिवादी संख्या 1 और 4 की ओर से भी ऐसी स्थिति है, जिन्होंने कुछ दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए। पक्षों द्वारा दायर दस्तावेजी साक्ष्य का सारांश प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है, जिनके प्रासंगिक भाग इस निर्णय के दौरान नोट किए जाएंगे।

29. मुद्दा संख्या 3 और 7 के रूप में, उन्हें 13.02.1991 की तारीख के आदेश के अनुसार निपटाया गया था, जिसमें मुद्दों को वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया था।

30. जहाँ तक मुद्दा संख्या 4 का संबंध है, निचली अदालत ने इस मुद्दे को नहीं दबाया जाने के कारण सुनवाई में प्रतिवादियों के खिलाफ उत्तर दिया।

31. मुद्दा संख्या 2 वादियों के पक्ष में और प्रतिवादियों के खिलाफ उत्तर दिया गया, यह मानते हुए कि प्रतिवादियों की तरफ से की गई तुलना में वादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य मजबूत और अधिक विश्वसनीय थे, जो सभी कारणों से सिद्ध होता है, जैसा कि साक्ष्य पर चर्चा की गई है, कि मुकदमा दायर करने के समय वादी कब्जे में थे।

32. मुद्दा संख्या 1 भी वादियों के पक्ष में और प्रतिवादियों के खिलाफ उत्तर दिया गया, यह मानते हुए कि रिकॉर्ड पर साक्ष्य की बहुत विस्तृत चर्चा के बाद, वादी 61 दशमलव की कुल भूमि में से 46 9/14 दशमलव के मालिक हैं, और उन्हें ऐसा घोषित किया जाना चाहिए। यह भी माना गया कि पुलिस विभाग ने बिना अधिकार के, अवैध रूप से वाद संपत्ति का कब्जा ले लिया था।

33. इसी तरह, मुद्दा संख्या 6 वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया, यह मानते हुए कि प्रतिवादियों ने मुकदमे के लंबित रहने के दौरान वादियों को बेदखल करके वाद संपत्ति का कब्जा ले लिया। जिस राहत पर निचली अदालत ने निर्णय लिया, जबकि मुद्दा संख्या 5 पर निर्णय लिया गया, यह माना गया कि कुल 61 दशमलव के क्षेत्रफल में से, वादियों ने दो बिक्री दस्तावेजों के माध्यम से 56-9/14 दशमलव का क्षेत्रफल खरीदा। इस क्षेत्रफल में से, उन्होंने 10 दशमलव का हिस्सा रणवीर के पक्ष में स्थानांतरित किया। इससे वादियों के पास 46-9/14 दशमलव का क्षेत्रफल बचा, जिसके वे मालिक हैं। यह आगे माना गया कि वादियों को वाद संपत्ति के 46-9/14 दशमलव के क्षेत्रफल पर कब्जा हासिल करने का अधिकार है, प्रतिवादियों द्वारा वहां बनाए गए मौजूदा निर्माण के ध्वस्तीकरण के बाद। तदनुसार, मुकदमे का निर्णय 46-9/14 दशमलव के क्षेत्रफल के लिए कब्जे के लिए किया गया, प्रतिवादियों को वहां से बेदखल करने के बाद। प्रतिवादियों को वाद संपत्ति के 46-9/14 दशमलव के क्षेत्रफल को वादियों को डिक्री की तारीख से दो महीने के भीतर सौंपने का आदेश दिया गया और ऐसा करने के लिए उस समय के भीतर निर्माणों को हटाने का आदेश दिया गया। यह भी आदेश दिया गया कि वाद संपत्ति पर प्रतिवादी संख्या 4 और 7 द्वारा बनाए गए निर्माण को ध्वस्त किया जा सकता है और सामग्री को उपरोक्त प्रतिवादियों द्वारा दूर ले जाया जा सकता है। यदि डिक्री निर्धारित समय के भीतर पूरी नहीं की गई, तो वादियों को निर्माणों को प्रतिवादी संख्या 4 और 7 की लागत पर ध्वस्त करने की स्वतंत्रता होगी और

वाद संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने का अधिकार होगा।

34. प्रतिवादी संख्या 1 ने अकेले डिक्री की अपील की, जिसे पहले इस न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था, लेकिन बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 में संशोधन के कारण, यह जिला न्यायाधीश को भेज दिया गया, जो सक्षम पेक्यूनियरी अधिकार क्षेत्र की अपीलीय अदालत थी। अंततः अपील हाथरस के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आई, तब तक सादाबाद तहसील नवनिर्मित जिला हाथरस के क्षेत्रों के भीतर शामिल हो गई थी। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने अपने निर्णय और डिक्री दिनांक 08.10.2007 में निचली अदालत की पुष्टि की, लेकिन केवल इतना संशोधन किया कि वाद संपत्ति के 46 9/14 दशमलव को अलग करने के बाद, जिसके लिए निर्माण और कब्जे के लिए मुकदमा डिक्री किया गया था, प्रतिवादी संख्या 4 से 7 द्वारा उक्त क्षेत्रफल के भीतर बनाए गए निर्माणों के भाग को मूल्यांकित किया जाए और उनके बेदखली के बाद वादियों द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 से 7 को उसकी लागत का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए।

35. अपीलीय डिक्री से असंतुष्ट होकर, प्रतिवादी संख्या 1 ने द्वितीय अपील संख्या 108/2008 दायर की, जिसके पलटाव की मांग की गई, जबकि द्वितीय अपील संख्या 26/2020 वादियों द्वारा निचली अपीलीय अदालत के डिक्री के उस भाग से दायर की गई, जिसमें प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा अवैध रूप से उठाए गए निर्माण की लागत वादियों द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 से 7 को भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। द्वितीय अपील संख्या 108/2008 को 20.07.2012 को सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया, हालांकि यह 23 जनवरी, 2008 को बहुत पहले दायर किया गया था, निम्नलिखित महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर:

"(ए) क्या निम्न अदालतों द्वारा उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 के प्रावधानों को नहीं माना जाना उचित था, जिसमें हर सूचित क्षेत्र समिति को एक नगरपालिका / नगर पंचायत का दर्जा दिया गया है और ऐसे में वादी द्वारा उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम की धारा 326 की अनिवार्य आवश्यकताओं का पालन न करना पूरी तरह से अनदेखी की जा सकती है?

बी) क्या विवादित भूमि के संबंध में राजस्व रिकॉर्ड में "पजावा" के रूप में प्रविष्टि प्रतिवादी-अपीलार्थी / राज्य में भूमि के स्वत: हस्तांतरण का निश्चित प्रमाण नहीं थी और इसलिए निचली अदालतों द्वारा विवादित भूमि के स्वामित्व और मालिकाना हक पर दर्ज किए गए निष्कर्ष कानूनी रूप से टिकाऊ हैं?"

36. द्वितीय अपील संख्या 26/2020 (द्वितीय अपील दोषपूर्ण संख्या 33/2017) को 06.01.2020 को सुनवाई के लिए स्वीकृत किया गया, निम्नलिखित महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर:

"(i) क्या पहली अपील की अदालत नगर क्षेत्रीय समिति सादाबाद अर्थात् प्रतिवादियों के

पक्ष में ऐसी राहत प्रदान करने में उचित थी जिसमें अतिक्रमण/मौजूदा निर्माण की लागत की वसूली की अनुमति दी गई थी जब स्पष्ट रूप से कोई प्रति-दावा दायर नहीं किया गया था और न ही इस प्रभाव के लिए कोई राहत मांगी गई थी।

(ii) चूंकि अपील संख्या 108/2008 पहले ही स्वीकार की जा चुकी है, इस अपील को तुलनात्मक सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करें।"

37. श्री क्षितिज शैलेंद्र, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित हुए वकील, और श्री प्रीत पाल राठौर, वादियों की ओर से उपस्थित हुए वकील की सुनवाई की गई। प्रतिवादी संख्या 2 से 7 की ओर से कोई नहीं उपस्थित हुआ। श्री प्रीत पाल सिंह, वादियों की ओर से उपस्थित हुए वकील, ने द्वितीय अपील संख्या 26/2020 के समर्थन में सुनवाई की और श्री क्षितिज शैलेंद्र, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से। इस अपील में भी प्रतिवादी संख्या 2 से 7 की ओर से कोई नहीं उपस्थित हुआ।

38. प्रत्येक अपील में पक्षों के मामले को अलग-अलग देखना उचित होगा, संबंधित अपील में गठित महत्वपूर्ण प्रश्नों के संदर्भ में।

ए. **<u>द्वितीय अपील संख्या 108/2008</u>**

<u>महत्वपूर्ण प्रश्न (ए)</u>

39. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से तर्क दिया गया है कि वादियों ने उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1916 की धारा 326 की आवश्यकताओं का पालन नहीं किया है। प्रतिवादी संख्या 1 के वकील ने तर्क दिया कि अधिनियम 1916 के तहत नगरपालिका के खिलाफ एक मुकदमा दायर करने से पहले, नगरपालिका को लिखित में एक नोटिस देना अनिवार्य है, जिसमें धारा 326 की उपधारा (1) में उल्लिखित विवरणों का उल्लेख हो। धारा 326(1) में निहित नोटिस की सेवा के बाद, मुकदमा दायर करने से पहले दो महीने का समय बीतना चाहिए। अदालत का ध्यान धारा 326 के प्रावधानों की ओर आकर्षित किया गया, जो पढ़ते हैं:

"326. नगरपालिका या इसके अधिकारियों के विरुद्ध मुकदमे। - (1) किसी नगरपालिका, या नगरपालिका के किसी सदस्य, अधिकारी या सेवक के विरुद्ध, उसके या उसकी आधिकारिक क्षमता में किए गए या किए जाने का दावा किए गए किसी कार्य के संबंध में, मुकदमा तब तक दायर नहीं किया जाएगा, जब तक कि लिखित सूचना के दो महीने पूरे न हो जाएँ, जिसे नगरपालिका के मामले में, इसके कार्यालय में छोड़ दिया गया हो, और, सदस्य, अधिकारी या सेवक के मामले में, उसे दिया गया हो या उसके कार्यालय या निवास स्थान पर छोड़ दिया गया हो, जो स्पष्ट रूप से कार्रवाई के कारण, मांगे गए राहत की प्रकृति, मांगे गए मुआवजे की राशि, और इरादा करने वाले वादी का नाम और निवास स्थान बताता हो, और वाद में ऐसी सूचना को इस प्रकार दिए जाने या छोड़े जाने का बयान होना चाहिए।
(2) यदि नगरपालिका, सदस्य, अधिकारी या सेवक ने, मुकदमा शुरू होने से पहले, वादी को पर्याप्त सुधार की पेशकश की हो, तो वादी उस

राशि से अधिक कोई राशि प्राप्त नहीं करेगा जो इस प्रकार पेश की गई हो, और ऐसी पेशकश के बाद उत्पन्न होने वाले सभी खर्चों का भुगतान भी करेगा।

(3) उप-धारा (1) में वर्णित जैसा कोई कार्रवाई, जब तक वह अचल संपत्ति की पुनर्प्राप्ति या उसके शीर्षक की घोषणा के लिए कार्रवाई न हो, केवल उस कार्रवाई के कारण के उत्पन्न होने के छह महीने के भीतर ही शुरू की जाएगी।

(4) प्रदान किया गया है कि उप-धारा (1) में कुछ भी ऐसी मुकदमे पर लागू नहीं होगा जिसमें केवल राहत के रूप में एक अवरोधक निषेधाज्ञा की मांग की गई हो जिसका उद्देश्य सूचना देने या मुकदमे या कार्यवाही की शुरुआत को स्थगित करके हराया जाएगा।"

40. प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान वकील ने आग्रह किया है कि यहाँ मुकदमा एक ऐसा था जिसे मूल रूप से केवल स्थायी निषेधाज्ञा की राहत के लिए दायर किया गया था, लेकिन बाद में इसे विध्वंस और बेदखली के लिए मुकदमे में परिवर्तित कर दिया गया। और, फिर भी, प्रतिवादी संख्या 1 पर अधिनियम की धारा 326 के तहत कोई सूचना नहीं दी गई, जैसा कि अंतिम उल्लेखित अधिनियम की धारा 326(1) द्वारा अनिवार्य है। आग्रह किया गया है कि वादियों के लिए अपनी कार्रवाई बनाए रखने के लिए प्रतिवादी संख्या 1 पर धारा 326 के तहत एक सूचना देना अनिवार्य था। प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान वकील ने न्यायालय का ध्यान आगे धारा 3-ए(3)बी) के प्रावधानों की ओर आकर्षित किया है। धारा 3-ए(3)बी) उपर्युक्त के प्रावधानों को समझने के लिए, धारा 3-ए को यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक होगा, जो कहता है:

"3ए. हर संक्रमण क्षेत्र और छोटे शहरी क्षेत्र के लिए नगरपालिका। - (1) संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू की उपधारा (1) के तहत गठित एक नगरपालिका, भाग IX-ए के अनुसार,

(ए) हर संक्रमण क्षेत्र के लिए, नगर पंचायत के रूप में जानी जाएगी;

बी) हर छोटे शहरी क्षेत्र के लिए, नगर परिषद के रूप में जानी जाएगी।

(2) उपधारा (1) के तहत गठित हर नगर पंचायत या नगर परिषद, एक निगमित निकाय होगी।

(3) उपधारा (1) में कुछ भी होने के बावजूद,

(ए) उत्तर प्रदेश शहरी स्थानीय स्वशासन कानून (संशोधन) अधिनियम, 1994 के प्रारंभ होने से ठीक पहले मौजूद हर म्युनिसिपल बोर्ड, इस अधिनियम के तहत पहली नगर परिषद के गठन तक और उक्त अधिनियम द्वारा संशोधित इस अधिनियम के तहत एक नगर परिषद माना जाएगा;

बी) धारा 338 के तहत गठित हर सूचित क्षेत्र समिति या उत्तर प्रदेश टाउन एरिया अधिनियम, 1914 के तहत गठित हर टाउन एरिया कमेटी, जैसा कि उक्त अधिनियम के प्रारंभ होने से ठीक पहले था, उक्त अधिनियम के प्रारंभ होने से और उक्त अधिनियम द्वारा

संशोधित इस अधिनियम के तहत पहली नगर पंचायत के गठन तक एक नगर पंचायत मानी जाएगी।"

41. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान वकील ने कानून के दो महत्वपूर्ण प्रश्नों में से पहले पर अपनी दलीलों को समाप्त करते समय किया है। उनका कहना है कि जहां तक अन्य प्रतिवादियों का संबंध है, वे राज्य और इसके अधिकारी हैं, जिनके खिलाफ बिना धारा 80 के तहत नोटिस की सेवा के नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 ('संहिता' के लिए छोटा) के अंतर्गत मुकदमा नहीं चलेगा। यह आग्रह किया गया है कि, यहां तक कि अगर प्रारंभ में, दावा किया गया राहत स्थायी निषेधाज्ञा का था, संहिता की धारा 80 के उप-धारा (2) के तहत कोई छूट का दावा नहीं किया गया था। इससे भी अधिक, वाद के संशोधन के बाद, कारण कार्रवाई स्थायी निषेधाज्ञा के मुकदमे से विध्वंस और कब्जे के मुकदमे में बदल जाने के कारण, धारा 80 के तहत नोटिस की सेवा, संशोधित कारण कार्रवाई और संशोधित वाद पर आधारित होकर, अनिवार्य थी। और, संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस की सेवा के अभाव में, अन्य प्रतिवादियों के खिलाफ यह मुकदमा, यानी राज्य और इसके विभिन्न अधिकारियों के खिलाफ बनाए रखने योग्य नहीं है।

42. जवाब में, श्री प्रीत पाल सिंह राठौर, वादियों के लिए उपस्थित विद्वान वकील, प्रस्तुत करते हैं कि प्रतिवादी संख्या 1 ने यह आपत्ति पहली बार इस अदालत के समक्ष उठाई है। यह बताया गया है कि जबकि इस प्रतिवादी के लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 42 में संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस की सेवा के समय के बारे में एक टिप्पणी है, लिखित बयान में या पहली अपील के ज्ञापन में, 1916 के अधिनियम की धारा 326 के तहत अनिवार्य नोटिस की कमी के बारे में कोई दलील नहीं है। तर्क दिया गया है कि आखिरी उल्लिखित अधिनियम की धारा 326 के तहत मुकदमे के बारे में एक बाधा की आपत्ति, लिखित बयान में या निचली अपीलीय अदालत के सामने नहीं उठाई गई थी, इसे पहली बार दूसरी अपील में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से दाखिल किए गए लिखित बयान की जांच से पता चलता है कि वास्तव में 1916 के अधिनियम की धारा 326 के प्रावधानों के अनुपालन के संबंध में कोई आपत्ति उठाई गई है। नोटिस की कमी के बारे में एकमात्र दलील लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 42 में पाई जाती है जो 07.01.1987 को दिनांकित है। कहा गया दावा यह है कि प्रतिवादी संख्या 1 को वादियों द्वारा उनके वकील के माध्यम से 02.12.1985 को गलत तथ्यों पर एक नोटिस सेवा की गई थी। यह एक नोटिस संहिता की धारा 80 के तहत था और उक्त नोटिस में उल्लिखित वैधानिक अवधि की प्रतीक्षा किए बिना मुकदमा दायर किया गया था।

43. अब, जहां तक संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस का सवाल है, यह संहिता की धारा 80 के उप-धारा (1) के तहत नोटिस की सेवा की अनिवार्य आवश्यकता से संबंधित है, जब एक मुकदमा सरकार या एक सार्वजनिक अधिकारी के खिलाफ उसकी आधिकारिक

क्षमता में किए गए किसी कृत्य के संबंध में दायर किया जाता है। उप-धारा (1) निर्देशित करती है कि संहिता की धारा 80 के तहत विचारित वैधानिक नोटिस को सरकार या एक सार्वजनिक अधिकारी पर सेवा की जानी चाहिए, यदि यह ऐसे सार्वजनिक अधिकारी की आधिकारिक कार्रवाइयों से संबंधित है, और एक मुकदमा नोटिस की सेवा की तारीख से दो महीने के बाद दायर किया जा सकता है जो लिखित में सरकार के निर्दिष्ट अधिकारी के कार्यालय में, और सार्वजनिक अधिकारी के मामले में, ऐसे अधिकारी को दिया गया या उसके कार्यालय में छोड़ा गया। नोटिस में अनिवार्य रूप से क्या कहा जाना चाहिए, यह भी संहिता की धारा 80 के उप-धारा (1) द्वारा निर्धारित किया गया है।

44. यह कहा जाना चाहिए कि संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस, अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत नोटिस के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। दोनों प्रकार के नोटिसों का उद्देश्य, जो विभिन्न कानूनों के तहत जारी किया गया है, समान या यहां तक कि समान हो सकता है। लेकिन, दोनों समान नहीं हैं। संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के हकदार पार्टियों की पहचान और अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत भी अलग हैं। संहिता की धारा 80 के तहत एक नोटिस, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, अनिवार्य है, जहां एक कार्यवाही सरकार या उसके किसी अधिकारी के खिलाफ लाई गई है जो उनकी आधिकारिक क्षमता में किए गए किसी कार्य के संबंध में है, जबकि अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत एक नोटिस अनिवार्य है, उप-धारा (4) के तहत विचारित सीमा को छोड़कर, नगर पालिका परिषद या नगर पंचायत के मामले में जिसे अधिनियम के अंतिम उल्लेखित प्रावधानों द्वारा शासित किया गया है।

45. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि एक टाउन एरिया कमेटी जो उत्तर प्रदेश टाउन एरिया अधिनियम, 1914 के तहत गठित की गई है, उत्तर प्रदेश अर्बन लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट लॉज़ (संशोधन) अधिनियम, 1994 के प्रारंभ होने के बाद पहली म्युनिसिपल काउंसिल के गठन तक अधिनियम 1916 के तहत एक नगर पंचायत माना जाना है। इस प्रकार, यहाँ प्रतिवादी संख्या 1, एक टाउन एरिया, अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत नोटिस का हकदार होगा। लेकिन, यह प्रतिवादी संख्या 1 के लिए कानून के तहत एक हक है इससे पहले कि कार्रवाई आरंभ हो।

46. यह पाया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से कभी यह आरोप नहीं उठाया गया कि उनके खिलाफ मुकदमा अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत नोटिस की कमी के कारण अयोग्य था। लिखित बयान में पैराग्राफ नंबर 42 में, जैसा कि पहले ही देखा गया है, इस बात का संक्षिप्त उल्लेख है कि प्रतिवादी संख्या 1 को संहिता की धारा 80 के तहत एक नोटिस, गलत तथ्यों पर, वादियों द्वारा सेवित किया गया था और मुकदमा वैधानिक अवधि के समाप्त होने से पहले दायर किया गया था। यह टिप्पणी की गई है कि संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के बिना कार्रवाई की शुरुआत का बाधा केवल सरकार या उसके अधिकारियों

के खिलाफ एक मुकदमे के मामले में लागू होती है, जो उनके आधिकारिक कार्यों को अंजाम देते समय किया गया है। क्या मुकदमा धारा 80 के तहत नोटिस के बिना दायर किया गया था या वैधानिक समय के समाप्त होने का इंतजार किए बिना असमय दायर किया गया था, यह प्रतिवादी संख्या 1 की चिंता का विषय नहीं है। यह एक आरोप है, जिसे सरकार और उसके अधिकारियों की ओर से उठाया और सिद्ध किया जा सकता है। प्रतिवादी संख्या 1 के लिए यह आरोप उठाना संभव नहीं है।

47. यह स्पष्ट है कि मुकदमा दायर करने से पहले प्रतिवादी संख्या 1 को धारा 326 के तहत कोई नोटिस सेवित नहीं की गई थी। जैसा कि पहले ही देखा गया है, लिखित बयान में धारा 326 के तहत नोटिस की कमी के बारे में कोई आरोप नहीं उठाया गया है। प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से परीक्षण न्यायालय के समक्ष धारा 326 के तहत नोटिस की कमी के कारण मुकदमे की अक्षमता के संबंध में कोई मुद्दा नहीं उठाया गया। वादी द्वारा वाद को संशोधित करने के बाद और प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से एक अतिरिक्त लिखित बयान दायर करने के बाद भी ऊपर के प्रभाव के लिए कोई मुद्दा नहीं उठाया गया।

48. इस अदालत की राय में, लिखित बयान में धारा 326 के तहत नोटिस की कमी के संबंध में एक आरोप न उठाने, फिर परीक्षण न्यायालय के समक्ष इस बिंदु पर एक मुद्दा गठित न करने, और पहली अपील में निचली अपीलीय न्यायालय के समक्ष एक आधार न उठाने का मतलब धारा 326 के तहत वैधानिक नोटिस के अधिकार को छोड़ना है, अन्यथा अनिवार्य।

49. कार्रवाई की शुरुआत से पहले अनिवार्य नोटिस के त्याग के सिद्धांत को समय के साथ न्यायिक प्राधिकार द्वारा संहिता की धारा 80 के समानांतर प्रावधानों के संदर्भ में मान्यता प्राप्त की गई है। समानांतर, यह अदालत कहती है, क्योंकि अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत नोटिस का उद्देश्य और संहिता की धारा 80 के तहत वही है। इन दोनों वैधानिक नोटिसों की आवश्यकता यह है कि एक मामले में सरकार और उसके अधिकारियों को उनके आधिकारिक कार्यों के लिए और दूसरे मामले में अधिनियम 1916 के तहत गठित नगरपालिका निकायों को कार्रवाई से संरक्षण देना है। संरक्षण इन सार्वजनिक या वैधानिक इकाइयों को दिया जाता है, क्योंकि यह माना जाता है कि यदि वादी के पास एक मामला है, तो वैधानिक नोटिस की सेवा और वैधानिक समय के गुजरने पर, सरकार या नगरपालिका निकाय, जो भी मामला हो, दावे को स्वीकार कर सकती है या उसके रूप में स्वीकार्य है, अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचते हुए। इसलिए, धारा 80 की संहिता या धारा 326 के अधिनियम 1916 के तहत अनिवार्य नोटिस का बाधा संरक्षण के स्वरूप में है, जो सरकार या नगरपालिका निकाय को कार्रवाई की अचानक शुरुआत से उपलब्ध है। बाधा संरक्षण के स्वरूप में होने के नाते, हमेशा छोड़ा जा सकता है, यदि इसे नहीं उठाया और सिद्ध नहीं किया गया है। एक बार जब धारा 326 के अधिनियम 1916 के तहत बाधा लिखित बयान में नहीं उठाई जाती है, जैसा कि पहले ही टिप्पणी की

गई है, और बाद की कार्यवाही के दौरान भी, इस अदालत की राय में, इसे माना जाना चाहिए कि इसे छोड़ दिया गया है। इसे द्वितीय अपील में पहली बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस संदर्भ में, ओडिशा उच्च न्यायालय के एक निर्णय **ओडिशा राज्य और अन्य बनाम बमदेब पाणिग्रही और अन्य, एआइआर 1971 ओआरआइ 227,** का उल्लेख किया जा सकता है, जहाँ संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के संदर्भ में आर.एन. मिश्रा, जे. (जैसा कि तत्कालीन भारत के मुख्य न्यायाधीश थे) ने कहा था:

"9. यह कि सीपीसी की धारा 80 के तहत एक सूचना अनिवार्य है और उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप के निर्णय में एआइआर 1966 एससी 1068, सवाई सिंघई बनाम भारत संघ के मद्देनजर इस प्रश्न पर अब कोई संदेह नहीं है। स्थिति हमेशा से ही अच्छी तरह से स्थापित थी और जैसा कि 1927 में उनके लॉर्डशिप ने न्यायिक समिति में भी ऐसा कहा था। न्यायिक समिति के उनके लॉर्डशिप के निर्णय में एआइआर 1927 पीसी 176, भागचंद दगदुसा बनाम राज्य के सचिव को उपरोक्त उच्चतम न्यायालय के निर्णय में मान्यता प्रदान की गई थी। लेकिन न्यायिक विचार की एक और धारा भी है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। न्यायालयों ने यह विचार व्यक्त किया है कि सीपीसी की धारा 80 के तहत राज्य सरकार या एक सार्वजनिक अधिकारी को उपलब्ध संरक्षण को छोड़ा जा सकता है और लिखित बयान में एक दावा उठाने और मुकदमे की अदालत में एक मुद्दे पर शामिल न होने को छोड़ने के रूप में माना गया है। इस न्यायालय में इस बिंदु पर सीधे दो निर्णय हैं। आइएलआर (1959) कटक 258, बासुदेब बनाम पद्मनव, न्यायमूर्ति जी.सी. दास, ने आयोजित किया,

"जब यह आपत्ति नहीं उठाई गई कि धारा 80 के तहत एक सूचना के अभाव में एक मुकदमा अयोग्य है मुकदमे की अदालत में और इस बिंदु पर कोई मुद्दा नहीं उठाया गया और मुकदमे को डिक्री किया गया तो सूचना की कमी की दलील को माना जाना चाहिए कि इसे छोड़ दिया गया है और जब अपील में पहली बार यह दलील ली गई है, तो अपीलीय न्यायालय को धारा 80 के तहत सूचना की अनुपस्थिति के आधार पर मुकदमे को खारिज करने का अधिकार नहीं है।"

10. बरमन, जे., जैसा कि वह तब थे, ने (1962) 4 ओ.जे.डी. 13, आनादी चरण परिदा बनाम बनामली मुदुली में, एक समान प्रश्न पर विचार करते हुए, जो मद्रास कोर्ट ऑफ वार्ड्स अधिनियम (I/1902) की धारा 49 के संदर्भ में उठा था जिसकी भाषा सीपीसी की धारा 80 के समान है, विश्वनाथ शास्त्री, जे., ने एआइआर 1949 मद 747, वेंकटस्वामी बनाम महालक्ष्मी में आयोजित किया:–

"छूट एक अधिकार का त्याग है और यह व्यवहार से स्पष्ट या निहित हो सकता है और प्रभावी होने के लिए एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होना चाहिए जिसे तथ्यों का पूरा ज्ञान हो। एक व्यक्ति जिसने सूचना की कमी पर आधारित एक दावा लिया है जिसका वह हकदार है, इसे छोड़ सकता है और मुकदमे को ऐसे ही आगे बढ़ने दे सकता है जैसे कि उसे आवश्यक

सूचना दी गई हो और यह तब तक किया जा सकता है जब तक मुकदमा लंबित है और अंतिम रूप से निर्धारित नहीं किया गया है।"

11. राजस्थान उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने एआइआर 1959 राज 126 (एफबी), राजस्थान राज्य बनाम गिरधारीलाल में स्वयंसमान दृष्टिकोण को अपनाया। उन्होंने न्यायिक समिति के उनके लॉर्डशिप की एआइआर 1947 पीसी 197, वेल्लायन चेट्टियार बनाम मद्रास प्रांत की सरकार में की गई टिप्पणियों को मंजूरी दी, जहाँ यह कहा गया था।

"उनके लॉर्डशिप को ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता कि धारा 80 के तहत दी जाने वाली सूचना को अगर संबंधित अधिकारी इसे छोड़ने का निर्णय लेता है तो इसे क्यों नहीं छोड़ा जा सकता। उसकी सुरक्षा के लिए सूचना की आवश्यकता है; यदि विशेष मामले में उसे वह सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है और वह ऐसा कहता है, तो वह अपने अधिकार को वैधानिक रूप से छोड़ सकता है।"

12. एआइआर 1958 एससी 274, ध्यान सिंह बनाम भारत संघ में, उनके लॉर्डशिप ने कहा,

"यह ध्यान देने योग्य है कि न तो इस बिंदु को प्रतिवादी द्वारा उसके लिखित बयान में उठाया गया था जो उसने वादी के दावे के जवाब में दायर किया था और न ही मुकदमे की अदालत द्वारा इस संबंध में कोई मुद्दा तैयार किया गया था और यह धारा 80 के तहत आपत्ति को छोड़ने का अनुमान जस्टीफाई कर सकता है।"

13. कलकत्ता उच्च न्यायालय के मित्रा न्यायमूर्ति ने एआइआर 1960 सीएएल 270, लालचंद बनाम भारत संघ में कहा,

"यदि कानून की व्यवस्था को मुकदमे के दौरान छोड़ दिया गया था, तो उन्हें बाद में छोड़े जाने के आधार पर किसी भी कदम के विरोध में या उस पर कार्रवाई करने के लिए उठाया नहीं जा सकता। जब वादी ने, विपक्षी पक्ष द्वारा प्रेरित गलती के बिना, मुकदमेबाजी के दौरान एक विशेष स्थिति ली है, तो उसे इसके अनुसार कार्य करना चाहिए, विशेष रूप से, यदि उसे अन्यथा करने की अनुमति देने से विपक्षी को पूर्वाग्रह होगा। इसलिए अगर श्री घोष धारा 80 के तहत सूचना की अवैधता या अपर्याप्तता पर भरोसा करना चाहते थे तो उन्हें इस प्रश्न पर एक विशिष्ट मुद्दा उठाना चाहिए था।"

14. न्यायमूर्ति मित्रा, ने उनके न्यायालय के एक पूर्व निर्णय पर भरोसा किया, (1907) आइएलआर 84 सीएएल 257, मनिंद्र चंद्र नंदी बनाम राज्य के सचिव। इसी प्रभाव के लिए एक अधिकार (1913) 17 सीएएल डब्ल्यूएन 64, भोला नाथ राय बनाम भारत में राज्य के सचिव के लिए परिषद है। वर्तमान मामले में लिखित बयान में एक दावा लिया गया था, लेकिन इस पहलू पर एक उपयुक्त मुद्दा उठाया नहीं गया था न ही इस बिंदु को मुकदमे की अदालत में उठाया गया था। हालांकि निचली अपीलीय अदालत में इस प्रश्न पर अपील के ज्ञापन में एक आधार था लेकिन इसे उठाया नहीं गया लगता है, न ही यह आरोप लगाया गया है कि इस न्यायालय में ऐसा बिंदु

उठाया गया था और निचली अपीलीय अदालत के विद्वान अपीलीय न्यायाधीश ने इसका उल्लेख करने में चूक की है। इस तरह की परिस्थितियों में और इस कानूनी स्थिति की इस स्थिति के मद्देनजर मैं सोचता हूँ कि सूचना के लिए मुकदमा खराब होने का तर्क उठाया जाना संभव नहीं है। टेलीग्राम सूचना एक्सटी. 6 है। यह निश्चित रूप से सीपीसी की धारा 80 की आवश्यकता के अनुरूप नहीं है। इसके अलावा, संहिता में यह प्रावधान कि "वाद में एक बयान होना चाहिए कि इस तरह की सूचना इस प्रकार वितरित या छोड़ी गई है" संतुष्ट नहीं होता प्रतीत होता है। यदि इस प्रावधान को अनिवार्य माना गया था ताकि इसके अनुपालन को सीपीसी की धारा 80 लागू होने वाली उस श्रेणी के प्रतिवादी द्वारा छोड़ा नहीं जा सकता, तो स्थिति अलग होती। लेकिन ऊपर संदर्भित निर्णयों की श्रृंखला को देखते हुए, मैं एक अलग दृष्टिकोण नहीं लेने का प्रस्ताव करता हूँ। सूचना की कमी का दावा पहली बार दूसरी अपील में उठाया जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिससे वादी को नुकसान होगा अगर अब दावा उठाया जाता है और वह इस तकनीकी स्कोर पर नॉनसूट हो जाता है।"

50. संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के त्याग के सिद्धांत को सुप्रीम कोर्ट ने भी मान्यता दी है, **धियान सिंह सोभा सिंह और अन्य बनाम भारत संघ मामले में, एआईआर 1958 एससी 274,** जब परीक्षण न्यायालय में आरोप नहीं लगाया गया था और कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था। **धियान सिंह सोभा सिंह** (सुप्रा) में निर्णय को मद्रास उच्च न्यायालय ने **मुनुस्वामी चेट्टी और अन्य बनाम कमिश्नर, एच.आर.& सी.ई. (एडमिन.) मद्रास-34 और अन्य, एआईआर 1993 मद 144** में अनुसरण किया था।

51. इस मुद्दे पर फिर सुप्रीम कोर्ट में धारा 80 के तहत नोटिस के त्याग के संदर्भ में विचार किया गया था, **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम पायनियर बिल्डर्स, ए.पी., (2006) 12 एससीसी 119 में। आंध्र प्रदेश राज्य बनाम पायनियर बिल्डर्स, ए.पी**. (सुप्रा) में, यह कहा गया था:

"19. ..... हाई कोर्ट ने कहा कि मूल कार्यवाही में भाग लेने के बाद, राज्य के लिए मुकदमे की अक्षमता के बारे में एक नया मुद्दा उठाना अब संभव नहीं है, क्योंकि सबसे पहले दोष को छोड़ दिया गया था। हाई कोर्ट ने यह भी देखा कि धारा 80 सीपीसी के तहत नोटिस के बारे में पूरी तरह से जानते हुए राज्य ने ऐसी कोई दलील लिखित बयान या अतिरिक्त लिखित बयान में नहीं उठाई, जो मुकदमे में दायर किया गया था, और इसलिए, आपत्ति को माना गया कि छोड़ दिया गया है। यह स्वाभाविक है कि क्या वास्तव में, त्याग है या नहीं यह विशेष रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और अगर उठाया गया है, तो अदालत द्वारा परीक्षण किया जाना चाहिए, जो, जैसा कि ऊपर नोट किया गया है, यहां मामला नहीं है।"

52. इस अदालत की राय में, संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के त्याग के लिए लागू होने वाले सिद्धांत, अधिनियम 1916 की धारा

326 के लिए भी लागू होते हैं। यहां के तथ्यों पर, जिसमें याचिका शामिल है, इस अदालत ने पहले ही टिप्पणी की है कि यह एक मामला है जहां अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत नोटिस की सेवा के बारे में कोई आरोप लिखित बयान में बिल्कुल भी नहीं उठाया गया है, या इसके बारे में कोई मुद्दा नहीं उठाया गया है। निचली अपीलीय अदालत के सामने आरोप नहीं उठाया गया है। इस अदालत की राय में, इसलिए, अधिनियम 1916 की धारा 326 के तहत नोटिस की कमी के बारे में आरोप को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि नोटिस त्याग दिया जाएगा।

53. इस प्रकार, महत्वपूर्ण प्रश्न (ए) का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है कि जबकि अधिनियम 1916 के प्रावधान एक टाउन एरिया कमेटी पर लागू होंगे, जिसमें अधिनियम 1916 की धारा 326 के प्रावधान शामिल हैं, जिसका पालन किया जाना चाहिए, लेकिन यदि लिखित बयान में या परीक्षण न्यायालय के समक्ष जल्दी से धारा 326 के अनुपालन की कमी के कारण मुकदमे के लिए बाधा के बारे में कोई आरोप नहीं उठाया गया, तो बाधा छोड़ दी जाएगी।

54. प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि वादित संपत्ति को पजावा के रूप में दर्ज किया गया था, और इसलिए, 1916 के अधिनियम की धारा 116 के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 1 में निहित माना जाएगा। प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान वकील ने अदालत का ध्यान 1916 के अधिनियम की धारा 116 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें लिखा है

"116. नगर पालिका में संपत्ति निहित। - राज्य सरकार द्वारा किसी विशेष आरक्षण के अधीन, इस खंड में आगे निर्दिष्ट प्रकृति की सभी संपत्ति और नगरपालिका क्षेत्र के भीतर स्थित सभी संपत्ति नगर पालिका में निहित होगी और उसके अधीन होगी, और उसके निर्देशन, प्रबंधन और नियंत्रण में होगी, अर्थात् -

(अ) सभी सार्वजनिक शहर की दीवारें, द्वार, बाजार, वधशालाएँ, खाद और रात्रि मल डिपो और हर प्रकार की सार्वजनिक इमारतें जो नगरपालिका निधि से निर्मित हैं या बनाए रखे गए हैं;

(ब) सभी सार्वजनिक धाराएँ, झीलें, स्रोत, तालाब, कुएँ और सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए पानी की आपूर्ति, भंडारण और वितरण के लिए काम और सभी पुल, इमारतें, इंजन, सामग्री और चीजें जो इसके साथ जुड़ी हुई हैं या उससे संबंधित हैं, और यह भी कोई बगल की भूमि जो किसी सार्वजनिक तालाब या कुएँ से संबंधित है लेकिन निजी संपत्ति नहीं है;

(स) सभी सार्वजनिक सीवर, नालियाँ, पुलिया और जल-मार्ग, और सभी कार्य, सामग्री और चीजें जो इससे संबंधित हैं;

(डी) <u>सभी धूल, गोबर, रात्रि मल, राख, कचरा, पशु सामग्री या किसी भी प्रकार का मल या कचरा, या सड़कों, घरों, शौचालयों, सीवरों, गड्ढों या अन्यत्र से नगरपालिका द्वारा एकत्रित मृत पशुओं के शव या नगरपालिका</u>

द्वारा धारा 273 के अंतर्गत नियुक्त स्थानों में जमा किए गए;

(ई) सभी सार्वजनिक दीपक, दीपक स्तंभ और इसके साथ जुड़े या संबंधित उपकरण;

(ऍफ़) स्थानीय सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए सरकार या उपहार, खरीद या अन्यथा द्वारा नगरपालिका को हस्तांतरित सभी भूमि या अन्य संपत्ति; और

(जी) सभी सार्वजनिक सड़कें और उनके पथरीले और अन्य सामग्रियों, और इसी तरह की सड़कों पर मौजूद या उससे संबंधित सभी पेड़, निर्माण, सामग्री, उपकरण और चीजें।"

(अदालत द्वारा बल दिया गया)

55. यह आगे कहा गया है कि उत्परिवर्तन प्रक्रियाओं में दिए गए आदेश, जो वर्ष 1974-75 में वादियों के विरुद्ध अंतिम रूप से निपटाए गए थे, वर्ष 1986 में दायर इस मुकदमे में वादियों के दावे को अस्थिर करने के लिए पर्याप्त थे। ऐसा इसलिए है क्योंकि उत्परिवर्तन प्रविष्टियां भूमि पर कब्जे के निर्णायक प्रमाण हैं, और इसलिए, वर्ष 1986 में मुकदमे की स्थापना की तिथि पर, प्रतिवादी संख्या 1 को कब्जे में माना जाना चाहिए। मुकदमे का बाद में स्थायी निषेधाज्ञा से विध्वंस और कब्जे के मुकदमे में परिवर्तन होना दिखाता है कि वादियों के पास मुकदमे की स्थापना की तिथि पर वादित संपत्ति का वास्तविक शारीरिक कब्जा नहीं था। इसलिए, मुकदमा असफल होना चाहिए। प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से यह भी आग्रह किया गया है कि निचली अपीलीय अदालत ने एक कुरा की तैयारी के लिए एक डिक्री पारित की है, जबकि मुकदमा विभाजन के लिए नहीं बल्कि विध्वंस और कब्जे के लिए था।

56. वादियों के लिए उपस्थित वकील का कहना है कि वाद संपत्ति कभी भी गांव सभा में नहीं गई क्योंकि यह हमेशा पजावा के रूप में दर्ज की गई थी और खतौनी इसे एक गैर-कृषि भूमि के रूप में दिखाती है। यह हमेशा वादियों के पूर्वज-इन-टाइटल और उनके पूर्वजों के नाम पर दर्ज रहा। गांव सभा में वाद संपत्ति कभी नहीं गई, इसलिए प्रतिवादी संख्या 1 की सीमाओं के विस्तार के बाद, वाद संपत्ति स्वयं प्रतिवादी में नहीं जाएगी। वादियों के लिए उपस्थित वकील ने अदालत का ध्यान निचली अदालतों के निष्कर्षों की ओर आकर्षित किया है जो म्यूटेशन मामले और संबंधित रिकॉर्ड के बारे में बताते हैं कि म्यूटेशन केस नंबर 8/1975-76 बिल्कुल भी खसरा नंबर 216 से संबंधित नहीं था। उन्होंने इस बात पर ध्यान दिलाया कि म्यूटेशन केस में दर्ज निष्कर्ष अन्य खसरा नंबरों से संबंधित थे। यह भी तर्क दिया गया है कि वाद संपत्ति के रूप में, न तो कानूनी रूप से और न ही वास्तव में, यह कभी भी राज्य में और उनके माध्यम से गांव सभा में; और, अंत में प्रतिवादी संख्या 1 में निवेशित किया गया था।

57. महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न यह है कि वाद संपत्ति अपनी प्रकृति से पजावा होने के नाते राज्य में और फिर गांव सभा में, जिससे प्रतिवादी संख्या 1 शीर्षक प्राप्त करता है, स्वतः निवेशित हो जाएगी। इसलिए, तर्क यह है कि वाद संपत्ति को उत्तर प्रदेश जमींदारी

उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1951 ('अधिनियम 1951' के लिए छोटा) के तहत निवेश की तारीख पर कानून के अधीन, राज्य में निवेशित माना जाना चाहिए, एक बार यह कहा जाता है कि वाद संपत्ति पजावा के रूप में दर्ज की गई है। वैकल्पिक प्रस्तुति प्रतीत होती है, हालांकि विचाराधीन महत्वपूर्ण प्रश्न कानूनी के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं है, कि यहां तक कि यदि वाद संपत्ति गांव सभा में निवेशित नहीं है, तो अधिनियम 1951 की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना के प्रकाशन के बाद, उक्त संपत्ति धारा 116 के तहत अधिनियम 1916 की वर्चु से प्रतिवादी संख्या 1 में निवेशित हो जाएगी।

58. इस अदालत को यहां टिप्पणी करनी चाहिए कि प्रतिवादी संख्या 1 ने यह नहीं बताया है कि वाद संपत्ति का शीर्षक उनमें कैसे निवेशित हुआ था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जमींदारी के उन्मूलन से पहले वाद संपत्ति वादियों / पूर्वज-इन-टाइटल के पूर्वजों में निवेशित थी, और इसके बाद, वादियों के विक्रेताओं के नाम पर दर्ज रही। प्रतिवादी संख्या 1 के द्वारा वाद संपत्ति में निवेशित होने का साबित करने का प्रयास दिखाई दे रहा है। परीक्षण न्यायालय ने इसे मुद्दा संख्या 1 और 2 दोनों में अपने निष्कर्षों में देखा है, जो दिखाता है कि गैर-मौजूद सबूतों पर असंगत आरोप लगाए गए हैं ताकि प्रतिवादी संख्या 1 का शीर्षक और कब्जा साबित किया जा सके। एक मामला यह है कि वाद संपत्ति का एक पजावा के रूप में दर्ज किया गया, यह राज्य में निवेशित हो गया, अधिनियम 1951 के तहत अधिसूचना जारी होने पर सभी बंधनों से मुक्त हो गया। और, गांव सभा से, इसके सीमाओं के विस्तार के बाद स्वतः ही स्थानीय निकाय, यानी प्रतिवादी संख्या 1 में निवेशित हो गया। यही मामला, महत्वपूर्ण प्रश्न कानूनी (बी) के संदर्भ में विचार का विषय है।

59. दूसरा मामला यह है कि वाद संपत्ति को राज्य ने प्रतिवादी संख्या 1 के लिए अधिग्रहीत किया था और इस प्रकार उन्होंने शीर्षक प्राप्त किया। प्रतिवादी संख्या 1 का यह मामला परीक्षण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और अपील में निचली अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की गई थी, यह टिप्पणी के साथ कि रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है जो दिखाता है कि वाद संपत्ति से संबंधित कोई अधिग्रहण प्रक्रिया कभी ली गई थी और मुआवजा उस व्यक्ति को दिया गया था जिसका हक था। इस संबंध में, डब्ल्यूडी-1 की गवाही पर विचार किया गया है और अधिग्रहण के बारे में किसी भी दस्तावेजी सबूत की अनुपस्थिति को नोट करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 अपने साक्ष्यात्मक बोझ को निर्वहन करने में विफल रहा है।

60. प्रतिवादियों के वैकल्पिक आरोपों का एक परिणाम यह है कि चाहे जिस भी तरह से वाद संपत्ति का शीर्षक और कब्जा प्रतिवादियों को आया, प्रतिवादी संख्या 1 का नाम 20.11.1975 को पारित आदेश के माध्यम से राजस्व रिकॉर्ड में परिवर्तित किया गया था म्यूटेशन केस नंबर 8/1975-76, जिसके खिलाफ वादियों के विक्रेताओं के पूर्वज की ओर से ले जाया गया संशोधन आगरा डिवीजन, आगरा के कमिश्नर द्वारा 25.08.1976 को

दिए गए आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। यह मामले का हिस्सा फिर से नहीं है, विवादित शीर्षक पर बनाए गए महत्वपूर्ण प्रश्न का प्रत्यक्ष विषय, जिसे प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा स्वीकार किया गया है, जिसे राजस्व प्राधिकरणों द्वारा भी मान्यता दी गई है, साथ ही उनके कब्जे, उन्हें राजस्व रिकॉर्ड में म्यूटेशन देकर वादियों के पूर्वज-इन-टाइटल के नाम को धोखाधड़ी से परिवर्तित करने के बाद कहा गया है। इस बिंदु पर भी सबूत की जांच निचली अदालतों द्वारा बारीकी से की गई है, विशेष रूप से परीक्षण न्यायालय ने, यह तथ्य का निष्कर्ष देने के लिए वापस आया कि म्यूटेशन केस नंबर 8/1975-76 खसरा नंबरों 240, 241 और 242 से संबंधित है जिन्हें राज्य के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा अधिग्रहीत किया गया था, लेकिन खसरा नंबर 216 या 218 का न तो अधिग्रहण किया गया था और न ही म्यूटेशन केस नंबर 8/1975-76 में पारित म्यूटेशन आदेश खसरा नंबर 216 के संबंध में था। चूंकि इन सभी असंगत आरोपों को प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा वादियों से वाद संपत्ति का शीर्षक छीनने के लिए लगाया गया है, निचली अदालतों द्वारा लगातार अस्वीकार किया गया है, इस अदालत ने पहले ही टिप्पणी की है कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उनका शीर्षक और कब्जा साबित करने के लिए एक हताश प्रयास किया गया है - वास्तव में एक हांफता हुआ।

61. यह तर्क कि वाद संपत्ति, यदि गांव सभा में निवेशित नहीं हुई, तो अधिनियम 1951 की धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन पर प्रतिवादी संख्या 1 में धारा 116 के तहत अधिनियम 1916 के वर्चु में निवेशित हो जाएगी, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि धारा 116(d), जिसे प्रतिवादी संख्या 1 ने उनमें वाद संपत्ति के निवेशित होने का दावा करने के लिए समर्थन में उद्धृत किया है, राख से संबंधित है, साथ ही सड़कों, घरों, निजी शौचालयों, नालियों, सेसपूल या अन्यत्र में पाई गई धूल, गोबर, नाइटसॉयल जैसी अन्य समान प्रकार की चीजों से संबंधित है। यह प्रावधान अधिकतम में प्रतिवादी संख्या 1 को उस राख पर अधिकारों का दावा करने का अधिकार दे सकता है जो पजावा के कामकाजी होने पर उत्पादित की गई थी और वाद संपत्ति या उसके हिस्से पर डंप की गई थी। अधिनियम 1916 की धारा 116(d) किसी भी अचल संपत्ति से संबंधित किसी भी अधिकार या शीर्षक के निवेश की ओर नहीं ले जाती है, एक नगर पालिका या स्थानीय निकाय में, जिसे उपर्युक्त अधिनियम द्वारा शासित किया गया है। यह कुछ प्रकार के कचरे के उत्पादों पर स्थानीय निकाय को शीर्षक देने से संबंधित है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 1 का यह तर्क कि वाद संपत्ति पर डंप की गई राख से उक्त प्रतिवादी में वाद संपत्ति स्वयं के निवेशित होने का नेतृत्व करेगा, धारा 116(d) के तहत अधिनियम 1916 के तहत, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

62. तदनुसार, महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया गया है कि वाद संपत्ति के लिए राजस्व रिकॉर्ड में पजावा के रूप में प्रविष्टि स्वतः निवेश का कोई भी निर्णायक प्रमाण नहीं है, न तो प्रतिवादी संख्या 1 में, न ही राज्य में, और आगे कि उसी कारण से, निचली

अदालतों द्वारा दर्ज किए गए शीर्षक और स्वामित्व के मुद्दे पर निष्कर्ष कानूनी रूप से अपवाद नहीं हैं।

बी. <u>द्वितीय अपील संख्या 26/2020</u>
<u>महत्वपूर्ण प्रश्न कानूनी (i)</u>

63. वादियों के लिए उपस्थित श्री प्रीत पाल सिंह राठौर, विद्वान वकील ने तर्क दिया कि वाद संपत्ति के हिस्से पर प्रतिवादी संख्या 4 से 7 द्वारा उठाए गए निर्माण की लागत के लिए भुगतान का निर्देश देने वाला निचली अपीलीय अदालत का निर्णय स्पष्ट रूप से अवैध है उसके बहाने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा परीक्षण न्यायालय के डिक्री के लिए एक क्रॉस-आपत्ति नहीं दायर की गई थी।

64. प्रतिवादी संख्या 1 के लिए उपस्थित विद्वान वकील, जिनके माध्यम से प्रतिवादी संख्या 4 से 7 ने वाद संपत्ति का शीर्षक और कब्जा दावा किया और उस पर निर्माण किया, तर्क देते हैं कि आदेश एक्सएलआइ नियम 33 के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्ति कोड इसे किसी भी डिक्री या आदेश पारित करने के लिए पर्याप्त रूप से कपड़े पहनाने के लिए पर्याप्त है, जिसे किया जाना चाहिए था। उन्होंने संक्षेप में जमा किया कि पक्षों के बीच न्याय करने के लिए, शक्ति, यहां तक कि कोई क्रॉस-आपत्ति फाइल नहीं की गई है उद्देश्य के लिए एक प्रतिवादी के तहत आदेश एक्सएलआइ नियम 22 के तहत अपील, अदालत के साथ निश्चित रूप से उपलब्ध है।

65. संहिता के आदेश एक्सएलआइ नियम 33 के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्ति बहुत व्यापक है और आदेश एक्सएलआइ नियम 22 के तहत क्रॉस-आपत्ति की अनुपस्थिति में डिक्री को परिवर्तित करने या संशोधित करने का अपीलीय न्यायालय का न्यायाधिकार, उसके एक भाग के रूप में, काफी न्यायिक विवाद का विषय रहा है। फिर भी, आदेश एक्सएलआइ नियम 22 के तहत प्रतिवादी द्वारा क्रॉस-आपत्ति की अनुपस्थिति में अपीलीय न्यायालय की शक्ति को निश्चित रूप से मान्यता प्राप्त की गई है, हालांकि अच्छी तरह से स्थापित प्रतिबंधों के अधीन है। इस संबंध में, सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में **के. मुथुस्वामी गौंडर बनाम एन. पलानियप्पा गौंडर, (1998) 7 एससीसी 327** में किए गए टिप्पणियों का उल्लेख किया जा सकता है, जहां इसे धारण किया गया है:

"12. आदेश 41 नियम 33 अपीलीय न्यायालय को कोई भी डिक्री या आदेश पारित करने की अनुमति देता है जिसे किया जाना चाहिए था और यह सभी या किसी भी पक्षों के पक्ष में आगे का आदेश या डिक्री बना सकता है, यहां तक कि (i) अपील केवल डिक्री के एक हिस्से के रूप में है; और (ii) ऐसा पक्ष या पक्षों ने कोई अपील दायर नहीं की है। नियम के तहत शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यक शर्त यह है कि पक्षकार अदालत के सामने होते हैं और निचली अदालत के निर्णयों में से एक का उठाया गया प्रश्न उचित रूप से उठाया गया है (सिक आउट ऑफ) और उस स्थिति में, अपीलीय न्यायालय निचली अदालत के किसी भी आदेश या डिक्री के किसी भी भाग के लिए किसी भी आपत्ति पर विचार कर सकती है और इसे सही कर सकती है। इस विचार में हमें इस अदालत के निर्णय में महंत धंगीर बनाम मदन

मोहन [1987 सप्ली सीसीसी 528: एआइआर 1988 एससी 54] द्वारा समर्थन मिलता है। आदेश 41 नियम 33 सीपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करने की परिस्थितियों के बारे में कोई कठोर और तेज़ नियम नहीं बनाया जा सकता है और प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है। नियम अपीलीय न्यायालय को कोई भी आदेश/डिक्री पारित करने की अनुमति देता है जो कि पारित किया जाना चाहिए था। सामान्य सिद्धांत यह है कि एक डिक्री पक्षों पर बाध्यकारी होती है जब तक कि इसे उपयुक्त कार्यवाही में अलग नहीं किया जाता। सामान्यतः अपीलीय न्यायालय को उस पक्ष के पक्ष में किसी डिक्री/आदेश को भिन्न या उलटना नहीं चाहिए जिसने कोई अपील दायर नहीं की है और यह नियम आदेश 41 नियम 33 सीपीसी के बावजूद धारण करता है। हालाँकि, असाधारण मामलों में, नियम अपीलीय न्यायालय को ऐसी डिक्री या आदेश पारित करने की अनुमति देता है जो कि पारित किया जाना चाहिए था, भले ही ऐसी डिक्री उन पक्षों के पक्ष में हो जिन्होंने कोई अपील दायर नहीं की है"।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

66. कानून पर इस मुद्दे पर एक अधिकारपूर्ण वक्तव्य **'बनारसी और अन्य बनाम राम फाल, (2003) 9 एससीसीC 606'** में पाया जाता है, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप ने धारण किया:

"15. नियम 4 नियम 33 द्वारा प्राप्त किए जाने वाले कई उद्देश्यों में से एक को प्राप्त करने का प्रयास करता है, अर्थात, एक ही मुकदमे में विरोधाभासी डिक्री के अस्तित्व में आने की स्थिति से बचना। उपर्युक्त प्रावधान पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए अपीलीय न्यायालय को सबसे व्यापक शक्ति प्रदान करते हैं और ऐसी शक्ति तथ्यों के विचार से अनियंत्रित है जैसे कि अपील का विषय-वस्तु क्या है, किसने अपील दायर की है और क्या अपील को खारिज किया जा रहा है, स्वीकार किया जा रहा है या अपील किए गए निर्णय में संशोधन करके निपटाया जा रहा है। एक अपील खारिज करते समय और आपत्तिजनक डिक्री की पुष्टि करते हुए, अपीलीय न्यायालय फिर भी ऐसी डिक्री पारित करने या ऐसा आदेश देने का निर्देश दे सकता है जो निचली अदालत द्वारा, तथ्य और कानून के निष्कर्षों के अनुसार, पारित किया जाना चाहिए था और जो वह करती अगर वह उस त्रुटि के प्रति सचेत होती जिसे उसने किया था और जिसे अपीलीय न्यायालय ने देखा था। अपील को स्वीकार करते हुए या अन्यथा अपील किए गए डिक्री या आदेश में हस्तक्षेप करते समय, अपीलीय न्यायालय ऐसी आगे की या अन्य, डिक्री या आदेश पारित कर सकता है या बना सकता है, जैसा कि मामला हो, किया जाना चाहिए, अपीलीय न्यायालय द्वारा पहुंचाई गई निष्कर्षों के अनुरूप। अपीलीय न्यायालय पर ऐसी शक्ति का प्रदान किया जाना उद्देश्य है समान रूप से स्थित पार्टियों को प्रदान किए गए राहतों में असंगति, अन्याय, असमानता और अकार्यान्वित डिक्री या आदेश के अस्तित्व में आने से बचना। प्रमुख विचार न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करना है। शक्ति जितनी व्यापक होती है, शक्ति का प्रयोग करते समय सावधानी और देखभाल की

उतनी ही अधिक आवश्यकता होती है। आमतौर पर नियम 33 के तहत शक्ति का प्रयोग तब किया जाता है जब अपील किए गए डिक्री का हिस्सा या अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने योग्य या हस्तक्षेप किए जाने वाले डिक्री का हिस्सा इतना अविभाज्य रूप से जुड़ा होता है कि अपील किए गए हिस्से के साथ नहीं छुआ गया या अछूता छोड़ा गया हिस्सा के कारण या तो अन्याय होगा या विरोधाभासी डिक्री अनुसरण करेगी। शक्ति कम से कम तीन सीमाओं के अधीन है: पहला, शक्ति का प्रयोग न्यायालय के समक्ष पार्टी न होने वाले व्यक्ति के प्रतिकूल या नुकसान में नहीं किया जा सकता; दूसरा, एक दावा जो छोड़ दिया गया है या खो दिया गया है, उसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता; और तीसरा, ऐसा हिस्सा जिसे एक पार्टी द्वारा अपील किया जाना चाहिए था या आपत्ति की जानी चाहिए थी और जिसे उस पार्टी ने अंतिमता प्राप्त करने दी है, उसे उस पार्टी के लाभ के लिए उलटा नहीं किया जा सकता। एक मामला जहां दो राहतें मांगी गई हैं और एक को अस्वीकार कर दिया गया है जबकि दूसरे को दिया गया है और पूर्ववर्ती दूसरे पर अविभाज्य रूप से जुड़ा नहीं है या अनिवार्य रूप से निर्भर नहीं करता है, उत्तरार्द्ध के खिलाफ एक अपील में, पूर्ववर्ती राहत को अपीलीय न्यायालय द्वारा नियम 33 के तहत शक्ति का प्रयोग करके उत्तरदाता के पक्ष में दिया जा सकता है।"
(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

67. यहाँ, इस न्यायालय द्वारा पाया गया कि विध्वंस की डिक्री को बदलने के लिए निम्न अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट कारण, और, इसके बजाय, उन निर्माणों के मूल्यांकन के लिए एक डिक्री देने, जो उस भूमि के हिस्से पर गिरते हैं जिसके लिए कब्जे की डिक्री दी गई है, उस आधार पर है कि प्रतिवादी संख्या 4 से 7 ने इस विश्वास में ये निर्माण किए कि इस मुकदमे की संपत्ति का यह हिस्सा प्रतिवादी संख्या 1 के स्वामित्व में था। यह विश्वास, बदले में, मथुरा के कलेक्टर के पत्र के परिणामस्वरूप आया, जिसने इस भूमि को पुलिस को देने का सुझाव दिया था।

68. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा मुकदमा लंबित रहते हुए निर्माण किए गए, जिससे उन निर्माणों के विध्वंस के बाद कब्जे की डिक्री मांगने के लिए वाद पत्र का संशोधन आवश्यक हो गया। एक अस्थायी अदालती आदेश प्रचलन में था, और, स्पष्ट रूप से, अन्य निष्कर्षों पर, जिसे निम्न अपीलीय न्यायालय ने नहीं बदला, प्रश्न में निर्माण अदालत द्वारा पारित एक अस्थायी अदालती आदेश के उल्लंघन में उठाए गए थे। किसी भी मामले में, निर्माण मुकदमा लंबित रहते हुए सूट संपत्ति के उस हिस्से पर उठाए गए थे, जिसके लिए दोनों न्यायालयों ने पाया कि वादी शीर्षक धारक हैं, कब्जे की डिक्री के हकदार हैं। मुकदमा दायर करने की तारीख को वादी सूट संपत्ति के कब्जे में भी पाए गए थे।

69. उपर्युक्त निष्कर्षों के मद्देनजर, निम्न अपीलीय न्यायालय ने विध्वंस की डिक्री को बदलने के लिए संहिता के आदेश एक्सएलआइ नियम 33 के निर्धारित पैरामीटरों के भीतर बिल्कुल भी शक्तियों का प्रयोग नहीं किया है, इसे वादियों को उठाए गए निर्माणों के लिए

भुगतान करने के निर्देश से प्रतिस्थापित कर दिया। निम्न न्यायालयों के समकालिक निष्कर्षों पर, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा, वादियों के कब्जे को परेशान करते हुए, बिना शीर्षक के निर्माण उठाए गए थे। विध्वंस का निर्देश देने से क्या अन्याय उत्पन्न हो सकता है, यह शायद ही पहचानने योग्य है। कलेक्टर के पत्र पर एक गलत विश्वास, जिसने संपत्ति को पुलिस विभाग को स्थानांतरित किया, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा की गई उल्लंघन के लिए वादियों से भुगतान करवाने का कोई कारण नहीं है, जिन्होंने राज्य की पुलिस शक्ति का उपयोग या बल्कि दुरुपयोग किया और प्रतिवादी संख्या 1 के स्वामित्व में नहीं होने वाली संपत्ति पर जबरन निर्माण उठाया; और बढ़ाकर, प्रतिवादी संख्या 4 से 7 के लिए। मुकदमा न्यायालय द्वारा पारित डिक्री किसी भी तरह से असंगत नहीं है; बल्कि, कब्जे की डिक्री प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा मुकदमे के लंबित रहते हुए किए गए सभी अतिक्रमण को हटाने के लिए विध्वंस की डिक्री के साथ पूर्ववर्ती रूप से संगत है।

70. प्रतिवादी संख्या 4 से 7 के पक्ष में किसी भी तरह से डिक्री को बदलने का एक अतिरिक्त कारण नहीं है। इन प्रतिवादियों में से प्रतिवादी संख्या 4, जिन्होंने मुकदमे का विरोध किया, ने मुकदमा न्यायालय की डिक्री के खिलाफ अपील नहीं की। यह केवल प्रतिवादी संख्या 1 था जिसने डिक्री के खिलाफ अपील की। इसलिए, निम्न अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 से 7 को कुछ लाभ देने का निर्देश देना बिल्कुल बिना आधार के है। अगर प्रतिवादी संख्या 4 ने भी अपील की होती, तो यह अलग होता, शायद निम्न अपीलीय न्यायालय द्वारा उन्हें दी गई राहत के प्रकार की राहत मांगने से नहीं।

71. इस प्रश्न पर हमारे निष्कर्ष दर्ज करने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि रिकॉर्ड को वर्तमान महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न में प्रयुक्त 'काउंटर क्लेम' शब्दों को स्पष्ट करके सीधा करना चाहिए, जो कि एक लिपिकीय त्रुटि का परिणाम प्रतीत होता है। इस न्यायालय की विचारणीय राय में, इस प्रश्न में आने वाले 'काउंटर क्लेम' शब्दों को 'क्रॉस-आपत्ति' के रूप में पढ़ा और समझा जाना चाहिए। निष्कर्षों में, यह महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न नकारात्मक रूप में उत्तरित किया गया है और यह माना गया है कि संहिता के आदेश एक्सएलआइ नियम 33 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के पैरामीटरों को देखते हुए, संहिता के आदेश एक्सएलआइ नियम 22 के तहत 'क्रॉस-आपत्ति' की अनुपस्थिति में, निम्न अपीलीय न्यायालय को प्रतिवादियों (प्रतिवादी संख्या 4 से 7) को वादियों से निर्माणों की लागत वसूलने के लिए राहत देने का कोई औचित्य नहीं था, पूर्ववर्ती ने अतिक्रमण में उठाया।

72. इस अपील पर पर्दा डालने से पहले, यह उल्लेख करना चाहिए कि 06.01.2020 को न्यायालय के आदेश में दर्ज महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न (ii) बिलकुल भी एक प्रश्न नहीं है। वह अपील को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने के निर्देश के रूप में प्रतीत होता है। इसे एक प्रश्न के रूप में दिखाया गया है और फिर से किसी प्रकार की लिपिकीय या टाइपोग्राफिकल त्रुटि के कारण एक नंबर सौंपा गया है।

73. परिणामस्वरूप, दूसरी अपील संख्या 108/2008 **विफल** होती है और **खर्च के साथ खारिज** की जाती है। दूसरी अपील संख्या 26/2020 को **खर्च के साथ स्वीकार** किया जाता है। निम्न अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को जहां तक वादियों को प्रतिवादी संख्या 4 से 7 द्वारा सूट संपत्ति पर उठाए गए निर्माणों की लागत देने के लिए निर्देशित किया गया है, **रद्द कर** दिया जाता है और विचारण न्यायालय की डिक्री बहाल की जाती है।

74. उपर्युक्त शर्तों में दोनों अपीलों में अलग-अलग डिक्री तैयार की जाए।

(2023) 5 ILRA 246

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.10.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

द्वितीय अपील संख्या 3393/1978

जगदेव सिंह एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

हजारीलाल और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वी.डी. ओझा, श्री प्रणव ओझा, श्री आर.के. सिंह, श्री उत्पल चटर्जी, श्री उत्पल चटर्जी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री वी. के. चौधरी, श्री कुणाल रवि सिंह, मंजरी सिंह, श्री वी.के.एस.चौधरी, श्री वजाहत हुसैन

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41 नियम 33 - अपीलीय न्यायालय ने पाया कि दिनांक 9.01.1968 का विक्रय विलेख वैध था तथा वादी को राशि वापस नहीं की गई थी, तो वादी को मकान के 1/3 भाग पर कब्जा मिलना चाहिए, जिसे प्रतिवादी संख्या 7 तथा 8 ने बेचा था - चूंकि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने आदेश 41 नियम 33 के तहत शक्ति का प्रयोग करके अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, तथा प्रतिवादी संख्या 9 से 10 के संबंध में अंतिम निर्णय में हस्तक्षेप किया है - प्रतिवादी संख्या 9 से 10 द्वारा बेची गई संपत्ति वादी को नहीं दी जाएगी - निर्णय को इस सीमा तक संशोधित किया गया है कि वादी को केवल उस संपत्ति पर कब्जा दिया जाएगा, जो दिनांक 09.01.1968 के विक्रय विलेख द्वारा उन्हें बेची गई थी। (पैरा 1 से 15)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. काशी नाथ (मृत) द्वारा एलआरएस बनाम जगन्नाथ (2003) 8 एससीसी 740
2. उदा. अधिकारी अरुल्मिगु चोक्कनाथ स्वामी कोइल, ट्रस्ट, विरुधुनगर बनाम चंद्रन और अन्य (2017) 3 एससीसी 702
3. अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोष और अन्य. बनाम बृजलाल टिबरेवाल और अन्य (2019) 2 एससीसी 684
4. लक्ष्मणन और अन्य बनाम जी अय्यासामी (2016) 13 एससीसी 165
5. बनारसी और अन्य बनाम राम फल (2003) 9 एससीसी 606
6. तुमम्ला अचैया बनाम वेंका नरसिंगाराव (1978) एआईआर एससी 725
7. कुट्टन सुधाकरन बनाम पद्मावती अम्मा लैला बाई और अन्य (1987) एआईआर केरल 94
8. एस. एम.डी. इस्माइल एवं अन्य बनाम एम.एस. एम.डी. एसा एवं अन्य (1974) एआईआर मद्रास 301

9. बुधन बनाम लाला हरबंस लाल (1973) एआईआर एएलडी 63

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा, द्वारा प्रदत्त)

मूल वाद संख्या 126/1969 को वादी चंद्रपाल, सभाजीत और तारबाबू ने यह राहत देने के लिए दायर किया था कि प्रतिवादी संख्या 1 से 5 को बेदखल किया जाए और वादी को संबंधित संपत्ति का कब्जा दिया जाए। एक और प्रार्थना की गई है कि जिस अवधि के लिए प्रतिवादी संख्या 1 से 5 कब्जे में रहे, उन्हें वादी को हर महीने 25 रुपये का हर्जाना देने का निर्देश दिया जाए। इसके अलावा एक और प्रार्थना की गई कि चूंकि जिस घर में प्रतिवादी जगदेव, चंद्रदीप सिंह, साहब लाल सिंह, राम स्वरूप सिंह और रामराज सिंह रह रहे थे, उसे प्रतिवादी संख्या 7 से 10 ने वादी को बेच दिया था, इसलिए वादी को संबंधित संपत्ति का मालिक घोषित किया जाना चाहिए, जिस पर सीपीसी की धारा 145 के तहत कार्यवाही के कारण वे गलत तरीके से कब्जे से बाहर थे।

प्रतिवादी संख्या 1 से 5 ने अपने लिखित बयान में यह प्रकरण उठाया कि वास्तव में प्रतिवादी संख्या 6 लालता प्रसाद ने दिनांक 15.1.1968 को प्रश्नगत मकान उन्हें बेचा था और इसलिए वे ही उसके असली मालिक थे तथा प्रश्नगत मकान पर उनका कब्जा था।

घर पर कब्जा के संबंध में तथा वादी को कब्जा सौंपे जाने की राहत के संबंध में वाद खारिज कर दिया गया, लेकिन इस सीमा तक निर्णय दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 7 और 8 को वादी को 700/- रुपए वापस करने का आदेश दिया गया तथा प्रतिवादी संख्या 9 और 10 को वादी को 2,000/- रुपए देने का आदेश दिया गया। प्रतिवादी संख्या 7 और 8, जो इस तथ्य से व्यथित थे कि उनके विक्रय विलेख को कानून में गलत घोषित कर दिया गया था तथा उन्हें 700/- रुपए वापस करने की आवश्यकता थी, ने प्रथम अपील संख्या 47/1977 के रूप में प्रथम अपील दायर की। यह अपील वादी के विरुद्ध दायर की गई थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने, इस तथ्य के बावजूद कि वादी ने कोई अपील दायर नहीं की थी, वाद पर निर्णय दिया। इसने माना कि चूंकि हजारी लाल और शांतू लाल ने जिस बिक्री विलेख के माध्यम से संपत्ति का 1/3 हिस्सा वादी को बेचा था और 16.1.1968 का वह बिक्री विलेख जिसके माध्यम से राम दीन और राम आश्रय ने वादी को अपने मकान का 2/3 हिस्सा बेचा था, वैध बिक्री विलेख पाए गए, इसलिए मुकदमे को पूरी तरह से खारिज किया जाना चाहिए। इसके अलावा वादी को उस मकान का कब्जा लेने का भी निर्देश दिया गया जिस पर प्रतिवादी संख्या 1 से 5 का कथित तौर पर कब्जा है। प्रतिवादी संख्या 1 से 4 जगदेव, चंद्रपाल सिंह, साहब लाल सिंह और राम स्वरूप ने तत्काल दूसरी अपील दायर की है।

द्वितीय अपील विधि के इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर स्वीकार की गई कि क्या जब दिनांक 11.6.1873 और 25.6.1868 के विक्रय विलेख अपनी सीमाओं के अनुसार किसी अन्य मकान से संबंधित थे, तो क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय अपील पर निर्णय दे सकता था?

अपील पर आगे बढ़ने से पहले यह देखना उचित होगा कि क्या वे आधार, जिन पर प्रथम अपीलीय अदालत ने अपील को अनुमति दी थी और मुकदमे का फैसला सुनाया था, उसके लिए उपलब्ध थे। प्रथम अपील केवल प्रतिवादी सं. 7 और 8 द्वारा दायर की गई थी, जिन्होंने वास्तव में आरोप लगाया था कि उन्होंने संपत्ति का अपना 1/3 भाग 9.1.1968 को 700/- रुपये की राशि में बेचा था और इसलिए वे 700/- रुपये वापस करने के लिए उत्तरदायी नहीं थे। अपीलीय न्यायालय ने अपील पर सुनवाई करते हुए पाया कि प्रतिवादी सं. 7 और 8 के दादा ने 11.6.1873 को किसी सैयद अज़हान हुसैन से संपत्ति खरीदी थी और इसलिए यह संपत्ति उनकी थी और वे ही संपत्ति बेच सकते थे। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया था कि प्रतिवादी सं. 6 लालता प्रसाद ने पैराग्राफ सं. उनके जिरह के 12वें भाग में उल्लेख किया गया था कि उनके पूर्वजों के पास केवल एक ही घर था और वह भी खुरहंड गांव में स्थित था और उनकी जानकारी के अनुसार उनके पूर्वजों के पास गांव में केवल एक ही घर था। इस तथ्य के आधार पर यह माना गया कि जब लालता प्रसाद के पूर्वजों के पास केवल एक ही संपत्ति थी और वह भी खुरहंड गांव में थी, तो प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा 15.1.1968 को बेची गई संपत्ति एक अर्थहीन बिक्री थी, खासकर जब पूर्वजों ने पहले ही संपत्ति बेच दी थी।

अपील को स्वीकार करते हुए अपीलीय न्यायालय ने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 33 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग किया था और वादी के वाद पर इस सीमा तक निर्णय दिया था कि न केवल हजारी लाल और शांतू लाल द्वारा किया गया विक्रय विलेख एक उचित विक्रय विलेख माना गया था, बल्कि उसने प्रतिवादी संख्या 9 और 10 अर्थात् रामदीन और रामाश्रय द्वारा दिनांक 16.1.1968 को निष्पादित विक्रय विलेख को भी वैध घोषित किया था।

प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादी जगदेव सिंह, चंद्रपाल सिंह, साहब लाल सिंह एवं राम स्वरूप सिंह ने द्वितीय अपील दायर की है।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपील पर बहस करते हुए जोरदार ढंग से कहा कि जब 11.6.1873 और 25.6.1886 की बिक्री विलेख और बेचे गए घर की सीमाएं मेल नहीं खातीं, तो प्रथम अपीलीय न्यायालय ने निश्चित रूप से कानून में गलती की है । अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि जब प्रतिवादी संख्या 7 और 8 द्वारा प्रथम अपील दायर की गई थी, तो केवल उनके द्वारा दावा की गई राहत पर विचार किया जाना चाहिए था और उन्हें प्रदान किया जाना चाहिए था, यदि पहली अपील को अनुमति दी जा रही थी। प्रतिवादी संख्या 9 से 10 द्वारा बेची गई संपत्ति सहित पूरी संपत्ति पर वादी को कब्जे की जो राहत दी गई थी, वह प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा नहीं दी जा सकती थी।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी के लिए एक नया प्रकरण स्थापित किया है, जिसे उनके द्वारा कभी भी प्रस्तुत नहीं किया गया और साबित नहीं किया गया।

अपीलीय न्यायालय ने सीपीसी के आदेश 41 नियम 33 के प्रावधानों को लागू

करके वादी के लिए एक नया प्रकरण बनाया और गलत तरीके से माना कि विवादित घर प्रतिवादी संख्या 6 लालता प्रसाद के घर के उत्तर में मौजूद नहीं था। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दलीलें और सबूत एक दूसरे से भिन्न थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आदेश 6 नियम 2 सीपीसी के तहत दलीलों और सबूत के बीच कोई अंतर नहीं हो सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने **2003 (8) एससीसी 740 (काशी नाथ (मृत) उत्तराधिकारी बनाम जगन्नाथ) और 2017 (3) एससीसी 702 (कार्यकारी अधिकारी, अरुलमिगु चोक्कनाथ स्वामी कोइल, ट्रस्ट, विरुधुनगर बनाम चंद्रन और अन्य)** पर भरोसा किया।

इसके अलावा अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सीपीसी के आदेश 41 नियम 33 के प्रावधान को लागू करके गलती की है और **2019 (2) एससीसी 684: अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोष एवं अन्य बनाम बृजलाल टिबरेवाल एवं अन्य; 2016 (13) एससीसी 165 : लक्ष्मणन एवं अन्य बनाम जी. अय्यासामी; 2003 (9) एससीसी 606 : बनारसी एवं अन्य बनाम राम फल; एआईआर 1978 एससी 725 : तुम्माल्ला अचैया बनाम वेंका नरसिंहराव ; एआईआर 1965 एससी 1874: (1. निर्मला बाला घोष और अन्य सिविल अपील संख्या 966 और 968 / 1964 में, 2. निर्मला बाला घोष सिविल अपील संख्या 967 / 1964 में बनाम बलाई चंद घोष सिविल अपील संख्या 996 और 968 / 1964 में, 2. बाला चंद घोष और अन्य सिविल अपील संख्या 967 / 1964 में); एआईआर 1987 केरल 94: कुट्टन सुधाकरन बनाम पद्मावती अम्मा लैला बाई और अन्य; एआईआर 1974 मद्रास 301: एस. मोहम्मद इस्माइल और अन्य बनाम एमएस मोहम्मद ईसा और अन्य और एआईआर 1973 इलाहाबाद 63: बुधन बनाम लाला हरबंस लाल** पर भरोसा किया है।

इसलिए, उन्होंने दलील दी कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विवादित निर्णय पारित करने में गलती की है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, यह न्यायालय इस विचार पर है कि जहां तक 11.6.1873 के विक्रय विलेख और वर्ष 1868 के विक्रय विलेख (प्रदर्श 5) की सीमाओं के 15.1.1968, 9.1.1968 और 16.1.1968 के विक्रय विलेख के साथ मिलान का संबंध है, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपने फैसले के पैराग्राफ 9 में सीमाओं का मिलान करने के लिए निश्चित रूप से सभी सावधानियां बरती हैं और यह पाया है कि प्रतिवादी संख्या 7 और 8 के दादा द्वारा खरीदे गए मकान की सीमाएं विवादग्रस्त मकान की सीमाओं से मेल खा रही थीं। इसलिए, न्यायालय पाता है कि सीमाओं के मिलान के संबंध में निष्कर्ष तथ्यों के निष्कर्षों से समाप्त हो गया है। हालांकि, यह न्यायालय निश्चित रूप से इस विचार पर है कि प्रतिवादी संख्या 9 से 10 नहीं दिए जा सकते थे। साथ ही 2000/- रुपये की वापसी के संबंध में राहत अंतिम हो चुकी थी और उसमें हल्के तौर पर छेड़छाड़ नहीं की जा सकती थी। जहां तक प्रतिवादी संख्या 1 से 5 को बेदखल करने के संबंध में प्रथम अपीलीय द्वारा पारित डिक्री का संबंध है, इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रथम अपीलीय अदालत ने बहुत ही

समझदारी से पाया है कि प्रतिवादी संख्या 7 और 8 के संबंध में केवल पहली अपील की अनुमति देने से कोई फायदा नहीं होगा और डिक्री एक निरर्थक डिक्री होगी और इसलिए सीपीसी के आदेश 41 नियम 33 के तहत अपनी शक्तियों का उपयोग करके इसने इस सीमा तक मुकदमे की डिक्री भी की थी कि प्रतिवादी संख्या 1 से 5 को उस संपत्ति से बेदखल कर दिया जाएगा जो वादी को बेची गई थी। हालांकि, कब्जे के आदेश को इस सीमा तक संशोधित किया जा रहा है कि वादी को केवल उस संपत्ति के संबंध में ही कब्जा दिया जाएगा जो उन्हें दिनांक 9.1.1968 के बिक्री विलेख द्वारा बेची गई थी। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 9 से 10 द्वारा उनके बिक्री विलेख द्वारा बेची गई संपत्ति वादी को नहीं दी जाएगी। इसलिए, तदनुसार, दूसरी अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 33 के तहत अपीलीय न्यायालय को कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश पारित करने की शक्ति है, जिसे पारित किया जाना चाहिए था और इस प्रकार अपीलीय न्यायालय द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, भले ही अपील डिक्री के केवल एक भाग के संबंध में हो। वर्तमान मामले में, जब प्रथम अपीलीय न्यायालय यह पा रहा था कि दिनांक 9.1.1968 का विक्रय विलेख वैध था और जब 700/- रुपये की राशि वादी को वापस नहीं की जा रही थी, तो यह उचित था कि वादी को घर के 1/3 भाग पर भी कब्ज़ा मिल जाना चाहिए, जिसे प्रतिवादी संख्या 7 और 8 ने वादी को बेचा था। हालाँकि, चूँकि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 9 से 10 के संबंध में अंतिम रूप प्राप्त कर चुके डिक्री में हस्तक्षेप करके अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया था, इसलिए डिक्री को संशोधित किया गया है।

उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, द्वितीय अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(2023) 5 ILRA 250

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 1524/2023

इंडिया ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड लखनऊ

...याचिकाकर्ता

बनाम

वाणिज्यिक न्यायालय-I, लखनऊ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अशोक कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सिद्धार्थ नंदवानी

ए. वाणिज्यिक कानून - तत्काल अंतरिम राहत - वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015- धारा 12(ए)(1) - वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 की धारा 12 ए के प्रयोजन के लिए तत्काल अंतरिम राहत पर विचार संबंधित न्यायालय द्वारा केवल वादपत्र या अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन में किए गए कथनों के अनुसार ही किया जाना है। (पैरा 18)

बी. केवल वादी ही तत्काल अंतरिम राहत का एकमात्र मध्यस्थ नहीं है, बल्कि संबंधित न्यायालय को भी वादपत्र में या अस्थायी

निषेधाज्ञा के लिए आवेदन में मांगी गई राहत के संदर्भ में तत्काल अंतरिम राहत के कारक पर विचार करना होता है। (पैरा 17)

ऐसा वाद जो अधिनियम के तहत किसी भी तत्काल अंतरिम राहत की 'कल्पना' नहीं करता है, तब तक शुरू नहीं किया जा सकता जब तक कि वादी अधिनियम की धारा 12 ए के अनुसार पूर्व संस्था मध्यस्थता के उपाय को समाप्त नहीं कर देता। पूर्व संस्था मध्यस्थता और निपटान के बिना किसी मुकदमे को बनाए रखने के लिए, यह आवश्यक होगा कि इसमें किसी भी तत्काल अंतरिम राहत की परिकल्पना की गई हो। अधिनियम की धारा 12 ए के प्रावधानों और प्रयोज्यता की जांच करने के प्रयोजनों के लिए 'कल्पना' शब्द काफी प्रासंगिक होगा। (पैरा 16)

सी. यह पहलू कि क्या मुकदमा काफी देरी के बाद दायर किया गया है, तत्काल अंतरिम राहत निर्धारित करने के लिए आवश्यक मानदंड नहीं होगा। ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जब समाप्ति का आदेश पारित किया गया हो लेकिन एक निश्चित अवधि के लिए लागू नहीं किया गया हो और केवल इसके प्रवर्तन के लिए मुकदमा दायर करने की आवश्यकता हो, जिससे शिकायत में तत्काल अंतरिम राहत की मांग की जा सकेगी। (पैरा 16)

डी. शब्द और वाक्यांश - 'विचार करना' - शब्द 'विचार करना' का अर्थ अनिवार्य रूप से मुकदमे में मांगी गई राहत की जांच के साथ-साथ इस तरह की राहत के संबंध में वादपत्र में दिखाई गई तात्कालिकता से है। इस तरह की तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार, उक्त अंतरिम राहत के आधार पर निर्भर करेगा। धारा 12ए के अनिवार्य प्रावधान को माफ करने के उद्देश्य से, यह न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह तात्कालिक अंतरिम राहत के विचार का निर्धारण करे। (पैरा 16)

वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में यद्यपि वाद अनुबंध की समाप्ति के लगभग डेढ़ महीने बाद दायर किया गया है, लेकिन चूंकि यह वादी के विरुद्ध लगाए जा रहे अनुबंध की समाप्ति के खंड के विरुद्ध तत्काल अंतरिम राहत की ओर संकेत करता है, इसलिए जब वाद में तत्काल अंतरिम राहत की बात कही गई है और इसलिए पूर्व संस्था मध्यस्थता से संबंधित अनिवार्य प्रावधानों को वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा उचित रूप से माफ किया गया है। इस प्रकार, आपेक्षित आदेश पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है। (पैरा 19)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. मेसर्स पाटिल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम रखेजा इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड, 2022 (10) एससीसी (1) (पैरा 5)

2. चन्द्र किशोर चौरसिया बनाम आर.ए. परफ्यूमरी वर्क्स प्रा. लिमिटेड, (2022/डीएचसी/004454 पर 27.10.2022 को निर्णय लिया गया)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

मेसर्स माइक्रोलैब्स लिमिटेड बनाम श्री ए. संतोष, सी.एस., (कॉम. डिवीजन संख्या 185/2022) (पैरा 5)

वर्तमान याचिका में वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.03.2023 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें याचिकाकर्ता/प्रतिवादी द्वारा मुकदमे की पोषणीयता के संबंध में उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों को इस आधार पर निरस्त कर दिया गया था कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 की धारा 12(ए) (1) के तहत परिकल्पित मध्यस्थता का पूर्व-संस्था उपाय नहीं किया गया है, जिसके बिना उपरोक्त प्रावधानों के अनुसार वाद बाधित है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. प्रतिवादी संख्या-2 की ओर से दायर पूरक शपथपत्र अभिलेख पर लिया गया।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार सिंह और प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ नंदवानी को सुना गया।

3. प्रतिवादी संख्या-1 को नोटिस जारी नहीं की जा रही है क्योंकि वह औपचारिक पक्षकार है।

4. यह याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई है जिसमें सिविल वाद संख्या 275/2022 में वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.03.2023 को चुनौती दी गई है जिसमें याचिकाकर्ता/प्रतिवादी द्वारा वाद की ग्राह्यता के संबंध में उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों को खारिज कर दिया गया था, जो इस आधार पर उठाई गई थी कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 की धारा 12(क)(1) के तहत परिकल्पित मध्यस्थता का पूर्व-मध्यकता उपाय नहीं किया गया है, जिसके बिना उपरोक्त प्रावधानों के अनुसार वाद वर्जित है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स पाटिल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम रखेजा इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड के मामले में 2022 (10) एससीसी (1)** में दिए गए फैसले पर यह प्रस्तुत करने हेतु भरोसा किया है कि उपरोक्त अधिनियम की धारा 12(क)(1) के प्रावधानों को अनिवार्य प्रकृति का माना गया है और इसलिए, 2015 के अधिनियम की धारा 12-क में दिए गये पूर्व-मध्यस्थता के उपाय का लाभ उठाए बिना वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष दायर कोई भी वाद खारिज करने योग्य है। आगे यह भी कहा गया है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के खुदरा दुकानों/केएसके पर नए यूनिपोल की आपूर्ति,

परिवहन, स्थापना और कमीशनिंग के संबंध में 01.12.2021 को पक्षों के बीच एक अनुबंध किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुबंध की शर्तों और नियमों को पूरा नहीं करने के कारण, प्रतिवादी संख्या-2 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था और उसके जवाब पर विचार करने के बाद दिनांक 25.10.2022 को अनुबंध समाप्त कर दिया गया। यह कहा गया है कि समाप्ति आदेश को चुनौती देने वाला वाद मात्र दिनांक 08.12.2022 को दायर किया गया है और इस तरह, मामले में किसी भी तरह की तात्कालिकता का प्रश्न ही नहीं है, जिसके कारण 2015 के अधिनियम की धारा 12-क (1) के प्रावधानों को माफ करने की आवश्यकता नहीं होगी। यह कहा गया है कि इन परिस्थितियों में संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रारंभिक आपत्तियां दायर की गईं और जो आक्षेपित आदेश के माध्यम से इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि चूँकि वादी ने तत्काल अंतरिम राहत माँगी है, इसलिए अधिनियम की धारा 12-क के अनुसार वाद पर रोक नहीं होगी। विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स माइक्रोलैब्स लिमिटेड बनाम श्री ए. संतोष, सी.एस. (कम्युनिटी डिव) नंबर 185/2022** के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर अपनी दलीलों को पुष्टि करने हेतु विश्वास व्यक्त किया है।

6. प्रतिवादी संख्या-2 के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का खंडन करते हुए कहा कि यद्यपि अनुबंध दिनांक 08.12.2022 को समाप्त कर दिया गया था लेकिन इसमें देरी हेतु मूल्य समायोजन से संबंधित अनुबंध के खंड 6.13 (बी) के प्रावधानों को भी लागू किया गया है, इस तर्क के साथ कि अनुबंध की समाप्ति के अनुसरण में, सुरक्षा जमा को जब्त करने, अवकाश सूचीकरण या इंडियन आयल कारपोरेशन/याचिकाकर्ता द्वारा उचित समझे जाने वाले किसी भी अन्य दंडात्मक कार्रवाई को शुरू करने सहित उत्तरदाता प्रतिपक्ष के खिलाफ आगे की कार्रवाई पर विचार किया गया है। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि जब याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या-2 के खिलाफ कार्रवाई शुरू की थी, मात्र तब याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को संविदा-समाप्ति पत्र को लागू करने से रोकने हेतु अस्थायी निषेधाज्ञा हेतु आवेदन के साथ वाद दायर किया गया था। विद्वान अधिवक्ता द्वारा **मेसर्स पाटिल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम रखेजा इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड के मामले में 2022 (10) एससीसी (1)** में साथ-साथ **चंद्र किशोर चौरसिया बनाम आर ए परफ्यूमरी वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड (2022/डीएचसी/004454 निर्णित दिनांक 27.10.2022)** के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की खण्डपीठ

के फैसले को भी अपने तर्कों के समर्थन में लिया गया है।

7. प्रस्तुत किए गए तर्कों के मद्देनजर, निम्नलिखित प्रश्न पर निर्णय लेने की आवश्यकता होगी:

क्या वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 की धारा 12-क के तहत प्रस्तुत तत्काल अंतरिम अनुतोष पर विचार करने हेतु न्यायालय द्वारा मात्र वाद/अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन में किए गए कथनों के अनुसार या अन्य आकस्मिक पहलुओं पर भी विचार करने की आवश्यकता है?

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट और निर्विवाद है कि प्रतिवादी पक्ष को दिनांक 25.10.2022 को समाप्ति आदेश जारी किया गया था, जिसके बाद दिनांक 08.12.2022 को अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने हेतु आवेदन के साथ वाद दायर किया गया था। याचिकाकर्ता ने वाद की ग्राह्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति दर्ज की थी, क्योंकि 2015 के अधिनियम की धारा 12-क के तहत पूर्व- मध्यस्थता संस्थित करने सम्बन्धी अनुतोष का लाभ नहीं उठाया गया था। उक्त आपत्ति को इस आदेश के माध्यम से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि चूँकि वादी ने तत्काल अंतरिम अनुतोष माँगी है, इसलिए पूर्व-मध्यस्थता के उपाय को संस्थित करने की अनिवार्यता, वाद की कार्यवाही को रोक नहीं पाएगी। यह भी माना गया है कि 'किसी भी तत्काल अंतरिम राहत पर विचार करना' शब्दावली का प्रयोग एक मुकदमे की श्रेणी को अर्हता प्राप्त करने हेतु किया जाता है, जो पूरी तरह से वाद और माँगी गई राहत के ढाँचे पर निर्धारित होता है और चूँकि वादी ही दलीलों और माँगी गई राहत का एकमात्र निर्धारक है, इसलिए यह माना गया कि मुकदमे में तत्काल अंतरिम अनुतोष शामिल है, जिसके कारण यह अधिनियम, 2015 की धारा 12-क के अनुसार वर्जित नहीं होगा।

9. उपर्युक्त प्रश्न के निर्णयन के प्रयोजन हेतु, समाप्ति पत्र दिनांक 25.10.2022 का संदर्भ लेना आवश्यक होगा, जिसमें स्पष्ट रूप से निविदा दस्तावेज के अनुबंध के विशेष नियमों और शर्तों के खंड 6.13 (बी) के अधीन कार्यवाही का प्रावधान है, जिसे ऊपर इंगित किया गया है। उत्तर देने वाले विपक्षी पक्ष द्वारा दायर किए गए वाद में समाप्ति पत्र दिनांक 25.10.2022 को शून्य और अमान्य घोषित करने की राहत माँगी गई है, साथ ही प्रतिवादी को दिनांक 01.12.2021 के अनुबंध को समाप्त करने से रोकने हेतु स्थायी और अनिवार्य निषेधाज्ञा की मांग की गई है

और साथ ही प्रतिवादी, उनके नियुक्तियों, प्रतिनिधियों आदि को समाप्ति पत्र दिनांक 25.10.2022 को लागू करने से रोकने हेतु एक डिक्री की मांग की गई है। प्रतिवादी, उनके नियुक्तियों आदि को दिनांक 25.10.2022 के समाप्ति पत्र को लागू करने से रोकने की प्रार्थना के साथ अस्थायी निषेधाज्ञा हेतु एक आवेदन भी दायर किया गया है।

10. स्पष्ट रूप से, न मात्र वादपत्र में बल्कि अस्थायी निषेधाज्ञा हेतु आवेदन में भी की गई प्रार्थना इस आशय की है कि प्रतिवादियों को दिनांक 25.10.2022 के समाप्ति पत्र को लागू करने से रोका/निषेधित किया जाना चाहिए। उपर्युक्त समाप्ति पत्र स्पष्ट रूप से अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 6.13 का संदर्भ देता है, जिसमें खंड (बी) विक्रेता के खिलाफ की जाने वाली अन्य कार्रवाई से संबंधित है, जिसमें सुरक्षा जमा राशि जब्त करना, अवकाश सूचीकरण या भारतीय तेल निगम (आईओसी) द्वारा उचित समझे जाने वाले किसी भी अन्य दंडात्मक कार्रवाई को शुरू करना शामिल है। इस प्रकार की गई प्रार्थना और विशेष रूप से अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 6.13 (बी) के संदर्भ से, तात्कालिकता स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है।

11. यद्यपि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि समाप्ति पत्र जारी होने के लगभग डेढ़ महीने बाद वाद दायर किया गया है, जो अपने आप में 2015 के अधिनियम की धारा 12-क की अनिवार्य शर्त को माफ करने हेतु मामले में कोई तात्कालिकता नहीं दर्शाता है।

12. उपर्युक्त प्रस्तुतियों की उचित सराहना हेतु, पाटिल ऑटोमेशन (उपरिवर्णित) के मामले में दिए गए फैसले पर ध्यान देना आवश्यक है जिसमें प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

88. "धारा 12-क में, मुकदमा दायर करने पर रोक मात्र उस स्थिति में लागू होती है जिसमें वादी तत्काल अंतरिम राहत के अनुतोष की अपेक्षा नहीं करता है। उपरोक्त स्थिति धारा 80(1) सि०प्र०सं० में परिकल्पित स्थिति के समान है। दूसरे शब्दों में, अधिनियम के तहत जो मुकदमा तत्काल अंतरिम राहत की अपेक्षा नहीं करता है, वह धारा 80 (1) सि०प्र०सं० के तहत दायर किए गए मुकदमे की तरह है जो किसी भी तत्काल अंतरिम अनुतोष की आवश्यकता को पेश नहीं करता है। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 12-क के अंतर्गत आच्छादित मुकदमे के संबंध में, अर्थात्, ऐसे मुकदमे में जहां अंतरिम राहत की अपेक्षा नहीं की गई है, वहाँ मध्यस्थता हेतु वाद दायर करने के बाद में संदर्भित करने को अधिनियम का पर्याप्त अनुपालन नहीं माना जा सकता है। वादी का तर्क कानून के डिजाइन और योजना के अतिरिक्त इस्तेमाल की गई भाषा के

अतिरिक्त उद्देश्य को नजरअंदाज करता है। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है, तो इससे अदालतें भी ऐसे मामलों पर अपना अमूल्य समय खर्च करेंगी जो स्थगन, आपत्तियों और सुनवाई के बाद आते हैं। ऐसा कोई रास्ता अपनाने की जरूरत नहीं है।"

99.1"अधिनियम में मूल रूप से धारा 12-क शामिल नहीं थी। वर्ष 2018 में संशोधन करके धारा 12-क जोड़ी गई। उद्देश्यों और कारणों का कथन स्पष्ट है कि धारा 12-क को अनिवार्य माना गया था। अधिनियम और 2018 के संशोधित अधिनियम का उद्देश्य, निश्चित रूप से कम से कम आंशिक रूप से उस वादी पर अनिवार्य मध्यस्थता थोपने की ओर इशारा करता है जो तत्काल अंतरिम अनुतोष की अपेक्षा नहीं करता है। प्रावधानों को मात्र उन वादी के संदर्भ में परिकल्पित किया गया है जो तत्काल अंतरिम अनुतोष की अपेक्षा नहीं करते हैं। विधानमंडल ने परिसीमा अधिनियम, 1963 के तहत सीमा की गणना हेतु मध्यस्थता के दौरान बिताई गई अवधि को स्पष्ट रूप से बाहर रखने का ध्यान रखा है। उद्देश्य स्पष्ट है।"

13. **मेसर्स माइक्रोलैब्स लिमिटेड** के मामले में, मद्रास में उच्च न्यायालय ने माना है कि चूँकि मुकदमा रोक और निषेध नोटिस की सेवा के लगभग चार महीने बाद प्रस्तुत किया गया था और इस अवधि के दौरान कोई कदम (धारा 12-क) नहीं उठाया गया था, यह माना गया कि अधिनियम की धारा 12-क के प्रावधानों को माफ करने हेतु कोई तात्कालिकता खंड नहीं था।

14. दूसरी ओर, इस मुद्दे पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने चंद्र किशोर चौरसिया (उपरिवर्णित) के मामले में निर्णय दिया है, जिसमें पाटिल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड (उपरिवर्णित) में मामले के प्रतिपादित कानून के सिद्धांत और 2015 के अधिनियम की धारा 12-क के प्रावधानों की जाँच करने के बाद, यह माना है कि यह प्रश्न कि क्या वादी को कोई तत्काल अनुतोष चाहिए, मुकदमा दायर करते समय पूरी तरह से वादी द्वारा तय किया जाना है और यह निर्धारित करना प्रासंगिक नहीं है कि क्या वादी को पूर्व संस्था मध्यस्थता के उपाय को समाप्त करने की आवश्यकता थी क्योंकि तत्काल अंतरिम राहत प्रदान करना इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि न्यायालय वादी के अंतरिम राहत के अनुरोध को स्वीकार करता है या नहीं। यह निर्णित किया गया है कि धारा 12-क की शब्दावली का उपयोग मुकदमे की श्रेणी को अर्हता प्राप्त करने हेतु किया जाता है जिसे मात्र वाद-पत्र और माँगी गई राहत के ढाँचे पर निर्धारित किया जाना है।

15. निर्धारित किए जाने वाले प्रश्न के संबंध में, अधिनियम की धारा 12-क का संदर्भ देना समीचीन होगा, जो इस प्रकार है:

'कोई वाद, जिसमें इस अधिनियम के अधीन किसी अत्यावश्यक अंतरिम अनुतोष की अपेक्षा नहीं है, तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा, जब तक वादी ऐसी रीति और प्रक्रिया के अनुसार, जो केंद्रीय सरकार द्वारा नियमों द्वारा विहित की जाए, संस्थित करने से पूर्व मध्यकता का उपचार प्राप्त नहीं कर लेता है। '

16. उपरोक्त निर्णयों और विशेष रूप से 2015 के अधिनियम की धारा 12-क में प्रयुक्त शब्दावली के मूल्यांकन पर, यह स्पष्ट है कि ऐसा वाद जो अधिनियम के तहत किसी तत्काल अंतरिम अनुतोष की अपेक्षा नहीं करता है, तब तक संस्थित नहीं किया जा सकता जब तक कि वादी अधिनियम की धारा 12-क के अनुसार पूर्व-संस्थागत मध्यस्थता के उपाय को समाप्त नहीं कर लेता। पूर्व संस्थागत मध्यस्थता और निपटान के बिना किसी वाद को बनाए रखने योग्य होने हेतु, यह आवश्यक होगा कि इसमें किसी तत्काल अंतरिम राहत की अपेक्षा की गई हो। इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अधिनियम की धारा 12-क के प्रावधानों और प्रयोज्यता की जाँच करने के प्रयोजनों हेतु 'विचार करना' शब्द काफी प्रासंगिक होगा। 'विचार करना' शब्द का अर्थ अनिवार्य रूप से मुकदमे में माँगी गई राहत की जाँच के साथ-साथ इस तरह की राहत के संबंध में वाद में दर्शाई गई तात्कालिकता से होगा। इस तरह के तात्कालिक अंतरिम राहत का विचार, उक्त अंतरिम राहत के आधार पर निर्भर करेगा। 2015 के अधिनियम की धारा 12 ए के अनिवार्य प्रावधान को माफ करने के प्रयोजनों हेतु, तात्कालिक अंतरिम अनुतोष के विचार का निर्धारण करना न्यायालय का काम है। यह पहलू कि क्या मुकदमा काफी देरी के बाद दायर किया गया है, तात्कालिक अंतरिम राहत निर्धारित करने हेतु आवश्यक मानदंड नहीं होगा। ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जब समाप्ति का आदेश पारित किया गया हो, लेकिन एक निश्चित अवधि हेतु लागू नहीं किया गया हो और मात्र उसके प्रवर्तन के कारण मुकदमा दायर करने की आवश्यकता होगी, जो इस प्रकार वाद में तात्कालिक अंतरिम राहत की मांग करने पर विचार करेगा।

17. इस सीमा तक, यह न्यायालय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से सम्मानपूर्वक सहमत है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, मात्र वादी ही तत्काल अंतरिम राहत का एकमात्र मध्यस्थ नहीं है, बल्कि संबंधित न्यायालय को भी वादपत्र में या अस्थायी निषेधाज्ञा हेतु आवेदन में माँगी गई राहत के संदर्भ में तत्काल

अंतरिम राहत के कारक पर विचार करना होगा।

18. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर निम्नवत दिया जा रहा है कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम 2015 की धारा 12-क के प्रयोजन हेतु तत्काल अंतरिम राहत के विचार पर संबंधित न्यायालय द्वारा मात्र वादपत्र या अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन में किए गए कथनों के अनुसार ही विचार किया जाना चाहिए।

19. उपर्युक्त निर्णयों और चर्चाओं की प्रयोज्यता पर, वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में यद्यपि वाद अनुबंध की समाप्ति के लगभग डेढ़ महीने बाद दायर किया गया है, लेकिन चूँकि यह विशेष रूप से वादी के खिलाफ लागू किए जा रहे खंड 6.13 के मद्देनजर तत्काल अंतरिम राहत का संकेत देता है, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, इस तरह के वाद में तत्काल अंतरिम राहत की बात कही गई है और इसलिए वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पूर्व-संस्थागत मध्यस्थता से संबंधित अनिवार्य प्रावधानों को उचित रूप से माफ किया गया है। इस प्रकार, विवादित आदेश पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है।

20. परिणामस्वरूप, याचिका में कोई बल नहीं होने के कारण इसे **खारिज** किया जाता है। पक्षकारों को अपना वाद व्यय स्वयं वहन करना होगा।

(2023) 5 ILRA 255

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 2658/2023

(सिविल)

रमेश दुग्गल@पप्पू ...याचिकाकर्ता

बनाम

पं. राम शंकर मिश्रा ट्रस्ट मुख्य कार्यालय, कानपुर नगर ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शेष कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री शांतनु श्रीवास्तव

ए. सिविल कानून - याचिकाओं में संशोधन - बेदखली और नुकसान की वसूली - प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 - धारा 26 और 25 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VI नियम 17 - सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत संशोधन आवेदन की अनुमति देते समय उचित परिश्रम एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है और आवेदक को यह सिद्ध करना होगा कि उसने सभी संभव प्रयास किए हैं, लेकिन उसके बाद भी, वह उन दस्तावेजों या तथ्यों के बारे में नहीं जान सका जो विवाद का निर्णय करने के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक हैं। यदि दस्तावेज या तथ्य उपलब्ध हैं या याचिकाकर्ता के ज्ञान में हैं, तो किसी भी स्तर पर, यदि कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो उसे अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह सीपीसी के आदेश VI नियम 17

में दिए गए उचित परिश्रम के पैरामीटर को पूरा नहीं करेगा। (पैरा 23)

याचिकाकर्ता-विपक्षी के आचरण से स्पष्ट है कि लिखित बयान दाखिल करने की तिथि से ही ट्रस्ट डीड बहुत अच्छी तरह से उपस्थित थी और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के स्वीकारोक्ति के अनुसार, यह 07.12.2017 से उनके ज्ञान में था, लेकिन उन्होंने कभी भी सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत कोई आवेदन दायर नहीं किया, जो प्रदर्शित करता है कि उचित कर्मठता का पूर्ण अभाव है। वास्तव में इसके विपरीत, प्रत्येक तथ्य की जानकारी होने के बावजूद, याचिकाकर्ता-विपक्षी ने कभी भी लिखित बयान या आवेदन के माध्यम से सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत अदालत के समक्ष विवाद नहीं उठाया और एक बार उसके खिलाफ मुकदमा तय हो जाने के बाद, एक गुप्त उद्देश्य के साथ, एक आवेदन दायर किया गया है। इसलिए, इस न्यायालय का मानना है कि ऐसा संशोधन आवेदन सीपीसी के आदेश VI नियम 17 की शर्तों को पूरा नहीं करता है क्योंकि इसमें उचित परिश्रम का पूर्ण अभाव है, बल्कि यह लापरवाही का मामला है क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी बिना किसी स्पष्टीकरण के लंबे समय तक मामले को लेकर विश्राम कर रहे थे। (पैरा 17,18)

बी. तथ्यों की स्वीकृति के आधार पर अर्जित अधिकार को पहले दी गई स्वीकृति को वापस लेने वाले संशोधन आवेदन की अनुमति देकर वापस नहीं लिया जा सकता।

वर्तमान वाद में, निस्संदेह, याचिकाकर्ता-विपक्षी द्वारा प्रतिवादी-वादी के साथ किराएदार-मकान मालिक के रिश्ते के बारे में स्वीकारोक्ति के आधार पर वाद स्वीकार किया जाता है और एक बार जब बिना किसी उचित कारण के बहुत विलंब से इस तरह के संशोधन आवेदन को अनुमति दी जाती है, तो निश्चित रूप से वादी-प्रतिवादी के अधिकारों से वंचित हो जाएगा, जो दिनांक 08.07.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से उनके पक्ष में अर्जित हुए थे। इसलिए, इस विवाद पर भी, इस तरह के संशोधन आवेदन को अनुमति नहीं दी जा सकती। (पैरा 27)

सी. शब्द और वाक्यांश 'उचित कर्मठता' - "उचित कर्मठता" शब्द को संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (एडन. 2006) के अनुसार, "कर्मठता" शब्द का अर्थ है सावधानीपूर्वक और लगातार आवेदन या प्रयास। "कर्मठता" का अर्थ है अपने काम और कर्तव्यों के प्रति सावधान और स्थिर आवेदन, देखभाल और प्रयास दिखाना। ब्लैक लॉ डिक्शनरी (18वें एडन.) के अनुसार, "कर्मठता" का अर्थ है किसी चीज़ को पूरा करने के लिए निरंतर प्रयास, देखभाल; सावधानी; किसी दिए गए परिस्थिति में किसी व्यक्ति से अपेक्षित ध्यान और देखभाल। "उचित कर्मठता" का अर्थ है किसी व्यक्ति से उचित रूप से अपेक्षित परिश्रम, और आमतौर पर उसके द्वारा किया जाने वाला परिश्रम जो किसी कानूनी आवश्यकता को पूरा करना या किसी दायित्व का निर्वहन करना चाहता है। ड्रेन-डिस्पेनिया (स्थायी एडन. 13-ए) के शब्दों और वाक्यांशों के अनुसार, कानून में "उचित कर्मठता" का अर्थ है हर संभव काम करना नहीं, बल्कि हर संभव काम करना। "उचित कर्मठता" का अर्थ है

उचित परिश्रम; इसका अर्थ है ऐसा परिश्रम जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति अपने कार्यों के संचालन में करता है। (अनुच्छेद 21)

वर्तमान मामला लापरवाही का सबसे अच्छा उदाहरण है और उचित सावधानी नहीं बरती गई है और लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति के आलोक में याचिकाकर्ता को प्राप्त अधिकार भी वापस ले लिए गए हैं, जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती। इसलिए, जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा पारित आपेक्षित आदेश दिनांक 10.02.2023 में हस्तक्षेप करने का कोई वाद नहीं बनता है। (पैरा 28)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. हरी शंकर और अन्य बनाम भगवती प्रसाद मिश्रा, 2014 0 सुप्रीम (ऑल) 3127, डिसाइडेड ऑन 30.10.2014 (परा 9)

2. हरी नारायण बनाम शांति देवी, 2019 सी सी ऑनलाइन ऑल 2380, डिसाइडेड ऑन 28.05.2019 (परा 9)

3. राज कुमार मुलानी बनाम रमेश कुमार हेमराजानी, 2019 0 सुप्रीम (सभी) 1604, निर्णय 1909.2019 (पैरा 10)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. सुरेंद्र कुमार शर्मा वीएस माखन सिंह, 2009 (3) एआरसी 427 (परा 8)

2. बी.के.एन. पिल्लई बनाम पी. पिल्लई, सिविल अपील संख्या 7222- 23/1999 (एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 14540-14541/1999 से उत्पन्न) 13 दिसंबर, 1999 को निर्णीत (पैरा 8)

3. गणपतलाल गुप्ता एवं अन्य बनाम अपर जिला जज, देवरिया एवं अन्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 50175/1999, दिनांक 21.03.2003 को निर्णीत (पैरा 8)

4. कमल रेग्मी शर्मा एवं अन्य बनाम नेपाल बैंक लिमिटेड एवं अन्य, सिविल रिवीजन संख्या 511/1986 दिनांक 14.10.1986 को निर्णीत (पैरा 8)

वर्तमान याचिका में जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.02.2023 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा एस.सी.सी. में सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के तहत दायर आवेदन 27-गा. संशोधन संख्या 187/2022 को निरस्त कर दिया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शेष कुमार श्रीवास्तव और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री शांतनु श्रीवास्तव को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.02.2023 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 187/2022

अनुवादित

में सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के तहत दायर आवेदन 27-ग को खारिज कर दिया गया था।

3. चूंकि, वर्तमान याचिका में केवल कानूनी प्रश्न शामिल है, इसलिए, शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना पक्षकारों की सहमति से, याचिका का निर्णय प्रारम्भिक स्तर पर ही किया जा रहा है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं। एससीसी मुकदमा संख्या 149/2015 को प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 (एतस्मिनपश्चात 'अधिनियम, 1887' के रूप में संदर्भित) की धारा 26 के तहत निष्कासन और क्षति की वसूली के लिए दायर किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी द्वारा आरोपों से इनकार करते हुए लिखित बयान दायर किया गया था, लेकिन प्रत्यर्थी-वादी को मकान मालिक के रूप में स्वीकार किया। उक्त वाद दिनांक 08.07.2022 के आदेश द्वारा एक पक्षीय रूप से डिक्री किया गया था। दिनांक 08.07.2022 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर के समक्ष अधिनियम, 1887 की धारा 25 के तहत पुनरीक्षण दायर किया है। यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता- प्रत्यर्थी विधिवत पंजीकृत ट्रस्ट विलेख द्वारा स्थापित पंडित राम शंकर मिश्रा ट्रस्ट का खातेदार था। याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी का मामला यह है कि दिनांक 07.12.20217 को प्रतिवादी-वादी द्वारा ट्रस्ट विलेख दायर किया गया था, तब याचिकाकर्ता- प्रत्यर्थी को पता चल सकता था कि श्री उमा शंकर मिश्रा प्रतिवादी-वादी एक फर्जी ट्रस्टी हैं और धोखे से स्वयं को *सर्वराकार* के रूप में प्रस्तुत कर किराया भी वसूल रहे हैं। इस तथ्य को जानने के बाद, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने लिखित बयान में संशोधन के लिए सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत आवेदन 27-ग दिनांक 15.12.2022 दायर किया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (एतस्मिनपश्चात 'सीपीसी' के रूप में संदर्भित) के आदेश VI नियम 17 के प्रावधानों के तहत, कार्यवाही के किसी भी चरण में संशोधन की मांग की जा सकती है और संबंधित न्यायालय के लिए आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेना आवश्यक है।

6. उन्होंने आगे कहा कि लिखित बयान में, वास्तविक विश्वास के तहत, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी-वादी को मकान मालिक के रूप में स्वीकार कर लिया है और वह ट्रस्ट विलेख के बारे में दिनांक 07.12.2017 को ही जान सका जिससे पता चलता है कि प्रत्यर्थी एक फर्जी ट्रस्टी है जो स्वयं को जमींदार नहीं बल्कि *सर्वराकार* के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके बाद वर्ष 2022 में, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने अपने लिखित बयान में संशोधन के लिए सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत आवेदन 27-ग दायर किया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने स्वामित्व/जमींदारी पर विवाद कर दिया है, तो पुनरीक्षण न्यायालय की ओर से यह आवश्यक है कि वह आवेदन की अनुमति दे और उस पर आपत्ति आमंत्रित करे, उसके बाद

मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करने के लिए आगे बढ़े।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एक बार जब प्रत्यर्थी-वादी मकान मालिक नहीं है, तो उसके द्वारा दायर किया गया मुकदमा चलने योग्य नहीं है और यह एक कानूनी मुद्दा है जो विवाद की जड़ों तक जाता है, इसलिए, पुनरीक्षण न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह पुनरीक्षण चरण में भी आवेदन के संशोधन की अनुमति दे।

8. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि कानून के तय प्रावधानों के आलोक में, पर्याप्त न्याय के उद्देश्य से सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत आवेदन के संशोधन पर विचार करते समय पुनरीक्षण न्यायालय को बहुत उदार होना चाहिए। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इन मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णयों ***सुरेंद्र कुमार शर्मा बनाम माखन सिंह; 2009 (3) एआरसी 427, बी.के.एन. पिल्लई बनाम पी. पिल्लई; सिविल अपील संख्या 7222-23 वर्ष 1999 (एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 14540-14541 वर्ष 1999 से उत्पन्न) में 13 दिसंबर, 1999 को निर्णीत, गणपतलाल गुप्ता और अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश, देवरिया और अन्य सिविल मिसलेनियस रिट याचिका संख्या 50175 वर्ष 1999 में दिनांक 21.03.2003 को निर्णीत और कमल रेग्मी शर्मा और अन्य बनाम नेपाल बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम नेपाल बैंक लिमिटेड और अन्य (सिविल रिवीजन संख्या 511 वर्ष 1986 में दिनांक 14.10.1986 को निर्णीत*** मामलो पर भी अवलम्ब लिया है।

9. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री शांतनु श्रीवास्तव ने कहा कि यह एक संक्षिप्त कार्यवाही है और मुकदमे के अंतिम निस्तारण के बाद, ऐसे किसी संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उन्होंने आगे बताया कि सीपीसी के आदेश VI नियम 17 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि विचारण शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि सम्यक तत्परता रखने के बावजूद, पक्षकार सुनवाई शुरू होने से पहले इस मामले को नहीं उठा सकता था। जैसा कि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने दावा किया है, खातेदारी होने की तारीख से ट्रस्ट विलेख बहुत अच्छी तरह से अस्तित्व में था और यदि यह उसके पक्ष में है, तो उसे अपने लिखित बयान में इसका उल्लेख करना आवश्यक है। यहां तक कि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के मामले के अनुसार, उसे ट्रस्ट विलेख के बारे में दिनांक 07.12.2017 को ही पता चल सका, उसे उसके तुरंत बाद सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत आवेदन दाखिल करना होगा, न कि 08.07.2022 को मुकदमे के अंतिम निस्तारण के बाद और 15.12.2022 को अधिवक्ता की सलाह के तहत एससीसी संशोधन के लंबित रहने के दौरान। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सम्यक तत्परता की शर्तों को पूरा नहीं किया गया है और आवेदन दायर करने का एकमात्र उद्देश्य कार्यवाही में देरी करना है। उन्होंने आगे कहा कि इतने विलंबित

चरण में संशोधन आवेदन दाखिल करना सीपीसी के आदेश VI नियम 17 में प्रदान की गई सम्यक तत्परता की शर्तों को पूरा नहीं करता है, इसलिए वह बहुत विलंबित चरण में पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष संशोधन आवेदन दायर नहीं कर सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों ***हरि शंकर और 5 अन्य बनाम भगवती प्रसाद मिश्र; 2014 0 सुप्रीम (ऑल) 3127, दिनांक 30.10.2014 को निर्णीत तथा हरि नारायण बनाम शांति देवी; 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2380, दिनांक 28.05.2019 को निर्णीत,*** पर अवलम्ब लिया है।

10. उन्होंने आगे कहा कि एक बार, स्वीकारोक्ति के आधार पर, वादी के पक्ष में अर्जित किसी भी अधिकार को निर्णय और डिक्री के बाद संशोधन आवेदन दाखिल करने के माध्यम से नहीं छीना जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ***राज कुमार मुलानी बनाम रमेश कुमार हेमराजानी; 2019 0 सुप्रीम(ऑल) 1604,*** निर्णीत दिनांक 19.09.2019 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

11. उन्होंने यह भी कहा कि एकपक्षीय आदेश के विरूद्ध, याचिकाकर्ता ने सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के तहत आवेदन दायर किया है, जिसे एस.सी.सी. कोर्ट, कानपुर नगर ने दिनांक 10.01.2023 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। उन्होंने दिनांक 10.01.2023 के आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की है, जिसे रिकार्ड में लिया गया है।

12. न्यायालय द्वारा सामना किए जाने पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अपनी स्वयं की स्वीकारोक्ति के अनुसार बिक्री विलेख की जानकारी की तारीख से पांच साल से अधिक समय के बाद संशोधन आवेदन दाखिल करने में हुए विलंब की व्याख्या नहीं कर सके। वह ट्रस्ट विलेख या किसी भी रिकॉर्ड से यह प्रदर्शित नहीं कर सके कि प्रत्यर्थी -वादी *सर्वरकार* क्यों नहीं है और मुकदमा कायम नहीं कर सकता। उन्होंने केवल इतना कहा कि अपना स्वामित्व साबित करने का दायित्व वादी-प्रत्यर्थी पर है।

13. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दिये गए तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड के साथ-साथ ऊपर उद्धृत निर्णयों का भी परिशीलन किया है।

14. ऊपर उल्लिखित तथ्य पक्षकारों के बीच विवादित नहीं हैं।

15. इस न्यायालय के समक्ष मूल मुद्दा सीपीसी के आदेश VI नियम 17 की व्याख्या के बारे में है, जिसे यहां उद्धृत किया गया है:-

> **"[17. अभिवचनों में संशोधन**- न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर, किसी भी पक्षकार को, ऐसी रीति से और ऐसे निबंधनों पर, जो न्यायसंगत हों, अपने अभिवचनों को परिवर्तित या संशोधित करने के लिए अनुज्ञात करने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा और वे सभी संशोधन किए जाएंगे जो दोनों पक्षकारों के बीच

विवाद के वास्तविक प्रश्नों के अवधारण के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों:

परंतु विचारण प्रारंभ होने के पश्चात संशोधन के लिए किसी आवेदन को तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि न्यायालय इस निर्णय पर न पहंचे कि सम्यक् तत्परता बरतने पर भी वह पक्षकार, विचारण प्रारंभ होने से पूर्व वह विषय नहीं उठा सकता था]"

16. सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि विचारण शुरू होने से पहले संशोधन आवेदन की अनुमति दी जा सकती है, लेकिन यदि न्यायालय का मानना है कि सम्यक तत्परता के बावजूद, पक्षकार सुनवाई शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सका, तो आवेदन की अनुमति दी जा सकती है। वर्तमान मामले में, न्यायालय की ओर से याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी द्वारा ट्रस्ट विलेख की जानकारी की तारीख के आधार पर संशोधन आवेदन दायर करने के लिए किए गए सम्यक तत्परता और मुकदमे के निर्णय और डिक्री पर संशोधन के प्रभाव को देखना आवश्यक है, यदि अनुमति हो तो।

17. सबसे पहले, मैं याचिकाकर्ता द्वारा किए गए सम्यक तत्परता के प्रश्न पर आ रहा हूं। यह निर्विवाद है कि ट्रस्ट विलेख मुकदमा दायर करने की तारीख के साथ-साथ लिखित बयान भी अच्छी तरह से अस्तित्व में था, इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी की ओर से यह आवश्यक है कि वह लिखित बयान दाखिल करते समय इसके बारे में दावा करे और इसे साक्ष्य के रूप में न्यायालय के समक्ष रखे। यहां लिखित बयान में, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी-वादी मकान मालिक है और यहां तक कि उसके अपने मामले के अनुसार दिनांक 07.12.2017 से ट्रस्ट विलेख की जानकारी होने पर, उसने लगभग पांच वर्षों तक सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत कोई आवेदन दायर नहीं किया है। दिनांक 08.07.2022 के आदेश के तहत मुकदमा तय किया गया और उसके बाद, पुनरीक्षण भी दायर किया गया और पुनरीक्षण में भी, ऐसा कोई आधार नहीं लिया गया है, लेकिन काफी विलंब से अधिवक्ता के सलाह पर सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत आवेदन 27-ग दायर किया गया है।

18. याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के आचरण से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि ट्रस्ट विलेख लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से बहुत अच्छी तरह से मौजूद था और याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी की स्वीकारोक्ति के अनुसार, यह दिनांक 07.12.2017 से उनकी जानकारी में था, लेकिन उन्होंने सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत कभी भी कोई आवेदन दायर नहीं किया है, जिससे पता चलता है कि सम्यक तत्परता का पूर्ण अभाव है। वास्तव में इसके विपरीत, प्रत्येक तथ्य की जानकारी होने पर, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने कभी भी सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत लिखित बयान या आवेदन के माध्यम से अदालत के सामने मामला नहीं उठाया है और एक बार उसके खिलाफ मुकदमा तय हो जाने के बाद, गलत इरादे से आवेदन दायर किया गया है। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि इस तरह का

संशोधन आवेदन सीपीसी के आदेश VI नियम 17 की शर्तों को पूरा नहीं करता है क्योंकि इसमें सम्यक तत्परता का पूर्ण अभाव है, बल्कि यह लापरवाही का मामला है क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी इस मामले में बिना किसी स्पष्टीकरण के काफी लंबे समय तक चुप था।

19. याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अवलम्ब लिए गए निर्णयों में, न्यायालयों ने केवल इस बात पर विचार किया है कि क्या बहुत विलंबित चरण में, संशोधन की अनुमति दी जा सकती है या नहीं और न्यायालयों ने निष्कर्ष दिया है कि वास्तविक न्याय के प्रयोजन के लिए, विलंब अस्वीकृति का आधार नहीं हो सकता।

20. यह मामला विलंब का मामला नहीं है क्योंकि ट्रस्ट विलेख लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से ही अस्तित्व में था और याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी की स्वीकारोक्ति के अनुसार भी, यह उनकी जानकारी में 07.12.2017 से है, लेकिन संशोधन आवेदन दाखिल नहीं किया गया है।वास्तव में, यह एक ऐसा मामला है जहां सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत प्रदान की गई सम्यक तत्परता की शर्तों को पूरा नहीं किया गया है और बिना किसी औचित्य के, अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 08.07.2022 के पारित होने के बाद पुनरीक्षण चरण में संशोधन आवेदन दायर किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस प्रकार अवलम्ब लिए गए निर्णय याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के बचाव में नहीं आएंगे क्योंकि यह लापरवाही का मामला है, न कि सद्भावनापूर्ण विलंब का।

21. मैंने ***हरि शंकर (उपरोक्त)*** मामले में पारित निर्णय का परिशीलन किया है, जिसमें न्यायालय ने 'सम्यक तत्परता' की अवधारणा के बारे में विचार किया है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

> "9. मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लाधा राम, एआईआर 1977 एससी 680 में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि प्रतिवादियों को लिखित बयान के पैरा 25 और 26 में दिए गए मामले को पूरी तरह से बदलने और एक पूरी तरह से अलग और नए मामले को प्रतिस्थापित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह सच है कि अभिवचनों में असंगत दलीलें दी जा सकती हैं लेकिन पैरा 25 और 26 के प्रतिस्थापन का प्रभाव असंगत और वैकल्पिक अभिवचन नहीं दे रहा है बल्कि यह लिखित बयान में प्रतिवादियों द्वारा की गई स्वीकारोक्ति से वादी को पूरी तरह से विस्थापित करने की कोशिश कर रहा है।
>
> यदि ऐसे संशोधनों की अनुमति दी जाती है तो वादी को प्रतिवादियों से स्वीकारोक्ति प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिया जाएगा। हीरा लाल बनाम कल्याण मल, (1998) 1 एससीसी 278, गौतम स्वरूप बनाम लीला जेटली, (2008) 7 एससीसी 85, सुमेश सिंह बनाम फूलन देवी, (2009) 12 एससीसी 689 और विश्वनाथ अग्रवाल बनाम

सावित्री बेरा, (2009) 15 एससीसी 693 मामलों में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

10. बी.के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई, (2000) 1 एससीसी 712, मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि वादपत्र के संशोधनों पर लागू सिद्धांत लिखित बयानों के संशोधनों पर भी समान रूप से लागू होते हैं। अदालतें लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में अधिक उदार हैं क्योंकि उस स्थिति में पूर्वाग्रह का प्रश्न उठने की संभावना कम होती है। प्रत्यर्थी को बचाव में वैकल्पिक दलील लेने का अधिकार है, जो हालांकि, एक अपवाद के अधीन है कि प्रस्तावित संशोधन द्वारा दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए और वादी के पक्ष में की गई कोई भी स्वीकारोक्ति वापस नहीं ली जाएगी। अभिवचनों में उन सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो मुकदमे में वास्तविक विवादों के निर्धारण के लिए आवश्यक हैं, बशर्ते कि प्रस्तावित संशोधन कार्रवाई के किसी नए कारण को नहीं बदलता या प्रतिस्थापित नहीं करता है जिसके आधार पर मूल मुकदमा उठाया गया था या बचाव किया गया था। तथ्यों की स्वीकृत स्थिति को नकारने वाले असंगत और विरोधाभासी आरोपों या तथ्यों के पारस्परिक रूप से विनाशकारी आरोपों को दलीलों में संशोधन के माध्यम से शामिल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रस्तावित संशोधन से दूसरे पक्ष पर ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी भरपाई लागत से न की जा सके। ऐसे किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जो समय बीतने के कारण प्रतिपक्षी को मिलने वाले कानूनी अधिकार को विफल करने वाला हो या उससे संबंधित हो। अभिवचनों में संशोधन के लिए याचिका दायर करने में हुई देरी की लागत और त्रुटि या गलती से उचित रूप से मुआवजा दिया जाना चाहिए, जो कि यदि धोखाधड़ी नहीं है, तो इसे वाद या लिखित बयान के संशोधन के लिए आवेदन को खारिज करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय की आधिकारिक घोषणाओं के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा अवलम्ब लिए गए केस कानून का पालन नहीं किया जा सकता है।

11. अब अगला सवाल यह उठता है कि क्या प्रस्तावित संशोधन को आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के प्रावधान के मद्देनजर अनुमति दी जा सकती है। प्रत्यर्थी ने आरोप लगाया कि प्रस्तावित संशोधन से संबंधित तथ्य 03.08.2014 को अंतिम बहस के लिए अपील की तैयारी के समय देखा गया था।

12. सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (II) बनाम भारत संघ, (2005) 6 एससीसी 344 मामले में ने सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि संहिता का आदेश VI नियम 17

अभिवचनों में संशोधन से संबंधित है। 1999 के संशोधन अधिनियम 46 द्वारा इस प्रावधान को हटा दिया गया। संशोधन अधिनियम 22/2002 द्वारा इसे फिर से बहाल कर दिया गया है, लेकिन एक अतिरिक्त परंतुक के साथ ताकि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति न दी जा सके, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि सम्यक तत्परता के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकता था। परंतुक कुछ हद तक किसी भी स्तर पर संशोधन की अनुमति देने के पूर्ण विवेक को कम करता है। अब, यदि मुकदमा शुरू होने के बाद आवेदन दायर किया जाता है, तो यह दिखाना होगा कि सम्यक तत्परता के बावजूद, इस तरह के संशोधन की मांग पहले नहीं की जा सकती थी। इसका उद्देश्य मुकदमे में देरी करने के लिए दायर किए जाने वाले सामान्य आवेदनों को रोकना है। प्रावधान में कोई अवैधता नहीं है।

13. चंदर कांता बंसल बनाम राजिंदर सिंह आनंद, एआईआर 2008 एससी 2234 में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष "सम्यक तत्परता" वाक्यांश विचार के लिए आया था, जिसमें यह अवधारित किया गया है कि "सम्यक तत्परता" शब्द को संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है। ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी (संस्करण 2006) के अनुसार, "तत्परता" शब्द का अर्थ सावधानीपूर्वक और लगातार प्रयोग या प्रयास है। "तत्परता" का अर्थ है अपने काम और कर्तव्यों के प्रति सावधान और स्थिर रहना, देखभाल और प्रयास दिखाना। ब्लैक लॉ डिक्शनरी (18वां संस्करण) के अनुसार, "तत्परता" का अर्थ है किसी चीज़ को पूरा करने के लिए निरंतर प्रयास, देखभाल; सावधानी; किसी स्थिति में किसी व्यक्ति से आवश्यक ध्यान और देखभाल। "सम्यक तत्परता" का अर्थ उस तत्परता से है जो किसी कानूनी आवश्यकता को पूरा करने या किसी दायित्व का निर्वहन करने के इच्छुक व्यक्ति से उचित रूप से अपेक्षित और आमतौर पर किया जाता है। ड्रेनडिस्पेनिया (स्थायी संस्करण 13-ए) के शब्दों और वाक्यांशों के अनुसार, कानून में "सम्यक तत्परता" का अर्थ है सब कुछ उचित करना, न कि हर संभव कार्य करना। "सम्यक तत्परता" का अर्थ उचित परिश्रम है; इसका मतलब है कि एक विवेकशील व्यक्ति अपने मामलों के संचालन में ऐसा परिश्रम करेगा।

14. जे. सैमुअल बनाम गट्टू महेश, (2012) 2 एससीसी 300 में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से अवधारित किया कि सम्यक तत्परता से यह विचार है कि कुछ प्रकार की राहत का अनुरोध करने से पहले उचित जांच आवश्यक है। प्रत्याशित राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करने की इच्छा रखने वाले

पक्ष के लिए विधिवत मेहनती प्रयास एक आवश्यकता है। किसी का प्रतिनिधित्व करने वाले वकील को यह निर्धारित करने के लिए सम्यक तत्पर रहना चाहिए कि किए गए अभ्यावेदन तथ्यात्मक रूप से सटीक और पर्याप्त हैं। शब्द "सम्यक तत्परता" का उपयोग विशेष रूप से संहिता में किया जाता है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि परीक्षण शुरू होने के बाद अनुरोधित संशोधन की स्थितियों में विवेक का प्रयोग किया जाए या नहीं। किसी दावे से उत्पन्न राहत का अनुरोध करने वाले पक्ष को उचित परिश्रम करने की आवश्यकता होती है और यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। शब्द "सम्यक तत्परता" किसी पक्ष के रचनात्मक ज्ञान, दावे के दायरे को निर्धारित करता है और मुकदमे के परिणाम के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। दिए गए तथ्यों में, "सम्यक तत्परता" की स्पष्ट कमी है और की गई गलती निश्चित रूप से मुद्रण संबंधी त्रुटि के पूर्वावलोकन में नहीं आती है। इसी प्रकार का दृष्टिकोण विद्याबाई बनाम पद्म लता, (2009) 2 एससीसी 409, सुशील कुमार जैन बनाम मनोज कुमार, (2009) 14 एससीसी 38 और अब्दुल रहमान बनाम मो. रुल्दु, (2012) 11 एससीसी 341 मामले में लिया गया था।

15. लिखित बयान एक अधिवक्ता द्वारा वादपत्र को पढ़ने के बाद तैयार किया गया था। कानूनी सलाह के बाद, यह नहीं कहा जा सकता है कि "सम्यक तत्परता" के प्रयोग में संशोधन के माध्यम से अभिवचन में जो तथ्य लाया जाना था वह प्रत्यर्थी की जानकारी में नहीं था। 'सम्यक तत्परता' और 'लापरवाही' के बीच अंतर करना होगा। प्रत्यर्थीगणों का मामला 'सम्यक तत्परता' नहीं बल्कि 'लापरवाही' की श्रेणी में आता है। ट्रायल कोर्ट ने संशोधन आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया, क्योंकि सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 का प्रावधान अब संशोधन आवेदन की अनुमति देने में न्यायालय की शक्ति पर एक शर्त लगाता है।"

22. इस मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा ***हरि नारायण (उपरोक्त)*** मामले में फिर से विचार किया गया। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

> "3. संशोधनवादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि आदेश VI नियम 17 के तहत अदालत कार्यवाही के किसी भी चरण में दलीलों में संशोधन की अनुमति दे सकती है जिससे पक्षकारों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण किया जा सके, और ट्रायल कोर्ट ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई भी निष्कर्ष दर्ज किए बिना संशोधन आवेदन को खारिज कर दिया है कि

सम्यक तत्परता के बावजूद प्रत्यर्थी विचारण शुरू होने से पहले संशोधन की मांग नहीं कर सकता था।

7. हालांकि, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा डाला गया है, आदेश VI के तहत नियम 17 का परंतुक, यह अधिनियम बनाकर दलीलों में संशोधन की अनुमति देने की अदालत की शक्ति को प्रतिबंधित और कम कर देता है कि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर न पहुंचे कि सम्यक तत्परता के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले इस मामले को नहीं उठा सकता था।

8. संशोधन अधिनियम, 2002 के अनुसार, नियम 17 के प्रावधान में "सम्यक तत्परता" परीक्षण की शुरुआत की गई है, जिसके लिए आवश्यक है कि अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि "सम्यक तत्परता" के बावजूद पक्षकार संशोधन में बताए गए आधार का पता नहीं लगा सके। शब्द "सम्यक तत्परता" का उपयोग विशेष रूप से किया गया है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि उन स्थितियों में विवेक का प्रयोग किया जाए या नहीं जहां परीक्षण शुरू होने के बाद संशोधन की मांग की जा रही है।

9. वर्ष 2002 में पेश किए गए आदेश VI नियम 17 परंतुक के तहत निहित प्रावधान जे सैमुअल बनाम गट्टू महेश और अन्य के मामले में विचार के लिए आए थे, जिसमें आदेश VI नियम 17 के तहत संशोधन की अनुमति देने से संबंधित सिद्धांतों को दोहराया गया था और प्रावधान का उद्देश्य और संशोधन चाहने वाले दलों के "सम्यक तत्परता" का अर्थ और महत्व भी बताया गया है। इस संबंध में निर्णय में की गई टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

"18. अदालत का प्राथमिक उद्देश्य मामले की गुणवत्ता के आधार पर सुनवाई करना और यह सुनिश्चित करना है कि न्याय का शासन कायम रहे। इसके लिए जरूरत इस बात की है कि मामले के सही तथ्यों को अदालत के सामने रखा जाए ताकि अदालत को अपने फैसले पर पहुंचने में सभी प्रासंगिक जानकारी मिल सके। इसलिए, कभी-कभी पक्षकारों को अपने वादपत्रों में संशोधन करने की अनुमति देना आवश्यक होता है। किसी पक्षकार को अपनी याचिका में संशोधन करने की अनुमति देने का न्यायालय का विवेक दो शर्तों पर आधारित है,

पहला, दूसरे पक्ष के साथ कोई अन्याय नहीं होना चाहिए और दूसरा, पक्षकारों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के उद्देश्य से संशोधन आवश्यक होना चाहिए। हालाँकि, न्याय करने में पक्षकारों के हितों को संतुलित करने के लिए, प्रावधान जोड़ा गया है जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि:

"...मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि सम्यक तत्परता के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकता था।"

19. सम्यक तत्परता का विचार यह है कि कुछ प्रकार की राहत का अनुरोध करने से पहले उचित जांच आवश्यक है। प्रत्याशित राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करने की इच्छा रखने वाले पक्षकार के लिए काफी अधिक प्रयास की आवश्यकता है। किसी का प्रतिनिधित्व करने वाले वकील को यह निर्धारित करने के लिए सम्यक तत्परता करना चाहिए कि किए गए अभ्यावेदन तथ्यात्मक रूप से सटीक और पर्याप्त हैं। शब्द "सम्यक तत्परता" का उपयोग विशेष रूप से संहिता में किया जाता है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि परीक्षण शुरू होने के बाद अनुरोधित संशोधन की स्थितियों में विवेक का प्रयोग किया जाए या नहीं।

20. किसी दावे से उत्पन्न राहत का अनुरोध करने वाले पक्ष को सम्यक तत्परता करने की आवश्यकता होती है और यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। शब्द "सम्यक तत्परता" किसी पक्ष के रचनात्मक ज्ञान, दावे के दायरे को निर्धारित करता है और मुकदमे के परिणाम के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

X X X X X

23. ... 2002 में पेश किए गए आदेश VI नियम 17 में संशोधन का पूरा उद्देश्य विचारण शुरू होने के बाद किसी याचिका में संशोधन के लिए आवेदन दाखिल करना रोकना है, जिससे विस्मयात्मक रूप से बचा जा सके और पक्षकारों को किसी अन्य के मामले की पर्याप्त जानकारी हो। यह आवेदन दाखिल करने में होने वाले विलंब को रोकने में भी मदद करता है।

[एनीग्लासे योहन्नान बनाम रामलता [(2005) 7 एससीसी 534],

अजेंद्रप्रसादजी एन. पांडे बनाम स्वामी केशवप्रकाशदासजी एन. [(2006) 12 एससीसी 1], चंदर कांता बंसल बनाम राजिंदर सिंह आनंद [(2008) 5 एससीसी 117], राजकुमार गुरवारा बनाम एस.के. सरवागी एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड [(2008) 14 एससीसी 364], विद्याबाई बनाम पद्मलता [(2009) 2 एससीसी 409: (2009) 1 एससीसी (सिविल) 563] और मन कौर बनाम हरतार सिंह संघा [(2010) 10 एससीसी 512: (2010) 4 एससीसी (सिविल) 239 के माध्यम से]।"

10. रेवाजीतू बिल्डर्स और डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस एंड अन्य के मामले में फैसले का भी संदर्भ लिया जा सकता है जिसमें आदेश VI नियम 17 के तहत दायर एक आवेदन पर विचार करने के दौरान ध्यान में रखे जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारकों को निम्नलिखित शर्तों में गिना गया है: -

"63. अंग्रेजी और भारतीय दोनों मामलों का गंभीर विश्लेषण करने पर, कुछ बुनियादी सिद्धांत सामने आते हैं जिन्हें संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति या अस्वीकार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए:

(1) क्या मांगा गया संशोधन मामले के उचित और प्रभावी निर्णय के लिए अनिवार्य है;

(2) क्या संशोधन के लिए आवेदन प्रामाणिक या दुर्भावनापूर्ण है;

(3) संशोधन से दूसरे पक्ष पर ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी धन के रूप में पर्याप्त भरपाई नहीं की जा सके;

(4) संशोधन से इनकार करने से वास्तव में अन्याय होगा या कई मुकदमे चलेंगे;

(5) क्या प्रस्तावित संशोधन संवैधानिक या मौलिक रूप से मामले की प्रकृति और चरित्र को बदलता है; और

(6) एक सामान्य नियम के रूप में, यदि संशोधित दावों पर एक नया मुकदमा आवेदन की तारीख पर सीमा से वर्जित होगा तो क्या अदालत को संशोधनों को अस्वीकार कर देना चाहिए।

ये कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें आदेश 6 नियम 17 के तहत दायर आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखा जा सकता है। ये केवल उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं।

64. आदेश 6 नियम 17 के तहत किए गए आवेदन पर निर्णय एक बहुत ही गंभीर न्यायिक प्रक्रिया है और उक्त प्रक्रिया को कभी भी आकस्मिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। हम यह देखकर अपनी चर्चा समाप्त कर सकते हैं कि संशोधनों के लिए आवेदनों पर निर्णय लेते समय अदालतों को प्रामाणिक, वैध, ईमानदार और आवश्यक संशोधनों से इनकार नहीं करना चाहिए और कभी भी दुर्भावनापूर्ण, खराब और/या गलत संशोधनों की अनुमति नहीं देनी चाहिए।"

11. एम रवन्ना बनाम अंजनम्मा के मामले में एक हालिया फैसले में यह अवधारित किया गया है कि मुकदमे की शुरुआत के बाद प्रावधान में बताई गई शर्तों को छोड़कर अभिवचनों में संशोधन की अनुमति नहीं है और जैसा कि परंतुक के तहत विचार किया गया है, मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन की मांग करने वाले व्यक्ति पर अपनी ओर से "सम्यक तत्परता" दिखाने का बोझ होता है। निर्णय में प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

"7. यदि यह बिल्कुल अलग, नया और असंगत मामला पेश करता है, या मुकदमे के मूल चरित्र को चुनौती देता है, तो संशोधन की अनुमति देने से इनकार किया जा सकता है। सीपीसी के आदेश 6 नियम 17 का प्रावधान वास्तव में सुनवाई शुरू होने के बाद अभिवचनों में संशोधन के लिए एक आवेदन को अनुमति देने से रोकता है, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि सम्यक तत्परता के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले इस मामले को नहीं उठा सकते थे। एक सीमा तक परंतुक किसी भी स्तर पर संशोधन की अनुमति देने के पूर्ण विवेक को कम करता है। इसलिए, यह बोझ उस व्यक्ति पर है जो विचारण शुरू होने के बाद यह दिखाने के लिए संशोधन चाहता है कि सम्यक तत्परता के बावजूद, इस तरह के संशोधन की मांग पहले नहीं की जा सकती थी। इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि किसी भी संशोधन को सभी परिस्थितियों में अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है। हालाँकि मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए सामान्यतः याचिकाओं में संशोधन की अनुमति दी जाती है, लेकिन अदालत को इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या संशोधन के लिए आवेदन प्रामाणिक है या दुर्भावनापूर्ण है और क्या संशोधन प्रतिपक्ष के लिए ऐसा पूर्वाग्रह पैदा करता है जिसकी पैसे के मामले में पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया जा सकता है।"

12. मौजूदा मामले में, निचली अदालत मामले के तथ्यों पर उचित विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर

पहुंची है कि जिस संशोधन की मांग की जा रही थी वह पक्षकारों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए अनिवार्य नहीं था, और यह भी कि सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के प्रावधान द्वारा इसे रोक दिया गया था, जो विचारण शुरू होने के बाद दलीलों में संशोधन की अनुमति देने के विवेक को कम करता है, और "सम्यक तत्परता" विचारण का परिचय देता है, जिसमें विचारण शुरू होने के बाद संशोधन की मांग करने वाले व्यक्ति पर बोझ होता है, यह दिखाने के लिए कि "सम्यक तत्परता" के बावजूद इस तरह के संशोधन की मांग पहले नहीं की जा सकती थी, और इस प्रकार ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश को गलत नहीं ठहराया जा सकता है।"

23. वर्तमान मामले में शामिल विवाद पूरी तरह से ***हरि शंकर (उपरोक्त)*** और ***हरि नारायण (उपरोक्त)*** के निर्णयों से सन्दर्भित है। इसलिए, मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का मानना है कि सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत संशोधन आवेदन की अनुमति देते समय उचित परिश्रम एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है और आवेदक को यह साबित करना होगा कि उसने सभी संभव प्रयास किए हैं, लेकिन इसके बाद भी उन्हें उन दस्तावेजों या तथ्यों के बारे में नहीं पता चल सका जो विवाद का फैसला करने के लिए सबसे ज्यादा प्रासंगिक हैं। यदि दस्तावेज़ या तथ्य उपलब्ध हैं या याचिकाकर्ता की जानकारी में हैं, तो किसी भी स्तर पर यदि कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह सीपीसी के आदेश VI नियम 17 में दिए गए सम्यक तत्परता के मानदण्ड को पूरा नहीं करेगा।

24. जहां तक दूसरा मुद्दा यह है कि क्या ऐसे संशोधन आवेदन की अनुमति देने से वादी-प्रत्यर्थी के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा या नहीं।

25. यह मुद्दा ***राज कुमार मुलानी (उपरोक्त)*** का भी विषय था। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 9 से 12 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"9. सुशील कुमार जैन (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय पंचदेव नारायण श्रीवास्तव बनाम ज्योति सहाय, 1984 सप्लीमेन्ट्री एससीसी 594 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर आधारित है जिसमें एक टिप्पणी की गई है कि पक्षकारों द्वारा की गई स्वीकारोक्ति वापस ली जा सकती है। प्रत्यर्थी-खातेदार/याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अवलम्ब लिये गए सुशील कुमार जैन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिया गया है:-

"9. इसके अलावा, लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन को ध्यान से पढ़ने पर, हमारा विचार

है कि अपीलकर्ता केवल अपने लिखित बयान में की गई पिछली असावधानी और भ्रम को विस्तृत और स्पष्ट करना चाहता है। यहां तक कि अगर यह मान भी लिया जाए कि अपीलकर्ता ने अपने मूल लिखित बयान में स्वीकारोक्ति की थी, तो भी ऐसी स्वीकारोक्ति को उसके लिखित बयान में संशोधन करके, असंगत दलीलें लेकर या अपने बचाव को प्रतिस्थापित या परिवर्तित करके भी समझाया जा सकता है।

10. इस स्तर पर, हम खुद को याद दिला सकते हैं कि कानून अब अच्छी तरह से तय हो चुका है कि एक वाद में संशोधन और एक लिखित बयान में संशोधन बिल्कुल एक ही सिद्धांत द्वारा शासित नहीं होते हैं। बचाव का एक नया आधार जोड़ना या बचाव का प्रतिस्थापन या परिवर्तन करना, कार्रवाई के नए कारण को जोड़ने, परिवर्तन करने, प्रतिस्थापित करने जैसी समान समस्या नहीं उठाता है (देखें बलदेव सिंह एवं अन्य बनाम मनोहर सिंह एवं अन्य एआईआर 2006 एससी 2832)।

12. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, अब पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे सामने उठाए गए प्रश्न किये जाएँ। जैसा कि यहां पहले कहा गया है, प्रत्यर्थी द्वारा अपने लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति को उसी में संशोधन के लिए आवेदन दाखिल करके समझाया जा सकता है। इस मुद्दे पर विचार करते समय, इस सिद्धांत को पंचदेव नारायण श्रीवास्तव बनाम के. ज्योति सहाय एआईआर 1983 एससी 462 मामले में इस न्यायालय द्वारा तय किया गया है कि किसी पक्ष द्वारा की गई स्वीकारोक्ति वापस ली जा सकती है या स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 3 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया:-

"किसी पक्ष द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को वापस लिया जा सकता है या उसे स्पष्ट किया जा सकता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि संशोधन द्वारा तथ्य की स्वीकारोक्ति को वापस नहीं लिया जा सकता।....."

10. पंचदेव नारायण श्रीवास्तव (उपरोक्त) और सुशील कुमार जैन (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने राम निरंजन कजरिया (उपरोक्त) के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 16 और 17 में विचार किया है और उपरोक्त दोनों निर्णयों को खारिज कर दिया है और अवधारित किया है कि "अभिवचनों में की गई स्पष्ट स्वीकृति को संशोधन

के माध्यम से वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती।" राम निरंजन कजरिया (उपरोक्त) मामले में निर्णय के पैराग्राफ संख्या 19, 20, 22 और 23 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"19. पंचदेव नारायण श्रीवास्तव (उपरोक्त) और मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लाधा राम एंड कंपनी (उपरोक्त) और याचिकाओं में प्रवेश वापस लेने पर संशोधन से संबंधित कई अन्य निर्णयों पर विचार करने के बाद, गौतम सरूप बनाम लीला जेटली और अन्य (2008) 7 एससीसी 85 मामले में इसे पैराग्राफ-28 में इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"28. इसलिए, यहां पहले की गई चर्चाओं से जो बात सामने आती है, वह यह है कि किसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति का विरोध नहीं किया जा सकता है, लेकिन किसी दिए गए मामले में इसे समझाया या स्पष्ट किया जा सकता है। हालाँकि, किसी स्वीकारोक्ति के संबंध में स्पष्टीकरण देना या उसे स्पष्ट करना उसकी प्रकृति और चरित्र पर निर्भर करेगा। ऐसा हो सकता है कि प्रत्यर्थी वैकल्पिक याचिका लेने का हकदार हो। हालाँकि, ऐसी वैकल्पिक दलीलें एक-दूसरे के लिए परस्पर हानिकारक नहीं हो सकतीं।"

20. आमतौर पर संशोधनों पर, रेवाजीतु बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस एंड अन्य (2009) 10 एससीसी 84 मामले के निर्णय में, गौतम सरूप (उपरोक्त) का उल्लेख करने के बाद संशोधन के सिद्धांतों को पैराग्राफ-63 में संक्षेपित किया गया है। इसे इस प्रकार अवधारित किया गया है: (रेवाजीतु बिल्डर्स मामला (2009) 10 एससीसी 84, एससीसी पृष्ठ 102)।

"63. अंग्रेजी और भारतीय दोनों मामलों का गंभीर विश्लेषण करने पर, कुछ बुनियादी सिद्धांत सामने आते हैं जिन्हें संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति या अस्वीकार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए:

(1) क्या मांगा गया संशोधन मामले के उचित और प्रभावी निर्णय के लिए अनिवार्य है;

(2) क्या संशोधन के लिए आवेदन प्रामाणिक या दुर्भावनापूर्ण है;

(3) संशोधन से दूसरे पक्ष पर ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी धन के रूप में पर्याप्त भरपाई नहीं की जा सके;

(4) संशोधन से इनकार करने से वास्तव में अन्याय होगा या कई मुकदमे चलेंगे;

(5) क्या प्रस्तावित संशोधन संवैधानिक या मौलिक रूप से मामले की प्रकृति और चरित्र को बदलता है; और

(6) एक सामान्य नियम के रूप में, यदि संशोधित दावों पर एक नया मुकदमा आवेदन की तारीख पर सीमा से वर्जित होगा तो क्या अदालत को संशोधनों को अस्वीकार कर देना चाहिए।

ये कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें आदेश 6 नियम 17 के तहत दायर आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखा जा सकता है। ये केवल उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं।

22. किसी लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन पर विलंब अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं हो सकता है, चाहे वह किसी नए तथ्य को पेश करने के लिए हो या किसी स्वीकारोक्ति के स्पष्टीकरण के लिए या वैकल्पिक स्थिति लेने के लिए हो। यह देखा गया है कि हमारे समक्ष मामले में मुद्दे केवल 2009 में तय किए गए हैं। जैसा कि वर्तमान मामले में हमने ऊपर उल्लेख किया है, संशोधन की प्रकृति और चरित्र और अन्य परिस्थितियाँ संशोधन के लिए आवेदन पर देरी और उसके परिणाम पर विचार करते समय प्रासंगिक हैं। लेकिन किसी पक्ष को दलीलों में स्वीकारोक्ति को पूरी तरह से वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जैसा कि इस न्यायालय ने नागिनदास रामदास बनाम दलपतराम इच्छाराम उर्फ बृजराम और अन्य (1974) 1 एससीसी 242 मामले में पैराग्राफ-27: (एससीसी पृष्ठ 251-52) को उद्धृत करने के लिए अवधारित किया गया था।

"27. न्यायालय में उद्धृत मामलों की एक रूपरेखा से, जो सिद्धांत सामने आता है वह यह है कि यदि डिक्री पारित होने के समय न्यायालय के समक्ष कुछ सामग्री थी, जिसके आधार पर न्यायालय बेदखली के लिए वैधानिक आधार के अस्तित्व के बारे में प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो सकता था, तो यह माना जाएगा कि न्यायालय इससे संतुष्ट था और बेदखली का फैसला हालांकि स्पष्ट रूप से समझौते के आधार पर पारित किया गया था, वैध होगा। ऐसी सामग्री या तो मामले में दर्ज या उत्पादित साक्ष्य का आकार ले सकती है, या यह आंशिक रूप से या पूरी तरह से समझौता समझौते में की गई व्यक्त या निहित स्वीकृति के आकार में हो सकता है। स्वीकारोक्ति, यदि सत्य और स्पष्ट है, तो यह स्वीकृत तथ्यों का अब तक का सबसे अच्छा प्रमाण है। मामले की सुनवाई के समय या उससे पहले पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों द्वारा की गई साक्ष्य अधिनियम की धारा 58 के

तहत स्वीकार्य दलीलों या न्यायिक स्वीकारोक्ति में स्वीकारोक्ति, साक्ष्य संबंधी स्वीकारोक्ति की तुलना में उच्च स्तर पर होती है। स्वीकारोक्ति की पूर्व श्रेणी उस पक्षकार पर पूरी तरह से बाध्यकारी है जो उन्हें बनाती है और प्रमाण की छूट का गठन करती है। इन्हें स्वयं पक्षकारों के अधिकारों का आधार बनाया जा सकता है। दूसरी ओर, साक्ष्य के रूप में परीक्षण में प्राप्त होने वाली साक्ष्यात्मक स्वीकारोक्ति अपने आप में निर्णायक नहीं होती है। उन्हें ग़लत दिखाया जा सकता है।"

23. हम नागिनदास रामदास (उपरोक्त) की स्थिति से सहमत हैं और जैसा कि गौतम सरूप (उपरोक्त) में समर्थन किया गया है कि दलीलों में की गई एक स्पष्ट स्वीकृति को संशोधन के माध्यम से वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उस सीमा तक, कानून का यह प्रस्ताव कि एक स्वीकारोक्ति भी वापस ली जा सकती है, जैसा कि पंचदेव नारायण श्रीवास्तव 1984 सप्लीमेंट्री एससीसी 594 (उपरोक्त) में अवधारित किया गया है, सही कानूनी स्थिति को प्रतिबिंबित नहीं करता है और इसे खारिज किया जाता है।"
(मेरे द्वारा प्रभाव वर्धित)

11. ऊपर दी गई कानूनी स्थिति से यह स्पष्ट है कि सुशील कुमार जैन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर याचिकाकर्ता की दलील खारिज की जानी चाहिए।

12. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरा मानना है कि अभिवचनों में की गई स्पष्ट स्वीकृति को संशोधन के माध्यम से वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। प्रत्यर्थी - याचिकाकर्ता द्वारा दायर संशोधन आवेदन प्रामाणिक नहीं था। न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय ने दिनांक 09.05.2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा संशोधन आवेदन को कानूनी रूप से खारिज कर दिया है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को कार्यवाहक जिला न्यायाधीश/अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 01, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.07.2019 द्वारा कानूनी रूप से खारिज कर दिया गया था।"

26. यही मुद्दा इस याचिका का भी विषय है।

27. इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रत्यर्थी-वादी के साथ किरायेदार मकान मालिक के रिश्ते के बारे में याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी की स्वीकारोक्ति के आधार पर मुकदमे की अनुमति दी जाती है और एक बार इस तरह के संशोधन आवेदन को बिना किसी उचित कारण के बहुत विलंब से अनुमति दी जाती है, तो यह निश्चित रूप से वादी-प्रतिवादी के अधिकारों से वंचित करेगा,

जो दिनांक 08.07.2022 के निर्णय और आदेश द्वारा उनके पक्ष में प्राप्त हुआ। कानून इस बिंदु पर पूरी तरह से स्थापित है कि तथ्यों की स्वीकृति के आधार पर अर्जित अधिकार को पहले दी गई स्वीकृति को वापस लेते हुए संशोधन आवेदन की अनुमति देकर वापस नहीं लिया जा सकता है। इसलिए इस मामले पर भी ऐसे संशोधन आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती।

28. यहां ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों के साथ-साथ कानून के आलोक में, वर्तमान मामला सम्यक तत्परता के बजाय लापरवाही का सबसे अच्छा उदाहरण है और लिखित बयान में की गई स्वीकारोक्ति के आलोक में याचिकाकर्ता को अर्जित अधिकार को वापस लेना भी है, जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती। इसलिए, जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.02.2023 में हस्तक्षेप करने का कोई मामला नहीं बनता है।

29. तदनुसार, रिट याचिका गुण-दोष रहित होने से खारिज की जाती है।

रिट याचिका में योग्यता नहीं है और तदनुसार **खारिज** की जाती है।

30. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 5 ILRA 268

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 2716/2023

(सिविल)

संजय मिश्रा@आशु ...याचिकाकर्ता

बनाम

मगन पांडे और अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शुभम् श्रीवास्तव, श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री रमेश चंद्र अग्रहरि

ए. सिविल कानून- एकपक्षीय डिक्री - धारा 17 का अनुपालन- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश IX नियम 13 सपठित धारा 151 - प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887: धारा 17 - कोई भी व्यक्ति अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता है और निश्चित रूप से केवल पक्षकार की ओर से अधिवक्ता की गलती के कारण याचिका/आवेदन को खारिज कर दिया जाता है। जिसके लिए उसे कानून के प्रावधानों के विपरीत कोई अतिरिक्त लाभ नहीं दिया जा सकता है। (पैरा 22)

पुनर्स्थापना आवेदन को अनुमति देते समय, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन हेतु कोई स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। (पैरा 17, 23)

वाद के निर्विवाद तथ्य यह हैं कि वादी-प्रतिवादियों ने पुनर्स्थापना और किराए के भुगतान के लिए एस.सी.सी. वाद संख्या 99/2016 दायर किया था, जिस पर दिनांक 03.02.2020 के आदेश द्वारा एकपक्षीय निर्णय लिया गया था। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन किए बिना 29.2.2020 को सीपीसी की धारा

151 के साथ आदेश IX नियम 13 के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसे दिनांक 12.2.2021 के आदेश द्वारा अभियोजन के अभाव में निरस्त कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने पुनर्स्थापना आवेदन दायर किया, जिसे अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करने की टिप्पणी के साथ दिनांक 10.3.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई। (पैरा 16)

अधिनियम, 1887 की धारा 17 और सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के संयुक्त पाठन से यह स्पष्ट है कि ऐसा अवलोकन पूरी तरह से अनुचित है और नियमों के प्रावधान के विपरीत है। एस.सी.सी. कोर्ट ने स्वयं अपने आदेश दिनांक 3.2.2020 में इसे स्पष्ट किया था। वास्तव में, **अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रावधान का अनुपालन करने की अनुमति मांगने के लिए प्रार्थना के साथ बहाली आवेदन कभी भी दायर नहीं किया गया है, बल्कि इसे केवल 12.1.2022 के अपने आदेश को वापस लेने के लिए दायर किया गया था**, इसलिए, इस तरह के अवलोकन को न्यायालय का आदेश नहीं माना जा सकता है, जो कानून के स्थापित प्रावधानों के विपरीत है। (पैरा 20)

बी. सी.पी.सी. के आदेश IX नियम 13 के तहत कोई भी आवेदन अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के बिना दायर नहीं किया जा सकता है। अधिनियम, 1887 की धारा 17 अनिवार्य है, जिसमें समय विस्तार का कोई प्रावधान नहीं है। (पैरा 19)

यदि दिनांक 29.2.2020 के सीपीसी की धारा 151 के साथ आदेश IX नियम 13 के तहत आवेदन को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज नहीं किया गया होता, तो याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के पास पुनर्स्थापना आवेदन पर अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए ऐसा आदेश प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं होता। (पैरा 15, 21)

सी. लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित एकपक्षीय डिक्री को निरस्त करने या उसके निर्णय की समीक्षा करने के लिए आवेदन के साथ आवेदक से डिक्री के तहत या निर्णय के अनुसरण में देय राशि की न्यायालय में जमा राशि होनी चाहिए। जमा राशि के प्रावधान को न्यायालय अपने विवेकानुसार समाप्त कर सकता है, परंतु आवेदक द्वारा न्यायालय से सुरक्षा प्रदान करने की अनुमति के लिए पूर्व आवेदन किया गया हो और उसकी प्रकृति क्या हो। परंतुक में छूट के लिए आवेदन दायर करने की समय सीमा के बारे में कोई प्रावधान नहीं है। इसे एकपक्षीय डिक्री को निरस्त करने या पुनरीक्षण लिए आवेदन प्रस्तुत करने के समय तक किसी भी समय दायर किया जा सकता है और न्यायालय इसे पूर्व आवेदन के रूप में मान सकता है। आवेदक का दायित्व छूट के लिए पूर्व आवेदन प्रस्तुत करना है। इसके बाद न्यायालय को शीघ्र आदेश देना होगा। न्यायालय द्वारा उचित आदेश पारित करने में की गई देरी आवेदक के विरुद्ध नहीं मानी जाएगी क्योंकि न्यायालय की गलती के लिए किसी को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता। (पैरा 30)

वर्तमान मामले में, न तो याचिकाकर्ता की ओर से सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के तहत आवेदन के साथ अधिनियम, 1887 की धारा

17 के तहत आवश्यक जमा राशि संलग्न की गई और न ही अधिनियम, 1887 की धारा 17 के तहत जमा राशि से के लिए कोई आवेदन किया गया। यहां तक कि पुनर्स्थापना आवेदन में भी अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करने की अनुमति देने के लिए ऐसी कोई प्रार्थना नहीं है। इसलिए, **याचिकाकर्ता सीपीसी की धारा 151 के साथ सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के तहत आवेदन दाखिल करने के बाद अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रावधान का अनुपालन करने के लिए किसी भी राहत का पात्र नहीं है। (पैरा 32)**

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

कैदारनाथ वीएस मोहन लाल केसरवारी, एयर 2002 एससी 582 (परा 14, 30)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. श्याम कुमार गुप्ता एवं अन्य बनाम शुभम जैन, सिविल अपील संख्या 765/2023 एसएलपी (सी) संख्या 2542/2023 से उत्पन्न (पैरा 6, 8, 9, 26, 33)

2. श्रीमती सुषमा अग्रवाल बनाम जिला जज, आगरा एवं अन्य, अनुच्छेद 227 संख्या 4089/2018 के अंतर्गत वाद (पैरा 6, 10, 29, 33)

वर्तमान याचिका में अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 18, कानपुर नगर द्वारा विविध वाद संख्या 251/2020 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.2.2023 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत दिनांक 03.02.2020 के एकपक्षीय निर्णय एवं डिक्री को निरस्त करने के लिए आदेश 9 नियम 13 सी.पी.सी. के तहत आवेदन निरस्त कर दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव और उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र अग्रहरि को सुना गया।

(संजय मिश्रा उर्फ आशू बनाम मगन पांडे और अन्य) एससीसी से उत्पन्न विविध मामले संख्या 251 के वर्ष 2020 में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 18, कानपुर नगर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 13.02.2023 को चुनौती देने के लिए वर्तमान याचिका दायर की गई है। (मगन पांडे और अन्य बनाम संजय मिश्रा उर्फ आशू) मुकदमा संख्या 99 वर्ष 2016 जिसके तहत आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के तहत एक पक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 3.2.2020 को रद्द करने के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया है।

चूंकि, वर्तमान याचिका में मात्र विधिक प्रश्न सम्मिलित है, इसलिए शपथ पत्र आमंत्रित किये बिना पक्षकारों की सहमति से याचिका का निर्णय प्रवेश स्तर पर ही किया जा रहा है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वादी-प्रतिवादियों ने बेदखली और किराए के भुगतान के लिए का एससीसी वाद संख्या 99/2016 दायर किया है, जिसे दिनांक 3.2.2020 के आदेश के अन्तर्गत

एकपक्षीय निर्णय लिया गया था। उसके विरुद्ध, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने 29.2.2020 को सीपीसी की धारा 151 के साथ पठित आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत एक आवेदन दायर किया है, जिसे दिनांक 12.2.2021 के आदेश के अन्तर्गत डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। उक्त आवेदन को खारिज करने के बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने बहाली आवेदन दायर किया है, जिसे प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 (इसके बाद अधिनियम, 1887 के रूप में संदर्भित) की धारा 17 का अनुपालन सुनिश्चित करने की स्वतंत्रता के साथ दिनांक 10.3.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। . इसके बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए 6.4.2022 को एक आवेदन दायर किया है। उक्त आवेदन को दिनांक 13.2.2023 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन दाखिल करते समय, उसने अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन नहीं किया है और यदि यह माना जाए कि उसने अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन किया है, भले ही यह पूर्ण अनुपालन नहीं था क्योंकि पूरी राशि जमा नहीं की गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दो आधारों पर आक्षेपित आदेश की आलोचना की; सबसे पहले, न्यायालय ने स्वयं बहाली आवेदन की अनुमति देते हुए अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन सुनिश्चित करने की अनुमति दी थी, इसलिए, न्यायालय के पास अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन न करने के लिए आवेदन को अस्वीकार करने का कोई अवसर नहीं है। दूसरे, आंशिक अनुपालन के मामले में, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को कमी को पूर्ति करने के लिए शेष अनुपालन की स्वतंत्रता दी जा सकती है।

अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ***2023 की एसएलपी (सी) संख्या 2542 से उत्पन्न सिविल अपील संख्या 765/2023*** में ***श्याम कुमार गुप्ता और अन्य बनाम शुभम जैन*** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है और ***श्रीमती सुषमा अग्रवाल बनाम जिला न्यायाधीश, आगरा और 2 अन्य 2018*** के ***अनुच्छेद 227 संख्या 4089*** के अन्तर्गत मामलों में पारित हुए।

प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र अग्रहरि ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की तर्क का पुरजोर विरोध किया और कहा कि सीपीसी की धारा 151 के साथ पढ़े जाने वाले आदेश IX नियम 13 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि आवेदन दाखिल करने के समय 1887 अधिनियम की धारा 17 का अनुपालन किया गया होगा। वर्तमान वाद में, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन दाखिल करते समय, उन्होंने अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन नहीं किया है, इसलिए, लागू आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं है।

उन्होंने आगे कहा कि जहां तक ***श्याम कुमार गुप्ता (सुप्रा)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सवाल है, वह याचिकाकर्ता के मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि उक्त मामले में आज्ञप्ति राशि स्पष्ट

नहीं थी जबकि वर्तमान मामले में एक पक्षीय डिक्री और निर्णय 3.2.2022 को दिया गया था, डिक्री 12.2.2022 को तैयार की गई थी और सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन 22.2.2022 को दायर किया गया था, जिसका अर्थ है कि याचिकाकर्ता को आज्ञप्ति राशि के बारे में पूरी जानकारी थी, भले ही वह सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन जमा करते समय एक भी रुपया जमा नहीं किया है।

उन्होंने आगे कहा कि ***श्याम कुमार गुप्ता (सुप्रा)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के तथ्य अलग हैं। उस स्थिति में, डिक्री में राशि की मात्रा निर्धारित करने में कुछ त्रुटियां हैं, इसलिए, अधिनियम, 1887 की धारा 17 का पूर्ण अनुपालन नहीं किया जा सका। न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अधिनियम, 1887 की धारा 17 के पूर्ण अनुपालन के लिए राशि जमा करने की छूट दी है।

उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि जहां तक ***श्रीमती सुषमा अग्रवाल (सुप्रा)*** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का प्रश्न है, वह उस मामले में भी इसी कारण से लागू नहीं होता है, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने 85,000/- रुपये नकद जमा किए हैं, जो कि मकान मालिक द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, इसलिए, न्यायालय ने माना है कि ऐसे मामले में अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए अवसर दिया जाना चाहिए।

उन्होंने यह भी बताया कि दिनांक 10.3.2022 के आदेश के माध्यम से अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन की अनुमति देते हुए बहाली आवेदन की अनुमति देना विधि के विपरीत है, इसलिए, इस तथ्य पर विचार करते हुए, न्यायालय ने अपने एकपक्षीय डिक्री और निर्णय में यह स्पष्ट कर दिया कि दिनांक 10.3.2022 को आदेश पारित करते समय, सीपीसी के आवेदन आदेश IX नियम 13 की बहाली के बाद अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए समय देने का न्यायालय का आशय नहीं था।

उन्होंने आगे कहा कि सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन को खारिज करते समय निचले न्यायालय द्वारा लिया गया दूसरा आधार पूरी तरह प्रभावी है। दरअसल, न्यायालय ने सिर्फ इतना कहा है कि न्याय के हित में अगर यह मान लिया गया है कि याचिकाकर्ता ने रकम जमा कर दी है तो यह भी पूर्ण अनुपालन नहीं है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता की आशय उसी दिन से थी जो उचित प्रतीत नहीं होती। उन्होंने पहले अपने नाम से बैंक ड्राफ्ट की छायाप्रति कॉपी जमा की, जिसे 1887 की धारा 17 का अनुपालन नहीं माना जा सकता है। इसके बाद उन्होंने 1,14,000/- रुपये की राशि के दो चेक जमा किए, जो प्रावधान की आवश्यकता को पूरा नहीं कर रहे हैं। अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुसार आज्ञप्ति राशि 2,07,611/- रूपये थी।

उन्होंने दृढ़ता से कहा कि याचिकाकर्ता अपनी गलती का लाभ उठा रहा है क्योंकि सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत डिफ़ॉल्ट रूप से उनके आवेदन को खारिज करने के बाद, उन्होंने दिनांक 10.3.2022 को बहाली आवेदन दायर किया है जिसमें उन्हें अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए स्वतंत्रता दी गई थी। उन्होंने आगे कहा कि यदि इसे डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज नहीं

किया गया होता, तो याचिकाकर्ता के पास अधिनियम 1887 की धारा 17 की कमी को पूरा करने के लिए आदेश प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं होता। इसलिए, लागू आदेश और याचिका में कोई अवैधता या विकृति नहीं है भारी कीमत चुकाकर बर्खास्त किया जा सकता है।

अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ***केदारनाथ बनाम मोहन लाल केसरवारी 2002 0 एआईआर (एससी) 582*** में रिपोर्ट किए गए के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है।

न्यायालय द्वारा सामना किए जाने पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन खारिज न होने की स्थिति में, उनके पास अधिनियम की धारा 17, 1887 की आवश्यकता को पूरा करने के लिए आदेश प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं होगा।

मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंदवी तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख के साथ-साथ जिन निर्णयों पर भरोसा किया है, उनका अध्ययन किया है। मामले के निर्विवाद तथ्य यह हैं कि वादी-प्रतिवादियों ने बेदखली और किराए के भुगतान के लिए का एससीसी वाद संख्या 99 2016 दायर किया है, जिसे दिनांक 3.2.2020 के आदेश के अन्तर्गत एकतरफा निर्णय लिया गया था। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के बिना 29.2.2020 को सीपीसी की धारा 151 के साथ पठित आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत एक आवेदन दायर किया है, जिसे दिनांक 12.2.2021 के आदेश के अन्तर्गत दोष रूप से खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने बहाली आवेदन दायर किया, जिसे अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करने के अवलोकन के साथ दिनांक 10.3.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी।

अब, इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है कि क्या बहाली आवेदन की अनुमति देते समय, एससीसी न्यायालय याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करने की स्वतंत्रता दे सकता है और क्या यह अधिनियम 1887 की धारा 17 के आंशिक अनुपालन का मामला है, या नहीं।

मैंने सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के साथ-साथ अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अध्ययन किया है, जो यहां नीचे उद्धृत हैं:-

<u>अधिनियम, 1887 की धारा 17</u>

"सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुप्रयोग- (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में निर्धारित प्रक्रिया, जहां तक अन्यथा उस संहिता द्वारा या इस अधिनियम द्वारा प्रदान की गई है, प्रक्रिया होगी] लघु वाद न्यायालय में इसके द्वारा संज्ञेय सभी मुकदमों में और ऐसे मुकदमों से उत्पन्न होने वाली सभी कार्यवाहियों में पालन किया जाता है:

बशर्ते कि एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री को रद्द करने या निर्णय की समीक्षा के आदेश के लिए एक आवेदक, अपना आवेदन प्रस्तुत करते समय, या तो डिक्री के अन्तर्गत या

निर्णय के अनुसरण में उससे देय राशि न्यायालय में जमा करेगा। , या 21 [डिक्री के पालन या निर्णय के अनुपालन के लिए ऐसी सुरक्षा दें जैसा कि न्यायालय ने इस संबंध में उसके द्वारा किए गए पिछले आवेदन पर निर्देशित किया हो]।

(2) जहां कोई व्यक्ति उप-धारा (1) के प्रावधानों के अन्तर्गत ज़मानत के रूप में उत्तरदायी हो गया है, सुरक्षा को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 22 [145], 23 [1908] (5 का 1908) द्वारा प्रदान किए गए तरीके से प्राप्त किया जा सकता है।"

<u>सीपीसी का आदेश IX नियम 13</u>

"13. प्रतिवादी के विरुद्ध एक पक्षीय डिक्री को रद्द करना.- किसी भी मामले में जिसमें प्रतिवादी के विरुद्ध एक पक्षीय डिक्री पारित की जाती है, वह उस न्यायालय में आवेदन कर सकता है जिसके द्वारा डिक्री पारित की गई थी ताकि इसे रद्द करने का आदेश दिया जा सके; और यदि वह न्यायालय को संतुष्ट करता है कि समन की विधिवत तामील नहीं की गई थी, या जब मुकदमे की सुनवाई के लिए बुलाया गया था तो उसे उपस्थित होने से किसी पर्याप्त कारण से रोका गया था, तो न्यायालय ऐसी शर्तों पर उसके विरुद्ध डिक्री को रद्द करने का आदेश देगा। लागतों के संबंध में, न्यायालय को भुगतान या अन्यथा जैसा वह उचित समझे, और मुकदमे की कार्यवाही के लिए एक दिन नियुक्त करेगा:

बशर्ते कि जहां डिक्री ऐसी प्रकृति की हो कि इसे ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध रद्द नहीं किया जा सकता है, केवल इसे सभी या किसी अन्य प्रतिवादी के विरुद्ध भी रद्द किया जा सकता है:

1[बशर्ते कि कोई भी न्यायालय एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री को केवल इस आधार पर रद्द नहीं करेगा कि समन की तामील में अनियमितता हुई है, यदि वह संतुष्ट है कि प्रतिवादी को सुनवाई की तारीख की सूचना थी और उसके पास पर्याप्त समय था उपस्थित हों और वादी के दावे का उत्तर दें।]

2[स्पष्टीकरण.-जहां इस नियम के अन्तर्गत एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री के विरुद्ध अपील की गई है, और अपील का निपटारा इस आधार के अलावा किसी अन्य आधार पर किया गया है कि अपीलकर्ता ने अपील वापस ले ली है, इस नियम के अन्तर्गत कोई आवेदन नहीं दिया जाएगा। उस एक पक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए।]"

इसके अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि सी.पी.सी. के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत कोई भी आवेदन अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के बिना दायर नहीं किया जा सकता है। निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के बिना दिनांक 29.2.2020 के आवेदन को प्राथमिकता दी है, जिसे अंततः दिनांक 12.2.2021 के आदेश द्वारा डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया। उसके विरुद्ध, बहाली आवेदन दायर किया गया है, जिसे अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करने के अवलोकन के साथ आदेश दिनांक 10.3.2022 द्वारा अनुमति दी गई थी। अधिनियम, 1887 की धारा 17 अनिवार्य है, जिसमें समय के विस्तार का कोई प्रावधान नहीं है।

अधिनियम, 1887 की धारा 17 और सीपीसी के आदेश IX नियम 13 को संयुक्त रूप से पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि ऐसी टिप्पणी पूरी तरह से अनुचित है और नियमों के प्रावधानों के विपरीत है। इसलिए, इस तथ्य पर विचार करते हुए, एससीसी न्यायालय ने स्वयं अपने आदेश दिनांक 3.2.2020 में इसे स्पष्ट किया था। वास्तव में, अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रावधानों का पालन करने की अनुमति मांगने के लिए प्रार्थना के साथ पुनर्स्थापना आवेदन कभी भी दायर नहीं किया गया है, बल्कि यह केवल अपने आदेश दिनांक 12.1.2022 को वापस लेने के लिए दायर किया गया था, इसलिए, इस तरह के अवलोकन को एक आदेश नहीं माना जा सकता है न्यायालय, जो विधि के स्थापित प्रावधानों के अनुरूप है।

यह भी निर्विवाद है कि यदि आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत धारा 151 सीपीसी दिनांक 29.2.2020 के साथ पढ़ा गया आवेदन दोष रूप से खारिज नहीं किया गया होगा, तो याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को पास अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए पुनर्स्थापना आवेदन पर ऐसा आदेश प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं होगा।

यह भी तय है कि कोई भी अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकता है और निश्चित रूप से पार्टी के अधिवक्ता की गलती के कारण ही याचिका/आवेदन को खारिज किया जा सकता है। जिसके लिए उसे विधि के प्रावधानों के विपरीत कोई अतिरिक्त लाभ नहीं दिया जा सकता, इसलिए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की पहली दलील में कोई दम नहीं है।

यहां ऊपर की गई चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि बहाली आवेदन की अनुमति देते समय, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अधिनियम, 18887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है।

याचिकाकर्ता का दूसरा तर्क यह है कि उसे अधिनियम, 1887 की धारा 17 के शेष अनुपालन, यदि कोई हो, को पूरा करने का अवसर दिया जाना चाहिए था।

मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए **श्याम कुमार गुप्ता (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अध्ययन किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"15. यह उचित रूप से देखा जा सकता है कि जिस मुकदमे पर 1887 का अधिनियम लागू होता है, उसके संबंध में एक पक्षीय पारित डिक्री को रद्द करने के आदेश की मांग करने वाले आवेदक को डिक्री/निर्णय के अन्तर्गत देय राशि जमा करने की आवश्यकता होती है या इसके लिए सुरक्षा प्रस्तुत करनी होती है। डिक्री का उचित निष्पादन या निर्णय का अनुपालन। सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत भी, एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री को रद्द करने का आदेश देते समय, न्यायालय प्रतिवादी को लागत, न्यायालय में भुगतान या अन्य शर्तों के बारे में बता सकती है। हालाँकि, इन आवश्यकताओं को व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है और इसे इस तरह लागू नहीं किया जा सकता है जैसे कि हर गलती के लिए प्रतिवादी को दंडित किया जाए,

भले ही देय राशि को प्रश्न में डिक्री में स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया गया हो।

15.1. मौजूदा मामले के प्रयोजन के लिए, देय राशि के संबंध में, किराए के बकाया के लिए 8,000/- रुपये की राशि डिक्री में निर्धारित की गई थी और लागत के लिए 3,212/- रुपये की एक और राशि को मात्रा के रूप में लिया जा सकता था। बेशक, वादी को मुकदमे के दौरान किराया/ मध्यवर्ती लाभ के लिए प्रति माह 2,000/- रुपये प्राप्त करने का हकदार माना गया था और जब तक अपेक्षित न्यायालयी शुल्क के भुगतान के बाद सूट की दुकान का वास्तविक खाली कब्जा नहीं मिल जाता, लेकिन, विचारण न्यायालय ने विशेष रूप से ऐसा नहीं किया। डिक्री की तारीख तक भी प्रतिवादी द्वारा देय राशि की मात्रा निर्धारित करें। दी गई परिस्थितियों में, जब प्रतिवादी, अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती, ने प्रश्नगत डिक्री को नोटिस करने के बाद तुरंत न्यायालय का रुख किया और सीधे तौर पर उसके अन्तर्गत निर्धारित राशि जमा कर दी, यानी बकाया किराए के लिए 8,000/- रुपये और 3,212/- रुपये की राशि जमा कर दी। लागत, कुल रु. 11,212/-, एक पक्षीय डिक्री को रद्द करने के आदेश की मांग करते समय, यह ऐसा मामला नहीं था जहां प्रतिवादी ने जमा की आवश्यकताओं को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया था। इसके अलावा, विचाराधीन डिक्री केवल धन डिक्री नहीं थी, बल्कि बेदखली के लिए भी थी। मुकदमे की विषय-वस्तु और समग्र परिस्थितियों को देखते हुए, एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता थी और यदि कोई अतिरिक्त जमा या सुरक्षा जमा करना आवश्यक माना जाता था, तो उस संबंध में उचित आदेश पारित किए जा सकते थे। इसे अलग तरीके से कहें तो, आदेश IX नियम 13 सीपीसी के साथ पढ़े गए 1887 के अधिनियम की धारा 17 के संदर्भ में, यदि आवश्यक हो तो न्यायालय जमा करने के लिए समय बढ़ा सकता था या प्रतिवादी को प्रदर्शन के लिए सुरक्षा की शर्तों पर रख सकता था।

15.2. हालाँकि, यहाँ ऊपर जो देखा और निकाला गया है, उससे यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने 1887 के अधिनियम की धारा 17 की आवश्यकताओं को इतने सटीक और अव्यवहारिक दृष्टिकोण से देखा है कि प्रतिवादी का वास्तविक प्रयास उचित प्रतियोगिता के बाद वाद के योग्यता निर्णय को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है। हमारे विचार में, तथ्यों और परिस्थितियों के वर्तमान सेट में, प्रतिवादी की एक पक्षीय डिक्री को रद्द करने की प्रार्थना को विचाराधीन डिक्री के संदर्भ में अतिरिक्त जमा राशि के अभाव में अस्वीकार नहीं किया जा सकता था।

15.3. उच्च न्यायालय ने

अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिका को खारिज कर दिया और ट्रायल कोर्ट के विचारों का समर्थन करते हुए, केदारनाथ (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया, कि अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान 1887 को अनिवार्य माना गया है। हमारे विचार में, उक्त निर्णय का संदर्भ वर्तमान मामले में अनुपयुक्त है। भले ही 1887 के अधिनियम की धारा 17 की आवश्यकताओं को अनिवार्य माना जाता है, वर्तमान मामला ऐसा नहीं था जहां प्रतिवादी ने उन आवश्यकताओं को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया था। केदारनाथ (सुप्रा) में, उच्च न्यायालय द्वारा पुनरुत्पादित परिच्छेद में, यह स्पष्ट रूप से देखा गया था कि आवेदक ने कोई जमा नहीं किया था और जमा राशि से छूट देने या सुरक्षा प्रदान करने के लिए न्यायालय से अनुमति मांगने के लिए कोई आवेदन नहीं किया था। ऐसे तथ्यों की पृष्ठभूमि में, 1887 के अधिनियम की धारा 17 की आवश्यकताओं का पूर्ण गैर-अनुपालन दिखाते हुए, इस न्यायालय ने डिक्री को रद्द करने के आवेदन को अक्षम माना। केदारनाथ (सुप्रा) में दिए गए निर्णय को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करना कठिन है।

16. उपरोक्त के अलावा, जहां हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने मामले पर बहुत अधिक तकनीकी और अव्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाया था, एक और मजबूत कारण है जिसके लिए हम पारित डिक्री को रद्द करने की प्रार्थना स्वीकार करने के इच्छुक हैं। इस मामले में एक पक्षीय. जैसा कि देखा गया है, इस न्यायालय के प्रश्नों के उत्तर में, अपीलकर्ताओं ने तुरंत वास्तविक कदम उठाए हैं और वह राशि जमा कर दी है जो अप्रैल, 2023 तक किराया/मेस्ने लाभ से संबंधित हो सकती है। इस सद्भावना और त्वरित कदम के लिए (यद्यपि उठाया गया) इस न्यायालय से संपर्क करने के बाद), हमारे विचार में, वे योग्यता के आधार पर मुकदमा लड़ने का अवसर पाने के हकदार हैं, खासकर जब मामला एक दुकान से संबंधित हो जहां अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती किरायेदार के रूप में जारी रहे थे और वादी-प्रतिवादी डिक्री की मांग कर रहा है केवल किराए के भुगतान में चूक के आधार पर बेदखली के लिए।"

उपरोक्त निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफों के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि डिक्री में राशि की मात्रा निर्धारित करने में कुछ तथ्यात्मक त्रुटियां हैं और विचारण न्यायालय ने डिक्री की तारीख तक भी प्रतिवादी द्वारा देय राशि की मात्रा निर्धारित नहीं की है। जिसके कारण, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने अपनी समझ से कुछ राशि जमा कर दी है और शेष के लिए, न्यायालय ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अधिनियम, 1887 की धारा 17 के पूर्ण अनुपालन के लिए राशि

जमा करने की अनुमति दी है।

जहां तक वर्तमान मामले का प्रश्न है, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि निर्णय 3.2.2022 को सुनाया गया था, डिक्री 12.2.2022 को तैयार की गई थी और सीपीसी के IX नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन 22.2.2022 को एक भी पैसा जमा किए बिना दायर किया गया था। अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन, इसलिए, यह निर्णय याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आएगा।

मैंने याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा की गई ***श्रीमती सुषमा अग्रवाल (सुप्रा)*** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी अध्ययन किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

> *"13. सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि धारा 17 का प्रावधान उस समय की कोई सीमा प्रदान नहीं करता है जिसके द्वारा आज्ञप्ति राशि को पूर्व जमा करने की छूट के लिए ऐसा आवेदन दायर किया जा सकता है। न्यायालय ने कहा है, "हमारा मानना है कि इसे एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने या समीक्षा के लिए आवेदन प्रस्तुत करने के समय तक किसी भी समय दायर किया जा सकता है और न्यायालय इसे पिछले आवेदन के रूप में मान सकता है। तब यह न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह शीघ्र आदेश दें। उचित आदेश पारित करने में न्यायालय की ओर से देरी को आवेदक के विरुद्ध नहीं माना जाएगा क्योंकि न्यायालय की गलती के लिए किसी को भी पीड़ित नहीं किया जा सकता है।"*
>
> *17. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने राज कुमार मखीजा और अन्य बनाम मेसर्स एसकेएस एंड कंपनी और अन्य, 2000 (3) एआरसी 117 में इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के निर्णय पर भी भरोसा किया है कि यह आवेदक का कर्तव्य है डिक्री के अनुसार सही डिक्रीटल राशि की गणना करें और न्यायालय को आवेदक के लिए डिक्रीटल राशि की गणना करने की आवश्यकता नहीं है। यदि किसी भी कारण से की गई गणना में कोई कमी रह जाती है तो इसके परिणाम भुगतने होंगे और गलत गणना से ऐसे आवेदक को कोई आश्रय नहीं मिलेगा।*
>
> *18. डिवीजन बेंच द्वारा यह माना गया है कि किरायेदार-प्रतिवादी द्वारा सीमा अवधि की समाप्ति के बाद सुरक्षा जमा में कमी को पूरा करने के लिए दायर किए गए किसी भी आवेदन का कोई परिणाम नहीं है। अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान का अनुपालन न करने पर एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने का आवेदन खारिज कर दिया जाएगा। यह भी माना गया है कि सीमा अवधि की समाप्ति के बाद जमा की गई किसी भी राशि को अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान के अनुपालन का निर्णय लेने के लिए भी ध्यान में रखा जाएगा। हालाँकि, यह भी देखा गया है कि न्यायालय निर्णय के मुख्य भाग*

में बताए अनुसार डेमिनिमिस के सिद्धांत पर एक नगण्य राशि जमा करने में कमी को नजरअंदाज कर सकता है। इसने आगे माना है कि जमा करने में देरी को माफ करने के लिए न्यायालय को शक्ति प्रदान करने का कोई प्रावधान नहीं है और सीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान के अन्तर्गत विचारित जमा पर लागू नहीं होंगे।

20. मैंने याचिकाकर्ता-किरायेदार के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार किया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पीएससीसी अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं। हालाँकि, यह सच है कि याचिकाकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन विचारण न्यायालय के समक्ष निपटान के लिए आने से पहले 85,000/- रुपये जमा कर दिए थे। इस तथ्य को दोनों पक्षों में से किसी एक ने स्वीकार किया है कि जिस समय मुकदमे का निर्णय सुनाया गया था, उस समय न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि किरायेदार पर 1 अप्रैल, 2015 से किराये 5,000/- रु. प्रति माह का भुगतान बकाया था। एससीसी सूट दाखिल करने के समय देय किराया पांच महीने के लिए था, और उस समय चौदह महीने के लिए था जब याचिकाकर्ता द्वारा बहाली आवेदन दायर किया गया था। याचिकाकर्ता ने स्मरण (रिकॉल) के लिए आवेदन दाखिल करते समय 10,100/- रुपये जमा किए और सही आज्ञप्ति राशि के निर्धारण के लिए अपने आवेदन के लंबित रहने के दौरान, उसने 75,000/- रुपये और जमा किए, जो प्रतिवादी नंबर 3 के पति को प्राप्त हुए।

22. अभिलेख में लाए गए कागजात के अवलोकन से किरायेदार का निस्संदेह आशय प्रति माह 5,000/- रुपये का भुगतान करने और कुछ अतिरिक्त राशि यानी 10,100/- रुपये जमा करने में स्थापित हुआ है। अनंतिम लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 में धारा 17 में प्रावधान जोड़ने का आशय प्रावधान की भाषा से समझा जा सकता है। इसे मुकदमे को आगे बढ़ाने के लिए अपनी सद्भावना स्थापित किए बिना आवेदन वापस का फायदा उठाने वाले वादी द्वारा उठाए जाने की संभावना से बचने के लिए और मुकदमे के लंबित होने के कारण डिक्री धारक को पूर्वाग्रह से ग्रस्त होने से बचाने के लिए जोड़ा गया था। इसलिए, यह न्यायालय, नीचे दिए गए दो विद्वान न्यायालयों द्वारा पारित आदेश को इस टिप्पणी के साथ रद्द करना उचित लगता है कि किरायेदार को अत्यधिक तकनीकी आधार पर गैर-अनुकूलित नहीं किया जा सकता है, जब उसने आदेश 9

नियम 13 सीपीसी के अन्तर्गत आवेदन की लंबित अवधि के दौरान पहले ही 85,100/- रुपये जमा कर दिए थे।"

इसी प्रकार, इस मामले में, वादी द्वारा कुछ राशि नकद में स्वीकार की गई थी, इसलिए, न्यायालय ने अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए एक और अवसर दिया है, लेकिन वर्तमान मामले में, किसी भी समय, वादी-प्रतिवादी ने ऐसा नहीं किया है। अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन के लिए किसी भी राशि को स्वीकार किया, इसलिए, यह निर्णय भी याचिकाकर्ता की मदद नहीं कर रहा है।

जैसा कि प्रतिवादी ने भरोसा किया था, मैंने ***केदारनाथ (सुप्रा)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी अध्ययन किया है, जो पूरी तरह से वर्तमान विवाद से जुड़ा हुआ है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"प्रावधान को मात्र पढ़ने से पता चलता है कि विधायिका ने प्रावधान की भाषा को अनिवार्य रूप में शामिल करने का विकल्प चुना है और हमें प्रावधान की प्रकृति को निर्देशिका के रूप में व्याख्या करने, व्याख्या करने और रखने का कोई कारण नहीं दिखता है। लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने या उसके निर्णय की समीक्षा करने के लिए आवेदन के साथ डिक्री के अन्तर्गत या निर्णय के अनुसरण में आवेदक की ओर से देय राशि न्यायालय में जमा की जानी चाहिए। जमा करने के प्रावधान को न्यायालय अपने विवेक से समाप्त कर सकती है, बशर्ते कि आवेदक ने सुरक्षा और उसकी प्रकृति प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए न्यायालय से पिछले आवेदन की मांग की हो। परंतुक उस समय सीमा का प्रावधान नहीं करता है जिसके द्वारा छूट के लिए ऐसा आवेदन दायर किया जा सकता है। हमारा मानना है कि इसे एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने या समीक्षा के लिए आवेदन प्रस्तुत करने के समय तक किसी भी समय दायर किया जा सकता है और न्यायालय इसे पिछले आवेदन के रूप में मान सकता है। आवेदक का दायित्व छूट के लिए पिछला आवेदन प्रस्तुत करना है। इसके बाद यह न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह तुरंत आदेश दे। उचित आदेश पारित करने में न्यायालय की ओर से देरी को आवेदक के विरुद्ध नहीं माना जाएगा क्योंकि न्यायालय की गलती के लिए किसी को भी पीड़ित नहीं किया जा सकता है।

मौजूदा मामले में, एक पक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन के साथ डिक्री के अन्तर्गत आवेदक द्वारा देय और देय राशि न्यायालय में जमा नहीं की गई थी। आवेदक ने जमा राशि से छूट देने और डिक्री के निष्पादन के लिए ऐसी सुरक्षा प्रदान करने के लिए न्यायालय से अनुमति मांगने के लिए कोई आवेदन नहीं

दिया, जैसा कि न्यायालय ने निर्देश दिया हो। इसलिए डिक्री को रद्द करने का आवेदन अक्षम था। इस पर विचार नहीं किया जा सकता था और इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती थी।"

इसके अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि न तो आवेदन के साथ कोई जमा राशि संलग्न थी और न ही जमा राशि से छूट देने और ऐसी सुरक्षा प्रदान करने के लिए न्यायालय से अनुमति मांगने के लिए कोई आवेदन दायर किया गया है।

वर्तमान मामले में भी, सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अन्तर्गत न तो याचिकाकर्ता का आवेदन अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अन्तर्गत आवश्यक जमा राशि के साथ था और न ही अधिनियम, 1887 की धारा 17 की जमा राशि से छूट देने का कोई आवेदन था। यहां तक कि बहाली आवेदन में भी अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करने की अनुमति देने की ऐसी कोई प्रार्थना नहीं है। इसलिए, उपरोक्त निर्णय के आलोक में, याचिकाकर्ता अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रावधान का अनुपालन करने के लिए आवेदन दाखिल करने के बाद किसी भी उपचार का हकदार नहीं है। सीपीसी का आदेश IX नियम 13 151 सीपीसी के साथ पढ़ा जाए।

इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि यह आंशिक अनुपालन का मामला नहीं है, इसलिए, ***श्याम कुमार गुप्ता (सुप्रा)*** और ***श्रीमती सुषमा अग्रवाल (सुप्रा)*** के निर्णयों का लाभ याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सकता है।

दोनों न्यायालयों ने प्रत्येक पक्ष पर विचार किया है और सही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि याचिकाकर्ता ने कभी भी अधिनियम, 1887 की धारा 17 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया है। न्यायालयों ने यह भी सही विचार किया है कि यदि इसे अनुपालन माना जा रहा है, तो वही है। पूर्ण अनुपालन नहीं होने के कारण अपेक्षित राशि जमा नहीं की गई है।

यहां ऊपर उल्लिखित तथ्यों और साथ ही इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के मद्देनजर, रिट याचिका में योग्यता नहीं है और तदनुसार, इसे **खारिज** कर दिया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 277

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 3631/2023 (सिविल)

राजेंद्र एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

मो. शाहिद ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री पीयूष शुक्ला

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री मनीष टंडन, श्री अतुल दयाल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. किरायेदारी कानून - स्वामित्व - किराया - उत्तर प्रदेश नगरीय भवन (किराये पर देने एवं बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 20(2)(ए) एवं 34 - मलिन बस्ती क्षेत्र (सुधार एवं निकासी) अधिनियम, 1962 धारा 23 - सिविल प्रक्रिया संहिता: आदेश 6 नियम 14 एवं 15 - विधिक नोटिस प्राप्त होने के पश्चात याचिकाकर्ता-प्रतिवादी से यह अपेक्षित है कि वह यथाशीघ्र नोटिस की अमान्यता या

दुर्बलता के बारे में आपत्ति उठाए अन्यथा नोटिस निरस्त माना जाएगा। (पैरा 20)

वर्तमान वाद में, कानूनी नोटिस में विवादित संपत्ति के स्वामित्व, मकान संख्या और सीमा का विवरण है, जिस पर याचिकाकर्ता-विपक्षी ने 1.5.2014 को दिए गए अपने उत्तर में कोई विवाद नहीं किया है। इसी तथ्य का उल्लेख परिवाद में किया गया है, जिस पर याचिकाकर्ता-विपक्षी ने भी कोई विवाद नहीं किया है, वास्तव में, किराएदारी में कमरों की संख्या को लेकर कुछ विवाद था, जिसके लिए लिखित बयान में सीपीसी के आदेश 6 नियम 17 के तहत संशोधन आवेदन दायर किया गया था, जिसे निरस्त कर दिया गया था, लेकिन जहां तक स्वामित्व का प्रश्न है, लिखित बयान में संशोधन के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है। (पैरा 19)

चूंकि कानूनी नोटिस की विषय-वस्तु पर उसके उत्तर (दिनांक 01.05.2014) में विवाद नहीं किया गया है तथा लिखित बयान दाखिल करते समय भी आपत्ति नहीं उठाई गई है, इसलिए इस स्तर पर उसे नहीं उठाया जा सकता, इसलिए इस बिंदु पर याचिकाकर्ता के तर्क का कोई महत्व नहीं है। (पैरा 21)

बी.(1) उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 सन् 1972 के नियम 22 एवं 38 के धारा 34 के प्रावधानों के आलोक में आदेश 6 नियम 14 एवं 15 के प्रावधान वर्तमान वाद में लागू नहीं होंगे। (पैरा 25)

उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13, 1972 की धारा 34, नियम 22 के साथ, 1972 की कुछ आकस्मिकताओं का प्रावधान करती है, जिन पर सी.पी.सी. लागू होती है, जिसमें ऐसी किसी आकस्मिकता की परिकल्पना नहीं की गई है, जो सी.पी.सी. के आदेश 6, नियम 14 एवं 15 का ध्यान आकर्षित करती है। (पैरा 23, 24)

उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13, 1972 की धारा 38 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13, 1972 के प्रावधान सी.पी.सी. एवं सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के प्रावधानों पर प्रभावी होंगे। (पैरा 25)

(2) याचिकाकर्ता-विपक्षी को इस विवाद को इस विलंबित चरण में उठाने की कोई स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है - याचिकाकर्ता ने एससीसी न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष भी इस आधार को नहीं उठाया है। (पैरा 26)

सी. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13, 1972 की धारा 20(4) का लाभ लेने के लिए, समय-बाधित अवधि की राशि सहित संपूर्ण बकाया राशि जमा करना आवश्यक है। याचिकाकर्ता का यह स्वीकृत मामला है कि उसने 1990 से किराया जमा नहीं किया है और एससीसी अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करते हुए सीपीसी के आदेश 15 नियम 5 के तहत आवेदन दाखिल करते समय एकपक्षीय डिक्री के बाद, उसने केवल आदेशित राशि ही जमा की थी। (पैरा 30)

अनुवादित

डी. अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी अधिकारिता का उपयोग निचली अदालतों द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए नहीं किया जा सकता। किसी भी स्थिति में, जब तक निष्कर्ष कुछ ऐसी सामग्री पर आधारित हैं जो उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं और कोई ऐसा सबूत नहीं दिया जा सकता है जो यह प्रदर्शित करे कि विचारणीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष गलत हैं, तब तक कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। (पैरा 32)

याचिकाकर्ता का तर्क है कि बिक्री विलेख में 800 रुपये की दर से किराया दर्शाया गया था, जबकि कानूनी नोटिस और वादपत्र में 750 रुपये की दर से किराया का दावा किया गया था, लेकिन प्रतिवादी-वादी 750 रुपये की दर से किराया साबित नहीं कर सके, इसलिए इस आधार पर आदेश गलत है। (पैरा 31)

न्यायालयों ने 750/- रुपये की दर से किराए की दर के बारे में समवर्ती निष्कर्ष निकाला है, अर्थात प्रतिवादी-वादी के पक्ष में। यह तय है कि न्यायालय के समवर्ती निष्कर्ष के वाद में, न्यायिक पुनरीक्षण का दायरा सीमित और संकीर्ण है, इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 33)

ई. अधिनियम, 1962 की धारा 3 के तहत किसी क्षेत्र को झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र घोषित करने से उक्त क्षेत्र में स्थित संपत्तियों का स्वतः अधिग्रहण नहीं हो जाता। सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना बेदखली नहीं की जा सकती, लेकिन जहां तक बेदखली के लिए डिक्री या आदेश का प्रश्न है, तो, अधिनियम, 1962 की धारा 23 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। (पैरा 37)

मकान मालिक किरायेदार के खिलाफ बेदखली का मुकदमा चला सकता है, भले ही किरायेदार की संपत्ति अधिग्रहित कर ली गई हो और भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रावधान के तहत उसके संबंध में कोई पुरस्कार पारित किया गया हो। बेदखली के मुकदमे में केवल मकान मालिक और किरायेदार के बीच के रिश्ते को ही देखा जाना चाहिए। (पैरा 36)

अधिनियम, 1962 की धारा 23 में केवल यह प्रावधान है कि सक्षम प्राधिकारी की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही किसी डिक्री या आदेश को क्रियान्वित किया जा सकता है। यह किसी भी मुकदमे को दायर करने पर रोक नहीं लगाता है। भले ही यह दावा किया जाए कि झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र में भूमि अधिग्रहित की गई है, लेकिन उक्त भूमि पर स्थित भवन स्वतः ही अधिग्रहण करने वाले प्राधिकारी के अधीन नहीं आ जाता। (पैरा 38)

न केवल मलिन बस्ती क्षेत्र घोषित होने के बाद, बल्कि अधिसूचना के बाद विवादित संपत्ति अधिग्रहित करने के बाद भी वाद पोषणीय है और डिक्री पारित की जा सकती है। (पैरा 34, 39)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. यूनिवर्सिटी बुक डिपो द्वारा जगन्नाथ बनाम अमित मिश्रा, सिविल पुनरीक्षण संख्या 10/2009, निर्णय दिनांक 29.05.2020
2. पार्वती बाई बनाम राधिका, 2003 (2) आरसीजे 4 (पैरा 10)
3. अपोलो जिपर इंडिया लिमिटेड बनाम डब्ल्यू न्यूमैन एंड कंपनी लिमिटेड, 2018 (3) एआरसी 187 (पैरा 10)
4. संजय और अन्य बनाम श्रीमती विमला रानी एवं अन्य, 2015 (3) एआरसी 741 (पैरा 13)
5. घूरे लाल बनाम शिव मूर्ति गुप्ता, 1994 (5) एससीसी 339 (पैरा 14)
6. आनंद कुमार वीएस दिनेश कुमार, 2017 (3) एआरसी 178 (परा 16)
7. श्रीमती शकुंतला एवं अन्य बनाम शौकत अली एवं अन्य, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 6139/2022 दिनांक 06.08.2022 को निर्णीत (पैरा 17)
8. एसएमटी. फूला देवी और अन्य बनाम ए.डी.जे . न्यायालय संख्या 14, कानपुर नगर, 2020 (2) एआरसी 610 (परा 17)
9. शीला जवराई नागोरी और अन्य बनाम कांतिलाल नथमल बाल्डोटा एवं अन्य, 2014 (3) एआरसी (5) (पैरा 17)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

आशा रानी गुप्ता बनाम श्री विनीत कुमार, सिविल अपील संख्या 4682/2022 एसएलपी (सिविल) संख्या 1319/2019 से उत्पन्न (पैरा 6)

वर्तमान याचिका में एस.सी.सी. वाद संख्या 188/2014 में न्यायाधीश न्यायालय, लघु वाद न्यायालय, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.12.2022 तथा एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 26/2023 में जिला न्यायाधीश, कानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.03.2023 को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री पीयूष शुक्ला और प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री मनीष टंडन द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अतुल दयाल को सुना।

2. प्रस्तुत याचिका 2014 के एस.सी.सी. सूट संख्या-188 (मो. शाहिद बनाम राजेंद्र और अन्य) और जिला न्यायाधीश, कानपुर द्वारा एस.सी.सी. संशोधन संख्या-26 ऑफ 2023 (राजेंद्र और अन्य बनाम मोहम्मद शाहिद) में पारित दिनांक 15.3.2023 का आक्षेपित आदेश

3. चूंकि, प्रस्तुत याचिका में केवल कानूनी प्रश्न शामिल है, इसलिए, पक्षों की सहमति से, याचिका पर ही सुनवाई के चरण में ही निर्णय लिया जा रहा है।

4. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वादी-प्रतिवादी ने 10.4.2014 को कानूनी नोटिस दिया है, जिसमें खुद को जसमीत सिंह द्वारा 31.3.2013 को निष्पादित बिक्री विलेख के आधार पर प्रश्नगत घर का मालिक होने का दावा किया गया है। उसी

आधार पर उन्होंने अपना केस सेट किया है और मुकदमा दायर किया है। वाद में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि विचाराधीन घर जसमीत सिंह द्वारा खरीदा गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यूपी शहरी भवन (किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (इसके बाद 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 के रूप में संदर्भित) की धारा 20 (2)(ए) के तहत, 30 दिनों के भीतर नोटिस आवश्यक है। प्रस्तुत मामले में, चूंकि नोटिस जसमीत सिंह द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख के स्वामित्व के आधार पर भेजा गया था, इसलिए, यह 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20 (2)(ए) की आवश्यकता को पूरा नहीं कर रहा है, इसलिए, नोटिस खराब/त्रुटिपूर्ण है।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जिरह के दौरान, वादी-प्रतिवादी ने चार पृष्ठों पर अपने हस्ताक्षर से इनकार कर दिया है और वह वाद में लिखे तथ्य से अवगत नहीं था क्योंकि यह अंग्रेजी में लिखा गया था। अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 14 और 15 के प्रावधान पर भरोसा किया है, जिसमें प्रावधान है कि हर पृष्ठ पर पक्ष और अधिवक्ता के हस्ताक्षर की जरूरत होती है.

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने सि०प्र०स० के आदेश 15 नियम 5 के प्रावधान के साथ-साथ अधिनियम, 1972 की धारा 20 (4) का पूरी तरह से अनुपालन किया है, जिसमें 300 रुपये प्रति माह की दर से किराए की स्वीकृत बकाया राशि जमा की गई है, लेकिन अधिनियम, 1972 की धारा 20(4) का लाभ उसे नहीं दिया गया है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने आशा रानी गुप्ता बनाम श्री विनीत कुमार के मामले में 2019 की एसएलपी (सिविल) संख्या-1319 से उत्पन्न 2022 की सिविल अपील संख्या-4682 में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एक बार किराया जमा करने के बाद, वह 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20 (4) के लाभ के हकदार हैं। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने जगन्नाथ के माध्यम से विश्वविद्यालय बुक डिपो बनाम अमित मिश्रा के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो 29.5.2020 को तय किए गए 2009 के सिविल पुनरीक्षण संख्या-10 में पारित किया गया था।

8. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उन्होंने कार्यवाही के दौरान 300/- रुपये की स्वीकृत दर पर मासिक आधार पर किराया जमा किया था और न तो इस पर विचार किया गया है और न ही निचली अदालत द्वारा कोई निष्कर्ष दर्ज किया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि नोटिस में, 750 रुपये की दर से किराए का दावा किया गया है, जबकि बिक्री विलेख में यह 800 रुपये के रूप में उल्लेख किया गया है और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के अनुसार दर 300, प्रतिवादी-वादी 750/- रुपये की दर से किराए का प्रमाण नहीं दे सका, इसलिए, इस आधार पर आदेश भी खराब है।

9. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि दिनांक 21.2.2021 की अधिसूचना के माध्यम से उत्तर

प्रदेश स्लम क्षेत्र (सुधार और मंजूरी) अधिनियम, 1962 की धारा 23 के प्रावधानों के तहत विचाराधीन क्षेत्र को स्लम क्षेत्र घोषित किया गया है, इसलिए, अधिनियम, 1962 की धारा 23 के अनुसार, कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि एक बार केडीए द्वारा भूमि का अधिग्रहण करने के बाद, वादी-प्रतिवादी ने विचाराधीन घर से अपना स्वामित्व खो दिया है।

10. श्री अतुल दयाल, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सबसे पहले 10.4.2014 को जसमीत सिंह द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख के आधार पर पूरे परिसर के लिए कानूनी नोटिस दिया गया था, जिसे याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दिनांक 1.5.2014 के अपने उत्तर में कभी विवादित नहीं किया गया है, इसलिए, दिनांक 10.4.2014 के नोटिस में कोई अवैधता नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मकान नंबर, स्वामित्व, विवादित संपत्ति के बारे में 10.4.2014 के कानूनी नोटिस में उल्लिखित तथ्यों को सीमा के साथ विवादित नहीं किया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि संपत्ति के विवरण के बारे में वाद में भी यही कथन था, जिसे प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा लिखित बयान में विवादित नहीं किया गया था और सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 17 के तहत आवेदन किरायेदारी में कमरों की संख्या के संबंध में लिखित बयान में संशोधन के लिए दायर किया गया था, जिसे पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी खारिज कर दिया गया था और पुष्टि की गई थी। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 17 के तहत 31.3.2013 के बिक्री विलेख के आधार पर स्वामित्व पर विवाद करने के लिए कोई अन्य आवेदन दायर नहीं किया गया है, इसलिए, इस स्तर पर इसे नहीं उठाया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 2003 में रिपोर्ट की गई पार्वती बाई बनाम राधिका के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, (2) आरसीजे 4 और अपोलो जिपर इंडिया लिमिटेड बनाम डब्ल्यू न्यूमैन एंड कंपनी लिमिटेड 2018 में रिपोर्ट किया गया (3) एआरसी 187, यदि नोटिस की वैधता को लिखित बयान में चुनौती नहीं दी गई है, इसे देर से ही सही, चुनौती नहीं दी जा सकती।

11. जहां तक सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 14 और 15 की प्रयोज्यता का संबंध है, उन्होंने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि नियम 1972 के नियम 22 सपठित 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-13 की धारा 34 के अनुसार, यह लागू नहीं होगा। वास्तव में 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 34 कुछ आकस्मिकताओं को प्रदान करती है जहां सि०प्र०स० लागू होती है। उन्होंने यह भी कहा कि 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-13 की धारा 38 में प्रावधान है कि 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 के प्रावधान सि०प्र०स० और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों पर प्रबल होंगे। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 14 और 15 का प्रावधान केवल सि०प्र०स० के प्रावधान के तहत दायर दीवानी वाद में लागू होगा और 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 के तहत शुरू की गई सारांश कार्यवाही में लागू नहीं होगा। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने एस.सी.सी. कोर्ट के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय में भी इस आधार को नहीं लिया है, इसलिए, वह भारत के

संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस न्यायालय के समक्ष इस मुद्दे को नहीं उठा सकता है।

12. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जहां तक 1972 के अधिनियम संख्या-13 की धारा 20 (4) के लाभ का संबंध है, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की ओर से समय वर्जित अवधि के लिए राशि सहित पूरी राशि जमा करना आवश्यक है। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की स्वीकारोक्ति के अनुसार, उसने 1990 से किराया जमा नहीं किया है और आगे एक बार लघु कारण न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन में सि०प्र०स० के आदेश 15 नियम 5 के तहत आवेदन दायर करते समय उसके खिलाफ एकपक्षीय डिक्री पारित हो जाने के बाद, उसने केवल डिक्री राशि जमा की है।

13. जहां तक मासिक आधार पर किराए की जमा राशि का संबंध है, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उन्होंने नियमित रूप से किराया जमा नहीं किया है। यह पहली अदालत का निष्कर्ष भी है कि सि०प्र०स० के आदेश 15 नियम 5 के अनुसार राशि जमा नहीं की गई थी। संशोधन में भी इसकी पुष्टि की गई थी। समयवर्जित अवधि के किराए के बारे में अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने संजय और अन्य बनाम श्रीमती विमला रानी और 6 अन्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो 2015 (3) ए.आर.सी 741 में रिपोर्ट किया गया था।

14. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि शीर्षक से इनकार करने के मामले में, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20 (4) का लाभ नहीं उठा सकते हैं, जो 1994 (5) एस.सी.सी. 339 (पैराग्राफ 1) में रिपोर्ट किए गए घुरे लाल बनाम शिव मूर्ति गुप्ता के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में है।

15. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक 750/- रुपये की दर से किराए की दर का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि बिक्री विलेख में, यह केवल 800/- रुपये का उल्लेख किया गया है, लेकिन कानूनी नोटिस के साथ-साथ वाद में, उन्होंने 750/- रुपये की दर से किराए का दावा किया है। जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता-प्रतिवादी 300 रुपये की दर से किराए की दर के बारे में कोई सबूत पेश नहीं कर सका।

16. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष हैं, इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने 2017 (3) एआरसी 178 (पैराग्राफ 18, 21, 22, 23 और 33) में रिपोर्ट किए गए आनंद कुमार बनाम दिनेश कुमार के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

17. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 1962 की धारा 23 के तहत अधिसूचना 21.2.2021 के तहत झुग्गी क्षेत्र की घोषणा के बाद भी, न्यायालय बेदखली के लिए डिक्री पारित कर सकता है। इतना ही नहीं, अधिसूचना के बाद भूमि अधिग्रहण के मामले

में भी वाद विचारणीय है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने श्रीमती शकुंतला और 3 अन्य बनाम शौकत अली के मामले में इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है और एक अन्य 2022 के अनुच्छेद 227 संख्या-6139 के तहत मामलों में पारित किया गया है, जिसका फैसला 6.8.2022 को हुआ था, श्रीमती फूला देवी और 4 अन्य बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश न्यायालय सं-14, कानपुर नगर 2020(2) एआरसी 610 और शीला जावराई नागोरी और अन्य बनाम कांतिलाल नाथमल बलडोटा और अन्य 2014 (3) एआरसी (5) में रिपोर्ट किया गया।

18. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड के साथ-साथ पक्षों के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का अवलोकन किया है।

19. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा जसमीत सिंह द्वारा निष्पादित दिनांक 31.3.2013 के बिक्री विलेख के आधार पर दिनांक 10.4.2014 के कानूनी नोटिस की तामील के बारे में पहला मुद्दा उठाया गया। उनका तर्क यह है कि यह जसमीत सिंह द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख पर आधारित है, इसलिए, यह 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20 (2)(ए) की आवश्यकता को पूरा नहीं कर रहा है। वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अतुल दयाल द्वारा इसका खंडन किया गया और उन्होंने सही ढंग से प्रस्तुत किया कि दिनांक 10.4.2014 के नोटिस में कोई अवैधता नहीं है। उक्त कानूनी नोटिस में स्वामित्व का विवरण, विवादित संपत्ति की मकान संख्या सीमा सहित है, जिस पर याचिकाकर्ता प्रतिवादी ने दिनांक 01.05.2014 के अपने उत्तर में विवाद नहीं किया है। उन्होंने वाद में वही तथ्य लिखा है, जिस पर याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा भी विवाद नहीं किया गया था, वास्तव में, किरायेदारी में कमरों की संख्या के बारे में उनका कुछ विवाद है, जिसके लिए उन्होंने लिखित बयान में सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 17 के तहत संशोधन आवेदन दायर किया है, जिसे भी खारिज कर दिया गया था, लेकिन जहां तक स्वामित्व का संबंध है, लिखित बयान में संशोधन के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है।

20. पार्वती बाई (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून बहुत अच्छी तरह से तय किया गया है, इस बिंदु पर कि कानूनी नोटिस प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की ओर से नोटिस की अमान्यता या दुर्बलता के बारे में आपत्ति उठाना आवश्यक है, अन्यथा इसे लहराया गया माना जाएगा। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां उद्धृत किया गया है: -

"6. प्रस्तुत मामले में जांच की जाने वाली एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या किरायेदारी को संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के प्रावधानों के अनुसार समाप्त किया गया था। प्रतिवादी द्वारा नोटिस की प्राप्ति लिखित बयान में स्वीकार की जाती है। प्रतिवादी ने नोटिस की वैधता के बारे में कोई विशेष आपत्ति नहीं उठाई है। धारा 106 टीपी अधिनियम के तहत नोटिस की अमान्यता या दुर्बलता के बारे में आपत्ति विशेष रूप से और जल्द से जल्द

उठाई जानी चाहिए; अन्यथा यह माना जाएगा कि मौजूद होने पर भी इसे माफ कर दिया गया है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रस्तुत मामले में नोटिस किसी भी दुर्बलता से ग्रस्त है। नोटिस की एक प्रति प्रदर्शित की गई और वादी द्वारा प्रदर्श पी-4 के रूप में साबित किया गया।

21. उपरोक्त पैराग्राफ के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि एक बार कानूनी नोटिस की सामग्री को 1.5.2014 के अपने उत्तर में विवादित नहीं किया गया है और लिखित बयान दाखिल करते समय आपत्ति नहीं उठाई गई है, इसलिए इस स्तर पर इसे नहीं उठाया जा सकता है, इसलिए, याचिकाकर्ता के तर्क में इस बिंदु पर कोई सार नहीं है।

22. दूसरा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 14 और 15 की प्रयोज्यता के बारे में इस तथ्य के प्रकाश में मुद्दा उठाया कि वाद के चार पृष्ठों पर वादी-प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे और वह इसे समझ नहीं सका क्योंकि यह अंग्रेजी में लिखा गया था। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस दलील का भी खंडन किया गया कि सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 14 और 15 प्रस्तुत मामले में 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 34 के साथ नियम 1972 के नियम 22 सपठित नियम, 1972 के नियम 22 के आलोक में लागू नहीं होंगे। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 38 का प्रावधान सि०प्र०स० और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों पर प्रबल होगा। अतः 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम-13 की धारा 34 और 38 अनिवार्य प्रावधान हैं तथा इन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:-

धारा 3, 4, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-13 वर्ष 1972

34. विभिन्न प्राधिकरणों की शक्तियां और उनके द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया (1) जिला मजिस्ट्रेट, विहित प्राधिकारी या कोई 1[अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी] इस अधिनियम के अधीन कोई जांच या सुनवाई करने के प्रयोजनों के लिए 2 [कोई अपील या पुनरीक्षण] वही शक्तियाँ होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन दीवानी न्यायालय में निहित हैं, 1908 (1908 का अधिनियम संख्या-V), निम्नलिखित मामलों के संबंध में, एक सूट का विचारण करते समय, अर्थात्-

(क) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसकी उपस्थिति को प्रवर्तित करना और शपथ पर

उसकी परीक्षा करना;

(ख) शपथ पत्र पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(ग) किसी भवन या उसके इलाके का निरीक्षण करना, या गवाहों या दस्तावेजों या स्थानीय

जांच की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना;

(घ) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन की आवश्यकता;

(ई) पुरस्कार, उस संबंध में बनाए गए किसी भी नियम के अधीन, किसी भी हिस्से को लागत

या विशेष लागत या किसी भी पक्ष से लागत के लिए सुरक्षा की आवश्यकता होती है;

(च) विधिपूर्ण करार, समझौता या संतुष्टि अभिलिखित करना और उसके अनुसार आदेश देना;

(छ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए।

(2) जिला मजिस्ट्रेट, विहित प्राधिकारी या 3[अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी], इस अधिनियम के अधीन जांच या सुनवाई करते समय [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 345 और धारा 346] के अर्थों के भीतर दीवानी न्यायालय समझा जाएगा और उसके समक्ष कोई कार्यवाही या भारतीय दंड संहिता (अधिनियम) की धारा 193 और 228 के अर्थाधीन न्यायिक कार्यवाही होगी; अधिनियम XLV वर्ष 1860

(3) जहां जिला मजिस्ट्रेट या विहित प्राधिकारी या 1[अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी] द्वारा इस अधिनियम के अधीन दी गई कोई लागत या अन्य धनराशि संदत्त नहीं रहती है वहां वह उसके संबंध में वसूली प्रमाणपत्र विहित प्रपत्र में जारी कर सकेगा और कोई व्यक्ति जिसके पक्ष में ऐसा प्रमाणपत्र जारी किया जाता है, प्रमाण पत्र में निर्दिष्ट राशि की वसूली के लिए, प्रान्तीय लघु कारण न्यायालय अधिनियम के अधीन अधिकारिता रखने वाले लघु कारणों के न्यायालय को आवेदन कर सकेगा। (1887 का अधिनियम संख्या-IX) ऐसा न्यायालय इसके बाद प्रमाण पत्र निष्पादित करेगा या उसी तरीके से और उसी प्रक्रिया द्वारा निष्पादित करेगा जैसे कि यह एक वाद में स्वयं द्वारा किए गए धन के भुगतान के लिए एक डिक्री थी।

(4) जहां किसी भवन के मानक किराए के अवधारण के लिए या उससे बेदखली के लिए किसी कार्यवाही के लिए कोई पक्षकार कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान मर जाता है, ऐसी कार्यवाही रिकॉर्ड पर लाने के बाद जारी रखी जा सकती है:
(ए) मकान मालिक या किरायेदार, उसके उत्तराधिकारियों या कानूनी प्रतिनिधियों के मामले में;

(ख) अनधिकृत अधिभोगी के मामले में, उसके अधीन दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति भवन के कब्जे में पाया गया।

(5) जहां कोई व्यक्ति जिला मजिस्ट्रेट या विहित प्राधिकारी के किसी आदेश के अनुसरण में या इस अधिनियम के अधीन अपील पर किया गया है वहां जिला मजिस्ट्रेट या विहित प्राधिकारी, यथास्थिति, उस निमित्त ऐसे व्यक्तियों को और ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, सूचना तामील या प्रकाशन के पश्चात् कर सकेगा, ऐसे भवन पर शेष किसी विशिष्ट संपत्ति को हटाना या निपटाना, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।
(6) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में फाइल किए जाने वाले शपथ पत्र उसी रीति

से किए जाएंगे और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं 5) के अधीन दायर शपथपत्रों के समान ही होंगे और खंड (ख) के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किसी अधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा या उक्त की धारा 139 के खंड (ग) के अधीन किसी अन्य न्यायालय द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा सत्यापित किए जा सकेंगे।

(7) जिला मजिस्ट्रेट, विहित प्राधिकारी या 2[अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी] इस अधिनियम के अधीन किए गए प्रत्येक आदेश के लिए कारण अभिलिखित करेगा।

(8) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिये और उससे सम्बन्धित प्रयोजनों के लिये उक्त प्राधिकारियों के पास ऐसी अन्य शक्तियाँ होंगी और 3[ऐसी प्रक्रिया, प्रमाण के सिद्धान्तों, परिसीमन के नियमों और मार्गदर्शी सिद्धान्तों का अनुसरण करेगा जो विहित किये जाएँ।

नियम, 1972 का नियम 22.

22. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (धारा 34 (1)(छ) के तहत शक्तियां- [जिला मजिस्ट्रेट, निर्धारित प्राधिकारी या अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकरण, अधिनियम के तहत कोई जांच करने या किसी अपील या पुनरीक्षण की सुनवाई करने के प्रयोजनों के लिए, वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत दीवानी न्यायालय में निहित हैं, (1908 का अधिनियम संख्या-V), जब एक वाद की कोशिश कर रहा है, निम्नलिखित मामलों के संबंध में, अर्थात्-

(क) किसी आवेदन, अपील या पुनरीक्षण को चूक के लिए खारिज करने और पर्याप्त कारण

के लिए इसे बहाल करने की शक्ति;

(ख) एकपक्षीय कार्यवाही करने और पर्याप्त कारण के लिए, एकपक्षीय पारित आदेश को रद्द

करने की शक्ति;

(ग) किसी असफल पक्ष के विरुद्ध किसी सफल पक्ष को लागत और विशेष लागत देने की शक्ति;

(घ) किसी आवेदन, अपील ज्ञापन या पुनरीक्षण के संशोधन की अनुमति देने की शक्ति;

(ई) अलग-अलग किरायेदारों के खिलाफ एक ही मकान मालिक द्वारा बेदखली के दो या

अधिक मामलों को समेकित करने की शक्ति;

(च) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम संख्या-V) की धारा 151 और 152

में निर्दिष्ट शक्ति न्याय के अंत का आदेश देने या संबंधित प्राधिकारी की प्रक्रिया के

अनुवादित

दुरुपयोग को रोकने के लिए।

1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-13 की धारा 38

"संपत्ति अधिनियम और सिविल प्रक्रिया संहिता के हस्तांतरण को ओवरराइड करने के लिए अधिनियम: -

इस अधिनियम के प्रावधान संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम (1882 का अधिनियम संख्या-IV), या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम संख्या-V) में निहित कुछ भी असंगत होने के बावजूद प्रभावी होंगे।

23. नियमावली, 1972 के नियम 22 सपठित 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं.-13 की धारा 34 में कुछ आकस्मिकताओं का प्रावधान है जिन पर सि०प्र०स० लागू होती है, जो ऐसी किसी भी आकस्मिकता पर विचार नहीं करती है, जो सि०प्र०स० के आदेश 6 नियम 14 और 15 का ध्यान आकर्षित करती है।

24. 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं0 13 की धारा 34 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सि०प्र०स० के प्रावधान उन परिस्थितियों में लागू होंगे, जो नियम, 1972 के नियम 22 सपठित धारा 34 में निर्दिष्ट हैं।

25. इसके अतिरिक्त 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं0 13 की धारा 38 के अवलोकन से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम सं.-13 का प्रावधान सि०प्र०स० एवं सम्पत्ति अंतरण अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होगा। अतः 1972 के नियम 1972 के नियम 22 सपठित धारा 34 एवं 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं0-13 के 38 के उपबन्ध के आलोक में आदेश 6 नियम 14 एवं 15 के उपबंध वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं होंगे।

26. इतना ही नहीं, याचिकाकर्ता ने एस.सी.सी. कोर्ट के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष भी इस आधार को नहीं लिया है, इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को इस मुद्दे को इस देरी से उठाए जाने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है।

27. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तीसरा मुद्दा 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20(4) सपठित सि०प्र०स० के आदेश 15 नियम 5 के अनुपालन के बारे में उठाया गया। यह तर्क दिया जाता है कि उसने 300/- रुपये की स्वीकृत दर पर मासिक आधार पर किराया जमा किया है, इसलिए, आशा रानी गुप्ता (उपरोक्त) और यूनिवर्सिटी बुक डिपो (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में, वह उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 20 (4) सपठित आदेश 15 नियम 5 के लाभ के हकदार हैं। 1972. उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"9.1 आदेश XV नियम 5 सि०प्र०स० के प्रावधानों से संबंधित कुछ बुनियादी कारकों को एक बार में देखा जा सकता है। इन प्रावधानों के अनुसार, पट्टे के निर्धारण के बाद पट्टेदार की बेदखली के लिए एक पट्टेदार द्वारा एक वाद में और उपयोग और कब्जे के लिए किराए या मुआवजे की वसूली के लिए, प्रतिवादी

दायित्व के तहत है: (1) उसके द्वारा स्वीकार की गई पूरी राशि को वाद की पहली सुनवाई पर या उससे पहले 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ जमा करना; और (2) वाद के लंबित रहने के दौरान इसके प्रोद्भवन के एक सप्ताह के भीतर नियमित रूप से देय मासिक राशि जमा करना। इनमें से किसी को भी जमा करने में चूक का परिणाम यह है कि न्यायालय अपने बचाव को रद्द कर सकता है। अभिव्यक्ति 'पहली सुनवाई' का अर्थ है लिखित बयान दाखिल करने की तारीख या सम्मन में उल्लिखित सुनवाई की तारीख; और कई तिथियों के मामले में, उनमें से अंतिम। अभिव्यक्ति 'मासिक देय राशि' का अर्थ है हर महीने देय राशि, चाहे किराए के रूप में या उपयोग और कब्जे के लिए नुकसान के रूप में करों को छोड़कर कोई अन्य कटौती करने के बाद किराए की स्वीकृत दर पर, यदि पट्टेदार के खाते पर स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किया जाता है। हालांकि, यह उम्मीद की जाती है कि बचाव को रद्द करने का आदेश देने से पहले, यदि पहली सुनवाई के 10 दिनों के भीतर या मासिक राशि के प्रोद्भवन की तारीख से एक सप्ताह की समाप्ति के 10 दिनों के भीतर किया जाता है, अदालत प्रतिवादी के प्रतिनिधित्व पर विचार करेगी ।

यूनिवर्सिटी बुक डिपो (उपरोक्त) के फैसले का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"पूर्वोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय का विचार है कि निचली अदालत ने भ्रागु दत्त सिंह (उपरोक्त) में निर्णय पर भरोसा करने में गलती की, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता की याचिका को खारिज करने के लिए अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान के तहत उसके द्वारा जमा की गई राशि को अधिनियम 1972 की धारा 20 (4) में निर्दिष्ट जमा राशि के रूप में माना जाता है। कानूनी स्थिति तय की गई है कि इस तरह की जमा राशि को धारा 20 (4) के तहत एक के रूप में मानने की अनुमति थी। इसे ऐसा मानने के बाद, अधिनियम, 1972 की धारा 20(4) की आवश्यकताओं को किस हद तक संतुष्ट किया गया था, यह एक अन्य पहलू था जिस पर निचली अदालत द्वारा विचार किया जाना आवश्यक था लेकिन उसने ऐसा नहीं किया है। जहां तक अधिवक्ता मोहम्मद अली खान के तर्क का संबंध है, सईद ने कहा कि उपरोक्त राशि को धारा 20 (4) के तहत एक के रूप में मानने के लिए पुनरीक्षणकर्ता द्वारा कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था। लच्छी राम मामले में निर्णय के मद्देनजर, इस तरह का अनुरोध मौखिक या लिखित हो सकता है। मामले का सार यह है कि सुनवाई की तारीख को या उससे पहले न्यायालय (कस्टोडिया लेजिस) के पास जमा राशि थी या नहीं। यदि ऐसा था, तो इस तरह की जमा की सूचना धारा 20 (4) के तहत जमा के रूप में मानने और तदनुसार समायोजित करने के अनुरोध के साथ पर्याप्त है। यह सूचना और अनुरोध लिखित या मौखिक रूप से किया जा सकता है। वास्तव में, यह बेहतर होगा यदि इसे लिखित रूप में दिया जाए क्योंकि इससे इस मुद्दे पर अनावश्यक विवादों से बचा जा सकेगा, लेकिन यदि मौखिक अनुरोध किया जाता है, जैसा कि इस मामले में बहस के समय किया गया था, जैसा कि निर्णय में

उल्लेख किया गया है, तो ऐसी स्थिति में, एक बार निचली अदालत द्वारा इस तरह के अनुरोध का संज्ञान लिया गया है, जैसा कि इस मामले में किया गया है, तब इस याचिका को अस्वीकार्य मानकर खारिज नहीं किया जा सकता था।

28. उसी के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को स्वीकृत दर पर किराया जमा करना आवश्यक है।

29. वरिष्ठ अधिवक्ता ने उसी पर विवाद किया और तर्क दिया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को समय वर्जित अवधि के लिए राशि सहित पूरी राशि का भुगतान करना आवश्यक है। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने 1990 से किराया जमा नहीं किया है और एकपक्षीय डिक्री पारित करने के बाद, उसने एस.सी.सी. अधिनियम, 1887 की धारा 17 के अनुपालन में केवल डिक्री राशि जमा की है। उन्होंने संजय और अन्य बनाम श्रीमती विमला रानी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जो सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है: -

"12. वाद में, हालांकि नगरपालिका करों का दावा 1.10.1970 से किया गया था, लेकिन मूल्यांकन और अदालत शुल्क के प्रयोजनों के लिए, पिछले 3 वर्षों के बकाया को ध्यान में रखा गया था, क्योंकि शेष राशि तब से सीमा द्वारा वर्जित हो गई थी। अब यह स्पष्ट नहीं है कि अधिनियम की धारा 20(4) के उपबंध का लाभ लेने के लिए किरायेदार को समय-वर्जित किराया भी जमा करना होगा। अधिनियम की धारा 20(4) में नियोजित वाक्यांश "किरायेदार से देय भवन के उपयोग और कब्जे के लिए किराए और क्षति की पूरी राशि" में सुभाष चंद्र बनाम अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सहारनपुर में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित समयवर्जित किराए के संबंध में दावा भी शामिल है और महेश चंद्र बनाम द्वितीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, मेरठ में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले में यह स्वीकार करते हुए कि 11.2.1997 को जमा किए गए 1080/- रुपये वर्ष 1997 में वाद के संस्थित होने की तारीख से पहले पिछले तीन वर्षों के करों का प्रतिनिधित्व करते थे, वार्षिक मूल्य पर हाउस टैक्स @ 10% 1970 से लगाया गया था। हालांकि, 15.7.1972, जिस तारीख को 'अधिनियम' लागू हुआ, से अर्जित वार्षिक मूल्य का 10% @ जल कर का भुगतान करने की देयता, 15.7.1972 के बीच की अवधि के लिए नगरपालिका करों का बकाया सूट की संस्था के तीन साल से पहले, एक बड़ी राशि का प्रतिनिधित्व करता है, जो कई महीनों के किराए से बहुत अधिक है। उक्त राशि सुनवाई की पहली तारीख को या उससे पहले जमा नहीं की गई थी। नतीजतन, इस न्यायालय को अदालतों द्वारा दर्ज किए गए समवर्ती निष्कर्षों में कोई अवैधता नहीं मिलती है कि याचिकाकर्ताओं ने नगरपालिका करों की पूरी बकाया राशि जमा नहीं की है और इस प्रकार अधिनियम की धारा 20(4) के लाभ के हकदार नहीं थे।

30. पूर्वोक्त निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफ के अवलोकन से, यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि

1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20(4) का लाभ लेने के लिए, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की ओर से समयबद्ध अवधि के लिए राशि सहित पूरी बकाया राशि जमा करना आवश्यक है। याचिकाकर्ता का यह स्वीकृत मामला है कि उसने 1990 से किराया जमा नहीं किया है और एस.सी.सी. अधिनियम, 1887 की धारा 17 का अनुपालन करते हुए सि०प्र०स० के आदेश 15 नियम 5 के तहत आवेदन दाखिल करते समय एकपक्षीय डिक्री के बाद, उसने केवल डिक्री राशि जमा की थी, इसलिए, पूर्वोक्त निर्णय के आलोक में, 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 20 (4) का लाभ याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के पक्ष में नहीं दिया जा सकता है। इसलिए, आशा रानी गुप्ता और यूनिवर्सल बुक (उपरोक्त) के फैसले का वर्तमान विवाद के साथ-साथ मामले के ऐसे तथ्यों में कोई फायदा नहीं है।

31. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का एक अन्य तर्क कि बिक्री विलेख में 800/- रुपये की दर से किराया का उल्लेख किया गया था, जबकि कानूनी नोटिस के साथ-साथ वाद में, यह 750/- रुपये की दर से दावा किया गया था, लेकिन प्रतिवादी-वादी 750/- रुपये की दर से किराए का प्रमाण नहीं दे सका, इसलिए, इस आधार पर आदेश खराब है। प्रतिवादी-वादी के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भी इसका सही खंडन किया गया और प्रस्तुत किया गया कि हालांकि बिक्री विलेख में, किराया 800/- रुपये की दर से उल्लेख किया गया था, लेकिन कानूनी नोटिस के साथ-साथ वाद में, यह 750/- रुपये की दर से दावा किया गया था। जिसके खिलाफ, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी अपने मामले के अनुसार 300/- रुपये की दर से किराए की दर के बारे में कोई सबूत पेश नहीं कर सका।

32. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 750/- रुपये की दर से किराए की दर के बारे में न्यायालयों का समवर्ती निष्कर्ष है और आनंद कुमार (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है: -

"18. संविधान का अनुच्छेद 227 अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालयों को पर्यवेक्षी अधिकारिता प्रदान करता है। न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित और संकीर्ण है। यह निचली अदालतों के आदेशों में त्रुटियों को ठीक करने के लिए नहीं है, बल्कि अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य किए बिना कानून और अधिकार क्षेत्र की प्रकट और स्पष्ट त्रुटियों को दूर करने के लिए है। इस संवैधानिक उपबंध के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह निचली अदालतों और अधिकरणों को अपने प्राधिकार की सीमा के भीतर रखे और यह देखे कि वे वही करें जो उनके कर्त्तव्य की अपेक्षा है और वे इसे विधिक तरीके से करें। जब तक न्याय की कोई गंभीर हत्या/हानि नहीं हुई या हस्तक्षेप के लिए कानून का घोर उल्लंघन नहीं हुआ, तब तक संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च

न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता। वरयाम सिंह और अन्य बनाम अमरनाथ और अन्य ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 215, (पृष्ठ -571 पर) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त अधीक्षण की यह शक्ति, जैसा कि डालमिया जैन एयरवेज लिमिटेड बनाम सुकुमार मुखर्जी ए.आई.आर. 1951 कलकत्ता 193 में हैरीस, सीजे द्वारा इंगित किया गया है, का प्रयोग सबसे संयम से और केवल उपयुक्त मामलों में अधीनस्थ न्यायालयों को उनके अधिकार की सीमा के भीतर रखने के लिए किया जाना चाहिए न कि केवल त्रुटियों को सुधारने के लिए।

22. यह शक्ति अपीलीय शक्ति की शक्ति की प्रकृति में नहीं है जो न्यायालय को साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन के लिए सक्षम बनाती है। न्यायालय सक्षम वैधानिक प्राधिकारी द्वारा केवल साक्ष्य की अपर्याप्तता के आधार पर निष्कर्ष को बदल नहीं सकता है। (भारत संघ और अन्य बनाम हिम्मत सिंह चाहर, (1999) 4 एस.सी.सी. 521)

33. तथ्यों के वर्तमान सेट में, मौखिक और दस्तावेजी सबूतों पर विचार के आधार पर निचली दोनों अदालतों द्वारा तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं कि विवादित दुकान का निर्माण वर्ष 1987/1988 में किया गया था और पहला मूल्यांकन वर्ष 1992 से प्रभावी किया गया था और याचिकाकर्ता प्रतिवादी ने किराए के भुगतान में चूक की थी। ये निष्कर्ष रिकॉर्ड पर सामग्री के विचार के आधार पर तथ्य के निष्कर्ष हैं। आक्षेपित निर्णय में दर्ज निष्कर्ष, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप करने के लिए किसी भी प्रकट त्रुटि से ग्रस्त नहीं हैं, क्योंकि याचिकाकर्ता प्रतिवादी यह प्रदर्शित करने में पूरी तरह से विफल रहा है कि निष्कर्ष इतने विकृत या इतने अनुचित हैं कि कोई भी अदालत कभी भी उन तक नहीं पहुंच सकती थी। अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति अपीलीय शक्ति की प्रकृति में नहीं है जो उच्च न्यायालय को साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करने और केवल साक्ष्य की अपर्याप्तता के आधार पर निचली अदालत द्वारा निष्कर्ष को बदलने में सक्षम बनाता है। याचिकाकर्ता प्रतिवादी द्वारा यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया जा सकता है कि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत हैं। इसलिए, अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार को निचली अदालतों द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। किसी भी दर पर, जब तक निष्कर्ष कुछ सामग्री पर आधारित होते हैं जो इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त उच्चतम न्यायालय के विभिन्न फैसलों का संदर्भ स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

33. यह निर्विवाद है कि प्रतिवादी-वादी के पक्ष में इस मुद्दे पर न्यायालयों का समवर्ती निष्कर्ष है। पूर्वोक्त निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफ के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि न्यायालय का समवर्ती निष्कर्ष है कि न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित और संकीर्ण है, इसलिए, भारत

के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

34. विचाराधीन संपत्ति की घोषणा के बारे में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का अंतिम तर्क अधिनियम, 1962 की धारा 23 के प्रावधानों के तहत झुग्गी क्षेत्र के रूप में अधिसूचित है, इसलिए, कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती है। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इसका वैध रूप से विरोध किया गया और प्रस्तुत किया गया कि न केवल स्लम क्षेत्र की घोषणा के बाद, बल्कि अधिसूचना के बाद विवादित संपत्ति प्राप्त करने के बाद भी, मुकदमा बनाए रखने योग्य है और डिक्री पारित की जा सकती है। उन्होंने श्रीमती फूला देवी (उपरोक्त) और श्रीमती शकुंतला (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले के अपने तर्क का समर्थन किया।

35. विवाद का मूल्यांकन करने के लिए अधिनियम की धारा 23 नीचे उद्धृत की गई है: -

अधिनियम, 1962 की धारा 23

23- स्लम क्षेत्रों में किरायेदार को सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना बेदखल नहीं किया जाएगा- (1) किसी किरायेदार को किसी भवन या भू-स्लम क्षेत्र से बेदखल करने के लिए कोई डिक्री या आदेश, इसके बाद प्रदान किए गए के अलावा और ऐसे समय तक निष्पादित किए जाने में सक्षम नहीं होगा; किसी अन्य कानून में निहित कुछ भी इसके विपरीत समय के लिए लागू होने के बावजूद।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी डिक्री या आदेश को उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार सक्षम प्राधिकारी की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् निष्पादन में लगाया जा सकेगा।

(3) उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी की अनुमति अभिप्राप्त करने के लिये आवेदन ऐसे प्रारूप में किया जायेगा और उसमें ऐसे विवरण अंतर्विष्ट किये जायेंगे जो विहित किये जाये।

(4) ऐसे आवेदन की प्राप्ति पर, सक्षम प्राधिकारी की अनुमति, आवेदक और किरायेदार को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करने के पश्चात् और मामले की परिस्थितियों में ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, वहां यह राय हो सकेगी कि डिक्री या आदेश का निष्पादन अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन के लिए पराजित या हानिकर होगा, आवेदन को अस्वीकार करें लेकिन अन्य सभी मामलों में इसे प्रदान करें।

(5) जहां सक्षम प्राधिकारी अनुमति देने से इंकार करता है वहां वह ऐसे इंकार के कारणों को संक्षेप में अभिलिखित करेगा और आवेदक को उसकी एक प्रति उपलब्ध कराएगा।

36. फूला देवी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले में इसकी व्याख्या की गई थी। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है: -

"22. शीला जवाहरलाल नागोरी और अन्य बनाम कांतिलाल नाथमल बलडोटा और अन्य 2014 (3) एआरसी (5) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना भी उचित होगा,

अनुवादित

जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि मकान मालिक किरायेदार के खिलाफ बेदखली के लिए एक मुकदमा बनाए रख सकता है, भले ही किरायेदार संपत्ति का अधिग्रहण किया गया हो और भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधान के तहत उसके संबंध में एक पुरस्कार पारित किया गया हो। इसके अलावा, राजू सविता (उपरोक्त) के मामले में इस अदालत ने माना है कि बेदखली के लिए एक मुकदमे में, केवल मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते को देखा जाना चाहिए।

23. पूर्वोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि मकान मालिक और किरायेदार का संबंध प्रतिवादी और याचिकाकर्ता के बीच स्थापित है, इसलिए, प्रतिवादी का मुकदमा बनाए रखने योग्य था। नतीजतन, इस अदालत को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की इस दलील में कोई दम नजर नहीं आता कि यह मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं था क्योंकि केडीए द्वारा वाद संपत्ति के अधिग्रहण पर, वाद संपत्ति पर प्रतिवादी की टाइल? गायब हो गई थी और मकान मालिक और किरायेदार का संबंध पक्षों के बीच अस्तित्व में नहीं था।

37. श्रीमती शकुंतला (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय में कानून के अनुपात का भी पालन किया जाता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है: -

पीठ ने कहा, "याचिकाकर्ताओं की दलील स्वीकार्य नहीं है। अधिनियम, 1962 की धारा 3 के अंतर्गत किसी क्षेत्र को स्लम क्षेत्र के रूप में घोषित करने से उक्त क्षेत्र में स्थित संपत्तियों का स्वत अधिग्रहण नहीं होता है।

अधिनियम, 1962 की धारा 23 में केवल यह प्रावधान है कि सक्षम प्राधिकारी की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही डिक्री अथवा आदेश को निष्पादित किया जा सकता है। अधिनियम, 1962 की धारा 23 किसी वाद के संस्थापन का प्रतिषेध नहीं करती है। उपरोक्त के अलावा, भले ही याचिकाकर्ताओं का दावा है कि झुग्गी क्षेत्र में भूमि का अधिग्रहण किया गया था, उक्त भूमि में स्थित भवन स्वचालित रूप से अधिग्रहण प्राधिकरण में निहित नहीं है।

मेरे उपरोक्त विचारों में, मैं रिट-ए संख्या-28288 वर्ष 2014 में न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 21.5.2014 और श्रीमती बानो बनाम अशद उल्ला खान और 4 अन्य, 2017 (3) एआरसी 807 में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ श्रीमती फूला देवी और 4 अन्य बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश न्यायालय संख्या-14, कानपुर नगर और 2 अन्य, 2020(2) एआरसी 610 में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के निर्णय का समर्थन करता हूं।

उपरोक्त कारणों से, याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे खारिज किया जाता है।

38. अधिनियम, 1962 की धारा 23 के अवलोकन से, यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना बेदखली नहीं की जा सकती है, लेकिन जहां तक बेदखली के लिए डिक्री या आदेश का संबंध है, अधिनियम, 1962 की धारा 23 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

39. अधिनियम, 1962 की धारा 23 और श्रीमती शकुंतला देवी और फूला देवी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों के संयुक्त अवलोकन से, यह एकदम स्पष्ट है कि मुकदमा पोषणीय है और निर्णय और डिक्री पारित की जा सकती है। इसलिए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की इस दलील में भी कोई बल नहीं है।

40. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ ऊपर चर्चा किए गए कानून के प्रकाश में, आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप के लिए कोई मामला नहीं बनता है। याचिका में बल नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 290

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2019

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 4405/2019

(सिविल)

श्रीमती सुरेंद्र कौर और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

विवेक गुप्ता और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री विजय मणि तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री पंकज अग्रवाल

ए. सिविल कानून - अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति - सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 - आदेश 41 नियम 27, धारा 107(1)(डी) - अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति का मूल सिद्धांत यह है कि अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति मांगने वाला व्यक्ति द्वारा यह स्थापित किया जाना चाहिए कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद भी ऐसे अतिरिक्त साक्ष्य पहली बार में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते थे। (पैरा 7)

सामान्य नियम के अनुसार, नियम 27 के उप-नियम (1) के अनुसार, अपीलीय न्यायालय को विचारणीय न्यायालय के समक्ष पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अपील पर निर्णय लेना होता है तथा अपील के निस्तारण के उद्देश्य से अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार नहीं करना होता है। धारा 107(1)(डी), हालांकि, सामान्य नियम के लिए एक अपवाद बनाती है, तथा अपीलीय न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य लेने का अधिकार देती है या आदेश 41 के नियम 27 में निर्धारित शर्तों के अधीन ऐसे साक्ष्य लेने की आवश्यकता होती है। (पैरा 6)

अपील के चरण में किसी पक्ष को अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने से पहले कुछ पूर्व शर्तें होती हैं, जिनमें विशेष रूप से ऐसी शर्तें शामिल होती हैं कि पक्ष समुचित तत्परता के बावजूद साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सकता है और उसे अपनी इच्छानुसार ऐसा

करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। (पैरा 11)

बी. अपीलीय न्यायालय को विचारणीय न्यायालय के समक्ष असफल पक्ष के साक्ष्य की कमज़ोरी को दूर करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं करना चाहिए, लेकिन अगर न्यायालय को पक्षों के बीच न्याय करने के लिए साक्ष्य की आवश्यकता हो तो यह अलग होगा। निर्णय सुनाने की क्षमता को न्यायालय के मन के अनुसार संतोषजनक निर्णय सुनाने की क्षमता के रूप में समझा जाना चाहिए। लेकिन केवल कठिनाई ही ऐसा निर्देश जारी करने के लिए पर्याप्त नहीं है। (पैरा 12)

सी. अनुच्छेद 227 के तहत प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग अत्यंत संयम से तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के भीतर किया जाना चाहिए। (पैरा 14)

याचिकाकर्ता उपर्युक्त कानूनी स्थिति पर विवाद नहीं कर पाए हैं। वे यह नहीं बता पाए हैं कि आदेश 41 नियम 27 (1) के तहत उल्लिखित पूर्व शर्तें उनके मामले में कैसे पूरी हुईं ताकि अतिरिक्त साक्ष्य को अपीलीय अदालत द्वारा स्वीकार किया जा सके, न ही वे निचली अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई ऐसी भौतिक त्रुटि या अनियमितता बता पाए हैं जिससे भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप का औचित्य सिद्ध हो सके। (पैरा 13, 15)

रिट याचिका निरस्त (एफ-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. शिवाजीराव निलंगेकर पाटिल और अन्य। बनाम महेश माधव गोसावी और अन्य, (1987) 1 एससीसी 227 (पैरा 7)
2. के.आर. मोहन रेड्डी बनाम नेट वर्क इंक., (2007) 14 एससीसी 257 (पैरा 10)
3. गुजरात राज्य बनाम महेंद्र कुमार परषोत्तम भाई देसाई (मृत) द्वारा एल.आर.एस., एआईआर 2006 एससी 1864 (पैरा 10)
4. ग्रेटर बॉम्बे नगर निगम बनाम लाल पंचम एवं अन्य, एआईआर 1965 एससी 1008 (पैरा 10)
5. कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम के.सी. सुब्रमण्यम एवं अन्य, (2014) 13 एससीसी 468 (पैरा 11)
6. पूर्वोत्तर रेलवे अम्न. बनाम भगवान दास, (2008) 8 एससीसी 511 (पैरा 12)
7. एन. कमलम बनाम अय्यासामी, (2001) 7 एससीसी 503 (पैरा 12)
8. भारत संघ बनाम इब्राहिम उद्दीन, (2012) 8 एससीसी 148 (पैरा 12)
9. ए. अंदिसामी चेट्टियार बनाम ए. सुभूराज चेट्टियार, (2015) 17 एससीसी 713 (पैरा 12)
10. शालिनी श्याम शेट्टी और अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटील, (2010) 8 सी सी 329 (परा 14)
11. राधे श्याम & अनर. वीएस छबि नाथ और अन्य., (2015) 5 सी सी 423 (परा 14)

वर्तमान याचिका में जिला न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.04.2019 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता-किरायेदार द्वारा आदेश 41 नियम 27 सी.पी.सी. के तहत अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत

करने की मांग वाली याचिका को निरस्त कर दिया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री विजय मणि तिवारी और प्रतिवादियों के विद्वान वकील श्री पंकज अग्रवाल को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका में जिला न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा यू.पी.यू.बी. अपील संख्या 15/2017 (श्रीमती सुरेन्द्र कौर एवं अन्य बनाम विवेक गुप्ता एवं अन्य) में पारित दिनांक 16.04.2019 के आदेश को चुनौती देने की मांग की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता-किरायेदार (आवेदन संख्या 11 गा) द्वारा आदेश 41 नियम 27 सी.पी.सी. के तहत अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की मांग को लेकर दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने आवेदन संख्या 11 जी.ए. पर भरोसा जताया है, जो अपील में दायर किया गया था और प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं के साक्ष्य को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक था क्योंकि पहले के वकील ने मामले को प्रभावी ढंग से आगे नहीं बढ़ाया और उचित सलाह नहीं दी और इस तरह यह आवश्यक था कि अपील के चरण में साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए।

4. निचली अदालत ने उपर्युक्त दलील को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि अतिरिक्त साक्ष्य केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 27 के प्रावधानों के अनुसार ही लिया जा सकता है, और उचित कानूनी सलाह का अभाव या असावधानी अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का आधार नहीं हो सकती।

5. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के अंतर्गत नियम 27 में उन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनमें अपीलीय न्यायालय अपील में अतिरिक्त साक्ष्य, चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, स्वीकार कर सकता है और वे निम्नलिखित हैं:

(i) जहां निचली अदालत ने अनुचित तरीके से उस साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया हो जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए था, या

(ii) जहां ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य पक्षकार के ज्ञान में नहीं था या सम्यक तत्परता बरतने के बाद भी उसके द्वारा उस समय प्रस्तुत नहीं किया जा सका था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील की गई थी, या

(iii) जहां अपीलीय न्यायालय को ऐसे साक्ष्य की आवश्यकता हो, या तो निर्णय सुनाने के लिए, या किसी अन्य महत्वपूर्ण कारण से।

6. सामान्य नियम के रूप में, नियम 27 के उपनियम (1) के अनुसार, अपीलीय न्यायालय को पक्षकारों द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अपील पर निर्णय करना होता है तथा अपील के निपटान के लिए अतिरिक्त साक्ष्य स्वीकार नहीं करना होता है। तथापि, धारा 107 (1) (डी) सामान्य

अनुवादित

नियम के लिए एक अपवाद बनाती है, और अपीलीय न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य लेने का अधिकार देती है या आदेश 41 के नियम 27 में निर्धारित शर्तों के अधीन ऐसे साक्ष्य लेने की आवश्यकता बताती है।

7. शिवाजीराव निलंगेकर पाटिल एवं अन्य बनाम महेश माधव गोसावी एवं अन्य मामले में यह माना गया कि अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति का मूल सिद्धांत यह है कि अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति चाहने वाले व्यक्ति को यह स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद भी ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य पहली बार में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। उपर्युक्त निर्णय में प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

"27..... अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति का मूल सिद्धांत यह है कि अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति चाहने वाले व्यक्ति को यह सिद्ध करने में सक्षम होना चाहिए कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद भी ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य प्रथम बार में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। दूसरे, अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकृति से प्रभावित पक्ष को ऐसे अतिरिक्त साक्ष्य का खंडन करने का अवसर मिलना चाहिए। तीसरा, यह कि मुद्दे के निर्धारण के लिए अतिरिक्त साक्ष्य प्रासंगिक थे....."

8. वर्तमान मामले में, अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए याचिकाकर्ताओं का आवेदन आदेश 41 नियम 27(1) के अंतर्गत उपनियम (एए) के अंतर्गत संदर्भित किया जा सकेगा।

9. उपर्युक्त उपनियम (एए) को सी.पी.सी. (संशोधन) अधिनियम 104, 1976 के अनुसार एक अन्य आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया था, जिस पर अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जा सकता है। नियम 27 (1) (एए) का आशय यह है कि जो पक्षकार, इसमें वर्णित कारणों से, ट्रायल कोर्ट में साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ था, उसे अपीलीय न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम बनाया जाना चाहिए। यदि आदेश 41 नियम 27(1) के अंतर्गत उपनियम (एए) लागू किया जाना है, तो यह दर्शाने का दायित्व आवेदक पर है कि उसमें विद्यमान तत्व या शर्तें पूरी होती हैं।

10. आदेश 41 नियम 27(1) के अंतर्गत उपनियम (एए) के आवेदन के लिए आवश्यक शर्तें **के.आर.मोहन रेड्डी बनाम नेट वर्क इंक** के मामले में विचारार्थ आईं। सर्वोच्च न्यायालय ने **गुजरात राज्य बनाम महेंद्र कुमार पुरुषोत्तमभाई देसाई (मृत) बाइ एल.आर**. और नगर निगम ग्रेटर बॉम्बे बनाम लाल पंचम और अन्य के मामले में पहले के निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, आदेश 41 नियम 27 (1) के तहत प्रावधानों के अनुसार अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने के संदर्भ में कहा कि यदि उप-नियम (एए) लागू किया जाना है, तो आवेदक पर यह दिखाने का दायित्व होगा कि उसमें वर्णित सामग्री या शर्तें संतुष्ट हैं, और यह भी एक अच्छा कारण दिखाया जाना चाहिए कि साक्ष्य को ट्रायल कोर्ट के समक्ष क्यों पेश नहीं किया गया। उपर्युक्त निर्णय में की गई टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

"15. दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने उक्त प्रश्नों पर विचार ही नहीं किया। जैसा कि पहले बताया गया है, उच्च न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की मानो सी.पी.सी. के आदेश XLI के नियम 27 के उपनियम (1) का खंड (बी) लागू होता है।

16. अब यह एक सामान्य कानून है कि आदेश XLI के नियम 27 के उपनियम (1) के खंड (एए) के आवेदन के लिए पूर्व शर्तें खंड (बी) से भिन्न हैं। यदि पूर्व को लागू किया जाना है, तो आवेदक को यह दिखाना होगा कि उसमें उल्लिखित तत्व या शर्तें संतुष्ट हैं। दूसरी ओर सीपीसी के आदेश XLI के नियम 27 के उपनियम (1) के खंड (बी) का सहारा लिया जाना है, अपीलीय न्यायालय रिकॉर्ड पर मौजूद सभी साक्ष्यों पर विचार करने और एक न्यायसंगत निर्णय पर पहुंचने के लिए एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बाध्य था; अपीलकर्ता द्वारा अनुरोध किए गए अतिरिक्त साक्ष्य को जोड़ना आवश्यक था।

17. हमारी राय में, यह तथ्य कि उच्च न्यायालय ऐसा करने में विफल रहा, कानून में गलत दिशा-निर्देश देने के समान है। इसके अलावा, यदि उच्च न्यायालय का यह विचार सही है कि वादी-प्रतिवादी ने इस आधार पर कार्यवाही की थी कि वाद पूरी तरह से चेक पर आधारित है, जिसके कारण उसके लिए निचली अदालत के समक्ष लेखा पुस्तकें दाखिल करना आवश्यक नहीं था, तो इसके विपरीत निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था कि वास्तव में इसे साबित करना आवश्यक था ताकि अपीलीय अदालत को न्यायसंगत निष्कर्ष पर पहुंचने में सक्षम बनाया जा सके।

18. सर्वोच्च न्यायालय ने **गुजरात राज्य बनाम महेंद्र कुमार पुरुषोत्तमभाई देसाई (मृत) बाइ एल.आर. एआईआर 2006 एससी 1864** में **नगर निगम ग्रेटर बॉम्बे बनाम लाल पंचम और अन्य** पर भरोसा करते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया:

यद्यपि अपीलीय न्यायालय को आदेश XLI नियम 27 सीपीसी के तहत दस्तावेज प्रस्तुत करने और गवाह की जांच करने की अनुमति देने की शक्ति है, उक्त न्यायालय की आवश्यकता उन मामलों तक ही सीमित होनी चाहिए जहां उसे निर्णय सुनाने में सक्षम होने के लिए ऐसा साक्ष्य प्राप्त करना आवश्यक लगता है। यह प्रावधान अपीलीय अदालत को अपीलीय स्तर पर नए साक्ष्य पेश करने का अधिकार नहीं देता, जहां ऐसे साक्ष्य के बिना भी वह मामले में निर्णय सुना सकती है। यह अपीलीय न्यायालय को केवल किसी विशेष तरीके से निर्णय सुनाने के प्रयोजनार्थ नए साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं देता।

19. अपीलीय न्यायालय को ऐसा आदेश पारित नहीं करना चाहिए जिससे कि निचली अदालत के समक्ष असफल पक्ष के साक्ष्य की कमजोरी को दूर किया जा सके, लेकिन यदि न्यायालय को स्वयं पक्षों के बीच न्याय करने के लिए साक्ष्य की आवश्यकता हो तो यह अलग बात होगी। निर्णय सुनाने की क्षमता को न्यायालय के मन के अनुसार संतोषजनक निर्णय सुनाने

की क्षमता के रूप में समझा जाना चाहिए। लेकिन केवल कठिनाई ही ऐसा निर्देश जारी करने के लिए पर्याप्त नहीं है। हालाँकि, ऐसा कहते हुए हमारा यह मतलब नहीं है कि उचित स्तर पर न्यायालय को खंड (बी) की प्रयोज्यता पर विचार करने से रोका जाएगा।"

11. आदेश 41 नियम 27 (1) (एए) के तहत अपीलीय स्तर पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों को कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम के.सी.सुब्रमण्यम और अन्य के मामले में पुनः बताया गया। निर्णय में की गई प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

"4. हालाँकि, हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं और आदेश 41 नियम 27(1)(एए) के मद्देनजर इसे अस्वीकार करना उचित समझते हैं, जिसमें स्पष्ट रूप से निम्नलिखित कहा गया है:

"27. (1)(a)***

(aa) अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की मांग करने वाला पक्ष यह सिद्ध करता है कि समुचित तत्परता बरतने के बावजूद, ऐसा साक्ष्य उसके ज्ञान में नहीं था या समुचित तत्परता बरतने के पश्चात्, उस समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील की गई थी, या

(b) ***"

इस प्रावधान के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पक्षकार अपीलीय स्तर पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता की मांग कर सकता है, लेकिन इसकी अनुमति केवल तभी दी जा सकती है जब प्रस्तुत किया जाने वाला साक्ष्य समुचित तत्परता बरतने के बावजूद परीक्षण के स्तर पर प्रस्तुत नहीं किया जा सका हो और साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका हो क्योंकि यह उसकी जानकारी में नहीं था और इसलिए अपीलकर्ता द्वारा अपीलीय फोरम के समक्ष प्रस्तुत किया जाना उपयुक्त था।

5. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी पक्ष को अपील के चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने से पहले कुछ पूर्व शर्तें हैं, जिनमें विशेष रूप से ऐसी शर्तें शामिल हैं कि पक्ष समुचित तत्परता के बावजूद साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका और उसे अपनी इच्छानुसार ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

12. **के. आर. मोहन रेड्डी बनाम नेट वर्क इंक., नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे एडमिन बनाम भगवान दास, एन. कमलम बनाम अय्यासामी और यूनियन ऑफ इंडिया बनाम इब्राहिम उद्दीन** के मामले में दिए गए निर्णयों पर भरोसा करते हुए, अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के संबंध में सिद्धांतों को **ए.अंदिसामी चेट्टियार बनाम ए.सुब्बुराज चेट्टियार** के मामले में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था, और यह कहा गया था कि जब तक आदेश 41 नियम 27 के तहत उल्लिखित शर्तें पूरी नहीं होती हैं, तब तक अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। निर्णय से संबंधित अंश इस प्रकार है:

"11. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में "कोड") की योजना के तहत, चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, यह ट्रायल कोर्ट ही है जिसके

समक्ष पक्षों को अपना साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। लेकिन तीन असाधारण परिस्थितियों में अपीलीय न्यायालय के समक्ष अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जैसा कि संहिता के आदेश 41 के नियम 27 के साथ धारा 107(1)(डी) के तहत प्रावधान किया गया है। आदेश 41 का नियम 27 इस प्रकार है:

"27. अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना.-(1) अपील के पक्षकार अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य, चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, प्रस्तुत करने के हकदार नहीं होंगे। लेकिन यदि- (a) जिस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई है उसने ऐसे साक्ष्य को स्वीकार करने से इंकार कर दिया है जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए था, या

(aa) अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की मांग करने वाला पक्ष यह सिद्ध करता है कि समुचित तत्परता बरतने के बावजूद, ऐसा साक्ष्य उसके ज्ञान में नहीं था या समुचित तत्परता बरतने के पश्चात्, उस समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील की गई थी, या

(b) अपीलीय न्यायालय को निर्णय सुनाने के लिए किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने या किसी गवाह से पूछताछ करने की आवश्यकता होती है, या किसी अन्य महत्वपूर्ण कारण से, अपीलीय न्यायालय ऐसे साक्ष्य या दस्तावेज को प्रस्तुत करने या गवाह से पूछताछ करने की अनुमति दे सकता है। (2) जहां कहीं भी अपीलीय न्यायालय द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है, वहां न्यायालय को उसके स्वीकार किए जाने का कारण दर्ज करना होगा।"

12. नियम 27 के उपनियम (1) के प्रारंभिक शब्दों से, जो ऊपर उद्धृत हैं, यह स्पष्ट है कि पक्षकार अपीलीय न्यायालय में मौखिक या दस्तावेजी अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के हकदार नहीं हैं, सिवाय ऊपर वर्णित तीन स्थितियों के। पक्षकारों को अपीलीय स्तर पर कमी को पूरा करने की अनुमति नहीं है। नियम 27 में उल्लिखित तीन शर्तों में से किसी एक को पूरा किए बिना किसी पक्ष को अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देना संहिता की भावना के विरुद्ध है। वर्तमान मामले में, दस्तावेज की वैज्ञानिक जांच की मांग करते हुए ट्रायल कोर्ट के समक्ष कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था (एक्सटेंशन ए-4), और न ही यह कहा जा सकता है कि वादी उचित तत्परता के साथ अपने द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों को साबित करने के लिए ऐसा आवेदन प्रस्तुत नहीं कर सकता था। अब यह देखना है कि तीसरी शर्त अर्थात नियम 27 के उपनियम (1) के खण्ड (ख) में निहित शर्त पूरी होती है या नहीं।

13. **के.आर. मोहन रेड्डी बनाम नेट वर्क इंक. [के.आर. मोहन रेड्डी बनाम नेट वर्क इंक., (2007) 14 एससीसी 257]** में इस न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: (एससीसी पृष्ठ 261, पैरा 19)

"19. अपीलीय न्यायालय को ऐसा आदेश पारित नहीं करना चाहिए जिससे कि निचली

अदालत के समक्ष असफल पक्ष के साक्ष्य की कमजोरी को दूर किया जा सके, लेकिन यदि न्यायालय स्वयं पक्षों के बीच न्याय करने के लिए साक्ष्य की अपेक्षा करता है तो यह अलग बात होगी। निर्णय सुनाने की क्षमता को न्यायालय के मन को संतुष्ट करने वाला निर्णय सुनाने की क्षमता के रूप में समझा जाना चाहिए। लेकिन केवल कठिनाई ही ऐसे निर्देश जारी करने के लिए पर्याप्त नहीं है।"

14. **नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे एडमिन बनाम भगवान दास [नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे एडमिन बनाम भगवान दास, (2008) 8 एससीसी 511]** में इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की: (एससीसी पृ. 515¬16, पैरा 13)

"13. यद्यपि सामान्य नियम यह है कि सामान्यतः अपीलीय न्यायालय को निचली अदालत के रिकार्ड से बाहर नहीं जाना चाहिए तथा अतिरिक्त साक्ष्य, चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, स्वीकार नहीं किया जाता है, किन्तु धारा 107 सीपीसी, जो सामान्य नियम के लिए अपवाद बनाती है, अपीलीय न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य लेने या ऐसे साक्ष्य को निर्धारित शर्तों और सीमाओं के अधीन लेने की आवश्यकता के लिए सक्षम बनाती है। ये शर्तें सीपीसी के आदेश 41 नियम 27 के तहत निर्धारित हैं। फिर भी, अतिरिक्त साक्ष्य को तभी स्वीकार किया जा सकता है जब उक्त नियम में निर्धारित परिस्थितियां मौजूद पाई जाती हैं।"

15. **एन.कमलम बनाम अय्यासामी [एन.कमलम बनाम अय्यासामी, (2001) 7 एससीसी 503]** में इस न्यायालय ने संहिता के आदेश 41 के नियम 27 की व्याख्या करते हुए पैरा 19 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:(एससीसी पृष्ठ 514)

"19. ... आदेश 41 नियम 27 के प्रावधानों को संहिता में शामिल नहीं किया गया है ताकि मामले में कमजोर बिंदुओं को ठीक किया जा सके और अपील की अदालत में चूक को भरा जा सके - यह साक्ष्य में किसी भी कमी या अंतराल को भरने के लिए अधिकृत नहीं करता है। अपीलीय न्यायालय को नए साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए दिया गया प्राधिकार और अधिकारिता एक विशेष तरीके से निर्णय सुनाने के उद्देश्य तक ही सीमित है।"

16. **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम इब्राहिम उद्दीन [यूनियन ऑफ इंडिया बनाम इब्राहिम उद्दीन, (2012) 8 एससीसी 148: (2012) 4 एससीसी (सिविल) 362]** में इस न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: (एससीसी पृष्ठ 171, पैरा 49)

"49. आदेश 41 नियम 27 सीपीसी के तहत एक आवेदन पर अपील की सुनवाई के समय गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेजों और/या साक्ष्य का शामिल मुद्दों पर कोई प्रासंगिकता/असर है या नहीं। अतिरिक्त साक्ष्य की स्वीकार्यता, विचाराधीन मुद्दे की प्रासंगिकता पर या इस तथ्य पर निर्भर नहीं करती है कि आवेदक को पहले चरण में ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिला था या

नहीं, बल्कि यह इस बात पर निर्भर करती है कि अपीलीय न्यायालय को निर्णय सुनाने के लिए या किसी अन्य महत्वपूर्ण कारण से प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की आवश्यकता है या नहीं। इसलिए, असली परीक्षा यह है कि क्या अपीलीय अदालत प्रस्तुत किए जाने वाले अतिरिक्त साक्ष्य पर विचार किए बिना अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर निर्णय सुनाने में सक्षम है।"

13. याचिकाकर्ताओं के वकील उपर्युक्त कानूनी स्थिति पर विवाद नहीं कर सके।

14. यह न्यायालय इस तथ्य पर भी ध्यान दे कि अनुच्छेद 227 के तहत प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और उन मापदंडों के भीतर किया जाना चाहिए, जिन्हें **शालिनी श्याम शेट्टी और अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल** के मामले में और **राधेश्याम और अन्य बनाम छवि नाथ और अन्य के मामले** में संक्षेप में बताया गया है।

15. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील यह बताने में सक्षम नहीं हैं कि आदेश 41 नियम 27 (1) के तहत उल्लिखित पूर्व शर्तें उनके मामले में कैसे संतुष्ट थीं ताकि अतिरिक्त साक्ष्य को अपीलीय अदालत द्वारा स्वीकार किया जा सके, न ही वे निचली अदालत द्वारा पारित आदेश में किसी भी भौतिक त्रुटि या अनियमितता को इंगित करने में सक्षम हैं ताकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप का औचित्य हो।

16. याचिका में कोई दम नहीं है, इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 296

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पडिया,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 5967/2022

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 5348 /2022

उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, लखनऊ

...याचिकाकर्ता

बनाम

भगवान श्री कृष्णा विराजमान और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री पुनित कुमार गुप्ता, कु. पूर्वा अग्रवाल, श्री नसीरुज्जमां, श्री डब्ल्यू.एच. खान (सीनियर एडवोकेट), श्री एस.एफ.ए. नकवी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री प्रभाष पांडे, श्री बीरेंद्र प्रसाद मौर्य, श्री कमलेश नारायण पांडे, एमएस. पूजा अगरवाल, श्री प्रभाष पांडे, एमएस. प्रियंका स्वामी, एमएस. रितु भारद्वाज, श्री प्रदीप शर्मा, एमआरएस. गरिमा प्रसाद, वरिष्ठ अधिवक्ता/ए. ए. जी.

ए. सिविल कानून - अनुच्छेद 226, 227 के तहत क्षेत्राधिकार- सीपीसी की धारा 26 के तहत विधिवत रूप से संस्थित एक वाद पंजीकृत की जानी चाहिए और सीपीसी की धारा 27 में निहित प्रावधानों के प्रकाश में, यदि वाद विधिवत संस्थित है, तो प्रतिवादियों को समन जारी किया जाना चाहिए। विचारणीय न्यायालय ने वाद को एक विविध मामले के

रूप में माना और वाद की स्थिरता के प्रश्न का निर्णय किया जो कानून में स्वीकार्य नहीं है। सिविल जज (एसडी) ने सीपीसी के आदेश 7 नियम 11 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग भी नहीं किया है और इसे एक विविध मामले के रूप में मानकर विधिवत प्रस्तुत वाद को निरस्त कर दिया है। सीपीसी में किसी भी नियमित मुकदमे को विविध मामले के रूप में पंजीकृत करने का कोई प्रावधान नहीं है। वादी ने कोई भी आवेदन दायर नहीं किया था जिसे एक विविध मामले के रूप में माना जा सके इसलिए विचारणीय न्यायालय ने मुकदमे को विविध मामले के रूप में पंजीकृत करने और इसे पोषणीयता के प्रश्न पर सुनवाई करने में स्पष्ट रूप से कानून की स्पष्ट त्रुटि की है। (पैरा 12, 17)

बी. यह सर्वविदित है कि यदि किसी आदेश या डिक्री के विरुद्ध अपील दायर की गई है, जिसके विरुद्ध कोई अपील स्वीकार्य नहीं है, तो न्यायालय उस अपील को पुनरीक्षण के रूप में मान सकता है। वादीगण ने 30.09.2020 के आदेश के विरुद्ध अपील दायर की थी, जिसमें आदेश को सीपीसी के नियम 11 के तहत पारित किया जाना माना गया था। जिला न्यायाधीश ने 18.01.2021 के आदेश द्वारा माना कि 30.09.2020 के आदेश को सीपीसी के नियम 11 के तहत आदेश नहीं माना जा सकता है और इसलिए यह माना कि अपील स्वीकार्य नहीं है, पुनरीक्षण स्वीकार्य है। 18.01.2021 के आदेश को चुनौती दी गई है और इसके बजाय पक्षों ने जिला न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण कार्यवाही में कई सुनवाइयों भाग लिया और उन्होंने अपने सभी तर्क प्रस्तुत किए। (पैरा 18)

सी. पुनरीक्षण कार्यवाही में जिला न्यायाधीश के समक्ष आर्थिक क्षेत्राधिकार की कमी के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी और इस मुद्दे को याचिकाकर्ताओं द्वारा अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार में इस न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि वाद के पैरा 83 में मुकदमे का मूल्यांकन 20,00,000 रुपये बताया गया है और सिविल कानून उत्तर प्रदेश (संशोधन) अधिनियम 2019 के अध्याय II के साथ सीपीसी की धारा 115 के प्रावधानों के अनुसार सीपीसी की धारा 115 के तहत 25,00,000 रुपये तक का पुनरीक्षण जिला न्यायाधीश के समक्ष होगा। (पैरा 18)

डी. प्रतिवादी उस समय सामने आता है जब उसे समन जारी किया जाता है। वाद खारिज करने के समय, सिविल जज (वरिष्ठ डिवीजन) ने प्रतिवादियों (यहां याचिकाकर्ताओं) को समन जारी नहीं किया था और इसलिए, मुकदमा दर्ज करने का सवाल अदालत और वादी के बीच था।

जिला न्यायाधीश ने प्रतिवादियों की ओर से उठाए गए तर्कों के आधार पर कई बिंदु बनाए, जैसा कि विवादित निर्णय में दर्ज है। इन सवालों पर निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि प्रतिवादी को अपना लिखित बयान दाखिल करने, उसमें तथ्यों और कानून से इनकार करने का अधिकार था, और न्यायालय को आदेश 14 नियम 1 सीपीसी के तहत तब मुद्दे तय करने थे और मुद्दे तय होने के बाद,

पक्षकारों को साक्ष्य पेश करने का अधिकार है। मुद्दे तय न किए जाने और पक्षों को साक्ष्य पेश करने की अनुमति न दिए जाने के कारण मामले पर निर्णय नहीं लिया जा सकता था। हालांकि, प्रारंभिक मुद्दों के सवाल पर निर्णय लेने की गुंजाइश थी, लेकिन प्रारंभिक मुद्दे क्या होंगे, यह भी आदेश XIV नियम 2(ii) सीपीसी के तहत तय किया जाना चाहिए क्योंकि यह न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है और किसी भी कानून द्वारा बनाया गया प्रतिबंध है। **कानून में निर्धारित पूरी प्रक्रिया को दरकिनार कर दिया गया है और मामले के गुण-दोष पर निष्कर्ष दिए गए हैं जो कानून में स्वीकार्य नहीं है।** (पैरा 19, 20)

ई. हस्तक्षेप की सीमा - एक नियमित सिविल मुकदमे की स्थिरता और उसके गुण-दोष से संबंधित प्रश्न, जो संहिता के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना ट्रायल कोर्ट द्वारा तय नहीं किया जा सकता था, और इसके अलावा विवादास्पद मुद्दे पर जिला न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षण याचिका में इन प्रश्नों पर निर्णय लेना आवश्यक नहीं था। किसी भी मामले में, इन प्रश्नों पर अब अनुच्छेद 227 के तहत याचिका में इस न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं लिया जा सकता। इस न्यायालय द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी दोनों पक्षों के अधिकारों और विवादों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। मुकदमा अब मुकदमा संख्या 353/2022 के रूप में पंजीकृत किया गया है। संबंधित लिखित बयान दाखिल करने और मुद्दों को तय करने के लिए विचारणीय न्यायालय द्वारा 26.05.2022 को समन पहले ही जारी किया जा चुका है। (पैरा 21)

जब मुकदमा ही पंजीकृत नहीं था, तो विविध मामले का मूल्यांकन पुनरीक्षण याचिका में आपत्ति का विषय कैसे हो सकता है। जिला न्यायाधीश द्वारा मामले की योग्यता पर दिए गए विभिन्न निष्कर्ष, यहां याचिकाकर्ताओं द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उठाए गए तर्कों के अनुसार किए गए थे। इन सवालों को भी इस माननीय न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र में तय नहीं किया जा सकता है। (पैरा 14, 15)

दोनों याचिकाओं का निस्तारण इस निर्देश के साथ किया जाता है कि मामले को विचारणीय न्यायालय में वापस भेज दिया जाए कि सिविल वाद संख्या 353/2022 पर जिला न्यायाधीश के दिनांक 19.05.2022 के आदेश के अनुसार किसी भी अवलोकन या निष्कर्षों से प्रभावित हुए बिना कानून के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए निर्णय लिया जाए। सभी पक्ष विचारणीय न्यायालय के समक्ष अपने सभी तर्क रखने के लिए स्वतंत्र हैं। (पैरा 22)

दोनों याचिकाओं का निस्तारण वाद को वापस विचारणीय न्यायालय को भेजकर किया जाता है। (ई-4)

वर्तमान याचिका में जिला न्यायाधीश मथुरा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.05.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.09.2020 को निरस्त कर दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पडिया, द्वारा प्रदत्त)

1. दोनों याचिका में याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डब्ल्यू एच खान के साथ विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता एस.एफ.ए. नकवी के सहायक अधिवक्ता श्री पुनीत कुमार गुप्ता, श्रीमती पूर्वा अग्रवाल एवं श्री नसीरूज्मा को सुना गया, साथ ही दोनों याचिकाओं में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत कुमार गुप्ता, सुश्री पूर्वा अग्रवाल और श्री नसीरुज्जमां एवं प्रत्यर्थी संख्या 1 से 8 के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के लिए अपर महाधिवक्ता/विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती गरिमा प्रसाद के साथ श्रीमती प्रियंका स्वामी, श्रीमती रितु भरद्वाज, श्रीमती पूजा अग्रवाल, श्री प्रभाष पाण्डेय एवं श्री प्रदीप शर्मा, एवं प्रत्यर्थी संख्या 10 के लिए श्री कमलेश नारायण एवं श्री कृष्ण जन्म भूमी ट्रस्ट द्वारा मैनेजिंग डायरेक्टर एवं प्रत्यर्थी संख्या 11 के लिए विद्वान अधिवकता श्री बिरेन्द्र प्रसाद मौर्या एवं श्री कृष्ण जन्म भूमि स्थान सेवा संस्थान द्वारा सचिव को सुना गया।

2. उपरोक्त याचिकाएं भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत जिला न्यायाधीश मथुरा द्वारा सिविल रिवीजन संख्या 02/2021 (भगवान श्री कृष्ण विराजमान बनाम यूपी सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और अन्य) में पारित दिनांक 19.05.2022 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई हैं, जिसके द्वारा विविध प्रकरण संख्या 176/2020 में सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग), मथुरा द्वारा पारित दिनांक 30.09.2020 के निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया गया है। समान प्रश्न उठाए गए हैं और इस प्रकार, दोनों मामलों को एक साथ लिया जाता है और पक्षों की सहमति से एक सामान्य आदेश द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी क्रमांक 1 से 9/वादी द्वारा 25.09.2020 को सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा की अदालत में एक नियमित सिविल मुकदमा दायर किया गया था, जिसमें कटरा केशव देव में स्थित 13.37 एकड़ विवादित संपत्ति पर अधिकार का दावा किया गया था, जो वादी के अनुसार भगवान कृष्ण की जन्मभूमि है और वहां खड़ी संरचना को हटाने के लिए और घोषणा, अनिवार्य और निषेधात्मक निषेधाज्ञा की प्रकृति में डिक्री जारी करने और कथित धोखाधड़ी वाले समझौता डिक्री दिनांक 20.07.1973 और 07.11.1974 को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी। निम्नलिखित राहतें मांगी गई थीं:

(क) वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादियों के विरुद्ध वाद पारित करना, दिनांक 20.07.1972 के निर्णय तथा डिक्री को तथा दिनांक 07.11.1974 के निर्णय तथा डिक्री को रद्द करना, जो सिविल वाद संख्या 43/1967 में विद्वान सिविल जज मथुरा द्वारा पारित किया गया था;

(ख) यह घोषित करना कि दिनांक 20.07.1973 का निर्णय तथा डिक्री तथा दिनांक 07.11.1974 के निर्णय तथा डिक्री तथा विद्वान सिविल जज, मथुरा द्वारा सिविल वाद संख्या 43/1967 में पारित किया गया था, वादी पर बाध्यकारी नहीं है;

(ग) कटरा केशव देव की 13.37 एकड़ भूमि, जो बाद में ए, बी, सी, डी के रूप में साइट प्लान में दर्शाई गई है, भगवान श्री कृष्ण

विराजमान को समर्पित है, यह घोषित करने के लिए वाद की डिक्री करें:

(घ) वादीगण के पक्ष में तथा प्रत्यर्थी संख्या 1 तथा 2 के विरुद्ध अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद की डिक्री करें, जिसमें उन्हें निर्देश दिया जाए कि वे कटरा केशव देव सिटी मथुरा के क्षेत्र में साइट प्लान में अक्षर संख्या ई, बी, जी, एफ में दर्शाई गई भूमि पर अतिक्रमण करके उनके द्वारा किए गए निर्माण को हटा दें तथा माननीय न्यायालय द्वारा दिए गए समय के भीतर खाली कब्जा श्री कृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट को सौंप दें;

(ङ) प्रत्यर्थी संख्या 1 तथा 2, उनके कार्यकर्ताओं, समर्थकों, व्यक्तियों, वकीलों तथा उनके अधीन कार्य करने वाले संदिग्ध व्यक्ति को कटरा केशव देव, सिटी तथा डिस्ट्रिक्ट मथुरा में 13.37 एकड़ भूमि के परिसर में प्रवेश करने से रोकने के लिए निषेधाज्ञा के लिए वाद की डिक्री करें;

(च) माननीय न्यायालय कोई अन्य डिक्री पारित कर सकता है जिसके लिए वादी हकदार पाए जाते हैं या जिसे न्याय के हित में पारित किया जाना आवश्यक हो सकता है;

(छ) मुकदमे की लागत का भुगतान करना।

4. जब 25.09.2020 को सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के समक्ष वाद प्रस्तुत किया गया, तो सिविल जज (एस.डी.) ने वाद को सिविल वाद के रूप में पंजीकृत नहीं किया और बदले में इस आधार पर मामले को विविध वाद के रूप में पंजीकृत कर दिया कि वादी संख्या 3 से 8 मथुरा के निवासी नहीं हैं, जबकि विचाराधीन संपत्ति जिला मथुरा में स्थित है। सिविल जज (एस.डी.) ने वाद को पंजीकृत करने के बजाय इसे प्रकीर्ण वाद संख्या 176/2020 के रूप में मानते हुए आदेश पारित किया और वाद की स्थिरता के प्रश्न पर सुनवाई की अगली तारीख 30.09.2020 तय की।

5. सिविल जज (एस.डी.) ने प्रकीर्ण मामला संख्या 176/2020 को इस आधार पर खारिज कर दिया कि प्रत्यर्थी भक्त/उपासक हैं और यदि मुकदमा दायर करने की अनुमति दी जाती है, तो सामाजिक और न्यायिक व्यवस्था विफल हो जाएगी और उन्हें मुकदमा करने का अधिकार नहीं है। दिनांक 30.05.2020 के आदेश का प्रभावी भाग इस प्रकार है:

"..8. यह सर्वविदित है कि भगवान श्री कृष्ण हिन्दू धर्म के आराध्य देव हैं तथा भगवान श्री विष्णु के अवतार के रूप में जाने जाते हैं। सम्पूर्ण विश्व में भगवान श्री कृष्ण के असंख्य भक्त एवं उपासक हैं, यदि इस प्रकार प्रत्येक भक्त एवं उपासक को मुकदमा दायर करने की अनुमति दी गई तो न्यायिक एवं सामाजिक व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी। निःसंदेह, आवेदकगण विचाराधीन डिक्री में पक्षकार नहीं हैं, न ही वे ट्रस्टी हैं। आवेदकगण को मात्र भक्त होने के आधार पर मुकदमा दायर करने की अनुमति प्रदान करना न्यायोचित एवं युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है तथा भक्त द्वारा मुकदमा दायर करना भी कानून की दृष्टि में उचित नहीं है।

9. उपरोक्त सभी विचार-विमर्श के बाद, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आवेदकों को वर्तमान मामले को प्रस्तुत करने के लिए मुकदमा करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार,

वर्तमान मामले को नियमित मुकदमे के रूप में पंजीकृत करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है। इसलिए, विविध मामला खारिज किए जाने योग्य है।

विविध मामला खारिज किया जाता है। फाइल रिकॉर्ड रूम को सौंप दी जाए।"

6. प्रत्यर्थी संख्या 1 से 9/वादी ने जिला न्यायाधीश मथुरा के समक्ष अपील संख्या 02/2021 दायर की। इस स्तर पर, 16.10.2020 को, जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ताओं (मुकदमे में प्रतिवादी) को नोटिस जारी किया। याचिकाकर्ताओं ने अपील की स्थिरता पर आपत्ति उठाते हुए आवेदन संख्या 66-जीए दायर किया। इस बीच, सिविल जज (एसडी) ने भी वादी के उस आवेदन को खारिज कर दिया, जिसमें उन्होंने इस आधार पर डिक्री की प्रति मांगी थी कि 30.09.2020 का आदेश आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत पारित नहीं किया गया था। तदनुसार, 18.01.2021 के आदेश के अनुसार, जिला न्यायाधीश ने माना कि 30.09.2020 के आदेश को आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आदेश नहीं माना जा सकता है, और इसलिए अपील स्थिरता योग्य नहीं थी। इस प्रकार अपील को पुनरीक्षण याचिका के रूप में पंजीकृत करने का निर्देश दिया गया जिसके परिणामस्वरूप इसे सिविल पुनरीक्षण संख्या 02/2021 के रूप में पंजीकृत किया गया।

7. पुनरीक्षण याचिका का निपटारा करते हुए, जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ताओं (मुकदमे के प्रतिवादी) की ओर से उठाए गए तर्कों के आधार पर कई बिंदु बनाए, अर्थात्:

(i) क्या दिनांक 30.09.2020 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण सुनवाई योग्य है या नहीं?

(ii) क्या देवता के अगले मित्र के रूप में एक उपासक देवता के धार्मिक अधिकारों की बहाली और पुनःस्थापना के लिए मुकदमा दायर कर सकता है?

(iii) क्या वादीगण धोखाधड़ी, गलत बयानी और मिलीभगत के आधार पर मथुरा के सिविल वाद संख्या 43/1967 में पारित समझौता निर्णय और डिक्री दिनांक 20.07.1973 और 07.11.1973 को चुनौती देने वाले मुकदमे को बनाए रखने के हकदार हैं?

(iv) क्या पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1991 के प्रावधान लागू होंगे या नहीं?

(v) क्या आक्षेपित आदेश में स्पष्ट कानूनी त्रुटि है और अधीनस्थ न्यायालय कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है?

8. जिला न्यायाधीश ने उपरोक्त प्रत्येक बिंदु पर विस्तृत निष्कर्ष दिए और अंततः 19.05.2022 के आक्षेपित निर्णय द्वारा 30.09.2020 के आदेश को रद्द कर दिया, जिसमें कहा गया कि विचारण न्यायालय ने अवैधता और स्पष्ट त्रुटि की है, जिससे विचारण न्यायालय को दोनों पक्षों को सुनने और पुनरीक्षण याचिका में उसके द्वारा की गई टिप्पणियों के आलोक में उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया।

9. प्रत्यर्थी संख्या 1 से 9 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सूचित किया कि आक्षेपित आदेश के बाद, मामला 26.05.2022 को विचारण न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध हुआ, जब सिविल वाद को मूल वाद संख्या 353/2022 के रूप में पंजीकृत किया गया और

विचारण न्यायालय द्वारा लिखित बयान दाखिल करने और मुद्दों को तैयार करने के लिए 01.07.2022 तय करते हुए समन जारी किए गए। इसके बाद, इस न्यायालय ने याचिका संख्या 5967/2022 में दिनांक 03.08.2022 के अंतरिम आदेश द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी।

10. दलीलें पूरी हो चुकी हैं। मैंने अभिलेखों का अवलोकन किया है और पक्षों को विस्तार से सुना है। पक्षों के अधिवक्ता की सहमति से, वर्तमान याचिका का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डब्ल्यू.एच. खान ने याचिका संख्या 5967/2022 में पुनरीक्षण न्यायालय के वित्तीय क्षेत्राधिकार का मुद्दा उठाया है और तर्क दिया है कि चूंकि वादपत्र का मूल्यांकन 42,26,230.40/- रुपये है, जो 25 लाख रुपये से अधिक है, इसलिए पुनरीक्षण याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष होगी। साथ ही, जिला न्यायाधीश ने सिविल अपील को सिविल पुनरीक्षण में परिवर्तित करके कानून की स्पष्ट त्रुटि की है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि जिला न्यायाधीश ने मुकदमे के विवादित प्रश्नों पर गुण-दोष के आधार पर निष्कर्ष देने में अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है और ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया है जो पूरी तरह से उनकी शक्तियों से परे है।

12. प्रत्यर्थी संख्या 1 से 9 के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती गरिमा प्रसाद ने तर्क दिया कि संशोधन न्यायालय के समक्ष एकमात्र प्रश्न यह था कि क्या एक नियमित सिविल मुकदमा सक्षम सिविल न्यायालय के समक्ष उचित प्रस्तुतिकरण पर सिविल मुकदमा के रूप में पंजीकृत करने से इनकार किया जा सकता है, और इसके बजाय क्या इसे विविध मामले के रूप में पंजीकृत और खारिज किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सीपीसी) में वाद को प्रकीर्ण मामले के रूप में विचार करने का कोई प्रावधान नहीं है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सीपीसी के आदेश IV का हवाला देते हैं जो उचित प्रस्तुतिकरण पर मुकदमे के पंजीकरण को अनिवार्य बनाता है, और आदेश XIV जो प्रारंभिक मुद्दों के साथ-साथ मुद्दों को तैयार करने का प्रावधान करता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने मुकदमे की स्थिरता के प्रश्न को गलत तरीके से तैयार करके और मुकदमे को पंजीकृत किए बिना ही उस पर निर्णय देकर मुकदमे को खारिज करने में गलती की, और इस प्रकार, जिला न्यायाधीश द्वारा इसे अपास्त करने का औचित्य था।

13. इस स्तर पर, प्रतिवादियों की ओर से पूर्वोक्त प्रस्तुतिकरण के संबंध में, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डब्ल्यू एच खान से एक विशिष्ट प्रश्न पूछा, जिस पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कानूनी स्थिति को निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया कि किसी भी सिविल मुकदमे पर किसी भी न्यायालय द्वारा किसी भी मुद्दे पर कोई निष्कर्ष तब तक नहीं दिया जा सकता जब

तक कि उसे सिविल मुकदमे के रूप में पंजीकृत नहीं किया जाता है और कानून के अनुसार प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है।

14. वित्तीय क्षेत्राधिकार की कमी के मुद्दे के जवाब में, प्रतिवादियों की विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती गरिमा प्रसाद ने प्रस्तुत किया कि जिला न्यायाधीश के समक्ष ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी और अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार में इस माननीय न्यायालय के समक्ष पहली बार ऐसा नहीं उठाया जा सकता है। इसके अलावा, मुकदमे के पैरा 83 में कहा गया है कि क्षेत्राधिकार के प्रयोजनों के लिए मुकदमे का मूल्यांकन केवल 20 लाख रुपये है, जबकि याचिकाकर्ताओं द्वारा जिस 42,26,230.40/- रुपये के आंकड़े पर भरोसा किया जा रहा है, उसका कहीं भी वादपत्र में उल्लेख नहीं है और यह उपरोक्त प्रयोजनों के लिए न्यायालय शुल्क के लिए मांगी गई राहतों का योग है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जब मुकदमा स्वयं पंजीकृत नहीं था, तो विविध मामले का मूल्यांकन संशोधन याचिका में आपत्ति का विषय कैसे हो सकता है। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी स्थिति में, ऐसे मामले में माननीय उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अपनी विवेकाधीन शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, क्योंकि भले ही किसी कारण से पुनरीक्षण न्यायालय अक्षम हो, पुनरीक्षण न्यायालय के पास रिकॉर्ड था और उसने सही कानूनी स्थिति को प्रभावी किया।

15. मामले के गुण-दोष पर जिला न्यायाधीश द्वारा दिए गए विभिन्न निष्कर्षों के जवाब में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती गरिमा प्रसाद ने कहा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उठाए गए तर्कों के मद्देनजर ये निष्कर्ष निकाले गए हैं। उन्होंने कहा कि इन प्रश्नों पर भी अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र में इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं लिया जा सकता है और आग्रह किया कि 03.08.2022 के स्थगन आदेश को निरस्त किया जाए और विचारण न्यायालय को कानून के अनुसार सिविल मुकदमे को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया जाए।

16. प्रत्यर्थी संख्या 10 और 11 के विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी संख्या 1 से 9 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के निवेदनों को अपनाते हैं।

17. सर्वप्रथम, अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि वादी द्वारा विधिवत् संस्थित सिविल वाद को सिविल न्यायाधीश (एस.डी.) द्वारा गलत तरीके से विविध मामले के रूप में पंजीकृत किया गया था। संहिता का आदेश IV वाद संस्थित करने का प्रावधान करता है। आदेश IV का नियम 1 कहता है कि वाद वाद पत्र प्रस्तुत करने से आरंभ होगा। आदेश IV का नियम 1(2) कहता है कि प्रत्येक वाद पत्र आदेश VI और VII के नियमों का पालन करेगा, जहां तक वे लागू होते हैं। आदेश VI अभिवचनों से संबंधित है और आदेश VII वाद पत्र की विषय-वस्तु से संबंधित है। वाद पत्र प्रस्तुत किए जाने पर, आदेश IV के नियम 2 के अंतर्गत, न्यायालय प्रत्येक वाद के विवरण पंजीकृत कराएगा। सीपीसी में किसी नियमित वाद को विविध मामले के रूप में पंजीकृत

करने का कोई प्रावधान नहीं है। विचारण न्यायालय ने शिकायत को एक विविध मामले के रूप में माना और मुकदमे की स्थिरता के सवाल पर फैसला किया जो कानून में स्वीकार्य नहीं है। सीपीसी की धारा 26 के तहत विधिवत रूप से दायर शिकायत को पंजीकृत किया जाना चाहिए और सीपीसी की धारा 27 में निहित प्रावधानों के प्रकाश में, यदि मुकदमा विधिवत रूप से पेश किया जाता है, तो प्रतिवादियों को समन जारी किया जाना चाहिए। यहाँ यह उल्लेख करना उल्लेखनीय है कि सिविल जज (एसडी) ने सीपीसी के आदेश 7 नियम 11 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग भी नहीं किया है और इसे एक विविध मामले के रूप में मानते हुए विधिवत प्रस्तुत शिकायत को खारिज कर दिया है। इसलिए विचारण न्यायालय ने मुकदमे को एक विविध मामले के रूप में पंजीकृत करने और स्थिरता के सवाल पर सुनवाई करने में स्पष्ट रूप से कानून की स्पष्ट त्रुटि की है।

18. वादीगण ने 30.09.2020 के आदेश के खिलाफ अपील दायर की थी, जिसमें आदेश को आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत पारित माना गया था। जिला न्यायाधीश ने 18.01.2021 के आदेश द्वारा माना कि 30.09.2020 के आदेश को आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है और इसलिए माना कि अपील सुनवाई योग्य नहीं थी, पुनरीक्षण सुनवाई योग्य थी और पुनरीक्षण को तदनुसार क्रमांकित करने का निर्देश दिया। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि किसी आदेश या डिक्री के खिलाफ अपील दायर की गई है जिसके खिलाफ कोई अपील सुनवाई योग्य नहीं है, तो न्यायालय अपील को पुनरीक्षण के रूप में मान सकता है। मुझे यह भी पता चला है कि 18.01.2021 के इस आदेश को चुनौती दी गई है और इसके बजाय पक्षों ने कई सुनवाई में जिला न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण कार्यवाही में भाग लिया और अपनी सभी दलीलें रखीं। पुनरीक्षण कार्यवाही में जिला न्यायाधीश के समक्ष आर्थिक क्षेत्राधिकार की कमी के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई और अनुच्छेद 227 के तहत अधिकारिता में इस न्यायालय के समक्ष पहली बार याचिकाकर्ताओं द्वारा इस मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह उल्लेखनीय है कि वाद के पैरा 83 में मुकदमे का मूल्यांकन 20,00,000 रुपये बताया गया है और सिविल कानून उत्तर प्रदेश (संशोधन) अधिनियम 2019 के अध्याय II के साथ सीपीसी की धारा 115 के प्रावधानों के अनुसार सीपीसी की धारा 115 के तहत 25,00,000 रुपये तक का पुनरीक्षण जिला न्यायाधीश के समक्ष होगा।

19. जिला न्यायाधीश ने प्रतिवादियों की ओर से उठाए गए तर्कों के आधार पर कई बिंदु बनाए, जैसा कि विवादित निर्णय में दर्ज है। इन सवालों पर निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि प्रत्यर्थी को अपना लिखित बयान दाखिल करने, उसमें तथ्यों और कानून से इनकार करने का अधिकार था, और फिर न्यायालय को आदेश 14 नियम 1 सीपीसी के तहत मुद्दे तय करने थे और मुद्दे तय होने के बाद, पक्षकारों को साक्ष्य पेश करने का अधिकार है। मुद्दों को तय किए बिना और पक्षों को साक्ष्य पेश करने की अनुमति दिए

बिना, मामले पर निर्णय नहीं लिया जा सकता था। हालांकि, प्रारंभिक मुद्दों के सवाल पर निर्णय लेने की गुंजाइश थी, लेकिन प्रारंभिक मुद्दे क्या होंगे, यह भी आदेश XIV नियम 2(ii) सीपीसी के तहत तय किया जाना चाहिए क्योंकि यह न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है और किसी भी कानून द्वारा बनाया गया प्रतिबंध है। कानून में निर्धारित पूरी प्रक्रिया को दरकिनार कर दिया गया है और मामले के गुण-दोष पर निष्कर्ष दिए गए हैं जो कानून में स्वीकार्य नहीं है।

20. मुकदमा खारिज करने के समय सिविल जज (सीनियर डिवीजन) ने प्रतिवादियों (यहां याचिकाकर्ताओं) को समन जारी नहीं किया था और इसलिए, मुकदमा दर्ज करने का सवाल अदालत और वादी के बीच था। प्रत्यर्थीउस समय सामने आता है जब उसे समन जारी किया जाता है।

21. यह न्यायालय इस बात से अवगत है कि एक नियमित सिविल मुकदमे की स्थिरता और उसके गुण-दोष से संबंधित प्रश्न, जो कि संहिता के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना विचारण न्यायालय द्वारा तय नहीं किए जा सकते थे, और इसके अलावा विवादास्पद प्रश्नों को जिला न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षण याचिका में तय करने की आवश्यकता नहीं थी। किसी भी मामले में, इन प्रश्नों को अब इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका में तय नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी दोनों पक्षों के अधिकारों और विवादों को प्रभावित करेगी। मुकदमा अब मुकदमा संख्या 353/2022 के रूप में पंजीकृत किया गया है। संबंधित लिखित बयान दाखिल करने और मुद्दों को तैयार करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा 26.05.2022 को समन पहले ही जारी किया जा चुका है।

22. उपरोक्त के आलोक में, दोनों याचिकाओं का निपटारा विचारण न्यायालय को वापस भेजते हुए किया जाता है, साथ ही निर्देश दिया जाता है कि सिविल सूट संख्या 353/2022 पर जिला न्यायाधीश के दिनांक 19.05.2022 के आदेश के अनुसार किसी भी अवलोकन या निष्कर्षों से प्रभावित हुए बिना कानून के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए निर्णय लिया जाए। सभी पक्ष विचारण न्यायालय के समक्ष अपने सभी तर्क रखने के लिए स्वतंत्र हैं।

(2023) 5 ILRA 303

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

रिट बी संख्या 229/2023

संलग्न

रिट बी संख्या 245/2023

और

रिट बी संख्या 232/2023

दिनेश चंद्र @ दिनेश चंद्र तिवारी एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उप संचालक चकबंदी, सुल्तानपुर एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: विवेक त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., प्रभात कुमार

ए. अभ्यास और प्रक्रिया - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 और 227 - रिट - पोषणीयता - शीर्षक वाद में राजस्व न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया था - जिसे निरस्त करने की मांग की गई थी - क्या उपाय अनुच्छेद 227 के तहत याचिका है या अनुच्छेद 226 के तहत-आयोजित, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सिविल कोर्ट के न्यायिक आदेश रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं और अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार से अलग है - राजस्व न्यायालय न्यायिक/सिविल न्यायालय नहीं है - राजस्व प्राधिकरण या समेकन प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश न्यायिक प्राधिकरण/सिविल न्यायालयों द्वारा पारित आदेश नहीं हैं - उच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाओं की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्तियों को निरस्त कर दिया। (पैरा 16, 22 और 27)

बी. उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 5(2) - चकबंदी न्यायालय - प्रकृति - चाहे वह सिविल न्यायालय हो या राजस्व न्यायालय - निर्णय दिया गया कि चकबंदी अधिकारियों को सिविल न्यायालय के अधिकारी नहीं माना जाएगा, तथापि, उन्हें कमोबेश राजस्व अधिकारी माना जाएगा - राजस्व अधिकारी/चकबंदी अधिकारी अपने न्यायिक/अर्धन्यायिक कार्यों का निर्वहन करते समय संविधि के तहत निर्धारित विशिष्ट अधिदेश और तंत्र का पालन करते थे और अक्सर, वे अधिकारी प्रशिक्षित न्यायिक अधिकारी नहीं होते हैं, लेकिन विशेष संविधि के तहत निर्धारित अधिकारी होने के कारण वे राजस्व/चकबंदी अधिकारी के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन करते हैं। इस तरह से, उन्हें सिविल न्यायालय के न्यायिक अधिकारियों के बराबर नहीं माना जा सकता है और इसलिए, वे न्यायिक/सिविल न्यायालय नहीं हैं। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि वे न्यायाधिकरण के रूप में अपने कर्तव्यों और कार्यों का निर्वहन करते हैं। (पैरा 14 और 26)

रिट याचिका की स्वीकार्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति निरस्त कर दी गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शालिनी श्याम शेट्टी और अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटील; (2010) 8 एससीसी329
2. सूरज सिंह बनाम उप संचालक चकबंदी, झांसी व अन्य; 2016 (34) एलसीडी 1860
3. राधे श्याम और अन्य बनाम छबि नाथ और अन्य; (2015) 5 सी सी 423
4. किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड और अन्य; (2021) एआईआर (एससी)1775
5. चकबंदी संख्या 9855 / 2018; पारस नाथ बनाम उप संचालक चकबंदी, अंबेडकर नगर व अन्य, दिनांक 05.07.2018 को निर्णीत
6. अनुच्छेद 227 संख्या 3626/2018 के अंतर्गत मामले; मेसर्स शिव बाबा इंडस्ट्री लालपुर, शाहजहांपुर बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य, दिनांक 28.05.2018 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान मामले में, पोषणीयता का प्रश्न उठाया गया है, इसलिए, बार के सदस्यों को

न्यायालय को संबोधित करने की अनुमति दी गई है। इसके अनुसरण में, श्री एम.ई. खान ने रिट याचिकाकर्ताओं के अन्य अधिवक्ताओं की सहायता से याचिकाकर्ताओं की ओर से बहस की है, श्री शैलेंद्र कुमार सिंह, मुख्य स्थायी अधिवक्ता- II, श्री रोहित नंदन शुक्ला, श्री आर.सी. तिवारी, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री उपेंद्र सिंह, श्री योगेश कुमार अवस्थी, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने राज्य की ओर से मामले पर बहस की है और श्री प्रभात कुमार ने रिट बी संख्या 229/2023 और श्री मोहन सिंह, गांव सभा के विद्वान अधिवक्ता की सहायता से निजी विपक्षी पक्षों की ओर से मामले पर बहस की है।

2. चूंकि समान प्रश्न का निर्णय किया जाना है, अर्थात रिट-बी संख्या 245/2023 और रिट-बी संख्या 232/2023 वाली रिट याचिकाओं में रिट याचिका की पोषणीयता, इसलिए, ये रिट याचिकाएँ साथ में हैं और उपरोक्त प्रश्न एक समान निर्णय द्वारा तय किया जाता है।

3. निजी विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभात कुमार ने 'राजस्व न्यायालयों' द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में आपत्ति उठाई है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के **शालिनी श्याम शेट्टी एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल, (2010) 8 एससीसी 329** के निर्णय और इस न्यायालय के **सूरज सिंह** (अब मृत एवं कानूनी वारिसों द्वारा प्रतिस्थापित) **बनाम उप संचालक चकबंदी, झांसी एवं अन्य, 2016 (34) एलसीडी 1860** के निर्णय पर भरोसा किया है।

4. रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में आपत्ति का एकमात्र आधार यह है कि स्वामित्व विवाद का निर्णय करने के लिए, चाहे वह दीवानी मामला हो या राजस्व मामला, उचित उपाय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका दायर करना नहीं होगा, बल्कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर की जानी चाहिए, इसलिए, श्री प्रभात कुमार के अनुसार, इस याचिका को खारिज किया जा सकता है।

5. उपरोक्त आपत्ति के जवाब में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि यह सही है कि प्रश्नगत विषय स्वामित्व विवाद से संबंधित है, लेकिन आदेश चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित किए जा रहे हैं, जो राजस्व प्राधिकारी नहीं हैं, इसलिए निजी विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **शालिनी श्याम शेट्टी** (उपरोक्त) और **सूरज सिंह** (उपरोक्त) के संबंध में उपरोक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए उठाई गई आपत्ति वर्तमान मामले में लागू नहीं होगी।

6. अगली तिथि पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (2015) 5 एससीसी 423** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए रिट याचिका की पोषणीयता के बिन्दु पर अपना पक्ष रखा, जिसमें **शालिनी**

अनुवादित

श्याम शेट्टी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार किया गया है।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **सूरज सिंह** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा जताया है, जो **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ **किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड और अन्य, (2021) एआईआर (एससी) 1775** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर आधारित है, जिसमें कहा गया है कि यदि राजस्व प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किया जाता है, तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट दायर की जा सकती है।

8. **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के विभिन्न प्रस्तरों का हवाला देते हुए, प्रस्तर-25 पर विशेष भरोसा किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि दीवानी न्यायालयों के आदेश न्यायिक/ दीवानी न्यायालयों के अलावा अन्य प्राधिकारियों या अधिकरणों या न्यायालयों के आदेशों से अलग हैं और याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यदि किसी न्यायिक अधिकारी/ दीवानी न्यायालय के आदेश पर आपत्ति की जाती है, तो याचिका संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की जानी चाहिए , लेकिन अन्य मामलों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर की जा सकती है। हालाँकि, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता और निजी विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने **राधे श्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के प्रस्तर 18 का हवाला दिया।

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने सिविल प्रकिया संहिता की धारा 3 का भी उल्लेख किया है, जो न्यायालयों की अधीनस्थता का प्रावधान करती है और सिविल प्रकिया संहिता की धारा 3 के अनुसार जिला न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन है और जिला न्यायालय से निम्न श्रेणी का प्रत्येक दीवानी न्यायालय तथा लघु वादों का प्रत्येक न्यायालय उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय के अधीन है। उन्होंने सिविल प्रकिया संहिता की धारा 5 का भी उद्धरण दिया है, जो राजस्व न्यायालयों पर संहिता के लागू होने का प्रावधान करती है। सिविल प्रकिया संहिता की धारा 5 की उपधारा 2 में प्रावधान है कि उपधारा (1) में "राजस्व न्यायालय" का अर्थ किसी स्थानीय विधि के तहत क्षेत्राधिकार रखने वाला न्यायालय है, जो कृषि प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के किराए, राजस्व या लाभ से संबंधित वादों या अन्य कार्यवाहियों पर विचार कर सकता है, लेकिन इसमें इस संहिता के तहत ऐसे वादों या कार्यवाहियों पर दीवानी प्रकृति के वादों या कार्यवाहियों के रूप में विचार करने का मूल अधिकार क्षेत्र रखने वाला दीवानी न्यायालय शामिल नहीं है।

10. उपरोक्त के दृष्टिगत, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि राजस्व न्यायालय जिला/ दीवानी न्यायालय से अलग है और **राधेश्याम** (उपरोक्त) में उल्लिखित प्रतिबंध केवल जिला/ दीवानी न्यायालय के लिए है, राजस्व न्यायालय के लिए नहीं, इसलिए **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के कथन का कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के निष्कर्ष और अवलोकन बहुत स्पष्ट हैं।

11. दीवानी न्यायालय और राजस्व न्यायालय के बीच अंतर को समझने के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे "सीपीसी" कहा जाएगा) की धारा 3 और 5 पर विचार करना होगा, जो इस प्रकार है:-

*"3. **न्यायालयों की अधीनस्थता** - इस संहिता के प्रयोजनों के लिए, जिला न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन है, और जिला न्यायालय से निम्न श्रेणी का प्रत्येक दीवानी न्यायालय तथा प्रत्येक लघु वाद न्यायालय उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय के अधीन है।*

*5. **संहिता का राजस्व न्यायालयों को लागू होना-** (1) जहां कोई राजस्व न्यायालय प्रक्रिया के उन मामलों में इस संहिता के प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं, जिन पर उन पर लागू कोई विशेष अधिनियम मौन है, वहां राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह घोषित कर सकती है कि उन प्रावधानों का कोई भाग जो इस संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से लागू नहीं किया गया है, उन न्यायालयों पर लागू नहीं होगा, या केवल उन संशोधनों के साथ लागू होगा जैसा कि राज्य सरकार निर्धारित कर सकती है।*

(2) उपधारा (1) में "राजस्व न्यायालय" से ऐसा न्यायालय अभिप्रेत है, जिसे कृषि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि के किराए, राजस्व या लाभ से संबंधित वादों या अन्य कार्यवाहियों पर विचार करने के लिए किसी स्थानीय कानून के अधीन अधिकारिता प्राप्त है, किन्तु इसमें ऐसा दीवानी न्यायालय सम्मिलित नहीं है, जिसे इस संहिता के अधीन ऐसे वादों या कार्यवाहियों पर दीवानी प्रकृति के वादों या कार्यवाहियों के रूप में विचारण करने का आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है।

12. उल्लेखनीय है कि धारा 5 (2) सी.पी.सी. में यह प्रावधान है कि कृषि प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के किराए, राजस्व या लाभ से संबंधित कार्यवाही राजस्व न्यायालयों द्वारा की जाएगी, न कि सी.पी.सी. के तहत ऐसे वादों या कार्यवाहियों पर दीवानी प्रकृति के वादों या कार्यवाहियों के रूप में विचारण करने के लिए मूल क्षेत्राधिकार रखने वाले दीवानी न्यायालय द्वारा। इसलिए, सी.पी.सी. से ही यह स्पष्ट है कि दीवानी न्यायालय, राजस्व न्यायालयों से भिन्न हैं।

13. उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा जाएगा) एक पूर्ण संहिता है, जो अनुचित आवंटन के संबंध में *चक धारक* की सभी शिकायतों का

निवारण प्रदान करता है, चाहे वह गलत मूल्यांकन, गलत स्थान निर्धारण या इसी प्रकार की अन्य आपत्ति के संबंध में हो। "चकबंदी" का अर्थ है अधिनियम की धारा 3 (2) के अनुसार एक इकाई में कई खातेदारों के बीच जोतों का इस प्रकार पुनर्व्यवस्थापन करना कि उनकी संबंधित जोतें अधिक सघन हो जाएं। "चकबंदी योजना" का अर्थ है अधिनियम की धारा 3 की धारा (3-बी) में प्रावधानित एक इकाई में चकबंदी की योजना। अधिनियम की धारा 4 में चकबंदी के संबंध में घोषणा और अधिसूचना का प्रावधान है। अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत घोषणा और अधिसूचना जारी होने के बाद चकबंदी कार्य शुरू होता है।

14. इसलिए, उपर्युक्त पक्ष पर विचार करते हुए, चकबंदी अधिकारियों को दीवानी न्यायालय के अधिकारी नहीं माना जा सकता है, हालांकि, उन्हें थोड़ा-बहुत राजस्व अधिकारी माना जा सकता है।

15. सर्वोच्च न्यायालय ने **राधेश्याम** (उपरोक्त) मामले में यह प्रश्न तय किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किन आदेशों पर आपत्ति की जा सकती है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत किन आदेशों पर आपत्ति की जा सकती है। **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में निर्णय की प्रासंगिक टिप्पणियां प्रस्तर 18 और 25 से 29 में दी गई हैं, जो इस प्रकार हैं:-

***"18.** जबकि उपरोक्त निर्णयों में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या न्यायिक आदेश मौलिक अधिकार का उल्लंघन कर सकता है, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि न्यायिक आदेशों को चुनौती अपील या पुनरीक्षण के माध्यम से या अनुच्छेद 227 के तहत दी जा सकती है, न कि अनुच्छेद 226 और 32 के तहत रिट के माध्यम से।*

***25.** यह सच है कि इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि इंग्लैंड में विशेषाधिकार रिट से जुड़ी तकनीकी बातों की हमारी संवैधानिक योजना के तहत कोई भूमिका नहीं है। भारत में किंग्स न्यायालय और किंग्स न्यायालय की देखरेख में सीमित क्षेत्राधिकार वाले अन्य सभी न्यायालयों की कोई समानांतर व्यवस्था नहीं है। न्यायालयों की स्थापना संविधान या कानूनों के तहत की जाती है। उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी न्यायालय इसके अधीनस्थ हैं और अनुच्छेद 227 के तहत इसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन हैं। सभी उच्च न्यायालयों को संवैधानिक रूप से रिट अधिकारिता प्रदान की गई है। इंग्लैंड में अपनाए जाने वाले रिट अधिकारिता के व्यापक सिद्धांत भारत में भी लागू होते हैं और न्यायिक न्यायालयों के अलावा अधिकरणों या प्राधिकारियों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से गलत या अधिकारिता रहित आदेशों के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट होती है। भारत में उच्च न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को रिट जारी करने का कोई उदाहरण नहीं है। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायिक आदेशों से निपटने में उनके कामकाज पर नियंत्रण अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियों या अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति के माध्यम से किया जाता है। सिविल*

अनुवादित

न्यायालय के आदेश न्यायिक/सिविल न्यायालयों के अलावा प्राधिकरणों या न्यायाधिकरणों या न्यायालयों के आदेशों से भिन्न होते हैं। जबकि अपीलीय या पुनरीक्षण अधिकारिता को क़ानून द्वारा विनियमित किया जाता है, अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति संवैधानिक है। अभिव्यक्ति "अवर न्यायालय" न्यायिक न्यायालयों के लिए संदर्भित नहीं है, जैसा कि ऊपर उद्धृत संदर्भ आदेश [राधे श्याम बनाम छवि नाथ, (2009) 5 एससीसी 616] प्रस्तर 26 और 27 में सही रूप से देखा गया है।

26. *सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] में पीठ ने अपने निर्णय के प्रस्तर 25 में यह भी अवलोकन किया कि अनुच्छेद 226 और 227 के बीच का अंतर लगभग मिट गया है। उक्त निर्णय के प्रस्तर 24 में दोनों अनुच्छेदों में अंतर को नोट किया गया है। इसको ध्यान में रखते हुए, यह टिप्पणी कि अनुच्छेद 226 और 227 का दायरा मिट गया है, सही नहीं थी जैसा कि ऊपर उद्धृत प्रस्तर 32 में संदर्भित पीठ ने सही ढंग से कहा है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि 1999 के अधिनियम 46 द्वारा धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में कटौती के बावजूद, अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार अप्रभावित रहता है, फिर भी कुछ क्षेत्रों में यह गलत धारणा बन गई है कि उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार किया गया है। अनुच्छेद 227 का दायरा कई निर्णयों में स्पष्ट किया गया है, जिनमें वरयाम सिंह बनाम अमरनाथ [एआईआर 1954 एससी 215: 1954 एससीआर 565], ओसेफ मथाई बनाम एम अब्दुल खादिर [(2002) 1 एससीसी 319], शालिनी श्याम शेट्टी बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल [(2010) 8 ससीसी 329: (2010) 3 एससीसी (सिविल) 338] और समीर सुरेश गुप्ता बनाम राहुल कुमार अग्रवाल [(2013) 9 एससीसी 374: (2013) 4 एससीसी (सिविल) 345] शामिल हैं। शालिनी श्याम शेट्टी [(2010) 8 एससीसी 329: (2010) 3 एससीसी (सिविल) 338] में इस न्यायालय ने टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 352, प्रस्तर 64-67)।*

"64. हालांकि, खेदजनक तौर से यह न्यायालय समझता है कि हाल ही में कई उच्च न्यायालयों में विशुद्ध संपत्ति विवादों के मामलों में रिट याचिका पर विचार करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। विभाजन के मुकदमों से संबंधित विवाद, डिक्री के निष्पादन से संबंधित मामले, मकान मालिक और किरायेदार के बीच विवाद के मामले और धन डिक्री के मामले में और विभिन्न अन्य मामलों में जहां संपत्ति के विवादित प्रश्न शामिल हैं, रिट न्यायालय ऐसे विवादों पर विचार कर रहे हैं। कुछ मामलों में उच्च न्यायालय, नियमित रूप से, ऐसे विवादों पर अनुच्छेद 227 के तहत याचिकाओं पर विचार करते हैं और ऐसी याचिकाओं को रिट याचिकाओं के रूप में माना जाता है।

65. हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि संपत्ति अधिकारों के मामलों में उपर्युक्त कानून के तहत और निजी व्यक्तियों के बीच विवादों में रिट न्यायालय को तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि कानून का कोई उल्लंघन न हो या यह साबित न हो जाए कि

कोई निजी व्यक्ति किसी वैधानिक प्राधिकरण के साथ मिलीभगत करके काम कर रहा है।

66. हम यह भी देख सकते हैं कि कुछ उच्च न्यायालयों में संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिकाओं को रिट याचिका कहकर स्वीकार करने की प्रवृत्ति है। सूर्य देव [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] में निर्णय लेने के कारण की गलत सराहना और सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 में हाल ही में किए गए संशोधन के तहत इसे उचित ठहराया जा रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि संशोधन के परिणामस्वरूप, धारा 115 सीपीसी का दायरा कम हो गया है। हमारे विचार में, भले ही धारा 115 सीपीसी का दायरा कम हो गया हो, लेकिन इससे उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति का विस्तार नहीं हुआ है। यह बहुत अच्छी तरह से ज्ञात है कि अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय को कानून के शासन का पालन करना चाहिए।

67. संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत माननीय उच्च न्यायालय द्वारा लंबित दीवानी और कभी-कभी आपराधिक मामलों में बार-बार हस्तक्षेप करने के परिणामस्वरूप, दीवानी और आपराधिक न्यायालयों द्वारा मामलों के निराकरण में और बाधा उत्पन्न होती है और इस प्रकार न्याय प्रशासन में गंभीर समस्याएं पैदा होती हैं। यह न्यायालय आशा करता है और विश्वास करता है कि अनुच्छेद 226 या 227 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, माननीय उच्च न्यायालय ऊपर चिरप्रचलित सिद्धांतों का पालन करेगा। उन सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा न्याय के उद्देश्यों के लिए तैयार किया गया है और उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार में न्याय के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में उनका सख्ती से पालन करेंगे।"

("बल दिया गया")

***27.** इस प्रकार, हमारा मानना है कि सिविल न्यायालयों के न्यायिक आदेश अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट के अधीन नहीं हैं। हम संदर्भित पीठ के इस दृष्टिकोण [राधेश्याम बनाम छवि नाथ, (2009) 5 एससीसी 616] से भी सहमत हैं कि परमादेश रिट किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ नहीं है जो कोई सार्वजनिक कर्तव्य नहीं निभा रहा है। अनुच्छेद 227 का दायरा अनुच्छेद 226 से अलग है।*

***28.** हम प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत इस तर्क पर भी विचार कर सकते हैं कि सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] में दिया गया दृष्टिकोण शैल [शैल बनाम मनोज कुमार, (2004) 4 एससीसी 785: 2004 एससीसी (क्रि) 1401] में बड़ी पीठो द्वारा अनुमोदित है, महेंद्र साड़ी एम्पोरियम (2) [महेंद्र साड़ी एम्पोरियम (2) बनाम जी.वी. श्रीनिवास मूर्ति, (2005) 1 एससीसी 481] और सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (2) [सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (2) बनाम भारत संघ, (2005) 6 एससीसी 344] और इस आधार पर उक्त दृष्टिकोण की शुद्धता पर यह पीठ विचार नहीं कर सकती। शैल [शैल बनाम मनोज कुमार, (2004) 4 एससीसी 785: 2004 एससीसी (क्रि) 1401] में, हालांकि सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] का*

संदर्भ दिया गया है, यह केवल अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति के दायरे के उद्देश्य के लिए है जैसा कि उक्त निर्णय के प्रस्तर 3 से स्पष्ट है। अनुच्छेद 226 के तहत याचिका की पोषणीयता के विषय पर कोई चर्चा नहीं की गई है। महेंद्र साड़ी एम्पोरियम (2) [महेंद्र साड़ी एम्पोरियम (2) बनाम जी.वी. श्रीनिवास मूर्ति, (2005) 1 एससीसी 481] में, सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] का संदर्भ निर्णय के प्रस्तर 9 में केवल इस कथन के लिए किया गया है कि कोई भी अधीनस्थ विधायन संविधान द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार को कम नहीं कर सकता है। इसी तरह, सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (2) [सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (2) बनाम भारत संघ, (2005) 6 एससीसी 344] प्रस्तर 40 में, सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] का संदर्भ उसी उद्देश्य के लिए है। इसलिए, हम प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

29. तदनुसार, हम इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं:

29.1. सिविल न्यायालय के न्यायिक आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं।

29.2. अनुच्छेद 227 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार से भिन्न है।

29.3. सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675 में विपरीत दृष्टिकोण को रद्द किया जाता है।

(बल दिया गया)

16. सर्वोच्च न्यायालय ने **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर-25 में स्पष्ट रूप से माना है कि अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार सभी उच्च न्यायालयों को प्रदान किया गया है, जिसके तहत अधिकरणो या प्राधिकारियों या न्यायालयों *'न्यायिक न्यायालयों के अलावा'* के स्पष्ट रूप से गलत या क्षेत्राधिकार रहित आदेशों के खिलाफ उत्प्रेषण रिट जारी की जा सकती है। न्यायिक आदेशों को चुनौती देने के लिए अनुच्छेद 227 के तहत रिट दायर की जा सकती है, क्योंकि उच्च न्यायालय को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि दीवानी न्यायालय के आदेश न्यायिक/दीवानी न्यायालयों के अलावा प्राधिकारियों या अधिकरणों या अन्य न्यायालयों के आदेशों से भिन्न हैं। **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष संदर्भित प्रश्न का उत्तर देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 29.1 और 29.2 में स्पष्ट रूप से माना है कि दीवानी न्यायालय के न्यायिक आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं और अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार

से अलग है।

17. श्री प्रभात कुमार ने इस न्यायालय का ध्यान सूरज सिंह (उपरोक्त) के संदर्भ में इस न्यायालय के निर्णय की ओर आकर्षित किया है, जिसमें इस न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश ने हालांकि यह टिप्पणी की है कि दीवानी न्यायालय के न्यायिक आदेश के विरुद्ध अनुच्छेद 226 के तहत रिट नहीं आएगी, बल्कि उस निर्णय में दिए गए कारण राजस्व न्यायालयों पर भी समान रूप से लागू होंगे।

18. निजी विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभात कुमार ने इस न्यायालय के **पारस नाथ बनाम उप संचालक चकबंदी, अंबेडकर नगर एवं अन्य, चकबंदी संख्या 9855/2018,** दिनांक 05.07.2018 के निर्णय का संदर्भ दिया है; जिसके तहत समान प्रकृति की रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत स्वीकार की गई है। उल्लेखनीय है कि **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और **सूरज सिंह** (उपरोक्त) के निर्णय पर विचार किया गया है और यह माना गया है कि **सूरज सिंह** (उपरोक्त) के संबंध में निर्णय इस प्रकार लागू होगा मानो वह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई हो। श्री प्रभात कुमार ने इस न्यायालय के दिनांक 28.05.2018 के निर्णय का संदर्भ देते हुए **मेसर्स शिव बाबा इंडस्ट्री लालपुर, शाहजहांपुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य, अनुच्छेद 227 संख्या 3626/2018** के अंतर्गत मामले का उल्लेख किया है, जिसके प्रस्तर-27 का उद्धरण देते हुए कहा है कि राजस्व न्यायालय/चकबंदी प्राधिकारियों के आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के बजाय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर की जानी चाहिए थी। **मेसर्स शिव बाबा इंडस्ट्री लालपुर, शाहजहांपुर** (उपरोक्त) के संबंध में प्रस्तर-27 इस प्रकार है:-

"27. इस प्रकार शालिनी श्याम शेट्टी (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के उनके माननीय न्यायाधीशों द्वारा सर्वसम्मत राय की लगातार अभिव्यक्ति और राधे श्याम (उपरोक्त) में उनके माननीय न्यायाधीशों की तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के बाद, उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय 22 के संशोधित नियमों पर पहले की गई किसी भी तरह की व्याख्या के बावजूद कोई आपत्ति नहीं रह जाती है कि संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका को कभी भी रिट याचिका के रूप में नहीं माना जा सकता है और इसे रिट याचिका के रूप में मानना निश्चित रूप से एक दोष है जो मामले की जड़ तक जाता है और इस तरह की याचिका को बनाए रखने योग्य नहीं बनाता है। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका को उसके द्वारा लागू किए जाने वाले क्षेत्राधिकार के अनुरूप होने के लिए दीवानी प्रकीर्ण आवेदन या आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है या किसी भी उपयुक्त नामकरण द्वारा नामित किया जा सकता है जो रिट शब्द के उपयोग से बचता है। इसके अतिरिक्त, अनुतोष खण्ड में संविधान के अनुच्छेद 226 में उल्लिखित रिट की प्रकृति के

किसी भी रिट या आदेश को जारी करने की मांग नहीं की जानी चाहिए, जिसमें परमादेश, उत्प्रेषण, प्रतिषेध या अधिकार-पृच्छा शामिल हैं। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत किसी मामले में अनुतोष न केवल आक्षेप के तहत आदेश को रद्द करने की मांग की जा सकती है, बल्कि उसी को उलटने और अधीनस्थ न्यायालय या अधिकरण में किए गए आवेदनों पर उसी तरह आगे के आदेश देने की मांग की जा सकती है, जैसे कि अपील या पुनरीक्षण न्यायालय, अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति के प्रयोग पर सीमाओं के अधीन, निजी पक्षों को उचित प्रकार के निषेधाज्ञा और निर्देश सहित पारित कर सकता है या आपराधिक कार्यवाही के संदर्भ में जैसे कि एक अंतरिम आदेश को उलटने से संबंधित है, पुनरीक्षण में विचारण न्यायालय और सत्र न्यायाधीश द्वारा एक साथ आरोपमुक्त करने से इनकार करना।"

19. उल्लेखनीय है कि, उक्त रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई थी और इस पर उसी अनुच्छेद के तहत विचार किया गया था।

20. किरण देवी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर विचार किया है। **किरण देवी** (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर संख्या 19 से 23 इस प्रकार है:-

***"19.** राधेश्याम बनाम छवि नाथ एवं अन्य, (2015) 5 एससीसी 423 के रूप में दर्ज किए गए मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य, (2003) 6 एससीसी 675 के निर्णय के प्रस्तर 25 में की गई टिप्पणियां अच्छी कानून नहीं हैं। सूर्य देव राय मामले में यह माना गया कि दीवानी न्यायालय के आदेश को अनुच्छेद 226 के तहत याचिका में चुनौती दी जा सकती है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के बीच का अंतर लगभग मिट चुका है। राधे श्याम मामले में इस न्यायालय ने कहा:*

"27. ... हमारा मानना है कि दीवानी न्यायालयों के न्यायिक आदेश अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट के अधीन नहीं हैं। हम संदर्भित पीठ के इस दृष्टिकोण [राधेश्याम बनाम छवि नाथ, (2009) 5 एससीसी 616] से भी सहमत हैं कि परमादेश रिट किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ नहीं है जो कोई सार्वजनिक कर्तव्य नहीं निभा रहा है। अनुच्छेद 227 का दायरा अनुच्छेद 226 से अलग है। xxxxxxxxx

29. तदनुसार, हम संदर्भित प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं:

29.1. दीवानी न्यायालय के न्यायिक आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं।

29.2. अनुच्छेद 227 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार से भिन्न है।

29.3. सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय, (2003) 6 एससीसी 675] में विपरीत दृष्टिकोण को रद्द किया जाता है।"

20. *इसलिए, जब वक्फ अधिकरण के किसी आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में याचिका दायर की जाती है, तो उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। इसलिए, यह पूरी तरह से अप्रासंगिक है कि याचिका को रिट याचिका के रूप में शीर्षक दिया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि कुछ उच्च न्यायालयों में अनुच्छेद 227 के तहत याचिका को रिट याचिका, कुछ अन्य उच्च न्यायालयों में पुनरीक्षण याचिका और कुछ अन्य में प्रकीर्ण याचिका कहा जाता है। तथापि, पारित आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के प्रावधान के आलोक में, उच्च न्यायालय ने केवल अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया। उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल वक्फ अधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की सत्यता, वैधता या औचित्य की जांच करने तक ही सीमित है। अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के प्रावधान के तहत प्रदत्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है।*

21. *हम श्री सान्याल द्वारा उठाए गए तर्क में बल पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष दायर याचिका के शीर्षक का नामकरण महत्वहीन है। अहमदाबाद शहर नगर निगम बनाम बेन हीराबेन मणिलाल, (1983) 2 एससीसी 422 में, इस न्यायालय ने माना कि सरकार द्वारा की गई कार्रवाई के तहत जिस शक्ति का गलत संदर्भ दिया गया था, वह कार्रवाई को गलत नहीं ठहराएगी, अगर उसे किसी अन्य शक्ति के तहत उचित ठहराया जा सकता है जिसके तहत सरकार उस कार्य को वैध रूप से कर सकती है। न्यायालय ने निम्नलिखित तौर पर माना :*

"5. ....यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी शक्ति का प्रयोग, यदि वास्तव में कोई शक्ति है, तो उस क्षेत्राधिकार को संदर्भित किया जा सकता है, जब उस शक्ति के प्रयोग की वैधता मुद्दा हो, जो उसे वैधता प्रदान करती है, न कि उस क्षेत्राधिकार को जिसके तहत यह निरर्थक होगी, हालांकि धारा को संदर्भित नहीं किया गया था, और विभिन्न प्रावधानों की एक अलग या गलत धारा का उल्लेख किया गया था। इस संबंध में पीताम्बर वजीरशेत बनाम धोंडू नवलपा [आईएलआर (1888) 12 बॉम 486, 489] में की गई टिप्पणियों को देखें। इस संबंध में एल. हजारी मल कुठियाला बनाम आईटीओ, स्पेशल सर्कल, अंबाला कैंट [एआईआर 1961 एससी 200:(1961) 1 एससीआर 892:(1961) 41 आईटीआर 12, 16 : (1961) 1 एससीजे 617] के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों को भी देखें। हुकुमचंद मिल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा इस बिंदु को फिर से दोहराया गया है। [एआईआर 1964 एससी 1329: (1964) 6 एससीआर 857: (1964) 52 आईटीआर 583: (1964) 1 एससीजे 561] जहां यह देखा गया कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जिस शक्ति के

तहत सरकार द्वारा कार्रवाई की गई थी, उसका गलत संदर्भ उस कार्रवाई को गलत नहीं ठहराएगा यदि इसे किसी अन्य शक्ति के तहत उचित ठहराया जा सकता है जिसके तहत सरकार वैध रूप से वह कार्य कर सकती है। नानी गोपाल बिस्वास बनाम हावड़ा नगर पालिका के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को भी देखें [एआईआर 1958 एससी 141: 1958 एससीआर 774: 1958 एससीजे 297: 1958 क्रि एलजे 271]।"

22. *बाद में, पेप्सी फूड्स लिमिटेड में, इस न्यायालय ने माना कि जिस नामावली के तहत याचिका दायर की गई है, वह पूरी तरह से प्रासंगिक नहीं है और यह न्यायालय को उसके क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है। यदि न्यायालय पाता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं कर सकते हैं, तो न्यायालय निश्चित रूप से याचिका को अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के तहत याचिका के रूप में मान सकता है। इस न्यायालय ने निम्नलिखित तौर पर माना :*

"26. जिस नामावली के तहत याचिका दायर की गई है वह पूरी तरह से प्रासंगिक नहीं है और यह न्यायालय को उसके क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है जब तक कि कोई विशेष प्रक्रिया निर्धारित न हो जो प्रक्रिया अनिवार्य है। यदि वर्तमान मामले जैसे मामले में न्यायालय पाता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते हैं, तो न्यायालय निश्चित रूप से याचिका को अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के तहत याचिका के रूप में मान सकता है। हालांकि, यह नहीं भूलना चाहिए कि संहिता में संशोधन और अपील के प्रावधान मौजूद हैं, लेकिन कभी-कभी तत्काल अनुतोष के लिए संहिता की धारा 482 या अनुच्छेद 227 का सहारा लेना पड़ सकता है, ताकि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की गई कुछ गंभीर त्रुटियों को ठीक किया जा सके। हालांकि, वर्तमान याचिका उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई है, लेकिन इसे संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत माना जा सकता है।"

23. *इसलिए, अनुच्छेद 226 के तहत दायर याचिका उच्च न्यायालय को अधिनियम और/या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकेगी। अधिकरण द्वारा किसी विवाद के निर्धारण की शुद्धता, वैधता और औचित्य की जांच करने का अधिकार उच्च न्यायालय के पास सुरक्षित है। कार्यवाही को अनुच्छेद 226 के तहत याचिका या अनुच्छेद 227 के तहत याचिका कहना पूरी तरह से अप्रासंगिक और महत्वहीन है।*

21. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता-द्वितीय श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह ने भी श्री प्रभात कुमार द्वारा उठाई गई आपत्ति को स्वीकार कर लिया है तथा तर्क दिया है कि यदि चकबंदी प्राधिकारियों या राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का उल्लंघन किया गया है तो अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका स्वीकार्य नहीं होगी। उन्होंने उन निर्णयों का भी उद्धरण दिया है, जिन्हें याचिकाकर्ताओं और श्री प्रभात कुमार के

विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है।

22. जैसा कि **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर-25 से 29 के माध्यम से ऊपर विचार किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने स्थिति स्पष्ट कर दी है। विशेष रूप से, **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर-25 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि न्यायिक/दीवानी न्यायालयों के अलावा अधिकरण या प्राधिकरणों या न्यायालयों के स्पष्ट रूप से गलत और क्षेत्राधिकार के बिना आदेश के खिलाफ उत्प्रेषण रिट दायर की जा सकती है। इसके अलावा, राजस्व न्यायालय न्यायिक/दीवानी न्यायालय नहीं है। **राधेश्याम** (उपरोक्त) के निर्णय में, **शालिनी श्याम शेट्टी** (उपरोक्त) के निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तर-26 में विचार किया गया है और **शालिनी श्याम शेट्टी** (उपरोक्त) के निर्णय पर विचार करने के बाद, **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने दीवानी न्यायालय और दीवानी न्यायालय के अलावा अन्य द्वारा पारित किए जा रहे आदेशों के बीच अंतर करते हुए कहा है कि दीवानी न्यायालय के न्यायिक आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं।

23. संबंधित पक्षों द्वारा उद्धृत निर्णयों में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के कथन पर भरोसा किया गया है। पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात पर सहमत हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में साफ और स्पष्ट रूप से टिप्पणी की है कि न्यायिक/दीवानी न्यायालयों द्वारा पारित किए जा रहे आदेशों और न्यायिक/दीवानी न्यायालयों के अलावा अन्य द्वारा पारित किए जा रहे आदेशों के संबंध में क्या होगा। अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक/दीवानी न्यायालयों के आदेशों के खिलाफ कोई रिट याचिका दायर नहीं की जाएगी और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के बीच स्पष्ट अंतर है। चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने यह नहीं माना है कि यदि न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्राधिकरण द्वारा अपनी वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए कोई आदेश पारित किया जाता है और भले ही वह प्राधिकरण न्यायिक/सिविल न्यायालय के अलावा अन्य हो, तो भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कोई रिट नहीं होगी, इसलिए **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के सममिति से कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, जिसे विशेष रूप से नहीं माना गया है। यदि **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशिष्ट और स्पष्ट निर्देश जारी किया गया है, तो कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए। यदि सर्वोच्च न्यायालय का यह विचार होता कि सभी न्यायिक प्राधिकारियों के आदेश, चाहे वे न्यायिक/दीवानी न्यायालय हों या राजस्व/चकबंदी न्यायालय/प्राधिकरण हों, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अनुपालनीय नहीं हैं, तो इस संबंध में विशिष्ट निर्देश दिया जाना चाहिए था, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **राधेश्याम** (उपरोक्त) के संबंध में निर्णय के प्रस्तर-29 में इस संबंध में कोई विशिष्ट निर्देश

नहीं दिया गया है। **किरण देवी** (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने पाया कि सर्वोच्च न्यायालय ने **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में सभी प्रासंगिक निर्णयों पर विचार किया है, जिसमें **शालिनी श्याम शेट्टी** (उपरोक्त) के मामले में दिया गया निर्णय भी शामिल है और माना है कि 'अनुच्छेद 226 के तहत' के रूप में प्रस्तुत याचिका उच्च न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकती है। मूलतः, उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार अधीनस्थ प्राधिकारी/न्यायालय द्वारा पारित किए जा रहे आदेशों की शुद्धता, वैधता और औचित्य की जांच करना है, कार्यवाही का अनुच्छेद 226 के तहत याचिका या अनुच्छेद 227 के तहत याचिका के रूप में नामकरण पूरी तरह से अप्रासंगिक और महत्वहीन है। **किरण देवी** (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस प्रकार की याचिकाओं पर विचार करने पर प्रतिबंध नहीं लगाया है, बल्कि यह टिप्पणी की है कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, कार्यवाही का नामकरण पूरी तरह से महत्वहीन होगा।

24. सर्वोच्च न्यायालय ने **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर 25 में प्रस्तर 18 की अपनी स्वयं की टिप्पणी पर विचार किया है। इसके अलावा, प्रस्तर 18 की टिप्पणी को **राधेश्याम** (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर 25 और 29 में दी गई टिप्पणी के आलोक में पढ़ा जा सकता है।

25. उपरोक्त के दृष्टिगत, जब **राधेश्याम** (उपरोक्त) और **किरण देवी** (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय का एक स्थापित कानून है और उपरोक्त मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों में स्पष्टता है, इसलिए, एक उच्च न्यायालय होने के नाते, मेरे पास सर्वोच्च न्यायालय के उन निर्देशों का अक्षरशः पालन करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। इसके अलावा, समकक्ष पीठ के निर्णय और आदेश बाध्यकारी नहीं हैं यदि उनके निर्देश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे निर्देशों के अनुरूप नहीं हैं।

26. न्यायालय और अधिकरणों के बीच स्पष्ट अंतर है। न्यायालय को सभी मामलों पर सामान्य अधिकारिता प्राप्त है, जबकि अधिकरणों को सीमित अधिकारिता प्राप्त है, जो विशिष्ट वैधानिक निर्देशों के अनुसार किसी विशेष प्रश्न/प्रश्नो पर निर्णय लेते हैं। न्यायालय केवल न्यायिक कार्य करते हैं जबकि अधिकरण विभिन्न अन्य प्रशासनिक कार्य करते हैं। न्यायालय के अधिकारी, विशेष रूप से न्यायिक न्यायालय, कानून में प्रशिक्षित और विशेषज्ञ व्यक्ति होते हैं, हालांकि, हर मामले में यह अनिवार्य नहीं है कि अधिकरण के सदस्यों को कानून में प्रशिक्षित और विशेषज्ञ होना चाहिए। उपरोक्त के दृष्टिगत, राजस्व अधिकारी/चकबंदी अधिकारी अपने न्यायिक/अर्धन्यायिक कार्यों का निर्वहन करते समय संविधि के तहत निर्धारित विशिष्ट अधिदेश और तंत्र का पालन करते थे और अक्सर, वे अधिकारी प्रशिक्षित न्यायिक अधिकारी नहीं होते हैं, लेकिन विशेष संविधि के तहत निर्धारित अधिकारी होने के नाते, वे राजस्व/चकबंदी अधिकारी के रूप में अपने

कार्यों का निर्वहन करते हैं। इस तरह से, उन्हें दीवानी न्यायालय के न्यायिक अधिकारियों के बराबर नहीं माना जा सकता है और इसलिए, वे न्यायिक/ दीवानी न्यायालय नहीं हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि वे अधिकरण के रूप में अपने कर्तव्यों और कार्यों का निर्वहन करते हैं।

27. तदनुसार, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्को और इस प्रकार प्रस्तुत निर्णयों पर विचार करते हुए, जिन पर ऊपर विचार किया गया है, मैं इस विचारित राय पर हूं कि राजस्व प्राधिकारी या चकबंदी प्राधिकारी द्वारा पारित किए जा रहे आदेश न्यायिक प्राधिकारी /दीवानी न्यायालयों द्वारा पारित किए जा रहे आदेश नहीं हैं, इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिकाओं की पोषणीयता के संबंध में विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों को अस्वीकार किया जाता है। चकबंदी/राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों को चुनौती देने वाली भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर ये रिट याचिकाएं पोषणीय मानी जाती हैं।

28. प्रतिशपथ पत्र चार सप्ताह की अवधि के भीतर दाखिल किया जाए। प्रत्युत्तर शपथ पत्र, यदि कोई हो, दो सप्ताह की अवधि के भीतर दाखिल किया जा सकता है।

29. उपरोक्त याचिकाओं को 3 जुलाई, 2023 से शुरू होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध करें।

30. पहले दिए गए अंतरिम आदेश सभी रिट याचिकाओं में सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक जारी रहेंगे।

31. चूंकि सभी रिट याचिकाएं इस कारण से जुड़ी हुई थीं कि पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी और उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति को खारिज कर दिया गया है, इसलिए, सभी रिट याचिकाओं पर सुनवाई की जाएगी और उनके गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाएगा।

32. तदनुसार, रिट-बी संख्या 245/2023 और रिट-बी संख्या 232/2023 को रिट-बी संख्या 229/2023 से अलग किया जाता है और उन्हें अलग से सूचीबद्ध किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 314

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय,

रिट बी संख्या 534/2022

हवलदार सिंह और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

जिला उपसंचालक चकबंदी, आजमगढ़ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री नारायण दत्त शुक्ल, श्री ऋतुवेन्द्र सिंह नागवंशी, श्री शिवचंद यादव, श्री श्याम लाल, श्री आर.सी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला

ए. राजस्व कानून - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - यूपी चकबंदी अधिनियम, 1953- 1955 से लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि - 2020 में उसे हटाने की मांग की गई अनुमेयता -चकबंदी प्रक्रिया 1962 में अंतिम रूप दी गई -प्रभाव - माना गया कि न केवल तत्काल कार्यवाही शुरू करने में 65 वर्षों का विलंब हुआ है बल्कि दो चकबंदी संक्रियाओं पर रोक भी है, ऐसे में 30.10.1955 के आदेश को निष्प्रभावी करने के लिए याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को मिटाने का कोई सवाल ही नहीं है, जो कि पहली चकबंदी प्रक्रिया के बाद से जारी है, न कि यूपीसीएच अधिनियम में 1958 में संशोधन होने से पहले से - उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को निरस्त कर दिया। (पैरा 9, 12 और 13)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती चंदन देवी बनाम द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश नैनीताल; 1998 ए.एल.जे. 525
2. ज्ञानदेव सबाजी नाइक और अन्य बनाम श्रीमती प्रदन्या प्रकाश खाडेकर और अन्य; 2017 (5) एससीसी 496
3. श्रीमती राज कुमार कपूर बनाम सिविल जज कानपुर व अन्य; 1987 ए.एल.जे 137
4. केदार नाथ और अन्य बनाम फुलेना और अन्य; 2009(1) एडीजे 554
5. गुलाब चंद्र वीएस मुंसिफ वेस्ट इलाहाबाद और अन्य.; 1988 ए.ल.ज. 852
6. सलीम बनाम उप संचालक चकबंदी, जी.बी. नगर; 2015 (129) आर.डी. 249
7. भिक्कू एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी एवं अन्य; 1960 आरडी 189
8. मंदिर शिवजी महाराज वाया परमाल सिंह बनाम कमिश्नर (संचालक चकबंदी) मेरठ व अन्य; 1969 आरडी 34
9. दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम भारत संघ और अन्य.; 2020 (13) एससीसी 745
10. बलवंत सिंह (मृत) बनाम जगदीश सिंह व अन्य; एआईआर 2010 एससी 3043

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह व उनके सहयोगी विद्वान अधिवक्ता श्री नारायण दत्त शुक्ला, राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी सं. 3, गांव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला को सुना गया।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ताओं के हित पूर्ववर्ती श्री लक्ष्मी सिंह विवादित भूखंड सं. 362 के पंजीकृत स्वामी थे, जो ग्राम-किशुनदासपुर, टप्पा-अत्तासी, परगना-निजामाबाद, तहसील-सदर, जिला-आजमगढ़ में स्थित है। याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्तियों के स्वामित्व को प्रदर्शित करने के लिए ग्राम किशुनदासपुर, टप्पा अत्तासी, परगना निजामाबाद, तहसील सदर, जिला आजमगढ़ की 1356 फसली से 1359 फसली तक की खतौनी की प्रतिलिपि रिट याचिका के साथ अनुलग्नक सं. 1 के रूप में संलग्न की गई है। याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्तियों के स्वामित्व को प्रदर्शित करने के लिए 1356 फसली,

अनुवादित

1359 फसली के खतौनी और 1359 फसली के खसरे की प्रतिलिपि रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 2, 3 और 4 के रूप में संलग्न की गई है। गांव को दिनांक 30.10.1955 को यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना के माध्यम से चकबंदी प्रक्रिया के तहत लाया गया था। 1362 फसली की खतौनी में, प्लॉट सं. 362 याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्तियों के नाम पर दर्ज किया गया था, 1362 फसली की खतौनी की प्रतिलिपि रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 6 के रूप में संलग्न की गई है। चकबंदी प्रक्रिया के दौरान, याचिकाकर्ताओं ने राजस्व प्रविष्टि को सुधारने के लिए यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 8 के तहत आपत्ति दायर की। पुराने प्लॉट सं. 362 से नए प्लॉट सं. 213 क और ख काटे गए। चकबंदी अधिकारी द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 8 के तहत कार्यवाही में पारित दिनांक 30.10.1955 का आदेश, जिसमें प्लॉट को ईंट भट्ठा रूप में दर्ज करने का आदेश दिया गया था, अंतिम हो गया क्योंकि पहली चकबंदी कार्रवाई में किसी ने आदेश को चुनौती नहीं दी थी। पहली चकबंदी कार्रवाई वर्ष 1962 में समाप्त हो गई। वर्ष 1981 में गांव को फिर से चकबंदी कार्रवाई के तहत लाया गया। मूल वर्ष प्रविष्टि याचिकाकर्ताओं के नाम पर ही रही और मूल वर्ष प्रविष्टि के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं की गई जो याचिकाकर्ताओं के नाम पर ही रही। तदनुसार अंतिम अभिलेख याचिकाकर्ताओं के नाम पर तैयार किए गए। नए प्लॉट नंबर 311 क और ख को पुराने प्लॉट नंबर 213 से काटकर बनाया गया है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, नए प्लॉट नंबर 213 क और ख में कभी तालाब और भीटा नहीं रहा। भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण द्वारा उक्त प्लॉट पर चार लेन की सड़क का निर्माण किया जा रहा है, ऐसे में इस बात का कोई सवाल ही नहीं उठता कि प्लॉट में तालाब और भीटा है। विवादित भूमि न तो जमींदारी उन्मूलन के पहले और न ही जमींदारी उन्मूलन के बाद कभी तालाब के रूप में दर्ज थी। याचिकाकर्ताओं के अनुसार उनके पूर्ववर्तियों ने वर्ष 1940 में एक ईंट भट्टा की स्थापना की थी और यह कारोबार 1950 तक जारी रहा। विचाराधीन भूखंड का हिस्सा राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण द्वारा हिंदी समाचार पत्र दिनांक 30.6.2017 में प्रकाशित अधिसूचना के माध्यम से अधिग्रहित किया गया था। राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम 1956 के तहत नियुक्त सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किसी भी व्यक्ति द्वारा कोई विवाद नहीं उठाया गया था, तदनुसार राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम की धारा 3 जी के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 31.5.2018 का पंचाट दिया गया। दिनांक 31.5.2018 के पंचाट की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक सं. 12 के रूप में संलग्न है। पंचाट के तहत निर्धारित राशि के वितरण के समय प्रधान द्वारा शिकायत की गई है कि पुराना प्लाट सं. 213, नया प्लाट सं. 311 तालाब एवं भीटा है, इसलिए उक्त प्लाट के संबंध में मुआवजा वितरित नहीं किया जाना चाहिए। तदनुसार सक्षम प्राधिकारी ने दिनांक 22.7.2020 को आदेश जारी किया कि मुआवजे का भुगतान स्थगित कर दिया जाए। प्रधान ने भूखंड सं. 362 के संबंध में दिनांक 30.10.1955 के आदेश को रद्द करने और इसे पोखरी और भीटा के रूप में दर्ज करने के

लिए उप संचालक चकबंदी के समक्ष दिनांक 16.7.2020 को यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48(1) के तहत पुनरीक्षण दायर किया। प्रधान द्वारा की गई शिकायत के आधार पर, ग्राम किशुनदासपुर के पुराने भूखंड सं. 362 के संबंध में राजस्व प्रविष्टि को सही करने के लिए उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38(1) के तहत मामला संख्या डी202015060001018 पंजीकृत किया गया है। राज नारायण और अन्य ने भी यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48(3) के तहत पुनरीक्षण दायर किया। विजय प्रकाश एवं अन्य ने भी उपर्युक्त कार्यवाही में सहायक चकबंदी अधिकारी के दिनांक 30.10.1955 के आदेश को चुनौती देते हुए पृथक पुनरीक्षण वाद दायर किए, प्राधिकारियों द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। याचिकाकर्ताओं ने यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48(1) के तहत शुरू की गई कार्यवाही के साथ-साथ उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38(1) के तहत शुरू की गई कार्यवाही को रिट-बी सं. 3 सन् 2021 के माध्यम से चुनौती दी। इस न्यायालय ने दिनांक 7.9.2021 के आदेश के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका का इस निर्देश के साथ निस्तारण किया कि याचिकाकर्ता लंबित कार्यवाही में आपत्ति दर्ज करा सकते हैं, जिस पर दो सप्ताह की अवधि के भीतर कानून के अनुसार निर्णय लिया जाएगा। यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48(1) के तहत कार्यवाही के साथ-साथ उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38(1) के तहत कार्यवाही की सुनवाई जिला उप संचालक चकबंदी/कलेक्टर द्वारा एक साथ की गई और अलग से दिनांक 6.12.2021 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटा दिया गया और निर्देश दिया गया कि विवादित भूखंड को पोखरी, भीटा और बंजर के रूप में दर्ज किया जाए। इसलिए यह रिट याचिका दायर की गई है।

इस न्यायालय ने दिनांक 1.4.2022 के आदेश के तहत विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा गांव सभा के अधिवक्ता को तीन सप्ताह के भीतर जवाबी हलफनामा दाखिल करने का निर्देश दिया है। इस न्यायालय के दिनांक 1.4.2022 के आदेश के अनुपालन में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने अपना जवाबी हलफनामा दाखिल किया है। याचिकाकर्ताओं ने भी जवाबी हलफनामा दाखिल किया है।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने दलील दी कि दिनांक 30.10.1955 के आदेश को रद्द करने के लिए 65 साल बाद कार्यवाही शुरू करना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। उन्होंने आगे दलील दी कि चकबंदी कार्रवाई के दौरान कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी, इसलिए यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48 के तहत पुनरीक्षण के माध्यम से कार्यवाही शुरू करना और साथ ही उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38 (1) के तहत कार्यवाही शुरू करना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। उन्होंने आगे कहा कि विवादित भूमि को कभी भी तालाब और भीटा के रूप में दर्ज नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि नक्शे में भी विचाराधीन भूखंड को तालाब और भीटा के रूप में नहीं दिखाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि लंबे समय से चली आ रही राजस्व प्रविष्टि को मनमाने तरीके से नहीं हटाया जा सकता।

उन्होंने कहा कि मूल वर्ष प्रविष्टि को चुनौती देने के लिए यूपीसीएच अधिनियम के तहत पूरी प्रक्रिया प्रदान की गई है, ऐसे में पहली चकबंदी कार्रवाई के दौरान पारित आदेश को चुनौती देने के लिए 65 साल बाद कार्यवाही शुरू करना पूरी तरह से अवैध है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। उन्होंने आगे कहा कि विवादित भूमि को कभी भी तालाब और भीटा के रूप में दर्ज नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि नक्शे में भी विचाराधीन भूखंड को तालाब और भीटा के रूप में नहीं दिखाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि लंबे समय से चली आ रही राजस्व प्रविष्टि को मनमाने तरीके से नहीं हटाया जा सकता। उन्होंने कहा कि मूल वर्ष प्रविष्टि को चुनौती देने के लिए यू.पी.सी.एच. अधिनियम के तहत पूरी प्रक्रिया प्रदान की गई है, ऐसे में पहली चकबंदी कार्रवाई के दौरान पारित आदेश को चुनौती देने के लिए 65 साल बाद कार्यवाही शुरू करना पूरी तरह से अवैध है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। उन्होंने आगे कहा कि पहला चकबंदी अभियान वर्ष 1962 में अंतिम रूप दिया गया था और दूसरा चकबंदी अभियान वर्ष 1981 में शुरू किया गया था, ऐसे में याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटाने के लिए इतने लंबे समय के बाद आक्षेपित कार्यवाही शुरू करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उन्होंने आगे कहा कि 65 साल की देरी को माफ करने के लिए आक्षेपित आदेश पारित करते समय प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा कोई विचार नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि देरी माफ़ी मामले और मामले की मेरिट पर अलग से निर्णय लिया जाना चाहिए, लेकिन प्रत्यर्थी सं. 2 ने इस पर विचार करने में विफल रहा और मनमाने तरीके से आक्षेपित आदेश पारित कर दिया। उन्होंने यह दिखाने के लिए इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया कि अवधि समाप्त होने के कारण जो अधिकार प्राप्त हुआ है, उसे मनमाने तरीके से नहीं छीना जा सकता। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस लॉ के विवरण इस प्रकार हैं:-

(i) 1998 ए.एल.जे. 525 श्रीमती चंदन देवी बनाम द्वितीय अपर जिला जज नैनीताल

(ii) 2017 (5) एससीसी 496 ज्ञानदेव सबाजी नाइक एवं अन्य बनाम श्रीमती प्रदन्या प्रकाश खाडेकर एवं अन्य

(iii) 1987 ए.एल.जे. 137 श्रीमती राज कुमार कपूर बनाम सिविल जज कानपुर एवं अन्य

(iv) 2009(1) एडीजे 554 केदार नाथ एवं अन्य बनाम फुलेना एवं अन्य

(v) 1988 ए.एल.जे. 852 गुलाब चंद्र बनाम मुंसिफ पश्चिम इलाहाबाद एवं अन्य

(vi) 2015 (129) आरडी 249 सलीम बनाम उप संचालक चकबंदी जी.बी. नगर

(vii) 1960 आरडी 189 भिक्कू एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी व अन्य

(viii) 1969 आरडी 34 मंदिर शिवजी महाराज थ्रू परमाल सिंह बनाम आयुक्त (चकबंदी निदेशक) मेरठ व अन्य

(ix) 2020 (13) एससीसी 745 दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम भारत संघ व अन्य

दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कहा कि विवादित भूमि तालाब व भीटा है, ऐसे में 65 वर्ष बीत जाने के बाद भी याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश कानून

के अनुसार पारित किया गया है क्योंकि यह पाया गया है कि दिनांक 30.10.1955 को पारित आदेश धोखाधड़ीपूर्ण है। उन्होंने कहा कि धोखाधड़ीपूर्ण आदेश/कार्यवाही के विरुद्ध कोई सीमा नहीं है, ऐसे में आक्षेपित आदेश राज्य/गांव सभा भूमि के हित में पारित किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि गांव में पहली चकबंदी कार्रवाई वर्ष 1955 में हुई थी और वर्ष 1962 में इसे अंतिम रूप दिया गया था। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि गांव में दूसरी चकबंदी कार्रवाई वर्ष 1981 में हुई थी। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, चकबंदी अधिकारी ने पहली चकबंदी कार्रवाई के दौरान दिनांक 30.10.1955 को याचिकाकर्ताओं के हित-पूर्ववर्तियों के पक्ष में आदेश पारित किया था। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि वर्तमान कार्यवाही यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48 के साथ-साथ उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38 (1) के तहत वर्ष 2020 में शुरू की गई है और याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटाने के लिए आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं।

मामले में शामिल विवाद को समझने के लिए यू.पी.सी.एच. अधिनियम, 1953 के संशोधन 1956 और 1963 की धारा 8 और 48 के अंतर्गत निहित प्रावधानों का अवलोकन प्रासंगिक होगा क्योंकि आक्षेपित आदेश दिनांक 30.10.1955 को पारित किया गया था। यू.पी.सी.एच. अधिनियम के संबंध में संशोधन से पहले और संशोधन के बाद के प्रावधान इस प्रकार हैं:-

8. यू.पी.सी.एच. अधिनियम, 1953 की धारा 8 जैसा कि यह मूल रूप से विद्यमान था, नीचे पुन: उद्धृत किया जा रहा है :

"8. अभिलेखों का पुनरीक्षण और सुधार- (1) जहां पूर्वोक्त भूमि अभिलेखों की जांच करने पर सहायक चकबंदी अधिकारी की राय हो कि अनंतिम चकबंदी योजना की तैयारी के लिए आगे बढ़ने से पहले मानचित्रों या अभिलेखों का पुनरीक्षण आवश्यक है, वह तदनुसार, निर्धारित प्रारूप और तरीके से, बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) को एक रिपोर्ट देगा।

(2) उप-धारा (1) के तहत रिपोर्ट प्राप्त होने पर बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) ऐसी जांच के बाद, जिसे वह आवश्यक समझे, या तो -

(क) सहायक चकबंदी अधिकारी को मानचित्रों या अभिलेखों के सुधार के लिए आगे बढ़ने का निर्देश देगा, या

(ख) उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के अध्याय IV के प्रावधानों के अनुसार मानचित्रों या अभिलेखों के पुनरीक्षण के लिए राज्य सरकार को सिफारिश करेगा।

(3) उप-धारा (2) के खंड (क) के तहत निर्देशों की प्राप्ति पर सहायक चकबंदी अधिकारी, जैसा आवश्यक समझे, आगे की कार्यवाही के पश्चात्, उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 के अध्याय 3 में निहित प्रावधानों के अनुसार वार्षिक रजिस्टर में प्रविष्टियों को सही करेगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन सहायक चकबंदी अधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश के 30 दिन के भीतर चकबंदी अधिकारी को अपील कर सकेगा, जिसका निर्णय, इस

अधिनियम के अधीन अन्यथा उपबंधित के सिवाय, अन्तिम होगा।"

9. उपर्युक्त उपबन्ध उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या XXXVIII, 1956 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो निम्न प्रकार था :

"8" फील्ड-बुक तथा चालू वार्षिक रजिस्टर का पुनरीक्षण - धारा 7 के अधीन ग्राम मानचित्रों के पुनरीक्षण पर, जिला उप संचालक चकबंदी, इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अधीन रहते हुए, फील्ड-टू-फील्ड आंशिक के पश्चात इकाई की फील्ड-बुक तथा परीक्षण एवं सत्यापन के पश्चात चालू वार्षिक रजिस्टर का पुनरीक्षण कराएगा। वह इकाई में आने वाले भूखण्डों के सम्बन्ध में फील्ड-टू-फील्ड आंशिक तथा चालू वार्षिक रजिस्टर के परीक्षण एवं सत्यापन के दौरान पाई गई गलतियों तथा विवादों को दर्शाने वाला विवरण भी तैयार कराएगा।"

10. वर्तमान स्थिति में धारा 8 को पुनः उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या VIII, 1963 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो इस प्रकार था :

(i) क्षेत्र-दर-क्षेत्र आंशिक इकाई की क्षेत्र पुस्तिका तथा परीक्षण एवं सत्यापन के पश्चात चालू वार्षिक रजिस्टर को संशोधित किया ;

(ii) चकबंदी समिति के परामर्श से निम्नलिखित का मूल्यांकन निर्धारित किया-

(क) प्रत्येक भूखण्ड की उत्पादकता, अवस्थिति तथा सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता, यदि कोई हो, को ध्यान में रखते हुए; तथा

(ख) भूखण्ड में विद्यमान सभी वृक्षों, कुओं तथा अन्य सुधारों का, ताकि मुआवजे की गणना की जा सके;

(iii) खण्ड (ii) के उपखण्ड (ख) के अन्तर्गत निर्धारित मूल्यांकन में से प्रत्येक स्वामी का हिस्सा, यदि एक से अधिक स्वामी हों, सुनिश्चित किया; तथा

(iv) समुचित चकबंदी सुनिश्चित करने के लिए विभाजन करने के उद्देश्य से संयुक्त जोतों में व्यक्तिगत खातेदारों के हिस्से निर्धारित किए।

(2) जिला उप संचालक चकबंदी, इकाइयों में आने वाले सभी भूखण्डों के सम्बन्ध में निर्धारित प्रारूप में खसरा चकबंदी तैयार कराएगा तथा वार्षिक रजिस्टर के परीक्षण और सत्यापन के दौरान तथा आंशिक क्षेत्र में कार्यवाही के दौरान पाई गई गलतियों [उत्तराधिकार के निर्विवाद मामले] और विवादों को दर्शाने वाला विवरण भी तैयार कराएगा।

11. धारा 8 की उपधारा (4) के अन्तर्गत निहित प्रावधान के आधार पर (जैसा कि मूलतः विद्यमान था) सहायक चकबंदी अधिकारी के आदेश की अपील चकबंदी अधिकारी के समक्ष की जा सकेगी तथा चकबंदी अधिकारी का आदेश अंतिम होगा तथा वह अपील या पुनरीक्षण के अधीन नहीं होगा।

12. यू.पी.सी.एच. अधिनियम, 1953 की मूल धारा 48 इस प्रकार हैः

"48. पुनरीक्षण - चकबंदी निदेशक किसी मामले का अभिलेख मंगा सकता है, यदि ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारी (मध्यस्थ को छोड़कर) जिसके द्वारा मामले का निर्णय किया गया है, उसने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है या वह इस प्रकार निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है या उसने अपने अधिकारिता का प्रयोग अवैधानिक रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ किया है और वह

मामले में ऐसे आदेश पारित कर सकता है, जैसा वह उचित समझे।

13. मूल धारा 48 को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या XXIV, 1956 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जिसे नीचे पुन: उद्धृत किया जा रहा हैः

"48. चकबंदी निदेशक की अभिलेख मंगाने और आदेशों को संशोधित करने की शक्तियाँ - चकबंदी निदेशक किसी मामले या कार्यवाही का अभिलेख मांग सकता है, यदि अधिकारी (मध्यस्थ को छोड़कर) जिसके द्वारा मामले का निर्णय किया गया था या कार्यवाही की गई थी, ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है या वह इस प्रकार निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है या उसने अपने अधिकारिता का प्रयोग अवैधानिक रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ किया है और वह मामले में ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसा वह ठीक समझे।"

14. धारा 48 को पुनः अधिनियम संख्या XXXVIII, 1958 द्वारा संशोधित किया गया जो इस प्रकार था:

"48. पुनरीक्षण.- चकबंदी निदेशक किसी विनिश्चित मामले या की गई कार्यवाही का अभिलेख मांग सकता है, जहां उसकी राय में उप निदेशक, चकबंदी ने -

(i) ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसे प्रदान नहीं की गई है, या

(ii) उसमें प्रदान की गई अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है, या

(iii) अपनी अधिकारिता का प्रयोग अवैधानिक रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ किया है, और जिसके परिणामस्वरूप खातेदार के साथ पर्याप्त अन्याय हुआ प्रतीत होता है, और वह संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के पश्चात मामले या कार्यवाही में ऐसा आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे।"

याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती 1955 से लगातार दर्ज किए गए थे और गांव में हुई दो चकबंदी कार्रवाइयों में कोई उचित आपत्ति नहीं थी, लेकिन वर्ष 2020 में, प्रधान द्वारा याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटाने के साथ-साथ दिनांक 30.10.1955 के आदेश को रद्द करने के लिए कार्यवाही शुरू की गई है और प्रत्यर्थी सं. 2 ने यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48 के तहत कार्यवाही के साथ-साथ उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 के तहत कार्यवाही में याचिकाकर्ताओं की लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि को हटाने का आदेश पारित किया है, इस तथ्य पर विचार किए बिना कि 65 साल बीत चुके हैं और गांव में चकबंदी की कार्रवाई समाप्त हो गई है, लेकिन चकबंदी कार्रवाई की समाप्ति के प्रभाव के साथ-साथ 65 वर्षों की अत्यधिक देरी पर विचार किए बिना, यू.पी.सी.एच. अधिनियम और उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 के तहत एक साथ आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **एआईआर 2010 सुप्रीम कोर्ट 3043 बलवंत सिंह (मृत) बनाम जगदीश सिंह एवं अन्य** में दर्ज मामले में माना है कि एक बार जब कोई मूल्यवान अधिकार, दूसरे पक्ष द्वारा देरी का स्पष्टीकरण न देने के परिणामस्वरूप एक पक्ष के पक्ष में अर्जित हो

जाता है, तो आवेदक के पूछने मात्र से उस अधिकार को छीन लेना अनुचित होगा। फैसले का पैराग्राफ नंबर 13 प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:-

"13. जैसा कि इस न्यायालय ने मिठाईलाल दलसांगर सिंह (एआईआर 2003 एससी 4244: 2003 एआईआर एससीडब्लू 4878) (उपरोक्त) के मामले में माना है कि उपशमन के परिणामस्वरूप मामले के गुण-दोष पर सुनवाई से इनकार हो जाता है, उपशमन के प्रावधान की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए। दूसरी ओर, उपशमन को रद्द करने और उपशमन के परिणामस्वरूप बर्खास्तगी की प्रार्थना पर उदारतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। हम कह सकते हैं कि भले ही "पर्याप्त कारण" शब्द का उदार अर्थ लगाया जाना है, लेकिन इसे उचित समय और संबंधित पक्ष के उचित आचरण की अवधारणा के अंतर्गत आना चाहिए। उदार अर्थ लगाने का उद्देश्य आम तौर पर "औचित्य" की अवधारणा को पेश करना है जैसा कि इसे इसके सामान्य अर्थ में समझा जाता है। परिसीमा का कानून एक मौलिक कानून है और किसी पक्ष के अधिकार और दायित्व पर इसके निश्चित परिणाम होते हैं। इन सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए और किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उचित रूप से लागू किया जाना चाहिए। एक बार जब किसी पक्ष के पक्ष में कोई मूल्यवान अधिकार अर्जित हो जाता है, तो दूसरे पक्ष द्वारा पर्याप्त कारण और अपने स्वयं के आचरण को दर्शाकर देरी को स्पष्ट करने में विफलता के परिणामस्वरूप, आवेदक के केवल पूछने पर उस अधिकार को छीन लेना अनुचित होगा, खासकर जब देरी सीधे उस पक्ष की लापरवाही, चूक या निष्क्रियता का परिणाम हो। दोनों पक्षों के साथ समान रूप से न्याय किया जाना चाहिए। तभी न्याय के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई पक्ष अपने अधिकारों और उपायों को लागू करने में पूरी तरह से लापरवाह रहा है, तो दूसरे पक्ष को उस मूल्यवान अधिकार से वंचित करना भी उतना ही अनुचित होगा जो उसके सतर्कतापूर्वक कार्य करने के परिणामस्वरूप कानून में उसे प्राप्त हुआ है। आवेदकों द्वारा दायर आवेदन में विवरणों का अभाव है। यहां तक कि किए गए कथन भी सही नहीं हैं और उनमें प्रत्यक्ष रूप से सद्भावना का अभाव है। स्पष्टीकरण उचित या प्रशंसनीय होना चाहिए, ताकि न्यायालय को यह विश्वास दिलाया जा सके कि दिया गया स्पष्टीकरण न केवल सत्य है, बल्कि आवेदक के पक्ष में न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के योग्य है। तभी न्याय के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई पक्ष अपने अधिकारों और उपायों को लागू करने में पूरी तरह से लापरवाह रहा है, तो दूसरे पक्ष को उस मूल्यवान अधिकार से वंचित करना भी उतना ही अनुचित होगा जो उसके सतर्कतापूर्वक कार्य करने के परिणामस्वरूप कानून में उसे प्राप्त हुआ है। आवेदकों द्वारा दायर आवेदन में विवरणों का अभाव है। यहां तक कि किए गए कथन भी सही नहीं हैं और उनमें प्रत्यक्ष रूप से सद्भावना का अभाव है। स्पष्टीकरण उचित या प्रशंसनीय होना चाहिए, ताकि न्यायालय को यह विश्वास दिलाया जा सके कि दिया गया स्पष्टीकरण न केवल सत्य है, बल्कि आवेदक के पक्ष में न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के योग्य है। यदि यह न्यायिक घोषणाओं के किसी भी घोषित तत्व को निर्दिष्ट नहीं करता है, तो

आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर, यदि आवेदन सद्भावपूर्ण है और सत्य और समझने योग्य स्पष्टीकरणों पर आधारित है, साथ ही आवेदक की ओर से एक सामान्य विवेकशील व्यक्ति के सामान्य व्यवहार को दर्शाता है, तो न्यायालय सामान्य रूप से ऐसे आवेदक के पक्ष में न्यायिक विवेक का झुकाव करेगा। उदार निर्माण को दूसरे पक्ष के साथ अन्याय करने के बराबर नहीं माना जा सकता। बिहार राज्य बनाम कामेश्वर प्रसाद सिंह [(2000) 9 एससीसी 94: 2000 एससीसी (एलएंडएस) 845] के मामले में इस न्यायालय ने पर्याप्त न्याय करने के लिए सरकार के मामलों में देरी को माफ करने के लिए उदार दृष्टिकोण अपनाया था। उस मामले के तथ्य पूरी तरह से अलग थे क्योंकि वह 400 अधिकारियों की वरिष्ठता तय करने का मामला था और तथ्यों को सत्यापित किया जाना आवश्यक था। लेकिन हम जिस बात पर जोर दे रहे हैं वह यह है कि दूसरे पक्ष के साथ अन्याय किए बिना पर्याप्त न्याय करने के लिए देरी को माफ किया जाना चाहिए। इस तरह के आवेदनों पर निर्णय लेते समय न्यायालय को इस संतुलन को ध्यान में रखना होगा। रामलाल बनाम रीवा कोलफील्ड्स लिमिटेड [एआईआर 1962 एससी 361] के मामले में इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया :

"7. धारा 5 की व्याख्या करते समय दो महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना उचित है। पहली बात यह है कि अपील करने के लिए निर्धारित समय-सीमा की समाप्ति से डिक्रीधारक के पक्ष में यह अधिकार उत्पन्न होता है कि वह डिक्री को पक्षकारों के बीच बाध्यकारी मान सके। दूसरे शब्दों में, जब निर्धारित समय-सीमा समाप्त हो जाती है तो डिक्रीधारक को समय-सीमा के कानून के तहत यह लाभ मिल जाता है कि डिक्री को चुनौती नहीं दी जा सकती और समय बीतने के कारण डिक्रीधारक को जो कानूनी अधिकार प्राप्त हुआ है, उसे हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। दूसरा विचार जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है वह यह है कि यदि देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण दिखाया जाता है तो अदालत को देरी को माफ करने और अपील स्वीकार करने का विवेक दिया जाता है। यह विवेक जानबूझकर अदालत को प्रदान किया गया है ताकि न्याय को आगे बढ़ाने के लिए न्यायिक शक्ति और विवेक का प्रयोग किया जा सके। जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय ने कृष्णा बनाम चथप्पन आईएलआर (1890) 13 मैड 269 में अवधारित किया गया है।

हालांकि, इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि पर्याप्त कारण दिखाए जाने के बाद भी कोई पक्ष अधिकार के रूप में प्रश्नगत देरी को माफ करने का हकदार नहीं है। पर्याप्त कारण का सबूत धारा 5 द्वारा अदालत में निहित विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए एक पूर्व शर्त है। यदि पर्याप्त कारण साबित नहीं किया जाता है तो आगे कुछ नहीं किया जाना चाहिए; देरी को माफ करने के लिए आवेदन को केवल उसी आधार पर खारिज किया जाना चाहिए। मामले का यह पहलू स्वाभाविक रूप से सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने को प्रेरित करता है और यह इस स्तर पर है कि पक्ष की तत्परता या उसकी सद्भावना पर विचार किया जा सकता है;"

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस लॉ भी इस मामले में प्रासंगिक है

क्योंकि भिक्कू (उपरोक्त) के निर्णय में यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 7,8 और 12 की प्रविष्टियों के दायरे को ध्यान में रखा गया था, जैसा कि वे 1958 के संशोधन से पहले थे। दिल्ली विश्वविद्यालय (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि लंबी देरी को माफ करना स्वतः नहीं होना चाहिए और केवल इसलिए नहीं होना चाहिए कि याचिकाकर्ता/आवेदक एक सार्वजनिक निकाय है।

इस मामले में, न केवल यह कार्यवाही शुरू करने में 65 वर्षों का विलंब हुआ है, बल्कि दो चकबंदी कार्रवाई पर भी रोक है, ऐसे में, दिनांक 30.10.1955 के आदेश को रद्द करने के लिए याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटाने का कोई सवाल ही नहीं है, जो कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम में 1958 के संशोधन से पहले की बजाय पहली चकबंदी कार्रवाई से जारी है।

समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 48(1) के अंतर्गत मुकदमा सं. 01197/2020 कम्प्यूटरीकृत सं. डी202015060001197 में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पारित दिनांक 6.12.2021 का आक्षेपित आदेश तथा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38(1) के अंतर्गत मुकदमा संख्या 01018/2020 कम्प्यूटरीकृत संख्या डी202015060001018 में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पारित दिनांक 6.12.2021 का आदेश अपास्त किये जाने योग्य है तथा इन्हें अपास्त किया जाता है।

रिट याचिका **स्वीकृत** की जाती है तथा प्रत्यर्थी सं. 1 को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किये जाने की तिथि से छह सप्ताह के अन्दर विवादित भूखण्ड के सम्बन्ध में राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ताओं के नाम दर्ज करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 322

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी,

रिट बी संख्या 1218/2021

नरेंद्र कुमार और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री फ़ुज़ैल अहमद अंसारी, श्री आर.सी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री कृष्णा कांत सिंह, श्री योगेन्द्र सिंह बोहरा

ए. राजस्व कानून - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 59, 77, 101 और 161 - ग्राम पंचायत की भूमि का विनिमय - याचिकाकर्ता की भूमि पर बहुत पहले स्कूल का निर्माण किया गया था - विनिमय के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया था - वैधता को चुनौती दी गई- धारा 101 (2) (बी) के तहत आवश्यक निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है - विनिमय के पक्ष में एलएमसी का कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया गया था - प्रभाव - आयोजित, संहिता, 2006 की धारा 101 की उपधारा (1) के अंतर्गत विनिमय की अनुमति देने से इनकार

अनुवादित

करने के मामले में, उप-मंडल अधिकारी से यह अपेक्षित था कि वह संहिता, 2006 की उप-धारा (2) के खंड (ख) के अनुसार निष्कर्ष दर्ज करे। दूसरे शब्दों में, लौटाया गया निष्कर्ष यह होना चाहिए था कि विनिमय में दी गई और प्राप्त की गई भूमि के मूल्यांकन के बीच का अंतर, यदि निर्धारित तरीके से निर्धारित किया जाता है, तो निचले मूल्यांकन के दस प्रतिशत से अधिक है - हालांकि, उच्च न्यायालय ने आगे कहा कि विनिमय के पक्ष में भूमि प्रबंधन समिति के किसी प्रस्ताव या कलेक्टर द्वारा अनुमोदित उप-मंडल अधिकारी के किसी स्वप्रेरणा प्रस्ताव के अभाव में, ग्राम पंचायत की भूमि के विनिमय के लिए दायर कोई भी आवेदन नियम 101 की निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता है और इसलिए ऐसे आवेदन में एक लाइलाज दोष होगा। (पैरा 16 और 20)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सी/एम विशम्भरनाथ जनता इंटर कॉलेज एवं अन्य। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; 2019 (142) आरडी 810
2. रिट सी संख्या 26603/2021; सीता राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 6 अप्रैल, 2022 को तय: 2022 एससीसी ऑनलाइन सभी 200
3. शिव मूरत बनाम राजस्व बोर्ड, यूपी इलाहाबाद व अन्य; 2017 (7) एडीजे 252

(माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी, द्वारा प्रदत्त)

1. रिट याचिका राजस्व परिषद, इलाहाबाद,उत्तर प्रदेश द्वारा पुनरीक्षण संख्या 1124/2017 में पारित आदेश दिनांक 23.02.2021 को अभिखंडित करने की मांग करते हुए दायर की गई है। साथ ही उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.04.2017 को भी अभिखंडित करने की मांग की गई है, जिसके द्वारा भूमि के विनिमय का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया है।

2. याचिकाकर्ता भूखंड संख्या 17 माप में 0.357 हेक्टेयर और भूखंड संख्या 19 माप में 0.092 हेक्टेयर के भूमिधर होने का दावा करते हैं। उक्त दोनों भूखंडों को बाग भूमि के रूप में दर्ज बताया गया है। इसमें कहा गया है कि भूखंड संख्या 18 माप में 0.104 हेक्टेयर एक स्कूल 'पूर्व माध्यमिक विद्यालय, मौजा-तरसारा, परगना- हसनगढ़, तहसील- इगलास, जिला-अलीगढ़' के नाम पर अभिलिखित है। उक्त भूखंड के अलावा भूखंड संख्या 21 जिसका क्षेत्रफल 0.057 हेक्टेयर है वह भी उक्त विद्यालय के नाम पर अभिलिखित है।

3. यह कहा गया है कि स्कूल की इमारत का निर्माण भूखंड संख्या 18 के बजाय भूखंड संख्या 19 पर किया गया था, जो याचिकाकर्ताओं का भूखंड है। इसलिए, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 101 के प्रावधानों के तहत, याचिकाकर्ताओं ने भूखंड संख्या 19 को भूखंड संख्या 18 से विनिमय के लिए उप जिलाधिकारी के समक्ष 11.03.2016 को एक आवेदन दायर किया। आवेदन में की गई प्रार्थना के संदर्भ में तहसीलदार/लेखपाल की आख्या मांगी गई, जिसमें बताया गया कि भूखंड संख्या 18 और 19 दोनों का सर्किल रेट और भूमि की प्रकृति एक समान है। हालाँकि,

आक्षेपित आदेश दिनांक 24.4.2017 द्वारा उप जिलाधिकारी ने विनिमय के आवेदन को अस्वीकार कर दिया। उपरोक्त आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ताओं ने राजस्व परिषद के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया जिसे दिनांक 23.2.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता का प्रतिविरोध यह है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा संहिता, 2006 की धारा 101 के तहत दायर किया गया आवेदन स्वीकार करने के योग्य है, विशेषकर जब राजस्व प्राधिकारियों ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को विनिमय की जाने वाली भूमि के भूखंडों के मूल्यांकन के बारे में सूचना दी है। यह प्रतिवाद किया गया कि उप जिलाधिकारी ने अपने आदेश को दिनांक 10.11.2014 के एक निष्क्रिय शासनादेश पर आधारित किया था जो निरसित उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 161 के तहत जारी किया गया था। यह प्रतिविरोध किया गया कि संहिता, 2006 की धारा 101 की उपधारा (2) में कुछ ऐसी घटनाओं का प्रावधान है जो सक्षम प्राधिकारी को विनिमय की अनुज्ञा देने से इनकार करने के लिए अधिकृत कर सकती हैं। इस मामले में भी, उप जिलाधिकारी ने विनिमय से इनकार कर दिया, लेकिन विनिमय से इनकार करने का आधार संहिता, 2006 की धारा 101 की उपधारा (2) में आने वाले किसी भी आधार से संबंधित नहीं है। राजस्व निरीक्षक/तहसीलदार द्वारा विनिमय किए जाने वाले भूमि के भूखंडों का मूल्यांकन एक जैसा बताया गया है, इसलिए उप जिलाधिकारी द्वारा विनिमय की अनुज्ञा देने से इनकार करना मनमाना है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रतिविरोध के समर्थन में **सी/एम विश्वंभरनाथ जनता इंटर कॉलेज और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के फैसले पर भरोसा किया है।

5. प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने अदालत का ध्यान भूमि सौंपने से संबंधित संहिता, 2006 की धारा 59 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें प्रतिवाद किया गया है कि जो भूमि गांव सभा को सौंपी गई है, उस पर याचिकाकर्ताओं द्वारा विनिमय के अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री वाई.एस. बोहरा ने उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 की धारा 9-क की उपधारा (2) की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए प्रतिवाद किया है कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद की संपत्ति भूखंड संख्या 18 और 21 ग्राम पंचायत में निहित है और किसी भी भवन, संपत्ति या आस्तियों का विक्रय, दान, विनिमय, बंधक, पट्टा या अन्यथा अंतरण निषिद्ध है। उन्होंने आगे बताया कि धारा 101 की उपधारा (2) के खंड (घ) के मद्देनजर, जो भूमि गांव सभा के नियोजित उपयोग के लिए आरक्षित की जा रही है, उस पर संहिता, 2006 की धारा 77 के प्रावधानों के मद्देनजर भूमिधरी अधिकार प्रोद्भूत नहीं हो सकता है और इसलिए, किसी विनिमय की अनुज्ञा नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान धारा 101 की उपधारा (2) के परन्तुक की ओर आकर्षित करते हुए प्रतिवाद किया कि राज्य सरकार के निर्णय के अधीन खंड (घ) में उल्लिखित भूमि

के संबंध में विनिमय की अनुज्ञा दी जा सकती है।

7. उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.04.2017 के परिशीलन से प्रकट होता है कि तहसीलदार की आख्या और स्थल योजना का अवलोकन करने पर, उन्होंने पाया कि प्रश्नगत विनिमय की कार्यवाही राजस्व परिषद के नियमों के विपरीत शुरू की गई है, चूँकि एक भूखंड पर स्कूल का भवन निर्मित है जबकि दूसरे भूखंड का उपयोग बाग/कृषि प्रयोजनों के लिए किया जा रहा है। वह आगे संप्रेषित करते हैं कि यदि पक्षकार नियमों के अनुसार विनिमय चाहते हैं, तो उन्हें विनिमय की मांग नहीं करनी चाहिए थी, जहां एक भूखंड का उपयोग बाग के लिए और दूसरे भूखंड का उपयोग स्कूल भवन के लिए किया जा रहा है। उस संबंध में उप जिलाधिकारी शासनादेश दिनांक 10.11.2014 पर भरोसा करते हैं। तदनुसार,आवेदन अस्वीकार कर दिया गया।

8. 2006 की संहिता की धारा 59, 77 और 101 निम्नानुसार पढ़ें:

"59. ग्राम पंचायतों और अन्य स्थानीय प्राधिकरणों को भूमि आदि का सौंपा जाना- (1) राज्य सरकार विहित रीति से प्रकाशित किए जाने वाले साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस संहिता के उपबंधों के अनुसार अधीक्षण, संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण के प्रयोजनों के लिए ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण को उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट ऐसी समस्त या कोई चीजें सौंप सकती है जो राज्य सरकार में निहित हों।

(2) निम्नलिखित चीजें उपधारा (1) के अधीन किसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण को सौंपी जा सकती हैं, अर्थात्-

(i) किसी जोत या बाग में तत्समय समाविष्ट भूमि के सिवाय भूमि, जो खेती योग्य हों या अन्यथा हों;

(ii) ग्राम पंचायत की भूमि पर लगा बाग,चारागाह, कब्रिस्तान, श्मशान घाट, उर्वरक गर्ते, खलियान, चकरोड, संपर्क मार्ग, सेक्टर मार्ग, नदी तल भूमि, सड़क, सड़क की खन्ती, मालिन जल क्षेत्र ;

(iii) वन; एवं मत्स्य क्षेत्र;

(iv) किसी जोत में या किसी जोत की सीमा पर या किसी बाग या आबादी में स्थित वृक्षों से भिन्न वृक्ष या दखल न की हुई भूमि पर स्थित कोई वृक्ष;

(v) हाट, बाजार, मेला, तालाब, सरोवर, जल मार्ग, निजी नौघाट, पगडंडी और आबादी स्थल;

(vi) निखात निधि अधिनियम, 1878 के उपबंधों के अध्यधीन धारा 55 में विनिर्दिष्ट और राज्य सरकार से संबंधित कोई संपत्ति।

(3) ऐसी प्रत्येक भूमि या अन्य चीज,जो -

(क) उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 या उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के उपबंधों के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण में निहित हो;

(ख) इस संहिता द्वारा निरसित किसी अधिनियम के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण के प्रभार के अधीन रखी गई हो;

(ग) इस संहिता के प्रारंभ होने के पूर्व या उसके पश्चात किसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण के कब्जे में अन्यथा, आयी हो;

उसे इस संहिता के उपबंधों के अनुसार अधीक्षण, संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण के प्रयोजनार्थ इस संहिता के प्रारंभ होने के दिनांक से या उसके इस प्रकार कब्जे में आने के दिनांक से, यथास्थिति ऐसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण को सौंपा हुआ समझा जाएगा।

(4) राज्य सरकार विहित रीति से प्रकाशित किए जाने वाले अनुवर्ती आदेश द्वारा,-

(क) उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए किसी पूर्ववर्ती आदेश में परिवर्धन कर सकती है, संशोधन कर सकती है, परिवर्तन कर सकती है या उसे निरस्त कर सकती है;

(ख) अधीक्षण ,संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण के लिए उपधारा (1) या उपधारा (3) के अधीन सौंपी गई या सौंपी हुई समझी गई किसी भूमि या अन्य चीज को किसी अन्य ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण को अंतरित कर सकती है;

(ग) किसी ग्राम पंचायत या स्थानीय प्राधिकरण को सौंपी गई या सौंपी हुई समझी गई या अंतरित की गई किसी भूमि या अन्य चीज को ऐसी निबंधन एवं शर्तों पर जैसी कि विहित की जाएं वापस ले सकती है;

(घ) ऐसी शर्तें और निबंधन अधिरोपित कर सकती है, जिनके अध्यधीन इस धारा के अधीन अधीक्षण,संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण की शक्तियों का प्रयोग किया जाएगा।

(5) जहां उपधारा (2) में निर्दिष्ट कोई चीज किसी ग्राम पंचायत को सौंपी गई हो या सौंपी गई समझी गई हो, और ग्राम या उसका ऐसा कोई भाग जिसमें ऐसी चीजें स्थित हों, ग्राम पंचायत के क्षेत्र के बाहर हो वहां ऐसी ग्राम पंचायत या उसकी भूमि प्रबंधक समिति इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए किसी साधारण या विशेष आदेश के अध्यधीन इस संहिता या उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 द्वारा या उसके अधीन ग्राम पंचायत या किसी भूमि प्रबंधक समिति पर समनुदेशित, अधिरोपित या प्रदत्त कृत्यों, कर्तव्यों और शक्तियों का निष्पादन, निर्वहन और प्रयोग करेगी मानो वह ग्राम या उसका भाग भी उसके क्षेत्र में आता हो।

(6) जहां उपधारा (2) के अधीन विनिर्दिष्ट कोई चीज, ग्राम पंचायत से भिन्न किसी स्थानीय प्राधिकरण को सौंपी गई हो या सौंपी हुई समझी गई हो वहां इस अध्याय के उपबंध यथावश्यक परिवर्तन सहित ऐसे स्थानीय प्राधिकरण पर लागू होंगे।

.....

77. **कतिपय भूमि पर भूमिधरी अधिकार प्राप्त नहीं होंगे**- (1) इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए

भी कोई व्यक्ति निम्नलिखित भूमि में भूमिधर के अधिकार अर्जित नहीं करेगा-

(क) खलियान, खाद के गड्ढों, चारागाह, या सामान्यतः कब्रिस्तान या श्मशान के लिए प्रयुक्त भूमि;

(ख) भूमि जिस पर पानी हो और जिसका उपयोग सिंघाड़ा या अन्य उपज उगाने के लिए किया जाता हो;

(ग) भूमि जो नदी के तल में स्थित हो और जिसका उपयोग आकस्मिक या यदा-कदा खेती के लिए किया जाता हो;

(घ) स्थान परवर्ती या अस्थायी खेती के ऐसे भू-भाग जिन्हें राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे;

(ङ) भूमि जिसे राज्य सरकार ने टौंगिया बागान के लिए आशयित घोषित या पृथक रक्षित किया हो और ऐसा अधिसूचित किया हो;

(च) बाग भूमि जो धारा 59 के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकारी को सौंपी गई या सौंपी गई समझी गई हो;

(छ) सलेज फार्म या मलगत भूमि में सम्मिलित भूमि जो धारा 59 के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकारी को सौंपी गई या सौंपी समझी गई हो;

(ज) भूमि जो सार्वजनिक प्रयोजन या लोकोपयोगी कार्य के लिए अर्जित या धृत हो;

(झ) भूमि जिस पर पोखर, तालाब या झील हो, या जो तटबंध, बांध या भीटा का भाग हो; और

(ञ) कोई अन्य भूमि जिसे राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे;

स्पष्टीकरण- खंड (ज) में पद "सार्वजनिक प्रयोजन" में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे:
(i) भूमि जो सैन्य शिविर भूमि के लिए पृथक रक्षित हो ;
(ii) भूमि जो रेलवे या नहर की सीमा में सम्मिलित हो ;
(iii) भूमि जो किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्वयं अपने प्रयोजनों के लिए अर्जित और धृत हो;
(iv) भूमि जो उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 29-ग में निर्दिष्ट हो; या
(v) भूमि जो किसी ग्राम पंचायत द्वारा सार्वजनिक उपयोगिता के प्रयोजनों के लिए आरक्षित हो।

(2) इस संहिता के अन्य उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जहां, इस धारा की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई भूमि अथवा उसका कोई भाग लोक प्रयोजन के लिए क्रय, अर्जित या पुनर्गृहीत किए गए भू-खंड या भू-खंडों से घिरी है अथवा उसके या उनके बीच में है, वहां राज्य सरकार, ऐसी लोक उपयोगिता की भूमि की श्रेणी को परिवर्तित कर सकेगी, और यदि ऐसी लोक उपयोगिता की भूमि की श्रेणी परिवर्तित की जाती है, तो उपरोक्त लोक उपयोगिता की भूमि के बराबर या उससे अधिक भूमि उसी प्रयोजन के लिए उसी ग्राम पंचायत अथवा

अन्य स्थानीय प्राधिकरण, जैसी भी स्थिति हो, में सुरक्षित कर दी जाएगी या राज्य सरकार इस संहिता की धारा 101 के अंतर्गत, उसके विनिमय की अनुज्ञा, विहित रीति से दे सकेगी:

परंतु यह कि किसी लोक उपयोगिता की भूमि की श्रेणी अपवादात्मक प्रकरणों में ही ऐसे निबंधन एवं शर्तों पर परिवर्तित की जा सकेगी, जो कि विहित की जाए। लोक उपयोगिता की भूमि की श्रेणी परिवर्तित करने का कारण अभिलिखित किया जाएगा।

(3) राज्य सरकार, भूमि की श्रेणी परिवर्तित करते समय या संहिता की धारा 101 के अंतर्गत उसके विनिमय की अनुज्ञा देते समय आरक्षित किए जाने के लिए या विनिमय किए जाने के लिए प्रस्तावित भूमि की स्थिति, लोक उपयोगिता और उपयुक्तता पर विचार करेगी।

(4) इस धारा की उपधारा (2) के अंतर्गत भूमि की श्रेणी परिवर्तित की जाती है, तो कलेक्टर अधिकार अभिलेख (खतौनी) और मानचित्र में तदनुसार संशोधन का आदेश देगा।

स्पष्टीकरण- इस धारा की उपधारा (2) में पद 'लोक प्रयोजन' का तात्पर्य, आवश्यक परिवर्तनों के साथ, भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 (अधिनियम संख्या 30, सन् 2013) की धारा 3 के खंड (यक) के अंतर्गत परिभाषित 'लोक प्रयोजन' से है।

.....

101. विनिमय- (1) संहिता की धारा 77 में किसी बात के होते हुए भी, कोई भूमिधर उपजिलाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति से अपनी भूमि का विनिमय-

(क) अन्य भूमिधर द्वारा धारित भूमि से; या

(ख) धारा 59 के अधीन किसी ग्राम पंचायत या स्थानीय प्राधिकरण को सौंपी गई या न्यस्त समझी गई भूमि से कर सकता है।

(2) उप जिलाधिकारी उपधारा (1) के अधीन निम्नलिखित मामलों में अनुज्ञा से इनकार कर देगा, अर्थात-

(क) यदि ऐसा विनिमय जोतों की चकबंदी या कृषि कार्य में सुविधा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक नहीं है; या

(ख) यदि विनिमय में दी गई और प्राप्त भूमि का विहित रीति से अवधारित मूल्यांकनों के मध्य का अंतर निम्नतर मूल्यांकन के दस प्रतिशत से अधिक हो जाता है; या

(ग) यदि विनिमय में दी गई और प्राप्त भूमि के क्षेत्रफलों के मध्य का अंतर निम्नतर क्षेत्रफल के पच्चीस प्रतिशत से अधिक हो जाता है; या

(घ) उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट भूमि के मामले में यदि वह नियोजित उपयोग के लिए आरक्षित है या ऐसी भूमि है जिसमें भूमिधरी अधिकार प्रोद्भूत नहीं होते हैं; या

(ङ) यदि भूमि एक ही तहसील के एक ही गांव या उससे लगे हुए गांव में स्थित न हो:

परंतु यह कि राज्य सरकार, इस धारा की उपधारा (2) के खंड (घ) में उल्लिखित भूमि से विनिमय की अनुज्ञा विहित शर्तों पर और विहित रीति से, दे सकती है।

(3) इस धारा में दी गई कोई बात किसी व्यक्ति को किसी जोत में उसके अविभाजित हित को विनिमय करने हेतु सशक्त करती हुई नहीं समझी जाएगी सिवाय वहां जहां ऐसा विनिमय दो या अधिक सह हिस्सेदारों के बीच हो।

(4) रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (अधिनियम संख्या 16 सन् 1908) में दी गई कोई बात इस धारा के अनुसरण में किसी विनिमय पर लागू नहीं होगी।"

9. इसलिए, संहिता, 2006 की धारा 59 के तहत, अधीक्षण, संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण के प्रयोजनों के लिए, जो राज्य सरकार में निहित है और जो उसकी उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट है, राज्य सरकार उन्हें ग्राम पंचायत, या अन्य स्थानीय प्राधिकरण को सौंपने के लिए प्राधिकृत है।

धारा 59 की उपधारा (3) एक विधिक कल्पना सृजित करता है जो इसके तहत तीन विनिर्दिष्ट श्रेणियों में से प्रत्येक को भूमि या अन्य वस्तु, जैसा भी मामला हो, संहिता, 2006 के प्रारंभ की तारीख से ऐसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण को सौंपने पर विचार करती है या उसके कब्जे में आने की तारीख से, अधीक्षण, संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण के प्रयोजन के लिए। भूमि और या अन्य चीज़ों की उपरोक्त तीन विनिर्दिष्ट श्रेणियां जो उपधारा 3 में निर्दिष्ट हैं, वे हैं:-

(क) उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 या उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के उपबंधों के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण में निहित हो;

(ख) इस संहिता द्वारा निरसित किसी अधिनियम के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण के प्रभार के अधीन रखी गई हो; या

(ग) इस संहिता,2006 के प्रारंभ होने के पूर्व या उसके पश्चात किसी ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकरण के कब्जे में अन्यथा, आयी हो।

10. संहिता, 2006 की धारा 77 (1) जो एक सर्वोपरि खंड से शुरू होती है, इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी भूमि के कुछ वर्गों के लिए व्यवस्था करती है, जिसके संबंध में कोई भी व्यक्ति भूमिधर के अधिकारों का अर्जन नहीं करेगा। धारा 77 की उपधारा (1) का खंड (च) इसकी परिधि में बाग भूमि जो धारा 59 के अधीन किसी ग्राम पंचायत या किसी अन्य स्थानीय प्राधिकारी को सौंपी गई या सौंपी गई समझी गई हो,को लाती है।

11. संहिता,2006 की धारा 101 (1), एक सर्वोपरि खंड से शुरू होती है जो व्यवस्था करती है धारा 77 में किसी बात के होते हुए भी, कोई भूमिधर उप जिलाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति से अपनी भूमि का विनिमय- (क) अन्य भूमिधर द्वारा धारित भूमि से; या (ख)

धारा 59 के अधीन किसी ग्राम पंचायत या स्थानीय प्राधिकरण को सौंपी गई या न्यस्त समझी गई भूमि से कर सकता है। हालांकि, धारा 101 की उपधारा (2) कुछ विशिष्ट शर्तों की व्यवस्था करती है, जिसके अधीन उप जिलाधिकारी अनुज्ञा देने से इंकार कर देगा। वे हैं:-

(क) यदि ऐसा विनिमय जोतों की चकबंदी या कृषि कार्य में सुविधा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक नहीं है; या

(ख) यदि विनिमय में दी गई और प्राप्त भूमि का विहित रीति से अवधारित मूल्यांकनों के मध्य का अंतर निम्नतर मूल्यांकन के दस प्रतिशत से अधिक हो जाता है; या

(ग) यदि विनिमय में दी गई और प्राप्त भूमि के क्षेत्रफलों के मध्य का अंतर निम्नतर क्षेत्रफल के पच्चीस प्रतिशत से अधिक हो जाता है; या

(घ) उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट भूमि के मामले में यदि वह नियोजित उपयोग के लिए आरक्षित है या ऐसी भूमि है जिसमें भूमिधरी अधिकार प्रोद्भूत नहीं होते हैं; या

(ङ) यदि भूमि एक ही तहसील के एक ही गांव या उससे लगे हुए गांव में स्थित न हो:
खंड (ङ) के बाद परंतुक यह है कि परंतु राज्य सरकार, इस धारा की उपधारा (2) के खंड (घ) में उल्लिखित भूमि से विनिमय की अनुज्ञा विहित शर्तों पर और विहित रीति से, दे सकती है।

हालाँकि, प्रथम दृष्टया, धारा 101 की उपधारा (1) के खंड (ख) के (जो सर्वोपरि खंड द्वारा अर्हित है) और, धारा 101 की उपधारा (2) के खंड (घ) के सामर्थ्यकारी उपबंधों के बीच विरोधाभास प्रतीत होता है, हालाँकि, चूँकि इस संबंध में कुछ भी न ही अभिवाक् किया गया और न ही बताया गया है, यह अदालत इस मुद्दे पर कोई भी राय व्यक्त करने से विरत रहती है। मामले के किसी भी दृष्टिकोण से उपरोक्त खंड (ङ) के बाद आने वाला परंतुक राज्य सरकार को शर्तों और निर्धारित तरीके से विनिमय की अनुमति देने में समर्थ बनाता है।

12. **विनिमय** शब्द को संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 118 में भी निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

"118. "विनिमय" की परिभाषा - जबकि दो व्यक्ति एक चीज़ का स्वामित्व किसी अन्य चीज के स्वामित्व के लिए परस्पर अंतरित करते हैं जिन दोनों चीजों में से कोई भी केवल धन नहीं है या दोनों चीजें केवल धन हैं ,तब वह संव्यवहार 'विनिमय' कहा जाता है।

विनिमय को पूर्ण करने के लिए संपत्ति का अंतरण केवल ऐसे प्रकार से किया जा सकता है जैसा ऐसी संपत्ति के विक्रय द्वारा अंतरण के लिए उपबंधित है।"

इसलिए संपत्ति का विनिमय वहां होगा जहां दो व्यक्ति पारस्परिक रूप से एक चीज के स्वामित्व को दूसरे के स्वामित्व में अंतरित करते हैं। इसलिए, विनिमय की अपेक्षित आवश्यकता यह है कि यह प्रत्येक पक्ष द्वारा

अनुवादित

स्वैच्छिक और सचेत निर्णय होना चाहिए और कानून द्वारा अनुज्ञापित होना चाहिए।

13. इस स्तर पर, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016 के नियम 100, 101 और 102 का संदर्भ लेना उचित है। जिसे निम्नानुसार पढ़ें:

"100. भूमिधरों के मध्य विनिमय का आवेदन [धारा 101]-

(1) दो भूमिधरों के मध्य भूमि के विनिमय के आवेदन में निम्न विशिष्टतायें होगी: -
(क) विनिमय के दोनों पक्षकारों का नाम, पितृनाम तथा पता।
(ख) विनिमय में दी जाने वाली एवं प्राप्त की जाने वाली भूमि का ब्यौरा (भूखंड संख्या, क्षेत्रफल अवस्थिति तथा भु-राजस्व)।
(ग) क्या प्रस्तावित विनिमय जोतों की चकबंदी अथवा खेती की सुविधा के लिए आवश्यक है।
(घ) क्या प्रस्तावित विनिमय में भूमि पर अविभाजित हित सम्मिलित है।
(ङ) क्या भूमि अथवा उसका कोई भाग पट्टे पर दिया गया है अथवा विल्लंगामित है।
(च) विनिमय में दी गई एवं प्राप्त होने वाली भूमि का मूल्यांकन और ऐसे मूल्यांकन में अंतर की मात्रा।
(छ) विनिमय में दी गई एवं प्राप्त होने वाली भूमि का क्षेत्रफल एवं ऐसे क्षेत्रफल में अंतर की मात्रा।
(ज) क्या विनिमय की गई एवं प्राप्त भूमि उसी अथवा उसी तहसील के संलग्न गांव में स्थित है।

(2) ऐसे प्रत्येक आवेदन के साथ विनिमय में दिए जाने एवं प्राप्त किए जाने वाले भूखंडों से संबंधित खतौनी की प्रमाणित प्रतियां भी संलग्न होगी।

101. ग्राम पंचायत की भूमि के विनिमय के लिए आवेदन (धारा 101).- (1) धारा 101(1) के खंड (ख) के अधीन भूमिधर द्वारा विनिमय के लिए दिये गये प्रत्येक आवेदन में निम्नलिखित विवरण होंगे:- (क) नियम 100(1) में विनिर्दिष्ट विवरण।
(ख) क्या ग्राम पंचायत से विनिमय में प्राप्त की जाने वाली भूमि नियोजित उपयोग के लिए आरक्षित है अथवा ऐसी भूमि है जिसमें भूमिधरी अधिकार उद्भूत नहीं होता है।
(ग) क्या ग्राम पंचायत से विनिमय में प्राप्त की जाने वाली भूमि पर कोई वृक्ष या आस्तियां हैं, यदि हां तो उसका विवरण।

(2) ऐसे प्रत्येक आवेदन के साथ विनिमय स्वरूप प्रदत्त तथा प्राप्त, भूखंडों से संबंधित खतौनी की प्रमाणित प्रतियां और भूमि प्रबंधक समिति के ऐसे विनिमय के पक्ष में संकल्प अथवा कलेक्टर द्वारा अनुमोदित उप जिलाधिकारी के स्वप्रेरणा के संकल्प की प्रति संलग्न की जाएगी।

102. उप जिलाधिकारी द्वारा विनिमय की अनुमति प्रदान किया जाना [धारा 101 और 102].- (1) नियम 100 अथवा नियम 101 के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर उप जिलाधिकारी भूमिधर या संबंधित ग्राम पंचायत को इस आशय का कारण बताओ नोटिस जारी

करेगा कि क्यों न विनिमय की अनुमति प्रदान कर दी जाए।

(2) उप जिलाधिकारी विनिमय में ली या दी जाने वाली भूमि के किराए से संबंधित मूल्य का आगणन कराएगा और यदि कोई पट्टाधारक, बंधकदार या अन्य कोई भारधारक यदि कोई हो तो सुनवाई करेगा।

(3) आवश्यक जांच करने के पश्चात यदि उप जिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि पक्षकार ऐसे विनिमय के लिए सहमत हैं और धारा 101(2) के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं है तो वह ऐसे विनिमय की अनुमति देगा और तदनुसार अधिकार अभिलेख (खतौनी) में संशोधन करने के लिए निर्देश देगा।

(4) यदि उपधारा (1) के खंड (ख) में अभिदिष्ट भूमि के संबंध में आवेदन है और यदि यह नियोजित प्रयोग के लिए आरक्षित है अथवा ऐसी भूमि है जिसमें भूमिधरी अधिकार उद्भूत नहीं होते हैं और उप जिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि विनिमय की अनुज्ञा आवेदक के हित में और जनहित में भी है तो वह मामले को समुचित आदेश के लिए राज्य सरकार को संदर्भित कर सकेगा और यदि राज्य सरकार द्वारा अनुज्ञा प्रदान की जाती है, तो उप जिलाधिकारी अधिकार अभिलेख (खतौनी) को तदनुसार संशोधित करने का निर्देश देगा।"

14. जैसा कि नियमावली, 2016 के उपरोक्त प्रावधानों को पढ़ने से पता चलता है, नियम 100 दो भूमिधरों के बीच भूमि के विनिमय के लिए प्रत्येक आवेदन में आवश्यक विवरण प्रदान करता है; नियम 101 भूमिधर द्वारा ग्राम पंचायत की भूमि के विनिमय के लिए प्रत्येक आवेदन में आवश्यक विवरण विनिर्दिष्ट करता है; और, नियम 102 उप जिलाधिकारी द्वारा नियम 100 या नियम 101 के तहत एक आवेदन पर विचार करने की प्रक्रिया प्रदान करता है। नियम 102 के उप-नियम (4) के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि जहां आवेदन उप-धारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट भूमि के संबंध में है और यह योजनाबद्ध उपयोग के लिए आरक्षित है या वह भूमि है जिसमें भूमिधरी अधिकार प्रोद्भूत नहीं हैं और उप जिलाधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि विनिमय की अनुज्ञा आवेदक के हित में है और सार्वजनिक हित में भी है, तो वह मामले को समुचित आदेश के लिए राज्य सरकार को निर्देशित कर सकता है और यदि राज्य सरकार द्वारा अनुज्ञा दी जाती है, उप जिलाधिकारी अधिकार-अभिलेख (खतौनी) को तदनुसार सही करेगा।

15. याचिकाकर्ताओं द्वारा अपनी भूमि के विनिमय में जो भूमि मांगी जा रही है वह ग्राम पंचायत को सौंपी गई है। कथित स्कूल का निर्माण याचिकाकर्ताओं की भूमि पर बहुत पहले किया गया था और विनिमय के लिए आवेदन 11.03.2016 को दायर किया गया था। बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 की धारा 9-क को निम्नानुसार पढ़ें:-

धारा 9क. बेसिक स्कूल के अध्यापकों और संपत्तियों का नियंत्रण

(1) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी और उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ के दिनांक की ओर से,-

(क) बेसिक स्कूल का ऐसा प्रत्येक अध्यापक जो ऐसे प्रारंभ के ठीक पूर्व परिषद के अधीन सेवारत रहा हो, यथास्थिति, ऐसी ग्राम पंचायत या नगरपालिका के, जिसके प्रादेशिक क्षेत्र की सीमा के भीतर बेसिक स्कूल अवस्थित है, प्रशासनिक नियंत्रण में होगा;

(ख) किसी बेसिक स्कूल के संबंध में परिषद के सभी भवन, संपत्तियां और परिस्थितियां यथास्थिति, ऐसी ग्राम पंचायत या नगरपालिका को, जिसकी प्रादेशिक क्षेत्र की सीमा के भीतर बेसिक स्कूल अवस्थित हो, अंतरित और उसमें निहित हो जाएगी;

(ग) जहां ऐसे प्रारंभ के ठीक पूर्व किसी भवन या उसके किसी भाग पर किसी बेसिक स्कूल के प्रयोजन के लिए परिषद किराएदार के रूप में अध्यासित रहा हो वहां ऐसे भवन या उसके भाग के संबंध में किराएदारी किसी संविदा, पट्टा या अन्य लिखत में किसी बात के होते हुए भी, यथास्थिति ग्राम पंचायत या नगरपालिका के पक्ष में अंतरित हो जाएगी;

(घ) धारा 18-क की उपधारा (2) में निर्दिष्ट भवन या उसके भाग के संबंध में परिषद, लाइसेंसधारी नहीं रह जाएगा और यथास्थिति ऐसी ग्राम पंचायत या नगरपालिका को जिसके प्रादेशिक क्षेत्र की सीमा के भीतर ऐसा भवन अवस्थित हो, यदि वह पहले से उसका स्वामी ना हो तो ऐसे भवन या उसके भाग के संबंध में ऐसे निबंधनों और शर्तों पर जैसी राज्य सरकार द्वारा अवधारित की जाए, लाइसेंसधारी समझा जाएगा।

(2) किसी ग्राम पंचायत या नगरपालिका को, यथास्थिति, ऐसी ग्राम पंचायत या नगरपालिका को उपधारा (1) के अधीन अंतरित या उसमें निहित किसी भवन, संपत्ति या आस्तियों का विक्रय, दान, विनिमय, बंधक, पट्टा द्वारा या अन्यथा अंतरित करने की शक्ति नहीं होगी।

15. संहिता, 2006 की धारा 59 की उपधारा (3) के खंड (ग) और धारा 77 की उपधारा (1) के खंड (च) के प्रावधान को देखते हुए, भूखंड संख्या 19 का क्षेत्रफल जो स्वीकार्य रूप से बाग भूमि है, जिस पर स्कूल का निर्माण किया गया है और जिस पर याचिकाकर्ता भूमिधरी अधिकार का दावा करते हैं, उसे ग्राम पंचायत को सौंपा गया समझा जाएगा। हालाँकि, यह प्रत्यर्थियों का मामला नहीं हो सकता है कि भूखंड संख्या 19 को बेसिक शिक्षा अधिनियम की धारा 9-क के प्रावधानों के तहत ग्राम पंचायत को अंतरित या निहित किया गया था, क्योंकि बेसिक शिक्षा परिषद को पहले यह प्रदर्शित करना होगा कि भूमि उसकी है, जिसमें भूखंड संख्या 19 और स्कूल का भवन समाविष्ट है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बेसिक शिक्षा अधिनियम की धारा 9-क के प्रावधानों का संदर्भ, जहां तक याचिकाकर्ताओं के भूमिधरी भूखंड संख्या 19 से संबंधित है, का कोई अर्थ नहीं है। हालाँकि, भूखंड संख्या 18 के संबंध में, प्रत्यर्थियों के पास एक तर्कपूर्ण मामला हो सकता है।

16. मामले के किसी भी दृष्टिकोण से, वर्तमान रिट याचिका में यह देखा जाना आवश्यक है कि क्या उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.04.2017 और राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.02.2021 को कायम रखा जा सकता है। उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश का सार पहले ही ऊपर

नोट किया जा चुका है। स्पष्ट है कि विनिमय आवेदन पत्र अस्वीकृत करने का कारण यह है कि एक भूखंड पर बाग है, जबकि दूसरे भूखंड पर विद्यालय भवन मौजूद है। इसलिए, संहिता, 2006 की धारा 101 की उपधारा (1) के तहत विनिमय की अनुज्ञा देने से इनकार करने के लिए, उप जिलाधिकारी को संहिता, 2006 की उपधारा (2) के खंड (ख) के संदर्भ में निष्कर्ष दर्ज करना आवश्यक था। इसका तात्पर्य यह है कि लौटाया गया निष्कर्ष यह होना चाहिए कि विनिमय में दी गई और प्राप्त की गई भूमि के मूल्यांकन के बीच का अंतर, यदि विहित रीति से निर्धारित किया जाता है, तो कम मूल्यांकन के दस प्रतिशत से अधिक है। निःसंदेह, धारा 101 की उपधारा (2) में उल्लिखित किसी भी स्थिति के अस्तित्व के आधार पर अनुज्ञा से इनकार करने के निष्कर्ष को अभिलिखित करने के लिए उप जिलाधिकारी के लिए भी मार्ग खुला था, यदि अभिलेख पर तथ्य और साक्ष्य प्रतिबिंबित होते हैं। उप जिलाधिकारी को उन विचारों को ध्यान में रखना आवश्यक था जो प्रश्नगत क़ानून के उद्देश्य से प्रासंगिक थे। वर्तमान मामले में ऐसा नहीं किया गया और इसलिए दिनांक 24.04.2017 का आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखने योग्य नहीं है। राजस्व परिषद का आदेश दिनांक 23.02.2021 भी याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण की अस्वीकृति के लिए उप जिलाधिकारी के सादृश्यता को अपनाता है, और इसलिए, उस आदेश को भी कायम नहीं रखा जा सकता है।

17. **सीताराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने संप्रेषित किया:

"20. अपनी वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करते हुए, यदि संबंधित प्राधिकारी उन विचारों को नजरअंदाज करता है या ध्यान में नहीं रखता है जो प्रश्नगत क़ानून के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, तो उसकी कार्रवाई अमान्य होगी। यह और भी अधिक होगा जहां प्राधिकारी को विवेक प्रदान करने वाले क़ानून ने स्पष्ट रूप से उस विचार को निर्धारित करके विवेक को संरचित किया है जिसे विवेक के प्रयोग के लिए प्राधिकारी द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसे मामले में, यदि वैवेकिक शक्ति का प्रयोग उन विचारों से प्रभावित हुआ है जिन्हें कानूनी तौर पर ध्यान में नहीं रखा जा सकता है या ध्यान में लेने के लिए आवश्यक प्रासंगिक विचारों की उपेक्षा की गई है, तो प्राधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय अमान्य होगा।"

18. इस मामले का एक महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। नियमावली, 2016 के नियम 101 के उप-नियम (2) के तहत, ग्राम पंचायत की भूमि के विनिमय के लिए आवेदन पत्र के साथ विनिमय में दिए और प्राप्त भूखंडों से संबंधित खतौनी की प्रमाणित प्रतियां संलग्न करना आवश्यक है, साथ ही ऐसे विनिमय के पक्ष में भूमि प्रबंधक समिति के संकल्प की एक प्रति भी आवश्यक है। वैकल्पिक रूप से, आवेदन के साथ कलेक्टर द्वारा अनुमोदित उप जिलाधिकारी का स्वत: संज्ञान संकल्प संलग्न करना होगा। यह प्रदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि ऐसा कोई भी संकल्प याचिकाकर्ताओं के आवेदन के साथ बनाया और दायर किया गया था।

19. **शिव मूरत बनाम राजस्व परिषद, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश और अन्य,** के मामले में

निरसित यूपीजेडए और एलआर अधिनियम, 1950 की धारा 161 के प्रावधानों के तहत विनिमय पर विचार करते हुए न्यायालय ने प्रश्न किया कि क्या राज्य सरकार में निहित भूमि का भूमि प्रबंधक समिति को नोटिस दिए बिना और विनिमय को स्वीकृति देने वाले गांव सभा के संकल्प बिना विनिमय किया जा सकता है। न्यायालय ने निम्नानुसार संप्रेषित किया कि:

"11. धारा 161 और नियम 145 के उप-खंड (i) को सीधे तौर से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि सहायक कलेक्टर, नियम के परिणामस्वरूप, विनिमय की शर्तों से संतुष्ट है। पक्षकारों को यह बताने के लिए बुलाना आवश्यक है कि विनिमय क्यों नहीं किया जाना चाहिए और उसके बाद नियम 146 के तहत सहायक कलेक्टर को आपत्तियों, यदि कोई हो, पर निर्णय लेना है और उचित आदेश पारित करना है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि गाँव सभा को सूचना दिए बिना और भूमि प्रबंधक समिति की सहमति दर्ज करने वाले संकल्प के अभाव में, हल्का लेखपाल की एक रिपोर्ट पर सहायक कलेक्टर द्वारा विनिमय पर स्वतः संज्ञान लेने की अनुज्ञा अधिनियम की धारा 161 के तहत अनिवार्य नहीं होने के कारण शून्य होगी।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील स्वीकार कर ली जाती है, तो किसी भूमिधर की भूमि का उसके पीठ पीछे किसी अन्य भूमिधर के आवेदन पर, सहायक कलेक्टर की स्वीकृति पर ही विनिमय किया जा सकता है। नियम के अनुसार भूमि का मालिक, चाहे वह भूमिधर हो या वर्तमान मामले में गाँव सभा को, गाँव सभा में निहित भूमि के विनिमय से पहले सूचित करना होगा।

.....

17. "विनिमय" शब्द के अर्थ को पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह एकपक्षीय समव्यवहार नहीं है और पारस्परिक है और यह दोनों पक्षों की तत्परता और इच्छा पर निर्भर करता है, अर्थात्, जो पक्ष विनिमय करना चाहता है और वह पक्ष जो दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्तावित विनिमय को स्वीकार करता है। इसलिए, मेरी सुविचारित राय है कि जब तक दोनों पक्ष विनिमय के लिए सहमत नहीं होते, तब तक सहायक कलेक्टर केवल किसी व्यक्ति के कहने पर भूमि को किसी अन्य व्यक्ति के साथ विनिमय करने की अनुज्ञा नहीं दे सकता, जब तक कि वह विनिमय के लिए तैयार न हो। पक्षकारों की संबंधित भूमि का विनिमय करने की इच्छा अधिनियम की धारा 161 के तहत एक उदाहरण है। भूमि का विनिमय विनिमय करने के इच्छुक पक्ष का एकपक्षीय समव्यवहार नहीं है, इसके लिए उस व्यक्ति की सहमति होनी चाहिए जिसके साथ विनिमय की मांग की गई है और जब तक पक्षकारों के बीच विनिमय का समझौता नहीं होता है, सहायक कलेक्टर के पास ऐसी कोई शक्ति निहित नहीं है जिससे वह क़ानून के तहत भूमिधर को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी अन्य भूमिधर/गांव सभा के साथ भूमि का विनिमय करने के लिए मजबूर कर सके।

18. रामबली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय ने 9 मई 2012 को निर्णय देते हुए धारा 161 के तहत आवेदन पर निर्णय लेने के लिए

सहायक कलेक्टर को निर्देश देने की मांग करते हुए परमादेश की रिट जारी करने से इनकार कर दिया। न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

".. .....

जैसा कि मैंने देखा है कि एक भूमिधर की भूमि का दूसरे भूमिधर से विनिमय, विनिमय के इच्छुक पक्ष द्वारा एकपक्षीय समव्यवहार नहीं है, इसके लिए उस व्यक्ति की सहमति होनी चाहिए जिसके साथ विनिमय की मांग की गई है और जब तक पक्षकारों के बीच विनिमय का एक समझौता है, क़ानून के तहत सहायक कलेक्टर के पास ऐसी कोई शक्ति निहित नहीं है, जो एक भूमिधर को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी अन्य भूमिधर के साथ अपनी भूमि के विनिमय के लिए मजबूर कर सके। मेरा विचार है कि विस्तृत प्रासंगिक नियमों के साथ पठित अधिनियम की धारा 161 के तहत भूमि के विनिमय का अधिकार प्रदान करना विनिमय के दोनों पक्षों की सुविधा और अंततः विनिमय के लिए दोनों पक्षों की इच्छा के अधीन है। धारा 161 सहायक कलेक्टर पर या तो अनुज्ञा देने या उसे अस्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। यदि वह अधिनियम की धारा 161 और नियमावली के नियम 144 से 147 के अनुरूप नहीं है।"

19. भूमि का विनिमय जमींदारी उन्मूलन अधिनियम की कोई नवीनता नहीं है। विनिमय के प्रावधान उत्तर प्रदेश किरायेदारी अधिनियम, 1939 और अन्य विधान जैसे म.प्र. भूमि राजस्व न्यायालय, 1959 के तहत भी मौजूद थे। अधिनियम में विनिमय शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 118 में दी गई परिभाषा लागू होगी। उक्त प्रावधान के अनुसार विनिमय एक अंतरण है। जब दो व्यक्ति परस्पर एक वस्तु के स्वामित्व को दूसरे के स्वामित्व में अंतरित करते हैं, तो समव्यवहार को विनिमय कहा जाता है। वैध विनिमय के लिए, यह स्वेच्छा से होना चाहिए और दोनों पक्षों को इस पर सहमत होना चाहिए। जब तक दोनों पक्ष विनिमय के लिए सहमत न हों तब तक कोई विनिमय अनुज्ञेय नहीं है।20. साहब सिंह बनाम गांव सभा, 1981 आरडी 85 में, जहां भूमि प्रबंधक समिति ने एक संकल्प पारित किया कि एक विशेष पथ्या को चौड़ा किया जाना चाहिए और प्रभावित भू-धृतिधारक को उनके चक के पास विनिमय में जमीन दी जानी चाहिए। यह अभिनिर्धारित किया गया कि विनिमय को स्वीकृति देने वाला उप जिलाधिकारी का आदेश गलत था क्योंकि सभी प्रभावित भू-धृतिधारकों की सहमति प्राप्त नहीं की गई थी।

21. श्रीमती बड़ी दुलैया बनाम गांव सभा, 1987 आरडी 246, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि नियम 144 से 146 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, और नियम 110-क (2) के तहत आवश्यक अनुज्ञा प्राप्त नहीं की गई थी, तो विनिमय का दिया गया आदेश अमान्य होगा। (निर्देश: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मैसर्स टेक्नो टावर लिमिटेड, 1986 आरडी 397)।

22. नारायण सिंह बनाम गाँव सभा, 1975 एएलजे (राजस्व) 73 में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि गाँव सभा की भूमि को गाँव सभा की सहमति के बिना विनिमय करने की

स्वीकृति नहीं दी जा सकती। गुलशन राय बनाम मित्र सेन, 1994 आरडी 125, में जहां नायब तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत आख्या पर सिफारिश की गई थी कि पक्षकारों को विनिमय की स्वीकृति दी जा सकती है और ऐसी आख्या पर, उप जिलाधिकारी ने विनिमय को स्वीकृति देने का आदेश पारित किया था, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कानून की नज़र में यह कोई आदेश नहीं है।

23. विनिमय हेतु आवेदन के निस्तारण से पूर्व, सहायक कलेक्टर पर यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य है कि नियम 144 से 146 के प्रावधानों का अक्षरशः पालन हो रहा है। (निर्देश-अशोक कुमार बनाम महावीर सिंह, 1994 आरडी 136; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मेसर्स टेक्नो टावर लिमिटेड, 1986 आरडी 397)। विनिमय की कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही है और इसलिए, सहायक कलेक्टर को पूर्ण और स्वनिहित आदेश पारित करना चाहिए था। जहां सहायक कलेक्टर निष्कर्ष निकालते हैं कि विनिमय में शामिल पक्षकारों ने सहमति नहीं दी है, इसलिए या यदि उनमें से किसी ने ऐसी सहमति वापस ले ली है, तो उसके पास आवेदन को अस्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। (फकीर चंद बनाम नायब जोहरा जैदी, 1995 आरडी 405)

24. विचारण न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए और देखना चाहिए कि नियम 145 में उल्लिखित कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है और धारा 161 के परंतुक में उल्लिखित शर्त पूरी की गई है (गांव सभा बनाम कुंदन लाल, 1986 आरडी 366)।

25. गाँव सभा की भूमि का विनिमय प्रधान या लेखपाल की व्यक्तिगत सहमति पर निर्भर नहीं करता है। विनिमय के लिए कानून के तहत अपेक्षित उचित संकल्प गांव सभा द्वारा पारित किया जाना चाहिए। (हरिहर प्रसाद बनाम जगदीश, 2001 आरडी 163)।"

20. विनिमय के पक्ष में भूमि प्रबंधक समिति के किसी भी संकल्प या कलेक्टर द्वारा अनुमोदित उप जिलाधिकारी के किसी स्वत: संज्ञान संकल्प के अभाव में, ग्राम पंचायत की भूमि के विनिमय के लिए दायर कोई भी आवेदन नियम 101 की निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता है और इसलिए ऐसे आवेदन में एक असाध्य दोष होगा।

21. उपरोक्त वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उप जिलाधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 24.04.2017 और राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.02.2021 अमान्य है और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं द्वारा संहिता, 2006 की धारा 101 के तहत दायर किया गया आवेदन अधूरा प्रतीत होता है और इसलिए, इसे वैध आवेदन नहीं कहा जा सकता है, उनके लिए सभी आवश्यक विवरण और दस्तावेज संलग्न करते हुए एक नया आवेदन दायर करने का विकल्प खुला होगा। यदि ऐसा कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो उस पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा सम्यक रूप से विचार किया जाएगा। तदनुसार, इस रिट याचिका को यहां संप्रेक्षण के संदर्भ में **स्वीकार** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 334

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय,

रिट बी संख्या 2783/2022

श्रीमती चंदा देवी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शैलेन्द्र कुमार पांडे, श्री ऋतुवेंद्र सिंह नागवंशी, श्री आर.सी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री नरसिंह पांडे, श्री प्रशांत कुमार त्रिपाठी

ए. चकबंदी कानून - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 9-ए(2) एवं 11(1) - स्वामित्व वाद - अपील समय सीमा के भीतर दायर नहीं की जा सकी- विलम्ब के लिए क्षमा मांगी गई, जो निरस्त कर दी गई - पुनरीक्षण में अपीलीय न्यायालय के अस्वीकृति आदेश की भी पुष्टि की गई - न्यायोन्मुख दृष्टिकोण - प्रयोज्यता - निर्णय दिया गया कि मामले को समय सीमा के आधार पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाना चाहिए - उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश को निरस्त कर दिया तथा अपील दायर करने में विलम्ब को क्षमा करते हुए गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए अपील को वापस भेज दिया। (अनुच्छेद 12, 16, 17 एवं 18)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

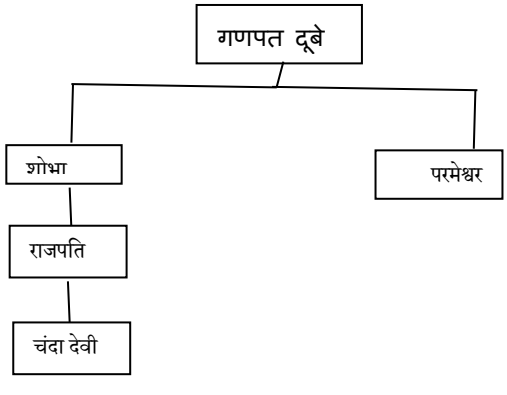
उद्धृत वाद सूची:

1. केदार व अन्य बनाम सहायक संचालक चकबंदी बांदा व अन्य; 1988 एएलजे 358
2. कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण अनंतनाग एवं अन्य बनाम एमएसटी कांतिजी एवं अन्य; एआईआर 1987 एससी 1353
3. भागमल व अन्य बनाम कुंवर लाल व अन्य; (2010) 12 एससीसी 159

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय, द्वारा प्रदत्त)

विद्वान श्री आर.सी. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र कुमार पांडे, राज्य उत्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी क्रमांक 5 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार त्रिपाठी और प्रतिवादी क्रमांक 12 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री नरसिंह पांडे, ने की, सुना है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विवाद की सराहना करने के लिए पारिवारिक वंशावली प्रासंगिक होगी जो निम्नानुसार है:



विवाद पुराने खाता संख्या 137 से संबंधित है जिसमें 16 भूखंड हैं जिनका कुल क्षेत्रफल 5 बीघा, 1 बिस्वा और 8 धूर है। श्रीमती

लखपता विवादग्रस्त भूमि का जमींदार/मालिक था। श्रीमती लखपता ने अपना संपूर्ण अधिकार दिनांकित पंजीकृत विक्रय पत्र द्वारा हस्तांतरित कर दिया 02.12.1918 श्री गणपत दुबे के पक्ष में। यह भी महत्वपूर्ण है कि श्रीमती लखपता विवादग्रस्त भूमि की सर धारक थीं। श्रीमती द्वारा किए गए स्थानांतरण के कारण उत्तर पश्चिमी प्रांत किरायेदारी अधिनियम 1901 की धारा 10 के तहत निहित प्रावधानों के आधार पर श्रीमती लखपता पूर्व मालिकाना किरायेदार बन गया। श्रीमती लखपता से श्री गणपत दुबे, 1348 फसली के बाद से श्रीमती लखपता के बारे में नहीं सुना गया, तदनुसार, श्री गणपत दुबे ने जमींदार होने के नाते पूरी संपत्ति अपने कब्जे में ले ली। यू.पी.जेड.ए. की धारा 18 के तहत निहित प्रावधानों के आधार पर। एवं एल. आर. अधिनियम, निहित होने की तिथि के बाद श्री गणपत दुबे विवादग्रस्त भूमि के भूमिधर बन गये। श्री गणपत दुबे की मृत्यु के बाद, उनकी दो विधवाएँ अर्थात् श्रीमती। शारदा और श्रीमती परमेश्वर संपत्ति के उत्तराधिकारी बने और तदनुसार उनके नाम राजस्व रिकॉर्ड में बदल दिए गए। श्रीमती परमेश्वर के पास कोई मुद्दा नहीं था, इसलिए उनके हिस्से की जिम्मेदारी श्रीमती को मिली। शोभा. श्रीमती राजपति देवी पुत्री श्रीमती. शोभा ने चंदा देवी के पक्ष में एक वसीयतनामा निष्पादित किया, जो इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता है। पर्यवेक्षक/कन्नोंगो द्वारा पारित अमलदरामद के आदेश दिनांक 30.10.1970 के तहत, कनहैया के पुत्र लालता, रामपदारथ और रामसुख का नाम श्रीमती के उत्तराधिकारी के रूप में परिवर्तित करने का आदेश दिया गया था। लखपता. चूंकि उत्तराधिकार विवादित था क्योंकि पर्यवेक्षक/कानूनगो के पास पी.ए.-11 के आधार पर यूपी भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33-ए के तहत लालता, रामपदारथ और रामसुख के नाम दर्ज करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था, श्रीमती। राजपति ने यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के तहत वाद संख्या 425 में एक मुकदमा दायर किया, जिसमें विवाद में भूखंड के संबंध में अपने अधिकार और शीर्षक की घोषणा का दावा किया गया था, जिसमें कहा गया था कि अमलदरामद का आदेश दिनांक 30.10.1970 जारी हो चुका है। धोखाधड़ी से आओ. उपरोक्त मुकदमे की सुनवाई के दौरान, गांव को यू.पी.सी.एच. की धारा 4 के तहत चकबंदी अभियान के तहत लाया गया था। यू.पी.सी.एच. की धारा 5 के तहत निहित प्रावधानों के मद्देनजर इस तरह के मुकदमे को 28.05.1979 को समाप्त कर दिया गया। कार्यवाही करना। समेकन ऑपरेशन के मूल वर्ष में लालता, रामपदारथ और के भूखंडों पर रामसुख पुत्रगण कन्हैया का नाम दर्ज था | खाता नंबर 137 नया खाता नंबर 105. मूल वर्ष प्रविष्टि के विरूद्ध श्रीमती राजपति ने यू.पी.सी.एच. की धारा 9-ए (2) के तहत आपत्ति दायर की। खाता संख्या 105 के बटाई पर विशेष अधिकार का दावा करते हुए कहा गया है कि वह दो भूखंडों पर खुद खेती कर रही है और शेष 14 भूखंडों को बटाई खेती पर दे दिया गया है। चकबंदी अधिकारी ने श्रीमती द्वारा दायर उपरोक्त शीर्षक आपत्ति पर सुनवाई की। राजपति और आदेश दिनांक 19.02.1982 द्वारा श्रीमती के विरुद्ध आपत्ति का निर्णय किया गया। राजपति ने 14 भूखंडों के लिए और दो भूखंडों

के लिए उनके पक्ष में फैसला किया जो उनकी निजी खेती में थे। चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक 19.02.1982 के विरूद्ध श्रीमती. राजपति ने यू.पी.सी.एच की धारा 11 के तहत अपील दायर की। 16.08.1982 को अधिनियम अपीलकर्ता के शपथ पत्र के साथ विलंब की माफी के लिए प्रार्थना के साथ। श्री जानकी और श्री जगाई ने चकबंदी अधिकारी के दिनांक 19.02.1982 के आदेश के विरुद्ध अपनी अलग-अलग अपीलें भी दायर कीं। तीनों अपीलों को समेकित कर एक साथ सुना गया। अपीलीय अदालत ने दिनांक 18.03.1983 के आदेश के तहत चकबंदी अधिकारी के आदेश को रद्द करते हुए सभी तीन अपीलें स्वीकार कर लीं। अपीलीय आदेश दिनांक 18.03.1983 के विरुद्ध, रामपदारथ और अन्य ने यूपीसीएच की धारा 48 के तहत तीन अलग-अलग संशोधन दायर किए, संशोधन संख्या 734, 733 और 732। कार्यवाही करना। तीनों संशोधनों को समेकित किया गया और एक साथ सुना गया। उपरोक्त संशोधनों की अनुमति दी गई और दिनांक 22.10.1984 के आदेश के तहत मामले को नए सिरे से अपील पर निर्णय लेने के लिए अपीलीय न्यायालय को भेज दिया गया। रिमांड आदेश दिनांक 22.10.1984 के अनुसरण में जानकी, जगाई और राजपति द्वारा दायर अपीलों को क्रमशः अपील संख्या 4, 6 और 5 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया। तीनों अपीलों पर एक साथ सुनवाई हुई और अपीलीय अदालत ने दिनांक 31.05.2004 के आदेश के तहत अपील का फैसला किया, जिसके तहत अपील संख्या 4 जानकी द्वारा दायर की गई, अपील संख्या 5 श्रीमती द्वारा दायर की गई। राजपति को अनुमति दे दी गई और जगई द्वारा दायर अपील संख्या 6 को खारिज कर दिया गया। अपीलीय अदालत ने दिनांक 31.05.2004 के आदेश के तहत अपील पर निर्णय लेते समय रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के साथ-साथ यू.पी.जेड.ए. के प्रावधानों को भी ध्यान में रखा है। और एल.आर.एक्ट, 1950 पर याचिकाकर्ता का दावा स्वीकार कर लिया | अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत निहित प्रावधानों के आधार पर। आदेश दिनांक 31.05.2004 के विरुद्ध यू.पी.सी.एच. की धारा 48 के अंतर्गत दो संशोधन। अधिनियम राम शंकर एवं अन्य द्वारा दायर किया गया था, जिसे समेकित कर एक साथ सुनवाई की गई। पुनरीक्षण अदालत ने दिनांक 16.03.2005 के आदेश के माध्यम से पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया, इसलिए राम शंकर और अन्य ने अपीलीय अदालत के दिनांक 31.05.2004 और पुनरीक्षण न्यायालय के दिनांक 16.03.2005 के आदेश को 2005 की रिट-बी संख्या 44157 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, जिसे अनुमति दी गई थी। दिनांक 01.10.2010 के आदेश ने दिनांक 31.05.2004 और 16.03.2005 के आदेशों को रद्द कर दिया और विलंब माफी मामले, पार्टियों के कब्जे और राजस्व प्रविष्टि की जांच के लिए मामले को अपीलीय न्यायालय के समक्ष भेज दिया। इस न्यायालय के दिनांक 01.10.2010 के आदेश के अनुपालन में बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने तीनों अपीलों को बहाल कर दिया है और पक्षकारों के वकीलों को सुनने के बाद याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती हित, जानकी और जगई द्वारा दायर की गई सभी तीन अपीलों

को परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया है। आदेश दिनांक 04.06.2016. याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.06.2016 के अपीलीय आदेश के खिलाफ रिकॉल आवेदन दायर किया, जिसे दिनांक 07.10.2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, तदनुसार याचिकाकर्ता ने यू.पी.सी.एच. की धारा 48 के तहत दो अलग-अलग संशोधन दायर किए। आदेश दिनांक 04.06.2016 एवं 07.10.2016 के विरूद्ध कार्यवाही करें। जगलाल नाम के व्यक्ति ने अपीलीय आदेश दिनांक 04.06.2016 के विरुद्ध अपना अलग पुनरीक्षण भी दायर किया है। तीनों संशोधनों को समेकित किया गया और एक साथ सुना गया। पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 08.9.2021 के आदेश के तहत सभी तीन संशोधनों को खारिज कर दिया, इसलिए यह रिट याचिका है।

इस न्यायालय ने दिनांक 19.11.2022 के आदेश के माध्यम से रिट याचिका पर विचार किया है और मामले में अंतरिम सुरक्षा प्रदान की है, हालांकि प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से दायर रिकॉल आवेदन पर दिनांक 19.11.2022 के पिछले आदेश को दिनांक 13.02.2023 के आदेश के माध्यम से वापस ले लिया गया था। सुनवाई के अवसर का आधार.

दिनांक 19.11.2022 के आदेश के अनुसरण में निजी उत्तरदाताओं संख्या 5 से 15 को नोटिस जारी किए गए थे। प्रतिवादी संख्या 5 ने श्री प्रशांत कुमार त्रिपाठी अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिवादियों को नोटिस जारी करने से पहले ही अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी थी। प्रतिवादी संख्या 12 ने प्रतिवादी को नोटिस जारी करने के बाद श्री नर्शिंग पैंसी अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थिति दर्ज कराई है।

कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 10.02.2023 के अनुसार प्रतिवादी क्रमांक 6 से 10 और 12 से 15 पर सेवा पर्याप्त है। अधिकारी ने यह भी बताया है कि प्रतिवादी क्रमांक 11 की मृत्यु हो चुकी है। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी नंबर 11 के नाम के आगे मृतक का उल्लेख करके पार्टियों की श्रेणी में संशोधन के लिए संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया है, जिनकी मृत्यु नि:संतान हो गई है और वारिस पहले से ही रिट याचिका के रिकॉर्ड में हैं। तदनुसार, इस न्यायालय ने दिनांक 28.03.2023 के आदेश के तहत संशोधन आवेदन की अनुमति दी।

याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यू.पी.सी.एच. की धारा 11 (1) के तहत शीर्षक अपील में कानून का गंभीर प्रश्न उठाया गया है। अधिनियम, लेकिन परिसीमा के आधार पर अपील खारिज कर दी गई है। उन्होंने आगे कहा कि अपील में अपीलकर्ता के अलग-अलग हलफनामे के साथ देरी को माफ करने की प्रार्थना की गई है, लेकिन अपीलीय अदालत ने सीमा के आधार पर अपील को अवैध रूप से खारिज कर दिया है। उन्होंने आगे कहा कि अपील दायर करने में देरी अत्यधिक नहीं थी, बल्कि चकबंदी अधिकारी के दिनांक 19.02.1982 के आदेश के खिलाफ अपील 16.04.1982 को दायर की गई थी, क्योंकि परिसीमा के आधार पर अपील को खारिज करना निर्धारित कानून के सिद्धांत के खिलाफ है। इस न्यायालय के साथ-साथ शीर्ष न्यायालय को भी समय-समय पर विलंब माफी मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए

धन्यवाद देना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि पहले याचिकाकर्ता के दावे को कानून के प्रावधानों पर विचार करते हुए विस्तृत आदेश पारित करके योग्यता के आधार पर अनुमति दी गई थी, जैसे कि इस न्यायालय द्वारा पारित रिमांड आदेश के बाद अपील को केवल सीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था, खासकर जब देरी नहीं हुई हो तकनीकी आधार के बजाय योग्यता के आधार पर मामले का निर्णय करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के सिद्धांत के विपरीत होगा। उन्होंने आगे कहा कि योग्यता के आधार पर भी, याचिकाकर्ता विवादित भूमि पर अधिकार और स्वामित्व का हकदार है क्योंकि निहित होने की तारीख के बाद लखपता को कोई अधिकार नहीं मिलेगा, ऐसे में लालता, रामपदारथ और रामसुख को कोई अधिकार नहीं मिलेगा और याचिकाकर्ता भूमि पर अधिकार और स्वामित्व का हकदार होगा। यू.पी.जेड.ए. की धारा 18 के अंतर्गत निहित प्रावधानों के दृष्टिगत विवाद। एवं एल. आर. एक्ट. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील ने 1988 की रिट-बी संख्या 14670 (श्रीमती कलावती बनाम चकबंदी के उप निदेशक और अन्य) में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया, जिसमें इस न्यायालय ने फाइलिंग में देरी को माफ करते हुए आदेश की पुष्टि की है। शीर्ष अदालत के फैसले के बाद चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष अपील की जाएगी।

दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 5 के अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 01.10.2010 को पारित रिमांड आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता की रिट याचिका की अनुमति दी गई थी और मामले को अपीलीय अदालत के समक्ष वापस भेज दिया गया था। विलंब माफ़ी मामले और अन्य बिंदुओं पर गुण-दोष के आधार पर विचार करते हुए अपील पर नए सिरे से निर्णय लें, अपीलीय अदालत ने विलंब माफ़ी मामले पर विचार किया है और परिसीमा के आधार पर अपील को खारिज कर दिया है। उन्होंने आगे कहा कि लिमिटेशन एक्ट की धारा 5 के तहत कोई अलग से आवेदन दायर नहीं किया गया है, बल्कि अपील में ही देरी की माफी के लिए प्रार्थना की गई है, इस प्रकार, अपील दायर करने में देरी को अपीलीय अदालत द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि कारण की पर्याप्तता और कारण की वास्तविकता दो अलग-अलग चीजें हैं। उन्होंने आगे कहा कि कारण की पर्याप्तता के संबंध में उदार दृष्टिकोण हो सकता है, लेकिन कारण की वास्तविकता के संबंध में उदार दृष्टिकोण नहीं हो सकता है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने देरी की माफी के लिए अलग से आवेदन दायर नहीं किया है, इसलिए देरी को माफ नहीं किया जा सकता, चाहे देरी अत्यधिक हो या नहीं। प्रतिवादी संख्या 5 के अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार त्रिपाठी ने इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जता**ल.जे. 358 केदार और अन्य बनाम सहायक निदेशक चकबंदी बांदा और अन्य** में रिपोर्ट की गई। यह प्रदर्शित करने के लिए कि विलंब माफी आवेदन दाखिल करने में कारण की वास्तविकता के संबंध में कोई उदार दृष्टिकोण नहीं हो सकता है। उन्होंने आगे कहा कि विवादित आदेश के खिलाफ किसी

हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है।

मैंने पक्षों के वकील द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि कार्यवाही अधिनियम. यू.पी.सी.एच. की धारा 9-ए (2) के तहत स्वामित्व मामले से उत्पन्न होती है। कार्यवाही करना। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.02.1982 के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा 16.04.1982 को दायर स्वामित्व अपील को अपीलीय अदालत ने केवल परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया है। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि परिसीमा के आधार पर याचिकाकर्ता की स्वामित्व अपील को खारिज करने के आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया है।

विवाद को समझने के लिए अधिनियम. यू.पी.सी.एच. की धारा 11(1) के तहत अपील का अवलोकन करें। श्रीमती द्वारा दायर राजपति द्वारा विशेष रूप से अपील के ज्ञापन के पैराग्राफ संख्या 10 में अपीलकर्ता के हलफनामे द्वारा समर्थित देरी की माफी के संबंध में विशिष्ट आधार लेना प्रासंगिक होगा जो निम्नानुसार हैं:

न्यायालय एस० ओ० सी० महोदय हरैया

1- राजपति देवी बेवा राजेंद्र सा0 मंझो0 तप्पा बेलवा प0 अमोढ़ा तह हरैया जिला बस्ती।

बनाम

1-रामसुख,

। सा0 मंझौवा दूबे

2- लालता पुत्रगण तप्पा- बेलवा परगना अमोढ़ा तह0 हरैया

3-पदारथ। |जिला- बस्ती

4-ग्राम सभा प्रधान |

5- सरकार उ0प्र0 द्वारा रैंकिंग ग्रेड

धारा- 11 सी एव एक्ट

अपील बनराजी फैसला श्रीमान सी०ओ० महोदय विक्रम जोत बाबत वाद सं० 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495 धारा 9 अ

(2) बाबत मौ० मझौवा बस्ती तप्पा बेलवा परगना अमोढा त० हरैया जिला बस्ती रामसुख बनाम लालता ता० फैसला 19-02-1982

<u>अपीलान्ट निम्नलिखिल निवेदन करता है</u>:-

1- यह कि फैसला अदालत मातहत खिलाफ कानून काबिज खारिजी है।

2- यह कि अदालत मातहत ने उक्त वझमूला मिसिल पर गौर नहीं फरमाया है। फैसला इसके खिलाफ सही नहीं है।

3- यह कि अदालत मातहत का लीगल पेपर के सही नही है।

4- यह कि अदालत मातहत में सही तनकी हास नहीं कायम किया है और नहीं टिडिंग ही सही है।

5- यह कि यह बात बखूबी साबित है कि आ०नि०पहले लखमन्ती देवी वीयर की थी जिसमें गनपत के हक में बैनामा किया और गनपत के

कानूनी को जायज वारिस राजपती अपीलान्टिया ही है।

6- यह कि रेस्पोंडेन्ट कतई लखपती के नाती नहीं है और ना ही लखपती उसकी नानी है।

7- यह कि अदालत माल द्वारा यह नियत हो चुका है कि अपीलान्टिया ही आ०नि० की मालिक बतौर भूमिधर व काबिज है।

8- यह कि कब्जा भी अपीलान्टियान ही आश्रित है और वह नियमानुसार है।

9- यह कि रेस्पोन्डेन्ट मो गलत संख्या व बिला किसी हक के आ०नि० के फर्जी ढंग से लड रहे है।

10- यह कि आदेश दिनांक 19-02-82 की जानकारी 23-02-82 को हुई और उसी दिन नकल की दरख्वास्त दिया जो 05-03-82 को मिला। वो नकल अपने वकील को अपील दाखिल के बाबत देकर घर चली गयी लेकिन भूल से अपील अन्दर मियाद दाखिल नहीं हो सकी। जानबूझकर नहीं किया है। कानून मियाद हस्व दफा 5 का फायदा मिलना जरूरी है।

अतः अपील हाजा दाखिल उम्मीदवार हूँ कि कानून मियाद हस्व दफा 5 का फायदा देकर अपील मंजूर किया जाये। आ०नि० की भूमिधर घोषित किया जावे तथा प्रतिवादीगण रेस्पोन्डेन्ट का नाम खारिज किया जावे।

अपीलान्ट 16-04-82

न्यायालयएस०ओ०सी० महोदय हर्रेया बस्ती।

अ०नं० सन 82

राजपती देवी बनाम रामसुख

बयान हल्फी

मिनजानिब श्रीमती राजपती

1. **मैं बहलफ बयान करती हूँ और कसम खाती हूँ कि मेरा नाम राजपती मेरे पति का नाम राजेन्दर सा० मझौवा तप्पा बेलवा परगना अमोढ़ा तहसील हर्रेया जिला बस्ती की निवासी हूँ।**
2. **मैं बहलफ बयान करती हूँ और कसम खाती हूँ कि आदेश दिनांक 19-2-82 की जानकारी 23-2-82 को हुई और उसी दिन नकल की दरखास्त दिया जो 5-3-82 को मिला नकल और अपील का खर्चा अपने वकील को देकर घर चली गई और आज जब तारीख पता लगाने आई तब पता चला कि वकील साहब अपील दाखिल करने से भूल गये इसलिए आज पुनः अपील दाखिल किया जा रहा है मैंने जान बूझ कर कोई गलती.... तसाहुली नहीं किया हूँ इसलिए हर सूरत में दफा-5 कानून मियाद का फायदा पाने का मुसाहक हूँ।**
3. **मैं बहलफ बयान करता हूँ और कसम खाता हूँ कि उपरोक्त कथन बयान हल्फी.... मेरे ज्ञान से सत्य है। इसमें कोई बात छिपाई नहीं गई हैं। और ना झूठ हैं परमेश्वर मेरी मदद करें।**

प्रार्थी

श्रीमती रामपती

ता० 16.4.82

अपील के आधार विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील के आधार के पैराग्राफ संख्या 10 के साथ-साथ अपील में दायर हलफनामे के साथ-साथ देरी माफी मामले के अवलोकन के बाद, परिसीमा के आधार पर

टाइटल अपील को खारिज करना न्याय के खिलाफ होगा। न्यायालय का उन्मुख दृष्टिकोण.

यह भी महत्वपूर्ण है कि पहले अवसर पर, मामले का फैसला याचिकाकर्ता के पक्ष में योग्यता के आधार पर किया गया था, हालांकि इस न्यायालय ने प्रतिस्पर्धी उत्तरदाताओं द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति देते हुए उस आदेश को रद्द कर दिया था, लेकिन तथ्य यह है कि इस मामले में स्वामित्व का दिलचस्प प्रश्न शामिल है, ऐसे में चकबंदी अधिकारी के आदेश की तारीख से **दो महीने** के भीतर दायर की गई याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करना न्याय के हित के खिलाफ होगा।

मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय को **ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 1353 कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण अनंतनाग और अन्य बनाम एमएसटी. कांतिजी और अन्य** में रिपोर्ट किया गया है। माना है कि तकनीकी आधार पर मामले को खारिज करने के बजाय मामले का फैसला योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए। निर्णय का पैराग्राफ संख्या 3 प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:

"3. विधायिका ने 1963 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 5 को अधिनियमित करके देरी को माफ करने की शक्ति प्रदान की है ताकि न्यायालयों को 'गुण-दोष' के आधार पर मामलों का निपटान करके पार्टियों को पर्याप्त न्याय करने में सक्षम बनाया जा सके। अभिव्यक्ति "पर्याप्त कारण" विधायिका द्वारा नियोजित पर्याप्त रूप से लचीला है ताकि अदालतों को कानून को सार्थक तरीके से लागू करने में सक्षम बनाया जा सके जो न्याय के उद्देश्यों को पूरा करता है जो कि अदालतों की संस्था के अस्तित्व के लिए जीवन-उद्देश्य है। यह सामान्य ज्ञान है कि इस न्यायालय के पास है इस न्यायालय में शुरू किए गए मामलों में उचित रूप से उदार दृष्टिकोण अपना रहा है। लेकिन यह संदेश पदानुक्रम में अन्य सभी न्यायालयों तक नहीं पहुंचा है। और इस तरह के उदार दृष्टिकोण को सिद्धांत रूप में अपनाया जाता है क्योंकि यह महसूस किया जाता है कि: -

"नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के किसी भी प्रावधान के तहत आवेदन के अलावा कोई भी अपील या कोई भी आवेदन निर्धारित अवधि के बाद स्वीकार किया जा सकता है यदि अपीलकर्ता या आवेदक अदालत को संतुष्ट करता है कि उसके पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त कारण है। ऐसी अवधि के भीतर अपील करना या आवेदन करना।"

1. आमतौर पर देर से अपील दायर करने से किसी वादी को लाभ नहीं होता है।

2. देरी को माफ करने से इनकार करने से एक सराहनीय मामला सामने ही खारिज हो सकता है और न्याय की हार हो सकती है। इसके विपरीत जब देरी को माफ कर दिया जाता है तो सबसे अधिक यह हो सकता है कि पक्षों को सुनने के बाद गुण-दोष के आधार पर कारण तय किया जाएगा।

3. "हर दिन की देरी की व्याख्या की जानी चाहिए" का मतलब यह नहीं है कि पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। हर घंटे की देरी, हर सेकंड की देरी क्यों नहीं? सिद्धांत को तर्कसंगत सामान्य ज्ञान व्यावहारिक तरीके से लागू किया जाना चाहिए।

4. जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक-दूसरे के खिलाफ खड़े हो जाते हैं, तो पर्याप्त न्याय के मुद्दे को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि दूसरा पक्ष गैर-जानबूझकर देरी के कारण किए जा रहे अन्याय में निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता है।

5. ऐसी कोई धारणा नहीं है कि देरी जानबूझकर, या दोषी लापरवाही के कारण, या दुर्भावना के कारण हुई है। देरी का सहारा लेने से वादी को कोई लाभ नहीं होता। वास्तव में वह एक गंभीर जोखिम उठाता है।

6. यह समझना चाहिए कि न्यायपालिका का सम्मान तकनीकी आधार पर अन्याय को वैध बनाने की उसकी शक्ति के कारण नहीं किया जाता है, बल्कि इसलिए किया जाता है क्योंकि वह अन्याय को दूर करने में सक्षम है और उससे ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है।

इस परिप्रेक्ष्य से न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण अपनाने पर, अपील की स्थापना में देरी को माफ करने का पर्याप्त कारण था। तथ्य यह है कि यह 'राज्य' था जो माफ़ी मांग रहा था न कि कोई निजी पार्टी, पूरी तरह अप्रासंगिक थी। कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत मांग करता है कि एक वादी के रूप में राज्य सहित सभी वादियों के साथ समान व्यवहार किया जाए और कानून को समान तरीके से प्रशासित किया जाए। जब 'राज्य' आवेदक देरी की माफी के लिए प्रार्थना कर रहा हो तो सौतेला व्यवहार करने का कोई वारंट नहीं है। वास्तव में अनुभव से पता चलता है कि एक अवैयक्तिक मशीनरी के कारण (मामले का कोई भी प्रभारी व्यक्ति अपील के अधीन किए जाने वाले फैसले से सीधे तौर पर प्रभावित या आहत नहीं होता है) और विरासत में मिली नौकरशाही कार्यप्रणाली नोट बनाने, फ़ाइल को आगे बढ़ाने और पास करने से प्रभावित होती है -ऑन-द-हिरन लोकाचार, अपनी ओर से देरी को समझना कम कठिन है, हालांकि अनुमोदन करना अधिक कठिन है। किसी भी स्थिति में, राज्य जो समुदाय के सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करता है, वादी-गैर-ग्राटा स्थिति का हकदार नहीं है। इसलिए न्यायालयों को "पर्याप्त कारण" अभिव्यक्ति की व्याख्या के दौरान प्रावधान की भावना और दर्शन से अवगत कराया जाना चाहिए। इसलिए, समान दृष्टिकोण को अंत में मामलों पर लागू करते समय भी साबित करना होगा ताकि योग्यता के आधार पर समान न्याय किया जा सके, न कि उस दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाए जो योग्यता के आधार पर किसी निर्णय को रद्द कर देता है। वर्तमान अपील को जन्म देने वाले मामले के तथ्यों की ओर मुड़ते हुए, हम संतुष्ट हैं कि देरी के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा उसके समक्ष अपील को समयबाधित मानकर खारिज करने के आदेश को रद्द किया जाता है। विलंब क्षमा किया जाता है. और मामला हाई कोर्ट में भेज दिया गया है. उच्च न्यायालय अब दोनों पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद गुण-दोष के आधार पर अपील का निपटारा करेगा।"

सुप्रीम कोर्ट में रिपोर्ट किए गए मामले **(2010) 12 केस 159 भागमल एवं अन्य बनाम कुँवर लाल व अन्य** में शीर्ष अदालत ने किया सेटिंग के लिए विलंब माफ़ी मामले की गुंजाइश पर भी विचार किया गया एक पक्षीय आदेश

को दरकिनार कर दिया। के पैराग्राफ संख्या 10, 11, 12 और 13 **भागमल (सुप्रा)** में दिए गए शीर्ष न्यायालय के फैसले प्रासंगिक हैं जो इस प्रकार हैं: -

10. अपीलीय न्यायालय के इस सुविचारित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा केवल इस आधार पर हस्तक्षेप किया गया कि अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों द्वारा आदेश IX के तहत अपने आवेदन के समर्थन में ट्रायल कोर्ट के समक्ष देरी की माफी के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया था। नियम 13 सीपीसी. उच्च न्यायालय ने पाया कि अपीलीय अदालत ने इस सवाल पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया था कि परिसीमा अधिनियम की **धारा 5** के तहत आवेदन दाखिल करना आवश्यक था या नहीं और आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया और इसलिए, उसने अपने अधिकार क्षेत्र से आगे निकल गया. उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर भी टिप्पणी की कि एकपक्षीय डिक्री का निर्णय 19.4.1985 को किया गया था, जबकि एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन 8.7.1988 को दायर किया गया था और **धारा 5** के तहत देरी की माफी के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया था। सीमा अधिनियम दायर किया गया था. **परिसीमा अधिनियम** के **अनुच्छेद 123** पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने यह विचार किया कि आवेदन डिक्री पारित होने की तारीख से 30 दिनों के भीतर दायर किया जाना चाहिए था और चूंकि यह इस प्रकार दायर नहीं किया गया था, इसलिए कम से कम देरी की माफी के लिए आवेदन किया जाना चाहिए। परिसीमा अधिनियम की **धारा 5** के तहत किए गए हैं और इसलिए, देरी की माफी के लिए प्रार्थना के अभाव में, अपीलीय अदालत आदेश IX नियम 13 के तहत आवेदन की अनुमति नहीं दे सकती थी।

11. हमारी राय में, उच्च न्यायालय का अतितकनीकी दृष्टिकोण अपनाना उचित नहीं था। हमने सारे ऑर्डर देख लिये हैं. ट्रायल कोर्ट के आदेश से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि ट्रायल कोर्ट ने योग्यता के आधार पर आवेदन पर विचार किया। ट्रायल कोर्ट ने निस्संदेह प्रतिवादियों के उत्तर का इस आशय से उल्लेख किया है कि एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने का आवेदन सीमा से परे था। हालाँकि, ट्रायल कोर्ट द्वारा लिया गया दृष्टिकोण गुण-दोष पर आधारित था। वास्तव में, इसने इस निष्कर्ष को दर्ज किया कि कोई समझौता नहीं हुआ था और उसके कारण समझौते और देरी का सिद्धांत स्वीकार्य नहीं था। ट्रायल कोर्ट ने देरी के संबंध में अपने निष्कर्षों को कमोबेश इसी पर आधारित किया है | ऑर्डर शीट के आधार पर. यह सही नहीं था क्योंकि ऑर्डर शीट पर कहीं भी पार्टियों के हस्ताक्षर नहीं थे। वे यांत्रिक रूप से "पार्टियों को पहले की तरह" का उल्लेख करते हुए लिखे गए थे। इसलिए, ट्रायल कोर्ट ने आदेश IX नियम 13 के तहत आवेदन को केवल इस तथ्य के आधार पर खारिज नहीं किया कि देरी की माफी के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया था। इसने देरी के पहलू के साथ-साथ गुणों पर भी विचार किया और यहां तक कि पार्टियों को सबूत पेश करने की भी अनुमति दी।

12. यहां देखने वाली बात यह है कि देरी का सवाल पूरी तरह से मामले के गुण-दोष से जुड़ा

हुआ था। अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों ने स्पष्ट रूप से अनुरोध किया था कि वे पहले इस तथ्य के कारण अदालत में नहीं आए थे क्योंकि उन्हें न्यायालय द्वारा पारित एकपक्षीय आदेश और पारित एकपक्षीय डिक्री के बारे में भी पता नहीं था। आगे स्पष्ट रूप से दलील दी गई कि उन्हें डिक्री के बारे में तब पता चला जब उन्हें निष्पादन नोटिस दिया गया। यह और कुछ नहीं, बल्कि अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों द्वारा आदेश IX नियम 13 को उस समय लागू करने के लिए दिया गया एक औचित्य था जब इसे वास्तव में लागू किया गया था। यह भी देरी का एक वैध स्पष्टीकरण था। आदेश IX नियम 13 आवेदन दायर करने का प्रश्न, हमारी राय में, गुण-दोष के आधार पर अपीलीय न्यायालय द्वारा सही ढंग से विचार किया गया था और अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में बिल्कुल सही था कि अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों द्वारा आदेश IX नियम के तहत आवेदन दाखिल करना पूरी तरह से उचित था। 13 सीपीसी उस समय जब उन्होंने वास्तव में इसे दायर किया था और आवेदन दाखिल करने में देरी भी पूरी तरह से इस तथ्य के कारण हुई थी कि उन्हें डिक्री और उनके खिलाफ एकपक्षीय कार्यवाही शुरू करने वाले आदेशों के बारे में कभी पता नहीं था। यदि ऐसा था तो कोर्ट ने वास्तव में देरी के कारणों पर भी विचार किया था। ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय को अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए था कि **धारा 5** के तहत कोई अलग आवेदन दायर नहीं किया गया था।

13. आदेश IX नियम 13 सीपीसी के तहत आवेदन में उस आवेदन को करने में हुई देरी की माफी के लिए आवेदन की सभी सामग्रियां मौजूद थीं। आख़िरकार प्रक्रिया न्याय की दासी है। यहां एक ऐसी पार्टी थी जिसने सच्चे दिल से दिए गए आश्वासन पर विश्वास किया |समझौता पंचनामा कि प्रतिवादी क्रमांक 1/वादी अपना मुकदमा वापस ले लेगा या खारिज कर देगा। उक्त समझौता पंचनामा गांव के बुजुर्गों के समक्ष बनाया गया। उस समझौते को प्रदर्शित करते हुए लेखन भी प्रभावित हुआ। गवाहों से भी पूछताछ की गयी. ऐसी परिस्थितियों में, अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों की गैर-हाजिरी, जो आगे की कार्यवाही में साबित हुई, काफी उचित थी। जब अपीलकर्ताओं/ प्रतिवादियों को अंततः डिक्री के बारे में पता चला, तो उन्होंने 30 दिनों के भीतर आवेदन दायर किया था। हमारी राय में, वह पर्याप्त था।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा **श्रीमती कलावती देवी (सुप्रा)** में दिए गए निर्णय का हवाला दिया गया **कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण अनंतनाग और अन्य (सुप्रा)** में दिए गए शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भी विचार किया है और माना है कि मामले को परिसीमन के आधार पर नहीं फेंका जाना चाहिए, बल्कि निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय लागू होगा, लेकिन प्रतिवादी नंबर 5 के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय न्याय के मुद्दे को आगे बढ़ाने के लिए लागू नहीं होगा।

मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ **कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण अनंतनाग (सुप्रा)** में शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, अपीलीय आदेश दिनांक 04.06.2016 के साथ-साथ आदेश दिनांक 07.10.2016 पारित किया गया। अपील संख्या 447 (राजपति देवी बनाम रामसुख आदि) में प्रतिवादी संख्या 3- बंदोबस्त चकबंदी अधिकारी बस्ती, साथ ही प्रतिवादी संख्या 2- उप निदेशक चकबंदी द्वारा पुनरीक्षण संख्या 30 एवं पुनरीक्षण में पारित पुनरीक्षण आदेश दिनांक 08.09.2021 नहीं। 37 अलग रखे जाने योग्य हैं और उन्हें एतद्द्वारा अलग रखा जाता है। यू.पी.सी.एच. की धारा-11(1) के तहत अपील दायर करने में देरी के स्पष्टीकरण पर विचार करते हुए। अधिनियम के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात में चकबंदी अधिकारी के दिनांक 19.02.1982 के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने में हुई देरी को माफ किया जाता है।

रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है और पक्षों को शीघ्रता से अधिमानतः चार की अवधि के भीतर सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद अपील संख्या 447, 448 और 449 पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के लिए मामले को प्रतिवादी संख्या 3 निपटान चकबंदी अधिकारी बस्ती के समक्ष वापस भेज दिया गया है। किसी भी पक्ष से कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से कुछ महीने।

मूल्य के हिसाब से कोई आर्डर नहीं।

(2023) 5 ILRA 343

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र,

रिट सी संख्या 32520/2016

मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लि.

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सुनील कुमार त्रिपाठी, श्री देवेश त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री गोपाल नारायण

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947- विवादित निर्णय पारित हुआ-विपरीत पक्ष-कर्मचारी को बहाल किया गया-श्रम न्यायालय ने विभाग द्वारा दाखिल दस्तावेजों पर विचार नहीं किया-केवल यह निष्कर्ष निकालना कि मौखिक बर्खास्तगी कानून के अनुसार नहीं थी, स्वतः ही इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता कि कर्मचारी को पिछले वेतन के साथ बहाल किया जाना चाहिए-और सेवा में निरंतरता-एक समेकित और एकमुश्त राशि मुआवजा देने से उद्देश्य पूरा हो सकता था - चूंकि प्रतिवादी की आयु 53 वर्ष थी - अब तक उसकी सेवानिवृत्ति की आयु हो चुकी होगी न कि केवल बहाली के लिए - सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद सेवा में निरंतरता के साथ बहाली से राहत और पिछला वेतन देने से इनकार कर दिया गया है - 2,00,00/- रुपये एकमुश्त मुआवजा दिया गया।

आंशिक रूप से रिट स्वीकृत (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उप कार्यकारी अभियंता बनाम कुबेरभाई कांजीभाई, (2019) 4 एससीसी 307,

2. उत्तराखंड राज्य बनाम राज कुमार, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 16,

3. सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम एवं अन्य बनाम गीतम सिंह (2013) 5 एससीसी 136,

4. रेंज फॉरेस्ट ऑफिसर बनाम एस.टी. हदीमनी साथ में कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम एस.टी. हदीमनी (2002) 3 एससीसी 25

5. यूपी राज्य. और अन्य. बनाम छुन्ना लाल एवं अन्य। 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 4262

6. कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी (2006) 4 एससीसी 1

7. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 1110/1986 (यू.पी. राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम पी.ओ. श्रम न्यायालय, गोरखपुर एवं अन्य);

8. गैमन इंडिया लिमिटेड बनाम निरंजन दास (1984) 1एससीसी 509;

9. मेसर्स विलकॉक्स बक वेल इंडिया लिमिटेड का प्रबंधन बनाम जगन्नाथ एवं अन्य एआईआर 1974 सुप्रीम कोर्ट 1166;

10. भगवती प्रसाद बनाम चंद्रमौल एआईआर 1966 सुप्रीम कोर्ट 735

11. राम सरूप गुप्ता (मृत) एल.आर. बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज एवं अन्य एआईआर 1987 सुप्रीम कोर्ट 1242

12. सुरेन्द्र कुमार वर्मा एवं अन्य बनाम केन्द्रीय सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, नई दिल्ली एवं अन्य (1980) 4 एससीसी 443;

13. सुदर्शन राजपूत वीएस उत्तर प्रदेश स्ट. रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन, (2015) 2 सी सी 317;

14. पंजाब भूमि विकास एवं पुनर्ग्रहण निगम लिमिटेड चंडीगढ़ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ एवं अन्य डिवीजनल नियंत्रक, महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम, अमरावती बनाम चंद्रशेखर मरीभाऊ देशमुख एवं अन्य, (1990) 3 एससीसी 682;

15. यू.पी. ड्रग्स और फार्मास्युटिकल्स को. लिमिटेड. व. रामानुज यादव और अन्य. (2003) 8 सी सी 334;

16. देविंदर सिंह बनाम म्युनिसिपल काउंसिल, सनौर (2011) 6 सी सी 584;

17. आर.एम. येलत्ती बनाम सहायक कार्यकारी अभियंता (2006) 1 एससीसी 106

18. बीएसएनएल बनाम भुरूमल (2014) 7 एससीसी 177

19. सहायक अभियंता, राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, उप-मंडल, कोटा बनाम मोहन लाल, (2013) 14 एससीसी 543

20. नगर महापालिका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2006) 5 एससीसी 127

21. नगर परिषद, सुजानपुर बनाम सुरिंदर कुमार (2006) 5 एससीसी 173

22. हरियाणा स्टेट इलेक्ट्रॉनिक्स डेवलपमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम मामनी (2006) 9 एससीसी 434

23. उत्तरांचल वन विकास निगम बनाम एम.सी. जोशी (2007) 9 एससीसी 353

अनुवादित

24. गाजियाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य (2008) 4 एससीसी 261

25. दूरसंचार जिला प्रबंधक बनाम केशब देब, (2008) 8 एससीसी 402

26. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड (2009) 15 एससीसी 327

27. उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता, (2009) 16 एससीसी 562,

28. भारत संचार निगम लिमिटेड वीएस मन सिंह, (2012) 1 सी सी 558

29. वरिष्ठ अधीक्षक टेलीग्राफ (यातायात), भोपाल बनाम संतोष कुमार सील एवं अन्य, (2010) 6 एससीसी 773

30. सीता राम बनाम मोती लाल नेहरू किसान प्रशिक्षण संस्थान, एआईआर 2008 एससी 1955

31. प्रभारी अधिकारी बनाम शंकर शेट्टी जे.टी. 2010(9) एस.सी. 262

32. हरि नंदन प्रसाद बनाम भारतीय खाद्य निगम: (2014) 7 एससीसी 190,

33. उ.प्र. विद्युत निगम. लिमिटेड बनाम बिजली मजदूर संघ, (2007) 5 एससीसी 755

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड द्वारा दायर की गई है, जिसमें प्रतिवादी नंबर 2-पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा पारित 30.01.2016 को प्रकाशित 19.10.2015 के आक्षेपित अवार्ड को चुनौती दी गई है, जिसमें प्रतिवादी नंबर 3 को पूर्वोक्त अवार्ड को लागू नहीं करने का आदेश देने वाले परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी करने की प्रार्थना की गई है।

2. मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता (बाद में 'एमवीवीएनएल' के रूप में संदर्भित) कंपनी अधिनियम-1956 के अन्तर्गत निगमित एक कंपनी है जो यू.पी. इलेक्ट्रिसिटी नियामक आयोग द्वारा दिए गए लाइसेंस के अन्तर्गत विद्युत अधिनियम-2003 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए निर्दिष्ट क्षेत्रों के भीतर बिजली वितरण के व्यवसाय में लगी हुई है। रिट याचिका में याचिकाकर्ता-कंपनी की स्थिति के संबंध में विभिन्न तर्कों शामिल हैं, हालांकि, चूंकि रिट याचिका यू.पी. औद्योगिक विवाद अधिनियम-1947 (इसके बाद 'अधिनियम-1947' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के अन्तर्गत पारित एक पंचाट से उत्पन्न हुई है। ऐसे पहलुओं का विवरण दर्ज करना आवश्यक नहीं है जो विवाद पर निर्णय लेने के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकते हैं। हालाँकि, रिट याचिका में याचिकाकर्ता का जोर इस बात पर है कि यू.पी. पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड ने अपने कर्मचारियों और श्रमिकों की सेवाओं को नियंत्रित करने के लिए यू.पी. राज्य विद्युत परिषद परिचालकीय कर्मचारी वर्ग सेवा विनियमनावली-1995 (इसके बाद 'विनियम-1995' के रूप में संदर्भित) बनाई है।

3. प्रतिवादी संख्या 4-कर्मचारी ने 21.03.2006 से अपनी सेवाओं की समाप्ति के संबंध में विवाद उठाया और दिए गए संदर्भ के अनुसार, 2007 के न्यायनिर्णयन मामले संख्या 42 के रूप में एक मामला दर्ज किया गया था। इसके बाद, मामला श्रम न्यायालय में

स्थानांतरित कर दिया गया था। फ़िरोज़ाबाद जिसमें इसे 2015 के न्यायनिर्णयन मामले संख्या 46 के रूप में दर्ज किया गया था। कर्मकार का मामला यह है कि उसे 11.07.1986 को दैनिक वेतन भोगी के रूप में अस्थायी आधार पर सब स्टेशन ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया था और उसने प्रतिष्ठान में काम किया था 20.03.2006 तक, उसके बाद, उनकी सेवाएं 21.03.2006 को मौखिक रूप से समाप्त कर दी गईं। उनका तर्क है कि उनकी सेवाओं की मौखिक समाप्ति विधि के विपरीत थी और इसलिए, वह 21.03.2006 से बहाली की दिनांक तक बकाया वेतन, वेतन वृद्धि और बोनस आदि के साथ पिछली सेवाओं में निरंतरता के साथ पद पर बहाल होने का हकदार था।

4. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता-विभाग का मामला यह है कि कर्मचारी की कभी नियुक्ति नहीं की गई और उसने कभी किसी पद पर काम नहीं किया। 1995 के उपरोक्त विनियमों पर विश्वास करते हुए, विभाग द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संगठन में सभी नियुक्तियाँ सक्षम प्राधिकारियों द्वारा नियुक्ति पत्र जारी करके की गई थीं; कि प्रतिवादी को कभी कोई नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया; प्रतिवादी कभी भी विभाग में सम्मिलित नहीं हुआ; कठोर चयन प्रक्रिया अपनाकर पद भरे जाते हैं; प्रतिवादी ने किसी भी तरह से संगठन में रोजगार सुरक्षित करने का प्रयास किया; प्रतिवादी कर्मकार की परिभाषा में नहीं आता था; विभाग और प्रतिवादी के बीच नियोक्ता-कर्मचारी का कोई संबंध नहीं था क्योंकि प्रतिवादी संगठन में कर्मचारी/कर्मचारी नहीं था, इसलिए उसकी सेवाओं की समाप्ति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता; प्रतिवादी को कभी कोई वेतन नहीं दिया गया; 1979 से मस्टर रोल और अस्थायी आधार पर कर्मचारियों की नियुक्ति पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और सब स्टेशन ऑपरेटर का कोई पद नहीं था।

5. याचिकाकर्ता-विभाग ने भी श्रम न्यायालय के समक्ष एक प्रत्युत्तर दायर किया जिसमें कहा गया कि प्रतिवादी संख्या 4 को कभी भी दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था; इलेक्ट्रीशियन अर्बन डिवीजन-III बरेली का गठन 01.04.1991 को किया गया था और प्रतिवादी संख्या 4 ने डिवीजन में कभी काम नहीं किया था, इसलिए 240 दिन पूरे होने का सवाल ही नहीं उठता। विभाग की ओर से श्री जी.के.सक्सेना, सेवानिवृत्त कनिष्ठ अभियंता, श्री प्रमोद, प्रशिक्षु कनिष्ठ अभियंता, ने 17.01.2008 को शपथ पत्र दायर किया और डिवीजन-III में कार्यरत श्री एस.के. शपथ पत्र में, श्री जी.के. वह 28.06.2003 से 22.06.2007 तक विद्युत नगरिया वितरण खंड-III, मध्यांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड बरेली में कार्यरत थे। रोजगार की अवधि के दौरान प्रतिवादी संख्या 4 से न तो कोई काम लिया गया और न ही उसे वेतन/मजदूरी का कोई भुगतान किया गया। विभाग ने यह प्रदर्शित करने के लिए कि कर्मचारी द्वारा दावा की गई कथित नियुक्ति स्वीकार्य नहीं थी, विभिन्न दस्तावेज भी दाखिल किए जैसे कि अधिसूचना दिनांक 09.08.1995, पत्र दिनांक 03.07.1979, अधिसूचना दिनांक 13.06.1992, कार्यालय पत्र दिनांक 08.11.1990 आदि केवल विभाग बहुत

बाद में बनाया गया था, लेकिन ऐसी कथित नियुक्ति भी विधि के विपरीत थी।

6. कर्मचारी ने स्वयं जांच की और अपने बयान दिनांक 14.12.2011 में बताया कि उसे सब स्टेशन ऑपरेटर के पद पर दैनिक वेतन भोगी के रूप में नियुक्त किया गया था और हड़ताल की अवधि के दौरान वह काम करता रहा। उन्होंने यह स्थापित करने के लिए विभिन्न दस्तावेजों का हवाला दिया कि उनके कामकाज के संबंध में कुछ प्रमाण पत्र जारी किए गए थे और उपस्थिति रजिस्टर भी था जिस पर उनके हस्ताक्षर थे। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी सेवाएं समाप्त होने के बाद वह बेरोजगार थे और समय-समय पर ठेकेदारों से काम लेते थे। विभाग द्वारा कर्मचारी से जिरह की गई और विभाग के अधिकारियों द्वारा उसे रुक-रुक कर भुगतान किए जाने के बारे में बताया गया।

7. जहां तक विभाग के अधिकारियों का सवाल है, कर्मचारी द्वारा उनसे जिरह की गई थी, हालांकि, जिरह के दौरान अधिकारियों का लगातार रुख यह था कि कर्मचारी को कभी भी किसी भी वेतन आदि का भुगतान नहीं किया गया था। अधिकारी; कि श्रमिक को कभी भी दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था; कोई भी नियुक्ति उचित चयन प्रक्रिया का पालन करने के बाद ही की जाती है; कि संबंधित सब स्टेशन में मस्टर रोल या दैनिक वेतन के आधार पर कोई भी कार्यरत नहीं था। इन अधिकारियों ने उन दस्तावेजों पर अपने हस्ताक्षर से भी इनकार कर दिया जिन पर प्रतिवादी-कर्मचारी ने विश्वास किया था। विभाग ने यूपी राज्य विद्युत बोर्ड शक्ति भवन 14, अशोक मार्ग, लखनऊ द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन संख्या 1989-सी/एसईबी-आई-10ए/79 दिनांक 03.07.1979 के निम्नलिखित भाग पर अधिक जोर दिया।

*'*बोर्ड ने बीओ नंबर *147*-जी/एसईबी-आई-*10*ए/*1979* के अन्तर्गत आदेश जारी किया था कि कुली/मजदूर/बैलदार/चौकीदार/कुशल कुली/एसएसओ/लाइनमैन/इलेक्ट्रीशियन/ की श्रेणियों में मस्टर रोल या दैनिक रेटेड आधार पर कोई <u>नियुक्ति नहीं</u> होगी। इयूटीमैन/वायरमैन/मीटर रीडर आदि को इन आदेशों की प्राप्ति की तारीख *1* फरवरी *1979,* जो भी पहले हो, से उत्पादन, पारेषण और वितरण कार्यों के संचालन और रखरखाव के लिए बनाया जाएगा।*'*

'परिषद ने अपने आदेश सं. *1989*-जी/एसईवी/-*1-10* ए/*79* दि. *3* जुलाई, *1979* द्वारा दिनांक <u>*1-8-79* से मस्टररोल या दैनिक वेतन पर कुली/मजदूरी/एस.एस.ओ. आदि किसी भी पद पर रखने तथा कार्य लेने पर रोक लगा दी थी।</u>

इसके उपरान्त भी इस कार्यालय के संज्ञान में आया है कि कुछ लोग गलत तरीके से विभाग के अंवर अभियन्ताओं/सहायक अभियन्ता भी उसे मस्टर रोल पर कार्य संबंधा प्रमाण पत्र प्राप्त कर रहे हैं तथा न्यायालयों में ऐसे प्रमाण पत्रों के आधार पर विवाद लगा रहे हैं। यह भी तथ्य प्रकाश में आया है <u>कि कुछ विभागीय अवर अभियन्ता भी इस प्रकार के जाली प्रमाण पत्रों के निर्गत कर रहे हैं।</u> पूर्व में भी इस कार्यालय के पत्रांक *42*-मुथेअब/दि. *10.1.90* द्वारा क्षेत्र के समस्त अधिकारियों के ऐसे प्रकरणों की प्राथमिकता के आधार पर जांच कर

दोषी अवर अभियन्ताओं/अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही हेतु लिखा गया था। अतः यह स्पष्ट किया जाता है कि परिषद नीति के अन्तर्गत सेवा सम्बन्धी किसी भी प्रकरण पर अधिशासी अभियन्ता स्तर से नीति के किसी भी अधिकारी/कर्मचारी की <u>किसी भी प्रकार के प्रमाण पत्र निर्गत करने का अधिकार नहीं है।</u>

अतः अवर अभियन्ता/सहायक अभियन्ता उपरोक्त प्रकार के तथा सेवा सम्बन्धी अन्य किसी भी प्रकार के प्रमाण पत्र निर्गत करने के अधिकारी नहीं हैं और यदि उनके द्वारा इस संबंध में अभी तक कोई प्रमाण पत्र निर्गत किये गये हैं तो उन्हें <u>जाली प्रमाण पत्रों की श्रेणी में रखकर अवैध माना जाये।</u> यह भी अपेक्षा की जात है कि उनके समस्त अधिशासी अभियंता, अधिक्षण अभियंता इस संबंध में अपने अधीनस्थ खंडों/मंडलों के संदर्भ में व्यक्तिगत रुचि लेकर जांच कर वांछित विभागीय कार्यवाही आरम्भ करने तथा परिषद को इस प्रकार से हो रही वित्तीय हानि को रोकने के लिए सभी संभव प्रयास करेंगे।"

9. उपरोक्त पर विश्वास करते हुए, यह तर्क दिया गया कि कर्मचारी द्वारा अपनी नियुक्ति के संबंध में बनायी गई पूरी कहानी विभागीय परिपत्रों के विपरीत थी और इसलिए, निर्णय मामले में तय किए गए प्रश्न का निर्णय कर्मचारी के विरुद्ध किया जाए।

10. संदर्भ का उत्तर देने के लिए मामले को श्रम न्यायालय में भेजा गया था कि क्या 21.03.2006 को सब स्टेशन ऑपरेटर के पद से प्रतिवादी की सेवाओं को समाप्त करना उचित और/या वैध था, यदि नहीं, तो क्या लाभ/राहत थी कर्मकार हकदार है।

11. श्रम न्यायालय, दिनांक 19.10.2015 के आक्षेपित निर्णय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि श्रमिक द्वारा दायर किए गए दस्तावेजों पर विवाद नहीं किया जा सकता है और इसलिए, उसकी सेवाओं की समाप्ति अधिनियम-1947 के प्रावधानों, विशेष रूप से धारा के विपरीत है। अधिनियम के 6-एन और, इसलिए, कामगार को उसकी पिछली सेवाओं में निरंतरता के साथ बहाल करने, असेवा अवधि के लिए 40% वेतन और पंचाट के दिनांक से पूरा वेतन देने का निर्देश दिया गया था। 1500/- रूपये का मूल्य भी प्रदान किया गया।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि चूंकि विभाग में नियुक्तियाँ सेवा विनियम (यहाँ ऊपर संदर्भित) के अनुसार कठोर चयन प्रक्रिया आयोजित करने के बाद की जाती हैं, प्रतिवादी संख्या 4 किसी भी राहत का दावा नहीं कर सकता क्योंकि कोई पत्र नहीं है उन्हें कभी भी नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था, उन्हें न तो नियुक्त किया गया था और न ही कोई पारिश्रमिक दिया गया था और चूंकि विभाग स्वयं वर्ष 1991 में बनाया गया था, इसलिए प्रतिवादी को वर्ष 1986 में नियुक्त करने का कोई सवाल ही नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि भले ही विवाद कामगार का दर्जा स्वीकार कर लिया गया था, उसकी स्थिति, यहां तक कि उसके अपने मामले के अनुसार, एक "दैनिक मजदूर" की थी जो कि "कामगार" की परिभाषा और मापदंडों के अंतर्गत नहीं आता था और इसलिए, पंचाट अवैध है। आगे यह तर्क दिया गया कि

कार्यकर्ता के नेतृत्व में साक्ष्यों को देखने पर भी, उसके कामकाज के संबंध में स्थिति निम्नलिखित है; विशेष रूप से दस्तावेज़ W-19 के अनुसार जिसे कथित उपस्थिति रजिस्टर कहा जाता है।

प्रदर्श	दिनांक	रोजगारी का समय काल	रोजगार का कोई सबूत नहीं
8	26.07.86	11.07.86 से 22.07.86 तक	23.07.86 से 09.11.87 (एक वर्ष के लिए)
	12.07.88	10.11.87 से 02.12.87 तक	03.12.87 से 05.02.92 तक (4 वर्ष 3 माह के लिए)
6		06.02.92 से 29.02.92 तक	**01.03.92 से 14.07.05 (13 वर्ष के लिए) सेवा विराम**
1		15.07.05 से 04.09.05 तक	निरंतर का पता लगाना रोजगार 11.7.86 से 20.3.06.
			विकृत
2		05.09.05 से 16.11.05 तक	दस्तावेज़ जाली हैं फिर भी ऐसा
3		17.11.05 से 20.01.06 तक	प्रतीत होता है कि उन्होंने
4		21.01.06 से 20.03.06 तक	15.07.05 से 20.03.06 (केवल 8 महीने) तक मुश्किल से काम किया। 240 दिन पूरे किये बिना 6-एन लागू नहीं होता। किसी भी राहत का हकदार नहीं.

13. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, यह तर्क दिया गया कि बकाया वेतन के साथ पिछली सेवाओं में निरंतरता के साथ बहाली का निर्देश देने वाला पंचाट पूरी तरह से अस्थिर है और श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष

विकृत हैं। अपनी तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर विश्वास किया उप कार्यकारी अभियंता बनाम कुबेरभाई कांजीभाई, (2019) 4 एससीसी 307 में रिपोर्ट किए गए, ***2019*** उत्तराखंड राज्य बनाम राज कुमार एससीसी ऑनलाइन एससी ***16*** में रिपोर्ट किए गए मामलों में है, सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम एवं अन्य बनाम गीतम सिंह ***(2013) 5*** एससीसी ***136*** में रिपोर्ट किया गया, रेंज वन अधिकारी बनाम एसटी हदीमानी कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एसटी हदीमानी ***(2002) 3*** एससीसी ***25*** में रिपोर्ट किया गया और यूपी राज्य और अन्य. बनाम छुन्ना लाल और अन्य ***2019*** एससीसी ***4262*** में सभी ऑनलाइन रिपोर्ट किया गया।

14. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा एक जवाबी शपथपत्र दायर किया गया है और उसमें यह रुख अपनाया गया है कि विभाग ने कामगार के मामले के विपरीत कोई सबूत पेश नहीं किया है; सेवा विनियम आदि के संबंध में विभाग का तर्क या ***(2006) 4*** एससीसी ***1*** में रिपोर्ट किया गया कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी का मामला अधिनियम***-1947*** से उत्पन्न होने वाले विवादों से असंबद्ध था। बचाव पक्ष यह है कि श्रम न्यायालय ने उसके समक्ष रखी गई सामग्री के आधार पर सही निर्णय सुनाया है और इसलिए, इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। आगे तर्क दी गई है कि चूंकि मौखिक समाप्ति अधिनियम-1947 के प्रावधानों के उल्लंघन में की गई थी, इसलिए बैकवेज़ और सेवा में पिछली निरंतरता के साथ बहाली देने में कोई अवैधता नहीं थी। इस तर्क के समर्थन में, प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्राधिकारियों पर विश्वास जताया है: -

(ए). 1986 की सिविल विविध रिट याचिका संख्या ***1110*** ***(***यूपी राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम पीओ श्रम न्यायालय, गोरखपुर एवं अन्य***);***

(बी***).*** गैमन इंडिया लिमिटेड बनाम निरंजन दास की रिपोर्ट ***(1984) 1*** एससीसी ***509;***

(सी***).*** मेसर्स विलकॉक्स बक वेल इंडिया लिमिटेड बनाम जगन्नाथ और अन्य का प्रबंधन एआईआर ***1974*** सर्वोच्च न्यायालय ***1166*** में रिपोर्ट किया गया***;***

(डी***).*** भगवती प्रसाद बनाम चंद्रमौल एआईआर ***1966*** सर्वोच्च न्यायालय ***735*** में रिपोर्ट किया गया***;***

(इ***).*** राम सरूप गुप्ता ***(***मृत***)*** एल.आर. बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज और अन्य द्वारा एआईआर ***1987*** सर्वोच्च न्यायालय ***1242*** में रिपोर्ट किया गया***;***

(एफ***).*** सुरेंद्र कुमार वर्मा और अन्य बनाम केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, नई दिल्ली और अन्य ***(1980) 4*** एससीसी ***443*** में रिपोर्ट की गई***;***

(जी***).*** सुदर्शन राजपूत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम ***(2015) 2*** एससीसी ***317*** में रिपोर्ट किया गया***;***

(एच***).*** पंजाब लैंड डेवलपमेंट एंड रिक्लेमेशन कॉरपोरेशन लिमिटेड चंडीगढ़ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, चंडीगढ़ और अन्य के साथ-साथ डिविजनल कंट्रोलर, महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम, अमरावती बनाम चंद्रशेखर मारीभाऊ देशमुख और अन्य ***(1990) 3*** एससीसी ***682*** में रिपोर्ट किया गया***;***

*(आई). यूपी ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स कंपनी लिमिटेड बनाम रामानुज यादव एंड अन्य की रिपोर्ट **(2003) 8** एससीसी **334;***

*(जे). देविंदर सिंह बनाम नगर परिषद, सनौर में रिपोर्ट **(2011) 6** एससीसी **584;***

*(क). आरएम येलत्ती बनाम सहायक कार्यकारी अभियंता **(2006) 1** एससीसी **106** में रिपोर्ट किया गया।*

15. अब याचिकाकर्ता-विभाग द्वारा उद्धृत प्राधिकारियों में उल्लिखित विधिक स्थिति पर चर्चा करते हुए, उप कार्यकारी अभियंता *(सुप्रा)* में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि, मामले में, प्रतिवादी ने शायद ही कुछ वर्षों तक "दैनिक मजदूर" के रूप में काम किया हो, बहाली स्वचालित परिणाम नहीं हो सकती. सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 33, 34 और 35 के विशिष्ट संदर्भ के साथ ***(2014) 7*** एससीसी ***177*** में रिपोर्ट किए गए बीएसएनएल बनाम भुरूमल मामले में अपने निर्णय पर विश्वास किया, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

*"33. उपरोक्त निर्णयों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि जब समाप्ति अवैध पाई जाती है, तो पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाली देने का सामान्य सिद्धांत सभी मामलों में यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जाता है। हालाँकि यह एक ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ एक नियमित/स्थायी कर्मचारी की सेवाएँ अवैध रूप से और/या दुर्भावनापूर्ण तरीके से और/या उत्पीड़न, अनुचित श्रम अभ्यास आदि के माध्यम से समाप्त कर दी जाती हैं। हालाँकि, जब दैनिक समाप्ति की बात आती है- वेतनभोगी कर्मचारी और जहां प्रक्रियात्मक दोष के कारण, अर्थात् औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा *25*-एफ के उल्लंघन के कारण बर्खास्तगी अवैध पाई जाती है, यह न्यायालय इस विचार पर कायम है कि ऐसे मामलों में पिछले वेतन के साथ बहाली स्वचालित नहीं है और इसके बजाय काम करने वाले को आर्थिक क्षतिपूर्ति दिया जाना चाहिए जो न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा। इस दिशा में बदलाव का औचित्य स्पष्ट है।*

*34. ऐसे मामलों में बहाली की राहत से अस्वीकार करने के कारण स्पष्ट हैं। यह घिसा-पिटा विधि है कि जब औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा *25*-एफ के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से आवश्यक छंटनी क्षतिपूर्ति और नोटिस भुगतान का भुगतान न करने के कारण समाप्ति अवैध पाई जाती है, तो बहाली के बाद भी, यह हमेशा प्रबंधन के लिए खुला होता है। उस कर्मचारी को छँटनी क्षतिपूर्ति देकर उसकी सेवाएँ समाप्त कर दें। चूंकि ऐसा कर्मचारी दैनिक वेतन के आधार पर काम कर रहा था और बहाल होने के बाद भी, उसे नियमितीकरण की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है [देखें कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी **(2006) 4** एससीसी **1**]। इस प्रकार जब वह नियमितीकरण का दावा नहीं कर सकता है और उसे दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में भी बने रहने का कोई अधिकार नहीं है, तो ऐसे कर्मचारी को बहाल करने का कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होने वाला है और उसे न्यायालय द्वारा मौद्रिक क्षतिपूर्ति दिया जा सकता है, भले ही उसे फिर से बर्खास्त कर दिया गया हो। बहाली के बाद, उसे केवल*

छंटनी क्षतिपूर्ति और नोटिस भुगतान के रूप में मौद्रिक क्षतिपूर्ति मिलेगा। ऐसे में बहाली की राहत देने से, वह भी लंबे अंतराल के बाद, कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा.

35. हालाँकि, हम यहां एक चेतावनी जोड़ना चाहेंगे। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां किसी दैनिक-मजदूरी कर्मचारी की बर्खास्तगी इस आधार पर अवैध पाई गई हो कि इसे अनुचित श्रम प्रथा के रूप में अपनाया गया था या इस तरह की छंटनी करते समय अंतिम-आओ-पहले-जाओ के सिद्धांत का उल्लंघन किया गया था। उनसे कनिष्ठ दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी को रखा गया। ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि उससे कनिष्ठ व्यक्तियों को किसी नीति के अन्तर्गत नियमित किया गया हो लेकिन संबंधित कर्मचारी को हटा दिया गया हो। ऐसी परिस्थितियों में, हटाए गए कर्मचारी को तब तक बहाली से इनकार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि बहाली के बजाय क्षतिपूर्ति देने का रास्ता अपनाने के लिए कोई अन्य महत्वपूर्ण कारण न हों। ऐसे मामलों में, बहाली नियम होना चाहिए और केवल असाधारण मामलों में लिखित में बताए गए कारणों से ऐसी राहत से इनकार किया जा सकता है।"

16. उच्चतम न्यायालय ने बीएसएनएल बनाम भुरूमल *(*सुप्रा*)* के समान निर्णय पर विश्वास करते हुए उत्तराखंड राज्य *(*सुप्रा*)* के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया। सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम और अन्य (सुप्रा) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय पर विभिन्न प्राधिकारियों पर विश्वास करने के बाद, न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त मानते हुए 50,000/- रुपये का क्षतिपूर्ति देने का निर्देश दिया। तथ्य यह है कि दिहाड़ी मजदूर ने बहुत कम समय के लिए काम किया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रेंज फॉरेस्ट ऑफिसर *(*सुप्रा*)* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर बहुत जोर दिया और तर्क दिया कि केवल कर्मचारी द्वारा एक शपथपत्र दाखिल करना किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के लिए पर्याप्त सबूत नहीं माना जा सकता है। निष्कर्ष यह है कि उसने एक वर्ष में 240 दिन काम किया था। उक्त निर्णय के 'पैरा 3' में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि 240 दिनों के लिए वेतन या मजदूरी की प्राप्ति का कोई सबूत या इस अवधि के लिए नियुक्ति या सगाई का आदेश या अभिलेख कामगार द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था और इस आधार पर, पंचाट दिया गया था, के साथ हस्तक्षेप किया। सर्वोच्च न्यायालय ने यूपी राज्य और अन्य बनाम चुन्ना लाल और अन्य *(*सुप्रा*)* के मामले में बैकवेज़ के साथ बहाली के मुद्दे पर चर्चा के बाद, राज्य द्वारा दायर रिट याचिका को यह देखते हुए अनुमति दी कि कामगार अपना साबित करने के लिए बोझ का निर्वहन करने में विफल रहा है। 240 दिनों के मामले में ठोस सबूतों के आधार पर निर्णय को अस्थिर पाया गया और तदनुसार, रद्द कर दिया गया।

17. इसके अलावा, सहायक अभियंता**,** राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड**,** उप-मंडल**,** कोटा बनाम मोहन लाल के मामले में ***(2013) 14*** एससीसी ***543*** में समान परिस्थितियों में रिपोर्ट की गई, एक सरकारी प्रतिष्ठान में एक मस्टर रोल कर्मचारी जो पाया गया था अपनी बर्खास्तगी से पहले बारह कैलेंडर महीनों की

अवधि में 286 दिन काम किया, और जिसके मामले में छह साल बाद औद्योगिक विवाद उठाया गया था, उसे बहाली का हकदार नहीं पाया गया, लेकिन उसके बदले में क्षतिपूर्ति के रूप में केवल एक लाख रुपये दिए गए।

18. नगर महापालिका बनाम यूपी राज्य और अन्य ***(2006) 5*** एससीसी ***127*** में रिपोर्ट की गई, सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना था कि यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन के प्रावधानों का गैर-अनुपालन (यह प्रावधान) मोटे तौर पर धारा 25-एफ के साथ समरूप है), हालांकि, कामगार के पक्ष में पूर्ण बकाया वेतन और सेवा की निरंतरता के साथ बहाली की राहत प्रदान करता है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि ऐसी राहत स्वचालित रूप से दी जाएगी या इस मामले में ज़रूर। इस बात पर जोर दिया गया कि श्रम न्यायालय को राहत देने में अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

19. नगर परिषद, सुजानपुर बनाम सुरिंदर कुमार में सर्वोच्च न्यायालय ***(2006) 5*** एससीसी ***173*** में रिपोर्ट की गई, उपरोक्त विधिक स्थिति को दोहराया गया। यह एक ऐसा मामला था जहां श्रम न्यायालय ने वैधानिक प्रावधानों का पालन नहीं करने के कारण श्रमिक को पूर्ण बकाया वेतन के साथ सेवा में बहाली की अनुमति दी थी। उच्च न्यायालय द्वारा इस पंचाट में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया। हालाँकि, न्यायालय ने बहाली के बदले मौद्रिक क्षतिपूर्ति दिया।

20. नगर महापालिका *(*सुप्रा*)* के बाद ***(2006) 9*** एससीसी ***434*** में रिपोर्ट किए गए हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम लिमिटेड बनाम मामनी में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि धारा 25 एफ का उल्लंघन होने के कारण कर्मचारी को दी गई बहाली उचित और संशोधित नहीं थी पुनर्बहाली के आदेश के बदले में कामगार को 25,000/- रुपये की राशि का भुगतान करके क्षतिपूर्ति देने का निर्देश देकर पुनर्बहाली का आदेश दिया जाएगा।

21. उत्तरांचल वन विकास निगम बनाम एमसी जोशी ***(2007) 9*** एससीसी ***353*** में रिपोर्ट की गई, यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 6-एन के प्रावधानों के उल्लंघन में सेवाएं 24.11.1991 को समाप्त कर दी गईं। उन्होंने बर्खास्तगी के आदेश से पहले बारह महीने की अवधि में 240 दिनों का लगातार काम पूरा किया था। कामगार ने 02.09.1996 को या लगभग पांच साल की अवधि के बाद सुलह अधिकारी से संपर्क किया। श्रम न्यायालय ने कामगार एमसी जोशी को 50% बकाया वेतन के साथ बहाली की राहत दी। निगम की ओर से दायर रिट याचिका में बहाली का निर्देश तो बरकरार रखा गया लेकिन पिछला वेतन 50 फीसदी से घटाकर 25 फीसदी कर दिया गया. सर्वोच्च न्यायालय ने बहाली के निर्णय को 75,000/- रुपये की राशि के क्षतिपूर्ति से बदल दिया।

22. गाजियाबाद विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम अशोक कुमार और अन्य ***(2008) 4*** एससीसी ***261*** में रिपोर्ट की गई, सर्वोच्च न्यायालय इस प्रश्न से चिंतित थी कि क्या श्रम न्यायालय द्वारा उस कामगार के पक्ष में बहाली की राहत देना उचित था जिसने काम

किया था। दो साल तक दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम किया। उनकी बर्खास्तगी को यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम का उल्लंघन माना गया। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि श्रम न्यायालय को कामगार को सेवा में बहाल करने का निर्देश नहीं देना चाहिए था और 50,000/- रुपये का क्षतिपूर्ति देकर बहाली के आदेश को प्रतिस्थापित कर दिया।

23. टेलीकॉम डिस्ट्रिक्ट मैनेजर बनाम केशब देब, ***(2008) 8*** एससीसी ***402*** में रिपोर्ट की गई, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी की बर्खास्तगी को धारा 25-एफ के प्रावधानों के उल्लंघन सहित विभिन्न आधारों पर अवैध ठहराया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसे मामले में भी जहां बर्खास्तगी का आदेश अवैध था, पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाली के लिए स्वचालित निर्देश पर विचार नहीं किया गया था। न्यायालय ने बहाली के आदेश को 1,50,000/- रुपये के क्षतिपूर्ति के पंचाट से प्रतिस्थापित कर दिया।

24. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड ***(2009) 15*** एससीसी ***327*** में रिपोर्ट की गई, श्रमिक ने 01.09.1995 से 18.07.1996 तक दैनिक मजदूर के रूप में काम किया था और उसे पिछली मजदूरी के साथ बहाली के बदले 50,000/- रुपये का क्षतिपूर्ति दिया गया था।

25. सर्वोच्च न्यायालय के बाद के तीन निर्णयों का उल्लेख करना भी आवश्यक है, अर्थात्, उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता ***(2009) 16*** एससीसी ***562*** में रिपोर्ट किया गया, भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम मान सिंह ***(2012) 1*** में रिपोर्ट किया गया। एससीसी ***558*** और वरिष्ठ अधीक्षक टेलीग्राफ ***(***यातायात***),*** भोपाल बनाम संतोष कुमार सील और अन्य, ***(2010) 6*** एससीसी ***773*** में रिपोर्ट किया गया, जहां उपरोक्त चर्चा किए गए मामलों के अनुरूप दृष्टिकोण लिया गया है। संतोष कुमार सील ***(***सुप्रा***)*** में तथ्य की बात के रूप में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध रूप से निकाले गए प्रत्येक श्रमिक को 40,000/- रुपये का क्षतिपूर्ति दिया, क्योंकि वे लगभग 25 साल पहले दैनिक वेतन भोगी के रूप में लगे थे और मुश्किल से दो या तीन साल तक काम किया था। यह माना गया कि बहाली की राहत को उचित नहीं कहा जा सकता और इसके बजाय मौद्रिक क्षतिपूर्ति दिया गया।

26. इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने कई प्राधिकरणों में, जिनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया गया है, यह माना है कि समाप्ति आदेश में एकमात्र दोष औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 एफ (या यूपीआईडी अधिनियम की धारा 6एन) के अनुसार आवश्यक छंटनी क्षतिपूर्ति का भुगतान न करना है।) तो हमेशा पूरे पिछले वेतन के साथ बहाली का निर्देश देना जरूरी नहीं है और ऐसी स्थिति में अक्सर उचित राहत के लिए समेकित क्षति/क्षतिपूर्ति देना पड़ सकता है, खासकर जब नियोक्ता सरकारी या सरकारी एजेंसी हो और प्रासंगिक नियमों का पहले नियुक्ति पालन नहीं किया गया हो।

- नगर महापालिका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर ***2006*** एससी ***2113***

- हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग निगम बनाम मामनी**,** एआईआर ***2006*** एससी ***2427***
- सीता राम बनाम मोती लाल नेहरू किसान प्रशिक्षण संस्थान**,** एआईआर ***2008*** एससी ***1955***

-जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड और दूसरा**,** एआईआर ***2009*** एससी ***3004***।

27. एआईआर ***2010*** एससी ***2140*** में रिपोर्ट किए गए वरिष्ठ अधीक्षक**,** टेलीग्राफ ***(***यातायात***)*** भोपाल बनाम संतोष कुमार सील और अन्य में, यह माना गया है कि यदि दैनिक वेतनभोगियों ने 2 या 3 साल तक काम किया था और उनकी सेवाएं छंटनी क्षतिपूर्ति के भुगतान के बिना समाप्त कर दी गई थीं। तो उन्हें समेकित हर्जाना दिया जाना चाहिए (उक्त मामले में प्रत्येक श्रमिक को 40,000/- रुपये दिए गए थे)। यह भी माना गया है कि दैनिक वेतनभोगी कोई पद धारण नहीं करता है और उसे स्थायी कर्मचारी के बराबर नहीं किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण जेटी ***2010(9)*** एससी ***262*** में रिपोर्ट किए गए प्रभारी अधिकारी बनाम शंकर शेट्टी में दोहराया गया है।

28. अब प्रतिवादी-कर्मचारी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत प्राधिकारियों से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने सुरेंद्र कुमार वर्मा (सुप्रा) के मामले में कहा कि यदि समाप्ति औद्योगिक विधि के प्रावधानों के विपरीत थी, तो बैकवेज़ के साथ बहाली की जाएगी। आदेश दिया जाना चाहिए. सुदर्शन राजपूत (सुप्रा) में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 23, 24 और 25 में इस प्रकार कहा: - *"23.* इसके अलावा, उच्च न्यायालय द्वारा उमा देवी *(*सुप्रा*)* मामले पर इस न्यायालय के निर्णय पर विवाद के बिंदुओं का नकारात्मक उत्तर देने में कर्मचारी के पक्ष में पंचाट में दर्ज तथ्य की खोज को उलटने के लिए दी गई निर्भरता तर्कसंगत नहीं है। महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम कास्टेरिबे राज्य परिवाहन कर्मचारी संगठन**, *(2009) 8*** एससीसी ***556*** में इस न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, जिसमें, पैरा *36* पर उमा देवी के मामले *(*सुप्रा*)* को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने माना है कि उक्त मामला *"*एमआरटीयू और पीयूएलपी अधिनियम की धारा *32* के साथ पठित धारा *30* के अन्तर्गत औद्योगिक और श्रम न्यायालयों को उनकी वैधानिक शक्ति से वंचित नहीं किया गया है, जो कि आइटम *6* के अन्तर्गत नियोक्ता की ओर से अनुचित श्रम अभ्यास के शिकार श्रमिकों के स्थायीकरण का आदेश देता है। अनुसूची *IV* जहां वे पद मौजूद हैं जिन पर वे काम कर रहे हैं।*"*
इसके अलावा, इस न्यायालय ने यह माना

"36... उमा देवी के मामले को एमआरटीयू और पीयूएलपी अधिनियम की धारा *30* के अन्तर्गत उचित आदेश पारित करने में औद्योगिक और श्रम न्यायालयों की शक्तियों को समाप्त करने के लिए नहीं माना जा सकता है, एक बार नियोक्ता की ओर से आइटम *6* के अन्तर्गत अनुचित श्रम अभ्यास किया गया था। अनुसूची *IV* स्थापित है।*"*

24. हमारी राय है कि उमा देवी के मामले को अलग करने के बाद पैरा *36* में महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य *(*सुप्रा*)* में

लिया गया दृष्टिकोण प्रशंसनीय दृष्टिकोण है। इसलिए, हमें यह मानना होगा कि उमा देवी मामले *(सुप्रा)* को लागू करके श्रम न्यायालय द्वारा अपने पंचाट में दर्ज तथ्य की खोज को रद्द करने में उच्च न्यायालय का निष्कर्ष विधि में पूरी तरह से अस्थिर है। इसलिए, इसे इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया है।

25. इस न्यायालय ने हरि नंदन प्रसाद बनाम भारतीय खाद्य निगम के मामले में बाद के निर्णय में*: **(2014) 7*** एससीसी ***190,*** यूपी पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम बिजली मजदूर संघ ***(2007) 5*** एससीसी में निर्धारित निर्णय के विज्ञापन के बाद ***755*** और महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य *(सुप्रा)* जिसमें उमा देवी के मामले को दोनों मामलों में स्थगित कर दिया गया है, ने माना कि किसी भी अनुचित श्रम अभ्यास के अभाव में, पद उपलब्ध होने पर भी, दोनों निर्णयों के सामंजस्यपूर्ण पढ़ने पर श्रम न्यायालय केवल इसलिए नियमितीकरण का निर्देश नहीं दे सकता क्योंकि कोई श्रमिक कई वर्षों से दैनिक वेतन भोगी/तदर्थ/अस्थायी कर्मचारी के रूप में काम करता रहा है। इसके अलावा, ऐसा निर्देश तब नहीं दिया जा सकता जब संबंधित कर्मचारी भर्ती नियमों के अनुसार संबंधित पद की पात्रता आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है।

29. पूर्वोक्त प्राधिकरण पर विश्वास करते हुए, प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण यह है कि याचिकाकर्ता-विभाग द्वारा सेवा विनियमों और/या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों की संख्या के उल्लंघन में कथित नियुक्ति के संबंध में जो भी तर्क दिए गए थे। कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी (सुप्रा) का मामला खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि उमा देवी (सुप्रा) के मामले को उचित पंचाट पारित करने में औद्योगिक और श्रम न्यायालयों की शक्तियों को खत्म करने वाला नहीं माना जा सकता है।

30. पंजाब लैंड डेवलपमेंट एंड रिक्लेमेशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड चंडीगढ़ (सुप्रा) का निर्णय <u>छंटनी</u> की परिभाषा की लोच के बिंदु पर था और यह माना गया कि विधि में जो भी शब्द उपयोग किए जाते हैं, उन्हें उनका शाब्दिक अर्थ दिया जाना चाहिए और कोई अन्य व्याख्या विधि के अनुसार नहीं होगी. यूपी ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स कंपनी लिमिटेड (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि कर्मचारी ने पहले के वर्षों में 240 दिनों से अधिक काम किया था और भले ही उसकी छंटनी के वर्ष के दौरान उसने 240 दिनों तक काम नहीं किया था, फिर भी उसने को निरंतर सेवा में माना जाएगा और उसकी छंटनी औद्योगिक विधि के प्रावधानों का उल्लंघन होगी। देविंदर सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस बिंदु पर है कि औद्योगिक विधि के अन्तर्गत उनके मामले पर विचार करते समय दैनिक वेतनभोगी के साथ भी भेदभाव नहीं किया जा सकता है क्योंकि <u>श्रमिक की परिभाषा का मतलब किसी भी उद्योग में नियोजित प्रशिक्षु सहित किसी भी व्यक्ति से है। भाड़े या इनाम के लिए मैनुअल, अकुशल, कुशल, तकनीकी, परिचालन, लिपिकीय या पर्यवेक्षी कार्य, चाहे रोजगार की शर्तें व्यक्त या निहित हों और इसमें कोई भी</u>

ऐसा व्यक्ति शामिल है जिसे बर्खास्त, सेवामुक्त या छंटनी के संबंध में या के रूप में किया गया हो। विवाद का परिणाम. सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि रोजगार का स्रोत, भर्ती की विधि, रोजगार/सेवा अनुबंध के नियम और शर्तें, वेतन/वेतन की मात्रा और भुगतान का तरीका यह तय करने के लिए बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं हैं कि कोई व्यक्ति है या नहीं। अधिनियम के अन्तर्गत कर्मकार है।

31. आरएम येलाती (सुप्रा) में 'पैराग्राफ 17' में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि कामगार की सेवाओं के संबंध में साक्ष्य पेश करना नियोक्ता पर बोझ है क्योंकि कामगार नियोक्ता को केवल नाममात्र की रकम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है। दी गई अवधि के लिए रोल, नियुक्ति पत्र या समाप्ति पत्र, यदि कोई हो, वेतन रजिस्टर, उपस्थिति रजिस्टर आदि। यूपी राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, (सुप्रा), गैमन इंडिया लिमिटेड (सुप्रा) और मेसर्स के प्रबंधन के अन्य निर्णय विलकॉक्स बक वेल इंडिया लिमिटेड (सुप्रा) भी इस बिंदु पर है कि जब समाप्ति औद्योगिक अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत पाई जाती है, तो सेवाओं और बैकवेज़ में निरंतरता के साथ कामगार की बहाली की राहत उचित और उचित है।

32. प्रतिवादी-कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने भी जोरदार तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता का मामला श्रम न्यायालय के समक्ष उठाए गए रुख के विपरीत है। यह तर्क दिया गया है कि विभाग ने लिखित बयान में आरोप लगाया था कि कर्मचारी ने 21.03.2006 से पहले किसी भी पद पर कभी काम नहीं किया था, हालांकि, मामले में तर्क दिया गया था, जैसे कि, एक दैनिक वेतनभोगी जिसने निश्चित अवधि के लिए काम किया हो। बैकवेज़ और सेवा में निरंतरता के साथ बहाल नहीं किया जाएगा। यह भी तर्क दिया गया कि राहत पार्टियों के नेतृत्व में दलीलों पर आधारित होनी चाहिए और जब भी दलीलों की कमी के बारे में सवाल उठाया जाता है, तो न्यायालय को यह पता लगाना चाहिए कि क्या वास्तव में, पार्टियों को मामला और उस मुद्दे की जानकारी थी जिस पर वे सुनवाई के लिए गए थे। एल.आर. (सुप्रा) और भगवती प्रसाद (सुप्रा) द्वारा राम सरूप गुप्ता (मृत) के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पार्टियों की दलीलों और सबूतों के बिंदु पर हैं।

33. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है। मुझे लगता है कि श्रम न्यायालय का पंचाट इस तथ्य पर आधारित है कि श्रमिक ने संगठन में अपने काम को स्थापित करने वाले कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए थे और श्रम न्यायालय की राय में विभाग इसका खंडन नहीं कर सका। श्रम न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि श्रमिक को संगठन में नियोजित किया गया था और काम किया गया था, कुछ प्रमाणपत्रों के साथ-साथ उपस्थिति रजिस्टर पर भी विचार किया गया। हालाँकि, मुझे लगता है कि श्रम न्यायालय ने विभाग द्वारा दायर किए गए दस्तावेजों पर विचार नहीं किया है, यानी, व्यक्तियों की नियुक्ति के तरीके और तरीके, 1979 में नियुक्तियों पर प्रतिबंध, 1991 में विभाग के बाद के निर्माण, द्वारा दायर शपथपत्र पर विचार नहीं किया है। अधिकारियों ने कहा कि उन्होंने कभी भी

श्रमिक से कोई काम नहीं लिया था और न ही उनके द्वारा श्रमिक को कोई भुगतान किया गया था और न ही श्रम न्यायालय ने अधिकारियों की जिरह पर विचार किया था, जिसके अन्तर्गत प्रमाणपत्रों पर हस्ताक्षर करने से उनके द्वारा विशेष रूप से इनकार किया गया था। श्रम न्यायालय इस बात की सराहना करने में भी विफल रहा कि सेवाओं में निरंतरता के साथ बहाली और बकाया वेतन के लिए एक पंचाट देने के लिए, केवल यह पता लगाना कि मौखिक समाप्ति विधि के अनुसार नहीं थी, वास्तव में इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि कामगार को बकाया वेतन और निरंतरता के साथ बहाल किया जाना चाहिए सेवा। न तो इस आशय का कोई निष्कर्ष है कि श्रमिक को 2006 के बाद लाभप्रद रोजगार नहीं मिला था और न ही श्रम न्यायालय ने उस अवधि की जांच की जिसके लिए श्रमिक ने कथित तौर पर अपनी सेवाएं प्रदान की थीं। वास्तव में, यह पंचाट केवल कामगार द्वारा स्थापित मामले के विरुद्ध विभाग द्वारा कथित गैर-खंडन पर आधारित है, हालांकि मुझे लगता है कि विभाग ने "पूरी शक्ति से" ठोस साक्ष्य पेश करके कामगार के दावे का विरोध किया है। मौखिक और दस्तावेजी, लेकिन श्रम न्यायालय द्वारा उस पर उचित विचार नहीं किया गया है।

34. लाभकारी/गैर-लाभकारी रोजगार/सगाई के प्रश्न पर उनके दिनांक 14.12.2011 के बयान में विचार किया गया है जिसमें प्रतिवादी-कर्मचारी ने विरोधाभासी रुख अपनाया है, यानी एक तरफ, उसने कहा कि उसकी सेवाओं की समाप्ति के बाद, उसने बेरोजगार था, दूसरी ओर, उसी पंक्ति में, उन्होंने कहा कि जब भी उन्हें ठेकेदारों से काम मिलता था, तो वे वही काम करते थे और इसलिए, यह ऐसा मामला नहीं है जहां काम करने वाला पूरी तरह से बेरोजगार था और इसलिए, इस पर स्कोर, बैकवेज़ या सेवा में निरंतरता के साथ बहाली की राहत उचित नहीं होगी।

35. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, क्षतिपूर्ति की एक समेकित और एकमुश्त राशि प्रतिवादी को सांत्वना देने के उद्देश्य से काम कर सकती थी, क्योंकि वर्ष 2016 में दायर जवाबी शपथपत्र में, प्रतिवादी संख्या 4 की उम्र थी 53 वर्ष के रूप में वर्णित है और इसलिए, अब तक, उसने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली होगी और उसी के को ध्यान में रखते हुए मद्देनजर, इस न्यायालय के लिए यह उचित और उचित नहीं होगा कि वह बहाली के लिए निर्देश दे क्योंकि सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद बहाली होगी विधि के अनुरूप नहीं होना. इस कारण से भी, उचित और उचित क्षतिपूर्ति देने के संदर्भ में विवादित पंचाट में संशोधन की आवश्यकता है।

36. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और बार में उद्धृत उपरोक्त अधिकारियों के अनुपात पर विचार करते हुए, रिट याचिका को **आंशिक रूप से अनुमति** दी जाती है। प्रतिवादी नंबर 2-पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा 30.01.2016 को प्रकाशित आक्षेपित निर्णय और पंचाट दिनांक 19.10.2015 को संशोधित किया गया है और सेवा में निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली की राहत से **इनकार** किया गया है।

हालाँकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में, कामगार को एकमुश्त क्षतिपूर्ति के रूप में 2,00,000/- रुपये का पंचाट न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा।

37. तदनुसार, याचिकाकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर प्रतिवादी संख्या ***4-*** कर्मचारी को ***2,00,000/-*** रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए **परमादेश** की रिट जारी की जाती है। याचिकाकर्ता, ऐसा न करने पर, प्रतिवादी नंबर 4-कर्मचारी के लिए विधि के अनुसार पंचाट निष्पादित करने के लिए खुला होगा, और, यदि ऐसी निष्पादन कार्यवाही शुरू की जाती है, उसके बाद उसे **तीन महीने** की अवधि के भीतर समाप्त किया जाएगा ।

(2023) 5 ILRA 355

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

विशेष अपील संख्या 32/2023

डॉ. हैदर अली ...अपीलकर्ता

बनाम

अखिलेश कुमार सिंह एवं अन्य ..प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री टी. इस्लाम, श्री ए.बी.एन. त्रिपाठी, श्री सैयद अली मुर्तजा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री शशांक शेखर सिंह, श्री शैलेश उपाध्याय

ए. शिक्षा/सेवा कानून - शैक्षिक योग्यता - नियुक्ति- अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920- धारा 19 - किसी पद पर भर्ती के लिए शैक्षिक योग्यता को सामान्य रूप से माफ नहीं किया जा सकता है। यदि किसी पद पर भर्ती के लिए आवश्यक शैक्षिक योग्यता पूरी नहीं होती है, तो सामान्य रूप से उसे माफ नहीं किया जा सकता है। ऐसे कृत्य की पुष्टि नहीं की जा सकती है। ऐसी नियुक्ति जो क़ानून/वैधानिक नियमों के विपरीत हो, कानून में अमान्य होगी। **किसी अवैधता को नियमित नहीं किया जा सकता है, खासकर तब, जब क़ानून में स्पष्ट रूप से ऐसा न कहा गया हो। केवल अनियमितता को ही नियमित किया जा सकता है।** (पैरा 18)

विश्वविद्यालय ने 2016 में नियम बनाए थे, जिसके तहत टीजीटी (कृषि) के पद के लिए बी.एड. डिग्री को अनिवार्य योग्यता बनाया गया था। योग्यता को शामिल करने वाले नियमों को विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया था। परिस्थितियों में, 30.04.2016 का कार्यालय ज्ञापन, नियमों को दरकिनार करते हुए आंतरिक उम्मीदवार के लिए योग्यता में छूट देना वैधानिक नियमों के विरुद्ध है। नियमों को दरकिनार करना कुलपति के अधिकार क्षेत्र, शक्ति और अधिकार से परे है, क्योंकि योग्यता में छूट अधिनियम, 1920 की धारा 19(3) के अंतर्गत नहीं आती है। दिनांक 30.04.2016 का कार्यालय ज्ञापन कुलपति द्वारा जारी नहीं किया जा सकता था, क्योंकि वह "किसी भी मामले पर तत्काल कार्रवाई आवश्यक है" की अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आता, क्योंकि विश्वविद्यालय के सक्षम प्राधिकारी यानी कार्यकारी परिषद ने टीजीटी (कृषि) के पद के

लिए न्यूनतम योग्यता अनिवार्य करने वाले नियमों को विधिवत अनुमोदित किया था। तदनुसार, 30.04.2016 को जारी किया गया कार्यालय ज्ञापन, वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है और इसे प्रभावी नहीं बनाया जा सकता। वैधानिक नियमों/क़ानूनों के विपरीत नियुक्ति पर कानूनन अमान्य माना जाएगा। (पैरा 15)

बी. नियुक्ति पूरी तरह से वैधानिक प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए, नियुक्ति के पात्र उम्मीदवार को किसी भी बहाने से नियुक्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। नियुक्ति पूरी तरह से वैधानिक प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए और नियुक्ति के हकदार उम्मीदवार को किसी भी बहाने से इससे वंचित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी परिस्थिति में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पद का अतिक्रमण संभव नहीं है। (पैरा 19)

सी. संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधिदेश का उल्लंघन करके की गई कोई भी नियुक्ति न केवल अनियमित है बल्कि अवैध भी है और इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता। अनुच्छेद 14 हमारी व्यवस्था का अभिन्न अंग है, प्रत्येक राज्य की कार्रवाई को समानता की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। (पैरा 20)

इसलिए, अपीलकर्ता उस कार्यालय ज्ञापन का लाभ नहीं उठा सकता है जो टीजीटी (कृषि) की योग्यता को नियंत्रित करने वाले नियमों को मंजूरी देने वाली कार्यकारी परिषद के आदेश को दरकिनार करके जारी किया गया था। यह दस्तावेज शुरू से ही अमान्य है, इसलिए कानून की नज़र में यह अमान्य है। (पैरा 21)

जहां तक मामला टीजीटी (कृषि) की योग्यता से संबंधित है, चूंकि विश्वविद्यालय ने नियमों को अपनाया था और टीजीटी (कृषि) के पद के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित की थी, अन्य बातों के साथ-साथ, बी.एड. को अनिवार्य योग्यता के रूप में अनिवार्य किया था, इसलिए विश्वविद्यालय के लिए ऐसे उम्मीदवार के चयन को मंजूरी देना संभव नहीं था, जिसके पास अनिवार्य योग्यता नहीं है। यह कोई प्रासंगिकता नहीं है कि उम्मीदवार 2010 से काम कर रहा एक आंतरिक उम्मीदवार था। स्वीकृत रूप से, सत्र 2022-2023 के लिए विज्ञापन के अनुसार, आवेदन की तिथि पर, अपीलकर्ता के पास टीजीटी (कृषि) के पद के लिए आवश्यक योग्यता नहीं थी, इसलिए, वह योग्य नहीं था। (पैरा 22)

डी. विज्ञापन की शर्तों और नियमों में छूट तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि संबंधित वैधानिक नियमों में ऐसी शक्ति विशेष रूप से आरक्षित न हो। भले ही नियमों में छूट की शक्ति प्रदान की गई हो, फिर भी विज्ञापन में इसका उल्लेख किया जाना चाहिए, जो कि इस मामले में नहीं था। (पैरा 23)

ई. बिना उचित प्रकाशन के विज्ञापन में किसी भी शर्त में छूट देना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में निहित गुणवत्ता के अधिदेश के विपरीत होगा। (पैरा 23)

अभिलेख से प्रतीत होता है कि रिट याचिकाकर्ता/प्रथम प्रतिवादी टीजीटी (कृषि) के

पद के लिए आवश्यक योग्यता पूरी करने वाले एकमात्र उम्मीदवार थे, अपीलकर्ता सहित अन्य सभी उम्मीदवारों के पास बी.एड. की डिग्री नहीं थी। अन्य दो बाहरी उम्मीदवारों की उम्मीदवारी को चयन समिति ने उक्त कारण से निरस्त कर दिया था, लेकिन अपीलकर्ता का चयन किया गया था, जबकि उसके पास बी.एड. की डिग्री नहीं थी। विज्ञापन में आंतरिक उम्मीदवार को न्यूनतम योग्यता में कोई छूट नहीं देना सही था, क्योंकि यह कार्यकारी परिषद द्वारा विधिवत अनुमोदित टीजीटी (कृषि) के चयन/नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले नियमों से प्रभावित होगा। कुलपति के पास एक विषय (योग्यता) पर कार्यकारी परिषद को बायपास करने की शक्ति, अधिकार और अधिकार क्षेत्र का अभाव था, जिसे कार्यकारी परिषद और कुलपति द्वारा क़ानून के अनुसार अनुमोदित किया गया था। इस प्रकार तैयार नियम विश्वविद्यालय के सभी अधिकारियों के लिए बाध्यकारी थे अपीलकर्ता का चयन और नियुक्ति अपने आप में अवैध है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है। (पैरा 24)

एफ. किसी भी पद के लिए योग्यता निर्धारित करने और निर्णय लेने का कर्मचारी को पूर्ण अधिकार है, एक बार नियमों के तहत ऐसा कार्य किया जाता है, तो यह अधिकारियों को बाध्य करेगा और न्यायालयों द्वारा भी इसे कमजोर नहीं किया जा सकता है। (पैरा 25)

जी. शब्द और वाक्यांश ब्लैक का कानून शब्दकोष 'शून्य' 'शून्य' का अर्थ है - बिना किसी कानूनी बल, प्रभाव या परिणाम के; अमान्य; शून्य; बेकार; बेकार और अप्रभावी। 'शून्य' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: अप्रभावी; निरर्थक; कोई कानूनी बल या कानूनी प्रभाव न होना: जिस उद्देश्य के लिए इसे अप्राप्य बनाया गया था, उसे कानून में समर्थन देने में असमर्थ; निरर्थक और अप्रभावी ताकि कुछ भी इसका समाधान न कर सके; वैध न हो। 'शून्य' का अर्थ है एक अनुबंध जो पूरी तरह से कानूनी प्रभाव से रहित है या यह परिकल्पित मुख्य परिणाम से रहित है।"शून्य" का अर्थ है अपने आरंभ से ही अस्तित्वहीन होना और इसकी मान्यता पर प्रतिबंध। इसका अर्थ केवल शून्यता भी है और इसे संपार्श्विक कार्यवाही में भी अनदेखा किया जा सकता है जैसे कि यह कभी था ही नहीं। "शून्य" का कोई कानूनी बल या प्रभाव नहीं है, जिसकी वैधता किसी भी व्यक्ति द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है जिसके अधिकार किसी भी समय या किसी भी स्थान पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। (पैरा 16, 17)

विशेष अपील निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. कलावती बनाम बिशेश्वर, एआईआर 1968 एससी 261 (पैरा 17)
2. नुटुन कुमार बनाम द्वितीय ए.डी.जे., एआईआर 1994 सभी 298 (पैरा 17)
3. प्रमोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग एवं अन्य, (2008) 7 एससीसी 153 (पैरा 18)
4. पुरुषोत्तम वीएस चेयरमैन, महाराष्ट्र स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड, (1999) 6 सी सी 49 (परा 19)

5. दिल्ली विकास बागवानी कर्मचारी संघ बनाम दिल्ली प्रशासन, दिल्ली, एआईआर 1992 एससी 789 (पैरा 20)

6. हरियाणा राज्य बनाम पियारा सिंह, 1992 एससी 2130 (पैरा 20)

7. प्रभात कुमार शर्मा बनाम यू.पी. राज्य, एआईआर 1996 एससी 2638 (पैरा 20)

8. जे.ए.एस. इंटर कॉलेज खुर्जा, यू.पी. बनाम यू.पी. राज्य, एआईआर 1996 एससी 3420 (पैरा 20)

9. एम.पी. हाउसिंग बोर्ड बनाम मनोज श्रीवास्तव, एआईआर 2006 एससी 3499 (पैरा 20)

10. एम.पी. स्टेट एग्रो इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम एस.सी. पांडे, (2006) 2 एससीसी 716 (पैरा 20)

11. एम.पी. राज्य बनाम कु. संध्या तोमर, (2013) 11 एससीसी 357 (पैरा 20)

12. बेदंगा तालुकदार बनाम सैफुदाउल्लाह खान और अन्य, (2011) एससीसी 85 (पैरा 23)

13. पंजाब नेशनल बैंक बनाम अनित कुमार दास, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 897 (पैरा 25)

वर्तमान विशेष अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 13257/2022 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 08.12.2022 को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री टी. इस्लाम और प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शेखर सिंह को सुना।

2. प्रस्तुत अंतर न्यायालय अपील रिट याचिका के पांचवें प्रत्यर्थी द्वारा 08 दिसंबर, 2022 के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहल, याचिकाकर्ता । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा स्थापित रिट याचिका को अनुमति दी गई थी। आवश्यक योग्यता यानी बी.एड. डिग्री के अभाव में, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय/स्कूल में प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक (कृषि) के पद पर अपीलकर्ता की नियुक्ति को रद्द कर दिया गया।

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अपीलकर्ता को दिनांक 20 नवंबर, 2010 के नियुक्ति पत्र के माध्यम से प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक (कृषि) (संक्षिप्त में टीजीटी के लिए) के रूप में अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था। नियुक्ति एक शैक्षणिक सत्र के लिए थी जो साल-दर-साल जारी रही और अंततः एक विज्ञापन तीसरे प्रत्यर्थी स्कूल शिक्षा निदेशालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, (संक्षेप में, "एएमयू") द्वारा 20 मई, 2022 को जारी किया गया। विज्ञापन में सत्र 2022-23 के लिए टीजीटी (कृषि) सहित विभिन्न पर्दा के लिए आवेदन मांगे गए थे। पद की अनिवार्य योग्यता है कि अन्य बातों के साथ उम्मीदवार के पास किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से बी.एड. डिग्री

अनुवादित

या समकक्ष होना चाहिए। । विज्ञापन में विभिन्न श्रेणियों के लिए केंद्रीय विद्यालय संगठन (केवीएस) के मानदंडों के अनुसार आयु में छूट भी प्रदान की गई है। पार्टियों के बीच इस बात पर सहमति है कि छूट टीजीटी (कृषि) के लिए योग्यता से संबंधित नहीं है। विज्ञापन के अनुसार, पहले प्रत्यर्थी/रिट याचिकाकर्ता ने पद के लिए आवेदन किया था और इसमें कोई विवाद नहीं है कि वह विज्ञापन में विधिवत अधिसूचित शैक्षिक योग्यताएं पूरी करता है यानी उसके पास बी.एड. डिग्री थी। किसी भी स्थिति में, बी.एड डिग्री न होने के बावजूद, अपीलकर्ता का चयन स्थानीय चयन समिति द्वारा की गई अनुशंसा पर 16 जुलाई, 2022 को किया गया।। पांचवें प्रत्यर्थी का चयन/नियुक्ति की वैधता को रिट याचिका में चुनौती दी गई थी।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में कहा कि अपीलकर्ता के पास अपेक्षित न्यूनतम योग्यता अर्थात् बी.एड. नहीं है। विज्ञापन में डिग्री और योग्यता के संबंध में कोई छूट अधिसूचित नहीं की गई थी। इसके अलावा, एएमयू की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता ने कहा कि पात्रता शर्तों में छूट के संबंध में कोई आदेश नहीं है और न ही अपीलकर्ता को कोई छूट दी गई है। तद्नुसार रिट याचिका स्वीकार की गई। आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पढ़ा जाए:-

"10. साथ ही, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि किया गया चयन पूरी तरह से अस्थायी है, इसका कोई महत्व नहीं है। एक बार चयन कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक था। भले ही वह किसी भी अवधि के लिए बनाया गया हो, उस कानून को पूरी तरह से लागू होना चाहिए। किसी भी मामले में, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी संख्या 5 कुछ समय के लिए यानी 2020 से वार्षिक नवीनीकरण/पुनर्नियुक्ति के विरुद्ध अस्थायी आधार पर जारी रहा है।

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचिका सफल होती है। इसकी अनुमति दी जाती है। ....."

5. इस पृष्ठभूमि में, अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि अपीलकर्ता शैक्षणिक सत्र 2010-11 से अस्थायी आधार पर जारी रखा गया है और विश्वविद्यालय का आंतरिक उम्मीदवार होने के नाते योग्यता में छूट का हकदार है, जिसे कुलपति द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम 1920, (संक्षेप में "अधिनियम, 1920") की धारा 19 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए विधिवत प्रयोग किया गया था। अधिनियम, 1920 की धारा 19

(3), जो मामले के लिए प्रासंगिक है, इस प्रकार निम्नानुसार पढ़ा जाए:-

19. कुलपतिः-
(1).....
(2).....

(3) यदि कुलपति की राय हो कि किसी मामले में तुरंत कार्रवाई आवश्यक है तो वह इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी को प्रदत किसी शक्ति का प्रयोग कर सकेगा और उस प्राधिकारी को अपने द्वारा उस मामले में की गई कार्रवाई की रिपोर्ट देगा:
परंतु यदि संबंधित प्राधिकारी की यह राय हो कि ऐसी कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए थी तो वह उस मामले को कुलाध्यक्ष को निर्देशित कर सकेगा जिसका उस पर विनिश्चय अंतिम होगाः
परंतु यह और है कि विश्वविद्यालय की सेवा में किसी व्यक्ति को, जो कुलपति द्वारा इस उपधारा के अधीन की गई कार्यवाही से व्यथित हो, अधिकार होगा कि कार्य परिषद से, जिस तारीख को ऐसी कार्यवाही का विनिश्चय उसे संसूचित किया जाए उसे तीन मास के भीतर, उस पर कार्यवाही के विरुद्ध अपील करें और तब कार्य परिषद कुलपति द्वारा की गई कार्यवाही को पुष्ट या उपांतरित कर सकेगी या उसे उलट सकेगी।

6. अधिनियम, 1920 की धारा 19 की उपधारा (3) को मात्र पढ़ने पर, न तो यह स्पष्ट होता है, न ही अनुमान लगाया जा सकता है कि योग्यता को शिथिल करने के लिए कुलपति को कोई विशिष्ट शक्ति प्रदान की गई है। कार्यकारी परिषद की मंजूरी के बाद विश्वविद्यालय के ऐसे प्राधिकारी द्वारा विधिवत अपनाया गया है। उपधारा (3) कुलपति को विश्वविद्यालय के किसी भी प्राधिकारी या अधिनियम, 1920 के तहत प्रदत्त किसी भी मामले पर तत्काल कार्रवाई करने के लिए आपातकालीन/कठिनाई हटाने की शक्ति प्रदान करती है, और उसके बाद ऐसे मामलों में कुलपति द्वारा की गई कार्यवाही की रिपोर्ट ऐसे प्राधिकारी को करेगी। प्राधिकारी कुलपति के निर्णय से सहमत असहमत हो सकते हैं, तो उस स्थिति में मामले को अंतिम निर्णय के लिए विजिटर के पास भेजा जाएगा।

7. अपीलकर्ता का मामला यह नहीं है कि टीजीटी (कृषि) की योग्यता के संबंध में निर्णय अभी तक विश्वविद्यालय के सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं लिया गया था, इसलिए, कुलपति को उस पर "तत्काल कार्रवाई" करनी पड़ी। इसके विपरीत कार्यकारी परिषद ने पहले ही टीजीटी के लिए योग्यता को मंजूरी दे दी थी जिसका पालन इस पद पर नियुक्ति करते समय किया जाना था। यह तथ्य पार्टियों के समक्ष स्वीकार किया गया है।

8. न्यायालय का ध्यान उप कुलसचिव (परिषद) द्वारा जारी 16 जनवरी, 2016 के कार्यालय ज्ञापन की ओर

आकर्षित किया गया है, (रिट याचिका में अनुलग्नक प्रति शपथपत्र-7), जिसमें यह अवलोकन किया गया है कि विश्वविद्यालय स्कूलों से संबंधित स्कूल शिक्षा निदेशालय के निदेशक के प्रस्ताव पर, कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित पूर्व योग्यता को अधिक्रमण करते हुए कुलपति ने एएमयू अधिनियम, 1920 की धारा 19 (3) के तहत केवीएस मानदंडों के अनुसार एएमयू स्कूलों के शिक्षकों के चयन और पदोन्नति के लिए भर्ती नियमाँ योग्यताओं को मंजूरी दे दी है। दूसरे शब्दों में, टीजीटी (कृषि) की योग्यता से संबंधित नियमों को मंजूरी दी गई जो चयन समिति के लिए बाध्यकारी थे।

9. इसमें कोई विवाद नहीं है कि नियमों में टीजीटी (कृषि) पद के लिए बी.एड. डिग्री को आवश्यक योग्यता के रूप में शामिल किया गया था। दूसरे शब्दों में टीजीटी (कृषि) पद के लिए निर्धारित योग्यता विज्ञापन की तिथि पर लागू थी।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 30 अप्रैल, 2016 के कार्यालय ज्ञापन पर भरोसा रखा गया है, जिसमें आयु सीमा और अनिवार्य योग्यता में छूट केवल उन्हीं अस्थायी शिक्षकों को दी जानी है जो अपनी पहली नियुक्ति के समय पात्र थे और जिन्हें बार-बार अंतराल के साथ तीन महीने की अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है।

11. यह कुलपति के अनुमोदन से जारी 30 अप्रैल, 2016 के उपरोक्त कार्यालय ज्ञापन के आधार पर है, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि अपीलकर्ता 2010 से टीजीटी (कृषि) के रूप में जारी एक आंतरिक उम्मीदवार होने के नाते योग्यता में छूट का हकदार था। यह प्रस्तुत किया गया है कि 30 अप्रैल, 2016 का कार्यालय ज्ञापन रिट न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन नहीं था।

12. प्रत्यर्थी -विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट रुख अपनाया था कि 30 अप्रैल, 2016 के कार्यालय ज्ञापन के अनुसार अपीलकर्ता को ऐसी कोई छूट नहीं दी गई थी। इस आशय का कोई दस्तावेज विश्वविद्यालय के रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह आग्रह किया जाता है कि विश्वविद्यालय ने अपीलकर्ता को योग्यता में छूट नहीं दी थी।

13. किसी भी स्थिति में, अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि कार्यालय ज्ञापन दिनांक 30 अप्रैल, 2016 उपलब्ध है और यह अस्थायी शिक्षकों को योग्यता में छूट देता है, अपीलकर्ता

को छूट दिए जाने के बाद उसे उचित रूप से नियुक्त किया गया था।

14. विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या अपीलकर्ता नियमों के विरुद्ध योग्यता में छूट का हकदार था।

15. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि विश्वविद्यालय ने 2016 में नियम बनाए थे कि टीजीटी (कृषि) पद के लिए बी.एड डिग्री एक आवश्यक योग्यता है। योग्यता को शामिल करने वाले नियमों को विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया। इन परिस्थितियों में, कार्यालय ज्ञापन दिनांक 30 अप्रैल, 2016, नियमों को दरकिनार करते हुए आंतरिक उम्मीदवार के लिए योग्यता में ढील देना वैधानिक नियमों के तहत शून्य है। नियमों को दरकिनार करना कुलपति के अधिकार क्षेत्र, शक्ति और अधिकार से परे है, क्योंकि योग्यता में छूट अधिनियम, 1920 की धारा 19(3) के संदर्भ में नहीं है। कार्यालय ज्ञापन दिनांक 30 अप्रैल, 2016, कुलपति द्वारा जारी नहीं किया जा सकता था, क्योंकि यह "किसी भी मामले पर तत्काल कार्रवाई आवश्यक है" अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आता है, इस कारण से कि विश्वविद्यालय के सक्षम प्राधिकारी यानी कार्यकारी परिषद ने टीजीटी (कृषि) के पद के लिए न्यूनतम योग्यता अनिवार्य करने वाले नियमों को विधिवत मंजूरी दे दी है। तदनुसार, वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में जारी किया गया कार्यालय ज्ञापन दिनांक 30 अप्रैल, 2016 कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है और इसे प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। कोई भी नियुक्ति जो कानूनी नियमों/कानून के विपरीत है, कानून की दृष्टि से अमान्य होगी।

16. शून्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैः निष्प्रभावी; निरर्थक; कोई कानूनी बल या कानूनी प्रभाव न होनाः कानून में उस उद्देश्य का समर्थन करने में असमर्थ जिसके लिए यह अप्रयुक्त, निरर्थक और अप्रभावी था ताकि कुछ भी इसे ठीक न कर सके, वैध नहीं, शून्य का अर्थ है एक अनुबंध पूरी तरह से कानूनी प्रभाव से रहित है या यह विचार किए गए मुख्य परिणाम से रहित है।

17. **कलावती बनाम बिशेश्वर** में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "शून्य" का अर्थ अपनी शुरुआत से ही अस्तित्वहीन है और इसकी मान्यता पर फिर से प्रतिबंध लगा दिया गया है। इसका मतलब केवल एक अशक्तता है और इसे संपार्श्विक कार्यवाही में भी अनदेखा किया जा सकता है जैसे कि यह कभी था ही नहीं। "शून्य" का कोई कानूनी बल या प्रभाव नहीं है, जिसकी वैधता किसी

भी व्यक्ति द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है जिसके अधिकार किसी भी समय या किसी भी स्थान पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। "शून्य" का अर्थ है- बिना किसी कानूनी बल, प्रभाव या परिणाम के; अमान्य; अकृत; योग्यताहीन; शून्यः निरर्थक और अप्रभावी **[द्वाराः नूतन कुमार बनाम द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश]।**

18. किसी पद पर भर्ती के लिए शैक्षणिक योग्यता को सामान्यतः माफ नहीं किया जा सकता। **प्रमोद कुमार बनाम यूपी माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग और अन्य में, न्यायालय ने** निम्नानुसार कहा है:- "

"18. यदि किसी पद पर भर्ती के लिए आवश्यक शैक्षणिक योग्यता पूरी नहीं होती है, तो आमतौर पर उसे माफ नहीं किया जा सकता है। ऐसे कार्य का अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता है। कोई नियुक्ति जो कानून/वैधानिक नियमों के विपरीत है, वह कानून की दृष्टि से शून्य होगी। किसी अवैधता को नियमित नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से, जब क़ानून स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं कहता है। केवल एक अनियमितता हो सकती है। (देखें: सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी (3) और अन्य [(2006) 4 एससीसी 1], राष्ट्रीय उर्वरक लिमिटेड और अन्य बनाम सोमवीर सिंह [(2006) 5 एससीसी 493] और पोस्ट मास्टर जनरल, कोलकाता और अन्य बनाम टूटू दास (दत्ता)) ((2007) 5 एससीसी 317])"

19. नियुक्ति सख्ती से वैधानिक प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए, नियुक्ति के हकदार उम्मीदवार को किसी भी बहाने से नियुक्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। पुरषोतम बनाम अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड के मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि नियुक्ति सख्ती से वैधानिक प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए और जो उम्मीदवार नियुक्ति का हकदार है, उसे किसी भी बहाने से नियुक्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में किसी अन्य द्वारा पद हड़पना संभव नहीं है।

20. अनुच्छेद 14 हमारी व्यवस्था का अभिन्न अंग है, राज्य की प्रत्येक कार्रवाई को समानता की कसौटी पर परखा जाना है। संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के आदेश का उल्लंघन करके की गई कोई भी नियुक्ति न केवल अनियमित है, बल्कि अवैध भी है और दिल्ली विकास बागवानी कर्मचारी संघ बनाम दिल्ली प्रशासन, दिल्ली; हरियाणा राज्य बनाम पियारा सिंहः प्रभात कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; जेएएस इंटर कॉलेज, खुर्जा, यूपी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एमपी हाउसिंग बोर्ड बनाम मनोज श्रीवास्तव, मप्र राज्य कृषि उद्योग विकास निगम

21. लिमिटेड बनाम एससी पांडेय, और मध्य प्रदेश राज्य बनाम कु. संध्या तोमर मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए निर्णयों के मद्देनजर इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

22. इसके मद्देनजर, अपीलकर्ता उस कार्यालय ज्ञापन का लाभ नहीं उठा सकता है जो टीजीटी (कृषि) की योग्यता को नियंत्रित करने वाले नियमों को मंजूरी देने वाले कार्यकारी परिषद के आदेश को दरकिनार करते हुए जारी किया गया था। दस्तावेज़ प्रारंभ से ही शून्य है, इसलिए, कानून की दृष्टि में अमान्य है।

23. जहां तक यह टीजीटी (कृषि) की योग्यता से संबंधित है, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए तर्क से सहमत हैं कि चूंकि विश्वविद्यालय ने नियमों को अपनाया था और टीजीटी (कृषि) के पद के लिए न्यूनतम योग्यता अन्य बातों के साथ, एक आवश्यक योग्यता के रूप में बी.एड. की अनिवार्यता निर्धारित की थी। विश्वविद्यालय के लिए ऐसे उम्मीदवार के चयन को मंजूरी देना खुला नहीं था, जिसके पास आवश्यक योग्यता का अभाव है। इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है कि उम्मीदवार 2010 से कार्यरत एक आंतरिक उम्मीदवार था। स्वीकृत किया जाता है कि, आवेदन की तिथि पर, सत्र 2022 2023 के विज्ञापन के अनुसार, अपीलकर्ता के पास टीजीटी (कृषि) के पद के लिए आवश्यक योग्यता का अभाव था, इसलिए, वह योग्य नहीं था।

24. विज्ञापन के नियमों और शर्तों में तब तक छूट नहीं दी जा सकती जब तक कि प्रासंगिक कानूनी नियमों में ऐसी शक्ति विशेष रूप से आरक्षित न हो। भले ही नियमों में छूट की शक्ति प्रदान की गई हो, फिर भी विज्ञापन में इसका उल्लेख किया जाना चाहिए, जो कि मौजूदा मामले में नहीं था। **बेदंगा तालुकदार बनाम सैफुदाउल्लाह खान और अन्य** मामले में, न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:-

"29. हमारी राय में, यह इतनी अच्छी तरह से तय है कि किसी और पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है कि सार्वजनिक कार्यालय में सभी नियुक्तियाँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुरूप किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, किसी भी उम्मीदवार को दिखाए जाने वाले अनुचित लाभ के परिणामस्वरूप कोई मनमानी नहीं होनी चाहिए। इसलिए, चयन प्रक्रिया को निर्धारित चयन प्रक्रिया के अनुसार सख्ती से आयोजित किया जाना चाहिए विज्ञापन के नियमों और शर्तों में कोई छूट नहीं दी जा सकती जब तक कि ऐसी शक्ति विशेष रूप से आरक्षित न हो। ऐसी शक्ति प्रासंगिक कानूनी नियमों में आरक्षित की जा सकती है। भले ही छूट की शक्ति नियमों में प्रदान की गई है, इसका अभी भी विज्ञापन में उल्लेख किया जाना चाहिए। नियमों में ऐसी

शक्ति के अभाव में, इसे अभी भी विज्ञापन में प्रदान किया जा सकता है। हालांकि, यदि छूट की शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तो इसका उचित प्रचार करना होगा। यह सुनिश्चित करना आवश्यक होगा कि जो उम्मीदवार छूट के कारण पात्र हो जाते हैं, उन्हें आवेदन करने और प्रतिस्पर्धा करने का समान अवसर दिया जाता है। विज्ञापन में उचित प्रकाशन के बिना किसी भी शर्त में छूट भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में निहित गुणवत्ता के आदेश के विपरीत होगी।"

25. अभिलेख दर्शाता है कि रिट याचिकाकर्ता/प्रथम प्रत्यर्थी टीजीटी (कृषि) पद के लिए आवश्यक योग्यता पूरी करने वाला एकमात्र उम्मीदवार था, अपीलकर्ता सहित अन्य सभी उम्मीदवारों के पास बी.एड. डिग्री नहीं थी। अन्य दो बाहरी उम्मीदवारों की उम्मीदवारी उक्त कारण से चयन समिति द्वारा खारिज कर दी गई थी, लेकिन, अपीलकर्ता का चयन किया गया था, भले ही उसके पास बी.एड. डिग्री नहीं थी। विज्ञापन में आंतरिक उम्मीदवार को न्यूनतम योग्यता में कोई छूट नहीं दी गई है, क्योंकि यह कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित टीजीटी (कृषि) के चयन/नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले नियमों से प्रभावित होगा। कुलपति के पास उस विषय (योग्यता) पर कार्यकारी परिषद को दरकिनार करने की शक्ति, अधिकार और क्षेत्राधिकार का अभाव था, जिसे क़ानून के अनुसार कार्यकारी परिषद और कुलपति द्वारा विधिवत अनुमोदित किया जाना था। इस प्रकार बनाए गए नियम विश्वविद्यालय के सभी प्राधिकारियों के लिए बाध्यकारी थे और किसी प्रशासनिक आदेश द्वारा इन्हें कमजोर नहीं किया जा सकता था। अपीलकर्ता का चयन और नियुक्ति पूरी तरह अवैध है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है।

26. कर्मचारी को किसी भी पद के लिए योग्यता निर्धारित करने और निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार है, एक बार जब नियमों के तहत ऐसा अभ्यास किया जाता है, तो यह अधिकारियों को बाध्य करेगा और न्यायालयों द्वारा भी इसे कमजोर नहीं किया जा सकता है। **पंजाब नेशनल बैंक बनाम अनित कुमार दास** में न्यायालय ने निम्नानुसार संप्रेषित कियाः

*21. "किसी भी पद के लिए योग्यता की प्रासंगिकता और उपयुक्तता का निर्धारण और निर्णय लेना नियोक्ता का काम है और इस पर विचार करना और मूल्यांकन करना न्यायालय का काम नहीं है। न्यायालय द्वारा नियोक्ता को किसी भी पद के लिए योग्यता निर्धारित करने के लिए बड पैमाने पर अनुमति दी जाती है। इसके पीछे एक तर्क है। जिस किसी मामले में किसी संस्थान या उद्योग या प्रतिष्ठान की आवश्यकता और हित को ध्यान में रखते हुए योग्यताएं निर्धारित की जाती हैं। **न्यायालय योग्यता के ऐसे नुस्खे की समीचीनता या***

उपयुक्तता या उपयोगिता का आकलन करने के लिए उपयुक्त उपकरण नहीं हैं...."

27. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता आक्षेपित आदेश में किसी भी अवैधता, दुर्बलता या विकृति को इंगित करने में असमर्थ हैं।

28. हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा ली गई राय से भिन्न राय लेने के लिए खुद को राजी करने में असमर्थ हैं।

29. अपील तथ्यहीन होने के कारण तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 363

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

विशेष अपील संख्या 183/2023

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

राम जी सिंह ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री रामा नंद पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अरविंद कुमार सिंह, श्री अखिलेश सिंह, श्री राकेश सिंह, श्री रवीश कुमार सिंह

ए. सेवा कानून - पेंशन से वसूली - सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि नियोक्ता उन मामलों में राशि वसूलने का हकदार है, जहां कर्मचारी को गलती से मौद्रिक लाभ दिया गया है, जो विभिन्न कारणों से हो सकता है; जिसमें एक ऐसा दर्जा प्रदान करना शामिल है, जिसका संबंधित कर्मचारी हकदार नहीं था; या संबंधित कर्मचारी के अधिकार के अनुरूप उच्च वेतनमान में वेतन का भुगतान; या वेतनमान में ऊपर की ओर संशोधन के परिणामस्वरूप या भत्ते दिए जाने के कारण कर्मचारी के वेतन का गलत निर्धारण, जिसके लिए संबंधित कर्मचारी अधिकृत नहीं था। परंतु अतिरिक्त भुगतान कर्मचारी द्वारा किसी धोखाधड़ी या गलत बयानी के कारण न हुआ हो। (पैरा 5)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित श्रेणियां इस प्रकार हैं:-

(i) श्रेणी-III एवं श्रेणी-IV सेवा (या समूह 'सी' एवं समूह 'डी' सेवा) के कर्मचारियों से वसूली।

(ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों अथवा उन कर्मचारियों से वसूली, जो वसूली के आदेश के एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं।

(iii) जब अधिक भुगतान पांच वर्ष से अधिक अवधि के लिए किया गया हो तो कर्मचारियों से वसूली, वसूली का आदेश जारी होने से पूर्व।

(iv) उन मामलों में वसूली जहां किसी कर्मचारी को गलत तरीके से किसी कर्मचारी के उच्च पद पर कर्तव्यों का निर्वहन करने की आवश्यकता होती है और उसे तदनुसार वेतन दिया गया है, जबकि उसे उचित रूप से निम्न पद पर कार्य करना चाहिए था।

(v) किसी अन्य वाद में, जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यदि कर्मचारी से वसूली की जाती है, तो वह इस सीमा तक अन्यायपूर्ण या कठोर या मनमानी होगी, जो

नियोक्ता के वसूली के अधिकार के न्यायसंगत संतुलन से कहीं अधिक होगी।

इस वाद में, निर्विवाद रूप से, रिट याचिकाकर्ता तृतीय श्रेणी का कर्मचारी था और इसलिए वह पहली श्रेणी में आता है। उसकी सेवानिवृत्ति के बाद वसूली की मांग की गई थी और परिणामस्वरूप, वह दूसरी श्रेणी के अंतर्गत भी आएगा। वसूली की मांग की गई राशि कथित तौर पर रिट याचिकाकर्ता को सेवा में रहते हुए 35 वर्षों की अवधि के दौरान भुगतान की गई थी और इसलिए, वह भी खंड (iii) के अंतर्गत आएगा। पिछले 35 वर्षों में रिट याचिकाकर्ता को मासिक आधार पर भुगतान किए गए मकान किराया भत्ते की छोटी राशि जब सेवानिवृत्ति के बाद एकमुश्त वसूल की गई तो निश्चित रूप से एक कठोर और अन्यायपूर्ण कार्रवाई थी और यह खंड (v) के अंतर्गत भी आएगी। (पैरा 7)

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में भत्तों के गलत या अधिक भुगतान से संबंधित मामले सम्मिलित हैं, इसलिए इसमें याचिकाकर्ता को मकान किराया भत्ते के रूप में किए गए भुगतान को भी शामिल किया जाएगा। यदि किराए के भुगतान में कोई चूक हुई है, तो इसकी वसूली, यदि इस समय अवधि में अनुमेय है, तो कार्रवाई का एक अलग और विशिष्ट कारण होगा, लेकिन कर्मचारी की ओर से किसी धोखाधड़ी या गलत बयानी के बिना, वर्षों से भुगतान किए गए मकान किराया भत्ते की वसूली करना पूरी तरह से मनमाना और अवैध था। (पैरा 8)

विशेष अपील निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

पंजाब राज्य और अन्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर), 2015 (4) एससीसी 334 (पैरा 1)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम जगदेव सिंह, 2015 (4) एससीसी 334 (पैरा 9)

वर्तमान अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 22.11.2022 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा एकमात्र प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दी गई थी और उसे 3,46,804/- रुपये वापस करने का निर्देश जारी किया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता
और
माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

यह अपील विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 22.11.2022 के आदेश के विरुद्ध है, जिसके द्वारा एकमात्र प्रत्यर्थी(जिसे आगे "रिट याचिकाकर्ता" के रूप में संदर्भित किया गया है) द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दी गई थी और उसे 3,46,804/- रुपये वापस करने का निर्देश जारी किया गया था। उपरोक्त राशि राज्य द्वारा उसके पेंशन लाभों से गृह किराया भत्ते के लिए काटी गई राशि है, जो सेवा में रहते हुए उसे गलत तरीके से भुगतान किया गया था। उक्त निर्देश जारी करते हुए रिट कोर्ट ने **पंजाब राज्य और अन्य बनाम रफीक मसीह**

(व्हाइट वॉशर), 2015 (4) एससीसी 334 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

संक्षेप में तथ्य यह है कि रिट याचिकाकर्ता 30.06.2016 को कलेक्ट्रेट, इलाहाबाद में टेलीप्रिंटर ऑपरेटर के पद से सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुए। अपने सेवाकाल के दौरान, उन्हें वर्ष 1981 में एक सरकारी आवास आवंटित किया गया था। अपीलकर्ताओं के मामले के अनुसार, रिट याचिकाकर्ता ने आवंटन पत्र के अनुसार मकान किराया जमा नहीं किया और साथ ही उन्हें सेवानिवृत्ति तक हर महीने मकान किराया भत्ता भी दिया गया। 03.10.2016 को यानि सेवानिवृत्ति के बाद, ए.डी.एम. सिटी, इलाहाबाद ने एक आदेश पारित किया कि याचिकाकर्ता ने अनियमित तरीके से मकान किराया भत्ते के रूप में 2,88,644/- रुपये प्राप्त किए थे और इसके अलावा, मानदंडों के अनुसार, 30 जून, 2016 तक 58,260/- रुपये किराया देय होना चाहिए, नतीजतन, उन्हें तीन दिनों के भीतर सरकारी खजाने में 3,46,904/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया था, ऐसा न करने पर, यह उनके पेंशन लाभ से वसूल किया जाएगा। चूंकि रिट याचिकाकर्ता ने सरकारी खजाने में राशि जमा नहीं की, इसलिए यह राशि उनके पेंशन लाभ से काट ली गई। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अभ्यावेदन को जिला मजिस्ट्रेट ने रिट याचिका में आरोपित आदेश दिनांक 22.05.2020 द्वारा खारिज कर दिया।

राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री रामानंद पांडे ने कहा कि 15.12.1981 के सरकारी आदेश के तहत रिट याचिकाकर्ता को अपने सेवाकाल के दौरान जिस सरकारी आवास में रह रहा था, उसका किराया देना था। उन्होंने आगे कहा कि यदि सरकारी आवास में रह रहा कोई कर्मचारी किराया नहीं देता है तो वह मकान किराया भत्ता पाने का हकदार नहीं होगा। यह कहा गया कि राज्य ने गलती से रिट याचिकाकर्ता को मकान किराया भत्ता दे दिया लेकिन जैसे ही उक्त गलती का पता चला, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, शहर ने रिट याचिकाकर्ता को राशि वापस करने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया और जब राशि वापस नहीं की गई तो पेंशन लाभ से राशि काट ली गई। यह तर्क दिया गया कि **रफीक मसीह** मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा क्योंकि वह ऐसा मामला था जिसमें वेतन का गलत निर्धारण किया गया था जबकि वर्तमान मामला मकान किराया भत्ते से संबंधित है और सरकारी आदेश द्वारा शासित है।

दूसरी ओर, प्रत्यर्थी (रिट याचिकाकर्ता) के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस मामले में सभी पहलुओं पर लागू होता है। यह दलील दी गई कि आक्षेपित आदेश में ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी स्तर पर कोई धोखाधड़ी या गलत बयानी की गई थी। उन्होंने दलील दी कि रिट याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद विवादित वसूली से उन्हें गंभीर नुकसान हुआ है और रिट कोर्ट ने अपीलकर्ताओं को उक्त राशि जारी करने का निर्देश दिया है।

रफीक मसीह (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय केवल उन मामलों तक सीमित नहीं है, जहां वेतन का गलत निर्धारण किया गया है और जिसके परिणामस्वरूप किसी कर्मचारी को कुछ अतिरिक्त राशि का भुगतान किया गया है। वास्तव में, सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाओं के एक समूह पर निर्णय दिया था, जहां बड़ा मुद्दा यह था कि क्या नियोक्ता कर्मचारी को गलती से दिए गए मौद्रिक लाभों को वसूलने का हकदार है। यह गलती कई कारणों से हो सकती है; जिसमें संबंधित कर्मचारी को ऐसा दर्जा दिया जाना शामिल है, जिसका वह हकदार नहीं था; या संबंधित कर्मचारी के अधिकार के अनुरूप उच्च वेतनमान में वेतन का भुगतान; या वेतनमान में ऊपर की ओर संशोधन के परिणामस्वरूप या ऐसे भत्ते दिए जाने के कारण कर्मचारी का वेतन गलत तरीके से तय किया जाना, जिसके लिए संबंधित कर्मचारी अधिकृत नहीं था। यह माना गया है कि ऐसे सभी मामलों में, नियोक्ता राशि वसूल नहीं करेगा, बशर्ते कि अतिरिक्त भुगतान कर्मचारी द्वारा किसी धोखाधड़ी या गलत बयानी के कारण न हुआ हो। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय के पैराग्राफ 12 में जिन श्रेणियों को रेखांकित किया गया है, वे इस प्रकार हैं:

"(i) तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी सेवा (या समूह 'सी' और समूह 'डी' सेवा) से संबंधित कर्मचारियों से वसूली।

(ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों, या उन कर्मचारियों से वसूली जो वसूली के आदेश के एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं।

(iii) कर्मचारियों से वसूली, जब वसूली का आदेश जारी होने से पहले पांच वर्षों से अधिक अवधि के लिए अतिरिक्त भुगतान किया गया हो।

(iv) ऐसे मामलों में वसूली जहां किसी कर्मचारी को गलत तरीके से उच्च पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने की आवश्यकता होती है, और उसे तदनुसार भुगतान किया गया है, भले ही उसे सही मायने में निम्न पद के विरुद्ध काम करने की आवश्यकता होती।

(v) किसी अन्य मामले में, जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यदि कर्मचारी से वसूली की जाती है, तो वह इस हद तक अन्यायपूर्ण या कठोर या मनमानी होगी, जो नियोक्ता के वसूली के अधिकार के न्यायसंगत संतुलन से कहीं अधिक होगी।"

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने समक्ष उत्पन्न विभिन्न परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में चार अलग-अलग श्रेणियां निर्दिष्ट कीं, जहां मौद्रिक लाभों के अतिरिक्त भुगतान की वसूली की अनुमति देना कठोर और अन्यायपूर्ण होगा। इन श्रेणियों को निर्दिष्ट करते समय, सर्वोच्च न्यायालय इस तथ्य से अवगत था कि सभी संभावित परिस्थितियों को ध्यान में रखना संभव नहीं था। तदनुसार, एक पांचवीं श्रेणी बनाई गई, जहां यह न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया गया कि यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह कठोर, मनमाना या अन्यायपूर्ण होगा, तो वसूली की अनुमति न दी जाए।

इस मामले में, निर्विवाद रूप से, रिट याचिकाकर्ता तृतीय श्रेणी का कर्मचारी था और इसलिए वह पहली श्रेणी में आता है। उसकी

सेवानिवृत्ति के बाद वसूली की मांग की गई थी और परिणामस्वरूप, वह दूसरी श्रेणी के अंतर्गत भी आएगा। वसूली की मांग की गई राशि कथित तौर पर रिट याचिकाकर्ता को सेवा में रहते हुए 35 वर्षों की अवधि के दौरान भुगतान की गई थी और इसलिए, वह भी खंड (iii) के अंतर्गत आएगा। पिछले 35 वर्षों में रिट याचिकाकर्ता को मासिक आधार पर भुगतान किए गए मकान किराया भत्ते की छोटी राशि जब सेवानिवृत्ति के बाद एकमुश्त वसूल की गई तो निश्चित रूप से एक कठोर और अन्यायपूर्ण कार्रवाई थी और यह खंड (v) के अंतर्गत भी आएगी।

हमें इस दलील में कोई दम नहीं लगता कि चूंकि याचिकाकर्ता को भुगतान मकान किराया भत्ते के रूप में किया गया था, इसलिए यह सुप्रीम कोर्ट के फैसले के दायरे में नहीं आएगा, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट का फैसला भत्तों के गलत या अधिक भुगतान से संबंधित मामलों को भी कवर करता है। यदि किराए के भुगतान में कोई चूक हुई थी, तो इस समय अवधि में इसकी वसूली की अनुमति दी जा सकती है, जो एक अलग और विशिष्ट कार्रवाई का कारण होगा, लेकिन कर्मचारी की ओर से किसी धोखाधड़ी या गलत बयानी के बिना, वर्षों से भुगतान किए गए मकान किराया भत्ते की वसूली करना पूरी तरह से मनमाना और अवैध था।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने पंजाब एवं हरियाणा **उच्च न्यायालय बनाम जगदेव सिंह मामले में सर्वोच्च न्यायालय के वर्ष 2015 (4) एससीसी 334** में दिए गए निर्णय पर भरोसा करने का प्रयास किया। यह ऐसा मामला था जिसमें कर्मचारी न्यायिक सेवा में था और संशोधित वेतनमान के निर्धारण तथा चयन ग्रेड दिए जाने के समय, उसने लागू सेवा नियमों के अनुसार, यदि बाद में कोई गलती पाई जाती है, तो अतिरिक्त भुगतान वापस करने का वचन दिया था। अधिसूचना में इस विशिष्ट शर्त के मद्देनजर कि यदि बाद में पता चलता है कि अतिरिक्त भुगतान किया गया है, तो कर्मचारी को वापस करना होगा, तथा कर्मचारी द्वारा उक्त शर्त के अनुसार वचन दिए जाने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि **रफीक मसीह** के मामले में प्रस्ताव संख्या (ii) में बताए गए सिद्धांत लागू नहीं होंगे। इस संबंध में की गई टिप्पणियों का सारांश नीचे दिया गया है:-

"प्रस्ताव (ii) में उल्लिखित सिद्धांत वर्तमान मामले जैसी स्थिति पर लागू नहीं हो सकता। वर्तमान मामले में, जिस अधिकारी को पहली बार भुगतान किया गया था, उसे स्पष्ट रूप से सूचित किया गया था कि यदि कोई भुगतान अधिक पाया गया तो उसे वापस करना होगा। अधिकारी ने संशोधित वेतनमान का विकल्प चुनते समय एक वचनबद्धता प्रस्तुत की। वह वचनबद्धता से बंधा हुआ है।"

इस मामले में याचिकाकर्ता द्वारा सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों से काटे गए मकान किराया भत्ते को वापस करने के लिए कोई वचन नहीं दिया गया था। इसलिए, हमारा विचार है कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह उनके लिए कोई मदद नहीं करेगा। एकल न्यायाधीश ने राशि वापस करने का निर्देश देते हुए **रफीक मसीह** मामले में

निर्धारित सिद्धांतों को लागू करने में सही निर्णय लिया।

परिणामस्वरूप, अपील में कोई दम नहीं है और तदनुसार, इसे **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 367

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 196/2023

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

मो. जांबाज आलम ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: सी.एस.सी.

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री उपेन्द्र उपाध्याय

ए. **सेवा कानून - पेंशन से वसूली - सिविल सेवा विनियम - विनियम 351-ए- राज्यपाल को पेंशनभोगी से आर्थिक हानि की वसूली का अधिकार दिया गया है, जब विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में यह पाया जाए कि वह गंभीर कदाचार का दोषी है या उसने अपनी सेवा के दौरान कदाचार या लापरवाही के कारण सरकार को आर्थिक नुकसान पहुंचाया है। इसके अलावा, अगर विभागीय कार्यवाही सेवानिवृत्ति के बाद शुरू की जाती है, तो वह केवल राज्यपाल की मंजूरी से ही होगी और ऐसी किसी भी घटना के संबंध में होगी जो ऐसी कार्यवाही शुरू होने से चार साल से अधिक पहले नहीं हुई हो।** (पैरा 11)

वर्तमान वाद में, निश्चित रूप से, पेंशन लाभ से राशि की वसूली का निर्देश देने से पहले रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई विभागीय या न्यायिक कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी। राज्यपाल की मंजूरी भी नहीं थी। माना जाता है कि कथित अतिरिक्त भुगतान वर्ष 2011-12 में किया गया था और निश्चित रूप से, यह एक ऐसी घटना से संबंधित है जो राशि की वसूली के लिए आदेश पारित होने से चार साल से भी अधिक समय पहले हुई थी (इसके अलावा, राज्य ने रिट याचिकाकर्ता के सेवा में रहने के दौरान इस अतिरिक्त भुगतान के संबंध में कोई आपत्ति नहीं जताई थी)। इसलिए, विनियमन 351-ए के तहत प्रदान की गई सुरक्षा के अनुसार उक्त राशि इस समय तक वसूली योग्य नहीं थी। (पैरा 9, 12)

बी. **याचिकाकर्ता के दिनांक 11.07.2016 के पत्र को किसी भी तरह से रिट याचिकाकर्ता की ओर से स्थायी आधार पर उसके पेंशन लाभ से संबंधित राशि काटने की रियायत या वचनबद्धता के रूप में नहीं समझा जा सकता। दूसरी ओर, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि याचिकाकर्ता, उस समय भी, वसूली के लिए सहमत नहीं था, बल्कि केवल इसे अस्थायी रूप से रोकने के लिए सहमत था ताकि शेष पेंशन लाभ जारी करने में आसानी हो।**

राज्य ने रिट याचिकाकर्ता के पेंशन लाभ को उसकी सेवानिवृत्ति के बाद काफी समय तक रोके रखा था। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने विवादित राशि को अस्थायी रूप से रोकने और शेष राशि जारी करने पर सहमति व्यक्त की थी। अभिलेख से यह भी प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों ने वर्ष 2017 में उपरोक्त राशि काटने के बाद ही ग्रेच्युटी जारी की थी। यह

केवल नियोक्ता द्वारा उसके पेंशन लाभ को सेवानिवृत्ति के बाद दो वर्ष से अधिक समय तक रोकने की एकतरफा अवैध कार्रवाई के कारण उसकी लाचारी और निराशा को दर्शाता है। (पैरा 16)

विशेष अपील निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1.पंजाब राज्य और अन्य. बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर), (2015) 4 एससीसी 334 (पैरा 7)

2. थॉमस डैनियल बनाम केरल राज्य एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 7115/2010 (पैरा 7)

वर्तमान अपील विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 02.11.2022 के निर्णय को चुनौती देती है, जिसके द्वारा प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दी गई थी और दिनांक 08.09.2016 और 02.05.2017 के आदेशों के अनुसरण में रिट याचिकाकर्ता से वसूल की गई राशि को बहाल करने का निर्देश दिया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता, और माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

<u>देरी माफी आवेदन में आदेश</u>

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

विलंब क्षमा आवेदन के साथ शपथ पत्र में प्रस्तुत देरी के लिए स्पष्टीकरण संतोषजनक पाया गया है।

तदनुसार, विलंब को माफ किया जाता है।

कार्यालय को तत्काल अपील के लिए एक नियमित संख्या आवंटित करने का निर्देश दिया जाता है।

<u>अपील के ज्ञापन पर आदेश</u>

अपीलकर्ताओं के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री रामानंद पांडे और प्रतिवादी के लिए श्री उपेंद्र उपाध्याय को सुना।

राज्य विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 02.11.2022 के फैसले के खिलाफ अपील कर रहा है, जिसके द्वारा, प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका (इसके बाद "रिट याचिकाकर्ता" के रूप में संदर्भित) को अनुमति दी गई थी और दिनांक 08.09.2016 और 02.05.2017 के आदेशों के अनुसरण में रिट याचिकाकर्ता से वसूल की गई राशि को तीन महीने की अवधि के भीतर बहाल करने का निर्देश दिया गया था।

वर्तमान अपील के निपटारे के लिए आवश्यक तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता 30.06.2014 को जूनियर इंजीनियर, ग्रामीण इंजीनियरिंग सेवा, गाजीपुर के पद से सेवानिवृत हुआ था। 08.09.2016 को अधिशासी अभियंता, ग्रामीण अभियंत्रण सेवा, प्रभाग गाजीपुर ने याची से 3,10,022/- रुपये की वसूली की स्वीकृति देते हुए कार्यालय आदेश जारी किया। आदेश में कहा गया है कि गलती से याचिकाकर्ता को 12.08.2008 से तीसरी सुनिश्चित कैरियर प्रगति योजना का लाभ दिया गया था, हालांकि

वह 01.12.2008 से इसका हकदार था। इसके परिणामस्वरूप अंतर की राशि वसूल करने की मांग की गई थी। आदेश दिनांक 02.05.2017 अतिरिक्त निदेशक, ट्रेजरी और पेंशन, वाराणसी मंडल, वाराणसी द्वारा वरिष्ठ कोषागार, कोषागार गाजीपुर को भेजा गया एक संचार है जिसके द्वारा 4,09,878/- रुपये की कटौती के बाद याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी जारी करने की मंजूरी दी गई थी। पक्षकारों के बीच यह सामान्य आधार है कि इसमें याचिकाकर्ता को कथित रूप से अधिक भुगतान की गई 3,10,022/- रुपये की राशि शामिल है क्योंकि याचिकाकर्ता को पहले की तारीख से एसीपी का लाभ दिया गया था। इसमें 99,856/- रुपये की एक और राशि भी शामिल है। यह याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2011-12 में अपने सेवा- कार्यकाल के दौरान एक ठेकेदार को कथित रूप से अधिक भुगतान की गई राशि का प्रतिनिधित्व करता है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना है कि दोनों वसूली अवैध थी और **पंजाब राज्य और अन्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर) (2015) 4 एससीसी 334 और थॉमस डैनियल बनाम केरल राज्य और अन्य (सिविल अपील संख्या 7115/2010)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर नहीं की जा सकती थीं।

श्री आर. एन. पांडे, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रफीक मसीह (उपरोक्त) को तत्काल मामले के तथ्यों पर लागू करने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा ठेकेदार को किए गए अधिक भुगतान के कारण 99,856/- रुपये की वसूली हुई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि रफीक मसीह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय केवल वेतन के गलत निर्धारण या अतिरिक्त भते के भुगतान के मामलों पर लागू होगा, लेकिन वहां नहीं जहां कर्मचारी ठेकेदार को अतिरिक्त भुगतान करके राज्य को आर्थिक नुकसान पहुंचाने का दोषी था।

दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ठेकेदार को अतिरिक्त राशि का कथित भुगतान उसकी सेवानिवृति के बाद प्रतिवादी विभाग द्वारा बनाई गई एकतरफा राय पर आधारित है। यह प्रस्तुत किया गया है कि 56.15 लाख रुपये की राशि के लिए एक अनुबंध विधिवत अनुमोदित किया गया था और उसके तहत काम संतोषजनक रूप से निष्पादित होने के बाद, भुगतान जारी किया गया था। राज्य ने ठेकेदार को किए गए भुगतान के संबंध में कोई आपति नहीं उठाई, जबकि रिट याचिकाकर्ता सेवा में था। उनकी सेवानिवृत्ति के बाद, ऐसी किसी वसूली को निर्देशित नहीं किया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 351-ए के तहत, इस तरह की कार्रवाई की अनुमति नहीं है क्योंकि राज्यपाल की कोई मंजूरी नहीं थी और इसलिए भी कि जिस घटना के संबंध में वसूली की मांग की गई है, वह कार्यवाही शुरू होने से चार साल से अधिक समय पहले हुई थी।

प्रतिद्वंद्वी तर्कों से यह स्पष्ट है कि तत्काल अपील केवल रिट याचिकाकर्ता द्वारा ठेकेदार को किए गए कथित अतिरिक्त भुगतान तक

ही सीमित है। सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 351-ए का प्रासंगिक हिस्सा नीचे दिया गया है:-

"राज्यपाल के पास पेंशन या उसके किसी हिस्से को स्थायी रूप से या एक निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित है और सरकार को होने वाली किसी भी आर्थिक हानि की पूरी पेंशन या उसके हिस्से की वसूली का आदेश देने का अधिकार राज्यपाल के पास है ***यदि पेंशनभोगी को विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है, या उसकी सेवा के दौरान, जिसमें सेवानिवृत्ति के बाद पुनर्नियोजन पर की गई सेवा भी शामिल है, कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक हानि हुई है:***

बशर्ते कि-

(क) ***ऐसी विभागीय कार्यवाही, यदि सेवानिवृत्ति से पहले या पुनः रोजगार के दौरान कार्यालय में ड्यूटी पर रहने के दौरान शुरू नहीं की गई हो-***

(i) राज्यपाल की मंजूरी के बिना स्थापित नहीं किया जाएगा।

(ii) ***एक घटना के संबंध में होगा जी इस तरह की कार्यवाही की संस्था से चार साल से अधिक नहीं हुआ था, और***

(iii) ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे स्थान या स्थानों में संचालित किया जाएगा जो राज्यपाल निदेश दे और उन कार्यवाहियों पर लागू प्रक्रिया के अनुसार जिन पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश किया जा सकेगा।

(ख) न्यायिक कार्यवाही, यदि अधिकारी सेवानिवृत्ति से पहले या पुनः नियोजन के दौरान ड्यूटी पर रहते हुए स्थापित नहीं की गई है, तो खंड (क) के उपखंड (ii) के अनुसार स्थापित की गई होगी।

राज्यपाल को पैशन लाभो से आर्थिक नुकसान की वसूली का अधिकार दिया गया है, यदि पेंशनभोगी को **विभागीय या न्यायिक कार्यवाही** में पाया जाता है कि वह गंभीर कदाचार का दोषी है या उसने अपनी सेवा के दौरान कदाचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक नुकसान पहुंचाया है। इसके अलावा, विभागीय कार्यवाही, यदि सेवानिवृत्ति के बाद शुरू की जाती है. तो केवल राज्यपाल की मंजूरी से होगी और किसी भी घटना के संबंध में होगी जो ऐसी कार्यवाही के शुरु होने से चार साल से अधिक पहले नहीं हुई थी।

वर्तमान मामले में, स्वीकार किया गया है कि पैशन लाभओं से राशि की वसूली का निर्देश देने से पहले रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई विभागीय या न्यायिक कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी। राज्यपाल की मंजूरी भी नहीं थी। यह स्वीकार किया गया है कि कथित अतिरिक्त भुगतान वर्ष 2011-12 में किया गया था और निश्चित रूप से, यह एक ऐसी घटना से संबंधित है जो राशि की वसूली के लिए आदेश पारित किए जाने से चार साल पहले हुई थी। परिणामस्वरूप, हमारी राय है कि विनियम 351-क के अंतर्गत उपबंधित सुरक्षा उपायों को

देखते हुए उक्त राशि इतनी दूर तक वसूली योग्य नहीं थी।

राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क देने की कोशिश की कि याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांक 11.07.2016 में उपरोक्त राशि की कटौती के लिए सहमति व्यक्त की थी और इसलिए, उपक्रम से पीछे नहीं हट सकता है और इसे चुनौती नहीं दे सकता है।

रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त तर्क का जोरदार खंडन किया है। उन्होंने दिनांक 11.07.2016 के पत्र में निहित कथित स्वीकारोक्ति की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है और तर्क दिया है कि इस प्रकार रिट याचिकाकर्ता केवल उपरोक्त राशि को अस्थायी रूप से रोकने के लिए सहमत हुआ ताकि शेष राशि का भुगतान बिना किसी देरी के उसे किया जा सके।

याचिकाकर्ता का पत्र दिनांक 11.07.2016 जिसमें कथित स्वीकारोक्ति शामिल है, इस प्रकार है:-

'सेवा में
अधिशासी अभियंता
ग्रामीण अभियंत्रण विभाग
प्रखण्ड-गाजीपुर महोदय,

विनम्रतापूर्व सविनय निवेदन के साथ अवगत करना है कि हम प्रार्थी दिनांक 30.6.2014 को सेवा निवृत्ति हो चुका हूँ। दो वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् अभी तक पेंशन राशि करण एवं रोजुटी का भुगतान नहीं हो पाया है।

अतः आपसे अनुरोध हो कि मेरे विरुद्ध वसूली हेतु जो अधिक धनराशि प्रदर्शित की जा रही है उसे अस्थायी रूप से रोक कर शेष धनराशि का भुगतान करने की कृपा करें।

प्रार्थी
मु० जांबाज आलम
ग्रामीण अभियंत्रण विभाग
गाजीपुर"

पत्र से यह स्पष्ट है कि राज्य ने रिट याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद काफी अवधि के लिए उनके पैशन लाभों को रोक दिया था। नतीजतन, याचिकाकर्ता ने विवादित राशि को अस्थायी रूप से रोकने और शेष राशि जारी करने के लिए सहमति व्यक्त की थी। रिकॉर्ड से यह भी पता चलता है कि प्रतिवादियों ने उपरोक्त राशि काटने के बाद ही वर्ष 2017 में ग्रेच्युटी जारी की थी। उक्त पत्र को किसी भी तरह से, रिट याचिकाकर्ता की ओर से रियायत या वचन के रूप में नहीं माना जा सकता है कि वह स्थायी आधार पर अपने पेंशन लाओं से राशि काट लेगा। दूसरी ओर, यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि याचिकाकर्ता, उस समय भी, वसूली के लिए सहमत नहीं था, लेकिन केवल इसे अस्थायी रूप से रोकने के लिए सहमत था ताकि शेष पेंशन लाभों को जारी करने की सुविधा मिल सके। यह उनकी असहायता और निराशा को दर्शाता है क्योंकि नियोक्ता ने उनकी सेवानिवृत्ति के बाद दो वर्ष से अधिक समय

तक उनके पेंशन लाओं को रोकने की एकतरफा अवैध कार्रवाई की है।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस पहलू पर विचार किया है और निम्नानुसार टिप्पणी की है-

"जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा निष्पादित कार्य अनुबंध के लिए ठेकेदार को 99,856 रुपये के अधिक भुगतान के कारण राज्य को हुए नुकसान का सवाल है, ऐसा नुकसान राज्य को कयित रूप से वर्ष 2011-12 का है जब याचिकाकर्ता सेवा में था। सेवानिवृत्ति के बाद जब याचिकाकर्ता को याचिकाकर्ता से उपरोक्त वसूली के संबंध में पता चला, तो याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.03.2016 के आवेदन के माध्यम से उपरोक्त वसूली पर आपत्ति दर्ज करते हुए बताया कि ठेकेदार को राशि का भुगतान किया गया है जैसा कि कानून के तहत अनुमेय है। ठेकेदार को किए गए अधिक भुगतान की उपरोक्त वसूली के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति नियोक्ता द्वारा तय नहीं की गई थी और इस तरह 20.03.2016 को अनुस्मारक कार्यकारी अभियंता को भेजा गया था।

इसके बाद 31.03.2016 को, प्रतिवादी संख्या 3 ने प्रतिवादी संख्या 4 को एक पत्र भेजा जिसमें निर्देश दिया गया कि याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर जल्द से जल्द फैसला किया जाना चाहिए। हालांकि, याचिकाकर्ता की उपरोक्त आपत्ति पर प्रतिवादियों द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 01.04.2017 और 22.05.2017 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया है। पैराग्राफ 15 में जवाबी हलफनामे में पक्ष यह है कि याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 08.09.2016 और 20.04.2017 के आदेश द्वारा तय किए गए थे। दिनांक 08.09.2016 और 28.04.2017 के उपर्युक्त आदेशों के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा आपत्ति/अभ्यावेदन दाखिल करके उपरोक्त वसूली के खिलाफ आपत्ति पर विचार नहीं किया गया है और वसूली के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति पर यांत्रिक रूप से और बिना दिमाग लगाए आदेश पारित किया गया है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कर्मचारी हमेशा अभ्यावेदन/आपत्ति दर्ज करके दिखा सकता है कि राज्य को वसूली हानि याचिकाकर्ता के कारण नहीं है और भुगतान कानून के अनुसार किया गया है। नियोक्ता को कर्मचारी द्वारा उठाई गई आपत्ति के आलोक में याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करना आवश्यक है। हालांकि, वर्तमान मामले में, प्रतिनिधित्व के माध्यम से कर्मचारी द्वारा उठाई गई आपत्ति पर विचार नहीं किया गया है और न ही उस पर निर्णय लिया गया है। नियोक्ता द्वारा इस तरह का दृष्टिकोण प्राकृतिक न्याय और समानता के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है।

विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा इस संबंध में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है।

राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई अन्य निवेदन नहीं किया गया है।

अपील में दम नहीं है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया जाता है।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 372

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति प्रिटिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर.

विशेष अपील संख्या 225/2023

प्रबंध निदेशक, उ.प्र. राज्य सेतु निगम लि., लखनऊ एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

प्रभात कुमार झा ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री प्रांजल मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री बिनोद कुमार त्रिपाठी, श्री आशीष कुमार सिंह, श्री बिनोद कुमार त्रिपाठी

ए. **सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - उत्तर प्रदेश सहकारी समितियाँ कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 - सेवाकालीन न्यायशास्त्र अनुशासनात्मक कार्यवाही उस तिथि से शुरू होती है जिस दिन आरोप-पत्र जारी किया जाता है, उससे पहले नहीं। अनुशासनात्मक कार्यवाही के विचार में अन्य सभी लेन-देन, जैसे कि प्रारंभिक जांच, कारण बताओ और इसी तरह, अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत नहीं करते हैं।** (पैरा 14)

यह मानते हुए कि प्रबंध निदेशक द्वारा आरोप-पत्र को फरवरी, 2012 के महीने में अनुमोदित किया गया था, जबकि रिट याचिकाकर्ता 31.12.2013 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था, जांच अधिकारी ने 02.12.2014 को आरोप-पत्र जारी किया, एक तथ्य जिसके बारे में पक्षकार सहमत हैं। हम इस विचित्रता को देखते हैं कि आरोप-पत्र को अनुमोदित करने वाले प्रबंध निदेशक के समर्थन में उनके हस्ताक्षर के नीचे तारीख का उल्लेख नहीं है, बल्कि केवल महीने और वर्ष का उल्लेख है। इस तरह का समर्थन किसी तरह से आरोप-पत्र के अनुमोदन जैसी गंभीर चीज की पवित्रता को कम करता है।

ब्रिज कारपोरेशन की ओर से विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करना लगभग असंभव है कि आरोप-पत्र फरवरी, 2012 में स्वीकृत किया गया था, जबकि रिट याचिकाकर्ता अभी भी सेवा में था, इसलिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही वर्ष 2012 में शुरू की गई मानी जानी चाहिए। (पैरा 13, 14)

बी. मूल अधिकारों को प्रभावित करने वाले सभी कानून भावी प्रभाव से लागू होते हैं, जब तक कि उन्हें स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी न बना दिया जाए।

रिट याचिकाकर्ता 31.12.2013 को सेवा से सेवानिवृत्त हुए और आरोप पत्र 02.12.2014 को जारी किया गया। रिट याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही 02.12.2014 को प्रारंभ की गई न कि फरवरी, 2012 में, जबकि रिट याचिकाकर्ता अभी भी सेवा में था। 27.10.2018 को अधिसूचित और सेतु निगम के निदेशक मंडल की बैठक में तैयार संशोधित

अनुवादित

नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे पता चले कि ये नियम पूर्वव्यापी प्रभाव वाले होंगे। उत्तर प्रदेश राज्य उद्यमों की सेवा के लिए आदर्श आचरण अनुशासन एवं अपील नियमावली में जोड़े गए संशोधित नियम 50 या 51 में इसका कोई संकेत नहीं है। **संशोधित नियम सेतु निगम को सेवानिवृत्त कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने के चार साल के भीतर आने वाले मामलों के बारे में अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का मूल अधिकार प्रदान करते हैं। इसी तरह यह किसी कर्मचारी के उस मौलिक अधिकार को प्रभावित करता है, जिसके तहत वह सेवानिवृत्त होने के बाद और ब्रिज कॉर्पोरेशन की नौकरी में न रहने के बाद विभागीय कार्यवाही शुरू करने से अलग रहता है। इसलिए, यह मानने का कोई आधार नहीं है कि 27.10.2018 से लागू हुए संशोधित नियम पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होंगे और रिट याचिकाकर्ता के संबंध में ब्रिज कॉर्पोरेशन के अधिकारों को नियंत्रित करेंगे।** (पैरा 15, 17)

आक्षेपित आरोप-पत्र के आधार पर ब्रिज कॉर्पोरेशन द्वारा रिट याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही क्षेत्राधिकार से बाहर है। (पैरा 18)

विशेष अपील निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, ओ.एस.एफ.सी., एवं अन्य, (1999) 3 एससीसी 666 (पैरा 10)

2. देव प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ एवं अन्य, (2014) 7 एससीसी 260 (पैरा 11)

3. यूको बैंक और अन्य बनाम राजिंदर लाल कपूर, (2007) 6 सी सी 694 (परा 14)

वर्तमान विशेष अपील में सिविल विविध रिट याचिका संख्या 1920/2015 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.03.2022 को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट-ए संख्या 1920/2015 को अनुमति देने वाले, विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश दिनाँक 31.03.2022 से उत्पन्न हुई, एक प्रतिवादी की अपील है।

2. रिट याचिकाकर्ता-प्रतिवादी, प्रभात कुमार झा, जिन्हें इसके बाद 'रिट याचिकाकर्ता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा, उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम लिमिटेड (संक्षेप में, 'सेतु निगम') के पूर्व कर्मचारी हैं। वे वर्ष 1977 से उनकी सेवा में थे। 31.12.2013 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के पश्चात वे सेवानिवृत्त हो गए। ब्रिज कॉरपोरेशन के प्रबंधक कार्मिक-I ने ग्रेच्युटी भुगतान के लिए रिट याचिकाकर्ता के दावे को महाप्रबंधक, मुख्यालय को अग्रेषित किया। रिट याचिकाकर्ता के अवकाश नकदीकरण के दावे की भी इसी तरह संस्तुति की गई। रिट याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण, पारिवारिक पेंशन और समूह बीमा, जो कुल मिलाकर 25 लाख रुपये की राशि है, के भुगतान हेतु कोई कार्रवाई नहीं की गई। रिट

याचिकाकर्ता ने ब्रिज कॉरपोरेशन के विभिन्न अधिकारियों के समक्ष अपने दावे को आगे बढ़ाया, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ।

3. रिट याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका रिट-ए संख्या 35132/2014 दायर की, जो दिनांक 10.07.2014 के आदेश के द्वारा सुनी और निस्तारित की गई, जिसमें रिट याचिकाकर्ता को ब्रिज कॉरपोरेशन के सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए कहा गया, जिसे निर्देश दिया गया कि वह कम से कम समय के भीतर, अधिमानतः उसके अभ्यावेदन की प्राप्ति की तारीख से दो महीने के भीतर एक स्पष्ट आदेश पारित करे। रिट याचिकाकर्ता को निरंतर निष्क्रियता का सामना करना पड़ा और उसने इस न्यायालय के समक्ष अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 5762/2014 के माध्यम से एक अवमानना आवेदन दायर किया, जिसका दिनांक 15.10.2014 के आदेश द्वारा निस्तारण किया गया, जिसमें ब्रिज कॉरपोरेशन के अधिकारियों को निर्देश दिया गया कि यदि रिट याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर उचित कारण के बिना अवमानना न्यायालय के आदेश की प्राप्ति के दो महीने के भीतर निर्णय नहीं लिया जाता है, तो न्यायालय के पास अवमानना हेतु अधिकारियों के खिलाफ आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा।

4. इस मोड़ पर, ब्रिज कॉरपोरेशन ने रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ दो आरोप तय करते हुए दिनांक 02.12.2014 को एक आरोप-पत्र जारी किया। आरोप-पत्र रिट याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के लगभग एक वर्ष बाद जारी किया गया था। तदनुसार, रिट याचिकाकर्ता ने रिट याचिका दायर की, जिससे यह अपील सामने आई, जहां उन्होंने प्रार्थना की कि आरोप-पत्र को क्षेत्राधिकार के बिना मानते हुए खारिज कर दिया जाए। उन्होंने सेवानिवृत्ति के बाद देय सम्पूर्ण बकाये का भुगतान करने हेतु, ब्रिज कॉरपोरेशन और इसके विभिन्न प्राधिकारियों के खिलाफ एक परमादेश की भी मांग की। हलफनामों के आदान-प्रदान के बाद रिट याचिका पर विद्वान एकल न्यायाधीश ने सुनवाई की, जिन्होंने इसे आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी है। विद्वान न्यायाधीश ने आरोप-पत्र को खारिज कर दिया है और ब्रिज कॉरपोरेशन और इसके विभिन्न प्राधिकारियों को रिट याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद देय सम्पूर्ण बकाये को उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख से वसूली तक 8% ब्याज के साथ जारी करने का आदेश दिया है।

5. व्यथित होकर, ब्रिज कॉर्पोरेशन और उसके पांच अधिकारियों ने न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII के नियम 5 के तहत यह दायर की है।

6. ब्रिज कॉर्पोरेशन के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांजल मेहरोत्रा और रिट याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह को सुना।

7. इस अपील में शामिल प्रश्न यह है कि क्या रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ सेवा से सेवानिवृत्त होने के बाद विभागीय कार्यवाही शुरू की जा

सकती है और क्या ये कार्यवाहियां अधिकारहीन हैं। सामान्य सिद्धांत यह है कि जब कोई कर्मचारी सेवानिवृत्त हो जाता है या नियोक्ता और कर्मचारी के बीच संबंध किसी अन्य तरह से समाप्त हो जाता है, तो नियोक्ता कर्मचारी पर सभी अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार खो देता है। उपपरिणाम यह है कि आम तौर पर जब कोई कर्मचारी सेवा से सेवानिवृत्त हो जाता है, तो उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती तथा लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही उसकी सेवानिवृत्ति के बाद जारी नहीं रखी जा सकती। तथापि, यह सामान्य सिद्धांत इस प्रतिष्ठित अपवाद के अधीन है कि जहां वैधानिक सेवा शर्तों या वैधानिक सेवा नियमों द्वारा सेवानिवृत्ति के पश्चात अनुशासनात्मक कार्यवाही आरंभ करने या सेवानिवृत्ति की तिथि तक लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का प्रावधान किया गया है, वहां अनुशासनात्मक कार्यवाही, वैध रूप से, यथास्थिति, आरंभ या जारी रखी जा सकती है।

8. ऊपर बताई गई दो स्थितियाँ कानून में भिन्न हैं और इस नियम के निश्चित अपवाद हैं कि सेवानिवृत्ति के बाद, कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती या लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती। ये दोनों स्थितियाँ इस मायने में अलग-अलग हैं कि सेवानिवृत्ति की तिथि पर लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखना एक बात है और सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करना दूसरी बात है। यहाँ, एक मामले में, नियोक्ता को सेवानिवृत्ति की तिथि पर लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही को सेवानिवृत्ति के बाद जारी रखने और दूसरे मामले में, कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के बाद ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाही, जो सेवा के दौरान कभी नहीं हुई हो, शुरू करने की अनुमति देने के लिए एक विशिष्ट वैधानिक नियम होना चाहिए। वैधानिक सेवा नियमों के तहत सेवानिवृत्ति की तिथि पर लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने के अधिकार की मंजूरी, नियोक्ता को सेवानिवृत्त कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने या संस्थित करने का अधिकार नहीं देगी। सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का अधिकार, लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने के अधिकार की तरह, एक निश्चित वैधानिक प्रावधान और इस संबंध में नियोक्ता को सशक्त बनाने वाले वैधानिक सेवा नियमों के अनुसार चालित होगा।

9. यह भी याद रखना चाहिए कि ऐसे मामलों में अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का अधिकार, जहाँ वैधानिक सेवा नियम नियोक्ता को उस तरह का अधिकार प्रदान करते हैं, कानून में ही प्रतिबंधों के साथ सुरक्षित हो सकता है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश राज्य में सरकारी कर्मचारियों के मामले में, सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही सरकार या सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा राज्यपाल की मंजूरी के बिना शुरू नहीं की जा सकती है, जैसा कि सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 351-ए के प्रावधान द्वारा परिकल्पित है। आगे और भी प्रतिबंध हो सकते हैं, जैसे कि वह समय अवधि जब वह घटना जिसके सम्बन्ध में सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी

के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा रही है, घटित हुई थी। उत्तर प्रदेश राज्य में सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी के लिए सिविल सेवा विनियमन के मामले में, कार्रवाई को आमंत्रित करने वाली घटना अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने से चार साल से अधिक पहले की नहीं होनी चाहिए। फिर से, सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने के बाद, लगाए जाने वाले दंड के प्रकार के बारे में प्रतिबंध हो सकते हैं। वैधानिक सेवा नियम सरकारी कर्मचारी के सेवानिवृत्त होने पर भी उसे बर्खास्त करने या सेवा से हटाने की सजा का प्रावधान कर सकते हैं, लेकिन ये सभी अधिकार वैधानिक सेवा नियमों से नियोक्ता को प्राप्त होते हैं। अन्यथा, नियोक्ता के पास अपने अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार में सेवानिवृत्त कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही करने का कोई अधिकार या क्षेत्राधिकार नहीं है।

10. इस मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय ने **भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, उड़ीसा राज्य वित्तीय निगम और अन्य (1999) 3 एससीसी 666** में, उड़ीसा राज्य वित्तीय निगम के एक कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही करने के अधिकार के संदर्भ में विचार किया था, जिसकी सेवा की शर्तें उड़ीसा वित्तीय राज्य निगम कर्मचारी विनियम, 1975 द्वारा शासित थीं। उस मामले में विनियमों में सेवानिवृत्त हो चुके कर्मचारी के खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का प्रावधान नहीं था। **भागीरथी जेना** (सुप्रा) में, कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही उसके सेवा में रहते हुए आरोप-पत्र जारी करके शुरू की गई थी, लेकिन उसकी सेवानिवृत्ति तक समाप्त नहीं हो सकी। सवाल यह था कि क्या सेवानिवृत्ति के बाद कार्यवाही जारी रखी जा सकती है। इसी संदर्भ में **भागीरथी जेना** में माननीय न्यायाधीशों ने यह माना था:

> "7. उपर्युक्त विनियमों में ऐसे प्रावधान की अनुपस्थिति को देखते हुए, यह माना जाना चाहिए कि निगम के पास अपीलकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था। अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक जांच करने का भी कोई प्रावधान नहीं है और न ही ऐसा कोई प्रावधान है कि यदि कदाचार सिद्ध हो जाता है, तो सेवानिवृत्ति लाभों में कटौती की जा सकती है। एक बार जब अपीलकर्ता 30-6-1995 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, तो अपीलकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने के उद्देश्य से भी विभागीय जांच जारी रखने के लिए निगम में कोई अधिकार निहित नहीं था। ऐसे किसी अधिकार के अभाव में, यह माना जाना चाहिए कि जांच समाप्त हो गई थी और अपीलकर्ता सेवानिवृत्ति पर पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार था।
>
> 8. प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने *तखतराय शिवदत्तराय मांकड़ बनाम गुजरात राज्य* [1989 सप (2) एससीसी 110: 1991 एससीसी (एल एंड एस) 927: (1990) 12 एटीसी 692] में इस न्यायालय के

फैसले का आधार लिया। यह सच है कि वह एक जांच जिसे सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद भी जारी रखा गया था , में निर्धारित कर्मचारी की असंतोषजनक सेवा के कारण पेंशन और ग्रेच्युटी में कटौती का मामला था। लेकिन उपर्युक्त निर्णय प्रतिवादी की मदद नहीं कर सकता है क्योंकि उस मामले में जूनागढ़ राज्य पेंशन और प्रशिक्षु भत्ता नियम, 1932 के नियम 241-ए नामक एक विशिष्ट नियम था जो सेवानिवृत्ति के बाद किसी व्यक्ति की पेंशन या ग्रेच्युटी में कटौती को लागू करने में सक्षम बनाता था। इसके अलावा, उस मामले में नियम थे जो यह पता लगाने के उद्देश्य से सेवानिवृत्ति के बाद भी विभागीय जांच जारी रखने में सक्षम थे कि क्या कोई कदाचार स्थापित हुआ था, जिसे नियम 241-ए के प्रयोजन के लिए ध्यान में रखा जा सकता था। प्रतिवादी-निगम के नियमों के साथ समान प्रावधान के अभाव में, मांकड़ केस [1989 सप (2) एससीसी 110: 1991 एससीसी (एल एंड एस) 927: (1990) 12 एटीसी 692] का उपरोक्त निर्णय प्रतिवादी की मदद नहीं कर सकता है।

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

11. यह प्रश्न **देव प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ और अन्य, (2014) 7 एससीसी 260** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष फिर से विचारणीय था, जहां संबंधित कर्मचारी उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 द्वारा शासित था। कर्मचारी के सेवा में रहते हुए ही अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, लेकिन अवसर से वंचित करने की दलील के कारण, सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को इस न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर रद्द कर दिया था। नियोक्ता को नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी गई थी। जब अनुशासनात्मक कार्यवाही फिर से शुरू हुई और लंबित थी, तब कर्मचारी सेवानिवृत्त हो गया। सवाल यह था कि क्या नियोक्ता को इस संबंध में सक्षम बनाने वाले वैधानिक सेवा नियमों में प्रावधान के अभाव में उसके खिलाफ कार्यवाही जारी रह सकती थी। इसी संदर्भ में **देव प्रकाश तिवारी** (सुप्रा) में माननीय न्यायाधीशों ने यह माना:

> "5. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। तथ्य विवाद में नहीं हैं। उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 10-1-2006 के आदेश [डीपी तिवारी बनाम यूपी सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, रिट याचिका (एस/बी) संख्या 4328/1988, आदेश दिनांक 10-1-2006 (सभी)] में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर पहले की अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द करते हुए विनियमों के अनुसार नई जांच शुरू करने की स्वतंत्रता प्रदान की। अपीलकर्ता को 26-4-2006 को सेवा में बहाल कर दिया गया और 7-7-2006 को नई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और जब वह

लंबित थी, अपीलकर्ता ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली और 31-3-2009 को सेवानिवृत्त हो गया। उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 में अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने या जारी रखने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही ऐसा कोई प्रावधान है कि यदि कदाचार सिद्ध हो जाता है तो उसके सेवानिवृत्ति लाभों में कटौती की जा सकती है।

7. यूपी कोऑपरेटिव फेडरेशन मामले [यूपी कोऑपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड बनाम एलपी राय, (2007) 7 एससीसी 81: (2007) 2 एससीसी (एल एंड एस) 598] में इस न्यायालय के बाद के निर्णय में तथ्यों के आधार पर, कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था क्योंकि जांच में उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और प्रबंधन ने इस न्यायालय के समक्ष अपनी अपील में नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता देने की मांग की थी और इस न्यायालय ने माना कि कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोप मामूली प्रकृति के नहीं थे, और इसलिए, केवल इस आधार पर नियोक्ता के नए सिरे से जांच करने के अधिकार को समाप्त करना उचित नहीं होगा कि कर्मचारी सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है और तदनुसार प्रबंधन द्वारा मांगी गई स्वतंत्रता प्रदान की गई। उपरोक्त मामले का निस्तारण करते समय, भागीरथी जेना [भागीरथी जेना बनाम उड़ीसा स्टेट फाइनेंशियल कॉरपोरेशन, (1999) 3 एससीसी 666: 1999 एससीसी (एलएंडएस) 804] मामले में पहले के फैसले को इस न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया और उन प्रावधानों से संबंधित कोई विवाद नहीं उठाया गया जिनके तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और इस तरह कोई अनुपात निर्धारित नहीं किया गया। हमारे विचार में उक्त निर्णय यहाँ प्रतिवादियों की मदद नहीं कर सकता।

8. एक बार जब अपीलकर्ता 31-3-2009 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, तो प्रतिवादियों के पास अपीलकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती लगाने के उद्देश्य से भी अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसे प्राधिकारी के अभाव में यह माना जाना चाहिए कि जांच समाप्त हो गई है और अपीलकर्ता पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभ पाने का हकदार है।"

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

12. यहां, यह विवाद में नहीं है कि नियम, जैसा कि उस समय थे जब रिट याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हुआ था, में ब्रिज कॉर्पोरेशन के किसी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने या सेवानिवृत्त कर्मचारी के

खिलाफ कार्यवाही शुरू करने का कोई प्रावधान नहीं था। ऐसा करने की शक्ति 27.10.2018 से यूपी राज्य उद्यमों की सेवा के लिए आदर्श आचरण अनुशासन और अपील नियमावली में ब्रिज कॉर्पोरेशन द्वारा संशोधन के माध्यम से पेश की गई थी, जो रिट याचिकाकर्ता की सेवा शर्तों को नियंत्रित करती है।

13. ब्रिज कॉर्पोरेशन ने एक मुद्दा उठाया है कि संशोधित नियम भूतलक्षी प्रभाव रखते हैं और रिट याचिकाकर्ता के मामले को शासित करने के लिए लागू होंगे। इस विवाद पर जल्द ही विचार किया जाएगा। फिलहाल, हम मानते हैं कि जिस दिन रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, यानी 02.12.2014 को, वह एक सेवानिवृत्त कर्मचारी था और पिछले ग्यारह महीनों से नियोक्ता के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। ब्रिज कॉर्पोरेशन के विद्वान अधिवक्ता ने हमें 02.12.2014 की चार्जशीट दिखाई और बताया कि इसे प्रबंध निदेशक ने फरवरी, 2012 में मंजूरी दी थी, जबकि रिट याचिकाकर्ता 31.12.2013 को सेवा से सेवानिवृत्त हुए थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रबंध निदेशक ने फरवरी, 2012 में चार्जशीट को मंजूरी दी थी, जबकि रिट याचिकाकर्ता सेवा में था, इसलिए कार्यवाही को रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ सेवा में रहते हुए शुरू होना माना जाना चाहिए। हम इस विचित्रता को देखते हैं कि आरोप-पत्र को अनुमोदित करने वाले प्रबंध निदेशक के हस्ताक्षरों के नीचे तारीख का उल्लेख नहीं है, बल्कि केवल महीने और वर्ष का उल्लेख है। इस तरह का हस्ताक्षर किसी तरह से आरोप-पत्र के अनुमोदन जैसी गंभीर चीज की पवित्रता को कम करता है।

14. यह मानते हुए कि आरोप-पत्र को प्रबंध निदेशक ने फरवरी, 2012 के महीने में अनुमोदित किया था, जांच अधिकारी ने 02.12.2014 को आरोप-पत्र जारी किया, एक तथ्य जिसके बारे में पक्षकार सहमत हैं। ब्रिज कॉर्पोरेशन के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करना लगभग असंभव है कि आरोप-पत्र फरवरी, 2012 के महीने में अनुमोदित होने के बाद, जबकि रिट याचिकाकर्ता अभी भी सेवा में था, अनुशासनात्मक कार्यवाही उसके खिलाफ वर्ष 2012 में शुरू की गई मानी जानी चाहिए। यह सेवा न्यायशास्त्र में एक स्वीकृत सिद्धांत है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही उस तारीख को शुरू होती है जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है और इससे पहले नहीं। अनुशासनात्मक कार्यवाही के इरादे से की गई अन्य सारी कार्यवाही, जैसे कि प्रारंभिक जांच, कारण बताओ और इसी तरह की अन्य चीजें, अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत नहीं करते हैं। इस संबंध में, **यूको बैंक और अन्य बनाम राजिंदर लाल कपूर, (2007) 6 एससीसी 694** में सर्वोच्च न्यायालय के मार्गदर्शन का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां कानून की स्थिति इस प्रकार बताई गई है:

"21. हालांकि, उपर्युक्त विनियमन को केवल तभी लागू किया जा सकता है जब स्पष्ट रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रतिवादी के सेवा में रहने से दौरान शुरू की गई हो। इसमें

इस्तेमाल की गई शब्दावली मौलिक महत्व की है। केवल तभी जब बैंक के किसी अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई हो, भले ही वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका हो, तो उसके तहत बनाई गई कानूनी कल्पना के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की अनुमति दी जा सकती है, यानी "जैसे कि वह सेवा में था" मानकर। इस प्रकार, केवल तभी जब उक्त प्रावधान की शर्तों पर उठायी गई कानूनी कल्पना के कारण एक वैध विभागीय कार्यवाही शुरू की जाती है, तो अपचारी अधिकारी को सेवा में माना जाएगा, हालांकि वह सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गया है। विभागीय कार्यवाही, यह सामान्य कानून है, केवल कारण बताओ नोटिस जारी करने से शुरू नहीं होती है। यह केवल तब शुरू होती है जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है (देखें *यूनियन ऑफ इंडिया बनाम केवी जानकीरामन* [(1991) 4 एससीसी 109: 1991 एससीसी (एलएंडएस) 387। मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय ने हाल ही में *कोल इंडिया लिमिटेड बनाम सरोज कुमार मिश्रा* [(2007) 9 एससीसी 625: (2007) 5 स्केल 724] में भी विचार किया था, जिसमें यह माना गया था कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा किसी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर विचार करने की तारीख जिसके परिणामस्वरूप आरोप पत्र जारी किया जाता है, यह वह तारीख होगी जिस दिन अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई कही जाएगी, न कि उससे पहले। इसलिए, प्रारंभिक जांच का लंबित रहना अपने आप में विनियमों के खंड 20 को लागू करने का आधार नहीं हो सकता है। यद्यपि एक अलग तथ्य की स्थिति में लेकिन *कोल इंडिया लिमिटेड*[(2007) 9 एससीसी 625: (2007) 5 स्केल 724] में कानून का एक समान प्रश्न शामिल था जहाँ इस न्यायालय ने माना: (एससीसी पृष्ठ 631, पैरा 12-13)

"12[13]. यह अपीलकर्ताओं का मामला नहीं है कि सतर्कता विभाग द्वारा प्राप्त शिकायत के अनुसरण में या उसके आगे की कार्यवाही में, सक्षम प्राधिकारी उक्त परिपत्रों के अनुसार अपेक्षित संतुष्टि पर पहुंचे थे कि उस संबंध में या अन्यथा संचालित एक प्रारंभिक जांच के आधार पर आरोप-पत्र जारी किए जाने की संभावना थी।

13[14]। अपीलकर्ताओं द्वारा जारी परिपत्र पत्रों ने एक कर्मचारी के मूल्यवान अधिकार पर प्रतिबंध लगाए। इसलिए, उन्हें सख्ती से व्याख्यायित किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार व्याख्यायित, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उस संबंध में कोई भी कार्रवाई करने से पहले उनमें निहित पूर्ववर्ती शर्तों को संतुष्ट किया जाना चाहिए।"

इसके अलावा यह भी देखा गया कि: (एससीसी पृष्ठ 632, पैरा 18)

"18[20]. विभागीय कार्यवाही आमतौर पर तभी शुरू मानी जाती है जब आरोप-पत्र जारी किया जाता है।"

(*यूनियन ऑफ इंडिया बनाम संग्राम केशरी नायक* [(2007) 6 एससीसी 704: (2007) 6 स्केल 348] भी देखें।)"

15. इसलिए, इस मामले में यह माना जाना चाहिए कि रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही 02.12.2014 को शुरू

की गई थी, न कि फरवरी, 2012 के महीने में, जबकि रिट याचिकाकर्ता अभी भी सेवा में था। कानून की स्थिति, जिसे हमने ऊपर देखा है, हमें इस तथ्य के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ती है कि जिस तारीख को रिट याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र जारी किया गया था, वह सेवानिवृत्त हो चुका था और उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही तब शुरू की गई थी जब वह ब्रिज कॉरपोरेशन का सेवानिवृत्त कर्मचारी था, नियोक्ता-कर्मचारी संबंध टूटने के ग्यारह महीने बाद। नियमों की मौजूदा स्थिति के बारे में हमें कुछ भी नहीं दिखाया गया है, न तो जब रिट याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हुआ था या जब आक्षेपित आरोप-पत्र जारी किया गया था, जो ब्रिज कॉरपोरेशन को अपने सेवानिवृत्त कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का अधिकार देता हो। इसलिए, हमारे विचार से, नियमों की इस स्थिति पर, ब्रिज कॉरपोरेशन के पास आक्षेपित आरोप-पत्र के माध्यम से रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

16. अब, एकमात्र प्रश्न जिसका समाधान किया जाना बाकी है, जिस पर श्री मेहरोत्रा ने बहुत जोर दिया है, वह यह है कि क्या 27.10.2018 से लागू संशोधित नियम भूतलक्षी प्रभाव रखते हैं, जिससे उन्हें रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए ब्रिज कॉर्पोरेशन के अधिकारों को शासित करने की अनुमति मिलती है। निदेशक मंडल की 177वीं बैठक में पारित प्रस्ताव के माध्यम से संशोधन द्वारा लाए गए नियम और ब्रिज कॉर्पोरेशन के प्रबंध निदेशक द्वारा उनके ज्ञापन दिनांक 27.10.2018 के माध्यम से अधिसूचित, इस प्रकार हैं:

"निदेशक मण्डल की दिनांक 03/10-2018 को सम्पन्न हुई 177वीं बैठक में शासकीय सेवकों के संबंध में शासनादेश संख्या-01/2015/13/9/98/सा-1-2015 दि0 22-04-2015 के पैरा 19 एवं 20 लागू व्यवस्था के अनुसार सेतु निगम में लागू आदर्श आचरण, अनुशासन एवं अपील नियमावली के अंतिम नियम 49 के उपरान्त 2 नये नियमों का निम्नानुसार प्राविधान नियम 50 एवं 51 को जोड़े जाने की स्वीकृत प्रदान की गई है:-

सेतु निगम के कार्मिकों के द्वारा सेवाकाल में की गई अनियमितता/कदाचार के लिए उनकी सेवानिवृत्ति के उपरान्त अनुशासनात्मक कार्रवाई के संबंध में।	50- यदि विभागीय जाँच की कार्यवाही लम्बित रहते हुए आरोपित कार्मिक अधिवर्षता आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हो जाता है को लम्बित जॉब को इस नियमावली के तहत उसके सेवानिवृत्त देयकों से वित्तीय क्षति की वसूली के लिए जारी रखा जा सकता है, परन्तु सेवानिवृत्त कार्मिक को दण्ड नहीं दिया जा सकता और न ही उक्त दण्ड के उद्देश्य से कार्यवाही प्रारम्भ / जारी रखी जा सकती है। 51- यदि सेवानिवृत्ति के

	उपरान्त कोई तथ्य सामने आये तो सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी इस नियमावली के तहत कार्यवाही की जा सकती है बशर्ते कि जिस घटना के संबंध में जॉच प्रारम्भ की जाय, जाँच करने की तिथि को उस घटना को 4 वर्ष से अधिक समय न बीत चुका हो।"

17. रिट याचिकाकर्ता 31.12.2013 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ और 02.12.2014 को आरोप पत्र जारी किया गया। 27.10.2018 को अधिसूचित और सेतु निगम के निदेशक मंडल की बैठक में तैयार संशोधित नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि ये नियम भूतलक्षी प्रभाव वाले होंगे। यूपी राज्य उद्यमों की सेवा के लिए आदर्श आचरण अनुशासन और अपील नियमावली में जोड़े गए संशोधित नियम 50 या 51 में इसका कोई संकेत नहीं है। वैधानिक व्याख्या का सुस्थापित सिद्धांत यह है कि मौलिक अधिकारों को प्रभावित करने वाले सभी कानून तब तक संचालन में भावी होते हैं जब तक कि उन्हें स्पष्ट रूप से भूतलक्षी न बनाया जाए। संशोधित नियम सेतु निगम को ऐसे मामलों में सेवानिवृत्त कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का मौलिक अधिकार प्रदान करते हैं, जो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने के चार साल के भीतर आते हैं। इसी तरह यह एक कर्मचारी के सेवानिवृत्त होने और ब्रिज कॉर्पोरेशन के रोजगार में नहीं रहने के बाद विभागीय कार्यवाही शुरू करने से बचाव के मूल अधिकार को भी प्रभावित करता है। इसलिए, यह मानने का कोई आधार नहीं है कि 27.10.2018 से प्रभावी संशोधित नियम भूतलक्षी प्रभाव से लागू होंगे और रिट याचिकाकर्ता के संबंध में ब्रिज कॉर्पोरेशन के अधिकारों को शासित करेंगे।

18. इन परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि आक्षेपित आरोप पत्र के आधार पर ब्रिज कॉर्पोरेशन द्वारा रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही क्षेत्राधिकार के बाहर है।

19. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा आधार लिए गए कारणों से थोड़ा अलग और जोड़े गए कारणों से, हम निष्कर्ष से सहमत हैं।

20. परिणामस्वरूप, यह अपील **विफल हो जाती है** और **खारिज की जाती है**। खर्च आसान।

(2023) 5 ILRA 379

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन,

रिट ए संख्या 23192/2016

अन्नपूर्णा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: राम कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अपराजिता बंसल रोहित त्रि

ए. सेवा विधि - अनुकंपा नियुक्ति- 'उपयुक्त पद'- उ.प्र. सरकारी सेवकों (सेवा में मृत) के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 - "उपयुक्त पद" पर नियुक्ति के लिए मृतक कर्मचारी की स्थिति/पद तथा अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने वाले व्यक्ति की शैक्षिक योग्यता/पात्रता के मानदण्ड पर विचार किया जाना है तथा यह प्रस्ताव मृतक कर्मचारी के पद तथा जिस व्यक्ति को अनुकंपा नियुक्ति दी जा रही है, उसके पद की उपयुक्तता पर विचार करते हुए किया जाना है। (पैरा 10)

वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता के पति तृतीय श्रेणी के पद पर कार्यरत थे, जिनकी सेवा के दौरान मृत्यु हो गई। स्वीकृत है कि याचिकाकर्ता के पास मास्टर ऑफ आर्ट्स की शैक्षणिक योग्यता है, लेकिन प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा 16.08.2016 को तृतीय श्रेणी के पद के लिए उनके पक्ष में प्रस्ताव दिए जाने के बावजूद, उन्हें चतुर्थ श्रेणी का पद दिया गया है। इस प्रकार प्रेमलता (इंफ्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और नियम 1974 की व्याख्या पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को चतुर्थ श्रेणी के पद पर दी गई नियुक्ति का प्रस्ताव किसी भी तरह से स्वीकार नहीं किया जा सकता है, खासकर उनकी शैक्षणिक योग्यता और उनके पति द्वारा धारण किए गए पद को देखते हुए। (पैरा 11)

याचिकाकर्ता की शैक्षणिक योग्यता मास्टर ऑफ आर्ट्स के साथ-साथ उसके दिवंगत पति द्वारा धारित पद की स्थिति, जो कि एक तृतीय श्रेणी का पद था, को ध्यान में रखते हुए तृतीय श्रेणी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने के निर्देश जारी किए गए हैं। (पैरा 12)

रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम प्रेमलता, 2022 (1) सी सी 30 (परा 9)

वर्तमान याचिका में सचिव, राज्य निर्वाचन आयोग, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.09.2016 को चुनौती दी गई है, जहां तक यह याचिकाकर्ता की चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति से संबंधित है।

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी को सुना गया

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित मुख्य राहतों के लिए दायर की गई है:

"(i) विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 07.09.2016 के प्रश्नगत आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश, जहां तक यह याचिकाकर्ता की चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति से संबंधित है, इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है।

(ii) परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश, जिसमें विपक्षीगण को आदेश दिया गया हो कि वे याचिकाकर्ता को उसकी योग्यता को ध्यान में रखते हुए तृतीय श्रेणी के पद पर

अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करें, साथ ही राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 17.06.2014 का सरकारी आदेश भी शामिल हो।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पति जूनियर असिस्टेंट थे, जिनकी मृत्यु दिनांक 15.06.2016 को सेवाकाल के दौरान हो गई थी। याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (सेवाकाल के दौरान मृत्यु) नियम, 1974 (जिसे आगे नियम, 1974 कहा जाएगा) के प्रावधानों के तहत अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र होने के कारण अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया और विपक्षी संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 16.08.2016 के आदेश के माध्यम से तृतीय श्रेणी के पद पर अनुकंपा नियुक्ति का प्रस्ताव दिए जाने के बावजूद, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 4 में है, उसे दिनांक 07.09.2016 के आदेश के माध्यम से चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति की पेशकश की गई है, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 1 में है।

4. नियमावली, 1974 के नियम 5 में प्रयुक्त शब्द "उपयुक्त पद" पर विश्वास करते हुए तर्क यह है कि उक्त नियमावली में सरकारी सेवा में "उपयुक्त पद" पर अनुकंपा नियुक्ति देने का प्रावधान है, सिवाय ऐसे पद के जो उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार में आते हैं, बशर्ते कि व्यक्ति उस पद के लिए निर्धारित शैक्षिक योग्यता पूरी करता हो।

5. तर्क यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता कला में स्नातकोत्तर (एमए) पास महिला है और उनके पति भी जूनियर सहायक के तृतीय श्रेणी के पद पर काम कर रहे थे, इसलिए प्रतिवादियों ने चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति देने में स्पष्ट रूप से गलती की है और इसलिए याचिकाकर्ता अपनी योग्यता के अनुसार उपयुक्त तृतीय श्रेणी के पद पर नियुक्ति पाने की हकदार है और यह देखते हुए कि याचिकाकर्ता के पति तृतीय श्रेणी के पद पर काम कर रहा थे।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी ने तर्क दिया कि अनुकंपा नियुक्ति के मामले में किसी व्यक्ति के पास पद का विकल्प नहीं हो सकता है और इस प्रकार जब याचिकाकर्ता को पहले ही चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति की पेशकश की गई है, तो परिणामस्वरूप या तो वह उक्त नियुक्ति स्वीकार करती है या यदि वह उसे अस्वीकार करती है, तो यह माना जाएगा कि उसे किसी अनुकंपा नियुक्ति की आवश्यकता नहीं है और उसे तृतीय श्रेणी के पद पर नियुक्ति देने का कोई अवसर नहीं होगा, जैसा कि उसने दावा किया है।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के बाद यह बात सामने आई है कि याचिकाकर्ता एक कनिष्ठ सहायक की विधवा है, जिसकी दिनांक 15.06.2016 को सेवा के दौरान मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पति तृतीय श्रेणी के पद पर कार्यरत थे। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दिनांक

16.08.2016 के प्रस्ताव के अनुसार तृतीय श्रेणी के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति का प्रस्ताव करने की सिफारिश के बावजूद याचिकाकर्ता को दिनांक 07.09.2016 के आदेश के माध्यम से चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति की पेशकश की गई है। इस न्यायालय के दिनांक 29.09.2016 के आदेश के अनुसरण में, जिसके द्वारा इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं की चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति को याचिका के अंतिम निर्णय के अधीन कर दिया था, याचिकाकर्ता ने पहले ही दिनांक 30.09.2016 को चतुर्थ श्रेणी के पद पर अपनी नियुक्ति प्रस्तुत कर दी है।

8. विचाराधीन मुद्दा यह है कि जब 1974 के नियमों के तहत प्रयुक्त शब्द "उपयुक्त पद" है और याचिकाकर्ता एक तृतीय श्रेणी कर्मचारी की विधवा है तथा उसकी शैक्षिक योग्यता कला में स्नातकोत्तर (एमए) है, तो क्या उसे चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति दी जा सकती है या उसे "उपयुक्त पद" पर नियुक्ति दी जानी चाहिए?

9. यह मुद्दा अब प्रासंगिक नहीं रह गया है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम प्रेमलता 2022 (1) एससीसी 30 के मामले में इस पर विचार किया है, जिसमें 1974 के नियमों के प्रावधानों पर विचार करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"10.2 *वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने नियमावली 1974 के नियम 5 की व्याख्या की है तथा माना है कि नियमावली 1974 के नियम 5 के अंतर्गत "उपयुक्त पद" का अर्थ होगा मृतक कर्मचारी द्वारा धारित पद की परवाह किए बिना उम्मीदवार की योग्यता के लिए उपयुक्त कोई भी पद। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा की गई उपरोक्त व्याख्या अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य और प्रयोजन के ठीक विपरीत है।* ***"उपयुक्त पद" पर मृतक कर्मचारी द्वारा धारित स्थिति/पद को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए तथा मृतक कर्मचारी द्वारा धारित पद को ध्यान में रखते हुए शैक्षणिक योग्यता/पात्रता मानदंड पर विचार किया जाना चाहिए तथा मृतक कर्मचारी द्वारा धारित पद के सापेक्ष पद की उपयुक्तता पर विचार किया जाना चाहिए, अन्यथा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति तथा नियमित नियुक्ति में कोई अंतर/भेद नहीं होगा।*** *किसी दिए गए मामले में ऐसा हो सकता है कि मृतक कर्मचारी के आश्रित जिसने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया है, उसके पास श्रेणी II या श्रेणी I पद की शैक्षणिक योग्यता है तथा मृतक कर्मचारी श्रेणी/ग्रेड IV और/या आवेदित पद से निम्न पद पर कार्यरत था।* उस स्थिति में *आश्रित/आवेदक मृतक कर्मचारी द्वारा धारित पद पर अधिकार के रूप अनुकंपा के आधार पर उच्च पद नियुक्ति की मांग नहीं कर सकता है, इस आधार पर कि वह ऐसे उच्च पद की पात्रता मानदंडों को पूरा करने के योग्य है। उपर्युक्त अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य और प्रयोजन के विपरीत होगा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि परिवार का कमाने वाले की मृत्यु पर अचानक संकट से उबरने में सक्षम बनाना है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति विशुद्ध*

मानवीय विचार से प्रदान की जाती है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आजीविका का कुछ स्रोत प्रदान किया जाता है और परिवार दोनों सिरों को पूरा करने में सक्षम होगा।

10. **प्रेमलता (उपरोक्त)** के मामले में उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह उभर कर आता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "उपयुक्त पद" शब्दों पर विचार किया है और माना है कि "उपयुक्त पद" पर नियुक्ति, मृतक कर्मचारी द्वारा धारित स्थिति/पद और अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने वाले व्यक्ति की शैक्षणिक योग्यता/पात्रता मानदंडों पर विचार करते हुए की जानी चाहिए और यह प्रस्ताव मृतक कर्मचारी द्वारा धारित पद और जिन व्यक्तियों को अनुकंपा नियुक्ति दी जा रही है, उनके पद की उपयुक्तता पर विचार करते हुए किया जाना चाहिए।

11. **प्रेमलता (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई उपरोक्त व्याख्या से लैस होकर, यह न्यायालय पाता है कि बेशक याचिकाकर्ता का पति तृतीय श्रेणी के पद पर कार्यरत था, जिसकी सेवाकाल में मृत्यु हो गई । बेशक याचिकाकर्ता के पास कला में स्नातकोत्तर (एमए) की शैक्षणिक योग्यता है, लेकिन प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा 16.08.2016 को तृतीय श्रेणी के पद के लिए उसके पक्ष में प्रस्ताव दिए जाने के बावजूद, उसे चतुर्थ श्रेणी का पद दिया गया है। इस प्रकार **प्रेमलता (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और नियम 1974 की दी गई व्याख्या पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को चतुर्थ श्रेणी के पद पर दी गई नियुक्ति की पेशकश किसी भी तरह से स्वीकार नहीं की जा सकती है, खासकर उसकी शैक्षणिक योग्यता और उसके पति द्वारा धारित पद को देखते हुए।

12. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका का **निपटारा** प्रतिवादी संख्या 2 अर्थात सचिव, राज्य निर्वाचन आयोग, लखनऊ को निर्देश देते हुए किया जाता है कि वह याचिकाकर्ता की कला में स्नातकोत्तर (एमए) की शैक्षिक योग्यता के साथ-साथ उसके मृत पति द्वारा धारित पद की स्थिति, जो कि एक तृतीय श्रेणी का पद था, पर विचार करते हुए तृतीय श्रेणी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें।

13. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर इस पर विचार किया जाना चाहिए। यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि दिनांक 07.09.2016 के आदेश के अनुसरण में चतुर्थ श्रेणी के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा इस संबंध में पारित आदेशों के अधीन होगी, इस चेतावनी के साथ कि यदि प्रतिवादी संख्या 2 याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर देता है, तो वह अभी भी चतुर्थ श्रेणी

के पद पर बनी रहेगी, जिस पर उसे नियुक्त किया गया है।

(2023) 5 ILRA 383

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 8171/2023

अशरफ अली ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री उमेश प्रसाद सिंह, श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री बालेश्वर चतुर्वेदी, श्री माता प्रसाद

ए. आपराधिक कानून- बिजली अधिनियम, 2003- धारा 135 और 151 - बिजली की चोरी- 100 केवीए ट्रांसफार्मर से निम्न-दाब लाइन तक खींची गई सीधी लाइन का पता चलना - 2007 के संशोधन अधिनियम संख्या 26 के तहत धारा 151 में परंतुक जोड़ा गया, जिससे धारा 135 के अंतर्गत अपराध को संज्ञेय अपराध बना दिया गया - कार्यवाही को चुनौती दी गई - निर्णय दिया गया कि धारा 151 में संशोधन स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति का है और 2007 के संशोधन अधिनियम के प्रभावी होने से पहले लंबित शिकायतों पर कार्रवाई की जा सकती है, उन्हें संज्ञेय मामले मानते हुए सत्येंद्र राय के वाद पर निर्भरता व्यक्त किया गया। (8 और 9)

बी. क़ानून की व्याख्या - 2007 के संशोधन अधिनियम की धारा 151 में नया प्रावधान शामिल किया गया - संशोधन की प्रकृति - प्रासंगिकता- स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति -प्रभाव- संशोधन की प्रयोज्यता - क्या इसका भावी प्रभाव होगा या पूर्वव्यापी - निर्णय दिया गया कि संशोधन प्रकृति में स्पष्टीकरणात्मक है, और इसलिए पूर्वव्यापी - 2007 के अधिनियम संख्या 26 के तहत लाए गए संशोधित प्रावधान पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होंगे न कि भावी रूप से। (पैरा 11 और 12)

आवेदन अस्वीकृत. (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मुस्ताक उर्फ मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2006 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1430: (2006) 6 ऑल 257
2. भारत संघ बनाम मुस्ताक @ मुस्तफा और अन्य; (2016) 13 एससीसी 398
3. सहायक विद्युत अभियंता बनाम सत्येन्द्र राय एवं अन्य; (2014) 4 एससीसी 513
4. विशाल अग्रवाल और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य; (2014) 3 सी सी 696

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह तथा प्रत्यर्थीगण सं0 3 व 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री बालेश्वर चतुर्वेदी के होल्डिंग ब्रीफ श्री माता प्रसाद तथा राज्य की ओर से उपस्थित श्री डी.के. श्रीवास्तव, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. यह प्रार्थना पत्र विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट), आगरा के न्यायालय में विचाराधीन, आपराधिक वाद सं0 142/2005 राज्य बनाम अशरफ अली अंतर्गत धारा 135 विद्युत अधिनियम, 2003 (संक्षेप में ''2003 का अधिनियम'') थाना खंदौली, जनपद आगरा की कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए दायर किया गया है।

3. आवेदक को कनिष्ठ अभियंता, प्रवर्तन दल, विद्युत वितरण निगम द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांकित 10.08.2005 के माध्यम से पुलिस को सूचित किया गया है, जिन्होंने कार्यकारी अभियंता और पुलिस अधिकारियों की एक टीम के साथ एक सूचना पर कार्रवाई की तथा मेसर्स आफताब आइस फैक्ट्री के परिसर में गए जिसका स्वामी आवेदक अशरफ अली है। जिस सूचना पर प्रवर्तन दल ने कार्यवाही शुरू की, वह आवेदक द्वारा बिजली चोरी करने की थी। इसके पश्चात परिसर की जांच की गई, जिससे बर्फ कारखाने को बिजली देने के उद्देश्य से 100 केवीए ट्रांसफार्मर से लो-टेंशन लाइन तक खींची गई सीधी लाइन की जानकारी हुई। टीम को 74 एच.पी. का प्रभावी अवैध रूप से लगा हुआ लोड मिला तथा आवेदक द्वारा तत्संबंधी चोरी की जा रही है। बताया जाता है कि आवेदक कागजात दिखाने का बहाना बनाकर चला गया। केबल को हटवाकर कब्जे में ले लिया गया। जनता के व्यक्तियों, जिनसे साक्ष्य देने को कहा गया, ने दुश्मनी से बचने के कारणों का हवाला देते हुए ऐसा करने से मना कर दिया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जिस समय अपराध कारित किया गया था और अपराध दर्ज किया गया था, जिसके आधार पर आक्षेपित आरोप पत्र दायर किया गया है, कहने का तात्पर्य यह है कि दिनांक 10.08.2005 को 2003 के अधिनियम की धारा 135 के अंतर्गत अपराध एक संज्ञेय अपराध नहीं था और मात्र शिकायत दर्ज की जा सकती थी। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि आवेदक ने आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका सं0 10415/2005 दायर की, जिसमें उनके विरूद्ध दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट को चुनौती दी गई। यह कई रिट याचिकाओं से जुड़ा हुआ था, जहां समान मुद्दा यह था कि क्या 2003 के अधिनियम की धारा 135 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जा सकती है क्योंकि तत्समय के अधिनियम के अनुसार अपराध संज्ञेय नहीं था। आदेश दिनांकित 06.10.2005 द्वारा आवेदक की गिरफ्तारी पर अंतरिम रोक लगा दी गई थी। उपरोक्त रिट याचिकाओं पर मुस्ताक उर्फ मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2006 एस.सी.सी. **ऑनलाइन ए.एल.एल. 1430: (2006) 6 ए.एल.एल. एल.जे. 257** मामले में दिनांक 15.09.2006 को इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा सुनवाई की गई और निर्णीत किया गया। निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए थेः-

42. हमारे अनुसार, तीन दिशाओं में से तीसरी अन्य से आगे निकल रही है। हम रिट याचिकाओं को खारिज नहीं कर सकते क्योंकि इस न्यायिक निर्णय के अंतर्गत हमें बिजली चोरी को गैर संज्ञेय अपराध घोषित करने की वैधता या विधिमान्यता पर विचार करना होगा।

यदि हम कार्यवाही रद्द करते हैं, तो हम उसी नतीजे पर पहुंचेंगे। इसके अतिरिक्त, हम न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के बावजूद पुलिस को सीधे गिरफ्तार करने की अनुशंसा नहीं कर रहे हैं। परन्तु यदि हम गिरफ्तारी को स्थगित कर देते हैं और पुलिस सहित अधिकारियों को सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय से जांच के लिए अनुमति प्राप्त करने की अनुमति देते हैं तो यह उद्देश्य में सहायक होगा।

43. विद्युत नियम, 2005 के नियम 12 की प्रयोज्यता के बारे में बहुत से तर्क दिए गए हैं। आगे यह भी कहा गया है कि पुलिस द्वारा जांच और गिरफ्तारी का ऐसा नियम बनाने का कोई प्रावधान नहीं है। हमने अधिनियम की धारा 176 के अंतर्गत नियम बनाने की शक्ति देखी है। धारा 176 केंद्र सरकार को नियम बनाने की शक्ति देती है जिसके अंतर्गत हम पाते हैं कि कुछ नियम विशेष रूप से नियम बनाने की शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना बनाए गए हैं। इसलिए, ऐसी शक्ति सामान्य नियम बनाने वाली शक्ति के अंतर्गत भी मौजूद है। हमारे अनुसार प्रश्न ऐसे नियम बनाने का नहीं अपितु अधिनियम की सच्ची भावना के साथ उसकी प्रभावशीलता बनाने का है। अधिनियम, 2003 विधि अनुसार दंडनीय कुछ अपराधों का प्रावधान करता है। अधिनियम की धारा 135 के अंतर्गत बिजली की चोरी ऐसे ही अपराधों में से एक है। अधिनियम की धारा 135, दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता को बिल्कुल भी अलग नहीं करती है। नियमावली का नियम 12 सीधे मुद्दे पर बात कर रहा है परन्तु हमारे अनुसार, ऐसे नियम और अधिनियम की धारा 151 के बीच सीधा टकराव है। यदि ऐसा मामला होता कि धारा 151 अमल में लाने योग्य है, तो हम याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए प्रश्नों के संबंध में विचार कर सकते थे, परन्तु अब जब गैर-संज्ञेय अपराध को संज्ञेय अपराध में परिवर्तित करके ऐसी धारा में संशोधन का प्रस्ताव पेश किया गया है, तो हमे इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हम केवल अधिनियम की धारा 151 एवं नियमों के नियम 12 की प्रयोज्यता को तब तक स्थगित रख सकते हैं जब तक कि वास्तव में संशोधन नहीं हो जाता। स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठेगा कि कानून प्रभावी कैसे होगा? यह अधिनियम की धारा 175 के प्रावधान को लागू करके प्रभावी हो सकता है। इस धारा ने संपूर्ण विद्युत अधिनियम, 2003 को उस समय लागू किसी भी अन्य कानून के अलावा एक पूरक कानून के रूप में बनाया है, न कि उसके अनादर में। लॉ लेक्सिकॉन 1997 संस्करण के अनुसार ''अनादर'' का अर्थ किसी कानून या उसके कुछ हिस्से को रद्द करने या तोड़ने का कार्य है। इसलिए, जब ऐसी धारा के द्वारा विद्युत अधिनियम, 2003 मौजूदा कानून को तोड़ने या रद्द करने का प्रस्ताव नहीं करता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता आवश्यकता या अनिवार्यता को पूरा करने के लिए पूरक के रूप में कार्य कर सकता है। अब प्रश्न यह होगा कि आवश्यकता क्या है? गैर-संज्ञेय अपराधों के संबंध में न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने और पुलिस को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए

उचित निर्देश देना ही आवश्यकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 उस सीमा तक स्पष्ट है जैसा कि नीचे दिया गया हैः-

"155. गैर-संज्ञेय मामलों के बारे में जानकारी तथा ऐसे मामलों का अन्वेषण - (1) जब किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को उस थाने की सीमाओं के अंदर गैर-संज्ञेय अपराध के कारित होने संबंध में जानकारी दी जाती है, तो वह सूचना के सार को ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में ऐसे प्रारूप में दर्ज करेगा, जो राज्य सरकार इस संबंध में निर्धारित करे और सूचना देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

(2) कोई भी पुलिस अधिकारी किसी गैर-संज्ञेय मामले की जांच उस मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करेगा, जिसके पास ऐसे मामले की सुनवाई करने या मामले को विचारणार्थ सुपुर्द करने की शक्ति है।

(3) ऐसा आदेश प्राप्त करने वाला कोई भी पुलिस अधिकारी विवेचना के संबंध में उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है (वारंट के बिना गिरफ्तारी की शक्ति को छोड़कर) जो किसी पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी किसी संज्ञेय मामले में प्रयोग कर सकता है।

(4) जहां कोई मामला दो या दो से अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामले को संज्ञेय मामला माना जाएगा, भले ही अन्य अपराध गैर-संज्ञेय हो।

44. हालाँकि, उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैंः-

(ए) बिजली की चोरी सामाजिक अपराध है;

(बी) बिजली प्रति यूनिट बिक्री योग्य वस्तु है किन्तु गैर-बिक्री योग्य अमूर्त ऊर्जा नहीं है और नागरिकों को निर्बाध बिजली की आपूर्ति राज्य की आवश्यक सेवा है, इसलिए बिजली की चोरी को संज्ञेय अपराध माना जाना चाहिए;

(सी) बिजली की चोरी में शामिल व्यक्तियों का तात्पर्य केवल अवैध उपयोगकर्ता से नहीं है, बल्कि विभाग के भीतर या बाहर से चोरी को बढ़ावा देने या उकसाने वाले व्यक्तियों से है;

(डी) उद्देश्य और कारण, अपराधों की सूची तथा धारा 135, 151 और यदि आवश्यक हो तो अधिनियम, 2003 की अन्य धाराओं को सामंजस्यपूर्ण ढंग से समझा जाना चाहिए;

(ई) अधिनियम के अंतर्गत अपराधों की सूची के अंतर्गत धारा 151 और शब्द ''गैर-संज्ञेय'' को अधिक प्रभावी प्रयोज्यता के लिए हटाया जा सकता है;

(एफ)अधिनियम, 2003 की धारा 175 के आधार पर, अधिनियम सामान्य कानून का पूरक है, इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता पर कोई रोक नहीं है।

(जी) ''बिजली'' भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में सूची 3 की मद संख्या 38 है, केंद्र और राज्य दोनों को विशेष कार्य बल बनाने का पूरा अधिकार है जो उचित परिस्थिति में विशेषतः पुलिस की विफलता या उपद्रवियों के साथ मिलीभगत के संदेह के मामले में कार्य सौंपा जाए।

45. उपरोक्त निष्कर्षों के साथ निम्नलिखित आदेश पारित किया गया हैः- विद्युत अधिनियम, 2003 की मौजूदा धारा 151 और विद्युत नियम, 2005 के नियम 12 दोनों को स्थगित रखा जाएगा तथा विद्युत अधिनियम, 2003 में संशोधन के वास्तव में प्रभावी होने

पर इन्हें लागू किया जा सकता है। विद्युत नियम, 2005 के नियम 12 के अंतर्गत ''संज्ञान'' शब्द को ''कार्रवाई'' के रूप में पढ़ा जाएगा। चूंकि बिजली की चोरी को सामाजिक अपराध और बिक्री योग्य वस्तु घोषित किया गया है, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अधिनियम की धारा 175 के आधार पर इसके संशोधन तक अस्थायी रूप से अपराधों की देखरेख पर कोई रोक नहीं है। व्यक्तिगत मामलों की आवश्यक जांच हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए उचित प्राधिकारी और/या पुलिस द्वारा सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में आवश्यक आवेदन किए जा सकते हैं। ऐसी अनुमति प्राप्त करने के उपरांत उनके लिए किसी अपराधी या अपराधियों की जांच करने और/या गिरफ्तार करने पर कोई रोक नहीं होगी। याचिकाकर्ताओं की गिरफ्तारी पर एक माह की अवधि के लिए या मामले की जांच के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के आदेश के बाद तक, जो भी पहले हो, रोक लगाई जाती है।

46. इस प्रकार, रिट याचिका निस्तारित की जाती है। हर्जे के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।"

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि पुलिस ने एक आरोप पत्र दाखिल किया और विशेष न्यायाधीश ने डिवीजन बेंच द्वारा जारी निर्देशों की परवाह किए बिना, संज्ञान लिया और प्रक्रिया जारी की। इसलिए, इस मामले में आदेश जारी करने की प्रक्रिया, इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्देशों का उल्लंघन है, जहां सक्षम न्यायालय की अनुमति के बिना पुलिस ने आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया था।

6. उपरोक्त याचिका का प्रतिवादी संख्या 3 व 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री बालेश्वर चतुर्वेदी के होल्डिंग ब्रीफ श्री माता प्रसाद अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से उपस्थित श्री डी.के. श्रीवास्तव, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा विरोध किया गया है।

7. यह तर्क दिया गया है कि 2007 के अधिनियम संख्या 26 के माध्यम से 2003 के अधिनियम की धारा 151 के प्रावधानों के पश्चातवर्ती संशोधन और **भारत संघ बनाम मुस्ताक उर्फ मुस्तफा व अन्य (2016) 13 एस.सी.सी. 398** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, उक्त आधार अब मान्य नहीं है।

8. 2003 के अधिनियम को 2007 के अधिनियम संख्या 26 के माध्यम से संशोधित किया गया था, जिसमें 2003 के अधिनियम की धारा 151 में पहला परंतुक शामिल किया गया था। उक्त संशोधन द्वारा, धारा 135 के अंतर्गत अपराध को एक संज्ञेय अपराध बना दिया गया था, जिसका न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173 (2) के अंतर्गत दायर पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान ले सकता था। **सहायक विद्युत अभियंता बनाम सत्येन्द्र राय व अन्य, (2014) 4 एस.सी.सी. 513** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पटना उच्च न्यायालय के एक निर्णय को पलटते हुए कहा कि न्यायालय बिजली चोरी के अपराध का संज्ञान पुलिस रिपोर्ट पर नहीं, अपितु उपयुक्त

सरकार द्वारा लिखित शिकायत पर ही ले सकती है। उक्त दृष्टिकोण को अस्थिर माना गया। पटना मामले में, अपराध दिनांक 24.01.2007 को कारित किया गया था तथा अपराध को संज्ञेय बनाने वाला 2007 का संशोधन अधिनियम संख्या 26 दिनांक 15.06.2007 से लागू हुआ। इसलिए, **सत्येन्द्र राय (उपरोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्तिगण के समक्ष यह तर्क दिया गया कि 2007 के अधिनियम संख्या 26 के अंतर्गत किया गया संशोधन रिट याचिकाकर्ताओं के मामले पर लागू नहीं होगा। वहां 2007 के संशोधन अधिनियम द्वारा 2003 के अधिनियम की धारा 151 में पहला परंतुक शामिल करने से पूर्व अपराध किया गया था। उपरोक्त विवाद को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया थाः-

8. श्री मोहित कुमार शाह, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारा ध्यान अधिनियम की वर्तमान धारा 151 और विशेष रूप से उस परंतुक की ओर आकर्षित किया गया, जिसे एक संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया है। यह परंतुक 2007 के अधिनियम 26 के माध्यम से आया है और इस प्रकार हैः- ''बशर्ते कि न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 173 के अंतर्गत दाखिल एक पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट पर इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का संज्ञान भी ले सकती हैः

आगे प्रावधान है कि धारा 153 के अंतर्गत गठित एक विशेष न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए, बिना अभियुक्त को विचारणार्थ सुपुर्द किए, सक्षम होगा।''

इसलिए, सामान्यतः पुलिस के लिए विवेचना करने और अभियुक्त पर मुकदमा चलाने में अब कोई कठिनाई नहीं है, अगर यह पाया जाता है कि आरोपी ने अपराध किया है। हालाँकि, ऐसा लगता है कि यह परंतुक केवल दिनांक 15.06.2007 से ही आया है, जबकि वर्तमान मामले में जिस अपराध की शिकायत की गई है, वह दिनांक 24.01.2007 को कारित हुआ कथित है। इसलिए, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रावधान केवल तभी लागू हो सकता है जब अपराध दिनांक 15.06.2007 के बाद कारित और सूचित किया गया हो।

9. हालाँकि, हम सहमत नहीं हैं क्योंकि अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी इंगित किया है तथा अधिनियम के उद्देश्यों एवं कारणों के विवरण पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसके द्वारा संशोधन हुआ है और आगे जिसके द्वारा परंतुक जोड़ा गया है। उददेश्यों एवं कारणों के विवरण का पैरा 4 इस प्रकार हैः-

''4. अधिनियम की धारा 151 में निहित प्रावधानों के अनुसार, बिजली व विद्युत लाइनों की चोरी तथा मीटर के साथ छेड़छाड़ से संबंधित अपराध संज्ञेय अपराध हैं। यह चिंता व्यक्त की गई है कि धारा 151 का वर्तमान स्वरूप पुलिस द्वारा इन संज्ञेय अपराधों की जांच में बाधा स्वरूप है। धारा 151 में संशोधन प्रस्तावित है ताकि स्थिति स्पष्ट हो सके कि

पुलिस अधिनियम के अंतर्गत संज्ञेय अपराधों की विवेचना कर सकेगी। विशेष न्यायालयों के समक्ष विचारण में तेजी लाने के लिए, यह प्रावधान करने का भी प्रस्ताव है कि एक विशेष न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम होगी, बिना अभियुक्त को विचारण हेतु सुपुर्द किए।" (जोर दिया गया) इसलिए, उद्देश्यों और कारणों के विवरण के पैरा 4 की भाषा पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि लाया गया संशोधन प्रकृति में स्पष्टीकरण है और इस तरह यह लंबित मामलों को भी अपने दायरे में ले लेगा और इस अर्थ में यह एक पूर्वव्यापी संशोधन होगा।

10. एक और कारण है जिससे उच्च न्यायालय के आदेश सत्येंद्र राय बनाम बिहार राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण सं0 19178/2007 आदेश दिनांकित 28.05.2009 (पैट), त्रुटिपूर्ण हो सकता है। उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की पहली अनुसूची और विशेष रूप से उसके दूसरे भाग को स्पष्ट रूप से नजरअंदाज कर दिया है जो "अन्य कानूनों के विरूद्ध अपराधों का वर्गीकरण" शीर्षक के अंतर्गत है। दूसरी प्रविष्टि इस प्रकार हैः-

"यदि तीन वर्ष और उससे अधिक परन्तु सात वर्ष से अधिक की कैद की सजा नहीं है, तो ऐसे अपराधों को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत द्वारा संज्ञेय, गैर-जमानती और विचारणीय माना जाता है।"

11. इसलिए, उच्च न्यायालय को इस प्रावधान पर विचार करना चाहिए था जो प्रथम सूचना रिपोर्ट को पुलिस द्वारा इस अर्थ में स्वीकार्य बनाता है कि पुलिस मामले की जांच कर सकती है और दोषी पाए जाने पर न्यायालय के समक्ष धारा 173 दं.प्र.सं. के अंतर्गत रिपोर्ट भी दायर कर सकती है, जिस पर न्यायालया अपराध का संज्ञान ले सकती थी।"

9. बाद में, **विशाल अग्रवाल व अन्य बनाम छत्तीसगढ़ बिजली बोर्ड व अन्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 696** में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के निर्णय की अपील में यह मुद्दा फिर से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया। सत्येन्द्र राय के निर्णय के अनुसरण में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **विशाल अग्रवाल (सुप्रा)** में यह माना गया कि धारा 151 में संशोधन स्पष्टीकरणपूर्ण प्रकृति का है और उन शिकायतों पर कार्रवाई की जा सकती है जो 2007 के संशोधन अधिनियम के लागू होने से पहले लंबित थीं, उन्हें संज्ञेय मामले मानते हुए। **विशाल अग्रवाल** की रिपोर्ट के पैरा सं0 17 में, यह माना गया किः-

17. सत्येन्द्र राय मामले (सहायक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनाम सत्येन्द्र राय (2014) 4 एस.सी.सी. 513 : (2012) 1 पी.एल.जे.आर. 476 (एस.सी.) में इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के दृष्टिगत, निर्णायक रूप से यह मानते हुए कि धारा 151 में संशोधन प्रकृति में स्पष्टीकरणपूर्ण है और इसके अलावा अधिनियम की धारा 151 के प्रावधानों के बावजूद, पुलिस में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जा सकती है, मामला बोर्ड के पक्ष में तय होता है। हालाँकि, साथ ही हम उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को विस्तार से बताना चाहेंगे।

10. इस प्रकार, जब तक **मुस्ताक (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को चुनौती **मुस्ताक उर्फ मुस्तफा (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आई, तब तक सिद्धांत पूर्व से ही तय हो चुका था। तदनुसार, **मुस्ताक** में रिट याचिकाकर्ताओं को इस आधार पर सुरक्षा देने वाले निर्देश कि मामले ऐसे समय में दर्ज किए गए थे जब 2007 का संशोधन अधिनियम अभी तक लागू नहीं हुआ था, सभी को **मुस्ताक उर्फ मुस्तफा** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा रद्द कर दिया गया था। यह अवधारित किया गयाः-

2. उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकित कियाः (मुस्ताक मामला (मुस्ताक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.एल.एल. 1430ः (2006) 6 ए.एल.एल एल.जे. 257, एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.एल.एल. पैरा 43)

"43. ..... 2003 का अधिनियम विधि अनुसार दंडनीय कुछ अपराधों का प्रावधान करता है। अधिनियम की धारा 135 के अंतर्गत बिजली की चोरी ऐसे ही अपराधों में से एक है। अधिनियम की धारा 135, दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता को बिल्कुल भी अलग नहीं करती है। नियमावली का नियम 12 सीधे मुद्दे पर बात कर रहा है परन्तु हमारे अनुसार, ऐसे नियम और अधिनियम की धारा 151 के बीच सीधा टकराव है। यदि ऐसा मामला होता कि धारा 151 अमल में लाने योग्य है, तो हम याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए प्रश्नों के संबंध में विचार कर सकते थे, **परन्तु अब जब गैर-संज्ञेय अपराध को संज्ञेय अपराध में परिवर्तित करके ऐसी धारा में संशोधन का प्रस्ताव पेश किया गया है, तो हमे इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हम केवल अधिनियम की धारा 151 एवं नियमों के नियम 12 की प्रयोज्यता को तब तक स्थगित रख सकते हैं जब तक कि वास्तव में संशोधन नहीं हो जाता।**

(जोर दिया गया)

3. विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनाम सत्येन्द्र राय (इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनाम सत्येन्द्र राय, (2014) 4 एस.सी.सी. 513, में इस न्यायालय के एक निर्णय की ओर इंगित किया है, जिसमें इस न्यायालय ने विशेष रूप से पैरा 9 में निम्नानुसार निर्णय दिया हैः- (एस.सी.सी. पृष्ठ 516)

"9. ... इसलिए, उद्देश्यों और कारणों के विवरण के पैरा 4 की भाषा पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि लाया गया संशोधन प्रकृति में स्पष्टीकरण है और इस तरह यह लंबित मामलों को भी अपने दायरे में ले लेगा और इस अर्थ में यह एक पूर्वव्यापी संशोधन होगा।''

उस सीमा तक, विशाल अग्रवाल बनाम छत्तीसगढ़ एस.ई.बी. (विशाल अग्रवाल बनाम छत्तीसगढ़ एस.ई.बी. (2014) 3 एस.सी.सी. 696: (2014) 4 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 674, में इस न्यायालय का अन्य निर्णय भी वही भूमिका निभाता है।

4. इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के दृष्टिगत, जिसमें यह विशेष रूप से कहा गया है कि उद्देश्यों और कारणों के कथन के पैरा 4 की भाषा से यह स्पष्ट है कि लाया

गया संशोधन प्रकृति में स्पष्टीकरणपूर्ण है और इस प्रकार यह एक पूर्वव्यापी संशोधन होगा, हम मानते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश (मुस्ताक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 एस.सी.सी. ऑनलाइन ए.एल.एल. 1430: (2006) 6 ए.एल.एल. एल.जे. 257) को प्रभावी नहीं किया जा सकता है और इसे अपास्त किया जाता है और निर्देश दिया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिनका हमने यहां ऊपर हवाला दिया है, का पालन किया जाए।

11. उपरोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के लिए यह तर्क देना अब स्वतंत्र नहीं है कि विद्वान विशेष न्यायाधीश आवेदक के खिलाफ दाखिल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर मामले का संज्ञान नहीं ले सकते। **मुस्ताक** मामले में खंडपीठ का निर्णय आवेदक के बचाव में बिल्कुल नहीं आएगा। **मुस्ताक उर्फ मुस्तफा** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय को खारिज कर दिया है। साथ ही, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संशोधन को 2003 के अधिनियम की धारा 135 के अंतर्गत दंडनीय अपराध बनाने के लिए 2003 के अधिनियम की धारा 151 में संशोधन के आधार पर संज्ञेय माना है और ऐसा पूर्वव्यापी रूप से किया है। तर्क यह है कि संशोधन स्पष्टीकरणपूर्ण है और इसलिए, पूर्वव्यापी है।

12. जो भी हो, कानून अब अंततः तय हो गया है कि संशोधन की तिथि से पूर्व लंबित किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत के संबंध में, 2007 के अधिनियम संख्या 26 के अंतर्गत लाए गए संशोधित प्रावधान पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होंगे, न कि भावी रूप से। यहां, संशोधन दिनांक 15.06.2007 से लागू हुआ और अपराध 10.08.2005 को किया गया, परन्तु, यह कोई आधार नहीं होगा, क्योंकि श्री एस.एन. सिंह आक्षेपित कार्यवाही को रद्द कराना चाहते हैं, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सुसंगत धारणा के दृष्टिगत कि संशोधन पूर्वव्यापी है, 2003 के अधिनियम की धारा 135 के अंतर्गत अपराध को संज्ञेय बनाता है।

13. अन्य किसी बिंदु पर बल नहीं दिया गया।

14. यह प्रार्थना पत्र **अस्वीकार** किया जाता है।

15. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह आदेश आवेदक के उचित स्तर पर उन्मोचन के लिए आवेदन करने, यदि ऐसी सलाह दी जाती है, के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

(2023) 5 ILRA 389

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति गौतम चौधरी,

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 12864/2021

संलग्न

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 27758/2021

और अन्य संबंधित मामले

सोनी देवी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री राशिद अली, श्री एस.बी. सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री सौरभ कुमार, श्री सुधीर कुमार अग्रवाल

ए. **आपराधिक कानून - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989- धारा 14- संशोधन अधिनियम संख्या 1, 2016 - मजिस्ट्रेट का क्षेत्राधिकार - संज्ञान- एससी/एसटी अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध- माना गया कि मजिस्ट्रेट को 1989 के अधिनियम के तहत अपराध पर विचार करने और संज्ञान लेने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है -एससी/एसटी अधिनियम, अधिनियम संख्या 1, 2016 की धारा 14 (1) के दूसरे प्रावधान के अनुसार, उपरोक्त अधिनियम के तहत गठित विशेष न्यायालयों को 1.1.2016 से इस अधिनियम के तहत सीधे अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है और इसलिए, सीआरपीसी की धारा 190 (1) (ए) के तहत निहित शक्तियां समाप्त हो गई हैं। (पैरा 16 और 23)**

बी. दंड विधि - एस.सी. एवं एस.टी. (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989-धारा 15(9) एवं 18-ए (1) (ए) - एस.सी. एवं एस.टी. (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 -नियम 5- धारा 156(3) के तहत आवेदन को शिकायत मामला माना गया -अनुमति - निर्णय, विशेष न्यायाधीश धारा 156 (3) सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदन को शिकायत मामला नहीं मान सकते। (पैरा 24 एवं 31)

<u>आवेदन स्वीकृत। (ई-1)</u>

(माननीय न्यायमूर्ति गौतम चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

धारा 482 द०प्र०स० के तहत अग्रणी आवेदन में आवेदक के अधिवक्ता श्री राशिद अली के अधिवक्ता श्री एस.बी सिंह को, संबंधित आवेदनों में अन्य अधिवक्ता के साथ, श्री सुधीर कुमार अग्रवाल, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता और श्री राजेश्वर सिंह के साथ-साथ श्री राकेश चंद्र श्रीवास्तव, अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री मदनेश प्रसाद सिंह द्वारा सहायता प्रदान की गई, और राज्य के लिए राज्य विधि अधिकारी अधिवक्ता को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

उपर्युक्त आवेदनों के प्रासंगिक तथ्य निम्नानुसार हैं:

(1) <u>आवेदन धारा 482 के तहत सं- 12864 वर्ष 2021</u>

आवेदक प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता है। आवेदक अनुसूचित जाति वर्ग का है, जो ग्राम आसन में स्थित खसरा भूखंड का भूमिधर है, जो प्रतिपक्षी संख्या-2 की संपत्ति से सटा हुआ है। प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक के भूखंड पर अवैध निर्माण करना शुरू कर दिया और जब उसने विरोध किया, तो प्रतिपक्षी संख्या-2 ने खुद अपनी सीमा के सीमांकन के लिए एक आवेदन पेश किया, जिस पर उप-मंडलीय अधिकारी ने राजस्व निरीक्षक से रिपोर्ट मांगने

के बाद भूमि को मापा और यह पाया गया कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक की संपत्ति में अवैध रूप से प्रवेश किया है। फिर से 09.07.2020 को लगभग 3 बजे प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक की संपत्ति पर अतिक्रमण करने की कोशिश की और जब उसने आपत्ति जताई, तो प्रतिपक्षी संख्या-2 ने जाति सूचक शब्दों का इस्तेमाल किया और उसे पीटा जिसमें उसे चोटें आईं जिनकी जांच की गई। उसने मामला दर्ज करने के लिए संबंधित थाने के समक्ष एक आवेदन दिया, लेकिन वह दर्ज नहीं किया गया। इसके बाद उसने 27.07.2020 को पुलिस अधीक्षक के समक्ष एक आवेदन दिया, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। इस प्रकार, वह विशेष न्यायाधीश एस.सी./एस.टी. अधिनियम के समक्ष धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर करने के लिए मजबूर थी, जिसे दिनांक 19.01.2021 के आदेश के माध्यम से एक शिकायत मामले के रूप में माना गया था, जो आदेश वर्तमान आवेदन में लागू है।

(2) <u>आवेदन धारा 482 सं 482 के तहत - 27758 वर्ष 2021</u>

इस आवेदन में आवेदक आरोपी व्यक्ति हैं।

प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक संख्या-1 को अपने पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए 1,68000/ दिनांक 07.10.2019 को अपराह्न लगभग 3 बजे प्रतिपक्षी संख्या-2 सह-ग्रामीणों मोबिन, संजय, फुरकान एवं जय करण के साथ प्रार्थी संख्या-1 प्रेम के घर पहुंचा, जहां सभी अभियुक्त (आवेदक) लाठी-डंडा लेकर निकले और असंसदीय भाषा व जाति सूचक शब्दों का प्रयोग किया। जब सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 रिपोर्ट दर्ज कराने गया, तो उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई, जिसके कारण, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने पुलिस अधीक्षक के समक्ष एक आवेदन भेजा, लेकिन कोई ध्यान नहीं दिया गया, इसलिए प्रतिपक्षी संख्या-2 ने धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे दिनांक 07.09.2020 के आदेश के तहत एक शिकायत मामले के रूप में माना गया। धारा 200 और 202 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने के बाद अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), अमरोहा ने दिनांक 19.10.2021 के आदेश के तहत आरोपी-आवेदकों को धारा 323, 504, 506 भ०द०वि० धारा 3(1) डीएचए एस.सी./एस.टी. अधिनियम, थाना-हसनपुर, जिला अमरोहा के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। सम्मन आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-आवेदकों ने सम्मन आदेश के अनुसरण में पूरी कार्यवाही को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी है।

(3) <u>आवेदन धारा 482 सं 482 के तहत - 27812 वर्ष 2021</u>

इस आवेदन में आवेदक प्रस्तुत मामले में आरोपी हैं।

दिनांक 28.07.2019 को सायं लगभग 4 बजे जब प्रतिपक्षी संख्या-2 बाग में अपनी गायों को चारा खिला रही थी, तो डडा और कुल्हाड़ी से लैस आवेदक आए और जाति सूचक टिप्पणी का प्रयोग करते हुए उसे गाली देने लगे और उससे पूछा कि उसकी गायें उनके खेत में कैसे घुस गईं, जिस पर विवाद हुआ और उन्होंने उसे धक्का दे दिया, जिसके कारण वह गिर गई। इसके बाद उन्होंने उसकी गायों को

बेरहमी से पीटा जिससे गायों के थन फट गए। प्रतिपक्षी संख्या-2 उसके घर लौट आई और उसने अपने पति को पूरी घटना बताई। फिर रात करीब 11 बजे आरोपी उसके घर आए और उसके दरवाजे पर पथराव किया, जाति सूचक शब्दों का इस्तेमाल किया लेकिन डर के कारण उसने दरवाजा नहीं खोला। उसके पति ने 100 संख्या पर कॉल किया और पुलिस को घटना की जानकारी दी। इसके बाद, वह थाना-चुरकी में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने गई, लेकिन वह दर्ज नहीं की गई और पुलिस अधीक्षक, जालौन, उरई को एक लिखित रिपोर्ट 03.08.2019 को पंजीकृत डाक द्वारा भेजी गई, लेकिन उसका भी वही अंजाम हुआ। इससे व्यथित होकर, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 07.08.2019 को उरई में विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), जालौन की अदालत में धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे शिकायत मामला माना गया और शिकायत मामला संख्या-51 वर्ष 2019 (श्रीमती उषा देवी बनाम अरविंद बाथम और अन्य) के रूप में दर्ज किया गया। धारा 200 द०प्र०स०और 202 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने के बाद, आरोपी-आवेदकों को एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 504, 506 भ०द०वि० और धारा 3(1)(डीए)(धा) थाना-चुरखी, जिला जालौन के आदेश दिनांक 29.10.2021 के तहत के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया। आरोपी आवेदकों ने प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से उपरोक्त शिकायत मामले में पारित दिनांक 29.10.2021 के आक्षेपित सम्मन आदेश को चुनौती दी है।

(4) <u>आवेदन धारा 482 सं 482 के तहत - 4382 वर्ष 2022</u>

आवेदक प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता है। आवेदक ने 03.09.2021 को विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम) इलाहाबाद की अदालत में धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया था कि उसे अपने परिचित श्री गुड्डो मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-4) के माध्यम से गांव बृजसिंहपुर उर्फ रामगढ़ में स्थित जमुना प्रसाद (प्रतिपक्षी संख्या-3) द्वारा जमीन बेचने की जानकारी मिली, जो उसके ससुराल वालों के घर के पास है। उन्होंने जमुना प्रसाद से संपर्क किया और अराजी संख्या-256 क्षेत्र 0.2005 हेक्टेयर को 10,00,000/ में बेचना तय पाया गया। इसके बाद, जमुना प्रसाद (प्रतिपक्षी संख्या-3) ने आवेदक को गुड्डो मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-4) के माध्यम से जमीन के बारे में बातचीत करने के लिए कहा और जब भी गुड्डो मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-4) उसे विलेख निष्पादित करने के लिए कहेंगे, तो विलेख निष्पादित किया जाएगा? उपरोक्त लेनदेन के संबंध में, 22.06.2021 को गुड्डो मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-4) की उपस्थिति में जमुना प्रसाद (प्रतिपक्षी संख्या-3) के साथ-साथ राम मूरत, प्यारे लाल, समरजीत और अनिल कुमार की उपस्थिति में 50,000/- रुपये अग्रिम किए गए थे। जिसके विरूद्ध प्रतिपक्ष संख्या-3 जमुना प्रसाद ने 10 रुपये के स्टाम्प पेपर पर रसीद जारी की और शेष 9,50,000/- रुपये का भुगतान विक्रय विलेख के निष्पादन के समय चेक के माध्यम से करने की सहमति हुई। 01.08.2021 को गुड्डो मिश्रा प्रतिपक्षी संख्या-4 आवेदक के पास आया और कहा कि जमुना

प्रसाद प्रतिपक्षी संख्या-4 को पैसे की प्रस्तुत आवश्यकता है और अब वह 4 लाख रुपये नकद चाहते हैं, और शेष 5,50,000/- रुपये चेक के माध्यम से। उन्होंने एक या दो दिन में बयनामा की तामील कराने की बात कही। आवेदक ने किसी तरह पैसे का प्रबंधन किया और अपनी पत्नी, श्रीमती उषा के पक्ष में बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए 03.08.2021 को तहसील सोरांव, जिला इलाहाबाद पहुंचे। आरोपी पक्षकार संख्या-3 व 4 ने आवेदक से नकद एवं चेक राशि सौंपने को कहा, जिस पर तहसील परिसर में गवाहों ज्ञान चंद एवं अनिल की उपस्थिति में चेक संख्या-227225 एवं 227226 की क्रमशः 2,50,000/- एवं 3,00,000/- रुपये तथा 4 लाख रुपये की नगद राशि प्रतिपक्षी संख्या-3-जमुना प्रसाद को सौंपी गई। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने चेक और नकदी लेने के बाद प्रतिपक्षी संख्या-4 को सौंप दिया और उसे गिनने के लिए कहा। इस बीच, वह विलेख पर अपने हस्ताक्षर कर रहा था। प्रतिपक्षी संख्या-4 गुड्डो मिश्रा ने चेक और नकदी ले ली और रजिस्ट्रार के सामने विलेख की फोटो कॉपी पर हस्ताक्षर और अंगूठे का निशान लगाने के समय, आरोपी-प्रतिपक्षी संख्या-3 जमुना प्रसाद ने इसे टाल दिया और गुड्डो मिश्रा के आने का इंतजार करने के लिए कहा। इस बीच प्रतिपक्षी संख्या-3 भी इस बहाने चला गया कि वह गुड्डो मिश्रा के सामने पक्ष संख्या-3 को ढूँढने जा रहा है, लेकिन वह देर शाम तक वापस नहीं लौटा। अगले दिन, आवेदक ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 का पता लगाया था, जिन्होंने उसे गाली दी और जाति सूचक शब्दों का इस्तेमाल किया और उन्हें पैसे भूल जाने की धमकी दी, जिसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़े। उपरोक्त घटना के संबंध में, आवेदक ने थानाध्यक्ष, थाना-सोरांव, जिला इलाहाबाद के समक्ष एक आवेदन दिया था, लेकिन कुछ भी नहीं किया गया था, इसलिए आवेदक ने पंजीकृत डाक के माध्यम से वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, प्रयागराज के समक्ष दिनांक 12.08.2021 को एक आवेदन भेजा, हालांकि कुछ भी नहीं किया गया और इस प्रकार आवेदक को विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, इलाहाबाद के समक्ष धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर करने के लिए मजबूर किया गया जिसे दिनांक 12.10.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

(5) <u>आवेदन धारा 482 के तहत - 6688 वर्ष 2022 टी</u>

प्रस्तुत आवेदन में विषय वस्तु उपरोक्त आवेदनों से अलग है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनजाने में इसे प्रस्तुत मामले से गलत तरीके से जोड़ा गया है।

(6) आपराधिक पुनरीक्षण सं- 2363 वर्ष 2021

प्रस्तुत पुनरीक्षण में विषय वस्तु भी उपरोक्त आवेदनों से अलग है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनजाने में इसे प्रस्तुत मामले से गलत तरीके से जोड़ा गया है।

आवेदक के अधिवक्ता श्री एस.बी. सिंह ने प्रस्तुत किया कि विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), सोनभद्र द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.1.2021 धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को शिकायत मामले के रूप में मानते हुए कानून के खिलाफ है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आवेदक प्राथमिकी के

पंजीकरण के लिए एक प्रथम दृष्टया मामला बनाता है, लेकिन निचली अदालत ने इस पर विचार किए बिना धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को शिकायत मामले में बदलने का आदेश पारित किया है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि यदि एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत अपराध करने से संबंधित जानकारी, यदि थाना के प्रभारी अधिकारी को मौखिक रूप से दी जाती है, तो उसे लिखित रूप में या उसके निर्देशन में किया जाना चाहिए और सूचनादाता को पढ़ा जाना चाहिए और ऐसी हर जानकारी चाहे लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त के रूप में लिखित रूप में कम की गई हो, इसे देने वाले व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा और उसके पदार्थ को उक्त थाना द्वारा रखी गई पुस्तक में दर्ज किया जाएगा। इस मामले में, शिकायतकर्ता ने मामला दर्ज करने के लिए धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसे खारिज कर दिया गया था। दूसरी ओर, निचली अदालत ने मामले को शिकायत का मामला मानकर अवैधता की है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि विशेष न्यायाधीश को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत अपराध के खिलाफ धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को शिकायत मामले में बदलने का अधिकार नहीं है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि प्राथमिकी थाना के संबंधित अधिकारी द्वारा दर्ज की जानी चाहिए थी। वह आगे प्रस्तुत करता है कि विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत है। उन्होंने यह भी कहा कि घटना की सूचना मिलने पर पुलिस अधिकारियों पर एक विशेष कर्तव्य लगाया गया है कि वे प्राथमिकी दर्ज करें और ऐसा करने में विफल रहने की स्थिति में, अधिनियम की धारा 4 के तहत सजा देने का प्रावधान किया गया है।

दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मामले के तथ्यात्मक और कानूनी पहलुओं पर विचार करने के बाद कानून के अनुसार आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं और इस प्रकार आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं है। अपर शासकीय अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि धारा 190 द०प्र०स० मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान प्रदान करती है और उप-धारा (1)(ए) प्रदान करती है कि प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट और उप-धारा (2) के तहत इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट तथ्यों की शिकायत प्राप्त करने पर किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है जो ऐसे अपराधों का गठन करता है।

दूसरी ओर, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14 में पुनरीक्षण के बाद, विशेष न्यायाधीश को शक्तियां प्रदान की गई हैं और इसलिए धारा 190(1)(ए) द०प्र०स० वर्जित है और एस.सी./एस.टी. के मामले में, उपरोक्त पुनरीक्षण के कारण संज्ञान लेने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट की शक्तियां समाप्त हो गई हैं।

अब इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह देखना है कि क्या मजिस्ट्रेट एस.सी./एस.टी.

अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का सीधे संज्ञान ले सकता है या यह अधिनियम की धारा 14 के तहत गठित विशेष न्यायालय है, जिसके पास एस.सी./एस.टी. अधिनियम, संशोधित अधिनियम 2015(अधिनियम संख्या-1 वर्ष 2016) के प्रावधानों में किए गए पुनरीक्षण के मद्देनजर संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र है और इस न्यायालय के समक्ष दूसरा प्रश्न है, क्या विशेष न्यायाधीश धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को शिकायत के मामले के रूप में मान सकते हैं या नहीं।

अब, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के प्रावधानों के आलोक में, जैसा कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 2015 [अधिनियम 1 वर्ष 2016] द्वारा संशोधित किया गया है, पूर्वोक्त मुद्दे को हल करने के लिए, अधिनियम की धारा 2 (डी) में परिभाषित 'विशेष न्यायालय' शब्द की परिभाषा का अध्ययन करना आवश्यक है, जो इस प्रकार है:

"विशेष न्यायालय से धारा 14 में विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट सत्र न्यायालय अभिप्रेत है।"

पुनरीक्षण अधिनियम वर्ष 2015 से पहले अधिनियम की धारा 14 इस प्रकार थी:

"14. विशेष न्यायालय-- शीघ्र विचारण का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रत्येक जिले के लिए इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए एक विशेष न्यायालय होने के लिए एक सत्र न्यायालय विनिर्दिष्ट करेगी।

उक्त प्रावधान को पढ़ने से संकेत मिलता है कि सत्र न्यायालय को एक विशेष न्यायालय के रूप में अधिसूचित किया जाएगा। एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14 में पुनरीक्षण अधिनियम (1 वर्ष 2016) द्वारा भारी पुनरीक्षण किया गया था।

धारा 14 को अब पूरी तरह से नए प्रावधान से बदल दिया गया है। इस प्रकार, अधिनियम की संशोधित धारा 14 इस प्रकार है:

(1) शीघ्र विचारण का उपबंध करने के प्रयोजन के लिये, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक जिलों के लिये एक अनन्य विशेष न्यायालय की स्थापना करेगी:

परन्तु उन जिलों में जहां इस अधिनियम के अधीन कम मामले अभिलिखित किए जाते हैं, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे जिलों के लिए विनिर्दिष्ट करेगी कि सत्र न्यायालय इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालय होगा:

परंतु यह और कि इस प्रकार स्थापित या विनिर्दिष्ट न्यायालयों को इस अधिनियम के अधीन अपराधों का प्रत्यक्ष संज्ञान लेने की शक्तियां होंगी।

इस प्रकार धारा 14(1) में, शीघ्र विचारण का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, राज्य

सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, एक या अधिक जिलों के लिए एक अनन्य विशेष न्यायालय की स्थापना करेगी:

परन्तु उन जिलों में जहां इस अधिनियम के अधीन कम मामले अभिलिखित किए जाते हैं, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे जिलों के लिए विनिर्दिष्ट करेगी कि सत्र न्यायालय इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालय होगा:

बशर्ते कि इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालयों को संशोधित प्रावधानों के मद्देनजर इस अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्तियां होंगी, विशेष अदालत के साथ-साथ विशेष न्यायालय अधिनियम के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए मूल क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेंगे और धारा 193 द०प्र०स० द्वारा बाधित नहीं होने वाले मामले की सुनवाई के साथ आगे बढ़ेंगे। उक्त विशेष न्यायालयों को मूल रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार नहीं था, क्योंकि विशेष न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 द्वारा बाधित किया गया था, जैसा कि अधिनियम की धारा 14 के पहले परंतुक के अनुसार अधिसूचित विशेष न्यायालय के तहत पहले ही बताया गया है। यथा संशोधित, प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता के बिना सीधे संज्ञान लेने की शक्ति मिली है।

इसलिए, यह प्रश्न कि क्या मजिस्ट्रेट एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का सीधे संज्ञान ले सकता है या यह अधिनियम, 1989 की धारा 14 के तहत गठित विशेष न्यायालय है, जिसके पास एस.सी./एस.टी. अधिनियम, संशोधित अधिनियम 2015(अधिनियम संख्या-1 वर्ष 2016) के प्रावधानों में किए गए पुनरीक्षण के मद्देनजर संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र है। इसका उत्तर यह है कि मजिस्ट्रेट को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत अपराध पर विचार करने और संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 14(1) के दूसरे परंतुक के माध्यम से, पूर्वोक्त अधिनियम के तहत गठित विशेष न्यायालयों को 1.1.2016 से इस अधिनियम के तहत सीधे अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है और इसलिए, धारा 190(1)(ए) द०प्र०स० के तहत निहित शक्तियां समाप्त हो गई हैं। तदनुसार उत्तर दिया गया।

इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए दूसरा प्रश्न यह है कि क्या विशेष न्यायाधीश धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को शिकायत के मामले के रूप में मान सकते हैं या नहीं।

उपर्युक्त प्रश्न का निर्धारण करने के लिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम 1995 के नियम 5 का अध्ययन करना आवश्यक है।

5. थाने के प्रभारी पुलिस अधिकारी को सूचना:

(1) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक सूचना, यदि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक रूप से दी जाती है, उसके द्वारा या

उसके निदेशाधीन लिखित रूप में दी जाएगी और सूचनादाता को पढ़कर सुनाई जाएगी और ऐसी प्रत्येक सूचना, चाहे वह पूर्वोक्त रूप में लिखित रूप में दी गई हो या लिखित रूप में रिकार्ड की गई हो, इसे देने वाले व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा, और उसके पदार्थ को उस थाने द्वारा बनाए रखने के लिए एक पुस्तक में दर्ज किया जाएगा।

(2) उपर्युक्त उपनियम (1) के अधीन इस प्रकार अभिलिखित सूचना की एक प्रति, सूचनादाता को तत्काल निःशुल्क दी जाएगी।

(3) उपनियम (1) में निर्दिष्ट सूचना अभिलिखित करने के लिए किसी थाने के भारसाधक अधिकारी की ओर से इंकार किए जाने से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसी सूचना का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकेगा, जो स्वयं या पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के किसी पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण करने के पश्चात् संबंधित थाने के प्रभारी अधिकारी को लिखित रूप में एक आदेश देगा कि वह उस जानकारी के सार को दर्ज करे जिसे थाने द्वारा बनाए रखे जाने वाली पुस्तक में दर्ज किया जाए।

यदि कोई कार्रवाई नहीं की जाती है तो पीड़ित व्यक्ति को विशेष/अनन्य विशेष न्यायाधीश, जैसा भी मामला हो, के समक्ष शिकायत दर्ज करके एस.सी./एस.सी. अधिनियम की धारा 15(9) के तहत अपनी शिकायत के निवारण का अधिकार है, जो शिकायत को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 21(iv) के साथ नियम 4(4) और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति नियमों के नियम 17 के साथ पठित पर्यवेक्षी प्रशासनिक समिति को भेजेगा जिसे शासकीय अधिवक्ता आर 424(ई) दिनांक 14.04.2016 (14.04.2016?) से द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) पुनरीक्षण अधिनियम 2018 द्वारा संशोधित धारा 18ए(1)(ए) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 निम्नलिखित शब्दों में है: -

"18क- कोई पूछताछ या अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है - (1) इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए (क) किसी भी व्यक्ति के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण के लिए प्रारंभिक जांच की आवश्यकता नहीं होगी।

चूंकि अधिनियम की धारा 18ए के तहत किसी व्यक्ति के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए कोई पूछताछ या अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है और यदि प्राथमिकी दर्ज नहीं की जाती है, तो अधिनियम की धारा 4(1) में नियमों की धारा 5(3) के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन करने के बाद अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने पर लोक सेवक को सजा देने का प्रावधान है। अधिनियम की धारा 4(1) निम्नानुसार है: -

"4(1) जो कोई लोक सेवक होते हुए किंतु अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन उसके द्वारा किए जाने अपेक्षित अपने कर्तव्यों की जानबूझ कर उपेक्षा करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से अन्यून होगी किंतु जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा।

4(2) उपधारा (1) में लोक सेवक के कर्तव्यों में निम्नलिखित शामिल होंगे-

(क) सूचनादाता के हस्ताक्षर लेने से पहले थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा मौखिक रूप से दी गई और लिखित रूप में दी गई सूचना को सूचनाकर्ता को पढ़ना;

(ख) इस अधिनियम और अन्य सुसंगत उपबंधों के अधीन शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना और उसे इस अधिनियम की समुचित धाराओं के अधीन पंजीकृत करना;

(ग) इस प्रकार अभिलिखित सूचना की एक प्रति सूचनादाता को तत्काल उपलब्ध कराना;

(घ) पीड़ितों या गवाहों के बयान दर्ज करना;

(ङ) साठ दिन की अवधि के भीतर विवेचना करना और विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करना और विलंब, यदि कोई हो, लिखित में स्पष्टीकरण देना।

(च) किसी दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड को सही ढंग से तैयार करना, फ्रेम करना और अनुवाद करना;

(छ) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों में विनिर्दिष्ट किसी अन्य कर्तव्य का पालन करना।

अधिनियम की धारा 4(3) में यह प्रावधान है कि किसी लोक सेवक द्वारा उपधारा (2) में निर्दिष्ट कर्तव्य की किसी भी लापरवाही के संबंध में संज्ञान विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय द्वारा लिया जाएगा और ऐसे लोक सेवक के खिलाफ दंडात्मक कार्यवाही के लिए निर्देश देगा।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) पुनरीक्षण अधिनियम, 2018 द्वारा संशोधित एस.सी./एस.टी. नियम 1995 के नियम-5 पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट होता है कि अधिनियम के तहत अपराध करने से संबंधित प्रत्येक जानकारी, यदि थाने के प्रभारी अधिकारी को मौखिक रूप से दी जाती है, तो उसे लिखित में किया जाएगा क्योंकि अधिनियम की धारा 18ए के तहत कोई रोक नहीं है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण के लिए प्रारंभिक जांच या अनुमोदन की आवश्यकता है और पुलिस अधिकारी द्वारा लिखित रूप में ऐसी जानकारी को कम करने से इनकार करने पर, पीड़ित व्यक्ति लिखित रूप में और डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को एक आवेदन प्रस्तुत कर सकता है, जो या तो स्वयं या पुलिस उपाधीक्षक के रैंक से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा उस थाने द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में दर्ज की जाने वाली जानकारी का सार लिखित रूप में प्रविष्टि करने के लिए संबंधित थाने के प्रभारी अधिकारी को एक आदेश देग। इसके अलावा, यदि शिकायत का निवारण नहीं किया जाता है, तो पीड़ित व्यक्ति लोक सेवक के खिलाफ अधिनियम की धारा 4 के तहत दंडित करने के लिए, लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने के लिए, लेकिन अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होने के कारण विशेष अदालत या विशेष विशेष अदालत में जा सकता है। यहां तक कि अगर शिकायत का निवारण नहीं किया जाता है, तो पीड़ित व्यक्ति एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 15(9) के तहत विशेष/अनन्य विशेष न्यायाधीश के समक्ष शिकायत दर्ज कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 4 के

प्रावधानों के अनुसार प्रभारी अधिकारी को दंडित करने के लिए एस.सी./एस.टी. अधिनियम नियम 4(4) और नियम (17) की धारा 21(iv) के तहत गठित प्रशासनिक समिति के समक्ष मामले को संदर्भित करेगा।

इसलिए, दूसरे प्रश्न का उत्तर कि क्या विशेष न्यायाधीश धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को शिकायत का मामला मान सकते हैं या नहीं? संशोधित अधिनियम के नियम 5(1) के मद्देनजर उत्तर 'नहीं' है।

वर्तमान में मामला यह है कि आपराधिक विविध आवेदन में धारा 482 द०प्र०स० सं 12864 वर्ष 2021 के तहत आवेदन किया गया है। जो प्रमुख मामला है, विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम सोनभद्र ने दिनांक 19.01.2021 के आदेश के माध्यम से धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन को एक शिकायत मामले के रूप में माना है, जो न्यायालय की राय में कानून की नजर में मान्य नहीं है।

दूसरा और तीसरा मामला धारा 482 द०प्र०स० संख्या-27758 और 27812 वर्ष 2021 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन है, जिसमें आरोपी व्यक्तियों/आवेदकों ने विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. एक्ट), अमरोहा और जिला जालौन द्वारा पारित दिनांक 19.10.2021 और 29.10.2021 के सम्मन आदेश को चुनौती दी है, जहां तक यह आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज न करने से संबंधित है, कार्यवाही अब तक पोषणीय नहीं है।

इस न्यायालय के समक्ष जुड़े चौथे मामले में धारा 482 संख्या-4382 वर्ष 2012 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन है, शिकायतकर्ता ने विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी अधिनियम) इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश 12.10.2021 को चुनौती दी है जिसके द्वारा धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन खारिज कर दिया गया है। न्यायालय की सुविचारित राय में ये आदेश भी टिकाऊ नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त चार आवेदनों की अनुमति दी जाती है और पूर्वोक्त मामले की कार्यवाही को प्रथम सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता को लिखित रूप में अपनी जानकारी दर्ज करने के लिए संबंधित थानाध्यक्ष से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ रद्द कर दिया जाता है जैसा कि नियमों की धारा 5(1) के तहत प्रदान किया गया है और यदि संबंधित पुलिस अधिकारी द्वारा लिखित रूप में उक्त जानकारी को रिकार्ड नहीं किया जाता है, तो प्रथम सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता नियमों की धारा 5(3) के तहत संबंधित पुलिस अधीक्षक के समक्ष उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत कर सकता है और यह आशा की जाती है कि पुलिस अधीक्षक नियमों की धारा 5(3) का अनुपालन करेंगे।

यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन की विषय वस्तु धारा 482 संख्या -- 6688 वर्ष 2022 के तहत है, साथ-साथ आपराधिक पुनरीक्षण संख्या- 2363 वर्ष 2021 उपरोक्त आवेदनों से अलग हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि असावधानी के कारण दोनों को गलत तरीके से जोड़ा गया है और इस प्रकार इन्हें अन-टैग किया जा रहा है और उचित न्यायालय के समक्ष 13.04.2022 को नए रूप में सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया है।

(2023) 5 ILRA 398

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 25838/2022

अब्बास अंसारी और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री उपेन्द्र उपाध्याय, श्री अनिल तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

ए. **आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता -धारा 153-ए -धर्म, जाति आदि के आधार पर दुश्मनी को बढ़ावा देने का अपराध- अपराध का गठन - इरादा-प्रासंगिकता - सार्वजनिक बैठक में आपत्तिजनक शब्द बोले गए थे - कार्यवाही निरस्त करने की मांग की गई - अनुमति - माना गया, लोगों को हिंसा के लिए उकसाने या अव्यवस्था पैदा करने की मंशा साबित करने का सवाल अभियोजन पक्ष द्वारा सबूत पेश करके परीक्षण के दौरान साबित किया जाना है। हालाँकि, अगर प्रथम दृष्टया, कार्य, संकेत या शब्दों में सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने की प्रवृत्ति है, तो कार्यवाही रद्द नहीं की जा सकती - आगे कहा गया कि जिस संदर्भ और आशय से सार्वजनिक बैठक में आपत्तिजनक शब्द बोले गए थे, उसे देखते हुए इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 153-ए के तहत अपराध नहीं बनता है। (पैरा 14 और 20)**

बी. भारतीय संविधान, 1950 - प्रस्तावना- राष्ट्र की एकता और अखंडता - आपराधिक कार्यवाही से निपटने में महत्व - माना गया, संविधान की प्रस्तावना जानबूझकर व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता को आश्वस्त करने वाली बंधुता को एक साथ रखती है जो एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं; एक व्यक्ति के अधिकारों के रूप में; और दूसरा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने के लिए दूसरों के प्रति व्यक्ति के दायित्व के रूप में - राष्ट्र की एकता और अखंडता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और न ही इसे कम आंका जा सकता है, क्योंकि ये कार्य विभाजन, अलगाव और षड्यंत्र को बढ़ावा देते हैं या बढ़ावा देने की संभावना रखते हैं। (पैरा 17)

आवेदन निरस्त (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बलवंत सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य; (1995) 3 एससीसी 214;
2. बिलाल अहमद कालू बनाम ए.पी राज्य.; (1997) 7 एससीसी 431;
3. मंजर सईद खान बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2007) 5 एससीसी 1;
4. अमीश देवगन बनाम भारत संघ (2021) 1 एससीसी 1; और
5. श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ (2015) 5 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1.विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी, जिनको याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री उपेंद्र उपाध्याय के द्वारा सहायता दी गयी,

और विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री एम.सी चतुर्वेदी, जिनको राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रत्नेंदु कुमार सिंह के द्वारा सहायता दी गयी, को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान याचिका, अपराध संख्या 97 वर्ष 2002 में दर्ज प्राथमिकी दिनांक 3.3.2022, जो शुरू में थाना-कोतवाली मऊ, जिला मऊ में धारा 506 और 171-एफ भा०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी, के अनुसरण में आरोप पत्र दिनांक 11.5.2022 अन्तर्गत धारा 171-एफ, 506, 186, 189 और 153-ए और 120-बी भा०द०वि० को रद्द करने की मांग के साथ दायर की गई है। आगे आपराधिक मामला संख्या- 9720 वर्ष 2022 में विशेष न्यायाधीश (एम.पी/एम.एल.ए कोर्ट)/अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मऊ द्वारा पारित संज्ञान और समन के आदेश दिनांक 23.5.2022 को रद्द करने के लिए प्रार्थना की गई है।

3. याचिकाकर्ता नंबर-1 द्वारा मऊ सदर निर्वाचन क्षेत्र से विधान सभा सदस्य के लिए अपने चुनाव अभियान के दौरान एक सार्वजनिक बैठक में एक बयान देने के बाद, प्रश्नगत प्राथमिकी दर्ज की गयी। याचिकाकर्ता नंबर-1 मार्च, 2022 में सुहेलदेव भारतीय समाज पार्टी के टिकट पर उक्त एलिसिटेशन का चुनाव लड़ रहा था। याचिकाकर्ता नंबर-1 द्वारा दिए गए बयान का आपत्तिजनक हिस्सा ये है: *"समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अखिलेश यादव जी से यह कह कर आया हूं की 6 महीने तक किसी का ट्रांसफर पोस्टिंग नहीं होगी। भइया जो यहां है वह यहां ही रहेगा पहले हिसाब किताब होगा उसके बाद उसके जाने के सर्टिफिकेट पर मुहर लगाया जाएगा।"*

4. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि उक्त बयान किसी भी तरह से धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध गठित नहीं करेगा। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध का गठन करने के लिए, बयान देने वाले व्यक्ति का अव्यवस्था पैदा करने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने का इरादा होना चाहिए। यहां तक कि अगर यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता नंबर-1 ने उक्त बयान दिया था, तो बयान सरकारी लोगों के प्रति निर्देशित किया गया था, न कि किसी सदस्य, धर्म, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के खिलाफ। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि धारा 153-ए भा०द०वि० के प्रावधानों को उचित परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है, तो उक्त अपराध याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आपत्तिजनक बयान देने के लिए नहीं माना जायेगा और इसलिए, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध के लिए संज्ञान लेना पूरी तरह से अवैध है और कम से कम उस हद तक संज्ञान आदेश कानून में त्रुटिपूर्ण है और रद्द करने योग्य है।

5. अपने उक्त तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

1. बलवंत सिंह और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य; *(1995) 3 एस.सी.सी 214*

2. बिलाल अहमद कालू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य; *(1997) 7 एस.सी.सी 431*

3. मंजर सईद खान बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2007) 5 एस.सी.सी 1

*4. **अमीश देवगन बनाम भारत संघ और अन्य;** (2021) 1 एस.सी.सी 1 और*

*5. **श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ;** (2015) 5 एस.सी.सी 1*

6. दूसरी ओर, श्री एम.सी चतुर्वेदी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विवेचनाधिकारी ने एक रिपोर्ट तैयार की है, जिसे 3.5.2022 को याचिकाकर्ता नंबर-1 के खिलाफ अभियोजन की मंजूरी के लिए सरकार को भेजा गया था। इसके बाद, 11.5.2022 को दोनों याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। सरकार ने 24.8.2022 को दोनों याचिकाकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन को मंजूरी दी थी और उक्त मंजूरी आदेश को परचा सीडी नंबर-11 की केस डायरी में शामिल किया गया है और 02.09.2022 को अग्रेषित किया गया है।

7. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता नंबर-1 पर इसी तरह के सात मामले भी हैं जिसमें वर्तमान मामला भी शामिल है, और याचिकाकर्ता नंबर-2 पर वर्तमान सहित पांच आपराधिक मामले हैं। याचिकाकर्ता नंबर-1 द्वारा आपत्तिजनक बयान देने के बाद, 356 मऊ विधानसभा क्षेत्र के रिटर्निंग अधिकारी ने याचिकाकर्ता नंबर-1 को दिनांक 4.3.2022 को एक नोटिस भेजा, जिसमें उनसे अपना जवाब प्रस्तुत करने के लिए कहा गया कि क्यों न उनके खिलाफ जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत कार्रवाई की जाए। हालांकि, याचिकाकर्ता नंबर-1 ने रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा जारी उक्त नोटिस का कोई जवाब नहीं दिया। भारत निर्वाचन आयोग ने याचिकाकर्ता नंबर-1 को 4.3.2022 से शाम 7 बजे से 24 घंटे के लिए चल रहे चुनाव के संबंध में किसी भी सार्वजनिक बैठक, सार्वजनिक जुलूस, सार्वजनिक रैलियों, रोड शो और साक्षात्कार, मीडिया (इलेक्ट्रॉनिक, प्रिंट, सोशल मीडिया) आदि में सार्वजनिक बयानों को आयोजित करने से रोक दिया था।

8. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता नंबर-1 द्वारा दिया गया आपत्तिजनक बयान न केवल सरकारी मशीनरी के खिलाफ निर्देशित था, बल्कि यह कानून का पालन करने वाले और शांतिप्रिय नागरिकों/समुदायों के खिलाफ भी निर्देशित था, जो याचिकाकर्ता नंबर-1 और उसके परिवार और अन्य सह-आरोपियों के अत्याचारों और अपराधों से राज्य में तत्कालीन सरकार के तहत संरक्षित महसूस कर रहे थे। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि राज्य सरकार ने किसी भी राजनीतिक दबाव से प्रभावित हुए बिना कानून और व्यवस्था को संभालने के लिए राज्य मशीनरी को पूर्ण स्वतंत्रता दी हुई थी। सरकारी अधिकारियों ने किसी भी पक्ष के दबाव में आए बिना कानून के अनुसार काम किया था और इसलिए, उक्त निर्वाचन क्षेत्र के निवासियों, जो याचिकाकर्ताओं के समर्थक नहीं थे, को सरकारी अधिकारियों को धमकी दी गई और असुरक्षित महसूस कराया गया। न केवल सरकारी अधिकारी बल्कि वे सभी जो सुरक्षित महसूस कर रहे थे, याचिकाकर्ताओं द्वारा दी गई खुली धमकी से

उनको भय महसूस हुए। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्पष्ट रूप से धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध बनता है।

9. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि इशारा, भाषा और संदर्भ यह देखने के लिए प्रासंगिक हैं कि धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध लागू होता है या नहीं। यदि कोई सार्वजनिक बैठक में याचिकाकर्ता नंबर-1 द्वारा दिए गए बयान की वीडियो रिकॉर्डिंग को देखता है, तो चेतावनी सरकारी अधिकारियों के खिलाफ नहीं थी, बल्कि यह उन सभी लोगों के खिलाफ थी जो तत्कालीन राज्य सरकार के तहत संरक्षित और सुरक्षित महसूस कर रहे थे। याचिकाकर्ता नंबर-1 को यकीन था कि श्री अखिलेश यादव के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी की सरकार उत्तर प्रदेश राज्य में सत्ता की सीट पर कब्जा कर लेगी और इसलिए उसने धमकी भरा बयान दिया, जिसमें सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने की प्रवृत्ति है। इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ताओं के खिलाफ बनता है और इस न्यायालय द्वारा कार्यवाही को रद्द करने के लिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, और याचिका योग्यता रहित होने के कारण, खारिज करने योग्य है।

10. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

11. तर्क के लिए, धारा 153-ए भा०द०वि० निम्नानुसार पढ़ती है: -

"153-क. धर्म, जाति, जन्म स्थान, निवास, भाषा आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देना और सद्भाव बनाए रखने के प्रतिकूल कार्य करना। *(1) जो कोई भी -*

(क) बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य अभ्यावेदनों द्वारा या अन्यथा धर्म, मूलवंश, जन्म स्थान, निवास, भाषा, जाति या समुदाय या किसी अन्य आधार पर, विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच वैमनस्य, घृणा या द्वेष की भावनाओं को बढ़ावा देता है या बढ़ावा देने का प्रयास करता है, या

(ख) कोई ऐसा कार्य करेगा जो विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच सौहार्द बनाए रखने के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण है और जो सार्वजनिक शांति को बाधित करता है या उससे व्यवधान उत्पन्न होने की संभावना है,

(ग) किसी भी व्यायाम, आंदोलन, ड्रिल या अन्य समान गतिविधि का आयोजन करता है कि इस तरह की गतिविधि में भाग लेने वाले आपराधिक बल या हिंसा का उपयोग करने के लिए उपयोग करेंगे या प्रशिक्षित होंगे या यह जानते हुए कि ऐसी गतिविधि में भाग लेने वाले आपराधिक बल या हिंसा का उपयोग करेंगे या प्रशिक्षित होंगे, या आपराधिक बल या हिंसा का उपयोग करने या प्रशिक्षित होने के इरादे से ऐसी गतिविधि में भाग लेते हैं या यह जानते हुए कि यह संभावना है कि ऐसी गतिविधि में भाग लेने वाले किसी भी धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूह या जाति या समुदाय के खिलाफ आपराधिक बल या हिंसा

का उपयोग करेंगे या प्रशिक्षित होंगे और ऐसी गतिविधि किसी भी कारण से भय या असुरक्षा की भावना पैदा करती है या ऐसे धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूह या जाति या समुदाय के सदस्यों के बीच असुरक्षा की भावना पैदा करने की संभावना है, उसको कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

(2) पूजा के स्थान आदि में किया गया अपराध - जो कोई उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई अपराध किसी पूजा के स्थान में या धार्मिक पूजा या धार्मिक अनुष्ठानों के प्रदर्शन में लगी किसी सभा में करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

12. धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध लागू हो सकता है/बनता है जहां कोई व्यक्ति शब्दों, या तो बोले गए, या लिखित, या संकेतों द्वारा या दृश्य अभ्यावेदन द्वारा या अन्यथा, धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, निवास, भाषा, जाति या समुदाय या किसी अन्य आधार, जो भी हो, असामंजस्य या शत्रुता की भावनाओं के आधार पर बढ़ावा देता है या बढ़ावा देने का प्रयास करता है, विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच घृणा या द्वेष या कोई ऐसा कार्य करता है जो विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच सद्भाव के रखरखाव के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण है, और जो सार्वजनिक शांति को भंग करता है या बिगाड़ने की संभावना रखता है। यदि बयान या संकेत या अभ्यावेदन में लोगों को हिंसा के लिए उकसाने की प्रवृत्ति है, तो धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध बनता है।

13. बलवंत सिंह (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि अव्यवस्था पैदा करने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने का इरादा धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध के बनने के लिए अनिवार्य है और अभियोजन पक्ष को सफल होने के लिए मेन्स रिया के अस्तित्व को साबित करना होगा। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 9 निकालने के लिए उपयुक्त होगा, जो निम्नानुसार है: -

"9. जहां तक धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध का संबंध है, यह धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, निवास, भाषा, जाति या समुदाय या किसी अन्य आधार पर विभिन्न समूहों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देने के लिए सजा का प्रावधान करता है या विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषाई या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच असामंजस्य या घृणा या द्वेष की भावना पैदा करता है। हमारी राय में केवल जहां लिखित या बोले गए शब्दों में सार्वजनिक अव्यवस्था या कानून और व्यवस्था की गड़बड़ी पैदा करने या सार्वजनिक शांति को प्रभावित करने की प्रवृत्ति या इरादा है, वहां कानून को ऐसी गतिविधि को रोकने के लिए कदम उठाने की आवश्यकता है। इस मामले के तथ्य और परिस्थितियां स्पष्ट रूप से दिखाती हैं कि अपीलकर्ताओं की गतिविधियों के कारण नारे लगाते समय, जहां से अपीलकर्ताओं को पकड़ा गया था, उस क्षेत्र में कानून और व्यवस्था या सार्वजनिक व्यवस्था या शांति की गड़बड़ी की कोई झलक नहीं थी। अव्यवस्था

पैदा करने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने का इरादा धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध का बनना अनिवार्य है और अभियोजन पक्ष को सफल होने के लिए मेन्स रिया के अस्तित्व को साबित करना होगा। इस मामले में, अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं की ओर से कोई मेन्स रिया स्थापित करने में सक्षम नहीं रहा है, जैसा कि धारा 153-ए भा०द०वि० के प्रावधानों द्वारा परिकल्पित है, उनके द्वारा तीन बार लापरवाही से कुछ नारे लगाए गए। इसलिए धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध नहीं बनता है।

14. इस प्रकार, लोगों को हिंसा के लिए उकसाने या अव्यवस्था पैदा करने के लिए मेन्स रिया साबित करने का सवाल अभियोजन पक्ष द्वारा प्रमुख साक्ष्य द्वारा विचारण के दौरान साबित किया जाना है। हालांकि, यदि प्रथम दृष्टया कृत्य, संकेत या शब्दों में सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने की प्रवृत्ति है, तो कार्यवाही शुरुआत में ही रद्द नहीं किया जा सकता है।

15. बिलाल अहमद कालू (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने बलवंत सिंह (उपरोक्त) के फैसले पर भरोसा करते हुए फिर से दोहराया है कि धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध के लिए मेंस रिया एक समान रूप से आवश्यक शर्त है और इसे "बनाने के इरादे से, बढ़ावा देने के इरादे से, या जो बनाने या बढ़ावा देने की संभावना है" शब्दों से पहचाना जा सकता है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 10 और 11 जो प्रासंगिक होंगे, निम्नानुसार पढ़ेंगे: -

"10. धारा 153-ए को आपराधिक और चुनाव कानून (संशोधन) अधिनियम, 1969 (अधिनियम संख्या 35 वर्ष 1969) द्वारा संशोधित किया गया था। इसमें तीन खंड होते हैं जिनमें से खंड (ए) और (बी) अकेले अब प्रासंगिक हैं। उसी संशोधन अधिनियम द्वारा दंड संहिता, 1860 की धारा 505 में उप-धारा (2) जोड़ी गई थी। धारा 153-A और धारा 505 (2) के खंड (a) और (b) नीचे दिए गए हैं:

"153-ए. धर्म, जाति, जन्म स्थान, निवास, भाषा आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देना और सद्भाव बनाए रखने के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण कार्य करना। (1)- जो कोई

(क) बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा या दृश्य अभ्यावेदन द्वारा या अन्यथा, धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, निवास, भाषा, जाति या समुदाय या किसी अन्य आधार पर, विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच वैमनस्य, घृणा या द्वेष की भावनाओं को बढ़ावा देता है या बढ़ावा देने का प्रयास करता है।

(ख) ऐसा कोई कार्य करेगा जो विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच सामंजस्य बनाए रखने के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण है, और जो सार्वजनिक शांति को बाधित करता है या बिगाड़ने की संभावना रखता है, या

*(ग) ****

कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

505. (2) वर्गों के बीच शत्रुता, घृणा या द्वेष पैदा करने या बढ़ावा देने वाले कथन -- जो कोई भी धर्म, मूलवंश, जन्म स्थान, निवास, भाषा, जाति या समुदाय या किसी अन्य आधार पर बनाने या बढ़ावा देने के इरादे से अफवाह या खतरनाक खबर वाले किसी बयान या रिपोर्ट को बनाता है, प्रकाशित करता है या प्रसारित करता है, या जो भी पैदा करने या बढ़ावा देने की संभावना है, विभिन्न धर्म, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा या द्वेष की भावनाओं को भड़काता है, वह कारावास से, जो तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

दोनों अपराधों में एक समान घटक विभिन्न धार्मिक या नस्लीय या भाषाई या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा या द्वेष की भावना को बढ़ावा देना है। धारा 153-ए में ऐसे मामले को शामिल किया गया है जहां कोई व्यक्ति "बोले गए या लिखे गए शब्दों, या संकेतों या दृश्य अभ्यावेदन द्वारा" ऐसी भावना को बढ़ावा देता है या बढ़ावा देने का प्रयास करता है। धारा 505 (2) के तहत, ऐसी भावनाओं को बढ़ावा देने के लिए अफवाह या खतरनाक खबर वाले किसी भी बयान या रिपोर्ट को प्रकाशित या प्रसारित किया जाना चाहिए।

11. इस न्यायालय ने बलवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1995) 3 एस.सी.सी 214: 1995 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 432] में माना है कि धारा 153-ए के तहत अपराध के लिए मेंस रिया एक आवश्यक घटक है। धारा 505 (2) के तहत अपराध के लिए मेंस रीआ एक समान रूप से आवश्यक अभिधारणा है, जैसा कि उस उप-धारा में उपयोग किए गए "बनाने या बढ़ावा देने के इरादे से या जो बनाने या बढ़ावा देने की संभावना है" शब्दों से समझा जा सकता है।

16. मंजर सईद खान (उपरोक्त) के मामले में, यह माना गया है कि अव्यवस्था पैदा करने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने का इरादा धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध का अनिवार्य घटक है और अभियोजन पक्ष को प्रथम दृष्टया साबित करना होगा कि अभियुक्त की ओर से मेन्स रिया का अस्तित्व है। साक्ष्य का सवाल केवल विचारण के समय ही उठेगा और इसे आवश्यक साक्ष्य को प्रस्तुत करके साबित किया जा सकता है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 16 जो प्रासंगिक होगा, निम्नानुसार पढ़ा जाएगा: -

"16. धारा 153-ए, जैसा कि यहां ऊपर उद्धृत है, एक ऐसे मामले को शामिल करती है जहां कोई व्यक्ति बोले गए या लिखे गए शब्दों, संकेतों द्वारा या दृश्य अभ्यावेदन द्वारा या अन्यथा, विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषा या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा या द्वेष की भावनाओं को बढ़ावा देता है या बढ़ावा देने का प्रयास करता है या सद्भाव बनाए रखने के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण कार्य करता है या सार्वजनिक शांति भंग करने की संभावना रखता है। अपराध का सार विभिन्न वर्गों के लोगों के बीच शत्रुता या घृणा की

भावनाओं को बढ़ावा देना है। अव्यवस्था पैदा करने या लोगों को हिंसा के लिए उकसाने का इरादा धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध का बनना अनिवार्य है और अभियोजन पक्ष को प्रथम दृष्टया अभियुक्त की ओर से मेन्स रिया के अस्तित्व को साबित करना होता है। आशय मुख्य रूप से पुस्तक की भाषा और उन परिस्थितियों से आंका जाना चाहिए जिनमें पुस्तक लिखी और प्रकाशित की गई थी। धारा 153-ए के दायरे में शिकायत किए गए मामले को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। कोई आरोप साबित करने के लिए कड़े शब्दों और अलग-थलग अंशों पर भरोसा नहीं कर सकता है और न ही वास्तव में कोई यहां एक वाक्य और वहां एक वाक्य ले सकता है और उन्हें अनुमानित तर्क की सावधानीपूर्वक प्रक्रिया से जोड़ सकता है।

17. संविधान की प्रस्तावना सचेत रूप से व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने वाले बंधुत्व को एक साथ रखती है जो जुड़ी हुई हैं; व्यक्तियों के अधिकारों के रूप में एक रखती है; और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने के लिए दूसरों के प्रति व्यक्तिगत दायित्व के रूप में भी। राष्ट्र की एकता और अखंडता को अनदेखा और कम नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे कार्य जो विभाजन, अलगाव और योजनावाद को बढ़ावा देते हैं या बढ़ावा देने की संभावना रखते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विविधता और बहुलवाद पर अतिक्रमण करते हैं। जब इस तरह के कृत्य सार्वजनिक अव्यवस्था पैदा करने या लक्षित समूहों की गरिमा को कम करने के उद्देश्य और इरादे से किए जाते हैं, तो उनसे कानून के अनुसार निपटा जाना चाहिए और इस तरह के कृत्य से धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध बनेगा।

18. अमीश देवगन (उपरोक्त) के मामले में सार्वजनिक शांति के संबंध में धारा 153-ए भा०द०वि० के संदर्भ की व्याख्या करते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने उक्त निर्णय के पैराग्राफ 98 में निम्नानुसार अवधारित किया: -

"98. धारा 153-ए (1) (बी) के संदर्भ में हम यह मानेंगे कि सार्वजनिक शांति, तीन साल तक के कारावास की सजा के रूप में परिणाम की प्रकृति को देखते हुए, सार्वजनिक व्यवस्था और सुरक्षा के पर्याय के रूप में सीमित अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए, न कि सामान्य कानून और व्यवस्था के मुद्दे के रूप में, जो बड़े पैमाने पर सार्वजनिक हित को खतरे में नहीं डालते हैं। इसे व्यापक अर्थ नहीं दिया जा सकता है ताकि तर्कसंगतता की आवश्यकता का उल्लंघन किया जा सके जो एक संवैधानिक जनादेश है। इसलिए, संवैधानिक जनादेश को पूरा करने के लिए धारा 153-ए (1) के खंड (बी) को तदनुसार पढ़ा जाना चाहिए। हम खंड (बी) में "सार्वजनिक शांति" शब्दों की व्याख्या एक फ्रांसीसी शब्द का अर्थ करने के लिए करेंगे जिसका अर्थ है विद्रोह, दंगा, अशांति या हिंसा के अपराधों की अनुपस्थिति और इसमें वे सभी कार्य भी शामिल होंगे जो राज्य की सुरक्षा को खतरे में डालेंगे, लेकिन ऐसे कार्य नहीं जो केवल शांति को भंग करते हैं, और कानून और व्यवस्था के तीसरे और व्यापक चक्र द्वारा आच्छादित होते हैं। सार्वजनिक व्यवस्था में

स्थानीय महत्व के कार्य भी शामिल हैं जो विभिन्न प्रकार के आचरण आते हैं या सार्वजनिक व्यवस्था को खतरे में डालते हैं। अनुच्छेद 19 के खंड (2) में सार्वजनिक व्यवस्था और न ही वैधानिक प्रावधान विशेष क्षेत्र की जनसंख्या के संदर्भ में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूहों के बीच कोई अंतर करते हैं, हालांकि जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, यह कुछ प्रासंगिक हो सकता है। जब हम स्थानीय महत्व के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो एक अनुक्रमिक के रूप में हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूह, किसी दिए गए मामले में, स्थानीय क्षेत्र का संदर्भ दे सकते हैं।

19. इसके अलावा, पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 104 से 106 में, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"104. शब्द "प्रयास", हालांकि दंड संहिता की धारा 153-ए और 295-ए में उपयोग किया गया है, पर इसको परिभाषित नहीं किया गया है। हालांकि, न्यायिक व्याख्याएं हैं कि "अपराध का गठन करने का प्रयास" एक कार्य है जो कृत्यों की एक श्रृंखला का हिस्सा है जो इसके वास्तविक आयोग का गठन करेगा लेकिन सिर्फ एक बाधा के लिए। एक प्रयास 'अपराध के वास्तविक कारण' से कम है और 'केवल तैयारी' से अधिक है। अमन कुमार बनाम हरियाणा राज्य [अमन कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2004) 4 एस.सी.सी 379: 2004 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 1266] में यह माना गया था कि 'एक प्रयास' दंडनीय है क्योंकि हर प्रयास, हालांकि यह सफलता से कम हो जाता है, चिंता पैदा करना चाहिए, जो अपने आप में एक नुकसान है, और अपराधी का नैतिक अपराध तभी है जब वह सफल हुआ। सजा को सही ठहराने के लिए नैतिक अपराध को नुकसान से मिलाया जाना चाहिए।

105. इसके अलावा, महाराष्ट्र राज्य बनाम मो. याकूब, (1980) 3 एस.सी.सी 57: 1980 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 513] में इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी पृष्ठ 62, पैरा 13)

"13. ... "प्रयास" का गठन कानून और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न है, जो किसी विशेष मामले की परिस्थितियों पर काफी हद तक निर्भर करता है। "प्रयास" एक सटीक परिभाषा को परिभाषित करता है। मोटे तौर पर, सभी अपराध जिनमें सकारात्मक कृत्यों का कारित किया जाना शामिल है, कुछ गुप्त या प्रकट आचरण से पहले होते हैं जिन्हें तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहला चरण तब मौजूद होता है जब अपराधी पहली बार अपराध करने के विचार या इरादा करता है। दूसरे चरण में, वह इसे करने की तैयारी करता है। तीसरा चरण तब होता है जब अपराधी अपराध करने के लिए जानबूझकर प्रकट कार्य या कदम उठाता है। "आपराधिक" होने के लिए इस तरह के प्रत्यक्ष कार्य या कदम को अपराध के कमीशन की दिशा में अंतिम कार्य नहीं होना चाहिए। यदि इस तरह के कार्य या कार्य जानबूझकर किए गए थे, और अपराध करने के उद्देश्य से अपराध करने का स्पष्ट इरादा प्रकट करते हैं, अपराध की समाप्ति के लिए यथोचित रूप से निकट है, तो यह पर्याप्त है।

106. निकटता के अर्थ लेने पर, यह महाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद याकूब [महाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद याकूब, (1980) 3 एस.सी.सी 57: 1980 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 513] में यह स्पष्ट किया गया था कि निकटता की पैमाइश समय और स्थान के संबंध में नहीं, बल्कि इरादे के संबंध में है।

20. उस संदर्भ और इरादे को ध्यान में रखते हुए, जिसके साथ आपत्तिजनक शब्द एक सार्वजनिक बैठक में बोले गए थे, इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध याचिकाकर्ताओं के खिलाफ लागू नहीं होता है। द०प्र०स० की धारा 482 के तहत शक्ति का दायरा सीमित है, और इसका प्रयोग असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए जहां शिकायत या आरोप पत्र किसी अपराध का खुलासा नहीं करता है। धारा 153-ए भा०द०वि० के तहत अपराध आकर्षित होता है या नहीं, यह मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए साक्ष्य की गुणवत्ता पर निर्भर करेगा। हालांकि, इस स्तर पर, इस न्यायालय को चल रही कार्यवाही या आरोप पत्र में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता है।

21. इस प्रकार, याचिका योग्यता और बल रहित होने के कारण, एतदद्वारा **ख़ारिज** की जाती है। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है। विचारण न्यायालय तदनुसार आगे बढ़ेगा।

(2023) 5 ILRA 405

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 37804/2022

जफर अब्बास जैदी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री सैयद मोहम्मद जाफर हुसैन

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482- अंतर्निहित शक्ति -हस्तक्षेप की सीमा- अंतरिम आदेश, कब हस्तक्षेप किया जा सकता है- वैकल्पिक उपाय, अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में किस हद तक बाधा उत्पन्न करते हैं - माना गया, अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, जहां न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को उचित ठहराती है। सीमा आत्म-संयम है, इससे अधिक कुछ नहीं - धारा 397 सीआरपीसी के तहत आपराधिक पुनरीक्षण के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता अपने आप में धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन को खारिज करने का एक अच्छा आधार नहीं हो सकती है - प्रभु चावला के वाद पर निर्भरता व्यक्त किया गया। (पैरा 12 और 14)

बी. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 156 (3) -लैपटॉप, फोन आदि छीनकर डकैती करने का आरोप लगाया गया था - दोषपूर्ण साक्ष्य की वसूली और संग्रह का प्रश्न शामिल है - हालांकि, धारा 156 (3) के

तहत आवेदन को शिकायत मामले के रूप में माना गया था- वैधता को चुनौती दी गई - माना गया, हाथ में मामले में, सीसीटीवी फुटेज को पुनः प्राप्त करने और संभावित आरोपी व्यक्तियों द्वारा ले जाए गए सामग्रियों की वसूली भी आवश्यक थी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपरोक्त सामग्रियों की वसूली निजी शिकायतकर्ता द्वारा पुलिस की सहायता के बिना संभव नहीं थी - विद्वान मजिस्ट्रेट ने, आक्षेपित आदेश पारित करते समय, धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदन के निपटारे में स्थापित कानूनी स्थिति को नजरअंदाज कर दिया और इसे शिकायत के रूप में मानने का आदेश दिया। (पैरा 25, 28 और 31)

आवेदन स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य; (2016) 16 एससीसी 30
2. संजय भंडारी बनाम राजस्थान राज्य.; (2009) (1) सीआरएलआर (राज.) 282
3. मोहित उर्फ सोनू व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; (2013) 7 एससीसी 789
4. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य; (2009) 2 एससीसी 370
5. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य.; एआईआर 1960 एससी 866
6. सोम मित्तल बनाम कर्नाटक राज्य; (2008) 3 एससीसी 574
7. राज कपूर बनाम राज्य; (1980) एससीसी (सीआरआई) 72
8. मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य; 1978 एससीसी (सीआरआई) 10
9. विजय बनाम महाराष्ट्र राज्य; (2017) 13 एससीसी 317
10. माधो बनाम महाराष्ट्र राज्य; (2013) 5 एससीसी 615
11. राम बाबू गुप्ता बनाम यूपी राज्य; 2001 एससीसी ऑनलाइन सभी 264
12. सुखवासी बनाम यूपी राज्य; (2007) 59 एसीसी 730
13. रामदेव फूड प्रोडक्ट्स (पी) लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य; (2015) 6 एससीसी 439
14. अनिल कुमार बनाम एम.के.अयप्पा; (2013) 10 एससीसी 705
15. गुलाब चंद उपाध्याय बनाम यूपी राज्य और अन्य; (2002) 44 एसीसी 670
16. अनमोल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2021) 117 एसीसी 146

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन के माध्यम से विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी द्वारा 2022 के वाद संख्या 207529 (जफर अब्बास जैदी बनाम अली अब्बास जैदी और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 3.10.2022 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है, जिसके द्वारा धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत आवेदक के आवेदन को शिकायत माना गया है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि हलफनामे में बताया गया है, इस प्रकार हैं:

दिनांक 21.8.2021 को लगभग शाम 7:00 बजे विपक्षीगण संख्या 2, 3 एवं 4,

अपराध करने के उद्देश्य से 10-12 अज्ञात व्यक्तियों के साथ प्रार्थी के घर में घुस आये तथा उसका लैपटॉप, ओवन, आयरन, कलाईघड़ी, हैंडीकैम, डिजिटल कैमरा, कपड़े और अन्य कीमती सामान मूल्य लगभग 2,50,000/- रुपये डकैती करके लूट लिया गया और इसके अलावा, सोफा, चौकी और अन्य फर्नीचर को भी विपक्षी दलों ने क्षतिग्रस्त कर फेंक दिया। थाने पर घटना दर्ज न होने पर धारा 156(3) सीआर.पी.सी. के तहत प्रार्थना पत्र संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किया गया। थाने से रिपोर्ट मांगी गई जिसमें बताया गया कि आवेदक और विपक्षी नंबर-2 सगे भाई हैं और विवादित घर का बंटवारा तीन भाइयों के बीच हुआ था, लेकिन विपक्षी नंबर-2 ने संपत्ति पर कब्जा करने के इरादे से दावा किया कि उनकी मां ने पूरे घर के आधे हिस्से का हिब्बानामा निष्पादित किया और उसे मुतवल्ली नियुक्त किया गया और उसे नगर निगम, वाराणसी में पंजीकृत कराया गया। हालाँकि, उक्त आवेदन को मजिस्ट्रेट की अदालत ने खारिज कर दिया था।

उपरोक्त आवेदन को खारिज करने के बाद, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 273/2021 दायर की गई, जिसे पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश दिनांक 26.9.2022 के माध्यम से अनुमति दी और मामले को पुनरीक्षण आदेश में की गई टिप्पणियों के आलोक में मामले पर पुनर्विचार करने के लिए मजिस्ट्रेट न्यायालय को वापस भेज दिया गया। इसके बाद, दिनांक 26.9.2022 के आदेश के अनुसरण में, मामले की दोबारा सुनवाई की गई और इस बार आक्षेपित आदेश के माध्यम से, धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन को दिनांक 03.10.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा शिकायत के रूप में माने जाने का आदेश दिया गया, जो चुनौती के अधीन है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आक्षेपित आदेश कानून की गंभीर त्रुटि से ग्रस्त है और इसमें क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि भी शामिल थी। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दी गई टिप्पणियों और निर्देशों को ध्यान में नहीं रखा। उक्त आवेदन को केवल इस आधार पर शिकायत के रूप में मानने का आदेश दिया गया है कि आवेदक को संपूर्ण तथ्यों की जानकारी है और उसके संबंध में साक्ष्य उसके द्वारा अपने स्तर पर पेश किया जा सकता है जो कि एक गलत धारणा थी। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि उक्त आवेदन के अवलोकन से, एक संज्ञेय अपराध बनता है, लेकिन विद्वान परीक्षण न्यायालय ने गुमराह किए जाने एवं पुलिस रिपोर्ट गलत तरीके से प्रस्तुत किए जाने से और बिना मस्तिष्क अनुप्रयोग के, आक्षेपित आदेश पारित कर दिया, जो है कानून के स्थापित पूर्वसर्ग के विरुद्ध है।

उपरोक्त आवेदन में कथित तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि मामले में पुलिस द्वारा जांच की आवश्यकता थी और आवेदक अपराध से संबंधित सभी साक्ष्य स्वयं प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं था। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने घटनास्थल के सीसीटीवी फुटेज को ध्यान में रखने के पुनरीक्षण अदालत के निर्देश पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। विद्वान मजिस्ट्रेट न्यायालय द्वारा दिए गए विवादित आदेश के पीछे दिए गये कारण रिकॉर्ड पर

उपलब्ध साक्ष्यों के बिल्कुल विपरीत हैं और उपरोक्त आधार पर, विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 3.10.2022 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

उक्त आवेदन का विद्वान ए.जी.ए. द्वारा पुरजोर विरोध किया गया है। मुख्यतः दो आधारों पर। सबसे पहले, सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को शिकायत के रूप में माने जाने का मजिस्ट्रेट का आदेश क्योंकि शिकायत को सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत आवेदन के माध्यम से चुनौती नहीं दी जा सकती और आवेदक को उक्त आदेश के खिलाफ आपराधिक पुनरीक्षण दायर करना चाहिए था। दूसरे, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई त्रुटि नहीं की है क्योंकि आवेदन में धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत कुछ भी नहीं था जिसकी जांच पुलिस द्वारा की जा सकती है और आवेदक/शिकायतकर्ता आसानी से सभी संबंधित साक्ष्य स्वयं एकत्र कर सकता है। आक्षेपित आदेश में कोई कानूनी या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं है। मजिस्ट्रेट धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत प्रत्येक आवेदन पर जांच के लिए आदेश पारित करने के लिए बाध्य नहीं है जो एक संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करता है, बल्कि यह ऐसे आवेदन को एक शिकायत के रूप में भी मानने और सीआर.पी.सी. के अध्याय XV के प्रावधानों के तहत आगे बढ़ने में सक्षम है। भले ही उपरोक्त आवेदन के अवलोकन से संज्ञेय अपराध बनता हो।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने पहले बिंदु के संबंध में **प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2016) 16 सर्वोच्च न्यायालय वाद 30 मामले** में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भरोसा किया है। इस मामले में मुद्दा यह था कि क्या सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति क्षीण हो जाती है जब पुनरीक्षण न्यायालय की शक्ति धारा 397 सीआर.पी.सी. के तहत अधिव्यापित होती है।

इस मामले में, **संजय भंडारी बनाम राजस्थान राज्य, (2009) (1) सीआरएलआर (राज.) 282**, के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर ने सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिकाओं को खारिज कर दिया यह कहते हुए कि सीआर.पी.सी. की धारा 397 के तहत उपचार की उपलब्धता के कारण सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत याचिका विचारणीय नहीं है और इसे चुनौती दी गई थी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पक्षों को सुनने के बाद पाया कि आक्षेपित निर्णय संवहनीय नहीं थे और **मोहित उर्फ सोनू और अन्य बनाम उ. प्र. राज्य व अन्य (2013) 7 एससीसी 789** में निर्धारित कानून पर भी चर्चा की और इस तरह रखा-

"7. अगली कड़ी के रूप में हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि खण्ड न्यायपीठ, विशेष रूप से अनुच्छेद 28 में, मोहित उर्फ सोनू और अन्य (सुप्रा) के मामले में सीआर.पी.सी. की धारा 482 में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के संबंध में कानून को सही ढंग से

नहीं बताता हम अपनी सम्मानजनक असहमति दर्ज करते हैं।"

यहां यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि मोहित उर्फ सोनू (सुप्रा) मामले में, यह माना गया था कि जब एक व्यापित आदेश प्रकृति में अंतर्वर्ती नहीं होता है और उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण न्यायालय क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी होता है, तो उच्च न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रेरक उपयोग पर रोक होनी चाहिए। यहां यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि प्रभु चावला मामले (सुप्रा) में विरोध को हल करने के लिए इस मामले को माननीय शीर्ष न्यायालय की बड़ी पीठ द्वारा संदर्भित और निर्णय लिया गया था।

प्रभु चावला मामले (सुप्रा) में यह माना गया था कि अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है जहां अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति में अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की आवश्यकता होती है। इसकी सीमा आत्म-संयम है, इससे अधिक कुछ नहीं। कानून की नीति स्पष्ट है कि शुद्ध और सरल अंतर्वर्ती आदेशों को उच्च न्यायालय तक नहीं ले जाया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक मुकदमेबाजी और देरी हो। दूसरे चरम पर, अंतिम आदेश स्पष्ट रूप से अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में विचार करने में सक्षम हैं, यदि अदालत के समक्ष घोर अन्याय उपस्थित हो।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 2 एससीसी 370, आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 शीर्ष न्यायालय 866, सोम मित्तल बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 3 एससीसी 574, राज कपूर बनाम राज्य, (1980) एससीसी (सीआरआई) 72, मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1978 एससीसी (सीआरआई) 10,** में प्रख्यापित कई कानूनों पर चर्चा की, अंततः माना कि -

"6. हमारे विचार में सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति से संबंधित मुद्दे के संबंध में कानून को और अधिक समझाने का कोई भी प्रयास अनुचित है.....समर्थन में एक और कारण जोड़ने के लिए हम उद्यम करते हैं। चूँकि सीआर.पी.सी. की धारा 397 अंतर्वर्ती आदेशों के अलावा अन्य सभी आदेशों के विरुद्ध लागू होती है, एक विपरीत दृष्टिकोण धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत निहित शक्तियों की उपलब्धता को केवल छोटे-मोटे अंतर्वर्ती आदेशों तक ही सीमित कर देगा, यह स्थिति पूरी तरह से अवांछनीय और अनुचित है।"

> प्रभु चावला मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया अंतिम फैसला यह था कि सीआर.पी.सी. की धारा 397 के तहत आपराधिक पुनरीक्षण के वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता अपने आप में सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत किसी आवेदन को खारिज करने का अच्छा आधार नहीं हो सकता।

उपरोक्त दृष्टिकोण को **विजय बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2017) 13 एससीसी 317** में भी दोहराया गया और यह माना गया कि

सीआर.पी.सी. की धारा 397 अंतर्वर्ती के अलावा अन्य सभी आदेशों के विरुद्ध आकर्षित होता है, एक विपरीत दृष्टिकोण सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों की उपलब्धता को केवल छोटे-मोटे वार्तात्मक आदेशों के लिए सीमित कर देगा। स्थापित कानून के मद्देनजर, केवल वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत राहत के अधिकार को वंचित नहीं कर सकती और इस प्रकार पहला मुद्दा अपना समाधान पाता है।

वर्तमान मामले में, सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को परिवाद के रूप में दर्ज करने का आदेश दिया है। इस न्यायालय के समक्ष यह सवाल उठता है कि क्या मजिस्ट्रेट सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को शिकायत के रूप में विचार करने के लिए सक्षम था अथवा वह विधि द्वारा उक्त आवेदन पर पुलिस द्वारा जांच के लिए केवल आदेश पारित करने के लिए बाध्य था।

माधो बनाम में महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 615, यह आदेशित किया गया -

"13. जब एक मजिस्ट्रेट को शिकायत प्राप्त होती है तो वह संज्ञान लेने के लिए बाध्य नहीं है यदि शिकायत में कथित तथ्य किसी अपराध के घटित होने का खुलासा करते हैं। मजिस्ट्रेट के पास मामले में विवेक है। यदि शिकायत को पढ़ने पर, वह पाता है कि उसमें लगे आरोप एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं और धारा 156 (3) के तहत जांच के लिए पुलिस को शिकायत अग्रेषित करना न्याय के लिए अनुकूल होगा और मजिस्ट्रेट के बहुमूल्य समय को उस मामले की जांच करने में बर्बाद होने से बचाएगा जो मुख्य रूप से पुलिस का कर्तव्य था। जांच करने के लिए, अपराध का संज्ञान लेने के विकल्प के रूप में उस कार्य प्रणाली को अपनाना उचित होगा।"

राम बाबू गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2001 एससीसी ऑनलाइन सभी 264 के मामले में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ में नीचे दिया गया है:

"ऊपर उल्लेखित दूसरे प्रश्न पर आते हुए, यह तुरंत कहा जाना चाहिए कि एक अदालत को एक विशेष तरीके से कार्य करने का अधिकार देने वाला प्रावधान और एक पीड़ित व्यक्ति को अदालत या प्राधिकरण से संपर्क करने का अधिकार बनाने वाले प्रावधान को विशिष्ट रूप से समझा जाना चाहिए और होना चाहिए वे मिश्रित न हों। जबकि सीआर.पी.सी. की धारा 154, 155 की उपधारा (1) और (2) 156 में पीड़ित व्यक्ति को पुलिस तक पहुंचने का अधिकार देती है, 156(3) मजिस्ट्रेट को किसी भी स्थिति में किसी विशेष तरीके से मामले में कार्रवाई करने का अधिकार देती है। इसलिए, यह मानना संभव नहीं है कि जहां केवल सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत शक्तियों के प्रयोग के लिए प्रार्थना करते हुए न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया जाता है, वह केवल एक आवेदन ही रहेगा और यह शिकायत की प्रकृति का नहीं होगा। यह ऊपर उल्लेख किया गया है कि मजिस्ट्रेट को हमेशा शिकायत में आरोपों पर अपने मस्तिष्क का उपयोग करना होता है जहां वह

सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत अपनी शक्तियों का उपयोग कर सकता है। इस संबंध में यह तुरंत जोड़ा जा सकता है कि कहाँ एक में आवेदन में, एक शिकायतकर्ता उन तथ्यों को बताता है जो संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं लेकिन दोषपूर्ण प्रार्थना करता है, ऐसा आवेदन एक शिकायत न माने जाने से रोका नहीं जाएगा और न ही मजिस्ट्रेट इसे एक शिकायत के रूप में मानने से इनकार कर सकता है, भले ही इसमें ज्ञात या अज्ञात आरोपी पर मुकदमे की मांग करने वाली कोई प्रार्थना न हो। मजिस्ट्रेट को संज्ञेय अपराध के रूप में ऐसे तथ्यों से निपटना होगा और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए ऐसा आवेदन भी एक शिकायत होगी।"

सुखवासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2007) 59 एसीसी 730, के मामले में भी जिसे विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी द्वारा पारित आदेश में संदर्भित किया गया है, इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि मजिस्ट्रेट धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत एक आवेदन प्राप्त होने पर और यह पाते हुए कि ऐसे आवेदन के अवलोकन से संज्ञेय अपराध बनता है, सभी मामलों में एफ.आई.आर. दर्ज करने और पुलिस द्वारा मामले की जांच का आदेश देने के लिए बाध्य नहीं है।

यह दोहराया गया है कि मजिस्ट्रेट सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत किसी आवेदन पर एक शिकायत के रूप में विचार करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम है। यह सिद्धांत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सुरेश चंद्र जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2001) 42 एसीसी 459** में की गई टिप्पणी से भी संचालित होता है कि एक मजिस्ट्रेट के पास किसी आवेदन को शिकायत के रूप में मानने का अधिकार है।

इसलिए, निस्संदेह मजिस्ट्रेट को सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन पर एक शिकायत के रूप में विचार करने का अधिकार क्षेत्र मिल गया था और उसने ऐसा आदेश देकर कोई कानूनी गलती नहीं की है।

हालाँकि, वर्तमान मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, यह याद रखना चाहिए जैसा कि निर्णयों की श्रृंखला में उजागर किया गया है कि मजिस्ट्रेट हमेशा ऐसे आवेदन में उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार अपने न्यायिक मस्तिष्क के अनुप्रयोग के लिए बाध्य है।

रामदेव फ़ूड प्रोडक्ट्स (पी) लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, (2015) 6 एससीसी 439 में, मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत शक्ति के प्रयोग की सीमा को समझाया और यह स्पष्ट रूप से माना गया कि: (पृ. 456, अनु. 22)

"22.1. सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत निर्देश मजिस्ट्रेट द्वारा सोच विचार के बाद ही जारी किया जाना है।"

इस मामले में **अनिल कुमार बनाम एम.के. अयप्पा, (2013) 10 एससीसी 705** का संदर्भ दिया गया है जिसमें यह देखा गया -

"11. सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) का सीमा क्षेत्र कई मामलों में इस न्यायालय के

समक्ष विचार के लिए आया। इस न्यायालय ने मकसूद सैय्यद [(2008)5 एससीसी 668] मामले में धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा मस्तिष्क के अनुप्रयोग की आवश्यकता की जांच की और यह माना गया कि जहां धारा 156 (3) या धारा 200 सीआर.पी.सी. के संदर्भ में दायर शिकायत पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपना दिमाग लगाना आवश्यक है।"

इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है कि ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जब मामले में किसी प्रकार की वसूली का प्रश्न शामिल हो और मजिस्ट्रेट को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए, यदि वह सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत किसी आवेदन को शिकायत के रूप में विचार करने जा रहा है कि क्या आवेदक स्वयं अभियोगात्मक साक्ष्य एकत्र करने और उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की स्थिति में है।

इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा **गुलाब चंद उपाध्याय बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2002) 44 एसीसी 670 में**, एक विशेष तरीके से धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन पर निर्णय लेने के लिए मजिस्ट्रेट के विवेक के मामले में कुछ दिशानिर्देश जारी करते हुए, आदेशित किया-

"21. सीआर.पी.सी. की योजना और मौजूदा परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि मामले के पंजीकरण और पुलिस द्वारा इसकी जांच का निर्देश देने के विकल्प का प्रयोग किया जाना चाहिए जहां कुछ "जांच" की आवश्यकता होती है, जो इस प्रकृति की है कि निजी शिकायतकर्ता के लिए संभव नहीं है और जो केवल पुलिस द्वारा किया जा सकता है जिसे क़ानून ने जांच के लिए आवश्यक शक्तियां प्रदान की हैं, उदाहरण के लिए

(I) जहां आरोपी का पूरा विवरण शिकायतकर्ता को नहीं पता है और इसे केवल जांच के परिणामस्वरूप ही निर्धारित किया जा सकता है, या

36.जहां अपहृत व्यक्ति या चुराई गई संपत्ति की बरामदगी संदिग्ध स्थानों या व्यक्तियों पर छापेमारी या तलाशी करके की जानी आवश्यक है, या

37.जहां आरोपी के खिलाफ सफल अभियोजन शुरू करने के उद्देश्य से साक्ष्य एकत्रित एवं संरक्षित किए जाने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर ऐसे मामलों की कल्पना की जा सकती है जहां मुकदमे में अदालत के समक्ष पेश करने के लिए (ए) खून से लथपथ मिट्टी का नमूना लिया जाना है और घटना की जगह तय करने के लिए सीलबंद रखा जाना है; या (बी) केस संपत्ति की वसूली की जानी है और उसे सीलबंद रखा जाना है; या (सी) साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत वसूली; या (डी) जांच रिपोर्ट तैयार करना; या (ई) गवाह ज्ञात नहीं हैं और जांच की प्रक्रिया के माध्यम से उनका पता लगाना या खोजना होगा।"

बाद में, इस न्यायालय के एक और विद्वान एकल न्यायाधीश ने **अनमोल सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2021) 117 एसीसी 146** में दोहराया कि -

"मजिस्ट्रेट को सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग करना चाहिए। वह यांत्रिक या आकस्मिक तरीके से कार्य नहीं कर सकता है और रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद शिकायत पर आगे नहीं बढ़ सकता है। मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाया गया रास्ता यानी पुलिस को एफआईआर दर्ज करने और जांच करने का निर्देश या आवेदन को शिकायत मामले के रूप में मानने के लिए कारणों द्वारा समर्थित होना चाहिए। आदेश में यह भी प्रतिबिंबित होना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने प्रासंगिक विचारों पर अपने लिए खुले इन दो तरीकों में से एक को अपनाया है। केवल उल्लेख में यह आदेश कि उसने शिकायत पर गौर कर लिया है और पुलिस जांच की आवश्यकता नहीं है या अन्यथा, सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय न्यायिक मस्तिष्क के अनुप्रयोग का पर्याप्त अनुपालन नहीं होगा।"

यदि ऊपर चर्चा की गई विधिक स्थिति वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अनुवादित की जाए और धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन परीक्षण किया, यह पाया गया कि उपरोक्त आवेदन में एक विशिष्ट आरोप था कि संभावित अभियुक्त ने आवेदक के कमरे में प्रवेश करने के बाद डकैती करके उसका लैपटॉप, फोन, प्रेस, कलाई घड़ी, हैंडीकैम, डिजिटल कैमरा, कपड़े और अन्य सामान छीन लिया। उक्त आवेदन में यह भी बताया गया कि उक्त घटना का सीसीटीवी फुटेज भी उपलब्ध है। इन परिस्थितियों में, आवेदक के घर में डकैती करने वाले संभावित आरोपियों द्वारा ले जाये गये सामान की बरामदगी का प्रश्न स्पष्ट रूप से शामिल था। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट था कि आवेदक स्वयं संभावित अभियुक्तों के कब्जे से उन वस्तुओं की बरामदगी करने में सक्षम नहीं था और यह केवल पुलिस द्वारा ही किया जा सकता था और इसीलिए इस मामले में पुलिस कार्रवाई की आवश्यकता थी। विद्वान मजिस्ट्रेट पूरी तरह से गुमराह हो गए जब उन्होंने सुखवासी (सुप्रा) के मामले में निर्धारित सिद्धांत की गलत व्याख्या की, जो हालांकि मजिस्ट्रेट को सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन को एक शिकायत के रूप में विचार करने का अधिकार देता है। लेकिन यह चेतावनी भी देता है कि न्यायिक मस्तिष्क के अनुप्रयोग के बाद और उचित मामलों में आदेश दिया जाना चाहिए।

गुलाब चंद उपाध्याय (सुप्रा) मामले में, कुछ उदाहरणों का उल्लेख किया गया है जिसमें पुलिस जांच को निर्देशित किया जाना आवश्यक है।

एक और कारक आवेदक के विद्वान वकील ने समझाया है, जिसने इस न्यायालय का ध्यान सत्र न्यायालय, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 26.09.2022 के निर्णय और आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसके तहत दिनांक 01.10.2021 को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया गया और 2021 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 273 की अनुमति देकर मामले को संबंधित मजिस्ट्रेट को एक विशिष्ट निर्देश के साथ भेज दिया गया कि रिकॉर्ड पर सीसीटीवी

फुटेज से संबंधित साक्ष्य सहित पूरे साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए पुनरीक्षण अदालत के आदेश के आलोक में मामले की दोबारा सुनवाई की जाए। पुनरीक्षण अदालत के आदेश के अनुपालन में, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 03.10.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश का भी ध्यान नहीं रखा और सीसीटीवी फुटेज के संबंध में प्रारंभिक जांच करने के लिए भी विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया और इस न्यायालय को इस आशय का कोई संकेत नहीं मिलता कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय सीसीटीवी फुटेज के तथ्य और साक्ष्य पर विचार किया गया था। कहने की जरूरत नहीं है कि मजिस्ट्रेट पुनरीक्षण अदालत द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य था और इसकी अवहेलना न्यायिक अनुशासन के उल्लंघन का मामला है।

मौजूदा मामले में, सीसीटीवी फुटेज को पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता थी और संभावित आरोपी व्यक्तियों द्वारा ली गई सामग्रियों की बरामदगी भी आवश्यक थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि उपरोक्त सामग्री की बरामदगी निजी शिकायतकर्ता द्वारा पुलिस की सहायता के बिना किया जाना संभव नहीं था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत आवेदन के निपटान में स्थापित कानूनी स्थिति को नजरअंदाज कर दिया और इसे शिकायत के रूप में मानने का आदेश दिया, जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में तार्किक और विधिक रूप से उचित नहीं था और इस प्रकार मुद्दे के दूसरे बिंदु का भी उत्तर मिल जाता है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, मुझे वर्तमान आवेदन में तथ्य नजर आता है और इसलिए विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी द्वारा 2022 के केस नंबर 207529 (जफर अब्बास जैदी बनाम अली अब्बास जैदी और अन्य) में पारित दिनांक 03.10.2022 का आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत आवेदक के आवेदन को शिकायत का मामला मानने का आदेश दिया गया है, जो कानून में धारणीय नहीं है और इसके द्वारा इसे रद्द कर दिया गया है और विद्वान मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया गया है कि वह आवेदक को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद मामले में दोबारा सुनवाई करें और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिनांक 26.09.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से दिए गए निर्देश तथा इस न्यायालय की टिप्पणियाँ भी ध्यान में रखें।

तदनुसार सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत आवेदन अनुमन्य किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 413

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 37952/2022

ओम प्रकाश @गुड्डू एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री प्रणव तिवारी, श्री अथर्व दीक्षित, श्री औशिम लूथरा, श्री मनीष तिवारी, (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री उदय चंदानी

(ए) **आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482 -अंतर्निहित शक्ति -भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 498-ए और 304-बी, दहेज निषेध अधिनियम, 1961 धारा 3/4, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32(1) - मृत्यु पूर्व कथन, धारा 65बी- इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की ग्राह्यता धारा 113बी -दहेज मृत्यु की धारणा- संज्ञान लेने या आरोप तय करने के समय धारा 65बी(4) के अंतर्गत प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं होगी, भले ही प्रस्तुत दस्तावेज द्वितीयक साक्ष्य हो - जब प्रथम दृष्टया हत्या का मामला बनता है, केवल इसलिए अभियुक्त को आरोपमुक्त कर देना कि अभियुक्त का मृतक की हत्या करने का इरादा नहीं था, उचित नहीं है - आरोप के स्तर पर, अभियुक्त के अपराध या अन्यथा के संबंध में परीक्षण के मानक लागू नहीं किए जा सकते - यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और सबूत गंभीर संदेह को जन्म देते हैं, तो आरोप तय किया जा सकता है - यह वह परीक्षण है जिसमें अपराध या फिर आरोपी की निर्दोषता को निर्धारित किया जाता है न कि संज्ञान लेने या आरोप तय करने के समय। (पैरा - 42,52,54)**

विवाह के सात वर्ष के भीतर अप्राकृतिक मृत्यु - दहेज की मांग - अभियुक्तगणों द्वारा मृतका की पिटाई - उसके ससुराल में मानसिक एवं शारीरिक क्रूरता, मृत्यु पूर्व चोट - रहस्यमय परिस्थितियाँ - चिकित्सकों की राय में भिन्नता, मैनुअल गला घोंटना, दुर्व्यवहार एवं क्रूरता, आवेदक क्रमांक 1 एवं आवेदक क्रमांक 5 के मध्य अनैतिक संबंध। (पैरा 29,50)

निर्णय:- आरोप पत्र और आरोप पत्र की अस्वीकृति धारा 227 सीआरपीसी के तहत आवेदकों के डिस्चार्ज आवेदन में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। न्यायालय को सामग्री की जांच और मूल्यांकन में विस्तृत जांच करने की आवश्यकता नहीं है और न ही विभिन्न पहलुओं पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। अभियुक्तों का बचाव नहीं देखा गया। आवेदकों के पक्ष में कोई मामला नहीं बनाया गया। आरोप पत्र प्रस्तुत करने में उचित आधार का अभाव है। तथ्यों और कानून के मद्देनजर डिस्चार्ज आवेदन को खारिज करना गलत है। (पैरा-52,54,55)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर एवं अन्य, (2014) 10 एससीसी 473
2. अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल, (2020) 7 एससीसी 1
3. रविंदर सिंह @ कुकू बनाम पंजाब राज्य, 2022 लाइव लॉ (एससी) 461
4. अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014) 10 एससीसी 473 (तीन जजों की बेंच)
5. यू.पी. राज्य बनाम अजय कुमार शर्मा, 2016 (92) एसीसी 981 (एससी)

6. मुकेश बनाम राज्य (एनसीटी) दिल्ली व अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161

7.आर.एम. मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1973 एससी 157

8. राम सिंह एवं अन्य बनाम कर्नल राम सिंह, 1985 (सप्लीमेंट्री) एससीसी 616

9. हरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 1 सी सी 734

10. विक्रम सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 8 सी सी 518

11. कर्नाटक राज्य लोकायुक्त पी.स. बेंगलुरु बनाम एम.आर. हीरेमठ, 2019 0 सुप्रीम 590 (एससी)

12. अर्जुन पंडित्रोखोलकर बनाम कैलाश कुशनरावगोरंटियाल और अन्य., एयर 2020 एससी 4908

13. मोहम्मद आरिफ उर्फ अशफाक बनाम राज्य (एनसीटी) दिल्ली, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 1113

14. केवल कृष्ण वीएस सूरज भान, एयर 1980 एससी 1780

15. आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अंतुले एवं अन्य, एआईआर 1986 एससी 2045

16. बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह, एआईआर 1977 एससी 2018

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के लिए श्री मनीष तिवारी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री औशिम लूथरा की सहयोग से, श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री उदय चंदानी, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन 2020 के अपराध संख्या 163 वर्ष 2022 की सत्र परीक्षण संख्या 298 (राज्य बनाम उमाशंकर और अन्य) की धारा 498-ए, 304-बी आईपीसी धाराओं के अन्तर्गत व 3/4 डीपी एक्ट, थाना मंडुआडीह, जनपद वाराणसी सीजेएम वाराणसी अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आरोप पत्र दिनांक 20.01.2021 और आदेश दिनांक 19.10.2022 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है जो कि न्यायालय में विचाराधीन है।

3. आवेदन में यह गलत उल्लेख किया गया है कि मामला सीजेएम, वाराणसी की न्यायालय में लंबित था, वस्तुतः मामला सत्र न्यायाधीश की न्यायालय में प्रतिबद्ध था और वर्तमान में मामला अपर सत्र न्यायाधीश-IX वाराणसी 2022 की एसटी संख्या 298 के रूप में न्यायालय में लंबित है।

4. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि मृतिका विपक्षी संख्या 2, ओम प्रकाश की बेटी थी और आवेदक संख्या 1, ओम प्रकाश उर्फ गुड्डू की पत्नी और आवेदक संख्या 3 और 4 की बहू थी। आवेदक संख्या 2 आवेदक संख्या 1 का सगा भाई है और आवेदक संख्या 5, राधा देवी आवेदक संख्या 2 की पत्नी है।

5. इस आवेदन के अनुसार, मृतक निधि प्रकाश और आवेदक संख्या 1, ओम प्रकाश उर्फ गुड्डू के बीच विवाह 25.06.2018 को बिना किसी दहेज के विवाह संपन्न हुआ था और दहेज में एक कार और 5,00,000/- रुपये की अतिरिक्त मांग का आरोप लगाया गया है।

आवेदक द्वारा यह तथ्य अस्वीकार कर दिया गया। यह कहना गलत है कि मृतिका को भूखा रखा जाता था, जिससे उसकी तबीयत काफी बिगड़ गयी थी. यह भी गलत है कि गर्भावस्था के दौरान उसे उचित इलाज नहीं दिया गया, लेकिन वह डॉ. सरोजनी सिंह के इलाज और देखभाल में थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट के तथ्य झूठे और तुच्छ हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में चार दिनों की अस्पष्टीकृत, अत्यधिक देरी हुई है। आवेदक नंबर 1 एक बहुत ही सम्मानित परिवार से है और 2005 से भारतीय रेलवे में ग्रेड- II अधिकारी है। न तो शादी के समय और न ही उसके बाद दहेज की कोई मांग की गई थी। आवेदकों द्वारा मृतक को उसके वैवाहिक घर में पूरा प्यार और स्नेह दिया गया। आवेदकों और मृतक के बीच संबंध बेहद प्रेमपूर्ण और सौहार्दपूर्ण था। आवेदक नंबर 1 ने भी उसे बीएड की डिग्री हासिल करने के लिए प्रोत्साहित और समर्थन किया था और आवश्यक शुल्क जमा किया था और बीएड परीक्षा के लिए प्रवेश पत्र प्राप्त करने में भी मदद की थी। शपथ पत्र के अनुलग्नक-3 के रूप में संलग्न पाठ संदेशों से यह प्रतिबिंबित होगा कि सूचना देने वाला व्यक्ति सीमित वित्तीय साधनों वाला व्यक्ति था और सामान्य विवेक वाला व्यक्ति यह विश्वास नहीं करेगा कि आवेदकों द्वारा ऐसे सूचनाकर्ता से दहेज की कोई मांग की जा रही थी। आवेदक नंबर 1 और मृतक के बीच कुछ टेक्स्ट संदेश जो संवेदनशील और व्यक्तिगत प्रकृति के थे, उन्हें अभिलेख पर नहीं लाया गया है, लेकिन वे बताते हैं कि मृतिका अपने पति के साथ बहुत अच्छे संबंधों के साथ एक खुशहाल शादीशुदा जीवन जी रही थी। वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले मृतक या सूचनाकर्ता द्वारा कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत या कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी। चूँकि मृतिका गर्भवती हो गई थी, उसे वाराणसी की प्रसिद्ध स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉ. सरोजनी सिंह के क्लिनिक में गहन और कुशल चिकित्सा देखभाल और पर्यवेक्षण मिल रहा था, जहाँ आवेदक संख्या 5 राधा देवी, आवेदक संख्या 1 की भाभी और मृतक भी थी। देखरेख और उपचार किया और अपने बच्चे को सफलतापूर्वक जन्म दिया। इसलिए मृतक को वहां ले जाया गया था. विपक्षी संख्या 2 का यह आरोप कि उसकी बेटी को पर्याप्त उपचार नहीं मिला और उसे घटिया क्लिनिक में ले जाया गया, पूरी तरह से निराधार और अनुचित है।

6. इससे पहले मार्च, 2019 के महीने में, मृतक गर्भवती हो गई थी और उसे तुरंत न्यू लाइफ हॉस्पिटल, वाराणसी में चिकित्सा उपचार मिला था, जहां उसका इलाज डॉ. नीलम ओहारी द्वारा किया जा रहा था। गर्भावस्था की खबर जानकर, उसकी माँ आवेदकों के घर आई और जोर देकर कहा कि पहला बच्चा उसके माता-पिता के घर में पैदा हो और वह मृतक को प्रथम सूचनाकर्ता के घर ले गई थी, परन्तु जब कुछ शारीरिक कष्ट होने लगीं, तो विपक्षी संख्या 2 ने उसे अपने पास बुलाया तथा उसे डॉ. आकांक्षा सिंह के पास ले गया, परन्तु कोई सकारात्मक परिणाम न देखकर, आवेदक नंबर 1 तुरंत अपनी पत्नी को घर वापस ले आया और उसे वापस डॉ. नीलम ओहारी के पास ले गया, हालाँकि, स्थिति को संभालने में बहुत देर हो चुकी थी और मृतिका का गर्भपात हो गया,

इसलिए, जब मृतिका दूसरी बार गर्भवती हुई, तो आवेदकों ने कोई जोखिम नहीं उठाया और तुरंत उसे डॉ. सरोजनी सिंह के पास ले गए, जहां मृतिका की नियमित जांच की गई और गर्भावस्था के दौरान वह अच्छी चिकित्सा स्थिति में थी तथा डिलीवरी की अनुमानित तारीख 04.05.2020 बताई गई थी।

7. 02.05.2020 की रात में जब मृतिका को पेट में दर्द हुआ, तो उसे तुरंत डॉ. सरोजनी सिंह के अस्पताल ले जाया गया, लेकिन उस समय वह मौजूद नहीं थी, इसलिए, उनकी बेटी डॉ. मोनिशा सिंह, स्त्री रोग विशेषज्ञ ने मृतक की देखभाल की और बताया कि वह गैस्ट्राइटिस से पीड़ित थी और उसने एसिलोक का इंजेक्शन दिया था जिसके बाद उसे आराम मिल गया तो उसे आवेदकों के घर वापस ले जाया गया। चिकित्सक ने न तो सुझाव दिया और न ही संकेत दिया कि मृतक का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और उसके लिए प्रसव की अनुमानित तिथि 04.05.2020 को प्राकृतिक रूप से बच्चे को जन्म देना सुरक्षित नहीं था। गर्भावस्था की पूरी अवधि के दौरान मृतक की नियमित चिकित्सा जांच की गई और उपचार करने वाले चिकित्सक द्वारा मां या भ्रूण के स्वास्थ्य और स्थिति के संबंध में कोई असामान्यता नहीं बताई गई और इलाज करने वाले चिकित्सकों द्वारा किसी विशेष जांच की सिफारिश नहीं की गई। डिलीवरी की अपेक्षित तारीख से दो दिन पहले डॉ. मोनिशा सिंह द्वारा मृतक की जांच की गई थी और मां या भ्रूण के स्वास्थ्य के संबंध में कोई चिंता नहीं जताई गई थी। यह स्पष्ट है कि डॉ. मोनिशा सिंह द्वारा मामले को लापरवाही से संभालने के कारण किए गए ऑपरेशन के बाद संक्रमण के कारण सेप्टीसीमिया हो गया। इसलिए, उनकी पत्नी के दुर्भाग्यपूर्ण निधन के संबंध में आवेदकों को कोई दोष नहीं दिया जा सकता है। चूँकि मृतिका को प्रसव की अनुमानित तिथि से दो दिन पहले अस्पताल में भर्ती करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, केवल राजस्व उत्पन्न करने के प्रयास में, अस्पताल के अधिकारी बिना किसी वैध कारण के प्रवेश के लिए दबाव बना रहे थे।

8. तदनुसार, आवेदक संख्या 1 अपनी पत्नी को 04.05.2020 को डॉ. सरोजनी सिंह के अस्पताल में ले गया और चूंकि मृतक और भ्रूण अच्छी और स्वस्थ स्थिति में पाए गए, इसलिए सिजेरियन डिलीवरी की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। इलाज करने वाले चिकित्सक द्वारा न तो ऐसी कोई आकस्मिकता थी और न ही इसकी आवश्यकता पर दबाव दिया गया था। इसलिए, मृतक का प्राकृतिक जन्म हुआ, यह अनुचित आरोप है कि आवेदक सिजेरियन डिलीवरी के विरुद्ध थे और प्राकृतिक जन्म पर अड़े हुए थे, क्योंकि आवेदक संख्या 5 ने वर्तमान घटना से चार साल पहले अपनी गर्भावस्था के दौरान कुछ जटिलताओं के कारण डॉ. सरोजनी सिंह द्वारा सिजेरियन डिलीवरी कराई थी। 04.05.2020 को मृतक का इलाज डॉ मोनिशा सिंह द्वारा किया गया था, जिन्होंने वर्ष 2019 में एम.एस. पूरा किया था और एक अनुभवहीन चिकित्सक थी, ऑन कॉल चिकित्सक ने मृतक की डिलीवरी की निगरानी की थी। जब मृतिका अपनी डिलीवरी के लिए गई तो उसका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा था। ऐसा प्रतीत होता

है कि डॉ. मोनिशा सिंह की अनुभवहीनता के कारण, जिन्होंने उचित तैयारी और जांच के बिना मृतक का ऑपरेशन किया, जिन्होंने अपने कर्तव्यों के पालन में लापरवाही की, जिससे कुछ जटिलताएँ पैदा हुईं। प्रसव प्रक्रिया के तुरंत बाद मृतिका की तबीयत बिगड़ने लगी. ऑपरेशन करने वाली चिकित्सक डॉ. मोनिशा सिंह की लापरवाही के कारण मृतक के आंतरिक अंगों (छाती, किडनी और लीवर) में संक्रमण हो गया और तेजी से खराब होने लगा, इसलिए आवेदकों ने उसे बेहतर इलाज के लिए एपेक्स अस्पताल में भर्ती कराया। उन्हें तत्काल डायलिसिस की आवश्यकता थी। हालाँकि, इलाज के दौरान आवेदकों के सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद 07.05.2020 को मृतक की मृत्यु हो गई।

9. मृतक की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु इलाज करने वाले चिकित्सक की अनुभवहीनता और लापरवाही के कारण गर्भावस्था के बाद की जटिलताओं के कारण हुई, जिसके लिए आवेदकों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। मृतक के इलाज में आवेदक संख्या 1 और 3 द्वारा लगभग 7,00,000/- रुपये का भुगतान किया गया था और ऐसी परिस्थितियों में कोई भी सामान्य विवेक वाला व्यक्ति यह विश्वास करने के लिए प्रलोभित नहीं होगा कि किसी भी आरोपी व्यक्ति द्वारा दहेज की कोई मांग की जा रही थी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट आवेदकों को परेशान करने और उन्हें तुच्छ आपराधिक मुकदमे की धमकी के अन्तर्गत वित्तीय संतुष्टि के लिए अपनी कठिन और मनमानी मांग के आगे झुकने के लिए डराने-धमकाने की दुर्भावना का परिणाम है।

10. शव विच्छेदन रिपोर्ट के अनुसार मृतक की मृत्यु फेफड़ों और गर्भाशय के संक्रमण के कारण सेप्टिकैमिक शॉक के कारण हुई। चूंकि मृतक की मृत्यु प्राकृतिक कारणों से हुई है इसलिए आईपीसी की धारा 304-बी के तत्व बिल्कुल अनुपस्थित हैं।

11. दिनांक 12.05.2020 की वाद प्रपत्र के परचा संख्या 1 में सूचक ने अभियोजन संस्करण का समर्थन करने का प्रयास किया है और प्रमुख रूप से विकसित किया है कि उसकी बेटी पर आवेदकों द्वारा हमला किया गया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री का समर्थन करने का भी प्रयास किया है और होने पर जांच अधिकारी (आई.ओ.) से पूछताछ की गई तो उन्होंने बताया कि इलाज कर रहे चिकित्सक डॉ. एसएस बोहरा ने उन्हें सूचित किया था कि मृतक की गर्दन पर खरोंच का निशान शारीरिक हमले के कारण नहीं था, बल्कि एपेक्स अस्पताल में मृतक को डायलिसिस कैथेटर लगाने के कारण ऐसा हुआ था। परचा संख्या 2 में श्रीमती कलावती देवी ने भी अपने बयान में अभियोजन पक्ष का समर्थन करने का प्रयास किया है। परचा क्रमांक 3 में एपेक्स हॉस्पिटल के डॉ. एसएस बोहरा ने बताया कि अपेक्स हॉस्पिटल में मृतिका को भर्ती करते समय उसके शरीर पर चोट के कोई निशान नहीं थे। मूत्र उत्पादन शून्य था, उसे डायलिसिस में रखा गया था और एक कैथेटर डाला गया था और उसकी गर्दन पर घर्षण का निशान संभवतः डायनाप्लास्ट को हटाने के दौरान हुआ होगा और दिनांक 07.05.2020 की

जांच रिपोर्ट में, मौत का कारण बताया गया था अचानक हृदय गति रुकना और जिसमें कोई शारीरिक उपहति नहीं देखी गई।

12. अभियोजन पक्ष का मामला है कि 30.04.2020 को मृतक ने फोन किया और आवेदकों द्वारा की गई शारीरिक हिंसा के बारे में बताया और यह भी कि उक्त फोन पर बातचीत की रिकॉर्डिंग भी की गई थी, हालांकि घटना 30.04.2020 को हुई थी। और इस तरह के बयान की रिकॉर्डिंग से इनकार किया जाता है और यह भी स्पष्ट है कि न तो ऐसा मोबाइल फोन पुलिस को सौंपा गया था और न ही कथित कॉल रिकॉर्डिंग को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65-बी (संक्षेप में 'अधिनियम 1872') के अनुसार प्रमाणित किया गया है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अनवर पीवी बनाम पीके बशीर और अन्य**, (2014) 10** एससीसी **473** और अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल**, (2020) 7** एससीसी **1** के मामले में कहा है, इसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है।

13. पर्चा नंबर 5 में नीति प्रकाश, दीपिका और पिंटू के बयान आईओ द्वारा दर्ज किए गए थे। पर्चा नंबर 6 के अनुसार, मृतक के भाई अपूर्व कुमार ने एक पेन ड्राइव प्रदान की थी, जिसमें मृतक और उसकी मां के बीच हुई बातचीत की फोन कॉल रिकॉर्डिंग थी। 30.04.2020 को, पेन ड्राइव द्वितीयक साक्ष्य होगा और अधिनियम, 1872 की धारा 65-बी के अन्तर्गत प्रमाणीकरण प्राप्त किए बिना, इसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है।

14. तत्काल आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के साथ टेलीफोन पर हुई बातचीत की प्रतिलेख अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न किया जा रहा है।

15. परचा संख्या 7 में, डॉ मोनिशा सिंह का बयान दर्ज किया गया है जिसमें उन्होंने अपनी लापरवाही को छिपाने की कोशिश की है जिसके कारण मृतक को संक्रमण हो गया जो उसके महत्वपूर्ण अंगों में फैल गया और वर्तमान मामले में आवेदकों को बलि का बकरा बनाया जा रहा है। डॉ. मोनिशा सिंह ने बताया कि भर्ती के समय मृतिका के शरीर पर कोई चोट के निशान नहीं थे। एपेक्स अस्पताल से भी रिपोर्ट मांगी गई है। डॉ. मोनिशा सिंह और एपेक्स हॉस्पिटल की रिपोर्ट को एक साथ रखने पर गंभीर विरोधाभास उत्पन्न हुआ। परचा संख्या 14 में लिखित फॉरेंसिक विशेषज्ञ के रूप में डॉ. मनोज कुमार पाठक की रिपोर्ट केवल संकेतों और धारणाओं पर आधारित है, जिस पर शव विच्छेदन की चोटों की तस्वीरों, शव विच्छेदन रिपोर्ट और उपचार के इतिहास के आधार पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। जबकि वह स्वयं मृतक के शव में शामिल नहीं हुआ था।

16. डायलिसिस के मामलों में, सबसे पहले दाएं गले की नस में डायलिसिस कैथेटर डालने के लिए एक नस को चुना जाता है, जिसे केडीआईजीओ (एक्यूट किडनी इंजरी के लिए क्लिनिकल प्रैक्टिस गाइडलाइन) के बिंदु 5.4.2 के अवलोकन से जाना जा सकता है, जो शपथ पत्र के अनुलग्नक-20 के रूप में संलग्न है।

17. डॉ. प्रकाश कुमार भारती और एसएस बोहरा ने डॉ. मनोज कुमार पाठक की दी गई राय के विपरीत राय दी है. उपरोक्त के आधार

पर यह स्पष्ट है कि कोई आपराधिक मामला नहीं बनता है।

18. मृतक की मृत्यु बच्चे के जन्म के दौरान पैदा हुई जटिलताओं और इलाज करने वाले चिकित्सक की लापरवाही के कारण हुई। वर्तमान आरोप पत्र से पहले दिनांक 07.10.2021 को आवेदक संख्या 1, 2 और 3 के खिलाफ धारा 498-ए, 304-बी आईपीसी और धारा 3/4 डीपी अधिनियम के अन्तर्गत आरोप पत्र दायर किया गया था। आवेदक क्रमांक 1 को दिनांक 01.11.2021 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था जिसमें माननीय न्यायालय ने पाया कि डॉ. पाठक से मांगी गई राय अनैतिक थी जब दो पेशेवर डॉक्टरों की दो अलग-अलग राय हैं और यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि किसकी राय गलत है। मृतक की मृत्यु एपेक्स अस्पताल, वाराणसी में सिजेरियन ऑपरेशन के बाद हुई थी और मृतक की मृत्यु का आवेदकों द्वारा दहेज की मांग से कोई संबंध नहीं है। आवेदक संख्या 2 और 3 को भी क्रमशः 20.08.2020 और 07.09.2020 को जमानत दे दी गई है। आवेदक संख्या 4 और 5 को भी अवर न्यायालय ने जमानत पर रिहा कर दिया है।

19. आवेदकों ने अपर सत्र न्यायाधीश, वाराणसी के समक्ष एक डिस्चार्ज आवेदन (इस आवेदन के लिए अनुलग्नक -26) प्रस्तुत किया, जिसे 09.10.2022 को खारिज कर दिया गया। विचारण न्यायालय ने बहुत ही यांत्रिक तरीके से आक्षेपित आदेश पारित किया है और इस तथ्य को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया है कि उक्त मौत प्राकृतिक कारणों से हुई थी और जांच के दौरान मृतक के शरीर पर तथाकथित चोटों के बारे में विधिवत बताया गया था। आवेदक निर्दोष हैं और उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। यह मामला विधि की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग और दुरूपयोग है। आवेदक शांतिप्रिय और विधि का पालन करने वाले नागरिक हैं। उनके पास केवल परिवार के सदस्यों के बीच विवाद के कारण आपराधिक इतिहास है, जिसे पहले ही बताया जा चुका है। इसलिए, आवेदन की अनुमति दी जाए और आरोप पत्र और मुक्ति आवेदन की अस्वीकृति के संबंध में लागू आदेश को रद्द कर दिया जाए।

20. आवेदन में उल्लिखित सभी कागजात शपथ पत्र के साथ संलग्न किये गये हैं।

21. विपक्षी संख्या 2 ने आवेदन पर जवाबी शपथ पत्र दायर किया है और आरोप लगाया है कि मृतक ने 30.04.2020 को अपने परिवार के साथ बातचीत की और कहा कि आरोपी व्यक्ति उसकी हत्या कर देंगे और आवेदकों और अन्य आरोपी व्यक्तियों से उसके जीवन को गंभीर खतरा है और उसने अपने परिवार के सदस्यों से सुरक्षा का अनुरोध किया है। इस बातचीत को शपथ पत्र के साथ अनुलग्नक-सीए-1 के रूप में संलग्न किया गया है, 20.10.2019 को भी नीतू, ओम प्रकाश (मृतक के पिता) और निधि प्रकाश के बीच बातचीत हुई थी जिसमें उसने खुलासा किया था कि आवेदकों से उसके जीवन और स्वतंत्रता को गंभीर खतरा है। यह अनुलग्नक-सीए-2 के रूप में संलग्न है। पुलिस अधिकारी आरोपियों के साथ मिले हुए थे और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज

नहीं कर रहे थे और इसलिए, मुखबिर और मृतक के भाई द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को कई शिकायतें की गईं, जिन्हें अनुलग्नक-सीए के रूप में संलग्न किया गया है। -3. मृतक की तस्वीरों से स्पष्ट रूप से पता चला है कि खरोंच के घाव के साथ-साथ एक छेद वाला घाव भी मौजूद है जो गला घोंटने का संकेत देता है। फॉरेंसिक मेडिसिन विभाग (बीएचयू) के प्रोफेसर और प्रमुख से एक विशेषज्ञ की राय (अनुलग्नक- सीए-4) प्राप्त की गई, जिसमें आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक को मौत से पहले गंभीर चोटों का पता चला। ऑपरेशन करने वाले चिकित्सक ने भी 19.05.2020 को अपना शपथ पत्र दायर किया है, जिससे यह बिना किसी संदेह के स्थापित हो गया है कि मृत्यु से पहले चोटें आई थीं और आरोपी व्यक्तियों द्वारा किए गए अवैधकृत कार्य के कारण मृतक को गंभीर समस्या का सामना करना पड़ा था, जिसे संलग्न किया गया है। अनुलग्नक-सीए-5 जांच के दौरान गंभीर चोटें पाई गईं और मृत्यु केवल चिकित्सीय कारणों से नहीं हुई, जिसे अनुबंध-सीए-6 के रूप में संलग्न किया गया है। उपरोक्त सभी दस्तावेज़ केस डायरी का हिस्सा हैं और अन्वेषण अधिकारी (आई.ओ.) को दिए गए थे, लेकिन अन्वेषण अधिकारी (आई.ओ.) आरोपी व्यक्तियों के साथ मिलकर ठीक से जांच नहीं कर रहा था।

22. सूचनाकर्ता, श्रीमती कलावती देवी (मृतका की मां) और अपूर्व कुमार (मृतका का भाई) ने अपने बयान में बताया गया है कि आवेदकों द्वारा दहेज की मांग के कारण मृतिका की हत्या कर दी गई। पूछताछ के गवाह रवि प्रकाश और रजनीश कुमार के बयान को भी अनुबंध-सीए-9 के रूप में संलग्न किया गया है। मृतक के भाई द्वारा अन्वेषण अधिकारी को मोबाइल रिकॉर्डिंग उपलब्ध कराई गई थी, जिसे पेपर संख्या सीडी-6 के माध्यम से केस डायरी का हिस्सा बनाया गया था। सीएमओ, वाराणसी ने उप निदेशक, एसएसपीजी, वाराणसी से एक मेडिकल बोर्ड गठित करने का भी अनुरोध किया था ताकि शव विच्छेदन के दौरान पाई गई चोटों की सच्चाई की जांच की जा सके, जो अनुबंध-सीए-13 के रूप में संलग्न है।

23. आगे कहा गया है कि पूरी घटना संदेह के घेरे में आती है, लेकिन शव विच्छेदन रिपोर्ट और डॉ. सरोजनी सिंह के शपथ पत्र के साथ विशेषज्ञों की राय के अवलोकन करने पर, संदेह से परे स्पष्ट है कि यह आरोपी व्यक्तियों का कृत्य है, अन्तर्गत धारा 498-ए, 304-बी भा०द०सं० और अन्तर्गत धारा 3/4 डी.पी. अधिनियम के अपराध को स्पष्ट रूप से स्थापित करना और अधिनियम, 1872 की धारा 113-बी के अन्तर्गत अनुमान लगाया गया कि अभियुक्तों द्वारा मृतक को गंभीर चोटें पहुंचाई गई थीं, जो शव विच्छेदन रिपोर्ट से स्पष्ट एवं प्रमाणित है। मृत्यु से पूर्व मृतिका ने अपने परिजनों को बताया था कि उसकी और जो बच्चा अभी पैदा नहीं हुआ है उसकी हत्या किये जाने की आशंका है. केवल यह उल्लेख करने से कि आवेदक एक सम्मानित परिवार से थे, किसी भी तरह से उनके द्वारा किए गए गंभीर, जघन्य अपराध को कम नहीं किया जा सकता है और जब शुरू से ही दहेज की मांग की गई थी और मृतक पर क्रूरता और

आवेदकों के मृतक के साथ संबंध थे बिल्कुल भी सौहार्दपूर्ण और प्रेमपूर्ण नहीं था, लेकिन समय-समय पर उनके द्वारा उठाई गई मांग को पूरा करने के लिए क्रूर भी था। बीएड परीक्षा से संबंधित संपूर्ण शुल्क एवं व्यय सूचक, मृतक के पिता द्वारा वहन किया गया था और आवेदकों द्वारा किसी भी तरह से कोई वित्तीय सहायता नहीं दी गई थी और इस संबंध में पूरी तरह से मनगढ़ंत है तथा मनगढ़ंत कहानी गढ़ी गई है। डॉ. सरोजनी सिंह के बयान से यह स्पष्ट है कि मृतिका को मृत्यु से पहले चोटें लगी थीं और जब उसे अस्पताल लाया गया तो उसकी हालत बहुत गंभीर थी और हालांकि डॉ. सरोजनी सिंह द्वारा विशेष अस्पताल की गहन देखभाल इकाई के आग्रह पर जानबूझकर आवेदकों ने उसे ले जाने से परहेज किया जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। यह लापरवाही का कार्य नहीं था बल्कि आईपीसी की धारा 304-बी के अन्तर्गत अपराध करने का सरासर विचार-विमर्श था।

24. आगे कहा गया है कि आवेदकों द्वारा मृतक को कभी भी चिकित्सा उपचार के लिए नहीं ले जाया गया था, लेकिन मृतक के पिता और उसके परिवार के सदस्य देखभाल कर रहे थे और वह उनके साथ रह रही थी, लेकिन आवेदक जबरदस्ती मृतक को अपने घर वापस ले गए जहां मृतक था लगातार गर्भपात हुआ और गर्भावस्था के दौरान मृतिका को उसके पिता या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा नियमित चिकित्सा जांच के लिए ले जाया गया था, न कि आवेदकों द्वारा। इस संबंध में उक्त संस्करण पूर्णतः अस्वीकार्य है। मृतक को कोई बीमारी नहीं थी। आवेदकों ने कभी भी मृतिका के परिजनों को यह जानकारी नहीं दी कि वे उसे प्रसव के लिए अस्पताल ले जा रहे हैं। मृतक की मृत्यु के बाद परिवार के सदस्यों को इसकी जानकारी हुई और जब उन्होंने चिकित्सा विशेषज्ञ और डॉ. सरोजनी सिंह से तथ्यों की जांच की, तो आवेदकों के दुष्कर्म से संबंधित पूरी तस्वीर गवाह और उसके परिवार के सदस्यों के सामने आ गई। आरोपियों द्वारा मृतक को गंभीर चोटें पहुंचाई गई थीं, जो शव विच्छेदन रिपोर्ट से स्पष्ट है। मृतक की तस्वीरों से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि घर्षण का घाव एक छिद्रित घाव के साथ मौजूद था, जो राय में गला घोंटने को दर्शाता है, जिसकी पुष्टि बीएचयू के फोरेंसिक मेडिसिन विभाग के प्रोफेसर और प्रमुख ने की है। जिस चिकित्सक ने ऑपरेशन किया था, उसने 19.05.2020 को अपना शपथ पत्र दायर किया है, जिसमें बिना किसी संदेह के यह स्थापित किया गया है कि मृत्यु पूर्व चोटें मौजूद थीं और आरोपी व्यक्तियों और विशेषज्ञ द्वारा विशेष रूप से किए गए अवैध कृत्य के कारण मृतक को गंभीर समस्या का सामना करना पड़ा था। कहा गया कि यह मौत के संभावित कारण के रूप में हाथ से गला घोंटने और गला घोंटने के गंभीर कार्य का मामला है और इसमें घर्षण और छिद्रित घाव सहित मृत्यु पूर्व चोटें थीं। सूचना देने वाले ने तथ्यों में हेरफेर नहीं किया है और आवेदकों द्वारा इसकी गलत व्याख्या और हेरफेर किया गया है। चिकित्सा साक्ष्य और विशेषज्ञ की राय के साथ-साथ मृतक की उसके परिवार के सदस्यों के साथ अंतिम रिकॉर्डिंग और गवाहों के बयानों ने आवेदकों के विरुद्ध संदेह से परे मामला स्थापित किया। डॉ. एसएस बोहरा आवेदकों के

साथ मिले हुए हैं और उनकी गवाही अविश्वसनीय है क्योंकि विशेषज्ञ की राय से इसका खंडन किया गया है। मृतिका को लगी शारीरिक चोटों के संबंध में आवेदकों द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया गया है कि किन परिस्थितियों में उसे चोटें लगीं और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113-बी के अन्तर्गत इसका भार उन पर पड़ता है।

25. दिनांक 30.04.2020 रिकार्डिंग की एक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य है तथा इससे यह संदेह स्थापित होता है कि प्रार्थियों द्वारा बार-बार मृतक के साथ मारपीट एवं जानमाल की धमकी दी जा रही थी तथा दिनांक 30.04.2020 की रिकार्डिंग मोबाईल फोन से प्राप्त की गयी है। अपूर्व कुमार का मामला विधि की दृष्टि में एक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य है और इसे न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि मृतक के मोबाइल फोन से छेड़छाड़ की गई थी और वह आवेदकों की हिरासत में थी और अन्वेषण अधिकारी आवेदकों के साथ मिलकर काम कर रहा था और आज तक आईओ द्वारा मृतक का मोबाइल बरामद नहीं किया गया है और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जबकि वही सबसे विश्वसनीय साक्ष्य था। डॉ मोनिशा सिंह ने कहा है कि उनकी ओर से कोई लापरवाही नहीं हुई है, लेकिन आवेदकों ने जानबूझकर प्रक्रिया में देरी की और डॉक्टरों द्वारा दी गई राय पर भी विचार नहीं किया और आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक को गंभीर चोटें आईं, जो शव विच्छेदन से काफी स्पष्ट है। शव विच्छेदन रिपोर्ट और तस्वीरों में खरोंच के साथ-साथ एक छिद्रित घाव की पुष्टि हुई है जो गला घोंटने का संकेत देता है। एपेक्स अस्पताल एक निजी अस्पताल है। इस अस्पताल की रिपोर्टों के आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि मृतक की स्वाभाविक मौत हुई, जबकि संबंधित चिकित्सक आवेदकों का करीबी दोस्त था और उनके साथ था। बी.एच.यू. के फॉरेंसिक विभाग की रिपोर्ट एक ठोस, पुष्ट साक्ष्य है जिसने स्पष्ट रूप से स्थापित किया है कि मृतक के साथ मारपीट की गई थी और उसे मृत्यु से पहले चोटें आई थीं जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। चूंकि डॉ. प्रकाश कुमार भारती और डॉ. एसएस बोहरा की रिपोर्ट और बयान मेल नहीं खा रहे थे, इसलिए बीएचयू के फोरेंसिक साइंस विभाग से विशेषज्ञ की राय ली गयी. ऑपरेशन करने वाली चिकित्सक ने 19.05.2020 के अपने हलफनामे में कहा कि आरोपी व्यक्तियों के अवैध कृत्य के कारण मृतक को गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। उसने विशेष रूप से कहा है कि यह मौत के संभावित कारण के रूप में हाथ से गला घोंटने और गला घोंटने के गंभीर कृत्य का मामला है। उपरोक्त के आधार पर आवेदकों द्वारा दाखिल इस आवेदन को खारिज करने की प्रार्थना की गयी है.

26. आवेदकों ने प्रति शपथ पत्र दायर किया है और प्रति शपथ पत्र की सामग्री से इनकार किया है और आरोप लगाया है कि दिनांक 30.04.2020 की कथित बातचीत का प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई उल्लेख नहीं है, इसे बाद में सीआरपीसी की धारा 161 के अन्तर्गत बयान के माध्यम से जोड़ा गया है, इसे साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65-बी के अनुसार प्रमाणित नहीं किया गया है, इसलिए इसे

साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। व्हाट्सएप चैट को भी धारा 65-बी के अनुसार प्रमाणित नहीं किया गया है, गर्भावस्था के बाद की जटिलताओं के कारण मृतक की मृत्यु हो गई थी और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है जिससे पता चलता है कि पुलिस वास्तव में सूचनाकर्ता के साथ मिली हुई थी। मृत्यु पूर्व चोटें सिजेरियन ऑपरेशन के कारण हुई थीं और गर्दन पर घर्षण कैथेटर के उपयोग के कारण हुआ था जो डायलिसिस के उद्देश्य से डाला गया था। मृतक के शरीर पर कोई चोट का निशान नहीं है। तस्वीर को देखने से, चोट की प्रकृति निश्चित रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती है, इसलिए फॉरेंसिक एक्सपर्ट की रिपोर्ट पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

27. डॉ. सरोजनी सिंह ने ऑपरेशन नहीं किया था। उन्होंने यह बात सिर्फ अपने अस्पताल की चिकित्सकीय लापरवाही को छुपाने के लिए कही है। उपहति रिपोर्ट का विधि की नजर में कोई साक्ष्यीय मूल्य नहीं है। यह शव विच्छेदन रिपोर्ट है जिस पर भरोसा किया जाना चाहिए और शव विच्छेदन रिपोर्ट में पाए गए चोटों के बारे में विधिवत बताया गया है। मृतक के भाई अपूर्व कुमार ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि गर्दन पर खरोंच कैथेटर के इस्तेमाल से हुई है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65-बी के निर्देशों का पालन न करने के कारण इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता है। मृतक का कोई मृत्यु पूर्व बयान नहीं है और मृतक द्वारा अपने परिवार के सदस्यों को दिया गया बयान अफवाह सुना-सुनाया एवं न्यायतर प्रकृति का होगा।

28. अभिलेख को सुना और उसका अवलोकन किया।

29. उपरोक्त कथन के आधार पर ये तथ्य स्पष्ट होते हैं कि विवाह के सात वर्ष के भीतर अप्राकृतिक मृत्यु का आरोप है, दहेज मांगने का आरोप है। अन्वेषण अधिकारी के अनुसार मौखिक, दस्तावेजी और चिकित्सीय साक्ष्यों के आधार पर यह चिकित्सीय लापरवाही का मामला नहीं है। आवेदकों के अनुसार यदि यह डॉ. मोनिशा सिंह द्वारा की गई चिकित्सीय लापरवाही का मामला है तो आवेदकों द्वारा उनके विरुद्ध कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट क्यों दर्ज नहीं कराई गई, यह विचार का विषय है और यह आवेदकों के विरुद्ध जाता है।

30. दिनांक 30.04.2020 की बातचीत से पता चला कि मृतिका को आवेदकों से अपनी जान का खतरा था। दिनांक 30.04.2020 को मृतिका ने अपनी बहन दीपा को बताया था कि अब बर्दाश्त की सीमा से बाहर होने का समय आ गया है "वह जीवित रहेगी या नहीं।" कल दोनों भाइयों ने मिलकर उसे लात-घूंसों से पीटा, बताओ, जहर खा लें, मर जाएं या भाग जाएं, अब अर्थी निकलेगी घर से, आप लोग इसकी व्यवस्था करें, तुम्हें कोई खबर नहीं मिलेगी, हाथ-पैर खड़े हो जायेंगे, इसकी कोई खबर नहीं होगी। मृतक की मां कह रही है कि फोन से पूछकर बात क्यों नहीं की। मृतक ने जवाब दिया कि यहां फोन नहीं मिल रहा है, फोन मांगा तो कहा गया कि फोन में कई चीजें

हैं कि फोन कैसे दिया जा सकता है। काफी कहने के बाद फोन रिसीव हो रहा है, माँ बोली तुम्हारी हालत ठीक नहीं है, चुपचाप बोलो, मृतक ने कहा कि सारी इज्जत चली गयी। वे उसे चारों ओर से बैठा रहे हैं। वे सुन रहे हैं कि हम किस बारे में बात कर रहे हैं। माँ द्वारा फिर से पूछे जाने पर, मृतक ने उत्तर दिया कि उसकी स्थिति समाप्त हो गई है। मृतक आगे कहता है, अब आप पुलिस के साथ आइए लेकिन उन्होंने मना कर दिया। उन्होंने आगे कहा है कि कुछ न कुछ हो रहा है, हमें राहत नहीं मिल रही है। उसने आगे बताया कि उसे लात-घूंसों से पीटा गया, उसकी मां बोलीं, ऐसे में तुम्हें किसने पीटा, क्या यह शर्म की बात नहीं है। मृतक ने जवाब दिया, तुम्हारे दामाद ने पीटा है। मृतक ने आगे कहा है कि आरोपी उसके बेटे को छोड़ने की बात कह रहे हैं, वे उसे अधिक से अधिक पैसे देंगे, वह कहीं आ-जा नहीं सकती, उसे बाहर नहीं निकलने दे रहे हैं। मृतक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ये लोग कह रहे हैं कि तुम उनके बेटे को छोड़ दो, वे उसे कई गुना से दो-तीन गुना तक पैसा देंगे। अब चैन नहीं, काँटा निकालने की पूरी योजना बन चुकी है। हर कोई कह रहा है कि हमारे बेटे (पति) को छोड़ दो, हम उसे तीन-चार गुना पैसा देंगे। वे उसे घर की खेती मान रहे हैं. सास अपने बच्चे (मृतका के पति) की जान बचाने के लिए उनसे तीन गुना पैसे लेने की बात कह रही है। कुछ नहीं हो सकता, अब तुम मेरा मरा हुआ मुँह देखोगे, बस तुम मुझे ले जाओ। मृतक की मां ने जवाब दिया था कि शांत रहो और फोन बाउजी को दे दो"।

31. इतने में एक आदमी मृतिका के पास पहुंचा और बोला कि तेरी इच्छा पूरी हो गई, अब यहां से चली जाओ। इसके बाद मृतक की मां दोबारा मृतक से बात करने की कोशिश कर रही है लेकिन फोन काट दिया गया है।

32. दिनांक 20.10.2020 को दर्ज बयान मृतक, उसकी बहन - नीति, पिता ओम प्रकाश के बीच है और इसे आरोप पत्र प्रस्तुत करने का आधार भी बनाया गया है। इस बातचीत का प्रासंगिक हिस्सा भी नीचे नोट किया गया है जिसमें मृतक कह रहा था कि "उसने रात में बहुत कुछ सुना है, शांत रहने के लिए यहां कोई नहीं है. अब यहाँ हर कोई एक ही सुर में बोलेगा "तुम्हारे पिता जूते पॉलिश करते हैं", सुन रहा हूं कि मेरे पिता ने जूता पॉलिश किया है, क्या तुमने बताया कि तुमने उनके जूते पॉलिश किये हैं..... इधर मुझे बहुत स्वर सुनाई दे रहा है कि मैं जूते पॉलिश करने वाली की लड़की हूं। मैं यहां बिल्कुल नहीं रुकूंगा, यहां कोई गारंटी लेने वाला नहीं है।" इस बातचीत में विपक्षी संख्या 2 ने यह भी आरोप लगाया कि आवेदक संख्या 1, मृतिका के पति का उसके भाई की पत्नी के साथ अवैध संबंध था, विपक्षी क्रमांक 2 ने गुस्से में कहा कि यदि उसका दामाद अनावेदक क्रमांक 1 अपनी भाभी को रखैल बनाकर उसके साथ रह रहा था तो उसने उसकी पुत्री से विवाह क्यों रचाया, उन्होंने कहा कि उसे वापस ले जाने के लिए मृतका के मौसा को बुलाओ।

33. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि मृतक के वैवाहिक परिवार के भीतर और मृतक और आवेदक क्रमांक 1 के बीच सब कुछ ठीक नहीं था। यह भी तर्क दिया गया है कि यदि आरोपी

आवेदक क्रमांक 1 2005 से रेलवे विभाग के द्वितीय श्रेणी में सेवा में था, इतने अनुचित समय के बाद विवाह क्यों संपन्न किया।

34. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने आपत्ति उठाई है कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65-बी के मद्देनजर ऐसी बातचीत को साक्ष्य के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। इस संबंध में कई निर्णय उपलब्ध हैं जो निम्नानुसार हैं: -

(I) रविंदर सिंह उर्फ कुकू बनाम पंजाब राज्य**, 2022** लाइव लॉ **(**एससी**) 461** में यह माना गया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) के अन्तर्गत प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के उत्पादन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह भी माना गया कि ऐसे प्रमाणपत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य संभवतः नहीं लगाया जा सकता। यह भी माना गया कि परिस्थितियों से परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों में आरोपी के अपराध को उचित संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए और उन परिस्थितियों से निकाले जाने वाले प्रमुख तथ्यों के साथ निकटता से संबंधित होना चाहिए। . वर्तमान मामले में इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य प्राथमिक साक्ष्य है न कि द्वितीयक साक्ष्य और सभी उचित संदेहों से परे आरोपी आवेदकों के खिलाफ परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। सुविधा के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी(4) इस प्रकार है:-

*"65*बी*.* इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की स्वीकार्यता।*–(4)* किसी भी कार्यवाही में जहां इस धारा के आधार पर साक्ष्य में एक बयान देना वांछित है, निम्नलिखित में से कोई भी काम करने वाला एक प्रमाण पत्र, यानी-

*(*ए*)* बयान वाले इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की पहचान करना और इसे तैयार करने के तरीके का वर्णन करना*;*

*(*बी*)* उस इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के उत्पादन में शामिल किसी भी उपकरण का ऐसा विवरण देना जो यह दिखाने के उद्देश्य से उपयुक्त हो कि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड कंप्यूटर द्वारा उत्पादित किया गया था*;*

*(*सी*)* उन मामलों में से किसी से निपटना, जिनसे उप-धारा *(2)* में उल्लिखित शर्तें संबंधित हैं, और संबंधित उपकरण के संचालन या प्रबंधन के संबंध में एक जिम्मेदार आधिकारिक पद पर बैठे व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाने का तात्पर्य है। प्रासंगिक गतिविधियाँ *(*जो भी उचित हो*)* प्रमाणपत्र में बताए गए किसी भी मामले का साक्ष्य होंगी*;* और इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए किसी मामले को बताने वाले व्यक्ति के सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार बताया जाना पर्याप्त होगा।*"*

(II) अनवर पीवी बनाम पीके बशीर**, (2014) 10** एससीसी **473 (**तीन-न्यायाधीशों की बेंच**)** में यह फैसला सुनाया गया है कि धारा 65बी(4) के अन्तर्गत द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए प्रमाणपत्र आवश्यक है।

(III) यूपी राज्य बनाम अजय कुमार शर्मा**, 2016 (92)** एसीसी **981 (**एससी**)** (पैरा 14) में यह निर्धारित किया गया है कि "कॉम्पैक्ट डिस्क" एक "दस्तावेज़" है जिस पर पक्षकार या उनके अधिवक्ता द्वारा स्वीकार और अस्वीकार दोनों किया जा सकता है।

(IV) मुकेश बनाम दिल्ली राज्य **(**एनसीटी**)** और अन्य में**,** एआईआर **2017** एससी **2161** (तीन जजों की बेंच) कंप्यूटर सेल विशेषज्ञ ने सीसीटीवी फुटेज के साथ कोई छेड़छाड़ या संपादन नहीं किया। इसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी के अन्तर्गत स्वीकार्य माना गया।

35. अधिनियम, 1872 की धारा 3(2) के अन्तर्गत, इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड दस्तावेज हैं और वे धारा 17, 22ए, 34, 35, 39, 45ए, 47-ए, 59, 65-ए, 65-बी, 67-ए, 73-ए, 81-ए, 85-ए, 85-बी, 85-सी, 88, 88-ए, 90-ए और 131 साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत प्रासंगिक और स्वीकार्य हैं।

36. आर.एम. मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य**,** एआईआर **1973** एससी **157** और राम सिंह और अन्य बनाम कर्नल राम सिंह**, 1985 (**सप्लीमेंट**)** एससीसी **616** और दिल्ली राज्य **(**एनसीटी**) (**सुप्रा**)** में यह माना जाता है कि प्रासंगिक बातचीत अभिलेख की गई है टेप रिकार्डर में साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है।

37. अनवर पीवी (सुप्रा) और हरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य**, (2017) 1** एससीसी **734** में शीर्ष न्यायालय ने माना कि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड का प्रमाण साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत पेश किया गया एक विशेष प्रावधान है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ए का शीर्षक, धारा 59 और 65बी के साथ पढ़ा जाए, यह मानने के लिए पर्याप्त है कि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड से संबंधित साक्ष्य पर विशेष प्रावधान साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया द्वारा शासित होंगे। वह अपने आप में एक संपूर्ण संहिता है। एक विशेष विधि होने के नाते, धारा 63 और 65 के अन्तर्गत द्वितीयक साक्ष्य पर सामान्य विधि का पालन करना होगा। इसलिए द्वितीयक साक्ष्य के माध्यम से एक इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड को साक्ष्य में तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि धारा 65बी के अन्तर्गत आवश्यकताएं पूरी नहीं हो जातीं। इस प्रकार, सीडी, वीसीडी, चिप आदि के मामले में दस्तावेज़ लेते समय प्राप्त धारा 65 बी के संदर्भ में प्रमाण पत्र के साथ होना चाहिए, जिसके बिना उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य अस्वीकार्य है।

38. विक्रम सिंह बनाम पंजाब राज्य**, (2017) 8** एससीसी **518** में, फिरौती कॉल की मूल टेप रिकॉर्ड की गई बातचीत पुलिस को सौंप दी गई थी, यह माना गया है कि मूल टेप रिकॉर्ड प्राथमिक साक्ष्य था, इसलिए धारा 65 बी के अन्तर्गत प्रमाण पत्र इसकी स्वीकार्यता के लिए साक्ष्य अधिनियम की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा प्रमाणपत्र केवल द्वितीयक साक्ष्य के लिए अनिवार्य है, प्राथमिक साक्ष्य के लिए नहीं।

39. कर्नाटक लोकायुक्त पीएस बेंगलुरु बनाम एमआर हिरेमथ**, 2019 0** सुप्रीम **590 (**एससी**)** द्वारा राज्य में यह माना जाता है कि धारा 65 बी के अन्तर्गत प्रमाण पत्र मुकदमे में साक्ष्य के रूप में पेश किया जाना चाहिए, न कि आरोप तय करने के चरण में।

40. अर्जुन पंडितराव खोलकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल और अन्य**,** एआईआर **2020** एससी **4908** (तीन-न्यायाधीशों की पीठ) में यह माना गया है कि धारा 65बी(4) के अन्तर्गत आवश्यक प्रमाणपत्र इलेक्ट्रॉनिक

रिकॉर्ड के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए एक शर्त है। ऐसे प्रमाणपत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य संभवतः पर्याप्त नहीं हो सकता क्योंकि धारा 65बी(4) कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है। धारा 65बी(4) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि द्वितीयक साक्ष्य केवल तभी स्वीकार्य है जब बताए गए तरीके से किया गया हो, अन्यथा नहीं। अन्यथा धारण करने से धारा 65बी(4) निरर्थक हो जाएगी। धारा 65बी की उपधारा (4) में अपेक्षित प्रमाणपत्र अनावश्यक है यदि मूल दस्तावेज़ स्वयं प्रस्तुत किया गया हो। यह लैपटॉप कंप्यूटर, कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि मोबाइल फोन के मालिक द्वारा गवाह बॉक्स में जाकर यह साबित करके किया जा सकता है कि संबंधित डिवाइस जिस पर मूल जानकारी पहली बार संग्रहीत की गई है, उसका स्वामित्व और/या उसके द्वारा संचालित है। . ऐसे मामलों में जहां "कंप्यूटर", जैसा कि परिभाषित है, "कंप्यूटर सिस्टम" या "कंप्यूटर नेटवर्क" का हिस्सा होता है और ऐसे नेटवर्क या सिस्टम को भौतिक रूप से न्यायालय में लाना असंभव हो जाता है, तो साबित करने का एकमात्र साधन ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में मौजूद जानकारी धारा 65बी(1) के अनुसार, धारा 65बी(4) के अन्तर्गत अपेक्षित प्रमाणपत्र के साथ हो सकती है।

41. मोहम्मद आरिफ **@** अशफाक बनाम दिल्ली राज्य **(**एनसीटी**), 2022 0** सुप्रीम **(**एससी**) 1113** (तीन-न्यायाधीशों की बेंच) में शीर्ष न्यायालय ने अनवर पीवी **(**सुप्रा**)** और अन्य घोषणाओं पर चर्चा की और कहा कि "अब यह होना चाहिए" यह तय माना जाएगा कि अनवर पीवी **(**सुप्रा**)** में इस न्यायालय का निर्णय, जैसा कि अर्जुन पंडितराव **(**सुप्रा**)** में स्पष्ट किया गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी पर घोषित कानून है। पैरा 22 में अर्जुन पंडितराव **(**सुप्रा**)** के निर्णय का संदर्भ दिया गया है जो इस प्रकार है:-

"73. संदर्भ का उत्तर इस प्रकार दिया गया है कि*:*

73.1. अनवर पीवी बनाम पी.के*.* बशीर*, (2014) 10* एससीसी *473,* जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया है*,* साक्ष्य अधिनियम की धारा *65-*बी पर इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि है। टोमासो ब्रूनो बनाम स्टेट ऑफ यूपी*, (2015) 7* एससीसी *178* में निर्णय*,* गलत होने के कारण*,* कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है। इसके अलावा*,* शफी मोहम्मद बनाम स्टेट ऑफ एच.पी*., (2018) 2* एससीसी *801* और दिनांक *3-4-2018* के निर्णयों को शफी मोहम्मद के रूप में रिपोर्ट किया गया। बनाम एच.पी. राज्य*, (2018) 5* एससीसी *311,* कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है और इसलिए खारिज कर दिया जाता है।

73.2. ऊपर उल्लिखित स्पष्टीकरण यह है कि यदि मूल दस्तावेज़ स्वयं प्रस्तुत किया गया है तो धारा *65-*बी*(4)* के अन्तर्गत आवश्यक प्रमाणपत्र अनावश्यक है। यह लैपटॉप कंप्यूटर, कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि मोबाइल फोन के मालिक द्वारा गवाह बॉक्स में जाकर यह साबित करके किया जा सकता है कि संबंधित डिवाइस, जिस पर मूल जानकारी पहली बार संग्रहीत की जाती है, उसका स्वामित्व और*/*या संचालन उसके द्वारा किया जाता है। . ऐसे

मामलों में जहां "कंप्यूटर" किसी "कंप्यूटर सिस्टम" या "कंप्यूटर नेटवर्क" का हिस्सा होता है और ऐसे सिस्टम या नेटवर्क को भौतिक रूप से न्यायालय में लाना असंभव हो जाता है, तो ऐसे इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड में निहित जानकारी प्रदान करने का एकमात्र साधन धारा *65*-बी*(1)* के अनुसार, धारा *65*-बी*(4)* के अन्तर्गत अपेक्षित प्रमाण पत्र के साथ हो सकता है। अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, *(2014) 10* एससीसी *473* में पैरा *24* में अंतिम वाक्य जो इस प्रकार है *"...*यदि साक्ष्य अधिनियम की धारा *62* के अन्तर्गत एक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को प्राथमिक साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जाता है *..."* इस प्रकार है स्पष्ट किया गया*;* इसे "साक्ष्य अधिनियम की धारा *62* के अन्तर्गत*..."* शब्दों के बिना पढ़ा जाना चाहिए। इस स्पष्टीकरण के साथ, अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, *(2014) 10* एससीसी *473* के पैरा *24* में बताए गए विधि पर दोबारा गौर करने की जरूरत नहीं है।

73.3. इसके बाद पैरा *64 (*सुप्रा*)* में जारी किए गए सामान्य निर्देशों का पालन उन न्यायालयों द्वारा किया जाएगा जो इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य से निपटते हैं, ताकि उचित स्तर पर उनके संरक्षण और प्रमाणपत्र के उत्पादन को सुनिश्चित किया जा सके। ये निर्देश सभी कार्यवाहियों में लागू होंगे, जब तक कि सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा *67*-सी के अन्तर्गत नियम और निर्देश और दूरसंचार और इंटरनेट सेवा प्रदाताओं द्वारा अनुपालन के लिए डेटा प्रतिधारण शर्तें तैयार नहीं की जाती हैं।"

42. उपरोक्त चर्चा से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सबसे पहले न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होगा कि दोनों पक्षों में से किसी एक द्वारा प्रदान किया गया इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेज़ प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य है या नहीं। यदि यह प्राथमिक साक्ष्य न होकर द्वितीयक साक्ष्य है तो अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(4) के अन्तर्गत एक प्रमाणपत्र की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार उपरोक्त प्रमाणपत्र का उत्पादन केवल उचित चरण में आवश्यक होगा और उससे पहले नहीं जब पक्ष साक्ष्य में प्रवेश कर चुके हों। इसलिए, संज्ञान लेने या आरोप तय करने के साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी(4) के अन्तर्गत प्रमाण पत्र की कोई आवश्यकता नहीं होगी, भले ही प्रस्तुत किया गया दस्तावेज द्वितीयक साक्ष्य हो।

43. यदि आवेदकों के अनुसार मृत्यु डॉ. मोनिशा सिंह की सरासर लापरवाही का परिणाम थी तो आवेदकों द्वारा उनके विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज क्यों नहीं कराई गई।

44. मृतक के शरीर पर जो चोटें थीं, वे दवा या सर्जरी के अलावा मृत्यु पूर्व की चोटें थीं, इसका निर्णय केवल परीक्षण के दौरान ही किया जा सकता है।

45. केस डायरी में मौजूद बातचीत से यह पता चलता है कि परिवार के भीतर और मृतक और आरोपी व्यक्तियों के बीच सब कुछ ठीक नहीं था और मृतिका को उसके वैवाहिक घर में पीटा गया था और उसके साथ मानसिक और शारीरिक क्रूरता की गई थी। और आरोपी व्यक्तियों के दिल और दिमाग में उसके पिता के लिए कोई सम्मान नहीं था।

46. यद्यपि आवेदिका संख्या 5, राधा देवी की सिजेरियन डिलीवरी के मामले में डॉ. सरोजनी सिंह द्वारा आवेदक यह दलील ले रहे हैं कि उन्हें सामान्य डिलीवरी के संबंध में कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन डॉ. मोनिशा सिंह के बयान से यह स्पष्ट है कि सामान्य डिलीवरी की कोई संभावना नहीं थी। डिलीवरी फिर भी मृतिका के परिजन किसी भी कीमत पर नॉर्मल डिलीवरी के लिए अड़े हुए थे और इसके लिए दबाव बना रहे थे। उसने स्थिति समझाने की कोशिश की लेकिन न तो मृतिका का पति और न ही उसके परिवार वाले सिजेरियन डिलीवरी के लिए तैयार थे और वे सामान्य डिलीवरी के लिए दबाव बना रहे थे। इसलिए मरीज को एंटी-बायोटिक और सपोर्टिव दवाएं दी गईं, आरोपी कह रहे थे कि आज शनिवार है और उनके पंडितजी ने कहा है कि अगर तुम्हारे यहां बच्चा पैदा हुआ तो वह दिन अशुभ होगा, मरीज (मृतक) के पति से लिखित में लिया गया कि मरीज की कोई प्रगति नहीं हो रही है और चिकित्सक और अस्पताल मां और बच्चे के जीवन की सुरक्षा की गारंटी नहीं दे सकते और वे मरीज को 08:30 बजे ले गए, लिख रहा हूं कि वे अपनी मर्जी से मरीज को डिस्चार्ज करा रहे हैं, दिनांक 04.05.2020 को दोपहर 02:00 बजे मरीज का पति अपनी पत्नी निधि प्रकाश के साथ बहुत घबराई हुई स्थिति में उनके अस्पताल में आया। मरीज को पेट में असहनीय दर्द हो रहा था. मरीज ने बताया कि पिछले 8 घंटे से पेट में बच्चे की हलचल कम हो गई है। उसे बुखार और पीलिया भी है, बच्चे की दिल की धड़कन 80-100 की दर से थी. मरीज को रिसाव हो रहा था जिस पर मेकोनियम का दाग था, मां और बच्चे की सुरक्षा के लिए ऑपरेशन ही एकमात्र जरूरी विकल्प था, जो उन्हें दो दिन पहले ही बता दिया गया था, मरीज को यूरिन इन्फेक्शन था और मरीज को पीलिया था और लीवर एंजाइम्स बढ़े हुए थे, ऑपरेशन के लिए सहमति उसके पति ने दी थी, चिकित्सक ने गर्भ में पल रहे बच्चे की नसों को संभालने की कोशिश की. दोपहर 03:30 बजे डॉ. मोनिशा सिंह द्वारा डॉ. सरोजनी सिंह, एनेस्थेटिक डॉ. सुरेंद्र कुमार श्रीवास्तव और कंसल्टेंट चाइल्ड स्पेशलिस्ट डॉ. ज्ञानेंद्र की मदद से ऑपरेशन शुरू किया गया, पता चला कि उसके पेट में जलोदर द्रव था, तरल पदार्थ निकालने के बाद उसे जांच के लिए भेजा गया, बेहतर चिकित्सा देखभाल के लिए बच्चे को एनआईसीयू में स्थानांतरित कर दिया गया, ऑपरेशन सफलतापूर्वक पूरा हुआ. मरीज को शाम 06:00 बजे से लगातार पित्त की उल्टी होने लगी पूछताछ करने पर मरीज ने बताया कि उसकी सास ने अस्पताल आने से एक घंटे पहले उसे देशी घी खिलाया था जबकि पीलिया के मरीज के लिए यह पूर्णतया वर्जित है, ऑपरेशन के तीन घंटे बाद 103F बुखार हुआ जिसके लिए इंजेक्शन और एंटी-बायोटिक्स दिए गए, शाम को 08:00 बजे से रोगी को पेशाब धीमी गति से आने लगा। रात 02:00 बजे के बाद पेशाब करना बिल्कुल बंद हो गया। बताया गया कि अस्पताल में आगे की जांच व डायलिसिस की सुविधा उपलब्ध नहीं है. मरीज को आईसीयू में रखा जाएगा। सुबह 07:30 बजे उनके पति को उनके मोबाइल पर मृतिका की स्थिति के बारे में बताया गया - ओम प्रकाश (पति) के दोस्त अभिषेक अस्पताल आए और मरीज को बेहतर इलाज के लिए छुट्टी दे दी गई, इसके लिए

उन्होंने उनके अस्पताल से रेफरल लिया। उपचार के दौरान मरीज का रक्तचाप, नाड़ी दर, श्वसन दर, ऑक्सीजन संतृप्ति एवं सामान्य स्थिति सामान्य थी।

47. ऐसी स्थिति में जब डॉ मोनिशा सिंह और संबंधित अस्पताल के खिलाफ कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत नहीं की गई है और डॉ मोनिशा सिंह की रिपोर्ट और बयान अभियोजन पक्ष के पक्ष में है, इस न्यायालय का मानना है कि परीक्षण के दौरान और उसके बाद सत्यता सामने आएगी।

48. जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि पीड़िता की मौत के कारण के बारे में जांच के गवाहों के बीच मतभेद थे इसलिए उसे शव परीक्षण के लिए भेजा गया था। फॉरेंसिक विभाग के प्रोफेसर और प्रमुख का मानना है कि चिकित्सक ने शव विच्छेदन करते समय थोड़ी जल्दबाजी की और उनकी ओर से लापरवाही भरा रवैया रहा कि गर्दन पर चोट के निशान होने के बावजूद उन्होंने गर्दन को काटकर नहीं देखा। आस-पास के ऊतकों और गर्दन की मांसपेशियों पर मौजूद आंतरिक चोटें, दम घुटने की समस्या को बाहर करने के लिए, यानी गला घोंटने को मौत का संभावित कारण माना जाता है।

49. ऐसी स्थिति में इस न्यायालय को मामले का निर्णय करना और आवेदकों को मुकदमे से मुक्त करना कठिन लगता है। मौत का कारण चिकित्सकीय लापरवाही है या यह दहेज हत्या का मामला है, इसका निर्णय विचारण न्यायाधीश साक्ष्य लेने के बाद ही कर सकेंगे। केवल इस आधार पर कि पति के साथ आनंद के कुछ पल दिखाने वाली कुछ तस्वीरें हैं, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आरोप तय नहीं किया जाना चाहिए और मुकदमा आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।

50. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मृतक द्वारा अपने परिवार के सदस्यों के साथ पूर्व बातचीत को अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) के अन्तर्गत मृत्युपूर्व घोषणा माना जाएगा। चूंकि मृत्यु शादी के सात साल के भीतर होती है और क्रूर व्यवहार और दहेज की मांग का आरोप है, धारा 113बी लागू होगी और इस संबंध में गवाहों ने अभियोजन पक्ष के समर्थन में कहा है, अस्पष्टीकृत मृत्युपूर्व चोट है, इस बात पर भी संदेह है कि अस्पताल में भर्ती होने से ठीक पहले मृतक की सास ने उसे कौन सा सामान दिया था, यह भी विचारणीय है कि जब डिलीवरी के संबंध में चिकित्सक द्वारा 04.05.2020 पहले ही तय कर दी गई थी तो मृतिका को इतनी देर से अस्पताल क्यों ले जाया गया और उसे पहले भर्ती क्यों नहीं किया गया।

51. उच्च न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के अन्तर्गत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है यदि वह इस संहिता के अन्तर्गत किसी आदेश को प्रभावी करना आवश्यक समझता है या यदि यह न्यायालय पाता है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो रहा है या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए यह आवश्यक है, न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा और आवेदकों द्वारा चुनौती दी गई किसी भी आदेश

या कार्यवाही को रद्द कर देगा।

52. उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें कई रहस्यमय परिस्थितियाँ, दहेज की माँग का आरोप, एक युवती की अप्राकृतिक मृत्यु, डॉक्टरों की राय में मतभेद शामिल हैं। अभियोजन के पक्ष में इलाज करने वाले चिकित्सक की रिपोर्ट और साक्ष्य हैं. विशेषज्ञों की राय है कि मृतक की मृत्यु हाथ से गला घोंटने से हुई होगी, मृत्यु से पहले मृतिका के बयान हैं जो आवेदकों द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार और क्रूरता को दर्शाते हैं। आवेदक संख्या 1 और आवेदक संख्या 5 के बीच अनैतिक संबंध का भी आरोप है, इस न्यायालय का मानना है कि धारा 227 सीआरपीसी के अन्तर्गत आवेदकों के आरोप पत्र और मुक्ति आवेदन की अस्वीकृति में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। केवल कृष्ण बनाम सूरज भान**,** एआईआर **1980** एससी **1780** में यह स्थापित सिद्धांत है कि जब प्रथम दृष्टया हत्या का मामला बनता है, तो केवल इसलिए आरोपी को आरोपमुक्त करना उचित नहीं है क्योंकि आरोपी का मृतक को मारने का कोई आशय नहीं था। आरोप के चरण में, अभियुक्त के अपराध या अन्यथा के संबंध में परीक्षण के मानक लागू नहीं किए जा सकते।

53. आरएस नायक बनाम एआर अंतुले और अन्य**,** एआईआर **1986** एससी **2045** में यह माना गया है कि जब पुलिस के समक्ष दिए गए बयान, मृत्यु पूर्व बयान, शव विच्छेदन रिपोर्ट के रूप में सामग्री आरोप तय करने के लिए स्पष्ट प्रथम दृष्टया मामला प्रस्तुत करती है, तो सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त को मुक्त करने में त्रुटि की।

54. बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह**,** एआईआर **1977** एससी **2018** में यह माना गया है कि परीक्षण, सबूत और निर्णय का मानक जो किसी अपराध या अन्यथा का पता लगाने के लिए आवश्यक है, इस स्तर पर आरोप तय करने और यहां तक कि एक मजबूत संदेह के लिए भी आवश्यक नहीं है। न्यायालय के समक्ष सामग्री पर पाया गया आरोप तय करने को उचित ठहरा सकता है। न्यायालय यह पता लगाने के लिए सबूतों को छांट और तौल सकती है कि क्या आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और साक्ष्य गंभीर संदेह को जन्म देता है, तो आरोप तय किया जा सकता है। इन दोनों धाराओं में "ग्राउंड" शब्द का इस्तेमाल किसी आरोपी पर मुकदमा चलाने के संदर्भ में किया गया है। यह वह मुकदमा है जिसमें आरोपी के अपराध या बेगुनाही का निर्धारण किया जाएगा, न कि संज्ञान लेने या आरोप तय करने के समय। इसलिए, न्यायालय को सामग्रियों को छांटने और तौलने में विस्तृत जांच करने की आवश्यकता नहीं है और न ही विभिन्न पहलुओं की गहराई में जाने की आवश्यकता है। इस स्तर पर आरोपी का बचाव नहीं देखा जाना चाहिए।

55. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का फिर से मानना है कि इस स्तर पर आवेदकों के पक्ष में कोई मामला नहीं बनता है और यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आरोप पत्र उचित और पर्याप्त

आधार के बिना प्रस्तुत किया गया है और अस्वीकृति मामले के तथ्य और विधि की दृष्टि से डिस्चार्ज आवेदन गलत है।

56. तदनुसार, धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत यह आवेदन **निरस्त** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 428

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल,

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन (सीआरपीसी की धारा 438 के तहत) संख्या 3552/2023

श्रीमती उर्मीला देवी एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री प्रमोद कुमार सिंह, श्री प्रवीण चंद्र मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री गौरव शर्मा

आपराधिक कानून- आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 319, 437 और 438 -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323, 325, 392, 452, 504 और 506 -अग्रिम जमानत के लिए आवेदन -एफआईआर -पहले आवेदकों को मजिस्ट्रेट द्वारा केवल धारा 323, 325, 504, 506 आईपीसी के तहत जमानत पर बढ़ाया गया था- उसके बाद आवेदकों को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का आह्वान करके संबंधित अदालत द्वारा बुलाया गया था - उन्होंने आईपीसी की अतिरिक्त धाराओं 392, 452 में जमानत के लिए आवेदन किया था - न्यायालय ने कहा कि, किसी भी व्यक्ति को आंशिक रूप से जमानत के लिए आवेदन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, वह भी सबसे पहले सीआरपीसी की धारा 437 का आह्वान करके जमानत प्राप्त करना और बाद में सीआरपीसी की धारा 438 का सहारा लेना। अन्य धाराओं में, उसे उन सभी धाराओं में जमानत के लिए आवेदन करना होगा जिनमें वह या तो धारा 437 या 438 सीआरपीसी के तहत वांछित है - तदनुसार, अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त किया गया। (पैरा-9,11)

जमानत आवेदन निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

सत्यन बनाम केरल राज्य (1981 क्रि. एलजे 1313)।

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल, द्वारा प्रदत्त)

1. सूची को संशोधित किया गया है।

2. आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रमोद कुमार सिंह, सूचनादाता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव शर्मा, व्यक्तिगत रूप से श्री रमेश चंद्र वैश्य, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए श्री वी.के.एस. परमार को सुना और रिकॉर्ड पर उपस्थित सामग्री का अवलोकन किया।

3. अग्रिम जमानत के लिए वर्तमान आवेदन मुकदमा अपराध संख्या 58/2016, धारा 392 और 452 आईपीसी, पुलिस स्टेशन थरवई, जिला इलाहाबाद के तहत मुकदमे की सुनवाई के दौरान अग्रिम जमानत के लिए दायर किया गया है।

4. शब्दाडंबर से बचने के लिए एफआईआर में लगाए गए आरोपों को यहां नहीं बताया गया है.

5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदकों को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। आवेदकों को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों का उपयोग करके संबंधित अदालत द्वारा बुलाया गया था। वर्तमान मामले में. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि धारा 319 सीआरपीसी के तहत सम्मन आदेश दिनांक 15.03.2021 को धारा 323, 504, 506, 325, 452 और 392 आईपीसी के तहत पारित किया गया था और आवेदकों ने धारा 323, 325, 504 और 506 आईपीसी के तहत जमानत के लिए आवेदन किया था। केवल, इस प्रकार उन्हें 04.01.2022 को संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक अतिरिक्त धाराओं में भी जमानत के हकदार हैं क्योंकि उन्होंने पहले दी गई जमानत का दुरुपयोग नहीं किया है।

6. इसके विपरीत, विद्वान एजीए और मुखबिर ने व्यक्तिगत रूप से इस आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन का जोरदार विरोध किया है कि न तो मजिस्ट्रेट और न ही लोक अभियोजक ने यह देखने की परवाह की कि आवेदकों को किन धाराओं के तहत बुलाया गया था और आवेदकों को जमानत दी गई थी, सिवाय इसके कि धारा 452 एवं 392 आई.पी.सी. इस प्रकार, आवेदकों ने अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है क्योंकि उन्हें पहले से ही संबंधित अदालत द्वारा केवल कुछ धाराओं में नियमित जमानत दी गई थी। आवेदकों को सीआरपीसी की धारा 437 लागू करके मजिस्ट्रेट के समक्ष आंशिक रूप से आवेदन करने की और फिर धारा 438 सीआरपीसी लागू करके अन्य धाराओं के लिये आवेदन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह कोर्ट की प्रक्रिया का दुरुपयोग है. शुरुआत में, या तो आवेदकों को सीआरपीसी की धारा 438 के तहत आवेदन करना चाहिए था। सत्र न्यायालय, इलाहाबाद के समक्ष या संबंधित मजिस्ट्रेट के न्यायालय में सभी धाराओं के तहत आवेदन करना चाहिए था।

7. विद्वान ए.जी.ए. के द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि मजिस्ट्रेट अदालत द्वारा विचारणीय मामलों में सुनवाई करने और या तो जमानत खारिज करने या देने में सक्षम है, भले ही आजीवन कारावास की सजा दी जा सकती हो। के निर्णय पर उन्होंने बहुत अधिक भरोसा किया है सत्यन बनाम केरल राज्य 1981 सीआरआई एलजे 1313, के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा उक्त राय व्यक्त की गई।

8. सूचनादाता द्वारा व्यक्तिगत रूप से दी गई दलीलें और ए.जी.ए. यह दृढ़ विश्वास रखें कि मजिस्ट्रेट आईपीसी की धारा 392 और 452 के तहत जमानत की सुनवाई और निस्तारण करने में सक्षम थे। आवेदकों और संबंधित मजिस्ट्रेट और यहां तक कि लोक अभियोजक की ओर से उक्त कृत्य स्पष्ट रूप से उचित नहीं था। आवेदक निश्चित रूप से साफ-सुथरे हाथों से नहीं आए हैं।

9. आरोपी को आईपीसी की धारा 323, 504, 506, 325, 452 और 392 के तहत तलब किया गया और सभी धाराओं में जमानत के लिए आवेदन करना चाहिए था. किसी भी व्यक्ति को आंशिक रूप से जमानत के लिए आवेदन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, वह भी सबसे पहले सीआरपीसी की धारा 437 के तहत शक्तियों का उपयोग करके जमानत

प्राप्त करना और बाद में सीआरपीसी की धारा 438 का सहारा लिया। अन्य अनुभागों में. उसे उन सभी धाराओं में या तो सीआरपीसी की धारा 437 या सी.आर.पी.सी. की धारा 438 के तहत जमानत के लिए आवेदन करना होगा जिनमें वह वांछित है

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और प्रतिद्वंद्वियों की दलीलों पर विचार करने के पश्चात अग्रिम जमानत आवेदन के साथ दायर शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या 9 और 10 का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद, मुझे यह आवेदन के लिये अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता है।

11. वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन को गुणहीन पाया गया है और तदनुसार ख़ारिज किया जाता है।

12. यह स्पष्ट किया जाता है कि इसमें की गई टिप्पणियाँ अग्रिम जमानत आवेदन के निस्तारण से संबंधित पक्षों द्वारा लाए गए तथ्यों तक सीमित हैं और उक्त टिप्पणियों का परीक्षण के दौरान मामले के गुणों पर कोई असर नहीं होगा।

(2023) 5 ILRA 430

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल,

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन (सीआरपीसी की धारा 438 के तहत) संख्या 3979/2023

आलोक कुमार सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री जफर अब्बास, श्री सुशील कुमार तिवारी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री दीपक कुमार श्रीवास्तव, श्री मुकेश जोशी

ए. आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 354, 354बी, 323, 504 और 506-आवेदन-अस्वीकृति- कचरा आदि के निपटान को लेकर पक्षों के बीच विवाद है। पक्षों के बीच कहासुनी हुई है- आवेदक ने धारा 482 सीआरपीसी के प्रावधानों का उल्लंघन किया है और विफल रहा है- आवेदक और सह-आरोपियों ने दो महिलाओं की शील भंग की है और यहां तक कि वादी के कपड़े भी फाड़ दिए हैं- उक्त आरोप वादी और पीड़िता के धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज बयानों से पुष्ट होते हैं- अन्य सह-आरोपियों को अग्रिम जमानत पर नहीं बढ़ाया गया है, बल्कि उन्हें सत्र न्यायालय द्वारा नियमित जमानत पर बढ़ाया गया है- आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है क्योंकि वह विभिन्न मंचों पर कई आवेदन दायर करने का आदी है और 2020 से मुकदमे में देरी कर रहा है- वह सहयोग नहीं कर रहा है और मामला पिछले तीन वर्षों से लंबित है- यह आवेदक है, जिसने कई आवेदन पेश करके किसी न किसी बहाने से मुकदमे को रोक दिया है और यह चौथा अग्रिम जमानत आवेदन है। आवेदक के विरुद्ध धारा 82 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही प्रारंभ की गई है- इसलिए, यह आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त वाद नहीं है। (पैरा 1 से 19)

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुरेश बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य अग्रिम जमानत संख्या 3532/2022
2. लावेश बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)
3. चांदमल बनाम एम.पी. राज्य एवं अन्य
4. सतेन्द्र कुमार आंतिल बनाम सी.बी.आई. और अन्य.
5. पूरन सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री जफर अब्बास और सुशील कुमार तिवारी तथा सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री दीपक कुमार श्रीवास्तव और श्री मुकेश जोशी तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री वी.के.एस. परमार को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान अग्रिम जमानत अर्जी आवेदक की ओर से एफआईआर/प्रकरण अपराध संख्या 1277/2020 के तहत धारा 354, 354बी, 323, 504, 506 भा0दं0सं0, थाना मझोला , जिला मुरादाबाद में अग्रिम जमानत पर उसे बढ़ाने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

<u>अभियोजन पक्ष की कहानी:</u>

3. अभियोजन की कहानी के अनुसार दिनांक 07.10.2020 को शाम लगभग 5.30 बजे सूचनाकर्ता की पुत्री घर के ऊपर बने टैंक में पानी देखने गयी थी। उसे अकेला पाकर प्रार्थी आलोक कुमार मिश्रा ने उसके साथ छेड़छाड़ की। उसकी चीख पुकार सुनकर सूचनाकर्ता और उसका बेटा घटनास्थल पर आये। उन्हें देखकर प्रार्थी ने अपनी पत्नी और एक मित्र को घटनास्थल पर बुला लिया और सूचनाकर्ता और उसके बेटे प्रखर गुप्ता के साथ मारपीट की। प्रार्थी ने सूचनाकर्ता के साथ छेड़छाड़ की और उसके कपड़े फाड़ दिये। उक्त घटना सीसीटीवी कैमरे और मोबाइल में रिकार्ड हो गयी है।

<u>आवेदक के तर्क:</u>

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि वर्तमान मामले में उसके खिलाफ दुर्भावनापूर्ण तरीके से गुप्त उद्देश्य से मुकदमा चलाया जा रहा है। आवेदक का अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपित उक्त अपराध से कोई लेना-देना नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि एफआईआर में लगभग ग्यारह दिनों की देरी हुई है और उक्त देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक को गिरफ्तारी की वास्तविक आशंका है, क्योंकि पुलिस लगातार उसके घर पर छापेमारी कर रही है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी कहा गया है कि वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र से पहले, आवेदक ने धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 1018/2021 के तहत एक आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र भी दायर किया था और उसे धारा 173 (2) दं0प्र0सं0 के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत होने तक अग्रिम जमानत दी गई थी। दिनांक 19.2.2021 के आदेश के अनुसार।

5. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि जांच अधिकारी द्वारा अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) दाखिल करने के बाद, आवेदक ने धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 4588/2022 के तहत एक और आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत

प्रार्थना पत्र दायर किया और आवेदक को उसके खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट को रद्द कराने के लिए पंद्रह दिनों का समय दिया गया था। दिनांक 13.6.2022 के आदेश के तहत और अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र का निपटारा कर दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक के खिलाफ जारी गैर-जमानती वारंट सीजेएम मुरादाबाद द्वारा दिनांक 17.6.2022 के आदेश के तहत रद्द कर दिए गए थे। इसके बाद, आवेदक ने तीसरी अग्रिम जमानत अर्जी संख्या 5746/2022 पेश की, जिसे भी इस न्यायालय ने दिनांक 1.7.2022 के आदेश के तहत अंतिम रूप से निस्तारित कर दिया, जिससे आवेदक को विचारण न्यायालय में उपस्थित होने के लिए पंद्रह दिन का समय मिल गया और यह निर्देश दिया गया कि आवेदक की जमानत अर्जी पर **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य** और **पूरन सिंह और अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य** के आदेश दिनांक 1.7.2022 के तहत निर्धारित कानून के मद्देनजर विचार किया जाएगा और निर्णय लिया जाएगा।

6. दिनांक 1.7.2022 के आदेश के अनुपालन में आवेदक ने दिनांक 12.7.2022 को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 4, मुरादाबाद के समक्ष नियमित जमानत के साथ-साथ अंतरिम जमानत के लिए भी प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान एसीजेएम ने दिनांक 14.7.2020 के आदेश के तहत आवेदक को हिरासत में लिए बिना आवेदक की नियमित जमानत याचिका पर सुनवाई करने से इनकार कर दिया था और आवेदक की अंतरिम जमानत याचिका को खारिज कर दिया था। विद्वान न्यायालय ने कहा है कि यद्यपि वर्तमान मामले में सजा सात वर्ष से कम है, लेकिन मामले के विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए कि अपराध महिलाओं के खिलाफ है, यह सामान्य अपराध की श्रेणी में नहीं आता है और प्रकृति में गंभीर है। ऐसे में आवेदक को न्यायिक हिरासत में लिए बिना जमानत याचिका का निपटारा नहीं किया जा सकता।

7. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **सतेंद्र कुमार अंतिल (पूर्वोक्त)** के फैसले में लिंग के आधार पर मामलों को वर्गीकृत नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता ने सतेंद्र कुमार अंतिल के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 21.3.2023 के आदेश पर भी भरोसा जताया है, जिसमें न्यायालय ने उक्त आदेश का पालन न किए जाने पर नाराजगी व्यक्त की थी।

8. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि यहां सूचना देने वाली महिला जिला न्यायालय, मुरादाबाद में प्रैक्टिसिंग एडवोकेट है और वह आवेदक को किसी न किसी तरह सलाखों के पीछे भेजने पर तुली हुई है और उसके दबाव में ही विद्वान मजिस्ट्रेट ने 14.7.2022 को उक्त आदेश पारित किया है। यह भी रेखांकित किया गया कि आवेदक के खिलाफ 19.4.2022 को जमानती वारंट जारी किए गए थे और विद्वान मजिस्ट्रेट ने 20.4.2022 को गैर-जमानती वारंट जारी किए थे। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक ऋषिकुल में लेक्चरर है। ब्रह्मचर्य संस्कृत महाविद्यालय, कटघर मुरादाबाद में रहते हैं तथा वर्तमान मकान वर्ष 2019 में खरीदा था। कूड़ा-कचरा आदि के

निस्तारण को लेकर पक्षकारों में विवाद है। दिनांक 7.10.2020 को पक्षकारों में कहासुनी हो गई थी। यह भी तर्क दिया गया कि प्रार्थी ने 112 डायल करके पुलिस को मौके पर बुला लिया था। लेकिन मोहल्ले के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हस्तक्षेप पर उसी दिन दिनांक 7.10.2020 को ही पक्षकारों के बीच समझौता हो गया था, जिसे शपथ-पत्र के अनुलग्नक-14 के रूप में दाखिल किया गया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक ने इस न्यायालय के दिनांक 01.07.2022 के आदेश का पालन न करने के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अवमानना प्रार्थना पत्र संख्या 4552/2022 के माध्यम से अवमानना याचिका प्रस्तुत की है, जिसमें न्यायालय ने दिनांक 8.8.2021 के आदेश द्वारा निर्देश मांगे हैं और याचिका अभी भी लंबित है।

10. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि आवेदक ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित न्यायिक आदेश दिनांक 14.7.2022 को सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 211/2022 दायर करके भी चुनौती दी थी, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, मुरादाबाद ने दिनांक 30.1.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था।

11. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि उक्त आपराधिक पुनरीक्षण की अस्वीकृति के बाद, आवेदक ने अग्रिम जमानत की मांग करते हुए सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद से फिर से संपर्क किया, लेकिन दिनांक 14.3.2023 के आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है क्योंकि उन्हें सूचनाकर्ता द्वारा मुकदमेबाजी का सामना करना पड़ा है, जो एक अधिवक्ता है।

12. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि शिकायतकर्ता और उसकी बेटी का बयान एफआईआर से विरोधाभासी है, इसलिए अभियोजन पक्ष की कहानी झूठी साबित होती है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत पीड़िता का बयान कथित घटना के 45 दिनों की अत्यधिक देरी के बाद दर्ज किया गया है। उक्त बयान कानूनी परामर्श और विचार-विमर्श के बाद दर्ज किया गया है।

13. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि आवेदक एक डिग्री कॉलेज में लेक्चरर है और उसका रिकॉर्ड बेदाग है, उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक ने धारा 173(2) दं0प्र0सं0 के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक इस न्यायालय द्वारा दिनांक 19.2.2021 के आदेश द्वारा दी गई अग्रिम जमानत का दुरुपयोग नहीं किया है । और जांच के दौरान सहयोग किया है और परीक्षण के दौरान भी ऐसा करने के लिए तैयार है।

<u>आवेदक के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित मामले:</u>

(i) ***सतेंद्र कुमार अंतिल (पूर्वोक्त)***

(ii) **आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 2553/2022** आदेश दिनांक 12.5.2022,

जिसके द्वारा यह राय व्यक्त की गई कि सीजेएम बिजनौर ने सतेंद्र कुमार अंतिल (पूर्वोक्त) में निर्धारित कानून के आदेश का पालन नहीं किया है, इस प्रकार, वह आवेदकों को न्यायिक हिरासत में लिए बिना जमानत प्रार्थना पत्र का निपटारा करेंगे।

(iii) ***चांदमल बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य*** में निम्नानुसार निर्णय दिया गया है:-

"6. हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.1.2022 के उस आदेश को भी समझने में सक्षम नहीं हैं, जिसमें अपीलकर्ताओं को, इस तथ्य को स्वीकार करने के बावजूद कि वे 70 वर्ष की आयु के बुजुर्ग व्यक्ति हैं और कथित अपराध के लिए अधिकतम सात वर्ष तक की सजा है, संबंधित न्यायालय में आत्मसमर्पण करने के लिए कहा गया है।

(iv) ***आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 438 दं0प्र0सं0 संख्या 3532/2022, सुरेश बाबू बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य*** में, धारा 82 और 83 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र के लंबित रहने के दौरान की गई थी और जांच चल रही थी, ऐसे में आवेदकों की अग्रिम जमानत अर्जी को अनुमति दी गई।

<u>सूचनाकर्ता और राज्य के पक्ष में तर्क:</u>

14. प्रतिवाद में, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान एजीए ने इस आधार पर अग्रिम जमानत का जोरदार विरोध किया है कि आवेदक ने अपने सभी अधिकार पहले ही त्याग दिए हैं क्योंकि यह चौथा अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र है। आवेदक ने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष नियमित जमानत प्रार्थना पत्र भी दायर किया था और विद्वान मजिस्ट्रेट ने उसे हिरासत में लिए बिना जमानत प्रार्थना पत्र पर सुनवाई करने से इनकार कर दिया है।

15. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि **सतेंदर कुमार अंतिल (पूर्वोक्त)** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में "कर सकता है" शब्द का प्रयोग किया गया है न कि "करेगा"। सर्वोच्च न्यायालय ने उसे हिरासत में लेने या न लेने का निर्णय संबंधित न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक और अन्य सह-आरोपियों ने धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत प्रार्थना पत्र दायर किया था । संख्या 24115/2021 और इसे दिनांक 8.3.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। आवेदक द्वारा दायर उक्त याचिका के निस्तारण के बाद से पर्याप्त समय बीत चुका है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने आवेदक के खिलाफ धारा 82 दं0प्र0सं0 के तहत नोटिस जारी किया है । जबकि वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र इस न्यायालय के समक्ष 21.3.2023 को दायर किया गया है, ऐसे में आवेदक **लवेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है, जिसके द्वारा यह राय व्यक्त की गई है कि आरोपी दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत उद्घोषणा किए जाने के बाद अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है।

16. विद्वान अधिवक्ता ने **शिवम बनाम उ0प्र0 राज्य** में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसके तहत यह माना

गया है कि यदि आवेदक ने धारा 482 दं0प्र0सं0 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है और असफल रहा है, तो उसे अग्रिम जमानत पर नहीं रखा जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक और सह-अभियुक्तों ने दो महिलाओं की शील भंग की है और यहां तक कि सूचनाकर्ता के कपड़े भी फाड़ दिए थे। सूचनाकर्ता और पीड़िता के धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज बयानों से उक्त आरोपों की पुष्टि होती है । अन्य सह-अभियुक्तों को अग्रिम जमानत पर नहीं रखा गया है, बल्कि उन्हें सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद द्वारा दिनांक 4.5.2022 के आदेश के तहत नियमित जमानत पर रखा गया है । आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है क्योंकि वह विभिन्न मंचों पर कई प्रार्थना पत्र दायर करने का आदी है और उसने 2020 से मुकदमे में देरी की है

<u>निष्कर्ष:</u>

17. एफआईआर में आरोपित अभियोजन पक्ष की कहानी इस तथ्य से पुष्ट होती है कि एफआईआर एसएसपी, मुरादाबाद के आदेश से दर्ज की गई है। आवेदक पहले ही धारा 482 दं0प्र0सं0 के प्रावधानों का विरोध कर चुका है और 8.3.2022 को वह भी विफल हो गया है। तब से बहुत पानी बह चुका है और आवेदक ही है, जिसने कई प्रार्थना पत्र देकर किसी न किसी बहाने से मुकदमे को रोका है और यह चौथा अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र है। आवेदक के खिलाफ धारा 82 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही शुरू की गई है।

18. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते हुए, तथा **लवेश (पूर्वोक्त)** और **शिवम (पूर्वोक्त)** के निर्णय और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि आवेदक को दं0प्र0सं0 की धारा 438 के तहत दो बार संरक्षण देने से इनकार कर दिया गया था, यह न्यायालय पाता है कि प्रस्तुत दलीलें नियमित जमानत प्रार्थना पत्र से संबंधित हैं और दं0प्र0सं0 की धारा 438 के तहत उन पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है, इसलिए मैं इसे आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त प्रकरण नहीं मानता।

19. उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 434

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 10336 /2022

राजेश ...आवेदक (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री विजय त्रिपाठी, श्री अजय प्रताप सिंह, श्री प्रेम शंकर, श्री शैलजा कांत त्रिपाठी, श्री उत्कर्ष सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 439- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376-3/4 पोक्सो अधिनियम-पीड़िता ने धारा 161 और 164 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में

पीड़िता के खिलाफ बलात्कार का गंभीर आरोप लगाया है-जांच के बाद आईपीसी की धारा 376एबी के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है और पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत भी आवेदक के विरुद्ध विचारित किया जाएगा- अभियोजन का आरोप पीड़िता की मेडिकल जांच रिपोर्ट द्वारा समर्थित नहीं है, यह तथ्य प्रासंगिक नहीं है, जहां बालिका की आयु लगभग 7 वर्ष है - बच्चे बलात्कार के कृत्य से अनभिज्ञ होते हैं और वे कामुक दरिंदों का आसान शिकार बन जाते हैं। (पैरा 1 से 17)

बी. भारतीय परिवेश में, पुष्टि के अभाव में यौन उत्पीड़न की शिकार महिला की गवाही पर कार्रवाई करने से इनकार करना, आमतौर पर चोट पर नमक छिड़कने जैसा है। ऐसा करना पुरुष प्रधान समाज में पुरुष वर्चस्ववाद के आरोप को उचित ठहराना है। (पैरा 11)

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एच.पी. बनाम आशा राम (2006) क्रि एल.जे. 139
2. भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य (1993) एयर एससी 753
3. ए.पी. राज्य बनाम बोडेम सुंदर राव (1995) 6 एससीसी 230
4. मदन गोपाल काकड़ बनाम नवल दुबे और अन्य.. (1992) एससीआर 2 921

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता तथा प्रथम सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस प्रार्थना पत्र के माध्यम से, आवेदक राजेश, जो कि मुकदमा अपराध संख्या 14/2022, धारा 376एबी भा0दं0सं0, और धारा 5एम/6 पोक्सो अधिनियम, पुलिस स्टेशन डौकी , जिला आगरा में शामिल है, मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान जमानत पर रिहा होने की प्रार्थना करता है।

3. अभियोजन पक्ष के अनुसार संक्षेप में, सूचनाकर्ता जो कि पीड़िता की मां है, ने आवेदक राजेश के खिलाफ धारा 376 भा0दं0सं0 और धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम के तहत कथित अपराध के लिए 14.01.2022 को एक प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आरोप लगाया गया कि 14.01.2022 को लगभग 05:50 बजे जब उसकी बेटी उम्र लगभग 7 साल खेत में गई थी, तो आवेदक ने उसे 10 रुपये देने का लालच देकर उसे सरसों के खेत में उठा लिया और उसके साथ बलात्कार किया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि आवेदक को इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है तथा अभियोजन पक्ष के आरोप पीड़िता की मेडिकल जांच रिपोर्ट से समर्थित नहीं हैं क्योंकि उसके शरीर पर कोई चोट नहीं पाई गई तथा उसकी हाइमन पेरिनियम बरकरार पाई गई। इसलिए आवेदक जो 15.01.2022 से जेल में बंद है, उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

5. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने आवेदक की जमानत की प्रार्थना का पुरजोर विरोध करते हुए तर्क दिया कि पीड़िता ने धारा 161 और 164 दं0प्र0सं0 के तहत अपने बयान में आवेदक के खिलाफ बलात्कार का गंभीर आरोप लगाया है। पीड़िता लगभग 7 वर्ष की नाबालिग बच्ची है और अपराध जघन्य प्रकृति का है, इसलिए आवेदक की जमानत याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

6. पीड़िता ने धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि जब वह खेत से सरसों लाने गई थी, तो आरोपी उसे गोद में उठाकर खेत में ले गया और अपना लिंग उसकी योनि में डाल दिया।

7. यह सर्वविदित है कि बलात्कार का अपराध सिद्ध करने के लिए लिंग में पूर्ण प्रवेश, वीर्य का निकलना तथा योनिच्छद का फटना आवश्यक नहीं है।

8. मोदी ने अपनी पुस्तक **मोदी टेक्स्टबुक ऑफ मेडिकल ज्यूरिस्प्रुडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी, 23वें संस्करण, पृष्ठ 897** पर इस प्रकार राय व्यक्त की है:

"बलात्कार का अपराध बनाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि लिंग से वीर्य स्खलन हो और योनिच्छद फटा हो। लेबिया मेजोरा या वल्वा या प्यूडेंडा में लिंग का आंशिक प्रवेश वीर्य स्खलन के साथ या उसके बिना, या प्रवेश का प्रयास भी कानून के उद्देश्य के लिए काफी है। इसलिए, जननांगों को कोई चोट पहुँचाए बिना या वीर्य के दाग छोड़े बिना बलात्कार का अपराध कानूनी रूप से करना काफी संभव है। ऐसे प्रकरण में चिकित्सा अधिकारी को अपनी रिपोर्ट में नकारात्मक तथ्यों का उल्लेख करना चाहिए , लेकिन यह राय नहीं देनी चाहिए कि कोई बलात्कार नहीं हुआ है।"

पृष्ठ 928 पर: छोटे बच्चों में, हाइमन आमतौर पर नहीं फटती है, लेकिन लेबिया की सूजन और चोट के साथ लाल और संकुचित हो सकती है। यदि काफी हिंसा का उपयोग किया जाता है, तो अक्सर फोरचेट और पेरिनेम का चीरा लग जाता है।

9. पारिख की मेडिकल ज्यूरिस्प्रुडेंस और टॉक्सिकोलॉजी की पाठ्यपुस्तक में, निम्नलिखित अंश मिलता है:

"यौन संभोग: कानून में, इस शब्द का अर्थ वीर्य के साथ या उसके बिना लिंग द्वारा योनि में प्रवेश की थोड़ी सी भी सीमा है। इसलिए, जननांगों को कोई चोट पहुँचाए बिना या वीर्य के कोई दाग छोड़े बिना कानूनी रूप से बलात्कार का अपराध करना पूरी तरह संभव है।"

10. **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम आशा राम, 2006 क्रि.एल.जे. 139** एक ऐसा प्रकरण था जिसमें हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने आरोपी आशा राम को इस आधार पर बरी कर दिया था कि अभियोक्ता के सलवार और अंडरवियर पर कोई शुक्राणु नहीं पाए गए थे, जबकि अभियोजन पक्ष के अनुसार, संभोग का पूरा कार्य किया गया था। इसके अलावा रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं आया है जिससे पता चले

कि हाइमन टूटी थी। रिकॉर्ड पर आने वाले मेडिकल साक्ष्य, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, बेहद अविश्वसनीय हैं और अन्यथा भी यह स्थापित नहीं करते हैं कि पीड़िता के साथ संभोग किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के फैसले को खारिज करते हुए निम्नांकित माना है:

"हम अपनी नाराजगी और निराशा दर्ज करते हैं कि जिस तरह से उच्च न्यायालय ने इस गंभीर अपराध को लापरवाही से निपटाया, जैसा कि इस प्रकरण में है, नाबालिग लड़कियों पर यौन उत्पीड़न की चिंताजनक और चौंकाने वाली वृद्धि को अनदेखा करते हुए। उच्च न्यायालय पूरी तरह से असंवेदनशीलता से प्रभावित था, वह नाबालिगों के खिलाफ यौन हिंसा के बढ़ते खतरे से पूरी तरह अनजान था, खासकर पिता द्वारा। उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को भी पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जिसने विश्वास को प्रेरित किया और स्वीकार करने योग्य था। यह अब कानून का अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि अभियोक्ता की गवाही पर ही दोषसिद्धि की स्थापना की जा सकती है जब तक कि पुष्टि की मांग करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों। अभियोक्ता का साक्ष्य घायल गवाह की तुलना में अधिक विश्वसनीय है। यौन उत्पीड़न की पीड़िता की गवाही महत्वपूर्ण है जब तक कि ऐसे बाध्यकारी कारण न हों जो उसके बयान की पुष्टि की तलाश करने की आवश्यकता रखते हों, अदालतों को किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए केवल यौन उत्पीड़न की पीड़िता की गवाही पर कार्रवाई करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए, जहां उसकी गवाही विश्वास को प्रेरित करती है और विश्वसनीय पाई जाती है। यह भी कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि अभियोक्ता की गवाही पर न्यायिक निर्भरता के लिए एक शर्त के रूप में पुष्टि कानून की आवश्यकता नहीं है, बल्कि दी गई परिस्थितियों में विवेक का मार्गदर्शन है। अभियोक्ता का साक्ष्य घायल गवाह की तुलना में अधिक विश्वसनीय है। अभियोक्ता के बयान में मामूली विरोधाभास या महत्वहीन विसंगतियां भी अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन प्रकरण को खारिज करने का आधार नहीं होनी चाहिए।"

11. **भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1983 एससी 753**, के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:

भारतीय परिवेश में, पुष्टि के अभाव में यौन उत्पीड़न की शिकार महिला की गवाही पर कार्रवाई करने से इनकार करना, आमतौर पर चोट पर नमक छिड़कने जैसा है। बलात्कार या यौन उत्पीड़न की शिकायत करने वाली लड़की या महिला की गवाही को संदेह, अविश्वास या संदेह से भरे चश्मे से क्यों देखा जाना चाहिए? ऐसा करना पुरुष प्रधान समाज में पुरुष वर्चस्व के आरोप को सही ठहराना है। हमें पुष्टि की आवश्यकता के समर्थन में तर्क का विश्लेषण करना चाहिए और इसे निरंतर और निर्दयी जिरह के अधीन करना चाहिए। और हमें ऐसा तार्किक रूप से करना चाहिए, न कि किसी राय के आधार पर, संभावनाओं के प्रकाश में, अपने पैरों को भारत की धरती पर मजबूती से टिकाए हुए और अपनी आँखें भारतीय क्षितिज पर केंद्रित रखते हुए। हमें पश्चिमी दुनिया में अपनाए गए दृष्टिकोण से बहकना नहीं चाहिए,

जिसका अपना सामाजिक परिवेश, अपने सामाजिक रीति-रिवाज, अपने अनुमोदक मूल्य और अपनी जीवन संहिता है। पश्चिमी दुनिया की सामाजिक पारिस्थितिकी की पृष्ठभूमि में यौन अपराध को स्थापित करने के लिए पुष्टिकरण को आवश्यक माना जा सकता है। उक्त अवधारणा को टर्न-की आधार पर आयात करना और भारतीय समाज के बिल्कुल अलग माहौल, दृष्टिकोण, रीति-रिवाजों, प्रतिक्रियाओं और इसकी रूपरेखा की परवाह किए बिना इसे भारतीय धरती पर लागू करना पूरी तरह से अनावश्यक है।"

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम बोडेम सुंदर राव, 1995 (6) एससीसी 230** में महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध के मामलों से निपटने में अदालतों को निम्नलिखित शब्दों में सावधान किया है:

"यौन हिंसा एक अमानवीय कृत्य होने के अलावा एक महिला की निजता और पवित्रता के अधिकार का एक गैरकानूनी अतिक्रमण है। यह उसके सर्वोच्च सम्मान पर एक गंभीर आघात है और उसके आत्मसम्मान और गरिमा को ठेस पहुँचाता है। यह पीड़ित को अपमानित और अपमानित करता है और जहाँ पीड़ित एक असहाय मासूम बच्ची होती है, वहाँ यह एक दर्दनाक अनुभव छोड़ जाती है। इसलिए, न्यायालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध के मामलों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ निपटाएँ। ऐसे मामलों से सख्ती और गंभीरता से निपटा जाना चाहिए।"

13. **मदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे व अन्य, 1992 एससीआर (2) 921** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

निर्णय देने से पहले, हम गहरी चिंता के साथ यह बताना चाहेंगे कि यद्यपि बच्चियों पर होने वाले सभी यौन हमलों की रिपोर्ट नहीं की जाती और वे प्रकाश में नहीं आते, फिर भी बच्चों पर होने वाले यौन अपराधों में चिंताजनक और चौंकाने वाली वृद्धि हुई है। ऐसा इसलिए है क्योंकि बच्चे बलात्कार के कृत्य से अनभिज्ञ होते हैं और प्रतिरोध करने में सक्षम नहीं होते तथा वे उन कामुक दरिंदों का आसान शिकार बन जाते हैं जो बच्चियों और छोटी बच्चियों को बहलाने की बेईमानी, धोखेबाजी और कपटी कला का प्रदर्शन करते हैं। इसलिए, सभ्य समाज के लिए खतरा बने ऐसे अपराधियों को निर्दयतापूर्वक और कठोरतम शर्तों में दंडित किया जाना चाहिए।

हम महसूस करते हैं कि न्याय की तलवार धारण करने वाले न्यायाधीशों को उस तलवार का प्रयोग अत्यंत कठोरता के साथ, पूर्ण रूप से तथा अंत तक करने में संकोच नहीं करना चाहिए, यदि अपराध की गंभीरता ऐसी मांग करती है।

14. यह भी विवादित नहीं है कि जांच के बाद भा0दं0सं0 की धारा 376एबी के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिसमें न्यूनतम 20 साल की सजा का प्रावधान है। इसके अलावा, आरोपी आवेदक के खिलाफ पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत भी अनुमान लगाया जाएगा।

अप्रमाणित

15. यद्यपि बालिकाओं पर होने वाले सभी यौन हमलों की रिपोर्ट नहीं की जाती और वे प्रकाश में नहीं आते, फिर भी बालिकाओं पर होने वाले यौन अपराधों में चिंताजनक और चौंकाने वाली वृद्धि हुई है। ऐसा इसलिए है क्योंकि बच्चे बलात्कार के कृत्य से अनभिज्ञ होते हैं और प्रतिरोध करने में सक्षम नहीं होते तथा वे उन कामुक दरिंदों का आसान शिकार बन जाते हैं जो बालिकाओं और छोटी लड़कियों को बहलाने-फुसलाने की बेईमानी, धोखेबाजी और कपटी कला का प्रदर्शन करते हैं। इसलिए, सभ्य समाज के लिए खतरा बने ऐसे अपराधियों को निर्दयतापूर्वक और कठोरतम सजा दी जानी चाहिए।

16. प्रकरण के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के साथ-साथ पक्षों की ओर से प्रस्तुत दलीलों, अपराध की गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और सजा की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं दिखता।

17. तदनुसार, जमानत प्रार्थना पत्र **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 438

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी,

आपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन संख्या 10374/2023

प्रकाश नारायण शर्मा @ बबली

...आवेदक (जेल में)

बनाम

यूपी राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री विजय कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षी: श्री सुनील श्रीवास्तव, ए.जी.ए., श्री योगेन्द्र श्रीवास्तव, श्री दीपक कुमार कुलश्रेष्ठ, श्री शम्भू मणि त्रिपाठी

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 161 और 164 -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 147, 323, 354, 354-के, 376, 406, 504 और 506-जमानत के लिए आवेदन - एफआईआर -आवेदक जो एक सक्रिय वकील है और पीड़िता उसकी मुवक्किल थी - पीड़िता मामलों पर चर्चा करने के उद्देश्य से उससे मिलने आती थी और बाद में वे दोनों घनिष्ठ हो गए और उनकी घनिष्ठता इतनी खुली थी कि वह आवेदक की पत्नी की उपस्थिति में भी आवेदक के साथ सहज थी - कुछ मौद्रिक विवाद के कारण, आवेदक और पीड़िता के बीच सहमति संबंध खराब हो गए - रिकॉर्ड पर रखे गए साक्ष्य की प्रकृति को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक अपने आप को बहुत प्रभावशाली व्यक्ति दिखाने के लिए न्यायाधीशों सहित गणमान्य व्यक्तियों के साथ तस्वीरें रखता था और पीड़िता आवेदक द्वारा बनाई गई अश्लीलता के जाल में फंस गई थी- अदालत ने पाया कि, यह हनीट्रैप का मामला नहीं हो सकता है, बल्कि आवेदक ने एक वकील और ग्राहक के रिश्ते से परे काम किया है और ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया गया है जहां सामाजिक सीमाएं टूट गई हैं और बाद में

विभिन्न विवादों और आरोपों को जन्म दिया है - पोर्नोग्राफी के आरोप और वित्तीय विवाद पर प्रतिद्वंद्वी का दावा, आवेदक की जमानत याचिका पर विचार करने के लिए झुकाव हो सकता है और चूंकि सुनवाई के दौरान पीड़िता का बयान आज तक दर्ज नहीं किया गया है, इसलिए इस स्तर पर यदि आवेदक को जमानत मिलती है, तो वह निश्चित रूप से उसे प्रभावित करने की कोशिश करेगा, जमानत आवेदन खारिज कर दिया गया है और पीड़िता का बयान शीघ्रता से दर्ज करने के निर्देश जारी किए गए हैं। (पैरा 12, 13, 14, 15)

जमानत आवेदन निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बालचंद @ बलिया (एआईआर 1977 एससी 2447: 1978 एससीआर (1) 535;
2. गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एससीसी 118);
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एससीसी 21;
4. प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी एवं अन्य (2010)14 एससीसी 496;
5. महिपाल वीएस राजेश कुमार, (2020) 2 सी सी 118;
6. ईश्वरजी माली बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 55;
7. मन्नो लाल जायसवाल बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 89;
8. आशिम बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी (2022) 1 एससीसी 695;
9. सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 458;
10. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2022)3 सी सी 501;
11. दीपक यादव बनाम यूपी राज्य एवं अन्य (2022)8 एससीसी 559)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक प्रकाश नारायण शर्मा उर्फ बबली ने मुकदमा अपराध संख्या - 10/2023 अंतर्गत धारा 147, 323, 354, 354-के, 406, 504, 506, 376 आईपीसी, थाना न्यू आगरा, जनपद आगरा में जमानत के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। वह 09.02.2023 से जेल में हैं।
2. इस मामले के गुण-दोष पर आने से पहले, एक अधिवक्ता व उसके मुवक्किल के बीच संबंध की प्रकृति का उल्लेख करना उचित होगा, जो पूरी तरह से भरोसा तथा विश्वास पर आधारित है, हालाँकि, वर्तमान मामले के तथ्य इसके बिल्कुल विपरीत हैं।
3. वर्तमान मामले की सूचनादाता स्वयं पीड़िता है और यह आरोप लगाया गया है कि उसने अपने मुकदमों को लेने के लिए आवेदक से उसके ग्राहक के रूप में संपर्क किया और ऐसा प्रतीत होता है कि लगातार संपर्क के दौरान, वे करीब आ गए और रिश्ते में शामिल हो गए, जिसमें पीड़िता का आवेदक व उसकी पत्नी के साथ विभिन्न स्थानों पर जाना और साथ

ही केवल आवेदक के साथ विभिन्न स्थानों पर जाना शामिल था। अभिलेख में ऐसे कई तस्वीरें प्रस्तुत हैं कि पीड़िता आवेदक की पत्नी की मौजूदगी में भी उसके साथ सहज थी। तस्वीरों से यह भी पता चलता है कि वे बहुत करीब थे। यहां तक कि कुछ तस्वीरें भी बरामद की गई हैं, जिनसे पता चलता है कि आवेदक और पीड़िता शर्मिंदा नहीं बल्कि सहज दिख रहे थे जब उनकी तस्वीरें उनके जन्मदिन के सूट में अंतरंग स्थिति में खींची गई थीं, यानी वे शारीरिक संबंध में भी गहराई से शामिल थे।

4. पीड़िता ने आरोप लगाया है कि आवेदक ने उसका विश्वास जीत लिया और यहां तक कि पीड़िता ने उसे किराए पर एक कमरा भी उपलब्ध कराया है क्योंकि आवेदक व उसकी पत्नी के मध्य कुछ विवाद था तथा पीड़िता ने आवेदक को 40 लाख रुपये का ऋण दिया था क्योंकि वह अपनी बड़ी बहन से लेकर विधानसभा चुनाव लड़ना चाहता था लेकिन आवेदक ने न केवल पैसे लौटाने से इनकार कर दिया, बल्कि कुछ समय के लिए गायब भी हो गया और घटना की तिथि, यानी 04.01.2023 को, न्यायालय परिसर के पास एक सड़क पर, पीड़िता और आवेदक तथा उसके सहयोगियों के बीच हाथापाई हुई जिसमें यहां तक कि उसके गुप्तांग पर भी बेरहमी से वार किया गया।

5. पीड़िता ने आगे खुलासा किया है कि पहले, आवेदक ने खुद को न्यायाधीशों और अधिकारियों सहित प्रमुख व्यक्तियों के करीब होने वाला एक प्रभावशाली व्यक्ति बताया था और कि वह अश्लील फिल्में तैयार करने में शामिल था और उसने अन्य महिलाओं की कई अवांछित तस्वीरें दिखाई तथा पीड़िता को आवेदक के निर्देशों के अनुसार कार्य करने और यहां तक कि उसे अंतरंग भाव व मुद्राओं में उसकी तस्वीरें खींचने देने की भी धमकी दी तथा पीड़िता के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध भी बार-बार शारीरिक संबंध बनाए और यदि पीड़िता ने आवेदक के निर्देशों के अनुसार कार्य करने से इनकार किया तो गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी।

6. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री वी.पी. श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता, सहायक श्री विजय कुमार मिश्रा ने तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदक इस बात से इनकार नहीं कर रहा है कि उसका पीड़िता के साथ बहुत सहज संबंध है लेकिन यह केवल सहमति से बना संबंध था और पीड़िता आवेदक के साथ, यहां तक कि उसकी पत्नी के साथ, विभिन्न स्थानों पर गयी है और पीड़िता के साथ उसकी बहुत घनिष्ठता है। यहां तक कि विभिन्न स्थानों की तस्वीरों के साथ-साथ अंतरंग तस्वीरों को भी नकारा गया है।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि इस रिश्ते को हनीट्रैप कहा जा सकता है कि शुरुआत में पीड़िता ने आवेदक के साथ यहां तक कि उनके जन्मदिन के सूट में भी अंतरंग तस्वीरें लेने पर भी आपत्ति नहीं जताई है। हालाँकि, धन का आरोप जैसा कि पीड़िता द्वारा बताया गया है उसका बलपूर्वक खंडन किया गया है कि वह आवेदक ही था जिसने पीड़िता को भुगतान किया था और उसने वापस लौटाने से इनकार कर दिया और ब्लैकमेल करना शुरू कर दिया कि यदि उसे बड़ी रकम का भुगतान नहीं किया गया, तो वह परिस्थितियों को बदतर बना देगी और इसके लिए आवेदक को सामाजिक अपमान का सामना करना पड़ेगा।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि यह एक ऐसा मामला हो सकता है जहां आवेदक और पीड़िता के बीच दृढ़ अंतरंगता और सहमतिपूर्ण संबंध समय बीतने के साथ खराब हो जाते हैं। न्यायालय के पास एक सड़क पर आवेदक और उसके सहयोगियों द्वारा हमले के आरोप के संबंध में किसी भी स्वतंत्र साक्षी को परीक्षित नहीं किया गया है और पीड़िता जिसने पहले ही विवेचना के दौरान अपना बयान दिया है और अभियोजन को कई तस्वीरें भी दी हैं जो अभिलेख का हिस्सा हैं, इसलिए, इसकी कोई संभावना नहीं है कि आवेदक पीड़िता को प्रभावित कर सकता है।

9. जमानत के लिए प्रार्थना का राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. एस/श्री सुनील श्रीवास्तव तथा पीड़िता की ओर से विद्वान अधिवक्ता योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा बलपूर्वक विरोध किया गया और तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदक केवल नाम के लिए अधिवक्ता है और उसका असली व्यवसाय अश्लील फिल्में बनाना था और इसके लिए उसने पहले भी अपनी महिला ग्राहकों का इस्तेमाल किया था और पीड़िता भी पोर्न इंडस्ट्री के जाल में फंस गई थी।

10. आवेदक ने एक जाल बुना है कि शुरू में उसने पीड़िता के साथ अच्छा व्यवहार किया और उसका विश्वास व भरोसा हासिल कर लिया और उसके साथ कई स्थानों पर घूमने के साथ-साथ शारीरिक संबंध बनाये। उसने अपनी पत्नी की मौजूदगी में भी पीड़िता को अपने घर में एक दोस्ताना प्रवेश की अनुमति दी है। तस्वीरों की प्रकृति से प्रथम दृष्टया संकेत मिलता है कि आवेदक को अपने जन्मदिन के सूट में पीड़िता के साथ तस्वीरे खिंचवाने में कोई शर्म नहीं थी और आवेदक की उपरोक्त उल्लिखित कार्यप्रणाली के बारे में पीड़िता अपने बयान अंतर्गत धारा की धारा 161 व 164 सीआरपीसी पर कायम है और उसने पीड़िता की अवांछित तस्वीरें पोर्नोग्राफी

में डालने की धमकी देकर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ बार-बार शारीरिक संबंध बनाए हैं और पीड़िता ने आवेदक को बड़ी रकम ऋण पर दिया लेकिन उसने उसे वापस करने से इनकार कर दिया है।

11. <u>जमानत संबंधी विधि - एक सारांश</u>

(ए) मूल नियम को संभवतः जेल के रूप में नहीं, जमानत के रूप में रखा जा सकता है,।

(बी) सीआरपीसी की धारा 439 के तहत जमानत देने की शक्ति व्यापक है, लेकिन निरंकुश विवेकाधिकार नहीं है जो विवेकपूर्ण ढंग से न कि किसी स्वाभाविक या मनमौजीढंग से उपयोग किये जाने की मांग करता है।

(सी) जमानत देने के आवेदन पर आदेश पारित करते समय, यह आभास देने के लिए विस्तृत विवरण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है कि मामला ऐसा है जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होगी या, इसके विपरीत, दोषमुक्ति हो जाएगी। हालाँकि, कोई न्यायालय अपने निर्णय को मामले के भौतिक पहलुओं जैसे कि अभियुक्तों के विरूद्ध लगाए गए आरोप; आरोप की प्रकृति व गंभीरता; सामान्य उद्देश्य या इरादा रखना; यदि आरोप युक्तियुक्त संदेह से परे साबित हो जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होगी तो सजा की गंभीरता; अभियुक्तों द्वारा साक्षीगण को प्रभावित किये जाने की युक्तियुक्त आशंका; साक्ष्य से छेड़छाड़; अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति व परिस्थितिः अपराध दोहराए जाने की संभावना; अभियोजन के मामले में तुच्छता; अभियुक्त का आपराधिक इतिहास तथा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि से पूरी तरह से पृथक नहीं कर सकता है। न्यायालय अवैधानिक जमावड़े में भागीदारी या उसके हिस्से के साथ-साथ उस परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर भी ध्यान दे सकती है जो जमानत देने का आधार नहीं है, यदि एकत्र किए गए साक्ष्य/सामग्री प्रथम दृष्टया घटनाओं की एक पूरी श्रृंखला स्थापित करते है। समता एक मात्र आधार नहीं हो सकती है, लेकिन जमानत के लिए आवेदन पर विचार करने के लिए एक प्रासंगिक कारक बनी हुई है।

(डी) जब विचाराधीन कैदियों को जेल में रहने के लिए मजबूर किया जाता है (उनकी गलती के कारण नहीं) तो जेल में अत्यधिक भीड़ और मामलों के निपटारे में भारी देरी संभावित स्थितियों को जन्म दे सकती है जो संविधान के अनुच्छेद 21 के आह्वान को उचित ठहरा सकती है, अन्य कारकों के साथ इस पर भी विचार किया जा सकता है।

(देखें, **राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बालचंद उर्फ बलिये (एआईआर 1977 एससी 2447: 1978 एससीआर (1) 535; गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एससीसी 118); उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एससीसी 21; प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य (2010) 14 एससीसी 496; महिपाल बनाम राजेश कुमार, (2020) 2 एससीसी 118; ईश्वरजी माली बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 55; मन्त्रो लाल जयसवाल बनाम यूपी राज्य और अन्य,**

2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 89; आशिम बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी (2022) 1 एससीसी 695; सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य और अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 458; मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2022) 3 एससीसी 501; और, दीपक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2022) 8 एससीसी 559)।

12. वर्तमान मामले में, आवेदक ने खुद को एक सक्रिय अधिवक्ता और शानदार गाड़ी और शानदार जीवन शैली वाला व्यक्ति बताया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित तथ्य और साथ ही सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के अंतर्गत अंकित किए गए पीड़िता के बयान सुसंगत हैं साथ ही आवेदक ने स्वयं इस बात से इनकार नहीं किया है कि पीड़िता उसकी ग्राहक थी। पीड़िता उसके पास वादों की चर्चा के लिए आती थी और बाद में दोनों अंतरंग हो गए और उनकी अंतरंगता इतनी खुली थी कि वह आवेदक की पत्नी की उपस्थिति में भी आवेदक के साथ सहज थी। ये दोनों एक साथ और अपनी पत्नी के साथ भी कई जगहों पर घूमने जाते थे और साथ रहकर सहजता से तस्वीरें भी खिंचवाते थे।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क सारवान है कि कुछ मौद्रिक विवाद के कारण आवेदक और पीड़िता के बीच सहमति से बने रिश्ते में खटास आ जाती है। हालाँकि, विवेचना के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए, विशेष रूप से, आवेदक व पीड़िता के अभिलेख पर लगाए गए तस्वीरों की प्रकृति अंतरंग, यहां तक कि उनके जन्मदिन के सूट में भी प्रथम दृष्टया संकेत मिलता है कि आवेदक की कोई अन्य रुचि थी और अपने पेशे के प्रति सक्रिय और मेहनती होने के बजाय ऐसी गतिविधियों में संलिप्त था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि वह खुद को बहुत प्रभावशाली व्यक्ति दिखाने के लिए न्यायाधीशों सहित 'गणमान्य व्यक्तियों के साथ की तस्वीरें रखता था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि पीड़िता आवेदक द्वारा बनाए गए पोर्नोग्राफी के जाल में फंस गई थी और उसे आवेदक के निर्देशों के अनुसार कार्य करने के लिए मजबूर किया गया था, जिसमें उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने के साथ-साथ उसे अश्लील तरीके से तस्वीरें लेने की अनुमति देना भी शामिल था। ऐसे में यह हनीट्रैप का मामला नहीं हो सकता है बल्कि आवेदक ने एक अधिवक्ता और मुवक्किल के रिश्ते से परे कार्य किया है और एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया है जहां सामाजिक सीमाएं टूट गई और बाद में विभिन्न विवादों और आरोपों को जन्म दिया, जिसमें वित्तीय विवाद भी शामिल है, उसके लिए प्रतिद्वंद्वी दावे भी हैं। विवेचना के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों से प्रथम दृष्टया पोर्नोग्राफी का आरोप प्रमाणित

नहीं होता दिख रहा है और उसके बाद पीड़िता ने एफ.आई.आर. दर्ज कराई है और उसके तथ्य सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत दर्ज किए गए उसके बयान में सुसंगत है।

14. उपरोक्त परिस्थितियाँ जैसे लंबे समय तक सहमति से बनाए गए संबंध का कारक, तस्वीरों की प्रकृति, पोर्नोग्राफी के आरोप के संबंध में साक्ष्य की प्रकृति और वित्तीय विवाद पर प्रतिद्वंद्वी दावे, आवेदक के जमानत आवेदन पर विचार के लिए उसकी ओर झुकाव हो सकता है, हालाँकि, एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक अभी भी आवेदक के विरुद्ध है कि वह पीड़िता से अच्छी तरह से परिचित है और उसकी घनिष्ठता भी है और चूँकि परीक्षण के दौरान पीड़िता का बयान आज तक अंकित नहीं किया गया है, इसलिए, इस स्तर पर, यदि आवेदक को जमानत मिल जाती है, तो वह निश्चित रूप से उसे प्रभावित करने का प्रयास करेगा।

15. इसलिए, वर्तमान मामले के समस्त पहलुओं, आवेदक की स्थिति और आरोपों की प्रकृति पर विचार करते हुए, मुझे इस स्तर पर आवेदक को जमानत देने का कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं होता है। तदनुसार, जमानत प्रार्थना पत्र एतद्वारा **खारिज** किया जाता है और परीक्षण न्यायालय का बयान शीघ्रता से अंकित किये जाने का पूरा प्रयास करेगा, अधिमानतः आज से तीन महीने की अवधि के भीतर, यदि कोई वैधानिक बाधा न हो।

16. निबंधक (अनुपालन) कार्यवाही करें।

(2023) 5 ILRA 442

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 14987/2023

विजय मिश्रा ...आवेदक (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपरीत पक्ष

अधिवक्ता आवेदक: श्री सौरभ राज श्रीवास्तव, श्री जी.एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिषेक यादव, श्री रत्नेंदु कुमार सिंह

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-बी, 302, 307, 376-डी, 419, 420, 467, 468, 471, 406 और 506 - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, धारा 11, 37- जमानत के लिए आवेदन -एफआईआर- आवेदक एक घोर अपराधी और अंतर जिला गिरोह का नेता है और विभिन्न जिलों में 85 मामलों की हिस्ट्रीशीट और जिलेवार आपराधिक इतिहास है - आरोपों की गंभीरता और सजा की गंभीरता - न्यायालय ने पाया कि, आवेदक यूपी राज्य का बहुत प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्ति है और 85 मामलों में से 13 मामले अभी भी लंबित हैं और दो मामलों में उसे पहले ही दोषी ठहराया जा चुका है -इसलिए संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि जमानत

पर रिहाई के बाद, आवेदक गवाह के साथ हस्तक्षेप कर सकता है- आयोजित, किसी व्यक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध समाज के विरुद्ध अपराध है तथा इसका प्रभाव सदैव समाज पर पड़ता है और यदि ऐसे व्यक्ति जिनका आपराधिक इतिहास 80 से अधिक मामलों का है, को जमानत पर रिहा किया जाएगा तो वे पुनः ऐसे अपराध कर सकते हैं तथा वे कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में राज्य के लिए भी समस्या उत्पन्न कर सकते हैं - अत: जनहित में आवेदक की जमानत निरस्त की जाती है। (अनुच्छेद-29, 30)

जमानत आवेदन निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2016 (15) एससीसी 422),
2. दीपक यादव बनाम यूपी राज्य एवं अन्य (2022 (8) एससीसी 559),
3. प्रहलाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी दिल्ली एवं अन्य। (2001 खंड 4 सुप्रीम कोर्ट केस 280),
4. प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी एवं अन्य (2010 खंड 14 एससीसी 496),
5. ऐश मोहम्मद बनाम शिव राज सिंह (2012 खंड 9 एससीसी 446)।

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन, द्वारा प्रदत्त)

1 - माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश दिनांक 6.4.2023 द्वारा तत्काल जमानत आवेदन इस पीठ के समक्ष सूचीबद्ध है।

2 - आवेदक के विद्वान वकील श्री सौरभ राज श्रीवास्तव की सहायता में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस.चतुर्वेदी को व राज्य प्रतिवादी के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रत्नेन्दु कुमार सिंह और सूचनादाता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार यादव को सुना।

<u>संक्षिप्त तथ्य :-</u>

3 - मामले की एफआईआर 1.9.2021 को दर्ज की गई थी। एफआईआर के अनुसार, आवेदक और उसके बेटे ने सूचनादाता की फर्म सहित उसकी जमीन पर जबरन कब्जा कर लिया और इस संबंध में सूचनादाता ने आवेदक, उसकी पत्नी और उसके बेटे के खिलाफ पी.एस. गोपीगंज, जनपद भदोही में मुकदमा अपराध संख्या 273/2020 में प्राथमिकी दर्ज कराई। उपरोक्त मुकदमा पंजीकृत होने के बाद से आवेदक एवं उसके परिवार के लोग सूचनादाता को लगातार धमकी दे रहे हैं तथा मुकदमा वापस लेने के लिए दबाव बना रहे हैं तथा इस संबंध में सूचनादाता के पुत्र द्वारा पी.एस. गोपीगंज थाने पर प्राथमिकी दर्ज करायी गयी है।

4 - एफआईआर में आगे लिखा है कि आवेदक ने जबरदस्ती अवैध हथियारों के दम पर सूचनादाता की 19 गाड़ियां छीन लीं और उन वाहनों की मदद से वह अपनी अवैध गतिविधियाँ कर रहा है। एफआईआर में इसका जिक्र आगे किया गया है कि सूचनादाता की 20 बीघे जमीन पर प्रार्थी ने कब्जा भी कर लिया है। और उसके परिवार के सदस्य के पक्ष में इसके फर्जी विक्रय पत्र का दस्तावेज भी

तैयार करवा लिया। एफआईआर के अनुसार आवेदक आगरा जेल में निरुद्ध है। और उसका 84 से अधिक मामलों का आपराधिक इतिहास है। और वह नंद कुमार गुप्ता उर्फ नंदी को गंभीर चोटों के मुकदमे में मुख्य आरोपियों में से एक है।

<u>आवेदक की ओर से प्रस्तुत निवेदन :-</u>

5 - आवेदक के विद्वान वकील ने कहा कि आवेदक के खिलाफ लगाए गए सभी आरोप पूरी तरह से झूठे और निराधार हैं और आवेदक समाज का एक सम्मानित व्यक्ति है और वह लगातार चार बार ज्ञानपुर, भदोही से सांसद रहे हैं। और सूचनादाता द्वारा रचित पूरी कहानी राजनीति से प्रेरित है और वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज करने के समय आवेदक एक अन्य मामले के सिलसिले में जेल में था।

6 - उन्होंने आगे कहा कि आवेदक को वर्तमान मामले में आरोपी नहीं बनाया गया था और उसे धारा 120 बी आईपीसी को जोड़कर जांच के दौरान आरोपी बनाया गया था। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक और सूचक परिवार के सदस्य हैं और उनके बीच दर्जनों सिविल और आपराधिक मामले लंबित हैं। उन्होंने आगे आग्रह किया कि आवेदक को 14.8.2020 को सूचक द्वारा दर्ज अपराध संख्या 273/2020 की एफआईआर के अनुसार गिरफ्तार किया गया था और उसके बाद सूचक और उसके बेटों ने अपने सहयोगियों के साथ स्थानीय पुलिस की मदद से आवेदक और उसके खिलाफ 15 तुच्छ एफआईआर दर्ज कीं।

7 - उन्होंने आगे कहा कि वास्तव में जिन वाहनों का खुलासा एफआईआर में किया गया था, वे साझेदारी फर्म, मेसर्स कृष्ण मोहन तिवारी के हैं और साझेदारी फर्म के संबंध में सूचक और आवेदक के परिवार के बीच एक विवाद लंबित है। उन्होंने आगे कहा कि उपरोक्त साझेदारी फर्म में आवेदक की पत्नी भी सूचक और अशोक कुमार के साथ साझेदारों में से एक है और साझेदारी फर्म के संबंध में विवाद इस न्यायालय तक गया है और जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ, आवेदक की पत्नी और सूचक दोनों ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील दायर की और 22.3.2021 को इस न्यायालय ने सूचक को साझेदारी फर्म की संपत्ति की बिक्री और खरीद के संबंध में अलग खाता तैयार करने का निर्देश दिया। उन्होंने आगे कहा कि 5.8.2021 को, इस न्यायालय ने आवेदक और सूचक की पत्नी द्वारा दायर उपरोक्त दोनों अपीलों को एक साथ जोड़ दिया।

8 - उन्होंने आगे कहा कि मध्यस्थता याचिका की अनुसूची- III में, 46 भारी वाहनों को फर्म के वाहनों के रूप में वर्णित किया गया है और इनमें एफआईआर में उल्लिखित वाहन भी शामिल हैं और इसलिए यह तथ्य स्पष्ट रूप से संकेत देता है कि एफआईआर में उल्लिखित वाहनो के बलपूर्वक कब्जे के संबंध में आरोप पूरी तरह से गलत हैं और वास्तव में ये वाहन साझेदारी फर्म की संपत्ति हैं और साझेदारी फर्म के संबंध में विवाद दोनों पक्षों के बीच लंबित है।

9 - उन्होंने आगे कहा कि सूचक ने उपरोक्त फर्म का सक्रिय भागीदार होने के नाते साझेदारी फर्म के अधिकांश वाहनों को अलग कर दिया है और 11.8.2021 को आवेदक की पत्नी और एक अन्य भागीदार ने न्यायालय के समक्ष इस साझेदारी के फर्म मेसर्स कृष्ण मोहन तिवारी की चल संपत्ति को बेचने के बाद प्राप्त राशि को सूचक द्वारा जमा कराने के लिए निर्देश देने की प्रार्थना के साथ एक आवेदन दायर किया था।

10 - उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि अभियोजन के अनुसार 20.11.2021 को आवेदक के परिसर से छह वाहन बरामद किये गये। लेकिन छह वाहनों में से चार वाहनो का वर्तमान मामले की एफआईआर में उल्लेख तक नहीं किया गया। केवल दो वाहन बरामद किये जाने का आरोप है। जिसका एफआईआर में उल्लेख किया गया है और दोनों फर्म, मेसर्स कृष्ण मोहन तिवारी की विशेष संपत्ति है और मध्यस्थता कार्यवाही का हिस्सा हैं। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक का इनमें से किसी भी शेष वाहनों से कोई सरोकार नहीं है। वाहन न आवेदक के नाम पर हैं और न ही ये वाहन आवेदक द्वारा उपयोग किये जा रहे हैं।

11 - उन्होंने आगे कहा कि फर्म के साझेदारों ने भी मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11 के तहत एक याचिका दायर की थी और 16.9.2022 को इस न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति विनीत सरन को मध्यस्थ नियुक्त किया है।

12 - उन्होंने आगे कहा कि सूचक के परिवार और आवेदक के परिवार के बीच परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत कई मामले भी लंबित हैं। उन्होंने आगे कहा कि दोनों पक्षों के परिवारों के बीच कई सिविल विवाद भी लंबित हैं।

13 - उन्होंने आगे कहा कि हालांकि एफआईआर में यह आरोप लगाया गया है कि आवेदक ने 19 वाहनों को जबरन अपने कब्जे में ले लिया, लेकिन न तो तारीख, न ही समय और न ही स्थान का उल्लेख किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि सूचक ने आवेदक द्वारा वाहन पर कथित बलपूर्वक कब्ज़ा करने की घटना के बारे में पुलिस को कोई जानकारी नहीं दी।

14 - उन्होंने आगे आग्रह किया कि राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और विपक्षी विधायक होने के कारण आवेदक पर आज तक विभिन्न आपराधिक मामले दर्ज किये गये हैं। आवेदक को लगभग 85 मामलों में फंसाया गया है, लेकिन 85 मामलों में से केवल 13 मामलों में आवेदक मुकदमे का सामना कर रहा है और अन्य मामलों में आवेदक पहले ही या तो बरी हो चुका है या अभियोजन पक्ष द्वारा कार्यवाही बंद कर दी गई है। उन्होंने आगे कहा कि 13 मामलों में से 8 मामले आवेदक की गिरफ्तारी के बाद यानी 14.8.2020 के बाद के हैं। उन्होंने आगे कहा कि केवल किसी आरोपी के आपराधिक इतिहास के आधार पर, यदि अन्यथा जमानत का मामला बनता है, तो जमानत से इनकार नहीं किया जाना चाहिए।

15 - उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि आवेदक एक अन्य मामले के संबंध में 14.8.2020 से जेल में है, लेकिन वर्तमान मामले में भी आवेदक लगभग डेढ़ साल से जेल में है। उन्होंने अंत में आग्रह किया कि सूचना देने वाले का भी 9 मामलों का आपराधिक इतिहास है और इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवेदक को जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

<u>राज्य और सूचनादाता की ओर से प्रस्तुत निवेदन :-</u>

16 - इसके विपरीत विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ- साथ सूचक के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक की जमानत की प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया। निवेदित किया गया कि आवेदक के विरुद्ध विशिष्ट आरोप है। उनका कहना है कि विधायक रहते हुए उन्होंने अपने पद और रुतबे का दुरुपयोग किया है और सूचक की संपत्ति पर जबरन कब्ज़ा कर लिया। आवेदक उसे लगातार धमकी दे रहा है और अवैध हथियारों के दम पर सूचक के 19 वाहनों को जबरन कब्जे में ले लिया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 20.11.2021 को छह वाहन आवेदक के हॉट मिक्स प्लांट से बरामद किये गये। एवं आवेदक के अनुसार भी छह वाहनों में से चार साझेदारी फर्म के नहीं थे और आवेदक ने इन वाहनों पर दावा भी नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि बरामद वाहन मुखबिर के थे।

17 - उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वास्तव में फर्म, मेसर्स कृष्ण मोहन तिवारी एक साझेदारी फर्म नहीं है, बल्कि यह सूचक की फर्म है और केवल फर्म पर कब्जा करने के लिए आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों ने यह दावा करना शुरू कर दिया कि फर्म एक साझेदारी फर्म है और केवल विवाद के लंबित रहने से आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप की गंभीरता कम नहीं हो जाती।

18 - विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि एफआईआर में आवेदक के खिलाफ विशेष आरोप है कि उसने न केवल सूचक की संपत्ति पर कब्जा कर लिया, बल्कि वह लगातार सूचक को उसके खिलाफ दर्ज मामले को वापस लेने की धमकी भी दे रहा है और उसके बाद उसने बंदूक की नोंक पर सूचक की गाड़ी जबरन ले ली और अगर इन आरोपों के बावजूद उसका नाम आरोपियों में नहीं है तो इसका मतलब यह नहीं है कि इस आधार पर उसे कोई फायदा हो सकता है कि उसे एफआईआर में आरोपी नहीं बनाया गया था।

19 - उन्होंने आगे कहा कि आवेदक एक कट्टर अपराधी है और अंतर जिला गिरोह का नेता है, जिसका पंजीकरण नंबर डी-12 पुलिस स्टेशन गोपीगंज जिला भदोही में है और हिस्ट्रीशीट नंबर 2-बी पी.एस. हंडिया, जिला प्रयागराज है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे बताया कि आवेदक के पास विभिन्न जिलों में लगभग 85 मामलों का आपराधिक इतिहास है और जिलेवार आपराधिक इतिहास को जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक के आपराधिक इतिहास को देखने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि वह कोई सामान्य अपराधी नहीं है बल्कि एक दुर्दांत

अपराधी है जो सरकारी संपत्ति पर जबरन कब्ज़ा करने, एके-47 और इसका कारतूस रखने जैसे जघन्य और गंभीर अपराधों में शामिल है। धारा 307 आईपीसी और यू.पी. गैंगस्टर अधिनियम के तहत मामले और राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के प्रावधानों के तहत उसे अनेकों बार हिरासत में लिया गया है।

20 - विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक को 302 आईपीसी के कई मामलों में भी आरोपी बनाया गया था, हालांकि उसके प्रभाव के कारण उसे दोषी नहीं ठहराया जा सका। उन्होंने आगे कहा कि कई मामलों में आवेदक ने आईपीसी की धारा 376 डी के तहत मामले में पीड़ित सहित मामले के गवाहों को धमकी दी। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक के खिलाफ पश्चिम बंगाल राज्य में भी एक मामला दर्ज किया गया था।

21 - विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे बताया कि हाल ही में आवेदक को आर्म्स एक्ट के दो मामलों में भी दोषी ठहराया गया है, इसलिए पूरी संभावना है कि जमानत पर रिहा होने के बाद वह गवाहों पर क्रोध करेगा और इसलिए ऐसे दुर्दांत अपराधी को जमानत पर रिहा नहीं किया जाना चाहिए।

22 - उन्होंने **नीरू यादव बनाम यूपी राज्य के मामले में पारित निर्णय जिसका विवरण [2016 (15) एससीसी 422]** में और **दीपक यादव बनाम यूपी राज्य और अन्य जिसका विवरण [2022(8) एससीसी 559]** में है, शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया।

<u>विश्लेषण :-</u>

23 - आवेदक भूतपूर्व विधायक है तथा वह ज्ञानपुर, भदोही से लगातार चार बार विधायक रहा है। आवेदक के खिलाफ आरोप है कि उसने अपने पद और प्रतिष्ठा का दुरुपयोग किया और सूचक की संपत्तियों पर कब्जा कर लिया और जब सूचक ने उसके खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की तो वह उसे और उसके परिवार के अन्य सदस्यों को लगातार धमकी दे रहा है और उसके बाद उसने सूचक के 19 वाहनों को अवैध हथियारों के बल पर जबरन अपने कब्जे में ले लिया।

24 - अभियोजन के अनुसार आवेदक के हॉट मिक्स प्लांट से छह वाहन बरामद किये गये। हालांकि आवेदक के अनुसार संबंधित वाहन साझेदारी फर्म के थे और साझेदारी फर्म के संबंध में एक विवाद इस न्यायालय के समक्ष लंबित है, जिसमें एक मध्यस्थ भी नियुक्त किया गया है, लेकिन आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप गंभीर प्रकृति के हैं और न केवल सूचना देने वाले के वाहनों को जबरन कब्जे में लेने का आरोप है बल्कि आवेदक के खिलाफ सूचक की 20 बीघे जमीन पर कब्जा करने और सूचक को धमकी देने जैसे कई आरोप भी हैं।

25 - आवेदक उत्तर प्रदेश राज्य का एक प्रसिद्ध राजनीतिक व्यक्ति है और वह भूतपूर्व एमएलए भी था, इसलिए, कानून और व्यवस्था बनाए रखना उसकी ज़िम्मेदारी थी, लेकिन लगभग 85 मामलों का उसका आपराधिक

इतिहास इस बात का संकेत देता है और इसके अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वह हत्या, बलात्कार, हत्या का प्रयास आदि हर प्रकार के अपराध में शामिल था।

26 - **प्रह्लाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी, दिल्ली और अन्य का मामला जिसका विवरण [(2001) 4 सुप्रीम कोर्ट केस 280]** में है शीर्ष न्यायालय ने उस पहलू पर प्रकाश डाला है जिस पर अदालत को जमानत आवेदनों से निपटने के दौरान विचार करना चाहिए और उन्हें इस प्रकार देखा जाना चाहिए:-

"8. जमानत देने के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग प्रत्येक मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि मनमाने तरीके से। जमानत देते समय अदालत को आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखना होगा, उसके समर्थन में सबूत की प्रकृति, सजा की गंभीरता जो दोषसिद्ध ठहराई जाएगी, ***आरोपी का चरित्र, व्यवहार, साधन और स्थिति, परिस्थितियां जो आरोपी के लिए विशेष हैं,*** *आरोपी की उपस्थिति सुनिश्चित करने की उचित संभावना, मुकदमा, गवाहों के साथ छेड़छाड़ की उचित आशंका,* ***जनता या राज्य के व्यापक हित और इसी तरह के अन्य विचार।*** *यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जमानत देने के प्रयोजनों के लिए विधानमंडल ने "उचित आधार" शब्दों का उपयोग किया है। "साक्ष्य" के बजाय "विश्वास" करना, जिसका अर्थ है कि जमानत देने से निपटने वाली अदालत केवल इस बात से संतुष्ट हो सकती है कि क्या आरोपी के खिलाफ कोई वास्तविक मामला है और अभियोजन आरोप के समर्थन में प्रथम दृष्टया साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम होगा। इस स्तर पर उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने वाले साक्ष्य होना अपवाद नहीं है।"*

(जोर दिया गया)

27 - **प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य** का मामला जिसका विवरण **[(2010) 14 सुप्रीम कोर्ट केस 496]** में है यह पुनः देखा गया जो निम्नवत है : -

"9. हमारा मानना है कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अपोषणीय है। यह सामान्य बात है कि आम तौर पर यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी को जमानत देने या खारिज करने के आदेश में हस्तक्षेप नही करता है। हालाँकि, यह उच्च न्यायालय पर भी समान रूप से निर्भर है कि वह इस मुद्दे पर इस न्यायालय के कई निर्णयों में निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों के अनुपालन में विवेकपूर्ण, सावधानी और सख्ती से अपने विवेक का प्रयोग करे। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि, अन्य परिस्थितियों के अलावा, जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :-

(i) क्या यह विश्वास करने का कोई प्रथम दृष्टया या उचित आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है;

(ii) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(iii) दोषसिद्धि की स्थिति में सजा की गंभीरता;

(iv) जमानत पर रिहा होने पर आरोपी के फरार होने या भाग जाने का खतरा;

(v) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति और स्थिति;

(vi) अपराध दोहराए जाने की संभावना;

(vii) गवाहों को प्रभावित किये जाने की उचित आशंका; और

(viii) निस्संदेह, जमानत दिए जाने से न्याय बाधित होने का खतरा है।'

(जोर दिया गया)

28 - इसलिए, शीर्ष न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि जमानत देना या अस्वीकार करना विवेकाधीन शक्ति है, लेकिन किसी आरोपी को जमानत देते समय न्यायालय को न केवल साक्ष्य की प्रकृति, आरोपों की गंभीरता और सजा की गंभीरता पर विचार करना चाहिए, बल्कि अभियुक्त के चरित्र, व्यवहार, साधन और स्थिति और मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने की उचित संभावना, उचित आशंका पर भी विचार करना चाहिए। गवाहों के साथ छेड़छाड़ और जनता और राज्य के व्यापक हित और इसके अलावा, जमानत देते समय, अदालत को निश्चित रूप से, जमानत देने से न्याय बाधित होने के खतरे पर भी विचार करना चाहिए।

29 - आवेदक उत्तर प्रदेश राज्य का बहुत प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्ति है और उसके खिलाफ 85 मामले दर्ज किए गए थे और 13 मामले अभी भी लंबित हैं। मामलों की सूची देखने से पता चलता है कि कई मामले गंभीर और जघन्य अपराधों के थे और दो मामलों में उसे पहले ही दोषी ठहराया जा चुका है, इसलिए इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि जमानत पर रिहा होने के बाद आवेदक गवाहों से छेड़छाड़ कर सकता है, खासकर जब आवेदक के खिलाफ ऐसा आरोप वर्तमान मामले की एफआईआर में ही है।

30 - इसके अलावा, किसी व्यक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध समाज के खिलाफ अपराध है और यह हमेशा बड़े पैमाने पर समाज को प्रभावित करता है और यदि ऐसे व्यक्ति जिनके पास 80 से अधिक मामलों का आपराधिक इतिहास है, उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा तो वे फिर से ऐसे अपराध कर सकते हैं और वे समाज के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं और वे राज्य के लिए कानून और व्यवस्था बनाए रखने में भी समस्याएं पैदा कर सकते हैं, इसलिए, बड़े पैमाने पर जनता और राज्य के हित में, उन्हें आम तौर पर जमानत पर रिहा नहीं किया जाना चाहिए।

31 - हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक 14.8.2020 से जेल में है और वर्तमान मामले में वह पिछले लगभग डेढ़ साल से जेल में है लेकिन एक आरोपी की हिरासत की अवधि परिस्थितियों की समग्रता और अभियुक्त के आपराधिक इतिहास के अनुसार होनी चाहिए और उन परिस्थितियों की समग्रता के साथ एक साथ विचार किया जाना चाहिए जो जमानत देने को उचित ठहरा सकते हैं,

किसी अभियुक्त को रिहा करने में शामिल सामाजिक चिंता के बड़े संदर्भ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ विचार किया जाना चाहिए। आरोपी जमानत की मांग कर रहा है **[देखें: ऐश मोहम्मद बनाम शिव राज सिंह जिसका विवरण (2012) 9 एससीसी 446]** में है ।

32 - **नीरू यादव (पूर्व)** के मामले में, जिस पर विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया था, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले किसी आरोपी को जमानत देते समय अदालतों को बहुत सतर्क रहना चाहिए और अदालत आरोपी के आपराधिक पृष्ठभूमि को नजरअंदाज नहीं कर सकती है। शीर्ष अदालत ने **नीरू यादव (पूर्व)** के मामले में आगे देखा कि कानून उम्मीद करता है कि इस तरह के आरोपी व्यक्तियों को स्वीकार करते समय न्यायपालिका बहुत अधिक सतर्क रहेगी।

33 - इसलिए, यह स्पष्ट है कि जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय अभियुक्त के आपराधिक इतिहास को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

34 - इसलिए, ऊपर की गई चर्चा से मेरे विचार में आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार नहीं है।

35 - तदनुसार तत्काल जमानत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 448

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति गौतम चौधरी,

आपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन संख्या 16312/2023

छोटू@राजू ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री अतुल कुमार

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 161 और 164- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376(2-जी) - भारत का संविधान अनुच्छेद 21 -जमानत के लिए आवेदन - एफआईआर - सामूहिक बलात्कार का अपराध - धारा 161 और 164 के तहत बयानों में विरोधाभास - विचरण अभी भी लंबित है - विचाराधीन व्यक्ति को लंबे समय तक जेल में रखने की दलील संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार के खिलाफ है- सुधार का सिद्धांत - न्यायालय यह पाता है कि, यह दुखद है कि पीड़ित पक्षद्रोही हो गया, लेकिन पिछले 9 वर्षों से मुकदमा अभी भी लंबित है - आवेदक इस देरी के परिणाम भुगत रहा है - जबकि न्यायिक प्रक्रिया का सिद्धांत कहता है कि भले ही सौ अपराधी बख्श दिए जाएं, लेकिन एक भी निर्दोष व्यक्ति को सजा नहीं मिलनी चाहिए - तदनुसार, जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

जमानत आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. इंद्राणी प्रतिम मुखर्जी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, विशेष अपील अनुमति (सीआरएल) संख्या 1627/2022 में पारित।
2. राजस्थान बनाम बालचंद @ बलिया (AIR 2447, 1978),
3. अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1277/2014)।

(माननीय न्यायमूर्ति गौतम चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान दाण्डिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र आवेदक छोटू उर्फ राजू की ओर से मु०अ०स० 200/2014, अन्तर्गत धारा 376(2G) भा०दं०वि०, थाना शाहपुर, जिला मुजफ्फरनगर में जमानत पर मुक्त करने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

2. वाद के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार है कि, वादी सुधीर की बहन दिनांक 04.06.2014 को देर शाम करीब साढ़े नौ बजे अपनी बहन के गांव से वापस शाहपुर आयी थी। जैसे ही वह बसी रोड पर पहुंची तो करीब चार-पांच मुलजिमानों ने मेरी बहन को जबरदस्ती पकड़ लिया और कब्रिस्तान में ले जाकर बारी-बारी से बलात्कार किया और बेहोशी की हालत में छोड़कर भाग गये।

3. अभियोगी सुधीर ने दि० 06.06.2014 को बयान दिया कि दि० 04.06.2014 को उसके गांव के लड़के विजय पुत्र प्रेम सिंह को थाना शाहपुर बुलाया और विजय ने मुझे थाने से ही फोन कर बताया कि तुम्हारी बहन थाना शाहपुर में बैठी है, मैं थाना शाहपुर पहुंचा और थाने से मेरी बहन को मेरे साथ भेज दिया। मैं अपनी बहन को लेकर घर आ गया। मुझे थाने पर यह मालूम नहीं चल पाया कि मेरी बहन के साथ दुष्कर्म हुआ है। घर आकर बहन ने अपनी मामी को बताया कि उसके साथ बलात्कार हुआ है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा पत्रावली का परिशीलन किया।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि:-

1- आवेदक को इस प्रकरण में गलत एवं फर्जी ढंग से झूठा फंसाया गया है, उसने कथित अपराध कारित नहीं किया है। आवेदक प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामजद नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट विलंबित है, जिसका कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। वादी ने तथा कथित घटना के दो दिन बाद सुनी-सुनाई बात के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करवायी है तथा इस विलंब का कोई स्पष्टीकरण नही दिया है।

2- दिनांक 07.06.2014 को पीड़िता ने अपने मजीद बयान में यह कथन किया गया कि मामले के अभियुक्तगण द्वारा उसके साथ बारी-बारी से दुष्कर्म किया गया एवं यह घटना रात्रि नौ बजे से रात एक डेढ बजे तक की थी। उसके बाद इन लोगों ने बारी-बारी बलात्कार करने के बाद पीड़िता के वहां से भगा दिया, लेकिन उसे बेहोशी सी आ रही थी और थकान लग रही थी व लड़खड़ा कर चल पा रही थी और सड़क पर आकर लड़खड़ा कर बैठ गयी थी

तभी वहां दुकानों की चौकीदारी करता हुआ एक चौकीदार आ गया था जिसने अपना नाम गगन सिंह बताया था। चौकीदार ने हालत देखकर पूछा तो उसने उसे सारी घटना के बारे में बताया था उसके बाद पास वाली पुलिस चौकी पर ले गया था। वहां से थाने पर ले गये थे।

3- दिनांक 07.06.2014 को कथित पीड़िता का बयान विवेचक द्वारा लिया गया, जिसमें उसने कथन किया है कि वह 15 दिवस पूर्व अपने ससुराल खेडा हटाना से अपनी बहन प्रमिला की ससुराल कसेरवा गयी थी और मंगलवार 3 तारीख को वह कसरेवा से दोपहर के बाद रोडवेज बस से बुढाना तक आई। उस समय हल्का हल्का अंधेरा हो गया था। शाहपुर आते-आते काफी रात हो गयी थी। शाहपुर में वह बदरी कला जाने वाली सड़क के सामने सड़क पर ही उतर गयी। उसके गांव की तरफ जाने वाली सड़क पर कई गांव के तांगे खड़े रहते है। वह सड़क पर ही एक तांगे के पास खडी हो गयी। तांगे के पास एक लड़का खड़ा था जो टोपी ओढे हुए था उस लड़के ने कहा कि तांगा कब्रिस्तान में खड़ा है। उसे ऐसा लगा जैसे कि उसकी कमर में कोई सुई जैसी चुभी है और वह लड़का पीड़िता का पकड़ कर कब्रिस्तान के अन्दर ले गया वहां पर मैदान ही मैदान और झाडियां थी। वहां मैदान में पहले दो अन्य व्यक्ति आये और उसके बाद दो फिर आये और बाद में कुल मिलाकर नौ आदमी हो गये और सब लोगो ने मेरे साथ बहुत बदतमीजी की और सबने मुझे जमीन पर गिरा कर 8 लोगो ने मेरे साथ बुरा काम किया। एक आदमी जो तांगे के पास खड़ा था उसने गलत काम नहीं किया, जब चिल्लायी तो वहां पर दो पुलिस वाले मोटरसाइकिल से आये और पुलिसवाले उसे चौकी पर ले गये तथा फिर गाड़ी/जीप से थाने ले गये। मैं थाने पर बाहर बैठी थी और उसका भाई चार बजे सुबह मुझे थाने से घर लेकर गया।

4- मजीद बयान में पीड़िता का कथन है कि वह घटना के बाद स्वयं सड़क पर आ गयी, तभी दुकान की चौकीदारी करने वाला चौकीदार आ गया और वह पीड़िता को पुलिस चौकी ले गया, वहीं दूसरी तरफ पीड़िता द्वारा विवेचक को दिए गए बयान में कथन किया गया है कि जब कह चिल्लायी तो पुलिस वाले मोटरसाइकिल से आ गए और उसे चौकी पर एवं थाने पर ले गए। इस प्रकार यह दोनों बयान परस्पर विरोधाभाषी हैं।

5- पीड़िता के बयान में यह भी आया है कि उसके चिल्लाने पर पुलिसवाले मोटरसाइकिल से आ गए तभी, पुलिसवालों के आने पर अभियुक्तगण भागे, इसका मतलब पुलिसवालों ने भी अभियुक्तगण को भागते हुए देखा, किंतु न तो उन्होंने अभियुक्तों को पीछा किया और न ही उनका बयान दर्ज हुआ कि उन्होंने किसी को पहचाना या नहीं।

6- कथित पीड़िता द्वारा अवर न्यायालय में पी०डब्लू०-1 के रूप में यह कथन किया है कि हाजिर अदालत वसीम, गुलफाम उर्फ सोनू, शमशाद, शहजाद, अहसान, छोटू उर्फ राजू आरिफ, काला पुत्र यामीन, नसीम उर्फ बिल्ली को देखकर गवाह ने कहा कि "इनमें से कोई भी व्यक्ति वह नहीं है जिन्होंने मेरे साथ घटना वाले दिन कब्रिस्तान में बुरा काम (बलात्कार) व बदमीजी की थी।" एवं जब गवाह को धारा 161 दं०प्र०सं० व मजीद बयान पढ़कर सुनाया तो गवाह ने कहा कि "मैनें ऐसा कोई बयान पुलिस वालो को कभी नहीं दिया और ना

ही मैने किसी पुलिस अधिकारी को किसी भी मुल्जिमान का नाम नहीं बताया मेरा बयान कैसे लिख दिया मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकती हूं।" इस प्रकार वह अवर न्यायालय में पक्षद्रोही हो गयी है।

7- संपूर्ण घटनाक्रम को देखते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा है कि घटना की प्राथमिकी पुलिस की मिलीभगत से कल्पित तथ्यों के आधार पर लिखवायी गयी है। जो सांप्रदायिकता द्वेषभावना व सामाजिक सद्भाव निकृष्ट करने के उद्देश्य से किया गया है, चूकिं घटना के बाद भीड़ एकत्र हुयी है, नारेबाजी की गयी है एवं थाने का घेराव भी किया गया है।

8- उनका यह भी कथन है कि मामले के जो अभियुक्तगण संपन्न थे वो विधिक प्रक्रिया के माध्यम से जमानत पर छूट गये, चूंकि आवेदक गरीब व्यक्ति है एवं उसकी पैरवी करने वाला कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। उनका यह भी कथन है कि कथित पीड़िता अवर न्यायालय में दिनांक 12.01.2016 को सत्र परीक्षण के दौरान पक्षद्रोही हो गयी, इसके बावजूद भी आवेदक गरीब होने तथा जमानत प्रार्थना पत्र न दाखिल कर पाने के कारण दि० 06.06.2014 से लगभग 9 वर्षो से कारागार में निरुद्ध है। इसलिए आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाय।

9- मामले के केस डायरी के अवलोकन से यह दर्शित हो रहा है कि मामले के अन्य सहअभियुक्तगण को जमानत मिल चुकी है। आवेदक का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास भी नहीं है। कथित पीड़िता, सत्र परीक्षण के दौरान पक्षद्रोही हो गयी है। आवेदक को मात्र परिस्थितिजन्य तथ्यों के आधार पर मामले में नामित किया गया है। कथित पीड़िता के पूरक चिकित्सीय आख्या प्रपत्र के अनुसार अभियोजन कथानक का समर्थन नहीं हो रहा है। उनका यह भी कथन है कि मामले के समस्त तथ्यों से प्रदर्शित हो रहा है कि इस कथित पीड़िता के मजीद बयान, धारा 161 एवं 164 दं०प्र०सं० के बयान में विरोधाभाष है। आवेदक लंबे समय से जेल में निरूद्ध है और मामले में तथ्य के गवाहों के साक्ष्य अंकित हो चुके है, किंतु सत्र परीक्षण अभी भी लंबित है एवं आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि इसलिए आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाय। अवर न्यायालय के आदेश फलक को देखने से सत्र परीक्षण का निकट भविष्य में शीघ्र निस्तारण होने की संभावना नजर नहीं आ रही है, इसलिए आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाय।

10- आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन **Indrani Pratim Mukerjea Vs. Central Bureau of Investigation and another** passed in **Special Leave to Appeal (Crl.) No. 1627 of 2022** to submit that prolonged incarceration of a person as an under trial is against his fundamental rights under Article 21 of the Constitution of India. में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि-व्यवस्था की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के जमानत का प्रबल विरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदक द्वारा कारित अपराध संज्ञेय एवं गंभीर प्रकृति का है,

इसलिए आवेदक को जमानत पर न छोड़ा जाय।

7. मैंने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का गहनतापूर्वक परिशीलन किया गया, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जमानत आवेदन पत्र में आवेदक के जेल मे निरूद्ध होने की तिथि 06.06.2014 अंकित किया गया है, किंतु वाद के सी०डी० अवलोकन से अभियुक्त के अभिरक्षा में लेने की तिथि 09.04.2014 अंकित है तथा उभय पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर सम्यक रूप से विचार किया गया। मेरा अभिमत है किः-

1- *Rajasthan Vs. Balchand alias Baliay (AIR 2447, 1978)* के ऐतिहासिक फैसले में 1978 के मामले में सटीक रूप से कहा गया है कि: "मूल नियम को शायद जमानत के रूप में रखा जा सकता है, जेल नहीं।" इसे आधार बनाने के लिए भारत के संविधान के तहत एक अभियुक्त को गारंटीकृत अधिकारों पर जोर दिया। इन अधिकारों में सबसे विशिष्ट अधिकार संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत दिया गया अधिकार है। किसी व्यक्ति की हिरासत उसके जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को प्रभावित करती है और हिरासत का मुख्य उद्देश्य बिना किसी असुविधा के मुकदमे के लिए आरोपी की आसानी से उपलब्धता सुनिश्चित करना है।

2- इस प्रकार, यदि यह सुनिश्चित किया जाता है कि अभियुक्त विचारण चरण के लिए आवश्यक होने पर उपलब्ध हो, तो व्यक्ति को हिरासत में लेना अनिवार्य नहीं है। इसलिए, यह माना गया कि अदालतों को, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से संबंधित दंड प्रक्रिया संहिता (सी०आर०पी०सी०) के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, हिरासत से बचना चाहिए जब तक कि यह अपरिहार्य न लगे और आरोपी को जमानत दे देनी चाहिए।

3- मानवाधिकार सक्रियता पिछले कुछ वर्षों में अधिक विकसित हुई है और वर्तमान में जेल में निरूद्ध किये जा रहे किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज के हित के बीच संतुलन की समझ की आवश्यकता है। इसलिए, दोनों के बीच इस तरह के संतुलन को बनाए रखने के लिए यह विचार करना बहुत महत्वपूर्ण है कि जब तक कोई मजबूत आधार न हो जैसे कि एक अभियुक्त के न्याय से भागने की संभावना या उसके द्वारा सबूतों से छेड़छाड़ करने या मामले के गवाह या पीड़ित को धमकी देने की संभावना, किसी अभियुक्त को हिरासत में लेने से संविधान के अनुच्छेद - 21 के तहत उसे दिए गए उसके मौलिक अधिकार यानी जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होगा।

4- इसके अलावा, सजा के सुधारवादी सिद्धांत का प्रयोग दंड के दो अन्य सिद्धांतों क्रमश: निवारक सिद्धांत और दंडात्मक सिद्धांत के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। सुधारवादी सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य एक अभियुक्त को सुधारना और उसे जेल में आदतन अपराधियों से दूर रखना है, जिन्हें अपराधों की विविधता माना जाता है।

5- यह सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि दंड एक निवारक के बजाय अधिक उपचारात्मक होना चाहिए। इस प्रकार के सिद्धांत के तहत किसी अपराध को एक

बीमारी माना जाता है जिसे मारने से ठीक नहीं किया जा सकता है; बल्कि इस तरह के रोग को 'सुधार की प्रक्रिया' *(process of reformation)* के नाम की दवा की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

6- इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट द्वारा अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य *(A.I.R 1277 OF 2014)* के मामले में पारित ऐतिहासिक फैसले में, उच्चतम न्यायालय ने गिरफ्तारी से पहले और गिरफ्तारी के बाद पुलिस की शक्तियों पर कई नियंत्रण और संतुलन लगाए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने देश भर की सभी राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि वे पुलिस अधिकारियों को निर्देश दें कि वे मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों की जांच किए बिना किसी आरोपी को गिरफ्तार न करें और गिरफ्तारी से पहले प्रारंभिक जांच करें।

7- एक सार्वभौमिक सत्य यह भी है कि गिरफ्तारी अपने साथ बहुत अपमान भी लाती है, किसी की स्वतंत्रता को कम करती है और एक अभियुक्त के चरित्र पर हमेशा के लिए एक निशान छोड़ जाती है। एक जेल में बंद अभियुक्त अपनी नौकरी/ प्रतिष्ठा खो देता है। इस तरह उसकी नजरबंदी का बोझ उसके परिवार के निर्दोष सदस्यों पर भी पड़ता है। स्थिति तब और भी खराब हो जाती है जब जेल में बंद व्यक्ति परिवार में एकमात्र कमाने वाला होता है और उसके कारावास से उसके निर्दोष आश्रितों को अनावश्यक पीड़ा होती है।

8. इस प्रकार उपरोक्त अभिमत के मद्देनजर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध सारवान तथ्यों एवं परिस्थितियों का समग्र रूप से अवलोकन करने के बाद, सबूतों की प्रकृति और किसी भी ठोस विरोधात्मक सामग्री की अनुपस्थिति एवं उपलब्ध सामग्री से छेड़छाड़ की संभावना न होने के तथ्य को देखते हुए मेरी राय में आवेदक को जमानत पर मुक्त करने का उपयुक्त आधार है।

9. अतः वाद के गुण-दोष पर बिना कोई टिप्पणी किए हुए आवेदक को उपरोक्त वर्णित अपराध में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि पर व्यक्तिगत बंध-पत्र एवं उसी धनराशि के दो स्थानीय प्रतिभू प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर छोड़ दिया जाय।

1. आवेदक विवेचना या परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

2. आवेदक अभियोजन साक्षियों व पीड़िता/ शिकायतकर्ता को डरायेगा/धमकायेगा नहीं।

3. आवेदक न्यायालय के आदेशों का पालन करेगा, वह परीक्षण के दौरान बिना कोई अनावश्यक स्थगन लिए नियत तिथि पर न्यायालय में उपस्थित होगा तथा परीक्षण में ईमानदारी से सहयोग करेगा।

4. आवेदक जमानत पर रिहा होने के बाद जमानत की स्वतंत्रता का दुरूपयोग नही करेगा और किसी भी अपराधिक गतिविधि में लिप्त नहीं होगा न कोई अपराधिक कृत्य करेगा।

5. आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति या पुलिस अधिकारियों को कोई प्रलोभन या धमकी नहीं देगा न ही उनसे कोई

वायदा करेगा, जिसके कारण उन्हें न्यायालय में तथ्यों को उजागर करने से विरत रहना पडे।

उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, परीक्षण न्यायालय आवेदक की जमानत नियमानुसार रद्द करने को स्वतंत्र है।

10. यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि कथित पीड़िता दिनांक 12.01.2016को अवर न्यायालय में पक्षद्रोही हो गयी तथा अवर न्यायालय में यह वाद विगत 9 वर्षों से विचारण में चल रहा है, अभी तक सत्र परीक्षण का निस्तारण नहीं हुआ है। इस विलंब का खामियाजा आवेदक को भुगतना पड़ रहा है। जबकि न्यायिक प्रक्रिया का सिद्धात है कि सौ अपराधी भले छूट जाय, किंतु एक निर्दोष व्यक्ति को सजा नहीं होनी चाहिए। इसलिए मामले के तथ्यों एवं परिस्थियों को देखते हुए अवर न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि इस मामले से संबंधित सत्र परीक्षण का निस्तारण दिन प्रति दिन सुनवाई के आधार पर आज से 06 माह के अंदर करना सुनिश्चित किया जाय।

(2023) 5 ILRA 454

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला,

आपराधिक अपील दोषपूर्ण संख्या 124 / 2023

सरफराज अली जाफरी ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: अजीत प्रताप सिंह, जिया उल कय्यूम

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

सिविल कानून - राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008-धारा 21- विलम्ब से दायर अपील-

संविधान के अनुच्छेद 21 को किसी भी परिस्थिति में शांत नहीं किया जा सकता है- कोई भी वैधानिक प्रतिबंध संविधान के भाग-III के अधिदेश के अधीन है- धारा 21 उच्च न्यायालय को उपधारा (1) के तहत दायर प्रत्येक अपील पर निर्णय लेने का अधिदेश देती है, जबकि उपधारा (5) से जुड़ा दूसरा प्रावधान 90 दिनों से अधिक के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त करता है -दो प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना था।

विलम्ब क्षमा हेतु आवेदन स्वीकृत किया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राष्ट्रीय जांच एजेंसी अपने मुख्य जांच अधिकारी, जम्मू बनाम तीसरे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश जिला न्यायालय जम्मू और दिल्ली उच्च न्यायालय के माध्यम से फरहान शेख बनाम राज्य (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) के मामले में 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 9158 में रिपोर्ट की गई
2. नासिर अहमद बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी 2015 एससीसी ऑनलाइन केर 39625
3. शेख रहमतुल्ला एवं अन्य बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी 2023 एससीसी ऑनलाइन कैल 493

4. एससी/एसटी (अत्याचार निवारण संशोधन अधिनियम, 2005) की धारा 14 ए के प्रावधान के संबंध में बनाम शून्य तथा अन्य संबंधित मामलों में आपराधिक रिट जनहित याचिका संख्या 8/2018

5. एस.टी. (एनआईए) बनाम फरहान शेख- विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) डायरी संख्या 41439/2019 दिनांक 2.12.2019।

6. मेसर्स मेला राम एंड संस बनाम आयकर आयुक्त, पंजाब, 1956 एससी 367 एआईआर

7. भारत संघ बनाम के.ए. नजीब ने (2021)3 एससीसी 713 में रिपोर्ट की

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत प्रताप सिंह और श्री जिया उल कयूम तथा राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान अपील दाखिल करने में देरी की रिपोर्ट स्टाम्प रिपोर्टर द्वारा गलत तरीके से दी गई थी। देरी पर एक नई रिपोर्ट मांगी गई और अपील ज्ञापन के पृष्ठ संख्या 7 के पीछे अंकित संशोधित रिपोर्ट के अनुसार, अपील में 368 दिन की देरी हुई है।

3. इस न्यायालय ने आपराधिक अपील दोषपूर्ण संख्या 214/2022 में विलंब की आपत्ति पर दिनांक 4.4.2023 के आदेश द्वारा विलंब क्षमा आवेदन का निपटारा करते हुए निम्नांकित टिप्पणी की:-

"प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने विलंब क्षमा आवेदन के उत्तर में बताया है कि राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 21(5) के दूसरे परंतुक में 90 दिनों की अवधि के बाद किसी भी अपील पर विचार न करने का वैधानिक प्रतिबंध है।

यह कहना पर्याप्त है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को एक प्रक्रियात्मक प्रावधान के बल पर प्रतिबंधित और संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है जो कानून के उद्देश्य की पूर्ति के लिए है। ऐसा प्रतिबंध पूर्ण नहीं है, इसलिए, हम सीमा के आधार पर अपील को खारिज करने के लिए आश्वस्त नहीं हैं, खासकर जब व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को केवल निर्णय, सजा या आदेश के खिलाफ अपील के माध्यम से ही उठाया जाना है"। वर्तमान अपील को जन्म देने वाला प्रश्नगत आदेश दिनांक 22.3.2022 को पारित किया गया था, जिसे अपीलकर्ता की ओर से दिनांक 23.3.2022 को प्राप्त किया गया था, फिर भी एक वर्ष की देरी के बाद अपील दायर की गई है। यह दलील कि प्रश्नगत आदेश के सुधार के लिए हाल ही में दायर आवेदन का निपटारा दिनांक 19.4.2023 को किया गया था, अविश्वसनीय है क्योंकि आवेदन स्वयं 90 दिनों की अवधि से परे दायर किया गया था और दूसरी

बात, किसी भी टंकण त्रुटि को सुधार उस तारीख से संबंधित होगा जब आदेश शुरू में पारित किया गया था, इसलिए, यह उठाई गई वैधानिक आपत्ति के खिलाफ कोई मदद नहीं करेगा।

4. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत अधिकार के संरक्षण के लिए अपील करने का अधिकार निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का एक अनिवार्य हिस्सा है और हमारे संविधान की मूल संरचना में से एक है। राज्य के अनुसार, अधिनियम, 2008 की धारा 21(5) में संलग्न दूसरे प्रावधान के तहत परिकल्पित प्रतिबंध का उद्देश्य विलंब की तलवार से इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार को समाप्त करना है, हालांकि परिसीमा विधि के साथ जुड़े मौलिक अधिकार से वंचित करना सार्वजनिक महत्व का बड़ा सवाल है जो वर्तमान अपील में इस न्यायालय के समक्ष सामने आया है। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 4.4.2023 को पारित सटीक शब्दों वाला आदेश, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, पूर्ण रूप से प्रतिबंध को स्वीकार नहीं करता है ।

5. इस बिंदु पर परस्पर विरोधी विचार हैं जैसा कि जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा **राष्ट्रीय जांच एजेंसी के मामले में उसके मुख्य जांच अधिकारी, जम्मू बनाम तीसरे अपर सत्र न्यायाधीश जिला न्यायालय जम्मू** और दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **फरहान शेख बनाम राज्य (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) के मामले में 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल ९१५८** में रिपोर्ट किया गया, अर्थात केरल उच्च न्यायालय द्वारा **नासिर अहमद बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी के मामले में २०१५ एससीसी ऑनलाइन केर ३९६२५** और कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा **शेख रहमतुल्ला और अन्य बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी के मामले में 2023 SCC Online Cal 493** में रिपोर्ट किया गया।

6. इस न्यायालय ने आपराधिक अपील दोषपूर्ण संख्या 214/2022 में पारित उपरोक्त आदेश में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की पवित्रता के अनुरूप एक दृष्टिकोण अपनाया है और **एससी/एसटी (अत्याचार निवारण संशोधन अधिनियम, वर्ष 2005 की धारा 14 ए के प्रावधान के संबंध में इस न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्ण पीठ के फैसले के अनुपात निर्णय को ध्यान में रखते हुए बनाम शून्य के साथ-साथ आपराधिक रिट जनहित याचिका संख्या 8/2018 में अन्य संबंधित मामलों को ध्यान में रखा है।**

7. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि **एससी/एसटी (अत्याचार निवारण संशोधन अधिनियम, 2005 की धारा 14 ए के प्रावधान के संबंध में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय बनाम निल और अन्य संबंधित मामलों में आपराधिक रिट जनहित याचिका संख्या 8/2018** में प्रक्रिया को

निष्पक्ष रूप से पढ़ने के हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करता है, लेकिन एनआईए अधिनियम, 2008 की धारा 21(5) के साथ संलग्न द्वितीय प्रावधान के तहत अधिनियमित वैधानिक रोक को किसी भी पक्ष द्वारा आज तक चुनौती नहीं दिए जाने के कारण, राज्य ने कलकत्ता और केरल उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के साथ-साथ **राज्य (एनआईए) बनाम फरहान शेख**-विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) डायरी संख्या 41439/2019 के मामले में दिनांक 2.12.2019 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम स्थगन आदेश पर जोर देकर अपना रुख दोहराया है।

8. यह सत्य है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत नागरिकों को दिया गया जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार मौलिक है, लेकिन राज्य की सुरक्षा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। पहला अधिकार लोगों को मौलिक रूप से दिया गया है, जबकि दूसरा अधिकार कल्याणकारी राज्य के लिए एक संप्रभु राज्य के भीतर लोगों के सामूहिक शांतिपूर्ण अस्तित्व के लिए कर्तव्य का एक अनिवार्य पहलू है।

9. बदली हुई परिस्थितियों में यह न्यायालय जमानत पर नए सिरे से विचार करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय में वापस भेज देता, लेकिन कानूनी प्रावधानों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, एनआईए अधिनियम के तहत अंतिम आदेश होने के कारण प्रश्नगत आदेश केवल इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के अधीन है, क्योंकि समीक्षा/पुनर्विचार करने की शक्ति विचारण न्यायालय को प्रदान नहीं की गई है। इसलिए, धारा 362 दं०प्र०सं० के समान प्रतिबंध समीक्षा करने के लिए सक्षम प्रावधान की कमी के कारण काम करता है। सामान्य परिस्थितियों में, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 या इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के तहत उपचार का सहारा लेने को हतोत्साहित किया जाता है, क्योंकि अपीलीय उपचार की उपलब्धता है, जैसा कि ऊपर उल्लिखित इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय में अच्छी तरह से चर्चा की गई है। पूर्ण पीठ के निर्णय में प्रश्न बी का उत्तर इस बात को स्पष्ट करता है तथा इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"बी. क्या संशोधन अधिनियम की धारा 14-ए में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के प्रावधानों के तहत एक याचिका या दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'दं०प्र०सं) की धारा 397 के तहत एक पुनरीक्षण या धारा 482 दं०प्र०सं के तहत एक याचिका, बनाए रखने योग्य है। या दूसरे शब्दों में, क्या संशोधन अधिनियम की धारा 14-ए के आधार पर, संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च

न्यायालय की शक्तियां या इसकी पुनरीक्षण शक्तियां या धारा 482 दं०प्र०सं० के तहत शक्तियां समाप्त हो जाएंगी?"

आरंभ में, प्रश्न के प्रथम भाग के लिए हमारा उत्तर नकारात्मक है। दूसरे शब्दों में, जहां संशोधन अधिनियम की धारा 14ए की उपधारा (1) और/या उपधारा (2) के अंतर्गत कोई अपील किसी ऐसे निर्णय, सजा या आदेश के विरुद्ध पोषणीय है, जो प्रकृति में अन्तरवर्ती नहीं है, वहां भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के प्रावधानों के अंतर्गत याचिका या धारा 397 दं०प्र०सं० के अंतर्गत पुनरीक्षण या धारा 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत याचिका पोषणीय नहीं होगी। हम पहले प्रश्न पर अपनी राय को ध्यान में रखते हुए विचार कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, हम इस प्रश्न पर इस बात को ध्यान में रखते हुए विचार करते हैं कि यदि न्यायालय को यह संतुष्टि हो जाती है कि अपीलकर्ता के पास उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था, तो इस न्यायालय की अपील पर विचार करने की शक्तियां बरकरार रखी गई हैं।

इसके अलावा, इस न्यायालय के पास धारा 439/438 दं०प्र०सं० की तरह एनआईए अधिनियम के तहत जमानत देने के लिए समवर्ती क्षेत्राधिकार का अभाव है और यह शक्ति इस न्यायालय को अकेले अपीलीय क्षेत्राधिकार के माध्यम से प्रदान की जाती है। इस प्रकार, 90 दिनों की सीमा का प्रतिबंध वस्तुतः एक पीड़ित व्यक्ति को उपचारहीन बना देता है, जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत अधिकारों के मामले में हल्के में नहीं तौला जा सकता है। प्रक्रिया के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत अधिकार से वंचित करना कानून का उद्देश्य नहीं है और सामान्य परिस्थितियों में, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को तर्कहीन रूप से उस पीड़ित के लिए भी नहीं रोका जा सकता है जो अकर्मण्य लगता है। इस संबंध में न्यायालय **1956 एससी 367 एआईआर (मेसर्स मेला राम एंड संस बनाम आयकर आयुक्त, पंजाब)** में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर ध्यान देना चाहेगा।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए निर्णय **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम के.ए. नजीब (2021)3 एससीसी 713,** के मामले में रिपोर्ट किया गया, प्रस्तर 17 को उद्धृत करना लाभदायक होगा जो कि तत्काल संदर्भ के लिए निम्नानुसार है:-

17. इस प्रकार यह हमारे लिए स्पष्ट है कि यूएपीए की धारा 43-डी (5) जैसे वैधानिक प्रतिबंधों की उपस्थिति संविधान के भाग III के उल्लंघन के आधार पर जमानत देने की संवैधानिक न्यायालयों की क्षमता को समाप्त नहीं करती है। वास्तव में, एक क़ानून के तहत प्रतिबंधों

के साथ-साथ संवैधानिक क्षेत्राधिकार के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्तियों को अच्छी तरह से सुसंगत बनाया जा सकता है। जबकि कार्यवाही शुरू होने पर, न्यायालयों से जमानत देने के खिलाफ विधायी नीति की सराहना करने की उम्मीद की जाती है, लेकिन ऐसे प्रावधानों की कठोरता तब कम हो जाएगी जब उचित समय के भीतर मुकदमा पूरा होने की कोई संभावना नहीं है और पहले से ही कैद की अवधि निर्धारित सजा के एक बड़े हिस्से से अधिक हो गई है। ऐसा दृष्टिकोण यूएपीए की धारा 43-डी(5) जैसे प्रावधानों को जमानत से इनकार करने या शीघ्र सुनवाई के संवैधानिक अधिकार के समग्र उल्लंघन के लिए एकमात्र मात्रिक के रूप में इस्तेमाल किए जाने की संभावना के खिलाफ सुरक्षा करेगा"।

वर्तमान मामले में स्थिति कुछ हद तक समान है। एनआईए अधिनियम की धारा 21(5) में संलग्न दूसरे प्रावधान के तहत निर्धारित प्रक्रिया के दायरे में अपील करने के अधिकार को हराना, भले ही यह समझा जाए कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत उपलब्ध उपाय यानी किसी फैसले या आदेश के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के कारण पीड़ित पक्ष को पूरी तरह से उपचारहीन नहीं बनाता है। हालांकि, यदि माननीय सर्वोच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत संरक्षित जीवित अधिकारों के न्यायनिर्णयन में जा सकता है, **के.ए. नजीब केस (उपरोक्त)**, में कहा गया है कि वैधानिक प्रतिबंध की उपस्थिति संविधान के भाग III के उल्लंघन के आधार पर जमानत देने की संवैधानिक न्यायालयों की क्षमता को समाप्त नहीं करती है।

11. यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकता कि सीमा से संबंधित कानून प्रक्रियात्मक प्रकृति का है, जबकि अपील के अधिकार से संबंधित कानून, भले ही उपचारात्मक हो, प्रकृति में मौलिक है। एनआईए अधिनियम, 2008 की धारा 21 नीचे पुन: प्रस्तुत की गई है:-

***21 अपील** - (1) संहिता में निहित किसी भी बात के बावजूद, विशेष न्यायालय के किसी भी निर्णय, सजा या आदेश से, जो अंतरिम आदेश नहीं है, तथ्यों और कानून दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।*

(2) उप-धारा (1) के तहत प्रत्येक अपील उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुनी जाएगी और जहां तक संभव हो, अपील की स्वीकृति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर निपटाई जाएगी।

(3) पूर्वोक्त के अलावा, विशेष न्यायालय के अंतरिम आदेश सहित किसी भी निर्णय, सजा या आदेश से किसी भी न्यायालय में कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं किया जाएगा।

(4) संहिता की धारा 378 की उपधारा (3) में निहित किसी बात के होते हुए भी, जमानत देने या न देने वाले विशेष न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

(5) इस धारा के अंतर्गत प्रत्येक अपील, अपील किए गए निर्णय, सजा या आदेश की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर की जाएगी: बशर्ते कि उच्च न्यायालय तीस दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद अपील पर विचार कर सकता है, यदि वह संतुष्ट हो कि अपीलकर्ता के पास तीस दिनों की अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था: आगे यह भी प्रावधान है कि नब्बे दिनों की अवधि की समाप्ति के बाद कोई अपील पर विचार नहीं किया जाएगा।

एनआईए अधिनियम, 2008 की धारा 21(1) के आधार पर एक उपाय के रूप में अपील इस न्यायालय को तथ्य और कानून के प्रश्नों के दोनों मुद्दों पर विचार करने में सक्षम बनाती है। इसके अलावा, एनआईए अधिनियम, 2008 में अपीलों के दाखिले की तिथि से तीन महीने के भीतर निपटान का प्रावधान करते समय शीघ्रता का विशेष ध्यान रखा गया है, इसलिए, कानून के उद्देश्य और सीमा अवधि की आड़ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को पराजित करने की विधायिका की मंशा कानून के शासन का सार और भावना नहीं हो सकती है और विधायिका आमतौर पर इस आधार पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की पवित्रता को पराजित करने का इरादा नहीं रखती है। किसी भी परिस्थिति में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के मामले में कानून की प्रक्रिया को, चाहे जिस भी रूप में उपचार प्रदान किया गया हो, चुप नहीं कराया जा सकता है और इस तरह यह निष्पक्ष प्रक्रिया सहित भारत के संविधान की मूल संरचना का एक अभिन्न अंग है। किसी वैधानिक प्रावधान को चुनौती देने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कोई भी वैधानिक प्रतिबंध भारत के संविधान के भाग-III के अधिदेश के अधीन है और इसके किसी भी भाग को विशेष रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की पवित्रता और सार को अवहेलना करने के लिए नहीं पढ़ा जा सकता है।

12. इसके अलावा, यह भी ध्यान देने योग्य है कि एनआईए अधिनियम, 2008 की धारा 21(2) उच्च न्यायालय को उप-धारा (1) के तहत दायर 'प्रत्येक' अपील पर निर्णय लेने का आदेश देती है, जबकि उप-धारा (5) से जुड़ा दूसरा प्रावधान उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को 90 दिनों से परे समाप्त कर देता है, इसलिए, दोनों प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण रूप

से पढ़ा जाना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उच्च न्यायालय में लाई गई प्रत्येक अपील का निर्णय केवल योग्यता के आधार पर किया जा सकता है, बशर्ते कि सीमा के प्रावधान को इस न्यायालय की देरी को माफ करने की शक्ति को समाप्त करने के लिए नहीं समझा जाए। प्रावधान की कोई अन्य व्याख्या न केवल हमारे संविधान के भाग III के तहत गारंटीकृत अधिकारों का उल्लंघन करेगी, बल्कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के साथ भी विसंगत होगी, जो हमारे संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत निष्पक्ष प्रक्रिया की धारणा के केंद्र में है।

13. परिणामस्वरूप, हमें यह अभिलेख में दर्ज करने में कोई संकोच नहीं है कि हमारे दिनांक 04.04.2023 के आदेश में राज्य द्वारा उठाई गई आपत्ति को अस्वीकार करना प्रावधान का निष्पक्ष और सामंजस्यपूर्ण वाचन मात्र है। **जम्मू और कश्मीर के उच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रीय जांच एजेंसी में अपने मुख्य जांच अधिकारी, जम्मू बनाम तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश जिला न्यायालय जम्मू** के मामले में प्रस्तुत और सुदृढ़ किया गया तर्क भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के उद्देश्य और पवित्रता को आगे बढ़ाता है और नागरिकों के लिए कानून और व्यवस्था को सुरक्षित करने के राज्य के हित के साथ नागरिक के व्यक्तिगत अधिकार के बीच सामंजस्यपूर्ण रूप से संतुलित है।

14. मामले के किसी भी दृष्टिकोण से, सर्वोच्च न्यायालय **राज्य (एनआईए) बनाम फरहान शेख** के मामले में इस मुद्दे पर विचार कर रहा है और जल्द ही परस्पर विरोधी राय को हल करेगा और इस मुद्दे पर कानून को तय करेगा।

15. जब तक भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई आधिकारिक राय नहीं सुनाई जाती, तब तक हमारे विचार से इस न्यायालय द्वारा दिनांक 04.04.2023 को पारित आदेश अच्छा कानून है। तदनुसार, विलम्ब क्षमा हेतु आवेदन स्वीकार किया जाता है। अपील पंजीकृत की जाए तथा उसे नियमित संख्या दी जाए।

16. स्वीकार करें।

17. आपत्ति दो सप्ताह के भीतर दाखिल की जाए।

(2023) 5 ILRA 459

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 234/1981

और

शासकीय अपील संख्या 748/1981

और

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 261/1981

राम रतन एवं अन्य ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एस. वी. गोष्वामी, श्री ए.एम. त्रिपाठी, श्री राजीव गोस्वामी, श्री सुधीर कुमार कुलश्रेष्ठा, श्री सुरेश चंद्र त्रिपाठी
अधिवक्ता प्रतिवादी: डी.जी.ए.

ए. आपराधिक विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 148 302/149- दोषसिद्धि - चुनौती- मृतक की शव परीक्षा रिपोर्ट जिसमें मृतक के शरीर पर छेद किए गए घावों के साथ-साथ खरोंच और खरोंच पाए गए हैं, डॉक्टर पी.डब्लू.3 ने राय दी है कि मृतक को लगी चोटें संभवतः कुदाल और भाले के इस्तेमाल से आई हैं, इसलिए, आरोपी द्वारा ले जाए जा रहे हथियार का इस्तेमाल अपराध कारित करने में किया गया था, इसलिए, पी.डब्लू.1 के चिकित्सकीय साक्ष्य-बयान द्वारा प्रत्यक्षदर्शी कथन का पूर्ण समर्थन किया गया है कि वादी पक्ष और आरोपी के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी, लेकिन फिर भी, यह माना गया है कि प्रत्यक्षदर्शी कथन के आधार पर आपराधिक मामले में दुश्मनी या मकसद का कोई महत्व नहीं है और वर्तमान मामले में सह-आरोपी के खिलाफ बोलने वाले और अपराध में उसकी भागीदारी की पुष्टि करने वाले प्रत्यक्षदर्शी कथन की चिकित्सकीय साक्ष्य-चश्मदीद गवाहों के बयान द्वारा पूरी तरह से पुष्टि की गई है। जहां तक अपराध में दोषमुक्त अभियुक्तों की गैर-भागीदारी का सवाल है, सह-अभियुक्तों को छोड़कर यह सही पाया गया है, लेकिन भारत में "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्नीबस" की कहावत के लागू न होने के अनुसार, हम यह भी नहीं कह सकते कि गवाह विश्वसनीय नहीं हैं - यह एक सामान्य कानून है कि चिकित्सकीय साक्ष्य की तुलना में प्रत्यक्ष साक्ष्य को प्राथमिकता दी जा सकती है और यदि तथ्य के गवाह विश्वसनीय हैं तो उनके साक्ष्य को खारिज नहीं किया जाना चाहिए-अपीलकर्ता की अपील के लंबित रहने के दौरान उनकी मृत्यु हो गई तथा उनके विरुद्ध अपील निरस्त कर दी गई। (पैरा 1 से 101)

बी. किसी विशेष महत्वपूर्ण गवाह या महत्वपूर्ण विवरण का झूठा होना उसे शुरू से अंत तक बर्बाद नहीं करेगा। भारत में "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्नीबस" कहावत लागू नहीं होती और गवाहों को झूठा नहीं कहा जा सकता। "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्नीबस" कहावत को आम स्वीकृति नहीं मिली है और न ही यह कहावत कानून के शासन का दर्जा हासिल कर पाई है। यह केवल सावधानी का नियम है। इसका मतलब यह है कि ऐसे मामलों में गवाही को अनदेखा किया जा सकता है, न कि इसे अनदेखा किया जाना चाहिए। सिद्धांत में केवल साक्ष्य के वजन का सवाल शामिल है जिसे अदालत किसी निश्चित परिस्थिति में लागू कर सकती है, लेकिन इसे "साक्ष्य का अनिवार्य नियम" नहीं कहा जा सकता। यह सिद्धांत विशेष रूप से भारत में खतरनाक है क्योंकि अगर गवाही के पूरे हिस्से को खारिज कर दिया जाए, क्योंकि कोई गवाह स्पष्ट रूप से किसी पहलू में झूठ बोल रहा था, तो यह डर है कि आपराधिक न्याय का प्रशासन ठप हो जाएगा। गवाह किसी कहानी को उभारने में मदद नहीं कर सकते, चाहे वह मुख्य रूप से सच ही क्यों न हो। इसलिए, प्रत्येक मामले में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि साक्ष्य किस हद तक स्वीकार्य है, और केवल इसलिए कि कुछ मामलों में

अदालत इसे गवाह की गवाही पर भरोसा करने के लिए अपर्याप्त मानती है, यह जरूरी नहीं है कि कानून के मामले में इसे सभी मामलों में नजरअंदाज किया जाना चाहिए। साक्ष्य को सावधानी से छानना होगा। उपर्युक्त कथन एक ठोस नियम नहीं है क्योंकि शायद ही कोई ऐसा गवाह मिले जिसके साक्ष्य में झूठ या किसी भी तरह की अतिशयोक्ति, कढ़ाई-अलंकरण का एक दाना न हो। (पैरा 98) दर या

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बिकाऊ पांडे बनाम बिहार राज्य (2003) 12 सी सी 616
2. अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एससीसी 318
3. दीपक वर्मा बनाम एच.पी. राज्य (2011) 10 एससीसी 129
4. सुचा सिंह बनाम पंजाब राज्य (2003) 7 सी सी 643
5. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) 10 सी सी 537
6. सुरिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य (2020) 2 सी सी 563
7. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य (2008) 12 एससीसी 173
8. मुकेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2017) 6 एससीसी 1
9. नानकौनू बनाम यूपी राज्य (2016) 3 एससीसी 317
10. राज्य द्वारा पुलिस इंस्पेक्टर बनाम लाली @ मणिकंदन और अन्य (2022) एससीसी ऑन लाइन एससी 142, सीआरएलए नंबर 1750-1751 / 2022
11. मुन्ना लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के साथ शिव लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 80, सीआरएलए नंबर 490 / 2017
12. सुसांता दास बनाम उड़ीसा राज्य (2016) 4 एससीसी 371
13. कर्नाटक राज्य बनाम के. गोपालकृष्ण (2005) 9 एससीसी 291
14. सुदर्शन कुमार बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2014) 15 सी सी 666
15. दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2015) 1 सी सी 737
16. गंगाधर बेहेरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य (2002) 8 एससीसी 381

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. ये अपीलें और आपराधिक पुनरीक्षण दोनों सत्र विचारण संख्या 309 वर्ष 1978 में दिनांक 13.01.1981 के एक सामान्य आक्षेपित निर्णय और आदेश से उत्पन्न होते हैं, जिसमें 6 वें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर ने आरोपी व्यक्तियों राम रतन, घनश्याम, अर्जुन, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण को धारा 148, 302/149 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और उन्हें धारा 148 भन्द०वि० के तहत दो साल की कैद की सजा सुनाई और उन्हें धारा 302, 149 भ०द०वि० के

तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई तथा धारा 307/149, 323/149, 324/149 भ०द०वि० के तहत आरोपों से बरी कर दिया और आगे अन्य आरोपी व्यक्तियों नरबदेश्वर, दुर्योधन, बालगोविंद, रघुनाथ @ भूरारी को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया।

2. आपराधिक अपील संख्या 234 वर्ष 1981 को दोषी अभियुक्तों राम रतन, घनश्याम, अर्जुन, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण द्वारा उनकी दोषसिद्धि के खिलाफ दायर की गई है जबकि सरकारी अपील संख्या 748 वर्ष 1981 को जिसमें प्रतिवादी संख्या 1. राम रतन, 2- घनश्याम 3. दुर्योधन 4. नरबदेशवर 5. अर्जुन 6. विश्राम 7. दयाराम उर्फ शुभ करण 8. बालगोविंद 9. रघुनाथ उर्फ भोरई के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 307, 302, 323, 324 भ०द०वि० के तहत मामला दर्ज किया गया, के बरी होने के खिलाफ राज्य द्वारा दायर की गई है। हालांकि, अपील के लंबित रहने के दौरान दोषी ठहराए गए अपीलकर्ताओं राम रतन, घनश्याम और विश्राम की मृत्यु हो गई, जिससे द०प्र०स० अपील संख्या 234 वर्ष 1981 को समाप्त कर दिया गया और उसी तरह सरकारी अपील संख्या 748 वर्ष 1981 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 261 वर्ष 1981 को भी उपरोक्त तीन प्रतिवादी विरोधी पक्षों के संबंध में समाप्त कर दिया गया। अब, जीवित अपीलकर्ताओं अर्जुन और दयाराम के खिलाफ यह अपील न्याय निर्णय के लिए है। आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 261 वर्ष 1981 को शिकायतकर्ता द्वारा चार अभियुक्त व्यक्तियों 1- दुर्योधन 3. रघुनाथ उर्फ भोरई 4. बालगोविंद को बरी किए जाने के खिलाफ दायर की गई है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य नीचे दिए गए हैं:

आरोपी राम रतन, घनश्याम, अर्जुन, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण, नरबदेश्वर, दुर्योधन, बालगोविंद, रघुनाथ उर्फ भोराई के खिलाफ शिकायतकर्ता शंभू सरन मिश्रा के भाई मृतक त्र्यंबक प्रसाद मिश्रा के खिलाफ कुछ भूमि विवाद को लेकर रंजिश थी। दिनांक 9.4.1978 को सभी अभियुक्तव्यक्तियों ने शाम को मृतक के साथ दुर्व्यवहार किया और उसे धमकी दी। 10.4.1978 को त्र्यंबक प्रसाद गांव के शिव मंदिर में पूजा करने गए थे और जब वह सुबह 6.00 या 6.30 बजे मंदिर से बाहर निकले, तो सभी नौ आरोपी कुदाल, लाठी और भाले से लैस होकर त्र्यंबक प्रसाद को घेर लिया, जो वहां से भागते हुए चिल्लाए। उसकी चीख सुनकर शिकायतकर्ता शंभू सरन मिश्रा और आरोपी राम कुमार, राम प्यारे, बारी, नरबदेश्वर, शिवधर शुक्ला और शंभू सरन के भाई रणनाथ @ विजय मौके पर पहुंचे। आरोपी विश्राम ने अन्य आरोपियों को त्र्यंबक प्रसाद को खत्म करने के लिए उकसाया और फिर आरोपी विश्राम, दया राम @ शुभ करण, राम रतन और अर्जुन को कुदाल के साथ, बालगोविंद और घनश्याम को भाले के साथ और लाठियों से लैस शेष

आरोपियों ने राम कुमार के खलीहान में त्र्यंबक प्रसाद पर हमला किया, जो नीचे गिर गया, लेकिन फिर भी आरोपी व्यक्तियों ने अपना हिंसक हमला जारी रखा। त्र्यंबक प्रसाद को लगी चोटों के कारण उसकी मौके पर ही मौत हो गई। जब रामनाथ @ विजय ने उसे बचाने की कोशिश की, तो उसे भी आरोपी व्यक्तियों द्वारा पीटा गया और जब ग्रामीण आए, तो आरोपी व्यक्ति भाग गए। गोरखपुर के खजनी पुलिस स्टेशन में शिकायतकर्ता शंभू सरन मिश्रा द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर उसी दिन सुबह 10.00 बजे प्राथमिकी दर्ज की गई थी। जांच शुरू हुई और मृतक की जांच रिपोर्ट और शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार की गई।

4. मृतक का पोस्टमार्टम डॉ. के. एम. सिंह द्वारा किया गया था, जिन्होंने मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटों को पायाः

(i) गर्दन के दाहिनी और निचली ओर हड्डी की गहराई तक 7"x 5-1/2" का कटा हुआ घाव और नरम उतक और वाहिकाएं कटी हुई है। दूसरा ग्रीवा कशेरुक का कटा घाव आर-पार था। दाई ठोड़ी के निचले हिस्से तक 2 लम्बाई तक था।

(ii) कटा हुआ घाव 0.6"x 1-1/2" x तीसरे ग्रीवा कशेरुक तक गहरे घाव में जिसकी पूंछ 1-1/2 नीचे ओर दाई ओर कंठ तक थी।

(iii) कटा हुआ घाव 11"x 2-1/2" हड्डी की गहराई तक, दाहिनी हयूमरस हड्डी का सिरा कटा हुआ, ऊपरी कंधे के जोड़ से गर्दन के किनारे दाई ओर तक आर-पार फैला हुआ है।

(iv) कटा हुआ घाव 4"x 2-1/2" x हड्डी की गहराई, दाहिने कंधे के जोड़ के सामने दायी हुंसली की हड्डी के ऊपरी भाग के बाहरी 1/3 हिस्से है।

(v) कटा हुआ घाव 7"x 2" x हड्डी की गहराइ तक, दाहिने कान के कोण कटे हुए। घाव की लम्बाई 01" से दाएं कान के लोब्यूल के नीचे 2" तक है।

(vi) कटा हुआ घाव 4-1/2"x 1-1/2" हड्डी की गहराई तक, दाहिनी मैक्सिला नरम ऊतकों और वाहिकाओं के आर-पार कटी हुई।

(vii) कटा हुआ घाव 8"x 1" x कार्नियल x कैविटी की गहराई तक, दाहिने कान के दाहिने ऊपरी भाग के ठीक ऊपर कटी हुई गहरी दाहिनी ललाट हड्डी। 1-1/2" से ऊपर 1" तक और दाई भौं की पार्श्व कि मार्जिन मस्तिष्क पदार्थ तक कटा घाव 1-1/2" तक कटा घाव है।

(viii) कटा हुआ घाव 5"x 1" x मस्तिष्क की गहराई तक ललाट की हड्डी पर, निचले किनारे दाहिने कान के दाहिने ऊपरी भाग के 2" नीचे है।

(ix) कटा हुआ घाव 4"x 1-1/2" x मांसपेशी की गहराई तक, मध्य में और सिर का ऊपरी भाग, नासिका दण्ड के 4" ऊपर।

(x) दाहिनी कोहनी के जोड़ के निचले एक

तिहाई भाग के पार्श्व और बाह्य पहलू पर 1"x 1/2"x 2" छिद्रित घाव। छिद्रित घाव 2 "x 1" x 4-1/2" को मध्यम और ऊपर की ओर है।

(xii) खरोंच 2-1/2 x 1/4" लंबा, बाई ओर का आंतरिक स्वरुप अग्र भुजा का मध्य भाग बायीं कलाई के जोड़ से 4" ऊपर है।

(xiii) बाएं सामने के मध्य की त्वचा पर खरोंच 2 "x 1/2"।

डॉक्टर ने यह भी कहा कि मौत पोस्टमार्टम से डेढ दिन पहले पोस्टमार्टम चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी और संभवतः कुदाल और भाले के उपयोग के कारण हुई थी। यह मृत्यु 10-04-1978 को सुबह 6.30 बजे होने की संभावना थी।

5. घायल रामनाथ @ विजय की भी 10.04.1978 को डॉ. सी.वी. प्रसाद द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई थी, जिन्होंने उनके शरीर पर निम्नलिखित चोर्टा को पाया था।

(i) सिर के दाई ओर 8 सेमी x 1 सेमी x हड्डी की गहराई तक, दाई आंख भौंह से 10 सेमी ऊपर तक कटा घाव है। खून बह रहा है।

(ii) सिर के दाई ओर 4 सेमी x 1/2 सेमी x खोपड़ी पर फटा हुआ घाव जो चोट संख्या 1 से 2 सेमी ऊपर तक कटा घाव है। खून बह रहा है।

(iii) नाक की जड़ के जंक्शन पर दो आंखों की भौंहों के साथ घाव जब 1 सेमी x 1/2 सेमी त्वचा त्वचा तक गहरी हो। खून बह रहा है।

(iv) बाएं ऊपरी हाथ के पीछे पंचर घाव 1 सेमी x 1/2 सेमी x 1 1/2 सेमी गहरा बाई कोहनी के जोड़ की प्रमुखता से 7 सेमी ऊपर कटा घाव है। खून बह रहा है।

(v) बाएं पैर के सामने का घाव 1 1/2 सेमी x 1/2 सेमी x टिबियल ट्यूबरोसिटी से 12 सेमी नीचे गहरी त्वचा तक है। खून बह रहा है।

(vi) दाहिने पैर के सामने 2 सेमी x 1/2 सेमी और टिबियल ट्यूवरोसिटी से 9 सेमी नीचे की त्वचा पर घाव गहरा है। खून बह रहा है।

(vii) दाएं पैर के सामने 2 सेमी x 1/2 सेमी हड्डी का पंचर घाव चोट संख्या 6 से 9 सेमी नीचे रखा गया है। खून बह रहा है।

चोटें साधारण थीं, जो तेज, कुंद और नुकीले हथियारों के कारण हुई थीं और चोट नंबर 4 को एक्स रे की सलाह दी गई थी। हालांकि, कोई एक्स रे रिपोर्ट रिकॉर्ड में नहीं है।

6. जांच अधिकारी ने जांच की सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद सभी नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

7. यह मामला, विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य होने के कारण, संबंधित

मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंपा गया था।

8. आरोपी व्यक्ति अदालत के समक्ष पेश हुए, आरोपी विश्राम, दयाराम @ शुभ करण, राम रतन, अर्जुन, बालगोविंद, घनश्याम के खिलाफ 14.9.1978 को धारा 148 भ०द०वि० के तहत, नरबदेश्वर, दुर्योधन, रघुनाथ उर्फ भोराई के खिलाफ धारा 147 भ०८०वि० के तहत और धारा 302/149, 324/149, 324/149, 323/149, 323/149 के तहत अभियुक्त राम रतन, घनश्याम, अर्जुन, नरबदेश्वर, दुर्योधन, बालगोविन्द, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण, रघुनाथ उर्फ भोराई के खिलाफ आरोप तय किए गए और बाद में धारा 307/149 के तहत अतिरिक्त आरोप भी तय किए गए थे।

9. मौखिक साक्ष्य में आरोपियों को कानून के दायरे में लाने के लिए 14 गवाहों से पूछताछ की गई है, जो इस प्रकार हैं:

1.	शंभू सरन मिश्रा, प्रत्यक्षदर्शी	अ०सा०- 1
2.	राम कुमार, चश्मदीद गवाह	अ०सा०- 2
3.	डॉ. के. एम. सिंह ने शव परीक्षण किया	अ०सा०- 3
4.	हेड कांस्टेबल जंग बहादुर यादव प्राथमिकी के लेखक	अ०सा०- 4
5.	नरबदेश्वर, प्रत्यक्षदर्शी	अ०सा०- 5
6.	आपराधिक साजिश के गवाह कृपा शंकर दुबे	अ०सा०- 6
7.	विजय @ राम नाथ, प्रत्यक्षदर्शी/ चोटिल	अ०सा०- 7
8.	हेड कांस्टेबल हृदयनाथ तिवारी मोहर्रिर मालखाना	अ०सा०- 8
9.	मोती लाल सिंह, एमएल रजिस्टर के गवाह	अ०सा०- 9
10.	डॉ पुरषोतम, औपचारिक गवाह	अ०सा०- 10
11.	कुंवर रामदुलार सिंह औपचारिक गवाह	अ०सा०- 11
12.	रमाकांत यादव, औपचारिक गवाह	अ०सा०- 12
13.	डॉ. सी.बी. प्रसाद, चोट रिपोर्ट के गवाह	अ०सा०- 13
14.	एस.ओ. दिनेश राय- आई.ओ.	अ०सा०- 14

10. मौखिक साक्ष्य का समर्थन करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य दायर किए गए हैं:

1.	चिकित्सा पर्ची	प्रदर्श क-1
2.	चिकित्सा पर्ची	प्रदर्श क-2
3.	चिकित्सा पर्ची	प्रदर्श क-3
4.	लिखित तहरीर	प्रदर्श क-4
5.	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-5
6.	एफ.आई.आर.	प्रदर्श क-6
7.	जी.डी.	प्रदर्श क-7
8.	चोट की रिपोर्ट	प्रदर्श क-8
8.1	पंचायतनामा (रिपोर्ट)	प्रदर्श क-8/1
9.	चालान नाश	प्रदर्श क-9
10.	फोटो नाश	प्रदर्श क-10
11.	रिपोर्ट चिकित्सा अधिकारी	प्रदर्श क-11
12.	रिपोर्ट (सीएमओ)	प्रदर्श क-12
13.	नक्शा नज़री/नक्शा नज़री	प्रदर्श क-13
14.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-14
15.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-15
16.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-16
17.	अनुलग्नक का ज्ञापन/मेमो	प्रदर्श क-17
18.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-18
19.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-19
20.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-20
21.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-21
22.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-22

सत्यमेव जयते

23.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-23
24.	मृत पशु के संबंध में रसीद	प्रदर्श क-24
25.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-25
26.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-26
27.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-27
28.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-28
29.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-29
30.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-30
31.	प्रक्रिया	प्रदर्श क-31
32.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-32
33.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-33
34.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-34
35.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-35
36.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-36
37.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-37
38.	अनुलग्नक का ज्ञापन/मेमो	प्रदर्श क-38
39.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-39
40.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-40
41.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-41
42.	एनबीडब्लू	प्रदर्श क-42
43.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-43
44.	धारा 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया	प्रदर्श क-44
45.	अनुलग्नक का ज्ञापन/मेमो	प्रदर्श क-45
46.	आरोप पत्र	प्रदर्श क-46
47.	एफ०एस०एल० रिपोर्ट	प्रदर्श क-47
48.	इच्छा/विल	प्रदर्श क-48
49.	उप निबंधक तहसील सदर गोरखपुर को पत्र	प्रदर्श क-49
50.	कलेक्टर गोरखपुर को पत्र	प्रदर्श क-50
51.	चकबन्दी अधिकारी के समक्ष लिखित बयान	प्रदर्श क-51
52.	आदेश पत्रक की प्रति	प्रदर्श क-52
53.	आदेश पत्रक/आर्डर शीट की प्रति	प्रदर्श क-53
54.	रिपोर्ट अंतर्गत धारा 151, 107, 116 द०प्र०स०	प्रदर्श क-54
55.	सी0ओ0 द्वितीय, सहजनवा () गोरखपुर के निर्णय की प्रति	प्रदर्श क-55
56.	सी०ओ० कोर्ट खजनी के फैसले/निर्णय की प्रति	प्रदर्श क-56
57.	ए०एस०ओ० (समेकन) कोर्ट के निर्णय की प्रति	प्रदर्श क-57

11. अभियोजन पक्ष ने सामग्री प्रदर्श को भी निम्नानुसार संदर्भित किया है:

1	सामग्री प्रदर्श-1	लुंगी
2	सामग्री प्रदर्श-2	बंदी
3	सामग्री प्रदर्श-3	जनेऊ
4	सामग्री प्रदर्श-4	रक्त से सनी मिट्टी का बंडल
5	सामग्री प्रदर्श-5	सादी मिट्टी का बंडल

12. आरोपी व्यक्तियों ने द०प्र०स० की धारा 313 के तहत अपने बयान में, उनके खिलाफ आपतिजनक परिस्थितियों और सबूतों को डालते हुए, उनके खिलाफ दर्ज सभी सबूतों को झूठा बताते हुए, दुश्मनी के कारण झूठे निहितार्थ का दावा किया है। हालांकि, आरोपी व्यक्तियों द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य नहीं दिया गया है।

13. बचाव पक्ष का समर्थन करने के लिए, निम्नलिखित दस्तावेजी सबूतों पर भरोसा किया गया है:

1	एस.टी. संख्या 27/1962 में फैसले की कॉपी	अ०सा०-1
2	एस.टी. संख्या 107/1065 में फैसले की कॉपी	अ०सा०-2

अनुवादित

3	भाणेश्वर शुक्ला द्वारा शिव धर एवं अन्य के विरुद्ध शिकायत दिनांक 24.3.1975 की प्रमाणित प्रति	अ०सा०-3
4	गवाह राम गुलाम के दिनांक 9.7.1968 के बयान की प्रति	अ०सा०-4
5	गवाह राम रतन के दिनांक 2.5.1968 के बयान की प्रति	अ०सा०-5
6	डी०डी०सी० गोरखपुर द्वारा दिनांक 18.1.1971 को पारित आदेश की प्रति	अ०सा०-6
7	गवाह कृपा शंकर दुबे के दिनांक 9.7.1968 के बयान की प्रति	अ०सा०-7
8	श्रीमती कौल द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख दिनांक 23.12.1971 की प्रति।	अ०सा०-8

14. अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-5 और अ०सा०-7 तथ्य के गवाह हैं।

15. अ०सा०-1 मामले के चश्मदीद गवाह और शिकायतकर्ता शंभू सरन मिश्रा ने अपने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष की कहानी सुनाई है और बयान दिया है कि मृतक त्रयंबक मिश्रा, उसका सगा बड़ा भाई, कविराज आत्माराम दुबे, वैद्य से दवा लेता था, क्योंकि उसे पाचन संबंधी कुछ समस्या थी। उपरोक्त वैद्य द्वारा लिखे गए नुस्खे अन्सा०-1 द्वारा प्रदर्श क.ए-1, प्रदर्श क.ए-2 और प्रदर्श क-3 द्वारा सिद्ध किए गए हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि स्वर्गीय भागवत पांडे, जो शिकायतकर्ता पक्ष के दूरस्थ रिश्तेदार थे और एक विशाल भूमि और घर के मालिक थे, ने मृतक के पक्ष में अपनी पूरी संपति के संबंध में 5.7.1977 को एक पंजीकृत वसीयत निष्पादित की थी। आरोपी व्यक्ति इस पर खुश नहीं थे और उन्होंने मृतक के साथ दुश्मनी महसूस की और यहां तक कि म्यूटेशन कार्यवाही में, उन्होंने अदालत के समक्ष अपनी आपति दर्ज की। उन्होंने भागवत पांडे के घर पर जबरन कब्जा करने का भी प्रयास किया था और दोनों पक्षों के बीच विवाद हुआ और पुलिस द्वारा धारा 151 और 107 द०प्र०स० के तहत कार्रवाई शुरू की गई। इसके अलावा, दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी और द्वेष के इतिहास को स्थापित करने के लिए इस गवाह द्वारा घटनाओं की एक श्रृंखला सुनाई गई है।

16. घटना का वर्णन करते हुए अ०सा०-1 में आगे कहा गया है कि 10.04.1978 को सुबह 6.30 बजे यह साक्षी अपने भाई रामनाथ @ विजय के साथ अपने खलिहान में मौजूद था और मृतक खलिहान से 20 कदम की दूरी पर स्थित मंदिर में पूजा कर रहा था। जैसे ही वह मंदिर से बाहर आया, आरोपी राम रतन, घनश्याम, अर्जुन, नरबदेश्वर, दुर्योधन, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण, बालगोविंद और रघुनाथ उर्फ भोराई ने हाथों में कुदाल, लाठी और भाला लेकर उसे मारने के लिए उसका पीछा किया। आरोपी राम रतन, अर्जुन, विश्राम और दयाराम @ शुभ करण कुदाल, बालगोविंद और घनश्याम भाला पकड़े हुए थे और बाकी आरोपी लाठी पकड़े हुए थे। जब मृतक ने भागने की कोशिश की और राम कुमार के खलिहान में पहुंचा, तो सभी आरोपी व्यक्तियों ने उपरोक्त हथियारों से उस पर हमला कर दिया। मृतक खलीहान में फिसल गया लेकिन इसके बावजूद आरोपी व्यक्तियों ने अपना हमला जारी रखा। जब रामनाथ @ विजय ने मृतक को बचाने की कोशिश की, तो आरोपी व्यक्तियों ने उस पर भी उपरोक्त हथियारों से हमला किया और वह गिर गया। कई वार करने के बाद आरोपी विश्राम ने मृतक को जान से

मारने के लिए उकसाते हुए उसके गले पर कुदाल के दो-तीन वार किए और उसकी मौत हो गई। इस घटना को रघुनाथ @ विजय, राम कुमार, नरबदेश्वर, राम प्यारे, शिव धर शुक्ला आदि ने देखा। घायल रामनाथ @ विजय के साथ थाने गए शिकायतकर्ता की लिखित रिपोर्ट पर मामले की सूचना पुलिस को दी गई। घायलों को प्राथमिक उपचार के बाद जिला अस्पताल गोरखपुर भेज दिया गया। अ०सा०-1 ने अपनी लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श क-4 के रूप में साबित किया है। उन्होंने यह भी बताया है कि हत्या की योजना आरोपी राम रतन, विश्राम और बालगोविंद ने घटना से 15 दिन पहले बनाई थी, जिसे ग्रामीणों कृपा शंकर दुबे और शिव शंकर दुबे ने सुना, जिन्होंने मृतक को इसका खुलासा किया। अ०सा०-1 ने यह भी कहा गया है कि घटना से एक दिन पहले, आरोपी व्यक्तियों ने उसके भाई त्र्यंबक को धमकी दी थी और उस पर हमला किया था, हालांकि, इस संबंध में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी।

17. अ०सा०-2 राम कुमार को घटना का चश्मदीद गवाह कहा जाता है। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में अ०सा०-1 के बयान की पुष्टि की है और स्पष्ट किया है कि, घटना के समय, आरोपी व्यक्तियों राम रतन, घनश्याम, दुर्योधन, अर्जुन, नरबदेश्वर, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण. बालगोविंद, रघुनाथ @ भुराई ने मृतक पर लाठी, भाला और कुदाल से हमला किया था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी तात्कालिक मृत्यु हो गई और यह घटना शंभू मिश्रा और रामनाथ @ विजय, नरबदेश्वर दुबे, राम प्यारे द्वारा भी देखी गई थी। उन्होंने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि घटना के दौरान आरोपी व्यक्तियों द्वारा रामनाथ @ विजय पर भी हमला किया गया था।

18. अ०सा०-5 नरबदेश्वर भी घटना के चश्मदीद गवाह हैं, जिन्होंने गवाही दी है कि, घटना के समय, वह अपने खलीहान में मौजूद थे, जो शिव मंदिर से लगभग 60-70 कदम दूर है। उन्होंने राम रतन, विश्राम, अर्जुन, दयाराम @ शुभ करण, बालगोविंद, घनश्याम, धुरयोधन, नरबदेश्वर और रघुनाथ @ भुराई को लाठी, भाला और कुदाल पकड़े हुए और मृतक त्र्यंबक का पीछा करते हुए देखा था, जो राम कुमार के खलिहान की ओर भाग रहा था। राम कुमार के खलिहान में गिरने वाले मृतक को भागने के दौरान आरोपी व्यक्ति जान से मारने की धमकी दे रहे थे। आरोपी विश्राम, राम रतन, अर्जुन और दयाराम @ शुभ करण कुदाल के साथ, बालगोविंद और घनश्याम भाले के साथ और नरबदेश्वर, दुर्योधन और रघुनाथ @ भुराई ने लाठी के साथ त्र्यंबक मिश्रा पर हमला किया और जब उसका भाई रामनाथ @ विजय उसे बचाने आया, तो उसके साथ भी मारपीट की गई। त्रयम्बक को फिर से कई वार किए गए और विश्राम पर गाली देने और चिल्लाने का आरोप लगाया कि वह अभी भी जीवित है, कुदाल से वार किया और उसकी मृत्यु हो गई। इस गवाह ने यह भी कहा कि इस घटना को शंभू सरन, रामनाथ @ विजय, राम प्यारे, शिव धर और गांव के अन्य व्यक्तियों और उनके द्वारा भी देखा गया था।

19. अन्सा०-7 विजय @ रामनाथ घायल गवाह हैं। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में दिए

अनुवादित

गए अ०सा०-5 के संस्करण की पुष्टि की है। उन्होंने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि त्र्यंबक की हत्या आरोपी व्यक्तियों राम रतन, अर्जुन, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण ने कुदाल का उपयोग करके, बालगोविंद और घनश्याम ने भाले का उपयोग करके और नरबदेश्वर, दुर्योधन और रघुनाथ उर्फ ओराई ने 10.04.1978 को सुबह 6.30 बजे लाठी का उपयोग करके की थी। उन्होंने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि जब उन्होंने त्र्यंबक की रक्षा करने की कोशिश की, तो उन्हें दयाराम @ शुभ करण, बालगोविंद और नरबदेश्वर द्वारा लाठी और भाले से भी हमला किया गया था। त्रयंबक की मौके पर ही मौत हो गई और उसे चारपाई पर पुलिस स्टेशन ले जाया गया और बाद में अस्पताल ले जाया गया।

20. अ०सा०-6 कृपा शंकर दुबे आपराधिक साजिश का गवाह है। उन्होंने अदालत के समक्ष गवाही दी है कि 25.3.1978 को ग्राम मंडोरी में अपने चाचा के घर से लौटते समय, वह बुदहट गांव के दक्षिण में स्थित नहर पुल के पास शाम को शौच के लिए बैठे थे। इसी दौरान आरोपी राम रतन, विश्राम और बालगोविंद पुल के ऊपर से आ गए। उन्होंने आगे कहा है कि यह कहानी उनके द्वारा त्र्यंबक को सुनाई गई थी लेकिन उन्होंने भगवान पर अपना भरोसा जताया। अभियोजन पक्ष के बाकी गवाह औपचारिक गवाह हैं।

21. डॉ. के.एम. सिंह ने मृतक त्रयम्बक का शव परीक्षण किया है और शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-5 साबित किया है।

22. अ०सा०-4 एच.सी. जंग बहादुर यादव, प्राथमिकी के लेखक हैं, जिन्होंने चिक प्राथमिकी और पंजीकरण जीडी को प्रदर्श क-6 और प्रदर्श क-7 के रूप में साबित किया है।

23. अ०सा०-४ हृदय नाथ तिवारी, मालखाना प्रभारी हैं, जिन्होंने संबंधित रजिस्टर के आधार पर इस तथ्य को साबित किया है कि इस मामले से संबंधित तीन सीलबंद बंडलों को सदर मालखाना से रासायनिक परीक्षक, सी.एम.ओ कार्यालय, गोरखपुर को जांच के लिए भेजा गया था और 21.10.2018 को जांच के बाद, सीलबंद पैकेट वापस मालखाना में भेज दिए गए थे और रजिस्टर में उनके द्वारा प्रासंगिक प्रविष्टियां की गई थीं।

24. अ०सा०-9 मोती लाल सिंह, जो सी.एम.ओ. कार्यालय, गोरखपुर में क्लर्क हैं, को मेडिको लीगल रजिस्टर के साथ अदालत के समक्ष पेश किया गया है और उपरोक्त रजिस्टर के आधार पर, उन्होंने गवाही दी है कि नमूना 'सी' के साथ सीलबंद बंडल 23.08.1978 को उनके कार्यालय में प्राप्त हुए थे। थाना-खजनी, गोरखपुर, जिन्हें 24.8.1978 को सीलबंद हालत में रासायनिक परीक्षक, आगरा को भेजा गया था।

25. अ०सा०-10 डॉ. पुरुषोतम तिवारी से डॉ. सी. बी. प्रसाद, चिकित्सा अधिकारी पी.एच.सी. खजनी, जिन्होंने 10.04.1978 को घायल रामनाथ विजय की चिकित्सकीय जांच की थी, के लिए द्वितीयक गवाह के रूप में पूछताछ की गई है। उन्होंने मूल चोट रजिस्टर के

आधार पर घायल रामनाथ @ विजय की चोट रिपोर्ट को प्रदर्श क-8 साबित किया है।

26. अ०सा०-11 कुवर राम दुलारे सिंह ने अपने साक्ष्य में कहा है कि 23.8.1978 को गोरखपुर के खजनी पुलिस स्टेशन के रूप में काम करते हुए, उन्होंने पीएस खजनी से सदर मालखाने में नमूना 'सी' के तीन सीलबंद बंडल जमा किए थे और उसी तारीख को मालखाने से सीएमओ के कार्यालय में जमा किए थे।

27. अ.सा.-12 रमाकांत यादव ने सशपथ कहा है कि 10.04.1978 को गोरखपुर के कॉन्स. पीएस खजनी के रूप में काम करते हुए उन्होंने चौकीदार, झिंकू के साथ मिलकर त्रयंबक मिश्रा के शव को सीलबंद हालत में नमूना मुहर के साथ गोरखपुर में डॉक्टर के सामने अंत्यपरीक्षण के लिए प्रस्तुत किया था।

28. अ०सा०-13, डा० सी.वी. प्रसाद से बाद में अभियोजन पक्ष द्वारा पूछताछ की गई, जिन्होंने इस तथ्य को साबित कर दिया है 10.04.1978 को, उन्हें पीएचसी खजनी में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात किया गया था, जहां वह घायल व्यक्तियों की चिकित्सकीय जांच करते थे और मेडिको लीगल रजिस्टर में चोटों को दर्ज करते थे। तथापि, वर्तमान में दिनांक 10-04-1978 का मूल रजिस्टर गायब है। वह खुद उक्त रजिस्टर की जांच करने के लिए पीएचसी खजनी के पास गए थे, लेकिन यह नहीं मिला।

29. अ०सा०-14 एस.ओ. दिनेश राय, मामले के विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने अपने साक्ष्य में जांच की कार्यवाही को साबित किया है। उनके बयान के अनुसार, उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए थे और घटना के स्थान के निरीक्षण के बाद, उनके द्वारा नक्शा नज़री प्रदर्श क-13 तैयार किया गया था। उन्होंने मृतक के शव की जांच भी की और पोस्टमार्टम के लिए प्रासंगिक कागजात भी उनके द्वारा तैयार किए गए और शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया। इस गवाह द्वारा पोस्टमार्टम के लिए तैयार की गई जांच रिपोर्ट और संबंधित कागजात को प्रदर्श क-8/1 से प्रदर्श क-12 साबित किया गया है। उन्होंने खून से सनी और सादी मिट्टी को जब्त करने के ज्ञापन को प्रदर्श क-14 और उपरोक्त वस्तुओं के बंडलों को सामग्री प्रदर्श क-4 और क-5 के रूप में भी साबित किया है। उन्होंने इस तथ्य को भी बताया है कि आरोपी व्यक्ति फरार थे और उनके खिलाफ दंडात्मक प्रक्रियाएं जारी की गई थी और उन्होंने प्रदर्श क-14 से प्रदर्श क-45 के रूप में भी यही साबित किया है, जो एसआई राम तेज पांडे के हस्ताक्षर और हाथ से लिखे गए हैं, जिन्हें उनके द्वारा आरोपी व्यक्तियों की खोज के लिए निर्देश दिया गया था। इस गवाह द्वारा चार्जशीट प्रदर्श क-46 भी साबित की गई है।

30. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने कई आधारों पर आक्षेपित फैसले की आलोचना की। यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए चश्मदीद सबूत मनगढ़ंत हैं और वास्तव में, घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था। रिकॉर्ड पर यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि दुश्मनी के कारण, आरोपी व्यक्तियों / अपीलकर्ताओं को इस मामले में झूठा फंसाया गया था। मृतक का खुद

आपराधिक इतिहास था और कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा उसकी हत्या किए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। तथ्य के साक्ष्य अप्राकृतिक हैं और घटनाओं का अनुक्रम, जैसा कि तथ्य के गवाहों द्वारा वर्णित है, असंभव है। तथ्य के गवाहों की गवाही में भौतिक विरोधाभास हैं। जांच अत्यधिक दोषपूर्ण है और घटना का स्थान भी निश्चित नहीं है। एफ.एस.एल रिपोर्ट और चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष की बिल्कुल मदद नहीं करते हैं। विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की सराहना करने में बुरी तरह से विफल रहा है और इसने बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी सबूतों को पूरी तरह से खारिज कर दिया है और गलत पढ़ा है। दोषियों का मृतक से दूर जाने का कोई मकसद नहीं था। उपरोक्त प्रस्तुतियों के आधार पर और अन्य आधारों पर भी, यह प्रार्थना की गई है कि वर्तमान अपील की अनुमति देकर आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश रद्द किया जाना चाहिए। इसके अलावा पुनरीक्षण याचिका में विपरीत पक्षों के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि कुछ आरोपी व्यक्तियों को बरी करने के लिए लगाए गए फैसले के हिस्से में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

31. इसके विपरीत, सरकारी अपील संख्या 748/1981 में अपीलकर्ताओं के वकीलों और पुनरीक्षणकर्ता के वकीलों ने जोरदार तर्क दिया है कि वर्तमान एक मामला चश्मदीद साक्ष्य पर आधारित है और तथ्य के गवाह विश्वसनीय हैं। घटना का स्थान तय किया गया है और चिकित्सा साक्ष्य स्पष्ट रूप से अभियोजन मामले के अनुरूप है। आरोपी व्यक्तियों के पास मृतक को मारने का एक मजबूत मकसद था और एफएसएल रिपोर्ट भी अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन करती है। किसी भी आरोपी व्यक्ति को गलत तरीके से फंसाए जाने की कोई संभावना नहीं थी। विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साथ-साथ बचाव पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों की सावधानीपूर्वक और सतर्कता से जांच की है और सही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि दोषी मृतक की हत्या के दोषी हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि कुछ अभियुक्तव्यक्तियों को बरी करना उचित नहीं था और उस हद तक, आक्षेपित निर्णय को संशोधित किया जाना चाहिए और बरी किए गए आरोपी व्यक्तियों को भी उनके खिलाफ लगाए गए अपराध के लिए दोषी ठहराया जाना चाहिए। उपर्युक्त आधार पर वर्तमान अपील को खारिज करने और सरकारी अपील को और आपराधिक संशोधन की अनुमति देने का अनुरोध किया गया है।

32. शुरुआत में, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आरोपी व्यक्तियों विश्राम, दयाराम @ शुभ करण, राम रतन, अर्जुन, घनश्याम के खिलाफ धारा 302/149, 148, 324/149, 323/149 और 307/149 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे। मुकदमे के समापन के बाद, आरोपी व्यक्तियों राम रतन, घनश्याम, अर्जुन, विश्राम, दयाराम @ शुभ करण को धारा 302/149, 148 भन्द०वि० के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया और धारा 307/149, 323/149, 324/149 भ०८०वि० के तहत बरी कर दिया गया। इसका मतलब है कि विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उक्त घटना में घायलों को कोई

चोट नहीं आई थी और कुल नौ आरोपियों में से पांच के खिलाफ हत्या का मुख्य अपराध साबित हुआ था।

33. अभियोजन पक्ष का यह विशिष्ट मामला है कि आरोपी व्यक्ति, लाठी, कुदाल और भाले जैसे खतरनाक हथियारों से लैस एक गैरकानूनी सभा का गठन करते हुए, मौके पर आए और मृतक को मारने के इरादे से उसे कई वार किए, जिसके परिणामस्वरुप उसकी मृत्यु हो गई।

34. प्रत्यक्षदर्शी अ०सा०-1 द्वारा विशेष रूप से कहा गया था कि मृतक पर बुरी तरह से हमला करने के बाद, आरोपी विश्राम ने अन्य आरोपी व्यक्तियों को उकसाते हुए, मृतक की गर्दन पर कुदाल के 2 या 3 और घाव किए, जिसके परिणामस्वरूप उसकी तात्कालिक मृत्यु हो गई। अपनी जिरह में, उन्होंने कुछ विशिष्ट बयान दिए हैं और कहा है कि जब मृतक चोट लगने के बाद जमीन पर गिरा, तो उसके शरीर का बायां हिस्सा नीचे की तरफ था और दायां हिस्सा ऊपरी तरफ था और लाठी, भाला और कुदाल की सभी चोटें जो उसे जमीन पर गिरने के बाद लगी थी, उसके शरीर के दाहिने हिस्से पर थे। उनके भाई राम नाथ विजय को भी उक्त घटना में उपरोक्त हथियारों के उपयोग से चोटें आई।

35. अ०सा०-2, दूसरे चश्मदीद गवाह ने यह भी गवाही दी कि घटना के समय, जब आरोपी व्यक्ति उस पर हमला करने के बाद मृतक का पीछा कर रहे थे, तो वह फिसल कर गिर गया और फिर भी आरोपी विश्राम ने अन्य आरोपी व्यक्तियों को उकसाया और खुद मृतक की गर्दन पर दो या तीन कुदाल से वार किए। जिरह में उन्होंने स्पष्ट किया कि जब आरोपी व्यक्ति मृतक का पीछा कर रहे थे, तो वे उस पर हमला कर रहे थे और वार शरीर के किनारों और पिछले हिस्से पर भी किए गए थे, हालांकि वह यह नहीं देख सका कि उसे शरीर के किन हिस्सों पर चोटें आई हैं। जब आरोपी व्यक्ति भाग गए, तो उन्होंने मृतक की गर्दन के दाहिने हिस्से और शरीर के किनारों और पीछे के हिस्से पर चोटों को पाया। उन्होंने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि जब मृतक जमीन पर गिरा तो उसके शरीर का बायां हिस्सा नीचे की ओर था।

36. अ०सा०-5 नरबदेश्वर और अ०सा०-7 विजय राम नाथ भी घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं और उन्होंने कहानी को उसी तरह से सुनाया है जैसे अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने गवाही दी है।

37. घटना में हथियारों के तरीके और उपयोग के बारे में विशिष्ट नेत्र संबंधी साक्ष्य को देखते हुए, चिकित्सा साक्ष्य की जांच की जानी है। मृतक का शव परीक्षण करने वाले डॉ. एसएस श्रीवास्तव की जांच अ०सा०-3 के रूप में की गई है और उन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-5 साबित कर दिया है। डॉक्टर ने मृतक के शरीर पर 13 चोटों का पता लगाया है, जिसमें से 9 चोटें मृतक के शरीर के दाहिने हिस्से पर चोट के घाव हैं। चेहरे और खोपड़ी पर चोटें भी पाई गई, चाकू के दो घाव और घर्षण के दो घाव भी थे। गौरतलब है कि डॉक्टर ने गर्दन की त्वचा के नीचे खून का थक्का पाया है और राय दी है कि अत्यधिक

रक्तस्राव और सदमे के कारण, मृतक की मृत्यु हो गई और यह पोस्टमार्टम चोटों के कारण हुआ था। अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि करते हुए विशेषज्ञ ने यह भी कहा है कि चोट संख्या 1 से 9 कुदाल के उपयोग के कारण हो सकती है, चोट संख्या 10 और 11 भाले के उपयोग से हो सकती है और यदि कोई व्यक्ति जमीन पर गिरता है, तो घर्षण हो सकता है। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अ०सा०-3 ने एक विशिष्ट बयान दिया था कि यदि कोई व्यक्ति बाई और नीचे की ओर गिरता है और उस स्थिति में हमला किया जाता है, तो उपरोक्त सभी चोटें संभव हैं। उन्होंने अपनी जिरह में यह भी कहा है कि चोटों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक पर जबरन हमला किया गया था और यह काफी संभव है कि चोट तव लगी हो जब वह लेटा हुआ था या अपने बाएं हिस्से को नीचे की ओर रखकर स्थिति में था। हालांकि, उन्होंने यह भी कहा है कि यदि मृतक की मौत एक या दो वार के बाद ही हो जाती है और उसकी मौत के बाद भी उसे लगातार पीटा जा रहा है, तो मृत्यु पूर्व चोटों और मृत्यु पश्चात चोटों के बीच अंतर करना संभव नहीं है।

38. अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा मकसद के बिंदु पर बहुत बहस की गई है। शुरुआत में ही बचाव पक्ष के साक्ष्य के रूप में पेश किए गए दस्तावेजों पर जोर दिया गया है। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि पार्टियों के बीच पुरानी दुश्मनी के कारण सभी आरोपी व्यक्तियों को गलत तरीके से फंसाया गया है।

39. मकसद और दुश्मनी के बिंदु पर तर्क हमें बचाव पक्ष द्वारा दिए गए दस्तावेजों पर ले जाते हैं, जो रिकॉर्ड में प्रदर्श ख-1 से प्रदर्श ख-8 के रूप में दर्ज हैं।

40. प्रदर्श ख-1 सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा 24.5.1962 को पारित निर्णय की प्रमाणित प्रति है, जिसने आरोपी व्यक्तियों त्र्यंबक प्रसाद मिश्रा, शिव मूर्ति और राम रतन को भ०द०वि० की धारा 302 और 302/34 के तहत दोषी ठहराते हुए एक आरोपी शंभू सरन मिश्रा को संदेह का लाभ दिया है।

41. इसी प्रकार प्रदर्श ख-2 सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या 107 वर्ष 1965 में पारित निर्णय की प्रमाणित प्रति है, जिसमें मृतक त्र्यंबक प्रसाद मिश्रा सहित पांच अभियुक्तों को दिनांक 31.3.1966 के निर्णय और आदेश के तहत बरी कर दिया गया था।

42. प्रदर्श ख-3 के अवलोकन से हम पाते हैं कि वनेश्वर शुक्ला नामक व्यक्ति ने मुंसिफ मजिस्ट्रेट, बांसगांव, गोरखपुर की अदालत के समक्ष दिनांक 24.3.1975 को एक आपराधिक शिकायत दायर की, जिसमें 14 आरोपियों पर शिकायतकर्ता के खलीहान से फसल छीनने का आरोप लगाया गया था और मृतक त्र्यंबक प्रसाद मिश्रा और कुछ पुलिस कर्मियों को आरोपी के रूप में नामित किया गया था। यह तर्क दिया गया था कि इस दस्तावेज़ से पता चलता है कि मृतक एक बाहुबली था और उसके पुलिस कर्मियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध थे। हमें नहीं लगता कि वर्तमान दस्तावेज का वर्तमान मामले के गुण-दोष पर कोई प्रभाव पड़ता है क्योंकि यह दस्तावेज विवेचनाधिकारी या वर्तमान मामले से संबंधित

किसी भी पुलिस अधिकारी के खिलाफ कुछ भी नहीं दिखाता है।

43. प्रदर्श ख-4 सी.ओ. की अदालत के समक्ष गवाह राम गुलाम के बयान की प्रमाणित प्रति है, जिसे 9.7.1968 को दर्ज किया गया था।

44. राम समुझ और अन्य बनाम त्र्यंबक प्रसाद मिश्र के मामले में गोरखपुर के सी.ओ. सदर, गोरखपुर की अदालत के समक्ष गवाह राम रतन का बयान प्रदर्श ख-5 है और वह बयान 2.5.1968 को दर्ज किया गया था।

45. प्रदर्श ख-6 वर्तमान अपीलकर्ता राम रतन के पिता गजराज द्वारा विश्राम और राम के खिलाफ दायर एक चकबंदी मामले में चकबंदी के उप निदेशक, गोरखपुर द्वारा दिए गए फैसले की प्रति है उपरोक्त दस्तावेज के अवलोकन से प्रतीत होता है कि उक्त मामले में निर्णय 18.01.1971 को हुआ था, जबकि वर्तमान मामले में घटना 10.04.1978 को हुई थी, यानी उपरोक्त फैसले के लगभग 7 साल बाद।

46. इसी प्रकार, प्रदर्श ख-7 त्र्यंबक प्रसाद मिश्रा और अन्य बनाम भवानी और अन्य के बीच चकबंदी मामले में ब०सा०-2 कृपा शंकर दुबे के दिनांक 18.12.1969 के बयान की प्रति है।

47. प्रदर्श ख-8 विक्रय विलेख की प्रति है, जिसे राजा राम की विधवा श्रीमती कौला ने 24.12.1971 को मृतक त्र्यंबक प्रसाद मिश्रा के पक्ष में निष्पादित किया था, जो वर्तमान घटना की तारीख से बहुत पहले के समय से संबंधित है।

48. उपरोक्त बचाव साक्ष्य के माध्यम से, यह दिखाने का प्रयास किया गया था कि पर्थों के बीच लंबे समय से शत्रुतापूर्ण संबंध थे, और उनके बीच कई मुकदमे लंबित थे। यह भी दिखाने की कोशिश की गई कि मृतक का आपराधिक इतिहास था और यहां तक कि हत्या के एक मामले में भी, उसे वर्तमान घटना से पहले गोरखपुर की सत्र अदालत द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी।

49. विचारण न्यायालय द्वारा पार्टियों के बीच दुश्मनी और मृतक की आपराधिक पृष्ठभूमि के संबंध में रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर गंभीरता से विचार किया गया है। बचाव पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों के आधार पर, यदि इसे माना जाता है, तो यह कहा जा सकता है कि पार्टियों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध थे, लेकिन वास्तविक सवाल यह उठता है कि क्या केवल पक्षों के बीच पुरानी दुश्मनी के आधार पर, शिकायतकर्ता पक्ष के लिए आरोपी व्यक्तियों को गलत तरीके से फंसाना और इस तरह वास्तविक हमलावरों को छोड़ना संभव और उचित था।

50. मृतक के साथ तथ्य के गवाह के संबंध को जोरदार ढंग से प्रभावित किया गया है। अपीलकर्ताओं द्वारा इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि चूंकि घटना सार्वजनिक स्थान पर दिन के उजाले में हुई थी, इसलिए सभी संभावनाओं में, घटना के समय जनता के व्यक्ति मौजूद रहे होंगे, लेकिन स्वतंत्र गवाहों

को अभियोजन पक्ष द्वारा मामले में छिपाया गया था।

51. अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा उठाए गए विवाद का जवाब आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस रायप्पा और अन्य (2006) 4 एससीसी 512 में मिलता है। जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक विचारण के कई पहलुओं की जांच की थी और इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया था कि स्वतंत्र गवाह अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही देने की उपेक्षा क्यों करते हैं और किन परिस्थितियों में झूठे आरोप की संभावना से इंकार किया जा सकता है। यह भी स्पष्ट किया गया कि इतने सारे मामलों में अभियोजन पक्ष गवाहों पर भरोसा करने के लिए बाध्य क्यों है, जो मृतक (पीड़ित) के रिश्तेदार होते हैं। यह पैरा 6 और 7 में अभिनिर्धारित किया गया था-

"6..... अब तक यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक गवाह की गवाही अन्यथा प्रेरणादायक आत्मविश्वास को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के नाते एक इच्छुक गवाह है। एक करीबी रिश्तेदार जो एक बहुत ही स्वाभाविक गवाह है, उसे एक इच्छुक गवाह नहीं कहा जा सकता है। इसमें कहा गया है कि संबंधित व्यक्ति को इस बात में कोई प्रत्यक्ष दिलचस्पी होनी चाहिए कि आरोपी व्यक्ति को दुश्मनी या किसी अन्य कारण से किसी न किसी तरह दोषी ठहराया जाए।

7. इसके विपरीत, अब यह लगभग एक फैशन बन गया है कि जनता विशेष रूप से आपराधिक मामले में विभिन्न कारणों से अदालत के समक्ष पेश होने और गवाही देने के लिए अनिच्छुक है। आपराधिक मामलों को आने वाले वर्षों तक खींचा जाता है और गवाहों को बहुत परेशान किया जाता है। उन्हें धमकाया जा रहा है, डराया जा रहा है और सबसे ऊपर उन्हें लंबी जिरह के अधीन किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में, अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध एकमात्र प्राकृतिक गवाह रिश्तेदार गवाह होगा। रिश्तेदार गवाह जरुरी नहीं कि एक इच्छुक गवाह हो। दूसरी ओर, मृतक के करीबी संबंध होने के नाते वे सच्चाई बताकर असली अपराधी पर मुकदमा चलाने की कोशिश करेंगे। इस बात का कोई कारण नहीं है कि कोई करीबी रिश्तेदार किसी को फंसाएगा और किसी के खिलाफ झूठा बयान देगा और सजा से बचने के लिए असली अपराधी को स्क्रीन करेगा। एकमात्र आवश्यकता यह है कि रिश्तेदार गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय ने अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया कि वे मृतक के रिश्तेदार होने के नाते इच्छुक गवाह हैं।

52. विचारण न्यायालय ने वर्तमान मामले में पार्टियों के बीच मौजूद मकसद और दुश्मनी के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बिकाऊ पांडे बनाम बिहार राज्य (2003) 12 एससीसी 616 पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि जब प्रत्यक्ष सबूत अपराध को स्थापित करते हैं, तो मकसद का कोई महत्व नहीं है और महत्वहीन हो जाता है।

53. **अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एससीसी 318** में यह माना गया है कि दुश्मनी एक दोधारी हथियार है, जो अपराध के

लिए एक मकसद हो सकता है और आरोपी व्यक्तियों के झूठे आरोप का आधार भी हो सकता है।

54. इस बिंदु पर कई निर्णय हैं कि चश्मदीद गवाह के विवरण के आधार पर एक मामले में, मकसद अपना महत्व खो देता है। **दीपक वर्मा बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2011) 10 एससीसी 129** मामले में इसे निम्नानुसार रखा गया है:

"... "आशय का सबूत कोई अपरिहार्य चीज नहीं है ऐसे व्यक्ति के लिए जिसको अपराध कार्य करने के लिए दोषी ठहराया गया हो। आशय मनःस्थिति की विषय वस्तु है अतः इसे साक्ष्य से साबित कर पाना बहुत कठिन है।"

55. हालांकि, इस मामले में प्राथमिकी में इस आशय का एक मकसद सौंपा गया है कि पार्टियों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध रहे हैं, क्योंकि उनके पास लंबे समय से कुछ भूमि और मुकदमेबाजी के विवाद हैं। पार्टियों के बीच दुश्मनी निस्संदेह एक दोधारी हथियार है। यदि दुश्मनी के कारण, आरोपी को शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा झूठा फंसाया जा सकता है, तो उसी दुश्मनी के कारण आरोपी शिकायतकर्ता पक्ष के खिलाफ भी अपराध कर सकता है।

56. तथ्यों के गवाहों से पिछले मुकदमे बाजी और पर्षों के बीच दुश्मनी के बिंदु पर जिरह की गई है और हमें यह नोट करने में कोई संकोच नहीं है कि वर्तमान मामले में दुश्मनी एक स्वीकार्य तथ्य है और अभियोजन पक्ष के गवाह कहीं भी दुश्मनी के तथ्य को छिपाने का कोई प्रयास नहीं करते हैं, जो पहले से ही प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है और जिसके संबंध में दोनों पक्षों द्वारा सबूत पेश किए गए हैं।

57. हमने पहले अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के साक्ष्य की जांच की है और हम पाते हैं कि तथ्य के गवाहों की गवाही में कोई भौतिक विरोधाभास नहीं है। यह सच है कि अ०सा०1, अ०सा०२, अ०सा०5 और अ०सा०7 की गवाही में अपीलकर्ताओं द्वारा कुछ मामूली विसंगतियों को सही ढंग से इंगित किया गया है, लेकिन हम सभी भौतिक बिंदुओं जैसे कि घटना की तारीख, समय और स्थान, और हमले के तरीके आदि पर ऐसा कोई विरोधाभास नहीं है, जिसे भौतिक विरोधाभास के रूप में लिया जा सकता है या जो अभियोजन पक्ष के मामले को गलत साबित कर सकता है।

58. अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा एक विशिष्ट बिंदु उठाया गया है कि अ०सा०-1 ने स्वीकार किया है कि घटना से एक दिन पहले आरोपी व्यक्तियों ने मृतक को पीटा और धमकी दी थी, लेकिन हालांकि, इस घटना की कहीं भी शिकायत नहीं की गई थी। आगे यह तर्क दिया जाता है कि अन्सा०-1 प्राथमिक विद्यालय में एक शिक्षक है और घटना की तारीख को वह छुट्टी पर था। उनका स्कूल सुबह 6.30 बजे खुलता है और घटना की तारीख से एक दिन पहले छुट्टी ली जाती है। यह तर्क दिया जाता है कि यह स्वाभाविक नहीं था कि अ०सा०-1, जिसकी बोर्ड परीक्षाएं चल रही थीं, ने अचानक स्कूल से छुट्टी ले ली थी जैसे कि उसे पता था कि क्या होने वाला है और यह एक असंभव और अप्राकृतिक परिस्थिति है। हमें इस तर्क में कोई बल नहीं

मिलता है क्योंकि यह अ०सा०-1 का बयान नहीं है कि उसने घटना की तारीख पर अचानक छुट्टी ले ली थी, बल्कि उसने पहले ही शनिवार को छुट्टी के लिए आवेदन किया था, जबकि घटना सोमवार को हुई थी।

59. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह जोरदार तर्क दिया जाता है कि अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-5 और अ०सा०-7 ने मृतक को आरोपी व्यक्तियों के हमले से बचाने का कोई प्रयास नहीं किया, जो फिर से उनकी ओर से एक अप्राकृतिक आचरण था, लेकिन अगर हम उपरोक्त गवाहों के बयानों की जांच करते हैं, हम पाते हैं कि गवाह दंग रह गए क्योंकि घटना अचानक हुई। अ०सा०-1 इस बिंदु पर विशिष्ट बयान देता है कि घटना के दौरान, वह मदद के लिए चिल्ला रहा था, कुछ ग्रामीण भी वहां मौजूद थे, जिन्होंने इस घटना को देखा लेकिन उन्होंने केवल एक सीमित सीमा तक ही अपना विरोध किया। आगे यह तर्क दिया गया कि अन्सा०-5 में यह भी कहा गया है कि किसी भी ग्रामीण ने पीड़ित को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया और लगभग इसी तरह के बयान अ०सा०-2 और अ०सा०-7 की गवाही में पाए जाते हैं।

60. हमने इस बिंदु पर भी उपरोक्त गवाहों के सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच की है और पाया है कि गवाहों का आचरण अप्राकृतिक नहीं था क्योंकि कोई भी विशिष्ट प्रतिक्रिया के लिए पूर्वयोजना नहीं बना सकता है, अगर कोई अपराध उसे चौंका देता है। ऐसी स्थिति में, कोई घटना स्थल से भाग सकता है या आरोपी से पीड़ित को छोड़ने का अनुरोध कर सकता है या डर आदि की स्थिति में बिना कोई विरोध किए स्तब्ध खड़ा हो सकता है।

61. **सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 643** मामले में, यह पाया गया कि गवाह मृतक के बचाव में नहीं आए थे और तथ्यों और परिस्थितियों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि गवाहों का एक विशेष प्रतिक्रिया आचरण और व्यवहार उनके साक्ष्य को त्यागने का आधार नहीं हो सकता है जब वे निहत्थे हों और आरोपी घातक हथियारों से लैस हो।

62. प्रासंगिक बात यह है कि उनकी प्रतिक्रिया चाहे जो भी हो, उनके बयान में एक स्थिरता है, जो भौतिक पहलुओं में प्रकट होती है और उनकी गवाही में हुए मामूली विरोधाभास उनकी पूरी गवाही को गलत साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

63. अ०सा०-5 की गवाही के संबंध में एक विशिष्ट बिंदु उठाया गया है ताकि यह दिखाया जा सके कि घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति संदिग्ध थी। अ०सा०-5 भी प्राथमिक विद्यालय में एक शिक्षक है और वह कहता है कि घटना की तारीख पर, वह स्कूल नहीं गया था और घटना की तारीख की सुबह ही कुछ जरूरी काम के आधार पर उसके द्वारा छुट्टी का आवेदन भेजा गया था।

64. अ०सा०-5 के निक्षेपण में हमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता। वह घटना की कहानी को उसी तरह से बताता है जैसे तथ्य के अन्य गवाह गवाही देते हैं। वह अपने क्षेत्र में किसी

काम के कारण घटना की तारीख पर छुट्टी पर हो सकता है जैसा कि वह कहता है और यह उसकी गवाही को अविश्वसनीय बनाने या घटना के समय घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति को गलत साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

65. विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर तथ्य के साक्ष्य की विस्तृत जांच की है। यह आक्षेपित निर्णय और रिकॉर्ड के अवलोकन से सामने आता है कि चश्मदीद गवाह अपीलकर्ताओं को जानते थे और किसी भी तटस्थ गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी, लेकिन यह कारक अपीलकर्ताओं को दोषमुक्त करने के लिए कभी भी पर्याप्त नहीं है। इसलिए, तथ्य के गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद हैं, जिसमें भौतिक बिंदु पर कोई विरोधाभास नहीं है, जो अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक पहुंच सकता है और उपरोक्त सबूतों के आधार पर, हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, वह स्पष्ट है कि यह पार्टियों के बीच पुरानी दुश्मनी के कारण झूठे निहितार्थ का मामला नहीं है, बल्कि सबूतों से यह अच्छी तरह से साबित होता है कि दुश्मनी के कारण वर्तमान अपराध किया गया है और दुश्मनी का मुद्दा अपीलकर्ताओं के खिलाफ जाता है और उसी तरह से मृतक से संबंधित तथ्य के गवाहों का मुद्दा भी अपीलकर्ताओं के पक्ष में नहीं जाता है।

66. इस प्रकरण में **भगवान जगन्नाथ मार्कड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) 10 एससीसी 537** पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि आपराधिक मुकदमे में एक गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है। ऐसे मामले में, न्यायालय को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है. तो आरोपी को ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है।

67. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा **सुरिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य (2020) 2 एससीसी 563** पर जोर दिया गया है, जिसमें यह दोहराया गया है कि केवल इसलिए कि अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की, जरूरी नहीं कि यह निष्कर्ष निकलेगा कि अभियुक्त को गलत तरीके से फंसाया गया था।

68. घटना का स्थान हमेशा एक महत्वपूर्ण कारक होता है, जो अभियोजन पक्ष के मामले को गलत या मजबूत कर सकता है और यदि घटना का स्थान निश्चित नहीं है, तो निश्चित रूप से अभियोजन पक्ष का मामला संदेह के बादल में आ जाता है। यदि हम इस दायरे में वर्तमान मामले की जांच करते हैं, तो हम ध्यान देते हैं कि प्राथमिकी में ही यह उल्लेख किया गया है कि जब मृतक पूजा करने के बाद शिव मंदिर से बाहर आया, तो उसे हथियार लिए हुए आरोपी व्यक्तियों ने घेर लिया और जब उसने भागने की कोशिश की, तो राम कुमार के खलीहान में उनके द्वारा उसके साथ मारपीट की गई। अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-5 और अ०सा०-7 एक ही

कहानी का वर्णन करते हैं और उनके बयान के अनुसार घटना का स्थान समान पाया जाता है।

69. अ०सा०-14, आई. ओ. ने अपनी गवाही में जांच की कार्यवाही की व्याख्या की है और उनके द्वारा तैयार किए गए नक्शा नज़री प्रदर्श क.-13 में, राम कुमार के खलिहान को उस स्थान के रूप में उल्लेख किया गया है जहां मृतक की हत्या की गई थी। नक्शा नज़री में शिव मंदिर को भी दिखाया गया है और शिव मंदिर के पश्चिम में घटना का मुख्य स्थान दिखाया गया है। अ०सा०-1 की गवाही में हमें विशिष्ट बयान मिलता है कि जब मृतक को शिव मंदिर से बाहर आने के बाद आरोपी व्यक्तियों ने घेर लिया, तो वह पश्चिम की ओर भाग गया और राम कुमार के खलीहान में पहुंच गया, जहां उसके साथ मारपीट की गई। उल्लेखनीय है कि प्रदर्श क.-13 की साइट योजना में शिव मंदिर के पश्चिम में घटना का स्थान दर्शाया गया है। विवेचनाधिकारी ने विशेष रूप से विभिन्न संकेतों द्वारा अपराध स्थल की पूरी स्थलाकृति को दिखाया है, जिस स्थान से गवाहों ने घटना देखी, घटनास्थल पर पेड़ और वहां मौजूद विभिन्न व्यक्तियों के खेतों का विशेष रूप से प्रदर्श क 13 में उल्लेख किया गया है। तथ्य के गवाहों से घटना के स्थान और क्षेत्र की स्थलाकृति के बिंदु पर भी जिरह की गई है और जो कुछ भी उन्होंने कहा है, हम नक्शा नज़री प्रदर्श क 13 में भी यही पाते हैं और उसके आधार पर हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि घटना का स्थान, राम कुमार का खलीहान, जहां मृतक की हत्या की गई थी, वह एक निश्चित स्थान है जो तथ्य के गवाहों और अ०सा०-14, विवेचनाधिकारी द्वारा ठोस साक्ष्य द्वारा अच्छी तरह से साबित होता है। वास्तव में इस मुद्दे पर कुछ मामूली विसंगतियां उपरोक्त गवाह की गवाही में होती हैं, लेकिन यह सामग्री नहीं है और घटना के स्थान में उतार-चढ़ाव करने में सक्षम नहीं है, जो विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा स्थापित किया गया है।

70. **अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, (2008) 12 एससीसी 173** में यह माना गया था कि यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी की गवाही अन्यथा भरोसेमंद और विश्वसनीय पाई जाती है, तो उस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है और केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास दिखाई दिए हैं। यदि गवाही में विसंगतियां, विरोधाभास, अतिशयोक्ति, अलंकरण और विसंगतियां केवल सामान्य हैं और प्रकृति में भौतिक नहीं हैं, तो एक प्रत्यक्षदर्शी की गवाही को स्वीकार किया जाना चाहिए और उस पर कार्रवाई की जानी चाहिए। सामान्य विसंगतियों और भौतिक विसंगतियों के बीच अंतर यह है कि सामान्य विसंगतियां किसी पार्टी के मामले की विश्वसनीयता को कम नहीं करती हैं, जबकि भौतिक विसंगतियां ऐसा करती हैं।

71. इसके अलावा यह **मुकेश बनाम भारत राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2017)6 एस.सी.सी1** में आयोजित किया गया था कि भौतिक गवाहों से पूछताछ न करना रिकॉर्ड पर उपलब्ध गवाही के वजन को त्यागने का गणितीय सूत्र नहीं है, चाहे वह प्राकृतिक, भरोसेमंद और विश्वसनीय क्यों न हो। यह

स्थापित कानून है कि चश्मदीद गवाहों से पूछताछ नहीं किए जाने को अभियोजन पक्ष के मामले को कलम से खारिज करने के लिए एक अनुष्ठानिक सूत्र की तरह सेवा में नहीं लगाया जा सकता है। अदालत एकमात्र गवाह के बयान पर एक अभियुक्त को दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह मृतक का रिश्तेदार हो और स्वतंत्र गवाह से पूछताछ न करना अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं होगा।

72. विवेचनाधिकारी को राम कुमार के खलीहान में गेहूं के जोड़े पर खून मिला है और अ०सा०-4 ने कहा है कि उन्हें गेहूं के जोड़े में राम कुमार के खलीहान में मृत शरीर मिला और शव को जांच के लिए भेज दिया गया। उन्होंने उसी जगह से खून से सना और सादा भूसा और मिट्टी भी ली है, जहां उन्हें शव मिला और उन्होंने फ़र्द फदर्श क-14 तैयार किया।

73. अभियोजन पक्ष द्वारा इस तथ्य पर विवाद नहीं किया गया है कि मृतक का आपराधिक इतिहास था और इस संबंध में बचाव पक्ष के साक्ष्य भी रिकॉर्ड पर हैं। अ०सा०-1 भी स्वीकार करता है और इस मुद्दे पर अ०सा०-7 का समर्थन पाता है कि उसका भाई त्रयंबक राम राज की हत्या के मामले में आरोपी था और वह खुद मृतक और अन्य व्यक्तियों के साथ वनेश्वर शुक्ला के एक अन्य मामले में आरोपी था। हमें यह एक ठोस तर्क नहीं लगता है कि चूंकि मृतक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति था और हत्या के एक मामले में आरोपी था, इसलिए उसे कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा मारा गया हो सकता है और इसके पीछे कारण यह है कि वर्तमान मामले में, दोषियों की भागीदारी को साबित करने में सक्षम विश्वसनीय ओकुलर साक्ष्य रिकॉर्ड पर है और इसके आधार पर यह स्पष्ट है कि यह अपीलकर्ता थे जो वे अपराध के लेखक थे।

74. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि जांच के दौरान कोई हत्या का हथियार बरामद नहीं किया गया है, न ही इसे अदालत के समक्ष लाया गया था, जो अभियोजन पक्ष के मामले में सेंध है। हम इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं क्योंकि हत्या के हथियार की बरामदगी अभियोजन पक्ष के मामले पर भरोसा करने के लिए कभी भी अनिवार्य नहीं है। ऐसे अनेक निर्णय हैं, जिनमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह व्यवस्था दी गई है कि हत्या के हथियार की बरामदगी न होना अभियोजन पक्ष के मामले के लिए कभी घातक नहीं होता है। महत्वपूर्ण पहलू यह है कि घटना में इस्तेमाल किए जाने वाले हथियारों को विशेष रूप से प्रत्यक्षदर्शियों की गवाही में नामित किया गया है। चिकित्सा साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें कुदाल, भाला और रगड़ के उपयोग के कारण हो सकती हैं। हमने यह भी पाया है कि जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-8 में, पंचों ने पाया है कि चोटें मृतक के शरीर के दाई ओर हैं, उसके शरीर पर कई वार किए गए हैं और उनकी राय भी अभियोजन पक्ष के मामले के अनुरूप है।

75. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि घटना के बाद आरोपी व्यक्ति फरार हो गए और अदालत के अधिकार के तहत उनके खिलाफ कई दंडात्मक प्रक्रियाएं जारी की गई

और इस संबंध में प्रदर्श क-14 से प्रदर्श क-45 के रूप में दायर दस्तावेजों पर जोर दिया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि आरोपी व्यक्ति फरार थे, इसलिए विवेचनाधिकारी द्वारा हत्या के हथियार को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सका।

76. **नानकौनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2016 (3) एससीसी 317** में इसे इस तरह परिभाषित किया गया था कि जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि किए गए पर्याप्त अकाट्य ओकुलर सबूत हैं, तो आरोपी से हथियार की बरामदगी से हत्या से संबंधित अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करता है। वर्तमान मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में और उपरोक्त कानूनी स्थिति के आलोक में हत्या के हथियार की बरामदगी अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं है।

77. हाल ही में **राज्य बज़रिये पुलिस इंस्पेक्टर बनाम लाली @ मणिकंदन और एनआर 2022 एससीसी ऑन लाइन एससी 1424 (आपराधिक अपील संख्या 1750-1751 वर्ष 2022)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है किः

"....इसी तरह, यह मानते हुए कि इस्तेमाल किए गए हथियार की बरामदगी स्थापित या साबित नहीं हुई है, यह भी आरोपी को बरी करने का आधार नहीं हो सकता है जब चश्मदीद गवाह का प्रत्यक्ष सबूत हो। अपराध में इस्तेमाल किए गए हथियार की बरामदगी आरोपी को दोषी ठहराने के लिए अनिवार्य नहीं है। यदि चश्मदीद गवाह के रूप में प्रत्यक्ष साक्ष्य है, तो हथियार की बरामदगी के अभाव में भी आरोपी को दोषी ठहराया जा सकता है।

78. मामले की जांच को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि यह दोषपूर्ण है और विवेचनाधिकारी द्वारा लापरवाही और चूक के कई कार्य किए गए हैं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि परीक्षा के दौरान विवेचनाधिकारी के कुछ प्रश्नों के उत्तर में अ०सा०-14 उत्तर देने से बचता है और बस कहता है कि उसे यह याद नहीं है। उन्होंने मंदिर में पीतल या तांबे के लोटे या गीले चावल की बरामदगी के संबंध में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है, जो इस तथ्य का संकेत हो सकता है कि मृतक घटना से ठीक पहले पूजा करने के लिए शिव मंदिर गया था। उन्होंने नक्शा नज़री में यह भी उल्लेख नहीं किया है कि गवाहों ने किसके खलिहान से घटना देखी थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि केस डायरी में उस जिले के नाम पर एक कटिंग है जहां मृतक का शव परीक्षण किया गया था।

79. हमने विवेचनाधिकारी की ओर से लापरवाही और चूक के संबंध में अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा उठाए गए बिंदुओं पर ध्यान दिया है और हम बिना किसी हिचकिचाहट के पाते हैं कि वर्तमान मामले की जांच में विवेचनाधिकारी ने कोई महत्वपूर्ण चूक या लापरवाही नहीं की है, जो अभियोजन पक्ष के मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है। चूक और लापरवाही प्रकृति में मामूली है और यह एक स्थापित कानून है कि विवेचनाधिकारी की किसी ग़लती या लापरवाही के कारण केवल लापरवाही या चूक अभियोजन मामले को झूठा साबित करने के लिए पर्याप्त

नहीं है, जो अन्यथा विश्वसनीय और ठोस चश्मदीद गवाहों द्वारा फिर से साबित होता है।

80. निर्णयों की श्रेणी में: (i) खेम राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 1 एससीसी 202, (ii) कर्नाटक राज्य बनाम सुवर्णम्मा, (2015) 1 एससीसी 323, (ii) हेमा बनाम राज्य, 2013 (81) एसीसी 1 (एससी) (तीन न्यायाधीशों की पीठ), (iv) सी. मुनियप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, 2010 (6) एससीजे 822 2007 (57) एसीसी 293 (एससी), (vi) पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह. (2005) 7 एससीसी 408, अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित करने वाले विवेचनाधिकारी की ओर से लापरवाही/चूक के बिंदु पर कानूनी सिद्धांत प्रख्यापित किया गया है और हम जो सिद्धांत पाते हैं वह यह है कि विवेचनाधिकारी द्वारा जांच में किसी भी अनियमितता या कमी से अभियोजन के मामले को अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है जब यह अन्यथा साबित हो जाता है। एकमात्र आवश्यकता साक्ष्य के मूल्यांकन में अतिरिक्त सावधानी का उपयोग है; एक दोषपूर्ण जांच अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं हो सकती है जहां ओकुलर गवाही ठोस और विश्वसनीय पाई जाती है।

81. इसी तरह, **मुन्ना लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में शिव लाल बनाम यूपी राज्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 80** (आपराधिक अपील संख्या 490 वर्ष 2017) के मामले में एक और हालिया फैसले में यह दोहराया गया था कि, एक दोषपूर्ण जांच हमेशा अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं होती है, जहां ओकुलर गवाही विश्वसनीय और ठोस पाई जाती है, जबकि ऐसे मामले में अदालत को सबूतों का मूल्यांकन करने में सतर्क रहना पड़ता है। एक दोषपूर्ण जांच सभी मामलों में एक विश्वसनीय अभियोजन पक्ष को बाहर निकालने के लिए एक निवारक कारक नहीं हो सकती है।

82. जहां तक मृतक के आपराधिक इतिहास का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के अनुसार आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति था, लेकिन आवेदकों के वकील द्वारा उठाई गई दलील कि इतने सारे व्यक्तियों के साथ दुश्मनी के कारण वह कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा दूर किया जा सकता था, वर्तमान मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य में टिकाऊ नहीं है। वास्तव में गवाहों ने घटना में वर्तमान अपीलकर्ताओं की भूमिका को स्पष्ट रूप से बताया है और चूंकि वे मृतक से संबंधित हैं, इसलिए उनके लिए अपीलकर्ताओं को केवल उनके साथ दुश्मनी के कारण झूठा फंसाना संभव नहीं था और इस तरह वास्तविक दोषियों को छोड़ दिया गया था।

83. इस प्रकार, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने धारा 148, 302/149 भ०८०वि० के तहत वर्तमान अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में कोई अवैधता नहीं की है। अपीलकर्ताओं द्वारा की गई मृतक की हत्या उचित संदेह से परे साबित होती है क्योंकि अपीलकर्ताओं ने घातक हथियारों से लैस एक गैरकानूनी सभा बनाने के बाद, जिसे यदि अपराध के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, तो हिंसा का उपयोग किया जाता है, उन्हें दंगा करने का दोषी पाया गया था और चूंकि अपराध

अपीलकर्ताओं द्वारा गठित गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में हुआ था, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 149 की सहायता से दोषी ठहराया गया था।

84. **सुशांत दास बनाम उड़ीसा राज्य, (2016) 4 एससीसी 371** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 149 भ०द०वि० के तहत अपराध के संबंध में कानूनी आदेश को विस्तृत करते हुए कहा कि "जब एक बार, पांच या अधिक व्यक्तियों की गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य की भागीदारी दिखाई जाती है, जो इस तरह की गैरकानूनी सभा के सदस्य के रूप में अपराध में लिप्त होते हैं, धारा 149 को लागू करने के प्रयोजनों के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि अपराध के दौरान ऐसी गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य द्वारा विशिष्ट कार्य किया जाना चाहिए। जो दिखाने की आवश्यकता है वह विधानसभा के एक सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में एक सदस्य के रूप में भागीदारी या उस विधानसभा का सदस्य होने के नाते, ऐसे व्यक्ति को पता था कि ऐसे किसी भी सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में क्या होने की संभावना है। गैरकानूनी सभा के सदस्य के उपरोक्त आचरण में से किसी एक को दिखाने के सबूत की स्थिति में, भ०द०वि० की धारा 149 में निर्धारित अपराध साबित हो जाएगा।

85. साथ ही, हमने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ राज्य द्वारा दायर सरकारी अपील और बरी किए गए आरोपी व्यक्तियों नरबदेश्वर, दुर्योधन, बालगोविंद, रघुनाथ उर्फ भोराई के खिलाफ मूल शिकायतकर्ता द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण को भी ध्यान में रखा है।

86. राज्य के विद्वान अधिवक्ता और शिकायतकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश, जहां तक यह आरोपी व्यक्तियों नरबदेश्वर, दुर्योधन, बालगोविंद, रघुनाथ उर्फ भोराई को बरी करने से संबंधित है, विकृत है और रिकॉर्ड पर तथ्य और साक्ष्य के खिलाफ है। यह बहुत अजीब है कि विचारण न्यायालय ने सबूतों के उसी आधार पर कुछ आरोपियों को दोषी ठहराया है लेकिन चार आरोपियों को बरी कर दिया है, जबकि उनके खिलाफ पर्याप्त सबूत भी रिकॉर्ड में थे। विचारण न्यायालय ने यह कहने में पूरी तरह से गलती की है कि मृतक के शरीर पर कोई लाठी का घाव नहीं था और इसलिए, आरोपी व्यक्ति नरबदेश्वर, दुर्योधन, रघुनाथ उर्फ भोरई, जिनके बारे में तथ्य के गवाहों द्वारा कहा जाता है कि उनके हाथों में लाठी थी, को लगाए गए अपराधों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। विचारण न्यायालय को चश्मदीद साक्ष्य पर भरोसा करना चाहिए था, जो भरोसेमंद था, लेकिन उन्होंने चिकित्सा साक्ष्य पर भरोसा किया, जो एक सही दृष्टिकोण था। आगे यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में पूरी तरह से विफल रहा कि आरोपी बालगोविंद भी उन अपराधों के लिए समान रूप से जिम्मेदार था और अपराध में उसकी सक्रिय भागीदारी थी और इस संबंध में पर्याप्त सबूत रिकॉर्ड पर उपलब्ध थे लेकिन विचारण न्यायालय द्वारा अवैध रूप से खारिज कर दिए गए थे। आगे यह तर्क दिया जाता है कि धारा 307/149, 323/149, 324/149 भ०द०वि० के तहत सभी अभियुक्त व्यक्तियों को दोषी

ठहराने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत होने के बावजूद, विचारण न्यायालय इसकी सराहना करने में विफल रहा और उपरोक्त अपराध के लिए सभी आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया, जो कानूनी रूप से टिकाऊ भी नहीं था। उपरोक्त आधारों के आधार पर यह प्रस्तुत किया गया है कि दोषी अपीलकर्ताओं की तरह, सह-आरोपी व्यक्तियों नरबदेश्वर, दुर्योधन, रघुनाथ उर्फ भोराई और बालगोविंद को भी आरोपों के लिए दोषी ठहराया जाना चाहिए।

87. बरी किए जाने के खिलाफ अपील या संशोधन में हस्तक्षेप की गुंजाइश पर विचार करते समय, सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह माना गया है कि यदि साक्ष्य के दो विचार यथोचित रूप से संभव हैं, एक बरी होने का समर्थन करता है और दूसरा दोषसिद्धि का संकेत देता है, तो उच्च न्यायालय को ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बरी करने के आदेश को उलटना नहीं चाहिए। **कर्णाटक राज्य बनाम के. गोपालकृष्ण के मामले में, जिसकी रिपोर्ट (2005) 9 एससीसी 291** में दी गई है, उच्चतम न्यायालय ने बरी किए जाने के विरुद्ध अपील पर विचार करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी कीः

"इस तरह की अपील में अपीलीय न्यायालय नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों को हल्के ढंग से परेशान नहीं करता है। यदि एक ही साक्ष्य के आधार पर, दो विचार यथोचित रूप से संभव हैं, और आरोपी के पक्ष में दृष्टिकोण को नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा स्वीकार किया जाता है, तो यह बरी करने के आदेश को बरकरार रखने के लिए पर्याप्त है। हालांकि, अगर अपीलीय अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि नीचे दिए गए न्यायालय के निष्कर्ष पूरी तरह से अनुचित या विकृत हैं और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर आधारित नहीं हैं, या रिकॉर्ड पर सबूतों की अज्ञानता या गलत व्याख्या सहित गंभीर अवैधता से ग्रस्त हैं, तो अपीलीय अदालत बरी करने के ऐसे आदेश को रद्द करने में उचित होगी।

88. **सुदर्शन कुमार बनाम हिमाचल राज्य ने (2014) 15 एससीसी 666** में सूचित किया कि उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है;

"31. यह कहा गया है और दोहराया गया है कि आपराधिक न्यायशास्त्र में एक प्रमुख सिद्धांत है कि अभियुक्त की बेगुनाही की धारणा को बरी करने के आदेश से मजबूत किया जाता है। अपीलीय अदालत, ऐसे मामले में, केवल बहुत ही ठोस और सम्मोहक कारण के लिए हस्तक्षेप करेगी। इस प्रस्ताव पर केस कानूनों की अधिकता है और हमें उन निर्णयों का हवाला देकर इस फैसले पर बोझ डालने की आवश्यकता नहीं है। हमारा उद्देश्य धनपाल बनाम राज्य नामक एक तर्कसंगत निर्णय का उल्लेख करके पूरा किया जाएगा। वह निर्णय कौन सा है जिसमें पूर्वोक्त सिद्धांत को निर्धारित करने वाले अधिकांश पूर्व निर्णयों को संदर्भित किया जाता है।

पैरा 37 में, पहले के मामले में निर्धारित प्रस्तावों पर निम्नानुसार ध्यान दिया गया है: -

"37. चंद्रप्पा बनाम कर्णाटक राज्य, (एससीसी पृष्ठ 432 पैरा 42), इस न्यायालय ने कहा:

(1) एक अपीलीय अदालत के पास उन सबूतों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है जिन पर बरी करने का आदेश स्थापित किया गया है।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ऐसी शक्तियों के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है और अपीलीय न्यायालय तथ्य और कानून दोनों के प्रश्नों पर अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले साक्ष्य पर कोई सीमा निर्धारित करता है।

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियां, जैसे कि "पर्याप्त और सम्मोहक कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियां", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियां", आदि का उद्देश्य बरी किए जाने के खिलाफ अपील में अपीलीय अदालत की व्यापक शक्तियों को कम करना नहीं है। इस तरह के वाक्यांश "भाषा के उत्कर्ष" की प्रकृति में अधिक हैं, जो सबूतों की समीक्षा करने और अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अदालत की शक्ति को कम करने की तुलना में बरी करने में हस्तक्षेप करने के लिए अपीलीय अदालत की अनिच्छा पर जोर देते हैं।

(4) हालांकि, एक अपीलीय अदालत को यह ध्यान रखना चाहिए कि बरी होने के मामले में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है। सबसे पहले, बेगुनाही की धारणा उसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांत के तहत उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह कानून की सक्षम अदालत द्वारा दोषी साबित नहीं किया जाता है। दूसरे, आरोपी को बरी कर दिए जाने के बाद, उसकी बेगुनाही की धारणा को विचारण न्यायालय द्वारा और पुष्ट किया जाता है।

(5) यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय अदालत को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बरी होने के निष्कर्ष को परेशान नहीं करना चाहिए। 32. इसके बाद, पैरा 39 में, न्यायालय ने पांच सिद्धांतों को शामिल किया और हम इसके तहत उक्त पैरा को पुनः प्रस्तुत करना चाहते हैं:

"39. उपरोक्त मामलों से निम्नलिखित सिद्धांत निकलते हैं:

1. दोषी साबित होने तक आरोपी को निर्दोष माना जाता है। आरोपी जब निचली अदालत में पेश हुआ तो उसे यह धारणा थी। निचली अदालत का बरी होना इस धारणा को मजबूत करता है कि वह निर्दोष है।

2. साक्ष्य की समीक्षा करने की शक्ति व्यापक है और अपीलीय अदालत रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य की फिर से सराहना कर सकती है। यह तथ्यों और कानून दोनों के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की समीक्षा कर सकता है, लेकिन अपीलीय अदालत को विचारण न्यायालय के फैसले को उचित वजन और विचार देना चाहिए।

3. अपीलीय अदालत को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय को गवाहों के आचरण को देखने का विशिष्ट लाभ था। विचारण न्यायालय गवाहों की विश्वसनीयता

का मूल्यांकन करने के लिए बेहतर स्थिति में है।

4. अपीलीय अदालत विचारण न्यायालय के बरी होने के फैसले को केवल तभी खारिज कर सकती है या अन्यथा परेशान कर सकती है जब उसके पास ऐसा करने के लिए "बहुत ठोस और बाध्यकारी कारण" हो।

5. यदि दो तर्कसंगत या संभावित विचारों पर पहुंचा जा सकता है एक जो बरी हो जाता है, दूसरा दोषसिद्धि की ओर जाता है उच्च न्यायालयों/ अपीलीय अदालतों को आरोपी के पक्ष में फैसला सुनाना चाहिए।

89. **दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एससीसी 737**, सुप्रीम कोर्ट ने पैराग्राफ 36 और 37 में इसे निम्नानुसार दोहरायाः

"36. अपील की अदालत आमतौर पर बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी जब तक कि दृष्टिकोण स्पष्ट अवैधता से दूषित न हो। बरी किए जाने के खिलाफ अपील में, यह न्यायालय केवल इसलिए बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा क्योंकि सबूतों के मूल्यांकन पर, एक अलग प्रशंसनीय दृष्टिकोण उत्पन्न हो सकता है और नीचे दी गई अदालों द्वारा लिए गए विचार सही नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि बरी करते समय नीचे दिए गए विद्वान न्यायालयों द्वारा लिए गए विचार, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर एक उचित व्यक्ति के विचार नहीं हो सकते हैं।

36. चंद्रप्पा बनाम भारत कर्णाटक राज्य (एससीसी पृष्ठ 432 पैरा 42) में बरी किए जाने के विरुद्ध अपील से निपटने वाले अपीलीय न्यायालय की शक्ति के कार्यक्षेत्र पर विचार किया गया है और इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"42... (4) एक अपीलीय अदालत को हालांकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने के मामले में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है। सबसे पहले, बेगुनाही की धारणा उसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांत के तहत उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह कानून की सक्षम अदालत द्वारा दोषी साबित नहीं किया जाता है। दूसरे, आरोपी को बरी कर दिए जाने के बाद, उसकी बेगुनाही की धारणा को विचारण न्यायालय द्वारा और मजबूत, पुष्टि और मजबूत किया जाता है। (5) यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय अदालत को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बरी होने के निष्कर्ष को परेशान नहीं करना चाहिए।

जब तक पर्याप्त और बाध्यकारी कारण न हो, अपील में बरी करने के आदेश को उलटने की आवश्यकता नहीं है। यह राजस्थान राज्य बनाम शेरा राम मामले में कहा गया है।

90. उपरोक्त कानूनी परिदृश्य में, यदि हम रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों और विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की जांच करते हैं, तो हम पाते हैं कि ऑटोप्सी रिपोर्ट में मृतक के शरीर पर 13 चोटें दिखाई गई हैं, जिनमें से चोट नंबर 1 से 9 तक चोट के घाव

हैं, चोट नंबर 10 और 11 पंचर घाव और चोट नंबर 12 और 13 खरोंच हैं। गवाहों ने बताया है कि मृतक को चोट पहुंचाने के लिए आरोपी व्यक्तियों द्वारा लाठी, भाला और कुदाल का इस्तेमाल किया गया था। रिकॉर्ड पर इस बात के विशिष्ट सबूत हैं कि आरोपी नरबदेश्वर, दुर्योधन और रघुनाथ उर्फ भोराई लाठी से हमला कर रहे थे, जो उनके पास था और अन्य आरोपी व्यक्ति कुदाल और भाले से हमला कर रहे थे। मृतक का पोस्टमार्टम करने वाले डॉ. के. एम. सिंह, अ०सा०-3 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि मृत्यु का कारण अत्यधिक रक्तस्राव और एंटी मॉर्टम चोटों के कारण हुआ था। उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि चोट संख्या 1 से 9 तक कुदाल की सहायता से दी जा सकती है, चोट संख्या 10 और 11 भाले से और चोट संख्या 12 और 13 रगड़ के कारण हो सकती है और यदि कोई व्यक्ति भूसी आदि पर गिर जाता है तो उस स्थिति में भी चोट संख्या 12 और 13 हो सकती है। यह महत्वपूर्ण है कि चिकित्सा साक्ष्य कहीं भी यह नहीं बताते हैं कि मृतक को कोई भी चोट लाठी के प्रहार के कारण हो सकती है। अ०सा०-3 ने अपने मुख्य परीक्षण में भी यह नहीं बताया है कि चोट संख्या 12 और 13 लाठी के प्रहार के कारण हो सकती है और मुख्य परीक्षण पर उन्होंने कहा है कि यदि किसी व्यक्ति को जमीन या पत्थर जैसी किसी कुंद वस्तु से रगड़ा जाता है, तो चोट संख्या 12 और 13 संभवतः हो सकती है। यदि कोई व्यक्ति भूसी पर गिरता है, जिसमें कुछ हूक/कांटे होता है, तो भी चोट संख्या 12 और 13 हो सकती है और यदि भूसी केवल जमीन पर पड़ी है, तो यह घर्षण पैदा कर सकता है। इसलिए, चिकित्सा साक्ष्य ने घटना में लाठी के उपयोग से पूरी तरह से इनकार कर दिया और चिकित्सा साक्ष्य की सराहना के आधार पर एक निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि मृतक को लाठी के प्रहार से चोट नहीं लगी थी।

91. जहां तक घायल विश्राम का संबंध है, विचारण न्यायालय ने इस बिंदु पर जोर दिया है कि चोटों के संबंध में भ०द०वि० की धारा 307/149, 323/149, 324/149 के तहत आरोप तय किए गए थे, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से रिकॉर्ड पर घायलों की कोई मेडिकल रिपोर्ट नहीं है। अक्षेपित निर्णय में, इस संबंध में अन्सा०-10 और अन्सा०-13 के बयानों का विश्लेषण किया गया है और विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से यह संतोषजनक रूप से स्थापित नहीं है कि किस हथियार के उपयोग से घायल राम नाथ @ विजय को चोटें आई हैं। विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि राम नाथ @ विजय इस घटना में घायल हो गए थे, लेकिन यह संतोषजनक रूप से साबित नहीं हुआ है कि चोटें क्या थीं, क्योंकि मूल रजिस्टर का पता नहीं लगाया जा सकता है और कंपाउंडर, जिसने वास्तव में 24.10.1978 को चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-8 की प्रति तैयार की थी, की जांच नहीं की गई है। खजुई के चिकित्सा अधिकारी अ०सा०- 10 ने कहा कि मूल चोट रजिस्टर के अनुसार, घायल राम नाथ उर्फ विजय की चिकित्सकीय जांच डॉ. सी.बी. प्रसाद द्वारा की गई थी, लेकिन महत्वपूर्ण रूप से अ०सा०-13 डॉ. सी.बी. प्रसाद ने यह नहीं बताया कि उन्होंने घायल राम नाथ @ विजय की जांच की थी। अ०सा०-14 दिनेश

प्रसाद, विवेचनाधिकारी ने अपनी केस डायरी में चोट की रिपोर्ट की कोई प्रति नहीं बनाई है और यहां तक कि जिन हथियारों का उपयोग करके चोट पहुंचाई गई थी, उन्हें भी विवेचनाधिकारी द्वारा केस डायरी में नोट नहीं किया गया था। चोटों की प्रकृति का भी पता नहीं लगाया गया है, हालांकि प्रदर्श क-7 में "खून अलूदा" शब्द से चोटों की प्रविष्टि दिखाई गई है, लेकिन जिला अस्पताल गोरखपुर से संबंधित कागजात भी पेश नहीं किए गए हैं, जिसमें घायल को भर्ती कराया गया है। इसके अलावा, उपरोक्त घायल की कोई प्रदर्श या पूरक रिपोर्ट रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है।

92. जहां तक अभियुक्त बालगोविंद को बरी किए जाने का संबंध है, विचारण न्यायालय ने मामले की परिस्थितियों और पक्षकारों के बीच दुश्मनी के पहलू की भी जांच की है, विशेष रूप से आरोपी बालगोविंद के संबंध में। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि यदि कुछ दुश्मनी थी, तो यह मृतक और आरोपी बालगोविंद के बीच नहीं थी. बल्कि आरोपी बालगोविंद और रघुनाथ को छोड़कर अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ कुछ चकबंदी मुकदमा था, जो सगे भाई थे। अ०सा०-1 शंभू सरन मिश्रा ने अपने बयान में पैरा 29 में कहा कि राम रतन और अन्य के साथ उनकी दुश्मनी 1962 से पहले थी और उस समय बालगोविंद और राहुनाथ के साथ उनकी कोई दुश्मनी नहीं थी। अ०सा०-1 ने यह भी कहा है कि आरोपी बालगोविंद राम रतन के समूह से संबंधित था और उनके बीच कोई अन्य संबंध नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि बालगोविंद और रघुनाथ के साथ उनकी दुश्मनी 1967-68 में शुरू हुई थी और संशोधन 29.10.1980 से 3 या 4 महीने पहले तय किया गया था। चूंकि यह कहा जाता है कि चकबंदी मामले को साक्ष्य के लिए 10.04.1978 को बंद कर दिया गया था, प्रदर्श क-52 के अनुसार, विचारण न्यायालय ने माना कि आरोपी बालगोविंद का प्रदर्श क 52 के मामले से कोई लेना-देना नहीं था।

93. उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, विचारण न्यायालय ने पाया कि घटना में आरोपी बालगोविंद की भागीदारी के बारे में एक उचित संदेह भी पैदा किया गया है और यही कारण है कि उसे संदेह का लाभ दिया गया था।

94. हमने अभियुक्त बालगोविंद को बरी किए जाने के संबंध में विचारण न्यायालय की टिप्पणी पर अपना विचारशील विचार किया है। अभियोजन पक्ष के मामले का ओकुलर संस्करण इस बिंदु पर स्पष्ट है कि घटना के समय आरोपी बालगोविंद के पास भाला था, जिसका इस्तेमाल उसने घटना में किया था और यही भूमिका सह-आरोपी विश्राम को भी सौंपी गई है।

95. निर्णय के पहले भाग में, हमने मृतक की ऑटोप्सी रिपोर्ट का विश्लेषण किया है जिसमें मृतक के शरीर पर पंचर घाव और खरोंच के साथ घाव और खरोंच पाए गए हैं और डॉक्टर, जिसने शव परीक्षण किया है और जिसकी जांच की गई है क्योंकि अ०सा०-3 ने कहा है कि मृतक को चोटें शायद कुदाल और भाले के उपयोग के कारण थीं, इसलिए, आरोपी

बालगोविंद द्वारा ले जाए गए हथियार का इस्तेमाल अपराध को अंजाम देने में किया गया था और इस समय ओकुलर संस्करण पूरी तरह से चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित है। विचारण न्यायालय ने अ०सा०-1 शंभू सरन मिश्रा के बयान का हवाला दिया है और पाया है कि शिकायतकर्ता पक्ष और आरोपी बालगोविंद के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी, लेकिन हालांकि, यह माना गया है कि ओकुलर संस्करण के आधार पर आपराधिक मामले में दुश्मनी या मकसद का कोई महत्व नहीं है और हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वर्तमान मामले में ओकुलर संस्करण में आरोपी बालगोविंद के खिलाफ बोलना और मामले में उनकी भागीदारी की पुष्टि करना शामिल है। मेडिकल साक्ष्य द्वारा अपराध की पूरी तरह से पुष्टि की गई है और इस समय हम विचारण न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों और आरोपी बालगोविंद को बरी करने के संबंध में आक्षेपित फैसले में दिए गए कारणों से सहमत नहीं हैं और हमारे विचार से आरोपी बालगोविंद भी अपराध के लिए समान रूप से उत्तरदायी हैं।

96. इस स्तर पर, हम अ०सा०-6 के बयान को भी ध्यान में रखते हैं, जिनके लिए यह कहा जाता है कि उन्होंने आरोपी व्यक्तियों को मृतक की हत्या की साजिश रचते हुए सुना था। उन्होंने कहा कि जब उन्होंने आरोपी राम रतन, विश्राम और बालगोविंद को मृतक की हत्या की साजिश रचते सुना, तो वहां कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी व्यक्ति जोर से बात नहीं कर रहे थे और वह 25.3.1978 की शाम को खुद को शांत करने के लिए पुलिया के पास मौजूद थे। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने यह बात त्र्यंबक मिश्रा को दो दिन बाद बताई थी क्योंकि यह मृतक त्र्यंबक मिश्रा की हत्या की साजिश थी। यह अ०सा०-6 का स्वाभाविक और संभावित आचरण नहीं था, जो दो दिनों तक चुप रहा। वह यह भी कहता है कि मृतक के अलावा उसने दो दिनों के भीतर किसी को भी यह बात नहीं बताई और मृतक की हत्या के बाद भी उसने यह तथ्य किसी को नहीं बताया, जो कि बेहद अस्वाभाविक है। विचारण न्यायालय ने अ०सा०-6 के सबूतों की जांच की है और उन्होंने पाया है कि प्रदर्शखा-7 से पता चलता है कि गवाह कृपा शंकर 18.12.1969 को मृतक की ओर से चकबांकी कोर्ट में गवाह के रूप में खड़े हुए थे। विचारण न्यायालय ने पाया कि यह गवाह इच्छुक गवाह है, अपने साक्ष्य को खारिज कर दिया और तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारा भी यही विचार है कि अ०सा०-6 विश्वसनीय गवाह नहीं है।

97. विचारण न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों और निष्कर्षों में तथ्यों के गवाहों की विश्वसनीयता के सवाल को उठाया गया है और इस पहलू पर भी विचार किया गया है कि क्या विश्वसनीयता की परीक्षा पास करने के लिए, गवाहों के लिए अभियोजन पक्ष या कुछ विसंगतियों, अतिशयोक्ति के पक्ष में पूरी तरह से गवाही देना आवश्यक है। ऐसे गवाह की विश्वसनीयता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उसकी गवाही में अलंकरण और निर्भरता भी हो सकती है।

98. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता. ने प्रस्तुत किया है कि यह एक सामान्य कानून

है कि नेत्र संबंधी साक्ष्य को चिकित्सा साक्ष्य पर प्राथमिकता दी जा सकती है और यदि तथ्य के गवाह विश्वसनीय हैं तो उनके साक्ष्य को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। यद्यपि हम विद्वान राज्य के वकील द्वारा दी गई प्रस्तुतियों से सहमत हैं, फिर भी यह पता लगाना न्यायालय का कर्तव्य है कि गवाह के बयान का कौन सा हिस्सा सही है और कौन सा नहीं है। हम **गंगाधर बेहरा और अन्य उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी 381** मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं जिसमें इसे निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

"किसी विशेष भौतिक गवाह या विशेष सामग्री की असत्यता इसे शुरु से अंत तक बर्बाद नहीं करेगी। भारत में झूठ का बोलबाला' का कोई मतलब नहीं है और गवाहों को झूठा करार नहीं दिया जा सकता। 'जो एक मामले में झूठ बोलता है, वह हमेशा झूठा होता है।" को सामान्य स्वीकृति नहीं मिली है और न ही यह कहावत कानून के शासन की स्थिति पर कब्जा करने के लिए आई है। यह केवल सावधानी का नियम है। यह सब कुछ है कि ऐसे मामलों में गवाही की अवहेलना की जा सकती है, न कि इसकी अवहेलना की जानी चाहिए। सिद्धांत में केवल साक्ष्य के वजन का सवाल शामिल है जिसे एक अदालत दी गई परिस्थितियों में लागू कर सकती है, लेकिन इसे "साक्ष्य का अनिवार्य नियम" नहीं कहा जा सकता है। (देखें निसार अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर 1957 एससी 366: 1957 कि एलजे 550]) केवल इसलिए कि कुछ अभियुक्तों को बरी कर दिया गया है, हालांकि उन सभी के खिलाफ सबूत, जहां तक प्रत्यक्ष गवाही हुई है, एक ही था, इसका यह आवश्यक परिणाम नहीं है कि जिन लोगों को दोषी ठहराया गया है, उन्हें भी बरी कर दिया जाना चाहिए। अदालत के लिए यह हमेशा खुला रहता है कि वह बरी किए गए आरोपियों को उन लोगों से अलग करे जिन्हें दोषी ठहराया गया था। (देखें गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1956 एससी 460: 1956 क्रि एलजे 827])। यह सिद्धांत विशेष रूप से भारत में एक खतरनाक है क्योंकि अगर गवाही के पूरे हिस्से को खारिज कर दिया जाता है, क्योंकि एक गवाह स्पष्ट रूप से किसी पहलू में झूठ बोल रहा था, तो यह डर है कि आपराधिक न्याय का प्रशासन एक मृत अवस्था में आ जाएगा। गवाह किसी कहानी को गढ़ने में मदद नहीं कर सकते, हालांकि, मुख्य रूप से सच है। इसलिए, प्रत्येक मामले में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि साक्ष्य किस हद तक स्वीकृति के योग्य है, और केवल इसलिए कि कुछ मामलों में अदालत इसे गवाह की गवाही पर भरोसा करने के लिए अपर्याप्त मानती है, यह आवश्यक रूप से कानून के मामले के रूप में पालन नहीं करता है कि इसे सभी मामलों में भी अनदेखा किया जाना चाहिए। सबूतों को सावधानी के साथ जांचना होगा। उपरोक्त उक्ति इस कारण से एक अच्छा नियम नहीं है कि शायद ही कोई ऐसा गवाह मिलता है जिसके साक्ष्य में असत्य या किसी भी हालत में अतिशयोक्ति, गढ़ाई या अलंकरण का एक दाना नहीं होता है। (देखें सोहराब बनाम मध्य प्रदेश राज्य ((1972) 3 एससीसी 751: 1972 एससीसी (सीआरआई) 819] और उगर अहीर बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1965 एससी 277: (1965) 1 क्रि

एलजे 256) जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अभिनंदनीय रूपक के संदर्भ में, अनाज को भूसी से, सत्य को झूठ से अलग करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जहां सत्य को झूठ से अलग करना संभव नहीं है, क्योंकि अनाज और भूसी अटूट रूप से मिश्रित होते हैं, और अलग होने की प्रक्रिया में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आवश्यक विवरणों को पूरी तरह से उस संदर्भ और पृष्ठभूमि से अलग करके एक बिल्कुल नए मामले का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए, जिसके खिलाफ वे बनाए गए हैं, एकमात्र उपलब्ध तरीका यह है कि सबूतों को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाए। (देखें ज्विंगली एरियल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1952) 2 एससीसी 560: एआईआर 1954 एससी 15: 1954 क्रि एलजे 230] और बालाका सिंह बनाम पंजाब राज्य ((1975) 4 एससीसी 511: 1975 एससीसी (सीआरआई) 601 : एआईआर 1975 एससी 1962)।

99. इसे ध्यान में रखते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहां तक अपराध में बरी किए गए अभियुक्तों की गैर-भागीदारी से संबंधित है, प्रत्यक्षदर्शी की गवाही अभियुक्त बालगोविंद को छोड़कर सही पाई जाती है, लेकिन भारत में *"जो एक मामले में झूठ बोलता है, वह हमेशा झूठा होता है।"* कहावत को लागू न करने के मद्देनजर, हम यह भी नहीं कह सकते कि गवाह विश्वसनीय या विश्वसनीय नहीं हैं। आरोपी बालगोविंद को छोड़कर 45 मृतकों की हत्या के लिए चार आरोपियों को बरी करने और गवाह राम नाथ @ विजय को चोट पहुंचाने के संबंध में अपराध के संबंध में सभी आरोपी व्यक्तियों को बरी करने के संबंध में विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों के अनुसार है। जिसे हमने बरकरार रखा।

100. उपरोक्त कानूनी स्थिति और मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करते हुए, हमारा विचार है कि विद्वान ट्रायल जज ने आरोपी बालगोविंद को छोड़कर आरोपी प्रतिवादियों/विपरीत पक्षों को धारा 148, 302/149 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए बरी करने में पूरी तरह से उचित था।

101. परिणामस्वरूप, जीवित अपीलकर्ता संख्या-3 अर्जुन और 5-दयाराम की आपराधिक अपील संख्या 234 वर्ष 1981 को **बर्खास्त** किया जाता है। अपीलकर्ता संख्या 1. राम रतन, 2. घनशायम और 3. अपील के लंबित रहने के दौरान विश्राम की मृत्यु हो गई और अपील खारिज कर दी गई। साथ ही आरोपी बालगोविंद और रघुनाथ उर्फ भोराई के संबंध में ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में 1981 की सरकारी अपील संख्या 748 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 261 वर्ष 1981 को **भी आंशिक रूप से अनुमति** दी जानी चाहिए। तदनुसार, अभियुक्त रघुनाथ उर्फ भोराई को उसके खिलाफ लगाए गए सभी अपराधों के लिए बरी करने के आदेश की पुष्टि की जाती है और सत्र परीक्षण संख्या 309 वर्ष 1978 में भ०द०वि० की धारा 148, 302/149 के तहत अपराधों के लिए आरोपी बालगोविंद को बरी करने के आदेश को उलट दिया जाता है और उसे उपरोक्त अपराधों के लिए दोषी ठहराया जाता है और धारा 148 भ०द०वि० के तहत दो साल की अवधि के लिए कारावास की सजा सुनाई जाती है। भ०द०वि० की धारा 302,149 के तहत आजीवन कारावास की सजा

पाने वाले आरोपी बालगोविंद को सजा काटने के लिए तुरंत हिरासत में लिया जाए।

102. जीवित अपीलकर्ता संख्या-3 अर्जुन और 5-दयाराम की आपराधिक अपील संख्या 234 वर्ष 1981 (सत्र परीक्षण संख्या 309/1978) में भ०द०वि० की धारा 148, 302/149 के तहत दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की जाती है और आरोपी बालगोविंद के संबंध में सरकारी अपील संख्या 748 वर्ष 1981 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 261 वर्ष 1981 को **आंशिक रूप से अनुमति** दी जाती है जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

103. रिकॉर्ड और कार्यवाही को आवश्यक अनुपालन के लिए तुरंत नीचे की अदालत में वापस भेजा जाए।

(2023) 5 ILRA 485

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा,

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम,

आपराधिक अपील संख्या 620/1986

रविन्द्र कुमार और अन्य ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री जी.एस. हजेला, श्री ए.एन. मिश्रा, श्री अंशुल तिवारी, श्री एन.एल. त्रिपाठी, श्री राजीव नयन सिंह, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.जी.ए., श्री अभिषेक कुमार श्रीवास्तव, श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव, श्री जहीर असगर, श्री एस.एफ.ए. नकवी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1860 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860- आईपीसी की धारा 302/201 सपठित दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4- चुनौती- दोषसिद्धि-मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है- यह साबित करने की श्रृंखला कि अपराध आरोपी द्वारा किया गया था, पूरी नहीं थी- एफ.आई.आर. का संस्करण पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू.-2 यानी वादी और उसके बेटे द्वारा लिए गए संस्करण से बहुत अलग था- पी.डब्लू.-1 ने केवल एक निश्चित गवाह को लाने के लिए, जिसने मृतक को आरोपी के साथ जाते देखा था, पी.डब्लू. - 2 अर्थात उसका अपना पुत्र जिसने वादी के अनुसार अभियुक्त को मृतका को अपने साथ ले जाते देखा था - अभियोजन पक्ष निश्चितता से यह नहीं दिखा पाया है कि क्या गवाह मृतका के साथ गया था - सबसे पहले, उसका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था और दूसरे, जब गवाह स्वयं कठघरे में आया तो उसने विरोधाभासी बयान दिए - बरामदगी एक दिखावटी बरामदगी थी - अपराध करने का आशय स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं किया गया है - अभियोजन पक्ष यह मामला लेकर आया था कि दहेज की कुछ मांगें थीं, इसलिए यह साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है कि अभियुक्तगण पूर्णतः दोषी थे और चूंकि वे अभियुक्तगण को पूर्णतः दोषी सिद्ध नहीं कर सके, इसलिए हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष के मामले में कोई सार नहीं है और अपील स्वीकार किए जाने योग्य है। (पैरा 1 से 28)

बी. शरद ब्रदी चंद शारदा वाद के अनुसार, अभियुक्त को दोषी ठहराने की श्रृंखला को पूरा

करने के लिए निम्नलिखित पाँच आवश्यक तत्व मौजूद नहीं थे:

1. जिन परिस्थितियों के आधार पर दोष का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे पूरी तरह स्थापित होनी चाहिए।

2. इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए।

3. परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

4. उन्हें सिद्ध की जाने वाली एक परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर कर देना चाहिए।

5. साक्ष्यों की एक ऐसी श्रृंखला होनी चाहिए जो इतनी पूर्ण हो कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े तथा यह दर्शाए कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा। (पैरा 19)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) एआईआर एससी 1622
2. रामानंद उर्फ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) एआईआर एससी 5273
3. सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य (2022) एआईआर एससी 5110
4. ऋषि केश सिंह और अन्य बनाम राज्य (1970) एआईआर एल्ड 51(एफबी)

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम, द्वारा प्रदत्त)

दिनांक 17.10.1984 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर, जांच शुरू हुई और उसके बाद पुलिस ने अपीलकर्ताओं, अर्थात् रवींद्र कुमार, महेंद्र कुमार, नरेश कुमार और उनके पिता हुकुम चंद्र जैन शास्त्री को आरोपित करते हुए आरोप पत्र प्रस्तुत किया। इसके बाद अदालत ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप तय किए और उन पर दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 सपठित धारा 302/201 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाया।

आरोपियों को धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान देने का अवसर दिया गया, जिसमें उन्होंने किसी भी अपराध से इनकार किया। हालांकि, मुकदमे के बाद जब अपीलकर्ताओं को भ०द०वि० की धारा 201 सपठित धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया था, तो उनके द्वारा प्रस्तुत आपराधिक अपील दायर की गई थी।

अपील के लंबित रहने के दौरान हुकुम चंद्र जैन शास्त्री की 6.4.2009 को मृत्यु हो गई थी और इसलिए, इस न्यायालय ने दिनांक 13.3.2023 के आदेश के तहत अपीलकर्ता संख्या-4, हुकुम चंद्र जैन शास्त्री के संबंध में अपील को समाप्त कर दिया था।

प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि प्रथम सूचनाकर्ता सुरेखा जैन की बेटी, जिसकी उम्र लगभग 20 वर्ष थी, अपीलकर्ता के साथ 9.5.1984 को शादी के बाद रवींद्र कुमार पुत्र हुकुम चंद्र जैन शास्त्री,

कुछ प्रयासों के बाद 10.10.1984 को अपने मायका के पास आई थी। 15.10.1984 को अपने पति उसे एक सिनेमा शो के लिए ले गए और वह अपने दोस्तों और परिवार के सदस्यों को सूचित करने के बाद सिनेमा शो में गई थी। प्राथमिकी संस्करण यह है कि 16.10.1984 को, महेंद्र कुमार, मृतकाके जेठ, मृतका के पति के साथ पहले सूचनाकर्ता (मृतका के मायका) के घर आए थे और आरोप लगाया था कि पहले सूचनाकर्ता ने मृतका को अपने घर में छिपा दिया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह कहा गया है कि उन्होंने पहले सूचनाकर्ता के घर की तलाशी भी ली थी। तथापि, दिनांक 17-10-1984 को ही मृतका का शव जल निगम के निकट कुएं में पाया गया। चूंकि पहले सूचनाकर्ता को यह आशंका थी कि दहेज की कमी के कारण उसकी बेटी को उसके ससुराल वालों ने मार दिया है, इसलिए उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। जब प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और पंचनामा तैयार करने के बाद शव को शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया। पहले सूचनाकर्ता चक्रेश्वर कुमार जैन ने आरोप लगाया था कि मृतका के ससुराल वाले पैसे वाले लोग थे और इसलिए डॉक्टरों की टीम ने शव परीक्षण कराया? इसके बाद, अभियुक्तों को 21.10.1984 को गिरफ्तार किया गया और अभियुक्त- रवींद्र कुमार के इशारे पर, बेंत (डंडा) जिसके द्वारा यह आरोप लगाया गया था कि आरोपी रवींद्र कुमार ने मृतका के निजी अंगों पर चोट पहुंचाई थी और उसके बाद, उसकी मृत्यु का कारण बना था। साथ ही कुछ टूटी हुई चूड़ियां भी बरामद की गईं। यह आरोप लगाया गया है कि बरामदगी दो स्वतंत्रता गवाहों श्री गोपी कृष्ण तिवारी पुत्र श्री कृष्ण जी तिवारी और श्री चेला राम के पुत्र श्री चंद्रभान की उपस्थिति में की गई थी।

मृतका के शव का शव परीक्षण 18-10-1984 को किया गया था और गला घोंटने के परिणामस्वरूप मृत्यु का कारण श्वासावरोध पाया गया था। शव परीक्षण में शव के जख्मों के संकेत मिले थे। आरोप तय किए जाने के बाद, अभियोजन पक्ष के निम्नलिखित गवाहों की जांच की गई और उनसे जिरह की गई। वे इस प्रकार थे: -

अ०सा०-1 चक्रेश्वर कुमार,
अ०सा०-2 रूपेश कुमार जैन,
अ०सा०-3 श्यामा,
अ०सा०-4 श्रीमती अंजना,
अ०सा०-5 जानकी प्रसाद,
अ०सा०-6 श्रीमती कमला,
अ०सा०-7 डॉ. वी.पी. शुक्ला,
अ०सा०-8 छोटे लाल,
अ०सा०-9. चंद्रभान,
अ०सा०-10 कंछेदी लाल,
अ०सा०-11 गोपी कृष्ण तिवारी,
अ०सा०-12 प्यारे,
अ०सा०-13 जगदीश नारायण वैद्य,
अ०सा०-14 अशोक कुमार सिंघाई,
अ०सा०-15 उत्तम चंद्र राकेश,
अ०सा०-16 दुर्गा प्रसाद,
अ०सा०-17 हर प्रसाद और;
अ०सा०-18 शिव मंगल सिंह।

अ०सा०-1 मृतका का पिता है और पहला सूचनाकर्ता भी है। उन्होंने परीक्षा में आरोप लगाया है कि उनकी बेटी की शादी 9.5.1984 को रविंद्र कुमार के साथ हुई थी। शादी में उसने दहेज के रूप में लगभग 40,000 रुपये

दिए थे जो पहले दोनों पक्षों के बीच तय किया गया था। 40,000 रुपये से उसने आरोप लगाया था कि उसने 5,000 रुपये का सोना और 25,000 रुपये नकद दिए थे और शेष राशि अन्य खर्चों पर खर्च की गई थी और इस तथ्य के बावजूद कि उसने इतना पैसा खर्च किया था, दूल्हे का पक्ष संतुष्ट नहीं था और वे हर समय अधिक पैसे मांग रहे थे। शादी के 15 दिन बाद मई के महीने में ही पहले सूचनाकर्ता रूपेश का बेटा सुरेखा को लेने गया था लेकिन ससुराल वालों ने सुरेखा को उसके मायका भेजने से मना कर दिया था और जोर देकर कहा था कि जब तक 2,000 रुपये नहीं दिए जाते, दर्पण और गोदरेज अलमीरा के साथ ड्रेसिंग टेबल नहीं दी जाती थी, वे सुरेखा को उसके मायका के पास नहीं भेजेंगे और इसलिए (कहा गया है कि) रूपेश खाली हाथ वापस आया था। उसने यह भी कहा था कि अपने बच्चे की खुशी के लिए, उसने अंततः 2,000 रुपये और एक स्टील की अलमारी दी थी और उसके बाद वह ससुराल गया था। इसके बाद बेटी अपने मायके के पास आ गई थी, लेकिन बहुत कम समय के बाद सुरेखा के देवर नरेश कुमार फिर से अपने ससुराल वापस आ गए। उन्होंने कहा है कि जब उन्होंने सुरेखा को भेजने से इनकार कर दिया था तो इससे देवर नाराज हो गए थे और उन्होंने उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी। फिर से यह कहा गया कि जब सावन का महीना आया, तो पहला सूचनाकर्ता फिर से घर गया और अनुरोध किया था कि वे रक्षा बंधन के लिए सुरेखा को भेज दें लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूप से पूछा कि क्या पहला सूचनाकर्ता पैसे और ड्रेसिंग टेबल लाया था। जब पहले सूचनाकर्ता ने बताया कि वह मांगी गई राशि और ड्रेसिंग टेबल, जिसके लिए कहा जा रहा है, की व्यवस्था नहीं कर सकता है तो ससुराल वालों ने कहा था वे सुरेखा को पहले सूचनाकर्ता के साथ नहीं भेजेंगे और इसलिए, पहला सूचनाकर्ता घर वापस चला गया। हालांकि, उन्होंने फिर से कहा कि रक्षाबंधन पर उन्होंने अपने बेटे रूपेश को सुरेखा को इस आश्वासन के साथ भेजा था कि ससुराल वालों की मांग पूरी की जाएगी और आश्वासन पर सुरेखा को उनके मायका भेजा गया था। रक्षाबंधन पर आने के बाद, सुरेखा केवल तीन दिनों के लिए रुकी थी जब उसका देवर फिर से उसे वापस लेने आया और 1,500/- रुपये और ड्रेसिंग टेबल के लिए भी जोर दिया। देवर के अनुरोध पर पहले सूचनाकर्ता ने सुरेखा को ससुराल भेजा। 8.10.1984 को हुकुम चन्द्र जैन शास्त्री पुनः आए और सुरेखा के दादा से कहा कि वे अपनी पुत्री को घर ले जा सकते हैं। यह खबर दादा ने पहले सूचनाकर्ता को पहुंचाई। उन्होंने चिंता जताई कि ऐसा क्या था जिसने ससुराल वालों के रवैये में बदलाव लाया था।

ससुराल वालों के इस आग्रह पर कि पहला सूचनाकर्ता सुरेखा को घर ले जाए 10.10.1984 को, पहला सूचनाकर्ता सुरेखा को घर ले आया था। पहले सूचनाकर्ता द्वारा मुख्य परीक्षण में बताया गया है कि घर आने के बाद सुरेखा बहुत रोई और कहा कि उसके बुरे भाग्य के कारण वह पीड़ित थी। उसने यह भी बताया कि उसे ससुराल में प्रताड़ित किया जा रहा है। उसे पीटा जा रहा था और गालियां भी दी जा रही थीं। यह सब उसने आकर अपनी माँ और चाची को बताया और अपनी बुआ श्रीमती अंजना को

भी। श्रीमती आंजना को उन्होंने यह भी बताया कि उन्हें कलूटी कहा जा रहा है। इससे उसका मतलब था कि वे उसकी त्वचा का रंग पसंद नहीं कर रहे थे। अपने मायका आने पर उसने घर की महिलाओं को यह भी बताया कि उसके पति ने उससे वादा लिया है कि वह 15 अक्टूबर को सिनेमा शो के लिए जाएगी। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में यह भी कहा है कि जब उन्हें पता चला कि उनकी बेटी का पति उसे सिनेमा शो के लिए ले जा रहा है तो उसने कहा कि अगर पति वास्तव में उसे लेने आ रहा है तो वह जा सकती है। उन्होंने आगे कहा कि 15.10.1984 को लगभग पौने सात बजे रवीन्द्र कुमार आए और बाहर खड़े रहे और सुरेखा को अपने साथ ले गए और उनके साथ रूपेश उनका बेटा भी चला गया था। हालांकि, रूपेश को यह कहते हुए वापस भेज दिया गया कि दंपति नाइट शो देखने का इरादा रखते हैं। हालांकि, जब सुरेखा और उनके पति 16.10.1984 को लगभग 3:00 बजे नहीं आए, तो पहले सूचनाकर्ता ने रूपेश को सुरेखा को वापस लाने के लिए उसके ससुराल भेजा। इसके बाद शाम 4:00 बजे जेठ महेंद्र कुमार और पति रविंद्र कुमार पहले सूचनाकर्ता के घर आए और कहा कि रविंद्र कुमार ने रात में सुरेखा को भेजा था। आश्चर्य होने पर पहले सूचनाकर्ता ने रवींद्र कुमार से पूछा कि क्या उसने सुरेखा को उसके मायका छोड़ दिया था। जिस पर, रवींद्र कुमार ने कहा कि उन्होंने वास्तव में, सुरेखा को उसके मायका पर छोड़ दिया था। इसके बाद पहले सूचनाकर्ता ने रविंद्र कुमार को सूचित किया कि सुरेखा कभी अपने मायका तक नहीं पहुंची थी। इस पर पहले सूचनाकर्ता द्वारा बताया गया है कि रविंद्र कुमार और उसके भाई सुरेखा के न मिलने की बात से काफी नाराज थे। इस पर पहले सूचनाकर्ता ने कहा कि चूंकि सुरेखा उनकी बहू थी और वह पहले सूचनाकर्ता की बेटी भी थी, इसलिए यह उपयुक्त होगा कि सभी मिलकर उसे खोजें। इस पर ससुराल वालों ने कहा कि वह उनकी बहू नहीं है और पहला सूचनाकर्ता जो चाहे कर सकता है। नतीजतन, पहले सूचनाकर्ता द्वारा यह सूचित किया गया है कि वह उसकी तलाश करने के लिए निकला था। दिनांक 17-10-1984 को मृतका का शव कुएं में मिला। इसके बाद पहले सूचनाकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को साबित किया और उन दस्तावेजों को भी साबित किया जिनके द्वारा उसने जोर देकर कहा था कि शव परीक्षण डॉक्टरों के एक पैनल द्वारा किया जाना चाहिए।

जिरह में वह उस बात पर अडिग रहे जो उन्होंने मुख्य परीक्षा में कही थी। चूंकि उन्होंने प्राथमिकी में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया था कि रूपेश भी 15.10.1984 को फिल्म देखने के लिए गए थे, उन्होंने चिंता व्यक्त की कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनका बयान जिसमें उन्होंने कहा था कि रूपेश भी दंपति के साथ गए थे, विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज नहीं किया गया था। उन्होंने जोर देकर कहा कि 16.10.1984 को शाम करीब 4:00 बजे महेंद्र कुमार, रविंद्र कुमार सुरेखा को ढूंढते हुए आए थे।

अ०सा०-2 रूपेश जो शपथ पर दिनांक 28.8.1985 को अपना बयान देने के समय 14 वर्ष का था, ने कहा कि नकदी, ड्रेसिंग टेबल और अलमारी की मांग पर पत्नी पक्ष ने नकद,

ड्रेसिंग टेबल और अलमारी दी थी। उन्होंने यह भी कहा है कि वह फिल्म के लिए अपनी बहनों और रवींद्र कुमार के साथ गए थे, लेकिन उन्हें घंटाघर से वापस जाने के लिए कहा गया था क्योंकि दंपति ने जोर देकर कहा था कि वे रात का शो देखेंगे और उन्होंने यह भी कहा कि उनकी बहन रात में नहीं लौटी थी। उन्होंने अपनी बहन के पहनावे का विशद वर्णन किया है जैसे चूड़ियाँ, नोज़ पिन, पायल बिच्छिया और साड़ी और बैगानी रंग का ब्लाउज। उसने यह भी कहा कि अगली तारीख को जब बहन वापस नहीं लौटी तो वह अपनी बहन के ससुराल गया था, तभी उसे बताया गया कि उसकी बहन वास्तव में रवींद्र कुमार के साथ गई थी और उसके सामने दरवाजा बंद था। उन्होंने यह भी कहा है कि 16.10.1984 को सुबह लगभग 9:30 बजे नरेश और महेंद्र पहले सूचनाकर्ता के घर आए थे और घर की तलाशी ली थी। वे सुरेखा को खोजने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने यह भी बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि जब सुरेखा अपने पति के साथ गई थी तो प्रथम सूचनादाता सुरेखा के पिता उनके निवास पर नहीं थे।

अ०सा०-3 श्यामा जो मृतका का पड़ोसी था, मायका के पड़ोस में रहता था। उसे यह दिखाने के लिए पेश किया गया है कि उसने मृतका को फिल्म के लिए रवींद्र कुमार के साथ जाते हुए भी देखा था। उनके द्वारा बताया गया है कि उन्होंने सुरेखा से खासतौर पर पूछा था कि वह किसके साथ फिल्म देखने जा रही हैं तो सुरेखा ने कहा था कि वह अपने पति और उसके छोटे भाई के साथ जा रही हैं।

अ०सा०-4, श्रीमती अंजना जो मृतका की चचेरी बहन बुआ थी, को भी इस बात का सबूत देने के लिए पेश किया गया था कि उसने फिल्म देखने जा रहे दंपति को भी देखा था। उसने यह भी आश्चर्य जताया था कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसके बयानों में यह उल्लेख क्यों नहीं किया गया था कि मृतका का छोटा भाई दंपति के साथ था।

अ०सा०-5 मृतका का दादा है। उन्होंने इस तथ्य को भी स्थापित करने की कोशिश की थी कि चूंकि आरोपी दहेज चाहते थे, इसलिए उन्होंने सुरेखा की हत्या कर दी थी।

अ०सा०-6 कमला है जो मृतका की चचेरी दादी है और उसने यह भी कहा है कि उसने मृतका को उसके पति के साथ फिल्म देखने जाते हुए देखा था।

अ०सा०-7 वह डॉक्टर है जिसने शव परीक्षण किया था और शव परीक्षण साबित हुआ है।

अ०सा०-8 छोटेलाल गवाह था जिसके कब्जे से मशाल बरामद हुई थी लेकिन वह मुकर गया।

डंडा और चूड़ियों की बरामदगी के दौरान रवींद्र कुमार के साथ आए अ०सा०-9 चंद्रभान ने न्यायालय में अपना बयान दिया और बरामदगी साबित करने की कोशिश की। हालांकि, जब उनसे पूछा गया कि क्या वह रविंद्र कुमार को पहचानते हैं तो उन्होंने नरेश पर हाथ रखकर कहा कि वह रवींद्र कुमार हैं।

अ०सा०-10 वह दुकानदार है जिसे यह साबित

करने के लिए पेश किया गया था कि दहेज में जो सामान दिया गया था, वह उसकी दुकान से खरीदा गया था।

अ०सा०-11, गोपी कृष्ण तिवारी जो बरामदगी के गवाह थे, को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। इसी तरह, अ०सा०-12 जिसने कहा था कि उसने कुएं में कुछ गिराते हुए देखा था, उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। इसी तरह अ०सा०-13 जो पत्रिका (साप्ताहिक) के संपादक थे, को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। सुरेखा के मामा अ०सा०-14 अशोक कुमार सिंघई को भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। अ०सा०-15 पंचनामा का गवाह है और अ०सा०-16, अ०सा०-17 और अ०सा०-18 औपचारिक गवाह हैं।

अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं:

I. वह प्रस्तुत करता है कि यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट का अवलोकन किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं था कि मृतका उसके भाई रूपेश कुमार के साथ थी, फिर भी अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने मुकदमे के दौरान अपनी मुख्य परीक्षण में एक मामला बनाने की कोशिश की है कि रूपेश कुमार मृतका के साथ थे। वास्तव में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि रूपेश कुमार कभी भी मृतका के साथ नहीं गए थे और केवल उसे गवाह बनाने के लिए जिसने मृतका को आखिरी बार आरोपी के साथ जाते हुए देखा था, एक नया मामला बनाया जा रहा है। इस संबंध में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया था कि अ०सा०-3, 4 और 6, अर्थात् श्यामा, श्रीमती अंजन और कमला को भी गवाह बनाने की मांग की गई थी, जिन्होंने अपीलकर्ता रवींद्र कुमार को फिल्म देखने के लिए मृतका के साथ जाते देखा था। यह तर्क दिया गया है कि उन्हें सबसे अप्राकृतिक तरीके से अपने साक्ष्य देने के लिए बनाया गया है। जहां तक अ०सा०-3 का संबंध है, यह कहा गया है कि वह एक पड़ोसी थी, जिसका नाम श्यामा था और उसने कहा कि उसने इस आशय का एक प्रश्न पूछा था कि वास्तव में सुरेखा के साथ कौन जा रहा था। अगर वह पड़ोसी थी और वह मृतका को जानती थी तो उसे कम से कम यह पता होना चाहिए था कि छोटा भाई रूपेश उसके साथ जा रहा है। एक पल के लिए तो यह माना जा सकता है कि वह पति रविंद्र कुमार को पहचान नहीं रही थी लेकिन उसे भाई को जरूर पहचानना चाहिए था और इसलिए उसका यह पूछना कि सुरेखा किसके साथ फिल्म देखने जा रही है, एक बहुत ही अस्वाभाविक सवाल था। आगे अ०सा०-4 और 6 जिन्हें गवाह के रूप में भी पेश किया गया था, जिन्होंने मृतका को आखिरी बार आरोपी रवींद्र कुमार के साथ जाते हुए देखा था, अगर उनके सबूतों को देखा जाए तो यह अजीब लगता है कि उन्हें साड़ी और ब्लाउज का रंग और क्या वह बिच्छू, चूड़ियां और पायल धारण किए थी, जैसी बहुत अजीब बातें याद आ रही थीं। और इसलिए, अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि वे सभी गवाह थे और उन्होंने वास्तव में मृतका को आरोपी रवींद्र कुमार के साथ जाते नहीं देखा था।

II. यह प्रस्तुत किया गया है कि पूरे अपराध का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था और इसलिए, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1622 में रिपोर्ट किए गए शरद

बिरधीचंद शारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य पर भरोसा किया, और प्रस्तुत किया कि यह देखने के लिए निम्नलिखित होना चाहिए कि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए सबूतों की श्रृंखला पूरी हो गई है या नहीं। अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए श्रृंखला को पूरा करने के लिए निम्नलिखित पांच आवश्यक तत्व नहीं थे:

"1. जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।
2. इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए।
3. परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।
4. उन्हें साबित होने वाली एक परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए।
5. सबूतों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

III. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि यदि अ०सा०-3, 4 और 6 के बयानों का अवलोकन किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जो सबूत लेकर आ रहे थे, वह विश्वास करने के लिए बहुत अच्छा सबूत था। वे मृतका के हर छोटे विवरण को याद कर रहे थे और इससे सबूत संदिग्ध हो जाते हैं।

IV. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि रिकॉर्ड पर सामने लाए गए सबूतों में विभिन्न विरोधाभास थे। अ०सा०-1 का कहना है कि आरोपी जब अपनी बेटी सुरेखा के साथ गया था, तो वह घर में था, लेकिन अ०सा०-2, भाई जिसे अ०सा०-1 ने दंपति के साथ बताया था, का कहना है कि जब आरोपी और उसकी बहन (मृतका) फिल्म देखने जा रहे थे, पिता (अ०सा०-1) उस समय मौजूद नहीं थे। आगे यह कहा गया है कि अ०सा०-1, 16 अक्टूबर 1984 को जब ससुराल वाले मृतका की तलाश में आए थे, एक अलग समय देता है। उनका कहना है कि वे शाम को मायका में मृतका की तलाश करने आए थे। हालांकि, अ०सा०-2 का कहना है कि ससुराल वाले मृतका की तलाश में सुबह 16.10.1984 को आए थे।

V. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत की जाने वाली बरामदगी कानून की नजर में कोई बरामदगी नहीं थी, जैसा कि रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 5273 में रिपोर्ट किया गया था और सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 5110 में रिपोर्ट किया गया था।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत बरामदगी के दो भाग हैं। पहला यह कि जब पुलिस आरोपी को अपनी हिरासत में लेती है तो उसे दो स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में बयान दर्ज करना होता है कि बरामदगी का इरादा क्या था। इसके बाद, जब पुलिस आरोपी

और दो स्वतंत्र गवाहों के साथ उस स्थान पर पहुंचती है जहां छुपाए गए लेखों का लेखक पुलिस पक्ष को ले जाता है और पुलिस पक्ष को छुपाई गई वस्तुओं का पता चलता है, तो एक फ़र्द बरामदगी फिर से तैयार करना पड़ता है। प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि पहला कदम गायब था। 2 स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में अभियुक्त का कोई बयान दर्ज नहीं किया गया था कि वह क्या बरामदगी करने का इरादा कर रहा था।

इसके अलावा, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि अगर स्वतंत्र गवाह चंद्रभान के बयान का अवलोकन किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अदालत में वह रवींद्र कुमार को भी नहीं पहचान पाए थे और वास्तव में, नरेश कुमार पर अपना हाथ रखा था। इसलिए, वह कहता है कि बरामदगी एक फर्जी बरामदगी थी। उन्होंने आगे कहा कि पंचनामा में मृत शरीर को मृतका के हाथों में चूड़ियां मिली थीं और इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि जिन टूटी हुई चूड़ियों को बरामद करने की मांग की गई थी, वे वास्तव में प्लांट किए गए थे। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि डंडा भी केवल मृतका के निजी अंगों पर पूर्व-मृत्यु चोटों के साथ मिलान करने के लिए लगाया गया था।

VI. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे कहा कि दहेज की मांग भी स्थापित नहीं की गई थी और इसलिए, कोई मकसद उपलब्ध नहीं था। वास्तव में, वह प्रस्तुत करता है कि प्रदर्श क-(4) के तहत, अभियोजन पक्ष ने आशंका जताई थी कि आरोपी पक्ष बहुत अमीर था और इसलिए, उन्होंने डॉक्टरों के एक पैनल द्वारा शव परीक्षण कराने के लिए एक आवेदन दायर किया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि जब अभियोजन पक्ष एक मामला लेकर आया था कि अपीलकर्ता 2,000 रुपये, एक ड्रेसिंग टेबल और एक अलमीरा की मांग कर रहे थे और उसके बाद पाया था कि यह मांग आरोपी व्यक्तियों के लिए बहुत अपर्याप्त प्रतीत हो सकती है, जो बहुत अमीर थे, तो वे एक और मामला लेकर आए कि आरोपी मृतका की त्वचा का रंग पसंद नहीं कर रहे थे और इसलिए, वे इस मामले के साथ आए कि ससुराल वाले उसे 'कलूटी' कहते थे।

हालांकि, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री जे.के उपाध्याय ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि आरोपी मृतका के साथ फिल्म देखने गए थे, इसलिए वास्तव में, यह साबित करने का बोझ कि आरोपी निर्दोष थे, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के मद्देनजर उन पर स्थानांतरित हो गए थे।

आगे अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि शव परीक्षण केवल तीन दिनों के बाद किया गया था और इसलिए, शव परीक्षण में पाए गए पूर्व-मृत्यु चोटें बहुत कुछ बोलती हैं। फिर भी आगे अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस तथ्य के बारे में पता चलने पर कि मृतका को 16.10.1984 को नहीं पाया जाना था, अपीलकर्ताओं के आचरण ने स्पष्ट रूप से स्पष्ट कर दिया कि वे अपराध के कर्ता थे।

वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी श्रीवास्तव, श्री एन.एल त्रिपाठी और श्री राजीव नयन सिंह,

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता और श्री जे.के उपाध्याय, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता निर्दोष थे और अपील की अनुमति दी जानी चाहिए। पहले मामले में, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। निश्चित रूप से यह साबित करने की श्रृंखला पूरी नहीं हुई थी कि अपराध आरोपी द्वारा किया गया था। पहले उदाहरण में, हम पाते हैं कि प्राथमिकी संस्करण, उस संस्करण से बहुत अलग था जो अ०सा०-1 और अ०सा०-2 यानी पहले सूचनाकर्ता और उसके बेटे द्वारा लिया गया था। अ०सा०-1 ने केवल एक निश्चित गवाह को लाने के लिए जिसने मृतका को आरोपी रवींद्र कुमार के साथ जाते हुए देखा था, अ०सा०-2 यानी उसका अपना बेटा रूपेश कुमार था, जिसने पहले सूचनाकर्ता के अनुसार आरोपी को मृतका को अपने साथ ले जाते देखा था, को परिचित कराया। अदालत ने पाया कि अभियोजन पक्ष किसी भी निश्चितता के साथ यह दिखाने में सक्षम नहीं है कि रूपेश मृतका के साथ था या नहीं। पहली बात तो यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उनका नाम नहीं मिला और दूसरा गवाह रूपेश जब गवाह के कटघरे में आए तो उन्होंने विरोधाभासी बयान दिए। उन्होंने कहा है कि जिस समय मृतका रविंद्र कुमार के साथ गया था, उस समय मृतका के पिता घर पर नहीं थे। ये सभी कारक न्यायालय के मन में संदेह पैदा करते हैं।

दूसरे, हम पाते हैं कि चूंकि ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 5273 में रिपोर्ट किए गए रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 5110 में रिपोर्ट किए गए सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य में निर्धारित कानून के अनुसार बरामदगी नहीं की गई थी, इसलिए बरामदगी एक दिखावा बरामदगी थी। इसके अलावा, हम पाते हैं कि अपराध करने का मकसद स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं किया गया है। सबसे पहले, अभियोजन पक्ष एक मामला लेकर आया था कि दहेज की कुछ मांगें थीं। हालाँकि, यहाँ तक कि पिता द्वारा की गई माँगें भी उन माँगों से बहुत भिन्न पाई गईं जो पुत्र द्वारा आगे प्रस्तुत की गई थीं। एक जगह वे कहते हैं कि पैसे के अलावा, ड्रेसिंग टेबल की मांग की गई थी। दूसरी जगह वे कहते हैं कि पैसे के अलावा एक अलमारी की मांग की गई थी। पिता और पुत्र की जोड़ी को जब पता चला कि आरोपी पक्ष अमीर है तो उन्होंने यह कहकर मामले को रंग देने की कोशिश की कि मृतका ने ये भी उल्लेख किया था कि मृतका की त्वचा का रंग ससुराल वालों को पसंद नहीं था।

ए.आई.आर. 1970 इलाहाबाद 51 (एफबी) में रिपोर्ट किए गए ऋषि केश सिंह और अन्य बनाम राज्य में निर्धारित कानून के अनुसार, चूंकि यह साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है कि अभियुक्त दोषी थे और चूंकि वे अभियुक्त को पूरी तरह से दोषी साबित नहीं कर पाए हैं, इसलिए हम पाते हैं कि अभियोजन के मामले में कोई सार नहीं है और अपील की अनुमति दी जानी चाहिए। हम निश्चित रूप से जानते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तथ्यों का विश्वकोश नहीं है। हालांकि, यह तथ्य कि पहला सूचनाकर्ता पहली सूचना रिपोर्ट में यह सूचित करने से चूक गया कि पहले सूचनाकर्ता का बेटा मृतका और उसके

पति के साथ था, एक महत्वपूर्ण चूक है। अभियोजन पक्ष के विभिन्न गवाहों के बयानों में अ०सा०-2 रूपेश कुमार जैन की उपस्थिति को सामने लाया गया है, अभियोजन पक्ष के गवाह यह साबित करने में बुरी तरह विफल रहे हैं कि अ०सा०-2 रूपेश कुमार जैन मृतका और उसके पति के साथ सिनेमा देखने गए थे। इसके अलावा, यदि विभिन्न विरोधाभासों और अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों के बयानों की जांच की जाती है, तो एकमात्र अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अभियोजन पक्ष अ०सा०-2, रूपेश कुमार जैन को एक गवाह के रूप में लाने की कोशिश कर रहा था, जिसने मृतका और उसके पति को आखिरी बार एक साथ जाते देखा था।

अभियोजन पक्ष को अपने मामले को सभी उचित संदेह से परे साबित करना होगा जैसा कि ऋषि केश सिंह और अन्य बनाम द स्टेट ए.आई.आर. 1970 इलाहाबाद 51 (एफबी) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले द्वारा अवधारित किया गया है। निर्णय के ऑपरेटिव भाग को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"177. बहुमत की राय के अनुसार, इस पूर्ण पीठ को संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर इस प्रकार है: -

1941 में बहुमत का निर्णय सभी एलजे 619 ए.आई.आर. 1941 सभी 402 (एफबी) अभी भी अच्छा कानून है। आरोपी व्यक्ति बरी होने का हकदार है यदि समग्र रूप से साक्ष्य पर विचार करने पर (सामान्य अपवाद की दलील के समर्थन में दिए गए साक्ष्य सहित) अभियुक्त के अपराध के बारे में न्यायालय के मन में एक उचित संदेह पैदा किया जाता है।

अभियोजन पक्ष निश्चित रूप से उस मामले को साबित करने में विफल रहा जो उसके द्वारा सभी उचित संदेह से परे लिया गया था।

ऐसी परिस्थितियों में, अपील की अनुमति दी जाती है। अपर सत्र न्यायाधीश, ललितपुर द्वारा एस.टी. संख्या-4 वर्ष 1985 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.2.1986 को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 494

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक अपील संख्या 1248/1985

बल्लू मल ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वीरेश मिश्रा, श्री राधेश्याम यादव (न्यायमित्र)

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.जी.ए.

ए. दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2)- आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 - धारा-3/7-दोषसिद्धि - चुनौती- अपीलकर्ता की दुकान पर छापा मारा गया, पाया गया कि अभियुक्त ने 30 कुंतल चावल की डिलीवरी ली थी, उसे वितरित करने के बजाय उसने अन्यथा उसका निपटान कर दिया, इसके अलावा उसकी दुकान पर स्टॉक रजिस्टर में दर्शाए गए से 2 कुंतल 40 किग्रा आटा आटा चक्की कम पाई

गई- उसने उत्तर प्रदेश खाद्यान्न एवं अन्य आवश्यक वस्तु वितरण आदेश, 1977 की धारा 4 एवं 23 तथा खाद्यान्न व्यापारी (लाइसेंसिंग और जमाखोरी पर प्रतिबंध) आदेश, 1976 के तहत जारी किए गए फॉर्म 'डी' लाइसेंस की शर्त संख्या 3 (1) (बी) और (सी) का उल्लंघन करके और इस प्रकार आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत खुद को उत्तरदायी बनाकर उत्तर प्रदेश खाद्यान्न एवं अन्य आवश्यक वस्तु वितरण आदेश, 1977 की धारा 8 का उल्लंघन किया - वर्तमान मामले में, कथित घटना लगभग 40 साल पहले हुई थी और अपीलकर्ता कोई पूर्व दोषी नहीं है - आरोपी हिरासत में रहा है - इस अपील के निस्तारण में लंबे समय तक देरी के लिए अकेले अपीलकर्ता को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है - इसलिए, अपीलकर्ता की दोषसिद्धि बरकरार रखी गई है, लेकिन विचारणीय न्यायालय द्वारा दी गई तीन माह की सजा को निरस्त कर दिया गया है और आरोपी-अपीलकर्ता को उसके द्वारा पहले से बिताई गई अवधि के साथ 5,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। (पैरा 1 से 36)

बी. यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि सजा न्यायसंगत होनी चाहिए, लेकिन साथ ही अपराध और सजा के बीच आनुपातिकता के सिद्धांत को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है - न्यायसंगत सजा का सिद्धांत आपराधिक अपराध के संबंध में सजा देने का आधार है - सजा अनुपातहीन रूप से अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। (पैरा 32)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अभियुक्त "X' बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 7 एससीसी 1
2. एम.पी. राज्य बनाम उधम एवं अन्य (2019) 10 एससीसी 300
3. एम.पी. राज्य बनाम विक्रम दास (2019) 4 एससीसी 125
4. एम.डी. गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य (1977) एआईआर एससी 1926
5. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य (2004) 7 एससीसी 257
6. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य (2017) एआईआर एससी 1166
7. जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एससीसी 532
8. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734
9. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह (2014) 7 एससीसी 323
10. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) 3 सी सी 441
11. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य (2016) 1 एससीसी 463
12. गोपाल सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2013) 7 एससीसी 55

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता-अभियुक्त की ओर से पेश हुए न्याय मित्र श्री राधेश्याम यादव, राज्य की ओर से अपर शासकीय

अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. वर्तमान अपील आक्षेपित निर्णय से उत्पन्न हुई है और आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (इसके बाद 'ई.सी. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) वाद संख्या 09/1983 की धारा 3/7 के तहत, (राज्य बनाम बल्लूमल) में विद्वान विशेष न्यायाधीश (आवश्यक वस्तु अधिनियम), कानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.07.1985'), थाना - चमनगंज, जिला कानपुर, जिसमें अभियुक्त-अपीलकर्ता बल्लूमल को आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत दोषी ठहराया गया और तीन महीने के कठोर कारावास और 2000/ रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई।

3. अभियोजन मामले में संक्षेप में सामने आए तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 16.01.1983 को अपीलकर्ता की दुकान पर एस.एम.आई., एम.ए. सिद्दीकी, विपणन निरीक्षक अशोक कुमार बाजपेयी, एस.के. पाल, सनद कुमार श्रीवास्तव और रवि नारायण श्रीवास्तव के साथ क्षेत्रीय प्रवर्तन दस्ते द्वारा छापा मारा गया था। निरीक्षण के समय पाया गया कि उक्त दुकान से अभियुक्त द्वारा दिनांक 11.01.1983 को क्षेत्रीय खाद्य अधिकारी अनवरंज के आदेशानुसार 30 कुन्तल चावल का वितरण आर.एफ.सी गोदाम मैरी कम्पनी कानपुर हेतु ली गयी थी। उसने ऐसे चावल को दुकान पर लाकर कार्ड धारकों को वितरित करने के बजाय उसका अन्यथा निस्तारण कर दिया, क्योंकि आरोपियों के रजिस्टर में ऐसे चावल की प्राप्ति और निपटान की कोई प्रविष्टि नहीं थी। इसके अलावा उनकी दुकान पर स्टॉक रजिस्टर में दर्शाए गए आटे से 2 क्विंटल 40 किलोग्राम आटा कम पाया गया। इस मामले के मद्देनजर उन्होंने कथित तौर पर यूपी खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तु वितरण आदेश, 1977 के खंड 4 और 23 का उल्लंघन किया और उसे जारी किए गए फॉर्म 'डी' के लाइसेंस की शर्त संख्या 3 (1) (बी) और (सी) का उल्लंघन करके यूपी फूडग्रेन डीलर्स (लाइसेंसिंग और जमाखोरी पर प्रतिबंध) आदेश, 1976 के खंड 8 का उल्लंघन किया गया है और इस प्रकार वह खुद आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत उत्तरदायी बनाता है।

4. उसी दिन शिकायतकर्ता कृष्णपाल, मार्केटिंग इंस्पेक्टर की शिकायत के आधार पर आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज किया गया था। अपीलकर्ता के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई और प्रविष्टियाँ चिक एफआईआर और कैमी जी.डी. में की गईं, उसकी कार्बन कॉपी भी मूल के साथ उसी प्रक्रिया में तैयार की गई। विवेचना एस.आई. जगदंबा बख्श सिंह को सौंपी गई।

5. विवेचना अधिकारी ने मामले की विवेचना की है साइट प्लान तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज किए।

उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता प्रदर्श क-11 के कब्जे से बिक्री रजिस्टर (प्रदर्श. II और III), स्टॉक रजिस्टर (प्रदर्श. IV) को भी अपने कब्जे में ले लिया था, इस संबंध में उनके द्वारा फर्द बरामदगी तैयार किया गया था और प्रवर्तन दस्ते के सदस्यों के बयान भी दर्ज किये। अभियोजन की स्वीकृति जिला मजिस्ट्रेट प्रदर्श क-14 से प्राप्त की गयी। उचित विवेचना के बाद, आरोपी/अपीलकर्ता के खिलाफ विश्वसनीय और पुख्ता सबूत मिलने पर आरोप पत्र प्रदर्श क-13 संबंधित अदालत में प्रस्तुत किया गया।

6. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने धारा 3/7 आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत आरोप तय किये, जिन्हें पढ़कर अपीलकर्ता को समझाया गया। अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार कर दिया। उन्होंने अपना दोष स्वीकार नहीं किया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

7. अभियोजन को प्रमाणित करने हेतु परीक्षण किया गया निम्नलिखित प्रत्यक्ष प्रमाण:-

क्र.सं.	**गवाह का विवरण**	**संख्या**
1	अशोक कुमार बाजपेयी (विपणन निरीक्षक)	पीडब्लू-1
2	दामोदर लोहानी (एआरओ)	पीडब्ल्यू-2
3	सुखदेव प्रसाद (विपणन निरीक्षक)	पीडब्ल्यू-3
4	एस.आई. कृष्ण पाल (विपणन निरीक्षक)	पीडब्लू-4
5	मकसूद अली (सार्वजनिक गवाह)	पीडब्ल्यू-5
6	मुख्तार अहमद (कांस्टेबल)	पीडब्ल्यू-6
7	एस.आई. जे.बी. सिंह (आई.ओ.)	पीडब्लू-7
8	सिया राम गुप्ता (हस्तलेखन विशेषज्ञ)	पीडब्लू-8

8. उपरोक्त बताए गए प्रत्यक्ष साक्ष्य के अलावा, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए हैं:-

क्र.सं.	**विवरण**	**प्रदर्श संख्या**	**द्वारा प्रमाणित**
1	आटा भार आटा प्रदर्श के नमूने के साथ	प्रदर्श - 1	पीडब्लू-1
2	बिक्री रजिस्टर	प्रदर्श 2 और 3	पीडब्लू -2
3	ट्रेजरी चालान	प्रदर्श	पीडब्लू

	रजिस्टर	4	-4
4	30कुं चावल के लिए रिलीज़ ऑर्डर	प्रदर्श 5	पीडब्लू -2
5	वेटमेंट की तकपट्टी	प्रदर्श 6	पीडब्लू -2
6	रिलीज़ आदेश- II	प्रदर्श क - 5अ	पीडब्लू -2
7	सुपुर्दगी नामा	प्रदर्श क-7	पीडब्लू -1
8	रिकवरी मेमो	प्रदर्श क-8	पीडब्लू -4
9	बिक्री रजिस्टर- II और III	प्रदर्श 2 और 3	पीडब्लू -5
10	स्टॉक रजिस्टर- IV	प्रदर्श क-11	पीडब्लू -4
11	अभियोजन स्वीकृति	प्रदर्श क-14	पीडब्लू-7
12	चिक एफआईआर	प्रदर्श क-9	पीडब्ल्यू -6
13	हस्तलेखन विशेषज्ञ रिपोर्ट	प्रदर्श क-16 और 17	पीडब्ल्यू - 8
14	आरोप पत्र	प्रदर्श क-13	पीडब्लू-7
15	कैमी जी डी की प्रतिलिपि	प्रदर्श क-10	पीडब्लू-7

9. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद अभियुक्त/अपीलकर्ता का धारा 313 सीआरपीसी के तहत परीक्षण किया गया जिसमें अभियुक्त/अपीलकर्ता ने बताया कि उसे झूठा फंसाया गया है। उन्होंने अभियोजन पक्ष के सबूतों से इनकार किया।

10. अपीलकर्ता ने बचाव पक्ष में निम्नलिखित गवाह प्रस्तुत किये प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में:-

क्र.सं.	**गवाह का विवरण**	**संख्या**
1	कुशल दास	डी.डब्ल्यू. - 1
2	अब्दुल हकीम	डी.डब्ल्यू. - 2
3	राजेंद्र प्रसाद (हस्तलेखन विशेषज्ञ)	डी.डब्ल्यू. - 3

11. रिकॉर्ड पर साक्ष्यों को सुनने और उनका विश्लेषण करने के बाद, आरोपी/अपीलार्थी को ट्रायल कोर्ट द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत दोषी ठहराया गया और ऊपर बताए अनुसार सजा सुनाई गई। आक्षेपित निर्णय और दिनांक 24.07.1985 के आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है।

12. दोनों पक्षों के साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलता है कि पीडब्लू-1 अशोक कुमार बाजपेयी, मार्केटिंग इंस्पेक्टर और पी.डब्लू 4 श्रीकृष्ण पाल, मार्केटिंग इंस्पेक्टर ने

अनुवादित

स्पष्ट रूप से गवाही दी है और स्पष्ट शर्तें कि 16.01.1983 को उन्होंने दस्ते के अन्य सदस्यों के साथ निरीक्षण किया था और

दिनांक 16.01.1983 को निरीक्षण के समय आरोपी की दुकान पर स्टॉक रजिस्टर के अनुसार आटा होलसेल मिल का स्टॉक 14 क्विंटल 25 किलोग्राम था, लेकिन भौतिक सत्यापन पर यह 7 क्विंटल 50 किलोग्राम पाया गया। 16.01.1983 को उन्होंने 4 क्विंटल 35 किलोग्राम आटा की बिक्री की और भौतिक जांच में 2 क्विंटल 40 किलोग्राम आटे की कमी पाई गई। चीनी और गेहूं के कुछ अन्य भंडार भी वहां थे लेकिन उनका उल्लेख आवश्यक नहीं है। आरोपी ने दिनांक 11.01.1983 को कार्ड धारकों को बेचने के लिए सरकारी गोदाम से 30 क्विंटल चावल का वितरण किया था, लेकिन उसने अपने स्टॉक रजिस्टर में इसके संबंध में कोई प्रविष्टि नहीं की थी। निरीक्षण के समय तैयार की गई आटा पूरी मिल की तौल की तकपट्टी प्रदर्श क-1 पी.डब्ल्यू 1 अशोक कुमार बाजपेयी ने इस बात से इंकार किया कि कुछ आटा जिसमें नमी आ गई थी वह आरोपी के केबिन में रखा हुआ था। जिसे प्रवर्तन दस्ते ने संज्ञान में नहीं लिया, प्रदर्श क -7 सुपुर्दगीनामा है, जिसके माध्यम से आरोपी की दुकान का स्टॉक मूलचंद हंसराज की सुपुर्दगी में दिया गया था, जिसे पी.डब्ल्यू 4 श्री कृष्ण पाल ने प्रमाणित किया है। प्रदर्श क-8 पी.डब्ल्यू.4 द्वारा मौके पर फर्द बरामदगी तैयार की गई है।

13. पी.डब्ल्यू 2 ए.आर.ओ दामोदर लोहानी ने अपने बयान में कहा है कि आरोपी उनके कार्यालय में आया था और 30 क्विंटल चावल के लिए डिमांड मेमो (पंजीकरण मेमो) भरा था। उसने यह बात साबित कर दी है कि प्रदर्श क -3 में आरोपी के हस्ताक्षर हैं और उसने इस पर अपने हस्ताक्षर भी स्वीकार किए हैं। उसने यह बात साबित कर दी है कि प्रदर्श क-3 में आरोपी के हस्ताक्षर हैं और उसने इस पर अपने हस्ताक्षर भी स्वीकार किए हैं। इस गवाह ने अभियुक्त द्वारा ऐसे चावल प्राप्त करने के लिए जमा किए गए 6,120/- रुपये के ट्रेजर चालान की फोटोकॉपी भी साबित की है, जो कि प्रदर्श क-4 है। इस गवाह ने आरोपियों को 30 क्विंटल चावल जारी करने के लिए मैरी कंपनी से सरकारी गोदाम के लिए रिहाई के आदेश तैयार किया। उन्होंने रिहाई के आदेश प्रदर्श क-5 को साबित कर दिया है। इसमें अपीलकर्ता-अभियुक्त बल्लू मल के हस्ताक्षर भी शामिल हैं जिन्हें इस गवाह द्वारा सत्यापित किया गया था।

14. पी.डब्लू.3 सुखदेव प्रसाद ने अपने बयान में कहा है कि दिनांक 11.01.1983 को वह मैरी कंपनी सरकारी गोदाम में ड्यूटी पर थे। अपीलकर्ता-अभियुक्त बुल्ला मल 30 क्विंटल चावल की रिहाई के लिए

रिहाई आदेश प्रदर्श क-5 लेकर आया था और रिहाई आदेश पर अपीलकर्ता-अभियुक्त के हस्ताक्षर प्राप्त करने के बाद और उसके सत्यापित हस्ताक्षर के साथ उसका मिलान करने के बाद ए.आर.ओ. श्री लोहानी ने अपीलकर्ता अभियुक्त को 30 क्विंटल चावल जारी किया।

आरोपियों को जारी की गई **री** के वजन का एक तकपट्टिन तैयार किया गया था और वही प्रदर्श क-7 है।

15. पी.डब्लू. 5 मकसूद अली एक सार्वजनिक गवाह है जो यह कहने आया है कि उसका राशन कार्ड आरोपी की दुकान से जुड़ा हुआ था लेकिन उसने 13.01.1983 से अपीलकर्ता-अभियुक्त की दुकान से कोई राशन नहीं लिया। उन्होंने आगे कहा है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त के विक्रय रजिस्टर (विस्तार II) में दिनांक 13.01.1983 की प्रविष्टि क्रम सं. 26 पर न तो उसके हस्ताक्षर हैं, न ही उसके बेटे के।

16. पी.डब्लू. 6 कांस्टेबल मुख्तार आलम एक औपचारिक गवाह है जिसने 16.01.2023 को विपणन निरीक्षक श्री कृष्ण पाल द्वारा दायर वसूली फर्द के आधार पर थाने में लिखी गई चिक एफ.आई.आर. प्रदर्श क-9 को साबित किया है, जिसे प्रदर्श क-9 अंकित किया गया है। इस गवाह पर भी 16.01.1983 को 10:45 बजे एफआईआर दर्ज की गई है और जी.डी. नंबर 32 (प्रदर्श क-10) में प्रविष्टि की गई है।

17. पी.डब्लू.7 जगदंबा बक्श सिंह इस मामले के विवेचना अधिकारी हैं, उन्होंने प्रवर्तन दस्ते के सदस्यों के बयान दर्ज किए थे और बिक्री रजिस्टर (प्रदर्श-II और III) और स्टॉक रजिस्टर (प्रदर्श-IV) को अपने कब्जे में ले लिया था।

18. पी.डब्लू. 8 सिया राम गुप्ता, जो हस्तलेखन विशेषज्ञ हैं, ने रिहाई आदेश प्रदर्श क-5 के मुखौटे पर अपीलकर्ता-अभियुक्त के विवादित दो हस्ताक्षरों की तुलना की है और प्रदर्श क-5अ में उन्होंने राय दी है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त के सभी विवादित हस्ताक्षर उसके नमूना हस्ताक्षर के साथ मेल खाते हैं और कि इन्हें एक ही व्यक्ति ने बनाया है। उन्होंने इस संबंध में ली गई तस्वीरों को प्रदर्श क-16 और अपनी रिपोर्ट प्रदर्श क-17 से प्रमाणित भी किया।

19. ट्रायल कोर्ट द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता के बचाव को सही ढंग से खारिज कर दिया गया। साक्ष्यों से स्पष्ट है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता के कृत्य ने उत्तर प्रदेश खाद्यान्न एवं अन्य आवश्यक वस्तु वितरण आदेश, 1977 के खंड 4 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने पूरे साक्ष्य पर चर्चा की और पाया कि आरोपी-अपीलकर्ता का कृत्य यूपी खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तु वितरण

अनुवादित

आदेश, 1977 अधिनियम के खंड 4 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है और इस प्रकार, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है। रिकॉर्ड पर मौजूद पूरे सबूतों पर विचार करने के बाद, यह स्पष्ट है कि आरोपी अपीलकर्ता की सजा सबूतों पर आधारित है और इसमें कोई तथ्यात्मक, अवैधता नहीं है।

20. अपीलकर्ता के लिए विद्वान न्याय मित्र ने अभियुक्त-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के संबंध में विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए निष्कर्षों पर विवाद नहीं किया है और केवल सजा के संबंध में अपनी दलीलें सीमित रखी हैं। हालाँकि, मैंने पूरे सबूतों को ध्यान से देखा है।

21. जहां तक सजा का सवाल है, आरोपी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया कि कथित घटना 11.01.1983 को हुई थी और तब से 40 साल की अवधि बीत चुकी है। अभियुक्त-अपीलकर्ता का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और उसने लगभग 40 वर्षों तक इस मामले की कार्यवाही का सामना किया है। यह प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, इस स्तर पर आरोपी-अपीलकर्ता को न्यायिक हिरासत में भेजना उचित नहीं होगा।

22. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने विरोध करते हुए तर्क दिया कि घटना को 40 वर्ष की अवधि बीत जाने को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दी जा सकती है।

23. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, भारतीय संसद ने कोई सजा नीति नहीं बनाई है, हालांकि ***मलिमथ समिति (2003) और माधव मेनन समिति (2008)*** ने समाज की बदलती परिस्थितियों में सजा नीति की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसलिए, अदालतें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित नियम पर निर्भर हैं।

24. सजा का सिद्धांत कई मामलों में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चिंता का मुद्दा रहा है और इस मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान करने की कोशिश की गई है। उच्च न्यायालयों और ट्रायल कोर्टों में सजा सुनाने के तरीके को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार लापरवाह तरीके के प्रति आगाह किया है।

*अभियुक्त **"एक्स' बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 7 एससीसी 1)** में "सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि" यह स्थापित है कि सजा देना एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें एक न्यायाधीश तथ्यात्मक परिस्थितियों और समानताओं पर विचार करते हुए आरोपी के लिए उचित सजा तय करता है। इस तथ्य के आलोक में कि विधायिका ने सजा देने के लिए न्यायाधीशों को विवेकाधिकार दिया है, इसे सैद्धांतिक*

तरीके से प्रयोग करना महत्वपूर्ण हो जाता है।"

"12. अपराधों के लिए सजा का विश्लेषण तीन परीक्षणों अर्थात अपराध परीक्षण, आपराधिक परीक्षण और तुलनात्मक आनुपातिकता परीक्षण की कसौटी पर किया जाना चाहिए।

अपराध परीक्षण में योजना की सीमा, हथियार का चुनाव, अपराध का तरीका, निपटान का तरीका (यदि कोई हो), आरोपी की भूमिका, अपराध का असामाजिक या घृणित चरित्र, पीड़ित की स्थिति जैसे कारक शामिल होते हैं। आपराधिक परीक्षण में अपराधी की उम्र, अपराधी का लिंग, अपराधी की आर्थिक स्थिति या सामाजिक पृष्ठभूमि, अपराध के लिए प्रेरणा, बचाव की उपलब्धता, मन की स्थिति, मृतक या मृतक समूह में से किसी एक द्वारा उकसाना जैसे कारकों का मूल्यांकन शामिल है, मुकदमे में पर्याप्त प्रतिनिधित्व, अपील प्रक्रिया में न्यायाधीश द्वारा असहमति, पश्चाताप, सुधार की संभावना, पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड (लंबित मामलों को नहीं लेना) और कोई अन्य प्रासंगिक कारक (विस्तृत सूची नहीं)।

13. ***मध्य प्रदेश राज्य बनाम उधम और अन्य (2019) 10 एससीसी 300*** *में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि "हम ध्यान दे सकते हैं कि अपराध परीक्षण के तहत गंभीरता का पता लगाना आवश्यक है। अपराध की गंभीरता का पता (i) पीड़ित की शारीरिक अखंडता से लगाया जा सकता है; (ii) सुख-सुविधा के भौतिक समर्थन की हानि; (iii) अपमान की सीमा; और (iv) गोपनीयता का उल्लंघन।"*

25. यह भी उल्लेखनीय है कि ***मध्य प्रदेश राज्य बनाम विक्रम दास (2019) 4 एससीसी 125*****"...** जहां न्यूनतम सजा का प्रावधान है, वहां न्यायालय न्यूनतम सजा से कम सजा नहीं दे सकता है।"

26. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926] में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह देखा है:

"अपराध एक रोगात्मक विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होता है। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण से करना होगा। इसलिए, व्यक्ति में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और बर्बर सज़ा देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मनुष्य सज़ा देने को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में

अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंकवाद में' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर कारावास से केवल उसके दिमाग को नुकसान पहुंचता है।यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते।"

27. 'उचित वाक्य' शब्द को ***देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]*** में यह देखते हुए समझाया गया था कि वाक्य अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

28. ***रावदा शशिकला बनाम एपी राज्य एआईआर 2017 एससी 1166*** में, सुप्रीम कोर्ट ने ***जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734 में निर्णयों का उल्लेख किया।], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]*** और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और

कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

28. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को भी ध्यान में रखते हुए जो कि सुधारात्मक और सुधारात्मक और प्रतिशोधात्मक नहीं, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए।

29. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड का सुधारात्मक सिद्धांत' अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

30. अभियुक्त-अपीलकर्ता बल्लू मल को आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के तहत दोषी ठहराया गया है, जो इस प्रकार है: -

[(1) यदि कोई व्यक्ति इसके तहत दिए गए किसी भी आदेश का उल्लंघन करता है

धारा 3,-

(ए) वह दंडनीय होगा, -

(i) खंड के संदर्भ में किए गए आदेश के मामले में

(एच) या उस धारा की उप-धारा (2) के खंड (i), एक अवधि के लिए कारावास, जिसे एक वर्ष तक

बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है, और

(ii) किसी अन्य आदेश के मामले में, कारावास की सजा, जिसकी अवधि तीन महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और

जुर्माना भी लगाया जा सकता है: बशर्ते कि अदालत, फैसले में उल्लिखित किसी भी पर्याप्त और विशेष कारणों से, तीन महीने से कम अवधि के कारावास की सजा दे सकती है;

(बी) कोई भी संपत्ति जिसके संबंध में आदेश का उल्लंघन किया गया है, सरकार को जब्त कर ली जाएगी;

(सी) कोई भी पैकेज, आवरण या पात्र जिसमें संपत्ति पाई जाती है और संपत्ति ले जाने में इस्तेमाल किया जाने वाला कोई भी जानवर, वाहन, जहाज या अन्य वाहन, यदि अदालत ऐसा आदेश देती है, तो सरकार को जब्त कर लिया जाएगा।

(2) यदि कोई व्यक्ति जिसे धारा 3 की उप-धारा (4) के खंड (बी) के तहत निर्देश दिया गया है, वह निर्देश का पालन करने में विफल रहता है, तो वह कारावास से दंडनीय होगा, जिसकी अवधि तीन से कम नहीं होगी। महीने लेकिन जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है: बशर्ते कि अदालत, फैसले में उल्लिखित किसी भी पर्याप्त और विशेष कारणों से, तीन महीने से कम अवधि के कारावास की सजा दे सकती है।

(2ए) यदि उपधारा (1) के खंड (ए) के उपखंड (ii) या उपधारा (2) के तहत किसी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी व्यक्ति को फिर से उसी प्रावधान के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है, तो वह कारावास से दंडनीय होगा। दूसरे के लिए और प्रत्येक बाद के अपराध के लिए जिसकी अवधि छह महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है: बशर्ते कि अदालत, फैसले में उल्लिखित किसी भी पर्याप्त और विशेष कारणों से, छह महीने से कम अवधि के कारावास

की सजा दे सकती है।

(2बी) उप-धारा (1), (2) और (2ए) के प्रयोजनों के लिए, तथ्य यह है कि उप-धारा (1) के खंड (ए) के उप-खंड (ii) के तहत या उप-धारा के तहत एक अपराध- धारा (2) ने आम जनता या किसी व्यक्ति को कोई पर्याप्त नुकसान नहीं पहुंचाया है, जो भी मामला हो, तीन महीने

या छह महीने से कम अवधि के कारावास की सजा देने के लिए पर्याप्त और विशेष कारण होगा।

[(3) जहां किसी व्यक्ति को उप-धारा (1) के तहत किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो, उसे किसी आवश्यक वस्तु के संबंध में आदेश के उल्लंघनके लिए फिर से उस उप-धारा के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है, जिस न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया गया है, वह उस उपधारा के तहत उस पर लगाए जाने वाले किसी भी दंड के अलावा, आदेश द्वारा यह निर्देश देगा कि वह व्यक्ति उस आवश्यक वस्तु में ऐसी अवधि के लिए, जो

छह महीने से कम न हो, कोई व्यवसाय नहीं करेगा, जैसा कि न्यायालय द्वारा आदेश में निर्दिष्ट किया जा सकता है।]

32. यह सुस्थापित सिद्धांत है कि सजा न्यायसंगत होनी चाहिए लेकिन साथ ही अपराध और सजा के बीच आनुपातिकता के सिद्धांत को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है। किसी आपराधिक अपराध के संबंध में उचित दंड का सिद्धांत सजा का आधार है। सज़ा अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। आनुपातिकता की अवधारणा अदालत को महत्वपूर्ण विवेकाधिकार की अनुमति देती है लेकिन इसे कुछ सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। कुछ मामलों में, दोषी की प्रकृति, अभियुक्त का पूर्ववृत्त, उम्र का तथ्य, दोषी के भविष्य में अपराधी बनने की संभावना, उसके सुधार की क्षमता और प्रचलित परिवेश में स्वीकार्य जीवन जीने के लिए, प्रभाव-सामाजिक खतरा या उपद्रव बनने की प्रवृत्ति, और कभी-कभी अपराध की प्रकृति, पक्षों के बीच संबंध को ध्यान में रखते हुए अपराध करने और उसके आचरण में समय की चूक हो जाती है और दोषी को मूल्य आधारित सामाजिक मुख्यधारा में लाने के सिद्धांत की आकर्षणशीलता मार्गदर्शक कारक हो सकती है। ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है, ये कुछ उदाहरणात्मक पहलू हैं जिन्हें संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

33. शीर्ष न्यायालय द्वारा यह भी देखा गया है कि गणितीय सटीकता में न तो कोई स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला हो सकता है और न ही कोई हल करने योग्य सिद्धांत हो सकता है। यह मामले के तथ्यों और तर्कसंगत न्यायिक विवेक पर निर्भर होगा। न तो किसी न्यायाधीश की व्यक्तिगत धारणा, न ही स्व-अनुपालित, नैतिक दृष्टि और न ही काल्पनिक आशंकाओं को कोई खेल खेलने की अनुमति दी जानी चाहिए। हर अपराध के लिए किसी कठोर उपाय के बारे में नहीं सोचा जा सकता। इसी तरह, केवल अदालत में निहित विवेक के आधार पर किसी अपराधी के साथ नरमी से पेश आने की इजाजत नहीं दी जा सकती। वास्तविक आवश्यकता उन परिस्थितियों को तौलना

है जिनमें अपराध किया गया है और अन्य सहवर्ती कारकों को हमने यहां पहले भी इंगित किया है और इस न्यायालय द्वारा कई घोषणाओं में भी कहा गया है। ऐसी कसौटी पर वाक्य थोपे जाने चाहिए। विवेक कल्पना के दायरे में नहीं होना चाहिए. इसे उचित सज़ा के वैचारिक सार में समाहित किया जाना चाहिए। ***गोपाल सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2013) 7 एससीसी 545*** में, शीर्ष अदालत ने सजा को विस्तार से बताते हुए कहा कि सजा सुनाते समय, विभिन्न जटिल मामलों को ध्यान में रखना होगा। कुछ अपराधों के संबंध में पर्याप्त विशेष कारण देकर सजा को कम किया जा सकता है लेकिन विशेष कारण वास्तविक विशेष परिस्थितियों पर आधारित होने चाहिए।

34. वर्तमान मामले में, कथित घटना लगभग 40 साल पहले हुई थी और अपीलकर्ता पूर्व दोषी नहीं है और इस अपील के निपटान में लंबी देरी के लिए अकेले आरोपी-अपीलकर्ता को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। यह कहा गया कि कुछ दिनों से आरोपी-अपीलकर्ता हिरासत में है। मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, आरोपी-अपीलकर्ता को इस स्तर पर तीन महीने की कैद भुगतने के लिए न्यायिक हिरासत में भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि न्याय के अंत में ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई तीन महीने की कैद की सजा को रद्द कर दिया जाएगा और अभियुक्त-अपीलकर्ता को 5,000/- रुपये के जुर्माने के साथ पहले ही जेल में बिताई गई अवधि की सजा दी जाएगी।

35. तदनुसार, आरोपी-अपीलकर्ता बल्लू मल की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है, लेकिन ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई तीन महीने की सजा को रद्द कर दिया जाता है और आरोपी-अपीलार्थी को पहले से बिताई गई अवधि की सजा के साथ-साथ 5,000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाता है। आरोपी-अपीलकर्ता को आज से पैंतालीस दिनों के भीतर 5,000/- रुपये का जुर्माना जमा करने का निर्देश दिया जाता है। जुर्माना अदा न करने पर आरोपी-अपीलकर्ता को तीन महीने की कैद भुगतनी होगी।

36. परिणामस्वरूप, निम्नलिखित निर्देशों के साथ तत्काल **पक्ष को अपील की अनुमति** दी जाती है:-

(i) दोषसिद्धि के फैसले दिनांक 27.04.1985 की पुष्टि की जाती है, हालांकि तीन महीने की कठोर कारावास की सजा को अपीलकर्ता द्वारा पहले ही भुगती गई अवधि में संशोधित किया गया है।

(ii) 2,000/- रुपये के जुर्माने की राशि को बढ़ाकर 7,000/- रुपये कर दिया गया है, जिसका भुगतान अपीलकर्ता को फैसले की तारीख से छह सप्ताह के भीतर करना होगा। ऐसा न करने पर अपीलकर्ता को दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा।

(iii) निर्णय की एक प्रति आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाएगी।

(iv) ट्रायल कोर्ट का रिकॉर्ड तुरंत वापस भेजा जाए।

37. न्यायालय विद्वान न्याय मित्र श्री राधेश्याम यादव द्वारा प्रदान की गई सहायता की सराहना करता है। राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह श्री राधेश्याम यादव को यथाशीघ्र पारिश्रमिक के रूप में 5000/- रुपये का भुगतान करे।

(2023) 5 ILRA 503

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा,

आपराधिक अपील संख्या 1399/2010

राजे @ राजेश @ संतोष कुमार

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री धर्मेंद्र प्रताप सिंह, श्री सुशील तिवारी, श्री श्याम सुंदर मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376, 342 एवं 506 दोषसिद्धि - चुनौती - पीड़िता (पीडब्लू-1) का बयान, दर्शाए गए स्थल मानचित्र से मेल खाता है, जहां पीड़िता के साथ कथित रूप से आरोपी व्यक्ति के ट्यूबवेल पर बलात्कार किया गया था, जिसमें खाट अंकित है - विलंब स्वतः स्पष्ट है, क्योंकि जब उसके भाई ने उसे खोजा और घटना से अवगत कराया तो पीड़िता डर के कारण लापता हो गई, तब एफआईआर दर्ज की गई - यद्यपि एफआईआर में नामित गवाहों को डर के कारण साक्ष्य में पेश नहीं किया गया, क्योंकि वे न्यायालय में सच बोलने के लिए तैयार नहीं थे, फिर भी पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयान से यह तथ्य साबित होता है कि पीड़िता को दो गवाहों द्वारा बचाया गया था - यहां तक कि जिरह में भी ऐसा कुछ सामने नहीं आया, जिससे यह तथ्य संदिग्ध हो उसके साथ बलात्कार हुआ था - यहां तक कि जहां मेडिकल जांच में बलात्कार की पीड़िता के गुप्तांग पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट के निशान नहीं पाए गए, वहां भी पीड़िता की इस गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता कि उसके साथ बलात्कार किया गया था- अभियोक्ता की गवाही एक घायल गवाह के समान है- अभियोक्ता की एकमात्र गवाही के आधार पर किसी भी अन्य पुष्टि के बिना अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सकता है, बशर्ते अभियोक्ता का साक्ष्य विश्वास पैदा करता हो और स्वाभाविक और सत्य प्रतीत होता हो- इस प्रकार, विद्वान परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के निर्णय की पुष्टि की जाती है। (पैरा 1 से 26)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

1. राजा बनाम कर्नाटक राज्य (2016) 10 एससीसी 506

2. उत्तर प्रदेश बनाम छोटेलाल (2011) एआईआर एससी 697

3. मोती लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (67) एसीसी 570 (एससी), वाहिद खान बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (7) सुप्रीम 584, ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2006 (55) एसीसी 556 (एससी)।

4. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम छोटे लाल (2011) एयर एससी 697

5. मोदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे (1992) 3 सी सी 204

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम सुंदर मिश्रा और श्री आशीष मणि त्रिपाठी, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना, जिसकी सहायता श्री राज कुमार मिश्रा, राज्य विधि अधिकारी ने की।

2. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.1.2010 के खिलाफ आरोपी अपीलकर्ता द्वारा वर्तमान आपराधिक अपील की गई है। आक्षेपित निर्णय से, विद्वान विचारण न्यायालय ने सत्र परीक्षण संख्या 50/2002 (यूपी राज्य बनाम चुन्नी लाल शर्मा और अन्य) में धारा 376, 342 और 506 भा.दं.सं. के तहत आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और उसे धारा 376 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए दस साल के कठोर कारावास और डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई है। धारा 342 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए छह महीने का सश्रम कारावास और धारा 506 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए एक साल का सश्रम कारावास। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

3. सह-अभियुक्त चुन्नी लाल की मृत्यु मुकदमे के लंबित रहने के दौरान हुई और उसके खिलाफ परीक्षण विचारण न्यायालय के आदेश से दिनांक 9.11.2004 के आदेश से समाप्त कर दिया गया।

4. वर्तमान अपील के लिए प्रासंगिक मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, सूचनाकर्ता केशव दत तिवारी निवासी गांव फतेहपुर टिकारी ने 2.11.2001 को शाम 6:30 बजे संबंधित पुलिस स्टेशन में धारा 342, 376, 506 भा.दं.सं. के तहत थाना खागा, जिला फतेहपुर में एक प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें कहा गया कि उसकी नाबालिग बहन जिसकी उम्र लगभग 15 साल थी, 2.11.2001 को सुबह लगभग 6:30 बजे कृषि क्षेत्र की ओर गई थी। जब वह घर लौट रही थी तो आरोपी राजे उर्फ राजेश उर्फ़ संतोष कुमार शुक्ला और चुन्नी लाल शर्मा ने उसे पकड़ लिया और खेत में पास के ट्यूबवेल में पड़े कमरे में ले जाकर उसके साथ बदसलूकी की।

अगले दिन यानी 3.11.2001 को उसके सह-ग्रामीणों रघुनंदन और अशोक कुमार ने ट्यूबवेल के कमरे से उसकी बहन के रोने की आवाज सुनी जब वे खुद आराम करने गए थे और उन्होंने दरवाजे का ताला खोला और उसकी बहन को कमरे से लाया और इस घटना के बारे में उसे बताया। आरोपी शाम को उसकी बहन को कमरे में बंद कर कहीं और चला गया था। जांच अधिकारी ने स्थानीय गवाहों रज्जन तिवारी और राम सरन की उपस्थिति में घटना के दिन पीड़ित द्वारा पहना गया निचला कपड़ा (सलवार) अपने कब्जे में ले लिया, जिसे प्रदर्श-का-5 के रूप में चिह्नित किया गया है। पीड़िता की चिकित्सा जांच 4-11-2001 को जिला महिला अस्पताल, फतेहपुर में डॉक्टर सूर्या जाबी द्वारा की गई थी, जिसे प्रदर्श का-8 के रूप में चिह्नित किया गया है। डा सूर्या जाबी ने बताया कि दिनांक 4-11-2001 को उसकी जांच की तिथि को पीड़िता के शरीर के किसी भी भाग पर कोई चोट नहीं देखी गई थी। आंतरिक परीक्षा में, "योनि फैली हुई है और दो उंगली आसानी से स्वीकार करती है, हाइमन पुराने चंगा किनारों के साथ फटा हुआ है, ओएस वर्तमान (मासिक धर्म रक्तस्राव) से खून बह रहा है। प्राइवेट पार्ट पर और उसके आसपास कोई चोट नहीं देखी गई है। वजाइनल स्मीयरों को जीवित अथवा मृत मानव शुक्राणुजोज़ा की जांच के लिए भेजा गया और आयु के लिए कलाई, कोहनी और घुटने के जोड़ के एक्सरे के लिए जिला अस्पताल, फतेहपुर रेफर भेजा गया। पूरक रिपोर्ट प्रदर्श का-9 में डॉक्टर ने कहा कि रेडियोलॉजिस्ट की रिपोर्ट के अनुसार, लड़की की रेडियोलॉजिकल आयु लगभग 18 वर्ष है। बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती। योनि स्मीयर स्लाइक्स में किसी भी जीवित या मृत शुक्राणुजोज़ा का कोई सबूत नहीं है। जांच अधिकारी ने धारा 161 द०प्र०सं० के तहत सूचनाकर्ता और पीड़िता का बयान दर्ज किया, जिन्होंने 3.11.2001 को प्राथमिकी दर्ज करने की तारीख पर बताया कि पीड़िता ने कहा कि 2.11.2001 की सुबह वह अपने गांव के पश्चिम की ओर स्थित खेत की ओर आराम करने गई थी और खुद को आराम करने के बाद जब वह अपने घर लौट रही थी, तो आरोपी राजे उर्फ राजेश उर्फ संतोष कुमार शुक्ला उससे मिला, जो पड़ोस के जगदीश के अरहर के खेत में छिपा हुआ था और उसकी ओर देसी पिस्तौल तानकर उसे धमकी दी कि अगर वह रोई तो वह उसे मार डालेगा और उसे ज्वार और अरहर के खेत की ओर खींच कर ट्यूबवेल की ओर ले गया और उसे ट्यूबवेल के कमरे में अंदर से बंद कर चारपाई पर पटक दिया और उसके बाद उसकी सलवार का नाड़ा खोल दिया और जान से

मारने की धमकी देकर उसके साथ दुष्कर्म किया। वह खाट पर लेट गई, उसके बाद उसका साथी चुन्नी लाल शर्मा रात में आया और आरोपी राजे उर्फ राजेश उर्फ संतोष कुमार शुक्ला को कमरे के अंदर बुलाया जिसने भी उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ बुरा काम किया और वे दोनों उसे कमरे में छोड़ कर दरवाजा बंद कर गए थे। सुबह जब उसके रोने की आवाज सुनी तो उसके सह-ग्रामीणों राघवेंद्र और अशोक कुमार ने उसे बचाया। उन्होंने दरवाजा खोला और उसे कमरे से बाहर ले गए और अपने घर ले गए। उसके निचले कपड़े (सलवार) पर खून लगा हुआ था जिसे पुलिस को सौंप दिया गया था। जांच अधिकारी ने द०प्र०सं० की धारा 164 के तहत मजिस्ट्रेट के सामने पीड़िता का बयान दर्ज कराया, जिसमें उसने द०प्र०सं० की धारा 161 के तहत दर्ज अपने बयान का समर्थन किया। जांच अधिकारी ने जांच पूरी करने के बाद, आरोपी व्यक्तियों राजे उर्फ राजेश उर्फ संतोष कुमार शुक्ला और चुन्नी लाल के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया और उनके अभियोजन के लिए, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने जांच अधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र पर अपराध का संज्ञान लिया और 18.1.2001 को सत्र न्यायालय में मुकदमे के लिए मामला सौंप दिया।

5. राजेश उर्फ राजे उर्फ संतोष कुमार शुक्ला के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था, बाद में आरोपी राजेश उर्फ राजे उर्फ संतोष कुमार शुक्ला पेश हुए और उन्हें जेल भेज दिया गया। अभियुक्त चुन्नी लाल को माननीय न्यायालय के आदेश से जमानत पर रिहा कर दिया गया था और वर्तमान अपीलकर्ता को अधिकांश समय विचाराधीन कैदी के रूप में मुकदमे का सामना करना पड़ा। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, फतेहपुर द्वारा दिनांक 20.7.2002 को अभियुक्त राजेश उर्फ़ राजे उर्फ संतोष कुमार शुक्ला एवं चुन्नी लाल शर्मा के विरुद्ध धारा 342, 506 एवं 376 भा.दं.सं. के अंतर्गत अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप तय किए गए। अभियोजन साक्ष्य के दौरान, विद्वान विचारण न्यायालय ने पीडब्लू -1 अभियोक्ता, पीडब्लू 2 केशव दत्त तिवारी (सूचनाकर्ता), पीडब्ल्यू 3 उप निरीक्षक दिनेश बाजपेयी, तत्कालीन प्रमुख मोहरिर और चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श का 2) के लेखक और जनरल डायरी संख्या के अंश, समय 12:10 बजे, दिनांक 3.11.2001 (प्रदर्श का-3), पीडब्लू 4 सुबीर कुमार, पीडब्लू- 5, एसएसआई मधुसूदन सिंह, जांच अधिकारी, जिसने घटना के समय पीड़ित द्वारा पहनी गई सलवार की सूची को भौतिक प्रदर्श का-5, घटना स्थल की नक्शा नजरी को प्रदर्श का-6, अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ दायर आरोप पत्र को प्रदर्श का-7 के रूप में साबित किया, के

बयान दर्ज किए। उन्होंने पीड़िता की सलवार, जिसे घटना के बाद अपने कब्जे में ले लिया था, को भौतिक प्रदर्श 1 के रूप में और उसके रैपर को भौतिक प्रदर्श 1, 2 और 3 के रूप में न्यायालय के सामने पेश करके अपने कब्जे में ले लिया। पीडब्लू-6 डॉ. सूर्या ने पीड़िता की मेडिकल जांच रिपोर्ट को प्रदर्श, का-8 और पूरक रिपोर्ट को प्रदर्श का-9 के रूप में प्रमाणित किया, क्योंकि यह उनके द्वारा तैयार और हस्ताक्षरित थी। पीडब्लू 7. केपी सिंह, तत्कालीन वरिष्ठ रेडियोलॉजिस्ट, जिन्होंने पीड़ित की एक्स-रे रिपोर्ट को प्रदर्श का 10 और एक्स-रे प्लेट को भौतिक प्रदर्श 4 के रूप में साबित किया।

6. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद जिसमें उसने कहा है कि दुश्मनी के कारण उसके खिलाफ मामला दर्ज किया गया था, उसने केवल इस तथ्य को स्वीकार किया कि सह- आरोपी चुन्नी शर्मा की सुनवाई के दौरान मृत्यु हो गई। उन्होंने यह भी कहा कि पीड़ित और सूचनाकर्ता ने उनके खिलाफ झूठे सबूत दिए थे और यह रुख अपनाया था कि अभियोजन पक्ष और सह-आरोपी चुन्नी लाल शर्मा के अंतरंग संबंध थे और पीड़िता उनके साथ भाग गई थी। वह खागा के पास पकड़ी गई क्योंकि चुन्नी लाल उसके खेत का बटाईदार था। सामाजिक बदनामी के डर से उसने चुन्नी लाल के साथ मिलकर उसे भी फंसाया था। आरोपी द्वारा कोई बचाव नहीं किया गया है।

7. विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की मूल्यांकन करने और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के कथनों की सुनवाई करने के बाद कहा कि पीडब्लू-1 और पीडब्ल्यू-2, पीड़िता और सूचनाकर्ता के साक्ष्य के आधार पर, यह तथ्य पूरी तरह से साबित होता है कि घटना की तारीख पर आरोपी राजेश और सह-आरोपी चुन्नी लाल ने पीड़िता (पीडब्लू -1) को ट्यूबवेल के कमरे में खींच लिया और उसके साथ बलात्कार किया। उन्होंने बचाव पक्ष के बयानों पर भी विचार किया कि स्वतंत्र गवाह रघुनंदन और अशोक कुमार, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने पीड़िता को उस कमरे से बचाया था, जिसमें उसे घटना की तारीख की अगली सुबह आरोपी व्यक्तियों द्वारा हिरासत में लिया गया था, न्यायालय के समक्ष पेश किए गए थे और देखा कि अपर जिला शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) ने प्रस्तुत किया था कि ये गवाह न्यायालय के सामने पेश होने और सच बताने के लिए तैयार नहीं थे और इस कारण उन्हें न्यायालय में पेश नहीं किया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की आधिकारिक घोषणा के मद्देनजर, स्वतंत्र गवाह द्वारा अभियोक्ता के बयान की पुष्टि हर मामले में आवश्यक नहीं है। यह मामले के

तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि पुष्टि की आवश्यकता है या नहीं। पुष्टि की आवश्यकता कानून का शासन नहीं है, बल्कि सावधानी का नियम है। उन्होंने अपनी दलीलों के समर्थन में कुछ न्यायिक फैसलों का हवाला दिया। अवर न्यायालय ने आगे कहा कि बलात्कार जैसे, यौन अपराध के शिकार व्यक्ति के साक्ष्य को संदेह की नजर से देखने का कोई अवसर नहीं है। पीड़िता और उसके भाई के पास बलात्कार जैसे अपराध के लिए आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं था। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी कहा कि अभियोक्ता के संस्करण के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, केवल इस कारण से कि उसकी मेडिको लीगल जांच रिपोर्ट में उसके व्यक्ति पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं पाई गई थी। वह अविवाहित थी और यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि पीड़िता और उसका भाई अपीलकर्ता और सह- अभियुक्तों को केवल कुछ दुश्मनी के कारण झूठा फंसाएंगे और उनके सम्मान और सामाजिक सम्मान को दांव पर लगा देंगे। पीड़ित ने घटनाओं के अनुक्रम का विश्वसनीय विवरण दिया है जिसे अलग नहीं किया जा सकता है। इस तथ्य से यह भी पता नहीं चलता है कि पीड़िता ने अरहर खेत के पास अपने घर से कुछ दूरी पर स्थित कृषि क्षेत्र चुना था और उसके आचरण को संदेह के साथ नहीं देखा जा सकता है क्योंकि उसने खुद को आराम देने के लिए आरोपी के ट्यूब-वेल के पास एक खेत चुना था। उन्होंने यह भी देखा है कि ग्रामीण क्षेत्र में लोग सुबह के समय आराम करने के लिए दूर के कृषि क्षेत्रों का चयन करेंगे। पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता और रिकॉर्ड पर साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए विचारशील विचार देने के बाद, अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध का फैसला दर्ज किया और धारा 376, 342, 506 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए सजा सुनाई और उसे पूर्वोक्त के रूप में सजा सुनाई।

8. आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, आरोपी अपीलकर्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374 के तहत वर्तमान आपराधिक अपील दायर की है।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने उचित परिप्रेक्ष्य में और सावधानीपूर्वक तरीके से मुकदमे के दौरान पेश किए गए सबूतों पर विचार किए बिना अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और सजा सुनाई है। अपीलकर्ता को इस न्यायालय के दिनांक 17.7.2002 के आदेशों द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था, हालांकि, वह अनुपस्थित हो गया और बाद में उसे 27.7.2007 को विचारण न्यायालय के आदेशों द्वारा फिर से जेल भेज दिया

गया। वर्तमान मामले में प्राथमिकी घटना के दो दिनों के बाद दर्ज की गई थी और अभियोजन पक्ष के संस्करण में प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान में आरोपी पक्ष द्वारा बताई गई दुर्बलताओं को नजरअंदाज कर दिया। अभियोजन पक्ष के स्वतंत्र गवाह जिन्हें प्राथमिकी में नामित किया गया है, उन्हें मुकदमे के दौरान पेश नहीं किया गया था, जो प्राथमिकी संस्करण की प्रामाणिकता के बारे में संदेह पैदा करता है। अभियोजन पक्ष के बयान और पीड़िता के बयान की अभियोजन पक्ष की कानूनी जांच रिपोर्ट से पुष्टि नहीं होती है। पीडिता की मेडिकल लीगल जांच करने वाले डॉक्टर ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा है कि पीड़िता संभोग की आदी थी और बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती है।

10. विरोध में, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पीडित के भाई (पीडब्लू - 1) के कहने पर दर्ज प्राथमिकी में पेश किया गया अभियोजन संस्करण तथ्य पीडब्ल्यू 1 (अभियोक्ता) और पीडब्ल्यू 2. सूचनाकर्ता के गवाहों के साक्ष्य से साबित होता है, और औपचारिक गवाहों के साक्ष्य से पुष्टि पाता है। अभियोक्ता के बयान के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए, जिसे केवल इस तथ्य के कारण घायल गवाहों के रूप में माना जाना चाहिए कि प्राथमिकी में नामित गवाह राघवेंद्र और अशोक कुमार को विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष द्वारा पेश नहीं किया जा सका और अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराते समय विद्वान विचारण न्यायालय की ओर से कोई गलती नहीं पाई जा सकती है। अपील खारिज करने योग्य है। मुकदमे के दौरान, संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से दिनांक 18.5.2022 को रिपोर्ट प्राप्त हुई, जिसमें उन्होंने कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता की सजीव स्थिति के संबंध में जांच करने पर संबंधित एस.एच.ओ. द्वारा यह सूचित किया गया है कि वह वर्तमान में कानपुर नगर में अपने ससुराल के स्थान पर रह रहा है जो ई-रिक्शा चलाता है।

11. पत्र दिनांक 24.6.2022 में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फतेहपुर ने इस न्यायालय को सूचित किया कि जिला जेल अधीक्षक, फतेहपुर ने सूचित किया है कि कैदी राजे उर्फ राजेश उर्फ संतोष कुमार शुक्ला को 5.10.2022 को कारावास की सजा पूरी करने के साथ-साथ न्यायालय में 5,000/- रुपये के जुर्माने की राशि जमा करने के बाद जेल से रिहा कर दिया गया है और वर्तमान में वह जेल में बंद है।

12. वर्तमान मामले में अभियुक्त को 2.7.2002 को विद्वान विचारण

न्यायाधीश द्वारा भा.दं.सं. की धारा 342, 506 और 376 के तहत अपराध के लिए आरोपित किया गया था। आरोप साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने पीडब्लू-1, अभियोक्ता और पीडब्लू-2 (अभियोक्ता के पिता) केशव दत्त तिवारी को अधिनियम के गवाह के रूप में पेश किया।

13. पीडब्लू -1, अभियोक्ता, ने न्यायालय के समक्ष अपनी शपथ गवाही में कहा है कि वह घटना से पहले से आरोपी से परिचित है। आरोपी चुन्नी लाल शर्मा की मौत हो चुकी है। यह घटना उसके साक्ष्य (16.1.2009 को दर्ज किए गए) से दो महीने पहले सात साल पहले हुई थी। सुबह करीब साढ़े छह बजे वह अपने गांव के पश्चिम में खुद को आराम देने गई थी और जब वह खुद आराम करके घर की ओर आ रही थी तो आरोपी राजे उर्फ राजेश उर्फ़ संतोष कुमार शुक्ला जो जगदीश के अरहर क्षेत्र में छिपा हुआ था, वहां से निकला और उसकी ओर देसी पिस्तौल तान दी और उसे धमकी दी कि अगर वह रोई तो उसे गोली मार दी और उसे ट्यूबवेल के कमरे की ओर खीच लिया और उसे चारपाई पर पटक दिया और जबरदस्ती उसका निचला कपड़ा (सलवार) खोल दिया और उसके साथ दुष्कर्म किया। वह दिन भर चारपाई पर रोती रही और आरोपी भी वहां मौजूद था और उसे धमकाता रहा। रात में उसने सह-आरोपी चुन्नी लाल को भी बुलाया, जिसने उसके साथ बलात्कार भी किया और उसके बाद दोनों कमरे के बाहर गए और उसे बाहर से बंद कर दिया। वह रात भर रोती और रोती रही। सुबह उसके सह गांव वाले रघुनंदन और शिव व अशोक कुमार वहां आए और दरवाजा खोलकर उसे बचाया। उसने अपने भाई और मां को घटना के बारे में बताया और उसके बाद उसका भाई उसे पुलिस स्टेशन ले गया और रिपोर्ट दर्ज कराई। डॉक्टर ने फतेहपुर के सरकारी अस्पताल में उसकी मेडिकल लीगल जांच कराई। घटना के समय उसका निचला कपड़ा पुलिस स्टेशन में ले जाया गया था, जो खून से सना हुआ था। घटना के समय उसकी उम्र करीब 15 साल थी। जांच अधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया। वह बलात्कार का अर्थ जानती है जिसका अर्थ है कि महिला के व्यक्ति पर पेशाब करने के लिए जगह में पुरुष अंग का सम्मिलन ।

14. प्रति परीक्षण में, उसने कहा कि उसने सब इंस्पेक्टर के साथ-साथ न्यायालय में अपनी उम 15 वर्ष बताई थी। यदि सब इंस्पेक्टर ने अपने बयान में उसकी उम्र 15 वर्ष नहीं बताई है, तो वह इसका कारण नहीं बता सकती है। इस घटना से पहले उसके प्राइवेट पार्ट में दखल नहीं दिया जाता था। उसमें कोई चोट नहीं आई थी। वह कुंवारी थी। डॉक्टर ने उसके प्राइवेट पार्ट की जांच की थी। जिस खेत में वह खुद

को आराम देने गई थी, वह रास्ते से जुड़ा नहीं है। ट्यूबवेल रास्ते से 5-6 खेत दूर पड़ा है। वह नलकूप उसके गांव के पश्चिम दिशा में स्थित है। उसका घर गांव के उत्तर की ओर है। उस समय अरहर अपने घर के उत्तर और पूर्व में स्थित खेतों में बोई जाती थी। आरोपी ने उसे खींच लिया था। घटना के समय, इस प्रक्रिया में उसकी जांर्धा पर खरोंच आई और उसके कपड़े भी फट गए। उसने सलवार सूट पहना था। उसने उस तारीख को दिन या रात में कोई भोजन नहीं लिया था। उसने पानी भी नहीं लिया था। आरोपी अगली सुबह करीब 4:00 बजे ट्यूबवेल के कमरे से निकला और वह वापस नहीं आया। घटना से पहले वह चुन्नी लाल से परिचित थी। चुन्नी लाल राजेश के ट्यूबवेल में रहता था। ग्रामीणों ने उसके रोने की आवाज सुनकर उसे ट्यूबवेल से 8 से 9:00 बजे बचाया था। उसने बचाव पक्ष के इस सुझाव से इनकार कर दिया कि घटना से पहले वह आरोपी चुन्नी लाल के साथ भाग गई थी और उसके साथ पकड़ा गया था।

15. पीडब्लू-2, केशव दत्त तिवारी, जो पीड़ित का भाई है, ने प्राथमिकी संस्करण का समर्थन किया है और पुलिस स्टेशन में उसके द्वारा दायर लिखित रिपोर्ट प्रदर्श का-1 को साबित किया है, जिसमें प्राथमिकी का आधार पाया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि जांच अधिकारी ने उनका बयान दर्ज कर लिया है।

16. प्रति परीक्षण में उसने स्पष्ट किया कि उसने घटना नहीं देखी है। उन्होंने राघवेंद्र और अशोक कुमार को ट्यूबवेल से पीड़ित को बचाते हुए भी नहीं देखा है। इन गवाहों द्वारा घटना के बारे में अवगत कराए जाने पर उन्होंने प्राथमिकी दर्ज कराई है। गवाह उसकी बहन को सुबह लगभग 9/10:00 बजे लाए थे। उसने अपनी बहन के लापता होने के बाद उसकी तलाश की थी, लेकिन उसने ट्यूबवेल की ओर उसकी तलाशी नहीं ली। आरोपी राजेश शादीशुदा था और घटना से पहले उसके बच्चे थे। उन्होंने बचाव पक्ष के इस सुझाव से इनकार कर दिया कि घटना से पहले उनकी बहन अपने सह-ग्रामीण शांति सिंह के बेटे के साथ भाग गई थी।

17. पीडब्लू-3, सब इंस्पेक्टर, दिनेश बाजपेयी ने प्रदर्श का-3, केस रिपोर्ट संख्या 22, समय 12:10 घंटे, दिनांक 3.11.2001 के पंजीकरण के जी.डी. के उद्धरण और चिक प्राथमिकी को प्रदर्श का-4 के रूप में साबित किया है।

18. पीडब्लू 4, सुबीर कुमार ने गवाही दी है कि उन्होंने 5.11.2001 को पीड़ित की योनि स्मीयर लाइक्स की जांच की है जिसमें कोई जीवित या मृत शुक्राणुजोज़ा का पता नहीं चला था। उन्होंने इस रिपोर्ट को प्रदर्श का-4 के रूप में साबित किया

19. पीडब्लू -5, तत्कालीन एस.एस.आई. मधुसूदन सिंह ने पीड़ित की सलवार को कब्जे में लेने की सूची को प्रदर्श का-5 के रूप में साबित किया है। प्रदर्श का-6 के रूप में घटना स्थल की नक्शा नजरी, प्रदर्श का-7 के रूप में आरोप पत्र और न्यायालय के समक्ष पीड़ित की सलवार को भी पेश किया जिस पर एमई-1, एमई-2 और एमई-3 अंकित किए गए थे।

20. पीडब्लू-6, डॉ. सूर्या ने पीड़ित की चिकित्सा कानूनी जांच रिपोर्ट और पूरक रिपोर्ट को प्रदर्श का-8 और का-9 के रूप में साबित किया और कहा कि पीड़ित व्यक्ति पर कोई बाहरी या आंतरिक चोट नहीं पाई गई। उसकी उम्र करीब 18 साल थी। बलात्कार के संबंध में कोई राय नहीं दी जा सकी।

21. पीडब्लू-7, डॉ. केपी सिंह ने पीड़िता की उम्र निर्धारित करने के लिए उसकी हड्डियों के संलयन के संबंध में एक्सन्ने रिपोर्ट को साबित किया और कहा कि एक्स-रे के अनुसार, उसकी उम्र लगभग 18 वर्ष थी। उन्होंने एक्स-रे प्लेटों को एमई -4 के रूप में भी साबित किया।

22. अभियुक्त ने कोई बचाव साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। उनका रुख इनकार का है। उन्होंने कहा कि धारा 313 द०प्र०सं० के तहत अपने बयान में सूचनाकर्ता और अभियोक्ता ने उनके खिलाफ झूठा बयान दिया है। अभियोक्ता और सह-आरोपी चुन्नी लाल के बीच प्रेम संबंध था और वह उसके साथ भाग गई थी और उसे खागा से बरामद किया गया था। चुन्नी लाल उनके बटाईदार थे।

23. पीडब्लू -1 के बयान में बताई गई घटना का स्थान, पीड़ित, जांच अधिकारी द्वारा तैयार की गई नक्शा नजरी (प्रदर्श का 6) से मेल खाती है, जिसमें घटना के स्थान को ट्यूबवेल में कमरे के रूप में दिखाया गया है जिसमें खाट चिह्नित है जहां पीड़ित व्यक्तियों द्वारा कथित रूप से बलात्कार किया गया था। वर्तमान मामले में प्राथमिकी 3.11.2021 को 12:10 बजे पीड़ित के भाई केशव दत्त द्वारा दर्ज की गई थी, जो प्रदर्श का-2 के रूप में रिकॉर्ड में पाई जाती है। प्राथमिकी दर्ज करने में देरी प्राथमिकी में ही स्वतः व्याख्यात्मक है, जिसमें यह कहा गया है कि पीड़िता 2.11.2001 को लापता हो गई थी और सूचनाकर्ता (उसका भाई) उसकी तलाश कर रहा था और अगली तारीख को, उसे गवाहों द्वारा ट्यूबवेल के कमरे से बचाया गया था जो आरोपी अपीलकर्ता का था और उसके बाद उसे तों से अवगत कराया गया और उसने लिखित रिपोर्ट दर्ज करके संबंधित पुलिस स्टेशन में प्राथमिकी दर्ज की। पुलिस स्टेशन और घटना स्थल के बीच की दूरी 6 किमी है, इसलिए, मेरी सुविचारित राय में प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं होती है, वह भी बलात्कार जैसे मामले में। हालांकि प्राथमिकी में नामित गवाहों को साक्ष्य

में पेश नहीं किया जाता है क्योंकि अभियोजन पक्ष के अनुसार वे पीडब्लू 1 और पीडब्लू 2 के बयान से अभी तक न्यायालय में सच बोलने के लिए तैयार नहीं थे, यह तथ्य साबित होता है कि पीड़ित को राघवेंद्र और अशोक कुमार ने बचाया था। वे अभियोजन पक्ष और सूचनाकर्ता के इस संस्करण का खंडन करने के लिए बचाव पक्ष द्वारा उत्पादित नहीं किए गए थे। यहां तक कि पीडब्लू-1 और पीडब्ल्यू 2 की प्रति परीक्षण में भी ऐसा कुछ नहीं निकला जिससे यह तथ्य संदिग्ध हो सके कि पीड़ित को इन गवाहों द्वारा बचाया नहीं गया था। पीडब्लू - 1 और पीडब्लू- 2 द्वारा बताई गई घटनाओं के अनुक्रम पर अविश्वास करने के लिए कुछ भी नहीं है।

24. **राजा बनाम कर्नाटक राज्य, (2016) 10 एससीसी 506, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटेलाल, एआईआर 2011 एससी 697, मोती लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (67) एसीसी 570 (एससी), वाहिद खान बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (7) सुप्रीम 584, ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006(55) एसीसी 556 (एससी)** जैसे निर्णयों की श्रृंखला में माननीय शीर्ष न्यायालय ने माना कि बलात्कार के एक मामले में अभियोक्ता की गवाही घायल गवाह के बराबर है। पुष्टि के लिए जोर देना वास्तव में आवश्यक नहीं है यदि अभियोक्ता के सबूत आत्मविश्वास को प्रेरित करते हैं और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। एक अभियुक्त को बिना किसी और पुष्टि के अभियोक्ता की एकमात्र गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है, बशर्ते कि अभियोक्ता के साक्ष्य आत्मविश्वास को प्रेरित करते हों और स्वाभाविक और सच्चे प्रतीत होते हों। बलात्कार की शिकार महिला या लड़की साथी नहीं है और गवाही की पुष्टि के लिए

25. जोर देना नारीत्व का अपमान है। यौन अपराध के शिकार व्यक्ति के साक्ष्य को बहुत अधिक वजन का हकदार है, इसके बावजूद पुष्टि की अनुपस्थिति के बावजूद, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में कोई बल नहीं है कि अभियोक्ता की एकमात्र गवाही किसी अन्य साक्ष्य द्वारा पुष्टि नहीं की जाती है।

26. जहां तक बचाव पक्ष के तर्क का संबंध है, यह बचाव तर्क कि पीड़ित व्यक्ति पर डॉक्टर द्वारा कोई चोट नहीं पाई गई थी से संबंधित है, **उत्तर प्रदेश बनाम छोटे लाल, एआईआर 2011 एससी 697 और मदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे, (1992) 3 एससीसी 204** और अन्य मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यहां तक कि जहां चिकित्सा परीक्षा में बलात्कार की पीड़िता के निजी अंग पर चोट के कोई बाहरी या आंतरिक निशान नहीं पाए गए थे, वहां भी अभियोक्ता की गवाही कि आरोपी द्वारा उसके साथ बलात्कार किया

गया था, को खारिज नहीं किया जा सकता है, इसलिए पूर्वगामी चर्चाओं और ऊपर उद्धृत अधिकारियों के प्रकाश में, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सबूतों की कोई गलत व्याख्या नहीं की है जैसा कि वर्तमान अपील में आरोप लगाया गया है और न ही कानून के आवेदन में कोई कानूनी त्रुटि है और अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को रिकॉर्ड करते समय और या उसके खिलाफ पूर्वोक्त सजा सुनाते समय विद्वान विचारण न्यायालय की ओर से कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं पाई जाती है।

27. अपील योग्यता से रहित है और खारिज किए जाने योग्य है। उपरोक्त टिप्पणियों के साथ अपील खारिज कर दी गई है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि और सजा सुनाए जाने के निर्णय की पुष्टि की जाती है। जैसा कि तथ्य पहले ही रिकॉर्ड पर लाया गया है कि अपीलकर्ता ने आक्षेपित निर्णय में दी गई पूर्ण सजा पूरी कर ली है, उसे अब सजा भुगतने के लिए आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

28. अवर न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 511

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 1752/2012

अमर सिंह एवं अन्य ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री जितेन्द्र कुमार मिश्रा, श्री अंजनी कुमार दुबे, श्री स.स. यादव, श्री विजय सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: श्री अमित सिन्हा, ए.जी.ए., सुश्री मयूरी मेहरोत्रा, राज्य वकील, श्री राम नाथ, श्री एस.के. त्रिपाठी

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 378- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302, 307, 394, 323-दोषसिद्धि - चुनौती-चश्मदीद गवाहों के बयानों में भिन्नता पाई गई-एफआईआर तुरंत दर्ज की गई-हालांकि, गवाहों की जांच समय बीतने के बाद की गई लेकिन अगर चश्मदीद गवाह ठोस और भरोसेमंद हैं और सभी पहलुओं में चिकित्सा साक्ष्य पर भारी पड़ते हैं जहां शव परीक्षण रिपोर्ट नेत्र संबंधी साक्ष्य के साथ विरोधाभासी पाई जाती है-दोषसिद्धि और सजा बरकरार रखी जाती है। (पैरा 1 से 74)

बी. जहां तक धारा 307 आईपीसी के तहत आरोप का सवाल है, स्थापित कानून यह है कि यह जरूरी नहीं है कि ऐसी चोट पहुंचाई गई हो जिससे मौत हो सकती हो। आईपीसी की धारा 307 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए जो चीज महत्वपूर्ण है, वह है इरादा या ज्ञान

जिसके साथ सब कुछ किया गया, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। इरादा और ज्ञान परिस्थितियों की समग्रता से अनुमान के मामले हैं और उन्हें केवल परिणामों से नहीं मापा जा सकता है। वास्तव में, यह निर्धारित करने के लिए कि क्या धारा 307 आईपीसी के तहत अपराध बनता है, ध्यान में रखने वाली महत्वपूर्ण बात इरादा है, न कि चोट, भले ही वह साधारण या मामूली हो। हत्या करने के इरादे या मौत के ज्ञान का सवाल हमेशा तथ्य का सवाल होता है, कानून का नहीं। आरोपी का इरादा या ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो हत्या का गठन करने के लिए आवश्यक हो। धारा 307 आईपीसी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि चोट शरीर के महत्वपूर्ण हिस्से पर हो। केवल इरादे या ज्ञान के साथ चोट पहुंचाना ही धारा 307 आईपीसी को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। (पैरा 71)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. चाको बनाम केरल राज्य (2004) 12 एससीसी 269
2. राज नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) एआईआर एससीडब्लू 521
3. धरणीधर बनाम यूपी राज्य (2010) 6 एससीजे 662
4. रमेश बनाम यूपी राज्य (2009) 15 एससीसी 513
5. रवि कुमार बनाम पंजाब राज्य (2005) 9 सी सी 315
6. प्रेमसागर मनोचा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2016) 4 सी सी 571
7. ए.पी. राज्य बनाम एस. रायप्पा एवं अन्य (2006) 4 एससीसी 512
8. बिकाऊ पांडे बनाम बिहार राज्य (2003) 12 सी सी 616
9. अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एससीसी 318
10. दीपक वर्मा बनाम एच.पी. राज्य (2011) 10 एससीसी 129
11. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट राज्य (2016) 10 सी सी 537
12. सुरिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य (2020) 2 सी सी 563
13. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य (2008) 12 एससीसी 173
14. मुकेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2017) 6 एससीसी 1
15. मकसूदन बनाम यूपी राज्य (1983) 1 एससीसी 218
16. सत कुमार बनाम हरियाणा राज्य (1974) 3 एससीसी 643
17. सी. मुनियप्पन बनाम टी.एन. राज्य (2010) 6 एससीजे 822
18. हरी किशन और हरियाणा राज्य बनाम सुखबीर सिंह (1988) एयर एससी 2127
19. एम.पी. राज्य बनाम हरजीत सिंह एवं अन्य (2019) एआईआर एससी 1120

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान आपराधिक अपील अपीलकर्ता अमर सिंह और पंजाबी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 181 वर्ष 2011 (राज्य बनाम अमर सिंह और अन्य) में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर-1, कन्नौज द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 6.4.2012 के खिलाफ दायर की

गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं को धारा 302, 394 और 307 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उन्हें क्रमश: कठोर आजीवन कारावास और 10,000 रुपये के जुर्माने, दस वर्ष का सश्रम कारावास और 5,000 रुपये का जुर्माना और सात वर्ष का सश्रम कारावास और 4,000 रुपये का जुर्माना की सजा, चूक की स्थिति में शर्त के खंड के साथ सुनाई गई है। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. अभिलेख से प्राप्त मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता मिजाजी लाल पुत्र रामदीन यादव निवासी ग्राम-मनसुखपुरवा, मजरा-बहोसी, थाना-इन्द्रगढ़, जनपद: फर्रुखाबाद दिनांक 28.12.1989 को लगभग 20.30 बजे थाना-इन्द्रगढ़ में मौखिक सूचना दी कि दिनांक 28.12.1989 को उसके भाई मेवा लाल एवं प्रहलाद तथा भतीजा वीर सिंह बंजर भूमि में गेहूँ बोने गए थे। मेवा लाल और वीर सिंह घर लौट आए थे, लेकिन प्रहलाद सिंह कुदाल से घास खोद रहे थे और निराई कर रहे थे। उसी गांव निवासी अमर सिंह उक्त बंजर जमीन के कारण करीब 10-12 साल से उनसे रंजिश रखता था। जब अमर सिंह को पता चला कि खेत में गेहूं बोया गया है तो वह 'फरसा', पंजाबी 'तलवार' से लैस, चौबे तवाल से लैस और नान्हू लाठी से लैस होकर लगभग 4.00 बजे खेत में पहुंचा और प्रहलाद को गाली देना और पीटना शुरू कर दिया। उसके चीखने पर पास ही घास कटा रही मेवाराम की बेटी पप्पी दौड़कर घर पहुंची और घटना की जानकारी दी। इसके बाद लाइसेंसी बंदूक नंबर 55380 बेल्ट और आठ कारतूस लेकर सूचनाकर्ता अपने दोनों बेटों महेंद्र और सुरेंद्र के साथ मौके पर पहुंचा। आरोपियों ने प्रहलाद सिंह को छोड़कर मेवा लाल, वीर सिंह और महेंद्र सिंह को पीटना शुरू कर दिया और सभी को घायल कर दिया। अमर सिंह ने बेल्ट, कारतूस और बंदूक छीन ली और मझिला की ओर भाग गया। घटना को सूचनाकर्ता, पप्पी, नरेंद्र, सुरेंद्र व अन्य सभी ग्रामीणों ने देखा। प्रहलाद सिंह, मेवालाल और वीर सिंह की हालत गंभीर थी।

3. उपरोक्त सूचना के आधार पर दिनांक 28.12.1989 को रात्रि 08.30 बजे संबंधित थाने में धारा 307, 394 एवं 324 भ०द०वि० के अंतर्गत चिक प्राथमिकी दर्ज कराई गयी; जी.डी. प्रविष्टि भी उसी समय की गई जो कि प्रदर्श क-6 है।

4. मामले की जांच आगे बढ़ी। घायलों को मेडिकल जांच के लिए भेजा गया और रास्ते में प्रहलाद सिंह ने दम तोड़ दिया। विवेचनाधिकारी ने गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने मौके का निरीक्षण किया और नक्शा नज़री (प्रदर्श क-3) तैयार किया। उन्होंने मृतक का पंचनामा (प्रदर्श क-3) और शव परिक्षण से संबंधित कागजात भी तैयार किए। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल से सादी और खून से सनी मिट्टी का नमूना भी लिया और फ़र्द बरामदगी तैयार किया (प्रदर्श क-9)।

5. मृतक के शव का शव परिक्षण डॉ. ओ.पी गंगवार द्वारा 30.12.1989 को किया गया

और दोपहर 1.10 बजे शव परिक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) तैयार की गई। मृतक के शव की जांच करने पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें पाई गईं

(1) ख़ून रिसता कटा घाव 3.5 सेमी X 1 सेमी खोपड़ी गहरी बाईं ओर सिर बाएं कान से 11 सेमी ऊपर।

(2) बाईं ओर के चेहरे पर 10 सेमी X 4 सेमी का संलयन जिसमें नाक के नीचे, नाक के बीच और बाईं मैक्सिला फ्रैक्चर शामिल है।

(3) ख़ून रिसता कटा घाव 1.5 सेमी X .5 सेमी X मांसपेशियों को बाईं ओर ऊपरी होंठ पर गहरा।

(4) चीरा हुआ घाव 2 सेमी X .3 सेमी X हड्डी बाईं ओर के मार्जिन पर निचले जबड़े के कोण पर गहरी है, तेज के दोनों कोण को स्पष्ट रूप से कटा।

(5) कटा घाव 4 सेमी X 1 सेमी x हड्डी तक गहरा बाईं ओर ठोड़ी, मार्जिन स्पष्ट कट दोनों कोण तेज तिरछे रखा अंतर्निहित हड्डी तक गहरा फ्रैक्चर।

(6) कटा घाव 9 सेमी X 2 सेमी X मांसपेशी गहरा पीछे पार्श्व पहलू आरटी साइड ऊपरी भाग गर्दन मार्जिन स्पष्ट कटा, दोनों कोण तेज।

(7) कटा घाव 8 सेमी X 3 सेमी X हड्डी आरटी कलाई क्षेत्र मार्जिन स्पष्ट कटा, दोनों कोण तेज अंतर्निहित हड्डी तक गहरा।

(8) चीरा हुआ घाव 7 सेमी X 2 सेमी X आरटी हाथ की हड्डी तक गहरा डोरसम जिसमें कलाई मार्जिन स्पष्ट कट दोनों कोण तेज, अंतर्निहित हड्डी तक गहरा शामिल है।

(9) चीरा हुआ घाव 6 सेमी X 1.5 सेमी X हड्डी बाहरी पक्ष आरटी घुटने मार्जिन स्पष्ट कटा, दोनों कोण तेज अंतर्निहित हड्डी आंशिक रूप से कटा।

(10) चीरा हुआ घाव 2.5 सेमी X .5 सेमी X मांसपेशियों की बाईं कलाई की गहरी पीठ, मार्जिन स्पष्ट कटा, दोनों कोण तेज।

(11) कटा घाव 14 X .5 सेमी X मांसपेशी गहरी बाहरी तरफ बाएं टखने पर।

6. डॉक्टर की राय में, मृतक की मृत्यु, मृत्यु-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी।

7. घायल वीर सिंह की दिनांक 28.12.1989 को रात्रि 10.30 बजे चिकित्सा जांच की गई तथा परीक्षा के दौरान निम्नलिखित चोटें पाई गईं :

(1). दाहिनी आंख की भौंह पर एक घाव 2" x 1/2" x 1 और 1/4 मौजूद है, खून बह रहा है।

(ii) गाल और आंखों की पलकों पर हेमेटोमा 4" x 4" मौजूद है।

(iii) ऊपरी होंठ 1 x 1/2 X 1/2 मौजूद घाव के साथ हेमेटोमा मौजूद है।

(iv) बाएं पार्श्व मैलेलेलस पर मौजूद एक घाव 4 "x 1" x 1 और 1/2" होता है, जो मैलेलेलस और आस-पास की हड्डियों को उकसाता है, खून बह रहा है।"

8. डॉक्टर की राय में, चोट को छोड़कर सभी चोटें ताजा और सरल थीं। (iv) के कारण जो गंभीर था और धारदार हथियार के कारण हुआ था, जबकि अन्य किसी कुंद हथियार के कारण हुए थे। चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) तैयार किया गया था।

9. घायल मेवालाल की 28.12.1989 को रात्रि 10.45 बजे चिकित्सा जांच की गई और उसकी

जांच के दौरान निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"(1). खोपड़ी के बाएं पार्श्विका श्रेष्ठता पर मौजूद एक घाव 1/2 "x 1/2" x 1/4।

(ii) दाहिने गाल पर दाएं ट्रैगस 1/4" x 1/2" x 1/4 के पास मौजूद एक घाव।

(iii) बाईं आंख की भौंह पर एक घाव 1" x 1/2" x 1/4" मौजूद है।

(iv) बाईं मैक्सिला का फ्रैक्चर बाईं आंख, बाएं गाल की पलकों पर एक घाव 4" x 4" हेमेटोमा

10. डॉक्टर की राय में, सभी चोटें ताजा और सरल थीं, चोट (iv) को छोड़कर जो गंभीर थी; चोट की रिपोर्ट प्रदर्श क-5 तैयार की गई।

11. जांच पूरी करने के बाद, चार आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) दायर किया गया था। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया। यह मामला सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय होने के कारण, सत्र न्यायालय को समर्पित किया गया।

12. आरोपी व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुए और उनके खिलाफ भ०द०वि० की धारा 394, 307, 302, 324 और 325 के तहत आरोप तय किए गए। आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

13. विचारण आगे बढ़ा और विचारण के दौरान अमर सिंह के पुत्र नन्हू और अरविन्द @ चौबे को क़ानून के हिसाब से किशोर घोषित कर दिया गया और उनके मामलों को अलग करके विचारण के लिए किशोर न्याय बोर्ड को भेज दिया गया।

14. अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आरोपों को क़ानून के दायरे में लाने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों की जांच की है, जो इस प्रकार हैं:

1	मिजाजी लाल	अ०सा०-1, सूचनाकर्ता /चश्मदीद गवाह
2	मेवा लाल	अ०सा०-2, घायल/चश्मदीद गवाह
3	वीर सिंह	अ०सा०-3, घायल/चश्मदीद गवाह
4	डॉ. ओ.पी गंगवार	अ०सा०-4, शव परीक्षण के गवाह
5	ईश्वर दयाल	अ०सा०-5, पंचनामा के गवाह
6	आर.एस कमल	अ०सा०-6, चोट रिपोर्ट के गवाह
7	एस.आई मुन्नू लाल कटियार	अ०सा०-7, प्राथमिकी लेखक और द्वितीय विवेचनाधिकारी

15. मौखिक संस्करण के समर्थन में, अभियोजन पक्ष की ओर से निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	चिक प्राथमिकी	प्रदर्श क-1
2	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
3	पंचनामा रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
4	चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क-4
5	चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क-5
6	जी.डी.	प्रदर्श क-6
7	टर्मिनी जी.डी	प्रदर्श क-7
8	नक्शा नज़री	प्रदर्श क-8
9	फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-9
10	फ़र्द सादी और खून आलूदा मिट्टी	प्रदर्श क-10

16. साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद, आरोपी व्यक्तियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के

अनुवादित

तहत दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने दुश्मनी और पार्टी-बंदी के कारण झूठे आरोप लगाए जाने का तर्क दिया।

17. अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 तथ्य के गवाह हैं।

18. अ०सा०-1, अर्थात् मिजाजी लाल (सूचनाकर्ता) ने अपनी मौखिक गवाही में, प्राथमिकी का समर्थन किया है। उन्होंने चिक प्राथमिकी (प्रदर्श ए-1) पर अपना अंगूठा निशानी साबित किया है। उन्होंने अपनी गवाही में पूरी घटना और अपराध करने में सभी आरोपी व्यक्तियों की भूमिका के बारे में बताया है।

19. अ०सा०-2 मेवालाल घायल गवाह है। उन्होंने भी प्राथमिकी की पुष्टि की है और अ०सा०-1 की गवाही का समर्थन किया है।

20. अ०सा०-3 वीर सिंह भी घायल गवाह है। उन्होंने भी प्राथमिकी संस्करण की पुष्टि की है और अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही का भी समर्थन किया है।

21. अ०सा०-4, अ०सा०-6 और अ०सा०-7 औपचारिक गवाह हैं।

22. अ०सा०-4 डॉ. ओ.पी गंगवार ने मृतक का शव परीक्षण किया है और शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) तैयार की है।

23. अ०सा०-5 ईश्वर दयाल पंचनामा का गवाह है और उसने पंचनामा प्रदर्श क-3 को साबित किया है।

24. अ०सा०-6 विनोद दीक्षित अस्पताल, कन्नौज के फार्मासिस्ट आर.एस कमल ने घायल मेवा लाल और वीर सिंह की चोट रिपोर्ट क्रमशः (प्रदर्श क-4), (प्रदर्श क-5) के रूप में साबित की है और डॉ. बीएन अग्रवाल के हस्ताक्षर भी साबित किए हैं, जिन्होंने उक्त घायलों की जांच की थी, क्योंकि डॉ. बी.एन अग्रवाल की मृत्यु हो गई है।

25. अ०सा०-7 एस.आई मुन्नू लाल कटियार, जो थाना इंद्रगढ़ में सी. मोहर्रिर के रूप में तैनात थे, ने अपने बयान में चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-1), पंजीकरण जी.डी (प्रदर्श क-6), (संशोधन) टर्मिनी जी.डी (प्रदर्श क-7) पर अपने हस्ताक्षर साबित किए हैं, और विवेचना की कार्यवाही को साबित किया है क्योंकि गंगा राम जो विवेचनाधिकारी थे, की मृत्यु हो गई है। विवेचनाधिकारी के लिए माध्यमिक गवाह के रूप में उन्होंने नक्शा नज़री (प्रदर्श क-8), फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-9) और आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) साबित किया है।

26. उपरोक्त मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को दर्ज किया और उन्हें सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

27. विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने विभिन्न आधारों पर खारिज कर दिया है।

28. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री जितेंद्र कुमार मिश्रा, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिन्हा, और राज्य अधिवक्ता सुश्री मयूरी मेहरोत्रा को सुना और पूरे रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

अप्रमाणित

29. एक आपराधिक मुकदमे में, अभियोजन पक्ष ठोस और विश्वसनीय सबूत के आधार पर, और बचाव पक्ष की कमजोरियों पर नहीं, के आधार पर उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। यदि अभियोजन का मामला प्रत्यक्षदर्शी के विवरण पर टिका हुआ है, तो चक्षुक साक्ष्य विश्वसनीय और सभी दुर्बलताओं से मुक्त होना चाहिए और चश्मदीद गवाह को 'स्टर्लिंग गवाह' की श्रेणी में आना चाहिए और यदि इस तरह के चक्षुक साक्ष्य का भी समर्थन किया जाता है और चिकित्सा साक्ष्य के साथ इसकी पुष्टि की जाती है, तो सभी संभावनाओं में, अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में सफल हो सकता है।

30. वर्तमान प्रकरण एक ऐसा मामला है जो चश्मदीद गवाह खाते पर टिका हुआ है और तथ्य के तीन गवाह में दो घायल गवाह भी हैं।

31. अ०सा०-2 मेवालाल और अ०सा०-3 वीर सिंह घायल गवाह हैं और उनकी पूरी गवाही के अवलोकन से, हम पाते हैं कि उन्होंने अपराध के कमीशन में आरोपी व्यक्तियों की भूमिका, घटना के स्थान, अपराध में इस्तेमाल किए गए हथियारों और अन्य संबंधित कारकों के बारे में लगभग समान बयान दिए हैं। उक्त घटना में उन्हें चोटें आई हैं और घायल गवाह होने के कारण उनके साक्ष्य एक अलग और विशिष्ट आधार पर खड़े हैं और उन्हें एक ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में देखा जाना चाहिए।

32. अ०सा०-2 और अ०सा०-3 दोनों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना के समय जब कु. पप्पी द्वारा प्रहलाद सिंह पर चार आरोपियों द्वारा हमले के बारे में सूचित किया गया था, तो वे उसे बचाने के लिए घटनास्थल पर पहुंचे। अ०सा०-2 ने अ०सा०-1 और अ०सा०-3 द्वारा समर्थित एक विशिष्ट बयान दिया है कि जब वह प्रहलाद सिंह को बचाने के लिए मैदान में दौड़ा, तो उसने आठ कारतूसों के साथ अपनी सिंगल बैरल गन भी ली; वीर सिंह, महेंद्र और सुरेंद्र भी उसके साथ थे और इस कथन की पुष्टि अ०सा०-3 ने भी की है।

(i) अ०सा०-3 जो मृतक का पुत्र है, ने बताया है कि जब वे घटनास्थल पर पहुंचे, तो आरोपी व्यक्तियों ने उसके पिता को छोड़ दिया और उसे तथा उसके चाचा मेवालाल (अ०सा०-2) को घायल कर दिया। उसकी आंख, पैर और चेहरे पर गंभीर चोटें आईं और उसके चाचा मेवालाल और पिता प्रहलाद सिंह को भी गंभीर चोटें आईं।

(ii) अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने एक स्वर में कहा कि आरोपी अमर सिंह ने मेवालाल से बंदूक और कारतूसों की बेल्ट छीन ली और भाग गया। उन्होंने इस बिंदु पर भी समान बयान दिए हैं कि घटना के दौरान आरोपी अमर सिंह ने मृतक और घायल व्यक्तियों को फरसा, पंजाबी को तलवार, चौबे को तवल और नान्हू को लाठी से घायल किया।

33. अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में कु. पप्पी को पेश न करने के संबंध में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा एक प्राथमिक आपत्ति उठाई गई है। यह तर्क दिया गया है कि मृतक प्रहलाद सिंह का बयान, जबकि वह जीवित था, धारा 161 द०प्र०स० के तहत पुलिस द्वारा दर्ज नहीं किया गया था,

इसलिए यह अभियोजन पक्ष पर निर्भर था कि वह कु. पप्पी को गवाह के रूप में पेश करे, जो यह बताने के लिए सबसे अच्छा व्यक्ति था कि घटना कैसे शुरू हुई। इस याचिका का राज्य के विद्वान अधिवक्ता और सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार विरोध किया।

34. रिकॉर्ड के अवलोकन से, हम पाते हैं कि आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) में, कु. पप्पी का नाम गवाह के रूप में दिखाया गया है, जिससे पता चलता है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसका बयान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था। प्रश्न यह उठता है कि क्या कु. पप्पी को गवाह के रूप में पेश न करने से अभियोजन पक्ष के बयान पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इसका उत्तर हमें नकारात्मक लगता है। यह निर्णय करना अभियोजन पक्ष का हमेशा विशेषाधिकार होता है कि न्यायालय के समक्ष उसके द्वारा कितने और किन गवाहों की जांच की जानी है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 के तहत प्रदान किया गया कानून यह है कि "किसी भी मामले में किसी भी तथ्य के प्रमाण के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या की आवश्यकता नहीं होगी।

35. हम चाको बनाम केरल राज्य, (2004) 12 एस.सी.सी 269 पर भरोसा करते हैं जिसमें यह माना गया है कि मामले को स्थापित करने के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं है। दोषसिद्धि एक गवाह की गवाही पर आधारित हो सकती है, यदि वह पूरी तरह से विश्वसनीय है। पुष्टि तब आवश्यक हो सकती है जब वह केवल आंशिक रूप से विश्वसनीय हो। यदि सबूत बेदाग हैं और सभी संभावित आलोचनाओं से परे हैं और अदालत संतुष्ट है कि गवाह सच बोल रहा है, तो केवल उसके साक्ष्य पर ही दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है।

36. राज नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010 ए.आई.आर एस.सी.डब्ल्यू 521 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी संदर्भ दिया जा सकता है जिसमें यह माना गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि उन सभी व्यक्तियों की जांच की जानी चाहिए जो मौके पर मौजूद थे। यह साक्ष्य की गुणवत्ता है, जिस पर न्यायालयों द्वारा ध्यान दिया जाना अपेक्षित है न कि मात्रा पर।

37. हम यहां बहुत अच्छी तरह से याद दिला सकते हैं कि अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 चश्मदीद गवाह हैं। अ०सा०-1 ने अपने बयान में कहा है कि पप्पी ने बताया है कि चारों आरोपी फरसा, तवल, तलवार और लाठी से प्रह्लाद सिंह के साथ बुरी तरह मारपीट कर रहे हैं और जब वह अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के साथ खेत में पहुंचा तो प्रहलाद सिंह घायल हालत में बेहोश पड़ा था और उसी समय उन्होंने उपरोक्त हथियारों से मेवालाल और वीर सिंह को घायल कर दिया और भाग गए। उन्होंने यह भी कहा है कि तीनों घायलों को पुलिस अस्पताल ले गई। पुलिस ने घायलों की गंभीर स्थिति को देखते हुए उन्हें तुरंत मेडिकल के लिए भेजा और रास्ते में ही प्रहलाद सिंह की मौत हो गई।

38. अ०सा०-2 ने भी इस कहानी की पुष्टि की और कहा कि जब वे घटनास्थल पर पहुंचे, तो

उन्होंने सभी चार व्यक्तियों को 20-25 मीटर की दूरी से देखा, जिससे प्रहलाद सिंह को चोटें आईं और जैसे ही वह नाली के पास पहुंचे, आरोपी व्यक्तियों ने प्रहलाद सिंह को छोड़ दिया और उस पर हमला किया और उसकी बंदूक भी छीन ली गई। इसी तरह, अ०सा०-3 ने यह भी कहा कि जब वे खेत में पहुंचे, तो आरोपी व्यक्तियों ने उनके पिता प्रहलाद सिंह को छोड़ दिया, उन पर और उनके चाचा मेवालाल पर हमला किया। वह आगे कहता है कि जब वह मेवालाल के साथ खेत में पहुंचा, तो सभी आरोपी व्यक्ति प्रहलाद सिंह के साथ मारपीट कर रहे थे और जब आरोपी व्यक्तियों ने उस पर और मेवालाल पर हमला किया, तो प्रहलाद सिंह जमीन पर पड़ा था। यह गवाह यह भी स्पष्ट करता है कि विवेचनाधिकारी को दिया गया उसका बयान इस हद तक सही था कि जब वह मौके पर पहुंचा, तो आरोपी व्यक्तियों ने पहले ही उसके पिता प्रहलाद सिंह को चोट पहुंचाई थी।

39. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने बताया है कि उपरोक्त गवाहों के बयानों में इस बिंदु पर विरोधाभास है कि जब वे मौके पर पहुंचे, तो कोई भी घटना चल रही थी या नहीं और इस समय उनका चक्षुक वर्णन अत्यधिक संदिग्ध है।

40. पूर्वोक्त दलील एक स्पष्ट तथ्य पर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि वर्तमान मामले में घटना 28.12.1989 को हुई थी और अ०सा०-1 का बयान वर्ष 2007 में, अ०सा०-2 का बयान वर्ष 2008 में और अ०सा०-3 का वर्ष 2011 में दर्ज किया गया था, इसलिए, घटना के 18-22 वर्षों के बाद तथ्य के गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए गए हैं। किसी भी सामान्य व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह 15 या 20 वर्ष पूर्व घटित किसी घटना की कम्प्यूटरीकृत और सुनियोजित स्मृति रखेगा। जब न्यायालय तथ्य के किसी भी गवाह के बयान की सत्यता का मूल्यांकन करता है, तो उसे हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसे गवाह का साक्ष्य कितने समय के अंतराल के बाद दर्ज किया गया है। मानव स्मृति की अपनी सीमाएं हैं और लंबे समय के अंतराल में उनका फीका होना स्वाभाविक है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए शब्दश: और उसी तरीके से पूरी घटना का वर्णन करना संभव नहीं है, जो उसने 15-20 वर्षों से पहले देखी थी और उस समय उसने विवेचनाधिकारी के समक्ष क्या कहा था। अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही में पाए गए विरोधाभास, यदि कोई हों, पर इस संभावना के साथ भी विचार किया जाना चाहिए। इस न्यायालय के दृष्टिकोण को धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 (6) एस.सी.जे 662 से समर्थन मिलता है जिसमें यह माना गया है कि जब गवाहों से काफी समय बीत जाने के बाद अदालत में जांच की जाती है, तो यह न तो अप्राकृतिक है और न ही अप्रत्याशित है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में कुछ मामूली बदलाव हो सकते हैं और वास्तव में, जैसा कि रमेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 15 एस.सी.सी 513 में अवधारित किया गया था, अभियोजन पक्ष के गवाह की गवाही में मामूली विरोधाभास होने के लिए बाध्य हैं और वास्तव में वे गवाहों की सच्चाई का समर्थन करते हैं। हमने अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की पूरी गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की है और हमें उनके

बयानों में कोई भौतिक विरोधाभास नहीं मिला है।

41. इस पृष्ठभूमि में, हमारा विचार है कि गवाह के रूप में कु. पप्पी का प्रस्तुत न किया जाना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं था और यह भी कि अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 विश्वसनीय और भरोसेमंद गवाह हैं जो अपने बयानों में निरंतरता रखते हैं और इस तरह वे 'स्टर्लिंग गवाह' की श्रेणी में आते हैं।

42. हम इसे चिकित्सा साक्ष्य के कोण से भी अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच करने के लिए उचित मानते हैं। मृतक का शव परिक्षण करने वाले अ०सा०-4 के बयान से पता चलता है कि मृतक के शरीर पर 11 चोटें पाई गई थीं, जो शरीर के विभिन्न हिस्सों जैसे खोपड़ी, चेहरे, गर्दन, हाथ आदि पर खून रिसता घाव, कटा घाव और घर्षण के रूप में थीं। शव परीक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था। अ०सा०-4 ने राय दी है कि मृतक की मौत 28-12-1989 को सायं लगभग 4.00 बजे धारदार हथियार से लगी चोटों के कारण हो सकती है। तथ्य के गवाह स्पष्ट रूप से बताते हैं कि फरसा, तलवार, तवल और लाठी घटना में इस्तेमाल किए गए हथियार थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन्होंने अपराध के कमीशन में कुछ कुंद वस्तुओं के उपयोग के बारे में भी कहा था। चोट संख्या 1, 2, 3, 4 और 11 की प्रकृति से पता चलता है कि ये चोटें कठोर और कुंद वस्तु के उपयोग से हो सकती हैं। हम पाते हैं कि कुल मिलाकर, नेत्र और चिकित्सा साक्ष्य के बीच कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया है कि अ०सा०-4, डॉक्टर ने अपने बयान में कहा है कि मृतक की मौत तेज धार वाले हथियारों के इस्तेमाल से लगी चोटों के कारण हो सकती है, लेकिन अगर तर्क को सही माना जाता है, तो हम पाते हैं कि चिकित्सा साक्ष्य कहीं भी मृतक को चोट पहुंचाने के लिए कठोर और कुंद वस्तु के उपयोग से इनकार नहीं करते हैं। इसलिए, चक्षुक साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच कोई भौतिक विरोधाभास नहीं है और यदि यह इंगित किया भी गया है, तो निर्णयों के एक समूह में यह माना गया है कि यदि चक्षुक साक्ष्य विश्वसनीय पाए जाते हैं, तो संभावनाओं के आधार पर चिकित्सा साक्ष्य केवल चक्षुक साक्ष्य पर हावी नहीं हो सकते हैं।

43. रवि कुमार बनाम पंजाब राज्य, (2005) 9 एस.सी.सी 315 में, यह माना गया है कि जब चक्षुक साक्ष्य ठोस और विश्वसनीय होता है, तो इसके विपरीत चिकित्सा साक्ष्य पूर्व के साक्ष्य मूल्य को खराब नहीं कर सकता है।

44. इसी तरह, प्रेमसागर मनोचा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2016) 4 एस.सी.सी 571 में, यह माना गया था कि उनके ज्ञान के आधार पर, विशेषज्ञ की राय बाद में किसी भी प्रामाणिक सामग्री के सामने आने पर परिवर्तन के अधीन हो सकती है। विशेषज्ञ गवाह की राय तथ्य के गवाह की गवाही से अलग है। विशेषज्ञ का कर्तव्य कारण और प्रासंगिक सामग्री के साथ अपनी राय प्रस्तुत करना है। इसके बाद यह न्यायालय के लिए होगा कि वह

राय की शुद्धता को देखे और तदनुसार अपने निष्कर्ष पर पहुंचे।

45. पूर्वोक्त स्थापित कानूनी स्थिति के प्रकाश में, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि घटना के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के सबूत, ठोस और भरोसेमंद हैं और सभी पहलुओं में चिकित्सा साक्ष्य पर प्रबल होते हैं जहां भी शव परीक्षा रिपोर्ट चक्षुक साक्ष्य के साथ संघर्ष में पाई जाती है।

46. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि डॉ. बी. एन. अग्रवाल, जिन्होंने दोनों घायल व्यक्तियों वीर सिंह और मेवालाल की चिकित्सा जांच की थी, की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी और अ०सा०-6 ने माध्यमिक साक्ष्य के रूप में उनके लिए गवाही दी थी और घायल वीर सिंह और मेवालाल की चोट रिपोर्ट को मूल मेडिको लीगल रजिस्टर के आधार पर क्रमशः प्रदर्श क-4 और प्रदर्श क-5 के रूप में साबित किया था। उन्होंने बताया कि दोनों घायलों की जांच 28.12.1989 को डॉ. बी.एन अग्रवाल द्वारा क्रमशः 10.30 बजे और 10.45 बजे की गई थी। घायल वीर सिंह की चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उसकी दाहिनी आंख की भौंह पर मौजूद घाव है, बाएं पार्श्व मैलेलेलस पर मौजूद घाव और आस-पास की हड्डियों और दाईं छाती और आंख की तरफ और ऊपरी होंठ के घाव पर घाव मौजूद है। चोट नं. (iv) धारदार हथियार से हुआ घाव गंभीर पाया गया और एक्स-रे की सलाह दी गई, जबकि अन्य चोटें किसी अन्य कुंद वस्तु के कारण हुई थीं। इसी तरह, घायल मेवालाल की चोट की रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि उसने खोपड़ी के बाएं पार्श्विका एमिनेंस पर मौजूद घाव को साबित किया है, जो दाएं गाल पर मौजूद है, बाईं आंख की भौंह पर मौजूद है और बाईं मैक्सिला का फ्रैक्चर है। सभी चोटें साधारण पाई गईं। चोट नं. (iv) गंभीर थी, एक्स-रे की सलाह दी गई थी। दोनों घायल व्यक्तियों को लगी चोटों की प्रकृति इस तथ्य का संकेत है कि सभी चोटें अ०सा०-2 और अ०सा०-3 (?) के कारण हुई थीं। यह सच है कि रिकॉर्ड पर कोई एक्स-रे रिपोर्ट या पूरक रिपोर्ट नहीं है, लेकिन दोनों घायल व्यक्तियों की मेडिकल रिपोर्ट, जो रिकॉर्ड पर हैं, अ०सा०-6 के माध्यमिक साक्ष्य द्वारा साबित की गई हैं, जो कानून में स्वीकार्य थी क्योंकि अदालत में साक्ष्य दर्ज करने से पहले वास्तविक डॉक्टर की मृत्यु हो गई थी। इस तरह, अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करती है और भौतिक पहलुओं में चिकित्सा साक्ष्य से पूर्ण पुष्टि प्राप्त करती है।

47. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रदान किए गए सभी तथ्य गवाह मृतक से संबंधित गवाह हैं और इस तरह वे भी गवाह हैं और इसी तरह यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों और सूचनाकर्ता का अपीलकर्ताओं को झूठे मामले में फंसाने का मजबूत मकसद था। आगे यह बताया गया है कि चूंकि घटना सार्वजनिक स्थान पर दिन के उजाले में हुई थी, इसलिए सभी संभावनाओं में जनता के व्यक्ति घटना के समय मौजूद रहे होंगे, लेकिन इस मामले में अभियोजन पक्ष

द्वारा स्वतंत्र गवाहों को छुपाया गया और उनसे पूछताछ नहीं की गई। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्क का जोरदार विरोध करते हुए तर्क दिया है कि संबंध, यदि यह न्यायालय के विश्वास को प्रेरित करता है, तथ्य के किसी भी गवाह की गवाही को खारिज करने का कारक नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि चूंकि यह चक्षुक साक्ष्य का मामला है, इसलिए इस मामले में मकसद का कोई महत्व नहीं है।

48. पूर्वोक्त मुद्दे से निपटने के दौरान, इस तथ्य को नहीं खोया जा सकता है कि वर्तमान मामले में तथ्य के तीन गवाहों में से, अ०सा०-2 मेवालाल और अ०सा०-3 वीर सिंह घायल गवाह हैं। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि तथ्य का गवाह यदि स्वयं घटना में ही घायल हो जाता है और अदालत के समक्ष तदनुसार गवाही देता है, तो उसका साक्ष्य एक अलग पायदान पर खड़ा होता है और उसके साक्ष्य की विश्वसनीयता पर केवल इसलिए संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि वह मृतक से संबंधित है और इस तरह वह एक हितबद्ध गवाह है।

49. यह सच है कि प्राथमिकी में ही, यह उल्लेख किया गया है कि कई ग्रामीणों ने तथ्य के गवाहों के अलावा घटना को देखा था, जिनकी अदालत के समक्ष जांच की गई है। अ०सा०-2 ने घायलों को बताया कि उनके चीखने पर मीजा जी, भरत और गांव के और कई लोग मौके पर पहुंच गए। अ०सा०-1 ने यह भी कहा गया है कि घटना के समय कई गांव के व्यक्ति मौके पर आए थे और इसी तरह का बयान अ०सा०-3 की गवाही में भी पाया जाता है। हमने विवेचनाधिकारी द्वारा इस मामले में प्रस्तुत आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) को भी छान लिया है और उसी के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कु. पप्पी, महेंद्र सिंह और सुरेंद्र सिंह को भी मामले के चश्मदीद गवाह के रूप में नामित किया गया है। जिस मुद्दे पर विचार किया जाना चाहिए वह यह है कि यदि आरोप पत्र में नामित तथ्य के गवाहों, जिन्हें स्वतंत्र गवाह कहा जाता है, को अदालत के समक्ष पेश नहीं किया जाता है, तो क्या अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और साथ ही यह भी जांच की जानी है कि क्या तथ्य के गवाहों, जिन्हें संबंधित/हितबद्ध गवाह कहा जाता है, विश्वसनीय गवाह हैं या नहीं।

50. अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही की विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की गई है और हमारे द्वारा भी जांच की गई है और हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि सावधानीपूर्वक जांच के बाद उपरोक्त गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद पाए गए हैं। इसके मद्देनजर, हमारे सुविचारित विचार में, अभियोजन पक्ष को केवल यह दिखाने के लिए किसी अन्य गवाह को पेश करने की आवश्यकता नहीं थी कि वह कुछ स्वतंत्र गवाहों द्वारा भी अपने मामले को साबित करने जा रहा है।

51. इस मामले का एक और व्यावहारिक पहलू है, जिसे कानून के किसी भी न्यायालय द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि जनता के स्वतंत्र व्यक्ति अक्सर इतने सारे कारणों से किसी भी आपराधिक मुकदमे में अभियोजन

पक्ष के लिए गवाह के रूप में खड़े होने से बचते हैं। आंध्र प्रदेश बनाम एस रायप्पा और अन्य, (2006) 4 एस.सी.सी 512 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक विचारण के कई पहलुओं की जांच की और इस पहलू को भी ध्यान में रखा गया कि क्यों स्वतंत्र गवाह अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही देने की उपेक्षा करते हैं और किन परिस्थितियों में झूठे आरोप की संभावना से इनकार किया जा सकता है। यह भी स्पष्ट किया गया था कि इतने सारे मामलों में अभियोजन पक्ष गवाहों पर भरोसा करने के लिए क्यों बाध्य है, जो मृतक (पीड़ित) के रिश्तेदार हैं। यह पैरा 6 और 7 में निम्नानुसार आयोजित किया गया था:

"6.... अब तक यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक गवाह की गवाही, अन्यथा प्रेरणादायक विश्वास, इस आधार पर नहीं छोड़ा जा सकता है कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के नाते एक हितबद्ध गवाह है। एक करीबी रिश्तेदार जो एक बहुत ही स्वाभाविक गवाह है, उसे एक हितबद्ध गवाह नहीं कहा जा सकता है। इच्छुक शब्द यह बताता है कि संबंधित व्यक्ति को आरोपी व्यक्ति को किसी न किसी तरह से या किसी अन्य कारण से दोषी ठहराए जाने में कुछ प्रत्यक्ष रुचि होनी चाहिए, या तो दुश्मनी या कुछ अन्य कारणों से।

7. इसके विपरीत, अब यह लगभग एक फैशन बन गया है कि जनता विभिन्न कारणों से विशेष रूप से आपराधिक मामलों में अदालत के सामने पेश होने और गवाही देने के लिए अनिच्छुक है। आपराधिक मामले आने वाले वर्षों तक घसीटे जाते हैं और गवाहों को बहुत परेशान किया जाता है। उन्हें धमकाया जा रहा है, डराया जा रहा है और सबसे बड़ी बात यह है कि उनसे लंबी जिरह की जाती है। ऐसी स्थिति में, अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध एकमात्र स्वाभाविक गवाह रिश्तेदार गवाह होगा। रिश्तेदार गवाह जरूरी नहीं कि एक हितबद्ध गवाह हो। दूसरी ओर, मृतक के करीबी रिश्तेदार होने के नाते वे सच बताकर असली अपराधी पर मुकदमा चलाने की कोशिश करेंगे। इस बात का कोई कारण नहीं है कि कोई करीबी रिश्तेदार किसी के खिलाफ झूठा बयान क्यों देगा और असली अपराधी को बचाने का प्रयास करेगा। एकमात्र आवश्यकता यह है कि रिश्तेदार गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय ने अ०सा०- 1 और अ०सा०- 2 की गवाही को एकमात्र आधार पर खारिज कर दिया है कि वे मृतक के रिश्तेदार होने के नाते हितबद्ध गवाह हैं।

52. विचारण न्यायालय ने वर्तमान मामले में पक्षों के बीच मौजूद मकसद और दुश्मनी के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। विद्वान राज्य के अधिवक्ता द्वारा बिकाऊ पांडे बनाम बिहार राज्य (2003) 12 एस.सी.सी 616 पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि जब प्रत्यक्ष साक्ष्य अपराध को स्थापित करता है, तो मकसद का कोई महत्व नहीं है और महत्वहीन है।

53. अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एस.सी.सी 318 में यह माना गया है कि दुश्मनी एक दोधारी हथियार है जो अपराध का एक मकसद हो सकता है और आरोपी

व्यक्तियों के झूठे फंसाने का आधार भी हो सकता है।

54. इस बिंदु पर निर्णय लेने की क्षमता है कि चश्मदीद गवाह के खाते के आधार पर एक मामले में, मकसद अपना महत्व खो देता है। दीपक वर्मा बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2011) 10 एस.सी.सी 129 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"... किसी व्यक्ति को अपराध करने का दोषी ठहराए जाने से पहले मकसद का सबूत अनिवार्य नहीं है। मकसद मन का मामला है, सबूत के माध्यम से स्थापित करना अक्सर मुश्किल नहीं होता है।

55. हालांकि, वर्तमान मामले में दुश्मनी का एक विशिष्ट कारण पक्षों के बीच है और कहा गया कि कुछ बंजर क्षेत्र के संबंध में था और दुश्मनी के इस तथ्य के गवाहों की गवाही में जगह पाता है। अ०सा०-1 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि सूचनाकर्ता पक्ष और आरोपी व्यक्तियों में बंजर क्षेत्र के कारण दुश्मनी थी। इसके अलावा, कुछ वसीयत के संबंध में उससे जिरह की गई है और उसने इस बात से इनकार किया है कि उसके दाऊ कामता प्रसाद ने लीलावती के पक्ष में कोई वसीयत की है, जो उसके चाचा भैयालाल की बहन थी। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया है कि लीलावती की भूमि को मृतक प्रह्लाद और मेवालाल द्वारा वर्तमान घटना होने तक जोता गया था और इस कारण से लीलावती और उसके परिवार के सदस्यों की मृतक - प्रह्लाद और घायल-मेवालाल के साथ कुछ दुश्मनी थी। उन्होंने आगे स्वीकार किया है कि इस मामले के आरोपी अमर सिंह और अन्य व्यक्ति पंजाबी पर उनके चाचा बृजवासी और प्यारे लाल की हत्या के मामले में मुकदमा चलाया गया था, जिसमें उन्हें बरी कर दिया गया था। उन्होंने आगे स्वीकार किया है कि आरोपी व्यक्ति उनके ही परिवार के हैं और यह भी कहते हैं कि आरोपी व्यक्तियों की इस घटना से पहले मृतक प्रह्लाद और अन्य घायल व्यक्तियों के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी। उपरोक्त बिंदुओं पर अ०सा०-2 की भी जिरह की गई है। अ०सा०-3 में यह भी कहा गया है कि उसके और उसके पिता और आरोपी अमर सिंह के बीच किसी भी जमीन या संपत्ति के संबंध में कोई मुकदमा नहीं हुआ।

56. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के उपरोक्त बयानों से दिखाने का प्रयास किया है कि वे मृतक की हत्या से संबंधित वास्तविक तथ्यों को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं और वास्तव में अपीलकर्ता वास्तविक हमलावर नहीं थे, जिन्होंने अपराध किया है। हमारी राय में, अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 द्वारा प्रदान किए गए विश्वसनीय चक्षुक संस्करण के मद्देनजर, अपराध करने वाले वर्तमान अपीलकर्ताओं को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति हमलावर के रूप में प्रकाश में नहीं आता है। इसके अलावा, यह ऊपर स्पष्ट किया गया है कि चश्मदीद गवाह के आधार पर एक मामले में मकसद का सवाल अपना महत्व खो देता है।

57. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए तथ्य के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की है और उसी की

सावधानीपूर्वक जांच से, हम यह भी पाते हैं कि तथ्य के गवाहों की गवाही में कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास नहीं है। यद्यपि, अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयान में अपीलकर्ताओं द्वारा कुछ मामूली विसंगतियों को सही तरीके से इंगित किया गया है, लेकिन वे अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक नहीं जाते हैं और कभी भी अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालते हैं। कानूनी स्थिति के मद्देनजर, जैसा कि पहले बताया गया है, अभियोजन पक्ष तथ्य के स्वतंत्र गवाहों की जांच करने के लिए बाध्य नहीं था जिनके नाम आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) में उल्लिखित हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 इस मुद्दे पर स्पष्ट है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह प्रावधान करता है कि किसी भी मामले में, किसी भी तथ्य के प्रमाण के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या की आवश्यकता नहीं होगी। चाको मामले (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मामले को स्थापित करने के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं है। दोषसिद्धि, यदि वह पूरी तरह से विश्वसनीय है, एक गवाह की गवाही पर आधारित हो सकती है। पुष्टि आवश्यक हो सकती है जब वह केवल आंशिक रूप से विश्वसनीय हो। यदि सबूत बेदाग है और सभी संभावित आलोचनाओं से परे है और अदालत संतुष्ट है कि गवाह सच बोल रहा था, तो केवल उसके साक्ष्य पर दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है।

58. इस तथ्य पर भी किसी भी पक्ष द्वारा संदेह नहीं किया जाता है कि मामले के चश्मदीद गवाह अपीलकर्ताओं को जानते थे। इसलिए, हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं की पहचान की कोई आवश्यकता नहीं थी और विचारण न्यायालय ने मामले के विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन करते हुए सही ढंग से पाया है कि यह पक्षों के बीच पुरानी दुश्मनी के कारण झूठे आरोप का मामला नहीं है, बल्कि यह रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से अच्छी तरह से साबित होता है कि दुश्मनी के कारण, वर्तमान अपराध आरोपी व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया है और शत्रुता का कारक अपीलकर्ताओं के खिलाफ जाता है और उसी तरह मृतक से संबंधित तथ्यों के गवाहों का मुद्दा भी अपीलकर्ताओं के पक्ष में नहीं जाता है।

59. भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एस.सी.सी 537 पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि आपराधिक मुकदमे में गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है। ऐसे मामले में, न्यायालय को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो आरोपी को ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है।

60. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा सुरिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य (2020) 2 एस.सी.सी 563 पर जोर दिया गया है, जिसमें यह दोहराया गया है कि केवल

इसलिए कि अभियोजन पक्ष ने किसी स्वतंत्र गवाह की जांच नहीं की, जरूरी नहीं कि यह निष्कर्ष निकलेगा कि आरोपी को झूठा फंसाया गया था।

61. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, (2008) 12 एस.सी.सी 173 में, यह माना गया था कि यदि एक चश्मदीद गवाह की गवाही अन्यथा भरोसेमंद और विश्वसनीय पाई जाती है, तो उसे केवल इसलिए अविश्वास और खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास उसकी गवाही में प्रकट हुए हैं। यदि गवाही में विसंगतियां, विरोधाभास, अतिशयोक्ति, अलंकरण और विसंगतियां केवल सामान्य हैं और प्रकृति में महत्वपूर्ण नहीं हैं, तो एक चश्मदीद गवाह की गवाही को स्वीकार करना होगा और उस पर कार्रवाई करनी होगी। सामान्य विसंगतियों और महत्वपूर्ण विसंगतियों के बीच अंतर यह है कि जबकि सामान्य विसंगतियां किसी पार्टी के मामले की विश्वसनीयता को खराब नहीं करती हैं, भौतिक विसंगतियां ऐसा करती हैं।

62. इसके अलावा, यह मुकेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2017) 6 एस.सी.सी 1 में अवधारित किया गया था कि भौतिक गवाह की गैर-परीक्षा रिकॉर्ड पर उपलब्ध गवाही के वजन को त्यागने के लिए गणितीय सूत्र नहीं है, चाहे वह कितना भी स्वाभाविक, भरोसेमंद और आश्वस्त हो। यह स्थापित कानून है कि चश्मदीद गवाह से पूछताछ न करने पर अभियोजन पक्ष के मामले को एक झटके से खारिज करने के लिए एक रस्मी फार्मूले की तरह काम नहीं किया जा सकता। अदालत एकमात्र गवाह के बयान पर एक अभियुक्त को दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह मृतक का रिश्तेदार हो और स्वतंत्र गवाह की जांच न करना अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं होगा।

63. अभियोजन पक्ष के मामले को गलत साबित करने या मजबूत करने के लिए, एक महत्वपूर्ण कारक, जो हमेशा देखा जाता है, घटना का स्थान है, जो यदि निश्चित और तय नहीं है, तो अभियोजन पक्ष के मामले को संदेह में रखने में सक्षम है, लेकिन अगर घटना का स्थान निश्चित है, इसमें कोई संदेह नहीं है, यह अभियोजन पक्ष की कहानी की सत्यता को मजबूत करता है। वर्तमान मामले में, घटना का स्थान बंजर क्षेत्र है, जो पक्षों के बीच दुश्मनी का कारण था। अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 तथ्य के सभी गवाह विशिष्ट बयान देते हैं कि घटना उसी क्षेत्र में हुई जहां मृतक मौजूद था। इन गवाहों से मुकदमे के दौरान बचाव पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा की गई है और उनके द्वारा घटनास्थल की सीमाओं और विवरण का उल्लेख किया गया है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस संबंध में उपरोक्त गवाहों के बयानों में हुए विरोधाभासों का कुछ लाभ उठाने की कोशिश की है। जब हम इस बिंदु पर सबूतों की जांच करते हैं तो हमें कुछ मामूली विरोधाभास भी मिलते हैं जहां तक घटना के स्थान की सीमा का संबंध है। विद्वान विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा है कि मृतक पर हमला करने का सही स्थान कौन सा था। अ०सा०-3 वीर सिंह का कहना है कि घटना फील्ड नंबर 3049

के उत्तरी हिस्से में हुई, जो सड़क के दक्षिणी दिशा में थी। नक्शा नज़री (प्रदर्श क-8) में एक ही स्थिति दिखाई गई है, हालांकि क्षेत्र की संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। अ०सा०-1 में कहा गया है कि उसने विवेचनाधिकारी को घटना की जगह बताई थी और वह स्थान भी दिखाया था जहां से उसने खुद अपने परिवार के सदस्यों के साथ घटना देखी थी। उपरोक्त स्थान को नक्शा नज़री, प्रदर्श क-8 में भी इंगित किया गया है। प्रदर्श क-8 में दिखाई गई स्थलाकृति को अ०सा०-2 के कथन से भी समर्थन मिलता है। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 विशिष्ट बयान देते हैं कि घटना के बाद, आरोपी व्यक्ति पूर्वी दिशा में भाग गए और इसे नक्शा नज़री प्रदर्श क-8 में दिखाया गया है। विवेचनाधिकारी के लिए माध्यमिक गवाह के रूप में पेश होने वाले अ०सा०-7 ने कहा है कि विवेचनाधिकारी ने घटना के स्थान से खून से सनी और सादी मिट्टी ली थी और फ़र्द बरामदगी, प्रदर्श क-9, उसके द्वारा तैयार किया गया था। यह एक और कारक है, जो दर्शाता है कि यह वही स्थान है जहां से विवेचनाधिकारी द्वारा रक्तरंजित और सादी मिट्टी ली गई थी, जैसा कि नक्शा नज़री (प्रदर्श क-8) में दिखाया गया है।

64. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-2 और अ०सा०-3 घायल गवाह गवाहों के विशिष्ट चरित्र के हैं और उनके साक्ष्य पर संदेह नहीं किया जा सकता है। पहले इस निर्णय में, हमने मेडिकल रिपोर्ट और घायल व्यक्तियों की चोटों का विश्लेषण किया है, जो एक दूसरे के अनुरूप हैं। हम यह भी पाते हैं कि घायल गवाह घटना का लगातार बयान देते हैं, जो उनके बयान को विश्वसनीय बनाता है। वास्तव में, घटना के समय और स्थान पर घायल गवाहों की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उन्हें घटना के दौरान चोटें आई थीं और उन्हें आम तौर पर अविश्वास नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि भगवान जगन्नाथ मारकड मामले (उपरोक्त) और मकसूदन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1983) 1 एस.सी.सी 218 में आयोजित किया गया था।

65. संबंधित गवाहों को भी पंचनामा रिपोर्ट के संबंध में जिरह की गई है और विद्वान विचारण न्यायालय ने उसी की वास्तविकता के लिए अपने न्यायिक दिमाग का इस्तेमाल किया है। हमने पंचनामा रिपोर्ट (प्रदर्श क-3) का भी अवलोकन किया है और पाया है कि जांच रिपोर्ट में केस अपराध संख्या और धाराओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, जिसका अर्थ है कि प्राथमिकी दर्ज करने के बाद पंचनामा की गई थी। पंचों ने यह भी कहा है कि मृतक की मौत पूर्व चोटों के कारण हुई थी। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि मृतक प्रहलाद सिंह के घायल होने के दौरान उससे संबंधित कोई चिट्ठी मजरुबी (चिकित्सा जांच के लिए पुलिस द्वारा पत्र) तैयार नहीं किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने भी इस बिंदु का विश्लेषण किया है और यह भी सही निष्कर्ष निकाला है कि प्रहलाद सिंह की अस्पताल ले जाते समय मृत्यु हो गई थी और उसकी जांच अस्पताल में ही की गई थी और इन परिस्थितियों में, यदि उससे संबंधित चिट्ठी मजरूबी रिकॉर्ड में नहीं है, तो यह अभियोजन

पक्ष के मामले को गलत नहीं ठहराता है, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जहां दो घायल व्यक्तियों की चिट्ठी मजरूबी तैयार की गई थी, जैसा कि अ०सा०-7 कहता है।

66. झूठे के दोष से बचने के लिए, प्राथमिकी का एक त्वरित पंजीकरण आम तौर पर किसी भी आपराधिक मामले में होना चाहिए। इस मामले में घटना 28.12.1989 को शाम लगभग 4.00 बजे हुई और उसी दिन लगभग साढ़े चार घंटे बाद प्राथमिकी दर्ज की गई, जैसा कि चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-1 से स्पष्ट है। पंजीकरण जी.डी (प्रदर्श क-6) भी उसी समय तैयार किया गया था और घायल प्रह्लाद की मृत्यु के बाद, एक टर्मिनी जी.डी (जी.डी में संशोधन) (प्रदर्श क-7) भी अ०सा०-7 द्वारा तैयार और साबित किया गया था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि इस मामले में प्राथमिकी एक वास्तविक दस्तावेज है। यह सूचनाकर्ता मिजा जी द्वारा दी गई मौखिक जानकारी के आधार पर दर्ज किया गया है, क्योंकि वह स्वयं गवाही देता है और अ०सा०-7 के संस्करण से समर्थन पाता है और प्राथमिकी का शीघ्र पंजीकरण आरोपी व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं के झूठे फंसाने की किसी भी संभावना को खारिज करता है। सत कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (1974) 3 एस.सी.सी 643 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि तथ्य यह है कि सूचनाकर्ता ने ट्रकों में यात्रा करने वाली घटनास्थल से बारह मील दूर एक स्थान पर आधे घंटे के भीतर प्राथमिकी दर्ज की थी, जिससे किसी भी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ झूठे मामले की मनगढ़ंत कहानी बनने की कोई संभावना नहीं है।

67. दोषपूर्ण जांच अक्सर अभियोजन मामले का एक हिस्सा होती है, जिसे जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा की गई लापरवाही, चूक और लापरवाही के कारण लाभ प्राप्त करने के लिए बचाव पक्ष द्वारा लक्षित किया जाता है। इस मामले में, जैसा कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा हमला किया गया है, आरोपी व्यक्तियों द्वारा अपने लाइसेंसधारी मेवालाल द्वारा कथित रूप से छीनी गई लाइसेंसी बंदूक को विवेचनाधिकारी द्वारा बरामद नहीं किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि घायल व्यक्तियों के खून से सने कपड़े को विवेचनाधिकारी द्वारा जब्त नहीं किया गया था और खून से सनी और सादी मिट्टी को फोरेंसिक परीक्षण के लिए किसी भी खून से सने कपड़े के साथ नहीं भेजा गया था। यह सच है कि विवेचनाधिकारी द्वारा की गई जांच में उपरोक्त चूक पाई जाती है, लेकिन विश्वसनीय चक्षुक साक्ष्य के आलोक में, हम इसे विवेचनाधिकारी की ओर से कोई महत्वपूर्ण या मजबूत चूक नहीं पाते हैं, जो अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। कई फैसलों में यह तय किया गया है कि जांच में कुछ खामियों के लिए, अभियुक्त को बरी नहीं किया जा सकता है यदि अभियोजन पक्ष का मामला अन्य ठोस सबूतों से साबित हो जाता है। सी. मुनियप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, 2010 (6) एस.सी.जे 822 में, यह माना गया है कि:

"55. किसी मामले में जांच अत्यधिक दोषपूर्ण हो सकती है। हालांकि, यह जांच की जानी है कि क्या विवेचनाधिकारी द्वारा कोई चूक हुई है और क्या इस तरह की चूक के कारण आरोपी को कोई लाभ दिया जाना चाहिए। इस मुद्दे पर कानून अच्छी तरह से तय है कि जांच में दोष अपने आप में बरी करने का आधार नहीं हो सकता है। यदि इस तरह की डिज़ाइन की गई या लापरवाही से की गई जांच को प्रधानता दी जाती है या

लापरवाही से जांच द्वारा चूक को प्राथमिकता दी जाती है, तो आपराधिक न्याय प्रशासन में लोगों का विश्वास खत्म हो जाएगा। जहां जांच एजेंसी की ओर से लापरवाही हुई है या चूक आदि के परिणामस्वरूप दोषपूर्ण जांच हुई है, अदालत की ओर से एक कानूनी दायित्व है कि वह अभियोजन साक्ष्य की जांच करे, ऐसी खामियों को दूर करे, सावधानी से, यह पता लगाने के लिए कि क्या उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और किस हद तक विश्वसनीय है और क्या इस तरह की चूक ने सच्चाई का पता लगाने के उद्देश्य को प्रभावित किया है। इसलिए, आपराधिक मुकदमे में न्यायिक जांच के लिए जांच एकमात्र क्षेत्र नहीं है। मामले में मुकदमे के निष्कर्ष को केवल जांच की ईमानदारी पर निर्भर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

68. हमने देखा है कि अपीलकर्ताओं पर धारा 307, 324 और 325 भ०द०वि० के साथ-साथ घायल व्यक्तियों मेवालाल और वीर सिंह को चोट पहुंचाने के अपराध के लिए भी आरोप लगाया गया है, लेकिन उन्हें धारा 324 और 325 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया है और उन्हें धारा 307 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उन्होंने दोनों घायल व्यक्तियों पर उन्हें मारने का इरादा से हमला किया था। दोनों घायल व्यक्तियों को हुई चोटों की संख्या और प्रकृति, जैसा कि चोट की रिपोर्ट प्रदर्श क-4 और प्रदर्श क-5 से प्रकट होता है और हमले का तरीका, जैसा कि अ०सा०-2 और अ०सा०-3 द्वारा उनके बयानों में बताया गया है, इस तथ्य के अनुरूप है कि प्रहलाद सिंह को घातक वार देने के बाद, आरोपी व्यक्ति दोनों घायल व्यक्तियों को भी जान से मारने के इरादे से मारने के लिए अड़े थे, उन्होंने उन पर कई वार किए। विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में इस पहलू पर विचार किया और एक सही निष्कर्ष निकाला है, जिससे हम सहमत हैं। इसके अलावा, रिकॉर्ड पर ठोस सबूत हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा कारतूस की बेल्ट के साथ लाइसेंसधारी बंदूक लूट ली गई थी और उपरोक्त डकैती को करने में उन्होंने स्वेच्छा से उन्हें चोट भी पहुंचाई और उस आधार पर धारा 394 भ०द०वि० के तहत अपराध भी उनके खिलाफ साबित होता है। हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि मृतक प्रहलाद सिंह पर आरोपी व्यक्तियों द्वारा खतरनाक हथियारों की सहायता से उसे मारने के इरादे से हमला किया गया था और अंततः वे सफल हुए और प्रहलाद सिंह की बाद में मृत्यु हो गई।

69. धारा 394 भ०द०वि० निम्नानुसार प्रदान करती है:

"394. यदि कोई व्यक्ति डकैती करने में या करने का प्रयास करते हुए, स्वेच्छा से उपहति कारित करता है, तो ऐसा व्यक्ति और ऐसी डकैती करने या करने का प्रयास करने में संयुक्त रूप से संबंधित कोई अन्य व्यक्ति, आजीवन कारावास से, या कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

70. इस मामले में, हम रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर पाते हैं कि धारा 394

भ०द०वि० के उपरोक्त तत्व पूरी तरह से अपीलकर्ताओं के खिलाफ गए हैं क्योंकि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह स्पष्ट है कि जब घायल मेवालाल घटनास्थल पर पहुंचा, तो आरोपी व्यक्तियों ने भी उस पर हमला किया और उसे चोट पहुंचाते हुए उससे बेल्ट और कारतूस से बंदूक छीनकर लूट की वारदात को अंजाम दिया। यह तथ्य साक्ष्य में ठीक से साबित हो गया है।

71. जहां तक धारा 307 भ०द०वि० के तहत आरोप का संबंध है, स्थापित कानून यह है कि यह आवश्यक नहीं है कि मृत्यु कारित करने में सक्षम चोट पहुंचाई गई हो। धारा 307 भ०द०वि० के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए जो सामग्री है, वह इरादा या ज्ञान है जिसके साथ सब कुछ किया गया था, चाहे इसका परिणाम कुछ भी हो। इरादा और ज्ञान परिस्थितियों की समग्रता से अनुमान के विषय हैं और केवल परिणामों से नहीं मापा जा सकता है। वास्तव में इस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए ध्यान रखने वाली महत्वपूर्ण बात कि क्या धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध किया गया है, इरादा है और चोट नहीं है, भले ही वह साधारण या मामूली हो। मारने के इरादे या मौत के ज्ञान का सवाल हमेशा तथ्य का सवाल होता है न कि कानून का। माननीय उच्चतम न्यायालय ने हरि किशन और हरियाणा राज्य बनाम सुखबीर सिंह, ए.आई.आर 1988 एस.सी 2127 में निर्णय दिया है कि अभियुक्त का इरादा या जानकारी ऐसी होनी चाहिए जो हत्या का गठन करने के लिए आवश्यक हो। मध्य प्रदेश बनाम हरजीत सिंह और अन्य, ए.आई.आर 2019 एस.सी 1120 में, यह दोहराया गया था कि धारा 307 भ०द०वि० की आवश्यकता नहीं है कि चोट शरीर के महत्वपूर्ण हिस्से पर होनी चाहिए। केवल मौत के इरादे या ज्ञान से चोट पहुंचाना धारा 307 भ०द०वि० को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है।

72. उपरोक्त कानूनी सिद्धांत, यदि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में जांच की जाती है, तो पूरी तरह से लागू होता है और हम पाते हैं कि आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध किया गया है।

73. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में स्थापित कानूनी स्थिति के सावधानीपूर्वक विश्लेषण और विचार करने पर, हमारी राय है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष कानून और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार है। निर्णय रिकॉर्ड, मौखिक और साथ ही वृत्तचित्र पर साक्ष्य के विचारशील विचार और सावधानीपूर्वक जांच का परिणाम है। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन पक्ष धारा 302, 394 और 307 भ०द०वि० के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को उचित संदेह से परे और न्यायालय के न्यायिक विवेक की संतुष्टि के लिए स्थापित करने में सक्षम रहा है।

74. दोषसिद्धि और सजा का आक्षेपित निर्णय, जिसको चुनौती देने की मांग की गई है, अच्छी

तरह से सोचा और अच्छी तरह से चर्चा की गई है और उसमें किसी हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं है, इसको बरकरार रखा जा सकता है और अपील कोई बल नहीं होने के कारण खारिज करने के योग्य है। तदनुसार, आक्षेपित निर्णय और आदेश को बरकरार रखा जाता है और अपील खारिज की जाती है।

75. अपीलकर्ता पंजाबी जेल में है। हालांकि, अपीलकर्ता अमर सिंह जमानत पर है। उसकी जमानत बांड रद्द जाता है और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। शेष सजा कटाने के लिए उसे तुरंत हिरासत में लिया जाए।

76. इस निर्णय की एक प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ संबंधित न्यायालय, कन्नौज को आवश्यक अनुपालन के लिए भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 527

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 1907 / 2019

विनोद चौधरी ...आवेदक (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अरविंद कुमार कुशवाहा, सुश्री पूजा, सुश्री श्वेता केसरवानी

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - दोषसिद्धि - चुनौती - वर्तमान मामले में मृतका पत्नी थी, पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था क्योंकि कथित घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं था - मृतक के शरीर पर चोटें मृत्यु पूर्व प्रकृति की थीं - विवेचना के दौरान कोई भी आपत्तिजनक वस्तु बरामद नहीं हुई और आरोपी को कथित अपराध से जोड़ने के लिए कोई साक्ष्य तो दूर, ठोस साक्ष्य जुटाने का भी प्रयास नहीं किया गया - जब अपीलकर्ता रात 9 बजे अपने साले के घर से खाना खाकर घर आया तो उसने पाया कि उसकी पत्नी मृतक की गला रेतकर हत्या कर दी गई है - उसने तहरीर में यह भी लिखा है कि यह सूचना उसके द्वारा देरी से दी गई - मृतका के किसी भी बच्चे या किसी पड़ोसी ने अभियोजन पक्ष के इस कथन का समर्थन नहीं किया कि मृतका की मृत्यु से ठीक पहले आरोपी घर में मौजूद था - परिस्थितियां चाहे कितनी भी मजबूत क्यों न हों, वे सबूत का स्थान नहीं ले सकतीं और आरोपी का अपराध सिद्ध होना ही चाहिए - अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे सिद्ध करने में विफल किया गया- अभियोजन पक्ष परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा था कि कथित कृत्य केवल अभियुक्त द्वारा ही किया गया था और किसी अन्य द्वारा नहीं- इसलिए सत्र न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा का आदेश निरस्त कर दिया गया तथा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया। (पैरा 1 से 11)

बी. जहां तक "अंतिम बार देखे जाने के सिद्धांत" का सवाल है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता कोई और नहीं बल्कि मृतक

सत्यमेव जयते

की पत्नी थी और उसी छत के नीचे रहती थी, वह आखिरी व्यक्ति थी जिसके साथ मृतक को देखा गया था। हालांकि, मृतक और अपीलकर्ता का ऐसा साथ, अपने आप में, इसका मतलब यह नहीं है कि अपीलकर्ता के दोषी होने का अनुमान लगाया जाना चाहिए। विचारणीय न्यायालय और उच्च न्यायालय ने यह मानकर आगे बढ़े हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम11 की धारा 106 सीधे अपीलकर्ता के खिलाफ काम करती है। हमारे विचार में, ऐसा दृष्टिकोण भी त्रुटि से मुक्त नहीं रहा है, जहां यह विचार करना छोड़ दिया गया कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को उसके प्राथमिक दायित्व से मुक्त नहीं करती है। (पैरा 9)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अंतर सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2004) 10 एससीसी 657,
2. तिरमुख मारोती किर्कन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 10 एससीसी 681
3. गणेशलाल वीएस महाराष्ट्र राज्य. (1992) 3 सी सी 106
4. भास्कर राव एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2018) 6 एससीसी 591
5. उज्जगर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2007) 13 सी सी 90
6. शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य (2021) 0 एससीसी 121
7. कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2007) एयर एससी 2868
8. गणपत सिंह बनाम एम.पी. राज्य (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 159
9. पी. मणि बनाम टी.एन. राज्य (2006) एआईआर एससी 1319
10. कैलाश चंद्र बनाम राजस्थान राज्य (2017) 11 एससीसी 268
11. श्रीमती गार्गी बनाम हरियाणा राज्य (2019) 0 एससीसी 1042
12. सत्ये सिंह एवं अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य (2022) 0 (एससी) 143
13. देवीलाल, बाबूलाल बनाम राजस्थान राज्य (2019) लॉ सूट (एससी) 36

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. एकमात्र अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार कुशवाहा, सुश्री पूजा और श्वेता केसरवानी और राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री एन.के. श्रीवास्तव को सुना गया।
2. यह अपील मृतक संगीता के पति आरोपी विनोद चौधरी द्वारा अपराध संख्या 869/2014 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 10/2015 (उ.प्र.राज्य बनाम विनोद चौधरी) अन्तर्गत धारा 302 भादंसं थाना चोपन, जिला सोनभद्र में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वितीय सोनभद्र द्वारा दोषसिद्धि और सजा के फैसले और आदेश दिनांक 13/02/2019 के खिलाफ दायर की गई है।
3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता के बड़े भाई सूचनादाता

अनुवादित

लल्लू चौधरी को अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 30-9-2014 को सूचित किया गया कि उनकी पत्नी उनके कमरे के अंदर मृत पाई गई है तो वे घटनास्थल पर पहुंचे और देखा कि मृतक का शव बिस्तर पर पड़ा हुआ है और उसका गला रुंध चुका है। सूचनादाता (अभि.साक्षी 1) ने 1-10-2014 को सुबह 5:15 बजे अज्ञात बदमाशों के खिलाफ शिकायत (प्रदर्श-क13) दर्ज कराई। एक चिक प्र.सू.रि तैयार की गई और उसके बाद पुलिस ने घटना स्थल का दौरा किया और पंचनामा किया, शव को पोस्टमार्टम के लिए भेजा। जांच अधिकारी के अनुसार, जांच के दौरान अपीलकर्ता ने अपराध कबूल कर लिया और उसकी निशानदेही पर अपराध में इस्तेमाल की गई कथित खून से सनी कुल्हाड़ी घटनास्थल के पास की लकड़ियों के ढेर से बरामद की गई। संबंधित गवाहों के साक्ष्य दर्ज करने के बाद जांच अधिकारी, आर.बी. मौर्य (अभि.साक्षी - 10) ने अपीलकर्ता के खिलाफ भादंसं की धारा 302 के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क12) प्रस्तुत किया।

4. 14-5-2015 को अपीलकर्ता पर भादंसं की धारा 302 के तहत आरोप लगाया गया था, जिसमें उसने खुद को दोषी नहीं बताया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

5. अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित गवाहों की जांच की गई

अभि.साक्षी-1	लल्लू चौधरी, सूचनादाता
अभि.साक्षी-2	कृष्णा चौधरी
अभि.साक्षी-3	नंदू चौधरी, पंचनामा के गवाह
अभि.साक्षी-4	श्याम चरण गिरि, कुल्हाड़ी की बरामदगी के गवाह
अभि.साक्षी-5	जय राम चौधरी, आरोपी का बहनोई
अभि.साक्षी-6	मनोज चौधरी, आरोपित का साला
अभि.साक्षी-7	भरत,सादा व खून से सना नमूना लेने का गवाह
अभि.साक्षी-8	राधेश्याम चौधरी
अभि.साक्षी-9	डॉ. क्रांति कुमार, शव परीक्षण के चिकित्सक
अभि.साक्षी-10	आर.बी.मौर्य, जांच अधिकारी

6. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित सामग्री प्रदर्शनों पर भरोसा किया:

प्रदर्श क-1	लिखित रिपोर्ट
प्रदर्श क-2	पंचनामा
प्रदर्श क-3	अपराध के हथियार का बारामदगी प्रपत्र
प्रदर्श क-4	रक्तरंजित मिट्टी और साधारण मिट्टी का बारामदगी प्रपत्र
प्रदर्श क 5	सील का नमूना
प्रदर्श क 6	फॉर्म नंबर 13

प्रदर्श क 7	फॉर्म नं. 379
प्रदर्श क 8	प्रतिवेदन थाना चोपन
प्रदर्श क 9	मु.चि.अधि को पत्र
प्रदर्श क10	घटना स्थल का नक्श नजरी
प्रदर्श क 11	अपराध के हथियार की बरामदगी के स्थान की नक्श नजरी
प्रदर्श क 12	आरोप पत्र
प्रदर्श क 13	चिक प्र.सू.रि
प्रदर्श क 1	अपराध का हथियार कुल्हाड़ी.

7. अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों के समाप्ति के बाद द.प्र.सं की धारा 313 के तहत आरोपी का बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसने अपने खिलाफ सभी आरोपों और आपत्तिजनक सबूतों से इनकार किया और निर्दोष होने का दावा किया।

8. इस मामले में तथ्य और बरामदगी के सभी गवाहों को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और उन्होंने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया है। विद्वान निचली अदालत ने स्वीकार किया है कि गवाहों ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है, परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं है, फिर भी **अंतर सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2004) 10 एससीसी 657, तिरमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 10 एससीसी 681 और गणेशलाल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1992 (3) एससीसी 106** ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की मदद से आरोपी को दोषी ठहराया। के उद्धरणों पर भरोसा करते हुए उद्देश्य अभी तक साबित नहीं हुआ है अपीलकर्ता ने इस आधार पर आक्षेपित फैसले को चुनौती दी है कि यह गलत, अवैध, मनमाना, गंभीर, अत्यधिक और अभिलेखो पर सबूतों के वजन के खिलाफ है। अभिलेखो पर मौजूद तथ्यों और सबूतों पर विचार किए बिना अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है। अपराध अज्ञात व्यक्ति द्वारा किया गया था। अभियोजन की कहानी को पक्षदोही गवाहों द्वारा समर्थित नहीं किया गया है, लेकिन विचारण न्यायालय द्वारा इस पहलू पर विचार नहीं किया गया है, अपीलकर्ता के पास ऐसा अपराध करने का कोई मजबूत उद्देश्य नहीं था। विचारण न्यायालय ने सामग्री, मौखिक और दस्तावेजी सबूतों को नजरअंदाज कर दिया है और अपीलकर्ता को अवैध रूप से दोषी ठहराया है। इसलिए आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाए।

9. उपरोक्त तथ्यों एवं साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला नहीं है बल्कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है जिसमें यदि परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है तभी किसी अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामले में उद्देश्य, अंतिम दर्शन, बरामदगी, न्यायेतर स्वीकारोक्ति जैसे आवश्यक तत्वों पर भी विचार किया जाता है। यह देखा जाना चाहिए कि क्या किसी अभियुक्त की सजा के लिए आवश्यक उपरोक्त सामग्री

अभियोजन पक्ष द्वारा पर्याप्त रूप से स्थापित और साबित की गई है या नहीं। मामले के तथ्यों और अभिलेखो पर उपलब्ध साक्ष्यों के आलोक में इन आवश्यक सामग्रियों पर नीचे चर्चा की जा रही है

(ए) **उद्देश्य**: लिखित शिकायत में अपीलकर्ता को कोई उद्देश्य नहीं बताया है, यहां तक कि किसी भी गवाह ने भी अपराध के पीछे के उद्देश्य के बारे में एक भी शब्द नहीं बताया है। आम तौर पर ऐसे क्रूर अपराध आरोपी के पास उपलब्ध किसी उद्देश्य के कारण होते हैं। अभि.साक्षी 3 नंदू चौधरी ने बताया कि मृतक और आरोपी के बीच संबंध मधुर थे। हालाँकि सरकारी अधिवक्ता द्वारा अभि.साक्षी 7 से जिरह की गई है और गवाह को साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के तहत द.प्र.सं की धारा 161 के तहत उसके पिछले बयान का खंडन किया गया था जिसमें उसने मृतक और गुड्डु चादुधारी उर्फ शशिकांत के बीच किसी भी अवैध संबंध से इनकार किया था कि मृतिका उसके साथ तीन दिनों के लिए गई थी और जब वापस लौटी तो अपीलकर्ता ने उसे माफ कर दिया था। अभि.साक्षी 2.राधेश्याम चौधरी ने भी मृतक और अपीलकर्ता के बीच किसी भी तरह के मनमुटाव से इनकार किया है। इस प्रकार अभियोजन पक्ष द्वारा न तो कोई उद्देश्य उठाया गया है और न ही इसे साबित किया गया है

भास्कर राव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एससीसी 591, उजागर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2007) 13 एससीसी 90 में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों में उद्देश्य का महत्व है।

शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 121 में, यह निर्धारित किया गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा करने के लिए उद्देश्य एक महत्वपूर्ण कड़ी निभाता है। यदि उद्देश्य साबित नहीं किया जा सका तो परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं कही जाएगी।

उपरोक्त उद्धरण अपीलकर्ता के पक्ष में लागू होते हैं और यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अपीलकर्ता का मृतक को मारने का कोई उद्देश्य नहीं था।

(बी) **अलीबी और आखिरी बार देखा गया**: प्र.सु.रि. के अनुसार, यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि जब अपीलकर्ता रात 9:00 बजे अपने जीजा के घर पर खाना खाने के बाद घर आया उसने पाया कि उसकी पत्नी मृतक संगीता की गला काटकर हत्या कर दी गयी है। उन्होंने शिकायत में यह भी लिखा है कि यह जानकारी उसके द्वारा देर से दी गई. मृतक के किसी भी बच्चे या किसी पड़ोसी ने अभियोजन पक्ष की बात का समर्थन

नहीं किया है कि मृतक की मृत्यु से तुरंत पहले, आरोपी घर में मौजूद था। प्र.सु.रि. के अनुसार, आरोपी अपने जीजा के घर रात के खाने के लिए गया था और घटना के समय वह मौके पर मौजूद नहीं था। जब वह अपने घर आया तो देखा कि उसकी पत्नी की हत्या कर दी गयी है. इस संबंध में किसी भी गवाह ने यह नहीं बताया कि घटना के समय या मृतक की मृत्यु से ठीक पहले आरोपी मौके पर मौजूद था। सूचनादाता अभि.साक्षी 1 लल्लू ने बयान दिया कि अभियुक्त को अपनी पत्नी से बहुत लगाव और बहुत प्यार करता था, दोनों के बीच अच्छे संबंध और प्यार था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद वह बहुत परेशान और दुखी था। अभि.साक्षी 2 कृष्णा ने यह भी बयान दिया है कि रात में मृतक की किसी ने गला दबाकर हत्या कर दी थी, हत्या करते समय उसको किसी ने नहीं देखा था। पूछताछ के समय मृतक मौजूद था। अभि.साक्षी.3 नंदू ने बताया कि रात 9:30 बजे उन्हें आरोपियों द्वारा मृतक की हत्या के बारे में पता चला। हत्या उससे पहले ही हो गयी होगी, कैसे और किसने की, उसे नहीं मालूम. उन्होंने यह भी बताया कि आरोपी और उसकी पत्नी के बीच अच्छे संबंध थे। अभि.साक्षी 5 जयराम चौधरी ने गवाही दी है कि उस रात आरोपी विनोद चौधरी, चचेरे भाई मनोज चौधरी और जीजा ने चिकन डिनर पार्टी ली थी। उसके घर से आरोपी के घर तक पहुंचने में 15-20 मिनट लगेंगे. रात्रि 9:10 बजे उन्हें सूचना मिली कि मृतिका की हत्या कर दी गयी है, उसे नहीं पता कि उसकी हत्या क्यों और किसने की है. इस गवाहों ने यह भी कहा है कि उसकी पत्नी मृतक संगीता की चचेरी बहन है और उसने कभी शिकायत नहीं की कि उसे आरोपी से कोई समस्या है या आरोपी ने उसे परेशान किया है। आरोपी अपने घर से सीधे अपने घर चला गया था. उन्होंने यह भी बताया कि जब आरोपी उनके घर पर था, तब संगीता शाम का खाना बनाने के बारे में पूछने आई थी। हरिराम और उनकी पत्नी से मुलाकात के बाद वह लौट आई थीं. ऐसा ही बयान अभियुक्त के जीजा अभि.साक्षी.6 मनोज चौधरी ने भी दिया है. इस गवाह ने यह भी बताया कि जब विनोद जयराम के घर से गया तो विनोद का अपनी पत्नी के साथ अच्छा व्यवहार था, 10-15 मिनट बाद पता चला कि संगीता की हत्या कर दी गयी. इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों से यह स्थापित नहीं हो सका कि मृत्यु से ठीक पहले मृतक और अभियुक्त एक साथ थे। यह साबित नहीं हो सका कि मृतक की मौत आरोपी के घर पहुंचने के बाद हुई थी

कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2007 एससी 2868

में, यह माना गया है कि समय और स्थान की निकटता होनी चाहिए। ऐसे में इसकी कमी है.

गणपत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 159 में, यह देखा गया है, कुछ मामलों में यह सकारात्मक रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था जब लम्बा अन्तराल हो तथा बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की सम्भावना हो। यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी अन्य सकारात्मक सबूत के अभाव में कि आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था, ऐसे मामलों में अपराध के निष्कर्ष पर आना खतरनाक होगा।

इस मामले में अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मृत्यु से तुरंत पहले मृतिका आरोपी के साथ थी, लेकिन यह साबित हो गया है कि जब आरोपी अपने घर आया, तो उसने पाया कि मृतिका की गला काटकर हत्या कर दी गई थी।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पिछली बार देखे गए परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की श्रृंखला को उचित संदेह से परे साबित नहीं किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया कि मृतक की मृत्यु तब हुई जब आरोपी अपने बहनोई के घर पर खाना खा रहा था।

(सी) न्यायेतर स्वीकारोक्ति- अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त द्वारा अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति की दलीलों को नहीं लिया है, हालांकि जांच अधिकारी के अनुसार, अभियुक्त ने उसके सामने अपना अपराध कबूल कर लिया था और उसके प्रकटीकरण बयान पर उसकी निशानदेही पर लकड़ियों के ढेर से खून से सनी कुल्हाड़ी बरामद की गई थी। केस डायरी में लिखे गए ऐसे बयानों को जांच अधिकारी द्वारा साबित नहीं किया गया है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के मद्देनजर ऐसे बयानों को साबित नहीं किया जा सकता है।

(डी) बरामदगी: जांच अधिकारी के अनुसार, आरोपी ने अपना अपराध कबूल कर लिया और एक खुलासा बयान दिया, जिस पर अपराध में इस्तेमाल की गई खून से सनी कुल्हाड़ी उसकी निशानदेही पर बरामद की गई। अभि.साक्षी.4 श्याम चरण गिरि ने इस बात से इनकार किया है कि दिनांक 3.10.2014 को आरोपी विनोद की निशानदेही पर उसके सामने लकड़ियों के ढेर से कथित कुल्हाड़ी बरामद की गई थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि ऐसी कुल्हाड़ी उनके सामने सील की गई थी और उन्होंने अपने सामने कुल्हाड़ी का पुनर्प्राप्ति ज्ञापन तैयार करने से भी इनकार किया है, बल्कि

उन्होंने गवाही दी है कि 3.10.2014 को वह चोपन में थे। अभि.साक्षी 10, जांच अधिकारी आर.बी. मौर्य ने पुनर्प्राप्ति ज्ञापन को साबित किया है और कुल्हाड़ी को एम एक्स 1 के रूप में भी साबित किया है। लेकिन यह स्वीकार किया है कि उन्होंने इसके ठीक होने का समय नहीं लिखा है, न तो लकड़ी वाले हिस्से पर और न ही तेज धार वाले हिस्से पर उनके हस्ताक्षर हैं.

इस संबंध में फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला प्रतिवेदन को भी आधार बनाया गया है, जिसमें कुल्हाड़ी पर खून पाया गया है लेकिन यह निश्चित नहीं हो सका कि यह मानव रक्त था या नहीं इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कुल्हाड़ी के तेज धार वाले हिस्से में मृतक का मानव रक्त था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क महत्वपूर्ण है कि यदि अपीलकर्ता पर कोई संदेह होता, तो वह कुल्हाड़ी वहां क्यों रखता। चूँकि वह घटना के बाद भागा नहीं था और गिरफ्तार नहीं हुआ था, इसलिए उसके पास इसे नष्ट करने का पर्याप्त अवसर था। आमतौर पर ऐसी कुल्हाड़ी हर घर में पाई जाती है और जब यह साबित नहीं हुआ हो कि उस पर इंसान का खून लगा है।यह नहीं कहा जा सकता है कि उक्त कुल्हाड़ी का उपयोग आरोपी द्वारा अपराध करने में किया गया था और जब जांच अधिकारी ने इसे एक ब्लाइंड केस पाया, तो उसने अपना बोझ उठाने के लिए आरोपी पर आरोप पत्र दायर किया।

इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि कुल्हाड़ी एम Ex1 का उपयोग अपराध के लिए किया गया था और इसमें मानव रक्त था या इसे अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद किया गया था।

(ई) अभियोजन पक्ष का यह भी मामला नहीं है कि अपराध करने के बाद आरोपी फरार हो गया था। कभी-कभी किसी आरोपी की फरारी को अभियोजन पक्ष के पक्ष में माना जाता है लेकिन इस मामले में यह साबित हुआ है कि यह जानने के बाद कि आरोपी की पत्नी की हत्या कर दी गई है, उसने अपने भाई को सूचित किया और उसके माध्यम से प्र.सू.रि दर्ज कराई।

(एफ) **भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की प्रयोज्यता**- विद्वान विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 पर दोषसिद्धि और सजा के अपने फैसले को आधार पर लागू होना है और त्रिमुख मारोती किर्कन (पूर्वोक्त) पर भरोसा किया है जिसमें यह साबित हुआ था कि जब पत्नी आवास गृह में घायल हो गई, तो पति आमतौर पर वहीं रहता था और पति ने अपनी पत्नी को लगी चोटों के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया। उस स्थिति में

शीर्ष अदालत ने माना कि चोटों के लिए पति जिम्मेदार था। इस मामले में तथ्य बिल्कुल अलग हैं. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आरोपी और मृतक अपने आवास गृह में एक साथ नहीं रह रहे थे, लेकिन यह साबित नहीं किया जा सका कि अपराध के समय आरोपी वहां मौजूद था।

धारा 106 साक्ष्य अधिनियम इस प्रकार है:-

"106. ***विशेष रूप से ज्ञान के भीतर तथ्य को साबित करने का बोझ।-जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति की जानकारी में हो तो उस तथ्य को साबित करने का भार उसी पर होता है। दृष्टांत***

(ए) जब कोई व्यक्ति कार्य के चरित्र और परिस्थितियों से सुझाए गए इरादे के अलावा किसी अन्य इरादे से कोई कार्य करता है, तो उस इरादे को साबित करने का भार उस पर होता है।

(बी) ए पर बिना टिकट के रेलवे पर यात्रा करने का आरोप है। यह साबित करने का भार कि उनके पास टिकट है, उन पर है

पी. मणि बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 2006 एससी 1319 में, यह माना गया है कि सभी उचित संदेहों से परे किसी आरोपी की संलिप्तता को साबित करना अभियोजन पक्ष का काम है। यह ऐसा मामला नहीं था जहां आरोपी और मृतक दोनों को आखिरी बार एक कमरे के अंदर एक साथ देखा गया था। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 किसी भी तरह लागू होती है।

कैलाश चंद्र बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 11 एससीसी 268 में,यह माना गया है कि यह सामान्य बात है कि अभियोजन को अपने पैरों पर खड़ा होना होगा और आरोप साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत पेश किए जाने चाहिए, विचारण न्यायालय द्वारा धारा 106 की कोई सहायता नहीं ली जा सकती है।

धारा 106 का उद्देश्य अभियोजन पक्ष को अभियुक्त के अपराध को साबित करने के बोझ से राहत देना नहीं है, बल्कि यह धारा उन मामलों पर लागू होगी जहां अभियोजन उन तथ्यों को साबित करने में सफल रहा है जिनके लिए कुछ अन्य तथ्यों के अस्तित्व के संबंध में उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है। जब तक कि अभियुक्त ऐसे तथ्यों के बारे में विशेष ज्ञान के आधार पर कोई स्पष्टीकरण देने में विफल न हो, जो न्यायालय को एक अलग निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित कर सके।

शिवाजी चिन्तप्पा पाटिल (पूर्वोक्त) के पैरा 22 में यह माना गया है कि ----

22. इस प्रकार यह देखा जा सकता है, कि यह अच्छी तरह से तय

है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 सीधे तौर पर पति या पत्नी के एक ही छत के नीचे रहने और मृतक के साथ देखे गए अंतिम व्यक्ति होने के खिलाफ लागू नहीं होती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अभियोजन मामले को साबित करने के अपने प्राथमिक बोझ का निर्वहन करने से मुक्त नहीं करती है। ऐसा केवल तभी होता है जब अभियोजन पक्ष ने ऐसे सबूत पेश किए हों, जिन पर यदि विश्वास किया जाए, तो दोषसिद्धि कायम हो सकती है, या जो प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तब उन तथ्यों पर विचार करने का सवाल उठता है, जिन्हें साबित करने का बोझ आरोपी पर होगा।

श्रीमती गार्गी बनाम. हरियाणा राज्य, 2019 0 सुप्रीम एससी 1042 के पैरा 28.1 में., यह माना गया है कि---

28.1. जहां तक 'आखिरी बार देखे जाने के सिद्धांत' का प्रश्न है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता कोई और नहीं बल्कि मृतक की पत्नी है और एक ही छत के नीचे रहती है, वह आखिरी व्यक्ति थी जिसके साथ मृतक को देखा गया था। हालाँकि, मृतक और अपीलकर्ता के इस तरह के साथ का मतलब यह नहीं है कि अपीलकर्ता के अपराध का अनुमान लगाया जाए। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय इस धारणा पर आगे बढ़े हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम 11 की धारा 106 सीधे अपीलकर्ता के खिलाफ काम करती है। हमारे विचार में, ऐसा दृष्टिकोण भी त्रुटि से मुक्त नहीं है जहां इस बात पर विचार करना छोड़ दिया गया कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 अभियोजन को उसके प्राथमिक बोझ से मुक्त नहीं करती है। इस न्यायालय ने सावल दास (पूर्वोक्त) में सिद्धांत को निम्नलिखित में समझाया है: -

"10. हालाँकि, न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 103 और न ही 106 का आवेदन, अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे अभियोजन मामले को साबित करने के अपने सामान्य या प्राथमिक बोझ के निर्वहन के कर्तव्य से मुक्त कर सकता है। ऐसा तभी होता है जब अभियोजन पक्ष ने ऐसे सबूत पेश किए हों, जिन पर यदि विश्वास किया जाए, तो सजा बरकरार रहेगी, या जो प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तभी उन तथ्यों पर विचार करने का सवाल उठता है, जिन्हें साबित करने का बोझ आरोपी पर पड़ सकता है..."

10. अपीलकर्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

सत्ये सिंह और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य 2022 0 (एससी) 143 इस मामले में मृतक की पत्नी थी, पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था क्योंकि

कथित घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं था, शव पर चोटें मृत्यु पूर्व प्रकृति की थीं। जांच के दौरान कोई भी आपत्तिजनक वस्तु बरामद नहीं की गई और आरोपियों को कथित अपराध से जोड़ने के लिए ठोस सबूत तो दूर, कोई सबूत इकट्ठा करने का भी कोई प्रयास नहीं किया गया। मृतक कथित घटना की पिछली शाम को घर से निकला था। यह माना गया कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी मजबूत क्यों न हों, सबूत की जगह नहीं ले सकतीं और अभियुक्तों का अपराध उचित संदेह से परे अभियोजन द्वारा साबित किया जाना चाहिए। अभियोजन परिस्थितियों की सम्पूर्ण कड़िया उपलब्ध करने में भी बुरी तरह विफल रहा कि कथित कृत्य केवल अभियुक्त द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं। इसलिए उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश को रद्द कर दिया गया और आरोपियों को बरी कर दिया गया।

देवीलाल बाबूलाल बनाम राजस्थान राज्य 2019 लॉ सूट (एससी) 36 में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की जांच करते समय, अदालत को आरोपियों की बेगुनाही की किसी भी उचित संभावना को खारिज करने के लिए घटनाओं की श्रृंखला को स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से स्थापित करने के लिए इसका मूल्यांकन करना होगा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सबूत होना चाहिए कि आरोपी के अलावा कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता है जो अकेले कथित अपराध का अपराधी है और परिस्थितियों को केवल आरोपी के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप निर्णायक प्रकृति स्थापित करनी चाहिए।

शिवाजी चिंताप्पा पाटिल (पूर्वोक्त) के पैरा 11 में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों के संबंध में समान सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं।

"11. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में कानून को **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य8** के मामले में इस न्यायालय के 5 (2010) 9 एससीसी 189 6 (2019) 19 एससीसी 447 7 (2006) 12 एससीसी 254 फैसले में बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है :-

“153. इस निर्णय का बारीकी से विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि किसी आरोपी के खिलाफ मामला पूरी तरह से स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया है कि संबंधित परिस्थितियों को "स्थापित किया जाना चाहिए" और "नहीं" किया जा सकता है। "साबित किया जा सकता है" और "साबित होना चाहिए या होना चाहिए" के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर है, जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एससीसी 793 [एससीसी पैरा 19, पृष्ठ 807: एससीसी (सीआरआई) पृष्ठ 1047] में माना था जहां अवलोकन किए गए थे: “19।.....निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले आरोपी को दोषी होना चाहिए और न कि केवल

दोषी होना चाहिए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से विभाजित करती है। "(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्यायित नहीं किया जाना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है,(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए, (4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5) साक्ष्यों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे और यह दर्शाया जाए कि सभी मानवीय संभावनाओं में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा। "

11. उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का मानना है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले में किसी आरोपी को दोषी ठहराने और सजा देने के लिए अनिवार्य कोई भी घटक उचित संदेह से परे साबित नहीं किया गया है और आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला भी स्थापित नहीं की जा सकी है। इस प्रकार, यह न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि विद्वान विचारण न्यायालयद्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा का आदेश कानून की नजर में कायम रहने योग्य नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है।

आदेश

अपील **स्वीकार** की जाती है और दोषसिद्धि और सजा का दिनांक 13.12.2019 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता को जेल से मुक्त किया जाए। यह आदेश तुरंत संबंधित जेल अधीक्षक को भेजा जाए। निचली अदालत के अभिलेख को इस फैसले की एक प्रति के साथ वापस भेजा जाए।

न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,)

(न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर,)

आगामी आदेश

फैसला सुनाने के बाद हमें बताया गया कि अपीलकर्ता की बेटी की शादी है इसलिए, हम रजिस्ट्री को निर्देश देते हैं कि वह इस फैसले का क्रियात्मक भाग जेल प्राधिकरण को ई-मेल द्वारा भेजे ताकि अपीलकर्ता को इस न्यायालय के अनुपालन के साथ 3 मई, 2023 को या उससे पहले रिहा किया जा सके।

(2023) 5 ILRA 535

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक अपील (अंतर्गत धारा 374 सीआर.पी.सी.) संख्या 3129/2010

और

आपराधिक अपील संख्या 3379 / 2010

अमर पाल ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री रामानुज त्रिपाठी, श्री अभिषेक मयंक

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323/34, 325/34, 307/34 और 393- दोषसिद्धि को चुनौती-रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से पता चलता है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने जबरन वसूली के तौर पर दो बोतल शराब और 10,000/- रुपए की मांग की थी, जिसे घायल ने लेने से मना कर दिया, जो एक व्यक्ति की शराब की दुकान पर सेल्स मैन के रूप में काम कर रहा था और इस तरह आरोपी-अपीलकर्ता गुस्से में आ गया और उसने शारीरिक चोटें पहुंचाईं, जो कि गंभीर प्रकृति की बताई गई हैं और घायल के महत्वपूर्ण भाग (ऊपरी छाती क्षेत्र) पर लगीं, जो कई दिनों तक चिकित्सा उपचार के तहत रहे - विद्वान विचारणीय न्यायालय ने साक्ष्य और गवाहों के बयान पर विस्तार से चर्चा करने के बाद सही ढंग से निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य में एकरूपता है और इस तरह अभियोजन पक्ष की कहानी पर संदेह नहीं किया जा सकता है - निर्णय दिया गया कि अपीलकर्ता पहले ही लंबे अभियोजन की पीड़ा का सामना कर चुका है - उसने अपनी सजा के चार साल से अधिक समय काट लिया है और अकेले आरोपी-अपीलकर्ता को इस अपील के निपटारे में लंबी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है -मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, यह न्याय के हित में होगा कि उसकी सजा को भुगतान की गई सजा तक कम की जाए। (पैरा 1 से 36)

बी. देव नारायण मंडल के मामले में 'उचित सजा' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई थी कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा सुनाने में न्यायालय का विवेक मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं अपनाया जा सकता। (पैरा 29, 30)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अभियुक्त "X' बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 7 एससीसी 1
2. एम.पी. राज्य बनाम उधम एवं अन्य (2019) 10 एससीसी 300
3. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य (1977) एआईआर एससी 1926
4. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य (2004) 7 एससीसी 257
5. रवादा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य (2017) एआईआर एससी 1166
6. जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532
7. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734
8. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह (2014) 7 एससीसी 323
9. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) 3 सी सी 441
10. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य (2016) 1 एससीसी 463

11. गोपाल सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2013) 7 एससीसी 545

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1- अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए को सुना। अभिलेख का परिशीलन किया।

2- उपरोक्त दोनों आपराधिक अपीलें विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 7, अलीगढ़ द्वारा पारित सामान्य निर्णय और आदेश दिनांक 01.05.2010 से उत्पन्न हुई हैं और एक दूसरे से संलग्न हैं, उन्हें एक साथ सुना गया और एक ही सामान्य निर्णय द्वारा निर्णीत किया जा रहा है।

3- वर्तमान आपराधिक अपीलें, मुकदमा अपराध संख्या 123/2007 अन्तर्गत धारा 323/34, 325/34, 307/34 और 393 आईपीसी, पुलिस स्टेशन गौंडा, जिला अलीगढ़ से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 334/2008 में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 7, अलीगढ़ द्वारा पारित सामान्य निर्णय और आदेश दिनांक 01.05.2010 से उत्पन्न हुई हैं, जिसमें आरोपी व्यक्तियों को आईपीसी की धारा 323/34 के तहत दोषसिद्ध और छह महीने की साधारण कारावास, आईपीसी की धारा 325/34 के तहत दो वर्ष का साधारण कारावास, आईपीसी की धारा 307/34 के तहत सात वर्ष का साधारण कारावास और डिफ़ॉल्ट धाराओं के साथ आईपीसी की धारा 393 के तहत दो वर्ष का साधारण कारावास भुगतना होगा।

4- संक्षेप में, अभियोजन का कथानक यह है कि सुनीत अरोड़ा ने थाना गौंडा, जिला अलीगढ़ में एक लिखित तहरीर दी, जिसमें कहा गया कि दिनांक 20.09.2007 को जब उनके सेल्समैन, कमल सिंह और उमेश कुमार, उनकी अंग्रेजी शराब की दुकान में शराब बेच रहे थे, लगभग 09:15 बजे रात में एक काले रंग की मोटर साइकिल पर सवार होकर दो व्यक्ति आए और एक बोतल शराब मांगी, जिस पर कमल सिंह ने देने से इंकार कर दिया, जिसके चलते उन्होंने कमल सिंह की लात घूसों से मारपीट की और एक आरोपी ने जान से मारने की नियत से अपने देशी कट्टे से गोली चला दी। दूसरा व्यक्ति भी देशी पिस्तौल से लैस था। उमेश के शोर मचाने पर आरोपी भाग गये। घटना के समय बिजली के बल्ब की रोशनी थी। उमेश ने तुरंत इस घटना की जानकारी शिकायतकर्ता को फोन पर दी। घटना के समय शिकायतकर्ता का साथी जाबिर अली इगलास शहर में था और घटना के बारे में सुनकर वे दोनों पुलिस स्टेशन गौंडा आए जहां उमेश घायल कमल सिंह को भी लाया था। घायल कमल सिंह ने गोली चलाने वाले आरोपी व्यक्ति का नाम अमर पाल बताया और पूरी घटना भी बताई। लिखित रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि दोनों सेल्समैन आरोपियों को देखते ही पहचान सकते हैं। उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्तगणों के विरूद्ध थाना गौंडा, जनपद अलीगढ में प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 123 सन् 2007 धारा 323, 307 आईपीसी के तहत पंजीकृत की गयी। घायल की जांच जे.एन. मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ में की गई और उसे आगे के इलाज के लिए दिनांक 20.09.2007 को

सूचनादाता द्वारा उसी अस्पताल में भर्ती कराया गया था।

5- प्रारम्भ में इस मुकदमे की जांच सब-इंस्पेक्टर फूल सिंह को सौंपी गई और बाद में एस.आई. फारूक अहमद को सौंपी गई। आई.ओ. ने साइट प्लान तैयार किया, सीआरपीसी की धारा 161 के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए। आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने और उचित जांच के बाद आई.ओ. ने मामले में संज्ञान लेने वाले सीजेएम, अलीगढ़ की अदालत में आरोपी अमर पाल और बॉबी के खिलाफ धारा आईपीसी की धारा 323, 325, 307, 393 के तहत आरोप-पत्र प्रस्तुत किया।

6- मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण, विद्वान सीजेएम ने इसे विचारण के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया। जहां इसे एस.टी. संख्या 334/2008 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

7- विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आईपीसी की धारा 323/34, 307/34, 325/34 तथा 393 के तहत आरोप तय किये, अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार कर दिया। उन्होंने आरोप से इनकार किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

8- अपने मामले को साबित करने के लिए, विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित प्रत्यक्ष गवाहों की जांच की: -

क्रम सं.	गवाहों का विवरण	गवाह संख्या
1	कमल सिंह	पीडब्लू- 1
2	सुनीत अरोड़ा	पीडब्लू- 2
3	उमेश पाल	पीडब्लू- 3
4	डॉ. अहशान अहमद	पीडब्लू- 4
5	विजेन्द्र सिंह	पीडब्लू- 5
6	डॉ. प्रोफेसर एम.एच. वेज	पीडब्लू- 6
7	एस.आई. फूल सिंह	पीडब्लू- 7
8	एस.आई. फारूक अहमद	पीडब्लू- 8
9	डॉ. बसंत कुमार	पीडब्लू- 9

9- इसके अलावा अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों पर भी अवलम्ब लिया है:-

क्रम सं.	विवरण	प्रदर्श संख्या	द्वारा सिद्ध किया गया
1	तहरीर	प्रदर्श क-1	पीडब्लू- 2
2	चिक एफआईआर	प्रदर्श क-3	पीडब्लू- 5
3	कायमी जी.डी. की छायाप्रति	प्रदर्श क-4	पीडब्लू- 5
4	चोट की रिपोर्ट	प्रदर्श क-2	पीडब्लू- 4
5	नक्शा नजरी	प्रदर्श क-28	पीडब्लू- 7
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क-29	पीडब्लू- 8
7	रेडियोलॉजी रिपोर्ट	प्रदर्श क-30	पीडब्लू- 9
8	घायलों के चोट की स्थिति की रिपोर्ट	प्रदर्श क-5 से 27	पीडब्लू- 6

10- अभियोजन साक्ष्य पूर्ण होने पर अभियुक्तों से धारा 313 सीआरपीसी के तहत परीक्षण कराया गया। अभियुक्त-अपीलकर्ता जिसमें अभियुक्त ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान से इनकार किया और कहा कि उन्हें पार्टी बंदी के कारण झूठा फंसाया गया है।

11- अभियुक्त/अपीलकर्ता ने अपने बचाव में कोई भी प्रत्यक्ष या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

12- विद्वान सत्र न्यायाधीश अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों और अन्य सामग्री का अवलोकन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अभियोजन पक्ष आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ युक्तियुक्त संदेह से परे अपना मामला साबित करने में सक्षम है। उन्होंने तदनुसार उन्हें दोषी ठहराया और ऊपर बताए अनुसार सजा सुनाई। आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित अभियुक्तों/अपीलकर्ताओं ने ये अलग-अलग अपीलें दायर कीं।

13- अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय पूरी तरह से अनुचित है क्योंकि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष अभिलेख पर साक्ष्य की सही जाँच पर आधारित नहीं हैं। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष की बात को बहुत अधिक महत्व दिया है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही पर विश्वास करने में इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए भी त्रुटि की है कि उनके बयान में बहुत विरोधाभास हैं।

14- अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि वास्तविक घटना को किसी ने नहीं देखा है और अपीलकर्ता के पास उक्त अपराध करने का कोई मकसद नहीं था, लेकिन गांव की पार्टी-बंदी की पुरानी दुश्मनी के कारण, उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया था।

15- अंत में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि भले ही यह मान

लिया जाए कि अपीलकर्ताओं ने अपराध किया है, तब भी अपीलकर्ताओं को दी गई सजा अत्यधिक है क्योंकि मेडिकल रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि चोटें महत्वपूर्ण हिस्से पर नहीं थीं और मामला केवल धारा 324 आईपीसी के तहत आएगा, न कि धारा 307 आईपीसी के तहत, जैसा कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कहा था।

16- अपीलकर्ता के अधिवक्ता के दावे का खंडन करते हुए, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि यह कहना गलत है कि नीचे दी गई विद्वान न्यायालय द्वारा दर्ज की गई सजा के निष्कर्ष गलत हैं या अभिलेख के सही अवलोकन पर आधारित नहीं हैं। वास्तव में, निचली अदालत ने सबूतों की सही परिप्रेक्ष्य में जांच की है और उसके बाद अपराध के निष्कर्षों को दर्ज किया है। चश्मदीदों ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया है और भले ही, यह माना जाता है कि उनके बयान में कुछ विरोधाभास थे जो प्रकृति में मामूली थे और अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं थे। उन्होंने आगे कहा कि चिकित्सा साक्ष्य ने अभियोजन पक्ष के कथानक का पूरी तरह से समर्थन किया है और इस तरह यह कहना गलत होगा कि निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण हैं। अंत में, यह कहा गया है कि आरोपी व्यक्ति आपराधिक मानसिकता वाले हैं और पहले विभिन्न आपराधिक मामलों में शामिल थे। उन्होंने इलाके में दहशत फैला रखी है।

17- अभिलेख पर मौजूद सामग्री के अवलोकन से पता चलता है कि घटना दिनांक 20.09.2007 को रात लगभग 9.15 बजे हुई थी और उसी दिन रात लगभग 10.15 बजे थाना गौंडा, जिला अलीगढ़ में आईपीसी की धारा 323/307 के तहत एफआईआर दर्ज की गई। निचली अदालत के समक्ष अभियुक्तों को कांस्टेबल जगदीश सिंह द्वारा लाया गया है, जिनका नाम मेडिकल रिकॉर्ड में दर्ज है। यदि एफआईआर न होती तो हेड कांस्टेबल द्वारा घायल को मजरूबी चिट्ठी के साथ मेडिकल कॉलेज लाने की नौबत ही नहीं आती। घायल कमल सिंह के बयान में आया है कि उसने शिकायतकर्ता सुनीत अरोड़ा को गोली चलाने वाले लोगों के नाम बताए थे। विचारण न्यायालय का उक्त निष्कर्ष दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है, जो मामले की परिस्थितियों में पूरी तरह से उचित है।

18- घायल गवाह कमल सिंह (पी.डब्लू.1) ने अपनी गवाही में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि तीन व्यक्ति मोटर साइकिल पर आये थे जिनमें से अमर पाल और बॉबी हथियार से लैस थे। उसने आगे बताया कि पहली गोली अमर पाल ने चलाई थी जबकि दूसरी गोली बॉबी ने चलाई थी जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया। सेल्समैन का काम करने वाला नानऊ उसे मेडिकल कॉलेज ले गया जहां वह काफी समय तक भर्ती रहा और एक महीने तक इलाज चला। उसने आगे बताया कि बॉबी और अमर पाल उसे बहुत पहले से जानते थे क्योंकि वह तीन साल से दुकान में काम कर रहा था। अभियुक्तों द्वारा गोली चलाने की पुष्टि पी.डब्लू.3 उमेशपाल द्वारा की गई है, जो घटना का चश्मदीद गवाह है और वाइन शॉप पर सेल्समैन के रूप में काम कर रहा था।

19- विजेंद्र सिंह (पी.डब्ल्यू.5) थाना गौंडा में

कांस्टेबल क्लर्क हैं और उन्होंने शिकायतकर्ता की रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 20.9.2007 को 22.15 बजे अपराध संख्या 279/07 में आईपीसी की धारा 323/307 के तहत एफआईआर दर्ज की। उक्त गवाह ने अदालत के समक्ष दस्तावेज को साबित कर दिया है। डॉ. अहसान अहमद (पी.डब्लू.4) ने अदालत के समक्ष गवाही दी कि वह मेडिकल कॉलेज अलीगढ़ में तैनात थे और लगभग 10.55 कांस्टेबल जगदीश सिंह घायलों को अस्पताल लाए थे। उनके द्वारा जांच की गई तो घायल के शरीर पर बंदूक की गोली समेत गंभीर चोटें पाई गईं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि एफआईआर में दिए गए बयान की मौखिक और चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई है।

20- यह उल्लेख करना उचित है कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से यह पूरी तरह से स्थापित है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने जबरन वसूली (धौंस) में दो बोतल शराब और 10,000/- रुपये की मांग की थी, जिसे घायल कमल सिंह, जो सुनीत अरोड़ा की वाइन शॉप पर सेल्स मैन के रूप में काम करता था, ने लेने से इनकार कर दिया और इस तरह आरोपी-अपीलकर्ता उग्र हो गया और शारीरिक चोटें पहुंचाईं, जो गंभीर प्रकृति की बताई गई हैं और कमल सिंह के महत्वपूर्ण अंग (छाती के ऊपरी भाग) पर थे, जिनका उपचार कई दिनों तक चला था।

21- विद्वान विचारण न्यायालय साक्ष्यों और गवाहों के बयान पर विस्तार से चर्चा करने के बाद सही निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य में एकरूपता है और इस तरह अभियोजन की कहानी पर संदेह नहीं किया जा सकता है। यह इंगित करना प्रासंगिक है कि यह विश्वास करना कठिन है कि घायल व्यक्ति अपीलकर्ता को झूठा फंसा देगा और वास्तविक हमलावरों को बच निकलने देगा। इसलिए, अपीलकर्ता के दावे पूरी तरह से निराधार और गलत हैं। इसके अलावा, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए अपराध के निष्कर्षों को रद्द करने के लिए कोई ठोस सबूत प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं।

22- उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, मेरी सुविचारित राय है कि निचली अदालत द्वारा लिया गया दृष्टिकोण पूरी तरह से उचित है और अभिलेख पर सबूतों के सही अवलोकन पर आधारित है और इस तरह अपीलकर्ताओं को दी गई सजा को बरकरार रखा जाता है।

23- अब तक अभियुक्तों की सजा के बारे में विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं को निम्नलिखित सजा सुनाई है:-

"अभियुक्तगण अमर पाल पुत्र श्री तुलाराम एवं बॉबी पुत्र सरदार सिंह को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 सपठित धारा 34, 325 सपठित धारा 34, 307 सपठित धारा 34 एवं 393 के अधीन दण्डनीय अपराध का दोषी पाते हुऐ उनमें से प्रत्येक अभियुक्त को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 सपठित धारा 34 के आरोप में छः माह के सश्रम कारावास, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 325 सपठित धारा 34 के अधीन दण्डनीय आरोप में दो वर्ष के सश्रम कारावास तथा रूपये 1000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया

जाता है। अर्थदण्ड की धनराशि अदा न करने पर उनमें से प्रत्येक को एक माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 सपठित धारा 34 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए उनमें से प्रत्येक को सात वर्ष के सश्रम कारावास एवं रूपये 2000-00 के अर्थदण्ड से दण्डित किया जाता है। अर्थदण्ड की धनराशि अदा न करने पर उनमें से प्रत्येक को दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा तथा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 393 के अधीन दण्डनीय अपराध के अन्तर्गत उनमें से प्रत्येक को दो वर्ष का सश्रम कारावास तथा 2000-00 रूपये के अर्थदण्ड से दण्डित किया जाता है। अर्थदण्ड की धनराशि अदा न करने पर उनमें से प्रत्येक को दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। अभियुक्तगण की सभी सजाऐं साथ-साथ चलेंगी।"

24- जहां तक अभियुक्त/अपीलकर्ता बॉबी के संबंध में दण्ड का सवाल है, उसे दिनांक 06.02.2009 को जेल में बंद कर दिया गया था और विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा की अवधि काटने और जुर्माना जमा करने के बाद दिनांक 2.7.2014 को रिहा कर दिया गया था, जो कि वरिष्ठ जेल अधीक्षक, अलीगढ की रिपोर्ट दिनांक 18.8.2022 से स्पष्ट है। जैसा कि मैंने पहले ही माना है कि अपीलकर्ता-बॉबी की सजा पूरी तरह से उचित थी, उसके द्वारा दायर आपराधिक अपील संख्या 3379/2010 खारिज करने योग्य है। चूंकि, अपीलकर्ता-बॉबी पहले ही सजा काट चुका है, इसलिए उसे आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है और उसके जमानत बन्धपत्र, यदि कोई हों, तो उन्मोचित हो जाएंगे।

25- जहां तक अमर पाल का सवाल है, उसे अधिकतम सात वर्ष की सजा दी गयी और वह दिनांक 01.05.2010 से ही लंबी अवधि के लिए कैद में है, इसलिए, उसने पहले ही काट ली गई अवधि के लिए अपनी सजा कम करने की प्रार्थना की। इस तर्क के मद्देनजर भारत में सजा से संबंधित कानून को समझना उपयोगी होगा।

26- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, भारतीय संसद ने कोई दण्ड नीति निर्धारित नहीं की है, हालांकि **मलिमथ समिति (2003)** और **माधव मेनन समिति (2008)** ने समाज की बदलती परिस्थितियों में दण्ड नीति की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसलिए, अदालतें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित नियम पर निर्भर हैं।

27- सजा का सिद्धांत कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चिंता का मुद्दा रहा है और इस मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान करने की कोशिश की गई है। उच्च न्यायालयों और विचारण न्यायालयों में सजा सुनाने के तरीके को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार गलत तरीके के प्रति आगाह किया है।

अभियुक्त 'एक्स' बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 7 एससीसी 1) में "सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि" यह स्थापित है कि सजा देना एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें एक न्यायाधीश तथ्यात्मक

परिस्थितियों और समानताओं पर विचार करते हुए आरोपी के लिए उचित सजा तय करता है। इस तथ्य के आलोक में कि विधायिका न्यायाधीशों को सजा देने के लिए विवेकाधिकार प्रदान करती है, इसे सैद्धांतिक तरीके से प्रयोग करना महत्वपूर्ण हो जाता है।"

"12. अपराधों के लिए सजा का विश्लेषण तीन परीक्षणों अर्थात अपराध परीक्षण, आपराधिक परीक्षण और तुलनात्मक आनुपातिकता परीक्षण की कसौटी पर किया जाना चाहिए। अपराध परीक्षण में योजना की सीमा, हथियार का चुनाव, अपराध का तरीका, निस्तारण का तरीका (यदि कोई हो), आरोपी की भूमिका, अपराध का असामाजिक या घृणित चरित्र, पीड़ित की स्थिति जैसे कारक शामिल होते हैं। आपराधिक परीक्षण में अपराधी की उम्र, अपराधी का लिंग, आर्थिक स्थिति या अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि, अपराध के लिए प्रेरणा, बचाव की उपलब्धता, मन की स्थिति, मृतक या मृतक समूह से किसी एक द्वारा उकसाना, मुकदमे में पर्याप्त प्रतिनिधित्व, असहमति अपील प्रक्रिया में एक न्यायाधीश द्वारा, पश्चाताप, सुधार की संभावना, पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड (लंबित मामलों को नहीं लेना) और कोई अन्य प्रासंगिक कारक (विस्तृत सूची नहीं) जैसे कारकों का मूल्यांकन शामिल हैं।

13. **मध्य प्रदेश राज्य बनाम उधम और अन्य (2019) 10 एससीसी 300** में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि "हम ध्यान दे सकते हैं कि अपराध परीक्षण के तहत, गंभीरता का पता लगाने की आवश्यकता है। अपराध की गंभीरता का पता (i) पीड़ित की शारीरिक पूर्णता; (ii) सुख-सुविधा के भौतिक समर्थन की हानि; (iii) अपमान की सीमा; और (iv) गोपनीयता का उल्लंघन से लगाया जा सकता है।"

28- **मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]** में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया है:

" अपराध एक रोगात्मक पथभ्रष्टता है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होता है। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण से करना होगा। इसलिए, व्यक्ति में दण्डशास्त्र में हित को ध्यान में रखते हुए उसका लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और बर्बर सज़ा देना अतीत और पूर्व के समय का अवशेष है। आज मनुष्य सज़ा देने को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी

आपराधिक न्यायालयों में 'डर के' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर कारावास से केवल उसके दिमाग को नुकसान पहुंचता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना ही होगा और, व्यक्ति चोट देने से नहीं सुधरता।"

29. **देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** मामले में 'उचित वाक्य' शब्द की व्याख्या इस आधार पर की गई थी कि वाक्य अत्यधिक कठोर या बेतुके ढंग से कम नहीं होना चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

30- रावदा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एआईआर 2017 एससी 1166 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने **जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 एससीसी 532]**, **गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734]**, **सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323]**, **पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि,

दण्ड प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक संरचना के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके कारित करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग

से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और संस्कारक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

31- मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और संस्कारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए जिससे उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर दिया जाए।

32- जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड का सुधारात्मक सिद्धांत' अपनाया जाना चाहिए और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

33- यह सुस्थापित सिद्धांत है कि सजा उचित होनी चाहिए, लेकिन साथ ही अपराध और सजा के बीच आनुपातिकता के सिद्धांत को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है। किसी आपराधिक अपराध के संबंध में उचित दंड का सिद्धांत सजा का आधार है। सज़ा अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। आनुपातिकता की अवधारणा अदालत को महत्वपूर्ण विवेकाधिकार की अनुमति देती है लेकिन इसे कुछ सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। कुछ मामलों में, दोषी की प्रकृति, अभियुक्त का पूर्ववृत्त, उम्र का तथ्य, दोषी की भविष्य में अपराधी बनने की क्षमता, उसके सुधार की क्षमता और प्रचलित परिवेश में स्वीकार्य जीवन जीने की क्षमता, प्रभाव - सामाजिक खतरा या उपद्रव बनने की प्रवृत्ति, और कभी-कभी अपराध की प्रकृति, पक्षकारों के बीच संबंध और दोषी को लाने के सिद्धांत की आकर्षकता को ध्यान में रखते हुए अपराध के करने और उसके आचरण में समय की चूक मूल्य आधारित सामाजिक मुख्यधारा मार्गदर्शक कारक हो सकती है। इसमें ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है, अगलिखित कुछ उदाहरणात्मक पहलू हैं जिन्हें संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

34- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यह अवधारित किया गया है कि-

> गणितीय परिशुद्धता में न तो कोई बाधक सूत्र हो सकता है और न ही कोई हल करने

योग्य सिद्धांत। यह मामले के तथ्यों और तर्कसंगत न्यायिक विवेक पर निर्भर होगा। न तो किसी न्यायाधीश की व्यक्तिगत धारणा, न ही स्व-अनुपालित नैतिक दृष्टि और न ही काल्पनिक आशंकाओं को कोई खेल खेलने की अनुमति दी जानी चाहिए। हर अपराध के लिए किसी कठोर उपाय के बारे में नहीं सोचा जा सकता। इसी तरह, केवल अदालत में निहित विवेक के आधार पर किसी अपराधी के साथ नरमी से पेश आने की इजाजत नहीं दी जा सकती। वास्तविक आवश्यकता उन परिस्थितियों को तौलना है जिनमें अपराध किया गया है और अन्य सहवर्ती कारकों को हमने यहां पहले भी इंगित किया है और इस न्यायालय द्वारा कई घोषणाओं में भी कहा गया है। ऐसे मापदंड पर वाक्य अधिरोपित किये जाने चाहिए। विचार कल्पना के दायरे में नहीं होना चाहिए। इसे उचित सज़ा के वैचारिक सार में समाहित किया जाना चाहिए। **गोपाल सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2013) 7 एससीसी 545** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सजा को विस्तार से बताते हुए कहा कि सजा सुनाते समय, विभिन्न जटिल मामलों को ध्यान में रखना होगा। कुछ अपराधों के संबंध में पर्याप्त विशेष कारण देकर सजा को कम किया जा सकता है लेकिन विशेष कारण वास्तविक विशेष परिस्थितियों पर आधारित होने चाहिए।

35- वर्तमान मामले में, कथित घटना लगभग 16 वर्ष पूर्व दिनांक 20.09.2007 को घटित हुई थी। अपीलकर्ता अमर पाल पूर्व दोषी नहीं है। उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। अदालत के संज्ञान में ऐसा कुछ भी नहीं लाया गया है कि आरोपी/अपीलकर्ता ने जमानत पर रिहा होने के बाद उसे दी गई जमानत की स्वतंत्रता का कभी दुरुपयोग किया हो। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता पहले ही लंबे अभियोजन की पीड़ा का सामना कर चुका है। अभिलेख के अवलोकन से स्पष्ट है कि उसने अपनी सजा के चार साल से अधिक समय काट लिया है और इस अपील के निस्तारण में लंबे विलंब के लिए अकेले आरोपी-अपीलकर्ता को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ता को आगे कारावास भुगतने के लिए न्यायिक हिरासत में भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि यदि उसकी सजा पहले ही पूरी हो चुकी अवधि तक कम कर दी जाती है, तो यह न्याय के हित में होगा और यदि उसकी सज़ा को पहले ही काट ली गई सज़ा की अवधि तक कम कर दिया जाए तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। हालाँकि, जुर्माने की सजा को इसके डिफ़ॉल्ट खंड के साथ बरकरार रखा गया है। उसकी अपील आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 01.05.2010 में उपरोक्त संशोधन के साथ खारिज किये जाने योग्य है।

36- परिणामस्वरूप, निम्नलिखित निर्देशों के साथ अपीलकर्ता अमर पाल के खिलाफ वर्तमान अपील को **आंशिक अनुमति** दी जाती है:-

(i) दिनांक 01.05.2010 को दोषसिद्धि के

निर्णय की पुष्टि की जाती है, हालांकि दी गई सजा को पहले ही भुगती गई अवधि में संशोधित किया जाता है। तदनुसार, उसे तुरंत रिहा किया जाए, यदि वह न्यायिक हिरासत में नहीं है तो उसे आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है और उसके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है।

(ii) जुर्माने की राशि अपीलकर्ता अमर पाल को निर्णय की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने के भीतर भुगतान करनी होगी। इसमें चूक होने पर, अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए अतिरिक्त साधारण कारावास से गुजरना होगा।

(iii) निर्णय की एक प्रति आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाएगी।

(iv) विचारण न्यायालय का अभिलेख तत्काल वापस भेजा जाए।

(2023) 5 ILRA 543

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

आपराधिक अपील संख्या 5184/2022

और

आपराधिक अपील संख्या 6104/2022

और

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 22777/2022 और 2189/2023

झब्बू दुबे @ प्रदीप कुमार दुबे ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री जयसिंह यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री आशुतोष कुमार तिवारी, श्री अनिमेष श्रीवास्तव, श्री आशीष कुमार

ए. दंड विधि - अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम (पीओए), 1989-अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की धारा 14-ए(1), 3(1) (द) एवं (ध) - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 324- चार्जशीट एवं संज्ञान आदेश को चुनौती - वादी एवं घायल ने संबंधित न्यायालय के समक्ष अपने-अपने हलफनामे दिए हैं, जिनमें पूरी कहानी से इनकार किया गया है तथा घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति से इनकार किया गया है-घायल ने स्वयं अपने हलफनामे में अपीलकर्ता को अपराध करने से स्पष्ट रूप से दोषमुक्त किया है-उसने अपने हलफनामे में कहा है कि दुर्घटनावश वह गिर गया तथा फलस्वरूप उसे चोटें आईं तथा अपीलकर्ता कथित अपराध का बिल्कुल भी दोषी नहीं है - यदि प्रतियोगी पक्षों के बीच समझौता हो जाता है, तो राज्य के खजाने में राशि वापस जमा करना पक्षों के बीच किसी भी समझौते या संघर्ष विराम के लिए अनिवार्य और शर्त होगी, जिसके बिना संबंधित अदालत द्वारा कोई समझौता सत्यापित नहीं किया जा सकता है- चूंकि इस अदालत द्वारा सभी चार कार्यवाहियों की अनुमति पहले ही दी जा चुकी है, फिर भी पीड़ितों को निर्देश दिया जाता है कि वे अगले

अनुवादित

बीस दिनों के भीतर संबंधित सत्र डिवीजन के समाज कल्याण विभाग के खजाने में उनके द्वारा प्राप्त राशि जमा करें। (पैरा 1 से 27)

बी. जब पक्षों के बीच समझौता हो जाता है, तो पीड़ित के खिलाफ किसी भी तरह के हमले का खतरा नहीं रहता और पूरा माहौल शांति, सौहार्द और सकारात्मकता से भरा होता है। पीड़ित के लिए उस पैसे को रखने का कोई अच्छा औचित्य नहीं हो सकता है और पूरी निष्पक्षता में उन्हें राज्य सरकार को पैसा वापस करना चाहिए। यह निर्दोष करदाताओं की मेहनत की कमाई है और पीड़ितों के खिलाफ किसी भी अत्याचार का फायदा राज्य सरकार से पैसे कमाने और उनका आनंद लेने के लिए नहीं उठाया जा सकता है, भले ही उनके बीच समझौता हो। (पैरा 24)

सी. पीड़ितों को वित्तीय सहायता केवल इस उद्देश्य से दी जाती है कि वे दलित हैं, ताकि वे भयभीत या निराश महसूस न करें और धन की कमी के कारण कार्यवाही छोड़ दें। राज्य उनकी मदद के लिए आगे आया है और राज्य के कल्याण विभाग को उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अधिकृत और सशक्त बनाया गया है। यह वास्तव में एक प्रशंसनीय उद्देश्य है जिसके तहत राज्य एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते एससी/एसटी समुदाय से संबंधित पीड़ितों को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है ताकि वे अपने मामलों को लड़ सकें, गवाहों को बुला सकें और मुकदमे के दौरान होने वाले सभी खर्चों को वहन कर सकें। इस प्रकार वित्तीय सहायता प्रदान करने का मुख्य विचार यह है कि मामले को उसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाने में पीड़ितों को धन की कोई कमी नहीं होगी और गलत काम करने वालों को पीड़ितों के खिलाफ किए गए उनके कृत्यों के लिए उचित रूप से दंडित और दंडित किया जा सकेगा। राज्य सरकार द्वारा पीड़ितों को दी जाने वाली ये सभी व्यवस्थाएं केवल इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रदान की जाती हैं कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के सदस्य मामले को लड़ने में स्वतंत्र महसूस करें तथा शेष वित्तीय भार राज्य द्वारा वहन किया जाएगा। (पैरा 22)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रामगोपाल बनाम एम.पी. राज्य, सीआरएलए संख्या 1489/2012 में
2. रामावतार बनाम एम.पी. राज्य, सीआरएलए संख्या 1393/2011
3. एम.पी. राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य (2019) 5 एससीसी 688
4. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य (2012) 10 एससीसी 303

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं/आवेदक के अधिवक्ता श्री जयसिंह यादव, श्री अच्युत जी, श्री गिरीश सिंह, श्री अनिल कुमार यादव, अजीत सिंह और प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री अनिमेष श्रीवास्तव, श्री आशीष कुमार के साथ-साथ राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना। मामले के रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. इन कार्यवाहियों द्वारा मांगी गई आम प्रार्थना यह है कि विभिन्न चरणों में विभिन्न न्यायालयों के समक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ लंबित संबंधित मामलों की आगे की कार्यवाही को पक्षों के बीच समझौते के आलोक में छोड़ दिया जाए। ये मामले भारतीय दंड विधान की धाराओं के साथ एस.सी./एस.टी. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों से संबंधित हैं, जिसके लिए आरोपी- अपीलकर्ता मुकदमे का सामना कर रहे हैं, जिसका अर्थ है अपीलकर्ताओं/आवेदको के खिलाफ लंबित मामलों को रद्द किया जा सकता है, क्योंकि प्रतिद्वंदी पक्षों के बीच समझौता होता है और इन मामलों के सूचनादाता पक्षकारों के बीच समझौते के आलोक में अपीलकर्ताओं/आवेदकों पर मुकदमा चलाने के इच्छुक नहीं होते हैं।

3. मामले को गुण दोष पर व्यवरहत करने से पहले, संबंधित मामलों में शामिल तथ्यात्मक पहलू पर एक विहंगम दृष्टिकोण देना वांछनीय है, ताकि विवाद को उसके सही परिप्रेक्ष्य में सराहा जा सके:

(1) आपराधिक अपील संख्या-5184 वर्ष 2022 (डाब्बू दुबे @ प्रदीप कुमार दूबे)

यह झब्बू दूबे @ दूबे की ओर से एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए(1) के तहत अपील है, जिससे विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम की अदालत में लंबित एस.एस.टी. संख्या-265 वर्ष 2022 (राज्य बनाम झब्बू दूबे @ प्रदीप कुमार दूबे) में दिनांक 7.6.2022 के आरोप पत्र के साथ-साथ संज्ञान आदेश दिनांक 4.7.2022 ललितपुर, मामला अपराध संख्या-76 वर्ष 2022 से उद्भूत मामला 324, 504 भन्द०वि० और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1) (द) और (ध), थाना-जखौरा, जिला ललितपुर को चुनौती दी गई है। प्राथमिकी का सूचनाकर्ता सुरेंद्र पुत्र हरिचरण खटीक है और उसका घायल आई शैलेंद्र है।

सूचनाकर्ता सुरेंद्र द्वारा अपीलकर्ता झब्बू दूबे के खिलाफ 11.4.2022 को 10.4.2022 को हुई घटना के लिए प्राथमिकी दर्ज की गई थी, इस आरोप के साथ कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन सूचनाकर्ता अपने भाई शैलेंद्र के साथ बैठा था, अचानक झब्बू दूबे ने बिना किसी औचित्य और कारण के गंदी गालियां देना शुरू कर दिया और जब विरोध किया गया तो वह आक्रामक हो गया और तलवार से उसने उसके भाई शैलेंद्र को घायल कर दिया। जांच से अपीलकर्ता के खिलाफ पर्याप्त सामग्री का पता चलता है और तदनुसार 7.6.2022 को संबंधित विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 173(2) द०प्र०स० के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 324, 504 अ०द०वि० और धारा 3(1) (द) और (ध) के तहत एक रिपोर्ट दायर की गई थी। विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, ललितपुर ने 4.7.2022 को उन अपराधों का संज्ञान लिया और अपीलकर्ता के खिलाफ एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 324, 504 अन्द०वि० और

धारा 3(1) (द) और (घ) के तहत मामला अपराध संख्या 76 वर्ष 2022 से उत्पन्न अभियोजन का सामना करने के लिए प्रक्रिया जारी की।

कार्यवाही लंबित रहने तक सूचनाकर्ता सुरेंद्र पुत्र हरिचरण खटीक और घायल शैलेंद्र शैलेंद्र पुत्र हरिचरण खटीक ने 31.5.2021 को संबंधित अदालत के समक्ष अपने-अपने हलफनामें दिए हैं, जिसमें पूरी कहानी 10.4.2022 से इनकार किया गया है और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति से इनकार किया गया है। घायल शैलेंद्र ने खुद अपने हलफनामे में अपीलकर्ता को अपराध करने से स्पष्ट रूप से मुक्त कर दिया। उन्होने अपने हलफनामे में कहा है कि वह केवल दुर्घटना से गिर गया है और परिणाम स्वरूप उसे ये चोटें आयी हैं और अपीलकर्ता कथित अपराधों के लिये बिल्कुल भी दोषी नहीं है।

शपथ पत्र के बाद, अपीलकर्ता के खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द करने के लिए एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए (1) के तहत प्रपस्तुत अपील दायर की गई थी।

इस मामले में न्यायालय ने जिलाधिकारी, ललितपुर/समाज कल्याण अधिकारी से रिपोर्ट मांगी है शैलेन्द्र को मुआवजे की कितनी राशि दी गई है। नतीजतन सी. जे.एम., ललितपुर से कि घायल शैलेन्द्र को दिनांक 3.8.2022 को एक रिपोर्ट प्राप्त हुई, जो इंगित करती है कि एस.सी./एस.टी. नियम, 1995 के नियम 12(4) और इसकी प्रासंगिक अनुसूची के अनुसार घायल को 25,000/- रुपये (25%) अग्रिम दिए गए हैं।

(II) आपराधिक अपील संख्या-6104 वर्ष 2022 (विश्वनाथ यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य):

पक्षकार संख्या-2 के विपरीत देवेंद्र कुमार द्वारा आज दायर संक्षिप्त जवाबी हलफनामा, जिसमें पैराग्राफ 5 में, इस आशय की स्वीकारोक्ति है कि 10.5.2021 को उनकी इच्छा और समझौते पर एक समझौता किया गया था और वह स्वेच्छा से संबंधित अदालत के समक्ष चले गए ताकि लड़ने वाले पक्षों के बीच समझौते के आधार पर अपीलकर्ताओं के खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द किया जा सके।

इस अपील में विशेष सत्र न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, झांसी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 10.5.2022 के साथ-साथ विशेष मामला संख्या-1578 वर्ष 2019 (राज्य बनाम विश्वनाथ और अन्य) की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई है, जो एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 323, 504, 506 अन्द०वि० और धारा 3(1) (द) और (ध) के तहत मामला अपराध संख्या-114 वर्ष 2019 थाना-मोठ, जिला-झांसी दिनांक 10-05-2022 के समझौते के संदर्भ से उत्पन्न है।

दिनांक 10.5.2022 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से संकेत मिलता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उल्लेख किया है कि उक्त

समझौता एस.सी./एस.टी. अधिनियम से संबंधित है और चूंकि एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत अपराध शमनीय नहीं हैं, और इस प्रकार समझौता खारिज और अस्वीकार किया जाता है।

इस मामले में प्राथमिकी 27.4.2019 को मामला अपराध संख्या-114 वर्ष 2019 के तहत सूचनाकर्ता देवेंद्र द्वारा अपीलकर्ता विश्वनाथ यादव और शीलू के खिलाफ दर्ज की गई थी। संक्षेप में, कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन लगभग 06.30 बजे वह अपने घर पर बैठा था और अपीलकर्ता सूचनाकर्ता को बलपूर्वक अपना काम करने के लिए मजबूर कर रहे थे और जब सूचनाकर्ता ने मना कर दिया, उन्होंने गंदी गालियां देना शुरू कर दिया और लात-घूंसे से मारपीट की, जिससे वह घायल हो गया। मारपीट करने के बाद बाद दोनों मौके से फरार हो गए।

बयान दर्ज करने के बाद, पुलिस ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 323, 504 भ0द0वि0 और 3 (1) (ध) के तहत 31.5.2019 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया है और एस.सी./एस.टी. अधिनियम के विद्वान विशेष न्यायाधीश ने उपरोक्त धाराओं के तहत 25.9.2019 को उन अपराधों का संज्ञान लिया है। इसके अलावा, 20.2.2020 को अपीलकर्ताओं के खिलाफ विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, झांसी द्वारा धारा 323, 504 भ0द0वि0 और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1) (घ) के तहत आरोप भी तय किए गए थे। इसके बाद, अपीलकर्ताओं को मामले में जमानत दे दी गई और उनके खिलाफ मुकदमा धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा इस बीच सूचनाकर्ता द्वारा विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, झांसी के समक्ष दिनांक 10.5.2022 को एक आवेदन दिया गया, जिसमें उल्लेख किया गया था कि प्रतिपक्षी संख्या-2 घायल होने के साथ-साथ मामले का सूचनाकर्ता भी है जिसने प्राथमिकी दर्ज कराई थी, लेकिन स्थानीय सह-ग्रामीणों और समाज के अन्य सम्मानित सदस्यों के हस्तक्षेप के कारण, इस मामले को अदालत के बाहर पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया है। अब अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई शिकायत नहीं है और प्रतिपक्षी संख्या-2 मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहता है और इसे रद्द किया जा सकता है।

(III) आवेदन धारा 482 संख्या-22777 वर्ष 2022 के तहत (धर्मेंद्र @ बउवा बाजपेयी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य):

इस मामले में, धारा 482 द0प्र0सं0 के तहत इस न्यायालय की असाधारण धारण शक्ति को आरोप पत्र संख्या-89/2021 दिनांक 01.06.2021, संजान आदेश दिनांक 29.7.2021 के साथ-साथ केस संख्या-672 वर्ष 2021 (राज्य बनाम धर्मेंद्र @ बाउवा बाजपेयी और अन्य) की कार्यवाही को रद्द करने के लिए लागू किया गया संपूर्ण आपराधिक था, जो केस अपराध संख्या-44/2021, यू/एस 342 से उत्पन्न हुई थी। अतिरिक्त जिला/सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-2/विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), कानपुर देहात के न्यायालय में लंबित दिनांक 24.6.2022 के समझौते के आधार पर एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 323, 308

अनुवादित

भन्द०वि० और 3 (1) (द) के तहत मामला दर्ज किया गया है।

इस मामले की उत्पति प्राथमिकी दर्ज करने से शुरू होती है, जिसे सूचनाकर्ता हरिश्चंद्र (प्रतिपक्षी संख्या- संख्या-2) द्वारा 28.2.2021 को थाना-चौबेपुर में केस अपराध संख्या-44 वर्ष 2021 के रूप में बाउवा बाजपेयी और विनय के खिलाफ दर्ज किया गया था। इस घटना के लिए कहा गया था कि यह घटना 27.02.2021 को हुई थी, इस आरोप के साथ कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन, रात लगभग 11.00 बजे आवेदकों ने सूचनाकर्ता के भाई शोभित गौतम को फोन किया और उसके साथ बेरहमी से मारपीट की थी। लात-घूंसे मारे जाने के बाद वह प्रकाश नर्सिंग होम में भर्ती हो गया। एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 342, 323 भ0द0वि0 और 3(1) (द) के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, लेकिन मामले की जांच के बाद, पुलिस ने एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 342, 323, 308 भ0द0वि0 और 3 (1) (द) के तहत द०प्र०स० की धारा 173 (2) के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि घायल को सिर में चोट लगी है। उन अपराधों का संज्ञान विद्वान विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, कानपुर देहात द्वारा दिनांक 29.7.2021 को लिया गया था।

आवेदकों के अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान अनुलग्नक 6 की ओर आकर्षित किया है, जो 24.6.2022 को निष्पादित एक समझौता विलेख है, जिस पर हरिश्चंद्र (सूचनाकर्ता) और शोभित गौतम द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं और धर्मेंद्र @ बउवा बाजपेयी और विनय द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित हैं। उक्त आवेदन के समर्थन में उन्होंने घायल शोभित गौतम द्वारा शपथ पत्र दाखिल किया है। हलफनामे के पैरा-5 में यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि आरोपी और पीड़ित दोनों एक ही गांव के हैं, इसलिए गांव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हस्तक्षेप के बाद उनके बीच समझौता हो गया है। इस समझौते के बाद, जिस पर सूचनाकर्ता द्वारा अपनी स्वतंत्र और इच्छा पर हस्ताक्षर किए गए थे, सूचनादाता मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहता है और वह चाहता है कि समझौते के आलोक में आवेदकों के खिलाफ आक्षेपित कार्यवाही को रद्द कर दिया जाए।

(IV) आवेदन धारा 482 संख्या-2189 वर्ष 2023 के तहत (राकेश और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य):

प्रस्तुत आवेदन (482) के माध्यम से आवेदक एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 147, 323, 504, 427 भ0द0वि0 और सत्र 3(1) (1) के तहत विशेष सत्र परीक्षण संख्या-134 वर्ष 2022 (राज्य बनाम भाजूराम और अन्य) की पूरी कार्यवाही को चुनौती देते हुए धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस न्यायालय की पूर्ण शक्ति का आहवान कर रहे हैं। दोनों पक्षों के बीच हुए समझौते के आलोक में विद्वान विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, महाराजगंज के न्यायालय में एक मामला लंबित है।

वास्तव में यह आवेदकों की ओर से धारा 482 द०प्र०स० के तहत तीसरा आवेदन है। पहला धारा 482 द०प्र०स० आवेदन संख्या-6326 वर्ष

2022 (राकेश और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 6.7.2022 के आदेश के माध्यम से निपटाया था, जिसमें संबंधित निचली न्यायालय से पक्षों के बीच समझौते को सत्यापित करने का निर्देश दिया गया था। इसके बाद, दूसरा 482 आवेदन संख्या-29644 वर्ष 2022 (राकेश और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) जिसे दिनांक 07.12.2022 के आदेश के तहत नया दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस लिए गए के रूप में खारिज कर दिया गया था।

आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि सूचनाकर्ता अर्जुन 'धोबी' जाति का है, जिसने 30.11.2013 को शाम 05.00 बजे हुई घटना के लिए धारा 156 (3) द0प्र0सं0 के तहत एक आवेदन के माध्यम से प्राथमिकी दर्ज की है, लेकिन इसकी प्राथमिकी 12.02.2014 को 13.10 बजे अस्तित्व में आई। सूचनाकर्ता द्वारा यह आरोप लगाया गया था कि सभी नामजद आरोपियों ने लाठी-डंडे से मारपीट की है, जिससे प्रभावती और शारदा को चोटें आई हैं। आरोपी व्यक्तियों की संख्या-5 है, जिसमें एक महिला इवावती भी शामिल है, जो कलार (ओबीसी) जाति से संबंधित है। 147, 323, 504, 506, 427, 452, 380 भ0द0वि0 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी और जांच के दौरान पुलिस ने एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)x को जोड़ा है, लेकिन आवेदों के खिलाफ आरोप पत्र 26.2.2014 को केवल धारा 147, 323, 504, 506, 427 भ0द0वि0 और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1) के तहत प्रस्तुत किया गया था।

मैंने समझौता विलेख दिनांक 23.02.2022 और 20.7.2022 (याचिका के अनुलग्नक-9 और 10) और निचली अदालत द्वारा पारित सत्यापन आदेश दिनांक 18.8.2022 (याचिका के अनुलग्नक- 10) का अवलोकन किया है। मैंने सूचना देने वाली और घायल महिला के संबंधित हलफनामों का भी अवलोकन किया है, जिन्होंने इतने शब् में स्वीकार किया है कि कुछ गलतफहमी के कारण उन्होंने प्राथमिकी दर्ज कराई हैं, लेकिन अब उनके बीच एक समझौता है और घायल आवेदकों के खिलाफ मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहता। है। इसलिए, उन्होंने अनुरोध किया है। के आलोक में आवेदकों कोई आपत्ति नहीं है। कि यदि समझौते संपूर्ण कार्यवाही को रद्द कर दिया जाता है तो उन्हें

4. उपर्युक्त संबंधित मामलो का तथ्यात्मक वर्णन है जो न्यायालय के ध्यान देने योग्य है।

5. संबंधित अधिवक्ताओं ने अपने बयान विस्तार से दिए हैं और अपराधों के शमन के मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए दो हालिया निर्णयों पर भरोसा किया है, विशेष रूप से भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के अलावा एस.सी./एस.टी. अधिनियम के प्रावधानों पर ध्यान केंद्रित किया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में सुनाए गए ये दो प्रसिद्ध निर्णय है।

(i) वर्ष 2012 की आपराधिक अपील संख्या-1489 में रामगोपाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य

का मामला दर्ज किया गया जिसका निर्णय 29.9.2021 को हुआ था।

(ii) रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य आपराधिक अपील संख्या-1393 वर्ष 2011 में जिसका निर्णय 25-10-2021 को हुआ था।

ये दोनों निर्णय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 14क (1) के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदनों के तहत उपर्युक्त आपराधिक अपीलों पर निर्णय लेने में बहुत मददगार हैं।

6. संबंधित अधिवक्ताओं को काफी विस्तार से सुनने के बाद और अपर शासकीय अधिवक्ता इस बारे में कि क्या उच्च न्यायालय के पास गैर-शमनीय अपराधों से उत्पन्न कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति है, जिसका अभियुक्त और पीड़ित के बीच समझौते के आधार पर बड़े पैमाने पर समाज पर कोई प्रतिकूल प्रभाव या वंचित प्रभाव नहीं पड़ता है। यह मुद्दा अब एकीकृत एकीकृत नहीं नहीं है है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई निर्णयों द्वारा इसे आधिकारिक रूप से सुलझा लिया गया है। अधिवक्ताओं ने पक्षों के बीच इन समझौतों पर बहुत भरोसा किया है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय, राम गोपाल (उपरोक्त) और रामावतार (उपरोक्त) के उपरोक्त हालिया निर्णयों पर भरोसा करते हुए आपराधिक अभियोजन को पूरी तरह से रद्द करने की मांग की है।

7. अपर शासकीय अधिवक्ता ने समझौते के तथ्य का खंडन किया है और अपीलकर्ताओं/आवेदकों द्वारा मांगी गई प्रार्थना के प्रस्तुतियाँ खिलाफ अपनी जारी की है।

8. इन मामलों के तथ्यों और विशेष रूप से से धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस न्यायालय की शक्ति की जांच करने से पहले, जान सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2012 (10) एस.सी.सी. 303 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक और प्रसिद्ध निर्णय के प्रासंगिक उद्धरण को स्पष्ट करना वांछनीय होगा जो इस प्रकार है:

"61. अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही या प्राथमिकी या शिकायत को रद्द करने में उच्च न्यायालय की शक्ति संहिता की धारा 320 के तहत अपराधों को संयोजित करने के लिए एक आपराधिक अदालत को दी गई शक्ति से अलग है। अंतर्निहित शक्ति बिना किसी वैधानिक सीमा के व्यापक प्रचुरता की है, लेकिन इसे ऐसी शक्ति में संलग्न दिशानिर्देश के अनुसार (1) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए या (ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, प्रयोग किया जाना चाहिए। किन मामलों में आपराधिक कार्यवाही या शिकायत या प्राथमिकी को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, जहां अपराधी और पीड़ित ने अपने विवाद का निपटारा कर लिया है. यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती है। हालांकि, इस तरह की शक्ति का प्रयोग करने से पहले, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित लेहाज़ करना चाहिए। मानसिक भ्रष्टता या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराधों के जघन्य और गंभीर अपरार्थों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार और अपराधी ने विवाद

को सुलझा लिया हो। इस तरह के अपराध प्रकृति में निजी नहीं है और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी तरह, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानूनों के तहत अपराधों के संबंध में पीड़ित और अपराधी के बीच कोई समझौता या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराध आदि; ऐसे अपराधों से संबंधित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई आधार प्रदान नहीं किया जा सकता है। लेकिन प्रमुख रुप से दीवानी वाले आपराधिक मामले रद्द करने के प्रयोजनों के लिए अलग-अलग पायदान पर खड़े होते हैं, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, वाणिज्य, नागरिक, साझेदारी या इस तरह के लेन-देन या दहेज से संबंधित विवाह से उत्पन्न होने वाले अपराध, आदि या पारिवारिक विवाद जहां गलत मूल रूप से निजी या व्यक्तिगत प्रकृति का है और पक्षों ने अपने पूरे विवाद को हल कर लिया है। मामलों की इस श्रेणी में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि उसके विचार में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता होने के कारण, दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ और धूमिल है और आपराधिक मामले की निरंतरता अभियुक्त को बहुत उत्पीड़न और पूर्वाग्रह में डाल देगी और पीड़ित के साथ पूर्ण और अंतिम निपटान और समझौता करने के बावजूद आपराधिक मामले को रद्द नहीं करने से उसके साथ अत्यधिक अन्याय होगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना अनुचित या न्याय के हित के विपरीत होगा या आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना पीड़ित और गलत करने वाले के बीच समझौते और अनुबंध के बावजूद कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के समान होगा और क्या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करना है। यह उचित है कि आपराधिक मामले को समाप्त कर दिया जाए और यदि उपरोक्त प्रश्न (प्रश्नों) का उत्तर सकारात्मक है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर होगा।

9. इसी आधार पर पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न न्यायिक निर्णयों से व्यापक बुनियादी बातों को उकेरा है और मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण और अन्य, 2019 (5) एस.सी.सी. 688 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दोहराया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-15 के रूप में नीचे विस्तार से बताया है:

(1) संहिता की धारा 320 के अधीन गैर-शमनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन प्रदत शक्ति का प्रयोग अत्यधिक और मुख्य रूप से दीवानी चरित्र वाले होते हुए किया जा सकता है, विशेष रूप से वाणिज्यिक लेन-देन से उत्पन्न होने वाले या वैवाहिक संबंधों या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होने वाले और जब पक्षकारों ने आपस में पूरे विवाद का समाधान कर लिया हो;

(2) ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक भ्रष्टता के जघन्य और गंभीर अपराध या

हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध शामिल हैं। इस तरह के अपराध प्रकृति में निजी नहीं हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

(3) इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसी विशेष विधियों के तहत अपरार्थों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना है या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाना है:

(4) X XXXXX X

(5) गैर-शमनीय अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, जो प्रभाव नहीं डालते हैं. इस आधार पर कि पीड़ित प्रकृति में हैं और समाज पर गंभीर के बीच एक समझौता/सहमति है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के पूर्ववृत पर विचार करना आवश्यक है; आरोपी का आचरण, अर्थात्, क्या आरोपी फरार था और वह फरार क्यों था, उसने शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने के लिए कैसे प्रबंधित किया था आदि।

10. अब न्यायालय को एक और धारा 320 द०प्र०स० और दूसरी ओर धारा 482 द०प्र०स० के प्रावधानों के बीच संतुलन बनाना होगा। इस प्रकार, जो अपराध शमनीय नहीं हैं, उन्हें धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों के कथित प्रयोग में आपराधिक अदालत में संयोजित किया जा सकता है। अदालत द्वारा इस तरह का कोई भी अभ्यास या प्रयास धारा 320 द०प्र०स० में परिवर्तन, जोड़ और संशोधन के बराबर होगा, जो विधायिका के अनन्य अधिकार क्षेत्र में आता है। फिर भी, धारा 320 द०प्र०स० के ढांचे के भीतर अपराध को शमित करने का सीमित अधिकार क्षेत्र न्याय के हित में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को लागू करने के खिलाफ एक प्रतिबंध नहीं है और ऐसे मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों की खासियत को ध्यान में रखते हुए और उचित कारणों से अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अपनी पूर्ण शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है कि न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करें। इस प्रकार, उच्च न्यायालय, अपराध की प्रकृति और पक्षों के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, जिन्होंने अदालत के बाहर अपने विवाद और गलतफहमी को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है और स्वेच्छा से आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए सहमति दी है. धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी कार्यवाही को रद्द कर सकता है. भले ही अपराध प्रकृति में शमनीय न हो। उच्च न्यायालय निस्संदेह किसी व्यक्ति के शरीर से परे अपराध के परिणामी प्रभाव का मूल्यांकन कर सकता है, और इसलिए, यह सुनिश्चित करने के लिए एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है कि गुंडागर्दी, भले ही दंडित न हो, आपराधिक न्याय के प्रशासन के उद्देश्य के साथ छेड़छाड़ न करे या उसको पंगु न बनाए।

11. ऐसे अपराध जो गंभीर हैं या जिनमें नैतिक अधमता शामिल है या समाज या समाज के नैतिक ताने-बाने पर हानिकारक

प्रभाव पड़ता है या सार्वजनिक नीति से संबंधित मामले का अर्थ केवल दो व्यक्तियों या समूह के बीच नहीं लगाया जा सकता है और इस तरह के अपराध में बड़े पैमाने पर समाज को प्रभावित करने की क्षमता है। यदि ऐसे अपराध को शमित करने की अनुमति दी जाती है या ऐसे अपराध के अपराधी को दंडित नहीं किया जाता है, तो यह न केवल समाज को गलत संकेत भेजेगा, बल्कि बेईमान, अभ्यस्त या पेशेवर अपराधियों को अनुचित लाभ भी दे सकता है, जो दबाव, धमकियों, सामाजिक बहिष्कार, रिश्वत या रिश्वत या अन्य संदिग्ध साधनों के माध्यम से समझौता कर सकते हैं।

12. तथ्यों और परिस्थितियों को व्यवस्थित करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न पिछले कानूनी निर्णयों को क्रिस्टलीकृत करते हुए, रामगोपाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या-1489 वर्ष 2012 के मामले में 29.9.2021 को फैसला किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस स्वयंसिद्ध का अच्छी तरह से विश्लेषण किया है कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए इस न्यायालय के पूर्ण क्षेत्राधिकार को सामान्य वैधानिक प्रावधानों द्वारा सीमित या प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि धारा 482 द०प्र०स० के समान एक स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, जो उच्चतम न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने और रद्द करने की शक्तियां प्रदान करता है, संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत प्रयोग करने योग्य क्षेत्राधिकार इस न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए भी भारी शक्तियों के साथ गले लगाता है, ताकि पूर्ण न्याय सुरक्षित किया जा सके। इसी तरह उसी लाइन और रास्ते पर, उच्च न्यायालय भी, धारा 482 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति से लैस हैं, जहां पक्षकारों ने अपनी इच्छा और समझौते पर अपने मतभेदों और विवाद को अदालत के बाहर दफनाने का फैसला किया, कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है ताकि उनके बीच पूर्ण न्याय सुरक्षित हो सके। ऐसा करने में आपराधिक न्याय प्रणाली में सजा के व्यापक उद्देश्य को उचित ध्यान दिया जाना चाहिए, जो सामूहिक शांति बनाए रखने के उदात्त दर्शन पर आधारित है और यह कि किसी व्यक्ति को सलाखों के पीछे रखने का औचित्य उसके सुधार के उद्देश्य से है।

13. इस प्रकार, पूर्वोक्त चर्चा का एल.सी.एम. (लघुत्तम समापवर्त्य) यह है कि धारा 320 द०प्र०स० के विपरीत, जहां न्यायालय वैधानिक ढांचे के भीतर 'शमनीय' अपराधों के संबंध में पक्षों के बीच समझौते द्वारा निर्देशित होता है, धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय को दी गई असाधारण शक्ति या संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय में निहित है. द०प्र०स० की धारा 320 की सीमा से परे लागू किया जा सकता है। फिर भी, भी, यह यह दोहराया दो जाता है कि व्यापक आयाम की ऐसी शक्तियों का प्रयोग आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के संदर्भ में इसकी अत्यधिक सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए, यह

ध्यान में रखते हुएः (i) समाज के चेतन और स्वभाव पर अपराध की प्रकृति और प्रभाव; (ii) चोट की गंभीरता, यदि कोई हो; (ii) अभियुक्त और पीड़ित के बीच स्वैच्छिक प्रकृति का समझौता, और अंत में (iv) कथित अपराध की घटना से पहले और बाद में आरोपी व्यक्तियों का आचरण और/या निपटान को स्वीकार करने में अन्य प्रासंगिक विचार और धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग में कानून की अदालत द्वारा कार्रवाई कार्रवाई की जाएगी।

14. अब ऐसे मामलों में जहां अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित सूचनाकर्ता/पीड़ितों ने भ0द0वि0 की धारा 323, 324, 504, 506, 342, 308 और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1) (द) और (ध) के तहत प्राथमिकी दर्ज किया है. और अब पक्षकार समझौता कर चुके हैं। इस संबंध में रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय बहुत मूल्यवान और मददगार है। इस निर्णय के पैरा-18 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय यह मानने के लिए पर्याप्त सचेत था कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित व्यक्ति के साथ संघर्ष विराम और समझौता होने पर, न्यायालय के कानून से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए अधिक सतर्क और सावधान रहे कि शिकायतकर्ता/पीड़ित ने अपनी स्वतंत्र इच्छा और मधुर इच्छा पर समझौता किया है और कोई दबाव या जबरदस्ती, किसी भी तरफ से धमकी या प्रलोभन नहीं है। यह भी देखा गया है कि चूंकि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय का सदस्य हमारे देश के कमजोर वर्गों से संबंधित है. इसलिए वे जबरदस्ती के कृत्यों के लिए अधिक प्रवण होते हैं, और इसलिए, उन्हें उच्च स्तर की सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इसलिए, उनके बीच समझौते को स्वीकार करते हुए अदालत को निम्नलिखित परीक्षणों की कसौटी पर उक्त समझौते की वाचाओं का परीक्षण करना होगा, अर्थात्ः

सबसे पहले, इन अपीलों में शामिल घटना (ओं) को विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत या निजी प्रकृति की आपराधिक कार्यवाही के ओवरटोन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है;

दूसरे, दी गई चोटों की प्रकृति, जिसके लिए अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है, उनकी मानसिक भ्रष्टता या इतनी गंभीर प्रकृति के अपराध को प्रदर्शित नहीं करता है कि जिसे रद्द करना सार्वजनिक हित को ओवरराइड करेगा;

तीसरा, अपराध और चोटों की प्रकृति को देखते हुए, यह महत्वहीन है कि अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमा समाप्त हो गया था या दोषसिद्धि के खिलाफ उनकी अपील खारिज कर दी गई थी।

चौथा, पक्षों ने अपनी इच्छा से, बिना किसी जबरदस्ती या मजबूरी के, स्वेच्छा से अपने मतभेदों को दफन कर दिया है और अपने विवाद (विवादों) को शांत करना चाहते हैं;

पांचवां, दोनों मामलों में घटनाएं क्रमशः वर्ष 2000 और 1995 में हुई थीं। रिकॉर्ड पर ऐसा

कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि कथित समझौते से पहले या बाद में, पक्षों के बीच कोई अप्रिय घटना हुई:

छठा, चूंकि अपीलकर्ता और शिकायतकर्ता एक ही गांव के निवासी है और/या आसपास के क्षेत्र में काम करते हैं, इसलिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने से उन पक्षों के बीच शांति, सद्भाव और संगति बढ़ेगी, जिन्होंने किसी भी दुर्भावना को भूलने और माफ करने का फैसला किया है और एक दूसरे के खिलाफ कोई प्रतिशोध नहीं है; और

सातवां, आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रशासन का कारण पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण समझौते की स्वीकृति और/या अपीलकर्ताओं के; उनकी वर्तमान उम को देखते हुए, परिणामी बरी होने पर अप्रभावित रहेगा।

हालांकि सूची समाप्त नहीं हुई है, लेकिन ये बुनियादी परीक्षण हैं जिन पर पक्षों के बीच निपटान का परीक्षण किया जाना है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त दिशानिर्देशों से मार्गदर्शन लेते हुए और प्रस्तुत मामलों के तथ्यों, अपराध की प्रकृति, गंभीरता की तुलना करते हुए, जिसमें पुलिस द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, विशेष रूप से मुकदमा लड़ने वाले पक्ष एक ही गांव के हैं, या तो पड़ोस में या आस-पास रहते हैं, और गुस्से में कुछ गर्म जुनून या विवाद हुआ, जिसके परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता के खिलाफ आरोपी के प्रहार के रूप में परिणत हुआ। समय बीत जाने के बाद मुकदमा लड़ने वाले दलों को स्वयं ऐसा लगता है कि उन्हें समाज के बुजुर्गों और समझदार लोगों के हस्तक्षेप से अपने शेष जीवन के लिए उसी गांव में रहना होगा, भूल जाओ और माफ करो के कार्डिनल सिद्धांत का पालन करते हुए, शांत और समग्र दिमाग में, उन्होंने इस मुद्दे को हमेशा के लिए निपटाने का फैसला किया है।

16. हम अपनी स्वतंत्रता के 75वें वर्ष में एक परिपक्व लोकतंत्र में हैं जहां ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा प्रणाली का पर्याप्त प्रसार हो तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के व्यक्तियों सहित समाज के सभी वर्गों में पर्याप्त जागरुकता हो। इसके अलावा, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सोशल मीडिया का उभार हमारे गांवी के दूरदराज के इलाकों में अब अपने अधिकारों, शक्तियों और कर्तव्यों के बारे में अधिक जागरुक और सतर्क हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थिति में धीरे-धीरे लेकिन लगातार सुधार हो रहा है, और इसलिए, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के सदस्यों द्वारा आपराधिक मामले दर्ज र्ज कराने कराने में में तेज तेजी से वृद्धि हुई है। यह भी एक स्वागत योग्य कदम है कि पार्टियां विभिन्न बातों पर उनके बीच समझौते को आसानी से स्वीकार कर रही हैं: एक ही गांव में या आसपास के क्षेत्र में रहता है; पीढ़ियों के लिए उनके बीच संबंध; अन्योन्याश्रितता आदि शीतलन कारक हैं। ये ऐसी परिस्थितियां हैं, जहां कानून अदालतों की भूमिका उनके बीच अपने विवादों और मतभेदों को दफनाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करनी चाहिए, बजाय इसके कि मामले को असीमित अवधि तक लटकाए रखा जाए ताकि उनके बीच दुश्मनी अधिक दृढ़ और अपरिवर्तनीय हो। लंबे समय

से चली आ रही दुश्मनी कभी-कभी समाज की सामान्य शांति और सुकून के लिए विनाशकारी परिणाम देती है, और इस प्रकार, कानून अदालतों से यह उम्मीद की जाती है कि वे सक्रिय तरीके से कार्य करें और उपर्युक्त कारकों का मूल्यांकन ध्यान में रखने के बाद, समाज के बड़े हित में अच्छे के लिए मतभेदों को दफनाने का प्रयास करें।

17. उपर्युक्त सभी चार मामलों में, शामिल दंड प्रावधान धारा 147, 323, 324, 427, 504, 506, 342, 308 भ0द0वि0 और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1) (द) और (ध) हैं। पक्षों ने अपने दम पर अपने मतभेदों को सौहार्दपूर्ण ढंग से दफन करने का फैसला किया है। इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 या एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14 (ए)-1 के तहत अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए समझौते की वाचाओं को देखा है और अपराध की प्रकृति और गंभीरता का अनुमान लगाया है, जिसमें आरोपी व्यक्तियों पर आरोप लगाया गया है, और इस न्यायालय को बड़े पैमाने पर प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धी पक्षों के बीच समझौते के आलोक मैं उपरोक्त मामलों की कार्यवाही को समाज की भलाई और कल्याण के मद्देनजर रद्द करने में कोई संकोच या आपत्ति नहीं है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कानून अदालतों को इस आशा और विश्वास के साथ सक्रिय तरीके से कार्य करना चाहिए कि भविष्य में पक्षों के बीच कुछ भी अप्रिय नहीं हो सकता है और इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा के आलोक में एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14 ए (1) के तहत इन आपराधिक अपीलों और धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदनों की अनुमति दी जाती है, और संबंधित मामलों के आक्षेपित आदेश और कार्यवाही, जिनका विवरण नीचे दिया गया है:-

(i) दिनांक 7.6.2022 की आरोप पत्र, संज्ञान आदेश दिनांक 4.7.2022 और विशेष न्यायाधीश रु 4.7.2022 (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, ललितपुर की अदालत में लंबित एस.ए में लंबित एस.एस.टी. संख्या-265 वर्ष 2022 (राज्य बनाम झब्बू दूबे @ प्रदीप कुमार दूबे), विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, ललितपुर की अदालत में लंबित मामला अपराध संख्या-76 वर्ष 2022, धारा 324, 504 भ0द0वि0 और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धास 3/1) (द) और (ध), थाना-जखौरा, जिला ललितपुर से उत्पन्न पूरी कार्यवाही।

(ii) विशेष सत्र न्यायाधीश, ए स.सी./एस.टी. अधिनियम, झांसी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक याधीश, एस. सं 10.5.2022 के साथ-साथ विशेष मामला संख्या-1578 वर्ष 2019 (राज्य बनाम विश्वनाथ और के साथ-साथ अन्य) की वे संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही, जो एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 323, 504, 506 भ0द0वि0 और धारा 3(1) (द) और (घ) के तहत थाना-मोठ, जनपद-झांसी से उत्पन्न हुई है।

(iii) आरोप पत्र संख्या-89/2021 दिनांक 01.06.2021, संज्ञान आदेश दिनांक 29.7.2021 के साथ- साथ मामला संख्या-672 वर्ष 2021 (राज्य बनाम धर्मेंद्र @ बउवा

बाजपेयी और अन्य) की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही, जो एस.सी./एस.टी. अधिनियम, थाना-चौबेपुर, जिला कानपुर नगर के केस अपराध संख्या-44/2021, धारा 342, 323, 308 भ0द0वि0 और 3 (1) (द) से उत्पन्न अपर जिला/सत्र न्यायाधीश, न्यायालय से 2/ विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), कानपुर देहात के न्यायालय में लंबित मामले लंबित हैं।

(iv) एस.सी./एस.टी. अधिनियम, थाना-पुरेंद्रपुर, जिला महाराजगंज के केस अपराध संख्या-152 वर्ष 2014, धारा 147, 323, 504, 427 भन्द०वि० और सत्र 3 (1) (10) से उत्पन्न विशेष सत्र विचारण संख्या-134 वर्ष 2022 (राज्य बनाम भाजूराम और अन्य) की पूरी कार्यवाही, विद्वान विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, महराजगंज, की अदालत में लंबित।

संबंधित न्यायालयों के समक्ष संबंधित अपीलकर्ताओं/आवेदकों के खिलाफ लंबित उपर्युक्त आरोप- पत्र, आदेश या कार्यवाही का एतद्वारा चालान किया जाता है।

<u>राज्य को राशि की वापसी अनिवार्य हैः</u>

18. इस मुद्दे का एक और पहलू जो बहस के दौरान सामने आया कि नामित या अनाम आरोपी व्यक्तियों (एस.सी./एस.टी. समुदाय से संबंधित नहीं) या उच्च जाति के व्यक्तिों के खिलाफ किसी भी संज्ञेय या गैर-जमानती अपराध के लिए एस.सी./एस.टी. समुदाय के किसी भी सदस्य द्वारा शुरू किए गए राज्य मामले (प्राथमिकी) में, पुलिस भ0द0वि0और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की प्रासंगिक धाराओं के तहत प्राथमिकी दर्ज करती है और पूछताछ और जांच करने के लिए मामले में आगे बढ़ती है।

19. सामान्यतः किसी भी राज्य के मामले में जहां कोई अपराध हुआ है, वहां दो पक्ष होते हैं. अर्थातः शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता या एक और पीडित या एक और पीडित और दूसरी ओर प्रस्तावित अभियुक्त नामित व्यक्ति या अज्ञात व्यक्ति होते हैं। अभियोजक । अभियोजक होने के नाते राज्य पीड़ित या सूचनाको की ओर से आपराधिक कार्यवाही का विरोध करता है। लेकिन अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (अधिनियम संख्या-33 वर्ष 1989) के नाम पर बनाए गए तात्कालिक विधान में, उपर्युक्त भूमिका के अलावा, राज्य न केवल अभियोजक है बल्कि पीडित/सूचनादाता के परिवार को वितीय सहायता और सहायता भी प्रदान करता है। वास्तव में यह एकमात्र कानून है, जहां राज्य सरकार न केवल पीड़ित को धन प्रदान करती है, बल्कि अत्याचार के पीड़ित, उसके आश्रितों और गवाहों को यात्रा भते, दैनिक भते, रखरखाव खर्च और परिवहन सुविधाएं भी प्रदान करती है (नियम 1995 का नियम 11)। इसके अतिरिक्त, जिला मजिस्ट्रेट या एस.डी.एम या कोई अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट, अत्याचार के शिकार व्यक्ति, या उनके परिवार के सदस्यों और आश्रितों को सात दिनों के भीतर नकद या वस्तु के रूप में या दोनों में राहत प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रशासनिक और अन्य व्यवस्था करेगा, उन नियर्मा के साथ संलग्न अनुसूची के अनुलग्नक-॥ सपठित अनुलग्नक ।

में प्रदान किए गए पैमाने के अनुसार और भोजन सहित ऐसी तत्काल राहत, पानी, कपड़े, आश्रय, चिकित्सा सहायता, परिवहन सुविधाएं और अन्य सहायता (नियम 1995 के नियम 12 (4) भी देगा। यह असाधारण प्रावधान नियम वर्ष 1995 में अधिनियम 33 वर्ष 1989 के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जोड़ा गया था, जो इस प्रकार है, "एस.सी. और एस.टी. (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को एस.सी./एस.टी. के सदों के खिलाफ अत्याचार के अपराधों के कमीशन को रोकने और ऐसे अपराधों के परीक्षण के लिए विशेष अदालतों की स्थापना करने और ऐसे अपराधों के पीड़ितों को राहत और पुनर्वास प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

20. यह एकमात्र विधायिका है जहां राज्य पीड़ितों को केस लड़ने के लिए धन प्रदान कर रहा है ताकि अपराधियों को दंडित किया जा सके। अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 में उल्लिखित उद्देश्य से यह प्रदर्शित होगा कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में में सुधार के लिए अपनाए गए विभिन्न उपायों के बावजूद वे असुरक्षित रहे हैं। वे विभिन्न विभिन्न अपराधों अपराधों, अपमान और उत्पीड़न के अधीन हैं। शिक्षा के प्रसार के माध्यम से उनके बीच कुछ जागरुकता पैदा की गई है और वे अपने अधिकारों का दावा करने की कोशिश कर रहे हैं। फिर भी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के सदस्यों पर कतिपय अत्याचार किए जाने की परेशान करने वाली प्रवृत्ति में अत्याचार किए। वृद्धि हुई है। देश के कुछ भागों में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, उन्हें कतिपय नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। देश के के कुछ हिस्सों में उनके खिलाफ अस्पृश्यता या वैधानिक न्यूनतम मजदूरी की मांग या किसी भी बंधुआ और जबरन श्रम को करने से इनकार करना प्रचलन में है। उच्च जातियाँ के लोग उन्हें गुलाम के रूप में मानेंगे या उन्हें पूरी तरह से अपमान और अपमानजनक तरीके से देखेंगे। जब एस.सी./एस.टी. समुदाय के सदस्य अपनी महिलाओं के आत्मसम्मान और सम्मान को बनाए रखने की कोशिश करते हैं, तो वे प्रभावशाली और शक्तिशाली लोगों के लिए समस्या हो जाते हैं। इस अंतर को पाटने के लिए, विधायिका ने अपने विवेक से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को एक प्रशंसनीय उद्देश्य के साथ बनाया है ताकि प्रभावशाली समाज पर निवारक प्रभाव पड़े और उनके प्रति उनकी मनमानी को रोका जा सके। विशेष अदालों का गठन किया जाता है और प्रक्रियाओं को आसान बनाया जाता है ताकि अपराधियों के लिए त्वरित न्याय और प्रभावी दंड प्रणाली हो।

21. पूर्वोक्त अधिनियम में उपरोक्त दंड धाराओं के अलावा, एस.सी./एस.टी. नियम वर्ष 1995 भी प्रख्यापित किए गए हैं जो ऐसे पीड़ितों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं ताकि वे अपने मामलों को लड़ सकें। राज्य की कमाई का उपयोग उन्हें पानी पिलाने के लिए किया जा रहा है ताकि वे अपने मामले को उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचा सकें।

इस संबंध में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति नियम, 1995 के नियम 11 और 12 विशेष ध्यान देने योग्य हैं, जो इस प्रकार है:

"11. अत्याचार के शिकार व्यक्ति, उसके आश्रित और गवाहों को यात्रा भते, दैनिक भत्ता, भरण-पोषण व्यय और परिवहन सुविधाएं।

(1) अत्याचार के प्रत्येक पीड़ित या उसके आश्रित और गवाहों को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के विचारण की जांच या सुनवाई के स्थान तक एक्सप्रेस मेल/यात्री गाड़ी या टैक्सी किराए की वास्तविक बस में दुद्वितीय श्रेणी द्वारा रेल किराए का संदाय किया जाएगा या उसके निवास स्थान ठहरने के या स्थान से वास्तविक बस या टैक्सी का किराया दिया जाएगा।

(2) जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या कोई अन्य कार्यपालक मजिस्टेट, अत्याचार के पीडितों और गवाहों को अन्वेषण अधिकारी, पुलिस अधीक्षक पुलिस उपाधीक्षक, जिला मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट के पास जाने के लिए परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध कराने या या उसके पूर्ण संदाय की प्रतिपूर्ति के लिए आवश्यक व्यवस्था करेगा।

(3) प्रत्येक महिला गवाह, अत्याचार की शिकार या उसकी आश्रित महिला या अवयस्क, साठ वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति और 40 प्रतिशत या अधिक निशक्तता वाला व्यक्ति अपनी एक परिचारक के साथ जाने का हकदार होगा। परिचर को अधिनियम के तहत अपराध की सुनवाई, जांच और परीक्षण के दौरान बुलाए जाने पर गवाह या अत्याचार के पीड़ित यात्रा और रखरखाव खर्च का भी भुगतान किया जाएगा।

(4) गवाह, अत्याचार का का भुगतान किया शिकार या उसके आश्रित और परिचर को उन दिनों के लिए दैनिक रखरखाव खर्चा अपने निवास स्थान से दूर है या किसी अपराध की जांच, सुनवाई और विचारण के दौरान ठहरता है, ऐसी दरों पर लेकिन न्यूनतम मजदूरी से कम नहीं होगा, जो राज्य सरकार द्वारा कृषि लिए तय की जा सकती है।

(5) दैनिक भरण-पोषण व्ययों के अतिरिक्त गवाह, अत्याचार के शिकार व्यक्ति (या उसके आश्रित) और परिचर को भी ऐसी दरों पर आहार व्यय का संदाय किया जाएगा जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर नियत की जाएँ।

(6) यात्रा भते, दैनिक भते, भरण-पोषण व्ययों और परिवहन सुविधाओं की प्रतिपूर्ति का संदाय जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पीड़ितों, उनके आश्रितों/परिचारकों और गवाहों को उन दिनों के लिए तत्काल या तीन दिन के भीतर किया जाएगा जब वे अन्वेषण अधिकारी या भारसाधक थाना-या अस्पताल प्राधिकारियों या पुलिस अधीक्षक, पुलिस उपाधीक्षक या जिला मजिस्ट्रेट या कोई अन्य संबंधित अधिकारी या विशेष न्यायालय के पास जाते हैं।

(7) जब अधिनियम की धारा 3 के अधीन कोई अपराध किया गया है तब जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या कोई अन्य कार्यपालक

मजिस्ट्रेट अत्याचार के शिकार (पीड़ितों) को प्रदान की गई दवाओं, विशेष चिकित्सा परामर्श, रक्ताधान, आवश्यक वस्त्रों के प्रतिस्थापन, भोजन और फर्मों के भुगतान की प्रतिपूर्ति करेगा।

12. जिला प्रशासन द्वारा किए जाने वाले उपाय

(1) जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक जान-माल की क्षति का आकलन करने क्षेत्र के लिए उस स्थान या का दौरा करेंगे जहां अत्याचार किया गया है और राहत के लिए पात्र पीड़ितों, उनके परिवार के के सदस्यों और आश्रितों की सूची तैयार करेंगे।

(2) पुलिस अधीक्षक यह सुनिश्चित करेगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट संबंधित थाना की पुस्तक में दर्ज की गई है और अभियुक्त को पकड़ने के लिए प्रभावी उपाय किए जाते हैं।

(3) पुलिस अधीक्षक, मौके पर निरीक्षण के बाद, तुरंत एक विवेचनाधिकारी नियुक्त करेगा और क्षेत्र में ऐसे पुलिस बल को तैनात करेगा और ऐसे अन्य निवारक उपाय करेगा जो वह उचित और आवश्यक समझे।

(4) जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या कोई अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट अत्याचार के पीड़ितों, उनके परिवार के सदस्यों और आश्रितों को है इन नियमों (अनुलग्नक ॥ सपठित अनुबंध-1) से संलग्न अनुसूची के अनुसार नकद या वस्तु रूप में या दोनों में तत्काल राहत प्रदान करने की व्यवस्था करेगा। इस तरह की तत्काल राहत में भोजन, पानी, कपड़े, आश्रय, चिकित्सा सहायता, परिवहन सुविधाएं और अन्य आवश्यक वस्तुएं भी शामिल होंगी।

(4-क) उपनियम (4) में यथा विनिर्दिष्ट राहत राशि समय पर उपलब्ध कराने के लिए राजकोष से धन के तत्काल आहरण के लिए, संबंधित राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र प्रशासन जिला मजिस्ट्रेट को आवश्यक प्राधिकार और शक्तियां प्रदान कर सकेगा।

(4ख) विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय भी अन्वेषण, जाँच और विचारण के दौरान सामाजिक- आर्थिक पुनर्वास का आदेश दे सकेगा, जैसा कि अधिनियम की धारा 15-क की उपधारा के खंड (ग) में उपबंधित है।

(5) अत्याचार के शिकार व्यक्ति या उसके आश्रित को मृत्यु, या क्षति के संबंध में उपनियम (4) के अधीन उसके आश्रित को मृत्यु, या क्षति के संबंध में प्रदान की गई राहत तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन उसके संबंध में प्रतिकर का दावा करने के किसी अन्य अधिकार के अतिरिक्त होगी।

(6) उपर्युक्त उपनियम (4) में उल्लिखित अनुतोष और पुनर्वास सुविधाएं जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा इन नियमों से संलग्न अनुसूची में उपबंधित पैमानों के अनुसार उपलब्ध कराई जाएंगी।

(7) पीड़ितों को प्रदान की गई राहत और पुनर्वास सुविधाओं की एक रिपोर्ट भी जिला मजिस्ट्रेट या उप- विभागीय मजिस्ट्रेट या

कार्यकारी मजिस्ट्रेट या पुलिस अधीक्षक द्वारा विशेष न्यायालय को भेजी जाएगी। यदि विशेष न्यायालय संतुष्ट है कि पीड़ित या उसके आश्रित को समय पर राहत का भुगतान नहीं किया गया था या राहत या मुआवजे की राशि पर्याप्त नहीं थी या राहत या मुआवजे के भुगतान का केवल एक हिस्सा किया गया था, तो वह पूर्ण या आंशिक रूप से राहत या किसी अन्य प्रकार की सहायता का भुगतान करने का आदेश दे सकता है।

22. यहां यह उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि यह वित्तीय सहायता पीड़ितों को इस बात पर विचार करते हुए दी जाती है कि वे दलित हैं ताकि वे भयभीत या निराश महसूस न करें और धन की कमी के कारण कार्यवाही छोड़ दें। राज्य उनकी मदद के लिए आगे आया है और राज्य के कल्याण विभाग को उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अधिकृत और सशक्त किया गया है। यह वास्तव में एक प्रशंसनीय उद्देश्य है जिसके द्वारा राज्य एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित पीड़ितों को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है ताकि वे अपने मामले लड़ सकें, गवाहों को बुला सकें और मुकदमे के दौरान किए गए सभी खर्चों को पूरा कर सकें। इस प्रकार वितीय सहायता प्रदान करने का रेखांकित विचार यह है कि पीड़ित को मामले को उसके तार्किक निष्कर्ष तक लड़ने में धन की कोई कमी नहीं होगी और दोषियों को पीड़ितों के खिलाफ किए गए उनके कृत्यों के लिए उपयुक्त एवं आर्थिक रूप से दंडित किया जा सकता है। राज्य सरकार द्वारा पीड़ितों को ये सभी व्यवस्थाएं केवल इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रदान की जाती हैं कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के सदस्य मामले का मुकाबला करने में स्वतंत्र महसूस करें और शेष वितीय भार राज्य द्वारा वहन किया जाएगा।

23. इस प्रकार, एस.सी./एस.टी. नियम, 1995 के नियम 11 और 12 के पीछे का उद्देश्य वास्तव में प्रशंसनीय और सराहनीय है, लेकिन इस पर एक चेतावनी/एक राइडर के साथ। यह पूर्व-मान है कि राज्य सरकार को पूरे मुकदमे का वित्तीय बोझ उठाना पड़ता है, जिससे अपराधियों और कुकर्मियों को मुकदमे के बाद दंडित किया जा सकता है। यही कारण है कि परीक्षण के हर चरण में राज्य सरकार का कल्याण विभाग पीड़ित को धन जारी करता है। लेकिन, जहां पक्षकार बिना किसी धमकी या दबाव के न्यायालय के बाहर अपने विवाद को सुलझाने के लिए आए हैं, वहाँ परिणामस्वरूप पूरा मुकदमा इसके बीच में ही निरस्त हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह दो विरोधी दलों द्वारा उठाया गया एक स्वागत योग्य कदम है, लेकिन राज्य सरकार या उसके खजाने को किसी भी प्रकार का वित्तीय नुकसान नहीं होना चाहिए। हम एक कल्याणकारी राज्य में रह रहे हैं लेकिन निश्चित रूप से एक धर्मार्थ राज्य में नहीं। पुनरावृति की कीमत पर, चूंकि पीड़ित के पक्ष में धन जारी करना परीक्षण के हर चरण में होता है अर्थातः प्राथमिकी दर्ज करना; आरोप पत्र दाखिल करना; मामले की प्रतिबद्धता; और अंत में मुकदमे का निष्कर्ष, जैसे, पक्षों के बीच किसी भी संघर्ष की स्थिति में, यह स्वाभाविक और

तार्किक परिणाम होना चाहिए, पीड़ित द्वारा प्राप्त राशि को राज्य के खजाने को वापस करना।

24. इसके अलावा, जब पक्षों के बीच समझौता होता है, तो पीड़ित के खिलाफ किसी भी हमले के लिए कोई खतरा नहीं होता है और पूरा माहौल शांति और सकारात्मकता से भरा होता है। पीड़ित के लिए उस धन को रखने का कोई उचित औचित्य नहीं हो सकता है और पूरी निष्पक्षता से उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे राज्य सरकार को धन वापस करें। यह निर्दोष करदाताओं की मेहनत की कमाई है और पीड़ितों के विरुद्ध किसी भी अत्याचार का फायदा राज्य सरकार से धन कमाने और आनंद लेने के लिए नहीं किया जा सकता है, भले ही उनके बीच समझौता हो।

25. इस प्रकार, इन परिस्थितियों में, जहां पीड़ित और अभियुक्त के बीच सुलह समझौता होता है, उसे संबंधित सत्र न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम द्वारा ऊपर उद्धृत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताए गए कारों को ध्यान में रखते हुए सत्यापित किया जाएगा। संतुष्ट होने के बाद संबंधित सत्र न्यायाधीश सूचनाकर्ता/पीड़ित को अगले दस दिनों के भीतर राज्य सरकार के "समाज कल्याण विभाग" से प्राप्त पूरी राशि वापस जमा करने के लिए कहेंगे और फिर अनुबंध और समझौते के हस्ताक्षरकर्ताओं को सत्यापित करने के लिए एक उपयुक्त आदेश पारित करेंगे।

26. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित पीडित व्यक्ति द्वारा प्राप्त राशि को जमा करना, यदि प्रतिवादी पक्षों के बीच कोई समझौता होता है, तो राज्य के राजकोष में वापस राशि जमा करना अनिवार्य होगा और पक्षकारों के बीच किसी भी समझौते या युद्धविराम के लिए पूर्ववर्ती शर्त होगी जिसके बिना संबंधित न्यायालय द्वारा कोई समझौता सत्यापित नहीं किया जा सकता है।

27. चूंकि इस न्यायालय द्वारा सभी चार कार्यवाहियों की अनुमति पहले ही दी जा चुकी है, फिर भी पीड़ितों को निर्देश दिया जाता है कि वे अगले बीस दिनों के भीतर उनके द्वारा प्राप्त राशि संबंधित सत्र प्रभाग के समाज कल्याण विभाग के खजाने में जमा करें।

28. इस निर्णय की प्रति राज्य के सभी सत्र प्रभाग को परिचालित की जाए ताकि भविष्य में समान नियमों और शर्तों में आदेशों का पालन किया जा सके।

(2023) 5 ILRA 558

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.03.2021

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद,

आपराधिक अपील संख्या 7876 /2017

और

आपराधिक अपील संख्या 7877 / 2017

पन्ना लाल एवं अन्य ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अरुण कुमार त्रिपाठी, श्री अश्विनी कुमार अवस्थी, श्री अथर्व दीक्षित

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 304 बी-आरोपी-पति, ससुर और सास-शादी-3 साल पहले-एफआईआर-दहेज की मांग का आरोप-फांसी से हत्या-विचारणीय न्यायालय ने सभी आरोपियों को दोषी करार दिया-धारा 304 बी आईपीसी के सभी तत्व स्थापित-मृतका और पति का ससुराल वालों के साथ अलग रहना-दहेज की मांग का लाभार्थी पति था- उसके खिलाफ दहेज हत्या की अनिवार्य वैधानिक धारणा के आरोप का खंडन करने का भार वहन करने में विफल- ससुर और सास को दोषमुक्त कर दिया गया है।

आरोपी पति की अपील खारिज (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. दगडू एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 3 एससीसी 68;
2. शमनसाहेब एम. मुल्तानी बनाम कर्नाटक राज्य (2001) 2 एससीसी 577;
3. कंस राज बनाम पंजाब राज्य व अन्य (2000) 5 एससीसी 207;
4. पठान हुसैन बाशा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2012) 8 एससीसी 594;
5. हीरा लाल व अन्य बनाम राज्य (एनसीटी सरकार), दिल्ली (2003) 8 एससीसी 80
6. पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य (1998) 3 एससीसी 309 पैरा-6;
7. चांस राज बनाम पंजाब राज्य (2000) 5 एससीसी 2079 पैरा-9:
8. हीरा लाल बनाम राज्य (एनसीटी सरकार), दिल्ली (2003) 8 एससीसी 80 पैरा-8;
9. बख्शीश राम बनाम पंजाब राज्य (2013) 4 एससीसी 131 पैरा-14
10. सुरेश कुमार बनाम हरियाणा राज्य (2013) 16 एससीसी 553 पैरा 27
11. शेर @ प्रताप बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2015 एससी 980
12. सत्यवीर सिंह बनाम पंजाब राज्य.एआईआर 2001 एससी 2828
13. देवी लाल बनाम राजस्थान राज्य (2009) 1 एससीसी (आपराधिक) 785
14. आंध्र प्रदेश बनाम राज गोपाल असावा AIR 2004 SCW1566
15. भतेरी देवी बनाम हरियाणा राज्य 2011 (Crl.) 463

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी पन्ना लाल की ओर से प्रस्तुत क्रिमिनल अपील संख्या-7876 वर्ष 2017, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या-1, मैनपुरी द्वारा पारित दिनांक 1.12.2017 के निर्णय एवं आदेश जो विशेष विचारण संख्या-136 वर्ष 2004 (राज्य बनाम पन्नाल लाल एवं अन्य) में मामला अपराध संख्या-106 वर्ष 2001 थाना-भोगांव, जिला-मैनपुरी से उद्भूत हुआ है, के विरुद्ध भूरे लाल उर्फ श्याम मनोहर की ओर से दायर की गई है, जिसके तहत अपीलार्थियों को दोषी ठहराया गया और धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए सजा सुनाई गई और प्रत्येक को 10 वर्ष के कारावास की सजा दी गई और धारा 498-ए के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और 3 साल की कैद और 5000 रुपये के जुर्माने से दंडित किया और जुर्माना अदा न करने पर छह माह के अतिरिक्त कारावास की सजा दी गई थी। दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत अपराध के लिए प्रत्येक अभियुक्त को दोषी

ठहराया गया और छह महीने के कारावास और 2,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा न करने पर एक महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतने की सजा सुनाई गई।

2. उपरोक्त दोनों अपीलें दिनांक 1.12.2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध हैं, इसलिए, दोनों अपीलों का निपटान संयुक्त निर्णय द्वारा किया जाता है।

3. इन दोनों अपीलों को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता राम सिंह, पुत्र मुंशी, निवासी ग्राम सेमलपुर, थाना-विशुनपुर, जिला कन्नौज ने इस आरोप के साथ संबंधित थाने में लिखित सूचना दी कि 29 मार्च, 2001 को शाम 5.00 बजे उसे अपने गांव में सूचना मिली कि उसकी पुत्री अनीता को उसके ससुराल वालों ने फांसी लगाकर मार दिया है। वह गांव शिवई पहुंचा तो देखा कि उसकी बेटी साड़ी के साथ फांसी पर लटकी हुई है और उसका ससुर, सास और उसका दामाद घर से फरार हैं। उनकी बेटी की शादी लगभग 3 साल पहले हुई थी और शादी के समय उनके द्वारा क्षमता के अनुसार बंदोबस्ती की गई थी; लेकिन ससुर और सास ने संतुष्ट नहीं होने के कारण, दहेज में सोने की चेन, टीवी और अलमारी की अतिरिक्त मांग की। सूचनाकर्ता इन मांगों को पूरा करने में सक्षम नहीं था, परिणामस्वरूप उसकी बेटी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया और इस कारण उसकी बेटी को मार दिया गया और शव को लटका दिया गया। इस लिखित सूचना पर मामला अपराध संख्या-106 वर्ष 2001 धारा 498 भ०द०वि०-ए, 304-बी और 3/4 डीपी अधिनियम के तहत थाना-भोगांव, जिला-मैनपुरी में दर्ज किया गया था। विवेचनाधिकारी ने विवेचना समाप्त करने के बाद सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 498-ए, 304-बी और 3/4 डीपी अधिनियम के तहत आरोप पत्र दायर किया, जिस पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया और यह विचार करने के बाद कि अपराध विचारणीय है सत्र न्यायालय द्वारा, मामला संबंधित सीजेएम द्वारा परीक्षण के लिए सत्र न्यायालय को दिया गया।

4. विचारण न्यायालय ने सभी आरोपी व्यक्तियों को तलब किया और सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 304-बी 498-ए भ०द०वि० और 3/4 डीपी अधिनियम के तहत आरोप तय किए और सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत वैकल्पिक आरोप भी तय किए गए। आरोप को पढ़ा गया और उन सभी आरोपी व्यक्तियों को समझाया गया जिन्होंने आरोपों से इनकार किया और विचारण का दावा किया।

5. अभियोजन पक्ष की ओर से दस्तावेजी साक्ष्य में सभी अभियुक्तों के खिलाफ आरोप साबित करने के लिए लिखित जानकारी प्रस्तुत की, प्रदर्श क-1, विवाह कार्ड, प्रदर्श क-2, घटना के स्थान का नक़्शा नज़री, प्रदर्श क-3, पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती, पूर्व मावती, के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्श क-4, भूरे लाल @ श्याम मनोहर, पूर्व के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्श क-5, पंचनामा रिपोर्ट, प्रदर्श क-6, मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र, प्रदर्श क-7, नमूना मुहर, प्रदर्श क-8, प्रतिसार निरीक्षक को

पत्र, प्रदर्श क-9, फोटो नाश, प्रदर्श क-10, शव परीक्षण रिपोर्ट, प्रदर्श क-11 और चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-11-ए दाखिल किए।

चक्षुक साक्ष्य में अ०सा०-1, राम सिंह, अ०सा०-2, गणेश, अ०सा०-3, हुकुम सिंह, अ०सा०-4 लाला राम, अ०सा०-5, ओम प्रकाश, नायब तहसीलदार, अ०सा०-6 सेवानिवृत्त डॉक्टर एस.के सेठ, अ०सा०-7, कृष्ण कुमार चतुर्वेदी को परीक्षित किया गया।

6. धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी व्यक्तियों का बयान दर्ज किया गया। सभी आरोपियों ने उनके खिलाफ साक्ष्य में दोषीकारक सामग्री से इनकार किया और कहा कि मृतका को कोई औलाद नहीं थी, इस कारण से, वह मानसिक रूप से परेशान थी और परिणामस्वरूप उसने आत्महत्या कर ली। पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती की ओर से यह भी कहा गया कि वे दोनों अपने बेटे भूरे लाल @ श्याम मनोहर से अलग रह रहे थे।

7. बचाव साक्ष्य में आरोपी व्यक्तियों की ओर से ब०सा०-1, भोज राज और ब०सा०-2, राम किशन को परीक्षित करवाया गया।

8. विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के वकीलों की प्रस्तुतियों को सुनने के बाद सभी आरोपी व्यक्तियों को धारा 304-बी भ०द०वि०, 498-ए और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत अपराध के लिए दिनांक 1.12.2017 के निर्णय और आदेश के तहत दोषी ठहराया था और उपरोक्त सजा सुनाई थी।

9. इस आक्षेपित निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती की ओर से आपराधिक अपील संख्या-7876 वर्ष 2017 दायर की गई और अपीलकर्ता भूरे लाल @ श्याम मनोहर की ओर से आपराधिक अपील संख्या-7877 वर्ष 2017 को इस आधार पर दायर किया गया कि निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि आदेश रिकॉर्ड पर सुसंगत साक्ष्य के वजन और आक्षेपित निर्णय के खिलाफ है और कानून की नजर में व्यवस्था खराब है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों को देखते हुए, निचली अदालत द्वारा दी गई सजा बहुत गंभीर है। तदनुसार, इन आपराधिक अपीलों की अनुमति देने और आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की।

10. मैंने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता की प्रस्तुतियों को सुना और रिकॉर्ड पर लाई गई प्रासंगिक सामग्रियों का अवलोकन किया।

11. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दहेज की कथित मांग के संबंध में प्राथमिकी में लगाए गए आरोप सामान्य प्रकृति के हैं। दहेज की तथाकथित मांग पूरी न करने के कारण मृतका को दी गई यातना के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। पंचनामा रिपोर्ट में दहेज की कथित मांग के संबंध में कोई संकेत नहीं है। शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार मृतका की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व फांसी के परिणामस्वरूप दम घुटने से था। शरीर के किसी भी हिस्से पर कोई बाहरी चोट नहीं है। हाइडोइड हड्डी बरकरार है। यह मृतका द्वारा

आत्महत्या करने का मामला था जो कोई मुद्दा नहीं होने के कारण परेशान था। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, शादी घटना की तारीख से 3 साल पहले हुई थी। शादी की सही तारीख के संबंध में कोई सबूत नहीं है। दरअसल, मृतका की शादी साल 1993 में हुई थी और घटना की तारीख से 7 साल बीत चुके थे। इसके अलावा, अपीलकर्ता पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती दोनों क्रमशः मृतका के ससुर और सास अपने बेटे भूरे लाल @ श्याम मनोहर से अलग रह रहे थे। अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से इस बचाव मामले को भी प्रतिपरीक्षण में अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों के समक्ष रखा गया था और बचाव पक्ष के साक्ष्य भी प्रस्तुत किए गए थे। इसके अलावा, सभी आरोपियों ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में, ससुर और सास के अपने बेटे से अलग रहने की दलील दी है और साथ ही बिना किसी मुद्दे के परेशान होने के कारण मृतका की आत्महत्या करने की दलील दी है।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि मृत्यु से पहले दहेज की मांग को पूरा न करने के लिए उत्पीड़न के संबंध में रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है। इसके अलावा, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) के मद्देनजर सजा की मात्रा पर अपीलकर्ताओं को सुनवाई का कोई उचित अवसर नहीं दिया गया था।

इन सबमिशन के समर्थन में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने निम्नलिखित केस कानूनों पर भरोसा किया है: -

(1) दगडू और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 3 एस.सी.सी. 68;

(2) शमनसाहेब एम. मुल्तानी बनाम कर्नाटक राज्य (2001) 2 एस.सी.सी. 577;

(3) कंस राज बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2000) 5 एस.सी.सी. 207;

(4) पठान हुसैन बाशा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2012) 8 एस.सी.सी. 594; और

(5) हीरा लाल और अन्य बनाम दिल्ली राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) (2003)8 एस.सी.सी.80

12. अपर शासकीय अधिवक्ता ने राज्य की ओर से प्रतिवाद प्रस्तुत किया कि निचली अदालत द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा का आक्षेपित निर्णय रिकॉर्ड पर साक्ष्य की उचित मूल्यांकन पर आधारित है और उचित निर्णय पारित किया है जो कोई अवैधता नहीं रखता है। इसके अलावा, आरोपी व्यक्तियों को सजा की मात्रा पर निचली अदालत द्वारा सुनवाई का पूरा अवसर दिया गया था।

13. अभियोजन पक्ष की ओर से चक्षुक साक्ष्य में अपना पक्ष साबित करने के लिए अ०सा०-1 राम सिंह, अ०सा०-2 गणेश, अ०सा०-3 हुकुम सिंह को तथ्य के गवाह के रूप में पेश किया गया।

अ०सा०-1 राम सिंह सूचनाकर्ता और मृतका का पिता है। इस गवाह ने अपने बयान में कहा कि उसकी बेटी अनीता की शादी भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ वर्ष 1998 में घटना की तारीख से लगभग 3 साल पहले हुई थी। ससुर और सास और उनकी बेटी के पति ने सोने की चेन, टीवी और अलमारी के दहेज की अतिरिक्त मांग की और इसकी पूर्ति न किए

जाने पर उनकी बेटी को क्रूरता का शिकार होना पड़ा। उसकी बेटी उससे और अपनी मां से इसकी शिकायत करती थी। उनकी बेटी अनीता ने भी इसकी शिकायत अपने बेटे से की। घटना के वर्ष होली के अवसर पर वह अपनी बेटी के ससुराल गए और उनसे दहेज की कथित मांग के लिए अपनी बेटी को प्रताड़ित न करने के लिए कहा, लेकिन इस पर दहेज की उपरोक्त मांग को दोहराया। उसके बाद वह अपनी बेटी के ससुराल से चला गया और 29.3.2001 को उसे 5 बजे गांव भदौरा के पुत्र सूरज सिंह के पुत्र धर्मेंद्र सिंह से सूचना मिली कि उसकी बेटी को उसके ससुराल वालों ने मार डाला है। इस सूचना पर वह परिजनों के साथ ग्राम सेवई पहुंचे और देखा कि उनकी बेटी का शव बरामदे के हुक से साड़ी के साथ लटका हुआ है। उन्होंने लिखित सूचना प्रदर्श क-2 संबंधित थाने में भेज दी। उन्होंने विवेचनाधिकारी को विवाह का निमंत्रण पत्र भी सौंपा जो कि प्रदर्श क-2 है। वह पंचनामा रिपोर्ट का गवाह भी था। उनकी बेटी का शव दारोगाजी द्वारा बरामदे के हुक से उतारा गया। मोहल्ले के कई लोग वहां मौजूद थे। पन्ना लाल और भूरे लाल @ श्याम मनोहर अलग-अलग नहीं रह रहे थे। यह कहना गलत है कि उनकी बेटी ने आत्महत्या कर ली क्योंकि उसके कोई औलाद नहीं था।

अ०सा०-2 गणेश मृतका का सगा भाई है। इस गवाह ने अपने बयान में कहा है कि उसकी बहन की शादी भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ घटना की तारीख से 3 साल पहले हुई थी। जब भी उसकी बहन अपने ससुराल से मायके आई थी, उसने सोने की चेन, टीवी, अलमारी की मांग के संबंध में बताया और यह भी बताया कि सभी आरोपियों ने उसी मांग को पूरा न करने के कारण उसके साथ मारपीट की थी। दिनांक 29.3.2001 को धर्मेन्द्र सिंह से सूचना मिलने पर वह अपने माता-पिता, अपने चचेरे भाई हुकुम सिंह और गांव के राम शंकर के साथ ग्राम सेवई अपनी बहन के ससुराल पहुंचे और देखा कि उनकी बहन का शव बालकनी के हुक से साड़ी के साथ लटका हुआ है। शव को दरोगा जी ने नीचे उतारा। यह कहना गलत है कि उनकी बहन कोई मुद्दा नहीं होने के कारण मानसिक रूप से परेशान थी और उसने आत्महत्या कर ली।

अ०सा०-3 हुकुम सिंह मृतका का चचेरा भाई है। उन्होंने अ०सा०-1 राम सिंह और अ०सा०-2 गणेश के बयान की तरह ही बयान दिया और अभियोजन की कहानी की पुष्टि की। इस गवाह ने यह भी कहा कि दहेज की मांग और अनीता के साथ क्रूरता के संबंध में शिकायत अनीता ने अपने माता-पिता को उनकी उपस्थिति में की थी। अनीता ने लगभग दो महीने पहले दहेज की कथित मांग के संबंध में कहा है, जब वह अपने माता-पिता के घर आई थी। यह कहना गलत है कि अनीता अपने पति के साथ पन्ना लाल से अलग दूसरे घर में रहती थी।

14. अभियोजन पक्ष की ओर से मृत्यु के कारण और पंचनामा रिपोर्ट से संबंधित कागजात साबित करने के लिए अ०सा०-5 ओम प्रकाश, नायब तहसीलदार ने पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-6 और पंचान रिपोर्ट से संबंधित कागजात प्रदर्श क-7 से प्रदर्श क-10 साबित किए। इस गवाह ने अपने बयान में यह भी कहा है कि सभी पंच गवाहों ने उसे बताया है कि मृतका की मौत बालकनी के हुक से साड़ी से फांसी लगाने से हुई थी।

15. मृतका की शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित करने के लिए अ०सा०-6 के सेवानिवृत्त चिकित्सक एस. के. सेठ। इस गवाह ने अपने बयान में मृतका की शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-11 को साबित किया है और कहता है कि मृतका की मृत्यु का कारण एंटी मॉर्टम हैंगिंग और एंटी मॉर्टेम इंजरी लिगेचर मार्क के परिणामस्वरूप श्वासावरोध है, गर्दन के चारों ओर 30.0 सेमी x 3.0 सेमी दाएं तरफ को छोड़कर जहां इसे दाहिने कान के पीछे इंटरसेप्ट किया जाता है, निशान को मैनडेबल की रेखा के बाद तिरछा रखा जाता है। हाइडोइड हड्डी बरकरार थी (टूटी नहीं)।

16. इस स्तर पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी सपठित धारा 304-बी भ०द०वि० के प्रावधान पर विचार किया जाना आवश्यक है। धारा 304-बी भ०द०वि० निम्नानुसार है: -

304-ख. दहेज हत्या:-

"1. जहां किसी महिला की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर किसी जलने या शारीरिक चोट के कारण होती है या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा होती है और यह दिखाया जाता है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले उसे उसके पति या उसके पति के किसी रिश्तेदार द्वारा या उसके संबंध में दहेज की किसी भी मांग के अंतर्गत क्रूरता या उत्पीड़न के अधीन किया गया था, ऐसी मृत्यु को "दहेज मृत्यु" कहा जाएगा, और ऐसे पति या रिश्तेदार को उसकी मृत्यु का कारण माना जाएगा।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजन के लिए "दहेज" का वही अर्थ होगा जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (28 वर्ष 1961) की धारा 2 में है, वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध की धारा 2 में है।

(2) जो कोई दहेज हत्या करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से अन्यून होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के घटकों को निम्नानुसार इंगित किया है -

1. पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य (1998) 3 एस.सी.सी. 309 पैरा--6;

2. कंस राज बनाम पंजाब राज्य (2000) 5 एस.सी.सी. 207 पैरा-9:

3. हीरा लाल बनाम राज्य (सरकार) 8 एस.सी.सी. 80 पैरा-8; और

4. बख्शीश राम बनाम पंजाब राज्य (2013) 4 एस.सी.सी. 131 पैरा-14.

(क) कि विवाहित स्त्रियों की मृत्यु सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई थी;

(बी) चूंकि मृत्यु शादी के 7 साल के भीतर थी; और

(ग) अभियोजन पक्ष ने यह सिद्ध किया है कि मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग के संबंध में उसके पति अथवा उसके पति के निकट संबंधी द्वारा क्रूरता अथवा उत्पीड़न किया गया था।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुरेश कुमार बनाम हरियाणा राज्य (2013) 16 एस.सी.सी. 553 में पैरा-27 में कहा कि सामान्य परिस्थितियों की तुलना में अन्यथा होने वाली कोई भी मौत हत्या, आत्महत्या या आकस्मिक मृत्यु हो सकती है।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शेर @ प्रताप बनाम हरियाणा राज्य ए.आई.आर. 2015 एस.सी. 980 में अवधारित किया कि

मृत्यु से पहले "जल्द ही" शब्द की व्याख्या छह महीने या वर्ष के संदर्भ में नहीं की जानी चाहिए, लेकिन यह इंगित करना आवश्यक है कि दहेज का डोमेन पुराना नहीं होना चाहिए। यह धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत मृत्यु के कारण जारी रहना चाहिए।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सत्यवीर सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 2828 में भी कहा कि पत्नी की मृत्यु और उस पर किए गए उत्पीड़न से संबंधित दहेज के बीच संबंध होना चाहिए।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देवी लाल बनाम राजस्थान राज्य (2009)1 एस.सी.सी. (आपराधिक) 785 में धारा 304-बी के तहत मृत्यु से पहले "जल्द" प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आंध्र प्रदेश राज्य बनाम राज गोपाल असावा ए.आई.आर. 2004 में कहा एस.सी.डब्लू 1566 दहेज की परिभाषा शादी से पहले या उसके समय दहेज के भुगतान के लिए समझौते या मांग तक सीमित नहीं है; लेकिन इसमें शादी के बाद की गई मांग भी शामिल है।

22. पैरा-30 में सुरेश कुमार (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि धारा 304-बी भ०द०वि० के अवयवों को बनाया जाता है, तो अभियुक्त को महिलाओं की मृत्यु का कारण माना जाता है; अभियुक्त मृत्यु का कारण होने की इस वैधानिक धारणा का खंडन करने का हकदार है। धारा 113-बी के तहत अनुमान कानून की धारणा है जो अनिवार्य है।

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी सुरेश कुमार (उपरोक्त) में पैरा-34 में अवधारित किया, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की एक पीठ ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी सपठित धारा 304-बी भ०द०वि० की आवश्यकता को स्पष्ट किया है और शमन साहेब एम. मुल्तानी (उपरोक्त) में पैरा-27 से 30 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए के साथ इसकी तुलना की है कि यदि धारा 304-बी भ०द०वि० के तत्व बनाए जाते हैं तो अदालत के पास यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है कि आरोपी दहेज हत्या का कारण बना है, जब तक कि आरोपी इसे अस्वीकार नहीं करता। यह न्यायालय की वैधानिक बाध्यता है। हालांकि आरोपी को इसका खंडन करना होगा। या तो वह अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह के माध्यम से या बचाव पक्ष के साक्ष्य को जोड़कर या दोनों द्वारा उत्तर स्पष्ट करके इस बोझ का निर्वहन कर सकता है।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए कहती है कि दहेज हत्या की लगभग समान स्थितियों में अदालत मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह मान सकती है कि आत्महत्या उसके पति या पति के रिश्तेदार द्वारा की गई है।

24. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के प्रावधान यहां नीचे उल्लेख करने के लिए प्रासंगिक हैं:

"113-ख। दहेज मृत्यु के बारे में अनुमान:-
जब प्रश्न यह है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी महिला की दहेज हत्या की है और यह दिखाया जाता है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले ऐसी महिला को ऐसे व्यक्ति द्वारा दहेज की किसी मांग के लिए क्रूरता या उत्पीड़न के अधीन किया गया है, तो अदालत यह मान लेगी कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज हत्या की थी।

25. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार सूचनाकर्ता अनीता की बेटी की शादी घटना की तारीख से तीन साल पहले 1998 में भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ हुई थी। इस संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य विवाह के निमंत्रण पत्र प्रदर्श क-2 को अ०सा०-1 राम सिंह ने साबित कर दिया है। इस शादी के निमंत्रण कार्ड में शादी की तारीख 28.4.1998 के रूप में दिखाया गया है। दुल्हन का नाम अनीता पुत्री राम सिंह राजपूत निवासी सेमलपुर, अमलताबाद (कन्नौज) है और दूल्हे का नाम श्याम मनोहर पुत्र पन्ना लाल निवासी रेवई (मैनपुरी) है। तथ्य के सभी तीन गवाहों अ०सा०-1 राम सिंह, अ०सा०-2 गणेश, अ०सा०-2 हुकुम सिंह जो पिता, सगे भाई और चचेरे भाई हैं, ने कहा कि अनीता की शादी भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ तीन साल पहले हुई थी।

आरोपी व्यक्तियों की ओर से अभियोजन पक्ष के गवाह को यह सुझाव देकर यह दलील दी गई है कि मृतका की शादी 1993 में भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ हुई थी, जो घटना की तारीख से 7 साल से अधिक समय पहले हुई थी। यह दलील सभी अभियुक्तों ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में भी ली है।

बचाव पक्ष की ओर से बचाव पक्ष के गवाह ब०सा०-1 भोजराज और ब०सा०-2 राम किशन का यह भी कहना है कि आरोपी भूरे लाल की शादी अनीता के साथ वर्ष 1993 में हुई थी। अभियोजन पक्ष की ओर से पेश किए गए चक्षुक साक्ष्य और श्रीमती अनीता के दस्तावेजी साक्ष्य विवाह निमंत्रण कार्ड के मद्देनजर, यह साबित होता है कि श्रीमती अनीता और भूरे लाल @ श्याम मनोहर का विवाह 28.4.1998 को हुआ था। अभियोजन पक्ष के गवाह से जिरह में बचाव पक्ष के अधिवक्ता द्वारा विवाह निमंत्रण कार्ड पर सवाल नहीं उठाया जाता है। इस तरह, इस बिंदु पर साक्ष्य का संतुलन अभियोजन पक्ष के पक्ष में झुकता है। अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से विवाह की तारीख 28-4-1998 होने का खंडन करने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है।

26. जहां तक मृतका अनीता की मृत्यु का संबंध है, चक्षुक साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्य से भी अच्छी तरह से साबित हुआ कि अनीता की मृत्यु सामान्य परिस्थितियों में नहीं हुई थी, बल्कि यह हत्या या आत्महत्या थी।

अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों ने सबूतों को पेश किया है कि अनीता की मौत हत्या थी। चिकित्सीय साक्ष्य ब०सा०-6 डॉ. एस.के सेठ का कहना है कि मौत का कारण एंटी मॉर्टम हैंगिंग के परिणामस्वरूप दम घुटना था। इस गवाह का यह भी कहना है कि लीगेचर का निशान गर्दन के चारों ओर 30.0 सेमी X 3.0 सेमी था। यह निशान मैनडेबल की रेखा के बाद

तिरछा था। आत्महत्या के कारण को स्थापित करने के लिए यह संयुक्ताक्षर चिह्न वी आकार में नहीं था। जहां तक हाइडोइड हड्डी के बरकरार रहने का संबंध है, अ०सा०-6 ने अपने बयान में कहा कि श्वासनली कंजेसटेड थी। श्वासनली में खून भरा था। इस गवाह ने अपनी जिरह में कहा है कि उसने शव परीक्षण रिपोर्ट में मौत की वजह नहीं लिखी है क्योंकि मौत फांसी लगाने की वजह से हुई है।

पंचान रिपोर्ट में पंच गवाहों की सूचना के अनुसार बालकनी के हुक से साड़ी से लटकने के कारण दम घुटने का उल्लेख किया गया है। अ०सा०-5 ओम प्रकाश, नायब तहसीलदार पंचान रिपोर्ट और पंचान रिपोर्ट के कागजात को साबित करते हुए यह भी कहते हैं कि सभी पंचों ने उन्हें बताया है कि मृतका के शव को साड़ी से बंधे बालकनी के हुक से लटकाया गया था, ऐसे में मृतका अनीता की मौत अप्राकृतिक मौत थी। यह सामान्य परिस्थितियों में हुई मौत नहीं थी।

27. जहां तक दहेज की मांग और मृत्यु से ठीक पहले मृतका के साथ क्रूरता न करने का संबंध है, सभी गवाहों ने कहा है कि आरोपी व्यक्तियों ने शादी करने के बाद सोने की चेन, टीवी और अलमारी की मांग की थी और उसकी पूर्ति न करने पर अनीता के साथ क्रूरता की गई थी। इन सभी गवाहों ने कहा है कि जब भी अनीता अपने ससुराल से अपने माता-पिता के घर आई थी, उसने अपने ससुराल वालों द्वारा कथित दहेज बनाने के संबंध में शिकायत की थी और उसके संबंध में अ०सा०-1 राम सिंह, अ०सा०-2 गणेश, अ०सा०-3 हुकुम सिंह को बताया था, जो मृतका के पिता, सगे भाई और चचेरे भाई हैं। अ०सा०-1 राम सिंह ने भी घटना के वर्ष में होली के अवसर पर एक उदाहरण पर कहा है, जब वह अपनी बेटी के ससुराल गए थे और उससे कहा था कि वे सोने की चेन, टीवी और अलमीरा की कथित मांग के लिए उसकी बेटी को परेशान और प्रताड़ित न करें। सभी आरोपियों ने दहेज की मांग से बाज आने से इनकार कर दिया। इस गवाह का यह भी कहना है कि उसने उपरोक्त मांग को पूरा करने में अपनी असमर्थता दिखाई और बहू को घर छोड़ दिया और उसके बाद 30.3.2001 को उसे धर्मेंद्र सिंह से सूचना मिली जिसने उसे बताया कि उसकी बेटी को उसके ससुराल वालों ने मार दिया है। पंचान रिपोर्ट में पंच गवाहों की राय से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

28. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि सभी पंच गवाहों में से कोई भी ससुराल पक्ष से नहीं है। पंचान रिपोर्ट में यह प्रविष्टि ससुराल के घर के वासियों के फरार होने के संबंध में चक्षुक साक्ष्य की भी पुष्टि करती है। ससुराल के घर के वासियों का यह बाद का आचरण कि घटनास्थल पर वे मौजूद नहीं है, खासकर जब अनीता के शव को साड़ी से बंधे बालकनी के हुक से लटकाया गया था, तो ससुराल वालों के दोषपूर्ण इरादे को साबित करने के लिए प्रासंगिक हो जाता है। ससुराल के घर में रहने वालों का यह बाद का आचरण साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत प्रासंगिक है।

29. इसलिए, अभियोजन पक्ष इस तथ्य को साबित करने में सफल रहा है कि मृतका अनीता की मृत्यु शादी के 7 साल के भीतर ससुराल में हुई थी, यह अप्राकृतिक थी। इस

बात के भी प्रमाण हैं कि मृत्यु से ठीक पहले सोने की चेन, टीवी अलमारी की मांग की गई थी और उसी की पूर्ति न होने पर मृतका का उत्पीड़न किया गया था। यदि तर्क के लिए मृतका की मृत्यु को आत्महत्या माना जाता है, तो दहेज की मांग और उसकी पूर्ति न होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है, जिससे मृतका को क्रूरता और उत्पीड़न के अधीन किया जा सकता है। मृतका की मृत्यु, चाहे वह मानव वध हो या आत्महत्या, का संबंध दहेज की मांग से जुडे उत्पीड़न और क्रूरता से है। इस प्रकार, धारा 304-बी भ०द०वि० के सभी तत्व बनाए गए हैं। अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्य और कानूनी अनुमान से, जो अनिवार्य है, दहेज हत्या करने के संबंध में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध लिया जाएगा।

30. साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत यह वैधानिक अनिवार्य अनुमान खंडन योग्य है। सबूत का बोझ आरोपी व्यक्तियों पर यह साबित करने के लिए स्थानांतरित हो जाता है कि यह दहेज हत्या नहीं थी।

31. धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में आरोपी व्यक्तियों की ओर से यह दलील ली गई है कि पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती जो मृतका के ससुर और सास हैं, दोनों अपने बेटे भूरे लाल @ श्याम मनोहर से अलग रह रहे थे और यह दलील भी ली गई है कि मृतका को कोई औलाद नहीं थी इसलिए वह मानसिक रूप से परेशान थी। इसी कारण उसने आत्महत्या कर ली। आरोपी व्यक्तियों के बचाव पक्ष के अधिवक्ता की ओर से अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों को यह सुझाव भी दिया गया था कि मृतका के पास कोई मुद्दा नहीं था, वह परेशान और दुखी थी और परिणामस्वरूप उसने आत्महत्या कर ली। पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती के अलग-अलग रहने का सुझाव बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों को दिया है।

32. बचाव में इस अनुमान का खंडन करने के लिए आरोपी व्यक्तियों की ओर से ब०सा०-1 भोज राज ने अपने बयान में कहा है कि शादी के दो साल बाद पन्ना लाल अपने बेटे भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ अलग रहने लगे। अनीता को कोई औलाद नहीं थी, इसलिए उसकी परेशानी और गुस्सा बढ़ जाता था और उसने आत्महत्या कर ली। इस गवाह का यह भी कहना है कि घटना के समय वह अपने खेत में था और घटनास्थल पर मौजूद नहीं था।

अ०सा०-2 राम किशन ने अपने बयान में कहा कि भूरे लाल @ श्याम मनोहर अपनी पत्नी के साथ अपने माता-पिता के साथ शादी के दो साल बाद अलग रह रहे थे। अनीता को कोई दिक्कत नहीं थी, इसलिए वह बीमार हो गई थी और इसी वजह से उसने आत्महत्या कर ली।

33. जहां तक पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती, क्रमशः ससुर और सास के अलग रहने की बचाव याचिका का संबंध है, यह दलील आरोपी व्यक्तियों द्वारा 313 द०प्र०स० के तहत उनके बयान में ली गई है, और जिरह के दौरान अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों को भी प्राप्त हुई थी। बचाव पक्ष के

दोनों गवाहों ब०सा०-1 भोजराज और ब०सा०-2 राम किशन ने इस तथ्य को पेश किया था।

34. लेकिन जहां तक यह दलील है कि मृतका के पास कोई मुद्दा नहीं था, बीमार स्वभाव था और उसने आत्महत्या कर ली थी, ठोस और भरोसेमंद नहीं पाया जाता है। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार मृतका की शादी 3 साल पहले भूरे लाल @ श्याम मनोहर के साथ हुई थी। यदि विवाह संपन्न होने के बाद मृतका गर्भ धारण नहीं कर पाई गई थी और वह कोई समस्या नहीं होने के कारण परेशान थी, तो ऐसी परिस्थितियों में, मृतका ने कोई समस्या न होने के उपचार के संबंध में किसी स्त्री रोग विशेषज्ञ से परामर्श किया होगा। मनुष्य के रूप में सामान्य विवेक के रूप में उसका पति उसे किसी डॉक्टर के पास ले जा सकता था, खासकर अगर उसकी स्थिति इतनी उदास थी कि वह बिना किसी समस्या के बीमार हो गई थी। कोई मुद्दा नहीं होने के उपचार के संबंध में ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य और कोई मुद्दा नहीं होने के संबंध में प्रिस्क्रीप्शन पर्चे आरोपी व्यक्तियों की ओर से पेश नहीं किए गए थे जो इस दलील को साबित करने के लिए उनके पास सबसे अच्छा सबूत होता। ऐसी स्थिति में, बचाव पक्ष की ओर से पेश किए गए चक्षुक साक्ष्य पर संभावनाओं की प्रधानता की कसौटी पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

35. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बचाव साक्ष्य के मद्देनजर मृतका के ससुर और सास अपने बेटे से अलग रह रहे थे और जहां तक सोने की चेन, टीवी और अलमारी के दहेज की कथित मांग का संबंध है, इस मांग का प्रत्यक्ष लाभार्थी मृतका का पति था, जिससे दहेज हत्या की कानूनी धारणा को गलत साबित करने के लिए सबूत का भार मृतका के पति पर स्थानांतरित हो जाएगा। मृतका भूरे लाल @ श्याम मनोहर का पति उसके खिलाफ दहेज हत्या की अनिवार्य वैधानिक धारणा का खंडन करने के बोझ का निर्वहन करने में बुरी तरह विफल रहा है।

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने भटेरी देवी बनाम हरियाणा राज्य 2011 (क्रि)463 में कहा कि दहेज की मांग के मामले में पति लाभार्थी है, इसलिए वह दहेज हत्या के लिए उत्तरदायी है और उसे स्पष्टीकरण देना है कि मृत्यु क्यों हुई।

36. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने बिना किसी कारण को रिकॉर्ड किए और सजा की मात्रा पर अपीलकर्ता-अभियुक्त को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए सजा वर्ष 10 की सज़ा सुनाई है।

धारा 304-बी भ०द०वि० में न्यूनतम सजा 10 साल और अधिकतम सजा आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकती है। विचारण न्यायालय ने धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए 10 साल की सजा सुनाई है जो धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत प्रदान की गई अधिकतम सजा से कम है।

जहां तक द०प्र०स० की धारा 235(2) के तहत सुनवाई के अवसर का संबंध है, विचारण न्यायालय ने सजा की मात्रा पर दोषी को सुनवाई का अवसर दिया था और दोषियों की ओर से यह तर्क दिया गया था कि यह आरोपी

व्यक्तियों का पहला अपराध है और उसका कोई आपराधिक अतीत नहीं है और आरोपी एक युवा व्यक्ति है और किसी को भी अपने बूढ़े माता-पिता की देखभाल करने के बाद और विचार करने के बाद दोषियों के अधिवक्ता और अभियोजन पक्ष के लिए अतिरिक्त जिला सरकारी अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयानों के अनुसार, विचारण न्यायालय ने इसके कारणों को दर्ज करने के बाद सजा का आदेश पारित किया। इसलिए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता की ओर से उठाई गई यह दलील कानून में पुख्ता/टिकाऊ नहीं है और लेहाज़ा इसे खारिज किया जाता है।

37. अभिलेख में साक्ष्य की पुनः मूल्यांकन के मद्देनजर, धारा 304-बी, 498-ए और 4, दहेज निषेध अधिनियम के तहत अपराध के लिए आरोपी पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती के फैसले और दोषसिद्धि के आदेश को रद्द किया जाना चाहिए। तदनुसार, आपराधिक अपील संख्या-7876 वर्ष 2017 (पन्ना लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) को अनुमति दी जाती है। अपीलकर्ता पन्ना लाल और श्रीमती माया देवी @ मायावती को दहेज निषेध अधिनियम की धारा 304-बी, 498-ए और 4 के तहत उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी किया जाता है। द०प्र०स० की धारा 437-ए के प्रावधानों के अनुपालन में संबंधित अदालत की संतुष्टि के लिए प्रत्येक के लिए व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

38. जहां तक आपराधिक अपील संख्या-7877 वर्ष 2017 का संबंध है, इस अपील में अपीलकर्ता भूरे लाल @ श्याम मनोहर मृतका का पति है, जिसका दायित्व अपनी पत्नी के जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करना और बचाना है, लेकिन अपीलकर्ता ऐसा करने में विफल रहा है, इसलिए, वर्तमान अपील में योग्यता का अभाव है, अता: ये खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार, अपील खारिज की जाती है। वर्तमान अपीलकर्ता को दी गई दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की जाती है। अपीलकर्ता जेल में है। उसे, जैसा कि विचारण न्यायालय ने 1.12.2017 के फैसले और आदेश द्वारा सुनाया है, शेष सजा काटने का निर्देश दिया जाता है ।

39. निर्णय/आदेश की प्रति आवश्यक जानकारी और अनुवर्ती कार्रवाई के लिए संबंधित न्यायालय को प्रमाणित की जाए।

(2023) 5 ILRA 568

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

आपराधिक अपील संख्या 7960 / 2019

रिंकू @ प्रेमपाल ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री संजय श्रीवास्तव, श्री प्रयोगेंद्र पल सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्रीमती. अर्चना सिंह, कु. रुचि श्रीवास्तव

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 354-बी, 363, 366, 376 और धारा 4, 8 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम-2012-दोषसिद्धि को चुनौती-

वर्तमान मामले में रेडियोलॉजिकल जांच के आधार पर मेडिकल रिपोर्ट में उसकी उम्र 15-16 वर्ष निर्धारित की गई है। इसलिए, पीड़िता स्पष्ट रूप से नाबालिग है। इसलिए धारा 363 आईपीसी के तहत उसके खिलाफ अपराध किया जा सकता है- पीडब्लू-2 पीड़िता ने भी धारा 164 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में अपने साक्ष्य की पुष्टि की है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त ने हरिद्वार में किराए के कमरे में रात में उसके खिलाफ आपराधिक बल का प्रयोग किया था, जिसका उद्देश्य उसकी गरिमा भंग करना था - पीडब्लू-1 ने भी पीडब्लू-2 के साक्ष्य की पुष्टि की है कि पीड़िता ने उसे आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके अपहरण के बारे में सूचित किया था - बचाव पक्ष द्वारा पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की जिरह में ऐसा कुछ नहीं मिला है, जिससे उनके बयानों की विश्वसनीयता और सत्यता पर संदेह हो। धारा 354-बी आईपीसी के तहत सजा के उपरोक्त संशोधन के साथ, आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 363, 366 और 354-बी आईपीसी के तहत विचारणीय न्यायालय की सजा की पुष्टि की जाती है। (पैरा 1 से 52)

बी. धारा 42 पोक्सो अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करते हुए, चूंकि 354-बी आईपीसी में सात साल की सजा है, जबकि धारा 8 पोक्सो अधिनियम के तहत पांच साल की सजा का प्रावधान है, इसलिए आरोपी-अपीलकर्ता को धारा 354-बी आईपीसी के तहत सात साल की कैद और 2000 रुपये के जुर्माने के साथ दंडित किया जा सकता है, जिसमें चूक की शर्त भी शामिल है। विचारणीय न्यायालय ने अपीलकर्ता-आरोपी को धारा 354-बी आईपीसी के तहत दोषी ठहराया है, लेकिन धारा 8 पोक्सो अधिनियम के तहत उसे गलत सजा सुनाई है। इस प्रकार, धारा 354-बी आईपीसी के तहत सजा को विचारणीय न्यायालय द्वारा लगाए गए जुर्माने के साथ सात साल की कैद में संशोधित किया जाता है। दोनों मूल सजाएँ एक साथ चलेंगी। आरोपी द्वारा बिताई गई हिरासत की अवधि को धारा 428 सीआरपीसी के तहत कारावास की सजा के विरुद्ध सेट किया जाएगा। (पैरा 49, 50)

सी. जहां कोई कार्य या चूक इस अधिनियम के तहत और साथ ही धाराओं 166ए, 354ए, 354बी, 354सी, 354डी, 370, 370ए, 375, 376, [376ए, 376एडी, 376बी, 376सी, 376डी, 376डीए, 376डीबी], [376ई, भारतीय दंड संहिता की धारा 509 (1860 का 45) या सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) की धारा 67बी] के तहत दंडनीय अपराध बनता है, तो फिलहाल लागू किसी कानून में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी इस अधिनियम के तहत या भारतीय दंड संहिता के तहत दंड के लिए उत्तरदायी होगा जिसमें अधिक कठोर दंड का प्रावधान है।"
अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुहानी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य सिविल अपील संख्या 4532/2018
2. एच.पी. राज्य बनाम संजय कुमार @ सनी (2017) 2 एससीसी 51
3. दीपक बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 4 एससीसी 762

4. कविता चंद्रकांत लखानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक अपील संख्या 459 / 2016
5. गब्बू बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) एआईआर एससी 246

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, द्वारा प्रदत्त)

1- अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री प्रयोगेंद्र पाल, अधिवक्ता सुश्री रुचि श्रीवास्तव, होल्डिंग ब्रीफ़ और सूचनाकर्ता के अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. यह आपराधिक अपील विशेष न्यायालय (पॉक्सो अधिनियम)/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-3, बुलंदशहर द्वारा विशेष मामला संख्या-74 वर्ष 2017 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रिंकू @ प्रेमपाल) में पारित निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० और धारा 4 पॉक्सो अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या-447 वर्ष 2016, थाना- औरंगाबाद, जिला- बुलंदशहर से उद्भूत हुआ है।

3. आक्षेपित आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-आरोपी रिंकू उर्फ प्रेमपाल को धारा 354-बी, 363, 366 भ०द०वि० और धारा 8 पॉक्सो अधिनियम के तहत दोषी ठहराया है और अपीलकर्ता, रिंकू @ प्रेमपाल को धारा 366 भ०द०वि० के तहत 7 साल की कैद और 2,000 रुपये के जुर्माने की सजा, चूक की शर्त के साथ सुनाई है। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-अभियुक्त को पॉक्सो अधिनियम की धारा 8 के तहत भी दोषी ठहराया है और उसे डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ 5 साल की कैद और 2,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई है। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-अभियुक्त को धारा 376 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के तहत बरी कर दिया है। अपीलकर्ता-अभियुक्त को बरी करने के खिलाफ राज्य या पीड़िता द्वारा धारा 376 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के तहत कोई आपराधिक अपील दायर नहीं की गई है। इस प्रकार, इन धाराओं के तहत अभियुक्तों को बरी करने का विचारण न्यायालय का आदेश अंतिम हो गया है।

4. धारा 228-ए भ०द०वि० के प्रावधानों के साथ-साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 33 और निपुन सक्सेना और अन्य बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में और रिट याचिका (सिविल) संख्या-565 वर्ष 2012 में पारित एक अन्य पीड़िता के नाम का खुलासा करने पर रोक लगाती है। इसलिए, प्रस्तुत मामले में, अभियोक्ता को पीड़िता के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

5. अभियोजन पक्ष का संक्षिप्त प्रकरण यह है कि सूचनाकर्ता/पीड़िता का पिता कलुआ पुत्र उमराव लोधी, निवासी ग्राम-रतनपुर, थाना-औरंगाबाद, जिला- बुलंदशहर ने दिनांक 12.10.2016 को थाना-औरंगाबाद, जिला-बुलंदशहर में एक लिखित तहरीर दी कि दिनांक 7.10.2016 को अपराह्न 1.00 बजे उसकी पुत्री/पीड़िता अचानक अपने घर से कहीं चली गई। उसने सभी संभावित स्थानों पर तलाश की लेकिन वह नहीं मिली। उसे पूरा विश्वास है

कि आरोपी रिंकू @प्रेमपाल, पुत्र श्रीपाल लोधी, निवासी जगसाना कला, थाना-जहांगीरबाद, जिला- बुलंदशहर, ने उसकी बेटी को बहला-फुसलाकर भगा दिया है। आरोपी, रिंकू @ प्रेमपाल उसका साढ़ू है। सूचनाकर्ता की अनुपस्थिति में आरोपी 8 दिन उसके घर में रहा और उसके बाद घर से चला गया।

6. दिनांक 12.10.2016 को प्रातः 9.40 बजे प्रस्तुत लिखित तहरीर (प्रदर्श क-1) के आधार पर रिंकू @ प्रेमपाल के विरुद्ध संबंधित थाने में प्रकरण अपराध क्रमांक 447 वर्ष 2016 धारा 363, 366 भ०द०वि० दर्ज किया गया। चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) है। केस अपराध का पंजीकरण क्रम संख्या-16 (प्रदर्श क-6) में जनरल डायरी में एक साथ दर्ज किया गया था।

7. इस मामले की जांच अ०सा०-3 एस.आई. यशवीर सिंह ने की, जिन्हें 12.10.2016 को जांच सौंपी गई। पीड़िता को 12.10.2016 को बरामद किया गया था और धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया गया था। पीड़िता के बयान के आधार पर धारा 376 भ०द०वि० और पॉक्सो एक्ट की धारा 4 को केस अपराध संख्या में जोड़ा गया। संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 14.10.2016 को धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान दर्ज किया गया। पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० (प्रदर्श क-2) के तहत अपने बयान में कहा है कि 07.10.2016 को, उसके मौसा, अपीलकर्ता-आरोपी, रिंकू @ प्रेमपाल उसे अपने घर से 4 पहिया वाहन पर इस बहाने से ले गए कि उसकी मां पास में खड़ी है और उसने फोन किया है और उसे लाने के लिए कहा है। आरोपी उसे बुलंदशहर बस स्टेशन ले गया और वहां से गाजियाबाद बस स्टेशन और फिर वहां से रेलवे स्टेशन, गाजियाबाद और वहां से रेलवे स्टेशन, हरिद्वार ले गया जहां वे शाम 6 बजे पहुंचे और वहां से वह उसे किराए के कमरे में ले गया जहां उसने 2-3 बार उसके साथ बलात्कार किया। उसके अनुरोध पर, 4 दिनों के बाद वह उसे रेलवे स्टेशन, गाजियाबाद ले गया और वहां से जहांगीराबाद ले गया जहां उसने उसे वहां छोड़ दिया। एक महिला कांस्टेबल ने पीड़िता का हाथ पकड़ रखा था। उसे देखकर अपीलकर्ता-आरोपी मौके से फरार हो गए। वहां से उसे संबंधित थाने लाया गया।

8. दिनांक 14.10.2016 को जिला चिकित्सालय बुलंदशहर में अ०सा०-4 डॉ. सुधा शर्मा द्वारा पीड़िता का मेडिकल परीक्षण किया गया। उसने अपनी मेडिकल जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क-7) तैयार की। पीड़िता की उम्र कोहनी, घुटने और कलाई की हड्डियों के संलयन की एक्स-रे रिपोर्ट के आधार पर सी.एम.ओ., बुलंदशहर द्वारा गठित एक मेडिकल बोर्ड द्वारा निर्धारित की गई थी। उनका मेडिको-लीगल आयु प्रमाण पत्र (प्रदर्श क-8) सी.एम.ओ., बुलंदशहर द्वारा 17.10.2016 को जारी किया गया था। इस प्रमाण पत्र के अनुसार, उसकी मेडिको-लीगल आयु 15-16 वर्ष थी।

9. विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया और नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-3) तैयार किया और अपीलकर्ता-आरोपी को 19.10.2016 को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए और जांच के निष्कर्ष के बाद, आरोपी रिंकू @ प्रेमपाल के

खिलाफ भ०द०वि० की धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 4 के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-4) प्रस्तुत किया।

10. 27.06.2017 को, विचारण न्यायालय ने धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० और धारा 4 पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत आरोप तय किए। आरोपी ने आरोप से इनकार किया और विचारण चाहा।

11. अभियुक्तों के विरूद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने तथ्यात्मक गवाहों अर्थात् सूचनाकर्ता अ०सा०-1 कलुआ, अ०सा०-2 पीड़िता एवं औपचारिक गवाहों अर्थात् विवेचनाधिकारी अ०सा०-3 एस.आई. यशवीर सिंह, चिकित्सा अधिकारी अ०सा०-4 डॉ. सुधा शर्मा एवं पीड़िता अ०सा०-5 के विद्यालय (दिव्य विज्ञान विद्यापीठ, गाजियाबाद) की प्रधानाचार्य का परीक्षण किया।

12. अ०सा०-1 कलुआ ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) को साबित किया और घटना के बारे में सबूत दिया। अ०सा०-2 पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० (प्रदर्श क-2) के तहत दर्ज अपने बयान को साबित किया और घटना के बारे में गवाही दी। विवेचनाधिकारी अ०सा०-3 यशवीर सिंह ने केस अपराध संख्या (प्रदर्श क-6) की घटनास्थल का नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-3), आरोप पत्र (प्रदर्श क-4), चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-5) और जी.डी. प्रविष्टि को साबित किया। अ०सा०-3 यशवीर सिंह ने भी अपने द्वारा की गई जांच के संबंध में गवाही दी। चिकित्सा अधिकारी अ०सा०-4 डॉ. सुधा शर्मा ने उनके द्वारा तैयार की गई मेडिकल जांच रिपोर्ट को (प्रदर्श क-7) साबित किया। उन्होंने सी.एम.ओ. (प्रदर्श क-8) द्वारा जारी पीड़िता के आयु प्रमाण पत्र को भी साबित किया। उसने पीड़िता की मेडिकल जांच के बारे में गवाही दी। दिव्य विज्ञान विद्यापीठ, गाजियाबाद की प्राचार्य अ०सा०-5 सुमन लता ने पीड़िता से संबंधित मूल उपस्थिति रजिस्टर (अप्रैल 2014 से मार्च 2015 तक) को (प्रदर्श क-9) के रूप में प्रमाणित किया। उन्होंने कहा कि उस रजिस्टर में पीड़िता की जन्मतिथि 14.11.2002 दर्ज थी। मृतक के पिता का नाम, कलुआ और माता का नाम, यशोदा क्रम संख्या-10 में लिखा था। उसने अपनी प्रमाणित प्रति (प्रदर्श क-9) के रूप में दायर की। अ०सा०-5 ने यह भी बताया कि उसके स्कूल में अभी तक स्कॉलर्स रजिस्टर तैयार नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि पीड़िता की जन्मतिथि के प्रमाण में कोई दस्तावेज संलग्न नहीं किया गया है। उन्होंने कहा कि उपस्थिति रजिस्टर पर किसी प्राधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हैं। उसके स्कूल को सरकार से मान्यता नहीं मिली है।

13. दिनांक 03.04.2019 को विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-अभियुक्त, रिंकू @ प्रेमपाल का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया। अपीलकर्ता ने अ०सा०-1 कलुआ और अ०सा०-2 पीड़िता के बयान से इस आशय से इनकार किया कि 07.10.2016 को पीड़िता के पिता, कलुआ की अनुपस्थिति में, वह 5-6 दिनों तक उसके घर में रहा और 07.10.2016 को अपनी 14 वर्ष की बेटी/पीड़िता को बहला-फुसलाकर भगा दिया,

जिसे पुलिस ने 12.10.2016 को बरामद किया और संबंधित थाना में सूचनाकर्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर मामला दर्ज किया गया। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि पीड़िता को बहला-फुसलाकर हरिद्वार ले गया और वहां से एक कमरे में बंद कर दिया। उसने उसके साथ अश्लील इशारे किए और 4 दिनों की अवधि के दौरान 2-3 बार उसके साथ बलात्कार किया। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि इस अवधि के बाद, वह पीड़िता को गाजियाबाद ले गया और जब वह जहांगीराबाद बस स्टेशन पर बस का इंतजार कर रहा था, तो महिला पुलिस कांस्टेबल द्वारा पूछे जाने पर, उसने पीड़िता को वहीं छोड़ दिया और भाग गया। उन्होंने धारा 164 द०प्र०सं० के तहत पीड़िता द्वारा उसके खिलाफ दिए गए बयान से इनकार किया। उन्होंने कहा कि विवेचनाधिकारी ने गलत जांच की है। उन्होंने कहा कि अभियोजन पत्र, अर्थात् नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-3), चिक प्राथमिकी. (प्रदर्श क-5), आपराधिक मामले की संस्था का जी.डी. (प्रदर्श क-6), पीड़िता की मेडिकल रिपोर्ट (प्रदर्श क-7) और उसका आयु प्रमाण पत्र (प्रदर्श क-8), गलत हैं और झूठे तरीके से तैयार किए गए हैं। अपीलकर्ता-आरोपी ने कहा कि पीड़िता के पिता उसके सगे साढ़ू हैं। उसने उससे 60,000 रुपये उधार लिए थे। जब अपीलकर्ता-आरोपी ने उससे इसकी अदायगी के लिए कहा, तो उसने उसके साथ झगड़ा किया, उसके भुगतान से इनकार कर दिया और उसके खिलाफ झूठा मामला दर्ज किया।

14. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 5 दिनों के अंतराल के बाद दर्ज की गई है और इसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता-आरोपी द्वारा पीड़िता को अपने साथ ले जाने की घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अपीलकर्ता-आरोपी के कब्जे से पीड़िता बरामद नहीं हुई। पीड़िता की मेडिकल जांच रिपोर्ट से बलात्कार के आरोप की पुष्टि नहीं होती है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि पीड़िता के पिता ने अपीलकर्ता-आरोपी से 60,000 रुपये उधार लिए थे। जब अपीलकर्ता-आरोपी ने उसे अपने पैसे वापस करने के लिए कहा, तो उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया और उसके खिलाफ झूठा मामला दर्ज किया। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता-आरोपी के खिलाफ आरोप साबित करने में विफल रहा है। उसे उसके खिलाफ तय किए गए आरोप से बरी किया जाना चाहिए और विचारण न्यायालय ने उसे मौखिक और दस्तावेजी सबूतों का उचित मूल्यांकन के बिना गलत तरीके से दोषी ठहराया है।

15. अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ आरोप, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए विधिवत साबित दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा पुष्टि किए गए तथ्य के गवाहों के मौखिक साक्ष्य की सहायता से साबित किया है।

16. धारा 363 भ०द०वि० के तहत, भारत से या वैध संरक्षकता से किसी व्यक्ति का अपहरण करने के लिए सजा प्रदान की जाती है। वैध संरक्षकता से अपहरण को धारा 361

भ०द०वि० के तहत परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है: -

361. विधिपूर्ण संरक्षकता से अपहरण-- जो कोई सोलह वर्ष से कम आयु के किसी अवयस्क, यदि कोई पुरुष है, या अठारह वर्ष से कम आयु का यदि कोई महिला है, या विक्षिप्त मन का कोई व्यक्ति ऐसे अवयस्क या विक्षिप्त मन वाले व्यक्ति के विधिपूर्ण संरक्षक के पास रखने में से ऐसे संरक्षक की सहमति के बिना लेता है या लुभाता है, कहा जाता है कि वह ऐसे नाबालिग या व्यक्ति को वैध अभिभावक से अपहरण कर लेता है।

17. धारा 366 भ०द०वि० के तहत किसी महिला के अपहरण, अपहरण या उसे शादी के लिए मजबूर करने आदि के लिए सजा का प्रावधान किया गया है। धारा 366 भ०द०वि० की सामग्री इस प्रकार है: -

1. किसी महिला का अपहरण या व्यपहरण;
2. ऐसा अपहरण या व्यपहरण होना चाहिए -

(i) इस आशय से कि उसे मजबूर किया जा सकता है या यह जानते हुए कि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति से शादी करने के लिए मजबूर होगी, या;

(ii) ताकि वह अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जा सके;

(iii) आपराधिक अभित्रास के माध्यम से या अन्यथा किसी महिला को इस आशय से किसी स्थान पर जाने के लिए प्रेरित करके कि वह हो सकती है, या यह जानकर कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जाएगा; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि अपहृत महिला विवाहित है या नहीं।

18. सर्वोच्च न्यायालय ने गब्बू बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 246 में कहा है कि जब तक अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं करता कि अपहरण धारा 366 भ०द०वि०, 1860 में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए है, तब तक न्यायालय आरोपी को दोषी नहीं ठहरा सकता है और उसे धारा 366 भ०द०वि० 1860 के तहत दंडित नहीं कर सकता है। यदि अपराधी 18 वर्ष या उससे अधिक उम्र का था, तो उसका केवल अपहरण किया जा सकता था और व्यपहरण नहीं किया जा सकता था, लेकिन यदि वह 18 वर्ष का नहीं था, तो यदि उसे बलपूर्वक लिया गया था या प्रलोभन दिया गया था, तो उसका अपहरण किया जा सकता था और साथ ही व्यपहरण भी किया जा सकता था।

19. धारा 366 भ०द०वि० के तहत अपराध का गठन करने के लिए, अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि अभियुक्त ने शिकायतकर्ता महिला को प्रेरित किया या किसी भी स्थान से जाने के लिए मजबूर किया कि इस तरह का प्रलोभन कपटपूर्ण तरीकों से था, कि इस तरह का अपहरण इस इरादे से हुआ था कि शिकायतकर्ता को अवैध संभोग के लिए बहकाया जा सकता है और/या अभियुक्त को पता था कि शिकायतकर्ता को बहकाया जा सकता है उसके अपहरण के परिणामस्वरूप अवैध संभोग किया जा सकता है।

20. धारा 366 भ०द०वि० के तहत अपराध स्थापित करने के लिए, पहले यह स्थापित किया जाना चाहिए कि धारा 361 के तहत अपहरण या धारा 362 भ०द०वि० के तहत अपहरण का अपराध साबित हो गया है। तब

यह दिखाया जाना चाहिए कि इस तरह का अपहरण धारा 366 भ०द०वि० के तहत संदर्भित इरादे से किया गया था।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कविता चंद्रकांत लखानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या-459 वर्ष 2016, आदेश दिनांक 24 अप्रैल, 2018 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"... 'अपहरण' के अपराध का गठन करने के लिए एक व्यक्ति को बल या धोखे से अवैध रूप से किया जाना चाहिए, अर्थात, किसी व्यक्ति को बल या धोखेबाज साधनों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए प्रेरित करने के लिए मजबूर करना। अभियुक्त का आशय इस धारा के अधीन अपराध का आधार और गंभीरता है। अभियुक्त की इच्छा, इरादा और आचरण अपराध का निर्धारण करता है; वे केवल उस इरादे को सहन कर सकते हैं जिसके साथ आरोपी ने महिला का अपहरण या व्यपहरण कर लिया था, और आरोपी का इरादा प्रत्येक मामले में निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न है। एक बार अभियुक्त का आवश्यक इरादा स्थापित हो जाने के बाद, अपराध पूरा हो जाता है, चाहे आरोपी अपने उद्देश्य को प्रभावित करने में सफल रहा हो या नहीं, और महिला ने शादी या अवैध संभोग के लिए सहमति दी हो या नहीं।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

22. धारा 354-बी भ०द०वि० को "यौन हमले" के अपराध में शामिल किया गया है जैसा कि धारा 7 पॉक्सो अधिनियम के तहत परिभाषित किया गया है और अधिनियम की धारा 8 के तहत दंडनीय बनाया गया है।

354-बी) कोई पुरुष जो किसी महिला पर हमला करता है या आपराधिक बल का प्रयोग करता है या उसे निर्वस्त्र करने या उसे नग्न होने के लिए मजबूर करने के इरादे से ऐसे कार्य को उकसाता है, वह कारावास से या इस भांति से एक अवधि के लिए दंडित किया जाएगा जो तीन साल से कम नहीं होगी लेकिन जो सात साल तक का हो सकता है, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

23. "यौन हमला" को यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 7 में परिभाषित किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

7. जो कोई भी यौन आशय से बालक की योनि, लिंग, गुदा या स्तन को स्पर्श करेगा या बालक से ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति की योनि, लिंग, गुदा या स्तन को स्पर्श कराएगा या यौन आशय से कोई अन्य कार्य करेगा जिसमें प्रवेश किए बिना शारीरिक संपर्क शामिल है, वह लैंगिक आक्रमण कहलाता है।

24. यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 8 में यौन हमले के लिए सजा का प्रावधान किया गया है, जो इस प्रकार है:-

8. जो कोई लैंगिक हमला करता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष से अन्यून होगी किंतु जो पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

25. इस आपराधिक अपील में इस बात पर विचार किया जाना है कि क्या अभियोजन पक्ष धारा 363, 366, 354-बी भ०द०वि० और धारा 8 पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोप साबित करने में सफल रहा है जिसके तहत आरोपी-अपीलकर्ता रिंकू उर्फ प्रेम पाल को विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है।

क्या अपीलकर्ता-अभियुक्त रिंकू उर्फ प्रेम पाल ने 07.10.2016 को दोपहर 1.00 बजे सूचनाकर्ता कलुवा की 14 वर्ष की नाबालिग बेटी का अपहरण किया या ऐसे अभिभावक की सहमति के बिना अपनी वैध संरक्षकता से प्रलोभन दिया।

क्या अपीलकर्ता अभियुक्त ने सूचनाकर्ता की नाबालिग बेटी का इस इरादे से अपहरण किया कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जा सकता है या बहकाया जा सकता है।

चाहे कथित तारीख, समय और स्थान पर अपीलकर्ता आरोपी ने सूचनाकर्ता की नाबालिग बेटी/पीड़िता के खिलाफ हमला किया हो या आपराधिक बल का इस्तेमाल किया हो या उसे निर्वस्त्र करने या उसे नग्न होने के लिए मजबूर करने के इरादे से इस तरह के कृत्य को उकसाया हो।

26. सबसे पहले हमें यह देखना होगा कि घटना के समय पीड़िता की उम्र 18 वर्ष से कम थी या नहीं। कथित अपराध 07.10.2016 को हुआ था। उस तारीख को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 और किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम 2016 लागू हुए थे। यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण के तहत पीड़िता की उम्र निर्धारित करने का प्रावधान किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2015 की धारा 94 के तहत दिया गया है। किशोर न्याय अधिनियम की धारा 94 (2) का प्रावधान निम्नानुसार है:

94. आयु की पूर्वधारणा और अवधारण- (1) जहां, इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के प्रकट होने के आधार पर समिति या बोर्ड को यह स्पष्ट है कि उक्त व्यक्ति बालक है तो समिति या बोर्ड बालक की आयु बताते हुए धारा 14 या धारा 36 के तहत, जैसा भी मामला हो, उम्र की आगे की पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना ऐसी समुक्ति अभिलिखित करेगा और जांच आगे बढ़ाएगा।

(2) यदि समिति या बोर्ड के पास इस बारे में संदेह के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो यथास्थिति, समिति या बोर्ड, निम्नलिखित अभिप्राप्त करके साक्ष्य प्राप्त करके आयु अवधारण की प्रक्रिया चलाएगा-

(i) स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख, या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसके अभाव में;

(ii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) की अनुपस्थिति में, आयु का निर्धारण समिति या बोर्ड के आदेश पर अवधारित अस्थिभंग परीक्षण

या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सा आयु निर्धारण परीक्षण द्वारा किया जाएगा:

बशर्ते समिति या बोर्ड के आदेश पर अवधारित इस तरह के आयु निर्धारण परीक्षण इस तरह के आदेश की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर पूरा किया जाएगा।

27. पीड़िता की उम्र साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-5 सुमन लता से डिवाइन साइंस पब्लिक स्कूल, अवंतिका चिरंजीव विहार, गाजियाबाद की प्रिंसिपल से पूछताछ की है, जिसमें पीड़िता कक्षा 3 से पढ़ रही थी। अ०सा०-5 सुमन लता ने कक्षा 3 के उपस्थिति रजिस्टर में कक्षा 3 के छात्र के रूप में पीड़िता के प्रवेश से संबंधित विवरणों की फोटोकॉपी प्रस्तुत की है। अ०सा०-5 सुमन लता ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि पीड़िता की उम्र के बारे में विवरण रजिस्टर के क्रम संख्या-10 में उल्लिखित है जहां उसकी जन्मतिथि 14.11.2002 बताई गई है। अ०सा०-5 सुमन लता ने रजिस्टर के संबंधित पृष्ठ की फोटोकॉपी को मूल के साथ प्रमाणित किया और इसे प्रदर्श क-9 के रूप में प्रस्तुत किया। अ०सा०-5 सुमन लता ने स्वीकार किया है कि क्रम संख्या-10 के रजिस्टर में पीड़िता का नाम और उसके पिता का नाम कलुवा और माता का नाम यशोदा अंकित है। उसकी जन्मतिथि 14.11.2002 दी गई है। उसने स्वीकार किया कि स्कूल में केवल उपस्थिति रजिस्टर में छात्र की जन्म तिथि और अन्य विवरणों का उल्लेख किया गया है। स्कूल में एस.आर रजिस्टर नहीं है। उसने स्वीकार किया था कि उसके स्कूल को सरकार द्वारा मान्यता नहीं दी गई है। अ०सा०-5 सुमन लता ने गवाही दी कि उपस्थिति रजिस्टर पर शिक्षा विभाग के किसी अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हैं। उसने स्वीकार किया कि उसने रजिस्टर में पीड़िता की जन्मतिथि और अन्य विवरण अंकित नहीं किए थे और न ही वह उस व्यक्ति के नाम और लिखावट को पहचान सकती है जिसने उपरोक्त रजिस्टर में प्रविष्टि की थी। उपरोक्त परिस्थितियों में, स्कूल के उपस्थिति रजिस्टर में उल्लिखित पीड़िता की जन्म तिथि, जिसका विधिवत रखरखाव नहीं किया गया है, को कानूनी उद्देश्यों के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

28. इसके अलावा, अभियोजन पक्ष ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बुलंदशहर (प्रदर्श क-8) द्वारा जारी पीड़िता का दिनांक 17.10.2016 का आयु प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है। यह आयु प्रमाण पत्र पीड़िता के अस्थिभंग परीक्षण पर आधारित है। मुख्य चिकित्सा अधिकारी का आयु प्रमाण पत्र डॉ. सुधा शर्मा (अ०सा०-4) द्वारा सिद्ध किया गया है। पीड़िता के इस आयु प्रमाण पत्र में उसकी उम्र 15-16 साल बताई गई है। इस प्रकार सी.एम.ओ. बुलंदशहर द्वारा जारी प्रमाण पत्र में दी गई आयु एक वैध दस्तावेज है और इसमें दी गई आयु को स्वीकार किया जा सकता है। उपरोक्त आयु प्रमाण पत्र (प्रदर्श क-8) के अनुसार अस्थिभंग परीक्षण द्वारा उसकी आयु निर्धारण के समय अर्थात 17.10.2016 उसकी आयु लगभग 15-16 वर्ष है। इसलिए, अपराध के समय वह नाबालिग थी।

29. अब, यह देखना होगा कि क्या पीड़िता का अपहरण किया गया था या उसके अभिभावक

को वैध रूप से रखने का प्रलोभन दिया गया था। यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे शादी करने के इरादे से अपहरण किया गया था या इस इरादे या ज्ञान के साथ कि उसे अवैध संभोग के अधीन किया जाएगा। सूचनाकर्ता और पीड़िता अ०सा०-1 के पिता कलुवा ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) को साबित कर दिया है जिसे उसने 12.10.2016 को थाना-औरंगाबाद में दायर किया था।

30. अ०सा०-1 कलुवा ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उसका बहनोई (सारू) रिंकू दिनांक 07.10.2016 को उसकी अनुपस्थिति में उसके घर आया था। वह वहां 5-6 दिन रहे। उसने अपनी नाबालिग बेटी को अपने घर से अगवा कर बहला-फुसलाकर भगा दिया और उस समय उसका शादीशुदा बेटा, उसकी बहू और उसकी बेटी उसके घर में रह रहे थे। उसने अपने रिश्तेदारों में बेटी की तलाश की लेकिन पीड़िता कहीं नहीं मिली। फिर उन्होंने 12.10.2016 को थाना-औरंगाबाद में लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) प्रस्तुत की और अपने बहनोई के खिलाफ अपनी नाबालिग बेटी को उसके वैध अभिभावक के पास रखने से अपहरण करने का आपराधिक मामला दर्ज किया। उनकी बेटी को प्राथमिकी दर्ज होने के दिन ही बरामद कर लिया गया था। उसने उसे बताया कि अपीलकर्ता-आरोपी रिंकू उर्फ प्रेम पाल ने उसे बहला-फुसलाकर अगवा किया और कई दिनों तक उसके साथ बार-बार बलात्कार किया। जिस समय उनकी बेटी का अपहरण किया गया था, उस समय उसकी उम्र 14-15 साल थी। अ०सा०-1 कलुवा ने कहा कि उनकी बेटी को सभी संभावित स्थानों पर खोजने में समय लगा और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए उनकी चिंता के कारण प्राथमिकी दर्ज करने में कुछ देरी हुई। अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में कहा कि चूंकि आरोपी-अपीलकर्ता रिंकू उर्फ प्रेम पाल बहनोई था, इसलिए वह अक्सर उसके घर आता था। उन्होंने कहा कि जिस तारीख और समय उनकी बेटी का अपहरण किया गया था, वह गाजियाबाद में रह रहे थे, जहां वह एक टेम्पो चलाते थे। रिंकू उर्फ प्रेम पाल ने उसकी मौजूदगी में उसका अपहरण नहीं किया। अ०सा०-1 कलुवा ने इस बात से इनकार किया कि उसने अपीलकर्ता-आरोपी रिंकू उर्फ प्रेम पाल से 60,000 रुपये उधार लिए थे और वह उस राशि का भुगतान नहीं करना चाहता था, इसलिए उसने उसके खिलाफ झूठी प्राथमिकी दर्ज कराई।

31. पीड़िता अ०सा०-2 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि यह घटना 07.10.2016 को हुई थी। उसने कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ता, निवासी रुकसाना जो उसका मौसा था, दिनांक 07.10.2016 को लगभग 11 बजे उसके घर आया। उसने बहकाया और अपनी कार से उसका अपहरण कर लिया। वह स्याना पहुंचा और वहां से उसे बस से गढ़ ले गया। उसे ट्रेन से गढ़ से हरिद्वार ले जाया गया। हरिद्वार में उन्होंने किराए पर कमरा लिया। वह पीड़िता को शाम 7 बजे कमरे में लेकर आया और खाना खाने के बाद अपीलकर्ता-आरोपी उसके साथ अश्लील इशारे करने लगा। जब उसने उसे ऐसा करने से मना किया तो उसने उसे थप्पड़ मार दिया। वह डर गई। पीड़िता ने उससे उसे छोड़ने की गुहार लगाई। आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे

निर्वस्त्र कर दिया और उसके साथ दुष्कर्म किया। अपीलकर्ता-आरोपी ने अगले दिन और रात 2 से 3 बार उसके साथ बलात्कार किया। उसने उसे 4 दिन तक कमरे में रखा और लगातार उसके साथ दुष्कर्म करता रहा। आरोपियों ने उसे और उसके परिवार के सदस्यों को जान से मारने की धमकी दी। उस अवधि के बाद, आरोपी उसे गाजियाबाद ले गया जहां से वह उसे जुगसाना में अपने घर ले जाना चाहता था। वह पीड़िता के साथ जहांगीराबाद चौराहा क्रॉसिंग बस स्टेशन पर इंतजार कर रहा था। एक महिला पुलिस कांस्टेबल ने पीड़िता से उसका नाम पूछा। रिंकू उसे छोड़कर भाग गया। महिला पुलिस कांस्टेबल उसे थाना-औरंगाबाद ले गई। उसने घटना के बारे में पुलिस को बताया। थाना से उसे मेडिकल जांच के लिए भेजा गया और मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज करने के लिए भेजा गया। गवाहों ने कहा कि उसने मजिस्ट्रेट को उस घटना के बारे में बताया जो उसके साथ हुई थी। अ०सा०-2 पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपना बयान साबित किया जो प्रदर्श क-2 है।

32. अ०सा०-2 पीड़िता ने अपनी जिरह में बताया कि उसने ठीक होने पर अपने पिता को घटना की जानकारी दी। उसकी मां और आरोपी रिंकू की पत्नी सगी बहनें हैं। आरोपी अपनी पत्नी के साथ नहीं बल्कि अकेले ही उसके घर जाता था। आरोपी रिंकू जब उसके घर आया था उस समय वह, उसकी बहन और उसकी भाभी घर में थी। पीड़िता ने बताया कि उसके दो भाई और दो बहनें हैं। वह उन सभी में सबसे छोटी है। उसने कहा कि पहले वह अपने माता-पिता के साथ गाजियाबाद में रहती थी लेकिन भाई की शादी के बाद वह अपने गांव में रहने आ गई। अ०सा०-2 ने अपनी जिरह में कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता सुबह 11 बजे अपने घर से बहला-फुसलाकर भाग गया। आरोपी ने उसे बताया था कि उसकी मां बीमार है। उसने पीड़िता को उसकी मां के पास लाने के लिए आरोपी को फोन किया है।

33. अ०सा०-2 ने अपनी जिरह में आगे कहा कि जब उसे आरोपी द्वारा उसके घर से हरिद्वार ले जाया जा रहा था, तो उसे आरोपी द्वारा धमकी दी गई थी, इसलिए उसने किसी को सूचित नहीं किया कि आरोपी ने उसे उसके वैध अभिभावक से अपहरण कर लिया है। उसने कहा है कि आरोपी द्वारा उसके अपहरण की तारीख से लेकर पुलिस द्वारा उसकी बरामदगी तक, रास्ते में उसने आरोपी द्वारा अपहरण और बलात्कार के बारे में किसी को भी सूचित नहीं किया था क्योंकि उसे आरोपी द्वारा धमकी दी गई थी कि अगर वह शिकायत करेगी तो उसे और उसके परिवार के सदस्यों को मार दिया जाएगा। अ०सा०-2 पीड़िता ने स्वीकार किया था कि उसके शरीर पर कोई चोट नहीं आई थी। उसने इस बात से इनकार किया है कि उसके पिता ने आरोपी से 60,000 रुपये उधार लिए थे और जब आरोपी ने पैसे वापस मांगे तो उसने प्राथमिकी दर्ज कराई।

34. अ०सा०-2 पीड़िता के साक्ष्य से, यह पता चलता है कि आरोपी पीड़िता को उसके घर से इस झूठे बहाने से ले गया कि उसकी मां बीमार है और उसने आरोपी को पीड़िता को उसके पास लाने के लिए कहा था। अ०सा०-1 कलुवा ने अ०सा०-2 के साक्ष्य की भी पुष्टि की

है कि पीड़िता ने उसे आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके अपहरण के बारे में सूचित किया था। बचाव पक्ष द्वारा अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं पाया गया है जो उनके बयानों की विश्वसनीयता और सत्यता के बारे में संदेह पैदा करे। इसलिए यह साबित होता है कि आरोपी ने पीड़िता को उसके वैध अभिभावक से अगवा कर लिया।

35. पीड़िता अ०सा०-2 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उसके घर से अपहरण के बाद जब अपीलकर्ता-आरोपी ने उसे रात में हरिद्वार में किराए के कमरे में रखा था, तो वह उसके साथ अश्लील इशारे करने लगा और उसने उसे कई बार थप्पड़ मारा और उसे निर्वस्त्र कर दिया। अ०सा०-2 पीड़िता के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता आरोपी ने न केवल उसे निर्वस्त्र किया, बल्कि उसे कई बार थप्पड़ भी मारा। इसके बाद उसने पीड़िता को निर्वस्त्र करने के इरादे से उस पर आपराधिक बल का प्रयोग किया और उसे नग्न कर दिया। एक महिला को निर्वस्त्र करने के लिए आपराधिक बल का उपयोग करने के अपराध को धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत परिभाषित किया गया है।

36. अ०सा०-2 पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अपने साक्ष्य की भी पुष्टि की है कि अपीलकर्ता-आरोपी ने हरिद्वार में किराए के कमरे में रात में उसके खिलाफ आपराधिक बल का इस्तेमाल किया।

37. पॉक्सो अधिनियम की प्रयोज्यता के लिए निम्नलिखित दो शर्तें आवश्यक हैं:

(i). घटना के समय पीड़िता नाबालिग हो,

(ii) पीड़िता के विरुद्ध यौन उत्पीड़न किया गया हो,

38. चूंकि ये दोनों शर्तें इस मामले में मौजूद हैं, इसलिए धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत अपराध भी धारा 7 पॉक्सो अधिनियम के तहत परिभाषित यौन अपराध के तहत आच्छादित किया गया है, जिसे धारा 8 पॉक्सो अधिनियम के तहत दंडनीय बनाया गया है।

39. जब किसी व्यक्ति पर धारा 3, 5, 7 और 9 के तहत अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जा रहा है, तो धारा 29 पॉक्सो अधिनियम के प्रावधान के अनुसार यह माना जाएगा कि अभियुक्त ने अपराध किया है या करने का प्रयास किया है जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो। पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 इस प्रकार है:

29. कुछ अपराधों के बारे में उपधारणा: जहां किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के अधीन कोई अपराध करने या दुष्प्रेरित करने या करने का प्रयास करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, वहां विशेष न्यायालय यह मान लेगा कि यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या दुष्प्रेरित किया है या करने का प्रयास किया है, जब तक कि इसके विपरीत सिद्ध न हो जाए।

40. पूर्वोक्त अनुमान के अलावा, धारा 29 में उल्लिखित अपराधों में से किसी के लिए आवश्यक गैर इरादतन मानसिक स्थिति को उस अभियुक्त के खिलाफ माना जाएगा जिस पर पूर्वोक्त अपराधों के लिए मुकदमा चलाया

जा रहा है। यह पॉक्सो अधिनियम की धारा 30 के तहत प्रदान किया गया है जो इस प्रकार है:

30. दोषी मानसिक स्थिति की धारणा: (1) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए किसी अभियोजन में, जिसके लिए अभियुक्त की ओर से दोषसिद्ध मानसिक अवस्था अपेक्षित है, विशेष न्यायालय ऐसी मानसिक अवस्था के अस्तित्व को मानेगा किंतु अभियुक्त के लिए यह तथ्य सिद्ध करना बचाव होगा कि उस अभियोजन में अपराध के रूप में आरोपित कार्य के संबंध में उसकी ऐसी कोई मानसिक स्थिति नहीं थी।
(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, एक तथ्य को केवल तभी साबित किया जाना कहा जाता है जब विशेष न्यायालय यह मानता है कि यह उचित संदेह से परे मौजूद है, न कि केवल जब इसका अस्तित्व संभावना की प्रधानता द्वारा स्थापित किया जाता है।

41. अ०सा०-2 पीड़िता के साक्ष्य की उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि धारा 7 पॉक्सो अधिनियम के तहत परिभाषित अपराध अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ साबित होता है। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने जिरह में अ०सा०-2 को कोई सुझाव नहीं दिया है या यौन हमले के संबंध में उपरोक्त साक्ष्य के खंडन में धारा 313 द०प्र०स० के तहत कोई बयान नहीं दिया है।

42. पीड़िता अ०सा०-2 के साक्ष्य से, जो उसकी बरामदगी के बाद दर्ज धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसके बयान और अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों के बयान से पुष्टि होती है, यह साबित होता है कि पीड़िता नाबालिग थी जब अपीलकर्ता-अभियुक्त ने उसे वैध संरक्षकता से लिया था। आरोपी अपीलकर्ता की ओर से अ०सा०-1 कलुवा या अ०सा०-2 पीड़िता की जिरह में या धारा 313 द०प्र०स० के तहत उसके बयान में कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि घटना के समय अपीलकर्ता-अभियुक्त पीड़िता के साथ नहीं था और वह किसी अन्य स्थान पर था। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में केवल यह कहा है कि सूचनाकर्ता ने उससे 60,000/- रुपये उधार लिए थे और जब उसने उसे वापस करने के लिए कहा, तो उसने उसके खिलाफ झूठा मामला दर्ज किया। आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से पेश ब०सा०-1 और ब०सा०-2 ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपीलकर्ता के इस बयान का समर्थन नहीं किया है। इन गवाहों में से किसी ने भी यह नहीं कहा है कि सूचनाकर्ता ने अपीलकर्ता-अभियुक्त से 60,000/- रुपये उधार लिए थे और जब उसके द्वारा उस राशि की मांग की गई तो उसके खिलाफ झूठी प्राथमिकी दर्ज की गई। अ०सा०-1 कलुवा और अ०सा०-2 पीड़िता के साक्ष्य सत्य, ठोस और विश्वसनीय हैं। अ०सा०-1, अ०सा०-2 या अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह में कुछ भी सामने नहीं आता है जो अभियोजन पक्ष के मामले का खंडन कर सकता है या इस बात संदिग्ध बना सकता है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त ने पीड़िता का अपहरण इस इरादे/ज्ञान के साथ किया कि उसे बहकाया जाएगा या अवैध संभोग के अधीन किया जाएगा।

43. अपीलकर्ता-अभियुक्त की ओर से यह तर्क दिया गया है कि प्राथमिकी पांच दिनों के

अंतराल के बाद दर्ज की गई है जो घटना की सत्यता के बारे में संदेह पैदा करती है।

44. यह अपर शासकीय अधिवक्ता की ओर से तर्क दिया गया है। बता दें कि परिवार की प्रतिष्ठा के कारण महिला के अपहरण और बलात्कार के मामले में परिवार के सदस्य तुरंत प्राथमिकी दर्ज करने से हिचकिचाते हैं। इसलिए पांच दिन की देरी से मामला संदेहास्पद नहीं बनता है।

45. लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) में किए गए कथन के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि 07.10.2016 को पीड़िता के अपहरण के बाद सूचनाकर्ता ने सभी संभावित स्थानों पर उसकी तलाश की लेकिन वह नहीं मिली। जब उसे यकीन हो गया कि उसे बहला-फुसलाकर उसका अपहरण कर लिया गया है तो उसने प्राथमिकी दर्ज कराई। प्राथमिकी दर्ज करने में कथित देरी को लिखित रिपोर्ट में पर्याप्त रूप से समझाया गया है।

46. दीपक बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 4 एस.सी.सी. 762 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

15. न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि यौन अपराधों में और विशेष रूप से, बलात्कार के अपराध में और वह भी एक युवा अनपढ़ लड़की पर, प्राथमिकी दर्ज करने में देरी विभिन्न कारणों से हो सकती है। इसका एक कारण अभियोक्ता या उसके परिवार के सदस्यों की थाना जाने और घटना के बारे में शिकायत करने की अनिच्छा है, जो अभियोक्ता की प्रतिष्ठा और पूरे परिवार के सम्मान से संबंधित है। ऐसे मामलों में, बहुत ही शांत विचार करने और दुर्भाग्यपूर्ण घटना से उत्पन्न सभी पेशेवरों और विपक्षों पर विचार करने के बाद, यौन अपराध की शिकायत आम तौर पर पीड़िता या उसके परिवार के किसी सदस्य द्वारा दर्ज की जाती है।

47. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम संजय कुमार उर्फ सन्नी, (2017) 2 एस.सी.सी. 51 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

यह नहीं भूलना चाहिए कि अभियोक्ता द्वारा आरोपी व्यक्ति कोई और नहीं बल्कि उसका चाचा था। इस प्रकृति की शिकायत दर्ज करना आसान नहीं है, जिससे अभियोक्ता को सामाजिक कलंक का खतरा होता है जो दुर्भाग्य से अभी भी हमारे समाज में व्याप्त है। प्राथमिकी दर्ज करने का निर्णय तब अधिक मुश्किल और कठिन हो जाता है जब आरोपी परिवार का सदस्य होता है। वास्तव में, अनाचार के दुरुपयोग को अभी भी सार्वजनिक रूप से चर्चा करने के लिए एक वर्जित माना जाता है। यह मितव्ययिता पीड़ितों या परिवार के अन्य सदस्यों को चोट पहुँचाती है जो रिपोर्ट करने के लिए संघर्ष करते हैं। आखिरकार, ऐसी स्थिति में, न केवल परिवार का सम्मान दांव पर है, यह अन्य संबंधों को भी विरोधी बना सकता है, क्योंकि पहले नज़र में, परिवार के ऐसे अन्य सदस्य इस प्रकृति को बहुत दयालु रूप से नहीं लेंगे।

48. अपीलकर्ता-अभियुक्त के अधिवक्ता ने कहा है कि भले ही पीड़िता के अकादमिक रिकॉर्ड में उसे नाबालिग दिखाया गया हो। यदि

अस्थिभंग परीक्षण पर आधारित मेडिकल रिपोर्ट में उसे वयस्क के रूप में दिखाया गया है, तो मेडिकल रिपोर्ट शैक्षणिक संस्थान द्वारा जारी किए गए उसके प्रमाण पत्र पर प्रबल होगी और उसे वयस्क माना जाएगा। उन्होंने सिविल अपील संख्या-4532 वर्ष 2018, सुहानी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यह प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उस मामले में पीड़िता की उम्र उसके स्कूल रिकॉर्ड में 13 साल और 8 महीने थी, जबकि रेडियोलॉजिकल जांच के बाद तैयार की गई मेडिकल रिपोर्ट में उसकी उम्र 19-24 साल के बीच तय की गई थी। लेकिन प्रस्तुत मामले में रेडियोलॉजिकल जांच के आधार पर मेडिकल रिपोर्ट में उसकी उम्र 15-16 वर्ष निर्धारित की गई है। इसलिए जाहिर है कि पीड़िता नाबालिग है। इसलिए उसके खिलाफ धारा 363 भ०द०वि० के तहत अपराध किया जा सकता है।

49. उपरोक्त साक्ष्य की चर्चा से यह साबित होता है कि अपीलकर्ता अभियुक्त ने नाबालिग लड़की/पीड़िता को उसके वैध अभिभावक को रखने के लिए धोखे से अपहरण कर लिया और अश्लील इशारे किए, उसे थप्पड़ मारा और पीड़िता को निर्वस्त्र करने के लिए आपराधिक बल का इस्तेमाल किया। इस प्रकार अभियोजन पक्ष ने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 363, 366 और 354-बी भ०द०वि० के तहत आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है। अता: विचारण न्यायालय ने उन्हें इन धाराओं के तहत आरोप का दोषी ठहराया है। धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत अपराध को पॉक्सो अधिनियम की धारा 7 के तहत परिभाषित अपराध में शामिल किया गया है और इसे धारा 8 पॉक्सो अधिनियम के तहत "यौन हमले" के रूप में दंडनीय बनाया गया है। पॉक्सो अधिनियम की धारा 42 निम्नानुसार है:

42. वैकल्पिक दंड - जहां कोई कार्य या चूक इस अधिनियम के तहत और धारा 166A, 354A, 354B, 354C, 354D, 370, 370A, 375, 376, 376A, 376AD, 376B, 376C, 376D, 376DA, 376DB], [376E, भारतीय दंड संहिता की धारा 509 (45 वर्ष 1860) या सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (21 वर्ष 2000) की धारा 67B के तहत दंडनीय अपराध का गठन करती है, तो किसी भी कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी इस अधिनियम या भारतीय दंड संहिता के तहत सजा के लिए उत्तरदायी होगा क्योंकि इस सजा के लिए प्रावधान है जो डिग्री में अधिक है।

50. धारा 42 पॉक्सो अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, चूंकि 354-बी भ०द०वि० में ज़्यादा सात साल की सजा है, जो धारा 8 पॉक्सो अधिनियम के तहत प्रदान की गई, जिसमें पांच साल की सजा से अधिक है, इसलिए अभियुक्त-अपीलकर्ता को भ०द०वि० की धारा 354-बी के तहत सात साल के कारावास के साथ 2000 रुपये के जुर्माने के साथ दंडित किया जा सकता है। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-अभियुक्त को धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया है, लेकिन धारा 8 पॉक्सो अधिनियम के तहत उसे गलत

सजा सुनाई है। इस प्रकार, धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत सजा को विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए जुर्माने के साथ सात साल के कारावास में संशोधित किया जाता है। दोनों मूल सजाएं साथ-साथ चलेंगी। अभियुक्त द्वारा बिताई गई नजरबंदी की अवधि को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 428 के तहत कारावास की सजा के खिलाफ समायोजित किया जाएगा।

51. धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत सजा के पूर्वोक्त संशोधन के साथ आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 363, 366 और 354-बी भ०द०वि० के तहत विचारण न्यायालय की दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की जाती है। इस प्रकार, आपराधिक अपील में कोई बल नहीं है अता: ये खारिज होने योग्य है।

52. तदनुसार, धारा 354-बी भ०द०वि० के तहत दी गई सजा के पूर्वोक्त संशोधन के साथ अपील खारिज की जाती है।

53. विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ निर्णय की एक प्रति अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 581

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 8080/2008

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 8477/2008

इंद्र पल और अन्य ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री नूर मोहम्मद, श्री आर.के. राठौर, श्री ए.के. पांडे, श्री अजित कुमार सिंह सोलंकी, अर्चना हंस, श्री जे.एस. सेनगर, श्री एस.बी. सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: श्री अमित सिन्हा, ए.जी.ए., सुश्री मयूरी मेहरोत्रा, राज्य विधि अधिकारी

. ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 378- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 364-ए और 365-दोषसिद्धि को चुनौती- पीड़ित का अपहरण किया गया था और उसे गलत तरीके से कारावास में 14 दिनों के बाद बरामद किया गया था- वादी पीडब्लू-2 और पीड़ित/अपहृत लड़का पीडब्लू-3 दोनों ने इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है कि लड़के को पुलिस और आरोपियों के बीच मुठभेड़ के बाद बरामद किया गया था- विवेचक पीडब्लू-5 भी अपहृत शव की बरामदगी की कहानी को सिद्ध करता है और कहता है कि पुलिस मुठभेड़ के बाद जिसमें आरोपियों ने पुलिस पार्टी पर गोलियां चलाईं, जिसका पुलिस ने बचाव में जवाब दिया, आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया और बाकी आरोपी भाग गए- लड़के को कुठिया से बरामद किया गया, जिसके हाथ और मुंह रस्सी से बंधे थे, हथियार और कारतूस भी बरामद किए गए, फर्द बरामदगी तैयार किया गया - लड़के को बांधने में इस्तेमाल की गई रस्सी और कपड़े को भी पीडब्लू-5-पीडब्लू-6 द्वारा साबित किया गया था, जो लड़के की बरामदगी के समय पुलिस के साथ था, उसने भी यही कहानी कही है- किसी भी आरोपी

अधिवक्ता

व्यक्ति या पुलिस कर्मी को कोई चोट नहीं पहुंची थी- इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने पूरी तरह से साबित कर दिया है कि अपहृत लड़के को आरोपी अपीलकर्ताओं के कब्जे से बरामद किया गया था- सबूत धारा 365 के तहत अपराध के आवश्यक तत्वों को पूरा करते हैं- फिरौती का कोई सबूत नहीं है और अभियोजन पक्ष धारा 364-ए के तहत आवश्यक किसी भी ऐसी मांग के आवश्यक तत्वों को स्थापित करने में विफल रहा है- अपराध धारा 365 के दायरे में आता है- तदनुसार धारा 364-ए के तहत अपीलकर्ताओं की सजा को बदल दिया गया और 365 के तहत संशोधित किया गया। (पैरा 1 से 78)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुमन सूद @ कमल जीत कौर बनाम राजस्थान राज्य संलग्न दया सिंह लाहोरिया @ राजीव सूडान बनाम राजस्थान राज्य (2007) 5 सी सी 634
2. हरी किशन और हरियाणा राज्य बनाम सुखबीर सिंह (1988) एयर एससी 2127
3. एमपी बनाम हरजीत सिंह एवं अन्य (2019) एआईआर एससी 1120
4. सुसांता दास बनाम उड़ीसा राज्य (2016) 4 एससीसी 371
5. शिवाजी साहब राव बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) एससीसी (सीआरआई) 1033
6. नेत्र पाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2001) 0 सुप्रीम (दिल्ली) 293
7. शेख अहमद बनाम तेलंगाना राज्य (2021) 0 एससीसी 304
8. जे. यशोदा बनाम क. शोभा रानी (2007) 5 सी सी 730
9. एच. सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम (2011) 4 एससीसी 240
10. जगमेल सिंह बनाम करमजीत सिंह (2020) 5 एससीसी 178
11. राम सुरेश सिंह वीएस प्रभात सिंह (2009) 6 सी सी 681
12. महेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सीआरएलए संख्या 3647/2005
13. अश्वनी दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सीआरएलए 7740/2006

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. चूंकि इन अपीलों को एक ही फैसले के खिलाफ दायर किया गया है और एक ही अपराध संख्या से संबंधित हैं, इसलिए उन्हें एक साथ सुना गया और इस संयुक्त निर्णय द्वारा इसका फैसला किया जा रहा है।

2. विशेष न्यायाधीश (डी.ए.ए.) / अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, एटा द्वारा विशेष सत्र विचारण संख्या-25 वर्ष 1998 (अपराध संख्या-346 वर्ष 1997) में पारित दिनांक 22.11.2008 के निर्णय और आदेश द्वारा, थाना-सोरोन, जिला एटा ने अपीलकर्ताओं को धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत 2,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई और धारा 149 भ0द0वि0 सपठित धारा 307 भ0द0वि0 के तहत दोषी

ठहराया नाई और प्रत्येक को 7 साल के कठोर कारावास और प्रत्येक व्यक्ति को 500/- रुपए जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माने का भुगतान न करने पर तीन माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा। सभी सजाएं साथ- साथ चलने का निर्देश दिया गया था। उक्त निर्णय से असंतुष्ट होकर अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत अपीलों को दायर किया गया है।

3. संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि रिकॉर्ड से लिया गया है, यह है कि सूचनाकर्ता, चंद्र पाल पुत्र रूपराम, निवासी बदनपुर, थाना-सोरों, जिला एटा द्वारा 22.11.1997 को दोपहर 2.45 बजे प्राथमिकी दर्ज की गई थी, इस कथन के साथ कि वर्ष 21/22.11.1997 की रात में, हमेशा की तरह वह अपनी दुकान के अंदर सो रहा था और उसकी पत्नी प्रेमा देवी बच्चों के साथ शेड में सो रही थी और पास में उसके बच्चे भी अलग-अलग खार्टी पर सो रहे थे। दोपहर करीब 12.00 बजे जब सूचनाकर्ता की पत्नी ने शोर मचाया कि बदमाश आए हैं तो वह दुकान का ताला खोलकर बाहर आया। छह सात बदमाश आए और उसके 11 साल के बेटे राजेश को ले गए। सूचनाकर्ता और उसकी पत्नी द्वारा शोर मचाने पर उसके पड़ोसी भी वहां आ गए। जब सभी ने बदमाशों से लड़के को बचाने की कोशिश की तो उन्होंने बंदूकों से फायरिंग की और लड़के को लेकर दक्षिण की ओर चले गए। घटना में जबर सिंह पुत्र सिया राम जाटव गोली लगने से घायल हो गया।

4. उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 22.11.1997 को 6-7 अजात बदमाशों के विरुद्ध धारा 364 एवं 307 भ0द0वि0 के अन्तर्गत प्राथमिकी दर्ज कराई गयी। घायल जबर सिंह की उसी दिन सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, सोरों, एटा में चिकित्सकीय जांच की गई थी। विवेचना के दौरान, दिनांक 4.12.1997 की सूचना के आधार पर, विवेचनाधिकारी अन्य पुलिसकर्मियों के साथ बदनपुर पहुंचे, जहां सूचनाकर्ता चंद्रपाल ने मुलाकात की और अपहत लड़के के संबंध में 70,000 रुपये की फिरौती की मांग के संबंध में एक पत्र सौंपा। पुलिसकर्मी सूचना देने वाले व अन्य व्यक्तियों के साथ अपहृत बालक की तलाश के उद्देश्य से ग्राम गोयटी के समक्ष पुराने ईट भट्टे पर पहुंचे तो सूचना मिली कि सोनपाल कश्यप के पुत्र पूसे के घर में अपहरणकर्ताओं के साथ अपहरणकर्ता मौजूद हैं। उक्त सूचना के आधार पर पुलिसकर्मी सूचनाकर्ता व अन्य व्यक्तियों के साथ ग्राम चौराघाट पहुंचे और सूचनाकर्ता की निशानदेही पर जब पुसे कश्यप के घर की पश्चिमी दीवार के कोने पर पहुंचे तो देखा कि

बंदूक और तमंचा से लैस छह व्यक्ति छत (कोठा) के उत्तरी मुख पर बैठे थे और जब उन्होंने पुलिसकर्मियों को देखा तो उन्हें जान से मारने की नीयत से 5-6 गोलियां चलाई। अपने बचाव में पुलिसकर्मियों ने उन पर फायरिंग भी की और आवश्यक बल प्रयोग करते हुए दो बदमाशों को पूसे के घर के सामने घेर लिया गया और शेष चार बदमाश पुसे, महात्मा, अवधेश और कल्लू भागने में सफल रहे। पकड़े गए अपराधियों में से एक ने अपना नाम श्रीपाल पुत्र छुनी लाल निवासी पचौराघाट, थाना-सोरों, जिला एटा बताया और उसकी तलाश में एक एसबीबीएल बंदूक 12 बोर के साथ तीन जिंदा कारतूस वर्ष 12 बोर बरामद किए गए, जबकि दूसरे व्यक्ति ने अपना नाम इंद्रपाल पुत्र अनार सिंह निवासी बदनपुर थाना-सोरों जिला एटा के रूप में बताया। उसकी तलाशी लेने पर एक तमंचा देशी बोर और दो जिंदा कारतूस बरामद हुए। श्रीपाल के इशारा करने पर अपहृत लड़के को पुसे की छत (कोठे) से बरामद किया गया। सूचनाकर्ता चंद्रपाल ने उसकी पहचान अपने बेटे राजेश के रूप में की, जिसे फिरौती के लिए अगवा किया गया था। आरोपी व्यक्तियों श्रीपाल और इंद्रपाल को गिरफ्तार किया गया और एसबीबीएल बंदूक और देशी पिस्तौल के साथ जिंदा और खाली कारतूस को अलग-अलग कपड़े में सील कर दिया गया और नमूना सील तैयार की गई। जिस प्लास्टिक से अपड़त लड़के को बांधा गया था, उसे भी जब्त कर लिया गया और एक मेमो तैयार किया गया। बरामदगी के आधार पर आरोपी कल्लू, श्रीपाल, इंद्रपाल, महात्मा और पूसे के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 307 भ0द0वि0 के तहत और आरोपी श्रीपाल और इंद्रपाल के खिलाफ धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत मामले दर्ज किए गए। अपहृत बालक राजेश की 4-12-1997 को सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सोरों में अपराह्न 2.45 बजे चिकित्सीय जांच की गई और उसे उसके पिता चन्द्रपाल को सौंप दिया गया। विवेचना पूरी करने के बाद आरोपी श्रीपाल, इंद्रपाल, महात्मा, अवधेशन, कल्लू व पुसे के खिलाफ धारा 364ए व 307 भ0द0वि0 के तहत आरोपी कल्लू, श्रीपाल, इंद्रपाल, महात्मा व पुसे के खिलाफ धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया। सत्र न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय मामलों को सत्र न्यायालय को उपारपित किया गया था।

5. दिनांक 23.05.1998 को धारा 148, 307 भ0द0वि0 सपठित धारा 149 भ0द0वि0 के विरुद्ध सत्र विचारण क्रमांक 193 वर्ष 1998 में अभियुक्त कल्लू, श्रीपाल, इन्द्रपाल एवं महात्मा के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए। उक्त तारीख को उक्त सत्र परीक्षण

रामाराव मामले में आरोपी इंद्रपाल और श्रीपाल के खिलाफ धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत आरोप भी तय किए गए थे। 18.8.1999 को एस.एस.टी. संख्या-25 वर्ष 1998 में आरोपी श्रीपाल, इंद्रपाल, महात्मा, अवधेश, पुसे और कल्लू के खिलाफ धारा 149 भ0द0वि0 सपठित धारा 364 ए और 307 भ0द0वि0 के तहत आरोप तय किए गए थे। दिनांक 4.12.1998 को सत्र विचारण क्रमांक 676 वर्ष 1998 में अभियुक्त पुसे के विरुद्ध धारा 148, 307 भ0द0वि0 सपठित धारा 149 भ0द0वि0 के अन्तर्गत आरोप विरचित किये गये।

6. सभी छह आरोपी व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुए। उन्होंने आरोपों से इनकार किया और विचारण का दावा किया।

7. रिकॉर्ड से यह पता चलता है कि इस मामले में आरोपित आरोपी व्यक्तियों पर विभिन्न सत्र परीक्षणों में मुकदमा चलाया गया था, जिन्हें बाद में मिला दिया गया था। अभियुक्त श्रीपाल, इंद्रपाल, महात्मा, कल्लू और पुसे पर एस.एस.टी. संख्या-25 वर्ष 1998 में, आरोपी कल्लू, श्रीपाल, इंद्रपाल और महात्मा पर सत्र विचारण संख्या-193 वर्ष 1998 में और आरोपी पुसे पर सत्र विचारण संख्या-676 वर्ष 1998 में मुकदमा चलाया गया था। यह रिकॉर्ड से यह भी पता चलता है कि अलग-अलग सत्र परीक्षण के पहले के साक्ष्य अलग-अलग दर्ज किए गए थे, विशेष रूप से, सत्र परीक्षण संख्या-25 वर्ष 1998 और 193 वर्ष 1998 में और यही कारण है कि अलग-अलग सत्र परीक्षणों में दस्तावेजों पर चिह्नित प्रदर्शन जब एक साथ लिया जाता है तो एक भ्रामक स्थिति पैदा होती है और तदनुसार दस्तावेजों पर चिह्नित प्रदर्शनी संख्या कहीं अतिव्यापी होती है, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों का व्यवस्थित मूल्यांकन किया है और इस न्यायालय को इस तथ्य से भी अवगत कराया गया है।

8. विचारण आगे बढ़ा और अभियुक्त व्यक्तिर्या के विरुद्ध आरोपों को अभियुक्त बनाने के लिए अभियोजन पक्ष ने सभी आठ गवाहों से पूछताछ की है, जो इस प्रकार हैं:

1	जबर सिंह	अ०सा०-1, घायल, एस.एस.टी. न- 25-1998
2	चंद्र पाल	अ०सा०-2, सूचनाकर्ता, एस.एस.टी. न- 25-1998
3	राजेश	अ०सा०-३, अप्रहत लड़का एस.एस.टी. न- 25-1998
4	डॉ अवधेश कुमार	अ०सा०-4, चोट रिपोर्ट का गवाह एस.एस.टी. न-25-1998
5	इन्द्र पाल सिंह सोलंकी	अ०सा०-5, विवेचनाधिकारी,

अनुवादित

		एस.एस.टी. न-25-1998
6	इन्स्पेक्टर धर्म सिंह	अ०सा०-6, लड़के की बरामदगी का गवाह एस.एस.टी. न-25-1998
7	एच सी पी निरिधारी सिंह	अ०सा०-7, लेखक एस.एस.टी. न-25-1998
8	एस आई शीतला प्रसाद	अ०सा०-8, पुलिस पर फाइरिंग के केस का विवेचनाधिकारी एस.एस.टी. न- 25-1998

9. मौखिक संस्करण के समर्थन में, अभियोजन पक्ष की ओर से निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित किए गए:

1	चिक प्राथमिकी अपराध संख्या-346/1997	प्रदर्श क-1
2	फ़र्द बरामदगी की कॉपी	प्रदर्श क-2
3	सुपुर्दगिनमा	प्रदर्श क-3
4	चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क-4
5	चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क-5
6	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-6
7	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-7
8	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
9	जी डी की कार्बन कॉपी	प्रदर्श क-9
10	बरामदगी के स्थल की नक्शा नज़री	प्रदर्श क-10
11	आरोप पत्र	प्रदर्श क-11,12,13,14
12	श्री पाल के विरुद्ध अभियोजन स्वीकृति	प्रदर्श क-15
13	इन्द्र पाल के विरुद्ध अभियोजन स्वीकृति	प्रदर्श क-16
14	पूरक आरोप पत्र	प्रदर्श क-17
15	धारा 25 आर्म्स ऐक्ट के तहत चिक प्राथमिकी	प्रदर्श क-18

10. साक्ष्य बंद होने के बाद, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में दिखाई देने वाली दोषीकारक सामग्री अपीलकर्ताओं को धारा 313 द0प्र0सं0 के तहत उनके बयानों में रखी गई थी, जिससे उन्होंने इनकार किया और झूठे निहितार्थ का दावा किया।

11. अपीलकर्ताओं ने अपने बचाव में ब०सा०-1 राम प्रकाश और ब०सा०-2 सौदान सिंह से पूछताछ की है।

12. विचारण के दौरान अभियुक्त अवधेश की मृत्यु हो गई और उसके विरुद्ध विचारण समाप्त कर दिया गया।

13. अ०सा०-1 जबर सिंह घटना घटना का घायल गवाह है। अपने मुख्य परीक्षण में उसने बताया है कि उसका घर सूचनाकर्ता के घर के पास है। रात के 12.00 बज रहे थे। 5-6 बदमाश चंद्रपाल के घर आ गए। शोर मचाते ही उसकी नींद खुल गई। जब बदमाश राजेश पुत्र चंद्रपाल को ले जा रहे थे, तभी वह चिल्लाया कि उसने बदमाश को पहचान लिया, बदमाश ने तुरंत उसे गोली मार दी जो उसके कान में लगी। उन्होंने आगे कहा कि पहले ग्रामीण उन्हें थाना ले गए और उसके बाद अस्पताल ले गए। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने बदमाश अवधेश को पहचान लिया था, जो बदनपुर का निवासी था, लेकिन अन्य बदमाशों को पहचान नहीं सका। वह आगे कहता है कि गोली लगते ही वह बेहोश हो गया। घटना के 15-20 दिन बाद पुलिस ने उसका बयान दर्ज किया। उन्होंने आगे कहा कि जब उन्हें आठ दिन बाद होश आया तो उन्होंने चंद्रपाल को अवधेश का नाम बताया।

14. अ०सा०-2, चंद्रपाल, घटना का सूचनाकर्ता है। उन्होंने लिखित रिपोर्ट की विषय-वस्तु और अपहृत लड़के और हथियारों की बरामदगी सहित अभियोजन के पूरे मामले और उपद्रवियों की भूमिका का भी समर्थन किया है।

15. अ०सा०-3 राजेश अपहल लड़का है। उन्होंने बताया है कि किस तरह से बदमाशों ने उनका अपहरण किया था। उसने यह भी कहा है कि वह बदमाशों की पहचान कल्लू, श्रीपाल, अवधेश, महात्मा और इंद्रपाल के रूप में करता है। उन्होंने यह भी कहा कि उपद्रवियों ने अपने चेहरे नहीं ढके थे। उन्होंने अपने ठीक होने के पूरे दृश्य को पेश किया है।

16. अ०सा०-4 डॉ. अवधेश कुमार ने घायल जबर सिंह और अपहृत बालक राजेश की मेडिकल जांच की है और चोट की रिपोर्ट को प्रदर्श क-4 और प्रदर्श क-5 के रूप में सिद्ध किया है।

17. अ०सा०-5 एस.एस.आई. इंद्रपाल सिंह सोलंकी विवेचनाधिकारी हैं। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में विवेचना की कार्यवाही को साबित किया है और नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-6 और प्रदर्श क-7) को भी साबित किया है। उन्होंने आरोप पत्र (प्रदर्श क-8) को भी साबित कर दिया है।

18. अ०सा०-6 निरीक्षक धर्म सिंह संबंधित थाने के थानाध्यक्ष वह अपहृत लड़के की बरामदगी के लिए विवेचनाधिकारी के साथ भी गए और अपहत लड़के की बरामदगी, बदमाशों द्वारा पुलिस पर फायरिंग, आरोपी व्यक्तियों के कब्जे से बरामद हथियार, जिंदा और खाली कारतूस, जिस रस्सी से अपहृत लड़के को बांधा गया था, आंखों पर पट्टी और खाली कारतूस, जिसे पुलिस ने बचाव में गोली मार दी थी, को साबित किया है।

19. अ०सा०-7, हेड कांस्टेबल गिरिधारी सिंह, प्राथमिकी के लेखक हैं और उन्होंने चिक प्राथमिकी और जी.डी. रपट संख्या-4 को क्रमशः 2.45 बजे प्रदर्श क-18 और प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया है।

20. अ०सा०-8, उप-निरीक्षक शीतला प्रसाद, अपराध संख्या-354 वर्ष 1997 के विवेचनाधिकारी भ०द०वि० थाना-सोरों की धारा 147, 148, 149, 307 और अपराध संख्या-355 वर्ष 1997 और 356 वर्ष 1997, जो उन्हें 4.12.1997 को सौंप दिया गया था। उन्होंने विवेचना की कार्यवाही, नक्शा नजरी (प्रदर्श क-10) और आरोप पत्र (प्रदर्श क-11 और प्रदर्श क-17) को साबित कर दिया है। उन्होंने आरोपी श्रीपाल और इंद्रपाल के खिलाफ धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत अभियोजन शुरू करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के अनुमति पत्रों को क्रमशः ए-15 और प्रदर्श क-16 के रूप में साबित किया है। उन्होंने चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-18) को भी साबित किया है।

21. ब०सा०-1, राम प्रकाश @ प्रकाश ने अपने बयान में कहा है कि चंद्रपाल उसका चाचा है और अपहरणकर्ता राजेश उसका भाई है। शोर सुनकर वह चंद्रपाल के घर गया था। उन्होंने आगे कहा है कि उपद्रवियों ने अपने चेहरे नहीं ढके थे। वह घटना से पहले आरोपी व्यक्तियों

इंद्रपाल, कल्लू, श्रीपाल, पुसे, महात्मा और अवधेश को जानता था। वे राशन लेने के लिए उनके गांव की दुकान पर आए थे। उन्होंने राजेश का अपहरण नहीं किया था। अवधेश ने जबर सिंह पर गोली नहीं चलाई थी। वह अन्य ग्रामीणों के साथ थाने भी गया था। चूंकि बदमाशों की पहचान नहीं हो सकी, इसलिए अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई। उन्होंने आगे कहा कि उनके गांव में मजबूत पार्टी-बंदी थी। उन्होंने आगे कहा कि उनके सामने न तो अपहृत लड़का बरामद किया गया था और न ही पुलिस पक्ष और बदमाशों के बीच कोई गोलीबारी हुई थी। आरोपी इंद्रपाल और श्रीपाल के कब्जे से उसके पास से कोई हथियार बरामद नहीं हुआ था। उसने बदमाशों को राजेश को अपने साथ ले जाते देखा था।

22. ब०सा०-2 सौदान सिंह ने बताया है कि घटना के दिन लगभग 11.00-12.00 बजे उनके चाचा 11.00 चंद्रपाल (सूचनाकर्ता) की भैंस बछड़ा दे रही थी। भैंस के शांत होने के कारण गैस लालटेन जल रही थी। उसका घर चंद्रपाल (सूचनाकर्ता) के घर के सामने है। राजेश को अज्ञात बदमाशों ने अगवा कर लिया था। बदमाश आए तो उनके चेहरे बेनकाब थे। वह, जबर सिंह और चंद्रपाल उन्हें पहचान नहीं सके। वह प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए थाना भी गया था, लेकिन उपद्रवियों को पहचाना नहीं जा सका, इसलिए अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई। घटना के बारे में पुलिस ने उससे पूछताछ नहीं की।

23. पूर्वोक्त साक्ष्य के आधार पर, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष ठोस, सुसंगत और विश्वसनीय सबूतों के आधार पर आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अपराध स्थापित करने में सफल रहा है और आरोपी के खिलाफ आरोप उचित संदेह से परे साबित हुए और तदनुसार दोषसिद्धि आदेश पारित किया गया।

24. दोनों अपीलों में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री नूर मोहम्मद और श्री अमित सिन्हा, अपर शासकीय अधिवक्ता और सुश्री मयूरी मेहरोत्रा, विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

25. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने विभिन्न आधारों पर आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती दिया है। यह तर्क दिया गया है कि आरोपी व्यक्तियों का नाम प्राथमिकी में नहीं है और अजात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जबकि सबूतों से पता चलता है कि अपहरण के समय घटनास्थल पर आरोपी व्यक्तियों की पहचान की गई थी। यह भी बताया गया है कि सूचना देने वाले के बेटे का अपहरण किसी फिरौती के लिए नहीं किया गया था और इसलिए, अभियोजन का मामला धारा 364 ए भ0द0वि0 के दायरे में नहीं आता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि तथ्य के गवाहों के साक्ष्य एक दूसरे के विरोधाभासी हैं। तथाकथित पुलिस गोलीबारी मामले में, सभी अभियुक्तों को बरी कर दिया गया है और विचारण न्यायालय द्वारा यह पाया गया है कि पुलिस गोलीबारी की कथित घटना झूठी थी और चूंकि अपहृत लड़के को उपर्युक्त पुलिस गोलीबारी मामले की घटना में बरामद किया गया बताया गया है, जिसकी कहानी गवाहों

द्वारा गलत साबित की गई है, प्रस्तुत अपीलकर्ताओं के कब्जे से अपहृत लड़के की कथित बरामदगी भी झूठी कहानी साबित हो रही है। यह तर्क दिया गया है कि पिछली दुश्मनी के कारण, अपीलकर्ताओं को इस मामले में झूठा फंसाया गया है और कुछ अन्य बिंदुओं पर भी यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता आरोपों से बरी होने के योग्य हैं और अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

26. प्रति प्रतिवाद, अपर शासकीय अधिवक्ता, जोरदार अपील का विरोध करते हुए कहा है कि सूचनाकर्ता के बेटे का अपहरण फिरौती के लिए किया गया था। अपहरण का तथ्य स्वयं अपहृत लड़के के ठोस और विश्वसनीय सबूतों से साबित हुआ है, जिसकी पुष्टि उसके पिता और गांव के गवाह जबर सिंह के सबूतों से पूरी तरह से होती है। घायल जबर सिंह की चोट की रिपोर्ट इस तथ्य की पुष्टि करती है कि अपहरण के अपराध के दौरान, घायल जबर सिंह को अपीलकर्ताओं द्द्वारा गोली मार दी गई थी। सबूतों से यह भी पता चलता है कि सूचनाकर्ता द्वारा फिरौती पत्र प्राप्त किया गया था, जो अपीलकर्ताओं द्वारा भेजा गया था और इसे विवेचनाधिकारी को सौंप दिया गया था। इसके अलावा, कई अन्य बुनियादों के आधार पर, प्रस्तुत अपीलों को विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा चुनौती दी गई है और अपीलों को खारिज करने की प्रार्थना की गई है।

27. प्रस्तुत मामले के साथ आगे बढ़ने के लिए, धारा 364 ए भ0द0वि0 के प्रावधानों पर एक नज़र डालना वांछनीय होगा, जो इस प्रकार है:

जो कोई ऐसे व्यपहरण या व्यपहरण के पश्चात् किसी व्यक्ति का अपहरण या व्यपहरण करेगा या किसी व्यक्ति को निरुद्ध रखेगा और ऐसे व्यक्ति को मृत्यु कारित करने या उपहति कारित करने की धमकी देगा या अपने आचरण से युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करेगा कि सरकार या किसी विदेशी राज्य या अंतर्राष्ट्रीय अंतर-सरकारी संगठन को बाध्य करने के लिए ऐसे व्यक्ति को मृत्यु या उपहति या क्षति या मृत्यु कारित की जा सकेगी या कोई अन्य व्यक्ति जो कोई कार्य करता है या उससे परहेज करता है या फिरौती देता है, मृत्युदंड, या आजीवन कारावास से दंडनीय होगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दया सिंह लाहौरिया उर्फ राजीव सूदन बनाम राजस्थान राज्य, (2007) 5 एस.सी.सी. 634 सपठित सुमन सूद उर्फ कमल जीत कौर बनाम राजस्थान राज्य में धारा 364 ए भ0द0वि0 के आवेदन के लिए कुछ आवश्यकताओं को निर्धारित किया है और यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है:

"57. इससे पहले कि उपरोक्त धारा आकर्षित हो और एक व्यक्ति को दोषी ठहराया जाए, अभियोजन पक्ष को निम्नलिखित अवयवों को साबित करना होगाः

(1) अभियुक्त ने किसी व्यक्ति का अपहरण, व्यपहरण या हिरासत में लिया होग
(2) उसने ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध या हिरासत में रखा होगा; और

(3) अपहरण, व्यपहरण या हिरासत फिरौती के लिए होना चाहिए।

29. इस मामले में पता लगाया जाने वाला पहला और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्या प्रस्तुत अपीलकर्ताओं द्वारा सूचनाकर्ता के नाबालिग बेटे का अपहरण कर लिया गया था और अपहरण के अपराध के दौरान घायल जबर सिंह को आग्नेयास्त्र से चोट लगी थी।

30. सूचनाकर्ता अ०सा०-1 द्वारा सिद्ध प्राथमिकी (प्रदर्श क-1) के अवलोकन से पता चलता है कि घटना के समय 6-7 आरोपी व्यक्ति सूचनाकर्ता के पुत्र राजेश कुमार को ले गए और जब उनके चीखने पर उनके पड़ोसी भी वहां आए और लड़के को बचाने की कोशिश की, तो आरोपी व्यक्ति लड़के को अपनी बंदूकों से गोली चलाते हुए भाग गए और बंदूक की गोली से जबर सिंह और वह घायल हो गए। चोट लगी है। उक्त प्राथमिकी प्राथमिकी के मुंशी अ०सा०-7 के हस्तलेखन में लिखी गई थी, जिसने इस पर अपनी लिखावट और हस्ताक्षर साबित किए हैं और पंजीकरण जी.डी. को प्रदर्श क-9 के रूप में भी साबित किया है।

31. अपनी जिरह में, अ०सा०-1 आगे कहता है कि आरोपी व्यक्ति अवधेश, इंद्रपाल और महात्मा उसके अपने गांव के मूल निवासी हैं, जो उससे परिचित हैं और आगे वह कहता है कि आरोपी व्यक्तियों को गैस लालटेन के प्रकाश में उसके द्वारा बहुत अच्छी तरह से पहचाना गया था। एक स्थान पर, वह कहता है कि वह आरोपी व्यक्तियों को नाम से नहीं जानता था, लेकिन बाद में अपने बयान में, उसने घटना में शामिल आरोपी व्यक्तियों का नाम लिया। इसके अलावा, वह कहता है कि वह घटना से पहले आरोपी व्यक्तियों को उनके नाम और चेहरे से जानता था और किसी भी आरोपी व्यक्ति ने अपना चेहरा नहीं छिपाया था। वह निष्पक्ष रूप से स्वीकार करता है कि उसने अपनी रिपोर्ट में आरोपी व्यक्तियों का नाम नहीं लिया है, न ही विवेचनाधिकारी को इसका खुलासा किया है और इस गवाह की आगे की गवाही से पता चलता है कि उसके पास आरोपी व्यक्तियों के नाम छिपाने का उचित कारण था।

32. इस गवाह का कहना है कि घटना के कारित किए जाने के दौरान, जबर सिंह पर गोली चलाई गई थी, जिससे उसके कान पर चोट लगी थी। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि यह आरोपी अवधेश था जिसने जबर सिंह पर गोली चलाई थी, लेकिन अगर वह अवधेश सिंह के नाम का खुलासा करता, तो वह अपने बेटे की हत्या से डरता था क्योंकि उसका बेटा आरोपी व्यक्तियों की में था। अपनी जिरह में, वह निष्पक्ष रूप से स्वीकार करता है किः

मैंने बयान में कहा था कि अवधेश ने जबर सिंह को फायर मारा था। पांच पदम की दूरी से मारा था। अवधेश का नाम मैंने रिपोर्ट में इसलिए नहीं लिखाया था कि मेरा लड़का फंसा हुआ था। अगर मैं नाम लिखाता तो मेरा लड़का मारा जाता।

33. अ०सा०-2 का उपरोक्त बयान हमारे द्वारा उन परिस्थितियों की व्याख्या करने में सक्षम पाया गया है जिनके तहत आरोपी व्यक्तियों के नाम और पते को बहुत अच्छी तरह से जानते हुए भी, उनकी पहचान का खुलासा प्राथमिकी

में अ०सा०-2 द्वारा नहीं किया गया था और यह अजात व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज किया गया था। यह भी गरीब पिला अ०सा०-2 का एक मासूम बयान है कि उसने अपने जवान बेटे की जान बचाने के लिए आरोपी अवधेश का नाम विवेचनाधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति तक को नहीं बताया।

34. अ०सा०-1 घायल जबर सिंह ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि जब वह रात में जागा तो उसने देखा कि कुछ आरोपी व्यक्ति चंद्रपाल के पुत्र को ले जा रहे थे और जब वह चिल्लाया, तो उसे एक आरोपी अवधेश ने गोली मार दी, जो उसके ही गांव का मूल निवासी था और उसके कान पर बन्दूक की चोट लगी थी। उसे थाना ले जाया गया और उसके बाद अस्पताल ले जाया गया। जिरह में उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी अवधेश ने घटना के समय अपना चेहरा नहीं छिपाया था, लेकिन वह अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों को नहीं जानता था और घटना के आठ दिन बाद, जब उसे होश आया, तो उसने सूचनाकर्ता चंद्रपाल को इस तथ्य का खुलासा किया।

35. अ०सा०-3, राजेश, अपहरण किया गया लड़का है और मुख्य गवाह है। अपनी गवाही में, उन्होंने इस तथ्य की पुष्टि की है कि घटना के समय, रात में आरोपी व्यक्ति कल्लू, श्रीपाल, अवधेश, महात्मा और इंद्रपाल उन्हें अपने साथ बंदूकें और देशी पिस्तौल के साथ अपने घर से ले गए और जब उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उनका पीछा किया गया, तो उनके द्वारा गोली चलाई गई। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि चूंकि आरोपी व्यक्ति उनकी किराने की दुकान पर आया था, इसलिए वे घटना से पहले उन्हें जानते थे। अपनी जिरह में, उसने कहा है कि किसी भी आरोपी व्यक्ति ने अपना चेहरा नहीं छिपाया था। वे खुले चेहरे के साथ आए थे, और घटना के दौरान, उसके हाथ और नितंब में कुछ चोटें भी आई हैं।

36. एस.एस.टी. क्रमांक 25 वर्ष 1998 में विवेचनाधिकारी अ०सा०-5 ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि अपहृत बालक राजेश ने अपने बयान में बताया था कि घटना में पुसे, श्रीपाल, इंद्रपाल, अवधेश, कल्लू और महात्मा ने उसका अपहरण किया था। उन्होंने इस तथ्य की पुष्टि की है कि जब सूचनाकर्ता थाना में आया था, तो वह स्वयं वहां मौजूद था और उसने गवाह जबर सिंह, जो बोलने की हालत में नहीं था, को अस्पताल भेजा था। उन्हें बताया गया कि कुछ अजात व्यक्तियों ने राजेश का अपहरण कर लिया था और उन्हें यह भी नहीं बताया गया कि गोली आरोपी अवधेश ने चलाई थी। यहां यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि आरोपी व्यक्तियों के नामों का खुलासा न करने के कारण पर इस फैसले के पहले भाग में चर्चा की गई है। अ०सा०-6 के इंस्पेक्टर धरम सिंह द्वारा भी यही बयान दिया गया है कि उनकी उपस्थिति में प्राथमिकी दर्ज की गई थी, लेकिन आरोपी व्यक्तियों के नामों का खुलासा थाना में सूचनाकर्ता या गवाहों द्वारा नहीं किया गया था।

37. अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-4 डॉ. अवधेश कुमार को इस तथ्य को साबित करने के लिए पेश किया है कि अपहरण के अपराध

के दौरान घायल जबर सिंह को एक बंदूक की गोली लगी थी।

38. अ०सा०-4 डॉ. अवधेश कुमार ने अपने साक्ष्य में कहा है कि दिनांक 22.11.2003 को प्रातः 3.20 बजे उन्होंने थाना-सोरों के घायल जबर सिंह का चिकित्सकीय परीक्षण किया था, जहां वे चिकित्सा अधिकारी के रूप में कार्यरत थे और घायल जबर सिंह पर चोट के निशान पाए गए:

"(1) अंग क्षति दायें कान और फायर आर्म घाव का आकार 10 सेमी X 4 सेमी X हड्डी दायें पर गहरा सिर की तरफ लगभग 9 सेमी। पार्श्व से दायें आई ब्रो। कालापन और जला वर्तमान, चोट यू / औ सलाह एक्स रे खोपड़ी (एंट्रो पीछे और पार्श्व दृश्य) रखा। एक्सरे और आगे के प्रबंधन के लिए जिला अस्पताल एटा की रिपोर्ट देखें।

(2) घर्षण चोट आकार 2 सेमी X 0.5 सेमी लेफ्टिनेंट माथे पर बाएं भौ से लगभग 2 सेमी ऊपर।

राय - चोट नं। (1) किसी भी प्रकार के आग्नेयास्त्र और चोट के कारण नहीं। (2) घर्षण के कारण।

चोट नं. (1) यू / ओ सलाह एक्स रे खोपड़ी (एंटेरो पीछे और पार्श्व दृश्य) रखा।

चोट सं। (2) प्रकृति में सरल।
सभी चोट की अवधि- ताजा।

अ०सा०-4 ने चोट रिपोर्ट को प्रदर्श-का-4 साबित किया है। यहां यह बताना जरूरी है कि घायल जबर सिंह का मेडिकल परीक्षण पुलिस द्वारा दी गई 'चिट्ठी मजरुबी' (चिकित्सा परीक्षण के लिए पत्र) के आधार पर किया गया है।

39. यद्यपि घायल जबर सिंह की एक्स-रे रिपोर्ट रिकॉर्ड पर उपलब्ध है जिसमें दाहिनी अस्थायी हड्डी का फ्रैक्चर पाया गया है, लेकिन उक्त एक्स-रे रिपोर्ट साक्ष्य में साबित नहीं हुई थी।

40. हालांकि, यहां यह उल्लेख करना उचित है कि घायल जबर सिंह के दाहिने कान पर बन्दूक की चोट लगी है और उसका आयाम 10 सेमी X 4 सेमी X हड्डी गहरा था। यह चोट दाहिनी भौ के 9 सेमी पार्श्व थी जिसमें कालापन और जलन भी मौजूद थी, जिसका अर्थ है कि चोट घायल के माथे क्षेत्र में शरीर के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर एक करीबी सीमा से लगाई गई थी, जो खुद बोलती है कि गोली घायल को मारने के इरादे से चलाई गई थी, जो अपहृत लड़के को बचाने की कोशिश कर रहा था।

41. एक्स-रे रिपोर्ट को साबित न करने और इस तरह अभियोजन पक्ष के मामले को धारा 307 भ0द0वि0 के दायरे में रखने के लिए कानूनी कमी का दावा करते हुए हमें धारा 307 भ0द0वि0 के प्रावधानों के अवलोकन तक ले जाता है क्योंकि अपीलकर्ताओं की सजा धारा 307/149 भ0द0वि0 के तहत की गई है, घायल जबर सिंह पर उसे मरने के इरादे से

आग्नेयास्त्रों को चोट पहुंचाने के विशिष्ट आरोप के लिए भी लगाया गया है।

42. भ०द०वि० की धारा 307 निम्नानुसार प्रदान करती है:

"307. हत्या का प्रयत्न जो कोई ऐसा अभिप्राय या जान से और ऐसी परिस्थितियों में कोई कार्य करता है कि, यदि उस कार्य द्वारा वह मृत्यु कारित करता है तो वह हत्या का दोषी होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा, और यदि इस तरह के कृत्य से किसी व्यक्ति को चोट पहुंचाई जाती है, तो अपराधी या तो आजीवन कारावास के लिए उतरदायी होगा, या ऐसी सजा के लिए जो पहले उल्लेख किया गया है।

आजीवन कारावास के दोषियों द्वारा प्रयास जब इस धारा के अधीन अपराध करने वाला कोई व्यक्ति आजीवन कारावास की सजा के अधीन होता है, तो यदि उसे चोट पहुंचाई जाती है, तो उसे मृत्यु दंड दिया जा सकता है।

43. धारा 307 भ0द0वि0 के संदर्भ में तय कानून यह है कि यह आवश्यक नहीं है कि मृत्यु का कारण बनने में सक्षम चोट को लगाया जाना चाहिए था। धारा 307 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए जो सामग्री है, वह इरादा या ज्ञान है, जिसके साथ, इसके परिणाम की परवाह किए बिना सब कुछ किया गया था। इरादा और ज्ञान परिस्थितियों की समग्रता से अनुमान के मामले हैं और केवल परिणामों से नहीं मापा जा सकता है। वास्तव में इस सवाल का निर्धारण करने के लिए ध्यान में रखने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या धारा 307 भ0द0वि0 के तहत अपराध किया गया है, इरादा है न कि चोट, भले ही वह साधारण या मामूली हो। हत्या के इरादे का सवाल या मौत की जानकारी हमेशा तथ्य का सवाल होता है, कानून का नहीं। हरि किशन और हरियाणा राज्य बनाम सुखबीर सिंह, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 2127 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि अभियुक्त का इरादा या जान ऐसा होना चाहिए जो हत्या का गठन करने के लिए आवश्यक हो। मध्य प्रदेश राज्य बनाम हरजीत सिंह और अन्य, ए.आई.आर. 2019 एस.सी. 1120 में, यह दोहराया गया था कि धारा 307 भन्द०वि० के लिए यह आवश्यक नहीं है कि घोट शरीर के महत्वपूर्ण हिस्से पर होनी चाहिए। केवल मृत्यु कारित करने के आशय या जान से चोट पहुँचाना ही धारा 307 भ0द0वि0 के लिए पर्याप्त है।

44. चूंकि डॉक्टर द्वारा घायल की चोट में कालापन और जलन पाई गई थी, इसलिए गोली एक करीबी सीमा से चलाई गई हो सकती है और घायल अ0सा0-1 इस बिंदु पर एक विशिष्ट बयान देता है कि गोली अवधेश द्वारा 3-4 कदम की दूरी से चलाई गई थी, जो अपीलकर्ताओं की और से घायल को मारने के इरादे को स्पष्ट करती है।

45. रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर, हम इस विचार के हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सबूतों पर गहनता से विचार किया

है और धारा 307/149 भ0द0वि0 के तहत अपीलकर्ताओं को सही तरीके से दोषी ठहराया है। उल्लेखनीय है कि यद्यपि आरोपी अवधेश की मृत्यु हो चुकी है, जिसे घायल जबर सिंह पर गोली चलाने का मुख्य हमलावर कहा जाता है, लेकिन चूंकि अपराध गैरकानूनी सभा के सभी सदस्यों के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया गया था, इसलिए गैरकानूनी सभा का सदस्य होने के नाते, सभी अपीलकर्ता पूर्वोक्त अपराध के लिए संयुक्त रूप से दोषी थे और उस आधार पर उनकी दोषसिद्धि कानूनी और उचित है।

46. सुशांत दास बनाम उड़ीसा राज्य, (2016) 4 एस.सी.सी. 371 में कानूनी स्थिति स्पष्ट की गई है, जिसमें यह माना गया था कि:

"जब एक बार पांच या अधिक व्यक्तियों की गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य की भागीदारी दिखाई जाती है, जो धारा 149 के तहत इस तरह के गैरकानूनी जमावड़े के सदस्य के रूप में अपराध में शामिल हैं, तो यह आवश्यक नहीं है कि अपराध के मामले में इस तरह के गैरकानूनी जमाव के प्रत्येक सदस्य द्वारा विशिष्ट प्रत्यक्ष कार्य किया जाना चाहिए। जो दिखाया जाना आवश्यक है वह विधानसभा के एक सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में एक सदस्य के रूप में भागीदारी है या उस विधानसभा का सदस्य होने के नाते, ऐसे व्यक्ति को पता था कि ऐसी किसी भी सामान्य वस्तु के अभियोजन में क्या होने की संभावना है। गैरकानूनी सभा के सदस्य के उपरोक्त आचरण में से किसी एक के सबूत के सबूत की स्थिति में, धारा 149 में निर्धारित अपराध साबित होगा।

47. सूचनाकर्ता के बेटे के अपहरण और घायल जबर सिंह को चोट पहुंचाने के संबंध में अपना मामला सफलतापूर्वक साचित करने के बाद, अपहरण किए गए लड़के को बचाने की कोशिश करते हुए. अभियोजन पक्ष आगे दावा करता है कि अपहरण किए गए लड़के को अपीलकर्ताओं के कब्जे से बरामद किया गया था।

48. सूचनाकर्ता अ0सा0-2 अ०सा० और पीडित/अपहरण लड़के अ०सा०-3 दोनों ने इस तथ्य को साबित कर दिया है कि पुलिस और आरोपी व्यक्तियों के बीच मुठभेड़ के बाद लड़के को बरामद किया गया था। सूचनाकर्ता अ०सा०-2 का कहना है कि विवेचनाधिकारी उसे बरामदगी वाली जगह पर ले गया था और वहां दोनों पक्षों के बीच फायरिंग हुई। उसके बेटे को कुठिया से बरामद किया गया। अपहृत लड़का अ०सा०-3 भी यही तथ्य बताता है। विवेचनाधिकारी अ०सा०-5 भी अपहल की बरामदगी की कहानी को साबित करता है और कहता है कि पुलिस मुठभेड़ के बाद जिसमें आरोपी व्यक्तियों ने पुलिस पक्ष पर गोलियां चलाई, जिसका पुलिस ने बचाव में जवाब दिया, आरोपी व्यक्तियों इंद्रपाल और श्रीपाल को गिरफ्तार कर लिया गया और बाकी आरोपी व्यक्ति भाग गए। लड़के को कुठिया से निकाला गया, जिसके हाथ और मुंह को रस्सी से बांधा गया, हथियार और कारतूस भी बरामद किए गए, बरामदगी का ज्ञापन (प्रदर्श क-7) तैयार किया गया। लड़के को बांधने में

इस्तेमाल की जाने वाली रस्सी और कपड़े को भी अ०सा०-5 द्वारा सामग्री प्रदर्श का 1, 2 और 3 के रूप में साबित किया गया था। अ०सा०-6 इंस्पेक्टर धरम सिंह, जो लड़के की बरामदगी के समय पुलिस के साथ थे, भी यही कहानी बताते हैं। तथापि, किसी भी अभियुक्त व्यक्ति अथवा पुलिसकर्मी को कोई चोट नहीं आई। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने पूरी तरह से साबित कर दिया है कि अपहरण किए गए लड़के को आरोपी अपीलकर्ताओं के कब्जे से बरामद किया गया था।

49. अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य के खिलाफ, ब०सा०-1 और ब०सा०-2 के बयान इसकी संपूर्णता में विश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं क्योंकि एक स्थान पर दोनों बचाव साक्षी अभियोजन पक्ष के संस्करण का कुल खंडन करते हैं जबकि कुछ स्थानों पर, उनके बयान अभियोजन की कहानी के महत्वपूर्ण तथ्यों का समर्थन करते हैं।

50. हमने यह भी नोट किया है कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयानों में, आरोपी व्यक्तियों ने अपने बचाव में कोई विशिष्ट बयान नहीं दिया है। उन्होंने बस इतना कहा है कि उनके खिलाफ साबित किए गए सबूत और परिस्थितियां गलत हैं और यहां तक कि अपड़त लड़के को उनके कब्जे से पुनः प्राप्त करने और उसे बचाने के बारे में सवाल का उत्तर केवल 'गलत' के रूप में दिया गया है। हम शिवाजी साहब राव बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1973 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1033 पर जोर देना चाहते हैं, जिसमें यह देखा गया है किः

"कैदी का ध्यान हर अभियोगात्मक सामग्री की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए ताकि वह इसे समझाने में सक्षम हो। जहां इस तरह की चूक हुई है, यह वास्तव में कार्यवाही को दूषित नहीं करता है और इस तरह के दोष से उत्पन्न पूर्वाग्रह अभियुक्त द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए। यह अभियुक्त के लिए अधिवक्ता पर कॉल करने के लिए, दिखाने के लिए खुला है कि क्या स्पष्टीकरण अभियुक्त उसके खिलाफ स्थापित परिस्थितियों के संबंध में है, लेकिन उसे करने के लिए नहीं डाल दिया है और आरोपी ऐसी परिस्थितियों के किसी भी युक्तिसंगत या उचित स्पष्टीकरण अपीलीय अदालत की पेशकश करने में असमर्थ है, तो अदालत मान सकती है कि कोई स्वीकार्य जवाब मौजूद है और भले ही आरोपी से उचित समय पर पूछताछ की गई हो, विधारण न्यायालय में वह उन परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए कोई अच्छा आधार प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं होता, जिन पर विचारण न्यायालय ने अपनी दोषसिद्धि के लिए भरोसा किया था।

51. पूर्वोक्त चर्चाओं के आलोक में, हम ब०सा०-1 और ब०सा०-2 की गवाही को अविश्वसनीय पाते हैं और अपीलकर्ताओं को इसका कोई लाभ नहीं दिया जा सकता है।

52. इसके अलावा, अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने के लिए बाध्य है कि फिरौती की मांग शिकायतकर्ता के परिवार से की गई थी

और यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि फिरौती के भुगतान की मांग करने वाले किसी भी संचार के अभाव में, अभियोजन का मामला धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत कवर नहीं किया जाएगा।

53. इस मामले में, सूचनाकर्ता चंद्रपाल, अ०सा०-2, जो अपड़त लड़के का पिता है, ने अपनी परीक्षा में मुख्य रूप से गवाही दी कि

लड़के की फिरौती के लिए चिट्ठी आई थी, जिसे मैंने एसआई धर्म सिंह को दे दिया था, जिसकी फोटो प्रति अभिलेख में शामिल है। इस लड़के की वापसी के लिए फिरौती 70,000 (सत्तर हजार) मांगी गई थी। यह चिट्ठी डाक से आई थी। फिरौती की चिट्ठी मैंने दरोगा जी को गांव में दी थी जब दरोगा जी 14 दिन बाद गांव आए थे।

इंस्पेक्टर धरम सिंह, अ0सा0-6, जो, जब पुलिस ने अपहृत लड़के को उनके कब्जे से बरामद करने के लिए आरोपी व्यक्तियों को घेर लिया, मामले के विवेचनाधिकारी एस.एस.आई. इंद्रपाल सिंह सोलंकी के साथ थे, ने अपने साक्ष्य में कहा गया है कि जब पुलिस बल आरोपी व्यक्तियों के ठिकाने की जांच करने और अपड़त लड़के की बरामदगी के लिए बदनपुर आया, तो अपहृत के पिता चंद्रपाल ने उनसे मुलाकात की और फिरौती पत्र दिखाया जो उसे मिला था और मामले के विवेचनाधिकारी एस.एस.आई. इंद्रपाल सिंह सोलंकी को सौंप दिया। उन्होंने अंतर्देशीय पत्र द्वारा भेजे गए फिरौती पत्र की फोटोकॉपी को प्रदर्श क-7 को साबित किया है।

54. फिरौती का भुगतान करने के लिए "फिरौती के लिए कीमत या मांग का भुगतान करने के लिए" के रूप में लिया जा सकता है, जैसा कि ब्लैक लॉ डिक्शनरी में परिभाषित किया गया है. और 'मांग' को "आवश्यकता के रूप में या किसी के कारण दावा करने के लिए", "अधिकार के साथ पूछना" "दावा" आदि के रूप में लिया जा सकता है। यह भी आवश्यक है कि फिरौती की मांग को संप्रेषित और दावा किया जाना चाहिए या अनिवार्य अनुरोध या अधिकार के साथ पूछना केवल तभी हो सकता है जब मांग को सूचित किया जाए। पारगमन या संप्रेषित करने या जानकारी देने या जान को एक दूसरे के साथ साझा करने के लिए व्यापक अर्थों में संचार है और इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संचार करने के लिए 'मांग' के लिए आवश्यक रूप से उस व्यक्ति को जानकारी देने की आवश्यकता होती है जिसके लिए यह अभिप्रेत है। यह केवल इस जानकारी की प्राप्ति है कि फिरौती का भुगतान करने का सवाल उठेगा। उक्त डिक्टम को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा नेत्रापाल बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), 2001 0 सुप्रीम (डीईएल) 293 में प्रख्यापित किया गया था।

55. शेख अहमद बनाम तेलगाना राज्य, 2021 सुप्रीम (एस.सी.) 304 में, यह माना गया है कि धारा 364 ए भ0द0वि0 की सामग्री को पूर्वोक्त प्रावधान के तहत आरोप को घर लाने के लिए आवश्यक रूप से साबित किया जाना चाहिए और उक्त धारा में प्रदान की गई दूसरी शर्त "ऐसे व्यक्ति को मौत या चोट पहुंचाने की धमकी देती है, या उसके आचरण से एक उचित

आशंका पैदा होती है कि ऐसे व्यक्ति को मौत या चोट पहुंचाई जा सकती है, या सरकार या किसी विदेशी राज्य या अंतर्राष्ट्रीय अंतर सरकारी संगठन या किसी अन्य व्यक्ति को कोई कार्य करने या फिरौती देने से रोकने के लिए मजबूर करने के लिए ऐसे व्यक्ति को चोट या मृत्यु का कारण बनता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि दूसरी शर्त भी एक पूर्ववर्ती शर्त है, जिसे धारा 364 ए भ0द0वि0 को आकर्षित करने के लिए पूरा किया जाना आवश्यक है और पूर्वोक्त मामले में चूंकि दूसरी शर्त पूरी नहीं हुई थी, इसलिए धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत दोषसिद्धि और सजा को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था और आरोपी को केवल अपहरण के अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था।

56. यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या धारा 364 ए भ0द0वि0 की सामग्री प्रस्तुत मामले में बनाई गई है या नहीं, प्रदर्श क-7 की सामग्री को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। प्रदर्श-7 में उल्लेख किया गया है कि सूचनाकर्ता अपने बेटे की रिहाई के लिए 70000/- रुपये लेकर अकेले आएगा और यदि उसके साथ कुछ अन्य व्यक्ति हैं या मामले की सूचना पुलिस को दी जाती है. तो उसके बेटे को मार दिया जाएगा। यह भी उल्लेख किया गया है कि सूचना देने वाले का अपहृत पुत्र आरोपी व्यक्तियों की अभिरक्षा में है।

57. इस स्तर पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा एक प्रासंगिक दलील दी गई है कि तथाकथित फिरौती पत्र को साक्ष्य में ठीक से साबित नहीं किया गया है और इस तरह इसे साक्ष्य में नहीं पढ़ा जा सकता है। यह जोरदार तर्क दिया गया है कि कथित फिरौती पत्र, जो सूचनाकर्ता द्वारा पुलिस को सौंपा गया था, मूल रूप से रिकॉर्ड पर नहीं है, बल्कि, उसी की एक फोटोकॉपी रिकॉर्ड पर पाई जाती है, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा कथित फिरौती पत्र की मूल प्रति की उपलब्धता का पता लगाए बिना गलत तरीके से प्रदर्शित किया गया है।

58. अ०सा०-6 के मुख्य परीक्षण के अवलोकन से, फिरौती पत्र के संबंध में उसके द्वारा जो कुछ भी कहा गया है, उसे शब्दशः पढ़ना उचित होगा और वह कहता है किः

पत्रावली कागज संख्या 98/1 मूल अंतर्देशीय पत्र की सही छाया प्रति है, जिसको चंद्रपाल वादी ने दौरान विवेचना एस.एस.आई इंद्रपाल सिंह सोलंकी के सामने मुझे दी थी, जिसको देखकर गवाह ने कहा कि यह वही चिट्ठी की छाया प्रति है जिस पर प्रदर्श क-7 डाला गया है।

59. अ०सा०-2 ने अपने बयान में कहा है कि फिरौती पत्र उसके द्वारा 14 दिनों के बाद पुलिस को सौंप दिया गया था और इसे डाक द्वारा भेजा गया है। अ०सा०-6 धर्म सिंह ने यह भी कहा कि पत्र चंद्रपाल द्वारा मामले के विवेचनाधिकारी एस. एस. आई. इंद्रपाल सिंह सोलंकी को सौंपा गया था।

60. इसके मद्देनजर, हमारा ध्यान साक्ष्य की धारा 62, 1872 की ओर आकर्षित किया जाता है, जो प्रदान करता है किः

"62. प्राथमिक साक्ष्य प्राथमिक साक्ष्य से न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत दस्तावेज अभिप्रेत है।

स्पष्टीकरण 1- जहां एक दस्तावेज को कई भागों में निष्पादित किया जाता है, प्रत्येक भाग दस्तावेज का प्राथमिक साक्ष्य है।
जहां एक दस्तावेज को समकक्ष में निष्पादित किया जाता है, प्रत्येक समकक्ष को केवल एक या कुछ पक्षों द्वारा निष्पादित किया जाता है, क्योंकि प्रत्येक समकक्ष इसे निष्पादित करने वाले पक्षों के खिलाफ प्राथमिक साक्ष्य है।

स्पष्टीकरण 2- जहां कई दस्तावेज एक समान प्रक्रिया द्वारा बनाए जाते हैं, जैसे कि मुद्रण, लिथोग्राफी या फोटोग्राफी के मामले में, प्रत्येक बाकी की सामग्री का प्राथमिक प्रमाण है: लेकिन, जहां वे सभी एक सामान्य मूल की प्रतियां हैं, वे मूल की सामग्री के प्राथमिक प्रमाण नहीं है।

61. साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 द्वितीयक साक्ष्य से संबंधित है।

62. किसी दस्तावेज को साबित करने की कानूनी प्रक्रिया साक्ष्य अधिनियम की धारा 64 में शामिल की गई है. जो यह तय करती है किः

"64. प्राथमिक साक्ष्य द्वारा दस्तावेजों का प्रमाण- दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित किए जाने चाहिए, सिवाय इसके बाद उल्लिखित मामलों के।

63. साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 उन मामलों से संबंधित है जिनमें दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य दिए जा सकते हैं और यह कहता है किः

"65. ऐसे मामले जिनमें दस्तावेजों से संबंधित गौण साक्ष्य दिए जा सकते हैं- निम्नलिखित मामर्ता में दस्तावेज के अस्तित्व, स्थिति या सामग्री का द्वितीयक साक्ष्य दिया जा सकता है:-

(ए) जब मूल दिखाया जाता है या कब्जे या शक्ति में प्रतीत होता है - उस व्यक्ति का जिसके खिलाफ दस्तावेज साबित करने की मांग की जाती है, या किसी भी व्यक्ति की पहुंच से बाहर, या न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन नहीं, या किसी भी व्यक्ति को कानूनी रूप से इसे पेश करने के लिए बाध्य किया जाता है, और जब धारा 66 में उल्लिखित नोटिस के बाद ऐसा व्यक्ति इसका उत्पादन नहीं करता है;

(ख) जब मूल के अस्तित्व, शर्त या विषय-वस्तु को उस व्यक्ति द्वारा, जिसके विरुद्ध वह सिद्ध हो गया है, या उसके प्रतिनिधि द्वारा हित में लिखित रूप में स्वीकार कर लिया गया हो;

(ग) जब मूल नष्ट हो गया है या खो गया है, या जब इसकी सामग्री का सबूत देने वाला पक्ष, किसी अन्य कारण से अपने स्वयं के डिफॉल्ट या उपेक्षा से उत्पन्न नहीं हो सकती है, तो इसे उचित समय में पेश करें;

(घ) जब मूल ऐसी प्रकृति का हो जो आसानी से चलने योग्य न हो;

(ई) जब मूल धारा 74 के अर्थ के भीतर एक सार्वजनिक दस्तावेज है,

(च) जब मूल एक दस्तावेज है जिसकी प्रमाणित प्रति इस अधिनियम द्वारा, या भारत में लागू किसी अन्य कानून द्वारा साक्ष्य में दिए जाने की अनुमति है;

(छ) जब मूल में कई खाते या अन्य दस्तावेज होते हैं जिनकी अदालत में आसानी से जांच नहीं की जा सकती है, और साबित होने वाला तथ्य पूरे संग्रह का सामान्य परिणाम है। मामलों (ए), (सी) और (डी) में, दस्तावेज की सामग्री का कोई भी माध्यमिक साक्ष्य स्वीकार्य है।

मामले (बी) में, लिखित प्रवेश स्वीकार्य है। मामले (ई) या (एफ) में, दस्तावेज़ की एक प्रमाणित प्रति, लेकिन कोई अन्य प्रकार का माध्यमिक साक्ष्य स्वीकार्य नहीं है।

मामले (छ) में, किसी भी व्यक्ति द्वारा दस्तावेजों के सामान्य परिणाम के रूप में साक्ष्य दिया जा सकता है जिसने उनकी जांच की है, और जो ऐसे दस्तावेजों की जांच में कुशल है।

64. जे. यशोदा बनाम के. शोभा रानी, (2007) 5 एस.सी.सी. 730 में, सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य के नियम की व्याख्या करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

"नियम जो सबसे सार्वभौमिक है, अर्थात्, सबसे अच्छा सबूत जो मामले की प्रकृति को स्वीकार करेगा, केवल इसका मतलब है कि, जब तक उच्च या श्रेष्ठ साक्ष्य किसी व्यक्ति के कब्जे में है या किसी व्यक्ति द्वारा पहुंचा जा सकता है, वह व्यक्ति इसके संबंध में कोई गौण महत्व का सबूत नहीं देगा। अनिवार्य रूप से, द्वितीयक साक्ष्य वह साक्ष्य है जो उस बेहतर साक्ष्य के अभाव में दिया जा सकता है जिसे कानून को पहले दिए जाने की आवश्यकता होती है, जब इसकी अनुपस्थिति का उचित स्पष्टीकरण दिया जाता है।

65. एच. सिद्दीकी बनाम ए. रामलिंगम, (2011) 4 एस.सी.सी. 240 में यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है किः

"अदालत, अदालत में पेश किए गए दस्तावेजों या उनकी सामग्री के संभावित मूल्य की जांच करने और माध्यमिक साक्ष्य में दस्तावेज की स्वीकार्यता के सवाल का फैसला करने के लिए बाध्य है।

66. उपर्युक्त से, हम पाते हैं कि यदि किसी दस्तावेज की मूल प्रति उपलब्ध है तो यह प्राथमिक साक्ष्य है और इस तरह के दस्तावेज को साक्ष्य अधिनियम की धारा 64 के आधार पर साबित किया जाना चाहिए, सिवाय माध्यमिक साक्ष्य के मामलों में जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 में प्रदान किए गए हैं। इस मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि मूल फिरौती अंतर्देशीय पत्र को न्यायालय के समक्ष क्यों नहीं पेश किया जा सका। जब तक अभियोजन पक्ष यह नहीं दिखाता कि मूल खो गया है, या नष्ट हो गया है या साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 में उल्लिखित किसी भी श्रेणी में आता है, तब तक उसे द्वितीयक साक्ष्य के रूप में

अनुवादित

दस्तावेज़ की फोटोकॉपी पेश करने की अनुमति नहीं थी। यहां तक कि अ०सा०-5, जो फिरौती पत्र की फोटोकॉपी साबित करता है, एक भी शब्द नहीं बोलता है कि मूल कहां था। इस प्रकार, उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा कथित फिरौती पत्र की फोटोकॉपी को साबित करने के लिए एक गलत प्रक्रिया अपनाई गई थी, जिसमें अदालत के समक्ष मूल प्रस्तुत करने में असमर्थता दिखाए बिना कथित फिरौती पत्र की फोटोकॉपी साबित करने के लिए और विचारण न्यायालय ने भी कानून की त्रुटि की है, जबकि मूल के अभाव में उक्त फिरौती पत्र की फोटोकॉपी प्रदर्शित करने की अनुमति दी है। फोटोकॉपी को सबूत के तौर पर कोर्ट में पेश करने की अनुमति दी जा सकती थी। इसलिए, उक्त फिरौती पत्र (प्रदर्श क-7) कानून द्वारा निर्धारित तरीके से साबित नहीं हुआ है और इस प्रकार कोई कानूनी शुचिता नहीं होने का कोई फायदा नहीं है और हम विचारण न्यायालय को केवल एक दस्तावेज की फोटोकॉपी के आधार पर मामले को आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दे सकते।

67. मामले की परिस्थितियों में, हम जगमेल सिंह बनाम करमजीत सिंह, (2020) 5 एस.सी.सी. 178 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर ध्यान दे सकते हैं, जिसमें यह देखा गया है कि:

"तथ्यात्मक मूलभूत साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करने के कारों को दर्शाते हुए पेश किया जाना चाहिए। केवल साक्ष्य में प्रवेश करना और दस्तावेज का प्रदर्शन करना पर्याप्त नहीं है क्योंकि इसे कानून के अनुसार साबित किया जाना है।

68. राम सुरेश सिंह बनाम प्रभात सिंह, (2009) 6 एस.सी.सी. 681 में, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तैयार किया गया है

"मूल की अनुपस्थिति में जेरॉक्स कॉपी फोटोकॉपी/फैक्स कॉपी साक्ष्य में प्रवेश नहीं है।

69. चूंकि आरोपी व्यक्तियों और सूचनाकर्ता के बीच कथित फिरौती पत्र को छोड़कर कोई संचार नहीं हुआ, जो साक्ष्य में साबित नहीं हुआ है, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि पीड़ित को उसकी मृत्यु के लिए धमकी दी गई थी या आरोपी व्यक्तियों द्वारा चोट पहुंचाई गई थी या वास्तव में सूचनाकर्ता को फिरौती का भुगतान करने के लिए मजबूर करने के लिए उसे चोट पहुंचाई गई थी। पीड़ित को लगी चोटे खरोच और प्रकृति में सरल हैं जैसा कि चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) में उल्लेख किया गया है और संभवतः डॉक्टर (अ0सा0-4) की राय के अनुसार ये धर्षण के कारण हुआ था। हमें यहां याद दिलाना चाहिए कि पीड़िता के दोनों हाथ रस्सी से बंधे थे, जैसा कि सबूती से पता चला है।

70. अभियुक्त व्यक्तियो/अपीलकर्ताओं द्वारा फिरौती की मांग के संबंध में सूचनादाता की ओर से जान के स्रोत या विवरण को दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत उपलब्ध नहीं है, क्योंकि कथित फिरौती पत्र साबित नहीं हुआ है। यहां तक कि अ0सा0-3 पीडित, आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसे दी गई किसी भी धमकी

के संबंध में कहीं भी यह नहीं कहता है कि यदि उसके पिता द्वारा फिरौती का भुगतान नहीं किया जाता है, और न ही सूचनाकर्ता (असा०-2) द्वारा उसे मार दिया जाएगा या हमला किया जाएगा।

71. इस बिन्दु पर बहुत जोर दिया गया था कि फिरौती के लिए कोई सबूत नहीं है और धारा 364 ए भ0द0वि0 की सामग्री आकर्षित नहीं होती है और इस प्रकार, अपीलकर्ताओं को केवल धारा 365 भ0द0वि0 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है, न कि धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत। इस तर्क में बल है।

72. अब, सवाल उठता है कि क्या रिकॉर्ड पर सबूत धारा 365 भ0द0वि0 के अवयों को संतुष्ट करते हैं। धारा 365 भ0द0वि0 के प्रावधान निम्नानुसार हैं।

"365. किसी व्यक्ति को गुप्त रूप से और गलत तरीके से कैद करने के आशय से अपहरण या व्यपहरण जो कोई किसी व्यक्ति का गुप्त रूप से और गलत तरीके से बंदी में कैद कराने के आशय से अपहरण या व्यपहरण करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा।

73. साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि पीड़ित अ०सा०-3 का 21/22.11.1997 को अपहरण कर लिया गया था और 4.12.1997 को बरामद किया गया था और इस तरह गैरकानूनी कारावास के तहत लगभग 14 दिनों तक आरोपी अपीलकर्ताओं की हिरासत में रहा। अपहृत लड़के ने कहा है कि पुलिस और आरोपी व्यक्तियों के गिरोह के बीच मुठभेड़ के बाद उसे पुलिस ने घटना के 14 दिन बाद पुसे के घर से बचाया था। बदमाशों ने उसे गन्ने के खेत में, उसके बाद बाजरे के खेत में रखा और फिर कुठिया में रखा। उन्होंने कपड़े से उसकी आँखें बंद कर रखी थी, और उसके कानों में रुई रखी हुई थी और हाथ भी बंधे हुए थे। अन्सा०-5 इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि जब लड़के को कुठिया के अंदर निकाला गया था, तो उसके हाथ रस्सी से बंधे थे और मुंह को भी किसी कपड़े से बंद कर दिया गया था और रस्सी को पुलिस द्वारा खोला गया था और उक्त रस्सी और कपड़े की पहचान भी उसके द्वारा अदालत में की गई है। उपरोक्त साक्ष्य धारा 365 भ0द0वि0 के तहत अपराध के आवश्यक तत्वों को पूरा करते हैं।

74. महेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में, आपराधिक अपील संख्या-3647 वर्ष 2005 16.08.2016 को फैसला किया गया, इस न्यायालय ने पाया कि फिरौती का कोई सबूत नहीं था और अभियोजन पक्ष धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत आवश्यक ऐसी किसी भी मांग के आवश्यक तत्व को स्थापित करने में विफल रहा है। दूसरी ओर, अपीलकर्ताओं के खिलाफ कथित और साबित किया गया अपराध, पूरी तरह से धारा 365 भ०द०वि० के दायरे और दायरे में आता है। तदनुसार, धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत अपीलकर्ताओं की सजा को बदल दिया गया और केवल धारा 365 भ0द0वि0 के तहत संशोधित किया गया।

75. इसी तरह, अश्विनी दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में, समान प्रकृति के तथ्यों पर

आपराधिक अपील संख्या-7740 वर्ष 2006 का फैसला 10.08.2016 को किया गया था। इस न्यायालय ने इसी तरह का दृष्टिकोण लेते हुए, धारा 364 ए भ0द0वि0 से धारा 365 भ0द0वि0 के तहत में बदल दिया है। इस मामले में, रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से पता चलता है कि अपीलकर्ताओं का इरादा सूचनाकर्ता के बेटे के अपहरण के लिए उसे गुप्त रूप से और गलत तरीके से कैद में रखना था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि फिरौती का घटक साबित नहीं हुआ है और सबूत धारा 365 भ0द0वि0 के अवयवों को स्थापित करते हैं, और इसलिए, दोषसिद्धि को धारा 364 ए भ0द0वि0 से धारा 365 भ0द0वि0 में बदला जा सकता है।

76. पूरे तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि रिकॉर्ड पर साक्ष्य धारा 365 भ0द0वि0 के सभी अवयवों को पूरा करते हैं। मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, धारा 364 ए भ0द0वि0 से धारा 365 भ0द0वि0 तक अपीलकर्ताओं की सजा में बदलाव में कोई बाधा नहीं दिखाई देती है। भारतीय दंड संहिता की धारा 364क और 365 के उपबंधों के अवलोकन से पता चलता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 365 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 364क के अंतर्गत दंडनीय अपराध का कम गंभीर रूप है और भारतीय दंड संहिता की धारा 365 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध समान प्रकृति का और विशिष्ट है तथा इसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 364क की तुलना में कम दण्ड निर्धारित किया गया है। रिकॉर्ड पर इन सभी तथ्यों और सबूतों के मद्देनजर, धारा 364 ए भ0द0वि0 से धारा 365 भ0द0वि0 तक अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि में बदलाव से आरोपी अपीलकर्ताओं के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा। आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता भी कानून की उपरोक्त स्थिति पर विवाद नहीं कर सकते थे। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य स्पष्ट रूप से अपहरण के मामले को धारा 365 भ0द0वि0 के तहत दंडनीय बनाते हैं। तदनुसार, हमारा दृढ़ मत है कि धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को बदल दिया जाना चाहिए और केवल धारा 365 भ0द0वि0 के तहत संशोधित किया जाना चाहिए, जिसमें अपराध किसी भी तरह के कारावास के साथ सात साल तक का हो सकता है, जुर्माना के साथ दंडनीय है।

77. उपरोक्त के मद्देनजर, विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश के माध्यम से धारा 364 ए भ0द0वि0 के तहत दोषसिद्धि और सजा को अलग रखा जाता है और इस हद तक संशोधित किया जाता है कि अपीलकर्ताओं को धारा 365 भ0द0वि0 के तहत दोषी ठहराया जाता है और 2,000 रुपये के जुर्माने के साथ सात साल की कैद की सजा सुनाई जाती है। तथापि, प्रत्येक मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 307/149 के तहत आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की जाती है। बताया जाता है कि याचिकाकर्ता इंद्रपाल और श्रीपाल पिछले करीब 14 साल से जेल में हैं और इस तरह वे सात साल से ज्यादा समय जेल में बिता चुके हैं। सभी अपराधों में पारित सजाएं समवर्ती रूप से

चलनी थीं, इसलिए, अपीलकर्ता इंद्रपाल और श्रीपाल द्वारा कारावास की कुल अवधि पहले ही काट ली गई है। हम जुर्माना राशि और डिफ़ॉल्ट सजा बनाए रखते हैं। दोषी सजा सात साल बाद शुरु होगी जो अब अपीलकर्ताओं इंद्रपाल और श्रीपाल के मामले में भी खत्म हो जाएगी। अपीलकर्ता इंद्रपाल और श्रीपाल को, अगर वे किसी अन्य मामले के संबंध में वांछित नहीं हैं, तत्काल रिहा किया जाए। हालांकि, अपीलकर्ता कल्लू और महात्मा जमानत पर हैं, उनके जमानत बांड रद्द कर दिए गए हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया गया है। संबंधित न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह अपीलकर्ता कल्लू और महात्मा को तुरंत हिरासत में ले और शेष सजा काटने के लिए उन्हें जेल भेज दे।

78. आपराधिक अपील आंशिक से उपरोक शर्तों में अनुमति दी जाती है.

79. रजिस्ट्री को आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को रिकॉर्ड प्रेषित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 598

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 137 / 2023

रामजी प्रसाद और अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री मनोज कुमार चौधरी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 147, 148, 149, 308, 323, 504 और 506- गैर इरादतन हत्या का प्रयास - समन आदेश के विरुद्ध - आरोपियों के खिलाफ आरोप है कि उन्होंने वादी और उसके भाई पर हमला किया, जिससे वादी के भाई के सिर में गंभीर चोट आई - आरोपी यह मानकर भाग गए कि वादी और उसका भाई मर चुके हैं - आरोप-पत्र -पुनरीक्षणकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 227 के तहत आवेदन पेश किया - निरस्त - डॉक्टर ने कहा कि चोटें गंभीर नहीं हैं जो मौत का कारण बन सकती हैं और प्रकृति में सरल हैं - डॉक्टर ने प्रस्तुत किया कि हमला मौत की मंशा से किया गया है - माना गया कि जिस इरादे और परिस्थितियों में कार्य किया गया है उसे एफआईआर, साक्ष्य से इकट्ठा किया जाना था - यदि यह मानने का आधार था कि आरोपी ने अपराध किया है, तो उसके विरुद्ध प्रथम दृष्टया वाद स्थापित है और आरोप तय करना उचित है - केवल उन मामलों में आरोपमुक्त करने का आदेश दिया जाएगा जहां अदालत को विश्वास हो कि दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है -आरोप तय करने के लिए पर्याप्त आधार है और आरोपमुक्त करने के आवेदन को सही रूप से निरस्त कर दिया गया है। (पैरा 3, 7, 8)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षक के लिए विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण सत्र न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा एस.टी. संख्या 268/2022 (राज्य बनाम ब्रिजेश एवं अन्य), मुकदमा अपराध संख्या 480/2015 धारा 147, 148, 149, 308, 323, 504, 506 भा0दं0सं0, थाना - कैंट, जिला - वाराणसी में पारित आदेश दिनांक 08.07.2022 के खिलाफ निर्देशित है।

इस मामले की प्राथमिकी विपक्षी संख्या 2 द्वारा दर्ज करायी गयी थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आज दिनांक 19.08.2015 को लगभग 10:00 बजे दिन में अभियुक्त ब्रिजेश कुमार, गुड्डु, राकेश कुमार पुनरीक्षक के दरवाजे पर आये और गाली-गलौज करने लगे। इसी बीच, ब्रिजेश और परिवार के अन्य सदस्य रामजी, रणधीर कुमार और अनिल कुमार और अरुण कुमार भी शिकायतकर्ता के दरवाजे पर आ गए और शिकायतकर्ता और उसके भाई रवि कुमार पर लोहे की रॉड, ईंट, डंडा और देशी पिस्तौल की बट से हमला करना शुरू कर दिया, जिससे रवि कुमार के सिर पर गंभीर चोट लगी। शिकायतकर्ता के सिर, पीठ और कमर पर भी चोटें आईं और वह मौके पर ही बेहोश हो गया। आरोपी यह समझकर भाग गए कि शिकायतकर्ता और उसका भाई मर गए हैं। घायलों का चिकित्सीय परीक्षण कराया गया और विवेचना के बाद सभी नामित आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया। आरोपी-पुनरीक्षक ने दं0प्र0सं0 की धारा 227 के तहत एक आवेदन दायर किया जिसमें आरोप लगाया गया कि घायलों को कोई गंभीर चोट नहीं लगी है। चिकित्सीय परीक्षण करने वाले डॉक्टर ने यह नहीं बताया है कि घायलों की चोटें गंभीर प्रकृति की हैं जिससे मृत्यु हो सकती है। डॉक्टर ने राय दी है कि चोटें साधारण प्रकृति की हैं। एक्स-रे रिपोर्ट और सी.टी. स्कैन के आधार पर कोई पूरक रिपोर्ट तैयार नहीं की गई है। इसलिए धारा 308 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद आक्षेपित आदेश द्वारा उपरोक्त आवेदन को खारिज कर दिया है। इससे क्षुब्ध होकर यह पुनरीक्षण दाखिल किया गया है।

पुनरीक्षक के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य रूप से तर्क दिया कि सभी चोटें साधारण प्रकृति की हैं। एक्स-रे और सी.टी स्कैन के आधार पर कोई पूरक रिपोर्ट तैयार नहीं की गई है। डॉक्टर ने यह भी कहा है कि चोटें साधारण प्रकृति की हैं। इसलिए भा0दं0सं0 की धारा 308 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। यह भी तर्क दिया गया कि जमानत अर्जी पर विचार करते समय सत्र न्यायालय ने पाया कि चोटों की प्रकृति गंभीर नहीं है। मेडिकल रिपोर्ट भा0दं0सं0 की धारा 308 के तहत आरोप तय करने का समर्थन नहीं करती है। अवर न्यायालय ने न्यायिक दिमाग का उपयोग किए बिना, मामले के तथ्य और परिस्थितियों को समझे बिना और अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार किए बिना आक्षेपित आदेश पारित कर दिया है। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश अनुमानों और अनुमानों पर आधारित है और कानून की नजर में खराब है। अवर न्यायालय ने भा0दं0सं0 की धारा 308 की

गलत व्याख्या की है। इसने मेडिकल रिपोर्ट को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है जो बहुमूल्य साक्ष्य है।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध करते हुए कहा कि हमला मृत्यु कारित करने के इरादे से किया गया है। दो लोगों को चोटें आयी हैं। आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

भा0दं0सं0 की धारा 308 इस प्रकार प्रावधान करती है:

"308. अपराधिक मानव वध करने का प्रयत्न- जो कोई किसी कार्य को ऐसे आशय या ज्ञान से और ऐसी परिस्थितियों में करेगा कि यदि उस कार्य से वह मृत्यु कारित कर देता है तो वह हत्या की कोटि में न आने वाले अपराधिक मानव वध का दोषी होता, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा, और यदि ऐसे कार्य द्वारा किसी व्यक्ति को उपहति हो जाए तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।"

भा0दं0सं0 की धारा 308 में दो भाग होते हैं। पहला भाग चोट न लगने के मामलों से संबंधित है जबकि दूसरा भाग चोट लगने के मामले से संबंधित है। इसलिए जो महत्वपूर्ण है वह इरादा या ज्ञान है और वे परिस्थितियाँ जिनमें कार्य किया गया है, न कि चोटें। इरादा या ज्ञान और जिन परिस्थितियों में कार्य किया गया है, उन्हें एफआईआर के आरोपों, साक्ष्य और अन्य सामग्री और मामले की अन्य सभी परिस्थितियों से इकट्ठा किया जाना है। प्राथमिकी में आरोप है कि आरोपी लोहे की रॉड, डंडा और देशी पिस्तौल से लैस थे। उन्होंने घायल पर लाठी, डंडा और देशी पिस्तौल की बट से हमला कर दिया, जिससे उसके सिर में चोट लग गयी। यह भी तय है कि आरोप तय करने के चरण में प्रथम दृष्टया मामले का परीक्षण लागू किया जाना चाहिए। यदि यह मानने का आधार है कि आरोपी ने अपराध किया है, तो न्यायालय उचित रूप से कह सकती है कि उसके खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है और आरोप तय करना उचित है। यदि अभिलेखों पर मौजूद सामग्री के आधार पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अपराध करना संभावित है तो आरोप तय करने का मामला बनता है। आरोपमुक्त करने का आदेश केवल उन्हीं मामलों में दिया जाएगा, जहां न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है और विचारण न्यायालय एक निरर्थक प्रयास होगा।

विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेखों पर उपलब्ध सभी तथ्यों, सबूतों और अन्य सामग्री पर विचार किया है और विश्लेषण करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि भा0दं0सं0 की धारा 147, 148, 149, 323, 308, 504 और 506 के तहत आरोप तय करने के लिए पर्याप्त आधार है और इस प्रकार उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया है। अतः आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

तदनुसार, पुनरीक्षण में गुण-दोष का अभाव है और इसे **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 600

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 471 / 2023

युवराज नाग ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: आशीष कुमार रस्तोगी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 306-आत्महत्या का उकसाना- समन आदेश के विरुद्ध - वाद द्वारा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित छह नामजद आरोपियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई थी- विवेचना के बाद वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध कोई आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था - वादी और अन्य परिवार के सदस्यों के बयानों को धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया, उन्होंने कहा कि एक अन्य आरोपी और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने पीड़ित/मृतक को परेशान किया और हमला किया - इस पर भरोसा करते हुए, विचारणीय न्यायालय ने धारा 306 आईपीसी के तहत संज्ञान लिया - अन्य सह-अभियुक्तों के साथ वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को तलब किया- पुनरीक्षणकर्ता का तर्क - विचारणीय न्यायालय ने वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को आदेश जारी करने में त्रुटि की, जिसके विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था - आगे तर्क दिया गया कि यदि सीजेएम को धारा 190 सीआरपीसी किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ जिसके खिलाफ कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है, तो ऐसी स्थिति में, धारा 319, 461 सीआरपीसी के तहत प्रावधान निरर्थक हो जाएंगे - राज्य ने तर्क दिया कि सीजेएम के पास ऐसे किसी भी व्यक्ति को समन जारी करने का अप्रतिबंधित अधिकार है, जिसका उल्लेख आरोप पत्र या एफआईआर में आरोपी के रूप में नहीं किया गया है आयोजित, नाहर सिंह (इन्फ्रा) में निर्धारित कानून के अनुसार, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 3, 4, 13)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. प्रसाद श्रीकान्ट पुरोहित बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2015 (3) एससीसी (क्री) 138, (परा 77)
2. भगवंत सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, 1985 एआईआर (एससी) 1285
3. नाहर सिंह बनाम यूपी राज्य, (2022) 5 एससीसी 295
4. धर्म पाल बनाम हरियाणा राज्य., 2005 एससीसी ऑनलाइन एससी 1781
5. किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य, (1993) 2 एससीसी 16
6. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एससीसी 92, (पैरा 111)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के. रस्तोगी एवं राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अनुराग वर्मा को सुना गया।

2. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा मुकदमा अपराध सं0 0389/2022 अन्तर्गत धारा 306 भा०द०वि० पुलिस थाना-मानपुर, जनपद- सीतापुर से उत्पन्न मामले पर विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 24.02.2023 के विरूद्ध दायर किया गया है जिसके द्वारा विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, सीतापुर ने पुनरीक्षणकर्ता को समन किया है।

3. वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रथम सूचनाकर्ता, विजय द्वारा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित छः नामित अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध प्राथमिकी सं0 0389/2022 दर्ज कराया जाता है उसमें यह कहते हुए कि उसकी बहन का विवाह अभियुक्त पिंकू उर्फ परमानंद के संग लगभग 15 वर्ष पहले हुआ था और उनके मेल से पाँच बच्चों का जन्म हुआ। प्राथमिकी में यह उल्लिखित किया गया है कि वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित सभी छः अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा प्रथम सूचनाकर्ता की बहन को लगातार उत्पीड़ित किया जा रहा था। वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित नामित अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उत्पीड़न करने के कारण प्रथम सूचनाकर्ता की बहन, शिल्पी ने कथित तौर पर 29.11.2022 को स्वयं को लटकाककर आत्महत्या कर ली। विवेचना के निष्कर्ष पर, आरोप-पत्र के रूप में एक पुलिस प्रतिवेदन मात्र अभियुक्त पिंकू उर्फ परमानंद / मृतका का पति और शिव भगवान के विरूद्ध प्रस्तुत किया गया। धारा 161, दं०प्र०सं० के अन्तर्गत प्रथम सूचनाकर्ता, विजय, मृतका की माता, श्रीमती किरन और मृतका का एक दूसरा भाई, अतुल के कथन को अभिलिखित किया गया, जिसमे उन्होंने कहा है कि अभियुक्त शिव भगवान और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता भी पीड़िता / मृतका को उत्पीड़ित करते थे और शिव भगवान एवं वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उस पर हमला भी किया गया था। तत्पश्चात, उपर्युक्त कथनो के आधार पर, आक्षेपित आदेश दिनांकित 24.02.203 के माध्यम से विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर ने धारा 306 भा०द०वि० के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लिया और दूसरे अभियुक्तों पिंकू उर्फ परमानंद एवं शिव भगवान सहित प्रथम पुनरीक्षणकर्ता को समन किया।

4. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को, जिसके विरूद्ध विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया, प्रक्रिया जारी करने में त्रुटि की है,

आक्षेपित आदेश इसलिए, स्पष्ट रूप से अवैध है। पुनः उन्होंने यह प्रस्तुत किया है कि यदि विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को किसी व्यक्ति के विरूद्ध धारा 190 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत इस स्तर पर प्रक्रिया जारी करने का हकदार पाया गया है, उस व्यक्ति के विरूद्ध जिसके विरूद्ध कोई आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया है, तो ऐसी स्थिति में, धारा 319 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत निहित प्रावधान निरर्थक हो जाएगा।

5. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि चूंकि विद्वान दण्डाधिकारी उस व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को प्रक्रिया जारी करने के लिए सशक्त नहीं है जिसके विरूद्ध पुलिस ने आरोप-पत्र दायर किया है, इसलिए मामले का संज्ञान लेने और प्रक्रिया जारी करने का ऐसा आदेश धारा 461 दं०प्र०सं० में निहित प्रावधान से प्रभावित होता है जो ऐसी कार्यवाही को अनियमित कार्यवाही घोषित करता है।

6. अपनी उपर्युक्त प्रस्तुत को पुष्ट करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अभिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित निर्णयों **प्रसाद श्रीकांत पुरोहित बनाम महाराष्ट्र राज्य और भगवंत सिंह बनाम पुलिस** आयुक्त पर विश्वास व्यक्त किया है।

7. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध यह प्रस्तुत करते हुए किया है कि विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी के पास ऐसे किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध समन जारी करने की असीमित शक्ति है जिसका आरोप-पत्र में आरोपी के रूप में उल्लेख नहीं किया गया है या प्राथमिकी में उल्लिखित (नामित) नहीं किया गया है। अपने उपर्युक्त कथन को समर्थन देने के लिए उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित **निर्णय नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** पर विश्वास व्यक्त किया है।

8. इस मामले के उपर्युक्त समग्र तथ्यो एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और अभिलेखों का अवलोकन करने पर, यह पता चलता है कि प्रथम सूचनाकर्ता, विजय द्वारा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित छः नामित अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध प्राथमिकी, मामला अपराध संख्या 0389/2022 दर्ज कराया जाता है। विवेचना के निष्कर्ष पर, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के विरूद्ध कोई आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया। धारा 161, दं०प्र०सं० के अन्तर्गत प्रथम सूचनाकर्ता विजय, मृतका की माता, श्रीमती किरन और मृतका के दूसरे भाई अतुल के कथन अभिलिखित किए गये। जिसमें उन्होंने कहा है कि अभियुक्त शिव भगवान और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने भी पीड़िता / मृतका को उत्पीड़ित किया और शिव भगवान एवं वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उस पर हमला भी

किया गया। तत्पश्चात, उपर्युक्त कथनो के आधार पर, आक्षेपित आदेश दिनांकित 24.02.2023 के माध्यम से, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट सीतापुर ने धारा 306 भा०द०वि० के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लिया और दूसरे अभियुक्तो पिंकू उर्फ परमानंद एवं शिव भगवान सहित वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को समन किया।

9. इसी तरह के मामले पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **नाहर सिंह (उपरिवर्णित)** में विचार किया गया था। जिसमे यह अवधारित किया गया था कि एक दण्डाधिकारी को धारा 190 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध समन जारी करने की शक्ति है जिसका आरोप-पत्र में एक आरोपी के रूप में उल्लेख नहीं किया गया और प्राथमिकी में उल्लिखित (नामित) नहीं किया गया है।

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नाहर सिंह (उपरिवर्णित)** के मामले में प्रस्तर संख्या 17 में निम्नानुसार अवधारित किया है:-

"17, जहाँ तक इस प्रकृति की स्थिति में दण्डाधिकारी के क्षेत्राधिकारी के दायरे के संबंध में धरमपाल (धरमपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014)3 एस.सी.सी. 306(2014) 2 एससीसी (आपराधिक) 159]: (एससीसी पृष्ठ 319, प्रस्तर 35-36) में संविधान पीठ द्वारा अवधारित किया गया।

"35, हमारे विचार में, सत्र न्यायालय को मामला सुपुर्द करने की दण्डाधिकारी की भूमिका धारा 173(2) दं०प्र०सं० के अन्तर्गत उसके समक्ष प्रस्तुत पुलिस प्रतिवेदन पर संज्ञान लेने पर होती है। इस अवस्था में यदि दण्डाधिकारी पुलिस प्रतिवेदन से असहमत है तो उसके पास दो विकल्प है। वह दायर की गई विरोध (प्रोटेस्ट) याचिका के आधार पर कार्यवाही कर सकता है या वह, पुलिस प्रतिवेदन से असहमत होने पर, प्रक्रिया जारी कर सकता है और अभियुक्त को समन जारी कर सकता है। तत्पश्चात, संतुष्ट होने पर प्रतिवेदन के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए यदि कोई मामला बन गया था तो उक्त व्यक्तियों को विचारित करने की कार्यवाही या यदि वह संतुष्ट था कि कोई मामला बना था जो कि सत्र न्यायालय के द्वारा विचारण के योग्य है, वह इस मामले में कार्यवाही के लिए सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है।

36. यह हमे तीसरे प्रश्न पर लाता है कि दण्डाधिकारी द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया क्या है यदि वह संतुष्ट था कि पुलिस द्वारा अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के बावजूद प्रथम दृष्टया मामला विचारण के लिए बनाया गया था। ऐसी स्थिति में, यदि दण्डाधिकारी ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया था, तो उसे पुलिस प्रतिवेदन के आधार पर ही कार्यवाही करनी होगी और या तो मामले की जांच करनी होगी या यदि यह सत्र न्यायालय द्वारा विचारण के योग्य होना पाया गया है तो इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द करना होगा।"

11. **धरमपाल बनाम हरियाणा राज्य** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की एक संविधान पीठ ने **किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य** में प्रतिपादित निर्णय में अभिव्यक्त अपने पूर्व दृष्टिकोण की पुष्टि की जिसमें समान मामले निस्तारित थे। जिसमें न्यायालय में राय दी थी कि किसी अपराध का संज्ञान लेते समय अपराधी की पहचान करके मामले की जड़ तक जाना दण्डाधिकारी का कर्तव्य है। एक बार जब न्यायालय ने ऐसा कर दिया तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही करे, भले किसी भी पुलिस प्रतिवेदन में उस व्यक्ति का उल्लेख किया गया है।

12. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में प्रस्तर सं0 111 में निम्नानुसार अवधारित किया हैः-

"111. यहाँ तक कि धरमपाल [धरमपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एससीसी 306(2014)2 एससीसी (आपराधिक) 159] मामले में संविधान पीठ ने अवधारित किया कि सत्र न्यायालय भी अपने मूल क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है और अभियुक्त के रूप में एक व्यक्ति को समन कर सकता है यदि उसका नाम आरोप-पत्र के स्तंभ 2 में आता है, जब एक बार मामला उसके सुपुर्द कर दिया जाए। इसका अर्थ यह है कि जिस व्यक्ति का नाम एफ.आई.आर. या आरोप-पत्र में भी नहीं है या जिसका नाम एफ.आई.आर. में है और आरोप-पत्र के मुख्य भाग में नहीं है बल्कि स्तंभ 2 में है और दं०प्र०सं० की धारा 193 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसे आरोपी के रूप में नहीं बुलाया गया है, अभी भी न्यायालय द्वारा समन किया जा सकता है, बशर्ते न्यायालय संतुष्ट हो कि उक्त वैधानिक प्रावधानो में प्रदान की गई शर्तें पूरी हो गई हैं"।

13. इस मामले के तथ्यो को ध्यान में रखते हुए, यह ज्ञात होता है कि प्रथम सूचनाकर्ता, विजय द्वारा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता सहित छः नामित अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध प्राथमिकी, मुकदमा अपराध सं0 0389/2022 दर्ज कराया जाता है। विवेचना के निष्कर्ष पर, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के विरूद्ध कोई आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया। प्रथम सूचनाकर्ता, विजय, मृतका की माता, श्रीमती किरन और मृतका के एक दूसरे भाई, अतुल के कथनो को धारा 161, दं०प्र०सं० के अन्तर्गत अभिलिखित किया गया, जिसमें उन्होंने कहा है कि पीड़िता/मृतका को उत्पीड़ित किया था और उस पर शिव भगवान और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा हमला भी किया गया था। तत्पश्चात, उपर्युक्त कथनों के आधार पर, आक्षेपित आदेश दिनांकित 24.02.2023 के माध्यम से, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर धारा 306 भा०द०वि० के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लिया और दूसरे अभियुक्तों पिंकू उर्फ परमानंद और शिव भगवान सहित वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को समन किया,

अनुवादित

जिसे **नाहर सिंह (उपरिवर्णित), धरमपाल (उपरिवर्णित), किशुन सिंह (उपरिवर्णित)** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के दृष्टिगत अवैध नहीं कहा जा सकता।

14. **प्रसाद श्रीकांत पुरोहित (उपरिवर्णित)** के मामले में प्रस्तर सं0 77 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया हैः

"विधि का उक्त कथन वैधानिक स्थिति को स्पष्ट करता है कि संज्ञान सदैव अपरध का होता है, अपराधी का नहीं और एक बार जब दण्डाधिकारी किसी अपराध के घटित होने के संदर्भ में अपने न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग करता है तो संज्ञान उसी क्षण लिया जाता है।"

15. **भगवन्त सिंह (उपरिवर्णित)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के अवधारित किया है कि पुलिस थाने के प्रभारी द्वारा धारा 173 की उपधारा 2(i) के अन्तर्गत दण्डाधिकारी को अग्रेषित प्रतिवेदन दण्डाधिकारी द्वारा विचार के लिए आती है, तो दो भिन्न परिस्थितियों में से एक उत्पन्न हो सकती है। प्रतिवेदन से यह निष्कर्ष निकल सकता है कि कोई अपराध विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया जाना प्रतीत होता है और इस मामले में, दण्डाधिकारी तीन चीजो में से एक कर सकता है, (1) वह प्रतिवेदन को स्वीकार कर सकता है और अपराध का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है या (2) वह प्रतिवेदन से असहमत हो सकता है और कार्यवाही को छोड़ सकता है या (3) धारा 156 की उपधारा (3) के अन्तर्गत अतिरिक्त विवेचना के लिए निर्देश दे सकता है और पुलिस से एक और प्रतिवेदन तैयार करने की मांग कर सकता है। दूसरी ओर, प्रतिवेदन में कहा जा सकता है कि, पुलिस की राय में, कोई अपराध कारित होना प्रतीत नहीं होता है और जहाँ ऐसा प्रतिवेदन तैयार किया गया है, दण्डाधिकारी के पास फिर से तीन मार्ग में से एक को अपनाने का विकल्प हैः

(1) वह प्रतिवेदन स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही को छोड़ सकता है या (2) वह प्रतिवेदन से असहमत हो सकता है और यह दृष्टिकोण अपनाते हुए कि आगे की कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, अपराध का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है या (3) वह धारा 156 की उपधारा (3) के अन्तर्गत पुलिस द्वारा अतिरिक्त विवेचना करने के लिए निर्देश कर सकता है।

16. **प्रसाद श्रीकांत पुरोहित (उपरिवर्णित)** और **भगवन्त सिंह (उपरिवर्णित)** में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई विधि की उपर्युक्त अधिकारिक व्याख्या के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता है, फिर भी, इस न्यायालय की विनम्र राय में इस मामले के तथ्यो पर ये भिन्न-भिन्न है।

17. उपर्युक्त चर्चा के दृष्टिगत, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि

आक्षेपित आदेश दिनांकित 24.02.2023 में इस न्यायालय द्वारा हस्ताक्षेप की गारंटी में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है। वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण में गुणों का अभाव है और यह खारिज किए जाने योग्य है।

18. तद्नुसार, वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 604

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 968 / 2015

डॉ अरुण कुमार सिंघल ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

श्रीमती तारावती ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: संजय कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षी: संजय कुमार यादव, शशि कांत त्रिपाठी

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 397 -पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए रिकॉर्ड मांगना - पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार - विपक्षी विधवा ने वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ 18.01.2011 को धारा 125 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर किया - विपक्षी पक्ष ने 17.07.2007 को पुनरीक्षणकर्ता के साथ विवाह किया - पुनरीक्षणकर्ता का तर्क - विपक्षी पक्ष ने पति की मृत्यु की गलत तारीख 29.06.2006 बताई थी- परिवार रजिस्टर में 29.09.2009 का उल्लेख किया गया था - पुनरीक्षणकर्ता के साथ विवाह शुरू से ही शून्य होगा, पोषणीय नहीं होगा - पुनरीक्षणकर्ता की ओर से वकील की असावधानी के कारण, मृत्यु प्रमाण पत्र विचारणीय न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सका, जिससे मामले में बाधा उत्पन्न हुई दावा किया गया, पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लिया जा सकता है - यह दावा गया कि पुनरीक्षण में नवीन साक्ष्य लिया जा सकता है - आयोजित, धारा 401 (1) सीआरपीसी के प्रावधान के अनुरूप है, इसलिए, निचली अदालत अधीनस्थ अदालतों द्वारा पारित किसी भी कार्यवाही की नियमितता, निष्कर्षों की औचित्य आदि की जांच के लिए अतिरिक्त साक्ष्य ले सकती है - आपेक्षित आदेश को निरस्त किया गया - नवीन आदेश पारित करने के लिए मामला संबंधित अदालत को वापस भेज दिया गया। (पैरा 6, 7, 9, 10, 21, 23)

आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. विनोद कुमार बनाम मोहरावती मनु/उप/0308/1990, (पैर 4),
2. मनु/यूपी/3033/2014, (अनुच्छेद 6, 7)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. दिनांक 04.04.2023 को इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि यदि विपक्षी की ओर से अधिवक्ता अगली तारीख पर उपस्थित नहीं रहेंगे तो न्यायालय विपक्षी की अनुपस्थिति में कार्यवाही आगे बढ़ाएगा।

अनुवादित

2. प्रकरण के सम्बन्ध में पुकार कराया गया। विपक्षी की ओर से कोई उपस्थित नहीं।

3. यह न्यायालय उपर्युक्त परिस्थितियों में प्रकरण की सुनवाई करने जा रहा है।

4. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को सुना गया तथा रिकार्ड में रखी गई सामग्री का अवलोकन किया गया।

5. इस वर्तमान पुनरीक्षण के माध्यम से अवर न्यायालय के अभिलेख को तलब करने के बाद लागत के साथ पुनरीक्षण की अनुमति देने और विचारण न्यायालय यानी प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, अंबेडकर नगर द्वारा मुकदमा संख्या 272/2013 श्रीमती तारावती बनाम डॉ अरुण कुमार सिंघल में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 26.09.2015 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

6. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि विपक्षी ने 18.01.2011 को न्यायिक मजिस्ट्रेट, अंबेडकर नगर के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उसने स्वयं को स्वर्गीय परशुराम पुत्र राम नरेश, निवासी ग्राम बेला पर्सा, थाना- बसखारी, परगना बिरहल, जिला-अंबेडकर नगर की विधवा बताया तथा उसके और स्वर्गीय परशुराम के विवाह से एक पुत्र भी है। उन्होंने दलील दी कि विपक्षी ने स्वयं को वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के साथ 17.07.2007 को अपने गांव बसखारी में विवाहित दर्शाया है तथा यह तथ्य विपक्षी के कथन तथा जिरह से भी स्पष्ट है कि उसने कथित रूप से वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के साथ 17.07.2007 को विवाह किया है।

7. उन्होंने कहा कि विपक्षी के पति की मृत्यु की तिथि 29.09.2006 दर्शाई गई है, जो विपक्षी द्वारा दी गई गलत तिथि है, क्योंकि स्वर्गीय परशुराम की वास्तविक मृत्यु तिथि 29.09.2009 है, जो परिवार रजिस्टर से पता चलती है, जिसे अनुपूरक हलफनामे के साथ अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न किया गया है, जो दिनांक 04.04.2023 है।

8. आगे दलील यह है कि चूंकि विपक्षी के पति की मृत्यु की तारीख 29.09.2009 है, इसलिए वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के साथ विवाह शुरू से ही अमान्य होगा और यदि एक बार यह अमान्य हो जाता है, तो धारा 125 के तहत प्रार्थना पत्र विपक्षी के कहने पर पोषणीय नहीं है। उन्होंने कहा कि अतिरिक्त साक्ष्य इस न्यायालय के समक्ष पूरक हलफनामे के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं, जिसमें मृत्यु प्रमाण पत्र की प्रति भी संलग्न की गई है। उन्होंने दलील दी कि अतिरिक्त साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, या तो यह न्यायालय प्रकरण का फैसला करे या इसे नए सिरे से फैसला करने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेजा जा सकता है।

9. अपनी दलीलें जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि वस्तुतः पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता की लापरवाही के कारण, मृत्यु प्रमाण पत्र विचारण

अनुवादित

न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सका, जबकि वह अस्तित्व में था और मृत्यु प्रमाण पत्र प्रस्तुत न किए जाने से प्रकरण का भाग्य प्रभावित हुआ और पुनरीक्षणकर्ता को परेशानी में डाल दिया गया।

10. आगे कहा गया कि यदि न्यायालय को यह संतुष्टि हो कि इससे आदेश की प्रकृति बदल सकती है तो पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य को भी लिया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने दं0प्र0सं0 की धारा 401(1) के प्रावधान पर भरोसा जताया है ।

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(1) नीचे उद्धृत की गई है:-

(1) किसी कार्यवाही की स्थिति में, जिसका अभिलेख स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा मांगा गया है या जो अन्यथा उसके ज्ञान में आता है, उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार धारा 386, 389, 390 और 391 द्वारा अपील न्यायालय को या धारा 307 द्वारा सेशन न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का प्रयोग कर सकता है और जब पुनरीक्षण न्यायालय के न्यायाधीशों की राय समान रूप से विभाजित हो, तो प्रकरण का निपटारा धारा 392 द्वारा उपबंधित तरीके से किया जाएगा।

12. अगला निवेदन यह है कि इसी प्रकार दं0प्र0सं0 की धारा 401 के तहत शक्तियां दी गई हैं, दं0प्र0सं0 की धारा 399 (1) के तहत भी समान शक्तियां दी गई हैं। इस प्रकार, अतिरिक्त साक्ष्य लेने की शक्ति भी विचारण न्यायालय में निहित है।

13. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने एमएएनयू/यूपी/0308/1990 में प्रतिवेदित विनोद कुमार बनाम मोहरावती में एक निर्णय पर भी भरोसा किया है।

14. निर्णय का पैराग्राफ 4 नीचे उद्धृत है :-

4. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 399(1) इस प्रकार है:

"399. सत्र न्यायाधीश की पुनरीक्षण शक्तियां (1) किसी कार्यवाही के प्रकरण में जिसका अभिलेख स्वयं सत्र न्यायाधीश द्वारा मांगा गया है, सत्र न्यायाधीश उन सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो धारा 401 की उपधारा (1) के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं।

(2) और (3)..... "

यह धारा सत्र न्यायाधीश की पुनरीक्षण शक्ति से संबंधित है और स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि पुनरीक्षण में सत्र न्यायालय की शक्तियाँ उच्च न्यायालय के समान हो सकती हैं और सत्र न्यायालय पुनरीक्षण का निपटान करते समय उच्च न्यायालय के समान शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। धारा 401(1) दं0प्र0सं0 उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियों को परिभाषित करती है और यह निम्नानुसार है : - -

"401. उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियां - (1) धारा 386, 389, 390 और 391 द्वारा या धारा 307 द्वारा सेशन न्यायालय द्वारा किसी कार्यवाही की अपील के प्रकरण में और जब पुनरीक्षण न्यायालय के न्यायाधीशों की राय समान रूप से विभाजित हो, तो प्रकरण का निपटारा धारा 392 द्वारा प्रदान की गई रीति से किया जाएगा।

(2) से (5)..... "

यह धारा यह प्रावधान करती है कि उच्च न्यायालय धारा 386, 389, 390 और 391, दं0प्र0सं0 द्वारा अपील न्यायालय को प्रदान की गई किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। धारा 391, दं0प्र0सं0 में यह प्रावधान है कि यदि अपील न्यायालय को लगता है कि प्रकरण के उचित निर्णय के लिए अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक है, तो अपील न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य ले सकता है। अपील न्यायालय को किसी भी पक्ष को अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने से पहले अपने कारणों को भी दर्ज करना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता के उपर्युक्त प्रावधानों के अवलोकन से यह स्थापित होता है कि सत्र न्यायालय के पास पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के समान शक्ति है और चूंकि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए अधिकृत है, इसलिए सत्र न्यायालय के पास पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लेने का अधिकार भी है। दर्शन लाल बनाम इंद्र कुमार मेहता के प्रकरण में, 1980 ऑल क्रि सी 146 में रिपोर्ट किया गया, इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया: - -

"सत्र न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 की उपधारा (1) द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों के मद्देनजर उस प्रश्न की जांच कर सकता है। इसके अलावा, धारा 399 की उपधारा (1) के तहत एक सत्र न्यायाधीश, एक पुनरीक्षण से निपटने के दौरान, उन सभी या किसी भी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो धारा 401 की उपधारा (1) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि उच्च न्यायालय, एक पुनरीक्षण से निपटने के दौरान सजा बढ़ा सकता है, तो सत्र न्यायाधीश उस रिकॉर्ड को बढ़ा सकता है जिसका रिकॉर्ड स्वयं द्वारा मांगा गया है या जो अन्यथा उसके ज्ञान में आता है, उच्च न्यायालय अपने विवेक से, धारा 386, 389, 390 और 391 द्वारा अपील न्यायालय को या धारा 307 द्वारा सत्र न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का भी प्रयोग कर सकता है और जब पुनरीक्षण न्यायालय को बनाने वाले न्यायाधीशों की राय समान रूप से विभाजित होती है, तो प्रकरण को धारा 392 द्वारा प्रदान की गई विधि से निपटाया जाएगा।

(2) से (5)..... "

यह धारा यह प्रावधान करती है कि उच्च न्यायालय धारा 386, 389, 390 और 391, दं0प्र0सं0 द्वारा अपील न्यायालय को प्रदान की गई किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। धारा 391, दं0प्र0सं0 में यह प्रावधान है कि यदि अपील न्यायालय को लगता है कि प्रकरण के उचित निर्णय के लिए अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक है तो अपील न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य ले सकता है। अपील न्यायालय को किसी भी पक्ष को अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने से पहले अपने कारणों को भी दर्ज करना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता के उपर्युक्त प्रावधानों के अवलोकन से यह स्थापित होता है कि सत्र न्यायालय के पास पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के समान ही शक्ति है और चूंकि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए अधिकृत है, इसलिए सत्र न्यायालय के पास पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लेने का क्षेत्राधिकार भी है।

दर्शन लाल बनाम इंद्र कुमार मेहता के प्रकरण में, जिसे 1980 में ऑल क्रि सी 146 में रिपोर्ट किया गया था, इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया: - -

"सत्र न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 की उपधारा (1) द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों के मद्देनजर उस प्रश्न की जांच कर सकते हैं। इसके अलावा, धारा 399 की उपधारा (1) के तहत एक सत्र न्यायाधीश, एक पुनरीक्षण पर विचार करते समय, उन सभी या किसी भी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो धारा 401 की उपधारा (1) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि उच्च न्यायालय, पुनरीक्षण पर विचार करते समय सजा बढ़ा सकता है, तो सत्र न्यायाधीश भी ऐसा कर सकते हैं। धारा 401 की उपधारा (1) के अनुसार, उच्च न्यायालय, एक पुनरीक्षण पर विचार करते समय, संहिता की धारा 386 द्वारा अपीलीय न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का भी प्रयोग कर सकता है। संहिता की धारा 386 के खंड (सी) के अनुसार, अपीलीय न्यायालय, सजा बढ़ाने की अपील में, सजा की प्रकृति या सीमा को इस तरह बदल सकता है कि उसे बढ़ाया या घटाया जा सके। धारा 386 में निहित इस प्रावधान के मद्देनजर, दं0प्र0सं0 में यह माना जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय, पुनरीक्षण प्रकरण पर विचार करते समय, सजा को बढ़ा सकता है।

"चूंकि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण प्रकरण पर विचार करते समय सजा बढ़ा सकता है, इसलिए सत्र न्यायाधीश भी ऐसा कर सकते हैं।"

निस्संदेह दर्शन लाल (पूर्वोक्त) के प्रकरण में शामिल सवाल यह था कि सत्र न्यायालय को सजा बढ़ाने का अधिकार है या नहीं, लेकिन पीठ ने दं0प्र0सं0 की धाराओं 397 और 401 के प्रावधानों पर विचार किया और उसके बाद माना कि पुनरीक्षण में सत्र न्यायालय ऐसी किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा दं0प्र0सं0 की धारा 401 की उपधारा (1) के तहत किया जा सकता है। इस न्यायालय की एक पीठ द्वारा दर्शन लाल के फैसले के मद्देनजर मेरी राय में श्रीमती ज़ैतून बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1987 ऑल डब्ल्यूसी 640 का प्रकरण एक अच्छा कानून नहीं है। वेदपाल सिंह बनाम राज्य के एक अन्य प्रकरण में 1982 ऑल क्रि सी 268: (1982 क्रि एलजे नोट 119) में रिपोर्ट की गई, इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि सत्र न्यायाधीश पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के समान शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। इसलिए, सत्र न्यायाधीश, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 की उपधारा (1) द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों के मद्देनजर अतिरिक्त साक्ष्य लेने के प्रश्न की जांच कर सकते हैं क्योंकि सत्र न्यायाधीश की शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा (1) के तहत परिभाषित उच्च न्यायालय की शक्तियों के समान हैं। इन तथ्यों के मद्देनजर, मेरा विचार है कि सत्र न्यायाधीश के पास पुनरीक्षण में अतिरिक्त

साक्ष्य लेने का क्षेत्राधिकार है। वर्तमान प्रकरण में, सत्र न्यायाधीश ने आवेदन का निपटारा करते हुए यह विचार किया कि पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए आवेदन पर विचार करने का उनके पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है और इसलिए, मेरे विचार में, अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए आवेदक द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर पारित दिनांक 7-10-1989 का आदेश सही आदेश नहीं है और इसलिए, यह अपास्त किए जाने योग्य है।"

15. उपरोक्त तर्क पर भरोसा करते हुए उन्होंने कहा कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने माना है कि सत्र न्यायाधीश दं0प्र0सं0 की धारा 397 की उपधारा (1) के तहत उसे प्रदत्त शक्तियों के मद्देनजर अतिरिक्त साक्ष्य ले सकता है क्योंकि दं0प्र0सं0 की धारा 401 की उपधारा (1) के तहत शक्ति सदृश्य है।

16. उन्होंने आगे एमएएनयू/यूपी/3033/2014 में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भरोसा जताया है और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ छह और सात पर भी भरोसा जताया है और इसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

6. विनोद कुमार बनाम मोहरवाई के प्रकरण में, जो 1990 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2068 (लखनऊ बेंच) में प्रतिवेदित था, यह अभिनिर्धारित किया है कि सत्र न्यायालय को पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के समान शक्ति प्राप्त है और चूंकि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए अधिकृत है, इसलिए सत्र न्यायालय को भी अतिरिक्त साक्ष्य लेने का क्षेत्राधिकार है।

7. चूंकि सत्र न्यायाधीश को प्रदत्त शक्तियां उच्च न्यायालय की शक्तियों के अनुरूप हैं और धारा 391 और 401 दं0प्र0सं0 के तहत प्रावधान है कि आपराधिक पुनरीक्षण में अतिरिक्त साक्ष्य लिया जा सकता है, इसलिए, वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और साथ ही साथ यहां उद्धृत केस कानून के साथ आरोपित आदेश का विश्लेषण करने के बाद, यह न्यायालय इस तथ्य पर विचार किए बिना कि आवेदक ने किसी अन्य फोरम का लाभ नहीं उठाया है, यह न्यायालय इसे धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत अपनी असाधारण शक्तियों के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त प्रकरण पाता है। चूंकि आरोपित आदेश कानूनी प्रावधान का स्पष्ट उल्लंघन है और यदि यह कायम रहता है, तो न्याय की विफलता होगी।

17. उपरोक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, उन्होंने कहा कि वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता का प्रकरण पूरी तरह से उपरोक्त निर्णय के अनुपात से आच्छादित है और चूंकि विपरीत पक्ष के पति की मृत्यु की तारीख पुनरीक्षण न्यायालय को गलत तरीके से सूचित की गई है और इसे सच मानते हुए, निर्णय और आदेश पारित किया गया है लेकिन, अन्यथा पति की मृत्यु की तारीख 29.09.2009 है और यदि इसे सच माना जाता है, तो वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के साथ विवाह शून्य होगा और इस प्रकार, दं0प्र0सं0 की धारा 125 के तहत आवेदन पहली नजर में बनाए रखने योग्य नहीं होगा। वह प्रस्तुत करता है कि इस तथ्य से निर्णय की प्रकृति बदलनी चाहिए और इसलिए, अतिरिक्त साक्ष्य लेने और विचार करने की आवश्यकता है और प्रकरण को नए सिरे से तय

किया जा सकता है। इस प्रकार, वह प्रस्तुत करता है कि विचारण न्यायालय यानी प्रिंसिपल जज, फैमिली न्यायालय, अंबेडकर नगर द्वारा दिनांक 26.09.2015 को केस संख्या में पारित आदेश 272 का 2013 श्रीमती तरावत बनाम डॉ. अरुण कुमार सिंघल प्रकरण को खारिज किया जाए।

18. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने इस प्रकरण का इस आधार पर विरोध किया है कि इस प्रकरण में तथ्यात्मक विवाद सम्मिलित हैं, किन्तु जहां तक कानूनी मुद्दे का प्रश्न है, उन्हें पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क पर कोई आपत्ति नहीं है।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद यह स्पष्ट है कि विपक्षी के पति की मृत्यु 29.09.2006 को हुई थी। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विपक्षी के पति अर्थात परशुराम का 29.09.2009 का मृत्यु प्रमाण पत्र संलग्न करते हुए एक पूरक हलफनामा दायर किया, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विपक्षी के पति की मृत्यु 29.09.2009 को हुई थी और निस्संदेह पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता की असावधानी के कारण यह तथ्य अवर न्यायालय के समक्ष नहीं रखा जा सका। इस बिंदु पर कानून बहुत स्पष्ट है कि वादी को उसके अधिवक्ता की ओर से असावधानी, गलती या अज्ञानता के लिए पीड़ित होने के लिए नहीं छोड़ा जाएगा। यदि यह सच पाया जाता है कि विपक्षी सं यदि प्रकरण संख्या 2 वास्तव में 29.09.2009 है न कि 29.09.2006, तो निश्चित रूप से अवर न्यायालय द्वारा पहले पारित निर्णय और आदेश की प्रकृति में परिवर्तन होना चाहिए।

20. जब यह न्यायालय दं0प्र0सं0 की धारा 399 (1) के तहत परिकल्पित पुनरीक्षण में सत्र न्यायाधीश की शक्तियों की जांच करता है, तो यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि सत्र न्यायाधीश उन सभी या किसी भी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो दं0प्र0सं0 की धारा 401 की उपधारा (1) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं। निस्संदेह, उच्च न्यायालय के पास किसी भी निष्कर्ष, सजा या दर्ज या पारित आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य को देखने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य की मांग हेतु दं0प्र0सं0 की धारा 397 के साथ धारा 401 (1) के तहत पर्याप्त शक्ति है।

21. उपर्युक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, यह न्यायालय इस बात पर दृढ़ राय रखता है कि दं0प्र0सं0 की धारा 399 (1) के तहत परिकल्पित शक्ति दं0प्र0सं0 की धारा 401 (1) के प्रावधान के अनुरूप है और इसलिए, अवर न्यायालय किसी भी कार्यवाही की नियमितता, निष्कर्षों की औचित्य, वैधता या अवर न्यायालययों द्वारा पारित आदेश की जांच के लिए अतिरिक्त साक्ष्य भी ले सकती है। यह विवाद विनोद कुमार शर्मा बनाम मोहरावती और भगवान स्वरूप के प्रकरण में भी सुलझाया जा चुका है, जिसमें वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता का प्रकरण भी शामिल है।

22. परिणामस्वरूप, दिनांक 26.09.2015 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

23. अतिरिक्त साक्ष्य लेने के बाद, जो पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा तथा संबंधित पक्षों को विधि अनुसार अवसर प्रदान करने के बाद, प्रकरण पुनः आदेश पारित करने के लिए संबंधित न्यायालय को भेजा जाता है।

24. पुनरीक्षणकर्ता को निर्देशित किया जाता है कि वह आदेश की तारीख से पैंतालीस दिनों की अवधि के भीतर इस आदेश को विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे और विचारण न्यायालय इसके बाद शीघ्रता से कार्यवाही समाप्त करेगा।

25. सभी विवाद्यक नये सिरे से निर्णय लेने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष खुले हैं।

26. उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान पुनरीक्षण **स्वीकृत** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 610

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1547 / 2020

ज्ञानेंद्र ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री सर्वेश कुमार दुबे, श्री वीरेंद्र सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 307 और 504- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 451- पुलिस द्वारा संपत्ति जब्त करने के खिलाफ - राइफल से लैस आरोपी ने वादी और अन्य व्यक्तियों के साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया, अपनी लाइसेंसी राइफल से फायरिंग की, जिसमें वादी भाग निकला - आरोप पत्र - लाइसेंसी राइफल को पुलिस ने कब्जे में लेकर राजकोष में जमा करा दिया - रिहाई आवेदन- खारिज - पुनरीक्षणकर्ता आरोपित राइफल का वैध लाइसेंसी था - आयोजित, प्रभारी (शस्त्र/एडीएम (प्रशासन) ने संबंधित मजिस्ट्रेट को सूचना दी कि लाइसेंस उसी जिले का नहीं है, इसलिए प्राधिकारी के लिए शस्त्र लाइसेंस को सत्यापित करना संभव नहीं था - राइफल की जब्ती और निरस्त करने के संबंध में किसी कार्यवाही के अभाव में, यह केस की संपत्ति होगी, रिहाई आदेश पारित किया जा सकता है - अभियोजन पक्ष राइफल के स्नैप ले सकता है और इसे अदालत में पेश करने के लिए दस्तावेज के रूप में संरक्षित कर सकता है - मजिस्ट्रेट को राइफल जारी करते समय कुछ शर्तें लगाने का अधिकार दिया गया था, मुखबिर ने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया, विवादित आदेश रद्द कर दिया गया, रिहाई आवेदन की अनुमति दी गई, तदनुसार निर्देश दिए गए। (पैरा 3, 4, 6, 10, 12, 15, 16)

आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

सुंदर भाई अम्बा लाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, (2002) 10 एससीसी 283

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सर्वेश कुमार दुबे तथा राज्य के विद्वान एजीए श्री आनंद सागर को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. यह पुनरीक्षण अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 1, बुलंदशहर द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 264/2020 (राज्य बनाम ज्ञानेंद्र) धारा 307 और 504 आईपीसी, थाना जहांगीराबाद, जिला बुलंदशहर में पारित आदेश दिनांक 20.07.2020 के विरुद्ध पेश किया गया है और पुनरीक्षणकर्ता की लाइसेंसी राइफल जिसका लाइसेंस संख्या K/146/आर्म्स/डीएम/केयूएल/202/2012, राइफल संख्या AB1300681- .315 बोर है, को उसके पक्ष में रिलीज करने के लिए पेश किया गया है।

3. संक्षेप में प्रकरण के तथ्य इस प्रकार हैं कि विपक्षीगण संख्या 2 लखमा ने दिनांक 15.06.2020 को प्राथमिकी दर्ज कराई कि आरोपी ज्ञानेन्द्र दो वर्ष पूर्व हुए विवाद के कारण उससे रंजिश रखता है। दिनांक 15.06.2020 को लगभग 12:00 बजे दोपहर में सूचनाकर्ता लखमा, सुरेन्द्र, लाल सिंह, हरवीर, मनोज तालाब के पास बैठकर शासकीय कार्य देख रहे थे, तभी आरोपीगण राइफल लेकर पहुंचे और गाली-गलौज करने लगे तथा जब सूचनाकर्ता ने उन्हें रोका तो जान से मारने की नीयत से अपनी लाइसेंसी राइफल से उन पर फायर कर दिया, जिसमें वे बच गए। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर सूचनाकर्ता ने उनके विरूद्ध विधिक कार्यवाही प्रारंभ करने हेतु प्राथमिकी दर्ज कराई।

4. जांच के बाद पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ धारा 307 और 504 आईपीसी के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और उसकी लाइसेंसी राइफल को पुलिस ने कब्जे में ले लिया था। पुनरीक्षणकर्ता ने एसीजेएम की न्यायालय में एक आवेदन दिया, जिस पर एक रिपोर्ट मांगी गई थी और उसके बाद संबंधित न्यायालय ने 20.07.2020 को रिहाई आवेदन को खारिज कर दिया था, जो कि यहां पर आरोपित है।

5. पुनरीक्षणकर्ता ने इस आधार पर विवादित आदेश को चुनौती दी है कि यह अवैध और अनुचित है और प्रकरण में शामिल तथ्यों और कानून की अनदेखी करते हुए न्यायिक दिमाग का इस्तेमाल किए बिना और प्रकरण की पृष्ठभूमि पर विचार किए बिना जल्दबाजी में पारित किया गया है जो कानून की नज़र में गलत है। सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि प्राकृतिक रूप से खराब होने वाली वस्तुओं को कुछ शर्तों के अधीन मालिक के पक्ष में छोड़ा जाना चाहिए , लेकिन विचारण न्यायालय ने अवैध और मनमाने तरीके से रिहाई के आवेदन को खारिज कर दिया। एफआईआर का संस्करण पूरी तरह से गलत है और पुरानी लंबित दुश्मनी को सुलझाने के लिए ही दर्ज किया गया है। सूचना देने वाले को कोई चोट नहीं आई और आरोप है कि वह भाग गया, इसलिए पुनरीक्षण को अनुमति दी जानी चाहिए और विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

6. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वस्तुतः पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी कविता देवी द्वारा दिनांक 25.10.2018 को प्रातः लगभग 09:00 बजे घटित घटना के सम्बन्ध में एक प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी, जिसके सम्बन्ध में धारा 394, 379, 511, 452 एवं 506 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। सूचनाकर्ता ने पूर्व में दर्ज आपराधिक प्रकरण में समझौता करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता पर दबाव बनाने के लिए वर्तमान प्राथमिकी दर्ज कराई है तथा प्राथमिकी में कोई सत्यता नहीं है।

7. पुनरीक्षणकर्ता ने पूरक शपथ-पत्र के माध्यम से पी.डब्लू.-1 लखमा अर्थात् सूचनाकर्ता का कथन भी प्रस्तुत किया है, जिससे पता चलता है कि पुनरीक्षणकर्ता ने सूचनाकर्ता पर गोली नहीं चलाई थी। उसने पुनरीक्षणकर्ता को अपने ऊपर गोली चलाते हुए नहीं देखा था। कथित घटनास्थल पर कई बन्दर आपस में लड़ रहे थे, जिन्हें तितर-बितर करने के लिए गोली चलाई गई थी। कुछ व्यक्तियों ने बताया कि पुनरीक्षणकर्ता ने उस पर गोली चलाई थी। उसे कोई आग्नेयास्त्र से चोट नहीं लगी थी, तथा उसने पुनरीक्षणकर्ता को अपने ऊपर गोली चलाते हुए भी नहीं देखा था। उसने ग्रामीणों की सुनी-सुनाई बातों पर एफ.आई.आर. दर्ज कराई थी। उसने स्वयं शिकायत नहीं लिखी थी। सूचनाकर्ता-विपक्षी संख्या 2 को पक्षद्रोही घोषित किया गया है, तथा उससे शासकीय अधिवक्ता द्वारा जिरह की गई थी, परन्तु ऐसी जिरह में भी उसने अभियोजन पक्ष के प्रकरण का पक्ष नहीं लिया। बचाव पक्ष द्वारा की गई जिरह में उसने यह कथन दिया कि वह केवल 8वीं पास है। रिपोर्ट न तो उसके द्वारा लिखी गई थी, न ही उसे पढ़कर सुनाई गई थी। उसे कोई चोट नहीं आई थी , तथा उसका चिकित्सकीय परीक्षण भी नहीं किया गया था। पुनरीक्षणकर्ता ने उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया था। गवाह से न्यायालय में जिरह भी की गई जिसमें उसने बताया कि कथित घटना के समय आरोपी के पास कोई हथियार नहीं था। वह यह नहीं बता सका कि शिकायत किस व्यक्ति ने लिखी है। उसने केवल शिकायत पर हस्ताक्षर किए थे। घटना के दिन पुलिस ने उससे पूछताछ नहीं की। घटना के अगले दिन उसे पुलिस ने पूछताछ के लिए बुलाया था और उसने बताया था कि बंदरों को भगाने के लिए विस्फोट किया गया था। उसने कुछ ग्रामीणों के कहने पर आरोपी के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई थी।

8. सूचनाकर्ता के उपरोक्त बयान से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सूचनाकर्ता विपक्षी संख्या 2 ने अपने बयान में अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है।

9. अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि आरोपित लाइसेंसी राइफल को पुलिस ने कब्जे में ले लिया है तथा पुलिस मालखाना (कोषागार) में जमा करा दिया है। आरोपित आदेश पारित करने से पूर्व संबंधित मजिस्ट्रेट ने जिला मजिस्ट्रेट/अपर जिला मजिस्ट्रेट से रिपोर्ट तलब की थी, जिसके संबंध में 17.07.2020 को रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी कि शस्त्र लाइसेंस जिला बुलंदशहर का नहीं है, इसलिए जिला मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर के कार्यालय से इसके निरस्तीकरण की कोई कार्यवाही संभव नहीं है। यह भी दोहराया गया

है कि 16.07.2020 तक आरोपित राइफल की जब्ती के संबंध में कोई पुलिस रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई थी।

10. अभिलेख के अवलोकन से यह पता चलता है कि पुनरीक्षणकर्ता ही आपत्तिजनक राइफल का वैध लाइसेंसधारी है तथा यह 24.05.2025 तक वैध है।

11. जहांगीराबाद थाने के उपनिरीक्षक द्वारा जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है जिसमें कहा गया है कि कथित अपराध के संबंध में न्यायालय में आपराधिक प्रकरण लंबित है, अपराध में आरोपित राइफल का प्रयोग किया गया है तथा लाइसेंस निरस्तीकरण के लिए जिला मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है ।

12. हालाँकि, राज्य की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के साथ ऐसी रिपोर्ट की कोई प्रति संलग्न नहीं की गई है और उक्त सब-इंस्पेक्टर के बयान से यह बहुत स्पष्ट है कि 16.07.2020 तक संबंधित पुलिस स्टेशन द्वारा जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय को आरोपित राइफल की जब्ती के लिए कोई रिपोर्ट नहीं भेजी गई थी। प्रभारी (शस्त्र/एडीएम (प्रशासन), बुलंदशहर ने भी 17.07.2020 को संबंधित मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट दी है कि चूंकि आरोपित राइफल का लाइसेंस जिला बुलंदशहर का नहीं है, इसलिए बुलंदशहर के अधिकारी के लिए शस्त्र लाइसेंस का सत्यापन करना संभव नहीं है। शस्त्र लाइसेंस की फोटोकॉपी के अवलोकन से पता चलता है कि आरोपित राइफल के लिए शस्त्र लाइसेंस एडीएम, राजोरी , जम्मू और कश्मीर द्वारा जारी किया गया था। इसलिए, यदि जिला बुलंदशहर की पुलिस और प्रशासन का मानना था कि एफआईआर के आधार पर आरोपी के शस्त्र लाइसेंस को छुपाया जाना चाहिए, तो यह उनका कर्तव्य था कि वे लाइसेंस रद्द करने और राइफल को जब्त करने के लिए पूरे तथ्यों से अवगत कराने के लिए संबंधित अधिकारी से संपर्क करें। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि पुलिस या जिला बुलंदशहर के प्रशासन द्वारा ऐसा कोई कदम उठाया गया है। केस की संपत्ति जिसके बारे में दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XXXIV के तहत रिहाई आदेश पारित किया जा सकता है। धारा 451 दं0प्र0सं0 मुकदमे के लंबित रहने के दौरान केस की संपत्ति की हिरासत और निपटान से संबंधित है। त्वरित संदर्भ के लिए धारा 451 दं0प्र0सं0 इस प्रकार है:-

"451. कुछ प्रकरण में विचारण लंबित रहने तक संपत्ति की अभिरक्षा और व्ययन के लिए आदेश- *जब कोई संपत्ति किसी जांच या विचारण के दौरान किसी दंड न्यायालय के समक्ष पेश की जाती है, तब न्यायालय जांच या विचारण के निष्कर्ष तक ऐसी संपत्ति की उचित अभिरक्षा के लिए ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह ठीक समझे, और यदि संपत्ति शीघ्र और प्राकृतिक रूप से क्षयशील है, या यदि ऐसा करना अन्यथा समीचीन है, तो न्यायालय ऐसा साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात्, जैसा वह आवश्यक समझे, उसे बेचने या अन्यथा व्ययन करने का आदेश दे सकता है।*

स्पष्टीकरण.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "संपत्ति" में निम्नलिखित शामिल हैं-

(क) किसी भी प्रकार की संपत्ति या दस्तावेज जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया हो या जो उसकी अभिरक्षा में हो,

(ख) कोई संपत्ति जिसके संबंध में कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है या जिसका उपयोग किसी अपराध को करने के लिए किया गया प्रतीत होता है।"

13. **सुंदर भाई अंबा लाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, (2002) 10 एससीसी 283** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि; (i) वस्तु के मालिक को उसके अप्रयुक्त रहने या उसके दुरुपयोग के कारण नुकसान नहीं होगा, (ii) न्यायालय या पुलिस को वस्तु को सुरक्षित अभिरक्षा में रखने की आवश्यकता नहीं होगी, (iii) यदि वस्तु का कब्ज़ा सौंपने से पहले उचित पंचनामा तैयार किया जाता है, तो उसे परीक्षण के दौरान न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के बजाय साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो, तो वस्तु की प्रकृति का विस्तार से वर्णन करते हुए साक्ष्य भी दर्ज किया जा सकता है, (iv) साक्ष्य दर्ज करने के न्यायालय के इस अधिकार क्षेत्र का तुरंत प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि वस्तुओं के साथ छेड़छाड़ की कोई संभावना न रहे।

14. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित दिशा-निर्देशों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विवादित राइफल भी एक ऐसी वस्तु है जिसका मूल्य कम हो जाएगा और यदि इसे वैध लाइसेंस धारक के पक्ष में जारी नहीं किया जाता है तो यह नष्ट हो जाएगी । विवादित राइफल का कोई अन्य दावेदार नहीं है। अब तक कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है कि आरोपी पुनरीक्षणकर्ता का लाइसेंस कानून के अनुसार नहीं है और वह विवादित राइफल का सही मालिक/लाइसेंसधारी नहीं है।

15. सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि क्षयशील वस्तुओं को मालिक या कब्जा धारक के पक्ष में छोड़ा जाना चाहिए, तथा उनकी तस्वीर को न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए। इस प्रकरण में अभियोजन पक्ष आरोपित राइफल की तस्वीरें ले सकता है तथा उचित चरण में न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए उन्हें दस्तावेज के रूप में सुरक्षित रख सकता है। मजिस्ट्रेट को राइफल को रिहा करते समय कुछ शर्तें लगाने का अधिकार दिया गया था कि आरोपित राइफल को लाइसेंसधारी द्वारा सुरक्षित रखा जाएगा तथा प्रकरण या अपील के अंतिम निपटान तक किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं किया जाएगा तथा इसे न्यायालय में भौतिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। यहां तक कि इस प्रकार ली गई तस्वीरों को भी संबंधित न्यायालय के समक्ष भौतिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

16. यह भी उल्लेखनीय है कि कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट नहीं है जो यह साबित करे कि कथित अपराध के समय आरोपित राइफल से कोई एफआईआर दर्ज की गई थी। प्रकरण का मुख्य पीड़ित सूचनाकर्ता ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है। इसलिए, मुकदमे के दौरान संपत्ति की रिहाई से संबंधित

उपरोक्त सभी परिस्थितियों और कानून पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस विचार पर है कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित अस्वीकृति आदेश संधारणीय नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए तथा रिहाई आवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए।

17. तदनुसार, यह आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है।

18. राइफल की रिहाई की अस्वीकृति के संबंध में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 1, बुलंदशहर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 20.07.2020 को रद्द किया जाता है। उपरोक्त अवलोकन के आलोक में संबंधित न्यायालय द्वारा रिहाई आवेदन पर नए सिरे से निर्णय लिया जाएगा। यदि विद्वान विचारण न्यायालय विवादित राइफल को रिहा करने के लिए आगे बढ़ता है, तो विवादित राइफल को रिहा करने से पहले संबंधित मजिस्ट्रेट/एसएचओ यह सत्यापित करेगा कि रिवीजनकर्ता विवादित राइफल का वैध लाइसेंसी है या नहीं। यह भी सत्यापित किया जाएगा कि विवादित राइफल रिवीजनकर्ता द्वारा कानून के अनुसार खरीदी गई थी और विवादित राइफल की रिहाई की तिथि पर रिवीजनकर्ता के पास राइफल का अद्यतित लाइसेंस था या नहीं। यदि पुनरीक्षणकर्ता यह तथ्य सिद्ध करने में सफल हो जाता है कि वह वैध लाइसेंसधारी है, विवादित राइफल उसके द्वारा विधि के अनुसार खरीदी गई है तथा विवादित राइफल की निर्मुक्ति के समय उसके पास वैध अद्यतन लाइसेंस है, तो उपर्युक्त विवादित राइफल उसके पक्ष में निर्मुक्त कर दी जाएगी, यदि वह संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बंधपत्र तथा समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करता है।

(2023) 5 ILRA 614

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1578 / 2023

चंद्रभान और अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री जयसिंह यादव

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 308- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227- डिस्चार्ज आवेदन की अस्वीकृति के खिलाफ - पुनरीक्षणकर्ता द्वारा तर्क कि एफआईआर केवल धारा 325, 323 और 504 आईपीसी के तहत दर्ज की गई थी- घायल की चोट की रिपोर्ट से पता चलता है कि कोई गंभीर चोट नहीं थी - धारा 308 और 506 आईपीसी चार्जशीट में जोड़ी गई - डिस्चार्ज आवेदन - खारिज- पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष के लोगों को चोटें आई हैं और वादी पक्ष के विरुद्ध क्रॉस केस दर्ज किया गया है - आयोजित, पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी का नाम एफआईआर में है- अभियोजन पक्ष का वाद यह था कि आरोपियों ने वादी की पत्नी को गालियां दीं और उसके साथ मारपीट की, जब कुछ लोग बचाव के लिए आए, तो उन पर हमला किया गया, जिससे चोटें आईं - घायलों में से एक को

सिर में गंभीर चोट लगी है, उसकी एनसीसीटी ब्रेन रिपोर्ट में एक्स्ट्राडरल हेमरेज और फ्रैक्चर दिखाया गया है, जो घातक हो सकता है- दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई और कौन सा पक्ष हमलावर था, यह परीक्षण का विषय है - पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध पर्याप्त सबूत हैं - आपेक्षित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 3, 5, 6)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता को और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

यह आपराधिक पुनरीक्षण अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-I, ललितपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या-481 वर्ष 2022 अपराध संख्या-189 वर्ष 2020 धारा 308/34, 325/34, 323/34, 504 और 506 भ०द०वि०, थाना-महरौनी, जिला ललितपुर में पारित आदेश दिनांक 21.02.2023 के खिलाफ दायर किया गया है। आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वान निचली अदालत ने पुनरीक्षणवादी अभियुक्त द्वारा धारा 227 द०प्र०स० के तहत लगाए गए दायर डिस्चार्ज आवेदन को खारिज कर दिया है।

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस मामले की प्राथमिकी केवल धारा 325, 323 और 504 भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी। घायल की इंजरी रिपोर्ट से पता चलता है कि कोई गंभीर चोट नहीं है जो धारा 308 भ०द०वि० के दायरे में आ सकती हो। अंशुल की चोट 3 सेंटीमीटर त्वचा तक गहरा घाव है। इसलिए इस चोट से, धारा 308 भ०द०वि० के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। केवल एक घायल को फ्रैक्चर हुआ है। शेष घायलों की सभी चोटें साधारण प्रकृति की होती हैं। तो अधिक से अधिक, धारा 323, 325 और 504 भ०द०वि० के तहत अपराध बनता है। विवेचनाधिकारी ने अनुचित तरीके से आरोप पत्र में धारा 308 भ०द०वि० और 506 भ०द०वि० जोड़ी है। पुनरीक्षणकर्ता ने डिस्चार्ज के लिए आवेदन दायर किया है। यह भी तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता पक्ष के व्यक्तियों को भी चोटें आई हैं और शिकायतकर्ता पक्ष के खिलाफ क्रॉस-केस एन.सी.आर. संख्या-200 वर्ष 2020 धारा 323 भ०द०वि० और 504 भ०द०वि० भी दर्ज किया गया था। असल कहानी यह है कि पक्षकारों के बीच कई दीवानी और राजस्व मुकदमे लंबित हैं और इसी रंजिश के चलते शिकायतकर्ता पक्ष ने आरोपी पक्ष पर हमला किया है। मौके से भागते समय शिकायतकर्ता को चोटें आई हैं और उन्होंने झूठी प्राथमिकी दर्ज कराई है। डिस्चार्ज आवेदन में किए गए कथनों और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों पर विचार किए बिना विद्वान निचली अदालत ने डिस्चार्ज आवेदन को खारिज कर दिया है। आक्षेपित आदेश अन्यायपूर्ण और अनुचित है और टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि घायल अंशुल में से एक को सिर में चोट लगी है और उसकी एन.सी.सी.टी. ब्रेन रिपोर्ट में एक्स्ट्राड्यूरल हेमरेज और फ्रैक्चर दिखाया गया है। इस घटना में कई अन्य लोगों को भी चोटें

आई हैं। इसलिए पुनरीक्षणकर्ता अभियुक्तों को आरोपमुक्त करने का कोई आधार नहीं है। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से, धारा 323, 325, 308, 504 और 506 भ०द०वि० के तहत अपराध बनता है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

पुनरीक्षित-अभियुक्तों का नाम प्राथमिकी में है और अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि उन्होंने शिकायतकर्ता की पत्नी श्रीमती राम दुलारी को गालियां दीं और उसके साथ मारपीट शुरू कर दी, जब अंशुल नरेंद्र, अनंतराम, प्रभुदयाल, महेंद्र कुमार और देवेंद्र बचाव के लिए आए, तो आरोपी व्यक्तियों ने उन्हें भी लठीडांडा से हमला किया, जिससे चोटें आईं। नरेंद्र कुमार, महेंद्र कुमार, देवेंद्र कुमार, प्रभुदयाल, श्रीमती राम दुलारी और अंशुल की चोट रिपोर्ट रिकॉर्ड का हिस्सा हैं। घायल प्रभुदयाल, श्रीमती राम दुलारी और अंशुल को सिर में चोटें आई हैं। रिकार्ड के अवलोकन से यह भी प्रतीत होता है कि घायल अंशुल को मेडिकल कॉलेज झांसी भेजा गया था और उसकी एन.सी.सी.टी ब्रेन रिपोर्ट में एक्स्ट्राड्यूरल हेमरेज, सब-आराचानोइड हेमरेज, हेमोरेज कंसंट्रेशन के कुछ एफ.ओ.सी.आई, संबंधित फ्रैक्चर का उल्लेख है। उनकी सी.टी. स्कैन रिपोर्ट भी सही अस्थायी हड्डी पर गैर-विस्थापित फ्रैक्चर का संकेत देती है। तो अंशुल की इंजरी रिपोर्ट से साफ है कि उनके सिर में गंभीर चोट आई है जो जानलेवा हो सकती है।

रिकॉर्ड पर सामग्री से यह भी प्रतीत होता है कि ये क्रॉसवर्जन हैं। दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई है और कौन सा पक्ष वास्तव में हमलावर है, यह विचारण का विषय है। इसलिए यह डिस्चार्ज का आधार नहीं हो सकता है।

धारा 308 भ०द०वि० में निम्नानुसार प्रावधान है:

"जो कोई ऐसा आशय या ज्ञान से और ऐसी परिस्थितियों में कोई कार्य करता है कि, यदि उस कार्य द्वारा मृत्यु कारित करता है तो वह हत्या की कोटि में न होने वाले सदोष मानव वध का दोषी होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा; और, यदि ऐसे कार्य द्वारा किसी व्यक्ति को उपहति कारित की जाती है तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

धारा 308 भ०द०वि० दो भागों में होती है। पहला भाग बिना किसी चोट के मामलों से संबंधित है जबकि दूसरे भाग से पता चलता है, ऐसे मामले जिनमें चोट लगी है। तो जो भौतिक है वह इरादा या ज्ञान है। यहां तक कि नो इंजरी (कोई चोट नहीं) मामले में भी धारा 308 भ०द०वि० लागू हो सकती है। यह स्थापित कानून है कि आरोप तय करने के चरण में केवल प्रथम दृष्टया मामला देखा जाना है। बाकी बातें मुकदमे का विषय हैं और सबूतों के बाद फैसला किया जा सकता है। जबकि इस मामले में घायलों में से एक के सिर में गंभीर चोट आई है. इसलिए

पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत हैं जिनके आधार पर आरोप-पत्र में उल्लिखित धारा में आरोप लगाए जा सकते हैं। इसलिए डिस्चार्ज करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

विद्वान निचली अदालत ने डिस्चार्ज आवेदन के कथन, मामले के तथ्यों, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों का वर्णन किया है और इसका विश्लेषण करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आरोपी को बरी करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है और डिस्चार्ज आवेदन को खारिज कर दिया है। आक्षेपित आदेश विस्तृत और तर्कपूर्ण है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

तदनुसार, पुनरीक्षण योग्यता से रहित है और एतदद्वारा खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 616

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3020 / 2022

दीपेंद्र एवं अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री राहुल मेहरोत्रा

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री सत्यवीर सिंह

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323, 504, 354 खा और 376/511- पोक्सो अधिनियम, 2012 धारा 7/8 -समन आदेश के विरुद्ध - आरोप है कि आरोपी ने वादी की नाबालिग बेटी पर हमला किया, जिससे उसे चोटें आईं - एक आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया - सुनवाई के दौरान अभियोजन पक्ष ने अन्य नामित आरोपियों को बुलाने के लिए धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन दिया- आवेदन स्वीकार किया गया- आयोजित, विशेष आरोप है कि उन्होंने सह-आरोपियों के साथ अपराध किया - उन्हें विशिष्ट भूमिका सौंपी गई है - वादी के भाई और भतीजे को प्रत्यक्षदर्शी गवाह के रूप में नामित किया गया है- मेडिकल रिपोर्ट ने एफआईआर के आरोपों की पुष्टि की है - पीड़िता ने सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत अपने बयान में विशिष्ट भूमिका के साथ पुनरीक्षणकर्ता के आरोपों और मिलीभगत की पुष्टि की है - एफआईआर में नामित वादी और दो गवाहों ने आरोपों का समर्थन किया है - आरोपियों की कहीं और मौजूदगी के बारे में स्वतंत्र गवाहों के बयानों के आधार पर जांच अधिकारी ने उन्हें दोषमुक्त कर दिया है - बलात्कार के प्रयास का मामला - गवाहों के बयान के आधार पर उसके बयान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, जिन्होंने यह गवाही दी है कि आरोपियों में से दो घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे - आपेक्षित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 3, 6)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बृजेन्द्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2017 0 सुप्रीम (एससी) 411

2. सुधीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 415/2022, दिनांक 06.07.2022 को निर्णीत)

3. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1400, (पैरा 98 और 99)

4. राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 2786

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता और विपक्षी संख्या 2 शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

यह आपराधिक पुनरीक्षण, सत्र परीक्षण संख्या 736 वर्ष 2021 (राज्य बनाम हिमांशु) अंतर्गत धारा 323, 504, 354 ख, 376/511 भा.दं.सं. व 7/8 पॉक्सो एक्ट, थाना मिरहाची, जिला एटा में विशेष न्यायाधीश (एक्सक्लूसिव कोर्ट पॉक्सो अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, एटा द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.05.2022 के खिलाफ दायर किया गया है| आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वान निचली अदालत ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन पर पुनरीक्षणवादी रवि उर्फ रवींद्र और दीपेंद्र को अपराध अंतर्गत धारा 323, 504, 354 ख, सपठित धारा 34 ,376/511 भा.दं.सं. व 7/8 पॉक्सो एक्ट के लिए सह-अभियुक्तों के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

इस मामले की प्राथमिकी दिनांक 20.05.2021 को पीड़िता के पिता ने दर्ज कराई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि दिनांक 17.05.2022 को उनकी नाबालिग बेटी, आयु लगभग 13 वर्ष, खेत में कचरा फेंकने गई थी। मक्के के खेत में रवि उर्फ रवीन्द्र, दीपेन्द्र व हिमांशु घात लगाकर बैठे थे और उन्होंने दुष्कर्म की नियत से उसकी बेटी को पकड़ लिया। उसकी पुत्री ने प्रतिरोध किया तो तीनों आरोपियों ने उसके साथ मारपीट की, जिससे वह घायल हो गयी| उन्होंने उसे नीचे भी गिरा दिया और उसे निर्वस्त्र करने की कोशिश की। उसके चिल्लाने पर राम अवतार (शिकायतकर्ता का भाई) और उसका भतीजा वीर प्रताप मौके पर आ गये। उन्हें देखकर सभी तीनों आरोपी भाग गये। विवेचना के बाद सिर्फ हिमांशु के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया| मुकदमे के दौरान, शिकायतकर्ता और पीड़ित से अभियोजन साक्षी -1 और अभियोजन साक्षी-2 के रूप में और एक अन्य गवाह राम अवतार से अभियोजन साक्षी-3 के रूप में पूछताछ की गई। इसके बाद, अभियोजन पक्ष ने प्रथम सूचना रिपोर्ट के अन्य नामित आरोपियों रवि उर्फ रवींद्र और दीपेंद्र को बुलाने के लिए धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन दायर किया। विद्वान निचली न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन स्वीकार कर लिया है।

पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विवेचना के दौरान, विवेचना अधिकारी ने कुछ स्वतंत्र गवाहों के बयान दर्ज किए हैं, जिन्होंने कथित घटना में पुनरीक्षणवादी की संलिप्तता से पूरी तरह इनकार किया है। कुछ ग्रामीणों ने मामले के सही तथ्य बताते हुए अपने शपथ पत्र भी एसएसपी को सौंपे और ये

शपथ पत्र केस डायरी का भी हिस्सा हैं। विवेचना के समापन के बाद, विवेचना अधिकारी ने पाया कि पुनरीक्षणवादी कथित घटना में शामिल नहीं थे और उनके नाम हटा दिए गए और केवल मुख्य आरोपी हिमांशु के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। यह भी तर्क दिया गया है कि कथित घटना के समय पुनरीक्षणवादी घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे। वे अशोक के पिता के अंतिम संस्कार में शामिल होने के लिए शाम 6:30 बजे से 7:30 बजे तक अशोक के घर पर मौजूद थे और जहां से वे अपने-अपने घर लौट आए। कथित घटना में पुनरीक्षणवादी की संलिप्तता नहीं पाई गई। विद्वान निचली न्यायालय, शिकायतकर्ता पीडब्लू-1 (पीड़ित), पीडब्लू-2 और अन्य गवाह राम अवतार (पीडब्लू-3) के बयानों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंची कि पुनरीक्षणवादी भी कथित घटना में शामिल थे और उन्हें धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश द्वारा तलब किया है। आक्षेपित आदेश पारित करते समय, विद्वान निचली अदालत इस बात पर विचार करने में पूरी तरह से विफल रही कि पुनरीक्षणवादी के खिलाफ कोई मजबूत और ठोस सबूत मौजूद नहीं था,और उन्हें असावधानी और लापरवाह तरीके से बुलाया गया था। विद्वान निचली अदालत ने विवेचना के दौरान एकत्र किए गए सबूतों को भी पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया और आक्षेपित आदेश पारित करते समय उन पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया। विद्वान अधिवक्ता ने ***बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य 2017 0 सुप्रीम (एससी) 411*** के केस लॉज़ और ***आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 415 वर्ष 2022 (सुधीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य)*** में पारित किये गए इस अदालत के आदेश दिनांक 06.07.2022 का आश्रय लिया।

विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणवादी-अभियुक्तों को विशिष्ट भूमिका के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित किया गया है। शिकायतकर्ता, पीड़िता और प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित चश्मदीद गवाहों ने भा.दं.सं की धारा 161 के तहत दर्ज अपने बयानों में प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों का समर्थन किया है। पीड़िता ने भी धारा 164 भा.दं.सं. के तहत दर्ज अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों का समर्थन किया है। विवेचना अधिकारी ने उपरोक्त ठोस सबूतों को नजरअंदाज करते हुए केवल कुछ तथाकथित स्वतंत्र गवाहों के बयान के आधार पर पुनरीक्षणवादी को अनुचित तरीके से दोषमुक्त कर दिया है। मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा विवेचना ेे गए तीन गवाहों ने अभियोजन पक्ष की बात को फिर से दोहराया है। इसलिए पुनरीक्षणवादी के ख़िलाफ़ पर्याप्त सबूत हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों और सामग्री पर विचार करने के बाद पाया है कि पर्याप्त और ठोस सबूत हैं और उसने आक्षेपित सम्मन आदेश पारित कर दिया है। इसमें कोई अवैधता नहीं है।

यह निर्विवाद है कि पुनरीक्षणवादी आरोपियों का नाम एफआईआर में है। ऐसे विशिष्ट आरोप हैं कि उन्होंने भी सह-अभियुक्त हिमांशु के साथ अपराध किया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में

इन्हें विशिष्ट भूमिका सौंपी गई है। घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में राम अवतार और वीर प्रताप बताए गए हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप भी लगाया गया है कि पीड़िता को चोटें आई हैं| पीड़िता की चिकित्सकीय विवेचना की गई है और उसकी मेडिको लीगल रिपोर्ट रिकॉर्ड का हिस्सा है जो प्राथमिकी के आरोपों की पुष्टि करती है। पीड़िता ने धारा 161दंड प्रक्रिया संहिता के साथ-साथ धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों की पूरी तरह से पुष्टि की है और विशिष्ट भूमिका के साथ पुनरीक्षणवादी आरोपी की संलिप्तता के बारे में बताया है। शिकायतकर्ता और प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित दो गवाहों ने भी प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों का समर्थन किया है। विवेचना अधिकारी ने आरोपियों के कहीं और मौजूद होने के संबंध में कुछ अन्य गवाहों के बयानों के आधार पर ही उन्हें दोषमुक्त कर दिया है। यह दुष्कर्म के प्रयास का मामला है। पीड़िता को चोटें भी आई हैं| इसलिए, उसके बयान को हल्के में नहीं लिया जा सकता है और कुछ अन्य गवाहों, जिन्होंने गवाही दी है कि दो आरोपी (पुनरीक्षणवादी) घटना के स्थान पर मौजूद नहीं थे, के बयान के आधार पर इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है । हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पेज 1400 के मामले में शीर्ष अदालत ने धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति, एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयमपूर्वक और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियों के अनुसार इसका प्रयोग करना उचित है। इसका प्रयोग केवल इसलिए नहीं करना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी है। केवल तभी जब किसी व्यक्ति के खिलाफ न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूतों से मजबूत और ठोस सबूत मिले, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि असावधानी और लापरवाह तरीके से।"

"99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, यह जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया जाए, उसकी संलिप्तता के लिए मात्र सम्भावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। परीक्षण जिसे लागू किया जाना है ,वह यह है जो कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किये गये प्रथम दृष्टया मामले से अधिक हो, लेकिन इस हद तक संतुष्टि में कम हो कि सबूत, अगर खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो सकती है। ऐसी संतुष्टि के अभाव में न्यायालय को धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 दंड

प्रक्रिया संहिता में यह प्रदान करने का उद्देश्य "यदि साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति ने, जो आरोपी नहीं है, कोई अपराध किया है, इन शब्दों से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर आरोपी के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है।" इस्तेमाल किए गए शब्द 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके' नहीं हैं| इसलिए धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए कोई गुंजाइश नहीं है कि वह आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाए।"

धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित परीक्षण में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिद्धांत भी शामिल है कि केवल तभी जब किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत हों तो इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। लागू किया जाने वाला परीक्षण वह है जो आरोप तय करने के समय लागू प्रथम दृष्टया मामले से अधिक हो। राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 2007 एससी 2786 के मामले में शीर्ष अदालत ने स्थापित किया है, कि धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत विवेचना अधिकारी को दिए गए गवाहों के बयान पर यह निष्कर्ष निकालते समय भरोसा नहीं किया जा सकता है कि जिन आरोपियों पर मुकदमा चलाने की मांग की गई थी, वे घटनास्थल पर उपस्थित नहीं हो सकते थे। आगे यह भी स्थापित किया गया है कि न्यायालय को सबूत पर ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि कोई व्यक्ति जिसे आरोपी के रूप में पेश नहीं किया गया है, उसके द्वारा अपराध कारित होना प्रतीत होता है। न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होने की ज़रूरत नहीं है कि उसने अपराध किया है। न्यायालय को केवल यह प्रतीत होना चाहिए कि उसने कोई अपराध किया है।

चश्मदीद गवाहों और घायल गवाहों की गवाही के रूप में ठोस सबूत हैं। तथ्यों के वर्तमान समूह पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को लागू करने पर, यह स्पष्ट है, कि पुनरीक्षणवादी आरोपियों की संलिप्तता की संभावना मात्र से ज्यादा मजबूत सबूत हैं, और शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को पास कर लिया गया है, जो आरोप तय करते समय लागू किये गए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि अगर सबूतों का खंडन नहीं किया गया तो दोषसिद्धि हो जाएगी।

विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में आवेदन में दिए गए कथनों, अभियोजन पक्ष के मामले, उसके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य, कानून के प्रावधान और प्रस्ताव के बारे में बताया है और रिकॉर्ड पर सभी तथ्यों और साक्ष्यों का विश्लेषण किया है और इस निष्कर्ष को दर्ज किया है कि पुनरीक्षणवादी को विचारण के लिए बुलाने के लिए पर्याप्त आधार है। आक्षेपित आदेश विस्तृत एवं तर्कपूर्ण है। यह न्यायी एवं उचित है। इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है| यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किये जाने योग्य है।

तदनुसार, आपराधिक पुनरीक्षण को ***खारिज किया जाता है***।

(2023) 5 ILRA 619

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3390 / 2022

श्रीमती नीलम देवी एवं अन्य पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री सुधीर कुमार अग्रवाल, श्री सत्यवान यादव

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अमरेश यादव

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - समन आदेश के विरुद्ध - वादी की बेटी की शादी के सात साल के भीतर अप्राकृतिक परिस्थितियों में मृत्यु हो गई थी - पति सहित परिवार के अन्य सदस्यों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई थी - एफआईआर में सभी आरोपियों के खिलाफ दहेज की मांग और यातना के सामान्य आरोप हैं - आई.ओ. ने केवल पति के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जो जेल में था और शेष नामित आरोपियों को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला - विचरण के दौरान अभियोजन पक्ष ने अन्य नामित आरोपियों को बुलाने के लिए सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आवेदन दिया - आवेदन स्वीकार कर लिया गया - विचरण के दौरान दर्ज साक्ष्य धारा 319 के तहत दर्ज बयान के 161 सी.आर.पी.सी. के अलावा और कुछ नहीं था - कोई अतिरिक्त साक्ष्य नहीं - घटना से एक वर्ष पूर्व मृतका अपने पति के साथ मकान की पहली मंजिल पर अलग रह रही थी - वह मानसिक अवसाद से ग्रस्त थी, उसने पहले दो बार आत्महत्या करने का प्रयास किया था - उसके पति ने उसकी मानसिक बीमारी का उपचार करवाया था - विचारणीय न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध समस्त तथ्यों, साक्ष्यों का मूल्यांकन करने में विफल रहा है - विवादित आदेश को अपास्त किया जाता है। (पैरा 2, 3, 7, 11)

आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रमेश चंद्र श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 519
2. सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 एआईआर (एससी) 1420
3. श्रीमती अलका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1482/2019 दिनांक 13.5.2022 को निर्णीत)
4. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, एआईआर (2014) सुप्रीम कोर्ट 1400
5. बृजेन्द्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य., (2017) 7 एससीसी 706

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण वाद अपर सत्र न्यायाधीश/एफटीसी संख्या 2, आजमगढ़

द्वारा एस.टी. संख्या 126/2018 (राज्य बनाम शशिकांत) मुकदमा अपराध संख्या 367/2017, थाना कोतवाली, जिला आजमगढ़ में पारित दिनांक 10.8.2022 के आदेश के विरुद्ध है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के प्रार्थना पत्र पर धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उक्त आदेश के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं-अभियुक्तों को विचारण के लिए तलब किया है।

विपक्षी संख्या 2 ने दिनांक 18.7.2017 को एक प्राथमिकी दर्ज कराई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उनकी पुत्री हेमलता की शादी दिनांक 19.5.2015 को शशिकांत के साथ हुई थी और ससुराल वालों की मांग पर दहेज में 3 लाख रुपये नकद, एक मोटरसाइकिल, सोने की अंगूठी और विभिन्न घरेलू सामान दिए गए थे, लेकिन उसका पति शशिकांत, सास-ससुर राम आसरे चौधरी, नीलम चौधरी और देवर राजा चौधरी दहेज से संतुष्ट नहीं थे और उसे प्रताड़ित और प्रताड़ित करते थे। वे अतिरिक्त दहेज के रूप में एक सोने की चेन और एक लाख नकद की मांग कर रहे थे और उसे घर से निकालने की धमकी दे रहे थे। प्रसव के आठ दिन बाद ही उन लोगों ने उसे घर से निकाल दिया। उनकी पुत्री ने उन्हें फोन पर सारी बात बताई और शिकायतकर्ता के रिश्तेदार ने उसे अपने पास रखा और उसका इलाज कराया। इसके बाद शिकायतकर्ता आया और उसे मुंबई ले गया और उसका इलाज कराया। काउंसलिंग के बाद उन्होंने अपनी पुत्री को उसके ससुराल भेज दिया जांच के बाद केवल मृतका के पति शशिकांत के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया। जांच अधिकारी ने एफआईआर में शेष नामजद आरोपियों को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि उनके खिलाफ कोई साक्ष्य नहीं मिला। मुकदमे के दौरान मृतका की मां रामभावती कन्नौजिया, पीडब्लू 1 और शिकायतकर्ता पंचम कन्नौजिया, पीडब्लू 2 से पूछताछ की गई। अभियोजन पक्ष ने एफआईआर में नामजद अन्य आरोपियों राम आसरे चौधरी, नीलम चौधरी और राजा चौधरी को तलब करने के लिए धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन दिया । विद्वान विचारण न्यायालय ने विवादित आदेश के तहत उक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और उन्हें तलब किया।

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ता निर्दोष हैं और उन्हें झूठा फंसाया गया है। विपक्षी संख्या 2 ने दुर्भावनापूर्ण इरादे और गुप्त उद्देश्य से केवल उन्हें परेशान करने के लिए झूठे और तुच्छ आधारों पर धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन दायर किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपित आदेश पारित करते समय कानून के इस स्थापित सिद्धांत पर विचार नहीं किया है कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग नियमित तरीके से नहीं किया जाना चाहिए और इसका बहुत ही संयम से और केवल तभी इस्तेमाल किया जाना चाहिए जब रिकॉर्ड पर सबूत आ गए हों जो पर्याप्त रूप से स्थापित करते हैं कि व्यक्तियों ने अपराध किया है।

विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूतों के आधार पर अन्य व्यक्तियों की संलिप्तता के बारे में केवल संदेह उन्हें धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत बुलाने के लिए पर्याप्त नहीं है। धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत प्रदत्त शक्ति एक असाधारण शक्ति है और इसका बहुत ही संयम से इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब बाध्यकारी कारण मौजूद हों। कुछ सकारात्मक साक्ष्य अवश्य होने चाहिए और वह साक्ष्य उन व्यक्तियों के विशिष्ट अपराध की ओर इंगित करने चाहिए जिनके विरुद्ध कार्यवाही की जानी है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने अधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से नहीं किया है और बिना किसी ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य के पुनरीक्षणकर्ताओं-अभियुक्तों को गलत और अवैध रूप से तलब किया है। विवादित आदेश यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि मृतक मानसिक पीड़ा से पीड़ित थी और उसका उपचार चल रहा था, जो चिकित्सा दस्तावेजों से स्पष्ट रूप से स्थापित होता है। पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 घटना के समय ड्यूटी पर था जबकि पुनरीक्षणकर्ता संख्या 3 मृतक का देवर है और वह बीए अंतिम वर्ष में पढ़ रहा है। मृतका और उसके पति शशिकांत के दैनिक प्रकरण से उसका कोई लेना-देना नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित केस कानूनों पर भरोसा किया:

1. रमेश चंद्र श्रीवास्तव बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य 2021 0 सुप्रीम (एससी) 519

2. सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य2011 एआईआर (एससी) 1420

3. श्रीमती अलका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1482/2019 में दिनांक 13.5.2022 को निर्णय दिया गया

विद्वान ए.जी.ए. तथा विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ता-आरोपियों का नाम एफ.आई.आर. में है। उनके विरुद्ध दहेज की मांग के लिए उत्पीड़न तथा यातना देने के भी आरोप हैं। जांच अधिकारी ने बिना किसी पर्याप्त कारण के उन्हें जांच में दोषमुक्त कर दिया है तथा केवल मृतका के पति के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया है, जो जेल में है तथा उसकी जमानत अर्जी तीन बार खारिज हो चुकी है। परिवादी पी.डब्लू. 2 तथा मृतका के माता-पिता रंभावती, पी.डब्लू. 1 ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में एफ.आई.आर. में आरोपित अभियोजन पक्ष की कहानी की पूर्ण पुष्टि की है, जिससे पुनरीक्षणकर्ता-आरोपियों की मिलीभगत स्पष्ट रूप से स्थापित होती है। विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रकरण के वास्तविक तथ्यों तथा परिस्थितियों पर विचार करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन करने के पश्चात पुनरीक्षणकर्ताओं को विधिक रूप से तलब किया है। यह भी तर्क दिया गया है कि मृतका सुशिक्षित तथा स्नातक थी। वह मानसिक रूप से विक्षिप्त नहीं थी। पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा बताए गए चिकित्सा उपचार के समय वह मुम्बई में थी, जो मुम्बई में तैयार किए गए चाइल्ड कार्ड से प्रमाणित होता है। इस प्रकार मानसिक देखभाल का चिकित्सा विवरण जाली तथा मनगढ़ंत है। यह भी तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी के खिलाफ रिकॉर्ड पर पर्याप्त और ठोस

सबूत मौजूद हैं। विवादित समन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

यह विवादित नहीं है कि शिकायतकर्ता-विपक्षी संख्या 2 की बेटी की शादी के सात साल के भीतर अप्राकृतिक परिस्थितियों में मृत्यु हो गई थी। पति शशिकांत, सास-ससुर राम आसरे चौधरी और नीलम चौधरी तथा देवर राजा चौधरी के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्राथमिकी में सभी आरोपियों के खिलाफ दहेज मांगने और प्रताड़ित करने के सामान्य आरोप हैं। जांच अधिकारी ने जांच की और केवल पति शशिकांत के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया। जांच के दौरान एकत्र साक्ष्य के आधार पर जांच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ससुर राम आसरे, सास नीलम चौधरी और देवर राजा चौधरी को झूठा फंसाया गया है और उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं है। यह सही है कि शिकायतकर्ता पंचम कन्नोजिया, मृतका के पिता पीडब्लू 2 और मृतका की माता रम्भावती कन्नोजिया, पीडब्लू 1 ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में एफआईआर के आरोपों को दोहराया है और पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों को भी इसमें शामिल किया है, लेकिन उनके बयानों में भी पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों के खिलाफ अतिरिक्त दहेज की मांग के लिए उत्पीड़न और यातना के संबंध में सामान्य आरोप हैं।

पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 और 2 सास-ससुर हैं, जबकि पुनरीक्षणकर्ता संख्या 3 मृतका का देवर है। जांच के दौरान उनकी संलिप्तता नहीं पाए जाने पर उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया। मुकदमे के दौरान दर्ज साक्ष्य दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत दर्ज बयान से अधिक कुछ नहीं है। कोई अतिरिक्त साक्ष्य नहीं है। जांच के दौरान जांच अधिकारी ने यह साक्ष्य जुटाए हैं कि घटना से एक साल पहले मृतका अपने पति के साथ मकान की पहली मंजिल पर अलग रह रही थी। वह मानसिक अवसाद से भी ग्रस्त थी। उसने पहले भी दो बार आत्महत्या करने की कोशिश की थी। उसके पति ने मानसिक बीमारी के लिए उसका इलाज कराया था।

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य एआईआर (2014) सर्वोच्च न्यायालय 1400 में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने धारा 319 दं0प्र0सं0 का दायरा और दायरा तय किया है। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 नीचे उद्धृत हैं:

"98. धारा 319, दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन प्रकरण में किया जाना चाहिए जहां प्रकरण की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और लापरवाही और लापरवाही से नहीं।

99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से ही प्रथम दृष्टया प्रकरण स्थापित किया जाना है, जिसे अनिवार्य रूप से जिरह की कसौटी पर परखा नहीं जा सकता, इसके लिए उसकी संलिप्तता

की मात्र संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है, जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह ऐसा है जो आरोप तय करने के समय प्रयोग किए गए प्रथम दृष्टया प्रकरण से कहीं अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि साक्ष्य, यदि अखंडित हो जाता है, तो दोषसिद्धि की ओर ले जाएगा। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319, दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319, दं0प्र0सं0 में प्रावधान करने का उद्देश्य यदि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होने वाले किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है, तो यह इन शब्दों से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" प्रयुक्त शब्द 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है' नहीं हैं। इसलिए, धारा 319, दं0प्र0सं0 के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

सर्वोच्च न्यायालय ने **बृजेन्द्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी 706 के पैरा संख्या 13** में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, हरदीप सिंह प्रकरण में बताए गए कुछ सिद्धांतों को दोहराया जा सकता है: धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग विचारण न्यायालय द्वारा ट्रायल के दौरान किसी भी चरण में किया जा सकता है , यानी ट्रायल के समापन से पहले, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने और चल रहे प्रकरण में ट्रायल का सामना करने के लिए, एक बार विचारण न्यायालय को पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ "साक्ष्य" हैं जिनके आधार पर यह सबूत इकट्ठा किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है। यहां "साक्ष्य" का अर्थ है वह सामग्री जो ट्रायल के दौरान न्यायालय के सामने लाई जाती है। जहां तक जांच के चरण में आईओ द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का संबंध है, इसका उपयोग धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए सबूतों की पुष्टि और समर्थन के लिए किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है, ऐसे सबूत जो मुख्य परीक्षा में सामने आए हैं, गवाहों की जिरह के बिना, भी विचार में लिए जा सकते हैं 319 Cr.PC. और यह एक असाधारण भी है, इसका प्रयोग संयम से और केवल उन प्रकरण में किया जाना चाहिए जहां प्रकरण की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। संतुष्टि की डिग्री उस डिग्री से अधिक है जो उन अन्य लोगों के खिलाफ आरोप तय करने के समय वारंट की जाती है जिनके संबंध में आरोप-पत्र दायर किया गया था। केवल तभी जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग लापरवाही या लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया जो राय बनाई जानी है, उसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है।"

रिकॉर्ड पर मौजूद सभी तथ्यों, साक्ष्यों और सामग्रियों पर विचार करते हुए ऐसा प्रतीत

होता है कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने का कोई मजबूत और ठोस कारण नहीं है। धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत प्रार्थना पत्र पर फैसला करते समय विद्वान विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी तथ्यों, साक्ष्यों और अन्य सामग्रियों की सराहना करने में विफल रहा है। अवर न्यायालय संतुष्टि की वह डिग्री दर्ज करने में भी विफल रही है जो धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत एक आरोपी को बुलाने के लिए आवश्यक है । संतुष्टि की डिग्री पहली नजर में प्रकरण में दर्ज की गई डिग्री में से एक नहीं है। नतीजतन, विचारण न्यायालय कई फैसलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के अनुसार अपनी शक्ति का प्रयोग करने में विफल रहा है। विवादित आदेश कानून की नजर में पोषणीय नहीं है और यह अपास्त किये जाने योग्य है।

आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफटीसी संख्या 2, आजमगढ़ द्वारा एस.टी. संख्या 126/2018 में पारित दिनांक 10.8.2022 के आक्षेपित आदेश जिसके तहत धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन की अनुमति दी गई थी और पुनरीक्षणकर्ताओं को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया था, को अपास्त किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 624

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3526 / 2022

अशोक कुमार और अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री विनय कुमार पांडे

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 147, 148, 149, 323, 324, 325, 504 और 506 - समन आदेश के विरुद्ध - अभियुक्तों के विरुद्ध विशेष आरोप कि उन्होंने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर लाठी, डंडा और अन्य हथियारों से लैस होकर शिकायतकर्ता और अन्य पर हमला किया - पांच लोगों को चोटें आईं - विचरण के दौरान अभियोजन पक्ष ने धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर किया - आधार यह है कि एफआईआर में नौ लोगों का नाम है जबकि आईओ ने आरोप लगाया है कि उन्होंने वादी और अन्य पर हमला किया। ने केवल पांच आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया है -अनुचित प्रभाव में, आईओ ने चार व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया है - आवेदन स्वीकार किया गया - तर्क: - विपक्षी आपराधिक मामलों को निपटाना चाहते हैं, पुनरीक्षणकर्ता ने झूठा फंसाया है - आयोजित, दोनों गवाहों (पी.डब्ल्यू. 1 वादी) और (पी.डब्ल्यू. 2 घायल गवाह) ने एफआईआर के आरोपों की पूरी तरह से पुष्टि की है - प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य है, जब तक कि बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उसके बयान को खारिज नहीं किया जा सकता

- सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज गवाहों के बयान उचित नहीं थे - यह अधूरे थे, इसमें घटना का कोई विवरण नहीं था - आरोपी को लाभ पहुंचाने के लिए, आईओ ने अपने स्वयं के प्रयोग की गई शक्तियों पर बयान दर्ज किए हैं - विचारणीय न्यायालय ने सही कहा - आरोपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 3, 4, 7, 8, 9)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1400, (पैरा 98 और 99)
2. एम.पी. राज्य बनाम मान सिंह, (2003) 10 एससीसी 414
3. अब्दुल सईद बनाम एम.पी. राज्य, (2010) 10 एससीसी 259
4. यू.पी. राज्य बनाम नरेश, (2011) 4 एससीसी 324

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना तथा रिकार्ड का अवलोकन किया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण वाद अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 10, मथुरा द्वारा एस.टी. संख्या 396/2016 धारा 147, 148, 149, 323, 324, 325, 504 व 506 भा0दं0सं0 (राज्य बनाम महेश व अन्य) मुकदमा अपराध संख्या 152/2015, थाना छाता, जिला मथुरा में पारित आदेश दिनांक 10.6.2022 के विरुद्ध दायर किया गया है।

विपक्षी संख्या 2 श्रीमती तारावती द्वारा एक एफ.आई.आर. दर्ज कराई गई थी , जिसमें आरोप लगाया गया था कि आज दिनांक 23.04.2015 को प्रातः लगभग 7:00 बजे चेतराम पुत्र उसका जेठ शौचक्रिया के लिए गया हुआ था। जब वह वापस आ रहा था तो महेश के घर के पास अशोक, अश्विन , राम किशन, महेश, बांके, राजवीर तथा योगेश लाठी, डंडा तथा फरसा लेकर आये तथा हरदयाल लाइसेंसी बन्दूक तथा गजेन्द्र देशी तमंचा लेकर आये। चेतराम अपने घर की ओर भागा तो सभी अभियुक्तगण उसका पीछा करने लगे तथा हरदयाल ने अपनी लाइसेंसी बन्दूक से तथा गजेन्द्र ने देशी तमंचे से फायर कर दिया। चेतराम बाल-बाल बचकर अपने घर में घुस गया तथा सभी अभियुक्तगण भी घर में घुस गये तथा चीख-पुकार पर राम जीवन , विजय, कु. रेनू तथा श्याम उसे बचाने आये। सभी आरोपियों ने उन पर लाठी, डंडा और फरसा से हमला कर उन्हें गंभीर चोटें पहुंचाईं। घायलों का मेडिकल परीक्षण कराया गया। जांच के बाद केवल महेश, राम किशन, राजवीर, बांके और योगेश के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया। मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष की दो गवाहों श्रीमती तारावती पीडब्लू 1 और श्याम सुंदर पीडब्लू 2 का परीक्षण किया गया। अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत एक आवेदन पेश किया गया और आरोप लगाया गया कि एफआईआर में नौ लोगों के नाम थे जबकि आईओ ने केवल पांच आरोपियों

अनुवादित

के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया है। आईओ ने अनुचित प्रभाव में आकर अशोक, अश्विनी , हर दयाल और गजेंद्र को दोषमुक्त कर दिया है, जबकि सभी आरोपी व्यक्ति घटना में सक्रिय रूप से शामिल थे। मुकदमे के दौरान पीडब्लू 1 श्रीमती तारावती प्रत्यक्षदर्शी गवाह और श्याम सुंदर पीडब्लू 2 घायल गवाह से पूछताछ की गई है और उन्होंने उपरोक्त आरोपियों को भी घटना में शामिल किया है। उपरोक्त आधार पर यह प्रार्थना की गई थी कि शेष सभी आरोपी व्यक्तियों को भी मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाए। विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 16.6.2022 के आदेश द्वारा आवेदन को स्वीकार कर लिया है और आईओ द्वारा दोषमुक्त किए गए सभी चार आरोपियों को तलब किया है।

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि जांच अधिकारी ने शिकायतकर्ता और घायल गवाहों के बयान दर्ज किए हैं। उन्होंने पुनरीक्षणकर्ताओं-आरोपी का नाम नहीं लिया है। जांच के दौरान पाया गया कि उन्हें झूठा फंसाया गया है और वे घटना में शामिल नहीं थे। उपरोक्त आधार पर जांच अधिकारी ने उन्हें दोषमुक्त कर दिया और उनके खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया है। शिकायतकर्ता ने अपनी पत्नी और परिवार के सदस्यों के दबाव में झूठे और मनगढ़ंत तथ्यों के आधार पर प्राथमिकी दर्ज कराई है क्योंकि पक्षों के बीच कुछ विवाद है। पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 और 2 चचेरे भाई हैं। सूचक का पति और उसके परिवार के सदस्य सभी आपराधिक प्रकरण को निपटाना चाहते हैं और इस कारण से उन्होंने सभी पुनरीक्षणकर्ताओं को झूठा फंसाया है। यह भी तर्क दिया गया है कि जांच के दौरान एकत्र किए गए बयानों और साक्ष्यों के आधार पर जांच अधिकारी द्वारा सभी पुनरीक्षणकर्ताओं को दोषमुक्त कर दिया गया था, लेकिन अवर न्यायालय द्वारा उन पर विचार नहीं किया गया।

विद्वान ए.जी.ए. ने दलील दी कि पुनरीक्षणकर्ताओं के नाम एफ.आई.आर. में हैं और उनके खिलाफ यह भी आरोप है कि उन्होंने घटना में सक्रिय रूप से भाग लिया है। उन्होंने शिकायतकर्ता और अन्य लोगों पर हमला किया। इस घटना में पांच लोग घायल हुए हैं। जांच अधिकारी द्वारा धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज बयान अधूरे हैं और उनमें घटना का ब्यौरा नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि सुनवाई के दौरान शिकायतकर्ता और घायल गवाहों से पूछताछ की गई और उन्होंने अभियोजन पक्ष के बयान का पूरी तरह से समर्थन किया है और उनके बयानों से पुनरीक्षणकर्ताओं-आरोपियों की मिलीभगत पूरी तरह से स्थापित हो गई है। इसलिए, आरोपित समन आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 सर्वोच्च न्यायालय पृष्ठ 1400** के प्रकरण में धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. धारा 319, दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है।

इसका प्रयोग संयम से और केवल उन प्रकरण में किया जाना चाहिए जहां प्रकरण की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और लापरवाही और लापरवाही से नहीं।

99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से ही प्रथम दृष्टया प्रकरण स्थापित किया जाना है, जिसे अनिवार्य रूप से जिरह की कसौटी पर परखा नहीं जा सकता, इसके लिए उसकी संलिप्तता की मात्र संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है, जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह ऐसा है जो आरोप तय करने के समय प्रयोग किए गए प्रथम दृष्टया प्रकरण से कहीं अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि साक्ष्य, यदि अखंडित हो जाता है, तो दोषसिद्धि की ओर ले जाएगा। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319, दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319, दं0प्र0सं0 में प्रावधान करने का उद्देश्य यदि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होने वाले किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है, तो यह इन शब्दों से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" प्रयुक्त शब्द 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है' नहीं हैं। इसलिए, धारा 319, दं0प्र0सं0 के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

यह निर्विवाद है कि पुनरीक्षणवादियों-अभियुक्तों के नाम एफआईआर में हैं और उनके खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं कि उन्होंने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर लाठी, डंडा और अन्य हथियारों से लैस होकर शिकायतकर्ता के घर में घुसने के बाद शिकायतकर्ता और अन्य लोगों पर हमला किया। इस घटना में पांच लोग घायल हुए हैं। पीडब्लू 1 श्रीमती तारावती शिकायतकर्ता हैं जबकि पीडब्लू 2 श्याम सुंदर घायल गवाह हैं। दोनों गवाहों ने एफआईआर के आरोपों की पूरी तरह पुष्टि की है जो घटना में पुनरीक्षणवादियों की मिलीभगत को दर्शाता है। एक चश्मदीद गवाह के साक्ष्य का साक्ष्य के तौर पर अधिक महत्व होता है और जब तक ठोस कारण न हों उसके बयान को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने **मध्य प्रदेश राज्य बनाम मान सिंह (2003) 10 एससीसी 414, अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2010) 10 एससीसी 259 और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश (2011) 4 एससीसी 324** के प्रकरण में कानून का उपरोक्त प्रस्ताव निर्धारित किया है।

गवाहों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान उचित नहीं हैं। यह अधूरा है और इसमें घटना का कोई विवरण नहीं है। इससे पता चलता है कि जांच अधिकारी ने आरोपी को लाभ पहुंचाने के लिए

अपने स्तर पर बयानों को अत्यधिक अनुचित तरीके से दर्ज किया है।

आक्षेपित आदेश में विद्वान विचारण न्यायालय ने सम्पूर्ण तथ्य, साक्ष्य और विधिक प्रस्ताव का वर्णन किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री का विश्लेषण करने के पश्चात यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त को समन करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हैं। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए निर्धारित मानक को पूरा करते हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने शक्तियों का सही प्रयोग किया है तथा पर्याप्त सामग्री के आधार पर समन आदेश पारित किया है। आक्षेपित समन आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है।

पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 627

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4176 / 2022

बब्लू @दिनेश सिंह एवं अन्य . पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अनुराग वाजपेई, श्री अथर्व दीक्षित, श्री औशिम लूथरा, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिषेक कुमार, श्री उदय चंदानी

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 147, 148, 302/149, 307/149, 323/149, 504 और 506 - समन आदेश के विरुद्ध - 16 नामजद और कई अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई, जिसमें आरोप लगाया गया कि उन्होंने हथियारों से वादी और उसके साथियों पर हमला किया, जिससे उन्हें गंभीर चोटें आईं - केवल छह आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें स्वतंत्र गवाहों के आधार पर पुनरीक्षणवादियों-आरोपियों को दोषमुक्त कर दिया गया - अभियोजन पक्ष ने सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आवेदन दायर किया - इस कथन के साथ कि सह-आरोपी घटना में शामिल हैं, लेकिन उन पर मुकदमा नहीं चलाया गया - आवेदन स्वीकार किया गया - आयोजित, आरोपियों के खिलाफ विशेष आरोप घटना में उनकी संलिप्तता को दर्शाते हैं- एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है, जबकि कई अन्य (संख्या में 11) घायल हो गए हैं - वादी ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान में एफआईआर के आरोपों की पुष्टि की - घायल गवाहों ने वादी के बयान की पुष्टि की तीन चश्मदीद गवाह थे- घटनास्थल पर पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी की उपस्थिति अन्य स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों के बयान की तुलना में घायल गवाह के बयान को उचित महत्व दिया जाना चाहिए -घायल गवाह की गवाही के रूप में ठोस सबूत - विचारणीय न्यायालय ने पूरे तथ्य बयान किए, सभी सामग्रियों का विश्लेषण किया - आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 3, 8, 13)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर (1998) एससी 3148
2. बृजेन्द्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर (2019) एससी 2839
3. पेरिया सामी बनाम एस. नल्ला सामी, (2019) 4 एससीसी 342
4. सागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 6 एससीसी 389
5. एस. मोहम्मद. इस्पहानी बनाम योगेन्द्र चौधरी एवं अन्य, (2017) 16 एससीसी पृष्ठ 226
6. मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2021) 0 एआईआर (एससी) 4274
7. कुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य (आपराधिक अपील संख्या 885/2019 का निर्णय 5.12.2022 को हुआ)
8. संभाजी और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2008 सीआरएल.एल.जे. 1123
9. राजिन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, एआईआर 2007 सुप्रीम कोर्ट 2786
10. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1400, (पैरा 98, 99)
11. बृजेन्द्र सिंह व अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एससीसी पृष्ठ 706, (पैरा 13)
12. राजेश एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी सहायक श्री औशिम लूथरा, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, विद्वान अधिवक्ता श्री उदय चंदानी विपक्षी संख्या 2 के लिए, और विद्वान शासकीय अधिवक्ता को राज्य के लिए, सुना गया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण आक्षेपित आदेश दिनांकित 6.9.2022 अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित (गैंगस्टर एक्ट) एफ.टी.सी. (प्रथम) गौतमबुद्धनगर में एस.टी. संख्या 675 सन 2015 धारा 147, 148, 302/149, 307/149, 323/149, 504, 506 आई0पी0सी0 के तहत (उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम ज्ञानी और अन्य), थाना नॉलेज पार्क, जिला गौतमबुद्ध नगर, के विरुद्ध निर्देशित है। जिसके तहत अभियोजन पक्ष के आवेदन अन्तर्गत धारा 319 सी.आर.पी.सी. पर विद्वान निचली अदालत के आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों को अन्तर्गत धारा 147, 148, 302/149, 307/149, 323/149, 504 और 506 आई0पी0सी0 के अपराध में मुकदमे का सामना करने के लिए आहुत किया है।

एक प्रथम सूचना रिपोर्ट महेश चंद्रा के द्वारा 10.5.2015 को 15:20 बजे दर्ज कराई गई जिसमें 16 लोगों के खिलाफ नामजद और कई अज्ञात लोगों पर आरोप लगाया गया था, जिसमें कहा कि दिनांक 10.5.2015 को शिकायतकर्ता अपने भाई विजेन्द्र, चाचा ईश्वर सिंह, सोनू उर्फ़ पुष्कर, महेंद्र, रमेश, सुरेश, करमे उर्फ करम सिंह, नवीन उर्फ काले, सोनू पुत्र रमेश, मिंटू उर्फ श्यामा सिंह के साथ पुरवा गुलावली स्थित अपने खेत की जुताई कर रहे थे, सुबह करीब साढ़े दस बजे 15-16 गाड़ियों

और चार ट्रैक्टरों में 50-60 लोग लाठी, फरसा, लोहे की रॉड आदि लेकर वहां आये और शिकायतकर्ता से पूछा कि क्यों वो लोग उनके खेत में काम कर रहे हैं। शिकायतकर्ता ने कहा कि खेत उसका है. इस पर लेखराज, कंवर सिंह, श्याम सिंह, अनिराज, कोमल, नौराज, घनश्याम, जग प्रवेश, बिल्लू,गजराज, मलखान, पवन, सुखपाल, मुकेश बिंदल व अन्य अज्ञात लोगों ने शिकायतकर्ता और उसके साथियों पर उनके हथियारों से हमला कर दिए जिससे उन्हें गंभीर चोटें आईं। शिकायतकर्ता के चाचा ईश्वर सिंह पर लेखराज, सोनू और बब्लू लोहे की रॉड और फरसा से सिर पर हमला किये और उसके बाद चोट लगने से वह नीचे गिरे उन्हे ट्रैक्टर से कुचल दिया, और अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गई। सभी आरोपी व्यक्ति हथियार लहराते और फायरिंग करते हुए वाहनों और ट्रैक्टरों में मौके से चले गए शिकायतकर्ता एवं अन्य सभी घायलों को अस्पताल ले जाया गया जहां उनका इलाज चल रहा है। अन्वेषण के बाद आरोप पत्र जमा किया गया पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया था। सुनवाई के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा तीन गवाहों की जांच पडताल की गई। इसके बाद एक आवेदन अन्तर्गत धारा 319 सी0आर0पी0सी0 के तहत अभियोजन पक्ष द्वारा दी गयी, आरोप है कि महेश चंद्र ने 16 लोगों के खिलाफ एफ0आई0आर0 दर्ज कराई थी, आरोपी व्यक्तियों में बब्लू उर्फ दिनेश सिंह, घनश्याम, श्याम सिंह, मलखान सिंह, पवन कुमार और कंवर सिंह भी शामिल हैं। वे भी घटना में शामिल हैं लेकिन उनका विचारण नहीं की जा रहा है, अभियोजन पक्ष के गवाह महेश, अभियोजन साक्षी 1 और महेंद्र सिंह, अभियोजन साक्षी 2 ने अन्तर्गत धारा 161 सी.आर.पी.सी. में उनके बयानों में और न्यायालय के समक्ष अपने बयान में भी में उपरोक्त अभियुक्तों की संलिप्तता की बात कही,और उनके खिलाफ पर्याप्त सबूत हैं। एक प्रार्थना कि गयी जिसमे उन्हें अन्तर्गत धारा 319 सी0आर0पी0सी0 के तहत तलब करने को कहा गया। पक्षों की सुनवाई के बाद विद्वान निचली अदालत ने उपरोक्त आवेदन स्वीकार कर फैसला सुनाया, और आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षणकर्ताओ-अभियुक्त को तलब किया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया शुरुआत में 16 आरोपी व्यक्तियों को नाम से एफ.आई.आर. में फंसाया गया था, जांच के दौरान मुख्य आरोपी जिसका नाम ज्ञानी बताया गया और ईश्वर सिंह के ऊपर ट्रैक्टर चलाने का आरोप ज्ञानी था, एफ0आई0आर0 में ज्ञानी का नाम नहीं था और उसको कोई भूमिका अभिहस्तांकित नहीं की गई, न ही ईश्वर सिंह के शरीर पर कुचलने की चोट पोस्टमॉर्टम में पाई गई है। एफ0आई0आर0 में आरोप है कि ईश्वर सिंह अस्पताल ले जाया गया जहां उसकी मौत हो गई, लेकिन जांच के दौरान अभियोजन पक्ष ने इस संस्करण को बदल दिया और आरोप लगाया कि ईश्वर सिंह की मौके पर ही मृत्यु हो गई,घटना का स्थान बदलना,जो कि बहुत बड़ा विचलन है। सुनवाई के दौरान अभियोजन पक्ष के गवाह और सह-अभियुक्त जग प्रकाश, बिल्लू, नवराज, सुखपाल और मुकेश का नाम हटा दिया गया। जबकि उनके नाम विशेषकर इसका उल्लेख एफ0आई0आर0 के साथ-साथ धारा धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत बयानों

यहां तक कि उनके द्वारा दाखिल किए गए हलफनामों में भी किया गया। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि उपरोक्त तथ्य इंगित करते हुए अभियोजन पक्ष ने समय-समय पर अपना संस्करण उठाओ और चुनो की चाल के साथ आगे आएं और बदले गये है जो यह उस बात को भी दर्शाता है कि अभियोजन का पूरा मामला दिखावा के अलावा और कुछ नहीं है। आगे तर्क दिया है कि जांच अधिकारी ने स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों के बयान लिए और वे उल्लिखित किये उन्होने पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों को नहीं फंसाया, बल्कि उन्होंने अभियोजन पक्ष द्वारा उन्हें गलत फंसाने के बारे में दुश्मनी और ज़मीनी विवाद बताया है। यहां तक कि घायल धन सिंह और करण सिंह ने भी अन्तर्गत धारा 161 सी.आर.पी.सी के तहत अपने बयान दिए और इस संबंध में अभियोजन पक्ष के संस्करण पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों के सम्बन्ध में समर्थन नहीं किया है। उन्होंने कहा है कि पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों को नहीं देखा है, उन्होंने उनकी पहचान नहीं की, उन्होंने उनकी उपस्थिति के बारे में सुना है जिसके आधार पर बयानों के साथ-साथ अभिलेख पर अन्य सामग्री के आधार पर जॉच अधिकारी ने मात्र छह आरोपी व्यक्तियों अर्थात् सोनू, लेखराज, अभिराज, कोमल, गजराज और ज्ञानी के विरुद्ध आरोप पत्र जमा किया। जांच अधिकारी इस नतीजे पर पहुंचे कि पुनरीक्षणकर्ता के ख़िलाफ़ कोई निर्णायक सबूत नहीं है और उन्हें दोषमुक्त कर दिया। हालाँकि, जाँच को अपराध शाखा को स्थानांतरित कर दिया गया था लेकिन कोई भी सबूत विशेषकर पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध सामने नहीं लाया गया। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा पर्याप्त चश्मदीद गवाहों की गवाही एकत्र की गई है, जो स्थापित करता है कि पुनरीक्षणकर्ता घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे और इसका हिस्सा नहीं थे। कथित घटना में उनके नाम प्रतिद्वंद्विता के कारण और प्रतिशोध लेने के लिए ही सामने लाये गये हैं। एफ0आई0आर0 का संस्करण बेहद असंभव है, प्रथम सूचनाकर्ता स्वयं समय-समय पर अपना संस्करण बदलता रहा है। अभियोजन साक्षी 3 जांच अधिकारी ने बताया कि पुनरीक्षणकर्ता किस आधार पर बरी कर दिये गये थे। अभियोजन साक्षी 2 की गवाही दर्ज करने के बाद प्रथम सूचनकर्ता ने परेशान करने और अपमानित करने के गलत इरादे से पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ सी0आर0पी0सी0 की धारा 319 के तहत आवेदन दाखिल किया। सह अभियुक्त ने इसके खिलाफ विस्तृत आपत्ति दर्ज करायी है। जिसमें विद्वान विचारण न्यायालय ने आपत्ति के आधारों पर विचार किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है। विदवान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने शीर्ष अदालत के दिशानिर्देश अन्तर्गत धारा 319 सी0आर0पी0सी0 के तहत किसी आरोपी को समन करते समय जैसा कि **हरदीप सिंह बनाम. पंजाब राज्य एआईआर (1998) एससी 3148, बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य एआईआर (2019) एससी 2839 और पेरिया सामी बनाम एस नल्ला सामी (2019) 4 एससीसी 342** में, पर विचार करने में विफल रहा है, और आदेश को बहुत ही लचर तरीके से लागू किया गया। आक्षेपित आदेश सी0आर0पी0सी0 की धारा 161 केवल दोहराई गई बात के आधार पर आदेश पारित किया

गया है। विदवान परीक्षण अदालत यह कारण बताने में विफल रही है कि ऐसा क्यो उसे जॉच अधिकारी द्वारा दोषमुक्ति को इन्कार करना चाहिए था। शीर्ष अदालत ने यह अवधारित किया है कि किसी आरोपी को सी0आर0पी0सी0 की धारा अंतर्गत 319 के तहत साक्ष्य जिनका इस दौरान एक बार परीक्षण किया जा चुका है, जांच एक जैसी नहीं होनी चाहिए। इसके अलावा भी कुछ और होना जरूरी है, इसके बाद ही अंतर्गत धारा 319 सी.आर.पी.सी. के तहत शक्तियां का उपयोग करना चाहिए। विद्वान विचारण अदालत स्थापित कानून को सराहना करने में विफल रही है और इस सरसरी तौर पर बिना कोई ठोस सहमति, साक्ष्य उपलब्ध न होते हुए भी पुनरीक्षणकर्ता को बुलाया। विद्वान विचारण अदालत आवश्यक संतुष्टि की डिग्री को उल्लिखित करने में विफल रही, बल्कि यह देखा कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है जो कि कानून के स्थापित सिद्धांत के खिलाफ है, आक्षेपित आदेश पूर्णतः गैरकानूनी है। इसके अलावा विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित मामले के कानून पर भी भरोसा जताया है:

1. सागर बनाम यूपी राज्य (2022) 6 एससीसी 389

2. एस. मोहम्मद इस्पहानी बनाम. योगेन्द्र चौधरी व अन्य (2017) 16 एससीसी पृष्ठ 226

ओ.पी नंबर 2 के विद्वान वकील और विद्वान एजीए ने प्रस्तुत किया कि आरोपियों को एफआईआर में नामित किया गया है। उनके खिलाफ स्पष्ट और विशिष्ट आरोप हैं जो घटना में उनकी संलिप्तता को दर्शाते हैं। हादसे में एक व्यक्ति की मौत हो गई जबकि 11 अन्य घायल हो गए। शिकायतकर्ता खुद घायल है। उन्होंने और अन्य घायल गवाहों ने लगातार सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयानों में घटना में अपनी भूमिका का वर्णन करने वाले संशोधनवादियों को फंसाया है। जांच अधिकारी ने बिना किसी ठोस कारण के केवल कुछ तथाकथित स्वतंत्र गवाहों के बयान के आधार पर उन्हें दोषमुक्त कर दिया है। यह भी तर्क दिया गया है कि जांच अधिकारी ने मोबाइल डिटेल कॉल भी एकत्र किए हैं, जो प्रासंगिक समय पर घटना के स्थान पर संशोधनवादियों-अभियुक्तों की उपस्थिति की पुष्टि करता है, लेकिन इसके बावजूद, संशोधनवादियों-अभियुक्तों के साथ मिलीभगत में, जांच अधिकारी ने उन्हें बरी कर दिया। ट्रायल कोर्ट के समक्ष पेश किए गए दो गवाह महेश, पीडब्ल्यू 1 और महेंद्र, पीडब्ल्यू 2 घायल गवाह हैं। उन्होंने फिर से एफआईआर के आरोपों और धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज पिछले बयानों की पुष्टि की है। उन्होंने कहा है कि संशोधनवादी-आरोपी घटना स्थल पर मौजूद थे और उन्होंने घटना में भाग लिया है। इसलिए रिकॉर्ड पर मजबूत और ठोस सबूत हैं जिनके आधार पर विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित आदेश पारित किया है। विद्वान वकील ने निम्नलिखित मामले कानूनों पर भी भरोसा किया:

(i) मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2021) 0 एआईआर (एससी) 4274

(ii) कुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य(में)क्रिमीनल अपील 885 सन 2019 की अपील 5.12.2022 को निर्णीत, पर

(iii) संभाजी और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य 2008 क्रि0एल0जे0 1123

(iv) राजिन्द्र सिंह बनाम यूपी राज्य व अन्य ए0आई0आर0 2007 सुप्रीम कोर्ट 2786

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पृष्ठ 1400 पर सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इतनी वारंट हैं। इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल जहां अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होते हैं, कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और लापरवाही से नहीं।

"99.इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम चेहरा मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी जटिलता की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है, जो परीक्षण लागू किया जाना है वह प्रथम दृष्टया मामला है जैसा कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किया जाता है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि सबूत, अगर खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। सीआरपीसी की धारा 319 में, यदि 'सबूतों से यह प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति, जो आरोपी नहीं है, ने कोई अपराध किया है, तो प्रदान करने का उद्देश्य इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है। जिन शब्दों का इस्तेमाल किया गया है वे ऐसे नहीं हैं जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके। इसलिए, अदालत के लिए सीआरपीसी की धारा 319 के तहत कार्य करने की कोई गुंजाइश नहीं है, ताकि आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाई जा सके।

बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान (2017) 7 एससीसी पृष्ठ 706 के मामले में शीर्ष न्यायालय ने हरदीप सिंह के मामले में निर्धारित सिद्धांतों को दोहराया जिसका प्रासंगिक पैरा नं. 13 नीचे उद्धृत किया गया है:

"13. इस सवाल का जवाब देने के लिए, हरदीप सिंह के मामले में प्रतिपादित कुछ सिद्धांतों को दोहराया जा सकता है: धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग ट्रायल कोर्ट द्वारा मुकदमे के दौरान किसी भी स्तर पर किया जा सकता है, अर्थात, मुकदमे के समापन से पहले, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने और चल रहे मामले में मुकदमे का सामना करने के लिए, एक बार

ट्रायल कोर्ट को पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ 'सबूत' हैं, जिसके आधार पर यह इकट्ठा किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है। यहां 'सबूत' का अर्थ है वह सामग्री जो मुकदमे के दौरान अदालत के सामने लाई जाती है। जहां तक जांच के चरण में आईओ द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का संबंध है, इसका उपयोग सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य के समर्थन में किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि गवाहों की जिरह के बिना, मुख्य परीक्षा में सामने आए ऐसे सबूतों पर भी विचार किया जा सकता है। हालाँकि, चूंकि यह धारा 319 सीआरपीसी के तहत न्यायालय को दी गई एक विवेकाधीन शक्ति है और एक असाधारण भी है, इसलिए इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां वारंट करती हैं। संतुष्टि की डिग्री उस डिग्री से अधिक है जो दूसरों के खिलाफ आरोप तय करते समय आवश्यक है जिनके संबंध में आरोप पत्र दायर किया गया था। केवल जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होता है कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग आकस्मिक या लापरवाह तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया जो राय बनाई जानी है, उसके लिए उसकी संलिप्तता की संभावना की तुलना में मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है।"

यह निर्विवाद है कि संशोधनवादियों का नाम एफआईआर में है। उनके विरुद्ध विशिष्ट आरोप हैं जो घटना में उनकी संलिप्तता को दर्शाते हैं। इस घटना में एक व्यक्ति की मौत हो गई है जबकि कई अन्य (संख्या में 11) घायल हुए हैं। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार शिकायतकर्ता स्वयं घटना का चश्मदीद गवाह है। उन्होंने जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान में प्राथमिकी के आरोपों की पुष्टि की है। घायल गवाहों ने भी शिकायतकर्ता के बयान और संशोधनकर्ताओं-आरोपियों को फंसाने वाली एफआईआर के आरोपों की पुष्टि की है। एफआईआर में तीन चश्मदीद गवाहों को भी नामजद किया गया है। उन्होंने घटना स्थल पर संशोधनवादियों-अभियुक्तों की उपस्थिति के बारे में भी कहा है। जांच अधिकारी ने अन्य चश्मदीद गवाहों के बयानों के आधार पर आरोपी संशोधनवादियों को बरी कर दिया है। विचारण के दौरान शिकायतकर्ता और एक अन्य घायल गवाह से पूछताछ की गई है। उन्होंने फिर से एफआईआर के आरोपों की पुष्टि की है, जो घटना में संशोधनवादियों-अभियुक्तों की मिलीभगत को दर्शाता है। यह स्थापित कानून है कि एक घायल गवाह की गवाही एक उच्च पायदान पर है और इसे हल्के ढंग से नजरअंदाज या खारिज नहीं किया जा सकता है, जब तक की ठोस कारन न हो। इसलिए, घायल गवाह के बयान को जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अन्य स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों के बयान की तुलना में उचित महत्व दिया जाना चाहिए और जिसके आधार पर उसने संशोधनवादी-अभियुक्तों को दोषमुक्त किया है। इसलिए घायल गवाह की गवाही के रूप में ठोस सबूत हैं। यह स्पष्ट किया जाता है कि यह अवलोकन अंतिम चरण में साक्ष्य की

सराहना में ट्रायल कोर्ट को प्रभावित नहीं करेगा। विरोधाभासों और विसंगतियों के संबंध में संशोधनवादियों के लिए विद्वान वकील द्वारा दिए गए अन्य तर्क परीक्षण का विषय हैं।

सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिद्धांत शामिल है कि केवल जब किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होते हैं, तो धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। लागू किया जाने वाला परीक्षण वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, जिसे आरोप तय करने के समय लागू किया जाता है। **राजेश और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368 में** जिसमें सूचनाकर्ता ने अपने बेटे की हत्या के प्रयास के लिए 10 व्यक्तियों का नाम लिया और एक अन्य ने सभी आरोपियों के खिलाफ विशिष्ट आरोपों के साथ नाम दिया। जांच अधिकारी ने सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत केवल चार आरोपियों के खिलाफ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, छह आरोपियों (अपीलकर्ताओं) के खिलाफ कोई चालान दायर नहीं किया गया। केवल चार आरोपियों के खिलाफ मुकदमा चला। मुकदमे के दौरान, पीडब्ल्यू -1 (शिकायतकर्ता) और पीडब्ल्यू -2 (घायल गवाह) ने विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा ओवरएक्ट और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में बताया। ट्रायल कोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 319 के तहत उनके खिलाफ कार्यवाही के लिए आवेदन की अनुमति दी थी। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि, "यहां अपीलकर्ताओं का नाम एफआईआर में भी है, अदालत के समक्ष बयान में, पीडब्ल्यू 1 और 2 ने विशेष रूप से अपीलकर्ताओं और उनके लिए जिम्मेदार विशिष्ट भूमिकाओं के खिलाफ कहा है, उसी के आधार पर, जिन व्यक्तियों के खिलाफ, कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है, उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है, सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति तहत, निचली अदालतों द्वारा अपीलकर्ताओं को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में कोई त्रुटि नहीं की गई है।

इसलिए तथ्यों के वर्तमान सेट पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि घायल गवाहों की गवाही के रूप में अभियुक्त की संलिप्तता की संभावना की तुलना में मजबूत सबूत हैं और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को पास करता है जो आरोप तय करते समय प्रयोग किए गए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है लेकिन एक हद तक संतुष्टि से कम है कि अगर सबूत का खंडन नहीं किया जाता है तो सजा होगी।

यह सही है कि नीचे की विद्वान अदालत ने प्रथम दृष्टया शब्द का इस्तेमाल किया है, लेकिन यह आक्षेपित आदेश को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने उचित शब्दों का इस्तेमाल नहीं किया हो सकता है, लेकिन यह स्पष्ट है कि उसने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों और अन्य सामग्रियों का विश्लेषण किया है। इसने कानूनी प्रस्ताव

पर भी विचार किया है और उसके बाद सीआरपीसी की धारा 319 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया है। इस अदालत को आक्षेपित आदेश की शुद्धता, वैधता और औचित्य का न्याय करना है।

विद्वान विचारण न्यायालय ने पूरे तथ्य बताए हैं, सभी सामग्रियों का विश्लेषण किया है। संशोधनवादियों की मिलीभगत से संतुष्ट होकर उन्हें बुलाया है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

तदनुसार, पुनरीक्षण गुणहीन है, और इस प्रकार खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 633

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार,

बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 729 / 2022

शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री विमलेंदु त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., जी.ए., श्री कृष्ण अग्रवाल

आपराधिक कानून - स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की रोकथाम अधिनियम, 1988- धारा 3 (1) - दिनांक 04.03.22 के हिरासत आदेश के खिलाफ - भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 22 (2) - दिनांक 25.4.22 को, याचिकाकर्ता जिला न्यायालय में वाद के मामले में तय तारीख पर उपस्थित होने गया था, अवैध रूप से गिरफ्तार किया गया - पुलिस उसे पुलिस स्टेशन ले आई और उसके बाद उसे 27.4.22 को जिला जेल में भर्ती कराया, पारित हिरासत आदेश के अनुपालन में - दो मामलों को छोड़कर कोई अन्य मामला दर्ज नहीं किया गया था जिसमें उसे गिरफ्तार किया गया था, लेकिन जमानत पर रिहा कर दिया गया था - तर्क, प्रायोजक प्राधिकारी की रिपोर्ट उसके साथ कभी साझा नहीं की गई थी कि कब और किस तारीख को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने निवारक हिरासत का निर्णय लिया था- आयोजित, प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा सामग्री की आपूर्ति नहीं करने के कारण, याचिकाकर्ता प्रतिनिधित्व देने की स्थिति में नहीं था - उन्हें संगठित करना आक्षेपित आदेश अपास्त।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुशांत कुमार बनिक बनाम त्रिपुरा राज्य और अन्य, 2022 लाइव लॉ (एससी) 813
2. अशोक कुमार बनाम दिल्ली प्रशासनिक एवं अन्य, (1982) 2 एससीसी 403
3. अहमद हुसैन शेख हुसैन उर्फ अहमद कालियो बनाम पुलिस आयुक्त, अहमदाबाद एवं अन्य, (1989) 4 सुप्रीम कोर्ट केस 751
4. हेइसनम चाओबा सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन कैल 2691

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

(1). याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विमलेंदु त्रिपाठी, प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण अग्रवाल और प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता को भी सुना। हमने हमारे सामने लाई गई संपूर्ण सामग्री का अध्ययन किया है।

(2). पक्षों के बीच दलीलों का आदान-प्रदान किया गया है और मामला संबंधित विद्वान वकीलों द्वारा अंतिम प्रस्तुतिकरण के लिए तैयार है।

(3). प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका, उपरोक्त वर्णित याचिकाकर्ता द्वारा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत संवैधानिक उपचार *को* लागु करने हेतु प्रस्तुत की गयी है, जिसके तहत याचिकाकर्ता शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा ने निम्नलिखित प्रार्थना की मांग की है: -

"प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 3(1) के तहत पारित हिरासत आदेश दिनांक 04.03.2022 (अनुलग्नक संख्या 1) द्वारा अवैध रूप से हिरासत में लिए गए याचिकाकर्ता को तुरंत रिहा किया जाये और याचिका कर्ता को तत्काल स्वतंत्र किया जाये और रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 04.03.2022 के विवादित आदेश को रद्द करने की कृपा की जा सकती है।"

(4). इस प्रकार स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय से प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा धारा 3(1) '"स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम , 1988" (संक्षिप्तता के लिए इसे इसके बाद 'स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम' कहा जाएगा) में अवैध तस्करी की निवारण" की के तहत दिनांक 04.03.2022 द्वारा उसे अवैध हिरासत से रिहा करने के लिए आदेश और निर्देश जारी करने की मांग की है और याचिकाकर्ता को दिनांक 04.03.2022 के आदेश को रद्द करने के बाद तुरंत स्वतंत्र किया जा सकता है।

<u>तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:-</u>

(5). मामले के गुण-दोषों पर विचार करने से पहले, इसमें शामिल विवाद और याचिकाकर्ता के कथित आपराधिक इतिहास पर एक नजर डालना जरूरी है, जो इस प्रकार हैं:-

(I) दिनांक 04.01.2016 को क्षेत्रीय निदेशक, मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो लखनऊ को अपने स्रोतों से एक सूचना प्राप्त हुई कि दिनांक 04.01.2016 को दिन में लगभग 01.00 बजे इलाहाबाद लखनऊ रोड स्थित नवाबगंज बाईपास के पास पंजीकरण संख्या HR-55-J-2062 वाले एक ट्रक और पंजीकरण संख्या BR-03-P-8311 वाली एक महिंद्रा स्कॉर्पियो कार पर बिहार से आने वाले 4-5 व्यक्तियों द्वारा याचिकाकर्ता को अवैध 'गांजा' की खेप पहुंचाने की संभावना है। यह सूचना मिलने पर, मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो अधिकारियों की एक टीम ने उक्त वाहन को रोका और 312.045 किलोग्राम गांजा बरामद किया। इस कार्रवाई में कुल 8 लोगों को पकड़ा गया, हालांकि याचिकाकर्ता महिंद्रा स्कॉर्पियो कार नंबर बीआर-03-पी-8311 में बैठा था। तदनुसार, मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो लखनऊ द्वारा 29.6.2016

को जिला एवं सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 8, 20, 29 के तहत आपराधिक मामला संख्या 42,/2016 दर्ज किया गया था

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि बहुत कोशिश और प्रयासों के बाद, याचिकाकर्ता को अंततः इस न्यायालय द्वारा दिनांक 05.03.2020 के आदेश के तहत उसकी तीसरी जमानत अर्जी संख्या 3604/2020 को आवश्यक औपचारिकताएं जमानत प्रतिभूति और जमानतदार देने के बाद जमानत दे दी गई।

(II) जमानत पर रिहा होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अदालत की कार्यवाही में भाग लेना शुरू कर दिया और आपराधिक वाद संख्या 42/2016 की सुनवाई में सहयोग किया। 25.10.2020 को उसे सूरजपाल सोनी, विजय केसरवानी और संजय केसरवानी के साथ स्विफ्ट डिज़ायर कार पर यात्रा करते समय तीन अन्य व्यक्तियों के साथ फिर से पकड़ा गया। तलाशी लेने पर कुल 170 किलोग्राम गांजा बरामद हुआ। इस घटना के संबंध में एफआईआर दिनांक 25.10.2020 को मुकदमा अपराध संख्या 177 / 2020, स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 8 व 20, थाना महेवाघाट, जिला कौशांबी में दर्ज की गई। यहां यह उल्लेख करना दिलचस्प है कि, याचिकाकर्ता ने फिर से उपरोक्त मामले में जमानत आवेदन संख्या 83/2020 को दाखिल किया जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), कौशांबी ने 18.12.2020 के आदेश के तहत अनुमति दी थी।

(6). ये उपरोक्त केवल दो मामले हैं जिनमें याचिकाकर्ता को गिरफ्तार किया गया था और बाद में क्रमशः 05.03.2020 और 18.12.2020 को जमानत दे दी गई थी। उपर्युक्त दो मामलों को छोड़कर, याचिकाकर्ता के खाते में कोई अन्य मामला नहीं है।

(7). याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा ज़ोर दे कर कहा गया कि दिनांक 18.12.2020 के जमानत आदेश के तहत रिहा होने के बाद, याचिकाकर्ता स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के मामलों से भी निम्नतर कभी भी किसी अपराध में शामिल नहीं हुआ, जब तक उसपर उन्हें स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम 1988की धारा 3(1) के तहत भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, राजस्व विभाग (स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण यूनिट) के संयुक्त सचिव, श्री रवि प्रताप सिंह द्वारा हस्ताक्षरित, दिनांक 04.03.2022 के आक्षेपित निरोध आदेश की बौछार नहीं की गई।.

(8). इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता श्री विमलेन्दु त्रिपाठी ने यह उल्लेख करते हुए अपनी दलील पेश की है कि उपरोक्त दो मामलों को छोड़कर, जिसमें याचिकाकर्ता को 18.12.2020 को अंतिम आदेश 04.03.2022 को पारित होने तक जमानत दे दी गई थी। प्रतिवादी अधिकारियों के पास ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जो स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही के लिए उनके आचरण को उचित ठहरा सके।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया है कि

याचिकाकर्ता विचारण न्यायालय के समक्ष पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहा है, लेकिन प्रतिवादी अधिकारियों को जो कारण सबसे अच्छी तरह पता है, वे देर रात अज्ञात समय और तारीख पर उपरोक्त निवारक अधिनियम के तहत याचिकाकर्ता पर मामला दर्ज करने के लिए गुप्त तरीके से आगे बढ़े हैं। स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम के तहत अपनी त्वरित कार्रवाई को उचित ठहराने के लिए प्रतिवादी अधिकारियों की ओर से कोई औचित्य नहीं है।

(9). याचिका के पैरा-12 में कहा गया है कि दिनांक 25.4.2022 को जब याचिकाकर्ता जिला न्यायालय इलाहाबाद में उपरोक्त मामले में निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने गया था, जहां उसे जिला न्यायालय इलाहाबाद से ही अवैध रूप से गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस याचिकाकर्ता को थाना सरायअकिल, जिला कौशांबी ले आई और उसके बाद 27.4.2022 की रात में उसे जिला जेल, लखनऊ में दाखिल कर दिया।

(10). इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर,याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दलील दी है कि जिस व्यक्ति को 25.4.2022 को गिरफ्तार किया जा रहा है, और लखनऊ भेजा जा रहा है उसकी कथित गिरफ्तारी के दो दिन बाद 27.4.2022 की रात में जिला जेल, लखनऊ में मामला दर्ज किया गया था, । यह स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा-4 का घोर उल्लंघन है, जो कहती है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत गिरफ्तारी वारंट के निष्पादन के लिए प्रदान किए गए तरीके से भारत में किसी भी स्थान पर हिरासत में लिया जा सकता है इस प्रकार, याचिकाकर्ता की वास्तविक गिरफ्तारी के बाद दो दिन की देरी और 24 घंटे के भीतर उसे संबंधित मजिस्ट्रेट के सामने पेश न करने और उसके बाद उसे लखनऊ की जिला जेल में डालने का कोई औचित्य सामने नहीं आ रहा है।

(11)। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक और मुद्दा यह है स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ की अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के तहत विशेष रूप से सशक्त संयुक्त सचिव, भारत सरकार ने याचिकाकर्ता को 4.3.2022 को हिरासत में लेने और जिला जेल, लखनऊ में रखने का आदेश अवैध रूप से पारित किया है। हिरासत का यह आदेश एकदम निराधार और आधारहीन है, जिसमें हिरासत का कोई आधार शामिल नहीं है, जो याचिकाकर्ता को केवल सात सप्ताह के बाद यानी 27.4.2022 को दिया गया था, जिसका कारण संबंधित अधिकारियों को सबसे अच्छी तरह पता था।

(12). जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है संयुक्त सचिव, भारत सरकार द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.3.2022 के अनुसार , गिरफ्तारी की गई थी; लेकिन ऐसे विलम्ब जैसे 27.4.2022 तक हिरासत के 'तथाकथित' आधारों के साथ हिरासत आदेश की एक प्रति याचिकाकर्ता को दे दी गई। अधिवक्ता द्वारा

प्रस्तुत किया गया कि यह हिरासत आदेश दिनांक 4.3.2022 अचानक आया और याचिकाकर्ता को यह पता नहीं है कि 18.12.2020 के बाद क्या गलत हुआ, जब उसे जमानत मिल गई। याचिकाकर्ता सपने में भी नहीं सोच सकता था कि अधिकारी गुप्त तरीके से स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम के तहत उसके खिलाफ मामला दर्ज करने के लिए कागजात/दस्तावेज तैयार कर रहे थे।

(13). जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 18.12.2020 को याचिकाकर्ता की जमानत पर रिहाई के बाद, याचिकाकर्ता के नाम एक भी मामला नहीं है। इस प्रकार, तथ्यात्मक रूप से कहें तो, याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा किए जाने की तारीख यानी 18.12.2020 से लेकर विवादित हिरासत आदेश पारित होने की तारीख यानी 04.03.2022 तक,स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम के तहत निवारक कार्यवाही शुरू करने के लिए प्रतिवादी अधिकारियों को उचित ठहराने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है, वह भी लगभग एक वर्ष और चार महीने की देरी के बाद। इस आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि 1988 के अधिनियम 46 के तहत वर्तमान कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई निकटता या कानूनी औचित्य नहीं है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि काफी समय बीत जाने के बाद, अचानक प्रतिवादी अधिकारी नींद से जागे और 4.3.2022 को याचिकाकर्ता की पीठ पर स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के तहत हिरासत का आदेश चिपका दिया।

(14). याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान आधार संख्या2 की ओर आकर्षित किया, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ हिरासत आदेश F.No.U-11011/05/2022-PITNDPS दिनांक 4 मार्च, 2022 जारी किया गया है। तत्काल संदर्भ के लिए निरोध आदेश का आधार संख्या2 निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"2. ऐसी खुफिया सूचनाएं हैं कि आप यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा उर्फ शिव बोध मिश्रा जेल से छूटने के बाद फिर से मादक पदार्थों की तस्करी में लिप्त हैं। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आप एक आदतन अपराधी हैं और अपने तरीके नहीं सुधारेंगे बल्कि मादक पदार्थों की तस्करी में लगे रहेंगे। आपकी गहरी संलिप्तता है और नशीले पदार्थों और मन:प्रभावी पदार्थों की तस्करी में आपकी प्रवृत्ति बनी हुई है।"

(15). उपर्युक्त आधार को सामान्य रूप से पढ़ने के बाद, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपना तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पिछली दो मामलों का उल्लेख करने के बाद, हिरासत आदेश पारित किया गया है। इस आधार में बहुत सारे अस्पष्ट क्षेत्र शामिल हैं जिनका उपयोग याचिकाकर्ता के खिलाफ भारत के संविधान के भाग-III में गारंटीकृत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों और उसकी स्वतंत्रता को कम करने के लिए किया गया है कि 'नशीले पदार्थों और *मन:प्रभावी* पदार्थों की तस्करी में उसकी गहरी संलिप्तता और निरंतर

प्रवृत्ति' यह आधार गलत हो जाती है, जब याचिकाकर्ता की जमानत पर रिहाई यानी 18.12.2020 के बाद उसकी कोई आपराधिक साख नहीं है। स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के प्रावधान केवल शब्द नहीं हैं बल्कि इसका गहरा महत्व है। अधिकारियों की संतुष्टि ठोस और मूर्त आधार पर होनी चाहिए और उसकी संतुष्टि व्यक्तिपरक संतुष्टि होनी चाहिए। केवल हिरासत आदेश में "संतुष्टि" अभिव्यक्ति का उपयोग करने से इसका महत्व खत्म हो जाता है, यदि यह ठोस साक्ष्य पर आधारित नहीं है या याचिकाकर्ता के कथित अपराध और निवारक हिरासत आदेश के बीच कोई निकटता या जीवंत संबंध नहीं है।

(16). याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अगली दलील दी कि हिरासत का यह आधार प्रायोजक प्राधिकारी यानी मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो, लखनऊ की कथित रिपोर्ट के साथ नहीं है जो याचिकाकर्ता की अवैध हिरासत का आधार बनता है, जो बुना गया है और जर्जर हो जाने की संभावना है। फिर भी इस मुद्दे का एक और महत्वपूर्ण पहलू हिरासत का कथित आधार है, यह हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा भरोसा की गई पूरी सामग्री पर आधारित होना चाहिए । यदि हिरासत का आधार ही गायब है, जिस पर भरोसा करते हुए प्रायोजक प्राधिकारी ने हिरासत का आदेश पारित किया और कथित तौर पर हिरासत के 'तथाकथित' आधार प्रस्तुत किए, तो यह उम्मीद करना कि याचिकाकर्ता एक प्रभावी प्रत्यावेदन देगा, बस एक सपना है और यह प्राकृतिक न्याय के बुनियादी सिद्धांतों के बिल्कुल विपरीत होगा। हालाँकि, तथाकथित आधारों का अनुमान लगाने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा आधार के आकार में सीमित सामग्री पर भरोसा करते हुए एक अभ्यावेदन तैयार किया गया था और इसे संबंधित प्राधिकारी को 13.5.2022 को रखा गया था। दिलचस्प बात यह है कि याचिकाकर्ता के उक्त अभ्यावेदन को प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा खारिज कर दिया गया था और दिनांक 3.6.2022 के एक ज्ञापन के माध्यम से जिससे याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि उसका प्रत्यावेदन दिनांक 13.5.2022 को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा बिना कोई उचित कारण बताए खारिज कर दिया गया था।

(17). 5.6.2022 को, प्रतिवादी संख्या 1 के अधीनस्थ द्वारा जारी आदेश दिनांक 3.6.2022 की एक प्रति, याचिकाकर्ता को सूचित करती है कि उसका प्रत्यावेदन हिरासत प्राधिकारी द्वारा आदेश दिनांक 3.6.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया गया है।

(18). 4.7.2022 को याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 9 (ब) के अनुसार सलाहकार बोर्ड के समक्ष सुनवाई की तारीख 7.7.2020 अपराह्न 3.00 बजे तय की गई थी जिसके तहत याचिकाकर्ता को पेश किया गया और मामले की सुनवाई की गई, लेकिन 18.7.2022 को उसे सूचित किया गया कि दिनांक 15.7.2022 के आदेश के तहत सलाहकार बोर्ड ने इस आशय की राय दी है कि याचिकाकर्ता को हिरासत में लेने के लिए पर्याप्त कारण हैं, और वास्तव में सलाहकार बोर्ड ने हिरासत की

तारीख दिनांक 27.4.2022 से एक वर्ष की अवधि के लिए हिरासत के आदेश की पुष्टि की है।

(19). रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि प्रायोजक प्राधिकारी यानी मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो लखनऊ द्वारा हिरासत के आधार के संबंध में कोई रिपोर्ट संलग्न नहीं की गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता पूरी तरह से असमंजस में था कि कैसे और कब हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को इस मामले के तथ्य का ज्ञान मौखिक या लिखित रूप से हुआ और स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम, 1988 के तहत याचिकाकर्ता की हिरासत निवारक कार्रवाई शुरू करने के लिए प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को सामग्री प्रदान की गई। प्रायोजक प्राधिकारी की रिपोर्ट याचिकाकर्ता के साथ कभी साझा नहीं की गई कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने कब और किस तारीख को याचिकाकर्ता की निवारक हिरासत का निर्णय लिया। ये सभी अस्पष्ट क्षेत्र हैं जो विवाद की जड़ को छूते हैं जिसमें याचिकाकर्ता खुद को पूरी तरह से नुकसान में पाता है और उसे अपनी बात सुनने का प्रभावी अवसर मिलता है। इसके अलावा, आवेदक यह प्रदर्शित करने में असमर्थ है कि उसके दो पूर्ववृत्त और प्रस्तावित/आक्षेपित निवारक निरोध के बीच कोई जीवंत संबंध नहीं है।

(20). न्यायालय के पास 4.3.2022 की हिरासत के आधार (याचिका का अनुलग्नक-2) पर विचार करने का एक अवसर है जिसमें उसे मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो, लखनऊ क्षेत्रीय यूनिट और इसकी लंबित कार्यवाही द्वारा साझा किए गए याचिकाकर्ता की पिछली साख का संदर्भ मिलता है। हिरासत के आधार दिनांक 4.3.2022 में उल्लिखित प्रासंगिक आधार इस प्रकार हैं:

"2. ऐसी खुफिया सूचनाएं हैं कि आप यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा उर्फ शिव बोध मिश्रा जेल से छूटने के बाद फिर से मादक पदार्थों की तस्करी में लिप्त हैं। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आप एक आदतन अपराधी हैं और अपने तरीके नहीं सुधारेंगे बल्कि मादक पदार्थों की तस्करी में लगे रहेंगे। आपकी गहरी संलिप्तता है और नशीले पदार्थों और मन:प्रभावी पदार्थों की तस्करी में आपकी प्रवृति बनी हुई है।

3. ऊपर उल्लिखित तथ्यों के मद्देनजर, मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आप यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा अपने उपरोक्त कृत्यों के माध्यम से नशीले पदार्थों और मनोवैज्ञानिक पदार्थों के अवैध व्यापार की पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों में शामिल थे जो इस देश के नागरिकों के लिए ही नहीं बल्कि दुनिया के प्रत्येक नागरिक के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए गंभीर खतरा पैदा करता है, इसके अलावा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भी हानिकारक प्रभाव डालता है। आपके यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा द्वारा किए गए अपराध आपस में इतने जुड़े हुए और निरंतर हैं और ऐसी प्रकृति के हैं कि ये राष्ट्र की सुरक्षा और स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। आपके यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध

मिश्रा द्वारा सुनियोजित तरीके से किए गए अपराधों की गंभीर प्रकृति और गंभीरता स्पष्ट रूप से पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों के ऐसे कृत्यों में शामिल होने की आपकी निरंतर प्रवृत्ति और झुकाव को स्थापित करती है। उपरोक्त पैराग्राफ में उल्लिखित वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा यानी आपके लिए उपरोक्त गंभीर पूर्वाग्रहपूर्ण कृत्यों को दोहराने का पर्याप्त अवसर है। अत: मुझे इस बात का संतोष है कि इस बीच आप अर्थात श्री शिवबोध कुमार मिश्र @ शिवबोध मिश्र निश्चल हो गये और आपको यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा को नशीली दवाओं के ऐसे अवैध व्यापार में शामिल होने से रोकने की आवश्यकता है

4. उपरोक्त पैराग्राफों में चर्चा किए गए प्रचुर साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए,विस्तार से बताएं कि आप यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा कैसे स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ की अवैध तस्करी के आयोजन में शामिल हैं और साथ ही इस अवैध गतिविधि में शामिल होने की उच्च प्रवृत्ति रखते हैं यह निर्णायक रूप से महसूस किया गया है कि यदि आपको स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 3(1) के तहत हिरासत में नहीं लिया गया है, तो आप यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा @ शिव बोध मिश्रा अवैध रूप से नशीले पदार्थों और मन:प्रभावी पदार्थों के कब्जे, खरीद, बिक्री, परिवहन, भंडारण, उपयोग और उपरोक्त गतिविधियों को संभालने, उपरोक्त गतिविधियों में सीधे आयोजन करने और उपरोक्त गतिविधियों को आगे बढ़ाने की साजिश में खुद को शामिल करना जारी रखेंगे जो भविष्य में भी स्वापक औषधियों और मन:प्रभावी पदार्थों के अवैध व्यापार की निवारण (पीआईटीएनडीपीएस) अधिनियम, 1988 की धारा 2(ई) के तहत मनःप्रभावी पदार्थों की अवैध तस्करी के बराबर है। इसलिए, मैं इस बात से संतुष्ट हूं कि आपको यानी श्री शिवबोध कुमार मिश्रा उर्फ शिव बोध मिश्रा को आपको रोकने की दृष्टि से स्वापक औषधियों और मन:प्रभावी पदार्थों के अवैध व्यापार की निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 3(1) के तहत हिरासत में लेने का पूरा औचित्य है। यानी श्री शिव बोध कुमार मिश्रा उर्फ शिव बोध मिश्रा को स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के तहत निर्दिष्ट नशीले पदार्थों और मनोवैज्ञानिक पदार्थों के उपरोक्त अवैध व्यापार में शामिल होने से।

5. ऑपरेशन की भयावहता, घटनाओं के क्रमिक अनुक्रम, सुव्यवस्थित तरीके से ऐसी न्यायिक-पूर्व गतिविधियों को अंजाम देने, अपराध की प्रकृति और गंभीरता को ध्यान में रखते हुए,जांच की परिणामी सीमा जिसमें कागजात की स्कैनिंग/जांच, आधार का गठन, शामिल हैमैं इस बात से संतुष्ट हूं कि घटना की तारीखों और हिरासत आदेश के पारित होने के साथ-साथ आपकी हिरासत के उद्देश्य के बीच संबंध अच्छी तरह से बनाए रखा गया है।

6. मैं उपरोक्त हिरासत के आधारों के प्रासंगिक पैराग्राफ में जानकारी के स्रोत का खुलासा करना सार्वजनिक हित के खिलाफ मानता हूं।

(21). इन आधारों की सावधानीपूर्वक जांच पर, जिनमें से स्रोतों को "सार्वजनिक हित" की आड़ में गुप्त रखा गया है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि जब 18.12.2022 से जमानत पर रिहा होने के बाद उनकी कोई आपराधिक गतिविधि नहीं है, तो स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम, 1988 के तहत तत्काल कार्यवाही एक पुरानी कहावत "कुत्ते को बदनाम करो और उसे फांसी दो" के अस्पष्ट औचित्य के अलावा कुछ नहीं है।एकमात्र पाप यह है कि याचिकाकर्ता पर स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के दो आपराधिक मामले चल रहे हैं और वह उसी के मुकदमे का सामना कर रहा है। आधारों को सुरक्षित रूप से अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यक्तियों और उच्च ध्वनि वाले शब्दों का उपयोग कहा जा सकता है, याचिकाकर्ता के खिलाफ उसे आदतन अपराधी करार देने के लिए वास्तव में कुछ भी नहीं है।

(22). इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण अग्रवाल ने विस्तृत जवाबी हलफनामा दायर किया है, जिसमें श्री भगवान सहाय मीना, अवर सचिव, स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण डिवीजन, राजस्व विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली ने शपथ ली है। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 4 में यह उल्लेख किया गया है कि वर्तमान मामले से संबंधित अभिलेख और प्रायोजक प्राधिकरण यानी मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो लखनऊ क्षेत्रीय यूनिट से परामर्श के बाद यह जवाबी हलफनामा दाखिल किया जा रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रायोजक प्राधिकारी और हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी एक दूसरे के साथ मिले हुए थे। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि इस मामले के गवाह को मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो, लखनऊ क्षेत्रीय यूनिट द्वारा शुरू की गई कार्यवाही और अंत में अच्छी तरह से पता था जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 7 में इसका आगे उल्लेख किया गया थाकि हिरासत प्राधिकारी/प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा प्रदान किए गए दस्तावेजों/भौतिक साक्ष्यों पर भरोसा किया है, उनकी व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पहुंचने के बाद 4.3.2022 को रवि प्रताप सिंह, संयुक्त सचिव, भारत सरकार द्वारा स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के तहत एक पत्र जारी किया गया था, जिसमें उन्हें निर्देशित किया गया था। याचिकाकर्ता को नशीली दवाओं और मनोदैहिक पदार्थों के अवैध व्यापार में शामिल होने से रोकने के लिए जिला कारागार लखनऊ उ.प्र में हिरासत में रखा जाए। हिरासत के आधारों के साथ उपरोक्त हिरासत आदेश, दस्तावेजों और दस्तावेजों की सूची पर निर्भर करते हुए याचिकाकर्ता को 27.4.2922 को निर्धारित अवधि के भीतर जिला कारागार लखनऊ में भौतिक रूप से तामील किया गया, जहां याचिकाकर्ता को सक्षम अधिकारियों द्वारा पारित हिरासत आदेश के अनुसार हिरासत में लिया गया था और इसकी पावती मंत्रालय को 29.4.2022 को प्राप्त हुई। 5.5.2022 को उ.प्र सलाहकार बोर्ड (हिरासत) ने याचिकाकर्ता, प्रायोजक प्राधिकरण और मंत्रालय के अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से सुना और राय दी कि "हिरासत में लिए

गए लोगों की हिरासत के लिए पर्याप्त कारण हैं"। सलाहकार बोर्ड की राय के आधार पर मंत्रालय ने दिनांक 15.7.2022 के आदेश के जरिए नजरबंदी आदेश की पुष्टि की, जिसमें नजरबंदी की अवधि 27.4.2022 से नजरबंदी की तारीख से एक वर्ष तय की गई।

(23). जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 8 में यह प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता को हिरासत आदेश दिनांक 4.3.2022 के निष्पादन के संबंध में 25.4.2022 को पी.एस.-महेवाघाट द्वारा हिरासत में लिया गया था। इसके बाद, हिरासत के आधार के साथ उपरोक्त हिरासत आदेश 27.4.2022 को याचिकाकर्ता को भौतिक रूप से भेज दिया गया।

यह अभिसाक्षी की स्वयं की स्वीकारोक्ति है कि उसकी कथित अवैध हिरासत के दो दिनों के बाद इसकी सामग्री याचिकाकर्ता को प्रस्तुत की गई थी। इस अवधि के दौरान, याचिकाकर्ता को किसी भी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(2) के तहत अपेक्षित है।

(24). जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 13 में,जवाबी हलफनामे में अभिसाक्षी का कहना है कि प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा आपूर्ति की गई सामग्री और दिमाग लगाने और व्यक्तिपरक संतुष्टि को दर्ज करने के आधार पर सक्षम अधिकारियों ने याचिकाकर्ता को निवारक उपाय के रूप में हिरासत में लेने का आदेश पारित किया है। चूंकि याचिकाकर्ता अपने घर पर उपलब्ध नहीं था और अपने परिवार के सदस्यों के माध्यम से उपरोक्त आदेश की जानकारी मिलने पर, वह फरार हो गया और स्थानीय पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया और उसके बाद प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा पारित हिरासत आदेश के अनुपालन में उसे जिला कारागार लखनऊ में भेज दिया।

(25). जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 17 में यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता एक आदतन अपराधी है और लगातार गांजा की तस्करी में शामिल है और इस प्रकार भविष्य में उक्त अवैध तस्करी से बड़े पैमाने पर जनता को बचाने के लिए हिरासत आदेश पारित किया गया था। हालाँकि, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ बी और सी में,यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता अपने घर पर उपलब्ध नहीं था और वह चुपचाप फ़रार हो गया, लेकिन अंततः 25.4.2022 को पीएस महेवाघाट द्वारा उसे पकड़ लिया गया और 27.4.2022 को हिरासत के आधार और अन्य संबद्ध दस्तावेज दिए गए।

(26). अनुच्छेद (i) में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के क्रियाकलाप का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं है और यह आरोप लगाया गया है कि जो भी समय खर्च किया गया है वह उसकी व्यक्तिपरक संतुष्टि को अभिलेख करने के लिए हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री के बेहतर सत्यापन, जांच और परीक्षण के उद्देश्यों के लिए था। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने तुरंत और सतर्कता से कार्रवाई की और उसकी व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पहुंचने के बाद हिरासत का आदेश जारी किया।

(27). इन दलीलों पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि जमानत पर रिहा होने के बाद याचिकाकर्ता ऊपर बताए अनुसार अपने स्थायी स्थान पर रहते हुए कानून की प्रक्रिया में विधिवत सहयोग कर रहा है और अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का पालन कर रहा है। जैसा कि जवाबी हलफनामे में आरोप लगाया गया है, वह कभी भी छिपकर या फरार नहीं हुआ। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह 4.3.2022 से 25.4.2022 के दौरान अपने आवास पर बहुत मौजूद थे, लेकिन अधिकारी सात सप्ताह तक इस मामले पर सोए रहे और जाग गए और 25.4.2022 को हिरासत में लेने का आदेश चिपका दिया। 25/4/2022 को याचिकाकर्ता ने उपरोक्त मामले अपराध संख्या 42/2016 में निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने के लिए जिला न्यायालय इलाहाबाद का दौरा किया और अदालत की कार्यवाही में भाग लेने के तुरंत बाद उन्हें स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 3 (1) के तहत हिरासत आदेश के अनुसार गिरफ्तार कर लिया गया और पुलिस स्टेशन सरायअकिल, जिला कौशांबी ले जाया गया, जहां उन्हें हिरासत में लिया गया और उसके बाद उन्हें जिला जेल लखनऊ ले जाया गया। आदेश दिनांक 26.4.2022 की रात. इन दो दिनों के दौरान उन्हें किसी भी सक्षम मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया गया, जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत गिरफ्तारी वारंट के निष्पादन के लिए प्रदान किए गए प्रावधानों का उल्लंघन है।दोहराव की कीमत पर यह तर्क दिया गया कि हिरासत आदेश को प्रायोजक प्राधिकारी यानी मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो लखनऊ की कथित रिपोर्ट या उनकी कथित व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए उन पर निर्भर सामग्री के साथ कभी भी संलग्न या शामिल नहीं किया गया था। प्रतिवादी संख्या 3 ने अपने बिंदु संख्या 6 में, सूचना के स्रोत को अपनी आस्तीन के नीचे रखा और उसका खुलासा नहीं किया। संपूर्ण सामग्री की आपूर्ति न होने के कारण याचिकाकर्ता ने खुद को विवादित हिरासत आदेश के खिलाफ प्रत्यावेदन करने में असमर्थ पाया, हालांकि सीमित साधनों के साथ और उन आधारों का अनुमान लगाते हुए, याचिकाकर्ता ने एक प्रत्यावेदन तैयार किया और 13.5.2022 को उसे प्रस्तुत किया। यह इस मुद्दे का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है याचिकाकर्ता को इस बात की जानकारी नहीं है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा भरोसा की गई सामग्री और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के बारे में कैसे और कब पता चला, जिसके द्वारा प्रायोजक ने कथित तौर पर अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि बनाई।

<u>कानूनी चर्चा</u> :

(28). प्रतिस्पर्धी पक्षों द्वारा दी गई दलीलों को सुनने और उनके द्वारा उठाए गए तर्कों/आधारों पर गौर करने के बाद, न्यायालय ने 'नारकोटिक ड्रग्स और साइकोट्रॉपिक पदार्थों में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम, 1988' को लागू करने के लिए 'उद्देश्य और कारणों के विवरण' को पुन: प्रस्तुत करना उचित और अनिवार्य पाया है।

जो इस प्रकार है:

<u>"हाल के वर्षों में, भारत अवैध दवाओं के पारगमन यातायात की समस्या का सामना कर</u>

रहा है। इस तरह के ट्रैफ़िक के फैलाव से दुर्व्यवहार और लत की समस्याएँ पैदा हुई हैं। इस प्रवृत्ति ने देश के भीतर दवाओं की अवैध मांग पैदा कर दी है जिसके परिणामस्वरूप दवाओं की अवैध खेती और निर्माण में वृद्धि हो सकती है। हालाँकि, सरकार द्वारा स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 में निवारक दंड प्रावधानों सहित कई विधायी, प्रशासनिक और अन्य निवारक उपाय किए गए हैं, लेकिन अवैध दवाओं के पारगमन यातायात को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया गया है। इसलिए, यह महसूस किया गया कि तस्करों को प्रभावी ढंग से स्थिर करने की दृष्टि से एक निवारक निरोध कानून बनाया जाना चाहिए। विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी गतिविधियों की निवारण अधिनियम, 1974 दवाओं और मनोवैज्ञानिक पदार्थों की तस्करी के संबंध में निवारक हिरासत का प्रावधान करता है, लेकिन इसे देश के भीतर दवाओं और मनोवैज्ञानिक पदार्थों के अवैध व्यापार में लगे व्यक्तियों से निपटने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिए, यह महसूस किया गया कि नशीली दवाओं और मन:प्रभावी पदार्थों के किसी भी प्रकार के अवैध व्यापार में लगे व्यक्तियों की निवारक हिरासत के लिए एक अलग कानून बनाया जाना चाहिए। तदनुसार, राष्ट्रपति ने 4 जुलाई, 1988 को स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अध्यादेश, 1988 को प्रख्यापित किया।

उपरोक्त उद्देश्य और अधिनियमन के कारणों के आलोक में संबंधित वकीलों के तर्कों का परीक्षण किया जाना चाहिए। प्राधिकारियों की ओर से कोई भी कार्रवाई, जैसे प्रायोजक प्राधिकारी या हिरासत प्राधिकारी या सलाहकार बोर्ड, उपरोक्त उद्देश्य और कारणों के अनुरूप होनी चाहिए और इसका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए क्योंकि यह व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता, जीवन और स्वतंत्रता से संबंधित है, जिस पर बातचीत नहीं की जा सकती।

(29). याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए **सुशांत कुमार बनिक बनाम त्रिपुरा राज्य और अन्य, 2022 लाइव लॉ (एससी) 813** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जिसके तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आधारों पर अपील की अनुमति दी है:

*(I) प्रस्ताव की तारीख से हिरासत के आदेश को पारित करने में देरी, जिससे पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों और हिरासत के उद्देश्य के बीच **"जीवंत और निकटतम संबंध"** टूट गया और हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की ओर से किसी भी तरह से इस तरह की देरी को समझाने में विफलता हुई।*

(II) हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि दोनों आपराधिक मामलों में प्रायोजक प्राधिकारी/हिरासत प्राधिकारी द्वारा हिरासत के आदेश पारित करने के प्रयोजनों के लिए भरोसा किया गया था, अपीलकर्ता-हिरासत में लिए गए व्यक्ति को विशेष अदालत द्वारा जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया गया था। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी भी गुमनाम रहे क्योंकि दोनों मामलों में जमानत पर रिहा किए गए बंदी के इस महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण तथ्य को दबा दिया गया था, बल्कि

निवारक हिरासत के लिए उचित आदेश पारित करने के प्रस्ताव के समय प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के जानकारी में नहीं लाया गया था ।

(30). इस संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि "पूर्वाग्रही गतिविधियों और हिरासत के उद्देश्य के बीच ***" जीवंत और निकटतम संबंध"*** से बल लेते हुए।अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के खाते में केवल दो मामले हैं और इन दोनों मामलों में उसे क्रमशः 5.3.2020 और 18.12.2020 को जमानत मिल चुकी है। उसके बाद से याचिकाकर्ता के खाते में एक भी मामला नहीं आया। न्यायालय को आश्चर्य है कि अधिकारी अपने हिरासत आदेश को कैसे उचित ठहराएंगे जब तक कि वे यह नहीं दर्शाएंगे कि किए गए कार्य और कथित हिरासत आदेश के पारित होने के बीच ' ***जीवंत* और निकटतम संबंध'** है। इसमें कोई संदेह नहीं है, याचिकाकर्ता दोनों मामलों में अभियोजन का सामना कर रहा है और कथित हिरासत आदेश लगभग एक वर्ष और 3-4 महीने की अवधि के बाद 4.3.2022 को पारित किया गया था। इस अवधि के दौरान, याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी या स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के किसी भी अपराध में एक भी मामला दर्ज नहीं किया गया है। आगे यह कहा गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल दो मामले हैं जिनके लिए वह अभियोजन का सामना कर रहा है और दिसंबर, 2020 में याचिकाकर्ता की जमानत पर कथित रिहाई से लेकर 4.3.2022 को हिरासत आदेश पारित होने तक किसी भी ***" जीवंत और निकटतम संबंध"*** के अभाव में, इस संबंध में पूरी कार्यवाही दूषित हो जाती है। प्रायोजक प्राधिकारी को यह उचित ठहराना होगा कि याचिकाकर्ता अपराधी है और जैसे ही वह अपने साथियों के संपर्क में आएगा, वह फिर से उन्हीं गतिविधियों में शामिल हो जाएगा। हिरासत के आधार पर, सिवाय इस दावे के कि शिवबोध कुमार मिश्रा @शिवबोध मिश्रा फिर से मादक पदार्थों की तस्करी में शामिल होंगे यदि उसे जेल से रिहा किया जाएगा, तो यह किसी व्यक्ति को हमेशा के लिए जेल में डालने के लिए प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा तैयार की गई एक युक्ति के अलावा और कुछ नहीं है। हिरासत आदेश में यह भी उल्लेख किया गया है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने सार्वजनिक हित के आलोक में सूचना के स्रोत के बारे में कानाफुसी नहीं बताया है और प्रायोजक/हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को हिरासत के किसी भी आदेश को पारित करने के लिए खुली छूट दी है। पुनरावृत्ति की कीमत पर, इसमें कोई संदेह नहीं है कि याचिकाकर्ता को स्वापक औषधियाँ और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के दो मामलों में शामिल किया गया था, लेकिन यह उपरोक्त दो मामलों की पृष्ठभूमि में निवारक हिरासत आदेश को चिपकाने को उचित नहीं ठहराएगा। उपरोक्त हिरासत आदेश को उचित ठहराने के लिए अभिलेख पर ठोस सामग्री होनी चाहिए।

(31). मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता को ऐसा कोई दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं कराया गया है जो इस बात पर निर्भर करता हो कि प्रायोजक प्राधिकारी ने उसकी रिपोर्ट तैयार कर ली है या प्रायोजक प्राधिकारियों ने उसे हिरासत में लेने

वाले प्राधिकारी को अग्रेषित करने के लिए रिपोर्ट कब तैयार करना शुरू कर दिया है। मुद्दे के ये सभी महत्वपूर्ण पहलू गोपनीयता की आड़ में बने हुए हैं जो याचिकाकर्ता के हितों के लिए प्रतिकूल है। उन सभी दस्तावेजों की सामग्री को साझा करना बाध्यकारी और वैधानिक कर्तव्य है, जिनमें से प्रायोजक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम के तहत आगे बढ़ने की राय पक्की कर ली है, जिसके बिना संपूर्ण हिरासत आदेश रद्द हो जाता है।

(32). जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, **अशोक कुमार बनाम दिल्ली प्रशासनिक और अन्य, (1982) 2 एससीसी 403 में** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि निवारक हिरासत समाज को सुरक्षा प्रदान करने के लिए तैयार की गई है। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को कुछ करने के लिए दंडित करना नहीं है, बल्कि उसे ऐसा करने से पहले बाधित करना और उसे ऐसा करने से रोकना है।

(33). निवारक निरोध के उपरोक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए,हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के साथ-साथ निष्पादन प्राधिकारियों के लिए भी यह बहुत जरूरी हो जाता है कि वे सतर्क रहें और अपनी नजरें सुरक्षित रखें लेकिन प्रस्ताव की तारीख से जल्द से जल्द हिरासत आदेश पारित करने और नजरबंदी आदेश को क्रियान्वित करने में आंखें नहीं मूंदनी चाहिए क्योंकि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी या निष्पादन प्राधिकारी की ओर से कोई भी उदासीन रवैया निवारक कार्रवाई के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा और हिरासत आदेश को एक मृत पत्र बना दें और पूरी कार्यवाही को विफल कर दें।

(34). किसी बंदी को गिरफ्तार करने में देरी के प्रतिकूल प्रभाव की जांच इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रृंखला में की गई है और इस न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में नियम निर्धारित किया है कि किसी बंदी को सुरक्षित करने और उसे हिरासत में लेने में अनुचित और अस्पष्ट देरी हिरासत आदेश को रद्द कर देती है। इसके बाद हम जिन निर्णयों का उल्लेख करेंगे, उनमें हिरासत के आदेश पारित होने की तारीख के बाद हिरासत में लिए गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने में देरी हुई थी। हालाँकि, प्रस्ताव की तारीख से हिरासत के आदेश पारित करने में देरी के मामले में भी वही सिद्धांत लागू होंगे। दोनों स्थितियों में सामान्य अंतर्निहित सिद्धांत हिरासत के आधार और हिरासत के स्वीकृत उद्देश्य के बीच "जीवित और निकटतम लिंक" होगा।

(35). **सुशांत कुमार बनिक** (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी निम्नानुसार निर्णय लिया है:

"18. <u>न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी,. ने भंवरलाल गणेशमलजी बनाम तमिलनाडु राज्य.</u> (1979) 1 एससीसी 465 में बेंच के लिए बोलते हुए इस प्रकार समझाया है:

*"यह और भी सच है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा कथित हिरासत के आधार और हिरासत के स्वीकृत उद्देश्य अर्थात् तस्करी गतिविधियों की निवारण के बीच एक **"जीवित और अनुमानित लिंक"** होना चाहिए। यदि हिरासत के आदेश की तारीख और हिरासत में*

लिए गए व्यक्ति की गिरफ्तारी के बीच लंबी और अस्पष्ट देरी होती है, तो उचित मामलों में हम यह मान सकते हैं कि लिंक "टूट गया" है। ऐसे मामले में, हम हिरासत के आदेश को तब तक रद्द कर सकते हैं जब तक कि आधार नई स्थिति और बदली हुई परिस्थितियों में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के दिमाग के नए प्रयोग का संकेत न दे। लेकिन जहां देरी को न केवल पर्याप्त रूप से समझाया गया है, बल्कि गिरफ्तारी से बचने के लिए बंदी के अड़ियल या दुर्दम्य आचरण का परिणाम पाया गया है, वहां "लिंक" को खत्म नहीं किया गया है, बल्कि मजबूत किया गया है।

(जोर दिया गया)

19. न्यायाधीश सब्यसाची मुखर्जी, (तब विद्वान मुख्य न्यायाधीश थे) <u>शफीक अहमद बनाम जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ और अन्य,</u> (1989) 4 एससीसी 556 में, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इसमें याचिकाकर्ता (हिरासत) को हिरासत में लेने में ढाई महीने की देरी हुई, हिरासत के आदेश के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला गया कि "उस मामले में अनुचित देरी थी, देरी तथ्यों की स्थिति के अनुरूप नहीं थी और प्रतिवादी अधिकारियों के आचरण से पता चला कि ऐसी कोई वास्तविक और वास्तविक आशंका नहीं थी कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति किसी भी तरह से सार्वजनिक व्यवस्था के लिए प्रतिकूल कार्य कर सकता था इसलिए आदेश ख़राब है और इसे अवश्य जाना चाहिए। हालाँकि, विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि "विलंब अनुचित था या नहीं यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"

*20. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों की रूपरेखा से यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है, अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि यदि हिरासत के आदेश की तारीख और हिरासत में लिए गए व्यक्ति की वास्तविक गिरफ्तारी के बीच अनुचित देरी होती है और उसी तरह प्रस्ताव की तारीख और हिरासत के आदेश के पारित होने की तारीख से,इस तरह की देरी जब तक संतोषजनक ढंग से नहीं बताई जाती है, हिरासत आदेश पारित करने में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की अपेक्षित व्यक्तिपरक संतुष्टि की वास्तविकता पर काफी संदेह पैदा करती है और परिणामस्वरूप नजरबंदी आदेश खराब और अमान्य हो जाता है क्योंकि हिरासत के आधार और हिरासत के उद्देश्य के बीच **"जीवित और निकटतम संबंध"** हिरासत में लिए गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने में टूट जाता है। यह सवाल कि क्या देरी अनुचित है और अस्पष्ट है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"*

(36). **<u>अहमदहुसैन शेखहुसैन @ अहमद कलियो बनाम पुलिस आयुक्त, अहमदाबाद और एक अन्य मामले में.</u>** (1989) 4 सर्वोच्च न्यायालय केस 751, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार देखा है:

*"10. अब हम वर्तमान अधिनियम के तहत इस न्यायालय के दो निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं। **<u>अब्दुल रजाक अब्दुल वाहिब शेख बनाम श्री एस.एन. सिन्हा, पुलिस आयुक्त, अहमदाबाद एवं अन्य के मामले में, (1989) 2 एससीसी 222; 1989 एससीसी (सीआरआई) 326</u>**,यह माना गया है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को ऐसे मामले में खुलासा करना*

चाहिए जहां बंदी पहले से ही जेल में है कि हिरासत के आदेश को आवश्यक बनाने के लिए नए तथ्य बनाने वाली ठोस और प्रासंगिक सामग्री है। उस मामले में, जैसा कि यहां है, बंदी एक आपराधिक मामले के सिलसिले में जेल में था और हिरासत का आदेश उसे जेल में दिया गया था। पहले की घटनाओं में बंदी की महज संलिप्तता को पर्याप्त नहीं माना गया और अधिनियम के तहत नजरबंदी को खारिज कर दिया गया। रमेश बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (1989) 4 एससीसी 124 के मामले में, अधिनियम के तहत हिरासत के आदेश को चुनौती दी गई थी। न्यायालय ने पाया कि उस घटना का जिक्र करना जो हिरासत के पहले के आदेश की विषय-वस्तु थी, उसने विवादित आदेश को खराब कर दिया।

(11) ……/

(12) <u>निवारक निरोधक बोर्ड को पूर्ण और पर्याप्त प्रत्यावेदन सक्षम करने के लिए पर्याप्त तथ्यों का खुलासा संविधान के अनुच्छेद 22(5) के दायरे में सकारात्मक गारंटी में से एक है। ए.के. में रॉय का मामला, [1982] 1 एससीसी 271 इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने संकेत दिया कि प्रत्यावेदन को प्रभावी बनाने के लिए सामग्री का पूर्ण खुलासा किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में हमने जो आधार निकाले हैं, उनसे पता चलता है कि आरोप कमोबेश अस्पष्ट हैं और याचिकाकर्ता के लिए पर्याप्त प्रत्यावेदन करना मुश्किल हो गया है।"</u>

(37). इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा सामग्री की आपूर्ति न होने के कारण याचिकाकर्ता प्रभावी प्रत्यावेदन देने की स्थिति में नहीं था। दूसरे, याचिकाकर्ता की कार्रवाई और हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा पारित हिरासत आदेश के बीच कोई सीधा **'सजीव और निकटतम संबंध'** नहीं है। हिरासत आदेश के आधार पर एक शब्द भी नहीं कहा गया है कि याचिकाकर्ता जमानत पर छूटने के बाद भी नियमित रूप से अपने स्रोतों के संपर्क में था या उन्हें जुटा रहा था।

(38). याचिकाकर्ता को 18.12.2020 को जमानत मिल गई थी और तब से उसके नाम पर कोई आपराधिक इतिहास दर्ज नहीं किया गया है। वह पहले से ही अदालत की कार्यवाही में भाग ले रहे हैं और संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष दो मामलों की सुनवाई में सहयोग कर रहे हैं और अब सनकी ढंग से प्रतिवादी अधिकारियों ने याचिकाकर्ता को स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ में अवैध तस्करी की निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के तहत कथित तौर पर अज्ञात अनसुने आगामी अपराध से रोकने के लिए गिरफ्तार कर लिया, जिसके बारे में कहा जाता है कि याचिकाकर्ता योजना बना रहा था।

(39). इस संबंध में न्यायालय के पास **<u>आपराधिक अपील संख्या 1184/,2022 2021 एससीसी ऑनलाइन कैल 2691 में हेइसनाम चाओबा सिंह बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में</u>** कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले पर अपना हाथ रखने का अवसर है, जिससे माननीय शीर्ष न्यायालय ने यह माना गया कि निवारक हिरासत को आम तौर पर स्वतंत्रता के लिए अभिशाप माना जाएगा। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता बहुमूल्य, अमूल्य है और

इसे उत्साहपूर्वक सुरक्षित और संरक्षित किया जाना चाहिए। "निवारक" शब्द 'दंडात्मक' से भिन्न है जैसा कि लॉर्ड फिनले ने आर.वी. हैलीडे की रिपोर्ट 1917 एसी 260 में कहा था। निवारक हिरासत का कानून अभियुक्तों पर कठोरता से काम करता है और इसलिए, इसे सख्ती से समझा जाना चाहिए और इसका उपयोग केवल आपराधिक अभियोजन में शामिल अभियुक्तों के पंख काटने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। मनमानी गिरफ़्तारी से मुक्ति वर्षों से मान्यता प्राप्त एक बुनियादी मानव अधिकार है। जब भी निवारक हिरासत के मामले सामने आए हैं, तब तक इस अधिकार को संरक्षित और सम्मानित किया गया है, जब तक कि कोई अनिवार्य आवश्यकता या कारण न हो। न्यायालयों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पवित्रता को बरकरार रखा है और इसे अन्य सभी अधिकारों से ऊपर रखा है। बंदी प्रत्यक्षीकरण के मामलों में एक सिद्धांत है जो "स्वतंत्रता के स्तंभों में से एक है", कि अंग्रेजी कानून में प्रत्येक कारावास प्रथम दृष्टया गैरकानूनी है और यह कारावास का निर्देश देने वाले व्यक्ति के लिए अपने कार्य को उचित ठहराने के लिए है। उपर्युक्त निर्णय के निम्नलिखित अनुच्छेदों को नीचे उद्धृत करना प्रासंगिक रूप से उपयोगी होगा:

"28. यह अजीब लग सकता है कि सबसे मुखर आलोचकों में से, जो स्वतंत्र आंदोलन के सदस्य थे और ब्रिटिश भारत में बिना मुकदमा चलाए या दोषी ठहराए, निवारक हिरासत का सामना कर सकते थे,हालाँकि, वे संविधान में निवारक निरोध को शामिल करने के पक्ष में थे और उसके बाद विभिन्न कानूनों में परीक्षण के बिना हिरासत को अधिकृत करने के पक्ष में थे। सलाहकार बोर्ड की पुष्टि के बिना किसी व्यक्ति को महीनों तक गिरफ्तार करने और हिरासत में रखने की व्यापक शक्ति कार्यपालिका को दी गई है,हालाँकि, अब विभिन्न न्यायिक घोषणाओं के कारण इसे कमजोर कर दिया गया है, जो निवारक हिरासत के लिए आदेश जारी करने के लिए हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के अधिकार और इस तरह के विचार के लिए समय सीमा निर्धारित करने वाले समान कानून के बावजूद हिरासत में लिए गए संवैधानिक अधिकारों को बरकरार रखता है।

29. स्वतंत्र भारत के पहले गृह मंत्री सरदार बल्लवभाई पटेल ने विधेयक पेश किया, जिसकी परिणति निवारक निरोध अधिनियम 1950 में हुई और उन्होंने संसद को बताया कि

इसे उन लोगों के खिलाफ निर्देशित किया गया था "जिनका घोषित उद्देश्य संचार में व्यवधान, अव्यवस्था और छेड़छाड़ करना, वफादारी को कम करना और कानून के आधार पर सामान्य सरकार के लिए काम करना असंभव बनाना है।

30. .....

31. न्यायमूर्ति विवियन बोस व्यक्तिगत स्वतंत्रता के योद्धा थे, उन्होंने एस. कृष्णन कोथस बनाम मद्रास राज्य एआईआर 1951 एससी 301 में अपने असहमतिपूर्ण फैसले में निवारक हिरासत (संशोधन) अधिनियम 1951 की वैधता के संदर्भ में पर रिपोर्ट दी थी।

"मैं खुद को यह विश्वास नहीं दिला सकता कि हमारे संविधान के निर्माताओं का इरादा था कि गारंटीकृत स्वतंत्रता भ्रामक और निरर्थक होनी चाहिए या इस व्यक्ति या उस व्यक्ति द्वारा उनके साथ खिलवाड़ किया जा सकता है।

उन्होंने भारत के लोगों को ठंडी, निर्जीव, निंदनीय मिट्टी का एक अक्रिय पिंड नहीं दिया, बल्कि एक जीवित जीव बनाया, उसमें जीवन फूंका और उसे उद्देश्य और शक्ति प्रदान की ताकि वह लोकतांत्रिक जीवन शैली में स्वस्थ और मजबूती से विकसित हो सके। , जो मुफ़्त तरीका है। इन परिस्थितियों में, मैं विषय की स्वतंत्रता के पक्ष में निर्णय लेना पसंद करता हूँ। .....मैं फिलहाल तकनीकी तौर पर बात नहीं कर रहा हूं। मैं इसे मोटे तौर पर वैसे ही देख रहा हूं जैसे आम आदमी देखता है। मैं खुद को बंदी की स्थिति में रख रहा हूं और उसकी आंखों से देख रहा हूं। कानून की बारीकियां उसके लिए कोई मायने नहीं रखतीं. उसे व्याकरण की परवाह नहीं है. उनके लिए बस इतना मायने रखता है कि वह सलाखों के पीछे हैं और संसद ने उनके मामले में कोई सीमा तय नहीं की है और स्थानीय अधिकारी उनसे कहते हैं कि उन्हें यह कहने का अधिकार है कि वह कितने समय तक हिरासत में रहेंगे। मैं खुद को यह सोचने पर मजबूर नहीं कर सकता कि संविधान का यही उद्देश्य था"।

32. .....

33. याचिकाकर्ता और अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के श्रृंखला से पता चलता है कि अदालतों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और ऐसी स्वतंत्रता या स्वाधीनता में कटौती की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाने की कोशिश की है। कोई यह तर्क देगा कि जब किसी व्यक्ति ने ऐसे कार्य किए हैं जो अपराध के रूप में दंडनीय हैं तो उसे निवारक हिरासत की आड़ में हिरासत में लिया जाना चाहिए। यह काफी तर्कपूर्ण है कि हिरासत कभी भी उचित नहीं हो सकती क्योंकि अपराधी को सलाखों के पीछे रखकर हिरासत में रखने का उद्देश्य किसी भी सामान्य आपराधिक अदालत द्वारा उसे अपराध के लिए दोषी ठहराकर प्राप्त किया जा सकता है। हालाँकि, यह अवधारणा सामने आई कि जहाँ मुकदमे और दोषसिद्धि का उद्देश्य दंडात्मक है, वहीं मुकदमे के बिना हिरासत का उद्देश्य निवारक है।

.....

39. निवारक निरोध व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से समझौता करने वाला एक असाधारण तंत्र है। इसलिए, निवारक निरोध कानूनों की कानूनी योग्यता की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए और निवारक निरोध की अनुमति तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि यह सभी आवश्यक कानूनी पहलुओं पर पूरी तरह खरा नहीं उतरता। माननीय न्यायालयों ने निवारक निरोध कानूनों की गंभीरता और परिणामों को स्वीकार किया है। निवारक निरोध अलगाव में एक उपकरण है जो किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कम करने के लिए काम करता है। निवारक निरोध गिरफ्तारी के सामान्य उपायों की तुलना में अधिक अत्यधिक है, इसलिए निवारक निरोध को मानक आपराधिक अभियोजन के प्रत्यक्ष विकल्प के रूप मेंनहीं समझा जा सकता है। भारतीय कानूनी न्यायशास्त्र में पहले से ही पहले से मौजूद आपराधिक कानून विधानों का एक सेट है जो विभिन्न प्रकार के अपराधों की दोषीता को पूरा करता है। किसी भी व्यक्ति को निवारक रूप से हिरासत में लेना एक विशेष उपाय है और यह भारतीय दंड संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता से अलग से संचालित होता है। इसलिए, एक उपाय के रूप

*में निवारक निरोध का उपयोग आदर्श रूप से तब किया जाना चाहिए जब अन्य मौजूदा आपराधिक कानून अपर्याप्त हों और निवारक निरोध पूरी तरह से विधायिका के निवारक निरोध को लागू करने के इरादे के अंतर्गत आ रहा हो। माननीय न्यायालयों ने किसी व्यक्ति को निवारक हिरासत के तहत हिरासत में लेने की प्रथा को अस्वीकार कर दिया है, जब ऐसे व्यक्ति को उसी मामले में जमानत पर रिहा कर दिया गया हो। जिस इरादे से अदालतों ने इस तरह की टिप्पणी की है, वह यह सुनिश्चित करना है कि निवारक हिरासत का उपयोग किसी व्यक्ति की जमानत की अनुमति देने वाले न्यायिक निर्णयों को कम करने के लिए एक अतिरिक्त उपकरण के रूप में नहीं किया जाता है। **विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य (1984) 3 एससीसी 14** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की: "यह किसी व्यक्ति को हिरासत में रखने के उद्देश्य से नहीं है, जबकि सामान्य आपराधिक कानून के तहत जमानत के आदेश के मुद्दे का विरोध करना संभव नहीं हो सकता है।"जब तक कि उपलब्ध सामग्री ऐसी न हो जो इस तरह की हिरासत को अधिकृत करने वाले कानूनी प्रावधानों की आवश्यकताओं को पूरा करती हो। जब किसी व्यक्ति को सक्षम आपराधिक अदालत द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो निवारक हिरासत के आदेश की वैधता की जांच करने में बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए, जो उसी आरोप पर आधारित है जिस पर आपराधिक अदालत द्वारा मुकदमा चलाया जाना है।"*

(40). भारत में निवारक निरोध कानून एक औपनिवेशिक विरासत है और इसका दुरुपयोग और हानि पहुँचाने के दुरुपयोग होने की काफी संभावना है। जो कानून राज्य को मनमानी शक्तियां प्रदान करने की क्षमता रखते हैं, उनकी सभी परिस्थितियों में बहुत गंभीरता से जांच की जानी चाहिए, और केवल दुर्लभतम मामलों में ही उनका उपयोग किया जाना चाहिए। निवारक हिरासत के मामलों में, जहां हिरासत में लिए गए व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए अपराध के लिए नहीं, बल्कि संभावित अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाता है,अदालतों को हमेशा हिरासत में लिए गए व्यक्ति के पक्ष में संदेह का हर लाभ देना चाहिए, और प्रक्रियात्मक अनुपालन में थोड़ी सी भी त्रुटि का परिणाम भी बंदी के पक्ष में होना चाहिए।

(41). माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों को पढ़ने और संबंधित पक्षों के विद्वान वकीलों द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार करने के बाद, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि आक्षेपित निरोध आदेश दिनांक 4.3.2022 और आधार कानून के प्रावधानों से परे हैं, और इसलिए, आक्षेपित निरोध आदेश दिनांक 4.3.2022 और वे आधार दिनांक 04.03.2022 जिस पर निरोध आदेश पारित किया गया था, को इसके द्वारा रद्द किया जाता है और परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को तुरंत स्वतंत्र किया जाता है, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है।

(42). तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका **स्वीकृत** है। सभी संबंधित पक्षों को नियमानुसार इस आदेश की प्रति दी जायेगी.

(43). हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस आदेश में की गई टिप्पणियाँ केवल तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण पर निर्णय लेने के उद्देश्य से हैं

और संबंधित अदालत के समक्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित परीक्षणों को प्रभावित नहीं करेंगी। ट्रायल अदालतों को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश में की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना मामले को आगे बढ़ाएं और अपनी योग्यता के आधार पर निर्णय लें।

(2023) 5 ILRA 647

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार,

बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 810 / 2022

रंगेश यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

अधीक्षक जिला जेल, आज़मगढ़ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री चंद्रकेश मिश्र, श्री अभिषेक कुमार मिश्र, श्री दया शंकर मिश्र (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., ए.एस.जी.आई., श्री पतंजलि मिश्रा, श्री सत्येन्द्र तिवारी, श्री कामेश्वर सिंह

आपराधिक कानून - राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 - धारा 3(2) - यू.पी. गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 -धारा 2/3- भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 22(5)- दिनांक 25.07.22 के निरोध आदेश के विरुद्ध - अभ्यावेदन - अस्वीकृत- याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह था कि कुछ लोगों ने याचिकाकर्ता की लाइसेंसी दुकान से शराब खरीदी थी, जो मिलावटी थी, जिसे सात लोगों ने पी लिया, अंधे हो गए और उनकी मृत्यु हो गई - दिनांक 23.02.22 से पहले से ही जेल में है - आयोजित, याचिकाकर्ता द्वारा 20.02.22 को कथित रूप से किए गए कृत्य से लोक व्यवस्था में अशांति नहीं हुई, क्योंकि इसने समाज को इस हद तक परेशान नहीं किया कि सार्वजनिक शांति में सामान्य अशांति पैदा हो - मिलावटी देशी शराब की बिक्री का एक भी कार्य याचिकाकर्ता की ओर से भविष्य में भी इसी तरह कार्य करने की दोहरावपूर्ण प्रवृत्ति का सूचक नहीं था - तदनुसार निर्देश आरोपित आदेश निरस्त.. (पैरा 39)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. इच्छु देवी चोररिया बनाम भारत संघ एवं अन्य
2. मोहिनुद्दीन @ मोइन मास्टर बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बीड एवं अन्य, 1987 एआईआर 1977
3. यू.पी. राज्य बनाम कमल किशोर सैनी, 1988 एआईआर 208
4. एम. अहमदकुट्टी बनाम भारत संघ, 1990 एससीआर (1) 209
5. इनामुल हक़ इंजीनियर बनाम अधीक्षक, मण्डल/जिला कारागार, आज़मगढ़, 2001 क्रि.एल.)। 4398
6. लल्लन गोस्वामी अजयन बनाम अधीक्षक, सेंट्रल, 2002 (45) एसीसी 1089
7. बृजबासी पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1985 (सप्ल) एसीसी 273
8. श्रीमती टी. देवकी बनाम टी.एन. राज्य एवं अन्य, 1990 एआईआर 1086
9. श्रीमती राम रतन के लिए अंगूरी देवी बनाम भारत संघ एवं अन्य , 1989 एआईआर 371
10. राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, एआईआर 1966 एससी 740

11. संत सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट एवं अन्य, 2000 सी.आर.आई.एल.जे. 2230

12. राम कृपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 1986 क्रिल) 1437

13. जितेन्द्र नाथ बिस्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एआईआर 1975 एससी 1215

14. बांका स्नेहा शीला बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य, (2021) 9 एससीसी 415

15. एस.के. सेराजुल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य., एआईआर 1975 सुप्रीम कोर्ट 1517

16. जगन्नाथ बिस्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1975 सुप्रीम कोर्ट 1516

17. मोहम्मद साहबुद्दीन बनाम जिला मजिस्ट्रेट 24 परगना एवं अन्य, 1975 सीआरआई एल.जे. 1499

18. राजम्मल बनाम टी.एन. राज्य एवं अन्य, एआईआर 1999 एससी 684

19. कुन्दनभाई दुलाभाई शेख बनाम जिला मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद और अन्य

20. राज किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य एआईआर 1983 एससी 320

21. राम धोंडू बरोडे बनाम सराफ, पुलिस आयुक्त और अन्य।

22. सैयद मेहताब बनाम अधीक्षक सेंट्रल जेल, नैनी, आफताब अहमद बनाम जिला मजिस्ट्रेट, गोंडा व अन्य 2002 (45) एसीसी 422

23. भानु शरण बनाम अधीक्षक, सेंट्रल जेल, नैनी, इलाहाबाद एवं अन्य। 2002 (45) एसीसी 599

24. विशाल @ पांडा बनाम जिला मजिस्ट्रेट, मैनपुरी एवं अन्य 2004 (50) एसीसी 928

25. वीरेन्द्र कुमार नायक बनाम नैनी के अधीक्षक

26. श्रीमती खातून बेगम आदि बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य 1981 एआईआर 12077, 1981 एससीआर (3) 137

27. विजय कुमार बनाम जम्मू एवं कश्मीर एवं अन्य 1982 एआईआर 1023, 1982 एससीआर (3) 522

28. एस.के. अब्दुल मुन्नाफ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1974 0 सुप्रीम (एस.सी.) 118

29. रवींद्र कुमार घोषेल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1975 0 सुप्रीम (एससी) 12

30. विजय कुमार मिश्रा बनाम अधीक्षक, जिला कारागार, गोरखपुर 2002 0 सर्वोच्च (सभी) 792

31. मल्लाडा के श्री राम बनाम तेलंगाना राज्य एवं अन्य 2022 0 सुप्रीम (एससी) 394

32. सत्यप्रिय सोनकर बनाम अधीक्षक, सेंट्रल जेल, नैनी कानून (ऑल)-1999-10-11

33. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कमल किशोर सैनी 1987 0 सुप्रीम (एस.सी.) 833

34. बेबी डेवेसी चुली उर्फ बॉबी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2013) 4 एससीसी 531

35. अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1970 एससी 1228

36. अलीजान मिया बनाम जिला मजिस्ट्रेट, 1983 एससी 1130

37. के.के. सरवण बनाम टी.एन. राज्य, (2008) 9 एससीसी 89

38. कमरुन्निसा बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1991 एससी 1640

39. देवेश चौरसिया बनाम जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर एवं अन्य, (डब्ल्यूपी संख्या 10177/2021)

40. पंकज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2016 1 अपराध (एच.सी.) 8

41. अय्या उर्फ अयूब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1989 एससी 364

42. विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य (1984) 3 एससीसी 14

43. रेखा बनाम टी.एन. राज्य, (2011) 5 एससीसी 244

44. डॉ. राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य (1966) 1 एससीआर 709

45. पुष्कर मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1969) 1 एससीसी 10

46. श्यामल चक्रवर्ती बनाम पुलिस आयुक्त, कलकत्ता (1969) 2 एससीसी 426।

47. डॉ. राम मनोहर लोहिया केस (1966) 1 एससीआर 709

48. अली जान मियां बनाम जिलाधिकारी

49. शालिनी सोनी बनाम भारत संघ

50. मेहरुनिस्सा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1981) 2 एससीसी 709

51. मोहम्मद जाकिर बनाम दिल्ली प्रशासन (1982) 3 एससीसी 216

52. खुदीराम दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1975) 2 एससीसी 81

(माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित श्री दया शंकर मिश्र, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री चंद्रकेश मिश्रा और श्री अभिषेक मिश्रा और राज्य - प्रतिवादियों (1) अधीक्षक, जिला जेल, आज़मगढ़, (2) जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ और (3) उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पतंजलि मिश्रा और श्री सत्येन्द्र तिवारी और केंद्र सरकार की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री कामेश्वर सिंह को सुना।

2. प्रतिस्पर्धी पक्षों के बीच दलीलों का आदान-प्रदान किया गया और मामला अंतिम प्रस्तुतिकरण के लिए तैयार है।

3. दिनांक 21.04.2023 को पूर्व अवसर पर प्रतिस्पर्धी पक्षों के वकीलों को सुनने के बाद, न्यायालय ने याचिका को स्वीकार किया, अधिकारियों को निर्देश दिया है कि यदि याचिकाकर्ता किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाए, हालांकि विस्तृत निर्णय बाद में आएगा। हमारे आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित श्री दया शंकर मिश्र, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री चंद्रकेश मिश्रा और श्री अभिषेक मिश्रा और राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पतंजलि मिश्रा और श्री सत्येन्द्र तिवारी और केंद्र सरकार की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री कामेश्वर सिंह द्वारा श्री संजय कुमार श्रीवास्तव को सुना।

पक्षों के बीच उत्तरवाद का आदान-प्रदान किया गया और मामला अंतिम प्रस्तुतिकरण के लिए तैयार है।

हमने पक्षों को विस्तार से सुना है और पक्षों को सुनने के बाद, हमारी सुविचारित राय है कि वर्तमान याचिका स्वीकार करने योग्य है और तदनुसार, अनुमति दी जाती है। दिनांक 25.07.2022 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा

निरस्त किया जाता है। कारणों का पालन बाद में किया जाएगा।
याचिकाकर्ता- रंगेश यादव को इसके द्वारा स्वतंत्र किया जाता है।

जेल अधीक्षक, आज़मगढ़ को निर्देश दिया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाए।"

4. वर्तमान निर्णय द्वारा हम विस्तृत आदेश पारित कर रहे हैं

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता रंगेश यादव, जो जिला जेल, आज़मगढ़ में हिरासत में है, ने अपने भाई के माध्यम से दायर की है, जिसमें दिनांक 25.07.2022 को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) के तहत पारित किए आदेश के तहत अपनी हिरासत को चुनौती देते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने की मांग की गई है और संपूर्ण परिणामी कार्यवाही और जारी हिरासत को अवैध और असंवैधानिक बताया गया और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने और याचिकाकर्ता को उनकी कथित अवैध हिरासत से रिहा करने के लिए उत्तरदाताओं को निर्देशित करने की प्रार्थना की गई है।

5. दिनांक 25.07.2021 के हिरासत आदेश में कहा गया है कि जिला मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ संतुष्ट हैं कि याचिकाकर्ता को किसी भी तरह से कार्य करने से रोकने के लिए एनएसए अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) के तहत निरोध आदेश पारित करना आवश्यक हो गया है जो 'सार्वजनिक व्यवस्था' के रखरखाव के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण होगा। हिरासत के आधार आजमगढ़ के जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी उसी तारीख के एक अलग संचार में निहित हैं, जिसमें उस घटना का वर्णन किया गया है जिसके कारण हिरासत का आदेश पारित किया गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 21.02.2022 को अपराध क्रमांक 39 वर्ष 2022 के अंतर्गत भारतीय दण्ड संहिता की धारा 272, 273, 302, 34 एवं यू.पी. आबकारी अधिनियम धारा 60 (ए) थाना अहरौला, जिला आज़मगढ़ में विजय सोनकर द्वारा याचिकाकर्ता और अन्य सह-अभियुक्त सूर्यभान, पुनीत कुमार यादव, रामभोज और अशोक कुमार यादव के खिलाफ इस आशय से दर्ज की गई कि उसके पिता झब्बू सोनकर ने याचिकाकर्ता रंगेश यादव की दुकान से देशी शराब दिनांक 20.02.2022 को खरीदी थी और इसे सेवन के बाद, उनके पिता बीमार पड़ गए और उसके बाद अंधे हो गए और उनकी हालत बिगड़ने लगी। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया लेकिन अंततः इलाज के दौरान दिनांक 21.02.2022 को उनकी मृत्यु हो गई। जब शिकायतकर्ता अपने पिता का शव लेकर गांव लौटा, तो उसे पता चला कि याचिकाकर्ता रंगेश यादव की दुकान से खरीदी गई शराब के सेवन से सह-ग्रामीण रामकरन बिंद की भी मृत्यु हो गई है।

6. दूसरी प्रथिमिकी मुकदमा अपराध संख्या 40/2022, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 272, 273 और यू.पी. आबकारी अधिनियम की धारा

60 (ए) के अंतर्गत आबकारी निरीक्षक द्वारा थाना अहरौला पर याची एवं अन्य अज्ञात अभियुक्तों के विरूद्ध दर्ज कराया गया जो मिलावटी देशी शराब (हूच) के कारोबार में संलिप्त थे।

7. उसी घटना के आधार पर तीसरी प्रथिमिकी मुकदमा अपराध संख्या 60/2022, दिनांक 22.02.2022, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 272, 273, 34, 302 आईपीसी और यू.पी. आबकारी अधिनियम की धारा 60 (ए) के अंतर्गत राजेंद्र प्रसाद यादव नाम के व्यक्ति ने याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्त सूर्यभान, पुनीत कुमार यादव, रामभोज और अशोक यादव के खिलाफ यह आरोप लगाते हुए मामला दर्ज कराया था कि उसका भाई गंभीर हो गया है। वह अंधे भी हो गए और इलाज के लिए उन्हें दिनांक 21.02.2022 को अस्पताल में भर्ती कराया गया लेकिन इलाज के दौरान उनकी मृत्यु हो गई।

8. एक अन्य प्राथमिकी दिनांक 07.04.2022 को अपराध संख्या 97/2022 अंतर्गत उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) में याची व अन्य सहअभियुक्तों के विरुद्ध थाना अहरौला में दर्ज करायी गयी।

9. आक्षेपित निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 को तीन महीने के बाद पारित किया गया था जिसमें उल्लेख किया गया था कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (अधिनियम संख्या 65/1980) की धारा 3(3) के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, रंगेश यादव जो अपराध संख्या 39/2002 अंतर्गत भारतीय दण्ड संहिता की धारा 272, 273, 302, 34 और यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 60 (ए) थाना अहरौला, जिला आज़मगढ़ के तहत विचाराधीन कैदी के रूप में और मुकदमा अपराध संख्या 97/2022, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) थाना अहरौला, जिला आज़मगढ़ के तहत को एक सामान्य कैदी के रूप में अधीक्षक, जिला जेल, आज़मगढ़ की हिरासत में निरुद्ध है। हिरासत के आधार में यह कहा गया है कि कथित घटना के परिणामस्वरूप लोगों में आतंक और पीड़ा की भावना है और बच्चों को स्कूल नहीं भेजा जा रहा है, दुकानें बंद की जा रही हैं, अतिरिक्त पुलिस बल तैनात किया गया है और समाचार पत्रों में जबरदस्त प्रचार किया जा रहा है, आम जनता की धारणा है कि यदि लाइसेंसी दुकान से शराब पीने से लोग बीमार पड़ जाते हैं और यदि याचिकाकर्ता को जेल से रिहा कर दिया जाता है तो वह कुछ गैरकानूनी कृत्यों में लिप्त हो जाएगा, जिससे आम जनता की सामान्य गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। याचिकाकर्ता द्वारा मिलावटी देशी शराब (हूच) के कारोबार में शामिल होने के कारण अपराध किया गया, जिसके परिणामस्वरूप सात लोगों की मौत हो गई, अन्य लोग डर गए और घबरा गए, सार्वजनिक व्यवस्था भंग हो गई और इलाके में शांति भंग हो गई। इस बात की पूरी संभावना है कि यदि याचिकाकर्ता को जमानत मिल जाती है, क्योंकि उसके वकील और परिवार के सदस्य कड़ी मेहनत कर रहे हैं, तो जेल से बाहर आने के बाद याचिकाकर्ता को समाज में खेलने का मौका मिलेगा।

10. याचिकाकर्ता की रिट याचिका में कहा कि वह कानून का पालन करने वाला नागरिक है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आज़मगढ़ के जिलाधिकारी ने यंत्रवत एवं मनमाने ढंग से निरुद्धि आदेश दिनांक 25.07.2022 पर हस्ताक्षर कर दिये। याचिकाकर्ता दिनांक 23.02.2023 से जिला जेल, आज़मगढ़ में निरुद्ध है। याचिकाकर्ता ने कभी भी सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का उल्लंघन करते हुए कोई कार्य नहीं किया है। दिनांक 25.07.2022 को याचिकाकर्ता के जमानत पर बाहर आने की कोई संभावना/संभावना नहीं थी और न ही जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ की व्यक्तिपरक संतुष्टि थी, इसलिए आदेश दिनांक 25.07.2022 अवैध और असंवैधानिक है और रद्द किए जाने योग्य है। याचिकाकर्ता के खिलाफ उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के तहत मुकदमा अपराध संख्या 97/2022 दिनांक 07.04.2022 को दर्ज किया गया था और इसके तहत जमानत याचिका दिनांक 19.05.2022 को खारिज कर दी गई थी। न्यायालय में कोई दूसरी जमानत अर्जी दाखिल नहीं की गई है और न ही माननीय उच्च न्यायालय में कोई जमानत अर्जी पेश की गई है। जिला मजिस्ट्रेट आज़मगढ़ ने मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया, इसलिए विवादित हिरासत आदेश एक दंडात्मक आदेश है, इसलिए इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए।

11. अपराध संख्या 39/ 2022, अपराध संख्या 40/ 2022, अपराध संख्या 60/ 2022 और अपराध संख्या 97/ 2022 में याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई ठोस और विश्वसनीय सबूत नहीं है, यह महत्वपूर्ण तथ्य पर किसी भी स्तर पर विचार नहीं किया गया। अपराध संख्या 40/ 2022 और अपराध संख्या 60/2022 में जमानत आवेदनों में याचिकाकर्ता के गलत फंसाने और गैर-सहभागिता के संबंध में बचाव पक्ष की तर्क ली गई थी, लेकिन प्रायोजक द्वारा जमानत आवेदन, शपथ पत्र और अनुलग्नक अग्रेषित नहीं किए गए हैं। प्राधिकारी के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ को अनुशंसा प्राधिकारी, इस प्रकार जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ को व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए इस पर विचार करने से वंचित कर दिया गया है, न ही इसे राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार को विचार के लिए भी भेजा गया है। याचिकाकर्ता को केवल अपराध संख्या 39/2022 में जमानत आवेदन की अनुक्रमणिका, जमानत आवेदन (प्रथम चार पृष्ठ) तथा माननीय उच्च न्यायालय के शासकीय अधिवक्ता के कार्यालय के पत्र दिनांक 18.06.2022 की प्रतिलिपि निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 के साथ प्रदान की गई है। याचिकाकर्ता को जमानत आवेदन के साथ शपथ पत्र और अनुलग्नक प्रस्तुत नहीं किए गए हैं और न ही राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार को भी उनके अवलोकन के लिए भेजे गए हैं।

12. लाइसेंस प्राप्त दुकान से शराब की खरीद के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है और इसे उन व्यक्तियों द्वारा लिया और पीया गया था जिनके बारे में आरोप है कि वे मर गए, बीमार पड़ गए और अंधे हो गए। विद्वान अधिवक्ता श्री मिश्रा का कहना है कि उस क्षेत्र में कम से

कम आधा दर्जन देशी शराब की दुकानें हैं। प्रायोजक प्राधिकारी और अनुशंसा प्राधिकारी ने स्थानीय समाचार पत्रों में समाचारों पर भरोसा किया है जो साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है। याचिकाकर्ता को प्रभावी प्रतिनिधित्व से वंचित कर दिया गया है क्योंकि उसे महत्वपूर्ण और प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए हैं। इसके लिए दिनांक 06.08.2022 को अभ्यावेदन के माध्यम से भी अनुरोध किया गया है।

13. याचिकाकर्ता ने सुनवाई के समय कानूनी मित्र और कानूनी व्यवसायी की सहायता के लिए भी अनुरोध किया है, लेकिन उस पर विचार नहीं किया गया, जबकि प्रायोजक प्राधिकारी और सिफारिश करने वाले प्राधिकारी का प्रतिनिधित्व कानूनी अधिकारियों/व्यवसायियों द्वारा किया गया था, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन है। निरुद्धि आदेश दिनांक 25.07.2022 के विरूद्ध जिला कारागार, आज़मगढ़ के माध्यम से दिनांक 13.08.2022 को राज्य सरकार, केन्द्र सरकार एवं सलाहकार बोर्ड, लखनऊ को अभ्यावेदन भेजा गया था लेकिन उसे मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया है जो संवैधानिक अधिकार और प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय का उल्लंघन है।

14. याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 13.08.2022 का निस्तारण शीघ्रता से नहीं किया गया बल्कि लापरवाही और कमी के साथ निर्णय लिया गया जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) का उल्लंघन है। दूसरा अभ्यावेदन दिनांक 25.08.2022 को स्पीड पोस्ट के माध्यम से राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार को भेजा गया था, जिसकी कोई जानकारी याचिकाकर्ता को वापस नहीं भेजी गई है। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 3(2), 3(3), 3(5), 8, 10, 12, 14 तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 21, 22(5) के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है। इस प्रकार, आक्षेपित निरोध आदेश रद्द/ख़ारिज किये जाने योग्य है।

15. अधीक्षक, जिला जेल, आज़मगढ़ की ओर से, श्री रंजीत कुमार सिंह द्वारा प्रति शपथ पत्र दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 23.02.2022 को जिला कारागार, आज़मगढ़ में निरुद्ध किया गया था। अपराध संख्या 39/ 2022, अपराध संख्या 40/ 2022, अपराध संख्या 60/2022 में रिमांड आदेश और अपराध संख्या 97/ 2022 में रिमांड आदेश दिनांक 15.04.2022 के अनुसरण में निरुद्ध किया गया। जबकि याचिकाकर्ता उपरोक्त मामलों में न्यायिक हिरासत में निरुद्ध था, निरोध के आधार के साथ सभी प्रासंगिक सामग्रियों के साथ उक्त निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 जिला जेल, आज़मगढ़ के कार्यालय में दिनांक 25.07.2022 को प्राप्त हुआ था और उसी दिन याचिकाकर्ता को भी तामील किया गया था। याचिकाकर्ता को 12 दिनों के भीतर या हिरासत आदेश के अनुमोदन से पहले, जो भी पहले हो, जिला मजिस्ट्रेट आज़मगढ़/निरोधक प्राधिकारी को जल्द से जल्द अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए भी सूचित किया गया था।

16. उक्त निरोध आदेश राज्य शासन द्वारा दिनांक 02.08.2022 को अनुमोदित किया गया

था, जिसकी सूचना दिनांक 03.08.2022 को प्राप्त हुई तथा उसी दिन यानी 03.08.2022 सूचित किया गया। याचिकाकर्ता ने दिनांक 06.08.2022 को दो सेटों में पहला अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जिसे उसी दिन जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ के कार्यालय को भेज दिया गया। उपरोक्त पहला अभ्यावेदन दिनांक 09.08.2022 को खारिज कर दिया गया था, जिसकी सूचना दिनांक 10.08.2022 को प्राप्त हुई थी और इसकी सूचना याचिकाकर्ता को उसी दिन दी गई थी। याचिकाकर्ता ने दिनांक 14.08.2022 को सलाहकार बोर्ड, गृह विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली और गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को चार सेटों में दूसरा प्रतिनिधित्व फिर से प्रस्तुत किया। उपरोक्त दूसरा अभ्यावेदन दिनांकित 14.08.2022, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 29.08.2022 को खारिज कर दिया गया, जिसकी सूचना दिनांक 30.08.2022 को प्राप्त हुई और याचिकाकर्ता को उसी दिन सूचित किया गया। उपरोक्त अभ्यावेदन दिनांकित 14.08.2022 को भी केंद्र सरकार ने दिनांक 24.08.2022 को खारिज कर दिया था, जिसकी सूचना दिनांक 26.08.2022 को प्राप्त हुई थी और याचिकाकर्ता को उसी दिन सूचित किया गया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 26.08.2022 को तीन सेटों में तीसरा प्रत्यावेदन गृह विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली और गृह विभाग शासन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को प्रस्तुत किया। उक्त तीसरे अभ्यावेदन को राज्य सरकार द्वारा दिनांक 30.09.2022 को खारिज कर दिया गया, जिसकी सूचना दिनांक 01.10.2022 को प्राप्त हुई और याचिकाकर्ता को उसी दिन सूचित किया गया। उपरोक्त तीसरे अभ्यावेदन को केंद्र सरकार ने दिनांक 15.09.2022 को खारिज कर दिया था और जिसकी सूचना दिनांक 15.09.2022 को प्राप्त हुई थी और याचिकाकर्ता को उसी दिन सूचित किया गया था।

17. सलाहकार समिति, लखनऊ के समक्ष सुनवाई के संबंध में सूचना 17.08.2022 को प्राप्त हुई और याचिकाकर्ता को उसी दिन लखनऊ में सलाहकार बोर्ड के समक्ष निर्धारित तिथि, समय और स्थान के संबंध में सूचित किया गया। याचिकाकर्ता को अगले मित्र (गैर-अधिवक्ता) के माध्यम से सुनवाई के अधिकार के बारे में भी सूचित किया गया था, लेकिन ऐसा कोई अनुरोध नहीं किया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता को सुनवाई की तारीख यानी 22.08.2022 को सलाहकार बोर्ड, लखनऊ के समक्ष पेश होने के लिए दिनांक 21.08.2022 को लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया था। सलाहकार समिति, लखनऊ की रिपोर्ट के बाद दिनांक 02.09.2022 को राज्य सरकार द्वारा उक्त निरूद्धि आदेश की पुष्टि प्रारंभ में हिरासत की तारीख से तीन महीने की अवधि के लिए यानी 25.07.2022 से की गयी। जिसकी सूचना 03.09.2022 को प्राप्त हुई और याचिकाकर्ता को उसी दिन सूचित किया गया। वर्तमान में याची राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के साथ-साथ मुकदमा अपराध संख्या 39 वर्ष 2022, मुकदमा अपराध संख्या 40 वर्ष 2022, मुकदमा अपराध संख्या 60 वर्ष 2022 और मुकदमा अपराध संख्या 97 वर्ष 2022 के तहत जिला जेल, आज़मगढ़ में निरुद्ध है।

18. जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ की ओर से विशाल भारद्वाज द्वारा जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि निरोध आदेश और निरोध का आधार दिनांक 25.07.2022 को उत्तरदाता प्रतिवादी द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 3(3) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया है। याचिकाकर्ता और एक अन्य कंपनी की लाइसेंसी दुकान से खरीदी गई देशी शराब के सेवन के परिणामस्वरूप उसके पिता झब्बा सोनकर की मृत्यु के संबंध में विजय सोनकर द्वारा दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 39/2022 में दिनांक 21.02.2022 की प्रथम सूचना रिपोर्ट -ग्रामीण रामकरन बिंद की भी मौत याचिकाकर्ता की दुकान से खरीदी गई देशी शराब के सेवन से हुई है, जिसमें आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। मुकदमा अपराध संख्या 40/2022 में याचिकाकर्ता की मिलावटी देशी शराब के कारोबार में संलिप्तता के लिए एक और प्राथमिकी भी दर्ज की गई थी जिसमें आरोप पत्र दायर किया गया है। याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्तों के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 60/2022 में एक और प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसमें आरोप पत्र दायर किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 39/2022 में निचली अदालत के समक्ष दायर जमानत आवेदन 07.04.2022 को खारिज कर दी गई थी। याचिकाकर्ता ने माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत याचिका दायर की। जिसकी सूचना दिनांक 18.06.2022 को शासकीय अधिवक्ता उच्च न्यायालय इलाहाबाद के कार्यालय को दी गयी। फिर भी 07.04.2022 को याचिकाकर्ता और अन्य सह-आरोपियों के खिलाफ यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (निवारण) अधिनियम 1986 की धारा 3(1) के तहत एक और एफआईआर अपराध संख्या 97/2022 दर्ज की गई।

19. याचिकाकर्ता द्वारा कृत अपराध के कारण सार्वजनिक व्यवस्था भंग हो गई और याचिकाकर्ता के इलाके की शांति भंग हो गई और याचिकाकर्ता की रिहाई की अत्यधिक संभावना थी क्योंकि उसकी जमानत याचिका माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी, इसलिए, स्टेशन हाउस अधिकारी/प्रायोजक प्राधिकारी ने संबंधित सर्कल अधिकारी के माध्यम से पुलिस अधीक्षक, आज़मगढ़ को अपनी रिपोर्ट सौंपी और याचिकाकर्ता के खिलाफ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू करने की सिफारिश की। सर्कल अधिकारी ने उसी दिन रिपोर्ट को अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (ग्रामीण), आज़मगढ़ को भेज दिया, जिन्होंने इसे 19.07.2022 को पुलिस अधीक्षक, आज़मगढ़ को भेज दिया। पुलिस अधीक्षक, आज़मगढ़ ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 21.07.2022 को जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ को भेजी, उत्तरदाता/हिरासत प्राधिकारी ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री, प्रायोजक प्राधिकारी की रिपोर्ट और अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करने के बाद दिनांक 25.07.2022 राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 3(3) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए निरोध आदेश पारित किया। इसके बाद, हिरासत आदेश और हिरासत के आधार दिनांक 25.07.2022 को प्रासंगिक रिकॉर्ड के साथ 26.07.2022 को जेल अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को प्रदान किए गए। याचिकाकर्ता अन्य सह-

अभियुक्तों के साथ मिलावटी देशी शराब के अवैध कारोबार में शामिल था और इसके सेवन से सात लोगों की मौत हो गई क्योंकि याचिकाकर्ता की ऐसी गतिविधियाँ समाज के लिए हानिकारक हैं। दिनांक 17.08.2022 को याची को उ0प्र0 सलाहकार बोर्ड, लखनऊ के समक्ष सुनवाई के अवसर के सम्बन्ध में सूचना दी गयी। दिनांक 22.08.2022 को सुनवाई के लिए उ0प्र0 सलाहकार बोर्ड, लखनऊ के समक्ष याचिकाकर्ता की उपस्थिति हुई।

20. यूपी राज्य सरकार की ओर से सभापति बिंद द्वारा जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022, निरोध के आधार और जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ द्वारा आदेश दिनांक 25.07.2022 को अग्रेषित किए गए अन्य सभी प्रासंगिक दस्तावेज राज्य सरकार को 28.07.2022 को प्राप्त हुए थे। राज्य सरकार ने 01.08.2022 को हिरासत के आदेश को मंजूरी दे दी, जिसे अधिनियम की धारा 3(4) के तहत आवश्यक हिरासत आदेश की तारीख से 12 दिनों के भीतर 02.08.2022 को जिला अधिकारियों को सूचित किया गया। जिला मजिस्ट्रेट से प्राप्त हिरासत आदेश की एक प्रति, हिरासत के आधार और अन्य सभी प्रासंगिक दस्तावेजों को अधिनियम की धारा 3 (5) और उपरोक्त धाराओं के प्रावधानों के तहत आवश्यक राज्य सरकार द्वारा केंद्र सरकार को भी भेजा गया था और अधिनियम का पूर्णतः अनुपालन किया गया है। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 06.08.2022 की एक प्रति पैरावाइज टिप्पणियों के साथ 11.08.2022 को प्राप्त हुई, राज्य सरकार ने पैरावाइज टिप्पणियों के साथ अभ्यावेदन की एक प्रति दोनों अलग-अलग पत्र दिनांक 11.08.2022 स्पीड पोस्ट के माध्यम से केंद्र सरकार, नई दिल्ली और सलाहकार बोर्ड, लखनऊ को भेजी। राज्य सरकार ने उचित विचार के बाद अंततः 23.08.2022 को अभ्यावेदन खारिज कर दिया, जिसकी सूचना 24.08.2022 को जिला अधिकारियों को भेज दी गई। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को सरकार के हर स्तर पर शीघ्रता से निपटाया गया है। याचिकाकर्ता के दूसरे अभ्यावेदन दिनांक 14.08.2022 की प्रति पैरावाइज टिप्पणियों के साथ 18.08.2022 को प्राप्त हुई। राज्य सरकार ने केंद्र सरकार को अभ्यावेदन की प्रति और उस पर पैरावाइज टिप्पणियाँ भेजीं और इसे अंततः 26.08.2022 को खारिज कर दिया गया, यह सूचित किया गया कि इसे रेडियोग्राम दिनांक 29.08.2022 द्वारा सूचित किया गया था, अभ्यावेदन को प्रत्येक चरण में यूपी राज्य सरकार द्वारा शीघ्रता से निपटाया गया है। सलाहकार बोर्ड, लखनऊ ने अपने पत्र दिनांक 17.08.2022 के माध्यम से राज्य सरकार को सूचित किया कि याचिकाकर्ता के मामले पर 22.08.2022 को सुनवाई होगी और निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता को सूचित किया जाए कि यदि वह यूपी सलाहकार बोर्ड, लखनऊ के समक्ष अपने अगले मित्र (गैर-अधिवक्ता) के साथ सुनवाई में शामिल होना चाहता है, तो ऐसा कर सकता है और उसे अपने अगले मित्र (गैर-अधिवक्ता) को भी अपने साथ ले जाने की अनुमति दी जा सकती है। तदनुसार, राज्य सरकार द्वारा जिला अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को तथ्य सूचित किया गया था। याचिकाकर्ता निर्धारित तिथि 22.08.2022 को सलाहकार

बोर्ड, लखनऊ के समक्ष व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित हुआ। यूपी सलाहकार बोर्ड, लखनऊ ने उक्त निर्धारित तिथि पर याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से सुना और अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को सौंपी कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम 1980 के तहत याचिकाकर्ता की निवारक हिरासत के लिए पर्याप्त कारण है। उपरोक्त रिपोर्ट थी जैसा कि अधिनियम की धारा 11(1) में प्रावधान है, याचिकाकर्ता की हिरासत की तारीख से सात सप्ताह के भीतर प्राप्त हो गया। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 30.08.2022 की प्रतिलिपि पैरावाइज टिप्पणियों के साथ केंद्र सरकार को भेजी गई थी और उसकी जांच की गई और जिसे अंततः 14.09.2022 को राज्य सरकार द्वारा खारिज कर दिया गया। जिसकी सूचना याचिकाकर्ता को विधिवत दी गई और याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक स्तर पर त्वरित कार्रवाई की गई है।

21. भारतीय संघ की ओर से श्रीमती मीना शर्मा की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया और यह भी कहा कि हिरासत में लिए गए लोगों के अभ्यावेदन की प्रति राज्य सरकार द्वारा मंत्रालय को दिनांक 06.08.2022 को भेजी गई थी और उस पर केंद्र सरकार द्वारा विधिवत विचार किया गया था और स्वीकार नहीं किया गया था। तदनुसार, दिनांक 24.08.2022 को वायरलेस संदेश के माध्यम से संबंधित अधिकारियों सहित हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सूचित किया गया। जवाबी हलफनामे में अभ्यावेदन की कार्यवाही का विवरण भी दिया गया है। अभ्यावेदन दिनांक 13.08.2022 एवं 26.08.2022 पर विधिवत विचार किया गया तथा निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 को निरस्त करने के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ के अनुरोध को केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। दिनांक 23.09.2022 को वायरलेस संदेश के माध्यम से हिरासत में लिए गए व्यक्ति और संबंधित अधिकारियों को सूचित किया गया। जवाबी हलफनामे में अभ्यावेदन की कार्यवाही का विवरण भी दिया गया है। दूसरे और तीसरे अभ्यावेदन पर विचार के लिए अधिनियम में प्रावधानों की अनुपस्थिति के कारण, उप सचिव का विचार था कि केंद्रीय गृह सचिव के विचार के लिए इन अभ्यावेदन पर विचार न किया जाए, इसके बाद, टिप्पणियों के साथ फ़ाइल को 07.09.2022 को संयुक्त सचिव को भेज दिया गया। उचित जांच के बाद, दिनांक 13.08.2022 और 26.08.2022 के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया और फाइल को दिनांक 22.09.2022 को संयुक्त सचिव को वापस भेज दिया गया और हिरासत में लिए गए लोगों और संबंधित अधिकारियों को वायरलेस संदेश दिनांक 23.09.2022 के माध्यम से सूचित किया गया। हिरासत में लिए गए लोगों के अभ्यावेदन को तुरंत निपटाया गया और मामले की जांच अत्यंत सावधानी और तत्परता से करने का प्रयास किया गया, इसलिए, उत्तरदाता/ प्रतिवादी की ओर से अभ्यावेदन के निपटान में कोई जानबूझकर और जानबूझकर देरी नहीं हुई। प्रतिवादी नंबर 4 की कार्रवाई राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 के प्रावधानों के अनुसार हुई है और बंदी के किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं किया गया है।

22. हिरासत आदेश को वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से मुख्य रूप से कई आधारों पर चुनौती दी गई है। चुनौती का पहला आधार यह है कि कथित घटना व्यक्तियों के खिलाफ एक अपराध था जिसने "कानून और व्यवस्था" को प्रभावित किया, लेकिन यह "सार्वजनिक व्यवस्था" को प्रभावित नहीं करता है ताकि एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के प्रावधानों को आकर्षित किया जा सके। चुनौती का दूसरा आधार यह है कि दिनांक 20.02.2022 को हुई घटना एक पुरानी घटना है जिसका नजरबंदी आदेश से कोई लेना-देना नहीं है और 25.07.2022 को लंबी देरी के बाद एनएसए, 1980 के प्रावधानों को लागू करना न तो जरूरी था और न ही उचित। चुनौती का तीसरा आधार यह है कि इसमें संदर्भित और उस पर भरोसा की गई संपूर्ण प्रासंगिक सामग्री की प्रतियां और हिरासत आदेश को याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं कराया गया है। याचिकाकर्ता को केवल मुकदमा अपराध संख्या 39/2022 में जमानत आवेदन की अनुक्रमणिका, जमानत आवेदन (प्रथम चार पृष्ठ) और माननीय उच्च न्यायालय के सरकारी वकील के कार्यालय के पत्र दिनांक 18.06.2022 के साथ निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 की प्रतिलिपि प्रदान की गई है। याचिकाकर्ता को जमानत आवेदन के साथ शपथ पत्र और अनुलग्नक प्रस्तुत नहीं किए गए हैं और न ही उन्हें राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार को भी उनके अवलोकन के लिए भेजा गया है। याचिकाकर्ता को जिला मजिस्ट्रेट और सलाहकार बोर्ड, लखनऊ की रिपोर्ट की प्रतियां प्रदान नहीं की गईं और साथ ही उक्त आवेदनों पर टिप्पणियां भी याचिकाकर्ता को प्रदान नहीं की गईं, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है, जो हिरासत का कारण बनता है। आदेश कानून की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है। चुनौती का चौथा आधार यह है कि याचिकाकर्ता को अनुरोध के बावजूद सुनवाई के समय कानूनी मित्र/कानूनी व्यवसायी की सहायता नहीं दी गई है। चुनौती का पांचवां आधार यह है कि राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार ने याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर त्वरित कार्रवाई नहीं की है जो याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रदान किए गए संवैधानिक सुरक्षा उपायों का उल्लंघन है। अंततः हिरासत आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि 25.07.2022 को, यानी हिरासत आदेश पारित होने की तारीख पर, याचिकाकर्ता पहले से ही हिरासत में था और उसने मुकदमा अपराध संख्या 97/2022 में जमानत के लिए आवेदन भी दायर नहीं किया था। उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम और याचिकाकर्ता द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने की कोई संभावना नहीं थी और इन परिस्थितियों में, एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के प्रावधान लागू नहीं होते हैं और हिरासत का आदेश कानून की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है।

23. अपनी तर्कों के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दया शंकर मिश्रा ने **इच्छू देवी चोरारिया बनाम भारत संघ और अन्य, 1980 एआईआर 1983, मोहिनुद्दीन @ मोइन मास्टर बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बीड और अन्य, 1987 एआईआर 1977, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कमल किशोर सैनी, 1988 एआईआर 208, एम. अहमदकुट्टी बनाम भारत संघ, 1990 एससीआर (1) 209, इनामुल हक**

इंजीनियर बनाम अधीक्षक, मण्डल/जिला कारागार, आज़मगढ़, 2001 क्रि.एल.जे. 4398, लल्लन गोस्वामी अजयन बनाम अधीक्षक, सेंट्रल, 2002 (45) एसीसी 1089, बृजबासी पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1985 (सप्ल.) एसीसी 273, श्रीमती टी. देवकी बनाम तमिलनाडु सरकार और अन्य, 1990 एआईआर 1086, श्रीमती राम रतन बनाम अंगूरी देवी भारत संघ एवं अन्य, 1989 एआईआर 371, राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य और अन्य, एआईआर 1966 एससी 740, संत सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट एवं अन्य, 2000 सीआरआईएलजे 2230, राम कृपाल सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, 1986 क्रिएलजे 1437, जितेंद्र नाथ विश्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एआईआर 1975 एससी 1215, बांका स्नेहा शीला बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य, (2021) 9 एससीसी 415, एसके. सेराजुल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1975 सुप्रीम कोर्ट 1517, जगन नाथ विश्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1975 सुप्रीम कोर्ट 1516, मोहम्मद सहाबुद्दीन बनाम जिला मजिस्ट्रेट 24 परगना और अन्य, 1975 सीआरआई. एल.जे. 1499, राजम्मल बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य एआईआर 1999 एससी 684, कुंदनभाई दुलाभाई शेख बनाम जिला मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद और अन्य, राज किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य एआईआर 1983 एससी 320, राम धोंडू बरोडे बनाम सराफ, पुलिस आयुक्त एवं अन्य, सैयद मेहताब बनाम अधीक्षक सेंट्रल जेल, नैनी, आफताब अहमद बनाम जिला मजिस्ट्रेट, गोंडा और अन्य 2002 (45) एसीसी 422, भानु शरण बनाम अधीक्षक, सेंट्रल जेल, नैनी, इलाहाबाद और अन्य 2002 (45) एसीसी 599, विशाल @ पांडा बनाम जिला मजिस्ट्रेट ,मैनपुरी एवं अन्य 2004 (50) एसीसी 928, वीरेन्द्र कुमार नायक बनाम अधीक्षक नैनी, मोहर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, श्रीमती खातून बेगम और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1981 एआईआर 12077, 1981 एससीआर (3) 137, विजय कुमार बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य एवं अन्य 1982 एआईआर 1023, 1982 एससीआर (3) 522, एसके। अब्दुल मुन्नफ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1974 0 सुप्रीम (एससी) 118, रवीन्द्र कुमार घोषेल बनाम स्टेट ऑफ डब्ल्यू.बी. 1975 0 सुप्रीम (एससी) 122, विजय कुमार मिश्रा बनाम अधीक्षक, जिला जेल, गोरखपुर 2002 0 सुप्रीम (सभी) 792, मल्लदा के. श्री राम बनाम स्टेट ऑफ तेलंगाना एवं अन्य 2022 0 सुप्रीम (एससी) 394, सत्यप्रिय सोनकर बनाम अधीक्षक, सेंट्रल जेल, नैनी लॉज़ (एएलएल)-1999-10-11, स्टेट ऑफ यूपी। बनाम कमल किशोर सैनी 1987 0 सुप्रीम (एससी) 833 के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की।

24. रिट याचिका का विरोध करते हुए, श्री पतंजलि मिश्रा और श्री सत्येन्द्र तिवारी, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क प्रस्तुत किया है कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि निवारक हिरासत का आदेश केवल तभी दिया जा सकता है जब जमानत याचिका लंबित हो। इसकी उत्पत्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 के अंतर्गत निहित है। हालाँकि, आम तौर पर निवारक हिरासत का आदेश तभी दिया जाता है जब जमानत याचिका लंबित हो। चूंकि याचिकाकर्ता

पहले से ही कई आपराधिक मामलों में हिरासत में था, इसलिए एनएसए, 1980 के तहत तत्काल कार्यवाही लागू की गई थी।

25. उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि क्या मामले में "सार्वजनिक व्यवस्था" या "कानून और व्यवस्था" के रखरखाव के लिए खतरा शामिल है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और निवारक आदेश के आदेश को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में उनकी व्यक्तिपरक संतुष्टि पारित पर किया जाना है। श्री पतंजलि ने प्रस्तुत किया है कि यह घटना घटित हुई जिसमें बड़े पैमाने पर जनता को मिलावटी शराब के सेवन का खामियाजा भुगतना पड़ा और परिणामस्वरूप कई लोगों की जान चली गई। याचिकाकर्ता और सह-अभियुक्तों की असामाजिक गतिविधियों के कारण डर और आतंक के कारण, माता-पिता ने अपने बच्चों को स्कूल भेजने से परहेज किया और आसपास की दुकानें बंद कर दी गईं, इसलिए, यह केवल कानून और व्यवस्था नहीं बल्कि सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि एनएसए, 1980 के तहत हिरासत आदेश निम्नलिखित में से किसी भी स्थिति में पारित किया जा सकता है:
(ए) यदि आरोपी हिरासत में नहीं है या जब वह हिरासत में है (बी) हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी संतुष्ट है कि उसे जमानत पर बढ़ाया जा सकता है (सी) जहां कोई जमानत आवेदन लंबित नहीं है।

26. श्री पतंजलि मिश्रा ने आगे कहा है कि भले ही न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि याचिकाकर्ता को प्रासंगिक सामग्री प्रदान नहीं की गई थी, यह हिरासत आदेश की वैधता को प्रभावित नहीं करेगा क्योंकि हिरासत आदेश कई आधारों पर पारित किया गया है, न कि एक आधार पर। एनएसए, 1980 की धारा 5 ए में प्रावधान है कि हिरासत आदेश को केवल इसलिए अमान्य या निष्क्रिय नहीं माना जाएगा क्योंकि हिरासत आदेश पारित करने के लिए एक या कुछ आधार अस्पष्ट, अस्तित्वहीन, प्रासंगिक नहीं, संबंधित नहीं हैं या निकटतम व्यक्ति से नही जुड़ा हुआ है या किसी अन्य कारण से अमान्य है, चाहे जो भी हो। प्रायोजक प्राधिकारी द्वारा हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को एकत्र और अग्रेषित की गई सामग्री के आधार पर व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करने के बाद पारित किए गए हिरासत आदेश और घटना के बीच एक जीवंत और निकटतम संबंध है। आक्षेपित आदेश वैध है, इसमें कोई अवैधता नहीं है क्योंकि संविधान के साथ-साथ एन.एस.ए. अधिनियम में परिकल्पित अनिवार्य प्रक्रिया का अक्षरशः अनुपालन किया गया है।

27. श्री पतंजलि मिश्रा ने **बेबी डेवेसी चुली उर्फ बॉबी बनाम भारत संघ और अन्य, (2013) 4 एससीसी 531, अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल, 1970 एससी 1228, अलीजान मिया बनाम जिला मजिस्ट्रेट, 1983 एससी 1130 और के.के. सरवाना बनाम तमिलनाडु राज्य, (2008) 9 एससीसी 89 और कमरुन्निसा बनाम भारत संघ और दूसरा, ए.आई.आर. 1991 एससी 1640** में दिए गए निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त किया है।

28. केंद्र सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कामेश्वर सिंह ने रिट याचिका

का विरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया हैं और उन्होंने हिरासत आदेश को उचित ठहराने की कोशिश की है। उन्होंने आगे यह प्रस्तुत किया है कि हिरासत व्यक्ति की ओर से प्रस्तुत अभ्यावेदन और अग्रेषित किए गए निर्णय और बिना किसी लापरवाही और कमी के खारिज कर दिए गए हैं। उन्होंने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय (इंदौर पीठ) के निर्णय **देवेश चौरसिया बनाम जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर और अन्य, डब्ल्यूपी नंबर 10177/2021** निर्णित दिनांक 24.08.2021 और **पंकज बनाम यूपी राज्य और अन्य**, 2016 1 क्राइम्स (एचसी) 8 पर भरोसा जताया है।

29. किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न पवित्र है और राज्य प्राधिकरण को कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना इसे छीनने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, अन्यथा यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा।

भारतीय संविधान 1949 का अनुच्छेद 21 इस प्रकार है:-

21. जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा- किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा।

संविधान का अनुच्छेद 22 भारत में विचाराधीन कैदियों और बंदियों को विशिष्ट सुरक्षा प्रदान करता है। संविधान निर्माता, जो हमारे स्वतंत्रता सेनानी भी थे, एक ऐसी राजनीति की स्थापना के प्रति सचेत थे जो अपने नागरिकों को नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान करे। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने लेख का प्रस्ताव करते हुए, "देश की वर्तमान परिस्थितियों में" निवारक हिरासत की अवधारणा को बनाए रखने की आवश्यकता पर ध्यान दिया। हालाँकि, औपनिवेशिक शासन से अलगाव सख्त प्रतिकारी उपायों की शुरूआत में निहित था, जिसने यह सुनिश्चित किया कि सभी मामलों में "व्यक्ति की स्वतंत्रता की आवश्यकता को राज्य के हितों से ऊपर नहीं रखा जाए"।

अनुच्छेद 22 के तहत निवारक हिरासत से संबंधित विशिष्ट प्रावधान निम्नलिखित शर्तों में तैयार किए गए थे:

(4) निवारक हिरासत का प्रावधान करने वाला कोई भी कानून किसी व्यक्ति को तीन महीने अधिक समय तक हिरासत में रखने का अधिकार नहीं देगा जब तक-

(ए) एक सलाहकार बोर्ड जिसमें ऐसे व्यक्ति शामिल हैं जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, या रहे हैं, या नियुक्त होने के लिए योग्य हैं, ने तीन महीने की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले रिपोर्ट दी है कि उसकी राय में ऐसी हिरासत के लिए पर्याप्त कारण हैं :

बशर्ते कि इस उप-खंड में कुछ भी किसी व्यक्ति को खंड (7) के उप-खंड (बी) के तहत संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि से अधिक हिरासत में रखने का अधिकार नहीं देगा; या

(बी) ऐसे व्यक्ति को खंड (7) के उप-खंड (ए) और (बी) के तहत संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के प्रावधानों के अनुसार हिरासत में लिया गया है।

(5) जब किसी व्यक्ति को निवारक निरोध के प्रावधान वाले किसी कानून के तहत दिए गए आदेश के अनुसरण में हिरासत में लिया जाता है, तो आदेश देने वाला प्राधिकारी, जितनी जल्दी हो सके, ऐसे व्यक्ति को उन आधारों के बारे में सूचित करेगा जिन पर आदेश दिया गया है और उसे आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का यथाशीघ्र अवसर प्रदान करें।

(6) खंड (5) में कुछ भी प्राधिकारी को ऐसे किसी भी आदेश देने की आवश्यकता नहीं होगी जैसा कि उस खंड में उन तथ्यों का खुलासा करने के लिए संदर्भित किया गया है, जिन्हें ऐसा प्राधिकारी प्रकट करना सार्वजनिक हित के खिलाफ मानता है।

(7) संसद कानून द्वारा यह निर्धारित कर सकती है-

(ए) वे परिस्थितियां जिनके तहत, और मामलों के वर्ग या वर्गों में, किसी व्यक्ति को प्रावधानों के अनुसार सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निवारक हिरासत प्रदान करने वाले किसी भी कानून के तहत तीन महीने से अधिक की अवधि के लिए हिरासत में रखा जा सकता है। खंड (4) के उप-खंड (ए) के;

(बी) अधिकतम अवधि जिसके लिए किसी भी वर्ग या वर्गों के मामलों में निवारक हिरासत का प्रावधान करने वाले किसी भी कानून के तहत किसी भी व्यक्ति को हिरासत में लिया जा सकता है; और

(सी) खंड (4) के उप-खंड (ए) के तहत एक जांच में सलाहकार बोर्ड द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया।"

अनुच्छेद 22 का पाठ कुछ प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों को सुनिश्चित करता है, जिनमें से कई सीआर.पी.सी. में उपलब्ध हैं। इन सुरक्षा उपायों को संवैधानिक दर्जा देने में, निर्माताओं ने भारत के संविधान के लिए मौलिक अधिकारों को "निरस्त नहीं करने के लिए संसद और राज्य विधानमंडल दोनों के प्राधिकार पर एक विशिष्ट प्रतिबंध लगाया"। डॉ. बख्शी टेक चंद, जो शांतिपूर्ण समय में निवारक हिरासत के प्रति एक कर्तव्यनिष्ठ असहमति रखते थे, उन्होंने हिरासत में लिए गए लोगों को प्रतिनिधित्व देने के अधिकार के प्रावधान में एक और सुरक्षा का प्रस्ताव रखा, जिसे अंततः संविधान सभा ने एक उचित समझौते के रूप में स्वीकार कर लिया, इसलिए, निवारक हिरासत में स्वतंत्र भारत में संवैधानिक सुरक्षा उपायों का अत्यधिक ध्यान रखा जाना चाहिए।

अनुच्छेद 22 के निर्माण का यह इतिहास एक बंदी की रिट याचिका के न्यायपालिका के मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण है, जिसमें अन्य बातों के अलावा, उसके प्रतिनिधित्व पर समय पर विचार करने से इनकार करने का आरोप लगाया गया है। इसलिए केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा बंदी के प्रतिनिधित्व पर समय रहते विचार न करना सबसे अधिक प्रासंगिक है।

संविधान के अनुच्छेद 22(5) में कहा गया है कि (1) आदेश देने वाला प्राधिकारी हिरासत में लिए गए व्यक्ति को "जितनी जल्दी हो सके" उन आधारों के बारे में सूचित करेगा जिन पर आदेश दिया गया है; और (ii) हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी हिरासत में लिए गए व्यक्ति को "आदेश के खिलाफ अभ्यावेदन करने का जल्द से जल्द अवसर देगा" अनुच्छेद 22 के खंड 5 में दोहरी

आवश्यकता शामिल है: पहला, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को हिरासत के आधार के बारे में जितनी जल्दी हो सके बताने की आवश्यकता है; और दूसरा, हिरासत में लिए गए लोगों को प्रतिनिधित्व करने का "प्रारंभिक अवसर" प्रदान करना। ये दोनों प्रक्रियात्मक आवश्यकताएँ परस्पर सुदृढ़ हैं। हिरासत के आधार के बारे में जितनी जल्दी हो सके संचार का उद्देश्य हिरासत में लिए गए व्यक्ति को उस आधार के बारे में सूचित करना है जिस पर हिरासत का आदेश दिया गया है। अभिव्यक्ति "जितनी जल्दी हो सके" तत्कालता की आवश्यकता को आयात करती है।

आधारों का संचार हिरासत के आदेश के खिलाफ अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए बंदी के अधिकार को सुविधाजनक बनाने में सहायता करता है। बताए गए आधारों के अभाव में, हिरासत में लिए गए व्यक्ति को उन कारणों के संबंध में अंधेरे में छोड़ दिया जाएगा जिसके कारण हिरासत में लेने का आदेश दिया गया है। संवैधानिक प्रावधान आधारों के संचार के साथ-साथ प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्रदान करने को जो महत्व देता है, वह आधारों को संप्रेषित करने के संबंध में पहले भाग में "जितनी जल्दी हो सके" अभिव्यक्ति के उपयोग से और बंदी को अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के अधिकार का लाभ उठाने का "जल्द से जल्द अवसर" देना स्पष्ट है। अनुच्छेद 22(5) संविधान निर्माताओं की गहरी जागरूकता को दर्शाता है कि निवारक हिरासत में किसी व्यक्ति को बिना मुकदमे के हिरासत में रखा जाता है और इसलिए, इसमें प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय शामिल हैं जो समय के संदर्भ में तत्कालता को अनिवार्य करते हैं। अनुच्छेद 22 का महत्व यह है कि बंदी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन का निस्तारण शीघ्र किया जाना चाहिए। हिरासत के आधारों का संचार, जितनी जल्दी हो सके, और हिरासत के आदेश के खिलाफ प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने के लिए जल्द से जल्द अवसर प्रदान करने का कोई संवैधानिक महत्व नहीं होगा, जब तक कि हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी प्रतिनिधित्व से निपटता है और शीघ्रता से अपने निर्णय को सूचित नहीं करता है।

30. चूंकि हिरासत आदेश दिनांक 25.07.2022 राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित किया गया है, अधिनियम पारित करने के पीछे के उद्देश्य और कारण आक्षेपित आदेश की जांच और परीक्षण का उद्देश्य भी प्रासंगिक हैं, जो इस प्रकार है:

"राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 को कुछ मामलों में निवारक हिरासत और उससे जुड़े मामलों के लिए अधिनियमित किया गया था। वस्तुओं और कारणों का विवरण उन परिस्थितियों को दर्शाता है जो कानून बनाने के लिए संसद पर हावी थीं। ये "मौजूदा स्थिति में सांप्रदायिक वैमनस्य, सामाजिक तनाव, चरमपंथी गतिविधियाँ, औद्योगिक अशांति और विभिन्न इच्छुक पार्टियों की ओर से विभिन्न मुद्दों पर आंदोलन चलाने की बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए, यह आवश्यक माना गया कि देश में कानून और व्यवस्था की स्थिति को सबसे दृढ़ और प्रभावी तरीके से निपटाया जाए। अलगाववादी, सांप्रदायिक और जाति-समर्थक तत्वों सहित असामाजिक और राष्ट्र-विरोधी तत्व और अन्य तत्व जो समुदाय के लिए आवश्यक सेवाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं,

वैध प्राधिकारी के लिए गंभीर चुनौती पैदा करते हैं और कभी-कभी समाज को फिरौती के लिए भी पकड़ लेते हैं। समस्याओं की जटिलता और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से रक्षा, सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था और समुदाय के लिए आवश्यक सेवाओं के संबंध में, यह सरकार का विचार है कि प्रशासन निवारक निरोध की शक्तियों के अभाव में प्रभावी ढंग से निपटने में काफी अक्षम होगा इसलिए, राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश, 1980 को 22 सितंबर, 1980 को राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किया गया था। एक संशोधन के अधीन, विधेयक उपरोक्त अध्यादेश को प्रतिस्थापित करना चाहता है। संशोधन सलाहकार बोर्डों की संरचना से संबंधित है और यह प्रावधान करने के लिए है कि सलाहकार बोर्ड का अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है और सलाहकार बोर्ड के अन्य सदस्य ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जो , या रहे हैं, या योग्य हैं या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में योग्य हैं।"

31. एनएसए के प्रावधान अनुच्छेद 22(5) के अधिदेश का समर्थन करते हैं। धारा 3(4) में एक आवश्यकता शामिल है कि एक बार हिरासत का आदेश पारित किए जाने के बाद, आदेश देने वाले अधिकारी को तुरंत राज्य सरकार को इस तथ्य की रिपोर्ट करनी होगी, साथ ही उन आधारों के साथ, जिन पर आदेश दिया गया है और अन्य विवरण भी देने होंगे। ऐसा कोई भी आदेश बारह दिनों से अधिक समय तक लागू नहीं रहना चाहिए, जब तक कि इसे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित न किया गया हो। इस बीच, यह अवधि प्रावधान के अधीन है जो यह निर्धारित करती है कि जहां हिरासत के आधार को अधिकारी द्वारा पांच दिनों के बाद (धारा 8 के तहत) सूचित किया जाता है, लेकिन हिरासत की तारीख से दस दिनों के बाद नहीं, उप-धारा (4)) ऐसे लागू होगा जैसे कि पंद्रह दिन शब्द को बारह दिनों के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाता है। राज्य सरकार द्वारा या तो धारा 3 के तहत आदेश पारित करने या अनुमोदन करने पर, धारा 3 (5) के तहत यह आवश्यक है कि सात दिनों के भीतर केंद्र सरकार को तथ्य, जिस आधार पर आदेश दिया गया है और अन्य आवश्यक विवरण के साथ रिपोर्ट करना होगा।

32. एनएसए की धारा 8 में हिरासत के आधार के प्रकटीकरण को नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधान शामिल हैं। धारा 8 निम्नलिखित शर्तों में है:

8. आदेश से प्रभावित व्यक्तियों को हिरासत के आदेश के आधार को उन्मुक्त किया जाएगा। (1) जब किसी व्यक्ति को हिरासत के आदेश के अनुसरण में हिरासत में लिया जाता है, तो आदेश देने वाला प्राधिकारी, जितनी जल्दी हो सके, लेकिन आमतौर पर पांच दिनों से पहले नहीं और असाधारण परिस्थितियों में और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, बाद में नहीं, हिरासत की तारीख से [दस दिन] के बाद, उसे उन आधारों के बारे में बताएं जिन पर आदेश दिया गया है और उसे उचित सरकार को आदेश के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करेगा। (2) उप-धारा (1) में कुछ भी प्राधिकारी को उन तथ्यों का खुलासा करने की

आवश्यकता नहीं होगी जिन्हें वह प्रकट करने के लिए सार्वजनिक हित के खिलाफ मानता है। जैसा कि पहले देखा गया है, संविधान का अनुच्छेद 22(5) उन आधारों के संचार का प्रावधान करता है जिन पर हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा "जितनी जल्दी हो सके" हिरासत का आदेश दिया गया है। धारा 8(1) "जितनी जल्दी हो सके" अभिव्यक्ति का उपयोग करती है, इसे इस आवश्यकता के साथ अर्हता प्राप्त करती है कि आधार का संचार आमतौर पर पांच दिनों से अधिक नहीं होना चाहिए और, असाधारण परिस्थितियों में, कारणों को लिखित रूप में हिरासत की तारीख से दस दिन के अंदर दर्ज किया जाना चाहिए। धारा 8(1) अनुच्छेद 22(5) की दूसरी आवश्यकता को भी शामिल करती है, जिसमें बंदी को उचित सरकार के आदेश के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करना शामिल है।

धारा 10 में धारा 9 के प्रावधानों के तहत गठित सलाह बोर्ड का संदर्भ अनिवार्य है:

> 10. सलाहकार बोर्डों का संदर्भ- जैसा कि इस अधिनियम में अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित किया गया है, प्रत्येक मामले में जहां इस अधिनियम के तहत निरोध आदेश दिया गया है, उपयुक्त सरकार आदेश के तहत किसी व्यक्ति की हिरासत की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर, धारा 9 के तहत उसके द्वारा गठित सलाहकार बोर्ड के समक्ष उन आधारों को प्रस्तुत करेगी जिन पर आदेश दिया गया है और अभ्यावेदन, यदि आदेश से प्रभावित व्यक्ति द्वारा कोई आदेश दिया गया है, और ऐसे मामले में जहां आदेश धारा 3 की उप-धारा (3) में उल्लिखित अधिकारी द्वारा किया गया है, तो उस धारा की उप-धारा (4) के तहत ऐसे अधिकारी द्वारा रिपोर्ट भी दी जाएगी। धारा 10 के तहत, उपयुक्त सरकार को हिरासत की तारीख से तीन दिनों के भीतर उस आधार को आदेश से प्रभावित व्यक्ति द्वारा किए गए अभ्यावेदन, यदि कोई हो, के साथ प्रस्तुत करना होगा। धारा 11 के प्रावधानों के तहत सलाहकार बोर्ड को संबंधित सामग्री पर विचार करने के बाद हिरासत आदेश की तारीख से सात सप्ताह के भीतर उचित सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपनी होगी। यह उपयुक्त सरकार, या किसी भी व्यक्ति, या यहां तक कि संबंधित व्यक्ति से आगे की जानकारी मांग सकता है यदि वे व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का अवसर चाहते हैं।

सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट पर कार्यवाही धारा 12 के अंतर्गत आती है:

> 12. सलाहकार बोर्ड की सूचना पर कार्यवाही -
>
> (1) किसी प्रकरण में जब सलाहकार बोर्ड ने सूचना दी हो कि उसके मत में अमुक व्यक्ति के निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं, समुचित सरकार निरोधादेश की पुष्टि कर सकता है और सम्बन्धित व्यक्ति के निरोध को ऐसे समय के लिये जो उचित समझे, जारी रख सकता है।
>
> (2) किसी भी प्रकरण में जब सलाहकार बोर्ड ने सूचना दी हो कि उसके मत

में सम्बन्धित व्यक्ति के निरोध के लिये पर्याप्त कारण नहीं है, समुचित सरकार निरोधादेश को रद्द करेगी और वह व्यक्ति तत्काल छोड़ दिया जायेगा ।

जब सलाहकार बोर्ड ने सूचना दी है कि उसकी राय में किसी व्यक्ति की हिरासत के लिए पर्याप्त कारण है, तो उपयुक्त सरकार हिरासत के आदेश को मंजूरी दे सकती है और उस व्यक्ति की हिरासत को उस अवधि के लिए जारी रख सकती है जब तक वह उचित समझे। दूसरी ओर, जहां सलाहकार बोर्ड रिपोर्ट करता है कि उसकी राय में हिरासत में लेने के लिए अपर्याप्त कारण है, उपयुक्त सरकार हिरासत आदेश को रद्द कर देगी और व्यक्ति को तुरंत रिहा कर देगी।

धारा 14 निम्नलिखित शर्तों में नजरबंदी आदेशों को रद्द करने का प्रावधान करती है:

14. निरोधादेश को रद्द करना -

(1) जनरल क्लाजेज ऐक्ट, 1897 की धारा 21 के उपबन्ध को हानि पहुँचाये बिना निरोधादेश किसी भी समय परिवर्तित या रद्द किया जा सकेगा-

(क) भले ही वह आदेश धारा तीन की उपधारा (3) में वर्णित राज्य सरकार द्वारा जिसका कि वह अधिकारी अधीनस्थ है या केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया हो;

(ख) भले ही वह आदेश राज्य सरकार द्वारा बनाया गया हो या केन्द्रीय सरकार द्वारा;

(2) एक निरोध आदेश का वापस लेना या अवसान होना (एतद्पश्चात् इस उपधारा में पूर्ववर्ती निरोध आदेश के रूप में निर्दिष्ट) चाहे ऐसा पूर्ववर्ती निरोध आदेश राष्ट्रीय सुरक्षा (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1984 के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् दिया गया हो। उसी व्यक्ति के विरुद्ध धारा 3 के अधीन दूसरा निरोध आदेश (एतद्पश्चात् इस उपधारा में पश्चात्वर्ती निरोध आदेश के रूप में निर्दिष्ट) दिया जाना वर्जित नहीं करेगा:

परन्तु उस दशा में जहाँ कि ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध दिये गये पूर्ववर्ती निरोध आदेश की वापसी या अवसान के पश्चात् कोई नवीन तथ्य उत्पन्न न हुए हों, तो वह अधिकतम कालावधि जिनके लिए ऐसा व्यक्ति पश्चात्वर्ती निरोध आदेश के अनुसरण में निरुद्ध किया जा सके, किसी भी दशा में, पूर्ववर्ती- निरोध आदेश के अधीन निरोध की तारीख से बारह मासों की कालावधि के अवसान के आगे तक की नहीं हो सकेगी।

धारा 14 की उपधारा (1) के खंड (ए) और (बी) के अनुसार, राज्य सरकार और केंद्र सरकार दोनों के पास हिरासत के आदेश को रद्द करने की शक्ति है।

33. अब हम वर्तमान मामले के तथ्यों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ेंगे। शुरुआत में, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि हमारा विश्लेषण अपीलकर्ता द्वारा की गई चुनौती के आधार और जिला मजिस्ट्रेट/हिरासत प्राधिकारी द्वारा पारित निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 के विस्तार आदेश और अपीलकर्ता द्वारा दिया गया प्रथम अभ्यावेदन की अस्वीकृति तक सीमित है।

अय्या उर्फ अयूब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1989 एससी 364 में इस न्यायालय ने माना कि निवारक हिरासत का कानून आधारित है और इसे "संदेह के

क्षेत्राधिकार" के रूप में वर्णित किया जा सकता है और लोकतांत्रिक समाज की स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवस्था के मूल्यों की मजबूरी कभी-कभी व्यक्ति की स्वतंत्रता की कटौती के लिए मजबूर कर सकती है।

क्या हिरासत प्राधिकारी और हिरासत आदेश की व्यक्तिपरक संतुष्टि को न्यायिक जांच के अधीन किया जा सकता है, यह **विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य (1984) 3 एससीसी 14**, में शीर्ष न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया है जो इस प्रकार है

"यह विचार कि "जो लोग राष्ट्रीय सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए ज़िम्मेदार हैं, उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था की आवश्यकताओं के एकमात्र न्यायाधीश होने चाहिए" यह एक बहुत ही खतरनाक प्रस्ताव है। हमारा संविधान राज्य के किसी भी अंग को ऐसे मामलों में एकमात्र मध्यस्थ होने के लिए पूर्वाधिकार नहीं देता है। निवारक हिरासत को इतना विश्वासघाती और सभ्य विचार और लोकतांत्रिक राजनीति के लिए अभिशाप माना जाता है कि

बिना मुकदमे के हिरासत में लेने की शक्ति के अनुचित प्रयोग के खिलाफ सुरक्षा संविधान में ही बनाया गया है और मौलिक अधिकारों के रूप में शामिल किया गया है। यहां दो प्रहरी हैं, दोनों छोर पर एक है। विधायिका को उन सीमाओं को सीमित करने वाला कानून बनाने की आवश्यकता है जिसके भीतर व्यक्तियों को निवारक रूप से हिरासत में लिया जा सकता है और संविधान द्वारा निर्धारित सुरक्षा उपायों को प्रदान किया जा सकता है और अदालतों को मांग किए जाने पर यह जांचने की आवश्यकता है कि क्या कोई अत्यधिक हिरासत में लिया गया है, यानी कि क्या संविधान और विधानमंडल द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन किया गया है। निवारक हिरासत न्यायिक जांच से परे नहीं है।

रेखा बनाम तमिलनाडु राज्य, (2011) 5 एससीसी 244 में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने अनुच्छेद 21 और 22 के बीच परस्पर क्रिया की बात इस प्रकार की:

"13. हमारी राय में, भारत के संविधान का अनुच्छेद 22(3)(बी) जो निवारक हिरासत की अनुमति देता है, संविधान के अनुच्छेद 21 का केवल एक अपवाद है। अपवाद अपवाद होता है, और आमतौर पर यह मुख्य नियम को पूरी ताकत से रद्द नहीं कर सकता है, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में स्वतंत्रता का अधिकार है। मौलिक अधिकार लोगों की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हैं, न कि उन्हें बिना वकील का सहारा लिए और बिना मुकदमा चलाए लंबी अवधि के लिए जेल में डालने के लिए हैं।

"29. निवारक हिरासत, स्वाभाविक रूप से, लोकतांत्रिक विचारों के प्रतिकूल और कानून के शासन के लिए अभिशाप है। ऐसा कोई कानून संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैंड में मौजूद नहीं है (युद्ध के समय को छोड़कर)। हालाँकि, अनुच्छेद 22(3)(बी) भारत का संविधान निवारक हिरासत की अनुमति देता है, हम इसे अवैध नहीं रख सकते हैं लेकिन हमें निवारक हिरासत की शक्ति को बहुत ही संकीर्ण सीमा के भीतर सीमित रखना चाहिए, अन्यथा हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता के महान अधिकार को छीन लेंगे। जिसे लंबे, कठिन और ऐतिहासिक संघर्षों के बाद जीता गया था।

इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि देश का सामान्य कानून (दंड संहिता और अन्य दंड विधान) किसी स्थिति से निपट सकता है, तो निवारक निरोध कानून का सहारा लेना अवैध होगा"।

30. जब भी किसी निवारक निरोध कानून के तहत किसी आदेश को चुनौती दी जाती है, तो इसकी वैधता तय करते समय अदालत को एक प्रश्न अवश्य पूछना चाहिए: क्या देश का सामान्य कानून स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त था? यदि उत्तर सकारात्मक है, तो निरोध आदेश अवैध होगा। मौजूदा मामले में बंदी के खिलाफ मिलावटी देशी शराब बेचने का आरोप है, जिसके सेवन से सात निर्दोष लोगों की जान चली गई। निश्चित रूप से ऐसी स्थिति से निपटने के लिए आईपीसी के साथ-साथ एक्साइज एक्ट आदि में पर्याप्त प्रावधान हैं, इसलिए न्यायालय की राय में प्रश्नगत हिरासत आदेश विधि की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेश को ध्यान में रखते हुए, हम दिनांक 25.07.2022 के निरोध आदेश की वैधता को चुनौती देने के आधारों की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं। चुनौती का पहला आधार यह है कि कथित घटना व्यक्तियों के खिलाफ एक अपराध थी जो "कानून और व्यवस्था" को प्रभावित करती थी, लेकिन यह "सार्वजनिक व्यवस्था" को प्रभावित नहीं करती है ताकि एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के प्रावधानों को आकर्षित किया जा सके।

34. **डॉ. राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य (1966) 1 एससीआर 709; पुष्कर मुखर्जी बनाम बंगाल राज्य 1968 के डब्ल्यूबी डब्ल्यूपी नंबर 179, निर्णित दिनांक 7 नवंबर, 1968: (1969) 1 एससीसी 10 और श्यामल चक्रवर्ती बनाम पुलिस आयुक्त, कलकत्ता 1969 की डब्ल्यूपी संख्या 102, निर्णित दिनांक 4 अगस्त, 1969: (1969) 2 एससीसी 426। राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य (1966) 1 एससीआर 709** में इस न्यायालय ने कानून और व्यवस्था के रखरखाव और इसकी गड़बड़ी और सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव और इसकी गड़बड़ी के बीच अंतर को इंगित किया। सार्वजनिक व्यवस्था को कानून और व्यवस्था की तुलना में समुदाय के अधिक गले लगाने के लिए कहा गया था। सार्वजनिक व्यवस्था समुदाय के जीवन की समान गति है जो पूरे देश को एक पूरे या यहां तक कि एक निर्दिष्ट इलाके के रूप में लेती है। सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी को व्यक्तियों के खिलाफ निर्देशित कृत्यों से अलग किया जाना चाहिए जो सार्वजनिक शांति की सामान्य अशांति पैदा करने की सीमा तक समाज को परेशान नहीं करते हैं। यह अशांति की स्तर है और एक इलाके में समुदाय के जीवन पर इसका प्रभाव है जो यह निर्धारित करता है कि अशांति केवल कानून और व्यवस्था का उल्लंघन है या नहीं। उदाहरण के लिए, एक आदमी दूसरे को छुरा घोंपता है। लोग हैरान और परेशान भी हो सकते हैं, लेकिन समुदाय का जीवन एक समान गति से आगे बढ़ता रहता है, चाहे कोई इस कृत्य को कितना भी नापसंद करे।

इसका मतलब यह है कि यह सवाल कि क्या किसी व्यक्ति ने केवल कानून और व्यवस्था का उल्लंघन किया है या सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने वाले तरीके से काम किया

है, यह समाज पर अधिनियम की पहुंच की स्तर और सीमा का सवाल है।

डॉ. राम मनोहर लोहिया मामले में सरकार और हिदायतुल्लाह, जेजे द्वारा उदाहरण दिए गए थे। वे दिखाते हैं कि विभिन्न संदर्भों में समान कार्य एक तरफ कानून और व्यवस्था और दूसरी तरफ सार्वजनिक व्यवस्था को अलग-अलग प्रभावित करते हैं। यह हमेशा नुकसान की स्तर और समुदाय पर इसके प्रभाव का सवाल है। सवाल यह है कि क्या इससे समुदाय के जीवन की वर्तमान में व्यवधान उत्पन्न होता है ताकि सार्वजनिक व्यवस्था में खलल पड़े या क्या यह केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है जो समाज की शांति को अबाधित छोड़ देता है? इस सवाल का सामना हर मामले में तथ्यों पर करना पड़ता है। ऐसा कोई सूत्र नहीं है जिसके द्वारा एक मामले को दूसरे से अलग किया जा सके।

35. याचिकाकर्ता पर आरोप है कि उसने मिलावटी देशी शराब बेचकर अपराध किया जिसके सेवन से सात लोगों की मौत हो गई। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि याचिकाकर्ता का भविष्य में भी इसी तरह का अपराध करने की प्रवृत्ति थी। यह सच है कि हम हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि पर अपील नहीं कर सकते हैं, लेकिन हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की संतुष्टि उस सामग्री पर आधारित होनी चाहिए जिसके आधार पर एक तर्कसंगत व्यक्ति उसी तरह की संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। इस मामले में हिरासत में लेने वाले अधिकारी द्वारा जिस सामग्री को ध्यान में रखा गया था, वह मिलावटी देशी शराब की बिक्री की एक ही घटना से संबंधित है। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के समक्ष कोई सामग्री नहीं थी, न ही अदालत के समक्ष ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है जो यह प्रदर्शित करती हो कि यदि याचिकाकर्ता को हिरासत में नहीं लिया गया होता तो वह मिलावटी देशी शराब की बिक्री की इसी तरह की गतिविधियों में लिप्त होता।

36. इस बिंदु पर विधि व्यवस्था से जो कानून प्रस्तुत हुआ है, वह यह है कि सार्वजनिक व्यवस्था को कानून और व्यवस्था की तुलना में समुदाय के अधिक गले लगाने के लिए कहा जाता है। सार्वजनिक व्यवस्था समुदाय के जीवन की समान गति है जो पूरे देश को एक पूरे या यहां तक कि एक निर्दिष्ट इलाके के रूप में लेती है। कानून का उल्लंघन हमेशा आदेश को प्रभावित करता है, लेकिन इससे पहले कि इसे सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने के लिए कहा जा सके, इसे समुदाय या जनता को बड़े पैमाने पर प्रभावित करना चाहिए। सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी को व्यक्तियों के खिलाफ निर्देशित कृत्यों से अलग किया जाना चाहिए जो सार्वजनिक शांति की सामान्य अशांति पैदा करने की सीमा तक समाज को परेशान नहीं करते हैं। यह अशांति की स्तर है और एक इलाके में समुदाय के जीवन पर इसका प्रभाव है जो यह निर्धारित करता है कि अशांति केवल कानून और व्यवस्था के उल्लंघन या सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी के बराबर है या नहीं। इसका मतलब यह है कि यह सवाल कि क्या किसी व्यक्ति ने केवल कानून और व्यवस्था का उल्लंघन किया है या सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने वाले तरीके से काम किया है, यह समाज पर कृत की पहुंच की स्तर और सीमा का

सवाल है, जो प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।

37. उपरोक्त उदाहरणों से निकलने वाले सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि कुछ लोगों ने याचिकाकर्ता की लाइसेंस दुकान से शराब खरीदी थी, जिसमें मिलावट की गई थी, उसी का सेवन करने वाले सात लोग अंधे हो गए और इलाज के दौरान उनकी मृत्यु हो गई। इसलिए, अपराध व्यक्तियों के खिलाफ निर्देशित किया गया था, न कि समाज के खिलाफ। व्यक्तियों के खिलाफ निर्देशित कथित कृत्य कानून का उल्लंघन था, जिसने स्पष्ट रूप से कुछ समय के लिए इलाके में व्यवस्था को परेशान किया। यह आचरण निंदनीय और दंडनीय हो सकता है, जिसके लिए याचिकाकर्ता पर मुकदमा चलाया जा रहा है और दंड विधियों के अनुसार मुकदमा चलाया जा रहा है। लेकिन यह उस स्थिति को नहीं जोड़ता है जहां यह कहा जा सकता है कि बड़े पैमाने पर समुदाय याचिकाकर्ता के कृत्य से परेशान था और सार्वजनिक व्यवस्था का उल्लंघन या सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघन की संभावना थी।

38. इसके अलावा, हिरासत आदेश में एक अनावृत कथन है कि यदि याचिकाकर्ता जमानत पर बाहर आता है, तो वह फिर से अपराध में लिप्त हो सकता है, लेकिन न तो इस आशंका को दर्ज करने का कोई उचित आधार है और न ही इस बात का कोई प्रमाण है कि पकड़ी गई गतिविधि सार्वजनिक व्यवस्था के लिए हानिकारक होगी और इसलिए, उसे किसी भी तरह से सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए हानिकारक कार्य करने से रोकने के उद्देश्य से हिरासत में लेना आवश्यक है। इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब हिरासत में लेने वाला प्राधिकारी व्यक्ति के पिछले पूर्वाग्रहपूर्ण आचरण के आधार पर भविष्य में इसी तरह कार्य करने की संभावना के बारे में संतुष्ट हो। इसका मतलब यह है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति की पिछली गतिविधि, जिसके आधार पर इस तरह का पूर्वानुमान लगाया जाता है, भविष्य में इसी तरह कार्य करने के लिए बंदी की ओर से दोहराए जाने वाली प्रवृत्ति या झुकाव का यथोचित संकेत होना चाहिए, जो वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है।

39. इसलिए, हमारी राय में, दिनांक 20.02.2022 को याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किए गए कृत्य से सार्वजनिक व्यवस्था में कोई गड़बड़ी नहीं हुई क्योंकि यह सार्वजनिक शांति की सामान्य अशांति पैदा करने की हद तक समाज को परेशान नहीं करता था और मिलावटी देशी शराब की बिक्री का एकल कार्य याचिकाकर्ता की ओर से भविष्य में इसी तरह से कार्य करने की दोहराव वाली प्रवृत्ति या झुकाव का संकेत एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के तहत शक्तियों का उपयोग करने के लिए उपयुक्त नहीं था। अधिनियम की धारा 3 (2) के तहत पारित निवारक निरोध का आदेश इस कारण से अस्थिर है।

40. अब हम चुनौती के दूसरे आधार की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं, यानी कि दिनांक

20.02.2022 को घटित घटना एक पुरानी घटना है जो उस समय के निकट नहीं है जब दिनांक 25.07.2022 को हिरासत आदेश पारित किया गया था और कथित पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधि और हिरासत के उद्देश्य के बीच कोई सीधा संबंध नहीं था और इस कारण से, लगभग 5 महीने की लंबी देरी के बाद एनएसए, 1980 के प्रावधानों को लागू करना न तो आवश्यक था और न ही उचित था।

41. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी.एस. मिश्रा ने **अली जान मियां बनाम जिला पदाधिकारी, धनबा**द के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित आदेश पर भरोसा जताया है:-

"....जब पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों और हिरासत आदेश पारित करने के बीच अनुचित और लंबी देरी होती है, तो न्यायालय को इसकी जांच करनी होती है कि क्या हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने इस तरह की देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया है और इस बारे में एक विश्वसनीय और उचित स्पष्टीकरण दिया है कि देरी क्यों हुई और इसके अलावा अदालत को यह जांच करनी होगी कि क्या प्रत्येक मामले की परिस्थितियों में आकस्मिक संबंध टूट गया है।"

42. वर्तमान मामले में, अपराध दिनांक 20.02.2022 को किया गया था और हिरासत आदेश दिनांक 25.07.2022 को पारित किया गया था। कोई स्पष्टीकरण नहीं आया है जबकि याचिकाकर्ता दिनांक 23.02.2022 से लगातार जेल में है। इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि कथित घटना और हिरासत के आदेश के बीच सीधा संबंध टूट गया है और कृत अपराध और हिरासत के आदेश के बीच कोई निकटता नहीं है।"

43. **शालिनी सोनी बनाम भारत संघ में**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निरोध आदेश की वैधता की जांच करते हुए निम्नानुसार निर्णय लिया: -

"... यह संवैधानिक और प्रशासनिक कानून का एक अलिखित नियम है, कि जब भी कोई निर्णय लेने का कार्य किसी वैधानिक पदाधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए सौंपा जाता है, तो उसके दिमाग को प्रासंगिक और निकटवर्ती मामलों पर केवल, अप्रासंगिक और दूरस्थ को त्यागते हुए लागू करने का एक अंतर्निहित दायित्व होता है..."

44. वर्तमान मामले में, विचाराधीन घटना दिनांक 20.02.2022 को हुई थी, याचिकाकर्ता को दिनांक 23.02.2022 को गिरफ्तार किया गया था, उसे दिनांक 23.02.2022 को जेल में रखा गया था और वह अब तक हिरासत में था, जिसका अर्थ है जिस तारीख को रोकथाम का आदेश पारित किया गया था उस दिन याचिकाकर्ता पहले से ही जेल में था। जो घटना दिनांक 20.02.2022 को घटित हुई, यानी हिरासत आदेश पारित होने से लगभग 5 महीने पहले, निश्चित रूप से एक पुरानी घटना है जो उस समय की नहीं है जब हिरासत आदेश दिनांक 25.07.2022 पारित किया गया था और इसके बीच कोई संबंध नहीं था। कथित पूर्वाग्रही गतिविधि और हिरासत का उद्देश्य और एनएसए, 1980 के प्रावधानों को लगभग पांच महीने की लंबी देरी के बाद लागू करना

याचिकाकर्ता को न तो वारंट दिया गया और न ही उचित ठहराया गया।

45. हिरासत आदेश को चुनौती देने का अगला आधार यह है कि हिरासत आदेश के लिए संदर्भित और भरोसा की गई संपूर्ण सामग्री की प्रतियां याचिकाकर्ता को प्रदान नहीं की गई हैं। 2022 के मुकदमा अपराध संख्या 40 और 2022 के अपराध संख्या 60 से संबंधित कोई भी हलफनामा और जमानत का आधार, जिसका उल्लेख हिरासत आदेश दिनांक 25.07.2022 के हिरासत आदेश के आधार के साथ किया गया है, याचिकाकर्ता को प्रदान नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को केवल अपराध संख्या 39/2022 में जमानत आवेदन की अनुक्रमणिका, जमानत आवेदन (4 पृष्ठ) और माननीय उच्च न्यायालय के सरकारी वकील के कार्यालय के पत्र दिनांक 18.06.2022 की प्रति के साथ निरोध आदेश दिनांक 25.07.2022 की प्रति प्रदान की गई है। याचिकाकर्ता को जमानत आवेदन के साथ शपथ पत्र और अनुलग्नक प्रस्तुत नहीं किए गए हैं और न ही उन्हें राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार को भी उनके अवलोकन के लिए भेजा गया है। याचिकाकर्ता को जिला मजिस्ट्रेट और सलाहकार बोर्ड, लखनऊ की रिपोर्ट की प्रतियां प्रदान नहीं की गईं और साथ ही उक्त आवेदनों पर टिप्पणियां भी याचिकाकर्ता को प्रदान नहीं की गईं, जो निरोध आदेश को रद्द कर देता है।

46. हिरासत के आदेश के खिलाफ अभ्यावेदन करने का अवसर आवश्यक रूप से यह दर्शाता है कि हिरासत में लिए गए निर्णय पर पहुंचने में उसके खिलाफ जो कुछ भी ध्यान में रखा गया है, उसकी जानकारी हिरासत में लिए गए व्यक्ति को दी जाती है। इसका मतलब यह है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को न केवल तथ्य के निष्कर्षों के बारे में सूचित किया जाना चाहिए, बल्कि उन सभी तथ्यात्मक सामग्रियों के बारे में भी बताया जाना चाहिए जिनके कारण तथ्य का निष्कर्ष निकला है। यदि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को इतनी जानकारी नहीं दी जाती है कि संविधान द्वारा दी गई गारंटी का अवसर निरर्थक हो जाता है। प्रश्न को जिस भी कोण से देखा जाए, यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 22(5) में "आधार" का अर्थ केवल तथ्यात्मक अनुमान नहीं है, बल्कि तथ्यात्मक अनुमान और तथ्यात्मक सामग्री है जिसके कारण ऐसे तथ्यात्मक परिणाम सामने आए। "आधार" आत्मनिर्भर और आत्म-व्याख्यात्मक होना चाहिए। हमारे विचार में जिन दस्तावेजों का संदर्भ "आधार" में दिया गया है, उनकी प्रतियां बंदी को "आधार" के हिस्से के रूप में प्रदान की जानी चाहिए। इसलिए हिरासत में लिए गए लोगों को केवल हिरासत के आधारों के बारे में बताना ही पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि हिरासत के आधारों पर भरोसा किए गए दस्तावेजों, बयानों और अन्य सामग्रियों की प्रतियां भी निर्धारित समय के भीतर बंदी को प्रदान की जानी चाहिए। अनुच्छेद 22 के खंड (5) का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 22 के खंड (6) का पालन करना चाहिए। हिरासत में लिए गए लोगों को हिरासत के आधार के बारे में सूचित करने का प्राथमिक उद्देश्य, जल्द से जल्द अवसर पर, हिरासत में लिए गए लोगों को उसकी हिरासत के खिलाफ एक प्रतिनिधित्व के लिए सक्षम बनाना है और यह देखना

मुश्किल है कि हिरासत में लिया गया व्यक्ति प्रभावी प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है जब तक कि उसे हिरासत के आधार पर दस्तावेजों, बयानों और अन्य सामग्रियों की प्रतियां भी प्रदान नहीं की जाती हैं। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अनुच्छेद 22 के खंड (5) के उचित निर्माण पर, हिरासत की वैध निरंतरता के लिए यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 22 के खंड (6) के अधीन, दस्तावेजों, बयानों और अन्य सामग्रियों की प्रतियां विश्वसनीय हों। हिरासत के आधारों के बारे में हिरासत में लिए गए लोगों को हिरासत के आधारों के साथ या किसी भी घटना में पांच दिन से पहले और असाधारण परिस्थितियों में और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों को हिरासत की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि अनुच्छेद 22 के खंड (5) सपठित धारा 3 उपधारा (3) की यह आवश्यकता पूरी नहीं होती है, तो बंदी की निरंतर हिरासत अवैध और शून्य होगी।

47. यह तथ्य आवश्यक नहीं है कि बंदी को पहले से ही अपनी सामग्री के बारे में पता था या नहीं। **मेहरुनिसा बनाम महाराष्ट्र राज्य** [(1981) 2 एससीसी 709] में यह माना गया था कि यह तथ्य कि बंदी को प्रस्तुत नहीं किए गए दस्तावेजों की सामग्री के बारे में पता था, सारहीन था और बरामदगी सूची प्रतिलिपि को प्रस्तुत नहीं करने को घातक माना गया। इस बिंदु की सराहना करने के लिए किसी को यह ध्यान में रखना होगा कि बंदी जेल में है, और उसके पास अपने दस्तावेज़ों तक कोई पहुंच नहीं है। **मो. जाकिर बनाम दिल्ली प्रशासन** [(1982) 3 एससीसी 216] में यह दोहराया गया कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के लिए यह एक संवैधानिक अनिवार्यता है कि हिरासत के आदेश के आधार के रूप में जिन दस्तावेजों पर भरोसा और संदर्भित किया गया है और उन्हें बंदी को यथाशीघ्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि बंदी दस्तावेजों की आपूर्ति की प्रतीक्षा करने के बजाय तुरंत प्रभावी प्रतिनिधित्व कर सके। दस्तावेजों की मांग करने का सवाल पूरी तरह से अप्रासंगिक था और उस संबंध में कमजोरी अनुच्छेद 22(5) में निहित संवैधानिक सुरक्षा उपायों का उल्लंघन था।

48. **खुदीराम दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** [(1975) 2 एससीसी 81] में न्यायालय ने माना कि जहां विषय की स्वतंत्रता शामिल है, वहां यह न्यायालय का परम कर्तव्य है कि वह खुद को संतुष्ट करे कि कानून द्वारा प्रदान किए गए सभी सुरक्षा उपाय ईमानदारी से और विषय को कानून के अनुसार देखा गया है अन्यथा उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया गया है। अनुच्छेद 22(5) की संवैधानिक आवश्यकता यह है कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को आवश्यक संतुष्टि तक पहुंचने के लिए हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को प्रभावित करने वाले सभी बुनियादी तथ्यों और विवरणों को बंदी को सूचित किया जाना चाहिए ताकि बंदी को नजरबंदी के आदेश के खिलाफ प्रभावी प्रतिनिधित्व करना का अवसर मिल सके।

49. इसलिए, यह न केवल अदालत का अधिकार है, बल्कि उसका कर्तव्य भी है कि वह

इस बात की जांच करे कि वे कौन से बुनियादी तथ्य और सामग्रियां हैं जो वास्तव में अपेक्षित संतुष्टि तक पहुंचने में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के साथ काम करती हैं। न्यायिक जांच को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के केवल एक बयान से समाप्त नहीं किया जा सकता है कि उसने केवल कुछ बुनियादी तथ्यों और सामग्रियों को ध्यान में रखा है और हालांकि अन्य बुनियादी तथ्य और सामग्रियां उसके सामने थीं, लेकिन उसने उन्हें इसकी संतुष्टि प्रभावित करने की अनुमति नहीं दी है। अदालत को इस कथन की सत्यता की जांच करने और स्वयं यह निर्धारित करने का अधिकार है कि क्या उसके द्वारा स्वीकार किए गए तथ्यों के अलावा कोई अन्य बुनियादी तथ्य या सामग्री थी, जो हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के निर्णय को उचित रूप से प्रभावित कर सकती थी और उस उद्देश्य के लिए, अदालत निश्चित रूप से हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को उस मामले के पूरे अभिलेख को अदालत में पेश करने और उपलब्ध कराने की आवश्यकता हो सकती है जो उसके सामने प्रस्तुत हुए था। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा कानून की आवश्यकताओं का पालन सुनिश्चित करने के लिए अदालत कम से कम इतना तो कर ही सकती है।

50. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को दिनांक 23.02.2022 को गिरफ्तार किया गया था और उसे उसी तारीख को जेल में बंद कर दिया गया था और वह अब तक हिरासत में था, जिस तारीख को हिरासत का आदेश पारित किया गया था वह पहले से ही हिरासत में था। हालाँकि हिरासत आदेश में 2022 के अपराध संख्या 39, 2022 के अपराध संख्या 40, 2022 के अपराध संख्या 60 और 2022 के अपराध संख्या 97 का संदर्भ दिया गया है। लेकिन उन्हें केवल अपराध संख्या 39/2022 में जमानत आवेदन, जमानत आवेदन (4 पृष्ठ) और उच्च न्यायालय के सरकारी वकील के कार्यालय का पत्र दिनांक 18.06.2022 और हिरासत आदेश दिनांक 25.08.2022 के सूचकांक की प्रति प्रदान की गई है। जमानत अर्जी के शपथ पत्र व अनुलग्नक समेत अन्य कागजात नहीं दिए गए हैं। अदालत को यह ध्यान में रखना होगा कि याचिकाकर्ता जेल में है, और उसके पास अपने दस्तावेज़ों तक कोई पहुंच नहीं है। यह महत्वहीन है कि याचिकाकर्ता को अपराध संख्या के तथ्यों और उसकी जमानत अर्जी की सामग्री के बारे में पता था या नहीं। जमानत आवेदन में जमानत के लिए आधार शामिल थे और इसे हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा संदर्भित किया गया है। इसलिए, न्यायालय श्री पतंजलि मिश्रा की इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ है कि उपरोक्त दस्तावेज़ प्रासंगिक सामग्री नहीं थे और इनकी आपूर्ति न करने पर हिरासत के आदेश पर कोई कानूनी प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए, महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण की दस्तावेज की आपूर्ति याचिकाकर्ता को न होना, हिरासत आदेश को रद्द कर देता है और इसका कानूनी परिणाम भुगतना तय है।

51. चुनौती का चौथा आधार यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा किये गये अनुरोध के बावजूद उसे कानूनी मित्र/कानूनी व्यवसायी की सहायता नहीं दी जा रही है। याचिका में विशेष रूप से कहा गया है कि उन्होंने सलाहकार बोर्ड,

लखनऊ के समक्ष सुनवाई के समय कानूनी मित्र और कानूनी व्यवसायी के लिए अनुरोध किया था, लेकिन उस पर विचार नहीं किया गया। जिला मजिस्ट्रेट/निरोधक प्राधिकारी और राज्य सरकार के जवाबी हलफनामे में इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि उन्होंने सलाहकार बोर्ड, लखनऊ के समक्ष सुनवाई के समय कानूनी व्यवसायी की सुविधा का लाभ नहीं उठाया है, हालांकि सलाहकार बोर्ड, लखनऊ का अभिलेख पर कोई आदेश उपलब्ध नहीं है जो राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट/हिरासत प्राधिकारी द्वारा रखा गया हो सकता है। इसके अभाव में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य सरकार और जिला मजिस्ट्रेट/हिरासत प्राधिकारी ने कानूनी चिकित्सकों की सुविधाओं का लाभ उठाया, जबकि याचिकाकर्ता संबंधित प्राधिकारियों को किए गए पहले अभ्यावेदन के माध्यम से इसके लिए विशेष अनुरोध के बावजूद इससे वंचित था। इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है जो लागू हिरासत आदेश को निष्प्रभावी बनाता है।

52. हिरासत आदेश को चुनौती देने का पांचवां आधार यह है कि संविधान के साथ-साथ एनएसए अधिनियम के तहत कुछ सुरक्षा उपाय हैं जिनका राज्य सरकार और केंद्र सरकार की ओर से याचिकाकर्ता द्वारा किए गए प्रतिनिधित्व से निपटने के दौरान पालन किया जाना चाहिए। राज्य सरकार की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन दिनांक 06.08.2022 और 11.08.2022 को प्राप्त हुआ था और उस पर विचार करने के बाद दिनांक 23.08.2022 को खारिज कर दिया गया था, दूसरा अभ्यावेदन दिनांक 24.08.2022 को दिनांक 26.08.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। अभ्यावेदन दिनांक 30.08.2022 की जांच की गई और अंततः दिनांक 14.09.2022 को निर्णय लिया गया। केंद्र सरकार के जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि अभ्यावेदन दिनांक 06.08.2022 को स्वीकार नहीं किया गया और जिसकी सूचना 24.08.2022 को दी गई। अभ्यावेदन दिनांक 13.08.2022 और 26.08.2022 पर विधिवत विचार किया गया और अस्वीकार कर दिया गया और सूचना वायरलेस संदेश के माध्यम से दिनांक 23.09.2022 को भेजी गई। उपरोक्त जवाबी हलफनामे से, दिनांक 17.08.2022 से 24.08.2022 के बीच की अवधि में केंद्र सरकार की ओर से देरी का कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिखता है। याचिकाकर्ता का दिनांक 06.08.2022 का अभ्यावेदन दिनांक 23.08.2022 को राज्य सरकार द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसका अभिलेख पर कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं है। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए अभ्यावेदन से निपटने में सरकार की ओर से अस्पष्ट देरी इस संबंध में याचिकाकर्ता को प्रदान किए गए संवैधानिक सुरक्षा उपायों का उल्लंघन है, और हिरासत आदेश इस आधार पर भी अमान्य है।

53. अब हम निरोध आदेशों को चुनौती देने के अंतिम आधार पर आते हैं कि दिनांक 25.07.2022 को, यानी नजरबंदी आदेश पारित होने की तारीख पर, याचिकाकर्ता पहले से ही हिरासत में था और उसने यूपी गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम के तहत 2022 की अपराध संख्या 97 के

मामले में जमानत के लिए आवेदन भी दायर नहीं किया और याचिकाकर्ता द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किसी भी तरह से प्रतिकूल कार्य करने की कोई संभावना नहीं थी और इन परिस्थितियों में, एनएसए, 1980 के धारा 3 (2) के प्रावधान लागू नहीं है और हिरासत आदेश कानून की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है।

54. यह स्पष्ट है कि यदि संबंधित व्यक्ति हिरासत में है और उसके रिहा होने की कोई आसन्न संभावना नहीं है, तो नियम यह है कि निवारक हिरासत की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय की घोषणाओं के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि हिरासत में किसी व्यक्ति के मामले में भी हिरासत आदेश वैध रूप से पारित किया जा सकता है (1) यदि प्राधिकारी जो आदेश पारित कर रहा है इस तथ्य से अवगत है कि वह वास्तव में हिरासत में है; (2) यदि उसके पास उसके सामने रखी गई विश्वसनीय सामग्री के आधार पर विश्वास करने का कारण है (ए) कि उसे जमानत पर रिहा किए जाने की वास्तविक संभावना है, और (बी) कि रिहा होने पर वह पूरी संभावना में शामिल हो जाएगा पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधि; और (3) यदि उसे ऐसा करने से रोकने के लिए हिरासत में लेना आवश्यक समझा जाए। यदि प्राधिकारी स्वयं की संतुष्टि दर्ज करने के बाद कोई आदेश पारित करता है, तो ऐसे आदेश को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि प्राधिकारी के लिए उचित कदम जमानत का विरोध करना था और यदि उच्च न्यायालय के समक्ष इस तरह के विरोध के बावजूद जमानत दी जाती है।

55. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता पहले से ही उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत एक मामले में जेल में निरुद्ध था, उसने जमानत के लिए आवेदन दायर नहीं किया था। माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामला और यहां तक कि जब वह जमानत के लिए आवेदन दायर करेगा, तब भी उसे जमानत पर रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि (ए) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया जाता है, और (बी) न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह इस तरह के अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके कोई अपराध करने की संभावना नहीं है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि संतुष्टि दर्ज करने के लिए कोई सामग्री थी। हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी का मानना है कि याचिकाकर्ता को सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए प्रतिकूल किसी भी तरीके से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से एनएसए, 1980 के तहत याचिकाकर्ता को हिरासत में लेना आवश्यक था। संतुष्टि यह है कि याचिकाकर्ता को रोकने के उद्देश्य से हिरासत में लेना आवश्यक है इस प्रकार, सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए प्रतिकूल तरीके से कार्य करना एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के तहत आदेश का आधार है और यह आधार वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। इसलिए, दिनांक 25.07.2022 का हिरासत आदेश इस आधार पर भी कानून की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है।

56. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है। जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़ द्वारा याचिकाकर्ता रंगेश यादव को एनएसए, 1980 की धारा 3 (2) के तहत हिरासत में लेने का आदेश देने वाला आदेश दिनांक 25.07.2022 को **रद्द** कर दिया गया है। प्रतिवादियों को आदेश दिया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है तो वे उपरोक्त आदेश दिनांक 25.07.2022 के तहत तुरंत हिरासत से रिहा कर दें।

(2023) 5 ILRA 671

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 23 / 2023

अमरनाथ गुप्ता ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

श्रीमती उषा शर्मा ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री रोहन गुप्ता

अधिवक्ता विपक्षी: श्री प्रखर टंडन

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- धारा 115 -संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882- धारा 106- उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराये, किराये और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972- धारा 21- बेदखली- सह-स्वामी की पोषणीयता, चाहे वह परिवार का सदस्य हो या नहीं, को अन्य सह-स्वामियों द्वारा आपत्ति न किए जाने की स्थिति में बेदखली का वाद दाखिल करने का पूर्ण अधिकार है - विवादित संपत्ति का विभाजन बेदखली का वाद दायर करने के लिए आवश्यक आवश्यकता नहीं है, जहां तक किरायेदार का संबंध है-यह केवल सह-स्वामियों के बीच है और वर्तमान मामले में, सह-स्वामियों के बीच बेदखली का वाद दायर करने के बिंदु पर कोई असहमति नहीं है और न ही विभाजन का कोई विवाद है-बेदखली का वाद दायर करने की एकमात्र आवश्यकता मकान मालिक और किरायेदार के संबंध और नोटिस की तामील के बारे में है-वर्तमान वाद में, निर्विवाद रूप से, आज तक, 29.01.2019 को निष्पादित बिक्री विलेख के अनुसार कोई विभाजन नहीं हुआ है-बिक्री विलेख में, बेदखली का वाद दायर करने के लिए सह-स्वामी की सहमति दर्ज नहीं की गई है और किरायेदारी के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है-बेदखली का वाद पोषणीय है। (पैरा 1 से 44)

बी. स्वामित्व तीन आवश्यक अधिकारों को दर्शाता है, अर्थात् कब्जे का अधिकार, आनंद लेने का अधिकार और निपटान का अधिकार। यदि किसी मालिक को गलत तरीके से उसकी संपत्ति के कब्जे से वंचित किया जाता है, तो उसे उस पर कब्जा पाने का अधिकार है। भूमि के सह-स्वामी के मामले में तीनों आवश्यक तत्व संतुष्ट हैं। सभी सह-स्वामियों के पास संपत्ति में समान अधिकार और समन्वित हित हैं, हालांकि उनके हिस्से या तो निश्चित या अनिश्चित हो सकते हैं। प्रत्येक सह-स्वामी को अन्य सह-स्वामी या सह-स्वामियों के बराबर आनंद और कब्जे का अधिकार है। प्रत्येक सह-स्वामी का, सिद्धांत रूप में, विषय-वस्तु के हर छोटे से छोटे हिस्से में हित होता है और प्रत्येक को, उसके हित की मात्रा की परवाह किए बिना, संपत्ति के हर हिस्से और हिस्से पर

दूसरों के साथ संयुक्त रूप से कब्जा करने का अधिकार है। (पैरा 23)

पुनरीक्षण निरस्त किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अब्दुल हमीद बनाम भुवनेश्वर प्रसाद (1950) एआईआर नागपुर 18
2. बी.पी. पाठक, बनाम डॉ. रियाजुद्दीन (1976) एआईआर एम.पी. 55
3. नलकाथसैनुद्दीन बनाम कूरिकदान सुलेमान (2002) 6 एससीसी 1
4. कोचकुंजु नायर बनाम कोशी अलेक्जेंडर और अन्य। (1999) 3 एससीसी 482
5. रामदास बनाम सीताबाई एवं अन्य (2009) एससीसी 444
6. खलील अहमद बनाम अनीस अहमद सिविल पुनरीक्षण क्रमांक 500 सन् 2012
7. निज़ामुद्दीन बनाम श्रीमती बुशरा खातून एवं अन्य, रिट ए संख्या 5091/2013
8. सुभाष चंद्रा द्वारा कर्ता एवं अन्य.. बनाम अजय गुप्ता सिविल रिवीजन नंबर 55 ऑफ़ 2013
9. यू.पी. सेंट हैंडलूम कार्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम श्रीमती रश्मि अरोड़ा एस.सी.सी. संशोधन संख्या 544/2014
10. श्रीमती. कस्तूरी राधाकृष्णन और अन्य। बनाम एम. चिन्नियान और अन्य। (2016) 0 एससीसी 87
11. वाघा बनाम मणिलाल (1935) एआईआर बॉम्बे 262
12. बी.पी. पाठक बनाम डॉ. रियाजुद्दीन एवं अन्य (1976) एआईआर एमपी 55
13. मोहिंदर प्रसाद जैन बनाम मनोहर लाल जैन सिविल अपील संख्या 1263/2006
14. राजेंद्र प्रसाद एवं अन्य बनाम डीजे, इलाहाबाद और अन्य 64 एएलआर 879 (सभी)
15. एफजीपी लिमिटेड बनाम सालेह होसैनी डॉक्टर और अन्य.. (2009) एससीसी ऑनलाइन एससी 1643
16. शील चंद जैन बनाम अरुण कुमार ताड़िया एवं अन्य। (2014) 103 एएलआर 303

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहन गुप्ता और विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रखर टंडन को सुना।

वर्तमान पुनरीक्षण निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर किया गया है:

"इसलिए, यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय उपर्युक्त पुनरीक्षण की अनुमति देने और अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय क्रमांक 08, कानपुर नगर द्वारा ओएस नंबर 73/2019 में पारित किए गए आक्षेपित आदेश दिनांक 07.02.2023 और परिणामी डिक्री दिनांक 14.02.2023 को रद्द करने की कृपा कर सकता है, ऐसा न करने पर पुनरीक्षणवादी को अपूर्णीय क्षति और हानि झेलनी पड़ेगी।"

यह भी प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 08, कानपुर नगर द्वारा ओ.एस. क्रमांक 73/2019 में पारित

आदेश दिनांक 07.02.2023 और परिणामी डिक्री दिनांक 14.02.2023 के प्रभाव और संचालन पर रोक लगाने की कृपा करें।

2. चूंकि, इस मामले में केवल कानूनी प्रश्न शामिल है, इसलिए, बिना शपथ पत्र आमंत्रित किये पक्षों की सहमति से, मामले का निर्णय स्वीकार करने के स्तर पर ही किया जा रहा है।

3. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी श्री कैलाश नाथ अग्रवाल का किरायेदार था और श्री कैलाश नाथ अग्रवाल की मृत्यु के बाद, उनकी संपत्ति उनके दो बेटों, श्री पंकज अग्रवाल और श्री राकेश कुमार अग्रवाल को विरासत में मिली थी। इसके बाद, पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी श्री पंकज अग्रवाल का किरायेदार बन गया। पंकज अग्रवाल ने भवन का आधा हिस्सा, जो उनके हिस्से में था, श्रीमती उषा शर्मा, यानी वादी विरोधी पक्ष को बेच दिया है, जो श्री पंकज अग्रवाल के परिवार के सदस्य नहीं हैं।

4. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 29.01.2019 को विक्री विलेख के निष्पादन के बाद, वादी-विरोधी पक्ष ने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (इसके बाद, इसे '1882 का अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 106 के तहत पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी को नोटिस देने के बाद विचाराधीन घर को खाली करने के लिए लघुवाद न्यायालय मुकदमा दायर किया है।

5. उन्होंने आने प्रस्तुत किया कि दिनांक 29.01.2019 को बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद, प्रश्नगत संपति का विभाजन नहीं हुआ है और विभाजन के बिना, यह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि बाहरी व्यक्ति और परिवार का सदस्य नहीं होने की स्थिति में, विपरीत पक्ष-सह-मालिक को संपत्ति के किस हिस्से में प्रवेश करने का अधिकार है। वादी-विरोधी पक्ष को बिना बंटवारे के विवादित संपत्ति पर कब्जा करने का कोई अधिकार नहीं है, इसलिए, बेदखली का मुकदमा दायर करने से पूर्व, वादी विरोधी पक्ष की ओर से आवश्यक पहली कार्रवाई विभाजन का मुकदमा दायर करना और विवादित संपत्ति पर कब्जा प्राप्त करना है और फिर बेदखली के लिए मुकदमा दायर करना है।

6. उन्होंने आगे कहा कि वादी विपरीत पक्ष एक सह-मालिक है, लेकिन एक चाहरी व्यक्ति है, इसलिए, वह किसी अन्य सह-मालिक, यानी राकेश कुमार अग्रवाल जो सह-मालिक है और संपति के आधे हिस्से पर उसका कब्जा भी है की सहमति के बिना बेदखली के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकती है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि संपति के खरीदे गए हिस्से पर कब्ज़ा प्राप्त किए बिना, वह बेदखली के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकती है और वर्तमान मामले में, निर्विवाद रूप से, आज तक, 29.01.2019 को निष्पादित बिक्री विलेख के अनुसार कोई विभाजन नहीं हुआ है। विक्रय विलेख में, मकान मालिक, यानी राकेश कुमार अग्रवाल की बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने की सहमति दर्ज नहीं की गई है और किरायेदारी के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है।

7. अपने तर्क के समर्थन में, पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहन

गुप्ता, ने अब्दुल हामिद बनाम भुवनेश्वर प्रसादः एआईआर 1950 नागपुर 18 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले, बी.पी. पाठक बनाम डॉ. रियाजुद्दीनः एआईआर 1976 मध्य प्रदेश 55, में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले नलकाथ सैनुद्दीन बनाम कूरीकादान सुलेमान (2002) 6 एससीसी 1, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुसरण किया गयाः कोचकुंजु नायर बनाम कोशी अलेक्जेंडर और अन्य (1999) 3 एससीसी 482 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णयः और रामदास बनाम सीताबाई और अन्य 2009) सुप्रीम कोर्ट केस 444 पर भरोसा जताया है।

8. उन्होंने अंत में दोहराया कि, एक बार यह निर्विवाद है कि वादी विपरीत पक्ष-सह-मालिक परिवार का सदस्य नहीं है, बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने के लिए किसी अन्य सह-मालिक की कोई सहमति नहीं है, किरायेदारी के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं है, कोई विभाजन नहीं हुआ है, इसलिए, बेदखली के लिए कोई मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता

9. इसके विपरीत, विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रखर टंडन ने पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ताद्वारा की गई दलील का विरोध किया और कहा कि इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि वादी विरोधी पक्ष विचाराधीन घर का सह-मालिक है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि 1988 के अधिनियम की धारा 106 के तहत दिनांक 12.07.2019 का नोटिस पुनरीक्षणवादी-प्रतिवादी को स्वामित्व के विशिष्ट दावे के साथ दिया गया है, जिसे पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी द्वारा दिनांक 16.07.2019 के अपने उत्तर में अस्वीकार नहीं किया गया था।

10. उन्होंने यह भी कहा कि लिखित निवेदन में भी सह-स्वामित्व को बहुत अच्छी तरह से स्वीकार किया गया है। इसलिए, एक बार जब नोटिस पर्याप्त हो जाता है, मकान मालिक-किरायेदार संबंध स्वीकार कर लिया जाता है, तो सह-मालिक की ओर से मुकदमा बहुत अच्छी तरह से चलने योग्य होता है।

11. अपने तर्क के समर्थन में, विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ताने सिविल पुनरीक्षण नंबर 500/2012 के (खलील अहमद बनाम अनीस अहमद), रिट ए नंबर 5091/ 2013 (निजामुद्दीन बनाम श्रीमती बुशरा खातून और अन्य), सिविल पुनरीक्षण संख्या 55/2013 (सुभाष चंद्र हफ थू कर्ता और अन्य बनाम अजय गुप्ता) और एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 544/2014 (उ.प्र राज्य हथकरघा निगम लिमिटेड और अन्य बनाम श्रीमती रश्मी अरोरा)) में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

12. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि, जहां तक पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ताके इस तर्क का संबंध है कि सह-मालिक, बाहरी व्यक्ति होने के कारण बेदखली के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकता है, इसमें कोई दम नहीं है क्योंकि यह न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी नियम या कानून पर आधारित नहीं है।

13. उन्होंने दृढ़ता से कहा कि सह-मालिक को 1882 के अधिनियम के तहत बेदखली के लिए

मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है और मुकदमा दायर करने के बाद भी, पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी ने कभी भी इस आपत्ति को लिखित बयान में नहीं लिया है और आगे के सह-मालिक, यानी श्री राकेश कुमार अग्रवाल ने भी वादी के विपरीत पक्ष द्वारा दायर बेदखली के मुकदमे का विरोध करते हुए कभी कोई पक्ष दायर नहीं किया है। एक बार, पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी ने अपने लिखित बयान में इस आपत्ति को नहीं लिया है और वादी प्रतिवादी से सह-मालिक (श्री राकेश कुमार अग्रवाल) की असहमति दिखाने वाला कोई सबूत भी पेश नहीं किया है, इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

14. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने श्रीमती कस्तूरी राधाकृष्णन और अन्य बनाम एम. चिन्नियान और अन्यः 2016 0 सुप्रीम (एससी) 87 में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया और कहा कि इस मामले मेंउच्चतम न्यायालय का दृढ़ विचार है कि सह-मालिक के पास बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है. इसलिए, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है।

15. उन्होंने यह भी बताया कि दिनांक 29.01.2019 के विक्रय पत्र में यह स्पष्ट उल्लेख है कि पट्टेदार ने वादी विरोधी पक्ष को वर्तमान के साथ-साथ भविष्य में भी नामांतरण का पूरा अधिकार दिया है, इसलिए इसमें बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का अधिकार भी शामिल है। उसके आलोक में, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि विक्रय पत्र में सहमति और किरायेदारी के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

16. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतिर्यो पर विचार किया है और अभिलेख के साथ-साथ पक्षों के वकीलों द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का अवलोकन किया है।

17. मामले के निर्विवाद तथ्य यह है कि पहले पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी श्री कैलाश नाथ अग्रवाल का किरायेदार था और उनकी मृत्यु के बाद, उनकी संपत्ति उनके दो बेटों, श्री पंकज अग्रवाल और श्री राकेश कुमार अग्रवाल को विरासत में मिली थी। पंकज अग्रवाल ने अपने हिस्से की आधी संपत्ति विक्रय पत्र दिनांक 29.01.2019 के माध्यम से वादी विरोधी पक्ष श्रीमती उषा शर्मा को बेच दी है। इसके बाद, वादी विरोधी पक्ष श्रीमती उषा शर्मा ने 1882 के अधिनियम की धारा 106 के तहत पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी को नोटिस देने के बाद एस.सी.सी मुकदमा संख्या 73/2019 का दायर किया है। लेफ्टिनेंट श्री कैलाश नाथ अग्रवाल के एक अन्य पुत्र और विवादित संपत्ति के सह-मालिक श्री राकेश कुमार अग्रवाल ने वादी विरोधी पक्ष द्वारा बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने पर कभी कोई आपत्ति नहीं जताई है जो श्री पंकज अग्रवाल का हिस्सा खरीदने के बाद विवादग्रस्त संपत्ति का सह-मालिक बन गया।

18. न्यायालय के समक्ष मुख्य मुद्दा यह तय करना है कि क्या यदि वादी-विरोधी पक्ष

परिवार का सदस्य नहीं है, तो वह किसी अन्य सह-मालिक की सहमति के बिना बेदखली के लिए मुकदमा दायर कर सकती है या नहीं।

19. पुनरीक्षणवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया पहला निर्णय अब्दुल हामिद (उपरोक्त) है, जो कहता है कि संयुक्त हिंदू परिवार के मामले में, प्रबंधक द्वारा एक नोटिस पर्याप्त है, लेकिन यहां पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ताका तर्क यह है कि वादी-प्रतिपक्ष परिवार का सदस्य नहीं है, इसलिए उसे बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का कोई अधिकार नहीं है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"5. हाल के एक फैसले में 'वाघा बनाम मणिलाल', एआईआर 1935 बीओएम 262, ब्रूमफिल्ड जे. ने कहा कि जहां मकान मालिक के अधिकार संयुक्त रूप से कई व्यक्तियों के पास होते हैं, किरायेदार को बेदखल करने का मुकदमा केवल सभी सह-मालिकों द्वारा संयुक्त रुप से वादी के रूप में मुकदमा दायर किया जा सकता है। 'कृष्णा भीम बनाम लक्ष्मीबाई', एआईआर 1938 बीओएम 316 में निर्णय के लिए जो प्रश्न उठा वह यह था कि क्या एक संयुक्त हिंदू परिवार के प्रबंधक द्वारा दिया गया नोटिस किरायेदारी समाप्त करने के लिए पर्याप्त था और वहीं, निर्णय 'ब्लाजी भीकाजी बनाम गोपाल', 3 बीओएम 23 पर भरोसा किया गया था, यह कहा गया था कि किरायेदारी समाप्त करने के लिए ऐसा नोटिस पर्याप्त था। यह मामला वर्तमान से अलग है क्योंकि यहां यह आरोप नहीं लगाया गया है और न ही दिखाया गया है कि वादी द्वारा दिया गया नोटिस उसकी और गुलाम हुसैन के उत्तराधिकारियों की ओर से था। इन परिस्थितियों में, मेरा मानना है कि मुकदमा सही ढंग से खारिज कर दिया गया था।

20. यह निर्णय पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के मामले में लागू नहीं है क्योंकि इस मामले में न्यायालय के समक्ष मुद्दा अलग था। मुद्दा यह था कि क्या संयुक्त हिंदू परिवार का प्रबंधक किरायेदारी समाप्त करने के लिए नोटिस भेज सकता है या नहीं और यहां मामला यह है कि क्या सह-मालिक जो परिवार का सदस्य नहीं है, बेदखली के लिए मुकदमा दायर कर सकता है या नहीं। इसलिए मौजूदा विवाद में इस फैसले का कोई मतलब नहीं है.

21. पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया दूसरा निर्णय बी.पी. पाठक (उपरोक्त) है, जो मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय का एक निर्णय है, जिसे नलकाय सैनुद्दीन (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत ने भी पुष्टि की है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"23. बी.पी. पाठक बनाम डॉ. रियाजुद्दीन एवं अन्य में, एआईआर 1976 एमपी 55, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पी. के. तारे और न्यायमूर्ति शिव दयाल (बाद में मुख्य न्यायाधीश) की खंडपीठ ने न्यायिक राय के एक ज्ञानवर्धक सर्वेक्षण पर विचार किया। कि पट्टे पर दी गई संपत्ति के एक हिस्से का अंतरिती उस हिस्से के

संबंध में पट्टेदार के "सभी अधिकार प्राप्त कर लेता है जैसे कि उसने अकेले ही पट्टे को शामिल कर लिया हो और अंतरिती और पट्टेदार के बीच एक नया संबंध बन जाता है। यह अनुभाग संविदात्मक प्रावधान को प्रतिस्थापित करते हुए, लेकिन उसके समान प्रभाव को बरकरार रखते हुए, एक वैधानिक प्रावधान बनाता है। समनुदेशन विलेख के निष्पादन पर असाइनी का शीर्षक पूरा हो जाता है और असाइनमेंट की सूचना तक इसे स्थगित नहीं किया जाता है। डिवीजन बेंच ने इस दलील को खारिज कर दिया कि चूंकि पट्टेदार खाली किए गए परिसर के एक हिस्से की किरायेदारी को छोड़ने के नोटिस द्वारा समाप्त नहीं कर सकता था, इसलिए वह परिसर को आंशिक रूप से स्थानांतरित नहीं कर सकता है और हस्तांतरित व्यक्ति को ऐसा अधिकार प्रदान नहीं कर सकता है। डिवीजन बेंच ने कहा कि बेदखली का अधिकार स्वामित्व में अंतर्निहित है। इसलिए, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 के आधार पर ऐसा अंतरिती किरायेदार को उसके हस्तांतरित हिस्से से बेदखल करने का हकदार है, न केवल तब जब पट्टा हस्तांतरण से पहले निर्धारित किया गया था, बल्कि यदि यह धारा 111 में उल्लिखित किसी भी परिस्थिति में हस्तांतरण के बाद निर्धारित किया गया हो। इस प्रकार वह उसे हस्तांतरित संपत्ति के संबंध में पट्टे को छोड़ने के नोटिस द्वारा समाप्त कर सकता है।

24. सरदारीलाल बनाम नारायणलाल, एआईआर 1980 एमपी 8 में डिवीजन बेंच का निर्णय उसी उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा विचार के लिए आया। मुख्य न्यायाधीश जी.पी. सिंह ने पूर्ण पीठ के लिए बोलते हुए, बी.पी. पाठक के मामले में कानून के बयान को मंजूरी दे दी और यह माना गया कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 मालिक को अपने एकतरफा अधिनियम द्वारा पट्टे को विच्छेद करने का अधिकार प्रदान करती है और पट्टे पर दी गई संपत्ति के एक हिस्से पर किरायेदारी हस्तांतरणकर्ता द्वारा निर्धारित की जा सकती है।

22. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से, यह जाहिर तौर पर स्पष्ट है कि किसी भी समय, सह- मालिक के अधिकार पर सवाल नहीं उठाया गया है, जहां तक बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का सवाल है, बल्कि न्यायालय ने माना है कि बेदखली का अधिकार स्वामित्व में अंतर्निहित है। इसलिए, यह निर्णय पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के बचाव में नहीं आता है, बल्कि विपरीत पक्ष-वादी के पक्ष में आता है।

23. पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ताद्वारा भरोसा किया गया तीसरा निर्णय कोचकुंजु नायर (उपरोक्त) है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"9. स्वामित्व तीन आवश्यक अधिकारों को आयात करता है, अर्थात् कब्जे का अधिकार, आनंद लेने का अधिकार और निपटान का अधिकार। यदि किसी मालिक को गलत तरीके से उसकी संपति के कब्जे से वंचित किया गया है तो उसे उस पर कब्जा करने का अधिकार है। किसी भूमि के सह-

मालिक के मामले में सभी तीन आवश्यक बातें पूरी होती हैं। सभी सह-मालिकों के पास संपति में समान अधिकार और समन्वित हित हैं, हालांकि उनके शेयर या तो निश्चित या अनिश्चित हो सकते हैं। प्रत्येक सह-मालिक को अन्य सह-मालिक या सह-मालिकों के समान आनंद और कब्ज़ा का अधिकार है। सिद्धांत रूप में, प्रत्येक सह-मालिक का विषय वस्तु के प्रत्येक अत्यंत छोटे हिस्से में हित होता है और प्रत्येक को, उसके हित की मात्रा की परवाह किए बिना, दूसरों के साथ संयुक्त रूप से संपत्ति के प्रत्येक भाग और पार्सल पर कब्ज़ा करने का अधिकार है। (मित्रास सह-स्वामित्व और विभाजन, सातवें संस्करण के माध्यम से)"

24. निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफ के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त मामला स्वामित्व के आवश्यक अधिकारों से संबंधित है और यह माना गया है कि अन्य सह-मालिक को अन्य सह-मालिक/सह-मालिकों के बराबर कब्जे का आनंद लेने का अधिकार है। यहां विवाद दो सह- मालिकों के बीच नहीं, बल्कि एक निर्विवाद सह-मालिक और किरायेदार के बीच है। पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ताका तर्क, सह-मालिक एक बाहरी व्यक्ति बेदखली के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकता है, उसे उपरोक्त फैसले से कोई समर्थन नहीं मिल रहा है, बल्कि यह यह मानकर वादी विरोधी पक्ष की मदद कर रहा है कि प्रत्येक सह-मालिक को कब्जे का आनंद लेने का समान अधिकार है।

25. पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ताद्वारा भरोसा किया गया चौथा निर्णय रामदास (उपरोक्त) है, जिसका वर्तमान मामले में कोई उपयोग नहीं है क्योंकि यह दो सह-मालिकों के बीच विवाद होने की स्थिति में दायर किया जा सकता है, लेकिन यहां विवाद एक निर्विवाद सह-मालिक और किरायेदार के बीच है।

26. विपरीत पक्ष-वादी के विद्वान अधिवक्ताने उ.प्र राज्य हथकरघा निगम लिमिटेड (उपरोक्त) के फैसले पर भरोसा जताया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"मो० हनीफ बनाम सुनील तुली एआईआर 2009 ऑल (एनओसी) 2180 के मामले में, यह माना गया है कि जहां मकान मालिक और किरायेदार का रिश्ता साबित होता है और किरायेदारी संपति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत निर्धारित की जाती है, उस भवन के संबंध में बेदखली के मुकदमे पर फैसला सुनाने के लिए और कुछ भी आवश्यक नहीं है जो 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 13 के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आता है जब किरायेदारी के निर्धारण का नोटिस वैध है और विधिवत तामील किया गया है।"

27. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि एक बार मकान मालिक-किरायेदार संबंध साबित हो जाता है और 1882 के अधिनियम की धारा 106 के तहत किरायेदारी निर्धारित की जाती है, तो इससे अधिक कुछ भी आवश्यक नहीं है। वर्तमान मामले में, मकान मालिक किरायेदार का रिश्ता विवादित नहीं है और न ही नोटिस की सेवा अपर्याप्त है।

28. इस न्यायालय द्वारा निज़ामुद्दीन (उपरोक्त), खलील अहमद (उपरोक्त) और

सुभाष चंद्रा (उपरोक्त) में कानून के समान अनुपात का पालन किया गया था।

29. एक अन्य मुद्दा, जिस पर पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ताने तर्क दिया था, वह यह है कि एक बाहरी व्यक्ति होने के कारण सह-मालिक को अन्य सह-मालिक की सहमति के बिना बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का कोई अधिकार नहीं है।

30. यह मामला सिविल अपील संख्या 1263/2006: मोहिंदर प्रसाद जैन बनाम मनोहर लाल जैन में शीर्ष न्यायालय के समक्ष भी विचार के लिए था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है

"7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताको सुनने के बाद हम संतुष्ट हैं कि अपीलें खारिज होने योग्य हैं। यह अच्छी तरह से तय है कि आम तौर पर सह-मालिकों के स्वामित्व वाली संपति में सह-मालिकों में से एक किरायेदार को बेदखल करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है। (श्री राम पसरीचा बनाम जगन्नाथ [(1976) 4 एससीसी 184] और धन्नालाल बनाम कलावतीबाई [(2002) 6 एससीसी 16], एससीसी पैरा 25 देखें।) यह सिद्धांत अधिकरण के सिद्धांत पर आधारित है। किरायेदार के खिलाफ बेदखली का मुकदमा दायर करने वाला एक सह-मालिक अपनी ओर से और अन्य सह-मालिकों के एजेंट के रूप में ऐसा करता है। अन्य सह-मालिकों की सहमति तब तक ली गई मानी जाती है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि अन्य सह-मालिक किरायेदार को बेदखल करने के लिए सहमत नहीं थे और उनकी असहमति के बावजूद मुकदमा दायर किया गया था। वर्तमान मामले में, मुकदमा दोनों सह-मालिकों द्वारा दायर किया गया था। सह-मालिकों में से एक मुकदमे के बीच में अपनी सहमति वापस नहीं ले सकता, जिससे दूसरे सह-मालिक पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। एक बार मुकदमा दायर होने के बाद, पार्टियों के अधिकार मुकदमे की तारीख पर स्पष्ट हो जाते हैं और सह-मालिकों के निष्कासन की मांग करने के अधिकार को मुकदमे की स्थापना की तारीख के संदर्भ में तय किया जाना चाहिए; एकमात्र अपवाद तब होता है जब किसी बाद की घटना के आधार पर किरायेदार को बाहर निकालने के लिए सह-मालिकों के निकाय का अधिकार पार्टियों के कार्य या कानून के संचालन से समाप्त हो जाता है।

"8. इस प्रकार, सह-मालिक द्वारा दायर किया गया मुकदमा कानून में चलने योग्य है। सह-मालिक के लिए किराया नियंत्रक के समक्ष बेदखली की कार्यवाही शुरू करने से पहले यह दिखाना आवश्यक नहीं है कि उसने अन्य सह-मालिकों का विकल्प या सहमति ली थी। हालांकि, यदि कोई सह-मालिक इस पर आपत्ति जताता है, तो यह एक प्रासंगिक तथ्य हो सकता है। मौजूदा मामले में, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि प्रतिवादी के सह-मालिकों ने प्रतिवादी द्वारा शुरू की गई बेदखली की कार्यवाही पर आपत्ति जताई थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ताकी इस दलील को कि कार्यवाही शुरू करने से पहले, अपीलकर्ता को यह दिखाना आवश्यक था

कि उसे आयुर्वेदिक चिकित्सा में व्यवसाय चलाने का अनुभव है, खारिज कर दिया जाना चाहिए। ऐसा कोई कानून नहीं है जो ऐसी पूर्व शर्त का प्रावधान करता हो। ऐसा हो सकता है कि जहां किसी व्यवसाय को चलाने के लिए लाइसेंस की आवश्यकता होती है, वहां एक क़ानून कुछ योग्यताएं या पूर्व शर्तें निर्धारित कर सकता है, जिन्हें पूरा किए बिना मकान मालिक व्यवसाय शुरु करने में सक्षम नहीं हो सकता है, लेकिन आयुर्वेदिक चिकित्सा में थोक व्यवसाय चलाने के लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं है। व्यवसाय में अनुभव किसी भी क़ानून के तहत पूर्व शर्त नहीं है। यहां तक कि इसके लिए कोई अनुभव भी आवश्यक नहीं हो सकता है। यदि प्रतिवादी ने अपने उद्देश्य के लिए अपीलकर्ता को बेदखल करने की अपनी वास्तविक आवश्यकता को साबित कर दिया है, तो यह न्यायालय, जब तक कि कोई उचित मामला नहीं बनता है, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा निकाले गए और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए तथ्य के निष्कर्ष को छेड़-छाड़ नहीं कर सकता है।"

31. उक्त निर्णय के अवलोकन से, यह जाहिर तौर से स्पष्ट है कि इस मामले में, न्यायालय ने यह दृढ़ विचार किया है कि एक सह-मालिक को अन्य सह-मालिक द्वारा आपति न किए जाने की स्थिति में बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है।

32. इस न्यायालय ने राजेंद्र प्रसाद और अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद और अन्यः 64 एएलआर 879 (एएलएल) के मामले में फिर से उसी मुद्दे पर विचार किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"6. आक्षेपित निर्णय द्वारा किरायेदार के पुनरीक्षण की अनुमति केवल इस आधार पर दी गई है कि एक सह-मालिक किरायेदार के खिलाफ मुकदमा नहीं ला सकता है और इसलिए, यह सुनवाई योग्य नहीं है। इस न्यायालय का मानना है कि जिस कारण से पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण की अनुमति दी है वह स्पष्ट रूप से कानून की स्थापित स्थिति के विरुद्ध है। किरायेदार को बेदखल करने का मुकदमा सह-मालिक में से किसी एक द्वारा लाया जा सकता है। एक सह-मालिक संपत्ति का उतना ही मालिक होता है जितना कि किसी संपति का कोई भी एकमात्र मालिक होता है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने (1976) 4. एस.सी.सी. 184 में रिपोर्ट किए गए श्री राम पसरीचा बनाम जगन्नाथ और अन्य के मामले में यह निर्णय दिया है, जैसा कि यहां उद्धृत किया गया है:-

"पैरा 27. न्यायशास्त्र की दृष्टि से, यह कहना सही नहीं है कि किसी संपति का सह-मालिक उसका मालिक नहीं है। वह दूसरों के साथ समग्र संपति के हर हिस्से का मालिक है और यह नहीं कहा जा सकता है कि वह संपति का केवल एक जुज भाग या अंश का मालिक है। स्थिति तभी बदलेगी जब बंटवारा होगा. इसलिए, इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है कि वादी, जो माना जाता है कि परिसर का मकान मालिक और सह-मालिक है, धारा 13 (1) (एफ) के अर्थ के तहत परिसर का मालिक नहीं है। यह स्थापित करना आवश्यक

नहीं है कि वादी धारा 13 (1) (एफ) के प्रयोजन के लिए संपति का एकमात्र मालिक है, जब तक वह प्रतिवादी के स्वीकृत मकान मालिक के साथ-साथ संपति का सह-मालिक है।"

7. उपरोक्त मामला पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी अधिनियम 1956 के प्रावधानों से संबंधित है जिसमें धारा 13 (1) (एफ) में मकान मालिक द्वारा अपने कब्जे के लिए परिसर की आवश्यकता के संबंध में "यदि वह मालिक है" शब्द शामिल थे। मेसर्स इंडिया अम्ब्रेला मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उस स्थिति पर विचार करते हुए जहां दोनों सह-मालिकों ने मुकदमा दायर किया और बीच में ही सह-मालिकों में से एक ने अपनी सहमति वापस ले ली, यह माना गया कि आम तौर पर सह-मालिकों के स्वामित्व वाली संपति में सह-मालिकों में से एक किरायेदार को बेदखल करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है। निर्णय का पैराग्राफ संख्या 6 यहां उद्धृत किया गया है:

"पक्षों के विद्वान अधिवक्ताको सुनने के बाद हम संतुष्ट हैं कि अपीलें खारिज होने योग्य हैं। यह अच्छी तरह से तय है कि आम तौर पर सह-मालिकों के स्वामित्व वाली संपति में सह-मालिकों में से एक किरायेदार को बेदखल करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है। (श्री राम पसरीचा बनाम जगन्नाथ और अन्य, धन्नालाल बनाम कलावतीबाई और अन्य देखें)। यह सिद्धांत अभिकरण के सिद्धांत पर आधारित है। किरायेदार के खिलाफ बेदखली का मुकदमा दायर करने वाला एक सह-मालिक अपनी ओर से और अन्य सह-मालिकों के एजेंट के रूप में ऐसा करता है। अन्य सह-मालिकों की सहमति तब तक ली गई मानी जाती है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि अन्य सह-मालिक किरायेदार को बेदखल करने के लिए सहमत नहीं थे और उनकी असहमति के बावजूद मुकदमा दायर किया गया था। वर्तमान मामले में, मुकदमा दोनों सह-मालिकों द्वारा दायर किया गया था। सह- मालिकों में से कोई भी मुकदमे के बीच में अपनी सहमति वापस नहीं ले सकता, जिससे अन्य सह-मालिकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। एक बार मुकदमा दायर होने के बाद, पार्टियों के अधिकार मुकदमे की तारीख पर स्पष्ट हो जाते हैं और सह-मालिकों के निष्कासन की मांग करने के अधिकार को मुकदमे की स्थापना की तारीख के संदर्भ में तय किया जाना चाहिए, एकमात्र अपवाद तब होता है जब बाद के आधार पर सह-मालिकों के निकाय का किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार पार्टियों के कार्य या कानून के संचालन से समाप्त हो जाता है।

8. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि एक सह-मालिक किरायेदार को बेदखल करने के लिए मुकदमा ला सकता है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि अन्य सह-मालिक किरायेदार को बेदखल करने के लिए सहमत नहीं थे।

9. उ.प्र. अधिनियम संख्या 13, 1972 में मालिक की परिभाषा नहीं दी गई है, लेकिन मकान मालिक को धारा 3 (जे) में परिभाषित किया गया है जैसा कि यहां उद्धृत किया गया है:-

किसी भवन के संबंध में "मकान मालिक" का अर्थ वह व्यक्ति है, जिसे इसका किराया है या यदि भवन किराए पर दिया जाता, तो देय होता, और इसमें खंड (जी) को छोड़कर, ऐसे व्यक्ति का एजेंट या प्रतिनिधि शामिल होता है।

10. उ.प्र. नगरीय भवन (किराए पर देने, किराये और बेदखली का विनियमन) नियम 1972 के नियम 15 के अनुसार परिसर की रिहाई के लिए एक आवेदन पत्र पर सभी मकान मालिकों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए। यह प्रश्न तब से गोपाल दास और अन्य बनाम प्रथम एडीजे के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले से तय हो गया है (198) (1) एआरसी 281 में रिपोर्ट किया गया है जिसमें इस न्यायालय ने पैराग्राफ 17 में कहा है कि:-

"जहां तक वर्तमान मामले में इस नियम की प्रयोज्यता का सवाल है, इसमें कोई समस्या नहीं है। मुरलीधर शाह, जिन्होंने प्रश्न में परिसर को खाली करने की कार्रवाई की है, निस्संदेह मकान मालिक हैं। उन्होंने आवेदन पर हस्ताक्षर किए हैं। वह अकेले ही आवेदन पर हस्ताक्षर करने के लिए सक्षम है। हालांकि, हम यह बता सकते हैं कि नियम 15 (2) की यह आवश्यकता कि सह-मालिकों के स्वामित्व वाले परिसर की रिहाई के लिए सभी सह-मालिकों द्वारा हस्ताक्षरित एक आवेदन अमान्य होगा। एक सह-मालिक पूरे परिसर के किरायेदार को बेदखल करने की कार्रवाई करने में सक्षम है, क्योंकि उसे अधिनियम की धारा 3 (जे) के अर्थ के तहत मकान मालिक माना जा सकता है। केवल एक सह-मालिक ही ऐसे आवेदन पर हस्ताक्षर करने के लिए सक्षम होगा।"

33. विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय एक ही विचार रखता है कि एक सह-मालिक को बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है, यदि अन्य सह-मालिक द्वारा आपति नहीं उठाई गई है।

34. यह मुद्दा एफजीपी लिमिटेड बनाम डॉक्टर सालेह हुसेनी और अन्यः 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी 1643 के मामले में फिर से सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष था। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"37. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ताद्वारा यह आग्रह किया गया है कि उत्तरदाताओं द्वारा जो मुकदमा दायर किया गया है, उसमें उन्होंने यह दावा नहीं किया है कि वे इसे सह-मालिक के रूप में दाखिल कर रहे हैं, बल्कि उन्होंने दावा किया है कि वे इसे निष्पादक/निष्पादक के रूप में दाखिल कर रहे हैं। इसलिए वे अब इस आधार पर मुकदमे की रखरखाव की चुनौती का सामना नहीं कर सकते कि यह प्रतिवादियों द्वारा सह-मालिक के रूप में दायर किया गया था। इस मामले के तथ्यों में उपरोक्त तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है। इस न्यायालय की राय है कि यदि संपति के सह-मालिकों के रूप में उत्तरदालाओं की स्थिति मामले के स्वीकृत तथ्यों से स्पष्ट रूप से सामने आती है, तो किरायेदारों की कुछ आपत्तियों के कारण उन्हें उक्त स्थिति से वंचित नहीं किया जा

सकता है। आम तौर पर, एक किरायेदार का मकान मालिक के स्वामित्व पर सवाल उठाने का अधिकार कानून के शासन के मद्देनजर बहुत सीमित है, जिसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 116 में संहिताबद्ध किया गया है।

44. मोहिंदर प्रसाद जैन (उपरोक्त) में जिन सिद्धांतों की पुष्टि की गई है, वे यह हैं कि किरायेदार के खिलाफ बेदखली का मुकदमा दायर करने वाला एक सह-मालिक अपनी ओर से और अन्य सह-मालिकों के एजेंट के रूप में ऐसा करता है। इस मामले में, अन्य सह-मालिकों की सहमति तब तक ली गई मानी जाती है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि अन्य सह-मालिक किरायेदार को बेदखल करने के लिए सहमत नहीं थे और उनकी असहमति के बावजूद मुकदमा दायर किया गया था। (रिपोर्ट का पैरा 10 पृष्ठ 727 देखें)। यहां यह कोई मामला नहीं है कि अन्य सह-मालिक विचाराधीन मुकदमा दायर करने पर आपत्ति जता रहे हैं।

35. इस मामले में, शीर्ष न्यायालय का भी यही विचार है कि एक सह-मालिक को बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है, जब तक कि दूसरे सह-मालिक द्वारा ऐसा करने पर आपत्ति न की जाए।

36. यही मुद्दा इस न्यायालय के समक्ष शील चंद जैन बनाम अरुण कुमार ताड़िया और अन्य (2014) 103 एएलआर 303 में भी विषय था। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"9. हालांकि, एक पहलू जिसे विचार के लिए खुला छोड़ दिया गया था, वह ऐसी स्थिति थी जहां कुछ सह-मालिक एक सह-मालिक द्वारा दावा की गई राहत के विपरीत किरायेदार को जारी रखना चाहते हैं, जिससे कार्यवाही शुरू हो सके।

10. पाल सिंह बनाम सुन्दर सिंह एवं अन्य, एआईआर 1989 एससी 758 में उपरोक्त दोनों निर्णयों पर विचार एवं पालन किया गया है हालांकि, न्यायालय ने स्थिति को स्पष्ट किया और कहा कि जब अन्य सह-मालिक ने बेदखली पर आपत्ति नहीं जताई है, तो एक सह-मालिक अन्य सह-मालिकों की अनुपस्थिति में भी बेदखली की कार्रवाई जारी रख सकता है। यह फैसले के पैरा 10 से स्पष्ट है जहां न्यायालय ने कहा:

"हमारी राय में यह कामा गोयल बनाम वी.पी. पाठक (उपरोक्त) के अनुपात में आता है जहां इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि जब दूसरे सह-मालिक ने बेदखली पर आपत्ति नहीं जताई तो एक सह-मालिक अन्य सह-मालिक की अनुपस्थिति में भी बेदखली की कार्रवाई कर सकता है। यहां भी श्रीमती शाम कौर और उनके उत्तराधिकारियों ने उत्तरदाताओं द्वारा किए गए बेदखली के दावे पर कोई आपत्ति नहीं जताई। मामले को देखते हुए और इस मामले की परिस्थितियों में, हमारी राय है कि उक्त मामले का अनुपात लागू होगा और बेदखली की कार्यवाही में सभी मालिकों की अनुपस्थिति में भी यह मुकदमा कायम रहेगा।"

11. एक सह-मालिक (मकान मालिक) द्वारा किरायेदार को दिए गए पद छोड़ने के नोटिस के संदर्भ में, सुभेदु प्रसाद रॉय चौधरी और

अन्य बनाम कमला बाला रॉय चौधरी और अन्य, एआईआर 1978 एससी 835 में श्री राम पसरीचा (उपरोक्त) की उक्ति का पालन किया गया था। और न्यायालय ने कहा:

"यह मानते हुए भी कि सह-मालिक जमींदारों में से किसी एक की ओर से नोटिस नहीं दिया गया था, इस न्यायालय का निर्णय श्री राम पसरीचा बनाम जगन्नाथ और अन्य है। यह दिखाएगा कि फिर भी नोटिस अच्छा और वैध था।"

12. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने रंग नाथ बनाम यूपी राज्य, 1984 एआरसी 642 में उपरोक्त आदेश का पालन किया और गोपाल दास और अन्य बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, वाराणसी और अन्य, एआईआर 1987 सभी 261. में पूर्ण पीठ द्वारा उपरोक्त निर्णय की शुद्धता पर विचार किया गया। पूर्ण पीठ ने पैरा 11 में निम्नानुसार अवलोकन करके रंग नाथ (उपरोक्त) में निर्धारित आदेश को मंजूरी दे दी:

"11. इन निर्णयों को देखते हुए, इसलिए, अन्य सह-मालिकों को शामिल किए बिना एक सह-मालिक द्वारा की गई बेदखली की कार्रवाई की स्थिरता के बारे में थोड़ा संदेह हो सकता है। देवी चरण 1980 यूपीएलटी एनओसी 143 के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण को सही कानून निर्धारित नहीं किया जा सकता है और इसे खारिज कर दिया गया है। रंगा नाथ 1984 ऑल एलजे 455 के मामले में लिया गया दृष्टिकोण सही है और हम इसे दोहराते हैं।"

13. यह भी ध्यान देने योग्य है कि उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) नियमावली, 1972 (इसके बाद "नियमावली, 1972" के रूप में संदर्भित) के नियम 15 (2) में प्रावधान है, यदि एक से अधिक मकान मालिक हैं, तो आवेदन पर सभी मकान मालिकों के हस्ताक्षर होंगे। सह-मालिकों के संदर्भ में उपरोक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए पूर्ण पीठ ने फैसले के पैरा 16 में कहा, यदि इस नियम को सह-मालिकों के मामले में लागू किया जाता है, तो यह अमान्य होगा क्योंकि एक सह-मालिक भी आवेदन पर हस्ताक्षर करने और उसे दाखिल करने में सक्षम है। पैरा 16 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

11. "हालांकि, हम यह बता सकते हैं कि नियम 15 (2) की यह आवश्यकता कि सह-मालिकों के स्वामित्व वाले परिसर की रिहाई के लिए सभी सह- मालिकों द्वारा हस्ताक्षरित एक आवेदन अमान्य होगा। एक सह-मालिक पूरे परिसर के किरायेदार को बेदखल करने की कार्रवाई को बनाए रखने के लिए सक्षम है, क्योंकि उसे अधिनियम की धारा 3 (i) के अर्थ के तहत मकान मालिक माना जा सकता है। केवल एक सह-मालिक ही ऐसे आवेदन पर हस्ताक्षर करने के लिए सक्षम होगा।"

14. दूसरे शब्दों में, जब कोई कुछ राहत पाने के लिए आता है, तो मौजूदा कानून वह है, जहां विभाजन के अभाव में इमारत के कई सह-मालिक होते हैं, यहां तक कि एक सह-मालिक भी किरायेदारों को बेदखल करने की कार्यवाही जारी रख सकता है, जब तक कि

ऐसी बेदखली की कार्यवाही पर अन्य सह-मालिकों द्वारा व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, जैसा भी मामला हो, किरायेदारी जारी रखने का इरादा व्यक्त करते हुए आपत्ति न की जाए।

37. न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद स्पष्ट रूप से माना है कि एक संह-मालिक को बेदखली के लिए मुकदमा चलाने का पूरा अधिकार है जब तक कि अन्य सह-मालिक इसके लिए कोई आपत्ति नहीं उठाता।

38. वादी-विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ताद्वारा जिस अन्य निर्णय पर भरोसा किया गया वह श्रीमती कस्तूरी राधाकृष्णन (उपरोक्त) हैं। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"यह इस न्यायालय के कम से कम तीन निर्णयों द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है, अर्थात्, श्री राम पसरीचा बनाम जगन्नाथ (1976) 4 एससीसी 184 कांता गोयल बनाम बी.पी पाठक, (1977) 2 एससीसी 814 और पाल सिंह बनाम सुंदर सिंह, (1989)) 1 एससीसी 444 कि सह-मालिकों में से एक अकेले और अपने अधिकार में किरायेदार को बेदखल करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है और किरायेदार के लिए इस आधार पर मुकदमे की स्थिरता पर सवाल उठाना कोई बचाव का विषय नहीं है कि अन्य सह-मालिक मुकदमे में पार्टियों के रूप में शामिल नहीं हुए थे। जब बेदखली की कार्यवाही की विषय-वस्तु बनाने वाली संपत्ति का स्वामित्व कई मालिकों के पास होता है, प्रत्येक सह-मालिक दूसरों के साथ-साथ संयुक्त संपत्ति के हर हिस्से और हर अंश का मालिक होता है और यह नहीं कहा जा सकता है कि वह संपत्ति का केवल एक जुज भाग या अंश मालिक है, जब तक कि संपत्ति का विभाजन नहीं हुआ है। यदि ऐसे अन्य सह-मालिक आपत्ति नहीं करते हैं तो वह अन्य सह-मालिकों के साथ शामिल हुए बिना किरायेदार को बेदखल करने के लिए अकेले ही मुकदमा चला सकता है। श्री राम पसरीचा मामले में किरायेदार द्वारा अंग्रेजी नियम पर निर्भरता रखी गई थी कि यदि दो या दो से अधिक मकान मालिक इस आधार पर कब्जे के लिए मुकदमा दायर करते हैं कि उनमें से एक के निवास के रूप में कब्जे के लिए एक आवास गृह की आवश्यकता है तो मुकदमा विफल हो जाएगा, आवश्यकता सभी जमींदारों की होनी चाहिए। न्यायालय ने कहा कि कलकता और गुजरात के उच्च न्यायालयों द्वारा अंग्रेजी नियम का पालन नहीं किया गया था, उच्च न्यायालयों ने सम्मानपूर्वक अंग्रेजी कानून के शासन से असहमति जताई है। इस न्यायालय ने माना कि वादी के पक्ष में एक डिक्री पारित की जा सकती है, भले ही वह परिसर का समपूर्ण और पूर्ण मालिक नहीं था क्योंकि उसे अपने उपयोग के लिए परिसर की आवश्यकता थी और वह पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी अधिनियम, 1956 की धारा 13 (1) (एफ) द्वारा नियोजित अभिव्यक्ति "यदि वह मालिक है" होने की आवश्यकता को भी पूरा करता था।

39. उपरोक्त अनुच्छेद के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि इस निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों पर विचार करते हुए, स्पष्ट रूप से माना है कि यदि अन्य सह-मालिक आपत्ति नहीं करते हैं, तो एक सह-

मालिक को बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है।

40. वर्तमान मामले में, सह-मालिक श्री राकेश कुमार अग्रवाल ने वादी प्रतिपक्ष श्रीमती उषा शर्मा द्वारा बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने पर कभी कोई आपत्ति नहीं जताई है। मुकदमा दायर करने के बाद भी, सह-मालिक ने कभी कोई आपति नहीं ली और बेदखली के मुकदमे का विरोध करते हुए कभी भी कोई पक्षकार आवेदन दायर नहीं किया। इसलिए, शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, हालांकि सह-मालिक एक बाहरी व्यक्ति है, उसे बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है।

41. जहां तक सह-मालिक के अन्य सह-मालिक के परिवार का सदस्य नहीं होने के बारे में पुनरीक्षणवादी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ताके तर्क का सवाल है, कानून की नजर में, हालांकि सह-मालिक परिवार के सदस्य नहीं हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता और प्रत्येक सह- मालिक को बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है। न्यायालयों द्वारा ऐसा कोई नियम या कानून निर्धारित नहीं किया गया है, जो यह प्रदान करता हो कि सह-मालिकों के परिवार के सदस्य होने की स्थिति में सह-मालिकों के परिवार के सदस्य नहीं होने की तुलना में अलग बेहतर अधिकार हैं।

42. यहां ऊपर की गई चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि एक बार वैध दस्तावेज के आधार पर, सह-स्वामित्व प्राप्त हो जाने पर, कोई भी सह-मालिक बेदखली के लिए समान रूप से मुकदमा दायर कर सकता है चाहे वह परिवार का सदस्य हो या नहीं, जब तक कि दूसरे सह-मालिक ने आपति न की हो।

43. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ताद्वारा बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने के लिए संपत्ति के विभाजन के बारे में एक और तर्क का संबंध है, उसमें भी कोई बल नहीं है। किरायेदार होने के नाते याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को विवाद में संपत्ति के बंटवारे से कोई सरोकार नहीं है और यह सह-मालिकों के बीच है। किरायेदार को ऐसी आपत्ति उठाने का कोई अधिकार नहीं है और यह केवल सह-मालिकों के लिए खुला है। पुनः इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि किरायेदार को बेदखली के मुकदमे में विभाजन का मुद्दा उठाने का कोई अधिकार नहीं है।

44. इसलिए, यहां ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों और निर्णयों के प्रकाश में, इस न्यायालय का दृढ़ विचार है कि सह-मालिक को, चाहे वह परिवार का सदस्य हो या नहीं, अन्य सह-मालिकों द्वारा आपत्ति न. किए जाने की स्थिति में बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का पूरा अधिकार है। जहां तक किरायेदार का सवाल है, बेदखली का मुकदमा दायर करने के लिए विवादित संपत्ति का बंटवारा आवश्यक नहीं है। यह केवल सह-मालिकों के बीच है और वर्तमान मामले में, सह-मालिकों के बीच बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने के मुद्दे पर कोई असहमति नहीं है और न ही विभाजन का कोई विवाद है। बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने की एकमात्र आवश्यकता मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते और नोटिस

की सेवा के बारे में है, जो वर्तमान मामले में विवादित नहीं है इसलिए इस न्यायालय को दिनांक 07.02.2023 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा कारण नहीं मिला।

45. इसलिए, पुनरीक्षण में योग्यता का अभाव है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

46. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 683

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I,

सिविल विविध स्थानांतरण आवेदन संख्या 88/2023

भगवान श्रीकृष्ण विराजमान एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड एवं अन्य

...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री प्रभाष पांडे, श्री प्रदीप कुमार शर्मा, श्री विष्णु शंकर जैन, श्री हरि शंकर जैन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: श्री पुनित कुमार गुप्ता, श्री बीरेन्द्र प्रसाद मौर्य, श्री देवीद कुमार सिंह, श्री कमलेश नारायण पांडे, श्री नसीरुज्जमां, श्री प्रतीक राय, श्री राधेश्याम यादव, श्री वरुण सिंह, श्री वजाहत हुसैन खान (सीनियर एडवोकेट), श्री जे.एच. खान (सीनियर एडवोकेट), श्री मनीष गोयल (अतिरिक्त ए.जी.), सुश्री अंजलि गोकलानी

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- धारा 24 - आवेदकों ने श्री कृष्ण जन्मस्थान के स्थल पर घोषणा, निषेधाज्ञा और पूजा करने के अधिकार के लिए और शाही ईदगाह मस्जिद होने का आरोप लगाते हुए वर्तमान संरचना को हटाने के लिए सिविल मुकदमा दायर किया- सिविल कोर्ट के समक्ष 10 से अधिक मुकदमे लंबित बताए गए हैं और साथ ही ऐसे और भी मुकदमे होने चाहिए जिन्हें लंबित कहा जा सकता है और इस मुद्दे को मौलिक सार्वजनिक महत्व का कहा जा सकता है जिसने जनजातियों और समुदायों से परे आम जनता को प्रभावित किया है क्योंकि पिछले दो से तीन वर्षों से उनकी संस्था के गुण-दोष के आधार पर एक इंच भी आगे नहीं बढ़ी है, जो मुकदमे में शामिल मुद्दे को छूने वाले सभी मुकदमों को संबंधित सिविल कोर्ट से इस अदालत में धारा 24 (1) (बी) सीपीसी के तहत वापस लेने का पूरा औचित्य प्रदान करता है जबकि आवेदक द्वारा मूल वाद संख्या 353/2022 को वापस लेने और इस अदालत में स्थानांतरित करने की प्रार्थना स्वीकृत -बाकी मुकदमों के लिए, यह न्यायालय संबंधित निचली सिविल अदालत से समान प्रकृति के ऐसे मुकदमों को वापस ले लेता है (उन्हें) मुकदमे के लिए अपनी स्वत: प्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय में स्थानांतरित कर देता है। (पैरा 43)

स्थानांतरण आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बेसेलियस मार थोमा मैथ्यूज I एवं अन्य बनाम प्लाउलोस मार अथानासियस एवं अन्य (1980) 1 एससीसी 601

2. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ व अन्य (1989) 15 एएलआर 696

3. स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती, स्वामी शांता नंद सरस्वती के शिष्य बनाम जगत गुरु शंकराचार्य

4. ज्योतिषपीठ पीठाधीश्वर श्री स्वामी स्वरूपा नंद सरस्वती (2016) एससीसी ऑनलाइन सभी 2956,

5. ट्वेंटिएथ सेंचुरी फॉक्स फिल्म बनाम एनआरआई फिल्म प्रोडक्शन प्राइवेट लिमिटेड (2003) एआईआर 148

(माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्चुअल मोड के माध्यम से आवेदकों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरि शंकर जैन, आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विष्णु शंकर जैन, श्री प्रभाष पांडे और श्री प्रदीप कुमार शर्मा, प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री पुनित कुमार गुप्ता को सुना।, प्रतिवादी संख्या- 2 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वजाहत हुसैन खान के सहायक विद्वान अधिवक्ता, श्री नसीरुज्जमां और श्री जे.एच. खान, प्रतिवादी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक राय, श्री बीरेंद्र प्रसाद मौर्य, प्रतिवादी संख्या 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री कमलेश नारायण पांडे, और प्रतिवादी क्रमांक 5 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राधे श्याम यादव, न्यायालय द्वारा राज्य के लिये नियुक्त एमिकस क्यूरी विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल के सहायक अधिवक्ता सुश्री अंजलि गोकलानी को सुना।

2. ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस मामले में, अधिवक्ता महेंद्र प्रताप सिंह की ओर से एक पक्षकार आवेदन दायर किया गया था, जो स्थानांतरण के बिंदु पर भी सुनवाई चाहते थे, इस प्रकार प्रार्थना की गई कि उन्हें प्रस्तावित प्रतिवादी संख्या 5 के रूप में पक्षकार बनाया जाए। अभियोग आवेदन को अभिसाक्षी विवेक कुमार मिश्रा द्वारा शपथ पत्र द्वारा समर्थित किया गया था, जिसके साथ संलग्न शपथपत्रों में यह दावा किया गया था कि अन्य बातों के अलावा, इस स्थानांतरण आवेदन के पैराग्राफ संख्या 7 में वर्णित सिविल सूट यह बताता है कि सूची के क्रम संख्या 1 पर प्रस्तावित प्रतिवादी के मुकदमे का वर्णन करता है, जो कि सिविल सूट संख्या 950/2020 (ठाकुर केशव देव जी महाराज विराजमान मंदिर एवं अन्य बनाम इंतेज़ामिया कमेटी एवं अन्य) को दिनांक 22.12.2020 को आवेदकों एवं अन्य लोगों द्वारा दाखिल किया गया है। इसलिए इस मामले में कोई भी आदेश पारित करने से पहले उनका पक्ष सुना जाना चाहिए। परिणाम स्वरूप, उन्हें दोनों पक्षों के अन्य अधिवक्ताआ के साथ इस न्यायालय के समक्ष दलीलें बढ़ाने और अपना मामला बताने का अवसर दिया गया और प्रस्तावित प्रतिवादी संख्या 5 के मामले पर उनके अधिवक्ता, श्री आर.एस. यादव द्वारा इस न्यायालय के समक्ष बहस की गई एवं उस पर उचित विचार किया गया।

3. इस स्थानांतरण आवेदन के माध्यम से सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 24 के तहत निम्नलिखित प्रार्थना की गई है:-

"(ए) नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 24(1)(बी) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा के न्यायालय से सिविल सूट संख्या 353/ 2022 को विचारण के लिए इस माननीय न्यायालय में ले लें।

(बी) इस माननीय न्यायालय को प्रमुख जिला न्यायाधीश, मथुरा द्वारा उपलब्ध कराए गए मामलों की सूची के आधार पर इस माननीय न्यायालय में समान प्रकृति के सभी मुकदमों को वापस लेने का निर्देश दिया जाए।

(सी) ऐसे अन्य आदेश पारित करें जो माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उपयुक्त और उचित समझे।

4. आवेदन को मुकदमे के तथ्यों (मूल मुकदमा संख्या 353/2022) के विवरण के साथ शपथ पत्र द्वारा समर्थित किया गया है और सुविधा के लिए, यह प्रासंगिक होगा कि इस चरण तक कालानुक्रमिक विकास का एक संक्षिप्त विवरण सुनाया जा सकता है।

5. इस स्थानांतरण आवेदन के रिकॉर्ड को देखने से यह पता चलता है और आगे यह है कि आवेदकों ने श्री कृष्ण जन्मस्थान स्थल पर निषेधाज्ञा और पूजा करने का अधिकार और शाही ईदगाह मस्जिद बताई जाने वाली वर्तमान संरचना को भी हटाना। यह मुकदमा सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा की अदालत में विविध वाद संख्या 176/2020 के रूप में दर्ज किया गया था।

6. यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त मुकदमा उन परिस्थितियों में दायर किया गया था, जहां मुकदमे के माध्यम से पार्टियों के बीच पहले पारित कुछ समझौता डिक्री को वर्तमान आवेदकों द्वारा मुकदमे के पक्षों के बीच मिलीभगत के आधार पर चुनौती दी गई थी। और कथित समझौता दिनांक 12.10.1968 और उसके आधार पर पारित डिक्री को दिखावटी और धोखाधड़ी बताया गया था, इस प्रकार उपरोक्त समझौते के माध्यम से पारित डिक्री को शून्य और शून्य होने का दावा किया गया था। ऐसा होने पर, उपरोक्त मुकदमा सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा द्वारा सिविल प्रकीर्ण वाद संख्या - 176/ 2020 के रूप में दिनांक 25.09.2020 को पंजीकृत किया गया था। हालाँकि, उपरोक्त प्रकीर्ण कार्यवाही/मुकदमे को विद्वान सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा ने दिनांक 30.09.2020 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया, यह मानते हुए कि उपासकों को मुकदमा दायर करने का कोई अधिकार नहीं था, उनकी संख्या भगवान कृष्ण के उपासकों के रूप में लाखों में थी और मामले को मुकदमा के रूप विचार किया गया कि बड़ी संख्या में मामले दायर/संस्थित किए जा सकते हैं, शिकायत की प्रति रिकॉर्ड पर लाई गई है (अनुलग्नक संख्या 1)।

7. सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा के उपरोक्त आदेश दिनांक 30.09.2020 से व्यथित आवेदक ने विद्वान जिला न्यायाधीश, मथुरा के समक्ष सिविल अपील संख्या 17/2020 दायर की, जिसे जिला माथुरा, के

दिनांक 16.10.2020 के आदेश के तहत स्वीकार कर लिया गया। बाद में इस अपील को सिविल रिवीजन संख्या- 2/ 2021 में बदल दिया गया। सिविल रिवीजन में पक्षों को सुना गया और निर्णय और आदेश दिनांक 19.05.2022 के तहत, रिवीजन की अनुमति दी गई और कानून के अनुसार मामले को आगे बढ़ने के निर्देश के साथ विचारण न्यायालय में भेज दिया गया। परिणामस्वरूप, सिविल जज द्वारा कार्यवाही नये सिरे से शुरू की गई (सीनियर डिवीजन), मथुरा, और मुकदमे को सिविल सूट संख्या- 353/ 2022 के रूप में क्रमांकित किया गया था।

8. हालाँकि, इस बीच ऐसा हुआ कि प्रतिवादी क्रमांक 1 और 2 - यू.पी. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और ट्रस्ट शाही मस्जिद ईदगाह ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227, संख्या 5967/2022 और 5348/2022 के तहत याचिका दायर करते हुए जिला न्यायाधीश के दिनांक 19.05.2022 (सिविल पुनरीक्षण वाद संख्या 2/ 2021 में पारित) के उपरोक्त आदेश को चुनौती दी। दोनों पक्षों को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा सुना गया और याचिका का निपटारा आदेश दिनांक 01.05.2023 द्वारा किया गया, जिसका अंतिम पैराग्राफ यहां नीचे दिया गया है: -

"उपरोक्त के आलोक में, जिले के किसी भी अवलोकन या निष्कर्ष से प्रभावित हुए बिना कानून के अनुसार उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद सिविल वाद संख्या - 353/2022 पर फैसला सुनाने के निर्देश के साथ मामले को विचारण न्यायालय में वापस भेजकर दोनों याचिकाओं का न्यायाधीश ने दिनांक 19.05.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा निपटारा किया जाता है। सभी पक्ष विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी सभी दलीलें उठाने के लिए स्वतंत्र हैं।"

9. उपरोक्त आदेश के आलोक में, यह स्पष्ट है कि जिला न्यायाधीश, मथुरा द्वारा सिविल रिवीजन संख्या 2/2021 में पारित आदेश दिनांक 19.05.2022 बरकरार रखा गया था। हालाँकि, जिला न्यायाधीश, मथुरा द्वारा मुकदमे की मेरिट के आधार पर अपास्त कर दिया गया था एवं विशिष्ट कारण से कि गुण-दोष के आधार पर कोई भी निष्कर्ष लिखित बयान दाखिल होने के बाद ही दर्ज किया जा सकता है, सबूत पेश किए जाने के बाद ही दर्ज किया जा सकता है। तथ्यों और लागू कानून की चर्चा के बाद, विचारण न्यायालय द्वारा निष्कर्ष को दर्ज किया जाएगा।

10. इस स्थानांतरण आवेदन में विस्तृत कथनों पर वापस आते हुए, यह इस बात के साथ आगे बढ़ता है कि यहां शामिल मामले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और इसमें बड़े पैमाने पर जनता के हित और भावनाएं शामिल हैं, इसके लिए भारत का संविधान के विभिन्न विधियों, कानूनों, अधिनियमों और लेखों की व्याख्या की आवश्यकता है। मामला बेहद संवेदनशील है भगवान कृष्ण के करोड़ों भक्त और अन्य बातों के साथ-साथ आस्था और विश्वास से भी जुड़ा है। मामला राष्ट्रीय महत्व का है और मुकदमे में कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हैं। वास्तव में, समाज के एक बड़े वर्ग से संबंधित कानून के जटिल प्रश्न जिनका

पूरे देश पर प्रभाव पड़ता है, उनका निर्णय राज्य की सर्वोच्च अदालत द्वारा किया जाना आवश्यक है।

11. उपरोक्त मुकदमे में स्पष्ट रूप से और निहितार्थ से इतिहास, धर्मग्रंथों, हिंदू और मुस्लिम कानून की व्याख्या से संबंधित प्रश्नों का निर्धारण भी शामिल है और ऐसा होने पर, वर्तमान मुकदमा (संख्या 353/2022) पूरी तरह से इसके विपरीत असाधारण प्रकृति का सामान्य सिविल मुकदमा अलग स्तर पर है। ।

12. स्थानांतरण आवेदन में निहित कथन यह दावा करते हैं कि मुकदमा संख्या 353/2022 25.09.2020 को दायर किया गया था, उसके बाद, कई मुकदमे दायर किए गए हैं और सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा की अदालत में लंबित हैं, आवेदक ने इस स्थानांतरण आवेदन के पैराग्राफ संख्या 7 में ऐसे मुकदमों का विवरण प्रस्तुत किया है जिसमें नौ मामलों की सूची शामिल है, इसका एक संक्षिप्त संदर्भ प्रासंगिक हो जाता है;

(i) सिविल वाद 950/ 2020 ठाकुर केशवजी महाराज बनाम इंतिज़ामिया समिति

(ii) सिविल वाद 107/ 2021 ठाकुर केशवजी महाराज बनाम इंतिज़ामिया समिति

(iii) सिविल वाद 151/2021 भगवान श्री कृष्ण विराजमान बनाम सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड

(iv) सिविल वाद 152/2021 भगवान श्री कृष्ण विराजमान बनाम यू.पी. सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड

(v) सिविल वाद 252/2021 ठाकुर केशवजी महाराज बनाम यू.पी. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड

(vi) सिविल वाद 174 / 2021 केशव देव जी महाराज बनाम यू.पी. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड

(vii) सिविल वाद 620/2021 भगवान बाल श्री कृष्ण केशव देव विराजमान बनाम यू.पी. सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड

(viii) सिविल सूट 683 / 2021 गोपाल गिरी महाराज बनाम यू.पी. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड,

उक्त सभी आठ मामले अपर सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा की अदालत में लंबित बताए गए हैं। हालाँकि, स्थानांतरण आवेदन में दिए गए मुकदमों की सूची में वर्णित नौवां मामला होने वाला अंतिम मामला तृतीय अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन) मथुरा की अदालत में प्रासंगिक विवरण के साथ लंबित बताया गया है,

(ix) सिविल वाद 839/2022 भगवान बाल श्री कृष्ण विराजमान बनाम इंतजामिया मस्जिद शाही मस्जिद।

13. हालाँकि, इसमें शामिल मुद्दे की गंभीरता और मामले की बड़ी और व्यापक पृष्ठभूमि को अयोध्या से संबंधित राम जन्म भूमि के मामले के साथ जोड़ने की कोशिश की गई है और विशिष्ट दलील दी गई है कि इस न्यायालय ने दिनांक 10.07. 1989 को अयोध्या विवाद से संबंधित सभी मुकदमों को स्थानांतरित करने की कृपा की गई, जिसके परिणामस्वरूप, मुकदमों (समान प्रकृति) की सुनवाई इस न्यायालय (उच्च न्यायालय) द्वारा की गई और

दिनांक 30.09.2010 के फैसले और आदेश के तहत निर्णय लिया गया। यह दावे के साथ आगे बढ़ता है कि उपरोक्त आदेश के खिलाफ एक अपील दायर की गई थी और मामले को अंततः माननीय शीर्ष न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिनांक 09.11.2019 के फैसले और आदेश [2020 (1) एससीसी 1] के तहत निपटाया गया था।

14. उपरोक्त कथनों के आधार पर, विशिष्ट दलील दी गई है कि यदि मुकदमा विचारण न्यायालय द्वारा ही तय किया जाता है, तो इसमें लंबा समय लगेगा। हालाँकि, वादी पक्षों का समय बचाने और न्याय के हित की सेवा के लिए मामले पर शीघ्र निर्णय लेने की आवश्यकता है।

15. अपने दावे के समर्थन में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता यह कहते हैं कि इस अजीबोगरीब मुकदमे के मौजूदा तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, इसे आसानी से वापस लिया जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 24 के तहत प्रावधान के आधार पर, जो संबंधित निचली अदालत से मुकदमा वापस लेने के बाद उच्च न्यायालयों को मुकदमा चलाने का अधिकार देता है। इस मुकदमे पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है, जिसका दृष्टिकोण निश्चित रूप से व्यापक और विशाल है।

16. फैसले के मुकदमे में शामिल मुद्दा श्री कृष्ण जन्मभूमि से संबंधित है और वादी वर्तमान शाही ईदगाह मस्जिद को हटाने और पूजा करने के अधिकार का दावा कर रहे हैं।

17. सी.पी.सी. की धारा 24 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आग्रह किए गए आधारों में से एक इस दायरे में धुरी के चारों ओर घूमता है कि सिविल जज ने ठीक से काम नहीं किया है, जबकि आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय मुकदमा शुरू में प्राथमिकता/संस्थित किया गया था। उन मुद्दों पर विचारण करना जिन्हें शायद इस स्तर पर नहीं विचार किया गया होगा। जबकि आवेदक विचारण न्यायालय के दिनांक 30.09.2020 के आदेश के परिणाम के खिलाफ उपाय कर रहे थे, नौ मुकदमे दायर किए गए थे और सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा द्वारा विधिवत पंजीकृत किए गए थे और उसके कारण, पिछले तीन वर्षों से मुकदमा चल रहा था। कोई भी आगे नहीं बढ़ पाया है.

18. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने मुकदमे की ऐतिहासिक और धार्मिक प्रकृति की व्याख्या की है और दावा किया है कि कंस के 'कारगर' (जेल) का इतिहास, जिसमें भगवान कृष्ण ने मानव रूप में अवतार लिया था, हिंदू भक्तों के लिए पवित्र और दिव्य है। यह हिंदू भक्तों द्वारा पूजित देवता है। 'कंस' का 'करागर' वर्तमान में कथित शाही ईदगाह मस्जिद के नीचे स्थित है और इन पहलुओं को कुछ विस्तार से समझाकर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के ध्यान में विभिन्न जटिल प्रश्नों को लाने का प्रयास किया है जो इसमें शामिल हैं और वर्तमान मुकदमे में उसी के निर्णय का आह्वान करें। इनमें से कुछ जटिल प्रश्नों में पूजा स्थल अधिनियम 1991 की व्याख्या, वैधता और प्रयोज्यता, व्याख्या/

वक्फ अधिनियम 1995 की प्रयोज्यता, हिंदू कानून के तहत और भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत हिंदू देवता के अधिकार और भारत के संविधान के अनुच्छेद 25, 26 और 300 ए की व्याख्या की गई। इसके अलावा, इसमें जन्म स्थान के बिंदु पर निर्णय शामिल है - 'अस्थान', देवता के रूप में, हिंदू कानून के तहत शेबैत के अधिकार और कर्तव्य और हिंदू भक्तों के अधिकार जहां शेबैत ने लापरवाही की है और देवता की संपत्ति को उनके खिलाफ अलग/स्थानांतरित कर दिया गया है। कानून, धोखाधड़ी से प्राप्त डिक्री और हिंदू भक्तों द्वारा वक्फ और ट्रस्ट के बीच अंतर पर निर्णय, और प्रतिकूल कब्जे के कानून की प्रयोज्यता और व्याख्या के उपरोक्त सभी बिंदुओं के अलावा चुनौती दी गई ।

19. विद्वान अधिवक्ता ने दावा किया है कि उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रश्न विचारण न्यायालय के समक्ष उठेंगे। इसलिए, मूल सुनवाई इस न्यायालय द्वारा आयोजित की जा सकती है। तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का वर्णन करने के बाद, विद्वान अधिवक्ता ने दावा किया कि लोगों के बीच और उनके बीच राष्ट्रीय और सार्वजनिक महत्व के संवेदनशील/भावनात्मक मुद्दे शामिल हैं जिनकी उचित जांच और निर्णय लेने की आवश्यकता है।

20. इस समय, प्रत्यर्थियों द्वारा उठाई गई आपत्ति पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा, हालांकि, आगे बढ़ने से पहले, यह बताना वांछनीय होगा कि प्रतिवादी संख्या- 3 को मुकदमेबाजी के मंच पर कोई आपत्ति नहीं है, वह केवल मामले/मुकदमे के शीघ्र निस्तारण में रुचि रखता है । अत: प्रतिवादी क्रमांक 3 द्वारा कोई विशेष आपत्ति नहीं उठाई गई है।

21. ध्यान देने योग्य बात यह है कि आवेदक की याचिका का खंडन करते समय प्रतिवादी संख्या- 1 इस बिंदु पर विशिष्ट है कि मुकदमे के हस्तांतरण के आधार के लिए सौंपा गया एकमात्र कारण स्थानांतरण आवेदन के पैराग्राफ संख्या 8 में गिनाया गया है। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या- 1 इस बात पर आगे बढ़ता है कि आवेदकों द्वारा दावा किया गया है कि मामला भारत की लंबाई और चौड़ाई तक फैल रहा है और चिंता है कि भगवान कृष्ण के करोड़ों भक्त आवेदकों के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेंगे। उपरोक्त विशिष्ट आपत्ति के अलावा, इस प्रकृति की सहायक आपत्तियां भी हैं कि आवेदकों पर कोई पूर्वाग्रह न हो और मुकदमे के माध्यम से मांगी गई राहत मूल रूप मूल मुकदमा संख्या 43/ 1967 में दिनांक 20.07.1973 और 07.11.1974 को पारित डिक्री को रद्द करने से संबंधित है। इसके बाद, विद्वान अधिवक्ता आगे बढ़ते हैं और धारा 24 सी.पी.सी. के आयात और आवेदन के बारे में बताते हैं। वर्तमान संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने जारी रखा कि यदि स्थानांतरण अपील की अनुमति दी जाती है तो यह पंडोरा बॉक्स खोलने जैसा होगा और धार्मिक स्थानों से संबंधित हर मामले में संबंधित की आवाज होगी। खंडन के समापन में विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि काशी विश्वनाथ मंदिर विवाद के मामले में, माननीय सर्वोच्च

न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 20.05.2022 के माध्यम से मूल मुकदमे की कार्यवाही को जिला न्यायाधीश, वाराणसी को स्थानांतरित कर दिया, वह एक अनुभवी न्यायिक अधिकारी थे। .

22. प्रतिवादी संख्या 2 ने वास्तव में प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उठाए गए विवाद को नए सिरे से जोड़ दिया है कि कोई भी आवेदक मथुरा का निवासी नहीं है जहां विवाद संपत्ति स्थित है। वादीगण धनी व्यक्ति हैं, जबकि विपक्षी संख्या 2 के पास पर्याप्त साधन नहीं हैं तथा वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है। यदि मुकदमे की सुनवाई सिविल जज, मथुरा द्वारा की जाती है तो पक्षों की सुविधा को उचित रूप से समायोजित किया जाएगा। इससे दोनों पक्षों के गवाहों को मथुरा से अल्लाहहाद/प्रयागराज आने में असुविधा होगी। आगे दावा किया गया है कि जहां तक स्थानांतरण आवेदन के पैराग्राफ संख्या 7 में सूचीबद्ध नौ मामलों के समान प्रकृति के मामले होने का सवाल है, इस प्रकार वर्णित मुकदमे के किसी भी पक्ष को इस स्थानांतरण आवेदन में शामिल नहीं किया गया है।

23. इसी तरह प्रतिवादी संख्या 4 के तर्क की पंक्ति भी कमोबेश उसी मुद्दे को छूती और आग्रह करती है जैसा कि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने आपत्ति करते समय स्थानांतरण आवेदन में की गई प्रार्थना की गई थी। इसलिए, एक ही स्थानान्तरण के लिए एक ही तर्क को दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।

24. हस्तक्षेपकर्ता-प्रस्तावित प्रतिवादी संख्या-5 महेंद्र प्रताप सिंह, अधिवक्ता को अपना मामला बताने की अनुमति दी गई क्योंकि उन्होंने खुद को पैराग्राफ संख्या 7 में आवेदकों द्वारा प्रस्तुत स्थानांतरण आवेदन का सूची के शीर्ष पर मुकदमे के वादी में से एक होने का दावा किया था। प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता ने कोई नया विषय नहीं लाया है, बल्कि उनका दावा इस पर आधारित है कि प्रस्तावित प्रतिवादी द्वारा अपने मुकदमे (950/2020) में मांगी गई राहत का उसके द्वारा स्थापित मुकदमे में मांगी गई राहत से कोई लेना-देना नहीं है। आवेदक. इसलिए, स्थानांतरण आवेदन को गलत और भ्रामक बताया गया है। निचली अदालत, उठाए गए मुद्दे पर निर्णय लेने में सक्षम है और उस पर उचित निर्णय लिया जा सकता है। हालाँकि, समान प्रकृति के मामलों को समेकित किया जा सकता है और एक साथ लाया जा सकता है, नीचे की अदालत द्वारा निर्णय लिया जा सकता है और प्रमुख मुकदमे को मुकदमा संख्या 950/2020 के आधार पर तय किया जा सकता है।

25. पूरे दावे का विश्लेषण आगे बढ़ाने से पहले कुछ पहलुओं पर गौर करना जरूरी है। यह स्थानांतरण आवेदन राजेश मणि त्रिपाठी के एक शपथ पत्र द्वारा समर्थित है जिसमें उपरोक्त विवरण शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 8 में प्रदान किया गया है। प्रतिवादी संख्या- 1 की ओर से प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया गया है और इस स्थानांतरण आवेदन के समर्थन में दायर शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या- 8 में किए

गए दावों से कोई इनकार नहीं किया गया है। यह प्रतिवादी द्वारा दायर प्रत्युत्तर शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 10 के अवलोकन से स्पष्ट है। इसी तरह, प्रतिवादी संख्या- 2 के प्रत्युत्तर शपथपत्र में, शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या- 8 में किए गए दावे को इस तथ्य को छोड़कर रिकॉर्ड का विषय बताया गया है कि मूल मुकदमा संख्या- 151/ 2021 और मूल मुकदमा संख्या- 152/ 2021 में मुकदमों को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया, इन दो मुकदमों के अलावा कुछ और मुकदमे भी संबंधित अदालत के समक्ष लंबित हैं। त्वरित संदर्भ के लिए, काउंटर के पैराग्राफ नं. 6 प्रतिवादी संख्या 2 का शपथपत्र यहां नीचे दिया गया है: -

"*शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 6, 7 और 8 की सामग्री भी रिकॉर्ड का विषय है, लेकिन सीएस संख्या- 151/ 2021 और सीएस संख्या- 152/2021 जैसे दो मुकदमों को गैर-अभियोजन के लिए खारिज कर दिया गया है और कुछ और मुकदमे हैं जो पैरा क्रमांक 7 में सूची के अलावा भी लंबित है।*

26. इसी तरह प्रतिवादी संख्या- 4 द्वारा दायर जवाबी शपथपत्र में, जिसने स्थानांतरण आवेदन के समर्थन में दायर शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या-8 की सामग्री को स्वीकार किया है और एक और मुकदमे का मूल मुकदमा संख्या 12/2023 श्री कृष्ण जन्मभूमि मुक्ति निर्माण ट्रस्ट बनाम शाही मस्जिद ईदगाह और अन्य, का विवरण दिया है। जो सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मथुरा की अदालत में लंबित बताई गई है।

27. पक्षों की दलीलों से, यह अधिक स्पष्ट है कि कम से कम नौ मुकदमे विचाराधीन हैं, जिनमें अन्य बातों के अलावा, व्यक्तिगत कानून के अलावा क़ानून, संवैधानिक कानून, लोचदार कानून और सामान्य कानून के ऐतिहासिक महत्व के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या से संबंधित मुद्दा शामिल है।

28. पक्षों द्वारा विस्तृत दलीलें पेश की गईं और कई तारीखों पर दलीलें पूरी होने पर, जो ऑर्डर-शीट से स्पष्ट है, 03.05.2023 को निर्णय सुरक्षित रखा गया था।

विश्लेषण

29. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 24 (इसके बाद इसे "सी.पी.सी." के रूप में संदर्भित किया गया है) स्थानांतरण और वापसी की एक सामान्य शक्ति है। इस शक्ति का प्रयोग या तो पार्टी के आवेदन पर किया जा सकता है या शक्ति का प्रयोग स्वत: किया जा सकता है। धारा 24 सी.पी.सी. को नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

24. स्थानांतरण और वापसी की सामान्य शक्ति.-(1) किसी भी पक्ष के आवेदन पर और पक्षकारों को नोटिस देने के बाद और उनकी ऐसी सुनवाई करने के बाद जैसा कि वे सुनना चाहते हैं, या ऐसे नोटिस के बिना अपने स्वयं के प्रस्ताव पर, उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय किसी भी चरण में-

(ए) अपने समक्ष लंबित किसी भी मुकदमे, अपील या अन्य कार्यवाही को विचारण या निपटान के लिए अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है और

उसका विचारण या निपटान करने में सक्षम है, या

(बी) अपने अधीनस्थ किसी भी न्यायालय में लंबित किसी भी मुकदमे, अपील या अन्य कार्यवाही को वापस ले लेगा, और

(i) उसका निपटान करने का प्रयास करें या उसका निपटान करें; या

(ii) उसे विचारण या निपटान के लिए अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय को हस्तांतरित करना जो उसका परीक्षण करने या निपटान करने में सक्षम हो; या

(iii) उसे परीक्षण या निपटान के लिए उस न्यायालय में पुनः स्थानांतरित करना जहां से उसे वापस लिया गया था।

(2) जहां किसी भी मुकदमे या कार्यवाही को उप-धारा (1) के तहत स्थानांतरित या वापस ले लिया गया है, न्यायालय जो [उसके बाद ऐसे मुकदमे या कार्यवाही की कोशिश या निपटान करेगा], किसी आदेश के मामले में किसी विशेष निर्देश के अधीन हो सकता है स्थानांतरण के संबंध में, या तो इसे पुनः प्रयास करें या उस बिंदु से आगे बढ़ें जहां इसे स्थानांतरित किया गया था या वापस लिया गया था। 2[(3) इस धारा के प्रयोजनों के लिए,

(ए) अतिरिक्त और सहायक न्यायाधीशों की अदालतें जिला अदालत के अधीनस्थ मानी जाएंगी;

(बी) कार्यवाही में डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए कार्यवाही शामिल है]।

(4) लघु वाद न्यायालय से इस धारा के तहत स्थानांतरित या वापस लिए गए किसी भी मुकदमे की सुनवाई करने वाला न्यायालय, ऐसे मुकदमे के प्रयोजनों के लिए, लघु वाद न्यायालय माना जाएगा। [(5) इस धारा के तहत एक मुकदमा या कार्यवाही ऐसे न्यायालय से स्थानांतरित की जा सकती है जिसके पास इसकी सुनवाई का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।]

30. सीपीसी की धारा 24 (1)(बी) के अवलोकन से पता चलता है कि उस मुकदमे को वापस लिया जा सकता है जो उस न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय में लंबित है जहां स्थानांतरण आवेदन किया गया है यानी उच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय उस पर विचार करने या उसका निपटान करने में सक्षम है। धारा 24 सीपीसी का दायरा इतना बड़ा है कि उच्च न्यायालय सभी मुद्दों पर सुनवाई कर सकता है और सिविल कोर्ट पर अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। इसमें कोई रोक नहीं है कि उच्च न्यायालय मुकदमे की सुनवाई नहीं कर सकता है, यदि इसे सिविल न्यायालय से वापस ले लिया गया है जहां यह लंबित है और निपटान के लिए उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया है।

31. धारा 24 सी.पी.सी. के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के उद्देश्य से, उच्च न्यायालय को मामले में सभी तथ्यों और जनता पर पड़ने वाले सभी परिणामों का ध्यान रखना होगा। बेसेलियस मार थोमा मैथ्यूज और अन्य बनाम प्लाउलोज़ मार अथानासियस और अन्य, (1980) 1 एससीसी 601 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का

उल्लेख करना उपयुक्त होगा। उपरोक्त मामले में तथ्य रूढ़िवादी सीरियाई को प्रभावित करने वाले आध्यात्मिक जीवन से संबंधित हैं ईसाइयों, मुकदमेबाजी सिंड्रोम को प्रकट करने वाले लगभग 250 मुकदमे केरल की कई अदालतों में लंबित हैं। यहां तक कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश की अदालत, जिसे आठ मुकदमों, दो संवेदनशील मुकदमों के संभावित तार्किक काम नहीं कर पाई आैर निस्तारण के लिए नामित किया गया था। ऐसी पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"(7) यह निर्विवाद है कि जिला न्यायालय के निर्णय के बाद अपील अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय में ले जाया जाएगा। जो कुछ हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है और जो कुछ हम रिकॉर्ड से इकट्ठा करने में सक्षम हैं, उससे यह उम्मीद करना उचित है कि मामले में सार्वजनिक क्षण के प्रश्न शामिल हैं और जो अंतिम अपील पर सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचने की संभावना है। इस क्षेत्राधिकार में, मामलों के हस्तांतरण पर असर डालने वाले कानून की बुनियादी बातों को कम किए बिना, दृष्टिकोण सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक होना चाहिए।

(8) हम एक पल के लिए भी इस सुझाव से सहमत नहीं हैं कि जिला न्यायाधीश इन या अन्य मामलों की कानूनी पेचीदगियों या तथ्यात्मक चुनौतियों के बराबर नहीं है, प्रक्रियात्मक कानून ने उसे असीमित क्षेत्राधिकार प्रदान किया है और उच्च न्यायालय ने इन मामलों को उनके सेसिन में कहा है। जैसा कि हमने संकेत दिया है, पूर्वाग्रह के संकेत भी सीमा से बाहर हैं। यदि प्रारंभिक बहस के इस चरण में ये मुकदमे, जो अभी तक प्रभावी ढंग से शुरू नहीं हुए हैं, उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिए जाते हैं तो मुकदमेबाजी के तनावपूर्ण जीवन में कुछ वर्षों की अवधि बच जाएगी। जिला न्यायालय द्वारा कई डिक्री की प्रतियां लेने, उसके बाद प्रारंभिक कार्रवाई और अपील दायर करने, नोटिस की सेवा और अन्य अंतिम प्रक्रियाओं में काफी समय और धन खर्च हो सकता है और फिर उच्च न्यायालय नए सिरे से सभी तर्कों और तथ्यों और कानून की पूरी श्रृंखला की सराहना शुरू करेगा जैसा कि पहली अपील में इस प्रकार के मामले में करने के लिए बाध्य है। जहां लाखों लोग अंतिम निर्णय से उत्साहित रूप से प्रभावित होते हैं और कुछ सौ मुकदमों और एक हजार चर्चों के भाग्य का फैसला सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार, कुछ वर्षों के समापन और सुनवाई के दोहराव और पूर्ण बहस के द्वारा किया जाना है। न्यायालय एक बुद्धिमान उपाय है, सभी बातों पर विचार किया जाता है। कानूनों की देरी को संक्षिप्त करने की सामाजिक बचत सामाजिक न्याय के लिए महत्वपूर्ण है।

(9) हम इसके कई आयामों का विस्तार करने में देर नहीं करते स्थानांतरण याचिका में यह कहने के अलावा कि हमें लगता है कि इस स्तर पर मुकदमों की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते हुए, सार्वजनिक न्याय की प्रगति को उच्च न्यायालय द्वारा ही बढ़ावा दिया जाएगा। इसलिए, हम निर्देश देते हैं कि स्थानांतरण याचिका में शामिल सभी मुकदमों को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित किया जाए और

जल्दबाजी के बाद वर्तमान चरण से सुनवाई की जाए, क्योंकि स्थानांतरण के इस आदेश के पीछे शीघ्र समाप्ति ही प्रेरक शक्ति है।

32. प्रत्यर्थियों को यह स्वीकार कर लिया गया है कि वे जिला न्यायाधीश, मथुरा के समक्ष के आवेदन करने के पश्चात प्रकीर्ण पुनरीक्षण आवेदन और उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर करने का उनका अधिकार के तहत उपलब्ध उपचार का अधिकार खो देंगे। लेकिन सभी प्रक्रियाएं केवल न्यायिक कर्तव्यों से बनी हैं, अंतिम उद्देश्य त्वरित न्याय प्रदान करना है। दोनों पक्षों की ओर से जो दलीलें दी गईं उनमें से एक दलील राम जन्मभूमि मामले के संबंध में थी, जिसे अधीनस्थ अदालतों से उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था। एक ओर, आवेदकों का कहना है कि राम जन्मभूमि के उक्त मामले में सार्वजनिक महत्व का मौलिक मुद्दा शामिल था और उच्च न्यायालय ने इस मामले को अधीनस्थ न्यायालय से अपने पास स्थानांतरित कर लिया था। हालाँकि, दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि स्थानांतरण मुद्दे के महत्व के कारण नहीं किया गया था, बल्कि इस तथ्य के कारण किया गया था कि मुकदमा पहले से ही 40 वर्षों से अधीनस्थ न्यायालय में लंबित था और तार्किक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका और उच्च न्यायालय में स्थानांतरित होने के बाद भी, उच्च न्यायालय को मुकदमे का फैसला करने में 30 साल लग गए।

33. प्रतिद्वंद्वी तर्कों के अवलोकन करने के लिए, यूपी राज्य और अन्य बनाम यूपी सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ और अन्य, (1989) 15 एएलआर 696 के मामले में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के फैसले का उल्लेख करना उचित होगा जिससे वाद स्थानान्तरित हो गया। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 2 में, तथ्य बताए गए हैं और धारा 24 सी.पी.सी. की सामग्री दी गई है और इसके अनुप्रयोग का विधिवत उल्लेख किया गया है जिसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"...फरवरी, 1989 के महीने में राज्य की ओर से प्रशासनिक पक्ष की ओर से एक आवेदन फिर से दायर किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि धारा 24, सी.पी.सी. के तहत इस आवेदन को जल्द से जल्द आदेशों के लिए सूचीबद्ध किया जाए। उक्त आवेदन में यह उल्लेख किया गया था कि मुकदमे दो समुदायों के सदस्यों के बीच आपसी विवाद से संबंधित हैं; एक का दावा है कि यह राम जन्म भूमि मंदिर है और दूसरा बाबरी मस्जिद है और हालांकि यह विवाद पूरी तरह से सिविल प्रकृति का है, लेकिन यह समय-समय पर महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह कभी-कभी धार्मिक भावनाओं को उत्तेजित करता है और समुदायों के बीच तनाव पैदा करता है। आगे कहा गया कि राज्य सरकार समुदायों के बीच सौहार्द और भाईचारे के संबंधों को बनाए रखने के लिए चिंतित है, लेकिन समय-समय पर यह संवेदनशील मुद्दा मान लेती है और कभी-कभी शांतिपूर्ण आबादी

और सिविल में मुकदमों की सुनवाई और अंतिम निपटान के बीच कलह और तनाव की संभावना पैदा करती है। अदालत में लंबा समय लगेगा और इसलिए मामलों को इस अदालत में स्थानांतरित किया जा सकता है। उस आवेदन पर यह आदेश दिया गया कि मामले को 23 फरवरी, 1989 को सूचीबद्ध किया जाए और इस तरह कार्यवाही शुरू हुई।

34. इसके अवलोकन से, तथ्यों से पता चलता है कि यह धार्मिक भावनाओं, दो समुदायों के बीच सामान्य तनाव और सौहार्दपूर्ण भाईचारे के संबंधों को बनाए रखने के लिए आवेदन दायर किया गया था, न कि इस तथ्य के कारण कि मामले का निर्णय 40 वर्षों तक नहीं हुआ था। इस न्यायालय की खंडपीठ के पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 9 और 10 प्रासंगिक हैं और यहां नीचे दिए गए हैं: -

9. सी.पी.सी. की धारा 24 के तहत न्यायालय की शक्तियाँ को नकारा नहीं जाना चाहिए क्योंकि एक या दो अपीलों का अधिकार समाप्त हो गया है। वर्तमान जैसे उपयुक्त मामलों और स्थितियों में न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और एक ही विवाद के इर्द-गिर्द घूम रहे मुकदमे को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक हो गया है।

10. मामले के तथ्यों और कई वर्षों से मुकदमों के लंबित होने और विचाराधीन मुद्दे को ध्यान में रखते हुए, जो दो समुदायों के सदस्यों के बीच तनाव पैदा कर रहा है और विभाजन की प्रवृत्ति विकसित कर रहा है, हमारा विचार है कि धारा 24सी.पी.सी. के तहत आवेदन इस अदालत द्वारा मुकदमों को वापस लेने और उसके परीक्षण और निपटान की अनुमति दी जाए।

35. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस आशय की आशंका व्यक्त की गई थी कि यदि मुकदमा उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया तो अपील का उनका मेरिट पर विचार के लिये अधिकार समाप्त जाएगा। यह मुद्दा अब एकीकृत नहीं है और स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती, स्वामी शांता नंद सरस्वती के शिष्य बनाम जगत गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ पीठाधीश्वर श्री स्वामी स्वरूपा नंद सरस्वती 2016 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2956 के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णय लिया गया है, के पैराग्राफ संख्या 27, 28, 29 और 30 यहां नीचे दिए गए हैं: -

"27. आगे तर्क यह है कि जिला न्यायाधीश से उच्च न्यायालय में अपील का स्थानांतरण, यदि अनुमति दी जाती है, तो दूसरी अपील का अधिकार खो जाएगा, यूपी राज्य बनाम सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ में इस न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। यह धारा 24, सी.पी.सी. के तहत आवेदन पर पारित एक आदेश है। जिससे सिविल जज/मुंसिफ की अदालत में लंबित मुकदमों को लखनऊ की इस अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया। अपील के अधिकार की हानि के समान तर्क को निम्नलिखित अवलोकन द्वारा अस्वीकार कर दिया गया:

"सी.पी.सी. की धारा 24 के तहत न्यायालय की शक्तियाँ इन्हें नकारात्मक नहीं किया जाएगा क्योंकि दो अपीलों में से एक का अधिकार समाप्त हो जायेगा। वर्तमान जैसे उपयुक्त मामलों और स्थितियों में न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और एक ही विवाद के इर्द-गिर्द घूम रहे मुकदमे को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक हो गया है।

28. जहां तक उन परिस्थितियों का सवाल है जब इस न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय में लंबित मामले को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करना उचित होगा, बेसेलियस मार थोमा मैथ्यूज बनाम पॉलोज मार अस्थानासियस में, यह माना गया है कि जहां विवाद बहुत से लोगों को प्रभावित कर सकता है , जो अंतिम निर्णय से उत्साहित हैं, और स्थानांतरण के अभ्यास से कुछ वर्षों की बचत होगी और सुनवाई की पुनरावृत्ति होगी, जिसमें पर्याप्त समय लगने की संभावना है, मामले को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करना एक बुद्धिमान उपाय है।

29. यहां हम धारा 24, सी.पी.सी. के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय प्रश्न पर अधिकारियों के समूह का हवाला देकर इस निर्णय को गुणा करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं। यह उल्लेख करना न्यायसंगत और पर्याप्त होगा, जहां कोई मामला आम जनता के लिए महत्वपूर्ण है और पक्षकार शीघ्र निपटान के लिए सहमत हैं, और इससे भी अधिक कि मामले का शीघ्र निपटान उच्चतम न्यायालय द्वारा भी समीचीन पाया गया है, एक प्रयास किया जाना चाहिए ताकि विवाद का निपटारा जल्द से जल्द हो ताकि अधिक समय न बर्बाद हो और विवाद लंबा खिंचने की गुंजाइश न रहे।

30. इसमें कोई संदेह नहीं है कि ज्योतिर्मठ बद्रिकाश्रम में जगत गुरु शंकराचार्य का कार्यालय अधिकांश लोगों के लिए अत्यधिक महत्व रखता है और लाखों लोग पवित्र मठ में आते हैं। ऐसे स्थान के पद धारक का विवाद व्यापक महत्व का मामला है और इसका निपटारा यथाशीघ्र किया जाना चाहिए।"

36. उपरोक्त निर्णय के खिलाफ दायर विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी गई क्योंकि उपरोक्त निर्णय अंतिम हो गया है। जगत गुरु शंकराचार्य के कार्यालय को उच्च महत्व का कार्यालय माना गया है क्योंकि लाखों लोग पवित्र मठ में आते हैं, इसलिए, मामले को शीघ्र निपटाने का निर्णय लिया गया।

37. सीपीसी की धारा 24 के तहत इसे वापस लेने के बाद मुकदमा चलाने की शक्ति पर ऐसा कहने के बाद, प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा व्यक्त की गई अगली आशंका साक्ष्य देने के लिए गवाहों की उपस्थिति और असुविधा के संबंध में है। गवाहों को संबंधित अदालत के समक्ष अपना बयान दर्ज कराने के लिए मथुरा से प्रयागराज आना होगा। प्रथमदृष्ट्या, उपरोक्त तर्क बेबुनियाद है। आदेश 18 नियम 4 सीपीसी में साक्ष्य दर्ज करने का प्रावधान है और यह न्यायालय पर निर्भर है कि वह स्वयं या उसके द्वारा नियुक्त आयुक्त द्वारा साक्ष्य दर्ज करे। प्रौद्योगिकी की प्रगति और ई-न्यायपालिका को प्रोत्साहन दिए जाने

से, गवाहों की भौतिक उपस्थिति मुकदमे की सुनवाई करने वाले इस न्यायालय के पास उपलब्ध विवेक के अनुसार निम्न तरीके और माध्यम से की जा सकती है और इसे ऑडियो-वीडियो लिंक के माध्यम से रिकॉर्ड किया जा सकता है। इस संबंध ट्वेन्टीएथ सेंचुरी फॉक्स फिल्म बनाम एनआरआई फिल्म प्रोडक्शन प्रा. लिमिटेड एआईआर 2003 148 के मामले में उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित बिंदुओं पर गौर किया गया है। यह स्थानीय अदालत में लिंक अधिकारी उपलब्ध कराकर किया जा सकता है जहां गवाह शारीरिक रूप से उपस्थित हो सकते हैं, वीडियो लिंक प्रदान कर सकते हैं और ऑडियो-वीडियो मोड के माध्यम से जिरह की जा सकती है। पैराग्राफ संख्या 7 से प्रासंगिक उद्धरण यहां नीचे दिया गया है: -

"7. मामले की गुणवत्ता पर आते हुए, मुझे यह देखना चाहिए कि सबूत के मामले में ऑडियो-वीडियो लिंक कानून में स्वीकार्य है या नहीं?

सीपीसी के आदेश 18 में मुकदमे की सुनवाई और गवाह के परीक्षण का प्रावधान है आदेश 18 नियम 3 उन साक्ष्यों का प्रावधान करता है जहां अन्य मुद्दे शामिल हैं। साक्ष्य की रिकॉर्डिंग आदेश 18, नियम 4 के तहत प्रदान की जाती है। सीपीसी में समय-समय पर त्वरित निपटान के हित में और नागरिक परीक्षणों के संचालन के मामले में बोझिल प्रक्रिया से बचने के लिए संशोधन किया जाता है। जैसा कि अनुभव से पता चलता है, यह सच है कि इस देश में सिविल कार्यवाही में कुछ साल लग जाते हैं। इस सामान्य प्रक्रियात्मक देरी से छुटकारा पाने के लिए, सरकार ने शीघ्र निपटान के व्यापक हित में अधिनियम में संशोधन करना उचित समझा है। सीपीसी संशोधन अधिनियम 1999 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण से पता चलेगा कि अदालतों द्वारा साक्ष्य दर्ज करने में अधिकतम समय लगता है और शपथपत्र द्वारा साक्ष्य का प्रावधान करके इस तरह की देरी को कम करने का प्रस्ताव है। उद्देश्य माननीय श्री न्यायमूर्ति मलिमथ की रिपोर्ट को और विधि आयोग की सिफ़ारिशें संदर्भित करती है। अधिनियम को 1999 में अधिनियम 46/1999 के संदर्भ में संशोधित किया गया था, बाद में इसे 2002 के सीपीसी संशोधन अधिनियम में संशोधित किया गया था। आदेश 18 नियम 4 एक शपथपत्र के माध्यम से एक गवाह के मुख्य परीक्षण का प्रावधान करता है। उप-नियम (2) गवाहों की उपस्थिति में की जाने वाली जिरह और पुन: परीक्षा का प्रावधान करता है, जिनके साक्ष्य शपथपत्र द्वारा न्यायालय को प्रस्तुत किए गए हैं, जिन्हें न्यायालय या उसके द्वारा नियुक्त आयुक्त द्वारा लिया जाना है। न्यायालय प्रासंगिक कारकों पर भी विचार कर सकता है क्योंकि वह नियम के संदर्भ में उचित समझता है। विद्वान अधिवक्ता श्री ए.वाई.एन गुप्ता का तर्क यह है कि "उपस्थिति" शब्द का अर्थ शारीरिक उपस्थिति होगा। विद्वान अधिवक्ता श्री उदय होल्ला का तर्क यह है कि "उपस्थिति" शब्द का अर्थ शारीरिक उपस्थिति नहीं होगा। ऑडियो-वीडियो लिंक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा भौतिक उपस्थिति से बचने और समय की

हानि से बचने के लिए विकसित की गई एक तकनीक है। यह त्वरित निर्णय के उद्देश्य से विकसित की गई एक त्वरित विधि है। यहां तक कि ऑडियो-वीडियो लिंक में भी पार्टी निश्चित रूप से व्यक्तिगत रूप से मौजूद होती है और उसकी उपस्थिति स्क्रीन पर दिखाई देती है। आदेश 18, नियम 3(4)(2) के तहत 'उपस्थिति में' शब्द को उपस्थित होने वाले व्यक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए और इसके लिए भौतिक उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है। नियमों के आदेश 18, नियम 3(4)(2) के प्रयोजन के लिए स्क्रीन पर उपस्थिति उपस्थिति जितनी ही अच्छी है। आख़िरकार कानून के अनुसार केवल गवाह की उपस्थिति की आवश्यकता होती है और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कैसे उपस्थित है। सिर्फ इसलिए कि उनके लिए मैसूर में उपस्थित रहना शारीरिक रूप से असंभव है, पार्टी द्वारा शीघ्र निपटान के लिए ऑडियो-वीडियो लिंक की यह विधि सुझाई गई है। व्यक्तिगत उपस्थिति का आग्रह सीपीसी के आदेश 18, नियम 3(4)(2) के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा। इसके अलावा, प्रावधान ऐसे प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखने का भी प्रावधान करता है जो वह उचित समझे। इसलिए, केवल गैर-शारीरिक उपस्थिति ही किसी की परीक्षा पर रोक नहीं लगाती है ऑडियो-वीडियो लिंक के माध्यम से गवाही दें। मुझे इस स्तर पर यह भी ध्यान देना चाहिए कि आदेश 18, नियम 3(4)(3) जो न्यायाधीश की उपस्थिति में लिखित रूप से या यंत्रवत् साक्ष्य दर्ज करने का प्रावधान करता है। ऑडियो वीडियो लिंक एक यांत्रिक प्रक्रिया है जहां पार्टी स्क्रीन पर मौजूद होती है और साक्ष्य को रिकॉर्ड करने वाला एक यांत्रिक विभाजक होता है। यह श्री उदय होल्ला के तर्क का भी समर्थन करता है। इसलिए, मेरा दृढ़ विचार है कि ऑडियो-वीडियो लिंक के माध्यम से साक्ष्य रिकॉर्ड करने के लिए दिए गए तथ्यों के सेट में कोई बाधा नहीं हो सकती है। संहिता के आदेश 18, नियम 3(4) के अनुसार इस प्रकार कोई निषेध नहीं है। दूसरी ओर, संशोधन ऐसी व्याख्या के तर्क का समर्थन करेंगे। आख़िरकार वर्तमान संशोधन त्वरित सुनवाई और त्वरित निपटान के लिए किया गया है और इसे संकीर्ण व्याख्या द्वारा दबाया नहीं जा सकता है। दुनिया भर में प्रौद्योगिकी विकास हो रहा है और न्यायालय इस संबंध में पीछे नहीं रह सकते। यदि कानून अदालतें अदालती कार्यवाही में तकनीकी विकास की अनुमति नहीं देती हैं, तो यह अन्य क्षेत्रों की तुलना में पिछड़ जाएगा। कानून को विकसित करना होगा और अगर कानून को विकसित करना है तो टेक्नोलॉजी को उपकरण बनाना होगा। अत: इस संबंध में आपत्तियां टिकने योग्य नहीं हैं। मुक़दमे के विद्वान न्यायाधीश ने बहुत ही संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। विद्वान न्यायाधीश के पूरे आदेश को पढ़ने से पता चलता है कि विद्वान न्यायाधीश के मन में इस न्यायालय के समय कारक और साक्ष्य दर्ज करने की प्रक्रिया के मामले में कुछ खामियाँ थीं। नई प्रौद्योगिकी के किसी भी कार्यान्वयन में प्रारंभिक बाधाएँ होंगी और इन्हें पर्याप्त सुरक्षा उपायों के साथ कानून के उचित अनुप्रयोग द्वारा दूर किया जाना है। इसलिए, मेरे विचार में विद्वान न्यायाधीश का दिए गए तथ्यों के सेट में ऑडियो-वीडियो

लिंक द्वारा साक्ष्य की रिकॉर्डिंग को अस्वीकार करना सही नहीं है।"

संवैधानिक पहलू पर बहस

38. उक्त तर्क से निपटने से पहले, उच्च न्यायालय को इस तथ्य के प्रति सचेत रहना होगा कि राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होने के नाते, वह लोगों का संरक्षक है और संविधान का तीसरा स्तंभ होने के नाते, वह लोगों के हितों की रक्षा करता है। संपूर्ण, छोटे उप-संप्रदाय, जनजाति फिर बड़े उप-संप्रदाय समुदाय और लोगों का पूरा समूह, सभी संविधान के संरक्षण में आते हैं। समग्र रूप से लोग भाईचारे का निर्माण करते हैं, व्यक्ति की गरिमा के साथ राष्ट्र की एकता और अखंडता को प्राप्त करना आवश्यक उद्देश्य है जैसा कि भारत के संविधान की प्रस्तावना में निहित है। उक्त दृष्टिकोण से चीजों का निर्णय करने के लिए, यह न्यायालय अब इस बात की सराहना करता है कि आवेदक की ओर से क्या तर्क दिया गया था।

39. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने मुकदमे की ऐतिहासिक और धार्मिक प्रकृति की व्याख्या की है और दावा किया है कि कंस के 'कारगर' (जेल) का इतिहास, जिसमें भगवान कृष्ण ने मानव रूप में अवतार लिया था, हिंदू भक्तों के लिए पवित्र और दिव्य है। यह हिंदू भक्तों द्वारा पूजित देवता है। 'कंस' का 'करागर' वर्तमान में कथित शाही ईदगाह मस्जिद के नीचे स्थित है और इन पहलुओं को कुछ विस्तार से समझाकर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के ध्यान में विभिन्न जटिल प्रश्नों को लाने का प्रयास किया है जो इसमें शामिल हैं और वर्तमान मुकदमे में उसी के निर्णय का आह्वान करें। इनमें से कुछ जटिल प्रश्नों में पूजा स्थल अधिनियम 1991 की व्याख्या, वैधता और प्रयोज्यता, वक्फ अधिनियम 1995 की व्याख्या/प्रयोज्यता, हिंदू कानून के तहत और भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत हिंदू देवता के अधिकार और भारत के संविधान की अनुच्छेद 25 एवं धारा 26 और 300 ए की व्याख्या मे बताया गया था। इसके अलावा, इसमें जन्म स्थान के बिंदु पर निर्णय शामिल है - 'अस्थान', देवता के रूप में, हिंदू कानून के तहत शेबैत के अधिकार और कर्तव्य और हिंदू भक्तों के अधिकार जहां शेबैत ने लापरवाही बरती है और देवता की संपत्ति को कानून के विरुद्ध हस्तांतरित/स्थानांतरित किया गया है, धोखाधड़ी से प्राप्त डिक्री और हिंदू भक्तों द्वारा वक्फ और ट्रस्ट के बीच अंतर पर निर्णय और प्रतिकूल कब्जे के कानून की प्रयोज्यता और व्याख्या के उपरोक्त सभी बिंदुओं के अलावा को चुनौती दी गई है।

40. विद्वान अधिवक्ता ने दावा किया है कि उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रश्न विचारण न्यायालय के समक्ष उठेंगे। इसलिए, मूल सुनवाई इस न्यायालय द्वारा आयोजित की जा सकती है। तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का वर्णन करने के बाद, विद्वान अधिवक्ता ने दावा किया कि और के बीच राष्ट्रीय और सार्वजनिक महत्व के संवेदनशील/भावनात्मक मुद्दे हैं लोगों के बीच शामिल हैं जिनकी उचित जांच और निर्णय लेने की आवश्यकता है।

41. उपरोक्त तर्कों में, यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के

विद्वान अधिवक्ता ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि मुकदमे के फैसले के लिए ऐसे मुद्दे और मौलिक महत्व उत्पन्न नहीं होंगे। पेश किया गया एकमात्र तर्क यह है कि मुकदमा सरल प्रकृति का है जो समझौता डिक्री को रद्द करने के लिए है और सभी प्रश्न आकस्मिक हैं जो पहली राहत के अनुदान के भाग्य पर निर्भर हैं। स्पष्ट रूप से, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 25, 26 और 300ए के अंतर्गत आने वाले मामले पर विचार करने पर विवाद नहीं करते हैं। इन परिस्थितियों में, यदि न्यायालय प्रथम दृष्टया भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के दायरे पर विचार नहीं करता है तो यह अपने कर्तव्य में विफल होगा। अनुच्छेद 25(1) इस प्रकार है:-

"25. अंतरात्मा की स्वतंत्रता और धर्म का स्वतंत्र व्यवसाय, अभ्यास और प्रचार-(1)सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य और इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन,सभी व्यक्ति अंतरात्मा की स्वतंत्रता और धर्म को स्वतंत्र रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने के समान रूप से हकदार हैं।"

इसी प्रकार भारत के संविधान का अनुच्छेद 26 इस प्रकार है:-

"26. धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता-सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी भी वर्ग को अधिकार होगा

(ए)धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संस्थानों की स्थापना और रखरखाव करना;

(बी)धर्म के मामलों में अपने स्वयं के मामलों का प्रबंधन करना;

(सी)चल और अचल संपत्ति का स्वामित्व और अधिग्रहण करना; और

(डी)ऐसी संपत्ति का प्रशासन कानून के अनुसार करना।"

42. संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 का स्पष्ट अवलोकन भारत को बताता है कि अधिकार सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता के अधीन हैं। इसलिए, संवैधानिक नैतिकता का सिद्धांत आगे बढ़ता है और इसलिए अनुच्छेद 25 और 26 के तहत अधिकारों का प्रयोग तब किया जा सकता है जब उन्हें संवैधानिक नैतिकता और सार्वजनिक व्यवस्था की कसौटी पर परखा जाता है। इस संबंध में केंद्रीय बोर्ड दाऊदी बोहरा समुदाय और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य 2023 में रिपोर्ट की गई (4) एससीसी पृष्ठ 541 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के हालिया फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान को जीवित साधन माना है और समाज की बदलती आवश्यकता पर विचार किया है। अनुच्छेद संख्या. 26, 28, 32.1, 32.2, 32.3 और 34 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"26. नरीमन, जे ने पैराग्राफ 176.7 में इस बात पर जोर दिया कि 'नैतिकता' शब्द उस चीज़ को संदर्भित करता है जिसे समय के साथ, अन्य बातों के साथ-साथ, शोषण और पतन के कारण होने वाले नुकसान के कारण सभ्य समाज के लिए घृणित माना जाता है,।

28. सवाल यह है कि क्या दाऊदी बोहरा समुदाय में अपने सदस्यों को बहिष्कृत करने की प्रचलित प्रथा संवैधानिक नैतिकता की कसौटी पर खरी उतरेगी? जैसा कि न्यायमूर्ति दास गुप्ता, ने सरदार सैयद के मामले में देखा कि समुदाय के किसी सदस्य का पूर्व संचार उसके कई नागरिक अधिकारों को प्रभावित करता है। प्रिवी काउंसिल, हसनअली और अन्य बनाम मंसूरअली एवं अन्य 12 के मामले के पैराग्राफ 4 में, दाऊदी बोहरा समुदाय में बहिष्कार के प्रभाव से निपटा गया है। अनुच्छेद 4 इस प्रकार पढ़ता है:

"4. 12 1947 एससीसी ऑनलाइन पीसी 63 सामाजिक बहिष्कार को पूरा करने के लिए, अपीलकर्ता बहिष्कार के प्रभाव को सीमित कर देंगे, चाहे इसे अस्तित्व में लाने के लिए जो भी कदम उठाए गए हों। उनका कहना है कि ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि यह संपत्ति या पूजा के अधिकार से अलग है। उनके आधिपत्य स्वयं को इस सीमा को स्वीकार करने में सक्षम नहीं पाते हैं। दाई एक धार्मिक नेता होने के साथ-साथ समुदाय की संपत्ति के ट्रस्टी भी हैं और भारत में जाति से बहिष्कार सर्वविदित है।

कम से कम एक मामला है जिसमें यह दर्ज किया गया है कि कुछ व्यक्तियों ने राजा से तैंतीसवें दाई के साथ हस्तक्षेप करने के लिए आवेदन किया था, और शिकायत की थी कि बहिष्कार के परिणामस्वरूप उन्हें मस्जिदों और स्थानों से दूर रखा गया था जहां सच्चे विश्वासी मिलते थे; और ऐसा कोई उदाहरण नहीं दिया गया है जहां बहिष्कृत व्यक्तियों ने स्वतंत्र रूप से अपने धार्मिक अधिकारों का प्रयोग किया हो। दरअसल, अपीलकर्ताओं या जिनके बारे में कहा जाता है कि वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उनके लिए किस राहत का दावा किया गया है, इस संबंध में उनके आधिपत्य के ध्यान में लाए गए मामलों में शिकायत यह है कि उन्हें गलत तरीके से बहिष्कृत किया गया था, न कि यह कि अगर सही तरीके से बहिष्कृत किया गया तो उन्हें गलत तरीके से उनके धार्मिक अधिकारों से वंचित किया गया था। माननीय न्यायमूर्ति के विचार में, यदि बहिष्कार उचित है, तो आवश्यक रूप से उस समुदाय के प्रमुख की ट्रस्टीशिप के तहत स्थानों में धार्मिक अधिकारों के प्रयोग से बहिष्कार शामिल है जहां धार्मिक अभ्यास किए जाते हैं। (प्रभाव वर्धित) एक व्यक्ति जिसे समुदाय द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया है, वह समुदाय की सामान्य संपत्ति और समुदाय के कब्रिस्तान/श्मशान भूमि का उपयोग करने का हकदार नहीं होगा। एक अर्थ में, ऐसा व्यक्ति वस्तुतः समुदाय के भीतर अछूत (निष्कासित या बहिष्कृत) हो जाएगा। किसी दिए गए मामले में, इसका परिणाम उसकी सिविल मृत्यु होगी। यह तर्क दिया जा सकता है कि संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा अनुच्छेद 26 खंड (बी) द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता को खत्म कर देती है, पूर्व संचारित व्यक्तियों के नागरिक अधिकारों को छीनने की अनुमति नहीं देगा जो मानव की गरिमा और स्वतंत्रता से उत्पन्न होते हैं। समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की अवधारणाएँ निश्चित रूप से हमारी संवैधानिक नैतिकता का हिस्सा हैं। हमारे संविधान में निहित बुनियादी विचार संवैधानिक नैतिकता का हिस्सा हैं। हमारे संविधान की अंतरात्मा संवैधानिक नैतिकता है। इसलिए, यह तर्क दिया

जाता है कि बहिष्कार या बहिष्कार स्वतंत्रता और समानता की अवधारणाओं के लिए अभिशाप है। यह भेदभाव विरोधी लोकाचार के खिलाफ है जो संवैधानिक नैतिकता का एक हिस्सा है। इसलिए, संवैधानिक न्यायालय को ऐसी किसी भी चीज़ को बर्दाश्त नहीं करना चाहिए जो किसी भी व्यक्ति के सम्मान के साथ जीने के अधिकार और विशेषाधिकार को छीन ले क्योंकि संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा न्यायालय को ऐसा करने की अनुमति नहीं देती है। इसलिए, हमारे विचार में, संरक्षण के अंतर्गत अनुच्छेद 26(बी) सरदार सैयद के मामले में निर्णय द्वारा दाऊदी बोहरा समुदाय के एक सदस्य को समाज से बहिष्कृत करने की जो शक्ति दी गई थी, उस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि उक्त अधिकार नैतिकता के अधीन है जिसे संवैधानिक नैतिकता के रूप में समझा जाता है। इस मुद्दे पर एक बड़ी बेंच द्वारा जांच की आवश्यकता होगी।

32. निष्कर्षतः, प्रथम दृष्टया, हम पाते हैं कि संतुलन का अभ्यास के अंतर्गत अधिकार अनुच्छेद 26(बी)भाग III के अंतर्गत और विशेष रूप से अन्य अधिकारों के साथ अनुच्छेद 21सरदार सैयदना1 के मामले में संविधान पीठ द्वारा ऐसा नहीं किया गया था। सबरीमाला मंदिर समीक्षा 9जेजे में नौ न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष यह प्रश्न महत्वपूर्ण रूप से विचाराधीन है। इसके अलावा, सवाल यह है कि क्या सुरक्षा दी जा सकती है अनुच्छेद 26(बी) बहिष्कार की प्रथा को संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा की कसौटी पर परखा जाना चाहिए क्योंकि उक्त अधिकार नैतिकता के अधीन है। यह एक महत्वपूर्ण एवं उभरता हुआ मुद्दा है। ये दो मुख्य आधार हैं जिन पर उक्त निर्णय पर एक बड़ी बेंच द्वारा पुनर्विचार की आवश्यकता हो सकती है, निर्णय की समीक्षा की गई थी। इस न्यायालय ने समीक्षा (सबरीमाला मंदिर समीक्षा - 5JJ.7) द्वारा निस्तारण किया। बहुमत की राय में इसे बड़ी बेंच को सौंपने के लिए तैयार किए गए प्रश्न शामिल हैं। प्रश्न संख्या 5.1 से 5.3 प्रासंगिक हैं जो इस प्रकार हैं:

"5.1.(i) संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत धर्म की स्वतंत्रता और विशेष रूप से अनुच्छेद 14.भाग III में अन्य प्रावधानों के बीच परस्पर क्रिया के संबंध में,

5.2.(ii) संविधान का अनुच्छेद 25(1)"सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य" अभिव्यक्ति का व्यापक रूप किसमें घटित हो रहा है?.

5.3.(iii) अभिव्यक्ति "नैतिकता" या "संवैधानिक नैतिकता" को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। क्या यह प्रस्तावना के संदर्भ में व्यापक नैतिकता है या धार्मिक मान्यताओं या आस्था तक सीमित है। उस अभिव्यक्ति की रूपरेखा को रेखांकित करने की आवश्यकता है, ऐसा न हो कि वह व्यक्तिपरक हो जाए।" तदनुसार, समीक्षा याचिका नौ न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष सूचीबद्ध की गई थी। 10 फरवरी 2020 के आदेश से, नौ न्यायाधीशों की पीठ (सबरीमाला मंदिर समीक्षा -9 जेजे.8) ने कानून के सात प्रश्न तैयार किए, जिनमें से प्रश्न 3 और 4 हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक हैं, इस प्रकार पढ़ें:

"3. क्या किसी धार्मिक संप्रदाय के अधिकार के अंतर्गत अनुच्छेद 26क्या भारत के संविधान में सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अलावा भारत के संविधान के भाग III के अन्य प्रावधान भी अधीन हैं?

4.भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत 'नैतिकता' शब्द का दायरा और सीमा क्या है और क्या इसका मतलब संवैधानिक नैतिकता को शामिल करना है?'

43. ऐसा कहने के बाद और इस तथ्य को देखते हुए कि कम से कम 10 मुकदमे सिविल कोर्ट और वहां भी लंबित बताए गए हैं अधिक मुकदमे होने चाहिए जिन्हें लंबित माना जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि मुद्दा, सार्वजनिक महत्व का है जो जनजाति से परे और समुदायों से परे जनता को प्रभावित करता है, पिछले दो से तीन वर्षों से योग्यता के आधार पर उनकी संस्था एक इंच भी आगे नहीं बढ़ी है, जो पूर्ण औचित्य प्रदान करता है, धारा 24(1)(बी) सीपीसी के तहत संबंधित सिविल कोर्ट से इस न्यायालय में मुकदमे में शामिल मुद्दे से संबंधित सभी मुकदमों को वापस लेने के लिए, जबकि आवेदक द्वारा की गई प्रार्थना के तहत मूल मुकदमा संख्या 353/2022 को वापस लिया जा रहा है और इसे स्थानांतरित किये जाने को अनुमति है। बाकी मुकदमों के लिए, यह न्यायालय संबंधित निचली सिविल अदालत से समान प्रकृति के ऐसे मुकदमों को वापस ले लेता है और मुकदमे के लिए अपनी स्वत: प्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन्हें इस न्यायालय में स्थानांतरित कर देता है।

44. तत्काल स्थानांतरण आवेदन की अनुमति है।

45. जिला न्यायाधीश, मथुरा को समान प्रकृति के ऐसे सभी मामलों की एक सूची तैयार करनी चाहिए जिसमें विषय वस्तु शामिल हो और इसकी परिधि को छूते हुए, स्पष्ट रूप से या निहितार्थ द्वारा ऐसे मामलों का विवरण शामिल किया जाए और इन मुकदमों/मामलों को रिकॉर्ड के साथ, जैसा कि ऊपर दिया गया है, शामिल किया जाएगा। दो सप्ताह के भीतर इस न्यायालय को विधिवत अग्रेषित किया जाएगा और इस न्यायालय की स्वत: प्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसे इस न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया जाएगा।

46. आदरणीय मुख्य न्यायाधीश से अनुरोध है कि कृपया ऐसे वापस लिए गए मुकदमों की सुनवाई और निपटान के लिए एक उचित पीठ नामित करें।

47. आवेदकों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरि शंकर जैन, आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विष्णु शंकर जैन, श्री प्रभाष पांडे और श्री प्रदीप कुमार शर्मा, प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री पुनित कुमार गुप्ता को सुना।, प्रतिवादी संख्या- 2 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वजाहत हुसैन खान के सहायक विद्वान अधिवक्ता, श्री नसीरुज्जमां और श्री जे.एच. खान, प्रतिवादी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक राय, श्री बीरेंद्र प्रसाद

मौर्य, प्रतिवादी संख्या 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री कमलेश नारायण पांडे, और प्रतिवादी क्रमांक 5 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राधे श्याम यादव,विशेष रूप से न्यायालय द्वारा राज्य के लिये नियुक्त एमिकस क्यूरी विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल के सहायक अधिवक्ता सुश्री अंजलि गोकलानी द्वारा प्रदान की गई सहायता की सराहना करता है।

48. उपरोक्तानुसार अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए इस आदेश की एक प्रति विचारण न्यायाधीश/जिला न्यायाधीश, मथुरा को तुरंत प्रेषित की जाए।

49. कोई लागत नहीं लगाई जाती है।

(2023) 5 ILRA 699

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला,

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 354/2023

आज़ाद अहमद एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन.सी.पी.सी.आर.) एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: गौरी शंकर मौर्य, आदिल हुसैन

अधिवक्ता प्रतिवादी: रक्षित राज सिंह, ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - रिट याचिका में बड़े जनहित के मुद्दों पर विचार करना- यदि कोई याचिका दायर की जाती है और पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि इसमें जनहित से संबंधित कुछ विवाद शामिल हैं, तो पीठ इसे जनहित याचिका के रूप में नहीं सुन सकती है, लेकिन न्यायालय के पास इसे जनहित याचिका में परिवर्तित करने और रजिस्ट्री को इसे उस पीठ के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कहने का विकल्प है, जिसके पास नियमों के अनुसार जनहित याचिका पर विचार करने का क्षेत्राधिकार है। (पैरा 25)

उपर्युक्त के अनुसार, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह जनहित याचिका को एक अलग मामले के रूप में पंजीकृत करे और उचित निर्देश के लिए इसे माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष या उपयुक्त जनहित याचिका पीठ के समक्ष रखे। (पैरा 26)

विशेष अपील का निस्तारण किया गया। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. दिनेश कुमार सिंह @ सोनू बनाम यूपी राज्य व अन्य, रिट याचिका संख्या 2599 (एमबी) 2014, 05.01.2017 को निर्णीत (पैरा 10)

2. यू.पी. राज्य व अन्य बनाम नीरज चौबे व अन्य, (2010) 10 एससीसी 320 (पैरा 25)

वर्तमान अंतर-न्यायालय अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 2474/2023 में की गई कार्यवाही से उत्पन्न हुई है, जिसमें दो आदेश, अर्थात् दिनांक 17.05.2023 का आदेश और दिनांक 27.03.2023 का दूसरा आदेश पारित किया गया है। दिनांक 17.05.2023 के

आदेश द्वारा, एनसीपीसीआर द्वारा प्रस्तुत हस्तक्षेप आवेदन को अनुमति दी गई है और एनसीपीसीआर को कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय, एवं माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. कार्यालय ने विशेष अपील दायर करने में 28 दिनों की देरी की सूचना दी है।
2. विशेष अपील दायर करने में देरी की माफी की माँग करने वाले दरख्वास्त के समर्थन में दायर शपथपत्र में दिए गए कथनों को ध्यान में रखते हुए और पर्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम संतुष्ट है कि देरी को पर्याप्त रूप से समझाया गया है।
3. तदनुसार, दरख्वास्त की अनुमति दी जाती है और विशेष अपील दायर करने में हुई देरी को माफ किया जाता है ।
4. अपीलकर्ताओं की ओर से श्री वी.के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता व उनके सहायक श्री एम.ए. औसाफ़, श्री संकल्प नारायण, श्री जी.एस. मौर्य, श्री श्रीवत्स नारायण, श्री आदिल हुसैन, श्री बी.पी. तिवारी और श्री आयुष टंडन, प्रतिवादी संख्या 1- राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन०सी०पी०सी०आर) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री स्वरुपमा चतुर्वेदी, भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आर. सी. तिवारी और राज्य प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

5. यह इंट्रा-कोर्ट अपील 2023 की रिट-ए संख्या 2474 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई कार्यवाही से उत्पन्न हुई है, जिसमें दो आदेश, अर्थात् आदेश दिनांक 17.05.2023 और दूसरा आदेश दिनांक 27.03.2023 पारित किए गए हैं। आदेश दिनांक के अनुसार 17.05.2023 को एन०सी०पी०सी०आर द्वारा प्रस्तुत हस्तक्षेप दरख्वास्त की अनुमति दी गई है और एन०सी०पी०सी०आर को कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गई है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त आदेश के प्रस्तर 4 में आगे कहा है कि मामला व्यापक प्रभाव वाला और कुछ महत्वपूर्ण है। उक्त आदेश दिनांक 17.05.2023 का प्रस्तर 4 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

"4. मामला व्यापक प्रभाव वाला है और इस मामले का कुछ महत्व और परिणाम शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ मदरसों में पढ़ने वाले बच्चों के अधिकारों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए, यह न्यायालय श्री एस. एम. सिंह रायकवार, अधिवक्ता को न्याय मित्र नियुक्त करता है। मामले में न्यायालय की *सहायता करने हेतु ।"

(6) दिनांक 27.03.2023 को आदेश पारित करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने केंद्र के साथ-साथ राज्य सरकारों को निम्नलिखित शब्दों में अपनी प्रतिक्रिया दाखिल करने का निर्देश दिया है: -

"केंद्र सरकार और राज्य सरकार को अपने हलफनामे दाखिल करने दें, जिसमें बताया जाए कि सरकारी खर्च या सरकारी खजाने द्वारा प्रदान किए गए धन पर धार्मिक शिक्षा कैसे प्रदान की जाएगी और क्या यह भारत का संविधान के अनुच्छेद 14, 25, 26, 29 और 30 का उल्लंघन हो सकता है।"

(7) दिनांक 27.03.2023 का आदेश इस प्रकार है:-

"केंद्र सरकार के सचिव, अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार और राज्य सरकार के प्रमुख सचिव, अल्पसंख्यक कल्याण एवं वक्फ विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से आज से छह सप्ताह के भीतर याचिका और उपरोक्त सवालों का जवाब देते हुए हलफनामा दाखिल किया जाना चाहिए।"

(8) अपीलकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील यह है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दो आदेशों दिनांक 27.03.2023 और 17.05.2023 के अवलोकन से, यह स्पष्ट और अधिक स्पष्ट है कि रिट याचिका में मुख्य रूप से उठाए गए मुद्दे पर विचार करने के अतिरिक्त, विद्वान एकल न्यायाधीश का इरादा व्यापक प्रभाव और कुछ महत्व वाले मुद्दों पर विचार करने का भी है और रिट याचिका के नतीजे से शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ मदरसों में पढ़ने वाले बच्चों के अधिकारों पर भी असर पड़ेगा। इस प्रकार, उनका निवेदन यह है कि यह स्पष्ट है कि विद्वान एकल न्यायाधीश व्यापक सार्वजनिक हित के मुद्दे पर निर्णय लेने हेतु स्पष्ट रूप से यात्रा शुरु करने का इरादा रखते हैं, जो रिट याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई शिकायतें की प्रकृति और उसमें की गई प्रार्थनाएं को ध्यान में रखते हुए उनके सामने वाद के लंबित रहने के दौरान सामने आया है।

(9) रिट याचिका के प्रार्थना खंड पर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा कहा गया है कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें प्रतिवादियों को उसका स्का हुआ वेतन जारी करने और उसे नियमित वेतन देने जैसा की विधि के तहत उस हेतु स्वीकार्य है का निर्देश देने की मांग की गई थी। रिट याचिका में की गई प्रार्थनाएं यहाँ नीचे दी गई हैं:

"इसलिए, यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय कृपापूर्वक प्रसन्न हो:

(ए) मैंडेमस की प्रकृति में एक दलों को याचिकाकर्ता को पूरा स्ट आदेश या निर्देश जारी करना, जिसमें विपक्षी रोका हुआ वेतन जारी करने और उसे कानून के तहत स्वीकार्य नियमित वेतन का भुगतान करने का आदेश दिया जाए।"

(बी) ऐसे अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जो माननीय न्यायालय को बाद के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायसंगत एवं उचित लगे।

(सी) रिट याचिका की लागत का पुरस्कार देने हेतु।"

(10) इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिका

में की गई प्रार्थनाओं पर रिट याचिकाकर्ता द्वारा की गई दलीलों के आधार पर विचार करने के अतिरिक्त, यदि व्यापक जनहित से संबंधित कुछ मुद्दे सामने आते हैं, तो यह न्यायालय या तो ऐसे मुद्दों पर अकेले या खंडपीठ में बैठकर संज्ञान लेने से नहीं रोका जाता है, ययपि, उस स्थिति में ***दिनेश कुमार सिंह सोनू बनाम यूपी राज्य एवं अन्य निर्णय दिनांक 05.01.2017 [रिट याचिका संख्या 2599 (एम०बी०) 2014]*** के मुकदमे में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित कानून का पालन करना होगा। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, ऐसी स्थिति में मामले का वह हिस्सा जो व्यापक सार्वजनिक हित से संबंधित है या जिसे संबोधित करने की आवश्यकता है, उसे जनहित याचिका पर सुनवाई कर रही खंडपीठ को संदर्भित करने हेतु माननीय मुख्य न्यायाधीश को प्रेषित किया जाना चाहिए।

(11) इस दृष्टिकोण में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील यह है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही में किसी भी पक्ष को कोई शिकायत नहीं हो सकती है, भले ही सामान्य सार्वजनिक हित के मुद्दों को सीधे या स्पर्शपूर्ण तरीके से छूने वाले मामले उठाए गए हों, यद्यपि, ऐसी स्थिति में ***दिनेश कुमार सिंह सोनू (उपरिवर्णित)*** के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित विधि का सहारा लिया जाना चाहिए।

(12) विद्वान राज्य अधिवक्ता का कहना है कि राज्य प्राधिकारियों को रिट याचिका की कानूनी कार्यवाही में प्रतिशपथ पत्र दायर करने का निर्देश दिया गया है, जिसे तैयार होने के बाद दायर किया जाएगा।

13) भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आर. सी. तिवारी ने प्रस्तुत किया है कि भारत संघ की ओर से प्रतिशपथ पत्र तैयार किया गया था और इसे दायर भी किया जाना था, ययपि, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.05.2023 पर विचार करते हुए, उन्हें प्रतिशपथ पत्र तैयार करने हेतु और अधिक समय देने हेतु प्रार्थना करने निर्देश हैं। ययपि, वह इस बात से इनकार नहीं करते हैं कि मामले में जनहित के तत्व उत्पन्न हुए हैं, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 27.03.2023 और 17.05.2023 के आदेशों के अवलोकन से स्पष्ट है। (14) एन०सी०पी०सी०आर का प्रतिनिधित्व करने वाली विद्वान अधिवक्ता सुश्री स्वरुपमा चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया है कि एन०सी०पी०सी०आर ने इस मामले में मात्र इस तथ्य के कारण हस्तक्षेप की माँग की है कि मदरसों में बच्चों के अधिकारों से संबंधित कुछ

विसंगतियाँ एन०सी०पी०सी०आर द्वारा देखी गई हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि एन०सी०पी०सी०आर का रिट याचिकाकर्ता, मदरसों के प्रबंधन और राज्य अधिकारियों के बीच मूल सूची से कोई लेना-देना नहीं है यद्यपि एन०सी०पी०सी०आर राज्य सरकार के साथ भी बच्चों के अधिकारों से संबंधित मामले को उठाता रहा है।

(15) उपरोक्त दलील प्रस्तुत करने के बाद, एन०सी०पी०सी०आर के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कथन किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभी तक इस पर अपनी राय नहीं बनाई है कि क्या उनके समक्ष लंबित मामले में व्यापक जनहित से संबंधित मुद्दे सामने आए है या नहीं, जो कि होगा सभी पक्षों की प्रतिक्रिया रिट कोर्ट के समक्ष दाखिल होने के बाद बेहतर निर्णय लिया जाएगा।

(16) यह भी कहा गया है कि 17.05.2023 को ही विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस मामले में एक न्याय मित्र नियुक्त किया है और क्या बड़े जनहित से संबंधित जो मुद्दा उठा है, उसे उचित पीठ के पास भेजे जाने की आवश्यकता है। इस न्यायालय में ***दिनेश कुमार सिंह @ सोनू (उपरिवर्णित)*** के मामले में पूर्ण पीठ न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के संदर्भ में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्णय लिया जाएगा।

(17) रिट याचिका की कार्यवाही में नियुक्त विद्वान न्यायमित्र ने पह भी प्रस्तुत किया है कि इस तरह के मामले में, खण्डपीठ के समक्ष दो पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं जहाँ पक्षकारों के मध्य नियमित बातचीत के अतिरिक्त सामान्य सार्वजनिक हित से संबंधित कुछ मुद्दे भी उठते हैं।

(18) विद्वान् न्यायमित्र ने प्रस्तुत किया है। पहला कोर्स ***दिनेश कुमार सिंह @ सोनू है कि (उपरिवर्णित)*** के मामले में पूर्ण पीठ के निर्णय के संदर्भ में किसी भी मामले में उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक हित तत्व को सीधे संदर्भित करना है और दूसरा कोर्स ऐसा संदर्भ है न मात्र रिट याचिका में मूल मूल रूप से उठाए गए मुद्दे के संबंध में बल्कि व्यापक सार्वजनिक हित से संबंधित मुद्दों के संबंध में भी पक्षकारों से प्रतिक्रियाएं आमंत्रित करने के बाद बनाया जा सकता है। इस प्रकार, अपने निवेदन में उन्होंने आग्रह किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.03.2023 और 17.05.2023 का अवलोकन खुलासा करता है कि यह मात्र प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण है जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा बनाया गया है कि उनके समक्ष लंबित रिट याचिका में व्यापक सार्वजनिक हित से संबंधित कुछ मुद्दे उठे हैं, यद्यपि, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभी तक गठन नहीं किया है इस मामले में उनकी अंतिम राय है कि उनके सामने आम जनता के हित के मुद्दे उठे हैं या नहीं। तदनुसार, उनका कहना है कि इस स्तर पर मामले को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा तय करने हेतु छोड़ा जावे।

(19) सामान्यतः विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के विरुद्ध,

न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत इंट्रा कोर्ट अपील सुनवाई योग्य नहीं होगी, यद्यपि, इस मामले में अपीलकर्ताओं द्वारा उठाया गया मुद्दा विद्वान एकल न्यायाधीश के बहुत ही अधिकार क्षेत्र को छूता है इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश की ओर से, हमने इस विशेष अपील पर विचार किया है।

(20) हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से पूरी तरह सहमत हैं जहाँ उन्होंने अपनी राय व्यक्त की है कि इस मामले पर न मात्र रिट याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थनाओं के दृष्टिकोण से बल्कि विचार की भी आवश्यकता है की क्या धार्मिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को सरकारी खजाने से मिलने वाली फंडिंग भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 25, 26, 29 और 30 का उल्लंघन है। इस संदर्भ में हम विद्वान एकल न्यायाधीश से भी सहमत हैं जहाँ एन०सी०पी०सी०आर, जो मुख्य रूप से बच्चों के संरक्षण की निगरानी हेतु एक वैधानिक आयोग है, को हस्तक्षेपकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया है। यदि कोई ऐसा मुद्दा है जिसका शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों के अधिकारों और ऐसे संस्थानों से संबंधित व्यापक प्रभाव है, तो इसमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता है कि ऐसे मुद्दे में व्यापक सार्वजनिक हित शामिल है और इस उचित मामले में यदि ऐसे मुद्दे का संज्ञान लिया जाए तो इसके अतिरिक्त रिट याचिकाकर्ता से संबंधित मुद्दों को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उठाया गया है, किसी को भी इस पर कोई आपति नहीं हो सकती है।

(21) मात्र इसी संदर्भ में हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने केंद्र सरकार और राज्य सरकार को न मात्र रिट याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे पर बल्कि इससे संबंधित मुद्दे पर भी अपनी प्रतिक्रिया दाखिल करने हेतु कहा है। व्यापक जनहित जैसा कि दिनांक 27.03.2023 और 17.05.2023 के आदेशों से परिलक्षित होता है। हमारे मन में कोई भी संदेह नहीं है, कि रिट याचिका की कार्यवाही में एक स्पष्ट इरादा है कि वेतन भुगतान का दावा करने वाले रिट याचिकाकर्ता से संबंधित मुद्दे के अतिरिक्त व्यापक सार्वजनिक हित के मुद्दे पर भी विचार किया जाना चाहिए।

(22) यद्यपि, प्रश्न यह है कि क्या ऐसी स्थिति में व्यापक जनहित के मुद्दों पर उसी पीठ द्वारा विचार किया जा सकता है या मामले को जनहित याचिका पीठ के पास भेजने की आवश्यकता है ***दिनेश कुमार सिंह उर्फ सोनू (उपरिवर्णित)*** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार।

(23) दिनेश कुमार सिंह उर्फ सोनू (उपरिवर्णित) के मामले में पूर्ण पीठ के समक्ष निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ तैयार किया गयाः-

> ***"चाहे माननीय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अकेले बैठे हों या डिवीजन खण्डपीठ में बैठे हों, न्यायाधीश माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा सौंपे गए अपने निर्णय में किसी मामले की सुनवाई कर रहे हों, यदि कोई मुद्दा या प्रश्न हो तो वे किसी अन्य पीठ के***

निर्धारण में आगे बढ़ सकते हैं अगर सार्वजनिक हित में एक प्रश्न सहित मामले में उठता है, जो उनके / उनके समक्ष मामले से जुड़ा नहीं है, और जिस पर उनकी उनकी राय में निर्णय लिया जाना आवश्यक है, और इसके अतिरिक्त ऐसे मामले में जहाँ उनके / उनके विवेक के अनुसार यह आवश्यक है ऐसे प्रश्न का निर्णय करने हेतु क्या प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।"

(24) पूर्ण पीठ ने उक्त प्रश्न का उत्तर प्रस्तर 15 में दिया है जिसे यहाँ भी उद्धृत किया गया है: -

"15. इन परिस्थितियों में, हम मानते हैं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अकेले बैठे हैं या डिवीजन खण्डपीठ में बैठे न्यायाधीश, मुख्य न्यायधीश द्वारा सौंपे गए अपने निर्णय में किसी भी मामले की सुनवाई करते हुए, अकेले या डिवीजन खण्डपीठ में बैठे किसी अन्य न्यायाधीश के निर्धारण में आगे नहीं बढ़ सकते है। यदि मामले में कोई ऐसा मुद्दा या प्रश्न उठता है जिसमें सार्वजनिक हित का प्रश्न भी शामिल है जो उनके समक्ष मौजूद मामले से संबंधित नहीं है और जिस पर उनकी राय में निर्णय लिया जाना आवश्यक है, तो उस स्थिति में एकमात्र विकल्प खुला रहता है की न्यायाधीश या डिवीजन खण्डपीठ को रजिस्ट्री को निर्देश देना है कि वह मामले को उचित निर्देशों हेतु मुख्य न्यायाधीश के समक्ष या उचित जनहित याचिका (PIL) खण्डपीठ के समक्ष रखे और किसी भी मामले में, ऐसी रिट याचिका को जनहित याचिका (PIL) में परिवर्तित न किया जाए। इस प्रकार, प्रश्न का उत्तर तदनुसार नकारात्मक है।"

(25) हम ***उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नीरज चौबे और अन्य के मामले में*** [(2010) 10 SCC 320] में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं। उक्त मुक़दमे में निर्णय के प्रस्तर 10 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि यदि कोई याचिका दायर की जाती है और खण्डपीठ इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि इसमें सार्वजनिक हित से संबंधित कुछ मुद्दे शामिल हैं, तो खण्डपीठ उस पर जनहित याचिका के रूप में विचार नहीं कर सकती है, लेकिन न्यायालय के पास इसे जनहित याचिका में परिवर्तित करने और रजिस्ट्री को इसे एक खण्डपीठ के समक्ष रखने हेतु कहने का विकल्प है जिसके पास नियमों के अनुसार जनहित याचिका पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र है। उक्त निर्णय का प्रस्तर 10 यहाँ अधो उद्धृत है:-

"10. यदि कोई आवेदन दायर किया जाता है और पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि इसमें सार्वजनिक हित से संबंधित कुछ मुद्दे शामिल हैं, तो पीठ इसे जनहित याचिका के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती है, लेकिन अदालत के

पास इसे सार्वजनिक हित में बदलने का विकल्प है और रजिस्ट्री को न्यायक्षेत्र वाली पीठ के समक्ष जनहित याचिका पर विचार करने हेतु कहेगी, नियमों के अनुसार या मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्धारित रोस्टर के अनुसार, लेकिन पीठ खुद को जनहित याचिका में परिवर्तित नहीं कर सकती है और मामले को आगे नहीं बढ़ा सकती है।"

(26) उपरोक्त के मद्देनजर और दिनेश कुमार सिंह @सोनू (उपरिवर्णित) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, हम रजिस्ट्री को जनहित याचिका को एक अलग मामले के रूप में पंजीकृत करने और उचित निर्देश हेतु माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष या उचित जनहित याचिका पीठ के समक्ष रखने का निर्देश देते हैं।

(27) इस प्रकार, विशेष अपील उपरोक्त शर्तों के अनुसार ***समाप्त*** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 704

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.08.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट-सी संख्या 18588/2015

मीना देवी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री डी.पी. सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री बृज कुमार यादव

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947- धारा 28 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950- धारा 122-आपेक्षित आदेश-याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा आवंटन निरस्त-पुनरीक्षण निरस्त-पुनरीक्षण भी अस्वीकृत-अधिनियम की धारा 28 (सी) के तहत रोक-भाई-भतीजावाद से बचने के लिए सुरक्षा-याचिकाकर्ता इस बात का कोई सबूत पेश करने में असमर्थ कि वह अधिनियम, 1950 की धारा 122 (सी) के तहत पट्टा पाने की पात्र है-इस बात की जांच की जरूरत नहीं कि प्रधान की पुत्रवधू होने के कारण याचिकाकर्ता को आवंटन अवैध है या नहीं-आवंटन सही नहीं था-

रिट याचिका निरस्त (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. विद्यावती बनाम गाँव सभा (1982 लॉ सूट इलाहाबाद 684),
2. राज्य बनाम प्राण शंकर, 1981, (2)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी, द्वारा प्रदत्त)

1. दिनांक 03.08.1996 को अपर कलेक्टर, कानपुर देहात द्वारा विवादित आदेश पारित किया गया था, जिसके तहत याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टे का आवंटन रद्द कर दिया गया था। दूसरा विवादित आदेश दिनांक 26.05.2003 को अपर आयुक्त, कानपुर मंडल, कानपुर द्वारा पारित किया गया था, जिसके तहत दिनांक 03.08.1996 के आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया गया था और तीसरा विवादित आदेश दिनांक 13.11.2014 का है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र को भी अपर आयुक्त, कानपुर मंडल, कानपुर द्वारा खारिज कर दिया गया था।

2. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री डी.पी. सिंह ने कहा कि ग्राम नदिहाखुर्द, तहसील- बिल्हौर , जिला-कानपुर नगर में स्थित 0.41 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाला भूखण्ड संख्या 183 याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया था और उसका नाम 30.12.1994 को राजस्व अभिलेखों में गैर हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में दर्ज भी किया गया है। पट्टा रद्द करने के लिए श्रवण कुमार द्वारा दायर शिकायत के आधार पर, उ0प्र0 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (इसके बाद "1950 का अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 198 (4) के तहत प्रकरण पंजीकृत किया गया था और याचिकाकर्ता को दिनांक 06.12.1995 को नोटिस जारी किया गया था। जब याचिकाकर्ता ने उपस्थित न होने का विकल्प चुना, तो संबंधित जिला कलेक्टर ने तहसीलदार की रिपोर्ट पर विचार किया जिसमें यह उल्लेख किया गया था अतः कलेक्टर ने दिनांक 03.08.1996 को आदेश पारित कर उक्त पट्टा निरस्त कर दिया ।

3. याचिकाकर्ता ने 1950 के अधिनियम की धारा 333 के तहत पुनरीक्षण याचिका संख्या 272/2002 दायर की, हालांकि, इसे भी अपर आयुक्त कानपुर मंडल, कानपुर ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि पट्टा आवंटन के समय याचिकाकर्ता के ससुर ग्राम पंचायत के प्रधान के पद पर थे और उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1947 (इसके बाद "1947 का अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 28 (सी) के अनुसार किसी भी रिश्तेदार को पट्टा देने से पहले संबंधित कलेक्टर की पूर्व लिखित अनुमति आवश्यक थी। हालांकि, वर्तमान प्रकरण में ऐसी कोई अनुमति नहीं ली गई थी। याचिकाकर्ता ने 26.05.2003 के आदेश को वापस लेने के लिए 18.02.2019 को एक रिकॉल प्रार्थना पत्र भी दायर किया था, हालांकि, इसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद 26.05.2003 का आदेश पारित किया गया था। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में अपील दायर कर उक्त आदेशों को चुनौती दी है। इस न्यायालय ने दिनांक 23.04.2015 के आदेश के तहत निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री डी.पी. सिंह, राज्य प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री बृज कुमार यादव को सुना गया।

नोटिस जारी करें।

प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से नोटिस विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय द्वारा स्वीकार कर लिए गए हैं, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से श्री बृज कुमार यादव उपस्थित हुए हैं। इसलिए प्रत्यर्थीगण को दोबारा नोटिस देने की आवश्यकता नहीं है।

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए छह सप्ताह का समय दिया जाता है। यदि कोई जवाबी हलफनामा हो तो वह दो सप्ताह बाद दाखिल

अनुवादित

किया जा सकता है। उसके बाद सूचीबद्ध किया जाएगा।

अंतरिम उपाय के रूप में, पक्षों के अधिकार और विवाद पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक, विवादित भूमि पर पक्षों द्वारा किसी तीसरे पक्ष के अधिकार का सृजन नहीं किया जाएगा।"

4. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य से इनकार नहीं किया है कि याचिकाकर्ता के ससुर प्रासंगिक समय में प्रधान के पद पर थे। हालांकि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि ऐसा संबंध 1947 के अधिनियम की धारा 28 (सी) के अंतर्गत नहीं आता है और इस उद्देश्य के लिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **विद्यावती बनाम गांव सभा (1982 लॉ सूट इलाहाबाद 684), राज्य बनाम प्राण शंकर, 1981, (2)** में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया और निर्णयों के प्रासंगिक भाग को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

(i) विद्यावती बनाम गांव सभा:-

"(5) विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि केवल इसलिए कि आवंटी प्रधान के पुत्र और पुत्री थे, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रधान ने स्वयं के लिए या किसी भागीदार के माध्यम से या अन्यथा पट्टा प्राप्त किया या प्राप्त करने का प्रयास किया। मुझे लगता है कि वह सही है। यदि आवंटन प्रधान के पक्ष में था, भले ही अप्रत्यक्ष रूप से, तो वह धारा के अंतर्गत आता। इस प्रकरण में आवंटन एक विधवा पुत्री के पक्ष में था, जो प्रधान के परिवार की सदस्य नहीं रह गई थी और एक वयस्क पुत्र के पक्ष में था, जिसे उसका आश्रित नहीं कहा जा सकता था। यदि वह नाबालिग पुत्र या उसकी पत्नी होता या प्रधान के लाभ के लिए किसी के नाम पर लेनदेन बेनामी होता, केवल उस स्थिति में उपरोक्त धारा के तहत अपेक्षित अनुमति ली जानी चाहिए थी। <u>वर्तमान प्रकरण में अवर न्यायालयों को यह मानने से पहले धारा के प्रावधानों की स्वयं जांच करनी चाहिए थी</u> कि प्रधान के पुत्र या पुत्री के पक्ष में आवंटन स्वयं प्रधान के लाभ के लिए आवंटन होगा। तदनुसार, मैं अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से सहमत हूं कि वर्तमान प्रकरण में आवंटन उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम की धारा 28-सी के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आता है।"

<u>(ii) राज्य बनाम प्राण शंकर:-</u>

"पंचायत राज अधिनियम की धारा 28-सी में कहीं भी ऐसा प्रावधान नहीं है कि एलएमसी के सदस्य के रिश्तेदार को गांव सभा की संपत्ति में कोई हित नहीं होगा। केवल एक ही निषेधाज्ञा दी गई थी कि सदस्य एलएमसी की संपत्ति में सीधे या किसी भागीदार के माध्यम से या अन्यथा अपने लिए कोई हित अर्जित नहीं कर सकता। यदि किसी प्रकरण की

परिस्थितियों से यह साबित हो जाता है कि एलएमसी के सदस्य ने एलएमसी से संबंधित किसी संपत्ति में सीधे या अपने भागीदार या अपने रिश्तेदार के माध्यम से हित अर्जित किया है तो उक्त अधिग्रहण को शून्य माना जाएगा। लेकिन यदि सदस्य सीधे या भागीदार आदि के माध्यम से अपने लिए संपत्ति अर्जित नहीं करता है तो एलएमसी संपत्ति के संबंध में लीज को अनियमित मानकर रद्द नहीं किया जाएगा। यदि विधानमंडल का यह इरादा था कि एलएमसी के सदस्यों के रिश्तेदार एलएमसी की संपत्ति अर्जित नहीं कर सकते तो पंचायत राज अधिनियम की धारा 28-सी में ऐसा प्रावधान न करने में कोई अड़चन नहीं थी। पंचायत राज अधिनियम की धारा 28-सी में ऐसे प्रावधान का न होना दर्शाता है कि विधानमंडल का कभी यह इरादा नहीं था कि एलएमसी के सदस्यों के रिश्तेदार एलएमसी की संपत्ति अर्जित नहीं कर सकते।"

5. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का विरोध किया है तथा प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के ससुर उस समय ग्राम प्रधान थे, जब पट्टा आवंटन याचिकाकर्ता के पक्ष में किया गया था। इसलिए, यह अधिनियम 1947 की धारा 28 (सी) के तहत वर्जित है, क्योंकि यह हित प्राप्त करने के समान है। अधिनियम 1947 की धारा 28 (सी) का दायरा बहुत व्यापक है तथा "अन्यथा" शब्द का उल्लेख किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से ऐसे संबंध शामिल हैं। इसलिए, आरोपित आदेश कानूनी रूप से सही हैं तथा आरोपित आदेशों में कोई कमी नहीं है। इसलिए, यह याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

6. बार में प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया। संदर्भ के लिए, "1947 के अधिनियम" की धारा 28-सी को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"28-सी. प्रबंधक समिति के साथ अनुबंध आदि में सदस्यों और अधिकारियों का हित अर्जित न करना - (1) ग्राम पंचायत या भूमि प्रबंधक समिति का कोई भी सदस्य या पदाधिकारी, कलेक्टर की लिखित अनुमति के बिना, संबंधित समिति के साथ, उसके द्वारा या उसकी ओर से किसी लाइसेंस, पट्टे, बिक्री, विनिमय, अनुबंध या रोजगार में जानबूझकर स्वयं या किसी भागीदार के माध्यम से या अन्यथा कोई शेयर या हित अर्जित नहीं करेगा, अर्जित करने का प्रयास नहीं करेगा या अनुबंध नहीं करेगा या प्राप्त करने या जारी रखने के लिए सहमत नहीं होगा;

बशर्ते कि कोई व्यक्ति केवल इस आधार पर किसी संविदा या नियोजन में कोई शेयर या हित अर्जित करने, अर्जित करने का प्रयास करने, उसे जारी रखने, अनुबंध करने

या प्राप्त करने के लिए सहमत होने वाला नहीं माना जाएगा -

(ए) जिसने सदस्य या पदाधिकारी बनने से पूर्व कोई हित अर्जित किया हो;

(बी) उस संयुक्त स्टॉक कंपनी में शेयर होना जो अनुबंध करती है; तथा

(सी) किसी वस्तु की, जिसमें वह नियमित रूप से व्यापार करता है, सम्बद्ध समिति के माध्यम से कभी-कभार बिक्री में हिस्सा या हित रखता हो, तथा उसका मूल्य किसी एक वर्ष में 50 रुपए से अधिक न हो।

(2) कोई भी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी किसी व्यक्ति के कहने पर उपधारा (1) के उपबंधों के उल्लंघन में किसी लेनदेन पर आधारित दावे को लागू नहीं करेगा।"

7. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन 30.12.1994 को किया गया था, जब याचिकाकर्ता के ससुर ग्राम पंचायत के प्रधान के पद पर थे। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट कानपुर द्वारा 3.8.1996 को इस आधार पर पट्टा रद्द कर दिया गया था कि 1947 के अधिनियम की धारा 28 (सी) के अनुसार पूर्व अनुमति नहीं ली गई थी। याचिकाकर्ता को उक्त पट्टा इस आधार पर जारी किया गया था कि याचिकाकर्ता भूमिहीन कृषि मजदूर है। हालांकि, याचिकाकर्ता इस तथ्य के समर्थन में कोई दस्तावेज या सबूत पेश करने में विफल रहा है, यहां तक कि रिट याचिका में यह दिखाने के लिए कोई कथन नहीं है कि याचिकाकर्ता भूमिहीन कृषि मजदूर की श्रेणी में कैसे आता है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता, जो प्रधान की पुत्रवधू है, अलग रह रही थी और उसके ससुर ने उक्त भूमि में कोई हित नहीं बनाया है और साथ ही पुत्रवधू का संबंध 1947 के अधिनियम की धारा 28 (सी) के अंतर्गत वर्जित नहीं है। आगे कहा गया है कि **विद्यावती (पूर्वोक्त)** में यह माना गया है कि यदि प्रधान की विधवा-पुत्री, पुत्र या पुत्री को आवंटन स्वयं को लाभ का आवंटन नहीं माना जाएगा तो ऐसा आवंटन 1947 के अधिनियम की धारा 28 (सी) के प्रावधान से प्रभावित नहीं होगा। **प्राण शंकर (पूर्वोक्त)** के एक अन्य प्रकरण में जिसमें यह माना गया है कि यदि पंचायत का कोई सदस्य सीधे या साझेदार के माध्यम से अपने लिए संपत्ति अर्जित नहीं करता है, तो इसे अनियमित नहीं माना जाएगा।

9. 1950 के अधिनियम की धारा 122 (सी) के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और कृषि मजदूरों आदि के सदस्यों के लिए आवास स्थल हेतु भूमि के आबंटन के संबंध में संपूर्ण प्रावधान अधिनियमित किया गया है। उक्त धारा का उद्देश्य गरीब तबके के लोगों को आवास के लिए भूमि उपलब्ध कराना है और इसके लिए उक्त धारा के अंतर्गत संपूर्ण योजना तैयार की गई है। यह कल्याणकारी कानून है और इस तरह के आबंटन के लिए पात्र होने की

पहली आवश्यकता उक्त धारा में उल्लिखित श्रेणियों के अंतर्गत आना है जिसमें गरीबी रेखा से नीचे रहना और कृषि मजदूर होना शामिल है। वर्तमान प्रकरण में कोई सबूत नहीं है कि याचिकाकर्ता ऊपर उल्लिखित किसी भी श्रेणी में आती है। याचिकाकर्ता यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज या सबूत पेश करने में विफल रही है कि वह 1950 के अधिनियम की धारा 122 (सी) के तहत उल्लिखित किसी भी श्रेणी में आती है।

10. 1947 के अधिनियम की धारा 28 (सी) के तहत प्रतिबंध एक और सुरक्षा उपाय है, ताकि भाई-भतीजावाद से बचा जा सके और ग्राम पंचायत के सदस्यों और अधिकारियों को अपने रिश्तेदारों को पट्टा आवंटित करने के लिए लाभ देने से रोका जा सके, भले ही वे उक्त पट्टे के लिए पात्र न हों। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अपात्र व्यक्ति को आवंटित कोई भी पट्टा पात्र व्यक्ति के वैध दावे से वंचित करेगा। **विद्यावती (पूर्वोक्त)** में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में यह माना गया है कि प्रधान के बेटे या बेटी के पिता के लिए आवंटन भी तब तक प्रतिबंधित नहीं होगा जब तक कि यह निर्धारित न हो जाए कि प्रधान द्वारा स्वयं के लिए हित बनाया गया है, हालांकि, आवंटन के दौरान की गई प्रक्रिया के मुद्दे पर प्रकरण अवर न्यायालय में वापस भेज दिया गया था।

11. वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्ता कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर पाई है कि वह अधिनियम 1950 की धारा 122 (सी) के तहत पट्टा पाने की पात्र है। इसलिए, यह जांचने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रधान की पुत्रवधू होने के नाते याचिकाकर्ता को आवंटन अवैध है या नहीं, क्योंकि इसका कोई परिणाम नहीं होगा। याचिकाकर्ता को आवंटन सही नहीं था। आवंटन से पहले कम से कम एहतियात के लिए, जब याचिकाकर्ता उस समय प्रधान की पुत्रवधू थी, तो कलेक्टर से अनुरोध किया जाना चाहिए था ताकि आवंटन से पहले जांच की जा सके, क्योंकि ऐसे मामलों में अनुमति देने के लिए कलेक्टर ही सक्षम प्राधिकारी है। यह ध्यान देने योग्य है कि कोई भी अवैध आवंटन भूमिहीन मजदूर के अधिकार से वंचित करेगा, जो अधिनियम 1950 की धारा 122 (सी) की योजना के विरुद्ध है।

12. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा लिए गए निर्णयों का लाभ याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता 1950 के अधिनियम की धारा 122 (सी) के तहत भूमि आवंटन के लिए अपनी पात्रता साबित करने में भी विफल रही है।

13. तदनुसार, यह रिट याचिका **खारिज** की जाती है। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त माना जाएगा।

(2023) 5 ILRA 709

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 20577/2016

एल.आई.सी., गोरखपुर एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

स्थायी लोक अदालत, आज़मगढ़ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रतीक जे. नागर, श्री जे. नागर (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री सुनील कुमार सिंह, श्री जे.पी. सिंह, एस.सी.

ए. सिविल कानून - बीमा अधिनियम, 1938 - धारा 45- बीमा दावा-वैधता - पुरस्कार- निगम ने प्रस्ताव फॉर्म में की गई गलत घोषणा के कारण प्रतिवादी के दावे को निरस्त कर दिया- बीमा का अनुबंध अत्यधिक सद्भावना में से एक होने के नाते, एलआईसी द्वारा अत्यंत सद्भावना के उल्लंघन के लिए अस्वीकार किया गया था और प्रतिवादी के भाई द्वारा प्रीमियम का भुगतान और एलआईसी द्वारा पॉलिसियों के पुनरुद्धार की पॉलिसी की अस्वीकृति के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है - खाते पर द्वारा दिए गए गलतबयानी कामृतक बीमित व्यक्ति ने अपनी पिछली बीमारी के संबंध में प्रस्ताव प्रपत्र में प्रश्नों के उत्तर में, बीमित व्यक्ति ने उन तथ्यों को छिपा दिया था, जिनका खुलासा करना उसके लिए आवश्यक था- जब डॉक्टर द्वारा निगम के चिकित्सा राय दी गई, यह स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है कि मृत्यु का कारण बीमित व्यक्ति द्वारा एक वर्ष पूर्व झेले गए बुखार से बिल्कुल भी संबंधित नहीं था - इसलिए, ऐसे बुखार का खुलासा न करना, प्रतिवादी द्वारा किए गए दावे पर निर्णय करते समय तथ्य को दबाने के रूप में नहीं माना जा सकता - इस प्रकार, उक्त अंतरिम आदेश के तहत जीवन बीमा निगम द्वारा जमा की गई राशि दो महीने की अवधि के भीतर प्रतिवादी के पक्ष में निश्चित रूप से जारी की जाएगी। (पैरा 1 से 67)

बी. बीमा अधिनियम की धारा 45 एल.आई.सी. को धोखाधड़ी, गलत बयानी या तथ्य छिपाने के आधार पर दावे को अस्वीकार करने का अधिकार देती है-चूंकि बीमा का अनुबंध अत्यंत सद्भावना का अनुबंध है, इसलिए सब कुछ बीमा कंपनी द्वारा जारी प्रस्ताव फॉर्म जमा करने से शुरू होता है। एल.आई.सी. द्वारा जारी प्रस्ताव फॉर्म में एक घोषणा होती है कि फॉर्म में दिए गए कथन बीमाधारक के सर्वोत्तम ज्ञान के अनुसार सत्य और सही हैं। तदनुसार, प्रस्तावक/बीमित व्यक्ति को प्रस्ताव फॉर्म में कोई तथ्य नहीं छिपाना चाहिए। यदि बीमाधारक प्रस्ताव फॉर्म में गलत जानकारी देता है, तो बीमा का अनुबंध अमान्य हो जाता है। (पैरा 5)

रिट याचिका निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. ओम प्रकाश अग्रवाल द्वारा वारिसान और अन्य बनाम विशन दयाल राजपूत एवं अन्य (2019) 14 एससीसी 526
2. सुभाष महादेवासा हबीब बनाम नेमासा अंबासा धर्मदास (मृत) द्वारा वारिसन और अन्य। (2007) 13 एससीसी 650
3. आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड (1993) 2 एससीसी 130
4. अप्पट कृष्णा पोडुवल बनाम लक्ष्मी नाथियार और अन्य (1950) एआईआर (37) मद्रास 751
5. कुमारन नांबियार बनाम रामुन्नी (1998)एआईआर 25 मैड। 257
6. किरण सिंह एवं अन्य बनाम चमन पासवान एवं अन्य (1954) एआईआर एससी 340
7. कूपिलन उनेन की बेटी पथुम्मा और अन्य बनाम यूनी का बेटा कुंतलन कुट्टी (मृत)

द्वारा वारिसान (1981) एआईआर एससी 1683

8. हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम. डी.एल.एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड एवं अन्य (2005) एआईआर एससी 4446

9. सुरेंद्र महंती बनाम घासीराम महंती एवं अन्य। (1996) एयर ओरी

10. अजय सिंह (मृतक) द्वारा वारिसान व अन्य बनाम टिक्का बृजेन्द्र सिंह व अन्य आदि (2007) एआईआर एच.पी. 52

11. एआरसीई पॉलिमर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम अल्फाइन फार्मास्यूटिकल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (2022) 2 एससीसी 221

12. कृष्ण बहादुर बनाम मैसर्स पूर्णा थ्रेटर एवं अन्य (2004) एआईआर एससी 4282

13. मेसर्स पावर कंट्रोल एप्लायंस एंड ऑर्स बनाम सुमीत मशीन्स प्राइवेट लिमिटेड (1994) 2 एससीसी 448

14. रॉजर्स बनाम नोविल (1847) 2 डी जीएम एंड जी 614

15. तूफ़ान चटर्जी बनाम रंगन धर (2016) AIR कलकत्ता 213

16. आर्सेलर मित्तल निप्पॉन स्टील इंडिया लिमिटेड बनाम एस्सार बल्क टर्मिनल लिमिटेड (2022) 1 एससीसी 712 पैरा 38

17. बार काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम भारत संघ (2012) 8 एससीसी 243

18. एम.पी. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम प्रतीक जैन एवं अन्य (2014) 10 एससीसी 690

19. इंटर ग्लोब एविएशन लिमिटेड बनाम एन.सच्चिदानंद (2011) 7 एससीसी 463

20. एसबीआई, धनबाद बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2009) 2 एआईआर झार आर 970

21. मिट्ठूलाल नायक बनाम एलआईसी, भारत (1962) एआईआर एससी 814

22. श्रीमती कृष्णा वन्ती पुरी बनाम एलआईसी, भारत, डिवीजनल ऑफिसर, नई दिल्ली एवं अन्य (1975) एआईआर दिल्ली 19

23. केनरा बैंक बनाम जी.एस. जयराम, एयरऑनलाइन (2022) एससी 835

24. एलआईसी बनाम सैयद जैगम अली एवं अन्य (रिट-सी संख्या 39879/2015)

25. एलआईसी, भारत एवं अन्य बनाम पीएलए एवं अन्य (2018) एडीजे ऑनलाइन 0484

26. नितिन कुमार बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (रिट सी संख्या 28999/2013)

27. मिट्ठूलाल नायक बनाम एलआईसी इंडिया (1962) एआईआर एससी 814

28. श्रीमती कृष्णा वन्ती पुरी बनाम एलआईसी, भारत, डिवीजनल अधिकारी, नई दिल्ली एवं अन्य (1975) एआईआर दिल्ली, 19

29. सुलभा प्रकाश मोटेगांवकर एवं अन्य बनाम एलआईसी, भारत सिविल अपील संख्या 8245/2015 (एसएलपी(सी) संख्या 13589/2015)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा प्रदत्त)

1. तत्काल रिट याचिका भारतीय जीवन बीमा (इसके बाद "एल.आई.सी." के रूप में संदर्भित) द्वारा दायर की गई है, जिसमें दिनांक 15.02.2016 के आक्षेपित निर्णय और पुरस्कार को चुनौती दी गई है, जिसके तहत स्थायी लोक अदालत (इसके बाद इसे "पी.एल.ए." के रूप में संदर्भित किया गया है) ने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किए गए दावे को स्वीकार कर लिया है और एल.आई.सी. को दावेदार-प्रतिवादी को 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ रुपये 14,00,000/- (केवल चौदह लाख रुपये) का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है, जैसा कि बीमा धारक जो दावेदार-प्रतिवादी का सगा भाई था द्वारा रखी गई बीमा बीमा द्वारा कवर किया गया था, ।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य, जैसा कि रिट याचिका में बताया गया है, यह है कि प्रतिवादी संख्या 2 के भाई ठाकुर प्रसाद सिंह, जिनकी उम्र 47 वर्ष है, ने बीमा संख्या 297170129 दिनांक 28-11-2011 के तहत एल.आई.सी. के साथ बीमा कराया था। उक्त बीमाधारक का प्रस्ताव एल.आई.सी. द्वारा स्वीकार कर लिया गया और उसके जीवन के बीमा के लिए बीमा संख्या 297170129 दिनांक 28-11-2011 जारी कर दी गई। दुर्भाग्य से, ठाकुर प्रसाद सिंह की मृत्यु 10-09-2012 को हो गई।

3. ठाकुर प्रसाद सिंह की मृत्यु की जानकारी मिलने पर, एल.आई.सी. ने दावे के कागजात के साथ मामले में पूछताछ की, जिसके बाद यह पता चला कि बीमा संख्या 297170129 दिनांक 28-11-2011 के लिए प्रस्ताव जमा करने से पहले, आश्वासित व्यक्ति आंत्र ज्वर और मूत्र पथ के संक्रमण से पीड़ित था और उसका इलाज चित्रांश अस्पताल और सर्जिकल केयर सेंटर, शिवपुर, वाराणसी में किया जा रहा था। तदनुसार, एल.आई.सी. ने अपने पत्र दिनांक 28-11-2013 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के दावे को खारिज कर दिया।

4. दावा खारिज होने के बाद, आजमगढ़ में प्रतिवादी संख्या दो ने स्थाई लोक अदालत के समक्ष स्वर्गीय ठाकुर प्रसाद सिंह के समक्ष मृत्यु दावे के लिए 1400000 रुपये (मात्र चौदह लाख रुपये की राशि) की वसूली के लिए मुकदमा संख्या 406 वर्ष 2014, (काली प्रसाद सिंह बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य) दायर किया।

5. शिकायत दर्ज करने के बारे में पता चलने पर, एल.आई.सी. ने इस मामले में अपना जवाब दाखिल किया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अपने आवेदन में दिए गए दावों को खारिज कर दिया गया और कहा गया कि निगम ने प्रतिवादी संख्या 2 के प्रस्ताव प्रपत्र में गलत घोषणा के कारण दावे को खारिज कर दिया है। आगे यह कहा गया कि बीमा का अनुबंध अत्यधिक सद्भावना (यूबेरिमा-फाइड) में से एक है, एल.आई.सी. द्वारा अत्यंत सद्भावना के उल्लंघन और प्रतिवादी संख्या 2 के भाई द्वारा प्रीमियम के भुगतान और पॉलिसियों के पुनरुद्धार के लिए इसे अस्वीकार करना सही था। एल.आई.सी. द्वारा बीमा को अस्वीकार करने

की कोई प्रासंगिकता नहीं है। आगे कहा गया कि बीमा अधिनियम की धारा 45 एल.आई.सी. को धोखाधड़ी, गलत बयानी या तथ्य छिपाने के आधार पर दावे को अस्वीकार करने के लिए अधिकृत करती है। चूँकि बीमा का अनुबंध अत्यंत सद्भावना का अनुबंध है, इसलिए सब कुछ बीमा कंपनी द्वारा जारी प्रस्ताव प्रपत्र जमा करने से शुरू होता है। एल.आई.सी. द्वारा जारी प्रस्ताव फॉर्म में एक घोषणा होती है कि फॉर्म में दिए गए विवरण बीमाधारक की सर्वोत्तम जानकारी के अनुसार सत्य और सही हैं। तदनुसार, प्रस्तावक/ बीमाधारक को प्रस्ताव प्रपत्र में कोई भी तथ्य नहीं छिपाना चाहिए। यदि बीमाधारक प्रस्ताव प्रपत्र में गलत जानकारी देता है, तो बीमा का अनुबंध रद्द हो जाता है। इसके अलावा, मृतक बीमित व्यक्ति द्वारा अपनी पिछली बीमारी के संबंध में प्रस्ताव प्रपत्र में प्रश्नों के उत्तर में दिए गए गलत बयान के कारण, बीमित व्यक्ति ने उन तथ्यों को छिपा दिया था, जिनका खुलासा करना उसके लिए आवश्यक था। तदनुसार, बीमा का अनुबंध शून्य हो गया और प्रतिवादी संख्या 2 को कुछ भी देय नहीं था। आगे कहा गया कि एल.आई.सी. दावेदार के साथ मामले को निपटाने को तैयार नहीं थी।

6. पार्टियों द्वारा अपने-अपने दावे और बचाव के समर्थन में सबूत पेश करने के बाद, पी.एल.ए., आज़मगढ़ ने दिनांक 15.02.2016 के निर्णय और पुरस्कार द्वारा दावे की अनुमति दी और एल.आई.सी. को दावेदार-प्रतिवादी को रुपये 14,00,000/- (केवल चौदह लाख रुपये) 9% प्रति वर्ष ब्याज के साथ, जैसा कि बीमा बीमा द्वारा कवर किया गया है, का भुगतान करने का निर्देश दिया।

7. दावेदार-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि उनके भाई को बीमा संख्या 297170129 दिनांक 28-11-2011 के तहत एल.आई.सी. के साथ बीमा कराया गया था और उक्त बीमा जारी होने से पहले, प्रतिवादी के भाई, ठाकुर प्रसाद सिंह को 23 नवंबर, 2011 निगम के डॉक्टर द्वारा पूरी तरह से जांच की गई थी। आगे कहा गया है कि एल.आई.सी. के समक्ष दावा पत्र प्रस्तुत किए जाने के बाद, उसने दावे की अनुमति देने के बजाय, जांच करने का निर्देश दिया। उक्त जांच 10-12-2013 को की गई दिखाई गई है और दावे को अस्वीकार करने का आधार बनाने के लिए, जांच अधिकारी ने उल्लेख किया है कि दिनांक 28-11-2011 की बीमा के लिए प्रस्ताव जमा करने से पहले, मृतक (जीवन आश्वस्त) आंत्र ज्वर और मूत्र पथ के संक्रमण से पीड़ित थे और उनका कुछ समय से चित्रांश अस्पताल और सर्जिकल केयर सेंटर, शिवपुर, वाराणसी में इलाज चल रहा था। रिपोर्ट में उद्धृत बीमारी का वैध दावे से कोई लेना-देना नहीं है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 2 के भाई को एल.आई.सी. के डॉक्टरों द्वारा पूरी तरह से चिकित्सा परीक्षण/चेक-अप के बाद एल.आई.सी. में बीमा कराया गया था।

8. यह आगे जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि बीमा अनुबंध का मूल उद्देश्य बीमित व्यक्ति के जीवन का बीमा करना है और अत्यंत सद्भावना का तत्व निगम पर भी समान रूप से लागू होता है। यहां, निगम ने

स्वयं यह मान लिया कि सद्भावना का उल्लंघन हुआ है, जबकि सद्भावना का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था, और मामले का तथ्य यह है कि प्रतिवादी संख्या 2 के भाई का बीमा पूरी तरह से चिकित्सा जांच के बाद किया गया था। मृत्यु किसी लंबी बीमारी के कारण नहीं हुई थी, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 2 के दावे को खारिज करने का आदेश पूरी तरह से अवैध था।

9. जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि बीमित व्यक्ति ने कोई गलत बयान नहीं दिया है। जहां तक पिछली बीमारियों का सवाल है, बीमित व्यक्ति को पिछली सभी बीमारियों, जैसे टाइफाइड और बुखार आदि का विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। प्रकटीकरण का उद्देश्य गंभीर बीमारी, यदि कोई हो, को सूचित करना है। इसके अलावा, बीमा के लिए बीमित व्यक्ति की स्व-घोषणा पर्याप्त नहीं है। निगम बीमा जारी करने से पहले बीमा चाहने वाले व्यक्ति की मेडिकल जांच कराता है। यहां, दिए गए मामले में, प्रतिवादी संख्या 2 के भाई की 23-11-2011 को एल.आई.सी. के डॉक्टरों द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई और उक्त चिकित्सा रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए, बीमा जारी की गई। जीवन-आश्वस्त व्यक्ति द्वारा कोई दमन नहीं किया गया। आमतौर पर देखा जाता है कि बीमा निगम बीमित व्यक्ति के दावे को स्वीकार करने के बजाय कई तरह की आपत्तियां लेता है। इधर, दिए गए मामले में भी निगम ने अवैध रूप से और मनमाने ढंग से प्रतिवादी संख्या 2 के दावे को उसके अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर खारिज कर दिया, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 ने बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया।

10. याचिकाकर्ता ने जवाबी हलफनामा दाखिल किया है। जहां तक प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ 5 में निहित दलीलों का संबंध है कि बीमाधारक की 23.11.2011 को निगम के डॉक्टर द्वारा पूरी तरह से जांच की गई थी, जिसकी मेडिकल जांच रिपोर्ट प्रति शपथ पत्र के साथ अनुलग्नक संख्या सीए -1 के रूप में संलग्न है, प्रत्युत्तर हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 7 में यह कहा गया है कि प्रति हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 5 में किए गए अनुमानों को स्वीकार नहीं किया जाता है, और प्रतिवादी संख्या 2 को कथनों के सख्त सबूत के लिए रखा जाता है। पैराग्राफ संख्या 7 में कहा गया है कि मृतक जीवन-बीमित व्यक्ति की एल.आई.सी. के डॉक्टर द्वारा जांच की गई थी, इससे प्रतिवादी संख्या 2 को कोई मदद नहीं मिली। हालांकि, प्रत्युत्तर हलफनामे में शामिल दलीलें याचिका के माध्यम से उठाए गए विवाद का काफी हद तक दोहराव हैं।

11. मैंने याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे. नागर, सहयोगी अधिवक्ता श्री प्रतीक जे. नागर और प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जे.पी. सिंह को सुना।

12. श्री जे. नागर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए निम्नलिखित तीन मुद्दे/विवाद उठाए हैं:

(1) प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किए गए दावे रुपये 14,00,000/- (केवल चौदह लाख रुपये) का मूल्यांकन था और, इसलिए, कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22सी के अनुसार, पी.एल.ए. के पास मामले पर विचार करने और निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, क्योंकि धारा 22 सी (1) के दूसरे प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पी.एल.ए. के अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाएं उन मामलों तक सीमित थीं, जहां विवाद में संपत्ति का मूल्य केवल रुपये 10,00,000/- (रुपए दस लाख मात्र) था।

(2) पी.एल.ए. कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22 सी (5) के अनुसार उस पर लगाए गए वैधानिक कर्तव्य को निभाने में विफल रही है, जिसके तहत गुण-दोष के आधार पर मामले पर निर्णय लेने से पहले सुलह कार्यवाही आयोजित करना उसका कर्तव्य था।

(3) प्रतिवादी संख्या 2 का दावा स्वीकार करने का हकदार नहीं था क्योंकि मृतक (बीमाधारक) ने बीमा बीमा लेते समय जानबूझकर अपनी शारीरिक बीमारी छुपाई थी, जो बाद में जांच के दौरान सामने आई और इसलिए, पी.एल.ए. का पुरस्कार टिकाऊ नहीं है।

13. यह न्यायालय वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागर द्वारा उठाए गए उपरोक्त तीन विवादों/मुद्दों से निपटने के लिए आगे बढ़ता है।

<u>मुद्दा/विवाद संख्या. 1:-</u>

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागर ने कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22 सी (1) से जुड़े दूसरे प्रावधान के संदर्भ में तर्क दिया है कि पी.एल.ए. के समक्ष किए गए दावे का मूल्य रु. 14,00,000/- (केवल चौदह लाख रुपये) था, जबकि पी.एल.ए. के अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाएँ प्रतिबंधित थीं और रुपये 10,00,000/- (केवल दस लाख रुपये) के दावों तक ही सीमित थीं और, इसलिए, विवादित आदेश पोषणीय नहीं है।

15. श्री नागर के, इस तर्क पर प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जेपी सिंह ने जोरदार तर्क दिया कि दो मुख्य कारणों से याचिकाकर्ता द्वारा उक्त विवाद को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। सबसे पहले, सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद इसे "सीपीसी" के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 21 के अनुसार, पी.एल.ए. के अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं पर ऐसी आपत्ति को जल्द से जल्द उपलब्ध अवसर पर अपने नीचे की अदालत के समक्ष उठाया जाना चाहिए, और एक बार जब इसे लिखित बयान में किसी दलील के माध्यम से या अन्यथा नहीं उठाया गया, तो इसे पहली बार रिट अदालत के समक्ष उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। दूसरे, कानून और न्याय मंत्रालय (न्याय विभाग) द्वारा जारी अधिसूचना संख्या एस.ओ. 803 (ई), दिनांक 20.03.2015 के अनुसार, आधिकारिक राजपत्र में उक्त अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से प्रभावी, पी.एल.ए. के अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमा को रुपये 10,00,000/- (केवल दस लाख) से रुपये

1,00,00,000/- (केवल एक करोड़) तक बढ़ा दी गई थी।

16. त्वरित संदर्भ के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 और विधि एवं न्याय मंत्रालय (न्याय विभाग) द्वारा जारी अधिसूचना संख्या एसओ 803(ई), दिनांक 20.03.2015 को क्रमशः यहां-नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

> "21. अधिकार क्षेत्र पर आपत्तियां.- (1) किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा मुकदमा करने के स्थान पर कोई आपत्ति तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि ऐसी आपत्ति जल्द से जल्द संभव अवसर पर प्रथम दृष्टया न्यायालय में नहीं गई हो और सभी मामलों में जहां मुद्दे ऐसे निपटान पर या उससे पहले निपटाए जाते हैं, और जब तक कि न्याय की परिणामी विफलता न हो।
>
> (2) अपने अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं के संदर्भ में न्यायालय की सक्षमता के बारे में कोई आपत्ति किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि ऐसी आपत्ति को प्रथम दृष्टया न्यायालय में यथाशीघ्र संभव अवसर पर लिया गया था, और, उन सभी मामलों में जहां मुद्दों का निपटारा किया जाता है, ऐसे निपटान पर या उससे पहले, और जब तक कि न्याय की परिणामी विफलता न हो।
>
> (3) इस पर कोई आपत्ति नही है अपने अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के संदर्भ में निष्पादन न्यायालय की क्षमता को किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमति दी जाएगी, जब तक कि ऐसी आपत्ति जल्द से जल्द संभव अवसर पर निष्पादन न्यायालय में नहीं ली गई हो, जब तक कि न्याय की परिणामी विफलता न हुई हो।

****

<u>अधिसूचना संख्या एस.ओ. 803(ई), दिनांक 20.03.2015</u>

> विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 22-सी की उप- धारा (1) के तीसरे प्रावधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और भारत सरकार, कानून और न्याय मंत्रालय के अधिक्रमण में (कानूनी मामलों का विभाग), अधिसूचना संख्या एसओ 2083 (ई), दिनांक 15 सितंबर, 2011, भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग II, खंड 3, उप-खंड (i), दिनांक 15 सितंबर, 2011 में प्रकाशित, केंद्र सरकार, केंद्रीय प्राधिकरण के परामर्श से, **<u>आधिकारिक राजपत्र में इस अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से स्थायी लोक अदालत के अधिकार क्षेत्र को निर्धारित करने के उद्देश्य से विवादित संपत्ति के मूल्य की सीमा को "एक करोड़ रुपये" तक बढ़ाती है।</u>**

17. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागर ने तर्क दिया है कि चूंकि कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की

धारा 22-डी के आधार पर, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 लागू नहीं होगी। उक्त अधिनियम के तहत कार्यवाही के लिए, श्री जेपी सिंह का यह तर्क कि अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं पर आपत्ति, यदि प्रारंभिक चरण में नहीं उठाई गई, तो माफ कर दी गई मानी जाएगी, स्वीकार्य नहीं है।

18. श्री नागर के उक्त तर्क से निपटने से पहले, कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22-डी का संदर्भ लेना उचित होगा, जिसे तत्काल संदर्भ के लिए निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> **"22-डी। स्थायी लोक अदालत की प्रक्रिया.-** स्थायी लोक अदालत, इस अधिनियम के तहत सुलह कार्यवाही का संचालन करते समय या योग्यता के आधार पर विवाद का निर्णय करते समय, प्राकृतिक न्याय, निष्पक्षता, निष्पक्षता, समानता और न्याय के अन्य सिद्धांतों के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होगी, और नहीं होगी। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) द्वारा बाध्य।"

19. धारा 22-डी का शीर्षक **"स्थायी लोक अदालत की प्रक्रिया"** के बारे में बताता है। अधिनियम की धारा 22 डी में प्रयुक्त शब्दों का आवश्यक निहितार्थ यह है कि स्थायी लोक अदालत मामले से निपटने के दौरान अपनी प्रक्रिया अपनाएगी और सिविल प्रक्रिया संहिता में निहित मुकदमों के परीक्षण के लिए निर्धारित प्रक्रिया नहीं लागू होगी।

20. हालाँकि, यह उल्लेख करना उचित होगा कि **सिविल प्रक्रिया संहिता को यद्यपि प्रक्रिया का नाम दिया गया है, यह दो भागों में विभाजित है, अर्थात मूल भाग और प्रक्रियात्मक भाग**। सिविल प्रक्रिया संहिता के मूल भाग में धारा 1 से 158 शामिल हैं, जबकि प्रक्रियात्मक भाग आदेश 1 से आदेश एलआई तक फैला हुआ है। अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं के संबंध में आपत्तियां लेने पर रोक/चरण के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21, जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता के "मूल भाग" में जगह पाती है, न कि "प्रक्रियात्मक भाग" में। ". कहने का तात्पर्य यह है कि कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22-डी किसी भी मामले पर विचार करते समय नागरिक प्रक्रिया संहिता या उनकी आत्मा के मूल प्रावधानों की प्रयोज्यता या महत्व को बाहर नहीं करती है, जिसकी सुनवाई स्थायी लोक अदालत द्वारा की जाती है।

21. अन्यथा भी, अधिनियम की धारा 22-डी स्वयं कहती है कि स्थायी लोक अदालत प्राकृतिक न्याय, विषय निष्ठता, निष्पक्षता, समानता और न्याय के अन्य सिद्धांतों के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होगी। इस न्यायालय की राय में, अधिनियम की धारा 22-डी में प्रयुक्त शब्द **"प्राकृतिक न्याय, विषय निष्ठता, निष्पक्षता और समानता"** का अर्थ यह होगा कि स्थायी लोक अदालत के समक्ष मुकदमे में किसी भी पक्ष द्वारा जो भी आपत्तियां की जाती हैं, प्रतिद्वंद्वी पार्टियों को इसके बारे में पता होना चाहिए और उचित स्तर पर इसका खंडन करने का अवसर मिलना चाहिए। इसका

मतलब यह है कि किसी पक्ष को आश्चर्यचकित नहीं किया जा सकता है और आपत्तियों, तथ्यात्मक या कानूनी, को पहले अदालत के समक्ष मुकदमे के दौरान पूरा किया जाना चाहिए।

22. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि पी.एल.ए. के अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं की कथित कमी की दलील न तो लिखित बयान में ली गई थी और न ही इसे याचिकाकर्ता की ओर से उठाया गया था, जो पी.एल.ए. के समक्ष कार्यवाही में प्रतिवादी था। इसलिए, इस तरह की चूक का प्रभाव याचिकाकर्ता के मामले के लिए घातक होगा, भले ही हम 20 मार्च, 2015 की बाद की अधिसूचना को नजरअंदाज कर दें, जो कि उसी तारीख को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित हुई थी, जैसा कि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है। इसका प्रभाव यह है कि संदर्भ में मामला उक्त अधिसूचना जारी होने से पहले स्थापित किया गया था, और इसलिए, कार्यवाही शुरू होने की तारीख पर, पी.एल.ए. मामला दर्ज करने के लिए भी सक्षम नहीं था।

23. सुप्रीम कोर्ट ने **ओम प्रकाश अग्रवाल (मृतक के बाद से) के मामले में एलआर और अन्य बनाम विशन दयाल राजपूत और अन्य के मामले में, 2019 (14) एससीसी 526** में रिपोर्ट की, कार्यवाही पर सी.पी.सी. की धारा 21 के प्रभाव के बारे में विस्तार से बताया है। इस संबंध में उठाई जाने वाली आपत्ति के चरण के संदर्भ में। उक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 57, 58 और 59 पुनरुत्पादन के लायक हैं और इसलिए, निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

> "57. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 में अंतर्निहित नीति यह है कि जब मामले की सुनवाई किसी अदालत द्वारा गुण-दोष के आधार पर की जाती है और निर्णय दिया जाता है, तो इसे केवल तकनीकी आधार पर उलटने के लिए उत्तरदायी नहीं होना चाहिए, जब तक कि इसका परिणाम विफलता न हो। न्याय की। धारा 21 के समान प्रावधान सूट वैल्यूएशन अधिनियम, 1887 की धारा 11 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 में भी निहित हैं। इस न्यायालय के पास धारा 21, सिविल प्रक्रिया संहिता के पीछे के सिद्धांत पर विचार करने का अवसर था। किरण सिंह बनाम चमन पासवान एआईआर 1954 एससी 340 में सूट वैल्यूएशन एक्ट, 1887 की धारा 11। निर्णय के पैरा 7 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया था: (एआईआर पृष्ठ 342)
>
> > "7.... धारा 21 और अंतर्निहित नीति सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 और सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 एक ही है, अर्थात्, जब किसी मामले की सुनवाई किसी अदालत द्वारा गुण-दोष और दिए गए निर्णय के आधार पर की गई हो, तो इसे केवल तकनीकी आधार पर उलटने के लिए उत्तरदायी नहीं होना चाहिए। जब तक इसके

परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो, और विधायिका की नीति क्षेत्रीय और आर्थिक दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकार पर आपत्तियों को तकनीकी मानने की रही है और अपीलीय अदालत द्वारा विचार करने के लिए खुला नहीं है, जब तक कि योग्यता पर कोई पूर्वाग्रह न हो। इसलिए, अपीलकर्ताओं का यह तर्क कि जिला न्यायालय, मोंघिर के आदेश और निर्णय को अमान्य माना जाना चाहिए, सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के तहत कायम नहीं रखा जा सकता है।"

58. एक और निवेदन जो उक्त में उठाया गया था इस न्यायालय द्वारा अपील पर विचार किया गया था। अधीनस्थ न्यायालय में मुकदमा दायर करने वाले अपीलकर्ता की एक दलील यह थी कि संशोधित मूल्यांकन के अनुसार, अधीनस्थ न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ अपील जिला न्यायालय के समक्ष नहीं बल्कि जिला न्यायालय के समक्ष की जा सकती है। उच्च न्यायालय, इसलिए, अपील में जिला न्यायाधीश के फैसले को नजरअंदाज किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय में अपील को पहली अपील के रूप में माना जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता को उपरोक्त तरीके से पूर्वाग्रहित किया गया है। उपरोक्त दलीलों को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने कहा पैरा 11 और 12 में निम्नलिखित: (किरण सिंह मामला, एआईआर पृष्ठ 343)

"11....यह तर्क एक गलत धारणा पर आगे बढ़ता है। अपील का अधिकार निस्संदेह एक वास्तविक अधिकार है, और इसका अभाव एक गंभीर पूर्वाग्रह है; लेकिन अपीलकर्ताओं को अधीनस्थ के फैसले के खिलाफ अपील के अधिकार से वंचित नहीं किया गया है न्यायालय। कानून उस फैसले के खिलाफ जिला न्यायालय में अपील का प्रावधान करता है, और वादी ने उस अधिकार का प्रयोग किया है। वास्तव में, कम मूल्यांकन ने अपीलकर्ताओं के अपील के अधिकार को बढ़ा दिया है, क्योंकि जबकि उनके पास केवल एक अपील का अधिकार होता और उच्च न्यायालय में यदि मुकदमे का सही मूल्यांकन किया गया था, तो कम मूल्यांकन के कारण उन्हें दो अपीलों का अधिकार प्राप्त हुआ, एक जिला न्यायालय में और दूसरा उच्च न्यायालय में। अपीलकर्ताओं की शिकायत वास्तव में यह नहीं है कि उन्हें वंचित कर दिया गया था अधीनस्थ न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील का अधिकार, जो कि नहीं है, लेकिन उस फैसले के खिलाफ तथ्यों पर अपील जिला न्यायालय द्वारा सुनी गई थी, न कि उच्च न्यायालय द्वारा। इसलिए यह आपत्ति इस बात के बराबर है कि ए अपील के मंच में परिवर्तन अपने आप में सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के प्रयोजन के लिए पूर्वाग्रह का मामला है।

12. इसलिए, सवाल यह है कि क्या किसी अदालत द्वारा अपील पर पारित डिक्री, जिसके पास केवल कम मूल्यांकन के कारण उस पर

विचार करने का अधिकार क्षेत्र था, को इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि सही मूल्यांकन पर वह अदालत अपील पर विचार करने के लिए सक्षम नहीं थी? तीन उच्च न्यायालयों ने पूर्ण पीठों में मामले पर विचार किया है, और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि केवल फोरम का परिवर्तन सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के अर्थ में पूर्वाग्रह नहीं है। वीडियो केलु अचान बनाम चेरिया पार्वती नेथियार 1923 एससीसी ऑनलाइन मैड 356, मूलचंद मोतीलाल बनाम राम किशन 1933 एससीसी ऑनलाइन सभी 2, और रामदेव बनाम राज नारायण 1948 एससीसी ऑनलाइन पैट 91। हमारे निर्णय में, इन निर्णयों में व्यक्त की गई राय सही है।

59. उपरोक्त सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा हीरा लाल पाटनी बनाम काली नाथ एआईआर 1962 एससी 199 और बहरीन पेट्रोलियम कंपनी लिमिटेड बनाम पीजे पप्पू एआईआर 1966 एससी 634 में दोहराया गया है।

24. सुप्रीम कोर्ट ने **सुभाष महादेवसा हबीब बनाम नेमासा अंबासा धर्मदास (मृत) एलआर द्वारा और अन्य, 2007 में रिपोर्ट किए गए (13) एससीसी 650** के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है। पैराग्राफ संख्या 34 का संदर्भ दिया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"34। यह ध्यान दिया जा सकता है कि धारा 21 में यह प्रावधान है कि अपील या पुनरीक्षण अदालत द्वारा भी मुकदमा दायर करने पर कोई आपत्ति तब तक स्वीकार नहीं की जा सकती जब तक कि ऐसी आपत्ति को जल्द से जल्द संभव अवसर पर प्रथम दृष्टया अदालत में नहीं लिया गया हो और जब तक ऐसा न किया गया हो। न्याय की परिणामी विफलता। 1976 में, मौजूदा धारा को उप-धारा (1) के रूप में क्रमांकित किया गया था और उप-धारा (2) को आर्थिक क्षेत्राधिकार से संबंधित जोड़ा गया था, ताकि आर्थिक क्षेत्र के संदर्भ में अदालत की क्षमता के बारे में कोई आपत्ति न हो। इसके अधिकार क्षेत्र की सीमाओं को किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण अदालत द्वारा अनुमति दी जाएगी जब तक कि ऐसी आपत्ति को जल्द से जल्द संभव अवसर पर पहली बार में नहीं लिया गया हो और जब तक कि न्याय की विफलता न हुई हो। धारा 21 ए भी 1976 में 1.2.1977 से प्रभावी रूप से पेश की गई थी जिसमें मुक़दमे के स्थान पर आपत्ति के आधार पर किसी भी आधार पर समान पक्षों के बीच पूर्व मुक़दमे में पारित डिक्री की वैधता को चुनौती देने वाले किसी भी मुक़दमे की स्थापना पर रोक लगा दी गई है। 1976 के अधिनियम 104 द्वारा संशोधन केवल 1.2.1977 को लागू हुआ जब 1972 का ओएस संख्या 4 लंबित था। संशोधन अधिनियम, 1976 की धारा 97(1)(सी) के आधार पर, उक्त मुकदमे की सुनवाई और निपटान किया जाना था जैसे कि संहिता की धारा 21 में उप-धारा (2) जोड़कर संशोधन नहीं किया गया था। निःसंदेह, धारा 97(3) के आधार पर यदि धारा 21ए को लागू किया जाना था, यदि यह लागू है। लेकिन फिर, धारा 21ए अपने शब्दों में केवल उस चीज़ को शामिल करती है जिसे वह मुकदमा करने के स्थान पर दोष कहती है।"

अहमदाबाद

25. **आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के एक अन्य फैसले का संदर्भ 1993 में रिपोर्ट की गई (2) एससीसी 130, न्याय की **परिणामी विफलता की अवधारणा** के संदर्भ में भी बनाई जा सकती है।

26. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **अप्पट कृष्णा पोडुवल बनाम लक्ष्मी नाथियार और अन्य, एआईआर (37) 1950 मद्रास 751** में रिपोर्ट की गई के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है। जिसमें इसे निम्नानुसार रखा गया था: -

"8. .....विद्वान जिला मुंसिफ ने मामले के इस पहलू को विस्तार से निपटाया है और मैं इसे दोहराना जरूरी नहीं समझता **कुमारन नांबियार बनाम रामुन्नी**, 1988-1 एमडीजे 193: (एआईआर (25) 1998 मद 257) में निम्नलिखित टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए उन्होंने विवाद को खारिज करने के लिए जो कारण दिए हैं:

"प्रादेशिक या आर्थिक क्षेत्राधिकार की कमी को अक्षमता के रूप में मानना, ऊपर उल्लिखित दो वैधानिक प्रावधानों (एस. 11, सुइटा वैल्यूएशन एक्ट और एस. 21, सिविल पी.सी.) के अंतर्निहित विचार के साथ असंगत लगता है। ये धाराएं प्रदान करती हैं भले ही आपत्ति को माफ नहीं किया गया था, यानी, प्रथम दृष्टया न्यायालय में लिया गया था, एक अतिरिक्त तत्व की उपस्थिति आवश्यक है, अर्थात **न्याय की परिणामी विफलता हुई है**। सिद्धांत जो उन्हें प्रतीत होता है तात्पर्य यह है कि अधिकार क्षेत्र के ये दोष चरित्र में मौलिक नहीं हैं और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अनियमितताओं से अधिक कुछ नहीं हैं।"

9. इस मामले में मुझे यह मानने का कोई औचित्य नजर नहीं आता कि न्याय में विफलता हुई है, क्योंकि दावा तीनों थवजाहियों के लिए देय पूरी राशि के संबंध में नहीं था, बल्कि केवल दो थावजहियों के संबंध में था। वादी और मुझे इस बिंदु में बहुत अधिक तथ्य नहीं दिखते हैं और विशेष रूप से तब जब याचिकाकर्ता ने मुकदमे के समय इस बिंदु को उठाया था लेकिन अपील में इसे नहीं लिया था।"

27. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने भी भरोसा जताया है **किरण सिंह और अन्य बनाम चमन पासवान और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर, AIR 1954 SC 340 में बताया गया कि-

.....

"**क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार** से संबंधित आपत्तियों के संदर्भ में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 अधिनियमित करती है कि अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा मुकदमा करने के स्थान पर कोई आपत्ति की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, जब तक कि **परिणामस्वरूप न्याय की विफलता** न हो।

यह वही सिद्धांत है जिसे आर्थिक क्षेत्राधिकार के संदर्भ में मुकदमा मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 में अपनाया गया है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 और 99 और सूट

मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 में अंतर्निहित नीति एक ही है, अर्थात्, जब किसी मामले की सुनवाई किसी न्यायालय द्वारा गुण-दोष और दिए गए निर्णय के आधार पर की गई हो, तो उसे उत्तरदायी नहीं होना चाहिए। विशुद्ध रूप से तकनीकी आधार पर उलट दिया गया है, जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो, और **विधायिका की नीति क्षेत्रीय और आर्थिक दोनों क्षेत्राधिकारों पर आपत्तियों को तकनीकी मानने की रही है और अपीलीय न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए खुला नहीं है, जब तक कि कोई पूर्वाग्रह न हो। योग्यता के आधार पर।** इसलिए, अपीलकर्ताओं का यह तर्क कि जिला न्यायालय, मोंघिर की डिक्री और निर्णय को अमान्य माना जाना चाहिए, सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के तहत कायम नहीं रखा जा सकता है।"

28. **कूपिलन उनीन की बेटी पथुम्मा और अन्य बनाम उनी के बेटे कुंतलन कुट्टी (मृत) एलआर और अन्य द्वारा** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर और भी भरोसा किया गया है, जैसा कि एआईआर 1981 एससी 1683 में बताया गया है और साथ ही फैसले पर भी भरोसा किया गया है। **हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल लिमिटेड और एक अन्य** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने एआईआर 2005 एससी 4446 में रिपोर्ट दी, जिसमें भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है। उन्होंने एआईआर 1996 उड़ीसा 172 में रिपोर्ट किए गए **सुरेंद्र महंती बनाम घासीराम महंती और अन्य** के मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया है, जिसमें न्याय के गर्भपात के आलोक में और उच्च न्यायालय के फैसले पर भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया है। हिमाचल प्रदेश में **अजय सिंह (लार्स द्वारा मृतक) और आदि बनाम टिक्का बृजेंद्र सिंह और अन्य आदि** के मामले में एआईआर 2007 हिमाचल प्रदेश 52 में रिपोर्ट की गई, जहां कानून का वही प्रस्ताव दोहराया गया है।

29. इस संबंध में, **"छूट"** की अवधारणा को भी दोहराया जाना चाहिए जो **<u>एक ज्ञात कानूनी अधिकार का जानबूझकर त्याग है।</u>** वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के पास मामला दर्ज होने के तुरंत बाद या उसके बाद भी क्षेत्राधिकार की आर्थिक सीमाओं के संबंध में आपत्तियां उठाने का कानूनी अधिकार था। हालाँकि, सबसे अच्छे से ज्ञात कारणों से, कथित आपत्ति को स्वीकार नहीं किया गया था, और इसलिए, इसे माफ कर दिया गया माना जाएगा।

30. 2022 (2) एससीसी 221 में रिपोर्ट किए गए **एआरसीई पॉलिमर प्राइवेट लिमिटेड बनाम अल्फिन फार्मास्यूटिकल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का संदर्भ, पैराग्राफ संख्या 16 और 17 में दिया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"16 छूट एक ज्ञात अधिकार का जानबूझकर त्याग है। छूट तब लागू होती है जब कोई पक्ष भौतिक तथ्यों को जानता है और उस मामले में कानूनी अधिकारों से परिचित होता है, और फिर भी कुछ विचार के लिए जानबूझकर मौजूदा कानूनी अधिकार, लाभ, लाभ, दावा या विशेषाधिकार को त्याग देता है। छूट संविदात्मक हो सकती है या किसी समझौते पर

विचार करते हुए व्यक्त आचरण द्वारा हो सकती है। हालाँकि, एक वैधानिक अधिकार को निहित आचरण द्वारा भी माफ किया जा सकता है, जैसे, एक अनुकूल निर्णय का मौका लेने की इच्छा से। तथ्य यह है कि दूसरे पक्ष ने कार्रवाई की है यह, पर्याप्त विचार है।

17. यह सही है कि छूट एक जानबूझकर त्याग है, इसका अनुमान केवल कार्रवाई करने में विफलता से नहीं लगाया जा सकता है, लेकिन वर्तमान मामला SARFAESI अधिनियम की धारा 13 (2) और (4) के तहत नोटिस के बाद बार-बार सकारात्मक कार्य करने का है। उधारकर्ता ने न केवल बैंक की कार्रवाई पर सवाल उठाया या आपत्ति नहीं की, बल्कि स्पष्ट और जानबूझकर आचरण द्वारा बैंक से अपनी स्थिति से समझौता करने और अनुबंध की शर्तों को बदलने के लिए कहा। उधारकर्ता ने ऋणों के पुनर्गठन के लिए बार-बार अनुरोध पत्र लिखे, जिन प्रार्थनाओं पर बैंक ने अनुग्रह, समय और अवसर देकर विचार किया। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और जागरूक उधारकर्ता ने वैधानिक दावे को त्यागने का फैसला किया और इसका मौका लिया और यहां तक कि अनुकूल निर्णय भी प्राप्त किए। भले ही हम यह मान लें कि उधारकर्ता ने उपाय माफ नहीं किया है, उसके आचरण ने बैंक को ऐसी स्थिति में डाल दिया है जहां उन्होंने समय खो दिया है, और देरी और देरी के कारण नुकसान उठाना पड़ा है, जो पहलू महत्वपूर्ण हैं। विषय संपत्ति पर कार्रवाई में एक वर्ष से अधिक की देरी हुई क्योंकि उधारकर्ता के कहने पर, बैंक ने उन्हें खाते को नियमित करने के लिए एक लंबी अवधि दी थी। एक बार तीसरे पक्ष के अधिकार बन जाने के बाद उधारकर्ता के आचरण को नजरअंदाज करना बैंक के लिए उचित नहीं होगा। इस पृष्ठभूमि में, साक्ष्य के एक नियम के रूप में न्यायसंगत रोक का सिद्धांत उधारकर्ता को उल्लंघन की शिकायत करने से रोकता है।"

31. श्री जेपी सिंह ने **कृष्ण बहादुर बनाम मेसर्स पूर्णा थ्रेटर और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है, एआईआर 2004 एससी 4282 में रिपोर्ट किए गए, पैराग्राफ संख्या 8 और 9 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"8. यद्यपि छूट का सिद्धांत विबंधन के सिद्धांत के समान है; हालाँकि, दोनों के बीच अंतर यह है कि रोक कार्रवाई का कारण नहीं है; यह साक्ष्य का नियम है; छूट संविदात्मक है और कार्रवाई का कारण बन सकती है; यह पार्टियों के बीच एक समझौता है और एक पार्टी अपने अधिकारों के बारे में पूरी तरह से जानते हुए भी विचार के अधिकार का दावा नहीं करने पर सहमत हुई है।

9. किसी अधिकार को उस पक्ष द्वारा छोड़ा जा सकता है जिसके लाभ के लिए किसी क़ानून द्वारा कुछ आवश्यकताएं या शर्तें इस शर्त के अधीन प्रदान की गई थीं कि इसमें कोई सार्वजनिक हित शामिल नहीं है। जब भी छूट का अनुरोध किया जाता है तो यह अनुरोध करने वाले पक्ष पर निर्भर करता है कि वह यह दिखाए कि किसी समझौते पर विचार करते हुए अधिकार को माफ करने वाला एक समझौता अस्तित्व में आया है। हालाँकि, वैधानिक

अधिकार को उसके आचरण से भी माफ किया जा सकता है।"

32. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स पावर कंट्रोल एप्लायंसेज और अन्य बनाम सुमीत मशीन्स प्राइवेट लिमिटेड** 1994 (2) एससीसी 448 में रिपोर्ट की गई के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी भरोसा किया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 26 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"26. जब कोई अन्य व्यक्ति अधिकारों पर हमला कर रहा है और उस पर पैसा खर्च कर रहा है, तो सहमति बनी रहती है। यह एक व्यापार चिह्न, व्यापार नाम आदि में विशेष अधिकारों के दावे के साथ असंगत आचरण का एक तरीका है। इसका तात्पर्य सकारात्मक कार्यों से है; केवल चुप्पी से नहीं या निष्क्रियता जैसे कि लैचेस में शामिल है। हरकोर्ट बनाम व्हाइट (1860)28 बीव 303 में, सीनियर जॉन रोमिली ने कहा: "मात्र लापरवाही और सहमति में अंतर करना महत्वपूर्ण है।" इसलिए, सहमति देरी का एक पहलू है। यदि वादी जानबूझकर खड़ा रहा और प्रतिवादियों को एक महत्वपूर्ण व्यापार का निर्माण करने दिया जब तक कि इसे कुचलना आवश्यक नहीं हो गया, तब वादी को उनकी सहमति से रोक दिया जाएगा। यदि उल्लंघन में सहमति सहमति के बराबर है, तो यह एक पूर्ण बचाव होगा जैसा कि था मूसन (जेजी) एंड कंपनी बनाम बोहेम (1884) 26 अध्याय डी 406 में निर्धारित किया गया है। स्वीकृति ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रतिवादी में एक नया अधिकार बनाने के लिए पर्याप्त लाइसेंस का अनुमान लगाया जा सके जैसा कि रॉजर्स में निर्धारित किया गया था। वी. नोविल, (1847) 2 डी जीएम एंड जी 614।"

33. श्री जेपी सिंह ने यह तर्क देने के अलावा कि नीचे की अदालत के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं पर आपत्ति नहीं उठाई गई थी, प्रस्तुत किया कि भले ही, कार्यवाही शुरू करने के समय, पी.एल.ए., वित्तीय सीमाएँ सीमित थीं रु. 10,00,000/- मात्र (दस लाख रूपये मात्र) तक का दावा करने पर न्याय में कोई परिणामी विफलता नहीं होगी। पी.एल.ए. द्वारा अंततः 14,00,000/- (चौदह लाख रुपये) की अनुमति दी गई है, विशेष रूप से, जब वित्तीय सीमा पहले ही बढ़ाकर रु. 1,00,00,000/- (एक करोड़ रुपये) दिनांक 20 मार्च, 2015 की अधिसूचना के तहत कर दी गई थी।

34. मैं मामले के इस पहलू से निपटता हूं और पाता हूं कि जहां तक 20 मार्च, 2015 की अधिसूचना के प्रभाव का सवाल है, स्वीकार्य रूप से, संदर्भ में मामला पी.एल.ए. द्वारा वर्ष 2016 में तय किया गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि **इस पर विचार किया गया था और उस समय मामले में शामिल तथ्यों और परिस्थितियों पर न्यायिक दिमाग लगाया गया था जब अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाएं पहले ही रुपये 10,00,000/- (दस लाख रूपये) से 1,00,00,000/- रूपये (एक करोड़ रूपये) तक बढ़ा दी गई थीं।** इसलिए, अपने निर्णय की तिथि पर, पी.एल.ए. के पास प्रतिवादी संख्या 2 के दावे पर निर्णय लेने की वित्तीय क्षमता थी, जिसे स्वीकार कर लिया गया है और लागू आदेश के तहत अनुमति दी गई है।

35. मुख्य संपादक ब्रायन ए गार्नर द्वारा ब्लैक लॉ डिक्शनरी (7वां संस्करण) के अनुसार, **"एंटरटेन"** शब्द को **"मन में रखना या विचार करना, न्यायिक विचार देना"** के रूप में परिभाषित किया गया है। न्यू लेक्सिकन वेबस्टर डिक्शनरी ऑफ द इंग्लिश लैंग्वेज ने **"एंटरटेन"** शब्द को **"विचार या विचार देना" और "किसी के दिमाग में रखना"** के रूप में परिभाषित किया है। चैंबर्स डिक्शनरी (10वां संस्करण) **"एंटरटेन"** शब्द की व्याख्या **"मन में रखना या धारण करना" और "प्राप्त करना और ध्यान में रखना"** के रूप में करती है।

36. अभिव्यक्ति **"संस्थान"** अभिव्यक्ति **"एंटरटेन"** का पर्याय नहीं है, सुप्रीम कोर्ट ने 1998 में रिपोर्ट किए गए **मार्टिन और हैरिस लिमिटेड बनाम छठे अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य** के मामले में (1) एससीसी 732 ने "एंटरटेन" अभिव्यक्ति की व्याख्या की थी यूपी शहरी भवन (किराए पर देने, किराए पर देने और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21 (1) (ए) का अर्थ है योग्यता के आधार पर निर्णय के उद्देश्य से विचार के लिए जमीन का विचारण करना, न कि पहले किसी भी स्तर पर।

37. एआईआर 2016 कलकत्ता 213 में रिपोर्ट किए गए **तूफान चटर्जी बनाम रंगन धर** के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने "एंटरटेन" शब्द का अर्थ विस्तार से बताया है। 2022 (1) एससीसी 712 में रिपोर्ट किए गए **आर्सेलर मित्तल निप्पॉन स्टील इंडिया लिमिटेड बनाम एस्सार बल्क टर्मिनल लिमिटेड** के मामले में **तुफ़ान चटर्जी (सुप्रा)** के फैसले पर शीर्ष अदालत ने हाल ही में विचार किया था पैराग्राफ संख्या 38 जिसका मूल्य पुनरुत्पादन है, जो इस प्रकार है:

"38. श्री खंबाटा ने ब्लैक लॉ डिक्शनरी (ब्रायन ए. गार्नर, 8वां संस्करण, 2004) में "एंटरटेन" के अर्थ का उल्लेख किया है, जिसका अर्थ "ध्यान में रखना या "न्यायिक विचार देना" है। को"। श्री खंबाटा ने **तुफान चटर्जी बनाम रंगन धर,** 2016 एससीसी ऑनलाइन कैल 483 में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले का भी हवाला दिया, जो हम में से एक (न्यायाधीश इंदिरा बनर्जी) द्वारा लिखा गया था। तूफ़ान चटर्जी (सुप्रा) में, **"एंटरटेन"** शब्द की व्याख्या "अंतिम चरण में भी, योग्यता के आधार पर एक आवेदन पर विचार करना" के रूप में की गई थी। श्री खंबाटा ने तर्क दिया कि गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले और आदेश में **"एंटरटेन"** शब्द की व्याख्या तुफान चटर्जी (सुप्रा) में अभिव्यक्ति की व्याख्या के अनुरूप है।

38. एक बार जब यह न्यायालय पाता है कि याचिका क्षेत्राधिकार की आर्थिक सीमाओं को न तो लिखित प्रस्तुतिकरण में लिया गया था और न ही संदर्भ में मामले की कार्यवाही के दौरान पी.एल.ए. के समक्ष तर्क दिया गया था, यह न्यायालय वर्तमान रिट याचिका में पहली बार इसे उठाने की अनुमति नहीं दे सकता है। अलग होता, यदि मुद्दा पी.एल.ए. के "क्षेत्राधिकार की अंतर्निहित कमी" के संबंध में होता, न कि इसकी आर्थिक सीमाओं के संबंध में, तो, पिछले मामले में, डिक्री/निर्णय/अवार्ड

अधिकार क्षेत्र के बिना हो गया होता, जो कि है ऐसे मामले में स्थिति नहीं जहां क्षेत्राधिकार में कठिनाई आर्थिक सीमाओं से सह-संबंधित है।

39. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि किसी भी मामले में, जिस तारीख पर पी.एल.ए. द्वारा विवादित निर्णय और पुरस्कार पारित किया गया था, न्यायालय इस पर निर्णय देने के लिए अपनी शक्ति, सक्षमता और अधिकार क्षेत्र की वित्तीय/आर्थिक सीमाओं के भीतर था, और इसलिए, श्री नागर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे संख्या 1 पर तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और इसे खारिज कर दिया गया है।

<u>मुद्दा/विवाद संख्या. 2:-</u>

40. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे. नागर ने जोरदार तर्क दिया है कि कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22-सी (5), (6) और (7) के तहत सुलह कार्यवाही आयोजित करने का कर्तव्य पी.एल.ए. पर डाला गया है। पी.एल.ए. द्वारा इसे टाला गया है, क्योंकि मामले पर अंतिम निर्णय लेने से पहले कोई सुलह कार्यवाही नहीं की गई थी। अपनी दलीलों के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भरोसा जताया है:

- **बार काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम यूनियन ऑफ इंडिया,** 2012 (8) एससीसी 243
- **मध्य प्रदेश राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरण बनाम प्रतीक जैन और अन्य,** 2014(10) एससीसी 690
- **इंटर ग्लोब एविएशन लिमिटेड बनाम एन. सच्चिदानंद,** 2011 (7) एससीसी 463
- **भारतीय स्टेट बैंक, धनबाद बनाम झारखंड राज्य और अन्य,** 2009(2) एआईआर झार आर 970
- **मिठूलाल नायक बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम,** एआईआर 1962 सुप्रीम कोर्ट 814;
- **श्रीमती कृष्णा वंती पुरी बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम, मंडल अधिकारी, नई दिल्ली और अन्य,** एआईआर 1975 दिल्ली 19;
- **केनरा बैंक बनाम जीएस जयारामा,** एयरऑनलाइन 2022 एससी 835;
- **भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम सैयद जैगम अली और अन्य,** (2015 की रिट-सी संख्या 39879 पर 21.07.2015 को निर्णय लिया गया);
- **भारतीय जीवन बीमा निगम (एल.आई.सी.) और अन्य बनाम स्थायी लोक अदालत और अन्य,** 2018 एडीजे ऑनलाइन 0484;
- **नितिन कुमार बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और 3 अन्य** (2013 की रिट सी संख्या 28999 पर 16.12.2021 को निर्णय लिया गया);

41. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जेपी सिंह ने तर्क दिया है कि पी.एल.ए. ने याचिकाकर्ता द्वारा अपने

लिखित बयान में उठाए गए रुख को ध्यान में रखा है कि शुरू से ही प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने अपना इरादा व्यक्त किया था स्पष्ट शब्दों और आचरण से मामले को सुलझाना नहीं है और सुलह के लिए किसी बातचीत के लिए नहीं बैठना है। लिखित बयान में निहित दलीलें कि **"महोदय हम विपक्षी को कोई सुलह नहीं करना है ।"** इस आशय से स्पष्ट हैं।

42. श्री जेपी सिंह ने पी.एल.ए. के समक्ष कार्यवाही में दायर जीवन बीमा निगम, क्षेत्रीय कार्यालय, गोरखपुर के प्रबंधक (कानून) राम कुमार सिंह के शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 23 का उल्लेख किया है, जिसमें शपथ पर कहा गया है:

"23- यह की मैं, राम कुमार सिंह बहलफ बयान करता हूं कि हम प्रतिवादीगण वादी से इस मामले मे किसी प्रकार का समझौता करने हेतु तैयार नहीं है"

43. श्री सिंह ने स्पष्ट का भी उल्लेख किया है पी.एल.ए. द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कहा गया है कि पी.एल.ए. द्वारा सुलह की कार्यवाही आयोजित की गई थी और पार्टियों को सुनवाई का पर्याप्त अवसर लगातार प्रदान किया गया था, लेकिन 10.04.2015 को, ऐसी सुलह कार्यवाही के दौरान, प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने लिखित रूप में, बयान में कहा गया है कि वह इस मामले में समझौता/सुलह नहीं करना चाहता था, और इसलिए, मामले की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर की गई। उक्त निष्कर्ष यहां निकाले गए हैं:

"जहा पर सुलह वार्ता के बिंदु पर भी पत्रावली का अवलोकन किया गया तो पाया गया कि पक्षकारों को पर्याप्त अवसर दिया जाता रहा, परन्तु विपक्षीगण द्वारा दिनांक 10.4.2015 को सुलह वार्ता के बिंदु पर भी विपक्षी ने लिखित में यह कथन किया है कि "महोदय हम विपक्षी को कोई सुलह नही करना है" इस प्रकार पक्षों के मध्य सुलह वार्ता असफल रही है और पक्षों ने गुण दोष के आधार पर उभय पक्षों को तर्क पूर्वक बहस सुनी गई तथा पत्रावली में उपलब्ध साक्ष्यों के अवलोकन करने के उपरांत स्थाई लोक अदालत की पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि..... ...."

44. इस न्यायालय ने वर्तमान रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 23 और 24 की सामग्री का भी अवलोकन किया है, जो इस प्रकार है:

"23. **कि वहां यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि भारतीय जीवन बीमा निगम कभी भी स्थायी लोक अदालत के माध्यम से विवाद के निपटारे या बातचीत के लिए सहमत हुआ**, जैसा कि कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत प्रदान किया गया है।

24. कि स्थायी लोक अदालत एक की भूमिका नहीं अपना सकती है मध्यस्थ या सिविल कोर्ट और दोनों पक्षों की सहमति के बिना मामले में आगे बढ़ें।"

45. पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट है कि न केवल दलीलों में, बल्कि एल.आई.सी. के अधिकारी के हलफनामे में भी, और पी.एल.ए. द्वारा आयोजित सुलह कार्यवाही के दौरान और इस रिट अदालत के समक्ष भी, का सुसंगत रुख प्रतिवादी-याचिकाकर्ता एल.आई.सी. का कहना है कि वह कभी भी इस विवाद को सुलझाना या बातचीत नहीं करना चाहती थी और उसने मामले को बातचीत के माध्यम से निपटाने की पी.एल.ए. की क्षमता पर भी विवाद किया।

46. सुलह के संबंध में पी.एल.ए. की भूमिका के बारे में श्री नागर द्वारा उद्धृत प्राधिकरणों में दिए गए प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं है, हालांकि, साथ ही, पूर्वोक्त प्राधिकरणों में निर्धारित अनुपात के आलोक में जांच की जानी चाहिए वर्तमान मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि, जहां इस न्यायालय ने पाया कि लिखित बयान, हलफनामा, सुलह कार्यवाही के दौरान एक और लिखित बयान और रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 23 और 24 में निहित दलीलें स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकालती हैं कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद प्रतिवादी के साथ-साथ पी.एल.ए. द्वारा, निगम और उसके अधिकारियों के सख्त और अड़ियल रवैये के कारण सुलह की कार्यवाही नहीं की गई।

47. इस संबंध में, कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22-सी की उपधारा (5) और (6) के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, जिन्हें तत्काल संदर्भ के लिए पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"(5) स्थायी लोक अदालत उप-धारा (4) के तहत **सुलह कार्यवाही के संचालन के दौरान, स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से विवाद के सौहार्दपूर्ण समाधान तक पहुंचने के प्रयास में पार्टियों की सहायता करेगा।**

(6) आवेदन के **प्रत्येक पक्ष का यह कर्तव्य होगा कि वह आवेदन से संबंधित विवाद के समाधान में स्थायी लोक अदालत के साथ** सद्भावनापूर्वक सहयोग करे और साक्ष्य और अन्य संबंधित दस्तावेज इसके समक्ष प्रस्तुत करने के लिए स्थायी लोक अदालत के निर्देश का अनुपालन करे।"

48. कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के उपरोक्त प्रावधानों के मद्देनजर, याचिकाकर्ता को, पी.एल.ए. पर दोष लगाने से पहले, यहां ऊपर उल्लिखित दलीलों और बयानों के आलोक में खुद का आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। अधिनियम की धारा 22 सी की उप-धारा (5) में प्रयुक्त शब्द **"सौहार्दपूर्ण समाधान तक पहुंचने के प्रयास में पार्टियों की सहायता करें"** और **"आवेदन के प्रत्येक पक्ष का यह कर्तव्य होगा कि वह सद्भावपूर्वक सहयोग करे।"** विवाद के समाधान में स्थायी लोक अदालत" विधायी मंशा को इस आशय से स्पष्ट करती है कि पी.एल.ए. द्वारा सुलह की कार्यवाही लिस (लंबित मुकदमा) के पक्षों के सहयोग से आयोजित की जा सकती है और यदि कोई पक्ष इसमें शामिल नहीं होने के लिए अड़ा है समझौते या सुलह की बात करते समय, पी.एल.ए. से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह मामले को सुलझाने के लिए किसी पार्टी को सचेत करेगा। इसलिए, ऐसी

परिस्थितियों में, पार्टियों द्वारा इस तरह के इनकार को दर्ज करने के बाद योग्यता के आधार पर पी.एल.ए. के फैसले को इस आधार पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है कि इसे "सुलह" के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए योग्यता के आधार पर पारित नहीं किया जाना चाहिए था।

49. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागर द्वारा उठाया गया मुद्दा/विवाद संख्या 2 भी खारिज कर दिया गया है।

<u>मुद्दा/विवाद संख्या. 3:-</u>

50. यह प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किए गए दावे के गुण और श्री नागर के तर्क के संबंध में है, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि बीमा संख्या 297170129 दिनांक 28.11.2011 को लेने के समय, मृतक (आश्वस्त) आंत्र ज्वर और मूत्र पथ के संक्रमण से पीड़ित था और उसका इलाज चित्रांश अस्पताल और सर्जिकल केयर सेंटर, शुद्धिपुर, शिवपुर, वाराणसी में किया जा रहा था, और इसलिए, एल.आई.सी. द्वारा बीमा की धारा 45 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए दावे को अस्वीकार करना उचित था। मान लीजिए कि मृतक ने अपनी शारीरिक बीमारी को छुपाया था, जो कि एक वास्तविक तथ्य था। उन्होंने तर्क दिया है कि बीमा 28.11.2011 को जारी की गई थी और बीमित व्यक्ति की मृत्यु 10.09.2012 को हुई थी और चूंकि मृत्यु बीमा जारी होने के दो साल के भीतर हुई थी, इसलिए दावे की अस्वीकृति कानून के अनुसार थी।

51. अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, श्री नागर ने एआईआर 1962 सुप्रीम कोर्ट 814 में रिपोर्ट किए गए **मिठूलाल नायक बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है, और रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 7 पर जोर दिया है। जो इस प्रकार है:

"7. हम फिलहाल सबूतों पर विचार करेंगे, लेकिन बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 को पहले पढ़ना फायदेमंद हो सकता है, क्योंकि यह प्रासंगिक समय पर थी। धारा, जहां तक यह प्रासंगिक है हमारे उद्देश्य के लिए, इन शर्तों में है:

"इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले की कोई भी जीवन बीमा बीमा इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के बाद लागू नहीं की जाएगी और इस अधिनियम के लागू होने के बाद लागू की गई कोई भी जीवन बीमा की बीमा दो वर्ष की समाप्ति के बाद नहीं की जाएगी जिस तारीख से यह प्रभावी हुआ था, उस तारीख से वर्षों तक, किसी बीमाकर्ता द्वारा इस आधार पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि बीमा के प्रस्ताव में या किसी चिकित्सा अधिकारी, या रेफरी, या बीमाधारक के मित्र की किसी रिपोर्ट में, या किसी में दिया गया बयान बीमा के मुद्दे की ओर ले जाने वाले अन्य दस्तावेज गलत या गलत थे, जब तक कि बीमाकर्ता यह नहीं दिखाता कि ऐसा बयान किसी महत्वपूर्ण मामले पर था या उन तथ्यों को छुपाया गया था जिनका खुलासा करना जरूरी था और यह बीमा धारक द्वारा धोखाधड़ी से बनाया गया था और

यह कि बीमा -धारक को इसे बनाते समय पता था कि बयान गलत था या उसने उन तथ्यों को दबा दिया था जिनका खुलासा करना आवश्यक था।

xxxxx x"

यह ध्यान दिया जाएगा कि धारा 45 का परिचालन भाग प्रभावी रूप से कहता है (जहाँ तक हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है) कि अधिनियम के लागू होने के बाद जीवन बीमा की कोई भी बीमा , दो साल की समाप्ति के बाद लागू नहीं होगी। जिस तारीख को यह प्रभावी हुआ था, उस पर बीमाकर्ता द्वारा इस आधार पर सवाल उठाया जा सकता है कि बीमा के प्रस्ताव में या किसी चिकित्सा अधिकारी, या रेफरी, या बीमाधारक के मित्र की किसी रिपोर्ट में, या किसी अन्य दस्तावेज़ में दिए गए बयान पर सवाल उठाया जा सकता है। नीति का मुद्दा गलत या गलत था; अनुभाग का दूसरा भाग एक परंतुक की प्रकृति में है जो एक अपवाद बनाता है। यह वास्तव में कहता है कि यदि बीमाकर्ता दिखाता है कि ऐसा बयान किसी महत्वपूर्ण मामले पर था या तथ्यों को छुपाया गया था, जिसका खुलासा करना आवश्यक था और यह बीमा धारक द्वारा धोखाधड़ी से किया गया था और बीमा धारक को इसे बनाते समय पता था कि बयान गलत था या उसने उन तथ्यों को दबा दिया था जिनका खुलासा करना जरूरी था, तो बीमाकर्ता ऐसे गलत या गलत बयान के परिणामस्वरूप लागू की गई बीमा पर सवाल उठा सकता है। हमारे सामने मौजूद मामले में बीमा 13 मार्च, 1945 को जारी की गई थी और इसे 15 जनवरी, 1945 से लागू होना था। बीमा राशि 15 जनवरी, 1968 के बाद या बीमाधारक की मृत्यु पर, यदि पहले हो, देय थी। प्रतिवादी कंपनी ने 10 अक्टूबर, 1947 को लिखे अपने पत्र द्वारा दावे को खारिज कर दिया। जाहिर है, इसलिए, बीमा लागू होने की तारीख से दो साल समाप्त हो चुके थे। हमारी स्पष्ट राय है कि बीमा अधिनियम की धारा 45 वर्तमान मामले में उन स्पष्ट शर्तों को ध्यान में रखते हुए लागू होती है जिनमें धारा को शब्दों में लिखा गया है, हालांकि प्रतिवादी कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने एक चरण में यह तर्क देने की मांग की कि पुनरुद्धार जुलाई, 1946 में कुछ समय के लिए नीति में पार्टियों के बीच एक नया अनुबंध गठित किया गया और यदि जुलाई, 1946 से दो वर्षों की गणना की जाए, तो पुनरुद्धार की तारीख से दो वर्षों की अवधि समाप्त नहीं हुई थी। चाहे व्यपगत बीमा का पुनरुद्धार एक नया अनुबंध बनता है या अन्य उद्देश्यों के लिए नहीं, यह धारा 45 के ऑपरेटिव भाग के शब्दों से स्पष्ट है कि अनुभाग के प्रयोजन के लिए दो साल की अवधि की गणना तिथि से की जानी है जिस पर नीति मूल रूप से प्रभावी थी; वर्तमान मामले में इसका मतलब केवल वह तारीख हो सकता है जिस दिन बीमा (उदा. पी-2) प्रभावी हुई थी। उस तारीख से दो साल की अवधि स्पष्ट रूप से समाप्त हो गई थी जब प्रतिवादी कंपनी ने दावा खारिज कर दिया था। जैसा कि हम सोचते हैं कि बीमा अधिनियम की धारा 45 वर्तमान मामले में लागू होती है, हम उस कानूनी स्थिति की जांच करने के कार्य से मुक्त हो जाते हैं जो बीमाधारक द्वारा प्रस्ताव प्रपत्र या व्यक्तिगत बयान आदि में दिए गए गलत बयानों के परिणामस्वरूप होगी। ऐसे मामले में जहां धारा 45 लागू नहीं होती है और

जहां प्रस्ताव प्रपत्र और व्यक्तिगत बयान में दिए गए कथनों को अनुबंध का आधार बनाया जाता है।"

52. श्री नागर ने **श्रीमती कृष्णा वंती पुरी बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम, मंडल अधिकारी, नई दिल्ली और अन्य** एआईआर 1975 दिल्ली, 19 में रिपोर्ट के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के एक फैसले पर भी भरोसा किया है| अपने तर्क के समर्थन में, कि भले ही निगम के डॉक्टर ने दी रिपोर्ट में बीमित व्यक्ति की चिकित्सा स्थिति को ठीक बताया हो, दावे को अनुमति देने के लिए यह निर्णायक कारक नहीं होगा। उन्होंने उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 42 और 43 का उल्लेख किया है, जिन्हें इस प्रकार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"42. वादी के अधिवक्ता ने अंततः आग्रह किया कि मृतक का बीमा करने से पहले निगम के तीन डॉक्टरों डॉ. उप्पल द्वारा उसकी जांच की गई थी, डॉ. आरएन रोहतरी और डॉ. करतार सिंह। ये सभी डॉक्टर: निगम की ओर से गवाही में उपस्थित हुए। यह सच है कि इन सभी ने गवाही दी कि उनकी राय में मृतक उनकी जांच के समय बीमा कराने के लिए उपयुक्त था। लेकिन उनके साक्ष्य वादी के मामले को आगे नहीं बढ़ाते हैं। निगम को यह नहीं पता था कि मृतक द्वारा तथ्यों को धोखाधड़ी से छिपाया गया था। बीमा की शर्तें यह स्पष्ट करती हैं कि बीमाधारक के स्वास्थ्य की स्थिति के बारे में दिए गए दावे प्रस्ताव प्रपत्र और व्यक्तिगत बयान दोनों पक्षों के बीच अनुबंध का आधार थे और परिस्थितियाँ थीं कि धर्मपाल पुरी ने यह छुपाने के लिए कड़ी मेहनत की थी कि उनकी इस गंभीर बीमारी का इलाज कभी डॉ. (मिस) एस. पद्मावती द्वारा किया गया था, जबकि वास्तव में वह 12 अक्टूबर 1959 को पहली बीमा निकालने से कुछ महीने पहले ही इलाज किया गया था, यह दर्शाता है कि निगम की सहमति प्राप्त करने में कपटपूर्ण दमन और छिपाव का महत्वपूर्ण प्रभाव था।

43. पूरे मामले पर मेरा निष्कर्ष यह है कि व्यक्तिगत बयान में मृतक द्वारा की गई घोषणाएं एक भौतिक मामले पर थीं और उसने धोखे से उन तथ्यों को दबा दिया जो खुलासा करने के लिए महत्वपूर्ण थे और मृतक को बयान देते समय पता था कि यह झूठ था और उन्होंने उन तथ्यों को छुपाया जिनका खुलासा करना उनका कर्तव्य था।"

53. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जेपी सिंह का तर्क यह है कि योग्यता के आधार पर, अस्वीकृति के आधार को सरलता से कायम नहीं रखा जा सकता है। कारण यह है कि स्वीकार्य रूप से, बीमा धारक की मृत्यु का कारण अस्वीकृति के आदेश में उद्धृत बीमारी बिल्कुल नहीं थी। इसके विपरीत, मृत्यु का कारण दिल का दौरा था। सुप्रीम कोर्ट के दिनांक 05.10.2015 के फैसले पर ध्यान आकर्षित किया गया है 2015 की सिविल अपील संख्या 8245 (2015 की एस.एल.पी. (सी) संख्या 13589 से उत्पन्न) (**सुलभा प्रकाश मोटेगांवकर और अन्य बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम)** में पारित किया गया, जहां बीमा कंपनी ने बीमा धारक के दावे

को अस्वीकार कर दिया था। आधार यह था कि वह साइटिका के साथ पीआईडी के साथ लंबर स्पॉन्डिलाइटिस से पीड़ित था। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि बीमारी का तत्व जीवन के लिए खतरा नहीं है और यह बीमाधारक की मृत्यु का कारण नहीं हो सकता है।

54. श्री जेपी सिंह ने तर्क दिया है कि चूंकि वर्तमान मामले में भी, अस्वीकृति के क्रम में उद्धृत रोग जीवन के लिए खतरा पैदा करने वाली बीमारी नहीं थे, और माना जाता है कि बीमाधारक की मृत्यु दिल का दौरा पड़ने से हुई थी, इस तथ्य का खुलासा नहीं किया गया बीमा लेने से पहले बीमाधारक को कुछ दिनों के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया था, यह दावे को अस्वीकार करने का वैध आधार नहीं हो सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि वैसे भी, यहां बीमाधारक ने 2011 में पहली बार बीमा नहीं ली थी, बल्कि उसने 2004 में पहली बार बीमा ली थी और लगातार बीमा की किश्तें जमा कर रहा था और ऐसा नहीं है कि जब बीमाधारक बीमा खरीदी, वह बिस्तर पर पड़ा हुआ था। इसके विपरीत, बीमा स्वीकार करने से पहले, बीमाधारक की एल.आई.सी. के मेडिकल परीक्षक द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई थी और एल.आई.सी. के मेडिकल परीक्षक की गोपनीय रिपोर्ट दिनांक 23-11-2011 को पहले ही अनुबंध सीए-1 के रूप में रिकॉर्ड में लाया जा चुका है, जिसमें, बीमाधारक के लिए कुछ भी प्रतिकूल नहीं था, इसलिए, दावे को अस्वीकार करने का आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

55. यह न्यायालय प्रतिवादी संख्या 2 के दावे की योग्यता के संबंध में बार में दिए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है।

56. दिनांक 28.11.2011 के आक्षेपित आदेश का अवलोकन, जिसके तहत एल.आई.सी. ने प्रतिवादी संख्या 2 के दावे को अस्वीकार कर दिया था।, दर्शाता है कि यह इस आधार पर था कि आश्वासन दिया गया व्यक्ति 12.10.2011 से 17.10.2011 (पांच दिन) की अवधि के लिए चित्रांश अस्पताल और सर्जिकल केयर सेंटर, शिवपुर, वाराणसी में अस्पताल में भर्ती रहा था, जबकि वह आंत्र ज्वर और मूत्र पथ संक्रमण से पीड़ित था। एक तैयार संदर्भ के लिए, एल.आई.सी. द्वारा दावे को अस्वीकार करने का आधार यहां-नीचे निकाला गया है:

"उपरोक्त पालिसी जो स्व० ठाकुर प्रसाद सिंह के जीवन पर जारी की गई थी, के सम्बन्ध में आप द्वारा प्रस्तुत मृत्यु दावा के अंतर्गत पालिसी के समस्त दायित्वो को निरस्त करने का निर्णय इस आधार पर लिया है की स्व० बीमा धारक पालिसी लेने के पूर्व दिनांक 12.10.2011 से 17.10.2011 तक Enteric Fever & UTI यानि टाइफायड एवं मूत्रीय पथ संक्रमण की बीमारी का इलाज हेतु चित्रांश हास्पीटल एवं सर्जिकल केयर सेंटर शुद्धीपुर शिवपुर वाराणसी में भर्ती रहा। बीमाधारक बीमा प्रस्ताव पत्र दिनांकित 30.11.2011 भरते समय जान बूझकर इस महत्वपूर्ण तात्विक तथ्य को छिपाकर धोखे से बीमा संरक्षण प्राप्त कर लिया गया था।

हमारे पास यह मानने एवं प्रमाणित करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध है जिससे प्रमाणित होता है स्व० बीमाधाराक पालिसी लेने के पूर्व से Enteric & UTI यानि टाइफायड एवं मुत्रीय पथ संक्रमण की बीमारी से पीड़ित था किंतु बीमा प्रस्ताव भरते समय बीमारी संबंधी तथ्य को छिपाकर धोखे से बीमा संरक्षण प्राप्त कर लिया था।"

57. मैंने प्रतिशपथ पत्र के अनुलग्नक सीए-1 का अवलोकन किया है, जो मेडिकल परीक्षक की दिनांक 23.11.2011 की गोपनीय रिपोर्ट की एक प्रति है और ऐसी जांच निगम के डॉक्टर द्वारा ही की गई थी, जिसमें बीमित व्यक्ति के स्वास्थ्य अच्छा होने के लिए के संबंध में सभी बातों का उल्लेख किया गया था।

58. मैंने चित्रांश हॉस्पिटल एंड सर्जिकल केयर सेंटर, शिवपुर, वाराणसी द्वारा दिए गए नुस्खे/निदान का भी अध्ययन किया है, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3 का हिस्सा है, जो एक रिपोर्ट/फॉर्म है जिसे कॉर्पोरेशन के जांच अधिकारी द्वारा भरा और तैयार किया गया है। उक्त रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि अधिकारी ने 10.10.2013 को संबंधित अस्पताल का दौरा किया था, अर्थात आश्वासन की मृत्यु के एक वर्ष बाद और, जहां तक उक्त रिपोर्ट में उल्लिखित मृत्यु के कारण का सवाल है, उसे इस प्रकार वर्णित किया गया है **10.09.2012 को सीने में भारी दर्द महसूस हुआ जब मृतक के घर के सामने स्थित डॉ. आरएन द्विवेदी के अस्पताल में इलाज के दौरान उनकी मृत्यु हो गई।** उक्त नोटिंग प्रश्न क्रमांक 11 के उत्तर में निम्नलिखित शब्दों में दी गई है:

"मृतक बीमेदार 10.09.2012 को सीने में तेज दर्द शुरू हुआ उनके घरवाले घर के सामने डॉक्टर आर. एन. द्विवेदी के अस्पताल में ले गए । इलाज़ के दौरान उनकी मृत्यु हो गई । आत्म हत्या की कोई संभावना नही है । "

59. इसके अलावा, 12.10.2011 से 17.10.2011 तक सुनिश्चित व्यक्ति की शारीरिक बीमारी के संबंध में चित्रांश अस्पताल और सर्जिकल केयर सेंटर, शिवपुर, वाराणसी में प्रश्न संख्या 12 के उत्तर के रूप में निम्नलिखित शब्दों में एक नोटिंग पाई गई है:

"मृतक बीमेदार पालिसी लेने से पूर्व बुखार होने के कारण चित्रांश हस्पताल वाराणसी में 12.10.2011 से 17.10.2011 तक इलाज करवाया । प्रपत्र फाइल में संलग्न है।"

60. रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण तथ्यों और सामग्री के अवलोकन से आश्वस्त व्यक्ति की शारीरिक बीमारी के संबंध में, मुझे प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जेपी सिंह की दलीलों में दम नजर आता है कि मृतक अक्टूबर, 2011 में बुखार से पीड़ित था और उसके कारण चित्रांश अस्पताल में पांच दिनों तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा था। सर्जिकल केयर सेंटर, शिवपुर, वाराणसी को आश्वासन की मृत्यु के बाद प्रतिवादी संख्या 2 के दावे को अस्वीकार करने के लिए आधार के रूप में नहीं

लिया जा सकता है, जो कि 12.09.2012 को एक वर्ष के बाद हुआ था, खासकर, जब बुखार या आंत्र बुखार का इलाज नहीं किया जा सकता था इसे एक जानलेवा बीमारी के रूप में माना जाता है, इसके अलावा, जब निगम के जांच अधिकारी द्वारा मृत्यु का कारण 10.09.2012 को मृतक के सीने में अचानक तेज दर्द बताया गया है, जब उनके घर के सामने स्थित अस्पताल में इलाज के दौरान उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई।

61. जहां तक **मिठूलाल नायक (सुप्रा)** के मामले में मृत्यु की अवधि या डॉक्टर की राय के संबंध में श्री नागर द्वारा उद्धृत निर्णय का संबंध है, वहां सर्वोच्च न्यायालय इस मामले से निपट रहा था और धारा 45 के प्रावधानों की जांच कर रहा था। बीमा अधिनियम, उस मामले के विशिष्ट तथ्यों के आलोक में, जहां दो साल की अवधि के संदर्भ में एक व्यपगत बीमा के संबंध में चुनौती दी गई थी। महत्वपूर्ण तथ्य छुपाने के प्रभाव की भी जांच की गई और जीवन बीमा निगम द्वारा दावे को अस्वीकार करना उचित पाया गया। हालाँकि, उचित सम्मान के साथ **मिठूलाल नायक (सुप्रा)** का मामला याचिकाकर्ता के लिए कोई मदद नहीं करेगा क्योंकि मामला न तो व्यपगत नीति का मामला है और न ही उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि कष्ट का उल्लेख न करना दावे पर निर्णय लेने के लिए आश्वासन की मृत्यु से एक वर्ष पहले बुखार होना एक तथ्यात्मक सामग्री थी। इसलिए, बीमा अधिनियम की धारा 45, वर्तमान मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में वांछित राहत का दावा करने के लिए प्रतिवादी संख्या 2 के रास्ते में नहीं आ सकती है।

62. जहां तक **कृष्णा वंती पुरी (सुप्रा)** के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले का सवाल है, यह एक ऐसा मामला था जहां निगम के तीन डॉक्टरों ने आश्वासन दिया था और निगम के गवाह बॉक्स में यह कहते हुए उपस्थित हुए थे कि मृतक था स्वस्थ चिकित्सीय स्थिति में। निगम को यह नहीं पता था कि मृतक द्वारा तथ्यों को धोखे से छुपाया गया है। दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष मामला यह था कि बीमित व्यक्ति गंभीर बीमारी यानी माइट्रल स्टेनोसिस विद ऑरिकुलर फाइब्रिलेशन से पीड़ित था, जिसे एक प्रकार का रूमेटिक हृदय रोग बताया गया था, जिसे बीमा निगम के अनुसार, उस मामले में जानबूझकर छुपाया गया था। आश्वासन द्वारा. यह उक्त मामले की विशिष्ट तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में था कि दिल्ली उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उक्त गंभीर बीमारी एक भौतिक तथ्य थी, जिसे बीमा लेने के समय बीमाधारक द्वारा जानबूझकर और धोखाधड़ी से दबा दिया गया था।

63. हालाँकि, वर्तमान मामले में, इस पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है कि निगम के डॉक्टर द्वारा दी गई चिकित्सा राय, जैसा कि जवाबी हलफनामे के अनुबंध संख्या सीए -1 के रूप में दायर प्रमाण पत्र में निहित है, जब इसकी तुलना बाद की रिपोर्ट से की जाती है। निगम के जांच अधिकारी ने स्पष्ट रूप से स्थापित किया कि मृत्यु का कारण, जो 10.09.2012 को हुआ था, का बीमित व्यक्ति

को एक वर्ष पहले हुए बुखार से कोई संबंध नहीं था, और इसलिए, ऐसे बुखार/आंत्र ज्वर का खुलासा नहीं किया गया। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किए गए दावे पर निर्णय लेते समय मूत्र पथ के संक्रमण को किसी महत्वपूर्ण तथ्य को दबाने के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, **मिठूलाल नायक (सुप्रा)** और **श्रीमती कृष्णा वंती पुरी (सुप्रा)** के मामले के मामले में तथ्य अलग-अलग हैं।

64. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागर द्वारा उठाए गए मुद्दे/विवाद संख्या 3 में भी कोई बल नहीं है और इसे खारिज कर दिया गया है।

65. हालांकि मैं इस बात से पूरी तरह संतुष्ट हूं कि स्थायी लोक अदालत के विवादित फैसले को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा उठाए गए आधारों में कोई दम नहीं है, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किए गए दावे को आक्षेपित आदेश के तहत स्थायी लोक अदालत ने उचित रूप से स्वीकार कर लिया है।

66. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मुझे स्थायी लोक अदालत दिनांक 15.02.2016 के आक्षेपित निर्णय और पुरस्कार में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिला। नतीजतन, रिट याचिका विफल हो जाती है और तदनुसार, बिना कोई जुर्माना लगाए **खारिज** कर दी जाती है।

67. वर्तमान रिट याचिका में, 06.05.2016 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसमें 15.02.2016 के विवादित पुरस्कार के संचालन पर रोक लगा दी गई थी, जो कि एल.आई.सी. द्वारा प्रदान की गई पूरी राशि को अद्यतन ब्याज के साथ जमा करने की शर्त के अधीन था। आगे शर्त यह है कि जमा की गई राशि किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा में रखी जाएगी। इसलिए, **उक्त अंतरिम आदेश के तहत जीवन बीमा निगम द्वारा जमा की गई राशि निश्चित रूप से इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति निचली अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में जारी की जाएगी।** निचली अदालत यह भी सुनिश्चित करेगी कि राष्ट्रीयकृत बैंक, जिसमें अंतरिम आदेश दिनांक 06.05.2016 के अनुसरण में राशि का निवेश किया गया है, को प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में **आज तक अर्जित ब्याज के साथ** इसे जारी करने के लिए निर्देशित और सूचित किया जाएगा। दो महीने की अवधि के भीतर.

(2023) 5 ILRA 728

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र,

रिट-सी संख्या 23241/2016

मैसर्स ब्यूरो चीफ राष्ट्रीय सहारा एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शक्ति स्वरूप निगम, श्री कर्षित निगम

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री जनमेद कुमार

ए. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947- धारा 6(4) 4के, 6एन- पुनर्स्थापना- जब न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता की सेवाओं की समाप्ति को कानून के प्रावधानों के विपरीत पाया, तो केवल मुआवजे आदि के रूप में राहत देना अन्यायपूर्ण होगा और श्रम न्यायालय को याचिकाकर्ता को पूर्ण या 50% पिछले वेतन के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश देना चाहिए था। जहां तक बहाली या पिछले वेतन की राहत से इनकार करने का सवाल है, न्यायालय को श्रम न्यायालय के आदेश में कोई ठोस तर्क नहीं मिला- दिनांक 15.09.2014 के आदेश में इस बात का कोई संदर्भ नहीं दिया गया है कि मामले को श्रम न्यायालय को वापस भेजने से पहले पक्षों को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया गया था। इसलिए, दिनांक 15.09.2014 के आदेश के तहत श्रम आयुक्त द्वारा किया गया प्रेषण उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के विशिष्ट प्रावधानों के विरुद्ध पाया गया है। (पैरा 1 से 42)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड, ट्रांसपोर्ट एयरक्राफ्ट डिवीजन, चकेरी, कानपुर बनाम यूपी राज्य और अन्य (2021) 168 एफएलआर 338
2. प्रताप चंद्र मोहंती बनाम जीएम यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया एवं अन्य (1991) 2 ओएलआर 326
3. मध्य भारत ग्रामीण बैंक बनाम पंचमलाल यादव (2021) 171 एफएलआर 8
4. मेसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड और अन्य बनाम पी.ओ., लेबर कोर्ट, यू.पी., एल्ड एवं अन्य। (2020) 167 एफएलआर 412
5. मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी एवं अन्य (1979) एआईआर एससी 75
6. हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य वेयरहाउसिंग कंपनी. (2010) 124 एफएलआर 700
7. दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक एवं अन्य (2013) 139 एफएलआर 541
8. भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम मेसर्स हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड (2014) 142 एफएलआर 20
9. मैकिनन मैकेंजी एंड कंपनी लिमिटेड बनाम मैकिनन एम्प्लॉइज यूनियन (2015) 145 एफएलआर 184
10. सशस्त्र बल पूर्व अधिकारी मल्टी सर्विसेज को-ऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड बनाम राष्ट्रीय मजदूर संघ (इंटक) (2022) 175 एफएलआर 544
11. जीतुभा खानसांगजी जाडेजा बनाम कच्छ जिला। पंचायत सिविल अपील क्रमांक 6890 / 2022 (एसएलपी (सिविल) क्रमांक 8393 / 2022)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

1. इन सभी रिट याचिकाओं में कुछ तथ्यात्मक और कानूनी पहलू शामिल हैं जो सभी मामलों में समान हैं। इसलिए, इन रिट याचिकाओं पर

एक सामान्य निर्णय द्वारा निर्णय लेते समय, व्यक्तिगत मामलों को भी निपटाया जाएगा।

2. इन मामलों को तय करने के प्रयोजनों के लिए, रिट-सी संख्या-23241 वर्ष 2016 को अग्रणी माना जा रहा है।

3. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री शक्ति स्वरूप निगम, वरिष्ठ अधिवक्ता जिन्हें श्री कर्षित निगम द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, को, और प्रतिपक्षी श्री जनमद कुमार, 2016 की रिट सी संख्या 23241 और 2016 की रिट-सी संख्या 23786 में कर्मकार के लिए अधिवक्ता; याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री चंद्रभान गुप्ता, और 2016 की रिट-सी संख्या 22872 में प्रतिपक्षी कामगार के अधिवक्ता श्री अजय राजेंद्र; और याचिकाकर्ता श्री अजय राजेंद्र, और 2016 की रिट-सी संख्या 27687 में प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री चंद्रभान गुप्ता को सुना।

रिट-सी नंबर-23241 वर्ष 2016

(मैसर्स ब्यूरो प्रमुख राष्ट्रीय सहारा और अन्य बनाम श्रम आयुक्त उ0प्र0 और 2 अन्य)

4. यह रिट याचिका श्रम न्यायालय (आई), उत्तर प्रदेश कानपुर द्वारा एडजुडिकेशन केस नंबर-275 वर्ष 1999, मेसर्स ब्यूरो चीफ राष्ट्रीय सहारा बनाम मुनराज सिंह में पारित पंचाट दिनांक 09.11.2015 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। यह पंचाट 15.03.2016 को प्रकाशित किया गया था। दिनांक 15.09.2014 के आदेश को रद्द करने के लिए एक और राहत का दावा किया गया है, जिसके तहत श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश, कानपुर ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (संक्षेप में उत्तर प्रदेश अधिनियम) की धारा 6(4) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मामले को श्रम न्यायालय (आई), उत्तर प्रदेश, कानपुर के पीठासीन अधिकारी को पुनर्विचार के लिए भेज दिया था।

5. रिट याचिका में निहित दलीलों के अनुसार, मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता 'राष्ट्रीय सहारा' के नाम और शैली के तहत समाचार पत्र के प्रकाशन और वितरण के व्यवसाय में लगे हुए हैं और समाचार पत्रों के वितरण के उद्देश्य से उन्होंने 'ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन' के रूप में जाने जाने वाले नियमों को शामिल किया जिसके तहत उन्होंने मैसर्स राष्ट्रीय समाचार एजेंसी और मैसर्स अवती समाचार एजेंसी को वितरण के लिए समाचार एजेंट के रूप में नियुक्त किया। प्रतिपक्षी नंबर-2 को याचिकाकर्ताओं द्वारा समाचार पत्रों के वितरण के लिए कमीशन के आधार पर हॉकर के रूप में नियुक्त किया गया था। जून 1996 के बाद, 'ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन' के रूप में जाने जाने वाले नियमों को शामिल करने के बाद, प्रतिपक्षी नंबर-2 समाचार पत्र के वितरण के लिए मैसर्स राष्ट्रीय समाचार एजेंसी और मैसर्स अवती समाचार एजेंसी में शामिल हो गया; उप श्रमायुक्त ने उ0प्र0 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 27.01.2000 के अपने आदेश द्वारा कथित समाप्ति के मामले को प्रतिपक्षी संख्या-1 को भेज दिया। प्रतिपक्षी ने अपना दावा स्थापित किया कि उसे 950/- रुपये के समेकित वेतन पर 01.06.1992 से सेल्समैन के रूप में नियुक्त किया गया था, लेकिन चूंकि भुगतान

न्यूनतम मजदूरी से कम था, इसलिए एक मांग उठाई गई जिस पर याचिकाकर्ताओं द्वारा विचार नहीं किया गया और उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6 एन के उल्लंघन में, उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया और इस तरह प्रतिपक्षी नंबर-2 ने बहाली के लिए प्रार्थना की।

6. याचिकाकर्ताओं ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर लिखित बयान दायर किया कि प्रतिपक्षी जून, 1996 तक कमीशन के आधार पर एक हॉकर था और उसके बाद, उनके बीच कोई संबंध नहीं रहा और इस तरह नियोक्ता और कर्मचारी संबंध के अभाव में वर्ष 1998 में सेवा समाप्ति का कोई सवाल ही नहीं उठ सकता है, क्योंकि जून 1996 के बाद और 'ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन' के विनियमों के प्रवर्तन के बाद, वह मेसर्स राष्ट्रीय न्यूज एजेंसी और मेसर्स अवती न्यूज एजेंसी में शामिल हो गए। यह भी कहा गया कि प्रतिपक्षी को कोई नियुक्ति पत्र नहीं दिया गया था और न ही आवेदन किया गया था और सेल्समैन का कोई पद भी मौजूद नहीं था।

7. प्रतिपक्षी ने अपना प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया; याचिकाकर्ता ने प्रत्युत्तर बयान भी दायर किया और फिर से तथ्यों को दोहराया कि प्रतिपक्षी को हॉकर के रूप में नियुक्त किया गया था और इस तरह किसी भी समय नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध नहीं था। यह भी कहा गया था कि धारा 6-एन के प्रावधान लागू नहीं होंगे क्योंकि कोई मालिक और नौकर का संबंध नहीं है।

8. अपने मामले के समर्थन में, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने खुद की जांच करवायी। अपने मामले के समर्थन में याचिकाकर्ताओं ने श्री अजय त्रिपाठी और श्री मनोज दुबे से पूछताछ की; और याचिकाकर्ताओं ने यह साबित करने के लिए वेतन रजिस्टर दायर किया कि नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध नहीं है। यह भी कहा गया था कि कभी कोई नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था और न ही भविष्य निधि कटौती या कर्मचारी राज्य बीमा योगदान कभी किया गया था। चूंकि प्रतिपक्षी कमीशन के आधार पर फेरीवाला के रूप में काम कर रहा था, इसलिए उसे कभी भी वेतन का भुगतान नहीं किया गया; और रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार किए बिना और महत्वपूर्ण तथ्यों और सबूतों की अनदेखी किए बिना, प्रतिपक्षी नंबर-1 ने प्रतिपक्षी को सेल्समैन के रूप में कार्यरत कामगार के रूप में माना और पूरे बकाया वेतन के साथ बहाली प्रदान की।

9. यह तर्क दिया गया है कि 01.04.2008 को प्रकाशित दिनांक 24.12.2007 के अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-25780 वर्ष 2008 दायर की, जिसे निर्णय और आदेश दिनांक 18.07.2011 द्वारा अनुमति दी गई थी। उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है: -

"पक्षों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों की बहुत सावधानी से जांच करने और आक्षेपित पंचाट के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाई गई अन्य सामग्रियों का अवलोकन करने के बाद, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों में दम है और इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। प्रतिपक्षी नंबर-2 ने उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 4K के तहत राज्य सरकार का रुख किया, जिसमें खुद को याचिकाकर्ताओं के प्रतिष्ठान में सेल्समैन के रूप में काम करने का दावा किया गया, जिसमें याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 01.10.1998 के आदेश के तहत उनके रोजगार की समाप्ति को इस आधार पर चुनौती दी गई कि इससे यू.पी. अधिनियम की धारा 6 एन के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ।

प्रतिपक्षी नंबर-1 के समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर लिखित बयान के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम 45 वर्ष 1955 की धारा 3 के मद्देनजर अधिनिर्णय मामले पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए प्रतिपक्षी नंबर-1 के अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी थी, जिसमें कहा गया है कि केंद्र सरकार अकेले नियोक्ताओं और एक प्रतिष्ठान, केंद्रीय अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण के लिए, के कर्मचारियों के बीच विवाद को संदर्भित करने के लिए सक्षम है, जिसके लिए प्रावधान अधिनियम 45 वर्ष 1955 लागू होता है और याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिपक्षी नंबर-2 के समक्ष दायर लिखित बयान के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षी नंबर-1 के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने एक विशिष्ट दलील दी थी कि प्रतिपक्षी नंबर-2 उनके प्रतिष्ठान में एक फेरीवाला के रूप में कार्यरत था, न कि एक विक्रेता के रूप में। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने भारी-भरकम साक्ष्य दायर किए थे, जिन्हें रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में समग्र रूप से संलग्न किया गया है।

मैंने बहुत सावधानी से आक्षेपित पंचाट का अध्ययन किया है और मुझे प्रतिपक्षी नंबर-1 द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके समक्ष उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति पर कोई अधिनिर्णय नहीं मिला है, जिसमें उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 4K के तहत राज्य सरकार द्वारा उनके लिए किए गए संदर्भ के कारण अधिनिर्णय मामले पर विचार करने और निर्णय लेने के अधिकार क्षेत्र की कमी के बारे में, 45 वर्ष 1955 प्रतिपक्षी नंबर-2 के याचिकाकर्ताओं के प्रतिष्ठान में एक फेरीवाले के रूप में कार्यरत होने के कारण, अधिनियम की धारा 3 के मद्देनजर अधिकार क्षेत्र के बिना है। याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिपक्षी नंबर-1 के समक्ष उनके दावे के समर्थन में दायर साक्ष्य के आक्षेपित पंचाट में भी कोई विचार नहीं है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 उनके प्रतिष्ठान में एक फेरीवाले के रूप में कार्यरत था, न कि एक विक्रेता के रूप में जैसा कि उसने आरोप लगाया था। प्रतिपक्षी नंबर-2 की ओर से इस चूक ने आक्षेपित पंचाट को और अधिक खराब कर दिया है।

पूर्वोक्त कारणों से, मेरा विचार है कि आक्षेपित अधिनिर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जा सकता है। तदनुसार रिट याचिका सफल होती है और इसकी अनुमति दी जाती है। प्रतिपक्षी नंबर-1 द्वारा

पारित दिनांक 24.12.2007 के पंचाट को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके लिखित बयान में उठाई गई आपत्तियों और पक्षकारों द्वारा उनके संबंधित दावों के समर्थन में पेश किए गए सबूतों पर विचार करने के बाद मामले में कानून के अनुसार एक नया पंचाट पारित करने के लिए मामला प्रतिपक्षी नंबर-1 को वापस भेज दिया जाता है। इस संबंध में आवश्यक प्रक्रिया प्रतिपक्षी नंबर-1 द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर पूरा किया जाएगा।

10. यह भी तर्क दिया गया है कि प्रतिपक्षी ने प्रतिपक्षी संख्या-2 के समक्ष संदर्भ के लिए पुनरीक्षण के लिए एक आवेदन दायर किया और राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4k के तहत एक संदर्भ भेजा, जबकि मामला "श्रमजीवी पत्रकार और अन्य समाचार पत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955 (1955 का 45") के तहत आच्छादित है, इस प्रकार संदर्भ औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10 (1 सी) के तहत भेजा जा सकता है।

11. याचिकाकर्ताओं ने आपत्तियां दर्ज कीं और कहा कि याचिकाकर्ता का संस्थापन "द वर्किंग जर्नलिस्ट एंड अदर न्यूजपेपर एम्प्लॉइज (सेवा की शर्तें और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955") के तहत आच्छादित की गई है, क्योंकि इस तरह का संदर्भ केंद्र सरकार द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 3(1) के तहत किया जा सकता है और उन्होंने श्रम न्यायालय के समक्ष अपनी प्रारंभिक आपत्ति उठाई थी, लेकिन प्रारंभिक आपत्ति पर निर्णय लिए बिना दिनांक 24.12.2007 को पंचाट पारित किया गया था। इस प्रकार, इस न्यायालय ने प्रारंभिक मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए मामले को रिमांड पर भेज दिया। श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश (प्रतिपक्षी संख्या-1) ने अपने आदेश दिनांक 13.03.2013 के तहत प्रतिपक्षी के आवेदन का निर्णय लिया और माना कि प्रतिपक्षी गैर-कामकाजी पत्रकार है क्योंकि पक्षों के बीच इस तरह के विवाद उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4k के तहत आच्छादित किए गए हैं।

12. रिट-सी संख्या-25780 वर्ष 2008 में पारित इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में, 12.07.2012 को एक नया पंचाट पारित किया गया था जिसे प्रकाशन के लिए राज्य सरकार को भेजा गया था लेकिन किसी कारण से, पंचाट प्रकाशित नहीं किया गया था। इस आशय की अभिवेदना रिट याचिका के पैराग्राफ 21 में निहित है जिसमें कहा गया है कि दिनांक 12072012 के अधिनिर्णय द्वारा श्रम न्यायालय ने कामगार के दावे को खारिज कर दिया था और न्यायनिर्णयन मामले को सुनवाई योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया था। तथापि, दिनांक 12072012 के ऐसे अधिनिर्णय की प्रति दोनों पक्षकारों में से किसी भी पक्ष द्वारा अपनी दलीलों के समर्थन में अभिलिखित नहीं की गई है।

13. इस मामले में औद्योगिक विवाद के अधिनिर्णय के लिए श्रम न्यायालय, रामपुर को निम्नलिखित शब्दों में संदर्भ दिया गया था: -

क्या सेवयोजकों द्वारा श्रमिक श्री मुनराज सिंह पुत्र श्री महेश सिंह सेल्स मैन को

1.10.98 से कार्य से पृथक/वंचित किया जाना उचित एवं वैधानिक है? यदि नहीं, तो संबधित श्रमिक हितलाभ/क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है? और किस तिथि एवं अन्य किस विवरण के साथ?

14. श्रम आयुक्त, उ0प्र0, कानपुर ने दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश द्वारा उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के तहत प्रदत्त शक्तियों के कथित प्रयोग में प्रतिपक्षी संख्या-2 के समक्ष पुनर्विचार के उद्देश्य से मामले को वापस/प्रेषित किया।

15. दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश के अनुसरण में, श्रम न्यायालय ने दिनांक 09.11.2015 के आक्षेपित अधिनिर्णय द्वारा पाया है कि 01.10.1998 से कामगार की सेवाओं की समाप्ति कानून के अनुसार नहीं है और इसलिए, वह 50% बैक-वेज के साथ सेवा में निरंतरता के साथ बहाली का हकदार है। यह पंचाट अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार 15.03.2016 को प्रकाशित किया गया था।

<u>याचिकाकर्ताओं की दलील</u>

16. याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.एस. निगम ने मामले पर विस्तार से बहस करते हुए, श्रमजीवी पत्रकारों और अन्य समाचार पत्र कर्मचारियों (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955 (अधिनियम संख्या-45 वर्ष 1955)(इसके बाद अधिनियम वर्ष 1955 के रूप में संदर्भित) की धारा 2(सी), 2(डीडी) और 3 के प्रावधानों पर भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि उक्त प्रावधानों के मद्देनजर, प्रतिपक्षी नंबर-3 को याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में एक कर्मचारी के रूप में नहीं माना जा सकता है और, भले ही उसे यू.पी. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (यू.पी. अधिनियम) या औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (केंद्रीय अधिनियम) के प्रावधानों के अनुसार एक कामगार माना जाता है। यह केंद्र सरकार थी जो श्रम न्यायालय को संदर्भ देने के लिए सक्षम थी न कि राज्य सरकार। उन्होंने धारा 2(सी), 2(डीडी) में निहित परिभाषा खंड और धारा 3 के प्रावधानों का उल्लेख किया है जो अधिनियम वर्ष 1955 द्वारा आच्छादित किए गए कर्मचारियों के संबंध में केंद्रीय अधिनियम की प्रयोज्यता के संबंध में हैं। सुलभ संदर्भ के लिए, अधिनियम वर्ष 1955 की धारा 2(सी), 2(डीडी) और 3 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"2. (ग) "समाचारपत्र कर्मचारी" से कोई श्रमजीवी पत्रकार अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत कोई अन्य व्यक्ति भी है जो किसी समाचारपत्र प्रतिष्ठान में या उसके संबंध में कोई कार्य करने के लिये नियोजित है;

(घ) "गैर-पत्रकार समाचार-पत्र कर्मचारी" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी समाचारपत्र प्रतिष्ठान में या उसके संबंध में कोई कार्य करने के लिए नियोजित है, किन्तु इसमें ऐसा कोई व्यक्ति शामिल नहीं है जो-

(i) श्रमजीवी पत्रकार है, या

(ii) मुख्य रूप से प्रबंधकीय या प्रशासनिक क्षमता में कार्यरत है, या

(iii) पर्यवेक्षी क्षमता में नियोजित होने के कारण, या तो अपने कार्यालय से जुड़े कर्तव्यों की प्रकृति से या उसमें निहित शक्तियों के कारण, मुख्य रूप से प्रबंधकीय प्रकृति के कार्य करता है;]

(1) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) के उपबंध, जो तत्समय प्रवृत्त हैं, उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट उपांतरणों के अधीन रहते हुए, श्रमजीवी पत्रकारों को या उनके संबंध में, वे उस अधिनियम के अभिप्राय के अन्दर कर्मकारों को या उनके संबंध में लागू होंगे।

(2) पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 25च, श्रमजीवी पत्रकारों पर या उनके संबंध में, जैसा कि वे उस अधिनियमके अभिप्राय के भीतर कर्मकारों पर या उनके संबंध में लागू होते हैं, लागू होंगे। पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 25च, श्रमजीवी पत्रकारों पर लागू होने में, किसी कामगार की छंटनी के संबंध में उसमें निर्दिष्ट सूचना की अवधि के लिए उसके खंड (क) में मानो समझी जाएगी, श्रमजीवी पत्रकार की छंटनी के संबंध में नोटिस की निम्नलिखित अवधियों को प्रतिस्थापित किया गया था, अर्थात्: -

(ए) एक संपादक के मामले में छह महीने, और

(ख) किसी अन्य श्रमजीवी पत्रकार के मामले में तीन माह।

7. श्री निगम ने आगे प्रस्तुत किया है कि श्रम आयुक्त, कानपुर के पास श्रम न्यायालय को पुनर्विचार/समीक्षा के लिए मामले को भेजने/संदर्भित करने का कोई अधिकार, शक्ति या क्षमता नहीं थी। अपने सबमिशन के समर्थन में, उन्होंने हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड, ट्रांसपोर्ट एयरक्राफ्ट डिवीजन, चकेरी, कानपुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2021 (168) एफ.एल.आर. 338 के मामले में इस अदालत के फैसले पर भरोसा किया है और विशेष रूप से उक्त निर्णय के पैराग्राफ 18 का उल्लेख किया है, जिसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"18) आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश, कानपुर ने श्रम न्यायालय के न्यायिक आदेश को त्रुटिपूर्ण माना है। उन्होंने मामले को श्रम न्यायालय को वापस भेज दिया है ताकि गुण-दोष के आधार पर संदर्भ तय किया जा सके। श्रमायुक्त ने निर्णय लिया है कि संदर्भ सक्षम है। उन्होंने जिला शासकीय अधिवक्ता, कानपुर नगर की राय के आधार पर ऐसा किया है। श्रम आयुक्त न्यायालय नहीं है। वह एक संदर्भ बनाने के लिए राज्य सरकार की शक्तियों का प्रयोग करता है जो किसी भी प्रकार की न्यायिक शक्ति नहीं है। वह केवल सरकार को प्रदत्त प्रशासनिक या कार्यकारी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। अब, यदि धारा 39 के अंतर्गत उसके पक्ष में कोई प्रत्यायोजन होता है, तो यह मानते हुए कि उसके पास आवश्यक प्रत्यायोजन है, केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्रीय अधिनियम की धारा 39 के अंतर्गत शक्तियों का प्रत्यायोजन सक्षम न्यायालय को संदर्भ भेजने की प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करना है। यह किसी भी तरह से श्रम न्यायालय को पर्यवेक्षण का न्यायिक अधिकार नहीं है, जो आयुक्त को प्रदान किया गया है। यदि कोई पक्षकार पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय (3), उत्तर प्रदेश, कानपुर द्वारा अधिनिर्णय वाद संख्या-115 वर्ष 2010 में पारित आदेश दिनांक 17.09.2019 से व्यथित था, तो उस पक्ष के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत इस न्यायालय से संपर्क करने का विकल्प खुला था, क्योंकि केवल यही उपाय खुले हैं। संविधान के अनुच्छेद 136 के अलावा,

अनुवादित

श्रम न्यायालय के न्यायिक निर्धारण को चुनौती देने के लिए, चाहे वह आदेश हो या अधिनिर्णय। कानून को ज्ञात कोई सिद्धांत नहीं है जो न्यायिक कार्रवाई की प्रशासनिक समीक्षा की अनुमति देता है। कानून में प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा और कुछ मामलों में विधायी कार्रवाई की भी परिकल्पना की गई है। लेकिन कानून के लिए ज्ञात कोई अवधारणा नहीं है जो प्रशासनिक समीक्षा की अनुमति देती है। उच्च न्यायिक मंच से संपर्क करके अपीलीय, पुनरीक्षण या पर्यवेक्षी प्रक्रियाओं को लागू करके न्यायिक आदेशों को पूर्ववत किया जा सकता है। यह कार्यपालिका या प्रशासनिक कार्रवाई द्वारा नहीं किया जा सकता। आक्षेपित आदेश एक और कारण से भी खराब है। यह जिला शासकीय अधिवक्ता की राय पर यदि पूरी तरह से नहीं तो काफी हद तक आगे बढ़ा है। यहां तक कि अगर श्रम आयुक्त द्वारा एक राय मांगी गई थी, जो संभवतः (कानूनी रूप से प्रशिक्षित दिमाग के विपरीत) एक आम आदमी है, तो उसको उसके द्वारा प्राप्त कानूनी राय का उल्लेख नहीं करना चाहिए था। वास्तव में, उन्हें किसी भी कानूनी राय पर काम नहीं करना चाहिए था। ऐसा इसलिए है क्योंकि कानूनी राय पर आधारित आदेश वह नहीं है जहां आदेश देने वाले प्राधिकरण ने स्वतंत्र रूप से दिमाग लगाया हो। बल्कि, वह दूसरे की राय से चला, एक कानूनी विशेषज्ञ हो सकता है। यह अपने आप में आक्षेपित आदेश को दूषित करेगा। मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, इस न्यायालय की स्पष्ट राय है कि प्रशासनिक निर्धारण द्वारा न्यायिक आदेश को रद्द करने वाला आक्षेपित आदेश अधिकारातीत और अधिकार क्षेत्र के बिना है। हालांकि, श्री दीप्तिमान सिंह ने पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय (3), उत्तर प्रदेश, कानपुर द्वारा अधिनिर्णय वाद संख्या-115 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 17.07.2019 के आदेश को सही ठहराने की मांग की, लेकिन इस न्यायालय ने पीड़ित पक्ष द्वारा दिनांक 17.07.2019 के आदेश को चुनौती दिए जाने के अभाव में उस प्रश्न की जांच करने का मन नहीं बनाया है। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि चौथे प्रतिपक्षी सहित कोई भी पक्ष, 17.07.2019 के आदेश से व्यथित है, तो यह सलाह के अनुसार सक्षम कार्यवाही के माध्यम से उक्त आदेश को चुनौती देने के लिए खुला होगा।

18. श्री निगम आगे प्रस्तुत करते हैं कि एक बार श्रम न्यायालय ने एक पंचाट पारित कर दिया था, जिसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी, श्रम आयुक्त के पास श्रम न्यायालय द्वारा पुनर्विचार के लिए मामले को भेजने/संदर्भित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि यह एक न्यायिक आदेश की प्रशासनिक समीक्षा के बराबर होगा जो इस न्यायालय ने हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में किया था, को बहिष्कृत कर दिया है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि भले ही श्रम आयुक्त के दिनांक 15.09.2014 के आदेश को अधिकार क्षेत्र के भीतर माना जाता है, श्रम न्यायालय को संदर्भ देने की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के तहत उल्लिखित एक या अधिक आकस्मिकताएं संतुष्ट हों, जो श्री निगम के अनुसार, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मौजूद

नहीं था। उन्होंने उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के प्रावधानों पर जोर दिया है, जिन्हें यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"6(4) उपधारा (3) के अधीन श्रम न्यायालय या अधिकरण के अधिनिर्णय के प्रकाशन से पहले, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि, -

(क) न्यायनिर्णयन प्राधिकारी ने साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए किसी पक्षकार को अनुचित रूप से अनुमति देने से मना कर दिया है; नहीं तो

(ख) किसी भी पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करने से किसी अन्य पर्याप्त कारण से रोका गया था; नहीं तो

(ग) नया और महत्वपूर्ण तथ्य या साक्ष्य ध्यान में आया है, जो उचित परिश्रम के प्रयोग के बाद जब पंचाट दिया गया था, उस समय पक्ष के ज्ञान में नहीं था, या प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था; नहीं तो

(घ) पंचाट से औद्योगिक शांति भंग होने की संभावना है; नहीं तो

(ई) पंचाट राष्ट्रीय या राज्य अर्थव्यवस्था को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने की संभावना है; नहीं तो

(च) अधिनिर्णय से सामाजिक न्याय के सिद्धांतों में हस्तक्षेप होने की संभावना है; नहीं तो

(छ) पंचाट ने अधिनिर्णय के लिए निर्दिष्ट मामलों में से किसी को भी अनिर्धारित छोड़ दिया है, या जहां यह किसी भी मामले को निर्धारित करता है जिसे अधिनिर्णय के लिए संदर्भित नहीं किया गया है और इस तरह के मामले को संदर्भित मामलों के निर्धारण को प्रभावित किए बिना अलग नहीं किया जा सकता है; नहीं तो

(ज) पंचाट इतना अनिश्चित है कि लागू होने में असमर्थ है; नहीं तो

(i) अधिनिर्णय की अवैधता पहली नज़र में स्पष्ट है, यह पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के पुनवचार के लिए पंचाट प्रेषित कर सकेगा, और वह प्राधिकारी, पुनर्विचार के बाद, अपना अधिनिर्णय राज्य सरकार को प्रस्तुत करेगा, और राज्य सरकार उपधारा (3) में उपबंधित रीति से पंचाट प्रकाशित करेगी।

19. श्री निगम ने प्रताप चंद्र मोहंती बनाम महाप्रबंधक, यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया और अन्य: 1991 (2) ओ.एल.आर. 326 के मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया है। उक्त निर्णय के प्राग्राफ 11 और 12 को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"11. हमने श्री मोहंती के पूर्वोक्त निवेदन पर विधिवत विचार किया है और हमारे अनुसार, यह कहना मुश्किल होगा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम का लाभ श्रमजीवी पत्रकारों के अलावा अन्य समाचार पत्रों के कर्मचारियों को उपलब्ध नहीं होगा, भले ही वे उस अधिनियम के अर्थ के भीतर कामगार हों। श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम की धारा 3(1) के संबंध में हम कहेंगे कि श्रमजीवी पत्रकारों पर औद्योगिक विवाद अधिनियम लागू करने वाले उस धारा के उपबंध को यह नहीं माना जा सकता कि उक्त अधिनियम अन्य समाचार-पत्र कर्मचारियों पर लागू नहीं होगा। धारा 3(1) को यह पूरी तरह से स्पष्ट करने के लिए अधिनियमित किया गया होगा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम श्रमजीवी पत्रकारों पर लागू होगा, भले ही वे

औद्योगिक विवाद अधिनियम में दी गई 'कर्मकार' की परिभाषा को पूरा न करें। इस संबंध में यह स्पष्ट करना जरूरी है कि श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम की धारा 2(एफ) में परिभाषित श्रमजीवी पत्रकार 'कर्मकार' नहीं हो सकता है यदि औद्योगिक विवाद अधिनियम में दी गई उस अभिव्यक्ति की परिभाषा उस पर लागू हो। हालांकि, विधायिका चाहती थी कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के लाभ श्रमजीवी पत्रकारों को उपलब्ध कराए जाएं और शायद इसी वजह से अधिनियम में धारा 3(1) डाली गई थी। इसके अलावा, धारा 3(1) के संदर्भ से पता चलता है कि श्रमजीवी पत्रकारों पर लागू होने के दौरान औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों में कुछ पुनरीक्षण किए गए थे। हम यह नहीं सोचते हैं कि औद्योगिक विवाद अधिनियम जैसे महत्वपूर्ण संविधि के लाभों को, यदि अन्यथा वे उस अधिनियम के अर्थ के भीतर कामगार हैं, समाचारपत्र कर्मचारियों की अन्य श्रेणियों को देने से इनकार करना न्यायोचित होगा क्योंकि श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम की धारा 3(1) में जो प्रावधान किया गया है, श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम की धारा 14 और 15 में जो प्रावधान किया गया है, उसके कारण समाचार-पत्र कर्मचारियों पर दो विशिष्ट अधिनियमों को लागू करने के संबंध में हम कहेंगे कि ये दोनों धाराएं प्रश्नगत दो अधिनियमों को समाचार-पत्र स्थापनाओं पर लागू करने के लिए अधिनियमित की गई थीं क्योंकि इन उपबंधों के अलावा, वे अधिनियम ऐसे प्रतिष्ठानों पर लागू नहीं हो सकते थे। हालांकि, विधायिका उन अधिनियमों का लाभ सभी अखबार कर्मचारियों को देना चाहती थी। यह ध्यान दिया जा सकता है कि धारा 14 और 15 ने प्रश्नगत दो अधिनियमों के आवेदन को "हर समाचार पत्र प्रतिष्ठान" को संदर्भित किया है, न कि "समाचार पत्र कर्मचारियों" को। निस्संदेह, इन दोनों अधिनियमों को सभी समाचार-पत्र स्थापनाओं पर लागू करके इनका लाभ सभी समाचार-पत्र कर्मचारियों को प्रदान किया गया। इसका मतलब यह नहीं है कि विधायिका अखबार के कर्मचारियों को अन्य अधिनियमों के लाभों से लूटना चाहती थी। हमारे अनुसार, श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम की धारा 14 और 15 में जो प्रावधान किया गया है, उसके आधार पर ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

20. उपरोक्त के अलावा, श्री निगम ने तर्क दिया है कि प्रतिपक्षी नंबर-3 केवल समाचार पत्रों के वितरण को प्रभावित करने के लिए एक हॉकर के रूप में काम कर रहा था और वह याचिकाकर्ताओं के प्रतिष्ठान में न तो कर्मचारी था और न ही कामगार। वह प्रस्तुत करता है कि श्रम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं की ओर से भारी मात्रा में साक्ष्य पेश किए गए थे ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि कामगारों/कर्मचारियों के विवरण वाले रजिस्टरों में से किसी में भी प्रतिपक्षी संख्या-3 का नाम नहीं है। उन्होंने रिट याचिका के विभिन्न अनुलग्नकों का उल्लेख किया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि प्रतिपक्षी नंबर-3 को बीमा के प्रयोजनों के लिए कभी भी नामांकित नहीं किया गया था, जो पहलू याचिकाकर्ता-प्रतिष्ठान के सभी कर्मचारियों/कामगारों के लिए लागू होता है। वह प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी नंबर-3 ने श्रम न्यायालय के समक्ष कभी भी यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं

किया कि किसी भी समय उसे कोई नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी नंबर-3 द्वारा कोई सबूत नहीं दिया गया था, यहां तक कि यह प्रदर्शित करने के लिए कि उसने 1992 से 1998 तक लगातार काम किया और इसलिए, साक्ष्य के अभाव में, योग्यता के आधार पर श्रम न्यायालय का पंचाट अस्थिर है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि साक्ष्य में प्रतिपक्षी नंबर-3 द्वारा केवल एक पहचान पत्र दायर किया गया था जिसे प्रदर्श डब्ल्यू-3 के रूप में चिह्नित किया गया था, जिसमें प्रतिपक्षी नंबर-3 का विवरण 'सेल्समैन' के रूप में था और इस तरह का पहचान पत्र किसी भी फेरीवाले या किसी को भी जारी किया जा सकता है। संगठन में किसी भी कार्य को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से लेकिन किसी भी परिस्थिति में ऐसा पहचान पत्र कारीगरी या रोजगार स्थापित करने के लिए एक ठोस सबूत नहीं हो सकता है बहाली और बैक-वेज के लिए एक पंचाट पारित करने का औचित्य साबित करने के लिए।

21. श्री निगम ने मध्य भारत ग्रामीण बैंक बनाम पंचमलाल यादव: 2021 (171) एफ.एल.आर. 8 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है और तर्क दिया है कि केवल इसलिए कि नियोक्ता की ओर से कुछ उल्लंघन है, जो वर्तमान मामले में, श्री निगम के अनुसार नहीं है, बैक-वेज के साथ बहाली स्वचालित नहीं है और राहत हर मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है।

<u>प्रतिपक्षी का तर्क</u>

22. प्रतिपक्षी नंबर-3 के अधिवक्ता श्री जनमेद कुमार ने उक्त प्रतिपक्षी द्वारा दायर जवाबी हलफनामे का जिक्र करते हुए कहा कि श्रम न्यायालय ने प्रतिपक्षी नंबर-3 की सेवाओं को 'सेल्समैन' मानते हुए पंचाट पारित किया है। वह प्रस्तुत करता है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिपक्षी नंबर-3 को प्रति माह 950 रुपये का वेतन दिया जा रहा था, जो न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार बहुत कम था, प्रतिपक्षी नंबर-3 ने याचिकाकर्ताओं के समक्ष मजदूरी बढ़ाने के लिए अपने दावे को उठाया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः 01.10.1998 से उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया और श्रम न्यायालय ने, इसके समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार करके, बैक-वेज के साथ बहाली का सही निर्देश दिया है। वह प्रस्तुत करता है कि पंचाट के अनुसार, प्रतिपक्षी नंबर-3 को बहाल कर दिया गया है, लेकिन उसे केवल 1,200 रुपये प्रति माह का भुगतान किया जा रहा है, न कि नियमित वेतनमान जो अन्य श्रमिकों के लिए लागू है।

23. याचिकाकर्ता की ओर से रिट याचिका में निहित संस्करण को दोहराते हुए रिज्वाइंडर हलफनामा दायर किया गया है।

24. चूंकि उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं को एक साथ सुना गया था, इसलिए एक मामले में मैसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड और दूसरे बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद और अन्य: 2020 (167) एफ.एल.आर. 412) के मामले में इस न्यायालय के एक फैसले पर प्रतिपक्षी की ओर

से भरोसा किया गया था, इसके पैराग्राफ 38 के विशेष संदर्भ में, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"38. इसलिए, इस मामले में कर्मकार केंद्रीय अधिनियम और राज्य अधिनियम दोनों के तहत एक कामगार है क्योंकि वह श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम के प्रावधानों से स्वतंत्र दोनों विधियों के तहत एक कामगार की परिभाषा को संतुष्ट करता है। यहां नियोक्ता केंद्र सरकार द्वारा या उसके प्राधिकार के तहत चलाया जाने वाला उद्योग नहीं है या जो केंद्रीय अधिनियम की धारा 2(ए)(i) के तहत उल्लिखित किसी भी निर्दिष्ट श्रेणियों या नामित प्रतिष्ठान, प्राधिकरणों या निकायों के अंतर्गत आता है, उपयुक्त सरकार अधिनियम की धारा 2(ए)(ii) के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकार होगी, अंतिम बार उल्लेख किया गया है। तदनुसार, राज्य अधिनियम की धारा 4 के तहत विवाद का संदर्भ वैध और सक्षम है। चूंकि राज्य अधिनियम की धारा 4 के तहत संदर्भ सक्षम है, इसलिए आगे का प्रश्न, "क्या केंद्रीय अधिनियम के तहत गठित श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण अकेले कामगार के संबंध में एक संदर्भ का जवाब देने के लिए सक्षम है?" का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

25. किए गए सबमिशन से निपटने के लिए आगे बढ़ने से पहले, वर्तमान रिट याचिका में पारित 19.05.2016 के अंतरिम आदेश को संदर्भित किया जा रहा है, जिसके तहत 09.11.2015 के आक्षेपित पंचाट के संचालन पर इस शर्त के अधीन रोक लगा दी गई थी कि याचिकाकर्ता प्रतिपक्षी नंबर-3 को दिए गए पूरे बैक-वेज को जमा करें और उसे उसी स्थिति में बहाल करें क्योंकि वह उस समय काम कर रहा था जब उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं।

26. पक्षकारों के वकीलों को सुनने के बाद, यह न्यायालय अधिनियम वर्ष 1955, उत्तर प्रदेश अधिनियम 1947 के साथ-साथ केंद्रीय अधिनियम, 1947 के तहत निहित वैधानिक प्रावधानों के आलोक में बार में दिए गए तर्कों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ता है।

<u>प्रतिद्वंद्वी तर्कों का विश्लेषण</u>

27. जहां तक धारा 2(सी) में निहित "समाचार पत्र कर्मचारी" की परिभाषा के साथ-साथ अधिनियम, 1955 की धारा 2(डीडी) में निहित "गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारी" की परिभाषा का संबंध है, प्रताप चंद्र मोहंती (उपरोक्त) के मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले को देखते हुए, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा जागरण प्रकाशन (उपरोक्त) के मामले में अपने फैसले में संदर्भित और भरोसा किया गया है और केंद्रीय अधिनियम, 1947 की धारा 3 के आलोक में, अधिनियम वर्ष 1955 के प्रावधानों को प्रतिपक्षी नंबर-3 के कामकाज तक बढ़ा दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि वह धारा 2(सी) के तहत निहित समावेशन खंड में आएगा जो इन शब्दों से स्पष्ट है ***<u>"और इसमें कोई अन्य व्यक्ति जो किसी भी अखबार प्रतिष्ठान में या उसके संबंध में काम करते हैं, शामिल है"</u>***।

28. धारा 3 के संदर्भ में श्री निगम का दूसरा तर्क कि यह केवल केंद्र सरकार थी जो इस मामले में संदर्भ देने के लिए सक्षम थी, इस न्यायालय ने पाया कि केंद्रीय अधिनियम, 1947 की धारा 2(ए)(ii) के आधार पर, यह

राज्य सरकार थी जो संदर्भ बनाने के लिए पूरी तरह से सक्षम थी और अधिनियम 1955 की धारा 3, सरकार को एक संदर्भ बनाने के लिए, किसी भी तरह से राज्य की शक्ति को प्रतिबंधित नहीं करती है क्योंकि राज्य सरकार द्वारा संदर्भ बनाने की शक्ति केंद्रीय अधिनियम 1955 में ही निहित है और याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि केंद्रीय अधिनियम, 1947 की धारा 2(ए)(ii) पूरी तरह से राज्य सरकार को श्रम न्यायालय को संदर्भित करने की शक्ति के साथ है। उक्त प्रावधान यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"2(ए)(ii) किसी भी अन्य औद्योगिक विवाद के संबंध में, जिसमें राज्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, प्रमुख उपक्रम द्वारा स्थापित सहायक कंपनियां और राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्वायत्त निकाय शामिल हैं, राज्य सरकार:

29. जहां तक दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश के संबंध में श्री निगम के तर्क का संबंध है, तर्क यह है कि श्रम आयुक्त के पास श्रम न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय पारित करने के बाद श्रम न्यायालय को संदर्भ देने के लिए अधिनियम के तहत कोई शक्ति नहीं थी और पुनर्विचार के लिए ऐसा प्रेषण उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के प्रावधानों के विरुद्ध है। उन्होंने हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) में इस न्यायालय के फैसले पर मजबूत भरोसा रखा है और प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि कानून की नजर में इस तरह का सहारा लेने की अनुमति नहीं है।

30. इस न्यायालय ने हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले की सावधानीपूर्वक जांच की है और पाया है कि वर्तमान मामले के तथ्य हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों से अलग हैं। हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में, श्रमायुक्त ने पंचाट पारित होने के बाद जिला शासकीय अधिवक्ता (सिविल), कानपुर से राय मांगी थी और उक्त डी.जी.सी. ने 17.03.2020 को अपनी राय प्रस्तुत करते हुए श्रम आयुक्त को सलाह दी थी कि अधिनिर्णय मामले की सुनवाई उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के तहत गठित अदालत द्वारा की जा सकती है और केवल इस तरह की राय के आधार पर, आयुक्त ने पंचाट को आक्षेपित किया और मामले को पुनर्विचार के लिए श्रम न्यायालय में भेज दिया। इस न्यायालय ने ऐसे तथ्यों के तहत श्रम आयुक्त की कार्रवाई को अनुचित पाया। इसके अलावा, हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के फैसले में उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के प्रावधानों पर विचार नहीं किया गया था और न ही उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 11-ए द्वारा प्रदत्त प्रत्यायोजित शक्तियों को छुआ गया था, जो इस प्रकार है: -

"[11क. शक्तियों का प्रत्यायोजन--राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन उसके द्वारा प्रयोक्तव्य कोई शक्ति, ऐसे विषयों के संबंध में और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, यदि कोई हो, जो इस दिशा में विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसे अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा भी प्रयोक्तव्य

होगी जो इस निदेश में विनिर्दिष्ट की जाएँ, राज्य सरकार के अधीनस्थ ऐसे अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा भी प्रयोक्तव्य होगी, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएँ।

<u>नोट्स</u>

शक्तियों का प्रत्यायोजन- यह माना गया कि राज्य सरकार को धारा 11-ए के तहत किसी भी अधीनस्थ प्राधिकारी को अधिनियम के तहत किसी भी शक्ति को प्रत्यायोजित करने का अधिकार है।

31. हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) का निर्णय केंद्रीय अधिनियम की धारा 39 के प्रावधानों को छूता है और कहता है कि प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग केवल संदर्भ बनाने के उद्देश्य से किया जा सकता है, लेकिन श्रम न्यायालय द्वारा पारित एक पंचाट की वैधता की जांच करने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह न्यायिक निर्णय में प्रशासनिक हस्तक्षेप के समान होगा।

32. श्री एस.एस. निगम के उपरोक्त सभी तर्कों को पूरा करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि श्रम आयुक्त की शक्ति श्रम न्यायालय द्वारा पारित पंचाट को उक्त न्यायालय द्वारा पुनर्विचार के लिए प्रेषित करने की शक्ति, उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 6(4) के तहत उक्त अधिनियम की धारा 11-ए के तहत शक्ति के प्रयोग में राज्य सरकार द्वारा किए गए प्रतिनिधिमंडल के आलोक में निहित है। न तो यह दलील दी गई है, न ही तर्क दिया गया है और न ही रिकॉर्ड पर कुछ भी रखा गया है कि राज्य सरकार ने कोई अधिसूचना जारी करके श्रम आयुक्त को अपनी शक्तियां प्रत्यायोजित नहीं की हैं। इसलिए, यह न्यायालय यह नहीं मान सकता है कि अधिनियम की धारा 6(4) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए श्रम आयुक्त के पक्ष में राज्य सरकार द्वारा कोई प्रतिनिधिमंडल नहीं किया गया है।

33. जहां तक उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के तहत उल्लिखित किसी भी आकस्मिकता के अस्तित्व/गैर-अस्तित्व के संबंध में श्री निगम के तर्क का संबंध है, ताकि पुनर्विचार के लिए पंचाट को प्रेषित किया जा सके, धारा 6(4)(i) विचार करने योग्य है। हालांकि, वर्तमान मामले में, उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 6(4) के खंड (ए) से (एच) बिल्कुल भी आकर्षित नहीं होते हैं। यह कहना है कि प्रेषण की शक्ति के प्रयोग में, उक्त खंडों में निर्धारित शर्तें मौजूद नहीं हैं, इस न्यायालय ने पाया कि प्रेषण की ऐसी शक्ति का प्रयोग उस मामले में किया जा सकता है जब "पंचाट की अवैधता पहली नज़र में स्पष्ट है", उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 6 की उपधारा (4) के खंड (i) के अनुसार। सुलभ संदर्भ के लिए, धारा 6(4)(i) को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

<u>"6(4)(i) पंचाट की अवैधता पहली नज़र में स्पष्ट है, यह हो सकता है, पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, निर्णय निर्णय प्राधिकारी के पुनर्विचार के लिए पंचाट को प्रेषित करें, और वह प्राधिकरण, पुनर्विचार के बाद, राज्य सरकार को अपना पंचाट प्रस्तुत करें, और राज्य सरकार उपधारा (3) में प्रदान किए गए तरीके से पंचाट प्रकाशित करेगी।]"</u>

34. वर्तमान मामले में, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या-21 में यह दलील दी गई है कि रिट-सी संख्या-25780 वर्ष 2008 में इस न्यायालय द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसरण में, श्रम न्यायालय द्वारा 12.07.2012 को प्रतिपक्षी नंबर-3 के दावे को खारिज करते हुए एक नया पंचाट पारित किया गया था, हालांकि, प्रतिपक्षी नंबर-3 द्वारा दायर प्रकीर्ण आवेदन पर, इस मामले को श्रम आयुक्त के स्तर पर पुन खोला गया था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, दिनांक 12.07.2012 के अधिनिर्णय को वर्तमान मामले के रिकॉर्ड में नहीं रखा गया है। हालांकि, जब यह न्यायालय दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश की वैधता की जांच करता है, तो यह पाता है कि इसमें कोई विशिष्ट कारण नहीं है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 6 की उपधारा (4) के किस खंड के तहत मामला विचाराधीन है। यहां तक कि यह मानते हुए कि 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश में अधिनियम 1955 की प्रयोज्यता के संबंध में कुछ कथन के कारण, श्रम आयुक्त को श्रम न्यायालय में पुनर्विचार के लिए मामले को भेजने के लिए राजी किया गया था, मामला धारा 6 की उप-धारा (4) के खंड (i) के तहत आ सकता है और यह एक ऐसा मामला हो सकता है जहां "पंचाट की अवैधता पहली नज़र में स्पष्ट थी", जो वास्तव में, दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश में निष्कर्ष/अवलोकन नहीं है।

35. यह मानने की सीमा तक कि दिनांक 12.07.2012 के अधिनिर्णय में कुछ अवैधता थी, जो उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 6 की उपधारा (4) के खंड (i) को आकर्षित करने के लिए इसके पहली नज़र में स्पष्ट हो सकती थी, दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश में कुछ भी नहीं है जिसे प्रेषण करने के विशिष्ट प्रावधान का अनुपालन कहा जा सकता है क्योंकि यह खंड (i) के बाद स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है ..... यह पक्षकारों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात्, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, अधिनिर्णय को न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के पुनर्विचार के लिए प्रेषित कर सकेगा और वह प्राधिकारी पुनर्विचार के पश्चात् अपना अधिनिर्णय राज्य सरकार को प्रस्तुत करेगा और राज्य सरकार उपधारा (3) में उपबंधित रीति से अधिनिर्णय प्रकाशित करेगी।

36. दिनांक 15.09.2014 के आदेश में कोई संदर्भ नहीं दिया गया है कि मामले को श्रम न्यायालय में भेजने से पहले पक्षकारों को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया गया था। अतः श्रम आयुक्त द्वारा दिनांक 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश के तहत किया गया प्रेषण उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के विशिष्ट प्रावधानों के अनुरूप पाया जाता है।

37. जहां तक हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण है कि पुनर्विचार के उद्देश्य से प्रेषण के लिए प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, इस न्यायालय ने पाया कि उक्त शक्ति उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 6(4) के तहत ही उपलब्ध है, जो प्रावधान हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में इस

न्यायालय के विचार के लिए नहीं आया था। इसलिए श्री निगम का इस हद तक प्रस्तुत करना कि श्रम आयुक्त के पास पंचाट को भेजने की कोई शक्ति नहीं है, स्वीकार्य नहीं है, लेकिन इस मामले के तथ्यों में, इस तरह की शक्ति का प्रयोग कानून के विपरीत पाया जाता है, जैसा कि ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है।

38. श्री निगम ने यह भी तर्क दिया है कि यदि 15.09.2014 के आक्षेपित आदेश को अस्थिर माना जाता है, तो श्रम न्यायालय का पंचाट जो प्रकृति में परिणामी है, भी रद्द हो जाएगा। वह वैकल्पिक रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रम न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के विशिष्ट मामले को ध्यान में नहीं रखा है कि प्रतिपक्षी नंबर-3 याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में अपनी कारीगरी/ रोजगार स्थापित करने वाले किसी भी सबूत का नेतृत्व करने में पूरी तरह से विफल रहा, सिवाय एक पहचान पत्र के, जिसे पंचाट देने के उद्देश्य से, ठोस साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। विशेष रूप से, याचिकाकर्ताओं के नेतृत्व में विशाल दस्तावेजी साक्ष्य के मद्देनजर प्रतिपक्षी के नाम का कोई उल्लेख नहीं है पूरे रिकॉर्ड में नंबर-3 जो सभी कामगारों/कर्मचारियों के लिए रखा जाता है। इसके अलावा, नाम के लायक भी कोई सबूत नहीं है कि प्रतिपक्षी नंबर-3 ने अपनी सेवाओं की समाप्ति से पहले एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिनों की निरंतर सेवा पूरी की।

<u>समाप्ति</u>

39. इस न्यायालय ने इस मामले की संपूर्णता में जांच की है और पाया है कि दिनांक 15.09.2014 का आदेश न केवल किसी भी ठोस तर्क से रहित है, बल्कि उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1947 की धारा 6(4) के तहत निहित वैधानिक जनादेश के उल्लंघन से ग्रस्त है। इसलिए, परिणामी पंचाट ही खराब हो जाता है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के नेतृत्व में भारी-भरकम सबूतों के खिलाफ, प्रतिपक्षी नंबर-3 द्वारा विचार करने योग्य कोई सबूत नहीं दिया गया था जो उसे याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में एक कर्मचारी/कामगार ठहरा सके।

40. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और 19.05.2016 के अंतरिम आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं को श्रम न्यायालय के समक्ष पूरी बकाया मजदूरी जमा करने का निर्देश दिया गया था और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि प्रतिपक्षी नंबर-3 की कथित सेवाएं, एक फेरीवाले के रूप में, वर्ष 1998 में समाप्त कर दी गई थीं। यह पंचाट वर्ष 2015 में पारित किया गया था और अंतरिम आदेश वर्ष 2016 में पारित किया गया था, जिसके बाद प्रतिपक्षी नंबर-3 को काम करने की अनुमति दी गई और उसे मजदूरी का भुगतान किया गया, यह न्यायालय श्री निगम के इस तर्क से सहमत है कि दिनांक 15.09.2014 के आदेश के साथ-साथ दिनांक 09.11.2015 के पंचाट को ऊपर बताए गए कारणों से अस्थिर है।

41. रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश, कानपुर (प्रतिपक्षी संख्या-1) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.09.2014 को श्रम न्यायालय को मामले को भेजने वाले के साथ-साथ 15.03.2016 को प्रकाशित

परिणामी आक्षेपित अधिनिर्णय दिनांक 09.11.2016, पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय (प्रथम), उत्तर प्रदेश, कानपुर (प्रतिपक्षी संख्या-2) द्वारा अधिनिर्णय वाद संख्या-275 वर्ष 1999 (ब्यूरो प्रमुख, राष्ट्रीय सहारा बनाम मुनराज) में पारित किया गया आदेश एतद्द्वारा **अपास्त** किया जाता है।

42. यह याचिकाकर्ताओं पर निर्भर है कि वे भविष्य में एक फेरीवाले के रूप में प्रतिपक्षी नंबर-3 से काम लें या न लें। हालांकि, जहां तक आक्षेपित पंचाट के तहत दी गई बहाली या 50% बैक-वेज की राहत का संबंध है, इसे एतद्द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है और रद्द कर दिया जाता है। इस रिट याचिका में दिए गए अंतरिम आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं द्वारा जमा की गई राशि **दो महीने** के भीतर याचिकाकर्ताओं को वापस कर दी जाएगी।

<u>रिट सी नंबर-23786 वर्ष 2016</u>

(मेसर्स ब्यूरो चीफ राष्ट्रीय सहारा और अन्य बनाम श्रम आयुक्त और 2 अन्य)

43. वर्तमान मामले के तथ्य रिट-सी संख्या-23241 वर्ष 2016 के तथ्यों के बिल्कुल समान हैं। एकमात्र बदलाव जो इस न्यायालय ने पाया है वह यह है कि यह रिट याचिका एक अलग कामगार के बारे में है, जिसने अपने दावे को ठीक उसी तर्ज पर और समान तथ्यों पर आंदोलन किया था और अंततः, अधिनिर्णय मामला केस नंबर-34 वर्ष 2000 (ब्यूरो प्रमुख, राष्ट्रीय सहारा बनाम रवींद्र कुमार मिश्रा) के रूप में दर्ज किया गया था। पंचाट में दर्ज तर्क तथा दिनांक 15.09.2014 के विप्रेषण आदेश बिल्कुल समान हैं। पक्षों द्वारा लगाए गए दावे और बचाव की प्रकृति भी समान है। इस रिट याचिका में भी दोनों पक्षों की ओर से बिल्कुल समान तर्क दिए गए थे। इसलिए तथ्यों या कानून की पुनरावृत्ति अनावश्यक रूप से इस निर्णय को और भारी बना देगी।

44. पूर्वोक्त सभी कारणों से, यह रिट याचिका भी सफल होती है और **अनुमति दी जाती** है। अतिरिक्त श्रम आयुक्त, उ0प्र0, कानपुर (प्रतिपक्षी संख्या-1) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.09.2014 को श्रम न्यायालय को मामले को भेजने वाले के साथ-साथ 15.03.2016 को प्रकाशित परिणामी आक्षेपित अधिनिर्णय दिनांक 09.11.2015, पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय (प्रथम), उ0प्र0, कानपुर (प्रतिपक्षी संख्या-2) द्वारा अधिनिर्णय वाद संख्या-34 वर्ष 2000 (ब्यूरो प्रमुख, राष्ट्रीय सहारा बनाम रवींद्र कुमार मिश्रा) में पारित किया गया आदेश एतद्द्वारा **अपास्त** किया जाता है।

45. यह याचिकाकर्ताओं पर निर्भर करता है कि वे भविष्य में एक फेरीवाले के रूप में प्रतिपक्षी नंबर-3 से काम लें या न लें। हालांकि, जहां तक आक्षेपित पंचाट के तहत दी गई बहाली या 50% बैक-वेज की राहत का संबंध है, इसे एतद्द्वारा अलग रखा जाता है और रद्द कर दिया जाता है। इस रिट याचिका में पारित अंतरिम आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं द्वारा जमा की गई राशि **दो महीने** के भीतर याचिकाकर्ताओं को वापस कर दी जाएगी।

<u>रिट-सी नंबर-22872 वर्ष 2016</u>

(मैसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी औद्योगिक अधिकरण एवं अन्य)

46. यह रिट याचिका मेसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड, मेरठ द्वारा अपने प्रबंधक के माध्यम से दायर की गई है, जिसमें पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण (5), मेरठ (प्रतिपक्षी नंबर-1) द्वारा अधिनिर्णय संख्या-18 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 20.07.2015 को प्रकाशित आक्षेपित पंचाट दिनांक 20.07.2015 को चुनौती दी गई है।

47. रिट याचिका में निहित दलीलों के अनुसार वर्तमान मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता एक समाचार पत्र कंपनी है और जिला मेरठ सहित विभिन्न स्थानों से 'दैनिक जागरण' के नाम से समाचार पत्र प्रकाशित करती है।

48. याचिकाकर्ता द्वारा यह दलील दी गई है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 (उमेश कुमार) को याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान द्वारा किसी भी समय कभी भी शामिल नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी नंबर-2 के बीच नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध कभी भी मौजूद नहीं था और वास्तव में एक मुले राम सिंह, जो प्रतिपक्षी नंबर-2 का रिश्तेदार था, याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में काम कर रहा था और प्रतिपक्षी नंबर-2 समय-समय पर याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में अपने उक्त रिश्तेदार से मिलने आता था। यह कहा गया है कि 11.08.2001 को प्रतिपक्षी नंबर-2 मुले राम सिंह से मिलने आया और चौकीदार की जानकारी के बिना, वह प्रतिष्ठान के परिसर में घुस गया और याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान के कुछ कागजात ले गया, जिसकी सूचना प्रतिष्ठान द्वारा 18.08.2001 को संबंधित थाना को दी गई और उसी से संबंधित प्रथम सूचना रिपोर्ट थाना सिविल लाइंस, मेरठ में धारा 380 भ०द०वि० के तहत केस अपराध नंबर-334 वर्ष 2001 के रूप में दर्ज की गई। आगे यह कहा गया है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 ने याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान से उत्पादन रिपोर्ट, रजिस्टर और अन्य कागजात ले लिए और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए अपने रोजगार के संबंध में कुछ दस्तावेज तैयार किए थे, जिसमें कहा गया था कि उसकी सेवाओं को 09.08.2001 से अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया था। आगे यह कहा गया है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2-ए के तहत उप श्रम आयुक्त के समक्ष एक आवेदन दायर किया और प्रार्थना की कि मामले को सुलह बोर्ड को भेजा जाए और उक्त आवेदन पर, सुलह अधिकारी, मेरठ ने सुलह बोर्ड का गठन करने के बजाय निपटान के लिए मामले को आगे बढ़ाया और याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया। आगे यह कहा गया है कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत कोई प्रावधान नहीं है कि सुलह बोर्ड के गठन से पहले, सुलह कार्यवाही को आगे बढ़ाया जा सकता है, हालांकि, सुलह के संबंध में उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना; राज्य सरकार ने मामले को पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण, प्रतिपक्षी

नंबर-1 को निम्नलिखित कथित विवाद के निर्णय के लिए संदर्भित किया, जहां अधिनिर्णय मामला संख्या-18 वर्ष 2002 दर्ज किया गया था:

क्या सेवयोजकों द्वारा अपने कर्मचारी श्री उमेश कुमार पुत्र भूडिया सिंह के सेवाएं दिनांक 09.08.2001 से समाप्त किया जाना उचित एवं वैधानिक है? यदि नहीं, तो संबधित श्रमिक किस हितलाभ/क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है? और अन्य किस विवरण के साथ?

49. पूर्वोक्त मामले में जारी नोटिस के अनुसरण में, याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी नंबर-2 ने ट्रिब्यूनल के समक्ष संबंधित उत्तर दायर किए और जबकि प्रतिपक्षी नंबर-2 का तर्क इस आशय का था कि वह 1996 से याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में काम कर रहा था, उसकी सेवाओं को 09.08.2001 से मौखिक निर्देश द्वारा अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया था, दूसरी ओर, याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान का बचाव यह था कि नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध कभी नहीं था और प्रतिपक्षी नंबर-2 ने कभी प्रतिष्ठान में काम नहीं किया था, बल्कि उसने संगठन में चोरी करके कुछ दस्तावेज बनाए थे। याचिकाकर्ता का बचाव यह था कि यह स्थापित करने के लिए कोई दस्तावेजी सबूत नहीं है कि याचिकाकर्ता को कभी संगठन में नियुक्त किया गया था और न ही उसके नाम का किसी भी योजना के संबंध में उल्लेख किया गया है जो श्रमिकों के लिए लागू है। ट्रिब्यूनल के समक्ष बचाव में याचिकाकर्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि संदर्भ का आदेश कानून में खराब था क्योंकि मामला औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (केंद्रीय अधिनियम) के प्रावधानों के तहत स्थापित किया गया था, जबकि संदर्भ उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (राज्य अधिनियम) के प्रावधानों के तहत किया गया था।

50. कार्यवाही अवधारित करने के बाद जहां दलीलों और हलफनामों का आदान-प्रदान किया गया था, दस्तावेजी साक्ष्य दायर किए गए थे और गवाहों की भी जांच की गई थी और जिरह की गई थी, पीठासीन अधिकारी (प्रतिपक्षी नंबर-1) ने दिनांक 20.07.2015 को आक्षेपित पंचाट द्वारा, यह माना कि प्रतिपक्षी नंबर-2 की सेवाओं को समाप्त करने से पहले, याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान द्वारा उसे कोई नोटिस नहीं दिया गया था और, इसलिए, बर्खास्तगी क़ानून में खराब थी और परिणामस्वरूप, प्रतिपक्षी नंबर-2 को एक महीने का वेतन और प्रत्येक कार्य वर्ष के 15 दिनों के वेतन के बराबर मुआवजा दिया गया, साथ ही अतिरिक्त मुआवजे के रूप में 20,000/- रुपये और मुकदमेबाजी की लागत के रूप में 5,000/- रुपये दिए गए।

51. प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि शुरू में प्रतिपक्षी नंबर-2 को याचिकाकर्ता के संस्थान में 02.09.1996 को जूनियर क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था। प्रतिपक्षी नंबर-2 संपादकीय विभाग से समाचार आइटम लाता था और अपनी लिखावट में रजिस्टर में उसी का समर्थन करता था। उपरोक्त के अलावा, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने अपनी लिखावट के तहत रजिस्टर में कंप्यूटर

ऑपरेटरों द्वारा किए गए दिन-प्रतिदिन के काम का भी समर्थन किया। उक्त कार्य स्थायी प्रकृति का है। उपर्युक्त रजिस्टर नियोक्ताओं के पास पड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार का पूर्ण क्षेत्राधिकार है और वह मामले को न्यायनिर्णयन के लिए भेजने में सक्षम है और इस प्रकार संदर्भ आदेश सही ढंग से दिया गया था। इसके अलावा, यदि नियोक्ता संदर्भ आदेश से असंतुष्ट थे, तो उन्हें उस समय रिट याचिका के माध्यम से इसे चुनौती देनी चाहिए थी जब संदर्भ 4.06.2002 को किया गया था।

52. प्रतिपक्षी नंबर-2, 2-9-1996 से 2-8-2001 तक नियोक्ता के साथ काम करने के सबूत और उक्त अवधि के लिए नियोक्ताओं द्वारा मजदूरी के भुगतान के संबंध में, प्रति-शपथ पत्र में आगे एक आवेदन दायर किया दिनांक 22-11-2003 पेपर नंबर-13-डी, हलफनामे द्वारा समर्थित, कागज संख्या-14-ए, अदालत के समक्ष नियोक्ताओं से अपेक्षित दस्तावेज पेश करने के लिए, अर्थात्, (क) 2-9-1996 से 2-8-2001 तक उत्पादन रजिस्टर/रिपोर्ट, (ख) उक्त अवधि के खाता बही और समयोपरि पर्ची के साथ 2-9-1996 से 2-8-2001 तक समयोपरि विवरण और भुगतान रजिस्टर, (ग) अवकाश आवेदन के साथ अवकाश रजिस्टर 2-9-1996 से 2-8-2001 तक और (घ) 2-9-1996 से 2-8-2001 तक मजदूरी रजिस्टर का भुगतान।

53. जवाबी हलफनामे में आगे बचाव नियोक्ताओं इस मामले में सबसे अच्छा सबूत का उत्पादन नहीं किया कि है याचिकाकर्ता के पर्यवेक्षक श्री राजेंद्र कुमार ने प्रतिपक्षी नंबर-2 से काम लिया और उसे छुट्टी आदि दी, लेकिन श्री राजेंद्र कुमार सुपरवाइजर को नियोक्ताओं द्वारा परीक्षा के लिए पेश नहीं किया गया, जबकि वह सेवा में था। इसी तरह, एक अन्य कर्मचारी मुले राम को भी नियोक्ताओं द्वारा जांच के लिए पेश नहीं किया गया था, जबकि नियोक्ताओं ने मुले राम का नाम लिया है और उसके बारे में अपना झूठा मामला खड़ा किया है। इस प्रकार, नियोक्ताओं ने जानबूझकर अपना सर्वश्रेष्ठ सबूत पेश नहीं किया और इसे रोक दिया। यदि नियोक्ता श्री राजेन्द्र कुमार और श्री मुले राम को पेश करते तो उक्त गवाहों ने सच बोला होता जो नियोक्ताओं द्वारा स्थापित मामले के विरुद्ध हो सकता था।

54. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में निहित संस्करण को दोहराते हुए एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है।

55. मैंने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री चंद्रभान गुप्ता, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री अजय राजेंद्र, और प्रतिपक्षी नंबर-1 के स्थायी अधिवक्ता को सुना है।

56. इस मामले की सुनवाई रिट-सी संख्या-23241 वर्ष 2016 और 23786 वर्ष 2016 के साथ की गई थी, जिसमें एस.एस. निगम, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया था और श्रमजीवी पत्रकारों और अन्य समाचार पत्र कर्मचारियों (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955, औद्योगिक विवाद अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के आलोक में संदर्भ की वैधता के संबंध में तर्क दिए गए थे।

1947 (केंद्रीय अधिनियम) के साथ-साथ उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (उत्तर प्रदेश अधिनियम) को आगे बढ़ाया गया।

57. जब वर्तमान रिट याचिका पर बहस की गई, तो याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री चंद्रभान गुप्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में भी, संदर्भ कानून की नजर में खराब था और वह संदर्भ की वैधता के साथ-साथ अधिनियम के प्रावधान 1955, केंद्रीय अधिनियम, 1947 के साथ-साथ यू.पी. अधिनियम, 1947 की प्रयोज्यता के संबंध में वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.एस. निगम द्वारा दिए गए सभी तर्कों को अपनाते हैं।

58. अब, मैं मामले के गुणों पर बार में किए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूं।

<u>प्रतिद्वंद्वी विवाद और उनका विश्लेषण</u>

59. रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि दोनों पक्षों ने अपने-अपने दावों और बचाव के समर्थन में विभिन्न दस्तावेज प्रस्तुत किए। जबकि प्रतिपक्षी नंबर-2 ने सूची 8-बी 2 के साथ 19 दस्तावेज दायर किए, याचिकाकर्ता ने सूची 12-बी 1 के साथ दो दस्तावेज दायर किए। ट्रिब्यूनल के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा दायर दस्तावेज उसके रोजगार से संबंधित नहीं थे और चूंकि उसने याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान से दस्तावेज छीन लिए थे, जिसके बारे में प्राथमिकी भी दर्ज की गई थी, इसलिए उसे निर्मित दस्तावेजों से कोई लाभ नहीं मिल सकता है।

60. दूसरी ओर, प्रतिपक्षी नंबर-2 का तर्क इस आशय का था कि कथित चोरी के सिद्धांत को झूठा बताया गया है और उसके खिलाफ दर्ज झूठी प्राथमिकी के अनुसार पुलिस अधिकारियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई थी।

61. इस न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता की ओर से, राजेश कुमार भारद्वाज को गवाह के रूप में पेश किया गया था जिसने अपना बयान दिया था और जिरह भी की गई थी। अपनी जिरह में श्री भारद्वाज ने इस प्रकार कहा:-

"मेरी नियुक्ति वरिष्ठ लिपिक के पद पर हुई थी और अब मेरा प्रमोशन होकर मैं वर्ष 2005 के कार्मिक अधिकारी के पद पर कार्य हूँ, कर्मचारियों के अभिलेखों के रख-रखाव का विभाग बना हुआ है, जिसका नाम कार्मिक विभाग है। कार्मिक विभाग में मेरे सहित तीन कर्मचारी कार्य करते हैं। इस विभाग में कर्चारियों के उपस्थिति रजिस्टर, वतन भुगतान रजिस्टर व व्यक्तिगत पत्रावलियों का रख-रखाव किया जाता है। अवकाश प्रार्थना पत्र फॉर्म संख्या-१४ में तैयार किये जाते हैं। कर्मचारी जो अवकाश प्रार्थना पत्र देते हैं, उनकी पत्रावली भी रखी जाती है। पांच वर्ष की अवधि बीत जाने पर उन अभिलेखों को विनिष्ठ (बीड) कर दिया जाता है। जो अभिलेख विनिष्ठ किये जाते हैं, उनका कोई रजिस्टर अलग से नहीं रखा जाता है। नष्ट नोने वाले कागजात की सूचि भी तैयार नहीं की जाती है। मेरे अनुसार महत्वपूर्ण कागजात में कर्मचारियों की व्यक्तिगत पत्रावलियां व वेतन भुगतान संबंधी रजिस्टर तथा उपस्थिति रजिस्टर

आते हैं। वेतन भुगतान से संबंधित ई०एस०आई० तथा पी०एस० संबंधी कागजात भी महत्वपूर्ण होते हैं। ओवर टाइम से संबंधित कागजात पांच वर्ष तक रखे जाते हैं। मुझे यह जानकारी नहीं है कि संबंधित श्रमिक उमेश कुमार ने अपने सेवा सम्बन्धी विवाद किस वर्ष में उठाया था। **संबंधित कार्मिक विभाग से कोई रजिस्टर अथवा अन्य कागजात उठाकर नहीं ले गया।** कर्मचारियों की उपस्थिति और वेतन भुगतान रजिस्टर करीब 15 वर्ष के हमारे कार्यालय में रखे हुए हैं। मैं उत्पादन विभाग का कार्य नहीं देखता, लेकिन उत्पादन विभाग में जो कर्मचारी कार्य करते हैं, उनके अभिलेख जो कार्मिक विभाग से संबंधित हैं। हमारे द्वारा तैयार किये जाते हैं। **मैं नहीं बता सकता कि उत्पादन विभाग में कौन-कौन से अभिलेख रखे जाते हैं।** यदि कोई कर्मचारी अवकाश लेना चाहता है, तो वह संबंधित विभाग के इंचार्ज से अवकाश प्रार्थना पत्र अग्रसारित हमारे विभाग में देता है। अवकाश प्रार्थना पत्र पर कार्मिक विभाग की टिप्पणी अंकित की जाती है और उसके पश्चात पत्र की पत्रावलियां अलग से हमारे विभाग में तैयार की जाती है। वर्ष 2000-2001 में उत्पादन विभाग के इन्चार्ज श्री राजेन्द्र कुमार थे। मैं देखकर राजेन्द्र कुमार के हस्ताक्षर पहचान सकता हूँ। सूची 8-बी(2) का कागज सं०-6 देखकर साक्षी ने कहा कि मुझे नहीं लगता कि इस कागज पर श्री राजेन्द्र कुमार और श्री सुरेश चन्द शर्मा के हस्ताक्षर हो। सूची 8-बी(2) का कागज संख्या-1 दैनिक जागरण, मेरठ के फार्म पर तैयार किया गया है, लेकिन मैं देखकर यह नहीं बता सकता कि हस्ताक्षर अधिकारी के सामने किसके हस्ताक्षर है। इसी प्रकार सूची ८-बी(२) का कागज सं०-3, 8, 9, 10, 11, 12 व 13 भी दैनिक जागरण के फार्मेट पर तैयार किये गए अवकाश प्रार्थना पत्र हैं, लेकिन इस पर अधिकारी के हस्ताक्षर के कॉलम में किसके हस्ताक्षर हैं, मैं नहीं बता सकता। अवकाश प्रार्थना पत्र के फार्मेट दैनिक जागरण कार्यालय के स्टोर विभाग में रखे रहते हैं। वहां से कोई भी कर्मचारी ले सकता है। जिस विभाग में मूले राम कार्य करता है, उस विभाग से मिला हुआ ही स्टोर विभाग है। दोनों विभाग दो मंजिल है। वर्ष 2000-2001 में दैनिक जागरण, मेरठ का कार्यालय दिनांक 140-डी, साकेत, मेरठ में था। जो बाहरी व्यक्ति कार्यालय में आते हैं, उनका इंद्राज गेट पर ही एक रजिस्टर में किया जाता है। स्वयं कहा कि कई बार सिक्योरिटी वाले कर्मचारी लापरवाही भी करते हैं और कुछ लोगों को बिना इन्द्राज करे भी अन्दर घुसा लेते हैं। गेट पर जो रजिस्टर रखा रहता है, उसमें आगन्तुक का नाम दिनांक व समय तथा आने का उद्देश्य आदि इन्द्राज किये जाते हैं। हो सकता है कि उमेश कुमार का इन्द्राज गेट पर रखे गये पंजिकाओं में आगन्तुक के रूप में हो। गेट का रजिस्टर सिक्योरिटी विभाग में रखे जाते हैं। मैं नहीं कह सकता कि वर्ष 2000-2001 के गेट रजिस्टर अब सिक्योरिटी विभाग में है या नहीं। जब आगंतुक कार्यालय में आते-जाते हैं, तो गेट पर तलाशी नहीं ली जाती, बल्कि केवल इन्द्राज ही किया जाता है। मुझे यह जानकारी नहीं है कि आगन्तुक का सामान गेट पर रख लिया जाता है अथवा नहीं। **यह**

अतिरिक्त

बात मेरी जानकारी में नहीं है कि जिस दिन की चोरी उमेश कुमार द्वारा करना बताता हूँ, उस दिन मूले राम से कोई स्पष्टीकरण इस आशय का मांगा गया था या नहीं कि उसका परिचित व्यक्ति उत्पादन विभाग से अभिलेख उठाकर ले गया है। मेरे विभाग में मूले राम का विभाग 5-7 कदम दूर था। उत्पादन विभाग के हॉल में स्थित है, जिसमें 10-12 कर्मचारी कार्य करते थे, सर्कुलेशन विभाग में वर्ष 2000 में करीब 10-12 कर्मचारी कार्य करते थे। संबंधित श्रमिक महीने में एक-दो बार मूले राम से मिलने आता था और उससे मिलकर चला जाता था। **मैं यह नहीं बता सकता कि मैंने पहली बार उमेश कुमार को कार्यालय में आते हुए कब देखा था। जागरण प्रकाशन लि० में जितने भी कर्मचारी सेवारत हैं, उन सब की उपस्थिति मुख्य गेट पर ही सिक्योरिटी गार्ड के समक्ष दर्ज हो जाती है। मुख्य गेट पर प्रत्येक विभाग के अनुसार उपस्थिति शीट रखी रहती है, जिसमें प्रत्येक कर्मचारी अपना हस्ताक्षर करता है और उसके बाद अपने विभाग में ड्यूटी पर चला जाता है।** उपस्थिति शीट के आधार पर ही कार्मिक विभाग में उपस्थिति रजिस्टर तैयार किया जाता है, जिसमें केवल "ए" और "पी" लिखकर उपस्थिति अनुपस्थिति दर्शाई जाती है, उसी रजिस्टर में अवकाश और साप्ताहिक अवकाश इन्द्राज कार्मिक विभाग द्वारा किया जाता है। वर्ष 1996 के बाद की उपस्थिति शीट संभवतः इस केस में दाखिल नहीं की गई है। उपस्थिति शीट में जिन कर्मचारियों के नाम लिखे हैं और जिन्होंने अपने हस्ताक्षर किये हैं, वे जागरण प्रकाशन लि० के कर्मचारी होते हैं। कोई बाहरी व्यक्ति उपस्थिति शीट पर हस्ताक्षर नहीं बना सकता, जो कर्मचारी गेट पर रखी हुई उपस्थिति शीट पर हस्ताक्षर करते हैं, उन सभी के नाम कार्मिक विभाग में तैयार किये गये उपस्थिति रजिस्टर में कर्मचारी का पद भी लिख जाता है। कागज संख्या 6-ए० (सेवायोजक का लिखित कथन) देखकर साक्षी ने कहा कि इस पर श्री शरद टण्डन के हस्ताक्षर हैं, जो फैक्ट्री मैनेजर थे। सुरेश चन्द शर्मा भी फैक्ट्री मैनेजर थे, मैं उनके हस्ताक्षर भी पहचानता हूँ। यह कहना गलत है कि मैं सेवायोजकों के दबाव में सही बात नहीं बता रहा हूँ। यह कहना गलत है कि संबंधित श्रमिक उमेश कुमार ने दिनांक 02-09-1996 से लगातार सेवा समाप्ति तक जागरण प्रकाशन लि० की सेवा में रहा हो। यह कहना भी गलत है कि मैंने सेवायोजक के निर्देश और दबाव के कारण संबंधित श्रमिक का नाम कार्मिक विभाग के उपस्थिति रजिस्टर में न लिखा हो।"

62. उक्त मौखिक साक्ष्य के खिलाफ, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने खुद को ब०सा०-1 के रूप में, एक हरि शंकर को ब०सा०-2 और एक रवींद्र कुमार को ब०सा०-3 के रूप में पेश किया।

63. ब०सा०-1 (प्रतिपक्षी नंबर-2) ने स्पष्ट रूप से कहा कि उन्हें 02.09.1996 को जूनियर क्लर्क के पद पर नियुक्त किया गया था, लेकिन उन्हें कोई नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता संपादकीय अनुभाग से समाचार पत्र लाने के लिए उनसे काम लेता था, इसे समग्र अनुभाग में जमा करता था, उसके बाद इस तरह की रचना के बाद उत्पादन रजिस्टर में प्रविष्टियां करता था, विशेष

समाचार मदों के मुख्य शीर्षक और लंबाई की आगे की प्रविष्टियां करना और फिर, अन्य कर्मचारियों को इसे अग्रेषित करना। उनका कहना है कि उनकी ड्यूटी शाम 7.00 बजे से 3.00 बजे तक थी; कि वह हर 12 महीने में लगभग 300 दिन काम करता था; कि जब वह 02.08.2001 को बीमार पड़ गया, तो वह 08.08.2001 तक डॉ सुदर्शन कुमार वर्मा का इलाज करता रहा, जिसके संबंध में उक्त डॉक्टर द्वारा जारी चिकित्सा प्रमाण पत्र भी याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में प्रस्तुत किया गया था, लेकिन जब वह फिटनेस प्रमाण पत्र के साथ 09.08.2001 को याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में गया, तो याचिकाकर्ता ने उसे ड्यूटी पर लेने से इनकार कर दिया, जिसके बाद, उन्होंने नोटिस आदि के माध्यम से कानूनी उपाय किए। अपनी जिरह में, ब०सा०-1 उमेश कुमार (प्रतिपक्षी नंबर-2) ने आगे इस प्रकार कहा: -

"मैं जागरण की नौकरी में दिनांक 02-09-1996 को आया था। प्रार्थना पत्र कोई नहीं दिया, केवल हाई स्कूल का प्रमाण पत्र दिया था। मेरी नौकरी श्री अजय मिश्रा जी ने लगाई थी। नियुक्ति के समय मैं श्री राजेन्द्र कुमार को नहीं जानता था। नियुक्ति के बाद श्री राजेन्द्र शुक्ला जी के सुपरविजन में काम करने के लिए श्री मूले राम नागर ने कहा था। मूलेराम नागर प्रोडक्शन क्लर्क के पद पर कार्य करते थे। ये बात नियुक्ति के डेढ़ महीने के बाद की है, उससे पहले मैं प्रोडक्शन विभाग में मौडम लाकर प्रोडक्शन विभाग में देता था। राजेन्द्र कुमार जी के सुपरविजन के अंदर काम करने का कोई लिखित आदेश नहीं था। छुट्टी का मूल प्रार्थना पत्र टाइम ऑफिस के बॉक्स में डाल दिया जाता है। उसकी प्राप्ति लेने का प्रश्न ही नहीं उठता था। जागरण में नौकरी करने से मैं श्री मूले राम नागर को जानता था। नौकरी में आने से पहले मैं उनसे मिलने कभी नहीं आया था, जो प्रलेख मैंने दाखिल किए हैं, वो कंपनी में जमा है। मेरे ज्ञान में मेरे ऊपर फ़ौजदारी का कोई मुकदमा नहीं चल रहा है। **मेरी जानकारी में ऐसा नहीं है कि कंपनी ने मेरे खिलाफ कंपनी का रिकॉर्ड चुरा ले जाने की रिपोर्ट की रिपोर्ट लिखाई हो। मुझे फ़ौजदारी का कोई सम्मन नहीं मिला और मैं कभी न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ।** मैंने अपने सेवाकाल में ऐसी आपत्ति नहीं उठाई कि मुझे लिखित में जागरण में काम करने के लिए दिया जाए।

श्री मूले राम नागर और राजेन्द्र कुमार अब भी जागरण प्रकाशन में कार्यरत हैं। **मैं ड्यूटी पर जाता था, तो हाजिरी लगती थी। मैं हाजिरी शीट पर हस्ताक्षर करता था।** जिस शीट पर मैं हस्ताक्षर करता था, उस पर चार नाम थे, उस पर राजपाल का नाम था और दो के नाम ध्यान नहीं। तनख्वाह उस शीट पर नहीं मिलती थी। तनख्वाह श्री सरदार सुरेन्द्र सिंह जी अपने शीट पर बुलाकर एक शीट पर दस्तख़त कराकर देते थे, उसे जो रकम देते थे, वह लिखी जाती थी व मैंने उस शीट की कॉपी कभी नहीं मांगी। मेरे सामने किसी अन्य कर्मचारी ने भी उस शीट की कॉपी नहीं मांगी। मूले राम नागर जी मेरे बहनोई हैं। उनका नाम उस शीट पर नहीं था। उसका नाम किस रजिस्टर पर होता था, मुझे नहीं पता। जो कर्मचारी जागरण में काम करते

थे। उनकी हाज़िरी फार्म नं०-12 में लगती थी। मूले राम नागर परमानेंट कर्मचारी थे, उनकी हाजिरी कहाँ लगती थी। मुझे नहीं पता, जो प्रार्थना पत्र राजेन्द्र कुमार के हस्ताक्षर कराकर छुट्टी के लिए कराए थे, वो छापे-छपाए फार्म थे। **छुट्टी का प्रार्थना पत्र राजेन्द्र कुमार जी शाम को हस्ताक्षर करके हमें देते थे और कह देते थे कि उसको कल डाल देना, तब मैं उसे घर ले जाकर फोटो कॉपी करा लेता थे और उसके बाद मैं संबंधित बक्से में डाल देता था। यही बात ओवर टाइम स्लिप के बारे में है।** प्रार्थना पत्रों में तारीख भी डालते थे। मुझे छुट्टी सैंक्शन होने के बाद सुचना नहीं मिलती थी। हम तो प्रार्थना पत्र देकर छुट्टी कर लेते थे। दिनांक 12.02.2000 को मैंने टैक्सी से जाने के लिए प्रार्थना पत्र दिया था, उससे पहले कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया था। जब मैं कभी टैक्सी से जाता था, तो किराए देता था। इस प्रार्थना पत्र पर राजेन्द्र कुमार "के भी हस्ताक्षर हैं और उस पर तारीख भी पड़ी है। ओम प्रकाश सांगवाल को मैंने कई बार टैक्सी पर जाने के लिए पैसे दिए। ये परमिशन रात को ड्यूटी से वापस जाते समय हुई थी। ढाई से तीन बजे तक की बात है। यह गलत है कि यह प्रार्थना पत्र मैंने राजेन्द्र कुमार के कहने से दिया हो। मेरे प्रार्थना पत्र पर संस्तुति करने से पूर्व राजेन्दर कुमार जी ने तुरंत ही अपने संस्तुति मेरे सामने लिख दी थी। टैक्सी में जाने की परमिशन के लिए मैंने हस्ताक्षर सामान्यतः अंग्रेजी में करता हूँ। प्रदर्श डब्ल्यू-11 पर मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं पर प्रार्थना पत्र मेरे लेख में है। इस पर हस्ताक्षर न करने का कोई कारण नहीं है। सूची 8-बी(2) का पेपर नं०-7 प्रोडक्शन रिपोर्ट की छाया प्रति है, जो फ़रवरी 2000 की है। यह मेरे द्वारा बनाई गई है और इस पर मेरे हस्ताक्षर हैं। इस पर प्रतिष्ठान का नाम नहीं लिखा और न ही अधिकारी के हस्ताक्षर हैं। इस पर प्रोडक्शन में प्रतिदिन के हस्ताक्षर हैं। या प्रोडक्शन कंप्यूटर से निकाली जाती थी, फिर इसमें भरी जाती थी। कार्य प्रोडक्शन रजिस्टर में चढ़ता था। उस से मैं विवरण तैयार करता था। इस विवरण की मूल ऑफिस के कार्यालय में जमा कर दी थी। इसकी कोई रसीद नहीं है, जो तारीख इस विवरण की फोटो कॉपी पर पड़ी है, उसी तारीख को ऑफिस में जमा कर देते थे। ये राजेन्द्र कुमार जी को मूल दे दी जाती थी। मुझे याद नहीं है कि मुझे छुट्टियों का वेतन मिला था अथवा नहीं। साल भर में कितनी छुट्टी बनती थी, मुझे नहीं पता। सैंक्शन तभी होती थी, जब छुट्टी ड्यू होती थी। ड्यू नहीं होती थी, तो तनख्वाह कट जाती थी। प्रतिष्ठान में ई०एस०आई० स्कीम लगती है। मुझे नहीं पता मेरे वेतन से नहीं कटती थी। उक्त सूची का पेपर नं०-15 यह छुट्टी

का प्रार्थना पत्र हैं, इस पर राजेन्द्र कुमार के हस्ताक्षर नहीं है। ये फार्म पर भी नहीं हैं। बीमारी के प्रार्थना पत्र पर राजेन्द्र जी हस्ताक्षर करते थे यह नहीं पता। मैंने अपना प्रार्थना पत्र अपने दोस्त से भिजवाया था। मैंने प्रार्थना पत्र के साथ डॉक्टरी का प्रमाण पत्र नहीं लगाया था। असल प्रमाण पत्र प्रार्थना पत्र के साथ भेज दिया था। प्रमाण पत्र फोटो कॉपी मैं अपने पास नहीं रखता था। प्रोडक्शन विवरण की फोटो कॉपी के अतिरिक्त मैं अन्य कोई रिकॉर्ड मेन्टेन नहीं करता था। प्रदर्श डब्ल्यू-६ फिटनेस प्रमाण पत्र को फोटो प्रति है। इसी में चिकित्सा प्रमाण पत्र भी सम्मिलित है। इस पर मेरे कोई हस्ताक्षर नहीं है। फिर कहा इस पर मेरे हस्ताक्षर हैं। यह बात गलत है कि दवाई के पर्चे अलग डॉक्टर के हैं और फिटनेस के अलग डॉक्टर हैं, जो प्रलेख मेरे नौकरी के संबंध में मेरे पास हैं, मैंने दाखिल कर दिया है अन्य कोई और सबूत मेरे पास नहीं है। यह गलत है कि मैं जागरण प्रकाशन के नियोजन में कभी नहीं रहा और मेरे ऊपर अभिलेख चुराने का मुकदमा मेरे ज्ञान में चल रहा है।"

64. अन्य गवाहों, अर्थात् हरिशंकर और रवींद्र कुमार (क्रमशः ब०सा०-1 और ब०सा०-3) ने भी ब०सा०-1 उमेश कुमार (प्रतिपक्षी नंबर-2) द्वारा उठाए गए रुख का समर्थन किया। जहां तक दस्तावेजी साक्ष्य का संबंध है, यह रिकॉर्ड पर और साथ ही आक्षेपित निर्णय में आया है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 ने मेडिकल लीव के संबंध में छह आवेदन दायर किए, जैसे पेपर नंबर-3, 8, 9, 10, 11 और 13, ओवरटाइम के प्रमाण पत्र पेपर नंबर-1 और 12, प्रोडक्शन रिपोर्ट पेपर नंबर-2, 4 और 5 के रूप में प्रदर्श डब्ल्यू-7, डब्ल्यू-8 और डब्ल्यू-9 और एक अन्य दस्तावेज पेपर नंबर-6 (प्रदर्श डब्ल्यू-11) जिसके तहत प्रतिपक्षी नंबर-2 ने 3.00 बजे अपनी ड्यूटी पूरी करने के बाद, टैक्सी के माध्यम से जाने के लिए प्रबंधक से अनुमति मांगी थी, जिसे प्रबंधक द्वारा 12.02.2000 को अनुमति दी गई थी। याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य के संबंध में, यह पंचाट में आया है कि याचिकाकर्ता द्वारा केवल अगस्त, 2001 का उपस्थिति रजिस्टर और वर्ष 1999 का अर्जित अवकाश रजिस्टर पेश किया गया था, जिसमें उल्लेख किया गया था और तर्क दिया गया था कि उक्त रजिस्टरों में प्रतिपक्षी नंबर-2 के नाम की कोई प्रविष्टि नहीं है जो दर्शाता है कि वह प्रतिष्ठान में कामगार नहीं था।

65. श्री चंद्रभान गुप्ता, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, पूर्वोक्त अधिनियमों वर्ष 1955 और 1947 के प्रावधानों के बारे में श्री एस.एस. निगम के तर्कों को अपनाने के अलावा, प्रस्तुत करते हैं कि अन्यथा योग्यता के आधार पर, याचिकाकर्ता के बीच नियोक्ता और कर्मचारी संबंध स्थापित करने के लिए नाम के लायक भी कोई सबूत नहीं था। प्रतिपक्षी नंबर-2 और ट्रिब्यूनल गलत तरीके से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रतिपक्षी नंबर-2 याचिकाकर्ता द्वारा लगाया गया था और वह अपनी सेवाओं की

समाप्ति से पहले एक वर्ष में 240 दिनों से अधिक समय तक काम किया था।

66. दूसरी ओर, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री अजय राजेंद्र ने जोरदार तर्क दिया है कि जहां तक संदर्भ की वैधता का संबंध है, यह इस न्यायालय द्वारा जागरण प्रकाशन (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के पैराग्राफ 38 में पहले ही अवधारित किया जा चुका है: -

"38. इसलिए, इस मामले में कर्मकार केंद्रीय अधिनियम और राज्य अधिनियम दोनों के तहत एक कामगार है क्योंकि वह श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम के प्रावधानों से स्वतंत्र दोनों विधियों के तहत एक कामगार की परिभाषा को संतुष्ट करता है। यहां नियोक्ता केंद्र सरकार द्वारा या उसके प्राधिकार के तहत चलाया जाने वाला उद्योग नहीं है या जो केंद्रीय अधिनियम की धारा 2(ए)(i) के तहत उल्लिखित किसी भी निर्दिष्ट श्रेणियों या नामित प्रतिष्ठान, प्राधिकरणों या निकायों के अंतर्गत आता है, ***उपयुक्त सरकार, अधिनियम की धारा 2(ए)(ii) के प्रावधानों के अंत में उल्लिखित, के अनुसार राज्य सरकार होगी। तदनुसार, राज्य अधिनियम की धारा 4-के तहत विवाद का संदर्भ वैध और सक्षम है।*** *चूंकि राज्य अधिनियम की धारा 4-के तहत संदर्भ सक्षम है, इसलिए आगे का प्रश्न, "क्या केंद्रीय अधिनियम के तहत गठित श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण अकेले कामगार के संबंध में एक संदर्भ का जवाब देने के लिए सक्षम है?" का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।*

67. श्री अजय राजेंद्र आगे प्रस्तुत करते हैं कि ट्रिब्यूनल के समक्ष कर्मकार द्वारा भारी दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था, जो मौखिक साक्ष्य के माध्यम से पर्याप्त रूप से साबित हुआ था कि प्रतिपक्षी नंबर-2 को वर्ष 1996 में जूनियर क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था, उन्होंने लगातार काम किया और उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 6-एन के प्रावधानों के अनुपालन को सुनिश्चित किए बिना उनकी सेवाओं को गलत तरीके से समाप्त कर दिया गया। श्री राजेंद्र ने रिकॉर्ड पर दस्तावेजों के साथ-साथ पंचाट में दर्ज निष्कर्षों का उल्लेख किया है।

68. जहां तक संदर्भ की वैधता के संबंध में श्री चंद्रभान गुप्ता के तर्क का संबंध है, इस न्यायालय ने पाया कि संदर्भ के आदेश को न तो वर्तमान रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया है, न ही इसे किसी भी प्रार्थना के साथ चुनौती दी गई है। इसके अलावा, आक्षेपित पंचाट के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि ट्रिब्यूनल के समक्ष बहस के दौरान, संदर्भ की वैधता के खिलाफ विवाद को आगे बढ़ाया गया था, हालांकि ट्रिब्यूनल ने कानून के प्रावधानों की जांच करके और विभिन्न निर्णयों का हवाला देते हुए कहा कि यू.पी. अधिनियम के प्रावधानों के तहत संदर्भ वैध था। इस न्यायालय ने श्री एस.एस. निगम द्वारा तर्क दी गई उपरोक्त रिट याचिकाओं में किए गए संदर्भ की वैधता पर चर्चा करते हुए कहा है कि श्रम न्यायालय को संदर्भ देने के लिए उपयुक्त सरकार राज्य सरकार थी। उक्त मुद्दे पर आगे कोई विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से तब, जब संदर्भ आदेश को चुनौती नहीं दी गई है और न ही इसे संलग्न किया गया है।

69. जहां तक श्री गुप्ता के इस आशय के तर्क का संबंध है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा 1996

के बाद से याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में अपनी कारीगरी स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया गया था, इस न्यायालय ने पाया कि तर्क में कोई सार नहीं है और यह रिकॉर्ड पर सामग्री के विपरीत है। न्यायालय ने पहले ही देखा है कि ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में अपना रोजगार स्थापित करने के लिए प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा पेश किए गए भारी-भरकम सबूतों को ध्यान में रखा है और कामगार द्वारा पेश किए गए सभी तीन गवाहों ने इसे स्थापित किया है। कामगार की ओर से दायर मौखिक गवाही या दस्तावेजी साक्ष्य में कोई विसंगति नहीं पाई गई है।

70. श्री गुप्ता के इस तर्क के संबंध में कि प्रतिपक्षी नंबर-2 ने याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान से कुछ दस्तावेज चुरा लिए थे और अपना रोजगार स्थापित करने के लिए उनका निर्माण किया था, रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी के अनुसरण में क्या हुआ और न ही यह स्थापित करने के लिए कुछ भी तर्क दिया गया है कि प्रतिपक्षी नंबर-2 को कथित चोरी के कमीशन के संबंध में सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी भी न्यायालय द्वारा दोषी पाया गया था।

71. ट्रिब्यूनल भी चोरी के कृत्य का आरोप रिकॉर्ड पर साबित नहीं खड़ा था। अन्यथा भी, जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दस्तावेजों के निर्माण के आरोप का संबंध है, ट्रिब्यूनल श्री राजेश कुमार भारद्वाज की मौखिक गवाही को पढ़कर सही निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उनके द्वारा यह नहीं कहा गया था कि दस्तावेजों को धोखाधड़ी से निर्मित किया गया था, बल्कि उक्त दस्तावेजों पर हस्ताक्षर का अवलोकन करके, केवल इतना कहा गया कि ऐसा प्रतीत नहीं होता कि दस्तावेजों पर अधिकारियों राजेंद्र कुमार और सुरेश शर्मा द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। ट्रिब्यूनल ने सही दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए गए गवाह ने विशेष रूप से हस्ताक्षर से इनकार नहीं किया और न ही उसने यह कहा कि हस्ताक्षर याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान के किसी भी अधिकारी के नहीं थे।

72. इस विवाद के संबंध में कि प्रतिपक्षी नंबर-2 के रिश्तेदार मुले राम सिंह याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में काम कर रहे थे और प्रतिपक्षी नंबर-2 प्रतिष्ठान में काम नहीं करता था, लेकिन वह मुले राम सिंह से मिलने आता था, ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान के खिलाफ इस आधार पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला है कि मुले राम सिंह को याचिकाकर्ता पक्ष द्वारा गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया था। उनके अलावा, हस्ताक्षर करने वाले कर्मचारी अजय मिश्रा और टैक्सी चालक राजेंद्र कुमार को प्रस्तुत न करने पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया था।

73. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 में ऐसे प्रावधान शामिल हैं जहां एक अदालत कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मान सकती है। सुलभ संदर्भ के लिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114, उदाहरण (जी) के विशेष संदर्भ के साथ, नीचे पुन: प्रस्तुत की गई है: -

"114 न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मान सकता है - न्यायालय किसी ऐसे तथ्य के

अस्तित्व को मान सकता है जो वह सोचता है कि हुआ है, प्राकृतिक घटनाओं, मानव आचरण और सार्वजनिक और निजी व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम के संबंध में, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में।

व्याख्या

न्यायालय मान सकता है-

(क) .....

(ख) .....

(ग) .....

(घ) .....

(ङ) .....

(च) .....

(छ) वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रस्तुत नहीं किया जाता है, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है;

(ज) .....

(i) .....

74. धारा 114 के दृष्टांत (छ) के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यदि साक्ष्य जो हो सकता है और पेश नहीं किया जाता है, तो प्रतिकूल निष्कर्ष यह मानते हुए कि सबूत यदि पेश किया जाता है, तो उस व्यक्ति के प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है। उक्त प्रावधान उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 5-सी (3) के आधार पर इन कार्यवाहियों पर लागू होगा।

<u>निष्कर्ष</u>

75. वर्तमान मामले में, न केवल दस्तावेजी साक्ष्य बल्कि याचिकाकर्ता पक्ष द्वारा पेश किए गए मौखिक साक्ष्य का भी कामगार द्वारा पेश किए गए भारी-भरकम दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य की पूरी तरह से अभाव था और यह एक स्पष्ट मामला है जहां याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में कामगार की संलग्नता के मुद्दे पर, **प्रतिकूल निष्कर्ष** निकाला जाना चाहिए और याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान के खिलाफ ट्रिब्यूनल द्वारा सही तरीके से तैयार किया गया है।

76. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने पाया कि प्रतिपक्षी नंबर-2 की सेवाओं की मौखिक समाप्ति उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 6-एन के प्रावधानों के उल्लंघन में थी, जो इस प्रकार है: -

"6 एन। कामगारों की छंटनी से पहले की स्थितियां: *किसी उद्योग में नियोजित कोई भी कर्मकार, जो किसी नियोक्ता के अधीन कम से कम एक वर्ष तक निरंतर सेवा में रहा है, उस नियोक्ता द्वारा निम्नलिखित तक छंटनी नहीं की जाएगी -*

(ए) कामगार को लिखित रूप में एक महीने का नोटिस दिया गया है जिसमें छंटनी के कारण बताए गए हैं और नोटिस की अवधि समाप्त हो गई है या नोटिस की अवधि के लिए इस तरह के नोटिस के बदले कामगार को भुगतान किया गया है; बशर्ते कि ऐसी कोई सूचना आवश्यक नहीं होगी यदि छंटनी एक समझौते के तहत है जो सेवा की समाप्ति के लिए एक तारीख निर्दिष्ट करता है;

(ख) छंटनी के समय कामगार को प्रतिकर का संदाय कर दिया गया है, जो सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष के लिए पंद्रह दिन के औसत वेतन के बराबर होगा या उसके किसी भाग में छह मास से अधिक होगा; और

(ग) राज्य सरकार को विहित रीति से नोटिस तामील किया जाता है।

77. जहां तक पंचाट का संबंध है, बहाली का आदेश नहीं दिया गया है, बल्कि इस निर्णय के प्रारंभिक भाग में वर्णित मुआवजे से सम्मानित किया गया है. जहां तक विधिविरुद्ध समाप्ति के निष्कर्षों का संबंध है, मुझे अधिनिर्णय मामले का निर्णय करने और निर्णय देने में अधिकरण द्वारा की गई कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं मिलती है। हालांकि, पंचाट की वैधता, जिस हद तक यह कामगार की बहाली या बैक वेज पंचाट का निर्देश नहीं देता है, की जांच कामगार उमेश कुमार द्वारा दायर रिट-सी संख्या-27687 वर्ष 2016 से निपटने के दौरान की जाएगी, क्योंकि नियोक्ता और कामगार दोनों ने एक साथ अपनी संबंधित रिट याचिकाओं द्वारा एक ही पंचाट को चुनौती दी है। प्रतिपक्षी नंबर-2 की सेवाओं और उनकी गलत समाप्ति के संबंध में आक्षेपित पंचाट में दर्ज निष्कर्ष तथ्य के शुद्ध निष्कर्ष हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करते हैं। रिट याचिका विफल हो जाती है और तदनुसार खारिज कर दी जाती है।

<u>रिट-सी नंबर-27687 वर्ष 2016</u>

(उमेश कुमार बनाम पीठासीन अधिकारी औद्योगिक न्यायाधिकरण एवं अन्य)

78. यह रिट याचिका कामगार उमेश कुमार द्वारा दायर की गई है, जिसमें पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण (5), मेरठ (प्रतिपक्षी संख्या-1) द्वारा अधिनिर्णय संख्या-18 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 20.07.2015 को 02.01.2016 को प्रकाशित आक्षेपित पंचाट को चुनौती दी गई है।

79. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अजय राजेंद्र, और प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री चंद्रभान गुप्ता को सुना।

80. जहां तक कामगार की सेवाओं और उनकी गलत समाप्ति के संबंध में तथ्यात्मक और कानूनी आधार पर पंचाट की वैधता पर रिट-सी संख्या-22872 वर्ष 2016 में निर्णय लिखते समय पूरी तरह से चर्चा की गई है। तथापि, न्यायालय इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है कि कामगार किस राहत का हकदार है और उस सीमा तक अधिनिर्णय अच्छा है या बुरा।

<u>प्रतिद्वंद्वी तर्क और उनका विश्लेषण</u>

81. वर्तमान मामले में, श्री अजय राजेंद्र, कामगार के अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक बार ट्रिब्यूनल इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि कामगार की सेवाओं की समाप्ति अवैध थी, सेवा और बैक-वेज में निरंतरता के साथ कामगार की बहाली के लिए निर्देश जारी किया जाना चाहिए था और इसलिए, इस हद तक पंचाट अवैध है।

82. इसके विपरीत, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री चंद्र भान गुप्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि रिट-सी संख्या-22872 वर्ष 2016 में बताए गए कारणों के लिए पंचाट पूरी तरह से अवैध है, इसलिए यह रिट याचिका खारिज करने योग्य है।

83. मैंने पक्षकारों की सलाह सुनी है और अभिलेख का अवलोकन किया।

84. आक्षेपित अधिनिर्णय को पहले ही ऊपर बताई गई सीमा तक रिट-सी संख्या-22872 वर्ष 2016 का निर्णय लेते समय वैध माना जा चुका है। जहां तक सेवाओं में निरंतरता और बैक-वेज के भुगतान के साथ सेवाओं में याचिकाकर्ता की बहाली न करने के बारे में श्री अजय राजेंद्र द्वारा दबाए गए एकमात्र बिंदु का संबंध है, इस संबंध में कानून इस आशय से अच्छी तरह से तय है कि बहाली प्रत्येक मामले में एक स्वचालित परिणाम नहीं है और यह व्यक्तिगत मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिसके तहत ट्रिब्यूनल के साथ-साथ उच्च न्यायालय को बहाली का निर्देश देने या उसके बदले मुआवजा नहीं देने के लिए, निर्देश देने की विवेकाधीन शक्ति है।

85. इस संबंध में, मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मैसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य: ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 75 के कर्मचारी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 9 में कहा है कि *"यह बहस के लिए खुला नहीं है कि औद्योगिक न्यायशास्त्र के क्षेत्र में एक घोषणा दी जा सकती है कि सेवा की समाप्ति खराब है और कामगार सेवा में बना हुआ है। सामान्य कानून सिद्धांत का भूतकाल की व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध को विशेष रूप से लागू नहीं किया जा सकता है या नुकसान के शमन का सिद्धांत कानून की इस शाखा में बाधित नहीं करता है। सेवा की निरंतरता के साथ, जहां सेवा की समाप्ति अमान्य पाई जाती है, बहाली की राहत प्रदान की जा सकती है। इसका अर्थ यह होगा कि नियोक्ता ने संबंधित कानून के विपरीत या अनुबंध के उल्लंघन में कामगार के काम का अधिकार अवैध रूप से छीन लिया है और साथ ही साथ कामगार को उसकी कमाई से वंचित कर दिया है। इस प्रकार नियोक्ता गलत पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप कामगार को बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। नियोक्ता मजदूरी का भुगतान करने की अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकता है जिसे नियोक्ता की अवैध कार्रवाई से कामगार वंचित कर दिया गया है। वास्तविक रूप से बोलते हुए, जहां सेवा की समाप्ति पर वैध या अवैध के रूप में सवाल उठाया जाता है और कामगार को मुकदमेबाजी के सरगम से गुजरना पड़ता है, लंबी मुकदमेबाजी के दौरान खुद को बनाए रखने की उसकी क्षमता अपने आप में एक ऐसा भयानक कारक है कि वह उस दिन को देखने के लिए जब राहत प्रदान की जाती है, जीवित नहीं रह सकता है। खासकर हमारी व्यवस्था में जहां कानून की देरी चिंताजनक हो गई है। यदि इतने लम्बे समय और ऊर्जा लेने वाली मुकदमेबाजी के बाद, जिस अवधि के दौरान कामगार केवल अपना भरण-पोषण करता है, अंतत उसे यह बताया जाना चाहिए कि यद्यपि उसे बहाल कर दिया जाएगा, उसे बकाया मजदूरी से वंचित कर दिया जाएगा जो उसे देय होगी, तो कर्मकार को उसकी कोई गलती न होने के लिए एक प्रकार का दंड दिया जाएगा और यह पूर्णत अवांछनीय है। आमतौर पर, इसलिए एक कामगार जिसकी सेवा अवैध रूप से समाप्त कर दी गई है, वह पूरी बकाया मजदूरी का हकदार होगा, सिवाय उस सीमा तक जो वह लागू आलस्य के दौरान लाभप्रद*

रूप से नियोजित किया गया था। यह सामान्य नियम है। कोई अन्य दृष्टिकोण नियोक्ता की अनुचित मुकदमेबाजी गतिविधि पर प्रीमियम होगा। यदि नियोक्ता अवैध रूप से सेवा समाप्त करता है और समाप्ति इस मामले में अर्थात, मजदूरी के पुनरीक्षण के लिए कामगार की मांग का विरोध करने के लिए, प्रेरित होती है। समाप्ति अनुचित श्रम व्यवहार के बराबर हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में बहाली पूर्ण बैक वेतन के साथ, सामान्य नियम है; इसका पालन किया जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 41 और 43 इस संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में हमारी सहायता करेंगे। उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अनुसार एक उपयुक्त कानून द्वारा राज्य ने कामगारों को काम दिलाने का प्रयास किया है। वैधानिक दायित्व के उल्लंघन में सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था और समाप्ति को अमान्य पाया गया है; हालांकि कामगार सौंपे गए कार्य को करने और अपनी आजीविका कमाने के इच्छुक थे; उन्हें इससे दूर रखा गया था। इसके अलावा उन्हें शीर्ष अदालत तक मुकदमा करने के लिए मजबूर किया गया और अब उनसे कहा जा रहा है कि उन्हें पूर्ण वेतन से कम वेतन दिया जाना चाहिए। यदि सेवाओं को समाप्त नहीं किया गया होता, तो कामगार आमतौर पर काम करना जारी रखते और अपनी मजदूरी अर्जित करते। जब यह माना गया कि सेवाओं की समाप्ति न तो उचित थी और न ही न्यायसंगत, यह न केवल यह दर्शाता था कि कामगार हमेशा सेवा करने के लिए तैयार थे, बल्कि यदि वे सेवा प्रदान करते हैं तो वे वैध रूप से उसी के लिए मजदूरी के हकदार होंगे। यदि कामगार हमेशा काम करने के लिए तैयार थे, लेकिन नियोक्ता के अवैध कृत्य के कारण उन्हें वहां से दूर रखा गया था, तो उन्हें पूरी बकाया मजदूरी नहीं देने का कोई औचित्य नहीं है जो उनके लिए बहुत वैध रूप से देय थी। धारी ग्राम पंचायत बनाम सफाई कमलदार मंडल में गुजरात उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच और पोस्टल सील्स इंडस्ट्रियल कोऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड बनाम लेबर कोर्ट, लखनऊ और अन्य में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने यह दृष्टिकोण लिया है और हमारी राय है कि इसमें लिया गया दृष्टिकोण सही है।

86. हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य भंडारण निगम: 2010 (124) एफ.एल.आर. 700 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"आक्षेपित आदेश को पढ़ने से पता चलता है कि एकल न्यायाधीश ने श्रम न्यायालय के फैसले में कोई क्षेत्राधिकार की त्रुटि नहीं पाई। उन्होंने यह भी नहीं पाया कि रिकॉर्ड के पहली नज़र में स्पष्ट कानून की किसी भी त्रुटि से पंचाट दूषित था या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ था। तथ्य की बात के रूप में, एकल न्यायाधीश ने निगम के तर्क को खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता की सेवा की समाप्ति अधिनियम की धारा 2(ओओ)(बीबी) के दायरे में आती है, और श्रम न्यायालय के साथ स्पष्ट सहमति व्यक्त की कि निगम के प्रबंध निदेशक द्वारा की गई कार्रवाई अधिनियम की धारा 25 जी के विपरीत थी जो अंतिम आओ, पहले जाओ के नियम का प्रतीक है। इसके बावजूद, एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता की बहाली के पंचाट को 87,582

रुपये के मुआवजे के साथ यह मानते हुए प्रतिस्थापित किया कि अपीलकर्ता को शुरू में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 और प्रासंगिक नियमों में निहित समानता खंड का अनुपालन किए बिना नियुक्त किया गया था। ऐसा करते समय, एकल न्यायाधीश यह नोटिस करने में विफल रहे कि श्रम न्यायालय के समक्ष निगम की ओर से दायर जवाब में, अपीलकर्ता के बकाया वेतन के साथ बहाली के दावे का इस आधार पर विरोध नहीं किया गया था कि उसकी प्रारंभिक नियुक्ति अवैध या असंवैधानिक थी और न तो कोई सबूत पेश किया गया था और न ही उस संबंध में कोई तर्क दिया गया था। इसलिए, श्रम न्यायालय को इस मुद्दे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं मिला कि क्या हाल के वर्षों में उच्चतर न्यायालयों द्वारा विकसित नए न्यायशास्त्र को लागू करके अपीलकर्ता को बहाली से वंचित किया जाना चाहिए कि अदालत को एक निर्णय पारित नहीं करना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अवैधता को बनाए रखा जा सकता है। यह स्थिति होने के नाते, एकल न्यायाधीश को बहस के दौरान पहली बार निगम की ओर से उठाई गई नई याचिका पर विचार करने और श्रम न्यायालय द्वारा पारित अन्यथा अच्छी तरह से तर्कपूर्ण निर्णय को पलटने और अपीलकर्ता को वंचित करने के लिए बिल्कुल भी न्यायसंगत नहीं था जो उसके अपने और उसके परिवार के भरण-पोषण का एकमात्र स्रोत हो सकता है।

87. इसके अलावा, उच्चतम न्यायालय, दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक और अन्य: 2013(139) एफ.एल.आर. 541 के मामले में विस्तार से एक कर्मचारी को उस स्थिति में बहाल करने के विचार पर चर्चा की गई जो उसने अपनी सेवाओं को बर्खास्तगी या हटाने या समाप्त करने से पहले अवधारित की थी और पैराग्राफ 17 में, उच्चतम न्यायालय ने माना कि *एक कर्मचारी को उस स्थिति में बहाल करने का विचार जो उसने बर्खास्तगी या हटाने या समाप्ति से पहले अवधारित किया था; सेवा का तात्पर्य है कि कर्मचारी को उसी स्थिति में रखा जाएगा जिसमें वह नियोक्ता द्वारा की गई अवैध कार्रवाई के लिए होगा। किसी व्यक्ति को लगी चोट, जिसे बर्खास्त कर दिया गया है या हटा दिया गया है या अन्यथा सेवा से समाप्त कर दिया गया है, को आसानी से पैसे के संदर्भ में नहीं मापा जा सकता है। एक आदेश पारित होने के साथ, जिसका नियोक्ता कर्मचारी संबंध को अलग करने का प्रभाव पड़ता है, बाद में आय का स्रोत सूख जाता है। न केवल संबंधित कर्मचारी, बल्कि उसके पूरे परिवार को गंभीर प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। वे जीविका के स्रोत से वंचित हैं। बच्चे पौष्टिक भोजन और शिक्षा और जीवन में उन्नति के सभी अवसरों से वंचित हैं। कई बार, परिवार को भुखमरी से बचने के लिए रिश्तेदारों और अन्य परिचितों से उधार लेना पड़ता है। ये परेशानियां तब तक जारी रहती हैं जब तक सक्षम न्यायनिर्णयन मंच नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई की वैधता पर निर्णय नहीं ले लेता है। ऐसे कर्मचारी की बहाली, जो सक्षम न्यायिक/अर्ध न्यायिक निकाय या न्यायालय के इस निष्कर्ष से पहले होती है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अधिकारातीत है, कर्मचारी को*

पूर्ण बैक वेतन का दावा करने का अधिकार देता है। यदि नियोक्ता कर्मचारी को वापस वेतन देने से इनकार करना चाहता है या परिणामी लाभ प्राप्त करने के लिए उसके अधिकार का विरोध करना चाहता है, तो यह उसके लिए विशेष रूप से निवेदन करना और साबित करना है कि बीच की अवधि के दौरान कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और समान परिलब्धियां प्राप्त कर रहा था। नियोक्ता के अवैध कृत्य के कारण पीड़ित किसी कर्मचारी को बकाया वेतन देने से इनकार करना अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्मचारी को दंडित करना और नियोक्ता को परिलब्धियों सहित मजदूरी वापस करने के दायित्व से मुक्त करके पुरस्कृत करना होगा।

88. उसी रिपोर्ट में, बैक-वेज के पंचाट के संबंध में, यह माना गया था कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में एक विवेकाधीन तत्व शामिल होने वाली बैक वेज के भुगतान से निपटा जाना चाहिए और कोई सीधा-जैकेट फॉर्मूला विकसित नहीं किया जा सकता है; हालांकि, इसकी संपूर्णता में वापस मजदूरी के प्रत्यक्ष भुगतान के लिए वैधानिक मंजूरी है। उच्चतम न्यायालय ने अपनी रिपोर्ट के पैराग्राफ 33 में विस्तार से विभिन्न प्रस्तावों को रखा है, जिसमें कहा गया है कि सेवा की गलत समाप्ति के मामले में, सेवा की निरंतरता और बैक-वेज के साथ बहाली सामान्य नियम है।

89. भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम मेसर्स हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड: 2014 (142) एफ.एल.आर. 20 के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय का संदर्भ भी उल्लेख करने योग्य है, जिसमें दीपाली गुंडू सुरवासे (उपरोक्त) के मामले में फैसले का उल्लेख करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह एक कर्मचारी या कामगार के साथ घोर अन्याय होगा यदि उसे वापस वेतन से वंचित कर दिया जाता है क्योंकि वह लंबे समय यथा उनकी सेवा की समाप्ति और बहाली के आदेश को दी गई अंतिमता के बीच का समय, से चूक गया है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कामगार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में है। वह पीड़ित की पीड़ा को लम्बा करने के लिए सर्वश्रेष्ठ कानूनी मस्तिष्क की सेवाओं का लाभ उठा सकता है, अर्थात, कर्मचारी या कामगार, जो एक निश्चित मात्रा में अधिवक्ता पर पैसा खर्च करने की विलासिता को वहन नहीं कर सकता है। इसलिए, ऐसे मामलों में हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के कर्मचारियों में सुझाए गए पाठ्यक्रम को अपनाना विवेकपूर्ण होगा...

90. बैकवेज की तुलना में बहाली के मुद्दे पर चर्चा करने के बाद, मैकिनॉन मैकेंज़ी एंड कंपनी लिमिटेड बनाम मैकिनॉन कर्मचारी संघ: 2015 (145) एफ.एल.आर. 184, पैराग्राफ 43 में, निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"43. इसके अलावा, संबंधित कामगारों की बहाली और उन्हें भुगतान की जाने वाली मजदूरी के संबंध में, कामगारों की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता ने अनूप शर्मा बनाम कार्यकारी अभियंता 2010 (125) एफ.एल.आर. 629 (एस.सी.) के मामले पर सही भरोसा

किया है, जिसमें यह माना गया था कि चूंकि रोजगार की समाप्ति आईडी अधिनियम के अध्याय V-A या V-B के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन या उल्लंघन है। ये कानून में अप्रभावी और शून्यता से ग्रस्त है, कानून की नजर में और नियोक्ता के पक्ष में बहुत मजबूत और सम्मोहक परिस्थितियों की अनुपस्थिति में, न्यायालय को यह घोषणा देनी चाहिए कि समाप्ति गैर-स्थाई थी और इसलिए कर्मचारियों को पूर्ण वेतन के साथ सेवा में जारी रखना चाहिए और सभी परिणामी लाभ प्रदान करना चाहिए। इसके अलावा, बकाया वेतन और परिणामी लाभों के भुगतान के संबंध में, दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम अध्यापक महाविद्यालय (2013) 10 एस.सी.सी. 324 और भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम हिंडाल्को 2014 (142) एफ.एल.आर. 20 (एस.सी.) के मामलों में इस न्यायालय के फैसलों पर भरोसा किया गया था। इस न्यायालय ने दीपाली गुंडू सुरवासे (उपरोक्त) के मामले में इस प्रकार राय दी:

"22. बर्खास्तगी या हटाने या सेवा की समाप्ति से पहले जो स्थिति है वह अवधारित करने के लिए एक कर्मचारी को बहाल करने का बहुत विचार कर्मचारी वह किया गया होता है लेकिन नियोक्ता द्वारा की गई अवैध कार्रवाई के लिए किया गया है कि एक कर्मचारी को उसी स्थिति में डाल दिया जाएगा का अर्थ है, किसी व्यक्ति को लगी चोट, जिसे बर्खास्त कर दिया गया है या हटा दिया गया है या अन्यथा सेवा से समाप्त कर दिया गया है, को आसानी से पैसे के संदर्भ में नहीं मापा जा सकता है। एक आदेश पारित होने के साथ, जिसका नियोक्ता कर्मचारी संबंध को अलग करने का प्रभाव पड़ता है, बाद में आय का स्रोत सूख जाता है। न केवल संबंधित कर्मचारी, बल्कि उसके पूरे परिवार को गंभीर प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। वे जीविका के स्रोत से वंचित हैं। बच्चे पौष्टिक भोजन और शिक्षा और जीवन में उन्नति के सभी अवसरों से वंचित हैं। कई बार, परिवार को भुखमरी से बचने के लिए रिश्तेदारों और अन्य परिचितों से उधार लेना पड़ता है। ये परेशानियां तब तक जारी रहती हैं जब तक सक्षम न्यायनिर्णयन मंच नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई की वैधता पर निर्णय नहीं ले लेता है। ऐसे कर्मचारी की बहाली, जो सक्षम न्यायिक/अर्ध न्यायिक निकाय या न्यायालय के इस निष्कर्ष से पहले होती है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अधिकारातीत है, कर्मचारी को पूर्ण बैक वेतन का दावा करने का अधिकार देता है। यदि नियोक्ता कर्मचारी को वापस वेतन देने से इनकार करना चाहता है या परिणामी लाभ प्राप्त करने के लिए उसके अधिकार का विरोध करना चाहता है, तो यह उसके लिए विशेष रूप से निवेदन करना और साबित करना है कि बीच की अवधि के दौरान कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और समान परिलब्धियां प्राप्त कर रहा था। नियोक्ता के अवैध कृत्य के कारण पीड़ित किसी कर्मचारी को बकाया वेतन देने से इनकार करना अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्मचारी को दंडित करना और नियोक्ता को परिलब्धियों सहित मजदूरी वापस करने के दायित्व से मुक्त करके पुरस्कृत करना होगा।

91. सशस्त्र बल पूर्व अधिकारी बहु सेवा सहकारी समिति लिमिटेड बनाम राष्ट्रीय मजदूर

संघ (INTUC): 2022(175) FLR 544 के मामले में एक बहुत ही हालिया निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने नियोक्ता के इस तर्क को खारिज कर दिया कि ट्रिब्यूनल सेवा की निरंतरता को निर्देशित करने में न्यायसंगत नहीं था। पैराग्राफ 16 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"16. अपीलकर्ता के आगे प्रस्तुत करने का कि ट्रिब्यूनल सेवा की निरंतरता का निर्देश देने में उचित नहीं है, जैसा कि छंटनी के मामले में पुन: रोजगार के बाद, कामगार सेवा की निरंतरता के हकदार नहीं हैं, का जवाब देने की आवश्यकता है। यहां भी कानून के इस सिद्धांत के साथ कोई संघर्ष नहीं है कि छंटनी किए गए कामगारों का पुन: नियोजन उन्हें सीमेंट निगम में यथा निर्धारित सेवा की निरंतरता का दावा करने का हकदार नहीं बनाता है। तथापि, इन निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत केवल उन मामलों पर लागू होगा जहां छंटनी वास्तविक है। ट्रिब्यूनल ने माना है कि नए नियमों और शर्तों पर पुनर्रोजगार की पेशकश के बाद सभी ड्राइवरों की छंटनी सदाशयी नहीं है। एक बार छंटनी के आदेशों को रद्द कर दिए जाने के बाद, कामगार स्वाभाविक रूप से ट्रिब्यूनल या कोर्ट ऑफ लॉ द्वारा निर्धारित बैक वेज के आदेश के साथ सेवा की निरंतरता के हकदार होंगे।

92. उपरोक्त विचार को उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में सिविल अपील संख्या-6890 वर्ष 2022(विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या-8393 वर्ष 2022 से उत्पन्न) जीतूभा खानसंगजी जडेजा बनाम कच्छ जिला पंचायत में पारित अपने निर्णय दिनांक 23.09.2022 में दोहराया है।

<u>निष्कर्ष</u>

93. पूर्वोक्त प्राधिकरणों में निर्धारित कानून का पालन करते हुए और रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि एक बार ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने को कानून के प्रावधानों के विपरीत पाया, तो केवल मुआवजे आदि के रूप में राहत अन्यायपूर्ण होगी और श्रम न्यायालय को याचिकाकर्ता को पूर्ण या 50% बैक-वेज के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश देना चाहिए था। जहां तक बहाली या बकाया मजदूरी की राहत से इनकार करने का संबंध है, न्यायालय को श्रम न्यायालय के आदेश में कोई ठोस तर्क नहीं मिलता है।

94. उपर्युक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और **अनुमति दी जाती** है। 02.01.2016 को प्रकाशित आक्षेपित अधिनिर्णय दिनांक 20.01.2016 जो पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय (5), उत्तर प्रदेश, मेरठ (प्रतिपक्षी संख्या-1) द्वारा अधिनिर्णय वाद संख्या-18 वर्ष 2002(मैसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड बनाम उमेश कुमार) में पारित किया गया था, एतद्द्वारा **संशोधित किया जाता** है और यह निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता (उमेश कुमार) को तुरंत उसकी सेवाओं में बहाल किया जाए। वह अपनी समाप्ति की तारीख से 50% की सीमा तक बैक-वेज का भी हकदार होगा। सेवा के अन्य सभी परिणामी लाभ भी याचिकाकर्ता (उमेश कुमार) के पक्ष में दिए जाते हैं, जिन्हें बिना

किसी देरी के प्रतिपक्षी-प्रतिष्ठान द्वारा कानून के अनुसार जारी किया जाएगा।

95. चूंकि पंचाट के तहत राशि को रिट-सी संख्या-22872 वर्ष 2016 में पारित अंतरिम आदेश के तहत जमा करने का निर्देश दिया गया था, इस निर्देश के साथ कि इसे राष्ट्रीयकृत बैंक के साथ सावधि जमा में निवेश किया जाएगा, एतद्द्वारा यह निर्देश दिया जाता है कि नीचे ट्रिब्यूनल के समक्ष कामगार (उमेश कुमार) द्वारा एक आवेदन को प्रस्तुत करने पर, ट्रिब्यूनल और संबंधित बैंक याचिकाकर्ता (कामगार) को उचित आवेदन के साथ इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तारीख से दो महीने के भीतर उचित प्रक्रिया के माध्यम से राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा राशि जारी करने की सुविधा प्रदान करेंगे। उक्त राशि को इस निर्णय के तहत याचिकाकर्ता (कर्मकार) को दिए गए वित्तीय लाभों के लिए **समायोजित** किया जाएगा।

<u>अंतिम परिणाम</u>

रिट-सी संख्या-23241 वर्ष 2016 (मेसर्स ब्यूरो चीफ राष्ट्रीय सहारा और अन्य बनाम श्रम आयुक्त यू.पी. और 2 अन्य) की **अनुमति** है; रिट-सी संख्या-23786 वर्ष 2016 (मेसर्स ब्यूरो चीफ राष्ट्रीय सहारा और अन्य बनाम श्रम आयुक्त और 2 अन्य) की **अनुमति** है; रिट-सी संख्या-22872 वर्ष 2016 (मैसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य) को **खारिज** किया जाता है; और रिट-सी संख्या-27687 वर्ष 2016 (उमेश कुमार बनाम पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य) की **अनुमति** है।

(2023) 5 ILRA 756

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी,

रिट-सी संख्या 26184 / 2020

मेसर्स श्री भूमि फ़ूड बेवरेजेस प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव, श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री संजय सिंह, श्री कृष्ण मोहन अस्थाना, कु. दीपिका तिवारी, श्री अंजनी कुमार रघुवंशी

सिविल कानून - SAERFAESI अधिनियम-कब्जा ज्ञापन-बैंक ने SARFAESI अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की और नीलामी के लिए संपत्ति गिरवी रख दी-नीलामी हुई याचिकाकर्ता-नीलामी क्रेता-पूर्ण बिक्री मूल्य जमा किया गया और नीलामी क्रेता को बिक्री प्रमाण पत्र जारी किया गया- याचिकाकर्ता-याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री को निरस्त कर दिया गया-बैंक के पास याचिकाकर्ता को चल संपत्ति सौंपने का कोई कारण नहीं था-चल संपत्ति सौंपने के समर्थन में कोई सूची दाखिल नहीं की गई-दस्तावेज को कब्जा ज्ञापन के रूप में संदर्भित किया गया-बैंक के किसी भी अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित नहीं - बैंक की मुहर अनुपस्थित-याचिकाकर्ता को संपत्ति का कब्जा सौंपने के लिए कानूनी दस्तावेज नहीं माना जा सकता।

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी, द्वारा प्रदत्त)

तथ्य:-

1. पंजाब नेशनल बैंक (प्रतिवादी संख्या 3) ने मेसर्स शामली पेपर्स मिल लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 5/उधार लेने वाली कंपनी) को कुछ ऋण संबंधी सुविधाएं प्रदान की, हालांकि, उसने भुगतान में चूक की।

2. बैंक ने तदनुसार वित्तीय संपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और सुरक्षा हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षेप में "सरफेसी") के प्रावधानों के तहत कार्यवाही शुरू की और गिरवी रखी गई संपत्ति को नीलामी के लिए रखा गया। इस स्तर पर, उधारकर्ता कंपनी ने लखनऊ में ऋण वसूली अधिकरण (संक्षेप में "डीआरटी") के समक्ष एक प्रतिभूतिकरण आवेदन (एस.ए.) संख्या 160 वर्ष 2010 दायर किया।

3. डीआरटी ने दिनांक 19.07.2011 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसके तहत बैंक को नीलामी के लिए आगे बढ़ने की अनुमति दी गई, लेकिन बैंक को अगले आदेश तक बिक्री की पुष्टि करने से रोक दिया गया।

4. पहली बिक्री सूचना अमल में नहीं आई, इसलिए, बैंक ने नई बिक्री सूचना जारी की और अंततः 17.02.2014 को नीलामी अमल में लाई गई। याचिकाकर्ता (नीलामी क्रेता) ने पूर्ण बिक्री मूल्य जमा कर दिया और नीलामी क्रेता को 03.03.2014 को बिक्री प्रमाण पत्र भी जारी कर दिया गया।

5. याचिकाकर्ता (नीलामी क्रेता) ने पक्षकार बनाने और डीआरटी द्वारा पारित दिनांक 19.07.2011 के अंतरिम आदेश पर स्पष्टीकरण के लिए डीआरटी के समक्ष एक आवेदन दायर किया।

6. उपरोक्त संदर्भित आवेदन पर, डीआरटी ने दिनांक 08.05.2014 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत आवेदन की अनुमति दी गई और माना गया कि दिनांक 17.02.2014 की नीलामी अवैध थी और इसे रद्द कर दिया गया और बैंक को याचिकाकर्ता (नीलामी खरीदार) से प्राप्त राशि को ब्याज सहित वापस करने का निर्देश दिया गया। आदेश के प्रासंगिक भाग का उल्लेख यहां आगे किया गया है:-

"मैंने प्रतिद्वंदी दलीलें सुनी हैं और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

रिकॉर्ड से पता चलता है कि मेरे पूर्ववर्ती द्वारा दिनांक 19.07.11 को पारित किया गया निरोधक आदेश इस विशिष्ट निर्देश के साथ था कि *"बैंक कानून के अनुसार आगे बढ़ें लेकिन अगले आदेश तक बिक्री की पुष्टि न करें"* और उक्त आदेश इस अधिकरण के द्वारा आज तक रद्द नहीं किया गया था। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क यह था कि चूंकि कोई बोली

प्राप्त नहीं हुई थी, इसलिए नीलामी नहीं हो पाई, इसलिए दिनांक 19.07.11 के आदेश का कोई प्रभाव नहीं है, स्वीकार्य नहीं है। और आगे बढ़ने से पहले इस अधिकरण के द्वारा एक औपचारिक घोषणा की आवश्यकता थी। प्रतिवादी-बैंक के तर्क का दूसरा पहलू यह है कि दिनांक 19.07.2011 का आदेश विक्रय नोटिस दिनांक 16.6.11 के लिए था जो केवल कारखाने, भूमि और भवन की नीलामी बिक्री से संबंधित है और संयंत्र और मशीनरी इसका हिस्सा नहीं थे। अत: किसी भी स्थिति में उक्त प्रतिबंध आदेश संयंत्र एवं मशीनरी पर लागू नहीं होता है। प्रतिवादी बैंक का उक्त तर्क टिकाऊ नहीं है क्योंकि चौथी आक्षेपित नीलामी के दौरान, कारखाने की भूमि और भवन को भी संयंत्र और मशीनरी के साथ नीलामी के लिए रखा गया था, इसलिए, मुझे प्रतिवादी बैंक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में योग्यता नहीं दिखी और मेरा विचार है कि चूँकि प्रतिवादी-बैंक ने निरोधक आदेश के हटे बिना, आगे बढ़कर नीलामी में संयंत्र और मशीनरी को बेच दिया, इसलिए उक्त कृत्य इस अधिकरण के अंतरिम आदेश की अवज्ञा है, इसलिए सावित्री देवी (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद का निर्णय वर्तमान मामले में सही रूप से लागू होता है। उक्त निर्णय में लॉर्डशिप ने स्पष्ट रूप से माना है कि: -

"9. स्वीकार्यतः, ... यह सुस्थापित सिद्धांत है कि इस प्रकार निष्पादित बिक्री कार्य न्यायालय के अंतरिम आदेश की अवज्ञा में निष्पादित किए जाने के कारण अमान्य हैं। मूलराज वी मूर्ति रघुनाथजी महाराज, एआईआर 1967 एससी 1386 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश पारित करने के बाद उसकी अवज्ञा में की गई कार्रवाई के प्रभाव पर विचार किया और माना कि न्यायालय द्वारा पारित आदेश की अवज्ञा में की गई कोई भी कार्रवाई बाद में विधिक निरर्थक होगी।

10. सुरजीत सिंह और अन्य बनाम हरबंस सिंह और अन्य, 1995 (6) एसएससी 50, 1995 एससीएफबीआरसी $30, आंध्र प्रदेश सरकार गुडेपु सैलिक और अन्य, 200 (4)एसएससी 625, हंसराज तीरथराम बनाम प्रशासक, नगर पालिका जम्मू,एआईआर 1963 केरल 18, में भी इसी तरह का दृष्टिकोण दोहराया गया है।

11. इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि कथित बिक्री कार्य निरर्थक हैं, जिसका अर्थ है कि अबाध्य कारी हैं, अप्रवर्तनीय और निष्पादन के अयोग्य है और नजरअंदाज किये जाने के लायक हैं।

<u>इसलिए, उपर्युक्त तथ्यों और कानूनी प्रस्ताव के आलोक में स्पष्टीकरण आवेदन की अनुमति दी जाती है और चूंकि दिनांक 17.02.2014 की नीलामी अवैध है और प्रतिवादी-बैंक की सभी आगे की कार्रवाई अमान्य है, इसलिए,</u>

नीलामी को रद्द कर दिया गया है और प्रतिवादी-बैंक को नीलामी क्रेता से प्राप्त राशि को नीलामी की पूरी राशि जमा करने की तारीख से 11% ब्याज के साथ वापस करने का निर्देश दिया जाता है।

आवेदक को दिनांक 15.05.14 तक रजिस्ट्रार के समक्ष पक्षकारों की श्रृंखला में नीलामी क्रेता को शामिल करने के लिए रजिस्ट्रार के समक्ष कदम उठाने होंगे।
अंतिम सुनवाई के लिए 08.07.14 को रखा जाए।"

(प्रभाव वर्द्धित)

7. उपरोक्त संदर्भित आदेश दिनांकित 08.05.2014 को, बैंक द्वारा ऋण वसूली अपीलीय अधिकरण, इलाहाबाद (संक्षेप में "डीआरएटी") के समक्ष अपील संख्या आर-65 वर्ष 2014 दायर करके चुनौती दी गई थी।

8. इस बीच, दिनांक 25.06.2014 के आदेश द्वारा उधार लेने वाले द्वारा दायर प्रतिभूतिकरण आवेदन को वापस लेने की अनुमति दी गई थी। आदेश दिनांक 25.06.2014 का उल्लेख इसके बाद किया गया है:-

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उसने प्रतिभूतिकरण आवेदन को वापस लेने के लिए दिनांक 07.06.14 को एक आवेदन दिया है।

इस स्तर पर नीलामी क्रेता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिभूतिकरण आवेदन को वापस लेने का जोरदार विरोध करते हुए कहा कि प्रतिवादी बैंक ने आज तक उसका पैसा वापस नहीं किया है।

जवाब में, प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि नीलामी क्रेता को चल संपत्तियों को हटाने के लिए फैक्ट्री परिसर का कब्जा एक महीने की अवधि के लिए दिया गया था, जिसे उसके द्वारा पहले ही हटा दिया गया है। इसलिए, उनका कहना है कि नीलामी क्रेता के पास इस मामले में आपत्ति करने का कोई आधार नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें एस.ए. को वापस लेने पर कोई आपत्ति नहीं है।

पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध मामले को वापस लेने के लिए आवेदन के आलोक में, एसए को वापस लिया हुआ मानते हुए खारिज किया जाता है।

हालाँकि, प्रतिवादी-बैंक को इस अधिकरण के दिनांक 08.05.14 के आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया है।"

(प्रभाव वर्द्धित)

9. इसके बाद, बैंक द्वारा दायर अपील (नीलामी रद्द करने के डीआरएटी के आदेश के खिलाफ) को डीआरएटी द्वारा, दिनांक 23.12.2014 के एक आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और दिनांक 08.05.2014 और 25.06.2014 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर

दिया गया था और नीलामी क्रेता को नीलामी कार्यवाहियों को चुनौती देने की स्वतंत्रता प्रदान की गई।नीलामी क्रेता/याचिकाकर्ता द्वारा दायर कार्यान्वयन आवेदन को भी आदेश दिनांक 21.01.2015 द्वारा खारिज कर दिया गया।

10. नीलामी क्रेता/याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 807 वर्ष 2015 दायर किया और आदेश दिनांक 30.11.2018 द्वारा इसका निपटारा कर दिया गया। आदेश का प्रासंगिक भाग यहां नीचे उद्धृत किया गया है -:

"न्यायालय ने आगे पाया कि एकमात्र जिस विवाद पर विचार किया जाना बाकी है वह इस आशय का है कि याचिकाकर्ता द्वारा नीलामी में खरीदी गई चल संपत्ति प्रदत्त की गई या नहीं और यदि प्रदत्त नहीं की गई तो पैसा वापस किया गया या नहीं।

मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर गौर करने के बाद, इस न्यायालय की निश्चित राय है कि कानून के कुछ तथ्यात्मक विवादित प्रश्नों के निर्णय के लिए, जो एसए कार्यवाही के अधिकरण या अपीलीय अधिकरण के समक्ष लंबित रहने के दौरान मामले में प्रविष्ट हो गए हैं, नीलामी क्रेता सहित संबंधित पक्षों के लिए उपयुक्त मंच ऋण वसूली अधिकरण होगा। तथ्य का प्रश्न जो दो अधिकरणों के समक्ष मुकदमेबाजी के दौरान उत्पन्न हुआ है, भी सभी पक्षों के प्रतिद्वंद्वी दावों को सुनने के बाद उनके समक्ष तय किया जा सकता है। यह न्यायालय अपीलीय अधिकरण द्वारा दिए गए विचारों से भी सहमत नहीं है कि मामले के दिए गए तथ्यों में नीलामी क्रेता अब अजनबी है और अपना उपचार कहीं और मांग सकता है। मामले के इन दृष्टिकोणों में, यह न्यायालय पाता है कि मामले में सभी पक्षों को उनके अधिकारों के अंतिम निर्णय के लिए अधिकरण के समक्ष स्थानांतरित किया जा सकता है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। ऋण वसूली अपीलीय अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 21.1.2015 और 23.12.2014 के आदेशों के साथ-साथ प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 160 वर्ष 2010 को वापस लेने की अनुमति देने की सीमा तक ऋण वसूली अधिकरण द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.06.2014 को रद्द किया जाता है। नीलामी क्रेता सहित सभी पक्षों को नए सिरे से सुनने के बाद मामले को न्यायनिर्णयन के लिए अधिकरण को वापस भेजा जाता है।

(प्रभाव वर्द्धित)

11.उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ ने सभी पक्षों को सुना और नीलामी क्रेता द्वारा दायर किये गए एमए पर दिनांक 29.07.2019 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया और प्रतिभूतिकरण आवेदन की स्वीकार किया और नीलामी क्रेता को धन वापस करने का निर्देश दिया गया।

12. ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ ने माना कि: -

"प्रतिवादी बैंक यह बताने में विफल रहा है कि जब नीलामी क्रेता के पक्ष में की गई बिक्री को अधिकरण के आदेश

दिनांक 08-05-2014 के अनुसार रद्द कर दिया गया था, तो चल संपत्ति को अगली तारीख पर नीलामी क्रेता को सौंपने का कोई कारण नहीं था।

प्रतिवादी बैंक चल वस्तुओं को नीलामी क्रेता को सौंपने के समर्थन में नीलामी क्रेता के हस्ताक्षर वाली कोई भी सूची अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत करने में विफल रहा है।

प्रतिवादी बैंक ने चल संपत्ति सौंपने के समर्थन में साक्ष्य के रूप में श्री राजकुमार सक्सेना का हलफनामा दायर किया है। उक्त शपथ पत्र माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था। यहां तक कि उक्त शपथ पत्र के साथ, नीलामी क्रेता द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित कोई भी सूची उसे चल सामान सौंपने के समर्थन में संलग्न नहीं है। इसलिए, केवल हलफनामे के कथनों के आधार पर, यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि चल संपत्ति कभी नीलामी क्रेता को सौंपी गई थी। चूंकि चल संपत्ति कभी भी आवेदक/नीलामी क्रेता को नहीं सौंपी गई थी, इसलिए आवेदक/नीलामी क्रेता, बैंक में उसके द्वारा जमा किए गए बिक्री प्रतिफल को वापस पाने का हकदार है।"

(प्रभाव वर्द्धित)

13. बैंक ने उपरोक्त आदेश को ऋण वसूली अपीलीय अधिकरण के समक्ष चुनौती दी, जिसे दिनांक 19.10.2020 के आक्षेपित आदेश द्वारा स्वीकार किया गया कि ऋण वसूली अधिकरण पहले रिट याचिका संख्या 807 वर्ष 2015 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के आलोक में निर्णय देगा, जो नीचे संदर्भित हैं -:

"21. यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता-बैंक ने अतिरिक्त दस्तावेज दाखिल करने की अनुमति देने के लिए 19.06.2019 को मौखिक रूप से प्रार्थना की थी, लेकिन निचले अधिकरण ने यह कहते हुए उक्त प्रार्थना को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि मामला पहले के साक्ष्यों के आधार पर तय किया जाना था। अधिकरण ने माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 30.11.2018 के निर्देश को गलत समझा है। क्योंकि दिनांक 19.06.2019 के आदेश को अपीलकर्ता-बैंक द्वारा अपील संख्या आर-55/2019 में चुनौती दी गई थी, लेकिन 29.07.2019 को अंतिम आदेश पारित होने के बाद यह अप्रभावी हो गया। लेकिन बैंक उस मुद्दे को तत्काल अपील में उठाने के लिए स्वतंत्र था क्योंकि अंतरिम आदेश दिनांक 19.06.2019 को अंतिम आदेश के साथ मिला दिया गया था। इसलिए दिनांक 19.06.2019 का आदेश पोषणीय नहीं है, इसलिए यह वर्तमान अपील में रद्द किये जाने योग्य है।

22. यह उल्लेख करना उचित होगा कि दिनांक 05.07.2019 को, अपीलकर्ता-बैंक ने कुछ दस्तावेजों के साथ निचले अधिकरण के समक्ष एक आवेदन दायर किया और प्रतिवादी नंबर 2, नीलामी क्रेता ने 10.07.2019 को उसी के खिलाफ अपनी प्रारंभिक आपत्ति दायर की।

निचले अधिकरण को अंतिम आदेश पारित करने से पहले दिनांक 05.07.2019 को किए गए आवेदन पर निर्णय लेना चाहिए था। लेकिन ऐसा किए बिना,निचले अधिकरण ने कुछ दस्तावेजों के संबंध में कुछ टिप्पणियां की हैं, जबकि, 05.08.2014 और 23.08.2014 को अपीलकर्ता बैंक द्वारा तैयार की गई वीडियोग्राफी सहित तस्वीरों और अन्य इलेक्ट्रॉनिक्स साक्ष्यों के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था। इसके अलावा, नीलामी क्रेता को इसके खंडन के लिए सुनवाई का अवसर दिए बिना ऐसे दस्तावेजों पर विचार करना आदेश में एक और भ्रांति थी और अतिरिक्त साक्ष्य की अनुमति देने से इनकार करने वाले पूर्व के आदेश दिनांकित 19.06.2019 के विपरीत भी था।

23. इसके अलावा, यह अपीलकर्ता-बैंक का विशिष्ट कथन है कि नीलामी क्रेता का प्रतिनिधि 12.06.2014 को कब्जा लेने के समय उपस्थित था और यह भी कि वीडियोग्राफी 05.08.2014 और 23.08.2014 को आयोजित की गई थी, जिसमें नीलामी क्रेता के अधिकृत प्रतिनिधि की उपस्थिति होने का दावा किया गया है। पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद का फैसला करने के लिए वीडियोग्राफी और तस्वीरों सहित इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य प्रासंगिक हैं। हालाँकि, इस पर विचार नहीं किया गया था और इसे रिकॉर्ड पर लेने की अनुमति नहीं दी गई। चूंकि मामला 2014 से माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था, इसलिए, बैंक के पास कब्जा प्रदान करने के अपने दावे को साबित करने के लिए डीआरटी, लखनऊ के समक्ष पहले साक्ष्य/दस्तावेज दाखिल करने का कोई अवसर नहीं था, इस प्रकार, बैंक उसके पास उपलब्ध साक्ष्य/दस्तावेज प्रदान करने का एक अवसर दिए जाने का हकदार है। इसके साथ ही, नीलामी क्रेता अपने तर्क के समर्थन में साक्ष्य/दस्तावेज जोडने या बैंक द्वारा दायर दस्तावेजों का खंडन करने का भी हकदार है। चूंकि, निष्कर्ष को पहली बार विचारण न्यायालय यानी निचले अधिकरण द्वारा दर्ज किया जाना है, इसलिए मैं मामले को, पक्षकारों को वे दस्तावेज/साक्ष्य जो वे दाखिल करना चाहते हैं, प्रस्तुत करने का अवसर दिये जाने के बाद नए सिरे से फैसला सुनाने के लिए, ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ को वापस भेजना उचित समझता हूं।

24. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील स्वीकार की जाती है। निचले अधिकरण द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.06.2019 और 29.07.2019 को रद्द किया जाता है और सभी पक्षों को अतिरिक्त साक्ष्य/दस्तावेज दाखिल करने का अवसर प्रदान करने और इसका खंडन करने का अधिकार प्रदान करने और फिर कानून के अनुसार मुद्दे को तय करने के लिए मामले को रिट याचिका संख्या 807 वर्ष 2015 में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के आलोक में नए सिरे से निर्णय लेने के लिए ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ को वापस भेजा जाता है।"

14. नीलामी क्रेता के कहने पर, उपरोक्त आदेश को वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित किया गया है।

याचिकाकर्ता/नीलामी क्रेता की दलीलें:-

15. याचिकाकर्ता/नीलामी क्रेता के विद्वान अधिवक्ता श्री जीपी श्रीवास्तव की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने यह प्रस्तुत किया है कि:-

(i) इस न्यायालय ने दिनांक 30.11.2018 के आदेश द्वारा डीआरटी द्वारा पारित दिनांक 21.01.2015, 23.12.2014 के आदेश और प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 160 वर्ष 2010 को वापस लेने की अनुमति देने की सीमा तक दिनांक 25.06.2014 के आदेश को रद्द कर दिया है और याचिकाकर्ता/नीलामी क्रेता सहित सभी संबंधित पक्षों को नए सिरे से सुनने के बाद निर्णय के लिए मामले को ऋण वसूली अधिकरण को वापस भेज दिया है।

(ii) रिमांड पर, ऋण वसूली अधिकरण ने चल संपत्तियों को सौंपने के एक सीमित मुद्दे पर सभी पक्षों को सुना और माना कि चूंकि नीलामी क्रेता के पक्ष में की गई बिक्री 08.05.2014 को रद्द कर दी गई थी, तो बैंक के पास चल संपत्तियों को नीलामी क्रेता को सौंपने का कोई कारण नहीं था, और चल संपत्ति को सौंपने के समर्थन में कोई सूची दाखिल नहीं की गई है।

(iii) इस न्यायालय ने कोई नया साक्ष्य पेश करने का निर्देश नहीं दिया है। इसने केवल यह निर्देश दिया है कि पक्षों को नए सिरे से सुना जाए।

(iv) नीलामी संपत्ति का कब्ज़ा याचिकाकर्ता को कभी नहीं सौंपा गया।

(v) बैंक को पर्याप्त अवसर दिया गया, लेकिन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाही के दौरान कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

(vi) प्रतिवादी बैंक ने एक तरफ यह रुख अपनाया है कि उन्होंने याचिकाकर्ता कंपनी को कब्ज़ा दे दिया है, हालांकि, दूसरी तरफ उन्होंने यह दावा किया है कि यूनिट का कब्ज़ा श्री आश अहमद को दे दिया गया है। प्रतिवादी बैंक ने आवेदक कंपनी के एक निदेशक को 19.07.2014 को एक पत्र जारी किया है कि चूंकि फैक्ट्री परिसर में स्थापित संयंत्र और मशीनरी बहुत बड़ी हैं, इसलिए श्री आश मोहम्मद, जिनका याचिकाकर्ता कंपनी से कोई संबंध नहीं है, ने इसे हटाने के लिए 1 से 1/2 महीने के अतिरिक्त समय का अनुरोध किया था।

(vii) इस न्यायालय के समक्ष बैंक द्वारा प्रस्तुत पेनड्राइव पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

बैंक की दलीलें:-

16. बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह ने प्रस्तुत किया है कि:-

(i) बैंक के पास पर्याप्त सबूत हैं कि मशीनरी के साथ जमीन का कब्जा नीलामी

क्रेता को सौंप दिया गया था, जिसे विवाद के उचित निर्णय के लिए देखना आवश्यक है, इसलिए आक्षेपित आदेश जिसके तहत मामले को साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता के साथ विचार के लिए वापस भेज दिया गया था, में कोई अवैधता नहीं थी।

(ii) उच्च न्यायालय ने ऋण वसूली अधिकरण को पक्षों को सुनने के बाद नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया है, इसलिए, उसे बैंक के निवेदन के समर्थन में, कि कब्ज़ा विधिवत सौंप दिया गया था, बैंक को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देनी चाहिए थी।

(iii) साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नीलामी क्रेता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता क्योंकि उसे साक्ष्य का खंडन करने की स्वतंत्रता दी गई है।

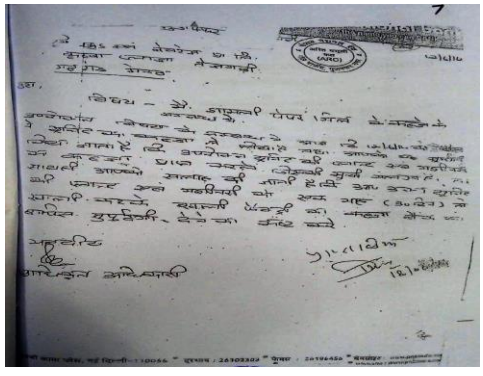
17. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

18. नीलामी संपत्ति का कब्ज़ा सौंपने के लिए एक प्रक्रिया की अनुमति की आवश्यकता होती है। बैंक के प्रतिनिधि, नीलामी क्रेता और गवाहों द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित एक कब्ज़ा ज्ञापन तैयार करना होता है। कब्ज़ा सौंपना कोरी औपचारिकता नहीं हो सकता।

19. वर्तमान मामले में, बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि 12.06.2014 को नीलामी क्रेता के अधिकृत प्रतिनिधि की उपस्थिति में संयंत्र और मशीनरी का कब्जा नीलामी क्रेता/याचिकाकर्ता को सौंप दिया गया था और इसकी वीडियोग्राफी भी की गई थी।

20. उपरोक्त संदर्भित कब्जा ज्ञापन दिनांक 12.06.2014 की एक फोटोकॉपी प्रतिवादी संख्या 3 और 4 द्वारा दायर पूरक शपथ पत्र के संलग्नक एसए -1 के रूप में संलग्न है। उक्त दस्तावेज़ दिनांक 12.06.2014 का है। यह कथित तौर पर बिना किसी नाम/पदनाम के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित है और साथ ही "प्राप्त" शब्द के नीचे हस्ताक्षर किया गया है, लेकिन यह दिनांक 18.06.2014 है, जबकि दिनांक 08.05.2014 के एक आदेश द्वारा ऋण वसूली अधिकरण ने नीलामी दिनांक 17.02.2014 को अवैध घोषित कर दिया था, इसलिए, बैंक के पास कब्ज़ा सौंपने का कोई अवसर नहीं था।

21. संदर्भ के लिए, कथित कब्ज़ा ज्ञापन यहां चिपकाया गया है: -



22. किसी भी कानूनी कौशल द्वारा उपरोक्त संदर्भित दस्तावेज़ को उचित प्रक्रिया के अनुसार "कब्जा ज्ञापन" नहीं माना जा सकता है, इसलिए, ऐसे कृत्य की किसी भी वीडियोग्राफी का कोई परिणाम नहीं होगा। बैंक ने अपने दावे के समर्थन में सबसे अच्छा सबूत पेश किया है

कि संपत्ति नीलामी क्रेता को सौंप दी गई थी, हालांकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसे कब्जे के लिए कानूनी दस्तावेज नहीं माना जा सकता है।

23. उपरोक्त संदर्भित दस्तावेज़ पर बैंक के किसी भी अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हैं, बैंक की मुहर भी अनुपस्थित है। अधिकृत अधिकारी के नाम का भी खुलासा नहीं किया गया है। नीलामी क्रेता के कथित अधिकृत प्रतिनिधि ने अपने नाम का खुलासा भी नही किया है। रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेज़ नहीं है कि उन्हें नीलामी क्रेता के अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में कैसे नियुक्त किया गया था और साथ ही नीलामी संपत्ति को सौंपने की प्रक्रिया का कोई गवाह भी नहीं है; साथ ही सूची को भी पत्रावली पर नहीं रखा गया है, जबकि उपरोक्त पत्र में यह उल्लेख किया गया था कि सूची भी संलग्न थी, इसलिए, पक्षों को साक्ष्य देने का अवसर देने के बाद मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए डीआरटी को भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि सर्वोत्तम साक्ष्य न्यायालय के समक्ष है, लेकिन इसे नीलामी क्रेता को संपत्ति का कब्जा सौंपने के लिए कानूनी दस्तावेज नहीं माना जा सकता है।

24. तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है और दिनांक 19.10.2020 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 763

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 34859/2013

नेत्र पाल सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सत्येन्द्र नाथ तिवारी, श्री अनुपम कुलश्रेष्ठ, श्री महेश गौतम

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सीलिंग कानून -यूपी शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 - धारा 8(4), 10(1) और 10(5) -यूपी शहरी भूमि सीलिंग (कब्जा लेना, राशि का भुगतान और संबद्ध मामले) निर्देश, 1983 -सीलिंग में कमी -पहले की सीलिंग प्रक्रिया को अपीलीय अदालत ने निरस्त कर दिया - 1999 के अधिनियम की धारा 10(6) के तहत कोई कब्जा नहीं लिया गया था - प्रभाव - आयोजित, राज्य ने यह दिखाने के लिए कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई है कि सक्षम प्राधिकारी के आदेश दिनांक 10.2.1993 के आधार पर प्रारंभ की गई नई सीलिंग कार्यवाही के अनुसरण में याचिकाकर्ता से वास्तविक कब्जा लिया गया था, इसलिए याचिकाकर्ताओं के मामले में भूमि के संबंध में सीलिंग कार्यवाही अधिनियम, 1999 के तहत भूमि अधिग्रहण समाप्त कर दिया गया है। याचिकाकर्ता भूमि को अपने पास रखने के पात्र हैं और प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे उपरोक्त भूमि के कब्जे में हस्तक्षेप न करें। (पैरा 7 और 9)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. यू.पी. राज्य बनाम हरि राम; (2013) 4 एससीसी 280

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं व राज्य की तरफ से स्थायी अधिवक्ता सुना।

वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ योजित की गयी है :-

(i) एक परमादेश की प्रकृति का एक रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाये जिसके द्वारा यह घोषित किया जाये कि विवादित भूमि जिसका माप 2971.7566 वर्ग मीटर है जो ग्राम घांघूपुरा ताजगंज, तहसील सदर, जनपद आगरा में स्थित है जो याचिकाकर्ता से सम्बन्धित है पर जो भी कार्यवाही चल रही है उसे शहरी भूमि (सीमा व विनियमन) निरसन अधिनियम 1999 के परिप्रेक्ष्य में उपशमित कर दिया जाये।

(ii) एक परमादेश की प्रकृति का एक रिट आदेश या निर्देश प्रतिवादियो को जारी करते हुये यह आदेश दिया जाये कि ये याचिकाकर्ता के शान्तिपूर्ण आधिपत्य व कब्जे में हस्तक्षेप नही करे जिसका माप 2971.7566 वर्ग मीटर है जो ग्राम घांघूपुर ताजगंज तहसील सदर, जनपद आगरा में स्थित है।

याचिकाकर्ताओ का कथन है कि सीलिंग पर जो कार्यवाही चल रही है जो उ०प्र० शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम 1999 (जिसे अब आगे अधिनियम 1999 कहा जायेगा) वह उसके पिता छिद्दन सिंह के विरुद्ध आदेश दिनांक 04.07.1979 धारा-8 (4) अधिनियम 1999 के तहत आरम्भ की गयी थी कि 2971.7566 वर्ग मीटर भूमि जो ग्राम धांधूपुर तहसील सदर जनपद आगरा में स्थित है को अतिरिक्त भूमि घोषित किया गया, उसके बाद अधिनियम 1999 की धारा-10 (1) व 10 (5) के तहत कार्यवाही करते हुये वास्तविक भौतिक कब्जा नहीं लिया गया।

सक्षम प्राधिकारी के आदेश दिनांक 04.07.1979 से व्यथित होकर खातेदार छिद्दन सिंह ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रकीर्ण अपील संख्या-146 दायर की गयी जिसे दिनांक 16.10.1997 के आदेश द्वारा स्वीकार करते हुये सक्षम प्राधिकारी के आदेश दिनांक 04.07.1979 को अपास्त करते हुये मामले का अधिनियम 1999 की धारा 8(3) के तहत पुनः सक्षम प्राधिकारी के समक्ष नया मसौदा विवरण का आदेश के साथ वापस भेज दिया। सक्षम प्राधिकारी के आदेश दिनांक 16.10.1986 के अनुक्रम में छिद्दन सिंह के विरूद्ध पुनः 2971.7566 वर्ग मीटर को अतिरिक्त भूमि घोषित करने के लिये प्रक्रिया आरम्भ की गयी। इसके उपरान्त धारा-10 (1) के अन्तर्गत 15.02.1993 को नोटिस जारी किया गया, धारा-10(3) के

अन्तर्गत 06.07.1993 को धारा-10 (3) के अन्तर्गत नोटिस जारी किया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह भी तर्क दिया कि यद्यपि नई सीलिंग प्रक्रिया के अन्तर्गत धारा 10(5) की नोटिस 17.02.1994 को जारी कर दी गयी परन्तु याचिकाकर्ता से कब्जा नहीं लिया गया और आज भी वह भूमि जो अधिशेष घोषित कर दी गयी थी, उसके कब्जे में है। यह भी कहा गया कि याचिकाकर्ता के पिता मूल खाताधारी थे, जिनकी मृत्यु 15.04.2009 को हो गयी थी।

दूसरी तरफ से स्थायी अधिवक्ता यह कथन किया कि प्रथम चरण में अधिशेष भूमि का कब्जा 29.04.1986 को ले लिया गया था, लेकिन स्थायी अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नही किया कि नया नोटिस जो दिनांक 17.02. 1994 को जारी किया गया था उसके बाद कब्जा नही किया गया था।

दोनों पक्षों के तर्क सुनने और पत्रावली का अवलोकन करने के उपरान्त हमारी राय यह है कि एक बार दिनांक 04.07.1979 को जो सक्षम अधिकारी ने प्रक्रिया प्रारम्भ की उसे अपीलीय अदालत ने 16.10.1986 को निरस्त कर दिया गया उसके बाद की परिणामी कार्यवाही जिसमें प्रथम चरण की कब्जे की कार्यवाही भी सम्मिलित है समाप्त हो गयी और यह निर्विवाद है कि नये चरण में सीलिंग प्रक्रिया में इस बात के होते हुये कि धारा-10 (5) की नोटिस 17.02.1994 को जारी की गयी पर विवादित भूमि का कब्जा नही लिया गया, इस बात की कोई सामग्री पत्रावली पर उपलब्ध नही है जो यह दर्शाता हो कि राज्य ने विवादित भूमि पर शान्तिपूर्वक कब्जा प्राप्त किया या अधिनियम 1999 की धारा-10(6) के अन्तर्गत सक्षम प्राधिकारी ने नई सीलिंग प्रक्रिया के आदेश दिनांक 10.02.1993 के अन्तर्गत बलपूर्वक कब्जा प्राप्त किया। उ०प्र० शहरी भूमि सीलिंग (कब्जा प्राप्ति राशि का भुगतान और सम्बन्धित मामले) अधिनियम 1983 में कब्जा प्राप्त करने की विस्तृत प्रक्रिया दी गयी है परन्तु दिशानिर्देश 1983 में वर्णित किसी भी प्रक्रिया का पालन नही किया गया।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी उ0प्र0 राज्य बनाम हरिराम (2013) 4 एस०सी०सी० 280 में प्रकाशित है मे स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि जब तक वास्तविक रूप से कब्जा न लिया गया हो तब तक अधिनियम 1999 की कार्यवाही के अन्तर्गत राज्य में भूमि निहित नही होगी और सीलिंग अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही समाप्त हो जायेगी और खातेदार अपनी अधिशेष भूमि को अपने पास रखने का हकदार होगा।

उक्त तथ्य के आलोक में हम इस विचार पर सहमत है कि राज्य ने

अप्रमाणित

पत्रावली पर कोई ऐसा तथ्य नही लाया जिससे प्रदर्शित होता हो कि नई सीलिंग प्रक्रिया जो सक्षम प्राधिकारी के आदेश दिनांक 10.02.1993 के तहत प्रारम्भ की गयी, उसके अन्तर्गत याचिकाकर्ता से वास्तविक कब्जा लिया गया हो।

अतः याचिकाकर्ता के गाटा संख्या-1631, 1659, 1660 जिसका कुल क्षेत्रफल 2971.7566 वर्ग मीटर है जो ग्राम धांधूपुरा ताजगंज, तहसील सदर, जनपद आगरा में है सीलिंग प्रक्रिया जो अधिनियम 1999 के अन्तर्गत चल रही है, समाप्त की जाती है। याचिकाकर्तागण अपने पास बरकरार रखने के हकदार है और प्रतिवादीगणों को उक्त भूमि पर कब्जे में हस्तक्षेप न करने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त निर्देश के साथ याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 5 ILRA 765

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी

रिट-सी संख्या 35545/2022

अमृता भारती ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री गौतम कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री सुरेश सिंह, श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

(ए) सिविल कानून- उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976- धारा 2(बी),2(डी),3,6,9,12-ए,12-बी,18 और 19 - उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 - संयुक्त प्रांत पंचायत राज अधिनियम, 1947, उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961, उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901, भारत का संविधान - अनुच्छेद 14,21,314,243(डी), 243- प्रश्न (1) - जब दो कानूनों का उद्देश्य अलग-अलग है और वे अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते हैं - तो किसी भी संघर्ष का सवाल ही नहीं है। (पैरा - 17)

(ख) सिविल कानून- उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976- धारा 10 - केवल औद्योगिक विकास क्षेत्र घोषित क्षेत्र में विकास एवं निर्माण को नियंत्रित करती है - निर्माण कार्य में कोई स्थायी प्रतिबन्ध नहीं लगाती - धारा 10 प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत क्षेत्रों में निर्माण कार्य करने से व्यक्तियों को नहीं रोकती - समुचित नियोजन एवं जनहित सुनिश्चित करने के लिए विनियामक कदमों के माध्यम से निर्माण कार्य को नियंत्रित करती है- धारा 19 - निर्माण कार्य हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए विशिष्ट प्रावधान करती है, विकास या निर्माण कार्य पर प्रतिबन्ध नहीं लगाती। (पैरा-4,19)

याचिकाकर्ता (आवासीय भूखंड का सह-स्वामी) - अवैध रूप से विभाजित और उठाए गए निर्माण- अधिनियम की धारा 10 का उल्लंघन करते हुए- निर्माण को 15 दिनों के भीतर हटाने का आदेश दिया गया- जिससे प्राधिकरण की लागत और व्यय बढ़ रहा है- याचिकाकर्ता का दावा है कि अवैध ध्वस्तीकरण आदेश नगर

पंचायत की शक्तियों और संपत्ति अधिकारों का उल्लंघन करता है। -संवैधानिक वैधता- चुनौती - उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 की धारा 10, राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचनाओं और सक्षम प्राधिकारी के आदेशों के तहत जारी अधिसूचनाएं। (पैरा -2 से 4)

निर्णय:- याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण की मंजूरी के बिना निर्माण कार्य शुरू किया, जिससे क्षेत्र के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, और इन निष्कर्षों को चुनौती नहीं दी जा सकती। (पैरा - 19)

रिट याचिका निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्री निवास नागर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 50154/2016
2. रकम सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, रिट - सी संख्या 9899/2015
3. सैंज ग्राम पंचायत बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, एआईआर 1999 एससी 826

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता ने उ0प्र0 औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 10 की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी है; भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (1) के प्रावधान के तहत जारी अधिसूचना दिनांक 18.12.2015; अधिनियम की धारा 2 (डी) के तहत राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 22.8.2001, जो कि सक्षम प्राधिकारी, यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण, गौतम बुद्ध नगर (प्रत्यर्थी संख्या 3 - संक्षेप में "प्राधिकरण") द्वारा आदेश दिनांकित 29.8.2022 द्वारा पारित है।

2. याचिकाकर्ता ने एक सतीश गोयल द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित दिनांक 12.3.2021 के विक्रय विलेख के आधार पर खसरा संख्या 422, क्षेत्रफल 561.86 वर्ग मीटर, दनकौर, गौतमबुद्ध नगर में एक आवासीय भूखंड का सह-स्वामी होने का दावा किया है। प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिनांक 29.8.2022 को पारित आरोपित आदेश में दर्ज है कि 1.4.2022 को प्राधिकरण के अधिकारियों द्वारा एक निरीक्षण किया गया था और उसके बाद यह पता चला कि याचिकाकर्ता ने भूखंड को उप-विभाजित कर दिया था और उस पर अवैध निर्माण कर लिया था। यह औद्योगिक विकास क्षेत्र की उचित योजना को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहा था और अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत आता है। इसे अधिनियम की धारा 9 और यमुना एक्सप्रेसवे विकास प्राधिकरण (निर्माण और विध्वंस) विनियम, 2010 के विनियम 1 और 3 का उल्लंघन माना गया, इस आशय का एक अभिलेख भी है कि विचाराधीन क्षेत्र "औद्योगिक विकास क्षेत्र" का हिस्सा है, जिसे

अनुवादित

दिनांक 24.4.2001 की अधिसूचना और 18.12.2015 को जारी अधिसूचना द्वारा अधिसूचित किया गया है, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (1) के प्रावधान के तहत दनकौर गांव सहित अस्सी गांवों को "औद्योगिक टाउनशिप" के हिस्से के रूप में अधिसूचित किया गया है। परिणामस्वरूप, उठाए गए निर्माणों को अवैध माना गया और उन्हें पंद्रह दिनों के भीतर हटाने का निर्देश दिया गया, ऐसा न करने पर, प्राधिकरण याचिकाकर्ता की लागत और खर्च पर इसे हटा देगा।

विवाद

3. चुनौती का मूल आधार यह है कि जिस भूखंड के संबंध में आपतिजनक आदेश पारित किया गया है, वह गांव दनकौर में स्थित है। निर्माणों को मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी नगर पंचायत, दनकौर थी और याचिकाकर्ता ने निर्माणों की मंजूरी देने के लिए 2.11.2022 को इसके समक्ष आवेदन किया था। उक्त आवेदन अभी भी लंबित है। इन परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा इस आधार पर निर्माणों को ध्वस्त करने का आदेश कि याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण से अनुमति नहीं ली थी, पूरी तरह से अवैध है, क्योंकि यह नगर पंचायत, दनकौर की शक्तियों को हड़पने के समान है। यह तर्क दिया गया है कि 1976 का अधिनियम और उ0प्र0 नगर पालिका अधिनियम, 1916 जिसके तहत नगर पंचायत, दनकौर अपनी शक्तियों का प्रयोग करेगी, एक साथ कार्य नहीं कर सकती। अनुच्छेद 243-क्यू के तहत जारी अधिसूचना के परिणामस्वरूप नगर पालिका को इस मामले में अपने अधिकार क्षेत्र से वंचित कर दिया गया है यह भी तर्क दिया गया है कि धारा 10 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 31ए का उल्लंघन है, क्योंकि यह किसी व्यक्ति को संपति का उपयोग करने और उसका आनंद लेने या उस पर निर्माण करने के अधिकार से स्थायी रूप से वंचित करता है।

4. दूसरी ओर, श्री मनीष गोयल, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता प्रत्यर्थी प्राधिकरण की ओर से श्री सुरेश सिंह ने की, ने प्रस्तुत किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (1) के प्रावधान के तहत जारी दिनांक 18.12.2015 की अधिसूचना की वैधता को इस न्यायालय द्वारा रिट-सी संख्या 50154/2016 (श्री निवास नागर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य) में पहले ही बरकरार रखा जा चुका है, जिस पर 4.7.2017 को निर्णय हुआ। यह आग्रह किया जाता है कि उक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने संवैधानिक योजना और अधिनियम के प्रावधानों के बीच परस्पर क्रिया पर

विचार किया था और माना था कि अधिसूचना संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है। उन्होंने इस न्यायालय के रिटन्सी संख्या 9899/2015 (रकम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 6 अन्य) में 1.5.2015 को दिए गए एक अन्य फैसले का भी हवाला दिया है, जिसमें 14.01.2015 की इसी तरह की अधिसूचना की वैधता को बरकरार रखा गया था। यह भी तर्क दिया गया है कि धारा 10 एक प्रावधान है जो केवल "औद्योगिक विकास क्षेत्र" घोषित क्षेत्र में विकास और निर्माण को नियंत्रित करता है और निर्माण कार्य पर कोई स्थायी प्रतिबंध नहीं लगाता है। इसलिए यह दलील कि उक्त प्रावधान संविधान के किसी आदेश का उल्लंघन करता है, टिकने योग्य नहीं है। यह भी आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण की पूर्व स्वीकृति के बिना, "औद्योगिक विकास क्षेत्र" घोषित क्षेत्र में निर्माण कार्य किया है, इसलिए आरोपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

विश्लेषण

5. दिनांक 18.12.2015 की विवादित अधिसूचना अनुच्छेद 243 क्यू (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई थी, जो नगर पालिकाओं से संबंधित संविधान के भाग IX-A के अंतर्गत आता है। इसे संविधान (चौहतरवाँ संशोधन अधिनियम), 1992 द्वारा 1.6.1993 से सम्मिलित किया गया था। अनुच्छेद 243 (डी) अनुच्छेद 243 क्यू के तहत गठित स्वशासन की संस्था के रूप में "नगर पालिका" को परिभाषित करता है। अनुच्छेद 243 क्यू में तीन अलग-अलग प्रकार की नगर पालिकाओं की परिकल्पना की गई है, अर्थात्, संक्रमणकालीन क्षेत्र के लिए एक नगर पंचायत, अर्थात ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में संक्रमण में कोई भी क्षेत्र, छोटे शहरी क्षेत्र के लिए एक नगर परिषद, और बड़े शहरी क्षेत्र के लिए एक नगर निगम। अनुच्छेद 243 क्यू के खंड (1) का प्रावधान राज्यपाल को किसी क्षेत्र या उसके भाग के लिए नगरपालिका गठित करने का अधिकार देता है, जहां क्षेत्र के आकार और उस क्षेत्र में किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान द्वारा प्रदान की जा रही या प्रदान किए जाने का प्रस्ताव नगरपालिका सेवाओं और ऐसे अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें उचित समझा जाए, सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा औद्योगिक टाउनशिप के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। संदर्भ की सुविधा के लिए अनुच्छेद 243 क्यू नीचे उद्धृत किया गया है: -

24 क्यू, नगर पालिकाओं का गठन. (1) प्रत्येक राज्य में निम्नलिखित का गठन किया जाएगा, -

(क) किसी संक्रमणकालीन क्षेत्र, अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में संक्रमणकालीन क्षेत्र के लिए नगर पंचायत (चाहे किसी भी नाम से जात हो);

(ख) किसी छोटे शहरी क्षेत्र के लिए नगर परिषदः और

(ग) इस भाग के उपबंधों के अनुसार, किसी बड़े शहरी क्षेत्र के लिए नगर निगमः

परंतु इस खंड के अधीन कोई नगरपालिका ऐसे नगरीय क्षेत्र या उसके किसी भांग में गठित नहीं की जा सकेगी जिसे राज्यपाल, उस क्षेत्र के आकार तथा उस क्षेत्र में किसी औद्योगिक स्थापन द्वारा प्रदान की जा रही या प्रदान किए जाने के लिए प्रस्तावित नगरीय सेवाओं और ऐसे अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें वह ठीक समझे, लोक अधिसूचना द्वारा औद्योगिक टाउनशिप के रूप में विनिर्दिष्ट करे।

(2) इस अनुच्छेद में, "संक्रमण क्षेत्र", "लघु नगरीय क्षेत्र" या "वृहतर नगरीय क्षेत्र" से ऐसा क्षेत्र अभिप्रेत है जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र की जनसंख्या, उसमें जनसंख्या का घनत्व, स्थानीय प्रशासन के लिए सृजित राजस्व, कृषि से इतर क्रियाकलापों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व या ऐसे अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें वह ठीक समझे, इस भाग के प्रयोजनों के लिए लोक अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

6. अनुच्छेद 243 क्यू के खंड (1) का प्रावधान मुख्य प्रावधान के अपवाद की प्रकृति का है। जहां राज्यपाल किसी क्षेत्र को "औद्योगिक टाउनशिप" के रूप में निर्दिष्ट करता है, उसके आकार और उस क्षेत्र में औद्योगिक प्रतिष्ठान द्वारा प्रदान की जा रही या प्रदान की जाने वाली प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं और ऐसे अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें वह उचित समझे, ऐसे क्षेत्र में नगरपालिका का गठन करने की आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त के परिणामस्वरूप, ऐसा क्षेत्र नगरपालिका क्षेत्र से बाहर हो जाएगा। ऐसे क्षेत्र के लिए पहले से गठित कोई भी नगरपालिका अस्तित्व में नहीं रहेगी। परिणामस्वरूप, नगरपालिका द्वारा अब तक प्रदान की जा रही नगरपालिका सेवाएं, यदि कोई हों, औद्योगिक प्रतिष्ठान द्वारा प्रदान की जाएंगी।

7. उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 में राज्य में कुछ क्षेत्रों को औद्योगिक और शहरी टाउनशिप के रूप में विकसित करने तथा उससे संबंधित मामलों के लिए एक प्राधिकरण के गठन का प्रावधान है। धारा 2(ख) में अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत गठित प्राधिकरण को परिभाषित किया गया है। इसके अंतर्गत प्राधिकरण एक निगमित निकाय है। धारा 2 (घ) में औद्योगिक क्षेत्र को राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा घोषित क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया गया है। अधिनियम की धारा 6 में प्राधिकरण

को औद्योगिक विकास क्षेत्रों का नियोजित विकास सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया है। धारा 6 की उपधारा (2) में प्राधिकरण के कुछ कार्यों का उल्लेख किया गया है, जिससे वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। इसमें औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए योजना तैयार करना, सुविधाएं प्रदान करना, भवनों के निर्माण को विनियमित करना, भूमि उपयोग निर्धारित करना आदि शामिल हैं। दिनांक 22.3.2016 को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 10 वर्ष 2016 द्वारा धारा 6 की उपधारा (2) में संशोधन किया गया तथा प्राधिकरण द्वारा नगरीय सेवा प्रदान करने के कार्य को विशेष रूप से शामिल किया गया। धारा 6 की उपधारा (2) यथा संशोधित, नीचे उद्धृत है:-

(2) प्राधिकरण के उद्देश्यों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्राधिकरण निम्नलिखित कार्य करेगा:-

(ए) अधिनियम के प्रयोजनों के लिए भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत समझौते या कार्यवाही के माध्यम से औद्योगिक विकास क्षेत्र में भूमि अर्जित करना;

(बी) औद्योगिक विकास क्षेत्र के विकास के लिए योजना तैयार करना;

(सी) योजना के अनुसार औद्योगिक, वाणिज्यिक और आवासीय प्रयोजन के लिए स्थलों का सीमांकन और विकास करना :

(डी) औद्योगिक, कामर्शियल एवं आवासीय प्रयोजनों के लिए बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना,

(ई) सुविधाओं एवं नगरपालिका सेवाएं प्रदान करना;

(एफ) औद्योगिक, कामर्शियल या आवासीय योजना के अनुसार अन्य भूमि उपयोगों के लिए भूमि के भूखण्डों को बिक्री या पट्टे या अन्यथा के माध्यम से आवंटित करना हस्तांतरित:

(जी) मास्टर योजना के अनुसार भवनों के निर्माण, उद्योगों की स्थापना तथा भूमि उपयोग को विनियमित करना; और

(एच) वह प्रयोजन निर्धारित करना जिसके लिए किसी विशिष्ट स्थल या भूमि के भूखण्ड का उपयोग किया जाएगा, अर्थात् मास्टर योजना के अनुसार ऐसे क्षेत्र में औद्योगिक या वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजन या कोई अन्य विनिर्दिष्ट प्रयोजन।

8. अधिनियम की धारा 9 विनियमों के उल्लंघन में भवनों के निर्माण पर प्रतिबंध लगाती है और यह इस प्रकार है:-

9. विनियमों के उल्लंघन में भवनों के निर्माण पर प्रतिबंध.- (1) कोई भी व्यक्ति विनियमों के उपधारा (2) के अधीन बनाए गए किसी भवन विनियमन के उल्लंघन में औद्योगिक विकास क्षेत्र में किसी भवन का निर्माण या अधिभोग नहीं करेगा।

(2) प्राधिकरण अधिसूचना द्वारा तथा राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से भवनों के निर्माण

अनुवादित

को विनियमित करने के लिए विनियम बना सकेगा और ऐसे विनियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् -

(ए) भवन की बाहरी एवं विभाजन दीवारों, छतों, फर्शों और अन्य भागों के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्रियां तथा उनकी स्थिति या अवस्थिति या निर्माण की विधिः

(बी) भवन का ले-आउट योजना चाहे वह औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय हो;

(ग) किसी भवन की छतों और फर्श की ऊंचाई और ढलान जिसका उपयोग आवासीय या खाना पकाने के प्रयोजनों के लिए किया जाना है;

(डी) हवा के संचलन को सुरक्षित करने या आग की रोकथाम के लिए किसी भी इमारत या उसके हिस्से के बारे में छोड़ा जाने वाला स्थान

(ई) भवन की मंजिलों की संख्या और ऊंचाई:

(एफ) भवन में प्रवेश और निकास के लिए उपलब्ध कराए जाने वाले साधन :

(जी) रहने के कमरे या शयन कक्ष के रूप में उपयोग के लिए इच्छित कमरों के न्यूनतम आयाम तथा संवातन का प्रावधान;

(एच) भवनों के निर्माण, निर्माण कार्य पूरा होने और कब्जे के उचित विनियमन को आगे बढ़ाने से संबंधित कोई अन्य मामला; और (आई) संशोधित योजनाओं और पूर्णता रिपोर्टों को प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक और प्रासंगिक प्रमाणपत्र।

(जे) विद्यमान भवन का निर्माण किया जाना अपेक्षित होगा या उसमें मरम्मत, परिवर्धन, संशोधन किया जाना होगा, किया जाएगा और उसके पूरा होने के पश्चात्, यथास्थिति, भवन के निर्माण या मरम्मत, परिवर्धन या संशोधन के पूरा होने की सूचना प्राधिकरण के पास दर्ज कराई जाएगी और वहां से पूर्णता प्रमाण-पत्र प्राप्त किया जाएगा।

9. धारा 10 प्राधिकरण को साइट या भवन का उचित रखरखाव सुनिश्चित करने की शक्ति प्रदान करती है, ताकि इससे क्षेत्र के नियोजित औद्योगिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। धारा 10 का सार नीचे दिया गया है:

10. स्थल या भवन के समुचित रख-रखाव की अपेक्षा करने की शक्ति (1) यदि प्राधिकरण को यह प्रतीत होता है कि किसी स्थल या भवन की स्थिति या उपयोग औद्योगिक विकास क्षेत्र के किसी भाग में समुचित योजना या वहां की सुविधाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है या पड़ने की संभावना है, तो वह उस स्थल या भवन के अंतरिती या अधिभोगी को एक नोटिस तामील कर सकेगा, जिसमें उससे अपेक्षा की जाएगी कि वह ऐसे कदम उठाए और ऐसी अवधि के भीतर, जो नोटिस में विनिर्दिष्ट की जाए, तथा उसके पश्चात् उस नोटिस का ऐसी रीति से रख-रखाव करे, जैसी उसमें विनिर्दिष्ट की जाए और यदि ऐसा अंतरिती या अधिभोगी ऐसे कदम उठाने में या उसके पश्चात् उसका रख-रखाव करने में असफल रहता है, तो

प्राधिकरण स्वयं ऐसे कदम उठाएगा या उसका रख-रखाव करेगा और उस पर हुए व्यय को ऐसे अंतरिती या अधिभोगी से वसूल करेगा।

(2) यदि राज्य सरकार लोकहित में इसे आवश्यक या समीचीन समझती है तो वह साधारण या विशेष आदेश द्वारा किसी ऐसे अंतरिती या अधिभोगी या उसके किसी वर्ग को उपधारा

(1) के अधीन उद्गृहीत करों से पूर्णतः या आंशिक रूप से छूट दे सकेगी।

10. उल्लेखनीय है कि धारा 12-ए और धारा 12-ची क्रमशः उ0प्र0 अधिनियम संख्या 4, 2001 और उ0प्र0 अधिनियम संख्या 10, 2016 द्वारा जोड़ी गर्मी और निम्न प्रकार है:-

12-ए. औद्योगिक टाउनशिप के लिए कोई पंचायत नहीं- किसी उत्तर प्रदेश अधिनियम में इसके प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी, जहां औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसका कोई भाग संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (1) के परन्तुक के अधीन औद्योगिक टाउनशिप के रूप में विनिर्दिष्ट है, ऐसा औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसका भाग, यदि पंचायत क्षेत्र में सम्मिलित है तो उक्त परन्तुक के अधीन अधिसूचना की तारीख से ऐसे पंचायत क्षेत्र से बहिष्कृत समझा जाएगा और ऐसे औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसके भाग के लिए, यथास्थिति, संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम, 1947 या उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम 1961 के अधीन कोई पंचायत गठित नहीं की जाएगी और ऐसी अधिसूचना की तारीख के पूर्व ऐसे औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसके भाग के लिए गठित कोई पंचायत अस्तित्व में नहीं रहेगी।

12-बी. - (1) राज्यपाल, अधिसूचना द्वारा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के अधीन सम्पूर्ण विशेष निवेश क्षेत्र या औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसके किसी भाग को औद्योगिक टाउनशिप के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगा।

(2) किसी उत्तर प्रदेश अधिनियम में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, जहां किसी विशेष निवेश क्षेत्र या औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसके किसी भाग को भारत के संविधान के अनुच्छेद 243थ के खंड (1) के परन्तुक के अधीन औद्योगिक टाउनशिप के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है, वहां किसी नगर पालिका में आने वाला ऐसा औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसका भाग अधिसूचना की तारीख से उस नगर पालिका क्षेत्र से बहिष्कृत समझा जाएगा और ऐसे क्षेत्र के संबंध में निष्पादित सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग या पालन प्राधिकरण द्वारा किया जाएगा।

ये प्रावधान अनुच्छेद 243-क्यू के प्रावधानों के तहत किसी क्षेत्र को 'औद्योगिक टाउनशिप' घोषित किए जाने के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। यदि वह पंचायत का हिस्सा था, तो उसे उससे बाहर रखा जाएगा और ऐसे क्षेत्र या उसके हिस्से के लिए गठित कोई भी पंचायत अनुच्छेद 243-क्यू के तहत अधिसूचना की तारीख से अस्तित्व में नहीं रहेगी। यदि

किसी नगरपालिका में शामिल किसी क्षेत्र या हिस्से को 'औद्योगिक टाउनशिप' घोषित किया जाता है, तो भी यही परिणाम होंगे। अधिसूचना की तारीख से उसे उस नगरपालिका से बाहर रखा जाएगा और ऐसे क्षेत्र के संबंध में निष्पादित सभी शक्तियां और कार्य प्राधिकरण द्वारा प्रयोग किए जाएंगे।

11. धारा 18 राज्य सरकार को अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 19 प्राधिकरण को राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से ऐसे विनियम बनाने का अधिकार देती है, जो प्राधिकरण के मामलों के समुचित प्रशासन के लिए अधिनियम या नियमों के प्रावधानों से असंगत न हों। उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, "प्राधिकरण" ने "यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास क्षेत्र भवन विनियम, 2010 और यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण विध्वंस विनियम" बनाए हैं, जिनमें "औद्योगिक विकास क्षेत्र" में निर्माण करने के लिए अनुमति प्राप्त करने के तरीके को विनियमित करने वाले विशिष्ट प्रावधान और प्राधिकरण को अनुमोदन प्राप्त किए बिना या निर्धारित योजनाओं या उपयोग के विपरीत किए गए निर्माणों को ध्वस्त करने की शक्ति प्रदान की गई है। विनियमन, 2010 के अध्याय-।। विनियमन 4, जो अनुमोदन प्राप्त किए बिना "औद्योगिक विकास क्षेत्र" में निर्माण गतिविधि को प्रतिबंधित करता है, नीचे उद्धृत किया गया है:-

4.0 भवन निर्माण की अनुमति- कोई भी व्यक्ति मुख्य कार्यकारी अधिकारी या इस प्रयोजन के लिए मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा अधिकृत अधिकारी से पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना कोई भवन, चारदीवारी या बाड़ नहीं लगाएगा।

नियम 5 (i) और (ii) जो प्राधिकरण को बिना अनुमति, अनुमोदन या मंजूरी के किए गए निर्माण को हटाने का अधिकार देता है, निम्नानुसार है:-

5.(1) जहां किसी औद्योगिक विकास क्षेत्र में कोई विकास, विनियम-1 में निर्दिष्ट अनुमति, अनुमोदन या मंजूरी के बिना योजना के उल्लंघन में या किसी शर्त के उल्लंघन में, जिसके अधीन ऐसी अनुमति, अनुमोदन या मंजूरी दी गई है, शुरू किया गया है या जारी रखा गया है, तो विनियम-4 और अधिनियम की धारा-15 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सक्षम अधिकारी आदेश जारी कर सकेगा जिसमें आदेश की तामील की तारीख से विकास को बंद करने की अपेक्षा की जाएगी और ऐसे आदेश का तदनुसार अनुपालन किया जाएगा।

(i) जहां उप-विनियम (1) के अधीन आदेश के अनुसरण में ऐसा विकास कार्य बंद नहीं किया जाता है, वहां सक्षम अधिकारी उस व्यक्ति को, जिसके द्वारा विकास कार्य शुरु किया गया है, तथा उसके सभी सहायकों और श्रमिकों को, विनियमन में विनिर्दिष्ट समय के भीतर विकास स्थल से हटाने के लिए बल का प्रयोग कर सकेगा।

12. अधिनियम का उद्देश्य और योजना स्पष्ट रूप से राज्य में कुछ क्षेत्रों में उद्योगों के

विकास को गति प्रदान करना है। राज्य सरकार अधिनियम की धारा 2 (घ) के अंतर्गत अधिसूचना जारी करके ऐसे क्षेत्रों को "औद्योगिक विकास क्षेत्र घोषित करती है। ऐसे क्षेत्र के लिए धारा 3 के अंतर्गत गठित औद्योगिक विकास प्राधिकरण को उक्त क्षेत्र का विकास करने की शक्ति प्राप्त होती है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्राधिकरण का एक कार्य यह सुनिश्चित करना है कि क्षेत्र में होने वाला विकास ऐसा हो कि उसका औद्योगिक विकास क्षेत्र के किसी भाग की समुचित योजना या सुविधाओं या वहां की आम जनता के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्राधिकरण को अन्य बातों के साथ-साथ विनियम बनाकर क्षेत्र में निर्माण गतिविधि को विनियमित करने की शक्ति भी दी गई है। प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियम अन्य बातों के साथ-साथ निर्माण कार्य के लिए अनुमोदन प्राप्त करने के तरीके का प्रावधान करते हैं और "प्राधिकरण" को अनुमोदन प्राप्त किए बिना निर्माण कार्य किए जाने पर उसे हटाने का अधिकार देते हैं।

13. दिनांक 24.4.2001 को एक अधिसूचना द्वारा राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 3 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए "ताज एक्सप्रेसवे विकास प्राधिकरण" के नाम से एक प्राधिकरण का गठन किया। इसके क्षेत्राधिकार में आने वाले आठ राजस्व गांवों को "औद्योगिक विकास क्षेत्र" के रूप में अधिसूचित किया गया। दिनांक 24.8.2001 को एक अन्य अधिसूचना जारी कर और अधिक गांवों को "औद्योगिक विकास क्षेत्र के रूप में अधिसूचित किया गया। इसमें दनकौर गांव भी शामिल था, जिससे हम इस समय इस मामले में संबंधित हैं। उक्त अधिसूचना अधिनियम की धारा 2(घ) के तहत जारी की गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उक्त क्षेत्र नगर पंचायत, दनकौर के पंचायत क्षेत्र से बाहर हो गया और उक्त क्षेत्र में नगरपालिका सेवाएं और भवन गतिविधि ताज एक्सप्रेसवे विकास प्राधिकरण द्वारा विनियमित और नियंत्रित होने लगी। दिनांक 11 जुलाई, 2008 को एक अन्य अधिसूचना द्वारा प्राधिकरण का नाम बदलकर यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण कर दिया गया। 18 दिसंबर, 2015 को राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 243 क्यू के खंड (1) के प्रावधान के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिसूचना जारी की, जिसमें अस्सी गांवों से युक्त एक क्षेत्र को, जिसे पहले "औद्योगिक विकास क्षेत्र घोषित किया गया था, अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि से "औद्योगिक टाउनशिप" के रूप में निर्दिष्ट किया गया। इसने 30.6.2008 की पिछली अधिसूचना को रद्द कर दिया। दिया।

14. **रकम सिंह** (पूर्वोक्त) में, दिनांक 14.1.2015 की अधिसूचना, जिसमें किसी विशेष ग्राम पंचायत के कुछ क्षेत्र को 'औद्योगिक टाउनशिप' के रूप में अधिसूचित किया गया था, को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि इससे उस क्षेत्र की ग्राम पंचायत भंग हो जाएगी, जो संविधान के भाग IX की भावना के विरुद्ध है, जिसमें पंचायतों को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में बनाने की बात कही गई है। चुनौती को खारिज कर दिया गया और इसे इस प्रकार माना गयाः

अनुच्छेद 243-क्यू (1) यह प्रावधान करता है कि खंड (1) के तहत किसी नगर पालिका का गठन ऐसे क्षेत्र के संबंध में नहीं किया जा सकता है जिसे क्षेत्र के आकार और किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान द्वारा प्रदान की जा रही या प्रदान किए जाने का प्रस्ताव नगरपालिका सेवाओं को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक टाउनशिप के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। औद्योगिक टाउनशिप शहरी क्षेत्र का एक उपसमूह है जो अनुच्छेद 243-क्यू (1) के प्रावधान द्वारा प्रदान की गई विशेषताओं को पूरा करता है। लेकिन प्रावधान के लिए, किसी नगर पालिका का गठन अनुच्छेद 243-क्यू (1) के मूल भाग के तहत उस क्षेत्र के संबंध में किया जाना चाहिए जिसे औद्योगिक स्वामित्व के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। हालांकि, एक औद्योगिक टाउनशिप एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान ने नगरपालिका सेवाएं प्रदान की हैं या प्रदान करने का प्रस्ताव है और जिसे राज्यपाल द्वारा क्षेत्र के आकार को ध्यान में रखते हुए निर्दिष्ट किया गया है। यदि एक ओर पंचायतों और दूसरी ओर नगर पालिकाओं के लिए प्रावधान करने वाली इस संवैधानिक योजना की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि भाग IX और भाग IX-A के प्रावधानों का उद्देश्य और मंशा प्रभावी हो, तो स्थिति के बारे में कोई अस्पष्टता नहीं हो सकती है। जब अनुच्छेद 243-क्यू (1) के तहत किसी क्षेत्र के संबंध में नगर पालिका का गठन हो जाता है, तो यह तर्क देना दूर की बात होगी कि फिर भी, वही क्षेत्र आवश्यक रूप से उस ग्राम पंचायत के अधिकार क्षेत्र में आना चाहिए जिसका गठन अनुच्छेद 243-बी के तहत किया गया था। नगर पालिका के गठन का पूरा उद्देश्य उन क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की संस्था प्रदान करना है, जो भाग IX के तहत गांव नहीं रह गए हैं और जो ग्रामीण क्षेत्र के विवरण को पूरा नहीं करते हैं। अनुच्छेद 243-क्यू (1) के प्रावधान के तहत एक औद्योगिक टाउनशिप का गठन उस क्षेत्र के लिए एक नगर पालिका के गठन की आवश्यकता को समाप्त कर देता है।

15. दिसंबर, 2015 की अधिसूचना की संवैधानिक वैधता जिसके तहत अन्य गांवों के साथ संबंधित गांव को 'औद्योगिक टाउनशिप' के रूप में अधिसूचित किया गया था, **श्री निवाज** (पूर्वोक्त) में विशेष रूप से मुद्दा था। इसके अलावा सरकार द्वारा 10.9.2016 और 12.9.2016 को जारी किए गए संचार को भी चुनौती दी गई थी, जिसके तहत अधिकारियों ने 'औद्योगिक विकास क्षेत्रों' के रूप में अधिसूचित गांवों में पंचायतों के चुनाव नहीं कराने का फैसला किया था। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ, जिसके हम में से एक (न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता) सदस्य थे, ने रकम सिंह (पूर्वोक्त) के फैसले पर भरोसा करते हुए अधिसूचना की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा और इस तर्क को खारिज कर दिया कि संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन किया गया था। यह इस प्रकार देखा गयाः-

रकम सिंह (पूर्वोक्त) में यह अधिकारपूर्वक माना गया है कि "(I) यदि क्षेत्र पंचायत क्षेत्र में शामिल है, तो यह प्रावधान के तहत की गई अधिसूचना की तारीख से पंचायत क्षेत्र से बाहर

हो जाएगा; (ii) 1947 के अधिनियम या 1961 के अधिनियम के तहत ऐसे औद्योगिक विकास क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कोई पंचायत गठित नहीं की जा सकती है। " विशेष सचिव द्वारा 10 सितंबर 2016 को और निदेशक, पंचायत राज द्वारा 12 सितंबर 2016 को पारित किए गए विवादित आदेश केवल उस कानूनी स्थिति को स्पष्ट करते हैं जो क्षेत्र को औद्योगिक टाउनशिप घोषित किए जाने के कारण उभरती है। इन आदेशों की अनुपस्थिति में भी, 18 सितंबर 2015 की अधिसूचना से उत्पन्न होने वाले कानूनी परिणाम अपरिहार्य थे और याचिकाकर्ताओं द्वारा इससे बचा नहीं जा सकता था।

इसलिए अधिसूचना की वैधता अब अप्रभावित है, जैसा कि प्राधिकरण की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने सही कहा है।

16. दिनांक 22.8.2001 की अधिसूचना को चुनौती दिए जाने के संबंध में, इसे राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 2(घ) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किया था। धारा 2 (घ) का अधिकार मुद्दा नहीं है। जैसा कि देखा गया है, संविधान में ही कुछ क्षेत्रों को औद्योगिक टाउनशिप के रूप में विकसित करने की परिकल्पना की गई है और उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, इसमें ऐसे क्षेत्रों के लिए एक अलग प्राधिकरण की भी परिकल्पना की गई है जो नगरपालिका सेवाएं प्रदान करेगा और उसका विकास करेगा। संविधान का उक्त उद्देश्य राज्य विधान के सक्षम प्रावधानों के तहत प्राप्त किया जा रहा है जिसके तहत आरंभ में दिनांक 24.4.2001 की अधिसूचना जारी की गई थी, जिसमें आठ गांवों को 'औद्योगिक विकास क्षेत्र' के रूप में अधिसूचित किया गया था। उसी के अनुसरण में, दिनांक 22.8.2001 की विवादित अधिसूचना जारी की गई थी। इसमें प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र में आने वाले औद्योगिक विकास क्षेत्र के दायरे में केवल कुछ और क्षेत्र शामिल हैं। यह तर्क कि उक्त अधिसूचना अवैध है या संवैधानिक जनादेश के विरुद्ध है, स्वीकार करने योग्य नहीं है।

17. हम इस तर्क में भी कोई दम नहीं पाते हैं कि विवादित अधिसूचनाओं का प्रभाव 30प्र0 नगर पालिका अधिनियम, 1916/30प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 के प्रावधानों को उ0प्र0 औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 के प्रावधानों के साथ टकराव में लाने का है। जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, संविधान के अनुच्छेद 243 क्यू के खंड (1) के प्रावधान के तहत अधिसूचना जारी करने का प्रभाव यह है कि इसके तहत आने वाला क्षेत्र पंचायत या नगर पालिका के नियंत्रण में नहीं रहता है, जैसा भी मामला हो, और उसमें नगरपालिका सेवाएं और निर्माण गतिविधियां अधिनियम के तहत गठित प्राधिकरण द्वारा विनियमित होती हैं। उ0प्र0 नगर पालिका अधिनियम, 1916/30प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 के प्रावधान लागू होना बंद हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, किसी विरोध का कोई सवाल ही नहीं है। इसी तरह की तथ्य स्थिति में, सैज ग्राम पंचायत बनाम गुजरात राज्य और अन्य में सुप्रीम कोर्ट ने गुजरात राज्य में दो कानूनों के संज्ञेय प्रावधान पर विचार करते हुए विवाद को खारिज कर दिया। यह माना गया है कि

दोनों विधानों का उद्देश्य अलग-अलग है और वे अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते हैं और किसी भी टकराव का कोई सवाल ही नहीं है। यह इस प्रकार देखा गयाः

"16. यह तर्क संविधान के आग IX और IXA के प्रावधानों के औद्योगिक विकास से संबंधित किसी भी कानून के साथ संबंध के बारे में गलत धारणा पर आधारित है। गुजरात औद्योगिक विकास अधिनियम संविधान के भाग IX और IXA के साथ-साथ गुजरात पंचायत अधिनियम, 1961 और गुजरात नगर पालिका अधिनियम, 1962 से बिल्कुल अलग क्षेत्र में काम करता है बाद वाला स्थानीय स्वशासन से संबंधित प्रावधान है जबकि पहला औद्योगिक विकास और राज्य में उद्योगों की व्यवस्थित स्थापना और संगठन के लिए एक अधिनियम है। गुजरात औद्योगिक विकास अधिनियम की धारा 16 के तहत 7.9.1993 को अधिसूचित किए गए औद्योगिक क्षेत्रों को बहुत पहले वर्ष 1972 में गुजरात औद्योगिक विकास अधिनियम के तहत औद्योगिक क्षेत्रों के रूप में अधिसूचित किया गया था। इन औद्योगिक क्षेत्रों को गुजरात औद्योगिक विकास निगम द्वारा विकसित किया गया है और उन्हें संविधान के भाग IX द्वारा कवर किए गए ग्रामीण क्षेत्रों के रूप में शायद ही देखा जा सकता है। यह केवल ऐसे औद्योगिक क्षेत्र हैं जिन्हें गुजरात औद्योगिक विकास अधिनियम, 1963 की धारा 16 के तहत अधिसूचित किया जा सकता है। यदि धारा 16 के तहत जारी अधिसूचना द्वारा, ये औद्योगिक क्षेत्र गुजरात औद्योगिक विकास अधिनियम के तहत औद्योगिक क्षेत्रों के रूप में अधिसूचित किए गए हैं। गुजरात नगरपालिका अधिनियम के तहत अधिसूचित क्षेत्र माने जाने वाले क्षेत्रों और अनुच्छेद 243- क्यू के खंड (1) के प्रावधान के तहत औद्योगिक टाउनशिप के बराबर माने जाने वाले क्षेत्रों में संवैधानिक योजना का उल्लंघन नहीं होता है। वास्तव में, गुजरात औद्योगिक विकास अधिनियम, 1962 के अध्याय 3 के तहत, गुजरात औद्योगिक विकास निगम को, अन्य बातों के साथ-साथ, उद्द्योगों और वाणिज्यिक केंद्रों की स्थापना को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से भूमि विकसित करने की शक्ति दी गई है। इसे ऐसे क्षेत्रों में सड़क, प्रकाश व्यवस्था, जल आपूर्ति, जल निकासी सुविधाओं आदि के प्रावधान सहित सुख-सुविधाएं और सामान्य सुविधाएं प्रदान करने की शक्ति भी दी गई है। यह निगम द्वारा स्थापित उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए सरकार या स्थानीय अधिकारियों के साथ संयुक्त रूप से या एजेंसी के आधार पर ऐसा कर सकता है। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रदान की जाने वाली नगरपालिका सेवाओं के लिए अलग से प्रावधान है। एक बार जब ऐसा क्षेत्र गुजरात नगरपालिका अधिनियम, 1964 के तहत अधिसूचित क्षेत्र माना जाता है, तो इसे संविधान के भाग IXA के तहत एक औद्योगिक टाउनशिप के बराबर माना जाता है, जहां उद्योगों द्वारा नगरपालिका सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं। हमें इस योजना में संवैधानिक प्रावधान का कोई उल्लंघन नहीं दिखता है।"

(प्रभाव वर्धित)

18. उक्त अधिसूचना को चुनौती देने का एक कमजोर प्रयास यह तर्क देकर किया गया कि अधिनियम का प्रावधान उ०प्र० भूमि राजस्व

अधिनियम, 1901 के साथ भी टकराव में आएगा, लेकिन यह निर्दिष्ट किए बिना कि यह कैसे होगा। यह ध्यान देने योग्य है कि उ0प्र0 भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 राज्य में भूमि राजस्व और राजस्व अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है। अधिनियम भवन निर्माण गतिविधि को विनियमित नहीं करता है। राजस्व अधिकारियों का नियोजन या विकास से कोई संबंध नहीं है। इस प्रकार यह तर्क योग्यता से रहित है।

19. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 10 किसी व्यक्ति के अपनी भूमि पर निर्माण करने के अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है। उनके अनुसार, यह संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 31ए का उल्लंघन है। इस तर्क में कोई दम नहीं दिखता। धारा 10 अधिनियम के तहत गठित प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र में आने वाले क्षेत्रों में निर्माण करने के किसी भी व्यक्ति के अधिकार पर स्थायी बाधा नहीं है। निर्माण गतिविधि केवल उन नियामक कदमों द्वारा विनियमित होती है जो प्राधिकरण द्वारा क्षेत्र की उचित योजना सुनिश्चित करने के लिए उठाए जाते हैं ताकि यह औद्योगिक विकास या वहां आम जनता के हितों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित न करे। अधिनियम की धारा 19 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राधिकरण द्वारा तैयार किए गए विनियमों में निर्माण करने की अनुमति प्राप्त करने के तरीके के संबंध में विशिष्ट प्रावधान हैं। यह विकास या निर्माण गतिविधि पर प्रतिबंध नहीं लगाता है, बल्कि केवल विनियमन करने की शक्ति है।

20. अनुच्छेद 31ए इस मामले के तथ्यों से बिल्कुल भी मेल नहीं खाता। यह तर्क कि विवादित अधिसूचना का प्रभाव याचिकाकर्ता की भूमि को बिना मुआवजा दिए अधिग्रहित करने का है, स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि अनुच्छेद 243-क्यू के तहत जारी विवादित अधिसूचना, जिसमें "औद्योगिक टाउनशिप और इसमें शामिल भूमि की सीमाओं को अधिसूचित किया गया है, ऐसी भूमि या उस पर खड़ी किसी इमारत या संरचना को अधिग्रहित करने का प्रभाव नहीं रखती है, बल्कि इसे केवल क्षेत्र के नियोजित विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्राधिकरण द्वारा निर्धारित नियामक उपायों के अधीन करती है।

21. स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण की पूर्व स्वीकृति प्राप्त किए बिना निर्माण कार्य किया था। आक्षेपित आदेश में विशेष रूप से दर्ज किया गया है कि किए गए निर्माण क्षेत्र के नियोजित विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहे थे। तथ्यों के इन निष्कर्षों को चुनौती नहीं दी जा सकती। नतीजतन, हमें रिट याचिका में कोई गुण-दोष नहीं दिखता।

22. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 775

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी,

माननीय न्यायमूर्ति सैयद क़मर हसन रिज़वी,

रिट-सी संख्या 38168/2018

पीपीएस इंटरनेशनल ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री विवेक कुमार सिंह, श्री फ़ुज़ैल अहमद अंसारी, श्री एन. सिन्हा, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री रजनीश कुमार राय, श्री सुदर्शन सिंह

(ए) सिविल कानून - प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 - धारा 3, 3 (3) (ए), 4 (2) (ए) (आई), 4 (2) (ए) (आईआई) 4, 19 (1) (बी), 26 (2) और 53 (1) और (2) - न्यायालय और न्यायाधिकरण के निर्णयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है - न्यायाधिकरणों के निर्णय अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हैं - न्यायाधिकरणों के पास अधीनस्थ विधानों और नियमों की वैधता का परीक्षण करने की शक्ति भी है। (पैरा-27)

(बी) सिविल कानून - प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002- धारा 53-टी - सर्वोच्च न्यायालय में अपील -अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित किसी आदेश के विरुद्ध - जब प्रतिवादी ने सीसीआई के समक्ष रिकॉर्ड पर समान सामग्रियों पर अत्यधिक मूल्य निर्धारण के समान आरोप पर किए गए संदर्भ को खो दिया था, जिसे उसके बाद आक्षेपित आदेशों में संदर्भित किया गया है - एनसीएलएटी के समक्ष कोर द्वारा प्रस्तुत अपील और समीक्षा आवेदन को भी खारिज कर दिया गया है - सीसीआई द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष अंतिम हो गए हैं - तो रिट याचिका में सम्मिलित विवाद सुलझा लिया गया है और सीसीआई के आदेश द्वारा कवर किया गया है और एनसीएलएटी द्वारा साबित/पुष्टि की गई है। (पैरा - 29)

संशोधन सलाह/आदेश और मांग आदेश - अत्यधिक मूल्य निर्धारण और अधिनियम, 2002 के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए - कोर ने एनसीएलएटी द्वारा खारिज किए गए आदेश के खिलाफ समय-बाधित अपील और समीक्षा आवेदन दायर किया - अपील अभी तक दायर नहीं की गई है, आदेश अंतिम रूप से पहुंचा है, खरीद आदेशों के लिए संशोधन सलाह/आदेश और मांग नोटिस को रद्द करना, अधिकारियों को 18% ब्याज के साथ भुगतान करने के लिए कहा गया है। (पैरा - 3,13)

निर्णय:- प्रतिवादी/कोर ने सीसीआई के समक्ष उसी सामग्री पर अत्यधिक मूल्य निर्धारण के आरोपों का संदर्भ खो दिया। अपील और पुनरीक्षण खारिज कर दी गई। यदि अधिनियम, 2002 की धारा 53टी के तहत आदेश को चुनौती नहीं दी गई तो सीसीआई के निष्कर्ष अंतिम हो गए। सीसीआई के आदेश द्वारा मामला सुलझा लिया गया। संशोधन क्रय आदेशों के लिए सलाह/आदेश एवं मांग नोटिस निरस्त किया गया। (पैरा - 33,34)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भारत संघ बनाम टांटिया कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड, 2011 (5) एससीसी 697
2. एबीएल इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम ई.सी.जी.सी.आई. लिमिटेड, 2004 (3) एससीसी 553
3. मेसर्स के.जे. हॉस्पिटल बनाम मेसर्स टेक्नोमेड इंटरनेशनल एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 7031/2018
4. एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ, (1997) 3 एससीसी 261

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी, द्वारा प्रदत्त)

1. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री फुजैल अहमद अंसारी तथा प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री सुर्दशन सिंह को सुना।

2. अभिवचनों का आदान प्रदान किया गया है एवं पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के सहमति से इस रिट याचिका को न्यायालय के नियमावली के अन्तर्गत अन्तिम रूप से निपटाया जा रहा है।

3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत वर्तमान रिट याचिका को निम्न अनुतोषो की माँग करते हुए अधिमानित किया गया है:-

"क. क्रय आदेश संघ कोर/एस/1271/5530/20478 दिनांक 27.02.2018, क्रय आदेश सं० कोर/एस/1271/5226/20473 दिनांक 12.01.2018 एवं क्रय आदेश सं० कोर/एस/1271/ 4054/20177 दिनांक 13.09.2013 के सम्बन्ध में आक्षेपित उपांतरण परामर्श आदेश दिनांक 12/13.09.2018 को अभिखंडित करने तथा क्रय आदेश दिनांक 13.09.2013 के सम्बन्ध मैं माँग नोटिस दिनांक 26.09.2018 को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण के प्रकृति में रिट, आदेश या निदेश जारी करने।

"ख. प्रत्यर्थी अधिकारीगण को याची के देयो के वास्तविक तिथि से 18% ब्याज के साथ तत्काल याची के सम्पूर्ण भुगतान को करने का निदेश देते हुए परमादेश के प्रकृति में रिट, आदेश या निदेश जारी करने।

"ग. रिट, आदेश या निदेश जारी करने, जिसे यह मा० न्यायालय मामले के परिस्थितियों में उपयुक्त तथा उचित समझता है।

"घ. याची को खर्चा अधिनिर्णीत करने।

4. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि याची भागीदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत पंजीकृत एक भागीदारी फर्म है तथा भारतीय रेलवे को यूरोप से आयातित विशिष्ट विद्युत उपकरणों के आपूर्ति के व्यापार में लगा है। याची फर्म आर्थर, फ्लरी, स्वीटजरलैण्ड का अभिकर्ता है, जो रेलवे के विद्युतीकरण के अन्य क्षेत्रों में भी पूरे विश्व में प्रयोग किये जाने वाले कई विशिष्ट विद्युत उपकरणो के विनिर्माण के व्यापार में लगी अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी है। याची फर्म अन्य बातो के साथ "शार्ट न्यूट्रल सेक्सन एसेम्बली" जिसे "फेज ब्रेक" भी कहा जाता है, उपाप्त कराता है, जिसे अनुसंधान अभिकल्प तथा मानक संगठन (आरडीएसओ) द्वारा अनुमोदित किया जाता है। इस उपकरण का प्रयोग रेलवे के 25 केवी शिरोपरि कर्षण पर दो भिन्न फेज को अलग करने के लिए किया जाता है। आगे यह कहा गया कि आरडीएसओ अनुमोदित सूची अर्थात् आर्थर फ्लरी एजी स्विटजरलैण्ड, मूल उपकरण विनिर्माता में इस वस्तु के लिए एक मात्र एक अनुमोदित स्रोत है, जो इस

उत्पाद को अपने अधिकृत भारतीय वितरक अर्थात् याची फर्म के द्वारा बेचता है। केन्द्रीय रेलवे विद्युतीकरण संगठन भारतीय रेलवे के सम्पूर्ण नेटवर्क पर रेलवे विद्युतीकरण को कार्यान्वित करने के लिए वर्ष 1979 में रेल मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्थापित संगठन है। रेलवे बोर्ड के पत्र सं० आरई (एस) 14/11/82/0012 पीटी दिनांक 14.11.2017 के अनुसार एसएनएस एसेम्बली कोर का केन्द्रीयकृत प्रापण मद है, जहाँ सभी जोनल रेलवे के माँग को समेकित तथा उपाप्त किया जाता है।

5. कोर ने एसएनएस एसेम्बली (फ़ेज ब्रेक) के 28 सेट के आपूर्ति हेतु अपने वेवसाइट पर आनलाइन विश्व निविदा चालू किया था। याची फर्म भी कोर द्वारा चालू विश्व निविदा में भाग लिया था एवं एएफ स्विटजरलैण्ड से आयाजित सामग्री हेतु भारतीय मुद्रा में अपना कोटेशन प्रस्तुत किया था। याची ने विदेशी मुद्रा में एएफ स्विटजरलैण्ड से सीधे अपने पूर्व वर्ष के क्रय के आधार पर मूल्य को उत्कयित किया था। याची ने निर्धारित मूल्य आधार पर प्रस्थापना किया था, जिसका मतलब है कि विदेशी मुद्रा या सीमा शुल्क के कारण किसी उतार-चढ़ाव को मात्र याची द्वारा वहन किया जाना चाहिए। याची ने बोली के समय पर चालू स्विस फ्रैंक दरो पर गणना के आधार पर अपनी कीमत को बताया था, तथा एएफ स्विटजरलैण्ड से प्रोफार्मा इनवाइस प्रस्तुत किया था, जिसे एक ही कीमत पर होने का दावा किया गया है जिस पर कोर ने कुछ वर्ष पहले एएफ स्विटजरलैण्ड से सीधे सामग्री खरीदा था। यह भी दावा कियो गया है कि आर्थर फ्लरी स्विटजरलैण्ड एएफ कीमते वर्ष 2011 से 2018 तक विदेशी मुद्रा में यथावत रही थी क्योकि इसके पास अंतिम ग्राहक हेतु निर्धारित कीमतों की पालसी थी तथा पुर्न-विक्रेता इन कीमतो पर छूट प्राप्त करता है। बोली 18.10.2017 को खोला गया था तथा याची के प्रस्थापना को सक्षम अधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया था। परिणाम स्वरूप, वैधानिक रूप से आवद्ध क्रय आदेश रू0 2.31 करोड़ के कुल कीमत के लिए विस्तृत निबंधनों तथा शर्तों के साथ इनके क्रय आदेश दिनांक 12.01.2018 दद्वारा 28 सेट एसएनएस एसेम्बली (फैज ब्रेक) के आपूर्ति हेतु याची को दिया गया था। यह निर्विवादित है कि पूरी सामग्री की आपूर्ति याची फर्म द्वारा किया गया था। 15.03.2018 को सामानों के प्राप्ति को प्रदर्शित करने वाले चालान-सह-कर वीजक के प्रति को भी रिट याचिका के उपाबंध संख्या-7 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है।

6. इस बीच कोर द्वारा अपने अधिकृत वेवसाइट पर एक दूसरी विश्व निविदा विज्ञापित किया गया था तथा आनलाइन ग्लोवल विड की याचना की

गई थी जिसे 238 सेट एसएनएस एसेम्बली (फेज ब्रेक) आपूर्ति हेतु 29.11.2017 को खोला गया था। याची फर्म ने पुनः उक्त विश्व निविदा में भाग लिया था। अंत में निविदा समिति के सदस्यों ने याची के प्रस्थापना को स्वीकार किया गया था तथा कुल निविदा मात्रा 238 सेटो में 176 सेटो को उपाप्त करने की अनुशंसा किया था। यह भी दावा किया गया है कि निविदा समिति के निर्णय को उच्च स्तरीय क्रय अधिकारी अर्थात कोर के प्रमुख मुख्य सामग्री प्रबंधक द्वारा स्वीकार किया गया था। तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने रु० 14.64 करोड़ के 170 सेटो के आपूर्ति हेतु विस्तृत निबंधनो तथा शर्तों के साथ क्रय आदेश दिनांक 27.02.2018 जारी किया था। यह विवादित नहीं है कि क्रय आदेश दिनांक 27.02.2018 के जवाब में याची ने विभिन्न चालान-सह-कर बीजको दिनांक 26.06.2018 द्वारा सम्पूर्ण सामानों की आपूर्ति किया था जो रिट याचिका के उपाबंध संख्या 9 के रूप में संलग्न है। याची फर्म को बकाया धनराशि चुकाने के बजाय सामग्रीर्या के आपूर्ति के पश्चात् दूसरे याची ने याची को अवगत कराते हुए पत्र दिनांक 17.05.2018 भेजा था कि इन लोगो ने वर्तमान आदेश तथा पूर्व आदेश 2013 हेतु "बुक परीक्षण खण्ड" का अवलंब किया है जो पहले ही अंतिमता प्राप्त कर चुका है तथा जनवरी 2018 को याची को भुगतान भी किया गया है, क्योंकि प्रत्यर्थीगण ने महसूस किया था कि याची ने एएफ स्विटजरलैण्ड से सामग्री का आयात करते समय अप्रसमतः अधिक लाभ बनाया है। तत्पश्चात् कोर ने आक्षेपित उपांतरण परामर्श दिनांक 12/13.9.2018 जारी किया है, जिसके द्वारा क्रय आदेश दिनांक 27.02.2018, 12.01.2018 तथा 13.09.2013 के संबंध में उपांतरण किया गया है। परिणाम स्वरूप, आक्षेपित माँग आदेश दिनाक 26.09.2018 को जारी किया गया है, जिसके द्वारा सीमा शुल्क पत्र दिनांक 22.06.2015 द्वारा प्रत्येक सेट के लिए प्रविष्टि सीएचएफ 6400 की दर से सीमा शुल्क बिलों के नये दरो के प्रकटीकरण के कारण बुक परीक्षण के परिणामों के पश्चात् कम दर पर कोर द्वारा संशोधन जारी किया गया है तथा याची फर्म द्वारा 15 दिनों के अन्दर रु0 5,19,47,553.80 जमा करना आवश्यक था। निर्धारित समय के अन्दर उक्त धनराशि के जमा करने के व्यतिक्रम की दशा में वसूली लम्बित बिलो से की जायेगी।

7. अभिलेख से आगे प्रकट होता है कि क्रय आदेश दिनांक 13.09.2013 के संबंध में बैंक गारण्टी जिसे याची द्वारा दिया गया था, का अवलंच कोर द्वारा लिया गया था। परिणाम स्वरूप, मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया गया था एवं अंततः, पंचाट की तिथि अर्थात् 21.09.2017 से 30 दिनों के

अन्दर याची को बैंक गारण्टी धनरशि अदा करने के लिए कोर को निर्देशित करते हुए याची फर्म के पक्ष में पंचाट दिया गया था। यह विवादित नहीं है कि उक्त पंचाट को कोर द्वारा चुनौती नहीं दिया गया है तथा यह अंतिमता प्राप्त कर चुका है। इस बीच प्रत्यर्थीगण ने क्रय आदेश दिनांक 13.09.2013 तथा क्रय आदेश दिनांक 13.09.2013 के दृष्टिगत याची द्वारा आपूर्ति किये गये सामानों के रूप में "बुक परीक्षण खण्ड आईआरएस 3300" के अन्तर्गत निविदा में पुस्तको तथा अभिलेखों को पेश करने के लिए 17.05.2018 को याची को नोटिस जारी किया था। यद्यपि क्रय आदेश दिनांक 13.09.2013 के विरुद्ध प्रत्यर्थीगण ने पहले ही धनराशि संदत किया था तथा यह संवृत संविदा थी। याची द्वारा उक्त नोटिस का जवाब अपने जवान दिनांक 30.05.2018 द्वारा दिया गया था। तत्पश्चात्, प्रत्यर्थीगण ने 14.06.2018 को याची को पत्र जारी किया गया था तथा दस्तावेजो को उपलब्ध कराने के पूर्ववर्ती माँग को दोहराया गया था। नोटिस दिनांक 17.05.2018 में प्रत्यर्थी ने अभिकथित किया था कि याची अयुक्तियुक्त अधिक लाभ ले रहा है। परिणाम स्वरूप दूसरे प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन करते हुए सचिव, भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग के समक्ष प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002 (अधिनियम 2002) की धारा 19 (2) (ख) के अधीन शिकायत दिनांक 12.06.2018 अधिमानित किया था कि याची ने अधिनियम 2002 की धारा 3 तथा 4 के प्रावधानों का उल्लंघन किया था। उक्त शिकायत के संदर्भ मामला सं0 05 वर्ष 2018 (प्रधान मुख्य सामग्री प्रबंधक 1, नवाव युसुफ रोड, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद उ०प्र०, कार्यालय केन्द्रीय रेलवे विद्युतीकरण संगठन, कार्यालय बनाम मेसर्स पीपीएस इंटरनेशनल, ग्रेटर नोयडा, उ0प्र0) के रूप में माना गया था। अंततः सीसीआई अपने निर्णय तथा आदेश दिनांक 27.08.2018 द्वारा यह धारित करते हुए संदर्भ का विनिश्चय करने के लिए अग्रसर हुआ था कि याची के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है।

8. याची ने वर्तमान रिट याचिका को वर्ष 2018 में उपरोक्त अनुतोषों की माँग करते हुए अधिमानित किया है। रिट याचिका दाखिल करने के पश्चात निर्णय तथा आदेश दिनांक 27.08.2018 के विरुद्ध अधिनियम 2002 की धारा 53(1) एवं (2) के अन्तर्गत नेशनल कम्पनी लॉ अपीलीय अधिकरण नई दिल्ली (एनक्लैट) के समक्ष कोर द्वारा कालातीत अपील दिनांक 11.10.2019 दाखिल किया गया था तथा इसे प्रतिस्पर्धा अपील (एटी) सं० 79/2019 (केन्द्रीय रेलवे विद्युतीकरण संगठन बनाम मेसर्स

पीपीएस इंटरनेशल) के रूप में पंजीकृत किया गया था। याची को भी नोटिस जारी किया गया था जिसमें याची ने 12.12.2019 को अपना जवाब आक्षेप दाखिल किया था। अंततोगत्वा, अपील को एनक्लैट द्वारा अपने निर्णय तथा आदेश दिनांक 23.01.2020 द्वारा खरिज किया गया था। उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलीय अधिकरण के समक्ष कोर द्वारा पुर्नविलोकन आवेदन अधिमानित किया गया था, जिसे प्रतिस्पर्धा अपील (एटी) संख्या-79/2019 में पुर्नविलोकन आवेदन सं० 01/2020 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त पुर्नविलोकन आवेदन को भी अपीलीय अधिकरण द्वारा 13.04.2022 को नामंजूर किया गया था।

9. आरम्भ में, वर्तमान मामले को 28.11.2018 को स्वीकार किया गया था तथा उक्त तिथि को इस न्यायालय की खण्डपीठ निम्न आशय का याची के पक्ष में अंतरिम आदेश पारित करने के लिए अग्रसर हुआ थाः-

"याची के लिए उपस्थित होते हुए विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक कुमार सिंह द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा तथा प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री रजनीश कुमार राय को सुना।

इस रिट याचिका द्वारा याची इस शिकायत को उठाते हुए इस न्यायालय में आया है कि रेलवे को याची द्वारा आयातित सामग्री के आपूर्ति हेतु याची तथा रेलवे के बीच संविदा हुई थी तथा दरो को निर्धारित किया गया था। संविदा पर कार्यवाही करने के पश्चात् सामग्रीयो की आपूर्ति की गयी थी तथा रेलवे द्वारा याची को भुगतान भी किया गया था। लेकिन अचानक यह कहते हुए याची को कारण बताओ जारी करते हुए आदेश पारित किया गया था कि याची बढ़े हुए दरो का भार डाल रहा है, दरो को क्यो संशोधित नहीं किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् याची ने अभ्यावेदन किया था जिस पर विचार नहीं किया गया था तथा रेलवे सीधे भारत के प्रतिस्पर्धा आयोग के समक्ष गया था, जैसा प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002 के अन्तर्गत उपबंधित है। उक्त अधिनियम को देश के आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए, प्रक्रियाएँ जिनका प्रतिस्पर्धा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है को रोकने के लिए आयोग की स्थापना बाजार में प्रतिस्पर्धा को कायम रखने तथा प्रोत्साहित करने के लिए, उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए तथा भारत में बाजारो में अन्य भागीदारों द्वारा जारी व्यापार के स्वतंत्रता से सुनिश्चित करने के लिए एवं इससे सम्बद्ध मामलों के लिए अधिनियमित किया गया है।

प्रतिस्पर्धा आयोग ने यह आदेश पारित करते हुए रेलवे के दावा को नामंजूर किया था कि उपर्युक्त का पुनरीक्षण

करने के लिए रेलवे के याची द्वारा किसी बढ़े हुए दरों को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

उल्लेखनीय है कि प्रतिस्पर्धा आयोग के आदेश के विरुद्ध रेलवे अधिनियम के अन्तर्गत गठित अधिकरण के पास जाने के लिए स्वतंत्र था जिसे इसने नहीं किया था तथा आदेश दिनांक 12/13.9.2018 पारित करते हुए एकतरफा दरों का पुनरीक्षित किया था एवं परिणामस्वरूप रू0 5,19,47,533.80/- के धनराशि हेतु 26.9.2018 को मांग नोटिस जारी किया है।

आगे यह उल्लेखनीय है कि एकबार प्रतिस्पर्धा आयोग ने पहले ही रेलवे के दावा का विनिश्चय किया है तो प्रथम दृष्टया हमारा विचार है कि अपील दाखिल किये बिना एकतरफा दरों को पुनरीक्षित नहीं किया जा सकता था।

मामले पर विचार किया जाना आवश्यक है।

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री रजनीश कुमार राय द्वारा प्रतिशपथपत्र दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह के समय का अनुरोध किया गया है तथा अनुजात किया जाता है।

पूर्वोक्त अवधि के बीत जाने के पश्चात इस मामले को सूचीबद्ध किया जाय।

पूर्वाक्त पर विचार करते हुए आदेश दिनांक 26.9.2018 (रिट याचिका का उपाबन्ध संख्या 4) के अनुसरण में याची के विरुद्ध कोई प्रपीड़क कदम नहीं उठाया जायेगा।

10. पुनः 23.1.2023 को न्यायालय ने पक्षकारों को सीसीआई के समक्ष कोर द्वारा दाखिल संदर्भ को अभिलेख पर लाने का निदेश दिया था तथा परिणामस्वरूप कोर्ट द्वारा दाखिल संदर्भ मामला सं० 05 वर्ष 2018 के प्रमाणित प्रति तथा अनूपूरक शपथपत्र के उपाबंध सं० 5क- 4 एवं 5 के रूप में पुर्नोवलोकन आवेदन सं0 01/2020 में पारित आदेश को अभिलेख पर लाते हुए 29.1.2023 को अनुपूरक शपथपत्र दाखिल किया गया था।

11. इस पृष्ठभूमि में, याची के विद्वान अधिवक्ता श्री एफ०ए० अंसारी ने जोरदार तरीके से तर्क दिया है कि सबसे अधिक मनमाना तरीके से प्रत्यर्थी ने सामग्रियों के प्रापण हेतु संविदा के भारतीय रेलवे मानक शर्त में अन्तविष्ट "बुक परीक्षण खण्ड" का आश्रय लिया था तथा इसका अवलम्ब नहीं लिया जा सकता था। क्योंकि यह निविदा शर्त का हिस्सा नहीं था। जब तक रेलवे विशेष रूप से "बुक परीक्षण खण्ड" संविदा के विशेष शर्त का उल्लंघन नहीं करता तथा विडरों की सहमति नहीं लेता है, यह किसी भी समय इस "बुक परीक्षण खण्ड" का अवलम्ब नहीं ले सकता है। ठेका पूरे विश्व के कम्पनियों से आनलाइन विश्व निविदा आमंत्रित करने के पश्चात दिया गया था तथा निविदा समिति द्वारा दरों एवं अन्य

निबन्धनों एवं शर्तों पर वार्ता के पश्चात् निपटाया गया था। तद्नुसार मूल्यों के समुचित न्यायोचित्य के साथ इसे क्रय निविदा समिति द्वारा अनुमोदित किया गया था। इन्होंने निवेदन किया है कि सर्वसम्मति से, याची की बोली सबसे कम थी तथा तकनीकी रूप से उपयुक्त बोली थी। "बुक परीक्षण खण्ड" को वर्ष 2013 के पूर्ववर्ती संविदा में शामिल नहीं किया गया था। यद्यपि यह 21.9.2017 को याची के पक्ष में मध्यस्थ द्वारा माध्यस्थम पंचाट पारित होने के पश्चात् माह जनवरी 2018 में पूरा तथा अंतिम भुगतान के साथ समाप्त हो गया था। तत्पश्चात् याची फर्म द्वारा किसी अनुचित लाभ को करने या किसी ज्यादा मूल्य के सम्बन्ध में कोर द्वारा कभी अन्य विवादयकों नहीं उठाया गया था। प्रत्यर्थी अधिकारीगण का सम्पूर्ण कार्य दुर्भावनापूर्ण तर्कों के साथ मनमाना था क्योंकि इन लोगों ने क्रय आदेश दिनांक 27.2.2018 के सम्बन्ध में कोई नोटिस नहीं दिया था तथा सर्वाधिक मनमाना तरीके से इन लोगों ने याची के बिलों से धनराशि की कटौती किया था। यह भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन है।

12. श्री एफ०ए० अंसारी ने आगे निवेदन किया है कि नोटिस दिनांक 17.5.2018 में प्रत्यर्थी ने अभिकथित किया था कि याची इसके लिए किसी आधार के बिना अयुक्तियुक्त अधिक लाभ ले रहा है। यह तथ्यात्मक रूप से गलत है क्योंकि दरों को पक्षकारों के बीच समुचित वार्ता के जरिये अंतिम रूप दिया गया था एवं सम्यक् विचार विमर्श के पश्चात् याची फर्म द्वारा प्रस्तावित मूल्य को प्रत्यर्थी अधिकारी द्वारा सम्यक् स्वीकार किया गया था। तदनुसार, क्रय आदेश याची फर्म के पक्ष में जारी किया गया था। इसके अलावा दूसरे प्रत्यर्थी ने अधिनियम 2002 की धारा 3 तथा 4 के प्रावधानों के उल्लंघन का अभिकथन करते हुए याची के विरुद्ध अधिनियम 2002 की धारा 19(1)(ख) के अधीन संदर्भ मामला संख्या 05/2018 के रूप में पंजीकृत सीसीआई के समक्ष विस्तृत शिकायत दिनांक 12.6.2018 दाखिल किया था। उक्त शिकायत / संदर्भ पर सीसीआई द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल सामग्री के आधार पर जांच किया गया था तथा 27.8.2018 को आदेश पारित किया था एवं शिकायत / संदर्भ को नामंजूर किया था। इन्होंने निवेदन किया है कि याची के विरुद्ध संदर्भ अधिमानित करते हुए कौर ने इस आशय के संबंध में क्रय आदेशों के आधार पर सीसीआई के समक्ष अभिकथित किया था कि एक मात्र अनुमोदित स्रोत के याची के एकाधिकारी स्थिति ने स्विट्जरलैण्ड में किसी महत्वपूर्ण मुद्रास्फीति के बिना हाल के 12 वर्षों में दरों में वृद्धि किया है। अपने निवेदन के समर्थन में इन्होंने संदर्भ मामला सं० 05/2018 पर भरोसा रखा है, जिसमें कोर ने

अत्यधिक मूल्य निर्धारण को अभिकथित किया था अर्थात लेकिन बाद में सीमा शुल्क के पत्र दिनांक सी सं० 8/12/एसीसी. इम्पोर्ट/गुरप-पीए/प्रकीर्ण/841/2013 दिनांक 22.06.2015 द्वारा यह उद्घाटित किया गया था मेसर्स पीपीएस इण्टरनेशनल ने सीएचएफ 6400 की दर पर सामग्री का आयात किया है तथा अपने एकाधिकार स्थिति का लाभ लेते हुए मूल्यों को बढ़ाने की कोशिश को छोड़ दिया है। आगे, अंतिम पैराग्राफ में यह कहा गया है कि "उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि मेसर्स पीपीएस इण्टरनेशनल ने कृत्रिम रूप से मूल्यों को बढ़ाने के कोशिश करने के संबंध में अपने प्रमुख स्थिति का दुरुपयोग किया है। उपरोक्त के दृष्टिगत यह अनुरोध किया जाता है कि कृत्रिम तरीके से मूल्यों को बढ़ाने के कोशिश करने के संबंध में इसके प्रमुख स्थिति के दुरुपयोग के मामले को मेसर्स पीपीएस इण्टनेशनल पर पंजीकृत किया जा सकता है।

13. याची के विद्वान अधिवक्ता ने (1) पी०ओ०सं० कोर/एस/1271/5030 /20478 (ii) पी०ओ० सं० कोर/एस/ 1271/5226/20473 तथा पी०ओ० सं० कोर/एस/1271/4054/20177 के संबंध में मांग आदेश दिनांक 26.9.2018 पर भी ध्यान खींचा है, जो कहता है कि संशोधन प्रत्येक सेट के लिए सीएचएफ 6400 की दर पर प्रविष्टि के सीमा शुल्क बिलों के नये दरों के प्रकटीकरण के कारण बुक परीक्षण के परिणामों के पश्चात कम दरों के लिए जारी किया गया है। संदर्भ मामला दिनांक 12.6.2018 द्वारा सीसीआई को कोर द्वारा उपलब्ध कराये गये चार्ट पर संदर्भ भी निकाला गया है जिसमें कोर ने याची के विरुद्ध उपर्युक्त सामग्री के आधार पर ज्यादा मूल्य निर्धारण के उपर्युक्त अभिकथन को आरोपित किया है। कोर ने अधिनियम 2002 की धारा 3(3) (2), 4(2)(2) (i) तथा 4(2) (2) (ii) के उल्लंघन को भी अभिकथित किया था। उन्होंने सीसीआई द्वारा पारित आदेश के पैरा 17, 18 तथा 19 पर भरोसा रखा है। इन्होंने निवेदन किया है कि वर्तमान रिट याचिका दाखिल करने तथा अन्तरिम आदेश दिनांक 28.11.2018 में इस न्यायालय के सम्प्रेक्षर्णा के बाद कोर ने सीसीआई द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.8.2018 के विरुद्ध 11.10.2019 को अधिनियम 2002 की धारा 53 (1) एवं (2) के अधीन एनक्लैट के समक्ष कालातीत अपील अधिमानित किया था। कोर द्वारा दाखिल पूर्वोक्त अपील को एनक्लैट नई दिल्ली के निर्णय तथा आदेश दिनांक 23.1.2020 द्वारा विलम्ब तथा गुणदोष के आधार पर खारिज किया गया था। उक्त आदेश के विरुद्ध कोर द्वारा पुर्नीवलोकन आवेदन दाखिल किया गया था तथा इसे भी एनक्लैट

द्वारा 13.4.2022 को खारिज किया गया था। पुर्नावलोकन आदेश को खारिज करते हुए एनक्लैट ने सम्प्रेक्षित किया था कि व्यथित पक्षकार निर्णय दिनांक 23.1.2020 के विरुद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष सिविल अपील अधिमानित करने के लिए स्वतंत्र है। इन्होंने निवेदन किया है कि आज की तिथि तक कोई अपील दाखिल नहीं किया गया है तथा इसलिए सीसीआई द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.1.2018 अंतिमता प्राप्त कर चुका है तथा इसमें निष्कर्ष इस न्यायालय के जांच के अधीन नहीं है जिसे एनक्लैट के आदेश दिनांक 23.1.2020 तथा 13.4.2022 'पुर्नोवलोकन आदेश) द्वारा भी पुष्ट किया गया है जिसे अधिनियम 2002 की धारा 53टी के अधीन शीर्ष न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दिया गया है। इन्होंने अत्यधिक सम्मान के साथ निवेदन किया है कि एक बार इस विलम्बित प्रक्रम पर भी कोर द्वारा उपचार का लाभ प्राप्त नहीं किया गया है। तब इस न्यायालय में अपील में बैठने तथा या सीसीआई द्वारा अपने आदेश दिनांक 27.1.2018 में लेखबद्ध निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने या उलटने की शक्ति निहित नहीं होती है।

14. अपने निवेदन के समर्थन में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने भारत संघ बनाम तंतिया कन्स्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड 2011 (5) एससीसी 697 तथा एबीएल इण्टरनेशनल लिमिटेड बनाम भारतीय निर्यात ऋण गारंटी निगम लिमिटेड 2004 (3) एससीसी 553 में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा है। इन्होनें मेसर्स के. जे. हॉस्पिटल बनाम मेसर्स टेकनाम इण्टरनेशनल तथा अन्य 20.4.2018 को विनिश्चित रिट याचिका सं॰ 7031 वर्ष 2018 पर भी भरोसा किया है।

15. दूसरी तरफ, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदर्शन सिंह ने जोरदार तरीके से रिट याचिका का विरोध किया है तथा निवेदन किया है कि याची फर्म 1 मई, 2008 से आर्थर फ्लरी, स्विटजरलैण्ड का अभिकर्ता है। आर्थर फ्लरी, स्विटजरलैण्ड (एएफ) अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी है, जो रेलवे के विद्युतीकरण में तथा एक दूसरे क्षेत्र में भी पूरे विश्व में प्रयोग किये जाने वाले कई विशिष्ट विद्युत उपकरण के विनिर्माण के व्यापार में लगा है। कोर ने 347 सेट न्युट्रल फेज एसेम्बली ब्रेक के प्रापण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा बोली आमंत्रित किया था। फरवरी 2013 में निविदा खुलने के पश्चात याची का प्रस्ताव तकनीकी रूप से उपयुक्त सबसे कम बोली था। परिणामस्वरूप, कोर ने वरिष्ठतम् अधिकारी के साथ वार्ता हेतु याची फर्म को आमंत्रित किया था एवं वार्ता के पश्चात याची के बोली को स्वीकार किया था। परिणामस्वरूप क्रय अधिकारी द्वारा कुल निविदा में दिये गये मात्रा 347 सेटों में से 282 सेटों

के आपूर्ति हेतु पत्र दिनांक कोर/एस/1271/4054 दिनांक 20.8.2013 द्वारा वैधानिक रूप से आबद्धकारी संविदा हेतु आशय पत्र जारी किया गया था तथा क्रय आदेश जारी किया गया था। आगे कई निविदाओं को खोला गया था, कम्पनी ने भाग लिया था एवं नियमित रूप से उपकरण की आपूर्ति किया था। पक्षकारों के बीच संविदा की आईआरएस शर्त है, जो संविदा की आवश्यक शर्त है तथा यह स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि संविदा विड दस्तावेज के आईआरएस सामान्य एवं विशेष शर्त द्वारा विनियमित होगा। यह निवेदन किया है कि रेलवे मंत्रालय ने विदेशी फर्मों के भारतीय अभिकर्ताओं को देय दलाली पर शर्त अधिरोपित करते हुए शासनादेशपत्र सं० 82/एफ (एफ.एक्स) 24- 2/ सीएलडब्ल् 11 नई दिल्ली दिनांक 16 नवम्बर 1982 जारी किया था।

16. इन्होंने आगे निवेदन किया है कि आईआरएस शर्त में बही तथा खाता परीक्षण संविदा का हिस्सा है एवं याची के बही तथा खाता का परीक्षण करने के पश्चात प्रत्यर्थी ने पाया है कि याची ने उपकरण के वास्तविक दर को छिपाया था तथा याची फर्म ने मेसर्स आर्थर फ्लरी, स्वीटजरलैण्ड द्वारा आपूर्ति किये जाने वाले सामग्री के वास्तविक मूल्य के संबंध में मिथ्या दस्तावेज को देते हुए क्रय आदेश पारित किया था। याची द्वारा प्रस्तुत अभिकथित दस्तावेज को प्रतिशपथपत्र के उपाबंध सीए-4 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। परिणामस्वरूप मेसर्स आर्थर फ्लरी, स्विटजरलैण्ड से आयातित सामग्री के वास्तविक मूल्य को आदेश दर सीएचएफ 8600, सीएचएफ 8580 तथा सीएचएफ 8580 के विरुद्ध सीएचएफ 6400, सीएचएफ 7200 तथा सीएचएफ 7200 के रूप में अधिक कम होना पाया जाने के पश्चात वसूली की गयी थी। उक्त वसूली "बुक परीक्षण खण्ड" का अवलम्ब लेते हुए किया गया था जैसा संविदा के आईआइएस शर्तों के पैरा 3300 में उल्लिखित है। इन्होंने कोर द्वारा दाखिल प्रतिशपथपत्र के पैरा 42 पर भरोसा रखा हैए जिसमें यह कहा गया है कि किसी विवाद की दशा में माध्यस्थम खण्ड- 2900 आईआरएस शर्तों का प्रावधान है जैसा संविदा में उल्लिखित है। माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम 1996 के संशोधन के पश्चात् शर्त खण्ड 2900 को तद्नुसार रेलवे बोर्ड द्वारा संशोधित किया गया था तथा यह कानूनी संशोधन होने के नाते लागू होता है।

17. आगे यह निवेदन किया गया है कि मेसर्स आर्थर फ्लरी, स्विटजरलैण्ड की ओर से प्रस्थापना प्रस्तुत करते समय याची ने प्रोफार्मा इनवाइस दिया है जिसमें ऊंची सीएचएफ दर को याची द्वारा उत्कथित किया गया था लेकिन सामग्री के आपूर्ति के समय पर इन

लोगों ने कय आदेश दिनांक 13.9.2013, 12.01.2018 तथा 27.2.2018 में मात्र क्रमशः सीएचएफ 6400, सीएचएफ 7200, सीएचएफ 7200 संदत किया है। आगे याची ने वार्ता के दौरान प्रस्तुत अपने गणना पत्रक में घोषित किया है कि यह लोग क्रमशः क्रय आदेश दिनांक 13.9.2013, 12.1.2018 तथा 27.2.2018 में निविदा अर्थात सीएचएफ 8600, सीएचएफ 8590, सीएचएफ 8590 में प्रतिस्थापित मूल्यों के अलावा 21% लाभ का दावा कर रहे थे, जबकि इन सामग्रियों का वास्तविक मूल्य सीएचएफ 6400, सीएचएफ 7200 तथा सीएचएफ 7200 था। याची ने वास्तविक मूल्यों को दुव्यपदेशित किया था तथा कपट के आधार पर इन लोगों ने तात्विक तथ्य को छिपाते हुए अधिक दर पर क्रय आदेश प्राप्त किया है। मूल्यों के इस अंतर के कारण आईआरएस 3300 के अनुसार बुक परीक्षण किया गया है तथा सभी तीनों क्रय आदेशों के दरों में कटौती हेतु उपान्तरित परामर्श जारी किया गया है तथा बिलों को घटे हुए दरों पर स्वीकार किया गया है। चूंकि इन तीनों क्रय आदेशों हेतु सामग्री की आपूर्ति को पहले पूरा किया गया है तथा सभी बिलों को संदन किया गया है। उक्त धनराशि को जमा करने के लिए रू0 5,19,47,553.80 का वसूली नोटिस याची को तामील कराया गया है। कोर ने अधिनियम 2002 की धारा 3 व 4 अधीन याची के प्रबल स्थिति के दुरुपयोग तथा एकाधिकार को चुनौती देते हुए सीसीआई में मामला दाखिल किया था। यह "बुक परीक्षण खण्ड" का अवलम्ब लेते हुए किये गये वसूली के साथ सीसीआई मामले से जोड़ना सही नहीं है, जो प्रकृति में कानूनी है। विद्वान सीसीआई ने निविदा में याची द्वारा उत्कथित दरों तथा दरें जिस पर इन लोगों द्वारा सामग्री को वास्तव में आयात किया गया था, के अन्तर के विवादयक पर विचार नहीं किया है। इसलिए दोनों मामले अर्थात "बुक परीक्षण खण्ड" का अवलम्ब लेना तथा सीसीआई में दाखिल शिकायत भिन्न है तथा सीसीआई मामले को वर्तमान मामले से जोड़ा नहीं जाना चाहिए। जैसा इन क्रय आदेशों में उल्लिखित है, यह संविदा आईआरएस शर्तों, संविदा के सामान्य शर्तों के पैरा संख्या 26 में तथा आईआरएस शर्तों के पैरा 2900 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि उठने वाले किसी प्रश्न, विवाद या मतभेदों की दशा में इसे जीएम/कोर/इलाहाबाद द्वारा मध्यस्थ के अनुमोदन हेतु निर्दिष्ट किया जायेगा। एक बार पक्षकारों ने संविदा कर लिया है तो यह लोग न्यायिक अनुशासन के सिद्धान्तों के दृष्टिगत संविदा के शर्तों के परे नहीं जा सकते हैं। इसलिए वर्तमान रिट याचिका

संविदाजात विवाद के लिए पोषणीय नही है तथा यह इस आधार पर खारिज किये जाने योग्य है।

18. प्रतिद्वन्दी निवेदनों को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया।

19. प्रतिद्वन्दी निवेदनों पर विचार करने के लिए अग्रसर होने के पहले, अधिनियम 2002 के सुसंगत प्रावधानों को दोहराना समुचित होगा।

"3. प्रतिस्पर्धी रोधी करार :-

1. कोई उद्यम या उद्यम संगम या व्यक्ति अथवा व्यक्ति संगम माल के उत्पादन, आपूर्ति, वितरण, भण्डारण, प्राप्ति या नियंत्रण या सेवाओं के व्यवस्था के संबंध में कोई करार नहीं करेगा जो भारत के अन्दर प्रतिस्पर्धा पर अच्छा खासा प्रतिकूल प्रभाव कारित करता है या कारित किया जाना संभाव्य है।

2. उप धारा (1) में अन्तर्विष्ट प्रावधानों के उल्लंघन में किया गया कोई करार शून्य होगा।

3. उद्यमों या उद्यम संगमों या व्यक्तियों अथवा व्यक्ति संगमों के बीच या किसी व्यक्ति तथा उद्यम या जारी कार्य अथवा माल में समान या सदृश व्यापार या सेवाओं के व्यवस्था में लगे उत्पादन संघों सहित उद्यम संगमों या व्यक्ति संगमों द्वारा लिये गये निर्णय के बीच कोई करार जो-

(क) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्रय या विक्रय मूल्यों का निर्धारण करता है।

(ख) उत्पादन, आपूर्ति, बाजार, तकनीकी विकास, निवेश या सेवाओं के व्यवस्था को सीमित या नियंत्रित करता है।

(ग) बाजार के भौगोलिक क्षेत्र के आबंटन या माल या सेवाओं के प्रकार या बाजार में ग्राहकों की संख्या द्वारा या किसी अन्य समान तरीके द्वारा सेवाओं के व्यवस्था या उत्पादन के स्रोत या बाजार को साझा करता है।

(घ) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बोली तिकडम या दुस्संधिपूर्ण बोली या परिणाम प्रतिस्पर्धा पर अच्छाखासा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा उपधारित किया जायेगा।

4. प्रबल स्थिति का दुरुपयोग-

1. कोई उद्यम अपने प्रबल स्थिति का दुरुपयोग नहीं करेगा।

2. उपधारा (1) के अधीन प्रबल स्थिति का दुरुपयोग होगा, यदि उद्यम या समूह-

(क) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अधिरोपित करता है, अनुचित या भेदभावपूर्ण-

(i) माल या सेवा के क्रय या विक्रय में शर्त या

(ii) माल या सेवा के क्रय या विक्रय (पूर्व दिनांकित मूल्य सहित) में मूल्य

स्पष्टीकरण- इस खण्ड के प्रयोजन हेतु उपखण्ड (i) में निदिष्टि माल या सेवा के क्रय या विक्रय में अनुचित या भेदभावपूर्ण शर्त तथा उपखण्ड (ii) में निर्दिष्ट माल (पूर्व दिनांकित मूल्य सहित) या सेवा के क्रय या विक्रय में अनुचित या भेदभावपूर्ण मूल्य में इस प्रकार का भेदभाव पूर्ण शर्त का मूल्य शामिल नहीं होगा

जिसे प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए अंगीकृत किया जा सकता है।

53क. अपीलीय अधिकरण कम्पनीज एक्ट 2013 (2013 का 18) की धारा 410 के अन्तर्गत गठित नेशनल कम्पनी ला अपीलीय अधिकरण वित्त अधिनियम 2017 के अध्याय 6 के भाग 14 के आरम्भ पर तथा से इस अधिनियम के प्रयोजन हेतु अपीलीय अधिकरण होगा तथा उक्त अपीलीय अधिकरण.

(क) उक्त अधिनियम की धारा 26, धारा 27, धारा 28, धारा 31, धारा 32, धारा 33, धारा 38, धारा 39, धारा 43, धारा 43क, धारा 44, धारा 45 या धारा 46 की उपधारा (2) तथा (6) के अन्तर्गत आयोग द्वारा पारित आदेश या किये गये निर्णय या जारी किसी निदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई करेगा तथा निपटायेगा एवं

(ख) प्रतिकर हेतु दावा पर न्यायनिर्णयन करेगा जो इस अधिनियम की धारा 53 क्यू के उपधारा (2) के अन्तर्गत या धारा 42क के अन्तर्गत या आयोग के किसी निष्कर्ष के विरुद्ध अपील में अपीलीय अधिकरण के आदेशों या आयोग के निष्कर्षों से उठ सकता है तथा इस अधिनियम की धारा 53 एन के अन्तर्गत प्रतिकर के वसूली हेतु आदेशों को पारित करेगा।

53ख. अपीलीय अधिकरण को अपील- (1) धारा 53क के खण्ड (क) में निर्दिष्ट किसी निदेश, निर्णय या आदेश से व्यथित केन्द्र सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण या उद्यम या कोई व्यक्ति अपीलीय अधिकरण में अपील अधिमानित कर सकता है।

(2) उपधारा (1) के अन्तर्गत प्रत्येक अपील उस तिथि से 60 दिनों के अन्दर दाखिल किया जायेगा जिस तिथि को आयोग द्वारा किये गये निवेश या निर्णय या आदेश के प्रति को इस उपधारा में निर्दिष्ट केन्द्र सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण या उद्यम या किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा यह इस प्रकार के प्रपत्र में इस प्रकार के शुल्क के साथ होगा।

परन्तु अपीलीय अधिकरण 60 दिनों के उक्त अवधि के बीच जाने के पश्चात अपील पर विचार कर सकता है यदि इसे समाधान होता है कि इस अवधि के अन्दर इसे दाखिल करने का पर्याप्त कारण था।

(3) उप धारा (1) के अधीन अपील प्राप्त करने के पश्चात अपीलीय अधिकरण पक्षकारों को अपील का सुने जाने का अवसर देने के पश्चात अपील किये गये निदेश, निर्णय का आदेश की पुष्टि करते हुए, उपांतरित करते हुए या अपास्त करते हुए इस प्रकार के आदेशों को पारित कर सकता है, जैसा यह उपयुक्त समझता है।

(4) अपीलीय अधिकरण अपील के पक्षकारों तथा आयोग को स्वयं द्वारा किये गये प्रत्येक आदेश की प्रति भेजेगा।

(5) उपधारा (1) के अधीन अपीलीय अधिकरण के समक्ष दाखिल अपील पर विचार इसके

द्वारा यथासंभव शीघ्र किया जायेगा तथा अपील को प्राप्त करने की तिथि से छह माह के अन्दर अपील को निपटाने के लिए इसके द्वारा प्रयास किया जायेगा।

53टी. **उच्चतम न्यायालय में अपील**- अपीलीय अधिकरण के किसी निर्णय या आदेश द्वारा व्यथित केन्द्र सरकार या कोई राज्य सरकार या आयोग या कोई सांविधिक प्राधिकरण या कोई स्थानीय प्राधिकरण या कोई उद्यम या कोई व्यक्ति स्वयं को अपीलीय अधिकरण के निर्णय या आदेश के संसूचना की तिथि से 60 दिनों के अन्दर उच्चतम न्यायालय में अपील दाखिल कर सकता है।

परन्तु उच्चतम न्यायालय, को यदि समाधान होता है कि आवेदक को उक्त अवधि के अन्दर अपील दाखिल करने के पर्याप्त कारण द्वारा रोका गया था, 60 दिनों के उक्त अवधि के बीत जाने के पश्चात इसे दाखिल करने की अनुमति दे सकता है।

20. जहाँ तक "बुक परीक्षण खण्ड-आईआरएस 3300" का संबंध है इसे रेलवे बोर्ड के पत्र दिनांक 27.1.1983 में सम्मिलित किया गया है, जिसमें "बुक परीक्षण खण्ड" संविदा की विशेष शर्तें शामिल है। बुक परीक्षण खण्ड को एतस्मिन् पश्चात दोहराया जाता है।

"बुक परीक्षण खण्ड"

(i) ठेकेदार को जब कभी किसी खर्च या खाता के अन्य खाता बही, बाउचर, रसीद, पत्र, ज्ञापन, पेपर या लेखन या इस प्रकार के किसी दस्तावेज से किसी कापी का उद्धरण को इस निमित्त सम्यक प्राधिकृत किसी सरकारी अधिकारी द्वारा परीक्षण हेतु पेश करने या करवाने तथा इस प्रकार के संव्यवहार से संबंधित सूचना देने तथा सम्यक प्राधिकृत सरकारी अधिकारी के समक्ष पेश करने के लिए आहूत किया जायेगा तथा अपेक्षा की जायेगी इस प्रकार के रीति से सत्यापित प्रस्तुत करता है जैसा इस संविदा के निष्पादन के लिए या इस संविदा के निष्पादन के खर्च का अभिनिश्चय या सत्यापन करने हेतु सुसंगत होने के संबंध में किसी प्रकार संबंधित अपेक्षित हो सकता है (किसी दस्तावेज सूचना या जवाब के अंतिम तथा पक्षकारों पर बाध्यकारी होने के सुसंगतता के प्रश्न पर इस प्रकार के सरकारी अधिकारी का निर्णय)

इस खण्ड द्वारा अधिरोपित बाध्यता किसी संविधि, नियमावली या आदेशों के अधीन ठेकेदार के बाध्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है, ठेकेदार पर बाध्यकारी होगा।

(ii) ठेकेदार, यदि प्राधिकृत सरकारी अधिकारी ऐसी अपेक्षा करता है (चाहे मूल्यों के अंतिम रूप से निर्धारित किये जाने के पहले या बाद) विनिर्माता के प्रक्रिया की जांच करने या सामानों के उत्पादन के खर्च का अभिनिश्चिय या आंकलन कने के प्रयोजन हेतु ठेकेदार के कार्यों को देखने तथा संबंधित सरकारी अधिकारी को सुविधाएं प्रदान करेगा। यदि कार्य के किसी हिस्से को उप-ठेकेदार या इसके किसी सहायक या सहबद्ध फर्म या कम्पनी द्वारा कार्यान्वित या सुपुर्द किया जाता है तो प्राधिकृत सरकारी अधिकारी के पास इस प्रकार

के उप-ठेकेदार किसी सहायक या सहबद्ध फर्म या कम्पनी के सभी सुसंगत बुक की जांच करने की शक्ति होगी, इसके निरीक्षण हेतु स्वतंत्र होगा जैसा खण्ड (1) में उल्लिखित है।

(iii) यदि इस प्रकार के जांच के पश्चात, यह साबित होता है कि संविदा मूल्य वास्तविक लागत एवं लाभ के युक्तियुक्त अतिरिक्त राशि से अधिक है तो क्रेता के पास मूल्य को कम करने तथा धनराशि को युक्तियुक्त स्तर तक निर्धारित करने का अधिकार होगा।

(iv) क्या बुक परीक्षण खण्ड में उपबंधित ठेका, ठेकेदार या इसका अभिकरण दस्तावेज जैसा ऊपर खण्ड (1) के अधीन है को पेश करने के लिए आहूत करते हुए ठेकेदार या इसके अभिकरणों द्वारा नोटिस प्राप्त करने की तिथि से 60 दिनों के अन्दर अपने बुक परीक्षण की अनुमति देने के लिए बाध्य होता है। ठेकेदार या इसके अधिकरर्णों द्वारा ऐसा करने में असफल रहने की दशा में ठेका की कीमत को क्रय के सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार कम तथा निर्धारित किया जायेगा जो ठेकेदार तथा इसके अभिकरणों पर बाध्यकारी तथा अंतिम होगा।

(बल दिया गया)

21. हम प्रश्नगत अभिलेख की जांच करने के लिए अग्रसर हुए हैं तथा पाते हैं कि कोर रेलवे मंत्रालय के अधीन संगठन है तथा भारतीय रेलवे के सम्पूर्ण नेटवर्क में रेलवे विद्युतीकरण को पूरा करने के लिए दायित्व सौंपा गया है। कोर अन्य बातें के साथ मेसर्स आर्थर फ्लरी एजी स्विटजरलैण्ड से विभिन्न रेलवे जोन के लिए एसएनएस एसेम्बली जिसे 'फेज ब्रेक' भी कहा जाता है उपाप्त करता है, जो अपने प्राधिकृत भारतीय वितरक (याची फर्म) के द्वारा इस उत्पाद को बेचता है। रेलवे बोर्ड पत्र दिनांक 14.11.2017 के अनुसार एसएनएस एसेम्बली कोर का केन्द्रीकृत उपापन मद है, जहाँ सभी जोनल रेलवे के मांग को समेकित तथा उपाप्त किया जाता है। याची ने मेसर्स आर्थर फ्लरी एजी के साथ समझौता किया था। कोर ने 28 सेट एसएनएस एसेम्बली (फेज बेरक) के आपूर्ति हेतु अपने बेबसाइट पर आनलाइन विश्व निविदा चालू किया था। याची फर्म भी विश्व निविदा में भाग लिया था। बिड को 18.10.2017 को खोला गया था तथा याची के बिड को स्वीकार किया था। परिणामस्वरूप रु० 2.31 करोड़ के 28 सेट एसएनएस एसेम्बली (फेज ब्रेक) के आपूर्ति हेतु 12.1.2018 को याची को क्रय आदेश दिया गया था। सर्वसम्मति से कोर द्वारा एक दूसरा विश्व निविदा प्रकाशित किया गया था तथा 238 सेट एसएनएस एसेमबली (फैज ब्रेक) के आपूर्ति हेतु विश्व बिड 29.11.2017 को खोला गया था। याची फर्म पुनः उक्त विश्व निविदा में भाग लिया था तथा इसके बिड को 238 सेटों के कुल निविदा मात्रा में से 176 सेटों के आपूर्ति हेतु स्वीकार किया गया था। निविदा समिति के निर्णय को कोर के प्रमुख मुख्य

सामग्री प्रबंधक द्वारा स्वीकार किया गया था। परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी ने रू0 14.64 करोड़ के 170 सेटों के आपूर्ति के लिए क्रय आदेश दिनांक 27.2.2018 जारी किया था। सर्व सम्मति से, क्रय आदेश दिनांक 27.2.2018 के जवाब में याची ने विभिन्न चालान. सह. कर बीजको दिनांक 26.6.2018 द्वारा सम्पूर्ण सामानों की आपूर्ति किया था लेकिन याची फर्म को बकाया धनराशि चुकता करने के बजाय दूसरे प्रत्यर्थी ने यह कहते हुए पत्र दिनांक 17.5.2018 भेजा था कि इन लोगों ने वर्तमान आदेश तथा पूर्व आदेश 2013 हेतु "बुक परीक्षण खण्ड" का अवलम्ब लिया है।

22. यह अभिलेख से और भी परिलक्षित होता है कि मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया गया था तथा अंततः कोर को 30 दिनों के अन्दर याची को बैंक गारंटी धनराशि अदा करने का निदेश देते हुए 21.9.2017 को याची फर्म के पक्ष में पंचाट दिया गया था। यह विवादित नहीं है कि उक्त पंचाट को कोर द्वारा चुनोती नहीं दिया गया है तथा यह अंतिमता प्राप्त किया है। इस बीच प्रत्यर्थीगण ने क्रय आदेश दिनांक 13.9.2013 तथा क्रय आदेश दिनांक 12.1.2018 के विरुद्ध याची द्वारा आपूर्ति किये गये सामानों के रूप में "बुक परीक्षण खण्ड.आईआरएस 3300" के अन्तर्गत बुक तथा अभिलेखों को पेश करने के लिए 17.5.2018 को याची को नोटिस जारी किया था। क्रय आदेश दिनांक 13.9.2013 के विरुद्ध प्रत्यर्थीगण ने पहले ही धनराशि संदत्त किया था तथा यह संवृत्त संविदा थी। याची ने 30.5.2018 को उक्त नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया था। तत्पश्चात दूसरे प्रत्यर्थी ने संदर्भ मामला सं० 05 वर्ष 2018 के रूप में पंजीकृत अधिनियम 2002 की धारा 3 एवं 4 के प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए याची के विरुद्ध सचिव, सीसीआई के समक्ष अधिनियम 2002 की धारा 19 (1) (ख) के अधीन शिकायत दिनांक 12.6.2018 अधिमानित किया था। अंततोगत्वा, आयोग ने 27.8.2018 को संदर्भ का विनिश्चय किया है। निर्णय दिनांक 27.8.2018 के प्रवर्तनशील भाग को एतस्मिन्पश्चात् दोहराया जाता है।

"8. आयोग ने संदर्भ तथा इसके साथ दाखिल दस्तावेजों का परिशीलन किया है तथा लोकाधिकारी क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री पर भी विचार किया है।

"9. आरम्भ में, आयोग उल्लेख करता है कि यद्यपि इतिलाकर्ता ने अधिनियम की दोनों धारा 3 तथा 4 के प्रावधानों का उल्लंघन अभिकथित किया है, फिर भी अभिकथनों की प्रकृति तथा ओईएम के साथ ओपी के संबंध पर विचार करते हुए अधिनियम की धारा 3(3) (क) का प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि ओपी (वितरक) तथा ओईएम

(विनिर्माता) विभिन्न बाजारों में उत्पादन श्रृंखला के विभिन्न स्तरों पर काम कर रहे हैं। इस प्रकार प्रथम दृष्टया, अधिनियम की धारा 3(3) (2) का प्रावधान आकृष्ट नहीं होता है।

10. आगे, अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के अन्तर्गत इत्तिलाकर्ता के अभिकथनों की जाँच करने के प्रयोजन हेतु सचसे पहले सुसंगत बाजार का अवधारण करना आवश्यक है। तत्पश्चात, यह मूल्यांकन करना आवश्यक है कि क्या ओपी सुसंगत बाजार में बाजार शक्तियों के स्वतन्त्रता पूर्वक चलाए जाने के लिए आवश्यक शक्ति की प्रस्थिति का आनन्द उठाता है। केवल तभी जब इस प्रकार की स्थिति साबित हो जाती है, आयोग द्वारा यह जाँच करना आवश्यक होता है कि क्या आक्षेपित आचरण प्रभुत्व के दुरुपयोग के तुल्य है या नहीं।

11. आयोग संप्रेक्षित करता हैं किवर्तमान मामले में शामिल उत्पाद एसएनएस एसेम्बली हैं, जिसका उपयोग मुख्यतया रेलवे द्वारा पास के सब स्टेशनों द्वारा पहुँचाए गए पास के शिरोपरि उपकरण (ओएचई) के विद्युत आपूर्ति के विभिन्न फेजों को अलग करने के लिए किया जाता है, जो सामान्यतया आपूर्ति के विभिन्न फेजों से संबद्ध होता है। इस प्रकार रेलवे के शिरोपरि संपर्क लाइन में इसका उपयोग विभिन्न विद्युत लाइनों (फेर्जा) के बीच इन्सुलेटर के रूप में कार्य करने के लिए किया जाता है। इस संबंध में आयोग संप्रेक्षित करता है कि एसएनएस एसेम्बली पाली टेट्रा फ्लूरो एथीलीन (पीटीएफई) के साथ मिश्रित प्रकार (रगड़ प्रतिरोधी सेरामिक वीड्स से संरक्षित रेजिन ग्लास फाइबर कोर) का हल्के भार का सम्पर्क वायर इंसुलेटर होता है। इस प्रकार इसकी भौतिक विशेषताओं से संकेत मिलता है कि यह विशिष्ट उपकरण है जिसका विनिर्दिष्ट कार्य है। इसके अलावा, एसएनएस एसेम्बली स्वयं में विशिष्ट उत्पाद है जिसका कोई निकट का अनुकल्प नहीं है। तद्नुसार वर्तमान मामले में सुसंगत उत्पाद बाजार "एसएनएस एसेम्बली के आपूर्ति हेतु बाजार" है।

12. सुसंगत भौगोलिक बाजार के संबंध में उल्लेखनीय है कि कोर एसएनएस एसेम्बली हेतु केन्द्रीकृत उपापन अभिकरण है क्योंकि यह सभी रेलवे जोन के मांग को समेकित करता है तथा इन्हें एक ही स्थान से उपाप्त करवाता है। यह रेलवे के विभिन्न जोनों द्वारा मांग तथा इसके पश्चातवर्ती वितरण के बारे में पैन इण्डिया प्रकृति को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इस मामले में सुसंगत भौगोलिक बाजार भारत होगा।

13. इस प्रकार, वर्तमान मामले में सुसंगत बाजार भारत में एसएनएस एसेम्बली के आपूर्ति हेतु बाजार है।

14. पूर्वोक्त सुसंगत बाजार में ओपी के प्रभुत्व के विवाद्यक पर आयोग उल्लेख करता है कि ओपी भारत में मेसर्स आर्थर फ्लरी, एजी, स्विजरजैण्ड का एक मात्र प्राधिकृत वितरक है। आगे, यह भी संप्रेक्षित किया गया है कि आरडीएसओ अनुमोदित सूची अर्थात मेसर्स आर्थर फ्लरी एजी तथा इसके भारतीय वितरक में एक मात्र अनुमोदित स्रोत है। आरडीएसओ अनुमोदित स्रोतों की आदेश के परिणामस्वरूप ओपी पर एसएनएस एसेम्बली हेतु भारतीय रेलवे के अधिक निर्भरता की स्थिति आई है। एक प्रकार, आयोग संप्रेक्षित करता है कि ओपी को उपरोक्त परिभाषित सुसंगत बाजार में प्रबल होना कहा जा सकता है।

15. उपरोक्त मूल्यांकन के दृष्टिगत आयोग का विचार है कि ओपी अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के अनुसार प्रबल होना प्रतीत होता है।

16. ऊपर वर्णित सुसंगत बाजार में ओपी द्वारा प्रबल स्थिति के अभिकथित दुरुपयोग की जांच करने के लिए उल्लेखनीय है कि इतिलाकर्ता ने किसी विनिर्दिष्ट स्थिति को विनिर्दिष्ट नहीं किया है जिसका परीक्षण अधिनियम की धारा 4(2)(क) (i) के ढाँचे के अन्दर किया जा सकता है।

17. तथापि, सूचना के गहराई से जांच के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि इतिलाकर्ता मूलतः कोर को एसएनएस एसेम्बली के आपूर्ति हेतु ओपी द्वारा प्रभारित अभिकथित रूप से ऊँची कीमतों से व्यथित है। इतिलाकर्ता ने दावा किया है कि ओपी ने स्विटजरलैण्ड में किसी महत्वपूर्ण मुद्रास्फीति के बिना विगत 12 वर्षों में कीमतों को बढ़ाया है। इस प्रकार इत्तिलाकर्ता ने मूलतः अत्यधिक कीमत के विवाद्यक को उठाया है। अभिकयनों का समर्थन करने के लिए यह बताया गया है कि क्रय आदेश दिनांक 13.9.2013 में ओपी ने आधारभूत वृद्धि (सभी करों, शुल्कों, मालभाड़ा खर्चा, बीमा खर्चा तथा अन्य खर्चों को छोड़कर) अर्थात 8600 की दर पर स्विस फ्रैंक (सीएचएसएफ) प्रविष्ट पर मेसर्स आर्थर फ्लरी एजी की ओर से 282 सेट एसएनएस एसेम्बली की आपूर्ति किया था। लेकिन बाद में इतिलाकर्ता को बताया गया कि ओपी ने 6400 स्विस फ्रैंक प्रति सेट के आधारभूत कीमत पर उपर्युक्त माल की आपूर्ति किया था। इसी प्रकार इतिलाकर्ता ने एक दूसरा साक्ष्य उपलब्ध कराया जहाँ ओपी ने क्रय आदेश दिनांक 12.1.2018 के जवाब में 8580 स्विस फ्रैंक के आधारभूत मूल्य पर 28 एसएनएस एसेम्बली की आपूर्ति किया था, लेकिन बाद में मेसर्स आर्थर फ्लरी एजी के बीजक तथा प्रविष्टि बिल के द्वारा यह पाया गया कि ओपी ने इसे 7200 स्विस फ्रैंक प्रति सेट आयात किया था।

18. अत्यधिक कीमत के अभिकथन का मूल्यांकन करने के लिए आयोग समयावधि अर्थात 2006 से 2018 तक एसएनएस एसेम्बली की कीमतों में प्रतिशत वृद्धि की जांच करना उपयुक्त समझता है। नीचे सारिणी 2006 से 2018 के बीच एसएनएस एसेम्बली की कीमतों में प्रतिशत वृद्धि को प्रदर्शित करता है।

<u>सारिणी सं० 2 - बीएसई मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन</u>

19. उपरोक्त सारिणी से ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समयावधि तक मूल्यवृद्धि की प्रवृत्ति लगातार नही रही है जो ओपी द्वारा प्रभारित अत्यधिक कीमतों को प्रदर्शित कर सके। 2013 तथा 2018 के बीच भी मूल्यों में कोई वृद्धि नही हुई थी तथा उल्टे 2016 में कीमतें कम ही हुई थी। इस प्रकार मूल्य प्रवृत्ति अधिनियम की धारा 4 (2) (क) (ii) में अन्तर्विष्ट प्राविधानों के अनुसार विक्रय मूल्य का कृत्रिम तरीके से निर्धारण करते हुए इतिलाकर्ता द्वारा किये गये प्रबल स्थिति के दुरुपयोग के अभिकथन का समर्थन नहीं करता है।

20. उपरोक्त मूल्यांकन के दृष्टिगत, आयोग का विचार है कि ओपी अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के अनुसार अपने प्रबल स्थिति का दुरुपयोग किया प्रतीत नहीं होता है।

21. परिणामस्वरूप, आयोग की राय है कि अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के उल्लंघन का कोई मामला ओपी के विरुद्ध नहीं बनता है तथा मामले को अधिनियम की धारा 26(2) में अन्तर्विष्ट प्रावधार्नी के अनुसार समाप्त करने का आदेश दिया जाता है।

22. सेक्रेटरी को तद्नुसार इतिलाकर्ता को संसूचित करने का निदेश दिया जाता है।

(बल दिया गया)

23. अभिलेख से यह भी अधिक परिलक्षित होता है कि उक्त आदेश के विरुद्ध एनक्लैट के समक्ष कौर द्वारा अपील % (एटी) सं० 79/2019 दाखिल किया गया था तथा इसे एनक्लैट द्वारा 23.1.2020 को निम्न सम्प्रेक्षों के साथ खारिज किया गया था।

"अपीलीर्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात पाते हैं कि अपील अधिमानित करने में 330 दिनों (गलती से 350 दिन के रूप में वर्णित) के अत्यधिक विलम्ब हेतु कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। सर्वसम्मति से आक्षेपित आदेश नई दिल्ली स्थित भारत के प्रतिस्पर्धा आयोग द्वारा पारित किया गया था तथा यह कल्पनातीत है कि अपीलार्थी अपीलीय प्रणाली तथा अपील पर विचार करने के लिए सशक्त फोरम के बारे में नहीं जानता था। विलम्ब के मापी हेतु प्रक्षेपित किये जाने के लिए ईप्सित आधार ष्पर्याप्त कारणष् का गठन नहीं करता है, जिससे माफी आवश्यक हो, जैसा इप्सित है। इस संदर्भ में विचार करने

के पश्चात हम पाते हैं कि 330 दिनों के भारी विलम्ब को संतोषजनक पूर्वक स्पष्ट नहीं किया गया है तथा इस प्रकार के विलम्ब हेतु कोई पर्याप्त कारण नहीं दिया गया है। तद्नुसार विलम्ब के माफी हेतु आवेदन को खारिज किया जाता है।

इसके अलावा, गुण दोष हम पाते हैं कि आयोग ने 2016 तथा 2018 में सुसंगत उत्पाद के मूल्य के कमी में प्रवृत्ति को ध्यान में रखा है तथा इसके दृष्टिगत महानिदेशक द्वारा अन्वेषण का निदेश देने हेतु प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है। हम आयोग द्वारा लिये गये विचार से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते हैं। आक्षेपित आदेश में कोई दोष न होने के कारण हम हस्तक्षेप करने से इंकार करते हैं।

तद्नुसार अपील को खारिज किया जाता है।

(बल दिया गया)

24. उक्त आदेश के विरुद्ध प्रतिस्पर्धा अपील (एटी) सं० 79/2019 में पुर्नीवलोकन आवेदन सं० 01/2020 को कोर द्वारा अधिमानित किया गया था तथा इसे भी निम्न संप्रेक्षों के साथ अपीलीय अधिकरण द्वारा अपने आदेश दिनांक 13.4.2022 द्वारा खारिज किया गया थाः-

"मामले के पर्दाफाश के समय पर पुर्नोवलोकन आवेदक के तरफ से कोई अभ्यावेदन नहीं है। जानकारी में यह आया है कि 23.1.2020 को इस अधिकरण ने विलम्ब के माफी हेतु आवेदन खारिज किया है। इसी प्रकार अभिकरण ने सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा आक्षेपित आदेश में भी आदेशित नहीं किया था।

आक्षेपित आदेश में कोई दोष न होने के नाते तद्नुसार अपील को खारिज किया जाता है। इस प्रकार अधिकरण की गंभीर राय यह है कि **प्रतिस्पर्धा अपील (एटी) सं० 79 वर्ष 2019 निर्णय दिनांक 23.01.2020 में अपील के खारिजी के विरुद्ध संबंधित व्यथित पक्षकार इस अधिकरण द्वारा पारित निर्णय दिनांक 23.1.2020 के विरुद्ध भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष सिविल अपील अधिमानित करने के लिए स्वतंत्र है।**

प्रतिस्पर्धा अपील (एटी) सं० 79 वर्ष 2019 में वर्तमान पुर्नोवलोकन आवेदन सं० 01 वर्ष 2020 स्वतः पोषणीय नहीं है तथा इसे एतद्वारा खारिज किया जाता है। तथापि खर्चा के सम्बन्ध में आदेश नहीं है।

(बल दिया गया)

25. हम आगे पाते हैं कि 27.8.2018 को पूर्वोक्त संदर्भ का विनिश्चय करते हुए सीसीआई ने पाया कि कुछ समय से मूल्य वृद्धि की प्रवृति लगातार नहीं रही है जिससे 2013 तथा 2018 के बीच याची द्वारा प्रभारित अत्यधिक मूल्य प्रदर्शित हो सके तथा मूल्यों में कोई वृद्धि नहीं हुई थी उलटे मूल्य

वर्ष 2016 में घटे ही थे। इस प्रकार मूल्य प्रवृति अधिनियम 2002 की धारा 4(2) (क) (ii) में अन्तर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार विक्रय मूल्य का कृत्रिम तरीके से निर्धारण करते हुए इतिलाकर्ता द्वारा किये गये प्रबल स्थिति के दुरुपयोग के अभिकथन का समर्थन नहीं करता है। उपरोक्त मूल्यांकन के दृष्टिगत आयोग का विचार था कि याची अधिनियम 2002 की धारा 4 के प्रावधार्नी के अनुसार अपने प्रबल स्थिति का दुरुपयोग किया प्रतीत नही होता है तथा याची के विरुद्ध अधिनियम 2002 की धारा 4 के प्रावधानों के उल्लंघन का कोई मामला नहीं बनता है, तद्नुसार अधिनियम 2002 की धारा 26 (2) में अन्तर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार मामला समाप्त करने का आदेश दिया जाता है। सीसीआई के निर्णय को चुनौती एनक्लैट के समक्ष अपील (एटी) सं0 79 वर्ष 2019 में दिया गया था तथा अन्ततोगत्वा अपीलीय अधिकरण ने इसी आधार पर अपील को खारिज किया था कि अपील अधिमानित करने में 330 दिनों के अत्यधिक विलम्ब हेतु कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नही दिया गया है तथा इस प्रकार के विलम्ब हेतु कोई पर्याप्त कारण या उद्देश्य नही दिया गया है। परिणामस्वरुप, विलम्ब के माफी हेतु आवेदन को तद्नुसार खारिज किया गया था। आगे, गुण दोष पर, एनक्लैट ने पाया कि आयोग ने 2016 तथा 2018 में सुसंगत उत्पाद के मूल्य के कमी में प्रवृति को ध्यान में रखा है तथा उपर्युक्त के दृष्टिगत महानिदेशक द्वारा अन्वेषण का निदेश देने हेतु प्रथम दृष्टया कोई मामला नहीं बनता है। एनक्लैट ने आयोग द्वारा लिये गये विचार से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाया एवं : हस्तक्षेप करने से इंकार किया था। पुर्नीवलोकन आवेदन को भी व्यथित पक्षकार को प्रतिस्पर्धा अपील (एटी) सं० 79 वर्ष 2019 में अधिकरण द्वारा पारित निर्णय दिनांक 23.1.2020 के विरुद्ध भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष सिविल अपील अधिमानित करने के लिए खुला छोड़ते हुए एनक्लैट द्वारा 13.4.2022 को पोषणीय न होने के कारण खारिज किया गया था।

26. यह स्वीकृत है कि सीसीआई द्वारा अपने आदेश दिनांक 27.8.2018 में दिये गये निष्कर्षों तथा सम्प्रेक्षणों को एनक्लैट द्वारा अपने आदेश दिनांक 23.1.2020 तथा 13.4.2022 में अभिपुष्ट किया गया था। उक्त आदेशों को मात्र माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा अधिनियम की 2002 की धारा 53टी के अधीन परीक्षण किया जा सकता है या उलटा जा सकता है। इसलिए, हम अपील में बैठने रिट याचिका में विचार करने या सीसीआई द्वारा अपने आदेश दिनांक 27.8.2018 में लेखबद्ध निष्कर्षों को

उलटने का कोई औचित्य नहीं पाते हैं, जिसे एनक्लैट द्वारा आदेश दिनांक 23.1.2020 में तथा पुर्जीवलोकन आदेश दिनांक 13.4.2022 में अभिपुष्ट किया गया था। पूर्ववर्ती आदेश दिनांक 23.1.2023 के जवाब में याची द्वारा एनक्लैट के समक्ष अधिमानित संदर्भ मामला सं० 05/2018, अपील मेमो (एटी) सं० 79/2019 के प्रमाणित प्रति को अभिलेख पर लाते हुए याची द्वारा अनुपूरक शपथपत्र दिनांक 30.1.2023 दाखिल किया गया था। उस प्रक्रम पर भी हमारे समक्ष आधार लेने के लिए प्रत्यर्थीगण के पास अनुमति प्राप्त थी कि ये लोग माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष अपील अधिमानित करने के लिए प्रवृत है, जैसा कि अधिनियम 2002 की धारा 53टी के अधीन उपबंधित है तथापि, इन लोगों ने जवाब दाखिल किया है लेकिन ऐसी फुसफुसाहट नहीं है कि प्रत्यर्थीगण माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त आदेशों को चुनौती देने के लिए प्रवृत हैं।

27. **एल चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ** (1997) 3 एससीसी 261 में माननीय उच्चतम न्यायालय के संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि अपने अपने अधिकार क्षेत्र के अन्दर सभी न्यायालयों तथा अधिकरणों के निर्णयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने के लिए उच्च न्यायालयों में निहित शक्ति संविधान के मूलभूत ढांचे का हिस्सा है तथा अधिकरणों का निर्णय उच्च न्यायालय जिसके क्षेत्रीय अधिकारिता में विशेष अधिकरण आता है, के खण्डपीठ के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय के रिट अधिकारिता के अधीन होगा। अधिकरण ऐसे मामलों को सुनने के लिए सक्षम होता है जहाँ कानूनी प्रावधानों के शक्तिमता पर आक्षेप किया जाता है। तथापि कर्तव्य का निर्वहन करने में यह उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के लिए अनुकल्प के रूप में कार्य नहीं कर सकता, जिसे हमारे संवैधानिक ढांचे में इस प्रकार के बाध्यता को विशेष रूप से सुपुर्द किया गया है। इस सम्बन्ध में इनका कार्य मात्र अनुपूरक है तथा अधिकरणों का इस प्रकार के सभी निर्णय अपने अपने उच्च न्यायालयों के खण्डपीठ के समक्ष जांच के अधीन होगा। परिणामस्वरूप अधिकरणों के पास भी अधीनस्थ विधानों तथा नियमों की शक्तिमत्ता की जांच करने की शक्ति होगी। निर्णय के सुसंगत पैराग्राफ सं0 37, 79, 80, 87, 91, 92 तथा 93 को एतस्मिन पश्चात दोहराया जाता है:-

"37. इन अधिकरणों के कार्य करने में विशेष रूप से उन तौर तरीके के संबंध में जिसमें यह अपने अपने उच्च न्यायालयों के अधिकारिता को अपवर्जित करता है कतिपय समस्यायें पैदा हुई है। इस पहलू को हमारे समक्ष

दोनों मामलों के विस्तृत तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया जा सकता है। सीए सं० 1532.33 वर्ष 1993 पश्चिम बंगाल कराधान अधिकरण तथा कलकता उच्च न्यायालय द्वारा जारी परस्पर विरोधी आदेशों के परिणामस्वरूप पैदा होता है। कतिपय याचीगण ने पश्चिम बंगाल कराधान अधिकरण के समक्ष पश्चिम बंगाल विधान मंडल द्वारा अधिनियमित तीनों विधानों में कुछ प्रावधानों के संवैधानिक वैधता को चुनौती दिया था। मामले की जांच करने के पश्चात तथा पश्चिम बंगाल राज्य द्वारा जवाब में पेश तर्कों को सुनते हुए पश्चिम बंगाल कराधान अधिकरण ने इस आदेश दिनांक 9.10.1991 द्वारा आक्षेपित प्रावधानों के संवैधानिक वैधता की पुष्टि किया था। **तत्पश्चात् उपर्युक्त प्रावधानों के संवैधानिक वैधता को कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका में चुनौती दिया गया था। कार्यवाहियों के दौरान पश्चिम बंगाल राज्य ने प्रारम्भिक आक्षेप उठाया था कि पश्चिम बंगाल कराधान अधिकरण अधिनियम 1987 के धारा 14 के आधार पर, जो कराधान अधिकरण के अधिकारिता के अन्तर्गत सभी मामलों में उच्च न्यायालय के अधिकारिता को अपवर्जित करता है, कलकत्ता उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका को स्वीकार करने की अधिकारिता नहीं थी। तथापि, उच्च न्यायालय मामले में अग्रसर हुआ था तथा अपने निर्णय दिनांक 25.11.1992 द्वारा आक्षेपित प्राविधानों को असंवैधानिक घोषित किया था। इन गतिविधियों के परिणामस्वरूप दिलचस्प स्थिति पैदा हुई है, जहां एक ही प्रावधानों को बारी बारी से दो भिन्न फोरम द्वारा संवैधानिक तथा असंवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें प्रत्येक को अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए सशक्त माना जाता है।**

79. हम यह भी धारित करते हैं कि अपने अपने अधिकारिता में सभी न्यायालयों तथा अधिकरणों के निर्णयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने के लिए उच्च न्यायालयों में निहित शक्ति संविधान के मूलढांचे का एक हिस्सा है। ऐसा इसलिए क्योंकि स्थिति जहां उच्च न्यायालयों को संवैधानिक निर्वचन के अलावा सभी अन्य न्यायिक कार्यों से वंचित किया जाता है. समान रूप से बचा जाना चाहिए।

80. तथापि, यह बल देना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि सामान्य विधानों के अन्तर्गत सृजित अधीनस्थ न्यायपालिका या अधिकरण उच्च न्यायालों तथा उच्चतम न्यायालय के अपवर्जन के सम्बन्ध में विधायी कार्य के न्यायिक पुर्जीवलोकन की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है, इस सम्बन्ध अनुकल्प भूमिका के विरुद्ध इनके अनुपूरक कार्य करने के विरुद्ध कोई संवैधानिक निषेध नहीं है। यह

कि इस प्रकार के स्थिति का अनुचिन्तन संवैधानिक स्कीम के अन्दर किया जाता है, तब स्पष्ट हो जाता है जब यह संविधान के अनुच्छेद 32 के खण्ड (3) का विश्लेषण करता है जो निम्नवत् पठित है:-

32. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन हेतु उपचार- (1).....

(2).....

(3) खण्ड (1) तथा (2) द्वारा उच्चतम न्यायालय दो प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना संसद विधि द्वारा किसी अन्य न्यायालय को खण्ड (2) के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोज्य किन्हीं शक्तियों या अपने सभी अधिकारिता के स्थानीय सीमाओं में प्रयोग करने के लिए सशक्त कर सकता है।

(बल दिया गया)

87. यह महसूस करना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि वैकल्पिक संस्थागत प्रणाली के सिद्धान्त को प्रशासनिक अधिकरणों के संबंध में सम्पत कुमार के मामले में प्रतिपादित किया गया था, विवाद समाधान के वैकल्पिक तरीकों को सृजित करने की अवधारणा जो विशेष न्याय के साथ-साथ प्रबन्ध करते हुए उच्च न्यायालयों को इनके बोझ से मुक्त करेगा, नया नहीं है। वास्तव में विशेष कर न्यायालय रखने के विवाद्यक की विवेचना कई दशकों से की जा रही हैए यद्यपि उच्च न्यायालय एरियर समिति (1972) की रिपोर्ट ने इसे भ्रामक मानकर खारिज किया था, एलसीआई ने अपने 115वीं रिपोर्ट (1986) में पृथक केन्द्रीय कर न्यायालयों को स्थापित करने के सिफारिश को पुनर्जीवित किया था। इसी प्रकार, एलसीआई के अन्य रिपोर्ट में ग्राम न्यायालय (1986) एलसीआई 114वीं रिपोर्ट औद्योगिक/श्रम अधिकरण 1987, एलसीआई 122 वीं रिपोर्ट तथा शिक्षा अधिकरण (1987) एलआईसी, 123वीं रिपोर्ट को स्थापित करने का सुझाव दिया है।

91. हम सर्वप्रथम उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुर्नोवलोकन के शक्ति के अपवर्जन के विवाद्यक का समाधान कर सकते हैं। हमने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक पुर्नोवलोकन के शक्ति के संबंध में अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों के अधिकारिता का पूर्णतया अपवर्जन नहीं कर सकते हैं। हमारे समक्ष यह तर्क दिया गया था कि अधिकरणों को उन मामलों का न्याय निर्णयन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जहाँ विधानों के शक्तिमता पर आक्षेप किया जाता है तथा यह कि इन्हें स्वयं उन मामलों में निपटाने से रोका जाना चाहिए जहाँ संवैधानिक विवाद्यकों को नहीं उठाया जाता है। हम स्वयं को इस प्रतिपादना पर सहमत होने के लिए नहीं ला सकते हैं क्योंकि इसके परिणामस्वरूप कार्यवाहियां बंट सकती है तथा परिहार्य विलम्ब कारित हो सकता है। यदि इस प्रकार का विचार अंगीकृत किया जाता है तो वादकारीगण संवैधानिक विवाद्यकों को उठाने के लिए स्वतंत्र होंगें, जिसमें कई सीधे उच्च न्यायालयों में जाने के लिए पूर्णतयाः तुच्छ हो सकता है तथा इस प्रकार अधिकरणों के अधिकारिता को नष्ट करता है। इसके अलावा विधि के इन विशेष शाखाओं में भी कुछ क्षेत्रों में नियमित आधार पर संवैधानिक प्रश्नों के

बारे में विचार अन्तवलित होता है, उदाहरण के लिए सेवा विधि मामलों में, बड़ी संख्या में मामलों में संविधान के अनुच्छेद 14, 15 तथा 16 का निर्वचन अन्तवलित होता है। यह धारित करना कि अधिकरणों के पास ऐसे मामलों को निपटाने की शक्ति नहीं होती है जिसमें संवैधानिक विवादयक अन्तवलित होते हैं, उस उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा जिसके लिए इसे गठित किया गया था। दूसरी तरफ यह धारित करना कि इस प्रकार के सभी निर्णय उच्च न्यायालय जिसके क्षेत्रीय अधिकारिता में संबंधित अधिकरण आता है, के खण्डपीठ के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों के अधिकारिता के अधीन होगा, से दो उद्देश्य पूरा होगा। जबकि संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों में निहित विधायी कार्य के न्यायिक पुर्नावलोकन के शक्ति को छोड़कर यह सुनिश्चित किया जायेगा कि तुच्छ दार्यों को अधिकरण ने न्याय निर्णयन के प्रक्रिया के जरिये छाना जाए। उच्च न्यायालय को भी गुण दोष पर सकारण निर्णय का लाभ मिलेगा जो मामले को अंतिम रूप से विनिश्चित करने में इसके लिए उपयोगी होगा।

92. हमारे समक्ष यह भी तर्क दिया गया है कि ऐसे मामर्लो में विचार करते हुए भी जो समुचित तरीके से अधिकरण के समक्ष आता है, तरीका जिसमें इनके द्वारा न्याय दिया जाता है, वांछित से अधिक छोड़ता है। इसके अलावा संविधान के अनुच्छे 136 के अधीन विशेष अनुमति द्वारा अपील द्वारा मूल कानूनों में उपबंधित उपचार वास्तविक तथा प्रभावी होने की अपेक्ष मंहगा तथा पहुँच योग्य नहीं भी है। इसके अलावा इस प्रकार का उपचार उपलब्ध कराने का परिणाम यह है कि उच्चतम न्यायालय की निर्णय सूची अधिकरणों के निर्णयों से भरा होता है जिसे अपेक्षाकृत तुच्छ आधारों पर चुनौती दिया जाता है तथा इसे पहले अपीलीय न्यायालय की भूमिका अदा करने के लिए मजबूर किया जाता है। हमने पहले ही यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर बल दिया है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकरणों के निर्णयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने के लिए सक्षम होते हैं। आर०के० जैन के मामले में इन तथ्यों को ध्यान में रखने के पश्चात, यह सुझाव दिया गया है कि उच्च न्यायालय जिसके क्षेत्रीय अधिकारिता में अधिकरण आता है के खण्डपीठ को विधि के प्रश्न पर अधिकरर्णो से अपील के सम्भावना को आगे बढ़ाया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि सुझाव के अनुसरण में कोई अनुवती कार्यवाही नहीं किया गया है। इस प्रकार के कार्यवाही में संशोधित मामले पर्याप्त मात्रा में होंगे। दोनों उपरोक्त तर्कों को ध्यान में रखते हुए, **हम धारित करते हैं कि अधिकरणों के सभी निर्णय, चाहे संविधान के अनुच्छेद 323क या अनुच्छेद 323व के अनुसरण में सृजित किया गया हो, उच्च न्यायालय जिसके क्षेत्रीय अधिकारिता में विशेष अधिकरण आता है के खण्डपीठ के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय के रिट अधिकारिता के अधीन होगा।**

93. हम यहाँ कह सकते हैं कि वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन सभी अधिकरणों के निर्णय से उच्चतम

न्यायालय में सीधे अपीलों का उपबंध किया गया है। हमारे उपरोक्त संप्रेक्षणों के दृष्टिगत यह स्थिति भी उपांतरित होगी। **विचार जिसे हमने लिया है, में अधिकरण के निर्णय से अपील संविधान अनुच्छेद 136 के अधीन सीधे उच्चतम न्यायालय के समक्ष नहीं होगी लेकिन इसके बजाय व्यथित पक्षकार संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय जाने का हकदार होगा तथा उच्च न्यायालय के खण्डपीठ के निर्णय से व्यथित पक्षकार संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत इस न्यायालय में आ सकता है।**

(बल दिया गया)

28. **एल, चन्द्र कुमार** के मामले (ऊपर) में एक बार शीर्ष न्यायालय के खण्डपीठ ने विधि घोषित किया था कि "संविधान के अनुच्छेद 323क तथा अनुच्छेद 323ख के अधीन सृजित अधिकरणों के सभी निर्णय उच्च न्यायालय जिसके अधिकारिता में संबंधित अधिकरण आता है, के खण्डपीठ के समक्ष जांच के अधीन होगा, तब उक्त विवाद्यक पर कोई आगे अर्यान्वयन करना अननुज्ञेय है। संविधान द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति षड्डन अधिकरणों के सभी निर्णयष् आवेदनों पर या अन्यथा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 (अधिनियम) की धारा 25 के अधीन शक्ति के प्रयोग में अधिकरण के एक पीठ से अधिकरण के दूसरे पीठ में मूल आवेदनों के अन्तरण के मामले में पारित आदेश आच्छादित होगा तथा अपने विस्तार में लेगा। दूसरे शब्दों में अधिनियम की धारा 25 के अधीन निर्णय सहित इस प्रकार के अधिकरण के कोई निर्णय उच्च न्यायालय जिसके अधिकारिता में संबंधित अधिकरण आता है, के मात्र खण्डपीठ के समक्ष जांच के अधीन हो सकता है। विधि के इस स्पष्ट प्रतिपादना का अनुसरण ईमानदारीपूर्वक अधिनियम की धारा 25 के अवलम्बन में अधिकरण के एक पीठ से एक दूसरे पीठ में मूल आवेदन के अन्तरण के आदेश के विरुद्ध चुनौती प्रस्तुत करने के प्रयोजन हेतु अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय का विनिश्चय करते हुए किया जाना चाहिए।

29. अधिनियम 2002 की धारा 53टी के सावधानीपूर्वक परिशीलन से यह प्रदर्शित होता है कि उच्चतम न्यायालय में अपील अपीलीय अधिकरण द्वारा पारित किसी आदेशष के विरुद्ध उपबंधित है। इसलिए प्रत्यर्थी के लिए समुचित उपचार इसमें विहित परिसीमा के अवधि के अन्दर अधिनियम 2002 के पूर्वोक्त प्रावधानों के अनुसार भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अधिकरण द्वारा पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक 23.1.2020 के विरुद्ध अपील दाखिल करना था। सर्वसम्मति से, प्रत्यर्थी ने न तो परिसीमा के अवधि के अन्दर माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष कोई अपील अधिमानित किया था न ही परिसीमा अवधि बीत जाने के बाद कोई विलम्बित अपील भी दाखिल किया था। एक बार प्रत्यर्थी ने सीसीआई के समक्ष अभिलेख पर उपर्युक्त सामग्रियों पर अधिक कीमत के समान अभिकथन पर दिये गये संदर्भ को खो दिया था, जिसे आक्षेपित आदेशों में निर्दिष्ट किया गया है, तत्पश्चाल, एनक्लैट के समक्ष कोर द्वारा अधिमानित अपील तथा पुर्नावलोकन आवेदन को भी खारिज किया गया है तथा सीसीआई द्वारा लेखबद्ध निष्कर्ष

अंतिमता प्राप्त किया है तब वर्तमान रिट याचिका में अब्तवलित विवाद्यक निपटाया गया था तथा एनक्लैट द्वारा अनुमोदितध्अभिपुष्ट था एवं सीसीआई के आदेश दिनांक 27.8.2018 द्वारा आच्छादित था।

30. **मेसर्स के०जे० हास्पिटल बनाम मेसर्स टेक्नोमेड इण्टरनेशनल तथा अन्य** (ऊपर) में मद्रास उच्च न्यायालय ने इस आधार पर रिट याचिका को खारिज किया था कि याची ने आदेश को चुनौती देने के लिए भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अधिनियम 2002 की धारा 53टी के अधीन अपील द्वारा प्रभावी वैकल्पिक उपचार का लाभ न उठाने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। निर्णय में सुसंगत पैराग्राफों को एतस्मिन् पश्चात् दोहराया जाता है:-

"6. इस अकाट्य विधिक स्थिति को सम्यक ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के लिए भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002 की धारा 53टी के अधीन अपील द्वारा प्रभावोत्पादक वैकल्पिक उपचार का लाभ न उठाने के लिए याची से किसी स्पष्टीकरण के अभाव में हम वर्तमान रिट याचिका स्वीकार करने के लिए कोई औचित्य नहीं पाते हैं तथा तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। कोई खर्च नहीं।

31. **भारत संघ बनाम तंतिया कान्स्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड** (ऊपर) में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस आधार पर विशेष अनुमति याचिका खारिज किया है कि वैकल्पिक उपचार उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के रिट अधिकारिता का अवलम्ब लेने के लिए पूर्ण वर्जन नहीं है तथा यह कि इस प्रकार वैकल्पिक उपचार को समाप्त किये बिना रिट याचिका पोषणीय नही होगी। निर्णय के सुसंगत भाग को एतस्मिन् पश्चात दोहराया जाता है:-

"27. उपरोक्त के अलावा, पक्षकारों के बीच करार में शामिल माध्यस्थतम खण्ड के कारण रिट याचिका के पोषणीयता के प्रश्न पर भी, यह अब सुस्थापित है कि वैकल्पिक उपचार उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के रिट अधिकारिता का अवलम्ब लेने के लिए पूर्ण वर्जन नहीं है तथा यह कि इस प्रकार के वैकल्पिक उपचार को समाप्त किये बिना रिट याचिका पोषणीय नहीं होगा। श्री चक्रवर्ती द्वारा उद्धृत विभिन्न निर्णय स्पष्ट रूप से संकेत देता है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में निहित संवैधानिक शक्तियाँ को अधिकारियों को किसी वैकल्पिक उपचार द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। अन्याय, जब भी जहाँ भी होता है को विधि शासन तथा संविधान के प्रावधानों के अभिशाप के रूप में अभिखण्डित किया जाना चाहिए। हम उच्च न्यायालय के इस विचार का अनुमोदन करते हैं कि करार में अन्तर्विष्ट माध्यस्थतम खण्ड से संबंधित प्रावधानों के होते हुए भी उच्च न्यायालय पूर्णतः प्रत्यर्थी कंपनी की ओर से दाखिल रिट याचिका को स्वीकार करने तथा निपटाने के अपने सक्षमता में था।"

32. **एबीएल इण्टरनेशनल लिमिटेड बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कापरिशन आफ इंडिया लिमिटेड** (ऊपर) के मामले में उच्चतम

न्यायालय ने उस रिट याचिका के पोषणीयता तथा विवाद्यक पर विचार किया है जिसमें तथ्य का विवादित प्रश्न तथा याची द्वारा दावा किये गये मौद्रिक अनुतोष का दावा दिया जाना अब्तवलित है। निर्णय के सुसंगत पैराग्राफ सं0 28, 29, 53 तथा 54 को एतस्मिन् पश्चात् दोहराया जाता है:-

"28. हमारे उपरोक्त विवेचना से रिट याचिका के पोषणीयता के संबंध में निम्न विधिक सिद्धान्त प्रकट होता है।

(क) समुचित मामले में, संविदाजात बाध्यता से उद्भूत राज्य या राज्य के परिकरण के विरुद्ध रिट याचिका पोषणीय होती है।

(ख) मात्र इसलिए क्योंकि कुछ बिवादित तथ्य का प्रश्न विचारार्थ पैदा होता है, यह नियमानुसार सभी मामलों में रिट याचिका स्वीकार करने या अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता है।

(ग) रिट याचिका जिसमें मौद्रिक दावा का पारिणामिक अनुतोष अन्तवलित है, भी पोषणीय होता है।

29. फिर भी, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका के पोषणीयता के संबंध में आक्षेप को स्वीकार करते समय न्यायालय को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन परमाधिकार रिटों को जारी करने की शक्ति प्रकृति में परिपूर्ण है तथा संविधान के किसी अन्य प्रावधानों द्वारा सीमित नहीं है। मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका को स्वीकार करने या स्वीकार न करने का विवेकाधिकार होता है। न्यायालय ने स्वयं पर इस शक्ति के प्रयोग में कतिपय निर्वन्धनों को अधिरोपित किया है (देखिए वर्लपूल कार्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार, टेड मार्क मुम्बई तथा अन्य (1998(8) एससीसी 1)) आगे, परमाधिकार रिट को जारी करने के उच्च न्यायालय का यह परिपूर्ण अधिकार तब तक अन्य उपलब्ध उपचारों के अपवर्जन के लिए न्यायालय द्वारा सामान्यतया प्रयोग नहीं की जायेगी जब तक राज्य या इसके परिकरण की इस प्रकार की कार्यवाही मनमाना तथा अयुक्तियुक्त न हो, जिससे अनुच्छेद 14 या अन्य वैध तथा विधि सम्मत कारणों पर संवैधानिक आदेश का उल्लंघन होता हो, जिसके लिए न्यायालय उक्त अधिकारिता का प्रयोग करना आवश्यक समझता है।

53. हमारे उपरोक्त् निष्कर्ष के आधार पर प्रश्न फिर भी बना है कि क्यों हमें रिट याचिका में अपीलार्थी द्वारा ईप्सित अनुतोष को अनुदत करना चाहिए जब उपयुक्त प्रभावोत्पादक वैकल्पिक उपचार वाद द्वारा उपलब्ध है। हमारे विचार में इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से श्री लेखा विद्यार्थी (ऊपर) इस न्यायालय के निर्णय में है, जिसमे इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:-

"राज्य क्रियाकलाप के आचरण को नियमित करने के लिए अनुच्छेद 14 की शर्त संविदाजात मामलों के क्षेत्र में भी विस्तारित होनी चाहिए। राज्य के सभी

कार्यकारी कार्यवाहियों के संबंध में अनुच्छेद 14 के प्रयोज्यता के निपटाये जाने के नाते तथा कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में संविदा करने के लिए आरम्भ में इसके प्रयोज्यता के संबंध में उपर्युक्त तर्कों के विवाद के परे होने के नाते राज्य तत्पश्चात अपने व्यक्तित्व का त्याग तथा संविदाजात मामलों के क्षेत्र में अनुच्छेद 14 के शर्तों द्वारा अबाधित अनियंत्रित शक्ति का प्रयोग तथा प्राइवेट व्यक्तियों जिनका अधिकार किसी और चीज के बिना मात्र संविदा के निबंधों से निकलता है, के संबंध में लागू प्राइवेट विधि सिद्धान्तों द्वारा इसमें शासित होने का दावा नहीं कर सकता है। राज्य का व्यक्तित्व जिसके अनुच्छेद 14 के शर्त द्वारा सभी क्षेत्रों में इसके आचरण के विनियमन की आवश्यकता होती है, मात्र इसलिए संविदा करने के पश्चात इस प्रकार के मूलभूत बदलाव से नहीं गुजरता है क्योंकि इसके अतिरिक्त कुछ संविदा जात अधिकार अन्य पक्षकार को प्राप्त होता है। ऐसा नहीं है मानो अनुच्छेद 14 की शर्त तथा संविदाजात बाध्यता असंबद्ध अवधारणायें हैं, जो साथ साथ नहीं रह सकता है। संविधान प्रस्तावना के घोषित आदर्शों के विपरीत अपनी क्रियाकलाप के किसी क्षेत्र में राज्य कार्यवाहियों में अनुचितता या अयुक्तियुक्तता पर विचार नहीं करता है या अनुमति नहीं देता है। इसलिए अनुच्छेद 14 - गैर मनमानापन जो विधि शासन का आधार है, संविदाजाल क्षेत्र में राज्य कार्यवाहियों से पूर्ण अपवर्जन न्यायानुमत नहीं होता है। यह ऐसा तब होता है जब आधुनिक प्रवृति को इस प्रकार की संविदाएँ जहाँ सौदेबाजी शक्ति असमान होती है में निबन्धन के अयुक्तियुक्तता की जांच करनी पड़ती है जिससे यह समझौता किया गया संविदा न हो बल्कि असमानों के बीच मानक वाली संविदाएं हो.....

प्राइवेट पक्षकारों से भिन्न राज्य अपने शक्तियों का प्रयोग तथा अपने कार्यों का निर्वहन करते समय असंदिग्ध रूप से जनकल्याण के लिए तथा जनहित में कार्य करता है, जैसा इससे अपेक्षा की जाती है। प्रत्येक राज्य के कार्यवाही का प्रभाव जनहित पर पड़ता है। यह वास्तव में राज्य के रूप में इसके व्यक्तित्व की प्रकृति है जो महत्वपूर्ण है तथा इसके सभी कार्यों की विशेषता होनी चाहिए, जिस भी क्षेत्र में हो तथा न कि कार्य की प्रकृति, संविदात्मक या अन्यथा, जो इसके कार्य की वैधता की जांच करने के लिए अनुमति जांच के प्रकृति के बारे में निर्णायक होता है। अनुच्छेद 14 की शर्त निष्पक्ष तरीके से, न्यायपूर्ण तरीके से तथा युक्तियुक्त तरीके से कार्य करने का कर्तव्य होने के नाते, ऐसा कुछ नहीं है जो राज्य के हमेशा संविदाजात मामलों में भी इस प्रकार कार्य करने की अपेक्षा रखने के अवधारणा के विरुद्ध विरोध करता है। एक मात्र यह कारक लोकविधि बाध्यताओं के कम से कम अल्पतम शर्तों के आशय तथा राज्य या इसके परिकरण द्वारा किये गये संविदा के इस चरित्र को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त है। यह भिन्न मामला है कि संविदाजात बाध्यताओं के अधिकार क्षेत्र में आने वाले विवादों के संबंध में न्यायिक पुर्नावलोकन की व्याप्ति अधिक सीमित हो सकती है तथा संदिग्ध मामलों में पक्षकारों को विशुद्ध रूप से संविदात्मक विवादों के न्याय निर्णयन हेतु उपबंधित उपचारों के आश्रय द्वारा अपने अधिकारों के न्यायनिर्णयन के लिए पीछे धकेला जा सकता

है। फिर भी, उस विस्तार तक, यह अभिकथन करते हुए अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दिया गया है कि आक्षेपित कार्य मनमाना, अनुचित या अयुक्तियुक्त है, तथ्य कि विवाद संविदाजात बाध्यता के अधिकार क्षेत्र में आता है, राज्य के अनुच्छेद 14 के मूलभूत शर्तों का अनुपालन करने के इसके बाध्यता से मुक्त नहीं करेगा। उस विस्तार तक, बाध्यता इसके अतिरिक्त किसी अन्य अधिकार या बाध्यता को ध्यान रखे बिना प्रत्येक मामले में सतत् लोक चरित्र के बारे में होता है। अतिरिक्त संविदाजात बाध्यता दावाकर्ता को राज्य द्वारा अपने हाथो से अपने किन्हीं कार्यों में गैर मनमानापन के बारे में अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत गारण्टी से वंचित नहीं कर सकता है।

54. उपरोक्त से स्पष्ट है कि जब राज्य का परिकरण अपने संविदात्मक संवैधानिक या कानूनी बाध्यताओं में अनुचित तरीके से, अन्यायपूर्ण तरीके से तथा अयुक्तियुक्त तरीके से लोक कल्याण तथा जनहित के विरुद्ध कार्य करता है तो यह वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 14 में पाये गये संवैधानिक गारण्टी के विरुद्ध कार्य करता है। इस प्रकार यदि हम अनुच्छेद 14 के प्रयोज्यता के उपरोक्त सिद्धान्त को इस मामले के तथ्यों के संबंध में लागू करते हैं तब हम देखते हैं कि राज्य का परिकरण तथा एकाधिकारी निकाय होने के नाते प्रथम प्रत्यर्थी के पास अपीलार्थीगण द्वारा अपने निर्यात जोखिम को बचाने के बाध्यता द्वारा जाना चाहिए था। अपीलार्थीगण के जोखिम को आच्छादित करने वाले बीमा पालिसी प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा सभी आवश्यक सूचना मांगने के बाद तथा रु० 16 लाख से अधिक प्रीमियम के रूप में भारी भरकम धनराशि प्राप्त करने के पश्चात् जारी की गयी थी। तथ्यों पर हमने पाया है कि पालिसी का निबन्धन, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा आच्छादित जोखिम के सम्बन्ध में किसी संदिग्धता की गुंजाइश नहीं छोड़ता है। हमारी यह भी सुविचारित राय है कि पालिसी के अन्तर्गत प्रथम प्रत्यर्थी का दायित्व तब पैदा हुआ था जब निर्यातक का व्यतिक्रम हुआ था तथा तत्पश्चात् जब काकिस्तान सरकार अपनी गारण्टी पूरा करने में असफल थी। ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि प्रश्नगत ठेका कपट द्वारा या दुव्यपदेशन द्वारा प्राप्त किया गया था। इस प्रकार के तथ्यात्मक स्थिति में हमारी राय है कि इस मामले का तथ्य उच्च न्यायालय या इस न्यायालय को याची द्वारा ईप्सित अनुतोष को अनुदत करने से रोकता नहीं है तथा रोकना नहीं चाहिए।

33. एक बार प्रत्यर्थी कोर सीसीआई के समक्ष अभिलेख पर उपर्युक्त सामग्री पर अधिक कीमत के समान अभिकथनों पर किये गये संदर्भ को हारा हुआ है, जिसे आक्षेपित आदेशों में निर्दिष्ट किया गया है तथा एनक्लैट के समक्ष कौर द्वारा अधिमानित अपील तथा पुर्जीवलोकन को भी खारिज किया गया है, सीसीआई द्वारा पहुँचा निष्कर्ष अधिनियम 2002 की धारा 53टी के निबन्धनों के अनुसार माननीय उच्चतम न्यायालयों के समक्ष आदेश को चुनौती न दिये जाने की दशा में अन्तिमता प्राप्त किया है, तब वर्तमान रिट याचिका में अब्तवलित विवाद्रद्यक निपट गया था तथा सीसीआई द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.8.2018 द्वारा आच्छादित था।

34. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में, रिट याचिका अनुज्ञात किये जाने योग्य है तथा आक्षेपित आदेश दिनांक 12/13.9.18 तथा मांग नोटिस दिनांक 26.9.2018 अपास्त किये जाने योग्य है।

35. तदनुसार रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है तथा आक्षेपित आदेश दिनांक 12/13.9.18 तथा मांग नोटिस दिनांक 26.9.2018 को अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थी अधिकारीगण को तत्काल याची को सम्पूर्ण भुगतान करने का निदेश दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 797

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

रिट-सी संख्या 52674/2016

के साथ

रिट-सी संख्या 33571/2018

और अन्य संबंधित मामले

महाप्रबंधक, आई.ओ.सी.एल., बल्क ऑयल टर्मिनल, चंदौली एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रकाश पाडिया, श्री आनंद तिवारी, श्री देवी शंकर शुक्ला, श्री अनिल शर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - बाट एवं माप मानक अधिनियम, 1976/बाट एवं माप मानक (प्रवर्तन) अधिनियम, 1985/अधिनियम, 2009) - धारा 24 - उत्तर प्रदेश नियम, 2011 की नियम 17(3) - याचीगण ने अपने भण्डारण टैंकों का अंशांकन कराया। वरिष्ठ निरीक्षकों द्वारा याचीगण को नोटिस जारी किया गया, क्योंकि याचीगण ने स्टाम्प की वैधता समाप्त होने के बाद भी पुनः सत्यापन नहीं कराया- अतः बाट या माप के सत्यापन एवं स्टाम्पिंग के लिए नियम, 2011 के नियम 17 के उपनियम 1/उपनियम 2 के अन्तर्गत निर्धारित शुल्क की मांग की गई-याचीगण के भण्डारण टैंक मात्र स्वागत योग्य होने का आरोप लगाया गया है तथा पेट्रोलियम उत्पादों के भण्डारण के अतिरिक्त इसका किसी अन्य प्रयोजन में उपयोग नहीं किया जाता-प्रतिवादीगण प्रत्येक भण्डारण टैंक के लिए 60 माह में एक बार अधिकतम 5,000/- रूपये तक का स्टाम्प सत्यापन/पुनः सत्यापन शुल्क ही लगा सकते हैं। नियम 17(3) के तहत दंड के रूप में कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लगाया जा सकता क्योंकि मूल अधिनियम में इसकी अनुमति नहीं है। इसलिए, आरोपित आदेश मनमाने और अवैध हैं और इन्हें रद्द किया जाना चाहिए। अधिनियम, 2009 की धारा 16 में असत्यापित बाट या माप को जब्त करने का प्रावधान है। धारा 33 में असत्यापित बाट या माप के उपयोग के लिए अधिकतम 5,000/- रुपये के जुर्माने का प्रावधान है। इस प्रकार, नियम 17(3) में दिए गए प्रकार और राशि के दंड के लिए अधिनियम, 2009 में कोई ठोस प्रावधान न होने के कारण, उत्तर प्रदेश नियम, 2011 के

अनुवादित

नियम 17(3) का दंडात्मक प्रावधान नियम बनाने की शक्ति से परे है, जो कि प्रधान अधिनियम, अर्थात् अधिनियम, 2009 के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश नियम, 2011 के नियम 25 में यह प्रावधान है कि जहां कहीं भी नियम अधिनियम के प्रावधानों के विरोध में हैं, वहां अधिनियम नियम पर प्रभावी होगा। (पैरा 1 से 35)

रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. कमिश्नर हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री शिरुर मठ के श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामी (1954) एससीआर 1005: एआईआर 1954 एससी 282

2. उत्तराखंड राज्य बनाम कुमाऊं स्टोन क्रशर (2018) 14 एससीसी 537

3. खेमका एंड कंपनी (एजेंसियां) (प्रा.) लिमिटेड बनाम सेंट ऑफ महाराष्ट्र (1975) 2 एससीसी 22

4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सीतापुर पैकिंग वुड सप्लायर्स (2002) 4 एससीसी 566

5. महाचन्द्र प्रसाद सिंह (डॉ.) बनाम सभापति, बिहार विधान परिषद (2004) 8 एससीसी 747

6. वी.वी.एस. शुगर्स बनाम ए.पी. राज्य (1999) 4 एससीसी 192

7. इंडियन कार्बन लिमिटेड बनाम असम राज्य, (1997) 6 एससीसी 479

8. जे.के. सिंथेटिक लिमिटेड बनाम सी.टी.ओ.(1994) 4 एससीसी 276

9. मेसर्स श्री स्टील रोलिंग मिल्स बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त एवं अन्य (2016) 3 एससीसी 643

10. आईओसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2019) 16 एससीसी 482

11. वीना कुमारी टंडन बनाम नीलम भल्ला एवं अन्य (2007) 12 एससीसी 764

12. विमल चंद्र बनर्जी बनाम एम.पी. राज्य (1970) 2 एससीसी 467

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल कुमार शर्मा द्वारा सहायता प्राप्त अधिवक्ता देवी शंकर शुक्ला, श्री प्रमोद कुमार राय, श्री आनंद तिवारी, श्री राकेश कुमार और श्री कोमल मेहरोत्रा, और राज्य-प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री एन.सी. श्री चतुर्वेदी द्वारा सहायता प्राप्त अपर मुख्य स्थायी अधिवक्त श्री पंकज राय, बी. बी. पांडे और सुरेश सिंह को सुना।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तों की सहमति से, रिट सी संख्या 52674/2016 को अग्रणी रिट याचिका के रूप में माना जाता है। हालांकि, मामलों के इस समूह में प्रत्येक रिट याचिका में मांगी गई राहत नीचे संक्षेप में दी गई है।

<u>रिट सी नंबर 2018 का 33571</u>

3. इस रिट याचिका में वरिष्ठ निरीक्षक, लीगल मेट्रोलॉजी मेरठ द्वारा जारी दिनांक 25.09.2018 और 29.09.2018 के नोटिस को

चुनौती दी गई है, जिसमें याचिकाकर्ता को स्टोरेज टैंक और फ्लो मीटर का सत्यापन कराने की आवश्यकता है।

<u>रिट सी नंबर 2016 का 52674</u>

4. मुख्य रिट सी संख्या 52674/2016 की में, याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 14.10.2013 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है, जिसमें वरिष्ठ निरीक्षक, लीगल मेट्रोलॉजी, मुगलसराय, चंदौली द्वारा आक्षेपित नोटिस दिनांक 16.12.2013 द्वारा प्रति भंडारण टैंक 20,000/- रुपये की दर से शुल्क और प्रति भंडारण 1,50,000/- रुपये की दर से स्टांप शुल्क और विलंब शुल्क @ 1,30,000/- प्रति भंडारण की दर से, याचिकाकर्ताओं को विलंब शुल्क के साथ निश्चित अवधि के लिए बकाया जमा करने के लिए कहा गया। याचिकाकर्ताओं ने विधिक माप विज्ञान विभाग, यूपी, लखनऊ के नियंत्रक द्वारा दिनांक 23.08.2016 को पारित अपीलीय आदेश दिनांक 23.08.2016 को रद्द करने की भी प्रार्थना की है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं की अपील खारिज कर दी गई है। उपरोक्त के अलावा, याचिकाकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश लीगल मेट्रोलॉजी (प्रवर्तन) नियम, 2011 के नियम 17 (3) की वैधता को भी चुनौती दी है। (इसके बाद इसे यूपी नियम, 2011 के रूप में संदर्भित किया जाएगा)

<u>रिट- सी संख्या -2016 की 54682, 2016 की 54685, 2016 की 54687, 57179 की 2016, 2016 का 57180, 2016 का 57203, 2016 का 57208, 2016 का 57210, 57766 2016 का, और 2016 का रिट सी 61624</u>

5. उपरोक्त उल्लिखित रिट याचिकाओं में मांगी गई राहत 2016 की रिट सी संख्या 52674 में मांगी गई राहत के समान है।

<u>रिट सी नंबर 32799/2018</u>

6. रिट सी 32799/2018 में, जब्ती ज्ञापन दिनांक 24.09.2018 और नोटिस दिनांक 03.08.2018 और 15.09.2018 को उपरोक्त नियम 17 (3) की वैधता को चुनौती देने के अलावा चुनौती दी गई है।

7. रिट सी संख्या 52674/2016 में मांगी गई राहत नीचे दी गई है:

"(ए) नियंत्रक, विधिक माप विज्ञान विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 23.8.2016 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्पेषण लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश। (रिट याचिका का परिशिष्ट-29);

(बी) प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा जारी किए गए नोटिस/आदेश दिनांक 14.10.13 और 16.12.13 को रद करने के लिए उत्पेषण लेख में एक रिट, आदेश या निर्देश (रिट याचिका के लिए अनुलप्रक-17 और 20)

(सी) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें उत्तरदाताओं को मुगलसराय में डिपो में स्थापित ऊर्ध्वाधर भंडारण टैंकों के अंशांकन के लिए याचिकाकर्ता निगम पर जोर न देने का निर्देश दिया गया हो:

(डी) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें उत्तरदाताओं को निगम के डिपो में स्थित भंडारण टैंकों के गैर-अंशांकन के लिए कोई जुर्माना न वसूलने का निर्देश दिया गया हो;

(ई) उत्तर प्रदेश लीगल मेट्रोलॉजी (प्रवर्तन), नियम, 2011 के नियम 17 (3) के तहत प्रावधानों या अतिरिक्त शुल्क को शून्य, शून्य, निष्क्रिय और असंवैधानिक घोषित करने वाले परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश;

(एफ) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जो माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उचित और उचित समझे; और

(जी) याचिकाकर्ताओं को भुगतान की जाने वाली याचिका की पुरस्कार लागत।

<u>तथ्य:-</u>

8. चूंकि रिट याचिकाओं के इस बैच में तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति समान है, इसलिए, हम प्रमुख रिट याचिका यानी रिट सी संख्या 52674/2016 के तथ्यों को निम्नानुसार अकिंत करने के लिए आगे बढ़ते

(ए) याचिकाकर्ताओं के पास रेलवे टैंक वैगनों / पाइप लाइनों द्वारा देश की विभिन्न रिफाइनरियों से प्राप्त पेट्रोलियम उत्पादों को संग्रहीत करने के लिए भंडारण टैंक हैं। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, रेलवे टैंक वैगन जिनके माध्यम से डिपो/टर्मिनल पर टैंक में उत्पाद प्राप्त होते हैं, उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत कैलिब्रेट किया जाता है और विभिन्न खुदरा दुकानों के साथ-साथ थोक के माध्यम से पेट्रोलियम उत्पादों की आपूर्ति के लिए निगम द्वारा बिक्री निष्पादित की जाती है। उपभोक्ताओं को टैंक माउंटेड ट्रकों (टैंकरों) द्वारा आपूर्ति की जाती है, जिन्हें बाट और माप विभाग के सक्षम प्राधिकारियों द्वारा विधिवत अंशांकित किया जाता है। याचिकाकर्ताओं के भंडारण टैंकों पर केवल रिसेप्शनल होने का आरोप लगाया गया है और पेट्रोलियम उत्पादों के भंडारण के अलावा, इसका उपयोग किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता है, न तो लेनदेन के लिए और न ही किसी माप सहायता के लिए। इसलिए, माप-तौल मानक अधिनियम, 1976 (इसके बाद "अधिनियम, 1976" के रूप में संदर्भित) की धारा 2 (ए) में परिभाषित जाँच की आवश्यकता नहीं है। रिट याचिका में यह आरोप लगाया गया है कि ये भंडारण टैंक भंडारण के लिए केवल ग्रहणशील साधन है और कानून के किसी भी प्रावधान के तहत इन्हें जाँच करने की आवश्यकता नहीं है। टैंकों में प्राप्त पेट्रोलियम उत्पाद भी अंशांकित माध्यमों से बेचे जाते हैं। हालांकि, चूंकि विभिन्न जिलों के वरिष्ठ निरीक्षकों, कानूनी मेट्रोलॉजी द्वारा विभिन्न आदेश पारित किए गए थे, इसलिए, याचिकाकर्ताओं ने भंडारण टैंकों के अनिवार्य जाँच के आदेशों को चुनौती देते हुए रिट याचिका ईख्या 34383/1996 (आईओसीएल बनाम यूपी राज्य और अन्य) दायर की और अपेक्षित शुल्क जमा करें।

(बी) प्रारंभ में 31.10.1996 को इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा अंतरिम आदेश दिए

अनुवादित

गए थे, लेकिन अंततः उपरोक्त रिट याचिका को सरकारी आदेश दिनांक 10.04.1996 को वैध मानते हुए दिनांक 12.04.2007 के फैसले और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त निर्णय और आदेश के खिलाफ, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा माननीय सर्वोच न्यायालय के समक्ष एक एसएलपी दायर की गई थी, जो एसएलपी (सिविल) संख्या 17393/2007 थी।

(सी) ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा विभिन्न उच्च न्यायालयों में बड़ी संख्या में रिट याचिकाएं दायर की गई, इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने माननीय सर्वोच न्यायालय के समक्ष स्थानांतरण याचिका दायर की, जो 2004 की स्थानांतरण याचिका (सिविल) संख्या 874 (इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम इंस्पेक्टर लीगल मेट्रोलॉजी और अन्य) का नेतृत्व कर रही थी। आदेश दिनांक 10.03.2006 द्वारा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 139 ए (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच न्यायालयों में लंबित सभी रिट याचिकाओं को सुनवाई के लिए सर्वोच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया। उपरोक्त एसएलपी (सिविल) संख्या 17393/2007 को भी उपरोक्त स्थानांतरण याचिकाओं के साथ जोड़ दिया गया था। अंततः, माननीय सर्वोच न्यायालय (2006 का प्रमुख स्थानांतरण मामला (सिविल) संख्या 99) द्वारा दिनांक 26.02.2013 के आदेश द्वारा सभी स्थानांतरण याचिकाएँ खारिज कर दी गई।

(डी) इस प्रकार, भंडारण टैंकों को अधिनियम 1976 के दायरे में लाने के लिए प्रत्यर्थियों की कार्रवाई को याचिकाकर्ताओं की चुनौती अंततः विफल रही। माननीय सर्वोच न्यायालय का उपरोक्त आदेश अंतिम रूप ले चुका है।

(ई) माननीय सर्वोच न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामलों को खारिज करने के बाद, डिपो में स्थित भंडारण टैंक के जाँच के लिए विधिक माप विज्ञान विभाग, बिहार को दिनांक 21.03.2013 को एक पत्र लिखा गया था। जाँच लीगल मेट्रोलॉजी इंस्पेक्टर द्वारा किया गया था और जनवरी 1992 से अप्रैल 2013 तक प्रति टैंक प्रति वर्ष 5000/- रुपये की जाँच फीस की मांग की गई थी। नतीजतन, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने आई.ए.एस. दायर किया जिसमे बिहार राज्य के अधिकारियों द्वारा जारी मांग नोटिस को चुनौती दी गई। सभी आई.ए.एस. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 30.08.2013 के आदेश द्वारा निम्नानुसार निस्तारण किया गयाः

"यदि आवेदक याचिकाकर्ता 11 टैंकों पर 24.20 लाख रुपये की मोहर लगाने के लिए फीस और जुमनि की मांग करने वाले नोटिस से व्यथित है। तो हमें लगता है कि इसने कार्रवाई के एक नए कारण को जन्म दिया है जिसके लिए याचिकाकर्ता कानून में उपलब्ध उचित कानूनी उपाय अपना सकता

हैं। तदनुसार, हम मानते हैं कि यदि याचिकाकर्ता उपरोक्त मांग से संबंधित शिकायत के निवारण के लिए उचित मंच पर उपाय करता है, तो उस पर कानून के अनुसार विचार किया जाएगा। उस स्थिति में, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का मामले के विचार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

आई.ए.एस. तदनुसार निस्तारित किया जाता है।"

(एफ) इस प्रकार, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड को फीस और विलंब शुल्क की मांग पैदा करने वाले आदेशों के खिलाफ वैधानिक उपचार का लाभ उठाने के लिए बाध्य किया गया था।

(जी) संबंधित जिलों के कानूनी माप विज्ञान विभाग के वरिष्ठ निरीक्षक के कार्यालय द्वारा संबंधित नोटिस जारी किए गए थे और उसके बाद मांगें बनाई गई थीं। व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने रिट सी संख्या 8356/2014 (उप महाप्रबंधक आई.ओ.सी. लिमिटेड और अन्य बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य) दायर की, जिसे वैकल्पिक उपाय के आधार पर खारिज कर दिया गया और याचिकाकर्ताओं को नियमावली, 2011 के साथ पठित विधिक माप विज्ञान (सामान्य) अधिनियम, 2009 के प्रावधानों के संदर्भ में उचित अपीलीय मंच से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी गई। याचिकाकर्ताओं ने विधिक माप विज्ञान विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के नियंत्रक के समक्ष अपील संख्या 6/2014 दायर की, जिसे आदेश दिनांक 25.09.2014 द्वारा खारिज कर दिया गया।

(एच) उपरोक्त अपीलीय आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने 2014 की रिट सी संख्या 50603 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 03.12.2015 के निर्णय और आदेश द्वारा निम्नानुसार अनुमति दी थी:

"इसलिए इस रिट याचिका को ऊपर बताए गए तरीके और सीमा तक अनुमति दी जाती है। दिनांक 14.08.2014 के विवादित आदेश को रद्द कर दिया गया है और अपील संख्या 6/2014 को कानून के अनुसार, अपीलीय प्राधिकारी के पुनर्विचार के लिए बहाल किया गया है। पक्षकारों को अपने संबंधित अधिवक्ता के माध्यम से 08.01.2016 को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए नोटिस देना होगा।

मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्याय के हित में यह भी प्रावधान किया गया है कि अपील संख्या 6/2014 में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अंतिम निर्णय होने तक, इस न्यायालय द्वारा 25.09.2014 को पारित अंतरिम आदेश लागू रहेगा। बेशक, अपीलीय प्राधिकारी को अपील पर जल्द से जल्द अंतिम निर्णय लेने की आवश्यकता होगी, अधिमानतः पक्षकारों की उपस्थिति की तारीख से दो महीने के भीतर होगा।

(i) इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय और आदेश के अनुसार, उपरोक्त अपील संख्या

6/2014 पर फिर से आदेश दिनांक 23.08.2016 द्वारा निर्णय लिया गया और अपील को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता जाँच के लिए शुल्क और विलंब शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं।

(जे) उपरोक्त अपीलीय आदेश / मांग नोटिस से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश लीगल मेट्रोलॉजी (प्रवर्तन) नियमावली, 2011 (इसके बाद यूपी नियमावली, 2011 के रूप में संदर्भित) के नियम 17 (3) की वैधता को चुनौती देते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि रिट सी संख्या 33571/2018 केवल नोटिस के खिलाफ दायर की गई है और याचिकाकर्ता इसका जवाब प्रस्तुत करते हैं। इस कथन के दृष्टिगत रिट सी संख्या 33571/2018 खारिज किये जाने योग्य है।

10. बाकी रिट याचिकाओं में केवल विवादित मांग नोटिस / अपीलीय आदेशों की वैधता और नियम 2011 के नियम 17(3) की वैधता का प्रश्न परीक्षण किया जाना बाकी है।

11. बाट और माप के मानक अधिनियम, 1976 और बाट और माप के मानक (प्रवर्तन) अधिनियम, 1985 (इसके बाद 'अधिनियम, 1985 के रूप में संदर्भित) को कानूनी मेट्रोलॉजी अधिनियम, 2009 की धारा 57 द्वारा निरस्त कर दिया गया (इसके बाद 'अधिनियम, 2009 के रूप में संदर्भित) के रूप में जाना जाता है। अधिनियम 2009 दिनांक 1.4.2011. से लागू हुआ।

12. आक्षेपित अपीलीय आदेश दिनांक 23.08.2016 से यह स्पष्ट है कि पहले याचिकाकर्ताओं ने अपने भंडारण टैंकों को जाँच कराया था। वरिष्ठ निरीक्षकों द्वारा याचिकाकर्ताओं को नोटिस इस कारण से जारी किया गया था कि याचिकाकर्ताओं ने स्टाम्प की वैधता समाप्त होने के बाद भी पुनः सत्यापन नहीं कराया था। इसलिए, बाटों या मापों के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए नियम 2011 के नियम 17 के उप नियम 1/उप नियम 2 के तहत प्रदान की गई फीस की मांग की गई थी।

13. अपीलीय प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि चूंकि जाँच निर्धारित समय के भीतर नहीं किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता सत्यापन शुल्क के साथ-साथ विलंब शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं।

14. इसलिए, याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिकाएं दायर की हैं।

15. अग्रणी रिट सी संख्या 52674/2016 में पारित हमारे आदेश दिनांक 19.11.2022 में, पक्षों के विद्वान अधिवक्तों की सहमति से, हमने रिट-सी संख्या 33571/2018 को छोड़कर वर्तमान रिट याचिकाओं में निर्धारण के लिए निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए हैं। जिसे उपरोक्त आदेश दिनांक 19.11.2022 के

पैराग्राफ 9 में उल्लेखित याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के बयान के मद्देनजर खारिज किया जाता है। दिनांक 19.11.2022 के आदेश में दिए गए प्रश्नः निम्न प्रकार हैं:

(i) क्या नियम 2011 का नियम 17 (3) वैध कानून है?

(ii) क्या बाट और माप मानक अधिनियम, 1976/उत्तर प्रदेश विधिक माप विज्ञान (प्रवर्तन) नियमावली 2011 के साथ पठित विधिक माप विज्ञान अधिनियम, 2009 के तहत शुल्क, विलंब शुल्क या अतिरिक्त शुल्क की मांग एक वाणिज्यिक विवाद है। कार्यालय ज्ञापन F.No.4(1)/2013-DPE (GM)/FTS-1835, भारत सरकार भारी उद्योग और सार्वजनिक उद्यम मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम विभाग दिनांक 22.05.2018 द्वारा और परिणामस्वरूप देर से भुगतान का विवाद याचिकाकर्ताओं की फीस का समाधान मध्यस्थता तंत्र (पी.एम.ए. तंत्र) की स्थायी मशीनरी के माध्यम से किया जाना चाहिए?

(ii) क्या याचिकाकर्ता शुल्क और विलंब शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं?

<u>प्रस्तुतियाँ:-</u>

16. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल कुमार शर्मा का कहना है:-

(i) अधिनियम, 2009 और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत सत्यापन के लिए निर्दिष्ट अवधि यानी 60 महीने के लिए 5,000/- रुपये से अधिक शुल्क नहीं लिया जा सकता है।

(ii) चूंकि अधिनियम, 2009 के तहत अतिरिक्त शुल्क या विलंब शुल्क लगाने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए, यूपी के नियम 17 (3) नियम, 2011 मूल अधिनियम के तहत प्रदत्त शक्ति से परे है।

(iii) अधिनियम, 2009 के लागू होने से पहले की अवधि के लिए याचिकाकर्ताओं से कोई शुल्क नहीं वसूला जा सकता, क्योंकि निरस्त अधिनियम, 1976 के तहत सभी कार्यवाही समाप्त हो चुकी हैं।

(iv) अधिनियम, 1985 और यू.पी. द्वारा कवर की गई अवधि के लिए सत्यापन या पुनर्सत्यापन के लिए शुल्क। नियम, 1990 का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

17. राज्य के लिए विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने हमें अधिनियम, 1976, नियम, 1985, अधिनियम, 1985, नियम, 1990, अधिनियम, 2009, सामान्य नियम, 2011, मॉडल ड्राफ्ट विधिक माप विज्ञान (प्रवर्तन) नियमावली, 2010 एवं उ.प्र. नियमावली, 2011 के विभिन्न प्रावधानों से अवगत कराया है। उन्होंने विशेष रूप से हमारा ध्यान अधिनियम, 2009 की धारा 52 व 53 तथा सामान्य नियमावली, 2011 तथा उ.प्र. नियम, 2011 के प्रावधानों की ओर आकर्षित किया। और निम्नानुसार प्रस्तुत कियाः-

(i) शुल्क की मात्रा के संबंध में मूल अधिनियम में कोई शर्त नहीं है और मामला अधीनस्थ कानून के लिए छोड़ दिया गया है। शुल्क का पैमाना अधीनस्थ कानून द्वारा प्रदान किया गया है। राज्य सरकार ने उन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, सामान्य नियम, 2011 और केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए राज्य के मॉडल नियमों के तहत निर्धारित शुल्क के पैमाने को अपनाते हुए यूपी नियम, 2011 तैयार किया। इसने अधिनियम, 2009 के तहत प्रदत्त शक्ति के तहत निर्धारित अतिरिक्त शुल्क को अपनाया, जो केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए मॉडल नियमों यानी मॉडल नियम, 2010 के लिए असंगत है। इस प्रकार नियम, 1990 के नियम 17(3) के द्वारा राज्य सरकार को प्रदत्त विधायी शक्तियां के अंतर्गत हैं।

(ii) अधिनियम, 2011 के तहत बचत खंड है, और इसलिए, अधिनियम, 1976 के तहत सभी कार्यवाही सुरक्षित है, इसलिए, याचिकाकर्ता सत्यापन शुल्क या अतिरिक्त शुल्क के भुगतान से इनकार नहीं कर सकते हैं।

(iii) याचिकाकर्ताओं को केवल रु. 5,000/- प्रति शुल्क लगाने के नोटिस जारी किए गए प्रत्येक पांच वर्ष, केंद्रीय नियम 2011 और यू.पी. नियम, 2011 के प्रावधानों के अनुसार है। विलंब शुल्क को भी फिर से तैयार किया गया था, और यूपी सरकार द्वारा अपनाए गए मॉडल नियम, 2010 के संदर्भ में विलंब शुल्क की मांग की गई है। नियम, 2011 के अनुसार, याचिकाकर्ता शुल्क और अतिरिक्त शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं। रिट याचिका निरर्थक है और विवादित नोटिस और आदेश वैध हैं। अतः रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

<u>चर्चा एवं निष्कर्ष:-</u>

18. इससे पहले कि हम पक्षों के विद्वान अधिवक्तों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों की जांच करें, वर्तमान रिट याचिकाओं में शामिल विवाद से संबंधित प्रासंगिक प्रावधानों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत करना उचित होगाः

<u>प्रासंगिक प्रावधानः -</u>

<u>(ए) बाट और माप के मानक (प्रवर्तन) अधिनियम, 1985</u>

"24. (1) .....

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक बाट या माप को निर्धारित आवधिक अंतराल पर पुनः सत्यापित किया जाएगा।

स्पष्टीकरण--शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि किसी भी बाट या माप के संबंध में आवधिक पुनः सत्यापन आवश्यक नहीं होगा, जिसका उपयोग विशेष रूप से घरेलू उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

70. फीस का उद्ग्रहण. राज्य सरकार, धारा 72 के तहत बनाए गए नियमों द्वारा, ऐसी फीस उद्दहीत कर सकती है, जो कि-

(ए)...

(बी)...

(सी)...

(डी) किसी भी वजन या माप के सत्यापन के लिए, ऐसे सत्यापन करने में लगने वाले समय और श्रम को ध्यान में रखते हुए, श्रेणीबद्ध पैमाने पर पांच हजार रुपये देय होगा

72. (1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा और केंद्र सरकार से परामर्श के बाद, इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए नियम बना सकती है।

(2) विशेष रूप से, और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के लिए प्रदान कर सकते हैं, अर्थात्:-

(एम) वह अवधि जिसके भीतर धारा 24 की उपधारा (2) द्वारा अपेक्षित अनुसार बाटों या मापों को सत्यापित या पुनः सत्यापित किया जाएगा,

.....

(यू) फीस की राशि जो धारा 70 में निर्दिष्ट प्रत्येक मामले के लिए लगाई और एकत्र की जा सकती है:

(3) इस धारा के तहत कोई भी नियम बनाते समय, राज्य सरकार यह प्रावधान कर सकती है कि इसका उत्बंधन करने पर जुर्माना लगाया जाएगा जो एक हजार रुपये तक बढ़ सकता है।

(बी) उत्तर प्रदेश बाट और माप के मानक (प्रवर्तन) नियम, 1990 (इसके बाद इसे 'यू.पी. नियम, 1990 के रूप में सन्दर्भित)

"14. बाटों या मापों के सत्यापन के लिए आवधिक अंतराल (1) प्रत्येक बाट या माप जिसमें बुलियन, कैरेट, बाट, बीम स्केल, काउंटर मशीन और तरल क्षमता के उपाय (डुबकी के उपाय, डालने के उपाय और शंक्वाकार माप) शामिल हैं या उपयोग किए जाने का इरादा रखते हैं किसी भी वाणिज्यिक लेनदेन में 24 महीने की अवधि में एक बार सत्यापित या पुनः सत्यापन किया जाएगा और पट्टे पर मुहर लगाई जाएगी:

बशर्ते कि उपरोक्त बाटों और मापों के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए देय शुल्क अनुसूची XII में निर्धारित दर पर लिया जाएगा, जिसकी गणना प्रति वर्ष वर्ष के आधार पर की जाएगी:

बशर्ते कि औद्योगिक उत्पादन या सुरक्षा के लिए उपयोग किए जाने वाले बाटों या मापों को वर्ष में एक बार पट्टे पर सत्यापित या पुनः सत्यापित और मुद्रांकित किया जाएगा:

बशर्ते यह भी कि वैट सहित भंडारण टैंकों को पांच साल की अवधि में एक बार पट्टे पर सत्यापित या पुनः सत्यापित और अंशांकित या पुनः अंशांकित और मुद्रांकित किया जाएगा।

(2) उप-नियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, प्रत्येक बाट या माप जिसे सत्यापित किया गया है और उसी स्थान पर मुहर लगाई गई है, यदि इसे उस तारीख से पहले नष्ट कर दिया गया है और फिर से स्थापित किया गया है, जिस तारीख को सत्यापन होता है, तो उसे विधिवत पुनः सत्यापित किया जाएगा और उपयोग में लाने से पहले निर्धारित शुल्क के भुगतान पर मुहर लगाई जाती है।

अनुवादित

(3) उप-नियम (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, प्रत्येक बाट या माप जिसे सत्यापित और मुद्रांकित किया गया है, यदि उस तारीख से पहले मरम्मत की जाती है, जिस दिन सत्यापन होता है, तो उसे विधिवत पुनः सत्यापित किया जाएगा और निर्धारित भुगतान पर उपयोग में लाने से पहले मुद्रांकित किया जाएगा।

17. सत्यापन और मुद्रांकन के लिए शुल्क -(1) निरीक्षक के कार्यालय या शिविर कार्यालय में बाट या माप के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए देय शुल्क अनुसूची X।। में निर्दिष्ट अनुसार होगा। (2) यदि, वजन या माप के उपयोगकर्ता के अनुरोध पर, सत्यापन किया जाता है इंस्पेक्टर के कार्यालय या कैंप कार्यालय के अलावा किसी भी परिसर में, अनुसूची ४।। में निर्दिष्ट दरों से आधी दर पर अतिरिक्त शुल्क लिया जाएगा और वजन या माप के उपयोगकर्ता को निरीक्षक द्वारा परिसर का दौरा करने के लिए किए गए खर्च का भुगतान वर्किंग स्टैंडर्ड और अन्य उपकरणों के परिवहन और प्रबंधन की लागत न्यूनतम दस रुपये के तहत करना होगा।

बशर्ते कि सत्यापन और मुद्रांकन के लिए कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लिया जाएगा,

(i) वाहन टैंक, डिस्पेंसिंग पंप, वेट ब्रिज, निष्क्रिय प्लेटफॉर्म मशीनें और ऐसे अन्य वजन या माप जिन्हें अपने स्थान से नहीं हटाया जा सकता है और न ही हटाया जाना चाहिए,

(i) ऐसे बाट या माप के निर्माता या स्टॉकिस्ट के परिसर में वजन या माप।

(3) यदि स्टाम्प की वैधता समाप्त होने के बाद पुनः सत्यापन के लिए इंस्पेक्टर को बाट या माप प्रस्तुत किया जाता है, तो अनुसूची XII में निर्दिष्ट दरों के आधे पर अतिरिक्त शुल्क वर्ष की प्रत्येक तिमाही या उसके भाग के लिए देय होगा।

(4) नियम 14 में निर्दिष्ट अवधि के भीतर निर्माता या डीलर के स्टॉक में रखे गए किसी भी वजन या माप को अंतिम बार मुहर लगाने की तारीख से फिर से मुहर लगाने के लिए कोई शुल्क देय नहीं होगा, बशर्ते कि मूल मुहर अधिनियम की धारा 28 के धारा (3) के तहत नष्ट न हुई हो।

(5) कोई बाट या माप जो सत्यापन/निरीक्षण में गलत पाया जाता है, उसे समायोजन के लिए संबंधित व्यक्ति को लौटा दिया जाएगा, उसे नियंत्रक द्वारा निर्दिष्ट प्रोफार्मा में बाट या माप में पाए गए दोषों के बारे में सूचित किया जाएगा और उसे बुलाया जाएगा और सात दिनों से अधिक की अवधि के भीतर दोषों को दूर करना होगा। जब आवश्यक समायोजन किया गया है, तो ऐसे वजन या माप को अनुसूची XII में निर्दिष्ट शुल्क के भुगतान पर सत्यापित किया जाएगा और सही पाए जाने पर मुहर लगाई जाएगी।

24. नियमों के उल्लंघन के लिए जुर्माना जो कोई भी इन नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है, जिसके उल्लंघन के लिए अधिनियम में अलग से कोई सजा का प्रावधान

नहीं किया गया है, उसे जुर्माने से दंडित किया जाएगा जो एक हजार रुपये तक हो सकता है।

अनुसूची XII (प्रासंगिक खंड-2 पुनः प्रस्तुत किया गया है)

[नियम 17 (1) देखें]

1... .....

2. क्षमता माप (भंडारण टैंक, वाहन टैंक, वितरण उपाय और खूंटी माप सहित) -

क्षमता प्रति नग	शुल्क
50 लीटर और उससे अधिक	पहले 100 लीटर या उसके भाग के लिए 10.00 रुपये और प्रत्येक अतिरिक्त 100 लीटर के लिए 3.00 रुपये या इसका हिस्सा अधिकतम 5,000 रूपये के अधीन है
201	4.00
101	4.00
51	2.00
21	2.00
11	2.00
500 मिली	1.00
200 मिली	1.00
100 मिली	1.00
50 मिली	1.00
20 मिली	1.00
10 मिली	1.00
5 मिली	1.00
2 मिली	1.00
1 मिली	1.00
18.5 मिली	4.00
60 मिली	1.00
30 मिली	1.00

(सी) कानूनी माप विज्ञान अधिनियम, 2009

(इस अधिनियम ने अधिनियम, 1985 को निरस्त कर दिया)

धारा 2 (v) "सत्यापन", अपनी व्याकरणिक विविधताओं और सजातीय अभिव्यक्तियों के साथ, किसी भी वजन या माप के संबंध में, ऐसे वजन या माप की तुलना, जांच, परीक्षण या समायोजन की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने की दृष्टि से शामिल है। माप इस अधिनियम द्वारा या इसके तहत स्थापित मानकों के अनुरूप है और इसमें पुनः सत्यापन और अंशांकन भी शामिल है;

धारा 2 (डब्ल्यू) "वजन या माप" का अर्थ इस अधिनियम द्वारा या इसके तहत निर्दिष्ट वजन या माप है और इसमें वजन या माप उपकरण शामिल है।

धारा 16: समपहरण. - (1) प्रत्येक गैर-मानक या असत्यापित बाट या माप, और धारा 18 के उबंधन में बनाया गया प्रत्येक पैकेज, किसी भी व्यापार और वाणिज्य के दौरान या उसके संबंध में उपयोग किया जाता है और धारा 15 के तहत जब्त किया जाता है, राज्य सरकार द्वारा जब्त किये जाने के लिए उत्तरदायी होगा:

बशर्ते कि ऐसे असत्यापित बाट या माप को राज्य सरकार द्वारा जब्त नहीं किया जाएगा, यदि जिस व्यक्ति से ऐसा बाट या माप जब्त किया गया था, उसे निर्धारित समय

अनुवादित

के भीतर सत्यापित और मुद्रांकित कर दिया जाता है।

(2) धारा 15 के तहत जब्त किए गए लेकिन उप-धारा (1) के तहत जब्त नहीं किए गए प्रत्येक वजन, माप या अन्य सामान का ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसे तरीके से निपटान किया जाएगा।

धारा 24. वजन या माप का सत्यापन और मुद्रांकन (1) प्रत्येक व्यक्ति के कब्जे, अभिरक्षा या नियंत्रण में कोई भी वजन या माप ऐसी परिस्थितियों में होता है जो दर्शाता है कि ऐसे वजन या माप का उपयोग किया जा रहा है, या इरादा है या होने की संभावना है। उसके द्वारा किसी लेन- देन में या सुरक्षा के लिए, ऐसे वजन या माप को ऐसे उपयोग में लाने से पहले, ऐसी फीस के भुगतान पर जो निर्धारित की जाए ऐसे वजन या माप को ऐसे स्थान पर और ऐसे घंटों के दौरान सत्यापित किया जाएगा जो नियंत्रक, सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकता है,।

(2) केंद्र सरकार उन बाटों और मापों के प्रकार निर्धारित कर सकती है जिनके लिए सत्यापन सरकार द्वारा अनुमोदित परीक्षण केंद्र के माध्यम से किया जाना है।

(3) सरकार द्वारा अनुमोदित परीक्षण केंद्र को केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा, जैसा भी मामला हो, ऐसे तरीके से, ऐसे नियमों और शर्तों पर और ऐसे शुल्क के भुगतान पर अधिसूचित किया जाएगा जो निर्धारित किया जा सकता है।

(4) सरकार द्वारा उप-धारा (2) के तहत निर्दिष्ट वजन और माप के सत्यापन के लिए ऐसी योग्यता और अनुभव रखने वाले व्यक्तियों को नियुक्त करेगा या नियुक्त करेगा और ऐसे नियमों और शर्तों पर शुल्क एकत्र करेगा जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

अध्याय V (धारा 25 से 57)

धारा 33: जो कोई भी किसी असत्यापित बाट या माप को विक्रीत, वितरित, परिदत्त करेगा या अन्यथा उसका अंतरण या उपयोग करेगा, वह जुर्माने से, जो दो हजार से कम का नहीं होगा, किंतु जो दस हजार रूपये तक का हो सकेग और द्वितीय या पश्चातवर्ती अपराध के लिए कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, दंडित किया जाएगा।

धारा 52: नियम बनाने की केंद्र सरकार की शक्ति। (1)....

(2) विशेष रूप से, और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के लिए प्रदान कर सकते हैं, अर्थात्ः -

(ए)..
(बी)...

(सी) धारा 7 की उपधारा (4) के तहत भौतिक विशेषताएं, विन्यास, निर्माण विवरण, सामग्री, उपकरण, प्रदर्शन, सहनशीलता, पुनः सत्यापन की अवधि, परीक्षण के तरीके या प्रक्रियाएं:

धारा 53. नियम बनाने की राज्य सरकार की शक्ति (1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा और केंद्र सरकार से परामर्श के बाद, इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए नियम बना सकती है।

(2) विशेष रूप से और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के लिए प्रदान कर सकते हैं, अर्थात्: -

(ए) वह समय जिसके भीतर धारा 16 की उपधारा (1) के परंतुक के तहत वजन या माप को सत्यापित किया जा सकता है;

(बी) धारा 17 की उपधारा (1) के तहत निर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा बनाए जाने वाले रजिस्टर और रिकॉर्ड;

(सी) धारा 23 की उपधारा (2) के तहत लाइसेंस जारी करने के लिए प्रपत्र, तरीके, शर्तें, अवधि, अधिकार क्षेत्र और शुल्क;

(डी) धारा 24 की उपधारा (1) के तहत किसी भी वजन या माप के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए शुल्क,

(ई) धारा 24 की उपधारा (3) के तहत सरकार द्वारा अनुमोदित परीक्षण केंद्र को सूचित करने का तरीका, नियम और शर्तें और भुगतान की जाने वाली फीस;

(एफ) धारा 48 की उपधारा (1) के तहत अपराधों के शमन के लिए शुल्क,

(3) इस धारा के तहत कोई भी नियम बनाते समय, राज्य सरकार यह प्रावधान कर सकती है कि इसका उत्बंधन करने पर जुर्माना लगाया जाएगा जो पांच हजार रुपये तक हो सकता है।

(4) इस धारा के तहत नियम बनाने की शक्ति आधिकारिक राजपत्र में पिछले प्रकाशन के बाद बनाए जाने वाले नियमों की शर्त के अधीन होगी।

(5) इस धारा के तहत बनाया गया प्रत्येक नियम, इसके बनने के बाद जितनी जल्दी हो सके, राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा, जहां दो सदन हैं और जहां राज्य विधानमंडल का एक सदन है, उस सदन के समक्ष रखा जाएगा।

धारा 57. बाट और माप के मानक अधिनियम, 1976 और बाट और माप के मानक (प्रवर्तन) अधिनियम, 1985 का निरसन।- (1) बाट और माप के मानक अधिनियम, 1976 (1976 का 60) और बाट के मानक और उपाय (प्रवर्तन) अधिनियम, 1985 (1985 का 54), इसके द्वारा निरस्त किया जाता है।

(2) सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) में निहित प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, वजन और माप मानक अधिनियम, 1976

(1976 का 60) और वजन और माप के मानक (प्रवर्तन) अधिनियम, 1985 (1985 का 54) के तहत किए गए निरसन, किसी भी अधिसूचना, नियम या आदेश के संबंध में, यदि लागू है, तो इस अधिनियम के प्रारंभ में, लागू रहेगा और प्रभावी रहेगा जैसे कि यह इस के संबंधित प्रावधान के तहत बनाया गया था।

(3) इस तरह के निरसन के बावजूद, ऐसे कानून के तहत की गई, जारी की गई या दी गई कोई भी नियुक्ति, अधिसूचना, नियम, आदेश, पंजीकरण, लाइसेंस, प्रमाण पत्र, नोटिस, निर्णय, अनुमोदन, प्राधिकरण या सहमति, यदि इस अधिनियम के प्रारंभ में लागू होगी, लागू रहेगा और प्रभावी रहेगा जैसे कि इसे इस अधिनियम के संबंधित प्रावधानों के तहत बनाया, जारी किया गया या दिया गया हो।

(डी) **<u>कानूनी मेट्रोलॉजी (सामान्य) नियम, 2011</u>** (इसके बाद 'सामान्य नियम, 2011 के रूप में संदर्भित) (अधिनियम 2009 की धारा 52 (2) (सी), (एफ), (एच), (आई) और (एस) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्र सरकार द्वारा तैयार किया गया)

नियम 25. फीस का पैमाना. बारहवीं अनुसूची के कॉलम (2) में निर्दिष्ट सेवा के लिए एकत्रित की जाने वाली फीस का पैमाना उक्त अनुसूची के कॉलम 3 में निर्दिष्ट दर पर होगा।

नियम 27. बाटों या मापों का आवधिक सत्यापन (1) धारा 2 के खंड (के) में किसी भी लेनदेन में या जीवित प्राणियों या चीजों की सुरक्षा के लिए उपयोग किए गए या उपयोग किए जाने वाले प्रत्येक बाट या माप को सत्यापित किया जाएगा और मुहर लगाई जाएगी। उस राज्य में विधिक मापविज्ञान अधिकारी, जिसमें ऐसे वजन या माप का उपयोग किया जाता है और आवधिक अंतराल पर पुनः सत्यापन और मुहर लगाई जाएगी।

(2) पुनः सत्यापन एक अवधि के पूरा होने पर किया जाएगा,

(ए) सभी वजन, क्षमता माप, लंबाई माप, टेप, बीम स्केल और काउंटर मशीन के लिए चौबीस महीने,

(बी) भंडारण टैंकों के लिए साठ महीने, और

(सी) खंड (ए) और (बी) में उल्लिखित के अलावा टैंक लॉरी सहित सभी वजन या माप के लिए बारह महीने।

(3) उप-नियम (2) में निहित किसी भी बात के बावजूद, प्रत्येक बाट या माप जिसे सत्यापित किया गया है और यथास्थान मुद्रांकित किया गया है, यदि सत्यापन की तारीख से पहले इसे नष्ट कर दिया गया है और फिर से स्थापित किया गया है, तो इसे विधिवत पुनः सत्यापित किया जाएगा। और उपयोग में लाने से पहले मुहर लगाई जाती है।

(4) उप-नियम (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, प्रत्येक बाट या माप जिसे सत्यापित और मुद्रांकित किया गया है, यदि उस तारीख

से पहले मरम्मत की जाती है जिस दिन सत्यापन देय है, तो उसे डालने से पहले विधिवत पुनः सत्यापित किया जाएगा और मुद्रांकित किया जाएगा। उपयोग।

(ई) **<u>उत्तर प्रदेश विधिक माप विज्ञान (प्रवर्तन) नियमावली, 2011</u>** (अधिनियम, 2009 की धारा 53(1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा गठित)

नियम 14. वजन या माप के सत्यापन के लिए आवधिक अंतराल कानूनी मेट्रोलॉजी (सामान्य) नियम, 2011 में निर्दिष्ट किया जाएगा।

नियम 17. सत्यापन के लिए शुल्क. (1) विधिक माप विज्ञान अधिकारी के कार्यालय या कैंप कार्यालय में वजन या माप के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए देय शुल्क अनुसूची IX में निर्दिष्ट अनुसार होगा।

(2) यदि, वजन या माप के उपयोगकर्ता के अनुरोध पर, सत्यापन कानूनी मेट्रोलॉजी अधिकारी के कार्यालय या शिविर कार्यालय के अलावा किसी भी परिसर में किया जाता है, तो अनुसूची IX में निर्दिष्ट दर से आधी दर पर अतिरिक्त शुल्क लिया जाएगा और वजन या माप का उपयोगकर्ता कानूनी मेट्रोलॉजी अधिकारी द्वारा परिसर का दौरा करने के लिए किए गए खर्च का भुगतान करेगा, जिसमें न्यूनतम एक सौ रुपये के अधीन वर्किंग स्टैंडर्ड और अन्य उपकरणों के परिवहन और प्रबंधन की लागत भी शामिल है:

बशर्ते कि सत्यापन और मुद्रांकन के लिए कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लिया जाएगा।

(i) पेट्रोलियम उत्पादों और अन्य तरल पदार्थों के लिए वाहन टैंक, पानी के अलावा अन्य तरल पदार्थों के लिए मीटर (ईंधन डिस्पेंसर, तरल पेट्रोलियम गैस, दूध डिस्पेंसर), संपीड़ित प्राकृतिक गैस डिस्पेंसर, गैर-स्वचालित वजन उपकरण जैसे वेटब्रिज, प्लेटफॉर्म मशीन, क्रेन स्केल, स्वचालित ग्रेविमेट्रिक फिलिंग उपकरण, स्वचालित रेल-वेटब्रिज, डिसकंटिन्यूअस टोटलाइजिंग स्वचालित वजन उपकरण, और ऐसे अन्य वजन या माप जो अपने स्थान से स्थानांतरित नहीं किए जा सकते हैं और न ही किए जाने चाहिए;

(ii) ऐसे वजन या माप के निर्माता या डीलर के परिसर में वजन या माप।

(3) यदि कोई बाट या माप, स्टाम्प की विधमान्यता की समापित के पश्चात पुनः सत्यापन के लिए विधिक माप विज्ञान अधिकारी को प्रस्तुत किया जा ता है तो अनुसूची नो में विनिर्दिष्ट दर की आधी दर पर अतिरिक्त फीस, वर्ष की प्रत्येक तिमाही या उसके भाग के लिए संदेय होगी।

(4) नियम 14 में निर्दिष्ट अवधि के भीतर निर्माता या डीलर के स्टॉक में रखे गए किसी भी वजन या माप को अंतिम बार मुहर लगाने की तारीख से फिर से मुहर लगाने के लिए कोई शुल्क देय नहीं होगा, बशर्ते कि मूल मुहर मिटाई न गई हो।

(5) कोई बाट या माप जो सत्यापन/निरीक्षण में गलत पाया जाता है, उसे समायोजन के लिए संबंधित व्यक्ति को वापस कर दिया जाएगा, नियंत्रक द्वारा निर्दिष्ट प्रोफार्मा में उसे बाट या माप में पाए गए दोषों के बारे में सूचित किया

अनुवादित

जाएगा और बुलाया जाएगा उसे सात दिनों से अधिक की अवधि के भीतर दोषों को दूर करने का निर्देश दिया गया है। जब आवश्यक समायोजन किया गया है, तो ऐसे वजन या माप को अनुसूची IX में निर्दिष्ट शुल्क के भुगतान पर सत्यापित किया जाएगा और सही पाए जाने पर मुहर लगाई जाएगी।

नियम 25: जो कोई भी इन नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करेगा, जिसके उल्लंघन के लिए अधिनियम में अलग से कोई सजा का प्रावधान नहीं किया गया है, उसे जुर्माने से दंडित किया जाएगा, जो पांच हजार रुपये तक हो सकता है। जहां भी नियम अधिनियम के प्रावधानों के साथ टकराव में हैं, अधिनियम नियमों पर प्रभावी होगा।

अनुसूची।X (केवल प्रासंगिक भाग पुनः प्रस्तुत किया गया है)

[नियम 17(1) देखें]

1.. .....

2. क्षमता मापः

मूल्यवर्ग

प्रति नग शुल्क (रु.) (2)

100 लीटर और उससे अधिक

पहले 100 लीटर के लिए 50 रुपये और प्रत्येक अतिरिक्त 100 लीटर या उसके हिस्से के लिए 7 रुपये, बशर्ते कि अधिकतम 5000 रु तक

501	50.00
201	20.00
101	20.00
51	10.00
21	10.00
11	10.00
500 मिली	10.00
200 मिली	10.00
100 मिली	10.00
50 मिली	10.00
20 मिली	10.00
10 मिली	10.00
5 मिली	10.00
2 मिली	10.00
1 मिली	10.00

<u>अधिनियम, 1985 के तहत दायित्व और यू.पी. नियम, 1990:-</u>

19. अधिनियम, 1985 की धारा 24 (2) में प्रावधान है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक वजन या माप को निर्धारित आवधिक अंतराल पर पुनः सत्यापित किया जाएगा। उत्तर प्रदेश के नियम 14(1) का तीसरा परन्तुक नियम, 1990 में भंडारण टैंकों और वेट्स के सत्यापन या पुनः सत्यापन और अंशांकन या पुनः अंशांकन के लिए पांच साल में एक बार निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के भंडारण टैंकों को यूपी के नियम 14(1) के साथ पठित अधिनियम, 1985 की धारा 24 (2) के तहत पांच साल में एक बार सत्यापित या पुनः सत्यापित या अंशांकित या पुनः अंशांकित किया जाना आवश्यक है। नियम, 1990, अधिनियम, 1985 की धारा 72 (1) राज्य सरकार को केंद्र सरकार से परामर्श के बाद नियम बनाने की शक्ति

अनुवादित

प्रदान करती है। अधिनियम, 1985 की धारा 70 के खंड (डी) में प्रावधान है कि राज्य सरकार समय और श्रम को ध्यान में रखते हुए वजन और माप के सत्यापन के लिए श्रेणीबद्ध पैमाने पर 5,000/- रुपये से अधिक शुल्क नहीं लगा सकती है। जो इस तरह के सत्यापन करने में शामिल हो सकता है। इस प्रकार मूल अधिनियम, 1985 अधिकतन 5,000/- रुपये तक शुल्क लगाने का प्रावधान करता है और यह किसी अतिरिक्त शुल्क का प्रावधान नहीं करता है। यू.पी. बजन और माप के मानक (प्रवर्तन) नियम, 1990 को अधिनियम, 1985 की धारा 72 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए तैयार किया गया है।

20. धारा 72(2) (ए) राज्य सरकार को धारा 70 में निर्दिष्ट प्रत्येक मामले के लिए लगाए और एकत्र किए जाने वाले शुल्क की राशि प्रदान करने वाले नियम बनाने का अधिकार देती है। खंड (डी) 5,000/- रुपये की अधिकतम फीस का प्रावधान करता है। अधिनियम, 1985 की धारा 72(3) राज्य सरकार को अधिनियम, 1985 की धारा 72 के तहत बनाए गए किसी भी नियम के उबंधन के लिए 1000/- रुपये के अधिकतम जुर्माना का प्रावधान करने वाले नियम बनाने का अधिकार देती है। इस प्रकार, मूल अधिनियम की धारा 72, 1985 राज्य सरकार को अधिनियम, 1985 की धारा 70 के तहत निर्धारित शुल्क की अधिकतम राशि से अधिक किसी भी अतिरिक्त शुल्क के प्रावधान के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान नहीं करता है। नियम 17 (1) के तहत अनुसूची XII के खंड (2) यूपी के नियम, 1990 के तहत बाटों और मापों (भंडारण टैंकों सहित क्षमता माप) सत्यापन और मुहर लगाना अधिकतम रु. 5,000/- के अधीन किया जायेगा। हालांकि, उ.प्र. के नियम 17 का उपनियम (3) नियम, 1990, नियम बनाने की शक्ति से परे, वर्ष की प्रत्येक तिमाही या उसके भाग के लिए अनुसूची ४।॥ में निर्दिष्ट नियमों के आधे पर अतिरिक्त शुल्क का प्रावधान है जहां स्टांप की वैधता की समाति के बाद पुनः सत्यापन के लिए निरीक्षक को बजन या माप प्रस्तुत किया जाता है। अतः नियम 17 के उपनियम (3) को बचाने हेतु उ.प्र. नियम, 1990, इस उप-नियम (3) का अर्थ यह समझा जाना चाहिए कि अतिरिक. शुल्क सहित कुल शुल्क मूल अधिनियम, 1985 की धारा 70 के तहत प्रदान की गई फीस की अधिकतम राशि से अधिक नहीं होगी, जो तथ्यों के वर्तमान सेट में है प्रत्येक भंडारण टैंक के लिए पांच वर्ष में एक बार रु 5000/- तदनुसार, पांच वर्षों में एक बार प्रति भंडारण टैंक 5,000/- रुपये से अधिक और अतिरिक्त शुल्क सहित शुल्क लगाने के विवादित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

<u>अधिनियम, 2009, सामान्य नियम, 2011 और उ.प्र. नियम, 2011 के तहत शुल्क और अतिरिक्त शुल्क या जुर्माना -</u>

21. अधिनियम, 2009 की धारा 2 की उप-धारा (v) और (w) के साथ पठित धारा 24, निर्धारित शुल्क के भुगतान पर बजन या माप के सत्यापन और पुनः सत्यापन का प्रावधान करती है। धारा 52(2) (सी) केंद्र सरकार को 'पुनः सत्यापन की अवधि सहित

कुछ विषयों पर नियम बनाने का अधिकार देती है। सामान्य नियम, 2011 के नियम 27 (2) (बी) में साठ महीने की अवधि पूरी होने पर भंडारण टैंकों के पुनः सत्यापन का प्रावधान है। इस प्रकार, साठ महीने की अवधि पूरी होने पर याचिकाकर्ता के भंडारण टैंकों को सामान्य नियम, 2011 के साथ पठित अधिनियम, 2009 के तहत फिर से सत्यापित करने की आवश्यकता है।

22. अधिनियम, 2009 की धारा 53 (2) (डी) राज्य सरकार को धारा 24 की उपधारा (1) के तहत किसी भी वजन या माप के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए शुल्क निर्धारित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार देती है। यूपी नियम, 2011 अनुसूची IX की अनुसूची IX का खंड (2) में निर्दिष्ट अनुसार वजन या माप के सत्यापन और मुद्रांकन के लिए देय शुल्क प्रदान करता है और फीस का पैमाना, क्षमता माप (भंडारण टैंक) के लिए सत्यापन / पुनः सत्यापन अधिकतम रु. 5,000/- प्रदान करता है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी यूपी की अनुसूची IX के खंड (2) में प्रदान की गई फीस के पैमाने के अनुसार प्रत्येक भंडारण टैंक के लिए साठ महीने में एक बार सत्यापन या पुनः सत्यापन शुल्क ले सकते हैं। नियम, 2011 के तहत प्रति भंडारण टैंक अधिकतम 5,000/- रुपये और प्रत्यर्थियों द्वारा याचिकाकर्ताओं से इसके अतिरिक्त कोई भी शुल्क लगाया या वसूला जाना अवैध और अनधिकृत है।

<u>उत्तर प्रदेश नियम, 2011 के नियम 17(3) के अंतर्गत अतिरिक्त शुल्क लगानाः-</u>

23. इस प्रकार, किसी भंडारण टैंक के सत्यापन या पुनः सत्यापन के लिए साठ महीने में एक बार अधिकतम शुल्क 5,000/- रुपये लगाया जा सकता है। सत्यापन या पुनः सत्यापन (संदर्भ: धारा 2(v)] किसी भी वजन या माप के संबंध में, ऐसे वजन या माप की तुलना, जांच, परीक्षण या समायोजन करने की प्रक्रिया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसा वजन या माप अधिनियम, 2009 के तहत स्थापित मानक के अनुरूप है। इन सेवाओं को प्रदान करने के लिए, अधिनियम, 2009 की धारा 24 के तहत यू.पी. नियम, 2011 द्वारा निर्धारित दरों पर शुल्क लिया जाता है। अधिनियम, 2009 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण के खंड 4 (एफ) में प्रावधान है कि शुल्क की वसूली विभिन्न सेवाओं के लिए है। इस प्रकार, अधिनियम, 2009 के तहत सत्यापन या पुनः सत्यापन और जाँच के लिए शुल्क का अधिनियम, 2009 की धारा 24 के साथ पठित धारा 2 (v) में परिभाषित सेवाओं के साथ सीधा सह-संबंध है। इस प्रकार, क्विड प्रो-क्यो का एक तत्व यूपी नियम, 2011 के नियम 17 (1) के साथ पठित अधिनियम, 2009 की धारा 24 के तहत बाटों और मापों के सत्यापन या पुनः सत्यापन के लिए प्रभार्य शुल्क के लिए मौजूद है।

24. इस प्रकार, अधिनियम, 2009 की धारा 2 (बी) और यूपी के नियम 17 (1) के साथ पठित धारा 24 के तहत शुल्क का उद्ग्रहण, नियम, 2011 निर्दिष्ट सेवाओं के प्रतिपादन के बदले में है। सत्यापन या पुनः सत्यापन के लिए शुल्क कोई शुल्क या कर

नहीं है। जबकि कर सार्वजनिक उद्देश्य के लिए लगाया जाता है और इसके समर्थन में किसी विचार की आवश्यकता नहीं होती है, शुल्क आम तौर पर प्रदान की गई सेवाओं के लिए अनिवार्य रूप से लगाया जाता है और इसे भुगतान करने वाले व्यक्ति और करदाता के बीच सार्वजनिक प्राधिकरण जो इसे लगाता है के पारस्परिक लाभ का तत्व होना चाहिए। आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री शिकार मठ के श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्थानी, 1954 एससीआर 1005 एआईआर 1954 एससी 282 (पैरा 46 और 47) के मामले में, माननीय सर्वोच न्यायालय की एक संविधान पीठ ने कहा कि शुल्क को आम तौर पर कुछ सरकारी एजेंसियों द्वारा व्यक्तियों को प्रदान की जाने वाली विशेष सेवा के लिए लिया जाने वाला शुल्क माना जाता है। उत्तराखंड राज्य बनाम कुमाऊं स्टोन क्रशर, (2018) 14 एससीसी 537 (पैरा-153, 154, 161 से 186) के मामले में, माननीय सर्वोच न्यायालय ने शुल्क की अवधारणा, कर और शुल्क के बीच अंतर और जब एक शुल्क को जब्ती याला कहा जा सकता है और उसके बाद पांचवें संशोधन नियमों द्वारा प्रदान की गई पारगमन फीस को जब्ती योग्य माना जा सकता है।

25. खेमका एंड कंपनी (एजेंसियां) (पी.) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1975) 2 एससीसी 22 (पैरा-25, 31, 37 और 39) के मामले में, माननीय सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने माना कि जुर्माना लगाने से एक ठोस दायित्व उत्पन्न होता है, जिसे या तो अतिरिक्त कर के रूप में या कानून के उल्लंघन के लिए जुमनि के रूप में देखा जा सकता है। किसी कानूनी दायित्व के उल्लंघन के लिए आर्थिक दायित्व का अधिरोपण, जो दंड या जुर्माने के रूप में होता है, उसे मात्र प्रक्रिया और वसूली के लिए मशीनरी के क्षेत्र तक सीमित नहीं किया जा सकता है।

26. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सीतापुर पैकिंग वुड सप्लायर्स, (2002) 4 एससीसी 566 (पैरा-10) के मामले में, माननीय सर्वोच न्यायालय ने कानून बनाया कि 'जुर्माना अधिनियम की स्वीकार्य सीमा से अधिक नहीं हो सकता है।"

27. उ.प्र. नियमावली, 2011 एक प्रत्यायोजित विधान है। यह स्थापित कानून है कि कोई भी नियम वैध रूप से नहीं बनाया जा सकता है, जिसका प्रभाव मूल अधिनियम के तहत प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति को बढ़ाने या प्रतिबंधित करने का होता है। अधीनस्थ कानून होने के नाते, नियम कोई ऐसा प्रावधान नहीं कर सकते, जिसका मूल प्रावधान की सामग्री और दायरे को कम करने या बढ़ाने का प्रभाव हो। इस संबंध में महाचंद्र प्रसाद सिंह (डॉ.) बनाम सभापति, बिहार विधान परिषद, (2004) 8 एससीसी 747 (पैरा-13 और 16) के मामले में माननीय सर्वोच न्यायालय के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है।

28. वी.वी.एस. के मामले में शुगर्स बनाम स्टेट ऑफ ए.पी. (1999) 4 एससीसी 192, भारतीय कार्बन लिमिटेड बनाम असम राज्य, (1997) 6 एससीसी 479, जे.के. सिंथेटिक लिमिटेड बनाम सी.टी.ओ., (1994) 4 एससीसी 276 और मेसर्स श्री स्टील रोलिंग मिल्स बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त और अन्य, (2016) 3

एससीसी 643 (पैरा-30 और 31), माननीय सर्वोच न्यायालय ने निर्धारित कानून में कहा गया है कि कर के विलंबित भुगतान पर ब्याज तभी लगाया और लगाया जा सकता है, जब कर लगाने और वसूलने वाला कानून इस संबंध में कोई ठोस प्रावधान करता हो। बकाया कर पर ब्याज लगाने के लिए अधिनियम में कोई ठोस प्रावधान नहीं होने के कारण कोई ब्याज नहीं लगाया जा सकता है।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम यूपी राज्य, (2019) 16 एससीसी 482 (पैरा-60 और 61) के मामले में हाल के फैसले में उपरोक्त निर्णयों का पालन किया गया है। वीना कुमारी टंडन बनाम नीलम भल्ला और अन्य, (2007) 12 एससीसी 764 (पैरा-11) के अनुसार, कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि एक विधायी अधिनियम अधीनस्थ कानून पर हावी होगा। विमल चंद्र बनर्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1970) 2 एससीसी 467 (पैरा-14) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"किसी भी उप-कानून या नियम या विनियम द्वारा कोई कर नहीं लगाया जा सकता है जब तक कि जिस क़ानून के तहत अधीनस्थ कानून बनाया जाता है वह विशेष रूप से कर लगाने को अधिकृत नहीं करता है, भले ही यह माना जाता है कि कर लगाने की शक्ति कार्यपालिका को सौंपी जा सकती है। कानून द्वारा प्रदत्त वैधानिक शक्ति के आधार का उल्लंघन नियम बनाने वाले प्राधिकारी द्वारा नहीं किया जा सकता है। नियम बनाने वाले प्राधिकारी के पास कोई पूर्ण शक्ति नहीं होती। इसे दी गई शक्ति की सीमा के भीतर कार्य करना होगा।"

30. परन्तु उ.प्र. नियम, 2011 के नियम 17 (3) में अनुसूची IX में निर्दिष्ट आधी दर पर अतिरिक्त शुल्क का प्रावधान है, जो वर्ष की प्रत्येक तिमाही या उसके भाग के लिए देय होगा, यदि कोई वजन या माप वैधता की समाप्ति के बाद पुनः सत्यापन के लिए विधिक माप विज्ञान अधिकारी को प्रस्तुत किया जाता है। स्टाम्प का. उपरोक्त दंडात्मक शुल्क को अतिरिक्त शुल्क बताकर प्रदान करने में प्रत्यर्थी का कोई तत्व नहीं है। पांच साल के लिए फीस 5,000/- रुपये है, जो प्रति तिमाही 250/- रुपये होती है. सत्यापन में देरी के लिए प्रति तिमाही अतिरिक्त शुल्क 2500/- रुपये प्रति तिमाही या 1000% प्रति तिमाही होगा। इस प्रकार, उ.प्र. के नियम 17(3) के तहत अतिरिक्त शुल्क प्रदान किया गया। नियम, 2011 प्रति तिमाही 1000% होना, मनमाना, अनुचित, जब्ती है और यह दंडात्मक प्रकृति का होने के कारण दंड है। इसलिए, हम मानते हैं कि यूपी नियमावली 2011 के नियम 17 (3) के तहत प्रदान किया गया शुल्क स्टांप की वैधता की समाप्ति के बाद पुनः सत्यापन के लिए कानूनी मेट्रोलॉजी अधिकारी को वजन या माप प्रस्तुत करने में देरी के लिए जुर्माना है।

31. अधिनियम, 2009 के अध्याय V के तहत धारा 25 से 47 में दंड का प्रावधान है। धारा 33, जिसे ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है; असत्यापित वजन या माप के उपयोग के लिए दंड का प्रावधान करता है। धारा 53 राज्य

सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 53 की उपधारा (3) में विशेष रूप से प्रावधान है कि राज्य सरकार यह प्रावधान कर सकती है कि नियमों का उल्लंघन करने पर जुर्माना लगाया जाएगा जो पांच हजार रुपये तक बढ़ सकता है। अतः किसी भी प्रावधान के उल्लंघन पर उ.प्र. नियम, 2011 के तहत राज्य सरकार जुर्माना लगाने का नियम बना सकती है, जो पांच हजार रुपये तक बढ़ाया जा सकता है।

32. अधिनियम, 2009 की धारा 16 असत्यापित वजन या माप को जब्त करने का प्रावधान करती है। धारा 33 में असत्यापित बाट या माप के उपयोग पर अधिकतम 5,000/- रुपये तक के जुर्माने का प्रावधान है। इस प्रकार, अधिनियम, 2009 में नियम 17 (3) में प्रदान की गई प्रकृति के दंड और राशि के लिए एक ठोस प्रावधान के अभाव में, यू.पी. नियम, 2011 के नियम 17 (3) का दंडात्मक प्रावधान, नियम बनाने की शक्ति से परे होने के कारण, मूल अधिनियम, यानी अधिनियम, 2009 के दायरे से बाहर है। इसके अलावा, यू.पी. नियम, 2011 का नियम 25 में ही प्रावधान है कि जहां भी नियम अधिनियम के प्रावधानों के साथ टकराव में होंगे, अधिनियम नियमों पर प्रभावी होगा।

33. उपरोक्त सभी कारणों से, हमारा मानना है कि उत्तरदाता 60 महीनों में एक बार प्रत्येक भंडारण टैंक के लिए केवल रु. 5,000/- तक स्टांप सत्यापन/पुनः सत्यापन शुल्क लगा सकते हैं। नियम 17 (3) के तहत जुर्माने के रूप में कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लगाया जा सकता क्योंकि मूल अधिनियम में इसकी अनुमति नहीं है। इसलिए, विवादित आदेश मनमाने और अवैध हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं। नतीजतन, 23.08.2016 के सभी अपीलीय आदेश और रिट याचिका संख्या 33571/2018 को छोड़कर, उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में लगाए गए अन्य आदेश / नोटिस को रद्द कर दिया गया है। उत्तर प्रदेश विधिक माप विज्ञान (प्रवर्तन) नियमावली, 2011
के नियम 17 के उपनियम (3) को अधिकारातीत घोषित किया गया है। रिट- सी संख्या- 52674/2016, रिट- सी संख्या - 546822016, रिट -सी नंबर 546852016, रिट- सी नंबर- 546872016, रिट- सी नंबर - 57179/2016, रिट सी नंबर 57180/2016, रिट सी नंबर- 572032016, रिट- सी संख्या- 57208/2016, रिट सी संख्या- 57210/2016, रिट सी संख्या - 57766/2016, रिट सी संख्या- 61624/2016, और रिट सी संख्या- 32799/ 2018 अनुमत हैं।

34. प्रत्यर्थियों को यूपी नियम, 2011 के नियम 17 (1) के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा देय शुल्क निर्धारित करने का निर्देश दिया जाता है। इस फैसले के संदर्भ में आज से तीन सप्ताह के भीतर और अगले एक सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ताओं को सूचित करें। याचिकाकर्ताओं को यूपी नियमावली, 2011 के नियम 17(1) के तहत संपूर्ण सत्यापन/पुनःसत्यापन शुल्क जमा करने का निर्देश दिया जाता है। अगले एक माह के अन्दर एवं उ०प्र० अधिनियम, 2009 के प्रावधानों के अनुसार भण्डारण टैंकों का सत्यापन / पुनः सत्यापन समय से कराते रहेंगे। अधिनियम, 2009 के अध्याय- के

प्रासंगिक प्रावधानों और यूपी नियम, 2011 के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार भंडारण टैंकों के विलंबित सत्यापन / पुनःसत्यापन के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ जुर्माना /जुर्माने की कार्रवाई शुरू करने के लिए उत्तरदाताओं को स्वतंत्रता दी गई है।

35. 2018 की रिट याचिका संख्या 33571 महज नोटिस के खिलाफ होने के कारण खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 813

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 3922/2023

मो. आरिफ़@आरिफ़ ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: मनोज कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., अभिषेक श्रीवास्तव

ए. आपराधिक कानून- लैंगिक अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 19, 21 (1) और 33 -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 190 (1) - परिवाद- धारा 204 सीआरपीसी के तहत समन आदेश 200/202 सीआरपीसी के तहत बयान के रिकॉर्ड के बाद ट्रायल कोर्ट द्वारा जारी किया गया था - वैधता को चुनौती दी गई- परिवाद को स्वीकार करने के लिए POCSO कोर्ट के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाया गया था - आयोजित, हालांकि एफआईआर दर्ज करने का आदेश पारित करना मजिस्ट्रेट के साथ-साथ संबंधित पुलिस अधिकारी का कर्तव्य है लेकिन अगर ऐसा नहीं किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदक/आरोपी के खिलाफ आरोप बरकरार नहीं है। उच्च न्यायालय ने राय दी कि परिवाद में आवेदक के खिलाफ संज्ञान/समन आदेश पारित किया जा सकता है- पॉक्सो अधिनियम की धारा 33 में निर्भरता व्यक्त किया गया। आवेदन निस्तारित। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन संख्या 12864/2021; सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 10 अन्य, निर्णय दिनांक 07.04.2022
2. धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन संख्या 2804/2022; आनंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 19.5.2022 को तय हुआ
3. नरेश कुमार वाल्मीकि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2023) 241 एआईसी 946
4. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य; ए.आई.आर. 1960 एस.सी.866
5. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल; 1992 एससीसी (सीआर.) 426
6. बिहार राज्य बनाम पी.पी.शर्मा; 1992 एससीसी (सीआर.) 192
7. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद। सराफुल हक एवं अन्य; 2005 एससीसी (सीआर) 283 (पैरा 10)

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

(I) वादी के विद्वान अधिवक्ता, श्री मनोज कुमार सिंह एवं विरोधी पक्ष सं० - 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक श्रीवास्तव एवं राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री विजय प्रकाश द्विवेदी को सुना,

साथ ही अभिलेख पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया गया।

38. वर्तमान प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 दं०प्र०स०, परिवाद सं० 97/2021 संदर्भ में - श्रीमती करीमा बनाम् आरिफ, अन्तर्गत धारा 452, 376(ए०बी०), 323, 504, 506 भा०दं०सं० एवं धारा 5(एम०)/6 बाल यौन अपराध संरक्षण अधिनियम (संक्षेप में "पॉक्सो अधिनियम") थाना हरदी, जिला - लखनऊ, जो कि विद्वान अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो), बहराइच की न्यायालय में लंबित है, के तलबी आदेश दिनांक 31.05.2022, साथ ही परिवाद सं० 97/2021 के माध्यम से प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 156(3) दं०प्र०स० दिनांक 26.08.2021 के अनुसरण में अग्रिम कार्यवाही के विरुद्ध दाखिल किया गया है।

39. संक्षेप में तथ्य यह है कि विरोधी पक्ष सं० - 2 ने विद्वान अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो), बहराइच की न्यायालय में प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० दिनांक 26.08.2021 को दाखिल किया। प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० यह आरोप अधिरोपित करते हुए दाखिल किया गया कि विरोधी पक्ष सं० 2 एवं याचिकाकर्ता रिश्तेदार हैं। याचिकाकर्ता व उसके परिवारीजन, विरोधी पक्ष सं० 2 के घर आते जाते थे। दिनांक 06.08.2021 को दोपहर के लगभग 1:00 बजे विरोधी पक्ष सं० 2 की नाबालिग पुत्री, उम्र लगभग 11 वर्ष, घर पर अकेली थी। याचिकाकर्ता घर में घुसा व विरोधी पक्ष सं० 2 की नाबालिग पुत्री की अस्मिता भंग करने लगा, विरोध करने पर, याचिकाकर्ता ने विरोधी पक्ष सं० 2 की नाबालिग पुत्री को धरती पर धकेल दिया, उसके कपडे उतारे और उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार किया एवं अपशब्दों का प्रयोग करते हुए इस बात को कहीं भी बताने पर जान से मारने की धमकी भी दी। जब विरोधी पक्ष सं० 2 घर पहुँचा तो उसकी पुत्री ने विरोधी पक्ष सं० 2 को पूरी आपबीती सुनाई। विरोधी पक्ष सं० 2 ने तुरंत उसी दिन यह सूचना थाना हरदी को दी परन्तु उनके द्वारा कोई कार्यवाही न करने पर दिनांक 11.08.2021 को पुलिस अधीक्षक, बहराइच को पीडिता ने रजिस्टर्ड पोस्ट के माध्यम से पत्र प्रेषित किया परन्तु आज तक कोई कार्यवाही नहीं हुई। जिसके उपरांत विचारण न्यायालय के समक्ष प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० दाखिल किया गया। विचारण न्यायालय ने प्रार्थना पत्र अंतर्गत 156(3) दं०प्र०सं० को परिवाद के रूप में स्वीकार कर लिया।

40. उपरोक्त परिवाद में परिवादी का बयान अंतर्गत धारा 200 दं०प्र०सं० दिनांक 22.10.2021 को अभिलिखित किया गया (संलग्नक सं० 4 के रूप में संलग्न)। गवाहों के बयान जो कि पी0डब्लू0 1 - जाकिर एवं पी0डब्लू0 2 - आरिफ है, क्रमशः दिनांक 23.11.2021 एवं दिनांक 17.12.2021 को धारा 202 दं०प्र०सं० के अंतर्गत अभिलिखित किये गए। पी0डब्लू - 3 पीड़िता के बयान अंतर्गत धारा 202 दं०प्र०सं० भी दिनांक 05.04.2022 को अभिलिखित किये गए। धारा 200 व 202 दं०प्र०सं० के अंतर्गत अभिलिखित किये गए बयान के आधार पर विचारण न्यायालय ने उपरोक्त तलबी आदेश अंतर्गत 204 दं०प्र०सं० दिनांक 31.05.2022 को पारित किया।

41. वादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रारंभिक आपत्ति यह उठायी है कि पॉक्सो न्यायालय को प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० को परिवाद अन्तर्गत 190 दं०प्र०सं० के रूप में सुनने का कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि एकमात्र विकल्प जो पॉक्सो न्यायालय के पास है कि वह सम्बन्धित थाने को मामले को दर्ज कर व जाँच करने हेतु निदेशित करें। वादी ने पुनः यह भी प्रस्तुत किया गया कि पॉक्सो न्यायालय मात्र जाँच अधिकारी के द्वारा जाँच एवं रिपोर्ट अंतर्गत धारा 173(2) दं०प्र०सं० के आधार पर तलबी आदेश पारित कर सकता है। वादी के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा आगे निवेदन किया गया कि इस सन्दर्भ में पॉक्सो अधिनियम की धारा 19 में विशेष प्रावधान है। धारा 19 पॉक्सो अधिनियम में यह प्रक्रिया है कि :

"*(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति (जिसके अंतर्गत : बालक भी है) जिसको यह आशंका है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किए जाने की संभावना है या यह जानकारी रखता है कि ऐसा कोई अपराध किया गया है, वह निम्नलिखित को ऐसी जानकारी उपलब्ध कराएगा:*

(क) विशेष किशोर पुलिस यूनिट; या

(ख) स्थानीय पुलिस।

(2) उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रत्येक रिपोर्ट में

(क) एक प्रविष्टि संख्या अंकित होगी और लेखबद्ध की जाएगी।

(ख) सूचना देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी।

(ग) पुलिस यूनिट द्वारा रखी जाने वाली पुस्तिका में प्रविष्ट की जाएगी।

(3) जहां उपधारा (1) के अधीन रिपोर्ट बालक द्वारा दी गई है, उसे उपधारा (2) के अधीन सरल भाषा में अभिलिखित किया जाएगा जिससे बालक अभिलिखित की जा रही अंतर्वस्तुओं को समझ सके।

(4) यदि बालक द्वारा नहीं समझी जाने वाली भाषा में अंतर्वस्तु अभिलिखित की जा रही है या बालक यदि वह उसको समझने में असफल रहता है तो कोई अनुवादक या कोई दुभाषिया जो ऐसी अर्हताएं, अनुभव रखता हो और ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, जब कभी आवश्यक समझा जाए, उपलब्ध कराया जाएगा।

(5) जहां विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस का यह समाधान हो जाता है कि उस बालक को, जिसके विरुद्ध कोई अपराध किया गया है, देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता है तब रिपोर्ट के चौबीस घंटे के भीतर कारणों को लेखबद्ध करने के पश्चात् उसको यथाविहित ऐसी देखरेख और संरक्षण में (जिसके अंतर्गत बालक को संरक्षण गृह या निकटतम अस्पताल में भर्ती किया जाना भी है) रखने की तुरन्त व्यवस्था करेगी।

(6) विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस अनावश्यक विलंब के बिना किन्तु चौबीस घंटे की अवधि के भीतर मामले को बालक कल्याण समिति और विशेष न्यायालय या जहां कोई विशेष न्यायालय पदाभिहित नहीं किया गया है वहां सेशन न्यायालय को रिपोर्ट करेगी, जिसके अंतर्गत बालक की देखभाल और संरक्षण हेतु आवश्यकता और इस संबंध में किए गए उपाय भी हैं।

(7) उपधारा (1) के प्रयोजन हेतु सद्भावपूर्वक दी गई जानकारी हेतु किसी व्यक्ति द्वारा

सिविल या दांडिक कोई दायित्व उपगत नहीं होगा।"

6. धारा 19 पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत प्रक्रिया के सन्दर्भ में अपने निवेदनों को बल देने हेतु, वादी के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान धारा 21(1) पॉक्सो अधिनियम की ओर आकर्षित किया। धारा 21(1) पॉक्सो अधिनियम का प्रावधान यह कहता है की :

"***मामले की रिपोर्ट या अभिलेख न करने पर दण्ड:-***

(1) कोई व्यक्ति, जो धारा 19 की उपधारा (1) या धारा 20 के अधीन किसी अपराध के किए जाने की रिपोर्ट करने में असफल रहता है या जो धारा 19 की उपधारा (2) के अधीन ऐसे अपराध को अभिलिखित करने में असफल रहता है, उसे दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।"

7. अपने निवेदन के समर्थन में वादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा ***वाद सं० 12864/2021 (सोनी बनाम ऊ0प्र0 राज्य व 10 अन्य) प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं०प्र०सं०*** में पारित आदेश एवं निर्णय दिनांक 07.04.2022 का सहारा लिया जिसमे इस न्यायालय का यह मत था कि अनुसूचित जाति/जनजाति(अत्याचार निवारण) अधिनियम (संछेप में "एस०सी०/एस०टी० अधिनियम") से सम्बन्धित वादों में यदि पीड़ित पक्ष प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० दायर करता है तो विचारण न्यायालय की यह बाध्य कर्त्तव्य होगा कि वह वाद पंजीकृत कर पुलिस को विवेचना करने का आदेश पारित करे, इसके अतिरिक्त विचारण न्यायालय के पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। वादी के विद्वान अधिवक्ता ने पुनः प्रस्तुत किया कि पॉक्सो अधिनियम भी विशेष अधिनियम है और पॉक्सो अधिनियम के प्रावधान एस०सी०/एस०टी० अधिनियम के समरूप है। अतः विचारण न्यायालय के पास प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० को परिवाद मानने की कोई शक्ति नहीं है।

8. अपने निवेदन के समर्थन में वादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा ***वाद सं० 2804/2022 (आनंद बनाम ऊ0प्र0 राज्य व अन्य) प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दं०प्र०सं०*** में पारित **निर्णय दिनांक 19.05.2022** का भी सहारा लिया। उक्त निर्णय के उचित अनुच्छेद का उद्धरण अधोवर्णित है:-

"वादी के विद्वान अधिवक्ता ने पुनः प्रस्तुत किया कि अभियोजन के अनुसार पीड़िता बी०फार्मा० का कोर्स कर रही थी। वह एक विवेकपूर्ण लड़की थी और उसकी इच्छानुसार वादी के साथ उसके सम्बन्ध थे, और दोनों के बीच कुछ विवाद उठा जिसके बाद वादी को दिनांक 23.09.2020 को धारा 151/107/116 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत चालानित कर दिया गया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अधीनस्थ न्यायालय ने पीड़िता का धारा 156(3) दं०प्र०सं० का प्रार्थना पत्र परिवाद की तरह माना और धारा 200 व 202 दं०प्र०सं० के बयान रिकार्ड करने के उपरान्त तलबी आदेश पारित हुआ। उन्होने न्यायालय का ध्यान पॉक्सो अधिनियम के अध्याय 5 की धारा 19 आरै 21 की ओर आकर्षित किया और निवेदन

किया कि धारा 19 पॉक्सो अधिनियम यह प्रदान करता है कि यदि कोई पॉक्सो अधिनियम से सम्बन्धित अपराध स्थानीय थाने में रिपोर्ट किया जाता है तो उसको पंजीकृत किया जाता है तो उसको पंजीकृत किया जाना अनिवार्य होगा और धारा 21 पॉक्सो अधिनियम यह भी प्रदान करती है कि यदि शिकायत दर्ज नहीं होती तो सम्बन्धित अधिकारी को दण्डित किया जाएगा अर्थात यदि कोई अपराध पॉक्सो अधिनियम के अन्तर्गत आता है तो एफ०आई०आर० दर्ज होना अनिवार्य है एवं ऐसे किसी मामले को परिवाद की तरह नहीं माना जा सकता, जैसा कि विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने किया है। अतः विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने पीड़िता के प्रार्थना पत्र को परिवाद मानकर त्रुटि की है। ऐसी परिस्थिति में, इस न्यायालय का संवेदनापूर्ण हस्तक्षेप आवश्यक है।

9. अपने प्रार्थना के समर्थन में वादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1052 सन् 2022 (राम करन बनाम उ0प्र0 राज्य और 4 अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 11.10.2022 का भी सहारा लिया। वादी के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा निवेदन किया गया कि इस पुनरीक्षण में वर्तमान वादी की शिकायत एवं पुनरीक्षणकर्ता की शिकायत एक समान थी और उस पुनरीक्षण में इस न्यायालय के द्वारा ***सोनी बनाम ऊ0प्र0 राज्य (ऊपरिवर्णित) व 10 अन्य एवं आनंद बनाम ऊ0प्र0 राज्य व अन्य (ऊपरिवर्णित)*** में निर्धारित विधि के आधार पर कार्यवाही स्थगित कर दी गयी थी एवं यह स्थापित किया कि पॉक्सो न्यायालय परिवाद के आधार पर संज्ञान नहीं ले सकता।

10. अंततः वादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि वादी के विरूद्ध मात्र एफ०आई०आर० दर्ज हो सकती और शिकायत दर्ज नहीं हो सकती। अतः मात्र इस आधार पर वादी के विरूद्ध तलबी आदेश खारिज़ किया जा सकता।

11. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता एवं प्रत्यर्थी सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के पक्ष में धारा 33(1) पॉक्सो अधिनियम की प्रक्रिया का सहारा लिया। धारा 33(1) पॉक्सो अधिनियम के अनुसार विशेष न्यायालय जब कभी भी **ऐसे किन्हीं तथ्यों की शिकायत पर या उन्हीं तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर अपराध गठित होता है**, अभियुक्त को विचारण हेतु प्रतिबद्ध किये बिना किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकती। प्रत्यार्थी सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता ने धारा 33(1) पॉक्सो अधिनियम की प्रक्रिया पर निर्भर होते हुए निवेदन किया कि पॉक्सो न्यायालय अपने परिवाद से सम्बन्धित शक्ति का प्रयोग करते हुए उचित आदेश पारित कर सकता है। अपने निवेदन को बल देने हेतु प्रत्यार्थी सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित ***नरेश कुमार वाल्मीकि बनाम ऊ0प्र0 राज्य व अन्य (2023) 241 ए0आई0सी0 946*** के मामले में निर्णय पर निर्भर किया, जिसमें इस न्यायालय ने यह आयोजित किया कि यह निवेदन दं०प्र०सं० की धारा 156(3) के प्रार्थना पत्र को परिवाद की तरह नहीं माना जा सकता है,

गलत है। सम्बन्धित न्यायालय अपने न्यायिक विवेक का उपयोग करते हुए ऐसे प्रार्थना पत्र को परिवाद मान सकता है और उचित आदेश पारित कर सकता है।

12. जहाँ तक प्रश्न है, शारीरिक उत्पीड़न/पॉक्सो अधिनियम से सम्बन्धित मामलों में, एफ०आई०आर० दर्ज करने का या दं०प्र०सं० की धारा 156(3) का प्रार्थना पत्र दाखिल करने का मेरा यह मत है कि विशेष तौर पर शारीरिक उत्पीड़न व हिंसा के मामलों में पुलिस अधिकारी का बाध्य कर्तव्य है कि वह एफ०आई०आर० दर्ज करे क्योंकि शारीरिक उत्पीड़न के मामले में पीड़िता सामाजिक प्रतिष्ठा का सामना करती है एवं वह पहले से ही दहशत में होती है। अतः न्यायालयों को वादिनी/पीड़िता पर और भार नहीं डालना चाहिए और सम्बन्धित न्यायालय/विशेष न्यायालय को सम्बन्धित पुलिस प्राधिकरण को आदेशित करना चाहिए कि वह निष्पक्ष जाँच करे। न्यायालय को जाँच के आदेश पारित करने चाहिए क्योंकि आम तौर पर दस्तावेज व अन्य साक्ष्य अभियुक्त या किसी अन्य व्यक्ति के भौतिक कब्जे में होते है और उन साक्ष्यों के आधार पर पुलिस को दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्राप्त शक्ति के आधार पर मामले में जाँच करना चाहिए ।

13. धारा 154 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी ऐसी शिकायत मिलने पर जो संज्ञेय अपराध के बारे में बताती हो, अपने विवेक का उपयोग नहीं कर सकते हैं - क्या अपराध कारित हुआ कि नहीं यह मुद्दा जाँच एवं/और विचारण के स्तर पर स्थापित होगा। जाँचोपरान्त पुलिस को ज्ञात होता है कि कोई अपराध कारित नहीं हुआ है तो पुलिस अंतिम रिपोर्ट अन्तर्गत धारा 173(2) प्रेषित कर सकती है परन्तु एफ०आई०आर० पंजीकृत करने से इंकार नहीं कर सकती है।

14. मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत एवं इस तथ्य के दृष्टिगत कि य़द्यपि एफ०आई०आर० पंजीकरण हेतु आदेश पारित करने की जिम्मेदारी मजिस्ट्रेट एवं सम्बन्धित पुलिस अधिकारी की है परन्तु यदि ऐसा नहीं होता है तो ऐसा नहीं कहा जा सकता कि प्रार्थी/अभियुक्त के विरूद्ध आरोप पोषणीय नहीं है, अतः मेरा यह मत है कि वादी के विरुद्ध परिवाद में संज्ञान/तलबी आदेश पारित किया जा सकता है।

15. जहाँ तक बात वादी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क की है कि उत्पीड़न मात्र हेतु वर्तमान वाद पीड़िता की माँ द्वारा योजित किया गया है, मेरा यह मत है कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार के अपराध वादी द्वारा घटित नहीं किये जा सकते, अतः इस प्रकार के बचाव को निश्चिततः नहीं सुना जा सकता। निष्कर्षतः, मेरा यह मानना है कि विचारण न्यायालय के पास प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 156(3) दं०प्र०सं० को परिवाद मानने की पर्याप्त शक्ति है, अतः पॉक्सो अधिनियम में परिवाद की कार्यवाही शुरू की जा सकती है, जिसके सम्बन्ध में धारा 32 पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत सांविधिक प्रावधान पहले से मौजूद है। धारा 33 पॉक्सो अधिनियम के अनुसार विशेष न्यायालय जब कभी भी **ऐसी किसी तथ्यों की शिकायत पर या उन्हीं तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर अपराध गठित होता है**, अभियुक्त को विचारण हेतु प्रतिबद्ध किये बिना किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकती

है। अतः पॉक्सो अधिनियम के समस्त प्रावधानों के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि धारा 190 दं०प्र०सं० के अंतर्गत अभियोजन एवं मामले का संज्ञान लेने में कोई रोक नहीं है। अंततः मेरा यह मत है कि न्यायालयों के पूर्व मत कि पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत संज्ञान नहीं लिया जा सकता अच्छा विधि नहीं है क्योकि इस सवाल का पहले ही निपटारा हो चूका है कि धारा 156(3) दं०प्र०सं० के प्रार्थना पत्र को परिवाद अंतर्गत 190(1)(a) दं०प्र०सं० मानने में कोई रोक नहीं है। अतः वादी के विद्वान् अधिवक्ता की यह प्रारंभिक आपत्ति कि पॉक्सो अधिनियम में परिवाद की प्रक्रिया पोषणीय नहीं है, में कोई बल नहीं है।

16. मामले की योग्यता पर बहस करने से पूर्व याचिकाकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता ने वर्तमान याचिका पर बल देते हुए यह निवेदन किया कि विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को तलब करते हुए वास्तविक तौर पर त्रुटि की है और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया विधिक आदेश का पालन नहीं किया जिसके अनुसार फौजदारी वादों में तलबी एक गंभीर विषय है और विचारण न्यायालय को तथ्यों की गहरायी में गए बिना एवं मामले को संभावनाओं की कसौटी के अनुसार कल्पना किए बिना अभियुक्त को आपराधिक परीक्षण का सामना करने हेतु सम्मन नहीं करना चाहिए । पुनः यह भी निवेदन किया गया कि विचारण न्यायालय ने उसके समक्ष पेश की गयी सामग्री पर विचार नहीं किया। अतः विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को तलब कर वास्तविक तौर पर त्रुटि की है।

17. जहाँ तक समस्त कार्यवाही को खारिज करने की बात है, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन से एवं तथ्यों के अवलोकन से यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ***आर0पी0कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए०आई०आर० 1960 एस0सी0 866, हरयाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एस०सी०सी० (क्रि0) 426, बिहार राज्य बनाम पी0पी0शर्मा, 1992 एस0सी0सी0 (क्रि0) 192 एवं अंत में जंडू फार्मास्यूटिकल वर्क्स लि0 बनाम मो0 सराफुल हक़ एवं अन्य (प्रस्तर-10) 2005 एस0सी0सी0 (क्रि0) 283***, के मामलों में निर्धारित विधि की रौशनी में इस चरण पर मात्र प्रथम दृष्टया मामले को ही देखा जा सकता है। अभियुक्त के विवादित बचाव को इस चरण पर विचार नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के पास जैसा भी मामला हो उसके आधार पर उस उद्देश्य हेतु उचित प्रार्थना पत्र के माध्यम से दं०प्र०सं० के अनुसार आरोपमुक्ति का भी अधिकार है और वह विचारण न्यायालय के समक्ष आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र मे प्रत्येक प्रकार के निवेदन करने हेतु स्वतंत्र है।

18. जहाँ तक विचारण न्यायालय द्वारा पारित तलबी आदेश की बात है, इस स्तर पर जब संज्ञान लिया जा रहा है, विचारण न्यायालय सरल तौर पर यह मत बना सकता है कि क्या मामला विचार करने व विचारण हेतु प्रतिबद्ध करने के योग्य है कि नहीं। वर्तमान वाद में विद्वान विचारण न्यायालय ने अपना मत स्पष्टतया जाहिर किया है कि उसने सभी अभिलेखों का परिशीलन किया है व स्पष्ट किया है कि वाद की सुनवाई हेतु उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर्याप्त है। अतः संज्ञान लेने का आदेश प्रारुप आदेश नहीं है। विचारण

न्यायालय द्वारा प्रत्येक सम्भावना के बारे में विचार किया गया है और याचिकाकर्ता ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहे जिससे पता लगाया जा सके की उसके साथ पक्षपात हुआ है। अतः संज्ञान लेने का आदेश व तलबी आदेश पूर्णतः सही है और किसी परिस्थिति में खारिज नहीं किया जा सकता।

19. संज्ञान लेने का आदेश व तलबी आदेश को खारिज करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

20. यद्यपि, मामले के तथ्यों एवं परिस्तिथियों के दृष्टिगत, यह प्रावधानित है कि यदि वादी/याचिकाकर्ता विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होकर जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत करता है, तो जमानत प्रार्थना पत्र पर विचार किया जाएगा एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा ***सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सेंट्रल ब्यूरो आफ इन्वेस्टीगेशन एवं अन्य (स्पेशल लीव टू अपील (क्रि)) सं० 5191/2021 निर्णय दिनांक 07.10.2021*** में प्रतिवादित विधि के आधार पर निर्णय किया जाएगा। इस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्व से ही जमानत देने के सम्बन्ध में दिशा-निर्देश निर्धारित किये हैं, सम्बन्धित न्यायालयों के विवेक में एवं जमानत हेतु विचार करने में जो सांविधिक प्रावधान हैं उनमे दखल दिए बिना, इस न्यायालय द्वारा कोई विशेष निर्देश जारी करने की आवश्यकता नहीं है क्योकि सम्बन्धित न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी अनिवार्य दिशा-निर्देश को ध्यान में रखेगा।

21. तदनुसार, प्रार्थना पत्र अंतर्गत 482 निस्तारित किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 819

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 4201/2023

सल्लाहुद्दीन ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: सलिल कुमार श्रीवास्तव, राहुल श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

ए. दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 231(2)- साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 135 और 138- जिरह- विचारणीय न्यायालय ने सभी गवाहों की सामूहिक जिरह स्थगित कर दी- अनुमेयता- अस्पष्ट आदेश, कहां तक कायम रह सकता है- आयोजित, दिनांक 14.03.2023 का आरोपित आदेश अस्पष्ट है, जिसके द्वारा 73 अभियोजन पक्ष के गवाहों की सामूहिक जिरह बिना किसी ऐसे तर्कसंगत आधार के अस्तित्व को दर्ज किए स्थगित कर दी गई है, जैसा कि रशीद के वाद के पैराग्राफ संख्या 23 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त है। (पैरा 16)

बी. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482-हस्तक्षेप की सीमा- कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग - वापस बुलाने के लिए आवेदन दाखिल करने का उपाय, अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को किस हद तक रोका जा

सकता है - आयोजित, धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्ति उच्च न्यायालयों में निहित एक असाधारण शक्ति है ताकि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या न्याय की विफलता को रोका जा सके - धारा 231(2) सीआरपीसी के तहत विद्वान विचारणीय न्यायालय में निहित शक्ति एक विवेकाधीन शक्ति है, जिसका विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए -इसके अलावा, यह नहीं कहा जा सकता है कि 14.03.2023 के आरोपित आदेश को वापस लेने की मांग करने वाला उपाय आवेदक को धारा 362 सीआरपीसी में निहित प्रतिबंध के मद्देनजर उपलब्ध है। (पैरा 17, 18 और 19)

आवेदन स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उड़ीसा राज्य बनाम धनीराम लुहार; (2004) 5 एससीसी 568
2. केरल राज्य बनाम रशीद; (2019) 13 एससीसी 297
3. लाल हर्ष देव नारायण सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य; 2004 एससीसी ऑनलाइन सभी 2085
4. अदालत प्रसाद बनाम रूपलाल जिंदल व अन्य; (2004) 7 एससीसी 338

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, श्री सलिल कुमार श्रीवास्तव, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री शिव नाथ तिलहरी को सुना तथा सम्पूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया।

2. आवेदक द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन, विद्वान विशेष न्यायाधीश (एटीएस/एनआईए कोर्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश-V, लखनऊ के न्यायालय में विचाराधीन मुकदमा अपराध संख्या-09/2021, धारा 417, 120-बी, 153-ए, 153-बी, 295-ए, 298, 121-ए, 123 आईपीसी तथा धारा 3/5/8 यू.पी. विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021, थाना एटीएस, गोमती नगर से उत्पन्न एस.टी. संख्या-13751/2021, राज्य बनाम सलाहुद्दीन एवं अन्य में विशेष न्यायाधीश (एनआईए/एटीएस)/अपर सत्र न्यायाधीश-V, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.03.2023 को निरस्त करने के लिए योजित किया गया है।

3. धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत वर्तमान आवेदन को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्तमान आवेदक धारा 417, 120-बी, 153-ए, 153-बी, 295-ए, 298, 121-ए, 123 आईपीसी और धारा 3/5/8 उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 के अंतर्गत अपराधों के लिए मुकदमे का सामना कर रहा है, जो मुकदमा अपराध संख्या 09/2021 से उत्पन्न हुआ है। विद्वान ट्रायल कोर्ट में अभियोजन पक्ष के गवाह-1 के रूप में विनोद कुमार का परीक्षण किया गया है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 14.03.2023 को आक्षेपित आदेश पारित किया है, जिसमें कहा गया है कि पी.डब्लू.-1 विनोद कुमार की मुख्य परीक्षा हो चुकी है तथा उनकी प्रति परीक्षा अभी पूरी होनी है। 14.03.2023 को अनुपस्थिति के कारण, पी.डब्लू.-1 विनोद कुमार की प्रति परीक्षा स्थगित कर दी गई। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 14.03.2023 को आक्षेपित आदेश में यह भी कहा कि चूंकि इस न्यायालय का निर्देश है कि मुकदमे में तेजी लाई जाए, इसलिए विद्वान ट्रायल कोर्ट ने

निर्देश दिया कि अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों की मुख्य परीक्षा पहले दर्ज की जाए। स्वीकृत रूप से, आरोप पत्र में 73 गवाह नामजद हैं। उनकी प्रति परीक्षा स्थगित रहेगी तथा अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों की मुख्य परीक्षा हो जाने के बाद उन्हें प्रति परीक्षा के लिए बुलाया जाएगा।

4. उपरोक्त आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 से व्यथित होकर आवेदक ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत वर्तमान आवेदन दायर किया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 स्पष्ट रूप से अवैध है, क्योंकि यह तर्कपूर्ण और स्पष्ट नहीं है, और इसमे ऐसा करने का कोई कारण भी नहीं बताया गया है।

6. उनका आगे का तर्क यह है कि गवाहों के परीक्षण के लिए वैधानिक योजना भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 135 और 138 में निहित है। धारा 231(1) सीआरपीसी में निहित प्रावधान गवाहों का परीक्षण और प्रति-परीक्षा के सामान्य नियम का अपवाद है। इसलिए, अपने विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए इस तरह के व्यापक आदेश को पारित करते समय, विद्वान ट्रायल कोर्ट को अत्यंत सावधानी और ध्यान से काम करना चाहिए था, जो दिनांक 14.03.2023 के आक्षेपित आदेश से परिलक्षित नहीं होता है।

7. अपने उपरोक्त तर्क को पुष्ट करने के लिए आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **उड़ीसा राज्य बनाम धनीराम लुहार, (2004) 5 एससीसी 568 और केरल राज्य बनाम रशीद, (2019) 13 एससीसी 297** के निर्णयों का हवाला दिया है।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023, धारा 309 सीआरपीसी के प्रावधानों के विरुद्ध है, इसलिए आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 स्पष्ट रूप से अवैधानिक है और इस न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को निरस्त किया जाना चाहिए।

9. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. राज्य ने यह दलील देकर प्रार्थना का बलपूर्वक विरोध किया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 एक तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश है, जो इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए पारित किया गया है, जहां अभियोजन पक्ष को 73 गवाहों का परीक्षण करना है और मुकदमे को शीघ्रता से निस्तारित करना है, इसलिए इसे मनमाना नहीं कहा जा सकता।

10. उनका आगे यह तर्क है कि वर्तमान आवेदक द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 को वापस लेने की मांग करने वाला एक आवेदन विद्वान ट्रायल कोर्ट के पास निस्तारण के लिए लंबित है। इसलिए, भी वर्तमान आवेदन पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है।

11. अपने पूर्वोक्त तर्क को पुष्ट करने के लिए विद्वान ए.जी.ए. ने **लाल हर्ष देव नारायण सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य,**

2004 एससीसी ऑनलाइन इला 2085 में इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की है।

12. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन पर, यह पता चलता है कि वर्तमान आवेदक धारा 417, 120-बी, 153-ए, 153-बी, 295-ए, 298, 121-ए, 123 आईपीसी और यू.पी. विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 की धाराओं 3/5/8 के अंतर्गत अपराधों के लिए मुकदमे का सामना कर रहा है, जो मुकदमा अपराध संख्या-09/2021 से उत्पन्न हुआ है। विद्वान ट्रायल कोर्ट में अभियोजन पक्ष के गवाह पी.डब्लू.-1 के रूप में विनोद कुमार का परीक्षण किया है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने 14.03.2023 के आक्षेपित आदेश में कहा है कि पी.डब्लू.-1 विनोद कुमार की मुख्य परीक्षा रिकॉर्ड की गई है और उनकी प्रति परीक्षा अभी पूरी होनी है। 14.03.2023 को अनुपस्थिति के कारण, पी.डब्लू.-1 विनोद कुमार की प्रति परीक्षा स्थगित कर दी गई। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 14.03.2023 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से यह भी कहा कि चूंकि इस न्यायालय का निर्देश है कि मुकदमे को तेजी से निस्तारित किया जाए, इसलिए विद्वान ट्रायल कोर्ट ने निर्देश दिया कि अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों की मुख्य परीक्षा पहले दर्ज की जाए। उनकी प्रति परीक्षा स्थगित रहेगी और जब अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों की मुख्य परीक्षा दर्ज हो जाएगी, तो उन्हें प्रति परीक्षा के लिए बुलाया जाएगा।

13. वर्तमान विवाद से संबंधित होने के कारण, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 135 और 138 नीचे उद्धृत की गई हैं:-

***"135. गवाहों को प्रस्तुत करने और उनका परीक्षण करने का क्रम**-गवाहों को प्रस्तुत करना और उनका परीक्षण करने का क्रम क्रमशः सिविल और आपराधिक प्रक्रिया से संबंधित कानून द्वारा विनियमित किया जाएगा, और, ऐसे किसी भी कानून की अनुपस्थिति में, न्यायालय के विवेक से।*

***138. परीक्षण का क्रम**-गवाहों की पहले मुख्य परीक्षा की जाएगी, फिर (यदि प्रतिकूल पक्ष ऐसा चाहता है) प्रति परीक्षा की जाएगी, फिर (यदि उसे बुलाने वाला पक्ष ऐसा चाहता है) फिर से परीक्षण किया जाएगा।*

जांच और प्रति परीक्षा प्रासंगिक तथ्यों से संबंधित होनी चाहिए, लेकिन प्रति परीक्षा को उन तथ्यों तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए, जिनके बारे में गवाह ने अपनी मुख्य परीक्षा में गवाही दी है।"

14. धारा 231(2) सीआरपीसी में निहित प्रावधान के दायरे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रशीद के वाद (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय में विचार किया। **रशीद के वाद (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 15, 17, 18, 19 और 23 प्रासंगिक होने के कारण नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"15. धारा 231 सीआरपीसी इंगित करती है कि न्यायाधीश को किसी गवाह की प्रति परीक्षा को स्थगित करने का विवेक दिया गया है, जब तक कि किसी अन्य गवाह या गवाहों

की जांच नहीं हो जाती। धारा 231 नीचे दी गई है:

> *"231. अभियोजन पक्ष के लिए साक्ष्य-(1) इस प्रकार निर्धारित तिथि पर, न्यायाधीश अभियोजन पक्ष के समर्थन में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी साक्ष्यों को लेने के लिए आगे बढ़ेगा।*
>
> ***(2) न्यायाधीश अपने विवेक से किसी भी गवाह की प्रति परीक्षा को तब तक स्थगित करने की अनुमति दे सकता है जब तक कि किसी अन्य गवाह या गवाहों की जांच नहीं हो जाती या किसी गवाह को आगे की प्रति परीक्षा के लिए वापस बुला सकता है।"***
>
> *(बल प्रदत्त)*

धारा 231(2) की शब्दावली धारा 242(3)के समान है ["242. अभियोजन के लिए साक्ष्य.–(1)-(2) * * (3) निर्धारित तिथि पर, मजिस्ट्रेट अभियोजन के समर्थन में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी साक्ष्य लेने के लिए आगे बढ़ेगा: बशर्ते कि मजिस्ट्रेट किसी भी गवाह की प्रति परीक्षा को तब तक स्थगित करने की अनुमति दे सकता है जब तक कि किसी अन्य गवाह या गवाहों की जांच नहीं हो जाती है या आगे की प्रति परीक्षा के लिए किसी गवाह को वापस बुला सकता है।"] सीआरपीसी जो अध्याय XIX सीआरपीसी के अंतर्गत वारंट मामले की सुनवाई में मजिस्ट्रेट को समान विवेक प्रदान करता है।*

17. शमून अहमद सईद बनाम इंटेलिजेंस ऑफिसर [शमून अहमद सईद बनाम इंटेलिजेंस ऑफिसर, 2008 एससीसी ऑनलाइन कर 371: 2009 क्रि एलजे 1215: आईएलआर 2008 केएआर 4378] में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने जस्टिस शांतनागौदर (जैसे वे उस समय थे) द्वारा दिए गए फैसले में कहा था कि धारा 231(2) के साथ-साथ धारा 242(3) सीआरपीसी की व्याख्या दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 251-ए के अधिनियमन के पीछे विधायी मंशा के प्रकाश में की जानी चाहिए।

18. चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी आपराधिक मुकदमे में मानक यह है कि पहले गवाहों की मुख्य परीक्षा की जाए, उसके बाद प्रति परीक्षा की जाए और यदि आवश्यक हो तो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 138 के अनुसार दोबारा परीक्षा की जाए। हालांकि, धारा 231(2) सीआरपीसी के अनुसार, उचित मामलों में न्यायाधीश को किसी भी गवाह से प्रति परीक्षा स्थगित करने या आगे की प्रति परीक्षा के लिए किसी गवाह को वापस बुलाने का विवेकाधिकार प्रदान करता है। न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग वैधानिक ढांचे और संदर्भ के अनुरूप किया जाना चाहिए जबकि उचित रूप से पूर्वानुमानित परिणामों के बारे में

पता होना चाहिए। [इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 565: 1980 एससीसी (क्रि) 465 में पैरा 21 में न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग की प्रकृति और तरीके पर प्रकाश डाला था। संबंधित अंश नीचे पुन: प्रस्तुत है:

(एससीसी पृष्ठ 584, पैरा 21)"21. ... हर तरह के न्यायिक विवेकाधिकार का, चाहे जिस भी मामले के संबंध में इसका प्रयोग किया जाना आवश्यक हो, उसका प्रयोग उचित सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। वास्तव में, उस संदर्भ के बारे में जागरूकता जिसमें विवेक का प्रयोग किया जाना आवश्यक है और इसके उपयोग के उचित रूप से पूर्वानुमानित परिणाम, न्यायिक विवेक के विवेकपूर्ण प्रयोग की पहचान है। (बल प्रदत्त) धारा 231(2) सीआरपीसी के अंतर्गत आस्थगन चाहने वाले पक्ष को न्यायाधीश द्वारा विवेक के प्रयोग का आह्वान करने के लिए पर्याप्त कारण देने होंगे, और आस्थगन को अधिकार के रूप में नहीं माना जा सकता है।

19. कई उच्च न्यायालयों ने माना है कि धारा 231(2) सीआरपीसी के अंतर्गत विवेक का प्रयोग केवल "असाधारण परिस्थितियों" में किया जाना चाहिए [सिसिर देबनाथ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन सीएएल 21442; शमून अहमद सईद बनाम इंटेलिजेंस ऑफिसर, 2008 एससीसी ऑनलाइन केआआर 371: 2009 क्रि एलजे 1215: आईएलआर 2008 केएआर 4378], या जब "बहुत मजबूत मामला" [अमित कुमार शॉ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2010 एससीसी ऑनलाइन सीएएल 2632] बनाया गया हो। हालाँकि, यह पार्टियों पर निर्भर करता है कि वे वैधानिक योजना के अनुसार गवाहों के प्रस्तुतीकरण और परीक्षा के क्रम को तय करें, एक न्यायाधीश के पास धारा 231(2) सीआरपीसी के अंतर्गत विवेक का प्रयोग करने की छूट है, यदि मानदंड से विचलित होने के लिए पर्याप्त कारण बताए जाते हैं।

23. धारा 231(2) सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन पर निर्णय लेते समय, अभियुक्त के अधिकारों और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य प्रस्तुत करने के विशेषाधिकार के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए। निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

(i) गवाह(ओं) पर अनुचित प्रभाव की संभावना;

(ii) गवाह(ओं) को धमकी की संभावना;

(iii) संभावना कि आस्थगन न किए जाने से बाद के गवाह समान तथ्यों पर साक्ष्य देने में सक्षम हो जाएँगे ताकि बचाव रणनीति को दरकिनार करने के लिए अपनी गवाही को ढाल सकें;

(iv) उन गवाह(ओं) की स्मृति खोने की संभावना जिनकी मुख्य परीक्षा पूरी हो चुकी है;

(v) धारा 309(1) सीआरपीसी के मद्देनजर, मुकदमे में देरी की घटना और गवाहों की अनुपलब्धता, यदि आस्थगन की अनुमति दी जाती है ["309. कार्यवाही स्थगित या स्थगित करने की शक्ति.–(1) प्रत्येक जांच या परीक्षण में कार्यवाही दिन-प्रतिदिन तब तक जारी रहेगी जब तक कि उपस्थित सभी गवाहों की जांच नहीं हो जाती, जब तक कि न्यायालय को रिकॉर्ड किए जाने वाले कारणों से अगले दिन से आगे स्थगन आवश्यक न लगे: "विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, (2015) 3 एससीसी 220: (2015) 2 एससीसी (सीआरआइ) 226: (2015) 1 एससीसी (एलएंडएस) 712; और एस.जे. चौधरी बनाम राज्य (दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र), (1984) 1 एससीसी 722: 1984 एससीसी (सीआरआइ) 163 भी देखें।]

ये कारक धारा 231(2) सीआरपीसी के अंतर्गत न्यायाधीश द्वारा विवेक के प्रयोग का मार्गदर्शन करने के लिए उदाहरणात्मक हैं।(बल प्रदत्त)"15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **धनीराम लुहार के मामले (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय का संदर्भ देना भी उपयोगी है। पैराग्राफ संख्या 7 और 8, प्रासंगिक होने के कारण, नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"7. तर्क हर निष्कर्ष की धड़कन है, और इसके बिना यह बेजान हो जाता है। (देखें राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य [(2003) 11 एससीसी 519: 2004 एससीसी (क्रि) 212: (2003) 7 सुप्रीम 152]।)

8. प्रशासनिक आदेशों के संबंध में भी लॉर्ड डेनिंग, एम.आर. ने ब्रीन बनाम एमाल्गमेटेड इंजी. यूनियन [(1971) 1 ऑल ईआर 1148: (1971) 2 क्यूबी 175: (1971) 2 डब्लूएलआर 742 (सीए)] में कहा: "कारण बताना अच्छे प्रशासन के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है।" अलेक्जेंडर मशीनरी (डडली) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री [1974 आईसीआर 120 (एनआईआरसी)] में कहा गया: "कारण न बताना न्याय से इनकार करने के बराबर है।" "कारण, विवादित मुद्दे पर निर्णय लेने वाले के दिमाग और निकाले गए निर्णय या निष्कर्ष के बीच जीवंत संपर्क होते हैं।" कारण व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों को दर्ज करने पर जोर इस बात पर दिया जाता है कि यदि निर्णय "स्फिंक्स के गूढ़ चेहरे" को प्रकट करता है, तो यह अपनी चुप्पी से न्यायालयों के लिए अपने अपीलीय कार्य को निष्पादित करना या निर्णय की वैधता का निर्णय

लेने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना लगभग असंभव बना सकता है। तर्क करने का अधिकार एक सुदृढ़ न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है; कम से कम न्यायालय के समक्ष मामले में दिमाग के आवेदन को इंगित करने के लिए पर्याप्त कारण। एक अन्य तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके खिलाफ क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की एक लाभकारी आवश्यकता है दिए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट करना; दूसरे शब्दों में, बोलना। "स्फिंक्स का गूढ़ चेहरा" आमतौर पर न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है।"

16. इस प्रकार पूर्वोक्त स्थापित कानूनी स्थिति के आलोक में जांच करने पर यह पता चलता है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 रहस्यमय है, जिसके माध्यम से 73 अभियोजन पक्ष के गवाहों की प्रति परीक्षा को, बिना किसी ऐसे तर्कसंगत आधार के अस्तित्व को दर्ज किए, स्थगित कर दिया गया है, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रशीद के मामले (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 23 में मान्यता दी है।

17. जहां तक राज्य के विद्वान ए.जी.ए. की इस आशय की आपत्ति का संबंध है कि रिकॉल आवेदन अभी भी विद्वान ट्रायल कोर्ट के पास लंबित है, इसलिए वर्तमान आवेदन को बनाए नहीं रखा जा सकता है, यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग या न्याय की विफलता को रोकने के लिए उच्च न्यायालयों के पास निहित एक असाधारण शक्ति है।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अदालत प्रसाद बनाम रूपलाल जिंदल एवं अन्य, (2004) 7 एससीसी 338** में दिए गए निर्णय का तात्पर्य यह है कि किसी भी आपराधिक न्यायालय को अपने स्वयं के आदेश को वापस लेने का अधिकार नहीं है, जो कि समन जारी करने वाले आदेश की तरह मूल प्रकृति का हो। इसलिए इस न्यायालय की सुविचारित राय में, **लाल हर्ष देव नारायण सिंह के मामले (उपरोक्त)** में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून इस हद तक अलग है कि वर्तमान मामले में यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 362 सीआरपीसी में निहित प्रतिबंध के मद्देनजर आवेदक को आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 को वापस लेने का उपाय उपलब्ध है।

19. यह उल्लेख करना अनावश्यक है कि धारा 231(2) सीआरपीसी के अंतर्गत विद्वान ट्रायल कोर्ट में निहित शक्ति एक विवेकाधीन शक्ति है, जिसका प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। इसलिए विद्वान ट्रायल कोर्ट को **रशीद केस (उपरोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करने की हमेशा स्वतंत्रता होगी।

20. उपरोक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत वर्तमान आवेदन स्वीकृत होने योग्य है और तदनुसार, **स्वीकृत** किया जाता है। परिणामस्वरूप, मुकदमा अपराध संख्या-09/2021, धारा 417, 120-बी, 153-ए, 153-बी, 295-ए, 298, 121-ए, 123 आईपीसी और धारा धारा 3/5/8 उ.प्र.विधि

विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021, थाना एटीएस, गोमती नगर, से उत्पन्न एसटी संख्या-13751/2021, राज्य बनाम सलाहुद्दीन एवं अन्य में विद्वान विशेष न्यायाधीश (एनआईए/एटीएस)/अपर सत्र न्यायाधीश-V, लखनऊ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 14.03.2023 निरस्त किया जाता है।

21. संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह एस.टी. संख्या-13751/2021, राज्य बनाम सलाहुद्दीन एवं अन्य, की सुनवाई धारा 309 सीआरपीसी में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए शीघ्रता से आगे बढ़ाए।

(2023) 5 ILRA 825

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ विद्यार्थी

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 6981 / 2022

अजीत सिंह एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: इशान बघेल, वीणा विजयन राजेस

अधिवक्ता विपक्षी: अनुराग कुमार सिंह, शैलेन्द्र मिश्रा, शिव पी. शुक्ल

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता- धारा 320 (5) और 482 - अंतर्निहित शक्ति- हस्तक्षेप की सीमा - गैर-शमनीय अपराधों के लिए दोषसिद्धि आदेश पारित किया गया था - जालसाजी के कुछ कृत्यों द्वारा कंपनी में कॉर्पोरेट और वाणिज्यिक अधिकारों के गलत तरीके से वंचित करने की शिकायतें की गई थीं - विवाद एक सिविल प्रकृति का था - गलत कार्य बड़े पैमाने पर समाज के खिलाफ अपराध के आयोग के बराबर नहीं थे - प्रासंगिकता - पक्षों के बीच समझौता हो गया था - कार्यवाही को निरस्त करने की मांग की गई - उच्च न्यायालय किस हद तक अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है - आयोजित, विचारणीय न्यायालय गैर-शमनीय अपराधों को कम नहीं कर सकता है, लेकिन उच्च न्यायालय गैर-शमनीय अपराधों से जुड़े आपराधिक मामले की कार्यवाही को रद्द कर सकता है। इसी प्रकार, चूंकि अपीलीय न्यायालय दोषसिद्धि के बाद भी अपराधों का शमन कर सकता था, यदि अपराध शमनीय होते, उसी सादृश्य को लागू करते हुए, यह न्यायालय गैर-शमनीय अपराधों से संबंधित कार्यवाही को ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषसिद्धि के बाद भी रद्द कर सकता है, जहां कार्यवाही इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए रद्द किए जाने योग्य है - उच्च न्यायालय ने धारा 482 सीआरपीसी के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करके आवेदकों के खिलाफ दोषसिद्धि आदेश और संपूर्ण कार्यवाही को निरस्त कर दिया (पैरा 20, 21, 22 और 23)

आवेदन स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बी.एस. जोशी बनाम हरियाणा राज्य.; (2003) 4 एससीसी 675

2. निखिल मर्चेंट बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य; (2008) 9 एससीसी 677

3. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य; (2012) 10 एससीसी 303

4. परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य.; (2017) 9 एससीसी 641

5. एम.पी. राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण; (2019) 5 एससीसी 688

6. पी. धर्मराज बनाम शनमुगम और अन्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1186

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

(I) 1. आवेदक के अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, सहायक अधिवक्ता अविनाश विशेन और प्रतिवादी- सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. सीआर०पी०सी० की धारा 482 के अंतर्गत दायर एक त्वरित आवेदन के माध्यम से आवेदक द्वारा विद्वान विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, सी.बी.आई., लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश दिनांकित 06.06.2019 को इस आधार पर कि सूचनाकर्ता और अभियुक्त व्यक्तियों ने समझौता कर लिया है को रद्द करने की प्रार्थना की है जो कि एफ.आई.आर. तथा सभी परिणामी कार्यवाही से उत्पन्न मुकद्मा संख्या 4603 सन् 2009 में धारा 120-बी, 420, 466, 467, 468, 471, 477-ए आईपीसी के अंतर्गत आरसी नंबर 01(एस)/2006/सीबीआई/एससीबी/एलके ओ दिनांकित 12.01.2006 के रूप में पंजीकृत हुआ था ।

3. उपरोक्त मामला विपक्षी संख्या 2 अरविंद मोहन जौहरी द्वारा आवेदकों के विरुध्द शिकायत के आधार पर पंजीकृत किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि मेसर्स कार्लटन होटल प्राइवेट लिमिटेड (इसके बाद 'कंपनी' के रूप में संदर्भित) के वर्ष 1997, 1998 और 1999 के वार्षिक रिटर्न से संबंधित कुछ दस्तावेज जाली हैं। प्रारंभिक जांच करने के बाद सी.बी.आई. द्वारा वी.के. गुप्ता, एफ.सी.ए. (आवेदक संख्या 3) और कुछ अज्ञात व्यक्तियों के विरुध्द दिनांक 12.01.2006 को एफ.आई.आर. दर्ज की गई, जिसमें आरोप लगाया गया कि कंपनी द्वारा 30.09.1997, 29.09.1998 और 30.09.1999 तक दायर वार्षिक रिटर्न में कुछ कागजात बाद में जोड़े गए या बदल दिए गए जो कि नामित अभियुक्त वी.के. गुप्ता द्वारा जालसाजी का सबूत देता है जिन्होंने दिनांक 22.03.2001 तथा 10.04.2001 को कंपनी के दस्तावेजों का निरीक्षण किया था।

4. सी.बी.आई. ने आरोप पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि आवेदक सं० 1 अजीत सिंह, कंपनी के प्रबंध निदेशक थे व आवेदक सं० 2 उदयजीत सिंह, इसके संयुक्त प्रबंध निदेशक थे। वे आवेदक क्रमांक 3 द्वारा किये गये उपरोक्त कृत्य के लाभार्थी थे क्योंकि उन्हें

1997, 1998 और 1999 के वार्षिक रिटर्न से शिकायतकर्ता आनंद कृष्ण जौहरी ऐवम अरविंद मोहन जौहरी के नाम हटाने से लाभ हुआ था ।

5. विचारण न्यायलय ने दिनांकित 06.06.2019 को एक निर्णय और आदेश पारित किया जिसमें आवेदकों को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी, 420, 466, 467, 468, 471, 477 ए के अंतर्गत अपराध करने का दोषी ठहराया गया और उन सभी को धारा 120-बी आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए एक वर्ष की साधारण कारावास और 1000/- रुपये का जुर्माना, धारा 420 आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए दो साल की साधारण कारावास और 2000/- रुपये का जुर्माना, धारा 466 आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए साधारण कारावास और 2000/- रुपये का जुर्माना, धारा 467 आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए तीन साल का साधारण कारावास और 4000/- रुपये का जुर्माना, धारा 468 आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए दो साल का साधारण कारावास और 1000/- रुपये का जुर्माना, धारा 471 आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए दो साल का साधारण कारावास और 1000/- रुपये का जुर्माना तथा धारा 477 ए आईपीसी के अंतर्गत अपराध के लिए दो साल का साधारण कारावास और 1000/- रुपये का जुर्माना। आवेदकों ने सत्र न्यायाधीश, लखनऊ की अदालत में आपराधिक अपील संख्या 221/2019 दायर करके दिनांक 06.06.2019 के उपरोक्त निर्णय और आदेश को चुनौती दी है और अपील की लंबित अवधि के दौरान आवेदकों को जमानत दे दी गई है।

6. अपील के लंबित रहने के दौरान, शिकायतकर्ता अरविंद मोहन जौहरी, आनंद कृष्ण जौहरी और ज्ञानेंद्र नाथ जौहरी ने अजीत सिंह, उदयजीत सिंह, सोना सिंह, राहुल जीत सिंह, कामिनी सिंह और कार्लटन होटल प्राइवेट लिमिटेड के साथ एक समझौता किया, जिसमें कहा गया कि सिंह समूह और जौहरी समूह के बीच कुछ विवादों के कारण, पक्षकरों के बीच निम्नलिखित मुकदमे शुरू किए गए हैं: -

1. कंपनी लॉ बोर्ड, नई दिल्ली के समक्ष कंपनी याचिका संख्या 76/2002, जिसका शीर्षक 'अरविंद मोहन जौहरी एवं अन्य बनाम कार्लटन होटल्स प्रा. लिमिटेड एवं अन्य" है;
2. कंपनी लॉ बोर्ड, नई दिल्ली के समक्ष कंपनी याचिका संख्या 11(एनडी)/111/2011, जिसका शीर्षक 'अरविंद मोहन जौहरी एवं अन्य बनाम कार्लटन होटल्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य' है;
3. माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की लखनऊ खंडपीठ के समक्ष कंपनी

अपील संख्या 1/2015 जिसका शीर्षक 'कार्लटन होटल्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम अरविंद मोहन जौहरी एवं अन्य' है;\

4. कंपनी याचिका क्रमांक. दिल्ली के माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष 354/2001, जिसका शीर्षक 'कंपनी रजिस्ट्रार बनाम साइबरस्पेस लिमिटेड और अन्य' है;

5. विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीबीआई, लखनऊ के समक्ष आपराधिक प्रकरण संख्या 4603/2009, जिसका शीर्षक 'राज्य द्वारा सीबीआई बनाम उदयजीत सिंह एवं अन्य' है;

6. जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ की अदालत में आपराधिक अपील संख्या 220/2019, जिसका शीर्षक 'उदयजीत सिंह बनाम ऊ०प्र० राज्य द्वारा सीबीआई' है;

7. सत्र न्यायाधीश, लखनऊ की अदालत में आपराधिक अपील संख्या 221/2019 जिसका शीर्षक 'अजीत सिंह बनाम ऊ०प्र० राज्य द्वारा सीबीआई' है;

7. समझौता अभिलेख में दर्ज है कि विभिन्न दौर की चर्चा के बाद, दोनों पक्षों ने कार्लटन होटल के संबंध में शांति और सद्भाव बनाए रखने के लिए अपने विवादों को सुलझा लिया है और समझौते की शर्तों को उपरोक्त समझौता ज्ञापन में दर्ज किया गया है। समझौता ज्ञापन में यह विशेष रूप से उल्लेखित है कि:-

> *"6. पक्षकारों ने इस बात की पुष्टि और घोषणा की है कि कार्लटन होटल के संबंध में उनके बीच सभी विवाद और मतभेद सुलझ गए हैं और किसी भी पक्षकार के पास कोई अन्य विवाद, मतभेद, बकाया, दावा, मांग, मध्यस्थता के अंतर्गत कोई कार्यवाही अथवा किसी भी न्यायालय में लंबित किसी भी प्रकार की कोई कार्यवाही जिसमें पक्षकारों द्वारा दूसरे पक्षकार या उनमें से अन्य के विरुध्द किसी वैधानिक प्राधिकरण को की गई शिकायतें/आवेदन शामिल है, यदि कोई है, तो उसे बिना शर्त वापस ले लिया जाएगा और पक्षकारों के बीच समाप्त माना जाएगा। "*

8. 03.09.2022 को, आवेदक ने विशेष न्यायाधीश सी.बी.आई. 5वीं लखनऊ के समक्ष एक आवेदन दायर किया जिसमें समझौते के ज्ञापन की एक प्रति संलग्न की और प्रार्थना की कि समझौते के अनुसार कार्यवाही समाप्त कर दी जाए। तथापि, विचारण न्यायलय द्वारा आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, अत:

आवेदकों ने पक्षकारों के मध्य हुए समझौते के मद्देनजर उनके विरुध्द आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है।

9. वर्तमान प्रकरण में शामिल अपराध गैर-समझौता योग्य अपराध हैं, अत: विचारण न्यायलय इसपर कोई समझौता नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त, चूंकि आवेदक पहले ही विचारण न्यायलय द्वारा दोषी ठहराए जा चुके हैं और दोषसिद्धि के विरुध्द अपील के लंबित रहने के दौरान पक्षकार समझौते पर पहुंचे हैं, इसलिए विचारण न्यायलय द्वारा अपराधों का शमन करने का कोई अवसर नहीं है।

10. आवेदकों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह ने प्रस्तुत किया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 (5) में प्रावधान है कि "जब अभियुक्त को विचारण के लिए सुपुर्द कर दिया गया हो या उसे दोषसिद्ध कर दिया गया हो और अपील लंबित हो तो अपराध के लिए कोई भी समझौता उस न्यायालय की अनुमति के बिना नहीं किया जाएगा जिसे वह सुपुर्द किया गया हो, या, जैसा भी मामला हो, जिसके समक्ष अपील सुनी जानी हो।" उपरोक्त प्रावधान पर भरोसा करते हुए, श्री सिंह ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायलय द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों को दोषी ठहराए जाने के बाद भी अपराध के शमन पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। तथापि, चूँकि कुछ धाराएँ जिनके लिए आवेदकों को दोषी ठहराया गया है, गैर-शमन योग्य हैं, अपीलीय अदालत समझौते के आधार पर कार्यवाही को रद्द नहीं करेगी।

11. गैर-शमनीय अपराधों से जुड़ी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के संबंध में एक कानून माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न घोषणाओं में प्रतिपादित किया गया है, जिनका उल्लेख यहां नीचे किया जा रहा है।

12. **बी.एस. जोशी बनाम हरियाणा राज्य**, (2003) 4 एससीसी 675 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यदि न्याय सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करना आवश्यक हो जाता है, तो धारा 320 रद्द करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए बाधा नहीं बनेगी।।

13. **निखिल मर्चेंट बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवमं अन्य**, (2008) 9 एससीसी 677 में, सीबीआई ने दंड संहिता, 1860 की धारा 120-बी सपठित धारा 420, 467, 468, 471, सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) और 5(1)(डी) तथा सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(के साथ पठित) घ) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत पांच अभियुक्त व्यक्तियों के विरुध्द आरोप पत्र दायर किया था, जिनमें तीन अभियुक्त आंध्रा बैंक के

अधिकारी थे। आरोप-पत्र के अंतर्गत आरोपों से संकेत मिलता है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने आंध्रा बैंक के धन को धोखाधड़ी से निकालने में एक-दूसरे के साथ साजिश रची। आरोप-पत्र में जालसाजी का आरोप लगाने वाले अपराध भी शामिल किए गए थे। बैंक ने पैसे की वसूली के लिए एक मुकदमा दायर किया था, जिसमें पक्षकरों ने समझौता कर लिया था और मुकदमे का फैसला तदनुसार कर दिया गया था। समझौते का खंड 11 इस प्रकार है:-

> *"11. इस बात पर सहमति है कि उपरोक्त के अतिरिक्त किसी भी पक्ष के पास दूसरे के विरुध्द कोई दावा नहीं है और पक्षकार एक-दूसरे के विरुध्द लगाए गए सभी आरोपों और प्रत्यारोपों को वापस लेती हैं।"*

14. मुकदमे के समझौते के परिणामस्वरूप और सहमति की शर्तों के खंड 11 की विषय-वस्तु को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता ने आपराधिक शिकायत से मुक्ति के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसके संबंध में सीबीआई द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया था, लेकिन आवेदन को विचारण न्यायलय ने खारिज कर दिया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि:-

> *"**30.** वर्तमान प्रकरण में, कंपनी और बैंक के बीच विवादों को उनके द्वारा किए गए समझौते के आधार पर विरुध्द शांत कर दिया गया है, जिसके अंतर्गत बैंक का बकाया चुका दिया गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक के पास कंपनी के विरुध्द कोई और दावा नहीं है। तथापि, तथ्य यह है कि अपीलकर्ता द्वारा कुछ दस्तावेज़ कथित रूप से इसलिए बनाए गये थे ताकि कंपनी की पात्रता सीमा से अधिक ऋण कि सुविधाए प्राप्त हो सके। इसमें शामिल विवाद में कुछ आपराधिक पहलुओं के साथ दीवानी विवाद का स्वरूप भी हैं। इस प्रकरण में जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना आवश्यक है वह यह है कि क्या इस न्यायालय के पास स्वतंत्र रूप से समझौते के अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए?*
>
> ***31.** ऊपर बताए गए तथ्यों के समग्र दृष्टिकोण और बी०एस० जोशी के मामले में इस अदालत के फैसले और कंपनी एवम बैंक के बीच हुए समझौते तथा बैंक द्वारा मुकदमे में दायर सहमति शर्तों के खंड 11 को ध्यान में रखते हुए, हम संतुष्ट हैं कि यह एक उपयुक्त मामला है जहां आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में तकनीकीता को आड़े नहीं आने*

दिया जाना चाहिए, इसलिए, हमारे विचार में, पक्षों के बीच समझौते के बाद इसे जारी रखना निरर्थक होगा।"

15.**ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य**, (2012) 10 एससीसी 303 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर बीएस जोशी और निखिल मर्चेंट (सुप्रा) सहित निर्णयों पर व्यापक चर्चा की और कहा कि: -

*"**61.** उपरोक्त चर्चा से जो स्थिति उभरती है, उसे इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक कार्यवाही या प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति संहिता की धारा 320 के अंतर्गत अपराधों के शमन के लिए आपराधिक अदालत को दी गई शक्ति से अलग और भिन्न है। अंतर्निहित शक्ति बिना किसी वैधानिक सीमा के व्यापक है, लेकिन इसका प्रयोग ऐसी शक्ति में दिए गए दिशानिर्देशों के अनुसार किया जाना चाहिए। : (i) न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए, या (ii) किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए। किन मामलों में आपराधिक कार्यवाही या शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है जहां अपराधी और पीड़ित ने अपना विवाद सुलझा लिया है, यह प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती है। तथापि, ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पहले, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर उचित ध्यान देना चाहिए। मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराधों या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार और अपराधी ने विवाद सुलझा लिया हो। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानूनों के अंतर्गत अपराधों या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों आदि के संबंध में यदि पीड़ित और अपराधी के बीच कोई समझौता आदि होता है तब भी ऐसे अपराधों से जुड़ी आपराधिक कार्यवाही को रद्द

करने के लिए कोई आधार प्रदान नहीं किया जा सकता। किन्तु ***ऐसे आपराधिक मामले रद्द करने के प्रयोजनों के लिए एक अलग स्तर पर खड़े होते हैं जो मुख्यत: तथा अधिक रूप से दीवानी प्रकृति के होते है, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, नागरिक, साझेदारी या इस तरह के लेनदेन से उत्पन्न होने वाले अपराध अथवा विवाह से उत्पन्न दहेज संबंधित अपराध आदि अथवा पारिवारिक विवाद जहां गलती मूल रूप से निजी या व्यक्तिगत प्रकृति की है और पक्षकरों ने अपने पूरे विवाद को सुलझा लिया होता है। इस श्रेणी के मामलों में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि उसके विचार में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते के कारण, दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम और धूमिल हो गयी है और आपराधिक प्रकरण को जारी रखने से अभियुक्त को भारी उत्पीड़न और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा तथा पीड़ित के साथ पूर्ण समझौता होने के बावजूद आपराधिक प्रकरण को रद्द न करने से उसके साथ घोर अन्याय होगा।*

दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना न्याय के हित के विपरीत या अनुचित होगा अथवा पीड़ित और अपराधी के बीच हुए समझौते के बावजूद आपराधिक कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के समान होगा तथा क्या न्याय के उद्देशयों को सुरक्षित करने के लिए यह उचित है कि आपराधिक प्रकरण को समाप्त कर दिया जाए और यदि उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है, तो उच्च न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के अपने अधिकार क्षेत्र में होगा।

62. *उपरोक्त के मद्देनज़र, यह नहीं कहा जा सकता कि बी.एस. जोशी, निखिल मर्चेंट एवम् मनोज शर्मा का निर्णय सही ढंग से नहीं लिया गया। हम तदनुसार संदर्भ का उत्तर देते हैं। अब इन मामलों को संबंधित पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए।"*

(जोर दिया गया)

16. **परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य**, (2017) 9 एससीसी 641 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस संबंध में

सिद्धांतों का सारांश इस प्रकार दिया:

-

*"**16**. इस विषय पर उदाहरणों से जो व्यापक सिद्धांत सामने आते हैं, उन्हें निम्नलिखित प्रस्तावों में संक्षेपित किया जा सकता है:*

***16.1**. धारा 482 किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने अथवा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित रखने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को संरक्षित करती है। यह प्रावधान नई शक्तियाँ प्रदान नहीं करता है। यह केवल उच्च न्यायालय में निहित शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है।*

***16.2.** प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है और यह किसी अपराध को कम करने के उद्देश्य से अधिकार क्षेत्र का आह्वान के समान नहीं है। किसी अपराध को कम करते समय, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 320 के प्रावधानों द्वारा सशक्त और शासित किया जाता है। यदि अपराध गैर-शमनीय है, तो भी न्यायालय को धारा 482 के तहत रद्दकरने का अधिकार है।*

***16.3.** धारा 482 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक कार्यवाही या शिकायत को रद्द कर दिया जाना चाहिए या नहीं, इस बारे मे राय बनाते समय उच्च न्यायालय को यह मूल्यांकन करना होगा कि क्या न्याय के उद्देश्य इस अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराते हैं।*

***16.4.** यद्यपि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का दायरा व्यापक और प्रचुर है, इसका प्रयोग (i) न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए, या (ii) किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया जाना चाहिए।*

***16.5.** किसी शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर रद्द कर दिया जाना कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद सुलझा लिया है का निर्णय अंततः प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सिद्धांतों का कोई विस्तृत विवरण तैयार नहीं किया जा सकता है।*

***16.6.** धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय*

तथा इस दलील पर विचार करते समय कि विवाद का निपटारा हो गया है, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित ध्यान रखना चाहिए। मानसिक विकृति से जुड़े जघन्य और गंभीर अपराधों या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद सुलझा लिया हो। सही मायने में ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते बल्कि समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में मुकदमा जारी रखने का निर्णय गंभीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के सर्वोपरि तत्व पर आधारित है।

16.7. *गंभीर अपराधों से अलग, ऐसे आपराधिक प्रकरण भी हो सकते हैं जिनमें दीवानी विवाद का व्यापक या प्रमुख तत्व हो। जहां तक रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का सवाल है, वे एक अलग आधार पर खड़े हैं।*

16.8. *आपराधिक प्रकरण में शामिल वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या इसी प्रकार के अन्य लेन-देन से उत्पन्न अपराध जिनमें अनिवार्य रूप से दीवानी स्वरूप होता है, उचित परिस्थितियों में रद्द किए जा सकते हैं, जहां पक्षकरों ने विवाद सुलझा लिया है।*

16.9. *ऐसे प्रकरण में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि विवादकर्ताओं के बीच समझौते के मद्देनजर, दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम है और आपराधिक कार्यवाही जारी रहने से उत्पीड़न और पूर्वाग्रह पैदा होगा; और*

16.10. *उपरोक्त प्रस्ताव 16.8. एवम् 16.9. में निर्धारित सिद्धांत का अभी भी एक अपवाद है। राज्य की वित्तीय और आर्थिक भलाई से जुड़े आर्थिक अपराधों के ऐसे निहितार्थ हैं जो मात्र निजी विवादकर्ताओं के बीच विवाद के क्षेत्र से परे हैं। जहां अपराधी किसी वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या दुष्कर्म जैसी गतिविधि में शामिल हो, उसे रद्द करने से इनकार करना उच्च न्यायालय के लिए उचित होगा। जिस कृत्य के बारे में शिकायत की गई है उसके परिणाम वित्तीय या आर्थिक व्यवस्था पर भारी पड़ेंगे।"*

17.**मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण**, (2019) 5 एससीसी 688 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस संबंध में कानून को इस प्रकार दोहराया:-

> *"**15.** इस मुद्दे पर कानून और इस न्यायालय के अन्य निर्णयों पर विचार करते हुए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह देखा गया है और निम्नानुसार माना गया है:*
>
> ***15.1.** यह कि धारा 320 के तहत गैर-शमनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग अत्यधिक और मुख्य रूप से दीवानी प्रकृति के होने पर किया जा सकता है, विशेष रूप से वे जो वाणिज्यिक लेन-देन से उत्पन्न होते हैं या वैवाहिक संबंधों या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होते हैं और जब पक्षों ने पूरे विवाद को आपस में सुलझा लिया हो;*
>
> ***15.2.** ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिसमें मानसिक विकृति आदि के जघन्य और गंभीर अपराध शामिल हों जैसे कि हत्या, बलात्कार, डकैती आदि। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;*
>
> ***15.3.** इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानूनों के तहत अपराधों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए या उस क्षमता में काम करते हुए लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाना चाहिए;*
>
> ***15.4.** धारा 307 आईपीसी और शस्त्र अधिनियम आदि के तहत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए उन्हें समाज के खिलाफ अपराध माना जाएगा न कि केवल व्यक्ति के खिलाफ और इसलिए, धारा 307 आईपीसी और/या शस्त्र अधिनियम आदि के तहत अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही, जिसका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, को संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों के प्रयोग में इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि पक्षों ने अपने बीच पूरे विवाद को सुलझा लिया है। तथापि, अदालत केवल इसलिए अपना फैसला*

नहीं रोक सकती क्योंकि एफआईआर में धारा 307 आईपीसी का उल्लेख है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। उच्च न्यायालय के लिए यह जांच करना खुला होगा कि क्या धारा 307 आईपीसी को शामिल करना इसके लिए पर्याप्त है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त सबूत एकत्र किए हैं, जो साबित हो चुके हैं, जिससे धारा 307 आईपीसी के तहत आरोप तय किए जा सकेंगे। इस उद्देश्य के लिए, उच्च न्यायालय को लगी चोट की प्रकृति, चाहे ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/नाज़ुक अंगों पर लगी हो, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति आदि के आधार पर जाना होगा। तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा अभ्यास केवल तभी स्वीकार्य होगा जब जाँच के बाद सबूत एकत्र किए जाएँ और आरोप-पत्र दायर किया जाए/आरोप तय किया जाए और/या विचारण के दौरान। जब मामला अभी भी जाँच के अधीन है, तो ऐसा अभ्यास अनुमेय नहीं है। इसलिए, नरिंदर सिंह [नरिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 6 एससीसी 466: (2014) 3 एससीसी (क्रि) 54] में इस अदालत के फैसले के पैरा 29.6 और 29.7 में आवंटन गणना को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए और इसे समग्र रूप से और ऊपर बताई गई परिस्थिति में पढ़ा जाना चाहिए;

15.5. [संपादित: पैरा 15.5 को आधिकारिक शुद्धिपत्र संख्या एफ.3/संपादक बी.जे./22/2019 दिनांक 3-4-2019 के माध्यम से सही किया गया।] *गैर-शमनीय अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, हालांकि ये निजी प्रकृति के हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, इस आधार पर कि पीड़ित और अपराधी के बीच समझौता है, उच्च न्यायालय को आरोपी के पूर्ववृत्त पर विचार करना आवश्यक है; अभियुक्त का आचरण, अर्थात् क्या अभियुक्त फरार था और फरार रहते हुए उसने शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में किस प्रकार सफलता प्राप्त की, आदि।"*

18.इसके विपरीत, प्रतिवादी - सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव. पी. शुक्ला ने **पि. धर्मराज बनाम शनमुगम एवम् अन्य** 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1186 में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि: -

> *"**44.** इस प्रकार कानून की प्रगति से यह स्पष्ट है कि पक्षकरों के बीच हुए समझौते के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के मामले में सीआर.पी.सी की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय भी न्यायालय को धीमी गति से चलना होगा, जब अपराध न केवल शिकायतकर्ता और अभियुक्त पर बल्कि दूसरों पर भी प्रभाव डालने में सक्षम हों।*
>
> * * *
>
> ***46.** यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि एक लोक सेवक द्वारा किया गया भ्रष्टाचार बड़े पैमाने पर राज्य और समाज के विरुध्द अपराध है। न्यायालय आधिकारिक पद के दुरुपयोग और भ्रष्ट आचरण को अपनाने से जुड़े मामलों से नहीं निपट सकता है, जैसे कि विनिर्दिष्ट अनुतोश के मुकदमे, जहां भुगतान किए गए धन की वापसी भी अनुबंध धारक को संतुष्ट कर सकती है। इसलिए हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय ने आपराधिक शिकायत को रद्द करने में पूरी तरह से गलती की है।"*

19.आवेदक लोक सेवक नहीं हैं और इसलिए, **पी. धर्मराज** (सुप्रा) प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून है कि एक लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार बड़े पैमाने पर राज्य और समाज के विरुध्द अपराध है और जब अपराध न केवल शिकायतकर्ता और अभियुक्त पर बल्कि अन्य लोगों पर भी प्रभाव डालने में सक्षम हैं, अदालत को कार्यवाही को रद्द करने का आदेश सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय भी धीमी गति से चलना पड़ता है। जो वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

20.यदि अपराध शमनिय होते, तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 (5) में निहित प्रावधान के मद्देनजर आवेदकों की दोषसिद्धि के बाद भी अपीलीय न्यायालय द्वारा उनके समझौता किए जाने पर कोई रोक नहीं होती। तथापि, वर्तमान प्रकरण में, अपीलीय न्यायालय अपराधों को केवल इसलिए शमन नहीं कर सकता क्योंकि अपराध गैर-शमन योग्य हैं।

21.पक्षकरों के बीच समझौते के कारण, अपील में दोषसिद्धि बरकरार रहने की संभावना बहुत कम और धूमिल है और आपराधिक कार्यवाही जारी रहने से आवेदकों को पीड़ित के साथ पूर्ण समझौता होने के बावजूद भारी

उत्पीड़न और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा। विचारण न्यायलय गैर-शमनयोग्य अपराधों का शमन नहीं कर सकता है, लेकिन यह न्यायालय गैर-शमनीय अपराधों से जुड़े आपराधिक प्रकरण की कार्यवाही को रद्द कर सकता है। इसी प्रकार, चूंकि अपीलीय न्यायालय दोषसिद्धि के बाद भी अपराधों को शमन कर सकता था, यदि अपराध शमनीय होते, तो उसी साद्रश्य को लागू करते हुए यह न्यायालय, विचारण न्यायलय द्वारा दोषसिद्धि के बाद भी गैर-शमनीय अपराधों से जुड़ी कार्यवाही को रद्द कर सकता है, जहां इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही को रद्द किया जाना चाहिए।

22.जब हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपर्युक्त कानून के आलोक में वर्तमान प्रकरण के तथ्यों की जांच करते हैं, तो हम पाते हैं कि वर्तमान प्रकरण में शामिल अपराध निजी व्यक्तियों द्वारा की गई शिकायतों से उत्पन्न हुए हैं, जिसमें आवेदक संख्या 3 द्वारा किए आवेदकों संख्या 1 और 2 के लाभ के लिए किए गए जालसाजी आदि के कुछ कृत्यों द्वारा कंपनी में उनके कॉर्पोरेट और वाणिज्यिक अधिकारों से गलत तरीके से वंचित होने का आरोप लगाया गया है। शिकायतकर्ताओं ने पहले ही शांति और सद्भाव बनाए रखने के लिए आवेदकों के साथ एक व्यापक समझौता कर लिया है और समझौते की शर्तों में दर्ज है कि कार्लटन होटल के संबंध में उनके बीच सभी विवाद और मतभेद सुलझ गए हैं और किसी भी पक्ष किसी प्रकार का अन्य विवाद, मतभेद, बकाया, दावे, मांगें, मध्यस्थता के अंतर्गत कार्यवाही अथवा किसी भी न्यायालय में लंबित कोई भी कार्यवाही नहीं है, जिसमें पक्षकारो के मध्य वैधानिक प्राधिकारी को की गई शिकायतें/ आवेदन शामिल हैं और यदि कोई है, तो उसे बिना शर्त वापस ले लिया जाएगा और पक्षकरों के बीच समाप्त माना जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि विवाद स्वाभाविक रूप से अत्यधिक और मुख्य रूप से दीवानी प्रकृति के प्रतीत होते हैं जिनमें मुख्य रूप से दीवानी भावना होती है। गलत आरोप सम्ग्र समाज के विरुध्द अपराध नहीं माना जा सकता है।

23.इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आवेदकों के विरुध्द दोषसिद्धि आदेश और संपूर्ण कार्यवाही रद्द किये जाने योग्य है।

24. 24. उपरोक्त चर्चा के परिप्रेक्ष्य में धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

25. 25. विद्वान विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, सी.बी.आई., लखनऊ द्वारा आरसी नंबर 01(एस)/2006/सीबीआई/एससीबी/एलकेओ दिनांकित 12.01.2006 अंतर्गत धारा 120-बी, 4 20, 466, 467, 468, 471, 477-ए भारतीय दंड संहिता के रूप में पंजीकृत प्रथम सूचना रिपोर्ट से उद्भूत मुकदमा संख्या 4603 सन् 2009 में पारित दोषसिद्धि का आदेश दिनांकित 06.06.2019 तथा उपरोक्त निर्णय से संबंधित सभी कार्यवाहियों को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 834

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 30527/2021

रविकांत और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री विनोद सिंह, श्री अभिनव गौड़, श्री विभु राय, श्री अंकित शुक्ला, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए. श्री पांडे, बालकृष्ण

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता धारा- 147, 452, 354-बी, 323, 504 और 506- धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत आवेदन पर दर्ज एफआईआर से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही में, आईओ ने अंतिम रिपोर्ट पेश की, जिसके खिलाफ विरोध याचिका दायर की गई, जिसे शिकायत के रूप में माना गया - समन जारी किया गया - वैधता को चुनौती दी गई - धारा 156(3) के तहत आवेदन दाखिल करने में दो महीने की देरी का आधार लिया गया - प्रभाव - देरी का बचाव यह किया गया कि आवेदक के एक पारिवारिक सदस्य ने, पुलिस सेवा में होने के कारण, स्थानीय पुलिस प्राधिकारी को विपरीत पक्ष की एफआईआर दर्ज न करने के लिए प्रभावित किया और जब अदालत के आदेश से, एफआईआर दर्ज की गई, तो आईओ को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए और अधिक प्रभावित किया - प्रभाव - आयोजित, एक अपराध एक ही तारीख, समय और स्थान पर हुआ जिसके लिए दोनों पक्षों ने आपराधिक कार्यवाही शुरू की है। साक्ष्यों के मूल्यांकन के बाद ही सच्चाई सामने आएगी। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि विपक्षी पक्षकार संख्या 2 की ओर से शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। आवेदकों द्वारा उठाए गए आधार विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के मामले को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। (पैरा 17 और 19)

आवेदन निरस्त (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. पेप्सी फ़ूड लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य; (1998) 5 एससीसी 749

2. सुनील भारती मित्तल बनाम सी.बी.आई.; (2015) 4 एस.सी.सी. 609

3. मेसर्स जी.एच.सी.एल. एम्प्लॉइज स्टॉक ऑप्शन ट्रस्ट बनाम मेसर्स इंडिया इंफोलाइन लिमिटेड; एआईआर 2013 एससी 1433

अनुवादित

4. लल्लन कुमार सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य; 2022 लाइवलॉ (एससी) 833

5. कृष्ण लाल चावला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; मनु/एससी/0161/2021

6. विनीत कुमार व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; मनु/एससी/0351/2017

7. सुन्दर बाबू व अन्य बनाम टी.एन. राज्य; (2009) 14 एस.सी.सी. 244

8. अहमद अली कुरैशी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2020) 13 एससीसी 435

9. एम.एन.ओझा एवं अन्य बनाम ए.के.श्रीवास्तव एवं अन्य; (2009) 9 एससीसी 682

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन क्री. शिकायत मामला संख्या-523 वर्ष 2019 (राज्य बनाम रविकांत और अन्य) के आरोपी आवेदकों द्वारा धारा 323, 354, 504, 506 भ०द०वि०, थाना-खुर्जा देहात, जिला बुलंदशहर के तहत दायर किया गया है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 श्रीमती कृपा देवी ने आवेदकों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने के लिए दिनांक 16.2.2017 की घटना के संबंध में आवेदकों के खिलाफ द०प्र०स० की धारा 156(3) के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसकी अनुमति दी गई थी और धारा 147 के तहत अपराध संख्या-176 वर्ष 2017 में 452, 354 बी, 323, 504 और 506 भ०द०वि०, थाना-खुर्जा देहात, बुलंदशहर, इस आरोप के साथ एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी कि 16.2.2017 को लगभग 6:00 बजे जब शिकायतकर्ता अपने मवेशियों को खिलाने के लिए अपने घर के पीछे की तरफ गई, तो आवेदक उसके घर में घुस गए, उसके साथ छेड़छाड़ की और उसके परिवार के सदस्यों के साथ भी मारपीट की, जिसके कारण उन्हें चोटें आईं।

3. पुलिस ने विवेचना शुरू कर सूचनाकर्ता व अन्य गवाहों जैसे कल्लू, त्रिलोकी, ब्रह्मपाल, भोलाराम, अशोक, पुष्पा देवी व देवेंद्र के बयान दर्ज किए।

4. विवेचनाधिकारी, मुन्ना लाल सागर ने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष निकाला कि प्राथमिकी की सामग्री सही नहीं थी और प्राथमिकी केवल आवेदकों पर दबाव डालने के लिए दर्ज की गई थी, लेकिन उच्च अधिकारियों ने आगे की जांच के आदेश दिए जो एस.आई. अवधेश कुमार द्वारा किए गए थे, जिन्होंने फिर से आरोपों को झूठा पाया। ए.सी.जे.एम. खुर्जा के समक्ष अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे 27.5.2017 को अंतिम रिपोर्ट संख्या-322 वर्ष 2017 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

5. अभिलेख के अवलोकन के बाद ए.सी.जे.एम. ने दिनांक 20.11.2018 को अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली लेकिन ए.सी.जे.एम. के आदेश को प्रतिपक्षीकार संख्या-2 द्वारा सीआरएल पुनरीक्षण संख्या-436 वर्ष 2018 (श्रीमती कृपा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दाखिल करके चुनौती दी गई। और 5 अन्य) जिसे 6.4.2019 को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, खुर्जा, बुलंदशहर

द्वारा अनुमति दी गई थी, और विद्वान मजिस्ट्रेट को पुनरीक्षण न्यायालय के फैसले के आलोक में अंतिम रिपोर्ट को नए सिरे से तय करने का निर्देश दिया गया था।

6. पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, विरोध याचिका को शिकायत मामले के रूप में माना गया और प्रतिपक्षीकार संख्या-2, श्रीमती कृपा देवी की धारा 202 द०प्र०स० के तहत जांच की गई और अनिल कुमार और जल्लू की जांच धारा 202 द०प्र०स० के तहत अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के रूप में की गई। गवाहों के साक्ष्य और आवेदकों के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर विचार करते हुए, उन्हें दिनांक 12/20.10.2021 के आदेश के तहत 22.11.2021 को उपस्थित होने के लिए आरोपी के रूप में बुलाया गया था।

7. व्यथित होकर, आक्षेपित आदेश दिनांक 12/20.10.2021 को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 के पति मनोज और उसके परिवार के सदस्यों ने आवेदक संख्या-1, रविकांत के साथ बेरहमी से मारपीट की और उसे गंभीर चोटें पहुंचाईं, जिसके लिए आवेदक संख्या-4 रतिभान, रविकांत के पिता, आवेदक संख्या-1 ने उनके खिलाफ धारा 147, 148, 149, 342, 308, 323 और 325 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या-58 वर्ष 2017 में प्राथमिकी दर्ज की। जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद सत्र परीक्षण संख्या-219 वर्ष 2017 (राज्य बनाम मनोज और अन्य) शुरू किया गया और आरोप तय किए गए। उपरोक्त मामले में, आवेदक गवाह हैं। उसके बाद प्रतिपक्षी संख्या-2 ने दो महीने की अस्पष्टीकृत देरी के साथ द०प्र०स० की धारा 156(3) के तहत आवेदन दायर करके आवेदकों के खिलाफ झूठा और मनगढ़ंत मुकदमा शुरू करने की कोशिश की।

8. यह उल्लेख करना उचित है कि दलचंद, प्रतिपक्षी संख्या-2 के ससुर, जो अपराध संख्या-58 वर्ष 2018 के आरोपियों में से एक है, ने अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ अपराध संख्या-353 वर्ष 2015 में प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है, जिसके खिलाफ डालचंद ने 9.7.2018 को विरोध याचिका दायर की, जिसमें उन्होंने पहली बार कहा कि आवेदक रविकांत, विजयवीर और यशवंत उक्त अपराध में शामिल थे और विद्वान मजिस्ट्रेट ने उन्हें 16.10.2018 को धारा 308 और 506 भ०द०वि० के तहत आरोपी के रूप में बुलाया था, जिसे आवेदक रविकांत ने आपराधिक विविध आवेदन 482 के तहत संख्या-21664 वर्ष 2019 में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी और आक्षेपित मामले की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई थी जिसे समय-समय पर बढ़ाया गया था।

9. प्रतिपक्ष संख्या-2 के परिजनों के उकसाने पर प्रार्थी विजयवीर उर्फ अंकित के विरूद्ध अपराध संख्या-271 वर्ष 2018 में दिनांक 5.10.2018 को धारा 376 भा.दं.सं. के अन्तर्गत झूठा प्रकरण दर्ज किया गया है जिसमें उच्च न्यायालय ने दिनांक 3.4.2019 के आदेश द्वारा उसे जमानत दे दी।

10. रिकॉर्ड पर यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं थी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 या उसके परिवार के सदस्यों को कोई चोट

लगी थी और किसी भी चोट की अनुपस्थिति में, यह स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है कि आवेदकों को प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया था। यह भी उल्लेख करना उचित है कि मामला अपराध संख्या-271 वर्ष 2018, धारा 376 भ०द०वि० के तहत, आवेदक विजयवीज को निर्णय और आदेश दिनांक 25.11.2020 के माध्यम से बरी कर दिया गया है। आवेदकों का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है; उन्हें प्रस्तुत मामले में गलत मकसद के लिए फंसाया गया है, इसलिए पूरी कार्यवाही और आक्षेपित सम्मन आदेश को रद्द किया जाए।

11. आवेदन में निर्दिष्ट सभी अभिलेखों को आवेदन के समर्थन में दायर शपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है।

12. श्री अनूप त्रिवेदी, वरिष्ठ वकील, श्री विभु राय और अंकित शुक्ला, अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्राप्त, आवेदकों के लिए श्री पांडे बालकृष्ण को राज्य के लिए प्रतिपक्षी संख्या-2 और अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता के रूप में सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

13. यह प्रतिपक्षी संख्या-2 का मामला है कि जब वह अपने घर के पिछवाड़े में मवेशियों को खिला रही थी, तो आरोपी व्यक्तियों ने कथित घटना को अंजाम दिया और उसे निर्वस्त्र कर दिया और उसे नग्न होने के लिए मजबूर किया। उल्लेखनीय है कि प्रतिपक्षीकार संख्या-2 द्वारा दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रार्थी संख्या-1 रविकांत अभियुक्त संख्या-1 है। यह बिंदु दोनों मामलों का प्रमुख बिंदु प्रतीत होता है कि रविकांत प्रतिपक्षी संख्या-2 के घेर में कैसे पाया गया था। प्रतिपक्षी संख्या-2 के अनुसार, जब रविकांत ने अन्य आरोपियों के साथ उसके साथ छेड़छाड़ की और उसके कपड़े फाड़ दिए और जब उसने अपने परिवार के सदस्यों को बुलाया, तो उसका पति और देवर महेश और बबलू वहां पहुंच गए। रविकांत को छोड़कर बाकी आरोपी व्यक्ति भागने में सफल हो गए और रविकांत को उसके पति ने पकड़ लिया, फिर आरोपी व्यक्ति लाठी, डंडा लेकर वहां पहुंच गया और उसके पति और देवर को पीटना शुरू कर दिया। शोर सुनकर ग्रामीण अनिल और जल्लू वहां पहुंचे और उन्हें बचाया।

14. इसके विपरीत, यह आवेदकों का आरोप है कि रविकांत को प्रतिपक्षी संख्या-2 के घेर में ले जाया गया जहां उसके साथ गंभीर रूप से मारपीट की गई, जिससे उसे कई गंभीर और घातक चोटें आईं।

15. आवेदकों द्वारा दर्ज कराई गई प्राथमिकी में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि किस कारण से अभियुक्त रविकांत को अपने घेर में ले गया था। आवेदकों द्वारा इसके लिए कोई मकसद या कारण नहीं बताया गया है। इस बिंदु पर प्रतिपक्षी संख्या-2 और अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अगर रविकांत को उसके घर से प्रतिपक्षी संख्या-2 के घेर में जबरदस्ती ले जाया गया होता, तो यह घटना रविकांत के घर में हुई होगी, न कि प्रतिपक्षी संख्या-2 के घेर में। रविकांत कोई बच्चा, बीमार या बीमार व्यक्ति नहीं था कि उसे प्रतिपक्षी संख्या-2 के परिवार के सदस्य आसानी से ले जा सकें। उनका तर्क

यह है कि वस्तुतः आवेदकों की प्राथमिकी के तथ्यों में मामले के सही तथ्य नहीं हैं क्योंकि रविकांत ने अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ मिलकर प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ कथित अपराध किया और जब यह बात प्रतिपक्षी संख्या-2 के परिवार के सदस्यों के संज्ञान में आई, तो उन्होंने प्रतिपक्षी संख्या-2 की गरिमा और सम्मान को बचाने की कोशिश की और ऐसी स्थिति में, कथित अपराध की प्रकृति और गंभीरता को देखते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के परिवार के सदस्यों ने भी अपने बचाव में बल का इस्तेमाल किया। इसलिए, रविकांत को कुछ चोटें आई होंगी। इसका मतलब यह नहीं है कि उपरोक्त परिस्थितियों में, यदि आवेदक पक्ष को प्रतिपक्षी संख्या-2 की तरफ से अधिक और गंभीर चोटें आईं, तो यह कहा जा सकता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 के परिवार के सदस्य हमलावर थे या उन्होंने निजी रक्षा की सीमा को पार कर लिया था। इस पर विचारण के दौरान ही फैसला हो सकता है। यह भी चिंता का विषय है कि केवल रविकांत को ही क्यों पकड़ा गया और बाकी बच निकले। इस संबंध में, यदि प्रतिपक्षी संख्या-2 के मामले के तथ्य की जांच की जाती है, तो निष्पक्ष तस्वीर दिखाई देती है कि रविकांत को पीड़ित के परिवार के सदस्यों द्वारा पकड़ा गया था, जो कि कथित घटना के कारण पक्ष संख्या-2 के विपरीत था।

16. यह उल्लेखनीय है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां किसी भी पिछली घटना के बारे में प्राथमिकी प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से दर्ज की गई थी। दोनों प्राथमिकी को एक ही तारीख, स्थान और समय पर हुए अपराध के बारे में दर्ज किया गया है। ऐसी स्थिति में, विचारण के दौरान साक्ष्य लेने के बाद ही यह निर्णय लिया जा सकता है कि कौन सा पक्ष हमलावर और सही अपराधी था और किस पक्ष ने बचाव में कार्य किया और किस पक्ष ने अपराध किया जिसके बारे में दोनों पक्षों ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई है।

17. प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से एक बहुत ही सामान्य लेकिन गंभीर आरोप लगाया गया है कि चूंकि विजयवीर का भाई पुलिस सेवा में है, इसलिए प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से सर्वश्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद, उनकी प्राथमिकी दर्ज नहीं की जा सकी और जब पुलिस को धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दिया गया, दोनों विवेचनाधिकारी ने उक्त पुलिस कर्मियों के परिवार के सदस्यों को बचाने की कोशिश की और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। जहां तक इस आरोप का सवाल है, आमतौर पर इस संबंध में कोई सबूत पेश नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह फिर से उल्लेखनीय है कि आवेदकों ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि आवेदक आरोपी विजयवीर का भाई पुलिस सेवा में नहीं है। चूंकि कानून के अनुसार कोई प्रतिकूल अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, इसलिए, विचारण न्यायालय या इस न्यायालय द्वारा ऐसी कोई धारणा नहीं बनाई गई है, लेकिन यह प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष के लिए खुला है कि वह साक्ष्य प्रस्तुत करें कि प्राथमिकी दर्ज करने से इनकार करना और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना अनुचित अभ्यास का परिणाम था।

18. आवेदकों के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है'

(क) पेप्सी फूड लि और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, (1998) 5

एस.सी.सी. 749 के मामले में यह माना गया है कि आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर मामला है। मजिस्ट्रेट को आरोपों की प्रकृति, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की जांच करनी चाहिए। उसे मूक दर्शक के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए, उसे सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी और आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए जवाब प्राप्त करने के लिए शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से खुद सवाल कर सकता है और यह जांच कर सकता है कि क्या अभियुक्त द्वारा अपराध करने का कोई प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का विचार है कि इस मिसाल में निर्धारित सिद्धांत आवेदकों के पक्ष में लागू नहीं होते हैं।

(ख) सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई, (2015) 4 एस.सी.सी. 609; मेसर्स जी.एच.सी.एल. कर्मचारी स्टॉक ऑप्शन ट्रस्ट बनाम मेसर्स इंडिया इंफोलाइन लिमिटेड, ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 1433; ललन कुमार सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2022 लाइव लॉ (एस.सी.) 833. पहले मामले में मामला मजिस्ट्रेट को भेज दिया गया था और सभी मामलों में यह माना गया था कि मजिस्ट्रेट को विधिवत रूप से अपने दिमाग का उपयोग करके एक राय बनानी चाहिए और रिकॉर्ड करना चाहिए कि आदेश के माध्यम से आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, हालांकि विस्तृत आदेश पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

उपरोक्त प्रथम तीन उद्धरणों में मामला आर्थिक अपराधों के कमीशन के संबंध में था।

(ग) कृष्णालाल चावला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 10-11-2010 के अपने निर्णय में यह उल्लेख किया है कि और अन्य, मनु/एस.सी./0161/2021, पत्नी और पति के बीच वैवाहिक विवाद था और दोनों पक्षों द्वारा एक दूसरे के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी, दोनों अलग-अलग रह रहे थे। सर्वोच्च न्यायालय का विचार था कि मामले को लंबित रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, इसलिए प्राथमिकी और पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया गया। यहां तथ्य काफी अलग हैं। इसलिए इस नज़ीर में निर्धारित सिद्धांतों को आवेदकों के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है।

(घ) विनीत कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, मनु/एस.सी./0351/2017 मामले में अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 452, 376 घ एवं 323 के तहत तलब किया गया था और सम्मन आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया था, इसलिए अपील को प्राथमिकता दी गई। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपील की अनुमति दी गई थी, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि आरोपी और शिकायतकर्ता, उसके पति और बेटे के बीच वित्तीय लेनदेन थे, और शिकायतकर्ता के पति और बेटे द्वारा जारी किए गए चेक के अनादरण पर, धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत कार्यवाही पहले ही आरोपी द्वारा शुरू की गई थी। पीड़िता के महज़ आरोप के अलावा रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं था, इसलिए अपील की अनुमति दी गई

और पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया गया। इस मामले के तथ्य काफी अलग हैं, यहां तक कि आवेदकों द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि कथित तारीख, समय और स्थान पर कोई भी घटना नहीं हुई थी।

(ङ) सुंदर बाबू और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2009) 14 एस.सी.सी. 244 के मामले में, यह विवाद धारा 498-क और धारा 4 डीपी अधिनियम, 1961 के अंतर्गत वैवाहिक प्रकृति का था, उच्चतम न्यायालय ने पाया कि कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण थी और यह अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नुकसान पहुंचाने के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की गई थी। इस मामले में तथ्य और सबूत काफी अलग हैं, इसलिए, यह नज़ीर आवेदकों के पक्ष में लागू नहीं होती है।

(च) अहमद अली कुरैशी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2020) 13 एस.सी.सी. 435 में, पारिवारिक संपत्तियों के विभाजन से उत्पन्न दुश्मनी के कारण शिकायत दुर्भावनापूर्ण और वैमनस्यपूर्ण प्रकृति की पाई गई थी। इस मामले में तथ्य काफी अलग हैं और इस मामले में निर्धारित सिद्धांत आवेदकों के पक्ष में लागू नहीं होते हैं।

(छ) एम.एन ओझा और अन्य बनाम ए.के श्रीवास्तव और अन्य, (2009) 9 एस.सी.सी. 682 में, शिकायत को शिकायतकर्ता के खिलाफ देय ऋण राशि की बरामदगी के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा उनकी आधिकारिक क्षमता में की गई कार्रवाई के प्रतिवाद के रूप में पाया गया था। इस मामले के तथ्य उद्धृत मामले के तथ्यों से पूरी तरह से अलग हैं। इसलिए, दोनों मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में अंतर के कारण, यह निर्णय आवेदकों के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है।

19. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि एक अपराध उसी तारीख, समय और स्थान पर हुआ जिसके लिए दोनों पक्षों ने आपराधिक कार्यवाही शुरू की है। साक्ष्य के मूल्यांकन के बाद ही सच्चाई सामने आएगी। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से शुरू की गई आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। आवेदकों द्वारा लिए गए आधार प्रतिपक्षी संख्या-2 के मामले को अस्वीकृत करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करके, कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मुकदमे के पूरा होने के बाद सच्चाई को सामने आने दें।

20. इस प्रकार इस न्यायालय का विचार है कि प्रस्तुत आवेदन योग्यता से रहित है और कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है।

आदेश

धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आवेदन को मामले की योग्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 839

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 6693/2023

मोहरपाल मौर्य **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **.. विपक्षी**

अधिवक्ता आवेदक: श्री नागेन्द्र कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: श्री सुनील श्रीवास्तव, ए.जी.ए., श्रीमती मैमूना फातिमा

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 366, 1208, 176, 372, 373 और 376एबी लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012-धारा 5/6- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956-धारा 5- 14 से 15 वर्ष की आयु की पीड़िता की अनैतिक तस्करी-पीड़िता को एक के बाद एक आरोपी व्यक्तियों को बेचा गया और उन्होंने पीड़िता के साथ सुविधानुसार विवाह कर लिया- उसका इकबालिया बयान और साथ ही सुसंगत बयान है

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बालचंद @ बलिया (1977) एआईआर 2447, 1978 एससीआर(1)535
2. राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह (2002) 3 एससीसी 598
3. नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2013) 15 एससीसी 422
4. गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1978) 1 एससीसी 118
5. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमर मणि त्रिपाठी (2005) 8 एससीसी 21
6. मन्नो लाल जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 89
7. आशिम बनाम एनआईए (2022) 1 एससीसी 695
8. ईश्वरजी नागाजी माली बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 55
9. प्रह्लाद सिंह भाटी बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली एवं अन्य (2001) 4 एससीसी 280
10. महिपाल बनाम राजेश कुमार (2020) 2 एससीसी 118
11. सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 458
12. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य. (2022) 3 एनसीसी 501
13. दीपक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य.. (2022) 8 एससीसी 559
14. राजेंद्र अग्रवाल उर्फ बबलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, जमानत आवेदन संख्या 833/2023
15. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य. (2022) 3 एससीसी 501 ए बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार(2022) 4 एससीसी 497

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान मामले के तथ्य निराशाजनक हैं जिनसे प्रदर्शित होता है कि यह मामला अनैतिक बाल तस्करी का है। पीड़िता करीब 14-15 साल की नाबालिग बालिका है और सफाईकर्मी का काम करती थी। पीड़िता के पिता द्वारा दर्ज कराई गई एफ.आई.आर. के अनुसार, वह 29.9.2020 से लापता थी और सह-अभियुक्तों में से एक छविनाथ पर संदेह था कि उसने पीड़िता को बहला-फुसला कर विधिपूर्ण संरक्षण से उसका व्यपहरण कर लिया है।

अनुवादित

2. यह प्रतीत होता है कि पीड़िता 25.2.2022 को अर्थात, एक वर्ष पांच माह बाद वापस लौट आई थी। दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत पीड़िता के बयान दर्ज किए गए थे। जिसमें उसने बार-बार हुए यौन उत्पीड़न के कटु अनुभव को साझा किया था और यह बताया कि कैसे उसे एक अभियुक्त से अन्य अभियुक्त को बेचा गया था।

3. पीड़िता के अनुसार, उसकी अनैतिक तस्करी का कटु अनुभव तब शुरु हुआ जब सह-अभियुक्त गौरव उर्फ सोनू ने उसे अपने भाई के घर में लगभग 45 दिनों तक रखा था, जहां उसने उसके साथ कई बार बलात्कार किया था और बाद में र 60,000/- में वर्तमान आवेदक को बेच दिया था।

4. इसके बाद, आवेदक ने पीड़िता के साथ विवाह कर लिया था और वह उसके साथ लगभग एक वर्ष तक रही थी और उसके बाद गौरव ने फिर उससे संपर्क कर अन्य सह-अभियुक्त सुरेंद्र कुमार सिंह उर्फ शनि रु. 50,000/- में को बेच दिया था जहां वह पुनः लगभग 3-4 महीने तक उसकी पनी की तरह रही थी, हालांकि, उसने बार-बार उसके साथ मारपीट की और एक दिन पीड़िता उस जगह से भाग गई और उसके बाद सह-अभियुक्त रिंकू से मिली तब पीड़िता ने उसके साथ कोर्ट मैरिज कर लिया और वहां पति-पत्नी की तरह रहने लगी और उसके बाद पीड़िता को उसके घर से ढूंढ लिया गया था।

5. आवेदक के अधिवक्ता वकील श्री नागेंद्र कुमार सिंह ने तर्क दिया है कि आवेदक ने पीड़िता को भुगतान कर नहीं खरीदा है, बल्कि वे बिना किसी दबाव के विवाह करने के उपरान्त पति-पत्नी के रूप में एक साथ रहे थे और पीड़िता अपनी इच्छा से उनका साथ छोड़ दिया था। पीड़िता ने अपने द्वारा दिये गये बयानों में भी यह नहीं बताया है कि आवेदक ने उसके साथ कोई क्रूरता की है या उसने उसके साथ मारपीट की है या उसकी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक संबंध बनाए हैं। वह किसी भी तरह से बाल तस्करी का हिस्सा नहीं है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि सह-अभियुक्त सुरेंद्र कुमार उर्फ शनि को को इस न्यायालय की समकक्ष पीठ द्वारा पहले ही जमानत दे दी गई है जिस पर पीड़िता द्वारा आरोप लगाया है कि उसने न केवल उसके साथ विवाह किया बल्कि उसको प्रताड़ित भी किया था। अतः आवेदक दिनांक 16.10.2022 से जेल में है, उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

7. राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री सुनील श्रीवास्तव और उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति की ओर से विद्वान अधिवक्ता सुश्री मैमूना फातिमा ने जमानत का विरोध कर तर्क दिया कि यह बाल तस्करी का मामला था, जिसमें पीड़िता को एक के बाद अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को बेचा था

और अभियुक्त व्यक्तियों ने पीड़िता के साथ सहूलियत लिए शादी कर लिया था और पीड़िता का यौन उत्पीड़न भी किया था। सभी आरोपी एक गिरोह के रूप में काम कर रहे थे और सह-आरोपियों में से एक (गौरव) सरगना था, जो दलाल के रूप में काम करता था। पीड़िता ने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत दर्ज अपने बयान में अपने कटु अनुभव का विस्तार से वर्णन किया है। इसलिए आवेदक को जमानत पर रिहा नहीं किया जा सकता है और इस न्यायालय अभियुक्त व्यक्तियों से सख्ती से निपटना सकती है।

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।

9. <u>जमानत पर विधि - एक सारांश</u>

(क) मूल नियम संभवतः ज़मानत है, न कि जेल।

(ख) द.प्र.सं. की धारा 439 के तहत जमानत प्रदान करने की शक्ति व्यापक है, लेकिन असीमित विवेकाधिकार वाली नहीं है, जिसका प्रयोग न्यायपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए न कि मनमाने तरीके से।

(ग) जमानत दिये जाने हेतु आवेदन पर आदेश पारित करते समय, यह प्रदर्शित करने के लिए विस्तृत विवरण अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं है कि मामला ऐसा है जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होगी या, इसके विपरीत, दोषमुक्ति होगी। हालाँकि, कोई न्यायालय अपने निर्णय को मामले के महत्वपूर्ण पहलुओं से पूरी तरह से अलग नहीं कर सकता है जैसे अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोप; अभियोग की प्रकृति और गंभीरता: सामान्य आशय या उद्देश्यः यदि आरोप उचित संदेह से परे साबित हो जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होती है तो दण्ड़ादेश की गंभीरता अभियुक्तों द्वारा गवाहों को प्रभावित किये जाने की युक्तियुक्त आशंका; साक्ष्यों से छेड़छाड़; अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति और परिस्थितिः अपराध को दोहराए जाने की संभावना; अभियोजन के मामले में तुच्छता अभियुक्तों का आपराधिक इतिहास और अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया समाधान। यदि एकत्रित साक्ष्य /सामग्री प्रथम दृष्टया घटनाओं की एक कड़ी का निर्णाण करती है न्यायालय किसी विधिविरुद्ध जमाव में भागीदार अथवा उसका भाग होने पर भी विचार कर सकता है साथ-साथ परिस्थितिजन्य साक्ष्य जो जमानत के आधार नहीं हैं, पर विचार कर सकता है। समानता एकमात्र आधार नहीं हो सकता है बल्कि जमानत

आवेदन पर विचार किये जाने के लिए सुसंगत कारक हो सकता है।

(घ) जेल में अत्यधिक भीड़ और मामलों के निपटारे में अत्यधिक विलम्ब, जब विचाराधीन कैदियों को जेल में रहने के लिए मजबूर किया जाता है (जिसमें उनकी गलती नहीं है ऐसी संभावित स्थितियों को जन्म देगा जिसमें संविधान के अनुच्छेद 21 का उपयोग न्यायोचित हो सकता है अन्य कारकों पर भी विचार किया जा सकता है।

(देखें, राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बालचंद @ बलिया (ए.आई.आर. 1977 एससी 2447: 1978 एस.सी.आर. (1) 535; गुरुचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एस.सी.सी. 118); उ. प्र. राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एस.सी.सी. 21; प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य (2010) 14 एस.सी.सी. 496; महिपाल बनाम राजेश कुमार, (2020) 2 एस.सी.सी. 118; ईश्वरजी माली बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 55; मन्नो लाल जयसवाल बनाम उ. प्र. राज्य और अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 89; आशिम बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी (2022) 1 एससीसी 695; सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य और अन्यः 2022 एससीसी ऑनलाइन एस. सी. 458; मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2022) 3 एस.सी.सी. 501; और, दीपक यादव बनाम उ. प्र. राज्य और अन्य (2022) 8 एस.सी.सी. 559)

10. न्यायालय ने पीड़िता की उदासीनता पर संज्ञान लिया है। न्यायालय ने सीडब्ल्यूसी, शाहजहाँपुर की अध्यक्ष को यह सत्यापित करने के लिए तलब किया है कि क्या समिति ने पीड़िता के प्रति सभी जिम्मेदारियों का निष्ठापूर्वक निर्वहन किया है या नहीं? यह बताया गया कि पीड़िता को उसके अधिकारों के बारे में सूचित किया गया था और यह कि लिखित में पत्राचार कर सहायक व्यक्ति की सुविधा का लाभ उठा सकती है। हालांकि पीड़िता ने इससे इनकार कर दिया है। उसने सी.डब्ल्यू.सी. के सदस्यों के समक्ष बयान कर उसी बात को दोहराया जैसा कि उसने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 में बयान किया था कि वह अपनी मां के साथ रहना चाहती है।

11. जमानत आवेदन संख्या 833 सन् 2023, राजेंद्र अग्रवाल उर्फ बब्लू बनाम स्टेट ऑफ उ. प्र. और अन्य, में इस न्यायालय ने सी.डब्ल्यू.सी. के कामकाज के संबंध में कुछ दिशा-निर्देश जारी किए हैं और जिसके सुसंगत अंश निम्नवत हैः-

"25. समिति की उपर्युक्त संदर्भित प्रक्रिया और समिति के अतिरिक्त कार्य और दायित्व ने बाल कल्याण समिति को एक बड़ी जिम्मेदारी सौंपते है कि समिति अपनी बैठक बाल गृह के परिसर या बाल गृह के नजदीक किसी स्थान पर या अधिनियम के तहत संचालित किसी ऐसे संस्थान में जहां बच्चों को देखभाल और सुरक्षा अपेक्षित है, में आयोजित करेगी। आगे यह उपबंध है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि जब सत्र चल रहा हो तो मामले से असंबद्ध किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को कमरे में उपस्थित रहने रहे और केवल उन्हीं व्यक्तियों को उपस्थित रहने की अनुमति है, जिनकी उपस्थिति में बच्चा सहज महसूस करता हो। समिति अपनी बैठकें बच्चों के अनुकूल परिसर में आयोजित करेगी जो किसी भी तरह से न्यायालय कक्ष जैसा नहीं होना चाहिए, समिति को माह में कम से कम एक बार बाल सुझाव पुस्तिका की समीक्षा करनी होगी।

26. बाल कल्याण समिति की अवधारणा किशोर न्याय अधिनियम, 2015 और किशोर न्याय नियमावली, 2019 के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण कारक है। वर्तमान मामले में आरोपों की गंभीरता को देखते हुए, पीड़ित को एक अनुभवी परामर्शदाता द्वारा एक अति विशेष और प्रभावी परामर्श की अपेक्षा है।

27. उपर्युक्त वैधानिक प्रावधानों की पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट है कि ऐसे में बाल कल्याण समिति की एक बड़ी ज़िम्मेदारी हो जाती है जब वह ऐसी नाबालिग पीड़ित लड़की के मामले को देख रही है, जो कई वर्षों से लगातार शारीरिक और मानसिक कष्ट सह रही है। ऐसे मामले में केवल उपर्युक्त वैधानिक प्रावधानों का अनुपालन करना बाल कल्याण समिति के लिए मात्र औरचारिकता नहीं होगा बल्कि इसको अधिक सतर्क दृष्टिकोण अपनाना अपेक्षित है। ऐसे मामलों में पीड़ित के साथ अतिरिक्त सावधानी और उत्तरदायित्व के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए और इसके लिए बाल कल्याण के सदस्यों को एक प्रशिक्षित सहायता प्रणाली की आवश्यकता होगी, जो ऐसे पीड़ितों की कष्ट को ध्यान में रखते हुए उनकी काउंसलिंग कर सके।

28. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) ने बाल कल्याण समिति के लिए एक प्रशिक्षण मॉड्यूल जारी किया है। यह मॉड्यूल अधिक लाभकारी सिद्ध होगा यदि इसमें यौन उत्पीड़न के शिकार नाबालिग पीड़ितों के प्रति व्यवहार के लिए आपेक्षित प्रशिक्षण को शामिल किया जाता है।

29. बलात्कार के कृत्य/अपराध का प्रभाव क्षणिक नहीं होता है बल्कि यह पीड़िता के मन, हृदय, शरीर और आत्मा में छप जाता है और बाल

कल्याण समिति का उद्देश्य काउंसलिंग के माध्यम से ऐसी स्मृतियों को मिटाने के लिए ऐसे प्रयास करना है और यह काम सुप्रक्षित परामर्शदाताओं द्वारा किया जाना चाहिए जिनके पास उचित मार्गदर्शन के तहत ऐसे नाबालिग पीड़ितों के इलाज का अनुभव हो।

30. उपरोक्त के दृष्टिगत, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को उनके सचिव के माध्यम से वर्तमान मामले के जैसे मामलों से निपटने के लिए बाल कल्याण समिति और इसके सदस्यों को अधिक जिम्मेदार, अधिक उत्तरदायी, अधिक उदार और अधिक दयालु बनाने हेतु सभी हितधारकों के साथ बातचीत की प्रक्रिया शुरू करके उपरोक्त मुद्दे पर विचार करने का निर्देश दिया जाता है।

31. उपरोक्त कार्यवाही करते समय किशोर न्याय नियमावली, 2019 के नियम 35 के प्रावधानों पर भी विचार करना होगा जो बाल संरक्षण संस्थान में बच्चों के लिए मानसिक स्वास्थ्य का उपबंध करता है। उक्त निमयावली के उपनियम 5 में उपबंध है कि बच्चों की नियमित और व्यक्तिगत चिकित्सा के लिए प्रत्येक संस्थान में प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की सेवाएँ उपलब्ध होंगी अथवा वाह्य एजेंसियों का सहयोग प्राप्त होगा जैसे बाल मार्गदर्शन केंद्रों, मनोविज्यान मनोचिकित्सक विभागों या इसी के समान सरकारी या गैर-सरकारी एजेंसियाँ।

32. उपरोक्त प्रक्रिया का उद्देश्य नाबालिग पीड़िता को वास्तविक और उचित परामर्श प्रदान करना है और यह कयावाद उपरोक्त अवलोकन तक सीमित नहीं होगा। इस न्यायालय की उपर्युक्त संदर्भित राय पर कार्रवाही करने के लिए एक ठोस योजना बनाना विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों की जिम्मेदारी है।"

12. इस मामले के उपर्युक्त तथ्यात्मक पहलुओं, विरोधी पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता का तर्क और उपरोक्त संदर्भित विधि पर विचार करने के उपरान्त यह विदित होता है कि वर्तमान मामले में, एक नाबालिग लड़की ने बहुत कष्ट सहा है, न केवल उसके शरीर को कई लोगों द्वारा कई बार आघात पहुंचाया गया है, बल्कि उसे मानसिक आघात भी झेलना पड़ा है। ऊपरोक्त उल्लिखित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पीड़िता को एक के बाद अन्य आरोपी व्यक्तियों को बेचा गया था और उन्होंने सुविधा के लिए उससे विवाह कर लिया था और पीड़िता का यौन उत्पीड़न किया था और कुछ आरोपियों ने उसका शारीरिक उत्पीड़न भी किया था। पीड़िता को एक वस्तु की तरह खरीदने और बेचने के साक्ष्य मौजूद हैं। इंसान को एक वस्तु की तरह बेचने का यह कृत्य समाज पर एक गहरे काले धब्बे के अलावा और

कुछ नहीं था और आवेदक सहित अभियुक्त न केवल पीड़ित के प्रति कारित अपराध के आरोपी हैं, बल्कि वे सम्पूर्ण समाज के प्रति भी आरोपी हैं।

13. आवेदक और सह-अभियुक्तों ने एक नाबालिग लड़की के साथ खुले बाजार में बिकने वाली सब्जी की तरह व्यवहार किया और न केवल सुविधा के अनुसार विवाह किया बल्कि सहमति या बिना सहमति से उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए जो कि गैरकानूनी था क्योंकि सुस्थापित विधि यह है कि शारीरिक संबंध बनाने के लिए नाबालिग लड़की की सहमति, यदि कोई हो, महत्वहीन है।

14. वर्तमान मामले में, आवेदक और पीड़िता सहित अभियुक्तों के बीच एकमात्र रिश्ता केवल उसके शरीर के साथ था। मन या भावनाओं का कोई रिश्ता नहीं था।

15. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि पीड़िता अपनी इच्छा से उसके साथ रही थी और आवेदक किसी भी बाल तस्करी का हिस्सा नहीं था, दं.प्र.सं. की धारा 161 एवं 164 के तहत दर्ज पीड़िता का इकबालिया बयान और सुसंगत बयान सहित अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के विपरीत प्रतीत होता है।

16. यह भी अभिलेख पर लाया गया है कि सह-अभियुक्त सुरेंद्र कुमार उर्फ शनि को इस न्यायालय की समकक्ष पीठ द्वारा पहले ही जमानत दे दी गई है. हालांकि, उसमें उल्लिखित कारण मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2022) 3 एससीसी 501 और बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार, (2022) 4 एससीसी 497 के मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णय की शर्तों से मेल नहीं खाते हैं जहां पर उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि आरोपियों को जमानत देते समय, उच्च न्यायालय को इस संबंध में विशिष्ट निष्कर्ष / कारण बताना चाहिए। सह-अभियुक्त मामले में समकक्ष पीठ द्वारा दिए गए कारण इस प्रकार है:-

"न्यायालय में प्रस्तुत तर्कों के आलोक में अभिलेख का परिशीलन करने और इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों साक्ष्यों की प्रकृति और साक्ष्यों से छेड़छाड़ करने की संभावना को इंगित करने वाली किसी भी ठोस सामग्री की अनुपस्थिति पर समग्र दृष्टिकोण लेने के उपरान्त, इस न्यायालय का विचार है कि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जा सकता है।"

17. समकक्ष पीठ द्वारा प्रदत्त कारणों और मनोज कुमार खोखर और बृजमणि देवी (उपरोक्त) में अभिनिर्णीत विधि पर विचार करने के उपरान्त, ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ प्रासंगिक तथ्यों को समकक्ष पीठ के समक्ष अभिलेख पर नहीं लाया गया था और यह कि यह बाल तस्करी का मामला था इसलिए, यह न्यायालय समानता

के आधार पर जमानत आवेदन को अस्वीकार कर रहा है।

18. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है और यह विचार करते हुए कि आवेदक बाल तस्करी के साठगांठ में शामिल है और यह न केवल पीड़ित, एक नाबालिग बालिका के प्रति अपराध है, बल्कि यह समाज के प्रति अपराध है और इसलिए, न्यायालय की सुविचारित राय है कि थाना निगोही, जनपद-शाहजहाँपुर में मुकदमा अपराध संख्या 438 सन् 2020 में भा.दं.सं. की धारा 366, 120-बी, 176, 372, 373, 376 ए.बी., पोस्को अधिनियम की धारा 3/4 और अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम, 1956 की धारा 5 के तहत आवेदक के पक्ष में जमानत का ऐसा कोई मामला नहीं बनता है।

19. निर्णय सुनाने से पूर्व, भारत में बाल तस्करी के खतरे का कुछ संदर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

20. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों द्वारा सूचित अपराध आंकड़ों को संकलित और उन्हें इसके मैनुअल प्रकाशन में प्रकाशित करता है। वर्ष 2022 की रिपोर्ट में यह प्रकाशित किया गया था कि 2018 से 2020 के दौरान 18 साल से कम उम्र के बच्चों की तस्करी के मामलों की संख्या क्रमशः 941, 883 और 750 थी और 2018 से 2020 के दौरान 18 साल से कम उम्र के पीड़ित बच्चों की संख्या क्रमशः 2772, 2863 और 2222 थी। ये आँकड़े बताते हैं कि 2018 से 2020 तक भारत में 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों, जिनकी संख्या क्रमशः 2383, 2693 और 2135 है, को बचाया गया है। उपरोक्त सभी विवरण सभी राज्यों द्वारा उपलब्ध कराई गई समेकित रिपोर्ट पर आधारित है।

21. अगर हम भारत में तस्करी विरोधी कानूनों को देखें तो वे है-भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 हैं जो मानव तस्करी और भिखारियों और इसी प्रकार के अन्य बलात् श्रम को प्रतिबंधित करता है और इस प्रावधान का उल्लंघन करने पर कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा। इस संबंध में एक अधिनियम यथा-अनैतिक तस्करी (रोकथाम) अधिनियम, 1956 है जिसका मुख्य उद्देश्य जीवन जीने के एक संगठित साधन के रूप में तस्करी का उन्मूलन करना है। इस संबंध में अन्य विधियां भी हैं, जैसे बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986, इत्यादि।

22. भारत सरकार साथ-साथ राज्य सरकार के पास समर्पित मंत्रालय और आयोग है तथा कई गैर-सरकारी संगठन हैं जो बच्चों की मानव तस्करी को खत्म करने के साथ-साथ बच्चों को अवैध तस्करी के जाल से बचाने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास कर रहे हैं। अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। बाल तस्करी मानवता और समाज के विरुद्ध एक अपराध है, इसलिए

देश के प्रत्येक नागरिक को ऐसे तस्करी की रोकथाम के लिए कुछ प्रयास करने चाहिए और इसके लिए नागरिकों को सजग रहना होगा और बच्चों की किसी भी संदिग्ध गतिविधि या अन्यथा पाए जाने की दशा में, उन्हें तुरंत संबंधित पुलिस स्टेशन या एनजीओ या किसी अन्य उपयुक्त स्थान पर रिपोर्ट करना होगा और साथ ही हमें भी बाल श्रम, बाल भिखारियों को हतोत्साहित करने के लिए समाज में एक आंदोलन खड़ा करना होगा ताकि बाल तस्करी के जाल को तोड़ा जा सके और निर्दोष बच्चे उनके जाल में न फंस सकें, साथ ही हमें मुक्त कराए गए बच्चे बच्चों की मदद करने के लिए समाज के रूप में उनका ध्यान रखना होगा।

23. तदनुसार, उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि आवेदक के जमानत आवेदन को उपरोक्त टिप्पणियों के साथ निरस्त किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 845

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 31499 /2022

जगदीश ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री पवन कुमार शुक्ला, श्री राम कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ऋषि चड्ढा, ए.जी.ए., श्री ललित कुमार शुक्ल

A. भा०दं०सं०- धारा 302, 307 एवं धारा 27/30 आयुध अधिनियम-सूचनाकर्ता का चचेरा भाई जब खेत जोतकर अपना ट्रैक्टर लेकर गाँव आ रहा था, तो गाँव के ही आठ नामित अभियुक्त अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी, जिसमें आठ लोग गम्भीर रूप से घायल हो गये जिसमें उसका एक पड़ोसी रूप सिंह भी था, जिसकी उपचार के दौरान मृत्यु हो गई- अपराध में वर्तमान आवेदक के पुत्र ने उसकी लाईसेंसी बंदूक लाकर दी और जिससे उसने अंधाधुन्ध गोलियाँ बरसायीं और चोटिल गवाहों को भी गोली लगी एवं मृतक की भी गोली लगने से ही मृत्यु हुई। शेष नामित अपराधियों के विरुद्ध आरोपपत्र नहीं दाखिला किया गया है व आरोप पत्र केवल वर्तमान आवेदक और उसके पुत्र के विरुद्ध ही दाखिल किया गया है- मृतक का सूचनाकर्ता से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, जबकि वह आवेदक का जानकार है। वास्तव में सूचनाकर्ता के लोग आवेदक के लोगों के साथ मारपीट करने आए और फायरिंग की, जिससे मृतक की मृत्यु हो गई जो बीच बचाव करने आया था और इस सम्बन्ध में मृतक के भाई ने प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज करायी थी, परन्तु उसमें अंतिम रिपोर्ट प्रेषित कर दी गई और वर्तमान में एक विरोध याचिका दाखिल की गई है, जिसपर अभी निर्णय आना शेष है- प्रथम सूचना रिपोर्ट एक कथित चक्षुदर्शी ने दर्ज करायी थी, जिसमें आठ लोगों को अपराधी के रूप में नामित किया गया था और शस्त्र भी नामित किये गये थे, परन्तु मात्र आवेदक और

उसके पुत्र को छोड़कर बाकी सभी के विरुद्ध कोई साक्ष्य न मिलने के कारण कोई कार्यवाही नहीं की गई अतः सूचनाकर्ता द्वारा अभियोग पक्ष में अतिश्योक्ति की गई है, जिसका अर्थ यह है कि अभियोजन कथानक पूर्ण रूप से मिथ्या है- प्रारम्भ में आवेदक और उसके पुत्र के अतिरिक्त और लोग भी अपराधी के रूप में नामित किये गये थे, परन्तु अन्वेषण के दौरान साक्ष्य के बयानों के आधार पर आरोपपत्र केवल वर्तमान आवेदक और उसके पुत्र के विरुद्ध दाखिल किया गया और विशिष्ट रूप से यह आरोप लगाया गया कि आवेदक के पुत्र ने आवेदक को उसकी लाईसेंसी बंदूक लाकर दी, जिससे आवेदक ने अंधाधुंध फायरिंग की, जिसके कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और छह अन्य घायल हो गए। सभी को आग्नेयास्त्र की चोटें लीं केवल इस कारण कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में ज्यादा व्यक्ति अपराधी के रूप में नामित किये गये हैं, सम्पूर्ण अभियोजन कथानक को झूठा नहीं करार दिया जा सकता। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन कि वास्तविकता कुछ और अलग है, इस आधार पर विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती क्योंकि मृतक के भाई द्वारा लिखायी गई प्रथम सूचना रिपोर्ट पर अन्वेषण के बाद अंतिम रिपोर्ट लगा दी गई है-अतः आवेदक का घटना स्थल पर उपस्थित होना व उसके द्वारा अंधाधुन्ध गोली चलाना व जिसके कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाना एवं छह अन्य लोगों का घायल हो जाना को प्रथम दृष्टया असत्य मानने का कोई कारण नहीं है और यह देखते हुए कि यह एक संगीन अपराध है, अतः वाद के गुण-दोष को प्रभावित किये बगैर इस जमानत याचिका को निरस्त किया जाता है। (1 Is 12)

B. जमानत देने के लिये विचारात्मक कारक है, अपराध होने की परिस्थितियों की प्रकृति और गंभीरता; पीड़ित और गवाहों के संदर्भ में आरोपी की स्थिति और हैसियत ; आरोपी के न्याय प्रक्रिया से भागने की संभावना ; अपराध दोहराने की संभावना मामले में संभावित सजा की कठोर संभावना के साथ अपने स्वयं के जीवन को खतरे में डालना; गवाहों के साथ छेड़छाड़ मामले का इतिहास और साथ ही इसकी जांच और अन्य प्रासंगित आधार, जो अन्य महत्वपूर्ण कारकों पर ध्यान करते हुए, व्यापक रूप से निर्धारित नहीं किये जा सकते हैं। प्रासंगिक कारक कौन से हो सकते हैं, इसका कोई निर्धारित नियम (स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूला) कभी भी नियत नहीं किया जा सकता है, हालांकि, कुछ महत्वपूर्ण कारक जिन्हें अन्य कारकों के साथ हमेशा विचारणीय माना जाता है, वो हैं, प्रथम दृष्टया अभियुक्त की संलिप्तता, आरोप की प्रकृति और गंभीरता, सजा की कठोरता, आरोपी का चरित्र, स्थिति और उसकी अवस्थिति से संबंधित है। (10, 12) (E-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूचीः</u>

1. राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बलचंद @ बलिया (1977 एआईआर 2447, 1978 एससीआर (1) 535)।
2. राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंहः (2002) 3 एससीसी 598 और नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश शासन (2013) 15 एससीसी 422)।

3. उत्तर प्रदेश शासन प्रति अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एससीसी 21)।

4. गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एससीसी 118)।

5. मन्नो लाल जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश शासन और अन्यः 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 89 आशिम बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी (2022) 1 एससीसी 695

6. ईश्वरजी नागाजी माली बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 55)।

7. प्रहलाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी आफ दिल्ली और अन्यः (2001) 4 एससीसी 280)।

8. महिपाल बनाम राजेश कुमार, (2020) 2 एससीसी 118 और सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य और अन्यः 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 458)।

9. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2022)3 एनसीसी 501, दीपक यादव प्रति उत्तर प्रदेश राज्य व एक अन्य (2022) 8 एससीसी 559)।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

विधि व्यवस्था विचारित:

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पवन कुमार शुक्का, ब्रीफ होल्डर श्री राम कुमार, सूचनाकर्ता की तरफ से विद्वान अधिवक्ता श्री ललित कुमार शुक्ला एवं राज्य की तरफ से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री ऋषि चड्डा को ध्यानपूर्वक सुना तथा पत्रावली का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान आपराधिक प्रकीर्ण प्रथम जमानत याचिका आवेदक / अभियुक्त जगदीश द्वारा मु०अ०सं० 328, वर्ष 2021, अंतर्गत धारा 302, 307 भा०द०सं० एवं धारा 27/30 आयुध अधिनियम, थाना बलदेव, जिला मथुरा के अंतर्गत न्यायालय सत्र न्यायाधीश, मथुरा द्वारा उसके जमानत प्रार्थनापत्र संख्या- 370, वर्ष 2022 को आदेश दिनांक 17.02.2022 के द्वारा निरस्त करने के उपरान्त इस न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है।

3. प्रथम सूचना के तथ्य से विदित होता है कि सूचनाकर्ता का चचेरा भाई दिनांक 25.10.2021 को जब खेत जोतकर अपना ट्रैक्टर लेकर गाँव आ रहा था, तो गाँव के ही आठ नामित अभियुक्त जो अपने हाथ में लाईसेंसी बंदूक, देशी अवैध बंदूक, अवैध पौना, देशी तमन्चा, देशी बंदूक लिये हुए थे, जिनमें से चार पुरुष और चार महिलाएं थीं, सभी उसके चचेरे भाई के पीछे दौड़ कर आए और जैसे ही वह ट्रैक्टर से उतर कर घर की तरफ भागा, उन्होंने अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी, जिसमें आठ लोग गम्भीर रूप से घायल हो गये जिसमें उसका एक पड़ोसी रूप सिंह भी था, जिसकी उपचार के दौरान मृत्यु हो गई।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पवन कुमार शुक्ला ने प्रबलतापूर्वक आवेदन किया कि मजरूब गवाह के बयानों में

भी केवल इतना बताया गया है कि अपराध में वर्तमान आवेदक के पुत्र ने उसकी लाईसेंसी बंदूक ला कर दी और जिससे उसने अंधाधुन्ध गोलियाँ बरसायीं और चोटिल गवाहों को भी गोली लगी एवं मृतक की भी गोली लगने से ही मृत्यु हुई। शेष नामित अपराधियों के विरूद्ध आरोपपत्र नहीं दाखिल किया गया है व आरोप पत्र केवल वर्तमान आवेदक और उसके पुत्र के विरूद्ध ही दाखिल किया गया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मृतक का सूचनाकर्ता से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, जबकि वह आवेदक का जानकार है। वास्तव में सूचनाकर्ता के लोग आवेदक के लोगों के साथ मारपीट करने आए और फायरिंग की, जिससे मृतक की मृत्यु हो गई जो बीच बचाव करने आया था और इस सम्बन्ध में मृतक के भाई ने प्रर्थम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज करायी थी, परन्तु उसमें अंतिम रिपोर्ट प्रेषित कर दी गई और वर्तमान में एक विरोध याचिका दाखिल की गई है, जिसपर अभी निर्णय आना शेष है।

6. प्रर्थम सूचना रिपोर्ट एक कथित चक्षुदर्शी ने दर्ज करायी थी, जिसमें आठ लोगों को अपराधी के रूप में नामित किया गया था और शस्त्र भी नामित किये गये थे, परन्तु मात्र आवेदक और उसके पुत्र को छोड़कर बाकी सभी के विरूद्ध कोई साक्ष्य न मिलने के कारण कोई कार्यवाही नहीं की गई। अतः सूचनाकर्ता द्वारा अभियोग पक्ष में अतिश्योक्ति की गई है, जिसका अर्थ यह है कि अभियोजन कथानक पूर्ण रूप से मिथ्या है।

7. बहस का विरोध शासन की तरफ से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री ऋषि चड्डा एवं श्री ललित कुमार शुक्ला ने किया कि सभी मजरूब साक्ष्यों ने पूर्ण रूप से अभियोजन कथानक का समर्थन किया है कि वर्तमान आवेदक घटनास्थल पर मौजूद था, उसी के बेटे ने घर से बंदूक लाकर उसको दी और बाद में उसके द्वारा अंधाधुन्ध फायरिंग की गई, जिसके कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और छह अन्य लोग गोली लगने के कारण घायल हो गए। मृत्यु पश्चात शव विच्छेदन प्रपत्र व चोट प्रपत्र से प्रर्थम दृष्टया यह विदित होता है कि सभी को आग्नेयास्त्र की चोट लगी थी। अतः आरोप की गम्भीरता व आवेदक का कृत्य देखते हुए यह याचिका निरस्त की जाए।

<u>जमानत की विधि</u>

8. (क) सारगर्भित धारणा से संभवतः मूल नियम, जमानत है न कि कारागार . (देखें : **राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बलचंद बलिया (1977 एआईआर 2447, 1978 एससीआर (1) 535)।** भा.दं.सं. की धारा 439 के तहत जमानत देने की शक्ति के व्यापक आयाम हैं तथा न्यायालय को असीमित तो नहीं परन्तु पर्याप्त विवेकाधिकार प्रदान किये गये हैं, जिसका उपयोग न तो सामान्य रूप से और न ही मनमाने रूप से, परन्तु न्यायसंगत रूप से

करने के लिए प्रस्तावित किया गया है। (देखेंः **राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंहः (2002) 3 एससीसी 598 और नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश शासन (2013) 15 एससीसी 422)।**

(ख) जमानत देने के लिये विचारात्मक कारक है, अपराध होने की परिस्थितियों की प्रकृति और गंभीरता; पीड़ित और गवाहों के संदर्भ में आरोपी की स्थिति और हैसियत; आरोपी के न्याय प्रक्रिया से भागने की संभावना अपराध दोहराने की संभावना; मामले में संभावित सजा की कठोर संभावना के साथ अपने स्वयं के जीवन को खतरे में डालना; गवाहों के साथ छेड़छाड़ मामले का इतिहास और साथ ही इसकी जांच और अन्य प्रासंगित आधार, जो अन्य महत्वपूर्ण कारकों पर ध्यान करते हुए, व्यापक रूप से निर्धारित नहीं किये जा सकते हैं। (देखें : **गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एससीसी 118)।**

(ग) प्रासंगिक कारक कौन से हो सकते हैं, इसका कोई निर्धारित नियम (स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूला) कभी भी नियत नहीं किया जा सकता है, हालांकि, कुछ महत्वपूर्ण कारक जिन्हें अन्य कारकों के साथ हमेशा विचारणीय माना जाता है, वो हैं, प्रथम दृष्टया अभियुक्त की संलिप्तता, आरोप की प्रकृति और गंभीरता, सजा की कठोरता, आरोपी का चरित्र, स्थिति और उसकी अवस्थिति से संबंधित है। (देखें: **उत्तर प्रदेश शासन प्रति अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एससीसी 21)।**

(घ) **मन्नो लाल जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश शासन और अन्यः 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 89** में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि, जब अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोपित किया गया है और जब उनकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है और यह कहा गया हो कि वो विधि विरुद्ध जमाव के सदस्य थे, तो उनकी व्यक्तिगत भूमिका और/या व्यक्तिगत आरोपी द्वारा किया गया अत्युक्ति महत्वपूर्ण और / या प्रासंगिक नहीं होती है।

(ङ) **आशिम बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी: (2022) 1 एससीसी 695** में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि एक बार जब यह स्पष्ट हो जाये कि समयोचित विचारण संभव नहीं हो पायेगा और आरोपी कारागार में एक दीर्घ अवधि व्यतीत कर चुका है, तो न्यायालय आम तौर पर उसे जमानत पर छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

(च) आरोपी को जमानत पर रिहा करने का आधार मात्र इसलिए कि अभियोजन का मामला, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, नहीं हो सकता है, अगर जांच के दौरान साक्ष्य/तथ्य एकत्र किये गये हों और प्रथम दृष्टया घटनाओं की पूरा श्रृंखला स्थापित हो गई है। (देखें: **ईश्वरजी नागाजी माली बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 55)**। (छ) यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जमानत देने के लिए विधायिका ने "साक्ष्य" के स्थान पर "विश्वास करने के लिए उचित आधार" शब्दों का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है कि जमानत देने से

संबंधित न्यायालय केवल इतनी संतुष्टि कर सकता है कि क्या आरोपी के खिलाफ कोई वास्तविक मामला है और अभियोजन पक्ष आरोप के समर्थन में प्रथम दृष्टया साक्ष्य पेश करने में सक्षम होगा। (देखें: **प्रहलाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी आफ दिल्ली और अन्यः (2001) 4 एससीसी 280)।**

(ज) मुक्त न्याय का एक मौलिक आधार है, जिसके लिए हमारी न्यायिक प्रणाली प्रतिबद्ध है, कि वो कारक जो न्यायाधीश के मानस में जमानत को अस्वीकृत या स्वीकृत करने के लिए मूल्यांकित किये गये, वो पारित आदेश में उल्लेखित किये जायें। मुक्त न्याय इस धारणा पर आधारित है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि स्पष्ट और निस्संदेह रूप से होता हुआ दिखना भी चाहिए। न्यायसंगत निर्णय देने का न्यायाधीशों का कर्तव्य इस प्रतिबद्धता का हृदय है। (देखें: **महिपाल बनाम राजेश कुमार, (2020) 2 एससीसी 118 और सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य और अन्यः 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 458)।**

(झ) जमानत के आवेदन पर आदेश पारित करते समय विस्तृत विवरण का उल्लेख, इस धारणा के नाते नहीं किया जा सकता है कि दाखिल किया गया और विशिष्ट रूप से यह आरोप लगाया गया कि आवेदक के पुत्र ने आवेदक को उसकी लाईसेंसी बंदूक लाकर दी, जिससे आवेदक ने अंधाधुंध फायरिंग की, जिसके कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और छह अन्य घायल हो गए। सभी को आग्नेयास्त्र की चोटें लगीं।

मामला ऐसा है, जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि हो सकती है या इसके विपरीत, दोषमुक्ति हो सकती है। हालांकि, जमानत के आवेदन पर निर्णय लेने वाला न्यायालय मामले के भौतिक पहलुओं से अपने निर्णय को पूरी तरह से अलग नहीं कर सकता, जैसे आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप; अगर आरोप यथोचित संदेह से परे साबित होते हैं और इसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होती है तो सजा की कठोरता अभियुक्त द्वारा गवाहों को प्रभावित करने की उचित आशंका साक्ष्यों से छेड़छाड़ ; अभियोजन के मामले में निराधारता; आरोपी का आपराधिक पूर्ववृत्त; और आरोपी के विरुद्ध आरोप के समर्धन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि। (देखें: **मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (2022) 3 एनसीसी 501, दीपक यादव प्रति उत्तर प्रदेश राज्य व एक अन्य (2022) 8 एससीसी 559)।**

9. उपरोक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में यह विदित होता है कि प्रारम्भ में आवेदक और उसके पुत्र के अतिरिक्त और लोग भी अपराधी के रूप में नामित किये गये थे, परन्तु अन्वेषण के दौरान साक्ष्य के बयानों के आधार पर आरोपपत्र केवल वर्तमान आवेदक और उसके पुत्र के विरूद्ध 10. केवल इस कारण कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में ज्यादा व्यक्ति अपराधी के रूप में नामित किये गये हैं, सम्पूर्ण अभियोजन कथानक को झूठा नहीं करार दिया जा सकता। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन कि वास्तविकता कुछ और अलग है, इस आधार पर विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती क्योंकि मृतक के भाई द्वारा लिखायी गई प्रथम सूचना

रिपोर्ट पर अन्वेषण के बाद अंतिम रिपोर्ट लगा दी गई है।

11. अतः आवेदक का घटना स्थल पर उपस्थित होना व उसके द्वारा अंधाधुन्ध गोली चलाना व जिसके कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाना एवं छह अन्य लोगों का घायल हो जाना को प्रथम दृष्टया असत्य मानने का कोई कारण नहीं है और यह देखते हुए कि यह एक संगीन अपराध है, अतः वाद के गुण-दोष को प्रभावित किये बगैर इस जमानत याचिका को निरस्त किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 849

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 3 /1991

गंगा राम ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री आर.बी. सहाय, श्री राधेश्याम यादव, श्री राधेश्याम यादव (ए.सी.), श्री सुधीर भारती

अधिवक्ता प्रतिवादी: डी.जी.ए., ए.जी.ए.

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302 - चुनौती - दोषसिद्धि - आरोपी अपने घर से फरसा लेकर आया और बकरी द्वारा फसल चरने के मुद्दे पर मृतक पर हमला कर दिया - आरोपी को फरसा सहित पुलिस थाने लाया गया - अभियुक्त अपने घर से फरसा लेकर आया और बकरी द्वारा फसल चराने के मुद्दे पर मृतक पर हमला कर दिया, अभियुक्त को फरसा सहित थाने लाया गया-प्रत्यक्षदर्शियों के बयान पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 अभियोजन संस्करण का समर्थन करते हैं- पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि चोटों के कारण मृतक की मृत्यु हुई और यह एक हत्या थी - अपीलकर्ता के पास मृतक, जो उसका रिश्तेदार था, को मारने का कोई मकसद या इरादा नहीं था, किसी भी साक्ष्य से मकसद का पता नहीं चलता - आरोपी की कुल कैद की अवधि बिना छूट के चार वर्ष है, घटना वर्ष 1978 की है और अब आरोपी 75 वर्ष का हो चुका है, सजा को आरोपी द्वारा पहले से भुगती गई अवधि तक घटा दिया गया है - सजा के सुधारात्मक सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए 'आनुपातिकता का सिद्धांत' अपनाया जाना है। (पैरा 1 से 34)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. खोकन@ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ का सेंट (2021) वाद (एससी) 80
2. अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12
3. प्रवत चंद्र मोहंती बनाम उड़ीसा राज्य (2021) 3 एससीसी 529 परदेशीराम बनाम एम.पी. राज्य (2021) 3 एससीसी 238
4. तुकाराम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250
5. बी.एन. कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (1994) एसयूपीपी 1 एससीसी 304
6. वीरन व अन्य बनाम एम.पी. राज्य (2011) 5 एससीसी 300

7. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य (1977) एससी 1926
8. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 7 एससीसी 257
9. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य (2017) एआईआर एससी 1166
10. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 12 एससीसी 532
11. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734
12. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह (2014) 7 एससीसी 323
13. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) 3 एससीसी 441
14. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य (2016) 1 एससीसी 463

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान आपराधिक अपील सत्र परीक्षण संख्या 287 वर्ष 1978 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश- VI. फतेहपुर द्वारा पारित दिनांक 17.04.1979 के निर्णय और आदेश को चुनौती देती है, जिसके अन्तर्गत विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-VI, फतेहपुर ने आरोपी अपीलकर्ता, गंगा राम को दोषी ठहराया गया। भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आई.पी.सी.') की धारा 302 के अन्तर्गत अपराध किया गया और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है।
2. अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राधेश्याम यादव और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।
3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि मृतक भन्ना उर्फ मन्ना यादव ग्राम बुधरामऊ, थाना असोथर, जिला फ़तेहपुर का निवासी है, आरोपी गंगा राम मृतक के बड़े भाई का बेटा है और दोनों के घर पास-पास हैं, दिनांक 7.4.1978 को मृतक और आरोपी के बीच झगड़ा हो गया क्योंकि आरोपी की बकरी मृतक के खेत में घुस गई थी और फसल चर गई थी, दिनांक 08.04.1978 को शाम के समय मृतक भन्ना अपने घर के दरवाजे पर भैंस का दूध निकाल रहा था। उनकी बेटी, केएम मीना, शिकायतकर्ता/ सूचनाकर्ता (पीडब्लू-1) भी इस्लाम की झोपड़ी के सामने खड़ी थी और शेओ भजन (पीडब्लू-3) से बात कर रही थी। मृतक का भतीजा भुल्ली (पीडब्लू-2) भी मृतक के दरवाजे पर बैठा था। अचानक फरसा से लैस आरोपी उसके घर से आये और मृतक पर हमला करना शुरू कर दिया. पहला झटका लगने पर मृतक जमीन पर गिर गया और आरोपी ने उस पर और हमला किया। जब वह लगभग मर गया तो आरोपी उसे छोड़कर गांव के दक्षिण की ओर भाग गये। भन्ना की तुरंत मृत्यु हो गई और उसका शव चौपाल के अंदर एक खाट पर रख दिया गया।
4. मुखबिर/पीडब्लू-1 की मौखिक रिपोर्ट, जिसे राम सजीवन उपाध्या (पीडब्लू-7) द्वारा लिखा गया था, पर आरोपियों

के विरुद्ध उसी दिन लगभग 11.00 बजे पुलिस स्टेशन असोथर में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और जांच की गई थी। बाहर। जांच शुरू होने पर, जांच अधिकारी श्री सदानंद रॉय ने शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता केएम मीना (पीडब्लू-1), और अन्य गवाह भुल्ली (पीडब्लू-2) के बयान दर्ज किए, जो शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता के साथ आए थे, जांच अधिकारी उसी रात घटना स्थल पर पहुंचे और 9.4.1978 को सुबह 6:00 बजे आगे की जांच शुरु की, जांच रिपोर्ट (प्रदर्श के०ए०-2) तैयार की गई और शव को सील कर पोस्टमॉर्टम के लिए भेज दिया गया। खून से सना हुआ और सादी मिट्टी (प्रदर्श 4 और 5) भी एकत्र किया गया और सील कर दिया गया और पुनर्प्राप्ति मेमो (फर्द) (प्रदर्श के०ए०-8) तैयार किया गया। उसी समय सूचना मिली कि अभियुक्त गंगा राम गांव के दक्षिण की ओर एक मठ में छिपा हुआ है. जांच अधिकारी केदार प्रसाद उर्फ लक्कड़ और तेज नारायण के साथ वहां गए और आरोपी को गिरफ्तार कर लिया। अभियुक्त की निशानदेही पर वह फरसा बरामद किया गया जिससे उसने हत्या की थी, जिसका रिकवरी मेमो तैयार कर प्रदर्श-का/9 अंकित किया गया। गवाहों के बयान दर्ज किये गये. फरसा सहित आरोपी को पुलिस स्टेशन लाया गया और शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के अन्तर्गत प्राथमिकी (एग्जा. का-11) दर्ज की गई।

5. 28.05.1978 को अन्य चश्मदीद गवाह शेओ भजन (पी.डब्लू.-2) का बयान धारा 161 सीआरपीसी के अन्तर्गत दर्ज किया गया था।

6. अन्वेषण पूरी हो गई और आरोपी अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र (प्रदर्श के०ए०-12) प्रस्तुत किया गया।

7. आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और 18.12.1978 को मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया क्योंकि कथित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था। दिनांक 16.03.1978 को विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त के विरुद्ध धारा 302 आईपीसी के अन्तर्गत आरोप तय किये।

   अभियुक्त ने आरोप के प्रति स्वयं को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाने की मांग की।

8. मुकदमा शुरु हुआ और अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों की जांच की, जो इस प्रकार हैं: -

1	कुमारी मीना, शिकायतकर्ता, मृतक की बेटी ।	पी.डब्लू. 1
2	भुल्ली (घटना का प्रत्यक्षदर्शी)	पी.डब्लू. 2
3	शेओ भजन (घटना का प्रत्यक्षदर्शी)	पी.डब्लू. 3
4	केदार प्रसाद (अभियुक्त की	पी.डब्लू. 4

अनुवाद

	गिरफ्तारी के गवाह)	
5	सदानंद राय (जांच अधिकारी)	पी.डब्लू. 5
6	डॉ. एम.एम.एस.ए. खान ने पोस्टमार्टम किया और पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार की।	पी.डब्लू. 6
7	राम सजीवन उपाध्याय, जिन्होंने एफ.आई.आर. दर्ज की है और धारा 302 आईपीसी के अन्तर्गत मामला भी दर्ज कर लिया।	पी.डब्लू. 7

9. दृष्टि संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किये गये और साबित किये गयेः

1	प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 08.04.1978	प्रदर्श के०ए०-1
2	खून से सना हुआ और सादी मिट्टी का पुनर्प्राप्ति मेमो दिनांकित	प्रदर्श के०ए०-8
3	09-04-1978	प्रदर्श के०ए०-9
4	'फ़ारसा' का पुनर्प्राप्ति ज्ञापन दिनांक 09.04.1978	प्रदर्श के०ए०-2
5	पंचायतनामा दिनांक 09.04.1978	प्रदर्श के०ए०-7
6	दिनांक 09.04.1978 के सूचकांक के साथ साइट योजना	प्रदर्श के०ए०-10
7	दिनांक 09.04.1978 के सूचकांक के साथ साइट योजना	प्रदर्श के०ए०-13
8	पोस्टमार्टम रिपोर्ट दिनांक 10.04.1978	प्रदर्श के०ए०-17
9	रासायनिक परीक्षक एवं सीरोलॉजिस्ट की रिपोर्ट	प्रदर्श के०ए०-19
10	मकसूद आरिफ का शपथ पत्र, दिनांक 03.04.1979	प्रदर्श के०ए०-21
11	शिव रतन लाल का शपथ पत्र, दिनांक 03.04.1979	प्रदर्श के०ए०-18
12	श्याम लाल यादव का शपथ पत्र, दिनांक 04.04.1979	प्रदर्श के०ए०-20

10. आरोपी ने सीआरपीसी की धारा 313 के अन्तर्गत दर्ज किए गए अपने बयान में कथित अपराध करने से इनकार किया है। उसने कहा है कि वह पिछली शाम को अपनी बहन के यहां गया था और जब वह अपने घर लौटा तो उसे मृतक का शव मिला। उस समय अन्वेषण अधिकारी भी मौजूद थे, जो उसे थाने ले आये और गांव के प्रधान के कहने पर उसे झूठा फंसा दिया।

11. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों के आधार पर यह पाया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का अपराध उचित संदेह से परे साबित हुआ है, यह निष्कर्ष दर्ज करने के बाद कि मृतक को लगी चोटें अभियुक्त-अपीलकर्ता के कारण हुई थी और आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और उसे भा०द०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई। दरअसल मुकदमे की अवधि के दौरान गंगा राम एक विचाराधीन कैदी थे और इस तरह उन्हें 15 साल और कुछ महीनों तक जेल में रखा गया था।

उनके अधिवक्ता न्यायालय में प्रस्तुत नहीं हुए और इसीलिए न्यायालय ने उनके विरुद्ध गैर- जमानती वारंट जारी किया और 27.01.2020 से वह जेल में बंद हैं।

12. घटना साल 1978 की है।

13. अधिवक्ता की तर्क कि सूचक मृतक की बेटी है और वे आरोपी के शत्रु थे। पीडब्लू-5 के

साक्ष्य से भी पता चलेगा कि अपीलकर्ता को अपराध में शामिल किया गया है। सीआरपीसी की धारा 313 के अन्तर्गत दर्ज किए गए बयान में, आरोपी अपीलकर्ता ने कहा है कि उसने कोई अपराध नहीं किया है। सूचक/पीडब्लू 1 मृतक की बेटी है और उसने आरोपी गंगा राम को हमलावर और अपराध का लेखक बताया है, जबकि वास्तव में मृतक उसकी देखभाल कर रहा था और उसका पालन-पोषण कर रहा था। सीआरपीसी की धारा 313 के अन्तर्गत अभियुक्त-अपीलकर्ता के बयानों को दोषसिद्धि के निर्णय को वापस करते समय विचारण न्यायालय द्वारा पूरी तरह से अनदेखा कर दिया गया है। आरोपी- अपीलकर्ता, गंगा राम, अब 27.01.2020 से फिर से जेल में है, क्योंकि उसे इस न्यायालय द्वारा उसकी सजा के अनुसार जमानत दे दी गई थी, उसे गिरफ्तार कर लिया गया था क्योंकि उसकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ था।

14. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष ने आरोपी के लिए मृतक की हत्या करने का कोई मकसद स्थापित नहीं किया है और यह अभियोजन पक्ष के संस्करण के बारे में उचित संदेह पैदा करता है।

15. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आईपीसी की धारा 302 के अन्तर्गत दोषसिद्धि का मामला नहीं बनता है क्योंकि धारा 300 आईपीसी के अन्तर्गत कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं बनता है। विकल्प के रूप में, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिक से अधिक, मृत्यु की घटना मानवघाती मृत्यु है, यह हत्या की श्रेणी में नहीं आएगी और आईपीसी की धारा 304 ।। या धारा 304 के अन्तर्गत दंडनीय होगी। यदि न्यायालय निर्णय लेती है कि आरोपी आईपीसी की धारा 302 के अन्तर्गत दोषी है, तो आरोपी को कारावास की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है क्योंकि यह आरोपी की ओर से कोई भयानक कृत्य नहीं है।

16. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आरोपी को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं है और शिकायतकर्ता का आरोपी को झूठा फंसाने का कोई मकसद नहीं था। अभियुक्त की निशानदेही पर हमले के हथियार की बरामदगी द्वारा समर्थित विश्वसनीय मौखिक गवाही है, इस प्रकार यह तर्क कि हेतु की अनुपस्थिति अभियोजन पक्ष के संस्करण के बारे में संदेह पैदा करती है, टिकने के लिए कोई आधार नहीं है। अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों के साक्ष्य इस न्यायालय को मामले में कोई उदारता दिखाने की अनुमति नहीं देंगे। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि भा०द०सं० की धारा 300 की सामग्री को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही माना गया है जिन्होंने मामले में तथ्यों पर विधि लागू किया है।

17. मृतक भन्ना उर्फ मन्ना यादव के शव का पोस्टमार्टम दिनांक 10.04.1978 को लगभग 2:15 बजे अपराहन डॉ. एमएमएसए खान, चिकित्सा अधिकारी, जिला चिकित्सालय, फ़तेहपुर द्वारा किया गया। शव विच्छेदन रिपोर्ट प्रदर्श के०ए०-13 तैयार की गई और मृतक के शरीर पर निम्नलिखित शव विच्छेदन चोटें पाई गई:-

1. बाएं टेम्पोरल क्षेत्र के ऊपर मौजूद खंडित हड्डी के नीचे 7.5 सेमी x 5 सेमी की टूटी हुई

चोट। बाएं कान के 5 सेमी ऊपर, ऊतक रक्त का विस्तार दर्शाता है।

2. माये के दाहिनी ओर मौजूद 7.5 सेमी x 2.5 सेमी का घिसा हुआ घाव। दाहिनी आंख की आँह से 1.25 सेमी ऊपर। नीचे की हड्ड्डियाँ टूट गई।

3. 6.5 सेमी x 1.5 सेमी x हड्डी की गहराई का कटा हुआ घाव बाएं गाल पर तिरछा मौजूद है जो मुंह के बाएं कोने से 1.25 सेमी ऊपर से बाएं गाल के मध्य तक फैला हुआ है। किनारे साफ़ कटे हुए, नीचे की हड्ड्डियाँ साफ़ कटी हुई, घाव दूर-दूर।

4. बायीं ठुड्डी पर चोट संख्या 3 के नीचे 5 सेमी x 1.5 सेमी x हड्डी गहराई में 2.5 सेमी तक चीरा हुआ है।

5. चेहरे के दाहिनी ओर और नाक के ऊपर 5 सेमी x 3.5 सेमी का घिसा हुआ घाव, फ्रैक्चर के नीचे की हड्डिया।

6. 5 सेमी x 0.8 सेमी x त्वचा की गहराई में कटा हुआ घाव, छाती के बार्थी ओर बायर्थी निपल से 7.5 सेमी ऊपर मौजूद है। मार्जिन साफ़ कट.

7. बाहरी स्कैपुलर क्षेत्र पर तिरछा मौजूद 10 सेमी x 0.8 सेमी x त्वचा गहरा घाव। हाशिया साफ कट गया।"

18. डॉक्टर की राय में मृतक की उम्र लगभग 50 वर्ष थी तथा चोटों की अवधि लगभग दो दिन थी। बाहरी जांच में डॉक्टर को निम्नलिखित चोटें लगी :-

मृतक औसत कद काठी का था. रिगर मोर्टिस अनुपस्थित था. आंखें बंद थीं और मुंह भी बंद था. पेट फूला हुआ था और इलियाक फोसा में हरा रंग का मलिनकिरण मौजूद था।

19. संचयी प्रकृति में पी०डब्ल्यू०-1 से पी०डब्ल्यू०-7 के साक्ष्य पर विचार करते हुए, मृत्यु को मानव हत्या कहा जा सकता है। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि मृतक के शरीर पर लगी चोटें ही मृत्यु का कारण होंगी और यह मानव हत्या है।

20. हम आश्वस्त हैं कि यह मानव वध मृत्यु थी, लेकिन, यह देखा जाएगा कि क्या यह भा०द०सं० की धारा 302 या धारा 304 भाग। या भाग ।। के अन्तर्गत दंडनीय मानव वध मृत्यु है?

21. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो पढ़ता है

> "299. गैर इरादतन मानव वधः जो कोई मृत्यु कारित करने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के इरादे से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है। गैर इरादतन हत्या का अपराध।"

22. 'हत्या' और 'गैर इरादतन हत्या' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भम तब पैदा होता है, जब

न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को अनदेखा कर देते हैं और खुद को छोटे-छोटे निष्कर्षों में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका आईपी कोड की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता यदि वह कार्य, जिससे मृत्यु कारित हुई हो, किया गया हो-	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।
आशय	
(ए) मौत कारित करने के (आशय से; या	1) मृत्यु कारित करने के आशय से, या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने मृत्यु होने की संभावना हो; या	ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता के इरादे से जिससे हो कि इससे उस व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है, जिसे नुकसान पहुंचाया गया है;
जानकारी	जानकारी
(सी) इस जान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि यह कृत्य तुरंत इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है.

23. खोकन@खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 मुकदमा (एससी) 80 में नवीनतम निर्णय में, जहां तथ्य इस मामले के समान थे, शीर्ष न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता की अपील की अनुमति दी है और सजा में बदलाव किया है। अनवेरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय जो विधिक अभिभावक से अपहरण से संबंधित था, जिसमें यह स्थापित किया गया था कि न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए प्रतिपादित किया कि अभियुक्त द्वारा पहले ही जेल में बिताई गई सजा की अवधि को कम करके निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धांत को पूरा किया जाएगा। हमारे मामले में, यह उतना वीभत्स मामला नहीं है जहां इन सभी निर्णयों के आलोक में आरोपियों से निपटा नहीं जा सकता। पर्वत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529 और परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एससीसी 238 में निर्णय भी अभियुक्तों के लाभ के लिए होंगे।

24. चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समय जांच पर और तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250 में

रिपोर्ट किया गया के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, और बीएन कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में रिपोर्ट किए गए मामले में, हमारी सुविचारित राय है कि यह हत्या की श्रेणी में नहीं आने वाली मानव हत्या का मामला था।

25. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्ष से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त को यह जान और आशय था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। इसलिए तत्काल मामला आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है, किया गया अपराध वीरान और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार धारा 304 आग-1 के अंतर्गत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

26. हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। हमारे द्वारा चर्चा की गई मिसालें हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देंगी, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध आईपीसी की धारा 302 के अन्तर्गत दंडनीय नहीं है, लेकिन यह गैर इरादतन हत्या है, जो आईपीसी की धारा 304 (भाग 1) के अन्तर्गत दंडनीय है।

27. यह हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के वैकल्पिक अनुरोध पर ले जाता है कि सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

28. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (एआईआर 1977 एससी 1926] में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, फोकस व्यक्ति में दंडविद्या में रुचि है और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो बिगड़ गया है आपराधिकता और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंकवाद में' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल पैदा करती है उसके दिमाग पर चोट। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक

रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते हैं।"

29. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य [(2004) 7 एससीसी 257] में 'उचित वाक्य' की व्याख्या यह कहते हुए की गई थी कि वाक्य अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए, सजा की अवधि निर्धारित करते समय न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए, सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

30. रावदा शशिकला बनाम स्टेट ऑफ एपी एआईआर 2017 एससी 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम स्टेट ऑफ यूपी [(2010) 12 एससीसी 532), गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734] में दिए गए निर्णयों का उल्लेख किया। सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, ((2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, ((2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463] और ने दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और विधि के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना विधि का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में विधि को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के अन्तर्गत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस

प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

31. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, सभी उपाय किए जाने चाहिए उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए आवेदन किया।

32. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अवर न्यायालय द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

हम यह भी दर्ज कर सकते हैं कि तथ्यात्मक परिदृश्य से गुजरते समय अपीलकर्ता के पास उस मृतक, जो उसका रिश्तेदार था, को खत्म करने का कोई मकसद या इरादा नहीं था। किसी भी सबूत से आशय का पता नहीं चलता।

33. इसलिए, तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता और चिकित्सा साक्ष्य के साथ चश्मदीद गवाहों की मौखिक गवाही हमें आरोपी अपीलकर्ता की सजा को 302 भा०द०सं० से धारा 304 भाग। आईपीसी में बदलने की अनुमति देती है। तथ्य यह है कि आरोपी अपीलकर्ता को 05.02.1993 को जमानत पर रिहा करने का आदेश दिए जाने से पहले 2 साल से अधिक और कुछ महीनों के लिए आक्षेपित निर्णय पारित होने के बाद मुकदमे के बाद कैद में रखा गया था और उसके बाद वह 27.01.2020 से जेल में कैद है। गैर- जमानती वारंट जारी होने के बाद, जिसका अर्थ है कि आरोपी अपीलकर्ता की कारावास की कुल अवधि अब बिना छूट के लगभग चार वर्ष है। घटना वर्ष 1978 की है, तथ्य यह है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता 75 वर्ष की आयु का है, सजा को अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पहले ही काट ली गई अवधि तक कम कर दिया गया है, अर्थात लगभग चार वर्ष की छूट के साथ। कारावास से छूटने के चार सप्ताह के भीतर 5000/- रुपये का जुर्माना जमा करना होगा। यदि चार सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा नहीं किया गया तो उसे तीन महीने की डिफ़ॉल्ट सजा भुगतने के लिए जेल में डाल दिया जाएगा।

34. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अभिलेख और कार्यवाही तुरंत अवर न्यायालय को वापस भेजी जाए।

35. विद्वान न्याय मित्र श्री राधेश्याम यादव ने इस न्यायालय की कुशलतापूर्वक सहायता की है और वे उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति से 10,000/- रुपये की अपनी फीस के हकदार होंगे।

(2023) 5 ILRA 857

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 203/2023

वसीम खा ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: सुशील कुमार मिश्रा, विशाल निगम

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - उ.प्र. गैंगस्टर एवं समाज विरोधी (क्रियाकलाप निवारण) अधिनियम, 1986- धारा 18- अपीलकर्ता को दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है तथा गैंगस्टर एक्ट के तहत मामला दर्ज किया गया है तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम की धारा 14(1) के तहत अपीलार्थी की संपत्ति कुर्क की गई है - केवल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर जिला मजिस्ट्रेट ने संपत्ति कुर्क की है - अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि अपीलार्थी के मामले में अधिनियम की धारा 2 व 3 के प्रावधान लागू होते हैं। अभियोजन पक्ष यह भी साबित करने में विफल रहा है कि अपीलकर्ता द्वारा अर्जित व स्वामित्व वाली संपत्ति असामाजिक गतिविधियों से प्राप्त आय से अर्जित की गई है - धारा 16 के तहत जांच अधिनियम के अनुसार नहीं की गई, धारा 14, 15, 17 के प्रावधानों का भी अधिनियम के अनुसार पालन नहीं किया गया - इस प्रकार, इसके अनुसरण में शुरू की गई पूरी कार्यवाही दोषपूर्ण है - कुर्की का आदेश बिना सोचे-समझे यंत्रवत तरीके से पारित किया गया तथा मनमाना है। (पैरा 1 से 25)

बी. धारा 14 के तहत कार्यवाही करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के वस्तुनिष्ठ निर्धारण के लिए सामग्री होनी चाहिए कि वह व्यक्ति किसी गिरोह का सदस्य, नेता या आयोजक है और उसने अधिनियम के तहत किसी अपराध को अंजाम देते हुए कोई संपत्ति अर्जित की है। उसके आपराधिक कृत्य और उसके द्वारा अर्जित संपत्ति के बीच संबंध होना चाहिए। किसी अपराध में उसकी मात्र संलिप्तता उसकी संपत्ति को कुर्क करने के लिए पर्याप्त नहीं है। जिला मजिस्ट्रेट को आवश्यक सामग्री से संतुष्ट करने का प्रारंभिक दायित्व राज्य पर था- अधिनियम में यह प्रावधान नहीं है कि कुर्की से संपत्ति को मुक्त कराने की मांग करने वाले पीड़ित व्यक्ति को इसके अधिग्रहण के लिए आय का स्रोत साबित करना होगा। (पैरा 18)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2013) 83 एसीसी 902

2. श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2007) 2 एएलजे 483 सभी
3. राजबीर सिंह त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2018) एससीसी ऑनलाइन सभी 5986

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

1. पक्षों के बीच वाद की दलीलों का आदान-प्रदान हो गया है ।
2. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री सुशील कुमार मिश्रा, श्रीमती किरण सिंह, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता -1 को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।
3. उ०प्र० गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 (इसके बाद '**गिरोहबन्द अधिनियम**' के रूप में संदर्भित) की धारा 18 के तहत वर्तमान अपील अपीलकर्ता, अर्थात् वसीम खान द्वारा गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14(1) के तहत जिला अधिकारी, लखनऊ/ विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा 2021 के **वाद संख्या** 2850 कम्प्यूटरीकृत **वाद** सं. D202110460002850 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 13.4.2022 को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ अधिमानित किया गया है, जिसमें जिला अधिकारी, लखनऊ ने ग्राम तिरगवां तहसील मलिहाबाद, जिला लखनऊ में स्थित एक नए घर सहित अपीलकर्ता की निम्नलिखित संपत्ति कुर्क की है, और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अपीलकर्ता ने 2012 से 2021 के बीच असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर अर्जित आय से प्रश्नगत घर और भूमि (अचल संपत्ति) खरीदी है और अपीलकर्ता ने ऋण लिए बिना निम्नलिखित संपत्तियों को खरीदा है जबकि अपीलकर्ता ने ऋण लेकर स्कॉर्पियो और पल्सर मोटर साइकिल खरीदी है।

क्रमांक	राजस्व ग्राम का नाम	खतौनी खाता संख्या	गाटा संख्या	गाटे का कुल रकबा हेक्टेयर में	अन्य	विवरण	विवरण
					गाटे में अंश	अंश का क्षेत्र फल हे0 में	
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
1.	तितरगवां	61	152	0.278	1/2	0.139	
2.	तितरगवां	105	87	0.402	1/2	0.201	
3.	अहमदाबाद	30	438	1.044	1/18	0.058	
4.	अहमदाबाद	43	623	0.262	1/18	0.015	
5.	अहमदाबाद	44	625	0.435	1/18	0.024	
6.	अहमदाबाद	45	623	0.262	1/18	0.015	
	योग	6 खाता	6 किता	2.682		0.452	

4. अपीलकर्ता ने अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 08/विशेष न्यायाधीश, गिरोहबन्द अधिनियम, लखनऊ द्वारा वर्ष 2022 की आपराधिक अपील संख्या 84, वसीम खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, में पारित दिनांक 5.1.2023 के आक्षेपित

निर्णय और आदेश को निरस्त करने की भी प्रार्थना की है, जिसके तहत अपीलीय न्यायालय ने अपील को निरस्त कर दिया और वर्ष 2022 के आपराधिक विविध वाद संख्या 735 का अंततः निर्णय लिया और जिलाधिकारी, लखनऊ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 13.04.2022 की पुष्टि की।

5. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि शुरू में, दस वर्ष से अधिक समय पहले, एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 15.08.2012 को श्री सुलेमान बेग पुत्र सिकंदर बेग, निवासी गांव दौलतपुर मलिहाबाद, जिला लखनऊ द्वारा दर्ज की गई थी, जो अपीलकर्ता सहित छह व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 147, 307, 325, 504, 506 आईपीसी के तहत 2012 का वाद अपराध संख्या 342 के रूप में दर्ज की गई था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता द्वारा सरकारी भूमि पर एक निर्माण कार्य किया जा रहा था और ग्राम प्रधान होने के नाते, सुलेमान बेग ने अपीलकर्ता को उसका निर्माण करने से रोक दिया। इसके बाद अपीलकर्ता के विरुद्ध धारा 147, 148, 452, 504, 506 भारतीय दंड संहिता के तहत 2017 का वाद अपराध संख्या 535 और धारा 406, 323, 506 भारतीय दंड संहिता के तहत 2019 का वाद अपराध संख्या 81 और धारा 420, 468, 471, 506, 120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत 2019 का वाद अपराध संख्या 551 और धारा 419, 420, 467, 468, 471 भारतीय दंड संहिता के तहत 2019 का वाद अपराध संख्या 24 और धारा 2/3 उ.प्र. गिरोहबन्द अधिनियम के तहत वर्ष 2021 का वाद अपराध संख्या 173 दर्ज की गई।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को शत्रुता के कारण उपरोक्त मामलों में फंसाया गया है और गिरोहबन्द अधिनियम के तहत मामला अपीलकर्ता पर वर्ष 2021 में लगाया गया था, जबकि अपीलकर्ता की संपत्ति, जिसे जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.4.2022 द्वारा उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत कुर्क किया गया था, पैतृक संपत्ति होने के कारण गिरोहबन्द अधिनियम लगाने से बहुत पहले अपीलकर्ता द्वारा अधिग्रहित की गई थी।

7. तर्कों को विस्तृत करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि कुर्क की गई संपत्ति, जिसका संदर्भ ऊपर दिया गया है, वास्तव में अपीलकर्ता की पैतृक संपत्ति थी

8. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने पुनः यह अभिकथन प्रस्तुत किया कि उ.प्र गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 2/3 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट वाद अपराध संख्या 173/2021 के अनुकम में, जिला अधिकारी, लखनऊ-विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया और 13.04.2022 को अपीलकर्ता की संपत्तियों को कुर्क करने का आदेश पारित किया।

9. जिला अधिकारी, लखनऊ- विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा पारित उपरोक्त कुर्की आदेश दिनांक 13.04.2022 से व्यथित होकर, अपीलकर्ता द्वारा गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 15 (1) के तहत

विपक्षी पक्ष संख्या 2 के समक्ष अपीलकर्ता की संपत्तियों को कुर्की से मुक्त करने की मांग करते हुए दिनांक 14.9.2021 को अभ्यावेदन दिया गया था। हालांकि, उपरोक्त अभ्यावेदन को जिला अधिकारी, लखनऊ/विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा दिनांक 13.04.2022 के आदेश के तहत सरसरी तौर पर निरस्त कर दिया गया था। दिनांक 13.04.2022 के आक्षेपित आदेश को पारित करते हुए जिला अधिकारी, लखनऊ/विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने उन संपत्तियों के संबंध में गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 16 (1) के तहत मामले को विद्वान गिरोहबन्द न्यायालय में भेज दिया, जिन्हें उनके द्वारा मुक्त नहीं किया गया था; और, इसके बाद, विद्वान गिरोहबन्द न्यायालय ने गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 17 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 05.01.2023 को आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए कार्यवाही की।

10. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया है कि जिला अधिकारी, लखनऊ/विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने गलत और त्रुटिपूर्ण तरीके से अपीलकर्ता के अचल संपत्ति और घर को इस गलत धारणा पर कुर्क किया है कि उक्त संपत्तियों को अपीलकर्ता द्वारा असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर अर्जित आय से प्राप्त किया गया है, जबकि अपीलकर्ता न तो गिरोहबन्द है और न ही उसने इन संपत्तियों को असामाजिक गतिविधियों में शामिल होने से अर्जित किया है।

11. स्थिति को स्पष्ट करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है कि वास्तव में अपीलकर्ता 1997 से 2008 तक मुंबई में व्यवसाय कर रहा था और अपने माता-पिता को धन भेजता था और उस धन के साथ-साथ अपने पिता की आय से, उसने एक घर का निर्माण किया गया था, जिसमें से वर्ष 1998 में विद्युत ऊर्जा संयोजन लिया गया था। वर्ष 2008 में, वह मुंबई से वापस आया और कृषि और उपवन खेतों की देखभाल करने के अलावा उसने "मेसर्स हीरा ट्रेडर्स" की दुकान के नाम से बिल्डिंग सामग्री बेचना शुरू किया, जहाँ से वह मोरंग, सरिया, रेत और सीमेंट बेच रहा था और इस व्यवसाय को चलाने के लिए, उसने टिन संख्या प्राप्त किया था और आयकर देता था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उनके व्यावसायिक प्रतिष्ठान में एक कर छापा भी मारा गया था । यह भी बताया गया है कि ग्राम मोअज्जमनगर स्थित खाता क्रमांक 447, गाटा क्रमांक 95 क्षेत्र 0.062 एकड़ की भूमि उनके पिता के नाम पर दर्ज है जो आज भी उनके नाम दर्ज है। अन्य गाटों की भूमि उनकी पैतृक संपत्ति है और उनके पिता के नाम पर दर्ज है न कि उनके नाम पर। अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विचाराधीन घर का निर्माण वर्ष 1999 में अपीलकर्ता द्वारा गांव तिरगवां में किया गया था, जो उस पर गिरोहबन्द अधिनियम लगाने से पूर्व स्वयं द्वारा चलाए जा रहे व्यवसाय द्वारा अर्जित आय से आबादी भूमि पर किया गया था। इस संबंध में अपीलार्थी ने न्यायालय के समक्ष वर्ष 1999 की मतदाता सूची प्रस्तुत

की है और साथ ही उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत निगम द्वारा 31.7.1999 को जारी किए गए घर के बिजली संयोजन की प्राप्तियों की प्रतियां भी प्रस्तुत की हैं, जिसका संख्या 551075/97/ जीएसपीएल, रसीद संख्या 43 600/- रुपये की, नवंबर 2002 के घर का बिजली बिल 10244/ उत्तर प्रदेश निगम मर्यादित द्वारा जारी और मकान के टेलीफोन बिल दिनांक 11.7.2003 442/- रुपये की, 11.5.2003 रुपये 115/- की, 11.3.2003 रुपये 153/- की, 11.01.2003 रुपये 115/- की, 11.09.2002 रुपये 290/- की, 11.07.2002 रुपये 230/- की, 11.5.2002 रुपये 155/- की और उनके घर का आयकर अधिनियम 1961 की धारा 203एए के तहत निर्धारण वर्ष 2009-10 के वार्षिक कर का विवरण । इसकी रसीदों की प्राप्तियां इस अपील के अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न हैं। उपरोक्त रसीदें इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि अपीलकर्ता ने अपने घर को बहुत पहले खरीदा/निर्माण किया था, जब उसके विरुद्ध कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया गया था और उस पर गिरोहबन्द अधिनियम लगाने से पूर्व भी। हालांकि, संबंधित अधिकारियों ने इन सभी प्रासंगिक तथ्यों और दस्तावेजी सबूतों पर विचार किए बिना, परोक्ष उद्देश्य के साथ अनुचित आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किए।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 13.04.2022 को आरोपित आदेश पारित करते हुए, आवेदन की सामग्री और मुक्ति आवेदन के साथ संलग्न दस्तावेजों का ठीक से अध्ययन किए बिना, अनुचित तरीके से इसे खारिज कर दिया है, यह मानकर कि विचाराधीन संपत्ति अपीलकर्ता द्वारा असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होकर अर्जित आय से अर्जित की गई है, अपीलकर्ता की ओर से दायर दस्तावेजी साक्ष्यों पर गौर किए बिना और गलत तरीके से यह व्याख्या करते हुए कि अपीलकर्ता ने यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया है कि विचाराधीन संपत्ति असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होकर अर्जित आय से अर्जित नहीं की गई है। इस प्रकार विचारण न्यायालय ने संबंधित संपत्ति को मुक्त करने के लिए अपीलकर्ता के आवेदन को खारिज करते हुए विधिक त्रुटि की। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता ने घर सहित अचल संपत्ति का पूरा विवरण दिया था, जिसे जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा दिनांक 13.4.2022 के आदेश के तहत कुर्क किया गया है।

13. अपीलकर्ता के विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 13.4.2022 के आक्षेपित आदेश से यह पता नहीं चलता है कि जिला अधिकारी, लखनऊ को "विश्वास का कारण" वह था कि विचाराधीन संपत्ति अपीलकर्ता द्वारा गिरोहबन्द अधिनियम के तहत अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी, बल्कि पूर्वोक्त आदेश मात्र संदेह, अनुमानों और शंका पर पारित किया गया है और अपीलीय न्यायालय ने अपीलकर्ता के दस्तावेजों का विश्लेषण किए बिना सरसरी तौर पर दिनांक 5.1.2023 का आदेश भी पारित किया है। इस प्रकार दोनों आक्षेपित आदेश न्याय की नजर में पोषणीय नहीं है।

14. प्रतिपक्षी, श्रीमती किरण सिंह, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता -1 ने तर्क दिया है कि अपीलीय न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व अभिलेख पर सामग्री का उचित मूल्यांकन किया है। जिला अधिकारी, लखनऊ ने पूरी तरह से संतुष्ट होने के बाद दिनांक 13.04.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया है कि अपीलकर्ता ने गिरोहबन्द अधिनियम के तहत परिभाषित असामाजिक गतिविधियों में स्वयं को सम्मिलित कर अवैध तरीकों से संपत्ति अर्जित की है, इस प्रकार आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता, दुर्बलता या विकृति नहीं है। इसके अलावा, सक्षम प्राधिकारी ने पुलिस अधीक्षक (ग्रामीण क्षेत्र) की आख्या के साथ-साथ थाना प्रभारी की आख्या पर भी विचार करने के बाद आदेश पारित किया है और इसलिए यह कहना गलत है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित कुर्की का आक्षेपित आदेश दुर्बलताओं से ग्रस्त है।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-1 ने यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने बताया कि अपीलकर्ता आय का स्रोत प्रदर्शित करने में भी सक्षम नहीं था, जिससे अपीलकर्ता ने संपत्तियों का अधिग्रहण किया है, जो जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा कुर्क की गई है। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी बताया कि जब अपीलकर्ता का वाहन यानी स्कॉर्पियो कार और पल्सर मोटरसाइकिल अपीलकर्ता द्वारा ऋण पर खरीदा गया था, तो अपीलकर्ता ने आय के किस स्रोत से बिना ऋण के जमीन खरीदी है, जिसे जिला अधिकारी ने जब्त कर लिया था। इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालयों ने अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्य सहित पूरी सामग्री पर विचार करने के बाद सही परिप्रेक्ष्य में आक्षेपित आदेश पारित किए हैं और इनमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

16. मैंने अपीलकर्ता के विद्वान वकील, विपक्षी पक्षों के लिए एजीए -1 को सुना, और विचारण न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों का परिशीलन किया ।

17. गिरोहबन्द अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना न्यायसंगत और समीचीन प्रतीत होता है जो निम्नानुसार हैं: -

> *"**2-*** परिभाषाएं - इस अधिनियम में,- *(*क) "संहिता" का तात्पर्य दंड प्रक्रिया संहिता*, 1973* से है*;*
>
> *(*ख) "गिरोह" का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों के समूह से है जो लोक-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित दुनियावी (टेम्पोरल), आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से या तो अकेले या समूहिक रूप से हिंसा, या हिंसा की धमकी या प्रदर्शन, या अभित्रास, या प्रपीड़न द्वारा, या अन्य प्रकार से निम्नलिखित समाज विरोधी क्रियाकलाप करते हैं, अर्थात्--
>
> *(*एक) भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय *16*, या अध्याय *17*, या अध्याय *22* के अधीन दण्डनीय अपराध*;* या

(दो) संयुक्त प्रान्त आबकारी अधिनियम, *1910* या नारकोटिक ड्रग्स एण्ड साइक्रोट्रापिक सब्सटैन्सेज अधिनियम, *1985* या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के किन्हीं उपबन्धों का उल्लघ्ंान करक किसी शराब या मादक या अनिष्टकर मादक द्रव्य या अन्य मादकों या स्वापकों का आसवन या निर्माण या संग्रह या परिवहन या आयात या निर्यात, या विक्रय या वितरण या किन्हीं पौधों की खेती करना; या

(तीन) विधि सम्मत प्रक्रिया से भिन्न प्रक्रिया द्वारा स्थावर सम्पत्ति पर अध्यासन करना या कब्जा लेना, या स्थावर सम्पत्ति पर चाहें स्वयं या अन्य किसी व्यक्ति के पक्ष में हक या कब्जा के लिए मिथ्या दावा करना; या

(चार) किसी लोक सेवक या किसी साक्षी को अपने विधिपूर्ण कर्तव्यों का पालन करने से रोकना या रोकने के लिए प्रयत्न करना; या

(पॉच) स्त्री तथा लड़की अनौतिक व्यापार दमन अधिनियम, *1956* के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(छः) सार्वजनिक द्यूत अधिनियम, *1867* की धारा *3* के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(सात) किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी आरे से किसी पट्टे या अधिकार के लिए, या माल के संभरण या किये जाने वाले कार्य के लिए, विधिपर्वूक संचालित किसी नीलाम में बोली लगाने या विधिपूर्वक मांगे गये टेण्डर देने से किसी व्यक्ति को रोकना; या

(आठ) किसी व्यक्ति को अपने विधिपूर्ण कारोबार, वृत्ति, व्यापार या जीविका या उससे सम्बद्ध किसी अन्य विधिपूर्ण क्रियाकलाप को सुचारू रूप से करने से रोकना या उसमें विघ्न डालना; या

(नौ) भारतीय दण्ड संहिता की धारा *171-ड* के अधीन दण्डनीय अपराध, या मतदाता को अपने मताधिकार का प्रयोग करने से शारीरिक रूप से रोककर किसी विधिपूर्वक होने वाले किसी सार्वजनिक निर्वाचन को रोकना या उसमे बाधा डालना; या

(दस) अन्य व्यक्तियों को साम्प्रदायिक सामंजस्य में विघ्न डालने के लिए हिंसा करने के लिए उद्दीप्त करना; या

(ग्यारह) जनता में दहशत, संत्रास या आतंक फैलाना; या

(बारह) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या स्वामियों या अध्यासियों को आतंकित करना या

उन पर हमला करना और उनकी सम्पत्ति को हानि पहुंचाना; या

(तेरह) किसी व्यक्ति को इस मिथ्या व्यपदेशन पर कि उसे विदेश में कोई सेवायोजन, व्यापार या वृत्ति उपलब्ध करायी जायेगी, ऐसे विदेश में जाने के लिए उत्प्रेरित करना या उत्प्रेरित करने का प्रयास करना; या

(चौदह) फिरौती उद्यापित करने के आशय से किसी व्यक्ति का व्यपहरण या अपहरण करना; या

(पन्द्रह) किसी वायुयान या सार्वजनिक परिवहन यानों को उसके पूर्वनिर्धारित मार्ग से जाने से पथान्तरित करना या अन्यथा रोकना;

*(सोलह) साहूकारी विनियमन अधिनियम, *1976* के अधीन दण्डनीय अपराध;

(सत्रह) गोवध निवारण अधिनियम, *1955* और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, *1960* मे उपबन्धों के उल्लंघन में मवेशियों के अवैध परिवहन और/या तस्करी के कार्यो में संलिप्तता;

(अठ्ठारह) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ श्रम, बालश्रम, यौन शोषण, अंग हटाने तथा दुर्व्यापार, भिक्षावृत्ति और इसी प्रकार के क्रियाकलापों के प्रयोजनों हेतु मानव दुर्व्यापार करना;

(उन्नीस) विधि विरूद्व क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, *1966* के अधीन दण्डनीय अपराध;

(बीस) जाली भारतीय करेंसी नोट का मुद्रण, परिवहन और परिचालन करना;

(इक्कीस) नकली दवाओं का उत्पादन, विक्रय और वितरण में अन्तर्ग्रस्त होना;

(बाइस) आयुध अधिनियम, *1959* की धारा *5, 7* और *12* के उल्लंघन में आयुध एवं गोला, बारूद के विनिर्माण, विक्रय और परिवहन में अन्तर्ग्रस्त होना;

(तेइस) भारतीय वन अधिनियम, *1927* और वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, *1972* के उल्लंघन में आर्थिक अभिलाभ के लिए गिराना अथवा वध करना, उत्पादों की तस्करी करना;

(चौबीस) आमोद तथा पणकर अधिनियम, *1979* के अधीन दण्डनीय अपराध;

(पच्चीस) राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और जीवन की गति को भी प्रभावित करने वाले अपराधों में संलिप्त होना।"

(ग) "गिरोहबन्द" का तात्पर्य किसी गिरोह के सदस्य या सरगना या संगठक से है और इसके अन्तर्गत

अनुवादित

कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो खण्ड (ख) में प्रगणित किसी गिरोह के क्रियाकलाप के लिए, चाहे ऐसे क्रियाकलाप के किए जाने के पूर्व या पश्चात, दुष्प्रेरित करता है या उसमें सहायता देता है, या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसने ऐसे क्रियाकलाप किये हों, संश्रय देता है';

(घ) ''लोक सेवक'' का तात्पर्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा *21* में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में यथा परिभाषित लोक सेवक से है और इसके अन्तर्गत कोइ ऐसा व्यक्ति भी है जो राज्य की पुलिस या अन्य प्राधिकारियों को इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के अन्वेषण या अभियोजन या दण्ड में चाहें ऐसे अपराध या अपराधी के सम्बन्ध में सूचना या साक्ष्य देकर या किसी अन्य रीति से, विधिपूर्वक सहायता करता है';

(ङ) ''किसी लोक सेवक के कुटुम्ब का सदस्य'' का तात्पर्य उसके माता-पिता या पति या पत्नी, और भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री, या इनमें से किसी के पति या पत्नी से है और इसके अन्तर्गत लोक सेवक पर आश्रित या उसके साथ निवास करने वाला कोई व्यक्ति और कोई ऐसा व्यक्ति भी है जिसके कल्याण में लोक सेवक हित रखता हो'

(च) इस अधिनियम में प्रयुक्त किन्तु अपरिभाषित, और दण्ड प्रक्रिया संहिता, *1973* या भारतीय दंड संहिता में परिभाषित शब्दों और पदों के क्रमशः वहीं अर्थ होंगे जो ऐसी संहिताओं में उनके लिए दिए गये है।

3. दण्ड- (*1*) किसी गिरोहबन्द को दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो दो वर्ष से कम न होगी और जो दस वर्ष तक हो सकेगी और जुर्माने से भी जो पांच हजार रूपये से कम नहीं होगा, दण्डित किया जायगाः

परन्तु किसी गिरोहबन्द को जो किसी लोक सेवक के शरीर के प्रति या लोक सेवक के कुटुम्ब के किसी सदस्य के शरीर के प्रति काई अपराध करता है दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो तीन वर्ष से कम न होगी और जुर्माना से भी, जो पांच हजार रूपये से कम नहीं होगा, दण्डित किया जायगा।

(2) किसी ऐसे व्यक्ति को जो लोक सेवक होते हुये चाहे स्वयं या अन्य के माध्यम से किसी गिरोहबन्द की किसी रीति से अवैध रूप से सहायता या समर्थन, चाहे गिराहबन्द द्वारा काई अपराध किये जाने के पूर्व या पश्चात्

करता है, या विधिपूर्ण उपाय करने से विरत रहता है या इस सम्बन्ध में किसी न्यायालय या अपने वरिष्ठ अधिकारियों के निदेशों को कार्यान्वित करने से जानबूझकर बचता है, दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो दस वर्ष तक की हो सकेगी, किन्तु तीन वर्ष से कम न हागी और जुर्माने से भी दंडित किया जायगा।

18. वर्तमान मामले में शामिल मुद्दे को गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों पर विचार करने की मदद से हल किया जा सकता है, जो निम्नानुसार है:

"14. संपत्ति की कुर्की *(1)* यदि जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी व्यक्ति के कब्जे में स्थित काई सम्पत्ति, चाहे वह जंगम हो या स्थावर, किसी गिरोहबन्द के द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी है तो वह ऐसी सम्पत्ति का कुर्क करने का आदेश दे सकता है, चाहे किसी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान किया गया हो या नहीं।

(2) प्रत्यके ऐसी कुर्की पर संहिता के उपबन्ध, यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे ।

(3) संहिता के उपबंधों के होते हुए भी, जिला मजिस्ट्रेट, उपधारा *(1)* के अधीन कुर्क की गयी किसी सम्पत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकता है और प्रशासक को ऐसी सम्पत्ति के सर्वोत्तम हित में उसका प्रबन्ध करने की सभी शक्तियां होंगी ।

(4) जिला मजिस्ट्रेट ऐसी सम्पत्ति के उचित और प्रभावी प्रबन्ध के लिए प्रशासक को पुलिस सहायता की व्यवस्था कर सकता है।

15. **संपत्ति** को निर्मुक्त करना -*(1)* जहॉ कोई सम्पत्ति धारा *14* के अधीन कुर्क की जाय, वहॉ उसका दावेदार, ऐसी कुर्की की जानकारी के दिनांक से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपने द्वारा उस सम्पत्ति के अर्जन की परिस्थितियों और स्रातों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकता है।

(2) यदि उपधारा *(1)* के अधीन किये गये दावे की वास्तविकता के बारे में जिला मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाय तो वह कुर्क की गयी सम्पत्ति को तत्काल निर्मुक्त कर देगा और तदुपरांत ऐसी सम्पत्ति दावेदार को सौंप दी जायेगी।

16. न्यायालय द्वारा संपत्ति के अर्जन के स्वरूप की जांच :-

(1) जहॉ धारा 15 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के

भीतर कोई अभ्यावदेन न दिया जाय या जिला मजिस्ट्रेट धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन सम्पत्ति को निर्मुक्त नहीं करता है, वहॉ वह मामले को अपनी रिपोर्ट के साथ इस अधिनियम के अधीन अपराध का विचाराण करने के लिए अधिकारितायुक्त न्यायालय को निर्दिष्ट करेगा।

(2) जहॉ जिला मजिस्ट्रेट ने किसी सम्पत्ति को धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन कुर्क करने से इन्कार किया है या किसी सम्पत्ति को धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन निर्मुक्त करने का आदेश दिया है, वहॉ राज्य सरकार या कोई व्यक्ति जो इस प्रकार इन्कार करने या निर्मुक्त करने से व्यथित हो, यह जांच करने के लिए कि क्या सम्पत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गयी थी, उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय को आवदे न-पत्र दे सकता है। ऐसा न्यायालय, यदि वह न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे, ऐसी सम्पत्ति न्यायालय द्वारा सम्पत्ति के अर्जन के स्वरूप के बारे में जांच को कुर्क करने का आदेश दे सकता है।

(3) (क) उपधारा (1) के अधीन निर्देश या उपधारा (2) के अधीन आवेदन-पत्र की प्राप्ति पर न्यायालय जांच के लिए कोई दिनांक नियत करेगा और उसकी नोटिस उपधारा (2) के अधीन आवेदन-पत्र देने वाले व्यक्ति या, यथास्थिति, धारा 15 के अधीन अभ्यावेदन देने वाले व्यक्ति और राज्य सरकार और किसी अन्य व्यक्ति को भी जिसका हित मामले मे अन्तर्ग्रस्त प्रतीत हो, देगा ।

(ख) इस प्रकार नियत दिनांक को या किसी पश्चातवर्ती दिनाकं को जब तक के लिए जांच आस्थगितकी जाय, न्यायालय पक्षकारों की सुनवाई करेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ग्रहण करेगा, ऐसे और साक्ष्य लेगा जिसे वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि क्या सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी थी और धारा 17 के अधीन ऐसा आदेश देगा जैसा मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और आवश्यक हो।

(4) उपधारा (3) के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायालय को

निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में ऐसी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी वाद पर विचारण करते समय सिविल न्यायालय की होती है, अर्थात्--

(क) किसी व्यक्ति को समन कराना और उसे हाजिर कराना और शपथ पर उसका विचारण करना;

(ख) दस्तावेजों का पता लगाने और उन्हें प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति अधियाचित करना;

(ड) साक्षियों या दस्तावेजों के विचारण के लिए कमीशन जारी करना;

(च) व्यतिक्रम के लिए निर्देश को खारिज करना या उसे एक पक्षीय

विनिश्चित करना;

(छ) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने के आदेश या एकपक्षीय विनिश्चय को अपास्त करना।

(5) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन किसी कार्यवाही में यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत सम्पत्ति या उसका कोई भाग किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं किया गया था, सम्पत्ति पर दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा।

17. जांच के पश्चात आदेश- *यदि ऐसी जांच पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गयी थी तो वह उस सम्पत्ति को ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निर्मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गयी थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय सम्पत्ति को कुर्क करके, अधिहरण करके या सम्पत्ति पर कब्जा पाने के लिए हकदार व्यक्ति को देकर, या अन्य प्रकार से उसका निस्तारण करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे।*

19. अब यह भली-भाँति तय हो गया है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की का विषय बनाई जा रही संपत्ति एक गिरोहबन्द द्वारा अर्जित की गई होनी चाहिए और वह भी अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी हो।

जिला अधिकारी को इस बिंदु पर अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी। जिला अधिकारी की संतुष्टि को किसी भी अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती। अधिनियम की धारा 15 के तहत जिला अधिकारी के समक्ष केवल एक अभ्यावेदन प्रदान किया जाता है और यदि वह इस तरह के अभ्यावेदन पर संपत्ति को मुक्त करने से इनकार करता है, तो उस मामले में पीड़ित व्यक्ति को अधिनियम के तहत अपराध का विचारण करने के अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय को संदर्भ देना होगा। अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2) के तहत किए गए संदर्भ पर विचार करते समय न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप गिरोहबन्द द्वारा संपत्ति अर्जित की गई थी और उसे इस प्रश्न पर विचार करना होगा और अधिनियम की धारा 16 के तहत उसके द्वारा की गई जांच के आधार पर अपना निष्कर्ष दर्ज करना होगा। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अधिनियम के तहत विचारणीय आपराधिक कृत्य के परिणामस्वरूप गिरोहबन्द द्वारा संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया गया था, तो न्यायालय उस व्यक्ति के पक्ष में संपत्ति को जारी करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से इसे कुर्क किया गया था।

संहिता की धारा 16 के तहत न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने का उद्देश्य जिला अधिकारी द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने और विधि के शासन को स्थापित करने में शक्ति के मनमाने प्रयोग की जांच करना है, इसलिए न्यायालय का यह कर्तव्य है कि इस प्रश्न के संबंध में सच्चाई का पता लगाने के लिए औपचारिक जांच करे, कि क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। अधिनियम की धारा 17 के तहत पारित किए जाने वाले आदेश में न्यायालय के निष्कर्षों के समर्थन में कारणों और सबूतों का प्रकटीकरण होना चाहिए। न्यायालय को राज्य या जिला अधिकारी के डाकघर या मुखपत्र के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं है। यदि किसी व्यक्ति का उस अवधि के दौरान कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, जब उसके द्वारा संपत्ति अर्जित की गई थी, तो संपत्ति को अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी संपत्ति के रूप में कैसे माना जा सकता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर न्यायालय द्वारा दिया जाना है। उपरोक्त प्रश्न के अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा विचार किया जाने वाला अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम के तहत अभियुक्त के खिलाफ मामला दर्ज होने से पूर्व या गिरोहबन्द सारणी के पहले मामले के पंजीकरण से पहले अर्जित की गई संपत्ति को अधिनियम की धारा 14 के तहत जिला अधिकारी द्वारा कुर्क किया जा सकता है।

अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, जिला अधिकारी को इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप गिरोहबन्द द्वारा अर्जित संपत्ति को कुर्क करने का अधिकार देता है। जिला अधिकारी

कुर्क की गई किसी भी संपत्ति का, इस तरह की संपत्ति को **उसके सर्वोत्तम हित में प्रशासित करने के लिए, प्रशासक नियुक्त कर सकता है किन्तु यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति के कब्जे में चल या अचल संपत्ति, इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप एक गिरोहबन्द द्वारा अर्जित की गई है, लेकिन जिला अधिकारी ने अपने आदेश में संलग्न संपत्ति के संबंध में विश्वास होने के कारण की अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है कि यह संपत्ति अपीलकर्ता द्वारा गिरोहबन्द अधिनियम के तहत विचारणीय आपराधिक कृत्य के परिणामस्वरुप अधिगृहीत की गई थी, भले ही अधिनियम की धारा 16 के तहत संदर्भ का निर्णय करते समय, विचारण न्यायालय साक्ष्यों का मूल्यांकन नहीं करती है और यांत्रिक रीति से जिला अधिकारी द्वारा की गई टिप्पणियों पर विश्वास करते हुए आक्षेपित आदेश पारित करती है जो अवैध और अनुचित दृष्टिकोण है |**

20. **श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013 (83) एसीसी 902** के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने प्रस्तर 8, 9 और 10 में निम्नानुसार निर्णय दिया गया है: -

*"**8.** मामले के तथ्यों, परिस्थितियों, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों एवं अभिलेख के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान वाद में सम्मिलित मुद्दे को गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों पर विचार कर हल किया जा सकता है जो इस प्रकार है:*

***15. संपत्ति** को निर्मुक्त करना -(1) जहाँ कोई सम्पत्ति धारा 14 के अधीन कुर्क की जाय, वहाँ उसका दावेदार, ऐसी कुर्की की जानकारी के दिनांक से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपने द्वारा उस सम्पत्ति के अर्जन की परिस्थितियों और स्रातों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकता है।*

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन किये गये दावे की वास्तविकता के बारे में जिला मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाय तो वह कुर्क की गयी सम्पत्ति को तत्काल निर्मुक्त कर देगा और तदुपरांत ऐसी सम्पत्ति दावेदार को सौंप दी जायेगी।

***17. जांच के पश्चात आदेश**- 17-यदि ऐसी जांच पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गयी थी तो वह उस सम्पत्ति को ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निर्मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गयी थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय*

सम्पत्ति को कुर्क करके, अधिहरण करके या सम्पत्ति पर कब्जा पाने के लिए हकदार व्यक्ति को देकर, या अन्य प्रकार से उसका निस्तारण करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे।

9. *गिरोहबन्द अधिनियम के उपर्युक्त प्रावधानों के आलोक में, जिला अधिकारी को इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप गिरोहबन्द द्वारा अर्जित किसी भी व्यक्ति के कब्जे में चल या अचल संपतियों को कुर्क करने का अधिकार है। लेकिन ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए जिला अधिकारी को यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि इस तरह की संपति इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप एक गिरोहबन्द द्वारा अर्जित की गई थी। विश्वास करने के लिए शब्द "संतुष्ट" शब्द से अधिक मजबूत हैं, इसे उन कारणों पर पारित किया जाना चाहिए जो प्रासंगिक और तात्विक हैं। वर्तमान मामले में,* विचारण *न्यायालय के अभिलेख के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि केवल पीएस सराय लक-हांसी, जिला मऊ के प्रभारी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत पुलिस आख्या के आधार पर, जिला अधिकारी, मऊ ने अपीलकर्ता के दो घरों को कुर्क किया है, जिला अधिकारी को यह मानने का कोई कारण नहीं दिया गया था कि विचाराधीन संपत्ति गिरोहबन्द राज बहादुर सिंह द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। इससे जिला अधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि भी दूषित होती है। विद्वान जिला अधिकारी के पास पुलिस आख्या के समर्थन में कोई सामग्री नहीं थी कि अपीलकर्ता के दोनों घर उनके बेटे राज बहादुर सिंह द्वारा अधिग्रहित किए गए थे। विद्वान जिला अधिकारी ने संलग्न घरों को मुक्त करने के लिए अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 15 के तहत अभ्यावेदन आवेदन को निरस्त कर दिया। आवेदन समय सीमा के भीतर प्रस्तुत किया गया था, आवेदन जिला मजिस्ट्रेट, मऊ को एक अभ्यावेदन था, इसमें उन सभी विवरणों का खुलासा किया गया था जिनके माध्यम से अपीलकर्ता द्वारा दोनों घरों का*

अधिग्रहण किया गया था। लेकिन विद्वान जिला अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा प्रकट किए गए स्रोतों पर विचार नहीं किया और दिनांक 29.12.2008 के आदेश के तहत प्रस्तुत प्रार्धनापत्र को निरस्त कर दिया। उन सभी स्रोतों के स्पष्टीकरण पर ठीक से विचार नहीं किया गया है जिनके द्वारा अपीलकर्ता ने घरों का अधिग्रहण किया था। इसलिए, दिनांक 29.12.2008 का आक्षेपित आदेश अवैध हो गया है। विद्वान विशेष न्यायाधीश (गिरोहबन्द अधिनियम), आजमगढ़ ने गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों और जिला अधिकारी द्वारा दर्ज 'कारणों की प्रासंगिकता' पर विचार किए बिना गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 17 के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को निरस्त कर दिया, जिसमें यह विश्वास किया गया था कि दोनों संलग्न घरों को अपीलकर्ता के पुत्र गिरोहबन्द राज बहादुर सिंह द्वारा अधिग्रहित किया गया था। विद्वान विशेष न्यायाधीश (गिरोहबन्द अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, आजमगढ़ द्वारा वर्ष 2009 के आपराधिक विविध आवेदन क्रमांक 2 में पारित आदेश दिनांक 17.3.2009 भी अवैध है।

10. *उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, जिला अधिकारी, मऊ द्वारा गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत अपीलकर्ता के दो घरों को कुर्क करने के लिए पारित आदेश, जिला अधिकारी, मऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.12.2008 जिसके द्वारा गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 15 (1) (2) के तहत आवेदन को निरस्त कर दिया गया है और विद्वान विशेष न्यायाधीश (गिरोहबन्द अधिनियम) द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.3.2009 अपर सत्र न्यायाधीश, आजमगढ़ आपराधिक विविध आवेदन संख्या 2009 में अवैध हैं, इन्हें एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और जिला अधिकारी, मऊ को निर्देश दिया जाता है कि वह मोहल्ला चांदमारी, इमिलियान, पी.एस. सराय लख-हांसी, जिला मऊ में स्थित दोनों मकान संख्या 204-डी/8 और 205-डी/9 को अपीलकर्ता के पक्ष में तत्काल अवमुक्त करें।*

21. इसके अतिरिक्त, **श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007(2)**

एएलजे 483 (एएलएल) के मामले में इस न्यायालय की एक और समन्वय पीठ ने प्रस्तर 9, 10 और 11 में निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"9. इन धाराओं के संयुक्त पठन से पता चलता है कि पहले यह सिद्ध करना होगा कि गिरोहबन्द या उसकी ओर से कोई व्यक्ति संपत्ति के कब्जे में है या रहा है, और इस तरह की संपत्ति इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी भी विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गई है, तभी जिला अधिकारी मामले में आगे कार्यवाही करने और संपत्ति को कुर्क करने का अधिकार प्राप्त करता है। केवल जब प्रारंभिक भार का निर्वहन हो जाता है, तब भार गिरोहबन्द या ऐसे व्यक्ति पर स्थानांतरित हो जाती है, ताकि वह संतोषजनक रूप से इसका हिसाब दे सके। लेकिन अगर यह पाया जाता है कि संबंधित व्यक्ति गिरोहबन्द नहीं था और उसने इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप संपत्ति अर्जित नहीं की थी, तो इसे धारा 17 के उपबंधानुसार अवमुक्त किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभियोजन पक्ष पर यह प्रदर्शित करने का प्रारंभिक भार है कि संबंधित व्यक्ति एक गिरोहबन्द है और उसने अधिनियम के तहत विचारणीय अपनी आपराधिक गतिविधि के कारण संपत्ति अर्जित की है।

10. इसलिए, धारा 14 के तहत कार्यवाही करने के लिए जिला अधिकारी के पास वस्तुनिष्ठ निर्धारण के लिए सामग्री होनी चाहिए कि वह व्यक्ति या तो किसी गिरोह का सदस्य, नेता या आयोजक है और उसने अधिनियम के तहत किसी अपराध को कारित कर कोई संपत्ति अर्जित की है। उसके द्वारा बताए गए आपराधिक कृत्यों और उसके द्वारा अर्जित संपत्ति के बीच कोई संबंध होना चाहिए। किसी अपराध में उसकी मात्र संलिप्तता उसकी संपत्ति को कुर्क करने के लिए पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या उस संपत्ति का अर्जन अधिनियम में उल्लिखित किसी अपराध को अंजाम देने के परिणामस्वरूप हुआ था, जबकि वह गिरोह का सदस्य, नेता या आयोजक था। किसी व्यक्ति ने कई अपराध किए होंगे, लेकिन

अगर उसके द्वारा अर्जित संपत्ति उसके वैध संसाधनों से अर्जित की गई थी, तो उसके विरुद्ध अधिनियम की धारा 14 के तहत कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती।

11. बदन सिंह उर्फ बद्दो बनाम भारत संघ उत्तर प्रदेश राज्य, 2002 सीआरआई एलजे 1392: 2001 एएलएल एलजे 2852 के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि अधिनियम की धारा 14 एक कठोर प्रावधान है जो संपत्ति के अधिकार को प्रभावित करता है, जो संविधान के तहत एक मौलिक अधिकार है इसलिए, प्रारंभिक बोझ राज्य पर आवश्यक सामग्रियों के साथ जिला अधिकारी को संतुष्ट करने के लिए था कि एक गिरोहबन्द ने किसी भी अपराध कार्य होने के परिणामस्वरूप संपत्तियों का अधिग्रहण किया। इस मामले में यह भी माना गया है कि अधिनियम में यह प्रावधान नहीं है कि संपत्ति को कुर्की से मुक्त करने की मांग करने वाले पीड़ित व्यक्ति को उसके अधिग्रहण के लिए आय का स्रोत सिद्ध करना होगा।

22. इसके अतिरिक्त, **राजबीर सिंह त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2018 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 5986** के मामले में इस न्यायालय की एक और समन्वय पीठ ने प्रस्तर 16 और 18 में निम्नानुसार धारित किया है: -

"16. उपरोक्त दो परिभाषाओं के एक संयुक्त पठन से यह प्रतीत होता है कि धारा 14 के तहत कार्रवाई करने के लिए किसी व्यक्ति के विरुद्ध , जिला अधिकारी के वस्तुनिष्ठ निर्धारण हेतु यह सामग्री होनी चाहिए कि उसने अधिनियम के तहत किसी अपराध कार्य होने के परिणामस्वरूप किसी भी संपत्ति को एक सदस्य, नेता या गिरोह के आयोजक के रूप में अर्जित किया है। <u>उसके आपराधिक कृत्य और उसके द्वारा अर्जित संपत्ति के बीच संबंध होना चाहिए। किसी भी अपराध में मात्र उसकी भागीदारी, उसकी संपत्ति कुर्क करने के लिए पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या उसकी संपत्ति का अधिग्रहण अधिनियम में उल्लिखित किसी अपराध के कारित होने के परिणामस्वरूप हुआ था, जब वह एक गिरोह का सदस्य, नेता या आयोजक था।</u> किसी व्यक्ति ने कई अपराध किए होंगे, लेकिन यदि उसके द्वारा अर्जित संपत्ति वैध स्रोत से कमाई गई है, तो उसके विरुद्ध अधिनियम की

धारा 14 के तहत कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

18. अधिनियम की धारा 14 एक कठोर प्रावधान है जो किसे व्यक्ति के संपत्ति के अधिकार को प्रभावित करता है, जो संविधान के अंतर्गत एक संवैधानिक अधिकार है। इसलिए, राज्य पर जिला अधिकारी को आवश्यक सामग्री के साथ इस संबंध में संतुष्ट करने का प्रारंभिक भार था कि याचिकाकर्ता राजबीर सिंह त्यागी ने गिरोहबन्द होने के नाते किसी भी विचारणीय अपराध कार्य के परिणामस्वरूप संपतियों का अधिग्रहण किया। हालांकि, ऐसा नहीं किया गया था। इसलिए, कुर्की के आदेश को अवैध बताते हुए, याचिकाकर्ताओं द्वारा संपतियों को छोड़ने के लिए एक अभ्यावेदन प्रस्तुत कर एक कदम उठाया गया था। उक्त प्रार्थना को इस अवलोकन के साथ निरस्त कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता घर बनाने और चल वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए आय का स्रोत स्थापित नहीं कर सके। मेरी राय में जिला अधिकारी का यह दृष्टिकोण को विधि के अंतर्गत कदापि अनुमन्य नहीं है। <u>अधिनियम में यह प्रावधान नहीं है कि कुर्की से संपत्तियों को मुक्त करने की मांग करने वाले पीड़ित व्यक्ति को उसके अधिग्रहण के लिए आय का स्रोत सिद्ध करना होगा।</u> इसलिए, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के आधार पर, मेरी राय है कि जिला अधिकारी, मुजफ्फरनगर द्वारा पारित कुर्की का आदेश अवैध, मनमाना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के प्रतिकूल है।

23. विधि की पूर्वोक्त स्थापित प्रस्थापना और इस मामले में इस न्यायालय द्वारा श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) एसीसी 902 और श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007 (2) एएलजे 483 (एआईआई), और राजबीर सिंह त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2018 एससीसी ऑनलाइन एआईआई 5986 में दिए गए निर्णयों के दृष्टिगत, इस न्यायालय का यह विचार है कि जो संपत्तियां कुर्क की गई हैं, वह अपीलकर्ता द्वारा वैध संसाधनों से अर्जित की गई थीं न कि अधिनियम के तहत विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप, क्योंकि यह स्थापित विधि है कि अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत कुर्की का विषय बनाई जा रही संपत्तियों को एक गिरोहबन्द द्वारा अर्जित किया जाना चाहिए और वह भी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप। अधिनियम और आक्षेपित आदेश उन कारणों पर पारित नहीं किए गए थे जो प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान मामले में दिनांक 13.4.2022 के आक्षेपित आदेश और अभिलेख के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि मात्र पुलिस आख्या के आधार पर, जिला अधिकारी ने विचाराधीन संपत्ति को कुर्क कर लिया है। जिला अधिकारी को ऐसी

कोई सामग्री नहीं दी गई थी जिससे यह विश्वास किया जा सके कि विचाराधीन संपत्ति गिरोहबन्द द्वारा वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। यह जिला अधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि को भी अभिलेख के आधार पर दूषित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिला अधिकारी के पास पुलिस आख्या के समर्थन में कोई सामग्री नहीं है कि विचाराधीन संपत्ति वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा गिरोहबन्द होने के नाते अर्जित की गई थी, भले ही अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही का पालन नहीं किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता के पास मुंबई के साथ-साथ अपने मूल स्थान पर अपने व्यवसाय से आय का पर्याप्त स्रोत था, जहां से अपीलकर्ता ने संपत्तियों का अधिग्रहण किया था और यहां तक कि संपत्तियों को अपीलकर्ता द्वारा आपराधिक मामलों के पंजीकरण और गिरोहबन्द अधिनियम, जिसे वर्ष 2021 में लागू किया गया था, आरोपित करने से बहुत पहले अधिगृहीत किया गया था, और कुर्की का आक्षेपित आदेश बिना विचार किये यांत्रिक रीति से पारित किया गया था, और यह मनमाना है। इस प्रकार जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 13.04.2022 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 8/विशेष न्यायाधीश, गिरोहबन्द अधिनियम, लखनऊ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 5.1.2023 अवैध हैं और निरस्त किये जाने योग्य है।

24. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, विचारण न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को सही परिप्रेक्ष्य में पारित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि वे विधि की नजर में धारणीय नहीं हैं और इन आदेशों में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित है। अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 2 और 3 के प्रावधान अपीलकर्ता के मामले में आकर्षित होते हैं, और इसके अतिरिक्त अपीलकर्ता की संपत्ति भी विधि के अनुसार कुर्क नहीं की गई है, क्योंकि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि अपीलकर्ता द्वारा अर्जित और स्वामित्व वाली संपत्ति असामाजिक गतिविधियों में लिप्त हो कर प्राप्त की गई आय से अर्जित की गई है। धारा 16 के अंतर्गत जांच अधिनियम के अनुसार नहीं की गई थी, धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों का भी अधिनियम के अनुसार पालन नहीं किया गया था, इस प्रकार इसके अनुसरण में शुरू की गई पूरी कार्यवाही दूषित हो गई है।

25. तदनुसार, वर्तमान अपील स्वीकार की जाती है। गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14(1) के अंतर्गत वर्ष 2021 के वाद संख्या 2850 कम्प्यूटरीकृत वाद सं. D202110460002850 (राज्य बनाम वसीम खान) में जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 13.04.2022 का

आक्षेपित आदेश, और वर्ष 2022 के आपराधिक अपील संख्या 84 (वसीम खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य,) और वर्ष 2022 के आपराधिक विविध मुकदमा संख्या 735 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम वसीम खान) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 8/विशेष न्यायाधीश, गिरोहबन्द अधिनियम, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 5.1.2023 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

जिला अधिकारी, लखनऊ/विपक्षी पक्ष संख्या 2 को अपीलकर्ता की सभी संपत्तियों को दिनांक 13.04.2022 के आदेश के तहत अपीलकर्ता के पक्ष में तत्काल अवमुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 870

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 842/2023

इंद्रमणि यादव और अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: समीर सिंह, पवन कुमार पांडे, शशांक सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., विकास वर्मा

ए. दंड विधि - अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989- धारा 14ए(1)- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147, 323, 326-ए, 504 एवं 3(1)एक्स एससी/एसटी अधिनियम-धारा 3(1)एक्स एससी/एसटी अधिनियम के तहत समन आदेश को चुनौती- सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट शब्दों में माना कि सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृश्य स्थान पर जाति का नाम लेकर गाली देना केवल एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराध माना जाएगा जब तक यह स्थापित न हो जाए, विचारणीय न्यायालय को इस तथ्य की न्यायिक जांच करनी होगी कि बोले गए शब्द सार्वजनिक दृश्य में हैं या सार्वजनिक स्थान पर-वर्तमान मामले में, वादी के परिवार के सदस्यों के चिल्लाने पर गांव के लोग घर के अंदर पहुंचे और उन्होंने देखा कि आरोपी व्यक्ति घर के अंदर परिवार के सदस्यों के साथ मारपीट कर रहे हैं और गाली दे रहे थे जो स्वीकृत रूप से सार्वजनिक स्थान नहीं है- एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)एक्स के तहत आवेदकों के खिलाफ समन जारी करते समय विद्वान विचारणीय न्यायालय अपने न्यायिक मस्तिष्क का इस्तेमाल नहीं किया-परिणामस्वरूप, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)एक्स के तहत समन जारी करने की सीमा तक समन आदेश को निरस्त किया जाता है। (पैरा 1 से 18)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य (2020) 10 एससीसी 710।

2. अश्विनी कुमार बनाम राज्य एवं अन्य डब्ल्यूपी (सीआरएल) संख्या 1593/2006 एवं सीआरएल एम.ए. संख्या 6859/2006

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

(1.) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक सिंह के सहता से श्री समीर सिंह, अधिवक्ता को और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए.-I, श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को सुना।

(2.) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14ए(1) के अंतर्गत यह आपराधिक अपील, परिवाद संख्या-118/2019 (जगन्नाथ बनाम सीताराम एवं अन्य) में धारा 147, 323, 326-ए, 504 आईपीसी व 3(1)एक्स एससी/एसटी अधिनियम, 1989 के अंतर्गत पारित समन आदेश दिनांक 04.02.2023 को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जो विद्वान विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, अंबेडकर नगर के समक्ष लंबित है और उपरोक्त शिकायत मामले से उत्पन्न संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही है।

(3.) अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता निर्दोष हैं तथा उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने तर्क दिया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 09.01.2017 को दर्ज की गई थी तथा उसके पश्चात जांच अधिकारी ने जांच की तथा जहां तक प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों का संबंध है, अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई सामग्री नहीं पाई तथा इस प्रकार अंतिम रिपोर्ट 05.07.2017 को प्रस्तुत की गई। ऐसी अंतिम रिपोर्ट पर शिकायतकर्ता ने 06.06.2018 को आपत्ति आवेदन दायर किया तथा इसे शिकायत मामले के रूप में माना गया तथा मजिस्ट्रेट तथा विद्वान ट्रायल कोर्ट ने शिकायतकर्ता तथा गवाहों के बयान सीआरपीसी की धारा 200 तथा 202 के अंतर्गत दर्ज किए। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान आपत्ति आवेदन की ओर आकर्षित किया है, जिससे पता चलता है कि आरोप इस तथ्य के संबंध में है कि आरोपियों ने घायलों के साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों पर भी हमला किया और उसके बाद, वे शिकायतकर्ता के घर में घुस गए और शिकायतकर्ता के बेटे के साथ मारपीट की और उस पर कुछ ज्वलनशील पदार्थ डाला और परिणामस्वरूप, वह जल गया।

(4.) शिकायतकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि आईपीसी की अन्य धाराओं के साथ-साथ, मजिस्ट्रेट ने एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1) एक्स के तहत अपीलकर्ताओं को समन किया है। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान शिकायतकर्ता के बयान की ओर भी आकर्षित किया है, जिसे पृष्ठ-100 पर संलग्न किया गया है और संदर्भित किया है कि शिकायतकर्ता ने स्वयं ट्रायल कोर्ट के समक्ष कहा है कि घटना घर के अंदर हुई और शिकायतकर्ता के शोर मचाने के बाद, गांव के लोग वहां आए और अपीलकर्ताओं को बचाया गया। उन्होंने आगे कहा कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि घटना सार्वजनिक रूप से नहीं हुई थी और इसलिए, अपीलकर्ताओं के खिलाफ एससी/एसटी

अधिनियम की धारा 3(1)X के तहत समन जारी नहीं किया जा सकता था।

(5.) अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ***(2020) 10 एससीसी 710; हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य*** के निर्णय पर भरोसा किया है और उक्त मामले के पैराग्राफ 14, 17 और 18 का हवाला दिया है। फैसले के पैराग्राफ 14, 17 और 18 को यहां उद्धृत किया गया है:-

"14. प्रावधान का एक अन्य मुख्य घटक "सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान" में अपमान या धमकी देना है। "सार्वजनिक दृश्य में स्थान" किसे माना जाना चाहिए, इस पर न्यायालय के समक्ष स्वर्ण सिंह बनाम राज्य के रूप में रिपोर्ट किए गए निर्णय में विचार किया गया था। न्यायालय ने "सार्वजनिक स्थान" और "सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान" के बीच अंतर किया था। यह माना गया कि यदि भवन के बाहर कोई अपराध किया जाता है, जैसे कि घर के बाहर लॉन में, और लॉन को सड़क या गली से कोई व्यक्ति बाउंड्री वॉल के बाहर देख सकता है, तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य में एक स्थान होगा। इसके विपरीत, यदि टिप्पणी भवन के अंदर की जाती है, लेकिन वहां कुछ आम लोग (केवल रिश्तेदार या मित्र नहीं) मौजूद हैं, तो यह अपराध नहीं होगा क्योंकि यह सार्वजनिक दृश्य में नहीं है। न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"28. एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि प्रथम सूचनाकर्ता विनोद नागर को अपीलकर्ता 2 और 3 द्वारा अपमानित किया गया (उसे "चमार" कहकर) जब वह परिसर के गेट पर खड़ी कार के पास खड़ा था। हमारी राय में, यह निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक स्थान था, क्योंकि घर का द्वार निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक स्थान है। यह एक अलग मामला हो सकता था यदि कथित अपराध किसी इमारत के अंदर किया गया होता, और सार्वजनिक दृश्य में भी नहीं होता। हालांकि, अगर अपराध इमारत के बाहर किया जाता है, जैसे कि घर के बाहर लॉन में, और लॉन को बाउंड्री वॉल के बाहर सड़क या गली से कोई देख सकता है, तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक स्थान होगा। साथ ही, भले ही टिप्पणी किसी इमारत के अंदर की गई हो, लेकिन वहां कुछ आम लोग मौजूद हों (केवल रिश्तेदार या दोस्त नहीं) तब भी यह एक अपराध होगा क्योंकि यह सार्वजनिक दृश्य में है। इसलिए, हमें "सार्वजनिक दृश्य के भीतर स्थान" अभिव्यक्ति को "सार्वजनिक स्थान" अभिव्यक्ति के साथ भ्रमित नहीं करना चाहिए। एक स्थान, निजी स्थान हो सकता है लेकिन फिर भी सार्वजनिक दृश्य के भीतर हो सकता है। दूसरी ओर, सार्वजनिक स्थान का अर्थ सामान्यतः ऐसा स्थान होता है जो सरकार या नगर पालिका (या अन्य स्थानीय निकाय) या गाँव सभा या राज्य के किसी साधन के स्वामित्व में या पट्टे पर होता है, न कि निजी व्यक्तियों या निजी निकायों के पास।"

17. खुमान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य के रूप में रिपोर्ट किए गए एक अन्य फैसले में, इस न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 3(2)(v) की प्रयोज्यता के मामले में, यह तथ्य कि मृतक अनुसूचित जाति का था, बढ़ी

हुई सजा देने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इस न्यायालय ने माना कि ऐसा कोई संकेत नहीं था कि अपीलकर्ता द्वारा अपराध केवल इसलिए किया गया क्योंकि मृतक अनुसूचित जाति का था। न्यायालय ने निम्नानुसार माना:-

"15. जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है, अपराध ऐसा होना चाहिए जो अधिनियम की धारा 3(2)(v) के अंतर्गत अपराध को आकर्षित करे। व्यक्ति के विरुद्ध अपराध इस आधार पर किया गया होगा कि वह व्यक्ति अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का सदस्य है। वर्तमान मामले में, यह तथ्य कि मृतक "खंगार" अनुसूचित जाति से संबंधित था, विवादित नहीं है। यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि अपराध केवल इस आधार पर किया गया था कि पीड़ित अनुसूचित जाति का सदस्य था और इसलिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत अपीलकर्ता-अभियुक्त की सजा कायम नहीं रह सकती।"

18. इसलिए, अधिनियम के तहत अपराध केवल इस तथ्य पर स्थापित नहीं होता है कि सूचना देने वाला अनुसूचित जाति का सदस्य है, जब तक कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को इस कारण से अपमानित करने का इरादा न हो कि पीड़ित ऐसी जाति का है। वर्तमान मामले में, पक्ष भूमि पर कब्जे को लेकर मुकदमा कर रहे हैं। गाली-गलौज का आरोप उस व्यक्ति के खिलाफ है जो संपत्ति पर मालिकाना हक का दावा करता है। यदि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति का है, तो अधिनियम की धारा 3(1)(आर) के तहत अपराध नहीं बनता है।

(6.) उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय ने "सार्वजनिक स्थान" और "सार्वजनिक दृश्य के भीतर किसी भी स्थान" के बीच अंतर किया है और यह माना गया है कि यदि भवन आदि के बाहर या लॉन में, घर के बाहर कोई अपराध किया जाता है और लॉन को सड़क या चारदीवारी के बाहर किसी गली से कोई देख सकता है, तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक स्थान होगा और इस प्रकार यह उपर्युक्त निर्णय से साबित होता है कि जहां तक एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराधों का संबंध है, उसकी जांच उपर्युक्त परीक्षण पर की जानी चाहिए।

(7.) उन्होंने **रिट याचिका (क्रिल) संख्या-1593/2006 और आपराधिक एम.ए. संख्या-6859/2006; अश्विनी कुमार बनाम राज्य और अन्य** में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है; और निर्णय के पैराग्राफ 9 और 17 को संदर्भित किया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 और 17 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"9. इस प्रकार कानून का प्रस्ताव स्पष्ट है। केवल इसलिए कि एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)X का उल्लेख एफआईआर में है, यह निष्कर्ष निकालने का आधार नहीं हो सकता कि एससी/एसटी अधिनियम की उक्त धारा के तहत प्रथम दृष्टया अपराध बनता है। ऐसे मामलों में दस्तावेजों की न्यायिक जांच यह

मूल्यांकन करने के लिए स्वीकार्य है कि अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई सामग्री ने अपराध के मूल तत्वों के अस्तित्व को प्रकट किया है या नहीं। उस सीमित उद्देश्य के लिए, न्यायालय इस प्रश्न की जांच करने से पहले, कि क्या एफआईआर में लगाए गए आरोपों पर, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)X के तहत प्रथम दृष्टया कोई अपराध बनता है, अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री को छान-बीन कर उसका मूल्यांकन कर सकता है।

....17. अभिव्यक्ति "सार्वजनिक" एक बहुरूपी शब्द है जिसके अलग-अलग अर्थ होते हैं, जिसका उपयोग संज्ञा या विशेषण के रूप में किया जाता है। संज्ञा के रूप में, "सार्वजनिक" का अर्थ बड़े पैमाने पर लोगों का समूह है; शहर जैसे किसी निगम की भौगोलिक सीमाओं के संदर्भ के बिना, बड़े पैमाने पर समुदाय, शहर या देहात, लोग; राजनीति का पूरा निकाय, या राज्य के सभी नागरिक। दूसरे शब्दों में, सार्वजनिक शब्द का अर्थ सभी लोग या ज़्यादातर लोग या किसी स्थान के बहुत ज़्यादा लोग नहीं है, बल्कि उनमें से इतने सारे लोग हैं जो उन्हें कुछ लोगों से अलग करते हैं। इसलिए, सार्वजनिक का अर्थ किसी विशेष स्थान के निवासी हैं, वे सभी या कुछ या पड़ोस के लोग हो सकते हैं। एक विशेषण के रूप में, 'सार्वजनिक' का अर्थ उन विषयों पर होगा जिन पर इसे लागू किया जाता है। एससी/एसटी अधिनियम को समाज के कमज़ोर वर्ग को एससी/एसटी के खिलाफ़ होने वाले विभिन्न प्रकार के अत्याचारों से बचाने के उद्देश्य से लागू किया गया है, जिन्हें एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 में अपराध के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। न्यायालय को यह ध्यान में रखना होगा कि एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराध काफी गंभीर हैं और कड़ी सज़ा का प्रावधान है और इसलिए, ठोस सबूत की आवश्यकता है। न्यायालय को एक ऐसी व्याख्या अपनानी होगी जो उस शरारत को दबा दे या टाल दे जो हो सकती थी और अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाए। इसलिए, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)X में दिखाई देने वाले 'सार्वजनिक दृश्य' का अर्थ सार्वजनिक व्यक्तियों की उपस्थिति से लगाया जाना चाहिए, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, और वे व्यक्ति स्वतंत्र और निष्पक्ष होते हैं और किसी भी पक्ष में रुचि नहीं रखते हैं। दूसरे शब्दों में, शिकायतकर्ता के साथ किसी भी तरह का करीबी रिश्ता या जुड़ाव रखने वाले व्यक्तियों को 'सार्वजनिक दृश्य' की परिभाषा से बाहर रखा जाना चाहिए।"

(8.) उन्होंने उपरोक्त निर्णय का हवाला देते हुए कहा कि केवल इसलिए कि एफआईआर में एससी/एसटी एक्ट की धारा का उल्लेख है, यह निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार नहीं हो सकता कि प्रथम दृष्टया अपराध बनता है, लेकिन ऐसे मामलों में दस्तावेजों की न्यायिक जांच यह मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है कि अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई सामग्री अपराध के मूल तत्वों के अस्तित्व को प्रकट करती है या नहीं?

(9.) उन्होंने यह भी तर्क दिया कि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश को पढ़ने मात्र से, जो इस अपील में आक्षेपित है, यह स्पष्ट है कि केवल दावे के आधार पर और साक्ष्य की जांच किए

बिना ही इसे पारित कर दिया गया है। शिकायतकर्ता ने स्वयं कहा है कि कुछ लोगों ने घर पर हमला किया और परिवार के सदस्यों के चिल्लाने के बाद, गांव के लोग वहां आ गए और इस प्रकार, धारा 3(1) एक्स के तत्व आकर्षित नहीं होते हैं। अपनी तर्कों को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा कि शिकायतकर्ता के बयान से भी स्पष्ट है कि घटना घर के अंदर हुई है जो न तो सार्वजनिक स्थान है और न ही सार्वजनिक दृश्य वाला स्थान है, और इसलिए, दिनांक 04.02.2023 का आदेश न्यायिक विवेक के प्रयोग के बिना है और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून पर विचार करते हुए इसे रद्द किया जा सकता है।

(10.) दूसरी ओर, शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्कों का बलपूर्वक विरोध किया है और तर्क दिया है कि बयान को ट्रायल कोर्ट द्वारा सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज किया गया है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ताओं द्वारा अपराध किया गया है और जिसके तहत ट्रायल कोर्ट ने इस पर विचार करते हुए एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)एक्स के साथ-साथ आईपीसी की धाराओं 147, 323, 326ए और 504 के तहत समन जारी किया है। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान आक्षेपित आदेश की ओर आकर्षित किया है तथा तर्क दिया है कि ट्रायल कोर्ट ने शिकायतकर्ता तथा गवाहों के बयान पर क्रमशः धारा 200 तथा 202 सीआरपीसी के तहत विचार किया है तथा अपना निष्कर्ष भी दिया है, अतः अपीलकर्ताओं के विरुद्ध जारी समन आदेश में किसी प्रकार की त्रुटि या दुर्बलता नहीं है, अतः वर्तमान अपील में कोई दम नहीं है तथा इसे खारिज किया जाना चाहिए।

(11.) इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने भी अपीलकर्ताओं के वकील के तर्क का खंडन किया है तथा कहा है कि शिकायतकर्ता तथा गवाहों के बयान दर्ज करने के पश्चात, तर्क देते हुए आदेश पारित किया गया है, अतः इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप उचित नहीं है।

(12.) पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि आरम्भ में अपीलकर्ताओं के विरुद्ध दिनांक 09.01.2017 को एफआईआर दर्ज की गई थी तथा जांच के पश्चात जब जांच अधिकारी ने पाया कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई ठोस सामग्री या साक्ष्य नहीं है, तो अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई तथा जब दिनांक 06.06.2018 को आपत्ति आवेदन दायर किया गया, तो मजिस्ट्रेट ने इसे शिकायत के रूप में मानते हुए शिकायतकर्ता तथा गवाहों के बयान दर्ज किए तथा एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)एक्स सहित आईपीसी की अन्य धाराओं के अंतर्गत समन जारी किया।

(13.) जब इस न्यायालय ने शिकायतकर्ता के बयान की जांच की, तो यह पता चला कि शिकायतकर्ता ने खुद स्वीकार किया था कि घटना घर के अंदर हुई थी और यह आगे कहा गया है कि आरोपी व्यक्ति आए और घर पर हमला किया और उसी में प्रवेश किया और मारना शुरू कर दिया और परिवार के सदस्यों के चिल्लाने पर, गांव के लोग वहां आ गए और इस प्रकार, प्रथम

दृष्टया, इस तथ्य के संबंध में कोई सबूत नहीं है कि परिवार के सदस्यों के अलावा कुछ अन्य व्यक्ति वहां थे जिन्होंने घटना को देखा या सुना है और इस प्रकार, प्रथम दृष्टया कथित घटना को सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृश्य के भीतर जगह में नहीं कहा जा सकता है। (14.)इस न्यायालय ने **हितेश वर्मा (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के सिद्धान्त पर भी विचार किया है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि घटना घर के बाहर या लॉन में हुई है, लेकिन जब तक कि वह जनता के पहुँच के भीतर न हो, तो इसे सार्वजनिक दृश्य या सार्वजनिक स्थान पर घटित नहीं कहा जा सकता है। **अश्विनी कुमार (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि केवल एससी/एसटी अधिनियम की धाराओं का उल्लेख करना उपरोक्त अधिनियम के तहत अपराध के निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार नहीं हो सकता है, जब तक कि न्यायिक जांच न हो जाए।

(15.) उपर्युक्त तर्कों और चर्चाओं के बाद यह बात सामने आई कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट शब्दों में निर्धारित किया है कि सार्वजनिक स्थान या सार्वजनिक दृश्य वाले स्थान पर जाति का नाम लेकर गाली देना केवल एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराध माना जाएगा और जब तक यह साबित नहीं हो जाता है, ऐसे मामलों में कोई आपराधिक कार्यवाही नहीं चल सकती है और निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, ट्रायल कोर्ट को इस तथ्य की न्यायिक जांच करनी होगी कि क्या बोले गए शब्द सार्वजनिक दृश्य या सार्वजनिक स्थान पर हैं। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, शिकायतकर्ता के परिवार के सदस्यों की चीख-पुकार पर, गांव के लोग पहुंचे और उन्होंने देखा कि आरोपी व्यक्ति परिवार के सदस्यों की पिटाई कर रहे हैं, हालांकि गाली घर के अंदर दी गई थी, जो निश्चित रूप से सार्वजनिक स्थान नहीं है।

(16.) उपर्युक्त तर्कों और चर्चाओं पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1) एक्स के तहत आवेदकों के खिलाफ समन जारी करते समय अपने न्यायिक विवेक का उपयोग नहीं किया। परिणामस्वरूप, दिनांक 04.02.2023 के समन आदेश को एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)X के तहत समन जारी करने की सीमा तक निरस्त किया जाता है।

(17.) यह निर्देश दिया जाता है कि ट्रायल कोर्ट तदनुसार कार्यवाही करेगा।

(18.) उपरोक्त टिप्पणियों के साथ अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।

(2023) 5 ILRA 875

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 1159/2017

आपराधिक अपील संख्या 1160/2017 और 1162/2017

गौरव शर्मा उर्फ सोनू एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राकेश कुमार सिंह, श्री अमित कुमार, श्री ब्रिजेश सहाय, श्री दिलीप कुमार, श्री राज सिंह परिहार, श्री राजर्षि गुप्ता, श्री सौरभ यादव, श्री विमलेंदु त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अंबर खन्ना, श्री राज कुमार खन्ना, श्री एम.जे. अख्तर, श्री वी.एम. जैदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 147, 148 व 302/149 -शस्त्र अधिनियम, 1878 -धारा 25 - दोषसिद्धि - चुनौती - पीडब्लू-1 की गवाही विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि वह एक इच्छुक गवाह है और उसका आचरण कई मामलों में स्वाभाविक नहीं पाया गया है - इसके अलावा, उसका आपराधिक इतिहास है, क्योंकि वह जेल जा चुका है - एकमात्र चश्मदीद गवाह होने के बावजूद उसका बयान दर्ज करने में 15 दिन की देरी परेशान करने वाली है - उसने न तो एफआईआर दर्ज कराई और न ही वह जांच का गवाह है - मृतक की पत्नी पीडब्लू-2 ने एफआईआर दर्ज कराई - अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के बारे में पीडब्लू-2 की गवाही विश्वसनीय नहीं है - अभियुक्त से बरामद दो आग्नेयास्त्र और लोहे की छड़ खुले स्थान से हैं और बरामदगी को स्थापित करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है, आग्नेयास्त्र की बरामदगी के गवाह केवल पुलिस कर्मी हैं और लोहे की छड़ पर खून के धब्बे नहीं थे - मृतक का शरीर अज्ञात के रूप में शवगृह में लाया गया और बाद में इस प्रविष्टि को काट दिया गया था - अभियोजन पक्ष द्वारा इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि इस प्रविष्टि को क्यों काटा गया - अपने जिरह में पी.डब्लू.-10 ने स्वीकार किया कि शव उसे एक दिन पहले रात में सौंप दिया गया था, लेकिन शव को अगले दिन सुबह 7.30 बजे शवगृह में लाया गया - चूंकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य की निचली अदालत द्वारा सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है, इसलिए आरोपी अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं। (पैरा 1 से 61)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र, द्वारा प्रदत्त)

1. ये तीन अपीलें अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 01, बिजनौर द्वारा सत्र विचारण संख्या 85 वर्ष 2014 (राज्य बनाम गौरव शर्मा @सोनू एवं अन्य) में धारा 147, 148, 302/149 आईपीसी, थाना - कोतवाली नगर के तहत केस क्राइम नंबर 22 वर्ष 2013 से उत्पन्न निर्णय और आदेश के खिलाफ निर्देशित की जाती हैं। जिला - बिजनौर; सत्र परीक्षण संख्या 86 वर्ष 2014 (राज्य बनाम गौरव शर्मा @ सोनू), केस क्राइम नंबर 25 वर्ष 2013 से उत्पन्न, शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत, थाना - कोतवाली नगर, जिला - बिजनौर; सत्र विचारण संख्या 87 वर्ष 2014 (राज्य बनाम गौतम), प्रकरण अपराध क्रमांक 142 वर्ष 2013 से उत्पन्न प्रकरण में धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत थाना कोतवाली नगर, जिला बिजनौर; और सत्र परीक्षण संख्या 88 वर्ष 2014, केस क्राइम नंबर 22 वर्ष 2013 से उत्पन्न धारा 147, 148, 302/149 आईपीसी, थाना - कोतवाली नगर, जिला - बिजनौर; अपीलकर्ताओं गौरव शर्मा @ सोनू, गौतम शर्मा, उत्तम कुमार शर्मा, संदीप

भारद्वाज और अंकित भारद्वाज को आईपीसी की धारा 302 के साथ 149 के तहत दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास के साथ-साथ 25,000 रुपये का जुर्माना भी लगाया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के तहत तीन साल के कठोर कारावास और 3,000 रुपये के जुर्माने के साथ तीन महीने की सजा का प्रावधान है। आरोपी गौरव शर्मा @ सोनू और गौतम शर्मा को धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत सात साल के कठोर कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ प्रत्येक को छह महीने की डिफ़ॉल्ट सजा के साथ सात साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया जाता है।

2. अभियोजन का मामला मुखबिर (अ०सा०-2) की एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क.1) पर आधारित है, जो मृतक की पत्नी है, जिसके अनुसार, उसके पति के ममेरे भाई, गौतम और गौरव, परशुराम शर्मा के बेटे, उसके घर आए और उसे सुरेंद्र नगर ले जाने के लिए अपने पति से बात की। आवास विकास के पास, जिसके बाद उसके पति ने सूचित किया कि वह गौरव और गौतम के साथ जा रहा है और जल्द ही वापस आ जाएगा। इन दो व्यक्तियों (गौरव और गौतम) द्वारा मुखबिर के पति को लाखों रुपये की राशि देय थी। जब अ०सा०-2 का पति वापस नहीं लौटा, तो मुखबिर चिंतित हो गया और उसने अपने देवर (अ०सा०-1) को सुरेंद्र नगर जाकर उसकी तलाश करने के लिए कहा। अ०सा०-1 सुरेंद्र नगर के लिए रवाना हो गया, जहां आरोपी गौतम, गौरव और उत्तम पुत्र परशुराम शर्मा और संदीप भारद्वाज और गौरव के देवर अंकित भारद्वाज उसके पति पर लोहे की छड़ों से हमला कर रहे थे। अ०सा०-1 ने शोर मचाया, जिसके बाद उपरोक्त आरोपी ने उसके पति पर गोली चला दी और भाग गया। अ०सा०-1 ने उन हमलावरों को देखा था जिन्होंने उसके पति की हत्या की थी और इसलिए रिपोर्ट दर्ज की जाए। इस सूचना के आधार पर 2013 के केस क्राइम नंबर 22 के रूप में धारा 147/148/149/302 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

3. जांच अधिकारी मौके पर पहुंचे और सादे और रक्तरंजित रेत, ग्रिट्स आदि एकत्र किए, जिन्हें अलग-अलग बक्से में रखा गया था और प्रदर्श क-4 के रूप में चिह्नित रिकवरी मेमो के माध्यम से सील कर दिया गया था। जांच अधिकारी ने 315 बोर की एक खाली और खून से सनी फ्लैट गोली भी बरामद की, जिसे रिकवरी मेमो के तहत सील कर दिया गया था। पुलिस ने घटनास्थल से मृतक की स्कूटी भी बरामद की है, जिस पर रजिस्ट्रेशन नंबर लिखा हुआ है। यूपी-20 जे-3492 और गोल्डन फ्रेम वाले चश्मे, मोबाइल, जल कर की रसीद और चांदी की पायल जिन्हें प्रदर्श कए-6 के रूप में चिह्नित रिकवरी मेमो के तहत सील किया गया था।

4. घटना की तारीख पर ही आरोपी गौतम को गिरफ्तार कर लिया गया था। उसने अपना अपराध कबूल कर लिया और पुलिस को उस जगह ले गया जहां उसने हमले का हथियार छिपाया था। उन्होंने पुल से करीब 40 कदम दूर बैराज रोड पर झाड़ियों से 315 बोर का तमंचा निकाला। बरामद आग्नेयास्त्र को खोला

गया और बैरल में एक 315 बोर का जिंदा कारतूस पाया गया। तमंचे की वसूली का एक ज्ञापन इसके परिणामस्वरूप प्रदर्श क.9 द्वारा तैयार किया गया था। आग्नेयास्त्र की इस तरह की बरामदगी के आधार पर एक और प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क.17) 2013 के केस क्राइम नंबर 142 के रूप में, घटना की तारीख को 15.30 बजे शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत दर्ज की गई।

5. उसी दिन शाम 4.15 बजे की कथित घटना के संबंध में 13.01.2013 को 18.05 बजे कोतवाली सदर, बिजनौर में एक और प्राथमिकी दर्ज की गई, जिसमें आरोपी गौरव शर्मा की निशानदेही पर एक सूखी नहर में झाड़ियों से बैरल में खाली फंसी एक बन्दूक बरामद की गई। इस 315 बोर के तमंचे (प्रदर्श क.7) का रिकवरी मेमो भी तैयार किया गया है, जिसका इस्तेमाल कथित तौर पर आरोपियों द्वारा मृतक पर गोली चलाने के लिए किया गया था। बैरल में गन पाउडर की गंध पाई गई।

6. दिनांक 12.01.2013 (पूर्व-10) को जांच की गई थी, जिसमें जांच कार्यवाही शुरू करने के समय को 19.30 करने के लिए एक ओवरराइटिंग शामिल है। 12-1-2013 को पंचायतनामा पूरा होने के समय पर एक स्पष्ट अधिलेखन भी है ताकि यह 2030 घंटे का दिखे। गवाहों में डॉ. मीतू कांत शर्मा, शिवम अवस्थी, रजत अवस्थी, मणिकांत शर्मा और लवी शर्मा शामिल थे। एक्टिवा स्कूटर पर मृत शरीर एमपी सिंह के एक निर्माणाधीन घर के सामने पाया गया। उसके सिर से खून बह रहा था और घटना स्थल के पास 315 बोर भी खाली मिला था। मृतक ने शरीर के निचले हिस्से पर सैंडो वेस्ट, सफेद ऊनी बनियान, सफेद जर्सी, ग्रे शर्ट और अन्य कपड़े पहन रखे थे। जांच के प्रत्यक्षदर्शियों ने पाया कि सिर और पीठ के साथ-साथ उसकी कलाई पर खून से सना घाव था। मौत के कारण का पता लगाने के लिए, गवाहों ने राय दी कि मृतक के शरीर पर पोस्टमार्टम किया जाना चाहिए। शव को सील कर कांस्टेबल 1516 अमित कुमार और 702 परमेंद्र सिंह की कस्टडी में दिया गया।

7. अगले दिन यानी 13.01.2013 को मृतक के शव का पोस्टमॉर्टम किया गया। पोस्टमॉर्टम में निम्नलिखित परीक्षणों की सूचना दी गई है, जिसे डॉ भोजराज सिंह (अ०सा०-5) द्वारा साबित किया गया है: -

"उम्र- 54 साल।

<u>बाहरी परीक्षण</u>

आँखें, मुंह बंद

<u>पोस्टमार्टम से पहले की चोटें</u>

1. बाईं भौंह से 10.0 सेमी ऊपर खोपड़ी पर 2.0 x 1.0 सेमी की गोली का घाव और किनारे उल्टे, गुहा गहरे होते हैं।

2. बाएं कान से 12 सेमी नीचे खोपड़ी के बाईं ओर गहरी 6.0 x 2.0 सेमी हड्डी का गोली का घाव।

3. कपाल पर 6.0 x 1.0 सेमी की हड्डी और दाईं भौं पर 12 सेमी गहरी हड्डी का घाव।

4. लेसेटेड घाव 4.0 x 1.0 सेमी, हड्डी गहरी, चोट नंबर 3 से 3 सेमी पीछे।

5. टी.एस. 6.0. बाईं कोहनी पर x 3 सेमी दोनों हड्डी के फ्रैक्चर के साथ।

6. टी.एस. 10.0 x 6.0 सेमी मेटाकार्पल के फ्रैक्चर के साथ बाईं तर्जनी उंगली के मध्य फैलिनक्स के फ्रैक्चर के साथ।

7. दोनों हड्डियों के फ्रैक्चर के साथ दाहिने अग्रभाग पर 4.0 x 2.0 सेमी के क्षेत्र में टीएस के साथ एम. एएस।

8. स्कैपुला के ठीक नीचे पीठ के बाईं ओर प्रवेश 5.0 x 2.0 सेमी की गोली का घाव।

<u>मौत का कारण</u>

पोस्टमार्टम से पहले की चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव।

8. जांच अधिकारी ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत गवाहों के बयान दर्ज करने और मृतक की पत्नी (अ०सा०- 2) और अन्य गवाहों से प्राप्त जानकारी पर साइट प्लान तैयार करने के बाद 15.1.2013 (पूर्व.24), 18.2.20213 (प्रदर्श क.27), 9.4.2013 (प्रदर्श क.30) और 17.4.2013 (प्रदर्श क.30) को चार अलग-अलग आरोप-पत्र दायर किए। अभियोजन पक्ष ने दिनांक 16.12.2014 की एफएसएल रिपोर्ट (प्रदर्श क.35/1, 35/2) के साथ-साथ दिनांक 4.8.2014 की एफएसएल रिपोर्ट (उदा.का.35/3, 35/4) को भी रिकॉर्ड में लाया है। आरोपी गौरव शर्मा और गौतम शर्मा के खिलाफ शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत मुकदमा चलाने के लिए जिला मजिस्ट्रेट बिजनौर से अनुमति भी प्राप्त की गई थी।

9. आरोप-पत्रों का संज्ञान लेने पर, मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय में सौंप दिया, जहां इसने गौरव शर्मा @ सोनू, गौतम शर्मा, उत्तम कुमार शर्मा, संदीप भारद्वाज और अंकित भारद्वाज के खिलाफ 2014 के सत्र परीक्षण संख्या 85 के रूप में दर्ज किया, जो 22 वर्ष 2013 के केस क्राइम नंबर 22 से उत्पन्न हुआ, आईपीसी की धारा 147, 148, 302/149; 2013 के केस क्राइम नंबर 25 से उत्पन्न गौरव शर्मा @ सोनू के खिलाफ धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत सेशन ट्रायल नंबर 86 वर्ष 2014; गौतम शर्मा के विरुद्ध सेशन ट्रायल क्रमांक 87 वर्ष 2014, प्रकरण अपराध क्रमांक 142 वर्ष 2013 से उत्पन्न, धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत थाना - कोतवाली नगर, जिला - बिजनौर।

10. अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने दिनांक 12.01.2013 (प्रदर्श क.-19), दिनांक 13.01.2013 की एफआईआर (प्रदर्श क.21), दिनांक 12.02.2013 (प्रदर्श क.ए-17), लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1), 'तमंचा' और खाली कारतूस (प्रदर्श क.-7) की बरामदगी मेमो, 31 बोर की बरामदगी और 31 बोर की बरामदगी के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए। लोहे की छड़ का रिकवरी मेमो (प्रदर्श कए-32), खून से सने और सादे रेत और कंक्रीट का रिकवरी मेमो (प्रदर्श क-4), खाली कारतूस और खून से सनी गोली (एक्स.का-5), स्कूटी, कांच, मोबाइल फोन और पायल का रिकवरी मेमो (प्रदर्श कए-6), पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट (प्रदर्श कए-2), फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट दिनांक 16.12.2014 (प्रदर्श क--35/1,35/2) 35/4, पंचायतनामा (एक्स-का-10), दिनांक 17.04.2013 (प्रदर्श क.-31), दिनांक 09.04.2013 (प्रदर्श क.-30), आरोप-पत्र दिनांक 15.01.2013 (प्रदर्श क.-24), दिनांक 18.02.2013 (प्रदर्श क.-27), जिला मजिस्ट्रेट

के दिनांक 17.01.2013 के आदेश के साथ साइट योजना (17.02.2013) के साथ जिला मजिस्ट्रेट का आदेश 2013 (Ex.Ka.33), दिनांक 18.02.2013 के सूचकांक के साथ साइट प्लान (Ex.Ka.26), दिनांक 12.01.2013 के सूचकांक के साथ साइट प्लान (Ex.Ka.3)।

11. अभियोजन पक्ष ने घटना के चश्मदीद गवाह श्रीकांत आत्रेय (अ०सा०-1) (मृतक के भाई) के मौखिक साक्ष्य भी जोड़े हैं; मीरा अत्रेय (अ०सा०-2), शिकायतकर्ता, मृतक की पत्नी और आखिरी बार देखे गए गवाह; युवराज सिंह (अ०सा०-3), गवाह, जिसने आवास विकास की आटा चक्की के पास आरोपी व्यक्तियों को अपने हाथों में हथियार रखते हुए देखा; ब्रह्म दत्त (अ०सा०-4), जिन्होंने गौतम शर्मा, उत्तम कुमार शर्मा, संदीप भारद्वाज और अंकित भारद्वाज द्वारा किए गए कबूलनामे को साबित किया है; डॉ. भोजराज सिंह (अ०सा०-5), जिन्होंने शव परीक्षण किया था। अपराध संख्या 22/2013 (12.1.2013 से 17.1.2013 तक) के प्रथम आईओ एसआई अब्दुल सलाम (अ०सा०-6) ने घटना स्थल से बरामद चूजे, मौके के निरीक्षण और रिकवरी मेमो के फर्द को साबित किया और साबित किया कि खून से सनी जमीन और खाली; एसआई बृजपाल सिंह तोमर (अ०सा०-7) ने तमंचा 315 बोर, चालानी लाश, फोटो लैश, सीएमओ का पत्र, आरआई का पत्र की बरामदगी साबित की। कांस्टेबल रामधन सिंह (अ०सा०-8) ने शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत चिक एफआईआर को रिकॉर्ड पर और जीडी की कार्बन कॉपी साबित की; हेड कांस्टेबल इंद्रदेव (अ०सा०-9), ने शस्त्र अधिनियम की धारा 25 की जीडी की चिक और कार्बन कॉपी साबित की; कांस्टेबल परवेंद्र सिंह (अ०सा०-10) ने इस तथ्य को साबित कर दिया कि वह पुलिस के कागज और सीएमओ को पत्र के साथ घटना स्थल से पुलिस मुख्यालय और पुलिस मुख्यालय से शवगृह तक शव गृह ले आए। हेड कांस्टेबल संतोष विश्नोई (अ०सा०-11), आईओ ने आर्म्स एक्ट की धारा 25 के तहत मामले की जांच की। प्रभारी निरीक्षक सुनील कुमार सिंह (अ०सा०-12), अपराध संख्या 22/2013 में आईओ ने 25.1.2013 को जांच की; एसआई सूर्य नाथ सिंह यादव (अ०सा०-13), द्वितीय आईओ ने अपराध संख्या 22/2013 में गौतम की गिरफ्तारी और तमंचा 315 बोर की बरामदगी को साबित कर दिया। और सेवानिवृत्त एसआई वीके बालियान (अ०सा०-14) ने 29.4.2013 को जांच अपने हाथ में ले ली, संदीप भारद्वाज और अंकित भारद्वाज की निशानदेही पर लोहे की रॉड की बरामदगी साबित कर दी।

12. अ०सा०-1 इस मामले में एकमात्र चश्मदीद गवाह है, जो मृतक का भाई होता है। वह उन सभी आरोपियों को जानता है जिनमें से गौरव, गौतम और उत्तम उसके ममेरे भाई हैं और आरोपी संदीप और अंकित आरोपी गौरव के बहनोई हैं। इस गवाह का दावा है कि वह घटना की तारीख शाम करीब 4.45 बजे अपने भाई की दुकान पर आया था। दुकान और मृतक का निवास एक ही है। जब वह दुकान (भूतल पर स्थित) पर था, अ०सा०-2 सीढ़ियों से नीचे आया और उसे सूचित किया कि मृतक आरोपी गौरव और गौतम के साथ लगभग 4.00 बजे पटेल नगर के लिए रवाना हुआ था और अब तक वापस नहीं आया है। उसने उसे

(अ०सा०-1) जाने और उसके लिए देखने के लिए कहा। अ०सा०-1 ने कहा कि वह तुरंत सुरेंद्र नगर आए और देखा कि उनके भाई (मृतक चंद्र कांत आत्रेय) पर आरोपी उत्तम, संदीप, अंकित, गौरव और गौतम द्वारा लोहे की रॉड से हमला किया जा रहा था। मारपीट सुरेंद्र नगर में नवनिर्मित मकान में हुई। रेत, ग्रिट आदि फर्श पर पड़े थे। अ०सा०-1 का दावा है कि उसने शोर मचाया जिस पर आरोपी गौतम और गौरव ने चंद्र कांत आत्रेय पर गोली चला दी, जिससे वह गिर गया और तुरंत उसकी मौत हो गई। आरोपी सुरेंद्र नगर से आवास विकास की ओर भाग गया। अ०सा०-1 वापस लौटा और घटना की जानकारी अपनी भाभी को दी, जिसने थाना में रिपोर्ट दर्ज कराई। अ०सा०-1 के अनुसार, उसके भाई ने ऋण पर पैसा दिया था। ऋण के रूप में बड़ी राशि ली गई थी। आवास विकास में एक मकान रहने के लिए दिया गया था, जिस पर आरोपियों का कब्जा था। इस कारण अ०सा०-2 आरोपियों के साथ जाने से डरता था। हत्या की घटना को भी इसी वजह से अंजाम दिया गया है। इस गवाह का दावा है कि वह जांच अधिकारी के साथ घटना स्थल पर गया था, जहां से उसने खून से सना और सादा रेत लिया था। घटनास्थल से खाली और खून से सनी सपाट गोली बरामद की गई थी। वसूली के ज्ञापन ों पर अ०सा०-1 के हस्ताक्षर प्राप्त किए गए थे। बरामद एक्टिवा, शीशे आदि के संबंध में वसूली का ज्ञापन भी तैयार किया गया है। आरोपी संदीप और अंकित का दावा है कि वे लंबे समय से फरार हैं और उन्होंने धमकी भी दी थी कि मामले को सुलझा लें या उन्हें भी मृतक के स्थान पर भेज दिया जाएगा, जिसके संबंध में 12.3.2013 को एनसीआर नंबर 71/2013 दर्ज किया गया था।

जिरह में अ०सा०-1 ने बताया है कि उसका भाई कर्ज देने और लेने के काम में लिप्त था। मृतक के व्यवसाय में जनता को ऋण देना शामिल था। 10-20 लोगों को ऋण दिया गया था और गवाह को यह नहीं पता था कि मृतक द्वारा ऋण वितरण के लिए भूमि या सोना आदि के रूप में कोई प्रतिभूति रखी गई थी या नहीं। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि सिविल लाइंस में स्थित दुकान के संबंध में मृतक का डॉ. प्रशांत के साथ कोई झगड़ा हुआ था या नहीं। अ०सा०-1 का दावा है कि उसे मृतक और अन्य लोगों के बीच लंबित मुकदमे के बारे में पता नहीं है। मृतक के पास मोबाइल था लेकिन उसे अपना फोन नंबर याद नहीं है। अ०सा०-2 में एक मोबाइल भी था, जिस पर अ०सा०-1 बात करता था। सुरेंद्र नगर के लिए रवाना होने से पहले, अ०सा०-1 ने अपने फोन नंबर पर मृतक के स्थान के बारे में पूछताछ नहीं की। उन्होंने अ०सा०-2 से फोन पर संपर्क करने के लिए भी नहीं कहा था। अ०सा०-1 को अ०सा०-2 ने यह भी नहीं बताया कि उसने अपने पति से फोन पर संपर्क करने की कोशिश की थी या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि बाद में अ०सा०-2 ने उनके मोबाइल पर कॉल करके उन्हें बुलाया था। गवाह ने इस तथ्य के बारे में भी अनभिज्ञता का दावा किया कि मृतक ने आरोपी गौरव से एक घर खरीदा था और भुगतान का विवरण रखा गया था या नहीं। अ०सा०-1 मृतक के घर से ढाई किलोमीटर की दूरी पर रहता है। यह घटना 2 किलोमीटर की दूरी पर हुई। बेगा कला नामक घटना स्थल के पास पुलिस की

एक बीट है। उनके घर से घटना स्थल तक जाने वाले रास्ते में पुलिस की पिटाई भी होती है। वह दावा करता है कि वह सीधे थाना आया था, लेकिन बाद में कहा कि वह अपने घर के माध्यम से गया था। उन्होंने अ०सा०-2 को पूरी घटना बताई। घटना के पंद्रह दिनों के बाद जांच अधिकारी द्वारा अ०सा०-1 का बयान दर्ज किया गया था। यह कहा गया है कि उसने सभी पांच आरोपियों को मृतक को लोहे की रॉड (सरिया) से पीटते हुए देखा। पूरी घटना 1-2 मिनट के भीतर हुई और उन्होंने न तो हस्तक्षेप करने की कोशिश की और न ही आरोपी को पकड़ने की कोशिश की। उन्होंने आरोपियों पर भी हमला नहीं किया था। वह अपने भाई को डॉक्टर के पास भी नहीं ले गया क्योंकि उसकी खोपड़ी खुल गई थी और उसकी मौके पर ही मौत हो गई। वह शव को भी अपने साथ नहीं ले गया। उन्होंने शव को नहीं छुआ और इसलिए, उनके कपड़ों पर रक्त के थक्के दिखाई देने का सवाल ही नहीं उठता। इस गवाह के अनुसार, दो गोलियां चलाई गईं। घटना स्थल के पास की सड़क उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है। पश्चिम की ओर जो घटना का स्थान था। एक घर में निर्माण चल रहा था और अंदर राजमिस्त्री और मजदूर काम कर रहे थे लेकिन उनमें से कोई भी बाहर नहीं आया। बाद में उन्होंने कहा कि घटना का घर सड़क से 5-7 कदम की दूरी पर था। उन्होंने आगे कहा कि घटना का स्थान सड़क है जो घर के पास है। इस गवाह का सामना सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उसके पिछले बयान से कराया गया है, जिसमें उसने खुलासा किया था कि आरोपी एक नए घर में मृतक पर लोहे की रॉड से हमला कर रहे थे और अगर ऐसे तथ्य जांच अधिकारी द्वारा लिखे गए हैं तो वे गलत हैं। वह जांच अधिकारी के साथ घटना स्थल पर जाने का भी दावा करता है। उसने उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली सड़क के पश्चिम की ओर घटना का स्थान दिखाया था। वह यह नहीं बता सकता कि क्या किसी अन्य स्थान को घटना के स्थान के रूप में दिखाया गया है। उसके भाई की स्कूटी गिर गई थी और उसने घटनास्थल पर मौजूद व्यक्तियों के संपर्क में शव छोड़ दिया लेकिन उसे उन लोगों में से किसी का नाम याद नहीं है और न ही वह उन्हें जानता था। घटना स्थल के आस-पास से घटना का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। उन्होंने कहा कि आरोपियों ने मृतक की कनपटी पर तमंचा लगाया था और करीब से गोली चलाई थी। इसी तरह दूसरी आग मृतक के शरीर पर तमंचा रखकर उसकी पीठ के पास मारी गई। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि शिकायतें मिली थीं लेकिन उसे अपने भाई के खिलाफ शुरू किए गए आपराधिक मामले के बारे में पता नहीं है। हालांकि, वह जानता था कि वह दो महीने तक जेल में रहा था। भूमि संपत्ति से संबंधित विभिन्न मामले हैं। मृतक की सबमर्सिबल पंप की दुकान थी जिसे वह 10.00 बजे खोलता था और फिर 3-4 बजे बंद कर देता था। गवाह ने बाद में कहा कि वह शाम 6.00 बजे दुकान बंद कर देता था। दुकान में नौकर थे लेकिन उनमें से किसी को भी मृतक का पता लगाने के लिए नहीं भेजा गया था। उसका भाई लगभग 4.00 बजे चला गया था, जबकि वह उसे 5.00 बजे खोजने

गया था। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसने घटना नहीं देखी थी और मृतक का शव बाद में मिला था और आरोपी को फंसाने के लिए झूठा मामला स्थापित किया गया है।

13. अ०सा०-2 मृतक की पत्नी है। उसने कहा है कि उसके पति ने उसे शाम 4.00 बजे फोन किया था। मृतक का घर और दुकान एक ही स्थान पर है। दुकान भूतल पर है जबकि घर पहली मंजिल पर है। मृतका की पुकार सुनकर वह बालकनी पर आई तो देखा कि आरोपी गौरव और गौतम उसके पति के साथ खड़े थे। अ०सा०-2 (मृतका) के पति ने जानकारी दी कि वह गौरव और गौतम के साथ आवास विकास सुरेंद्र नगर जा रहा है। ये लोग उसे सुरेंद्र नगर ले जा रहे हैं और वह उनके साथ जा रहा है। मृतक आरोपी गौरव और गौतम के साथ चला गया। अ०सा०-2 का दावा है कि वह घरेलू काम में लगी हुई थी। वह चिंतित थी और बालकनी में इधर-उधर घूम रही थी। उसने देखा कि उसका देवर अ०सा०-1 दुकान पर था। इसके बाद अ०सा०-2 सीढ़ियों से दुकान पर आया और अ०सा०-1 को सूचित किया कि मृतक गौरव और गौतम के साथ सुरेंद्र नगर गया था और वापस नहीं लौटा है, इसलिए वह उसकी तलाश में जा सकता है। अ०सा०-1 वहां से चला गया और बाद में बताया कि उसके पति की आरोपियों ने गोली मारकर हत्या कर दी है। घटना की लिखित रिपोर्ट उनके नंदोई धनंजय अवस्थी द्वारा लिखी गई थी, जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर किए थे। लिखित रिपोर्ट तदनुसार साबित हो गई है और उसने रिश्ते की व्याख्या की है। उसने कहा है कि आरोपी गौरव और गौतम पर मृतका का लाखों रुपये का कर्ज बकाया था और इसी वजह से उन्होंने उसके पति की हत्या की है। जब भी उसका पति आरोपी गौरव और गौतम के साथ जाता था तो उसे किसी भी लड़ाई का डर रहता था और चूंकि मृतक उनके साथ चला गया है, इसलिए वह परेशान थी और उसने अ०सा०-1 को उसकी तलाश करने के लिए कहा था। अपने पति की मृत्यु के बाद उन्हें 16.1.2013 को एक्सिस बैंक में देय गौरव भारद्वाज द्वारा हस्ताक्षरित 5,60,000 रुपये का चेक प्राप्त हुआ, जिसे उनकी जिरह के दौरान प्रस्तुत किया गया और प्रदर्शनी 1 के रूप में चिह्नित किया गया।

अ०सा०-2 की जांच की गई है। उसने अपने घर और दुकान की लोकेशन बताई है। घटना की तारीख पर उसके पति ने उसे फोन किया था और जब वह बाहर आई तो उसके पति ने बताया कि गौरव और गौतम उसके साथ हैं और उसे सुरेंद्र नगर ले जा रहे हैं। इतना कहकर मृतक उनके साथ चला गया। मृतक ने कुछ और नहीं बताया था। उसने इस सुझाव से इनकार किया कि दुकान के ऊपर कोई घर नहीं है। दुकान के पीछे एक गोदाम है जिसके ऊपर उसका घर है जहां वह रहती थी। पूर्व में एक छोटी बालकनी है। उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि दुकान बालकनी से दिखाई नहीं दे रही है। उसके पति ने उसे बताया था कि वह आरोपी के साथ आवास विकास सुरेंद्र नगर जा रहा है। रिपोर्ट में सुरेंद्र नगर के पास आवास विकास बताया गया है। गवाह को इस बात की जानकारी नहीं है कि आवास विकास और सुरेंद्र नगर दो अलग-अलग इलाके हैं या नहीं और दोनों कॉलोनियों के बीच आवासीय घर हैं।

उन्होंने शालिनी एन्क्लेव में गौरव से कोई घर खरीदने की बात से इनकार किया है। वह अर्चना नाम के किसी व्यक्ति को नहीं जानती। अनीता शर्मा उनकी नानाद (पति की बहन) हैं और उन्होंने गौरव से अनीता के साथ कोई घर नहीं खरीदा है, बल्कि अभिजीत से घर खरीदा था। यह घर शालिनी एन्क्लेव में है। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि शालिनी एन्क्लेव सुरेंद्र नगर और आवास विकास के बीच आता है या नहीं। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसे गौरव को कुछ पैसे देने थे और उसे फंसाया गया है ताकि शेष राशि के भुगतान से बचा जा सके।

आरोपी और उसके पति के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। उसका पति संपत्ति के कारोबार में शामिल नहीं था, लेकिन समय-समय पर प्लॉट खरीदता था और जरूरत पड़ने पर उन्हें बेच देता था। उसका पति साहूकारी के कारोबार में शामिल नहीं था। घटना की तारीख को उसका पति 4.00 बजे गया था। उसने क्वार्टर 5.00 बजे तक अपनी खोज शुरू नहीं की थी। उसने अ०सा०-1 को सूचित किया कि उसके पति को आरोपी द्वारा ले जाया गया है और उसे उनके बीच कुछ झगड़े की आशंका है और इसलिए, वह घर वापस जाते समय उससे मिलने जा सकता है।

अ०सा०-2 ने अपनी जिरह में कहा कि हत्या की खबर सुनकर वह पहले पुलिस थाने आई और उसके बाद सुरेंद्र नगर आई। अ०सा०-1 ने लगभग 05.15 - 05.30 बजे सूचित किया था कि उसके पति की हत्या कर दी गई है। उसने अ०सा०-1 से रिपोर्ट लिखने को नहीं कहा था क्योंकि उसने घटना देखी थी और वह अपने पति के पास जा सकती है। उसे यह भी याद नहीं है कि धनंजय को कौन लाया था। वह पुलिस के साथ शव के पास नहीं गई थी, लेकिन जब तक पुलिस पहले ही पहुंच चुकी थी, तब वह अ०सा०-1 के साथ रहने के लिए आई थी। उसने इस बात से इनकार किया है कि वह सुरेंद्र नगर नहीं गई थी क्योंकि शव वहां नहीं था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि उन्हें पहली सूचना यह थी कि उनके पति का शव मुर्दाघर में पड़ा हुआ है।

अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि उसके पति और अन्य व्यक्तियों के बीच कई मुकदमे चल रहे थे। ये मामले कृषि भूमि से संबंधित थे। उसके पास गांव रसूलपुर में कृषि भूमि है। उन्हें किसान के बेटे कदवा के पास लंबित मामलों के बारे में भी जानकारी नहीं है। उसे यह भी पता नहीं था कि बुद्ध के पुत्र रमेश के साथ मृतक के 8-10 मामले हैं। वह डॉक्टर प्रशांत को जानती थी जो पड़ोसी है और जिसके पास दुकान खाली करने का मामला लंबित था। उनके पति पर अन्नपूर्णा होटल के एक लड़के के साथ एक घर के संबंध में पिछले 27 वर्षों से मुकदमा चल रहा था। उसने इस बात से इनकार किया कि उसके पति के अन्य महिलाओं के साथ संबंध थे और पुलिस इस संबंध में उसके घर गई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि घटना के समय उनके घर और दुकान में कोई पीएनटी लैंडलाइन नंबर नहीं था। अ०सा०-2 ने आगे कहा है कि उसके पास इस तथ्य का कोई लिखित प्रमाण नहीं है कि आरोपी गौरव और गौतम से लाखों रुपये का ऋण बकाया था। उसे इस लेन-देन के

किसी गवाह के बारे में भी पता नहीं था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि ऋण की कहानी कानूनी सलाह पर सुनाई जाती है। उनकी उपस्थिति में चेक (पेपर नंबर 37केए) नहीं भरा गया था। उनके पति की मृत्यु 12.01.2013 को हुई थी और चेक पर तारीख 16.01.2013 है। चेक मिलने के बाद उसने पुलिस को सूचित नहीं किया था। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि चेक किसने भरा था या किसने उस पर हस्ताक्षर किए थे। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि कानूनी सलाह पर उसने जाली हस्ताक्षर वाला चेक पेश किया है। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि 20.06.2012 को किस समाचार पत्र की वस्तु प्रकाशित की गई थी, जिसके संबंध में गौरव की बैंक पासबुक और चेक बुक खो गई थी। इस गवाह ने आगे स्वीकार किया है कि उसके घर के पास एक एसआरएस मॉल है। उनकी तीन बेटियां और एक बेटा है। उसने इस बात से इनकार किया है कि वह दोपहर 3 बजे से शाम 6 बजे के बीच फिल्म देखने के लिए एसआरएस मॉल गई थी। उन्होंने इस तथ्य से भी इनकार किया कि मृतक की हत्या की घटना के बारे में उन्हें तब सूचित किया गया था जब वह फिल्म देख रही थीं।

14. अ०सा०-3 मृतक का दोस्त है। उसने कहा है कि जब वह आवास विकास के माध्यम से लौट रहा था, तो वह पांच आरोपियों से मिला, जो देसी पिस्तौल (तमंचे) और लोहे की रॉड से लैस थे और हैरान अवस्था में थे और यह कहकर भाग रहे थे कि उन्होंने उस व्यक्ति को खत्म कर दिया है। इस गवाह ने उनसे पूछा कि ऐसा क्या हुआ जिस पर आरोपी ने उसे अपने काम से चिंतित होने के लिए कहा। जिरह में अ०सा०-3 ने स्वीकार किया है कि उसके पास यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज नहीं है कि वह ठेकेदार है या 12.01.2013 को दूसरा शनिवार होने के कारण कार्यालय जाने का उसका बयान गलत था। PW-1 उनका सबसे करीबी दोस्त है। उसने अ०सा०-1 को बताया कि उसने घटना के 15-16 दिन बाद क्या देखा और उसने पहले इस बारे में उसे नहीं बताया था। 18 दिनों के बाद उनका बयान दर्ज किया गया। यह गवाह आईपीसी की धारा 302 के तहत एक मामले का आरोपी है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने झूठा बयान देने के अलावा कुछ नहीं देखा है।

अ०सा०-4 ने कहा है कि 21.01.2013 को वह मुरादाबाद में अपने बहनोई (साढ़ू) के घर में था, जहां आरोपी आए और अपना अपराध कबूल कर लिया। आरोपी ने यह भी कहा कि वह घर खाली कर देगा और ईमानदारी से राशि वापस कर देगा।

16. अ०सा०-5 से अ०सा०-14 औपचारिक गवाह हैं और इसलिए, जब भी आवश्यकता होगी, उनके बयानों को संदर्भित किया जाएगा।

17. अभियोजन पक्ष अभियुक्त अपीलकर्ताओं को फंसाने के लिए निम्नलिखित सबूतों पर भरोसा करता है: -

(i) मृतक के हमले और हत्या की घटना के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में अ०सा०-1 की मौखिक गवाही;

(ii) अ०सा०-2 की गवाही जिसने मृतक को अंततः आरोपी गौरव और गौतम की संगत में

देखा है, जिसके साथ मृतक चला गया था और बाद में उसकी क्रूर हत्या की खबर आई;

(iii) अभियुक्तों की निशानदेही पर दो आग्नेयास्त्रों और लोहे की सड़क की बरामदगी के साथ-साथ एफएसएल रिपोर्ट जिस आधार पर अभियोजन पक्ष आरोप लगाता है कि इस मामले में अभियुक्त अपीलकर्ताओं का निहितार्थ स्पष्ट रूप से स्थापित होता है;

(iv) अ०सा०-3 और अ०सा०-4 की गवाही, जिन्होंने घटना के तुरंत बाद अभियुक्तों को उलझन में देखा है और अभियुक्तों द्वारा अपराध किए जाने की कथित स्वीकारोक्ति की है ताकि मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल किया जा सके।

18. आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपराध का निष्कर्ष वापस करने के लिए नीचे दी गई अदालत द्वारा उपरोक्त मामलों पर साक्ष्य पर ध्यान दिया गया है। मकसद का अस्तित्व; अ०सा०-1 की ओकुलर गवाही; पहले मुखबिर की आखिरी बार देखी गई ओकुलर गवाही और हमले के हथियार की बरामदगी मुख्य रूप से ऐसी परिस्थितियां हैं जिन्हें नीचे दी गई अदालत द्वारा उचित संदेह से परे अपराध की खोज को वापस करने के लिए शामिल किया गया है।

19. दोषसिद्धि और सजा के फैसले को आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा चुनौती दी जाती है, जो तर्क देते हैं कि वे निर्दोष हैं और उन्हें मामले में झूठा फंसाया गया है। बचाव पक्ष का तर्क है कि वास्तव में एक अज्ञात शव पाया गया था और कांस्टेबल 1516 अमित कुमार द्वारा शवगृह में जमा किया गया था, जिसके संबंध में संबंधित रजिस्टरों में प्रासंगिक प्रविष्टियां की गई थीं और ऐसी जानकारी संबंधित थाना को भी भेजी गई थी। यह आरोप लगाया गया है कि इन प्रविष्टियों को बाद में हटा दिया गया है और उसी समय के आसपास कोई अन्य घटना दर्ज नहीं की गई थी। इस प्रकार यह आरोप लगाया गया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के साथ मिलकर घटना को अलग रंग देने के लिए पुलिस के कागजात में हेरफेर किया गया था ताकि आरोपी अपीलकर्ताओं को गलत तरीके से फंसाया जा सके और किसी ने भी घटना को नहीं देखा है और जो अज्ञात शव मिला है वह मृतक का था। बचाव पक्ष ने आगे एक मामला स्थापित किया है कि वास्तव में अ०सा०-2 अपने बच्चों के साथ एक फिल्म देखने गई थी और यह थिएटर में था कि मृतक की हत्या के बारे में उसे जानकारी मिली थी। इसकी पुष्टि के लिए दिनांक 13012013 के समाचार पत्र की रिपोर्ट को अभिलिखित किया गया है। इसलिए, बचाव पक्ष ने अभियोजन की कहानी के सभी पहलुओं पर सवाल उठाया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि आरोपी अपीलकर्ताओं को गलत तरीके से फंसाया गया है।

20. आरोपी अपीलकर्ताओं के वकील श्री विमलेंदु त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया कि अ०सा०-1 न तो घटनास्थल पर मौजूद था और न ही उसने घटना देखी है। यह विवाद निम्नलिखित परिस्थितियों पर निर्भर करता है: (ए) अ०सा०-1 का बयान घटना के 15 दिनों के बाद दर्ज किया गया था; (ख) अ०सा०-1 ने रिपोर्ट दर्ज नहीं की है और न ही वह जांच का गवाह है और इसलिए, घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति

अत्यधिक संदिग्ध है; (ग) अ०सा०-1 द्वारा मृतक को बचाने या अस्पताल में भर्ती होने या यहां तक कि रिपोर्ट दर्ज करने का कोई प्रयास न करने का आचरण ऐसी परिस्थितियां हैं जो उसकी उपस्थिति पर संदेह पैदा करती हैं; और (घ) पुलिस के कागजातों के साथ-साथ रजिस्टर में भी कई कटिंग हैं जो यह दर्शाती हैं कि पुलिस के कागजातों में हेरफेर किया गया था और मौके से खाली हुए नोटों की बरामदगी पर हस्ताक्षर जाली हैं। यह भी बताया गया है कि एफआईआर को एक सप्ताह के बाद मजिस्ट्रेट को भेज दिया गया है।

21. बहस का दूसरा हिस्सा अनिवार्य रूप से अ०सा०-2 की गवाही पर सवाल उठाता है, जिस पर आरोप है कि उसने आखिरकार दो आरोपियों को मृतक को ले जाते हुए देखा था। यह आग्रह किया जाता है कि मृतक की दुकान भूतल पर थी और घर की पहली मंजिल से दिखाई नहीं दे रही थी, जो दुकान के पीछे खुले मैदान के बाद स्थित थी। यह आग्रह किया जाता है कि वास्तव में अ०सा०-2 एसआरएस मॉल में एक फिल्म देख रहा था और घर में उसकी उपस्थिति साबित नहीं हुई है। अ०सा०-2 की गवाही पर विभिन्न अन्य तथ्यात्मक पहलुओं पर भी महाभियोग लगाया जाता है।

22. आग्नेयास्त्रों और खाली स्थानों की बरामदगी से संबंधित सबूतों का विरोध करते हुए, यह आग्रह किया जाता है कि घटना के स्थान पर पाई गई सपाट गोली बरामद तमंचे से मेल नहीं खाती है। यह भी आग्रह किया जाता है कि वसूली का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है और एफएसएल की रिपोर्ट को आरोपी अपीलकर्ताओं को फंसाने के लिए सबूत के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है।

23. अंत में आरोपी अपीलकर्ताओं की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि अ०सा०-3 और अ०सा०-4 की गवाही पूरी तरह से अविश्वसनीय है और इस मामले में आरोपी अपीलकर्ताओं के निहितार्थ के लिए कोई आधार नहीं बन सकती है। यह तर्क दिया जाता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत गवाहियां इच्छुक गवाहों की हैं और हालांकि घटना के स्थान पर स्वतंत्र व्यक्तियों के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है, फिर भी उनमें से कोई भी पेश नहीं किया जाता है, जो अभियोजन की कहानी पर सवाल उठाता है।

24. अभियोजन पक्ष और मुखबिर की ओर से दलीलों का कड़ा विरोध किया जाता है और श्री वीएम जैदी, मुखबिर के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अंबर खन्ना और राज्य के लिए एजीए द्वारा आग्रह किया गया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य भरोसेमंद और विश्वसनीय हैं और इसलिए, नीचे दी गई अदालत ने सही तरीके से आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है और सजा सुनाई है। आगे यह तर्क दिया जाता है कि अपराध में मातृ भाई को गलत तरीके से फंसाने का कोई कारण नहीं है और इसलिए, अपील में योग्यता का अभाव है।

25. हमने पक्षों के वकीलों को सुना है और अपील के रिकॉर्ड के साथ-साथ नीचे अदालत के मूल रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

26. गवाहों की गवाही के साथ-साथ दस्तावेजी सबूतों के आधार पर अभियोजन पक्ष ने यह

स्थापित करने का प्रयास किया है कि मृतक पर आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा हमला किया गया और गोली मार दी गई, गैरकानूनी सभा के सदस्यों के रूप में उनके सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में, क्योंकि उनके पास बड़ी राशि बकाया थी, जिसे वे चुकाने से बचना चाहते थे। नीचे दी गई अदालत ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों का विश्लेषण किया है ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित किया है। इसलिए, हमें इस बात की जांच करने की आवश्यकता है कि क्या अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहा है और नीचे दी गई अदालत का निष्कर्ष टिकाऊ है या नहीं? हमें इस बात की भी जांच करनी होगी कि क्या निचली अदालत द्वारा आरोपी अपीलकर्ताओं को दी गई सजा उनकी ओर से स्थापित अपराध के अनुरूप है?

27. रिकॉर्ड पर मौजूद सबूत बताते हैं कि मृतक पर हमला किया गया था और गोली मार दी गई थी। दिनांक 31012013 की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को ऑटोप्सी सर्जन डॉ भोजराज सिंह (अ०सा०-5) द्वारा सिद्ध किया गया है। खोपड़ी के बाईं ओर 2 सेमी x 2 सेमी के प्रवेश का एक बंदूक की गोली का घाव है, जिसके कोनों को उल्टा किया गया है, जिससे कान के नीचे 6 सेमी x 2 सेमी, 12 सेमी नीचे बंदूक की गोली का घाव है। प्रवेश का दूसरा बंदूक की गोली का घाव कमर के बाईं ओर 5 सेमी x 2 सेमी आकार का है। उपरोक्त दो बंदूक की गोली की चोट के अलावा, चोट संख्या 3 और 4 घाव हैं और चोट संख्या 5 और 6 दर्दनाक सूजन हैं। मृतक के पेट से एक सपाट गोली बरामद हुई है और उसकी सातवीं और आठवीं पसलियां टूटी हुई पाई गई हैं। बाएं फेफड़े को भी चोट लगी थी। जांच रिपोर्ट (पंचायतनामा-प्रदर्श क.10) से यह भी पता चलता है कि मृतक चंद्र कांत आत्रेय का शव एक निर्माणाधीन घर के सामने उनकी एक्टिवा स्कूटी पर पाया गया था। मृतक के सिर के साथ-साथ उसकी पीठ पर भी गोली लगने की चोट देखी गई और उसकी पसलियां टूटी हुई पाई गईं। जांच कर रहे गवाहों ने कहा कि मृतक की मौत पोस्टमार्टम से पहले लगी चोटों के कारण हुई। इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद सबूत निर्णायक रूप से साबित करते हैं कि मृतक की मौत हत्या से हुई थी।

28. अभियुक्त अपीलकर्ताओं को फंसाने के लिए अभियोजन पक्ष के साक्ष्य मुख्य रूप से तीन गुना हैं। (i) अ०सा०-1 की नेत्र संबंधी गवाही, जिसने कथित रूप से घटना को देखा है; (ii) प्रथम सूचनादाता (अ०सा०-2) की नेत्र संबंधी गवाही, जिसने अंत में मृतक को आरोपी गौरव और गौतम के साथ जाते हुए देखा और उसके तुरंत बाद मृत शरीर पाया गया; (iii) आरोपी गौरव और गौतम की निशानदेही पर आग्नेयास्त्र की बरामदगी के साथ-साथ घटना स्थल पर पाए गए खाली कारतूस को बरामद बन्दूक से जोड़ने वाली एफएसएल रिपोर्ट। अब हम एक-एक करके उपरोक्त अभियोजन साक्ष्य लेंगे।

29. अ०सा०-1 घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह है। वह मृतक का सगा भाई है और इस प्रकार एक संबंधित गवाह है। उसका दावा है कि वह घटना की तारीख को लगभग 04.45

बजे मृतक की दुकान पर आया था और उसकी भाभी (अ०सा०-2) उसे दुकान पर देखने के बाद नीचे आई और उसे सूचित किया कि आरोपी गौरव और गौतम उसके भाई को लगभग 04.00 बजे पटेल नगर ले गए थे और वापस नहीं आए हैं। इसलिए, मुखबिर ने अ०सा०-1 को अपने भाई की तलाश करने के लिए कहा। अ०सा०-1 का दावा है कि वह तुरंत सुरेंद्र नगर आए और आरोपियों को अपने भाई को लोहे की छड़ों से पीटते हुए देखा। परीक्षा में अ०सा०-1 ने कहा है कि सुरेंद्र नगर में निर्माणाधीन नए मकान में उसके भाई के साथ मारपीट की जा रही थी। पास में ग्रिट, रेत आदि पड़ी थी। उसका दावा है कि जब उसने शोर मचाया तो आरोपी ने उसके भाई को गोली मार दी और उसकी मौत हो गई। इसके बाद आरोपी सुरेंद्र नगर से आवास विकास कॉलोनी में भाग गए।

30. अ०सा०-1 की गवाही की हमारे द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की गई है और हम इसमें निम्नलिखित पहलुओं को पेचीदा पाते हैं अर्थात (ए) अ०सा०-1 मृतक का भाई है और हालांकि वह घटना के स्थान पर मौजूद था लेकिन न तो उसने अपने भाई को बचाने की कोशिश की और न ही उसे अस्पताल या डॉक्टर के पास ले जाने का कोई प्रयास किया। हालांकि यह तय है कि गवाह जिस तरह से प्रतिक्रिया दे सकता है और लोग ऐसी परिस्थिति में अलग-अलग प्रतिक्रिया दे सकते हैं, इसका कोई निश्चित मानदंड नहीं है, लेकिन अ०सा०-1 की ओर से अपने भाई पर हमला होते देखने पर कुछ प्रतिरोध की उम्मीद है। घायलों को अस्पताल या डॉक्टर के पास ले जाने का प्रयास आमतौर पर अपेक्षित है, भले ही घायलों के बचने की संभावना कम हो; (ख) अ०सा०-1 ने न तो अपनी स्कूटी पर पड़े अपने भाई के शव को छुआ और न ही किसी को मदद के लिए बुलाया और शव को मौके पर मौजूद अन्य लोगों की देखभाल में उनकी पहचान जाने बिना छोड़ दिया ताकि लाश की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके; (ग) दिलचस्प बात यह है कि अ०सा०-1 स्वीकार करता है कि उसने थाना पार किया और कथित तौर पर वहां रुका लेकिन उसने कोई पुलिस रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई। मृतक का सगा भाई होने के नाते अ०सा०-1 से कम से कम यह उम्मीद की जा रही थी कि वह घटना की पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराएगा और ऐसा नहीं करने से उसका आचरण संदेह के घेरे में आ जाता है; (घ) अ०सा०-1 जांच का गवाह भी नहीं है, यद्यपि वह घटना को देखने और मौके पर उपलब्ध होने का दावा करता है। घटना के स्थान पर अ०सा०-1 की उपस्थिति पर सवाल उठाने वाले बचाव पक्ष के तर्क को महत्वपूर्ण घटनाओं में अ०सा०-1 की इस तरह की चूक से कुछ समर्थन मिलता है; (ङ) घटना स्थल पर अ०सा०-1 की उपस्थिति पर इस आधार पर गंभीरता से प्रश्न उठाया जाता है कि यद्यपि वह घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह है, फिर भी उसका बयान पुलिस द्वारा घटना की तारीख पर या अगले दिन दर्ज नहीं किया गया था, बल्कि घटना के 15 दिनों के बाद जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था। सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अ०सा०-1 के बयान दर्ज करने में इस तरह के अत्यधिक विलंब के लिए जांचकर्ता द्वारा कोई औचित्य नहीं दिया गया है; (च) अ०सा०-1 ने अपनी जांच में निर्माणाधीन मकान के रूप में घटना

का स्थान विनिदष्ट किया है जबकि अपनी प्रति-परीक्षा में अ०सा०-1 ने कहा है कि घटना का स्थान पश्चिमी ओर सड़क के अंत की ओर है। क्रॉस के दौरान इस पहलू पर उनका विशेष रूप से सामना किया गया है और उनका स्पष्टीकरण कि उन्होंने प्रमुख परीक्षा में ऐसा खुलासा नहीं किया था, विश्वसनीय नहीं है; (छ) अ०सा०-1 के अनुसार जांच अधिकारी को घटना का जो स्थान बताया गया है वह उत्तर-दक्षिण सड़क के पश्चिम में है जबकि स्थल योजना पूर्व-पश्चिम सड़क के उत्तर की ओर घटना को दर्शाती है। यह गवाह की सत्यता पर संदेह पैदा करने का एक आधार भी है; (ज) अ०सा०-1 ने अपने परीक्षा-इन-चीफ में यह कहने से इनकार किया है कि उसने आरोपी को निर्माणाधीन घर के अंदर अपने भाई को लोहे की रॉड से पीटते हुए देखा था। उन्होंने घटना स्थल पर पहुंचे किसी भी व्यक्ति का नाम जानने से भी इनकार किया है, हालांकि वह उनसे परिचित थे; (i) अ०सा०-1 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आरोपी ने मृतक के सिर पर बन्दूक रखकर उस पर गोली चलाई और अन्य आरोपी ने उसकी पीठ पर बन्दूक रख दी। हालांकि, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में मृतक पर कोई कालापन या जला हुआ नहीं दिखाया गया है, जो कि इतनी करीब से गोली मारने पर अपेक्षित है। श्री जैदी और श्री खन्ना का यह तर्क कि काला पन नहीं हुआ क्योंकि मृतक ने कई परतें पहने हुए थे, हमें आकर्षित नहीं करता है, क्योंकि मृतक द्वारा पहने गए कपड़े सिर पर नहीं थे, बल्कि वहां भी कालापन और जलन गायब थी। हमें संदेह है कि क्या कपड़े पहनने के कारण कालापन और जलन को समाप्त किया जा सकता है। यह पहलू घटना के स्थान पर अ०सा०-1 की उपस्थिति या घटना को देखने पर भी संदेह पैदा करता है।

पक्षकारों के वकीलों ने इस बिंदु पर विभिन्न केस कानूनों के संदर्भ में उपरोक्त पहलुओं पर हमें विस्तार से संबोधित किया है। हमने उपरोक्त पहलुओं पर अपना विचारशील विचार किया है और हमें अपीलकर्ताओं के वकील श्री विमलेंदु त्रिपाठी के तर्क में दम नजर आता है कि अ०सा०-1 की गवाही पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा, खासकर क्योंकि वह एक इच्छुक गवाह है और उसका आचरण कई मामलों में स्वाभाविक नहीं पाया जाता है। इस गवाह की साफ-सुथरी पृष्ठभूमि नहीं है क्योंकि वह जेल जा चुका है। वह विभिन्न मामलों का भी सामना कर रहे हैं। इसलिए उसकी गवाही को सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता है। उपरोक्त पृष्ठभूमि में उनके बयान दर्ज करने में 15 दिनों की देरी को देखा जाए, जबकि वह एकमात्र चश्मदीद गवाह हैं। तथ्य यह है कि उन्होंने न तो मृतक के निकटतम पुरुष रिश्तेदार होने के बावजूद प्राथमिकी दर्ज कराई और न ही जांच का गवाह हैं और उनका बयान कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में दिखाए गए बिना मृतक पर बंदूक रखकर गोली चलाई गई थी, अभियोजन पक्ष द्वारा हमारे सामने भी अस्पष्ट है। अन्यथा उनका आचरण कई मामलों में स्वाभाविक नहीं पाया जाता है, जैसा कि ऊपर देखा गया है। इस प्रकार हम अ०सा०-1 की गवाही को आरोपी अपीलकर्ताओं को फंसाने के लिए एक विश्वसनीय और विश्वसनीय सबूत के रूप में स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं।

31. अ०सा०-2 पहला मुखबिर है और मृतक की पत्नी है। उसकी गवाही से पता चलता है कि

उसे मृतक द्वारा सूचित किया गया था कि वह आरोपी गौरव और गौतम के साथ जा रहा है। उसकी मौजूदगी में ही उसका पति आरोपी गौरव और गौतम के साथ चला गया। वह चिंतित हो गई जब उसके पति लंबे समय तक वापस नहीं आए और वह अपने पति के आने की प्रतीक्षा में बालकनी में आगे बढ़ रही थी। उसने देखा कि अ०सा०-1 दुकान पर आया था और वह नीचे आई और उसे अपने भाई को खोजने के लिए कहा। उसकी गवाही को मुख्य रूप से दो मामलों में चुनौती दी जाती है; (क) क्या वह उपस्थित नहीं थी क्योंकि वह एसआरएस मॉल में एक फिल्म देखने गई थी; और (ख) उसका घर दुकान से दूर है और दृष्टि की रेखा में इस तरह से नहीं है कि किसी के लिए भी दुकान के सामने या दुकान पर खड़े या आने वाले व्यक्तियों को देखना संभव नहीं है।

32. जहां तक अ०सा०-2 के फिल्म देखने जाने के बचाव पक्ष के तर्क का संबंध है, उस पर भरोसा एक स्थानीय समाचार पत्र पर किया जाता है जिसे बचाव पक्ष द्वारा तैयार किया गया है और जिसे पेपर नंबर 2010 के रूप में चिह्नित किया गया है। ख-107 इस अखबार की रिपोर्ट में इस घटना का उल्लेख किया गया है और रिकॉर्ड किया गया है कि घटना की जानकारी अ०सा०-2 को दी गई थी जब वह फिल्म थिएटर में थी। कानून तय है कि अखबार की रिपोर्ट को प्राथमिक साक्ष्य के टुकड़े के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है और उसमें उल्लिखित तथ्य को पार्टियों के नेतृत्व में सबूतों के आधार पर स्वतंत्र रूप से साबित करना होगा। हमने सबूतों की जांच की है और अ०सा०-2 को दिए गए कुछ सुझावों या जांच अधिकारी की सुनी-सुनाई जानकारी को छोड़कर, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि अ०सा०-1 को किसी के द्वारा मूवी थिएटर में देखा गया था या कोई टिकट आदि यह साबित करने के लिए पेश किया गया है कि वह दोपहर 3 बजे से शाम 6 बजे तक शो देख रही थी। इसलिए हम बचाव पक्ष के इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि अ०सा०-2 शाम करीब चार बजे उसके घर पर मौजूद नहीं थी और इसलिए आरोपी गौरव और गौतम को उसकी दुकान पर नहीं देखा जा सकता था या इस तथ्य को नहीं देख सकते थे कि उसका पति उनके साथ सुरेंद्र नगर चला गया। इस संबंध में बचाव पक्ष की दलील को खारिज किया जाता है।

33. अ०सा०-2 ने बताया है कि उसकी दुकान और सड़क के बीच 2-3 मीटर का खुला क्षेत्र है। उसका दावा है कि उसके पति ने उसे फोन किया और जब वह बाहर आई तो उसके पति ने उसे बताया कि गौरव और गौतम उसके साथ खड़े हैं और उसे सुरेंद्र नगर ले जा रहे हैं। उसके संस्करण को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि दुकान के ऊपर कोई घर नहीं है और पहली मंजिल पर स्थित घर पर बालकनी से दुकान का अगला हिस्सा दिखाई नहीं देता है। अ०सा०-2 को विशेष रूप से इस पहलू पर उसकी जिरह के दौरान सामना किया गया है और इस संबंध में उसकी गवाही को बाद में पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"मेरी दुकान 21 फीट लंबी और 8 फुट चौड़ी है! इस दुकान में मेरे पति समरसेबल पंप का काम

करते थे! इस दुकान के अंदर भी बैठते थे और कभी धूप में बाहर आकर बैठते थे!

दुकान के अंदर एक दरवाजा है! दुकान के पीछे खाली मैदान है जहां सामान पड़ा रहता है! उसके पीछे गोदाम है! उसमें एक तहखाना है! इस गोदाम के ऊपर मेरा रिहायशी मकान है जिसमें मैं उस समय रहती थी! इस मकान में एक छोटा सा छज्जा पूर्व की तरफ है, और कोई छज्जा नहीं है!

यह कहना गलत है कि उस छज्जे से दुकान के बाहर ना दिखाई देता हो और दुकान का मेन गेट दिखाई ना देता हो!"

34. उपरोक्त कथन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि, अ०सा०-2 के अनुसार, मृतक की पनडुब्बी पंप की दुकान संकीर्ण थी यानी 8 फीट चौड़ी और लंबी यानी 21 फीट। इस दुकान के अंदर एक दरवाजा था जिसके बाद एक खुला मैदान था जहां सामान रखा जाता था। इसके बाद एक गोदाम मौजूद है, जिसमें एक तहखाना है, जिसके ऊपर अ०सा०-2 का निवास है। घर के पूर्व में एक छोटी सी बालकनी है। अ०सा०-2 के अनुसार, उसने अपनी बालकनी से दुकान के सामने दोनों आरोपियों को मृतक के साथ देखा और वहां से उसके पति ने उसे सूचित किया कि वह दो आरोपियों के साथ जा रहा है। यहीं से उसने दुकान पर अ०सा०-1 का आना भी देखा।

35. हमारे विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अ०सा०-2 के लिए यह संभव था कि उसने मृतका को दो अभियुक्तों के साथ उसकी बालकनी से जाते हुए देखा हो या दुकान पर अ०सा०-1 के आगमन आदि को देखा हो।

36. अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि उसकी दुकान 21 फीट लंबी है, जिसके बाद एक गोदाम के साथ खुला मैदान मौजूद है, जिसके ऊपर उसका निवास है। दुकान या अ०सा०-2 के गोदाम या आवास के जांच अधिकारी द्वारा कोई साइट प्लान तैयार नहीं किया गया है। इसलिए, हमें रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह देखने की आवश्यकता है कि क्या अ०सा०-2 ने अपने पति को दो आरोपियों के साथ खड़े या उनके साथ जाते हुए देखा होगा।

37. अ०सा०-2 का निवास दुकान के ऊपर नहीं है। 21 फीट लंबी दुकान के बाद एक खुला मैदान मौजूद है। इस क्षेत्र का आकार निर्दिष्ट नहीं है, लेकिन सामान्य बोलचाल में 'ओपन फील्ड' शब्द का उपयोग यह सुझाव देता है कि यह बहुत छोटा क्षेत्र नहीं है। यह इस खुले मैदान के बाद है कि एक गोदाम मौजूद है जिसके ऊपर अ०सा०-2 का घर है। इलाका शहरीकृत प्रतीत होता है और दुकान के आसपास संरचनाओं की उम्मीद है। यह नहीं दिखाया गया है कि दुकान दोनों तरफ से किसी भी संरचना से घिरा नहीं है। गोदाम की पहली मंजिल पर घर खुले मैदान के बाद स्थित है, जिसके बाद 21 फीट लंबी दुकान है। हमें यह स्वीकार करना मुश्किल लगता है कि घर की बालकनी से कोई व्यक्ति निर्मित दुकान आदि के रूप में बाधाओं के बावजूद दुकान के सामने देख सकता है।

38. जनवरी के महीने में शाम 4 बजे, एक बाजार क्षेत्र में, आम तौर पर एक व्यस्त जगह है। हमें यह विश्वास करना उचित नहीं लगता कि कोई उसकी दुकान के सामने से चिल्लाकर उसकी पत्नी को सूचित करेगा कि वह गौरव और गौतम के साथ खड़ा है या वे उसे सुरेंद्र नगर ले जा रहे हैं, खासकर जब हम आश्वस्त

नहीं हैं कि बालकनी दुकान के सामने से दृष्टि की सीधी रेखा में है।

39. अ०सा०-2 का दावा है कि उनके पति शाम करीब 4 बजे चले गए और 4.45 बजे तक वापस नहीं लौटे। 45 मिनट की यह देरी असामान्य रूप से लंबी नहीं है। मृतका और अ०सा०-2 दोनों के पास मोबाइल फोन थे, जिस पर अ०सा०-2 उसके पति से बात कर के उसकी कुशलक्षेम का पता लगा सकता था। हालांकि, अ०सा०-2 स्वीकार करती है कि उसने अपने पति को मोबाइल पर कॉल नहीं किया था। दुकान में नौकर थे जिन्हें पेश नहीं किया जाता है और उन्हें मृतक की तलाश के लिए भी नहीं भेजा जाता था।

40. अ०सा०-2 इसी तरह कहता है कि उसने अ०सा०-1 को बालकनी से दुकान के सामने खड़ा देखा। जैसा कि हमने पहले ही देखा है कि पहली मंजिल पर घर की बालकनी दुकान के सामने से सीधी रेखा में नहीं है, जैसे कि अ०सा०-2 का बयान कि उसने अ०सा०-1 को दुकान पर आते देखा और इसलिए वह नीचे आई, भी विश्वास करने योग्य प्रतीत नहीं होता है।

अ०सा०-2 ने हालांकि दावा किया है कि आरोपी गौरव और गौतम पर उसके पति का लाखों रुपये बकाया था, लेकिन मुकदमे के दौरान इस संबंध में कोई विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। अ०सा०-2 ने भी स्वीकार किया है कि इस तरह के मौद्रिक लेनदेन का कोई गवाह नहीं है। वित्तीय लेन-देन को दर्शाने के लिए एकमात्र सामग्री 16.01.2013 को कथित तौर पर दुकान में पाया गया 5,60,000 रुपये का चेक है, जिस पर आरोपी गौरव भारद्वाज के हस्ताक्षर हैं। यह नहीं दिखाया गया है कि आरोपी द्वारा अगली तारीख का चेक क्यों और कैसे जारी किया जाएगा या मृतक की दुकान तक पहुंच सकता है। चेक पर इस्तेमाल की गई स्याही अलग है और चेक भी पुलिस को नहीं दिया गया है और न ही जांच अधिकारी को इसकी जानकारी दी गई थी। यह केवल परीक्षण के चरण में है कि यह चेक पहली बार प्रस्तुत किया गया है। जिस तरीके से इस चेक को तैयार किया गया है, उससे कहीं ज्यादा सवाल खड़े होते हैं कि यह क्या जवाब देता है।

अ०सा०-2 ने यह भी स्वीकार किया है कि उसके पति संपत्ति विवादों के संबंध में कई मुकदमों का सामना कर रहे थे। उसके कथन से निम्नलिखित अंश प्रासंगिक है और इसके बाद निकाला गया है:

'मेरे पति और कुछ लोगों के बीच दीवानी के मुकदमे चल रहे हैं! यह मुकदमे मेरी खेती की जमीन की बाबत चल रहे हैं! रसूलपुर गांव में भी हमारी खेती की जमीन है! मुझे नहीं मालूम कि कड़वा एस/ओ किशन से मुकदमा है या नहीं! मुझे जानकारी नहीं है कि रमेश एस/ओ बुद्ध से 8-10 मुकदमे हैं !डॉक्टर प्रशांत को जानती हूं! पड़ोस में रहते हैं! काफी समय .. प्रशांत दुकान खाली करने का मुकदमा चला था! अन्नपूर्णा होटल वाले के लड़के से मेरे पति की मुकदमेबाज़ी 27 सालों की पुरानी है जो एक मकान को लेकर है!

यह कहना बिल्कुल गलत है कि मेरे पति का औरतों से संबंध हो! यह कहना भी बिल्कुल गलत है कि पुलिस इस संबंध में मेरे घर आई हो!'

3. अ०सा०-2 की गवाही अन्यथा यह दर्शाती है कि मृतक ने विभिन्न संपत्तियों की खरीद-फरोख्त की थी और विभिन्न व्यक्तियों के साथ विवाद विभिन्न मंचों पर लंबित थे। अ०सा०-2 ने विशेष रूप से कहा है कि मृतक के साथ आरोपी के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। हालांकि उसने कहा है कि उसका पति संपत्ति यों को बेचने या खरीदने के व्यवसाय में नहीं था, लेकिन समय-समय पर वह जरूरत के मामले में भूखंडों को खरीदता था या उन्हें बेचता था। घटना स्थल भी एक निर्माणाधीन कॉलोनी है जहां विभिन्न घरों का निर्माण किया जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक का विभिन्न व्यक्तियों के साथ कई विवाद थे और जाहिर तौर पर हाल के दिनों में कुछ संपत्तियों में बदलाव हुआ था। अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि उसके पति की बहन अनीता शर्मा ने शालिनी एन्क्लेव में एक घर खरीदा था जो सुरेंद्र नगर और आवास विकास कॉलोनी के बीच स्थित है। एक सुझाव यह भी दिया गया है कि गौरव को कुछ पैसे दिए गए थे, जिसके कारण उसे झूठा फंसाया गया है, क्योंकि मृतक को कुछ संपत्ति विवाद के कारण गोली मार दी गई थी।

44. अ०सा०-2 के बयान की बारीकी से जांच से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वह घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है और अंतिम बार देखे जाने की गवाह है। उस संबंध में उसका बयान विश्वसनीय नहीं पाया गया है, खासकर जब हमें उसके बयान पर विश्वास करना मुश्किल लगता है कि वह अपनी बालकनी से अपनी दुकान के सामने देख सकती थी, जो दुकान के पीछे कुछ दूरी पर है। इसलिए, हम अ०सा०-2 की गवाही को विश्वसनीय नहीं पाते हैं और इस प्रकार अंतिम बार देखे गए साक्ष्य भी स्वीकृति के योग्य नहीं हैं।

45. अब हम अभियोजन मामले के अंतिम अंग यानी बन्दूक की बरामदगी के साथ-साथ एफएसएल रिपोर्ट पर आते हैं। एफएसएल रिपोर्ट प्रदर्श क-35/1 और प्रदर्श क-35/2 के रूप में रिकॉर्ड पर है, जो रक्तरंजित और सादे पृथ्वी के साथ-साथ मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों से संबंधित है। ऐसी बरामदगी के संबंध में रिपोर्ट एक्सकेए 35/2 में निहित है जिसके अनुसार रक्तरंजित पृथ्वी के साथ-साथ मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों पर मानव रक्त पाया गया है। हालांकि, खून के धब्बे किसी भी वर्गीकरण में सक्षम नहीं थे और इसलिए, एफएसएल रिपोर्ट का यह हिस्सा बहुत प्रासंगिक नहीं है। यह एफएसएल रिपोर्ट का दूसरा भाग है जो कागज में Ex.Ka.35/3 और 35/4 के रूप में चिह्नित है जो प्रासंगिक है। मृतक के शरीर से एक सपाट गोली निकाली गई है जिसे ईबी -1 और ईबी -2 के रूप में चिह्नित किया गया है। इस गोली की तुलना आरोपी अपीलकर्ताओं गौरव और गौतम के पास से बरामद दो आग्नेयास्त्रों से की गई है, जिन्हें आइटम 1/14 और 2/14 के रूप में चिह्नित किया गया है। बरामद गोली के साथ दो आग्नेयास्त्रों का मिलान किया गया है और एफएसएल रिपोर्ट के अनुसार, बरामद गोली में दो बरामद आग्नेयास्त्रों के साथ तुलना करने के लिए व्यक्तिगत विशेषताओं का अभाव है। इस प्रकार मृतक के शरीर से बरामद की गई गोली आरोपी अपीलकर्ताओं से कथित तौर पर बरामद बन्दूक से मेल नहीं खाती है।

46. आरोपी अपीलकर्ताओं के पास से बरामद दो आग्नेयास्त्र खुले स्थान से हैं और बरामदगी को स्थापित करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं हैं। बन्दूक की बरामदगी के गवाह केवल पुलिस कर्मी हैं।

47. आरोपी अपीलकर्ताओं गौरव के पास से बरामद 315 बोर के आग्नेयास्त्रों के बैरल में एक कारतूस फंसा हुआ था। इसे ईसी -1 के रूप में चिह्नित किया गया है और एफएसएल रिपोर्ट के अनुसार इसे 1/14 के रूप में चिह्नित तमंचे से दागा गया है। चूंकि बन्दूक की बरामदगी विश्वसनीय नहीं है, इसलिए हम एफएसएल रिपोर्ट को ज्यादा महत्व नहीं देना चाहते हैं क्योंकि यह स्वाभाविक है कि बैरल में कारतूस को इस तरह की बन्दूक से फायर किया जाएगा।

48. पुलिस ने घटना स्थल से खाली कारतूस भी बरामद किया है, जिसे ईसी -2 के रूप में चिह्नित किया गया है, जो आरोपी गौतम के पास से 2/14 के रूप में चिह्नित बन्दूक से मेल खाता है।

49. तथ्य यह है कि खाली कारतूस ईसी -2 आरोपी गौतम के पास से बरामद बन्दूक के साथ 2/14 के रूप में मेल खाता है, प्रथम दृष्टया अभियोजन पक्ष द्वारा इस मामले में आरोपी गौतम को फंसाने के लिए पेश की गई सामग्री है। सूचनादाता की ओर से मामले के इस पहलू पर बहुत भरोसा किया गया है। हालांकि, बचाव पक्ष की ओर से, घटना के स्थान से ईसी -2 की वसूली को खारिज करने के लिए विस्तृत तर्क दिया गया है और इस स्तर पर इस संबंध में प्रस्तुतियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

50. पूर्व के-32 द्वारा लोहे की छड़ की भी बरामदगी हुई है। आरोपी अंकित भारद्वाज के बयान के अनुसार, यह लोहे की रॉड बेल के पेड़ के बगल में और मिट्टी से थोड़ी नीचे छिपाई गई थी। जहां तक इस बरामद लोहे की रॉड का सवाल है, अभियोजन पक्ष के समक्ष यह स्वीकार किया जाता है कि उस पर न तो खून के कोई धब्बे थे और न ही इस बरामदगी का कोई स्वतंत्र गवाह है। अन्यथा वसूली एक खुली जगह से होती है।

51. इस मामले में बचाव पक्ष द्वारा जांच की निष्पक्षता पर इस आधार पर गंभीरता से सवाल उठाया गया है कि मृतक के शव को वास्तव में अज्ञात के रूप में शवगृह में लाया गया था और इस तरह से अज्ञात शव प्राप्त करना भी रिकॉर्ड से साबित हुआ था। इस तरह के रिकॉर्ड के अनुसार, एक अज्ञात शव को कांस्टेबल 1516 अमित कुमार द्वारा लाया गया था। शवगृह में रखे रजिस्टर को पेश किया गया है, जिसके अनुसार शाम 6.10 बजे ऐसा शव प्राप्त हुआ, जिसके बारे में स्टेशन हाउस ऑफिसर, कोतवाली सिटी को भी सूचना भेजी गई थी। बाद में इस प्रविष्टि को हटा दिया गया था। रिकॉर्ड में कहीं और इस शव का कोई संदर्भ नहीं था। बचाव पक्ष के अनुसार, यह मृतक था, जिसके शव को शुरू में कांस्टेबल 1516 अमित कुमार द्वारा शवगृह में अज्ञात व्यक्ति के रूप में लाया गया था और बाद में, रिकॉर्ड को खंगालकर मुखबिर ने आरोपी के साथ मामला सुलझाने के लिए एक

अनुवादित

नई कहानी के साथ सामने आया है क्योंकि मृतक ने आरोपी से कुछ राशि हासिल की थी। हमारा ध्यान हेड कांस्टेबल इंद्रदेव (अ०सा०-9) की गवाही की ओर आकर्षित किया गया है, जिन्होंने कहा है कि अमित कुमार आवास विकास में पुलिस बीट में तैनात था और वह इस मामले के दर्ज होने से पहले थाना नहीं लौटा था। अ०सा०-9 के कथन से निम्नलिखित अंश प्रासंगिक है और इसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

दिनांक 12.1.13 को का० 1516 अमित कुमार की तैनाती चौकी आवास विकास पर थी! आवास विकास क्षेत्र की ही यह घटना है! इस मुकदमे के कायम होने से पहले का० 1516 अमित कुमार की थाने में वापसी नहीं है चिकित्सा अधिकारी जिला की रिपोर्ट के अनुसार का० 1516 अमित कुमार ने 12.1.13 को 6.10 पी.एम पर अज्ञात शव अस्पताल में दाखिल किया जिसकी सूचना थाना अध्यक्ष को० शहर को भेजी गई!

12.1.13 के रोज़नामचे में सिर्फ एक ही पंचायत नामा भरने का तस्करा है! यह कहना गलत है कि फिर एंटी टाइम करके बाद में लिखी गई हो!

52. परीक्षण के दौरान शवगृह का मूल रजिस्टर प्रस्तुत किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से एक अनुमोदन है, जिसके अनुसार कांस्टेबल 1516 अमित कुमार द्वारा एक अज्ञात शव को मुर्दाघर लाया गया था। डॉ. भोजराज सिंह का बयान

(अ०सा०-5) इस संबंध में निम्नलिखित पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

'दिनांक 12.1.13 को 6.10pm पर क० 1516 अमित कुमार एक अज्ञात व्यक्ति को लेकर आया जिसे अस्पताल में देखने के बाद (sic) डेथ कहा गया! उसके शरीर को मोर्चरी में रखकर पुलिस को सूचना की गई थी! असल रजिस्टर मेरे सामने है जिस पर दिनांक 12.1.13 की संबंधित एंट्री श्री गजेंद्र कुमार शर्मा फार्मासिस्ट की लिखी हुई है! दाखिल करता हूं! मैंने फार्मासिस्ट गजेंद्र को लिखने पढ़ने देखा है! मैं गजेंद्र कुमार शर्मा का लेख पहचानता हूं फोटो कॉपी पर प्रदर्श ख-1 डाला गया!

उसी दिन इस अज्ञात शव की सूचना थाना कोतवाली शहर को दे दी गई! अस्पताल की पुलिस इनफॉरमेशन बुक मेरे सामने है जिस पर डॉक्टर प्रेम प्रकाश के द्वारा सूचना भेजी गई थी जो थाने पर प्राप्त हुई थी जिस पर थाने की मोहर लगी है! मैंने डॉक्टर प्रेम प्रकाश को लिखने पढ़ने देखा है! इसकी फोटो प्रति दाखिल करता हूं! इस पर प्रदर्श ख-2 डाला गया!'

अ०सा०-5 ने उसकी पुन जांच करने पर निम्नानुसार उल्लेख किया है -

'रजिस्टर का एक फार्मासिस्ट भरता है जो अभी जीवित है! प्रदर्श ख-1 के मूल रजिस्टर में क्रम संख्या 188 के पश्चात क्रम संख्या 189 पर ब्रोट डेड अननोन लिखा गया तथा बाद में एंट्री नंबर 189 को काट दिया गया! यह मेरे सामने नहीं काटा गया! मुझे नहीं पता किसने काटा, ना मैं बता सकता हूं! उसके बाद 189 पर दूसरी प्रविष्टि है! प्रदर्श ख-2 में पेपर संख्या का 55/5 भी मेरे द्वारा जारी नहीं किया गया है! यह भी फार्मासिस्ट के हस्ताक्षर में है जो नौकरी में है! सूचना के पश्चात डेड बॉडी मोर्चरी

में रखने का प्रावधान है! थाने को सूचना तभी दी जाती है जब डेड बॉडी को अस्पताल स्टाफ अपने कब्जे में ले लेता है!

xxxx

xxxxxx

प्रदर्श ख-2 के भाग 55/2 पर चिकित्सा अधिकारी के कॉलम में डॉक्टर प्रेम प्रकाश के हस्ताक्षर हैं! खा 55/5 पर भी डॉक्टर प्रेम प्रकाश के हस्ताक्षर हैं जो इसी अज्ञात से मुताल्लिक है!'

53. जांच अधिकारी अब्दुल सलाम (अ०सा०-6) ने माना है कि इस मामले में कोई खुलासा बयान नहीं दिया गया था, न ही अलग से कोई रिकवरी मेमो तैयार किया गया था। दोनों हथियार खुले स्थान से बरामद किए गए थे। इस संबंध में अ०सा०-6 का विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है:-

प्रकृति कारण (Disclose Statement) इस केस में नहीं लिखा गया ना ही उसका कोई अलग से मेमो बना!

दोनों बरामदगियां खुले स्थान से हुई! दोनों में कोई पब्लिक का गवाह नहीं था! बरामद की स्थल पर कोई भी आ जा सकता था! दिल्ली पौड़ी रोड हाईवे है, हर समय हर तरह की सवारी दिनभर चलती है! रावली रोड पर भी आसपास गांव है, उस पर भी सवारी चलती है! अरावली रोड पर भी आसपास गांव है, उस पर भी सवारी चलती है! किसी कर्मचारी को गवाह मुरत्तब करने हेतु नहीं भेजा! यह कहना गलत है कि दोनों तमंचों की बरामद की फर्जी दिखाई हो! यह सही है कि तमंचे की बरामद की होना महत्वपूर्ण साक्ष्य था!

54. इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह स्पष्ट है कि एक शव को अज्ञात के रूप में शाम 6.10 बजे शवगृह में लाया गया था, और बाद में इस प्रविष्टि को बंद कर दिया गया था। अभियोजन पक्ष द्वारा इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि इस तरह की प्रविष्टि क्यों की गई और इस अज्ञात शव का क्या हुआ। इस प्रविष्टि के ठीक नीचे मृतक के शरीर को मुर्दाघर में लाए जाने से संबंधित प्रविष्टि है। मुर्दाघर में लाए गए शव के संबंध में किसी स्पष्टीकरण का अभाव और उसके ठीक बाद मृतक के शव को मुर्दाघर में लाए जाने के संबंध में प्रविष्टि, अभियोजन पक्ष के मामले और बचाव पक्ष के तर्क में संदेह पैदा करती है कि वास्तव में यह मृतक का शरीर था जिसे अज्ञात के रूप में लाया गया था। और बाद में उनकी पहचान स्थापित होने के बाद कि पूरी कहानी विकसित हो गई है, हल्के ढंग से दरकिनार नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में हम पाते हैं कि पंचायतनामा में जांच आयोजित करने के समय में एक स्पष्ट प्रक्षेप है, जिस पर न तो कोई प्रारंभिक है और न ही अभियोजन पक्ष ने यह बताया है कि इस तरह का प्रक्षेप क्यों आवश्यक हो गया था। एफआईआर भी लगभग एक सप्ताह बाद मजिस्ट्रेट के पास भेजी गई है। हमें प्रथम जांच अधिकारी (अ०सा०-6) के बयान से यह भी पता चलता है कि जांच उनके पास रही (अ०सा०-6 की जांच लगभग 15 दिन की थी), लेकिन कोई भी घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में गवाही देने के लिए आगे नहीं आया। इस संबंध में अ०सा०-6 का बयान महत्वपूर्ण है और इसे बाद में पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

जब तक तफ़्तीश मेरे पास रही तब तक कोई चश्मदीद साक्षी मेरे सामने यह कहने नहीं आया कि मैंने घटना देखी! मैंने चश्मदीद साक्षी

के बयान लेने चाहे पर किसी ने नहीं दिए! यह कहना गलत है कि मेरे तफ़्तीश रहने के दौरान तक कोई चश्मदीद साक्षी तैयार ही ना हो!

55. यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जांच समाप्त होने के बाद मृतक का शव कांस्टेबल 1516 अमित कुमार और कांस्टेबल परवेंद्र सिंह (अ०सा०-10) को सौंप दिया गया था। अपनी जिरह में अ०सा०-10 ने स्वीकार किया है कि शव 12-1-2013 को रात 8.30 बजे उन्हें सौंप दिया गया था, लेकिन शव को सुबह 7.30 बजे शवगृह लाया गया। दिनांक 12012013 को रात 830 बजे से 13012013 को प्रातः 730 बजे तक शव के साथ क्या हुआ, इस संबंध में कोई स्पष्टता नहीं है। इस संबंध में अ०सा०-10 का विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है:-

मैं सिर्फ लाश लाया हूं! मुझे लाश 12.1.13 को शाम 8.30 बजे मिली थी! लाश वाले लाने वाले स्थान से पी.एम हाउस करीब 1-1/4 किलोमीटर दूर है! लाश लाने वाला स्थान शहर में है, इस प्रकार की सवारी उपलब्ध है! लाश को हमने 13.1.13 को सुबह 7.30 बजे लाकर दाखिल किया! यह कहना गलत है की लाश हमें 13.1.13 को मिली हो! लाश सुबह 7.30 बजे दाखिल की थी तथा रपट आदि की नकल 11.30 बजे दिन लाकर दाखिल की थी! मोटरसाइकिल से अस्पताल थाने से आने व जाने में लगभग 10 मिनट का समय लगेगा! यह कहना गलत है कि मैं गलत बयानी कर रहा हूं!

56. उपरोक्त पृष्ठभूमि में जब हम बिना किसी प्रकटीकरण बयान के आरोपी से बरामद दो आग्नेयास्त्रों की बरामदगी की जांच करते हैं; किसी भी सार्वजनिक गवाह के बिना और खुले स्थान से, हमें घटना के स्थान से आग्नेयास्त्रों या बरामद कारतूस की बरामदगी पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं लगता है, ताकि आरोपी अपीलकर्ताओं को अपराध में फंसाया जा सके।

57. अ०सा०-3 और अ०सा०-4 की गवाही को भी यहां ध्यान देने की आवश्यकता है। अ०सा०-3 अ०सा०-1 के साथ एक ठेकेदार है और कक्षा 6 वीं से 10 वीं तक उसके साथ अध्ययन किया है। उनका यह बयान कि आरोपियों ने उनके सामने कहा कि उन्होंने आवास विकास की ओर भागते हुए मृतक को खत्म कर दिया है, विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। घटना के 18 दिन बाद उनका बयान दर्ज किया गया है। उन्होंने कहा कि बिजनौर में लगभग 15-16 दिनों के बाद अ०सा०-1 को इस तथ्य का खुलासा किया गया था। हम इस तरह के बयान को विश्वसनीय नहीं पाते हैं, क्योंकि इस तरह के महत्वपूर्ण तथ्य को परिवार के सदस्यों या जांच अधिकारी को सूचित नहीं करने की उम्मीद करना अस्वाभाविक है। इसलिए, अ०सा०-3 की गवाही अभियोजन पक्ष के मामले के लिए बहुत मददगार नहीं है।

58. जहां तक अ०सा०-4 का संबंध है, वह भी एक संबंधित गवाह है और उसने कहा है कि सभी आरोपी आए और मृतक को खत्म करने की बात कबूल की और आश्वासन दिया कि वे मृतक का घर खाली कर देंगे, ताकि उनके बीच मामला सुलझ सके। अ०सा०-4 का बयान भी कई दिनों के बाद दर्ज किया गया है और उनके बयान में भौतिक विरोधाभास हैं, जो अस्पष्ट बने हुए हैं। हम अ०सा०-4 की गवाही को

ज्यादा महत्व नहीं देना चाहते हैं और न ही यह आरोपी अपीलकर्ताओं को फंसाने के लिए कोई सामग्री बना सकता है।

59. नीचे दी गई अदालत ने रिकॉर्ड पर सबूतों को सावधानीपूर्वक जांच के अधीन किए बिना अभियोजन पक्ष के मामले को स्वीकार करने में गलती की है क्योंकि गवाहों की गवाही में विसंगतियां पाई गई हैं और आग्नेयास्त्रों की बरामदगी के बारे में सबूतों की भी सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है। इसलिए, भौतिक पहलुओं पर नीचे दिए गए न्यायालय के निर्णय को वांछित पाया जाता है। चूंकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य को नीचे की अदालत द्वारा सावधानीपूर्वक जांच के अधीन नहीं किया गया है, इसलिए, फैसले में लौटाए गए अपराध की खोज को बनाए नहीं रखा जा सकता है और इसे उलट दिया जा सकता है।

60. ऊपर की गई चर्चाओं और विचार-विमर्श के लिए, हम पाते हैं कि आरोपी अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से संदेह के लाभ के हकदार हैं क्योंकि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपने अपराध को साबित करने में सक्षम नहीं है।

61. नतीजतन, वर्तमान अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 01, बिजनौर द्वारा पारित दिनांक 20.01.2017 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को निरस्त किया जाता है। अपीलकर्ता, जिनके दस साल से अधिक समय तक जेल में रहने की सूचना है, को तुरंत रिहा कर दिया जाएगा और यदि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तो उन्हें सीआरपीसी की धारा 437-ए के अनुपालन के अधीन रिहा कर दिया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 894

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 1268/2007

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 1321/2007, 1386/2007, 1623/2007, 1757/2007 एवं 2213/2007

रमाकांत दीक्षित ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री कृष्ण जी खरे, श्री अरूण कुमार, श्री अरवेन्द्र सिंह, श्री लव श्रीवास्तव, श्री राजीव नयन सिंह, श्री राजीव लोचन शुक्ल, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री जे.एस. सेंगर

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 147, 148, 302/149 और 307/149 - दोषसिद्धि - चुनौती-विचरण शुरू होने पर अभियोजन पक्ष ने विचाराधीन गोलीबारी की घटना को साबित करने का प्रयास किया है जिसके अनुसार यह आरोपी-अपीलकर्ता थे जिन्होंने उस जीप पर अंधाधुंध गोलीबारी की जिसमें मृतक, तीन अभियोजन गवाह और एक अन्य यात्रा कर रहे थे और उसमें यात्रा कर रहे छह यात्रियों की नृशंस हत्या कर दी थी-

अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना को अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों अर्थात पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 ने देखा है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे चलती जीप से एक अन्य के साथ पिछले दरवाजे से बाहर कूद गए थे और उन्होंने घटना को आगे देखा था-रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से पता चलता है कि तथ्य के ये गवाह अत्यधिक इच्छुक गवाह हैं तथ्यों और उनके आपराधिक इतिहास के कारण संदिग्ध है - घटना के समय और स्थान पर उनकी उपस्थिति गंभीर रूप से संदिग्ध है, चिकित्सकीय साक्ष्य नेत्र संबंधी विवरण की पुष्टि नहीं करते हैं, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं और प्रथम सूचक पीडब्लू-1 के बीच लंबे समय से चली आ रही दुश्मनी - यह संदिग्ध प्रतीत होता है कि जीप के चार यात्री (तथ्य के तीन गवाहों सहित, पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3) तब चलती जीप से कूदकर सुरक्षित बच निकलना जब दस हथियारबंद लोग जीप पर अंधाधुंध गोलियां चला रहे हों और 40 से 50 कदम की दूरी पर अरहर के एक खेत में छिप जाना और वहीं से घटना को देखना-यह अस्वाभाविक है कि इन चार यात्रियों को देखकर हमलावर उन्हें जाने दे और उन्हें मारने के लिए कुछ कदम आगे न चलें, खासकर तब जब पी.डब्लू.-1 उनकी पूर्व दुश्मनी के कारण उनका प्रमुख संदिग्ध था-इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही विश्वसनीय और भरोसे लायक नहीं है, खासकर इसलिए कि वे अत्यधिक इच्छुक गवाह हैं और घटना के स्थान पर उनकी मौजूदगी ही संदिग्ध है और इसलिए उनकी गवाही भरोसे लायक नहीं है-घटना के समय और स्थान पर अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों की मौजूदगी ही पूरी तरह से स्थापित नहीं हुई-घटना का आंखों देखा संस्करण मेडिकल साक्ष्य से पुष्ट नहीं हुआ-इसलिए, अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं का अपराध दर्ज करने के लिए विचारणीय न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष न केवल अवैध हैं, बल्कि विकृत भी हैं। (पैरा 1 से 191)

बी. सारांश यह है कि संबंधित या इच्छुक गवाह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सावधानी से जांच की जानी चाहिए। ऐसे मामले में जहां संबंधित और इच्छुक गवाह की हमलावर के साथ कोई दुश्मनी हो सकती है, तो बार को बढ़ाने की आवश्यकता होगी और गवाह के साक्ष्य की जांच विवेकपूर्ण जांच के मानक को लागू करके की जानी चाहिए। (पैरा 113)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मोहम्मद जब्बार अली व अन्य बनाम असम राज्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1440
2. मुरली और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2009) 9 एससीसी 417

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र, द्वारा प्रदत्त)

1. आपराधिक अपीलों का यह समूह अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा सत्र न्यायाधीश, मैनपुरी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 97 वर्ष 2005 (राज्य बनाम जगन्नाथ और 5 अन्य) और सत्र परीक्षण संख्या 104 वर्ष 2005 (राज्य बनाम हरिओम) में पारित एक सामान्य निर्णय और

आदेश दिनांक 1 फरवरी, 2007 का है, जो अपराध संख्या 286 वर्ष 1996 से उत्पन्न होता है। धारा 147, 148, 302/149, 307/149 भ०द०वि०, थाना-भोगाव, जिला मैनपुरी के तहत, जिसके तहत सभी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और प्रत्येक को धारा 148 भ०द०वि० के तहत दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, भ०द०वि० की धारा 307/149 के तहत सात साल के सश्रम कारावास के साथ 30,000 रुपये का जुर्माना और चूक करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त साधारण कारावास औरः भ०द०वि० की धारा 302/149 के तहत आजीवन कारावास के साथ 70,000 रुपये का जुर्माना और इसके उल्लंघन पर, प्रत्येक को एक वर्ष का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. चूंकि ये अपीलै उसी निर्णय और आदेश से उत्पन्न होती हैं। इस तरह उन्हें एक साथ जोड़ा गया था और अब इस आम निर्णय से तय किया जा रहा है।

3. हमने अभियुक्त-अपीलकर्ता रमाकांत दीक्षित की ओर से पेश अधिवक्ता श्री वी. पी. श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना है, जिनकी सहायता श्री राजीव लोचन शुक्ला, श्री राजीव नयन सिंह और श्री अरुण शर्मा, श्री बृजेश सहाय, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री भव्य सहाय, श्री सर्वेश कुमार दुबे, श्री वकार अहमद और अभय सिंह यादव ने की थी। आरोपी अपीलकर्ता विपिन दीक्षित, चंद्रकांत और हरि ओम, श्री राजीव लोचन शुक्ला और श्री सर्वेश कुमार दुबे, अभियुक्त-अपीलकर्ता देवेंद्र के लिए पेश अधिवक्ता और श्री अरुण कुमार शुक्ला, अभियुक्त अपीलकर्ता कौशलेंद्र और श्री अरुणेंद्र सिंह और श्री अमित सिन्हा, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता राज्य के लिए पेश अधिवक्ता को सुना।

<u>घटना</u>

4. 6 सितंबर, 1996 को शाम लगभग 04:30 बजे मैनपुरी-भोगांव रोड पर राजा का बाग के पास भोगांव थाना से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर एक घटना हुई, जहां मैनपुरी से बेवर तक कमांडर जीप में यात्रा कर रहे छह लोगों की दिनदहाड़े गोली मारकर हत्या कर दी गई। इस घटना में हेम सिंह, गजेंद्र सिंह उर्फ टिल्लू, राम किशन सिंह, नरेश दीक्षित, अशोक परिहार और महेश यादव की मौत हो गई थी।

<u>अभियोजन का मामला</u>

5. प्रथम सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह (अ0सा0-1) ने एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की।

(घ) थाना-कोतवाली, जिला मैनपुरी में दिनांक 6 सितम्बर, 1996 को एक मामला दर्ज किया गया था जिसके आधार पर अपराध सं-2006 की धारा 2006 के तहत मामला अपराध से 2006 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श-क-8) दर्ज की गई थी। नील वर्ष 1996 रात 17.35 बजे। इस प्राथमिकी में कोई अपराध संख्या नहीं दिया गया था, क्योंकि अपराध थाना-ओगांव की क्षेत्रीय सीमा के भीतर किया गया था। थाना कोतवाली के सिपाही उदय राम प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट

अनुवादक

थाना-भोगांव लेकर आए जिसके आधार पर प्रकरण अपराध संख्या 286 वर्ष 1997 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर थाना-ओगांव में अनुरक्षित जनरल डायरी में इसकी सामग्री दर्ज की गई।

6. प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की लिखित रिपोर्ट उनके द्वारा सिद्ध की गई है जिसमें आरोप है कि वह, उनका पुत्र गजेन्द्र सिंह उर्फ दिल्लू, चालक हेम सिंह यादव, महेश सिंह यादव, अशोक परिहार, नरेश दीक्षित, पूर्व प्रधान देवेंद्र सिंह, संतोष गुप्ता व उसका छोटा भाई संतोष अपनी जीप से मैनपुरी से बेवर जा रहे थे। रेलवे क्रॉसिंग से आगे जाते समय, एक जिप्सी और मारुति वैन ने शाम लगभग 4.30 बजे उनकी जीप को ओवरटेक किया और उन्हें जीप के सामने खड़ा कर दिया। आरोपी रामानंद, हरिओम, हुकम चंद, आनंद, जगन्नाथ, देवेंद्र, विपिन, कौशलेंद्रपाल सिंह, राज भूषण, बिल्लू सभी राइफलों और बदूकों से लैस वेवर के निवासी थे, इन दोनों वाहनों से उतरे और उन सभी को खत्म करने और इस तरह बदला लेने का आह्वान किया। सूचनाकर्ता संतोष गुप्ता, संतोष सिंह और देवेंद्र सिंह के साथ अपनी जीप से बाहर भागा और पास के खेत से देखा कि उपरोक्त सभी नामजद आरोपियों ने अपनी राइफलों और बंदूकों से अंधाधुंध गोलीबारी की, जिसमें जीप से बाहर भागने वाले चार को छोड़कर जीप के अन्य सभी यात्री बन्दूक से घायल होने के कारण मारे गए। घटना के पीछे पिछली दुश्मनी को कारण बताया गया था। बताया जाता है कि सूचनाकर्ता खुद को छिपाकर रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पैदल आया था।

<u>विवेचना</u>

7. यह पता चलता है कि किसी ने रुई तिराहा पर गोलीबारी के बारे में थाना-भोगांव को शाम 04:50 बजे सूचित किया। थाना प्रभारी, थाना-ओगांव ने थाना-ओगांव में जी.डी में प्रविष्टि-26 के माध्यम से इस तथ्य को नोट किया और अन्य पुलिस कर्मियों के साथ घटनास्थल के लिए रवाना हुए और 04:50 बजे जांच शुरु की। थानाध्यक्ष ने पाया कि जीप नंबर 84 ए-0340 यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई थी और उसका बंपर पेड़ में फंस गया था। एक शव स्टीयरिंग व्हील पर पड़ा था जबकि एक अन्य शव आआंशिक रूप से Jeep के बोनट पर था। ड्राइवर के पीछे वाली सीट पर एक और शव पड़ा था। जीप के बायर्थी और दाई ओर दो शव जमीन पर पड़े थे। एक अन्य शव जीप से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग 15 कदम की दूरी पर था। घटना के बारे में उच्चाधिकारियों को वायरलेस पर सूचना प्रेषित की गई।

8. थाना-भोगांव की चिक प्राथमिकी, जी.डी एंट्री आदि की कॉपी के साथ कांस्टेबल सुमित नारायण प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के साथ मौके पर आए। धारा 161 द०प्र०स० के तहत प्रथम सूचनाकर्ता/अन्सा०-1 का बयान मौके पर और घटना की तारीख पर दर्ज किया गया था।

9. आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, 6 सितंबर, 1996 को सभी छह मृतकों के शर्वो की जांच की कार्यवाही शुरू की गई। प्रदर्श क-13, 21, 29, 36, 44 और 54 के अनुसार, मृतक हेम सिंह के संबंध में पूछताछ की कार्यवाही 18:20 बजे शुरू हुई और 19:20 बजे

समाप्त हुई, मृतक गजेंद्र @ टिल्लू के संबंध में रात 19:30 बजे से रात 20:30 बजे तकः मृतक राम किशन के संबंध में 20:35 बजे से 21:40 बजे तक, मृतक नरेश दीक्षित के संबंध में 21.50 बजे से 23:00 बजे तक, (क) मृतक अशोक परिहार के संबंध में 7 सितम्बर, 1996 को मध्याह्न पश्चात् 2310 बजे से 0015 बजे तक की भर्ती की गई थी, मृतक महेश के संबंध में 7 सितम्बर, 1996 को 0025 पूर्वाहन से 0130 बजे तक जांच की कार्यवाही की गई। पंचान ने राय दी है कि सभी छह मृतकों की मौत आग्नेयास्त्रों की चोटों के कारण हुई प्रतीत होती है। हालांकि, मौत के सही कारण का पता लगाने के लिए शव परिक्षण करवाया जाए। प्रथम दृष्टया जांचकर्ता पंचान (पंच गवाहों) की राय में मृतक की मौत को हत्या के रूप में वर्णित किया गया था। इसके बाद मृतकों के शवों को सील कर शव परिक्षण के लिए भेज दिया गया।

10. मृतक हेम सिंह, गजेंद्र सिंह उर्फ टिल्लू, राम किशन सिंह, नरेश दीक्षित, अशोक परिहार और महेश यादव के शवों का शव परिक्षण 7 सितंबर, 1996 को डॉ. आर.पी.एस चौहान (अ०सा०-4) के नेतृत्व में डॉक्टरों की एक टीम द्वारा किया गया था। मृतक अशोक परिहार के शव का शव परिक्षण 7 सितम्बर, 1996 को प्रातः 10.15 बजे किया गया। उपर्युक्त मृतक का शव परिक्षण करने वाले डाक्टरों के दल की राय में मृत्यु का कारण निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्त्राव है:

"1. रिसता घाव चेहरे और गर्दन के निचले हिस्से पर 18 सेमी x 9 सेमी x मुख गुहा (निचला जबड़ा जो गायब है) का निचला हिस्सा। किनारों को काला और जीभ को काला, श्वासनली का ऊपरी हिस्सा फट गया।

2. आग्नेयास्त्र के प्रवेश घाव घुटने के जोड़ से 15 सेमी नीचे दाहिने पैर के औसत दर्जे की तरफ 3 सेमी x 2.5 सेमी x जांघ के प्रवेश का बन्दूक घाव। मार्जिन उलटे हैं। पैर की दोनों हड्डियां टूट गई हैं।

3. आग्नेयास्त्र के प्रवेश घाव, 5 सेमी X 3.5 सेमी, पीछे दाहिने पैर पर, टखने से 13 सेमी ऊपर।

4. आग्नेयास्त्र के प्रवेश घाव 3 सेमी x 2.5 सेमी x हड्डी का आग्नेयास्त्र घाव, बाएं घुटने के जोड़ से 13 सेमी ऊपर बाएं पैर का एक औसत दर्जे का पक्ष। मार्जिन उलटे हैं। पैर की दोनों हइडियां टूट गई हैं। (हड्डी में धातु के पांच टुकड़े पाए जाते हैं)।

मृतक रामकिशन सिंह के शव का शव परिक्षण 7 सितंबर, 1996 को दोपहर 12:05 बजे किया गया। शव परिक्षण करने वाले डॉक्टरों की टीम के अनुसार, मृत्यु का कारण निम्नलिखित मृत्यु- पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव के रूप में माना गया थाः

1. रिसता घाव 6 सेमी x 5 सेमी x के माध्यम से और चोट नंबर 2 के माध्यम से चेहरे के दाई ओर दाहिने कान से 4 सेमी दूर। मार्जिन काले और उलटे हैं।

2. रिसता घाव बहरे, माथे और सिर के बाई ओर 18 सेमी x 18 सेमी लेसरेटेड घाव (निकास की हड्डी)। ब्रेन मैटर सामने है।

3. आग्नेयास्त्र के प्रवेश घाव दाहिनी जांघ के औसत दर्जे का पहलू पर 0.5 सेमी 0.5 सेमी x के माध्यम से और चोट नंबर 4 के माध्यम से

4. आग्नेयास्त्र बाहर निकलने के घाव संख्या 3 से 3 सेमी ऊपर दाहिनी जांघ के पूर्वकाल पहलू पर 2 सेमी x 1.5 सेमी,

5. बाई जांघ के बीच में दर्दनाक सूजन 18 सेमी x 10 सेमी, हड्डी फ्रैक्चर।

6. बाएं पैर के निचले हिस्से पर 10 सेमी x 6 सेमी दर्दनाक सूजन। दोनों हड्डियां टूट चुकी है।

मृतक नरेश दीक्षित के शव का शव परिक्षण 7 सितंबर, 1996 को दोपहर 02:00 बजे किया गया था। शव परीक्षण टीम की राय के अनुसार, मृत्यु का कारण निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के रूप में निष्कर्ष निकाला गया था:

"1. प्रवेश का बन्दूक घाव 1.5 सेमी x 1 सेमी x के माध्यम से और चोट के माध्यम से माथे के बाई ओर 2 सेमी आंख औह से 2 सेमी। मार्जिन उलटे और काले हो जाते हैं।

2. दाहिनी भौं और माथे से 4 सेमी x 2.5 सेमी ऊपर निकलने का बन्दूक का घाव। दाहिनी आंख उभड़ा हुआ।

3. लेसरेटेड घाव 7 सेमी x 1 सेमी x हड्डी माथे के बाई ओर और आंख की भौह के ठीक ऊपर गहरी है। मार्जिन को काला कर दिया जाता है।

4. छाती के बाई ओर 8 सेमी x 2 सेमी x मांसपेशियों में गहरा घाव। ऊपरी भाग हंसली से 1 सेमी नीचे। मार्जिन काले हो गए हैं और घाव गट? की तरह।"

मृतक हेम सिंह के शव का शव परिक्षण 7 सितंबर, 1996 को सुबह 11 बजे किया गया था। शव परीक्षण टीम की राय के अनुसार मृतक की मृत्यु का कारण निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के रूप में चित्रित किया गया थाः

"1. लेसरेटेड घाव 6 सेमी x 2 सेमी x खोपड़ी माथे के सामने और सिर के दाई और गहरी है। नाक की जड़ से 4 सेमी ऊपर।

2. स्कैपुला के अवर कोण से 7 सेमी नीचे छाती के दाई ओर 3 सेमी x 1.5 सेमी x गुहा गहरा प्रवेश का बन्दूक घाव। आकार 0.3 सेमी x 03 सेमी x 12 सेमी x 8 सेमी क्षेत्र में गहरी त्वचा के दो छोटे घावों से घिरा हुआ। कोई कालापन नहीं मिला।

3. प्रवेश 3 सेमी x 3.5 सेमी x के माध्यम से और पेट के दाईं ओर चोट नंबर 4 के माध्यम से आग्नेयास्त्र घाव। कोई कालापन नहीं मिला।
4. इलियक शिखा से 8 सेमी ऊपर एक्सिलरी लाइन में पेट के पीछे के दाई ओर 4 सेमी x 3 सेमी से बाहर निकलने का बन्दूक घाव।

उसी दिन दोपहर 1:15 बजे मृतक गजेंद्र उर्फ टिल्लू के शव का शव परिक्षण कराया गया। शव परिक्षण रिपोर्ट के अनुसार उपर्युक्त मृतक की मृत्यु का कारण निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्त्राव है

1. ठोड़ी की मध्य रेखा से 2 सेमी दूर जबड़े और गर्दन के बाई और प्रवेश का आग्नेयास्त्र धावः आकार 5 सेमी x 3 सेमी x के माध्यम से और चोट संख्या 2 के माध्यम से। मार्जिन काले और उलटे होते हैं।

2. दाहिने कान के पास सिर और माथे के दाई ओर 18 सेमी x 6 सेमी से बाहर निकलने का बन्दूक धाव। धाव से बाहर आने वाला ब्रेन मैटर। खोपड़ी की हड्डी टूट गई है।

3. कोहनी के जोड से 6 सेमी ऊपर दाहिने ऊपरी बांह पर 10 सेमी x 8 सेमी दर्दनाक सूजन। ऊपरी बांह की हड्डी टूट गई।

4. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव 3 सेमी x 2.5 सेमी x गुहा पेट के दाई ओर गहरी 6 सेमी दूर नाभि से 6 सेमी दूर 7 बजे औषधि। मार्जिन उलटे और काले हो जाते हैं।

5. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव 1.5 सेमी x 1.5 सेमी x के माध्यम से और चोट नंबर 6 के माध्यम से बाएं दाएं 5 सेमी घुटने के जोड़ से ऊपरा मार्जिन उलटे और काले हो जाते हैं।

6. घुटने के जोड़ से 7 सेमी ऊपर बाई आंघ के औसत दर्जे का पहलू पर 18 सेमी x 7 सेमी से बाहर निकलने का बन्दूक धाव।

7. नाक की जड़ से 5 सेमी ऊपर माथे पर 3 सेमी x 1 सेमी x खोपड़ी की हड्डी गहरी घाव। दोपहर 12:35 बजे मृतक महेश के शव का शव परिक्षण किया गया। मौत का कारण शव परीक्षा टीम द्वारा निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के रूप में माना गया है:

"1. लेसरेटेड बन्दूक घाव 18 सेमी x 5 सेमी x मस्तिष्क माथे और सिर के बाईं ओर गहरा। मार्जिन काला है। बाई ओर की खोपड़ी की हड्डी टूट गई है। हड्डी से बाहर आने वाला ब्रेन मैटर।

2. आग्नेयास्त्र घाव प्रविष्टि 3 सेमी x 2.5 सेमी x के माध्यम से और छाती के दाई ओर चोट नंबर 3 के माध्यम से। हंसली से 5 सेमी नीचे। मार्जिन काला और उलटा।

3. निप्पल के दाईं ओर 5 सेमी x 3.5 सेमी से गोली बाहर निकलने का बन्दूक धाव। मार्जिन उलटा।

4. दाहिने हाथ के दाहिने अंगूठे के आधार पर बन्दूक का घाव 5 सेमी x 3 सेमी x हड्डी गहरा। हइडियां टूट जाती हैं।

5. दाहिने घुटने के जोड़ के सामने 12 सेमी x 8 सेमी पर बन्दूक का घाव, हड्डियां टूट हैं। हाशिये काले हो गए।

6. आग्नेयास्त्र घाव 11 सेमी x 4 सेमी x हड्डी पीठ के बाएं स्कैपुला पर गहरी।
7. बाएं ऊपरी बांह पर दर्दनाक सूजन 10 मीटर x 8 सेमी। कोहनी के जोड़ से 6 सेमी ऊपर। हड्डी टूट गई।

11. 7 सितंबर, 1996 को ही पुलिस ने प्रदर्श-क 63 के माध्यम से जीप से खून से लथपथ रेक्सिन के चार हिस्से एकत्र किए। प्रदर्श-क/64 के माध्यम से मृतक नरेश दीक्षित के शव के पास से पुलिस द्वारा खून से लथपथ मिट्टी और सादी मिट्टी भी एकत्र की गई थी। प्रदर्श-क/65 के माध्यम से मृतक महेश फौजी के शव के पास से पुलिस द्वारा खून से लथपथ मिट्टी और सादी मिट्टी भी एकत्र की गई थी। प्रदर्श-क/66 के तहत मृतक अशोक परिहार के शव के पास से पुलिस द्वारा खून से लथपथ मिट्टी और सादी मिट्टी भी एकत्र की गई थी। प्रदर्श-क/67 के तहत टिफिन और चश्मे के साथ जीप में पाए गए मृतक के जूते-चप्पल बरामद किए गए। पंजीकरण संख्या 2 जीप नं. प्रदर्श-क/68 के तहत उत्तर प्रदेश 84 ए0340 भी बरामद किया गया था।

12. 7 सितंबर, 1996 को पुलिस ने भी प्रदर्श-क/69 के माध्यम से मौके से निम्नलिखित खाली? बरामद कियाः

"1. लाल रंग के कार्डबोर्ड के 12 बोर के 6 खाली कारतूस, तीन खाली कारतूसों पर अंग्रेजी में "एस्ट्रम मैग्नम" का उल्लेख किया गया था, जबकि अन्य तीन पर "शक्तिमान" का उल्लेख किया गया था।

2. लाल रंग के कार्डबोर्ड के 12 बोर के 3 खाली कारतूस, प्रत्येक कारतूस पर "इंडियन ऑर्डिनेंस फैक्ट्री" का उल्लेख किया गया था।

3. लाल प्लास्टिक के 12 बोर के 5 खाली कारतूस, प्रत्येक कारतूस पर "क्ले ग्राउंड प्रिक्स" का उल्लेख किया गया था।

4. पीतल धातु के 12 बोर के 5 खाली कारतूस जिनमें से एक कारतूस के आधार पर, "8 एमएम/315" का उल्लेख किया गया था, जबकि दो पर, "8 एमएमकेएफ 92" का उल्लेख किया गया था।
5. पीतल धातु के 12 बोर के 4 खाली कारतूस जो अर्ध-स्वचालित प्रतीत होते हैं, प्रत्येक कारतूस के आधार पर "पी. के. बी.30" का उल्लेख किया गया था।

6. पीतल धातु के 12 बोर के 2 खाली कारतूस, "43 ई.सी." प्रत्येक कारतूस के आधार पर उल्लेख किया गया था।

7. पीतल धातु का 1 जीवित कारतूस जिस पर आधार "पी. के. वी.30" का उल्लेख किया गया था।

8. पीतल धातु की 1 जीवित गोली जिसमें रंग भरा गया था।

13. एक मारुति कार जिसका पंजीकरण संख्या एम.पी. 14/डी-2312 है. 9 सितंबर, 1996 को दोपहर लगभग 12:00 बजे न्यू बागवान कॉलोनी में एक खुले प्लॉट में पाया गया था,

जिसके सीट कवर के पीछे खून के धब्बे थे। जांच करने पर उसमें कुछ खोखा भी पाया गया। तदनुसार, उसी का एक फर्द बरामदगी तैयार किया गया था जो प्रदर्श का 10 है। इसका विवरण निम्नानुसार है:-

"(i) एक मिस्ड लाइव कारतूस, इसके आधार पर 30 पीकेबी लिखा था,

(ii) एक खाली कारतूस, 8 MM KF 92 उसके आधार पर लिखा गया था, (दोनों कारतूस कार की ड्राइविंग सीट के नीचे पाए गए)

(iii) दो खाली कारतूस, उन पर PKB 30 और 67 लिखे गए थे

(दोनों कारतूस ड्राइविंग सीट से सटी सीट के नीचे पाए गए।)

14. ऊपर देखी गई बरामद वस्तुओं को उनकी वैज्ञानिक जांच के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा भेजा गया। विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा के संयुक्त निदेशक की 16 दिसंबर, 1996 की एक रिपोर्ट रिकॉर्ड में है जिसके अनुसार फोरेंसिक जांच के लिए भेजी गई सभी बरामद वस्तुओं पर खून के धब्बे पाए गए हैं।

क्रम संख्या 4 (रेक्सीन सीट/कवर), 5 (रेक्सीन सीट/कवर का छोटा टुकड़ा), 8 (भूरे रंग की चप्पल का एक जोड़ी), 13 (एक चित्रित काली बेल्ट), 14 (शर्ट), 15 (सैंडो बनियान), 18 (ये पेंट/पतलून), 19 (नेवी ब्लू शर्ट), 20 (अंडरवियर), 26 (भूरे रंग के अंडरवियर), 28 (पैजामा), 29 (कुर्ता/शर्ट), 30 (बनियान), 31 (अंडरवियर), 32 (पैजामा), 33 (कुर्ता/शर्ट), 34 (बनियान), 36 (सूती तौलिया/औंगाचा), 37 (जनेऊ), 40 (शर्ट) 41 (सदरी), 42 (अंडरवियर), 44 (मोज़ा की एक जोड़ी), 46 (काला दरवाजा), 47 (कलावा) और 49 (हरे कपड़े का एक टुकड़ा), मानव रक्त पाए गए।

(2) क्रम संख्या 1, (पृथ्वी), 2 (पृथ्वी आदि), 3 (पृथ्वी आदि) में उल्लिखित बरामद वस्तुओं पर। (जो एक टिन के डिब्बे में रखा गया है), 6 (जबकि चप्पल की एक जोड़ी), 7 (चप्पल की एक जोडी), 9 (टिफिन), 10 (प्लास्टिक के जूते), 11 (चश्मा), 12 (चश्मे का एक फ्रेम), 16 (पीला अंडरवियर), 17 (काला रुमाल), 21 (भूरा रुमाल), 22 (भूरे रंग के जूते की एक जोड़ी), 23 (बेल्ट), 24 (शर्ट), 25 (भूरे रंग के अंडरवियर), 35 (अंडरवियर), 38 (बाएं पैर की एक प्लास्टिक चप्पल), 39 (पैंट/पतलून), 43 (रुमाल), 45 (लाल कपड़े का एक ताबीज) और 48 (एक जोड़ी जूता), खून के धब्बे बिखरे हुए पाए गए।

क्रम संख्या 4 (जीप की रेक्सीन सीट), 5 (रेक्सीन सीट का छोटा टुकड़ा) और 49 (हरे कपड़े का टुकड़ा) में उल्लिखित बरामद वस्तुओं पर पाए गए खून के धब्बों की फोरेंसिक जांच से कोई निश्चित परिणाम नहीं मिल सका।

क्रम संख्या 8 (भूरे रंग की चप्पल की एक जोडी), 13 (एक चित्रित काली बेल्ट), 14 (शर्ट), 15 (सैंडो बनियान), 18 (भूरे रंग की पेंट/पतलून), 19 (नेवी ब्लू शर्ट), 20 (अंडरवियर), 26 (भूरे रंग के अंडरवियर), 28 (पायजामा), 29 (कुर्ता), 30 (बनियान), 31

(अंडरवियर), 32 (पैजामा), 33 (कुर्ता), 34 (बनियान), 36 (अंगोछा/कपड़ा तौलिया), 37 (जनेऊ), 40 (शर्ट), 41 (बनियान), 42 (अंडरवियर), 44 (मोज़ा की एक जोडी), 46 (काला दरवाजा) और 47 (कलावा) वर्गीकरण के लिए अनुपयुक्त पाए गए।

15. द०प्र०स० के अध्याय 12 के तहत वैधानिक जांच पूरी होने के बाद, सभी नामित अभियुक्तों के खिलाफ 23 मई, 1998 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संजान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां इसे सत्र परीक्षण संख्या 197 वर्ष 2005 (राज्य बनाम जगन्नाथ और अन्य) के रूप में पंजीकृत किया गया।

संबंधित सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं पर 19 जुलाई, 2005 को धारा 147, 148, 302/149 और 307/149 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप लगाया। आरोपी अपीलकर्ताओं ने इस प्रकार लगाए गए आरोपों से इनकार किया और खुद को निर्दोष बताया। नतीजतन, परीक्षण प्रक्रिया शुरु हुई।

<u>विचारण</u>

16. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को स्थापित करने के लिए निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं:

सुरेन्द्र सिंह/सूचनाकर्ता-अ-सा०-1 द्वारा प्रस्तुत 6 सितम्बर, 1996 की लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श- का के रूप में चिह्नित किया गया है।

भोगांव थाना में 6 सितंबर, 1996 की पहली सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श-क 34 के रूप में चिह्नित किया गया है;

(iii) थाना-कोतवाली, मैनपुरी में दिनांक 6 सितम्बर, 1996 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श-क/8 के रुप में चिन्हित किया गया है।

जी.डी. 6 सितंबर, 1996 को सभी छह मृतकों की जांच रिपोर्ट (पंचायतनाम) को प्रदर्श-क/113, 21, 29, 36, 44 और 54 के रूप में चिह्नित किया गया है;

जी.डी. 7 सितंबर, 1996 को जीप की सीट के खून से सने और सादे रेक्सिन के फर्द बरामदगी को प्रदर्श-क/63 के रूप में चिह्नित किया गया है;

जी.डी. 7 सितंबर, 1996 के रक्त से सने और सादे मिटटी के फर्द बरामदगी को प्रदर्श-क/64, 65 और 66 के रूप में चिह्नित किया गया है;

जी.डी. जूते, चप्पल, टिफिन और चश्मे के फर्द बरामदगी दिनांक 7 सितंबर, 1996 को प्रदर्श क/67 के रूप में चिह्नित किया गया है।

जी.डीiii. 7 सितंबर, 1996 को जीप के फर्द बरामदगी को प्रदर्श-क/68 के रूप में चिह्नित किया गया है।

ix 7 सितंबर, 1996 के खाली कारतूस और गोलियों के फर्द बरामदगी को प्रदर्श-क/69 के रूप में चिह्नित किया गया है।

x. 7 सितंबर, 1996 और 15 सितंबर, 1996 के सूचकांक के साथ साइट योजनाओं को प्रदर्श क/62 और 70 के रूप में चिह्नित किया गया है:

xi. 7 सितंबर, 1996 को सभी छह मृतकों की शव परिक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श-क/2, 3, 4, 5, 6 और 7 के रूप में चिह्नित किया गया है, और

xii. मारुति कार और खाली कारतूस के फर्द बरामदगी दिनांक 9 सितंबर, 1996 को प्रदर्श-क/10 के रूप में चिह्नित किया गया है।

17. उपरोक्त के अलावा, अभियोजन पक्ष ने तथ्य के तीन गवाहों को पेश किया है, अर्थात्, सुरेंद्र सिंह (अ०सा०-1/प्रथम सूचनाकर्ता), जो मृतक गजेंद्र सिंह के पिता हैं, देवेंद्र सिंह (अ०सा०-2), जो मृतक गजेंद्र सिंह के भाई हैं और अन्सा०-1 के बेटे और संतोष गुप्ता, जो सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के सहयोगी हैं। उपरोक्त के अलावा, डॉ. आर.पी.एस. चौहान (अ०सा०-4), जिन्होंने सभी मृतकों के शों का शव परिक्षण किया था, को भी पेश किया गया था और उन्होंने 7 सितंबर, 1996 की शव परिक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श-क/2, 3, 4, 5, 6 और 7), बाबूलाल गौतम, हेड कांस्टेबल (अ०सा०-5) को साबित किया, जिन्होंने 6 सितंबर की चिक प्राथमिकी (प्रदर्श-क/8) थाना कोतवाली, मैनपुरी में तैयार की थी। मुबीन अहमद (अ०सा०-6), तत्कालीन थानाध्यक्ष, कोतवाली मैनपुरी, जिसने मारुति कार का फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श-क/10), कार का सीट कवर, एक जिंदा कारतूस और तीन खाली हिस्से तैयार किए थे, का भी पेश किया गया था और उन्होंने इसे साबित किया। तत्कालीन प्रमुख मोहर्रिर मंगल सिंह (अ०सा०-7), जिन्होंने थाना-भोगांव में दिनांक 6 सितंबर, 1996 की चिक प्राथमिकी तैयार की थी, को भी पेश किया गया था। थाना-भोगांव, जिला-मैनपुरी के तत्कालीन थानाध्यक्ष रामपाल सिंह (अ०सा०-8), जिन्होंने मामले की जांच की थी, को भी पेश किया गया था। सब इंस्पेक्टर जयचंद्र सिंह (अ०सा०-9) जिन्होंने 10 सितंबर, 1996 को मुगल रोड से राजू होटल के सामने जिप्सी बरामद की है, को भी पेश किया गया था। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, मुकदमे के दौरान सामने आई सभी आपत्तिजनक सामग्री को अभियुक्त अपीलकर्ताओं को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उनके बयान दर्ज करने के लिए रखा गया था, जिसमें उन्होंने उनसे पूछे गए सवालों से इनकार किया है।

18. बचाव पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में छह गवाहों को भी पेश किया। ब०सा०-1 रमेश चंद शर्मा, वरिष्ठ सहायक, वाणिज्यिक कर अधिकारी, शिकोहाबाद, जिला फिरोजाबाद हैं। हेड कांस्टेबल- 179 सूर्य पाल सिंह ब०सा०-2 हैं। राजेश कुमार सिंह (ब०सा०-3), थाना-हरिपर्वत, जिला आगरा के प्रभारी अधिकारी, जो जुलाई, 1997 से जुलाई, 1999 तक अपराध शाखा, अपराध जांच विभाग (संक्षेप में "सी.बी.सी.आई.डी) में निरीक्षक थे। एस.सी. पाल (ब०सा०-4), जो 30 नवंबर, 1996 से 28 जनवरी, 1998 तक सी.बी.सी.आई.डी. आगरा में इंस्पेक्टर के रूप में तैनात थे। ब०सा०-5 कमलेश कुमार, राजस्व निरीक्षक, जिला पंचायत मैनपुरी, जिला मैनपुरी है। ब०सा०-6 महक सिंह हैं, जो 18 फरवरी, 2000 से 14

मार्च, 2000 तक निरीक्षक, सी.बी.सी.आई.डी, आगरा के रूप में तैनात थे।

विचारण न्यायालय के निष्कर्ष

19. रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर निचली अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में सफल रहा है कि पिछली दुश्मनी के कारण आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा गोलीबारी की गई थी, उन्होंने अंधाधुंध गोलीबारी का सहारा लिया जिसके परिणामस्वरूप छह लोगों की मौत हो गई। निचली अदालत मौखिक साक्ष्य के आधार पर इस आशय के उक्त निष्कर्ष पर पहुंची है कि यह घटना अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों अर्थात् अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०- 3 द्वारा देखी गई थी और उनकी गवाही स्वाभाविक और विश्वसनीय है। उपरोक्त गवाहों के बयानों में खुलासा किए गए घटना के चक्षुक संस्करण की पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य के साथ-साथ फोरेंसिक साक्ष्य द्वारा भी की जाती है। इस प्रकार, अदालत द्वारा यह माना गया है कि अभियोजन पक्ष आरोपी-अपीलकर्ताओं के अपराध को संदेह से परे स्थापित करने में सफल रहा है। प्राथमिकी दर्ज करने में देरी की दलील पर, विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष को दर्ज किया है कि भ०द०वि० की धारा-147 के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप में दोषसिद्धि की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आरोपी अपीलकर्ता घातक आग्नेयास्त्रों से लैस थे और उन्होंने गैरकानूनी सभा के सदस्य होने के नाते 6 हत्याएं की हैं, इस तरह आरोपी अपीलकर्ता धारा 148, 307/149, 302/149 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी हैं। तदनुसार, विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है और उन्हें जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

अपीलकर्ताओं की दलीलें

20. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्कों के व्यापक परिदृश्य को निम्नलिखित तीन बिंदुओं पर अभिव्यक्त किया जा सकता है:-

(i) अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को पक्षों के बीच पिछली दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है। आरोपी-अपीलकर्ताओं और सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के साथ दुश्मनी के विशिष्ट उदाहरणों पर प्रकाश डाला गया है।

(ii) अभियोजन पक्ष के गवाह वास्तव में घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे और न ही उन्होंने घटना देखी है और उनके बयान न तो विश्वसनीय हैं। घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति पर संदेह करने के साथ-साथ उनके संस्करणों स्टैंडों में अंतर्निहित असंभवता पर संदेह करने के लिए रिकॉर्ड पर साक्ष्य को उजागर करने के लिए विस्तार से तर्क दिए गए हैं:

(ii) अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी जोरदार आग्रह किया गया है कि शूट-आउट की घटना सुभाष गैंग द्वारा की गई थी और जांच के दौरान इस संबंध में साक्ष्य भी एकत्र किए गए थे। हालांकि, जांच को इसके तार्किक अंत तक नहीं ले जाया गया। पिछली दुश्मनी के कारण आरोपी-अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाने के

लिए सूचनाकर्ता पक्ष के प्रभाव के कारण इसे जानबूझकर अपूर्ण छोड़ दिया गया था। अभियुक्त अपीलकर्ताओं के लिए वकीलों की व्यक्तिगत प्रस्तुतियों को इस निर्णय के बाद के भाग में विस्तार से संदर्भित किया जाएगा।

21. इन अपीलों में आग्रह किए गए व्यापक तर्कों की जांच करने और रिकॉर्ड के अवलोकन पर, इन अपीलों में निर्धारण के लिए मुख्य रूप से उठने वाला प्रश्न है: क्या अभियुक्त अपीलकर्ताओं के अपराध का निष्कर्ष, विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया है, साथ ही उन्हें दी गई सजा भी कानूनी और कानून में टिकाऊ है। इसके विपरीत यह किसी भी दुर्बलता और विकृति से ग्रस्त नहीं है।

22. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रस्तुतियों के गुर्णों पर विचार करने से पहले, नीचे की अदालत द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि और सजा के आदेश के अनुसार, अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों का विस्तार से उल्लेख करना वांछनीय है इस निर्णय के पैराग्राफ संख्या 21 में तैयार किए गए वर्तमान अपीलों में निर्धारण के लिए उत्पन्न होने वाले प्रश्न के मद्देनजर।

<u>अभियोजन पक्ष के गवाहों के संक्षिप्त बयान</u>

अ०सा०-1/प्रथम सूचनाकर्ता (सुरेंद्र सिंह पुत्र बाबू सिंह)

23. इस गवाह ने बताया है कि वह अपनी बीमार मौसी को देखकर अपनी कमांडर जीप में वापस बेवर आ रहा था और उसके साथ उसके बेटे देवेंद्र सिंह और गजेंद्र सिंह, उसका छोटा भाई संतोष सिंह, संतोष गुप्ता, अशोक निवासी बनकाटी, महेश फौजी निवासी पकरिया और रामकिशन, ड्राइवर हेम सिंह और दो अन्य लोग थे, हुमायूंपुर के नरेश दीक्षित और पूर्व प्रधान किशन पाल सिंह। शाम करीब 4.30 बजे एक मारुति कार और एक वैन ने पीछे से उनके वाहन को ओवरटेक कर लिया। कार में रामानंद, जगन्नाथ, हरिओम और आनंद सभी चार व्यक्ति सवार थे और दूसरी जिप्सी चंद्रकांत उर्फ बिल्लू पुत्र विश्वनाथ सिंह, देवेंद्र, विपिन, कौशलेंद्र और राजभूषण कुल छह व्यक्ति हाथों में बंदूकें और राइफल लिए बैठे थे। ये सभी व्यक्ति वाहनों से उतरे और बदला लेने के इरादे से उक्त वाहन में सवार सभी यात्रियों को खत्म करने के लिए चिल्लाए। उन्हें देखकर पहले
सूचनाकर्ता/अ०सा०-1, संतोष सिंह, देवेंद्र सिंह (अ०सा०-2) और संतोष गुप्ता (अ०सा०-३) पश्चिम की ओर कूद गए और अरहर (अरहर) के खेत में भाग गए। सभी आरोपियों ने अपने-अपने हथियारों से गोलीबारी शुरु कर दी, जिसके कारण उनके बेटे गगेंद्र, अशोक परिहार, महेश यादव, नरेश दीक्षित, रामकिशन और हेम सिंह चालक की मौके पर ही मौत हो गई। गोली लगने पर चालक हेम सिंह गिर गया और वाहन यूकेलिप्टस के पेड़ से टकराकर रुक गया। अपने साथ मौजूद तीन अन्य लोगों को मौके पर छोड़कर पहला सूचनाकर्ता थाना कोतवाली आया और कोतवाली के सामने पेट्रोल पंप पर सतेंद्र सिंह, रमेश सिंह और दिनेश सिंह से मिला, जिन्हें उसने पूरी घटना बताई। इसके बाद उन्होंने घटना की लिखित रिपोर्ट लिखी,

उस पर हस्ताक्षर किए और थाना में जमा कर दिए। पेपर नंबर 5ए/2 को देखकर इस गवाह ने वही साबित कर दिया है जिस पर प्रदर्श का-1 अंकित था। इस गवाह ने आगे कहा है कि आरोपी और उसके परिवार के बीच पुरानी दुश्मनी चल रही है। छोटे भाई शिवराज सिंह की हत्या के मामले में आरोपी छोटे के पिता छोटे नामजद आरोपी जगन्नाथ, आरोपी हरिओम और उसके भाई और आरोपी आनंद को आरोपी बनाया गया है और मामला लंबित है। आरोपी रामानंद की मौत हो चुकी है जबकि आरोपी राजभूषण सिंह और आनंद फरार है।

24. प्रतिपरीक्षा में प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने बताया है कि हुमायूँपुर के पूर्व प्रधान का नाम उसे घटना के समय ज्ञात नहीं था, अतः उसने उसे पूर्व प्रधान (पूर्व-प्रधान) बताया। देवेंद्र सिंह पूर्व प्रधान नहीं बल्कि उनके बेटे थे। अ०सा०-1 ने एक सवाल के जवाब में, कि उसने अपने बेटे देवेंद्र सिंह का नाम क्यों नहीं लिखा, केवल उसके दूसरे बेटे गजेंद्र उर्फ टिल्लू का नाम क्यों लिखा है, उसने कहा है कि उसने लिखित रिपोर्ट में दोनों बेटों के नाम लिखे हैं। देवेंद्र सिंह का नाम उनके बेटे के रूप में उल्लेख नहीं किया गया है लेकिन वह उनके बेटे हैं। उसने आगे कहा है कि वह शाम को 4.00 बजे पहली बार अपराध स्थल पर पहुंचा, बाद में उसने कहा कि वह 4.30 बजे पहुंचा था। वह जीप में पिछली सीट के बाईं ओर बैठा था। वह, उनका बेटा देवेंद्र, संतोष गुप्ता और उनका छोटा भाई संतोष जीप की पिछली तरफ बैठा था, जबकि ड्राइवर हेम सिंह, गजेंद्र सिंह, महेश फौजी आगे की सीट पर बैठे थे और अशोक परिहार, हुमायूंपुर के प्रधान यानी किशनपाल सिंह और नरेश दीक्षित गाड़ी की बीच की सीट पर बैठे थे। कृष्ण पाल सिंह का नाम लिखित रिपोर्ट में नहीं बताया गया है लेकिन उन्हें हुमायूँपुर का पूर्व प्रधान बताया गया है।

25. अ०सा०-1 ने आगे कहा है कि इस घटना में आगे की सीट पर बैठे तीनों व्यक्ति मारे गए थे। दो व्यक्तियों की वाहन में ही मौत हो गई थी, जबकि तीसरे व्यक्ति की मौत वाहन के पास गिरने से हुई थी। बीच की सीट पर बैठे तीनों व्यक्तियों की भी मौत हो गई, जिनमें से एक की मौत वाहन के अंदर और दो की मौत वाहन के बाहर हुई। आरोपी की दोनों गाड़ियां उसकी जीप के आगे खड़ी थीं। आरोपियों ने जीप को सामने से घेरकर फायरिंग शुरु कर दी जिसमें सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) समेत जीप के पीछे बैठे चार यात्री पश्चिम की ओर भागे। वे 50-55 कदम की दूरी पर एक अरहर के खेत में भाग गए, जहां से उन्होंने घटना देखी। आरोपी ने भागने वालों पर गोली भी चलाई, लेकिन वह उन पर चलाई गई गोलियों की संख्या याद नहीं कर सकता। उसने इंस्पेक्टर को बताया था कि चारों पर कई गोलियां चलीं, लेकिन उनमें से कोई भी वास्तव में उन्हें नहीं लगी। पेड़ों की आड़ लेकर स्वयं सहित चारों अरहर के खेल में भाग गए। वह इस बात का खुलासा नहीं कर सके कि गोलियां पेड़ों पर लगी है या नहीं।

26. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि सभी आरोपी घटनास्थल से मैनपुरी की ओर भाग गए। अ०सा०- 1 रेलवे क्रॉसिंग की तरफ आया और वहां से वह एक टेम्पो लेकर मैनपुरी आ गया।

उन्होंने आगे कहा है कि टेम्पो से मैनपुरी आने के तथ्य का लिखित रिपोर्ट में उल्लेख नहीं किया गया था और यह न तो उनसे पूछा गया था और न ही उन्होंने इसके बारे में खुलासा किया था। लिखित रिपोर्ट मैं यह तथ्य कि वह गुप्त रूप से आया था, लिखा गया है लेकिन यह तथ्य नहीं लिखा गया है कि वह टेम्पो से आया था। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी कौशलेंद्र ने इस घटना से पहले अपने भाई शिवराज सिंह और उपदेश सिंह के खिलाफ वाहन (स्टेपनी) के स्पेयर टायर चोरी करने का मुकदमा दर्ज कराया था।

27. इस गवाह ने आगे कहा है कि घटना की तारीख को वह 7 अन्य लोगों के साथ अपने घर से दोपहर 1.30 बजे के बाद औदन्या पडरिया के लिए रवाना हुआ, जहां उसकी मामी (मौसी) रह रही थी, लेकिन वह उसका नाम नहीं जानता था। हालांकि उन्होंने कहा है कि उनकी मौसी की उम्र करीब 60 से 70 साल रही होगी। उस समय उनके मामा (मौसा) जीवित नहीं थे। घटना से करीब 15-20 साल पहले मौसा की मौत हो गई थी। मामा (मौसी) का मूल निवास स्थान बादापुर पिंजरी था, जो थाना-जाकरा की क्षेत्रीय सीमा के भीतर आता है; वह सीधे औदन्या पडारिया चला गया और बीच में नहीं रुका। औदन्या पडारिया बेवर से करीब साढ़े दस किलोमीटर दूर है। उनके साथ जो लोग गए थे, वे अलग-अलग समुदायों/जाति से थे। अशोक परिहार उनके मामा के बेटे हैं, संतोष गुप्ता उनके दोस्त थे, महेश फौजी उनके करीबी परिचित थे, रामकिशन प्रधान थे और उसी के कारण उनके साथ अच्छे संबंध थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उपरोक्त व्यक्ति उनके घर में रहते थे। उसके घर पर उसकी मौसी रहती थी। उसकी मौसी कई दिनों से बीमार थी और बुखार से पीड़ित थी और वह किस अन्य बीमारी से पीड़ित थी यह डॉक्टर को पता था और वह अपनी मौसी को इलाज के लिए कहीं नहीं ले गया था। वह करीब डेढ़ घंटे मौसी के यहां रहा और शाम करीब 3:30 बजे वह बेवर के लिए रवाना हो गया। सतेंद्र सिंह, रमेश और दिनेश उसके रिश्तेदार नहीं थे लेकिन वह घटना से पहले पिछले 2 से 4 साल से उन्हें जानता था।

28. अ०सा०-1 ने यह भी खुलासा किया है कि उसके दो भाई विधान सभा के सदस्य (संक्षिप्त "विधायक") थे और सतेंद्र सिंह, रमेश और दिनेश तब से उसे जानते थे और वे उसके घर गए थे। अपनी मौसी के घर से वापस आने पर रामकृष्ण @ कृष्णपाल प्रधान और नरेश दीक्षित जेल चौराहे पर उससे मिले। जीप में कुल 8 लोग सवार थे और अन्य दो जेल चौराहे पर मिले। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में स्वीकार किया है कि रामकिशन का निक नेम किशनपाल है, इसका खुलासा उन्होंने नहीं किया है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि राम किशन और किशनपाल दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि दो लोग जेल चौराहे पर उनसे नहीं मिले थे और इसीलिए उन्होंने पुलिस को उनके बारे में खुलासा नहीं किया है।

29. अ०सा०-1 ने यह भी बताया है कि घटनास्थल रेलवे क्रॉसिंग से भोगांव की ओर डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर है। आरोपियों के दोनों वाहन घटनास्थल से पूर्व की ओर 7 से 8

कदम की दूरी पर थे। उनकी जीप दोनों वाहनों से 7 से 8 कदम की दूरी पर थी। अरहर के खेत के पश्चिम में मक्के का खेत था। ब्लैक टॉप रोड से घटनास्थल करीब 8 से 10 कदम की दूरी पर है। घटनास्थल और कोतवाली, मैनपुरी के बीच की दूरी 8 से 9 किलोमीटर है। कोतवाली भोगांव घटना के स्थान से लगभग 3 किलोमीटर दूर है। उसने आगे कहा है कि आरोपी मैनपुरी गया था, यह जानते हुए भी मैनपुरी गया क्योंकि वहां खेत, बाड़ और शेड आदि थे जबकि भोगांव की तरफ खुली जगह थी। गवाह को तीन अन्य लोगों के साथ आरोपियों के हाथों अपनी जान का खतरा था। आरोपी के जाने के दस मिनट बाद, वह अरहर के खेत से मैनपुरी गया और उसके भाई संतोष (साक्ष्य में पेश नहीं किए गए) ने उसे रिपोर्ट दर्ज करने के लिए कहा, जबकि वे (शेष तीन) वहीं रुक गए।

30. मौके से रेलवे क्रॉसिंग तक वह खेत की ओर छिप गया। वह शाम 5.30 बजे कोतवाली मैनपुरी पहुंचा और उस वक्त सत्येंद्र, दिनेश और रमेश पेट्रोल पंप पर थे। रिपोर्ट लिखने में 20 से 25 मिनट का समय लगता। वे तीनों व्यक्ति उसके साथ थाने गए थे। लिखित रिपोर्ट दीवान जी को दी गई। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसके दो भाई एम.एल.ए थे और उनमें से एक ने सांसद का चुनाव लड़ा था, इस वजह से पुलिसकर्मियों ने मौके पर जाकर मौके का निरीक्षण किया और बाद में थाने में प्राथमिकी लिख दी। जब वह पुलिस के साथ मौके पर पहुंचा, तो उप- निरीक्षक के साथ भोगांव पुलिस मौजूद थी और उसके तीन साथी जो वापस रुके थे, वे भी मौके पर मिले। उसे नहीं पता था कि उसके तीन साथियों में से किसी ने घटना के संबंध में कोई लिखित रिपोर्ट घटनास्थल पर नहीं दी थी क्योंकि वह उसके सामने नहीं दी गई थी और न ही उन्होंने किसी लिखित रिपोर्ट के बारे में खुलासा किया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि वह घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे और मैनपुरी में थे, और उन्होंने दिनेश, रमेश और सत्येंद्र से सलाह लेने के बाद राजनीतिक प्रभाव के तहत थाना कोतवाली मैनपुरी में प्राथमिकी दर्ज कराई थी। उसने इंस्पेक्टर को बताया था कि आरोपियों के हाथों में सेमी ऑटोमेटिक और ऑटोमेटिक हथियार थे। उसने यह नहीं बताया कि किस आरोपी के हाथ में कौन सा हथियार था और न ही इंस्पेक्टर ने उससे इसके बारे में पूछा।

31 अ०सा०-1 ने आगे कहा है कि वह आरोपी जगन्नाथ प्रसाद को जानता था जो एक सेवानिवृत्त शिक्षक है। उन्हें नहीं पता था कि जगन्नाथ प्रसाद वर्तमान में एक हाथ और एक पैर से विकलांग थे या नहीं, और घटना के समय वह विकलांग नहीं थे। उन्हें नहीं पता था कि उस समय जगन्नाथ प्रसाद की दृष्टि खराब थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि जगन्नाथ प्रसाद पहले से ही 6.9.96 से विकलांग थे और उनकी दृष्टि कम थी। जगन्नाथ प्रसाद दिल की बीमारी के मरीज थे या नहीं, उन्हें नहीं पता था। रमेशचंद्र दीक्षित उर्फ पहलवान की हत्या कर दी गई थी और वह उसे जानता था। आरोपी

विपिन दीक्षित उसी रमेशचंद्र दीक्षित का बेटा है। अ०सा०-1 के पुत्र रमेश चंद्र दीक्षित की हत्या के मामले में देवेंद्र, उसके भाई शिवराज सिंह, उपदेश सिंह, संतोष सिंह को आरोपी बनाया गया था।

32. अ०सा०-1 हुकम चंद्र दीक्षित को भी जानता था, जिसकी हत्या कर दी गई थी, जिसमें उसके बेटे मुनेश और भाई उपदेश सिंह को आरोपी के रूप में फंसाया गया था। हुकम चन्द्र दीक्षित के पुत्र हरिओम और रामानंद इस मामले में अभियुक्त हैं और रामानंद की मृत्यु हो चुकी है। वह आरोपी जगन्नाथ के बेटे छोटे उर्फ राजवीर को जानता था, जिसकी हत्या के मामले में उसके आई उपदेश सिंह, शिवराज सिंह और उसका बेटा मल्लू आरोपी थे। इस मामले में गवाह संतोष गुप्ता भी इसमें आरोपी है। उन्होंने खुद कहा कि संतोष गुप्ता का नाम बाद में मामले में जोड़ा गया। राजवीर उर्फ छोटे के चचेरे भाई रमाकांत दीक्षित, चंद्रकांत और बिल्लू थे।

33. इस गवाह ने आगे कहा है कि जैसे ही आरोपी ने अपनी गाड़ी को ओवरटेक किया, पीछे की सीट पर बैठे चारों लोग जीप से कूद गए और भाग गए और इसीलिए वह यह नहीं कह सकता कि गोली पहियों को पंचर करने के लिए चलाई गई थी या उसके वाहन को रोकने के लिए। उसकी जीप पर चार से छह गोलियों के निशान थे जिन्हें पुलिस ने नोट कर लिया। जैसे ही वे जीप से बाहर कूदे, फायरिंग शुरु हो गई। घटना 5 से 7 मिनट तक चली। वह यह नहीं बता सका कि किस आरोपी ने कितनी गोलियां चलाई। अंधाधुंध गोलीबारी के कारण यह पता लगाना मुश्किल था कि किसकी गोली किसको लगी। कुल मिलाकर 30 से 35 गोलियां चली होंगी। सभी आरोपी जीप के आगे की तरफ से फायरिंग कर रहे थे। आरोपियों ने 2 से 8 कदम की दूरी से फायरिंग की। आरोपियों ने उनकी गाड़ी को सामने से घेर लिया और पूरब से फायरिंग शुरू कर दी। आरोपियों ने भागते समय चारों पर गोली भी चलाई थी, लेकिन वे बाल-बाल बच गए। जांच कार्यवाही के समय वे चारों शवों के पास नहीं थे, बल्कि उनके तीन सहयोगी शवों के पास थे और इंस्पेक्टर द्वारा उनसे अलग से पूछताछ की जा रही थी।

34. अ०सा०-1 ने इस बात से इनकार किया है कि वे चारों मौके पर मौजूद नहीं थे, और इसीलिए वे अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई तस्वीरों में नहीं दिख रहे हैं। उनमें से किसी ने भी गवाह के रूप में पूछताछ रिपोर्ट पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि वह मौके पर मौजूद नहीं था और उसने घटना नहीं देखी थी और इसीलिए उसने जांच (पंचायतनामा) पूरी करने वाले पुलिस कर्मियों को आरोपी के नाम नहीं बताए थे। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि घटना के दिन राजवीर उर्फ छोटे की हत्या के मामले में उसके भाई उपदेश सिंह, शिवराज सिंह और उसका बेटा मल्लू जेल में थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि घटना के दिन वे उनसे मिलने जेल गए थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि जेल से सूचना मिलने के बाद वह मैनपुरी थाने गए और लिखित रिपोर्ट दी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि पुरानी दुश्मनी के चलते

उन्होंने आरोपियों को मामले में झूठा फंसाया था।

35. इस गवाह ने आगे कहा है कि उसकी जगन्नाथ के साथ पिछले दस वर्षों से दुश्मनी चल रही थी और उसे घटना से पहले जगन्नाथ द्वारा उसके या उसके परिवार के अन्य आरोपियों के खिलाफ दर्ज किए गए किसी भी मामले की जानकारी नहीं थी। इस गवाह ने यह भी कहा है कि आरोपियों के वाहन भोगांव की ओर मुंह कर रहे थे जब दोनों वाहन रुक गए। उनकी जीप के ड्राइवर ने उन दोनों गाड़ियों को क्रॉस करके आगे बढ़ने की कोशिश की, लेकिन इसी बीच उन्हें गोली लग गई और वह आगे नहीं बढ़ पाए, यह तथ्य उनके द्वारा लिखित रिपोर्ट में नहीं लिखा गया है। उन्होंने कहा है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को जीप के असंतुलित होने और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकराने के बारे में बताया था, लेकिन उन्होंने विवेचनाधिकारी को चालक को गोली लगने या चालक को गोली लगने के कारण जीप के असंतुलित होने के बारे में नहीं बताया है।

36. इस गवाह ने आगे कहा है कि हमलावरों में से एक ने उनका पीछा किया, जबकि वे सुरक्षा के लिए भाग रहे थे और अरहर के खेत में छिप गए थे। वे करीब 15 मिनट तक खेल में रहे होंगे लेकिन खड़ी फसल को उनके कारण नुकसान नहीं हुआ। उन्होंने घटना के दिन शाम करीब 6.30 बजे विवेचनाधिकारी से मौके का निरीक्षण करवाया। वह रात 2:30 बजे तक मौके पर रहा, जिसके बाद वह अन्य तीन लोगों को मौके पर छोड़कर घर से निकल गया। उसका घर घटनास्थल से लगभग छह मील दूर है। बाद में उनके गांव के विभिन्न लोग उस स्थान पर आए, जिनके साथ वह गए थे। जब वह घटनास्थल से निकला तो रात करीब ढाई बजे शवों को शव परिक्षण के लिए भेज दिया गया था। शवों को हैंड ट्रॉली से भेजा गया। अगले दिन सुबह वह मैनपुरी के शवगृह में आया और उसके अन्य तीन साथी वहां उससे मिले।

37. इस गवाह ने आगे कहा है कि जिस पेड़ से उसकी जीप टकराई थी, उसकी शाखा टूट गई थी। अरहर के खेत से लौटने पर उन्होंने अपनी गाड़ी देखी थी, जिसके आगे का शीशा टूटा हुआ था। रिपोर्ट दर्ज कराने आने से पहले उन्होंने अपने बेटे के शव को देखा था लेकिन वह रोए नहीं, गले नहीं लगाए और न ही बेटे के शव को उल्टा करके उसका निरीक्षण किया। उन्होंने अपने बेटे के मृत शरीर को नहीं हुआ। इस गवाह ने आगे कहा है कि जीप में बैठे लोगों में से किसी के पास कोई हथियार नहीं था। महेश फौजी के पास लाइसेंसी बंदूक थी जो उस समय जमा थी। हालांकि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि घटना से कितने दिन पहले बंदूक जमा कराई गई थी। किसी भी यात्री के पास जीप में कांता, भाला/भाला, कुल्हाड़ी जैसे हथियार नहीं थे।

38. इस गवाह ने अपनी आगे की जिरह में कहा है कि सी.बी.सी.आई.डी के अधिकारियों/कर्मचारियों ने भी घटना के बारे में अपना बयान दर्ज किया था। उन्हें याद नहीं है कि कितने दिनों बाद सी.बी.सी.आई.डी ने उनका बयान दर्ज किया। उन्होंने सी.बी.सी.आई.डी के अधिकारियों/कर्मचारियो को

यह नहीं बताया था कि वे चारों अरहर के खेत में छिपे हुए पूरी घटना के गवाह थे। वह यह नहीं कह सकते कि उन्होंने सरसों की फसल के बारे में अपने वक्तव्य में कैसे लिखा जिसकी सितम्बर के महीने में खेती नहीं की जाती है। अशोक परिहार उनके चचेरे भाई के बेटे हैं और उनके साथ हमेशा अच्छे संबंध थे। वह घटना से पहले महेश फौजी को 20 साल से जानते थे और उनके साथ अच्छे संबंध थे। वह संतोष गुप्ता को 20 साल से जानता था और उसके साथ भी अच्छे संबंध थे। इस गवाह ने यह भी कहा है कि उसका खेती करने, सिनेमा हॉल चलाने, होटल किराए पर लेने का कारोबार था। पहले वह ट्रांसपोर्टर का काम करता था लेकिन अब यह बंद है।

39. अ०सा०-1 ने इस बात से इनकार किया है कि वह अपने यहां से शराब, नशीले पदार्थों (स्मैक) और अवैध हथियारों के व्यापार में लिप्त था। उनके बेटे दिनेश सिंह के पास देसी शराब का ठेका था। पुलिसकर्मियों ने उनके बेटे की शराब की दुकान से कुछ शराब उठाई थी और वह इसकी मात्रा का खुलासा नहीं कर सके। उनके बेटे की दुकान सरकारी शराब की दुकान थी और इसी सिलसिले में पुलिस उन्हें और उनके बेटे बंटू उर्फ मनोज को घर से ले गई थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि उनके भाई शिवराज सिंह के बेटे टीटू उर्फ सत्येंद्र के कब्जे से एक करोड़ रुपये की स्मैक जब्त की गई थी, जो फरार था और उसका घर कुर्क किया गया था।

40. अ०सा०-1 ने यह भी कहा है कि पुलिस ने उसके होटल से मोटरसाइकिल, एस.बी.बी.एल बंदूक, 80 ग्राम अफीम बरामद की है जो ग्राहों की थी और पुलिस द्वारा 80 ग्राम अफीम लगाई गई थी। पुलिस उनके बेटे की शराब की दुकान से देसी शराब की 386 क्वार्टर बोतलें ले गई है। पुलिस कहीं से आधा ट्रक शराब लेकर आई, उसमें आधा इम पानी मिलाकर दिखाया कि उसके पास से उसके दो बेटों मल्लू और बंटू सहित कुल चार ड्रम शराब बरामद कर उन्हें उक्त मामले में झूठा फंसाया।

41. अ०सा०-1 ने कहा है कि उसे नहीं पता था कि ये तीन व्यक्ति, अर्थात् सत्येंद्र, रमेश और दिनेश जो उसके साथ थाना कोतवाली में पेट्रोल पंप पर आए थे। उन्हें नहीं पता था कि संतोष गुप्ता के खिलाफ बीस मामले लंबित हैं या नहीं। उक्त तिथि को संतोष गुप्ता न्यायालय में आए हैं। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी और दुश्मनी के कारण झूठी गवाही दे रहे थे। अ०सा०-1 ने आगे कहा है कि आरोपी विपिन के गाव में जमीन और खेत है। विपिन की जमीन और खेत उसके घर से करीब डेढ़ फलांग दूर होगा। उसने इस बात से इनकार किया है कि वह विपिन की जमीन और खेत खरीदना चाहता था और जब उसने उसे बेचने से इनकार कर दिया, तो उसने उससे दुश्मनी कर ली। उन्होंने स्वीकार किया है कि वर्ष 1985 में बेवर में उनके भाई शिवराज सिंह पर जानलेवा हमला हुआ था। वर्ष 1986 में लखनऊ में उन पर जानलेवा हमला हुआ और 1996 में उनके भाई शिवराज सिंह और उपदेश सिंह आदि पर हमला किया गया जिसमें उनके मित्र जयगोविंद दीक्षित की हत्या कर दी गई। उक्त तथ्य उनके द्वारा विवेचनाधिकारी को दुश्मनी समझाने के

लिए बताया गया है। वह इन वाहनों को देखकर जिप्सी, वैन और कार में अंतर बता सकता था। घटना के समय, उन्होंने जिप्सी और कार को देखा था, जिप्सी नीले रंग की थी और कार क्रीम रंग की थी। उन्होंने अपने परीक्षण में कहा है कि यह एक जिप्सी और एक वैन थी, लेकिन वास्तव में आरोपी ने घटना के समय एक जिप्सी और एक कार का इस्तेमाल किया था और वह इस बात का कारण नहीं बता सके कि इस तरह का बयान कैसे दर्ज किया गया। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि वह मौके पर मौजूद नहीं थे और इसलिए उन्होंने जिप्सी और वैन के बारे में भ्रम पैदा किया। घटना के दिन हथियार के साथ कोई व्यक्ति मौजूद नहीं था और इसलिए, उसके पास कोई हथियार नहीं हो सकता था। आरोपियों ने जब उनकी गाड़ी को ओवरटेक किया तो उनके हाथ में हथियार थे। उनकी खिडकियां खुली थीं लेकिन उसे याद नहीं था कि उसने यह बात इंस्पेक्टर को बताई थी या नहीं। उनकी जीप में पिछला पर्दा लगा हुआ था। जीप से बाहर आने के बाद उन्होंने आरोपी को हथियारों के साथ देखा।

42. अ०सा०-1 ने तब कहा है कि वे भोजन करने के बाद घर से चले गए थे। घटना की तारीख को वे अपनी मौसी के घर गए, उनके पति का नाम लाल सिंह था। वह जिस गांव में अपनी मौसी को देखने गया था, उसका प्रधान सलेंद्र सिंह था या नहीं, उसे पता नहीं था। अ०सा०-1 ने आगे खुलासा किया है कि तुकमान सिंह अपने भाई (शिव राज सिंह) के ससुर (मुंशी सिंह) का सगा भाई था। उसे नहीं पता था कि तुकमान सिंह की सुभाष गैंग से दुश्मनी थी या नहीं। तुकमान सिंह का दोस्त रामपुर निवासी जगदीश मिश्रा बेवर के साथ-साथ गांव में भी रहता था। उसे नहीं पता था कि सुभाष गैंग ने जगदीश मिश्रा के परिवार के चार-पांच लोगों को लूटने के बाद उनकी हत्या कर दी थी। घटना के समय उनके परिवार के किसी भी सदस्य को पुलिस सुरक्षा नहीं दी गई थी। वर्तमान घटना के संबंध में, पुलिस और सी.बी.सी.आई.डी दोनों ने अलग-अलग बयान दर्ज किए हैं। उसने देवेंद्र का घर नहीं देखा था इसलिए यह नहीं बता सका कि उसके घर का दरवाजा किस दिशा में स्थित है।

43. अ०सा०-1 ने इस बात से इनकार किया है कि बेवर में उसका घर था और रक्षापाल वहां रहता था और वहां उसकी हत्या कर दी गई थी। उसे नहीं पता था कि रक्षपाल सूबेदार पांडेय के भाई की हत्या का आरोपी है। वह सुभाष पांडे को बिल्कुल भी नहीं जानता था, इसलिए वह यह नहीं बता सका कि उसके और उसके गिरोह के खिलाफ हत्या और डकैती के कितने मामले लंबित हैं। अ०सा०-1 ने इस बात से इनकार किया है कि पुलिस ने जिस वाहन को मौके से हिरासत में लिया था, उसमें कोई खिड़की नहीं थी। फायरिंग के वक्त अशोक परिहार जीप में बैठे थे और गाड़ी से उतरकर भोगांव की तरफ 10 से 12 कदम भागे, तभी उन्हें गोली लगी और वह नीचे गिर गए। नरेश दीक्षित ने भी गाड़ी से बाहर आने की कोशिश की लेकिन गोली लगी और गाड़ी के पैर के पास गिर गए। हालांकि उन्होंने इस बात से

इनकार किया है कि महेश फौजी जीप से उतरे और चार-पांच कदम पूरब की ओर आगे।

44. अ०सा०-1 ने कहा है कि उसकी जीप का बोनट भोगाव की ओर था, वह जीप के बोनट का आकार निर्दिष्ट नहीं कर सकता है। जीप में पीछे की खिड़की नहीं बल्कि पर्दा था। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि वहां झाड़ियां थीं जिनमें सुभाष पांडे गैंग ने खुद को छिपाकर अंधाधुंध फायरिंग की थी, जिसके कारण यह घटना हुई। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि उनकी जीप में बैठे सभी लोग इस घटना में मारे गए थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि वह जीप के सहयात्री नहीं थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि वह दुश्मनी के कारण रिपोर्ट दर्ज कराने आए थे और उन्होंने इस घटना को नहीं देखा था।

<u>अ०सा०-2 (देवेंद्र सिंह पुत्र सुरेंद्र सिंह)</u>

45. अ०सा०-2 अ०सा०-1 का पुत्र है और इस घटना में उसने अपने भाई को खो दिया है। उन्होंने कहा है कि यह घटना 6.9.96 को शाम 4.30 बजे हुई। वे अपने पिता की मौसी (मौसी) को ऑडेन्या से लौट रहे देखकर जीप से बेवर की ओर जा रहे थे। जीप में आठ व्यक्ति सवार थे, जिनके नाम अ०सा०-2, उनके पिता (प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1), उनके चाचा संतोष सिंह, उनका भाई गजेंद्र सिंह उर्फ टिल्लू (मृतक), महेश फौजी, अशोक परिहार, चालक हेम सिंह और संतोष गुप्ता (अ०सा०-3) थे। जब वे मैनपुरी में जेल चौराहे (चौराहा) पर आए तो उनकी मुलाकात नरेश दीक्षित और पूर्व प्रधान रामकृष्ण से हुई, जो जीप में उनके साथ थे। रेलवे क्रॉसिंग से पहले नरेश पंडित जी ने ड्राइवर को खुद को आराम देने के लिए वाहन रोकने के लिए कहा और चालक ने वाहन रोक दिया। नरेश दीक्षित और अन्य व्यक्ति वाहन से उतरे और खुद को आराम करने के बाद सभी व्यक्ति फिर से जीप में बैठ गए और फिर रेलवे क्रॉसिंग पार कर गए। घटनास्थल भोगांव से लगभग 1.5 किमी और रुई सिनौरा तिराहा से लगभग 1.25 फर्लांग पहले था। उस समय शाम के करीब 4.30 बज रहे थे। एक नीली जिप्सी और एक क्रीम रंग की मारुति कार जिसके सामने जिप्सी थी, ने उनके वाहन को ओवरटेक कर दिया। उनके चालक हेम सिंह ने जीप के सामने खड़ी दोनों गाड़ियों को ओवरटेक करने की कोशिश की। जब जीप चल रही थी तो आरोपी रामानंद, जगन्नाथ, हरिओम, आनंद, देवेंद्र, राजभूषण, कौशलेंद्र, विपिन, बिल्लू @ चंद्रकांत और रमाकांत, कुल दस लोग उन वाहनों से उतरे और बदला लेने के इरादे से उन्हें खत्म करने का आह्वान किया। तुरंत वह, उसके पिता (प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1), संतोष गुप्ता (अ०सा०-3) और उसके चाचा संतोष सभी अपने वाहन के पीछे से कूद गए और अरहर के खेत की ओर भाग गए।

46. उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी में वाहन में बैठे सभी छह व्यक्तियों, हेम सिंह, गजेंद्र @ टिल्लू, महेश फौजी, अशोक परिहार, पूर्व प्रधान राम किशन सिंह और नरेश दीक्षित की मौके पर ही मौत हो गई। उक्त फायरिंग में चालक हेम सिंह की मौत होने के कारण उनकी जीप असंतुलित हो

गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। जब आरोपी अपने वाहनों से मैनपुरी की ओर भाग गए, तो वे अरहर के खेत से बाहर आए और देखा कि छह लोगों की मौत हो चुकी है। वे छिपते हुए रेलवे क्रासिंग की ओर आ गए। बाद में वे खेतों में छिप गए थे। जिरह में अ०सा०-2 ने बताया कि पूर्व प्रधान रामकिशन और नरेश दीक्षित उनसे जेल चौराहे पर मिले थे और उक्त तथ्य उनके द्वारा इंस्पेक्टर को बताया गया है। यदि इसे उनके बयान में शामिल नहीं किया गया है तो उन्हें इसका कारण नहीं पता है। सी.बी.सी.आई.डी. ने घटना के तीन-चार महीने बाद अपना बयान लिया था। उन्होंने आगे कहा है कि घटना की तारीख को उनके चाचा शिवराज सिंह @ पीटीआई, उपदेश सिंह, उनके भाई विजेंद्र @ मल्लू छोटे उर्फ राजवीर की हत्या के मामले में जेल में थे और घटना की तारीख को वे जेल में उनसे मिलने नहीं गए थे। उनके पिता हमेशा जीप में सबसे पीछे बैठते हैं, इसलिए घटना की तारीख पर भी वह पीछे की सीट पर थे। घटना के समय जीप में बैठे सभी व्यक्तियों में उनके पिता सबसे बड़े थे। इस गवाह ने आगे बताया है कि वारदात से पहले वह करीब दस बार बेवर से मैनपुरी आया था। जिस समय वे अपनी जीप से कूदे उस समय वह चल रही थी। जान बचाने की हड़बड़ी में वे कूदकर खेत की ओर भागे। जब वे दौड़ रहे थे तो किसी ने उनका पीछा नहीं किया। वे दौड़ते हुए पीछे मुड़कर देख रहे थे। जब वे दौड़ रहे थे तो आरोपियों ने जीप की ओर और उनकी ओर भी गोली चलाई लेकिन उनमें से कोई भी गोलियों से नहीं मारा क्योंकि जीप उनके और फायरिंग करने वाले व्यक्ति के बीच थी। चारों के कार से कूदने के बाद उनकी जीप करीब 10 से 12 कदम आगे बढ़ी होगी।

47. इस गवाह ने आगे कहा है कि मौके पर दहशत के कारण वे भूल गए कि उनमें से एक या दो को शवों के पास रहना चाहिए था। उन्होंने शवों को छुआ तक नहीं था। जब उन्हें पता चला कि कोई व्यक्ति नहीं आ रहा है तो वे घटनास्थल से रेलवे क्रॉसिंग की ओर निकल पड़े। उसने पहली बार स्वीकार किया कि उसके पिता टेम्पो से रिपोर्ट दर्ज कराने गए थे। जीप का पर्दा गिरा दिया गया। जिस समय जीप असंतुलित हो गई और चालक की गोली मारकर हत्या कर दी गई, उस समय वे जीप से कूद गए और मैदान की ओर भाग गए क्योंकि उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं था। आरोपियों ने उकसाया तो सभी जीप से कूद गए। उस समय चारों ने धीमी गति से आगे बढ़ रही जीप के पीछे से छलांग लगा दी। उन्होंने आगे कहा है कि जगन्नाथ के बेटे छोटे की हत्या के मामले में गजेंद्र @ टिल्लू और महेश फौजी आरोपी थे। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्होंने कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं कराई है। वह इस बात का खुलासा नहीं कर सके कि मृतकों में से कोई आरोपी था या नहीं। उन्होंने आगे कहा है कि भोगांव थाना की पुलिस मौके पर पहुंचने के पंद्रह मिनट बाद और उनके पिता के मैनपुरी से लौटने से पहले मौके पर पहुंच गई। अ०सा०-2 ने बताया है कि जीप के पीछे से कूदने वाले किसी भी व्यक्ति को कोई खरोंच या कोई अन्य चोट नहीं आई थी। वे चारों अरहर के खेत में 15 मिनट तक छिपे रहे। कोई भी आरोपी उन्हें मारने या घेरने के लिए मैदान के पास नहीं आया। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि किशुनपुर गडिया में उनके पिता के नाम पर कोई जमीन नहीं थी। टेम्पो मैनपुरी की ओर रेलवे क्रॉसिंग पर खड़ा पाया गया और वह इसका कारण नहीं बता सका कि टेम्पो

क्रॉसिंग पर क्यों खड़ा था और आस-पास गांव का कोई व्यक्ति नहीं देखा गया था।

48. अ०सा०-2 ने इनकार किया है कि अगर जीप का पिछला छोर स्टेपनी के करीब था तो जीप से बाहर कूदना मुश्किल होगा। जीप को उसके चाचा ने बेच दिया है। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उसके परिवार की आरोपी विपिन से कोई दुश्मनी नहीं थी और इसीलिए आरोपी विपिन को उस जमीन को बेचने के लिए दबाव बनाने के लिए झूठा फंसाया गया है, जिसे वह बेच नहीं रहा था। लिखित रिपोर्ट में उसे सूचनाकर्ता का बेटा नहीं बताया गया है। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया है कि वह मौके पर नहीं थे और इसीलिए लिखित रिपोर्ट लिखने वाले व्यक्ति ने उनका नाम पहले सूचनाकर्ता (अ०सा०-1), सुरेंद्र सिंह के बेटे के रूप में नहीं लिखा था। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्हें नहीं पता था कि रक्षपाल सिंह की दुश्मनी सुभाष पांडे के साथ चल रही थी या नहीं और क्या रसपाल सिंह और तुकमान सिंह सुभाष पांडे के भाई सूबेदार की हत्या में आरोपी थे। उसे यह भी नहीं पता था कि सुभाष पांडेय के गैंग और पुलिस के बीच एनकाउंटर हुआ था या नहीं और एनकाउंटर में मिले खाली और मौजूदा घटना में मिले खाली.. को जांच के लिए भेजा गया था या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि सुभाष गैंग की उनके परिवार के साथ दुश्मनी थी और इस दुश्मनी के कारण सुभाष गैंग इस घटना का कारण बन सकता है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि अदालत में मौजूद आरोपी घटना का कारण नहीं हो सकता है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि आई.जी जोन कानपुर द्वारा आरोपी देवेंद्र के साथ उनकी सुरक्षा के लिए तैनात दो कांस्टेबल घटना की तारीख और समय पर उनकी सुरक्षा के लिए उनके साथ थे और आरोपी देवेंद्र इस घटना में शामिल नहीं था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि उनके चाचा के साथ तैनात बंदूकधारी उनसे पूछने के बाद अपने निजी काम से जाते थे और वे अपने हथियार उनके चाचा के यहां रखते थे। उन्होंने कहा है कि आरोपी कौशलेंद्र ने घटना से पहले अपने परिवार के सदस्यों के खिलाफ लूट का मामला दर्ज कराया था और यही दुश्मनी का कारण था। वे अपने परिवार की किसी भी महिला सदस्य को अपने पिता की मामी को दिखाने नहीं ले गए। उन्होंने आगे कहा है कि उस समय उनके चाचा शिवराज सिंह अमर शहीद इंटर कॉलेज के प्रबंधक थे, लेकिन उन्हें तब से पता नहीं था जब से वह उक्त पद पर थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि आरोपी कौशलेंद्र पाल सिंह को प्रबंधक पद के लिए स्कूल से बाहर उत्पन्न दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि घटना में मारे गए परिवार के सदस्य उनके चाचा से मिलने गए थे, जो जेल में थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि उस समय वह, उनके पिता, उनके चाचा संतोष कुमार और सतोष कुमार गुप्ता जीप में मौजूद नहीं थे।

49. अ०सा०-2 ने आगे कहा है कि घटना की तारीख को वे अपने गांव से अपने पिता की मामी को देखने गए थे। कुल आठ लोग उसे देखने गए थे। नरेश दीक्षित और राम किशन (पूर्व प्रधान) ने मैनपुरी जेल क्रॉसिंग पर उनसे

मुलाकात की, जब वे अपने पिता की मौसी को देखने के बाद लौट रहे थे। यह सही नहीं था कि उनमें से दस गांव छोड़कर चले गए थे और रास्ते में उपरोक्त दो व्यक्तियों से नहीं मिले। उन्होंने इस बात से भी इंकार किया है कि उपरोक्त दोनों व्यक्ति जेल चौराहे पर नहीं मिले थे और इसीलिए इंस्पेक्टर और सी. आई. डी को इसका खुलासा नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि घटना के समय ड्राइवर हेम सिंह गजेंद्र @ टिल्लू और महेश फौजी के साथ जीप की अगली सीट पर बैठे थे। नरेश दीक्षित, रामकिशन, पूर्व प्रधान और अशोक परिहार जीप की बीच की सीट पर बैठे थे और शेष चार व्यक्ति जीप की पिछली सीट पर बैठे थे।

50. इस गवाह ने आगे कहा है कि सभी आरोपियों ने चलती गाड़ी पर गोली चलाई थी। जब चारों गाड़ी से कूदे तो आरोपी आठ-दस कदम की दूरी पर थे। चारों जीप के पीछे से कूद रहे थे, तभी आरोपियों ने जीप की तरफ फायरिंग भी कर दी। इनमें से चार के जीवित होने और अन्य 6 व्यक्तियों की मौत से संबंधित बयान इंस्पेक्टर को दिया गया। उन्होंने आगे कहा है कि जिस समय वे चारों छिपने के लिए भाग रहे थे, उस समय आरोपियों ने उन पर गोली चलाई, लेकिन उन्हें चोट नहीं आई क्योंकि उनके और हमलावरों के बीच एक औप थी। आरोपियों ने ब्लैक टॉप रोड की तरफ से फायरिंग शुरू कर दी। फायरिंग के समय आरोपी जीप की तरफ से नहीं आए थे बल्कि जीप के पूर्वी हिस्से से फायरिंग कर रहे थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि घटना का स्थान युकेलिप्टस के पेड़ों से युक्त घना जंगल था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि घटना के समय सरवा गांव से लेकर नाले तक यूकेलिप्टस के पेड़ों का घना जंगल था। जिस खेत में चारों छिपे हुए थे, वह घटनास्थल से करीब डेढ़ फीट की दूरी पर दबा हुआ था। घटना के समय यूकेलिप्टस के पेड़ों के आसपास कोई गड्ढा नहीं था। उनकी हाइट पांच फीट आठ इंच है। चारों ने खेत से घटना देखी थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि घटनास्थल पेड़ों, अरहर के पौधों और जिस खाई में वे छिपे हुए थे, उसके कारण दिखाई नहीं दे रहा था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने अरहर के खेत में छिपकर नहीं बल्कि सरसों के खेत में छिपकर घटना देखी है। उन्होंने कहा है कि उनके पिता के टेम्पो में बैठने के बाद वे तीनों घटनास्थल पर वापस आ गए। कुल मिलाकर 25 से अधिक गोलियां चलाई गई। वह यह नहीं बता पाएगा कि किस आरोपी की गोली किस मृतक को लगी। वह यह भी नहीं बता पाएगा कि किस आरोपी ने कितनी गोलियां चलाई। वह यह भी नहीं बता पाएगा कि किस मृतक को कितनी गोलियां लगीं। उन्होंने अरहर के खेत से बाहर आने के बाद मृत व्यक्तियों को देखा। मृतक के सभी घायल नहीं देखे जा सके। लगभग सभी मृतकों की गर्दन के ऊपर चोट के निशान थे। उस दिन भी वह बता सकता था कि मृतक को कितनी चोटें आई हैं। भोगाव पुलिस के आने के बाद उन्होंने पूछताछ की और उन्हें घटना के बारे में बताया गया। जिस समय पुलिस घटनास्थल का निरीक्षण कर रही थी, उस समय उनसे कोई सवाल नहीं पूछा गया और न ही उन्होंने पुलिस को कुछ बताया, क्योंकि तीनों अलग-अलग बैठे थे।

<u>अ०सा०-3 (संतोष गुप्ता पुत्र श्री रामनाथ)</u>

51. यह घटना नौ साल पहले की है। वे कमांडर जीप में गढ़िया किशनपुर से और्दया जा रहे थे। उस जीप में चालक हेम सिंह, गजेंद्र @ टिल्लू, महेश फौजी, अशोक परिहार, संतोष सिंह और अन्सा०-1 सुरेंद्र सिंह, देवेंद्र (अ०सा०-2) और अ०सा०-3 बैठे थे। जब वे गांव औरेण्य से वापस बेवर आ रहे थे तो नरेश पंडित और राम किशन प्रधान जेल चौराहे पर मिले और दोनों भी जीप में बैठ गए। जब वे रुई सिनौरा से पूर्व में 1.25 फर्लांग पहुंचे, तो एक जिप्सी और मारुति कार ने उनकी जीप को ओवरटेक किया और वे उस जीप के सामने थे जिसमें यह गवाह अन्य लोगों के साथ यात्रा कर रहा था। तुरंत ही देवेंद्र, राजभूषण, कौशलेंद्र, विपिन, रमाकांत, विल्लू, जगन्नाथ, रामनंद, हरिओम, आनंद दो वाहनों से बाहर निकले, उनमें से राजभूषण, विपिन, जगन्नाथ, रामानंद के हाथों में बंदूकें थी और बाकी छह आरोपियों के हाथों में राइफले थी। उस समय शाम के करीब साढ़े चार बज रहे थे। इन सभी आरोपियों ने नसीहत दी कि वे इनमें से किसी को भी नहीं छोड़ेंगे और बदला लेंगे। आरोपी व्यक्तियों को देखकर प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 सुरेंद्र सिंह, देवेंद्र (अ०सा०-2), और संतोष सिंह उसके साथ जीप से कूद गए और पश्चिम में अरहर (अरहर) के खेत की ओर भाग गए। चालक को गोली लगने से जीप असंतुलित हो गई और पेड़ से टकरा गई। फायरिंग के कारण हेम सिंह चालक, गजेंद्र @ टिल्लू, महेश फौजी, अशोक परिहार, नरेश पंडित, हिमायूपुर के राम किशन प्रधान की मौके पर ही मौत हो गई। घटना को उन्होंने अरहर के खेत से देखा था। घटना के बाद आरोपी अपने वाहनों से मैनपुरी की ओर रवाना हो गए। उसके बाद वे चारों रेलवे क्रॉसिंग की तरफ आ गए, जहां एक टेंपो खड़ा था जिसके पास पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०- 1 सुरेंद्र सिंह रिपोर्ट दर्ज कराने मैनपुरी गए थे। इसके बाद तीनों मौके पर लौट आए। वे औडेनिया में बीमार सुरेंद्र सिंह की मामी को देखने गए थे। उसने आगे कहा है कि वह घटना से पहले पिछले 4 से 5 साल से किशनपुर गढ़िया में रह रहा था। किशनपुर गढ़ियां में उनका कमरा था। उनका घर सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 सुरेंद्र सिंह के घर से एक फर्लांग दूर होगा। वह पिछले 14 से 15 वर्षों से पहले सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह और उनके परिवार को जानता था। मुसीबत के समय में वे एक-दूसरे की जगहों पर जाते थे और एक-दूसरे की मदद भी करते थे। उन्होंने आगे कहा है कि वह सूचनादाता के परिवार के साथ एक या दो मामलों में आरोपी थे। वह धारा 302 और 307 भ०द०वि० के तहत मामलों में आरोपी था और एक डकैती और एक अपहरण के मामले में भी आरोपी था। उन्होंने तब कहा था कि वह अपहरण के दो मामलों में आरोपी थे और उनके खिलाफ कुल चार से पांच आपराधिक मामले लंबित थे। जब वह चिलौसा में थे, तब उनके खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं किया गया था। उन पर गुंडा एक्ट और गैंगस्टर एक्ट के तहत भी मुकदमा चलाया गया। यह सही नहीं है कि 1990 से 2004 तक उनके खिलाफ बीस आपराधिक मामले थे। उसके खिलाफ थाना कोतवाली और थाना-भोगांव में मामले दर्ज हैं। उसके खिलाफ थाना-कोतवाली, मैनपुरी में कोई मामला दर्ज नहीं है।

52. अ०सा०-2 ने आगे कहा है कि उसने उन हथियारों को देखा और पहचाना जो घटना के समय आरोपी के पास थे। उन्होंने इंस्पेक्टर को बताया कि चार आरोपियों के पास बंदूकें हैं और

शेष छह के हाथों में राइफले हैं। अगर इंस्पेक्टर ने अपने बयान में उक्त तथ्य नहीं लिखा होता तो वह इसका कारण बता सकता था। आरोपियों के हाथ में राइफल और बंदूकों के अलावा कोई अन्य हथियार नहीं था। उसे स्वचालित और अर्थ स्वचालित हथियारों के बारे में जानकारी नहीं थी। उन्होंने इंस्पेक्टर को यह नहीं बताया कि कुछ आरोपियों के हाथों में स्वचालित और अर्ध-स्वचालित हथियार थे। अगर इंस्पेक्टर ने अपने बयान में यही लिखा तो वह इसका कोई कारण नहीं बता सकता। उन्होंने आगे कहा है कि घटना के बाद, वे चारों सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह के साथ रेलवे क्रॉसिंग पर गए थे ताकि उसे एक टेम्पो पर छोड़ दिया जा सके। उसने उक्त तथ्य इंस्पेक्टर को बताया और अगर उसने अपने बयान में नहीं लिखा तो वह इसका कारण नहीं बता सकता। उन्होंने इंस्पेक्टर को सूचना नहीं दी कि आरोपियों के जाने के बाद वे चारों चुपके से मैनपुरी चले गए। उन्होंने आगे कहा है कि सी.बी.सी.डी ने घटना के 7-8 महीने बाद अपना बयान दर्ज किया। जिस समय सी.बी.सी.आई.डी द्वारा उसका बयान दर्ज किया गया था, उस समय वह अधिनियम के तहत एक मामले में जेल में था। उसने सी.बी.सी.आई.डी को ऐसा कोई बयान नहीं दिया कि घटना वाले दिन जीप में उसके साथ दस लोग गए थे। नरेश दीक्षित और राम किशन उनके साथ नहीं आए थे। अगर ऑडेनिया जाने वालों के बीच उनके बयान में इन लोगों के नाम नहीं लिखे गए तो वही गलत है। उन्होंने सी.बी.सी.डी को बयान नहीं दिया कि लगभग 4:30 बजे उनकी जीप आरोपी के वाहनों को ओवरटेक करने की कोशिश कर रही थी, जिसके बाद वह पेड़ से टकरा गई। उन्होंने सी.बी.सी.आई.डी को बयान दिया कि जगन्नाथ दीक्षित ने भोगांव कोतवाली में सुरेंद्र सिंह के आई उपदेश सिंह के खिलाफ उनके बेटे राजेवर @ छोटे दीक्षित की हत्या का मामला दर्ज कराया था और उक्त दुश्मनी के कारण आरोपियों ने इस घटना को अंजाम दिया है। उन्होंने सी.बी.सी.आई.डी. को बयान नहीं दिया कि पहले सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह उन्हें मौके पर छोड़कर मैनपुरी चले गए थे

53. अ०सा०-2 ने आगे कहा है कि छोटे दीक्षित की हत्या से संबंधित मामले में, उसका नाम प्राथमिकी में नहीं था। बाद में उसे आरोपी बनाया गया। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपियों के जाने के बाद, वे शवों की तलाश में मौके पर आए। 10 मिनट बाद भोगांव थाने की पुलिस आई और तभी वे मैदान से बाहर आए। भोगांव थाने की पुलिस साढ़े पांच बजे मौके पर आई थी। शवों की तस्वीरों को देखने पर, वह उनमें से दो की पहचान कर सकता था क्योंकि तस्वीरें बर्बाद हो गई थीं। फोटो पेपर नंबर 10 ए/1 को देखने पर गवाह ने इसकी पहचान गजेंद्र @ टिल्लू के शव के रूप में की। उन्होंने यह भी कहा है कि जिस स्थान से वे जीप और अरहर (अरहर) के खेत से कूदे थे, वह 10-12 कदम था। आरोपी के मौके से जाने के करीब 15-16 मिनट बाद करीब 5 बजे मुट्ठी सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह को टेंपो में बैठाया गया।

<u>पी. डब्ल्यू. 4 (डॉ. आर. पी. एस. चौहान), जिन्होंने मृतक का शव परिक्षण किया</u>

54. अ०सा०-4 ने बताया है कि सभी शवों को सील कर दिया गया था और उसने इन शवों को सैंपल सील से मिलान करके खोला था।

उन्होंने आगे कहा है कि अशोक परिहार की चोट नंबर 1 विस्फोटक के कारण लगी चोट थी, चोट नंबर 2 मृतक के बाईं ओर से फायर किए गए एंट्री वाउंड के रूप में थी। चोट नंबर 4 को दाईं ओर से लगाया गया होगा। रामकिशन के शव पर चोट नंबर 1 दाईं ओर से लगी थी। चोट नंबर 3 को बाईं ओर से लगाया गया होना संभव है। चोट नंबर 5 और 6 एक कुंद कठोर वस्तु के कारण हो सकती है। मृतक नरेश दीक्षित के शव पर चोट नंबर 1 बाईं ओर से लगी हो सकती है। चोट नंबर 3 और 4 आग्नेयास्त्र से चलाई गई गोली के घर्षण से आ सकती है। यह चोट बाईं ओर से देना संभव है। मृतक हेम सिंह के शव पर चोट नंबर 1 दाहिनी तरफ से लगने की संभावना है और यह चोट बंदूक की गोली से लगी हो सकती है, चोट नंबर 2 को पीछे की तरफ से लगाया गया कहा जा सकता है। चोट नंबर 3 को पीछे से दाईं ओर से लगाया जाना संभव है। मृतक गजेंद्र सिंह के शव पर चोट नंबर 1 बाईं ओर से लगी हो सकती है। चोट नंबर 3 दाईं ओर से एक कुंद वस्तु के कारण होने की संभावना है। चोट नंबर 4 दाईं ओर से बन्दूक की गोली के कारण होने की संभावना है, चोट नंबर 5 सामने दाईं ओर से बन्दूक की गोली के कारण होने की संभावना है। मृतक महेश के शव पर चोट नंबर 1 सामने बाईं ओर से गोली लगने से संभव है। चोट नंबर 2 सामने दाईं ओर से होने की संभावना है। चोट नंबर 5 सामने दाईं ओर से एक बन्दूक शॉट से होने की संभावना है। चोट नंबर 6 पीछे बाईं ओर से बन्दूक से गोली लगने के कारण हुई थी।

55. अ०सा०-4 ने आगे कहा है कि मृतक अशोक परिहार के शरीर पर चोर्ट बाएं, दाएं और पीछे से दी गई हैं। मृतक रामकृष्ण के शरीर पर चोट के निशान बाएं और दाएं से दिए गए हो सकते हैं। मृतक नरेश दीक्षित के शरीर पर चोट के निशान संभवतः बाईं ओर से दिए गए थे। मृतक हेम सिंह के शरीर पर चोट के निशान दाएं और पीछे से दिए गए हो सकते हैं। मृतक गजेंद्र सिंह के शरीर पर चोट के निशान बाएं और दाएं से दिए गए हो सकते हैं। मृतक महेश सिंह के शरीर पर चोट के निशान बाएं और दाएं से दिए गए हो सकते हैं। मृतक के शरीर पर कोई भी चोट पैलेट गन से नहीं आई थी और बंदूक से चलाई गई गोलियां नहीं थी। शवों से निकाले गए धातु के टुकड़े भी ऐसे टुकड़े हो सकते हैं जो हैंड ग्रेनेड आदि के फटने के बाद शरीर में प्रवेश कर सकें। अशोक परिहार का चोटिल नंबर 06 लाठी वार के कारण संभव है।

<u>अ०सा०-5 (श्री बाबूलाल गौतम), तत्कालीन प्रमुख मोहर्रिर थाना कोतवाली, मैनपुरी</u>

56. अ०सा०-5 ने बताया है कि थाना कोतवाली, जनपद मैनपुरी में जी.डी. में प्रविष्टि करने के बाद प्राथमिकी की प्रति एवं लिखित रिपोर्ट कांस्टेबल 196 उदयाराम द्वारा पुलिस थाना- भोगांव को भेजी गई थी। मूल जी.डी. जी.डी की मूल और कार्बन कॉपी उसके सामने उपलब्ध नहीं है। उन्होंने आगे कहा है कि जब प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 सुरेंद्र सिंह रिपोर्ट दर्ज कराने आए तो वहां कई लोग थे, लेकिन थाने के अंदर उनके साथ तीन व्यक्ति आए थे। उस समय इंस्पेक्टर कोतवाल साहब कोतवाली में मौजूद नहीं थे और उन्हें नहीं पता था कि

कोतवाल साहब कितने समय बाद लौटे हैं। उन्हें लिखित रिपोर्ट के आधार पर पता चला कि घटनास्थल कोतवाली मैनपुरी की क्षेत्रीय सीमा के भीतर नहीं था। उन्होंने आगे कहा है कि भोगांव थाना मैनपुरी थाना से 13 से 14 किलोमीटर दूर होगा। वह सड़क मैनपुरी थाना से जुड़ी हुई है। लिखित रिपोर्ट मिलते ही अन्य प्रधान मोहर्रिर ने अन्य अधिकारियों थानाध्यक्ष मैनपुरी व भोगांव की कोतवाली को वायरलेस के माध्यम से घटना की जानकारी दी। हेड मुहर्रिर से पूछताछ नहीं की गई और घटना के समय अशोक चौहान भाजपा के कार्यकर्ता थे, विधायक नहीं। अ०सा०-5 ने इस बात से इंकार किया है कि राजनीतिों के दबाव के कारण उन्होंने समयपूर्व प्राथमिकी दर्ज कराई है।

57. अ०सा०-5 ने कहा है कि जिस समय सूचनाकर्ता लिखित रिपोर्ट लाया था, उस समय एस. आई राम अवध सिंह अधिकारी थे और उनके आदेश पर उन्होंने चेक एफ.आई.आर. उन्हें लिखित रूप में प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश नहीं दिया गया था, लेकिन मौखिक रूप से। जी.डी में कोई एंट्री नहीं है और वह चिक प्राथमिकी एस.आई राम अवध सिंह के निर्देश पर लिखी गई थी। उनकी जानकारी में कोई लिखित आदेश नहीं था कि भोगांव पुलिस ने मौके पर फोर्स भेजी थी या नहीं। कोई संज्ञेय अपराध दर्ज किया गया था या नहीं, यह उनके द्वारा नहीं बताया जा सकता क्योंकि संबंधित जी.डी उनके सामने नहीं थे। सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह ने उन्हें लिखित रिपोर्ट दी थी और घटना के बारे में उनसे कोई बातचीत नहीं हुई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि चूंकि वह उपदेश सिंह यानी पहले सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह के भाई को जानते थे, इसलिए उन्होंने एक पूर्व समय पर प्राथमिकी दर्ज कराई है।

<u>अ०सा०-6 श्री मुबीन अहमद तत्कालीन थानाध्यक्ष, कोतवाली मैनपुरी</u>

58. इस गवाह ने कहा है कि सूचना पर कि एक मारुति कार तीन दिनों के लिए न्यू बागवान कॉलोनी में खड़ी थी, वह न्यू बागवान कॉलोनी पहुंची और पाया कि एक मुकेश कुमार शुक्ला के खाली प्लॉट पर, एक कवर मारुति कार खड़ी थी। कवर हटाने पर उन्होंने पाया कि पीछे की सीट पर खून के धब्बे थे और कार के अगले फुट बोर्ड पर पीतल का जिंदा कारतूस था जिस पर पी. के.बी 30 लिखा हुआ था और एक खाली था जिस पर के.एफ. उन्होंने यह भी पाया कि पिछली सीट पर दो खाली स्थान थे जिन पर एक के नीचे P.K.B 30 लिखा हुआ था और दूसरे के नीचे P.K.B 67 लिखा हुआ था।

<u>अ०सा०-7 एच.सी.पी. मंगल सिंह, थानाध्यक्ष भोगांव में तत्कालीन प्रमुख मोहर्रिर</u>

59. इस गवाह ने कहा है कि प्रथम सूचनाकर्ता सुरेन्द्र सिंह की लिखित रिपोर्ट और थाना-कोतवाली की चिक प्राथमिकी की प्रति के आधार पर उसने 6 सितम्बर, 1996 को प्रकरण अपराध संख्या 286 के रूप में 6 सितम्बर, 1996 को रिपोर्ट संख्या 30 के साथ रात्रि 18:10 बजे पुलिस थाना- भोगांव में मामला दर्ज किया है। उन्होंने इस बात से

इनकार किया है कि घटना की जानकारी कोतवाली भोगांव को शाम 5:35 बजे जनता द्वारा दी गई थी।

<u>अ०सा०-8 रामपाल सिंह, तत्कालीन थाना प्रभारी पुलिस थानभोज, जिला मैनपुरी/विवेचनाधिकारी</u>

60. इस गवाह ने कहा है कि 6.9.96 को वह थाना-भोगांव, जिला मैनपुरी के प्रभारी निरीक्षक के पद पर तैनात था। उस दिन शाम करीब 4:50 बजे थाने में एक जनसाधारण से सूचना मिली कि रुई तिराहा (क्रॉस रोड) पर फायरिंग हो रही है। उक्त सूचना प्राप्त करने और जी.डी. में आवश्यक पृष्ठांकन करने के बाद वह अन्य पुलिस कर्मियों के साथ घटनास्थल के लिए थाना से रवाना हुए और मौके पर पहुंचने पर उन्होंने देखा कि एक जीप नं यूपी 84ए-0340 यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई थी और जीप का अगला बंपर पेड़ में फंस गया था। जीप के अंदर स्टीयरिंग पर एक शव पड़ा है; एक अन्य शव ने जीप की सामने की खिड़की को तोड़ दिया, जिसके कारण इसका आधा हिस्सा जीप के अंदर और आधा बोनट पर पड़ा है। ड्राइवर के पीछे दाहिनी सीट पर एक शव पड़ा है; जीप के दाहिनी और बाई और दो शव पड़े, एक शव जीप से पंद्रह फीट की दूरी पर उत्तर- पश्चिम दिशा में पड़ा है। घटना के बारे में तुरंत वायरलेस पर उच्चाधिकारियों को सूचना दी गई। एस.आई विजय सिंह कागला, एच.सी रघुनाथ सिंह और कांस्टेबल बानी सिंह भी मौके पर पहुंचे। मौके से एच.सी रघुनाथ सिंह को शवों की फोटो लेने के लिए कैमरा लेने के लिए भोगांव भेजा गया। घटनास्थल का निरीक्षण होने तक मौके पर सुरक्षा के लिए आरक्षक प्रेमकुमार अवस्थी तैनात थे। एस.आई विजय सिंह और कांस्टेबल सुखवीर सिंह को आरोपियों की तलाशी लेने का निर्देश दिया गया। मौके पर मौजूद देवेंद्र सिंह, संतोष सिंह व संतोष गुप्ता से पूछताछ की गई तो उन्होंने खुलासा किया कि सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह घटना की रिपोर्ट दर्ज कराने मैनपुरी कोतवाली गया था और कुछ देर बाद कांस्टेबल सुमित नारायण ने उसे चिक प्राथमिकी, जी.डी एंट्री और जांच के लिए खाली दस्तावेज आदि की कॉपी दी। तभी सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह आया और उसका बयान दर्ज किया गया। मृतक हेम सिंह के शवों की तस्वीरें लेने के बाद मृतक हेम सिंह की जांच पहले 18.20 से 19.20 बजे के बीच की गई और कपड़े सील करने के बाद एच.सी रघुनाथ सिंह, कांस्टेबल बानी सिंह और कांस्टेबल महेश को पोस्टमॉर्टम के लिए सौंप दिया गया। इसके साथ ही मृतक के शवों के साथ पुलिस कर्मियों को सीएमओ, सैंपल सील चालान तैश, फोटो शव डुप्लीकेट चिक, डुप्लीकेट रिपोर्ट आदि से संबंधित दस्तावेज दिए गए, जिन पर के-13 और के-20 भी अंकित थे। मृतक के अन्य शर्वो की भी इसी तरीके से जांच की गई थी और उसे सील करने और उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, उन्हें पुलिस कामकों के साथ शव परिक्षण के लिए शवगृह भेजा गया था। उसके बाद सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह की निशानदेही पर घटनास्थल का निरीक्षण किया। नक्शा नजरी खुद अन्सा०-४ द्वारा तैयार किया गया था और उन्होंने उस पर अपने हस्ताक्षर भी संलग्न किए है, नक्शा नज़री को प्रदर्श का 62 के रूप में चिह्नित किया गया था। अ०सा०-8 ने भी जीप नंबर का निरीक्षण किया है। यूपी 84ए-0340,

जो घटनास्थल पर खड़ा था और उसने जीप की अगली सीट से खून से सना हुआ रेक्सिन और सीट के पास से रक्तहीन रेक्सिन के कुछ नमूने एकत्र किए हैं। उन्होंने जीप की पिछली सीट से खून से सने रेक्सीन और रक्तहीन रेक्सिन के कुछ नमूने भी एकत्र किए हैं और उन्हें अलग-अलग चार अलग-अलग कपड़ों में सील किया गया था। उसी का फ़र्द बरामदगी भी उनके द्वारा तैयार किया गया है, जिसे प्रदर्श-क 63 के रूप में चिह्नित किया गया था और उक्त फर्द बरामदगी पर, गवाहों के हस्ताक्षर भी लिए गए हैं। इसके बाद, खून से सनी मिट्टी और सादी मिट्टी को उन स्थानों से एकत्र किया गया जहां मृतक नरेश दीक्षित, महेश फौजी और अशोक परिहार के शव पड़े थे और अलग-अलग बक्से में रखे गए थे और उसी के फर्द बरामदगी तैयार किए गए थे। उसके बाद अ०सा०-8 ने अन्य चीजें भी एकत्र की जो घटनास्थल पर पड़ी थी जैसे खाली, चप्पल, चश्मा आदि और उसी के फर्द बरामदगी भी तैयार किए गए हैं।

61. प्रतिपरीक्षा में अ०सा०-8 ने बताया है कि घटनास्थल भोगांव थाने से 3 किलोमीटर दूर है। घटनास्थल और भोगांव थाना के बीच कोई रेलवे क्रॉसिंग नहीं है। वे मैनपुरी से भोगांव आ रहे थे। घटनास्थल और मैनपुरी के बीच एक रेलवे क्रॉसिंग है। उन्हें नहीं पता था कि रेलवे क्रॉसिंग घटनास्थल से कितनी दूर है। उन्होंने आगे कहा है कि घटनास्थल और मैनपुरी के बीच केवल एक रेलवे क्रॉसिंग है। घटना की सूचना के समय वह थाने में मौजूद था। वह उस व्यक्ति का नाम नहीं जानता था जिसने जानकारी दी थी और वह कहाँ रहता था क्योंकि उसने उससे नाम और पता जानने की कोशिश नहीं की थी। जब वह घटनास्थल के लिए आगे बढ़े, तो कमांडर जीप में एक एस.एस.आई, एक एस.आई और तीन कांस्टेबल उनके साथ थे। जब वह मौके पर पहुंचे तो उन्होंने वहां तीन लोगों को मौजूद पाया। उन्होंने यह भी कहा है कि यह नोट नहीं किया गया था कि वह घटनास्थल पर कब पहुंचे, न ही केस डायरी में इसका उल्लेख किया गया था। केस डायरी में घटनास्थल पर तीन जीवित व्यक्तियों की उपस्थिति का उल्लेख नहीं किया गया था। शाम 4.55 बजे जब उन्हें विवेचनाधिकारी के रूप में नामित किया गया, तो उन्होंने उसी के साथ कार्यवाही की।

62. अ०सा०-8 ने कहा है कि सूचनाकर्ता के बयान से यह स्पष्ट था कि तीनों व्यक्ति घटना के चश्मदीद गवाह हैं लेकिन समय की कमी के कारण, उन तीन व्यक्तियों के बयान मौके पर दर्ज नहीं किए गए थे। यह सही नहीं है कि वह तीनों व्यक्तियों से मौके पर नहीं मिले और न ही उन्होंने उनसे पूछा। घटनास्थल पर अन्सा०-8 के पहुंचने के बाद मैनपुरी पुलिस भी आधे घंटे बाद वहां पहुंची। उनके निर्देश पर उनके सहायक पुलिसकर्मियों द्वारा पूछताछ तैयार की गई थी। उनकी मौजूदगी में पूछताछ की गई। उन्होंने संबंधित पुलिस कर्मियों को फर्द तैयार करवाने के निर्देश भी दिए थे। सूचनाकर्ता का बयान दर्ज करने के अलावा उसने अपनी हैंडराइटिंग में नक्शा नज़री, फर्द बरामदगी आदि भी तैयार किए हैं। रिकॉर्ड पर उपलब्ध पेपर नंबर 10 ए/1 और 10 ए/17 वाले फोटोग्राफ को देखकर अ०सा०-8 ने कहा है कि ये सभी तस्वीरें घटनास्थल की हैं, जहां

जीप यूकेलिप्टस के पेड़ से टकराई थी। उन्होंने कहा है कि चार-पांच सीढ़ियों की दूरी पर यूकेलिप्टस के कई पेड़ हैं। इन पेड़ों से छोटी-छोटी झाड़ियों जुड़ी हुई थी। पेपर नंबर 10 ए/1 वाली तस्वीर को देखते हुए, उन्होंने (अ०सा०-8) कहा है कि इसमें पांच फीट ऊंची झाड़ियां नहीं हैं। पेपर नंबर 1 10 ए / 1 वाले फोटो पर एक नज़र डालने के बाद, अ०सा०-8 ने कहा है कि जीप के सामने जो झाड़ी दिखाई दे रही है, वह यूकेलिप्टस के पेड़ की गिरी हुई शाखा है। उसने उस पेड़ को देखा था जिसकी शाखा क्षतिग्रस्त हो गई थी और जीप में फंस गया था। उन्होंने आगे कहा है कि यूकेलिप्टस के पेड़ बहुत ऊंचे खड़े थे।

63. अ०सा०-8 ने आगे कहा है कि एक-एक करके जांच तैयार की गई थी, जिसका विवरण केस डायरी में उल्लेख किया गया है। रात में 1:30 बजे अंतिम पूछताछ तैयार की गई थी। उन्होंने आगे कहा है कि सी.डी में पूछताछ के विवरण का समर्थन करने के बाद उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया और नक्शा नज़री तैयार किया। घटनास्थल का निरीक्षण करने के दौरान, उन्होंने एक को खाली और खून पाया। जीप से खाली मिली जगह से दूरी को सी.डी. उन्होंने आगे कहा है कि अरहर के खेत के दक्षिण में मक्का का खेत है। अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि उसने मिट्टी और अन्य वस्तुओं को एकत्र किया था। सभी खाली जीप के दाई ओर पाए गए। जीप के बाई ओर या पीछे कोई खोखा नहीं मिला। उन्होंने यह भी कहा है कि किसी भी जांच रिपोर्ट के पहले पन्ने के कॉलम में किसी हथियार का जिक्र नहीं है। उन्होंने कहा है कि यह कॉलम हथियार से संबंधित नहीं है। जांच रिपोर्ट में पहले पेज के पीछे की तरफ जहां जानकारी का ब्योरा दिया गया है, उसमें आरोपी का नाम नहीं है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि मृतक के शव की जांच पूरी होने तक इस मामले में प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई।

64. अ०सा०-8 ने आगे कहा है कि उसने पहला पेपर केवल सी.डी में लिखा है और शेष सामग्री सी.डी में दूसरे विवेचनाधिकारी द्वारा बनाई गई है। प्रत्येक जांच रिपोर्ट के साथ प्राथमिकी और जी.डी प्रविष्टि की एक प्रति भेजी गई थी। प्राथमिकी की कुछ फोटोकॉपी और जी.डी एंट्री और कुछ हस्तलिखित प्रतियां उन्हें शाम 6.15 बजे थाना-भोगांव के कांस्टेबल सूर्यनारायण से मिलीं। उन्होंने आगे कहा है कि उसी रात 1:45 बजे उनकी उपस्थिति में शवों को घटनास्थल से भेज दिया गया था। उन्हें याद नहीं था कि मृतकों के शों को किस वाहन से ले जाया गया था। घटनास्थल से पुलिस लाइन की दूरी करीब 10 किलोमीटर है। अ०सा०-8 ने आगे बताया है कि सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह ने अपना बयान दिया था कि खुद सहित दस लोग अपनी मामी को देखकर उस जीप में बेवर से लौटे थे। सूचनाकर्ता/असा०-1 ने मैनपुरी जेल के पास जीप में बैठे किसी व्यक्ति के बारे में अपने बयान में कोई खुलासा नहीं किया था। पहले सूचनाकर्ता ने अपने बयान में खुलासा किया है कि चालक हेम सिंह यादव ने जब जीप को आपत्तिजनक वाहनों से बचाने की कोशिश की, तो जीप असंतुलित हो गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। इसके तुरंत बाद आरोपी जिप्सी और मारुति कार से उतर गए, उन्हें घेर लिया और अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी।

सूचनाकर्ता ने उसे यह भी बताया था कि वह किसी तरह खुद को छिपाकर मैनपुरी पहुंचा था। सूचनाकर्ता टेंपो से मैनपुरी गया।

65. अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वर्ष 1996 में संसद सदस्य के लिए आम चुनाव में उपदेश सिंह चौहान ने श्री मुलायम सिंह यादव के खिलाफ चुनाव लड़ा था या नहीं। मौके पर पहुंचते ही उन्होंने उस इलाके को अपने नियंत्रण में ले लिया और यह भी सावधानी बरती कि मौके पर कोई छेडछाड़ न हो। अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि मौके पर चश्मदीद गवाह की मौजूदगी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिसकी मौके पर फोटो खींची गई थी। उसके पास सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह और उसके साथ आए तीन लोगों की तस्वीरें नहीं थी। फोटोग्राफी पहले सूचनाकर्ता के एक दोस्त ने की थी। इन तीन व्यक्तियों से पहली बार मिलने के बाद वह उनसे दोबारा नहीं मिला। उन्होंने यह भी कहा है कि सी.बी.सी.आई.डी के अधिकारियों ने दो बार उनका बयान दर्ज कराया था। उन्होंने सी.बी.सी.आई.डी को जो वक्तव्य दिया है, उसमें इन तीन व्यक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है जिनके साथ वह मौके पर मिले थे। वह कोई कारण नहीं बता सके कि उनके बयान में इन तीन व्यक्तियों का उल्लेख क्यों नहीं किया गया। उसके पास समय नहीं होने के कारण वह किसी भी माध्यम से मृतक के परिजनों को घटना की जानकारी नहीं भेज सकता था। उसे नहीं पता था कि मृतक के घर से कोई व्यक्ति मौके पर आया था या नहीं। उन्होंने यह भी कहा है कि दूसरे विवेचनाधिकारी ने केस डायरी में यह भी उल्लेख नहीं किया कि शव परिक्षण के बाद छह शव किसे सौंपे गए।

66. अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि यह उनके संज्ञान में आया है कि मृतकों के शवों को उनके उत्तराधिकारियों को सौंप दिया गया था। केस डायरी में वारिसों के नाम और पते दर्ज नहीं किए गए हैं। अ०सा०-8 और दूसरे विवेचनाधिकारी ने इस बात की जांच नहीं की कि छह मृतकों का कोई आपराधिक इतिहास था या नहीं, न ही उन्होंने संबंधित पुलिस स्टेशों से इसका सत्यापन किया। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि मृतक अशोक परिहार और महेश फौजी के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 302, 307, 345 के तहत मामले लंबित है या नहीं। उन्होंने आगे कहा है कि जीप का पिछला कवर नीचे था, शवों को बाहर निकालते समय और तस्वीरें लेते समय पर्दे को ऊपर घुमाया गया और बांध दिया गया। जीप एक केस प्रॉपर्टी है। इसके कवर को रोल करना और इसे बांधना केस प्रॉपर्टी के साथ छेड़छाड़ नहीं माना जाएगा। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने जीप के कवर को धोखाधड़ी या कैस प्रॉपर्टी के साथ छेड़छाड़ करने और अभियोजन पक्ष की मदद करने के उद्देश्य से बहाल नहीं किया था।

67. इस गवाह ने यह भी कहा कि पूछताछ पंचायतनामा फॉर्म में उस हथियार के नाम का उल्लेख करने के लिए ऐसा कोई कॉलम नहीं है जिससे मृतक को चोट लगी थी। यह सरकारी मुद्रणालय में छपा है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का

पालन नहीं किया है। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया है कि जांच के समय उनके पास चिक प्राथमिकी और गवाहों के बयान नहीं थे और इसलिए, उन्होंने जांच में यह उल्लेख नहीं किया है कि मृतक को किस हथियार से चोट लगी थी। निरीक्षण के दौरान न तो घटनास्थल पर और न ही जीप के अंदर कोई बैग मिला। उन्होंने आगे कहा है कि उन्हें याद नहीं था कि उच्च अधिकारियों ने घटनास्थल को देखा था और खोखा बरामद की थी या नहीं। उन्होंने आगे कहा है कि घटना से 10 से 11 दिन पहले सुभाष गैंग के व्यक्तियों की पुलिस के साथ मुठभेड़ हुई थी, जिसमें खोखा निकाले गए थे। उक्त मुठभेड़ में बरामद खोखा और घटना में बरामद खोखा को जांच के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मैनपुरी की अदालत में भेज दिया गया था। मौके और जीप से कोई छर्रे या कारतूस का गता बरामद नहीं हुआ। किसी भी आरोपी को पुलिस हिरासत में नहीं लिया गया। गवाह अ०सा०-1 सुरेंद्र सिंह ने खुलासा किया था कि उसकी जीप ओवरटेक हो गई थी और आरोपियों की गाड़ियां उसके सामने खड़ी थीं। अ०सा०-1 ने यह खुलासा नहीं किया कि आरोपियों के वाहनों की खिड़कियां खुली हुई थी और उनके हाथों में हथियार थे। गवाह संतोष गुप्ता ने बयान नहीं दिया है कि वह घटना के दिन अन्सा०-1 के साथ गांव ओडाई में सूचनाकर्ता की मौसी से मिलने गया था। उपरोक्त गवाह यानी संतोष गुप्ता ने उन्हें यह नहीं बताया है कि नरेश पंडित और राम किशन पूर्व-प्रधान ने उनसे जेल चौराहे पर मुलाकात की थी जब वे लौट रहे थे और वे जीप में उनसे मिले थे। उपरोक्त गवाह संतोष गुप्ता ने भी धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में यह खुलासा नहीं किया कि आरोपी के हाथ में कौन से हथियार थे।

68. अ०सा०-8 ने आगे कहा है कि गवाह देवेंद्र सिंह (अ०सा०-2) ने पुलिस को बताया था कि घटना के बाद चारों रेलवे क्रॉसिंग पर आए और सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह को एक टेम्पो में बैठाया। नरेश दीक्षित और राम किशन ने जेल चौराहे पर उससे मुलाकात की थी। इस गवाह ने यह भी खुलासा किया था कि जिस जीप में मृतक और चार अन्य लोग यात्रा कर रहे थे, उसका चालक हेम सिंह यात्रियों को जीप में बचाने के लिए जीप को आगे ले जाना चाहता था, जिसके कारण जीप असंतुलित हो गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। जिप्सी और मारुति कार से उतरने के बाद हाथों में राइफल, बंदूक, ऑटोमेटिक व सेमी ऑटोमेटिक हथियार लेकर आरोपी रामानंद आदि ने आह्वान किया कि वे बदला लेकर जीप में बैठे सभी को खत्म कर देंगे। अन्सा०-४ ने इस बात से इनकार किया है कि जांच राजनीतिक दबाव और पहले सूचनाकर्ता के प्रभाव में की गई थी और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। उनके संज्ञान में आया है कि राज्य सरकार के आदेश पर मामले की जांच सी.बी.आई को स्थानांतरित कर दी गई थी, जहां जांच भी की गई थी। 69. अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि इस मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत करने से पहले छापे मारे गए थे। उस दौरान वह आरोपी कौशलेंद्र पाल सिंह के अंगरक्षक के बारे में नहीं जानता था। आरोपी कौशलेंद्र की गिरफ्तारी के लिए उसके यहां छापेमारी की गई। इस मामले में आरोपियों की गिरफ्तारी के लिए कई थानों के पुलिस कर्मियों को तैनात किया गया था।

आरोपी कौशलेंद्र के अंगरक्षक का बयान पुलिस ने नहीं लिया। अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि प्राथमिकी में राम किशन का नाम नहीं है। उन्होंने खुद कहा है कि प्राथमिकी में उनका नाम पूर्व प्रधान के रूप में दर्ज किया गया है। गवाहों के खुलासे पर बाद में उपरोक्त तथ्य का पता चला था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में देवेन्द्र सिंह का नाम उल्लेखित किया गया है। जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-29 में देवेन्द्र सिंह का नाम गलत लिखा गया था, जिसे निकालकर पुनः रामकिशन लिखा गया। उस जांच रिपोर्ट के पहले पेज के ऊपर सिर्फ मृतक राम किशन का नाम लिखा है, लेकिन पिता का नाम नहीं लिखा है। हालांकि संबंधित कॉलम में पिता का नाम कल्याण सिंह लिखा हुआ है। इस इंक्वायरी रिपोर्ट के पहले पन्ने के पीछे दो जगह देवेंद्र सिंह का नाम लिखा था, जिसे सही कर राम किशन कर दिया गया।

70. अ०सा०-8 ने आगे कहा है कि मौके पर पहुंचने से पहले, उसे प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों की प्रति नहीं मिली। मौके पर पहुंचने के करीब पौने एक घंटे बाद उन्हें उक्त दस्तावेज मिले। उन्होंने आगे कहा है कि मौके पर पहुंचने के बाद लेकिन उपरोक्त दस्तावेज मिलने से पहले उन्होंने मौके पर मौजूद तीन व्यक्तियों से पूछताछ की थी। जांच तैयार करने से पहले, उन्होंने चिक प्राथमिकी और अन्य प्रासंगिक रिकॉर्ड देखे थे और तदनुसार शवों की जांच की कार्यवाही शुरू की और इसे पूरा किया। अ०सा०-8 ने इस बात से इनकार किया है कि देवेंद्र सिंह का नाम जांच रिपोर्ट में काट दिया गया था और रामकिशन का उल्लेख प्राथमिकी यानी प्रदर्श क-29 के अनुसार किया गया था।

71. अ०सा०-8 ने यह भी कहा है कि सूचनाकर्ता घटना में जीप के यूकेलिप्टस के पेड़ से टकराने के बारे में बता सकता था, लेकिन उसने ऐसा नहीं बताया था और उसने अपनी आंखों से देखा था कि जीप पेड़ से टकरा गई। गवाह देवेंद्र सिंह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में यह नहीं बताया कि आरोपी सात से आठ मिनट तक घटनास्थल पर रहा। सभी आरोपी जीप के पास आए थे और उन्होंने गोलियां चलाई और करीब आने के बावजूद चार लोग भाग गए।

<u>धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए आरोपियों के संक्षिप्त बयान</u>

72. अभियुक्त अपीलकर्ता विपिन कुमार ने अपने बयान में कहा है कि उसने कोई अपराध नहीं किया है जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है और उसे वर्तमान मामले में प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 द्वारा दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है, क्योंकि उसकी जमीन अ०सा०- 1 के घर से सटी हुई है जिसे बेचने से उसने इनकार कर दिया था। उन्होंने आगे कहा है कि वह न तो सह-आरोपी जगन्नाथ के परिवार से संबंधित हैं और न ही उनका उनसे कोई संबंध है।

73. अभियुक्त-अपीलकर्ता कौशलेंद्रपाल सिंह ने कहा है कि चूंकि पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 और उसके भाई की स्कूल के कारण उससे दुश्मनी है, प्रबंधक के पद और राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के लिए, उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि जब वह अपने कर्तव्यों का पालन न करने के लिए अमरशहीद इंटर कॉलेज के उपाध्यक्ष के पद पर काम कर रहे थे, तो मृतक के चाचा, जो उक्त स्कूल में

पीटीआई के पद पर काम कर रहे थे, उन्हें उनकी सेवा से हटाने के लिए नोटिस दिया गया था और इसके कारण, मृतक के चाचा ने आरोपी अपीलकर्ता के साथ एक दुश्मनी रखी और उसने उसे अपने भतीजे यानी मृतक की हत्या में झूठा फंसाया है।

74. अभियुक्त-अपीलकर्ता चंद्रकांत दीक्षित ने कहा है कि उसने कथित अपराध नहीं किया है और पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 और उसके परिवार के सदस्यों के बीच मुकदमेबाजी और दुश्मनी के कारण, उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि पुलिस के परामर्श के बाद अ०सा०-1 द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी गई है और पुलिस ने भी आरोपी के खिलाफ झूठी जांच की है। वह एक सरकारी कर्मचारी है और वाणिज्यिक कर विभाग में कनिष्ठ लिपिक के रूप में कार्यरत है। उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

75. आरोपी-अपीलार्थी देवेंद्र द्वारा कहा गया है कि चूंकि उसके परिवार और सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के परिवार के बीच मुकदमा चल रहा है, इसलिए उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि सभी छह मृतकों की हत्याएं सुभाष पांडे के गिरोह द्वारा की गई थी। उसने यह भी कहा है कि उसके पास पचास बीघा जमीन है जिसे पहला सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 न तो हल ओतने देता है और न ही बुवाई करने देता है। आरोपी अपीलार्थी की सरसों की फसल के बडल को प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 और उसके बेटों द्वारा जला दिया गया था और इस संबंध में उसने उनके खिलाफ भोगांव थाना में एक रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिसके कारण उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

76. अभियुक्त-अपीलकर्ता रमाकांत दीक्षित ने कहा है कि उसने कथित अपराध नहीं किया है और चूंकि उसके परिवार के सदस्यों और प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के बीच मुकदमे चल रहे हैं, इसलिए उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि कथित घटना के समय, वह हाथरस में घर पर मौजूद थे, क्योंकि उनकी पत्नी अस्वस्थ थी और वह छुट्टी पर थे।

77. अभियुक्त-अपीलकर्ता जगन्नाथ ने यह भी कहा है कि उसके परिवार के सदस्यों और प्रथम सूचनाकर्ता/ अ०सा०-1 के बीच चल रहे मुकदमों के कारण, उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। यह भी कहा गया है कि वह उत्तर प्रदेश आर.टी.सी में कंडक्टर के रूप में कार्यरत था और हाथरस में तैनात था। कथित घटना के दिन, वह और उसका भतीजा यानी सह-आरोपी रमाकांत दीक्षित घर पर मौजूद थे और वह पुलिस गार्डों की कंपनी में थे।

78. अभियुक्त-अपीलार्थी हरिओम ने भी निर्दोष होने की दलील दी है। उसने कहा है कि ग्राम किशनपुर गढ़िया में उसके पास पचास बीघा जमीन और बाग है, जिसे प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०- 1 और उसके रिश्तेदार उसे बोने और खेती करने की अनुमति नहीं देते हैं, जिसके कारण उसके और उनके बीच कुछ कहासुनी हो गई।

<u>बचाव पक्ष के गवाहों की गवाही</u>

79. अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने छह गवाहों को पेश किया, जिन्हें यहां विस्तृत किया गया है।

ब०सा०-1 (श्री रमेश चंद्र शामरा, शिकोहाबाद में व्यापार कर कार्यालय में वरिष्ठ सहायक)

80. इस बचाव पक्ष के गवाह ने कहा है कि 6 सितंबर, 1996 को अभियुक्त-अपीलकर्ता चंद्रकांत दीक्षित व्यापार कर अधिकारी, शिकोहाबाद, अर्थात् श्री प्रदीप कुमार यादव के कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक के रूप में तैनात था। उन्होंने सितम्बर, 1996 का उपस्थिति रजिस्टर प्रस्तुत किया। उन्होंने राकेश चतुर्वेदी, वरिष्ठ लिपिक द्वारा लाए गए उपस्थिति रजिस्टर को भी सत्यापित किया है जिसमें चंद्रकांत दीक्षित को 6 सितंबर, 1996 को कार्यालय में उपस्थित दिखाया गया है। उनके हस्ताक्षर उपस्थिति रजिस्टर में भी दिखाई दिए। इस रजिस्टर के अनुसार आरोपी-अपीलकर्ता चंद्रकांत दीक्षित सुबह 10:00 बजे से शाम 05:00 बजे के बीच कार्यालय में उपस्थित हुए, चंद्रकांत दीक्षित को भी 1 सितंबर, 1996 से 6 सितंबर, 1996 की अवधि के लिए वेतन मिला है। इस गवाह से भी जिरह की गई है जिसमें उसने कहा है कि वह यह नहीं बता सकता कि अन्य 8 कर्मचारी कब कार्यालय आए और उसके बाद कार्यालय से चले गए। इस गवाह ने कहा है कि वह यह नहीं कह सकता कि चंद्रकांत दीक्षित ने 6 सितंबर, 1996 को किस समय कार्यालय छोड़ा था।

ब०सा०-2 (एच.सी.-179 सूर्य पाल सिंह, हेड कांस्टेबल, जिसे तब 7 सितंबर, 1996 तक आरोपी कौशलेंद्र पाल सिंह के साथ गनर के रूप में काम करने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया था. जिसके बाद वह पुलिस लाइन लौट आया)

81. इस बचाव पक्ष के गवाह ने कहा है कि वह 6 सितंबर, 1996 को कौशलेंद्र पाल सिंह के साथ था। उन्होंने चंद्रपाल सिंह के साथ सुबह 11.00 बजे अमर शहीद इंटरमीडिएट कॉलेज बेवर का दौरा किया और दोपहर 12.30 बजे तक वहां रहे। इसके बाद कौशलेंद्र पाल सिंह ब०सा०-2 के साथ दोपहर 03:00 बजे तोता राम के स्थान पर गए क्योंकि तोता राम के चाचा की मृत्यु हो गई थी और शाम 06:30 बजे तक वहीं रहे। तोता राम के स्थान पर ही इस गवाह को पता चला कि भोगांव में कोई घटना घटी है जिसमें कुछ लोग मारे गए थे। उन्होंने तब कहा है कि वह कौशलेंद्र पाल सिंह के साथ शाम 06:30 बजे इस स्थान पर गए थे और रात 08:00 बजे तक उनके साथ रहे और कौशलेंद्र पाल सिंह आराम करने के लिए अपने कमरे के अंदर जाने के बाद, यह गवाह वापस आ गया। बाद में इस गवाह को पता चला कि घटना में कौशलेंद्र पाल सिंह का नाम सामने आया है। जिरह में यह गवाह अन्य व्यक्तियों का विवरण नहीं दे सका जिनके साथ उसने गनर के रूप में काम किया था। इस गवाह ने आगे कहा है कि वह तोता राम को 1990 से जानता है। यह हमेशा कौशलेंद्र पाल सिंह के साथ रहे। पुलिस ने 6 सितम्बर, 1996 को रात्रि 0900 बजे उनके घर पर छापा मारा और उनसे पूछताछ की लेकिन कौशलेन्द्र पाल सिंह नहीं मिले। उन्हें देर शाम कहीं जाना है या नहीं, इसकी जानकारी नहीं दी गई थी। इस

गवाह ने बेवर थाना की पुलिस को सूचित किया कि चूंकि कौशलेंद्र पाल सिंह मौजूद नहीं है, इसलिए वह पुलिस लाइन के लिए रवाना हो रहा है। उन्होंने ऐसी कोई जानकारी नहीं दी थी कि कौशलेंद्र पाल सिंह का 6 सितम्बर, 1996 को रात्रि 09.00 बजे से अगली सुबह 07.00 बजे तक कोई अता-पता नहीं था। इस गवाह से डायरी को बनाए रखने की आवश्यकता पर जिरह की गयी है और उसने स्वीकार किया है कि उपस्थिति की आवाजाही का उल्लेख है लेकिन वह ऐसी दैनिक डायरी नहीं लाया है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि चूंकि कौशलेंद्र पाल सिंह के आंदोलन के बारे में तथ्यों का डायरी में उल्लेख नहीं किया गया था, इसलिए उन्होंने इसे प्रस्तुत नहीं किया है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि वह 6 सितंबर, 1996 को कौशलेंद्र पाल सिंह के साथ नहीं थे। उन्होंने इंस्पेक्टर सी.बी.आई.डी को दिए गए किसी भी बयान से भी इनकार किया है कि वह 1 सितंबर, 1996 से कौशलेंद्र पाल सिंह के गनर थे।

<u>ब०सा०-3 (श्री राजेश कुमार सिंह, तत्कालीन निरीक्षक सी.बी.सी.आई.डी. आगरा (जुलाई, 1997 से जुलाई, 1999 तक)</u>

82. इस गवाह ने कहा है कि जांच प्राप्त करने के बाद, उसने विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दिनांक 28.9.96 को दर्ज की, जो विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा से प्राप्त हुई थी और इसके साथ संबंधित दस्तावेज संलग्न किए थे। 5.2.99 को उन्होंने थाने के प्रभारी श्री रामपाल सिंह का बयान भी दर्ज किया। 23.4.99 को मैनपुरी में वाणिज्यिक कर कार्यालय पहुंचने के बाद, उन्होंने 6 सितंबर, 1996 के उपस्थिति रजिस्टर का निरीक्षण किया, जो आरोपी चंद्रकांत दीक्षित से संबंधित है. और सितंबर 1996 के महीने के लिए उपस्थिति रजिस्टर की प्रमाणित फोटोकॉपी प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने श्री आर.एस. विमल टी.टी.ओ. से थाना-ओगांव के आरोपियों के आपराधिक इतिहास के संबंध में रिकॉर्ड की फोटोकॉपी प्राप्त की। 01.5.99 को उन्होंने विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दर्ज की जो विधि विज्ञान प्रयोगशाला आगरा से प्राप्त हुई थी। दिनांक 07.05.99 को उन्होंने व्यापार कर अधिकारी श्री प्रदीप कुमार यादव का बयान दर्ज किया। दिनांक 13.5.99 को नामजद अभियुक्त समानंद दीक्षित की मौत की पुष्टि थाना बेवर से की है।

83. ब०सा०-3 ने तब कहा है कि थाना-ओगांव के प्रभारी रामपाल सिंह ने अपने बयान में खुलासा किया था कि जनता के एक सदस्य द्वारा थाना में 16:50 बजे सूचना मिली थी कि रुई तिराहा पर गोलीबारी हुई है। बैलिस्टिक्स विशेषज्ञ की दिनांक 31-7-98 की रिपोर्ट की नकल उनके द्वारा सी.डी में की गई थी। उन्होंने आगे कहा है कि उपरोक्त रिपोर्ट के परिणाम कॉलम के अवलोकन से, यह राय दी गई थी कि अपराध संख्या 539 वर्ष 1996, थाना कोतवाली, मैनपुरी की घटना में पेपर नंबर 10 के तहत बरामद किए गए खाली थे। मारुति कार से बरामद ईसी-32 और ईसी-34 और खाली ईसी-15, ईसी-17, ईसी-19 और ईसी-29 को उसी बंदूक से दागा गया। उन्होंने आगे कहा है कि अपराध संख्या 539/96 थाना कोतवाली मैनपुरी की घटना में दो खाली स्थान सी.एच ईसी-31 और ईसी-33 बरामद किए गए

थे। उन्होंने 31-7-98 से 13-5-99 तक मामले की जांच की थी। उसके बाद श्री महक सिंह द्वारा जांच की गई। उन्होंने आगे कहा है कि रामपाल सिंह के बयान से, जो उनके द्वारा 5.2.1999 को दर्ज किया गया है, उन्हें पता चला कि कांस्टेबल विजय सिंह, हेड कांस्टेबल रघुनाथ सिंह और बानी सिंह घटनास्थल पर गए थे। रामपाल सिंह के बयान में, गवाहों सुरेंद्र सिंह, देवेंद्र सिंह, संतोष सिंह और संतोष गुप्ता के मौके पर पहुंचने पर उनकी उपस्थिति का कोई उल्लेख नहीं है और न ही उनके बयानों में धारा 161 द०प्र०स० के तहत इसका उल्लेख किया गया है।

<u>ब०सा०-4 श्री एस.सी.पाल सेवानिवृत्त उप एस.पी., तत्कालीन निरीक्षक सी.बी.सी.आई.डी.. आगरा (30.11.1996 से 28.01.1998 तक)</u>

84. इस बचाव गवाह ने कहा है कि थाना-बेवर के रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पता चला कि 23 मई, 1996 को इन दोनों पक्षों के बीच कथित रूप से गोलीबारी हुई थी और इस संबंध में शिव राज सिंह पी.टी.आई. सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के आई ने प्राथमिकी दर्ज की थी जिसे धारा 147 के तहत अपराध संख्या 153 वर्ष 1996 के रूप में दर्ज किया गया था, (ख) अपराध संख्या-149 और 302 भादवि, थाना-भोगांव, जिला मैनपुरी। उक्त प्राथमिकी में रमाकांत और 6 अन्य लोगों के साथ उनके दो गनर को आरोपी बनाया गया था, तथापि, 7 जुलाई, 1996 को एक पुलिस रिपोर्ट (अंतिम रिपोर्ट) प्रस्तुत की गई थी। आरोपी जगन्नाथ दीक्षित द्वारा शिव सिंह, उपदेश सिंह, सुरेंद्र सिंह @ मल्लू और सुशील गुप्ता के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 307 और 302 के तहत अपराध संख्या 153 ए का मामला दर्ज किया गया था, जिसमें आरोप पत्र 7 जुलाई, 1996 को प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि आनंद दीक्षित ने उन्हें बताया कि उनके पिता जगन्नाथ दीक्षित अपने इलाज के लिए दिल्ली गए थे और उनके वापस आने के बाद सभी के बयान दर्ज किए जा सकते हैं। नामजद आरोपी राजभूषण सिंह और कौशलेंद्र पाल सिंह के बयान 1.12.96 को दर्ज किए गए। उन्होंने आगे कहा है कि उच्च अधिकारियों ने पूर्व विवेचनाधिकारी श्री नंद कुमार को सुझाव दिया था कि विचाराधीन घटना में सुभाष गैंग के शामिल होने की संभावना थी, इसलिए, अपराध संख्या 539 वर्ष 1996 के संबंध में बरामद खोखा को भेजने की जानकारी, जो सुभाष गैंग से जुड़ी थी और घटना में बरामद खोखा को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था. श्री मॉल के बयान पर उनके द्वारा दर्ज किया गया था। अपने बयान में श्री मल्ल ने यह नहीं बताया कि विचाराधीन घटना में सुभाष गैंग के शामिल होने की संभावना थी, लेकिन जब उन्होंने श्री मॉल से पूछताछ की, तो उन्होंने कहा कि एस.एस.पी के आदेश पर, दोनों घटनाओं में बरामद कुछ खाली खोखा को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया है। इसके बाद उन्होंने कहा कि कॉन्स्टेबल मुंशी लाल ने उन्हें बताया कि 6 सितंबर, 1996 को आरोपी जगन्नाथ पूरे दिन उनके साथ था। इसी तरह का बयान कॉन्स्टेबल विजय कुमार ने भी दिया है लेकिन उन्होंने सिर्फ उन्हें बूढ़ा बताया है। गवाह संतोष कुमार ने उन्हें बताया कि एक महिला के शोर गुल पर कि सड़क पर फायरिंग हो रही है, उसने स्कूल

के पास सी.डी में लिखा था कि महारानी अवंती बाई प्राथमिक विद्यालय, घटनास्थल से लगभग 100 कदम दक्षिण में सड़क के किनारे स्थित है।

85. ब०सा०-4 ने आगे बताया है कि डग्गी लाल ने उन्हें बताया था कि घटना के समय वह अपने परिवार के साथ गांव में थे और गांव और घटनास्थल के बीच हल्की बारिश हो रही थी और मक्का की फसलें थीं और सड़क के किनारे यूकेलिप्टस के पेड़ों के पास ऊंची-ऊंची झाड़ियां थीं। इसके बाद
उसने कहा है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 सुरेंद्र सिंह ने भी उसे 15.5.97 को बताया कि वह मैनपुरी कोतवाली गया था न कि भोगांव कोतवाली क्योंकि भोगांव की पुलिस आरोपी के प्रभाव में थी।

86. ब०सा०-4 ने तब कहा है कि उसने गवाह देवेंद्र सिंह के कहने पर घटनास्थल का निरीक्षण किया था। उन्होंने कोई नक्शा नजरी तैयार नहीं किया है। सिविल पुलिस द्वारा तैयार किए गए नक्शा नज़री की पुष्टि उनके द्वारा की गई है। ब०सा०-4 ने आगे कहा है कि जांच शुरू करने से पहले उन्होंने प्राथमिकी की जांच की। सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह और गवाह देवेंद्र सिंह व संतोष गुप्ता ने यह खुलासा नहीं किया कि नरेश दीक्षित और हुमयूपुर के पूर्व प्रधान रामकिशन ओडाई पडारिया से लौटते समय जेल चौराहे पर मिले थे और वे एक ही जीप में बैठे थे। उक्त तीन गवाहों ने खुलासा किया था कि उनकी जीप आरोपियों के वाहनों से आगे निकल गई थी, जो उनकी जीप के सामने खड़ी थी, जिस पर उनके जीप चालक ने उन्हें टालने के बाद ओवरटेक करने की कोशिश की, जिसके कारण उनकी जीप असंतुलित हो गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। किसी भी प्रत्यक्षदर्शी ने यह खुलासा नहीं किया कि चालक हेम सिंह को गोली लगने के बाद जीप यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई थी। उन्होंने आगे कहा है कि देवेंद्र सिंह ने उन्हें अपना बयान दिया था कि वे चारों सरसों के खेत में छिपकर पूरी घटना के गवाह थे, लेकिन उन्होंने यह खुलासा नहीं किया था कि उन्होंने अरहर के खेत में छिपकर घटना देखी थी। यह खुलासा किसी भी गवाह द्वारा नहीं किया गया है कि रामकिशन का उपनाम किशनपाल है। सूचनाकर्ता सुरेन्द्र ने उसे यह नहीं बताया कि वह मैनपुरी थाना-कोतवाली कैसे और किस माध्यम से पहुंचा था, लेकिन 15.5.97 को उसने खुलासा किया है कि घटना के बाद तीन जीवित बचे लोगों को मौके पर छोड़कर वह पैदल सड़क पर पहुंचा और उसके बाद तीन पहिया टेम्पो पर मैनपुरी की यात्रा की।

<u>ब०सा०-5 (श्री कमलेश कुमार, राजस्व निरीक्षक, जिला पंचायत मैनपुरी, जिला, मैनपुरी)</u>

87. इस बचाव गवाह ने कहा है कि वह पिछले तीन महीनों से जिला पंचायत के कार्यालय में तैनात है। कागज संख्या 129 पर संलग्न हस्ताक्षर उनके अपने हैं और उन्होंने इसे जारी कर दिया है। उन्होंने इसे प्रमाणित भी किया है जिस पर प्रदर्श ख-3 अंकित की गई है। उन्होंने आगे कहा है कि रुई पशु मेला आयोजित करने का लाइसेंस 1988 से दिया गया है। रिकॉर्ड के अनुसार, यह मेला मंगलवार और शुक्रवार को

आयोजित किया जाता है। वह यह नहीं कह सकते कि यह मेला उस स्थान पर आयोजित किया गया है या नहीं। इस गवाह से भी जिरह की गई है जिसमें उसने बताया है कि मैनपुरी जिले में करीब बीस स्थानों पर ऐसे पशु मेले लगते हैं। ऐसे पशु मेले के संबंध में कुछ व्यक्ति अपेक्षित शुल्क जमा तो करते हैं लेकिन उसका आयोजन नहीं करवाते। प्रदश ख-3 के रूप में चिह्नित प्रमाण पत्र में पशु मेले का स्थान रुई और ग्राम रुई मैनपुरी-भोगन मार्ग से 3 से 4 किलोमीटर दूर है। वह नहीं जानता कि 6 सितम्बर, 1996 को रुई में कोई पशु मेला लगा था या नहीं?

<u>ब०सा०-6 (श्री महक सिंह, सेवानिवृत निरीक्षक) सी.बी.सी.आई.डी. आगरा</u>

88. इस गवाह ने कहा है कि उसने 18.2.2000 से 14.3.2000 तक मामले की जांच की थी। उन्होंने अरविन्द सिंह तोमर सहित अनेक गवाहों के बयान दर्ज किए, जिन्होंने बताया कि उन्होंने सुना था कि दिनांक 06.09.1996 को भोगांव से मैनपुरी मार्ग पर रेलवे क्रॉसिंग के सामने गजेन्द्र सिंह @ तिल्लू निवासी शिव राज सिंह का भतीजा गजेन्द्र सिंह @ तिल्लू अपने पांच साथियों के साथ जेल में उपदेश सिंह व शिव राज सिंह से मिलने के बाद जीप में यात्रा कर रहे थे, मारे गए थे। तोमर ने यह भी खुलासा किया कि शिवराज सिंह और उपदेश सिंह (फाटा के) जनता पार्टी से संबंधित थे। उन्होंने आगे कहा है कि तोमर ने उन्हें यह नहीं बताया कि छह मृतकों के अलावा जीप में कोई अन्य व्यक्ति था।

89. ब०सा०-6 ने आगे कहा है कि रामबाबू कुशवाहा ने भी अरविंद तोमर के संस्करण को दोहराया। रामबाबू ने यह भी खुलासा किया है कि उन्होंने सुना है कि रामानंद दीक्षित, राजभूषण आदि को इस घटना में आरोपी बनाया गया था और उनके बीच पार्टी बंदी के कारण दुश्मनी थी। ब०सा०-6 ने यह भी कहा है कि उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया था। निरीक्षण के समय, उन्होंने घटनास्थल के दक्षिण की ओर एक प्राथमिक विद्यालय पाया। इसके बाद उन्होंने इसके आसपास के संदर्भ में घटनास्थल का वर्णन किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उनके निरीक्षण के समय, उन्होंने पाया कि प्राथमिक विद्यालय बंद था। मातादीन ने बताया था कि जब पुलिस घटनास्थल पर पहुंची तो वह भी वहां पहुंचा और देखा कि छह लोग मृत पड़े थे, लेकिन उसे यह नहीं पता था कि हमलावर कौन थे और झगड़ा क्या था और वहां कितने लोग थे। इसी तरह का बयान मोहन लाल ने भी दिया था, लेकिन उन्होंने यह खुलासा नहीं किया कि घटनास्थल पर पुलिस के अलावा कोई व्यक्ति मौजूद था या नहीं?

90. ब०सा०-6 ने आगे कहा है कि जांच के दौरान, उन्हें पता चला कि आरोपी सुभाष पांडे को जानता था लेकिन कुछ समय बाद, उन्होंने कहा है कि केवल आनंद दीक्षित ही आरोपी सुभाष पांडे को जानते थे और संबंधित नहीं थे। उन्होंने आगे कहा है कि जांच के दौरान, उप जेलर श्री पाठक ने उन्हें बताया था कि 6.9.96 को जिला जेल में बंद उपदेश, शिवराज सिंह से कोई नहीं मिला था। गवाह अरविंद तोमर ने भी इस बात का खुलासा नहीं किया था कि जांच के दौरान उन्हें घटना के बारे में

किससे पता चला। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्हें पता चला कि सुभाष पांडे दीक्षित परिवार के गिरोह से संबंधित नहीं हैं। सुभाष पांडेय के खिलाफ आपराधिक इतिहास भी पाया गया था। उन्होंने यह भी कहा है कि जांच के दौरान, किसी भी गवाह ने उन्हें सुभाष पांडे या उनके गिरोह के सदस्यों की घटना में शामिल होने के बारे में नहीं बताया।

91. ब०सा०-6 ने आगे कहा है कि सुभाष पांडेय के भाई सूबेदार की हत्या में न तो सूचनाकर्ता और न ही मृतक और न ही परिवार के सदस्यों को आरोपी बनाया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि गवाह मातादीन ने उन्हें बताया था कि जब गोलियां चलाई गई, तो उन्होंने देखा कि लगभग 10 से 12 व्यक्ति हैं जो सड़क से गोलीबारी कर रहे थे, जिसके कारण वह डर गए और गांव में जाकर छिप गए। गवाह मोहन लाल ने खुलासा किया है कि कुछ लोग, जिनकी संख्या लगभग 10 से 12 थी, गोलीबारी कर रहे थे।

<u>अभियुक्तों की ओर से दलीलें:</u>

<u>92. अभियुक्त-अपीलकर्ता - रमाकांत दीक्षित की ओर से</u>

श्री वी.पी. श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ की हैं.

(i) प्रथम सूचनादाता/अ०सा०-1 द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट समयबद्ध है;

(ii) अभियोजन पक्ष के गवाह वास्तव में घटना के समय और स्थान पर मौजूद नहीं थे और उनकी उपस्थिति दिखाने के लिए सबूत तैयार किए गए हैं;

(iii) अभियोजन पक्ष की कहानी कि पहला सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 नौ अन्य लोगों के साथ अपनी मामी (मौसी) से मिलने गया था, मनगढंत कहानी है क्योंकि न तो सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को उसका नाम पता था और न ही उक्त उद्देश्य के लिए सात व्यक्तियों (अपने परिवार के बाहर) को अपने साथ ले जाने का कोई कारण था;

(iv) इस बात पर जोर दिया जाता है कि यदि इस तरह के दौरे का उद्देश्य उसकी मामी को देखना था, तो यह उम्मीद की जाती थी कि उसके परिवार की कुछ महिलाएं भी जाएंगी, जो यहां मामला नहीं है। यह औचित्य कि पुरुष सदस्य सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के साथ उसकी सुरक्षा और सुरक्षा के लिए गए थे, भ्रामक है, क्योंकि उनमें से किसी के पास कोई आग्नेयास्त्र/हथियार नहीं था,

v) शूट-आउट का कथित कारण सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के साथ अभियुक्तों की दुश्मनी थी और यह अत्यधिक असंभव होगा कि अ०सा०-1 को तीन अन्य लोगों के साथ सकुशल और घायल नहीं किया जाएगा, जबकि छह अन्य को गोली मार दी गई थी और वह भी तब जब अ०सा०-1 दुश्मनी के कारण प्राथमिक लक्ष्य था;

(vi) अभियोजन की कहानी विरोधाभासी है क्योंकि एक स्थान पर यह आरोप लगाया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने अपने वाहनों को तैनात किया था, जबकि दूसरा संस्करण

यह है कि चालक को बंदूक की गोली लगी थी, जिसके कारण जीप जिसमें मृतक और अभियोजन पक्ष के गवाह यात्रा कर रहे थे, पेड़ से टकरा गई।

(vii) अभियोजन पक्ष का यह कथन कि चार व्यक्ति चलती जीप से बिना किसी चोट के कूद सकते हैं और बिना किसी चोट के भाग सकते हैं, असंभव है;

(viii) अभियोजन पक्ष का यह कथन कि अभियोजन पक्ष के गवाह अरहर (अरहर) क्षेत्र से घटना देख सकते हैं, अत्यधिक असंभव है जब अभियुक्त अपीलकर्ता मुख्य रूप से शूट-आउट में पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को अलग करना चाहते थे;

(ix) अभियोजन पक्ष की कहानी का प्राथमिकी संस्करण कि पहला सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 थाना-कोतवाली, जिला मैनपुरी में लगभग 9-10 किलोमीटर की यात्रा करने के बाद रिपोर्ट दर्ज करने के लिए गया था, जबकि भोगांव थाना घटनास्थल के बहुत करीब स्थित है, अभियोजन मामले में एक गंभीर संदेह पैदा करता है। अन्यथा पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के लिए खुद को छिपाते हुए और एक घंटे से भी कम समय में इतनी लंबी दूरी पैदल तय करना असंभव था,

(x) यह तथ्य कि हिमायूंपुर के देवेन्द्र सिंह पूर्व प्रधान का नाम प्राथमिकी में उल्लिखित है, जबकि उनका नाम रामकिशन है, यह दर्शाता है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने इस घटना को नहीं देखा है।

(xi) परिस्थिति यह हैं कि संतोष सिंह पुत्र अ०सा०-1 (साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं) अन्सा०-2 और अन्सा०-3 से विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत मौके पर जांच नहीं की गई और वे अन्सा०-1 सहित जांच के गवाह भी नहीं है, क्या परिस्थितियां दर्शाती हैं कि ये गवाह घटना के समय मौके पर मौजूद नहीं थे,

(xii) प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने बताया कि अन्य तीन व्यक्तियों को मौके पर छोड़ दिया गया था और वह अकेले थाना कोतवाली, जिला मैनपुरी में प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आया था, अन्सा०-2 और अ०सा०-3 द्वारा खंडन किया गया है, जिन्होंने कहा है कि वे अ०सा०-1 के साथ रेलवे क्रॉसिंग तक गए थे;

(xiii) प्राथमिकी में हमला करने वाले वाहनों को जिप्सी और मारुति वैन के रूप में उल्लेख किया गया है, जबकि अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में वाहनों को जिप्सी और मारुति कार के रूप में वर्णित किया गया है, जो यह भी संदेह पैदा करता है कि क्या अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घटना को देखा है और;

(xiv) अभियोजन पक्ष के गवाहों के अनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के पास केवल बंदूकें और राइफले थीं, जबकि घायलों को विस्फोटक चोटें लगी हैं और स्वचालित और अर्ध-स्वचालित बंदूकों से गोलियां भी चलाई गई हैं, जिससे संदेह पैदा होता है कि क्या अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घटना को देखा है यानी चिकित्सा साक्ष्य घटना के चक्षुक संस्करण की पूरी तरह से पुष्टि नहीं करते हैं।

<u>आरोपी-अपीलकर्ता विपिन दीक्षित, चंद्रकांत और हरिओम की ओर से दलीलें:</u>

93. श्री बृजेश सहाय, पूर्वोक्त अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी श्रीवास्तव के तर्कों को अपनाते हुए, वरिष्ठ अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के मामले को चुनौती देने में बहुत जोर दिया है और निम्नानुसार प्रस्तुत किया है:

(1) अभियोजन पक्ष के गवाह सुसंगत नहीं है क्योंकि एक स्थान पर गवाह अरहर के खेत से घटना देखने का दावा करते हैं जबकि दूसरे स्थान पर वे सरसों के खेत से घटना देखने का दावा करते

(ii) वह जीप जिसमें मृतक अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-3 के साथ यात्रा कर रहा था, बरामद नहीं हुआ और उसका ठिकाना भी उपलब्ध नहीं था,

(ii) घटना के तरीके के विवरण का खुलासा नहीं किया गया है और यह स्पष्ट नहीं है कि एक ही जीप में यात्रा कर रहे धार व्यक्तियों को कैसे बचाया गया जिसमें प्राथमिक लक्ष्य अर्थात अ०सा० - 1 शामिल था,

(iv) परीक्षण के दौरान पहली बार जीप के पेड़ से टकराने के बाद उसके रुकने की कहानी सामने आई है;

(v) तथ्य यह है कि हमले में कथित रूप से छोड़े गए चार में से सबसे बड़ा व्यक्ति प्रमुख शत्रु था और वह तीन युवा बचे लोगों को छोड़कर प्राथमिकी दर्ज करने आया था, जिससे घटना का अभियोजन संस्करण असंभव हो जाता है,

(vi) अंतिम मृतक की जांच-पड़ताल 7-9-1996 को पूर्वाह्न 01.30 बजे पूरी हुई दिखाई गई है. जबकि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने इसका समय 7-9-1996 को पूर्वाह्न 02.30 बजे बताया है। इस प्रकार अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही में विरोधाभास है,

(vii) अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य से यह भी सिद्ध नहीं होता है कि मृतकों के शर्वो को कब सील किया गया था और शवों को ले जाने वाले कांस्टेबल कब शव परीक्षण के लिए शवगृह पहुंचे थे क्योंकि इस बात का मुद्दा है कि शवों को शव परिक्षण के लिए शवगृह में कब भेजा गया था;

(viii) जांच पूरी तरह से बेईमानी है:

(ix) अभियोजन पक्ष के गवाहों की आपराधिक पृष्ठभूमि पर भी जोर दिया गया है:

(x) अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में भौतिक सुधार अर्थात् अलंकरण और विरोधाभास हैं,

(xi) हमले का तरीका मृतक की शव परीक्षा रिपोर्ट द्वारा विरोधाभासी है;

(xii) इस घटना के तीन अलग-अलग विवरण है, नामत

(क) अभियोजन गवाह के अनुसार संस्करण;

(बी) ऑटोप्सी सर्जन के अनुसार संस्करण, और

(ग) विवेचनाधिकारी के अनुसार संस्करण, जिनमें से तीनों परस्पर असंगत हैं; और

(xiii) अभियोजन पक्ष के गवाहों ने आरोप लगाया है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने सामने से गोली चलाई, जबकि विवेचनाधिकारी का दावा है कि खाली जगह जीप के दाई ओर से बरामद की गई थी, जबकि ऑटोप्सी सर्जन ने साबित कर दिया है कि चोर्ट जीप के दोनों तरफ यानी बाएं और दाएं और यहां तक कि सामने से भी हुई हैं, लेकिन पीछे से कोई भी चोट नहीं आई है, जो निर्णायक रूप से साबित करता है कि अभियोजन पक्ष के गवाह न तो घटनास्थल पर मौजूद थे और न ही उन्होंने इस घटना को देखा है।

<u>आरोपी-अपीलार्थी देवेंद्र की ओर से दलीलें:</u>

94. अभियुक्त देवेंद्र के अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला ने उपरोक्त दो वरिष्ठ अधिवक्ताओं की दलीलों को अपनाते हुए शूट-आउट में सुभाष गैंग की भागीदारी दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर सबूतों पर प्रकाश डाला है, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा पूरी तरह से खारिज कर दिया गया है।

95. यह भी रेखांकित किया गया है कि एक अलग घटना में जहां सुभाष गैंग शूट-आउट में शामिल था, कुछ खाली खोखा बरामद किए गए थे। उक्त खाली खोखा का मिलान मामले में बरामद खोखा से किया गया था और फोरेंसिक जांच में यह स्थापित किया गया था कि खाली खोखा के दो सेट एक ही बन्दूक से दागे गए थे। संयुक्त निदेशक, विधि विज्ञान प्रयोगशाला, उत्तर प्रदेश आगरा का मूल पत्र राज्य बनाम रामानंद और अन्य के मामले में 31 अक्टूबर, 1996 को साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया था और इसकी फोटो प्रति अकेले पेपर संख्या 131एए/10 के तहत रिकॉर्ड पर लाई गई थी।

96. श्री शुक्ला भी निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

(1) उपर्युक्त साक्ष्य प्रश्नगत अपराध में सुभाष गैंग के शामिल होने का सुझाव देने वाले विश्वसनीय साक्ष्य के सामने अभियोजन मामले में स्पष्ट रूप से संदेह पैदा करता है,

(ii) सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 एक बहुत प्रभावशाली परिवार से आता है क्योंकि उसके दो भाई M.L.AS (विधान सभा के सदस्य) थेः

(iii) जिस जीप में मृतक यात्रा कर रहे थे वह पीछे की ओर से ढकी हुई थी। इस प्रकार, अ०सा०- 1 के लिए तीन अन्य लोगों के साथ, जो जीप के पीछे की तरफ बैठे थे, जीप के पिछले दरवाजे से आसानी से बाहर आना असंभव था, खासकर जब स्टेपनी को जीप के पिछले दरवाजे पर फिक्स किया गया था, जो एक बाधा के रूप में कार्य करेगा,

(iv) अभियोजन पक्ष के गवाहों के आपराधिक पूर्ववृत्त को देखते हुए, उनका आचरण स्वाभाविक और विश्वसनीय नहीं है,

(v) विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट की विद्यमानता के बारे में बचाव पक्ष के गवाहों के

बयानों को चुनौती नहीं दी गई और न ही इस पहलू पर बचाव पक्ष के गवाहों का विरोध किया गया और इसलिए बचाव पक्ष के गवाहों के बयान बरकरार हैं; और

(vi) रिकार्ड में उपलब्ध फोटोग्राफ स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि घटनास्थल ऐसा था कि अरहर से 40 से 50 कदम की दूरी से घटना को देखना किसी के लिए असंभव हो गया था।

<u>आरोपी-अपीलार्थी कौशलेंद्र की ओर से दलीलें:</u>

97. अपीलकर्ता कौशलेंद्र के अधिवक्ता श्री ए. के. शुक्ला ने श्री वी.पी श्रीवास्तव और श्री बृजेश सहाय, वरिष्ठ अधिवक्ताओं के साथ-साथ श्री राजीव लोचन शुक्ला, अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार किया।

98. इसके विपरीत, श्री अरुणेंद्र सिंह और श्री अमित सिन्हा, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध करते हुए निम्नानुसार प्रस्तुत कियाः

(i) वर्तमान मामला बर्बर गोलीबारी का मामला है जिसमें अभियुक्त अपीलकर्ताओं द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी के कारण छह व्यक्तियों की गोली मारकर हत्या कर दी गई है,

(ii) भोगांव थाना को घटना की सूचना दी गई और जैसे ही सूचना वायरलेस पर परिचालित की गई, प्राधिकारियों ने कार्रवाई की और तत्काल घटनास्थल पर पहुंचे;

(iii) केवल अनजाने में चूक अभियोजन मामले को खराब नहीं करेगी;

(iv) केवल विराम चिह्न की त्रुटि अर्थात देवेंद्र और हुमायूंपुर के पूर्व प्रधान के बीच एक "अल्पविराम" छोड़ दिया गया था, अभियोजन की कहानी को विश्वास के योग्य नहीं बनाएगा;

(v) "देवेन्द्र" के नाम पर कोई पूर्व प्रधान नहीं था जबकि उसका नाम "रामकिशन" है और यही कारण है कि मृतक की जांच रिपोर्टों सहित जहां भी आवश्यक हो, सुधार शामिल किए गए थे,

(vi) इस प्रकार की घटना में, भोगांव थाना में आने के बजाय किसी के लिए भी शहर के मुख्य स्थान पर स्थित थाना कोतवाली मैनपुरी में स्थित थाना में भागना स्वाभाविक है, जो शहर के बाहर स्थित है। इस तरह के अभियोजन के मामले को केवल इस आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि प्राथमिकी एक थाना में दर्ज की गई थी जो दूर स्थित है, भले ही दूसरा थाना पहले से ही थोड़ी दूरी पर स्थित हो।

(vii) अभियोजन के मामले में कोई बड़ी असंगति नहीं दिखाई गई है जो अभियोजन की कहानी को खराब कर सकती है;

(viii) वर्तमान प्रकार की किसी घटना में, जहां अंधाधुंध गोलीबारी की गई थी, यह पता लगाना कठिन होगा कि किसने किसको, किस ओर से मारा और ये पहलू निर्णायक नहीं हो सकते और यह तर्क कि हमले का तरीका असंगत है, गलत है, और

(ix) गोली चलाने की किसी घटना में कोई व्यक्ति उपलब्ध सुरक्षित दिशा में भाग जाएगा

अनुवादित

और इसे स्पष्ट रूप से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। जैसे, मृतक द्वारा लगी चोटों के स्थान को सटीकता के साथ समझाया नहीं जा सकता है।

<u>तथ्यात्मक मुद्दे जिन पर विचार की आवश्यकता है</u>

99. अभियोजन पक्ष एक विशिष्ट मामले के साथ आया है कि आरोपी अपीलकर्ता वे व्यक्ति है जिन्होंने क्रूर गोलीबारी को अंजाम दिया था जिसमें छह लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया था। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का दोष अदालत के समक्ष दायर दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर स्थापित करने का प्रस्ताव है, जिसके नीचे हम पहले ही इस फैसले के पहले भाग में सारणीबद्ध कर चुके हैं और तथ्य के गवाहों की मौखिक गवाही, अर्थात् सुरेंद्र सिंह (प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०- 1), जो मृतक के पिता है, की मौखिक गवाही भी दी गई है। अर्थात्, गजेंद्र सिंहः देवेंद्र सिंह (अ०सा०-2), जो अ०सा०-1 का बेटा और मृतक गजेंद्र सिंह का भाई है; और संतोष गुप्ता (अ०सा०- 3), जो अ०सा०-1/पहले सूचनाकर्ता के करीबी सहयोगी होते हैं।

100. उपरोक्त गवाहों के अलावा, अभियोजन पक्ष ने डॉ. आर.पी.एस. चौहान (अ०सा०-4) को भी पेश किया है, जिन्होंने सभी छह मृतकों के शर्वो का शव परिक्षण किया और शव परिक्षण रिपोर्ट को साबित किया। पुलिस के कागजात साबित करने वाले औपचारिक गवाहों और जांच करने वाले विवेचनाधिकारी सहित अन्य गवाहों ने भी पेश किया है।

101. इन अपीलों के उपरोक्त स्पेक्ट्रम के साथ, अब हम इन अपीलों के समर्थन के साथ-साथ विरोध में हमारे सामने उठाए गए प्रत्येक मुद्दे से निपटने के लिए आगे बढ़ते हैं।

<u>पार्टियों और उत्पति के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध</u>

102. साक्ष्य के मूल्यांकन पर शुरू करने से पहले यह पार्टियों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंधों पर ध्यान देने योग्य होगा। अभियोजन पक्ष के अनुसार, शूट-आउट अ०सा०-1 और आरोपी पक्ष के बीच दुश्मनी का परिणाम था और शूट-आउट का उद्देश्य अ०सा०-1 से बदला लेना था। दुश्मनी का पहलू तथ्य के दो अन्य अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयानों में भी परिलक्षित होता है।

103. अन्सा०-1 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि आरोपी के साथ पुरानी दुश्मनी जारी है। इस घटना से पहले लखनऊ में एक घटना हुई थी जिसमें अ०सा०-1 के भाई शिव राज सिंह को गोली लगी थी और वह घायल हो गया था। उक्त मामले में आरोपी जगन्नाथ के छोटे पुत्र और आरोपी रामानंद के पिता हुकुम चंद को आरोपी बनाया गया था। जिसके बाद एक और घटना घटी जिसमें अ०सा०-1 के भाई शिव राज सिंह को फिर से गोली मार दी गई और वह घायल हो गया। उसके सहयोगी जय गोविंद दीक्षित की हत्या कर दी गई थी और जगन्नाथ के छोटे पुत्र, जगन्नाथ के भाई आनंद और आरोपी हरिओम पुत्र हुकुम चंद को उक्त मामले में फंसाया गया था, जो लंबित बताया जाता है। इस संबंध में अ०सा०-1 की

सटीक गवाही संदर्भ योग्य है और तदनुसार यहां निकाली गई है:

'यह सही है वर्ष १९८५ में मेरे भाई शिवराज सिंह पर बेवर में प्राणघातक हमला किया गया, वर्ष १९८५ में उन्हीं पर लखनऊ में प्राणघातक हमला हुआ तथा सन १९८६ में मेरे भाई शिवराज सिंह व उपदेश सिंह आदि पर हमला किया गया। जिसमें हमारे साथी श्री जयगोविंद दीक्षित की हत्या हो गई थी इसी सन्दर्भ में मैंने दरोगा जी को बताया था कि इन्ही रजिशों के कारण यह घटना हुई है।"

104. अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि आरोपी विपिन दीक्षित के पिता रमेश चंद्र दीक्षित की हत्या में अ०सा०-1, उसके पुत्र देवेन्द्र (अब मृत), उसके भाई शिव राज सिंह और उपदेश सिंह, संतोष सिंह (अ०सा०-2) सहित अन्य का नाम सामने आया है। अ०सा०-2 ने भी अपनी प्रतिपरीक्षा में अ०सा०-1 के उक्त बयान को सत्यापित किया है और निम्नानुसार स्वीकार किया है:

"रमेश दीक्षित की हत्या के मामले में उनके पिता श्री कृष्ण ने मेरे परिवार वालों के खिलाफ रिपोर्ट लिखाई थी यह कहना गलत है कि रमेश दीक्षित की हत्या वाले मुकदमे में सभी होस्टाइल हुए थे इसलिए वह कैस छोट गया था।"

105. अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में आगे कहा है कि आरोपी हरिओम और रामानंद के पिता हुकुम चंद्र दीक्षित की पहले गोली मारकर हत्या कर दी गई थी, जिसमें अन्सा०-1 के बेटे मुनेश और उसके भाई उपदेश को अन्य लोगों के साथ आरोपी बनाया गया था। उसने फिर से कहा है कि वह आरोपी जगन्नाथ के बेटे छोटे राजवीर को जानता था और जिसकी हत्या में उपदेश सिंह, शिव राज सिंह, उसका बेटा मल्लू आरोपी थे और बाद में संतोष गुप्ता (अ०सा०-3) का नाम उक्त मामले में शामिल किया गया है। राजवीर @ छोटे के चचेरे भाई रमाकांत दीक्षित (यहां आरोपी), चंद्रकांत और बिल्लू हैं। हालांकि अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने कहा है कि उसे याद नहीं है कि जगन्नाथ और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा उसके खिलाफ कोई मामला दर्ज किया गया था या नहीं, लेकिन उसने स्वीकार किया है कि इस घटना से पहले पिछले दस वर्षों से जगन्नाथ और उसके बीच दुश्मनी चल रही थी। इस संबंध में अ०सा०-1 का बयान निम्नानुसार है:

"जगन्नाथ के परिवार के इस मुकदमे में कुल चार लोग मुल्जिम हैं जगन्नाथ से इस घटना से दस वर्ष पहिले से मेरी रंजिश चली आ रही है मुझे ध्यान नहीं है कि जगन्नाथ व उनके परिवार में अन्य मुल्जिमान ने मेरे विरुद्ध घटना के पूर्व कोई मुकदमा लिखाया है या नहीं। मैंने दरोगा जी को यह बता दिया था कि जगन्नाथ वगैरह ने मेरे परिवार वालों के खिलाफ कई झूठे मुकदमे दर्ज कराए थे। मैंने यह बयान सही दिया था। यह बात हम लोगों को बुरी लगी थी कि जब जगन्नाथ वगैरह ने हम लोगों के खिलाफ मुकदमे दर्ज कराए थे। यह कहना गलत है कि इसी रंजिश के कारण मैंने भी जगन्नाथ आदि के खिलाफ झूठी रिपोर्ट लिखाई हो।"

106. अपनी जिरह में अ०सा०-1 ने स्वीकार किया है कि आरोपी कौशलेंद्र ने अ०सा०-1 के भाइयों शिव राज सिंह और उपदेश सिंह के खिलाफ स्टेपनी की चोरी का मामला दर्ज कराया था।

107, अंत में, अ०सा०-1 ने जिरह में कहा है कि मृतक महेश फौजी और आरोपी व्यक्तियों के बीच दुश्मनी थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि मृतक महेश फौजी की तुलना में उनकी आरोपियों से अधिक दुश्मनी थी।

108. अ०सा०-2 ने अपनी जांच में अ०सा०-1 के उक्त कथन की पुष्टि करते हुए कहा है कि घटना की तारीख को उसके चाचा शिवराज सिंह @ पी.टी.आई., उपदेश सिंह, उसका भाई विजेंद्र @ मल्लू छोटे उर्फ राजवीर की हत्या के मामले में जेल में थे। अपनी जिरह में अ०सा०-2 ने कहा है कि उसने विवेचनाधिकारी को सूचित किया था कि उसके परिवार की आरोपी जगन्नाथ के साथ दस साल से दुश्मनी है और इसीलिए आरोपी जगन्नाथ ने इस घटना को अंजाम दिया है।

109. अ०सा०-2 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि उसके परिवार और आरोपी के बीच दुश्मनी 1985 से चल रही है। इस बीच आरोपी हरिओम के चचेरे भाई देवकी नंदन ने उसके चाचा उपदेश सिंह और संतोष सिंह और उसके पिता (अ०सा०-1) के खिलाफ भादवि की धारा 302 के तहत रिपोर्ट दर्ज कराई थी और चूंकि वे उक्त प्राथमिकी के कारण एक महीने से जेल में हैं, इसलिए वे नाराज थे। अ०सा०-2 ने आरोपी कौशलेंद्र पाल के साथ दुश्मनी के संबंध में अपनी जिरह में निम्नानुसार कहा है:

"यह सही है वर्ष १९८५ में मेरे भाई शिवराज सिंह पर बेवर में प्राणघातक हमला किया गया, वर्ष १९८५ में उन्ही पर लखनऊ में प्राणघातक हमला हुआ तथा सन १९८६ में मेरे भाई शिवराज सिंह व उपदेश सिंह आदि पर हमला किया गया। जिसमें हमारे साथी श्री जयगोविंद दीक्षित की हत्या हो गई थी इसी सन्दर्भ में मैंने दरोगा जी को बताया था कि इन्ही रंजिशों के कारण यह घटना हुई है।"

110. अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही से उत्पन्न उपरोक्त तथ्य सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) और अभियुक्त के परिवार के बीच मौजूद दुश्मनी की उत्पत्ति हैं।

111. इस प्रकार अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयानों से यह स्पष्ट है कि मुख्य अभियोजन पक्ष के गवाह स्वतंत्र गवाह नहीं हैं, लेकिन हितबद्ध गवाह हैं। अ०सा०-3 अ०सा०-1 का करीबी सहयोगी है और संतोष गुप्ता (अ०सा०-3) के आरोपी जगन्नाथ के बेटे छोटे @ राजवीर की हत्या में उसका नाम बाद में अ०सा०-1 के भाइयों अर्थात् उपदेश सिंह, शिव राज सिंह और उनके बेटे मल्लू के साथ सामने आया है और इसलिए, वह भी एक हितबद्ध गवाह की श्रेणी में आएगा।

112. किस तरीके से एक हितबद्ध गवाह के बयान अदालत द्वारा जांच की जानी चाहिए अस्पष्टता में डूबा नहीं है, लेकिन अब अच्छी

तरह से तय है कि हालांकि यह स्वीकार्य है लेकिन महत्वपूर्ण जांच के अधीन है.

113. मोहम्मद जब्बार अली और अन्य बनाम असम राज्य में, 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1440 में रिपोर्ट किया गया, न्यायालय ने रिपोर्ट के पैरा 55 से 58 में निम्नानुसार देखा हैः-

"55. यह ध्यान दिया जाता है कि प्रस्तुत मामले में गवाहों की गवाही के लिए बहुत वजन जोड़ा गया है। उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय ने अदालत में दिए गए किसी भी दागी सबूत को खारिज करने के लिए गवाहों की विश्वसनीयता की जांच की है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि अभियोजन पक्ष वर्तमान मामले में किसी भी स्वतंत्र गवाह से पूछताछ करने में विफल रहा है और गवाह एक-दूसरे से संबंधित हैं। इस न्यायालय को कई मामलों में संबंधित रुचि/पक्षपातपूर्ण गवाहों के उक्त पहलू और ऐसे गवाहों की विश्वसनीयता पर विचार करने का अवसर मिला है। यह न्यायालय इस स्थापित सिद्धांत के प्रति सचेत है कि सिर्फ इसलिए कि गवाह संबंधित / रुचि रखते हैं। पक्षपातपूर्ण गवाह हैं, उनकी गवाही की अवहेलना नहीं की जा सकती है, हालांकि, यह भी सच है कि जब गवाह संबंधित / रुचि रखते हैं, तो उनकी गवाही की अधिक सावधानी और सावधानी के साथ जांच की जानी चाहिए। गंगाधर बेहेरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य (2002) 8 एस.सी.सी 381 के मामले में इस न्यायालय ने माना कि ऐसे संबंधित गवाहों की गवाही का विश्लेषण इसकी विश्वसनीयता के लिए सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

56. राजू उर्फ बालचंद्रन और अन्य में। बनाम तमिलनाडु राज्य (2012) 12 एस.सी.सी 701, इस न्यायालय ने कहा: "29. सारांश और सार यह है कि संबंधित या हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। ऐसे मामले में जहां संबंधित और हितबद्ध गवाह की हमलावर के साथ कुछ दुश्मनी हो सकती है, बार को उठाने की आवश्यकता होगी और गवाह के साक्ष्य की जांच समझदार जांच के मानक को लागू करके करनी होगी। हालांकि, यह केवल विवेक का नियम है और कानून का नहीं है, जैसा कि दलीप सिंह (एआईआर 1953 एस.सी 364] में आयोजित किया गया था और सरवन सिंह ((1976) 4 एस.सी.सी 369] में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया थाः (सरवन सिंह केस [(1976) 4 एस.सी.सी 369, पृष्ठ 376, पैरा 10) "10..... एक हितबद्ध गवाह के साक्ष्य में कोई दुर्बलता नहीं होती है, लेकिन अदालतों को विवेक के नियम के रूप में आवश्यकता होती है, कानून के नियम के रूप में नहीं, कि ऐसे गवाहों के साक्ष्य की थोड़ी सावधानी से जांच की जानी चाहिए। एक बार जब यह दृष्टिकोण अपनाया जाता है और अदालत संतुष्ट हो जाती है कि इच्छुक गवाहों के साक्ष्य में सच्चाई की अंगूठी है, तो ऐसे सबूतों पर बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है।

57. इसी मुद्दे पर आगे बढ़ते हुए, यह ध्यान दिया जाता है कि गणपति और एएनआर के मामले में। जी.डी. तमिलनाडु राज्य (2018) 5

एस.सी.सी 549, इस न्यायालय ने माना कि कई मामलों में जब घटना के समय केवल परिवार के सदस्य मौजूद होते हैं और अभियोजन पक्ष का मामला केवल उनके साक्ष्य पर आधारित होता है, तो न्यायालयों को सतर्क रहना होगा और परीक्षण की प्रक्रिया में सबूतों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना होगा।

58. इस प्रकार यह तय किया गया है कि संबंधित गवाहों के साक्ष्य पर विवेकपूर्ण जांच लागू करके विचार किया जाना है। ....." (महत्व हमारे द्वारा)

<u>सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) और अ०सा०-2 और मृतक देवेंद्र (अ०सा०-1 का पुत्र) सहित उसके परिवार के श्रेय के लिए आपराधिक पूर्व-वृत्त</u>

114. प्रतिपरीक्षण में स्टार गवाह यानी अ०सा०-1 ने बताया है कि राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण उसके भाई उपदेश सिंह के खिलाफ कुछ मामले दर्ज किए गए हैं, जिनमें से कुछ में वह बरी हो चुका है जबकि कुछ लंबित हैं। वह यह नहीं बता सकते कि उपदेश सिंह के खिलाफ कितने मामले लंबित हैं। उनके एक अन्य भाई शिवराज सिंह के खिलाफ कुछ आपराधिक मामले दर्ज हैं। कुछ मामलों में शिवराज सिंह बरी हो चुके हैं जबकि कुछ लंबित हैं। वह पुन यह खुलासा नहीं कर सकते कि शिवराज सिंह के खिलाफ कितने मामले लंबित हैं। उनके बेटे मल्लू के खिलाफ कुछ आपराधिक मामले भी लंबित हैं, लेकिन उन्हें उनके नंबर याद नहीं हैं। उनके बेटे मुनेश के खिलाफ कुछ आपराधिक मामले हैं, जिनकी संख्या का खुलासा वह नहीं कर सकते लेकिन कुछ मामलों में उन्हें बरी कर दिया गया है और केवल दो लंबित हैं। उनके बेटे देवेंद्र (अब मृतक) के खिलाफ कुछ मामले दर्ज हैं। उन्होंने आगे कहा है कि उनके भाई संतोष के खिलाफ भी कुछ मामले दर्ज किए गए हैं लेकिन लगभग सभी मामलों में उन्हें बरी कर दिया गया है। इस गवाह ने खुद कहा है कि उपरोक्त सभी मामले झूठे हैं और केवल राजनीतिक प्रतिशोध के कारण दायर किए गए हैं।

<u>अ०सा०-3 के श्रेय के लिए आपराधिक पूर्व-वृत</u>

115. अपनी जिरह में अ०सा०-3 ने स्वीकार किया है कि उसे सूचनाकर्ता के परिवार (अ०सा०-1) के साथ एक या दो मामलों में फंसाया गया है और उनमें से एक धारा 302 भन्द०वि० के तहत, एक धारा 307 भ०द०वि० के तहत, एक डकैती से संबंधित है और एक अपहरण से संबंधित है। उसके बाद उसने स्वीकार किया है कि अपहरण के दो मामलों में आरोपी के तौर पर उसका नाम दर्ज है। उस पर कुल चार-पांच आपराधिक मामले दर्ज थे। जब वह चिलाँसा में थे, तब उनके खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं किया गया था। उन्होंने तब कहा था कि उन पर एक्ट और गैंगस्टर एक्ट के तहत भी मुकदमा चलाया गया था। इस गवाह ने इस बात से भी इनकार किया है कि 1990 से 2004 तक उसके खिलाफ थाना कोतवाली और थाना-ओगांव में बीस आपराधिक मामले थे।

116. हालांकि, आपराधिक पृष्ठभूमि वाले गवाह की गवाही पर भरोसा किया जा सकता है, लेकिन ऐसे सबूतों की बहुत बारीकी से जांच की

जानी चाहिए। मुरली और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2009) 9 एस.सी.सी 417 में रिपोर्ट किए गए मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि गवाह आपराधिक चरित्र का था और उसका बयान बाद में दर्ज किया गया था, लेकिन फिर भी, अगर सबूतों की सराहना करते समय उस सावधानी को ध्यान में रखा जाता है और यदि उसके साक्ष्य आत्मविश्वास को प्रेरित करते हैं, तो ऐसे सबूतों को स्वीकार करना गलत नहीं है। हालांकि, उस उद्देश्य के लिए, उनके सबूतों की बहुत बारीकी से जांच की जानी चाहिए।

<u>घटना के समय और स्थान पर तथ्य के गवाहों की उपस्थिति पर सवाल उठाने के लिए सबूत</u>

117. अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही सावधानी और सतर्कता के साथ जांच की जानी चाहिए।

118. अपीलकर्ताओं की ओर से तर्क का पहला अंग अनिवार्य रूप से घटना के समय और स्थान पर तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति पर सवाल उठाता है और इस आधार पर उनकी गवाही को भी खारिज करता है। इस तर्क के विभिन्न पहलू हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है और इसलिए यहां संदर्भित किया गया है:-

1. सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा आमतौर पर यह आग्रह किया जाता है कि क्रूर गोलीबारी के एक मामले में जिसमें कमांडर जीप में बैठे छह व्यक्तियों की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी, जो घटना अचानक हुई थी, जीप के यात्रियों के पास खुद को बचाने के लिए शायद ही कोई समय था। चालक हेम सिंह का शव चालक की सीट पर था और उसे कई गोलियां लगी थी, ऐसा प्रतीत होता है कि उसे पीछे से अलग-अलग तरफ से गोली मारी गई थी। ड्राइवर सीट के बगल में बैठे यात्रियों का शव आंशिक रूप से जीप में और आंशिक रूप से बोनट पर था। बाएं और दाएं तरफ से जीप से केवल दो ही बाहर आ सके लेकिन उन्हें गोली मार दी गई। इसलिए आग्रह है कि यह घटना अचानक हुई और जीप में सवार सभी यात्रियों की गोली मारकर हत्या कर दी गई। चार यात्रियों के चलती जीप से कूदने की संभावना बेहद संदिग्ध लगती है। अभियोजन पक्ष के गवाहों का संस्करण कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने उन पर गोली चलाई थी, लेकिन उनका पीछा नहीं किया या उन्हें कोई नुकसान/चोट नहीं पहुंचाई, यह भी असंभव लगता है जब आरोपी-अपीलकर्ताओं के लिए मुख्य लक्ष्य अ०सा०-1/पहले से मौजूद दुश्मनी के कारण सूचनाकर्ता होता, जैसा कि इस फैसले के पहले भाग में उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि शूट-आउट का तरीका जीप के पीछे से चार यात्रियों के भागने की संभावना को पूरी तरह से खारिज कर देता है और इसलिए, अभियोजन पक्ष का यह कथन कि क्रूर गोलीबारी में चार व्यक्ति बाल-बाल बच गए, एक काल्पनिक उदाहरण है और इसलिए, स्वीकृति के योग्य नहीं है।

II. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने ऑटोप्सी सर्जन की गवाही पर भरोसा किया है, जिन्होंने सभी मृतकों के शवों का शव परिक्षण किया था। शव परिक्षण सर्जन की गवाही के अनुसार, मृतकों को सामने से कोई गोली मारे बिना बाएं, दाएं और पीछे से गोली मारी गई थी। इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि उपरोक्त ठोस साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि गोलियों के प्रवाह के दौरान भी जीप से चार व्यक्तियों के घायल होने की संभावना नहीं थी। यह स्पष्ट रूप से अभियोजन पक्ष की कहानी को झुठलाता है।

III. उपरोक्त के अलावा, एक और परिस्थिति जो घटना के समय और स्थान पर अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति पर संदेह करने के लिए उठाई गई है, वह है प्रश्न में अपराध में विस्फोटकों का कथित उपयोग। आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के अनुसार, अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अकेले घटना (बंदूक और राइफल) में आग्नेयास्त्रों के इस्तेमाल का आरोप लगाया है, जबकि ऑटोप्सी सर्जन ने मृतक द्वारा बनाए गए विस्फोटक चोटों की उपस्थिति को साबित कर दिया है जो अस्पष्ट है और इसलिए, अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करता है जिससे यह असंभव हो जाता है। संक्षेप में, चिकित्सा साक्ष्य ओकुलर संस्करण की पुष्टि नहीं करते हैं।

जी.डी. अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में निहित विरोधाभासों को उस तरीके और दिशा के संदर्भ में उजागर किया गया है जिसमें अ०सा०-1 ने प्राथमिकी दर्ज करने के लिए घटना की जगह छोड़ दी थी, जो अभियोजन पक्ष की कहानी में भी संदेह पैदा करता है।

v. इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अरहर के खेत में खड़ी फसलों के बीच खुद को ढालते हुए 40 से 50 कदम की दूरी से घटना को देखने का दावा किया है। जिस स्थान पर अभियोजन पक्ष के गवाहों के बारे में कहा जाता है कि वह जगह छिपी हुई है और इसलिए किसी के लिए भी इस तरह की स्थिति से घटना को देखना मुश्किल था।

vi. अभियोजन पक्ष की कहानी कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 नौ अन्य लोगों के साथ अपनी मामी (मौसी) से मिलने गया था, मनगढंत कहानी है क्योंकि न तो सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को उसकी चाची का नाम पता है, और न ही इस उद्देश्य के लिए सात व्यक्तियाँ (अपने परिवार के बाहर) को अपने साथ ले जाने का कोई कारण थाः इस बात पर जोर दिया जाता है कि यदि जाने का उद्देश्य उसकी मामी को देखना था तो उम्मीद की जाती थी कि उसके परिवार की कुछ महिलाएं भी जाएंगी, जो यहां ऐसा नहीं है। यह औचित्य कि पुरुष सदस्य सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के साथ उसकी सुरक्षा और सुरक्षा के लिए गए थे, भ्रामक है, क्योंकि उनमें से किसी के पास कोई आग्नेयास्त्र हथियार नहीं था;

vii. शूट-आउट का कथित कारण सूचनाकर्ता/अन्सा०-1 के साथ आरोपी अपीलकर्ताओं की दुश्मनी बताई जाती है। ऐसी परिस्थिति में यह बेहद असंभव होगा कि

अन्सा-1 को तीन अन्य लोगों के साथ बख्शा जाएगा, जबकि छह अन्य को गोली मार दी जाएगी,

VIII. अभियोजन की कहानी विरोधाभासी है क्योंकि एक स्थान पर यह आरोप लगाया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं ने अपने वाहनों को कमांडर जीप के सामने खड़ा किया जिसमें मृतक और अन्य लोग यात्रा कर रहे थे, जबकि दूसरा संस्करण यह है कि चालक को बंदूक की गोली लगी थी, जिसके कारण जीप पेड़ से टकरा गई थी;

IX. अभियोजन पक्ष की कहानी का प्राथमिकी संस्करण कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 थाना कोतवाली, जिला मैनपुरी में लगभग 9-10 किलोमीटर की यात्रा करने के बाद प्राथमिकी दर्ज करने के लिए गया था, जबकि भोगांव थाना बहुत कम दूरी पर स्थित है, रास्ते में खुद को छुपाता है, अभियोजन पक्ष के मामले में एक गंभीर संदेह पैदा करता है। अन्यथा सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के लिए एक घंटे से भी कम समय में खुद को छिपाते हुए पैदल इतनी लंबी दूरी तय करना असंभव था;

X. हिमायूंपुर के पूर्व प्रधान देवेंद्र सिंह का नाम प्राथमिकी में उल्लेखित है जबकि उनका नाम रामकिशन है। यह भी अनुमान लगाने के लिए एक अतिरिक्त परिस्थिति है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०- 1 ने घटना नहीं देखी है,

XI. जिन परिस्थितियों में अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की जांच विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत मौके पर नहीं की गई थी और वे पूछताछ के गवाह भी नहीं हैं, ऐसी परिस्थितियां हैं जो इंगित करती हैं कि ये गवाह घटना के समय मौके पर मौजूद नहीं थे, प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने बताया कि अन्य तीन व्यक्तियों को मौके पर छोड़ दिया गया था और वह अकेले ही थाना कोतवाली, जिला मैनपुरी में प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आया था, जिसका अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने खंडन किया है, जिन्होंने कहा है कि वे अ०सा०-1 अप-टिल रेलवे क्रॉसिंग के साथ थे।

XII. प्राथमिकी में उल्लंघन करने वाले वाहन जिप्सी और मारुति वैन हैं, जबकि अन्य अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में वाहनों को जिप्सी और मारुति कार के रूप में वर्णित किया गया है। इससे भी संदेह पैदा होता है कि क्या अभियोजन पक्ष के गवाहों ने इस घटना को देखा है।

XIII. अभियोजन पक्ष के गवाह सुसंगत नहीं हैं क्योंकि एक स्थान पर गवाह दावा करते हैं कि उन्होंने अरहर के खेत से घटना देखी है, जबकि दूसरी जगह वे सरसों के खेत से घटना को देखने का दावा करते हैं, जिस जीप में मृतक अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-3 के साथ यात्रा कर रहा था, उसे बरामद नहीं किया गया और उसका ठिकाना भी उपलब्ध नहीं था, घटना के विवरण का खुलासा नहीं किया गया है, मुकदमे के दौरान पहली बार पेड़ से टकराकर जीप के रुकने की कहानी सामने आई है। यह प्राथमिकी में सामने आए मूल अभियोजन मामले से एक विचलन है, जिसके लिए कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

XI. जांच 7.9.1996 को 01:30 बजे पूरी हुई दिखाई गई है, जबकि अभियोजन पक्ष के

गवाहों ने 7.9.1996 को 02:30 बजे के रूप में इसका समय बताया, अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही में विरोधाभास है; अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों से यह भी स्थापित नहीं होता है कि मृतकों के शवों को कब सील किया गया था और शवों को शव परिक्षण के लिए ले जाने वाले कांस्टेबल कब शव परीक्षण के लिए शवगृह पहुंचे थे क्योंकि एक मुद्दा है कि शवों को कब शवगृह भेजा गया था।

XII. जांच पूरी तरह से बेईमानी है क्योंकि विचाराधीन अपराध में सुभाष गैंग की संलिप्तता की पूरी तरह से जांच करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष के गवाहों की आपराधिक पृष्ठभूमि पर भी उन्हें बदनाम करने पर जोर दिया गया है।

XIII. अभियोजन पक्ष के गवाहों ने आरोप लगाया है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने सामने से गोली चलाई, जबकि विवेचनाधिकारी का दावा है कि खाली जीप के दाईं ओर से बरामद किए गए थे, जबकि ऑटोप्सी सर्जन ने साबित कर दिया है कि चोटें जीप के दोनों तरफ यानी बाईं और दाईं ओर और पीछे से भी लगी है, लेकिन सामने से कोई भी चोट नहीं आई है, जो निर्णायक रूप से साबित करता है कि अभियोजन पक्ष के गवाह न तो घटना के समय और स्थान पर मौजूद थे और न ही उन्होंने घटना को देखा है।

XVII. अ०सा०-4, ऑटोप्सी सर्जन ने कहा है कि मृतक में से किसी को भी पैलेट से चोट नहीं आई है। हालांकि, अ०सा०-3 ने नीचे अदालत के समक्ष अपने बयान में कहा है कि चार आरोपियों के हाथों में बंदूकें थी जबकि अन्य छह आरोपी राइफलों से लैस थे।

119. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी जोर दिया गया है कि प्राथमिकी पूर्व-समयबद्ध है और अन्सा०-1 के बारे में प्राथमिकी में खुलासा किया गया अभियोजन पक्ष का संस्करण बुद को छिपाते हुए पैदल 8-9 किलोमीटर की दूरी तय करना बेहद असंभव है क्योंकि किसी के लिए भी आधे घंटे में इतनी लंबी दूरी तय करना असंभव है। उपरोक्त के कारण रेलवे ट्रैक से थाना तक टेम्पो के उपयोग के संबंध में अ०सा०-1 की गवाही में भौतिक सुधार किया गया था। संक्षेप में, प्रस्तुत करना यह है कि मुकदमे के दौरान अभियोजन मामले में किया गया सुधार एक अस्पष्टीकृत अलंकरण है जो फिर से अभियोजन पक्ष के मामले की संभावना के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करता है।

120. उपरोक्त के अलावा, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से यह आग्रह किया गया है कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अ०सा०-1 की सुभाष पांडे के गिरोह के साथ दुश्मनी थी और जांच के दौरान इसकी भागीदारी का संदेह था। इसलिए घटनास्थल से पाए गए कुछ खोखा सुभाष पांडे के गिरोह द्वारा की गई एक अलग घटना में इस्तेमाल किए गए खाली स्थानों से मेल खाते थे और यह निर्णायक रूप से स्थापित किया गया था कि बरामद किए गए खाली हिस्से को उसी बन्दूक से निकाल दिया गया था, जो इस प्रकार प्रश्न में अपराध के कमीशन में सुभाष

पांडे के गिरोह की भागीदारी को साबित करता है, लेकिन जांच की इस दिशा को अचानक हटा दिया गया, जो जांच की निष्पक्षता के साथ-साथ अभियोजन पक्ष के मामले में भी गंभीर संदेह पैदा करता है।

121. यह अभियोजन पक्ष की कहानी में उपरोक्त अलंकरण और विरोधाभास के प्रकाश में है, जिसे अभियोजन पक्ष यह साबित करने के लिए निर्धारित करता है कि इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने से पहले एक निर्णायक राय पर पहुंचने के लिए कि आरोपी अपीलकर्ताओं का कथित अपराध संदेह से परे साबित हो गया है या आरोपी अपीलकर्ता निर्दोष है, बहुत सावधानी और सतर्कता के साथ रिकॉर्ड पर साक्ष्य का मूल्यांकन करना है।

122. विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के आधार पर आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा है। घटना के समय और स्थान पर तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०- 1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया गया है। नतीजतन, उनकी गवाही पर भरोसा किया गया है। विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में कोई बड़ा अतिशयोक्ति, विरोधाभास या अलंकरण नहीं पाया है ताकि उन्हें विश्वास के अयोग्य बनाया जा सके, और इसलिए उन पर भरोसा किया गया है। उपरोक्त अदालत के परिणामस्वरूप आरोपी- अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपराध का निष्कर्ष वापस आ गया है। यह अदालत द्वारा नीचे दर्ज किया गया निष्कर्ष है जिसे पक्षों के अधिवक्ता द्वारा आग्रह की गई प्रस्तुतियों के प्रकाश में और मोहम्मद जब्बार अली (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए तर्क को ध्यान में रखते हुए हमारे द्वारा विचार करने की आवश्यकता है।

123. सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, हम अपीलकर्ताओं के लिए सभी वकीलों द्वारा उठाए गए तर्क को लेना चाहते हैं, जो घटना के समय और स्थान पर तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अन्सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की उपस्थिति पर सवाल उठाते हैं। जिन आधारों पर तथ्य के उपरोक्त गवाहों की उपस्थिति को चुनौती दी गई है, उनका उल्लेख पहले ही ऊपर किया जा चुका है। अब रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के संदर्भ में तर्क का मूल्यांकन किया जा रहा है। घटना के समय और स्थान पर तथ्य के उपरोक्त गवाहों की उपस्थिति पर संदेह करने के लिए पहली परिस्थिति एक चलती जीप से चार व्यक्तियों के भागने की संभावना का अभाव है जब जीप के चारों ओर से गोलीबारी हो रही थी जिसमें मृतक और चार व्यक्ति जिनके बारे में कहा जाता है कि वे सुरक्षित बच गए थे, यात्रा कर रहे थे।

124. अ०सा०-1 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि वह अपनी मामी (मौसी) से मिलने के बाद लौट रहा था। जीप में अ०सा०-1 समेत 10 लोग सवार थे। जीप अ०सा०-1 की है। इस गवाह के अनुसार, जैसे ही उन्होंने रेलवे क्रॉसिंग पार की, एक जीप और एक मारुति वैन ने कमांडर जीप को ओवरटेक किया और लगभग

04:30 बजे खुद को उसके आगे तैनात किया। इसका वर्णन करने के लिए इस गवाह द्वारा उपयोग की जाने वाली अभिव्यक्ति निम्नानुसार है:-

"समय लगभग ०४:३० बजे दिन (का० फटा) हमारी गाड़ी के सामने एक मारुती कार व दूसरी वेन (का० फटा) जो हमारी गाड़ी को ओवर टेक करके हमारी गाड़ी के सामने लगा दी।"

125. प्राथमिकी में जीप को ओवरटेक करने वाले दो वाहनों को जिप्सी और मारुति वैन के रूप में वर्णित किया गया था, जबकि अ०सा०-1 की गवाही में दोनों वाहनों को मारुति कार और वैन के रूप में वर्णित किया गया है। अ०सा०-1 की गवाही के अनुसार, आरोपी अपीलकर्ता बंदूकों और राइफलों से लैस थे जब वे अपने वाहनों से बाहर आए और उन्होंने कहा कि कमांडर जीप में सभी यात्रियों को गोली मार दी जाए और इस तरह बदला लिया जाए।

125. अ०सा०-1 ने कहा है कि सशस्त्र आरोपी अपीलकर्ताओं को आपत्तिजनक वाहनों से बाहर आले देख, वह संतोष सिंह (प्रस्तुत नहीं), अन्सा०-2 और अ०सा०-3 के साथ जीप के पीछे से कूद गया और अरहर (अरहर) खेत की ओर दौड़ पड़ा। अपनी जिरह में अ०सा०-1 ने बताया है कि उसकी जीप को दोनों वाहनों ने घेर लिया था और बाद में जीप सड़क किनारे पैट्री से यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। इस संबंध में अ०सा०-1 की गवाही इस प्रकार है:-

"हमारी गाड़ी को मुल्जिमान के दोनों गाड़ियों ने ओवर टेक करके घेरा था। हमारी गाड़ी को मेन रोड पर ही घेरा था बाद में मेरी जीप पटरी से होकर पेड़ से टकराई थी। मेरी जीप बाई तरफ जा टकराई। सड़क से तीन चार कदम दूरी पर पेड़ है वहाँ टकराई यूकेलिस्टिक व सीसम दोनों तरफ के पेड़ हैं मौके पर सड़क से खेत १०-१२ कदम पर थे।

इस घटना में आगे वाली सीट पर बैठे तीनों लोगों की मृत्यु हो गई थी। दो लोग गाड़ी में मर गये थे एक व्यक्ति गाड़ी के पायदान के पास गिर कर मरा था। बीच वाली सीट के तीनों लोग मरे थे। एक गाड़ी के अन्दर व दो गाड़ी के बाहर गिरे थे।"

126. अ०सा०-1 ने अपने प्रमुख परीक्षण में कहा है कि जीप के चालक हेम सिंह द्वारा बंदूक से लगी चोटों के कारण, उसने अपना संतुलन खो दिया और वाहन यूकेलिप्टस के पेड़ से टकराने के बाद रुक गया। उपरोक्त के संबंध में अ०सा०-1 का विवरण निम्नानुसार है:

"मुल्जिमान की दोनों गाड़िया मेरी जीप के सामने खड़ी थी। सामने से गाड़ी घेर कर मुल्जिमानों ने ललकारा व फायरिंग शुरु कर दी। सभी मुल्जिमान मेरी गाड़ी आगे से घेरे थे मुल्जिमान द्वारा ललकारने पर पीछे बैठे हम चारों लोग पश्चिम की तरफ भागे थे। गाड़ी से लगभग ५०, ५५ कदम थे। गाड़ी की दूरी पर अरहर के खेत में भाग गए थे वही से घटना देखी थी।"

127. इस प्रकार अ०सा०-1 के बयान से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वाहन गति में था और आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा रोका नहीं गया

था। जीप चल रही थी जब चालक को गोली लगी और परिणामस्वरूप वाहन अनियंत्रित हो गया। युकेलिप्टस के पेड़ से टकराने के बाद वाहन आखिरकार रुक गया।

128. अ०सा०-1 की गवाही के अनुसार दो वाहनों ने उसकी जीप को घेर लिया। जैसा कि अ०सा०-1 की गवाही से स्पष्ट है, उसकी जीप को मुख्य सड़क पर रोक दिया गया था और बाद में जीप बाई ओर चली गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। सवाल यह उठता है कि क्या जीप वास्तव में तब रुकी जब दोनों वाहनों ने पीछे से ओवरटेक किया और उसके सामने रुक गए या जीप पीछे से ओवरटेक होने पर बाई ओर चली गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई। अ०सा०- 1 में यह स्पष्ट नहीं बताया गया है कि क्या जीप पूरी तरह से रुक गई थी या चालक सड़क के बाईं ओर मुड़ गया था और इस तरह सड़क के किनारे पाथवे (पत्री) को पार करने के बाद यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गया था।

129. उपरोक्त परिदृश्य में यह पता लगाना उचित है कि क्या वाहन गति में था जब वह बाई और चला गया और युकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गया या वह सड़क पर रुक गया और फिर बाद में चालक ने इसे छोड़ दिया और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गया।

130. इस पहलू पर अन्सा०-2 देवेंद्र सिंह की गवाही कुछ अलग है। अपनी परीक्षा में, अन्सा०-2 ने निम्नानुसार गवाही दी है:

"उस समय शाम लगभग साढ़े चार बजे शाम के होंगे कि के नीले रंग की जिप्सी एक मारुती कार क्रीम कलर की थी जिनमे जिप्सी आगे थी इन दोनों गाड़ियों ने मेरी गाडी को ओवरटेक किया, इस बीच मेरे ड्राइवर हेम सिंह ने अपनी कुछ वाए करके ओवरटेक की कोशिश कि दोनों गाड़ियां मेरी गाड़ी के आगे बढ़कर रुक गई उस समय मेरी गाड़ी चल रही थी इसी बीच उन गाड़ियों से रामानंद, जगन्नाथ, हरिओम, आनन्द, देवेन्द्र, राजभूषण, कौशलेन्द्र, विपिन, विल्लू उर्फ चन्द्रकान्त व रमाकान्त कुल दस लोग उतरे और कहा कि इन सभी सालों को भून देंगे और बदला ले लेंगे वैसे ही मैं व मेरे पिताजी, संतोष गुप्ता व संतोष चाचा हम चार लोग अपनी गाड़ी से पीछे से कूद पड़े और खेत अरहर खेत की तरफ भागे अरहर के खेत से (sic) दिखाई दे रही थी रामानन्द के पास बन्दूक, आनंद के पास राइफल, जगन्नाथ के पास बन्दूक, विपिन के पास के पास व राजभूषण सिंह के पास बन्दूके थी और शेष पांचों के हाथों में रायफिले थी इन सभी लोगों ने फायरिंग की थी जिसमे हेम सिंह, गजेन्द्र उर्फ टिल्लू, महेश फौजी, अशोक परिहार पूर्व प्रधान राम किशन सिंह व नरेश दीक्षित कुछ छह लोगों की मौके पर ही मृत्यु हो गई थी इनकी फायरिंग से ड्राइवर हेम सिंह यूकलिपटस की मृत्यु हो गई थी इससे जीप असंतुलित होकर युकलिप्टस के पेड़ से टकरा गई थी इन सभी दासों मुल्जिमान से मेरे परिवार की पुरानी रंजिश है मुल्जिमान इस घटना के बाद अपनी दोनों गाड़ियों से मैनपुरी की तरफ भाग गए।"

131. अपनी जिरह में, अ०सा०-2 ने निम्नानुसार कहा है:

"जिस समय मुल्जिमान की दोनों गाड़ियों मेरी गाड़ी को ओवरटेक किए उस समय मेरी गाड़ी की स्पीड प्रति घण्टा कितने कि०मी० थी

नहीं बता सकता वैसे ठीक-ठाक चल रही थी जिस समय हम लोग अपनी जीप से कुदे उस समय जीप चल रही थी हडबड़ाहट में जान बचाने के लिए कूदे थे और जान बचाने के हिसाब से ही खेत में भागे चले गए थे जब हम लोग भाग रहे थे तब हम लोगों का किसी ने पीछा नहीं किया था हम लोग भागते समय पीछे मुड़कर देख रहे थे जब हम लोग भाग रहे थे तो हम लोगों को जीप की तरफ फायर किये थे हम लोगों को लगे नहीं की चोट हम चार लोगों को इसलिए नहीं लगी थी फायर करने वालों एवं हम लोगों के बीच हमारी जीप थी हम चार लोगों के गाड़ी से कूदने के बाद हम लोगों की जीप करीब १०, १२ कदम चली होगी, ऐसा नहीं है कि युक्लिप्टिस जब हम लोगों की जीप जब युक्लिप्टिस के पेड़ से टकरा गई तब हम मुल्जिमान को अपनी गाड़ियों से निकलते देखा हो।"

(महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)

अ०सा०-2 ने आगे निम्नानुसार कहा है:

"ऐसा नहीं है कि मेरी जीप का ड्राइवर जीप को मुल्जिमान की गाड़ियों से आगे निकालने के प्रयास जीप असंतुलित होकर पेड़ से टकरा गई है।"

अ०सा०-2 ने तब निम्नानुसार कहा है:

"मैंने दरोगा जी को यह बयान नहीं दिया था कि हमारी जीप के ड्राइवर हेम सिंह यादव ने उनसे बचाकर जीप निकालने चाही कि जीप असंतुलित होकर यूकिलिप्टस के पेड़ से टकराई बल्कि यह बयान दिया था कि ड्राइवर को गोली लगने के बाद जीप असंतुलित होकर पेड़ से टकराई थी यदि मेरा इस तरह का बयान नहीं लिखा है तो उसकी वजह नहीं बता सकता सी.बी.सी.आई.डी. वालों को भी ड्राइवर के गोली लगने के बाद जीप के असंतुलित होने के बाद बताई थी यदि उन्होंने मेरे बयान में ऐसा न लिखा हो तो मैं इसकी भी कोई वजह नहीं बता सकता।

जब मुल्जिमान गाड़िओं से निकले उससे पहिले मेरी जीप पेड़ से नहीं टकराई थी।"

(महत्व हमारे द्वारा)

132. अ०सा०-2 को बचाव पक्ष द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने पिछले बयान के साथ सामना किया गया था जिसमें उसने स्वीकार किया कि जीप असंतुलित हो गई थी और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई थी, जिसके बाद आरोपी व्यक्ति अपने वाहन से उतरे थे। इसके बाद उन्होंने उकसाया और फायरिंग की। इस संबंध में अ०सा०-2 का विवरण यहां दिया गया है:

"मैंने दरोगा जी एवं सी.वी.सी. आई.डी. वालों को यह नहीं बताया था कि 'जीप असंतुलित यूकिलिप्टस के पेड़ से टकराई कि एकदम जिप्सी व मारुती कार से उतर कर मुल्जिमान रामानंद आदि अपने हांथो राइफल, बन्दुकै निकालकर बढ़ते हुए यह कहकर बढ़े कि सभी सालों को भून देंगे ऐसा बयान उन्होंने कैसे लिख लिया उसकी वजह नहीं बता सकता किन मुल्जिमान के हाथ में बन्दूकें थी और किसके हाथ में साइकिलें थी यह बात न तो दरोगा जी

ने मुझसे पूँछी और न सी.वी.सी.आई.डी. वालों ने मुझसे पूँछी और न मैंने उन्हें बताई आज पहिली बार यह बात अदालत में बात रहा हूँ अपनी जीप से हम चारों लोग अरहर के खेत में पश्चिम तरफ भागे। जब हम जीप से उतरकर भागे उस समय हमारी जीप सड़क की पटरी की ओर चल रही थी मुल्जिमान की दोनों गाड़ियां पक्की सड़क पर कड़ी थी मुल्जिमान हम लोगों की जीप से पूरब की तरफ से फायर किये थे तावड़तोड़ गोलियाँ चल रही थी।"

आरोपी विपिन द्वारा अपनी आगे की जिरह में, अ०सा०-2 ने निम्नानुसार कहा है:

मुल्जिमान की दोनों गाड़ियों से मेरी जीप दस बारह कदम दूरी पर थी मेरी जीप के ड्राइवर ने मुल्जिमान की गाडियों से आगे निकलने की कोशिश की किन्तु इसी बीच मुल्जिमान फायरिंग करने लगे इसी बीच ड्राइवर के गोली लग गई मेरे ड्राइवर ने मुल्जिमान को गाडियों को क्रॉस करने के लिए स्पीड बढाई तभी ड्राइवर के गोली लग गई जिस समय ड्राइवर से गोली लगी उस समय मेरी गाडी मुल्जिमान से आठ, दस कदम की दूरी पर होगी उस समय मुल्जिमान जीप से पूरब तरफ की गोली लगने के बाद जीप असंतुलित हो गई ड्राइवर के गोली लगने वाले स्थान से वह पेड़ जिससे जीप टकराई लगभग ७, ८ कदम की दूर होगा।"
(महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)

उन्होंने यह भी कहा है कि

"जिस समय हम चारों लोग जीप के पीछे से कूदे थे उस समय जीप धीमी रफ्तार में चल रही थी. जीप के पीछे से हम चारों लोग बारी-बारी से सेकंडों में कूद गए थे जिस समय हम लोग जीप से कूदे थे जीप डाला बन्द था परन्तु हाल से जीप के ऊपर फेंककर कूदे थे।"

अपनी जिरह में अ०सा०-2 ने निम्नानुसार कहा है:

"हम चारों लोग जो जीप के पीछे से कूदकर भागे थे उनमें से किसी को खरोंच या अन्य कोई चोट नहीं आई थी अरहर के खेत हम चारों लोग १५ मिनट तक छुपे रहे मुल्जिमान में से कोई भी खेत के पास हम लोगों को मारने अथवा घेरने नहीं गया था।"

अन्सा०-2 से भी जिरह की गई कि जीप के पिछले हिस्से का दरवाजा बंद होने पर एक व्यक्ति दौड़ती हुई जीप से कूदने की व्यवहार्यता पर भी जिरह की गई। इस तरह के प्रश्न के जवाब में, अन्सा०-2 ने निम्नानुसार कहा है.

"यह कहना गलत है कि जीप को पीछे वाला डाला यदि मय स्टेपनी के बंद हो तो जीप से पीछे की तरफ कूदना कठिन होगा जीप मेरे चाचा ने बेच दिया है।"

अ०सा०-2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपियों ने वाहन पर तब गोली चलाई जब वह गति में था और तब भी (चार व्यक्तियों) जब वे जीप से बाहर आ रहे थे। अ०सा०-2 की गवाही से निम्नलिखित मार्ग प्रासंगिक है और इसलिए नीचे दिया गया है:

"मुल्जिमान ने हमारी चलती हुई गाडी पर फायर किया था, सभी मुल्जिमानों ये चलती हुई गाड़ी पर फायर किये थे. जिस समय हम चारों आदमी गाड़ी से कूदे उस समय मुल्जिमान आठ-दस कदम की दूरी पर थे, हम चारों के जीप के पीछे से कूदते समय हम लोगों पर भी जीप की तरफ मुल्जिमानों ने फायर किए थे।"

(महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)

133. अ०सा०-3 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि जिप्सी और मारुति कार पीछे से आई और जीप के सामने रुक गई, जिसमें से आरोपी व्यक्ति बंदूकों और राइफलों से लैस होकर निकले। उन्हें देखकर यह गवाह तीन अन्य लोगों के साथ जीप से कूद गया और आरोपी को गोली चलाते देखा जिससे छह कैदियों की मौत हो गई। अपनी जिरह में अ०सा०-3 ने कहा है कि चालक को टक्कर मारी गई थी, जबकि जीप चल रही थी, जिसके कारण वाहन असंतुलित हो गया और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गया। इस संबंध में उनकी गवाही इस प्रकार है:

"चलती हुई जीप में ड्राइवर को गोली लगी और जीप असंतुलित होकर पेड़ से टकराई यह बात मैंने दरोगा जी को बताई यदि यह बात मेरे बयान में नहीं लिखी गई।" इस गवाह ने जब विवेचनाधिकारी को दिए गए अपने पिछले बयान के साथ सामना किया तो निम्नानुसार कहा है: -

"मैंने दरोगा जी को यह बयान नहीं दिया था कि "दोनों गाड़ियां जीप के आगे लगा दी यह देखकर हमारे जीप के ड्राइवर हेम सिंह यादव ने उनसे बचाकर जीप आगे निकालनी चाही कि जीप असंतुलित होकर यूकेलिप्टस पेड़ से टकराई कि एक दम कहते जिप्सी व मारुती कार से उतरकर मुल्जिम यह कहते हुए कि आज बदला ले लेंगे सभी को भून देंगे हमारी तरफ बढे कि मैं सुरेन्द्र सिंह व देवेन्द्र सिंह जीप से निकले" यदि दरोगा जी ने मेरे बयान में यह बातें लिखी तो मैं इसकी कोई वजह नहीं बता सकता।"

(महत्व हमारे द्वारा आपूर्ति)

इस गवाह को धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने स्वयं के पिछले बयान के साथ भी सामना किया गया था जो उसके बयान के निम्नलिखित भाग से परिलक्षित होता है:

"साढ़े चार बजे हमारी जीप ड्राइवर ने मुल्जिमान की दोनों गाड़ियों को बचाकर आगे निकलने की कोशिश की कि जीप असंतुलित होकर पेड़ से टकराई यह बयान कैसे लिख लिया वजह नहीं बता सकता।"

अ०सा०-3 को धारा 161 द०प्र०स० के तहत सी.बी.सी.आई.डी को दिए गए अपने पिछले बयान के साथ सामना किया गया है जिसमें उन्होंने आरोप लगाया है कि वाहन यूकेलिप्टस के पेड़ से टकराने के बाद चालक को गोली लगी थी। सटीक गवाही इस प्रकार है:

"मैंने C.B.C.I.D. वालों को यह बयान नहीं दिया था कि जीप टकराने के बाद ड्राइवर को गोली लगी थी।"

134. अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही के मूल्यांकन से, यह स्पष्ट है कि वे जांच के चरण यानी पुलिस और सी.बी.सी.आई.डी. और

मुकदमे के दौरान घटना के अलग-अलग संस्करणों के साथ सामने आए हैं। जबकि जांच के चरण में उन्होंने आरोप लगाया है कि दो आपतिजनक वाहन पीछे से आए थे, जिसमें मृतक और तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाह और एक अन्य व्यक्ति यात्रा कर रहे थे, और उसके सामने रुक गए, जिसके कारण जीप बाई ओर चली गई और यूकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई, जिसके बाद आरोपी अपीलकर्ता बाहर आए, जबकि विचारण के दौरान, उनका कथन इस आशय का है कि अभियोजन पक्ष के गवाह एक दूसरे के साथ आरोपी व्यक्तियों को देखते ही पीछे से वाहन से कूद गए। आग्नेयास्त्रों के साथ दो वाहनों से बाहर आ रहा है। अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में यह अलंकरण इस आशय का है कि जीप के चार यात्री आरोपी व्यक्तियों को आग्नेयास्त्रों के साथ अपने वाहनों से बाहर आते देखकर कूद गए। अभियोजन पक्ष के गवाहों के अनुसार वाहन गति में था। यह स्पष्ट नहीं है कि चार जीवित बचे लोगों ने आरोपी व्यक्तियों को कैसे देखा, जो अपने वाहनों से हथियारों के साथ उतर रहे थे, एक चलती जीप से, खासकर जब जीप का पिछला दरवाजा (डाला) बंद था। अभियोजन पक्ष का बयान यह बताता है कि वे अपने शरीर पर एक खरोंच भी बनाए रखे बिना एक चलती जीप से बाहर कूद सकते हैं, उनके बयानों की विश्वसनीयता के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करता है।

135. दूसरा आधार जिस पर घटना के समय और स्थान पर तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा संदेह किया जाता है, मृतक की शव परिक्षण रिपोर्ट/ऑटोप्सी सर्जन की राय के अनुसार घटना में विस्फोटकों का उपयोग है, जिसने अ०सा०-4 के रूप में नीचे की अदालत के समक्ष गवाही दी थी। तथापि, न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा मृतक को लगी विस्फोटक चोटों के संबंध में तथ्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

136. अ०सा०-4 ने अपनी जांच में मृतक राम किशन की दूसरी एंटी-मॉर्टम चोट का जिक्र करते हुए कहा है कि दिमाग मामला सामने आ रहा था। सटीक कथन निम्नानुसार है:

"चोट न० 2- एक फटा हुआ घाव (आग्नेयास्त्र की गोली के निकलने से सम्बन्धित) 18 cm x 8 cm, चेहरे के बाई ओर माथे तथा सर पर था. मस्तिष्क (भेजा) घाव से बाहर निकल रहा था।"

मृतक महेश की पूर्व-मृत्यु चोटों का उल्लेख करते हुए, क्वाट इंजरी नंबर 1, 5 और 6, अ०सा०-4 ने निम्नानुसार राय दी है.

"1. लेसरेटेड बन्दूक घाव 18 सेमी x 5 सेमी x मस्तिष्क माथे और सिर के बाई ओर गहरा है। मार्जिन को काला कर दिया जाता है। बाई ओर की खोपड़ी की हड्डी टूट गई है। हड्डी से बाहर आने वाला ब्रेन मैटर।

5. दाहिने घुटने के जोड़ के सामने 12 सेमी x 8 सेमी पर बन्दूक का घाव होना। हड्डियां टूट जाती हैं। हाशिये काले हो गए।

6. आग्नेयास्त्र घाव 11 सेमी x 4 सेमी x हड्डी पीठ के बाएं स्कैपुला पर गहरी।

जहां तक मृतक अशोक परिहार की पूर्व-मृत्यु चोटों का संबंध है, अ०सा०-4 ने मृतक के चेहरे और गर्दन के निचले हिस्से पर बुक्कल कैविटी (निचला जबड़ा जो गायब है) के निचले हिस्से पर 18 सेमी x 9 सेमी का घाव पाया है। क्रॉस परीक्षण में अ०सा०-4 ने साफ कहा है कि मृतक अशोक परिहार के शरीर पर मिली चोट नंबर 1 विस्फोटक के कारण थी। उन्होंने अपनी प्रतिपरीक्षा में आगे कहा है कि मृतक के शरीर से निकाला गया धातु पदार्थ हैंड ग्रेनेड के विस्फोट के कारण शरीर में प्रवेश कर सकता है। इस संबंध में अ०सा०-4 का बयान इस प्रकार है:

"जो धातु के टुकड़े शवों से निकाले गए है वे ऐसे टुकड़े भी हो सकते है हथगोला वगैरह ब्लास्टर होने पर शरीर में घुस सकते हैं. अशोक परिहार की चोट नं० 06 जोर से लाठी मारने से आना संभव है।"

अ०सा०-4 के उपरोक्त बयान के संदर्भ में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है कि अपराध के कमीशन में विस्फोटकों का इस्तेमाल किया गया था, जिससे विस्फोट से चोटे आई और अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में विस्फोटकों के उपयोग का खुलासा न करना स्पष्ट रूप से बताता है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने वास्तव में घटना नहीं देखी है। नतीजतन, तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाह घटना के समय और स्थान पर मौजूद नहीं थे।

137. श्री अमित सिन्हा, महालेखा महाप्रबंधक, पूर्वोक्त के विरोध में प्रस्तुत करता है कि ऊपर उल्लिखित चोटें खोखले बिंदु गोलियों के उपयोग के कारण हो सकती हैं।

138. इस याचिका के समर्थन में, उन्होंने बैलिस्टिक पर विभिन्न अधिकारियों को संदर्भित किया है ताकि (उपरोक्त निकाली गई चोटों) की असंभवता पर जोर दिया जा सके जो एक बन्दूक की गोली से बाहर निकलने के कारण होता है और ऐसी परिस्थितियों में यह तर्क कि प्रश्न में अपराध में विस्फोटकों का उपयोग किया गया था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

139. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आग्रह किए गए उपरोक्त सबमिशन का मुकाबला करते हुए, कुछ अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि खोखले बिंदु गोलियों के उपयोग की संभावना के बारे में विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क को इस न्यायालय द्वारा विशेष रूप से स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अ०सा०-4 की भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में इस पहलू पर जांच नहीं की गई है।

140. वह आगे प्रस्तुत करता है कि घटना में, अभियोजन पक्ष ने खोखले बिंदु गोलियों के कथित उपयोग के कारण प्रश्न में अपराध में विस्फोटकों के उपयोग के संबंध में अ०सा०-4 (ऑटोप्सी सर्जन) की गवाही पर महाभियोग लगाने का इरादा किया था, तो ऑटोप्सी सर्जन (अ०सा०-4) को उपरोक्त के साथ सामना करना

अनुवादित

चाहिए था। यह केवल उपरोक्त स्थिति में था कि अभियुक्त को मुकदमे के दौरान इसका मुकाबला करने का अवसर मिलेगा। इसलिए वह प्रस्तुत करता है कि इस न्यायालय के समक्ष विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आग्रह की गई याचिका को अदालत के समक्ष नहीं लिया गया है, जिसके नीचे याचिका अनिवार्य रूप से तथ्य की दलील है, इस न्यायालय को अपीलीय स्तर पर विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा इसे लेने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

141. हमने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा किए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। हम श्री राजीव लोचन शुक्ला द्वारा दिए गए तर्क में दम पाते हैं कि मुकदमे के दौरान नहीं उठाई गई दलील, जिस पर अभियोजन पक्ष के गवाह का सामना नहीं किया गया है, को अपीलीय स्तर पर पहली बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 में गवाहों की परीक्षा का तरीका स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है, जो मुद्दे में मामलों पर गवाहों की परीक्षा के लिए एक योजना प्रदान करता है। तैयार संदर्भ के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 को पुनः प्रस्तुत किया जाता है जो निम्नानुसार पढ़ता है:

"138. परीक्षाओं का क्रम-साक्षियों की पहले परीक्षा की जाएगी, फिर (यदि विरोधी पक्ष ऐसा चाहता है) प्रतिपरीक्षा की जाएगी, फिर (यदि पक्ष उसे ऐसा कहता है) पुनः परीक्षा की जाएगी। परीक्षा और प्रतिपरीक्षा प्रासंगिक तथ्यों से संबंधित होनी चाहिए, लेकिन प्रतिपरीक्षा उन तथ्यों तक सीमित नहीं होनी चाहिए, जिनके लिए गवाह ने अपने मुख्य मुख्य परीक्षण पर गवाही दी थी। पुनः परीक्षा का निदेश-प्रतिपरीक्षा में निर्दिष्ट विषयों के स्पष्टीकरण के लिए पुनःपरीक्षा का निदेश दिया जाएगा, और, यदि नया मामला, न्यायालय की अनुमति से, पुनर्परीक्षा में पेश किया जाता है, तो प्रतिकूल पक्ष उस मामले पर आगे जिरह कर सकता है।

142. यह सच है कि मृतक द्वारा की गई कुछ चोटें विस्फोटक चोटों के समान होती हैं। ऑटोप्सी सर्जन (अ०सा०-4), जो अभियोजन पक्ष का गवाह है और उपरोक्त असंगति के संबंध में एक सक्षम गवाह है, का विशेष रूप से उसी के संबंध में परीक्षण के दौरान सामना किया गया है। डॉक्टर (अ०सा०-4) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक के शरीर पर कुछ चोटें विस्फोटकों के कारण हो सकती हैं। घटना में खोखली गोली के इस्तेमाल से संबंधित मुद्दे पर अभियोजन पक्ष द्वारा ऑटोप्सी सर्जन (अ०सा०-4) की पुन जांच नहीं कराई गई है। ऑटोप्सी सर्जन (अ०सा०-4) को विशिष्ट बुलेट (खोखा) के उपयोग के बारे में कोई सुझाव नहीं दिया गया था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि घटना में खोखा के उपयोग की संभावना पर मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा शव परीक्षण सर्जन (अ०सा०-4) का सामना नहीं किया गया है और इसलिए, हम श्री अमित सिन्हा, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रस्तुतिकरण को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं कि मृतक के शरीर पर पाई गई कुछ चोर्ट जिन्हें विस्फोटक चोटों के रूप में माना गया है,

वास्तव में खोखले बिंदु बुलेट के उपयोग के कारण वास्तव में चोटें आई थी।

143. मृतक पर कुछ चोटों के बारे में एक तर्क भी उठाया गया था, जो कठोर और कुंद वस्तु के कारण हुआ था, जिसे अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा समझाया नहीं गया था। आरोपी अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क हमें प्रभावित नहीं करता है क्योंकि जीप में लगी लोहे की छड़ से टकराने के कारण कैदियों को ऐसी चोर्ट लगने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। अन्यथा, यह अभियोजन पक्ष का विशिष्ट मामला है कि जीप गति में थी जब वह युकेलिप्टस के पेड़ से टकरा गई थी। अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही पर केवल इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि मृतक पर कठोर और कुंद वस्तुओं से हमला किया गया था और इस तरह के तथ्यों का वर्णन न करना अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में संदेह पैदा करता है।

144. कुछ अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बृजेश सहाय ने प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की गवाही रखी है, जिसके अनुसार अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने सामने से जीप के कैदियों पर गोलियां चलानी शुरू कर दी। प्रसंगवश, अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने स्पष्ट रूप से निम्नानुसार कहा है:

"सामने से गाडी घेर कर मुल्जिमानों ने ललकारा व फायरिंग शुरू कर दी. सभी मुल्जिमान मेरी गाड़ी आगे से घेरे थे मुल्जिमान द्वारा ललकारने पर पीछे बैठे हम चारों लोग पश्चिम की तरफ भागे थे।"

145. उपरोक्त कथन से पता चलता है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं ने अपने वाहनों को जीप के सामने रखा; उन्हें घेर लिया; प्रोत्साहित किया, और फायरिंग शुरु कर दी। आरोपी अपीलकर्ता जीप के सामने थे और इस तरह चार यात्री जीप के पिछले दरवाजे से पश्चिम की ओर भाग सकते थे।

146. अ०सा०-1 के इस बयान को अ०सा०-4 की गवाही पर भरोसा करके आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा चुनौती देने की मांग की गई है, जिसने उस दिशा को समझाया है जहां से गोलियां कैदियों को लगी थीं। शव परिक्षण सर्जन (अ०सा०-4) ने मृतक अशोक परिहार को लगी चोटों के बारे में बताते हुए कहा है कि दूसरी चोट प्रवेश का घाव था और मृतक के बाएं से गोली लगने पर मृतक पर हो सकती थी। अ०सा०-4 का सटीक विवरण इस प्रकार है:

"अशोक परिहार की चोट नं० १ Explosiजी.डीe थी। चोट न. २ Entry Wound के रूप में थी जो कि मृतक के वाई ओर से फायर करने वाले ने फायर किया होगा तब यह चोट आई होगी।" मृतक अशोक परिहार के शरीर पर चोट नंबर 4 के संबंध में, अ०सा०-4 ने राय दी है कि यह दाई ओर से हो सकता है। तैयार संदर्भ के लिए उपरोक्त के बारे में अ०सा०-4 का सटीक विवरण यहां दिया गया है:

"चोट नं०. ४- दाहिनी तरफ से पहुंचना सम्भव है।"

अ०सा०-2 ने कहा है कि मृतक राम किशन पर चोट नंबर-1, यह दाई ओर से हो सकता है, जबकि चोट नंबर 3 बाई ओर से हो सकती है। सटीक विवरण निम्नानुसार है:

"मृतक रामकिशन के शव पर आई चोट नं० १ दाहिनी तरफ से पहुँचाया जाना संभव है. चोट नं० ३ बाई तरफ से पहुंचाई जाना संभव है।"

इसी प्रकार मृतक नरेश दीक्षित के शरीर पर पहली चोट के संबंध में अ०सा०-4 ने राय दी है कि यह बाई ओर से लगी हो सकती है। सटीक राय इस प्रकार है:

"मृतक नरेश दीक्षित के शव पर आई चोट नं० १ बाई तरफ से पहुंचाई जाना संभव है. चोट नं० ३ व ४ आग्नेयास्त्र से निकली हुई गोली के रगड़ से आ सकती है. यह चोट बाईं तरफ से पहुँचाना संभव है।"

इसी तरह मृतक हेम सिंह के शरीर पर पहली और तीसरी चोट दाहिनी तरफ से हो सकती थी, जबकि दूसरी चोट पीछे से लग सकती थी। इस संबंध में अ०सा०-4 की सटीक राय निम्नानुसार है:

"मृतक हेम सिंह के शव पर आई चोट नं० १ दाहिनी तरफ से पहुंचाई जाना संभव है यह चोट अग्नेयास्त्र की गोली से आना संभव है। चोट नं० २ पीछे की तरफ से पहुंचाई जा सकती है। चोट नं० ३ पीछे की तरफ से दाहिने से पहुँचाया जाना संभव है।"

ऑटोप्सी सर्जन (अ०सा०-4) की उपरोक्त राय अ०सा०-1 के बयान में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। मृतक गजेंद्र सिंह के शरीर पर चोट नंबर 1 के संबंध में, अ०सा०-4 ने कहा है कि यह बाई ओर से हो सकता है, जबकि चोट नंबर 3, 4, और 5 दाई ओर से हो सकता है। उपरोक्त के संबंध में अ०सा०-4 का विवरण नीचे दिया गया है:

'मृतक गजेन्द्र सिंह के शव पर आई चोट नं०-1 बाई तरफ से पहुंचाई जाना संभव है. चोट नं०-३ कुन्द आले से दाहिने तरफ पहुंचाई जाना संभव है, चोट नं०-4 दाहिनी तरफ से अग्नेयास्त्र की गोली लगने से आना संभव है, चोट नं०-5 दाई तरफ पीछे की ओर से अग्नेयास्त्र की गोली से सामने से आना संभव है।"

मृतक महेश के शरीर पर चोट नंबर 1, 6 और 7, अ०सा०-4 ने कहा है कि यह बाई ओर से हो सकता है, चोट नंबर 2 दाई ओर से हो सकती है, जबकि चोट नंबर 5 सामने दाई ओर से हो सकती है। अ०सा०-4 का सटीक बयान निम्नानुसार है:

"मृतक महेश के शव पर आई चोट नं० १ बाई तरफ से सामने से गोली से पहुंचाई जाना संभव है। चोट नं० २ सामने दाहिनी तरफ से पहुँचाना संभव है, चोट नं० ५ अग्नेयास्त्र की गोली से सामने दाहिनी तरफ से आना संभव है। चोट नं० ६ पीछे बाई तरफ से अग्नेयास्त्र की गोली से पहुंचायी जाना संभव है। चोट नं० ७ कुन्द आले से बाई तरफ से पहुंचाना संभव है।"

147. श्री बृजेश सहाय द्वारा अपनी जिरह में अ०सा०-4 के बयान के निम्नलिखित भाग पर

कुछ अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बहुत जोर दिया गया है:

"मृतक अशोक परिहार की सभी चोटें दाहिने, बाएं एवं पीछे से पहुंचायी जाना संभव है। मृतक राम किशन की सभी चोर्ट दाहिने एवं बाएं से पहुंचायी जाना संभव है।

मृतक नरेश दीक्षित की सभी चोटें बायी तरफ से पहुंचायी जाना संभव है। मृतक हेम सिंह की सभी चोटें दाहिने एवं पीछे से पहुंचायी जाना संभव है।

मृतक गजेंद्र सिंह की सभी चोटें दाहिनी एवं बायी ओर से पहुंचायी जाना संभव है। मृतक महेश सिंह की सभी चोटें दायें एवं बाएं से पहुंचायी जाना संभव है। यह मैं नहीं बता सकता कि यदि मृतक किसी चलने वाले वाहन मसलन जीप में बैठे हो तो उनके ऊपर फायर करने वालों ने दाहिने से ही फायर किये हो।

मृतकों के चोटों में कोई छर्रे की नहीं है सभी अग्नेयास्त्र की गोली की है।"

148. उपरोक्त आधार पर, यह आग्रह किया जाता है कि जबकि स्टार अभियोजन गवाह यानी अ०सा०-1 ने आरोप लगाया कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने जीप को सामने से घेर लिया और गोलीबारी शुरु कर दी, लेकिन मृतक को कोई भी चोट सामने से चलाई गई गोलियों से नहीं हुई है, बल्कि बाएं, दाएं और पीछे से चलाई गई गोलियों से हुई है। आगे यह आग्रह किया जाता है कि कैदियों की आवाजाही के कारण कुछ भिन्नता संभव है, लेकिन गोलियों की दिशा का संचयी रूप से मूल्यांकन करने पर स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जीप पर गोलीबारी सामने से नहीं बल्कि बाएं, दाएं और जीप के पीछे से थी। इस बात पर भी जोर दिया जा रहा है कि जीप चालक चालक को चालक सीट पर बैठने के दौरान टक्कर लग गई, जहां उसका मृत शरीर मिला था। यह तथ्य कि हमलावरों द्वारा दाएं और पीछे से गोलियां चलाई गई थी, अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में आरोपी व्यक्तियों द्वारा गोलीबारी की दिशा के बारे में संदेह पैदा करता है, जिन्होंने सामने से जीप को घेर लिया था। बदले में यह अभियोजन पक्ष के गवाह की मौके पर उपस्थिति के बारे में संदेह पैदा करता है।

149. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा सहानुभूतिपूर्वक आग्रह किया गया था कि दाएं, बाएं और पीछे से छह मृतकों पर गोली लगने की चोटों का अस्तित्व सामने से जीप के यात्रियों पर गोलीबारी के बारे में अ०सा०-1 की गवाही का खंडन करता है, जो घटना के समय और स्थान पर अ०सा०-1 की उपस्थिति के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करता है।

150. अब हम अपीलकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्क के संबंध में सबूतों की जांच करने का प्रस्ताव करते हैं कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में गंभीर विरोधाभास हैं। अ०सा०-1 ने कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं ने उन पर भी गोली चलाई, लेकिन गोली उन्हें नहीं लगी और पेड़ों की आड़ में वे घटनास्थल से एक फर्लांग की दूरी पर छिप गए। उन्होंने कहा है कि फायरिंग समाप्त होने और आरोपी

अपीलकर्ताओं के चले जाने के बाद, वे कबूतर के खेत से बाहर आए और 2-3 मिनट के लिए घटनास्थल पर रुक गए। सभी आरोपी अपीलार्थी मैनपुरी की ओर रवाना हो गए थे। अ०सा०-1 का दावा है कि वह रेलवे क्रॉसिंग पर आया था और उसके बाद मैनपुरी आने के लिए एक टेम्पो लिया। इस संबंध में अ०सा०-1 की यह गवाही इस प्रकार है:

"सभी मुल्जिमान मैनपुरी की तरफ भागे थे मौके से मैं रेलवे फाटक की तरफ आया और वहाँ से टैम्पो पकड़कर मैनपुरी आया. टैम्पो से मैनपुरी आने वाली बात तहरीर में नहीं लिखी है दरोगा जी ने न तो मुझसे पूछा था और न ही मैंने टैम्पो से आने वाली बात बताई थी।"

151. अ०सा०-1 को उसकी लिखित रिपोर्ट के साथ सामना किया गया है जिसमें टेम्पो पर उसके आने का कोई संदर्भ नहीं है, बल्कि उसने कहा है कि वह रास्ते में खुद को छिपाकर कोतवाली थाना, मैनपुरी में पैदल आया था। लिखित रिपोर्ट/प्राथमिकी का पाठ निम्नानुसार है

"मैं पैदल भागकर छुपते छुपाते रिपोर्ट लिखाने आया हूँ।"

152. अ०सा०-1 ने जब उपरोक्त विसंगति का सामना किया तो कहा है कि जल्दबाजी में वह कोतवाली थाना, मैनपुरी में टेम्पो पर आने के बारे में तथ्य का उल्लेख करना भूल गया। इस मौके पर हम अपीलकर्ताओं की ओर से तर्क को दोहरा सकते हैं कि अ०सा०-1 की बाद की याचिका एक टेम्पो में आ रही है और अभियोजन पक्ष के मामले में भ्रम को उजागर करती है। अस्पष्टीकृत अलंकरण यह अनुमान लगाने का एक अतिरिक्त आधार है कि अभियोजन पक्ष की कहानी झूठी है।

153. अभियोजन पक्ष के समक्ष यह स्वीकार किया जाता है कि घटनास्थल और कोतवाली थाना, मैनपुरी के बीच की दूरी लगभग 9-10 किलोमीटर है और रिपोर्ट लगभग आधे घंटे के बाद ही दर्ज की गई थी। प्राथमिकी के एंटी-टाइमिंग के संबंध में तर्क इस आधार पर उठाया गया है कि किसी के लिए भी 9-10 किलोमीटर की पैदल यात्रा करना और आधे घंटे में प्राथमिकी दर्ज करना संभव नहीं था। कुछ आरोपी-अपीलकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी श्रीवास्तव का तर्क यह है कि वास्तव में फायरिंग की घटना की सूचना थाना-भोगांव में किसी और ने दी थी।

154. चूंकि छह व्यक्तियों की गोलीबारी और हत्या ने तुरंत निवासियों का ध्यान आकर्षित किया, इसलिए इस तरह के सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने प्राप्त जानकारी के आधार पर एक कहानी तैयार की है क्योंकि वह मैनपुरी में था, जहां उसका राजनीतिक प्रभाव था (यह एक स्वीकृत तथ्य है कि अ०सा०-1 के भाई मैनपुरी से विधान सभा के पूर्व सदस्य थे)। इस प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि लिखित रिपोर्ट में प्रारंभिक संस्करण यह था कि घटना का कारण आरोपी व्यक्तियों के साथ दुश्मनी थी और पैदल इतनी लंबी दूरी की यात्रा करने का पहलू स्पष्ट रूप से उनके ध्यान से बच गया था। यह आग्रह किया जाता है कि जब उपरोक्त विसंगतियों का एहसास हुआ तो एक टेम्पो के कथित उपयोग के संबंध में अभियोजन पक्ष के

अदालत

गवाहों के बयानों में सुधार किया गया। वही अ०सा०-1 की गवाही में अलंकरण के बराबर है जो अस्पष्टीकृत है। जब अ०सा०-1 को उपरोक्त पहलू के साथ सामना किया गया था, तो उन्होंने उसी के बारे में निम्नलिखित स्पष्टीकरण दियाः

"तहरीर में छुपते छुपाते आने वाली बात लिखाई है टैम्पो से आने वाली बात नहीं लिखाई है इस सम्बन्ध में तहरीर में टेम्पो वाली बात हड़बड़ाहट में लिखने से छूट गयी है इसलिए पैदल आने वाली बात लिखी है। मौके से रेलवे फाटक तक पैदल आया। जिसमे १०-१२ मिनट लगे होंगे. रेलवे फाटक पर पहुँचने के एक दो मिनट बाद ही टैम्पो मिल गया था।"

155. जांच में अ०सा०-1 ने बताया है कि फायरिंग समाप्त होने के बाद तीन बचे हुए लोगों को मौके पर छोड़कर पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 फिर पुलिस थाना कोतवाली आए। अ०सा०-1 की सटीक गवाही निम्नानुसार है.

"मेरे साथ के तीन लोग वही मौके पर रह गए। मैं कोतवाली आया।"

जिरह में अ०सा०-1 ने कहा है कि उसके भाई संतोष (पेश नहीं हुए) ने कहा कि जाकर रिपोर्ट दर्ज करा दो और तीनों बचे हुए लोग घटनास्थल के आसपास रहेंगे। सटीक विवरण निम्नानुसार है:

"मेरे भाई संतोष ने कहा था कि आप जाकर रिपोर्ट लिखाओ हम तीनों यही आसपास हैं।"

156. अ०सा०-1 की उपरोक्त गवाही के खिलाफ, अ०सा०-2 ने कहा है कि वह अपने पिता (अ०सा०- 1) के साथ रेलवे क्रॉसिंग तक गया और एक टेम्पो पर बैठने के बाद वापस लौट आया। अ०सा०- 3 ने बताया है कि बचे चारों लोग रेलवे क्रासिंग पर आए और तभी लौटे जब अ०सा०-1 एक टेम्पो में बैठ गया। इस गवाह का सामना उसके पिछले बयान से भी कराया गया है जिसमें यह हिस्सा गायब है। उन्होंने निम्नलिखित तरीके से परिस्थिति की व्याख्या की है।

"घटना के बाद हम चारों लोग रेलवे फाटक तक गए थे और वादी सुरेन्द्र सिंह की टेम्पो पर बैठाया था यह दरोगा जी को बताया था उन्होंने मेरे बयान में नहीं लिखी है तो मैं इसकी वजह नहीं बता सकता। मैंने दरोगा जी को यह बयान नहीं दिया था कि मुल्जिमान के जाने के बाद हम चारों लोग छिपकर मैनपुरी गए थे यह बयान कैसे लिख दिया वजह नहीं बता सकता।"

157. ऊपर उल्लिखित अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों से, यह पता चलता है कि प्रारंभिक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) अ०सा०-1 द्वारा प्रस्तुत की गई थी। इस गवाह का आरोप है कि वह पैदल ही कोतवाली मैनपुरी आया था, जबकि उसके बयान को बाद में नीचे अदालत के समक्ष उसके बयान में सुधार किया गया है ताकि टेम्पो पर थाना आने की कहानी सामने आ सके। अ०सा०-1 ने आरोप लगाया है कि बचे हुए अन्य तीन लोग पीछे रह गए और वह अकेला रेलवे क्रॉसिंग पर आ गया लेकिन अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने अ०सा०-1 के साथ

रेलवे क्रॉसिंग पर आने के बारे में अलग रुख अपनाया और फिर वे वहां से घटनास्थल पर लौट आए।

158. अभियोजन पक्ष के गवाहों की सत्यता पर संदेह करने के लिए इस आधार पर भी तर्क दिया गया है कि गवाहों के लिए खड़ी फसलों (अरहर मटर-अरहर खेत) में छिपकर 40-50 कदम की दूरी से घटना को देखना असंभव था। जिस स्थान से अभियोजन पक्ष के गवाहों ने कथित रूप से घटना को देखा है, वह एक गड्ढ़ा है और इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों के लिए इस घटना को देखने की कोई संभावना नहीं थी। इसलिए, घटना को देखने के बारे में अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान बेहद असंभव है।

159. आरोपी-अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी आग्रह किया जाता है कि अ०सा०-1 की पूरी कहानी, जो अपनी मामी (मौसी) को देखने गई थी, क्योंकि वह बीमार थी, इस आधार पर भी संदिग्ध है कि न तो मामी का नाम अ०सा०-1 को पता है और न ही कहानी विश्वसनीय लगती है क्योंकि परिवार में एक महिला से परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहने की उम्मीद की जाएगी और उसकी अनुपस्थिति अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करती है। बाहरी लोगों सहित 7 अन्य व्यक्तियों को लेने का कारण अ०सा०-1 को कथित धमकी थी। हालांकि, इनमें से किसी भी व्यक्ति ने हथियार नहीं रखा था। आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के अनुसार, अभियोजन की कहानी में यह संस्करण विश्वसनीय नहीं है और अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित पूरी कहानी इसलिए स्वीकृति के योग्य नहीं है।

160. अभियुक्त अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी आग्रह किया गया है कि अ०सा०-1 ने स्वयं स्वीकार किया है कि थाना-भोगांव लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर है और यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि अ०सा०-1 ने मैनपुरी में थाना कोतवाली जाने का विकल्प क्यों चुना था, जो 9-10 किलोमीटर की दूरी पर है, जबकि उपर्युक्त थाना घटनास्थल के बहुत निकट स्थित है। उपरोक्त के अलावा, यह समझना भी असंभव है कि गोलीबारी बंद होने के बाद और सभी हमलावर मैनपुरी की ओर क्यों बढ़े, फिर भी अ०सा०-1 ने उसी दिशा में जाने का विकल्प चुना, जबकि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि हमलावरों और अन्सा०-1 के बीच पहले से पुरानी दुश्मनी थी और वह प्राथमिक लक्ष्य था।

161. अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति पर संदेह करने के लिए दूसरी परिस्थिति यह है कि अ०सा०-1 से अ०सा०-3 सहित चार बचे लोगों में से कोई भी छह मृतकों के शवों की जांच (पंचायतनामा) के गवाह नहीं थे, भले ही वे घटना के समय और स्थान पर मौजूद होने का आरोप लगाते हों और उस समय भी जब पुलिस मौके पर पहुंची थी।

162. प्रतिपरीक्षा में अ०सा०-8 (विवेचनाधिकारी) ने बताया है कि छह मृतकों के शवों की जांच/पंचनामा के गवाह दो अलग-अलग पुलिस स्टेशनों के निवासी हैं। सटीक विवरण निम्नानुसार है:

अतिरिक्त

"मैं अपने काम में व्यस्त था। इसलिये बता नहीं सकता कि मौके निरीक्षण के समय घटनास्थल पर आस पास के लोग आए थे या नहीं लेकिन पंचायतनामे के गवाहान मौके पर थे। पंचायतनामों के गवाहान अलग-२ थाना क्षेर्चा में रहने वाले हैं।"

उस संबंध में अ०सा०-1 की गवाही निम्नानुसार पढ़ती है:

"दरोगा जी पंचायतनामा भरा था दो-ढाई बजे रात तक पंचायतनमें भरे गए थे। हम चारों में से किसी ने पंचायतनमे पर हस्ताक्षर नहीं किए थे।

प्रश्नः- क्या आपने पंचायतनामा भरने वाले अधिकारी (पुलिस कर्मियों) को यह बताया था कि मृतकों को किस-2 व्यक्तियों ने मारा था?

आपति द्वारा अभियोजन पक्ष
चूँकि यह साक्षी पंचायतनामा का गवाह नहीं है इसलिए यह प्रश्न इस साक्षी से नहीं पूंछा जा सकता।" इस संबंध में अ०सा०-2 का बयान इस प्रकार है:

"लिखा पढ़ी के समय हम तीनों लोग अलग बैठे थे उस समय पुलिस वालों ने ना तो हम लोगों से कुछ पूछा था और न बताया हम चारों लोग पंचायतनामा के गवाह नहीं है।"

163. घटना के समय और स्थान पर तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति भी आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर संदेह की जाती है कि अकेले अ०सा०-1 का बयान घटना की तारीख पर अ०सा०-8 द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जबकि अन्य बचे लोगों के बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज नहीं किए गए थे।

164. यह भी आग्रह किया जाता है कि अन्सा०-8 सहित थाना-भोगांव की पुलिस घटनास्थल पर सबसे पहले पहुंची और अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, तीन उत्तरजीवी (अ०सा०-1 को छोड़कर) घटनास्थल पर मौजूद थे। उस स्थिति में यह बिल्कुल स्वाभाविक होगा कि थाना भगांव की पुलिस इन तीन पीड़ितों से घटना के तरीके के बारे में पूछताछ करेगी और धारा 161 द०प्र०स० के तहत तुरंत उनके बयान दर्ज करेगी। इस संबंध में अ०सा०-8 एस. आई राम पाल सिंह की गवाही प्रासंगिक है और तदनुसार नीचे दी गई है।

"चार बजे सुबह तक मैं उक्त तीनों व्यक्तियों का बयान अंकित नहीं किया था। वादी का बयान मौके पर लिया था वादी के बयान से यह स्पष्ट हो गया था कि उक्त तीनों व्यक्ति घटना के चश्मदीद गवाह है समय की कमी के कारण उन तीनों व्यक्तियों का बयान मौके पर नहीं लिया। ऐसा नहीं है कि उक्त तीनों व्यक्ति मौके पर हमें न मिले हो और न मैंने उनसे पूछतांछ की हो। मौके पर उक्त तीनौ व्यक्तियों से पूंछतांछ का कोई उल्लेख C.D. में नहीं है। ऐसा नहीं है कि अपने बयां खाश में हमने उक्त तीनों खाश व्यक्तियों की मौजूदगी व उनसे पूछतांछ

करना सिखाने पर बताया हो. मैंने केवल एक परचा इस घटना के सम्बन्ध में काटा है।"

165. यह तथ्य कि इन तीन बचे लोगों के बयान धारा 161 द०प्र० स० के तहत दर्ज नहीं किए गए थे, घटना के समय और स्थान पर उनकी उपस्थिति के बारे में गंभीर संदेह पैदा करता है।

166. घटना के समय और स्थान पर तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति पर इस आधार पर सवाल उठाया जाता है कि जीप के यात्रियों के विवरण का प्राथमिकी में सही उल्लेख नहीं किया गया था और हुमायूंपुर के पूर्व प्रधान का नाम "देवेंद्र सिंह" के रूप में उल्लेख किया गया है। जीप के यात्रियों का हवाला देते हुए प्राथमिकी में हुमायूंपुर के पूर्व प्रधान का उल्लेख देवेंद्र सिंह के रूप में किया गया है। इस पहलू पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा बहुत जोर दिया गया है, क्योंकि बाद में अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि हुमायूंपुर के पूर्व प्रधान का सही नाम देवेंद्र सिंह नहीं बल्कि राम किशन है। 167. श्री अरुणेंद्र सिंह, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता, हालांकि, प्रस्तुत करते हैं कि प्राथमिकी की सामग्री को रिकॉर्ड करने में, "पूर्व प्रधान हुमायूंपुर देवेंद्र सिंह" के बीच एक अल्पविराम अनजाने में छोड़ दिया गया है। उन्होंने कहा कि मारे गए जीप के यात्रियों में से एक "देवेंद्र सिंह" था।

168. हमारा ध्यान अ०सा०-1 के बयान की ओर आकर्षित किया गया है जिसने कहा है कि हुमायूँपुर के पूर्व प्रधान का नाम तुरंत जात नहीं था, इसलिए उन्हें हुमायूँपुर के पूर्व प्रधान" के रूप में संदर्भित किया गया था और देवेंद्र सिंह उनके बेटे नहीं हैं। यह अ०सा०-1 की निम्नलिखित गवाही में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है:

"हुमायूं पुर के पूर्व प्रधान देवेन्द्र सिंह का नाम तहरीर में लिखा है स्वयं कहा हुमायूं पुर के पूर्व प्रधान का नाम हमें उस समय जात नहीं था इसलिये पूर्व प्रधान के रूप में उन्हें इंगित किया, देवेन्द्र सिंह पूर्व प्रधान नहीं अपितु मेरा लड़का है। तहरीर में मैंने अपने दो पुर्वी देवेन्द्र सिंह व राजेन्द्र उर्फ टिल्लू का नाम लिखा है। प्रश्न तहरीर प्रदर्श क-१ में अपने लड़के देवेन्द्र सिंह का नाम आपने नहीं लिखा है केवल एक लड़के गजेन्द्र उर्फ टिल्लू का नाम लिखा है?"

देवेंद्र सिंह को अन्सा०-1 के पुत्र के रूप में संदर्भित नहीं किए जाने के बारे में जिरह में पूछे गए प्रश्न के उत्तर में, गवाह (अ०सा०-1) ने निम्नलिखित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है:

"प्रश्न- तहरीर प्रदर्श क-1 में अपने लड़के देवेन्द्र सिंह का नाम आपने नहीं लिखा है केवल एक लड़के गजेन्द्र उर्फ टिल्लू का नाम लिखा है?

उत्तरः- मैंने तहरीर में दोनों लड़कों का नाम लिखा है। देवेन्द्र सिंह को अपना पुत्र नहीं लिखा है लेकिन वह मेरा पुत्र है।"

169. हमने अपने सामने आग्रह किए गए प्रस्तुतियों के आलोक में उपरोक्त से संबंधित रिकॉर्ड पर साक्ष्य का विश्लेषण किया है और उसी के सावधानीपूर्वक और सतर्क मूल्यांकन

पर, हम श्री अरुणेंद्र सिंह, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण में पदार्थ पाते हैं कि हुमायूंपुर के पूर्व प्रधान और देवेंद्र सिंह एक नहीं हैं और एक ही व्यक्ति हैं बल्कि दो अलग-अलग संस्थाएं हैं। माना कि हुमायूँपुर के पूर्व प्रधान का नाम 'राम किशन" है न कि "देवेंद्र सिंह"।

शूटआउट में मारे गए यात्रियों में देवेंद्र सिंह भी शामिल थे। यह विसंगति स्पष्ट रूप से जांच रिपोर्ट में कुछ सुधारों का कारण भी थी, जहां मृतक के पिछले विवरण को स्कोर करने के बाद राम किशन के नाम का उल्लेख किया गया था।

170. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा दिए गए विशिष्ट और स्पष्ट स्पष्टीकरण के मद्देनजर, हम श्री अरुणेंद्र सिंह, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं, जिसके अनुसार हुमायूंपुर के पूर्व प्रधान और देवेंद्र सिंह दो अलग-अलग और विशिष्ट व्यक्ति हैं। इसलिए उपरोक्त के संबंध में अपीलकर्ताओं की ओर से उठाए गए विपरीत तर्क को खारिज किया जाता है।

171. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दबाए गए तर्क का दूसरा अंग विचाराधीन अपराध के आयोग में सुभाष पांडे गिरोह की भागीदारी के बारे में है। इस तरह के दावे का आधार पुलिस मुठभेड़ की एक घटना के बारे में केस डायरी में परिलक्षित अभिकथन है, जिसके संबंध में थाना- कोतवाली, जिला मैनपुरी में धारा 307 अ०द०वि० के तहत अपराध संख्या 539 वर्ष 1996 दर्ज किया गया था। इस घटना में पुलिस द्वारा घटनास्थल से कतिपय खोखा बरामद किए गए थे। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के अनुसार, सूचनाकर्ता सुरेंद्र सिंह (अ०सा०-1) की विभिन्न व्यक्तियों के साथ दुश्मनी है और उनके बेटों मल्लू और संतोष के खिलाफ लूट, डकैती, डकैती, अपहरण, हत्या आदि से संबंधित दर्जनों आपराधिक मामले दर्ज हैं। सुभाष पांडेय पर आरोप है कि वह एक अपराधी है, जो गिरोह चला रहा था। सुभाष पांडे के भाई सूबेदार पांडे की कथित तौर पर रक्षापाल सिंह ने हत्या कर दी थी, जो सूचनाकर्ता के सगे भाई शिवराज सिंह का बहनोई है। रक्षपाल सिंह की सगी बहन कांति देवी का विवाह शिवराज सिंह से हुआ था। आगे आरोप है कि सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) अपने सगे भाइयों शिव राज सिंह और उपदेश सिंह के साथ सक्रिय रूप से रक्षपाल सिंह की मदद करता था, जिसके साथ सुभाष पांडे दुश्मनी बनाए रखते थे।

172. शूट-आउट की घटना के तुरंत बाद, जिसके संबंध में केस अपराध संख्या 286 वर्ष 1996 दर्ज किया गया था, पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी और पुलिस निरीक्षक स्टेशन-भोगांव के साथ-साथ अन्य पुलिस कर्मियों ने स्पष्ट रूप से शूट-आउट के कमीशन में सुभाष पांडे गिरोह की भूमिका पर संदेह किया। पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी के आदेश के अनुसरण में और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मैनपुरी की अनुमति से, घटना (अपराध संख्या 286 वर्ष 1996) में बरामद कुछ खाली खोखा को पुलिस मुठभेड़ के संबंध में घटना (अपराध संख्या 539 वर्ष 1996) में बरामद कुछ खोखा के साथ मिलान करने के लिए फोरेंसिक साइंस लेबोरेटरी, आगरा

भेजा गया था। विधि विज्ञान प्रयोगशाला आगरा के वैज्ञानिक अधिकारी ने दिनांक 31 अक्टूबर, 1996 की रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो पेपर संख्या 131 ए / 10 के रूप में रिकॉर्ड में है। उपरोक्त दो घटनाओं से बरामद खोखा की तुलना करने के बाद, वैज्ञानिक अधिकारी ने अपनी विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट में निम्नानुसार राय दीः

"अपराध सं० ५३९/९६ थाना कोतवाली मैनपुरी के घटनास्थल से प्राप्त खोखे कारतूस चि० ईसी-३४ उसी अग्नेयास्त्र से चले हैं जिससे घटनास्थल से प्राप्त खोखे कारतूस चि० ईसी-१५, ईसी-१७ व ईसी-१९ तथा मारुति कार से प्राप्त खोखा कारतूस चि० ईसी-२९ चले हैं।

अपराध सं० ५३९/९६ थाना कोतवाली मैनपुरी के घटनास्थल से प्राप्त शेष दो कारतूस चि० ईसी-३१ व ईसी-३३ अन्य अग्नेयास्त्रों द्वारा चले हैं।"

173. हालांकि, यह रिपोर्ट अभियोजन पक्ष द्वारा पेश नहीं की गई है, लेकिन बचाव पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई है। बचाव पक्ष के अनुसार, अभियोजन पक्ष वर्तमान मामले में जांच करने में निष्पक्ष नहीं रहा है और यही कारण है कि वर्तमान घटना में सुभाष पांडे गिरोह की भागीदारी से संबंधित सबूतों को जानबूझकर बाहर रखा गया है, क्योंकि इससे पूरे अभियोजन मामले को ध्वस्त कर दिया जाता।

174. विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा की 31 अक्टूबर, 1996 की रिपोर्ट की स्वीकार्यता के संबंध में दोनों पक्षों की ओर से विस्तार से तर्क दिए गए हैं और साथ ही विश्वसनीयता की सीमा भी है जो इस तरह के साक्ष्य पर रखी जा सकती है। इसलिए ऐसी परिस्थितियों में हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम इन दो घटनाओं में सुभाष पांडे गिरोह की संलिप्तता के बारे में साक्ष्य से संबंधित पहलू पर ध्यान दें।

175. संयुक्त निदेशक, विधि विज्ञान प्रयोगशाला आगरा द्वारा दिनांक 31 अक्टूबर, 1996 को रमेश कुमार रावत, वैज्ञानिक अधिकारी के हस्ताक्षर के तहत भेजी गई विधि विज्ञान प्रयोगशाला आगरा की रिपोर्ट की फोटो प्रति। (ख) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मैनपुरी को संबोधित पत्र सं /96168531/अज्ञेय/349 अभिलेख में दर्ज है। बचाव पक्ष ने उपरोक्त के अलावा, इस तरह की फोटो कॉपी रिकॉर्ड पर रखी है, राजेश कुमार सिंह (ब०सा०-3) की गवाही पेश की है, जो जुलाई, 1997 से जुलाई, 1999 के बीच सी.बी.सी.आई.डी, आगरा में इंस्पेक्टर थे। 31 जुलाई, 1998 से इस गवाह ने आंशिक रूप से अपराध संख्या 286 वर्ष 1999 से उत्पन्न सीबी नंबर 420/98 में जांच की थी। ब०सा०-3 ने अपने बयान में कहा है कि विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा की रिपोर्ट को 1 मई, 1999 को केस डायरी में शामिल किया गया था और उन्होंने कार्यवाहक निरीक्षक राम पाल सिंह का बयान भी दर्ज किया था। अपनी परीक्षा में ब०सा०-3 ने निम्नानुसार गवाही दी है:

"…. ..... एक्सपर्ट रिपोर्ट की मूल प्रति पत्रावली पर कागज सं०.....उपलब्ध है इस रिपोर्ट के परिणाम वाले कालम में अप० सं०

539/96 थाना कोतवाली मैनपुरी के घटनास्थल से प्राप्त खोखे कारतूस चि० ई०सी०-32 व ई०सी०-34 उसी अग्नेयास्त्र से चले हैं जिससे घटनास्थल से प्राप्त खोखे कारतूस चि० ई०सी०-15, चि० ई०सी०-17, ई०सी०-19 तथा मारुति कार से प्राप्त खोखा कारतूस चि ई०सी०-29 चले हैं अप० सं० 539/96 थाना कोतवाली मैनपुरी के घटनास्थल से प्राप्त शेष दो कारतूस चि० ई०सी०-31 व ई०सी०-33 अग्नेयास्त्र दद्वारा चले हैं। मैंने इस केस की तफतीश दिनांक 31.7.98 से 13.5.99 तक की है। इसके बाद यह तफतीश श्री महक सिंह द्वारा की गई है दिनांक 5.2.99 को मैंने रामपाल सिंह के बयान में अंकित किया है कि तालविदा अजय सिंह काजला, एच० सी० रघुनाथ सिंह सी० / बनीसिंह मौके पर घटनास्थल पर आए थे। निरीक्षक रामपाल सिंह के बयान में गवाह सुरेन्द्र सिंह, देवेन्द्र सिंह, सन्तोष एवं सन्तोष गुप्ता के मौके पर पहुंचने/मिलने का 161 सी०आर०पी०सी० में उल्लेख नहीं है अपराध संख्या की विवेचना में पूर्व विवेचक द्वारा की गई कार्यवाही का संक्षिप्त कथन अंकित किया जाता है।"

176. इस गवाह से भी जिरह की गई है जिसमें उसने कहा है कि उसके द्वारा जांच का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका और उसके द्वारा धारा 173 (2) द०प्र०स० के तहत कोई पूरक रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई। हालांकि, विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा की रिपोर्ट की सत्यता को कोई चुनौती नहीं दी गई है और न ही अभियोजन पक्ष द्वारा रिपोर्ट पर सवाल उठाया गया है। विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा की रिपोर्ट पर संदेह करने के लिए इस गवाह को कोई सुझाव भी नहीं दिया गया है। विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट में निकाले गए निष्कर्षों पर भी सवाल नहीं उठाए गए है।

177. ब०सा०-3 की गवाही के अलावा, बचाव पक्ष ने एस.सी पाल (ब०सा०-4) को भी पेश किया है, जो 30 नवंबर, 1996 से 28 जनवरी, 1998 के बीच सी.बी.सी.आई.डी. आगरा डिवीजन, आगरा में इंस्पेक्टर थे। उन्होंने कहा है कि इन्हीं पक्षों के बीच पिछली गोलीबारी 23 मई, 1996 को हुई थी, जिसमें रामकांत और अन्य के खिलाफ सूचनाकर्ता के भाई शिव राज सिंह (अ०सा०-1) द्वारा सात लोगों के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज की गई थी। यह मामला अपराध संख्या 153 वर्ष 1996 के रूप में भ०द०वि० की धारा 147, 148 और 302 के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें अंतिम रिपोर्ट 7 जुलाई, 1996 को प्रस्तुत की गई थी। आरोपी की ओर से एक क्रॉस केस भी दर्ज किया गया था, जिसमें जगन्नाथ दीक्षित थाना-अगांव में धारा 147, 148, 149, 307 और 302 भ०द०वि० के तहत सूचनाकर्ता था। इस मामले में इस मामले के सूचनाकर्ता सुरेन्द्र सिंह (अ०सा०-1), उनके दो भाइयों अर्थात् शिव राज सिंह और उपदेश सिंह, उनके पुत्र मल्लू के साथ-साथ सुशील गुप्ता नामक एक व्यक्ति के विरुद्ध 7 जुलाई, 1996 को आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था। इन सामग्रियों को केस डायरी में शामिल किया गया था। इस गवाह ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि उच्च अधिकारियों ने पिछले विवेचनाधिकारी श्री नंद किशोर मॉल को सुभाष पांडे गिरोह की भागीदारी का सुझाव दिया था, जिसके संबंध में मामला अपराध संख्या 539 वर्ष 1996 दर्ज किया गया था। पूछताछ करने

पर, इस गवाह को श्री मल्ल द्वारा सूचित किया गया था कि दो मामलों में बरामद कुछ खाली लोगों को फोरेंसिक जांच के लिए वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक के निर्देश पर भेजा गया था। इस गवाह ने यह भी कहा है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 सुरेंद्र सिंह ने 15 मई, 1997 को उसे बताया था कि वह भोगांव थाना नहीं गया था क्योंकि भोगांव थाना की पुलिस आरोपी व्यक्तियों के प्रभाव में थी। अपनी आगे की जिरह में उसने कहा है कि सुभाष पांडे गिरोह के बारे में उसके द्वारा कोई और जांच नहीं की गई थी और केस डायरी केवल रिकॉर्ड करती है जैसा कि इंस्पेक्टर श्री नंद किशोर मॉल द्वारा उसे सूचित किया गया था।

178. बचाव पक्ष ने महक सिंह, सेवानिवृत्त निरीक्षक, सी.बी.सी.आई.डी. को ब०सा०-6 के रूप में भी पेश किया था, जिन्होंने 18 फरवरी, 2000 से 14 मार्च, 2000 के बीच इस मामले की जांच की थी। इस गवाह ने कहा है कि जांच के दौरान उसने पाया कि 1984 में सुभाष पांडे के बड़े भाई सूबेदार पांडे की गांव इलाहबास, थाना एलो में हत्या कर दी गई थी, जिसमें टुकपाल सिंह, रक्षापाल सिंह और कुछ अन्य लोगों को आरोपी होने का संदेह था और जिसके संबंध में भादवि की धारा 302 और 394 के तहत मामला अपराध संख्या 183 वर्ष 1984 दर्ज किया गया था। उन्होंने यह भी पाया कि रक्षापाल सिंह की बहन कांति देवी की शादी शिवराज सिंह से हुई है, जिसके कारण सूचनाकर्ता की पार्टी और सुभाष पांडे गिरोह के बीच दुश्मनी चल रही थी।

179. अपनी आगे की जिरह में इस गवाह ने कहा कि उसे पता चला कि आरोपी व्यक्ति सुभाष पांडे के भी परिचित थे। उन्होंने अपने बयान पर सफाई देते हुए कहा कि आरोपी आनंद दीक्षित सुभाष पांडेय गैंग का परिचित था। उनके बीच कोई संबंध नहीं है। उन्होंने सुभाष पांडे के खिलाफ 9 आपराधिक मामलों के इतिहास का भी पता लगाया। उन्होंने यह भी कहा कि इस मामले के किसी भी गवाह ने अपराध में सुभाष पांडे गिरोह की संलिप्तता के बारे में उन्हें नहीं बताया था।

180. सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या विधि विज्ञान प्रयोगशाला की 31 अक्टूबर, 1996 की रिपोर्ट यानी पेपर नंबर 1310/10 को इस मामले में साक्ष्य के रूप में पढ़ा जा सकता है या नहीं? यह रिपोर्ट फोटो कॉपी है और इसकी मूल प्रति का उत्पादन नहीं किया गया है। यह दस्तावेज अभियोजन पक्ष के कब्जे में हो सकता है और बचाव पक्ष के पास उपलब्ध होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इस दस्तावेज का संदर्भ केस डायरी में स्पष्ट रूप से किया गया है जिसे हमने पढ़ा है।

181. बचाव पक्ष ने इस दस्तावेज को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में लाने की कोशिश की है क्योंकि मूल उपलब्ध नहीं था और इसे साबित करने के लिए। रक्षा ने इस संबंध में

ब०सा०-3, ब०सा०-- 4 और ब०सा०--6 का उत्पादन किया है। ये सभी बचाव पक्ष के गवाह मामले के विवेचनाधिकारी थे, जबकि जांच सी.बी.आई के पास थी।

182. हमें सूचित किया जाता है कि जांच को सी.बी.सी.आई.डी. को स्थानांतरित करने का निर्णय अंततः रद्द कर दिया गया था, लेकिन बहस के दौरान हमारा ध्यान ऐसे किसी भी आदेश की ओर आकर्षित नहीं किया गया है। हालांकि, इस तरह के तथ्य के अस्तित्व पर अपीलकर्ताओं द्वारा भी संदेह नहीं है। केवल तथ्य यह है कि जांच को सिविल पुलिस को बहाल कर दिया गया था, इसका मतलब यह नहीं होगा कि सी.बी.सी.आई.डी द्वारा जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री को देखा नहीं जा सकता है। सी.बी.सी.आई.डी. यानी ब०सा०-3, ब०सा०-4 और ब०सा०-6 के जांच अधिकारियों ने विशेष रूप से कहा है कि उच्च अधिकारियों द्वारा बरामद खाली स्थानों को एफ.एस.एल आगरा भेजने का निर्णय लिया गया था ताकि इस शूट-आउट घटना में सुभाष पांडे गिरोह की भागीदारी की संभावना का पता लगाया जा सके। विधि विज्ञान प्रयोगशाला की 31 अक्टूबर, 1996 की रिपोर्ट को ब०सा०-3, ब०सा०-4 और ब०सा०-6 द्वारा नोट कर लिया गया है और उक्त रिपोर्ट की सामग्री का उल्लेख केस डायरी में किया गया है। वैज्ञानिक रिपोर्ट अन्यथा एक ऐसी रिपोर्ट है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 293 में दिए गए अपवाद के आधार पर वैज्ञानिक अधिकारी/विधि विज्ञान विशेषज्ञ को प्रस्तुत करके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। बचाव पक्ष ने वैज्ञानिक रिपोर्ट की फोटो कॉपी रखी है और यह भी दिखाया है कि इस रिपोर्ट की सामग्री केस डायरी में दर्ज की गई थी, लेकिन अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्तर पर इस रिपोर्ट के अस्तित्व को चुनौती नहीं दी है या केस डायरी में रिपोर्ट की सामग्री को शामिल करने को चुनौती नहीं दी है। अभियोजन पक्ष ने इस बारे में भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के बावजूद सुभाष पांडे गिरोह की संलिप्तता की आगे जांच क्यों नहीं की गई, जिसके अनुसार अपराध संख्या 539 वर्ष 1996, और 286 वर्ष 1996 में बरामद कुछ खाली लोगों को एक ही बंदूक से निकाल दिया गया था।

182. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने 31 अक्टूबर, 1996 की विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के आधार पर वर्तमान घटना में सुभाष पांडे गिरोह की भागीदारी के बारे में आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का खंडन किया है। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है कि घटना के दो स्थानों में से किसी से भी कोई आग्नेयास्त्र बरामद नहीं किया गया था और इसकी अनुपस्थिति में यह केवल विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के बल पर निर्णायक रूप से साबित नहीं होता है कि दोनों घटनाओं में बरामद कुछ खाली खोखा एक ही बन्दूक से दागे गए थे।

183. श्री अमित सिन्हा की उपरोक्त आपति, महालेखा परीक्षक का श्री राजीव लोचन शुक्ला ने विरोध किया है, जिन्होंने फोरेंसिक विज्ञान के बारे में साहित्य पर भरोसा करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि आग्नेयास्त्र की

अनुपस्थिति में भी, यह धारण करना संभव था कि घटना के दो अलग-अलग स्थानों से बरामद खाली खोखा एक ही हथियार से दागे गए थे।

184. विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट की स्वीकार्यता के संबंध में पार्टियों की ओर से आग्रह किए गए प्रस्तुतियों के बावजूद, हम पाते हैं कि विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दिनांक 31.10.1996 के रूप में सामग्री जांच के दौरान रिकॉर्ड पर सामने आई थी, जिसमें प्रश्न में शूट-आउट में सुभाष पांडे गैंग की संभावित भागीदारी का सुझाव दिया गया था। जांच ने न तो विवेचना की इस लाइन की जांच की है और न ही इसे छोड़ने के लिए किसी कारण का खुलासा किया है। अन्यथा विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट को दबा दिया गया है। उपर्युक्त विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के आलोक में जांच को तार्किक निष्कर्ष तक पूरा न करने के लिए जांच एजेंसी के आचरण पर संदेह की छाया उत्पन्न होती है।

<u>विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष</u>

185. अभियोजन पक्ष ने विचाराधीन शूट-आउट की घटना को साबित करने के लिए निर्धारित किया है जिसके अनुसार यह अभियुक्त था जिसने उस जीप पर अंधाधुंध गोलीबारी की थी जिसमें मृतक, तीन अभियोजन पक्ष के गवाह और एक अन्य यात्रा कर रहे थे और उसमें यात्रा करने वाले छह यात्रियों की क्रूर हत्या हुई। अभियोजन पक्ष के अनुसार, इस घटना को अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों यानी अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने देखा है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे पिछले दरवाजे से एक अन्य के साथ चलती जीप से कूद गए थे और आगे भी इस घटना के गवाह बने हैं। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से पता चलता है कि तथ्य के ये गवाह अत्यधिक रुचि रखने वाले गवाह हैं और उनकी विश्वसनीयता के साथ-साथ घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति ऊपर उल्लिखित तथ्यों और उनके आपराधिक पूर्ववृत्त के कारण संदिग्ध हो जाती है। इसलिए, हमें यह निर्धारित करने के लिए कहा जाता है कि क्या अभियोजन पक्ष के गवाह विश्वसनीय हैं और उनके बयान संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध या उनकी बेगुनाही के बारे में निष्कर्ष वापस करने से पहले विश्वास के योग्य हैं।

186. हम पहले ही अभियोजन पक्ष के गवाहों की विश्वसनीयता के संदर्भ में अभियोजन पक्ष के मामले में विभिन्न विसंगतियों का उल्लेख कर चुके हैं, उनके बयानों में विभिन्न विरोधाभास और अलंकरण, घटना के समय और स्थान पर उनकी उपस्थिति गंभीर रूप से संदिग्ध है, चिकित्सा साक्ष्य चक्षुक संस्करण की पुष्टि नहीं कर रहे हैं, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं और पहले सूचनाकर्ता अ०सा०-1 के बीच लंबे समय से पहले से मौजूद दुश्मनी है। सावधानी और सतर्कता के साथ रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री का मूल्यांकन करने पर, हालांकि, हमें विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज तर्क और निष्कर्ष से सहमत होना मुश्किल लगता है। रिकॉर्ड के माध्यम से और ऊपर उल्लिखित अपीलों के लिए और उसके खिलाफ आग्रह किए गए प्रस्तुतियों के आलोक में रिकॉर्ड पर साक्ष्य के महत्वपूर्ण मूल्यांकन और सराहना पर हम अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा पसंद की गई अपीों को अनुमति देने के इच्छुक हैं, जो

अन्यथा हिरासत में हैं और निम्नलिखित कारणों से 18 से अधिक वर्षों से कैद में हैं:

(1) हमें यह संदेहास्पद प्रतीत होता है कि जीप के चार यात्री (तथ्य के तीन गवाहों अर्थात् अ०सा०- 1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 सहित) चलती जीप से कूद सकते हैं और जब दस हथियारबंद लोग जीप पर अंधाधुंध गोलीबारी कर रहे होते हैं तो वे बाल-बाल बच जाते हैं। हमें यह विश्वास करना भी मुश्किल लगता है कि इस तरह की गोलीबारी में, मुख्य संदिग्ध (अ०सा०-1) को हमलावरों द्वारा बख्शा जाएगा, खासकर जब वे (भागने वाले चार) निहत्थे थे और हमलावरों के करीब थे और हमलावरों को भी देख रहे थे। अपराध की प्रकृति से यह स्पष्ट है कि हमलावरों का जीप के किसी भी यात्री को छोड़ने का कोई इरादा नहीं था। हमें अभियोजन पक्ष के गवाहों के स्पष्टीकरण को स्वीकार करने में कठिनाई होती है कि वे बिना किसी चोट के चलती जीप से कूद गए और अरहर के खेत (अरहर) में 40 से 50 कदम की दूरी पर छिप गए और वहां से घटना देखी। हम इस फैसले के पहले हिस्से में पहले ही कह चुके हैं कि जिस स्थान से अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों ने कथित तौर पर घटना देखी है, वह अरहर के खेत (अरहर) में एक गड्ढा है और इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों के लिए इस घटना का गवाह होना लगभग असंभव था। प्रत्यक्षदर्शियों ने आरोप लगाया है कि उन पर आरोपियों ने गोली चलाई लेकिन वे बाल-बाल बच गए क्योंकि जीप उनके और हमलावरों के बीच आ गई। अगर इसे स्वीकार भी कर लिया जाए तो हमें यह अस्वाभाविक लगता है कि इन चार यात्रियों को देखकर हमलावर उन्हें वहां से जाने देंगे और उन्हें खत्म करने के लिए कुछ कदम आगे नहीं चलेंगे, खासकर तब जब अब्सा०-1 उनकी पहले से मौजूद दुश्मनी के कारण उनका प्रमुख संदिग्ध था। इसलिए, हम तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही को भरोसेमंद और विश्वसनीय नहीं पाते हैं, खासकर जब वे अत्यधिक रुचि वाले गवाह है। घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति संदिग्ध है और इसलिए उनकी गवाही विश्वास के योग्य नहीं है।

हमारे उत्सुक विचार और यथार्थवादी मूल्यांकन पर हम पाते हैं कि ऊपर वर्णित कारणों के लिए उनके अविश्वसनीय चरित्र को देखते हुए तीन चश्मदीद गवाहों के बयानों पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा।

187. हम आगे अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में मामूली विसंगतियों और विरोधाभासों की अनदेखी करने के लिए इच्छुक हैं। लेकिन भले ही हम उन्हें अनदेखा करते हैं फिर भी, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष के मामले पर भरोसा करना समझदारी नहीं होगी जैसा कि तथ्य के तीन अभियोजन गवाहों द्वारा समझाया गया है। इस संबंध में हम यह स्पष्ट करना उचित समझते हैं कि आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दवाए गए कई मुद्दे गंभीर विचार के योग्य नहीं हैं, जैसे कि अ०सा०-1 के बारे में अभियोजन पक्ष के मामले में विसंगतियां अपनी बीमार मौसी से मिलने जा रही है या यह तथ्य कि कोई महिला उनके साथ नहीं गई थी, हालांकि कई व्यक्ति अ०सा०-1 के साथ उनकी सुरक्षा के लिए गए थे, लेकिन उनमें से किसी के पास

कोई बन्दूक या हथियार नहीं था; तथ्य यह है कि अभियोजन पक्ष का बयान दो कैदियों, नरेश दीक्षित और राम किशन (पूर्व प्रधान) के बाद में मैनपुरी जेल क्रॉसिंग पर शामिल होने के कारण अस्थिर है, क्या गवाहों ने अरहर के खेत या मस्टर वाले खेत से घटना देखी है, उस समय में विरोधाभास जब शव परीक्षा समाप्त हो गई थी, हुमायूँपुर के प्रधान अर्थात् राम किशन आदि का नाम दर्ज करने में त्रुटि फिर भी अभियोजन पक्ष उपरोक्त कारणों से अपने मामले को संदेह से परे स्थापित करने में सफल नहीं होता है।

188. हम अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क में भी कुछ तथ्य पाते हैं कि सुभाष पांडे गिरोह के शूट-आउट को अंजाम देने के लिए जिम्मेदार होने की संभावना है, जिसके साथ सूचनाकर्ता के पक्ष के भी शत्रुतापूर्ण संबंध थे। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, विधि विज्ञान प्रयोगशाला आगरा द्वारा प्रस्तुत विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट को केस डायरी में शामिल किया गया था जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विभिन्न घटनाओं से बरामद खाली एक ही हथियार से दागे गए थे। इसके बावजूद विवेचनाधिकारी ने जांच को उसके तार्किक अंजाम तक नहीं पहुंचाया है। भले ही विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट को साक्ष्य में सख्ती से नहीं पढ़ा गया हो, फिर भी, जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री होने के कारण शूट-आउट में सुभाष पांडे गैंग की संलिप्तता का पता लगाने के लिए आगे की जांच की आवश्यकता थी और ऐसा करने में जांच की विफलता ने जांच को संदिग्ध बना दिया है।

189. जब विचारण न्यायालय के फैसले की जांच मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में की जाती है, तो अभियोजन पक्ष की कहानी में अंतर्निहित भांति जिसे अभियोजन पक्ष ने साबित करने के लिए निर्धारित किया था और इस फैसले के पिछले भाग में हमारे द्वारा देखा गया था, इस तथ्य के साथ युग्मित है कि तथ्य के अभियोजन पक्ष के गवाह विश्वसनीय नहीं हैं, इसलिए, उनकी गवाही विश्वास के योग्य नहीं है, घटना के समय और स्थान पर तथ्य के तीन अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति पूरी तरह से स्थापित नहीं है, घटना के चक्षुक संस्करण को चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि नहीं किया जा रहा है, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि आरोपी- अपीलकर्ताओं के अपराध को दर्ज करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष न केवल अवैध हैं, बल्कि विकृत भी हैं।

190. हमारे निष्कर्षों को सारांशित करते हुए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि अभियोजन पक्ष उस कहानी को स्थापित करने में सक्षम नहीं है जिसे उसने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों के आधार पर साबित करने के लिए निर्धारित किया था। ऐसा कहने के बाद, हम नीचे की अदालत द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों को अस्वीकार करते हैं और आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को दर्ज करने के लिए नीचे अदालत द्वारा बताए गए कारणों को भी अस्वीकार करते हैं। तदनुसार, हम इससे असहमत हैं।

191. ऊपर की गई चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर, ये अपीलें सफल होती हैं और अनुमति दी जा सकती हैं। तदनुसार, इन्हें

अनुमति दी जाती है। सत्र न्यायाधीश, मैनपुरी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 97 वर्ष 2005 (राज्य बनाम जगन्नाथ और 5 अन्य) और सत्र परीक्षण संख्या 104 वर्ष 2005 (राज्य बनाम हरिओम) में धारा 147, 148, 302/149, 307/149 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या 286 वर्ष 1996, थाना- भोगांव, जिला-मैनपुरी से उत्पन्न हुआ आरोपी-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध पारित निर्णय और आदेश, को एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

192. आरोपी अपीलकर्ता, जिन्हें लगभग 18 वर्षों से जेल में होने की सूचना दी गई है, जब तक कि वे धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन पर किसी अन्य मामले में वांछित न हों, को तुरंत रिहा कर दिया जाए, ।

193. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मैनपुरी को भेजी जाए, जो इस निर्णय के संदर्भ में अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की रिहाई के लिए संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेगा।

1536/18

(2023) 5 ILRA 958

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 1536/2018

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 1686 / 2018

असलम नूर खान ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री योगेश अग्रवाल, श्री जुगल किशोर खन्ना, श्री अमित खन्ना

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री राजीव कुमार सिंह परमार

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 452, 304/34- दोषसिद्धि को- चुनौती - अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के अनुसार दोनों आरोपियों ने वादी की पत्नी को आग लगाकर खत्म करने की कोशिश की, जब मृतक ने आरोपियों से मृतक की जमीन छोड़ने का अनुरोध किया क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के लिए रोजी रोटी जुटा रहे थे - मृत्यु पूर्व दिए गए बयान से यह स्पष्ट है कि आरोपियों ने उसे पीटा और आग लगा दी - अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों से यह नहीं कहा जा सकता कि यह आरोपियों की पूर्व नियोजित कार्रवाई थी - मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार और तुकाराम मामले में बताए गए सिद्धांत पर विचार करते हुए, यह हत्या न होकर मानव वध का मामला था और यह अपराध आईपीसी की धारा 304 भाग I के तहत दंडनीय है - इस प्रकार, सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसमें संशोधन की आवश्यकता है - सजा के सुधारात्मक सिद्धांत को अपनाया जाना है, इसलिए 'दंड के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए सजा देना आवश्यक है आनुपातिकता'- आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए। (पैरा 1 से 28)

अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. जी.वी. सिद्धरमेश बनाम कर्ण स्टेट (2010) 3 एससीसी 152
2. हरिओम बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (2014) 0 सुप्रीम (एससी) 783 रवि प्रताप सिंह बनाम यूपी राज्य (2020) एससीसी ऑनलाइन सभी 841
3. छगनभाई लिमजीभाई पलास बनाम गुजरात राज्य सीआरएलए नं. 2011 का 806
4. राजू राजीव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सीआरएलए संख्या 4701/2013
5. श्याम मिश्रा बनाम यूपी राज्य (2022) 9 एडीजे 322 डीबी
6. यूपी राज्य बनाम मदन मोहन व अन्य (1989) एआईआर एससी 1519
7. गोविंदप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2010) 6 एससीसी 533
8. अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य (2021) 3 एससीसी 12
9. प्रवत चंद्र मोहंती बनाम उड़ीसा राज्य (2021) 3 एससीसी 529 परदेशीराम बनाम एम.पी. राज्य (2021) 3 एससीसी 238
10. तुकाराम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250
11. बी.एन. कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (1994) एसयूपीपी 1 एससीसी 304
12. वीरन व अन्य बनाम एम.पी. राज्य (2011) 5 एससीसी 300
13. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य (1977) एआईआर एससी 1926
14. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य (2004) 7 एससीसी 257
15. रवादा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य (2017) एआईआर एससी 1166
16. जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एससीसी 532
17. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734
18. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह (2014) 7 एससीसी 323
19. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) 3 एससीसी 441
20. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य (2016) 1 एससीसी 463

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, एवं माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. इन दोनों अपीलों में अपीलकर्ताओं के वकील श्री जुगल किशोर, श्री अमित खन्ना द्वारा सहायता प्राप्त और राज्य के लिए एजीए को सुना।

2. ये अपीलें विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट) / अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 2, फर्रुखाबाद द्वारा 2014 के सत्र ट्रायल नंबर 91 (राज्य बनाम असलम नूर खान और अन्य) में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 452, 304/34 (इसके बाद 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) के तहत आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराते हुए 19.02.2018 के फैसले और आदेश को चुनौती देती हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 304/34 के तहत 1000/- रुपए की राशि और जुर्माना न

चुकाने पर प्रत्येक को छह-छह माह का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा और उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 452 के अंतर्गत तीन-तीन वर्ष के सश्रम कारावास और 5,000/- रुपए के जुर्माने की सजा भी सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में प्रत्येक को तीन-तीन माह का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

3. रिकॉर्ड और निचली अदालत के फैसले से पता चला है कि दोनों आरोपियों ने शिकायतकर्ता की पत्नी को जलाकर मारने की कोशिश की। यह घटना दिनांक 04.11.2013 को शाम 06:00 बजे हुई जब मृतक ने आरोपियों से मृतक की भूमि वापस करने छोडने का अनुरोध किया क्योंकि वे गरीब थे। इस अनुरोध से दोनों आरोपियों के मन में गुस्सा पैदा हो गया। असलम नूर खान गंदी भाषा का इस्तेमाल करने लगा। मृतका उसके घर गई, दोनों ने उसका पीछा किया और उस पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी।

4. पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि चेहरे, गर्दन, छाती, बाहों और दोनों पैरों पर जलने के निशान थे। मौत सेप्टीसीमिक सदमे के कारण हुई थी, जो कि जलने की चोटों के परिणामस्वरूप हुई थी। मौत 14.11.2023 को हुई, अर्थात् घटना के 10 दिनों के बाद।

5. जांच शुरू होने पर, जांच अधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। मजिस्ट्रेट ने आरोपियों को तलब किया और उन्हें सत्र न्यायालय में पेश किया क्योंकि प्रथम दृष्टया उन पर धारा 304, 452, 504 आईपीसी के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत किए गए अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जाना था।

6. तलब किए जाने पर, आरोपी व्यक्तियों ने खुद को निर्दोष बताया और चाहते थे कि उन पर मुकदमा चलाया जाए। आईपीसी की धारा 452, 504, 304 और धारा 34 के तहत दोषी ठहराए जाने के लिए आरोप तय किए गए थे। मुकदमा शुरु हुआ और अभियोजन पक्ष ने 10 गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं:-

1	शाहनवाज खान	अभियोजन गवाह 1
2	यूसुफ खान	अभियोजन गवाह 2
3	अजीत प्रताप सिंह	अभियोजन गवाह 3
4	मनीष कुमार	अभियोजन गवाह 4
5	डॉ. कालका प्रसाद	अभियोजन गवाह 5
6	खुश नवाज	अभियोजन गवाह 6
7	रुखसार	अभियोजन गवाह 7
8	वीरेंद्र कुमार यादव	अभियोजन गवाह 8
9	महेंद्र पाल सिंह चौहान	अभियोजन गवाह 9
10	राजेंद्र प्रसाद चौधरी	अभियोजन गवाह 10

7. चश्मदीद गवाहों की गवाही के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:-

1	देवदार	प्रदर्श क-1
2	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
3	मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श क-3
4	पोस्टमार्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क-4
5	पंचायतनामा	प्रदर्श क-5
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क-6
7	साइट योजना	प्रदर्श क-7

8. मुकदमे के अंत में और धारा 313 सीआरपीसी के तहत आरोपी का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

9. अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि तथ्यों के गवाहों ने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया है और इसलिए, अभियुक्त बरी होने के हकदार हैं। अपनी दलील के समर्थन में वकील ने जीवी सिद्धरमेश बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 3 एससीसी 152 के फैसलों पर भरोसा किया है; हरि ओम बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 2014 0 सुप्रीम (एससी) 783; रवि प्रताप सिंह बनाम यूपी राज्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन सभी 841: छगनभाई लिमजीभाई पलास बनाम गुजरात राज्य, 2011 की आपराधिक अपील संख्या 806; राजू @ राजीव बनाम यूपी राज्य, 2013 की आपराधिक अपील संख्या 4701; श्याम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 (9) एडीजे 322 (डीबी) और यूपी राज्य बनाम मदन मोहन और अन्य, एआईआर 1989 एससी 1519 और तर्क दिया है कि यह एक दोषपूर्ण आरोप है। अपीलकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया है कि यह एक ऐसा मामला है जो आईपीसी की धारा 304 भाग -1 या भाग-2 से परे नहीं जाता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी और मृतक के बीच झगड़ा था, आरोपी की ओर से मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मृत्यु पूर्व बयान पर विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा भरोसा नहीं किया जाना चाहिए था, इसका कारण यह है कि जिस अधिकारी ने मृत्यु पूर्व बयान नोट किया था, उसकी शपथ पर जांच नहीं की गई थी।

10. इसके विपरीत, राज्य के लिए एजीए ने तर्क दिया है कि मृत्यु पूर्व बयान विश्वसनीय है। विद्वान न्यायाधीश ने कोई त्रुटि नहीं की है या कोई त्रुटि नहीं है जो इन अपीलों में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करती है।

11. हमने पक्षों के वकीलों को सुना है। तथ्य यह है कि मृतका का मृत्यु पूर्व बयान 05.11.2013 को दर्ज किया गया था, जहां मृतक ने स्पष्ट रूप से आरोपी अपीलकर्ताओं के नाम का उल्लेख

सत्यापित

किया था कि उन्होंने पहले उसे पीटा और फिर उसे आग लगा दी।

12. अपीलकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया है कि मृतका की मृत्यु जलने के कारण हुई, जो उसे खाना पकाने के दौरान दुर्घटनावश लगी थी। मृत्यु पूर्व बयान और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को देखते हुए, हम आरोपी-अपीलकर्ताओं के वकील की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते कि यह एक आकस्मिक मौत थी, आरोपी ने अपराध किया था।

13. इसलिए, हमारा सुविचारित मत है कि विद्वान न्यायाधीश ने मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करके कोई गलती नहीं की है। गोविंदप्पा और अन्य बनाम कर्णाटक राज्य, (2010) 6 एससीसी 533 के मामले में लिए गए निर्णय के आलोक में, हमारे लिए मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा न करने का कोई कारण नहीं है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 के तहत साक्ष्य मूल्य मृत्यु पूर्व बयान की स्वीकृति की रूपरेखा को पूरा करता है। हम इस बात से आश्वस्त हैं कि पीडब्ल्यू-1 ने अपने बयान से मुकरते हुए कहा है कि उसने घटना के बारे में बताया है और इसलिए वकील की यह दलील कि यह घर में खाना पकाने के दौरान दुर्घटनावश जलने से हुई आकस्मिक मौत थी, इस तथ्य को झुठलाता है। हमारे सामने मौजूद सबूतों की समग्रता की जांच करनी होगी। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि यह दुर्घटनावश मौत नहीं बल्कि हत्या की गई थी और हम मानते हैं कि आईपीसी की धारा 304 भाग-1 के तहत दोषसिद्धि को ठीक से दर्ज किया गया है और अदालतों द्वारा निर्धारित शर्तें संतुष्ट हैं जैसा कि यहां चर्चा की गई है।

14. हमारे विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाना चाहिए या दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग- या भाग-1 के तहत परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का संदर्भ देना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

> "299. गैर इरादतन हत्याः जो कोई भी मौत का कारण बनने के इरादे से या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से मौत का कारण बनता है जिससे मृत्यु होने की संभावना है, या इस ज्ञान के साथ कि वह इस तरह के कृत्य से मौत का

कारण बन सकता है, वह गैर इरादतन हत्या का अपराध करता है।

15. 'हत्या' और 'गैर इरादतन हत्या' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा अदालतों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों के सही दायरे और अर्थ को खो देती हैं, खुद को सूक्ष्म अमूर्तता में खींचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और आवेदन के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका आईपीसी की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं की सराहना करने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
एक व्यक्ति गैर इरादतन हत्या करता है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है।	कुछ अपवादों के अधीन गैर-इरादतन हत्या है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है।

इरादा

(ए) मौत का कारण बनने के इरादे से नहीं तो	(1) मृत्यु का कारण बनने के इरादे से; नहीं तो
(ख) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; नहीं तो	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जैसा कि अपराधी जानता है कि उस व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है जिसे नुकसान पहुंचाया गया है:
ज्ञान	ज्ञान
(ग) इस जानकारी के साथ कि इस कृत्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना तुरंत खतरनाक है कि यह पूरी संभावना में मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट का कारण बनना चाहिए जो मृत्यु का कारण बन सकता है, और मृत्यु या ऐसी चोट के जोखिम के लिए किसी भी बहाने के बिना जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

16. खोकन @ खोखन (सुप्रा) मामले में नवीनतम फैसले में जहां तथ्य इस मामले के समान थे, शीर्ष अदालत ने आरोपी अपीलकर्ता की अपील को स्वीकार कर लिया है। अनवर सिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12 के मामले में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय, जो कानूनी अभिभावक से अपहरण से संबंधित था, जिसमें यह स्थापित किया गया था कि न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए यह प्रतिपादित किया कि अभियुक्त द्वारा पहले से ही बिताई गई कैद की अवधि को कम करके निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धांत को पूरा किया जाएगा। हमारे मामले में, यह वह भयानक मामला नहीं है जहां आरोपी को इन सभी निर्णयों के प्रकाश में नहीं निपटाया जा सकता है। प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529 और परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3

एससीसी 238 में भी आरोपियों के लाभ के लिए फैसले दिए जाएंगे।

17. मृतक के मृत्यु पूर्व बयान और अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों से, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अभियुक्त का पूर्व नियोजित कार्य था। जो चोटें आई थी, वे जलने की चोटें थी, जो इरादे को दर्शाती है, साथ ही ज्ञान के साथ कि विवेकी व्यक्ति को पता होगा कि अगर किसी को आग लगाई जाती है, तो उसे गंभीर चोटें आएंगी या मृत्यु भी हो सकती है। आईपीसी की धारा 304 के तहत भी जांच की गई और आईपीसी की धारा 304 के तहत भी आरोप पत्र दायर किया गया। दुर्भाग्य से, तय किए गए आरोप उच्च अपराध के लिए थे। जलने की चोर्ट मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण हिस्सों पर थी और यह सामान्य प्रकृति में मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त था, लेकिन आईपीसी की धारा 300 के अपवाद में आएगा।

18. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ चिकित्सा अधिकारी की राय और तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य 9 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, (2011) 4 एससीसी 250 और बीएन कावताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में रिपोर्ट की गई, 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में दी गई रिपोर्ट के अनुसार, हमारा सुविचारित मत है कि यह हत्या का मामला था, जो हत्या का नहीं था और यह अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग । के तहत दंडनीय है।

19. उपरोक्त चर्चाओं के परिणाम से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, आरोपी को हालांकि मृतक को शारीरिक नुकसान पहुंचाने के बारे में जानकारी और इरादा था, लेकिन वह मृतक से दूर नहीं जाना चाहता था। इसलिए यह मामला आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के तहत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय उपरोक्त अपराध वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार धारा 304 भाग-1 के अंतर्गत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखा जाना है।

20. हालांकि यह देखा जाना है कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

21. मोहम्मद ग्यासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926

में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह कहा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विचलन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना पड़ता है। उप-संस्कृति जो पूर्व-सामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, का मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनरुत्थान द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए प्रेरित कर रहा है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मानव सजा को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में आधुनिक समुदाय की प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण प्रबल होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग को खराब करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोधी रूप से दंडित करना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं मिलता है।

22. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 257 में 'उचित वाक्य' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि सजा अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होनी चाहिए। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है।

23. रवादा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166 मामले में सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य, (2010) 12 एससीसी 532, गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एससीसी 734, सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 एससीसी 323, पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) बनाम हरियाणा राज्य के फैसले का हवाला दिया। (2016) 1 एससीसी 463 और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निरोध को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और

दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, आरोपी का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। यह प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के शिकार के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रक्रिया पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असंतोष के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक सहन और विकसित नहीं कर सकता है। इसलिए, सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधी नहीं है, बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

24. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए।

25. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए सजा देना आवश्यक है।

अनुवादित

आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा आजीवन कारावास के लिए दी गई सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है. माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

26. इसलिए, हम दोनों अभियुक्तों के लिए 'आजीवन कारावास' की सजा को अवधि में परिवर्तित करते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत जुर्माने को घटाकर 5,000/- रुपये कर दिया जाता है और चूक की सजा को बनाए रखा जाता है। आरोपी अपीलकर्ताओं को किसी अन्य मामले में वांछित नहीं होने पर मुक्त किया जाए। हालांकि, अगर जुर्माना नहीं भरा जाता है, तो डिफ़ॉल्ट सजा 9 वें वर्ष के पूरा होने के बाद चलेगी।

27. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, दोनों अपीलों को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है। सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित किया जाएगा। रिकॉर्ड को तुरंत नीचे अदालत में प्रेषित किया जाए।

(2023) 5 ILRA 964

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 1566/2011

मो. अज़ीम और अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सुशील शुक्ला, श्री ए.के. श्रीवास्तव, श्री मो. फैज़, श्री शिव नारायण सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री मोहम्मद आसिफ, श्री एन.आई. जाफरी

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 304बी/34 - चुनौती - दोषसिद्धि - हत्या से हुई मौत - ससुराल वालों ने मृतका पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी - मृतका की मृत्यु सेप्टेसिमिया के कारण हुई - मृत्युपूर्व बयान में उल्लेख है कि दो महिलाओं की उपस्थिति के कारण मृत्यु जलने से हुई - मृत्युपूर्व बयान के आधार पर दो भाइयों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि घटना के तुरंत पहले दहेज की मांग नहीं की गई है- घटना उस समय घटित हुई जब मृतका को उसकी सास व जेठानी द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था - मुख्य अपराधी 12 वर्ष की सजा काट चुके हैं, अतः 10 वर्ष की सजा पूरी होने पर

उन्हें मुक्त कर दिया जाएगा - इसके अतिरिक्त, अन्य दो अभियुक्तों की भूमिका सिद्ध नहीं हुई, मृतका को उसके पति ने अस्पताल पहुंचाया तथा देवर का नाम भी मृत्युपूर्व बयान में नहीं है, अतः उन्हें दोषमुक्त किया जाता है। (पैरा 1 से 34)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. पुष्पा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सीआरएलए संख्या 1689/2017
2. श्रीमती किरण एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सीआरएलए संख्या 2218/2018
3. गिरीश सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2020) 18 एससीसी 423
4. सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2021) 6 एससीसी 1
5. गोविंदप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2010) 6 एससीसी 533
6. वीरला सत्यनारायण बनाम. ए.पी. राज्य (2009) 16 एससीसी 316
7. तुकाराम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 एससीसी 250
8. बी.एन. कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (1994) एसयूपीपी 1 एससीसी 304
9. वीरन व अन्य बनाम एम.पी. राज्य (2011) 5 एससीसी 300
10. बेंगाई मंडल @ बेगाई मंडल बनाम बिहार राज्य
11. चिर्रा शिवराज बनाम ए.पी. राज्य
12. श्रीमती रमा देवी उर्फ रमाकांति बनाम यू.पी. राज्य
13. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य (1977) एआईआर एससी 1926
14. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य (2004) 7 एससीसी 257
15. रवादा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य (2017) एआईआर एससी 1166
16. जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एससीसी 532
17. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734
18. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह (2014) 7 एससीसी 323
19. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) 3 एससीसी 441
20. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य (2016) 1 एससीसी 463

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुना और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

2. यह अपील अतिरिक्त द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.03.2011 को चुनौती देती है। सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार विरोधी) (राज्य बनाम मोहम्मद अज़ीम और अन्य), बरेली सत्र परीक्षण संख्या 301/2001 में। सभी अपीलकर्ताओं पर धारा 304-बी भा०द०वि० के तहत परिभाषित अपराधों के लिए आरोप लगाए गए थे और इसके अलावा और वैकल्पिक रूप

से, अपीलकर्ता संख्या 3 और 4 पर भा०द०वि० की धारा 302 में परिभाषित अपराध के लिए भी आरोप लगाए गए थे। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निरोधक), बरेली द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.03.2011 द्वारा, अपीलकर्ताओं को धारा 304-बी के साथ पठित धारा 34 भा०द०वि० के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया है। अपीलकर्ता क्रमांक 3 और 4 को भी धारा 302 भा०द०वि० के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया है, लेकिन अंत में सजा भा०द०वि० की धारा 302 का उल्लेख करने के अलावा, सभी अपीलकर्ताओं की सजा भा०द०वि० की धारा 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 304 बी के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया था। अपीलकर्ता संख्या 3 और 4 को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है जबकि अपीलकर्ता संख्या 2 और 3 को 10 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है।

3. अभिलेख से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि दिनांक 18.07.2000 को लगभग 8:00 बजे रात्रि में अभियुक्तों द्वारा सूचक की बहन को मिट्टी का तेल डालकर आग लगाकर जला दिया गया था। आरोपी व्यक्ति घायल शकीरा (मृतक) को बरेली से लेकर भाग गए और अंत में, जब वह अस्पताल पहुंचे, जहां उसकी बहन जली हुई हालत में पड़ी थी, तो उसके ससुराल पक्ष से परिवार का कोई भी सदस्य मौजूद नहीं था। मुखबिर ने अंततः मृतक को भगाने के अपने सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए आरोपी व्यक्तियों द्वारा किए गए कृत्य के बारे में अनुमान लगाया। पीड़िता ने मुखबिर को यह भी बताया कि अपीलकर्ताओं ने उसे मिट्टी का तेल डालकर जला दिया है।

4. आरोपियों को तलब किया गया और मोहम्मद अज़ीम और मोहम्मद इदरीस पर विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा आरोप तय किए गए, जबकि सभी चार आरोपियों पर भा०द०वि० की धारा 302, 304-बी के साथ पठित भा०द०वि० की धारा के अन्तर्गत अपराध करने का आरोप लगाया गया। अभियुक्तों ने खुद को निर्दोष बताया और उन पर मुकदमा चलाया जाना चाहा। जिन अपराधों के लिए अभियुक्तों पर आरोप लगाए गए थे, वे सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे, इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध थे।

5. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 10 गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं:

1.	जिसान खान	पीडब्लू1
2.	डॉ. ए.के. अग्रवाल	पीडब्लू2
3.	मो. मोबीन खान	पीडब्लू3
4.	डॉ. के.एस. गुप्ता	पीडब्लू4
5.	डॉ. एस.के. सक्सेना	पीडब्लू5

6.	राजा राम	पीडब्लू6
7.	मो. सिद्दीकी	पीडब्लू7
8.	रघुबंशी लाल	पीडब्लू8
9.	भूपेन्द्र सिंह	पीडब्लू9
10.	डॉ. पी.एन. पांडे	पीडब्लू10

6. नेत्र संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज़ दायर किए गए:

1.	प्रथम सूचना रिपोर्ट	ईएक्स.के. ए.13
2.	प्रश्न पर लिखित रिपोर्ट	ईएक्स.के. ए.1
3.	मिट्टी के तेल के लैंप और आधे जले सोफे की रिकवरी मोमो	ईएक्स.के. ए.17
4	डॉ. ए.के. का नोट अग्रवाल	ईएक्स.के. ए.2
5	श्रीमती का वक्तव्य शकीरा (मृत्यु पूर्व घोषणा)	ईएक्स.के. ए.4
6.	डॉ. ए.के. का नोट अग्रवाल	ईएक्स.के. ए.3
7.	पोस्टमार्टम रिपोर्ट	ईएक्स.के. ए.5
8.	सूचकांक के साथ	ईएक्स.के.
	साइट योजना	ए.16

7. क्या पति और जीजा को हमेशा दहेज मांगने का दोषी माना जाना चाहिए और दंडित किया जाना चाहिए, भले ही मृत पत्नी द्वारा अपने मृत्युपूर्व बयान में उनके खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाया गया हो, जहां घटना के समय पति मौजूद नहीं था। हुआ और उसे बचाने के लिए अस्पताल ले गए। मृत्यु पूर्व बयान में जीजा का नाम कहीं नहीं था। मृतक के परिजनों द्वारा पूरी तरह से मनगढ़ंत कहानी बनायी गयी है. यह एक भयावह मामला है जहां न केवल न्याय का गर्भपात हुआ है, बल्कि यह देखने के लिए न्यायाधीश का अत्यधिक उत्साह है कि अभियुक्तों को दंडित किया जाए। विद्वान न्यायाधीश ने 80 से अधिक पृष्ठ समर्पित किए हैं, जबकि मामले को 10 दिनों की अवधि के बाद मरने वाले घायल के मृत्युपूर्व बयान के आधार पर संक्षिप्त रूप में निपटाया जा सकता था, जिसमें मृत्युपूर्व बयान में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि पति या फिर भाई ने ही उसे जलाया है. मृत्युपूर्व बयान में बताया गया है कि पति ही घटना घटित होने के बाद घर की महिलाओं के बीच अपनी दुकान से भागकर घर आया था और उसे अस्पताल ले जाकर इलाज कराया था। दुर्भाग्यवश मरने से पहले दिए गए बयान में जीजा का नाम तक नहीं था। विद्वान

न्यायाधीश ने मृत्यु पूर्व दिए गए बयान पर भरोसा किया था, यहाँ तक कि फैसले में भी इसे दोहराया था और हम इस बात से आश्वस्त हैं कि विद्वान न्यायाधीश ने दोषसिद्धि दर्ज करने के अपने अतिउत्साह में साक्ष्य की सराहना करने के लिए किरायेदारों और आपराधिक न्यायशास्त्र की रूपरेखा का पालन न करने में खुद को गुमराह किया है। विद्वान न्यायाधीश के समक्ष गंभीर रूप से बताया गया कि मृतक के भाई द्वारा मौखिक साक्ष्य, जो कई आपराधिक अपराधों में शामिल है, जिसे रिकॉर्ड पर लाया गया है। जिरह के दौरान जिसने दांपत्य जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया है, उसकी गवाही जो मृत्यु पूर्व दिए गए बयान से बिल्कुल विपरीत है, उसे विद्वान न्यायाधीश द्वारा स्वीकार किया जा सकता था। मृत्युपूर्व बयान में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि परिवार की महिलाओं या पति द्वारा किसी राशि की मांग की गई थी। जिस व्यक्ति की विश्वसनीयता विश्वसनीयता के लायक नहीं है, उसके सर्वव्यापी आरोपों पर नीचे की अदालत द्वारा विस्तृत चर्चा की गई है, जबकि यह माना गया है कि सभी आरोपियों के खिलाफ भा०द०वि० की धारा 304-बी बनाई गई है।

8. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने उपरोक्त अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है।

9. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने 22017 की आपराधिक अपील संख्या 1689 (***पुष्पा देवी बनाम यूपी राज्य***) में 05.07.2022 को और 2018 की आपराधिक अपील संख्या 2218 में पारित इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसलों पर भरोसा किया है। (***श्रीमती किरण और अन्य बनाम यूपी राज्य***) ने 29.11.2022 को निर्णय दिया और तर्क दिया कि दोषपूर्ण आरोप है और अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच के बाद आरोप को दोबारा तय नहीं किया जा सकता था, जिन्होंने अभियोजन का समर्थन नहीं किया था। यह अपीलकर्ता के विद्वान वकील का तर्क है, और विकल्प में, यह प्रस्तुत किया गया है कि यह एक ऐसा मामला है जो भा०द०वि० की धारा 304 भाग I या भाग II से आगे नहीं जाता है। आरोपी का मृतक के साथ दुष्कर्म करने का कोई इरादा नहीं था। यह प्रस्तुत किया गया है कि मृत्यु घटना के 10 दिनों के बाद सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी, पी.डब्ल्यू. 1 की गवाही के अनुसार भी मृतक की मृत्यु घटना के 10 दिनों के बाद हुई थी।

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मृतक की मृत्यु जलने की चोटों के कारण हुई जो वह खाना पकाते समय दुर्घटनावश लग गई थी। मृत्यु पूर्व बयान और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को देखते समय, हम आरोपी-अपीलकर्ताओं के वकील

की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते कि यह एक आकस्मिक मृत्यु थी।

11. इसके विपरीत, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि मृत्युपूर्व घोषणा विश्वसनीय है और इसलिए, विद्वान न्यायाधीश ने कोई त्रुटि नहीं की है या ऐसी कोई त्रुटि नहीं है जो इस अपील में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करती है। इसके अलावा, अपराध की वीभत्सता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए इस अदालत को मामले में कोई नरमी नहीं दिखानी चाहिए। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि भा०द०वि० की धारा 304बी की सामग्री को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही माना गया है जिन्होंने मामले में तथ्यों पर कानून लागू किया है।

12. हमने गवाहों के साक्ष्य और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट पर विचार किया है जिसमें कहा गया है कि मृतक के शरीर पर जलने की चोटें सेप्टेसिमिया में विकसित हो गईं और यही मृत्यु का कारण थी और यह मानव वध की मौत थी, हम न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं। उसके नीचे यह मानव हत्या थी।

13. मृत्यु पूर्व बयान में उल्लेख किया गया है, दो महिलाओं की उपस्थिति जो विकास का कारण बनी, सेप्टीसीमिया मृत्यु के कारण हुई और इसलिए, हत्या की मृत्यु स्थापित की गई है।

14. यह हमें इस तथ्य पर ले जाता है कि क्या हम दोनों भाइयों, मोहम्मद अज़ीम और मोहम्मद इदरीस को दोषी ठहरा सकते हैं। मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर भी उपस्थिति स्थापित नहीं होने पर भी आरोपी को बरी करना होगा क्योंकि घटना के तुरंत पहले दहेज की कोई मांग नहीं की गई है। मृत्यु पूर्व बयान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि घटना उस समय हुई जब मृतक को सास और ननद (जेठानी) द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था। भा०द०वि० की धारा 304-बी के अन्तर्गत सजा की आवश्यकता वाले आरोपों को ***गिरीश सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य, (2020) 18 एससीसी 423*** में दोहराया गया है। ***सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2021) 6 एससीसी 1*** में आवश्यक सामग्री को फिर से दोहराया गया है।

15. सतबीर सिंह (सुप्रा) में निर्धारित अभियोजन, बचाव और दिशानिर्देशों को हमारे मामले में देखा जाना चाहिए। धारा 133-बी साक्ष्य अधिनियम को विद्वान न्यायाधीश द्वारा लागू नहीं किया जा सकता था और धारा 106 साक्ष्य अधिनियम के तहत पांडा को लागू नहीं किया जा सकता था।

16. विद्वान न्यायाधीश ने मृत्यु पूर्व दिए गए बयान को स्वीकार कर लिया, जिसमें किसी भी अभियुक्त की ओर

से किसी भी प्रत्यक्ष कृत्य के बारे में कुछ नहीं बताया गया है। जिन गवाहों की उपस्थिति स्थापित नहीं हुई है, उनकी मौखिक गवाही पर आरोपी को भा०द०वि० की धारा 304-बी के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। मृतक लगभग 10 दिनों तक इलाज में रहा था, विद्वान न्यायाधीश द्वारा निर्णयों की श्रेणियों पर भरोसा करते हुए मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा किया गया है।

17. इसलिए जहां तक दहेज हत्या का सवाल है, हम किसी भी आरोपी के लिए विद्वान न्यायाधीश से सहमत नहीं हो सकते। यह साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि धारा 304-बी की धारा अनुपस्थित है, दहेज की मांग के अनुसार मृतिका के साथ किसी ने क्रूरता की थी। विद्वान न्यायाधीश द्वारा उठाया गया अनुमान मृत्यु पूर्व दिए गए बयान के आधार पर धराशायी हो जाता है, गिरीश सिंह (सुप्रा) के फैसले से हम अपने विचार में मजबूत हो गए हैं।

18. हमारी सुविचारित राय है कि विद्वान न्यायाधीश ने मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करके कोई त्रुटि नहीं की है। ***गोविंदप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 6 एससीसी 533*** में निर्णय के आलोक में, हमारे पास मृत्युपूर्व घोषणा को स्वीकार न करने का कोई कारण नहीं है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 के तहत मृत्युपूर्व घोषणा का साक्ष्यात्मक मूल्य साबित होता है। वकील का यह तर्क कि यह घर में खाना पकाने के दौरान दुर्घटनावश जलने से हुई एक आकस्मिक मौत थी, ट्रायल कोर्ट ने स्वीकार नहीं किया है और हम इससे सहमत हैं। हमारा मानना है कि यह एक मानव वध मृत्यु थी न कि आकस्मिक मृत्यु।

19. 18.07.2000 को मृतक का भाई जिसे पीडब्लू1 दर्शाया गया है। इस मामले में, विद्वान न्यायाधीश ने जिसकी गवाही पर बहुत अधिक भरोसा किया है, वह रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के विपरीत है। उसने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वह बरेली के अस्पताल गया था और उसकी बहन अस्पताल में भर्ती थी और नर्स उसकी देखभाल कर रही थी। भाई द्वारा बताई गई मौखिक मृत्यु पूर्व घोषणा बिल्कुल संदिग्ध है और मृतक के लिखित रूप से प्रमाणित मृत्यु पूर्व घोषणा के विपरीत है। क्या विद्वान न्यायाधीश इस मौखिक मृत्युपूर्व बयान पर भरोसा कर सकते थे जो कि मृतक के लिखित मृत्युकालीन बयान में अनुपस्थित है। यदि उक्त साक्ष्य को स्वीकार भी कर लिया जाए तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि घटना कारित करने में सहायक रहे जीजा या पति को इस गवाह ने अपना प्रतिपरीक्षण स्वीकार कर लिया है। उसने स्वीकार किया है कि उसका

वैवाहिक जीवन तनावपूर्ण रहा है, वह स्मैक से जुड़े मामले में आरोपी था, जो कि प्रतिबंधित पदार्थ है। हमें इन तथ्यों से कोई सरोकार नहीं है लेकिन इससे उस गवाह के चरित्र का पता चलता है जिसे यह भी नहीं पता कि उसकी बहन का इलाज कहां हो रहा था।

20. यह हमें अगले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या यह मृतक को खत्म करने के सामान्य उद्देश्य से की गई हत्या थी या क्या यह भा०द०वि० की धारा 300 के किसी अपवाद के अंतर्गत आएगा?

21. भारतीय दंड संहिता की धारा 34 इस प्रकार है:

"भारतीय दंड संहिता में धारा 34। [34. सामान्य आशय के अग्रसारण में कई व्यक्तियों द्वारा किया गया कार्य। - जब एक आपराधिक कार्य सभी के सामान्य आशय के अग्रसारण में कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, तो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति इसके लिए उत्तरदायी होता है वह उसी तरीके से कार्य करता है जैसे कि यह अकेले उसके द्वारा किया गया हो।]"

22. क्या यह कहा जा सकता है कि मृतक को खत्म करने पर आम आपत्ति थी। उक्त घटना के स्थान पर पति और जीजा मौजूद नहीं थे, जिससे हमें दो महिलाओं के कृत्य का पता चलता है।

23. यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक को खत्म करने का कोई सामान्य उद्देश्य था। इसलिए, धारा 34 की सहायता से दोषसिद्धि को रद्द किया जाता है। भा०द०वि० की धारा 34 और धारा 304-बी को लागू करने के सिद्धांत ***वीरला सत्यनारायण बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2009) 16 सुप्रीम कोर्ट केस 316*** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार नहीं बनाए गए हैं।

24. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

"299. गैर इरादतन मानव वध: *जो कोई मृत्यु कारित करने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के इरादे से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य गैर इरादतन हत्या का अपराध करके मृत्यु कारित करता है।"*

25. 'हत्या' और 'गैर इरादतन हत्या' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को नजरअंदाज कर देते हैं और खुद को छोटे-छोटे निष्कर्षों में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भा०द०वि० की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं

को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता है यदि वह कार्य, जिससे मृत्यु कारित हुई हो, किया गया हो-	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।
आशय	
(ए) मृत्यु कारित करने के आशय से; या	(1) मृत्यु कारित करने के आशय से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता हो कि इससे उस व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है, जिसे नुकसान पहुंचाया गया है;
ज्ञान	**ज्ञान**
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना	(4) इस ज्ञान के साथ कि यह कृत्य तुरंत इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है .
है।	

26. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि मृत्यु सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी और घटना के 10 दिन बाद हुई थी। आरोपी- अपीलकर्ता मृतिका के पति, जीजा (जेठ) और भाभी (जेठानी) हैं। आरोपी-अपीलकर्ता 10 साल से अधिक समय से जेल में हैं और कम सजा का अनुरोध कर रहे हैं। इसलिए, चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच ***और तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य*** के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों पर विचार करना, **(2011) 4** में रिपोर्ट किया गया ***एससीसी 250 और 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304*** और ***वीरन और अन्य बनाम एमपी राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300*** में रिपोर्ट किए गए बीएन कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में, हम

निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मौत पूर्व नियोजित नहीं थी. हमारे द्वारा चर्चा की गई मिसालें हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देंगी, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध भा०द०वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है, लेकिन यह गैर इरादतन हत्या है, भा०द०वि० की धारा 304 (भाग II) के तहत दंडनीय है। हम भी हैं हमारे विचार में ***बेंगई मंडल उर्फ बेगई मंडल बनाम बिहा राज्य***, ***चिर्रा शिवराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य***, श्रीमती में अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा लिए गए निर्णयों से यह मजबूत हुआ। ***रमा देवी उर्फ रमाकांति बनाम यूपी राज्य*** और ***श्रीमती कांति और अन्य बनाम यूपी राज्य (सुप्रा)***।

27. अब यह देखना होगा कि दोनों महिलाओं को सजा की मात्रा क्या होगी। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

28. ***मोहम्मद में. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926],*** सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह देखा है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, फोकस व्यक्ति में दंडविद्या में रुचि है और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो बिगड़ गया है आपराधिकता और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंकवाद में' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल पैदा करती है उसके दिमाग पर चोट। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते हैं।"

29. ***देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]*** में 'उचित वाक्य' की व्याख्या यह कहते हुए की गई थी कि वाक्य अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और

लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

30. ***रावदा शशिकला बनाम स्टेट ऑफ एपी एआईआर 2017 एससी 1166*** में, सुप्रीम कोर्ट ने ***जमील बनाम स्टेट ऑफ यूपी [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734 में दिए गए निर्णयों का उल्लेख किया।], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441],*** और ***राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]*** और ने दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। . इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली

में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

31. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, सभी उपाय किए जाने चाहिए उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए आवेदन किया।

32. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली न्यायालय द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

33. इसलिए, आरोपी व्यक्तियों को भा०द०वि० की धारा 304 (भाग II) के तहत दंडित किया जाता है। जहां तक मुख्य दोषियों श्रीमती अज्जो बानो और अजायब बानो उर्फ जब्बो और श्रीमती रजिया बेगम का सवाल है, वे 12 साल की सजा काट चुके हैं, इसलिए हमारा मानना है कि 10 साल पूरे होने पर उन्हें रिहा कर दिया जाएगा। जो जुर्माना अदा नहीं किया गया है, उसे डिफ़ॉल्ट सजा में समायोजित किया जाएगा, जो कारावास के 10वें वर्ष के बाद शुरू होने वाली 3 महीने की सजा है। जहां तक अन्य दो आरोपियों मोहम्मद अजीम और मोहम्मद इदरीस की बात है तो उपरोक्त घटना में उनकी भूमिका साबित नहीं हुई है. पति मृतिका को अस्पताल ले गया। मृत्युपूर्व बयान में जीजा-साले का नाम भी नहीं है, उन्हें बरी किया जाता है। यदि उन्हें किसी अन्य अपराध में वारंट नहीं होने वाले आदेश के अनुसार जमानत पर रिहा किया जाता है तो उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

34. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, **अपील आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जायेंगे। रिकॉर्ड तुरंत ट्रायल कोर्ट को वापस भेजा जाए।

35. अभियुक्तों को दिनांक 11.4.2023 को

जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया जाता है, उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन यदि अभी तक रिहा नहीं किया गया है, तो उन्हें तुरंत रिहा किया जाए।

(2023) 5 ILRA 972

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,

आपराधिक अपील संख्या 2942/2012

के साथ

आपराधिक अपील संख्या 7154/2011

एलिजा ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री रविंदा प्रकाश श्रीवास्तव, श्री गौरव कुमार शुक्ला, श्री शेष नारायण मिश्रा, श्री सुरेंद्र कुमार तिवारी, श्री प्रशांत कुमार, श्री गोपाल दास श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

ए. दंड विधि - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2)- भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 498ए, 304बी एवं 3/4 डी.पी. एक्ट- दोषसिद्धि - चुनौती-हत्या-दहेज की पूर्ति न होने पर पति ने अपने माता-पिता के साथ मिलकर उसे आग के हवाले कर दिया- विचारणीय न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर दी गई-पति 15 वर्ष से कारावास में है, यह अवधि पर्याप्त होगी, अन्य अभियुक्तों की अधिक आयु को देखते हुए जो अब क्रमशः 80 वर्ष एवं 70 वर्ष के हो चुके हैं, उनके लिए सजा के रूप में बिताई गई अवधि पर्याप्त होगी-अतः सजा संशोधित की जाती है। (पैरा 1 से 24)

बी. देव नारायण मंडल मामले में 'उचित सजा' की व्याख्या इस प्रकार की गई थी कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों, अपराध की गंभीरता, अपराध करने के तरीके, आरोपी की आयु और लिंग के आधार पर दी जानी चाहिए। (पैरा 16)

अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं। (ई-6)

<u>उद्धृत वादसूची:</u>

1. वीरन व अन्य बनाम एम.पी. राज्य (2011) 5 एससीआर 300
2. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम एपी राज्य (1977) एआईआर एससी 1926
3. देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य (2004) 7 एससीसी 257
4. रावड़ा शशिकला बनाम. ए.पी. राज्य (2017) एस.सी
5. जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एससीसी 532
6. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य (2012) 8 एससीसी 734
7. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह (2014) 7 एससीसी 323

8. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह (2015) 3 एससीसी 441

9. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य (2016) 1 एससीसी 463

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, एवं माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल, द्वारा प्रदत्त)

(मौखिक निर्णय)

1. आपराधिक अपील सं. 2942/2012 में अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार और आपराधिक अपील सं. 7154/2011 में अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेंद्र कुमार तिवारी और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री पतंजलि मिश्रा को सुना गया।

2. वर्तमान आपराधिक अपीलें अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नं. 8, बस्ती द्वारा सत्र परीक्षण सं. 24 सन् 2010 (राज्य बनाम अकरम अली और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 19.11.2011 को चुनौती देती हैं, जिसके तहत अपर सत्र न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलकर्तागण को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भा.दं.सं.') की धारा 304बी के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया है और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई है। भा.दं.सं. की धारा 498ए के तहत अपराध करने के लिए उन्हें दो वर्ष छह माह का कठोर कारावास और प्रत्येक को रू. 5000/- जुर्माने की सजा सुनायी गयी और जुर्माना अदा न करने पर नौ माह अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। धारा ¾ डी.पी. अधिनियम के अंतर्गत अपराध के लिए अदालत ने आरोपियों को छह-छह महीने के कठोर कारावास और 1000-1000 हजार रुपये जुर्माने की सजा सुनाई है और जुर्माना न देने की स्थिति में छह-छह महीने अतिरिक्त कारावास भुगतने की सजा सुनाई है।

3. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आरोपी अपीलकर्ता इलियास की शादी घटना से दो साल पहले मृतका से हुई थी, दहेज में एक स्प्लेंडर मोटरसाइकिल या रुपये 50,000/- नकद की मांग पूरी न होने पर मृतका को ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित और उत्पीड़ित किया जाता था। दिनांक 28.02.2009 को लगभग 1:00 बजे दोपहर में मृतका के पिता को सूचना मिली कि अभियुक्त-अपीलकर्ता इलियास-मृतका का पति, अकरम अली-मृतका का ससुर, मृतका की सास, जब्बार अली, मो. तैय्यब ने उसकी बेटी को जलाकर मार डाला था।

4. एफ.आई.आर. के आधार पर जांच शुरू हुई और आरोप पत्र दाखिल किया गया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी-अपीलकर्तागण को तलब किया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया क्योंकि कथित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भा.दं.सं. की धारा 302 के तहत वैकल्पिक आरोप तय किए।

5. तलब किये जाने पर, अभियुक्त ने खुद को निर्दोष बताया और विचारण की माँग की।

6. विचारण शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 12 गवाहों का परीक्षण कराया जो इस प्रकार हैं:

1	सई मोहम्मद की गवाही	पीडब्लू1
2	हबीबुर्रहमान की गवाही	पीडब्लू2
3	साहिरा खातून की गवाही	पीडब्लू3
4	सैय्यद अली की गवाही	पीडब्लू4
5	मुस्ताक अली की गवाही	पीडब्लू5
6	ताहिरा खातून की गवाही	पीडब्लू6
7	डॉ. दिलीप कुमार गुप्ता की गवाही	पीडब्लू7
8	डॉ. राम केवल की गवाही	पीडब्लू8
9	हौमान सिंह की गवाही	पीडब्लू9
10	नरेश चन्द्र की गवाही	पीडब्लू10
11	हवलदार यादव की गवाही	पीडब्लू 11
12	नूतन कुमार भारती की गवाही	पीडब्लू12

7. चक्षुदर्शी संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दाखिल किये गये और साबित किये गये:

1	एफ.आई.आर	प्रदर्श क. 20
2	लिखित तहरीर	प्रदर्श क. 1
3	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क. 3
4	पंचायतनामा	प्रदर्श क. 2
5	जले हुए कपड़े की बरामदगी	प्रदर्श क. 4
6	कपड़े का बरामदगी मेमो	प्रदर्श क. 5
7	मिट्टी का बरामदगी मेमो	प्रदर्श क. 6
8	सूची के साथ नक्शा नजरी	प्रदर्श क. 11
9	सूची के साथ नक्शा नजरी	प्रदर्श क. 12
10	सूची के साथ नक्शा नजरी	प्रदर्श क. 13
11	आरोप-पत्र (मूल)	प्रदर्श क. 17
12	आरोप-पत्र (मूल)	प्रदर्श क. 18
13	आरोप-पत्र (मूल)	प्रदर्श क. 19

8. विचारण के अंत में, दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत आरोपी-अपीलकर्तागण के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलकर्तागण को ऊपरोक्तानुसार दोषी ठहराया।

अनुवादित

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.के. तिवारी ने कहा कि आरोपियों द्वारा दहेज की मांग करने की बात साबित नहीं हुई है और मृत्यु दहेज की मांग के कारण नहीं हुई है, बल्कि इसलिए कि मृतका स्वयं गांव के जीवन से खुश नहीं थी और अपने पति के साथ बंबई रहना चाहती थी, उसने खुद को आग लगा ली। आगे कहा गया है कि ससुर और सास पति-पत्नी से अलग रह रहे थे। शादी हो गई और वे खुशी से रह रहे थे, लेकिन गरीबी के कारण आरोपी इलियास, जो बंबई में काम करता था, अपनी पत्नी को वहां नहीं ले जा सका और डी.डब्ल्यू.-1 के अनुसार विवाद हुआ, जो अदालत के सामने पेश होने तक पुलिस के सामने कभी नहीं गया, जैसा कि हिंदी फिल्मों में होता है, वह दिनांक 13.09.2011 को तभी सक्रिय हुए जब उसे बचाव पक्ष के गवाह के रूप में पेश किया गया, वह पुलिस अधिकारियों के सामने अपना पक्ष बताने के लिए कभी नहीं आया, चाहे जो भी हो लेकिन यह कार्य आरोपी द्वारा नहीं किया गया है। इसके अलावा यह कहा गया है कि दोषसिद्धि अनुमान पर आधारित है और त्रुटिपूर्ण है क्योंकि अपीलकर्ता का मृतका से छुटकारा पाने का कोई इरादा नहीं है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित आधिकारिक निर्णयों का अवलंब लिया है :-

(i) दिनांक 23.11.2022 को निर्णीत एसएलपी (क्रि.) सं. 6537/2019 से उत्पन्न आपराधिक अपील सं. 2038 सन् 2022;

(ii) दिनांक 20.08.2020 को निर्णीत एसएलपी (क्रि.) सं. 3842 सन् 2020 से उत्पन्न आपराधिक अपील सं. 530 सन् 2020;

(iii) दिनांक 12.10.2018 को निर्णीत एसएलपी (क्रि.) सं. 8948/2018 से उत्पन्न आपराधिक अपील सं. 1285 सन् 2018.

यह तर्क देने के लिए कि यह स्पष्ट रूप से बरी होने का मामला है/वैकल्पिक रूप से यदि कोई अपराध बनता है तो यह भा.दं.सं. की धारा 304 (1) के तहत है।

10. विद्वान ए.जी.ए. ने दलील दी है कि पी.डब्लू.-7 और पी.डब्लू.-8 के साक्ष्य इस मुद्दे को स्पष्ट करते हैं, मौत आग लगाने के कारण हुई थी या यूं कहें कि जलने की चोटों के कारण हुई थी जो 100% हैं। आरोपियों का पक्ष यह नहीं है कि वे अपराध के स्थान पर मौजूद नहीं थे और उन्होंने अदालत को बताया कि विचारण न्यायालय ने आरोपियों को दोषी ठहराकर कोई त्रुटि नहीं की है। आगे यह भी कहा गया कि किसी भी बचाव में यह नहीं दिखाया गया है कि आरोपी अपराध के स्थान पर मौजूद नहीं थे या उन्होंने मृतक को बचाने की कोशिश की थी। विद्वान ए.जी.ए. श्री पतंजलि मिश्रा ने आगे कहा कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से पता चलता है

कि यह आत्मघाती मौत नहीं थी, बल्कि पहले उसे पीटा गया था और उसके बाद उसे आग लगा दी गई थी। नाक से खून निकल रहा था। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि:-

(i) दोनों तलवों को छोड़कर पूरे शरीर पर सतही से लेकर गहरी जलन (लगभग 100%);

(ii) स्थानों पर मौजूद लालिमा की रेखा;

(iii) दोनों नासिकाओं से खून निकलना;

(iv) बालों का झड़ना;

(v) दाहिनी जाँघ के ऊपरी भाग का पूरा भाग उजागर हो गया है, फीमर हड्डी दिखाई दे रही है।

11. विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को सुनने पर पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा दिए गए तर्कों को सुनने के पश्चात, दो विवादास्पद प्रश्नों का समाधान हमें करना है, अर्थात् क्या मृत्यु मानव हत्या थी और क्या अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 या 304 भाग I या भाग II या धारा 304 बी के तहत दंडनीय होगा। सबूतों को छांटने से पहले, हत्या के समान आपराधिक मानव वध, ऐसा आपराधिक मानव वध जो हत्या के बराबर न हो और दहेज हत्या से संबंधित कानून पर चर्चा करना यहां प्रासंगिक है। भारतीय दंड संहिता की धारा 299, जो इस प्रकार है:

"299. आपराधिक मानव वध: जो कोई ऐसा कृत्य करके मृत्यु कारित करने के इरादे से मृत्यु कारित करता है या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाकर जिससे मृत्यु होने की संभावना हो, या इस ज्ञान के साथ कि उसके ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, मृत्यु कारित करता है, आपराधिक मानव वध का अपराध करता है।"

12. 'हत्या' और 'आपराधिक मानव वध' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को नजरअंदाज कर देते हैं और खुद को छोटे-छोटे निष्कर्षों में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भा.दं.सं. की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए मुख्य शब्दों को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	**धारा 300**
कोई व्यक्ति गैर इरादतन हत्या करता है यदि वह कार्य किया जाता है जिसके कारण मृत्यु हुई है	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।

इरादा

(ए) मौत कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट जिसके लगने की संभावना अपराधी को मालूम हो कि उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बन सकती है जिसे नुकसान पहुँचाया गया है;
ज्ञान	**ज्ञान**
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि यह कार्य इतना खतरनाक है कि इससे पूरी संभावना है कि यह मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट का कारण बनेगी जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

13. आरोपी अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह कहा गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता-इलियास का मामला, जो घटना के समय बहुत युवा था और उसके दो वृद्ध माता-पिता हैं, भा.दं.सं. की धारा 304(1) के दायरे में आएगा और आजीवन कारावास की सजा अपराध के अनुरूप नहीं है और इसलिए यह न्यायालय तथ्यों पर विचार करे क्योंकि कोई पूर्वचिन्तन नहीं था, मृतक की मृत्यु बॉम्बे जैसे महानगरीय शहर में रहने की उसकी इच्छा के कारण हुई जिसके परिणामस्वरूप उसने आत्महत्या कर ली। तथ्यों के आधार पर, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्तों द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्तों को ज्ञान और इरादा था कि उनके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वे मृतक को ख़त्म नहीं करना चाहते थे। विद्वान अधिवक्ता द्वारा कहा गया है कि मौजूदा मामला भा.दं.सं. की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। यथा उपरोक्त धारा 299 पर विचार करते समय **वीरन और अन्य बनाम म.प्र. राज्य निर्णीत, (2011) 5 एससीआर 300** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए अपराध धारा 304 भाग I के अन्तर्गत आएगा।

14. यह हमें अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता के वैकल्पिक दलील की ओर ले जाता है कि सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है, भले ही यह माना जाए कि अपराध भा.दं.सं. की धारा 304 बी के अनुसार किया गया है और यह न्यायालय अपर सत्र न्यायाधीश के निष्कर्ष से सहमत हो।

15. इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

16. **मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम. आ.प्र. राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]**,के मामले में सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक

पहलुओं की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया है :

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होता है। जो उपसंस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, ध्यान देने का विषय व्यक्ति है और लक्ष्य समाज के लिए उसे बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर सज़ा देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज का मानव सजा को ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में दखता है जो अपराधी बन गया है और सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में आधुनिक समुदाय की प्राथमिक हिस्सेदारी है [11] इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'प्रतिशोधात्मक' दृष्टिकोण के बजाय 'सुधारात्मक' दृष्टिकोण प्रबल होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर कारावास से केवल उसके मन पर आघात उत्पन्न होता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसमें बदलाव लाना होगा और, मनुष्य चोटों से नहीं सुधरते।"

17. **देव नारायण मंडल बनाम उ.प्र. राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** के मामले में 'उचित सजा' की व्याख्या की गई थी। यह देखते हुए कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम होनी चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय का विवेकाधिकार मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता।

18. **रावदा शशिकला बनाम आ.प्र. राज्य एआईआर 2017 एससी 1166** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने **जमील बनाम उ.प्र. राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** के मामलों में दिए गए निर्णयों का संदर्भ दिया है और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और कारित किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून

की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और त्रुटिशोधक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

19. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और त्रुटिशोधक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि ये आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं हैं और इसलिए, सभी उपाय किए जाने चाहिए और दो आरोपियों (ससुर और सास) की वृद्धावस्था को देखते हुए उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए उन्हें सुधार का अवसर दिया जाना चाहिए।

20. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना चाहिए और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

21. गहन विचार करने और चिकित्सा साक्ष्यों को देखने के बाद हम बहुत स्पष्ट हैं कि मृतक की मृत्यु आत्महत्या नहीं बल्कि हत्या के कारण हुई और यह भा.दं.सं. की धारा 304 बी के अनुसार दंडनीय है, पुख्ता साक्ष्य से यह दिखाना आरोपी का कर्तव्य था कि उनके द्वारा यह कृत्य विवाह के सात वर्षों के भीतर नहीं किया गया था।

22. तथ्यों से पता चलता है कि आपराधिक मानव वध आत्मघाती मौत थी, हम विद्वान न्यायाधीश से सहमत हैं और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का इस्तेमाल करते हैं कि मौत शादी के 7 साल के भीतर हुई थी।

23. अभियुक्त इलियास 15 वर्ष से जेल में है जो कि एक युवा व्यक्ति के लिए पर्याप्त सजा है जो बंबई में सेवा कर रहा था, माता-पिता बच्चों से अलग रह रहे थे, हालांकि, कृत्य सबूतों से साबित कर दिया गया है और इसलिए यह न्यायालय भी विद्वान न्यायाधीश से सहमत है, तथापि, हम सजा के सिद्धांतों के अनुसार चलेंगे। हम आश्वस्त हैं कि मृत्यु भा.दं.सं. की धारा 304बी के तहत हुई है। यह हमें भारत में प्रचलित सजा संबंधी सिद्धांतों की ओर ले जाता है। पति 15 साल से जेल में बंद है, अकरम अली की उम्र को देखते हुए यह अवधि पर्याप्त सजा होगी और अन्य आरोपी अब क्रमशः 80 वर्ष और 70 वर्ष के होंगे, इसलिए उनकी वृद्धावस्था को देखते हुए उनके द्वारा भोगी गई सजा पर्याप्त सजा होगी।

24. ये दोनों अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं। विद्वान सत्र न्यायाधीश का निर्णय और आदेश उपरोक्त सीमा तक संशोधित किया जाएगा। रिकॉर्ड और कार्यवाही तुरंत निचली अदालत को वापस भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 979

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी,

आपराधिक अपील संख्या 4774 / 2016

वीरपाल एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजीव लोचन शुक्ल, श्री अंकुर सिंह कुशवाह, श्री भीष्म पाल सिंह, श्री जे.बी. सिंह, श्री जय प्रकाश सिंह, श्री रूद्र प्रताप मिश्र, श्री अजय कुमार, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री प्रदीप कुमार भारद्वाज

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147 और 302/149-दोषसिद्धि - चुनौती-पी.डब्लू.-1 की गवाही को प्रत्यक्षदर्शी पी.डब्लू.-3 के साथ-साथ पी.डब्लू.-1 के भाई (यानी पी.डब्लू.-5) सहित अन्य सभी प्रत्यक्षदर्शियों की गवाही के आलोक में देखा जाना चाहिए, जिन्होंने अभियुक्त के अपराध के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले को नकार दिया-यद्यपि प्रतिकूल गवाहों से अभियोजन पक्ष के खिलाफ उनकी गवाही के संबंध में प्रमुख प्रश्न पूछे गए थे कि क्या धमकी या समझौता के कारण वे ऐसी गवाही दे रहे थे, गवाहों ने इससे इनकार किया-पी.डब्लू.-5, जो गवाह पक्षद्रोही हो गया, वह मृतक का असली भाई था और अभियोजन पक्ष द्वारा साबित ऐसी कोई परिस्थिति या आशय प्रदर्शित नहीं किया गया है जिससे यह निष्कर्ष निकले कि उसकी गवाही

अविश्वसनीय है- पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.-8 के पक्षद्रोही गवाह होने के कारण कि मृतक को मृतक के शरीर के पीछे चाकू जैसी ग्रिल पर लटका हुआ पाया गया था, विचारणीय न्यायालय द्वारा इसकी जांच नहीं की गई है। पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर (पी.डब्लू.-4) ने कहा कि मृतक की चोटें चाकू के घाव नहीं थीं, जिससे चोटों के कारण के बारे में संदेह पैदा हो- न तो पी.डब्लू.-1, न ही पी.डब्लू.-3 और न ही पी.डब्लू.-8 उस समय घटनास्थल पर मौजूद थे, जब आरोपी अपने वाहनों पर कथित रूप से घटनास्थल पर पहुंचे थे- केवल स्वतंत्र गवाह ही इस तथ्य की गवाही दे सकते थे कि आरोपी घटनास्थल पर पहुंचे और मृतक की ओर बढ़े- पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.-8 की गवाही के अनुसार घटना के समय पी.डब्लू.-1 का स्थान ही संदेह के घेरे में है। पी.डब्लू.-8 ने पुलिस द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध जांच निर्देशित करने का कारण बताया है कि मृतक की मृत्यु से कुछ दिन पूर्व एक घटना के दौरान पुलिस अभियुक्तों के उनके प्रति व्यवहार से नाराज थी- पुलिस ने कहा था कि चूंकि विदेशी लोग शामिल थे, इसलिए मामला साबित करना कठिन होगा- घटनास्थल पर पर्याप्त रोशनी की कमी के संबंध में एक महत्वपूर्ण तत्व है और इसलिए यह संदिग्ध है कि पी.डब्लू.-1 वास्तव में सर्दियों की रात में 67 कदम की दूरी से अभियुक्तों के चेहरे देख सकता था- संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, अभियुक्त व्यक्ति संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं- अभियोजन पक्ष का मामला उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है।

आपराधिक अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य
2. रामानंद उर्फ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
3. पुलुकुरी कोट्टाया एवं अन्य बनाम राजा सम्राट
4. हरजिंदर सिंह @ भोला बनाम पंजाब राज्य
5. गणपति और अन्य.. बनाम तमिलनाडु राज्य
6. अमरीक सिंह बनाम पंजाब राज्य (2022) 9 एससीसी 402
7. प्रमिला बनाम यूपी राज्य (2021) 12 एससीसी 550
8. कृष्ण कुमार मलिक बनाम हरियाणा राज्य (2011) 7 एससीसी 130

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी, एवं माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी, द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक अपील सत्र विचारण क्रमांक 248 वर्ष 2013 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम वीरपाल एवं तीन अन्य) में धारा 147, 302/149 भ०द०वि०, थाना कासना, जिला गौतमबुद्ध नगर के तहत अपराध क्रमांक 1007 वर्ष 2012 में दिनांक 31.08.2016 को अपर सत्र न्यायाधीश-1, गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं सजा के निर्णय के विरुद्ध उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा, सभी अपीलकर्ताओं को धारा 147, 302/149 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है और धारा 147 भ०द०वि० के तहत एक साल के सश्रम कारावास और धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास और 10,000 रुपये का जुर्माना और

जुर्माना नहीं देने पर एक साल का अतिरिक्त कारावास दिया गया है। उपरोक्त सभी सजाएं साथ-साथ चलने के निर्देश दिए गए हैं।

2. उस दिन 22:30 बजे प्राप्त सूचना (प्रदर्श क-1) के आधार पर दिनांक 16.11.2012 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) दर्ज की गई, जिस पर धारा 147/302, 34 भ०द०वि०, थाना-कासना, जिला गौतम बुद्ध नगर के तहत प्राथमिकी नंबर 786 दर्ज की गई। शिकायतकर्ता, वेदपाल पुत्र शोभा राम निवासी गांव-चुहड़पुर, थाना-कासना, जिला गौतम बुद्ध नगर ने बताया कि पिछले दिन, अर्थात् दिनांक 15.11.2012 को वेद प्रकाश @ कालू और पम्मी @ राम औतार पुत्र वीरपाल के बीच विवाद और झगड़ा हुआ और उसी बदनियती के साथ, 16.11.2012 को रात 8:30 बजे वीरपाल और उनके भाई कालू @ बलराज और उनके बेटे पम्मी @ राम औतार और भूरा और दो अन्य लोग अपनी स्विफ्ट कार और एक पल्सर मोटरसाइकिल में अपने भाई वेद प्रकाश @ कालू की दुकान पर आए जब उनका भाई उनकी दुकान में बैठा था! आते ही वीरपाल ने गालियां देते हुए कहा कि वेद प्रकाश को मार दो और देखो भागने न पाए! जान बचाने के लिए उसका भाई हाईवे की ओर भागा और वीर पाल और उसका भाई कालू @ बलराज, पम्मी @ राम औतार और भूरा ने उसका पीछा करते हुए उसकी दुकान के पास खुली जगह तक उसे पकड़ लिया और चाकू और बेल्ट से उसके साथ मारपीट की, जिससे उसका भाई मौके पर ही गिर गया। चिल्लाहट सुनकर फरियादी और उसका भाई चेतराम, देवेन्द्र, महेंद्र, सहमल उसे बचाने के लिए दौड़े, लेकिन उन्हें पास आता देख वे लोग अपनी स्विफ्ट कार और मोटरसाइकिल पर फरार हो गए। बताया गया कि उसके भाई की लाश घटनास्थल पर पड़ी थी।

3. 17.11.2012 को एक पंचनामा (प्रदर्श क-3) तैयार की गई थी और एक पोस्टमॉर्टम परीक्षण की गई थी और उसी दिन एक रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) भी तैयार की गई थी। शिकायतकर्ता अ०सा०-1 ने अपनी लिखित शिकायत (प्रदर्श क-1) साबित की। प्राथमिकी (प्रदर्श क-2) प्राथमिकी लेखक अ०सा०-2, बलराज सिंह द्वारा साबित की गई थी। पंचनामा (प्रदर्श क-4) को जांच करने वाले निरीक्षक अ०सा०-6 आनंद पाल सिंह ने साबित किया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट अ०सा०-4 डॉ. संत राम वर्मा ने साबित की थी, जिन्होंने पोस्टमॉर्टम परीक्षा कराई थी। पांच गवाहों की उपस्थिति में दिनांक 17.11.2012 को अपराह्न 2.00 बजे जांच पूरी हुई। पंचनामा रिपोर्ट दर्शाती है कि वेद प्रकाश की लाश सड़क पर पड़ी थी और घटना के बारे में सूचना मिलने पर जांच करने वाले अधिकारी ने नोट किया कि घटनास्थल पर प्रकाश की कमी के कारण से और कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए, थानाध्यक्ष के निर्देशों के अनुसार, मृतक की लाश को पुलिस वाहन द्वारा कैलाश अस्पताल भेजा गया था। पंचान की राय थी कि मृतक वेद प्रकाश की हत्या चाकू से घाव करके की गई थी और शव परीक्षण आयोजित की जानी चाहिए। अ०सा०-4 द्वारा दिनांक 17.11.2012 को अपराह्न 2:00 बजे शव परीक्षण परीक्षा की गई और निम्नलिखित चोटें नोट की गईं:-

i. दाहिनी धुरी पर मौजूद घाव का आकार 3 X 2 सेमी गुहा तक गहरी।

ii. घाव का आकार 3 X 3 सेमी हड्डी तक गहरी है जो दाहिने ऊपरी बांह पर औसत दर्जे की होती है और दाएं अक्षीय से 2 सेमी नीचे स्थित होती है।

iii.घाव का आकार 6 X 4 सेमी X हड्डी गहरी दाहिने ऊपरी बांह पर मौजूद होती है जो दाहिने कंधे के एक्रोमियन जोड़ से 12 सेमी नीचे स्थित होती है।

iv. घाव का आकार 14 X 4 सेमी X मांसपेशियों में दाहिनी कोहनी के जोड़ पर मौजूद है।

v. घाव का आकार 6 X 4 सेमी X हड्डी गहरी दाहिनी कोहनी के जोड़ पर पार्श्व रूप से मौजूद होती है।

vi. घाव का आकार 3 X 1 सेमी X गुहा बाएं निचले पेट के पीछे मौजूद होता है जो इलियक शिखा से 2 सेमी ऊपर स्थित होता है।

4. पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में यह नोट किया गया था कि मस्तिष्क संकुचित था और दाहिना फेफड़ा तीन तरफ से फटा हुआ था। दाएं फेफड़े में खून था और बाएं फेफड़े में संकुचन थी। हृदय का दायां कक्ष रक्त से भरा था और बायां कक्ष खाली था। पेट में 100 मिली तरल था। मृत्यु के बाद का समय लगभग 3/4 दिन नोट किया गया था। मौत का कारण घावों के परिणामस्वरूप रक्तस्राव और सदमे के रूप में उल्लेख किया गया था।

5. दिनांक 19.12.2012 का एक फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-8) दो अभियुक्तों, अर्थात् वीरपाल और कालू @ बलराज में से प्रत्येक की ओर इशारा करते हुए दो हथियारों की बरामदगी को दर्शाता है। दिनांक 20.11.2014 (प्रदर्श क-9) के एक अन्य बरामदगी/गिरफ्तारी ज्ञापन से पता चलता है कि वीरपाल के पुत्र पम्मी @ राम औतार को गिरफ्तार किया गया था जिसके हाथ से चाकू बरामद किया गया था। दिनांक 02.12.2012 का एक और बरामदगी-सह-गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श क-10) एक ओम कुमार @ ओमी की गिरफ्तारी को दर्शाता है, जिसके हाथ से एक चाकू बरामद किया गया था। फिर भी दिनांक 23.12.2012 का एक और फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-15) दर्शाता है कि अभियुक्त-सुमित @ भूरा की निशानदेही पर एक चाकू बरामद किया गया था। दिनांक 17.11.2012 को घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी ले ली गई और उसे सील कर दिया गया। पास के क्षेत्र की सामान्य मिट्टी को भी एक अलग बॉक्स में ले जाया गया और सील कर दिया गया। यह फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-17 है। उपरोक्त प्रदर्श क-8, प्रदर्श क-9 और प्रदर्श क-10 को अ०सा०-6, अनंग पाल सिंह, निरीक्षक द्वारा सिद्ध किया गया था, और प्रदर्श क-15 और प्रदर्श क-17 को विवेचनाधिकारी अ०सा०-9, श्यामाकांत त्रिपाठी द्वारा सिद्ध किया गया था। श्यामाकांत त्रिपाठी, प्रभारी निरीक्षक, कोतवाली, कासना, जिला गौतम बुद्ध नगर द्वारा दिनांक 17.11.2012 (प्रदश क-11) एक नक्शा नज़री तैयार किया गया था, जिन्होंने हत्या के लिए इस्तेमाल किए गए हथियारों की बरामदगी की नक्शा नज़री भी तैयार किया था, जिसमें प्रदर्श क-12, प्रदर्श क-13 और प्रदर्श क-14 थे, जो उनके द्वारा सिद्ध किए गए थे। रिकॉर्ड में विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा की

21.06.2014 की रिपोर्ट (प्रदर्श क-19) है। जांच करने के बाद, विवेचनाधिकारी ने दिनांक 30.12.2012 (प्रदर्श क-18) को आरोप पत्र दायर किया, जिसे अ०सा०-9 द्वारा धारा 147, 302 और 34 भ०द०वि० के तहत साबित किया गया, जिसमें पांच अभियुक्तों, अर्थात् वीरपाल, कालू @ बलराज, पम्मी @ राम औतार, भूरा @ सुमित और ओम कुमार @ ओमी को फंसाया गया।

6. दिनांक 06.09.2013 को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-1, गौतम बुद्ध नगर ने चार अभियुक्तों अर्थात् (1) वीरपाल, (2) कालू @ बलराज, (3) पम्मी @ राम औतार, और (4) ओम कुमार @ ओमी पर धारा 147 और 302/149 भ०द०वि० के प्रावधानों के तहत आरोप लगाए। ऐसा प्रतीत होता है कि एक अभियुक्त भूरा @ सुमित पर किशोर न्यायालय द्वारा अलग-अलग कार्यवाही में मुकदमा चलाया गया था।

7. शिकायतकर्ता/चश्मदीद गवाह, वेद पाल (अ०सा०-1) ने 20.11.2013 को गवाही दी और फिर बचाव पक्ष द्वारा दायर एक रिकॉल आवेदन के अनुसरण में, 17.01.2014 को उन्होंने घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया। अ०सा०-3, महेन्द्र ने दिनांक 09.01.2014 को गवाही दी और उस दिन उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया। हालांकि, जब उसने 15.10.2015 को फिर से गवाही दी, तो वह मुकर गया और उसके बाद, अतिरिक्त जिला शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा उससे जिरह की गई।

8. दिनांक 24.02.2015 को मृतक के भाई चेतराम (अ०सा०-5) ने अपना बयान दिया और घटना को देखने से इनकार किया। चूंकि वह मुकर गया था, इसलिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा उससे जिरह की गई।

9. एक अन्य गवाह, देवेंद्र (अ०सा०-7) ने 10.03.2015 को गवाही दी, फिर मुकर गया और उससे विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा जिरह की गई!

10. एक अन्य चश्मदीद गवाह, शाहमल, (अ०सा०-8), जिसने 14.12.2015 को गवाही दी, वह भी मुकर गया और विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा उससे जिरह की गई।

11. सभी चार आरोपियों के दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के तहत 20.05.2016 को बयान दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने अपनी अपने दोषी होने से इनकार किया और कहा कि गांव में गुटों के कारण और बदला लेने के लिए उनके खिलाफ एक झूठा मामला स्थापित किया गया था।

12. अभियोजन और बचाव पक्ष के अधिवक्ता को सुनने के बाद, 31.08.2016 को आक्षेपित निर्णय पारित किया गया जिसके तहत आरोपी ओमी @ ओम कुमार को संदेह का लाभ दिया गया और बरी कर दिया गया। जहां तक अभियुक्त वीरपाल, कालू @ बलराज और पम्मी @ राम औतार का संबंध है, उनके विरुद्ध आरोप बिना किसी संदेह से परे सिद्ध

पाए गए और उन्हें कारावास और जुर्माने की सजा सुनाई गई।

13. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री जे.पी सिंह की सहायता करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बनामपी श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की गवाही पर भरोसा किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि सभी आरोपी कथित तौर पर चाकू से लैस थे, जिन्होंने मृतक को चाकू से वार किया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-1 और अ०सा०-3 घटना के समय उपस्थित नहीं थे और मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, वे मृतक के रिश्तेदार होने के कारण संयोग से और पक्षपातपूर्ण गवाह थे और इसलिए उनकी गवाही को अदालत में बहुत सावधानी से देखा जाना चाहिए। यह कहा गया है कि प्राथमिकी के अनुसार, मृतक ने घटनास्थल पर अपनी अंतिम सांस ली, जिसकी पुष्टि प्राथमिकी द्वारा की जाती है, लेकिन पूछताछ कैलाश अस्पताल, गौतम बुद्ध नगर में की गई थी और पूछताछ को ज्ञापन अ०सा०-6 द्वारा साबित किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच रिपोर्ट में, पूछताछ की तारीख पर ओवरराइटिंग है और इसमें यह परिलक्षित होता है कि मौके पर अपर्याप्त रोशनी थी और कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए, थानाध्यक्ष के आदेशों के तहत, अ०सा०-6 शव को पुलिस वाहन में कैलाश अस्पताल ले गया जहां पूछताछ की गई थी। यह तर्क दिया गया है कि घटनास्थल के अलावा किसी अन्य स्थान पर पूछताछ करने का कोई वैध कारण नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, घटनास्थल पर पर्याप्त रोशनी थी और धारा 174 द०प्र०स० के साथ पठित उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के अध्याय-XII के विनियमन 132 के अनुसार, पुलिस को घटनास्थल पर जांच करने की आवश्यकता थी। अधिवक्ता ने कहा है कि अ०सा०-6 जांच शुरू होने का समय बताने में विफल रहा है। यह कहा गया है कि मृतक को कैलाश अस्पताल में स्थानांतरित करने का एकमात्र कारण यह था कि मृतक जीवित था जब अ०सा०-6 ने घटनास्थल का दौरा किया और वह तदनुसार अस्पताल पहुंचा।

14. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया है कि जैसा कि प्राथमिकी में पता चला है, मृतक पर बेल्ट से भी हमला किया गया था, लेकिन ऐसा कोई आरोप नहीं है कि मृतक की गर्दन पर बेल्ट बांधी गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि पूरी पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में, ऐसी कोई चोट नहीं है जिसे बेल्ट के कारण कहा जा सकता है। यह कहा गया है कि पम्मी @ राम औतार को दिनांक 20.11.2012 को गिरफ्तार किया गया था और उसकी निशानदेही पर एक चाकू बरामद किया गया था जो भूमिगत छिपा हुआ था। ओम कुमार @ ओमी को 02.12.2012 को गिरफ्तार किया गया था और अंडरपास के पास एक झाड़ी से उसकी निशानदेही पर एक चाकू बरामद किया गया था। भूरा @सुमित (जो एक किशोर था) को दिनांक 20.03.2012 को गिरफ्तार किया गया था और उसके कहने पर चाकू एक झाड़ी से बरामद किया गया था। ये सभी बरामद चाकू खून से सने हुए थे और उन पर बिखरा हुआ खून लगा पाया गया था जैसा कि विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट में दर्शाया गया है। दो अन्य आरोपी वीरपाल और कालू को

दिनांक 19.12.2012 को गिरफ्तार किया गया और एक दुकान के पास से एक-एक चाकू बरामद किया गया जिस पर खून के धब्बे नहीं पाए गए। यह प्रस्तुत किया गया है कि ये बरामदगी कथित रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के तहत की गई है।

15. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने नक्शा नज़री (प्रदर्श क-11) का उल्लेख किया है और प्रस्तुत किया है कि विवेचनाधिकारी ने यह नहीं दिखाया है कि अ०सा०-1 और अ०सा०-3 और अन्य गवाह घटना के दौरान कहां मौजूद थे। उनका कहना है कि प्राथमिकी में भी इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि गवाह कहां मौजूद थे। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में छह चोटों को दर्शाया गया है, जिनमें से पांच घाव मृतक के दाईं ओर और एक घाव मृतक के बाईं ओर पाया गया है। सेरोलॉजिस्ट (प्रदर्श क-19) की रिपोर्ट का हवाला देते हुए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने कहा है कि प्रदर्श में पाए गए खून के धब्बे दर्शाते हैं कि आइटम नंबर 1, 2, 3 और 4 (जो पैंट, शर्ट, अंडरवियर और हैंडबैंड [कलावा] हैं) के अलावा, अन्य वस्तु पर पाए गए खून के धब्बों में से किसी की भी पहचान मानव रक्त के रूप में नहीं की गई है। यह तर्क दिया जाता है कि इसका परिणाम बचाव पक्ष के पक्ष में है।

16. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25, 26 और 27 के प्रावधानों का उल्लेख किया है कि धारा 27 में दिखाई देने वाला शब्द 'सशपथ बयान दिया' का अर्थ है लिखित रूप से रिकॉर्ड कर लेना जो दर्शाता है दो स्वतंत्र सम्मानजनक गवाहों की उपस्थिति में अभियुक्त द्वारा बोले गए वास्तविक शब्द, जो उस बयान पर हस्ताक्षर करेंगे। यह तर्क दिया गया है कि हत्या के कथित हथियारों में से प्रत्येक के बरामदगी मेमो अर्थात् चाकू से यह स्पष्ट है कि यह आरोपी व्यक्तियों के बयान निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नहीं है। इसलिए, बरामदगी ज्ञापन में इस तरह के बयान के न होने पर, कथित स्वीकारोक्ति का कोई सबूत स्वीकार्य नहीं है। अपनी दलीलों के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसलों रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और पुलुकुरी कोट्टाया और अन्य के मामले में प्रिवी काउंसिल का निर्णय, बनाम राजा सम्राट' का उल्लेख किया है;

17. अ०सा०-1 और अ०सा०-3 के साक्ष्य की सत्यता के परीक्षण के मुद्दे पर, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि वे पक्षपातपूर्ण और मौका गवाह हैं और हरजिंदर सिंह @ भोला बनाम पंजाब राज्य 5 (पैरा 6 और 14) और गणपति और ए.आर. बनाम तमिलनाडु राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए उनकी गवाही पर सख्ती से और सावधानी से विचार किया जाना चाहिए । यह तर्क दिया गया है कि तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, आरोपी बरी होने के लायक हैं।

18. राज्य की ओर से, श्री रूपक चौबे, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है कि अपराध साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष को (i) घटना की

जगह; (ii) घटना का समय; और (iii) अभियुक्त की भागीदारी साबित करना होगा! यह प्रस्तुत किया गया है कि बाद की घटनाएं जो जांच के परिणाम को सीधे प्रभावित नहीं करती हैं, अदालतों द्वारा नहीं देखी जा सकती हैं।

19. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि जनरल डायरी प्रविष्टि और प्राथमिकी अ०सा०-2 द्वारा विधिवत साबित की गई थी। जांच रिपोर्ट के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच का उद्देश्य केवल मृत्यु के स्पष्ट कारण का आकलन करना है और किसी अन्य कारण से नहीं। जांच रिपोर्ट में दिखाई देने वाली कुछ मामूली अनियमितताओं का गुणावगुण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जहां अन्य पहलू साबित होते हैं। यह तर्क दिया गया है कि गवाह पहली बार वर्ष 2015 में मुकर गए थे, जबकि गवाहों का बयान वर्ष 2013 में शुरू हुआ था। यह तर्क दिया गया है कि अ०सा०-1 पक्षपातपूर्ण गवाह नहीं है, बल्कि वह एक संबंधित गवाह है। अ०सा०-1 एक आकस्मिक गवाह नहीं है क्योंकि अ०सा०-1 के लिए सड़क और समय का उपयोग नियमित है। अ०सा०-1 का गांव घटनास्थल के पास है और इसलिए उनका वहां जाना स्वाभाविक था। यह तर्क दिया गया है कि बचाव पक्ष द्वारा अ०सा०-1 को कोई प्रतिकूल सुझाव/प्रमुख प्रश्न नहीं दिया गया था। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अ०सा०-7 की गवाही का उल्लेख किया है, जिसकी अभियोजन पक्ष के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में जांच की गई थी, जो बाद में मुकर गया, यह तर्क देने के लिए कि इस गवाह ने गवाही दी है कि उसने घटनास्थल पर मृतक के शव को देखा है। यह तर्क तर्क दिया गया है कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट अ०सा०-1 की गवाही की पुष्टि करती है। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्राथमिकी तुरंत दर्ज की गई थी और आरोपी व्यक्तियों का नाम लिया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि घटना का समय सर्दियों के मौसम में था और इसलिए, यह संभावना नहीं है कि मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों के कारण बेल्ट की चोट के निशान दिखाई देंगे। यह तर्क दिया गया है कि मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, यह एक मामूली विरोधाभास है जिसका अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई असर नहीं पड़ेगा। यह कहा गया है कि अ०सा०-1 की गवाही में कोई भौतिक विसंगति नहीं है। आगे यह कहा गया है कि गवाह को उसकी उपस्थिति के संबंध में दिए गए सुझाव का कोई असर नहीं होगा क्योंकि यह मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करता है।

20. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे आग्रह किया गया है कि अ०सा०-3 भी एक प्राकृतिक गवाह है क्योंकि वह नियमित रूप से इस तरह से गुजरता है। दो गवाह प्राथमिकी दर्ज कराने गए। यह प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 का लाभ अभियोजन पक्ष को उपलब्ध नहीं हो सकता है, लेकिन अन्य तथ्य जो अभियुक्त की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं, विधिवत साबित हो चुके हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 के प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के

लिए एक गवाह भी पर्याप्त है और अ०सा०-1 ने अभियोजन पक्ष के मामले को साबित किया है।

21. जो बिन्दु विचार के लिए उठता है कि क्या अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी के अपराध साबित करने में सफल रहा है कि नहीं!

22. अभियोजन पक्ष का मामला मुख्य रूप से चश्मदीद गवाहों के बयान पर आधारित है। अ०सा०-1 द्वारा चश्मदीद गवाह के रूप में दिनांक 16.11.2012 को प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी।

23. दिनांक 20.11.2013 को अपनी गवाही (मुख्य परीक्षण) में अ०सा०-1 वेदपाल ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया। उसने कहा है कि अपराध के समय के करीब, वह निर्माण सामग्री की आपूर्ति के अपने व्यवसाय के लिए निर्माणाधीन भवन (दुर्गा ग्रीन) के कार्यालय गया था। जब उसने अचानक चिल्लाने की आवाज सुनी, तो वह इमारत से बाहर आया और उसने पांच लोगों को देखा, जिनकी पहचान वह वीरपाल, कालू, पम्मी, भूरा और ओम प्रकाश के रूप में कर सकता था, जिन्होंने उसके भाई वेद प्रकाश को पकड़ लिया था और चाकुओं से वार कर रहे थे। अपनी गवाही के दौरान, अ०सा०-1 ने वीरपाल, कालू और पम्मी की पहचान की जो अदालत में मौजूद थे और कहा कि वे घटना के समय मौजूद थे। उन्होंने आगे कहा कि दो व्यक्ति अदालत में मौजूद नहीं थे, जिनमें से एक ओमी @ ओमकार ने अदालत में अपनी हाजिरी की माफी करवा ली थी और दूसरे भूरा @ सुमित को किशोर घोषित किया गया था। उसने कहा कि वे पांचों उसके भाई पर चाकू से वार कर रहे थे और उसकी गर्दन को बेल्ट से पकड़ रखा था। उन्होंने उन सभी को बिजली की रोशनी में देखा क्योंकि घटनास्थल पर भवन निर्माण का काम चल रहा था और लाइटें जल रही थीं। उन्होंने कहा है कि चिल्लाने की आवाज सुनने पर, उनके दो भाई चेत राम और महेंद्र (महेंद्र उनके सगे भाई नहीं बल्कि एक पारिवारिक रिश्तेदार बताए जा रहे हैं) जब वे ग्रेटर नोएडा में ईंटें बेचकर लौट रहे थे, घटनास्थल पर आए और घटना को देखा! जब अ०सा०-1 ने अपने भाई को बचाने के लिए चिल्लाया, तो आरोपी व्यक्तियों ने उसे धमकी दी। इसके बाद वे अपनी स्विफ्ट कार और एक पल्सर मोटर बाइक में घटनास्थल से भाग गए और उसके बाद उनके भाई की काफी पीड़ा के बाद मौके पर ही मौत हो गई। इसके बाद अ०सा०-1 थाने आया और रिपोर्ट दर्ज कराई। उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रदर्श क-1 की पहचान की। अ०सा०-1 ने आगे कहा कि पुलिस उसके साथ आई और कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए लाश को कैलाश अस्पताल ले गई। पांच गवाहों की मौजूदगी में अस्पताल में पंचनामा तैयार की गई। जांच का रिकॉर्ड देखने के बाद, अ०सा०-1 ने कहा कि यह वही पंचनामा है जो पांच गवाहों की उपस्थिति में तैयार की गई थी और अ०सा०-1 ने उस पर उसके हस्ताक्षर की पहचान की थी। इसके बाद पुलिस ने लाश को सील कर पोस्टमार्टम के लिए ले लिया। अ०सा०-1 ने आगे कहा कि उसने पुलिस अधिकारी को घटनास्थल दिखाया था जिसने उससे पूछताछ की थी और उसने उन्हें सच्चाई बताई थी।

24. अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने कहा कि वह निर्माण सामग्री की आपूर्ति के संबंध में कार्यालय में घटनास्थल से 60 से 70 कदम की दूरी पर बैठा था। उस कार्यालय में दरवाजा बाहर स्थित है और इसमें कांच हैं और घटना के समय दरवाजा खुला था। प्राथमिकी में प्रकाश के अस्तित्व का उल्लेख न करने के संबंध में उनसे किए गए प्रश्न पर, अ०सा०-1 ने कहा कि प्राथमिकी दर्ज करने के समय वह ग़म से निढाल थे!

उन्होंने इस बात से इनकार किया कि कानूनी सलाह के आधार पर उन्होंने बिजली की रोशनी की उपस्थिति के बारे में अपनी गवाही में कहा था। मृतक की गर्दन पर बेल्ट के इस्तेमाल के बारे में प्राथमिकी में उल्लेख न करने के संबंध में, अ०सा०-1 ने कहा कि उस समय वह दुःख से निढाल हो गया था। उन्होंने कहा है कि पांचों आरोपियों में से प्रत्येक के पास चाकू थे। उन्होंने कहा कि पम्मी ने उनके भाई को दो बार चाकू मारा था और अन्य लोगों ने उनके भाई को एक-एक बार चाकू मारा था। उन्होंने कहा कि उनके चार भाइयों के अलावा कुछ अन्य लोग भी थे। अ०सा०-1 ने इस बात से इनकार किया कि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और इसलिए वह अपने भाई को नहीं बचा सका। उन्होंने कहा कि विवेचनाधिकारी द्वारा नक्शा नज़री बनाने के समय, उन्होंने बिजली की रोशनी की ओर इशारा किया था जो घटना के समय जलाई गई थीं। अ०सा०-1 ने कहा है कि उसके भाई की दुकान से थोड़ी दूरी पर तीन दुकानें थीं और बिहार और बंगाल के लोग जो ज्यादातर मजदूर थे, उनके भाई की दुकान से सामान खरीदने आते थे।

उन्होंने कहा कि वह अपने भाई को अस्पताल नहीं ले गए क्योंकि उनकी पहले ही मौत हो चुकी थी। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी और इसलिए, वह उन्हें अस्पताल नहीं ले गए थे। उन्होंने यह भी कहा कि न तो उन्होंने और न ही उनके किसी अन्य भाई ने मृतक को छुआ या पकड़ा। हालांकि, बाद में उन्होंने कहा कि उन्होंने अपने भाई को यह देखने के लिए छुआ था कि क्या वह सांस ले रहा है लेकिन उसका भाई सांस नहीं ले रहा है।

उन्होंने इस बात से इनकार किया कि पैसे के लेनदेन के संबंध में विवाद के कारण, बिहार और बंगाल के लोगों ने उनके भाई की हत्या कर दी थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने गांव की पक्षपातपूर्ण राजनीति और दुश्मनी के आधार पर आरोपियों को झूठा फंसाया है। अ०सा०-1 ने कहा कि बेल्ट दो व्यक्तियों ओम पाल और भूरा द्वारा एक हाथ में पकड़े हुए थे और दूसरे हाथ में उन्होंने चाकू पकड़े हुए थे। उन्होंने कहा है कि उनके भाई को छह चोटें आई थीं। उन्होंने कहा कि शायद चाकू की एक चोट कोहनी पर, एक ऊपरी बांह पर, एक पेट पर और उनकी छाती के दाईं ओर तीन से चार चाकू के घाव थे। उन्होंने आगे कहा कि वह यह नहीं देख सके कि उनके भाई को कोहनी पर किसने मारा क्योंकि वह थोड़ी दूरी पर थे। अ०सा०-1 ने आगे कहा है कि उसकी उपस्थिति में उस स्थान से एक चाकू बरामद किया गया था जो आरोपी के भागने के कारण गिर गया था और एक बेल्ट भी बरामद की गई थी। उन्होंने ओम पाल और भूरा की पहचान आरोपियों के रूप में

की जो मोटर बाइक पर भाग गए थे और बाकी आरोपी कार से भाग गए थे।

25. 17.1.2014 को, बचाव पक्ष द्वारा किए गए एक आवेदन पर अ०सा०-1 को गवाह के रूप में वापस बुलाया गया था। अ०सा०-1 ने कहा कि उसके दो अन्य भाई वेद प्रकाश और चेत राम हैं। चेत राम इस मामले में गवाह था। यह कहा गया था कि मामले के अन्य गवाह देवेंद्र और शाहमल अ०सा०-1 के चचेरे भाई थे। अ०सा०-1 और उपरोक्त दो अन्य गवाह गांव में अलग-अलग घरों में रहते हैं और वे अलग-अलग जगहों पर काम करते हैं। वे कृषि कार्य करते हैं। अ०सा०-1 निर्माण सामग्री की आपूर्ति के क्षेत्र में काम करता है। उनके पिता कृषि कार्य और डेयरी फार्मिंग करते हैं। अ०सा०-1 ने निर्माण सामग्री की आपूर्ति के लिए अपने काम के लिए कोई लाइसेंस होने से इनकार किया। अ०सा०-1 ने कहा कि उसकी निर्माण सामग्री की दुकान गाँव के बाहर है और उसके खेत पर स्थित है। उनकी दुकान का नाम जय दुर्गा मटेरियल है जो रजिस्टर्ड नहीं है। निर्माण में लगे लोग उसकी दुकान से सामान खरीदते थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि घटना के समय अ०सा०-1 के पास निर्माण सामग्री की आपूर्ति के लिए कोई काम नहीं था। उन्होंने कहा है कि उनकी दुकान आधे से 3/4 किलोमीटर की दूरी पर राजमार्ग की ओर स्थित है। अ०सा०-1 ने आगे कहा कि घटनास्थल से उसके भाई की दुकान लगभग 20 से 30 कदम दूर थी, जिसमें वह किराने की दुकान चलाता था। दुकान अस्थायी थी, जो टिन की चादरों से बनाई गई थी। उन्होंने आगे कहा कि मृतक की दुकान दुर्गा ग्रीन की इमारत से लगभग 40 से 50 कदम की दूरी पर होगी और वह इमारत उसी सड़क पर थी जिस पर दुकान थी। अ०सा०-1 ने आगे कहा कि जब उसने चिल्लाने की आवाज सुनी, तो वह कार्यालय में था। कार्यालय सड़क के किनारे है जिसमें एक या दो लोग रहते थे। रात का समय था और अन्य लोग चले गए थे। उन्होंने कहा कि वह जिस कार्यालय के व्यक्ति के साथ मिलने गए थे, वह कार्यालय में मौजूद नहीं था, बल्कि कार्य स्थल पर गया था। उन्होंने कहा कि रात करीब आठ बजे वह अपने वाहन ए-स्टार से कार्यालय गए थे जो कार्यालय के बाहर खड़ी थी। वह उस गाड़ी से थाने गया था। उन्होंने कहा कि जब वह कार्यालय गए थे तो उन्होंने अपने भाई वेद प्रकाश को अपनी दुकान में देखा था, उनके बीच कोई बातचीत नहीं हुई थी। उसकी दुकान में एक-दो ग्राहक खड़े थे। अ०सा०-1 ने स्वीकार किया कि प्राथमिकी में उसने यह उल्लेख नहीं किया था कि वह क्लर्क से बात करने के लिए ग्रीन दुर्गा के कार्यालय गया था। उन्होंने कहा कि 15.11.2023 को वेद प्रकाश की दुकान पर आरोपी पम्मी और उसके भाई वेद प्रकाश के बीच विवाद हुआ था और विवाद के समय अ०सा०-1 मौके पर मौजूद नहीं था। उन्होंने कहा कि पम्मी का उस स्थान पर अवैध शराब का कारोबार था, जिसका विरोध उसके भाई वेद प्रकाश कर रहे थे। विवाद के एक या दो घंटे बाद अ०सा०-1 को विवाद के बारे में पता चला था। उन्होंने कहा कि उन्होंने 15.11.2012 को हुए विवाद के बारे में उल्लेख नहीं किया क्योंकि मामला गांव में सुलझा लिया गया था। अ०सा०-1 ने कहा कि चिल्लाने की आवाज सुनकर वह कार्यालय से बाहर आ गया था और कार्यालय में मौजूद अन्य लोग भी बाहर आ

गए थे। जब वह कार्यालय से बाहर आया, तो उसका भाई उसी स्थान पर था जहां वह मृत पाया गया था। जब वह खड़ा था तो उसके भाई को चाकू मार दिया गया था और गिरने के बाद भी उसे चाकू मार दिया गया था। उसके भाई को बगल से चाकू मारा जा रहा था और खड़े होने के दौरान उसे चारों तरफ से पकड़ा जा रहा था। नीचे गिरने के बाद उस पर चाकुओं से दो-तीन बार वार किया गया। जब उसके भाई को चाकू मारा जा रहा था, अ०सा०-1 दुर्गा ग्रीन के कार्यालय के बाहर लगभग 30 से 40 कदम दूर खड़ा था। जब आरोपी अपने भाई को चाकू मार रहा था तो स्विफ्ट कार और पल्सर मोटरसाइकिल दुकान के पास खड़ी थी। अ०सा०-1 ने कहा कि उसने अपने भाई को बचाने की कोशिश की लेकिन आरोपी व्यक्तियों ने उसे चाकुओं से धमकाया। उन्होंने कहा कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को वह स्थान दिखाया था जहां पल्सर मोटरसाइकिल और स्विफ्ट कार खड़ी थी। अ०सा०-1 ने जांच रिपोर्ट तैयार करने के बाद विवेचनाधिकारी को स्थल दिखाया था और विवेचनाधिकारी पोस्टमार्टम रिपोर्ट के बाद स्थल देखने गए थे। उन्होंने कहा कि उनका मोबाइल फोन डिस्चार्ज हो गया था और इसलिए उन्होंने पुलिस को सूचित करने के लिए नंबर 100 डायल करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने कहा कि उनका नौकर घटनास्थल पर था और उन्हें घटना के बारे में सूचित करने के लिए घर भेजा गया था और वह अपने अन्य भाइयों के साथ रिपोर्ट दर्ज करने के लिए थाना गए थे। उन्होंने कहा कि वे रात 9:30 से 10:00 बजे के आसपास थाना पहुंचे थे और रिपोर्ट थाना में लिखी गई थी। उन्होंने रिपोर्ट लिखने में लगभग एक घंटा थाना में बिताया। रिपोर्ट दर्ज करने के बाद अ०सा०-1 पुलिस वाहन में बैठकर घटनास्थल पर गई और उसके बाद विवेचनाधिकारी के साथ एक से डेढ़ घंटे तक मौजूद रही। इसके बाद, विवेचनाधिकारी के साथ वे मृतक की लाश को अस्पताल ले गए जहां वे रात लगभग 12:30 बजे पहुंचे। अ०सा०-1 ने कहा कि विवेचनाधिकारी ने जांच रिपोर्ट तैयार करने के बाद रात में ही मिट्टी आदि एकत्र की थी, जिसमें अ०सा०-1 के हस्ताक्षर हैं। अ०सा०-1 ने इस बात से इनकार किया कि उसका भाई (मृतक) शराब बेचता था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उनके भाई की अज्ञात व्यक्तियों ने हत्या कर दी थी और उन्होंने आरोपियों के खिलाफ झूठी रिपोर्ट दर्ज कराई है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह मौके पर मौजूद नहीं थे।

26. अ०सा०-2, बलराज सिंह की गवाही जो 16.11.2012 को थाना में क्लर्क के रूप में तैनात थी, 9.1.2014 को दर्ज की गई थी। उन्होंने प्राथमिकी प्रदर्श क-2 को साबित किया। उन्होंने जनरल डायरी में की गई प्रविष्टियों को साबित किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि रिपोर्ट समय से पहले की है।

27. एक चश्मदीद गवाह अ०सा०-3, महेन्द्र की गवाही पहली बार 9.1.2014 को दर्ज की गई थी। उन्होंने कहा कि उनका व्यवसाय डेयरी दूध का व्यवसाय है। उन्होंने कहा कि 6.11.2012 को रात 8:30 बजे जब वह चेत राम के साथ लौट रहे थे, तब जब वे चुहड़पुर अंडरपास से अपने गांव की ओर जा रहे थे, उस समय आरोपी मृतक पर चाकुओं से वार कर रहे थे।

उन्होंने वीरपाल, कालू, पम्मी, भूरा और ओम पाल @ ओम कुमार को आरोपी के रूप में पहचाना। उन्होंने कहा कि वह उन्हें जानते हैं क्योंकि वे उनके गांव के हैं और गांव में कालू को बलराज के नाम से जाना जाता है और पम्मी को राम अवतार के रूप में भी जाना जाता है। उन्होंने कहा कि सभी आरोपी मृतक पर चाकुओं से वार कर रहे थे और घटना का समय रात 8:30 बजे था। अ०सा०-3 ने कहा कि उसने घटना को देखा क्योंकि राजमार्ग पर बिजली की रोशनी थी। उन्होंने कहा कि वेदपाल के चिल्लाने के मद्देनजर देवेंद्र और शाहमल मौके पर आए थे और उन्होंने आरोपियों को वेद प्रकाश पर चाकुओं से वार करते देखा और उसके बाद वे रिपोर्ट दर्ज कराने गए। उन्होंने कहा कि वे आरोपियों पर चिल्लाए, फिर आरोपियों ने उन्हें धमकी दी कि मृतक के साथ जो कुछ भी हुआ है वह उनके साथ होगा और उन्हें चाकू से धमकाया और इसके बाद, सभी आरोपी मोटर बाइक और कार में भाग गए। अ०सा०-3 ने कहा कि वह वेद पाल, शाह मल और चेत राम के साथ थाना गए जहां उन्होंने रिपोर्ट दर्ज कराई थी।

28. अपनी जिरह में, अ०सा०-3 ने कहा कि उसका व्यवसाय डेयरी दूध बेचना है। वह अपने गांव से दूध इकट्ठा करता है और उन्हें नोएडा और ग्रेटर नोएडा में बेचता है। उन्होंने उन स्थानों का नाम बताया जहां वह दूध वितरित करते हैं। उन्होंने कहा कि वह दूध वितरित करने के लिए शाम को 5:30 बजे अपने घर से निकलते हैं। उनका गांव अंडरपास से एक किलोमीटर दूर है और इस अंडरपास से घटनास्थल करीब 20 से 30 कदम की दूरी पर होगा। उन्होंने कहा कि दूध वितरित करने के बाद वह अंडरपास के माध्यम से लौटे और उस पर नहीं। उन्होंने कहा कि उन्होंने अंडरपास पार करने के बाद घटना देखी थी। उन्होंने कहा कि उनका बयान विवेचनाधिकारी द्वारा 15.12.2012 को दर्ज किया गया था। उन्होंने कहा कि मृतक वेद प्रकाश और वेदपाल उनके लिए भाई की तरह थे। रिपोर्ट लिखने के समय उन्हें पता चला कि उन्हें गवाह के रूप में बुलाया जाएगा। उन्होंने कहा कि वह अपनी मोटर बाइक पर थाना गए थे और वेदपाल देवेंद्र, शाह मल और चेत राम के साथ अपनी कार पर थाना गए थे। उन्होंने कहा कि घटनास्थल थाने से चार से पांच किलोमीटर दूर था और थाने के बाहर बैठकर रिपोर्ट लिखी गई थी। शिकायत लिखने के लिए कार से कागज लिया गया। उन्होंने आगे कहा कि शिकायत थाने की सीमा के भीतर पार्क में लिखी गई थी। उसने बताया कि उसने पहली बार आरोपी को 10 से 15 कदम की दूरी से देखा था और उस समय वह अंडरपास पार कर चुका था। आरोपियों ने मृतक को घेर लिया था। अ०सा०-3 ने कहा कि आरोपी के जाने के बाद, वह मृतक को देखने नहीं गया था कि वह मर गया है या जीवित है, यह वेद पाल था जो मृतक को देखने गया था जिसने मृतक के शरीर को हिलाया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मृतक को घायल अवस्था में अस्पताल ले जाया गया था। उन्होंने कहा कि उन्होंने ही सबसे पहले आरोपी को मृतक को चाकू मारते हुए देखा था और वेदपाल और अन्य लोग बाद में आए थे। उन्होंने कहा कि वेदपाल व अन्य गांव की तरफ से आए थे। उन्होंने कहा कि वेदपाल और अन्य लोग लगभग 20 से 25

कदम की दूरी पर गांव के किनारे खड़े थे। उन्होंने कहा कि जब उन्होंने और वेदपाल और अन्य ने मृतक को बचाने की कोशिश की, तो आरोपियों ने उन्हें चाकुओं से धमकाया। उन्होंने बताया कि हाईवे पर बिजली की लाइटें लगी हुई थीं। मौसम ठंडा था लेकिन कोहरा नहीं था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि घटना उनके सामने नहीं हुई थी और उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि वह गलत बयान दे रहे थे।

29. जब 15.10.2015 को अ०सा०-3 की जिरह फिर से की गई, अर्थात, अपनी पहली प्रारंभिक गवाही की तारीख से एक साल और नौ महीने से अधिक समय के बाद, तो वह मुकर गया। उन्होंने कहा कि मृतक और आरोपी के बीच विवाद इतना बड़ा नहीं था कि कोई किसी की हत्या कर दे! उन्होंने कहा कि वेद प्रकाश की किराने की दुकान के पास, बंगाली, बिहारी और नाइजीरियाई रहते थे। ये लोग मृतक की दुकान से सामान खरीदते थे। उन्होंने कहा कि मृतक अपनी दुकान से देशी शराब बेचता था जिसे उपरोक्त लोगों द्वारा खरीदा जाता था। यह दुकान रात 11 बजे तक खुली रहती थी। लोग दुकान पर ही शराब पीते थे। उन्होंने कहा कि दुकान के पास एक छोटी सी चारदीवारी है जिसमें लोहे की ग्रिल है जो चाकू की तरह दिखती है। दुकान पर शराब पीने को लेकर झगड़े होते थे। लोग खुले में शराब पीते थे जिस पर मृतक ने आपत्ति जताई थी और फिर वे उसके साथ लड़ाई करते थे। अ०सा०-3 चेत राम और शाहमल के साथ दूध बेचकर दुकान पर कुछ देर रुककर आता था और मृतक ने उन्हें बताया था कि शराब पीने को लेकर उसके और बंगालियों और बिहारियों के बीच झगड़े होते थे और कई मौकों पर पुलिस को सूचना दी जाती थी। पुलिस उन्हें पकड़कर थाने ले जाती थी। उन्होंने कहा कि मृतक की दुकान के पास, ज्यादातर नाइजीरियाई अपार्टमेंट में रहते थे। उन्होंने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर कहा कि नाइजीरियाई लोगों ने पहले एक ऑटो चालक को ले जाकर उसकी हत्या कर दी थी। उन्होंने आगे कहा कि उनके गांव में एक सरकारी शराब की दुकान थी, लेकिन ये लोग वहां से शराब नहीं खरीदते थे क्योंकि यह महंगी थी और इसलिए वे वेद प्रकाश की दुकान से शराब खरीदते थे। उन्होंने कहा कि एक बार लड़ाई हुई थी और मृतक वेद प्रकाश द्वारा अ०सा०-3 सहित कई लोगों को उस स्थान पर बुलाया गया था, और उन्होंने उपद्रव पैदा करने वाले लोगों को पीटा था। यह घटना दिनांक 16.11.2012 से लगभग 8 से 10 दिन पहले हुई थी। अ०सा०-3 ने कहा कि मृतक ने उसे बताया था कि जिन लोगों के साथ उन्होंने लड़ाई की थी, वे उसकी दुकान के आसपास घूमते थे। उन्होंने कहा कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे तो वेद प्रकाश मृत पड़ा था। उन्होंने कहा कि यह गवाही सही है और जो गवाही उन्होंने पहले दी है वह दबाव में थी। उन्होंने कहा कि उनकी पहली गवाही एडवोकेट द्वारा उन्हें डिक्टेट की गई थी और उसके बाद उन्होंने गवाही दी थी। उन्होंने कहा कि उन्होंने आरोपी को मृतक को चाकू मारते नहीं देखा था। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा अ०सा०-3 की प्रतिपरीक्षा में, अ०सा०-3 ने स्वीकार किया कि उसकी गवाही 9.1.2014 को दर्ज की गई थी जिसमें अभियुक्त द्वारा उसकी जिरह भी की गई थी।

उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह पंचायत के समक्ष समझौते के मद्देनजर केवल उसी जाति के आरोपियों को बचाने के लिए अपनी गवाही दे रहे थे। उन्होंने किसी तरह के दबाव या धमकी या किसी प्रलोभन से भी इनकार किया।

30. अ०सा०-4 डॉ. संत राम वर्मा, वरिष्ठ चिकित्सक, जिला अस्पताल गौतम बुद्ध नगर थे जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया था। उन्होंने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को साबित किया और कहा कि पोस्टमॉर्टम परीक्षा के दौरान मृतक पर छह घाव पाए गए थे। उन्होंने कहा कि चोटें संभवतः एक धारदार हथियार के कारण हुई थीं जो चाकू भी हो सकती है। अपनी जिरह में, उन्होंने इस बात से इनकार किया कि जहां तक घाव नंबर 1 का संबंध है, उन्होंने घाव को नहीं लिखा था। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने किसी भी घाव के किनारों की स्थिति का उल्लेख नहीं किया था। उनके सुझाव पर उन्होंने स्वीकार किया कि मृतक को चाकू के घाव के कारण कोई चोट नहीं आई थी।

31. एक अन्य चश्मदीद गवाह चेत राम, जो अ०सा०-5 था, की गवाही 24.2.2015 को दर्ज की गई जो मुकर गया। उन्होंने बताया कि घटना की तारीख को वह और महेंद्र दूध बांटकर लौटे थे। उसने आरोपी को घटनास्थल पर नहीं देखा था और न ही उसने चिल्लाहट सुनी थी और न ही कुछ देखा था। उन्होंने कहा कि उन्होंने आरोपी को स्विफ्ट कार या मोटर बाइक पर भागते नहीं देखा है। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा जिरह में अ०सा०-5 ने कहा कि वह दूध सप्लाई करने के बाद शाम 7 से 7:30 बजे तक लौट आया। उन्होंने स्वीकार किया कि वेदपाल के भाई वेद प्रकाश की हत्या की गई है। हालांकि, उन्होंने आरोपी को मृतक को पीटते या छुरा घोंपते हुए देखने से इनकार किया और कहा कि उसने चिल्लाहट सुनी थी। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि आरोपी वीरपाल को उसी गांव का निवासी होने के कारण वह चाचा के रूप में संदर्भित करता है।

32. अ०सा०-6, अनंग पाल सिंह, पुलिस उप-निरीक्षक थे, जिन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ, पूछताछ रिपोर्ट और फ़र्द बरामदगी साबित किया। उन्होंने कहा कि वेदपाल (शिकायतकर्ता) की लिखित शिकायत दर्ज होने के बाद, उन्होंने थानाध्यक्ष श्याम कांत त्रिपाठी के साथ घटनास्थल का दौरा किया। थानाध्यक्ष ने मृतक की लाश को कैलाश अस्पताल भेजा था और उसे पंचनामा तैयार करने का निर्देश दिया था। कैलाश अस्पताल में पंचनामा की कार्यवाही शुरू की गई। उन्होंने बताया कि पंचनामा की कार्यवाही रात 11:30 बजे शुरू हुई और 17.12.2012 को 2 बजे समाप्त हुई। उन्होंने मुख्य चिकित्साधिकारी को भेजे गए पत्र को फॉर्म नंबर 13 में लाश की फोटो और सैंपल सील में भी साबित किया। उन्होंने कहा कि 19.12.2012 को आरोपी वीरपाल और कालू को थानाध्यक्ष ने गिरफ्तार किया और उनसे पूछताछ की। पूछताछ के बाद दोनों आरोपियों को सरकारी गाड़ी पर चुहड़पुर अंडरपास ले जाया गया और वीरपाल ने चाकू की ओर इशारा किया जो दुकान के पीछे से बरामद हुआ। दुकान के दूसरी तरफ झाड़ियों से कालू द्वारा इशारा किए जाने पर एक और चाकू

बरामद हुआ। आरोपियों ने स्वीकार किया कि उन्होंने मृतक वेद प्रकाश की हत्या उन चाकुओं से की थी। दोनों चाकुओं को कब्जे में लेकर सील कर दिया गया। ज्ञापन थानाध्यक्ष के हुक्म पर अ०सा०-6 द्वारा लिखा गया था। पुलिस टीम और आरोपियों को मेमो पढ़ कर सुनाया गया और उन्हें उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया। आरोपियों को इसकी एक प्रति भी दी गई।

आगे कहा गया कि 20.11.2012 को, अ०सा०-6 ने थानाध्यक्ष के साथ आरोपी पम्मी को कासना बस स्टैंड से गिरफ्तार किया था। पूछताछ करने पर उसने बताया कि मृतक वेद प्रकाश लड़कियों को छेड़ता था और उसे कई बार चेतावनी दी गई थी। पम्मी ने कहा कि 16.11.2012 को अंधेरा होने के बाद, वह और उसका चचेरा भाई ओम अपने पिता वीरपाल और अन्य लोगों के साथ चुहड़पुर के पास एक निर्माणाधीन इमारत में गए और वहां हमने वेद प्रकाश की चाकुओं से वार करके उसकी हत्या कर दी और वाहनों पर सवार होकर भाग गए। उसने बताया कि उसने अपना चाकू ट्यूबवेल के कमरे के पास दबा दिया था। जनता से गवाही मांगी गई लेकिन नहीं मिली। इसके बाद, पम्मी ने वाहन को स्थान पर रोकने के लिए कहा और ट्यूब-वेल के कमरे के पीछे की तरफ चला गया और अपने हाथों से मिट्टी खोदी और एक चाकू निकाला जो खून से सना हुआ था। बरामद चाकू को कब्जे में लेकर विधिवत सील कर दिया गया। थानाध्यक्ष के आदेश पर, अ०सा०-6 द्वारा मेमो तैयार किया गया था और उसके बाद इसे आरोपी पम्मी को पढ़ कर सुनाया गया और पुलिस कर्मियों ने इस पर हस्ताक्षर किए। यह फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-9 उनके द्वारा साबित किया गया था। वसूली ज्ञापन की एक प्रति आरोपी पम्मी को दी गई और उसने उस पर हस्ताक्षर किए।

अ०सा०-6 ने आगे कहा कि 2.12.2012 को उन्हें और थानाध्यक्ष को कासना में एक मंदिर के पास एक हत्या के आरोपी के होने की सूचना मिली और लगभग 10:15 बजे, उन्हें घेर लिया गया और पकड़ लिया गया। आरोपी ने अपना नाम ओम कुमार @ ओमी बताया। आरोपी ने स्वीकार किया कि उसने पम्मी, भूरा, वीरपाल और कालू के साथ मिलकर वेद प्रकाश की चाकुओं से गोदकर हत्या कर दी और उसकी हत्या करने के बाद फरार हो गए। उसके इशारा करने पर चुहड़पुर एटीएस की ओर अंडरपास में झाड़ियों से चाकू बरामद हुआ। चाकू मिट्टी और खून से सना हुआ था और थानाध्यक्ष के हुक्म पर, अ०सा०-6 ने ज्ञापन लिखा था। अ०सा०-6 ने फ़र्द बरामदगी को साबित किया और इसे क-10 के रूप में प्रदर्शित किया गया। आरोपी को फ़र्द बरामदगी की कॉपी दी गई और उसने उस पर हस्ताक्षर किए।

अ०सा०-6 की गवाही के दौरान, बरामद वस्तुओं वाले स्टाम्प वाला एक सीलबंद पैकेज अदालत की अनुमति से खोला गया था, जिस पर कानूनी फोरेंसिक प्रयोगशाला, उत्तर प्रदेश की एक पर्ची चिपकाई गई थी। अ०सा०-6 ने पांच चाकू की पहचान की जो आरोपी की निशानदेही पर बरामद किए गए थे। बरामद की गई सभी वस्तुओं को सिद्ध कर प्रदर्शित किया गया।

अपनी जिरह में, अ०सा०-6 ने कहा कि जांच श्री श्यामाकांत त्रिपाठी (थानाध्यक्ष) को दी गई थी। प्राथमिकी दर्ज होने के तुरंत बाद अ०सा०-6

को बुलाया गया। वे मृतक के भाई वेदपाल के साथ 10 से 11 मिनट बाद थाना से निकले। उसे याद नहीं था कि वेदपाल के साथ और भी लोग थे या नहीं। जब वे 11-11:15 बजे तक घटनास्थल पर पहुंचे, तो घटनास्थल पर लोगों की भीड़ थी, जिनका वह नाम नहीं बता सके। मृतक के शव से बरामद सामान को उसने सील कर दिया था। जिन स्थानों से हत्या के हथियार बरामद किए गए थे, वे रास्ते थे। उन्होंने उस जगह से गुजरने वाले लोगों से गवाही देने के लिए कहा था लेकिन उन्होंने मना कर दिया और अपना नाम और पता नहीं दिया। उन्हें याद नहीं था कि हत्या के हथियारों की बरामदगी से पहले उन्होंने एक-दूसरे की तलाशी ली थी या नहीं। इसके बाद उन्होंने कहा कि तलाशी ली गई थी। हथियारों को मौके पर ही सील कर दिया गया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि फ़र्द बरामदगी और इंक्वायरी रिपोर्ट मौके पर तैयार नहीं की गई थी, बल्कि थाना में तैयार की गई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि हत्या के हथियार आरोपियों से बरामद नहीं किए गए थे और थाना से थे, और उन्होंने घटनास्थल पर मेमो तैयार नहीं किया था। लोगों की भीड़ और अंधेरा होने और पर्याप्त रोशनी के अभाव में थानाध्यक्ष ने मृतक की लाश को घटनास्थल से कैलाश अस्पताल ग्रेटर नोएडा भिजवा दिया जहां पूछताछ तैयार की गई। उन्होंने माना कि भीड़ और कम रोशनी (अंधेरा) के कारण घटनास्थल पर पंचनामा की कार्यवाही नहीं हो सकी। पंचनामा के गवाह गांव से सीधे अस्पताल पहुंचे। गांव के कई लोग कैलाश अस्पताल पहुंचे थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि हत्या के हथियारों की बरामदगी और जांच रिपोर्ट और अन्य कार्यवाही घटनास्थल पर नहीं बल्कि थाना में की गई थी, और यह कि वे गलत तरीके से किए गए थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि फ़र्द बरामदगी थानाध्यक्ष द्वारा नहीं बल्कि उनके द्वारा बनाए गए थे।

33. दिनांक 10.03.2015 को अ०सा०-7 देवेन्द्र पुत्र बुद्धन सिंह (चश्मदीद गवाह) की गवाही भी दर्ज की गई जो अपने बयान से मुकर गया। उन्होंने आरोपियों की पहचान की, जो उनके गांव के रहने वाले बताए जा रहे हैं। शिकायतकर्ता वेदपाल उसी गांव का रहने वाला बताया जा रहा है। मृतक वेद प्रकाश उसका चचेरा भाई था। उन्होंने घटना की तारीख और समय पर चुहड़पुर अंडरपास के पास पहुंचने की बात स्वीकार की। उन्होंने कालू (मृतक के उपनाम) के मदद के लिए चिल्लाने की आवाज सुनने से इनकार कर दिया। वहां कई लोग जमा हुए थे। उन्होंने दुकान के पास खाली पड़ी जमीन पर वीरपाल, कालू, पम्मी उर्फ राम औतार, भूरा उर्फ सुमित या किसी अन्य व्यक्ति को चाकुओं और बेल्ट से वेद प्रकाश की हत्या करते हुए देखने से इनकार किया।

उन्होंने इस बात से इनकार किया कि आरोपी और मृतक के बीच गांव में कोई विवाद हुआ था। हालांकि, उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने खून से लथपथ वेद प्रकाश का शव चुहड़पुर अंडरपास के पास खुली जमीन पर पड़ा देखा था।

विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा जिरह में अ०सा०-7 ने स्वीकार किया कि मृतक वेद प्रकाश उसके चाचा का बेटा है। उन्होंने कहा कि वीरपाल और अन्य (आरोपी) गांव के सदस्य होने के नाते

उनके लिए भाइयों की तरह थे लेकिन वे उनके परिवार से अलग थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि अपने कार्यालय से लौटते समय वह वेद प्रकाश से मदद के लिए चिल्लाने की आवाज सुनकर चुहड़पुर अंडरपास के पास रुक गए थे, और आरोपी वेद प्रकाश को चाकू मार रहे थे और उसे बेल्ट से पीट रहे थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने वेद प्रकाश की हत्या की और भाग गए। उसने स्वीकार किया कि उसने वेद प्रकाश को खून से लथपथ देखा था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि 15.11.2012 को वेद प्रकाश और वीरपाल के बेटों के बीच गांव में कोई विवाद हुआ था। उन्होंने कहा कि महेंद्र (शिकायतकर्ता का भाई) उनके चाचा का बेटा है। उन्होंने बिजली की रोशनी में आरोपी व्यक्तियों को देखने और पहचानने से इनकार किया। उन्होंने स्वीकार किया कि पुलिस कर्मियों ने उनसे घटना के बारे में पूछताछ की थी। पुलिस के सामने द०प्र०स० की धारा 161 के तहत दिए गए बयान के संबंध में, अ०सा०-7 ने कहा कि उसने विवेचनाधिकारी को यह नहीं बताया था कि घटना की तारीख पर उसने आरोपी को मृतक वेद प्रकाश पर चाकू और बेल्ट से हमला करते देखा था। उन्होंने आरोपी वीरपाल और अन्य के परिवार के सदस्यों के साथ किसी भी गुप्त समझौते के सुझाव से इनकार किया। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया कि वह वीरपाल और अन्य लोगों से डरते थे और इसलिए, वह सच नहीं बता रहे हैं। आरोपी के अधिवक्ता द्वारा अपनी जिरह में, अ०सा०-7 ने कहा कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचा तो वहां कई लोग मौजूद थे। उन्होंने कहा कि वह अन्य व्यक्तियों के नाम नहीं जानते हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे, तो काफी अंधेरा था।

34. दिनांक 14.12.2015 को अ०सा०-8 शाहमल पुत्र बचन सिंह जिसका व्यवसाय वेल्डिंग सामग्री का कार्य बताया गया, ने गवाही दी कि वह वेद प्रकाश को जानता था। दिनांक 16.11.2012 को उनकी हत्या कर दी गई। वह आरोपियों को जानता था जो चुहड़पुर के रहने वाले थे। दिनांक 15.11.2012 को मृतक और अभियुक्त के बीच कोई विवाद नहीं हुआ था। दिनांक 16.11.2012 को रात लगभग 8:30 बजे उसने वेद प्रकाश के चिल्लाने की आवाज नहीं सुनी थी। उन्होंने आरोपी को मृतक पर चाकू और बेल्ट से हमला करते और दुकान के पास खाली जमीन से भागते हुए देखने से इनकार किया।

विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (क्रिमिनल) द्वारा उनसे जिरह की गई। गवाह को द०प्र०स० की धारा 161 के तहत बयान पढ़कर सुनाया गया। उन्होंने कहा कि न तो पुलिस ने उनका बयान लिया और न ही उन्होंने दिया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि 16.11.2012 को रात 8:30 बजे जब वेद प्रकाश की हत्या हुई थी, वह वहां मौजूद थे। इस बात से इनकार किया जाता है कि वेद प्रकाश से मदद के लिए चीख-पुकार सुनकर वह मौके पर पहुंचे थे। उन्होंने आरोपियों को वेद प्रकाश पर चाकू और बेल्ट से हमला करते हुए देखने से इनकार किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि घटनास्थल पर बिजली की रोशनी थी और उस रोशनी में उन्होंने अदालत में मौजूद आरोपियों को मृतक वेद प्रकाश पर चाकू और बेल्ट से हमला करते देखा था और वे अपराध करने के बाद भाग गए थे। उसने

स्वीकार किया कि वह वेदपाल के साथ थाना में रिपोर्ट दर्ज कराने गया था और रिपोर्ट उसकी मौजूदगी में दर्ज की गई थी। उसने स्वीकार किया कि आरोपी और वह एक ही जाति और गांव के हैं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि आरोपी एक ही जाति/घर परिवार के हैं, पड़ोसी हैं और गांव में आयोजित पंचायत के दबाव में वह आरोपियों का बचाव कर रहे थे। उसने स्वीकार किया कि आरोपी वीरपाल और अन्य उसके लिए भाइयों की तरह थे, क्योंकि वह एक ही गांव के थे। इस बात से इनकार किया गया कि आरोपी द्वारा डर, दबाव और प्रलोभन के कारण वह सही तथ्य नहीं बता रहा था।

आरोपी के अधिवक्ता द्वारा जिरह में, अ०सा०-8 ने कहा कि उसके पास 'निर्माण सामग्री' का काम है, उसका कार्यालय आम्रपाली भवन के पास है जहां से वह व्यवसाय करता है। उनका कार्यालय घटनास्थल से करीब 300 मीटर की दूरी पर है। मृतक वेद प्रकाश की किराने की दुकान थी जहां वह हरियाणा की बनी देशी शराब बेचता था। वह अंडे आदि बेचने का काम भी करता था। मृतक वेद प्रकाश की दुकान के पास कुछ नाइजीरियाई, बिहारी और बंगाली रहते थे और उसकी दुकान पर शराब पीते थे जो रात 11-12 बजे तक खुली रहती थी। वेद प्रकाश का उनसे शराब आदि को लेकर झगड़ा होता था। घटना से करीब 4-5 दिन पहले नाइजीरियाई, बिहारियों और बंगालियों के साथ झगड़ा हुआ था जिसमें वेदप्रकाश के गांव से 15-20 लोगों को पीटने के लिए बुलाया गया था। उस घटना के समय पुलिस दुकान पर आई हुई थी। उस लड़ाई में पुलिस और वीरपाल, पम्मी और बलराज के बीच काफी कहासुनी हुई थी, जिन्होंने वेद प्रकाश (मृतक) को पुलिस द्वारा थाने ले जाने से रोक दिया था। उस घटना के 2-3 दिन बाद वेद प्रकाश ने उसे बताया था कि लड़ाई के दिन से ही नाइजीरियाई, बंगाली और बिहारी उसे मारने की तलाश में रहते थे और देर तक उसकी दुकान के पास खड़े रहते थे। उन्होंने बताया कि घटना के समय वह सबसे पहले मौके पर पहुंचे थे। मृतक वेद प्रकाश अपनी दुकान के पास खुली जमीन में लगाई गई 2-3 फीट ऊंची चाकू जैसी ग्रिल के ऊपर से लटक रहा था और चाकू जैसी ग्रिल उसके बाजू और बाहों में जकड़ी हुई थी। फिर वहां के लोगों की मदद से मृतक को रेलिंग से उतारकर नीचे लिटा दिया था। तब तक वेद प्रकाश की मौत हो चुकी थी और मौके पर रोशनी नहीं थी। उन्होंने कहा कि उन्होंने चेतराम, महेंद्र, देवेंद्र और वेदपाल को घटना की जानकारी दी थी। सूचना के आधे घंटे बाद वे मौके पर पहुंचे। इसके बाद उन्होंने पुलिस को सूचना दी। उन्होंने कहा कि उन्होंने अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी लिखने के लिए कहा था, लेकिन पुलिस ने उन्हें रिपोर्ट में वीरपाल और अन्य लोगों का नाम लेने के लिए मजबूर किया क्योंकि घटना से 2-3 दिन पहले वीरपाल और पुलिस के बीच बहुत विवाद हुआ था। उन्होंने पुलिस को 3-4 दिन पहले नाइजीरियन और अन्य लोगों के साथ हुई लड़ाई की घटना के बारे में बताया था। हालांकि, उन्हें बताया गया था कि ये लोग बाहर के विदेशी हैं इसलिए मामला बिगड़ जाएगा और इसलिए उनके नाम नहीं लिखे गए और ग्रामीणों के नाम लिखे गए। उन्होंने कहा कि वे इस घटना से इतने भयभीत थे कि उनका मानसिक संतुलन नहीं

था। उन्होंने कहा कि उन्होंने वेदपाल से बात की थी जिन्होंने पहली गवाही दी थी और उनसे पूछा था कि उन्होंने ऐसी गवाही कैसे दी थी। वेदपाल ने कहा कि पुलिस के दबाव में उन्होंने झूठी गवाही दी थी और अगर कोर्ट उन्हें दोबारा बुलाता है तो वह सच बताएंगे।

35. अ०सा०-9, श्यामा कांत त्रिपाठी (विवेचनाधिकारी) की गवाही 11.2.2016 को हुई, जिन्होंने गवाही दी कि 16.11.2012 को वह इंस्पेक्टर इंचार्ज थाना कासना के रूप में तैनात थे।

उसी रात 10:30 बजे एक प्राथमिकी दर्ज की गई और वेदपाल का बयान दर्ज करने के बाद, वह पुलिस बल के साथ हत्या स्थल पर पहुंचा। दिनांक 17.11.2012 को एस.आई अनंग पाल सिंह को मृतक के शव की जांच करने के लिए कैलाश अस्पताल भेजा गया। चश्मदीद गवाह देवेंद्र और शाहमल के बयान दर्ज किए गए और उसके बाद पंचनामा और घटनास्थल की एक प्रति का निरीक्षण किया गया। खून से सनी मिट्टी और समतल मिट्टी की बरामदगी के ज्ञापन की नकल करने के बाद, अभियुक्तों की तलाश की गई और 20.11.2012 को आरोपी पम्मी @ राम औतार को बस स्टैंड कासना के पास से गिरफ्तार किया गया। उससे पूछताछ की गई और उसका बयान दर्ज किया गया जिसमें उसने स्वेच्छा से अपराध कबूल किया और जिसके संकेत पर एक पानी की टंकी के पीछे हत्या का हथियार बरामद किया गया, जो खून से सनी हुई थी और जिसे कब्जे में ले लिया गया था और घटनास्थल पर एक नक्शा नज़री तैयार की गई थी। हत्या के हथियार की फ़र्द बरामदगी घटनास्थल पर तैयार किया गया था जो प्रदर्श क-9 है। उन्होंने हत्या की नक्शा नज़री को भी साबित किया जो उनके अपने हाथ और हस्ताक्षर में था और जिस पर प्रदर्श का-11 लिखा हुआ था। उन्होंने पम्मी की ओर इशारा करते हुए हत्या के हथियार की बरामदगी की नक्शा नज़री को भी प्रदर्श क-12 के रूप में साबित किया। उन्होंने कहा कि गवाह चेतराम का बयान 26.11.2012 को दर्ज किया गया था। दिनांक 02.12.2012 को एक शिकायतकर्ता से सूचना मिलने पर आरोपी ओमी को सुबह करीब 10.15 बजे कासना ब्रिज के पास से गिरफ्तार किया गया, जिसने अपना अपराध कबूल कर लिया और हत्या में इस्तेमाल किया गया हथियार भी बताया जो चुहड़पुर अंडरपास के पास एटीएस से सटे ग्रीन बेल्ट में झाड़ियों से बरामद किया गया था। वसूली ज्ञापन एस.आई अनंग पाल सिंह को निर्देशित किया गया था। हत्या के हथियार को सील कर दिया गया था और ज्ञापन को प्रदर्श क-10 के रूप में साबित किया गया था। वसूली की नक्शा नज़री प्रदर्श का -13 के रूप में साबित हुई थी। अ०सा०-9 ने आगे कहा कि एक अन्य चश्मदीद गवाह महेंद्र सिंह का बयान 05.12.2012 को दर्ज किया गया था, जिसके बाद मेमो के गवाहों के बयान के साथ पंचनामा के गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे। दिनांक 07122012 को अभियुक्त वीरपाल, कालू @ बलराज ने आत्मसमर्पण कर दिया। दिनांक 12.12.2012 को अभियुक्त भूरा @सुमित को गिरफ्तार किया गया। अभियुक्त वीरपाल, कालू @ बलराज और भूरा @ सुमित के बयान न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात दिनांक 13.12.2012 को जिला जेल, गाजीपुर

में दर्ज किए गए। दिनांक 19.12.2012 को टायर पंचर की दुकान के पास से आरोपी वीरपाल की निशानदेही पर हत्या में प्रयुक्त हथियार बरामद किया गया जिसे कब्जे में लेकर सील कर दिया गया। आरोपी कालू @ बलराज की निशानदेही पर हत्या का एक और हथियार बरामद किया गया। हत्या के दोनों हथियारों को कब्जे में ले लिया गया और ज्ञापन एस.आई अनंग पाल सिंह को सौंपा गया। साथ आए पुलिस कर्मियों ने मेमो पर गवाह के रूप में हस्ताक्षर किए, जिसके बाद आरोपियों को उसकी एक प्रति दी गई और हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया। अ०सा०-9 ने दिनांक 23.12.2012 को आरोपी सुमित @ भूरा की निशानदेही पर चाकू की बरामदगी भी साबित की और वसूली का ज्ञापन एस.आई अनंग पाल को लिखवाया गया, जिसकी एक प्रति आरोपी सुमित को उसके हस्ताक्षर प्राप्त करने के बाद दी गई। वसूली की नक्शा नज़री भी तैयार की गई थी जिसे साबित किया गया और प्रदर्श क16 के रूप में चिह्नित किया गया। गवाहों के बयान और फ़र्द बरामदगी भी लिए गए थे और दिनांक 30.12.2012 को अभियुक्त के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर किया गया था। उन्होंने कहा कि बरामद हत्या के हथियार और खून से सनी मिट्टी और साधारण मिट्टी एक कांस्टेबल के माध्यम से फोरेंसिक प्रयोगशाला, आगरा भेजी गई थी, जो 30.01.2014 की रिपोर्ट के अनुसार दस्तावेज़ 30खा/2 के पीछे की तरफ की गई थी, तब तक प्राप्त नहीं हुई थी।

अपनी जिरह में उसने उन व्यक्तियों की जानकारी होने से इंकार किया जो वेदपाल के साथ 16.11.2012 को सूचना देने के लिए थाना गए थे। रात 10:30 बजे थाने में रिपोर्ट लिखी गई। उन्होंने कहा कि 15.11.2012 को एक विवाद के संबंध में हुई घटना के संबंध में कोई शिकायत या सूचना नहीं दी गई थी। थाना से, वह रात 11:00 बजे घटनास्थल के लिए रवाना हुए और रात 11:30 बजे वहां पहुंचे, जो घटनास्थल 4 से 5 किलोमीटर की दूरी पर थी। थाने से। वह सब इंस्पेक्टर अनंग पाल और सब इंस्पेक्टर वीर सिंह समेत 4 से 5 लोगों के साथ सरकारी वाहन से घटनास्थल पर गए थे। उन्होंने कहा कि वेदपाल और अन्य लोग अपने वाहन से उनके साथ गए थे। उन्होंने कहा कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे तो वेद प्रकाश की मौत हो चुकी थी। उसे याद नहीं था कि घटनास्थल पर क्या चीजें मौजूद थीं। उन्होंने स्वीकार किया कि घटनास्थल पर कई लोग मौजूद थे। वह वहां मौजूद किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं बता सके। उन्होंने कहा कि उस समय, एक्सप्रेसवे के हाईमास्ट से एक प्रकाश था और जब वह घटनास्थल पर पहुंचे तो आस-पास की कोई भी दुकान खुली नहीं थी। वह याद नहीं कर सका कि मृतक की लाश किस दिशा में संरेखित थी। उसे याद नहीं आ रहा था कि घटना के समय शव ऊपर मुंह के बल पड़ा था या नीचे। उन्होंने कहा कि घटनास्थल पर वह शाहमल और अन्य लोगों से मिले। उन्होंने घटनास्थल से शव को कैलाश अस्पताल भेज दिया था। लाश के साथ अन्य पुलिस कर्मी भी जा चुके थे। उन्होंने आगे कहा कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे, तो वेद प्रकाश की दुकान बंद थी। जांच घटना के स्थान पर नहीं बल्कि अस्पताल में की गई थी। मेमो अस्पताल में तैयार किया गया था, घटना के स्थान पर नहीं। उन्होंने कहा कि कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए मृतक के शव को अस्पताल भेजा गया। इसलिए अस्पताल में पूछताछ तैयार

की गई। उन्होंने आगे कहा कि घटना के चश्मदीद गवाह वेदपाल, देवेंद्र, महेंद्र और अन्य भी मौजूद थे। उन्होंने घटनास्थल के पास रहने वाले लोगों के नामों की जानकारी होने से इनकार किया। उन्होंने स्वीकार किया कि कई लोग वहां रुके थे। थाने के क्षेत्र में उनकी तैनाती की अवधि के दौरान हत्या की कई घटनाएं हुईं। उन्होंने नाइजीरियाई, बंगालियों, बिहारियों और अन्य लोगों से जुड़ी घटना से पहले की किसी भी घटना की याद होने से इनकार किया। जब प्राथमिकी में उल्लिखित मोटरसाइकिल और स्विफ्ट कार के बारे में सवाल किया गया, तो अ०सा०-9 ने कहा कि उन्हें उनके पंजीकरण नंबरों के संबंध में केस डायरी को देखना होगा। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि आरोपी से उनके द्वारा की गई वसूली गलत तरीके से और थाना में की गई थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि मृतक वेद प्रकाश की मौत नाइजीरियाई और अन्य लोगों के साथ लड़ाई में हुई थी और चूंकि वे विदेशी थे, इसलिए अ०सा०-9 ने एक झूठा मामला स्थापित किया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि मृतक वेद प्रकाश का घटना से 2-3 दिन पहले नाइजीरियाई, बिहारियों और बंगालियों के साथ झगड़ा हुआ था और उन्हें घटना की जानकारी थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने घटनास्थल पर या आसपास के लोगों से जानकारी नहीं ली। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि मृतक वेद प्रकाश के शरीर पर घाव घटनास्थल पर चाकू के आकार की ग्रिल से हुए थे।

36. अभियुक्त वीरपाल द्वारा दिनांक 20.05.2016 को धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दिए गए बयान में उसने मृतक की हत्या से इन्कार किया और आरोप लगाया कि उसके विरूद्ध झूठी प्राथमिकी दर्ज की गई और दलगत राजनीति एवं गाँव में रंजिश के कारण उसके विरूद्ध झूठी गवाही दी गई है। 20.05.2015 को धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान भी पम्मी @ राम औतार द्वारा और ओम कुमार @ ओमी और कालू @ बलराज द्वारा भी, उसी तर्ज पर दिया गया था!

37. मृतक के भाई अ०सा०-1 ने 20.11.2013 को और फिर 17.01.2014 को गवाही दी, जब उसे बचाव पक्ष द्वारा दायर एक आवेदन पर वापस बुला लिया गया। उन्होंने कहा है कि सभी लोग और उनके भाई प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए थाना गए थे, जिसमें लगभग एक घंटा लगा। अ०सा०-1, जो कथित घटना का शिकायतकर्ता और चश्मदीद गवाह है, घटना के स्थान और समय और आरोपी की भागीदारी के बारे में अपनी गवाही में काफी हद तक सुसंगत रहा है। बताए गए समय पर घटनास्थल के पास उसकी उपस्थिति, पहली बार में शरमाना, स्वाभाविक प्रतीत होती है क्योंकि वह खुद को निर्माण सामग्री की आपूर्ति के व्यवसाय में शामिल होने के लिए कहता है और वह अपनी कार 'ए-स्टार' में संबंधित कार्यालय में निर्माणाधीन भवन के कार्यालय में व्यक्ति से बात करने के लिए गया था। हालांकि, अ०सा०-3, महेंद्र ने 09.01.2014 को अपनी गवाही में, हालांकि अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है, लेकिन अपनी जिरह में, उन्होंने कहा कि यह वह था जिसने पहली बार आरोपी को मृतक पर हमला करते हुए देखा था और शिकायतकर्ता वेदपाल और अन्य बाद में आए थे और वह

आगे कहता है कि वेदपाल और अन्य गांव की तरफ से आए थे और वे गांव की ओर 20-25 कदम की दूरी पर खड़े थे। इस प्रकार, अ०सा०-1 और अ०सा०-3 द्वारा दिए गए बयान में स्पष्ट असंगति है कि घटना को पहले किसने देखा और घटना के समय अ०सा०-1 का स्थान क्या था।

15.10.2015 को अ०सा०-3 ने बयान दिया कि मृतक और बंगालियों, बिहारियों और नाइजीरियाई लोगों के बीच गंभीर विवाद और झगड़े हुए थे।

इस मामले का एक दूसरा पहलू भी है। अ०सा०-1 का आचरण स्वाभाविक नहीं लगता है, बल्कि अजीब लगता है। उनके द्वारा दर्ज कराई गई उस प्राथमिकी में, उन्होंने कहा कि आरोपी व्यक्ति आए और उनके भाई पर चाकू और बेल्ट से हमला किया, जिसके कारण उनका भाई घटनास्थल पर गिर गया। हालांकि, अदालत के समक्ष अपनी गवाही में, उन्होंने कहा कि उनके भाई की घटनास्थल पर ही तड़प-तड़प कर मृत्यु हो गई और उसके बाद वह रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए थाना गए थे। उन्होंने आगे कहा कि वह अपने भाई को अस्पताल नहीं ले गए क्योंकि वह पहले ही मर चुके थे और उनके पास अपने जीवित रहने की कोई उम्मीद नहीं बची थी, लेकिन उसके बाद न तो उन्होंने और न ही उनके भाइयों ने उन्हें छुआ या पकड़ा। इसके बाद, अ०सा०-1 कहता है कि उसने अपने भाई को यह देखने के लिए छुआ कि क्या वह सांस ले रहा था लेकिन वह सांस नहीं ले रहा था। वह आगे कहता है कि उसके साथ एक नौकर था जिसे उसने घटना के बारे में सूचित करने के लिए घर भेजा था, फिर वह और उसके भाई और अन्य लोग रिपोर्ट दर्ज करने के लिए थाना गए। उनका कहना है कि रिपोर्ट लिखने में थाने में करीब एक घंटा का समय लगा। इन परिस्थितियों में, अ०सा०-1 का अप्राकृतिक आचरण इस तथ्य में परिलक्षित होता है कि:

(क) प्रथम सूचना रिपोर्ट में, उसने अपने भाई की मृत्यु के बारे में उल्लेख नहीं किया है जबकि उसने घटनास्थल पर काफी समय बिताया था और उसने नौकर को घर जाकर अन्य लोगों को सूचित करने का आदेश दिया था और तत्पश्चात् वह भाइयों और अन्य लोगों के साथ थाना गया जहां उसने रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए एक घंटे तक प्रतीक्षा की।

(ख) इसके अलावा, यह तथ्य कि उसने उस स्थान पर किसी को नहीं छोड़ा, जो कि उसका नौकर भी नहीं है, जबकि स्पष्ट रूप से उस स्थान के आसपास कई लोग थे, अप्राकृतिक है।

(ग) यह तथ्य कि उसके पास कार होने के बावजूद उसने दूसरों की सहायता से अपने भाई को अस्पताल ले जाने के बारे में नहीं सोचा, अस्वाभाविक है। हाल ही में, नरेंद्रसिंह केशुभाई जाला बनाम गुजरात राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अप्राकृतिक आचरण और अस्पष्ट परिस्थितियों के मुद्दे पर गवाह पर अविश्वास करने का आधार होने के कारण निम्नानुसार टिप्पणी की:

-

8. यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि संदेह प्रमाण को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। संदेह, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, आपराधिक न्यायशास्त्र में सबूत का कोई विकल्प नहीं है [जग्गा सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1994 सप्प (3) एस.सी.सी 463]। केवल ऐसा साक्ष्य ही स्वीकार्य है जो कानून के

अनुसार अनुमेय है। एकमात्र चश्मदीद गवाह के मामले में, गवाह को विश्वसनीय, भरोसेमंद होना चाहिए, उसकी गवाही विश्वसनीयता के योग्य होनी चाहिए और मामला उचित संदेह से परे साबित होना चाहिए। अप्राकृतिक आचरण और अस्पष्टीकृत परिस्थितियाँ गवाह पर अविश्वास करने का आधार हो सकती हैं। अनिल फुकन बनाम भारत संघ असम राज्य, (1993) 3 एस.सी.सी 282 के मामले में न्यायालय ने माना है कि:

"3. ... जब तक एकमात्र चश्मदीद गवाह पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह है, तब तक अदालतों को अकेले उसकी गवाही पर दोषसिद्धि को आधार बनाने में कोई कठिनाई नहीं है। हालांकि, जहां एकल चश्मदीद गवाह को पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह नहीं पाया जाता है, इस अर्थ में कि कुछ परिस्थितियां हैं जो दिखा सकती हैं कि वह अभियोजन पक्ष में रुचि ले सकता है, तो अदालतें आम तौर पर दोषसिद्धि दर्ज करने से पहले, सामग्री विवरणों में उसकी गवाही के कुछ स्वतंत्र पुष्टिकरण पर जोर देती हैं। यह केवल तभी होता है जब अदालतों को पता चलता है कि एकमात्र चश्मदीद गवाह पूरी तरह से अविश्वसनीय गवाह है कि उसकी गवाही को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाता है और कोई भी पुष्टि उस दोष को ठीक नहीं कर सकती है ...

उस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने आगे इस प्रकार कहा: -

"11. इसके अलावा, उसकी गवाही के जिरह भाग में उसका श्रेय महाभियोग है। साक्षी एक वयस्क, परिपक्व और सांसारिक बुद्धिमान है। उसकी उम्र 24 साल है और वह किराने की दुकान चलाता है। वह अनपढ़ नहीं है, फिर भी उसने अपने दोस्त की जान बचाने के लिए भी कोई कार्रवाई नहीं की। उनका यह स्पष्टीकरण कि वह घर गए और सो गए, आत्मविश्वास से प्रेरित नहीं है क्योंकि यह घटना उनकी उपस्थिति में हुई और निवास स्थान के करीब हुई, विशेष रूप से पुलिस मुख्यालय से थोड़ी दूरी पर यानी सिर्फ 3-4 मिनट की पैदल दूरी पर, जहां चौबीसों घंटे कांस्टेबल तैनात रहते हैं। उसने अपने दोस्त को मौके पर ही खून से लथपथ छोड़ दिया, लेकिन उसने कोई मदद नहीं मांगी और तुरंत मृतक के परिवार के सदस्यों को घटना की सूचना नहीं दी, जिनके घर वह अगले दिन लगभग 8:00 - 9:00 बजे ही गया था। सोने के लिए जाने का उनका आचरण, अपने दोस्त को उनकी आंखों के सामने हत्या होते देखना और फिर तुरंत अस्पताल न जाना काफी अस्वाभाविक है। साथ ही उसने घटना की जानकारी अपने माता-पिता को नहीं दी। पुलिस ने जब उससे पूछताछ की तो उसने आरोपी का नाम लिया। उनकी गवाही अलंकरण से मुक्त नहीं है, न ही किसी अन्य सबूत से इसकी पुष्टि नहीं होती है। साथ ही, वह स्वीकार करता है कि उसे आरोपी और मृतक के बीच किसी भी मौद्रिक लेनदेन की कोई जानकारी नहीं है।

12. इस न्यायालय ने कई अवसरों पर माना है कि यह मात्रा नहीं बल्कि गवाहों और सबूतों की गुणवत्ता है जो अभियोजन पक्ष के मामले को बना या बिगाड़ सकती है। यह साबित करना अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि जिन गवाहों पर वह भरोसा करना चाहता है, उनकी गवाही स्टर्लिंग गुणवत्ता की है, यानी पूरी तरह से भरोसेमंद और किसी भी तरह के दोष से बिल्कुल मुक्त। [प्रह्लाद बनाम मध्य प्रदेश

राज्य (सुप्रा); अमरीक सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2022) 9 एस.सी.सी 402; प्रमिला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 12 एस.सी.सी 550; कृष्ण कुमार मलिक बनाम हरियाणा राज्य, (2011) 7 एस.सी.सी 130]"

38. दिनांक 25.02.2015 को अ०सा०-1 के भाई चेतराम, जिन्होंने अ०सा०-5 के रूप में गवाही दी, मुकर गया। हालांकि, वह स्वीकार करता है कि वेद प्रकाश की हत्या की गई थी। नाइजीरियाई लोगों के साथ किसी भी विवाद आदि के बारे में उनके द्वारा कोई अन्य विवरण प्रकट नहीं किया गया है।

39. दिनांक 10.03.2015 को अपनी गवाही में चश्मदीद गवाह देवेंद्र (अ०सा०-7) अपने बयान से मुकर गया, लेकिन वह स्वीकार करता है कि मृतक वेद प्रकाश को उसने खून से लथपथ चुहड़पुर अंडरपास के पास खुली जमीन में पड़ा देखा था। उन्होंने विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा अपनी जिरह में इस सुझाव से इनकार किया कि वह सही तथ्यों को नहीं बता रहे हैं, और उन्हें आरोपी की ओर से कुछ प्रोत्साहन की पेशकश से राजी किया गया था। अ०सा०-7 ने नाइजीरियाई और अन्य लोगों के साथ मृतक के पिछले किसी विवाद का भी खुलासा नहीं किया।

40. जहां तक अ०सा०-8, शाहमल का संबंध है, 14.12.2015 को अपनी गवाही में, वह मुकर गया। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आपराधिक) द्वारा जिरह में, उन्होंने स्वीकार किया कि जब वह मृतक के पास पहुंचे, तो मृतक पहले ही मर चुका था और खून से लथपथ था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि आरोपी एक ही गांव और भाईचारे और पड़ोसी हैं, वह गांव में आयोजित पंचायत द्वारा लगाए गए दबाव के कारण उनका बचाव कर रहे हैं। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया कि वह डर, दबाव या कुछ प्रोत्साहन के कारण अपनी गवाही दे रहे थे।

बचाव पक्ष की ओर से जिरह में वह मृतक वेद प्रकाश की दुकान पर शराब पीने वाले बंगालियों, बिहारियों और नाइजीरियाई लोगों और मृतक के साथ कभी-कभी विवाद का उल्लेख करता है। उन्होंने कहा कि 4-5 दिन पहले, एक गंभीर लड़ाई हुई थी जिसमें उनके गांव के कई लोगों को बुलाया गया था, और पुलिस आई थी और उन्होंने पुलिस को वेद प्रकाश (मृतक) को थाना ले जाने से रोका था और तब से नाइजीरियाई, बंगाली और बिहारी मृतक की हत्या करने के लिए उसकी तलाश कर रहे थे। उनका दावा है कि वह पहले घटनास्थल पर पहुंचे थे और उन्होंने मृतक को रेलिंग (ग्रिल) से लटका हुआ पाया था जो 2-3 फीट ऊंची थी, जिस पर चाकू जैसी रेलिंग ने उसके शरीर के एक हिस्से को छेद दिया था। वह आगे कहता है कि दूसरों की मदद से, उसने मृतक वेद प्रकाश के शव को रेलिंग से हटा दिया था और उसे नीचे लिटा दिया था, लेकिन तब तक वेद प्रकाश की मृत्यु हो गई थी और उसके बाद उसने शिकायतकर्ता और चेतराम, महेंद्र और देवेंद्र को सूचित किया जो घटना के आधे घंटे बाद घटनास्थल पर पहुंचे। उन्होंने प्राथमिकी में विदेशियों का नाम नहीं देने के लिए पुलिस को दोषी ठहराया।

41. यहां यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि उनकी जिरह में, अ०सा०-4, जो पोस्टमॉर्टम

करने वाले डॉक्टर थे, ने इस सुझाव से इनकार किया कि जहां तक चोट नंबर 1 का संबंध है, उन्होंने घाव वाले घाव का उल्लेख नहीं किया था। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि रोगग्रस्त की चोटें चाकू के घाव नहीं थे। इसलिए, अ०सा०-4 की यह गवाही अ०सा०-8 की गवाही के साथ संयोजन के रूप में, जिसने कहा था कि उसने मृतक को रेलिंग (ग्रिल) से लटका हुआ पाया था, जिस पर चाकू के आकार की रेलिंग ने उसके शरीर के एक तरफ छेद दिया था, मृतक पर चोटों/घावों के कारण के रूप में संदेह पैदा करता है।

42. यह ध्यान देने योग्य है कि अ०सा०-1 की जिरह में, उन्होंने कहा कि जब वह दुर्गा ग्रीन के कार्यालय गए थे, तो उन्होंने अपने भाई को अपनी दुकान में देखा था और एक या दो ग्राहक उनकी दुकान में खड़े थे। हालांकि, अपनी जिरह में, अ०सा०-9 जो आईओ थे, ने कहा है कि जब वह प्राथमिकी दर्ज करने के बाद घटनास्थल पर पहुंचे, तो मृतक की दुकान बंद थी। घटना का समय रात 8.30 बजे है और मृतक की दुकान रात 11 बजे तक खुली रहने की बात कही गई थी। इसलिए, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि घटना के कथित समय के बाद, पुलिस के आने तक घटनास्थल के आसपास की जगह स्पष्ट रूप से अछूती नहीं थी।

43. यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि विवेचनाधिकारी अ०सा०-9, श्यामा कांत त्रिपाठी ने गवाही दी कि जब वह प्राथमिकी दर्ज होने के बाद घटनास्थल पर पहुंचे, तो मृतक वेद प्रकाश की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। वह स्वीकार करते हैं कि घटनास्थल पर, लोगों की भीड़ मौजूद थी और एक्सप्रेसवे पर हाई-मास्ट से कुछ रोशनी थी। उन्होंने कहा कि कानून व्यवस्था की स्थिति को ध्यान में रखते हुए मृतक के शव को अस्पताल भेजा गया जहां जांच रिपोर्ट बनाई गई। जहां तक आरोपी द्वारा इस्तेमाल किए गए कथित वाहन की बात है, अ०सा०-9 ने कहा कि वह केस डायरी देखने के बाद उनके पंजीकरण नंबरों को सूचित कर सकता है। हालांकि, दोनों वाहनों का कोई फ़र्द बरामदगी नहीं है, जो एक स्विफ्ट कार और एक मोटर साइकिल है, जिसका इस्तेमाल आरोपी ने कथित तौर पर अपराध स्थल तक पहुंचने और छोड़ने के लिए किया था। इसके अलावा, घटनास्थल के पास मृतक की हत्या के लिए कथित रूप से इस्तेमाल की गई बेल्ट और चाकू की कोई बरामदगी नहीं दिखाई गई है, जैसा कि अ०सा०-1 द्वारा कहा गया है, घटनास्थल पर गिर गया था क्योंकि आरोपी भाग रहे थे। इस प्रकार अ०सा०-1 और अ०सा०-9 द्वारा इस संबंध में दी गई गवाहियों में स्पष्ट असंगति है। अ०सा०-9 ने इस बात से इनकार किया कि मृतक की मौत बंगालियों, नाइजीरियाई या बिहारियों के साथ लड़ाई के परिणामस्वरूप हुई थी और वे विदेशी थे, उन्होंने एक झूठा मामला लिखा था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि घटना से 2-3 दिन पहले मृतक वेद प्रकाश का नाइजीरियाई, बंगालियों या बिहारियों के साथ झगड़ा हुआ था और उन्हें इस घटना की जानकारी थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने घटना के आसपास के लोगों से पूछताछ नहीं की। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया कि मृतक की मौत घटनास्थल

पर मौजूद चाकू के आकार की ग्रिल के परिणामस्वरूप हुई चोटों के कारण हुई।

44. अभियुक्तों की ओर इशारा करते हुए हत्या के कथित हथियारों की बरामदगी के संबंध में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय के संबंध में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 पर रामानंद @ नंदलाल भारती (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा विस्तार से विचार किया गया है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार देखा:

"53. यदि, विवेचनाधिकारी के बारे में यह कहा जाता है कि आरोपी अपीलकर्ता ने अपनी स्वतंत्र इच्छा से हिरासत में रहते हुए यह बयान दिया कि वह उस स्थान का नेतृत्व करेगा जहां उसने अपने खून से सने कपड़ों के साथ अपराध का हथियार छिपाया था, तो विवेचनाधिकारी को जो पहला काम करना चाहिए था, वह थाना में ही दो स्वतंत्र गवाहों को बुलाना था। एक बार जब दो स्वतंत्र गवाह थाना पहुंचते हैं, उसके बाद उनकी उपस्थिति में, अभियुक्त को एक उचित बयान देने के लिए कहा जाना चाहिए, जैसा कि वह उस स्थान को इंगित करने के संबंध में चाहता है जहां उसने अपराध का हथियार छिपाया है। जब हिरासत में अभियुक्त दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाह) के समक्ष ऐसा बयान देता है, तो अभियुक्त द्वारा बोले गए सटीक बयान या बल्कि सटीक शब्दों को पंचनामा के पहले भाग में शामिल किया जाना चाहिए जो विवेचनाधिकारी कानून के अनुसार निकाल सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रयोजन के लिए पंचनामा का यह पहला भाग हमेशा स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में थाना में तैयार किया जाता है ताकि यह विश्वास किया जा सके कि अभियुक्त द्वारा एक विशेष बयान दिया गया था जिसमें वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से उस स्थान को इंगित करने की इच्छा व्यक्त करता है जहां अपराध के हथियार या अपराध करने में इस्तेमाल की गई कोई अन्य वस्तु है छुपा दिया गया था। एक बार पंचनामा का पहला भाग पूरा हो जाने के बाद, आरोपी और दो स्वतंत्र गवाहों (पंच गवाह) के साथ पुलिस दल आरोपी के नेतृत्व में विशेष स्थान पर जाएगा। यदि उस विशेष स्थान से अपराध के हथियार या खून से सने कपड़े या किसी अन्य वस्तु की तलाशी की जाती है तो पूरी प्रक्रिया का वह हिस्सा पंचनामा का दूसरा हिस्सा बन जाएगा। कानून विवेचनाधिकारी से यह उम्मीद करता है कि वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत तलाशी पंचनामा तैयार करे। यदि हम विवेचनाधिकारी के पूरे मौखिक साक्ष्य को पढ़ते हैं तो यह स्पष्ट है कि मामले के सभी उपरोक्त प्रासंगिक पहलुओं में इसकी कमी है।

.....

56. तलाशी के साक्ष्य को स्वीकार करने से पहले कानून की आवश्यकता को पूरा करने की आवश्यकता है कि पंचनामा की सामग्री को साबित करके। विवेचनाधिकारी अपने बयान में पंचनामा की सामग्री को साबित करने के लिए कानून में बाध्य है और यह केवल तभी है जब विवेचनाधिकारी ने कानून के अनुसार खोज पंचनामा की सामग्री को सफलतापूर्वक साबित किया है, तो उस मामले में अभियोजन पक्ष को ऐसे सबूतों पर भरोसा करने में उचित ठहराया जा सकता है और विचारण न्यायालय भी सबूतों को स्वीकार कर सकता है। वर्तमान

मामले में, विवेचनाधिकारी, अ०सा०-7, योगेंद्र सिंह के मौखिक साक्ष्य से हमने जो देखा है, वह यह है कि उन्होंने खोज पंचनामा की सामग्री को साबित नहीं किया है और उन्होंने जो कुछ भी बयान दिया है वह यह है कि जैसा कि अभियुक्त ने अपराध के हथियार को इंगित करने की इच्छा व्यक्त की थी, वही पंचनामा के तहत खोजा गया था। हमने जांच कार्यालय के साक्ष्य के इस हिस्से को बारीकी से देखा है और आश्वस्त हैं कि कल्पना के किसी भी खिंचाव से यह नहीं कहा जा सकता है कि विवेचनाधिकारी ने पंचनामा (प्रदर्श-5) की तलाशी की सामग्री को साबित कर दिया है। एक कारण है कि हम विवेचनाधिकारी के अंत में पंचनामा की सामग्री को साबित करने पर जोर दे रहे हैं, विशेष रूप से जब स्वतंत्र पंच गवाहों ने हालांकि जांच की है, फिर भी इस तरह की तलाशी के बारे में एक शब्द नहीं कहा है या मुकर गए हैं और अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया है। न्यायालय को विवेचनाधिकारी के साक्ष्य पर सुरक्षित रूप से भरोसा करने में सक्षम बनाने के लिए, यह आवश्यक है कि किसी अभियुक्त को उसके द्वारा दिए गए बयान के रूप में जिम्मेदार सटीक शब्दों को रिकॉर्ड पर लाया जाए और इस उद्देश्य के लिए विवेचनाधिकारी अपने साक्ष्य में सटीक बयान देने के लिए बाध्य है न कि केवल यह कहकर कि अपराध के हथियार का एक खोज पंचनामा तैयार किया गया था क्योंकि अभियुक्त लेने के लिए तैयार था यह एक विशेष स्थान से बाहर है। (महत्व सन्निविष्ट)

45. अ०सा०-9 और अनंग पाल सिंह अ०सा०-6 की गवाही के अवलोकन से पता चलता है कि रामानंद उर्फ नंदलाल भारती के पूर्वोक्त मामले में सुप्रीम कोर्ट के जनादेश का पालन नहीं किया गया है। हत्या के कथित हथियारों की बरामदगी से पहले विवेचनाधिकारी द्वारा किसी भी स्वतंत्र गवाह को थाना में नहीं बुलाया गया था। इसके अलावा, अ०सा०-9 की गवाही में, हत्या के हथियार की बरामदगी के लिए अभियुक्तों द्वारा बोले गए शब्दों को नहीं कहा गया है।

46. मृतक की हत्या के लिए कथित तौर पर इस्तेमाल किए गए चाकू की कथित बरामदगी से संबंधित चार फ़र्द बरामदगी हैं। वे प्रदर्श क-8, क-9, क-10 और क-15 हैं। प्रदर्श क-8 दिनांक 19.12.2012 का फ़र्द बरामदगी है, जिसमें बताया गया है कि थानाध्यक्ष एक सब-इंस्पेक्टर, एक हेड कांस्टेबल और तीन अन्य कांस्टेबलों के साथ आरोपी वीरपाल और कालू @ बलराज की निशानदेही पर हत्या के दो हथियार बरामद करने के लिए सरकारी वाहन पर गए थे। बरामद चाकू सुबह 6:25 बजे और 6:30 बजे कब्जे में लिए गए थे, जिन्हें अलग से सील कर दिया गया था।

प्रदर्श क-9 दिनांक 20.11.2012 का फ़र्द बरामदगी है जो दर्शाता है कि थाना प्रभारी एक उप-निरीक्षक और तीन कांस्टेबलों के साथ जांच के लिए प्रात 5.45 बजे थाना से रवाना हुए थे जिसके दौरान उन्हें सूचना मिली कि एक अभियुक्त पम्मी जाने की तैयारी कर रहा था और कासना बस स्टैंड में खड़ा था। पुलिस शिकायतकर्ता की ओर से इशारा करने पर पम्मी को सुबह 11:30 बजे गिरफ्तार कर लिया गया। पूछताछ किए जाने पर, उसने कथित तौर पर अपना अपराध स्वीकार कर

लिया और कहा कि वह हत्या के लिए इस्तेमाल किए गए चाकू को बरामद कर सकता है। मेमो में दर्ज है कि जनता के सदस्यों को बरामदगी देखने के लिए कहा गया था, लेकिन कोई भी तैयार नहीं था और उसके बाद आरोपी की निशानदेही पर पुलिस मौके पर गई और आरोपी ने मौके पर अपने हाथों से मिट्टी हटाई और एक चाकू बरामद किया जो खून और मिट्टी से ढका हुआ था और आरोपी ने बताया कि यह वेद प्रकाश को मारने के लिए इस्तेमाल किया गया चाकू था।

प्रदर्श क-10 दिनांक 02.12.2012 का फ़र्द बरामदगी है जो दर्शाता है कि थानाध्यक्ष एक वरिष्ठ पुलिस उप-निरीक्षक और एक उप-निरीक्षक और दो अन्य कांस्टेबलों के साथ एक ड्राइवर के साथ, सुबह 7.25 बजे थाना से पुलिस वाहन पर रवाना हुए और उन्हें एक पुलिस शिकायतकर्ता से सूचना मिली कि आरोपी ओमी कासना में एक छोटे पुल के पास एक मंदिर के पास खड़ा है। जिसे सुबह 10:15 बजे गिरफ्तार किया गया। आरोपी ओमी ने कथित तौर पर अपना अपराध स्वीकार कर लिया और कहा कि वह उस जगह को इंगित कर सकता है जहां हत्या का हथियार फेंका गया था। यह दर्ज है कि पुलिस ने जनता के सदस्यों को वसूली देखने के लिए कहा, लेकिन कोई भी तैयार नहीं था और इसलिए, वे आरोपी के साथ बताए गए स्थान पर गए। आरोपी ने आगे बढ़कर कथित तौर पर एक चाकू बरामद किया, जिसे दोपहर 12:10 बजे अपने कब्जे में ले लिया गया।

प्रदर्श क-15 दिनांक 23.12.2012 का फ़र्द बरामदगी है जो दर्शाता है कि थानाध्यक्ष एक सब-इंस्पेक्टर और तीन अन्य कांस्टेबलों के साथ, पुलिस वाहन में आरोपी सुमित @ भूरा के साथ थाना से 13:05 बजे गया था। आरोपियों ने चुहड़पुर अंडरपास के पास वाहन को रुकवाया और आगे बढ़कर कथित तौर पर झाड़ियों के पीछे से एक चाकू बरामद किया और कहा कि यह हत्या का हथियार है। बताया जाता है कि चाकू को 13:30 बजे अपने कब्जे में ले लिया गया और सील कर दिया गया।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कथित हत्या के हथियारों की बरामदगी के लिए कोई स्वतंत्र गवाह पुलिस और आरोपी के साथ नहीं था।

47. यह ध्यान रखना उचित है कि प्रदर्श क-11 17.11.2012 को अ०सा०-9, थानाध्यक्ष द्वारा तैयार किए गए इंडेक्स के साथ नक्शा नज़री है जो घटना की घटनास्थल और चश्मदीद गवाहों के कथित स्थान के साथ-साथ हत्या की जगह और जिस दिशा में आरोपी अपराध करने के बाद भाग गया था, को दर्शाता है। प्रदर्श क-12 आरोपी पम्मी की ओर इशारा करते हुए हत्या के हथियार की कथित बरामदगी के बारे में नक्शा नज़री है जो प्रदर्श क-9, फ़र्द बरामदगी से मेल खाती है।

प्रदर्श क-13 अभियुक्त ओम कुमार @ ओमी की ओर इशारा करते हुए हत्या के हथियार की बरामदगी की नक्शा नज़री है जो फ़र्द बरामदगी, प्रदर्श क-10 से मेल खाती है।

प्रदर्श क-14, फ़र्द बरामदगी, प्रदर्श क-8 नक्शा नज़री से मेल खाती है, जो आरोपी वीरपाल और कालू @ बलराज की ओर इशारा करते हुए कथित हत्या के हथियारों की बरामदगी की घटनास्थल को दर्शाती है।

प्रदर्श क-16, जो अ०सा०-9 द्वारा तैयार की गई नक्शा नज़री है, कथित तौर पर उस घटनास्थल को दिखा रही है जहां से आरोपी सुमित @ भूरा की ओर इशारा करते हुए हत्या का हथियार बरामद किया गया था और यह प्रदर्श क-15 से मेल खाता है, जो फ़र्द बरामदगी है।

यहां यह उल्लेख करना उचित है कि प्रदर्श क-13, क-14 और क-16 चुहड़पुर अंडरपास के पास से कथित हत्या के हथियारों की बरामदगी के स्थलों को दर्शाते हैं।

चुहड़पुर अंडरपास को नक्शा नज़री, प्रदर्श क-11 में हत्या के स्थल से 72 कदम दक्षिण-पूर्व में दिखाया गया है। इस प्रकार, चाकुओं की बरामदगी नक्शा नज़री में परिलक्षित होती है क-13, क-14 और क-16 हत्या स्थल के पास के स्थानों से, जबकि अभियुक्त का कथित भागने का मार्ग तिरछे विपरीत दिशा में होने के कारण हथियारों की उपरोक्त तीन बरामदगी को संदिग्ध बनाता है। उपरोक्त तथ्य, इस तथ्य के साथ युग्मित हैं कि धारा 27 के प्रावधान, जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने रामानंद (सुप्रा) में अपने फैसले में व्याख्या की है, का अनुपालन नहीं किया गया है, कथित हत्या के हथियारों की बरामदगी साबित नहीं हुई है।

48. जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, अ०सा०-1 की गवाही के अलावा, अन्य सभी गवाह मुकर गए हैं। चश्मदीद गवाहों में से एक जो मुकर गया है, वह अ०सा०-1 का भाई (चेतराम) और मृतक है। द०प्र०स० की धारा 313 के तहत दिए गए अपने बयान में, आरोपियों ने कहा है कि गांव की दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया है। इसलिए, अ०सा०-1 भी एक इच्छुक गवाह हो सकता है।

49. घटनास्थल पर, यहां तक कि विवेचनाधिकारी ने भी स्वीकार किया है, लोगों की भीड़ थी। फिर भी, आश्चर्यजनक रूप से, किसी भी स्वतंत्र गवाह की जांच नहीं की गई है। अ०सा०-6, जो पुलिस उप-निरीक्षक और विवेचनाधिकारी, अ०सा०-9 दोनों ने गवाही दी है कि जांच करने के लिए, कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए मृतक की लाश को अस्पताल ले जाया गया था। अ०सा०-6 ने कहा है कि घटनास्थल पर पर्याप्त रोशनी की कमी थी। पुलिस विनियमन के अध्याय XII के नियम 132 के साथ पठित धारा 174 द०प्र०स० का जनादेश यह है कि पुलिस को घटनास्थल पर जांच करनी है। यह नक्शा नज़री द्वारा समर्थित नहीं है. हालांकि, यह तथ्य साबित होता है कि घटनास्थल पर अपर्याप्त प्रकाश था।

50. जिस स्थान से अ०सा०-1 को हत्या का गवाह बताया गया है, उसे नक्शा नज़री क-11 में घटनास्थल के दक्षिण-पश्चिम में 67 कदम दूर दिखाया गया है। आरोपी व्यक्तियों को उस नक्शा नज़री में दिखाया गया है कि वे हत्या स्थल से उत्तर-पश्चिम में पैदल अपने पार्क किए गए वाहनों में भाग गए और फिर अपने वाहनों में उत्तर की ओर भाग गए। विवेचनाधिकारी, जो हत्या के हथियारों और अन्य वस्तुओं की बरामदगी और गिरफ्तारी के साथ उसके द्वारा की गई पूरी जांच को साबित करने के बारे में, आरोपी द्वारा अपराध स्थल तक पहुंचने और छोड़ने के लिए इस्तेमाल किए गए कथित

वाहनों के संबंध में कोई जांच करने में विफल रहा है। अपनी पूरी गवाही में, न तो अ०सा०-6 और न ही अ०सा०-9 ने कथित घटनास्थल तक पहुंचने और छोड़ने के लिए आरोपियों द्वारा इस्तेमाल किए गए वाहनों की बरामदगी के बारे में उल्लेख किया है। अ०सा०-9 को जिरह में याद नहीं आ रहा था कि मृतक की लाश किस दिशा में पड़ी थी। वह यह नहीं कह सका कि लाश औंधे मुंह पड़ी थी या नीचे की ओर।

51. हालांकि, वर्तमान मामले पर इसका कोई असर नहीं हो सकता है, यह उल्लेख किया जा सकता है कि एक अभियुक्त, सन्नी @ भूरा के संबंध में, उसका मुकदमा किशोर न्यायालय द्वारा अलग से आयोजित किया गया था जहां केस नंबर 6 वर्ष 2013 दर्ज किया गया था। अ०सा०-1 भी केस नंबर 6 वर्ष 2013 में अ०सा०-1 के रूप में पेश हुआ था और उसकी गवाही 10.6.2015 को दर्ज की गई थी जिसमें वह मुकर गया था। (पेपर नंबर 55खा/26)

52. जैसा कि यह हो सकता है, शत्रुतापूर्ण गवाहों के संबंध में कानून यह है कि यह तथ्य की अदालत के लिए प्रत्येक मामले में विचार करने के लिए है कि क्या इस तरह के जिरह और विरोधाभास के परिणामस्वरूप गवाह बदनाम हो जाता है या अभी भी उसकी गवाही के किसी भी हिस्से के संबंध में विश्वास किया जा सकता है। मुकर जाने वाले गवाह की गवाही के संबंध में मूल्यांकन करना और सही निष्कर्ष पर पहुंचना न्यायालय की शक्तियों के भीतर है। एक मुकरने वाले गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है और उसके प्रासंगिक हिस्से जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा उपयोग किए जा सकते हैं।

53. इन परिस्थितियों में, अ०सा०-1 की गवाही को अन्य चश्मदीद गवाह, अ०सा०-3 के साथ-साथ अ०सा०-1 (यानी अ०सा०-5 के भाई) सहित अन्य सभी चश्मदीद गवाहों की गवाही के प्रकाश में देखा जाना चाहिए, जिन्होंने सभी अभियुक्तों के अपराध के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले को नकार दिया। हालांकि अभियोजन पक्ष के खिलाफ उनकी गवाही के संबंध में मुकरने वाले गवाहों से प्रमुख प्रश्न पूछे गए थे कि धमकी या समझौते के कारण वे इस तरह की गवाही दे रहे थे, गवाहों ने इससे इनकार कर दिया। चेतराम (अ०सा०-5), गवाह जो मुकर गया, मृतक का असली भाई था और अभियोजन पक्ष द्वारा साबित की गई ऐसी कोई परिस्थिति या मकसद नहीं दिखाया गया है जिससे यह पता चले कि उसकी गवाही अविश्वसनीय है। अ०सा०-3 और अ०सा०-8 द्वारा मुकर जाने वाले गवाहों के रूप में दी गई गवाही कि मृतक के आकार के पीछे (?) चाकू की तरह ग्रिल पर लगाया गया था, विचारण न्यायालय द्वारा इसका पता नहीं लगाया गया है। पोस्टमॉर्टम परीक्षा (अ०सा०-4) करने वाले डॉक्टर द्वारा किया गया प्रवेश कि रोगग्रस्त की चोटें चाकू के घाव नहीं थीं, रोगग्रस्त पर चोटों के कारण के रूप में संदेह पैदा करता है जो पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में परिलक्षित होता है। एक ओर, शरीर के एक तरफ मुख्य रूप से घावों की प्रकृति को देखते हुए, जबकि दूसरी ओर, यह तथ्य कि अ०सा०-1 ने गवाही दी थी कि मृतक को बेल्ट से दबाया जा रहा था और दो आरोपियों द्वारा

पकड़ा गया था, जबकि अन्य मृतक को चाकू मार रहे थे, इस बात पर संदेह पैदा होता है कि मृतक को किस तरह से घाव दिए गए थे। जाहिर है, जब आरोपी अपने वाहनों पर घटनास्थल पर पहुंचे तो न तो अ०सा०-1 और न ही अ०सा०-3 और न ही अ०सा०-8 मौके पर मौजूद थे। केवल स्वतंत्र गवाह ही अभियुक्त के स्थल पर पहुंचने और मृतक की ओर बढ़ने के तथ्य की गवाही दे सकते थे। घटना के समय अ०सा०-1 की स्थिति पर ही संदेह के बादल मंडरा रहे हैं। अ०सा०-8 ने पुलिस द्वारा आरोपियों के खिलाफ अपनी जांच का निर्देश देने का कारण बताया है कि मृतक की मौत से कुछ दिन पहले एक घटना के दौरान पुलिस आरोपियों के व्यवहार से नाराज थी। यह भी उल्लेख किया गया था कि पुलिस ने कहा था कि चूंकि विदेशी शामिल थे, इसलिए मामला साबित करना मुश्किल होगा। इस संबंध में अ०सा०-9 को भी एक सुझाव दिया गया था, जिन्होंने इसका खंडन किया। घटनास्थल पर पर्याप्त रोशनी की कमी के संबंध में एक महत्वपूर्ण तत्व है और इसलिए यह संदिग्ध है कि अ०सा०-1 वास्तव में सर्दियों की रात में 67 कदमों की दूरी से अभियुक्तों के चेहरे देख सकता था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, घटना के बाद अ०सा०-1 का आचरण स्वयं अप्राकृतिक है। ऊपर वर्णित परिस्थितियों के पूरे तथ्यों को देखते हुए, आरोपी व्यक्ति संदेह के लाभ के हकदार हैं। अभियोजन पक्ष का मामला उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है।

54. परिस्थितियों में, वर्तमान आपराधिक अपील की अनुमति दी जाती है और अभियुक्तों को संदेह का लाभ देते हुए बरी कर दिया जाता है। यदि द०प्र०स० की धारा 437-ए के अनुपालन के बाद किसी अन्य मामले में उनकी कैद की आवश्यकता नहीं है तो अभियुक्तों को कानून के अनुसार जेल से रिहा कर दिया जाएगा। इस फैसले की एक प्रति तुरंत विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 1004

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 6870 / 2007

आपराधिक अपील संख्या 6869 / 2007

नरेंद्र और अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री आर.के. शर्मा, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री अवध शर्मा, श्री डी.एन. वली, श्री धीरेश कुमार, श्री लव श्रीवास्तव, श्री नूर मोहम्मद, श्री शिवाकांत, सुचेता पाठक, श्री सुदीप कुमार पाठक, श्री वी.सी. मिश्रा, श्री इरशाद मोहम्मद

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता, श्री अशोक कुमार पांडे, श्री मुरलीधर, श्री राहुल राघव, श्री एस.पी.एस. राघव

ए. दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएं 302, 307, 147, 148 और 149- दोषसिद्धि - चुनौती - अभियुक्त/अपीलकर्ताओं ने अचानक झगड़े के बाद क्षणिक आवेश और आवेश में आकर अपराध किया, जिसके कारण पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 की गवाही से स्पष्ट है

कि आरोपी व्यक्ति पहले से ही कुल्हाड़ी, कुदाल, हंसिया आदि जैसे कृषि उपकरणों की मदद से अपने खेत की सिंचाई कर रहे थे, जब मृतक ने उनसे पानी देने के लिए कहा क्योंकि उसकी बारी थी तो सभी आरोपी नाराज हो गए और उन्होंने मृतक की गर्दन पर अपनी कुदाल मार दी- अभियोजन पक्ष ने आरोपियों के अपराध को साबित करने में सफलता प्राप्त की है, लेकिन विचारणीय न्यायालय द्वारा आरोपियों को दोषी ठहराने और सजा सुनाने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि घटना पूर्वचिंतन या हमले की योजना के बिना घटित हुई थी, इसलिए यह धारा 300 आईपीसी के अपवाद 4 के अंतर्गत आएगा और आरोपियों की दोषसिद्धि आईपीसी की धारा 304 भाग-I के अंतर्गत आएगी, न कि धारा 302 आईपीसी के अंतर्गत- धारा 304 आईपीसी के तहत सजा की मात्रा से संबंधित मुद्दा मामले के पृष्ठभूमि तथ्यों, आरोपियों के पूर्ववृत्त, हमला पूर्वचिंतित और पूर्व नियोजित था या नहीं आदि पर निर्भर करता है। (पैरा 1 से 53)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मेकला सिवैया बनाम ए.पी. राज्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 887
2. पुलिचेरला नागराजू बनाम ए.पी. राज्य (2006) 11 एससीसी 444: (2007) 1 एससीसी (सीआरआई) 500]
3. अर्जुन और अन्य. आदि आदि बनाम छत्तीसगढ़ राज्य 2017 0 सुप्रीम (एससी) 152,

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. ये दो आपराधिक अपीलें अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं-रघनाथ, सतेंद्र, पप्पन, नरेंद्र और पप्पी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 862/2002 (राज्य बनाम नरेंद्र और अन्य), जोकि मुकदमा अपराध संख्या 135/2002, अन्तर्गत धारा 147, 148, 307, 302 और 506 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-जानी, जिला-मेरठ से उत्पन्न है, में विशेष न्यायाधीश (ई.सी. अधिनियम), मेरठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25 सितंबर, 2007 को चुनौती देते हुए दायर की गई हैं, जिसके तहत आरोपी-अपीलकर्ता अर्थात् नरेंद्र और पप्पी को धारा 302, 147, 148 और 149 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया है, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता अर्थात् रघुनाथ, सतेंद्र और पप्पन को धारा 307, 147, 148, 149 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया है और (i) आरोपी-अपीलकर्ताओं, नरेंद्र और पप्पी को आईपीसी की धारा धारा 302 सहपठित धारा 149 के तहत आजीवन कारावास के साथ 10,000/- रुपये के जुर्माने की सजा और आईपीसी की धारा 147 और 148 के तहत एक साल के कठोर कारावास भुगतने की सजा सुनाई गई, (ii) आरोपी-अपीलकर्ताओं अर्थात् रघुनाथ, सतेंद्र और पप्पन को आईपीसी की धारा 149 के साथ पठित धारा 307 के तहत सात साल के कठोर कारावास के साथ 5000/- रुपये के जुर्माने की सजा तथा आईपीसी की धारा 147 और 148 के तहत एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने की सजा सुनाई गई, इस टिप्पणी के साथ कि सभी सजाएं एक साथ चलेंगी और जुर्माना अदा न करने पर सभी आरोपी-अपीलकर्ताओं को एक महीने की अतिरिक्त कैद भुगतनी होगी।

2 हमने श्री नूर मोहम्मद और श्री इरशाद मोहम्मद को सुना है। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता और श्री एन.के. श्रीवास्तव, विद्वान ए.जी.ए. राज्य के लिए रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का भी अवलोकन किया

3 चूंकि इन दोनों अपीलों में मुद्दों के मूल तथ्य और कानूनी प्रश्न समान हैं, इसलिए उन्हें एक साथ जोड़ दिया गया है और एक साथ सुना गया है और 2007 की आपराधिक अपील संख्या 6870 (नरेंद्र और अन्य बनाम यूपी राज्य) प्रमुख मामला पर विचार करते हुए इस सामान्य निर्णय के माध्यम से निर्णय लिया जा रहा है।

4. वर्तमान आपराधिक अपीलों के रिकॉर्ड से पता चलता है कि मुखबिर-पीडब्लू-4, अर्थात् कृष्ण पाल सिंह की 18 मई, 2002 की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्शनी-का/4) पर, एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्शनी-का/9)) धारा 147, 148, 307, 302 और 506 आईपीसी के तहत मामला अपराध संख्या 135/2002 के रूप में दर्ज किया गया था। 18 मई 2002 को दोपहर 12:30 बजे पांच आरोपियों नरेंद्र उर्फ कल्लन, सतेंद्र उर्फ बिल्लू, पप्पी, रघुनाथ और पप्पन के खिलाफ आरोप लगाया कि उसके भाई रवींद्र कुमार और विनोद सुबह करीब 6:00 बजे ट्रैक्टर पर अपने खेत में गए थे। सुबह जब उनकी सिंचाई की बारी थी। हालाँकि, जब वे अपने खेत पर पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि नरेंद्र उर्फ कल्लन, सतेंद्र उर्फ बिल्लू, पप्पी, रघुनाथ और पप्पन निवासी गाँव बाफर, थाना जानी, जिला मेरठ पहले से ही उनके खेत में पानी लगा रहे थे। रवींद्र ने आरोपी-अपीलकर्ताओं से पानी देने के लिए कहा क्योंकि अब उसकी बारी थी, जिस पर सभी आरोपी नाराज हो गए और उसे खत्म करने के लिए उकसाया क्योंकि वह अक्सर अपने खेत की सिंचाई के लिए पानी के लिए विवाद करता था। आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र उर्फ कल्लन और पप्पी ने रवीन्द्र कुमार की गर्दन पर फावड़े से वार किया, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। आरोपी-अपीलकर्ता रघुनाथ और सतेंद्र ने मुखबिर के एक अन्य भाई, विनोद को पकड़ लिया और आरोपी-अपीलकर्ता पप्पन ने एक को मार डाला।

विनोद की गर्दन पर फावड़े की चोट। यह घटना शीशपाल और बृजपाल ने देख ली, जो अन्य लोगों के साथ अपने खेतों पर काम कर रहे थे, जो वहां से आ-जा रहे थे। यह घटना दिनांक 18/5/2002 को लगभग 11.30 बजे दिन की है। घटना स्थल पर वादी के भाई रवीन्द्र का शव पड़ा हुआ था।

5 उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद मृतक रवीन्द्र का पंचनामा (पंचायतनामा) (प्रदर्श-का/2) पी.डब्ल्यू.-5 उपनिरीक्षक संजीव सिंह राठौड़ द्वारा किया गया। पंच (पूछताछ) गवाहों की राय में, मृतक की मृत्यु उसके शरीर पर आई चोटों के कारण हुई थी। इसके बाद मृतक के शव को सील कर पोस्टमार्टम के लिए मोर्चरी भेज दिया गया।

6 डॉ. अशोक कुमार दुआ (पी.डब्लू.-1) ने 19 मई 2002 को दोपहर 02:30 बजे मृतक रवीन्द्र के शव का पोस्टमार्टम किया और उनकी रिपोर्ट प्रदर्श-का-1 के रूप में रिकॉर्ड में

है, जिसके अनुसार मृतक की मृत्यु निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी:

"1. गर्दन के बाईं ओर के सामने 4 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी में गहरा घाव, बाईं हंसली से 2 सेमी ऊपर

2 कटे हुए घाव 5 सेमी x 2 सेमी x गर्दन के पीछे की हड्डी गहरी, 4 ग्रीवा कशेरुक कटे हुए, रीढ़ की हड्डी फटी हुई।"

7 डॉ. राज कुमार (पीडब्लू-6) ने 18 मई, 2002 को शाम 06:20 बजे घायल विनोद कुमार (पीडब्लू-2) का चिकित्सीय परीक्षण किया। पीडब्लू-6 को पीडब्लू-2 के व्यक्तियों पर निम्नलिखित चोटें मिली हैं

"1. कटा हुआ घाव 6.0 सेमी x 0.7 सेमी x बायीं ओर छाती के पीछे की मांसपेशी पर 6.5 सेमी पीछे और बायें कान की लोब्यूल के नीचे ऊपर की ओर।

2. दाहिनी ओर गर्दन, मध्य भाग पर घर्षण 1.2 सेमी x 0.2 सेमी

3. पेट के बायीं ओर पीछे की ओर लाल रंग का घाव 2 सेमी x 1 सेमी।

4.दाहिनी तरफ सीने में दर्द की शिकायत.

5. दाहिनी बांह के ऊपरी हिस्से में दर्द की शिकायत."

पी.डब्ल्यू.-2 की मेडिकल जांच रिपोर्ट में पी.डब्ल्यू.6 ने राय दी है कि चोटें ताज़ा और साधारण प्रकृति की हैं और चोट संख्या. 1 तेज धार वाली वस्तु के कारण, घर्षण से चोट संख्या 2 और चोट संख्या 3 कठोर वस्तु से हुआ था।

8 जांच आगे बढ़ी और पी.डब्लू.-8/जांच अधिकारी, अर्थात्, उप-निरीक्षक आर.एन. सिंह यादव ने प्रत्यक्षदर्शी शीशपाल और मुखबिर कृष्ण पाल सिंह (पीडब्लू-4) के बयान दर्ज किए हैं, उन्होंने मुखबिर के साथ घटना स्थल का निरीक्षण किया, उन्होंने साइट योजना भी तैयार की जिसे प्रदर्शनी-का-11 के रूप में चिह्नित किया गया और फिर से दर्ज किया गया घटना स्थल पर गवाहों के बयान, उन्होंने खून से सनी मिट्टी और सादी मिट्टी भी एकत्र की और उनका रिकवरी मेमो तैयार किया, जिसके बाद अध्याय XII सीआरपीसी के तहत वैधानिक जांच के निष्कर्ष पर, आरोपी अपीलकर्ताओं, अर्थात्, रघुनाथ, सतेंद्र, नरेंद्र, पप्पी और के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। पप्पन पर आईपीसी की धारा 147, 148, 307, 302 और 506 के तहत 26 मई, 2002 को जांच अधिकारी द्वारा मामला दर्ज किया गया है।

9 आरोप-पत्र प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने मामले में संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया, जिसके द्वारा मामले की सुनवाई की जानी थी, 13 सितंबर, 2002 को, संबंधित न्यायालय ने धारा 147, 307 के तहत आरोप तय किए। 149 आईपीसी आरोपी रघुनाथ और सतेंद्र के खिलाफ धारा 148, 302, 149 आई.पी.सी. आरोपी नरेंद्र और पप्पी के खिलाफ; धारा 148, 307, 302/149 एल.पी.सी. के तहत। आरोपी पप्पन के खिलाफ. 29 मई 2003 को, संबंधित न्यायालय ने आरोपी नरेंद्र और पप्पी के खिलाफ धारा 147, 307, 149 आईपीसी के तहत पूरक आरोप तय किए; और धारा 148, 302/149 आई.पी.सी. के तहत. आरोपी रघनाथ व सतेन्द्र के विरूद्ध धारा 147 आई.पी.सी. आरोपी पप्पन के खिलाफ

10. आरोपी-अपीलकर्ता को आरोपों को हिंदी में पढ़ा और समझाया गया, जिसने आरोप से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

11 अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी सबूतों पर भरोसा किया है, जो विधिवत साबित हुए और परिणामस्वरूप प्रदर्शन के रूप में चिह्नित किए गए:

"प्रदर्श-का /1-मृतक रवीन्द्र कुमार की पोस्टमार्टम रिपोर्ट,

प्रदर्श-का /2- मृतक रवीन्द्र कुमार के शव का पंचायतनामा,

प्रदर्श-का /3- मृतक रवीन्द्र कुमार के बारे में पूछताछ के गवाहों की राय,

प्रदर्श-का /4-वादी/पीडब्लू 4 कृष्ण पाल सिंह द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट,

प्रदर्श-का /4ए-फ़ोटो लैश:

प्रदर्श-का /5- पुलिस फॉर्म नंबर 13;

प्रदर्श-का /6- संजीव सिंह राठौड़, एस.आई.पी.एस., जानी, पता आर.आई.पुलिस लाइन्स, मृतक का पोस्टमार्टम कराने के लिए पत्र,

प्रदर्शनी-का/7- पी.एल शर्मा अस्पताल, मेरठ के मुख्य चिकित्सा अधीक्षक को पत्र ।

प्रदर्शनी-का/8- विनोद कुमार (पीडब्लू-2) की चोट रिपोर्ट,

प्रदर्श-का/9- चिक एफ़.आई.आर

प्रदर्श -का/10- पी.एस. जानी की जी.डी. की 18/5/02:की प्रति।

प्रदर्श -का/11- घटना स्थल का साइट प्लान,

प्रदर्श-का/12- खून से सनी धरती और सादी धरती के संबंध में पुनर्प्राप्ति ज्ञापन,

प्रदर्श-का/13- कुदाल का पुनर्प्राप्ति ज्ञापन,

प्रदर्श -का/14- स्पेड की वसूली के संबंध में साइट योजना, और

प्रदर्श-का/16- चार्ज शीट।"

अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित 12 गवाहों की मौखिक गवाही भी पेश की है: -

"पी.डब्लू.1- डॉ. अशोक कुमार दुआ, जिन्होंने मृतक रवीन्द्र कुमार के शव का पोस्टमार्टम किया:

पीडब्लू.2 विनोद कुमार, वादी/पीडब्लू.4 का भाई और मृतक रवीन्द्र कुमार, जिसने घायल होने और घटना का प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा किया था

पी.डब्लू.3- बृजपाल, जो घटना का स्वतंत्र चश्मदीद गवाह होने का दावा करता है।

पीडब्लू4-कृष्णपाल सिंह, मुखबिर, जो मृतक रवींद्र और घायल विनोद कुमार (पी.डब्ल्यू.-2) का भाई है;

पीडब्लू-5- सब-इंस्पेक्टर संजीव सिंह राठौड़, जिन्होंने मृतक रवींद्र कुमार का पूछताछ (पंचायतनामा) तैयार किया था;

पीडब्लू.6- डॉ. राज कुमार, जिन्होंने घायल विनोद कुमार (पीडब्लू-2) की चिकित्सकीय जांच की;

पी.डब्ल्यू.7 कांस्टेबल-1198 रणवीर सिंह, जिन्होंने चिक एफआईआर तैयार की और इसे साबित किया

पीडब्लू8 उप-निरीक्षक आर.एन. सिंह यादव ने जांच की और आरोप पत्र दाखिल किया।"

13 अभियोजन साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के बाद, अभियोगात्मक साक्ष्य को धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए आरोपी के सामने रखा गया। उनके बयानों में सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने अपराध में अपनी संलिप्तता से इनकार किया। अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष विशेष रूप से कहा कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान आपराधिक मामला उनके बीच दुश्मनी के कारण स्थापित किया गया था। उनके खिलाफ झूठी रिपोर्ट दर्ज करायी गयी है और गलत आरोप पत्र दाखिल किया गया है। कथित घायल विनोद कुमार (पी.डब्लू.-2) मृतक रवीन्द्र का बड़ा भाई होने के नाते भी उनके खिलाफ झूठी गवाही दे रहा है। अभियुक्त रघुनाथ ने अपने बयान में कहा है कि उसने शोदान पुत्र सोल्हू और विजलपाल, जो बृजपाल (पी.डब्ल्यू.-3) का भाई है, की जमीन खरीदी है। वादी कृष्णपाल सिंह (पी.डब्लू.-4) उक्त भूमि को खरीदना चाहता था, जिसके कारण वह शत्रुता रखता था। वादी (पी.डब्ल्यू.-4) ने बृजपाल (पी.डब्ल्यू.-3) की जमीन खरीदी है, जो आरोपी व्यक्तियों की जमीन से सटी हुई है लेकिन वहां कोई सड़क (रास्ता) नहीं है। शिकायतकर्ता/ सूचनाकर्ता उक्त भूमि के माध्यम से सड़क (रास्ता) चाहता था लेकिन वही आरोपी व्यक्तियों की चक रोड थी जिसे उन्होंने देने से इनकार कर दिया था जिसके कारण वादी/पीडब्लू-4 ने दुश्मनी पाल ली थी। उन्होंने खेत में पानी लगाने का झूठा मामला बनाया है, जिसे लेकर झगड़ा हुआ था. आगे कहा गया है कि यह नाला आरोपी व्यक्तियों का निजी नाला है और इस नाले पर कोई मोड़ नहीं है। मृतक रवीन्द्र आपराधिक प्रवृत्ति का था। वह हत्या आदि जैसे कई जघन्य अपराधों में शामिल था। उसे जुए का शौक था और उसके कई अन्य साथी भी थे। वह अक्सर अपने परिवार के सदस्यों के साथ हाथापाई पर उतर आता था और अपनी पत्नी के साथ भी मारपीट करता था। पी.डब्लू.-2 विनोद और मृतक रवीन्द्र के बीच संबंधित तिथि को विवाद हो गया और दोनों ने एक-दूसरे पर हमला कर दिया और संयोगवश उस हमले में रवीन्द्र की मृत्यु हो गई। वादी/पीडब्लू.-1 कृष्णपाल सिंह पेशे से शिक्षक हैं। उसने अपने भाई विनोद कुमार को बचाने के उद्देश्य से आरोपियों के खिलाफ झूठी रिपोर्ट दर्ज कराई है। बचाव पक्ष ने अपनी ओर से किसी गवाह से पूछताछ नहीं की।

14. मुकदमे के दौरान पेश किए गए उपरोक्त सबूतों के आधार पर, निचली अदालत ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं, अर्थात् नरेंद्र और पप्पी को धारा 302, 147, 148 और 149 आईपीसी के तहत दोषी पाया है, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता, अर्थात्, रघुनाथ, सतेंद्र और पप्पन को धारा 307, 147, 148, 149 आईपीसी के तहत दोषी पाया गया। रिकॉर्डिंग के बाद संदेह हुआ कि अभियोजन पक्ष ने स्पष्ट, ठोस और ठोस सबूत पेश किए हैं और साबित कर दिया है कि आरोपी नरेंद्र और पप्पी ने कुदाल के माध्यम से रवींद्र की मौत

का कारण बना दिया है, इसलिए धारा 302 के साथ धारा 149 आई पी.सी. के तहत दंडनीय अपराध है। आरोपी नरेंद्र और पप्पी के खिलाफ मामला बनता है। निचली अदालत ने आगे दर्ज किया है कि वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष ने साबित कर दिया है कि अभियुक्तों रघुनाथ, सतेंद्र, नरेंद्र, पप्पी और पप्पन ने सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में एक गैरकानूनी सभा का गठन किया था, जिसका उद्देश्य हत्या और हत्या के प्रयास जैसे अपराध करना था। आरोपी घटना स्थल पर पहुंचे और आरोपी नरेंद्र और पप्पी ने पीड़ित रवींद्र की गर्दन पर फावड़े से वार किया, जिससे उसकी मौत हो गई। आरोपी रघुनाथ, सतेंद्र ने विनोद (पीडब्लू-2) को पकड़ लिया और पप्पन ने उसकी गर्दन पर फावड़े से चोट पहुंचाई। वे गैरकानूनी सभा के सदस्य थे, इसलिए आईपीसी की धारा 147 के तहत अपराध किया गया। उनके विरुद्ध सिद्ध हो चुका है। वे घातक हथियारों से लैस थे और अपराध के लिए उन हथियारों का इस्तेमाल करते थे, इसलिए उन्हें आईपीसी की धारा 148 के तहत दोषी पाया गया।

15. दोषसिद्धि के आक्षेपित फैसले में, ट्रायल कोर्ट ने दर्ज किया है कि बचाव पक्ष ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान में कहा है कि पीड़ित रवीन्द्र और घायल विनोद आपस में हाथापाई करने लगे। उन्होंने एक-दूसरे को चोटें पहुंचाईं और उस झगड़े के दौरान रवींद्र की मृत्यु हो गई, लेकिन बचाव का यह पूरा बयान झूठा और अविश्वसनीय प्रतीत होता है। बचाव पक्ष ने अपने बचाव संस्करण के समर्थन में कोई गवाह पेश नहीं किया है।

16. उपरोक्त निष्कर्ष दर्ज करने के बाद ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष ने फावड़े के माध्यम से रवींद्र की मौत का कारण बनने के लिए आरोपी व्यक्तियों नरेंद्र और पप्पी के अपराध को अच्छी तरह से साबित कर दिया है, इसलिए धारा 302 के तहत धारा 149 आईपीसी के साथ पठित अपराध आरोपी नरेंद्र और पप्पी पर पूरी तरह से आरोप सिद्ध हो चुके हैं। अभियोजन पक्ष ने यह साबित करने के लिए स्पष्ट, ठोस और ठोस सबूत पेश किए हैं कि आरोपी व्यक्तियों रघुनाथ, सतेंद्र और पप्पन ने विनोद की मौत का कारण बनने के इरादे से घायल विनोद (पीडब्लू-2) की गर्दन पर फावड़े से चोटें पहुंचाई थीं, इसलिए धारा 307/149/147/148 आई.पी.सी. के तहत अपराध दर्ज किया गया। इन आरोपी व्यक्तियों, अर्थात्, रघुनाथ, सतेंद्र और पप्पन के खिलाफ मामला बनाया गया है।

17. ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने वर्तमान जेल अपील को प्राथमिकता दी है

18 अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलील यह है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता निर्दोष हैं और उन्हें झूठा फंसाया गया है। अगली दलील यह है कि अभियोजन पक्ष ने कोई स्वतंत्र चश्मदीद गवाह पेश नहीं किया है। पी.डब्ल्यू.-2 विनोद कुमार और पी.डब्ल्यू.4 कृष्णपाल सिंह मृतक रवीन्द्र के भाई हैं। उनके सबूतों पर भरोसा नहीं किया जा सकता. मृतक रवीन्द्र के पंचायतनामा में विनोद को फावड़े से चोट लगने का कोई जिक्र

नहीं है। पोस्टमार्टम एक दिन की देरी से किया गया, जिससे अभियोजन की कहानी पर संदेह पैदा हो गया। नेत्र संबंधी गवाही और चिकित्सा साक्ष्य के बीच बहुत अंतर है, जो पूरे अभियोजन मामले को संदिग्ध बनाता है। घटना स्थल और जिस स्थान पर रवीन्द्र का शव मिला, उसे लेकर विरोधाभास है। घटना स्थल से खून से सनी कोई मिट्टी एकत्र नहीं की गई। उनके बयानों में गहरा विरोधाभास है. अभियोजन पक्ष ने मामले की उत्पत्ति को दबा दिया है। यह साबित नहीं हुआ कि विनोद को चोटें कैसे आईं। विनोद को कुंद हथियार से चोट पहुंचाने का कोई स्पष्टीकरण नहीं है। विनोद द्वारा लगाए गए आरोप सरल प्रकृति के हैं, जो घातक नहीं हैं, इसलिए आईपीसी की धारा 307 का मामला नहीं बनता है। रिकार्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि घटना स्थल के निकट चक रोड है। जांच अधिकारी ने ट्रैक्टर को जब्त/अपने कब्जे में नहीं लिया है, जिससे अभियोजन का मामला भी संदिग्ध हो गया है। कुदाल की बरामदगी को प्रासंगिक नहीं माना जा सकता क्योंकि इसे रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था। आरोपी व्यक्ति निर्दोष हैं और उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से उन्हें बरी किया जाना चाहिए।

19 तर्क यह है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता के पास वर्तमान को छोड़कर कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। अगली दलील यह है कि रिकॉर्ड पर लाए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों को देखते हुए, आरोपी-अपीलकर्ताओं नरेंद्र और पप्पी को आईपीसी की धारा 302 के तहत दी गई सजा अत्यधिक है। आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र और पप्पी पर आईपीसी की धारा 304 भाग II के तहत 10 साल की सजा हो सकती है। आरोपी-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अंततः कहा कि चूंकि विचाराधीन घटना क्षणिक आवेग में और अचानक झगड़े के कारण आवेश में घटित हुई, इसलिए इसे आईपीसी की धारा 300 के चौथे अपवाद के तहत कवर किया जाएगा, जो इस प्रकार है :

"अपवाद 4. गैर इरादतन हत्या, हत्या नहीं है अगर यह बिना सोचे-समझे, अचानक हुई लड़ाई में, जोश में आकर, अचानक हुए झगड़े में की गई हो और अपराधी ने अनुचित लाभ न उठाया हो या क्रूर या असामान्य तरीके से काम न किया हो।

20 अपनी याचिका के समर्थन में, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया।

(1) अर्जुन एवं अन्य आदि आदि बनाम छत्तीसगढ़ राज्य 2017 0 सुप्रीम (एससी) 152, और रिपोर्ट किया

(ii) जंडेल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य दिनांक 16 दिसम्बर 2022 द्वारा पारित आपराधिक अपील क्र. 2022 का 2314 [2022 की एसएलपी (सीआरएल) संख्या 6633 से उत्पन्न]।

उपरोक्त की संचयी ताकत पर, अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि सजा अत्यधिक है और इसे कायम नहीं रखा जाना चाहिए और मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए सजा के आदेश को संशोधित किया जाना चाहिए।

21. प्रति विपरीत, श्री एन.के. शर्मा, विद्वान ए.जी.ए. राज्य के लिए, निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश का समर्थन करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी व्यक्ति का नाम लेते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई है; अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए पुख्ता सबूत हैं; जिस घटना में मृतक की हत्या आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र और पप्पी द्वारा किए जाने का आरोप है, वह सुबह लगभग 11:30 बजे हुई। अर्थात दिन के उजाले में, कथित घटना के तीन चश्मदीद गवाह हैं, घटना की जगह पर बचाव पक्ष द्वारा विवाद नहीं किया गया है; और अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के पास मजबूत मकसद या इरादा है और इसे अभियोजन के साक्ष्य द्वारा भी समझाया गया है इसलिए, अभियोजन पक्ष के पास आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया।

22. उपरोक्त कथनों को मजबूत करने के लिए, विद्वान ए.जी.ए. 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 887 में रिपोर्ट किए गए मेकाला **शिवैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** के मामले में शीर्ष अदालत के नवीनतम फैसले पर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है, जिसके तहत पैराग्राफ संख्या 25 और 26 में शीर्ष अदालत ने इस प्रकार कहा है :

25. वर्तमान मामले में तथ्यों और सबूतों का ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट दोनों द्वारा स्पष्ट रूप से विश्लेषण किया गया है और इसे निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

i.अभियोजन पक्ष ने आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया है उचित संदेह से परे।

ii. जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि किए गए पर्याप्त नेत्र संबंधी साक्ष्य हों, तो अपीलकर्ता से हथियार की बरामदगी न होने मात्र से अभियोजन के मामले पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ेगा।

iii. यदि किसी चश्मदीद गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय और विश्वसनीय पाई जाती है, तो उस पर केवल इसलिए अविश्वास नहीं किया जा सकता है और उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास सामने आए हैं।

iv. मृतक पर अपीलकर्ता द्वारा दिनदहाड़े हमला किया गया है और इसे साबित करने के लिए प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध हैं और हमले के पीछे का मकसद भी स्पष्ट है, यह देखते हुए कि अपीलकर्ता और पीडब्लू-1 के बीच पहले से दुश्मनी थी।

26. वर्तमान मामले के उपरोक्त तथ्यों पर उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों के साथ विचार करने और प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अन्य सामग्री की सराहना करने के बाद, ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ उच्च न्यायालय भी अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में सही थे। धारा 302 आईपीसी के तहत अपराध के लिए। इसलिए, हमें ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट के निष्कर्षों में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं दिखती

(महत्व जोड़ें)

श्री एन.के. शर्मा, विद्वान ए.जी.ए. राज्य ने सर्वोच्च न्यायालय और पटना उच्च न्यायालय

के निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा किया है:

(ए) राम कुमार मधुसूदन पाठक बनाम गुजरात राज्य की रिपोर्ट 1998 0 सुप्रीम (एससी) 836,

(बी) अरुलवेलु और अन्य बनाम राज्य प्रतिनिधि लोक अभियोजक एवं अन्य द्वारा 2009 में रिपोर्ट की गई 0 सुप्रीम (एससी) 1628; और

(सी) रामनाथ नोनिया बनाम बिहार राज्य 1999 0 सुप्रीम (पैट) 778 में रिपोर्ट किया गया।

उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, ए.जी.ए. यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश किसी भी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है, जिससे इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। ऐसे में आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वर्तमान जेल अपील, जिन्होंने मृतक की हत्या करके जघन्य अपराध किया था, खारिज किए जाने योग्य है।

23. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और मामले के मूल रिकॉर्ड के साथ-साथ हमारे सामने चुनौती दिए गए फैसले और सजा के आदेश की सावधानीपूर्वक जांच की है।

24. न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर रखी गई उपरोक्त दलीलों और सामग्रियों के संदर्भ में, इस न्यायालय को इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे उपरोक्त सबूतों के आधार पर आरोपी-अपीलकर्ताओं का अपराध स्थापित किया है? इसकी जांच करने के लिए, हमारे लिए अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान संक्षेप में दर्ज करना महत्वपूर्ण है।

25. पी. डब्ल्यू. 1/ऑटोप्सी सर्जन, डॉ. अशोक कुमार दुआ, जिन्होंने मृतक रवीन्द्र का पोस्टमार्टम किया था, ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि मृतक की मृत्यु सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई। मृत्युपूर्व चोटें और यह लगभग एक दिन पहले लगी थीं।

26 इस गवाह से बचाव पक्ष द्वारा भी जिरह की गई है लेकिन उसके पूरे साक्ष्य में कोई विरोधाभास नहीं पाया गया है। उन्होंने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक के शरीर पर जो दो चोटें पाई गईं, वे तेज धार वाले हथियार से लगी थीं, जो कुदाल की हो सकती थीं। उनका यह भी मत है कि यह गंडासा, फरसा, कुल्हाड़ी तलवार आदि कोई भी काटने वाला हथियार हो सकता है । उनका स्पष्ट मत है कि चोट क्रमांक 1 घातक थी और इस चोट के कारण घायल की तुरंत मृत्यु हो सकती थी और चोट क्रमांक 2 भी घातक है और इससे तत्काल मृत्यु भी हो सकती थी। अपनी जिरह में उन्होंने कहा है कि चोट नं. 1 घायल के जमीन पर गिरने से दुर्घटना हो सकती थी। यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि दो आरोपियों नरेंद्र और पप्पी ने फावड़े से रवींद्र की हत्या की है और हाथापाई में उन्होंने नंबर 1 को चोट पहुंचाई है, जबकि घायल जमीन पर पड़ा था और एक ही वार में उन्होंने फावड़े से उसकी गर्दन पर चोटें पहुंचाईं। परिणामस्वरूप उसने मौत के घाट उतार दिया।

अनुवादित

27. पीडब्लू-2 विनोद कुमार, जो घायल बताया जा रहा है और संबंधित घटना का चश्मदीद गवाह है, मृतक रवींद्र का सगा भाई है। उसने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि घटना 18 मई 2002.को हुई थी चूँकि उस दिन शनिवार था, उस दिन उनके खेत में पानी देने की बारी थी। उन्हें 18 मई, 2002 को सुबह 6 बजे (सुबह) से अगले दिन यानी 19 मई, 2002 तक अपने खेत की सिंचाई करनी थी और वे अपने ट्रैक्टर के माध्यम से नाली (नाली) के माध्यम से पानी लेना चाहते थे। घटना दिनांक को दोनों भाई स्वयं पीडब्लू-2 तथा मृतक रवीन्द्र ट्रैक्टर पर अपने खेत पर गये थे। मृतक रवीन्द्र ने नाली (नाली) साफ की थी। आरोपी एक ही गांव बाफर के रहने वाले हैं और अपने खेत में सिंचाई कर रहे थे। ट्रायल कोर्ट में पीडब्लू-2 ने आरोपी व्यक्तियों की पूरी तरह से पहचान कर ली है। इस गवाह ने आगे कहा है कि सुबह लगभग 11 बजे मृतक रवींद्र ने आरोपी व्यक्तियों से ट्यूबवेल बंद करने के लिए कहा था ताकि वे उक्त नाली (नाली) के माध्यम से पानी ले सकें। आरोपियों ने अक्सर ऐसा कहकर रवीन्द्र को खत्म करने की योजना बना ली। खेत की सिंचाई को लेकर उठाया विवाद इस पर उकसाने पर आरोपी नरेन्द्र ने रवीन्द्र की गर्दन पर फावड़े से वार किया और आरोपी वीरेन्द्र, जो पप्पी के नाम से जाना जाता था, ने भी कुदाल से रवीन्द्र की गर्दन पर वार किया, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। आरोपी सतेंद्र और रघुनाथ ने विनोद कुमार (पी.डब्लू.2.) पर हमला किया और उसे पकड़ लिया, जिसके बाद आरोपी पप्पन ने उस पर एक फावड़ा मारा लेकिन वह बच गया और शोर मचाया जिस पर गवाह वहां पहुंचे। शीशपाल और बृजपाल (पीडब्लू-3) भी वहां आए और उन्होंने घटना देखी। इसके बाद वह अपने भाइयों मनोज और मुनेश के साथ थाना जानी में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए आगे बढ़ा और जब वे सहकारी बैंक, जानी के पास पहुंचे तो कृष्णपाल (वादी/पीडब्लू.-4) उन्हें रास्ते में मिले, जिन्होंने घटना के बारे में पूछताछ की जिस पर पी.डब्ल्यू.-2 ने उसे पूरी कहानी बताई। पीडब्लू-4 कृष्णपाल ने एक कागज पर रिपोर्ट लिखकर थाना जानी पुलिस को दे दी थी। इस गवाह ने आगे कहा कि थाना जानी में कृष्णपाल, बृजपाल और मुनेश मौजूद थे। उसके बाद पीडब्लू2 अपनी चिकित्सा जांच के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, जानी गया, लेकिन डॉक्टर वहां मौजूद नहीं थे। उनके साथ आया होम गार्ड घटना स्थल पर आया। वहां पुलिस मौजूद थी। वहां गांव के कई लोग भी मौजूद थे। थाना प्रभारी, पुलिस स्टेशन जानी ने बयान दर्ज किए हैं और मृतक का पूछताछ तैयार किया गया है जिस पर उसने हस्ताक्षर किए हैं और उसने अपने हस्ताक्षरों की पहचान की है। इस गवाह ने आगे कहा कि उसे पी.एल. शर्मा अस्पताल, मेरठ रेफर किया गया, जहां डॉक्टर द्वारा उसकी चोटों की चिकित्सकीय जांच की गई। पीडब्लू2 विनोद ने स्पष्ट रूप से कहा है कि नरेंद्र को कल्लन के नाम से भी जाना जाता था, सतेंद्र को बिल्ला के नाम से भी जाना जाता था और वीरेंद्र को पप्पी के नाम से भी जाना जाता था।

28 इस गवाह से बचाव पक्ष द्वारा विस्तार से जिरह की गई लेकिन उसकी गवाही में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं पाया गया। उन्होंने अभियोजन पक्ष का पूरा समर्थन किया है।

29. पीडब्लू-3 बृजपाल, जिस पर मुख्य स्वतंत्र चश्मदीद गवाह होने का आरोप है, उसी गांव का था जहां आरोपी और अभियोजन पक्ष रहते थे। पी.डब्ल्यू.-3 आरोपी व्यक्तियों रघुनाथ, सतेंद्र, नरेंद्र, पपी और पप्पन को जानता है। इस गवाह ने आगे कहा है कि विचाराधीन घटना 18 मई, 2002 को हुई थी और उस समय वह अपने खेत में काम कर रहा था, शीशपाल (उत्पादित नहीं हुआ) भी वहां मौजूद था। उसने शीशपाल का खेत बटाई (किराए) पर ले रखा था। सुबह करीब 11 बजे मृतक रवीन्द्र और पी.डब्ल्यू.-2 विनोद अपने ट्यूबवेल पर मौजूद थे। मृतक रवीन्द्र ने आरोपियों से अपना ट्यूबवेल बंद करने को कहा क्योंकि आरोपी ट्रैक्टर के माध्यम से अपने खेत में पानी ले जा रहे थे। मृतक रवीन्द्र ने पूछा कि उस दिन उसकी खेत में सिंचाई करने की बारी थी। आरोपियों ने अपना ट्यूबवेल बंद नहीं किया, जिसके चलते उनके बीच कुछ विवाद हो गया। आरोपियों ने एक-दूसरे को समझाया कि रवीन्द्र हमेशा खेत में सिंचाई करने में विवाद पैदा करता है, इसलिए उसे खत्म कर देना चाहिए था, इस पर आरोपी पप्पी और कल्लन ने रवीन्द्र की गर्दन पर कुदाल से हमला कर दिया, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया और उसकी तुरंत मौत हो गई।

आरोपी रघुनाथ और बिल्लू ने विनोद (पी.डब्लू.-2) को पकड़ लिया और आरोपी पप्पन ने एक फावड़ा उसकी गर्दन पर मारा। इस साक्षी ने पूरी घटना 10 से 15 कदम से देखा था। वह तुरंत वहां पहुंच गया। इसके बाद आरोपी वहां से निकल कर अपने घर चले गये. । पीडब्लू-3 तुरंत कृष्णपाल को बुलाने गया। विनोद और शीशपाल ने उसे शिवल हाई स्कूल, सिवाल खास, मेरठ में पढ़ाने वाले कृष्णपाल मास्टर को सूचित करने की सलाह दी। वह तुरंत कृष्णपाल के पास गया और उसे घटना की जानकारी दी. इसके बाद वह और कृष्णपाल थाने गए और बीच रास्ते में कोऑपरेटिव बैंक के पास विनोद और गांव के कई लोग उनसे मिले, जानी पी.डब्ल्यू.2 विनोद ने कृष्णपाल को पूरी घटना भी बताई, जिस पर उन्होंने रिपोर्ट लिखी थी, जिसे पी. एस. जानी. को सौंप दिया गया है।

30. पी.डब्ल्यू.-3 से भी बचाव पक्ष द्वारा विस्तार से जिरह की गई है लेकिन उसकी गवाही में कोई विरोधाभास नहीं पाया गया है। इस गवाह ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी रघुनाथ और बिल्लू ने विनोद (पी.डब्ल्यू.-2) को पकड़ लिया था, जिसके बाद आरोपी पप्पन ने विनोद को एक फावड़े से घायल कर दिया था और जब वह आरोपी व्यक्तियों के पास पहुंचा, तो वे भाग गए। वहाँ। यह गवाह बृजपाल एक स्वतंत्र चश्मदीद गवाह है और उसने अभियोजन पक्ष को पूरी तरह से साबित कर दिया है।

31. कृष्णपाल यानी मुखबिर, जो मृतक रवींद्र और घायल विनोद कुमार (पीडब्लू-2) का भाई है, को पी.डब्ल्यू.4 के रूप में पेश किया गया है। उन्होंने यह दावा नहीं किया है कि वह घटना के चश्मदीद गवाह है। इस गवाह ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने यह घटना अपनी आँखों से नहीं देखी है क्योंकि घटना के समय वह हाई स्कूल, शिवाल खास, मेरठ में पढ़ा रहा था और इस घटना की

जानकारी उसे बृजपाल ने दी थी। (पीडब्लू-3). उन्होंने थाना जानी में जो लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-का/4) प्रस्तुत की है, उसे प्रमाणित कर दिया है।

32 अभियोजन ने उपनिरीक्षक संजीव सिंह राठौड़ को पी.डब्ल्यू.5 के रूप में पेश किया है। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने कहा है कि उन्होंने मुनेश, विजय पाल, बृजपाल, विनोद और धर्मेंद्र की उपस्थिति में मृतक रवींद्र के शव की जांच तैयार/संचालन की है, जिन्हें उनके अनुसार जांच गवाह के रूप में नियुक्त किया गया था। रवीन्द्र की मौत आपराधिक लेनदेन में लगी चोटों के कारण हुई। बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने इस गवाह से विस्तार से जिरह की है। उन्होंने पंचायतनामा, एफआईआर को पत्र, चिक की प्रति आदि सभी कागजातों को प्रमाणित किया है

एफआईआर, सीएम को पत्र एस., नमूना सील, फोटो लैश और चालान लैश। वहाँ
उसकी गवाही में कोई विरोधाभास नहीं है.

33. आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी पी.एल. शर्मा को पीडब्लू के रूप में पेश किया गया है-6, जिन्होंने घायल विनोद कुमार (पी.डब्लू.-2) का चिकित्सीय परीक्षण किया है। इस गवाह ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि उसे पी.डब्लू.-2 के शरीर पर 5 चोटें मिलीं। उनका मानना है कि पी.डब्ल्यू.-2 को लगी सभी चोटें साधारण प्रकृति की थीं और चोट नंबर 1 कटा हुआ घाव है और यह कुदाल जैसे किसी तेज धार वाले हथियार के कारण हुआ था और चोट नंबर। 2 और 3 कठोर और कुंद हथियार से हुए। उन्होंने चोट रिपोर्ट को साबित कर दिया है, जिसे प्रदर्श-का/8 के रूप में चिह्नित किया गया था। इस गवाह से बचाव पक्ष द्वारा भी जिरह की गई है और उसकी पूरी जिरह में कोई विरोधाभास नहीं पाया गया है।

34. कांस्टेबल-1198 रणवीर सिंह को पी.डब्लू.-7 के रूप में पेश किया गया है। अपने मुख्य परीक्षण में उन्होंने कहा है कि एफआईआर उनके द्वारा अपनी लिखावट में लिखी गई है जिसे प्रदर्श-का/9 के रूप में चिह्नित किया गया है। उन्होंने चिक एफआईआर को साबित कर दिया है.

35 पीडब्लू-8 उप-निरीक्षक आर.एन. सिंह यादव ने जांच की है। अपने मुख्य परीक्षण में इस गवाह ने कहा है कि उसने मामले की जांच स्वयं की थी, जो 18 मई, 2002 को दोपहर 12.40 बजे शुरू हुई थी। उन्होंने वादी कृष्णपाल और मामले के चश्मदीद गवाह शीशपाल के बयान भी दर्ज किए। उन्होंने अपने लेखन में साइट प्लान तैयार किया है। उन्होंने घटनास्थल से खून से सनी मिट्टी और सादी मिट्टी एकत्र की थी, जहां रवींद्र का शव पड़ा था इस गवाह ने अपने जिरह में कहा है कि उसने खून से सनी मिट्टी और फावड़े को रासायनिक जांच के लिए इसलिए नहीं भेजा था क्योंकि उसका तबादला हो गया था, बल्कि उसने इस मामले में आरोप पत्र दाखिल किया है। बचाव पक्ष द्वारा इस गवाह से जिरह भी की गई लेकिन उसकी गवाही में कोई विरोधाभास या असंगतता या सुधार नहीं पाया गया। उन्होंने अभियोजन पक्ष का पूरा समर्थन किया है।

अनुवादित

36. अभियोजन पक्ष के गवाहों और अन्य सबूतों की गहन जांच और मूल्यांकन पर, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष के दो तथ्यात्मक गवाह हैं, अर्थात् पी.डब्लू.2 विनोद कुमार, जो मृतक का भाई है लेकिन एक घायल गवाह है और बृजपाल (पी.डब्लू.-3), जो एक स्वतंत्र चश्मदीद गवाह है। अपनी गवाही में, उन्होंने अभियोजन मामले का पूरी तरह से समर्थन किया है और ये गवाही आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ मृतक रवींद्र की हत्या के अपराध को अंजाम देने और घायल पी.डब्ल्यू.-2 को चोट पहुंचाने के अलावा उपरोक्त, चिकित्सीय साक्ष्य दोनों की पोस्टमार्टम रिपोर्ट
प्रत्यक्ष सबूत हैं

मृतक रवींद्र के साथ-साथ घायल विनोद कुमार (पीडब्लू-2) की मेडिकल जांच रिपोर्ट और पुलिस कागजात ने भी अभियोजन पक्ष का पूरी तरह से समर्थन किया है।

37. हमने ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश की जांच की है। आक्षेपित निर्णय पारित करते समय ट्रायल कोर्ट ने अभियोजन पक्ष के संस्करण और परीक्षण के दौरान दिए गए अन्य सबूतों को ध्यान से देखा है और माना है कि अभियोजन पक्ष ने अपराध स्थापित किया है। अभियोजन साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता। हमने यहां ऊपर देखा है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में विशेष रूप से स्टार अभियोजन गवाहों के बयानों में मामूली विरोधाभास, विसंगतियां और विसंगतियां हैं। पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3, जिन पर कथित घटना का चश्मदीद गवाह होने का आरोप है। हालाँकि पीडब्लू-2 एक इच्छुक गवाह है, लेकिन एक घायल गवाह भी है, जबकि पीडब्लू-3 एक स्वतंत्र गवाह है और तथ्य के दोनों गवाहों से बचाव पक्ष द्वारा काफी देर तक जिरह की गई है। इसलिए, उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास हैं।

38. यह स्थापित कानून है कि सभी आपराधिक मामलों में, अवलोकन की सामान्य त्रुटियों के कारण गवाहों के बयानों में सामान्य विसंगतियां होती हैं, अर्थात्, समय की चूक के कारण या सदमे और डरावनी जैसी मानसिक स्थिति के कारण स्मृति की त्रुटियां होती हैं। घटना के समय. जहां चूक विरोधाभास की तरह होती है, गवाह की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है और अन्य गवाह भी अदालत में गवाही देते समय भौतिक सुधार करते हैं, ऐसे साक्ष्य पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं हो सकता है। हालाँकि, मामूली विरोधाभासों, विसंगतियों, अलंकरणों या तुच्छ मामलों पर सुधार जो अभियोजन मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं, उन्हें ऐसा आधार नहीं बनाया जाना चाहिए जिस पर सबूत को पूरी तरह से खारिज किया जा सके। अदालत को गवाह की विश्वसनीयता के बारे में अपनी राय बनानी होगी और निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि क्या उसका बयान आत्मविश्वास को प्रेरित करता है।

39. विभिन्न निर्णयों में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि इच्छुक या शत्रु गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए, लेकिन केवल पक्षपातपूर्ण साक्ष्य होने के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। यदि

साक्ष्यों के अवलोकन से न्यायालय संतुष्ट है कि साक्ष्य श्रेयस्कर है तो उक्त साक्ष्यों पर भरोसा करने में कोई रोक नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि रुचिकर साक्ष्य आवश्यक रूप से अविश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। वह सब कुछ है

आवश्यक यह है कि इच्छुक गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और सावधानी के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार, साक्ष्यों पर केवल इस आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता कि गवाह एक-दूसरे से या मृतक से संबंधित हैं। यदि साक्ष्य में पूरी सच्चाई है, वह ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है, तो उस पर भरोसा किया जा सकता है और निश्चित रूप से उस पर भरोसा किया जाना चाहिए।

40 उपरोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर, हम पाते हैं कि ट्रायल कोर्ट का यह मानना उचित है कि अभियोजन पक्ष आरोपी-अपीलकर्ताओं, अर्थात् नरेंद्र और पप्पी के खिलाफ मृतक रवींद्र की हत्या का अपराध साबित करने में सफल रहा है। पी.डब्लू.-2 विनोद कुमार को चोट पहुँचाने के कारण अपराध करने में अभियुक्त-अपीलकर्ताओं, अर्थात्, रघुनाथ, सतेंद्र, पप्पन का अपराध उचित संदेह से परे साबित हुआ है। हालाँकि, ट्रायल कोर्ट द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र और पप्पी को आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी ठहराना और सजा देना उचित नहीं है। हमें अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील में दम नजर आता है कि विचाराधीन घटना आवेश में, आवेश में और बिना किसी पूर्वचिन्तन या हमले की योजना के घटित हुई, इसलिए, यह अपवाद-4 के अंतर्गत आएगा। धारा 300 आई.पी.सी. और आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र और पप्पी की सजा धारा 304 भाग- I.P.C के तहत होगी और आईपीसी की धारा 302 के तहत नहीं।

41. अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही के अनुसार, घटना के समय और स्थान पर, आरोपी व्यक्ति पहले से ही कुल्हाड़ी, कुदाल, दरांती आदि जैसे कृषि उपकरणों की मदद से अपने खेत की सिंचाई कर रहे थे और जब मृतक रवींद्र और विनोद कुमार पी.डब्लू.- 2 वहां पहुंचे और रवींद्र ने विरोध किया और उन्हें पानी देने के लिए कहा क्योंकि यह उसकी बारी थी, जिस पर सभी आरोपी नाराज हो गए और उसे खत्म करने के लिए उकसाया क्योंकि वह हमेशा पानी लेने में आपत्ति करता था, जिस पर आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र उर्फ कल्लन और पप्पी ने अपनी फावड़ा मार दी। रवीन्द्र कुमार की गर्दन कट गई, जिससे उनकी तत्काल मौत हो गई। अभियुक्त-अपीलकर्ता रघुनाथ और सतेंद्र ने मुखबिर के दूसरे भाई विनोद को पकड़ लिया और अभियुक्त-अपीलकर्ता पप्पन ने विनोद की गर्दन पर फावड़े से वार किया। उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि घटना अचानक घटित हुई वह क्षण बिना किसी पूर्वचिन्तन के, जैसा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता नहीं थे। ऐसा अपराध करने के इरादे से हमलावर के हाथों में हथियार थे, जबकि वास्तव में, मृतक और घायल (पी.डब्लू.-2) के वहां पहुंचने से पहले वे खेती के उपकरणों की मदद से अपने खेतों की सिंचाई कर रहे थे, ऐसे में आरोपी -अपीलकर्ता, नरेंद्र और पप्पी

को आईपीसी की धारा 304 के तहत दंडित किया जा सकता है

42. **पुलिचेरला नागराजू** में **[पुलिचेरला नागराजू बनाम ए.पी. राज्य, रिपोर्ट (2006) 11 एससीसी 444 (2007) 1 एससीसी (सीआरआई) 500]** में, सर्वोच्च न्यायालय के पास गैर इरादतन हत्या के मामले पर विचार करने का अवसर था और मौत का कारण बनने का इरादा. इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया और माना गया कि मौत का कारण बनने का इरादा आम तौर पर अन्य परिस्थितियों के अलावा, निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से इकट्ठा किया जा सकता है:

(i) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति,

(ii) क्या हथियार आरोपी द्वारा ले जाया गया था या घटनास्थल से उठाया गया था;

(iii) क्या झटका शरीर के किसी महत्वपूर्ण हिस्से को निशाना बनाकर किया गया है,

(iv) चोट पहुंचाने में लगाए गए बल की मात्रा;

(v) क्या यह कार्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई या खुलेआम लड़ाई के दौरान हुआ था;

(vi) क्या घटना संयोगवश घटित हुई है या क्या कोई पूर्वचिन्तन किया गया था;

(vii) क्या कोई पूर्व दुश्मनी थी या क्या मृतक कोई अजनबी था,

(viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उकसावा था, और यदि

तो, इस तरह के उकसावे का कारण;

(ix) क्या यह जोश की गर्मी में था;

(x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है,

(xi) क्या आरोपी ने एक ही वार किया या कई वार किए।"

43. सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय की जांच करने पर हम पाते हैं कि शीर्ष न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय में दी गई परिस्थितियाँ संख्या (ii), (v) और (viii) वर्तमान मामले में लागू होंगी।

44. **पुलिचेरला नागराजू @ नागराजा रेड्डी (सुप्रा)** के मामले में पैराग्राफ-29 में, शीर्ष न्यायालय ने राय दी है कि अदालत को इरादे के महत्वपूर्ण प्रश्न पर सावधानी और सावधानी से निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि इससे यह तय होगा कि मामला गिरता है या नहीं धारा 302 या 304 भाग 1 या 304 भाग 2 के तहत कई छोटे या महत्वहीन मामलों में, फल तोड़ना, मवेशियों का भटकना, बच्चों का झगड़ा, अशिष्ट शब्द बोलना या यहां तक कि आपत्तिजनक नज़र से देखना, झगड़े और समूह संघर्ष का कारण बन सकता है, जो मौतों में परिणत हो सकता है। ऐसे मामलों में बदला लेने, लालच, ईर्ष्या या संदेह जैसे सामान्य उद्देश्य पूरी तरह से अनुपस्थित हो सकते हैं हो सकता है कोई इरादा न हो. हो सकता है कोई पूर्वचिन्तन न हो वास्तव में, वहाँ आपराधिकता भी नहीं हो सकती है। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर, हत्या के ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां आरोपी यह मामला पेश करके हत्या के लिए दंड से बचने का प्रयास करता है कि उसका मौत का कारण बनने का कोई इरादा नहीं था। यह सुनिश्चित करना अदालतों का काम है कि धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के मामलों को धारा 304

भाग- I/II के तहत दंडनीय अपराधों में शामिल नहीं किया जाए, या गैर इरादतन हत्या के मामलों को धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के रूप में नहीं माना जाए।

45. रिकॉर्ड पर संपूर्ण साक्ष्यों को देखने पर, हम पाते हैं कि आईपीसी की धारा 300 के चौथे अपवाद को आकर्षित करने के लिए आवश्यक तत्व वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से मौजूद हैं, क्योंकि मृत्यु के कारण कोई पूर्व-ध्यान मौजूद नहीं था, यह था अचानक हुई लड़ाई में, अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है या क्रूर या असामान्य तरीके से काम नहीं किया है, इसलिए, मामला स्पष्ट रूप से आईपीसी की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आता है।

46. आईपीसी की धारा 304 के तहत सजा की मात्रा से संबंधित मुद्दा। यह मामले के पृष्ठभूमि तथ्यों, अभियुक्तों के पूर्ववृत्त, हमला पूर्व-निर्धारित और पूर्व-योजनाबद्ध था या नहीं, आदि पर निर्भर करता है। कानून में इसके निर्धारण के लिए कोई सीधा-सीधा फॉर्मूला नहीं है।

47. अर्जुन और अन्य आदि आदि बनाम छत्तीसगढ़ राज्य ने 2017 में 0 सुप्रीम (एससी) 152 के मामले में जो विद्वानों द्वारा बहुत अधिक विश्वसनीय है अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि सिर पर चोटें/छेड़े गए घाव यानी दायां पार्श्विका क्षेत्र और दायां टेम्पोरल क्षेत्र और पश्चकपाल क्षेत्र, चोटों से संकेत मिलता है कि अपीलकर्ताओं के पास चोट पहुंचाने का जानबूझकर इरादा था और इस प्रकार यह होगा मामला आईपीसी की धारा 304 भाग- I के तहत आता है। इसलिए, आईपीसी की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया। धारा 304 भाग-आईआईपी.सी के तहत संशोधित किया गया है

48 अर्जुन और अन्य आदि (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

19. विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या आईपीसी की धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं की सजा टिकाऊ है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, सबूत स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि जब अयोध्या प्रसाद और अन्य गवाह पेड़ काट रहे थे, तब शब्दों का आदान-प्रदान हुआ जिसके परिणामस्वरूप विवाद हुआ और उक्त विवाद के दौरान अपीलकर्ताओं ने मृतक पर हमला किया। इस प्रकार, यह घटना अचानक हुई लड़ाई के कारण घटी, जो हमारे विचार से आईपीसी की धारा 300 के अपवाद (4) के अंतर्गत आती है।

20. इस अपवाद (4) को लागू करने के लिए, जिन आवश्यकताओं को पूरा किया जाना है, वे इस न्यायालय द्वारा सुरिंदर कुमार बनाम में निर्धारित की गई हैं। केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ (1989) 2 एससीसी 217, इसे इस प्रकार समझाया गया है: -

"7. इस अपवाद को लागू करने के लिए चार आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए, अर्थात्, (i) यह अचानक हुई लड़ाई थी; (ii)

कोई पूर्वचिन्तन नहीं था; (iii) कार्य जोश में किया गया था, और (iv) हमलावर ने कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया या क्रूर तरीके से काम नहीं किया। झगड़े का कारण प्रासंगिक नहीं है और न ही यह प्रासंगिक है कि किसने उकसावे की पेशकश की या हमला शुरू किया। घटना के दौरान हुए घावों की संख्या निर्णायक कारक नहीं है लेकिन क्या है महत्वपूर्ण बात यह है कि घटना अचानक और अप्रत्याशित रही होगी और अपराधी ने गुस्से में आकर ऐसा किया होगा। बेशक, अपराधी ने कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया होगा या क्रूर तरीके से काम नहीं किया होगा। जहां, अचानक झगड़े पर, यदि कोई व्यक्ति आवेश में आकर कोई हथियार उठा लेता है जो उपयोगी है और चोट पहुंचाता है, जिनमें से एक घातक साबित होता है, तो वह इस अपवाद का लाभ पाने का हकदार होगा, बशर्ते उसने क्रूरतापूर्वक कार्य नहीं किया हो।

21. इसके अलावा अरुमुगम बनाम राज्य के मामले में,

पुलिस निरीक्षक, तमिलनाडु द्वारा प्रतिनिधित्व, (2008) 15

एससीसी 590, इसके तहत कानून के प्रस्ताव के समर्थन में

आईपीसी की धारा 300 का अपवाद (4) किन परिस्थितियों में हो सकता है

यदि मृत्यु हुई है तो इसे लागू किया जाता है, इसे इस प्रकार समझाया गया है: -

"9"18. अपवाद 4 की मदद तब ली जा सकती है जब मृत्यु (ए) बिना पूर्वचिन्तन के (बी) अचानक लड़ाई में हुई हो; (सी) अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना, और (डी) लड़ाई मारे गए व्यक्ति के साथ होनी चाहिए। किसी मामले को अपवाद 4 के अंतर्गत लाने के लिए उसमें उल्लिखित सभी सामग्रियां मिलनी होंगी। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 4 में होने वाली 'लड़ाई' को भारतीय दंड संहिता, 1860 में परिभाषित नहीं किया गया है। लड़ाई करने में दो लगते हैं। जुनून की गर्मी के लिए जरूरी है कि जुनून को ठंडा होने का समय न मिले और इस मामले में, पार्टियों ने शुरुआत में मौखिक विवाद के कारण खुद को क्रोधित कर लिया था। लड़ाई दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच की लड़ाई है चाहे वे हथियारों के साथ हों या उनके बिना। अचानक होने वाला झगड़ा किसे माना जाएगा, इसके बारे में कोई सामान्य नियम बताना संभव नहीं है। यह तथ्य का प्रश्न है और झगड़ा अचानक है या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। अपवाद 4 को लागू करने के लिए, यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्वचिन्तन नहीं था। यह भी दिखाया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है। प्रावधान में प्रयुक्त अनुचित लाभ की अभिव्यक्ति का अर्थ 'अनुचित लाभ' है।

22. पीडब्लू-6 के संस्करण और अन्य गवाहों के प्रत्यक्षदर्शी विवरण के अनुसार, अभियुक्तों के हाथों में हथियार थे, लेकिन गवाहों द्वारा बताई गई घटनाओं का क्रम केवल यह दर्शाता है कि हथियारों का इस्तेमाल झगड़े के दौरान किया गया था। अचानक हुई लड़ाई और कोई पूर्व-ध्यान नहीं था. पोस्टमार्टम रिपोर्ट में

दिखाई गई चोटों से यह भी पता चलता है कि अपीलकर्ताओं ने "अनुचित लाभ" नहीं उठाया है या क्रूर तरीके से काम नहीं किया है। इसलिए, तथ्य की स्थिति में, धारा 300 आईपीसी के तहत अपवाद (4) आकर्षित होता है। घटना अचानक हुई लड़ाई में हुई थी, इसलिए अपीलकर्ता धारा 300 अपवाद (4) आईपीसी के तहत लाभ के हकदार हैं।

23. जब और यदि इरादा और ज्ञान है, तो वही धारा 304 भाग I आईपीसी का मामला होगा और यदि यह केवल ज्ञान का मामला है और हत्या और शारीरिक चोट पहुंचाने का इरादा नहीं है, तो वही होगा आईपीसी की धारा 304 भाग II का मामला। सिर पर चोटें/छेड़े हुए घाव यानी दायां पार्श्विका क्षेत्र और दायां टेम्पोरल क्षेत्र और पश्चकपाल क्षेत्र, चोटों से संकेत मिलता है कि अपीलकर्ताओं को चोट पहुंचाने का इरादा और ज्ञान था और इस प्रकार यह धारा 304 भाग 1 के अंतर्गत आने वाला मामला होगा

आई.पी.सी. धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया

धारा 34 के साथ पढ़ें आईपीसी को धारा 304 भाग के तहत संशोधित किया गया है रिकॉर्ड पर जेल हिरासत प्रमाणपत्रों के अनुसार, मैं आईपीसी

अपीलकर्ताओं ने अब तक 9 साल 3 महीने और 13 दिन की सजा काट ली है 2 मार्च, 2016 यानी आज की तारीख में अपीलकर्ता 9 साल 11 महीने की सेवा कर चुके हैं, को ध्यान में रख कर तथ्य और परिस्थितियाँ जिनमें अपराध हुआ है

प्रतिबद्ध, धारा 304 भाग I आईपीसी के तहत संशोधित दोषसिद्धि के लिए, सजा को पहले से ही भुगती गई अवधि में संशोधित किया गया है।"

49. वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार, आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र और पप्पी ने मृतक की गर्दन पर फावड़े से चोटें पहुंचाईं, जिससे उसकी घटना स्थल पर ही मौत हो गई, ये चोटें थीं। इंगित करता है कि दोनों आरोपी-अपीलकर्ताओं को चोट पहुंचाने का ज्ञान और इरादा था, और इस प्रकार यह धारा 304 भाग-I आईपीसी के तहत आने वाला मामला होगा।

50. उपरोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर, हमारी सुविचारित राय है कि उक्त अपराध आरोपी-अपीलकर्ताओं, नरेंद्र और पप्पी द्वारा अचानक झगड़े के कारण और आवेश में आकर किया गया है। उन्हें और मृतक तथा पी.डब्ल्यू.-2, जैसा कि तथ्य के गवाहों सहित अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही से स्पष्ट है। पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3. उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए हमारा मानना है कि आरोपी-अपीलकर्ता नरेंद्र और पप्पी को धारा 302 आईपीसी के तहत आजीवन कारावास की सजा दी जाए। जैसा कि आक्षेपित आदेश के तहत दिया गया दंड वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार बहुत कठोर है। न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता 25 सितंबर, 2007 से जेल में हैं वरिष्ठ अधीक्षक, सेंट्रल जेल, आगरा द्वारा दिनांक 19 अप्रैल, 2023 को जारी हिरासत प्रमाण पत्र के अनुसार (छूट के साथ 20 वर्ष, 9 महीने और छह दिन) और वे वास्तव में बिना छूट के लगभग 16 साल (19 अप्रैल, 2023 को 15 साल, 10 महीने और 17 दिन) कैद में रह चुके हैं।

51. तदनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं, अर्थात् नरेंद्र और पप्पी को धारा 302 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया। धारा 304 भाग- I आईपीसी के तहत दोषसिद्धि के रूप में संशोधित किया गया है और सजा की अवधि पहले ही कम कर दी गई है। चूंकि आरोपी-अपीलकर्ता, नरेंद्र और पप्पी ने बिना किसी छूट के 15 साल से अधिक की सजा काट ली है, इसलिए आरोपी-अपीलकर्ता, नरेंद्र और पप्पी प्रत्येक पर आईपीसी की धारा 149 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 302 के तहत 10,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है और आक्षेपित निर्णय के तहत भी आरोपमुक्त किया जाता है।

52 जहाँ तक श्री नूर मोहम्मद द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ताओं, अर्थात्, रघुनाथ (जिसकी मृत्यु हो गई बताई गई है) को दोषी ठहराए जाने का प्रश्न है। आरोपी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता), सतेंद्र और पप्पन पर धारा 307 आईपीसी के तहत मामला दर्ज किया गया, हम दर्ज कर सकते हैं कि पहली चोट निश्चित रूप से घायल विनोद कुमार (पीडब्लू-2) के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर थी और आरोपी-अपीलकर्ता पप्पन द्वारा उसके शरीर के विभिन्न हिस्सों पर लगी चोटों को ध्यान में रखते हुए, जबकि आरोपी - अपीलकर्ता, अर्थात्, रघुनाथ (अब मर चुका है) और सतेंद्र को घायल विनोद कुमार (पीडब्लू.-2) को पकड़ने की भूमिका सौंपी गई थी, धारा 307 आई.पी.सी. ट्रायल कोर्ट द्वारा आक्षेपित निर्णय पारित करते समय इसे उचित रूप से लागू किया गया है। हालाँकि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आरोपी-अपीलकर्ताओं और मृतक के साथ-साथ घायल पी.डब्लू.-2 के बीच खेत में पानी देने के समय विवाद हुआ था और हमले की कोई पूर्व-चिंतन या योजना नहीं थी, साथ ही चिकित्सा परीक्षण पर भी विचार किया जा रहा है। घायल पी.डब्ल्यू.-2 की रिपोर्ट और पी.डब्ल्यू.-6 की गवाही जिसने उसका चिकित्सीय परीक्षण किया है कि यद्यपि पी.डब्ल्यू. -6 ने पी.डब्ल्यू.-2 के व्यक्ति पर 5 चोटें पाई हैं, लेकिन उन्होंने यह भी कहा है कि पी.डब्ल्यू.-2 को लगी सभी चोटें सामान्य प्रकृति की थीं, जिसका अर्थ है कि कुदाल का वार जिससे चोट संख्या 1 यानी कटा हुआ घाव 6.0 सेमी x बायीं ओर छाती के पीछे 0.7 सेमी x मांसपेशी, बाएं कान के लोब्यूल के ऊपर और नीचे 6.5 सेमी, चोट गंभीर प्रकृति की नहीं थी, लेकिन महत्वपूर्ण भाग यानी विनोद कुमार की गर्दन पर थी, घायल/पी.डब्लू.-2, हिरासत में सजा सुनाई गई अभियुक्त-अपीलकर्ताओं, अर्थात् सतेंद्र और पप्पन, को क्रमशः चार और छह महीने में न्याय मिलेगा। तदनुसार आदेश दिया गया है। आरोपी अपीलकर्ता सतेंद्र और पप्पन प्रत्येक पर आईपीसी की धारा 149 के साथ पठित धारा 307 के तहत 5,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया। आक्षेपित निर्णय के तहत भी आरोपमुक्त किया जाता है

53. तदनुसार, दोनों आपराधिक अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं।

54. परिणामस्वरूप, निर्णय एवं आदेश दिनांक 25 सितम्बर, 2007 विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट), मेरठ द्वारा सत्र विचारण संख्या 862 में पारित किया गया 2002 का (राज्य बनाम नरेंद्र और अन्य), केस अपराध संख्या 135 से

उत्पन्न 2002 की धारा 147, 148, 307, 302 और 506 आईपीसी के तहत, पुलिस स्टेशन-जानी, जिला-मेरठ को उपरोक्त सीमा तक संशोधित किया गया है।

55. अभियुक्त-अपीलकर्ता, अर्थात्, नरेंद्र और पप्पी, जो हैं 2007 से जेल में बंद बताए जाने पर धारा के अनुपालन पर रिहा कर दिया जाएगा 437-ए सीआरपीसी, जब तक कि वे तुरंत किसी अन्य मामले में वांछित न हों, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता, अर्थात्, सतेंद्र और पप्पन, जमानत पर होने की सूचना देते हैं और इस प्रकार उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है और उनके जमानत बांड खारिज हो जाते हैं। उन्हें सीआरपीसी की धारा 437-ए के अनुपालन के अधीन मुक्त कर दिया जाएगा, जब तक कि वे किसी अन्य मामले में वांछित न हों।

56. इस फैसले की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ को भेजी जाए, जो इस फैसले के संदर्भ में आरोपी-अपीलकर्ताओं की रिहाई के लिए इसे संबंधित जेल अधीक्षक को भेज देगा।

(2023) 5 ILRA 1020

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 7125 / 2007

शिशुपाल सिंह ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री बृज राज सिंह, श्री एच.पी. मिश्रा, श्री राजेश कुमार दुबे, श्री सत्य प्रकाश, श्री शशि शेखर मिश्रा (ए.सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री आर.के.यादव

ए. दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498ए, 304बी, 302 एवं 3/4 डी.पी. एक्ट - चुनौती - दोषसिद्धि - वादी के पास आरोपी को झूठा फंसाने का कोई आशय नहीं था - अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए पुख्ता सबूत हैं - मृतक के मृत्युपूर्व बयान का समर्थन अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी पीडब्लू-1, पीडब्लू-4 और स्वतंत्र अभियोजन पक्ष के गवाह पीडब्लू-3 द्वारा किया गया है - साथ ही, चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के बयान का पूर्ण समर्थन करते हैं - घटनास्थल पर बचाव पक्ष द्वारा विवाद नहीं किया गया है - आरोपी का मजबूत आशय था क्योंकि उसकी दूसरी पत्नी थी और वर्तमान पत्नी (पीड़िता) ने वैवाहिक जीवन के दौरान चार साल तक कोई बच्चा पैदा नहीं किया था - यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है - इसलिए, अभियोजन पक्ष ने आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है - आरोपी 15 साल से अधिक समय से जेल में है, वह पहले ही पर्याप्त कारावास काट चुका है इसलिए, विकास यादव के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुरूप 14 साल की सजा नीति को लागू करते हुए, अपीलकर्ता को जेल से रिहा किया जाना चाहिए। (पैरा 1 से 29)

अपील का निस्तारण किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

बिजॉय दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2008) 4 एससीसी 511

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत आपराधिक अपील ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट, न्यायालय संख्या-3, मैनपुरी द्वारा 2006 के सत्र परीक्षण संख्या-159 (राज्य बनाम शिशुपाल सिंह) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 15.10.2007 को चुनौती दी, जो धारा 498-ए, 304 बी भ०द०वि० और धारा 3/4 डीपी अधिनियम थाना-बेवर के तहत के सत्र परीक्षण संख्या-118 वर्ष 2006, जिला-मैनपुरी से उद्भूत हुआ था, जिसके तहत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट, न्यायालय संख्या-3, मैनपुरी ने अभियुक्त-अपीलकर्ता, शिशुपाल सिंह को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 (संक्षेप में 'भ०द०वि०') के तहत अपराध करने के लिए दोषी ठहराया है और उसे 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई है और इसके डिफ़ॉल्ट में, छह महीने के अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई है।

2. श्री शशि शेखर मिश्रा, आरोपी-अपीलकर्ता के लिए एमिकस क्यूरी और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

3. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 विद्या देवी ने 4 मार्च, 2006 को थाना-बेवर, जिला-मैनपुरी को एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क/1) दी है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि उसकी बेटी, लक्ष्मी देवी का विवाह चार साल पहले अभियुक्त-अपीलकर्ता शिशुपाल के साथ दहेज देकर किया गया था। विवाह के तुरंत बाद उसकी पुत्री लक्ष्मी देवी का पति अर्थात आरोपी-अपीलकर्ता, उसकी सास गंगादेवी, ससुर सूबेदार सिंह व जेठ दहेज की अतिरिक्त मांग के लिए उसे उत्पीड़न, प्रताड़ना व मारपीट करते थे, जिसके कारण सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने उसे ससुराल नहीं भेजा और उसने उसे अपने यहां रखा। आरोप है कि बेटी की हत्या करने के बाद उसकी बेटी के ससुराल वाले शिशुपाल की शादी दूसरी जगह कराना चाहते थे। सूचनाकर्ता (उसकी भाभी के पति) की बेटी का नंदोई, अर्थात् गिरीश चंद्र 20 दिन पहले किशनपाल के साथ अपनी बेटी को अपने ससुराल वालों के घर ले जाने के लिए उसके घर आया और दोनों ने आश्वासन दिया कि भविष्य में उसकी बेटी के साथ कुछ भी गलत नहीं होगा और उसे गारंटी दी कि अगर अब कुछ भी होता है, तो यह उनकी जिम्मेदारी होगी। उक्त अनुनय पर सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने अपनी पुत्री लक्ष्मी देवी को उनके साथ भेज दिया। लक्ष्मी स्वयं बी.ए की छात्रा थी और लक्ष्मी का पति पी.ए.सी. में नौकरी करता था। दिनांक 03.03.2006 को प्रातः लगभग 8:00 बजे सूचनादाता के पड़ोसी राम किशन ने उसे सूचना दी कि लक्ष्मी की तबीयत खराब है, उस समय वह अपनी दूसरी पुत्री त्रिवेणी के ससुराल में थी। सूचनाकर्ता के पड़ोसी लाल राम और उसके देवर जेठ का बेटा अपने परिवार के साथ घटना स्थल यानी बेवर गए। जब उन्हें पता चला कि सूचनाकर्ता की बेटी यानी लक्ष्मी सरकारी अस्पताल मैनपुरी गई है तो वे मैनपुरी गए। मैनपुरी पहुंचने पर उन्होंने सूचनाकर्ता की बेटी को मोर्चरी में मृत अवस्था में देखा। मोर्चरी में सूचनाकर्ता के पड़ोसी लाल राम और उसके देवर जेठ के बेटे के अलावा ससुराल वालों की तरफ से लक्ष्मी का ससुर ही मौजूद था। शव परीक्षण के बाद सूचनाकर्ता के पड़ोसी लाल राम और उसके देवर जेठ के बेटे ने अपने

परिवार के साथ लक्ष्मी के ससुर से अनुरोध किया कि मां के आने के बाद उसके शव का अंतिम संस्कार कर दिया जाए, लेकिन उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया। कुछ देर बाद लक्ष्मी के ससुराल वालों की तरफ से अन्य लोग आ गए, जो जबरदस्ती उसकी बेटी के शव को टेंपो से ले गए। इसके बाद सूचनाकर्ता के परिजन सीधे उसके गांव आए और वहां आकर उसकी दूसरी बहू के यहां से फोन कर पूरी घटना के बारे में बताया। फिर सूचना देने वाला रिपोर्ट दर्ज कराने आया है। आरोप है कि उसकी बेटी लक्ष्मी के ससुराल वालों ने उसे बेटी का शव भी नहीं देखने दिया। बहू के ससुराल के सभी लोग अपने घर में ताला लगाकर फरार हो गए हैं। सूचनाकर्ता को यह भी पता चला है कि अस्पताल में उसकी बेटी लक्ष्मी का बयान दर्ज किया गया था। बेटी की शादी के बाद पता चला कि आरोपी-अपीलकर्ता शिशुपाल ने गुपचुप तरीके से किसी अन्य लड़की से शादी कर ली थी। बेटी की हत्या में उपरोक्त सभी आरोपियों ने दहेज के लिए साजिश रचकर उसकी हत्या की है। आरोप है कि सूचना देने वाला असहाय होने के कारण अपने ससुराल वालों की मोटरसाइकिल की मांग पूरी नहीं कर सका और इसीलिए सभी ने उसकी बेटी को जलाकर मार डाला। मौके पर पहुंचने पर सूचनाकर्ता को उसकी बेटी के ससुराल वालों के पड़ोसियों ने बताया कि उपरोक्त सभी आरोपी उसकी बेटी को पीट रहे हैं और अन्य आरोपियों द्वारा उसे पकड़ने के बाद आरोपी-अपीलकर्ता शिशुपाल ने मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी है। 25 साल पहले सूचनाकर्ता के पति की मौत हो गई थी और उसके बाद किसी तरह उसने दहेज देकर अपनी बेटियों की शादी करायी।

4. सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की लिखित रिपोर्ट के आधार पर उसी दिन अर्थात 3 मार्च, 2006 को 15:30 बजे थाना-बेवर, जिला मैनपुरी में अभियुक्त-अपीलकर्ता शिशुपाल, गंगा देवी, ज्ञानपाल, सूबेदार, गिरीश चंद्र और किशनपाल के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई और विवेचना की गई। जांच में गवाहों के बयान दर्ज किए और आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कीं। 3 मार्च, 2006 को अ०सा०-7 तत्कालीन तहसीलदार आशा राम ने उप-विभागीय मजिस्ट्रेट मैनपुरी के आदेश के तहत पुलिस द्वारा जिला अस्पताल, मैनपुरी में मृतका लक्ष्मी के शरीर का पंचनामा करवाया करवाई और पंचनामा आख्या भी तैयार की (प्रदर्श क/8)। उन्होंने पंचान गवाह भी नियुक्त किए। उन्होंने पुलिस के कागजात, आर.आई को पत्र, सी.एम.ओ को पत्र, फोटो लाश, चालान लाश (प्रदर्श क/9 से प्रदर्श क/12) जैसे आवश्यक कागजात भी तैयार करवाए। अ०सा०-7 ने भी मृतका के शव को सीलबंद करवाकर शव परीक्षण के लिए भेज दिया।

5. मृतका लक्ष्मी के शव का शव परीक्षण 3 मार्च, 2006 को दोपहर 03:45 बजे जिला अस्पताल, मैनपुरी के तत्कालीन चिकित्सा अधिकारी डॉ. के.सी. भारद्वाज (अ०सा०-2) द्वारा किया गया। शव परीक्षण रिपोर्ट एक्स. केए-2 तैयार किया गया था और शव परीक्षण सर्जन (अ०सा०-2) की राय में, मृतका लक्ष्मी की मृत्यु निम्नलिखित पूर्व-मृत्यु सतही जलने वाली गहरी चोटों के परिणामस्वरूप सदमे के कारण हुई थी: -

"1. पेट और पेरिनेम और सिर के शीर्ष को छोड़कर पूरे शरीर में सतही से गहरी जलन,

त्वचा को स्थानों से खींचा गया, पूरे शरीर का कालापन और स्थानों पर मौजूद मिट्टी के तेल की गंध, स्थानों पर मौजूद लालिमा की रेखा।

6. जलने के बाद मृतका को जिला अस्पताल, मैनपुरी में भर्ती कराया गया, जहां डॉक्टर यू. सी चतुर्वेदी (अ०सा०-8) ने मृतका लक्ष्मी का उपचार किया। उसके उपचार के दौरान 2 मार्च, 2006 को अपराह्न 02:05 बजे नायब तहसीलदार, मैनपुरी (अ०सा०-5) द्वारा ईएमओ जिला अस्पताल, मैनपुरी के चिकित्सक से फिटनेस प्रमाण पत्र लेने के बाद मृतका लक्ष्मी (प्रदर्श क/5) का मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज किया गया। मृतका लक्ष्मी का मृत्यु-पूर्व बयान यहां दिया गया है:

<u>मृत्यु पूर्व बयान</u>

आज दिनांक 2.3.06 को समय 2.05 पीएम पर लक्ष्मी देवी पत्नी श्री शिशुपाल सिंह निवासी भारतीय विद्या मंदिर, बेवर, थाना बेवर, उम्र लगभग 25 वर्ष में बयान किया कि मैं उपरोक्त पते की निवासी हूं। मुझे आज सुबह तीन चार बजे मुझे मारा था तथा मेरे ऊपर पाउवा में रखा मिट्टी तेल डाल दिया और माचिस से आग लगा दी। आज से मेरा पूरा शरीर जगह-जगह जला है। मेरी शादी 4 साल पूर्व हुई थी। मेरे कोई बच्चा नहीं है। दूसरी लड़की पत्नी के पीछे मुझे जलाया है; और किसी व्यक्ति ने मुझे नहीं चलाया है। इस घटना में केवल मेरे पति का हाथ है। मेरे साथ ससुर हैं; इन्होंने ही अस्पताल में भर्ती कराया है। मेरा पति रात को ही भाग गया। वह साथ नहीं आए; मेरे जेठ, नंदोई और ससुर अस्पताल में आए हैं। इनमें से किसी का कोई दोष नहीं है। यह कारनामा मेरे पति का ही है। मैं होश में बयान दिया है। मुझे और कुछ नहीं कहना। आग मैंने खुद नहीं लगाई है। बयान सुनकर तसदीक किया।

नि. आ.
लक्ष्मी देवी
हस्ताक्षर
02.3.06
नायब तहसीलदार
मैनपुरी
2.20 पी.एम

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती लक्ष्मी देवी पत्नी श्री शिशुपाल सिंह अपना बयान देने के बाद तक पूरे होश में रही।

हस्ताक्षर
02.3.06
2.23 PM
EMO
D.H. MAINPURI

7. प्रारंभ में, विवेचना सर्किल अधिकारी, करहल द्वारा की गई थी, अर्थात् राम चंद्र गुहा (पेश नहीं किया गया) और उसके बाद सर्कल अधिकारी श्रवण कुमार सिंह (अ०सा०-6) द्वारा विवेचना की गई है। रामचन्द्र गुहा द्वारा की गई विवेचना के अवलोकन के बाद उन्होंने विवेचना के जी.डी. चतुर्वेदी को दे दी। उसके बाद अ०सा०-6 ने गवाहों के बयान दर्ज किए हैं और सी.जे.एम. से अनुमति प्राप्त करने के बाद मृतका लक्ष्मी के मृत्यु पूर्व घोषणा के जी.डी. 23 मार्च, 2006 को उन्होंने सूचनाकर्ता विद्या देवी और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए।

अध्याय-XII द०प्र०स० के तहत वैधानिक जांच के समापन के बाद अ०सा०-6 ने आरोपी-अपीलकर्ता शिशुपाल के खिलाफ धारा 498-ए, 304-बी भ०द०वि० और धारा 3/4 डीपी अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया है, जिसमें संबंधित मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष प्राथमिकी में नामित अन्य अभियुक्तों को बरी कर दिया गया है, जिन्होंने उस पर संज्ञान लिया और मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया क्योंकि कथित रूप से किए गए अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे। प्रारंभ में 17 जुलाई, 2007 को अभियुक्त-अपीलकर्ता पर धारा 498-ए, 304 बी, भ०द०वि० और धारा 4 डीपी अधिनियम के तहत आरोप लगाया गया था, लेकिन बाद में 18 जून, 2007 को उस पर धारा 498-ए भ०द०वि० 304-बी और 302 भ०द०वि० और धारा 4 डीपी अधिनियम के तहत आरोप लगाया गया है।

8. आरोपी-अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाए गए, जिन्होंने आरोप से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

9. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों की जांच की, जो इस प्रकार हैं:-

1	विद्या देवी, सूचनाकर्ता, मृतका की माँ	अ०सा०-1
2	डॉ के सी भारद्वाज, शव का परीक्षण किया	अ०सा०-2
3	रामेंद्र सिंह, कांस्टेबल क्लर्क चिक प्राथमिकी लिखी और साबित किया	अ०सा०-3
4	अमर सिंह, मृतका के चचेरे भाई	अ०सा०-4
5	लक्ष्मी नारायण तत्कालीन नायब तहसीलदार, मृतिका लक्ष्मी देवी का मृत्यु पूर्व बयान डिस्ट्रिक्ट अस्पताल मैनपुरी में रिकार्ड किया ((विवेचनाधिकारी)	अ०सा०-5
6	सर्कल ऑफिसर श्रवण कुमार विवेचनाधिकारी	अ०सा०-6
7	आशा राम तत्कालीन तहसीलदार जिन्होंने शव का पंचायतनामा ज़िला अस्पताल में भरवाया	अ०सा०-7
8	डॉ यू सी चतुर्वेदी जिन्होंने ज़िला अस्पताल मैनपुरी में इलाज किया और मृतका के मृत्यु पूर्व बयान की रिकॉर्डिंग से पहले उसका मेडिकल फिटनेस सर्टिफिकेट दिया	अ०सा०-8

10. बचाव पक्ष ने मृतका के ससुर सूबेदार सिंह को ब०सा०-1 के रूप में भी शामिल किया है और प्राथमिकी में भी नामित किया है, लेकिन बाद में, उनका नाम विवेचनाधिकारी द्वारा आरोप-पत्र में हटा दिया गया था। इस गवाह ने अपनी बहू यानी मृतका के साथ हुई जलने की घटना की जानकारी भी पुलिस को दी है।

11. अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों पर भरोसा किया है, जो विधिवत

साबित हुए थे और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए थे:

1	प्राथमिकी दिनांक: 4 मार्च 2003	प्रदर्श क-3
2	तहरीरी रिपोर्ट दिनांक: 4 मार्च 2003	प्रदर्श क-1
3	मृत्यु पूर्व घोषणा का मेमो दिनांक: 2 मार्च 2003	प्रदर्श क-5
4	बुड़ेर सिंह का प्रार्थना पत्र (ब. स. सं-1)	प्रदर्श ख-1
5	मृतका की शव परीक्षण रिपोर्ट दिनांक: 3 मार्च 2003	प्रदर्श क-2
6	सारणी के साथ नक़्शा नज़री दिनांक: 4 मार्च 2003	प्रदर्श क-7
7	आरोप पत्र	प्रदर्श क-9

12. अभियुक्त ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में कथित अपराध करने से इनकार किया है। हालांकि उसने मृतका से 4 साल पहले अपनी शादी स्वीकार कर ली है, लेकिन उसने इस बात से इनकार किया है कि उसने दहेज के रूप में किसी भी मोटरसाइकिल की मांग की थी और उक्त मांग पूरी न होने के कारण उसने उसे पीटा और प्रताड़ित किया। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उसने मृतका को मिट्टी का तेल डालकर मार डाला और आग लगा दी। उन्होंने यह भी कहा है कि उनके खिलाफ थाना में झूठी रिपोर्ट दर्ज की गई है और झूठी नक़्शा नज़री तैयार करने के बाद, उनके खिलाफ संबंधित अदालत के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि गवाहों ने उनके खिलाफ झूठे बयान दिए हैं। उन्होंने पुनः कहा है कि पी०ए०सी० एटा में उनके विरूद्ध पहली पत्नी के अलावा दूसरी पत्नी रखने की विभागीय कार्यवाही चल रही थी और उक्त कार्यवाही में मृतका लक्ष्मी देवी द्वारा उनके विरुद्ध दिए गए बयान को उनके विभाग के लोगों द्वारा बदल दिया गया था, जिससे वह नाराज हो गई और उसने आग लगाकर आत्महत्या कर ली। उन्होंने यह भी कहा है कि घटना के समय वह अपने घर पर थे जिसके लिए उन्हें बाद में सबूत देने थे।

13. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों के आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध को उचित संदेह से परे साबित किया है। विचारण न्यायालय ने गवाहों को विश्वसनीय पाया है और मृत्यु पूर्व बयान भी विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया गया है जो अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बना। तदनुसार, विचारण न्यायालय ने माना है कि, अभियुक्त-अपीलकर्ता शिशुपाल सिंह धारा 498 ए, 304 बी भ०द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत अपराध के लिए बरी होने के योग्य है और धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी/दंडित होने के योग्य है। यह इस फैसले के खिलाफ है कि प्रस्तुत अपील को अभियुक्त-अपीलकर्ता शिशुपाल द्वारा दायर किया गया है।

सत्यापित

14. आरोपी अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि सूचनाकर्ता मृतका की मां है और अभियुक्त के प्रति शत्रुतापूर्ण थी। धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान में, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कहा है कि उसने कोई अपराध नहीं किया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान में अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कहा है कि पी.ए.सी. एटा में, उसके खिलाफ पहली पत्नी के अलावा दूसरी पत्नी होने के लिए विभागीय कार्यवाही चल रही थी और उक्त कार्यवाही में मृतका लक्ष्मी देवी द्वारा उसके खिलाफ दिए गए बयान को उसके विभाग के लोगों द्वारा बदल दिया गया, जिसके कारण वह नाराज हो गई और उसने आग लगाकर आत्महत्या कर ली। वह आगे प्रस्तुत करता है कि मृत्यु पूर्व बयान प्रस्तुत मामले के तथ्यों में विश्वसनीय नहीं है क्योंकि मृतका कोई बयान देने की स्थिति में नहीं था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि डॉक्टर द्वारा मृतका के बयान देने के लिए फिट मानसिक स्थिति में होने के बारे में कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि पीड़िता की स्थिति गंभीर थी और उसकी श्वासनली अवरुद्ध हो गयी थी जिसके लिए ऑपरेशन प्रस्तावित किया गया था और इसलिए, पीड़िता अन्यथा बोलने या अपनी मृत्यु पूर्व घोषणा दर्ज कराने की स्थिति में नहीं थी।

15. इसलिए, अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि यह आत्महत्या का मामला है, हत्या का नहीं, क्योंकि मृतका जल्द क्रोधित होने वाली महिला थी और उसने वैवाहिक जीवन के दौरान चार साल तक कोई बच्चा पैदा नहीं किया था, उसने खुद पर मिट्टी का तेल डालकर आत्महत्या कर ली और आग लगा दी और मृतका के परिवार के सदस्यों ने इसका फायदा उठाते हुए आरोपी को झूठा फंसाया और इस तरह आरोपी-अपीलकर्ता से पैसे हड़पने का लक्ष्य तय किया। यह आग्रह किया जाता है कि विचारण न्यायालय द्वारा रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की सही परिप्रेक्ष्य में जांच नहीं की गई है। आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से यह भी आग्रह किया गया है कि प्राथमिकी दो दिनों की देरी है जो आरोपी-अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाने के लिए एक विचार के रूप में दर्ज की गई थी, जिसके आधार पर आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है।

16. राज्य के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त के झूठे फंसाने का कोई कारण नहीं है और शिकायतकर्ता का आरोपी को झूठा फंसाने का कोई मकसद नहीं था। अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए ठोस सबूत हैं; मृतका की मृत्यु पूर्व घोषणा है और उसमें मृतका द्वारा दिए गए बयानों का समर्थन अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा किया गया है, जिसमें अ०सा०-1, अ०सा०-4, स्वतंत्र अभियोजन गवाह अ०सा०-3; अभियोजन पक्ष के संस्करण को चिकित्सा साक्ष्य द्वारा भी समर्थित किया गया है; घटना का स्थान बचाव पक्ष द्वारा विवादित नहीं किया गया है; और अभियुक्त-अपीलकर्ता का मजबूत मकसद या इरादा है क्योंकि उसकी दूसरी पत्नी थी और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य द्वारा भी इसे समझाया गया है। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया

है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य इस अदालत को मामले में कोई उदारता दिखाने की अनुमति नहीं देंगे।

17. पूर्वोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश किसी भी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है ताकि इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप को वारंट किया जा सके। इस प्रकार, मृतका की हत्या करके जघन्य अपराध करने वाले आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा दायर प्रस्तुत जेल अपील खारिज की जा सकती है।

18. हमने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और मामले के मूल रिकॉर्ड के साथ-साथ हमारे सामने चुनौती दिए गए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश की सावधानीपूर्वक जांच की है।

19. हम अ०सा०-5, अ०सा०-8 के बयानों और मृतका की मृत्यु पूर्व घोषणा पर भरोसा करने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से पूरी तरह सहमत हैं कि जिन परिस्थितियों में मृतका लक्ष्मीदेवी की मृत्यु पूर्व घोषणा अ०सा०-5 द्वारा दर्ज की गई है, वह काफी स्वाभाविक है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मृतका लक्ष्मीदेवी मृत्यु की घोषणा करते समय अपने होश में थी और पूर्ण चेतना में थी। मृत्यु की घोषणा उनकी मर्जी से की गई है। उन्होंने आगे दर्ज किया है कि किसी भी दबाव और हेरफेर की कोई गुंजाइश नहीं थी क्योंकि मृत्यु से पहले लक्ष्मीदेवी द्वारा मृत्यु पूर्व घोषणा की गई थी, जिसमें उन्होंने केवल अपने पति यानी आरोपी अपीलकर्ता शिशुपाल सिंह का नाम लिया है और उन्होंने बताया है कि उनके पति ने रात 3 से 4 बजे उन्हें पहले पीटा था, फिर उस पर मिट्टी का तेल डालकर माचिस से आग लगा दी। विचारण न्यायालय ने यह भी दर्ज किया है कि मृतका के बयान में मृतका लक्ष्मीदेवी ने कहा है कि कई जगहों पर आग लगने से उसका पूरा शरीर जल गया था। घटना के 4 साल पहले उसकी शादी हुई थी। उसकी कोई संतान नहीं थी। अपनी दूसरी पत्नी के कारण आरोपी-अपीलकर्ता शिशुपाल ने मृतका को आग लगा दी थी और किसी अन्य ससुराल वालों ने उसे आग नहीं लगाई है। मृतका ने अपने मृत्यु पूर्व बयान में आगे कहा है कि इस घटना में उसका पति ही जिम्मेदार है। उसकी सास और ससुर वहां थे, जिन्होंने उसे अस्पताल में भर्ती कराया। उसका पति रात में ही फरार हो गया। वह उनके साथ नहीं आया। उसने यह भी कहा है कि उसका जेठ, ननदोई, ससुर अस्पताल आया था। इस घटना में किसी का कोई दोष नहीं है। यह कारनामा उनके पति का ही है। मृतका ने होश में आकर अपना बयान दिया। उपरोक्त के अलावा, उसके पास बताने के लिए कुछ भी नहीं था। उसने यह भी कहा है कि उसने खुद को आग नहीं लगाई।

20. मृतका के मृत्यु पूर्व बयान में दिए गए बयान के आधार पर विचारण न्यायालय ने राय दी है कि मृतका लक्ष्मीदेवी के उक्त मृत्यु पूर्व बयान की गंभीरता से समीक्षा करने पर यह पाया जाता है कि यदि मृतका चाहती तो वह

अपने मृत्यु पूर्व बयान में भी ससुराल के सभी परिवार के सदस्यों का नाम ले सकती थी। लेकिन उसने अपने पति का नाम बताया है, जिसने उस पर मिट्टी का तेल डालकर माचिस से आग लगा दी। इसके अलावा यह भी बेहद जरूरी है कि मृतका लक्ष्मीदेवी द्वारा दिया गया मृत्यु पूर्व बयान किसी दबाव या अन्य किसी कारण से नहीं दिया गया था क्योंकि जब मृतका लक्ष्मीदेवी को जली हुई हालत में जिला अस्पताल में भर्ती कराया गया था, उस समय उसके परिवार का कोई सदस्य यानी उसकी मां और कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था और जो लोग उसकी देखभाल के लिए अस्पताल में मौजूद थे वह उसके ससुराल के ही थे। इन परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय ने कहा है कि मृतका द्वारा की गई मृत्यु की मौखिक घोषणा पर विचार करने का वैध कारण है। विचारण न्यायालय ने यह भी दर्ज किया है कि लक्ष्मीदेवी के मृत्यु पूर्व बयान से यह भी स्पष्ट है कि उनके पति शिशुपाल सिंह का विवाह किसी अन्य महिला से हुआ था और उक्त विवाह से उनका एक बच्चा था। यह तथ्य निर्विवाद है क्योंकि बचाव पक्ष के गवाह (ब०सा०-1) यानी उसके ससुर ने खुद अपनी गवाही में इस तथ्य को स्वीकार किया है। मृतका के इस कथन का कि उसका पति पहले से ही विवाहित था, उसकी विधवा मां अर्थात अ०सा०-1/सूचनाकर्ता और उसके चचेरे भाई (अ०सा०-4) ने भी अपनी गवाही में समर्थन किया है। इस प्रकार, मृतका की मृत्यु पूर्व घोषणा और अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों अर्थात अ०सा०-1, अ०सा०-4, अ०सा०-5 और अ०सा०-8 के बयानों और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में सफल रहा है कि उसकी दूसरी पत्नी के कारण अभियुक्त-अपीलकर्ता घटना से पहले मृतका को पीटता था और परेशान करता था और उसके बाद उसने मिट्टी का तेल डाला था उस पर तेल लगाकर आग लगा दी और आरोपी शिशुपाल सिंह का उक्त आपराधिक कृत्य हत्या की श्रेणी में आता है। इस तरह के निष्कर्ष के आधार पर, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि यह दहेज की हत्या का मामला नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष हत्या का मामला है, जिसे अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक साबित किया है।

21. संचयी प्रकृति में अ०सा०-1 से अ०सा०-8 के साक्ष्य पर विचार करते समय, मृत्यु को मानव वध मृत्यु कहा जा सकता है। शव परीक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि मृतका के शरीर पर सतही गहरी जलने की चोटें मौत का कारण होंगी और यह हत्या की मौत थी। मृत्यु पूर्व बयान भी है जो मृतका द्वारा अपने होश में दिया गया था और किसी दबाव में नहीं था जैसा कि स्वतंत्र अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०-5 के बयानों से स्पष्ट है, जिन्होंने अ०सा०-8 से मेडिकल फिटनेस प्रमाण पत्र लेने के बाद मृत्यु पूर्व घोषणा दर्ज की थी, जो अस्पताल में भर्ती होने और जीवित होने पर मृतका का चिकित्सकीय उपचार कर रहा था। यह स्थापित कानून है कि मृत्यु के कगार पर खड़े व्यक्ति द्वारा मृत्यु से पहले की गई घोषणा की एक विशेष पवित्रता होती है क्योंकि उस गंभीर क्षण में किसी व्यक्ति के कोई असत्य बयान देने की संभावना नहीं होती है।

22. बिजॉय दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2008) 4 एस.सी.सी. 511 में रिपोर्ट किए गए मामले में, जिसमें पैरा-11 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"11. जैसा कि नारायण सिंह बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय द्वारा देखा गया है। हरियाणा राज्य आकाशवाणी पैरा-7 के अनुसार: (एस.सी.सी. पृष्ठ 267, पैरा-7) अपनी मृत्यु के कगार पर किसी व्यक्ति द्वारा की गई मृत्यु पूर्व घोषणा की एक विशेष पवित्रता है क्योंकि उस गंभीर क्षण में किसी व्यक्ति द्वारा कोई असत्य बयान देने की संभावना नहीं होती है। आसन्न मृत्यु की छाया अपने आप में मृतका के बयान की सच्चाई की गारंटी है जो उसकी मृत्यु की ओर ले जाने वाली परिस्थितियों के बारे में है। लेकिन साथ ही, मृत्यु पूर्व किसी भी साक्ष्य की तरह, स्वीकार्य होने के लिए विश्वसनीयता की कसौटी पर परीक्षण किया जाना चाहिए। यह इसलिए और भी अधिक है, क्योंकि अभियुक्त को जिरह द्वारा बयान की सत्यता पर सवाल उठाने का अवसर नहीं मिलता है। मृत्यु पूर्व घोषणा यदि विश्वसनीय पाई जाती है तो दोषसिद्धि का आधार बन सकती है।

8. बाबूलाल बनाम (2003 (12) एस.सी.सी. 490) के मामले में इस न्यायालय ने उक्त निर्णय के पैरा-7 में निम्नानुसार अवलोकन किया: (एस.सी.सी. पृष्ठ 494) एक व्यक्ति जो आसन्न मृत्यु का सामना कर रहा है, यहां तक कि इस दुनिया में व्यावहारिक रूप से अस्तित्वहीन बने रहने की छाया के साथ, झूठ का हर मकसद मिटा दिया जाता है। मन केवल सच बोलने के लिए सबसे शक्तिशाली नैतिक कारणों से बदल जाता है। मरने वाले व्यक्ति के शब्दों के साथ महान गंभीरता और पवित्रता जुड़ी हुई है क्योंकि वैवाहिक जीवन के दौरान चार साल तक किसी भी बच्चे को जन्म नहीं देने वाला व्यक्ति, वह मृत्यु के कगार पर झूठ बोलने या एक निर्दोष व्यक्ति को फंसाने के लिए एक मामला गढ़ने की संभावना नहीं रखता है। कहावत यह है कि एक आदमी अपने निर्माता से उसके मुंह में झूठ के साथ नहीं मिलेगा (निमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटिरी)। मैथ्यू अर्नोल्ड ने कहा, सच्चाई एक मरते हुए आदमी के होंठों पर बैठती है। सामान्य सिद्धांत जिस पर साक्ष्य की प्रजातियों को स्वीकार किया जाता है, वह यह है कि वे चरम सीमा में की गई घोषणाएं हैं, जब कोई पक्ष मृत्यु के बिंदु पर है, और जब इस दुनिया की हर आशा खत्म हो गई है, जब झूठ के हर मकसद को चुप करा दिया जाता है और मन को प्रेरित किया जाता है सच बोलने के लिए सबसे शक्तिशाली विचार; स्थिति इतनी गंभीर है कि कानून उसी दायित्व को बनाने के रूप में मानता है जो न्याय की अदालत में प्रशासित सकारात्मक शपथ द्वारा लगाया जाता है।

9. रवि बनाम तमिलनाडु राज्य ((2004 (10) एस.सी.सी. 776) इस न्यायालय ने देखा कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 777, पैरा-3) यदि मृत्यु-पूर्व बयान की सत्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता है, तो वही अकेले अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है और इसके लिए कानून में किसी भी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। (हमारे द्वारा महत्व दिया गया)

23. मृत्यु जलने की चोटों के कारण हुई। अपीलकर्ता के अधिवक्ता यह स्थापित करने में

सक्षम नहीं हैं कि मृत्यु पूर्व की घोषणा प्राकृतिक मृत्यु घोषणा नहीं है, हम विद्वान न्यायाधीश से सहमत हैं कि मृतका की मृत्यु, मृत्यु पूर्व जलने से हुई थी। मृत्यु पूर्व घोषणा को स्वीकार करने की रूपरेखा मामले के तथ्यों में पूरी होती है, इसलिए, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह एक हत्या की मौत थी। अगला सवाल यह है कि क्या आरोपी अपराध का एकमात्र अपराधी था। मृत्यु पूर्व बयान, जिसे हमने मृत्यु पूर्व घोषणा की रूपरेखा के आधार पर पूरा माना है, यह दर्शाता है कि मृतका पूर्ण चेतना में थी और उसने मृत्यु पूर्व बयान में केवल अपने पति का नाम लिया है और किसी अन्य ससुराल वाले का नाम नहीं लिया गया है। घटना का कारण यह था कि चूंकि उसने वैवाहिक जीवन के दौरान चार साल तक किसी भी बच्चे को जन्म नहीं दिया था और अपीलकर्ता के विवाह से पहले कुछ अवैध संबंध थे, यही आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा मृतका की हत्या का कारण था।

24. इसलिए, तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता और अभियोजन पक्ष के गवाहों की मौखिक गवाही विशेष रूप से चिकित्सा साक्ष्य के साथ मृतका की मृत्यु की घोषणा पर, हम पाते हैं कि धारा 302 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश और उसे 50,00 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सुनाई गई सज़ा को अवैध या विकृत नहीं कहा जा सकता है।

25. हालांकि, अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा कैद की कुल अवधि यानी 15 साल से अधिक समय तक गुजारने पर विचार करना न्यायसंगत और उचित है। विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2016) 9 एस.सी.सी. 541 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि मौत की सजा देने में एकरूपता की कमी थी और आपराधिक प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित छूट प्रावधानों के कारण आजीवन कारावास की सजा वाले कैदियों को 14 साल बाद रिहा कर दिया गया था। 14 साल से अधिक की निश्चित अवधि के गैर-प्रेषण योग्य कारावास ने वैधानिक छूट (अनुच्छेद 71 और 161 के तहत संवैधानिक छूट नहीं) को रोक दिया। निश्चित अवधि के गैर-प्रेषण योग्य वाक्य अदालत के बचाव में आए जब मौत की सजा दुर्लभ श्रेणी से कम हो गई और अदालत ने मौत की सजा का समर्थन करने के लिए अनिच्छुक महसूस किया। इसलिए, किसी के जीवन के अंत तक न्यूनतम 14 वर्षों से परे गैर-विप्रेषण अवधि तय करने पर कोई रोक नहीं है।

26. विकास यादव के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार पढ़ा जाता है:

"विस्तार से बताने के लिए, हालांकि संविधान के अनुच्छेद 71 और अनुच्छेद 161 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति सीमित अर्थों में न्यायिक समीक्षा के योग्य है, फिर भी न्यायालय इस तरह की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। जहां तक धारा 433-ए के तहत वैधानिक शक्ति का संबंध है, इसे तब कम किया जा सकता है जब न्यायालय की सुविचारित राय हो कि तथ्य की स्थिति कैद की सजा के योग्य है जो एक निश्चित अवधि के लिए हो ताकि छूट की शक्ति का प्रयोग न

किया जाए। इस बात का समर्थन करने के लिए कई प्राधिकरण हैं कि क्षमा की शक्ति को कम करने और दोषी द्वारा क्षमा पर विचार करने के लिए आवेदन को विफल करने के लिए निश्चित अवधि की सजा का अधिरोपण किया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि किसी विशेष तथ्य की स्थिति में, यह एक दंडात्मक आवश्यकता बन जाती है जो अधिकतम और न्यूनतम की अवधारणा के भीतर अनुमेय है। अधिकतम मृत्युदंड पर कोई विवाद नहीं है। हालांकि, जहां तक न्यूनतम का संबंध है, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की दलील यह है कि अदालतें "आजीवन कारावास" कह सकती हैं और कुछ नहीं। इसे इस तरह के सीधे सटीक फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है। अदालत, जैसा कि मौजूदा मामले में है, जब सजा को आजीवन कारावास से बढ़ाकर मौत की सजा देने की अपील पर विचार कर रही है, तो निश्चित रूप से कह सकती है कि दोषी को एक विशिष्ट अवधि के लिए वास्तविक कैद का सामना करना पड़ेगा। यह न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में आता है और ऐसी व्याख्या की अनुमति है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए, न्यायालय न्यूनतम से कम सजा नहीं दे सकता है, लेकिन अधिकतम से कम सजा दे सकता है। यह सजा के दायरे में आता है और संवैधानिक रूप से स्वीकार्य है।

27. अभियुक्त 15 साल से अधिक समय से जेल में है, वह पहले ही 02.03.2006 में हुई घटना के लिए पर्याप्त कैद काट चुका है। इसलिए, हम विकास यादव (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुरूप 14 साल की फिक्स टर्म सजा नीति लागू करते हैं। तदनुसार, आरोपी-अपीलकर्ता जेल से रिहा होने के योग्य है।

28. अभियुक्त-अपीलकर्ता, अर्थात्, शीशु पाल सिंह, जो 2007 से जेल में है, को जब तक कि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन पर रिहा किया जाएगा।

29. इस अपील का निपटारा उपर्युक्त में की गई टिप्पणियों/निदेशों के अधीन किया जाता है।

30. इस निर्णय की एक प्रति अब से मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मैनपुरी को भेजी जाए, जो इस निर्णय के संदर्भ में आरोपी-अपीलकर्ताओं की रिहाई के लिए संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेगा।

31. श्री शशि शेखर मिश्रा, एकमात्र अपीलकर्ता के एमिकस क्यूरी/न्याय मित्र ने इस न्यायालय की सहायता की है और उच्च न्यायालय कानूनी सेवा प्राधिकरण से 15,000 रुपये की राशि के लिए अपने शुल्क के हकदार होंगे।

(2023) 5 ILRA 1030

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1103 / 2019

अमन @ मोनू ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: लालू प्रसाद भट्ट, अशोक कुमार शुक्ला, दिनेश चंद्र तिवारी, लालू प्रसाद भट्ट, राकेश कुमार त्रिपाठी।

अधिवक्ता विपक्षी: शासकीय अधिवक्ता,मनोज कुमार सिंह

आपराधिक कानून- किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 94- भारतीय दंड संहिता, 1860 -धाराएं 363, 366, 376, 328, 506 और 120बी - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 -धारा 3/4 -वयस्क होने के बाद आयु का निर्धारण - अभियोजन पक्ष के गवाह के बयान की विश्वसनीयता - अपीलीय अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि में विरोधाभास था, रेडियोलॉजिकल आयु के लिए निर्देश दिया - किशोर न्याय बोर्ड का निष्कर्ष परिवार रजिस्टर और पीडब्लू-2 के बयान पर आधारित था, जिसमें कहा गया था कि अनुसूचित जनजाति पुनरीक्षणकर्ता को गायत्री शिशु मंदिर में कभी प्रवेश नहीं मिला - पीडब्लू-1 का बयान टी.सी. के आधार पर था - उक्त विद्यालय के परिवार रजिस्टर का समर्थन करने वाले सी.डब्लू.-1 और सी.डब्लू.-2 के विवरण के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि 6.3.2003 थी - किशोर न्याय बोर्ड द्वारा उचित जांच की गई है, और सही निष्कर्ष निकाला गया है कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि 6.3.2003 थी - यदि पी.डब्लू.-1 का विवरण स्वीकार किया जाता है, तो पुनरीक्षणकर्ता की आयु 23 वर्ष थी - आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है (पैरा 9, 10, 14)

आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अश्वनी कुमार सक्सेना बनाम एम.पी. राज्य (2012) 9 एससीसी 750, (पैरा 34, 35, 43)
2. मुकर्रब इत्यादि बनाम यू.पी. राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1119-1120/2016, 30 नवंबर, 2016 को निर्णीत), (पैरा 17, 18, 19, 22, 27)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

1. दिनांक 11.5.2023 को इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"1. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया ।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 102 के अंतर्गत विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम)/8वें अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बहराइच द्वारा आपराधिक अपील संख्या 08/2019, किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 101 के अंतर्गत, थाना- दरगाह सरीफ, जिला- बहराइच में पारित दिनांक 31.7.2019 के आदेश के विरुद्ध है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर अपील को अनुमति दी गई है और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा मामला संख्या 70/12/2018 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 48/2018, अंतर्गत धारा 363,366,376,328,506,120बी आईपीसी और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस स्टेशन- दरगाह सरीफ, जिला- बहराइच द्वारा

पारित दिनांक 6.3.2019 के आदेश को रद्द कर दिया गया ।

3. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विधि से संघर्ष करने वाला पुनरीक्षणकर्ता किशोर है। इस मामले में एफआईआर में कथित तिथि 26.2.2018 अंकित है। किशोर न्याय बोर्ड इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि कक्षा 5 के शैक्षिक प्रमाण पत्र, अंकतालिका, छात्र रजिस्टर तथा स्थानान्तरण प्रमाण पत्र प्रपत्र के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता की जन्म तिथि 6.3.2003 अंकित है। इस प्रकार कथित घटना तिथि को पुनरीक्षणकर्ता की आयु 14 वर्ष 11 माह 20 दिन थी।

4. आगे यह भी तर्क दिया गया है कि किशोर न्याय बोर्ड द्वारा जांच के दौरान सीडब्लू-1 अमिता राणा जो पुनरीक्षणकर्ता की बहन है, तथा सीडब्लू-2 सुशीला रानी जो नेहरू शिशु मंदिर विद्यालय गुलाम अलीपुरा, बहराइच की प्रधानाध्यापिका है, से पूछताछ की गई तथा उन्होंने छात्र रजिस्टर के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्म तिथि 6.3.2003 है।

5. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रथम सूचनाकर्ताकी ओर से पी.डब्लू.-1 लक्ष्मण प्रसाद गुप्ता से पूछताछ की गई, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि छात्र रजिस्टर के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि 16.7.2000 अंकित है। उन्होंने आगे कहा कि इस छात्र ने कक्षा तीन में प्रवेश लिया है। प्रवेश के समय पुनरीक्षणकर्ता के पिता ने गायत्री शिशु मंदिर, बहराइच की टी.सी. प्रस्तुत की थी। उक्त टी.सी. के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि छात्र द्वारा अपने विद्यालय में उत्तीर्ण कक्षा चार की छात्र रजिस्टर में दर्ज कर दी गई।

6. विचारण न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि पी.डब्लू.-2 गायत्री शिशु मंदिर, बहराइच की प्रधानाचार्य उषा पाठक से भी किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष पूछताछ की गई, लेकिन पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता द्वारा पी.डब्लू.-2 उषा पाठक का बयान संलग्न नहीं किया गया है। हालांकि, ट्रायल कोर्ट और रिवीजनल कोर्ट का निष्कर्ष पूरी तरह से पीडब्लू-2 उषा पाठक के बयान पर आधारित है, लेकिन इसे इस फाइल के साथ संलग्न नहीं किया गया है। इसलिए, पीडब्लू-2 उषा पाठक के बयान के बिना, वर्तमान पुनरीक्षण पर फैसला नहीं किया जा सकता था। श्रुतलेख के दौरान, यह तथ्य प्रकाश में आया।

7. चूंकि मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए पीडब्लू-2 ऊषा पाठक का बयान अपरिहार्य है, फलस्वरूप पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को पीडब्लू-2 ऊषा पाठक का बयान दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है।

8. अगली सुनवाई के लिए 16.5.2023 को सूचीबद्ध किया जाए।"

2. पूर्व आदेश दिनांक 11.5.2023 के अनुसरण में पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने

अनुपूरक शपथपत्र के माध्यम से पीडब्लू-2 ऊषा पाठक का बयान दाखिल किया, जिसे अभिलेख पर लिया गया।

3. पीडब्लू-2 ऊषा पाठक जो गायत्री शिशु मंदिर, बहराइच की प्रधानाचार्य हैं, के बयान में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि अमन गौतम (पुनरीक्षणकर्ता) कभी भी उनके विद्यालय का छात्र नहीं रहा है। अपनी प्रति परीक्षा में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि यद्यपि विद्यालय की दो शाखाएं हैं। एक अन्य शाखा की देखभाल सहायक प्रधानाचार्य द्वारा की जाती है। उन्होंने आगे कहा कि दोनों शाखाओं का एस.आर. रजिस्टर एक ही है, लेकिन उपस्थिति रजिस्टर अलग है। उन्होंने आगे कहा कि सभी दस्तावेज मुख्य शाखा में रखे जाते हैं।

4. पीडब्लू-2, उषा पाठक के उपरोक्त कथन के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान किशोर न्याय बोर्ड इस निष्कर्ष पर सही पहुंचा है कि कानून से संघर्ष करने वाला पुनरीक्षणकर्ता कभी भी गायत्री शिशु मंदिर का छात्र नहीं रहा है। अतः पीडब्लू-1, लक्ष्मण प्रसाद गुप्ता का कथन तथ्यात्मक रूप से गलत है और इस प्रकार पुनरीक्षणकर्ता कभी भी उसके विद्यालय का छात्र नहीं रहा है।

5. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की मुख्य शिकायत यह है कि अपीलीय न्यायालय ने 6.3.2019 को निचली अदालत द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि चूंकि पुनरीक्षणकर्ता का जन्म प्रमाण पत्र 4.7.2018 को जारी किया गया था, अर्थात जन्म के 15 वर्ष बाद। इसलिए अपीलीय न्यायालय को पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि अर्थात 6.3.2003 पर संदेह हुआ और इस आधार पर विद्वान अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि किशोर न्याय बोर्ड द्वारा निर्धारित जन्मतिथि संदिग्ध है। अपीलीय न्यायालय ने किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 94 के प्रावधान के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता की चिकित्सा जांच कराने तथा रेडियोग्राफिक परीक्षा के माध्यम से आयु निर्धारित करने का निर्देश दिया।

6. अपने तर्कों के समर्थन में पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***अश्वनी कुमार सक्सेना बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012) 9 एससीसी 750*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। जिसके प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

"34. जेजे अधिनियम और नियमावली,2007 के तहत विचाराधीन आयु निर्धारण जांच का अन्य कानूनों, जैसे सेवा में प्रवेश, सेवानिवृत्ति, पदोन्नति, आदि के तहत जांच से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जहाँ मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाणपत्रों में की गई प्रविष्टि, पहले स्कूल से जन्म तिथि प्रमाण पत्र और यहाँ तक कि किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र भी सही नहीं हो सकता है। लेकिन न्यायालय, किशोर न्याय बोर्ड या जेजे अधिनियम के तहत काम करने वाली समिति से ऐसी भटकती हुई जांच करने और उन प्रमाणपत्रों के पीछे जाकर उन दस्तावेजों

की सत्यता की जाँच करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, जो सामान्य कामकाज के दौरान रखे जाते हैं। केवल उन मामलों में जहाँ वे दस्तावेज़ या प्रमाण पत्र गढ़े हुए या हेरफेर किए हुए पाए जाते हैं, न्यायालय, किशोर न्याय बोर्ड या समिति को आयु निर्धारण के लिए मेडिकल रिपोर्ट की आवश्यकता होती है।

35. हमारे सामने कई ऐसे मामले आए हैं जिनमें ट्रायल कोर्ट ने दोनों पक्षों के बहुत से गवाहों की जाँच की है, जिसमें अस्थिकरण परीक्षण का संचालन और ओडोन्टोलॉजी रिपोर्ट माँगना शामिल है, यहाँ तक कि उन मामलों में भी, जहाँ मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाणपत्र, जिस स्कूल में अभ्यर्थी ने सबसे पहले या आखिरी बार प्रवेश लिया था, वहां से जन्म प्रमाण पत्र, किसी निगम या नगर निगम या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र उपलब्ध कराया जाता है। हमारे सामने ऐसे मामले भी आए हैं, जहां बड़ी संख्या में न्यायालयों ने भी प्रस्तुत प्रमाण पत्रों पर संदेह व्यक्त किया है और विस्तृत जांच की है, जो पूरी तरह से अनुचित है।

43. हमारा विचार है कि जिस स्कूल में अभ्यर्थी ने सबसे पहले प्रवेश लिया था, वहां का प्रवेश रजिस्टर जन्म तिथि का एक प्रासंगिक साक्ष्य है। यह तर्क कि माता-पिता ने प्रवेश रजिस्टर में गलत जन्म तिथि दर्ज की होगी, इसलिए सही जन्म तिथि नहीं है, यह सोचने के बराबर है कि माता-पिता यह सोचकर ऐसा करेंगे कि बच्चा भविष्य में कोई अपराध करेगा और उस स्थिति में, वे सफलतापूर्वक किशोर होने का दावा कर सकते हैं।"

7. मैंने पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार त्रिपाठी, राज्य के विद्वान एजीए को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

8. अधिनियम की धारा 94 इस प्रकार है:

"94. आयु की उपधारणा और निर्धारण.-*(1) जहां समिति या बोर्ड को, इस अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की उपस्थिति के आधार पर (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) यह स्पष्ट हो कि उक्त व्यक्ति बालक है, वहां समिति या बोर्ड बालक की यथासंभव निकटतम आयु बताते हुए ऐसा प्रेक्षण अभिलिखित करेगा और आयु की आगे पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, यथास्थिति, धारा 14 या धारा 36 के अधीन जांच आरंभ करेगा।*

(2) यदि समिति या बोर्ड के पास इस बारे में संदेह के लिए उचित आधार हैं कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो समिति या बोर्ड, जैसा भी मामला हो, साक्ष्य प्राप्त करके आयु निर्धारण की प्रक्रिया शुरू करेगा-

(i) स्कूल से जन्म तिथि प्रमाण पत्र, या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसके अभाव में;

(ii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र;

(iii) और केवल उपर्युक्त (i) और (ii) के अभाव में, आयु का निर्धारण समिति या बोर्ड के आदेश पर किए गए अस्थिभंग परीक्षण

या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सा आयु निर्धारण परीक्षण द्वारा किया जाएगा:
समिति या बोर्ड के आदेश पर किया गया ऐसा आयु निर्धारण परीक्षण ऐसे आदेश की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर पूरा किया जाएगा।
(3) समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में दर्ज की गई आयु, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, उस व्यक्ति की वास्तविक आयु मानी जाएगी।"

9. प्रकरण के सम्पूर्ण तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि के सम्बन्ध में विवाद है। किशोर न्याय बोर्ड का निष्कर्ष परिवार रजिस्टर, जो अनुलग्नक-4 में संलग्न है, तथा अभियोजन साक्षी-2 ऊषा पाठक के कथन पर आधारित है, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से यह कहते हुए इन्कार किया है कि पुनरीक्षणकर्ता ने कभी गायत्री शिशु मंदिर में प्रवेश नहीं लिया। अभि.सा.-1 लक्ष्मण प्रसाद गुप्ता का कथन पूर्णतः गायत्री शिशु मंदिर की टी.सी. के आधार पर है, परन्तु यह तथ्य स्थापित है कि पुनरीक्षणकर्ता ने कभी गायत्री शिशु मंदिर विद्यालय में अध्ययन नहीं किया। अतः विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि के सम्बन्ध में विवाद है। न्यायालय साक्षी-1 एवं न्यायालय साक्षी-2 सुशीला रानी, प्रधानाध्यापिका, नेहरू शिशु मंदिर गुलाम अलीपुरा, बहराइच के कथन से यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि 6.3.2003 है। न्यायालय साक्षी-1 और न्यायालय साक्षी-2 का प्रस्तुतीकरण भी परिवार रजिस्टर के साथ समर्थित है, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि 6.3.2003 अंकित है।

10. यद्यपि इस अवस्था में किशोर की रेडियोलॉजिकल आयु निर्धारित करने के लिए कोई तंत्र विकसित नहीं हुआ है। रेडियोलॉजिकल आयु के अनुसार किशोरता तभी निर्धारित की जा सकती है जब पुनरीक्षणकर्ता वयस्क होने की कगार पर हो। पुनरीक्षणकर्ता के जन्म प्रमाण पत्र और परिवार रजिस्टर तथा सीडब्लू-1 और सीडब्लू-2 के कथन के अनुसार वर्तमान में कानून से संघर्ष करने वाला पुनरीक्षणकर्ता वयस्क हो चुका है, अर्थात उसकी आयु लगभग 19-20 वर्ष है। रेडियोलॉजिकल आयु का निर्धारण सामान्यतः एपिफेसिस के संलयन के आधार पर किया जा सकता है जो 16 वर्ष की आयु से शुरू होता है और लगभग 18 वर्ष की आयु में पूरा होता है। इसके अलावा, यदि अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष को सत्य मान लिया जाता है, तो जब किशोर या बच्चे की आयु के संबंध में कोई संघर्ष उत्पन्न होता है और मौखिक कथन के आधार पर किशोर की सही जन्म तिथि और आयु निर्धारित करना संभव नहीं हो पाता है, तो विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय मांगी जाएगी जो किशोर या बच्चे की आयु घोषित करेगी। इस मामले में, अपीलीय न्यायालय स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्मतिथि में विरोधाभास है, तथा

पुनरीक्षणकर्ता को रेडियोलॉजिकल आयु बताने का निर्देश दिया।

11. अब इस मामले में महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या वयस्क होने के बाद सही आयु निर्धारित की जा सकती है या नहीं। इस संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय ने ***मुकर्रब आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में [30 नवंबर, 2016 को आपराधिक अपील संख्या 1119-1120/2016 में निर्णय दिया]***, निम्न प्रकार से माना है:

"17. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, दिनांक 18.02.2016 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय ने संबंधित जिला एवं सत्र न्यायाधीश को अपीलकर्ताओं (मुकर्रब और अरशद) की आयु के संबंध में जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था। आठवें अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार, घटना की तिथि पर दोनों अपीलकर्ता (मुकर्रब और अरशद) वयस्क थे। जिला न्यायाधीश की रिपोर्ट का अवलोकन करने के पश्चात, दिनांक 06.04.2016 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय ने अपीलकर्ताओं (मुकर्रब और अरशद) की चिकित्सा जांच एम्स, नई दिल्ली के विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड द्वारा कराने का निर्देश दिया है। तदनुसार, एम्स के डॉक्टरों ने अपीलकर्ताओं (मुकर्रब और अरशद) की जांच की और अपनी राय इस प्रकार दी:-

"कथित इतिहास संक्षेप में : एम्स को सौंपे गए दस्तावेजों के अवलोकन से पता चला कि अपराध का वर्ष 1994 था, यानी आज से 22 साल पहले यानी 02.05.2016।

उक्त आरोपी मुकर्रब ने अपनी जन्मतिथि 1 जुलाई, 1978 बताई।

उक्त आरोपी अरशद ने अपनी जन्मतिथि 5 फरवरी, 1979 बताते हुए अपनी आयु का दस्तावेजी प्रमाण प्रस्तुत किया है।

जांच कार्यवाही: हस्ताक्षर और बाएं अंगूठे के निशान के साथ उचित सूचित सहमति लेने के बाद दोनों आरोपियों की जांच की गई।

.....

उनकी शारीरिक, दंत और रेडियोलॉजिकल जांच की गई। खोपड़ी (एपी और पार्श्व दृश्य), उरोस्थि (एपी और पार्श्व दृश्य) और त्रिकास्थि (पार्श्व दृश्य) की एक्स-रे जांच की सलाह दी गई थी और जांच की गई। चूंकि दोनों आरोपी किसी भी मामले में 25 वर्ष से अधिक उम्र के थे, इसलिए दंत एक्स-रे की कोई आवश्यकता नहीं थी।

शारीरिक और दंत परीक्षण : दोनों मामलों में, सामान्य शारीरिक परीक्षण के निष्कर्ष सामान्य वयस्क पुरुष के निष्कर्षों के अनुरूप हैं। दंत परीक्षण से सभी 4 चतुर्थांशों में स्थायी दांतों के पूरे 8 सेट की उपस्थिति का पता चलता है।

रेडियोलॉजिकल जांच की रिपोर्ट-

मुकर्रब मेडिकल क्लैविकल का अंत जुड़ा हुआ है-आयु >22 वर्ष से अधिक ज़िफॉइड प्रक्रिया स्टर्नल बॉडी के साथ जुड़ी नहीं है-आयु <40 वर्ष मैनुब्रियम स्टर्नल बॉडी के साथ जुड़ा नहीं है-आयु <50 वर्ष त्रिकास्थि निकायों का पूर्ण संलयन-आयु >32 वर्ष सज्जिटल सिवनी पीछे के 1/3 भाग में नष्ट हो गई है और कोरोनल सिवनी निचले ½ भाग में नष्ट हो गई है- आयु<40 वर्ष।

अरशद मेडिकल क्लैविकल का अंत जुड़ा हुआ है-आयु >22 वर्ष से अधिक ज़िफॉइड प्रक्रिया स्टर्नल बॉडी के साथ जुड़ी नहीं है-आयु <40

वर्ष मैनुब्रियम स्टर्नल बॉडी के साथ जुड़ा नहीं है-आयु <50 वर्ष त्रिकास्थि निकायों का पूर्ण संलयन-आयु >32 वर्ष सज्जिटल सिवनी पीछे के 1/3 भाग में नष्ट हो गई है और कोरोनल सिवनी बरकरार है-आयु<40 वर्ष।

राय : दोनों आरोपियों को कथित घटना की तारीख के 22 साल बाद 02.05.2016 को एम्स में जांच के लिए लाया गया है। शारीरिक, दंत और रेडियोलॉजिकल परीक्षाओं के विभिन्न निष्कर्षों को देखने के बाद; मेडिकल बोर्ड की राय है कि आरोपियों अर्थात मुकर्रब पुत्र श्री मुल्ला जफर और अरशद पुत्र राशिद की उम्र जांच की तारीख यानी 02.05.2016 को 35-40 वर्ष के बीच है।

18. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या एम्स के मेडिकल बोर्ड की राय, जिसमें अपीलकर्ताओं की उम्र 35-40 वर्ष के बीच निर्धारित की गई है, को स्वीकार किया जा सकता है या नहीं।

19. अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आयु निर्धारण के बारे में सामान्य नियम यह है कि मेडिकल बोर्ड द्वारा निर्धारित आयु में दो वर्ष का अंतर हो सकता है, लेकिन इस मामले में मेडिकल बोर्ड ने अपीलकर्ताओं की आयु 35-40 वर्ष निर्धारित की थी और सामान्य नियम के अनुसार, अपीलकर्ताओं की आयु मेडिकल जांच की तिथि पर 38 वर्ष आंकी जानी चाहिए और नियम 12(3)(बी) के अनुसार आयु कम करने में एक वर्ष का अतिरिक्त लाभ देते हुए, अपीलकर्ताओं की आयु मेडिकल जांच की तिथि 02.05.2016 को 37 वर्ष निर्धारित की जानी चाहिए। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया कि 02.05.2016 को अपीलकर्ताओं की आयु 37 वर्ष मानने का अर्थ है कि 1994 में अपराध के समय, अपीलकर्ताओं की आयु लगभग 15 वर्ष रही होगी यह तर्क देते हुए कि किशोर न्याय अधिनियम और नियमों के हितकारी प्रावधानों का लाभ अपीलकर्ताओं को दिया जाना चाहिए, अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दरगा राम उर्फ गूंगा बनाम राजस्थान राज्य (2015) 2 एससीसी 775 पर भरोसा किया, जिसमें निम्नलिखित माना गया है: -

"16. एनाटॉमी, रेडियो डायग्नोसिस और फोरेंसिक मेडिसिन के प्रोफेसरों से युक्त विधिवत गठित बोर्ड द्वारा दी गई चिकित्सा राय ने परीक्षा की तिथि पर उसकी आयु "लगभग" 33 वर्ष निर्धारित की है। बोर्ड चिकित्सा परीक्षण पर अपीलकर्ता की एकदम सही आयु नहीं बता पाया है, भले ही उस क्षेत्र में कितनी भी प्रगति हुई हो। ऐसा होने पर, नियम 12(3)(बी) के अनुसार अपीलकर्ता एक वर्ष के अंतर के भीतर अपनी आयु कम करने का लाभ पाने का भी हकदार हो सकता है, यदि न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक समझता है। हालांकि, ऐसी किसी भी वैधानिक रियायत की आवश्यकता नहीं हो सकती है क्योंकि भले ही मेडिकल बोर्ड द्वारा निर्धारित अनुमानित आयु को अपीलकर्ता की सही/सच्ची आयु के रूप में लिया जाए, लेकिन घटना की तिथि पर वह लगभग 17 वर्ष और 2 महीने का था और इस प्रकार उक्त अधिनियम में प्रयुक्त उस अभिव्यक्ति के अर्थ में वह किशोर है। ऐसा कहने के बाद हम यह कहने से खुद को नहीं

रोक सकते कि मेडिकल बोर्ड द्वारा अपीलकर्ता की आयु मेडिकल जांच की तिथि के अनुसार 30 से 36 वर्ष के बीच आंकी गई है, जिससे हम बहुत सहज महसूस नहीं कर रहे हैं।

17. आयु निर्धारण के बारे में सामान्य नियम यह है कि निर्धारित आयु में प्लस माइनस दो वर्ष का अंतर हो सकता है, लेकिन बोर्ड ने इस मामले में छह वर्ष की अवधि को फैलाया है और अपीलकर्ता की आयु 33 वर्ष निर्धारित करने का औसत निकाला है। हमें यकीन नहीं है कि अपीलकर्ता की आयु का अनुमान लगाने का यह सही तरीका है या नहीं। आयु के अनुमान के बारे में हमें जो बात आश्वस्त करती है, वह यह है कि इसे एनाटॉमी, रेडियो डायग्नोसिस और फोरेंसिक मेडिसिन के प्रोफेसरों वाले मेडिकल बोर्ड द्वारा निर्धारित किया जाता है, जिनकी राय को वह सम्मान मिलना चाहिए, जिसका वह हकदार है। इसके अलावा, भले ही अपीलकर्ता की आयु ऊपरी सीमा यानी 36 वर्ष के आधार पर निर्धारित की गई हो, लेकिन इसमें प्लस माइनस 2 वर्ष का अंतर हो सकता है, जिसका अर्थ है कि परीक्षा की तिथि पर उसकी आयु 34 वर्ष भी हो सकती है। परीक्षा की तिथि को उसकी आयु 34 वर्ष मानते हुए घटना की तिथि को उसकी आयु 18 वर्ष, 2 माह और 7 दिन होनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा अनुमान केवल एक अनुमान होगा और अपीलकर्ता नियम 12(3)(बी) (सुप्रा) के अनुसार अपनी आयु एक वर्ष कम करने के संदर्भ में एक वर्ष के अतिरिक्त लाभ का हकदार हो सकता है, जिससे उसकी आयु 17 वर्ष और 2 माह हो जाएगी, इसलिए वह किशोर है।

22. यह सर्वविदित है कि किसी व्यक्ति की आयु निर्धारित करने के लिए कोई अमूर्त सूत्र निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय। जन्म तिथि का निर्धारण अभिलेखों में उपलब्ध सामग्री के आधार पर तथा पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के मूल्यांकन के आधार पर किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति की आयु के बारे में चिकित्सा साक्ष्य, यद्यपि एक बहुत ही उपयोगी मार्गदर्शक कारक है, लेकिन निर्णायक नहीं है तथा इसे अन्य ठोस साक्ष्यों के साथ विचार किया जाना चाहिए।

27. इस प्रकार जेजे अधिनियम से जुड़े परोपकारी कानून के सिद्धांत का लाभ केवल ऐसे मामलों में लागू होगा, जिसमें अभियुक्त को उसकी नाबालिगता के संबंध में कम से कम प्रथम दृष्टया साक्ष्य के आधार पर किशोर माना जाता है, क्योंकि कथित अभियुक्त की उम्र के संबंध में दो दृष्टिकोणों की संभावनाओं का लाभ, जो कि गंभीर और संगीन अपराध में शामिल है, जिसे उसने किया और इसे एक सुनियोजित तरीके से अंजाम दिया, जो कि उसकी मासूमियत के बजाय उसके दिमाग की परिपक्वता को दर्शाता है, यह दर्शाता है कि उसकी किशोर होने की दलील कानून के हथियारों को चकमा देने या धोखा देने के लिए एक ढाल की प्रकृति की है, उसे बचाव में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।" [जोर दिया गया] उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि किशोर न्याय अधिनियम, 2000 का उद्देश्य

गंभीर और जघन्य अपराधों के आरोपियों को आश्रय देना नहीं है।"

12. चूंकि इस मामले में किशोर न्याय बोर्ड द्वारा समुचित जांच की गई है तथा किशोर न्याय बोर्ड ने सही निष्कर्ष निकाला है कि पुनरीक्षणकर्ता की जन्म तिथि 6.3.2003 है। वर्तमान में किशोर न्याय बोर्ड के निष्कर्ष के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता की आयु 20 वर्ष से अधिक है। यदि पी.डब्लू.-1 के कथन को सत्य मान लिया जाए तो पुनरीक्षणकर्ता की आयु 23 वर्ष है।

13. ***मुकर्रब इत्यादि (सुप्रा)*** में सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए कि जब पुनरीक्षणकर्ता वयस्क हो जाता है, तो इस स्तर पर उसकी सही आयु निर्धारित नहीं की जा सकती। अतः विद्वान किशोर न्याय बोर्ड ने भौतिक तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए आयु निर्धारित की। इस स्तर पर भी मेडिकल बोर्ड कानून से संघर्ष करने वाला पुनरीक्षणकर्ता की सही आयु निर्धारित नहीं कर सका । अतः इस मामले में किशोर न्याय बोर्ड द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। इस प्रकार अपीलीय न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण है।

14. परिणामस्वरूप, वर्तमान पुनरीक्षण **स्वीकार** किया जाता है और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 31.7.2019 के विवादित आदेश को अपास्त किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1036

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक विविध स्थानांतरण आवेदन संख्या 286/2022

मंजू बंसल एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री प्रतीक कुमार श्रीवास्तव, श्री ऋतुकर गुप्ता, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री राज कुमार केसरी

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 407- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 498-ए, 323, 504, 506, 307, 120-बी-धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम -आवेदिका एवं विपक्षी का विवाह दो वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ था तथा आरोप है कि आवेदक विपक्षी को धन के लिए मारता-पीटता था-विवाद पति-पत्नी के मध्य का है- विपक्षी अपनी पुत्री के साथ अपने माता-पिता के घर चली गई थी तथा वहीं रह रही थी -उसने लिखित पत्र दिया था जिसमें बताया था कि उसे कोई शारीरिक चोट नहीं पहुंचाई जा रही है, इसलिए वह अपना मेडिकल परीक्षण नहीं करा पाई -अतः ऐसा प्रतीत होता है कि न तो आवेदक को और न ही विपक्षी को कोई चोट पहुंची है-इस प्रकार आवेदक सत्र परीक्षण को स्थानांतरित करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखा सका-केवल यह आरोप कि किसी मामले में न्याय नहीं मिलने की आशंका है, पर्याप्त नहीं है-पक्ष द्वारा केवल यह संदेह करना कि उसे न्याय नहीं मिलेगा,

न्यायोचित नहीं होगा स्थानांतरण.-इस आशय द्वारा दिया गया न्यायिक आदेश वैध रूप से मामले के स्थानांतरण के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है-संभावित आशंका का मात्र अनुमान किसी भी मामले को एक मामले से दूसरे मामले में स्थानांतरित करने का आधार नहीं होना चाहिए और न ही होना चाहिए-केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में, जब ऐसे आधार लिए जाते हैं, न्यायालय को मामले को स्थानांतरित करने के लिए कारण खोजने चाहिए, अन्यथा नहीं। (पैरा 1 से 16)

बी. आपराधिक मामले के हस्तांतरण के लिए, मामले से जुड़े पक्ष की ओर से यह उचित आशंका होनी चाहिए कि न्याय नहीं किया जाएगा। न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक यह है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि यह भी दिखना चाहिए कि न्याय किया गया है। दूसरी ओर, केवल यह आरोप लगाना कि किसी मामले में न्याय नहीं किया जाएगा, पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय को यह भी देखना होगा कि आरोपित आशंका उचित है या नहीं। आशंका को न केवल स्वीकार किया जाना चाहिए बल्कि न्यायालय को यह भी प्रतीत होना चाहिए कि वह उचित आशंका है। बिना सोचे-समझे स्थानांतरण की मांग करना अकल्पनीय है। स्थानांतरण का आदेश नियमित रूप से या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि किसी इच्छुक पक्ष ने मुकदमे के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण परिस्थितियों में किया जाना चाहिए, जहाँ मुकदमे को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए की उचित आशंका होनी चाहिए-न्यायाधीश ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। इस बात की वास्तविक आशंका होनी चाहिए कि न्याय में चूक होगी। (पैरा 13)

स्थानांतरण आवेदन अस्वीकृत किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. गुरचरण दास चड्ढा बनाम राजस्थान राज्य (1966) एससी 1418 पर
2. विजय पाल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (1999) 9 एससीसी 67
3. अंजलि अशोक साधवानी बनाम अशोक किशनचंद साधवानी (2009) एआईआर एससी 1374
4. फातिमा बनाम जाफ़री सैयद हुसैन @ सैयद परवेज़ जाफ़री (2009) AIR SC 1773
5. मेनका संजय गांधी बनाम रानी जेठमलानी (1979) 4 एससीसी 167
6. अब्दुल नज़र मदनी बनाम टी.एन. राज्य (2000) 6 एससीसी 204
7. के.पी. तिवारी बनाम एम.पी. राज्य (1994) एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 712
8. के. अन्बाझगन बनाम एस.पी. राज्य (2004) 3 एससीसी 767
9. जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158
10. कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल व अन्य (2009) 6 एससीसी 260
11. नाहर सिंह यादव एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य जे.टी. (2010) 12 641
12. लालू प्रसाद बनाम झारखंड राज्य (2013) 8 एससीसी 593

13. अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता (2014) 11 एडीजे 414 (सभी)

14. उस्मानगानी अदमभाई वहोरा बनाम गुजरात राज्य और अन्य. (2016) 3 एससीसी 370

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1 - आवेदक के विद्वान वकील श्री रितुकर गुप्ता की सहायता में श्री वी.पी. श्रीवास्तव विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता व राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. के साथ- साथ विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार केसरी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2 - वर्तमान आवेदन अभियुक्त- आवेदक साहिब बंसल (पति) द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 407 के तहत दायर किया गया है, जिसमें सत्र परीक्षण संख्या 19/2020 (राज्य बनाम मंजू बंसल और अन्य) की पूरी कार्यवाही को जो केस अपराध संख्या 567/2018 से उत्पन्न धारा 498ए, 504, 506, 307, 120बी आईपीसी के तहत तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस थाना- पिलखुवा, जिला हापुड, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ फास्ट ट्रैक कोर्ट, कोर्ट संख्या 1, हापुड के न्यायालय में लंबित है , किसी अन्य जिले के सक्षम क्षेत्राधिकार वाले किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने की मांग की गई है।

3 - संक्षेप में आवेदक का मामला यह है कि विपक्षी संख्या 2- शिवांगी बंसल ने एफ.आई.आर. दर्ज कराई है। आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ मामला अपराध नंबर 567/2018, धारा 498ए, 504, 506, 307, 120बी आईपीसी एवं धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत दर्ज किया गया जो थाना- पिलखुवा, जनपद हापुड में सत्र मुकदमा संख्या 19/2020 (राज्य बनाम मंजू बंसल व अन्य) के रूप में पंजीकृत है।

4 - विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा निवेदित किया गया है कि आवेदक साहिब बंसल का विवाह विपरीत पक्ष संख्या 2- शिवांगी बंसल के साथ 5.12.215 को बिना किसी दहेज की मांग के संपन्न हुआ था और कुछ समय बाद पति और पत्नी के बीच विवाद पैदा हो गया। आगे यह निवेदित किया गया है कि आवेदक के माता-पिता ने आवेदक और विपरीत पक्ष संख्या 2 को उनसे अलग कर दिया और उन्हें नई दिल्ली में एक किराए के घर में स्थानांतरित कर दिया। आगे यह निवेदित किया गया है कि आवेदक और विपक्षी पार्टी नंबर 2 के बीच विवादों को ठीक नहीं किया जा सका और कुछ गलत धारणा के तहत, एक झूठी और तुच्छ एफ.आई.आर. विपक्षी संख्या 2 द्वारा आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ 22.10.2018 को धारा 498ए, 323, 504, 506, 307, 376, 511, 120बी, 377, 313, 342 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध के लिए मामला दर्ज कराया गया था। और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत थाना पिलखुवा, जिला हापुड में मुकदमा अपराध संख्या 567/2018 के रूप में दर्ज किया गया था।

5 - यह आगे निवेदित किया गया है कि उपरोक्त एफआईआर दर्ज करने से पहले, विपक्षी संख्या 2 ने पुलिस स्टेशन सुभाष प्लेस, उत्तर पश्चिम, दिल्ली की पुलिस को

4.10.2018 को सुबह फोन किया था। वह नई दिल्ली में अपने पति के साथ जिस घर में रह रही थी, उस पर आरोप था कि उसका पति उसे पीटता था। आगे यह निवेदित किया गया है कि उपरोक्त शिकायत की जांच की गई और यह पाया गया कि आवेदक और विपरीत पक्ष संख्या 2 की शादी दो साल पहले हुई थी और आरोप है कि आवेदक पैसे के लिए विपरीत पक्ष संख्या 2 को पीटता था। आगे कहा गया है कि आवेदक और विपक्षी नंबर 2 की जांच की गई और यह पाया गया कि विवाद पति और पत्नी के बीच का है। विपक्षी संख्या 2 अपनी बेटी के साथ अपने माता- पिता के घर गई थी और वहीं रह रही थी। उसने एक लिखित पत्र दिया था जिसमें कहा गया था कि उसे शारीरिक रूप से चोट नहीं पहुंचाई जा रही थी, इसलिए वह अपनी मेडिकल जांच के लिए नहीं गई थी, इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि न तो आवेदक और न ही विपक्षी नंबर 2 को कोई चोट लगी है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकेश बंसल (ससुर), मंजू बंसल (सास), साहिब बंसल (पति), चिराग बंसल (देवर) और शिप्रा जैन (ननद) के खिलाफ दर्ज की गई थी। लेकिन जांच के दौरान यह पाया गया कि मामले में चिराग बंसल और शिप्रा जैन को झूठा फंसाया गया था और आवेदक के खिलाफ धारा 498 ए, 323, 504, 506, 307 आई.पी.सी. एवं धारा 3/4 द.प्र.सं. के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। आगे यह निवेदित किया गया है कि उपरोक्त एफ.आई.आर. के खिलाफ, एक आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 31131/2018 इस अदालत के समक्ष दायर की गई थी, जिसके तहत आरोप पत्र प्रस्तुत होने तक आरोपी चिराग बंसल और शिप्रा जैन की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी गई थी और शेष आरोपियों को अवर न्यायालय के सामने पेश होने और अपनी जमानत के लिए आवेदन करने का निर्देश दिया गया था। आगे यह निवेदित किया गया है कि इस न्यायालय के दिनांक 2.11.2018 के आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 31131/2018 के मामले में पारित आदेश के विरुद्ध आवेदक ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. संख्या 9714/2018 को प्राथमिकता दी। जिसके तहत 15.11.2018 को एक आदेश पारित किया गया था जिसमें निर्देश दिया गया था कि आवेदकों के खिलाफ कोई कठोर कदम नहीं उठाया जाएगा और विपक्षी संख्या 2 को नोटिस जारी किया गया था।

6 - आगे यह निवेदित किया गया है कि दिनांक 4.1.2019 के आदेश के तहत, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पक्षों को समझौते की संभावना तलाशने का निर्देश दिया है और 21.1.2019 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय को अवगत कराया गया कि पार्टियों के बीच समझौते की कोई संभावना नहीं है। और इसलिए मामले को आगे बढ़ाया गया और आवेदक को अवर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के निर्देश के साथ उपरोक्त एस.एल.पी. को बर्खास्त कर दिया गया। आगे यह निवेदित किया गया है कि विपक्षी नंबर 2 के ससुर ने अवर न्यायालय के समक्ष अपनी जमानत के लिए आवेदन किया था, लेकिन उसे अस्वीकार कर दिया गया और उसके बाद उन्होंने आपराधिक विविध के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। जमानत

आवेदन संख्या 42691/2019 और दिनांक 24.10.2019 के आदेश द्वारा जमानत दे दी गई। आगे यह निवेदित किया कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद आपराधिक विविध आवेदन संख्या 4270/2020 दायर करके इसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 17.2.2020 द्वारा मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा। आगे यह निवेदित किया गया कि आवेदक ने आपराधिक विविध आवेदन संख्या 7475/2020 के माध्यम से भी इस न्यायालय से भी संपर्क किया है। मामले को आपराधिक विविध आवेदन संख्या 4270/2020 से जोड़कर मध्यस्थता के लिए भेजा गया। आगे यह निवेदित किया गया है कि विपरीत पक्ष संख्या 2 ने घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम की धारा 12 के तहत शिकायत वाद संख्या 248/2019 (शिवागी बंसल बनाम साहिब बंसल और अन्य) की कार्यवाही शुरू की। इसके बाद आवेदक ने भी आपराधिक विविध आवेदन सध्या 16413/2020 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा घटखटाया है। और इस मामले को भी आपराधिक विविध आवेदन 7475/2020 के साथ जोड़ दिया गया था एवं अतरिम आदेश जारी रखा गया। आगे यह निवेदित किया गया है कि विपक्षी सध्या 2 ने भी धारा 406 आई.पी.सी के तहत शिकायत वाद संख्या 1692/2020 दर्ज किया है जिसे विद्वान मजिस्ट्रेट की अदालत ने दिनाक 21.1.2021 के आदेश के तहत आरोपी साहिब बंसल को छोड़कर सभी आरोपियों के खिलाफ खारिज कर दिया था। आगे यह निवेदित किया गया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट के दिनांक 21.1.2021 के आदेश के विरुद्ध, विपक्षी संख्या 2 ने सत्र न्यायाधीश, हापुड़ की अदालत में एक पुनरीक्षण भी दायर किया है, जिसे दिनांक 2.8.2021 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। आगे यह निवेदित किया गया है कि विपक्षी संख्या 2 ने सत्र न्यायाधीश के दिनांक 2.8.2021 के आदेश को भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर करके चुनौती दी है, जो अभी भी लंबित है। आगे यह निवेदित किया गया है कि जब विपक्षी संख्या 2 की सास को धारा 307 आई.पी.सी के तहत दंडनीय अपराध से मुक्त कर दिया गया तो विपक्षी संख्या 2 ने धारा 319 सीआरपीसी के तहत 10.1.2020 को एक आवेदन भी दायर किया। जिसे आदेश दिनांक 27.2.2020 द्वारा खारिज कर दिया गया।

7 - यह आगे निवेदित किया गया है कि 4.10.2018 को, विपक्षी नंबर 2 ने आवेदक (पति) को फोन किया और 5 करोड़ रुपये की मांग की। आगे यह निवेदित किया गया है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 के आरोपों के अनुसार उनके पिता द्वारा उनकी शादी में 7 करोड़ रुपये खर्च किए गए थे, जो कि गलत है क्योंकि न तो वह और न ही उनके पिता शादी में इतनी बड़ी राशि खर्च करने की स्थिति में थे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि 24.8.2021 को आवेदक और उसके माता- पिता ने सीआरपीसी की धारा 227 के तहत उन्हें आरोप मुक्त करने की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया था, जिसे विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर 1, हापुड ने आदेश

दिनांक 24.8.2021 के तहत खारिज कर दिया था।

8 - आगे यह निवेदित किया गया है कि आवेदक पीतमपुरा, दिल्ली का निवासी है और मामले की कार्यवाही हापुड में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर 1 की अदालत के समक्ष चल रही है और जब भी आवेदक हापुड के मुकदमे में पैरवी करने जाता है तो विपक्षी संख्या 2 अपने साथियों के साथ मिलकर जान से मारने की धमकी देता है। आगे यह निवेदित किया गया है कि जब भी मामला अदालत में उठाया जाता है, तो न केवल विरोधी पक्ष संख्या 2, बल्कि उसके द्वारा लगाए गए पांच वकील भी आवेदक के खिलाफ प्रतिकूल आदेश पारित करने के लिए हंगामा करते हैं। आगे यह भी कहा गया है कि 9.8.2019 को आवेदक और उसके माता- पिता पर राजेश गोयल, गौरव गोयल, अंकुर गोयल, सुभाष और एक अन्य व्यक्ति द्वारा हमला किया गया था, जिसके संबंध में एफ.आई.आर. दर्ज किया गया था, जो मामला अपराध संख्या 402/2019, धारा 323, 504, 506, 294 आईपीसी के तहत थाना पिलखुवा, जिला हापुड में दर्ज किया गया था। आगे यह निवेदित किया गया है कि 25.11.2019 को, आवेदक ने विपरीत पक्ष संख्या 2 के परिवार के सदस्यों के इशारे पर जीवन को खतरे की आशंका के संबंध में पुलिस अधीक्षक, हापुड को एक आवेदन दिया। आगे यह निवेदित किया गया है कि 3.3.2022 को आवेदक नंबर 2 ने एक आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि सत्र प्रभाग, हापुड के एक वकील अर्थात् सतीश चंद्र उर्फ सतीश कुमार मित्तल ने पूरी फीस ले ली है, लेकिन वह उनके मामले में उपस्थित नहीं हो रहे हैं और आवेदक को केस आगे न बढ़ाने की धमकी भी देते हैं। आगे यह निवेदित किया गया है कि उपरोक्त वकील सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत अपने सहयोगी विजय पाल सिंह गौतम, अधिवक्ता के माध्यम से एक आवेदन दायर करने में कामयाब रहे। जिसे आदेश दिनांक 19.8.2020 द्वारा परिवाद वाद के रूप में पंजीकृत करने का निर्देश दिया गया था। इसके बाद, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/ विशेष न्यायाधीश (एससी/ एसटी अधिनियम), हापुड द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.12.2020 के तहत अभियोजन के अभाव में उपरोक्त शिकायत को खारिज कर दिया गया। आगे यह निवेदित किया गया है कि उपरोक्त वकील अर्थात् सतीश चंद्र ने आवेदक और उसके माता-पिता के खिलाफ फिर से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की है, जिसे धारा 420, 406, 467, 468, 506, 120 बी आई.पी.सी. के तहत अपराध संख्या 18/2022 के रूप में थाना- हापुड़ नगर, हापुड में दर्ज किया गया था। आगे यह निवेदित किया गया है कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में आवेदक को वर्तमान अदालत से न्याय की कोई उम्मीद नहीं है और यदि उपरोक्त मामले को अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर 1, हापुड की अदालत में जारी रखने की अनुमति दी जाती है तो निवेदक की अपूरणीय क्षति होगी।

9 - राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदन का विरोध किया है और निवेदित किया है कि वर्तमान आवेदन का गुप्त उद्देश्य मुकदमे में देरी करने का है। आगे कहा

गया है कि वर्तमान आवेदन गलत तथ्यों के आधार पर दायर किया गया है। आगे यह निवेदित किया गया है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 एक महिला है और अपनी बेटी के साथ हापुड में रह रही है और यदि मामले को किसी अन्य जिले में स्थानांतरित किया जाता है, तो इससे उसे अनुचित कठिनाई होगी, इसलिए, स्थानांतरण की मांग करने वाले आवेदन का उपरोक्त मामला खारिज किये जाने योग्य है।

10 - आवेदक मूल रूप से 44 कपिल विहार, पीतमपुरा, उत्तर पश्चिम, दिल्ली का निवासी है।

11 - आवेदक साहिब बंसल द्वारा धारा 407 सीआरपीसी के तहत तत्काल स्थानांतरण आवेदन दायर किया गया है, जो उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक मामलों को एक जिले से दूसरे जिले में या एक अदालत से उसी जिले में दूसरे अदालत में स्थानांतरित करने से संबंधित है। धारा 407 सीआरपीसी का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है :-

12 - यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि धारा 407 सीआरपीसी की उपधारा (1) के मद्देनजर कोई मामला तब स्थानांतरित किया जा सकता है जब कि उसे उच्च न्यायालय में पेश किया जाए :-

407. मामलों और अपीलों को अन्तरित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति।

(1) जब कभी उच्च न्यायालय को यह प्रतीत कराया जाता है कि -

(क) उसके अधीनस्थ किसी दण्ड न्यायालय से ऋजु और पक्षपात रहित जाँच या विचारण न हो सकेगा, अथवा

(ख) किसी असाधारणतः कठिन विधिप्रश्न के उठने की सम्भाव्यता है, अथवा

(ग) इस धारा के अधीन आदेश इस संहिता के किसी उपबन्ध द्वारा अपेक्षित है, या पक्षकारों या साक्षियों के लिये साधारणतया सुविधाप्रद होगा, या न्याय के उद्देश्यों के लिये समीचीन है, तब वह आदेश दे सकेगा कि -

(i) किसी अपराध को जाँच या विचारण ऐसे किसी न्यायालय द्वारा किया जाय जो धारा 177 से 185 तक के (जिनके अन्तर्गत ये दोनों धारायें भी हैं) अधीन अहिंत तो नहीं है किन्तु ऐसे अपराध की जाँच या विचारण करने के लिये अन्यथा सक्षम हैं।

(ii) कोई विशिष्ट मामला या अपील या मामलों या अपीलों का वर्ग उसके प्राधिकार के अधीनस्थ किसी दण्ड न्यायालय से ऐसे समान या वरिष्ठ अधिकारिता वाले किसी अन्य दण्ड न्यायालय को अन्तरित कर दिया जाए,

(iii) कोई विशिष्ट मामला सेशन न्यायालय को विचारणार्थ सुपुर्द कर दिया जाय, अथवा

(iv) कोई विशिष्ट मामला या अपील वर्ष उसको अन्तरित कर दी जाए, और उसका विचारण उसके समक्ष किया जाय।

(2) उच्च न्यायालय निचले न्यायालय की रिपोर्ट पर या हितबद्ध पक्षकार के

आवेदन पर या स्वप्रेरणा पर कार्यवाही कर सकता है:

परन्तु किसी मामले को एक ही सेशन खण्ड के एक दण्ड न्यायालय से दूसरे दण्ड न्यायालय को अन्तरित करने के लिये आवेदन उच्च न्यायालय से तभी किया जाएगा जब ऐसा अन्तरण करने के लिये आवेदन सेशन न्यायाधीश को कर दिया गया है और उसके द्वारा नामंजूर कर दिया गया है।

(3) उपधारा (1) के अधीन आदेश के लिये प्रत्येक आवेदन समावेदन द्वारा किया जायेगा जो, उस दशा के सिवाय जब आवेदक राज्य का महाधिवक्ता हो, शपथ-पत्र या प्रतिज्ञान द्वारा समर्थित होगा।

(4) जब ऐसा आवेदन कोई अभियुक्त व्यक्ति करता है, तब उच्च न्यायालय उसे निर्देश दे सकता है कि वह किसी प्रतिकर के संदाय के लिये, जी उच्च न्यायालय उपधारा (7) के अधीन अधिनिर्णित करे, प्रतिभुओं सहित बन्धपत्र निष्पादित करे।

(5) ऐसा आवेदन करने वाला प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति लोक अभियोजकको आवेदन की लिखित सूचना उन आधारों की प्रतिलिपि के सहित देगा जिन पर वह किया गया है और आवेदन के गुणावगुण पर तब तक कोई आदेश में किया जाएगा जब तक ऐसी सूचना के दिये जाने और आवेदन को सुनवाई के बच कम से जाम चौबीस घण्टे न बीत गये हो।

(6) जहां आवेदन किसी अधीनस्थ न्यायालय से कोई मामला या अपील अन्तरित करने के लिये हैं, वहां यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाता है कि ऐसा करना न्याय के हित में आवश्यक है तो वह आदेश दे सकता है कि जब तक आवेदन का निपटारा न हो जाय तब तक के लिये अधीनस्थ न्यायालय की कार्यवाहियाँ, ऐसे निर्वन्धनों पर, जिन्हें अधिरोपित करना उच्च न्यायालय ठीक समझे, रोक दी जाएंगी:

परन्तु ऐसी रोक धारा 309 के अधीन प्रतिप्रेषण की अधीनस्थ न्यायालयों की शक्ति पर प्रभाव न डालेगी।

(7) जहां उपधारा (1) के अधीन आदेश देने के लिये आवेदन खारिज कर दिया जाता है वहां, यदि उच्च न्यायालय की यह राय है कि आवेदन तुच्छ या तंग करने बाला था तो वह आवेदक को आदेश दे सकता है कि वह एक हजार रुपये से अनधिक इतनी राशि, जितनी वह न्यायालय उस मामले को परिस्थितियों में समुचित समझे, प्रतिकर के तौर पर उस व्यक्ति को दे जिसने आवेदन का विरोध किया था।

(8) जब उच्च न्यायालय किसी न्यायालय से किसी मामले का अन्तरण अपने समक्ष विचारण के लिये करने का उपधारा (1) के अधीन आदेश देता है तब वह ऐसे विचारण में उसी प्रक्रिया का अनुपालन करेगा जिसका मामले का ऐसा अन्तरण न किये जाने की दशा में वह न्यायालय करता।

(9) इस धारा की कोई बात धारा 197 के अधीन सरकार के किसी आदेश पर प्रभाव डालने वाली न समझी जायेगी।

13 - ऐसे बहुत से मामले हैं जिनमें शीर्ष अदालत ने कई मौकों पर अलग- अलग परिस्थितियों में मामलों के स्थानांतरण के मुद्दे पर विचार किया है और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के संदर्भ में विस्तृत चर्चा के बाद इस संबंध में दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है। :-

(i) गुरचरण दास चड्ढा बनाम राजस्थान राज्य एआईआर 1966 एससी 1418,(ii) विजय पाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 1999 (9)एससीसी 67, (iii) अंजलि अशोक साधवानी बनाम अशोक किशनचंद साधवानी, एआईआर 2009 एससी 1374, (iv) फातिमा बनाम जाफरी सैयद हुसैन @ सैयद परवेज़ जाफ़री, एआईआर 2009 एससी 1773, (iv) मेनका संजय गांधी बनाम रानी जेठमलानी (1979) 4 एससीसी 167, (vi) अब्दुल नज़र मदनी बनाम तमिलनाडु राज्य (2000) 6 एससीसी 204, (vii) के.पी. तिवारी बनाम मप्र राज्य 1994 एससीसी (सीआरआई) 712, (viii) के. अंबाजगन बनाम पुलिस अधीक्षक (2004) 3 एससीसी 767, (ix) जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158, (x) कैप्टन अमरिन्दर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल और अन्य (2009) 6 एससीसी 260, (xi) नाहर सिंह यादव और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य जेटी 2010 (12) 641, (xii) लालू प्रसाद बनाम झारखंड राज्य (2013) 8 एससीसी 593, (xiii) अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता 2014 (11) एडीजे 414 (सभी) और (xiv) उस्मानगनी अदमभाई वहोरा बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2016) 3 एससीसी 370।

(i) ***मेनका संजय गांधी (पूर्व)*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है : -

"2. निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली अनिवार्यता है और स्थानांतरण के लिए प्रस्ताव पेश करते समय अदालत के लिए विचार करने के लिए केंद्रीय मानदंड किसी पक्ष की अतिसंवेदनशीलता या सापेक्ष सुविधा या कानूनी सेवाओं की आसान उपलब्धता या लघु- शिकायतों की तरह नहीं है। यदि न्यायालय को स्थानांतरण की अपनी शक्ति का प्रयोग करना है तो सार्वजनिक न्याय और उसके संबंधित वातावरण के दृष्टिकोण से कुछ अधिक महत्वपूर्ण, अधिक सम्मोहक, अधिक जोखिम भरा होना आवश्यक है। यह मुख्य सिद्धांत है, हालांकि मामलों की परिस्थितियां अलग-अलग मामलों में अलग-अलग हो सकती हैं। हमें इस नियम को ध्यान में रखते हुए इस कसौटी पर याचिकाकर्ता के आधारों को परखना होगा कि आम तौर पर शिकायतकर्ता को अधिकार क्षेत्र वाली किसी भी अदालत को चुनने का अधिकार है और आरोपी यह तय नहीं कर सकता कि उसके खिलाफ मामला कहां चलाया जाना चाहिए। फिर भी, न्याय की प्रक्रिया को पक्षों को परेशान नहीं करना चाहिए और अदालत उस

दृष्टिकोण से परिस्थितियों का आकलन कर सकती है।"

(ii) ***विजय पाल और अन्य (पूर्व)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी उचित कारण के अभाव में सीआरपीसी की धारा 407 के तहत शक्ति का प्रयोग करना उचित और कानूनी नहीं है।

(iii) ***अंजलि अशोक साधवानी (पूर्व) और फातिमा बनाम जाफ़री सैयद हुसैन @ सैयद परवेज़ जाफ़री (पूर्व)*** के मामलों में यह वैवाहिक मामलों में पत्नी की सुविधा के लिए माना जाता है और विशेष रूप से तब जबकि उसके परिवार में कोई भी उसका साथ नहीं देता है लंबी यात्रा करना मामले के स्थानांतरण के लिए अच्छा आधार है ।

(iv) ***गुरचरण दास चड्ढा (पूर्व)*** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा :-

"13.....यदि किसी मामले में किसी पक्ष की ओर से उचित आशंका है कि न्याय नहीं होगा तो मामला स्थानांतरित कर दिया जाता है। याचिकाकर्ता को यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है कि न्याय अनिवार्य रूप से विफल हो जाएगा। वह हकदार है स्थानांतरण के लिए यदि वह ऐसी परिस्थितियाँ दिखाता है जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसे आशंका है और कथित परिस्थितियों में यह उचित है। यह न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि किया जाना होना भी प्रतीत होना चाहिए। हालाँकि, केवल यह आरोप कि यह आशंका है कि किसी दिए गए मामले में न्याय नहीं किया जाएगा, मान्य नहीं है। न्यायालय को यह भी देखना है कि क्या आशंका उचित है या नहीं। आशंका की तर्कसंगतता का आकलन करने के लिए आशंका को स्वीकार करने वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति निस्संदेह प्रासंगिक है, लेकिन यही सब कुछ नहीं है। आशंका पर न केवल विचार किया जाना चाहिए, बल्कि अदालत को उचित आशंका के रूप में दिखना भी चाहिए।"

(v) ***अब्दुल नज़र मदनी (पूर्व)*** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा :-

"7. आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास गंभीर रूप से कम हो जाएगा, तो कोई भी पक्ष मामले को स्थानांतरित करने की मांग कर सकता है। धारा 407 के तहत राज्य और सीआरपीसी की धारा 406 के तहत देश में कहीं भी निष्पक्ष जांच या परीक्षण नहीं होने की आशंका और अनुमानों के आधार पर अनुचित और काल्पनिक नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि किसी स्थान के किसी न्यायालय के समक्ष आपराधिक न्याय निष्पक्ष और उद्देश्यपूर्ण और बिना किसी पूर्वाग्रह के देना संभव नहीं है, तो उपयुक्त न्यायालय मामले को दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर

सकता है , जहां उसे लगता है कि निष्पक्ष और उचित सुनवाई अनुकूल है। स्थानांतरण याचिका पर निर्णय लेने के लिए कोई सार्वभौमिक या कठोर त्वरित नियम नहीं निर्धारित किए जा सकते हैं, इसका निर्णय हमेशा प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। मुकदमे में पेश किए जाने वाले गवाहों सहित पक्षों की सुविधा भी स्थानांतरण याचिका पर निर्णय लेने के लिए एक प्रासंगिक विचार है। पक्षों की सुविधा का मतलब जरूरी नहीं कि केवल याचिकाकर्ताओं की सुविधा हो, जिन्होंने आशंका की गलत धारणाओं पर न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। स्थानांतरण के प्रयोजनों के लिए सुविधा का अर्थ अभियोजन पक्ष, अन्य अभियुक्तों, गवाहों और समाज के व्यापक हित की सुविधा है।"

(vi) ***के.पी. तिवारी (पूर्व)*** में शीर्ष अदालत ने कहा :-

"4....यह भी याद रखना होगा कि निचले न्यायिक अधिकारी ज्यादातर तनावपूर्ण माहौल में काम करते हैं और लगातार मनोवैज्ञानिक दबाव में रहते हैं क्योंकि सभी प्रतिस्पर्धी और उनके वकील अपनी गर्दन से नथुनो तक लगभग सही ढंग से सांस लेते हैं। उन्हें ठंडे दिमाग से सोचने और धैर्यपूर्वक निर्णय लेने के लिए उच्च न्यायालयों के एक अलग माहौल का लाभ नहीं मिलता है। इसलिए प्रत्येक त्रुटि को चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न लगे, अनुचित उद्देश्य के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए।"

(vii) ***के. अन्बाझगन (पूर्व)*** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना था जो इस प्रकार है :-

"30. स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 की अनिवार्य शर्त है। यह पुराना कानून है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष और पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं है तो न्यायिक निष्पक्षता और आपराधिक न्याय प्रणाली खतरे में पड़ जाएगी, जिससे व्यवस्था में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा और कानून का शासन शोकग्रस्त हो जाएगा। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ऐसे मामले में सवाल यह नहीं है कि क्या याचिकाकर्ता वास्तव में पक्षपातपूर्ण है बल्कि सवाल यह है कि क्या परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि याचिकाकर्ता के मन में उचित आशंका है।"

(viii) ***जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख (पूर्व)*** मामले में, शीर्ष अदालत ने प्रतिपादित किया कि निष्पक्ष सुनवाई का मतलब स्पष्ट रूप से एक निष्पक्ष न्यायाधीश, एक निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति के माहौल के समक्ष सुनवाई होगी। निष्पक्ष सुनवाई का मतलब एक ऐसी सुनवाई है जिसमें अभियुक्तों, गवाहों या जिस कारण पर मुकदमा चलाया जा रहा है उसके लिए या उसके खिलाफ पूर्वाग्रह समाप्त हो जाता है।

(ix) ***कैप्टन अमरिन्दर सिंह (पूर्व)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 406 के तहत दो स्थानांतरण आवेदनों पर विचार करते हुए इस आधार पर कहा कि नए मुख्यमंत्री के प्रभाव के साथ- साथ लोक अभियोजक द्वारा रुचि की कमी व राज्य सरकार में परिवर्तन के कारण मुकदमे में बाधापूर्ण अवरोध आ रहा है। जो कि पैरा 18 , 19 एवं 20 में देखा गया है जो निम्नवत है :-

"18. किसी आपराधिक मामले के स्थानांतरण के लिए, मामले के पक्ष की ओर से यह उचित आशंका होनी चाहिए कि न्याय नहीं किया जाएगा। यह न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होते हुए दिखना भी चाहिए। दूसरी ओर, केवल यह आरोप लगाना कि यह आशंका है कि किसी मामले में न्याय नहीं होगा, पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में न्यायालय को यह भी देखना होगा कि कथित आशंका उचित है या नहीं। आशंका पर न केवल विचार किया जाना चाहिए बल्कि अदालत को यह उचित आशंका प्रतीत भी होनी चाहिए।

19. निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली अनिवार्यता है। आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास गंभीर रूप से कम हो जाएगा, तो पीड़ित पक्ष धारा 407 के तहत राज्य के भीतर और धारा 406 सीआरपीसी के अंतर्गत देश में कहीं भी मामले को स्थानांतरित करने की मांग कर सकता है।

20. हालाँकि, निष्पक्ष जाँच या सुनवाई न हो पाने की आशंका उचित होनी आवश्यक है न कि काल्पनिक। स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 की अनिवार्य शर्त है। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है और यदि यह पक्षपातपूर्ण है, तो न्यायिक निष्पक्षता और आपराधिक न्याय प्रणाली खतरे में पड़ जाएगी, जिससे प्रणाली में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा। न्यायालय को यह आशंका उचित प्रतीत होनी चाहिए।"

(x) ***नाहर सिंह यादव और अन्य (पूर्व)*** के मामले में शीर्ष न्यायालय ने देखा है जो निम्नवत है :-

"इस प्रकार, हालांकि सीआरपीसी की धारा 406 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं, यह तय करने के लिए कोई कठोर और अनम्य नियम या परीक्षण निर्धारित नहीं किया जा सकता है, यह उप- धारा (2) और (3) को पढ़ने से स्पष्ट होता है । उक्त धारा के और इस न्यायालय के निर्णयों के विश्लेषण पर कि मुकदमे के स्थानांतरण का आदेश नियमित रूप से या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए कि एक इच्छुक पक्ष ने मुकदमे के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। इस शक्ति का उपयोग सावधानीपूर्वक और

असाधारण परिस्थितियों में किया जाना चाहिए, जहां परीक्षण को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। परीक्षण के हस्तांतरण के लिए आवेदन पर विचार करते समय कुछ व्यापक कारक जिन्हें ध्यान में रखा जा सकता है : -

(i) जब ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य मशीनरी या अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के साथ मिलकर काम कर रहा है, और अभियोजन पक्ष के ढुलमुल रवैये के कारण न्याय में बाधा उत्पन्न होने की संभावना है;

(ii) जब यह दिखाने के लिए सामग्री हो कि अभियुक्त अभियोजन पक्ष के गवाहों को प्रभावित करने या शिकायतकर्ता को शारीरिक नुकसान पहुँचाने का कार्य कर सकता है ; (iii) अभियुक्त, शिकायतकर्ता/ अभियोजन पक्ष और गवाहों को तुलनात्मक असुविधा और कठिनाइयां होने की संभावना । इसके अलावा यात्रा और अन्य भुगतान करने में राज्य के खजाने पर पड़ने वाले बोझ के अलावा सरकारी और गैर सरकारी गवाहों का खर्च;

(iv) सांप्रदायिक रूप से तनावपूर्ण माहौल के कारण निष्पक्ष सुनवाई करने में असमर्थता । लगाए गए आरोप , साक्ष्य और अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध की प्रकृति और

(v) कुछ सामग्री का अस्तित्व जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुछ व्यक्ति इतने शत्रुतापूर्ण हैं कि वे न्याय की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप कर रहे हैं या हस्तक्षेप करने की संभावना है।"

(xi) ***लालू प्रसाद (पूर्व)*** मामले में शीर्ष अदालत ने कहा है जो निम्नवत है :-

"20. न्यायपालिका की स्वतंत्रता संविधान की मूल विशेषता है। यह मांग करती है कि एक न्यायाधीश जो मुकदमे की अध्यक्षता करता है, लोक अभियोजक जो राज्य की ओर से मामला पेश करता है और वकील जो न्याय मित्र का प्रतिनिधित्व करता है। अभियुक्तों को उनके व्यक्तित्व या राज्य के मामलों का प्रबंधन करने वालों से प्रभावित हुए बिना न्याय के सार्वजनिक हित में सद्भाव के साथ मिलकर काम करना चाहिए। उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके कामकाज से न्याय और न्यायशास्त्र के बीच टकराव पैदा न हो। एक व्यक्ति चाहे वह एक न्यायिक अधिकारी हो या लोक अभियोजक या अभियुक्त का बचाव करने वाला वकील हो, उसको हमेशा जिम्मेदारी की पूरी भावना के साथ अपने उच्च पद की गरिमा को बनाए रखना चाहिए और यह देखना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में इसका मूल्य कम न हो। जनहित की मांग है कि मुकदमा निष्पक्ष तरीके से चलाया जाना चाहिए और न्याय प्रशासन निष्पक्ष और स्वतंत्र होना चाहिए ।"

(xii) इस न्यायालय ने ***अमित अग्रवाल (पूर्व)*** के मामले में ऐसे मामले के स्थानांतरण की गुंजाइश पर विचार करते हुए माना है कि : -

"24. पक्ष द्वारा मात्र यह संदेह कि उसे न्याय नहीं मिलेगा, स्थानांतरण को उचित नहीं ठहराएगा। इस आशय की उचित आशंका होनी चाहिए। किसी न्यायाधीश द्वारा वैध रूप से दिए गए न्यायिक आदेश को मामले के स्थानांतरण के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है। केवल अनुमान व संभावित आशंका की धारणा किसी मामले को एक मामले से दूसरे मामले में स्थानांतरित करने का आधार नहीं होना चाहिए। यह केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में होता है, जब ऐसे आधार लिए जाते हैं, तो न्यायालय को मामले को स्थानांतरित करने के लिए मौजूद कारणों का पता लगाना चाहिए, अन्यथा नहीं। (राजकोट कैंसर सोसायटी बनाम नगर निगम, राजकोट, एआईआर 1988 गुजरात 63; पसुपला फकरुद्दीन और अन्य बनाम जामिया मास्क और अन्य, एआईआर 2003 एपी 448 और नंदिनी चटर्जी बनाम अरूप हरि चटर्जी, एआईआर 2001 कलकत्ता 26)

25. जहां न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के संबंध में सत्यनिष्ठा या प्रभाव आदि के संबंध में आरोप लगाते हुए स्थानांतरण की मांग की जाती है, वहां स्थानांतरण के किसी भी आदेश को पारित करने से पहले इस न्यायालय को बहुत सावधान रहना होगा।

26. ऐसे मामलों में जहां स्थानांतरण आवेदन में, या अन्यथा, कुछ अनुकूल आदेश प्राप्त करने के लिए लापरवाही से झूठे आरोप लगाने का प्रयास किया जाता है, अदालत का दृष्टिकोण यह पता लगाने के लिए सख्त और सतर्क होना चाहिए कि क्या आरोप प्रामाणिक हैं और, यदि उनके सामने सच माना जाए, तो उन परिस्थितियों में सामान्य विवेक का कोई भी व्यक्ति संपूर्ण परिस्थितियों को सही मान सकता है। यदि आरोप स्पष्ट रूप से झूठे हैं तो सख्त दृष्टिकोण आज की आवश्यकता है ताकि न केवल कानून की अदालतों में अनुशासन बनाए रखा जा सके, बल्कि न्यायिक अधिकारियों की रक्षा भी की जा सके और उनके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और सबसे बढ़कर न्याय संस्थान की महिमा को बनाए रखा जा सके।"

(xiii) ***उस्मानगानी अदमभाई वहोरा (पूर्व)*** के मामले में शीर्ष न्यायालय ने सुप्रीम कोर्ट के पिछले फैसलों पर विचार करते हुए कहा गया है : -

"एक झटके में स्थानांतरण की मांग करना अकल्पनीय है। स्थानांतरण का आदेश नियमित रूप से या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि एक इच्छुक पक्ष ने परीक्षण के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका

व्यक्त की है। शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण स्थितियों में, जहां मुकदमे को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है किया जाना चाहिए। इस बात की वास्तविक आशंका होनी चाहिए कि न्याय विफल हो जाएगा।"

14 - सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित कानून और निर्धारित दिशानिर्देशों के आधार पर उभरते कानूनी परिदृश्य को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है : - एक स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 की अनिवार्य शर्त है । न्याय प्रदान करने में कानून का यह भी स्थापित सिद्धांत है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है, तो आपराधिक न्याय प्रणाली खतरे में पड़ जाएगी और कानून के शासन और व्यवस्था में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा। निष्पक्ष सुनवाई का अर्थ है एक निष्पक्ष न्यायाधीश, एक निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति के माहौल के समक्ष सुनवाई। निष्पक्ष सुनवाई का मतलब यह भी है कि किसी पक्ष या गवाह के पक्ष या विपक्ष में पक्षपात न किया जाए।

15 - पक्षों के विद्वान वकील को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने पर मैंने पाया कि आवेदक सत्र परीक्षण संख्या 19/2020 (राज्य बनाम मंजू बंसल और अन्य) को स्थानांतरित करने के लिए कोई पर्याप्त कारण दिखाने में विफल रहा है, जो वाद अपराध क्रमांक 567/2018 धारा 498ए, 504, 506, 307, 120बी आई.पी.सी. एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4, थाना- पिलखुवा, जनपद हापुड, मामले से उत्पन्न हुआ है जो कि अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/ फास्ट ट्रैक कोर्ट, न्यायालय नंबर 1,हापुड़ में विचाराधीन है। आवेदन तुच्छ, कष्टप्रद है और खारिज किये जाने योग्य है।

16 - तदनुसार, वर्तमान स्थानांतरण आवेदन **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1046

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक विविध स्थानांतरण आवेदन संख्या 620/2022

सोनम राय ..आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: कुसुम लता

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री चंद्र कुमार राय

आयोजित: पैरा-

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 407, 125 एवं 128 - आवेदिका ने प्रतिपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध धारा 125 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है , जिसमें उसे एवं उसकी नाबालिग पुत्री को प्रतिमाह 25,000 रूपये भरण-पोषण भत्ता प्रदान करने का अनुरोध किया गया है - आवेदिका ने सुरक्षा सम्बन्धी चिंताओं एवं

वित्तीय कठिनाई का हवाला देते हुए पारिवारिक न्यायालय आजमगढ़ से पारिवारिक न्यायालय मऊ में कार्यवाही स्थानान्तरित करने का अनुरोध किया है - पारिवारिक न्यायालय आजमगढ़ ने उसे प्रतिमाह 4000 रूपये का भुगतान करने का आदेश दिया है - भुगतान न किये जाने के कारण उसने वसूली हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है - आवेदिका ने आजमगढ़ में न्यायालय में उपस्थित होने के दौरान अपने पति से धमकी एवं उत्पीड़न का दावा किया है - उसने आर्थिक कठिनाई, अपने नाबालिग बच्चे के साथ अकेले जीवन यापन करने में असमर्थता एवं वृद्धावस्था के कारण अपने पिता के साथ जाने में असमर्थता भी व्यक्त की है - फलस्वरूप स्थानान्तरण प्रार्थना पत्र स्वीकृत किया जाता है। (पैरा 1 से 16)

बी. पक्षकार द्वारा केवल यह संदेह कि उसे न्याय नहीं मिलेगा, स्थानांतरण को उचित नहीं ठहराएगा। इस आशय की उचित आशंका होनी चाहिए। न्यायाधीश द्वारा पारित न्यायिक आदेश को वैध रूप से मामले के स्थानांतरण का आधार नहीं बनाया जा सकता। संभावित आशंका का मात्र अनुमान किसी भी मामले को एक मामले से दूसरे मामले में स्थानांतरित करने का आधार नहीं होना चाहिए । केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में, जब ऐसे आधार लिए जाते हैं, न्यायालय को मामले को स्थानांतरित करने के लिए कारण खोजने चाहिए, अन्यथा नहीं। बिना सोचे-समझे स्थानांतरण की मांग करना अकल्पनीय है। स्थानांतरण का आदेश नियमित रूप से या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि किसी इच्छुक पक्ष ने मुकदमे के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण स्थितियों में किया जाना चाहिए, जहां मुकदमे को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। इस बात की वास्तविक आशंका होनी चाहिए कि न्याय में चूक होगी। (पैरा 10)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. गुरचरण दास चड्ढा बनाम राजस्थान राज्य (1966) एआईआर एससी 1418

2. विजय पाल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (1999) 9 एससीसी 67

3. अंजलि अशोक साधवानी बनाम अशोक किशनचंद साधवानी (2009) एआईआर एससी 1374

4. फातिमा बनाम जाफ़री सैयद हुसैन @ सैयद परवेज़ जाफ़री (2009) एआईआर एससी 1773

5. मेनका संजय गांधी बनाम रानी जेठमलानी (1979) 4 एससीसी 167

6. अब्दुल नज़र मदनी बनाम तमिलनाडु राज्य (2000) 6 एससीसी 204

7. केपी तिवारी बनाम म0प्र0 राज्य (1994) एससीसी (आपराधिक) 712

8. के. अन्बाझगन बनाम एस.पी. (2004) 3 एससीसी 767

9. ज़ाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158

10. कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल व अन्य (2009) 6 एससीसी 260

11. नाहर सिंह यादव एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य जेटी (2010) 12 641

12. लालू प्रसाद बनाम झारखण्ड राज्य (2013) 8 एससीसी 593

13. अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता (2014)11 एडीजे 414 इलाहाबाद

14. उस्मंगानी आदमभाई वहोरा बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2016) 3 एससीसी 370

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 16.01.2023 के अनुसार, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 13.12.2022 के आदेश के तहत जारी नोटिस विपक्षी संख्या 2 को दिया गया है, लेकिन नोटिस दिए जाने के बावजूद, उनकी ओर से कोई पेश नहीं हुआ है। इसलिए, न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला करने के लिए आगे बढ़ रहा है।

3. वर्तमान स्थानांतरण प्रार्थना पत्र को धारा 407 दं०प्र०सं० के तहत विपक्षी संख्या 2 राकेश राय के खिलाफ इस प्रार्थना के साथ स्थानांतरित किया गया है कि अपराध संख्या 173/2020 (सोनम राय बनाम राकेश राय), धारा 128 दं०प्र०सं०, पुलिस स्टेशन ताहबरपुर, जिला आजमगढ़ के तहत विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आजमगढ़ के समक्ष लंबित जिला मऊ में सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय में स्थानांतरित किया जाए।

4. संक्षेप में, आवेदक का मामला यह है कि आवेदक ने धारा 125 दं०प्र०सं० के तहत विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ उसे और उसकी नाबालिग बेटी रुचि को भरण-पोषण भत्ते के रूप में 25,000 रुपये प्रति माह प्रदान करने के लिए प्रार्थना पत्र दायर किया है। यह प्रार्थना पत्र प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आजमगढ़ की न्यायालय में अपराध संख्या 442/2019 (सोनम राय और अन्य बनाम राकेश राय) के रूप में दर्ज है।

5. विपक्षी को नोटिस जारी किए गए लेकिन उपरोक्त कार्यवाही में आपति दर्ज करने के लिए विचारण विचारण में कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। अंततः, अभिलेख पर उपलब्ध सभी भौतिक साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आजमगढ़ ने दिनांक 09.12.2020 के आदेश के माध्यम से उपरोक्त प्रार्थना पत्र को अनुमति दे दी है, जिसमें विरोधी पक्ष को प्रार्थना पत्र शुरु करने की तारीख से आवेदक को प्रति माह 4,000 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। उपरोक्त आदेश दिनांक 09.12.2020 के अनुपालन में, विपक्षी संख्या 2 ने दिसंबर, 2020 तक किसी भी रखरखाव भत्ते का भुगतान नहीं किया है और कुल 74,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया जाना बाकी है। इसके बाद, आवेदक ने विपक्षी संख्या 2 से 74,000/- रुपये की शेष राशि की वसूली के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष 16.12.2020 को धारा 128

दं०प्र०सं० के तहत एक प्रार्थना पत्र दायर किया, जो अभी भी लंबित है। दं०प्र०सं० की धारा 128 के तहत उपरोक्त प्रार्थना पत्र दायर करने के बाद, उसे 2020 के अपराध संख्या 173 के रूप में दर्ज किया गया था जिसमें विपक्षी संख्या 2 की आपतियां आमंत्रित की गई थीं। बाद में, 17.03.2021 को रिकवरी वारंट जारी किया गया है। आक्षेपित आदेश दिनांक 17.03.2021 के अनुपालन में, विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक के खाते में 25,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया है, इसलिए, रिकवरी वारंट को विचारण विचारण ने अपने आदेश दिनांक 18.03.2021 के तहत रद्द कर दिया था। इसके बाद विरोधी पक्ष संख्या 2 (पति) ने आज तक शेष राशि का भुगतान करने की प्रार्थना की। 05.08.2022 को विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ फिर से रिकवरी वारंट जारी किया गया। आवेदक गरीब महिला है और उसके पास आय का कोई स्रोत नहीं है और वह अपने पिता की आय पर निर्भर है, जो परिवार के अन्य सदस्यों की देयता भी वहन करता है। आवेदक की एक नाबालिग बेटी है जिसकी आयु लगभग 4 वर्ष है और वह प्रत्येक तारीख को जिला आजमगढ़ में न्यायालय की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकती है, इसलिए वह पूरी कार्यवाही को जिला मऊ में स्थानांतरित करना चाहती है। आवेदक के पिता एक बूढ़े व्यक्ति हैं, जो आवेदक के साथ हर तारीख को न्यायालय में उपस्थित होने में असमर्थ हैं और उनकी अनुपस्थिति में, विपक्षी संख्या 2 को नियमित रूप से धमकी दी गई थी जब वह अकेले न्यायालय की कार्यवाही में भाग लेने जाती थी। उस परिस्थिति में, आवेदक का जीवन विपक्षी संख्या 2 के पिछले आचरण को देखकर सुरक्षित नहीं है। अगर मामला जिला मऊ की किसी भी न्यायालय में स्थानांतरित किया जाता है तो वह मुकदमे का सामना करने के लिए तैयार है। विरोधी पक्ष संख्या 2 के साथ-साथ उसके परिवार के सदस्यों के डर के कारण, वह जिला आजमगढ़ में मुकदमे का सामना नहीं करना चाहती है। विरोधी पक्ष संख्या 2 के असामाजिक तत्वों के साथ अच्छे संबंध हैं और वह आवेदक से बदला लेने के लिए एक अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है यदि वह विचाराधीन मामले की पैरवी करने के लिए आजमगढ़ जाती है। आवेदक के पास आय का कोई स्रोत नहीं है और वह विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आजमगढ़ के समक्ष लंबित मामले की पैरवी करने के लिए खर्च वहन करने की स्थिति में नहीं है। इन परिस्थितियों में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, आजमगढ़ की न्यायालय में लंबित प्रकरण की संपूर्ण कार्यवाही निष्पक्ष विचारण के लिए जिला मऊ स्थित सक्षम न्यायालय को अंतरित की जाए।

6. आवेदक मूल रूप से ग्राम कोठियार, पुलिस स्टेशन ताहबरपुर, जिला आजमगढ़ का निवासी है। वर्तमान में वह हकीकटपुरा, थाना दक्षिण टोला, तहसील मऊनाथ भंजन, जिला मऊ की निवासी है, जबकि विपक्षी संख्या 2 (पति) गांव कोठियार, पुलिस स्टेशन ताहबतपुर, जिला आजमगढ़ की निवासी है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया, लेकिन उपरोक्त तथ्यों पर विवाद नहीं कर सका।

7. आवेदक सोनम राय द्वारा धारा 407 दं०प्र०सं० के तहत तत्काल स्थानांतरण प्रार्थना पत्र दायर किया गया है, जो उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक मामलों को एक जिले से दूसरे जिले में या उसी जिले में एक न्यायालय से दूसरी न्यायालय में स्थानांतरित करने से संबंधित है। दं०प्र०सं० की धारा 407 का एक बायोडाटा निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है. -

8. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि दं०प्र०सं० की धारा 407 की उपधारा (1) के मद्देनजर, जब भी उच्च न्यायालय में उपस्थित होने के लिए मामला बनाया जाता है, स्थानांतरित किया जा सकता है-

407. उच्च न्यायालय की मुकदमों और अपीलों को अन्तरित करने की शक्ति (1) जब कभी उच्च न्यायालय को यह प्रकट किया जाता है (क) कि उसके अधीनस्थ किसी आपराधिक न्यायालय में निष्पक्ष और बिना भेदभाव जांच या विचारण नहीं किया जा सकता है, या (ख) कि असामान्य कठिनाई वाले कानून का कोई प्रश्न उठने की संभावना है, या (ग) कि इस धारा के तहत एक आदेश इस संहिता के किसी भी प्रावधान द्वारा आवश्यक है, या पार्टियों या गवाहों की सामान्य सुविधा के लिए प्रवृत होगा, या न्याय के अंत के लिए समीचीन है, यह आदेश दे सकला है-

(i) किसी अपराध की जांच या विचारण किसी ऐसे न्यायालय द्वारा किया जाए जो धारा 177 से धारा 185 (दोनों सहित) के अधीन अर्हता प्राप्त न हो, किंतु अन्य मामलों में ऐसे अपराध की जांच करने या विचारण करने के लिए सक्षम हो,

(ii) कि कोई विशेष मामला या अपील, या मामलों या अपीलों का वर्ग, अपने अधिकार के अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय से समान या उच्चतर क्षेत्राधिकार वाले किसी अन्य ऐसे आपराधिक न्यायालय में स्थानांतरित किया जाए,

(iii) कि कोई विशेष मामला सत्र न्यायालय में विचारण के लिए

प्रतिबद्ध किया जाए, या (iv) कि किसी विशेष मामले या अपील को स्थानांतरित किया जाए और अपने सामने विचारित किया जाए। (2) उच्च न्यायालय या तो निचली न्यायालय की रिपोर्ट पर या किसी हित वाले पक्ष के प्रार्थना पत्र पर, या अपनी पहल पर कार्य कर सकता है बशर्ते कि एक मामले को एक आपराधिक न्यायालय से उसी सत्र प्रभाग में दूसरे आपराधिक न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए उच्च न्यायालय में कोई प्रार्थना पत्र नहीं होगा, जब तक कि इस तरह के हस्तांतरण के लिए सत्र न्यायाधीश को प्रार्थना पत्र नहीं किया गया है और उसके द्वारा खारिज कर दिया गया है।

(3) उपधारा (1) के अधीन आदेश के लिए प्रत्येक प्रार्थना पत्र प्रस्ताव द्वारा किया जाएगा, जो, उस स्थिति को छोड़कर जब आवेदक राज्य का महाधिवक्ता हो, शपथ पत्र या प्रतिज्ञान द्वारा समर्थित किया जाएगा।

(4) जब ऐसा प्रार्थना पत्र किसी अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किया जाता है तब उच्च न्यायालय उसे किसी ऐसे प्रतिकर के संदाय के लिए, जो उच्च न्यायालय उपधारा (7) के अधीन दे सकता है, जमानत सहित या उसके बिना बंधपत्र निष्पादित करने का निदेश दे सकेगा। (5) ऐसा प्रार्थना पत्र करने वाला प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति प्रार्थना पत्र के लिखित रूप में लोक अभियोजक को नोटिस देगा, साथ में उन आधारों की प्रति के साथ जिन पर यह किया गया है, और प्रार्थना पत्र के गुणों के आधार पर कोई आदेश नहीं दिया जाएगा जब तक कि इस तरह की सूचना देने और प्रार्थना पत्र की सुनवाई के बीच कम से कम चौबीस घंटे बीत न गए हों।

(6) जहाँ प्रार्थना पत्र, किसी मामले के अन्तरण के लिए है या किसी अधीनस्थ न्यायालय से अपील करने के लिये है वहाँ उच्च न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है, तो आदेश दे सकेगा कि, प्रार्थना पत्र का निपटान होने तक, अधीनस्थ न्यायालय की कार्यवाहियों पर ऐसी शर्तों पर रोक लगाई जाएगी जो उच्च न्यायालय अधिरोपित करना ठीक समझे. बशर्ते कि इस तरह के स्थगन से धारा 309 के तहत अधीनस्थ न्यायालय की रिमांड की शक्ति प्रभावित नहीं होगी।

(7) जहां उपधारा (1) के अधीन आदेश के लिए कोई प्रार्थना पत्र अस्वीकृत कर दिया जाता है वहां उच्च न्यायालय, यदि उसकी यह राय है कि प्रार्थना पत्र तुच्छ या

कष्टप्रद था, तो आवेदक को आदेश दे सकेगा कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसने प्रार्थना पत्र का विरोध किया है, प्रतिकर के रूप में ऐसी राशि संदाय करे जो वह मामले की परिस्थितियों में उचित समझे।

(8) जब उच्च न्यायालय उपधारा (1) के अधीन यह आदेश देता है कि किसी मामले को किसी न्यायालय से अपने समक्ष विचारण के लिए अंतरित किया जाए तो वह ऐसे विचारण में वही प्रक्रिया देखेगा जो उस न्यायालय ने देखी होती यदि मामला इस प्रकार अंतरित नहीं किया गया होता।

(9) इस धारा की कोई बात धारा 197 के अधीन सरकार के किसी आदेश को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।

10. ऐसे मामलों की अधिकता है जिनमें सर्वोच्च न्यायालय ने कई अवसरों पर विभिन्न परिस्थितियों में मामलों के हस्तांतरण के मुद्दे पर विचार किया है और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के संदर्भ में विस्तृत चर्चा के बाद इस संबंध में दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं, जो निम्नानुसार उद्धृत हैं: -

(i) गुरचरण दास चड्ढा बनाम राजस्थान राज्य एआईआर 1966 एससी 1418, (ii) विजय पाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 1999 (9) एससीसी 67, (iii) अंजलि अशोक साधवानी बनाम अशोक किशिनचंद साधवानी, एआईआर 2009 एससी 1374, (iv) फातिमा बनाम जाफरी सैयद हुसैन @ सैयद परवेज जाफरी, एआईआर 2009 एससी 1773, (iv) मेनका संजय गांधी बनाम रानी जेठमलानी (1979) 4 एससीसी 167, (vi) अब्दुल नजर मदनी बनाम तमिलनाडु राज्य (2000) 6 एससीसी 204, (vii) केपी तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1994 एससीसी (सीआरआई) 712, (viii) के अंबाजगन बनाम पुलिस अधीक्षक (2004) 3 एससीसी 767, (ix) जाहिरा हबीबुल्ला एच शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158, (x) कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल और अन्य (2009) 6 एससीसी 260, (xi) नाहर सिंह यादव और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य जेटी 2010 (12) 641, (xii) लालू प्रसाद बनाम झारखंड राज्य (2013) 8 एससीसी 593, (xiii) अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता 2014 (11) एडीजे 414 (सी) और (xiv) उमंगनी आदमभाई वहोरा बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2016) 3 एससीसी 370।

(1) **मेनका संजय गांधी (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

> "2. निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली अनिवार्यता है और जब स्थानांतरण के लिए प्रस्ताव किया जाता है तो न्यायालय के लिए विचार करने के लिए केंद्रीय मानदंड किसी पक्ष की अतिसंवेदनशीलता या सापेक्ष सुविधा या कानूनी सेवाओं की आसान उपलब्धता या मिनी की तरह नहीं है-शिकायत। यदि न्यायालय को

स्थानांतरण की अपनी शक्ति का प्रयोग करना है तो सार्वजनिक न्याय और उसके परिचर वातावरण के दृष्टिकोण से कुछ अधिक पर्याप्त, अधिक सम्मोहक, अधिक हानिकारक होना आवश्यक है। यह कार्डिनल सिद्धांत है, हालांकि परिस्थितियां असंख्य हो सकती हैं और मामले से मामले में भिन्न हो सकती हैं। हमें इस नियम को ध्यान में रखते हुए इस कसौटी पर याचिकाकर्ता के आधार का परीक्षण करना होगा कि आम तौर पर शिकायतकर्ता को अधिकार क्षेत्र वाली किसी भी न्यायालय को चुनने का अधिकार है और अभियुक्त यह तय नहीं कर सकता कि उसके खिलाफ मामले की सुनवाई कहां की जानी चाहिए। फिर भी, न्याय की प्रक्रिया को पक्षों को परेशान नहीं करना चाहिए और उस कोण से न्यायालय परिस्थितियों को तौल सकती है।

(ii) **विजय पाल और अन्य (पूर्वोक्त** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि किसी भी उचित कारण के अभाव में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 407 के तहत शक्ति का प्रयोग करना उचित और कानूनी नहीं है।

(iii) **अंजलि अशोक साधवानी (पूर्वोक्त) और फातिमा बनाम जाफरी सैयद हुसैन @ सैयद परवेज जाफरी (पूर्वोक्त)** के मामलों में वैवाहिक मामलों में यह माना जाता है कि पत्नी की सुविधा और विशेष रूप से उसके परिवार में कोई भी उसे लंबी यात्रा करने के लिए एस्कॉर्ट नहीं करता है, मामलों के हस्तांतरण के लिए एक अच्छा आधार है। (iv) गुरचरण दास चड्ढा (पूर्वोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहाः -

"13..... किसी मामले को तब स्थानांतरित किया जाता है जब किसी पक्ष की ओर से किसी मामले में उचित आशंका हो कि न्याय नहीं किया जाएगा। एक याचिकाकर्ता को यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है कि न्याय अनिवार्य रूप से विफल हो जाएगा। वह स्थानांतरण का हकदार है यदि वह उन परिस्थितियों को दिखाता है जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह एक आशंका पर विचार करता है और यह कथित परिस्थितियों में उचित है। यह न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होता हुआ दिखना भी चाहिए। हालांकि, केवल यह आरोप लगाना कि किसी दिए गए मामले में न्याय नहीं होने की आशंका है, काम नहीं करता है। न्यायालय को यह भी देखना है कि आशंका उचित है या नहीं। आशंका की तर्कसंगतता का न्याय करने के लिए, आशंका का मनोरंजन करने वाले व्यक्ति के दिमाग की स्थिति निस्संदेह प्रासंगिक है, लेकिन यह सब नहीं है। आशंका पर न केवल विचार किया जाना चाहिए, बल्कि न्यायालय को एक उचित आशंका के रूप में प्रकट होना चाहिए।

(v) **अब्दुल नज़र मदनी (पूर्वोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखाः -

"7. आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास गंभीर रूप से कम हो जाएगा, तो कोई भी पक्ष धारा 407 के तहत राज्य के भीतर और दं०प्र०सं० की धारा 406 के तहत देश में कहीं भी मामले के हस्तांतरण की मांग कर सकता है। निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच या मुकदमा न मिलने की आशंका उचित होनी चाहिए न कि काल्पनिक अनुमान और अनुमानों पर। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि दांडिक न्याय का वितरण निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ रूप से और बिना किसी पूर्वाग्रह के संभव नहीं है, तो किसी भी स्थान पर किसी न्यायालय के समक्ष, उपयुक्त न्यायालय मामले को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है जहां यह महसूस करता है कि निष्पक्ष और उचित सुनवाई का आयोजन अनुकूल है। स्थानांतरण याचिका पर निर्णय करने के लिए कोई सार्वभौमिक या कठोर नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं, जिन्हें हमेशा प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। स्थानांतरण याचिका पर निर्णय लेने के लिए विचारण में पेश किए जाने वाले गवाहों सहित पक्षकारों की सुविधा भी एक प्रासंगिक विचार है। पक्षकारों की सुविधा का मतलब केवल याचिकाकर्ताओं की सुविधा से नहीं है, जिन्होंने आशंका की गलत धारणाओं पर न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। स्थानांतरण के उद्देश्यों के लिए सुविधा का अर्थ है अभियोजन, अन्य आरोपियों, गवाहों और समाज के बड़े हित की सुविधा।

(vi) **के.पी. तिवारी (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है:-

"4.... यह भी याद रखना होगा कि निचले न्यायिक अधिकारी ज्यादातर एक आवेशित वातावरण में काम करते हैं और लगातार मनोवैज्ञानिक दबाव में रहते हैं, जिसमें सभी प्रतियोगी और उनके अधिवक्ता लगभग अपनी गर्दन नीचे कर लेते हैं अधिक सही ढंग से उनके नथुने तक। उनके पास उच्च न्यायालयों के अलग माहौल का लाभ नहीं है कि वे ठंडे दिमाग से सोचें और धैर्यपूर्वक निर्णय लें। इसलिए हर गलती चाहे वह कितनी भी गंभीर लगे, उसके लिए अनुचित मकसद को जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए।

(vii) के. अंबाजगन (पूर्वोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया थाः-

30. स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अनिवार्य है। यह घिसा- पिटा कानून है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि होते हुए दिखना भी चाहिए। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है और पूर्वाग्रह से

अनुवादित

मुक्त नहीं है, तो न्यायिक निष्पक्षता और आपराधिक न्याय प्रणाली दांव पर होगी और व्यवस्था में जनता के विश्वास को हिला देगी और कानून का शासन हाय होगा। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ऐसे मामले में सवाल यह नहीं है कि याचिकाकर्ता वास्तव में पक्षपाती है या नहीं, बल्कि सवाल यह है कि क्या परिस्थितियां ऐसी हैं कि याचिकाकर्ता के मन में एक उचित आशंका है।

(vii) **जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि निष्पक्ष विचारण का अर्थ स्पष्ट रूप से एक निष्पक्ष न्यायाधीश, एक निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति का वातावरण होगा। निष्पक्ष विचारण का अर्थ उस विचारण से होता है, जिसमें अभियुक्त, गवाहों के पक्ष या विपक्ष में पक्षपात या पूर्वाग्रह या पक्षपात या विचारण का विचारण किया जा रहा कारण समाप्त हो जाता है।

(ix) **कैप्टन अमरिन्दर सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 406 के अधीन अधिमान्य दो स्थानांतरण आवेदनों पर इस आधार पर विचार करते हुए कि राज्य सरकार में परिवर्तन के साथ, नए मुख्यमंत्री के प्रभाव के साथ-साथ लोक अभियोजक द्वारा रुचि न लेने के कारण विचारण को झटका लगा था, पैरा 18, 19 और 20 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है-

"18. एक आपराधिक मामले के हस्तांतरण के लिए, पक्षकार की ओर से एक उचित आशंका होनी चाहिए कि न्याय नहीं किया जाएगा। यह न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होते हुए दिखना भी चाहिए। दूसरी ओर, केवल यह आरोप लगाना पर्याप्त नहीं है कि किसी मामले में न्याय नहीं होने की आशंका है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय को यह भी देखना होगा कि कथित आशंका उचित है या नहीं। आशंका पर न केवल विचार किया जाना चाहिए, बल्कि न्यायालय को एक उचित आशंका के रूप में प्रकट होना चाहिए। निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली अनिवार्यता है। आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास गंभीर रूप से कम हो जाएगा, तो पीड़ित पक्ष धारा 407 के तहत राज्य के भीतर और देश में कहीं भी धारा 406 दे0प्र0सं0 20 के तहत मामले के हस्तांतरण की मांग कर सकता है। हालांकि, निष्पक्ष जांच या विचारण नहीं मिलने की आशंका तर्कसंगत होनी चाहिए, काल्पनिक नहीं। स्वतंत्र और निष्पक्ष विचारण संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत

अनिवार्य है। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है और यदि यह पक्षपातपूर्ण है, तो न्यायिक निष्पक्षता और आपराधिक न्याय प्रणाली दांव पर होगी, जिससे व्यवस्था में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा। आशंका न्यायालय को उचित लगनी चाहिए।

(x) **नाहर सिंह यादव और अन्य (पूर्वोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"इस प्रकार, हालांकि यह तय करने के लिए कोई कठोर और अनम्य नियम या परीक्षण निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि दं०प्र०सं० की धारा 406 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं, यह उक्त धारा की उप-धाराओं (2) और (3) के नंगे पढ़ने और इस न्यायालय के निर्णयों के विश्लेषण से प्रकट होता है कि मुकदमे के हस्तांतरण का आदेश नियमित मामले के रूप में या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इच्छुक पक्ष ने परीक्षण के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। इस शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण स्थितियों में किया जाना चाहिए, जहां परीक्षण को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। विचारण के हस्तांतरण के लिए प्रार्थना पत्र पर विचार करते समय कुछ व्यापक कारकों को ध्यान में रखा जा सकता है-

(i) जब ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य तंत्र या अभियोजन अभियुक्त के साथ मिलकर काम कर रहा है, और अभियोजन पक्ष के ढुलमुल रवैये के कारण न्याय की हत्या की संभावना है;

(ii) जब यह दिखाने के लिए सामग्री हो कि अभियुक्त अभियोजन पक्ष के गवाहों को प्रभावित कर सकता है या शिकायतकर्ता को शारीरिक नुकसान पहुंचा सकता है; (iii) सरकारी और गैर- सरकारी गवाहों की यात्रा और अन्य खर्चों का भुगतान करने में राज्य राजकोष द्वारा वहन किए जाने वाले भार के अलावा अभियुक्त, शिकायतकर्ता/अभियोजन पक्ष और गवाहों को होने वाली संभावित असुविधा और कठिनाइयां होंगी, (iv) किए गए आरोपों और अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध की प्रकृति के कारण निष्पक्ष और निष्पक्ष सुनवाई आयोजित करने में असमर्थता के कुछ प्रमाण दर्शाने वाला साम्प्रदायिक रूप से आरोपित वातावरण, और

(v) कुछ सामग्री का अस्तित्व जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुछ व्यक्ति इतने शत्रुतापूर्ण हैं कि वे न्याय के मार्ग में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप कर रहे हैं या हस्तक्षेप करने की संभावना है।

(xi) **लालू प्रसाद (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

20. न्यायपालिका की स्वतंत्रता संविधान की मूल विशेषता है। यह मांग करता है कि एक न्यायाधीश जो मुकदमे की अध्यक्षता करता है, लोक अभियोजक जो राज्य की ओर से मामला प्रस्तुत करता है और अधिवक्ता बनाम एमिकस क्यूरी जो अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करता है, को अभियुक्त के व्यक्तित्व या राज्य के मामलों का प्रबंधन करने वालों से प्रभावित हुए बिना न्याय के जनहित में सद्भाव में मिलकर काम करना चाहिए। उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके काम से न्याय और न्यायशास्त्र के बीच संघर्ष पैदा न हो। एक व्यक्ति, चाहे वह न्यायिक अधिकारी हो या लोक अभियोजक या आरोपी का बचाव करने वाला अधिवक्ता हो, उसे हमेशा जिम्मेदारी की पूरी भावना के साथ अपने उच्च पद की गरिमा को बनाए रखना चाहिए और यह देखना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में इसके मूल्य का अवमूल्यन न हो। जनहित की मांग है कि मुकदमे की सुनवाई निष्पक्ष तरीके से हो और न्याय प्रशासन निष्पक्ष और स्वतंत्र हो।

(xii) **अमित अग्रवाल (पूर्वोक्त)** के मामले में इस न्यायालय ने ऐसे मामले में स्थानांतरण के दायरे पर विचार करते हुए कहा है किः -

> "24. केवल पक्षकार द्वारा यह संदेह कि उसे न्याय नहीं मिलेगा, तबादले को उचित नहीं ठहराएगा। इस आशय की उचित आशंका होनी चाहिए। एक न्यायाधीश द्वारा वैध रूप से किए गए न्यायिक आदेश को मामले के हस्तांतरण के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है। संभावित आशंका का अनुमान लगाना किसी भी मामले को एक मामले से दूसरे मामले में स्थानांतरित करने का आधार नहीं होना चाहिए और न ही होना चाहिए। यह केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में होता है, जब इस तरह के आधार लिए जाते हैं, तो न्यायालय को किसी मामले को स्थानांतरित करने के लिए मौजूद कारणों को खोजना चाहिए, अन्यथा नहीं। (राजकोट कैंसर सोसायटी बनाम नगर निगम, राजकोट, एआईआर 1988 गुजरात 63; पशुपाल फकरुद्दीन और एन.आर. बनाम जामिया मस्जिद और अन्य, एआईआर 2003 एपी 448; और, नंदिनी चटर्जी बनाम अरूप हरि चटर्जी, एआईआर 2001 कलकता 26)
>
> 25. जहां न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के संबंध में सत्यनिष्ठा या प्रभाव आदि के संबंध में आरोप लगाते हुए स्थानांतरण की मांग की जाती है, तो इस न्यायालय को स्थानांतरण का कोई आदेश पारित करने से पहले बहुत सावधान रहना होगा।
>
> 26. उन मामलों में जहां लापरवाह झूठे आरोप कुछ अनुकूल आदेश प्राप्त करने के लिए किए जाने का प्रयास किया जाता है, या तो स्थानांतरण प्रार्थना पत्र में, या अन्यथा, न्यायालय का दृष्टिकोण यह पता लगाने के लिए सख्त और सतर्क होना चाहिए कि क्या आरोप प्रामाणिक हैं, और, यदि उनके चेहरे पर

> सच माना जाता है, तो परिस्थितियों की संपूर्णता में, उन परिस्थितियों में सामान्य विवेक के किसी भी व्यक्ति द्वारा सही माना जा सकता है। यदि आरोप स्पष्ट रूप से झूठे हैं, तो सख्त दृष्टिकोण आज की मांग है ताकि न केवल कानून की अदालतों में अनुशासन बनाए रखा जा सके बल्कि न्यायिक अधिकारियों की रक्षा की जा सके और उनके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और न्याय की संस्था की महिमा को बनाए रखा जा सके।

(xiii) **उमंगनी आदमभई वहोरा (पूर्वोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पिछले निर्णयों पर विचार करते हुए कहा गया है:-

> 'एक टोपी की बूंद पर स्थानांतरण की मांग करना अकल्पनीय है। स्थानांतरण का आदेश नेमी मामले के रूप में या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि किसी इच्छुक पक्ष ने मुकदमे के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण स्थितियों में किया जाना चाहिए, जहां परीक्षण को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। एक वास्तविक आशंका होनी चाहिए कि न्याय की हत्या होगी।

11. विभिन्न निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून और निर्धारित दिशानिर्देशों के आधार पर, उत्पन्न होने वाले कानूनी परिदृश्य को संक्षेप में निम्नानुसार किया जा सकता है:- संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई अनिश्चित। न्याय प्रदान करने में कानून का यह भी स्थापित सिद्धांत है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होते हुए दिखना भी चाहिए। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं होता है, तो आपराधिक न्याय प्रणाली दांव पर होगी और व्यवस्था और कानून के शासन में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा। निष्पक्ष सुनवाई का अर्थ है निष्पक्ष न्यायाधीश के समक्ष विचारण, निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति का माहौल। निष्पक्ष सुनवाई का मतलब यह भी है कि पक्षकार या गवाह के पक्ष या विपक्ष में पूर्वाग्रह या पूर्वाग्रह।

12. दं०प्र०सं० की धारा 407 के तहत जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास कम हो जाएगा, तो कोई भी पक्ष राज्य के भीतर मामले को स्थानांतरित करने की मांग कर सकता है। इस प्रकार, न्यायालय मामले को दूसरी न्यायालय में स्थानांतरित कर सकती है जहां उसे लगता है कि स्थानांतरण याचिका पर फैसला करने के लिए निष्पक्ष और उचित सुनवाई अनुकूल है, न्यायालय को पक्षकारों और गवाहों की सुविधा को भी देखना होगा यदि प्रासंगिक विचार भी हो। पक्षकारों की सुविधा आशंका का एक गलत प्रस्ताव है जहां समाज के व्यापक हित में न केवल अभियोजन, अभियुक्त और गवाह की सुविधा है। यह आशंका कि आवेदक न्याय और सुविधा और कानूनी सेवाओं की उपलब्धता के

लक्ष्यों को पूरा नहीं करेगा, न्यायालय स्थानांतरण की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है। यह न्यायशास्त्र का कार्डिनल सिद्धांत है कि हालांकि परिस्थितियां असंख्य हो सकती हैं और मामले में भिन्न हो सकती हैं। न्यायालय को टचस्टोन पर स्थानांतरण के लिए याचिकाकर्ता के आधार का परीक्षण करना होगा, इस नियम को ध्यान में रखते हुए कि आम तौर पर शिकायतकर्ता को अधिकार क्षेत्र वाले किसी भी न्यायालय को चुनने का अधिकार है, यहां तक कि न्याय की प्रक्रिया को पक्षकारों को परेशान नहीं करना चाहिए और उस कोण से न्यायालय तौल सकती है। न्याय प्राप्त न होने की आशंका मजबूत सामग्री के आधार पर उचित आशंका होनी चाहिए और काल्पनिक नहीं होनी चाहिए, केवल अस्पष्ट आरोप लगाना कि आवेदक के मन में आशंका है कि किसी दिए गए मामले में और न ही विषम बहाना या देरी की रणनीति के लिए न्याय नहीं दिया जाएगा।

13. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के आधार, तथ्यों और परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए, यह सामने आता है कि वर्तमान में आवेदक जिला मऊ में रहता है जबकि विपक्षी संख्या 2 (पति) जिला आजमगढ़ का निवासी है। यह विवादित नहीं है कि आवेदक द्वारा दायर किए गए दोनों मामले जिला आजमगढ़ में लंबित हैं।

14. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह एक गरीब महिला है जिसके पास आय का कोई स्रोत नहीं है और वह अपने पिता की आय पर निर्भर है, जो परिवार के अन्य सदस्यों की देयता भी वहन करता है। आवेदक की खुद एक नाबालिग बेटी है जिसकी उम्र करीब चार साल है। आवेदक का पिता एक बूढ़ा व्यक्ति है जो आवेदक के साथ हर तारीख को न्यायालय में उपस्थित होने में असमर्थ है और उसकी अनुपस्थिति में, विपक्षी संख्या 2 उसे नियमित रूप से धमकी देता है, जब वह अकेले न्यायालय में उपस्थित होने जाती है। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 2 के पिछले आचरण को देखते हुए आवेदक का जीवन सुरक्षित नहीं है। विरोधी पक्ष संख्या 2 के साथ-साथ उसके परिवार के सदस्यों के डर से, वह जिला आजमगढ़ में मुकदमे का सामना नहीं कर सकी। इन परिस्थितियों में, विरोधी पक्षकार संख्या 2 के पिछले आचरण को ध्यान में रखते हुए उसके जीवन के लिए आशंका है। विरोधी पक्ष संख्या 2 का असामाजिक तत्वों के साथ अच्छा संबंध है और वह आवेदक से बदला लेने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है यदि वह विचाराधीन मामले की पैरवी करने के लिए आजमगढ़ जाती है। वह मामले की पैरवी का खर्च भी वहन करने में सक्षम नहीं है और विपक्षी उसे दिए गए रखरखाव भते का भुगतान नहीं कर रहा है।

15. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के आलोक में पक्षकारों के लिए विद्वान वकीलों की प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, मुझे लगता है कि आवेदक ने प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आजमगढ़ के समक्ष एक रखरखाव याचिका दायर की है. जिसमें उसे भरण-पोषण भता दिया गया था। अब उसने गुजारा भत्ता वसूलने के लिए दं०प्र०सं० की धारा 128 के तहत प्रार्थना पत्र किया है। आवेदक के पास स्वतंत्र रूप से आय का कोई स्रोत नहीं है। उसका चार साल का बच्चा है जो

उस पर निर्भर है। वह पूरी तरह से अपने पिता पर निर्भर है जो वर्तमान में जिला मऊ में रह रहे हैं। हालांकि उसने अपने पिता की आय का खुलासा नहीं किया, फिर भी यह विपक्षी संख्या 2 का कर्तव्य है कि आवेदक और उसके बच्चे को बनाए रखा जाए। यह तर्क दिया गया है कि विपक्षी संख्या 2 ने केवल 25,000/- रुपये का भुगतान किया है और 74,000/- रुपये अभी भी भरण-पोषण के लिए बकाया है। इन परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि आवेदक के पास खुद को, अपनी नाबालिग बेटी को बनाए रखने और मुकदमेबाजी के खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त आय नहीं है। यह स्वयंसिद्ध है कि उच्च सूजन के वर्तमान दिनों में, पर्याप्त आय के बिना जीवन जीना मुश्किल है। एक अन्य मामला है जो आवेदक द्वारा धारा 498-ए, 323, 504, 506, 120-बी भा०दं०सं० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत जिला आजमगढ़ में स्थापित किया गया है। इस प्रकार, वह दोनों पक्षों के बीच इस वैवाहिक विवाद के कारण अपने माता-पिता के घर में रह रही है। उन्हें दोनों मामलों में आजमगढ़ में कार्यवाही में भाग लेना होगा। यह प्रस्तुत किया गया है कि पिता को केवल उसके और उसकी बेटी को देखना है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वह एक बूढ़ा व्यक्ति है और आजमगढ़ में तय की गई प्रत्येक तारीख पर उसके साथ रहने में असमर्थ है। यह आवेदक को आजमगढ़ में न्यायालय जाने के लिए मजबूर करता है। न्यायालय में उसके अकेलेपन के अवसर को जब्त करते हुए, विपक्षी संख्या 2 गलत तरीके से संभाल सकता है और चोट पहुंचा सकता है और वह उसके जीवन को भी डरा सकता है। हालांकि इन आधारों को साबित करने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं है, फिर भी स्थानांतरण प्रार्थना पत्र के समर्थन में दायर हलफनामे में इन आरोपों की पुष्टि होती है। इसके अलावा, जिला मऊ और आजमगढ़ एक दूसरे के पास स्थित हैं। इसलिए मामलों को आसानी से मऊ में देखा जा सकता है। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में आवेदक द्वारा व्यक्त की गई आशंका उचित है। उपरोक्त तथ्यथ्यों और कानूनी परिदृश्य के मद्देनजर, मेरा विचार है कि यह न्याय के हित में है कि तत्काल स्थानांतरण प्रार्थना पत्र की अनुमति दी जानी चाहिए।

16. परिणामस्वरूप, स्थानांतरण प्रार्थना पत्र की अनुमति दी जाती है। विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आजमगढ़ के समक्ष लंबित धारा 128 दं०प्र०सं० के तहत वाद संख्या 173/2020 (सोनम राय बनाम राकेश राय), थाना ताहबरपुर, जिला आजमगढ़ को तीन महीने के भीतर कानून के अनुसार निस्तारण के लिए प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, मऊ को स्थानांतरित किया जाए।

17. आदेश की प्रति प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, मऊ को आवश्यक कार्रवाई एवं अनुपालन हेतु प्रेषित की जाए।

(2023) 5 ILRA 1056

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक विविध स्थानांतरण आवेदन संख्या 644/2022

सोनम राय ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: कुसुम लता

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री चंद्र कुमार राय

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 407- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 498-ए, 323, 504, 506 एवं 120-बी धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम-आवेदिका ने शिकायत दर्ज कराई है तथा उसने भरण-पोषण भत्ते की वसूली के लिए धारा 128 सीआरपीसी के तहत आवेदन भी किया है-आवेदिका के पास स्वयं, अपनी नाबालिग बेटी के भरण-पोषण तथा मुकदमे के खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त आय नहीं है-वह अपने दोनों पक्षकार के बीच इस वैवाहिक विवाद के कारण अपने माता-पिता के घर में रह रही है -उसे दोनों मामलों में आजमगढ़ में कार्यवाही में उपस्थित होना है -उसके पिता वृद्ध हैं और आजमगढ़ में निर्धारित प्रत्येक तारीख पर उसके साथ रहने में असमर्थ हैं -न्यायालय में उसके अकेलेपन का अवसर पाकर विपक्षी उसके साथ दुर्व्यवहार कर सकता है, उसे चोट पहुंचा सकता है और यहां तक कि उसे जान से मारने की धमकी भी दे सकता है -आवेदक द्वारा अपने हलफनामे में व्यक्त की गई आशंका उचित है - इन तथ्यों और कानूनी परिदृश्य को देखते हुए तत्काल स्थानांतरण आवेदन को अनुमति दी जाती है। (पैरा 1 से 16)

बी. धारा 407 सीआरपीसी के तहत जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास कम हो जाएगा, तो कोई भी पक्ष राज्य के भीतर मामले को स्थानांतरित करने की मांग कर सकता है। इस प्रकार, न्यायालय मामले को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है, जहां उसे लगता है कि स्थानांतरण याचिका पर निर्णय लेने के लिए निष्पक्ष और उचित सुनवाई अनुकूल है, न्यायालय को मुकदमे में पेश किए जाने वाले पक्षों और गवाहों की सुविधा को भी देखना होगा, यदि प्रासंगिक विचार भी हो। पक्षों की सुविधा आशंका का एक गलत प्रस्ताव है, जहां समाज के व्यापक हित में न केवल अभियोजन पक्ष, बल्कि अभियुक्त और गवाह की सुविधा भी शामिल है। यह आशंका कि आवेदक न्याय और सुविधा और कानूनी सेवाओं की उपलब्धता के लक्ष्यों को पूरा नहीं करेगा, न्यायालय स्थानांतरण की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। यह न्यायशास्त्र का प्रमुख सिद्धांत है कि यद्यपि परिस्थितियाँ असंख्य हो सकती हैं और मामले दर मामले अलग-अलग हो सकती हैं। न्यायालय को याचिकाकर्ता के स्थानांतरण के आधार को इस कसौटी पर परखना होगा कि सामान्यतः वादी को अधिकार क्षेत्र वाली कोई भी अदालत चुनने का अधिकार है, ताकि न्याय की प्रक्रिया से पक्षकारों को परेशानी न हो और इस दृष्टिकोण से न्यायालय विचार कर सकता है। न्याय न मिलने की आशंका मजबूत सामग्री पर आधारित उचित आशंका होनी चाहिए, न कि केवल काल्पनिक आरोप लगाना कि आवेदक के मन में यह आशंका है कि किसी दिए गए मामले में न्याय नहीं मिलेगा और यह कोई बहाना या देरी करने की रणनीति नहीं है। (पैरा 12)

स्थानांतरण आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. गुरचरण दास चड्ढा बनाम राजस्थान राज्य (1966) एससी 1418 पर

2. विजय पाल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (1999) 9 एससीसी 67

3. अंजलि अशोक साधवानी बनाम अशोक किशनचंद साधवानी (2009) एआईआर एससी 1374

4. फातिमा बनाम जाफ़री सैयद हुसैन @ सैयद परवेज़ जाफ़री (2009) AIR SC 1773

5. मेनका संजय गांधी बनाम रानी जेठमलानी (1979) 4 एससीसी 167

6. अब्दुल नज़र मदनी बनाम टी.एन. राज्य (2000) 6 एससीसी 204

7. के.पी. तिवारी बनाम एम.पी. राज्य (1994) एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 712

8. के. अन्बाझगन बनाम एस.पी. (2004) 3 एससीसी 767

9. जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158

10. कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल व अन्य (2009) 6 एससीसी 260

11. नाहर सिंह यादव एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य जे.टी. (2010) 12 641

12. लालू प्रसाद बनाम झारखंड राज्य (2013) 8 एससीसी 593

13. अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता (2014) 11 एडीजे 414 (सभी)

14. उस्मानगानी अदमभाई वहोरा बनाम गुजरात राज्य और अन्य. (2016) 3 एससीसी 370

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 17.02.2023/ 4.3.2023 के अनुसार, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.1.2023 के आदेश के तहत जारी नोटिस विपक्षी संख्या 2 से 6 को दिया गया है, लेकिन नोटिस दिए जाने के बावजूद, उनकी ओर से कोई पेश नहीं हुआ है। इसलिए, न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला करने के लिए आगे बढ़ रहा है।

3. वर्तमान स्थानांतरण प्रार्थना पत्र को धारा 407 दं०प्र०सं० के तहत विपक्षी संख्या 2 से 6 के खिलाफ धारा 407 के तहत स्थानांतरित किया गया है, जिसमें 2019 के केस संख्या 2554 (सोनम राय बनाम राकेश राय और अन्य) की पूरी कार्यवाही को धारा 498-ए, 323, 504, 506, 120-बी भा०दं०सं० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत स्थानांतरित करने की प्रार्थना की गई है। (i) जिला मऊ में सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ के समक्ष लंबित पुलिस स्टेशन ताहबरपुर, जिला आजमगढ़ के समक्ष लंबित है।

4. संक्षेप में, आवेदक का मामला यह है कि आवेदक ने 27.8.2019 को धारा 498-ए, 323, 504, 506, 120-बी भा0दं० सं० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत विपक्षी संख्या 2 से 6 के खिलाफ उन्हें तलब करने के लिए शिकायत दर्ज की है।

अनुवादित

5. 27.08.2019 से पुलिस ने कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है और धारा 200 और 202 दे0प्र0सं0 के तहत बयान के बावजूद विपक्षी संख्या 2 से 6 को नहीं बुलाया गया है।

6. आवेदक मूल रूप से ग्राम कोठियार, पुलिस स्टेशन ताहबरपुर, जिला आजमगढ़ का निवासी है। वर्तमान में वह हकीकतपुरा, थाना दक्षिण टोला, तहसील मऊनाथ भंजन, जिला मऊ की निवासी है, जबकि विपक्षी संख्या 2 (पति) गांव कोठियार, पुलिस स्टेशन ताहबतपुर, जिला आजमगढ़ की निवासी है।

7. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया, लेकिन उपरोक्त तथ्यों पर विवाद नहीं कर सका।

8. आवेदक सोनम राय द्वारा धारा 407 दं०प्र०सं० के तहत तत्काल स्थानांतरण प्रार्थना पत्र दायर किया गया है, जो उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक मामलों को एक जिले से दूसरे जिले में या उसी जिले में एक न्यायालय से दूसरी न्यायालय में स्थानांतरित करने से संबंधित है। दं०प्र०सं० की धारा 407 का एक बायोडाटा निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है:-

9. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि दं०प्र०सं० की धारा 407 की उपधारा (1) के मद्देनजर, जब भी उच्च न्यायालय में उपस्थित होने के लिए मामला बनाया जाता है, स्थानांतरित किया जा सकता है-

407. उच्च न्यायालय की मुकदमों और अपीलों को अन्तरित करने की शक्ति

(1) जब कभी उच्च न्यायालय में उपस्थित होने के लिए कहा जाता है-

(क) कि उसके अधीनस्थ किसी दांडिक न्यायालय में निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच या विचारण नहीं किया जा सकता, या

(ख) असामान्य कठिनाई वाले कानून का कोई प्रश्न उठने की संभावना है, या
(ग) कि इस धारा के अधीन कोई आदेश इस संहिता के किसी उपबंध द्वारा अपेक्षित है, या पक्षकारों या गवाहों की सामान्य सुविधा के लिए प्रवृत्त होगा, या न्याय के उद्देश्यों के लिए समीचीन है,

यह आदेश दे सकता है-
(i) किसी अपराध की जांच या विचारण किसी ऐसे न्यायालय द्वारा किया जाए जो धारा 177 से धारा 185 (दोनों सहित) के अधीन अर्हता प्राप्त न हो, किंतु अन्य मामलों में ऐसे अपराध की जांच करने या विचारण करने के लिए सक्षम हो;

(ii) कि कोई विशेष मामला या अपील, या मामों या अपीलों का वर्ग, अपने अधिकार के अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय से समान या उच्चतर क्षेत्राधिकार वाले किसी अन्य ऐसे

आपराधिक न्यायालय में स्थानांतरित किया जाए;

(iii) कि कोई विशेष मामला सत्र न्यायालय में विचारण के लिए प्रतिबद्ध किया जाए, नहीं तो

(iv) कि किसी विशेष मामले या अपील को स्वयं में अंतरित किया जाए और विचारित किया जाए।

(2) उच्च न्यायालय या तो अवर न्यायालय की रिपोर्ट पर या किसी हित वाले पक्ष के प्रार्थना पत्र पर, या अपनी पहल पर कार्य कर सकता है: बशर्ते कि एक मामले को एक आपराधिक न्यायालय से उसी सत्र प्रभाग में दूसरे आपराधिक न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए उच्च न्यायालय में कोई प्रार्थना पत्र नहीं होगा, जब तक कि इस तरह के हस्तांतरण के लिए सत्र न्यायाधीश को प्रार्थना पत्र नहीं किया गया है और उसके द्वारा खारिज कर दिया गया है।

(3) उपधारा (1) के अधीन आदेश के लिए प्रत्येक प्रार्थना पत्र प्रस्ताव द्वारा किया जाएगा, जो, उस स्थिति को छोड़कर जब आवेदक राज्य का महाधिवक्ता हो, शपथ पत्र या प्रतिज्ञान द्वारा समर्थित किया जाएगा।

(4) जब ऐसा प्रार्थना पत्र किसी अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किया जाता है तब उच्च न्यायालय उसे किसी ऐसे प्रतिकर के संदाय के लिए, जो उच्च न्यायालय उपधारा (7) के अधीन दे सकता है, जमानत सहित या उसके बिना बंधपत्र निष्पादित करने का निदेश दे सकेगा।

(5) ऐसा प्रार्थना पत्र करने वाला प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति प्रार्थना पत्र के लिखित रूप में लोक अभियोजक को नोटिस देगा, साथ में उन आधारों की प्रति के साथ जिन पर यह किया गया है; और प्रार्थना पत्र के गुर्णा के आधार पर कोई आदेश नहीं दिया जाएगा जब तक कि इस तरह की सूचना देने और प्रार्थना पत्र की सुनवाई के बीच कम से कम चौबीस घंटे बीत न गए हों।

(6) जहाँ प्रार्थना पत्र, किसी मामले के अन्तरण के लिए है या किसी अधीनस्थ न्यायालय से अपील करने के लिये है वहाँ उच्च न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है, तो आदेश दे सकेगा कि, प्रार्थना पत्र का निपटान होने तक, अधीनस्थ न्यायालय की कार्यवाहियों पर ऐसी शर्तों पर रोक लगाई जाएगी जो उच्च न्यायालय अधिरोपित करना ठीक समझेः बशर्ते कि इस तरह के स्थगन से धारा 309 के तहत अधीनस्थ न्यायालय की रिमांड की शक्ति प्रभावित नहीं होगी।

(7) जहां उपधारा (1) के अधीन आदेश के लिए कोई प्रार्थना पत्र अस्वीकृत कर दिया जाता है वहां उच्च न्यायालय, यदि उसकी यह राय है कि प्रार्थना पत्र तुच्छ या कष्टप्रद था, तो आवेदक को आदेश दे सकेगा कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसने प्रार्थना पत्र का विरोध किया है, प्रतिकर के रूप में ऐसी राशि संदाय

अनुवादित

करे जो वह मामले की परिस्थितियों में उचित समझे।

(8) जब उच्च न्यायालय उपधारा (1) के अधीन यह आदेश देता है कि किसी मामले को किसी न्यायालय से अपने समक्ष विचारण के लिए अंतरित किया जाए तो वह ऐसे विचारण में वही प्रक्रिया देखेगा जो उस न्यायालय ने देखी होती यदि मामला इस प्रकार अंतरित नहीं किया गया होता।

(9) इस धारा की कोई बात धारा 197 के अधीन सरकार के किसी आदेश को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।

10. ऐसे मामलों की अधिकता है जिनमें सर्वोच्च न्यायालय ने कई अवसरों पर विभिन्न परिस्थितियों में मामलों के हस्तांतरण के मुद्दे पर विचार किया है और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के संदर्भ में विस्तृत चर्चा के बाद इस संबंध में दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

(i) गुरचरण दास चड्ढा बनाम राजस्थान राज्य एआईआर 1966 एससी 1418, (ii) विजय पाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 1999 (9) एससीसी 67, (iii) अंजलि अशोक साधवानी बनाम अशोक किशिनचंद साधवानी, एआईआर 2009 एससी 1374, (iv) फातिमा बनाम जाफरी सैयद हुसैन सैयद परवेज जाफरी, एआईआर 2009 एससी 1773, (iv) मेनका संजय गांधी बनाम रानी जेठमलानी (1979) 4 एससीसी 167, (vi) अब्दुल नजर मदनी बनाम तमिलनाडु राज्य (2000) 6 एससीसी 204, (vii) केपी तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1994 एससीसी (सीआरआई) 712, (viii) के अंबाजगन बनाम पुलिस अधीक्षक (2004) 3 एससीसी 767, (ix) जाहिरा हबीबुल्ला एच शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158, (x) कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल और अन्य (2009) 6 एससीसी 260, (xi) नाहर सिंह यादव और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य जेटी 2010 (12) 641, (xii) लालू प्रसाद बनाम झारखंड राज्य (2013) 8 एससीसी 593, (xiii) अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता 2014 (11) एडीजे 414 (ऑल) और (xiv) उमंगनी आदमभाई वहोरा बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2016) 3 एससीसी 370। (i) मेनका संजय गांधी (पूर्वोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की हैः-

"2. निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली अनिवार्यता है और न्यायालय के लिए केंद्रीय मानदंड यह विचार करने के लिए है कि जब स्थानांतरण के लिए प्रस्ताव किया जाता है तो किसी पक्ष की अतिसंवेदनशीलता या सापेक्ष सुविधा या कानूनी सेवाओं की आसान उपलब्धता या मिनी-शिकायतों की तरह नहीं है। यदि न्यायालय को स्थानांतरण की अपनी शक्ति का प्रयोग करना है तो सार्वजनिक न्याय और उसके परिचर वातावरण के दृष्टिकोण से कुछ अधिक पर्याप्त, अधिक सम्मोहक, अधिक हानिकारक होना आवश्यक है। यह कार्डिनल सिद्धांत है, हालांकि परिस्थितियां असंख्य हो सकती है और मामले से मामले में भिन्न हो सकती हैं। हमें इस नियम को ध्यान में रखते हुए इस कसौटी पर याचिकाकर्ता के आधार का परीक्षण करना होगा

कि आम तौर पर शिकायतकर्ता को अधिकार क्षेत्र वाली किसी भी न्यायालय को चुनने का अधिकार है और अभियुक्त यह तय नहीं कर सकता कि उसके खिलाफ मामले की सुनवाई कहां की जानी चाहिए। फिर भी, न्याय की प्रक्रिया को पक्षों को परेशान नहीं करना चाहिए और उस कोण से न्यायालय परिस्थितियों को आंक सकती है।

(ii) **विजय पाल और अन्य (पूर्वोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी भी उचित कारण के अभाव में, दं०प्र०सं० की धारा 407 के तहत शक्ति का प्रयोग करना उचित और कानूनी नहीं है।

(iii) **अंजलि अशोक साधवानी (पूर्वोक्त)** और **फातिमा बनाम जाफरी सैयद हुसैन सैयद परवेज जाफरी (पूर्वोक्त)** के मामलों में, वैवाहिक मामलों में यह माना जाता है कि पत्नी की सुविधा और विशेष रूप से उसके परिवार में कोई भी उसे लंबी यात्रा करने के लिए एस्कॉर्ट नहीं करता है, मामलों के हस्तांतरण के लिए एक अच्छा आधार है।

(iv) **गुरचरण दास चड्ढा (पूर्वोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहाः

"13..... किसी मामले को तब स्थानांतरित किया जाता है जब किसी पक्ष की ओर से किसी मामले में उचित आशंका हो कि न्याय नहीं किया जाएगा। एक याचिकाकर्ता को यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है कि न्याय अनिवार्य रूप से विफल हो जाएगा। वह स्थानांतरण का हकदार है यदि वह उन परिस्थितियों को दिखाता है जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह एक आशंका पर विचार करता है और यह कथित परिस्थितियों में उचित है। यह न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होता हुआ दिखना भी चाहिए। हालांकि, केवल यह आरोप लगाना कि किसी दिए गए मामले में न्याय नहीं होने की आशंका है, काम नहीं करता है। न्यायालय को यह भी देखना है कि आशंका उचित है या नहीं। आशंका की तर्कसंगतता का न्याय करने के लिए, आशंका का मनोरंजन करने वाले व्यक्ति के दिमाग की स्थिति निस्संदेह प्रासंगिक है, लेकिन यह सब नहीं है। आशंका पर न केवल विचार किया जाना चाहिए, बल्कि न्यायालय को एक उचित आशंका के रूप में प्रकट होना चाहिए।

(v) **अब्दुल नज़र मदनी (पूर्वोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखाः

"7. आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास गंभीर रूप से कम हो जाएगा, तो कोई भी पक्ष धारा 407 के तहत राज्य के भीतर और दं०प्र०सं० की धारा 406 के तहत देश में कहीं भी मामले के हस्तांतरण की मांग कर सकता है। निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच या मुकदमा न मिलने की आशंका उचित होनी चाहिए न कि काल्पनिक अनुमान और अनुमानों पर। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि दांडिक न्याय का वितरण निष्पक्ष और

वस्तुनिष्ठ रूप से और बिना किसी पूर्वाग्रह के संभव नहीं है, तो किसी भी स्थान पर किसी न्यायालय के समक्ष, उपयुक्त न्यायालय मामले को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है जहां यह महसूस करता है कि निष्पक्ष और उचित सुनवाई का आयोजन अनुकूल है। स्थानांतरण याचिका पर निर्णय करने के लिए कोई सार्वभौमिक या कठोर नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं, जिन्हें हमेशा प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। स्थानांतरण याचिका पर निर्णय लेने के लिए विचारण में पेश किए जाने वाले गवाहों सहित पक्षकारों की सुविधा भी एक प्रासंगिक विचार है। पक्षकारों की सुविधा का मतलब केवल याचिकाकर्ताओं की सुविधा से नहीं है, जिन्होंने आशंका की गलत धारणाओं पर न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। स्थानांतरण के उद्देश्यों के लिए सुविधा का अर्थ है अभियोजन, अन्य आरोपियों, गवाहों और समाज के बड़े हित की सुविधा।

(vi) **के.पी. तिवारी (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है:-

"यह भी याद रखना होगा कि निचले न्यायिक अधिकारी ज्यादातर एक आवेशित वातावरण में काम करते हैं और लगातार मनोवैज्ञानिक दबाव में रहते हैं, जिसमें सभी प्रतियोगी और उनके अधिवक्ता लगभग अपनी गर्दन नीचे कर लेते हैं अधिक सही ढंग से उनके नथुने तक। उनके पास उच्च न्यायालयों के अलग माहौल का लाभ नहीं है कि वे ठंडे दिमाग से सोचें और धैर्यपूर्वक निर्णय लें। इसलिए हर गलती चाहे वह कितनी भी गंभीर लगे, उसके लिए अनुचित मकसद को जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए।"

(vii) **के. अंबाजगन (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया थाः-

30. स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अनिवार्य है। यह घिसा-पिटा कानून है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि होते हुए दिखना भी चाहिए। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है और पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं है, तो न्यायिक निष्पक्षता और आपराधिक न्याय प्रणाली दांव पर होगी और व्यवस्था में जनता के विश्वास को हिला देगी और कानून का शासन हाय होगा। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ऐसे मामले में सवाल यह नहीं है कि याचिकाकर्ता वास्तव में पक्षपाती है या नहीं, बल्कि सवाल यह है कि क्या परिस्थितियां ऐसी हैं कि याचिकाकर्ता के मन में एक उचित आशंका है।"

(viii) **जाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि निष्पक्ष विचारण का अर्थ स्पष्ट रूप से एक निष्पक्ष न्यायाधीश, एक निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति का वातावरण होगा। निष्पक्ष विचारण का अर्थ उस विधारण से होता है, जिसमें अभियुक्त, गवाहों के पक्ष या विपक्ष में पक्षपात या पूर्वाग्रह या पक्षपात या विचारण का विचारण किया जा रहा कारण समाप्त हो जाता है।

(ix) **कैप्टन अमरिन्दर सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 406

के अधीन अधिमान्य दो स्थानांतरण आवेदनौ पर इस आधार पर विचार करते हुए कि राज्य सरकार में परिवर्तन के साथ, नए मुख्यमंत्री के प्रभाव के साथ-साथ लोक अभियोजक द्वारा रुचि न लेने के कारण विचारण को झटका लगा था, पैरा 18, 19 और 20 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है-

"18. एक आपराधिक मामले के हस्तांतरण के लिए, पक्षकार की ओर से एक उचित आशंका होनी चाहिए कि न्याय नहीं किया जाएगा। यह न्याय प्रशासन के सिद्धांतों में से एक है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होते हुए दिखना भी चाहिए। दूसरी ओर, केवल यह आरोप लगाना पर्याप्त नहीं है कि किसी मामले में न्याय नहीं होने की आशंका है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय को यह भी देखना होगा कि कथित आशंका उचित है या नहीं। आशंका पर न केवल विचार किया जाना चाहिए बल्कि न्यायालय को एक उचित आशंका के रूप में पेश होना चाहिए।

19. निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली अनिवार्यता है। आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास गंभीर रूप से कम हो जाएगा, तो पीड़ित पक्ष धारा 407 के तहत राज्य के भीतर और धारा 406 दं०प्र०सं० के तहत देश में कहीं भी मामले के हस्तांतरण की मांग कर सकता है।

20. हालांकि, निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच या सुनवाई नहीं मिलने की आशंका उचित होनी चाहिए न कि काल्पनिक होने की। स्वतंत्र और निष्पक्ष विचारण संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत अनिवार्य है। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं है और यदि यह पक्षपातपूर्ण है, तो न्यायिक निष्पक्षता और आपराधिक न्याय प्रणाली दांव पर होगी, जिससे व्यवस्था में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा। आशंका न्यायालय को उचित लगनी चाहिए।"

(x) **नाहर सिंह यादव और अन्य (पूर्वोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"इस प्रकार, हालांकि यह तय करने के लिए कोई कठोर और अनम्य नियम या परीक्षण निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि दं०प्र०सं० की धारा 406 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं, यह उक्त धारा की उप-धाराओं (2) और (3) के नंगे पढ़ने और इस न्यायालय के निर्णयों के विश्लेषण से प्रकट होता है कि मुकदमे के हस्तांतरण का आदेश नियमित मामले के रूप में या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इच्छुक पक्ष ने परीक्षण के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। इस शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण स्थितियों में किया जाना चाहिए, जहां परीक्षण को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। विद्यारण के हस्तांतरण के लिए प्रार्थना पत्र पर विचार करते समय

कुछ व्यापक कारकों को ध्यान में रखा जा सकता है-

(i) जब ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य तंत्र या अभियोजन अभियुक्त के साथ मिलकर काम कर रहा है, और अभियोजन पक्ष के ठुलमुल रवैये के कारण न्याय की हत्या की संभावना है.

(ii) जब यह दिखाने के लिए सामग्री हो कि अभियुक्त अभियोजन पक्ष के गवाहों को प्रभावित कर सकता है या शिकायतकर्ता को शारीरिक नुकसान पहुंचा सकता है,

(iii) सरकारी और गैर-सरकारी गवाहों की यात्रा और अन्य खर्चा का भुगतान करने में राज्य राजकोष द्वारा वहन किए जाने वाले भार के अलावा अभियुक्त, शिकायतकर्ता/अभियोजन पक्ष और गवाहों को होने वाली संभावित असुविधा और कठिनाइयां होंगी.

(iv) किए गए आरोपी और अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध की प्रकृति के कारण निष्पक्ष और निष्पक्ष सुनवाई आयोजित करने में असमर्थता के कुछ प्रमाण दर्शाने वाला साम्प्रदायिक रूप से आरोपित वातावरण, और

(v) कुछ सामग्री का अस्तित्व जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुछ व्यक्ति इतने शत्रुतापूर्ण हैं कि वे न्याय के मार्ग में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप कर रहे हैं या हस्तक्षेप करने की संभावना है।"

(xi) **लालू प्रसाद (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"20. न्यायपालिका की स्वतंत्रता संविधान की मूल विशेषता है। यह मांग करता है कि एक न्यायाधीश जो मुकदमे की अध्यक्षता करता है, लोक अभियोजक जो राज्य की ओर से मामला प्रस्तुत करता है और अधिवक्ता बनाम एमिकस क्यूरी जो अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करता है, को अभियुक्त के व्यक्तित्व या राज्य के मामलों का प्रबंधन करने वालों से प्रभावित हुए बिना न्याय के जनहित में सद्भाव में मिलकर काम करना चाहिए। उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके काम से न्याय और न्यायशास्त्र के बीच संघर्ष पैदा न हो। एक व्यक्ति, चाहे वह न्यायिक अधिकारी हो या लोक अभियोजक या आरोपी का बचाव करने वाला अधिवक्ता हो, उसे हमेशा जिम्मेदारी की पूरी भावना के साथ अपने उच्च पद की गरिमा को बनाए रखना चाहिए और यह देखना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में इसके मूल्य का अवमूल्यन न हो। जनहित की मांग है कि मुकदमे की सुनवाई निष्पक्ष तरीके से हो और न्याय प्रशासन निष्पक्ष और स्वतंत्र हो।"

(xii) **अमित अग्रवाल (पूर्वोक्त)** के मामले में इस न्यायालय ने ऐसे मामले में स्थानांतरण के दायरे पर विचार करते हुए कहा है किः-

"24. केवल पक्षकार द्वारा यह संदेह कि उसे न्याय नहीं मिलेगा, तबादले को उचित नहीं ठहराएगा। इस आशय की उचित आशंका होनी चाहिए। एक न्यायाधीश द्वारा वैध रूप से किए गए न्यायिक आदेश को मामले के हस्तांतरण के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है। संभावित आशंका का अनुमान लगाना किसी भी मामले को एक मामले से दूसरे मामले में

स्थानांतरित करने का आधार नहीं होना चाहिए और न ही होना चाहिए। यह केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में होता है, जब इस तरह के आधार लिए जाते हैं, तो न्यायालय को किसी मामले को स्थानांतरित करने के लिए मौजूद कारणों को खोजना चाहिए, अन्यथा नहीं। (राजकोट कैंसर सोसायटी बनाम नगर निगम, राजकोट, एआईआर 1988 गुजरात 63; पशुपाल फकरुद्दीन और एन.आर. बनाम जामिया मस्जिद और अन्य, एआईआर 2003 एपी 448; और, नंदिनी चटर्जी बनाम अरुप हरि चटर्जी, एआईआर 2001 कलकता 26)

25. जहां न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के संबंध में सत्यनिष्ठा या प्रभाव आदि के संबंध में आरोप लगाते हुए स्थानांतरण की मांग की जाती है, तो इस न्यायालय को स्थानांतरण का कोई आदेश पारित करने से पहले बहुत सावधान रहना होगा।

26. उन मामलों में जहां लापरवाह झूठे आरोप कुछ अनुकूल आदेश प्राप्त करने के लिए किए जाने का प्रयास किया जाता है, या तो स्थानांतरण प्रार्थना पत्र में, या अन्यथा, न्यायालय का दृष्टिकोण यह पता लगाने के लिए सख्त और सतर्क होना चाहिए कि क्या आरोप प्रामाणिक है, और, यदि उनके चेहरे पर सच माना जाता है, तो परिस्थितियों की संपूर्णता में, उन परिस्थितियों में सामान्य विवेक के किसी भी व्यक्ति द्वारा सही माना जा सकता है। यदि आरोप स्पष्ट रूप से झूठे हैं, तो सख्त दृष्टिकोण आज की मांग है ताकि न केवल कानून की अदालतों में अनुशासन बनाए रखा जा सके बल्कि न्यायिक अधिकारियों की रक्षा की जा सके और उनके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और न्याय की संस्था की महिमा को बनाए रखा जा सके।"

(xii) उच्चतम न्यायालय के पिछले निर्णयों पर विचार करते हुए उस्मांगनी आदमभाई वहोरा (पूर्वोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है-

"तात्कालिक रूप से स्थानांतरण की मांग करना अकल्पनीय है। स्थानांतरण का आदेश नेमी मामले के रूप में या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि किसी इच्छुक पक्ष ने मुकदमे के उचित संचालन के बारे में कुछ आशंका व्यक्त की है। शक्ति का प्रयोग सावधानी से और असाधारण स्थितियों में किया जाना चाहिए, जहां परीक्षण को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। एक वास्तविक आशंका होनी चाहिए कि न्याय की हत्या होगी।"

11. विभिन्न निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून और निर्धारित दिशानिर्देशों के आधार पर, उत्पन्न होने वाले कानूनी परिदृश्य को संक्षेप में निम्नानुसार किया जा सकता है:- संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई अनिश्चित। न्याय प्रदान करने में कानून का यह भी स्थापित सिद्धांत है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा होते हुए दिखना भी चाहिए। यदि आपराधिक मुकदमा स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं होता है, तो आपराधिक न्याय प्रणाली दांव पर होगी और व्यवस्था और कानून के शासन में जनता का

विश्वास डगमगा जाएगा। निष्पक्ष सुनवाई का अर्थ है निष्पक्ष न्यायाधीश के समक्ष विचारण, निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति का माहौल। निष्पक्ष सुनवाई का मतलब यह भी है कि पक्षकार या गवाह के पक्ष या विपक्ष में पूर्वाग्रह या पूर्वाग्रह।

12. द0प्र0सं0 की धारा 407 के तहत जब यह दिखाया जाता है कि मुकदमे की निष्पक्षता में जनता का विश्वास कम हो जाएगा, तो कोई भी पक्ष राज्य के भीतर मामले को स्थानांतरित करने की मांग कर सकता है। इस प्रकार, न्यायालय मामले को दूसरी न्यायालय में स्थानांतरित कर सकती है जहां उसे लगता है कि स्थानांतरण याचिका पर फैसला करने के लिए निष्पक्ष और उचित सुनवाई अनुकूल है, न्यायालय को पक्षकारों और गवाहों की सुविधा को भी देखना होगा यदि प्रासंगिक विचार भी हो। पक्षकारों की सुविधा आशंका का एक गलत प्रस्ताव है जहां समाज के व्यापक हित में न केवल अभियोजन, अभियुक्त और गवाह की सुविधा है। यह आशंका कि आवेदक न्याय और सुविधा और कानूनी सेवाओं की उपलब्धता के लक्ष्यों को पूरा नहीं करेगा, न्यायालय स्थानांतरण की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है। यह न्यायशास्त्र का कार्डिनल सिद्धांत है कि हालांकि परिस्थितियां असंख्य हो सकती हैं और मामले में भिन्न हो सकती है। न्यायालय को टचस्टोन पर स्थानांतरण के लिए याचिकाकर्ता के आधार का परीक्षण करना होगा, इस नियम को ध्यान में रखते हुए कि आम तौर पर शिकायतकर्ता को अधिकार क्षेत्र वाले किसी भी न्यायालय को चुनने का अधिकार है, यहां तक कि न्याय की प्रक्रिया को पक्षकारों को परेशान नहीं करना चाहिए और उस कोण से न्यायालय आंक सकती है। न्याय प्राप्त न होने की आशंका मजबूत सामग्री के आधार पर उचित आशंका होनी चाहिए और काल्पनिक नहीं होनी चाहिए, केवल अस्पष्ट आरोप लगाना कि आवेदक के मन में आशंका है कि किसी दिए गए मामले में और न ही अस्पष्ट बहाना या देरी की रणनीति के लिए न्याय नहीं दिया जाएगा ।

13. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के आधार, तथ्यों और परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए, यह सामने आता है कि वर्तमान में आवेदक जिला मऊ में रहता है जबकि विपक्षी संख्या 2 (पति) जिला आजमगढ़ का निवासी है। यह विवादित नहीं है कि आवेदक द्वारा दायर किए गए दोनों मामले जिला आजमगढ़ में लंबित हैं।

14. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह एक गरीब महिला है जिसके पास आय का कोई स्रोत नहीं है और वह अपने पिता की आय पर निर्भर है, जो परिवार के अन्य सदस्यों की देयता भी वहन करता है। आवेदक की खुद एक नाबालिग बेटी है जिसकी उम्र करीब चार साल है। आवेदक का पिता एक वृद्ध व्यक्ति है जो आवेदक के साथ हर तारीख को न्यायालय में उपस्थित होने में असमर्थ है और उसकी अनुपस्थिति में, विपक्षी संख्या 2 से 6 उसे नियमित रूप से धमकी देता है, जब वह अकेले न्यायालय में उपस्थित होने जाती है। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 2 से 6 के पिछले आचरण को देखते हुए आवेदक का

जीवन सुरक्षित नहीं है। विरोधी पक्ष क्रमांक 2 से 6 व उनके परिजनों के डर से वह जिला आजमगढ़ में मुकदमे का सामना नहीं कर सकी। इन परिस्थितियों में, विरोधी पक्षकार संख्या 2 से 6 के पिछले आचरण को ध्यान में रखते हुए उसके जीवन पर खतरा है। विरोधी पक्ष संख्या 2 से 6 के असामाजिक तत्वों के साथ अच्छे संबंध हैं और वे आवेदक से बदला लेने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं यदि वह प्रश्नगत मामले की पैरवी करने के लिए आजमगढ़ जाती है। वह मामले की पैरवी का खर्च भी वहन नहीं कर पा रही है।

15. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के आलोक में पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्तागण की प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, मैंने पाया कि आवेदक ने धारा 498-ए, 323, 504, 506, 120-बी भा0दं० सं० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम, पुलिस स्टेशन ताहबरपुर, जिला आजमगढ़ के समक्ष शिकायत दर्ज की है. आजमगढ़ जिसमें विरोधी पक्ष क्रमांक 2 से 6 को तलब किया गया था। अब उन्होंने भरण-पोषण भता की वसूली के लिए धारा 128 दं०प्र०सं० के तहत एक प्रार्थना पत्र भी शुरू किया है। आवेदक के पास स्वतंत्र रूप से आय का कोई सोल नहीं है। उसका चार साल का बच्चा है जो उस पर निर्भर है। वह पूरी तरह से अपने पिता पर निर्भर है जो वर्तमान में जिला मऊ में रह रहे हैं। हालांकि उसने अपने पिता की आय का खुलासा नहीं किया, फिर भी यह विपक्षी संख्या 2 का कर्तव्य है कि आवेदक और उसके बच्चे को बनाए रखा जाए। यह तर्क दिया गया है कि विपक्षी संख्या 2 ने केवल 25,000/- रुपये का भुगतान किया है और 74,000/- रुपये अभी भी भरण- पोषण के लिए बकाया है। इन परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि आवेदक के पास खुद को, अपनी नाबालिग बेटी को बनाए रखने और मुकदमेबाजी के खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त आय नहीं है। यह स्वयंसिद्ध है कि उच्च सूजन के वर्तमान दिनों में, पर्याप्त आय के बिना जीवन जीना मुश्किल है। इस प्रकार, वह दोनों पक्षों के बीच इस वैवाहिक विवाद के कारण अपने माता-पिता के घर में रह रही है। उन्हें दोनों मामलों में आजमगढ़ में कार्यवाही में भाग लेना होगा। यह प्रस्तुत किया गया है कि पिता को केवल उसके और उसकी बेटी को देखना है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वह एक बूढ़ा व्यक्ति है और आजमगढ़ में तय की गई प्रत्येक तारीख पर उसके साथ रहने में असमर्थ है। यह आवेदक को आजमगढ़ में न्यायालय जाने के लिए मजबूर करता है। न्यायालय में उसके अकेलेपन के अवसर को जब्त करते हुए, विपक्षी संख्या 2 गलत तरीके से संभाल सकता है और चोट पहुंचा सकता है और वह उसके जीवन को भी डरा सकता है। हालांकि इन आधारों को साबित करने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं है, फिर भी स्थानांतरण प्रार्थना पत्र के समर्थन में दायर हलफनामे में इन आरोपों की पुष्टि होती है। इसके अलावा, जिला मऊ और आजमगढ़ एक दूसरे के पास स्थित हैं। इसलिए मामलों को आसानी से मऊ में देखा जा सकता है। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में आवेदक द्वारा व्यक्त की गई आशंका उचित है। उपरोक्त तथ्यथर्या और कानूनी परिदृश्य के मद्देनजर, मेरा विचार है कि यह न्याय के हित में है कि तत्काल

स्थानांतरण प्रार्थना पत्र की अनुमति दी जानी चाहिए।

16. परिणामस्वरूप, स्थानांतरण प्रार्थना पत्र की **अनुमति** दी जाती है। धारा 498-ए, 323, 504, 506, 120-बी भा०दं०सं० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम, पुलिस स्टेशन ताहवरपुर, जिला आजमगढ़ के तहत वाद संख्या 2554/2019 (सोनम राय बनाम राकेश राय व अन्य) को न्यायिक मगस्ट्रेट, आजमगढ़ से जिला मऊ में सक्षम न्यायालय में तीन महीने के भीतर कानून के अनुसार निस्तारण के लिए स्थानांतरित किया जाए।

17. आदेश की प्रति न्यायिक मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ को आवश्यक कार्रवाई और अनुपालन के लिए प्रेषित की जाए।

(2023) 5 ILRA 1065

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 2268/2023

हरिश्चंद्र यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री पवन कुमार राव

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री आशीष कुमार गुप्ता

आपराधिक कानून - यू.पी. गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970- धारा 3 - गुंडा का निष्कासन - आयुक्त के अपीलीय आदेश को चुनौती दी गई - याचिकाकर्ता ने राजस्व अभिलेखों में दर्ज गांव सभा की सार्वजनिक उपयोगिता वाली भूमि से बेदखल करने के लिए भूमि हड़पने वालों के खिलाफ शिकायत की - जांच शुरू की गई, राजस्व अधिकारियों ने भूमि को सार्वजनिक उपयोगिता वाली भूमि पाया - जांच से व्यथित होकर, भूमि हड़पने वालों ने केवल परेशान करने के लिए याचिकाकर्ता सहित उसके बेटे और दोस्तों के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई - जिला मजिस्ट्रेट ने नियमित तरीके से निष्कासन का आदेश पारित किया - अपील खारिज कर दी गई - आयोजित, छह महीने के लिए निष्कासन आदेश केवल दो आपराधिक मामलों के आधार पर पारित किया गया है, 'गुंडा' शब्द की परिभाषा में आदतन शब्द का प्रयोग किया गया है - जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई सबूत नहीं है कि याचिकाकर्ता अपराध करने का आदी था या किसी गिरोह का सदस्य या नेता था जो आपराधिक गतिविधियों में शामिल था - एक या दो अपराधों के आधार पर याचिकाकर्ता को गुंडा नहीं माना जा सकता, आदेश रद्द कर दिया गया। (पैरा 8,9,16)

रिट याचिकाएँ स्वीकृत। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

इमरान उर्फ अब्दुल कुद्दूस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7111/1999, (पैरा 13 से 15)

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

सत्यापित

1. वाद पुकारा गया।
2. श्री आशीष कुमार गुप्ता, अधिवक्ता ने पहले ही शिकायतकर्ता अखिलेश कुमार पाठक की ओर से कैविएट दायर किया है।
3. शुरुआत में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री पवन कुमार राव ने प्रस्तुत किया कि अखिलेश कुमार पाठक के पास इस रिट याचिका का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं है।
4. श्री आशीष कुमार गुप्ता, अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि उसे अपने कैविएट आवेदन को वापस लेने की अनुमति दी जाये।
5. प्रार्थना की अनुमति है। अब, रिट याचिका पर गुण-दोष के आधार पर सुनवाई किए जाने का प्रस्ताव है।
6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री पवन कुमार राव और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुन गया।
7. प्रस्तुत याचिका निम्नलिखित राहत के लिए दायर की गई है:

"उत्तर प्रदेश नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 6 के तहत, थाना-धनघाटा, जिला-संत कबीर नगर और प्रतिपक्षी संख्या-3/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.11.2022 के आदेश दिनांक 11.11.2022 के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2/आयुक्त, बस्ती डिवीजन, बस्ती द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 19.1.2023, संत कबीर नगर केस संख्या 480 वर्ष 2022 में, यूपी कंट्रोल ऑफ एक्ट, 1970 की धारा 3/4 के तहत, थाना-धनघाटा, जिल्लाः संत कबीर नगर पर इस माननीय न्यायालय के समक्ष वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान के प्रभाव और संचालन पर रोक लगाने के लिए अन्यया याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति और चोट लगेगी।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता समाज का प्रसिद्ध व्यक्ति है और वह गांव धनघटा का तत्कालीन ग्राम प्रधान भी था। याचिकाकर्ता की प्रतिष्ठा समाज में अच्छी और स्पष्ट है और उसकी पत्नी भी वर्तमान ग्राम प्रधान हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि 16.5.2022 से पहले याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि भूमि हडपने वाले (भूमफिया), अर्थात् श्री भाल चंद पाठक, शिवब्रत पाठक, अखिलेश पाठक, राकेश पाठक, सिंटू पीयूष पाठक और सुभाष पाठक, जो गांव धनघटा, थाना-धनघाटा, जिलाः संत कबीर नगर के निवासी हैं, ने सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अतिक्रमण किया है। ग्राम मिठाना, सिठाना, थाना- धनघाटा, जनपद संत कबीर नगर, जो धनघटा से सटा हुआ ग्राम है एवं धोखाधड़ी करके उक्त जनोपयोगी भूमि पर शंकरमनिया भूमिधर के रूप में दाखिल करवाया है, जो उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 के अन्तर्गत अनुमेय नहीं है। इस संबंध में याचिकाकर्ता ने संबंधित अधिकारियों के साथ-साथ मुख्यमंत्री पोर्टल के समक्ष भूमि हडपने वालों

(भूमफिया) के खिलाफ कई शिकायतें कीं, जिनमें श्री भाल चंद पाठक, शिवव्रत पाठक, अखिलेश पाठक, राकेश पाठक, सिंदू@ पीयूष पाठक और सुभाष पाठक, जो गांव धनघटा, थाना-धनघाटा, जिलाः संत कबीर नगर के निवासी हैं, ने उक्त व्यक्तियों को 177 क्षेत्र 0.251 हेक्टेयर और 178 क्षेत्र 0.051 हेक्टेयर से बेदखल करने की प्रार्थना की। राजस्व, ग्राम मिठाना, सिठाना, थाना-धनघाटा, जिलाः संत कबीर नगर, जो धनघटा के समीपवर्ती गांव है और उक्त ग्राम सभा की उक्त सार्वजनिक उपयोगिता भूमि को बहाल किया गया था जैसा कि पहले राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था।

9. अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा की गई उपरोक्त शिकायत के अनुपालन में, प्रतिपक्षी अधिकारियों ने पूर्वोक्त मामले में कथित भूमि हड़पने वालों के खिलाफ जांच शुरू कर दी है और इसके अनुसरण में राजस्व अधिकारी ने 9.6.2022, 30.6.2022, 12.7.2022 और 19.7.2022 को अकरपर्तर 45 (?) के आधार पर रिपोर्ट प्रस्तुत की है और उसमें कहा गया है कि उपरोक्त भूमि सार्वजनिक उपयोगिता की भूमि है, इसलिए उक्त डिग्री कॉलेज के नाम को हटाने की सिफारिश की और खलीहान और खड्डा के रूप में दर्ज किया। इसके बाद, उक्त भूमि हड़पने वाले याचिकाकर्ता से नाराज हो गए और उक्त जांच से व्यथित होकर भूमि हड़पने वालों ने केवल याचिकाकर्ता को परेशान करने के लिए उसके बेटे और अन्य दोस्तों सहित उसके खिलाफ झूठी और मनगढ़ंत कहानी पर प्राथमिकी दर्ज की है। याचिकाकर्ता के खिलाफ निम्नलिखित दो मामले दर्ज किए गए हैं जो नीचे दिए गए हैं:

(i) अपराध संख्या-193 वर्ष 2022, धारा 147, 323, 352, 506 भ०द०वि० के तहत, थाना-धनघाटा, जिलाः संत कबीर नगर, जिसमें याचिकाकर्ता को संबंधित अदालत द्वारा जमानत दी गई है।

(ii) अपराध संख्या-200 वर्ष 2022, धारा 147, 341, 504, 506 भ०द०वि०, थाना-धनघाटा, जिलाः संत कबीर नगर के तहत, जिसमें याचिकाकर्ता को संबंधित अदालत द्वारा जमानत पर भी रिहा कर दिया गया है।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जिला मजिस्ट्रेट, संत कबीर नगर ने निर्वासन का आदेश पारित करते समय याचिकाकर्ता की आपत्ति पर विचार नहीं किया है कि वह अपराध करने का आदी नहीं है और वह 'गुंडा' के दायरे में नहीं आता है। जिलाधिकारी ने नियमित तरीके से निर्वासन का आदेश पारित किया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आयुक्त, बस्ती डिवीजन, बस्ती ने भी अपने न्यायिक दिमाग का इस्तेमाल नहीं किया था और याचिकाकर्ता द्वारा

दायर की गई अपील को खारिज कर दिया है। दोनों प्राधिकरण इस बात पर विचार करने में विफल रहे हैं कि याचिकाकर्ता अपराध करने में आदी नहीं है और वह 'गुंडा' के दायरे में नहीं आता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट इस बात पर विचार करने में विफल रहे हैं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल दो मामले दर्ज किए गए थे जो भूमि हडपने वालों द्वारा केवल याचिकाकर्ता द्वारा की गई उक्त शिकायत के कारण याचिकाकर्ता को परेशान करने के लिए दर्ज किए गए थे। केवल दो मामलों के आधार पर याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 3 के अर्थ के भीतर नहीं ठहराया जा सकता है। दोनों अधिकारियों यानी जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष कि याचिकाकर्ता गुंडा है, अवैध है और रद्द करने योग्य है। करने योग्य है।

11. अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक आदतन अपराधी है। कोई भी याचिकाकर्ता से संबंधित मामलों में गवाही देने के लिए आगे आने की हिम्मत नहीं करता है और याचिकाकर्ता के क्षेत्र में आतंक है। इसलिए याचिका खारिज की जा सकती है।

12. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अधिनियम की धारा 3 के तहत निर्वासन आदेश पारित किया गया है। अधिनियम की धारा 3 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

3- गुंडा का निर्वासन आदि। (1) जहाँ वह जिला मजिस्ट्रेट को प्रतीत होता है-

(क) कि कोई व्यक्ति गुंडा है; और

(ख) (i) कि जिले या उसके किसी भाग में उसकी गतिविधियों या कृत्यों से व्यक्तियों या संपति को भय, खतरा या क्षति कारित हो रही है या परिकलित की गई है; नहीं तो

[(ii) यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि वह धारा 2 के खंड (ख) के उपखंड (i) से

(iii) में निर्दिष्ट अपराध के कमीशन में जिले या उसके किसी भाग में लगे हुए हैं या संलग्न होने वाले हैं, या ऐसे किसी अपराध के दुष्प्रेरण में; और]

(ग) जो गवाह अपने व्यक्ति या संपति की सुरक्षा के संबंध में अपनी ओर से के आशंका के व कारण उसके विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए आगे आने को तैयार नहीं हैं।

जिला मजिस्ट्रेट लिखित रूप में नोटिस द्वारा, उसे खंड (ए), (बी) और (सी) के संबंध में उसके खिलाफ आरोपों की सामान्य प्रकृति के बारे में सूचित करेगा और उन्हें उन उनके बारे में स्पष्टीकरण देने का उचित अवसर देगा।

(2) जिस व्यक्ति के विरुद्ध इस धारा के अधीन आदेश दिया जाना प्रस्तावित है, उसे अपनी पसंद के वकील से परामर्श करने और बचाव करने का अधिकार होगा और उसे स्वयं की परीक्षा करने का, यदि वह ऐसा चाहे तो,

युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा और किसी अन्य साक्षी की परीक्षा करने का, जिसे वह अपने स्पष्टीकरण के समर्थन में प्रस्तुत करना चाहे, जब तक कि लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए जिला मजिस्ट्रेट की राय नहीं है कि अनुरोध परेशान करने या देरी के उद्देश्य से किया गया है।

(3) इसके बाद जिला मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाने पर कि उपधारा (1) के खंड (क), (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट शर्तें विद्यमान हैं, लिखित आदेश द्वारा-

(क) उसे निदेश दे सकेगा कि वह अपनी स्थानीय अधिकारिता या ऐसे क्षेत्र की सीमाओं के भीतर क्षेत्र से बाहर और किसी जिले या जिलों या उसके किसी भाग को, जो उससे सटे हुए है, ऐसे मार्ग, यदि कोई हो, और ऐसे समय के भीतर जो आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए और उक्त क्षेत्र और ऐसे निकटस्थ जिले या जिलों या उसके भाग में प्रवेश करने से रोके, यथास्थिति, जिसमें से उसे निदेश दिया गया था कि वह ऐसी अवधि की समाप्ति तक जो उक्त आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, छह मास से अनधिक की समाप्ति तक स्वयं को दूर रखे।

(ख) (i) ऐसे व्यक्ति से अपेक्षा कर सकेगा कि वह अपनी गतिविधियों को सूचित करे, या स्वयं की रिपोर्ट करे, या दोनों करे, ऐसे समय में और ऐसे प्राधिकारी या व्यक्ति को, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए;

(ii) उसके द्वारा या किसी ऐसी वस्तु के कब्जे या उपयोग को प्रतिषिद्ध या प्रतिबन्धित करेगा जो आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए;

(ii) उसे अन्यथा निदेश देगा कि वह ऐसी रीति से, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसी अवधि की समाप्ति तक, जो आदेश में विनिर्दिष्ट छह मास से अनधिक हो, आचरण करे।

13. अधिनियम की धारा 3 ने जिला मजिस्ट्रेट को निर्वासन का आदेश पारित करने का अधिकार दिया है, यदि वह संतुष्ट है कि कोई व्यक्ति धारा 2 के खंड बी के उप खंड (i) से (iii) में निर्दिष्ट अपराध के कमीशन में जिले या उसके किसी हिस्से में संलग्न है या संलग्न होने वाला है।

14. 'गुंडा' शब्द को अधिनियम की धारा 2 के उपखंड ख में परिभाषित किया गया है जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया हैः-

"2 (ख) "गुंडा" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो-

(i) या तो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में, भारतीय दंड संहिता की धारा 153 या धारा 153-ख या धारा 294 या उक्त संहिता के अध्याय XV, या अध्याय XVI, अध्याय XVII या अध्याय XXII के तहत आदतन दंडनीय अपराध करता है या करने का प्रयास करता है; नहीं तो महिलाओं और लड़कियों में अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है; नहीं तो

(iii) उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 या सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 या शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 25, धारा

27 या धारा 29 के तहत दंडनीय अपराध के लिए कम से कम तीन बार दोषी ठहराया गया हो; नहीं तो

(iv) आम तौर पर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है जो समुदाय के लिए निराशाजनक और खतरनाक है; नहीं तो

(v) आदतन अभद्र टिप्पणियां करता है या महिलाओं या लड़कियों को छेड़ता है; नहीं तो

(vi) एक दलाल है;"

15. अधिनियम की धारा 2 (बी) के अवलोकन से पता चलता है कि गुंडा का अर्थ है एक व्यक्ति जो या तो स्वयं गुंडा है या किसी गिरोह का सदस्य या नेता है, आदतन धारा 153 या धारा 153-बी या भ०द०वि० की धारा 294 या अध्याय XV के तहत दंडनीय अपराध करता है या करने का प्रयास करता है, या भारतीय पैनल कोड के अध्याय XVI, अध्याय XVII या अध्याय XXII उसे करने के लिए उकसाता है।

16. आक्षेपित आदेशों के अबलोकन से यह स्पष्ट है कि निर्वासन आदेश केवल दो मामलों के आधार पर पारित किया गया है, जबकि आदतन शब्द का उपयोग 'गुंडा' शब्द की परिभाषा में किया गया है। जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई सबूत या सामग्री नहीं थी कि याचिकाकर्ता अपराध करने का आदी था या आपराधिक गतिविधियों में शामिल किसी भी गिरोह का सदस्य या नेता था। अभ्यस्त शब्द का अर्थ है कि आदत से वह इस तरह के अपराधों के कमीशन में शामिल था। एक या दो अपराधों के आधार पर याचिकाकर्ता को नहीं माना जा सकता है। 'गुंडा' शब्द पर इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा इमरान उर्फ अब्दुल कुद्दूस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-7111 वर्ष 1999 के मामले में विचार किया गया है। 'गुंडा' और 'आदत' शब्दों पर विचार किया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 13, 14, 15 को यहां उद्धृत किया गया है:-

"13. प्रथम दृष्टया, किसी व्यक्ति को 'गुंडा' कहा जाता है यदि वह एक आदतन अपराधी है। अधिनियम की धारा 2 (बी) के प्रावधान लगभग बिहार अपराध निवारण अधिनियम, 1981 की धारा 2 (डी) में होने वाली अभिव्यक्ति 'असामाजिक तत्व' के समान है। अभिव्यक्ति 'असामाजिक तत्व' के संदर्भ में 'आदतन प्रतिबद्ध' अर्थ की व्याख्या विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1984) 3 एस.सी.सी.-14: ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1334 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त अभिव्यक्ति के लिए रखा गया अर्थ अधिनियम में प्रयुक्त अभिव्यक्ति पर पूरी तरह से लागू होगा। बहुमत का दृष्टिकोण यह था कि 'आदतन' शब्द का अर्थ 'बार-बार' या 'लगातार' है। इसका तात्पर्य निरंतरता के एक धागे से है जो समान दोहराव वाले कृत्यों को एक साथ जोड़ता है। आदत के अनुमान को सही ठहराने के लिए बार-बार, लगातार और समान लेकिन अलग- थलग, व्यक्तिगत और असमान कार्य आवश्यक है। यह उक्त उप-खंडों में से प्रत्येक में संदर्भित एक ही प्रकार के

कृत्यों या चूक के बार-बार होने या इसी तरह के कृत्यों या चूक के योग को दर्शाता है। यहां तक कि विजय नारायण के मामले (उपरोक्त) में जो अल्पमत का दृष्टिकोण लिया गया था, वह यह था कि 'आदतन' शब्द का अर्थ है 'आदत के बल से। यह मन के आपराधिक स्वभाव के साथ एक आपराधिक वृत्ति वाले व्यक्ति में निहित या अव्यक्त आदत का बल है, जो एक व्यक्ति को सामान्य रूप से समाज के लिए खतरा पैदा करने वाले अपराध का जीवन जीने का आदी बनाता है। यदि आपराधिक प्रवृत्ति वाला कोई व्यक्ति लगातार या बार-बार संहिता के निर्दिष्ट अध्यायों के तहत दंडनीय अपराधों करता है या करने का प्रयास करता है, तो उसे 'असामाजिक तत्व' माना जाना चाहिए। इस प्रकार विजय नारायण के मामले (उपरोक्त) के निर्णय से प्रवाहित होने वाली अभिव्यक्ति 'आदतन' के संबंध में दो विचार हैं। बहुमत 'आदतन' शब्द को 'दोहराव' को दर्शाने के रूप में एक प्रतिबंधित अर्थ देने के लिए इच्छुक था और यह कि एक ही कार्य के आधार पर व्यक्ति की आदत बनाने के लिए नहीं कहा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस कार्य की शिकायत की गई है उसे एक से अधिक बार दोहराया जाना चाहिए और उसकी प्रकृति में निहित होना चाहिए। अल्पमत का दृष्टिकोण यह है कि आदतन अपराधी में एक व्यक्ति जो आदत या आंतरिक स्वभाव के बल पर निहित या उसमें निहित या अव्यक्त है, अपराध का जीवन जीने का आदी हो गया है। सरल आषा में, अल्पमत का दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था कि 'आदतन' शब्द का अर्थ है 'आदत के बल से। अल्पमत का दृष्टिकोण स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश, चौथे संस्करण खंड 11-1204 में दिए गए अर्थ पर आधारित है आदतन कुछ प्रवृति की निरंतरता और स्थायित्व की आवश्यकता होती है, कुछ ऐसा जो एक प्रवृत्ति में विकसित हुआ है, जो दिन-प्रतिदिन मौजूद है। इस प्रकार, 'अभ्यस्त' शब्द कुछ हद तक आवृत्ति और निरंतरता को दर्शाता है।

14. 'आदत' शब्द का एक स्पष्ट, अच्छी तरह से समझा गया अर्थ है जो लगभग 'आदी' के समान है और इसे एकल कार्य पर लागू नहीं किया जा सकता है। जब हम किसी व्यक्ति की आदत की बात करते हैं, तो हम उसके प्रथागत आचरण को आगे बढ़ाने के लिए पसंद करते हैं, जिसे उसने लगातार दोहराने से एक प्रवृत्ति हासिल की है। बीएन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1960 ऑल 754 में यह देखा गया था कि यह कहना गलत होगा कि किसी व्यक्ति को एक ही कार्य से कुछ भी करने की आदत है। पी. रामनाथ अय्यर द्वारा लॉ लेक्सिकन एनसाइक्लोपीडिक लॉ डिक्शनरी, 1997 संस्करण में, अभिव्यक्ति 'आदत' को निरंतर, प्रथागत और एक निर्दिष्ट आदत के आदी के रूप में परिभाषित किया गया है, आदल से गठित या अधिग्रहित या परिणामित; बार-बार छार्यों द्वारा गठित बार-बार उपयोग या रिवाज। यह कहा गया है कि 'आदतन अपराधी' शब्द किसी भी व्यक्ति पर लागू हो सकता है, जिसे पहले अपराध के लिए दो बार से अधिक दोषी ठहराया गया है, सजा सुनाई गई है और जेल के लिए प्रतिबद्ध किया गया है। 'आदत' शब्द का अर्थ है एक कार्य करने में दृढ़ता, एक तथ्य, जो कई समान कृत्यों के कमीशन के साक्ष्य को जोड़कर प्रमाण देने में

सक्षम है। 'आदतन' का अर्थ बार-बार या लगातार लिया जाना चाहिए। यह अवसरों की आवृत्ति का उल्लेख नहीं करता है, बल्कि अभ्यास की अपरिवर्तनीयता को संदर्भित करता है।

15. अभिव्यक्ति 'आदतन अपराधी' दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 110 के अर्थ के भीतर 'आदतन अपराधी' के समान है। यह निवारक धारा आदतन अपराधियों से अच्छे व्यवहार के लिए सुरक्षा की अपेक्षा से संबंधित है। पूर्वोक्त धारा में 'आदतन' अभिव्यक्ति का उपयोग चरित्र की भ्रष्टता के अर्थ में किया गया है जैसा कि बार-बार दोहराव या अपराध किए जाने से स्पष्ट होता है। इसका अर्थ है किसी कार्य को करने में पुनरावृत्ति या दृढ़ता न होना, न कि स्वभाव से झुकाव, अर्थात, अतीत में समान कृों का कमीशन और जहां अवसर हो, उन्हें फिर से करने की तत्परता।

17. अधिनियम, 1970 का एकमात्र उद्देश्य नागरिकों को आदतन अपराधियों से बचाना और नागरिकों के भविष्य को सुरक्षित करना है, लेकिन इसका उपयोग बहुत संयम से और सार्वजनिक अव्यवस्था के बहुत स्पष्ट मामलों में या सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए किया जाना चाहिए और इसलिए इस अधिनियम का उपयोग निर्दोष लोगों के खिलाफ नहीं किया जाना चाहिए।

18. यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि निर्वासन का आदेश पारित करने से पहले जिला मजिस्ट्रेट को संतुष्ट होना चाहिए कि जिस व्यक्ति के खिलाफ निर्वासन आदेश पारित किया गया है, वह अपराध करने का आदी है और उसके सामने इस आशय की कई सामग्रियां हैं कि जमला में आलंक था और कोई भी उस व्यक्ति के खिलाफ सबूत/गवाही देने के लिए आगे नहीं आया है।

19. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि केवल दो आपराधिक मामलों के आधार पर, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा छह महीने के लिए निर्वासन आदेश पारित किया गया है। आयुक्त याचिकाकर्ता द्वारा अपनी अपील में लिए गए आधारों पर विचार करने में भी विफल रहे हैं और नियमित रूप से याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई अपील को खारिज कर दिया है।

20. पूर्वोक्त के समय अवलोकन पर, इस न्यायालय ने पाया कि चूंकि जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष यह मानने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं थी कि याचिकाकर्ता गुंडा है और अपराध करने का आदी है, प्रतिपक्षी संख्या-2/आयुक्त, बस्ती डिवीजन, बस्ती द्वारा पारित दिनांक 19.1.2023 के आक्षेपित आदेश और प्रतिपक्षी संख्या-3/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 11.11.2022, संत कबीर नगर कानून में बुरे हैं और रद्द किए जाने के योग्य हैं और रिट याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए।

21. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

22. प्रतिपक्षी संख्या-2/आयुक्त, बस्ती मंडल, बस्ती द्वारा पारित दिनांक 19.1.2023 और प्रतिपक्षी संख्या-3/जिला मजिस्ट्रेट, जिला-संत

कबीर नगर द्वारा पारित दिनांक 11.11.2022 के आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं।

(2023) 5 ILRA 1071

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-प्रथम,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 2683/2023

वीरेंद्र कसौधन ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री बिपिन कुमार त्रिपाठी, श्री शुभम्

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 279, 504 और 307 - एफआईआर को निरस्त करना- यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986- धारा 3 (i) - यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) नियम, 2021 - नियम 5 (2), 5 (3) - गैंग चार्ट में उल्लिखित एकल मामले के आधार पर, याचिकाकर्ता के खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधान लगाए गए हैं, गैंगस्टर अधिनियम के तहत बनाए गए उपरोक्त नियम का उल्लंघन- जिला मजिस्ट्रेट ने गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लगाने से पहले व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज नहीं की है - राज्य ने तर्क दिया कि आधार एफआईआर में चार्जशीट पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है - आयोजित, गैंगस्टर नियम, 2021 और गैंगस्टर अधिनियम के फॉर्म- I के अनुसार संतुष्टि दर्ज की गई है, जो गैंग चार्ट का प्रारूप प्रदान करता है - याचिका में गुण दोष का अभाव है और निरस्त किया जाता है।

रिट याचिकाएं निरस्त (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राम रहीस और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 2011 (1) जेआईसी

2. श्रद्धा गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 514, (पैरा 37)

3. अम्बुज पराग दुबे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2022 (4) एसीआर 3878, (पैरा 32 से 37 और 41)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला एवं माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I द्वारा प्रदत्त)

1. राज्य की ओर से दायर जवाबी हलफनामे को रिकॉर्ड में लिया जाता है।

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री बिपिन कुमार त्रिपाठी और राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रतन सिंह को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. वर्तमान याचिका दिनांक 17.12.2022 को धारा 3(i) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 (इसके बाद गैंगस्टर अधिनियम के रूप में संदर्भित), थाना-चिलुआताल, जिला गोरखपर के तहत केस अपराध संख्या-660 वर्ष 2022 के रूप में दर्ज प्राथमिकी को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि गिरोह चार्ट में केवल एक मामले के विवरण का उल्लेख किया गया है, हालांकि, साथ ही यह उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ दो मामले दर्ज हैं। जहां तक केस अपराध संख्या-7 वर्ष 2021 वाले गैंग चार्ट में संदर्भित मामले का संबंध है, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि शुरू में प्राथमिकी केवल दो अज्ञात बाइक सवारों के खिलाफ धारा 279, 504, 307 भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी, जिसमें सीडी संख्या-11 दिनांक 24.01.2021 में जांच के दौरान सूचनाकर्ता ने सह-आरोपी मनोज चौहान और मनोज साहनी के नाम का खुलासा किया जो कुख्यात अपराधी हैं, जिनका याचिकाकर्ता से कोई लेना-देना नहीं है और सूचनाकर्ता सूचना के सह-अभियुक्तों मनोज साहनी, मनोज चौहान, सुनील चौहान और विकास पाठक को 31.01.2021 को सीडी संख्या-12 में गिरफ्तार किया गया था और उन्होंने पुलिस के सामने इकबालिया बयान दिया है और याचिकाकर्ता के नाम का खुलासा किया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्तों द्वारा खुलासा की गई जटिलता के उपरोक्त तरीके को छोड़कर, याचिकाकर्ता के खिलाफ विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किया गया कोई अन्य महत्वपूर्ण और सुसंगत सबूत नहीं है और इस तरह धारा 120 बी भ०द०वि० के अतिरिक्त विवेचनाधिकारी ने आरोपी व्यक्ति को आरोपित किया। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इसी तरह धारा 392 भ०द०वि०, थाना-कैंट, जिला गोरखपुर के तहत केस अपराध संख्या-255 वर्ष 2022 वाले एक अन्य मामले में याचिकाकर्ता का नाम प्राथमिकी में नहीं था और जांच के दौरान उन सह-आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और याचिकाकर्ता के नाम का खुलासा 04.04.2022 की कथित घटना के प्रतिभागियों में से एक के रूप में किया गया। हालांकि, याचिकाकर्ता को विद्वान सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर ने दिनांक 20.09.2022 के आदेश के तहत जमानत दे दी थी।

5. गुण-दोष के आधार पर मामले पर बहस करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि केवल गैंग चार्ट में उल्लिखित एकल मामले के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ गैंगस्टर एक्ट के प्रावधान लगाए गए हैं और यह कि गैंगस्टर एक्ट के तहत बनाए गए नियमों के नियम 5 खंड (2) और (3) का स्पष्ट उल्लंघन है। 2011 (1) जेआईसी 440 में रिपोर्ट किए गए राम रहीस और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के एक डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि जिला मजिस्ट्रेट ने गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने से पहले किसी भी समय व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज नहीं की है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि एक अन्य प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर, गैंगस्टर अधिनियम लगाया गया है, जिसकी प्रति पूरक हलफनामे के अनुलग्नक-2 के रूप में संलग्न की गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता एक व्यापारी है और उसका इस अपराध से कोई संबंध नहीं है जैसा कि आरोप लगाया गया है। इसलिए, गैंगस्टर अधिनियम के तहत लगाई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के

अलावा और कुछ नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है।

6. प्रति प्रतिरोध, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि आरोप पत्र पहले ही आधार प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रस्तुत की जा चुकी है। गिरोह चार्ट पर ध्यान आकर्षित करके अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा संतुष्टि स्पष्ट रूप से दर्ज की गई है और इस आशय का समर्थन दिनांक 17.12.2022 किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि श्रद्धा गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 514 में रिपोर्ट किया गया है कि एक मामले के आधार पर भी गैंगस्टर अधिनियम लगाया जा सकता है।

7. 2022(4) ए.सी.आर. 3878 में रिपोर्ट किए गए अंबुज पराग दुबे और 2 अन्य बनाम यू.पी. राज्य और 2 अन्य के मामले में, इस अदालत ने गैंगस्टर अधिनियम की पूरी योजना पर विचार किया है और माना है कि एक मामले में, सामग्री पर, सक्षम प्राधिकारी आश्वस्त है और प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि अभियोजन के लिए एक मामला बनाया गया है। वह पुलिस अधिकारियों के साथ चर्चा को दरकिनार करते हुए गिरोह चार्ट को मंजूरी दे सकता है। लेकिन ऐसे मामले में जहां सक्षम प्राधिकारी पुलिस प्राधिकारियों द्वारा प्रस्तुत सामग्री के संबंध में आश्वस्त नहीं है या उसे दुविधा नहीं है, सक्षम प्राधिकारी प्रथम दृष्टया स्वयं को संतुष्ट करने के लिए चर्चा बुलाने का निर्णय ले सकता है कि अभियोजन की आवश्यकता है। गिरोह चार्ट के अनुमोदन का पालन करने वाली प्राथमिकी को केवल चर्चा के अभाव में गलत या रद्द नहीं किया जा सकता है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 32, 33, 34, 35,36,37 और 41 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"32. सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि का अर्थ केवल यह है कि सक्षम प्राधिकारी को वास्तव में संतुष्ट होना चाहिए और बेईमान संतुष्टि नहीं होनी चाहिए, जो बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं होगी। गैंगस्टर नियम द्वारा अपेक्षित संतुष्टि सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री पर वास्तव में संतुष्टि है। नियम के तहत संदर्भित सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि गैंगस्टर के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में नहीं है, बल्कि संतुष्टि उन आरोपों तक ही सीमित है कि आरोपी पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। अभियुक्त के खिलाफ आरोप की प्रकृति जो भी हो, सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि इस संबंध में होनी चाहिए कि उसके समक्ष रखी गई सामग्री और आरोपी की प्रकृति क्या है। सामुदायिक असामाजिक गतिविधियाँ। गैंगस्टर एक्ट के तहत अभियोजन की मंजूरी देना समीचीन है।

33. संतुष्ट अभिव्यक्ति 'मन के अनुप्रयोग' की तुलना में बहुत संकीर्ण है। सक्षम प्राधिकारी को अपने दिमाग का इस्तेमाल नहीं करना है और खुद को संतुष्ट करना है कि क्या उसके सामने रखी गई सामग्री गैंगस्टर अधिनियम के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त होगी। सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री के आधार पर संतुष्टि एक संकीर्ण

डोमेन के भीतर सीमित है, गिरोह चार्ट को आगे बढ़ाने वाले अधिकारी संतुष्ट हैं कि आरोपी पर गैंगस्टर एक्ट के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए। अभिव्यक्ति संतुष्टि साक्ष्य पर संतुष्टि नहीं है, बल्कि नोडल प्राधिकरण और जिला पुलिस के अभ्यावेदन के आधार पर प्रथम दृष्टया संतुष्टि है कि आरोपी पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

34. नियम 17 में कहा गया है कि सक्षम प्राधिकारी गैंग चार्ट को अग्रेषित करते समय अपने स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग करने के लिए बाध्य है और उसे पूर्व-मुद्रित रबर सील गैंग चार्ट पर नहीं होना चाहिए। नियम 17 इस प्रकार है:

(1) सक्षम प्राधिकारी गैंग-चार्ट को अग्रेषित करते समय अपने स्वयं के स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग करने के लिए बाध्य होगा।
(2) पूर्व-मुद्रित रबर सील गैंग-चार्ट पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जाने चाहिए; अन्यथा यह इस तथ्य के समान होगा कि सक्षम प्राधिकारी ने अपने स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग नहीं किया है।

35. नियम 18 में प्रावधान है कि गैंग चार्ट केवल उसी तरीके से भेजा जाएगा जैसा कि इन नियमों के फॉर्म संख्या-1 में दिया गया है।

36. नियम 17 और 18 को एक साथ पढ़ना होगा। गैंग चार्ट निर्धारित फॉर्म संख्या-1 में भेजना होगा। प्रत्येक प्राधिकारी द्वारा किए जाने वाले पृष्ठांकन को भी नियम 16 में विनिदष्ट किया गया है। नियम स्वयं एक मुद्रित फॉर्म निर्धारित और अनिवार्य करता है। नियम 17 में केवल यह कहा गया है कि गिरोह चार्ट को मंजूरी देते समय सक्षम प्राधिकारी को पुलिस अधिकारियों की सिफारिश से यांत्रिक रूप से प्रभावित नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वतंत्र रूप से खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि अभियोजन के लिए आधार बनाया गया है। उस स्तर पर संतुष्टि व्यक्तिपरक है और किसी भी सबूत पर निर्भर नहीं करती है। सक्षम प्राधिकारी को यह संतुष्ट करना होगा कि गिरोह चार्ट के साथ रखी गई सामग्री अभियोजन के लिए कहती है। इसके बाद साक्ष्य एकत्र करने का चरण चलता है। न्यायिक समीक्षा का दायरा बहुत कम है, आरोपी गैंग चार्ट को चुनौती दिए बिना प्राथमिकी को चुनौती नहीं दे सकता है। यह सवाल कि क्या प्रस्तावित आरोपी की असामाजिक गतिविधियां गिरोह या गैंगस्टर की हैं, यह जांच का विषय है।

37. नियम 22 स्पष्ट करता है और निर्दिष्ट करता है कि एक एकल कार्य/चूक भी अधिनियम के तहत अपराध का गठन करेगी और एक ही मामले के आधार पर पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की जानी चाहिए। नियम 22(1) इस प्रकार पढ़ता है:

41. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का यह कहना कि गिरोह चार्ट को मंजूरी देने से पहले सक्षम प्राधिकारी द्वारा पुलिस अधिकारियों के साथ कोई 'चर्चा' नहीं की गई थी, याचिकाकर्ताओं के अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं होगा। अभिव्यक्ति 'चर्चा' का पालन

सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए, प्रत्येक मामले में नियम के पढ़ने से पालन नहीं होता है, हालांकि नियम शब्द 'करेगा' को नियोजित करता है। गैंगस्टर नियम कहीं भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा 'चर्चा' का पालन नहीं करने के परिणाम को अनिवार्य नहीं करता है। हमारी राय में चर्चा को अनिवार्य करने वाला नियम निर्देशिका है। यह सक्षम प्राधिकारी के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, जो गिरोह चार्ट के अनुमोदन के लिए उसके समक्ष रखी गई सामग्री को ध्यान में रखता है। किसी मामले में अगर सक्षम प्राधिकारी सामग्री पर आश्वस्त होता है और प्रथम दृष्टया संतुष्ट होता है कि अभियोजन के लिए एक मामला बनाया जाता है, तो वह पुलिस अधिकारियों के साथ चर्चा को दरकिनार करते हुए गिरोह चार्ट को मंजूरी दे सकता है। लेकिन ऐसे मामले में जहां सक्षम प्राधिकारी पुलिस प्राधिकारियों द्वारा प्रस्तुत सामग्री के संबंध में आश्वस्त नहीं है या उसे दुविधा नहीं है, तो सक्षम प्राधिकारी प्रथम दृष्टया स्वयं को संतुष्ट करने के लिए चर्चा बुलाने का निर्णय ले सकता है कि अभियोजन की आवश्यकता है। गैंग चार्ट की मंजूरी के बाद जो प्राथमिकी दर्ज की गई है, उसे केवल चर्चा के अभाव में गलत या रद्द नहीं किया जा सकता है।

8. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) नियम, 2021 (इसके बाद गैंगस्टर नियम, 2021 के रूप में संदर्भित), 2021 में बनाए गए थे, जो राम रहीस (उपरोक्त) में निर्णय के समय उपलब्ध नहीं थे। कहने की जरूरत नहीं है कि अंबुज पराग दुबे (उपरोक्त) में गैंगस्टर नियम, 2021 पर बहुत विस्तार से विचार किया गया है और जिस तरह से संतुष्टि दर्ज की जानी है, उसे निर्धारित किया गया है। इसलिए राम रहीस (उपरोक्त) स्पष्ट रूप से अलग है और याचिकाकर्ता के लिए इसमें कोई मदद नहीं है।

9. इसलिए, अंबुज पराग दुबे (उपरोक्त) के फैसले के मद्देनजर हम पाते हैं कि प्रस्तुत मामले में संतोष गैंगस्टर नियम, 2021 और गैंगस्टर अधिनियम के फॉर्म-I के अनुसार दर्ज किया गया है, जो गिरोह चार्ट का प्रारूप प्रदान करता है। गैंगस्टर एक्ट के नियम 5 (3)(डी) में यह भी प्रावधान है कि उन मामलों का गैंग चार्ट में उल्लेख नहीं किया जाएगा, जिनके आधार पर इस अधिनियम के तहत एक बार पहले ही कार्रवाई की जा चुकी है। इसलिए, हम पाते हैं कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की गई संतुष्टि जिस तरह से प्रस्तुत मामले में की गई है, वह नियमों के अनुपालन में है और यह नहीं कहा जा सकता है कि संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है।

10. श्रद्धा गुप्ता (उपरोक्त) के पैरा 37 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि एक मामले के आधार पर भी गैंगस्टर एक्ट लगाया जा सकता है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"37. जहां तक अभियुक्त की ओर से मुख्य प्रस्तुतिकरण है कि किसी भी असामाजिक गतिविधियों के संबंध में एक अपराध/प्राथमिकी/आरोप पत्र के लिए, ऐसे अभियुक्त पर गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के

तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, गैंगस्टर अधिनियम के तहत 'गैंग' और 'गैंगस्टर' की परिभाषाओं को निष्पक्ष रूप से पढ़ने पर, माननीय उच्चतम न्यायालय ने 1986 के आदेश के आलोक में यह देखा है कि गैंग एक या एक से अधिक व्यक्तियों का समूह है जो अनुचित लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से परिभाषा खंड में उल्लिखित अपराधों को करता है, चाहे वह आर्थिक हो, भौतिक लाभ प्राप्त करने वाला हो अथवा अन्य हो। यहां तक कि एक 'गिरोह' द्वारा किया गया एक भी अपराध 'गैंग' के ऐसे सदस्यों पर गैंगस्टर एक्ट लगाने के लिए पर्याप्त है। गैंगस्टर एक्ट लागू होने से पहले परिभाषा खंड अपराध की बहुलता को शामिल नहीं करता है।

11. ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, हम याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क में बल नहीं पाते हैं।

12. याचिका योग्यता से रहित है और तदनुसार, खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1075

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 9842/2020 अन्य संबंधित मामलों के साथ

पीयूष प्रभाकर एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री रवि प्रकाश श्रीवास्तव, श्री अनुराग खन्ना (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री गौरव कक्कड़

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 409- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 154 और 482- भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226- दूसरी एफआईआर - स्थिरता-याचिकाकर्ता बैंक अधिकारी हैं जबकि वादी उसी बैंक का ग्राहक है - आक्षेपित एफआईआर बाद में उन्हीं आरोपों और उसी घटना से उत्पन्न होने पर सूचक द्वारा दर्ज की गई थी, लेकिन एकमात्र तथ्य जो आगे आरोप किया गया था वह यह है कि वादी के बचत बैंक खाते को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किया गया था, लेकिन बैंक ने राशि रोक ली और इसे वादी को जारी नहीं किया - आयोजित, कई एफआईआर दर्ज करना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं था - आक्षेपित आदेश निरस्त (पैरा 4, 8, 9, 20)

रिट याचिकाएं स्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2001) 6 एससीसी 181
2. विजय कुमार घई एवं अन्य बनाम डब्ल्यूबी एवं अन्य, (2022) 7 एससीसी 124
3. तारक दाश मुखर्जी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2022 लाइवलॉ (एससी) 731
4. कृष्ण लाल चावला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2021) 5 एससीसी 435

5. विजय कुमार घई एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, (2022) 7 एससीसी 124

6. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल एंड ऑर्स, 1992 सप (1) एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार एवं माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अनुराग खन्ना, वरिष्ठ अधिवक्ता को, जिनकी सहायता याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री रवि प्रकाश श्रीवास्तव ने की और राज्य के लिए उपस्थित होने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाओं का निर्णय एक सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा किया जा रहा है क्योंकि वे पक्षों की सहमति पर समान तथ्यों और घटना से उत्पन्न होते हैं।

3. नोटिस के बावजूद, चौथे प्रत्यर्थी के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया है, न ही उसने उपस्थिति दर्ज की है।

4. याचिकाओं के समूह में याचिकाकर्ता एच.डी.एफ.सी. बैंक लिमिटेड के अधिकारी हैं, जिनमें प्रबंध निदेशक, अतिरिक्त प्रबंध निदेशक, कंपनी सचिव, मुख्य वित्त अधिकारी और शाखा प्रबंधक शामिल हैं। शिकायतकर्ता एच.डी.एफ.सी. बैंक का ग्राहक है, जिसका बचत बैंक खाता है।

5. सुविधा के लिए, रिट याचिका संख्या-9842 वर्ष 2020 (पीयूष प्रभाकर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य) में दिए गए तथ्यों का उल्लेख किया जा रहा है।

6. एच.डी.एफ.सी. बैंक बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं के कारोबार में लगा हुआ है, जो भारतीय रिजर्व बैंक के साथ विधिवत पंजीकृत है, जिसका पंजीकृत कार्यालय मुंबई (महाराष्ट्र) में है। बैंक की आगरा की शाखा सहित पूरे भारत में विभिन्न शाखाएँ हैं। शिकायतकर्ता/प्रत्यर्थी संख्या-4 बैंक का ग्राहक है जिसका खाता (बचत खाता संख्या- # 01211000207684) आगरा शाखा में है।

7. पहला याचिकाकर्ता 29.04.2019 से आगरा में एच.डी.एफ.सी. बैंक लिमिटेड के शाखा प्रबंधक हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि उस अवधि के दौरान जब कथित डेबिट सूचनाकर्ता के बैंक खाते से हुआ था, याचिकाकर्ता को प्रासंगिक समय यानी जनवरी 2018 में शाखा में तैनात नहीं किया गया था।

8. सूचनाकर्ता ने इससे पहले मामला अपराध संख्या-0083 वर्ष 2018, दिनांक 03.02.2018 को थाना-हरिपर्वत, आगरा में बैंक अधिकारियों और एक अन्य धर्मेंद्र सिंह के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई थी। यह आरोप लगाया गया है कि उसके बैंक खाते में सूचनाकर्ता के पास 17.01.2018 को 1,00,69,633/- रुपये की शेष राशि थी। यह आरोप लगाया गया है कि 02.02.2018 को उसके बैंक खाते की जांच करने पर, यह पता चला कि सूचनाकर्ता के पास केवल 1,99,574.41 पैसे की शेष राशि थी, जिससे बैंक अधिकारियों के साथ धोखाधड़ी से 98,70,000/- रुपये की राशि उसी शाखा के

धर्मेंद्र सिंह के खाते में स्थानांतरित कर दी गई थी। यह आगे आरोप लगाया गया है कि सूचना देने वाले का खाता आयकर अधिकारियों द्वारा संलग्न किया गया था, इसलिए यह आरोप लगाया गया था कि बैंक अधिकारियों की मिलीभगत के बिना खाते से राशि नहीं निकाली जा सकती थी। यह सूचित किया जाता है कि उक्त मामले में विवेचनाधिकारी ने 25.04.2018 को धारा 420, 467, 468, 471, 120- बी, 419 और 411 भ०द०वि० के तहत बैंक अधिकारियों सहित छह व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया है।

9. बाद में उसी आरोप पर और उसी घटना से उत्पन्न होने वाले सूचनाकर्ता द्वारा आक्षेपित प्राथमिकी दर्ज की गई थी, लेकिन एकमात्र तथ्य जो आगे आरोप लगाया गया था, वह यह है कि सूचनाकर्ता का बचत बैंक खाता बाद में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 18.10.2021 के आदेश के माध्यम से जारी किया गया था, लेकिन बैंक ने राशि को रोक दिया और इसे सूचनाकर्ता को जारी नहीं किया।

10. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि समान तथ्यों और घटना से उत्पन्न दूसरी प्राथमिकी दर्ज करना अदालत की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग है और टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य और अन्य के जनादेश को देखते हुए वर्जित है, जिसको बाद में विजय कुमार घई और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य और तारक दास मुखर्जी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पालन किया गया है।

11. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सूचनादाता को देय और स्वीकार्य पूरी राशि बैंक द्वारा नियत समय में पहले ही जारी कर दी गई है और पॉलिसी अतिरिक्त (बीमा) के लिए 1,00,000/- रुपये की राशि काट ली गई थी, जिसका सूचनाकर्ता हकदार नहीं है। यह आग्रह किया जाता है कि इस कारण से शिकायतकर्ता के लिए शिकायतकर्ता को संपर्क करने का कारण अब नहीं है।

12. एकमात्र सवाल यह उठता है कि क्या उन्हीं आरोपों से उत्पन्न दूसरी प्राथमिकी बनाए रखने
योग्य होगी या नहीं।

13. कृष्ण लाल चावला और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 4 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि एक ही घटना के संबंध में एक ही आरोपी के खिलाफ एक ही पक्ष द्वारा कई शिकायतें अनुमेय हैं। एक ही घटना के संबंध में एक ही पक्ष द्वारा कई शिकायतों की अनुमति देना, चाहे वह संज्ञेय या निजी शिकायत अपराध शामिल हो, अभियुक्त को कई आपराधिक कार्यवाही में उलझाया जाएगा। इस तरह उसे प्रत्येक मामले में आवश्यकता पड़ने पर पुलिस और अदालतों के सामने अपनी स्वतंत्रता और कीमती समय का समर्पण करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

14. दूसरी प्राथमिकी की वैधता पर सुप्रीम कोर्ट ने टी.टी. एंटनी (उपरोक्त) मामले में विस्तार से चर्चा की थी। यह माना गया कि जहां सूचना पहली प्राथमिकी में कथित उसी संज्ञेय अपराध या उसी घटना या घटना से संबंधित है

जो एक या अधिक संज्ञेय अपराधों को जन्म देती है, कोई दूसरी प्राथमिकी नहीं हो सकती है। यह आगे कहा गया कि एक बार धारा 154 द०प्र०स० के प्रावधानों द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकी दर्ज हो जाने के बाद, जांच शुरू होने के बाद प्राप्त कोई भी जानकारी दूसरी प्राथमिकी का आधार नहीं बन सकती है क्योंकि ऐसा करने से दंड प्रक्रिया संहिता की योजना के अनुरूप नहीं होगा। न्यायालय ने आगे कहा कि उन स्थितियों को छोड़कर जिनमें एक काउंटर-केस दायर किया जाता है, उसी या संबंधित संज्ञेय अपराध के आधार पर एक नई जांच या दूसरी प्राथमिकी "जांच की वैधानिक शक्ति का दुरुपयोग" होगा और धारा 482 द०प्र०स० या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला हो सकता है।

15. यदि एक ही आरोपी के खिलाफ एक ही व्यक्ति द्वारा तथ्यों और आरोपों के एक ही सेट के संबंध में कई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की अनुमति दी जाती है, तो इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त एक ही कथित अपराध के लिए कई आपराधिक कार्यवाही में उलझ जाएगा, इस तरह की कई प्राथमिकी दर्ज करना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

16. विजय कुमार घई और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य 5 और तारक दास मुखर्जी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 6 में भी यही सिद्धांत दोहराया गया था।

17. आक्षेपित प्राथमिकी शिकायतकर्ता द्वारा अपनी पिछली प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों की पुनरावृत्ति है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि उस समय जब शिकायतकर्ता का बचत बैंक खाता आयकर विभाग द्वारा कुर्क किया गया था, बैंक के अधिकारियों ने आगरा शाखा में बैंक के एक ग्राहक धर्मेंद्र सिंह के साथ मिलकर शिकायतकर्ता के बचत बैंक खाते से पर्याप्त राशि स्थानांतरित की। शिकायतकर्ता द्वारा आक्षेपित प्राथमिकी में लगाया गया अतिरिक्त आरोप यह है कि बैंक ने सक्षम न्यायालय के आदेश द्वारा बचत बैंक खाता जारी करने पर शिकायतकर्ता को धन जारी करने से रोक लिया/देरी की।

18. शिकायतकर्ता का यह आरोप कि उसके बचत बैंक खाते का पैसा रोक लिया गया था और शिकायतकर्ता को तुरंत भुगतान नहीं किया गया था; यहां तक कि अंकित मूल्य पर आरोप लेने पर भी यह अपराध नहीं होगा। दूसरी प्राथमिकी का उद्देश्य शाखा के अधिकारियों को शिकायतकर्ता को बचत बैंक खाते को संचालित करने और अपना पैसा निकालने की अनुमति देने के लिए मजबूर करने के लिए दर्ज किया गया प्रतीत होता है। यह दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का भी मामला है।

19. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य 7 में, प्राथमिकी को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों के दायरे पर विस्तार से विचार किया और कई न्यायिक उदाहरणों का उल्लेख किया और कहा कि उच्च न्यायालय को आरोपों के गुण-दोष की जांच शुरू नहीं करनी चाहिए और जांच एजेंसी को अनुमति दिए बिना कार्यवाही को रद्द नहीं करना चाहिए। अपने

अनुवादित

कार्य को पूरा करें। न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित मामलों की पहचान की जिनमें प्राथमिकी/शिकायत को रद्द किया जा सकता है:

"102. (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(2) ....

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध बरपाने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

20. ऊपर उल्लिखित अविवादित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित प्राथमिकी एक ही कारण और घटना के लिए दूसरी प्राथमिकी है, इस तरह की कई प्राथमिकी दर्ज करना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

21. उपर्युक्त के मद्देनजर, रिट याचिकाओं की अनुमति दी जाती है।

22. तदनुसार, थाना-हरि पर्वत, जिला आगरा में धारा 409 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या-संख्या-0326 वर्ष 2018 के रूप में दर्ज दिनांक 16.08.2020 की प्राथमिकी को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1079

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 12207 / 2022

राज कुमार एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आशुतोष उपाध्याय

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री ओम प्रकाश विश्वकर्मा, श्री विनोद कुमार यादव

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 147, 148, 307, 308, 325, 395, 452, 506 और 120-बी- एफआईआर को निरस्त करना - दूसरी एफआईआर - पोषणीयता- धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदन प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया - घटना के संबंध में संबंधित पुलिस स्टेशन से रिपोर्ट मांगी गई थी - पुलिस स्टेशन ने रिपोर्ट भेजी, कथन किया कि पहले कोई एफआईआर दर्ज नहीं की गई है -उक्त रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए, मजिस्ट्रेट ने आरोपित एफआईआर को पंजीकृत करने का निर्देश दिया - आयोजित, यदि पुलिस स्टेशन द्वारा सही जानकारी दी गई होती, तो आरोपित एफआईआर अस्तित्व में नहीं आती -चूंकि दूसरी/बाद की एफआईआर पुलिस स्टेशन द्वारा भेजी गई गलत और भ्रामक जानकारी के आधार पर दर्ज की गई है, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता और इसे रद्द किया जा सकता है। (पैरा 6)

रिट याचिकाएं स्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य और अन्य (2002) 6 एससीसी 181

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता आईपीसी की धारा 147, 148, 307, 308, 325, 395, 452, 506, 120-बी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0025/2022 से उत्पन्न प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांकित 30.01.2022, थाना-सिकरारा, जनपद- जौनपुर को चुनौती देना चाहते हैं।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि एक ही घटना के लिए दो एफआईआर दर्ज की गई हैं। याचिकाकर्ता आक्षेपित एफआईआर में नामित अभियुक्त हैं और इसलिए, वे व्यथित हैं।

इसके विपरीत, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. ने बताया कि एक ही घटना के लिए दो एफआईआर दर्ज की गई हैं; (i) पहली एफआईआर दिनांकित 22.08.2020, मुकदमा अपराध संख्या 0170/2020 से उत्पन्न, आईपीसी की धारा 323, 504, 506 के तहत, पुलिस स्टेशन सिकरारा, जिला जौनपुर में सूरज कुमार (प्रत्यर्थी संख्या 3 का पुत्र) द्वारा चार व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज कराई गई थी। (ii) एक अन्य एफआईआर दिनांकित 30.01.2022, मुकदमा अपराध संख्या 0025/2022 से उत्पन्न, आईपीसी की धारा 147, 148, 307, 308, 325, 395, 452, 506, 120 बी के तहत, पुलिस स्टेशन सिकरारा, जिला जौनपुर में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा 14 नामित अभियुक्तों के विरुद्ध मामला, सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिए गए प्रार्थना पत्र दिनांकित 18.09.2020 के आधार पर, जिसमें अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जौनपुर ने आदेश दिनांकित 10.01.2022 द्वारा संबंधित पुलिस स्टेशन को अपराध दर्ज करने का निर्देश दिया, दर्ज कराई गयी थी।

दोनों पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने सुनने के साथ-साथ अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, यह स्वीकार्य रूप से सत्य है कि 21.08.2020 को हुई एक ही घटना के लिए दो अलग-अलग एफआईआर दर्ज की गई हैं। पहली एफआईआर सूरज कुमार (प्रत्यर्थी संख्या 3 का बेटा) द्वारा आईपीसी की धारा 323, 504 और 506 के तहत दर्ज की गई थी जिसमें जांच पूरी हो चुकी है और चार नामित अभियुक्तों के साथ ही याचिकाकर्ता संख्या 1 राज कुमार के खिलाफ आईपीसी की धारा 323, 325, 504, 506, 147 और 188 के तहत आरोप पत्र दिनांकित 04.09.2022 न्यायालय में दाखिल किया गया था, इसके पश्चात 13.06.2022 को संज्ञान लिया गया। हालाँकि, बाद में संबंधित सर्कल अधिकारी के निर्देश पर, 07.12.2022 को याचिकाकर्ता संख्या 2 से 11 के खिलाफ आईपीसी की धारा 147, 148, 308, 325, 324, 504 और 506 के तहत एक अनुपूरक आरोप पत्र दायर किया गया था और याचिकाकर्ता संख्या 12 के नाम को वियुक्त कर दिया गया।

अनुवादित

अभिलेख के अवलोकन से, हम पाते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा सी.आर.पी.सी. की धारा 156 (3) के तहत प्रार्थना पत्र दिनांकित 18.09.2020 मजिस्ट्रेट के समक्ष दिए जाने के बाद, घटना के संबंध में संबंधित पुलिस थाने से एक रिपोर्ट मांगी गई थी। संबंधित थाने ने यह उल्लेख करते हुए रिपोर्ट प्रेषित कर दी कि वर्तमान मामले में कोई एफआईआर दर्ज नहीं की गई है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संबंधित मजिस्ट्रेट ने दिनांक 10.01.2022 के आदेश द्वारा संबंधित पुलिस थाना को आक्षेपित एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया। इस प्रकार, उक्त रिपोर्ट पर विश्वास जताते हुए, संबंधित मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया। यदि संबंधित पुलिस थाना द्वारा सही जानकारी प्रदान की गई होती तो आक्षेपित एफआईआर अस्तित्व में नहीं आती। चूंकि दूसरी/बाद की एफआईआर संबंधित पुलिस थाने द्वारा अग्रेषित गलत और भ्रामक जानकारी के आधार पर दर्ज की गई है, इसलिए, यह पोषणीय नही है और इसे रद्द किया जा सकता है।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा (2002) 6 एससीसी 181 में रिपोर्ट किए गए टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य और अन्य के मामले में यह अच्छी तरह से परिनिर्धारित किया गया है कि एफआईआर दर्ज करने और जांच शुरू करने के बाद, उसी घटना और अपराध के संबंध में दूसरी एफआईआर या पश्चातवर्ती एफआईआर दर्ज करना और उसके अनुसार नए सिरे से जांच करना अनियमित होगा, जिसमें वैधानिक शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए नए सिरे से जांच या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप और अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों और माननीय सर्वोच न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि की स्थापित स्थिति पर विचार करने के बाद, आईपीसी की धारा 147, 148, 307, 308, 325, 395, 452, 506, 120-बी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0025/2022 से उत्पन्न होने वाली आक्षेपित एफआईआर दिनांकित 30.01.2022, थाना-सिकरारा, जिला-जौनपुर को एतदद्वारा रद्द किया जाता है।

रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1081

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 158/2023

के साथ

आदेश से प्रथम अपील संख्या 162/2023

संजय कुमार मोदी एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उदयराज और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: सतीश गुलाटी, सर्वेश कुमार तिवारी, सुदीप कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्याम मोहन प्रधान, बृजेश कुमार

ए. सिविल कानून - रिमांड की सीमा- सिविल प्रक्रिया संहिता: आदेश 41 नियम 23 - रिमांड की शक्ति का प्रयोग लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए या यह केवल मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करने की जिम्मेदारी से बचने का आधार नहीं हो सकता है क्योंकि धारा 96 सी.पी.सी. के तहत निचली अपीलीय अदालत की शक्तियां व्यापक और विचारणीय न्यायालय के समान हैं और किसी भी मामले में प्रथम अपीलीय अदालत होने के नाते, यह कानूनी रूप से तथ्य और कानून के बिंदुओं पर नए सिरे से विचार करने के लिए बाध्य है। (पैरा 25)

बी. जब तक अपीलीय न्यायालय के समक्ष कोई बाधा उत्पन्न न हो जो आदेश-41 नियम 23-ए के मापदंडों के अंतर्गत आती हो, तब तक ऐसे किसी ठोस कारण के अभाव में रिमांड का आदेश न्यायोचित नहीं है। (पैरा 14)

वर्तमान वाद में, निचली अपीलीय अदालत ने रिमांड की शक्तियों का सही परिप्रेक्ष्य में प्रयोग नहीं किया है। निचली अपीलीय अदालत द्वारा दिया गया तर्क न्यायिक सिद्धांतों के सचेत अनुप्रयोग को नहीं दर्शाता है, जैसा कि रिमांड आदेश पारित करने से पहले लागू किया जाना आवश्यक है। (पैरा 22)

विवादित आदेश के अवलोकन से केवल यह पता चलता है कि निचली अपीलीय अदालत ने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 52 और 53 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 और 102 जैसी कुछ धाराओं का संदर्भ दिया है, लेकिन निचली अपीलीय अदालत यह देखने में विफल रही है कि उपरोक्त धाराएं अपीलीय अदालत के लिए मामले पर निर्णय लेने में किस तरह बाधा उत्पन्न करेंगी। पक्षों ने अपने पूरे साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं और निचली अपीलीय अदालत ने इस बात का कोई संदर्भ नहीं दिया है कि किसी विशेष विवाद या मामले के किसी विशेष पहलू पर पक्षकार साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं रहे हैं जो कि अनिवार्य था जिसके कारण निचली अपीलीय अदालत को मामले को वापस भेजना पड़ा। यह विशेष रूप से इस तथ्य के संदर्भ में ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अदालत पक्षों को रिमांड का आदेश पारित करके अपने मामले में कमी को पूरा करने की अनुमति नहीं दे सकती है। (पैरा 23)

यदि केवल उपरोक्त कानूनी प्रावधानों (संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 और 53 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 102 और 103 के प्रावधान) के प्रभाव को देखा जाए, तो निचली अपीलीय अदालत तथ्य और कानून की अंतिम अदालत होने के नाते कानूनी रूप से सशक्त और बाध्य थी कि वह मामले को वापस भेजे बिना, उपरोक्त धाराओं के प्रभाव पर स्वयं विचार करती। (पैरा 24)

अपील स्वीकृत। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. शिवकुमार एवं अन्य बनाम शरणबसप्पा एवं अन्य, (2021) 11 एससीसी 277 (पैरा 14)

2. संजय कुमार बनाम अमर नाथ शुक्ला, एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 431/2003, दिनांक 14.01.2020 को निर्णीत (पैरा 20)

3. जगन्नाथन बनाम राजू सिगमानी और अन्य, (2012) 5 एससीसी पृष्ठ 540 (पैरा 20)

4. जे. बालाजी सिंह बनाम दिवाकर कोल एवं अन्य, (2017) 14 एससीसी 207 (पैरा 20)

वर्तमान एफ.ए.एफ.ओ. निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 11.04.2023 के विरुद्ध योजित है, जिसके तहत दो सिविल अपील संख्या 10/2022 और संख्या 11/2022 को अनुमति दी गई है और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए विचारणीय न्यायालय को वापस भेज दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदीप कुमार और विद्वान अधिवक्ता श्री बृजेश कुमार सक्सेना को सुना गया, जो एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 158/2023 और एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 162/2023 में प्रतिवादी संख्या-1 की ओर से की ओर से उपस्थित हुए हैं। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि एक अन्य अपील एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 162/2023 जो इस वाद के साथ संयोजित है, प्रतिप्रेषण के उसी निर्णय से उत्पन्न हुई है, अतः दोनों अपीलों पर एक साथ विचार तथा निर्णय किया जा सकता है।

2. यह एफ०ए०एफ०ओ० सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 नियम (1) (u) के अंतर्गत दायर की गयी है जो प्रतिप्रेषण के आदेश को चुनौती देता है। दोनों मामलों में, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता दिनांक 18.04.2023 को अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती दे रहे हैं, जिसके द्वारा दो सिविल अपीलें क्रमांक 10/2022 और 11/2022 स्वीकृत कर ली गई हैं, और मामले को नए सिरे से निर्णय हेतु विचारण न्यायालय को भेज दिया गया है।

3. दोनों अपीलों में प्रतिवादी संख्या 1 उदयराज की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री बी.के. सक्सेना ने यह प्रस्तुत किया कि चूँकि प्रतिप्रेषण हेतु आधारों की पर्याप्तता से संबंधित एकमात्र विधिक मुद्दा शामिल है, तदनुसार, मामले की सुनवाई प्रथम चरण पर ही की जा सकती है। इसी दृष्टिकोण से न्यायालय ने प्रथम चरण में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से इसी सामान्य निर्णय द्वारा दोनों अपीलों का निस्तारण किया है।

4. उपरोक्त अपीलों के उचित निर्णय हेतु प्रासंगिक तथ्यों का उल्लेख निम्नवत किया जा रहा है:-

5. प्रश्नगत संपत्ति जिस पर **विवाद चल रहा है वह गोविन्द बाग, बलरामपुर, परगना, तहसील और जिला बलरामपुर में स्थित एक तीन मंजिला मकान है।** उक्त संपत्ति प्रारम्भ से श्रीमती सुशीला देवी, पत्नी दुर्गा प्रसाद के नाम

पर दर्ज थी। उक्त परिसर में अपीलकर्ता संख्या- 1 यथा संजय कुमार, श्रीमती सुशीला देवी के समय से ही किरायेदार थे। दिनांक 25.06.2001 को, श्रीमती सुशीला देवी ने नाबालिग रितेश गुप्ता जो की अवयस्क था (जो सम्बद्ध एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 162/2023 में प्रतिवादी संख्या- 2 हैं किन्तु एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 158/2023 में पक्षकार नहीं हैं) को पिता एवं अभिभावक श्री राम शंकर गुप्ता के माध्यम से सम्पूर्ण सम्पत्ति के संबंध में एक पंजीकृत विक्रय विलेख को निष्पादित किया।

6. इस स्तर पर, न्यायालय ने पाया कि रेशु गुप्ता एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 158/2023 में पक्षकार नहीं हैं और इस प्रकार न्यायालय ने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से श्री रेशु गुप्ता को, जो एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 158/2023 में अपीलकर्ता-विक्रेता थे, को एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 158/2023 में पक्षकार के रूप में शामिल करने की आवश्यकता बताई और उन्हें अपील संख्या 158/2023 की अपील ज्ञापन में आवश्यक संशोधन करने की अनुमति प्रदान की गई। यहाँ इस तथ्य के कारण आवश्यक हो गया है कि रेशु गुप्ता और राम शंकर गुप्ता पहले से ही एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 162/2023 में पक्षकार हैं, तदनुसार, भविष्य की किसी भी जटिलता से बचने के साथ-साथ पक्षकारों की श्रृंखला को सही करने और पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय करने हेतु, न्यायालय ने विद्वान अधिवक्ताओं को पक्षकारों की ओर से दिन के दौरान ऐसा करने की अनुमति प्रदान कर दी है।

7. जैसा की न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को श्री रेशु को कार्यवाही में पक्षकार के रूप में शामिल करने की अनुमति दे दी है, अतः अपीलकर्ता अधीनस्थ अपीलीय अदालत के समक्ष प्रथम अपील के ज्ञापन में पक्षकारों की श्रृंखला को सही करने हेतु एक आवेदन पत्र प्रस्तुत करने तथा श्री रेशु गुप्ता को पक्षकार बनाने हेतु वादपत्र में संशोधन की याचना करने हेतु स्वतंत्र होंगे। यदि ऐसा कोई आवेदन पत्र प्रस्तुत किया जाता है, तो इस तथ्य के आलोक में उचित रूप से विचार किया जाए कि श्री रेशु गुप्ता को पहले ही इस अपील में पक्षकार के रूप में शामिल करने की अनुमति दी जा चुकी है।

8. तथ्य यह दर्शाते हैं कि मूल रूप से संपत्ति श्रीमती सुशीला गुप्ता की थी, जिन्होंने इसे दिनांक 25.06.2001 के विक्रय विलेख के माध्यम से रेशु गुप्ता को बेच दिया था, जो उस समय नाबालिग था। इसके बाद, रेशु गुप्ता ने दिनांक 06.01.2006 के पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से संपत्ति को वर्तमान अपीलकर्ताओं संजय कुमार मोदी और रश्मि मोदी को बेच दी। वर्ष 2006 का यह विक्रय विलेख नाबालिग रेशु गुप्ता द्वारा उनके संरक्षक और पिता राम शंकर गुप्ता के माध्यम से भी निष्पादित किया गया था।

9. अभिलेख आगे यह भी दर्शाता है कि श्रीमती सुशीला गुप्ता के बारे में ऐसा कहा जाता है कि उसने रेशु गुप्ता और राम शंकर गुप्ता के विरुद्ध दिनांक 06.01.2006 के विक्रय विलेख को निरसित करने हेतु एक वाद दायर किया था, जिसे नियमित वाद संख्या 123/2005 के रूप में पंजीकृत किया गया था, यद्यपि, उक्त

वाद लंबित रहने के दौरान, उक्त संपत्ति वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा खरीदी गई थी जो उक्त वाद के पक्षकार नहीं थे। उक्त वाद के लंबित रहने के दौरान, श्रीमती सुशीला गुप्ता की मृत्यु होने पर, श्री उदय राज ने श्रीमती सुशीला गुप्ता द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित वसीयत के आधार पर उनके स्थान पर प्रतिस्थापन की मांग करते हुए एक आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था। बाद में, गुण-दोष के आधार पर विचार करते हुए, दिनांक 20.04.2014 के निर्णय और आदेश को उक्त वाद के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

10. अपीलकर्ताओं का यह मामला है कि श्री उदय राज ने वर्तमान अपीलकर्ताओं को दिनांक 20.04.2014 के निर्णय और आदेश से सूचित किया और उसके बाद अपीलकर्ताओं ने दिनांक 20.04.2014 के निर्णय और आदेश को निरसित करने हेतु वाद संख्या 134/2015 दायर किया। अपीलकर्ताओं ने एक अन्य वाद जो नियमित वाद संख्या 163/2015 था दायर किया, जिसमें उनके अधिकारो की घोषणा की मांग की गई थी। चूँकि दोनों वाद संबन्धित पक्षों के मध्य एक ही संपत्ति से संबंधित थे, किन्तु उन्हें समेकित नहीं किया गया था, यद्यपि, उनका एक साथ विचारण किया गया था।

11. अपीलकर्ताओं द्वारा दायर दोनों वाद को दिनांक 09.05.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया, जिनमें नियमित वाद संख्या 134/2015 और नियमित वाद संख्या 163/2014 शामिल हैं। दोनों वादों में पृथक रूप से दिनांक 09.05.2022 के पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, श्री उदय राज ने दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत जिला जज, बलरामपुर के समक्ष दो पृथक सिविल अपीलें दायर कीं, जिन्हें सिविल अपील संख्या 10/2022 के रूप में पंजीकृत किया गया, जो नियमित वाद संख्या 134/2022 से उत्पन्न हुई थी, जबकि दूसरी अपील जो सिविल अपील संख्या 11/2022 के रूप में पंजीकृत की गई थी, वह नियमित वाद संख्या 163/2014 में पारित निर्णय और आदेश से संबंधित है।

12. दोनों अपीलों को समान निर्णय दिनांक 11.04.2023 द्वारा निर्णीत किया गया है, जो इस न्यायालय के समक्ष दो संबन्धित अपीलों में चुनौती के अधीन है ।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदीप कुमार ने मुख्य रूप से इस आधार पर निर्णय को चुनौती दी है कि एक बार जब अपीलीय न्यायालय ने विवाद पर अपना ध्यान केंद्रित कर, दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 31 के अनुसार निर्धारण हेतु बिंदुओं का निर्माण कर लिया था और संपूर्ण साक्ष्य पहले से ही अभिलेख पर था, तो फिर अपीलीय न्यायालय के पास आक्षेपित निर्णय के माध्यम से मामले को वापस प्रेषित करने का कोई अवसर नहीं था।

14. यह प्रस्तुत किया गया है कि जब तक अपीलीय न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश-41 नियम 23-क के मापदंडों के अंतर्गत कोई बाधा नहीं आती है, तब तक किसी ऐसे ठोस कारण के अभाव में प्रतिप्रेषण

का आदेश उचित नहीं है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ***शिवकुमार और अन्य बनाम शरणबसप्पा और अन्य; (2021) 11 SCC 277*** पर विश्वास व्यक्त किया है।

16. ***दूसरी*** ओर, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, श्री बी.के. सक्सेना, यह प्रस्तुत करते हैं कि जहाँ तक प्रतिप्रेषण की शक्ति के विषय में विधिक प्रस्तुतीकरण का संबंध है, उनका कहना है कि यह अब भली भाँति स्थापित हो चुका है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा यथासंभव मामले पर विचार करने और गुण दोष के आधार पर निर्णय लेने का प्रयास किया जाना चाहिए, जहाँ पक्षकार पहले ही पूरे साक्ष्य प्रस्तुत कर चुके हैं।

15. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि जिस मुद्दे पर विचार किया जाना था, वह पहले से ही अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आलोक में विधिवत अंतर्निहित किया गया था और उस सीमा तक, वह आक्षेपित निर्णय का समर्थन नहीं करता हैं। वह बहुत ही निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं कि यदि आक्षेपित आदेशों को अपास्त कर दिया जाए तो न्याय के उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है, यद्यपि, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय को मामले को फिर से तय करने की आवश्यकता है, कुछ समय सीमा तय की जा सकती है ताकि लंबे समय से चले आ रहे विवाद को समाप्त किया जा सके।

16. उन्होंने पुनः प्रस्तुत किया है कि पक्षों द्वारा उठाए गए विवादों के आलोक में और जैसा कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा देखा गया है, मात्र दो बिंदुओं को निर्धारण हेतु तैयार किया गया है, यद्यपि, वे पूरे विवाद को व्यापक रूप से शामिल नहीं करते हैं। वह प्रस्तुत करते हैं कि पक्षों हेतु यह खुला होना चाहिए कि वे जो भी दलील उपलब्ध हो उसे उठा सकें और अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्धारण हेतु नए बिंदु तैयार कर सकें, जिस पर अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को भी कोई आपत्ति नहीं हो।

17. न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओ को सुना और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य का अवलोकन भी किया।

18. सम्बन्धित दलीलों को प्रस्तुत करने से पूर्व, आदेश 41 नियम 23 और आदेश 41 नियम 23-ए सिविल प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में वापसी के दायरे पर विचार करना उचित होगा और वर्तमान संदर्भ हेतु पुनः इसे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

> ***"23. मामले का अपील न्यायालय द्वारा प्रतिप्रेषण.-*** *जहाँ उस न्यायालय ने जिसकी अपील की डिक्री की गई है। वाद का निपटारा किसी प्रारम्भिक बात पर कर दिया है और डिक्री अपील में उलट दी गई है वहां यदि अपील न्यायालय ऐसा करना ठीक समझेतो वह मामले का आदेश द्वारा प्रतिप्रेषण कर सकेगा और यह अतिरिक्त निदेश दे सकेगा कि ऐसे प्रतिप्रेषित मामले में कौन से विवाधक या विवाधको का विचारण किया जाए और अपने निर्णय और आदेश कि प्रति उस न्यायालय को*

जिसकी डिक्री कि अपील कि गई है, इन निदेशो के साथ भेजेगा कि वह वाद, सिविल वादो के रजिस्टर में अपने मूल संख्यांक पर पुनः ग्रहण किया जाए और वाद के अवधारण हेतु आगे कार्यवाही की जाए, और यदि कोई साक्ष्य मूल विचारण के दौरान में अभिलिखित कर लिया गया था तो वह सभी न्यायसंगत अपवादों के अधीन रहते हुए, प्रतिप्रेषण के पश्चात वाले विचारण के दौरान में साक्ष्य होगा।

23.- A अन्य मामलों में प्रतिप्रेषण.- *जहाँ उस न्यायालय ने जिसकी अपील की गई है मामले का निपटारा किसी प्रारम्भिक बात पर करने से अन्यथा कर दिया है और डिक्री अपील में उलट दी गई है और पुन विचारण आवश्यक समझा गया है वहां अपील न्यायालय की वही शक्तियाँ होंगी जो उसके नियम 23 के अधीन हैं।"*

19. उच्चतम न्यायालय ने शिवकुमार (उपरोक्त) के मामले में प्रस्तर संख्या 26 से 26.6 तक प्रतिप्रेषण के दायरे पर विस्तारपूर्वक विचार किया है, उक्त आख्या में आदेश 41 नियम 23, नियम 23-ए, नियम 24 और नियम 25 में प्रतिप्रेषण हेतु प्रासंगिक प्रावधानों को देखने के बाद प्रस्तर 26.3 से 26.6 में इस प्रकार निर्धारण किया है:

*"**26.3.** आदेश 41 के नियम 23 और 23-ए में वर्णित प्रतिप्रेषण के प्रावधानों की योजना की समझ आदेश 41 के नियम 24 में निहित प्रावधान के संदर्भ के बिना पूरी नहीं होती है जो अपीलीय न्यायालय को मामले को अंतिम रूप से निपटाने में सक्षम बनाता है, प्रतिप्रेषण के बिना, यदि अभिलेख पर साक्ष्य पर्याप्त है; भले ही अपीलीय न्यायालय उस आधार पर पूरी तरह अलग तरीके से आगे बढ़ती है जिस पर विचारण न्यायालय आगे बढ़ी थी।*

***26.4.** आदेश 41 के नियम 23, 23-ए और 24 को एक साथ पढ़ने से प्रतिप्रेषण की शक्तियों का दायरा और स्वरूप सामने आता है, अर्थात जब उपलब्ध साक्ष्य मामले को निपटाने हेतु पर्याप्त होता है, तो अपीलीय न्यायालय हेतु उपयुक्त तरीका यह है कि वह दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 24 के आदेश का पालन करे और वाद को अंततः निर्णीत करे। मात्र ऐसे मामलों में जहाँ अपील में चुनौती दी गई है डिक्री को उलट दिया जाता है और पुनः परीक्षण आवश्यक माना जाता है, वहीं अपीलीय न्यायालय मामले को प्रतिप्रेषित करने का तरीका अपनाएगी। यह सर्वविदित है कि प्रतिप्रेषण का आदेश नियमित रूप से पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि प्रतिप्रेषण का*

एक अनुचित आदेश न्याय के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता,मात्र मुकदमेबाजी के जीवन को लम्बा खींचता है, मात्र इस आधार पर प्रतिप्रेषण का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन से संबंधित बिंदुओं पर विचार नहीं किया गया, क्योंकि प्रथम अपीलीय न्यायालय स्वयं तथ्यों का संज्ञान लेने और साक्ष्य का मूल्यांकन करने के अधिकार क्षेत्र से युक्त है। निस्संदेह, कई ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जो प्रतिप्रेषण के आदेश को उचित ठहराती हैं या जहाँ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रतिप्रेषण आवश्यक होगा।

26.5. *यह पुनः बलपूर्वक दोहराया जाता है कि प्रतिप्रेषण का अवसर मात्र तभी उत्पन्न होगा जब अपीलीय न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के तथ्यात्मक निष्कर्षों को उलट दिया गया हो और पुनः परीक्षण आवश्यक माना जाए।*

26.6. *वर्तमान मामला स्पष्ट रूप से ऐसा था जहाँ पक्षों ने अपने सभी साक्ष्य, जैसा कि वे प्रस्तुत करना चाहते थे, प्रस्तुत किए थे; और अपीलकर्ता-वादियों का यह दावा नहीं था कि उन्हें कोई विशेष साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया था या परीक्षण किसी समान कारण से दूषित हो गया था। जैसा कि विदित हुआ है, विवादित वसीयत के इर्द-गिर्द कई संदिग्ध परिस्थितियाँ थीं, जिनमें से कुछ का संज्ञान विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया था, लेकिन उन्हें गैर-वाजिब कारणों से दरकिनार कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने सामान्य साक्ष्यों और सामान्य परिस्थितियों की सावधानीपूर्वक जांच की है और एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचा है जो ठोस और संभाव्य प्रतीत होता है, और किसी भी प्रकार की दुर्बलता से ग्रस्त नहीं दिखाई देता है। उच्च न्यायालय के पास मामले को वापस अधीनस्थ अदालत में भेजने का कोई कारण या अवसर नहीं था। इस संबंध में तर्क को अस्वीकृत किया जाना चाहिए, और किया जाता है।"*

20. इस न्यायालय को भी दिनांक ***14.01.2020*** को निर्णीत ***एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 431/2003 -संजय कुमार बनाम अमरनाथ शुक्ला*** के मामले में प्रतिप्रेषण के दायरे पर विचार करने का अवसर मिला था, जिसमें इस न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय

द्वारा (2012) 5 SCC के पृष्ठ 540 में प्रतिवेदित ***जगन्नाथन बनाम राजू सिगामणि और अन्य तथा (2017) 14 SCC 207 में प्रतिवेदित जे. बालाजी सिंह बनाम दीवानकर कोल और अन्य*** के मामलों में दिये गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया था।

21. प्रतिप्रेषण के दायरे पर विचार करने और पूर्वोक्त सिद्धांतों को मामले के तथ्यों पर लागू करने पर, यह स्पष्ट होता है कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने प्रतिप्रेषण की शक्तियों का प्रयोग उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में नहीं किया है। आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर 9 से 11 में अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क न्यायिक सिद्धांतों के सचेतन अनुप्रयोग को नहीं दर्शाते हैं, जैसा कि प्रतिप्रेषण आदेश पारित करने से पूर्व लागू किया जाना आवश्यक है।

22. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से मात्र यह ज्ञात होता है कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने स्थानांतरण संपत्ति अधिनियम की धारा 52 और 53 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 और 102 जैसे कुछ वर्गों के संदर्भ हेतु हैं, यद्यपि, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय यह बताने में विफल रहा है कि उपरोक्त धाराएं अपीलीय न्यायालय हेतु मामले को तय करने में कोई बाधा कैसे उत्पन्न करेंगी। वर्तमान मामले में, यह न्यायालय पाता है कि पक्षकारों ने अपने पूरे साक्ष्य प्रस्तुत कर दिए हैं और अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा कोई ऐसा संदर्भ नहीं दिया गया है कि किसी विशेष मुद्दे पर या मामले के किसी विशेष पहलू पर पक्षकार साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं, जो अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय को मामले के प्रतिप्रेषण हेतु प्रेरित करता है। इस तथ्य के संदर्भ में यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि न्यायालय पक्षकारों को प्रतिप्रेषण आदेश पारित करके उनके मामले में कमियों को पूरा करने की अनुमति नहीं दे सकता है।

23. यह भी देखा जाना है कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने इस बारे में कोई कारण नहीं बताया है कि प्रतिप्रेषण की आवश्यकता क्यों हुई है, सिवाय इसके कि स्थानांतरण संपत्ति अधिनियम की धारा 52 और 53 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 102 और 103 के प्रावधानों पर विचार नहीं किया गया है। यदि मात्र उपरोक्त विधि उपबंधों के प्रभाव को देखा जाए, तो अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय, तथ्य और विधि का अंतिम न्यायालय होने के नाते, कानूनन सशक्त और बाध्य था कि वह मामले को प्रतिप्रेषित किए बिना स्वयं उपरोक्त धाराओं के प्रभाव पर विचार करे।

24. यह भी ध्यातव्य है कि प्रतिप्रेषण की शक्ति का प्रयोग लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए और यह मात्र गुण दोष के आधार पर मामले को तय करने की जिम्मेदारी से बचने का आधार नहीं हो सकता है, क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ व्यापक हैं और दीवानी परीक्षण न्यायालय के समान हैं और किसी भी मामले में प्रथम अपील न्यायालय होने के नाते, यह तथ्यों और विधि के बिंदुओं

पर पुनर्विचार करने हेतु विधिक तौर पर बाध्य है और उपरोक्त परिस्थितियों में, अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा मामले को प्रतिप्रेषित करने का कोई औचित्य नहीं था।

25. उपरोक्त के द्रष्टिगत, यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित आदेश में न तो कोई उपयुक्त तर्क और न ही कोई युक्तिसंगत कारण बताया गया है जो प्रतिप्रेषण के आदेश का समर्थन कर सके, अतः आक्षेपित निर्णय और डिक्री की दो अपीलों में पारित किए गए आदेश दिनांक 11.04.2023 अपास्त किए जाने योग्य हैं।

26. उपरोक्त के दृष्टिगत, एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 158/2023 और एफ०ए०एफ०ओ० संख्या 162/2023 से संबंधित दोनों अपीलों को स्वीकार किया जाता है। अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 11.04.2023 के पारित निर्णय और डिक्री, जो प्रथम अपील संख्या 10/2022 और 11/2022 में पारित की गई थी, अपास्त की जाती है। यह अपीलें बलरामपुर के जिला न्यायाधीश के बोर्ड पर बहाल की जाती हैं। पक्षकार 10.07.2023 को जिला न्यायाधीश, बलरामपुर के समक्ष उपस्थित होंगे। अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय पक्षकारों को सुनवाई का पूरा अवसर देने के बाद, उन्हें उनके सभी विवाद उठाने की अनुमति सहित, अपीलों को गुण दोष के आधार पर अधिमानतः अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के समक्ष पक्षकारों के उपस्थित होने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर नए सिरे से निर्णीत करेगी, तथ्यों और परिस्थितियो के संबंध में लागत का कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 1087

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 19 / 2023

अमित शर्मा ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

श्रीमती शिक्षा ...प्रतिवादी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री बब्बन प्रसाद द्विवेदी, श्री हृदय नारायण पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री आशीष कुमार सिंह

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 15 - नियम 5 एवं (5(1), - उत्तर प्रदेश नगरीय भवन किराया विनियमन, किराया एवं बेदखली अधिनियम - धारा 30 - किराया समझौता - पुनरीक्षणकर्ता-विपक्षी और वादी-प्रतिवादी के बीच - वाद -आदेश - पुनरीक्षणकर्ता विपक्षी द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गई कि, वादी-प्रतिवादी ने पुनरीक्षणकर्ता-विपक्षी को हटाने के लिए आदेश 15 नियम 5 के तहत एक आवेदन दायर किया है, जिसका विधिवत उत्तर दिया गया था - लेकिन, आदेश पारित करते समय परीक्षण न्यायालय ने ठीक से विचार नहीं किया - न्यायालय ने पाया कि, जहां तक मामले का तथ्य चिंता का विषय है, यह मासिक किराया जमा न करने से संबंधित है, यह निर्विवाद है - पुनरीक्षणकर्ता-विपक्षी के पास मुकदमा कार्यवाही शुरू होने के बाद और मामले की सुनवाई की

पहली तारीख के बाद महीने-दर-महीने के आधार पर किराया जमा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था - आयोजित, एक बार यह निर्विवाद है कि संबंधित न्यायालय के समक्ष किराया जमा नहीं किया गया है, कानून में कोई राहत देने का प्रावधान नहीं है, लेकिन एकमात्र विकल्प सीपीसी के ओ. XV आर. 5 में दिए गए अनुसार बचाव को खत्म करना है - आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता व त्रुटि नहीं पाई गई - तदनुसार पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं है, इसलिए उसे खारिज किया जाता है।

पुनरीक्षण निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राधे श्याम चौरसिया और अन्य बनाम श्रीमती बबीता, 2022 एडीजे 272,
2. आशा रानी गुप्ता बनाम श्री विनीत कुमार, (2022) 0 सुप्रीम (एससी) 594

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

आज दाखिल किया गया पूरक हलफनामा रिकॉर्ड में लिया गया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह को सुना गया।

वर्तमान पुनरीक्षण वाद संख्या 42/2016 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.01.2023 के साथ-साथ दिनांक 25.01.2023 के डिक्री को चुनौती देते हुए दायर किया गया है।

पुनरीक्षणकर्ता - प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वाद संख्या 42/2016 वादी-विपक्षी पक्षकार द्वारा दायर किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि वादी-विपक्षी पक्षकार ने पुनरीक्षणकर्ता - प्रत्यर्थी के बचाव को खत्म करने के लिए आदेश XV, नियम 5, सीपीसी के तहत दिनांक 09.02.2022 को आवेदन दायर किया है, जिसका पुनरीक्षणकर्ता - प्रत्यर्थी ने दिनांक 18.04.2022 के उत्तर द्वारा विधिवत उत्तर दिया है। उन्होंने आगे दलील दी कि दिनांक 20.01.2023 को आरोपित आदेश पारित करते समय पुनरीक्षणकर्ता - प्रत्यर्थी के उत्तर पर उचित रूप से विचार नहीं किया गया है। दिनांक 18.04.2022 के उत्तर में, पुनरीक्षणकर्ता - प्रत्यर्थी ने कहा है कि वाद संख्या 42/2016 का दाखिल करना ही दोषपूर्ण था, क्योंकि इसे वादी के अधिवक्ता द्वारा भेजे गए नोटिस की तारीख से 30 दिन पहले दायर किया गया था। उन्होंने यह भी दलील दी कि चूंकि किराया समझौता 01.02.2016 से 11 महीने के लिए बढ़ा दिया गया था और उन्होंने पूरी बकाया राशि का भुगतान कर दिया था, इसलिए याचिकाकर्ता-प्रतिवादी पर भुगतान करने के लिए कुछ भी बकाया नहीं था, इसलिए, आक्षेपित आदेश दोषपूर्ण है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आदेश XV नियम 5 के दो भाग हैं, पहला भाग कहता है कि मुकदमे की पहली सुनवाई के दिन या उससे पहले पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी को संपूर्ण स्वीकृत राशि जमा करानी होगी और उसके बाद महीने दर महीने के आधार पर किराया

देना होगा। वर्तमान मामले में, दिनांक 09.02.2022 के आवेदन को इस आधार पर अनुमति दी गई है कि पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी ने 2016 में शुरू किए गए मुकदमे की पहली सुनवाई के बाद महीने-दर-महीने के आधार पर किराए के रूप में एक भी पैसा नहीं दिया है, जिसे पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी द्वारा दायर दिनांक 18.04.2022 के उत्तर में भी अस्वीकार नहीं किया गया है, बल्कि इसे स्वीकार कर लिया गया है।

उन्होंने आगे दलील दी कि पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी का आवेदन केवल इस आधार पर स्वीकार किया गया कि उसने मुकदमा शुरू होने और सुनवाई की पहली तारीख के बाद कोई किराया जमा नहीं किया है। अपने तर्क के समर्थन में, वादी-विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता ने **राधे श्याम चौरसिया और अन्य बनाम श्रीमती बबीता: 2022 एडीजे 272** मामले में इस न्यायालय के निर्णय और **आशा रानी गुप्ता बनाम श्री विनीत कुमार: (2022) 0 सुप्रीम (एससी) 594** के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

न्यायालय द्वारा बार के समक्ष भी सामना किये जाने पर पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री पाण्डेय ने निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया कि कोई किराया जमा नहीं किया गया है तथा मासिक किराया मुकदमे की कार्यवाही शुरू होने के बाद तथा मामले की पहली सुनवाई की तारीख के बाद जमा किया गया है।

मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड के साथ-साथ जिन निर्णयों पर अवलम्ब लिया और उनका परिशीलन किया है। जहां तक मामले का तथ्य मासिक किराया जमा न करने से संबंधित है, वह निर्विवाद है।

आदेश XV नियम 5 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता-प्रत्यर्थी के पास मासिक आधार पर किराया जमा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, चाहे वह इसे स्वीकार करे या न करे।

यह मुद्दा **राधेश्याम चौरसिया (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय के समक्ष था और इस न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद यह अवधारित किया है कि जिस न्यायालय में वाद दायर किया गया है, वहां मासिक आधार पर किराया जमा करना अनिवार्य है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं:

"5. स्वीकृत किराया आदि जमा करने में विफलता के लिए बचाव की हड़ताल किसी पट्टाकर्ता द्वारा अपने पट्टे के निर्धारण के बाद पट्टेदार को बेदखल करने और उससे उपयोग और कब्जे के लिए किराया या मुआवजे की वसूली के लिए किसी भी वाद में, प्रतिवादी वाद की प्रथम सुनवाई के समय या उसके पूर्व, उसके द्वारा देय मानी गई सम्पूर्ण रकम उस पर नौ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित जमा करेगा और चाहे वह किसी रकम को देय मानता हो या नहीं, वह वाद की सम्पूर्ण अवधि के दौरान देय मासिक रकम को उसके उपार्जित होने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर नियमित रूप से जमा करेगा और उसके द्वारा देय मानी गई सम्पूर्ण रकम या पूर्वोक्त मासिक रकम जमा करने में किसी चूक की दशा में, न्यायालय उपनियम (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उसके बचाव को रद्द कर सकेगा।

स्पष्टीकरण 1. "प्रथम सुनवाई" से तात्पर्य सुनवाई के लिए लिखित कथन दाखिल करने की तारीख से है, जिसका उल्लेख समन में किया गया है या जहां ऐसी एक से अधिक तारीखें उल्लिखित हैं, वहां उल्लिखित तारीखों में से अंतिम तारीख से है।

स्पष्टीकरण 2. अभिव्यक्ति "उसके द्वारा देय मानी गई सम्पूर्ण धनराशि" का तात्पर्य सम्पूर्ण सकल धनराशि से है, चाहे वह किराये के रूप में हो या उपयोग और अधिभोग के लिए प्रतिकर के रूप में, जिसकी गणना बकाया की स्वीकृत अवधि के लिए स्वीकृत किराये की दर से की गई हो, जिसमें पट्टाकर्ता की ओर से भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किए गए करों, यदि कोई हो, के अतिरिक्त कोई अन्य कटौती न की गई हो और पट्टाकर्ता को भुगतान की गई धनराशि, यदि कोई हो, जिसकी पट्टाकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित लिखित स्वीकृति हो और वह धनराशि, यदि कोई हो, जो उत्तर प्रदेश नगरीय भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 30 के अंतर्गत किसी न्यायालय में जमा की गई हो।

स्पष्टीकरण 3. (1) अभिव्यक्ति "मासिक देय राशि" का अर्थ है प्रतिमाह देय राशि, चाहे वह किराए के रूप में हो या उपयोग और कब्जे के लिए स्वीकृत किराए की दर पर मुआवजे के रूप में, पट्टेदार के खाते में भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किए गए करों, यदि कोई हो, को छोड़कर कोई अन्य कटौती नहीं करने के बाद।

(2) बचाव को समाप्त करने के लिए कोई आदेश देने से पहले, न्यायालय प्रतिवादी द्वारा उस संबंध में किए गए किसी अभ्यावेदन पर विचार कर सकता है, बशर्ते कि ऐसा अभ्यावेदन, प्रथम सुनवाई के 10 दिन के भीतर या उपधारा (1) में निर्दिष्ट सप्ताह की समाप्ति के भीतर, जैसा भी मामला हो, किया जाए।

(3) इस नियम के तहत जमा की गई राशि वादी द्वारा किसी भी समय निकाली जा सकती है:

प्रावधान है कि ऐसी निकासी से वादी द्वारा जमा की गई राशि की सत्यता पर विवाद करने वाले किसी दावे पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा:

आगे यह भी प्रावधान है कि यदि जमा की गई राशि में कोई ऐसी राशि सम्मिलित है जिसके बारे में जमाकर्ता द्वारा दावा किया गया है कि वह किसी भी कारण से कटौती योग्य है, तो न्यायालय वादी को ऐसी राशि निकालने की अनुमति देने से पूर्व उससे ऐसी राशि के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने की मांग कर सकता है।"

पहला भाग मुकदमे की पहली सुनवाई के समय या उससे पहले 'उसके द्वारा देय मानी गई संपूर्ण राशि' को ब्याज सहित जमा करने से संबंधित है। दूसरा भाग 'मासिक देय राशि' जमा करने से संबंधित है, जिसे मुकदमे की निरंतरता के दौरान जमा करना होता है। जहां तक मुकदमे की शुरुआत से पहले जमा की गई किसी भी राशि का सवाल है, अगर ऐसा कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो उसे बकाया राशि के विरुद्ध समायोजित किया जा सकता है। जहां तक दूसरे भाग का

प्रश्न है, संबंधित न्यायालय, जहां वाद दायर किया गया है, के समक्ष किराया जमा कराना अनिवार्य है। सीपीसी के आदेश XV नियम 5 के तहत आवेदन पर दिनांक 2.2.2021 को दायर आपत्ति के साथ-साथ न्यायालय के समक्ष दायर हलफनामे में, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि मुकदमे की प्रथम सुनवाई के बाद संबंधित न्यायालय के समक्ष उनके द्वारा कोई किराया नहीं दिया गया है। इस न्यायालय ने माया देवी (उपरोक्त) के मामले में स्पष्ट रूप से यह विचार किया है कि किरायेदारी से इनकार किए जाने की स्थिति में, उसे मुकदमे की पहली सुनवाई के समय या उससे पहले देय मानी गई राशि जमा करने की आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन फिर भी उसे एक सप्ताह के भीतर देय मासिक राशि जमा करने की आवश्यकता होगी। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"उपरोक्त मामले में यह माना गया था कि जहां प्रत्यर्थी मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते के अस्तित्व से इनकार करता है, उसे मुकदमे की पहली सुनवाई में या उससे पहले देय राशि जमा करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन फिर भी उसे यह करना होगा मुक़दमे की निरंतरता के दौरान देय मासिक राशि को उसके अर्जित होने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर जमा करें क्योंकि ऐसी जमा राशि इस तथ्य के बावजूद की जानी होगी कि वह किसी भी राशि को देय मानता है या नहीं।"

गया प्रसाद (उपरोक्त) के मामले में, न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया है कि सीपीसी के आदेश XV नियम 5 के प्रावधानों के अनुपालन में किराया जमा किया जाना आवश्यक है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

" किराये के भुगतान में चूक स्वीकार की गई है और यह रिकार्ड में साबित भी है क्योंकि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के अपने मामले के अनुसार उसने 04.08.1999 के बाद किराये का भुगतान नहीं किया है। यह भी विवादित नहीं है कि किराया सी.पी.सी. के आदेश XV नियम 5 के प्रावधानों के अनुपालन में जमा नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप, उनका बचाव भी रद्द कर दिया गया। इसलिए, बचाव को रद्द करने का आदेश भी किसी स्पष्ट कानूनी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है।"

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, सिटी ब्रांच पांडे हाता (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय ने फिर से यही विचार व्यक्त किया है कि किरायेदार द्वारा किराया जमा नहीं किया गया है, इसलिए बचाव को समाप्त करने में कोई अवैधता नहीं है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"मामले के स्वीकृत तथ्यों पर विचार करते हुए कि प्रत्यर्थी-याचिकाकर्ताओं ने सुनवाई की पहली तारीख को न तो किराये के बकाया पर विवाद किया है और न ही मासिक किराये का

भुगतान किया है और इस प्रकार सीपीसी के आदेश XV नियम 5 के तहत संरक्षण उनके लिए उपलब्ध नहीं था। परिणामस्वरूप, निचली अदालत ने आवेदन 37ग को स्वीकार करने और प्रत्यर्थियों-याचिकाकर्ताओं/किराएदारों के बचाव को खारिज करने में कोई कानूनी त्रुटि नहीं की है। जहां तक आवेदन 50 ग की अस्वीकृति का संबंध है, मैं पाता हूं कि इस न्यायालय के समक्ष वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान के अनुसार और प्रत्यर्थी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विवादित नहीं किए जाने के अनुसार, बहस के लिए निचली अदालत के समक्ष तारीख 8.2.2018 तय की जाती है। इसलिए, मैं निचली अदालत से यह अनुरोध करना उचित समझता हूं कि वह उपरोक्त एस.सी.सी. वाद संख्या 05/2016 2016 (राम निवास वर्मा एवं अन्य बनाम भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य) को कानून के अनुसार शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से आठ सप्ताह के भीतर, किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन दिए बिना, निर्णय करे।"

"11. सी.पी.सी. के आदेश XV नियम 5 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एस.सी.सी. वाद में प्रथम बार उपस्थित होने से पूर्व जमा की गई राशि को आवेदन दाखिल करने पर देय किराये के बकाये के लिए समायोजित किया जा सकता है, लेकिन मुकदमा दायर करने के बाद, उस न्यायालय के समक्ष किराया जमा करना अनिवार्य है, जहां मुकदमा संस्थित किया गया है। एक बार जब यह विवादित नहीं रह जाता है कि संबंधित न्यायालय के समक्ष किराया जमा नहीं किया गया है, जहां वाद संस्थित किया गया है, तो न्यायालय के समक्ष सी.पी.सी. के आदेश XV नियम 5 के प्रावधानों के तहत बचाव को खारिज करने का कोई विकल्प नहीं है।

12. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 की ओर से यह स्वीकारोक्ति है कि उसने समय-समय पर किराया दिया है और वह किरायेदार है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने मुकदमे की प्रथम सुनवाई के बाद संबंधित न्यायालय में कभी भी किराया नहीं दिया, जैसा कि सीपीसी के आदेश 5 नियम 15 के तहत आवश्यक है।

13. इसलिए, मामले के तथ्यों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर निर्धारित कानून के आलोक में, इसमें कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है और न्यायालय ने संशोधनवादियों के बचाव को सही रूप से खारिज कर दिया है। पुनरीक्षण में कोई मेरिट नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।"

पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने आशा **रानी गुप्ता बनाम श्री विनीत कुमार: (2022) 0 सुप्रीम (एससी) 594** के मामले में उसी मुद्दे पर विचार किया है और बहुत दृढ़ मत व्यक्त किया है कि एक बार जब महीने-दर-महीने के आधार पर किराया जमा नहीं किया जाता है, तो न्यायालय के पास उत्तरदाता-प्रत्यर्थी के पक्ष में अपनी शक्ति का प्रयोग करने का विवेकाधिकार नहीं है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं:

"13. वर्तमान प्रकृति के एक मुकदमे में, जहां प्रत्यर्थी ने पट्टेदार होने के अपने दर्जे से अन्यथा इनकार नहीं किया है, उसके लिए यह अनिवार्य था कि वह कानून की अपेक्षाओं का ईमानदारी से अनुपालन करता और पहली सुनवाई की तारीख को या उससे पहले ब्याज सहित बकाया किराये को जमा कर देता और किसी भी मामले में, सीपीसी के आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के दूसरे भाग के अनुसार, वह देय मासिक राशि को नियमित रूप से जमा करने के लिए विशिष्ट दायित्व के तहत था, चाहे वह ऐसा कोई बकाया स्वीकार कर रहा हो या नहीं।

16. तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में, हमारा स्पष्ट रूप से यह मत है कि वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था, जहां ट्रायल कोर्ट ने यह पाते हुए बचाव को खारिज कर दिया था कि प्रत्यर्थी द्वारा वादी के पक्ष में किराए का भुगतान या जमा करने को दर्शाने वाला कोई साक्ष्य रिकॉर्ड पर नहीं था। पुनरीक्षण न्यायालय ने भी प्रासंगिक विचारों के आधार पर ट्रायल कोर्ट के आदेश को मंजूरी दे दी थी। यहां तक कि उच्च न्यायालय ने भी उत्तरदाता-प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत दलीलों को सद्भावपूर्ण नहीं पाया, विशेषकर तब जब उसे किराए पर दी गई दुकान का सर्वेक्षण नंबर वादी के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख में स्पष्ट रूप से लिखा गया था। हमें यह बात काफी रोचक लगती है कि, ऐसा कोई ठोस कारण न पाए जाने के बावजूद जिसके लिए सीपीसी के आदेश XV के नियम 5 के तहत उत्तरदाता-प्रत्यर्थी के पक्ष में विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता था, तो आदेश के पैराग्राफ 45 की अंतिम पंक्ति में, उच्च न्यायालय ने अचानक अपना निष्कर्ष बताया कि: 'फिर भी प्रतिवादी/किरायेदार कुछ रियायत का हकदार है।'

निर्विवाद रूप से, जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, तथ्य फिर से वही हैं। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मामले की पहली सुनवाई के बाद याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने किराए के रूप में कोई राशि जमा नहीं की है, जिसका भुगतान महीने-दर-महीने किया जाना आवश्यक है। एक बार जब यह निर्विवाद हो जाता है कि संबंधित न्यायालय के समक्ष किराया जमा नहीं किया गया है, तो कानून में कोई राहत देने का प्रावधान नहीं है, लेकिन एकमात्र विकल्प बचाव को खत्म करना है, जैसा कि सीपीसी के आदेश XV नियम 5 में प्रावधान किया गया है।

न्यायालय द्वारा निर्धारित तथ्यों और कानून के मद्देनजर, मुझे दिनांक 20.01.2023 और 25.01.2023 के आदेशों में कोई अवैधता और त्रुटि नहीं मिली। तदनुसार, पुनरीक्षण में कोई मेरिट नहीं है और इसे **खारिज** किया जाता है।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA **1091**

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट टैक्स संख्या 1039 / 2021

कुलदीप अग्रवाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अभिषेक शर्मा, श्री नीरज शर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. कर कानून- लाइसेंस निरस्त करना- तलाशी और जब्ती- उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम: धारा 74- उत्तर प्रदेश आबकारी विदेशी मदिरा (बीयर को छोड़कर) के खुदरा विक्रय हेतु लाइसेंसों का व्यवस्थापन (सत्रहवां संशोधन) नियम, 2019- नियम 18(1); उत्तर प्रदेश आबकारी (बीयर के खुदरा विक्रय हेतु लाइसेंसों का व्यवस्थापन) नियम, 2001 - यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कारण बताओ नोटिस करदाता/लाइसेंसधारी को सतर्क करने और उसे कारण बताओ नोटिस में निहित आरोपों और उल्लंघनों का जवाब दाखिल करने में सक्षम बनाने के लिए जारी किया जाता है, जो कि कारण बताओ नोटिस में लाइसेंसधारी के विरुद्ध आरोपित किए गए हैं। (पैरा 28)

किसी विशेष प्रावधान का संदर्भ देते हुए कारण बताओ नोटिस में विशेष रूप से आरोप लगाए जाने चाहिए और ऐसे कथनों के अभाव में, उक्त कारण बताओ नोटिस टिकाऊ नहीं है। (पैरा 31)

कारण बताओ नोटिस में करदाता को यह बताना होगा कि प्रावधान में बताई गई विभिन्न चूकों या कमियों में से कौन सी चूक छह महीने से पांच साल तक की अवधि बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। जब तक करदाता को यह नहीं बताया जाता है, करदाता को विभाग के मामले से मिलने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। (पैरा 32)

याचिकाकर्ता को जारी किए गए कारण बताओ नोटिस में लाइसेंस प्राप्त परिसर में की गई तलाशी और उक्त परिसर से शराब की बरामदगी का उल्लेख है, तथा परिसर में की गई तलाशी का सारांश दर्ज करने के बाद याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह आरोप लगाया गया है कि उक्त कथन शर्त संख्या 5, 6 और 7 का उल्लंघन है तथा इससे आबकारी शुल्क के विशेष शुल्क की हानि हुई है; लाइसेंस रद्द करने और लाइसेंस शुल्क जब्त करने का प्रस्ताव करने के लिए उक्त आधार आरोपित किए गए थे। (पैरा 27)

याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस में शर्त संख्या 5, 6 और 7 का उल्लंघन करने का आरोप लगाया है। निरस्तीकरण आदेश, अपीलीय आदेश और पुनरीक्षण आदेश में इस आशय का कोई निष्कर्ष नहीं है कि शर्त संख्या 5 और 6 का कोई उल्लंघन हुआ है, केवल निष्कर्ष शर्त संख्या 7 के संबंध में है, इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि कारण बताओ नोटिस का जवाब देते समय याचिकाकर्ता को यह मान लेना था कि नियम 18(1)(ए) से (आई) में निहित किसी भी उल्लंघन का आरोप भी याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाया गया था। घटना में, प्रतिवादियों का यह विचार था कि नियम 18(1)(ए) से (आई) में निर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन के लिए कार्रवाई प्रस्तावित है, इसे स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए था। (पैरा 34)

बी. **यदि नियम बनाते समय विधानमंडल का उद्देश्य नियम 18(1)(ए) से (जी) में उल्लिखित अपराधों का शमन करना था, तो सूची में इसका उल्लेख किया जाना चाहिए था,**

जैसा कि नियम 18(5) में संलग्न तालिका में उल्लिखित उल्लंघनों के संबंध में किया गया है। स्पष्ट रूप से नियम 18(1)(ए) से (आई) में उल्लिखित उल्लंघनों का उल्लेख उन उल्लंघनों में नहीं किया गया है, जिन्हें नियम 18(5) में संलग्न तालिका में निर्दिष्ट बताया गया है और वे अलग हैं। नियम 18(5) में संलग्न सूची में क्रम संख्या 15 पर संदर्भित उल्लंघनों के संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि नियम 18(1)(ए) से (आई) में उल्लिखित उल्लंघन सार रूप में भिन्न हैं और नियम 18(5) में तालिका में उल्लिखित उल्लंघनों की तुलना में अधिक कठोर उल्लंघन प्रतीत होते हैं। इसलिए, नियम 18(1)(ए) से (आई) में उल्लिखित उल्लंघन समझौता योग्य नहीं हैं। (पैरा 36)

सी. **याचिकाकर्ता के खिलाफ उन दिनों दुकान खोलने के संबंध में आरोप लगाए गए थे, जो प्रतिबंधित थे और जैसा कि लाइसेंस की शर्त संख्या 7 में निहित है। हालांकि, फर्द बरामदगी में, यह कोई कथन नहीं है कि शराब निषेध के दिन बेची जा रही थी,** हालांकि, रद्दीकरण आदेश पारित करते समय और कारण बताओ नोटिस में, यह आरोप लगाया गया और पाया गया कि याचिकाकर्ता निषेध के दिन शराब बेच रहा था, हालांकि, उक्त उल्लंघन नियम 18(5) से जुड़ी सूची में क्रम संख्या 10 पर स्पष्ट रूप से उल्लेखित है और इस प्रकार, नियम 18(5) के अनुसार, उक्त उल्लंघन समझौता योग्य अपराध के अंतर्गत आता है और **इस प्रकार, अधिकारियों के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थना के अनुसार उक्त अपराध के समझौता करने के संबंध में आदेश पारित करना आवश्यक था, जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया है।** (पैरा 37)

डी. **यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रेस्तरां में शराब और बीयर की बिक्री के लिए विशेष शुल्क देय है, हालांकि, उक्त विशेष शुल्क या उसका नुकसान तभी हो सकता है जब बिक्री की गई हो। केवल किसी अन्य दुकान से संबंधित कथित शराब की बरामदगी और ऐसी शराब की बिक्री के संबंध में कोई निष्कर्ष न होने से, यह दर्ज करने का कोई आधार नहीं है कि** विशेष शुल्क का नुकसान हो रहा था और इस प्रकार, उस सीमा तक, दर्ज किया गया निष्कर्ष पूरी तरह से गलत है। (पैरा 39)

इस न्यायालय ने पाया कि लाइसेंस की शर्त संख्या 5 और 6 के संबंध में उल्लंघन, जिनका कारण बताओ नोटिस में आरोप लगाया गया था, याचिकाकर्ता के खिलाफ स्थापित और सिद्ध नहीं हुए हैं। नियम 18(1)(ए) से (आई) में निर्दिष्ट उल्लंघनों का कारण बताओ नोटिस में आरोप नहीं लगाया गया था, इसलिए, वे याचिकाकर्ता के खिलाफ स्थापित नहीं हुए हैं। लाइसेंस की शर्त संख्या 7 के उल्लंघन के संबंध में उल्लंघन आंशिक रूप से उचित है, हालांकि, यह नियम 18(5) के तहत तालिका के अनुसार 30,000/- रुपये की दर से समझौता योग्य है, (पैरा 40, 41)

यह निर्देश दिया जाता है कि प्रतिवादी प्राधिकारी आज से एक माह की अवधि के भीतर नियम 18(5) (सूची की क्रम संख्या 10) की तालिका में निर्दिष्ट दरों पर लाइसेंस की शर्त संख्या 7 के उल्लंघन के संबंध में अपराध

के शमन के लिए एक नया आदेश पारित करेंगे। (पैरा 44)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. नशीरवार और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1975) 1 एससीसी2 9 (पैरा 22)
2. कौर एवं सिंह बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, नई दिल्ली, 1997 (94) ई.एल.टी. 289 (पैरा 29)
3. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर बनाम एच.एम.एम. लिमिटेड, 1995 (76) ई.एल.टी . 497 (पैरा 29)
4. राज बहादुर नारायण सिंह शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ ., 1996 (88) ई.एल.टी. 24 (पैरा 29)
5. ओरिक्स फिशरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ 2011 (266) ई.एल.टी. 422 (पैरा 30)
6. अबान लोयड चाइल्स ऑफशोर लिमिटेड बनाम कॉमरेड। ऑफ कस्टम्स, महाराष्ट्र, 2006 (200) ई.एल.टी. 370 (पैरा 32)
7. केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, बैंगलोर बनाम गैमन फार केम्स लिमिटेड, (2003) 11 एससीसी 693 (पैरा 33)

वर्तमान याचिका में प्रतिवादी संख्या 1 (विशेष सचिव (आबकारी), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य), प्रतिवादी संख्या 2 (आबकारी आयुक्त उत्तर प्रदेश, मम्फोर्डगंज, प्रयागराज) और प्रतिवादी संख्या 3 (कलेक्टर, अलीगढ़) द्वारा क्रमशः दिनांक 06.10.2021, 03.01.2020 और 27.10.2019 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है।

कुलदीप अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (04.04.2023 ALLHC): MANU/UP/1317/ 2023

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरज शर्मा और प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता श्री ए.सी.त्रिपाठी को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 और 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.10.2021, 03.01.2020 और 27.10.2019 को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 2012 में विदेशी शराब बेचने से संबंधित नियमों के नियम 8(ii) के अंतर्गत अधिसूचना संख्या 25535 और अधिसूचना संख्या 10759 के तहत खैर, जिला अलीगढ़ में होटल गणेश गार्डन एंड रेस्टोरेंट का बार लाइसेंस दिया गया था; लाइसेंस शुल्क वर्ष 2019-20 तक का भुगतान किया गया बताया गया है।

4. याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप है कि 02.10.2019 को याचिकाकर्ता के बार में एक निरीक्षण किया गया था और उक्त निरीक्षण में कुछ अनियमितताएं पाई गईं। निरीक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि

याचिकाकर्ता के बार में शराब की कुछ बोतलें पाई गईं, जो अलग-अलग दुकानों की थीं, जिसके लिए लाइसेंस दिया गया था। यह भी पाया गया कि बार सेल्समैन के माध्यम से निषेधाज्ञा की तिथि पर भी चल रहा था। की गई तलाशी और जब्ती के संदर्भ में, स्पॉट मेमो तैयार किया गया और तलाशी और जब्ती मेमो में दर्ज समान आरोपों पर लाइसेंसधारी और सेल्समैन के खिलाफ 03.10.2019 को प्राथमिकी दर्ज की गई।

5. उक्त निरीक्षण के संदर्भ में, लाइसेंस प्राप्त परिसर में कई अनियमितताएं पाई गईं; याचिकाकर्ता को 03.10.2019 को कारण बताओ नोटिस दिया गया (अनुलग्नक-2)। तलाशी और जब्ती ज्ञापन में दर्ज उल्लंघनों का कारण बताओ नोटिस में उल्लेख किया गया था और कहा गया था कि उल्लंघनों के आधार पर, यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने लाइसेंस की शर्त संख्या 5, 6 और 7 का उल्लंघन किया था और राजस्व की और हानि हुई, क्योंकि बार में शराब परोसने के लिए विशेष शुल्क वसूलने का प्रावधान था।

6. उल्लंघनों के आलोक में तथा आरोपों के आधार पर कि प्रथम दृष्टया, लाइसेंसधारी लाइसेंसधारी की शर्त संख्या 5, 6 और 7 का उल्लंघन कर रहा था तथा विशेष शुल्क के भुगतान से बच रहा था, याचिकाकर्ता को कारण बताने के लिए कहा गया कि क्यों न लाइसेंस रद्द करने के लिए कदम उठाए जाएं। याचिकाकर्ता को सात दिन के भीतर जवाब प्रस्तुत करना था। साथ ही, कारण बताओ नोटिस के साथ ही याचिकाकर्ता के खिलाफ निलंबन आदेश भी पारित किया गया।

7. याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.10.2019 को प्रतिवादी संख्या 3 (अनुलग्नक-3) के समक्ष उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें सभी आधारों पर कारण बताओ नोटिस में लगाए गए आरोपों से इनकार किया गया और उक्त इनकार के अलावा, यह अनुरोध किया गया कि याचिकाकर्ता के मामले को उ.प्र. आबकारी अधिनियम (एतस्मिनपश्चात 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 74 के शासनादेश के अनुसार समझौता करने के लिए विचार किया जाए।

8. याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल उत्तर पर विचार करने के बाद, दिनांक 27.10.2019 को एक आदेश (अनुलग्नक-4) पारित किया गया जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश आबकारी विदेशी मदिरा (बीयर को छोड़कर) की खुदरा बिक्री हेतु अनुज्ञापत्रों का व्यवस्थापन (सत्रहवां संशोधन) नियमावली, 2019 के नियम 18(1) और वर्ष 2019 में संशोधित उत्तर प्रदेश आबकारी (बीयर की खुदरा बिक्री हेतु अनुज्ञापत्रों का व्यवस्थापन) नियमावली, 2001 (जिसे आगे नियमावली, 2019 कहा जाएगा) के आधार पर प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द कर दिया गया।

9. याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.10.2019 के रद्दीकरण आदेश को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उक्त याचिका को अधिनियम की धारा 11(1) के तहत अपील के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 11(1) के तहत अपील दायर की, जिसे भी दिनांक 03.01.2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने एक बार फिर अपीलीय आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की। उक्त रिट याचिका को राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण के उपाय की उपलब्धता के आधार पर खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के समक्ष अधिनियम की धारा 11(2) के तहत संशोधन प्रस्तुत किया। दिनांक 06.10.2021 को पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया। उक्त तीनों आदेशों को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरज शर्मा का तर्क है कि लाइसेंस प्रदान करना उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम और उसके तहत बनाये गये नियमों द्वारा शासित होता है। उन्होंने मेरा ध्यान बीयर की बिक्री के साथ-साथ बीयर के अलावा वाइन और मदिरा की बिक्री के संबंध में बनाए गए 2019 के विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया।

11. उनका तर्क है कि उक्त नियमों के संदर्भ में, नियम 18 के तहत लाइसेंस रद्द करने के संबंध में विशिष्ट शक्ति निर्धारित की गई है। उन्होंने तर्क दिया कि नियम 18 के तहत लाइसेंस रद्द करने की शक्ति का उपयोग लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा नियम 18(1) के खंड (क) से (झ) में निर्दिष्ट किसी भी स्थिति की स्थिति में किया जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि नियम 18(5) में खुदरा लाइसेंस से संबंधित उल्लंघनों के लिए नियम 18(5) में निहित तालिका में दर्शाई गई शर्तों पर समझौता करने का प्रावधान है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में, उल्लंघन को कम करने की शक्ति अधिनियम की धारा 74 में निहित है, जिसका कारण बताओ नोटिस में दायर आपत्तियों में अनुरोध होने के बावजूद अधिकारियों द्वारा प्रयोग नहीं किया गया है।

12. उन्होंने आगे तर्क दिया कि कारण बताओ नोटिस में याचिकाकर्ता को दिए गए लाइसेंस की शर्त संख्या 5, 6 और 7 के उल्लंघन/अतिक्रमण का आरोप लगाया गया था और साथ ही यह भी आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता द्वारा विशेष शुल्क की चोरी की गई थी, इस प्रकार, याचिकाकर्ता से सिर्फ अपने ऊपर लगे आरोपों का जवाब देने की उम्मीद की जा सकती थी। उन्होंने तर्क दिया कि 2019 नियमों के नियम 18(1)(क) से (झ) के तहत निर्धारित किसी भी उल्लंघन/शर्तों के संबंध में कारण बताओ नोटिस में कोई कथन नहीं था और इस संबंध में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्राधिकारियों ने कारण बताओ नोटिस में लगाए गए आरोपों से इतर आदेश पारित किया है।

13. उन्होंने आगे तर्क दिया कि तलाशी और जब्ती ज्ञापन में लगाए गए आरोप यह हैं कि शराब लोढ़ा स्थित दुकान और विदेशी शराब की दुकान खैर अड्डा (जिसके याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी लाइसेंसधारी हैं) के लिए थी और बाद में, लोढ़ा स्थित दुकान के संबंध में, प्रत्यर्थियों ने स्वयं ही अपराधों को कम करने की कार्यवाही की और लाइसेंस को

नियमित कर दिया और, प्रत्यर्थियों पर यह दायित्व था कि वे उल्लंघनों को कम करते।

14. कारण बताओ नोटिस में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में, वह मेरा ध्यान उस विशिष्ट आरोप की ओर आकर्षित करते हैं कि बार उस दिन अर्थात 2 अक्टूबर को खुला पाया गया जिस दिन बिक्री प्रतिबंधित थी और उक्त आरोप के संबंध में उनका तर्क है कि नियम 18(5) और उसके साथ संलग्न तालिका में विशेष रूप से निर्धारित शुल्क के भुगतान पर उक्त उल्लंघन के शमन का प्रावधान है। उन्होंने तर्क दिया कि अधिनियम और नियम की धारा 34 के तहत प्रदत्त शक्ति के अनुसार, प्रयुक्त शब्द "कर सकता है" है न कि "करेगा", और इस प्रकार, लाइसेंसिंग प्राधिकारी के पास लाइसेंस रद्द करने या न करने का व्यापक विवेकाधिकार निहित है, हालाँकि, उक्त विवेक का प्रयोग नियमों के अधिदेश के अनुसार किया जाना चाहिए न कि मनमाने तरीके से। इस प्रकार, उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित आदेश मनमाने होने के कारण तथा अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों की भावना का उल्लंघन होने के कारण रद्द किए जाने योग्य हैं।

15. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए.सी. त्रिपाठी ने रिट याचिका का पुरजोर विरोध किया और तर्क दिया कि कारण बताओ नोटिस में आरोपित उल्लंघन और तलाशी एवं जब्ती कार्रवाई के दौरान पाए गए उल्लंघन गंभीर प्रकृति के थे और आक्षेपित आदेश के माध्यम से लाइसेंस रद्द करने में कोई त्रुटि नहीं की गई है।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का विरोध करते हुए श्री ए.सी. त्रिपाठी ने तर्क दिया कि नियम 18 को अधिनियम की धारा 41 द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुसार तैयार किया गया है। नियम 18(1) के प्रावधानों को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, खंड (क) से (झ) में निहित उल्लंघन निलंबन या रद्द करने के लिए आधार प्रदान करते हैं। उन्होंने तर्क दिया कि श्री नीरज शर्मा का तर्क कि नियम 18(5) के तहत सभी अपराध समझौता योग्य हैं, इस साधारण कारण से गलत है कि नियम 18(1) में निहित उल्लंघन नियम 18(5) में निर्दिष्ट तालिका में उल्लिखित नहीं हैं और इस प्रकार, नियम 18(1) और नियम 18(5) दोनों अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते हैं और इस आधार पर याचिकाकर्ता के वकील का तर्क खारिज किए जाने योग्य है।

17. उन्होंने आगे तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 74 के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का एक अन्य तर्क भी खारिज किया जा सकता है क्योंकि धारा 74 स्वयं दो भागों में विभाजित है; एक उल्लंघन और धारा 34 से मिलने वाली शक्ति से संबंधित है, और दूसरा उन अपराधों के संबंध में है जो धारा 64 और धारा 68 के तहत दंडनीय हैं। उन्होंने तर्क दिया कि प्रदत्त शक्तियों के अनुसार दोनों

को अलग-अलग शमन किया जा सकता है, तथापि, वर्तमान मामले में, रद्दीकरण कार्यवाही धारा 34 से उत्पन्न नहीं हुई है और वास्तव में, नियम 18(1) से उत्पन्न हुई है और इस प्रकार, धारा 74 के तहत प्रदान की गई शमन की शक्तियों का लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

18. इस प्रकार, उनका तर्क है कि एक बार जब वह शक्ति उपलब्ध नहीं थी, तो लाइसेंसिंग प्राधिकारी ने कंपाउंडिंग के अनुरोध पर विचार न करने में कोई त्रुटि नहीं की है, जैसा कि कारण बताओ नोटिस के जवाब में प्रार्थना की गई थी।

19. उन्होंने आगे तर्क दिया कि यद्यपि कारण बताओ नोटिस में, लाइसेंस की शर्त संख्या 5, 6 और 7 के उल्लंघन का संदर्भ है, हालांकि, कारण बताओ नोटिस के समग्र पढ़ने पर, विभिन्न आरोप सामने आए हैं। नियम 18(1)(क) से (झ) में निहित उल्लंघनों का पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलील इस आधार पर खारिज की जा सकती है कि कारण बताओ नोटिस अस्पष्ट था।

20. पक्षकारों द्वारा की गई दलीलों के आलोक में, निर्धारण के लिए निम्नलिखित प्रश्न सामने आते हैं:-

i. क्या कारण बताओ नोटिस, जिसमें लाइसेंस की शर्त संख्या 5, 6 और 7 के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है, नियमावली 2019 के नियम 18(1)(क) से (झ) का सहारा लेकर रद्दीकरण की कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त है?

ii. क्या नियमावली, 2019 के नियम 18(1)(क) से (झ) के तहत अपराध नियम 18(5) के तहत समझौता योग्य हैं?

iii. क्या निषेधाज्ञा के दिन दुकान/रेस्तरां खोलने का आरोप नियम 18(5) के आदेश के अनुसार एक समझौता योग्य अपराध है?

21. उपरोक्त मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए अधिनियम की योजना और उसमें बनाए गए नियमों को देखना आवश्यक है।

22. यह सुस्थापित है कि इसमें लाइसेंस का कोई अधिकार नहीं है और यह केवल राज्य सरकार द्वारा दिया गया विशेषाधिकार है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नशीरवार एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य; (1975) 1 एससीसी 29** के मामले में माना है।

23. उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम में एक विशेष प्रावधान किया गया है, जो राज्य सरकार को शराब और अन्य मादक पदार्थों की बिक्री के लिए लाइसेंस देने तथा उस पर आबकारी शुल्क लगाने का अधिकार देता है। उक्त अधिनियम लाइसेंसिंग प्राधिकारी को अधिनियम की धारा 34 के तहत शक्तियों के संदर्भ में दिए गए लाइसेंस को रद्द करने या निलंबित करने की कार्रवाई करने का अधिकार भी देता है। धारा 34 इस प्रकार है:-

*"**34. लाइसेन्सों, आदि को रद्द या निलंबित करने की शक्ति-** (1) ऐसे निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए जिन्हें विहित करे, इस अधिनियम के अधीन कोई लाइसेन्स, परमिट या पास देने वाला प्राधिकारी उसे रद्द या निलम्बित कर सकता है-*

(क) यदि उसके धारक द्वारा देय किसी उत्पाद शुल्क या फीस का यथाविधि भुगतान न किया गया हो या;

(ख) उस दशा में जब ऐसे लाइसेन्स, परमिट या पास के धारक द्वारा या उसके सेवकों द्वारा या उसकी अभिव्यक्त या विवक्षित अनुज्ञा से उसकी ओर से कार्य करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे लाइसेन्स, परमिट या पास के निबन्धकों या शर्तों में से किसी निबन्धन या शर्त का उल्लंघन किया गया हो या

(ग) यदि उसका धारक इस अधिनियम के अधीन या राजस्व से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन दण्डनीय किसी अपराध का या किसी संज्ञेय तथा अजमानतीय अपराध का [या अनिष्टकर औषधि - द्रव्य अधिनियम, 1930 के अधीन] या मर्चेन्डाइज मार्क्स ऐक्ट, 1889 के अधीन दण्डनीय किसी अपराध का या भारतीय दण्ड संहिता की धारा 482 से 489 तक (दोनों धारायें सम्मिलित करके) के अधीन दण्डनीय किसी अपराध का सिद्ध दोष ठहराया गया हो या

(घ) यदि इस अधिनियम के अधीन किसी एकान्तिक विशेषाधिकार के गृहीता के आवेदन-पत्र पर लाइसेन्स, परमिट या पास दिया गया हो, तो ऐसे गृहीता द्वारा लिखित रूप से अधियाचन करने पर या

(ङ) यदि लाइसेन्स या परमिट की शर्तों में इच्छानुसार इस प्रकार रद्द या निलंबित किये जाने की व्यवस्था की गयी हो।

(2) जब किसी व्यक्ति द्वारा धृत कोई लाइसेन्स, परमिट या पास उपधारा (1) के खण्ड (क), (ख) या (ग) के अधीन रद्द किया जाय, तो पूर्वोक्त प्राधिकारी इस अधिनियम के अधीन या आबकारी राजस्व से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन या ओपियम ऐक्ट, 1878 के अधीन राज्य सरकार द्वारा या उसके प्राधिकार से ऐसे व्यक्ति को दिये गये किसी अन्य लाइसेन्स, परमिट या पास को रद्द कर सकता है।

(3) धारक इस धारा के अधीन अपने लाइसेन्स परमिट या पास के रद्द या निलंबित किये जाने के लिये न तो किसी प्रतिकर के और न हो उसके संबंध में भुगतान की गई किसी फीस या जमा की गई किसी धनराशि के प्रतिदान का हकदार होगा।

24. अधिनियम की धारा 34 के तहत प्रदत्त शक्तियों के अलावा, अधिनियम की धारा 35 के तहत अतिरिक्त शक्तियां प्रदान की गई हैं।

25. रोचक बात यह है कि अधिनियम की धारा 40 और धारा 41 राज्य सरकार और उत्पाद शुल्क आयुक्त को अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने और विनियमित करने

के लिए नियम बनाने का अधिकार देती है। धारा 40 और धारा 41 यहां नीचे उद्धृत की गई हैं:

"40. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति- *(1) राज्य सरकार इस अधिनियम के या आबकारी राजस्व से सम्बन्धित तत्समय प्रवृत्त अन्य विधि के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकती है।*

प्रतिबन्ध यह है कि यह समझा जायगा कि इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व, राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से आबकारी आयुक्त, उत्तर प्रदेश द्वारा बनायी गई उत्तर प्रदेश सरचार्ज शुल्क प्रणाली के अन्तर्गत अनुज्ञापन नियमावली, 1968, जैसा कि वह समय-समय पर आबकारी आयुक्त, उत्तर प्रदेश द्वारा संशोधित की गयी है, जब तक कि राज्य सरकार इस धारा के अधीन उसका परिवर्तन, निरसन या संशोधन न करे, उसी प्रकार विधिमान्य और प्रभावी है और सर्वदा रही है, मानों उक्त नियमावली राज्य सरकार के द्वारा इस धारा के अधीन विधिवत् बनायी गयी हो।

(2) विशेषतः और पूर्ववर्ती उपबन्ध की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राज्य सरकार निम्नलिखित के लिए नियम बना सकती है।

(क) धारा 10 (2) (ज) के अधीन- आबकारी आयुक्त या कलेक्टर द्वारा किन्ही शक्तियों के प्रतिनिहित किए जाने की विनियमित करने के लिए;

(ख) आबकारी विभाग के अधिकारियों की शक्तियों तथा कर्तव्यों को विहित करने के लिए:

(ग) अपील या पुनरीक्षण प्रस्तुत करने के लिए रीति और ऐसे अपील और पुनरीक्षण के निस्तारण की प्रक्रिया विहित करना:

(घ) किसी मादक वस्तु के आयात, निर्यात, परिवहन या उसे कब्जे में रखने को विनियमित करने के लिए:

(ङ) उन अवधियों तथा क्षेत्रों को, जिनके लिए तथा उन व्यक्तियों को, जिन्हें किसी मादक वस्तु के थोक या फुटकर विक्रय के लिए लाइसेन्स दिया जाय, विनियमित करने के लिए

(च) किसी क्षेत्र के निमित्त ऐसे विक्रय का कोई लाइसेन्स दिए जाने से पूर्व अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया तथा सुनिश्चित किए जाने वाले विषयों को विहित करने के लिए

(छ) किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी वर्ग को किसी मादक वस्तु का विक्रय करने का निषेध करने के लिए;

(ज) साक्षियों को खर्चा देने और समय की हानि के लिए उन व्यक्तियों को, जो धारा 49 के अधीन इस आधार पर छोड़े गए हों कि उन्हें अनुचित रूप से गिरफतार किया गया था और उन व्यक्तियों को, जिन पर मैजिस्ट्रेट के समक्ष इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय अपराधों का आरोप लगाया

गया हो, किन्तु वे दोषमुक्त हो गए हों, प्रतिकर देने के लिए;

(झ) धारा 49 के उपबन्धों के अधीन दूर से साक्षियों को आहूत करने की आबकारी अधिकारियों की शक्ति को विनियमित करने के लिए:

(ञ) उन आबकारी अधिकारियों को, जिन्हें तथा उस रीति को, जिसके अनुसार धारा 56 के अधीन सूचना या सहायता दी जानी चाहिए, घोषित करने के लिए:

(ट) अपने व्यवसाय में किसी भी हैसियत से सहायता देने के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी वर्ग को लाइसेन्स धारक द्वारा सेवायोजित किए जाने का निषेध करने के लिए;

(ठ) लाइसेन्स प्राप्त किसी भू-गृहादि में या उसके समीप नशे में रहने, जुआ खेलने और उत्पाती आचरण करने को और ऐसे भू-गृहादि में दुश्चरित्र व्यक्तियों के एकत्र हीन या रहने को रोकने के लिए।

(ड) अधिनियम के अधीन वसूल की गई शमन फीस में से उसके पचास प्रतिशत तक कलेक्टर द्वारा वसूल किये गये अर्थदण्ड में से उसके पचास प्रतिशत तक मामले पर विचारण करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा अधिकारिकों, अधिकारियों या इत्तिला देंने वालो को इनाम देने के लिये।

*(3) * * *"*

"41. आबकारी आयुक्त को नियम बनाने की शक्ति-

(1) आबकारी आयुक्त, राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के अधीन रहते हुए, निम्नलिखित के लिए नियम बना सकता है-

(क) किसी मादक वस्तु के निर्माण, सम्भरण, भण्डारकरण या विक्रय को, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं, विनियमित करना-

(1) ऐसे पदार्थ के निर्माण, सम्भरण, भण्डारकरण या विक्रय के लिये किसी स्थान का परिनिर्माण करना, उसमें परिवर्तन करना, उसकी मरम्मत करना, उसका निरीक्षण, पर्यवेक्षण प्रबन्ध करना और उस पर नियंत्रण रखना तथा उसमें अनुरक्षित किये जाने वाले उपस्कर, औजार और उपकरण:

(2) भांग के पौधे (कैनेविस सैटाइवा) की खेती करना:

(3) भांग के पौधे (कैनेबिस सैटाइवा) के उन भागों का संग्रहण करना जिनसे कोई मादक भेषज निर्मित किया जा सकता हो और उनसे किसी मादक भेषज का निर्माण करना;

(ख) किसी मादक वस्तु को भाण्डागार में जमा किये जाने को और किसी ऐसे भाण्डागार से या किसी आसवनी यवासवनी या विनिर्माणशाला से किसी मादक वस्तु के हटाये जाने को विनियमित करना;

(ग) किसी मादक वस्तु के किसी लाइसेंस, परमिट या पास के लिए जिसमें धारा 24 या धारा 24- क के अधीन किसी एकान्तिक या अन्य विशेषाधिकार के लिए दिया गया कोई प्रतिफल भी सम्मिलित है,

या उसके भण्डारकरण के लिए देय फीस का माप मान या उसे निश्चित करने की रीति विहित करना;

प्रतिबन्ध यह है कि इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जायगा कि वह राज्य सरकार को समय-समय पर अधिसूचना द्वारा कोई ऐसा विशेषाधिकार स्वीकृत किये जाने के प्रतिफल के भाव के रूप में कोई फीस, जिसके अन्तर्गत विक्रय (वेण्ड) फीस भी है, लगाने से रोकती है।

स्पष्टीकरण- (1) विभिन्न वर्गों के लाइसेन्स, परमिट, पास या भण्डारकरण के लिये तथा विभिन्न क्षेत्रों के निमित्त इस उपखण्ड के अधीन फीस विभिन्न दरों पर विहित की जा सकती है।

(2) ऐसी फीस या प्रतिफल निश्चित करने की रीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कोई एक या अधिक रीति भी है, अर्थात्-(1) नीलाम, टेण्डर आमन्त्रित करना,

(3) लाइसेन्स, परमिट या पास के अधीन किये गये विक्रय या उठाये गये कोटा के आधार पर निर्धारण।

(घ) किसी उत्पाद शुल्क या फीस के भुगतान का समय, स्थान और रीति को विनियमित करना;

(ङ) उन निर्बन्धनों को, जिनके अधीन तथा उन शर्तों को जिनके अनुसार कोई लाइसेन्स, परमिट या पास दिया जा सकता है, जिनमें निम्नलिखित विषयों के लिये व्यवस्था सम्मिलित है, विहित करना

(1) किसी मादक वस्तु के साथ किसी ऐसी वस्तु को, जो दुर्गन्धयुक्त और आपत्तिजनक समझी जाय, सम्मिलित करने का निषेध करना;

(2) किसी लाइसेन्स प्राप्त निर्माता या लाइसेन्स प्राप्त विक्रेता द्वारा किसी शराब की उच्च सान्द्रता को कम करके उसे निम्न सान्द्रता का बनाने की विनियमित करना या उसका निषेध करना:

(3) उस सान्द्रता, मूल्य या परिमाण को जिससे अधिक या कम किसी मादक वस्तु का विक्रय या सम्भरण न किया जायगा तथा उस परिमाण को जिससे अधिक विकृत स्प्रिट कब्जे में न रखी जा सकेगी, निश्चित करना तथा किसी मादक वस्तु के गुण का, मानदण्ड विहित करना:

(4) नकद विक्रय के सिवाय अन्यथा विक्रय का निषेध करना;

(5) उन दिनों या घंटो को निश्चित करना जिनमें कोई लाइसेन्स प्राप्त भू-गृहादि खुले रखे जाये या खुले न रखे जाये और ऐसे भू-गृहादि को विशेष अवसरों पर बन्द रखना;

(6) उन भू-गृहादि के स्वरूप का विशिष्ट विवरण जिनमें किसी मादक वस्तु का विक्रय किया जाय तथा ऐसे भू-गृहादि में प्रदर्शित किये जाने वाले नोटिस।

अनुवादित

(7) लाइसेन्स धारकों द्वारा रखे जाने वाले लेखे का प्रपत्र तथा उनके द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली विवरणियां; और
(8) लाइसेन्सों के अन्तरण का विनियमन

(च) (1) उस प्रक्रिया को घोषित करना जिसके अनुसार भारत में निर्मित स्प्रिट विकृत की जायगी:

(2) अपने अधिकारियों के अभिकरण द्वारा या उनके पर्यवेक्षण में ऐसी स्प्रिट को विकृत कराना;

(3) यह सुनिश्चित करना कि ऐसी स्प्रिंट विकृत की गई है या नहीं:

(छ) किसी ऐसी मादक वस्तु को जो प्रयोग के लिये अयोग्य समझी जाय, नष्ट करने की या अन्य प्रकार से उसके निस्तारण की व्यवस्था करना;

(ज) जब्त किये गये पदार्थों के निस्तारण को विनियमित करना।"

26. अधिनियम की धारा 41 के तहत प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति के संदर्भ में, राज्य सरकार ने "उत्तर प्रदेश आबकारी विदेशी मदिरा (बीयर को छोड़कर) की फुटकर बिक्री हेतु अनुज्ञापन व्यवस्थापन (सत्रहवां संशोधन) नियमावली, 2019" के नाम से नियम बनाये हैं। नियम 18 (1) से (5) तक लाइसेंस के निरस्तीकरण/निलंबन और कंपाउंडिंग और जुर्माने का प्रावधान है, जो नीचे उद्धृत किया गया है:

"18. अनुज्ञापन का निलम्बन और निरस्तीकरण और शास्तियाँ-

(1) लाइसेंस प्राधिकारी लाइसेंस को निलम्बित या निरस्त कर सकता है-

(क) यदि अनुज्ञापित परिसर में कोई बोतल पायी जाती है जिस पर शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है और जिस पर आबकारी विभाग द्वारा सम्यकरूप से अनुमोदित शुल्क के भुगतान के प्रमाण के रूप में सुरक्षा कोड नहीं लगाया गया है,

(ख) यदि अनुज्ञापित परिसर में किसी अन्य प्रकार की शराब या मादक औषधि (जिसके लिए अनुज्ञापन स्वीकृत नहीं किया गया है) पाई जाती है,

(ग) यदि अधिनियम या नियमावली के उपबन्धों के विरूद्ध लाइसेंसधारी के कबाजा में कोई मदिरा या मादक औषधि पायी जाती है,

(घ) यदि अनुज्ञापी द्वारा आवेदन के समय प्रस्तुत शपथ-पत्र त्रुटिपूर्ण पाया जाता है और उसमें दिया गया कथन असत्य पाया जाता है,

(ङ) यदि अनुज्ञापी अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त राजस्व से सम्बन्धित किसी अन्य विधि के अधीन दण्डनीय किसी अपराध में या किसी संज्ञेय और गैर जमानती अपराध में या स्वापक औषधि मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 या भारतीय दण्ड संहिता की धारा 482 से 489 के अधीन अपराध में दोष सिद्ध किया गया है,

(च) यदि लाइसेंस प्राप्त परिसर में कोई बोतल/कंटेनर पाया जाता है जिस पर अधिकतम खुदरा मूल्य मुद्रित नहीं है, और

(छ) यदि यह पाया जाता है कि लाइसेंस फर्जी नाम से प्राप्त किया गया है या लाइसेंसधारी किसी अन्य व्यक्ति की ओर से लाइसेंस धारण किये हुए हैं,

(ज) यदि लाइसेंस युक्त परिसर में कैरामल, रंग, सुगंधि, होलोग्राम/श्रिंक स्लीव अथवा बार कोड, लेबुल, कैप्सूल, मुहर अथवा अन्य अवैध सामग्री पायी जाती है,

(झ) यदि लाइसेंस परिसर में पानी या किसी अन्य पदार्थ से मिलावट/शराब में निम्न श्रेणी की शराब को उच्च श्रेणी की शराब के साथ मिलाना पाया जाता है, तो कानून के अन्य प्रासंगिक प्रावधानों के तहत भी कार्रवाई की जाएगी।

(2) लाइसेंस प्राधिकारी तत्काल लाइसेंस निलम्बित कर देगा- और लाइसेंस के निरस्तीकरण और प्रतिभूति जमा को समपहृत करने के लिए कारण बताओ नोटिस भी जारी करेगा लाइसेंसधारी अपना स्पष्टीकरण नोटिस की प्राप्ति के 7 दिन के भीतर प्रस्तुत कर सकता है। तत्पश्चात लाइसेंस प्राधिकारी लाइसेंसधारी को यदि वह ऐसा चाहे तो सुनवाई का समुचित अवसर देने के पश्चात उपयुक्त आदेश पारित करेगा।

(3) लाइसेंसधारी इस नियम के अधीन लाइसेंस के निलम्बन या निरस्तीकरण के लिए किसी प्रतिकर या वापसी के लिए दावा करने का हकदार नहीं होगा।

(4) यदि लाइसेंस निरस्त किया जाता है तो ऐसे लाइसेंसधारी को काली सूची में भी डाला जा सकता है तथा उसे भविष्य में कोई आबकारी लाइसेंसधारण करने से विवर्जित किया जा सकता है।

(5) फुटकर लाइसेंसों पर प्रशमन योग्य उल्लंघन के प्रकरणों में निम्नानुसार न्यूनतम प्रशमन शुल्क अधिरोपित किया जाएगा-

क्रमांक	उल्लंघन का प्रकार	प्रथम बार (रू. में)	द्वितीय बार (रू. में)	तृतीय बार (रू. में)
1	2	3	4	5
1.	निर्धारित समय से पूर्व अथवा पश्चात दुकान का खुला पाया जाना	2,500	3,000	5,000
2.	अनधिकृत विक्रेता द्वारा बिक्री करते हुए पाया जाना	5,000	7,000	10,000
3.	स्टाक रजिस्टर मांगने पर न प्रस्तुत करना	10,000	15,000	20,000
4.	स्टाक रजिस्टर अद्यतन न भरा जाना	10,000	15,000	20,000
5.	बोतलों और	10,000	15,000	20,000

अनुवादित

	पौव्वों या उनके लेबुलों, सुरक्षा प्रणाली अथवा बार कोड पिल्फर प्रूफ कैप या सील से बिगाड़ कराना			
6.	बिक्री में वृद्धि हेतु ग्राहक को प्रलोभन देना, जुआ अथवा नृत्य का आयोजन करना	5,000	7,000	10,000
7.	इयूटी पेड स्टाक को अनधिकृत परिसर/गोदाम से संचित करना	20,000	25,000	30,000
8.	लेखानुसार मात्रा से अधिक इयूटी पेड स्टाक का पाया जाना	25,000	30,000	50,000
9.	खुली मदिरा की बिक्री किया जाना	5,000	10,000	15,000
10.	मद्य निषेध, दिवसों/बन्दी के दिनों में मदिरा की बिक्री किया जाना	30,000	40,000	50,000
11.	बिना अनुमति परिसर में परिवर्तन करना	20,000	25,000	30,000
12.	निर्धारित एम.आर.पी. से अधिक दर पर मदिरा का विक्रय	75,000	1,50,000	लाइसेंस निरस्तीकरण की कार्यवाही
13.	अनुज्ञापित परिसर के बाहर	5,000	10,000	20,000
	नियमानुसार साइनबोर्ड में आवश्यक सूचना अंकित न करना अथवा त्रुटिपूर्ण ढंग से अंकित करना			
14.	दुकान में सफाई की समुचित व्यवस्था न पाया जाना	2,000	5,000	10,000
15.	अन्य कोई अनियमितता, जो क्रमांक-01 से 15 तक पर अंकित न हो	2,000	5,000	10,000

27. जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, पहले मुद्दे पर निर्णय करने के लिए, याचिकाकर्ता को दिया गया कारण बताओ नोटिस और जैसा कि अनुलग्नक - 2 में निहित है, लाइसेंस प्राप्त परिसर में की गई तलाशी और उक्त परिसर से शराब की बरामदगी का उल्लेख करता है, और परिसर में की गई तलाशी का सारांश दर्ज करने के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ यह आरोप लगाया जाता है कि उक्त कथन शर्त संख्या 5, 6 और 7 का उल्लंघन थे और इससे उत्पाद शुल्क के विशेष शुल्क की हानि हुई है; उक्त आधार पर लाइसेंस रद्द करने और लाइसेंस शुल्क जब्त करने का प्रस्ताव करने का आरोप लगाया गया था। याचिकाकर्ता को दिए गए लाइसेंस की शर्त संख्या 5, 6 और 7 इस प्रकार हैं:

"5 - शराब केवल पैगों (पैग बराबर 50 मि.ली. में) बेचा जायेगा। कोई बिकी मुहर बन्द बोतलों में नहीं की जायेगी।

6- लाइसेंस धारी एल.एल.-2 से केवल 750 मि.ली. क्वार्टर्स में सम्भारण प्राप्त करने के हकदार होंगे। उन्हें अपने स्टॉक में निपस और पिन्टस रखने की अनुज्ञा नहीं होगी।

7- बार का 14 अप्रैल (अम्बेडकर जयन्ती), 15 अगस्त (स्वतन्त्रता दिवस), 02 अक्टूबर (गॉधी जयन्ती), 26 जनवरी (गणतन्त्र दिवस) को अवकाश रहेगा।"

28. यह सुस्थापित है कि कारण बताओ नोटिस अनुज्ञापी/लाइसेंसधारक को सतर्क करने के लिए जारी किया जाता है तथा उसे कारण बताओ नोटिस में निहित आरोपों और उल्लंघनों, जो उक्त कारण बताओ नोटिस में लाइसेंसधारक के विरुद्ध आरोपित किए गए हैं, का उत्तर दाखिल करने में सक्षम बनाने के लिए जारी किया जाता है।

29. **कौर एंड सिंह बनाम कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, नई दिल्ली; 1997 (94) ईएलटी 289** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देना लाभदायक है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने **कलेक्टर बनाम एचएमएम लिमिटेड; 1995 (76) ईएलटी 497** और **राज बहादुर नारायण सिंह शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम यूओआई; 1996 (88) ईएलटी 24** के मामले में पहले के दो निर्णयों का अनुसरण करते हुए पैरा - 3 में निम्नानुसार अवधारित किया:

"3. इस न्यायालय ने अवधारित किया है कि जिस पक्ष को इस तरह का कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है, उसे अपने खिलाफ लगे आरोपों के बारे में अवश्य अवगत कराया जाना चाहिए। यह प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता है। जब तक निर्धारिती को इस बारे में सूचित नहीं किया जाता, उसे अपने विरुद्ध मामले का सामना करने का कोई अवसर नहीं मिलता। यह बात तब और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जब विभिन्न आधारों पर अधिक लम्बी परिसीमा अवधि का प्रयोग किया जा सकता है। निर्धारिती के विरुद्ध किस आधार पर आरोप लगाया गया है, यह उसे अवश्य बताया जाना चाहिए, तथा यह मानने की कोई गुंजाइश नहीं है कि कारण बताओ नोटिस जारी करने में वह आधार अंतर्निहित है। [देखें कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज बनाम एच.एम.एम. लिमिटेड, 1995 (76) ई.एल.टी. 497 और राज बहादुर नारायण सिंह शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, 1996 (88) ई.एल.टी. 24]।"

30. माननीय सर्वोच्च न्यायालय को **ओरिक्स फिशरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ; 2011 (266) ईएलटी 422** के मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करने की आवश्यकता और निष्पक्षता की कसौटी पर खरा उतरने के लिए कारण बताओ नोटिस में अपेक्षित शर्तों पर विचार करने का अवसर मिला, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित बातें दर्ज कीं:

"24. यह सर्वविदित है कि एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण को अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए निष्पक्षता से कार्य करना चाहिए तथा कारण बताओ कार्यवाही शुरू करते समय खुले मन से कार्य करना चाहिए। कारण बताओ

कार्यवाही का उद्देश्य उस व्यक्ति को नोटिस में दर्शाए गए प्रस्तावित आरोपों के विरुद्ध अपनी आपत्ति प्रस्तुत करने का उचित अवसर प्रदान करना है, जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई है।

25. कई क़ानूनों के संदर्भ में इस न्यायालय के समक्ष "आपत्ति करने का उचित अवसर" या "बचाव का उचित अवसर" जैसी अभिव्यक्तियाँ विचार के लिए आई हैं।

26. इस न्यायालय की संविधान पीठ ने खेम चंद बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1958 एससी 300 में, सेवा न्यायशास्त्र के संदर्भ में, कुछ सिद्धांतों को दोहराया था जो वर्तमान मामले में भी लागू होते हैं।

27. मुख्य न्यायाधीश एस.आर. दास ने खेम चंद (उपरोक्त) में सर्वसम्मत संविधान पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि "उचित अवसर' की अवधारणा में विभिन्न सुरक्षा उपाय शामिल हैं और उनमें से एक, विद्वान मुख्य न्यायाधीश के शब्दों में, है:

"(क) अपने अपराध को नकारने और अपनी बेगुनाही साबित करने का एक अवसर, जो वह तभी कर सकता है <u>जब उसे बताया जाए कि उसके खिलाफ क्या आरोप लगाए गए हैं और वे आरोप किन आरोपों पर आधारित हैं,</u>"

28. इसमें कोई संदेह नहीं है कि कारण बताओ नोटिस के स्तर पर, जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के बारे में अवश्य बताया जाना चाहिए, ताकि वह अपना बचाव कर सके और अपनी बेगुनाही साबित कर सके। यह स्पष्ट है कि उस स्तर पर आरोप-पत्र जारी करने वाला प्राधिकारी, उसे आरोप बताने के बजाय, उसके कथित अपराध के बारे में निश्चित निष्कर्ष नहीं दे सकता। यदि ऐसा किया जाता है, जैसा कि इस मामले में किया गया है, तो कारण बताओ नोटिस द्वारा शुरू की गई पूरी कार्यवाही अनुचितता और पक्षपात से दूषित हो जाती है और उसके बाद की कार्यवाही एक निष्क्रिय समारोह बन जाती है।"

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय को **कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज बनाम एचएमएम लिमिटेड; 1995 (76) ईएलटी 497** के मामले में कारण बताओ नोटिस के दायरे और इसके उद्देश्य पर विचार करने का अवसर मिला और अवधारित किया कि किसी विशेष प्रावधान का आह्वान करते हुए कारण बताओ नोटिस में विशेष रूप से आरोप लगाया जाना चाहिए और ऐसे कथनों के अभाव में, उक्त कारण बताओ नोटिस पोषणीय नहीं है।

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय को एक बार फिर **अबान लोयड चिल्स ऑफशोर लिमिटेड बनाम कमिश्नर ऑफ कस्टम्स, महाराष्ट्र; 2006 (200) ईएलटी 370** के मामले में सीमा शुल्क अधिनियम के तहत जारी कारण बताओ नोटिस के दायरे पर विचार करने का अवसर मिला, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"20. धारा 28 के परंतुक का प्रयोग तब किया जा सकता है, जब शुल्क का भुगतान मिलीभगत या जानबूझकर गलत बयान या

तथ्यों को छिपाने के कारण नहीं किया गया हो। जहां तक 'तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत करने या छिपाने' का सवाल है, उन्हें 'जानबूझकर' शब्द से परिभाषित किया जाता है। "गलत बयान या तथ्यों को दबाना" शब्दों से पहले "जानबूझकर" शब्द स्पष्ट रूप से बताता है कि करदाता की ओर से शुल्क से बचने की मंशा होनी चाहिए।

21. इस न्यायालय ने कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज बनाम एचएमएम लिमिटेड (उपरोक्त) में सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 11क की व्याख्या करते हुए टिप्पणी की है कि धारा 11क(1) के प्रावधान को आकर्षित करने के लिए यह दिखाया जाना चाहिए कि उत्पाद शुल्क धोखाधड़ी, मिलीभगत या शुल्क के भुगतान से बचने के इरादे से तथ्यों को छिपाने के जानबूझकर गलत बयान के कारण बच गया है। यह अवधारित किया गया है:

"... इसलिए, धारा 11क(1) के प्रावधान को आकर्षित करने के लिए कारण बताओ नोटिस में यह आरोप लगाया जाना चाहिए कि उत्पाद शुल्क का अधिरोपण या भुगतान, करदाता की ओर से धोखाधड़ी, मिलीभगत या जानबूझकर गलत बयान देने या तथ्य को दबाने के कारण या ऐसे व्यक्ति या उसके एजेंट द्वारा शुल्क के भुगतान से बचने के इरादे से अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के किसी भी प्रावधान के उल्लंघन के कारण नहीं किया गया है। कारण बताओ नोटिस में ऐसा कोई कथन नहीं पाया गया। ऐसा कोई कथन नहीं है कि उत्पाद शुल्क की चोरी जानबूझकर की गई थी या धोखाधड़ी या मिलीभगत की गई थी या करदाता जानबूझकर गलत बयान देने या तथ्य छिपाने का दोषी था। कारण बताओ नोटिस में ऐसे किसी भी कथन के अभाव में यह समझना कठिन है कि राजस्व विभाग अधिनियम की धारा 11-क(1) के परंतुक के तहत नोटिस को कैसे बरकरार रख सकता है।"

22. यह अवधारित किया गया कि कारण बताओ नोटिस में निर्धारिती को यह अवश्य सूचित किया जाना चाहिए कि परंतुक में उल्लिखित विभिन्न चूकों या कार्यों में से कौन सी चूक अवधि को छह महीने से पांच वर्ष तक बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। जब तक निर्धारिती को नोटिस नहीं दिया जाता है, तब तक करदाता को विभाग के समक्ष अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। यह अवधारित किया गया:

"... इस तर्क में काफी बल है। यदि विभाग धारा 11क(1) के परंतुक को लागू करने का प्रस्ताव करता है, तो कारण बताओ नोटिस में करदाता को यह बताना होगा कि परंतुक में बताई गई विभिन्न चूकों में से कौन सी चूक छह महीने से पांच साल तक की अवधि बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। जब तक निर्धारिती को सूचित नहीं किया जाता, तब तक उसे विभाग के समक्ष अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। उक्त उपधारा के परन्तुक में उल्लिखित चूक एक से अधिक हैं और यदि आबकारी विभाग

परन्तुक पर भरोसा करता है तो उसे कारण बताओ नोटिस में स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए कि करदाता के विरुद्ध आरोप उक्त परन्तुक के चौंतरफा आता है....।"

23. वर्तमान मामले में हम पाते हैं कि कारण बताओ नोटिस में यह आरोप नहीं लगाया गया है कि मिलीभगत या जानबूझकर गलत बयान देने या तथ्यों को जानबूझकर छिपाने के कारण सीमा शुल्क नहीं लगाया जा सका या उसका भुगतान नहीं किया जा सका। अपीलकर्ताओं को यह नहीं बताया गया कि परंतुक में उल्लिखित विभिन्न चूकों या कार्यों में से कौन सी चूक या कार्य उन्होंने किया था, जिसके कारण सीमा अवधि छह माह से पांच वर्ष तक बढ़ गई थी। अपीलकर्ताओं को नोटिस नहीं दिए जाने के कारण उन्हें विभाग के समक्ष अपना पक्ष रखने का अवसर नहीं मिला।"

33. सर्वोच्च न्यायालय को **कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, बैंगलोर बनाम गैमन फार केम्स लिमिटेड (2003) 11 एससीसी 693** के मामले में कारण बताओ नोटिस के दायरे पर विचार करने का अवसर भी मिला था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया था:

"5. यह पैरा किसी व्यक्ति को अधिसूचना के अंतर्गत छूट का लाभ लेने से रोकता है, यदि खंड (क) या खंड (ख) लागू होता है। यदि राजस्व विभाग ने उन तथ्यों के आधार पर कार्यवाही की होती जो अधिसूचना के पैरा 2 के अंतर्गत मामला बनाते हैं, तो न्यायाधिकरण (कलेक्टर) के लिए यह वैध होता कि वह अपने निष्कर्ष दर्ज करता, जो उसने किया। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कारण बताओ नोटिस इस आधार पर आगे नहीं बढ़ा कि निर्धारिती ने एक ही निर्माता द्वारा दो कारखानों में या एक से अधिक निर्माताओं द्वारा एक कारखाने में माल के उत्पादन के तथ्य का खुलासा नहीं किया। राजस्व विभाग का साधारण मामला यह था कि इस तथ्य का खुलासा न करके कि मेसर्स फ्रेसीसिनेट प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट कंपनी लिमिटेड, मेसर्स गैमन इंडिया लिमिटेड की एक सहायक कंपनी है, जिसका निर्धारिती एक प्रभाग है, तथ्य को दबाया गया है, जिसके कारण कलेक्टर को केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 11-क के परंतुक को लागू करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इस पहलू पर, न्यायाधिकरण (एक कलेक्टर) द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष राजस्व के मामले के अनुरूप नहीं है। इसलिए, हमारा विचार है कि राजस्व विभाग के लिए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 11-क के प्रावधान को लागू करने के लिए नया मामला बनाना संभव नहीं है।"

34. याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस में ऊपर उल्लिखित शर्त संख्या 5, 6 और 7 के उल्लंघन का आरोप लगाया है। निरस्तीकरण आदेश, अपीलीय आदेश और पुनरीक्षण आदेश में, इस आशय का कोई निष्कर्ष नहीं है कि शर्त संख्या 5 और 6 का कोई उल्लंघन हुआ था, केवल निष्कर्ष शर्त संख्या 7 के संबंध में है, इस प्रकार, यह नहीं माना जा सकता कि कारण बताओ नोटिस का जवाब देते समय, याचिकाकर्ता को यह मान लेना था कि नियम

18(1)(क) से (झ) में निहित किसी भी उल्लंघन का आरोप भी याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाया गया था। इस घटना में, प्रतिवादियों का मत था कि नियम 18(1)(क) से (झ) में निर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन के लिए कार्रवाई प्रस्तावित है, इसे स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए था।

35. इस सीमा तक, श्री ए.सी. त्रिपाठी का यह तर्क कि नियम 18(1)(क) से (झ) में उल्लिखित उल्लंघन कारण बताओ नोटिस में निहित थे, अस्वीकार किए जाने योग्य है।

36. निर्धारण के दूसरे बिंदु पर आते हैं कि क्या नियम 18(1)(क) से (झ) में उल्लिखित उल्लंघन समझौता योग्य हैं? स्पष्ट रूप से नियम 18(1)(क) से (झ) में उल्लिखित उल्लंघनों का उल्लेख उन उल्लंघनों में नहीं किया गया है जिन्हें नियम 18(5) में संलग्न तालिका में निर्दिष्ट बताया गया है और वे अलग-अलग हैं और इस प्रकार, उस सीमा तक, श्री ए.सी. त्रिपाठी का तर्क स्वीकार किए जाने योग्य है और श्री नीरज शर्मा के तर्क उस आधार पर अस्वीकार किए जाने योग्य हैं। यदि नियम बनाते समय विधानमंडल की मंशा नियम 18(1)(क) से (छ) में निर्दिष्ट अपराधों का शमन करना था, तो इसका उल्लेख सूची में किया जाना चाहिए था, जैसा कि नियम 18(5) से संलग्न तालिका में उल्लिखित उल्लंघनों के संबंध में किया गया है। नियम 18(5) से संलग्न सूची में क्रम संख्या 15 पर उल्लिखित उल्लंघनों के संबंध में श्री नीरज शर्मा का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि नियम 18(1)(क) से (झ) में उल्लिखित उल्लंघन मूलतः भिन्न हैं तथा नियम 18(5) की तालिका में उल्लिखित उल्लंघनों की तुलना में अधिक कठोर उल्लंघन प्रतीत होते हैं।

37. तीसरे बिंदु पर आते हुए, याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में, जो लाइसेंस की शर्त संख्या 7 में उल्लिखित दिनों में दुकान खोलने के संबंध में थे। यद्यपि जब्ती ज्ञापन में यह दावा नहीं किया गया है कि शराब निषेध के दिन बेची जा रही थी, तथापि, निरस्तीकरण आदेश पारित करते समय और कारण बताओ नोटिस में यह आरोप लगाया गया और पाया गया कि याचिकाकर्ता निषेध के दिन शराब बेच रहा था, हालाँकि, उक्त उल्लंघन नियम 18(5) से जुड़ी सूची में क्रम संख्या 10 पर स्पष्ट रूप से उल्लिखित है और इस प्रकार, नियम 18(5) के अनुसार, उक्त उल्लंघन समझौता योग्य अपराध के अंतर्गत आता है, और इस प्रकार, यह प्राधिकारियों के लिए आवश्यक था कि वे याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थना किए गए अनुसार उक्त अपराध के शमन के संबंध में आदेश पारित करते, जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया है।

38. बिक्री के कारण राजस्व के रूप में विशेष शुल्क की हानि के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप पर आते हुए, लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा अपने निष्कर्ष में पारित आदेश में, प्रस्तुतियों का संदर्भ लेने के बाद, कारण दर्ज किया गया है कि उपर्युक्त संदर्भित प्रस्तुतियों के आधार पर, शराबबंदी की तिथि (गांधी जयंती) को लाइसेंसी परिसर में किसी अन्य दुकान की विदेशी शराब तथा

किसी अन्य दुकान की बीयर बरामद की गई, जिसके लिए प्राथमिकी दर्ज की गई; उक्त निष्कर्ष के आधार पर, प्राधिकरण ने यह रिकार्ड किया कि विदेशी शराब और बीयर के अवैध भंडारण के कारण राज्य को विशेष शुल्क की हानि हुई।

39. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रेस्तरां में शराब और बीयर की बिक्री के लिए विशेष शुल्क देय है, तथापि, उक्त विशेष शुल्क या इसकी हानि केवल तभी हो सकती है जब बिक्री हो। केवल कथित रूप से किसी अन्य दुकान से संबंधित शराब की बरामदगी और ऐसी शराब की बिक्री के संबंध में कोई निष्कर्ष न होने से, यह दर्ज करने का कोई आधार नहीं है कि विशेष शुल्क की हानि हो रही थी और इस प्रकार, उस सीमा तक, दर्ज किया गया निष्कर्ष पूरी तरह से विकृत है।

40. उपरोक्त दर्ज निष्कर्षों के आधार पर, यह न्यायालय पाता है कि लाइसेंस की शर्त संख्या 5 और 6 के संबंध में उल्लंघन, जिसका कारण बताओ नोटिस में आरोप लगाया गया था, याचिकाकर्ता के विरुद्ध सिद्ध नहीं हुआ है। नियम 18(1)(क) से (झ) में निर्दिष्ट उल्लंघनों का कारण बताओ नोटिस में आरोप नहीं लगाया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता के खिलाफ ये साबित नहीं होते हैं।

41. लाइसेंस की शर्त संख्या 7 के उल्लंघन के संबंध में उल्लंघन आंशिक रूप से उचित है, तथापि, यह नियम 18(5) के तहत तालिका के अनुसार 30,000/- रुपये की दर से समझौता योग्य है।

42. विशेष शुल्क की हानि के संबंध में आरोप बरकरार रखने योग्य नहीं है।

43. रिट याचिका आंशिक रूप से **अनुमति** दी जाती है।

44. यह निर्देश दिया जाता है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारी आज से एक माह की अवधि के भीतर नियम 18(5) (सूची की क्रम संख्या 10) की तालिका में निर्दिष्ट दरों पर लाइसेंस की शर्त संख्या 7 के उल्लंघन के संबंध में अपराध के शमन के लिए एक नया आदेश पारित करेंगे।

45. वर्तमान रिट याचिका में उल्लिखित आदेश, ऊपर बताए गए सीमा तक को छोड़कर, रद्द किए जाते हैं।

46. आवश्यक परिणाम का अनुसरण किया जाए।

(2023) 5 ILRA 1106

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

विशेष अपील संख्या 215/2023

उर्मिला देवी पाल ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: ओम प्रकाश मणि त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून -वेतन -आम तौर पर, विलम्बित सेवा से संबंधित दावे को देरी और लापरवाही के आधार पर खारिज कर दिया जाएगा (जहां रिट याचिका दायर करके उपाय मांगा जाता है)। उक्त नियम के अपवादों में से एक निरंतर गलत से संबंधित मामले हैं, जिस तारीख को निरंतर गलत शुरू हुआ, यदि ऐसा निरंतर गलत चोट का निरंतर स्रोत बनाता है। लेकिन अपवाद का एक अपवाद है। यदि शिकायत किसी ऐसे आदेश या प्रशासनिक निर्णय के संबंध में है जो कई अन्य लोगों से संबंधित या प्रभावित है, और यदि मुद्दे को फिर से खोलने से तीसरे पक्ष के तय अधिकारों पर असर पड़ेगा, तो दावे पर विचार नहीं किया जाएगा। (पैरा 21)

रिट याचिका कुछ बकाया वेतन का दावा करते हुए दायर की गई थी, जिसका भुगतान याचिकाकर्ता की अनधिकृत अनुपस्थिति के आधार पर नहीं किया गया था और यह कार्रवाई का कोई सतत कारण नहीं है। (पैरा 22)

बी. **यह स्थापित कानून है कि हालांकि रिट याचिका दायर करने के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं है, इसे आवश्यक रूप से उचित तत्परता के साथ दायर किया जाना चाहिए और केवल बार-बार अभ्यावेदन करके, बहुत लंबी अवधि के लिए अपनी शिकायत के निवारण के लिए न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाने का अपीलकर्ता का आचरण, जो वर्तमान मामले में दो दशकों से अधिक है, उचित नहीं ठहराया जा सकता है और बार-बार अभ्यावेदन करने से रिट याचिका दायर करने में अनुचित देरी का प्रभाव कम नहीं होगा तथा कोई नया कारण नहीं बनाया जाएगा।** (पैरा 24)

अपीलकर्ता ने पहले भी दो बार रिट याचिकाएं अर्थात WP संख्या 4664 (एस/एस) 2005 और WP संख्या 4848 (एस/एस) 2014 दायर करके इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, लेकिन उसने 1998 से 2001 के बीच कुछ अवधि के लिए वेतन का भुगतान न किए जाने की अपनी शिकायतों को नहीं उठाने का फैसला किया, जिसे उसने रिट ए संख्या 6123/2022 में उठाया था, हालांकि उसके लिए कार्रवाई का कारण पहले ही अर्जित हो चुका था। **राहत के लिए दायर रिट याचिका, जिसका दावा अपीलकर्ता द्वारा पहले की रिट याचिकाओं को दायर करते समय किया जा सकता था और जिसका दावा उसने नहीं किया, वह स्पष्ट रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश II नियम 2 में निहित सिद्धांतों से प्रभावित होगी।** (पैरा 27)

सी. **यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यदि न्यायालय या न्यायाधिकरण किसी पुराने दावे या मृत शिकायत से संबंधित अभ्यावेदन पर विचार करने का निर्देश देता है, तो भी इससे कार्रवाई का कोई नया कारण नहीं बनता। कार्रवाई का मृत कारण फीनिक्स की तरह नहीं उभर सकता। इसी तरह, सक्षम प्राधिकारी को मात्र अभ्यावेदन प्रस्तुत करने से समय की बचत नहीं होती।** (पैरा 25)

यहां तक कि उक्त रिट याचिका की सुनवाई के समय भी, अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वकील ने रिट याचिका में दावा की गई राहतों

के लिए दबाव नहीं डाला और उन्होंने अपीलकर्ता के प्रतिनिधित्व के निर्णय के लिए निर्देश देने के लिए अपनी प्रार्थना को सीमित कर दिया। तदनुसार, प्रतिनिधित्व को एक तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश द्वारा तय किया गया है। यह न्यायालय निदेशक द्वारा विवादित आदेश में दिए गए तर्क को प्रतिस्थापित नहीं करेगा। (पैरा 28)

विशेष अपील निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. भारत संघ बनाम तरसेम सिंह, (2008) 8 एससीसी 648 (पैरा 21)
2. उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम श्री शिव चरण सिंह भंडारी एवं अन्य, 2013 (12) एससीसी 179 (पैरा 25)
3. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम देबब्रत तिवारी एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन 219 (पैरा 26)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. तुकाराम काना जोशी और अन्य बनाम एम.आई.डी.सी., (2013) 1 एससीसी 353 (पैरा 17)
2. सुखदत्त रात्रा एवं अन्य बनाम एच.पी. राज्य एवं अन्य, (2022) 7 एससीसी 508 (पैरा 17)

वर्तमान अपील में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.04.2023 को चुनौती दी गई है, जिसमें रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था, जिसे अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने निदेशक, बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार द्वारा पारित दिनांक 13.01.2023 के आदेश को निरस्त करने के लिए दायर किया था, जिसमें उनके दिनांक 29.09.2022 के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ओम प्रकाश मणि त्रिपाठी अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी. पी. नाग को सुना।

2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII, नियम 5 के तहत दायर वर्तमान विशेष अपील को स्थापित करके, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने रिट - ए संख्या 2924/2023 को खारिज करने वाले माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.04.2023 को चुनौती दी है जो अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा निदेशक, बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.01.2023 को रद्द करने हेतु दायर किया गया था, जिसमें उनके प्रतिनिधित्व दिनांक 29.09.2022 को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में कहा गया है, मामले के तथ्य, जैसा कि रिट याचिका में बताया गया है, यह है कि याचिकाकर्ता को 31.05.1995 को मुख्य सेविका के पद पर नियुक्त किया गया था और वह 25.04.1996 को अपने कर्तव्यों में शामिल हो गई।

4. दिनांक 15.06.2005 को याचिकाकर्ता का स्थानान्तरण सुल्तानपुर कर दिया

अनुवादित

गया। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 4664(एस/एस)/2005 दायर करके इस स्थानांतरण आदेश को चुनौती दी और 25.07.2005 को उपरोक्त रिट याचिका में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया कि याचिकाकर्ता को स्थानांतरण आदेश के अनुसरण में राहत नहीं दी जाएगी। रिट याचिका को अंततः 30.09.2005 के एक निर्णय और आदेश के माध्यम से निस्तारित किया गया, जिसमें निर्देश दिया गया कि यदि याचिकाकर्ता दस दिनों की अवधि के भीतर कोई प्रार्थना पत्र देता है कि दिनांक 13.07.2000 के शासनादेश के अनुसार तैनाती के स्थान में परिवर्तन हेतु, उसे गृह ब्लॉक को छोड़कर जिला लखनऊ के किसी भी ब्लाक में, या किसी निकटवर्ती जिले के किसी भी ब्लॉक को छोड़कर जिला लखनऊ के किसी भी ब्लॉक में समायोजित किया जाएगा और तब तक उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई की जाएगी। उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 30.09.2005 के क्रम में याचिकाकर्ता को जिला लखनऊ में तैनाती दे दी गई।

5. याचिकाकर्ता ने 2014 की रिट याचिका संख्या 4848 (एस/एस) के साथ एक और रिट याचिका दायर की, जिसमें वेतन, चिकित्सा अवकाश और छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के लाभ के कुछ बकाया का भुगतान ने करने की शिकायत उठाई गई, जिसका निस्तारण कर दिया गया। दिनांक 04.09.2014 के एक निर्णय एवं आदेश के माध्यम से निर्देश दिया गया कि निदेशक, बाल विकास एवं पुष्टाहार, लखनऊ को याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र पर निर्णय लेना चाहिए।

7. दिनांक 27.03.2015 को, निदेशक ने 2014 की रिट याचिका संख्या 4849 (एस/एस) में इस न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 04.09.2014 के अनुपालन में एक आदेश पारित किया, जिसमें कहा गया कि प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार जिला कार्यक्रम अधिकारी, लखनऊ, दिनांक 03.08.2007 से 20.08.2007 (18 दिन), 03.07.2008 से 17.072008 (15 दिन) , 04.06.2009 एवं26.06.2009 से 27.06.2009(3 दिन) की अवधि हेतु चिकित्सा अवकाश 01.02.2011से 28.02.2011(28 दिन) और 01.07.2013 से 31.08.2013 पहले ही स्वीकृत हो चुके थे और सितंबर, 2012 में दो दिन की अनुपस्थिति और मई, 2013 में तीन दिन की अनुपस्थिति हेतु छुट्टी आवेदन उपलब्ध नहीं था। आदेशों में आगे कहा गया कि याचिकाकर्ता को छठे वेतन आयोग की सिफारिशों का लाभ पहले ही दिया जा चुका है।

8. इसके बाद याचिकाकर्ता ने 02.03.2001 से 31.10.2001 की अवधि हेतु वेतन, 16.05.1998 से 01.03.2001 की अवधि हेतु वेतन और अन्य भत्ते, वर्ष 2003 हेतु सुनिश्चित कैरियर प्रोन्नयन का दावा करते हुए 2022 की रिट-ए-संख्या 6123 दायर की। कुछ अन्य बकाया यद्यपि रिट याचिका के समर्थन में कुछ हद तक

दलीलें पेश करने के बाद, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जारी करने हेतु अपनी प्रार्थना को सीमित कर दिया कि निदेशक, बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार को एक निर्देश याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 10.08.2022 पर विचार कर निर्णय लें। माननीय एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका का निस्तारण निदेशक बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार को आदेश देकर कह दिया कि याचिकाकर्ता ने अभ्यावेदन दिनांक 10.08.2022 पर विधि के अनुसार तर्कपूर्ण एवं स्पष्ट आदेश के साथ विचार एवं निर्णय करेगा।

9. उपरोक्त आदेश के अनुपालन में निदेशक, बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन का विस्तृत एवं तर्कसंगत आदेश दिनांक 13.01.2023 द्वारा निर्णय लिया।

10. 20.06.2005 से 26.10.2006 की अवधि हेतु वेतन भुगतान हेतु याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि यदि वह प्रस्तुत करती है उसकी अनुपस्थिति की अवधि हेतु छुट्टी का आवेदन पत्र, उस पर नियमों के अनुसार विचार किया जाएगा, लेकिन याचिकाकर्ता ने कोई छुट्टी आवेदन जमा नहीं किया है और इसलिए वह बिना छुट्टी के अपनी अनुपस्थिति की अवधि का वेतन प्राप्त करने की हकदार नहीं है।

11. दिनांक 02.03.2001 से 31.10.2001 की अवधि हेतु वेतन भुगतान हेतु याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में. कहा गया है कि याचिकाकर्ता को उन तारीखों हेतु 17,120/- रुपये का भुगतान किया गया था, जब वह इस अवधि के दौरान अपने कर्तव्यों में शामिल हुई थी। मार्च, 2001 से अगस्त, 2001 तक वेतन भुगतान के उनके दावे के विपरीत, मार्च 2001 में 8 दिन, अप्रैल, 2001 में 7 दिन, मार्च 2001 में 29 दिन, जून, 2001 में 2 दिन, जुलाई में 9 दिन और अगस्त, 2001 में 26 दिन और बाकी दिनों में, जब वह बिना किसी पूर्व सूचना अवकाश आवेदन के अनधिकृत रूप से अनुपस्थित थी, तो वह भुगतान प्राप्त करने की हकदार नहीं थी।

12. याचिकाकर्ता के निलंबन की अवधि के वेतन भुगतान के दावे के संबंध में, निदेशक ने कहा है कि जिला कार्यक्रम अधिकारी, बाराबंकी द्वारा

प्रेषित किए गए दिनांक 04.01.2023 के पत्र के अनुसार, निलंबन की अवधि (16.05.1998 से 09.09.2001) हेतु वेतन का भुगतान याचिकाकर्ता को बाल विकास परियोजना, पूरे डलई, बाराबंकी द्वारा किया गया है।

13. सितंबर, 2012 में दो दिन और मई, 2013 में तीन दिन के वेतन भुगतान के याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता उपरोक्त दिन पर किसी सूचना के अनुपस्थित थी। इसलिए वेतन भुगतान हेतु उसका दावा उचित नहीं पाया गया।

14. वेतन वृद्धि की बकाया राशि के भुगतान हेतु याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में आदेश में कहा गया था कि उसे टोकन संख्या 464142024 दिनांक 10.01.2023 के माध्यम से मात्र 6,39,057/- रुपये का भुगतान किया गया है और इन दिनों के वेतन का भुगतान किया गया है। याचिकाकर्ता बिना छुट्टी के अनुपस्थित रही, जिसका भुगतान उसे नहीं किया गया।

15. उपरोक्त विस्तृत चर्चा के बाद आदेश में कहा गया है कि याचिकाकर्ता दिनांक 01.03.2001 से 23.03.2001 के बीच 23 दिन, वर्ष 2001-02 में 61 दिन, वर्ष 2005-06 में 276 दिन, वित्तीय वर्ष 2006-07 में 209 दिन, वित्तीय वर्ष 2012-13 में दो दिन और वित्तीय वर्ष 2013-14 में 30 दिन हेतु अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रही। इस प्रकार, याचिकाकर्ता अपने सेवा कार्यकाल में कुल 665 दिनों तक बिना किसी प्रकार की छुट्टी प्राप्त किए अपने कर्तव्यों से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रही और इसलिए, उसकी सेवा निरंतर नहीं रही और वह सुनिश्चित कैरियर प्रोन्नयन (एसीपी) के फायदे का दावा करने की हकदार नही है।

16. उपरोक्त आदेश दिनांक 13.01.2023 को याचिकाकर्ता द्वारा रिट - ए संख्या 2924/2023 दायर करके चुनौती दी गई थी। माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 19.04.2023 के एक निर्णय और आदेश के माध्यम से रिट याचिका को खारिज कर

दिया, जो इस विशेष अपील में चुनौती के अधीन है। माननीय एकल न्यायाधीश ने माना कि निदेशक द्वारा पारित आदेश मामले के तथ्यों और परिस्थितों और वेतन आदि का भुगतान न करने के कारणों को बताता है और यह अदालत उपरोक्त आदेश में दिए गए तर्क को प्रतिस्थापित नहीं करेगी, जो तथ्यों पर ध्यान देता है कि याचिकाकर्ता 665 दिनों तक अनधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित रही।

17. माननीय एकल न्यायाधीश ने माना कि पहले याचिकाकर्ता ने कई रिट याचिकाएं दायर की थीं और याचिकाकर्ता द्वारा बाद में दायर की गई रिट याचिका अत्यधिक देरी और देरी से ग्रस्त है, क्योंकि यह कार्रवाई के कथित कारणों के उत्पन्न होने के 27 वर्ष बाद दायर की गई थी। माननीय एकल न्यायाधीश ने आगे कहा कि रिट याचिका पुराने दावे के संबंध में दायर की गई थी, जिसे याचिकाकर्ता ने पहले दो अवसरों पर दो रिट याचिकाएं दायर करके इस न्यायालय में नहीं उठाने का फैसला किया था। माननीय एकल न्यायाधीश ने माना कि रिट याचिका मौद्रिक दावों को उठाते हुए दायर की गई थी और कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने के 27 वर्ष ऐसी रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सका। माननीय एकल न्यायाधीश ने कहा कि रिट याचिका अनुकरणीय जुर्माना लगाने से परहेज किया कि याचिकाकर्ता एक तृतीय श्रेणी कर्मचारी है, जो सेवानिवृत्ति के कगार पर है।

18. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ओ. पी. एम. त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि सेवा संबंधी बकाया का भुगतान न करना कार्रवाई का एक निरंतर कारण है और इसलिए रिट याचिका में कोई देरी या देरी नहीं हुई है। उन्होंने **तुकाराम काना जोशी और अन्य बनाम के मामलों** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों **एम.आई.डी.सी. (2013)1 एससीसी 353 एवं सुखदत्त रात्रा एवं अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्यः (2022)7 एससीसी 508 पर** विश्वास व्यक्त किया है।

19. **सुखदत्ता रात्रा बनाम एच.पी. राज्य में (उपरिवर्णित),** याचिकाकर्ताओं की भूमि का उपयोग प्रतिवादी राज्य द्वारा वर्ष 1972-1973 में सड़क निर्माण हेतु बिना किसी भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के और बिना किसी मुआवजे के भुगतान के किया गया था। देवेंदर सिंह बनाम एच.पी.राज्य, सीडब्लयूपी संख्या 816/1992 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के एक फैसले के अनुसार, जिसमें राज्य की भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू करने का निर्देश दिया गया था, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 के तहत 16-10-2001 को एक अधिसूचना जारी की गई थी। और पुरस्कार 20-12-2001 को पारित किया गया। मुआवजे में वृद्धि हेतु अधिनियम की धारा 18 के तहत कार्यवाही दस पड़ोसी भूमि स्वामियों द्वारा शुरू की गई थी, जिनकी भूमि का उपयोग उसी सड़क के निर्माण हेतु किया गया था और संदर्भ न्यायालय द्वारा उनके पक्ष में दिनांक 4-10-2005 को एक पुरस्कार पारित किया गया था। इसके चलते अपीलकर्ताओं ने 2011 में उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसमे विषय भूमि हेतु मुआवजे या अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू करने की माँग की गई। उच्च न्यायालय ने माना कि इस मामले में सीमा के शुरुआती बिंदु पर निर्धारण हेतु कानून के अनुसार सिविल मुकदमा दायर करने की छूट के साथ रिट याचिका का निस्तारण कर दिया गया। उपरोक्त पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा किः-

"19.*वर्तमान मामले के तथ्यों से पता चलता है कि राज्य ने, गुप्त और मनमाने ढंग से, सक्रिय रूप से वितरण को सीमित करने का प्रयास किया गया कानून द्वारा अपेक्षित मुआवजे का, मात्र उन्हीं को जिन हेतु यह था विशेष रूप से उन सभी लोगों के बजाय अदालतों द्वारा उकसाया गया है जो इसके हकदार हैं। यह मनमानी कार्रवाई, जो अपीलकर्ता के प्रचलित अनुच्छेद 31 के अधिकार(कर्रावाई के कारण के समय) का भी उल्लंघन है, निस्संदेह उच्च न्यायालय द्वारा अपने अनुच्छेद 226 क्षेत्राधिकार के तहत विचार और हस्तक्षेप की आवश्यकता है।*

19.माननीय उच्चतम न्यायालय ने **तुकाराम काना जोशी बनाम महाराष्ट्र औद्योगिक विकास निगम** के निम्नलिखित अनुच्छेद का उल्लेख किया। (**एमआईडीसी**), (**उपरिवर्णित**)) जिसमें न्यायालय एक समान तथ्य की स्थिति से निपट रहा थाः-

> 11 ***ऐसे प्राधिकरण हैं जो कहते हैं कि देरी और लापरवाही दावा करने का अधिकार समाप्त कर देती है।*** *इनमें से अधिकांश प्राधिकरण सेवा न्यायाशास्त्र, दशकों पहले उनके साथ हुई गलती हेतु मुआवजा देना, वैधानिक बकाया की वसूली, शैक्षिक दावे से संबंधित हैं। सुविधाएं और इसी तरह के मामलों की अन्य श्रेणियाँ, आदि। यद्यपि, यह सच है कि कुछ प्राधिकारी हैं जो अनुच्छेद 32 या 226 के तहत देरी करते हैं और किस नागरिक को उपचार माँगने से रोकते हैं, भले ही उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ हो। संविधान के अनुसार, मामला पूरी तरह से एक अलग परिदृश्य से संबंधित है। राज्य के पदाधिकारियों ने बिना किसी कानून की मंजूरी के अपीलकर्ताओं की भूमि पर कब्जा कर लिया। अपीलकर्ताओं ने राज्य से मुआवजे का लाभ देने हेतु बार-बार कहा था या तो अधिग्रहण, या माँग या किसी अन्य अनुमेय वैधानिक मोड़ हेतु निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होगा।*

20. उपरोक्त टिप्पणियाँ उन मामलों के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए की गईं कि सरकार ने मुआवजे के भुगतान के बिना याचिकाकर्ताओं की भूमि का उपयोग किया था। संपत्ति का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए द्वारा संरक्षित एक संवैधानिक अधिकार है ओर इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि राज्य कानून की मंजूरी के बिना किसी नागरिक को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं कर सकता है और ऐसी परिस्थितियों में, मुकदमेबाजी शुरू करने में देरी कोई पूर्ण बाधा नहीं होगी। यद्यपि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से देखा कि सेवा न्यायशास्त्र से संबंधित ऐसे प्राधिकरण हैं जो कहते हैं कि देरी और देरी दावा प्रस्तुत करने के अधिकार को समाप्त कर देती है।

21. **भारत संघ बनाम तरसेम सिंह,(2008) 8 एससीसी 648** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा किः-

> 7. ***संक्षेप में कहें तो, सामान्यतः,विलंबित सेवा संबंधी दावादेरी और देरी के आधार पर खारिज कर दिया जाएगा*** (*जहाँ उपाय एक रिट याचिका दायर करके माँगा जाता है*) *या सीमा* (*जहाँ प्रशासनिक न्यायाधिकरण में एक आवेदन द्वारा उपाय माँगा जाता है*) *उक्त नियम के अपवादों में से एक निरंतर गलती से संबंधित मामले हैं। जहाँ सेवा संबंधी दावा किसी निरंतर गलती पर आधारित हो, तो राहत तब भी*

दी जा सकती है, जब सुधार की माँग करने में लंबी देरी हो, उस तारीख के संदर्भ में जिस तारीख को गलती शुरू हुई थी यदि ऐसी लगातार गलती से चोट का निरंतर स्रोत बनता है। लेकिन अपवाद का एक अपवाद भी है। यदि शिकायत किसी आदेश या प्रशासनिक निर्णय के संबंध में है जो कई अन्य लोगों से संबंधित है या प्रभावित है, और यदि मुद्दे को फिर से खोलने से तीसरे पक्ष के तय अधिकारों पर असर पड़ेगा, तो दावे पर विचार नहीं किया जाएगा। उदाहरण हेतु, यदि मामला भुगतान या वेतन या पेंशन के पुनर्निर्धारण से संबंधित है, तो देरी के बावजूद राहत दी जा सकती है क्योंकि यह तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है। लेकिन यदि दावे में वरिष्ठता या पदोन्नति आदि से संबंधित मुद्दे शामिल हैं, जो दूसरों को प्रभावित करते हैं, तो देरी से दावा पुराना हो जाएगा और विलंबासीमा का सिद्धांत लागू किया जाएगा। जहाँ तक पिछली अवधि हेतु बकाया की वसूली की परिणामी राहत का सवाल है, आवर्ती लगातार गलतियों से संबंधित सिद्धांत लागू होंगे। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय बकाया से संबंधित परिणामी राहत को आम तौर पर रिट याचिका दायर करने की तारीख से तीन वर्ष पहले की अवधि तक सीमित कर देंगे।

(जोर दिया गया)

22. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रिट याचिका कार्रवाई के निरंतर कारण के संबंध में दायर की गई थी और इसलिए इसे देरी के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता था। यद्यपि जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, रिट याचिका वेतन के कुछ बकाया का दावा करते हुए दायर की गई थी, जिसका भुगतान याचिकाकर्ता की अनाधिकृत अनुपस्थिति के आधार पर नहीं किया गया था और यह कार्रवाई का निरंतर कारण नहीं है और हम उपरोक्त में योग्यता नहीं पाते हैं। याचिकाकर्ता हेतु विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण।

23. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ओ.पी.एम. त्रिपाठी ने आगे प्रस्तुत किया है कि उन्होंने वेतन के भुगतान हेतु कई अभ्यावेदन दिए हैं और चूँकि वह अभ्यावेदन देकर अधिकारियों के साथ अपनी शिकायतों को आगे बढ़ा रही हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि रिट याचिका से प्रभावित है। देरी और कमी है उन्होंने आगे कहा कि रिट-ए-संख्या 6123/2022 में पारित आदेश दिनांक 22.09.2022 के माध्यम से, इस अदालत ने निदेशक, बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार को उनके अभ्यावेदन दिनांक 10.08.2022 पर विचार करने और निर्णय लेने का निर्देश दिया था। उसके अभ्यावेदन को अस्वीकार करने के आदेश को चुनौती देने

और वेतन के भुगतान का दावा करने हेतु उसके द्वारा दायर बाद की रिट याचिका में देरी नहीं होती है।

24.उपरोक्त निवेदन में भी कोई दम नहीं हैं क्योंकि यह स्थापित कानून है कि यद्यपि रिट याचिका दायर करने हेतु कोई सीमा निर्धारित नहीं है, लेकिन इसे उचित तत्परता के साथ और मात्र दोहराए गए अभ्यावेदन के साथ दायर किया जाना चाहिए, अपीलकर्ता का आचरण अपनी शिकायत के निवारण हेतु बहुत लंबी अवधि तक, जो कि वर्तमान मामले में दो दशकों से अधिक है, अदालत में नहीं जाने को उचित नहीं ठहराया जा सकता है और बार-बार अभ्यावेदन देने से रिट याचिका दायर करने में अनुचित देरी का प्रभाव कम नहीं होगा और न ही ऐसा होगा। कार्रवाई का कोई नया कारण बनाएं।

25.**उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम श्री शिव चरण सिंह भंडारी और अन्यः 2013(12) एससीसी 179** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कहा कि "*यह शीशे की तरह स्पष्ट है कि भले ही अदालत या न्यायाधिकरण किसी पुराने दावे या मृत शिकायत से संबंधि अभ्यावेदन पर विचार करने का निर्देश देता है कार्रवाई के नए कारण को जन्म न दें। कार्रवाई का मृत कारण फीनिक्स की तरह सामनें नहीं आ सकता। इसी तरह, सक्षम प्राधिकारी को अभ्यावेदन प्रस्तुत करने मात्र से समय नहीं रुकता।*"

26.माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम देबब्रत तिवारी और अन्यः 2023 एससीसी ऑनलाइन 219** के मामले में हाल के फैसले में उपरोक्त निर्णय पर भरोसा किया गया है। जहाँ वर्ष 2005-06 में एक आवेदन जमा करने के बाद याचिकाकर्ताओं ने दस वर्ष की अवधि तक मामलों को आगे बढ़ाने हेतु कुछ नहीं किया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में इतनी लंबी देरी को उपचार की छूट के रूप में माना जा सकता है और इस तरह की देरी रिट याचिकाकर्ताओं को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन राहत से वंचित कर देगी।

27.वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता ने पहले दो मौकों पर दो रिट याचिकाएं यानी 2005 की रिट याचिका संख्या 4664(एस/एस) और 2014 की रिट याचिका संख्या 4848(एस/एस) दायर करके इस अदालत का दरवाजा खटखटाया था, लेकिन उसने वर्ष 1998 से 2001 के बीच कुछ अवधि हेतु वेतन का भुगतान ने करने की अपनी शिकायतों को न उठाने का फैसला किया, जिसे उन्होंने रिट ए संख्या 6123/2022 में उठाया था, यद्यपि इस हेतु कार्रवाई का कारण पहले ही उन्हें मिल चुका था। जिन राहतों हेतु रिट याचिका दायर क गई पहले की रिट याचिकाएं दाखिल करते समय अपीलकर्ता द्वारा दावा किया

जा सकता था और जिस पर उसके द्वारा दावा नहीं किया गया था, वह सिविल प्रकिया संहिता, 1908 के आदेश ।। नियम 2 में निहित सिद्धांतों से स्पष्ट रूप से प्रभावित होगा।

28.उपरोक्त रिट याचिका की सुनवाई के समय भी, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका में दावा की गई राहतों हेतु दबाव नहीं डालने का फैसला किया और उन्होंने अपीलकर्ता के अभ्यावेदन के निर्णय के निर्देश हेतु अपनी प्रार्थना को सीमित कर दिया। तद्नुसार अभ्यावेदन का निर्णय तर्कपूर्ण एवं वाचिक आदेश द्वारा किया गया है। हम खुद को माननीय एकल न्यायाधीश के इस विचार से पूरी तरह सहमत पाते हैं कि यह अदालत विवादित आदेश में निदेशक द्वारा दिए गए तर्क को प्रतिस्थापित नहीं करेगी।

29.हम रिट याचिका को खारिज करने हेतु माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारण से भी सहमत हैं कि यह अत्यधिक देरी से दायर किया गया था और इस कारण से भी इसे खारिज किया जा सकता है।

30.इसलिए, हम माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के अलावा कोई अन्य दृष्टिकोण लेने हेतु राजी नहीं हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2003 में शुरू की गई विभिन्न रुक-रुक कर अवधियों हेतु वेतन का भुगतान न करने के विरुद्ध अपनी शिकायतों के संबंध में दायर की गई रिट याचिका 1998 की अवधि, अत्यधिक देरी और देरी से ग्रस्त है और यह भी कि रिट याचिका में चुनौती के तहत दिया गया आदेश एक सुविचारित आदेश था और यह अदालत आदेश में निदेशक द्वारा दिए गए तर्क को प्रतिस्थापित नहीं करेगी।

31.उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हमारी सुविचारित राय है कि विशेष अपील में योग्यता का अभाव है, जिसे तदनुसार खारिज किया जाता है। यद्यपि, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 5 ILRA 1113

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

रिट-ए संख्या 4476/2019 अन्य संबंधित मामलों के साथ

भवानी प्रसाद साहू एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, आशुतोष शाही

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - नियमितीकरण - वरिष्ठता- उत्तर प्रदेश दैनिक वेतन भोगी (समूह घ पदों पर नियुक्ति) नियमावली, 2001- नियम 4(1)(क) - उत्तर प्रदेश सेवा में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 - अब यह अनिवार्य नहीं रह गया है कि कोई भी नियमितीकरण भावी प्रभाव से किया जाए।

नियमावली, 2001 के नियम 4(1)(क) के अनुसार नियमितीकरण का अधिकार केवल उन रिक्तियों के विरुद्ध दिया गया है जो नियमावली, 2001 के लागू होने की तिथि को उपलब्ध थीं, न कि उसके बाद होने वाली किसी रिक्ति के विरुद्ध, क्योंकि यह भर्ती का स्थायी स्रोत नहीं है, ताकि किसी व्यक्ति को पद सृजन के कारण या अन्यथा 20.12.2001 के बाद किसी भी तिथि को रिक्तियां उपलब्ध होने पर भर्ती किया जा सके। (पैरा 35)

नियमितीकरण नियम 29.06.1991 से पहले पिछले दरवाजे से नियुक्त व्यक्तियों को एक बार के उपाय के रूप में नियमित करने के इरादे से यह ध्यान में रखते हुए तैयार किए गए थे कि ऐसी नियुक्ति अवैध नहीं है क्योंकि सेवा के नियमितीकरण की अवधारणा प्रक्रियागत अनियमितता को माफ करने का एक साधन है और इसका उद्देश्य केवल ऐसे दोषों को ठीक करना है, जो नियुक्तियां करते समय अपनाई गई धारणाओं के कारण हैं। (पैरा 34)

इस तथ्य पर भी ध्यान देना उचित है कि 25.06.2013 और 26.06.2013 के सरकारी आदेशों के तहत 80+27 अतिरिक्त पद सृजित किए गए थे। याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण केवल उन्हीं पदों के विरुद्ध हो सकता था। यदि कोई पद नहीं था, तो उनका नियमितीकरण केवल पद सृजन की तिथि से होगा न कि पूर्वव्यापी तिथि से। (पैरा 44)

बी. **नियम 4 में यह अनिवार्य किया गया है कि नियम, 2001 के अंतर्गत नियमितीकरण के प्रयोजनों के लिए, वरिष्ठता के क्रम में पात्रता सूची तैयार की जाएगी। वरिष्ठता के अनुसार तैयार की गई इस पात्रता सूची के आधार पर चयन समिति नियमितीकरण के लिए उम्मीदवारों के वाद पर विचार करेगी।** यह भी प्रावधान है कि नियम, 2001 के तहत नियमित किए गए व्यक्तियों की वरिष्ठता नियमितीकरण के आदेश की तारीख से गणना की जाएगी। (पैरा 39)

याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस)/ 2003 के अंतिम निर्णय के अधीन था, जिसमें 20.08.2015 को कानून के अनुसार नई वरिष्ठता सूची तैयार करने का आदेश पारित किया गया था। इससे पहले, 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची में कई विसंगतियां थीं और सरकार ने 05.07.2003 के आदेश के तहत 20.06.2003 की उक्त वरिष्ठता सूची को रद्द कर दिया था। रिट याचिका संख्या 4302/2003 (एसएस) में पारित अंतरिम आदेश दिनांक 24.07.2003 के आधार पर याचिकाकर्ता नियमित कर्मचारी बने रहे। (पैरा 37, 40)

सी. **एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट (न्यायालय के कार्य से किसी को कोई नुकसान नहीं होगा) के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जब न्यायालय के आदेश द्वारा किसी व्यक्ति के वैधानिक/संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन किया गया हो, तो न्यायालय ऐसे आदेश को वापस लेने या उसकी समीक्षा करने में संकोच नहीं करेगा।** (पैरा 41)

अंतरिम आदेश याचिकाकर्ताओं को 20.06.2003 के आदेश का लाभ लेने का कोई

अपरिवर्तनीय अधिकार नहीं देगा, जिसे 05.07.2003 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था। रिट याचिका संख्या 4302(SS)/2003 को 15.02.2023 के आदेश द्वारा खारिज किए जाने के बाद, 05.07.2003 का आदेश फिर से लागू हो गया और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका सं.4302(SS) /2003 में पारित 20.08.2015 के आदेश द्वारा निर्देशित कानून के अनुसार नई वरिष्ठता सूची बनाने पर कोई रोक नहीं हो सकती थी और यहां तक कि न्यायालय के किसी आदेश के बिना भी 05.07.2003 का आदेश फिर से लागू हो गया। (पैरा 42)

डी. **नियमितीकरण को पूर्वव्यापी प्रभाव से प्रभावी नहीं किया जा सकता। यह आमतौर पर भावी होता है ताकि नियमित सेवा में शामिल सभी लोगों की वरिष्ठता प्रभावित या बाधित न हो।** यदि इस तरीके से पिछली तिथि से तदर्थ सेवा को नियमित किया जाता है, तो यह कैडर में नियमित रूप से नियुक्त कर्मचारियों की वरिष्ठता को प्रभावित करेगा और इसलिए, आमतौर पर नियमितीकरण को भूतलक्षी प्रभाव से नहीं बल्कि भावी प्रभाव से प्रभावी होना चाहिए। तदर्थ नियुक्तियां, आकस्मिक श्रमिक और दैनिक वेतनभोगी व्यक्ति सेवा के सख्त अनुशासन के अधीन नहीं होते हैं, और यह आम अनुभव की बात है कि उनकी उपस्थिति अक्सर नियमित नहीं होती है और कई बार वे नियुक्ति के लिए योग्यता भी पूरी नहीं करते हैं क्योंकि उन्हें तदर्थ आधार पर लिया जाता है। इन कमियों को छूट देकर अनदेखा कर दिया जाता है और इसलिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे नियमित नियुक्तियों की वरिष्ठता को प्रभावित न करें। (पैरा 43)

ई. नियमितीकरण नियुक्ति का तरीका नहीं है। यदि नियुक्ति नियमों का पालन किए बिना की जाती है, तो वह अमान्य हो जाएगी, परिवीक्षा की कथित अवधि समाप्त होने पर कर्मचारी की स्थायीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता। (पैरा 44)

भर्ती नियमों तथा संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करके की गई कोई भी नियुक्ति अमान्य होगी। (पैरा 45)

नियमित भर्ती पर जोर दिया जाना चाहिए और केवल आकस्मिकता की स्थिति में ही स्थायी रिक्ति पर तदर्थ नियुक्ति की जा सकती है, लेकिन इसके तुरंत बाद नियमित भर्ती की जानी चाहिए और गैर-उपलब्ध पदों पर नियुक्तियों को नियमितीकरण के लिए ध्यान में नहीं लिया जाना चाहिए। नियमितीकरण का निर्देश देने वाले मामले मुख्य रूप से इस आधार पर आगे बढ़े हैं कि कर्मचारी को कुछ अवधि तक काम करने की अनुमति देने के बाद, उसे सार्वजनिक रोजगार के लिए संवैधानिक योजना पर चर्चा करने के बाद, वास्तव में उस आशय का कोई कानून बनाए बिना, समाहित कर लिया जाना चाहिए। (पैरा 45)

एफ. संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार राज्य को नियुक्तियां करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति तभी की जा सकती है जब पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करने के लिए उचित विज्ञापन दिया गया हो और विशेषज्ञों के एक निकाय या विशेष रूप से गठित समिति द्वारा चयन किया गया हो जिसके सदस्य लिखित परीक्षा या

साक्षात्कार या किसी अन्य तर्कसंगत मानदंड के माध्यम से निष्पक्ष और निष्पक्ष हों, ताकि विज्ञापन के जवाब में आवेदन करने वाले उम्मीदवारों की परस्पर योग्यता का आकलन किया जा सके। राज्य या संघ के अधीन किसी पद पर नियमित नियुक्ति निर्धारित तरीके में विज्ञापन जारी किए बिना नहीं की जा सकती जिसमें कुछ मामलों में रोजगार कार्यालय से आवेदन आमंत्रित करना शामिल हो सकता है, जहां पात्र उम्मीदवार अपना नाम पंजीकृत करवाते हैं। राज्य या संघ के तहत किसी पद पर कोई भी नियमित नियुक्ति, पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करने के लिए विज्ञापन जारी किए बिना और उचित चयन किए बिना की जाती है, जहां सभी पात्र उम्मीदवारों को प्रतिस्पर्धा करने का उचित मौका मिलता है, संविधान के अनुच्छेद 16 के तहत निहित गारंटी का उल्लंघन होगा। (पैरा 45)

जी. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालयों को सामान्यतः आमेलन, नियमितीकरण या स्थायी निरंतरता के लिए निर्देश जारी नहीं करने चाहिए, जब तक कि भर्ती स्वयं नियमित रूप से और संवैधानिक योजना के अनुसार न की गई हो। (पैरा 46)

चूंकि कुछ याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो चुके हैं या वे सेवानिवृत्ति के कगार पर हैं, इसलिए अंतरिम आदेश दिनांक 24.07.2003 के कारण उनको दिया गया लाभ वापस लेना न्यायोचित नहीं होगा और, इसलिए, यह प्रावधान किया जाता है कि विवादित आदेशों को लागू करते समय सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि याचिकाकर्ताओं या इसी तरह की स्थिति वाले व्यक्तियों को पहले से दिया गया लाभ वापस नहीं लिया जाना चाहिए, सिवाय इसके कि उन्हें विवादित आदेश दिनांक 11/12.10.2018 के अनुसार संबंधित तारीखों से नियमित माना जाना चाहिए। (पैरा 47)

रिट याचिकाएं निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम पुट्टी लाल, (1998) 1 यूपीएलबीईसी 313 (पैरा 34)
2. सचिव, कर्नाटक राज्य व अन्य बनाम उमा देवी (3) व अन्य, (2006) 4 एससीसी 1 (पैरा 34)
3. भारत, रजिस्ट्रार जनरल बनाम थिप्पा सेट्टी, 1998 (8) एससीसी 690 (पैरा 35)
4. नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम सोमवीर सिंह, (2006) 5 एससीसी 493 (पैरा 44)
5. सचिव, कर्ण बनाम उमादेवी, (2006) 4 एससीसी 1 (पैरा 46)

वर्तमान रिट याचिकाओं में अधिशासी अभियंता, प्रावधिक खंड, लोक निर्माण विभाग, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.10.2018/12.10.2018 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण के दिनांक 25.06.2013 के आदेश को निष्प्रभावी कर दिया गया है, जिसके तहत उनकी सेवाओं को 02.07.2003 से नियमित किया गया था, तथा नियमितीकरण के आदेश को दिनांक 21.04.2018 की नई

वरिष्ठता सूची के अनुसार फिर से संशोधित किया गया है। इसके अतिरिक्त, आदेश दिनांक 12.10.2018 को भी चुनौती दी गई है, जिसके अनुसार याचिकाकर्ताओं की नियमितीकरण की तिथि 02.07.2003 से बदलकर वर्ष 2011 कर दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाओं के इस समूह, जिसमे रिट याचिका संख्या 4476/ 2019 अग्रणी है, द्वारा कार्यकारी अभियंता, अनंतिम प्रभाग, लोक निर्माण विभाग, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.10.2018 / 12.10.2018 (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक 1) को चुनौती दी गई है, जिसके अन्तर्गत याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण आदेश दिनांक 25.06.2013 द्वारा 02.07.2003 द्वारा उनकी सेवाओं को नियमित करने को अप्रभावी बना दिया गया है तथा नियमितीकरण के आदेश को 21.04.2018 की नई वरिष्ठता सूची के अनुसार पुनरीक्षित किया गया है।

याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 12.10.2018 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके अन्तर्गत याचिकाकर्ताओं की नियमितीकरण की तिथि को 02.07.2003 से बदलकर वर्ष 2011 कर दिया गया है।

रिट याचिका संख्या 34756 / 2018 के याचिकाकर्ताओं ने 17.04.2003 के सरकारी आदेश को ध्यान में रखते हुए एक नई वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए उत्तरदाताओं को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में निदेश जारी करने हेतु भी अनुरोध किया है, क्योंकि राज्य सरकार ने इस बीच, नियमितीकरण नियमावली, अर्थात उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूरों का नियमितीकरण (समूह घ पदों पर नियुक्ति) नियमावली, 2001 भी बनाई थी।

2. याचिकाकर्ताओं को प्रारम्भ में लोक निर्माण विभाग में वायरमैन, इलेक्ट्रीशियन, हेल्पर, मेट, फायर अलार्म प्रचालक, वातानुकूलन प्रचालक आदि के पदों पर काम की आवश्यकता पर विचार करते हुए समय-समय पर दैनिक मजदूरों के रूप में नियुक्त किया गया था। कुछ याचिकाकर्ताओं ने उन्हें चतुर्थ श्रेणी के पद का नियमित वेतनमान प्रदान करने तथा उन्हें नियमित करने के लिए विचार करने के अनुरोध के साथ रिट याचिका संख्या 1427 (एसएस) / 1997: राम स्वरूप और उत्तर प्रदेश विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य प्रस्तुत की, जिस पर इस न्यायालय ने दिनांक 21.02.1997 को एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसके द्वारा न्यूनतम वेतनमान के भुगतान के लिए निर्देश दिया गया था, जो याचिकाकर्ताओं की श्रेणी के नियमित कर्मचारियों को दिया जा रहा था, जो रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं की सेवा की अवधि के सत्यापन के अधीन था।

3. इस बीच, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूरों का नियमितीकरण (समूह घ पदों पर नियुक्ति) नियमावली , 2001 बनाया (जो कि इस के आगे नियम, 2001 के नाम से उल्लिखित होंगे)। नियमावली , 2001 के नियम 4 में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे 29.06.1991 से पहले दैनिक मजदूरी के आधार पर नियुक्त किया गया था तथा यदि नियमों के प्रारंभ की तिथि अर्थात

21.12.2001 को वह सेवा में बना हुआ है एवं आवश्यक योग्यता रखता है तो उसके नियमितीकरण के लिए विचार किया जाएगा।

4. उक्त नियमों की उद्घोषणा के अनुसरण में राज्य सरकार ने सरकारी आदेश दिनांक 17.04.2003 द्वारा ऐसे सभी व्यक्तियों को, रिक्तियों की उपलब्धता के अनुसार एक संयुक्त वरिष्ठता सूची तैयार करके, नियमित करने के लिए एक नीतिगत निर्णय लिया, जो 29.06.1991 से पहले दैनिक मजदूर / कार्य प्रभार एजेंट के रूप में नियुक्त किए गए थे।

5. नियमितीकरण प्रक्रिया के आशय से कार्यवाही करने हेतु पूर्ववर्ती शासनादेशों के अनुक्रम में दिनांक 11.06.2003 को एक अन्य शासनादेश जारी किया गया था। इसके बाद दिनांक 20.06.2003 को एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया, जिसके अन्तर्गत लोक निर्माण विभाग में काम करने वाले दिहाड़ी मजदूरों की संयुक्त वरिष्ठता सूची जारी की गई।

6. दिनांक 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची से 54 व्यक्तियों को व्यवसाय के अनुसार नियमित करने के लिए 02.07.2003 को निर्णय लिया गया। इसके बाद दिनांक 05.07.2003 के आदेश द्वारा दिनांक 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची को रद्द करने का निर्णय लिया गया। 54 व्यक्तियों, जिन्हें दिनांक 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची के अनुसार 02.07.2003 को नियमित किया गया था, द्वारा वरिष्ठता सूची के रद्द होने और दिनांक 06.07.2003 के उनके नियमितीकरण को रद्द करने के आदेश से व्यथित होने के कारण रिट याचिका संख्या 4302 (SS) / 2003 : भारत सिंह तथा अन्य विरुद्ध उ. प्र. राज्य तथा अन्य, इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई । इस न्यायालय ने दिनांक 24.07.2003 के आदेश द्वारा दिनांक 06.07.2003 के आदेश पर रोक लगा दी। दिनांक 24.07.2003 के उक्त अंतरिम आदेश के बल पर उपरोक्त कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के रूप में कार्यरत रहे।

7. इस बीच, राम स्वरूप तथा अन्य द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका संख्या 1427 (एसएस) / 1997 का उत्तरदाताओं को मौजूदा नियमों के अनुसार उनके मामलों पर विचार करने के निर्देश के साथ अंतिम रूप से 13.11.2003 को निपटान किया गया था। जब इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 1427 (एसएस) / 1997 में दिनांक 13.11.2003 को पारित आदेश के अनुसार कोई निर्णय नहीं किया गया, तो उसके याचियों ने अवमानना याचिका संख्या 1687 / 2006 को प्राथमिकता दी तथा अवमानना याचिका में जारी निर्देशों के अनुसरण में दिनांक 12.04.2007 के आदेश द्वारा एक निर्णय लिया गया था, जिसमें विशेष रूप से कहा गया था कि याचिकाकर्ताओं के किसी कनिष्ठ को नियमित नहीं किया गया था। 15.07.2011 को अवमानना कार्यवाही में कुछ और आदेश पारित किए गए। इसके अनुपालन में उत्तरदाताओं द्वारा दिनांक 21.02.2011 के शासनादेश के अनुसरण में दिनांक 28.03.2011 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया था और सभी याचिकाकर्ताओं को नियमित किया गया था, हालांकि, उक्त आदेश

का प्रभाव प्रत्याशित था, इसके बाद अवमानना याचिका को दिनांक 13.01.2014 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

8. याचिकाकर्ताओं ने 02.07.2003 से अपनी सेवाओं को नियमित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जब कथित रूप से उनके कनिष्ठों को नियमित किया गया था।

9. दिनांक 25.06.2013 के शासनादेश द्वारा याचिकाकर्ताओं को उस तिथि से नियमित करने का निर्णय लिया गया जब से उनके कनिष्ठों को नियमित किया गया था तथा उक्त आदेश रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 के परिणाम के अधीन एक सशर्त आदेश था और उसी के अनुसरण में पहले के आदेश को संशोधित किया गया था एवं याचिकाकर्ताओं को पूर्वव्यापी नियमितीकरण का लाभ दिया गया था।

10. एक अन्य रिट याचिका संख्या 2412 (एसएस) / 2009 मोहसिन अली तथा अन्य द्वारा उनके मामलों उनके कनिष्ठों को नियमित करने की तिथि से विचार करने हेतु प्रस्तुत की गई थी जिसे रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 के साथ संयुक्त रूप से सुना गया था। इस न्यायालय ने विधि के अनुसार वरिष्ठता सूची तैयार करने का निर्देश देते हुए दिनांक 20.08.2015 को आदेश पारित किया। रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में दिनांक 20.08.2015 को पारित आदेश निम्नानुसार है:-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा उत्तरदाताओं के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

ये दोनों रिट याचिकाएं आपस में जुड़ी हुई हैं। यह विवाद नियमित करने के पूर्व तुलनात्मक वरिष्ठता के निर्धारण के बिना दैनिक मजदूरी नियमावली, 2001 के अंतर्गत सेवा में कार्य प्रभार और दैनिक मजदूरी कर्मचारियों के नियमितीकरण के परिणामस्वरूप उनकी परिणामी वरिष्ठता से संबंधित है।

वैधानिक नियमों में सेवा की अवधि के आधार पर तैयार किए गए दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों की वरिष्ठता के अनुसार विचार करने का प्रावधान है। जहां तक वर्तमान वाद का संबंध है, कार्य प्रभार के रूप में अथवा दैनिक मजदूरी के आधार पर काम करने वाले कर्मचारी विभिन्न व्यवसायों से संबंधित हैं तथा विवादित वरिष्ठता के आधार पर संबंधित व्यवसायों के प्रति उनके नियमितीकरण पर विचार किया गया है। आवश्यक रूप से, सेवा की कुल अवधि के आधार पर कर्मचारियों की वरिष्ठता नियमित करने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि अंतर-वरिष्ठता के निर्धारण के उद्देश्य से भी निर्धारित की जानी चाहिए, जो अन्य सेवा लाभों के लिए सेवा में नियमित होने का एक परिणाम है।

स्थायी अधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया है कि अंतिम वरिष्ठता सूची को इस अदालत द्वारा दिनांक 24.07.2003 को रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में पारित एक

अंतरिम आदेश के कारण अंतिम रूप नहीं दिया जा सका, जो इस प्रकार हैः-

"विरोधी पक्षों की ओर से नोटिस को विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

चार सप्ताह की अवधि के भीतर जवाबी शपथपत्र दायर किया जाए। प्रत्युत्तर शपथपत्र, यदि कोई हो, तीन सप्ताह के भीतर दाखिल किया जा सकता है।

तत्पश्चात सूचीबद्ध करें।

अगली तिथि तक, अनुलग्नक संख्या. 1 में निहित दिनांक 05.07.2003 के आदेश के संचालन पर रोक रहेगी।"

दोनों रिट याचिकाओं में पक्षकारों को कुछ समय तक सुनने के बाद और पक्षों की सहमति से, यह प्रावधान किया जाता है कि अंतिम वरिष्ठता (संयुक्त) विभाग द्वारा कार्य प्रभार / दैनिक वेतन कर्मचारियों के संबंध में लागू नियमों और शासनादेशों के अनुसार उनकी वर्तमान स्थिति को बाधित किए बिना आहरित एवं जारी की जा सकती है।

यह कार्य उत्तरदाताओं द्वारा सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर पूरा किया जाएगा। अंतिम वरिष्ठता सूची को रिकॉर्ड पर रखा जाएगा और इस बीच सभी संबंधितों को प्रसारित किया जाएगा। सूचीबद्ध करने की अगली तिथि से पहले प्रक्रिया को अंतिम रूप देने की व्याख्या करते हुए संबंधित प्राधिकारी द्वारा निश्चयात्मक रूप से एक शपथपत्र दायर किया जाएगा।

वरिष्ठता से उत्पन्न होने वाले पदोन्नति संबंधी लाभ विधि के अनुसार वरिष्ठता को अंतिम रूप दिए जाने के बाद ही दिए जा सकेंगे।

तीन महीने के तुरंत बाद सूचीबद्ध करें।"

11. दिनांक 20.08.2015 के आदेश के अनुपालन में, विभाग में लगे सभी दैनिक मजदूरों की मस्टर रोल से एक नई वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए 09.01.2015 को निर्णय लिया गया था तथा दिनांक 27.12.2017 के आदेश द्वारा उक्त उद्देश्य के लिए एक समिति का गठन किया गया था। आपत्तियां आमंत्रित करने के बाद, विधि के अनुसार दिनांक 21.04.2018 को एक अंतिम वरिष्ठता सूची जारी की गई थी।

12. श्री मोहसिन अली और अन्य द्वारा रिट याचिका संख्या 2412 (एसएस) / 2009 के रूप में प्रस्तुत रिट याचिका को अंतिम रूप से 10.11.2017 के निर्णय तथा आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को विधि के अनुसार तय करने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया। उक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व पर विधिवत विचार किया गया और दिनांक 01.02.2019 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया। उक्त आदेश को राज्य की ओर से दायर प्रतिशपथपत्र के अनुलग्नक-1 के रूप में अभिलेख पर रखा गया है, जिसे दैनिक मजदूरों द्वारा प्रस्तुत की गई

कई रिट याचिकाओं में पारित कई आदेशों और निर्णयों पर ध्यान देने के बाद पारित किया गया था। यह कहा गया था कि 02.07.2003 से याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियमित करने के प्रश्न पर दिनांक 12.10.2018 के आदेश को पहले ही तय कर लिया गया था और श्रमिकों को उनकी वरिष्ठता सूची के आधार पर उनकी पात्रता के अनुसार नियमित किया गया था। इसे ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय द्वारा निर्देशित मोहसिन अली और अन्य के प्रतिनिधित्व पर भी निर्णय लिया गया। दिनांक 21.04.2018 की वरिष्ठता सूची को अंतिम रूप देने के बाद, वरिष्ठता के अनुसार अंतिम आदेश जारी किए गए हैं।

13. नियमितीकरण आदेशों में विसंगतियों को ठीक किया गया है और वरिष्ठता सूची के अनुसार नए आदेश पारित किए गए हैं, जो वर्तमान रिट याचिकाओं के समूह में आक्षेपित हैं।

14. इस तथ्य पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा कि याचिकाओं के समूह के सभी कर्मचारियों को नियमित किया गया था; उनमें से अधिकांश सेवानिवृत्त हो चुके हैं और उनमें से कुछ की मृत्यु भी हो चुकी है।

15. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी और श्री आशुतोष साही ने कहा है कि एक बार जब याचिकाकर्ताओं को दिनांक 25.06.2013 के शासनादेश को आगे बढ़ाते हुए दिनांक 01.07.2013 और 04.07.2013 के आदेशों के माध्यम से 02.07.2003 से नियमित किया गया था और उन्हें सभी लाभ दिए गए थे, तो दिनांक 11.10.2018 सहपठित दिनांक 12.10.2018 के आक्षेपित आदेश के द्वारा, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में अर्जित निहित अधिकारों को याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर दिए बिना विवादित आदेशों द्वारा छीना नहीं जा सकता था। आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं और वे मनमाने और अवैध भी हैं जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अन्तर्गत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है अतः उन्हें हटाया जा सकता है।

16. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना दिनांक 12.10.2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा नियमितीकरण की तिथि को 02.07.2003 से वर्ष 2011 में बदलने / परिवर्तित करने का कार्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, इसलिए इसे अपास्त किया जा सकता है।

17. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पुनः यह अभिकथन प्रस्तुत किया है कि दिनांक 11.10.2018 और 12.10.2018 के विवादित आदेशों ने दिनांक 01.07.2013 और 04.07.2013 के आदेश को रद्द कर दिया है, जो राज्य सरकार के निर्णय दिनांक 25.06.2013 के अनुसरण में पारित किए गए थे। उक्त निर्णय रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुपालन में लिया गया था, जिसके आधार पर अवमानना कार्यवाही को हटा दिया गया था अतः दिनांक 01.07.2013 एवं 04.07.2013 के आदेशों ने

अंतिमता प्राप्त कर ली थी, जिसे आक्षेपित आदेशों द्वारा पुनः विचारित नहीं किया जा सकता था अतः आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने के योग्य हैं।

18. दिनांक 11.10.2018 के आक्षेपित आदेश का प्रभाव याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण के विषय को फिर से खोलना है, जिसे वाद-विवाद के पहले चक्र में विराम दिया गया था अतः आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा पहले की रिट याचिकाओं में पारित विभिन्न निर्णयों और आदेशों अतिलंघन करने के समान हैं।

19. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया गया है कि विवादित आदेश दिनांक 20.04.2018 की विवादित वरिष्ठता सूची के आधार पर पारित किए गए हैं। वरिष्ठता सूची दिनांक 20.04.2018 नियमावली, 2001 के नियम 4 (4) के विरुद्ध है, जो प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि के अनुसार नियमित करने के उद्देश्य से पात्रता सूची तैयार करने पर विचार करता है। यह विधि का प्रतिपादित सिद्धांत है कि जहां एक विधि में किसी विशेष कार्य को एक विशेष रीति से करने की आवश्यकता होती है, तो कार्य को उसी रीति से किया जाना चाहिए।

20. श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी ने आगे प्रस्तुत किया है कि रिट याचिका संख्या 2412 (एसएस) / 2009 में पारित इस न्यायालय के दिनांक 20.08.2015 के अंतरिम निर्देश को आगे बढ़ाने के लिए आक्षेपित वरिष्ठता सूची कथित रूप से तैयार की गई है, हालांकि, उक्त अंतरिम आदेश में, इस न्यायालय ने "उनकी वर्तमान स्थिति को बाधित किए बिना" वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए विशेष रूप से प्रावधान किया था। उक्त अंतरिम आदेश दिनांक 20.08.2015 को अंतिम निर्णय और दिनांक 10.11.2017 के आदेश के साथ विलय कर दिया गया था, अतः 20.08.2015 के अंतरिम आदेश ने अपनी प्रवर्तनीयता खो दी थी।

21. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि वरिष्ठता सूची को अंतिम रूप देने से पहले याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था, अतः, इस आधार पर भी वरिष्ठता सूची न्याय की दृष्टि से अनुचित है।

22. श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादियों ने रिट याचिका संख्या 2073 (एसएस) / 1997 में रिट याचिकाकर्ताओं अर्थात स्वर्गीय रमेश चंद्र और मूल चंद्र को नियमितीकरण का लाभ दिया था तथा 02.07.2003 से उनकी नियमितता की तिथि को चुनौती नहीं दी थी और उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृतक सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली 1974 के अन्तर्गत स्वर्गीय रमेश चंद्र और मूलचंद को नियमित कर्मचारियों के रूप में मानते हुए, जो क्रमशः 10.04.2008 और 5.03.2011 को दिवंगत हो गए, उनकी

संतानों को नियुक्ति दी थी, जबकि याचिकाकर्ताओं की नियमितीकरण की तिथि को विवादित आदेश द्वारा बदल दिया गया है, जो शत्रुतापूर्ण भेदभाव के बराबर है।

23. रिट याचिका संख्या 34756 (एसएस) / 2018 के याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम मोहन प्रधान ने प्रस्तुत किया है कि नियमावली, 2001 के साथ पठित दिनांक 17.04.2003 के शासनादेश के अनुसार, यह प्रावधान किया गया था कि उत्तर प्रदेश शासन के लोक निर्माण विभाग में काम करने वाले दिहाड़ी मजदूरों की पात्रता सूची प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से तैयार की जाएगी और 2001 के नियम का नियम 4(4) यह भी विहित करता है कि नियुक्ति प्राधिकारी दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्ति के आदेश की तिथि से निर्धारित वरिष्ठता के क्रम में उम्मीदवारों की पात्रता सूची तैयार करेगा और पात्रता सूची तैयार होने के बाद, चयन समिति इस तरह तैयार की गई पात्रता सूची से नियमितीकरण के लिए वरिष्ठता के क्रम में श्रमिकों के वाद पर विचार करेगी।

24. विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम मोहन प्रधान द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि दैनिक मजदूरी के आधार पर नियुक्ति या नियुक्ति के आदेश की तिथि से या में नियुक्ति की तिथि से वरिष्ठता सूची तैयार नहीं की गई है। नियमितीकरण के प्रयोजन के लिए पात्रता सूची प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से तैयार की जानी अपेक्षित है और जब संवर्ग / व्यवसाय में नियुक्ति के आदेश की तिथि को ध्यान में रखते हुए दिनांक 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची जारी की गई थी, न कि प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से दैनिक मजदूरी के आधार पर, तब याचिकाकर्ताओं ने अपनी आपत्तियां दायर कीं और राज्य सरकार ने दिनांक 05.07.2003 के आदेश द्वारा इसकी जांच करने के बाद वरिष्ठता सूची को इस आधार पर रद्द कर दिया कि यह दैनिक मजदूरी के आधार पर प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से तैयार नहीं की गई थी। शासन ने यह भी माना कि 29.06.1991 को दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्त किए गए उम्मीदवारों को भी सम्मिलित किया गया था, हालांकि वे नियमों के अन्तर्गत नियमितीकरण के लिए पात्र नहीं थे। कुछ कर्मचारियों की प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि के बारे में अन्य विसंगतियां थीं। शासन ने दिनांक 05.07.2003 के आदेश द्वारा उक्त वरिष्ठता सूची को रद्द कर दिया, जिस पर इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में पारित दिनांक 24.07.2003 के आदेश द्वारा रोक लगा दी गई थी। उक्त रिट याचिका निरस्त कर दी गई। शासनादेश दिनांक 16.07.2003 दैनिक मजदूरी के आधार पर प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित करने के उद्देश्य से पात्रता सह वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए प्रदान किया गया है।

25. आगे यह अभिकथन प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में पारित 20.08.2015 के अंतरिम आदेश में यह प्रावधान किया गया है कि कर्मचारियों की आवश्यक वरिष्ठता सूची न केवल नियमितीकरण के उद्देश्य से बल्कि अंतर वरिष्ठता के निर्धारण के उद्देश्य से भी सेवा की कुल अवधि के आधार पर तैयार की

जानी थी। दिनांक 20.04.2018 की आक्षेपित वरिष्ठता सूची दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्ति की प्रारंभिक तिथि के आधार पर नहीं, अपितु व्यवसाय के संवर्ग में प्रवेश की तिथि से तैयार की गई थी। रिट याचिका संख्या 34756 (एसएस) / 2018 में याचिकाकर्ता संख्या 2 की प्रारंभिक नियुक्ति को वरिष्ठता में 01.04.1994 के बजाय 28.03.1997 के रूप में दिखाया गया है, हालांकि पहले की वरिष्ठता सूची को रद्द करते समय शासनादेश दिनांक 05.04.2003 में इसका उल्लेख किया गया था।

26. यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया गया है कि वर्ष 1997 से पहले दैनिक वेतन / कार्य प्रभार प्रतिष्ठान पर नियुक्त सभी व्यक्तियों को किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया गया था, बल्कि उन्हें सहायक के रूप में रोजगार दिया गया था और सभी को Rs.437/- प्रति माह वेतन मिल रहा था। केवल 18.03.1997 को इस न्यायालय द्वारा ऐसे दैनिक वेतन / कार्य प्रभार कर्मचारी को न्यूनतम वेतनमान के लिए आदेश पारित किया गया था। उक्त रिट याचिका का निर्णय 13.11.2003 को नियमों के अनुसार उनके कनिष्ठ और समान रूप से स्थित दिहाड़ी मजदूरों को नियमित किए जाने की तिथि से नियमित करने के निर्देश के साथ किया गया था। अतः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 20.04.2018 की आक्षेपित वरिष्ठता सूची अवैध है और इसे रद्द किया जा सकता है।

27. राज्य की ओर से उपस्थित अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल कुमार यादव ने कहा है कि 02.07.2003 से पूर्वव्यापी प्रभाव से याचिकाकर्ताओं को नियमित करना सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं किया गया था। इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में पारित दिनांक 24.07.2003 के अंतरिम आदेश द्वारा दिनांक 05.07.2003 के आदेश पर रोक लगा दी थी। उस समय दिनांक 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची के अनुसार विभिन्न हस्त-कौशलों के दैनिक मजदूरों को नियमित करने की प्रक्रिया चल रही थी। हालांकि, इस बीच, राज्य सरकार ने उन कर्मचारियों के नियमितीकरण के लिए अतिरिक्त पदों के सृजन के लिए एक नीतिगत निर्णय लिया, जो 29.06.1991 को या उससे पहले कार्यरत थे और स्वीकृत पदों की अनुपलब्धता के कारण नियमित नहीं किए गए थे। अतः, दिनांक 21.02.2011 के सरकारी आदेश के अनुसार, 29.06.1991 को या उससे पहले नियुक्त किए गए श्रमिकों के नियमितीकरण के लिए विभिन्न व्यवसायों में 9189 अतिरिक्त पदों को मंजूरी दी गई थी, तत्पश्चात उन कर्मचारियों की सेवाएं जो 20.06.1991 को या उससे पहले कार्यरत थे और नियम की घोषणा की तिथि को काम कर रहे थे, नियमित की गईं। ये अतिरिक्त पद भावी नियमित रिक्तियों में समायोजन के अधीन बनाए गए थे।

28. सुंदर लाल एवं अन्य ने रिट याचिका संख्या 2073 (एसएस) / 1997 प्रस्तुत की थी तथा इस न्यायालय ने दिनांक 13.11.2003 के आदेश द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया था। रिट याचिका संख्या 2073 (एसएस) / 1997 में पारित आदेश दिनांक 13.11.2003 के अनुपालन में, कार्यकारी अभियंता, अनंतिम

प्रभाग लखनऊ ने दिनांक 12.04.2007 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ताओं के प्रत्यावेदन पर निर्णय लिया और तदनुसार अवमानना याचिका में अनुपालन शपथपत्र प्रस्तुत किया गया। उक्त अवमानना याचिका के लंबित रहने के दौरान, शासन ने दिनांक 26.06.2013 को एक आदेश जारी किया, जिसके द्वारा रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 (भरत सिंह एवं अन्य विरुद्ध उ. प्र. राज्य) के अंतिम निर्णय के अधीन 87 अतिरिक्त पद सृजित किए गए और अतिरिक्त पदों के प्रति, रिट याचिका संख्या 2073 (एसएस) / 1997 के याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को नियमित किया गया था तथा 02.07.2003 से प्रभावी सामान्य भविष्य निधि, समयमान एवं परिणामी लाभ प्रदान किए गए थे, हालांकि याचिकाकर्ताओं के किसी भी कनिष्ठ को 02.07.2003 से नियमित नहीं किया गया था।

29. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि राम स्वरूप एवं अन्य ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 1427 (एसएस) / 1997 योजित की और इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में दिनांक 13.11.2003 का आदेश पारित किया और उक्त रिट याचिकाकर्ताओं ने अवमानना याचिका, आपराधिक विविध वाद संख्या 1687 (सी): भवानी प्रसाद एवं अन्य विरुद्ध सतीश चंद्र अग्रवाल, प्रमुख सचिव एवं अन्य प्रस्तुत की।

30. उपर्युक्त अवमानना याचिका के लंबित रहने के दौरान, शासन ने दिनांक 25.06.2013 को एक आदेश जारी किया, जिसके माध्यम से रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2002 के अंतिम निर्णय के अधीन 27 और अतिरिक्त पद सृजित किए गए और अतिरिक्त पदों के विरुद्ध रिट याचिका संख्या 1427 (एसएस) / 1997 के रिट याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को 02.07.2003 से नियमित किया गया और G.P.F., समयमान जैसे अन्य लाभ और परिणामी लाभ उनके कनिष्ठों की तिथि से प्रदान किए गए थे, किन्तु वास्तव में याचिकाकर्ताओं के लिए कोई कनिष्ठ नियमित नहीं किया गया था।

31. श्री प्रफुल्ल यादव, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि दिनांक 25.06.2013 और 26.06.2013 के दोनों आदेशों में, कार्य एजेंट के पद पर रहने के आधार पर पद के सृजन की तिथि 02.07.2003 थी। ऐसी स्थिति में केवल श्री पवन कुमार पांडे और श्री तेज बहादुर सिंह, जो वरिष्ठ कार्य अभिकर्ता थे, तिथि से नियमित होने के अधिकारी थे, किन्तु इन पहलुओं पर विचार किए बिना, स्वीकृत अतिरिक्त पदों 27 + 87 = 114 पदों के प्रति, रिट याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को उनके संबंधित प्रभागों में कार्यकारी अभियंताओं द्वारा उनके अपने स्तर पर नियमित किया गया था। उपरोक्त नियमितीकरण वरिष्ठता और पात्रता के आधार पर नहीं किया गया था, अपितु यह अवमानना कार्यवाही के कारण किया गया था।

32. श्री प्रफुल्ल यादव, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे कहा है कि नियमितीकरण की शक्ति राज्य सरकार में निहित है। राज्य सरकार ने उन कर्मचारियों को नियमित करने

का निर्णय लिया है जो नियमितीकरण नियमावली के प्रावधानों के अनुसार 29.06.1991 को या उससे पहले विभाग में कार्यरत थे, किन्तु कुछ कर्मचारियों ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं दायर की हैं, जिसमें दावा किया गया है कि कनिष्ठ कर्मचारियों को नियमित किया गया था और वे उस दिनांक से नियमितीकरण के अधिकारी थे जिस दिनांक को उनके कनिष्ठ नियमित किए गए थे।

33. 21.04.2018 को वरिष्ठता सूची को अंतिम रूप देने के बाद, वरिष्ठता सूची के अनुसार अंतिम आदेश पारित किए गए हैं और विसंगतियों को ठीक किया गया है एवं विधि के अनुसार नए आदेश पारित किए गए हैं, जो वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित हैं। रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 दिनांक 15.02.2023 को निरस्त कर दी गई है। नियमितीकरण के पूर्व आदेश रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 के परिणाम के अधीन सशर्त थे, जिसके द्वारा दिनांक 05.07.2003 के आदेश पर रोक लगा दी गई थी और दिनांक 05.07.2003 का आदेश रिट याचिका को निरस्त करने के बाद पुनर्जीवित किया गया था, जिसके द्वारा पूर्व की वरिष्ठता सूची दिनांक 20.06.2003 को रद्द कर दिया गया था। वर्तमान वरिष्ठता सूची दिनांक 20.08.2015 के आदेश के अनुपालन में सख्ती से जारी की गई है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

34. नियमितीकरण नियमावली, **उ. प्र. राज्य एवं अन्य विरुद्ध पुत्ती लाल, [(1998) 1 यूपीएलबीईसी 313** के वाद में निर्णय के बाद बनाई गई थी, जो कि पिछले दरवाजे से प्रवेश के माध्यम से 29.06.1991 से पहले लगे व्यक्तियों को नियमित करने के इरादे से, एक बार के उपाय के रूप में, यह ध्यान में रखते हुए बनाई गई थी कि इस प्रकार का नियोजन अवैध नहीं है क्योंकि सेवा के नियमितीकरण की अवधारणा क्षमा और प्रक्रियात्मक अनियमितता का एक साधन है और इसका उद्देश्य केवल ऐसे दोषों को ठीक करना है, जो नियुक्तियां करते समय अपनाई गई धारणाओं के कारण हैं तथा इस अवधारणा को एक ऐतिहासिक निर्णय **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य विरुद्ध उमा देवी (3) एवं अन्य, (2006) 4 एससीसी 1** में विधिवत स्पष्ट किया गया है।

35. नियमावली, 2001 के नियम 4 (1) (क) के अनुसार नियमावली, 2001 के प्रारंभ की तिथि को उपलब्ध रिक्तियों के विरुद्ध ही नियमित करने का अधिकार प्रदान किया गया है और बाद में होने वाली किसी भी रिक्ति के विरुद्ध नहीं क्योंकि यह किसी व्यक्ति को भर्ती करने के लिए एक बारहमासी स्रोत नहीं है, तब जब रिक्तियां उपलब्ध हों, या तो पद के सृजन के कारण अन्यथा 20.12.2001 के बाद की किसी तिथि को। यह अब अनिर्णीत विषय नहीं है कि किसी भी नियमितीकरण को भविष्यलक्षी रूप से प्रभाव दिया जाना चाहिए जैसा कि **भारत के महापंजीयक विरुद्ध वी. थिप्पा सेट्टीः 1998 (8) एससीसी 690** के वाद में धारित किया गया था।

36. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता, जिन्हें वरिष्ठता सूची के आधार पर दिनांक 20.06.2003 के आदेश द्वारा

नियमित किया गया था, जिसे दिनांक 05.07.2003 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था, ने दिनांक 05.07.2003 के आदेश के अनुसार अपने अधिकार की पूर्णता प्राप्त की थी, जिस पर इस न्यायालय के आदेश दिनांक 20.06.2003 द्वारा रोक लगा दी गई थी जब कि दिनांक 20.06.2003 के आदेश द्वारा रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 को निरस्त कर दिया गया है।

37. याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 के अंतिम परिणाम के अधीन था जिसमें विधि के अनुसार नई वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए 20.08.2015 को एक आदेश पारित किया गया था।

38. नियम, 2001 के प्रासंगिक प्रावधानों को पुनः प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जिसके अन्तर्गत याचिकाकर्ता लाभ का दावा कर रहे हैं और उनके नियमितीकरण आदेश निम्नानुसार पारित किए गए थेः-

"4. समूह 'घ' पदों पर दैनिक वेतन नियुक्तियों को नियमित करना।-(1) कोई भी व्यक्ति जो-

(क) 29 जून, 1991 से पहले सरकारी सेवा में समूह 'घ' के पद पर सीधे दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्त किया गया था और इन नियमों के प्रारंभ की तिथि को सेवा में बना हुआ है; तथा

(ख) प्रासंगिक सेवा नियमों के अन्तर्गत दैनिक वेतन के आधार पर ऐसी नियुक्ति के समय उस पद के लिए नियमित नियुक्ति के लिए निर्धारित अपेक्षित योग्यताएं रखता है, उस पर इन नियमों के प्रारंभ की तिथि को स्थायी या अस्थायी रिक्ति में, जो कि समूह 'घ' पद में उपलब्ध हो सकता है, ऐसी रिक्ति में कोई नियमित नियुक्ति किए जाने से पूर्व, उसके उपलब्धियों और उपयुक्तता के आधार पर प्रासंगिक सेवा नियमों या आदेशों के अनुसार, नियमित नियुक्ति के लिए विचार किया जाएगा।

2. इन नियमों के अन्तर्गत नियमित नियुक्तियां करने में नागरिकों की अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और अन्य श्रेणियों से संबंधित उम्मीदवारों के लिए आरक्षण उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 और उत्तर प्रदेश लोक सेवा (शारीरिक रूप से विकलांग, स्वतंत्रता सेनानियों और पूर्व सैनिकों के आश्रितों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1993, जैसा कि समय-समय पर संशोधित किया जाता है और इन नियमों के अन्तर्गत नियमितीकरण के समय लागू शासन के आदेश के अनुसार किया जाएगा।

3. उपनियम (1) के प्रयोजन के लिए नियुक्ति प्राधिकारी सेवा नियमों के सुसंगत उपबंधों के अनुसार एक चयन समिति का गठन करेगा।

4. नियुक्ति प्राधिकारी, उपनियम (1) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, उम्मीदवारों की एक पात्रता सूची तैयार करेगा, जिसे दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्ति के आदेश की

तिथि से निर्धारित वरिष्ठता के क्रम में व्यवस्थित किया गया हो और यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों को एक साथ नियुक्त किया गया था, तब क्रम से जिसमें उनके नाम उक्त नियुक्ति आदेश में व्यवस्थित किए गए हैं। सूची को चयन समिति के समक्ष उम्मीदवारों से संबंधित ऐसे प्रासंगिक अभिलेखों के साथ रखा जाएगा, जिन्हें उनकी उपयुक्तता का आकलन करने के लिए आवश्यक माना जा सकता है।

5. चयन समिति उम्मीदवारों के मामलों पर उप-नियम (4) में निर्दिष्ट उनके अभिलेखों के आधार पर विचार करेगी और यदि आवश्यक समझा जाए तो वह उम्मीदवारों का साक्षात्कार भी कर सकती है।

6. चयन समिति वरिष्ठता के क्रम में चयनित उम्मीदवारों की एक सूची तैयार करेगी और उसे नियुक्ति प्राधिकारी को भेजेगी।

5. नियुक्ति प्राधिकारी, नियम 4 के उपनियम (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उक्त नियम की उपधारा (6) के अधीन तैयार की गई सूची से उस क्रम में नियुक्तियां करेगा जिस क्रम में उनके नाम सूची में हैं।

7. (1) इन नियमों के अन्तर्गत नियुक्त व्यक्ति इन नियमों के अनुसार नियमितीकरण हेतु चयन के बाद नियुक्ति के आदेश की तिथि से ही वरिष्ठता का अधिकारी होगा और सभी मामलों में, इन नियमों के अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति से पूर्व प्रासंगिक सेवा नियमों, या नियमित निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नियुक्त व्यक्तियों से नीचे रखा जाएगाः

(2) यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों को एक साथ नियुक्त किया जाता है, तो उनकी वरिष्ठता का निर्धारण नियुक्ति के क्रम में उल्लिखित क्रम में किया जाएगा।

39. नियम 4 में कहा गया है कि नियमावली, 2001 के अन्तर्गत नियमितीकरण के उद्देश्यों के लिए पात्रता सूची वरिष्ठता के क्रम में तैयार की जाएगी। वरिष्ठता के अनुसार तैयार की गई इस पात्रता सूची के आधार पर, चयन समिति उम्मीदवारों को नियमित करने पर विचार करेगी। इसके अलावा यह प्रावधान किया गया है कि नियमावली, 2001 के अन्तर्गत नियमित किए गए व्यक्तियों की वरिष्ठता को नियमित करने के आदेश की तिथि से गिना जाएगा।

40. इससे पूर्व, दिनांक 20.06.2003 की वरिष्ठता सूची में कई विसंगतियां थीं और शासन ने दिनांक 05.07.2003 के आदेश द्वारा दिनांक 20.06.2003 की उक्त वरिष्ठता सूची को रद्द कर दिया था। रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में पारित दिनांक 24.07.2003 के अंतरिम आदेश के बल पर याचिकाकर्ता नियमित कर्मचारियों के रूप में बने रहे।

41. जब न्यायालय के आदेश द्वारा किसी व्यक्ति के वैधानिक / संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है, तो Actus curiae Neminem Gravabit (न्यायालय का कार्य किसी के प्रति पूर्वाग्रह कारित नहीं करेगा)

नियम के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ऐसे आदेश को वापस लेने या समीक्षा करने में संकोच नहीं करेगा।

42. अंतरिम आदेश याचिकाकर्ताओं को दिनांक 20.06.2003 के आदेश का लाभ उठाने का कोई अक्षम्य अधिकार प्रदान नहीं करेगा, जिसे दिनांक 05.07.2003 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। दिनांक 15.02.2023 के आदेश द्वारा रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 को निरस्त करने के बाद दिनांक 05.07.2003 का आदेश पुनर्जीवित हो गया अतः रिट याचिका संख्या 4302 (एसएस) / 2003 में पारित दिनांक 20.08.2015 के आदेश में इस न्यायालय द्वारा निर्देशित विधि के अनुसार नई वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए कोई बाधा नहीं हो सकती थी, यहां तक कि न्यायालय के किसी आदेश के बिना भी, क्योंकि दिनांक 05.07.2003 का आदेश पुनर्जीवित हो गया था।

43. नियमितीकरण को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता है। यह सामान्यतः भविष्यलक्षी होता है ताकि नियमित सेवा में रहने वाले सभी लोगों की वरिष्ठता बाधित या प्रभावित न हो। **भारत के महापंजीयक विरुद्ध वी. थिप्पा सेट्टीः (1998) 8 एस. सी. सी. 690** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि इस रीति से पिछली तिथि से तदर्थ सेवा नियमित की जाती है, तो यह संवर्ग में नियमित रूप से नियुक्त कर्मचारियों की वरिष्ठता को बाधित करेगी अतः, सामान्य रूप से नियमितीकरण प्रत्याशित ढंग से प्रभावी होना चाहिए न कि पूर्वव्यापी रूप से। तदर्थ नियुक्त, आकस्मिक श्रम और दैनिक श्रेणी के व्यक्ति सेवा के कठोर अनुशासन के अधीन नहीं होते हैं, और यह सामान्य अनुभव का विषय है कि उनकी उपस्थिति प्रायः नियमित नहीं होती है और कई बार वे नियुक्ति के लिए योग्यता को भी पूरा नहीं करते हैं क्योंकि उन्हें तदर्थ आधार पर लिया जाता है। छूट देने के माध्यम से इन कमियों की अनदेखी की जाती है; अतः, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे नियमित रूप से नियुक्त व्यक्तियों की वरिष्ठता को प्रभावित न करें।

44. इस तथ्य पर ध्यान देना भी प्रासंगिक है कि 80+27 पद दिनांक 25.06.2013 और 26.06.2013 के शासनादेशों द्वारा सृजित किए गए थे। याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण मात्र उन पदों के विरुद्ध हो सकता था। यदि कोई पद नहीं था, तो उनका नियमितीकरण केवल पद के सृजन की तिथि से ही होगा, न कि पूर्वव्यापी तिथि से। **नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड एवं अन्य विरुद्ध सोमवीर सिंहः (2006) 5 एस. सी. सी. 493** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि नियमितीकरण नियुक्ति का एक माध्यम नहीं है। यदि नियुक्ति नियमों का पालन किए बिना की जाती है, तो वह शून्य होने के कारण, परिवीक्षा की कथित अवधि की समाप्ति पर, किसी कर्मचारी की पुष्टि का सवाल ही नहीं उठेगा।

45. उपरोक्त निर्णय का प्रस्तर 20 से 22 तथा 26 नीचे प्रस्तुत किया गया हैः-

"20. संविधान पीठ ने राय दी कि भर्ती नियमों के उल्लंघन और संविधान के प्रस्तर 14 और 16 के उल्लंघन में की गई कोई भी नियुक्ति

अमान्य होगी। कर्मचारियों की ओर से इस तर्क क कि जो अस्थायी या तदर्थ कर्मचारी काफी लंबे समय तक काम करते रहे, अधिकारियों को नियमितीकरण के लिए उनके मामलों पर विचार करना चाहिए, इस प्रकार से उत्तर दिया गयाः [उमादेवी (3) वाद [(2006) 4 एस. सी. सी. 1: (2006) 4 स्केल 197], एस. सी. सी. पृष्ठ 29, प्रस्तर 26]

"26. इस संबंध में, राज्य को सामान्य नियम से हटकर स्थायी पदों पर अस्थायी रोजगार में सम्मिलित होने की अनुमति क्यों दी जानी चाहिए? हमारा विचार है कि यह न्यायालय नियमित एवं उचित भर्तियां करने हेतु राज्य पर जोर देने के लिए बाध्य है और नियमित भर्ती के नियमों के लगातार उल्लंघन को प्रोत्साहित करने या अपनी आंखें बंद करने के लिए बाध्य नहीं है। स्थायी बनाने की दिशा - नियमित करने और स्थायी बनाने के बीच के अंतर पर यहां जोर नहीं दिया गया था - जो केवल राज्य, आदर्श नियोक्ता, को अपने स्वयं के नियमों का उल्लंघन करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है और प्रतिस्पर्धा करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे कई लोगों के मूल्य पर कुछ लोगों को अनुचित लाभ प्रदान करेगा। इस संबंध में पियारा सिंह के प्रस्तर 50 (एससीसी) [(1992) 4 एससीसी 118:1992 एससीसी (एल एंड एस) 825: (1992) 21 एटीसी 403] में दिया गया निदेश कुछ सीमा तक प्रस्तर 45 (एससीसी) के निष्कर्ष से असंगत है। ससम्मान, हमें यह प्रतीत होता है कि अंतिम निर्देश स्पष्ट रूप से निर्णय के पहले भाग में मान्यता प्राप्त रोजगार की संवैधानिक योजना के विपरीत हैं। वास्तव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि इस निर्णय ने यह विधि प्रतिपादित की है कि नियमित भर्ती प्रक्रिया का पालन किए बिना नियोजित सभी तदर्थ, अस्थायी या आकस्मिक कर्मचारियों को स्थायी किया जाना चाहिए।

21. इसके अतिरिक्त यह परामर्श दिया गया: [उमादेवी (3) वाद [(2006) 4 एससीसी 1: (2006) 4 स्केल 197], एससीसी पी. 32, प्रस्तर 33]

"33. इस पहलू पर इस न्यायालय के सभी निर्णयों पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। मोटे तौर पर यह सामने आता है कि नियमित भर्ती पर जोर दिया जाना चाहिए, केवल आकस्मिकता में एक स्थायी रिक्ति पर एक तदर्थ नियुक्ति की जा सकती है, किन्तु इसके बाद जल्द ही एक नियमित भर्ती की जानी चाहिए और गैर-उपलब्ध पदों पर नियुक्तियों को नियमित करने के लिए ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। नियमितीकरण का निर्देश देने वाले वाद मुख्य रूप से इस आधार पर आगे बढ़े हैं कि कर्मचारी को कुछ अवधि के लिए काम करने की अनुमति देने के बाद, उसे सार्वजनिक रोजगार के लिए संवैधानिक योजना पर चर्चा करने के बाद, वास्तव में उस प्रभाव के लिए कोई विधि प्रतिपादित किए बिना, सम्मिलित किया जाना चाहिए।

22. इस न्यायालय के कुछ निकटवर्ती निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि राज्य को संविधान के प्रस्तर 162 के संदर्भ में नियुक्तियां करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसने आगे [उमादेवी (3) वाद,

एससीसी पीपी 33-34, प्रस्तर 38] का उल्लेख, संघ लोक सेवा आयोग विरुद्ध गिरीश जयंती लाल वाघेला में इस न्यायालय के निर्णय के अनुमोदन के साथ [(2006) 2 एससीसी 482:2006 एससीसी (एल एंड एस) 339: (2006) 2 स्केल 115] निम्नलिखित शर्तों के साथ किया: (एस. सी. सी. पृष्ठ 490, प्रस्तर 12)

"राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति तभी की जा सकती है जब योग्य उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करने और विशेषज्ञों के एक निकाय अथवा विशेष रूप से गठित समिति द्वारा चयन का आयोजन करने हेतु एक उचित विज्ञापन किया गया हो, जिसके सदस्य विज्ञापन के सापेक्ष आवेदन करने वाले उम्मीदवारों की योग्यता का विनिश्चयन करने के लिए लिखित परीक्षा अथवा साक्षात्कार अथवा कुछ अन्य तर्कसंगत मानदंडों के माध्यम से निष्पक्ष और तटस्थ हों। राज्य या संघ के अन्तर्गत किसी पद पर नियमित नियुक्ति निर्धारित तरीके से विज्ञापन जारी किए बिना नहीं की जा सकती है, जिसमें कुछ मामलों में रोजगार कार्यालय से आवेदन आमंत्रित करना सम्मिलित हो सकता है जहां योग्य उम्मीदवार अपने नाम पंजीकृत कराते हैं। राज्य या संघ के अन्तर्गत किसी पद पर योग्य उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए बिना विज्ञापन जारी किए बिना और उचित चयन प्रक्रिया, जहां सभी योग्य उम्मीदवारों को प्रतिस्पर्धा करने का उचित मौका मिलता हो, के बिना की गई कोई भी नियमित नियुक्ति, संविधान के प्रस्तर 16 के अन्तर्गत निहित गारंटी का उल्लंघन होगा।"

यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया थाः [उमादेवी (3) वाद [(2006) 4 एससीसी 1: (2006) 4 स्केल 197], एससीसी पृष्ठ 35, प्रस्तर 41]

"ये बाध्यकारी निर्णय स्पष्ट अनिवार्यताएं हैं कि सार्वजनिक रोजगार की प्रक्रिया में संविधान के प्रस्तर 14 और 16 का पालन अनिवार्य है।"

* * * * * * * *

26. यह सत्य है कि प्रतिवादी लंबे समय से काम कर रहे थे। यह भी सच हो सकता है कि उन्हें नियमित वेतनमान के आधार पर मजदूरी नहीं दी गई थी। किन्तु, उन्होंने कोई पद नहीं संभाला। अतः, वे नियमित वेतनमान पर वेतन पाने के अधिकारी नहीं थे। इसके अतिरिक्त, केवल इसलिए कि प्रत्यर्थियों ने कुछ समय के लिए कार्य किया है, यह अपने आप में उमादेवी (3) [(2006) 4 एससीसी 1: (2006) 4 स्केल 197] वाद में इस न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत उनकी सेवाओं को नियमित करने का निर्देश देने का आधार नहीं होगा।

46. **सचिव, कर्नाटक राज्य विरुद्ध उमादेवीः (2006) 4 एससीसी 1** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने विशेष रूप से यह टिप्पणी की है कि भारत के संविधान के प्रस्तर 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालयों को सम्मिलन, नियमितीकरण या स्थायी निरंतरता के लिए सामान्य रूप से निर्देश जारी नहीं करना चाहिए जब तक कि भर्ती स्वयं नियमित रूप से और संवैधानिक योजना के संदर्भ में नहीं की गई थी।

47. इस प्रकार, मुझे लगता है कि विवादित आदेश किसी भी प्रकार से इस न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के किसी भी वैधानिक परामर्श या निर्णय का उल्लंघन नहीं करते हैं। जहाँ तक आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने का संबंध है, मुझे वर्तमान रिट याचिकाओं में कोई गुण नहीं मिलता है, अतः इन्हें **निरस्त** किया जाता है। तथापि, चूंकि कुछ याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो चुके हैं या वे सेवानिवृत्ति के कगार पर हैं, इसलिए दिनांक 24.07.2003 के अंतरिम आदेश के कारण उन्हें प्रदान किए गए लाभ को वापस लेना न्यायोचित नहीं होगा, अतः, यह प्रावधान किया जाता है कि आक्षेपित आदेशों को लागू करते समय शासन को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि याचिकाकर्ताओं या समान रूप से स्थित व्यक्तियों को पहले से प्रदान किए गए लाभ को वापस नहीं लिया जाना चाहिए, सिवाय इसके कि उन्हें दिनांक 11/12.10.2018 के आक्षेपित आदेश के अनुसार संबंधित तिथियों से नियमित किया गया माना जाना चाहिए।

(2023) 5 ILRA 1127

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

रिट-ए संख्या 7888 / 2022

अंजलि चौरसिया ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अविनाश चंद्र

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - कदाचार और शक्ति का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग- विभागीय कार्यवाही - वेतन - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 नियम-7 एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 20 सपठित केंद्रीय माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 129(1)- यदि किसी कर्मचारी के विरुद्ध गंभीर कदाचार की शिकायत बिना शपथ पत्र के प्राप्त होती है, तो उक्त शिकायत विभाग को आरोप को स्वतंत्र रूप से देखने और उसके संबंध में प्रारंभिक जांच करने से नहीं रोकेगी।

वर्तमान वाद में, तकनीकी रिपोर्ट के साथ-साथ प्रारंभिक जांच रिपोर्ट भी याचिकाकर्ता द्वारा गंभीर कदाचार का संकेत देती है। याचिकाकर्ता का वाद ऐसा नहीं है कि गुमनाम शिकायत के अतिरिक्त याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई सबूत नहीं है। प्रारंभिक जांच के दौरान याचिकाकर्ता पूरी तरह से शामिल था, और तीन सदस्यीय समिति ने याचिकाकर्ता के गंभीर कदाचार के बारे में एक रिपोर्ट पेश की है। इसलिए, दिनांक 09.05.1997 और 01.08.1997 (नीचे उल्लिखित) के सरकारी आदेशों का कोई उल्लंघन नहीं है। याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही विभागीय प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के आधार पर शुरू की गई है, न कि शिकायत के आधार पर और इसलिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू करने में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 20)

सरकारी आदेश दिनांक 09.05.1997 और 01.08.1997- सरकार ने दिनांक 09.05.1997 और 01.08.1997 को आदेश जारी किए थे कि गुमनाम शिकायत पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि, अगर शिकायत किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से प्राप्त होती है तो यह

सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि क्या यह वास्तव में उक्त महत्वपूर्ण व्यक्ति द्वारा भेजी गई थी। अगर किसी अन्य स्रोत से गुमनाम शिकायत प्राप्त होती है, तो शिकायतकर्ता का हलफनामा मांगा जाना चाहिए तथा, उसे इस संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाना चाहिए। सरकार ने 19.04.2012 को पुनः आदेश जारी किया कि उसके द्वारा 09.05.1997 तथा 01.08.1997 को जारी पूर्व आदेशों का कड़ाई से अनुपालन किया जाना चाहिए। (पैरा 15)

बी. यदि कोई सरकारी कर्मचारी, अर्ध-न्यायिक कार्य करते हुए, कोई ऐसा आदेश पारित करता है जो अवैध है, दुर्भावनापूर्ण आशय से, बाहरी उद्देश्यों के लिए, तथा जिसमें भ्रष्टाचार शामिल है, तो विभाग को ऐसे कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने से नहीं रोका जा सकता है, परंतु आदेश को पुनरीक्षण/अपील में चुनौती नहीं दी गई हो। (पैरा 20)

याचिकाकर्ता को दिनांक 21.04.2022 के विवादित आदेश के तहत निलंबित किया गया है। निलंबन दंड के समान नहीं है, बल्कि किसी कर्मचारी को स्वतंत्र, निष्पक्ष और निष्पक्ष तरीके से अनुशासनात्मक जांच करने के लिए निलंबित किया जाता है। जब दोषी कर्मचारी के खिलाफ उसके कदाचार के गंभीर आरोप हों, तो निलंबन आदेश को अवैध नहीं कहा जा सकता। नियम 1999 के नियम-7 के तहत किसी कर्मचारी को निलंबित करने की शक्ति है, जिसका याचिकाकर्ता को निलंबित करने के लिए वैध और ठोस कारणों से सही तरीके से प्रयोग किया गया है। (पैरा 21)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. भारत संघ और अन्य एवं अन्य बनाम के.के. धवन, (1993) 2 एस.सी.सी. 56 (पैरा 16, 20)
2. ज़ुंजरराव भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1999) 7 एससीसी 409 (पैरा 16, 20)
3. भारत संघ एवं अन्य बनाम दुली चंद, (2006) 5 एससीसी 680 (पैरा 16, 20)
4. रमेश चंद्र सिंह बनाम उच्च न्यायालय इलाहाबाद एवं अन्य, (2007) 4 एससीसी 247 (पैरा 16, 20)
5. कृष्ण प्रसाद वर्मा (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 640 (पैरा 16, 20)

वर्तमान याचिका में 21.04.2022 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान याचिका, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाकर्ता, जो वर्तमान में सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक कर, उत्तर प्रदेश सरकार है, द्वारा निम्नलिखित राहत के लिए प्रस्तुत की गई है: -

"I) इस रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 1 में दिए गए दिनांक 21.04.2022 के आक्षेपित निर्णय को रद्द करने के लिए उत्प्रेशण (certiorari) प्रकृति में कोई रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाये;

II) प्रतिवादी को निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वह याचिकाकर्ता को राज्य कर विभाग में सहायक आयुक्त के पद पर काम करने की अनुमति दे और उसे नियमित वेतन का भुगतान करे;

III) उपरोक्त आशय के लिए अंतरिम निर्देश जारी करें;

III) एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे माननीय न्यायालय मामले के तथ्य और परिस्थितियों के दृष्टिगत न्याय के हित में उचित और उपयुक्त समझे; तथा

IV) याचिकाकर्ता के पक्ष में लागत का भुगतान करने के लिए विपक्षी पक्षों को आदेश या निर्देश जारी करें।"

2. चयन के उपरान्त याची की नियुक्ति वर्ष 2014 में सहायक आयुक्त, वाणिज्य कर के पद पर हुई। श्री संदीप तिवारी, सहायक आयुक्त, वाणिज्य कर, सचल दस्ता, बाराबंकी का स्थानान्तरण दिनांक 03.09.2020 को रेंज-5 अयोध्या में होने पर याची ने दिनांक 07.09.2020 को सहायक आयुक्त, सचल दस्ता, बाराबंकी के पद पर कार्यभार ग्रहण किया।

3. संयुक्त आयुक्त, विशेष जांच शाखा (संक्षेप में "एसआईबी"), राज्य कर, अयोध्या क्षेत्र-बी, अयोध्या ने दिनांक 10.09.2020 को एक निर्देश जारी किया कि याचिकाकर्ता को निरीक्षण / जांच के दौरान अपने अधीनस्थ अधिकारी, वाणिज्यिक कर अधिकारी के साथ होना चाहिए।

4. दिनांक 19.11.2020 को याचिकाकर्ता ने सफ़ेदाबाद, बाराबंकी में पंजीकरण संख्या HR38AA-6286 वाले वाहन को रोका। मोबाइल स्क्वायड यूनिट बाराबंकी में एक सहायक आयुक्त और दो वाणिज्य कर अधिकारी, ड्राइवर, चपरासी और पुलिस कर्मचारी शामिल हैं। मोबाइल स्क्वायड का काम एकीकृत टीम वर्क है। संयुक्त आयुक्त, एसआईबी, राज्य कर, अयोध्या रेंज-बी, अयोध्या ने दिनांक 10.09.2020 को लिखित निर्देश जारी किए थे कि याचिकाकर्ता को पूरी टीम के साथ सड़क निरीक्षण करना चाहिए।

5. वाहन संख्या HR38AA-6286 के चालक द्वारा प्रस्तुत ई-वे बिल दिनांक 18.11.2020 का था। वाहन संख्या

HR38AA-6286 का सकल भार 15170 किलोग्राम पाया गया, जबकि वाहन का वास्तविक वजन 5570 किलोग्राम था। इस प्रकार, वाहन में माल/सामग्री का शुद्ध वजन लगभग 9.500 टन था, जो वाहन में सामग्री के परिवहन के लिए संबंधित दस्तावेजों में उल्लिखित वजन (7.500 टन) के विपरीत था।

6. याचिकाकर्ता के अनुसार, वाहन के चालक ने फिर से दूसरा चालान पेश किया, जिसमें वाहन में 2505 किलोग्राम पुराने धातु के स्क्रैप का उल्लेख किया गया था, बिना उक्त सामग्री के किसी ई-वे बिल के जब दस्तावेजों में कुछ विसंगतियां पाई गईं, तो स्थापित प्रवर्तन मानदंडों के अनुसार पूरी वीडियोग्राफी के साथ एक विस्तृत भौतिक सत्यापन किया जाना आवश्यक था। याचिकाकर्ता ने दिखाया था कि प्लास्टिक स्क्रैप 7.00 टन था और धातु स्क्रैप केवल 2.500 टन तक था। याचिकाकर्ता ने केंद्रीय माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा 129 (1) के साथ एकीकृत माल और सेवा कर, 2017 की धारा 20 के तहत निरोध आदेश पारित किया। ऐसा कहा गया है कि दिनांक 21.11.2020 को ही याचिकाकर्ता द्वारा एक डिमांड नोटिस जारी किया गया था। माल की मालिक, श्रीमती स्वीटी गोयल ने देनदारी स्वीकार कर ली और भौतिक सत्यापन के एक मिनट बाद उसी दिन 90,250/- रुपये का कर और जुर्माना अदा कर दिया।

7. दिनांक 19.11.2021 को वाहन संख्या HR38AA-6286 को रोके जाने के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ श्री राज कुमार, पटना, बिहार से एक शिकायत प्राप्त हुई थी। अपर आयुक्त, एसआईबी, वाणिज्य कर, अयोध्या क्षेत्र, अयोध्या ने कार्यालय पत्र संख्या 624 दिनांक 11.02.2021 के माध्यम से संयुक्त आयुक्त, एसआईबी को उक्त शिकायतकर्ता से आरोप के संबंध में एक हलफनामा मांगने और सुनवाई का अवसर देने के बाद उक्त श्री राज कुमार, पटना, बिहार द्वारा लगाए गए आरोप के संबंध में प्रारंभिक जांच करने का निर्देश दिया।

8. चूंकि शिकायतकर्ता ने अपना पूरा पता, मोबाइल नंबर, ई-मेल आईडी आदि नहीं दिया था, इसलिए उसे भेजा गया नोटिस वापस आ गया और शिकायतकर्ता श्री राज कुमार से कोई संपर्क स्थापित नहीं हो सका। हालांकि, श्री राज धर्मकांटा के मालिक, जहां वाहन लोड होने के बाद उसका वजन किया गया था, ने बताया कि वाहन संख्या HR38AA-6286 का वजन दिनांक 16.11.2020 को किया गया था, उस पर कोई लोड नहीं था। शिकायत में

लगाए गए आरोपों की स्वतंत्र रूप से जांच की गई।

9. वाहन संख्या HR38AA-6286 का चालक श्री नागेंद्र कुमार था, जो खाटू श्याम ट्रेडर्स का माल ले जा रहा था। वाहन को रोके जाने के बाद उसने खाटू श्याम ट्रेडर्स द्वारा श्री मुकेश कुमार, दिल्ली को दिनांक 18.11.2020 को जारी किया गया चालान प्रस्तुत किया। प्रारंभिक जांच के दौरान याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसका उसने जवाब प्रस्तुत किया। इसके बाद, दिनांक 29.10.2021 को प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

10. प्रारंभिक तकनीकी जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष से पता चलता है कि विचाराधीन वाहन का कोई भौतिक सत्यापन नहीं किया गया था और वाहन संख्या HR38AA-6286 के भौतिक निरीक्षण के संबंध में कोई प्रविष्टि नहीं की गई थी। याचिकाकर्ता ने गलत तथ्यों का उल्लेख करते हुए वाहन के भौतिक सत्यापन के संबंध में गढ़े हुए साक्ष्य प्रस्तुत किए। जिस सीडी में याचिकाकर्ता द्वारा वीडियो बनाए गए थे, उससे पता चलता है कि वाहन नंबर HR38AA-6286 में कोई प्लास्टिक स्क्रैप नहीं था, जो एक कंटेनर था और 7.00 टन का प्लास्टिक स्क्रैप उक्त कंटेनर में लोड नहीं किया गया होगा। पूरा माल धातु का स्क्रैप था। तकनीकी निरीक्षण रिपोर्ट में आगे पाया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा बनाई गई रिपोर्ट के अनुसार, वाहन का भौतिक निरीक्षण दिनांक 21.11.2020 को शाम लगभग 5.1 बजे किया गया था और उसके तुरंत बाद, एक मिनट के भीतर यानी शाम 5.2 बजे, माल के मालिक ने कर और जुर्माना का भुगतान किया। भौतिक निरीक्षण के पश्चात 28 मिनट के अंदर नोटिस एवं आदेश पारित किया गया। तकनीकी जांच रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात तीन सदस्यीय जांच समिति गठित की गई। तीन सदस्यीय जांच समिति की दिनांक 28.12.2021 की रिपोर्ट में निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए गए :-

> *"(1) निर्धारित तिथि पर भौतिक सत्यापन नहीं किया गया।*
>
> *(2) निर्धारित भौतिक सत्यापन रजिस्टर में भौतिक सत्यापन का कोई अभिलेख नहीं पाया गया।*
>
> *(3) कर चोरी के उद्देश्य से याचिकाकर्ता द्वारा पूर्ण एवं हेरफेर किए गए आंशिक भौतिक सत्यापन के साथ-साथ अधूरी वीडियोग्राफी भी की गई।*
>
> *(4) भौतिक सत्यापन के लिए भुगतान का कोई दावा नहीं किया गया।*

सत्यमेव जयते

(5) भौतिक सत्यापन की तथाकथित अधूरी वीडियोग्राफी में प्लास्टिक स्क्रैप का कोई निशान या साक्ष्य नहीं दिखाया गया।

(6) तथाकथित अधूरी वीडियोग्राफी में केवल धातु के स्क्रैप के साक्ष्य दिखाए गए हैं।

(7) भरा हुये ट्रक के मालिक ने कारण बताओ नोटिस/अंतिम मूल्यांकन आदेश जारी होने से पहले ही, भौतिक सत्यापन के एक मिनट बाद ही कर और जुर्माने की सही राशि जमा कर दी।

(8) जब्त ट्रक एक कंटेनर वाहन (एमसीवी) था, जिसमें 7.00 टन प्लास्टिक स्क्रैप (बैग या झाल में) लोड नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसका आकार बहुत बड़ा था।

(9) संबंधित पक्षों और विभागीय अधिकारियों के बीच बातचीत के संबंध में मोबाइल में रिकॉर्ड की गई ऑडियो क्लिप भी याचिकाकर्ता की निष्ठा के खिलाफ है।"

11. प्रारंभिक जांच में यह निष्कर्ष निकाला गया कि जब्त ट्रक/कंटेनर संख्या HR38AA-6286 में 9.500 टन धातु स्क्रैप भरा हुआ था, लेकिन याचिकाकर्ता ने ट्रक मालिक के साथ साजिश करके इसे 7.500 टन प्लास्टिक स्क्रैप और 2.500 टन धातु स्क्रैप में परिवर्तित कर दिया, जिस पर कर और जुर्माना लगाया गया और मालिक द्वारा भौतिक निरीक्षण के एक मिनट के भीतर 90,250/- रुपये का भुगतान किया गया, हालांकि, कारण बताओ नोटिस और अंतिम आदेश बाद में पारित किया गया।

12. उक्त दो रिपोर्टों अर्थात् तकनीकी और प्रारंभिक पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ उचित साक्ष्य और निष्पक्ष अनुशासनात्मक जांच सुनिश्चित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 21.04.2022 के आक्षेपित आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया था।

13. चूंकि संबंधित वाहन में 9.500 टन धातु स्क्रैप था, इसलिए कर और जुर्माना 10 लाख रुपये तक हो सकता था, लेकिन आरोप है कि मिलीभगत और बाहरी कारण/विचार के चलते याचिकाकर्ता ने 2.500 टन प्लास्टिक स्क्रैप दिखाया, जिसके लिए मालिक ने निरीक्षण के एक मिनट के भीतर कर और जुर्माना अदा कर दिया। हालांकि श्री राज कुमार से शिकायत मिलने के बाद जांच बैठाई गई थी, लेकिन बाद की तकनीकी जांच रिपोर्ट और प्रारंभिक जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रारंभिक निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले

याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जवाब सहित सभी प्रासंगिक सामग्रियों और साक्ष्यों को ध्यान में रखा गया है।

14. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक राज सिंह को सुना गया, जिनकी सहायता श्री अविनाश चंद्रा ने की, तथा प्रतिवादी-राज्य प्राधिकारियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा को सुना गया, तथा सम्पूर्ण अभिलेख (रिकार्ड) का अवलोकन किया गया।

15. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक राज सिंह ने दलील दी कि श्री राज कुमार की शिकायत पर कोई प्रारंभिक जांच नहीं की जा सकती थी, क्योंकि वह हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं थी, और उसके ठिकाने और विवरण बाद में ज्ञात नहीं हो सके, इसलिए, उक्त शिकायत गुमनाम थी। यह कहा गया है कि सरकार ने दिनांक 09.05.1997 और 01.08.1997 को आदेश जारी किए थे कि गुमनाम शिकायत पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि, अगर शिकायत किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से प्राप्त होती है, तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यह वास्तव में उक्त महत्वपूर्ण व्यक्ति द्वारा भेजी गई थी या नहीं। यदि किसी अन्य स्रोत से गुमनाम शिकायत प्राप्त होती है, तो शिकायतकर्ता का हलफनामा मांगा जाना चाहिए और, उसे उस संबंध में सबूत प्रदान करने का निर्देश दिया जाना चाहिए। सरकार ने दिनांक 19.04.2012 को फिर से आदेश जारी किया कि दिनांक 09.05.1997 और 01.08.1997 को जारी किए गए पहले के आदेशों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि शिकायत गुमनाम थी और उसके साथ कोई हलफनामा भी नहीं था, इसलिए प्रारंभिक जांच स्थापित नहीं की जानी चाहिए थी और प्रारंभिक जांच के अनुसरण में की गई आगे की कार्रवाई, जिसमें याचिकाकर्ता को निलंबित करना और विभागीय जांच स्थापित करना शामिल है, को रद्द किया जाना चाहिए।

16. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अगला तर्क यह है कि याचिकाकर्ता ने अर्ध-न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए 90,250/- रुपये का कर और जुर्माना लगाने का आदेश पारित किया है। उक्त आदेश को पुनरीक्षण या अपील में चुनौती नहीं दी गई है और यह अंतिम रूप ले चुका है, इसलिए, दिनांक 21.11.2020 के उक्त अर्ध-न्यायिक आदेश के आधार पर विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता

ने निम्नलिखित मामलों पर भरोसा जताया:-

1. ***(1993) 2 एससीसी 56 (भारत संघ और अन्य बनाम के.के. धवन);***
2. ***(1999)7 एससीसी 409 (जुंजाराराव भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ और अन्य);***
3. ***(2006 5 एससीसी 680 (भारत संघ और अन्य बनाम दुली चंद);***
4. ***(2007) 4 एससीसी 247 (रमेश चंद्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय और अन्य); और***
5. ***(2019) 10 एससीसी 640 (कृष्ण प्रसाद वर्मा (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों बनाम बिहार राज्य और अन्य के माध्यम से)***

17. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 21.04.2023 का निलंबन आदेश और साथ ही शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभिक जांच रिपोर्ट और याचिकाकर्ता द्वारा कदाचार और शक्ति के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग के संबंध में एकत्र किए गए पर्याप्त साक्ष्य पर आधारित है। यदि किसी सरकारी कर्मचारी के कदाचार के बारे में कोई शिकायत प्राप्त होती है, हालांकि यह किसी हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं है, तो विभाग को याचिकाकर्ता द्वारा किए गए गंभीर कदाचार के मामले की स्वतंत्र रूप से जांच करने पर रोक नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि शासनादेश दिनांक 09.05.1997 और 01.08.1997 सामान्य शिकायत निपटान तंत्र से संबंधित सामान्य दिशानिर्देश और मानदंड परिभाषित करते हैं। यदि आरोपों की स्वतंत्र रूप से जांच की गई है, और यह पाया गया है कि सरकारी कर्मचारी ने प्रथम दृष्टया गंभीर कदाचार किया है आगे कहा गया है कि यदि कोई सरकारी कर्मचारी, अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए, शक्ति का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग करते हुए, बाहरी विचार के लिए कोई आदेश पारित करता है, और ऐसे आरोप प्रारंभिक जांच में प्रथम दृष्टया सही पाए जाते हैं, तो ऐसे कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए, और वह यह कहकर बच नहीं सकता है कि उसने अर्ध-न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए आदेश पारित किया था, और चूंकि इसे पुनरीक्षण या अपील में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

18. मैंने याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा प्रतिवादियों की

अनुवादित

ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है।

19. मामले की योग्यता पर आगे बढ़ने से पहले, वर्तमान मामले में घटित कुछ घटनाक्रमों पर ध्यान देना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:-

(i) जब यह रिट याचिका दायर की गई थी, तो समन्वय पीठ ने दिनांक 28.11.2022 को एक अंतरिम आदेश पारित किया था, जिसके अनुसार सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक, दिनांक 21.04.2022 के विवादित आदेश का संचालन और प्रभाव स्थगित रहेगा। हालांकि, प्रतिवादियों को दिनांक 28.11.2022 के अंतरिम आदेश में दर्ज निष्कर्षों से प्रभावित हुए बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने की स्वतंत्रता दी गई थी। प्रतिवादियों को यह भी स्वतंत्रता दी गई थी कि वे याचिकाकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात कर सकते हैं, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है।

(ii) याचिकाकर्ता ने अंतर-न्यायालय विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 40/2023 दायर करके उक्त अंतरिम आदेश को चुनौती दी, जिसे खंड पीठ ने दिनांक 01.02.2023 के निर्णय और आदेश के तहत अनुमति दी, जिसमें दिनांक 28.11.2022 के अंतरिम आदेश को खारिज कर दिया गया, जिसके तहत समन्वय पीठ ने प्रतिवादियों को दिनांक 28.11.2022 के अंतरिम आदेश में दर्ज निष्कर्षों से प्रभावित हुए बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी थी और साथ ही प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने की स्वतंत्रता दी थी, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित थी। अंतर-न्यायालय विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 40/2023 में खंड पीठ द्वारा पारित दिनांक 01.02.2023 के निर्णय और आदेश के प्रस्तर 26, 27, 28 और 29 नीचे उद्धृत हैं:-

"(26) अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इसलिए शुरू की गई है क्योंकि करदाता ने बहुत ही कम समय में जुर्माना जमा कर दिया है, जिससे अपीलकर्ता द्वारा पारित जुर्माना आदेश के संबंध में संदेह पैदा हुआ है। जुंजाराराव भीकाजी नागरकर (उपरोक्त) में, माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि किसी अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही ऐसी सूचना पर नहीं हो सकती है, जो अस्पष्ट और अनिश्चित है और ऐसे मामलों में संदेह की कोई भूमिका नहीं होती है जब विभाग ने अपीलकर्ता द्वारा पारित आदेश को चुनौती न देने का सचेत निर्णय लिया हो और उसे अंतिम रूप लेने दिया हो। प्रथम दृष्टया, इस स्तर पर ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त आदेश पारित करने के लिए अपीलकर्ता को दंडित करने के लिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जा सकती है।

(27) उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा विचार है कि प्रतिवादियों को अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही आगे बढ़ाने और उसे कहीं भी तैनात करने की स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए थी, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है।

(28) तदनुसार, तत्काल विशेष अपील को अनुमति दी जाती है। रिट-ए संख्या 7888/2022 में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.11.2022: अंजलि चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य तथा 5 अन्य, जहां तक यह प्रावधान है कि "प्रतिवादी इस आदेश में दर्ज निष्कर्षों से प्रभावित हुए बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र हैं। प्रतिवादी इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है, याचिकाकर्ता को किसी भी स्थान पर तैनात करने के लिए भी स्वतंत्र हैं" को इसके द्वारा अपास्त किया जाता है।

(29) यह स्पष्ट किया जाता है कि मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करते समय, माननीय एकल न्यायाधीश ऊपर की गई किसी भी टिप्पणी से निर्देशित या प्रभावित नहीं होंगे, जो केवल तत्काल अपील के निस्तारण के प्रयोजनों के लिए की गई है।

(iii) राज्य सरकार ने विशेष अनुमति अपील संख्या 9042/2023 दाखिल करके उक्त आदेश को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी और सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 18.05.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित किया है:-

"नोटिस जारी करें।

कैविएट पर उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज सिंह एकमात्र प्रतिवादी की ओर से नोटिस स्वीकार करते हैं।

प्रतिवादी छह सप्ताह के भीतर जवाबी हलफनामा दाखिल कर सकता है। याचिकाकर्ता के पास इसके बाद जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए दो सप्ताह का समय होगा।

अंतरिम उपाय के रूप में, यह प्रावधान किया जाता है कि प्रतिवादी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रह सकती है, हालांकि, इस न्यायालय की अनुमति के बिना कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया जाएगा।

हम उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश से अनुरोध करते हैं कि वे बोर्ड के अन्य मामलों के अधीन रिट याचिका पर शीघ्र निर्णय लें।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पक्षकार रिट याचिका की सुनवाई में सहयोग करेंगे।

मामले को दस सप्ताह की अवधि समाप्त होने के पश्चात सूचीबद्ध करें।"

(iv) याचिकाकर्ता को दिनांक 06.07.2022 को आरोप-पत्र जारी किया गया है। याचिकाकर्ता अपने विरुद्ध जांच में विलम्ब करने के उद्देश्य से ऐसे दस्तावेजों की मांग कर रही थी, जिनका आरोप-पत्र में साक्ष्य के रूप में उल्लेख नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता ने विभिन्न पत्र लिखे हैं तथा आरोप-पत्र के समर्थन में विभाग द्वारा जिन साक्ष्यों एवं सामग्रियों पर भरोसा किया गया है, वे याचिकाकर्ता को उपलब्ध करा दिए गए हैं। याचिकाकर्ता ने उन दस्तावेजों का निरीक्षण किया था, जिनकी उसे अनुमति दी गई थी, लेकिन रिट याचिका में वर्णित तथ्यों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा कार्यवाही में विलम्ब करने का हर बार प्रयास किया गया तथा इस बीच वह दिनांक 28.11.2022 का अंतरिम आदेश तथा दिनांक 01.02.2023 को खण्डपीठ द्वारा पारित आदेश प्राप्त कर सकती है।

(v) यदि किसी कर्मचारी के विरुद्ध गंभीर कदाचार के लिए बिना शपथ-पत्र के शिकायत प्राप्त होती है, तो उक्त शिकायत विभाग को आरोपों पर स्वतंत्र रूप से विचार करने तथा उसके संबंध में प्रारंभिक जांच करने से नहीं रोकती। वर्तमान मामले में, तकनीकी रिपोर्ट तथा प्रारंभिक जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने गंभीर कदाचार किया है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। याचिकाकर्ता का मामला ऐसा नहीं है कि अनाम शिकायत को छोड़कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं है। प्रारंभिक जांच के दौरान

याचिकाकर्ता पूर्ण रूप से शामिल था तथा तीन सदस्यीय समिति ने याचिकाकर्ता के गंभीर कदाचार के संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत की है। इसलिए, मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क के अनुसार दिनांक 09.05.1997 तथा 01.08.1997 के शासनादेशों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई है, न कि शिकायत के आधार पर, इसलिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने में कोई अवैधता नहीं है। यदि कोई सरकारी कर्मचारी, अर्ध-न्यायिक कार्य करते हुए, दुर्भावनापूर्ण आशय से, बाह्य उद्देश्यों के लिए कोई ऐसा आदेश पारित करता है जो अवैध है और जहाँ भ्रष्टाचार शामिल है, यदि आदेश को पुनरीक्षण/अपील में चुनौती नहीं दी गई है तो विभाग को ऐसे कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही करने से नहीं रोका जा सकता है। याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय, न्यायिक अधिकारियों के संबंध में हैं, जहाँ प्रारंभिक जाँच में बाहरी विचार के बारे में ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था और, इसलिए, उन निर्णयों का वर्तमान मामले के तथ्यों से कोई लेना-देना नहीं है।

(vi) याचिकाकर्ता को दिनांक 21.04.2022 के आदेश के तहत निलंबित किया गया है। निलंबन दंड के समान नहीं है, बल्कि किसी कर्मचारी को स्वतंत्र, निष्पक्ष और निष्पक्ष तरीके से अनुशासनात्मक जांच करने के लिए निलंबित किया जाता है। जब दोषी कर्मचारी के खिलाफ उसके कदाचार के संबंध में गंभीर आरोप हों, तो निलंबन आदेश को अवैध नहीं कहा जा सकता। उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम-7 के तहत किसी कर्मचारी को निलंबित करने की शक्ति है और मेरा मानना है कि याचिकाकर्ता को निलंबित करने के लिए वैध और ठोस कारणों से शक्ति का सही ढंग से प्रयोग किया गया।

(vii) इसके मद्देनजर, मुझे वर्तमान याचिका में कोई योग्यता और सार नहीं मिला, जिसे इस प्रकार **<u>खारिज</u>** किया जाता है। हालांकि, यह प्रावधान है कि विभाग को विभागीय जांच को तेजी से आगे बढ़ाना चाहिए और याचिकाकर्ता द्वारा पूर्ण सहयोग के अधीन, अधिमानतः चार माह की अवधि के भीतर इसे समाप्त करना चाहिए। यहां ऊपर की गई कोई भी टिप्पणी जांच अधिकारी को प्रभावित नहीं करेगी, जिसे स्वतंत्र रूप से जांच

करनी चाहिए और साक्ष्य के आधार पर अपने निष्कर्ष दर्ज करने चाहिए।

(2023) 5 ILRA 1135

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-बी संख्या 295/2023

जगदंबा सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

डी.डी.सी., अयोध्या एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: प्रभाकर वर्धन चौधरी, मोहम्मद असलम खान

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अंकित पांडे, राकेश कुमार श्रीवास्तव

ए. चकबंदी कानून - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953- धारा 48- पुनरीक्षण की शक्ति- दायरा- लगभग 43 मुकदमे की आयु - प्रासंगिकता - उप संचालक, चकबंदी ने पुनरीक्षण पर निर्णय करते हुए मामले को वापस भेज दिया - वैधता को चुनौती दी गई - मामले में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी - प्रभाव - माना गया कि डीडीसी की शक्ति और पक्षों के बीच मुकदमे की आयु को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने रिमांड आदेश को निरस्त कर दिया और डीडीसी को निर्देश दिया कि वह अधिनियम, 1953 की धारा 11-ए और 49 की प्रयोज्यता से संबंधित मुद्दे(ओं) सहित सभी मुद्दों पर विचार करें और निर्णय लें। (पैरा 17, 18 और 19)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. रिट बी संख्या 108/2023; अंगद प्रताप सिंह एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी एवं अन्य दिनांक 10.02.2023 को निर्णीत
2. प्रभु दयाल बनाम डी.डी.सी. और अन्य; 2018 (140) आरडी 460 (सभी)
3. मुसुट्टू बनाम डी.डी.सी. और अन्य; 2018(140) आरडी 505 (सभी)
4. धूराम बनाम उप संचालक चकबंदी, बागपत; 2006 (100) आर.डी. 505 (एच.सी.)
5. श्रीमती अंजू राजपाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 2023 (41) एलसीडी 626
6. बेचन पांडे और अन्य बनाम दुल्हिन जानकी देवी; एआईआर 1976 एससी 866
7. अरविंद कुमार जायसवाल (मृत) एल.आर. बनाम देवेंद्र प्रसाद जायसवाल; 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 146,

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता मोहम्मद आरिफ खान, जिनकी सहायता श्री प्रभाकर वर्धन चौधरी और मोहम्मद असलम खान ने की, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे और कैविएटर की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.एस. पांडे, जिनकी सहायता श्री राकेश कुमार श्रीवास्तव ने की, को सुना।

इस याचिका में प्रतिवादी संख्या 1/उप संचालक चकबंदी, अयोध्या द्वारा पुनरीक्षण संख्या

1864/2020530423000014 (बजरंग प्रताप सिंह एवं अन्य बनाम जगदंबा सिंह) में पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 23.03.2023 एक रिमांड का आदेश है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 1 ने बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा पारित दिनांक 22.06.2019 के आदेश तथा चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 29.06.2016 एवं 11.07.2016 के आदेशों में हस्तक्षेप करते हुए मामले को नए सिरे से निर्णीत करने के लिए चकबंदी अधिकारी सदर, अयोध्या के न्यायालय को वापस भेज दिया है। दिनांक 23.03.2023 को पारित आदेश का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"विचारोपरांत मैं इस मत का हूं कि चकबन्दी अधिकारी द्वारा निर्मित वाद बिन्दुओं की बिन्दुवार स्पष्ट विवेचना नहीं की गयी है एवं अपीलीय न्यायालय द्वारा भी सरसरी रूप से अवर न्यायालय के आदेश की पुष्टि कर दी गयी है। इस प्रकरण में मुख्य विचारणीय बिन्दु यहीं रहा है कि प्रथम चक्र चकबन्दी में उप संचालक चकबन्दी स्तर तक पारित आदेश के विरुद्ध माननीय उच्च न्यायालय में मु० लखराजी द्वारा याचिका प्रस्तुत की गयी और मु० लखराजी के मृत्यु के उपरान्त उक्त याचिका की पैरवी विधिक वारिस द्वारा न किये जाने के कारण निगरानी न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.08.1958 अन्तिम हो चुका है तो द्वितीय चक्र चकबन्दी में उक्त प्रकरण से सम्बन्धित वाद धारा-11क व धारा-49 जोत चकबन्दी अधिनियम से बाधित है अथवा नहीं एवं निगरानी स्तर तक पारित आदेश प्रांग न्याय का प्रभाव रखते है अथवा नहीं तथा चकबन्दी प्राधिकारियों को प्रस्तुत आपत्तियों पर सुनवाई का क्षेत्राधिकार प्राप्त है अथवा नहीं। परीक्षण न्यायालय को सर्वप्रथम इन्हीं बिन्दुओं पर सुनवाई करकें इन बिन्दुओं का निस्तारण करना चाहिए। इस बिन्दुओ के निस्तारण के उपरान्त ही अन्य बिन्दुओं पर गुणदोष पर विचार किया जा सकता है। तदनुसार निगरानी स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निगरानी स्वीकार की जाती है। बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.06.2019 एवं चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.06.2016 व 11.07.2016 निरस्त किया जाता है। प्रकरण ऊपर की गयी विवेचना के अनुसार पुनः निस्तारण हेतु चकबन्दी अधिकारी सदर अयोध्या के न्यायालय पर प्रति प्रेषित किया जाता है। वाद के निस्तारण तक आधार वर्ष का इन्द्राज यथावत रहेगा। पक्ष चकबन्दी अधिकारी सदर के न्यायालय पर अग्रेतर कार्यवाही हेतु दिनांक 18.04.2023 को उपस्थित हो। पत्रावली वाद अग्रेतर कार्यवाही राजस्व अभिलेखागार में संग्रहीत हो।"

ऊपर उद्धृत प्रासंगिक टिप्पणी तथा दिनांक 23.03.2023 को पारित आदेश के कथनों के

अवलोकन से यह न्यायालय पाता है कि प्रतिप्रेषण के पश्चात मुकदमे के पक्षकारों को अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी। इसके बावजूद, प्रतिवादी संख्या 1 ने दिनांक 23.03.2023 को पारित आदेश के माध्यम से मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय के लिए चकबंदी अधिकारी को वापस भेज दिया।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री खान ने 23.03.2023 को दिए गए आदेश पर आपत्ति जताते हुए कहा कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रतिवादी संख्या 1 को मामले को वापस चकबंदी अधिकारी के पास नहीं भेजना चाहिए था, क्योंकि वह स्वयं ही स्थापित कानूनी प्रस्ताव के मद्देनजर मामले को गुण-दोष के आधार पर निर्णीत करने के लिए अधिकृत है। अपने तर्क के समर्थन में, श्री खान ने इस न्यायालय द्वारा **रिट-B संख्या 108/2023 (अंगद प्रताप सिंह और अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ/आर), लखीमपुर खीरी और अन्य) में पारित दिनांक 10.02.2023 के निर्णय पर भरोसा किया है।**

उन्होंने आगे कहा कि 1953 के अधिनियम के तहत पुनरीक्षण न्यायालय/प्राधिकरण के पास व्यापक शक्तियां हैं। 1953 के अधिनियम की इस धारा के तहत शक्ति में किसी निष्कर्ष की जांच करने की शक्ति शामिल है चाहे वह तथ्य हो या कानून। डीडीसी इस धारा के तहत पुनरीक्षण सुनवाई करते समय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और धारा 48 स्पष्टीकरण 3 के आधार पर तथ्यों के अपने निष्कर्ष दर्ज करने के लिए पूरी तरह से सशक्त है। 1953 के अधिनियम की इस धारा के तहत डीडीसी को अधीनस्थ चकबंदी प्राधिकरणों के निष्कर्षों का पुनर्मूल्यांकन करने की शक्ति है। इस न्यायालय के निर्णय **प्रभु दयाल बनाम डीडीसी/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन) मणिपुरी एवं अन्य, 2018 (140) आरडी 460 (इलाहाबाद); मुसुट्टू बनाम डीडीसी एवं अन्य, 2018 (140) आरडी 505 (इलाहाबाद); धूराम बनाम उप संचालक चकबंदी, बागपत, 2006 (100) आर.डी. 505 (एच.सी.) का भी संदर्भ दिया गया है।**

श्री खान ने आगे कहा कि पक्षों के बीच विवाद में, चकबंदी अधिकारी ने 10.10.1957 को आदेश पारित किया। इसके बाद, 18.02.1958 को बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा एक आदेश पारित किया गया और उसके बाद उप संचालक चकबंदी ने 09.08.1958 को आदेश पारित किया। व्यथित होकर, श्रीमती लेखराजी द्वारा रिट याचिका संख्या 3389/1958 दायर की गई, जिसे समाप्त मानते हुए खारिज कर दिया गया। विवादित भूमि पर अधिकारों को लेकर पक्षों के बीच विवाद का निपटारा नहीं हो सका। संबंधित मुद्दे को सुलझाने के लिए, यू.पी. की धारा 229-बी/209 के तहत घोषणा के लिए एक वाद दायर किया गया था। जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "1950 का अधिनियम") के तहत मामला दर्ज किया गया था, जिसे मुकदमा संख्या 1168 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उसी प्रावधानों के तहत एक और वाद भी दायर किया गया था, जिसे मुकदमा संख्या 1099/75-519/1102 के रूप

में पंजीकृत किया गया था। उक्त वादों के लंबित रहने के दौरान, 15.11.1980 को चकबंदी की दूसरी कार्रवाई शुरू की गई और तब से, पक्षों के बीच विवाद का फैसला नहीं हुआ है। मामले को फिर से नए सिरे से निर्णय के लिए संबंधित चकबंदी अधिकारी को वापस भेज दिया गया है। यह रिमांड आदेश दूसरी चकबंदी कार्यवाही शुरू होने के लगभग 43 वर्ष बीत जाने के बाद पारित किया गया है। उनका कहना है कि कानून के स्थापित सिद्धांत के मद्देनजर, प्रतिवादी नंबर 1 को यू.पी. की धारा 11-ए और 49 का ध्यान रखने के बाद मामले में शामिल मुद्दों को निर्णीत करना चाहिए था। चकबंदी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "1953 का अधिनियम")। इस प्रकार, इस मामले में इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। प्रार्थना है कि इस याचिका को स्वीकार किया जाए और मामले को प्रतिवादी संख्या 1 को वापस भेजा जाए ताकि मुकदमे के पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद मामले में शामिल मुद्दों पर विचार किया जा सके और निर्णय लिया जा सके।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.एस. पाण्डेय ने वर्तमान याचिका का विरोध किया है। उन्होंने कहा कि मामले के तथ्यों को देखते हुए, इस याचिका में दिनांक 23.03.2023 को आरोपित रिमांड का आदेश उचित और न्यायोचित है और इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, क्योंकि चकबंदी अधिकारी द्वारा तैयार किए गए कई मुद्दों पर निर्णय लिया जाना चाहिए था, हालांकि, उक्त मुद्दों पर कानून के तहत अपेक्षित तरीके से विचार नहीं किया गया।

उन्होंने कहा कि समान तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने रिमांड के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। अपने तर्कों के समर्थन में, श्री पाण्डेय ने **श्रीमती अंजू राजपाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में [2023 (41) एलसीडी 626]** में दर्ज इस न्यायालय के दिनांक 22.12.2022 के निर्णय पर भरोसा किया है। हालांकि, पूछे जाने पर श्री पाण्डेय उप निदेशक चकबंदी की शक्ति पर विवाद नहीं कर सके, जैसा कि इस न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में कहा गया है।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के प्रस्तुतीकरण पर विचार किया गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

यह न्यायालय मामले के तथ्यात्मक पहलू पर विचार नहीं कर रहा है, क्योंकि वह संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों के आलोक में रिमांड के आदेश पर विचार कर रहा है।

संक्षेप में ऊपर दर्शाए गए तथ्यों तथा अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि द्वितीय चकबंदी कार्यवाही, जिसमें आक्षेपित आदेश दिनांक 23.03.2023 पारित किया गया है, 15.11.1980 को प्रारम्भ की गई तथा चकबंदी अधिकारी ने 29.06.2016 को मामले का निर्णय किया। तत्पश्चात, चकबंदी/अपील प्राधिकारी के बंदोबस्त अधिकारी ने 1953 के अधिनियम की धारा 11(1) के अन्तर्गत दाखिल अपील संख्या 1031/2016540423000069 (राम प्रकाश सिंह बनाम जगदम्बा सिंह) का निर्णय 22.06.2019 को किया तथा प्रश्नगत आदेश

प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा 23.03.2023 को पारित किया गया। इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि रिमांड का यह आदेश लगभग 43 वर्ष बीत जाने के पश्चात पारित किया गया है।

यह निर्विवाद है कि 1953 के अधिनियम के तहत प्रतिवादी संख्या 1 को, विशेष रूप से 1953 के अधिनियम की धारा 48 के तहत प्रयुक्त भाषा के मद्देनजर, व्यापक शक्ति प्राप्त है, जैसा कि ऊपर संदर्भित निर्णय में कहा गया है।

श्री पांडे द्वारा **श्रीमती अंजू राजपाल (सुप्रा)** के मामले में पारित निर्णय से यह पता चलता है कि इस न्यायालय ने मामले के तथ्यों पर विचार करने और भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के पैरा 41 और 46 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"41. सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, भागीदारी अधिनियम में निहित प्रावधानों अर्थात धारा 5, 6, 14, 37, 42 से 49 को समय-समय पर गठित विभिन्न भागीदारी फर्मों और उनके संबंधित विघटन से संबंधित साक्ष्य के संदर्भ में ध्यान में रखना होगा। चूंकि दोनों प्राधिकारियों अर्थात चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी में से किसी ने भी कानूनी प्रावधानों के सही दृष्टिकोण से समस्या पर गौर नहीं किया था और इस पहलू ने डीडीसी का ध्यान आकर्षित किया है, जिन्होंने इसे देखने के बाद पाया कि मामले पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है और उक्त उद्देश्य के लिए उन्होंने मामले को वापस भेज दिया है।

46. यह सच हो सकता है कि डीडीसी तथ्य और कानून का अंतिम न्यायालय है, लेकिन वर्तमान मामले में जहां मामला अलग दिशा में आगे बढ़ा है और प्रश्नगत विवाद से जुड़े सिद्धांतों की अनदेखी की है, भागीदारी अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत है और पक्षों ने भी अपेक्षित साक्ष्य रिकॉर्ड पर नहीं लाए हैं जो संबंधित विवादों का समर्थन कर सकें, इसलिए, यह न्यायालय स्पष्ट रूप से मानता है कि यह मामला उचित नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि मौजूदा परिस्थिति में रिमांड का आदेश गलत है।"

श्रीमती अंजू राजपाल (सुप्रा) के मामले में पारित निर्णय के ऊपर उद्धृत पैराग्राफ से यह स्पष्ट है कि पक्षों के बीच विवाद को तय करने के लिए साक्ष्य की आवश्यकता के आधार पर रिमांड आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया गया था। इस प्रकार, श्री पांडे द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है वह तथ्यों के आधार पर अलग है और वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बेचन पांडे एवं अन्य बनाम दुलहिन जानकी देवी** मामले में **एआईआर 1976 एससी 866** में मामले को वापस भेजने की दलील पर, आदेश 41 सीपीसी

के नियम 23 तथा पक्षों के बीच मुकदमेबाजी की उम्र पर विचार करने के बाद, पैराग्राफ 9 में कुछ टिप्पणियां कीं, जो पुन: प्रस्तुत करने पर इस प्रकार हैं:-

"9. श्री सरजू प्रसाद ने मामले को ट्रायल कोर्ट में वापस भेजने की भी प्रार्थना की है क्योंकि वादी-अपीलकर्ता इस धारणा के तहत काम कर रहे थे कि प्रतिवादी-प्रतिवादियों ने इस बात पर विवाद नहीं किया था कि विवादित भूमि वही थी जिसे मैना कुअर ने खरीदा था। यह आग्रह किया जाता है कि उस धारणा के कारण, ऐसी सामग्री जो स्पष्ट रूप से साबित कर सकती थी कि विवादित भूमि वही थी जिसे मैना कुअर ने खरीदा था, रिकॉर्ड पर नहीं लाई जा सकी। हमें इस प्रार्थना को स्वीकार करना मुश्किल लगता है। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, प्रतिवादी प्रतिवादियों ने अपने लिखित बयानों में स्पष्ट रूप से कहा है कि मैना कुअर विवादित भूमि की नीलामी खरीदार नहीं थी। उस स्पष्ट कथन के मद्देनजर, उस धारणा के लिए कोई वैध आधार नहीं था जिसके तहत वादी-अपीलकर्ताओं ने काम किया है। इसके अलावा, हम पाते हैं कि जिस मुकदमे से वर्तमान अपील उत्पन्न हुई है, वह जनवरी 1950 में बहुत पहले दायर किया गया था। अपील के शीर्षक से हम पाते हैं कि मूल वादियों में से कई और प्रतिवादी इस अवधि में एक चौथाई सदी से भी अधिक समय में चले गए हैं और अब जीवित लोगों की दुनिया में नहीं हैं, मानो प्रकृति के अटल नियम के आगे झुक गए हों। अब उनका प्रतिनिधित्व उनके कानूनी प्रतिनिधि कर रहे हैं। मुकदमे को ट्रायल कोर्ट में वापस भेजने से पक्षों के बीच संघर्ष जारी रहेगा और ट्रायल कोर्ट में कानूनी लड़ाई के एक और दौर और उसके बाद अपील के ज़रिए इस लंबे समय से चल रहे मुकदमे को और लंबा खींच देगा। हमारी राय में, अब समय आ गया है कि हम अंतिम पर्दा डालें और पक्षों के बीच मुकदमेबाजी के इस लंबे घुमावदार रास्ते को खत्म करें। अगर समय बीतने और प्रकृति के नियम पुरुषों और महिलाओं के जीवन को खत्म कर देते हैं, तो शायद यह तर्क और विवेक की मांग होगी कि इतने सालों बाद मृतकों द्वारा शुरू किए गए संघर्ष और संघर्ष को जीवित न रखा जाए। ऐसा करना वास्तव में प्रकृति के नियमों की अवहेलना करना और समय की मार का निरर्थक प्रतिरोध करना होगा। यदि मानव जीवन की अवधि छोटी है, तो विवादों और संघर्षों के लिए बड़ा दावा करना तर्कहीन होगा, जो मानवीय कमज़ोरी का प्रकटीकरण है। न्यायालयों को वर्तमान जैसे मामले में ऐसी दलील सुनने से बचना चाहिए, जिसका प्रभाव आने वाली पीढ़ियों के परिवारों को अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा लंबी

मुकदमेबाजी में बिताने के लिए मजबूर कर सकता है। उपरोक्त संदर्भ में संत नरोइन माथुर बनाम राम कृष्ण मिशन [(1974) 2 एससीसी 730] के मामले में कही गई बातों को फिर से दोहराना उचित होगा: (पृष्ठ 737, पैरा 15)

"हमारे विचार से, अब समय आ गया है कि हम इस लंबे समय से चल रहे मुकदमे पर अंतिम पर्दा डाल दें और इसकी चिंगारी को और अधिक समय तक सुलगने न दें, खासकर तब जब मुख्य प्रतियोगी प्रकृति के अटल नियम के आगे झुककर चले गए हों। इस संदर्भ में अर्ल ऑफ ऑक्सफोर्ड की बिना संतान के मृत्यु के बाद किए गए पीयरेज दावे से संबंधित एक मामले में चीफ जस्टिस क्रेवे की टिप्पणियों का उल्लेख करना रुचिकर है। विद्वान चीफ जस्टिस ने कहा:

'समय के अपने चक्र होते हैं; सभी लौकिक चीजों के लिए एक अवधि और अंत होना चाहिए - नामों और प्रतिष्ठाओं और जो कुछ भी टेरर्न है उसका अंत, और डे वेरे का क्यों नहीं? क्योंकि बोहुन कहाँ है? मोब्रे कहाँ है? मोर्टिमर कहाँ है? क्यों, जो सबसे अधिक और सबसे महत्वपूर्ण है, प्लांटाजेनेट कहाँ है? वे सभी मृत्यु के कलशों और कब्रों में दफन हैं। सभी नश्वर प्राणियों के अपरिहार्य अंत के बारे में जो कहा गया था, चाहे वे कितने भी प्रतिष्ठित क्यों न हों, वह नश्वर प्राणियों के मामलों, उनके विवादों और संघर्षों, प्रेम और खेल के क्षेत्र में उनके उपक्रमों, उनकी उपलब्धियों और असफलताओं के बारे में भी उतना ही सच है, क्योंकि अनिवार्य रूप से उन सभी पर नश्वरता की मुहर लगी हुई है।'

कोई यह जोड़ने के लिए ललचाता है कि यदि कई रंग के कांच के गुंबद की तरह जीवन अनंत काल की सफेद चमक को दाग देता है, तो नश्वर प्राणियों के कर्म और संघर्ष भी ऐसा ही करते हैं जब तक कि मृत्यु उन्हें रौंद न दे।"

2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 146 में दर्ज **एल.आर. के माध्यम से अरविंद कुमार जायसवाल (मृत) बनाम देवेंद्र प्रसाद जायसवाल** के मामले में, एक मामले के रिमांड के मुद्दे पर आदेश 41 सीपीसी अर्थात नियम 23, 23ए, 24 और 25 के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने के बाद, निम्नानुसार टिप्पणी किया गया: -

"3. रिमांड का आदेश मुकदमे को लम्बा खींचता है और विलंबित करता है और इसलिए, इसे तब तक पारित नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि अपीलीय अदालत को यह न लगे कि फिर से सुनवाई की आवश्यकता है, या रिकार्ड पर मौजूद साक्ष्य किसी पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करने के पर्याप्त अवसर की कमी जैसे कारणों से मामले का निपटारा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, जहां विवाद का कोई वास्तविक परीक्षण नहीं हुआ है या कार्यवाही का कोई पूर्ण या प्रभावी निर्णय नहीं हुआ है,

और शिकायत करने वाले पक्ष को उस कारण से भौतिक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है। (देखें: शिवकुमार बनाम शरणबसप्पा, (2021) 11 एससीसी 277; और बच्चन देवी बनाम नगर निगम, गोरखपुर, (2008) 12 एससीसी 372) जहां साक्ष्य पहले ही पेश किए जा चुके हैं और ऐसे साक्ष्य की मूल्यांकन के आधार पर निर्णय दिया जा सकता है, मामले को निचली अदालत में भेजने के लिए रिमांड का आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए, भले ही निचली अदालत ने मुद्दे निर्णीत करने में चूक की हो और/या तथ्य के किसी भी प्रश्न को निर्धारित करने में विफल रही हो, जो अपीलीय अदालत की राय में आवश्यक है। प्रथम अपीलीय न्यायालय, यदि आवश्यक हो, आदेश XLI के नियम 25 के अनुसार किसी विशेष पहलू/मुद्दे पर साक्ष्य और निष्कर्ष रिकॉर्ड करने के लिए ट्रायल कोर्ट को निर्देश भी दे सकता है, जिसे फिर अपीलीय न्यायालय द्वारा मामले का फैसला करने के लिए रिकॉर्ड पर लिया जा सकता है।

4. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने, प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में, जो तथ्य और कानून का न्यायालय भी है, रिमांड का आदेश पारित किया है, जिसमें कहा गया है कि ट्रायल कोर्ट का निर्णय, उसकी राय में, संहिता की धारा 33 और आदेश XX के नियम 4(2) और 5 के आदेश के अनुसार नहीं लिखा गया था, क्योंकि कुछ पहलुओं पर चर्चा और तर्क विस्तृत नहीं थे।"

अधिनियम 1953 की धारा 48 के तहत डीडीसी की शक्ति पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि **बेचन पांडे (सुप्रा)** और **अरविंद कुमार जायसवाल (सुप्रा)** के मामले में पारित निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

पक्षों के बीच विवाद के संबंध में वर्तमान मामले में, चकबंदी अधिकारी द्वारा 10.10.1957 को पहला आदेश पारित किया गया था और उनके बीच विवाद जारी रहा और 15.11.1980 को दूसरी चकबंदी कार्यवाही शुरू की गई और 23.03.2023 को रिमांड का आदेश, डीडीसी द्वारा दूसरी चकबंदी कार्यवाही शुरू होने के लगभग 43 साल बाद पारित किया गया है। इसके अलावा, वर्तमान मामले में मुकदमे के पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि प्रश्नगत आदेश से स्पष्ट है। डीडीसी ने यह नहीं देखा है कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य मामले के निपटारे के लिए पर्याप्त नहीं हैं या फिर दोबारा सुनवाई की आवश्यकता है।

डीडीसी की शक्ति और पक्षों के बीच मुकदमेबाजी की उम्र सहित उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का मत है कि दिनांक 23.03.2023 के प्रश्नगत आदेश में हस्तक्षेप आवश्यक है। तदनुसार, दिनांक 23.03.2023 के प्रश्नगत आदेश को रद्द किया जाता है। इस मामले को उप निदेशक चकबंदी को वापस भेजा जाता है ताकि वे मुकदमे के पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर, यदि इस संबंध में कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है

तो अधिनियम 1953 की धारा 11-ए और 49 की प्रयोज्यता से संबंधित सभी मुद्दों पर विचार करें और निर्णय लें। कार्यवाही का संचालन करते समय, संबंधित प्राधिकरण को किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन से बचने का निर्देश दिया जाता है।

उपरोक्त शर्तों के तहत रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1141

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र

रिट-सी संख्या 143 / 2021

ब्रह्मानंद पांडे ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री ब्रह्मानंद पांडे (व्यक्तिगत रूप से)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री आनंद प्रकाश श्रीवास्तव

ए. भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट -पोषणीयता - नामांतरण कार्यवाही- हस्तक्षेप का दायरा- आयोजित, नामांतरण आदेश कब्जे के आधार पर पारित किए जाते हैं और चूंकि पक्षों के किसी भी मूल अधिकार पर निर्णय नहीं लिया जाता है, इसलिए ऐसे आदेशों के विरुद्ध सामान्यतः रिट याचिका तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि उन्हें पूर्णतः अधिकार क्षेत्र से बाहर न पाया जाए या उनका निष्कर्ष सक्षम न्यायालय द्वारा पहले से तय किए गए शीर्षक के विपरीत न हो। (पैरा 35)

बी. राजस्व कानून- उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901-धारा 33, 39 और 225 - नामांतरण - प्रकृति और दायरा- आयोजित, नामांतरण कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति की होती है - इसका स्वामित्व बनाने या समाप्त करने पर कोई प्रभाव नहीं होता है और न ही इसका स्वामित्व पर कोई अनुमानित मूल्य होता है और यह केवल संबंधित व्यक्ति को भू-राजस्व का भुगतान करने में सक्षम बनाता है - नामांतरण आदेश किसी भी व्यक्ति द्वारा सक्षम न्यायालय में भूमि पर अधिकार रखने पर रोक नहीं लगाता है। (पैरा 36, 41 और 46)

सी. संविधि की व्याख्या- सामान्य धारा अधिनियम, 1897- धारा 2(42) - शब्द 'व्यक्ति' - चाहे इसमें 'अनुच्छेद 370' शामिल हो या नहीं - निर्णय दिया गया कि 'व्यक्ति' की परिभाषा अनन्य नहीं है, बल्कि समावेशी है और वर्तमान मामले को जन्म देने वाली कार्यवाही के संदर्भ में संविधि में प्रयुक्त भाषा पर विचार करते हुए, न्यायालय की राय में, 'अनुच्छेद' 'व्यक्ति' की परिभाषा में आएगा। (पैरा 46 और 47)

डी. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226- रिट - न्यायाधिकार - अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत मूल कार्यवाही में दावा किए गए राहत की प्रकृति या आरोपित आदेशों से व्यथित होने वाला मुख्य पक्ष 'उत्तर प्रदेश का जिला न्यायाधीश' है - हालांकि, चुनौती एक

अजनबी (याचिकाकर्ता) द्वारा दी गई थी- अनुमेयता - आयोजित, याचिकाकर्ता का इस वाद में कोई अधिकार नहीं है। (पैरा 47, 48 और 49)

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रुक्मिणी अम्मा सारदम्मा बनाम कल्याणी सुलोचना और अन्य; (1993) 1 एससीसी 499
2. हिया एसोसिएट्स एंड ऑर्स बनाम नक्षत्र प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड; (2018) 18 एससीसी 358
3. जयपाल बनाम राजस्व बोर्ड, उ.प्र., इलाहाबाद एवं अन्य; एआईआर 1957 सभी 205
4. श्री लाल बच्चन बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ व अन्य; 2002 (93) आरडी 6
5. बिंदेश्वरी बनाम राजस्व मंडल एवं अन्य; 2002 (1) एडब्ल्यूसी 498
6. विनोद कुमार राजभर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2021 (1) एडीजे 792।
7. बुद्ध पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2012 (5) एडीजे 266,
8. भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी (2019) 3 एससीसी 191
9. बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह; (1997) 7 एससीसी 137
10. नरसम्मा बनाम कर्नाटक राज्य; (209) 5 एससीसी 591
11. फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन; (2008) 8 एससीसी 12
12. नारायण प्रसाद अग्रवाल बनाम एम.पी. राज्य; (2007) 11 एससीसी 736
13. भारत संघ एवं अन्य बनाम वासवी सहकारी हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड और अन्य.; (2014) 2 एससीसी 269
14. बैंगलोर शहर निगम बनाम एम. पपैया; (1989) 3 एससीसी 612
15. गुरु अमरजीत सिंह बनाम रतन चंद (1993) 4 एससीसी 349
16. एच.पी. बनाम केशव राम; (1996) 11एससीसी 257
17. सावर्णी (श्रीमती) बनाम इंदर कौर (श्रीमती) एवं अन्य; (1996) 6 एससीसी 223
18. सूरज भान एवं अन्य बनाम वित्तीय आयुक्त एवं अन्य; (2007) 6 एससीसी 186
19. हरीश चंद्र बनाम भारत संघ और अन्य; 2019 (5) एडीजे 212 (डीबी)
20. महेश कुमार जुनेजा व अन्य बनाम अपर आयुक्त न्यायिक मुरादाबाद मंडल व अन्य, 2020 (3) एडीजे 104
21. जितेन्द्र सिंह बनाम एम.पी. राज्य और अन्य; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 802
22. सूरज भान बनाम वित्तीय आयुक्त; (2007) 6 एससीसी 186
23. सुमन वर्मा बनाम भारत संघ; (2004) 12 एससीसी 58
24. फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन; (2008) 8 एससीसी 12
25. राजिंदर सिंह बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य; (2008) 9 एससीसी 368
26. नगर निगम, औरंगाबाद बनाम महाराष्ट्र राज्य; (2015) 16 एससीसी 689
27. टी रवि बनाम बी चिन्ना नरसिम्हा; (2017) 7 एससीसी 342

28. भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी; (2019) 3 एससीसी 191

29. प्रहलाद प्रसाद बनाम सोनू कुम्हार; (2019) 10 एससीसी 259

30. अजीत कौर बनाम दर्शन सिंह; (2019) 13 एससीसी 70

31. श्रीमती कलावती बनाम राजस्व मंडल एवं अन्य; 2022 (4) एडीजे 578

32. अलादीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2023 (3) एडीजे 41

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री ब्रह्मानंद पांडे, याचिकाकर्ता जो व्यक्तिगत रूप से पेश हुए हैं, राज्य-प्रतिवादियों के लिए स्थायी अधिवक्ता और श्री आनंद प्रकाश श्रीवास्तव, प्रतिवादी संख्या 5-निजी प्रतिवादी के अधिवक्ता को सुना।

2. यह रिट याचिका ब्रह्मानंद पांडे पुत्र राजमणि पांडे, निवासी ग्राम-ससना विश्वनाथपुर, थाना-महाराजगंज, परगना गोपालपुर, तहसील-सगड़ी, जिला-आजमगढ़ द्वारा दायर की गई है।

3. वर्तमान रिट याचिका में दावा की गई राहतें कलेक्टर/जिलाधिकारी-आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.10.2017 के साथ-साथ कमिश्नर, आजमगढ़, मंडल-आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.10.2020 को रद्द करने के लिए हैं।

4. कलेक्टर/जिलाधिकारी, आजमगढ़ ने याचिकाकर्ता द्वारा यूपी भूमि राजस्व अधिनियम-1901 (इसके बाद " अधिनियम-1901" के रूप में संदर्भित) की धारा 33/39/225 के तहत दायर मामले (ब्रह्मानंद पांडे बनाम यूपी राज्य) को दिनांक 25.10.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया है, जबकि कमिश्नर, आजमगढ़, मंडल आजमगढ़ ने अधिनियम-1901 की धारा 219 के तहत दायर पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया है।

5. पत्रावली के अवलोकन से पता चलता है कि याची ने कलेक्टर/जिलाधिकारी-आजमगढ़ के समक्ष उत्तर प्रदेश राज्य के विरुद्ध अधिनियम-1901 की धारा 33/39/225 के अन्तर्गत वाद दायर किया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि गाटा संख्या 1149 (जिसे गाटा संख्या 329 एवं 330 के रूप में पुनः अंकित किया गया है) के अन्तर्गत आने वाली कुछ भूमि राम प्रकाश, राजपत पाण्डेय एवं हरि मोहन के नाम पर उनकी भूमिधरी भूमि के रूप में दर्ज है। उक्त आवेदन/वाद के ज्ञापन में लगाए गए आरोप इस प्रकार हैं कि विभिन्न निजी व्यक्ति (जिनमें उपरोक्त भी शामिल हैं) सार्वजनिक मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं तथा राजस्व/चकबंदी अभिलेखों के विपरीत अपने नाम पर गलत प्रविष्टियां कराने में सफल हो गए हैं। उक्त आवेदन/वाद में तीन प्रार्थनाएं की गई थीः-

(1). गाटा संख्या 329 एवं 330 को "आंशिक/सरकारी भूमि" घोषित किया जाए;

(2). याची के पक्ष में कोई अन्य अनुतोष जो उचित पाया जाए पारित किया जाए;

(3). मुकदमे की लागत विपक्षी पक्ष (राज्य) से याचिकाकर्ता को दिलाई जाए।

6. कलेक्टर के आदेश दिनांक 25.10.2017 से पता चलता है कि मामले के निस्तारण के लिए उप-जिला अधिकारी-सगड़ी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी से रिपोर्ट मांगी गई थी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने अपने रिपोर्ट दिनांक 26.11.2015 में उल्लेख किया है कि गाटा संख्या 330 क्षेत्रफल 0.030 कारी की भूमि चकबंदी अधिकारी द्वारा वाद संख्या 10459 में पारित आदेश दिनांक 12.11.1971 द्वारा राजपति और राधिका, जो सदानन्द के उत्तराधिकारी हैं, के नाम दर्ज की गई है, जबकि गाटा संख्या 329 क्षेत्रफल 0.015 के संबंध में पूर्वोक्त दोनों नाम खतौनी में पहले से ही जारी थे। आदेश में यह भी कहा गया है कि राज्य और विपक्षी पक्षों को सुना गया जबकि याचिकाकर्ता की ओर से मामले पर बहस करने के लिए कोई भी मौजूद नहीं था और इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए आरोप साबित नहीं हुए और, विपक्षी पक्षों के पक्ष में, विपरीत आख्याएं थी, परिणामस्वरूप, मामला खारिज कर दिया गया।

7. कलेक्टर/जिलाधिकारी-आजमगढ़ के दिनांक 25.10.2017 के आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता ने आयुक्त, आजमगढ़, मंडल-आजमगढ़ के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया, जिसे दिनांक 20.10.2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

8. याचिकाकर्ता का तर्क यह है कि उक्त भूमि चकबंदी रिकॉर्ड में "सरकारी भूमि" के रूप में दर्ज की जाती रही, हालांकि, प्रतिवादी संख्या 5 और विभिन्न अन्य व्यक्ति राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम दर्ज कराने में सफल रहे और इसलिए, उक्त धोखाधड़ी वाली प्रविष्टियां निरस्त होने योग्य हैं और भूमि को "सरकारी" घोषित किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता ने विभिन्न राजस्व अभिलेखों का हवाला दिया है और अदालत को यह प्रभावित करने की कोशिश की है कि निजी व्यक्तियों ने सरकारी भूमि हड़प ली है।

9. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी है कि आक्षेपित आदेश पूरी तरह से कानून के अनुरूप हैं तथा निचली अदालतों में उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित हैं, इसलिए उनमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

10. श्री ए.पी. श्रीवास्तव, जो प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से पेश हुए हैं, ने तर्क दिया है कि अधिनियम-1901 की धारा 33/39/225 के तहत कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि वे "सारांश प्रकृति के हैं" और अन्यथा भी, यह रिकॉर्ड में आया है कि प्रतिवादी संख्या 5 सहित निजी व्यक्तियों के नाम चकबंदी अधिकारी द्वारा वाद संख्या 10459 में पारित दिनांक 12.11.1971 के आदेश के आधार पर चकबंदी के साथ-साथ राजस्व अभिलेखों में दर्ज किए गए थे। श्री श्रीवास्तव ने आगे तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता का इस मामले में कोई स्थान नहीं है क्योंकि न तो अधिनियम-1901 की धारा 33/39/225 के तहत अपने मामले में और न

ही रिट याचिका में, उन्होंने यह खुलासा किया है कि वे प्रतिवादियों और अन्य व्यक्तियों को "भूमिधरी" अधिकार प्रदान करने से कैसे प्रभावित हुए हैं। उन्होंने आगे कहा कि यह जनहित की प्रकृति की रिट याचिका नहीं है, जहां कोई भी किसी मुद्दे को उठा सकता है और न ही इसमें किसी जनहित का तत्व शामिल है। श्री श्रीवास्तव ने आगे कहा कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अपने आदेश में तथ्यों के शुद्ध निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं और किसी भी मामले में, यदि याचिकाकर्ता या अन्य व्यक्ति राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों, जो वैधानिक कार्यवाही में सक्षम न्यायालय द्वारा निर्णय पर आधारित हैं, से व्यथित हैं, तो उसे अधिकारों की घोषणा की उचित कार्यवाही में अपनी शिकायत का निवारण करने का अधिकार है और अधिनियम-1901 की धारा 33/39 एक प्रावधान है जो केवल अभिलेखों को सही करने के लिए है, जिसमें प्रविष्टियां लिपिकीय गलती या चूक से दर्ज की गई हैं, जो यहां मामला नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि प्रतिवादी संख्या 5 सहित लाभार्थी विवादित भूमि पर वास्तविक और भौतिक कब्जे में बने हुए हैं और याचिकाकर्ता "भूमिधरों" को परेशान करने की कोशिश कर रहा है और इसलिए, यह रिट याचिका कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के अलावा और कुछ नहीं है।

11. इससे पहले कि यह न्यायालय इस मामले की सुनवाई पोषणीयता या गुण-दोष के आधार पर करे, यह उचित होगा कि 1901 के अधिनियम की धारा 33, 39 और 225 को उद्धृत किया जाए, जो इस प्रकार हैं:-

*"**33. वार्षिक रजिस्टर** - (1) कलेक्टर अधिकारों का अभिलेख बनाकर रखेगा और उस प्रयोजन के लिए प्रतिवर्ष या ऐसे लम्बे अंतरालों पर जैसा कि [राज्य सरकार] निर्धारित करे, एक संशोधित [धारा 32 में उल्लिखित रजिस्टर] तैयार कराएगा।*

इस प्रकार तैयार किया गया [रजिस्टर] वार्षिक रजिस्टर कहलाएगा।

[(2) कलेक्टर वार्षिक रजिस्टर में निम्नलिखित बातें दर्ज कराएगा -
(क) धारा 35 के उपबंधों के अनुसार सभी उत्तराधिकार और अंतरण; या
(ख) अन्य परिवर्तन जो किसी भूमि के संबंध में हो सकते हैं; और धारा 39 के उपबंधों के अनुसार सभी गलतियों और चूकों को भी ठीक करेगा:

परन्तु खण्ड (ख) के अधीन परिवर्तन अभिलिखित करने की शक्ति का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि इसमें अधिकार के किसी प्रश्न से संबंधित विवाद पर निर्णय करने की शक्ति सम्मिलित है।]
(3) [ऐसा कोई परिवर्तन या लेन-देन कलेक्टर या इसके पश्चात् प्रदान किए गए अनुसार तहसीलदार या

[कानूनगो] के आदेश के बिना दर्ज नहीं किया जाएगा।]

[(4) कलेक्टर, चाहे संक्रमणीय अधिकारों के साथ या बिना, भूमिधर के रूप में दर्ज प्रत्येक व्यक्ति को, असामी या सरकारी पट्टेदार के लिए एक किसान बही (पास बुक) तैयार और प्रदान कराएगा, जिसमें निम्नलिखित शामिल होंगे -

(क) उप-धारा (१) के तहत तैयार किए गए वार्षिक रजिस्टर से ऐसा उद्धरण, जो उन सभी जोतों से संबंधित है, जिनके लिए वह इस प्रकार दर्ज है (या तो अकेले या दूसरों के साथ संयुक्त रूप से);

(ख) उसे मंजूर किए गए अनुदानों का ब्यौरा; और

(ग) ऐसे अन्य विवरण जो निर्धारित किए जा सकते हैं:

बशर्ते कि संयुक्त जोतों के मामले में यह इस उप-धारा के प्रयोजन के लिए पर्याप्त होगा कि किसान बही (पास बुक) ऐसे एक या अधिक दर्ज सह-हिस्सेदारों को दी जाए, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

(4-क) उपधारा (४) में निर्दिष्ट किसान बही (पास बुक) ऐसी रीति से और ऐसी फीस के भुगतान पर तैयार की जाएगी, जो भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली योग्य होगी, जैसा कि विहित किया जाए।

(5) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, बिना किसी अतिरिक्त फीस के भुगतान के, उपधारा (२) के अधीन वार्षिक रजिस्टर में किए गए किसी संशोधन को अपनी किसान बही (पास बुक) में शामिल कराने का हकदार होगा।]

(6) राज्य सरकार इस धारा के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी, जिनमें विशेष रूप से साक्ष्य में ग्रहण करने की रीति और न्यायिक कार्यवाहियों में साक्ष्य की रीति, [किसान बही (पास बुक)] में प्रविष्टियों की रीति, और उसके नवीनतम पुनरीक्षण और प्रमाणीकरण की रीति और उसकी द्वितीय प्रतियां जारी करने की रीति और उक्त प्रयोजनों में से किसी के लिए ली जाने वाली फीस, यदि कोई हो, विहित करने वाले नियम सम्मिलित हैं।

(7) इस धारा में, 'विहित' का अर्थ राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित है।

(8) उपधारा (4) से (7) की कोई बात किसी ऐसे क्षेत्र के संबंध में लागू नहीं होगी जो या तो चकबंदी संक्रियाओं के अधीन है या अभिलेख संक्रियाओं के अधीन है।"

***39. वार्षिक रजिस्टर में गलतियों का सुधार**- (1) वार्षिक रजिस्टर में किसी गलती या लोप के सुधार के लिए आवेदन तहसीलदार को किया जाएगा।*

(2) उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर या वार्षिक रजिस्टर

में किसी गलती या लोप के अन्यथा उसके ज्ञान में आने पर, तहसीलदार ऐसी जांच करेगा जो आवश्यक प्रतीत हो और फिर मामले को कलेक्टर को संदर्भित करेगा, जो धारा 40 के उपबंधों के अनुसार विवाद का निर्णय करने के पश्चात उसका निपटारा करेगा।

[परन्तु इस उपधारा की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह कलेक्टर को स्वामित्व के किसी प्रश्न से संबंधित विवाद का निर्णय करने के लिए सशक्त करती है।]

(3) उपधारा (1) और (2) के उपबंध, उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 में किसी बात के होते हुए भी, अभिभावी होंगे।

***225. कलेक्टर को सहायक कलेक्टर की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी।** - कलेक्टर इस अधिनियम या किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत सहायक कलेक्टर की सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग अस्थायी रूप से कर सकता है।"*

12. उपरोक्त धाराओं के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम-1901 की धारा 33 के अन्तर्गत, धारा 35 के अनुसार उत्तराधिकार एवं अन्तरण के आधार पर प्रविष्टियाँ की जा सकती हैं तथा कलेक्टर द्वारा सभी त्रुटियों एवं चूकों का सुधार भी किया जा सकता है। धारा 39 वास्तविक रजिस्टर में त्रुटियों के सुधार का प्रावधान है, जबकि धारा 225 का वर्तमान मामले में शामिल विवाद से कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि इसमें केवल यह कहा गया है कि "कलेक्टर अधिनियम के अन्तर्गत सहायक कलेक्टर की सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है"।

13. उपरोक्त प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए अधिनियम-1901 की धारा 33/39/225 के अन्तर्गत मूल मामले में किए गए कथनों से यह स्पष्ट होता है कि कलेक्टर से इस आशय की घोषणा मांगी गई थी कि गाटा संख्या 329 एवं 330 से आच्छादित भूमि को "आंशिक/सरकारी भूमि" घोषित किया जाए, अतः मामले के ज्ञापन के अवलोकन मात्र से पता चलता है कि यह अभिलेखों में सुधार का मामला नहीं था, बल्कि याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के पक्ष में घोषणा की मांग की थी और इसीलिए उन्होंने केवल "राज्य सरकार" को "पक्ष" बनाया, हालांकि निजी प्रतिवादी संख्या 5 के हित-पूर्ववर्तियों सहित निजी व्यक्तियों पर भी आरोप लगाए गए थे।

14. पत्रावली के अवलोकन से मुझे पता चलता है कि उपरोक्त मामले के लंबित रहने के दौरान कलेक्टर-आजमगढ़ ने संबंधित उप मंडल अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी की रिपोर्टों पर विचार करने के बाद दिनांक 19.10.2015 को एक आदेश पारित किया था कि राजस्व अभिलेखों में राधिका, राम प्रकाश, संतोष कुमार और झिनका के नाम "स्थानांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर" के रूप

में दर्ज थे और इसलिए उक्त व्यक्ति "प्रभावित पक्ष" होंगे और इसलिए कार्यवाही में उनका पक्षकार होना आवश्यक है। तदनुसार, कलेक्टर ने उपरोक्त व्यक्तियों को पक्षकार बनाने का निर्देश दिया और उन्हें नोटिस जारी किया।

15. न्यायालय ने पाया कि कलेक्टर/जिलाधिकारी-आजमगढ़ द्वारा पारित 25.10.2017 के आदेश के विरुद्ध दो पुनरीक्षण संख्या 47/ए सी-20501500000037/2019-20 (ब्रह्मानंद पांडे बनाम जिलाधिकारी, आजमगढ़ एवं अन्य) तथा पुनरीक्षण संख्या 50/ए सी-201715001297/2017-20 (उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जिलाधिकारी-आजमगढ़ बनाम राम प्रकाश एवं अन्य) दायर किए गए थे। उपरोक्त के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कलेक्टर/जिलाधिकारी-आजमगढ़ द्वारा पारित 25.10.2017 के आदेश से 'उत्तर प्रदेश राज्य' भी व्यथित था।

16. याचिकाकर्ता ने न्यायालय का ध्यान रिट सी संख्या 18613/2019 (ब्रह्मानंद पांडे बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसे उस चरण में दायर और तय किया गया था जब 23.01.2019 के आदेश द्वारा, आयुक्त ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण का फैसला किया था, लेकिन राज्य द्वारा दायर पुनरीक्षण का फैसला नहीं किया था, हालांकि दोनों पुनरीक्षण 25.10.2017 के आदेश के खिलाफ दायर किए गए थे। उक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय द्वारा 02.07.2019 के आदेश द्वारा रिट याचिका को निम्नलिखित निर्देशों के साथ स्वीकार किया गया था: -

"तदनुसार, याचिका स्वीकार की जाती है, 23.01.2019 का आक्षेपित आदेश, इस हद तक अपास्त किया जाता है कि यह याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को पोषणीय न होने के कारण खारिज करता है। यह निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को संशोधन संख्या 306/ए, यूपी राज्य बनाम राम प्रकाश और अन्य के साथ जोड़ा जाए और उसके साथ निर्णित किया जाए।"

17. इस न्यायालय के दिनांक 02.07.2019 के उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, दोनों पुनरीक्षणों को दिनांक 21.10.2020 के आक्षेपित आदेश द्वारा, आयुक्त द्वारा एक साथ मिलाकर निर्णय दिया गया।

18. बहस के दौरान, न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता, श्री श्रीवास्तव और विद्वान स्थायी अधिवक्ता से प्रश्न उठाया गया कि क्या आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 25.10.2020 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध राज्य ने कोई रिट याचिका दायर की है या नहीं। उक्त प्रश्न का उत्तर था कि राज्य द्वारा रिट याचिका दायर करने के बारे में किसी को जानकारी नहीं थी।

19. ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय ने राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे दिनांकित 27.08.2021 की जांच की, जिसके अभिसाक्षी वासुदेव जी, तत्कालीन चकबंदी

अधिकारी, आजमगढ़ हैं। उक्त जवाबी हलफनामे के कुछ प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"11. रिट याचिका के पैरा 4 की सामग्री को जैसा कहा गया है वैसा स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए अस्वीकार किया जाता है। इसके उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1, आयुक्त, आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ ने पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री की जांच करने के बाद 21.10.2020 को आदेश पारित किया है, जो पूरी तरह से न्यायसंगत, कानूनी और वैध आदेश है और इसमें कोई अवैधानिकता नहीं है।

12. रिट याचिका के पैरा 5 की सामग्री को जैसा कहा गया है वैसा स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए अस्वीकार किया जाता है। इसके उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि, जिलाधिकारी, आजमगढ़ के समक्ष प्रस्तुत जांच रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि गाटा संख्या 329 क्षेत्रफल 0.015 हेक्टेयर राजपति और राधिका पुत्रगण सदानन्द के नाम पर पिछले वर्ष की खतौनी से दर्ज किया गया था और उसी के आधार पर जिलाधिकारी और आयुक्त आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ ने भी अपने आदेश में इसका उल्लेख किया है।

13. रिट याचिका के पैरा 6 की विषय-वस्तु को जैसा कहा गया है वैसा स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए उसे अस्वीकार किया जाता है। इसके उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि, सी.एच. फॉर्म 41 में गाटा संख्या 329 क्षेत्रफल 0.015 हेक्टेयर को पुराने गाटा संख्या 1149/2 क्षेत्रफल 0.015 हेक्टेयर से काटा गया है। राजपति और राधिका पुत्रगण सदानन्द के नाम सी.एच. फॉर्म 45 के खाता संख्या 78 में दर्ज थे, जिसे चकबंदी कार्यवाही से बाहर रखा गया था, इसलिए, उस आधार पर इसे विशेष कॉलम में "परती/रकबा" के रूप में दर्ज किया गया था। उपरोक्त के मद्देनजर यह स्पष्ट है कि, उक्त भूमि काश्तकार की है और ग्राम समाज या परती खाते की भूमि नहीं है।

14. रिट याचिका के पैरा 7 और 8 की विषय-वस्तु को जैसा कहा गया है वैसा स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए उसे अस्वीकार किया जाता है। इसके उत्तर में कहा किया गया है कि चकबंदी अधिकारी द्वारा वाद संख्या 10459 में पारित आदेश दिनांक 12.11.1971 के द्वारा सभापति पंचानन का नाम विलोपित कर राधिका व राजपति पुत्रगण सदानन्द का नाम पुराने गाटा संख्या 1149/3 के नये गाटा संख्या 330 क्षेत्रफल 0.030 कारी पर दर्ज किया गया, जो दिनांक 26.11.2015 की जांच/निरीक्षण रिपोर्ट से स्पष्ट है।

15. कि रिट याचिका के पैरा 9 की विषय-वस्तु जैसा कहा गया है वैसा स्वीकार नहीं की गयी, अतः अस्वीकार की गयी। इसके उत्तर में प्रस्तुत किया गया है कि संबंधित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश पूर्णतः न्यायसंगत, विधिक एवं वैध आदेश है तथा इसमें कोई अवैधानिकता नहीं है।

16. कि रिट याचिका के पैरा 10 व 11 की विषय-वस्तु जैसा कहा गया है वैसा स्वीकार

नहीं की गयी, अतः अस्वीकार की गयी। इसके उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि जिलाधिकारी द्वारा दिनांक 25.10.2017 को और साथ ही आयुक्त, आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ द्वारा दिनांक 21.10.2020 को पारित आदेश पूरी तरह से न्यायसंगत, कानूनी और वैध आदेश है और इसमें कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

18. रिट याचिका के पैराग्राफ 17 से 19 की सामग्री पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह सिविल अपील संख्या 9996/2018 में आदेश पारित करने और जिलाधिकारी, आजमगढ़ के साथ-साथ आयुक्त, आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ द्वारा आदेश पारित करने से संबंधित है जो पूरी तरह से न्यायसंगत, कानूनी और वैध आदेश हैं और इसमें इस माननीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

20. रिट याचिका के पैराग्राफ 21 में लिए गए आधार कानून की नजर में संधारणीय नहीं हैं, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा तैयार और दायर की गई रिट याचिका योग्यता से रहित होने के कारण खारिज करने योग्य है।

20. इसलिए, प्रतिवादी संख्या 1 से 4 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में राज्य द्वारा अपनाए गए इस आशय के स्पष्ट रुख कि, आक्षेपित आदेश निजी प्रतिवादियों और अन्य व्यक्तियों के पक्ष में वैध रूप से तय की गई आराजी के रिकॉर्ड के आधार पर पारित किए गए हैं और आक्षेपित आदेश पूरी तरह से कानून के अनुसार हैं और किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करते हैं, के मद्देनजर इस आशय का आवश्यक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "राज्य" आयुक्त द्वारा 21.10.2020 के आदेश द्वारा अपने पुनरीक्षण को खारिज किए जाने से व्यथित नहीं है। इस न्यायालय के समक्ष शपथ पर लिए गए ऐसे रुख का परिणाम यह है कि राज्य, आयुक्त, कलेक्टर, चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी और साथ ही उप मंडल अधिकारी समस्त रिकॉर्ड को निजी व्यक्तियों, जिन्हें रिट याचिका में "हरि मोहन पांडे (लाभार्थी और कई अन्य लाभार्थियों के प्रतिनिधि)" के रूप में बहुत ही अजीब क्षमता में रखा गया है, के पक्ष में समझते हैं।

21. उपरोक्त के मद्देनजर, चूंकि अधिनियम-1901 की धारा 33/39/225 के तहत कार्यवाही में दावा की गई मूल राहत गाटा संख्या 329 और 330 द्वारा कवर की गई भूमि को "सरकारी भूमि" के रूप में घोषित करना था और सरकार ने आयुक्त द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों की योग्यता को स्वीकार कर लिया है, एक ओर इसके पुनरीक्षण को खारिज करने के बावजूद इसे चुनौती नहीं देकर और दूसरी ओर, जवाबी हलफनामे में यह स्पष्ट रुख अपनाकर कि आक्षेपित आदेश पूरी तरह से कानून के अनुरूप हैं, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और उक्त भूमि पर अधिकारों का न्यायिक/वैधानिक कार्यवाही के आधार पर निजी व्यक्तियों के पक्ष में निपटान किया गया है, न्यायालय को अजनबी (याचिकाकर्ता) द्वारा किए गए दावे पर विचार करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता

है, विशेषकर, जब याचिकाकर्ता की व्यक्तिगत शिकायत के बारे में पूरी रिट याचिका में या पक्षों के बीच आदान-प्रदान की गई दलीलों में कोई खुलासा नहीं किया गया है।

22. याचिकाकर्ता ने आयुक्त की अदालत में निजी प्रतिवादियों द्वारा दायर आपत्तियों का उल्लेख करने का प्रयास किया है और प्रस्तुत किया है कि "जो कलेक्टर के समक्ष नहीं कहा गया था, उसे आयुक्त के समक्ष कहने की अनुमति नहीं थी।" उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि आयुक्त साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने में सक्षम नहीं थे। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि निजी प्रतिवादियों द्वारा दायर किए गए दस्तावेज उनके अधिकारों को वैध ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं थे। अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता ने **(1993) 1 एससीसी 499** में प्रकाशित **रुक्मिणी अम्मा सरदाम्मा बनाम कल्याणी सुलोचना एवं अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का, "पैराग्राफ 20" के विशेष संदर्भ के साथ, आधार लिया है जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

> *"20. हमें डर है कि उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण गलत है। अधिनियम की धारा 20 की व्यापक भाषा भी उच्च न्यायालय को प्रथम या द्वितीय अपील न्यायालय के रूप में कार्य करने में सक्षम नहीं बना सकती। अन्यथा अपीलीय और पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के बीच का अंतर मिट जाएगा। इसलिए, आयुक्त की रिपोर्ट (प्रदर्श सी-1 और सी-2 महाजर) के आलोक में मौखिक या दस्तावेजी दोनों तरह के पूरे साक्ष्य का पुनरीक्षण करने में उच्च न्यायालय सही नहीं था। हमारे विचार से, उच्च न्यायालय पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार से बहुत आगे निकल गया था। यहां तक कि "उचितता" शब्द की उपस्थिति का अर्थ यह नहीं हो सकता कि साक्ष्य का पुनरीक्षण हो सकता है। बेशक, पुनरीक्षण न्यायालय एक अलग निष्कर्ष पर पहुंच सकता है, लेकिन साक्ष्य के पुनरीक्षण पर नहीं; इसके विपरीत, अपने सामने चुनौती दिए गए आदेश की वैधता, नियमितता और औचित्य तक ही सीमित रहकर। इसलिए, हम पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग के संदर्भ में उच्च न्यायालय के तर्क से सहमत नहीं हो पा रहे हैं। "*

23. उन्होंने **(2018) 18 एससीसी 358** में प्रकाशित **हिया एसोसिएट्स एवं अन्य बनाम नक्षत्र प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के एक अन्य फैसले का भी, "पैराग्राफ 19' के विशेष संदर्भ में, आश्रय लिया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

> *"19. हमारी राय में, प्रतिवादियों (पुनरीक्षण याचिकाकर्ताओं) द्वारा दाखिल किए जाने वाले दस्तावेज आक्षेपित आदेश की वैधता और शुद्धता का फैसला करने के लिए न तो प्रासंगिक थे और न ही महत्वपूर्ण थे, इस मुद्दे पर कई निर्णीत मामलों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए पुनरीक्षण किसी भी अतिरिक्त दस्तावेज की सहायता के बिना एक*

या दूसरे तरीके से, पहले से ही रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर तय किया जा सकता था। वास्तव में, यदि निष्पादन न्यायालय अपने स्तर पर इस मुद्दे पर अंतिम रूप से निर्णय ले सकता है, तो पुनरीक्षण न्यायालय भी अपने स्तर पर ऐसा कर सकता है"

24. यह न्यायालय याचिकाकर्ता को उपरोक्त निर्णयों का कोई लाभ देने के लिए इच्छुक नहीं है क्योंकि **रुक्मिणी** (सुप्रा) के मामले में निर्णय केरल भवन (लीज और किराया नियंत्रण) अधिनियम-1965 से उत्पन्न एक मामले में सुनाया गया था, जहां सर्वोच्च न्यायालय "साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन" के संदर्भ में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे की जांच कर रहा था। इसी तरह **हिया एसोसिएट्स एवं अन्य** (सुप्रा) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय इस मुद्दे से निपट रहा था कि क्या पुनरीक्षण न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य लेकर मामले का निर्णय ले सकता है।

25. वर्तमान मामले में, कलेक्टर/ जिलाधिकारी-आजमगढ़ द्वारा पारित दिनांक 25.10.2017 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि मामले का निर्णय करते हुए, कलेक्टर ने चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी द्वारा प्रस्तुत दिनांक 26.11.2015 की रिपोर्ट का आधार लिया था। इसी तरह, आयुक्त ने भी उसी रिपोर्ट का आधार लिया है। कलेक्टर द्वारा दिनांक 25.10.2017 के आक्षेपित आदेश में दर्ज किए गए उपरोक्त आशय के निष्कर्ष निम्नानुसार हैं:-

"प्रकरण के न्यायसंगत निस्तारण हेतु उप जिलाधिकारी सगडी एवं बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी से आख्या प्राप्त की गयी। बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी की आख्या दिनांक 26.11.2015 में यह उल्लेख किया गया है कि गाटा सं० 330 क्षे० 0.030 कडी चकबन्दी अधिकारी के मु०न० 10459 आदेश दिनांक 12.11.1971 द्वारा सभापति, पंचानन्द का नाम खारिज करके राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द का नाम आया है व गाटा सं० 329 क्षे० 0.015 पूर्व में राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द का नाम पूर्व खतौनी के आधार पर ही चला आ रहा है। "

26. आयुक्त द्वारा दिनांक 21.10.2020 के अपने आक्षेपित आदेश में दर्ज निष्कर्ष इस प्रकार हैं:-

"8- अवर न्यायालय की पत्रावली पर उपलब्ध बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी की आख्या दिनांक 26.11.2015 के अवलोकन से स्पष्ट है कि आकार पत्र-11 के खाता सं० 154 सभापति, पंचानन्द पुत्रगण गजाधर के नाम अन्य गाटों के साथ 1149/3 रकबा 0.030 अंकित है। खाते पर चकबन्दी अधिकारी के मु०नं० 10459 निर्णय दिनांक 12.11.1971 द्वारा गाटा सं0 1149/3 रकबा 0.030 से सभापति, पंचानन्द का नाम खारिज करके राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द का

अनुवादित

नाम दर्ज होने का आदेश अंकित है। गाटा सं०- 1149/3 रकबा 0.030 का नया नम्बर 330/0.030 हे० बन्दोबस्त बनाते समय कायम किया गया है एवं आकार पत्र-11 के खाता सं०-129 राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द के नाम अन्य गाटों के साथ 1149/2 रकबा 0.020 हे० अंकित है बन्दोबस्त बनाते समय 1149/2 रकबा 0.020 का नया नम्बर 329/0.015 कायम किया गया है। इस प्रकार गाटा सं०- 330/0.030 चकबन्दी अधिकारी के मु०नं०- 10459 निर्णय दिनांक 12.11.1971 द्वारा सभापति, पंचानन्द का नाम खारिज करके राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द का नाम आया है एवं गाटा सं० 329/0.015 में राजपति राधिका पुत्रगण सदानन्द का नाम पूर्व के आधार वर्ष खतौनी से ही चला आ रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि उ०प्र० भू- राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के अन्तर्गत केवल लिपिकीय त्रुटि दुरूस्त किया जा सकता है। इस प्रकार विद्वान अवर न्यायालय ने पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेखों के विधिवत अवलोकन व परीक्षणोपरान्त तथ्यात्मक विवेचना के आधार पर विधि सम्मत आदेश पारित किया है, जिसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप का कोई औचित्य व आधार नहीं पाया जाता है। दोनो निगरानियां निरस्त होने योग्य है।"

27. दिनांक 26.11.2015 की उपरोक्त रिपोर्ट को रिट याचिका के "पृष्ठ संख्या 88" पर भी संलग्न किया गया है और वह इस प्रकार है:-

" कृपया न्यायालय/जिलाधिकारी आजमगढ के पत्र सं- 278 (1) पेशकार दिनाक 20.11.2015 का सन्दर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें जिसके द्वारा प्रतिलिपि आदेश दिनांक 19.10.2015 में पत्र सं० 238 (1) रीडर डी०एम० दिनांक 23.10.2015 द्वारा ग्राम ससना विश्वनाथपुर के वर्तमान खतौनी 1419 फसली से 1424 फसली में गाटा सं० 329/0.015 व 330/0.030 हे० राधिका, सदानन्द, रामप्रकाश, संतोष कुमार पुत्रगण राजपति व झिनका पत्नी राजपति के नाम संक्रमणीय भूमिधर दर्ज है, किन्तु यह किस आदेश दर्ज है अंकन सही अथवा गलत है बिन्दू पर आख्या उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की गयी है।

प्रश्नगत प्रकरण में चकबन्दी अधिकारी सगडी नियम 109 से जांच करायी गयी। उन्होने अपनी जांच आख्या में उल्लेख किया है कि ग्राम के अभिलेख अभिलेखागार में जमा है जिसमें आधार वर्ष खतौनी व जो०च०अ० आकार पत्र 2 (क) उपलब्ध नहीं है तथा आकार पत्र 11 के खाता सं० 154 सभापति, पंचानन्द पुत्रगण गजाधर के नाम अन्य गाटों के साथ 1149/3 रकबा 0.030 अंकित है। खाते पर चकबन्दी अधिकारी मुकदमा नं० 10459 ता०फै० 12.11.1971 के द्वारा गाटा सं० 1149/3 रकबा 0.030 से सभापति, पंचानन्द का नाम खारिज करके राजपति, राधिका पुत्रगण

सदानन्द का नाम दर्ज होने का आदेश अंकित है। गाटा सं० 1149/3 रकबा 0.030 का नया नम्बर 330/0.030 हे० बन्दोबस्त बनाते समय कायम किया गया है व आकार पत्र 11 के खाता सं० 129 राजपति राधिका पुत्रगण सदानन्द के नाम अन्य गाटों के साथ 1149/2 रकबा 0.020 हे० अंकित है। बन्दोबस्त बनाते समय 1149/2 रकबा 0.020 का नया नम्बर 329/0.015 कायम किया गया है। इस प्रकार गाटा सं० 330/0.030 चकबन्दी अधिकारी के मु०नं० 10459 ता० फै० 12.11.1971 द्वारा सभापति, पंचानन्द का नाम खारिज करके राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द का नाम आया है व गाटा सं0 329/0.015 पूर्व में राजपति, राधिका पुत्रगण सदानन्द का नाम पूर्व के आधार वर्ष खतौनी से ही चला आ रहा है।

आख्या सेवा में सादर प्रेषित।

बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी

आजमगढ।"

28. इसलिए, न्यायालय पाता है कि प्रतिवादी संख्या 5 सहित निजी व्यक्तियों को *"भूमिधरी अधिकार"* प्रदान करने वाला समस्त रिकॉर्ड उनके पक्ष में है और केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता, जिसका इस मामले में कोई स्थान नहीं है, इस मुद्दे को भड़काने की कोशिश कर रहा है, जो अन्यथा भी, अधिनियम-1901 की धारा 33/39 के तहत 'विचार के क्षेत्र' में नहीं आता है, दावा की गई राहत प्रदान नहीं की जा सकती है।

29. निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व, राजस्व अभिलेखों में सुधार की कार्यवाही से उत्पन्न मामलों में न्यायालय की शक्तियों से निपटने वाले अधिकारियों के साथ-साथ कानून के कुछ प्रावधानों को संदर्भित करना आवश्यक है।

30. अधिनियम-1901 की धारा 40-ए, किसी जोत में अधिकार के आधार पर राहत के लिए सक्षम न्यायालय में वाद दायर करने का प्रावधान करती है और अधिनियम-1901 की धारा 33, 35, 39, 40, 41 और 54 के तहत पारित आदेश ऐसे किसी भी मुकदमे में कोई बाधा नहीं डालेंगे। धारा 40-ए का उद्धरण इस प्रकार है:-

*"**[40ए. स्वामित्व मुकदमों के संबंध में बचत।** - धारा 33, धारा 35, धारा 39, धारा 40, धारा 41 या धारा 54 के तहत पारित कोई आदेश किसी जोत में अधिकार के आधार पर राहत के लिए सक्षम न्यायालय में मुकदमे पर रोक नहीं लगाएगा।"*

31. चूंकि अब उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता-2006 के प्रावधान भी लागू हो गए हैं, संहिता-2006 की धारा 39 के अंतर्गत समरूप प्रावधान पाया जाता है जो इस प्रकार है : -

*"**39. राजस्व अधिकारियों के कुछ आदेश बाद पर रोक नही लगाएंगे** - धारा 33 के तहत राजस्व निरीक्षक द्वारा या धारा 35 की उपधारा (1) के तहत तहसीलदार द्वारा या धारा 38 की उपधारा (3) के तहत उप-विभागीय अधिकारी द्वारा या धारा 38 की उपधारा (4) के तहत आयुक्त द्वारा*

पारित कोई भी आदेश किसी व्यक्ति को धारा 144 के तहत वाद के माध्यम से भूमि पर अपने अधिकार स्थापित करने से नहीं रोकेगा।"

32. म्यूटेशन कार्यवाही में पारित आदेशों के खिलाफ रिट याचिका की पोषणीयता का प्रश्न पहले भी इस न्यायालय के समक्ष आया है और यह लगातार माना गया है कि आम तौर पर उच्च न्यायालय अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसे आदेशों के खिलाफ रिट याचिकाओं पर विचार नहीं करता है जो संक्षिप्त कार्यवाही से उत्पन्न होते हैं। **जयपाल बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, यूपी, इलाहाबाद और अन्य, एयर 1957 ऑल 205** के मामले में, इस न्यायालय की इस निरंतर प्रथा का संज्ञान लिया गया कि वह उन मामलों में बोर्ड ऑफ रेवेन्यू द्वारा दिए गए आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करता है जिनमें मुद्दा केवल यह है कि याचिकाकर्ता का नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दर्ज किया जाना चाहिए या नहीं। इस संबंध में निर्णय में की गई टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

"3. ...हालांकि, इस न्यायालय की यह निरंतर प्रथा रही है कि वह उन मामलों में बोर्ड ऑफ रेवेन्यू द्वारा दिए गए आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करता है जिनमें मुद्दा केवल यह है कि याचिकाकर्ता का नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दर्ज किया जाना चाहिए या नहीं।

वह रिकॉर्ड मुख्य रूप से राजस्व उद्देश्यों के लिए रखा जाता है और उसमें एक प्रविष्टि केवल कब्जे के संदर्भ में होती है। ऐसी प्रविष्टि आम तौर पर उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में यह की जाती है, प्रश्नगत संपत्ति पर कोई अधिकार प्रदान नहीं करती है..."

33. म्यूटेशन कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में प्रश्न **श्री लाल बच्चन बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, यूपी, लखनऊ और अन्य 2 2002 (93) आरडी 6** के मामले में विचार के लिए आया था और यह माना गया कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका पर विचार नहीं करता है क्योंकि म्यूटेशन की कार्यवाही केवल कब्जे के आधार पर ही की जाती है और पक्षों को नियमित मुकदमे द्वारा स्वामित्व का निर्णय लेने का अधिकार है। निर्णय में की गई टिप्पणियों को नीचे उद्धृत किया गया है: -

"11. जैसा कि इस न्यायालय के ऊपर उल्लिखित निर्णयों से स्पष्ट है, इस न्यायालय ने लगातार यह दृष्टिकोण अपनाया है कि म्यूटेशन कार्यवाही में पारित आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। मेरी बुद्धि में, नियमित मुकदमे में स्वामित्व का निर्णय करने के उपाय के अलावा, ऐसी रिट याचिका पर विचार न करने का एक और कारण है। अधिनियम की धारा 34 के तहत पारित आदेश केवल कब्जे पर आधारित हैं जो पक्षों के स्वामित्व का निर्धारण नहीं करते हैं। भले ही यह न्यायालय रिट याचिका पर विचार करे और रिट याचिका

का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करे, म्यूटेशन कार्यवाही में पारित आदेश सारांश कार्यवाही में आदेश बने रहेंगे और कार्यवाही में पारित आदेश पक्षों के स्वामित्व का अंतिम रूप से निर्धारण नहीं करेंगे।"

34. **बिंदेश्वरी बनाम राजस्व मंडल एवं अन्य, 2002 (1) एडब्ल्यूसी 498** के मामले में इसी तरह के दृष्टिकोण को दोहराते हुए, यह कहा गया कि म्यूटेशन कार्यवाही पक्षों के अधिकारों का निर्णय नहीं करती है और उक्त कार्यवाही में पारित आदेश हमेशा सक्षम न्यायालय द्वारा निर्णय के अधीन होते हैं और इसलिए म्यूटेशन कार्यवाही में किसी आदेश के खिलाफ रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता। यह इस प्रकार देखा गया:-

"11. ...यूपी भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत म्यूटेशन की सारांश कार्यवाही से उत्पन्न वर्तमान रिट याचिका, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विचारणीय नहीं हो सकती है। म्यूटेशन की कार्यवाही पक्षों के अधिकारों का निर्णय नहीं करती है और म्यूटेशन में पारित आदेश हमेशा सक्षम न्यायालय द्वारा निर्णय के अधीन होते हैं।"

35. म्यूटेशन के आदेश कब्जे के आधार पर पारित किए जाते हैं और चूंकि पक्षों के कोई मूल अधिकार तय नहीं किए जाते हैं, आमतौर पर ऐसे आदेशों के खिलाफ रिट याचिका विचार के योग्य नहीं होगी जब तक कि उन्हें पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना नहीं पाया जाता है या ऐसे निष्कर्षों को प्रस्तुत करती हैं जो पहले से ही एक सक्षम न्यायालय द्वारा तय किए गए स्वामित्व के विपरीत हैं, यह स्थापित कानूनी स्थिति **विनोद कुमार राजभर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 (1) एडीजे 792** के मामले में दोहराई गई।

36. म्यूटेशन कार्यवाही की प्रकृति और दायरे, जो कि प्रकृति में संक्षिप्त है, को ध्यान में रखते हुए और यह तथ्य भी कि ऐसी कार्यवाही में आदेश पक्षों के कब्जे के आधार पर पारित किए जाते हैं और कोई भी मूल अधिकार तय नहीं किया जाता है, इस न्यायालय ने **2012 (5) एडीजे 266** में प्रकाशित **बुद्ध पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में, इस सिद्धांत को फिर से दोहराया कि आम तौर पर म्यूटेशन कार्यवाही में पारित आदेशों के संबंध में एक रिट याचिका पोषणीय नहीं होती है। यह निम्नानुसार देखा गया: -

"7. यह समान रूप से स्थापित है कि म्यूटेशन के आदेश पक्षकारों के कब्जे के आधार पर पारित किए जाते हैं और चूंकि म्यूटेशन कार्यवाही में पक्षों के कोई मूल अधिकार तय नहीं किए जाते हैं, इसलिए आम तौर पर म्यूटेशन कार्यवाही में पारित आदेशों के संबंध में रिट याचिका तब तक पोषणीय नहीं होती है जब तक कि यह पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर या सक्षम न्यायालय द्वारा पहले से तय किए गए

अप्रमाणित

शीर्षक के विपरीत न पाया जाए। पक्षकार विवादित भूमि के संबंध में अपने अधिकार सक्षम न्यायालय द्वारा निर्णित कराए जाने के लिए हमेशा स्वतंत्र हैं।"

37. यह प्रस्ताव कि राजस्व अभिलेखों में म्यूटेशन प्रविष्टियां भूमि पर स्वामित्व का निर्माण या उन्मूलन नहीं करती हैं और न ही ऐसी प्रविष्टियों का स्वामित्व पर कोई अनुमानित मूल्य होता है, **बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह (1997) 7 एससीसी 137** और **नरसम्मा बनाम कर्नाटक राज्य (209) 5 एससीसी 591** के पूर्व निर्णयों का आधार लेते हुए, **भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर आयात और निर्यात कंपनी और अन्य (2019) 3 एससीसी 191** के मामले में हाल के एक फैसले में फिर से कहा गया है। निर्णय में की गई टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

> *"6. इस न्यायालय ने लगातार माना है कि राजस्व अभिलेखों में भूमि का नामांतरण उस भूमि पर स्वामित्व का सृजन या उन्मूलन नहीं करता है और न ही इसका स्वामित्व पर कोई अनुमानित मूल्य है। यह केवल उस व्यक्ति को जिसके पक्ष में नामांतरण आदेश दिया गया है, संबंधित भूमि राजस्व का भुगतान कर सकने में सक्षम बनाता है (देखें **सावरनी बनाम इंदर कौर, बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह और नरसम्मा बनाम कर्नाटक राज्य**)।"*

38. **फ़क़रुद्दीन बनाम ताजुद्दीन (2008) 8 एससीसी 12** के निर्णय का संदर्भ भी लिया जा सकता है, जिसमें यह माना गया था कि राजस्व प्राधिकारी स्वामित्व के प्रश्नों पर निर्णय नहीं ले सकते हैं और नामांतरण केवल कुछ उद्देश्यों के लिए ही होता है। इस संबंध में की गई टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

> *"45. राज्य के राजस्व प्राधिकारी राजस्व से संबंधित हैं। नामांतरण केवल कुछ उद्देश्यों के लिए होता है। वैधानिक नियमों को सीमित अर्थों में संचालित माना जाना चाहिए... यह सुस्थापित है कि राजस्व अभिलेखों में कोई प्रविष्टि स्वामित्व का दस्तावेज़ नहीं है। राजस्व प्राधिकारी स्वामित्व के प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकते।"*

39. **नारायण प्रसाद अग्रवाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2007) 11 एससीसी 736** में इसी प्रकार की टिप्पणी की गई थी जिसमें यह माना गया था:-

> *"19. अधिकार का अभिलेख स्वामित्व का दस्तावेज नहीं है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अनुसार इसमें की गई प्रविष्टियां यद्यपि प्रासंगिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य हैं और यद्यपि उनमें शुद्धता की धारणा भी हो सकती है, लेकिन यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि ऐसी धारणा का खंडन किया जा सकता है..."*

40. **भारत संघ एवं अन्य बनाम वासावी कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड एवं**

अन्य (2014) 2 एससीसी 269 में, इस सिद्धांत को दोहराया गया कि राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां कोई स्वामित्व प्रदान नहीं करती हैं और **कॉरपोरेशन ऑफ द सिटी ऑफ बैंगलोर बनाम एम. पपैया, (1989) 3 एससीसी 612 गुरु अमरजीत सिंह बनाम रतन चंद (1993) 4 एससीसी 349 और एचपी बनाम। केशव राम (1996) 11एससीसी 257** में इस प्रकार कहा गया था:-

"21. इस न्यायालय ने कई निर्णयों में माना है कि राजस्व रिकॉर्ड मालिकाना हक प्रदान नहीं करते हैं। कॉरपोरेशन ऑफ द सिटी ऑफ बैंगलोर बनाम एम. पपैया में इस न्यायालय ने माना कि: (एससीसी पृष्ठ 615, पैरा 5)

"5. ...यह दृढ़ता से स्थापित है कि राजस्व रिकॉर्ड मालिकाना हक के दस्तावेज नहीं हैं, और किसी दस्तावेज के मालिकाना हक का दस्तावेज न होने की व्याख्या का प्रश्न कानून का प्रश्न नहीं है।"

गुरु अमरजीत सिंह बनाम रतन चंद में इस न्यायालय ने माना है कि: (एससीसी पृष्ठ 352, पैरा 2) '

'2. ...कि जमाबंदी में प्रविष्टियां मालिकाना हक का सबूत नहीं हैं।

" स्टेट ऑफ एचपी बनाम केशव राम में इस न्यायालय ने माना कि: (एससीसी पृष्ठ 259, पैरा 5)

"5....राजस्व दस्तावेजों में की गई कोई प्रविष्टि किसी भी प्रकार से वादी के पक्ष में स्वामित्व की घोषणा का आधार नहीं बन सकती।"

41. **सावर्णी (श्रीमती) बनाम इंदर कौर (श्रीमती) और अन्य, (1996) 6 एससीसी 223** के मामले में समान दृष्टिकोण अपनाया गया और यह देखा गया कि राजस्व अभिलेखों में नाम का उत्परिवर्तन स्वामित्व स्थापित करने या समाप्त करने का प्रभाव नहीं डालता है और न ही इसका स्वामित्व पर कोई अनुमानित मूल्य है और यह केवल संबंधित व्यक्ति को भूमि राजस्व का भुगतान करने में सक्षम बनाता है। यह इस प्रकार कहा गया था: -

"7... राजस्व अभिलेख में किसी संपत्ति का उत्परिवर्तन स्वामित्व बनाता या समाप्त नहीं करता है और न ही इसका स्वामित्व पर कोई अनुमानित मूल्य है। यह केवल उस व्यक्ति को भूमि राजस्व का भुगतान करने में सक्षम बनाता है जिसके पक्ष में उत्परिवर्तन का आदेश दिया गया है..."

42. यह सिद्धांत कि राजस्व अभिलेखों में एक प्रविष्टि केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए है और किसी ऐसे व्यक्ति को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दिखाई देता है और संपत्ति का स्वामित्व केवल एक सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा तय किया जा सकता है, **सूरज भान और अन्य बनाम वित्तीय आयुक्त और अन्य (2007) 6 एससीसी 186** के निर्णय में दोहराया गया था और यह इस प्रकार कहा गया था:-

"9... यह सुस्थापित है कि राजस्व रिकॉर्ड में एक प्रविष्टि किसी व्यक्ति जिसका नाम रिकॉर्ड-ऑफ-राइट्स में दिखाई देता है, को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है। यह स्थापित

अनुवादित

कानून है कि राजस्व रिकॉर्ड या जमाबंदी में प्रविष्टियों का केवल "राजकोषीय उद्देश्य" होता है अर्थात भूमि राजस्व का भुगतान, और ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है। जहां तक संपत्ति के स्वामित्व का सवाल है, यह केवल एक सक्षम सिविल कोर्ट द्वारा तय किया जा सकता है..."

43. कानूनी स्थिति कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां किसी भी स्वामित्व को प्रदान नहीं करती हैं, पर **हरीश चंद्र बनाम भारत संघ और अन्य, 2019 (5) एडीजे 212 (डीबी) और महेश कुमार जुनेजा और अन्य बनाम अतिरिक्त आयुक्त न्यायिक मुरादाबाद डिवीजन और अन्य, 2020 (3) एडीजे 104** में इस न्यायालय के हाल के फैसलों में विचार और चर्चा की गई है और यह दोहराया गया कि आमतौर पर म्यूटेशन कोर्ट द्वारा पारित आदेशों में रिट क्षेत्राधिकार द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे सारांश कार्यवाही हैं, और इस तरह एक नियमित मुकदमे के अधीन हैं।

44. स्थापित कानूनी स्थिति कि राजस्व अभिलेखों में एक प्रविष्टि किसी ऐसे व्यक्ति को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दिखाई देता है और ऐसी प्रविष्टियां केवल "राजकोषीय उद्देश्य" के लिए हैं और इसके आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है और आगे कि संपत्ति के स्वामित्व का सवाल केवल एक सक्षम सिविल कोर्ट द्वारा तय किया जा सकता है, हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के **जितेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 802** में दिए गए फैसले में फिर से कहा गया है; जहां **सूरज भान बनाम वित्तीय आयुक्त, (2007) 6 एससीसी 186, सुमन वर्मा बनाम भारत संघ, (2004) 12 एससीसी 58, फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन (2008) 8 एससीसी 12, राजिंदर सिंह बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य(2008) 9 एससीसी 368, नगर निगम, औरंगाबाद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 16 एससीसी 689, टी रवि बनाम बी. चिन्ना नरसिम्हा, (2017) 7 एससीसी 342, भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर आयात और निर्यात कंपनी (2019) 3 एससीसी 191; प्रहलाद प्रधर बनाम सोनू कुम्हार, (2019) 10 एससीसी 259 और अजीत कौर बनाम दर्शन सिंह (2019) 13 एससीसी 70** में, इस बिंदु पर पूर्व प्राधिकारियों को संदर्भित करते हुए, इस प्रकार देखा गया था: -

> *"8. **सूरज भान बनाम वित्तीय आयुक्त (2007) 6 एससीसी 186** के मामले में, यह इस न्यायालय द्वारा देखा और माना गया है कि राजस्व अभिलेखों में एक प्रविष्टि उस व्यक्ति को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दिखाई देता है। राजस्व अभिलेखों या जमाबंदी में प्रविष्टियों का केवल "राजकोषीय उद्देश्य" होता है, अर्थात, भूमि राजस्व का भुगतान, और ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है। यह आगे देखा गया है कि जहां तक संपत्ति के स्वामित्व का संबंध है, यह*

अनुवादित

केवल एक सक्षम सिविल कोर्ट द्वारा तय किया जा सकता है। ***सुमन वर्मा बनाम भारत संघ (2004) 12 एससीसी 58; फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन (2008) 8 एससीसी 12; राजिंदर सिंह बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (2008) 9 एससीसी 368; नगर निगम बनाम महाराष्ट्र राज्य (2015) 16 एससीसी 689; टी. रवि बनाम बी. चिन्ना नरसिम्हा (2017) 7 एससीसी 342; भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी (2019) 3 एससीसी 191; प्रहलाद प्रधान बनाम सोनू कुम्हार; (2019) 10 एससीसी 259;*** *और अजीत कौर बनाम दर्शन सिंह, (2019) 13 एससीसी 70 के मामलों में समान दृष्टिकोण अपनाया गया है।"*

45. कानून का उपरोक्त प्रस्ताव हाल ही में इस न्यायालय द्वारा **2022 (4) एडीजे 578** में प्रकाशित **श्रीमती कलावती बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य** के मामले में दोहराया गया है। **2023 (3) एडीजे 41** में प्रकाशित **अल्लादीन बनाम यूपी राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य हालिया फैसले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया है।

46. इसलिए, वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित आदेश किसी सक्षम न्यायालय में होल्डिंग में अधिकार रखने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी मुकदमे को संस्थित करने से रोकेंगे नहीं। व्यक्ति निजी, व्यक्तिगत या यहां तक कि राज्य भी हो सकता है। यहां **सामान्य खंड अधिनियम-1897** में निहित "**व्यक्ति**" की परिभाषा का संदर्भ भी दिया जा सकता है। उक्त अधिनियम की धारा 2(42) में "व्यक्ति" को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है: -

"2(42)- "व्यक्ति" में कोई भी कंपनी या संघ या व्यक्तियों का निकाय, चाहे वह निगमित हो या नहीं, शामिल होगा।"

47. "व्यक्ति" की परिभाषा अनन्य नहीं है, बल्कि समावेशी है और वर्तमान मामले को जन्म देने वाली कार्यवाही के संदर्भ में क़ानून में प्रयुक्त भाषा पर विचार करते हुए, न्यायालय की राय में, **"राज्य" "व्यक्ति"** की परिभाषा में आएगा, जिसने एक ओर रिट याचिका के माध्यम से आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने में विफल रहने के कारण, तथा दूसरी ओर, प्रति-शपथपत्र और तर्कों के प्रस्तुतिकरण के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष उन्हें उपरोक्त रूप में वैध मानते हुए, विवादित संपत्ति से कोई संबंध न रखने वाले एक अजनबी (याचिकाकर्ता) के कहने पर आक्षेपित आदेशों को दी गई चुनौती खारिज किए जाने योग्य है।

48. इस न्यायालय का विचार है कि यह ऐसा उपयुक्त मामला नहीं है, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों के प्रयोग में, हस्तक्षेप की आवश्यकता वाला कोई भी अपवाद आकर्षित होता हो, विशेष रूप से, जब आक्षेपित आदेशों से या अधिनियम-1901 की धारा 33/39 के तहत मूल कार्यवाही

में दावा की गई राहत की प्रकृति से व्यथित होने वाला **मुख्य पक्षकार "उत्तर प्रदेश राज्य"** है, जिसने एक ओर आक्षेपित आदेशों को चुनौती नहीं दी है और दूसरी ओर, **आक्षेपित आदेशों को** दस्तावेजी साक्ष्यों पर आधारित और पूरी तरह से कानून के अनुसार बताकर **स्वीकार कर लिया है**।

49. याचिकाकर्ता, मामले में कोई अधिकार न होने के अलावा और अन्यथा भी, निजी प्रतिवादियों और अन्य लाभार्थियों के पक्ष में तय किए गए "भूमिधरी अधिकारों" के रिकॉर्ड के दृष्टिगत, हस्तक्षेप का मामला बनाने में विफल रहा है और इसके अलावा सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रकाश में, मैं आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूं।

50. रिट याचिका, तदनुसार, **खारिज की जाती है**। लागत के लिए कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1155

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय,

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार,

रिट-सी संख्या 2607/2023

राम कुमारी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: विकास चंद्र द्विवेदी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., प्राचीश पांडे

ए. सिविल कानून- रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1908 - धारा 38- यूपी जेल मैनुअल, 2022 - पैरा 654 - विक्रय-पत्र का निष्पादन एवं पंजीकरण - विक्रेता, जो जमीन बेचना चाहता है, जेल में है - परमादेश की प्रार्थना गया - उच्च न्यायालय ने रजिस्ट्रार/उप-रजिस्ट्रार को निर्देश दिया कि वे पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 38 के अनुसार कार्यवाही करें तथा स्वयं उस जेल में जाएं जहां दोषी बंद है तथा उक्त विक्रय विलेख के पंजीकरण के लिए उचित कदम उठाएं। (पैरा 11)

रिट याचिका का निस्तारण कर दिया गया। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति माननीय राजन रॉय एवं माननीय न्यायमूर्ति माननीय मनीष कुमार द्वारा प्रदत्त)

उप-पंजीयक अधिकारी, मलिहाबाद, लखनऊ को कार्यदिवस के दौरान प्रतिवादी पक्ष के रूप में पक्षकार बनाया जाए।

याचिकाकर्ता बुद्धि लाल की मां है, जिसे सत्र परीक्षण संख्या 471/2010 (मुकदमा अपराध संख्या 577/2009), थाना मलिहाबाद, जिला लखनऊ में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सहपठित धारा 34 के तहत अपराधी ठहराया गया है तथा जेल में है।

उक्त याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:-

"i) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे प्रतिवादी संख्या 2, अर्थात जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ, को याचिकाकर्ता के दिनांक 29.08.2022 के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का आदेश और निर्देश दिया जा सके तथा याचिकाकर्ता को न्याय के हित में

उसके पुत्र बुद्धा लाल उर्फ बुधि लाल से पंजीकृत मुख्तारनामा प्राप्त करने की अनुमति दी जा सके।"

हमने इस मामले को पिछली दिनांक अर्थात 06.4.2023 को विस्तार से सुना था और निम्नलिखित आदेश पारित किया था:-

"यह याचिका निम्नलिखित मुख्य प्रार्थना की मांग करते हुए दायर की गई है:-

"(i) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे प्रतिवादी संख्या 2, अर्थात जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ, को याचिकाकर्ता के दिनांक 29.08.2022 के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का आदेश और निर्देश दिया जा सके तथा याचिकाकर्ता को न्याय के हित में उसके पुत्र बुद्धा लाल उर्फ बुधि लाल से पंजीकृत मुख्तारनामा प्राप्त करने की अनुमति दी जा सके।"

याचिकाकर्ता बुद्धा लाल उर्फ बुद्धि लाल की मां है, जिसे अपराध संख्या 577/2009 थाना-मलिहाबाद, जिला- लखनऊ, से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 471/2010 में धारा 302 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता में दोषी ठहराया गया है एवं, उच्च न्यायालय की पुष्टि के अधीन, मृत्युदंड की सजा दी गई है। जिस कारण से, वो जेल मे है। याचिककर्ता का पुत्र, जो कि इस समय दोषी सिद्ध है, कुछ भूमि का मालिक है एवं धनाभाव के कारण अपने दोषसिद्धि को उच्च न्यायालय में चुनौती देने मे असमर्थ है। याचिकाकर्ता-मां का कथन है कि यदि उसके बेटे द्वारा अपनी जमीन बेचने के लिए उसके पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित कर दिया जाए, तो उक्त भूमि की विक्रय प्रतिफल के रूप मे प्राप्त धन का उपयोग उच्च न्यायालय के समक्ष निर्णय को चुनौती देने के लिए किया जा सकता है। इन परिस्थितियों मे यह रिट याचिका दायर की गई है.

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 38 पर बल दिया, जो कि इस प्रकार है:-

"38. रजिस्ट्रीकरण कार्यालय में उपस्थिति से मुक्त व्यक्ति

(1) (क) ऐसा व्यक्ति जो शारीरिक दुर्बलता के कारण, बिना किसी जोखिम या गंभीर असुविधा के इस प्रकार उपस्थित होने मे असमर्थ हो, या

(ख) ऐसा व्यक्ति जो किसी दीवानी या फौजदारी आदेशिका के अधीन जेल में हो; या

(ग) ऐसा व्यक्ति जो विधि द्वारा न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने से मुक्त हो और जो एतत्पश्चात दिए जाने वाले प्रावधानों के न होने पर, रजिस्ट्रीकरण कार्यालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य होता, इस प्रकार उपस्थित होने के लिए बाध्य न किया जाएगा।

(2) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के मामले में पंजीकरण अधिकारी या तो स्वयं ऐसे व्यक्ति के घर जाएगा, या उस जेल में जाएगा जिसमें वह बंद है, और उसका परीक्षण करेगा, या उसके परीक्षण के लिए एक कमीशन जारी करेगा।

उक्त प्रावधानों के अनुसार, कोई व्यक्ति जो शारीरिक दुर्बलता के कारण, जोखिम या गंभीर असुविधा के बिना, पंजीकरण-कार्यालय में उपस्थित होने में असमर्थ है अथवा नागरिक या आपराधिक प्रक्रिया के तहत जेल में बंद है, ऐसे व्यक्ति को पंजीकरण कार्यालय में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होगी, जैसा की पंजीकरण के प्रयोजनों के लिए उक्त अधिनियम, 1908 की धारा 36 और 37 में संदर्भित है।

तर्क दिया गया, कि उप पंजीयन अधिकारी मुख्तारनामे के पंजीकरण के लिए जेल में याचिकाकर्ता के बेटे से मुलाकात कर सकता है। हमारी राय है कि यह याचिककर्ता के पुत्र को तय करना है कि क्या वह याचिका में उल्लिखित उद्देश्य के लिए अपनी मां के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित करना चाहता है या नहीं, और यदि ऐसा है, तो मुख्तारनामा निष्पादित किया जाएगा एवं उक्त मुख्तारनामे को याचिककर्ता के पुत्र और अन्य व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित करना होगा जो विधितः आवश्यक हों। हमने पाया कि पंजीकरण कार्यालय में उपस्थिति से छूट केवल पंजीकरण के उद्देश्य के लिए है, लेकिन जब तक याचिकाकर्ता के बेटे, जो कि जेल में है, की इच्छानुसार मुख्तारनामा निष्पादित नहीं किया जाता है, तब तक उप-पंजीयन अधिकारी द्वारा बेटे से मिलने का कोई औचित्य ही नहीं है। उ.प्र. जेल मैनुअल, 2022 के पैरा 654 के अनुसार ऐसा प्रावधान है जिसके अंतर्गत प्रत्येक कैदी को जेल अधीक्षक के विवेकाधिकार के अन्तर्गत उसकी संपत्तियों से संबंधित मुख्तारनामा या अन्य बयानों, दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने और प्रमाणित करने की अनुमति दी जाएगी। उक्त प्रावधानों के लागू होने की स्थिति में संबंधित जेल अधीक्षक को जहां याचिकाकर्ता का बेटा बंद है, विमर्श कर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्या वह किसी मुख्तारनामे को निष्पादित करना चाहता है, और यदि वह इसके लिए सहमत होता है तो, विरोधी पक्ष उक्त मुख्तारनामे के निष्पादन एवं याचिककर्ता के पुत्र के हस्ताक्षर करवाने की व्यवस्था करेंगे एवं तत्पश्चात, उप-पंजीयन अधिकारी जिसके द्वारा मुख्तारनामा पंजीकृत किया जाना है, को याचिकाकर्ता और संबंधित जेल अधिकारियों द्वारा इस विषय में सूचित किया जाएगा, जिसके बाद वह पंजीकरण अधिनियम, 1908 के धारा 38 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करेगा। उक्त प्रक्रिया पूर्ण कर न्यायालय को अगली सुनवाही तिथि पर परिणाम के विषय में सूचित किया जाए।

यद्यपि हमने पाया कि मुख्तारनामा के निष्पादन का कारण जैसा कि ऊपर देखा गया है, अत्यंत चिंताजनक है। यदि याचिकाकर्ता का बेटा जेल में है और उसके पास अपील दायर करने या निजी अधिवक्ता नियुक्त करने हेतु आवश्यक धन नहीं है, तो जेल से ही अपील की जा सकती है और जेल अधीक्षक और अन्य प्राधिकारी उसे मामले में उचित सलाह दे सकते हैं।

तदनुसार, हम निर्देश देते हैं कि जिला विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण और लखनऊ में उसके सचिव इस मामले को देखेंगे और इस संबंध में आवश्यक कार्रवाई करेंगे। जिला न्यायाधीश, लखनऊ को रिट याचिका में दिए गए प्रकथनों के आलोक में तथ्यों को सत्यापित करने और जहां तक दोषी को विधिक सहायता के प्रावधान का संबंध है, आवश्यक कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है। जिस आपराधिक मामले के संबंध में वह जेल में बंद है, उसका विवरण इस आदेश में और रिट याचिका में भी उल्लिखित है। उक्त जेल के जेल अधीक्षक जहां याचिकाकर्ता का बेटा बंद है, वह भी आवश्यक कार्रवाई करेंगे और तदनुसार न्यायालय को सूचित करेंगे।

लखनऊ में इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार इस आदेश को केवल उपरोक्त उद्देश्य के लिए इस रिट याचिका की प्रतिलिपि के साथ जिला

न्यायाधीश, लखनऊ और सचिव, जिला विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण को सूचित करेंगे।

जब भी मामला अगली बार सूचीबद्ध हो तो विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के साथ विद्वान ए.जी.ए., श्री प्रचीश पांडे का नाम भी मुद्रित किया जाएगा और वह अगली तिथि पर उपरोक्त प्रक्रिया के परिणाम के विषय में न्यायालय को भी अवगत कराएंगे, साथ ही संबंधित जेल अधीक्षक को इस आदेश के अनुपालन के लिए सूचित करेंगे।

उक्त वाद को 26 अप्रैल, 2023 को पुनः रखा जाए।"

विद्वान स्थायी अधिवक्ता के पास सचिव, जिला विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण एवं जिला न्यायाधीश के द्वारा आदेश के अनुपालन मे उठाए गए कदमों के संबंध मे कोई निर्देश उपलब्ध नहीं हैं।

विक्रय विलेख के पंजीकरण के अन्य मुद्दे के संबंध में, याचिकाकर्ता अधिवक्ता का कहना है कि विक्रय विलेख तैयार किया गया है और अब इस पर याचिकाकर्ता के बेटे, जो जेल में है, द्वारा हस्ताक्षर किए जाने हैं।

अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार ने न्यायालय के आदेश दिनांक 06.04.2023 को सचिव, जिला विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण और जिला न्यायाधीश, लखनऊ को सूचित कर दिया है, हालांकि, यह स्पष्ट नहीं है कि इस संबंध में उनके द्वारा क्या कदम उठाए गए हैं।

हमारे पूर्व आदेश के परिपेक्ष्य में, जिला विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण यहां उपरोक्त दोषी को उचित सलाह प्रदान करेगा और यदि आवश्यक हो, तो उक्त प्राधिकरण के पैनल पर एक अधिवक्ता के माध्यम से उसकी सजा के विरुद्ध अपील दायर करने के लिए सहायता भी प्रदान करेगा, यदि दोषी स्वयं एक निजी अधिवक्ता नियुक्त करना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है। यदि वह नामित (पैनल) अधिवक्ता के माध्यम से अपील दायर करने के लिए सहमत है, तो जेल अधीक्षक उससे पूछताछ करेगा कि क्या वह अभी भी अपील दायर करने के लिए अपनी भूमि विक्रय करना चाहता है, यदि वह इससे इनकार करता है, तो अवश्य ही, प्रकरण को यहीं विराम मिलेगा एवं जैसा कि याचिकाकर्ता ने याचना की है, विक्रय विलेख के निष्पादन और पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होगी, हालांकि, यदि वह कहता है कि वह इसके बाद भी भूमि विक्रय करना चाहता है, और यदि भूमि उसके नाम पर दर्ज है, तो आगे की कार्रवाई की आवश्यकता होगी। इस सन्दर्भ में हम पाते हैं कि उ0प्र0 जेल मैनुअल, 2022, में पैरा 654 में प्रावधान है, जो इस प्रकार है:-

"***दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने की अनुमतिः -*** *प्रत्येक कैदी को जेल अधीक्षक के विवेकाधिकार पर उसकी संपत्तियों से संबंधित मुख्तारनामा या अन्य बयानों, दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने और उन्हें प्रमाणित करने की अनुमति दी जा सकती है।"*

विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कथन है कि जेल मैनुअल, 2022 लागू है।

इस संबंध में हम पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 38 के प्रावधानों का भी उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:-

"38. व्यक्तियों को पंजीकरण-कार्यालय में उपस्थित होने से छूटः-

(1) (क) ऐसा व्यक्ति जो शारीरिक दुर्बलता के कारण, बिना किसी जोखिम या गंभीर असुविधा के इस प्रकार उपस्थित होने मे असमर्थ हो, या

(ख) ऐसा व्यक्ति जो किसी दीवानी या फौजदारी आदेशिका के अधीन जेल में हो; या

(ग) ऐसा व्यक्ति जो विधि द्वारा न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने से मुक्त हो और जो एतत्पश्चात दिए जाने वाले प्रावधानों के न होने पर, रजिस्ट्रीकरण कार्यालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य होता, इस प्रकार उपस्थित होने के लिए बाध्य न किया जाएगा।

(2) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के मामले में पंजीकरण अधिकारी या तो स्वयं ऐसे व्यक्ति के घर जाएगा, या उस जेल में जाएगा जिसमें वह बंद है, और उसका परीक्षण करेगा, या उसके परीक्षण के लिए एक कमीशन जारी करेगा।

जेल अधिकारियों द्वारा उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022, के पैरा 654 के अनुसार विक्रय विलेख के दस्तावेज़ के निष्पादन और हस्ताक्षर की सुविधा प्रदान करने के बाद जेल अधीक्षक और याचिकाकर्ता पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 38 के तहत उचित प्रक्रिया के लिए पंजीयन अधिकारी /उप पंजीयन अधिकारी को सूचित करेंगे और उक्त पंजीयन अधिकारी /उप-पंजीयन अधिकारी पंजीकरण अधिनियम 1908, की धारा 38 के अनुसार कार्य करेंगे एवं स्वयं उस जेल में जायेंगे जिसमें दोषी कैद है और उक्त विक्रय पत्र के पंजीकरण के लिए उचित कदम उठाएंगे।

उक्त आदेशानुसार यदि आवश्यकता हो तो, विक्रय विलेख के निष्पादन और हस्ताक्षर की प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के पंद्रह दिनों के भीतर पूरी की जाए, तत्पश्चात उक्त अभिलेख के पंजीकरण के हेतु पंजीयन अधिकारी, मलिहाबाद, लखनऊ को सूचित किया जाए ऐसे में उप पंजीयन अधिकारी, मलीहाबाद, लखनऊ अथवा जिसके पास भी इस प्रकरण मे क्षेत्राधिकार है, वह जिला जेल, लखनऊ का पंद्रह दिनों के भीतर दौरा करेगा, जहां याचिकाकर्ता का पुत्र बंद है ताकि विक्रय विलेख पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 38 के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत हो सके, जब तक कि इस संबंध में कोई अन्य कानूनी बाधा न हो, ऐसा होने पर संबंधित पंजीयन अधिकारी जेल अधीक्षक को लिखित रूप में इस कानूनी बाधा के विषय में सूचित करेगा, और जेल अधीक्षक याचिकाकर्ता के बेटे को सूचित करेगा।

राज्य की ओर से उपस्थित वादधारक अधिवक्ता सुश्री शगुन श्रीवास्तव अनुपालन के लिए संबंधित लोगों को इस आदेश के विषय में सूचित करेंगी।

लखनऊ स्थित इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार इस आदेश को अनुपालन के लिए जिला न्यायाधीश, लखनऊ और सचिव, जिला विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण, लखनऊ को सूचित करेंगे।

याचिका उपरोक्त शर्तों के अनुसार ***निस्तारित*** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1159

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

रिट-सी संख्या 6183/2016

डी.बी. कौसर ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सुश्री रोली कौसर, श्री रवि कांत, सुश्री सीमा अग्रवाल, वरिष्ठ अधिवक्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री एच.पी. सिंह, श्री निशीथ यादव, ज्ञात नहीं, श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव, श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव, एस.सी., श्री श्रीप्रकाश सिंह

ए. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश नगरीय नियोजन एवं विकास अधिनियम-1973 - धारा 41(3)- एक बार जब आयुक्त ने अपने आदेश दिनांक 02.05.1994 में प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा किए गए निर्माण को अनाधिकृत, अवैध और कानून के विपरीत माना और उक्त आदेश को यद्यपि रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई, लेकिन याचिका दिनांक 16.12.2005 को खारिज होने के संदर्भ में चुनौती विफल हो गई और फिर आयुक्त द्वारा समीक्षा पर पारित आदेश दिनांक 30.01.2006 को इस न्यायालय द्वारा 14.05.2012 को निरस्त कर दिया गया और 09.11.2012 को विशेष अनुमति याचिका को खारिज करते समय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उसमें हस्तक्षेप नहीं किया गया, रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता या स्थापित करता हो कि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा किए गए निर्माण वैध थे। इन आदेशों के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है, चाहे आरोपित आदेश गुण-दोष के आधार पर हो या केवल रिमांड का आदेश हो- विवाद मौके पर निजी व्यक्तियों के बीच व्यक्तिगत झगड़े से लेकर जिला प्रशासन, फिर पुलिस अधिकारियों, फिर विकास प्राधिकरण, फिर संभाग के आयुक्त, फिर विभिन्न रिट याचिकाओं में इस न्यायालय, फिर आयुक्त, उसके बाद इस न्यायालय द्वारा एक और हस्तक्षेप, फिर सर्वोच्च न्यायालय और उसके बाद राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण ने वर्तमान रिट याचिका को जन्म दिया। एक बार जब भूमि इस तरह से विवादित हो गई, तो विकास प्राधिकरण के अनुसार भी समझौता करने की अनुमति नहीं है- जहां तक रिमांड के निर्देश का सवाल है, निश्चित रूप से विकास प्राधिकरण, होने के नाते 1973 की योजना के अनुसार, राज्य सरकार के अधीनस्थ एक प्राधिकरण निर्माणों के शमन के मामले को उठाएगा और एक या दूसरे तरीके से उससे निपटेगा और ऐसा निर्णय किसी भी पक्ष द्वारा मुकदमेबाजी के आगे के दौर को जन्म देगा - इस मोड़ पर, कानूनी कहावत "इंटरेस्ट रिपब्लिका यूट सिट फिनिस लिटियम" जिसका अर्थ है कि यह राज्य के हित में है कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए - एक बार मुकदमेबाजी अंतिम रूप ले लेने के बाद, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि वर्तमान मामले में शमन की अनुमति नहीं है और, इसलिए, शमन के विवाद पर निर्णय करने के लिए विकास प्राधिकरण को मामले को वापस भेजने वाला विवादित आदेश टिकाऊ नहीं है और रिकॉर्ड पर अच्छी तरह से स्थापित तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति के विपरीत है।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. धनंजय रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य (2001) 4 एससीसी 9 पैरा 23

2. कॉमरेड. आयकर विभाग, मुंबई बनाम अंजुम एम.एच. घासवाला (2002) 1 एससीसी 633
3. कैप्टन सुबे सिंह व अन्य बनाम एल.जी. दिल्ली व अन्य (2004) 6 एससीसी 440
4. सक्षम प्राधिकारी बनाम बारंगोर जूट फैक्ट्री एवं अन्य.. (2005) 13 एससीसी 477
5. झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम अम्बे सीमेंट्स एवं अन्य (2005) 1 एससीसी 368 पैरा 26
6. डॉ. संतोष दीक्षित एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (2017) 3 एडीजे 401 (डीबी)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका दिनांक 07.01.2016 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत राज्य सरकार ने, यूपी की धारा 41(3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम-1973 (बाद में इसे 'अधिनियम 1973' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) में एक पुनरीक्षण संख्या-33/12 (श्रीमती लक्ष्मी सिंह बनाम इलाहाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य) का फैसला करते हुए मामले को इलाहाबाद विकास प्राधिकरण को भेज दिया है। 2005 में पुनरीक्षणकर्ता (लक्ष्मी सिंह) द्वारा प्रस्तुत कंपाउंडिंग मानचित्र को सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद और कंपाउंडिंग से संबंधित नियमों, उपनियमों और सरकारी आदेशों के आलोक में निस्तारित करने का निर्देश किया।

2. याचिकाकर्ता ने अनधिकृत निर्माणों की कंपाउंडिंग के लिए प्रतिवादी नंबर 5 द्वारा दायर आवेदन के अनुसार सभी कार्यवाही को रद्द करने का भी दावा किया है, साथ ही विकास प्राधिकरण को याचिकाकर्ता के प्लाट के ऊपर कथित तौर पर प्रतिवादी नंबर 5 द्वारा बनाए गए अनधिकृत निर्माण को ध्वस्त करने का निर्देश देने की प्रार्थना भी की है।

3. अनंत आवास सहकारी समिति लिमिटेड (संक्षेप में 'सोसाइटी') के सचिव ने दिनांकित 22.10.1986 और 28.01.1987 पंजीकृत बिक्री विलेखों के माध्यम से, श्री थियोडेर ह्यूजेस से इलाहाबाद के मौजा म्योराबाद, आराजी नंबर 91, 92, 93, 125 और 126/1 की गई फ्री-होल्ड भूमि खरीदी। याचिकाकर्ता ने सोसायटी से पंजीकृत बिक्री विलेख 16.07.1987 के माध्यम से आराजी नंबर 91 और 126/1 पर 25' x 70' माप का प्लॉट नंबर 12-ए खरीदा। यह कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या-5 (लक्ष्मी देवी) के पति श्री शिव मोहन सिंह एडवोकेट ने 12.01.1990 को याचिकाकर्ता के भूखंड पर आपराधिक अतिक्रमण किया और इसके बाद, 14.04.1990 को फिर से श्री राम शंकर मिश्रा के सहयोग से, हालांकि उक्त व्यक्तियों के पास न तो उनके पक्ष में बिक्री का कोई अनुबंध था और न ही सोसायटी द्वारा कोई बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था। रिट याचिका में सोसायटी द्वारा अन्य व्यक्तियों के पक्ष में हस्तांतरित किए गए विभिन्न भूखंडों का विवरण भी दिया गया है। यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता का नाम दिनांक 16.07.1987 के विक्रय पत्र के अनुसार राजस्व रिकॉर्ड में परिवर्तित कर दिया गया था और वर्ष 1996 में ही इलाहाबाद विकास प्राधिकरण ने आवासीय घरों के निर्माण के लिए मास्टर प्लान के तहत उक्त भूमि को शामिल किया था।

4. यह दलील दी गई है कि 1913 ई. से मिन्हाजुद्दीन की अराजी संख्या-126-ए की जमीन 19 बिस्वा थी और उसकी मृत्यु के बाद उसके अधिकार श्रीमती शैयमा बेगम, श्रीमती असमा बीबी और श्री शमीम अहमद को मिले। इसके बाद, उक्त व्यक्तियों ने, तहसील सदर, चायल, इलाहाबाद के संबंधित लेखपाल के साथ मिलीभगत करके, वर्ष 1982 में राजस्व अभिलेखों में हेराफेरी की और अवैध रूप से प्लॉट संख्या-126-ए का क्षेत्रफल 19 बिस्वा से बढ़ाकर 33 बिस्वा कर दिया। दलील दी गई है कि आराजी नंबर 126-ए आराजी नंबर 126/1 और 91 द्वारा कवर की गई भूमि से सटा हुआ है। आगे यह दलील दी गई है कि प्रतिवादी संख्या-5 के पति और श्री रमा शंकर मिश्रा ने 12.01.1990 को बाहुबल के बल पर याचिकाकर्ता की भूमि पर आपराधिक अतिक्रमण किया और याचिकाकर्ता की भूमि के साथ-साथ आसपास की भूमि को हड़पने के इरादे से नींव खोद दी। अन्य प्लॉट-धारकों के लिए और उपरोक्त व्यक्तियों के इस कृत्य के कारण याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ पुलिस अधिकारियों के समक्ष शिकायत दर्ज कराई, जिन्होंने दिनांक 12.01.1990 के आदेश द्वारा अतिक्रमण और खुदाई के कार्य को रोक दिया। यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता की भूमि पर दूसरी बार आपराधिक अतिक्रमण 14.04.1990 को किया गया था, जिसकी शिकायत जिला अधिकारियों से भी की गई थी और उनके हस्तक्षेप के कारण, अतिचार के कृत्य को रोका जा सका। उपरोक्त कृत्यों के संबंध में आवश्यक दस्तावेजी साक्ष्य रिट याचिका के साथ संलग्न किए गए हैं। आगे यह दलील दी गई कि बाद में, श्रीमती के पक्ष में 29.05.1990 और 16.06.1990 को 20' x 57' और 50' x 57' आयाम वाले दो भूखंडों के संबंध में बिक्री का अनुबंध निष्पादित किया गया। मंगला मिश्रा पुत्री श्री रमा शंकर मिश्रा और प्रतिवादी संख्या-5 ने उक्त समझौते के अंतर्गत आने वाली भूमि को आराजी संख्या-126-ए में स्थित दिखाया है। यह दलील दी गई है कि अतिचार की तारीखों यानी 12.01.1990 और 14.04.1990 को, उक्त व्यक्तियों के पास अपने पक्ष में कोई कानूनी विलेख/समझौता नहीं था।

5. आगे दलील दी गई है कि 27.06.1990 को, याचिकाकर्ता ने उपरोक्त व्यक्तियों द्वारा बनाए गए अनधिकृत निर्माणों को ध्वस्त करने का अनुरोध करते हुए इलाहाबाद विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष से संपर्क किया और, परिणामस्वरूप, विकास प्राधिकरण ने अधिनियम-1973 की धारा 27(1) के तहत दिनांक 25.09.1990 को एक विध्वंस नोटिस जारी किया। ध्वस्तीकरण की आशंका से मंगला मिश्रा एवं प्रतिवादी क्रमांक 5 के पक्ष में क्रमशः 29.05.1990 एवं 16.06.1990 को दो विक्रय पत्र निष्पादित किये गये। याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका में प्रशासनिक पक्ष की विभिन्न कार्यवाहियों का उल्लेख किया गया है, हालांकि, चूंकि यह मामला प्रतिवादी संख्या-5 द्वारा उठाए गए निर्माण की वैधता के साथ-साथ उक्त निर्माणों की कंपाउंडिंग के मुद्दे से संबंधित है। मैं केवल उन्हीं पहलुओं पर विचार करूंगा जो उक्त मुद्दे पर निर्णय सुनाने के लिए प्रासंगिक हैं।

6. आगे दलील दी गई है कि विध्वंस की आशंका के चलते, 18.01.1991 को अटॉर्नी आफताब अहमद के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या-5 के पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था और राज्य ने यूपी भू-राजस्व अधिनियम-1901 की धारा 33/39 के तहत उपरोक्त कानूनी उत्तराधिकारियों श्रीमती शाइमा बेगम, श्रीमती असमा बीबी और शमीम अहमद, के विरुद्ध मामला दर्ज किया था। जिसमें उपजिलाधिकारी, सदर, चायल, इलाहाबाद ने आदेश दिनांक 12.03.1991 द्वारा आराजी संख्या-126-ए के क्षेत्र को उसके मूल आंकड़े यानी 19 बिस्वा में वापस बहाल कर दिया, जिसे राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया था। आगे यह दलील दी गई है कि चूंकि अधिवक्ता के माध्यम से निष्पादित बिक्री विलेख दिनांक 18.01.1991, 22 बिस्वा के संबंध में था, दिनांक 12.03.1991 के आदेश के अनुसार, वर्ष 1989 में निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी, बिक्री के लिए अनुबंध निष्पादित किए गए थे। वर्ष 1990 और वर्ष 1991 में निष्पादित विक्रय विलेख प्रस्तुत किया गया है कानून की नजर में आगे दलील दी गई है कि विकास प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए विध्वंस नोटिस के अनुसार, प्रत्यर्थी नंबर 5 द्वारा बनाए गए आंशिक निर्माणों को 18.03.1991 और 21.03.1991 को ध्वस्त कर दिया गया था और विध्वंस आदेशों के खिलाफ प्रत्यर्थी नंबर 2 के समक्ष दो अपीलें, अपील क्रमांक 19/1991 और 24/1991 दायर की गई थीं।

7.उपरोक्त अपीलों को आयुक्त, इलाहाबाद, मण्डल-इलाहाबाद द्वारा आदेश दिनांकित 02.05.1994 के माध्यम से खारिज कर दिया गया और निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला गया: -

"विद्वान अधिक्ताओं की बहस को सुनने तथा पत्रावली पर उपलब्ध कागजातों को देखने के बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत मानचित्र अस्वीकृत कर दिया गया था तथा उसके द्वारा बिना मानचित्र स्वीकृत कराये हुय अनाधिकृत निर्माण किया गया था जिसका आंशिक रूप ध्वस्तकरण कर दिया गया था। उसके पश्चात उसके द्वारा प्रस्तुत अपील पर इस न्यायालय द्वारा स्थगनादेश दिया गया था अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह सिद्घ करने में असमर्थ रहे कि एकतरफा कार्यवाही विकास प्राधिकरण द्वारा की गयी है। अपीलकर्ता के पति पर बाकायदा नोटिस तामील है क्योंकि उन्हीं के द्वारा मकान का निर्माण कार्य कराया जा रहा था। नियमों में भी एेसे व्यक्ति पर नोटिस तामील मान्य है। अपीलकर्ता द्वारा कराया गया निर्माण कार्य अनधिकृत सिद्घ हो चुका है। अतः संयुक्त सचिव द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.09.90 तथा 21.03.91 में कोई अनियमितता या अवैधानिकता नहीं है। दोनो अपीलें बलहीन है जिसे एेतदद्वारा निरस्त किया जाता है।"

8. इस प्रकार, आयुक्त ने माना कि 25.09.1990 और 21.03.1991 को पारित विध्वंस आदेश कानून के अनुसार थे और प्रत्यर्थी संख्या-5 द्वारा किए गए निर्माण अनधिकृत साबित हुए थे।

9. दिनांक 02.05.1994 के आदेश को चुनौती देते हुए, प्रत्यर्थी संख्या-5 ने रिट याचिकाएं दायर कीं, रिट सी संख्या-21024 वर्ष 1994 और 21025 वर्ष 1994, जिसमें, 06.07.1994 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, लेकिन उक्त अंतरिम आदेश के बावजूद, प्रत्यर्थी नंबर 5 ने मौके पर तीन मंजिला इमारत का निर्माण कराया। उपरोक्त रिट याचिकाएँ लंबित रहीं और याचिकाकर्ता ने अपने भूखंड पर अनधिकृत निर्माण से व्यथित होकर एक पक्षकार आवेदन के साथ-साथ कुछ शपथपत्र भी दायर किए। हालाँकि, प्रत्यर्थी संख्या-5 ने उपरोक्त रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता होने के नाते इसे 16.12.2005 को वापस लेते हुए खारिज कर दिया।

10. उपरोक्त रिट याचिकाओं को वापस लेने के बाद, प्रत्यर्थी नंबर 5 ने आयुक्त के समक्ष एक समीक्षा आवेदन दायर किया, जिसने आदेश दिनांक 30.01.2006 द्वारा निर्देश दिया कि निर्माणों की कंपाउंडिंग के मामले की जांच विकास प्राधिकरण द्वारा कानून के अनुसार उन दरों पर की जाएगी जो 2005-2006 में लागू थीं। उक्त आदेश में भी यह स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया था कि प्रत्यर्थी संख्या-5 और उनके पति-शिव मोहन सिंह द्वारा अनधिकृत निर्माण किया गया था।

11. याचिकाकर्ता ने रिट सी संख्या-22184/ 2006 (डी.बी. कौसर और अन्य बनाम शिव मोहन सिंह और अन्य) दायर करके दिनांक 30.01.2006 के आदेश को चुनौती दी। इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 14.05.2012 द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और दिनांक 30.01.2006 के आदेश को यह कहते हुए रद्द कर दिया कि प्रत्यर्थी संख्या-5द्वारा प्रस्तुत कंपाउंडिंग मानचित्र वर्ष 1991 में खारिज कर दिया गया था, जिसके खिलाफ दो अपीलें दायर की गई थीं। आयुक्त, जिन्हें 02.05.1994 को बर्खास्त कर दिया गया था और उसके बाद, उक्त आदेश के खिलाफ दायर रिट याचिका को 16.12.2005 को वापस ले लिया गया था। न्यायालय ने आगे कहा कि आयुक्त के पास अपने पिछले आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं थी और परिणामस्वरूप, यह माना गया कि दिनांक 30.01.2006 का आदेश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना था।

12. दिनांक 14.05.2012 के बर्खास्तगी आदेश को उक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ता द्वारा विशेष अनुमति याचिका दायर करके सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे 09.11.2012 को खारिज कर दिया गया था।

13. इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या-5 ने पुनरीक्षण संख्या-33/2012 (श्रीमती लक्ष्मी सिंह बनाम इलाहाबाद विकास प्राधिकरण और अन्य) को दाखिल किया जिसमें अधिनियम-1973 की धारा 41(3) के तहत 21.06.2012 को अपील संख्या-19/1991 और 24/1991 में पारित दिनांक 02.05.1994 के आदेश को चुनौती दी। उक्त पुनरीक्षण दिनांक 07.01.2016 के आदेश द्वारा तय किया गया है जिसे वर्तमान रिट

याचिका में चुनौती दी गई है। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता को शुरू में पुनरीक्षण में पक्षकार नहीं बनाया गया था, हालांकि, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 15.07.2015 के आदेश द्वारा पक्षकार की अनुमति दी गई थी और परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा सुना गया था।

<u>रिट याचिका का आधार</u>

14. याचिकाकर्ता ने विभिन्न तथ्यात्मक और कानूनी आधारों का सहारा लेते हुए आक्षेपित आदेश की आलोचना की है, जिसे पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर चर्चा करते समय निपटाया जाएगा। संक्षेप में, रिट याचिका इस आधार पर स्थापित की गई है कि एक बार विकास प्राधिकरण और उसके बाद आयुक्त ने प्रत्यर्थी संख्या-5 द्वारा किए गए निर्माणों को अवैध और अनधिकृत माना था और कंपाउंडिंग मानचित्र भी खारिज कर दिया गया था, जिसके खिलाफ रिट याचिका दायर की गई थी। जिसे वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया था और उसके बाद, आयुक्त द्वारा एक समीक्षा आवेदन की अनुमति दी गई थी, लेकिन याचिकाकर्ता की रिट याचिका में दिनांक 14.05.2012 के आदेश द्वारा उक्त आदेश को रद्द कर दिया गया था, जिसे उच्चतम न्यायालय ने आगे पुष्टि की थी, निर्णय लेने के लिए कुछ भी नहीं बचा था। राज्य सरकार के स्तर पर और यह एक साधारण मामला था जहां राज्य सरकार द्वारा कंपाउंडिंग मुद्दे पर विचार करने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सका।

<u>प्रत्युत्तर शपथपत्र</u>

15. प्रत्यर्थी संख्या-5 द्वारा एक प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया गया है, जिसमें 1990 के बिक्री समझौते और 1991 के बिक्री विलेख के अनुसार उसके स्वामित्व के बारे में दावा किया गया है और यह दलील दी गई है कि भूमि के स्वामित्व के संबंध में विवाद का निर्णय विकास प्राधिकरण द्वारा नहीं किया जा सकता है लेकिन दीवानी या राजस्व न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है। प्रत्युत्तर शपथपत्र में अतिक्रमण के आरोपों से इनकार किया गया है और लगाए गए आदेश का समर्थन किया गया है।

16. इलाहाबाद विकास प्राधिकरण के साथ-साथ उसके जोनल अधिकारी की ओर से एक प्रत्युत्तर शपथपत्रा दायर किया गया है, जिसमें कहा गया है कि लगाया गया आदेश रिमांड का आदेश है और कंपाउंडिंग से संबंधित मुद्दे पर निर्णय लेते समय संपत्ति के स्वामित्व पर ध्यान दिया जाएगा। . 2009 के कंपाउंडिंग उपनियम जो 1.1.2019 से लागू हुए। 14.01.2010 को उक्त प्रति शपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है।

17. इस मामले में विभिन्न शपथपत्र का आदान-प्रदान किया गया है, हालांकि, मुझे लगता है कि उनकी सामग्री प्रकृति में दोहराव वाली है। फिर भी, याचिकाकर्ता द्वारा दायर दिनांक 08.12.2021 के एक शपथपत्र का उल्लेख करना आवश्यक है जिसके साथ लेखपाल, तहसील-सदर, प्रयागराज की दिनांक 15.09.2021 की एक रिपोर्ट संलग्न की गई है जो इस प्रकार है:-

“महोदय,

सलग्न प्रार्थना पत्र द्वारा रौली कौसर पुत्री डी.बी. कौसार निवासिनी -100 एच.आई.जी कालोनी ममफोर्डगंज तहसील सदर जिला प्रयागराज की पुनः जांच की गई जचौंपरान्त बिन्दु संख्या - 5(A), B, C के सम्बन्ध में जांच आख्या निम्नलिखित है-

5(A) = मकान न० 18 B /2 और मकान नं० 18B/ 3 आराजी संख्या-91 126/1 ग्राम म्योराबाद में स्थित है।

5(B)= मकान नं० 18B/2 श्रीमती लक्ष्मी सिंसह द्वारा बनाया गया है तथा मकान नं० 18B/3 श्रीमती मंगला विमश्रा द्वारा बनाया गया है।

5(C)= श्रीमती लक्ष्मी सिंसह और श्रीमती मंगला विमश्रा द्वारा आराजी संख्या-126(अ) में शयमा बेगम व शमीम अहमद व आसमा बीबी से क्रय किया था परन्तु इन लोगो द्वारा क्रय की गई जमीन पर निर्माण न करके आराजी संख्या-91 126/1 में कर लिया गया है। जबकि उक्त जमीन अनन्त सहकारी समिति की थी।

रिपोर्ट सेवार्थ प्रेषित है।

हस्थाक्षर

15.09.21"

<u>याचिकाकर्ता का तर्क</u>

18. याचिकाकर्ता का तर्क यह है कि लागू आदेश ने विकास प्राधिकरण को अधिनियम-1973 के प्रावधानों की अवहेलना में कानून तोड़ने वालों द्वारा किए गए निर्माणों को अपनी इच्छानुसार लापरवाही और मनमाने ढंग से कार्य करने का बेलगाम लाइसेंस दिया है; आक्षेपित आदेश आयुक्त, इलाहाबाद, मंडल-इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.05.1994, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.12.2005 और 14.05.2012, उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.11.2012 को नजरअंदाज करता है और इस तथ्य की अनदेखी में पारित किया गया है, जो रिकॉर्ड पर स्थापित है कि अनधिकृत निर्माण के समय, प्रत्यर्थी संख्या-5 के पास भूमि पर कोई स्वामित्व नहीं था और, अन्यथा भी, यह स्थापित है यह निर्माण वर्ष 1994 में दायर रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान और याचिकाकर्ता की भूमि पर किया गया है, जिसे कानून के उल्लंघनकर्ताओं द्वारा धोखाधड़ी से हड़प लिया गया है। आगे तर्क यह है कि एक बार जब निर्माण पहले से ही अवैध पाया गया है और कहा गया है कि आदेश अंतिम रूप ले चुके हैं, तो कंपाउंडिंग की अनुमति नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि मामले को अनावश्यक रूप से विकास प्राधिकरण को भेज दिया गया है, जिससे एक बंद अध्याय फिर से खुल गया है। याचिकाकर्ता ने न्यायालय को विभिन्न दस्तावेजों का हवाला दिया है जिसमें यह स्थापित करने के लिए जिला प्रशासन, पुलिस अधिकारियों के साथ-साथ राजस्व अधिकारियों के स्तर पर की गई कार्रवाई शामिल है कि प्रत्यर्थी नंबर 5 ने न केवल याचिकाकर्ता के भूखंड को हड़प लिया है बल्कि उस पर अनधिकृत निर्माण भी कर लिया है। याचिकाकर्ता की भूमि जो अधिनियम-1973 के प्रावधानों के विपरीत है।

<u>प्रत्यर्थी संख्या-5 का तर्क</u>

19. प्रत्यर्थी संख्या-5 की ओर से यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता एक स्वत्व विवाद उठा रहा है जो विकास प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र से परे है और चूंकि लागू आदेश के अनुसार, निर्माणों की कंपाउंडिंग के मामले की अभी जांच की जानी है, इसलिए आदेश पर सवाल उठाया गया है। इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और जहां तक स्वामित्व मुद्दे का सवाल है, याचिकाकर्ता सिविल/राजस्व अदालत से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र है।

<u>प्रत्यर्थी-विकास प्रधिकरण के तर्क</u>

20. विद्वान अधिवक्ता श्री निशीथ यादव ने जोरदार तर्क दिया कि आज तक, विकास प्राधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी संख्या-5 के निर्माणों को कम करने का कोई निर्णय नहीं लिया गया है और रिमांड के आदेश के अनुसार, उक्त पहलू की जांच की जाएगी। श्री यादव ने 2009 के कंपाउंडिंग बायलॉज के क्लॉज 3.2 का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि विवादित जमीन से ऊपर किए गए निर्माणों की कोई कंपाउंडिंग नहीं है अौर उसकी अनुमति है और इसलिए, कंपाउंडिंग मुद्दे पर विचार करते समय, इस पहलू की भी जांच की जाएगी। त्वरित संदर्भ के लिए, कंपाउंडिंग उपनियमों के खंड 3.2 का प्रासंगिक भाग यहां नीचे दिया गया है: -

"3.2निम्नलिखित अपराध शमनीय नही होगेंः

3.2.1सार्वजनिक व अर्द्घ - सार्वजनिक सुविधाआेंं, सेवाआेंं एवं उपयोगिताअोंं यथा - सड़क, रेलवे लाइन, पार्क, ग्रीनवर्ज आदि हेतु आरक्षित अथवा उनसे सम्बन्धित भूमि पर किया गया निर्माण।

3.2.2. महायोजना या जोनल डेवलपमेन्ट प्लान या ले-आउट प्लान या लीज में निर्धाित भू-उपयोग के विपरीत किया गया निर्माण।

3.2.3. अवैध भू-उपविभाजन जिसका नियमितीकरण नही हुआ है, के अन्तर्गत स्थित भूखण्ड पर अथवा भवन में किया गया निर्माण

3.2.4. सरकारी या सार्वजनिक भूमि पर बिना सम्बन्धित विभाग की अनुमति से किया गया निर्माण।

<u>3.2.5. विवादित भूमि पर किया गया निर्माण।</u>

<u>विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क</u>

21. राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया है कि लागू किया गया आदेश सभी पक्षों के लिए गैर-हानिकारक है क्योंकि राज्य सरकार ने स्पष्ट शर्त के साथ समझौते के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया है कि सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाएगा और एक आदेश दिया जाएगा। विकास प्राधिकरण द्वारा संबंधित नियमों, विनियमों, उपनियमों और सरकारी आदेशों के आलोक में पारित किया जाएगा।

22. मैंने सुश्री रोली कौसर, याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से सुना है, जिसे उसके पिता की मृत्यु के बाद प्रतिस्थापित किया गया है, यानी एकमात्र याचिकाकर्ता, श्री सी.बी. सिंह, प्रत्यर्थी संख्या-1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता, श्री निशीथ यादव, विद्वान अधिवक्ता ए.डी.ए. की ओर से

उपस्थित होना यानी प्रत्यर्थी संख्या-3 और 4, श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी संख्या-5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और अभिलेखों का अवलोकन किया।

23. चूँकि रिट याचिका में मुद्दा यह है कि क्या प्रत्यर्थी संख्या-5 द्वारा उठाए गए निर्माणों की कंपाउंडिंग को रिमांड के आदेश के अनुसार माना जा सकता है और क्या रिमांड का आदेश कानून के अनुसार है, मैं बुनियादी बातों एवं न्यायिक घोषणाओं और अधिनियम-1973 में निहित प्रावधानों के आलोक में के आधार पर निस्तारण करूगां ।

24. 1973 के अधिनियम में निर्माणों की कंपाउंडिंग का कोई प्रावधान नहीं है। हालाँकि, अधिनियम 1973 की धारा 32 के तहत अपराधों की संरचना का प्रावधान है जो इस प्रकार है: -

***"32. अपराधों की संरचना.**-(1) इस अधिनियम के तहत या इसके तहत दंडनीय कोई भी अपराध, कार्यवाही शुरू होने से पहले या बाद में, [1][उपाध्यक्ष (या सामान्य या विशेष आदेश द्वारा उनके द्वारा अधिकृत कोई अधिकारी)] द्वारा कंपाउंड किया जा सकता है। शर्तें, जिसमें कंपोजीशन शुल्क के भुगतान के संबंध में कोई भी शर्तें शामिल हैं, जैसा कि [उपाध्यक्ष] (या ऐसा अधिकारी) उचित समझे।*

(2) जहां किसी अपराध का शमन कर दिया गया है, अपराधी, यदि हिरासत में है, तो उसे छोड़ दिया जाएगा और शमन किए गए अपराध के संबंध में उसके खिलाफ कोई आगे की कार्यवाही नहीं की जाएगी।

25. गैरकानूनी या अनधिकृत निर्माण से उत्पन्न होने वाले अपराधों का वर्णन अधिनियम-1973 की धारा 26 में किया गया है जो इस प्रकार है: -

"26. दंड.-(1) कोई भी व्यक्ति जो अपने कहने पर या किसी अन्य व्यक्ति या किसी निकाय (सरकारी विभाग सहित) के कहने पर मास्टर प्लान या क्षेत्रीय विकास योजना के उल्लंघन में या उसके बिना किसी भूमि का विकास करता है या करता है धारा 14 में निर्दिष्ट अनुमति, अनुमोदन या मंजूरी या किसी भी शर्त का उल्लंघन जिसके अधीन ऐसी अनुमति मंजूरी या मंजूरी दी गई है, जुर्माने से दंडनीय होगा जो [1][पचास हजार रुपये] तक बढ़ सकता है, और मामले में एक सतत अपराध जारी रहता है तो, अतिरिक्त जुर्माने के साथ जो 2[दो हजार पांच सौ रुपये तक] हर दिन के लिए जिसके दौरान अपराध के पहले कमीशन के लिए दोषी ठहराए जाने के बाद ऐसा अपराध जारी रहता है।

(2) कोई भी व्यक्ति जो धारा 16 के प्रावधानों के उल्लंघन में या उस धारा के प्रावधानों के तहत विनियमों द्वारा निर्धारित किसी भी नियम और शर्तों के उल्लंघन में किसी भूमि या भवन का उपयोग करता है, वह जुर्माने से दंडनीय होगा जो 3[पच्चीस हजार रुपए और जारी अपराध के मामले में, अतिरिक्त जुर्माना, जो प्रत्येक दिन के लिए 4[एक हजार, दो सौ पचास रुपए] तक बढ़ाया जा सकता है, जिसके

दौरान अपराध के पहले कमीशन के लिए दोषी ठहराए जाने के बाद ऐसा अपराध जारी रहता है।

(3) कोई भी व्यक्ति जो धारा 25 के तहत किसी भूमि या भवन में या उस पर प्रवेश करने के लिए अधिकृत व्यक्ति के प्रवेश में बाधा डालता है या ऐसे प्रवेश के बाद ऐसे व्यक्ति से छेड़छाड़ करता है, उसे कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे छह महीने तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना लगाया जा सकता है। इसे एक हजार रुपये तक बढ़ाया जा सकता है, या दोनों के साथ।"

26. इसके अलावा अधिनियम-1973 की धारा 31 के अनुसार जुर्माने की वसूली का प्रावधान है जो इस प्रकार है:-

"31. जुर्माना वसूल होने पर प्राधिकरण को भुगतान किया जाएगा।-इस अधिनियम के तहत अभियोजन के संबंध में वसूल किए गए सभी जुर्माने प्राधिकरण को भुगतान किए जाएंगे।

27. इसलिए, जिन अपराधों को कंपाउंड किया जा सकता है, वे अभियोजन/जुर्माने के अपराध हैं और ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जिसके तहत अनधिकृत निर्माणों को कम से कम अधिनियम के तहत कंपाउंड किया जा सके। हालाँकि, साथ ही, कंपाउंडिंग उपनियमों के प्रभाव की भी जाँच की जाएगी लेकिन एक बात यह स्पष्ट है कि 2009 के उपनियमों में भी, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, विकास प्राधिकरण द्वारा भरोसा किया गया शब्द "कंस्ट्रक्शन" का उल्लेख नहीं किया गया है, बल्कि "अपराध" शब्द का उल्लेख किया गया है, जिसका अर्थ यह है कि उपनियम भी "अपराधों" की संरचना के बारे में बात करते हैं, न कि "संरचनाओं" की कम्पाउडिंग के बारे में।

28. इस न्यायालय ने पाया कि अधिनियम, 1973 के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो प्राधिकरण को कंपाउंडिंग के नाम पर अतिक्रमण या अनधिकृत निर्माण के अवैध कार्य पर मुनाफाखोरी करने का अधिकार देता है। धारा 32 में विचार किया गया समझौता निश्चित रूप से अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों के संबंध में है। इसमें कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि एक बार अपराध का शमन हो जाने पर, योजना का उल्लंघन करने वाला कार्य भी नियमित हो जाएगा या वैध हो जाएगा। कंपाउंडिंग का प्रभाव धारा 32 की उपधारा (2) में प्रदान किया गया है कि यदि कोई अपराधी हिरासत में है, तो उसे रिहा कर दिया जाएगा और कंपाउंड किए गए "अपराध" के संबंध में उसके खिलाफ कोई आगे की कार्यवाही नहीं की जाएगी। यह अधिनियम, 1973 के तहत अपराध करने के लिए व्यक्ति पर तय किए गए आपराधिक दायित्व के संबंध में है। लेकिन अधिनियम में निहित निषेध और अधिकारियों पर वैधानिक दायित्व है कि वे उचित कार्रवाई करके ऐसे प्रावधान का उल्लंघन/गलती करने वाले व्यक्ति को सही करें। , उदा. धारा 27 के तहत शक्ति का प्रयोग करके इमारत के विध्वंस को अपराध के शमन होने पर अप्रचालित नहीं किया गया है। किसी "अपराध" को संयोजित करने के परिणामस्वरूप रोकी गई कार्यवाही अपराध और

अवैधता/अनियमितता से संबंधित है, इसलिए यह किसी अन्य प्रावधान के तहत निषिद्ध/नियंत्रित है। यह भी उ.प्र. 1997 के अधिनियम संख्या-3द्वारा नोटिस किया जा सकता है (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1997" के रूप में संदर्भित किया गया है), धारा 26डी और 28ए कुछ अन्य अपराधों का प्रावधान किया गया है। हालाँकि, योजना के उल्लंघन में किए गए किसी भी निर्माण को हटाना और अतिक्रमण हटाना आदि एक अलग प्रक्रिया और चरणों द्वारा नियंत्रित होते हैं जो इस तरह के समझौते से अप्रभावित रहेंगे। **दूसरे शब्दो में, अधिनियम, 1973 के तहत कंपाउंडिंग से आपराधिक दायित्व और दोषसिद्धि पर सज़ा से बचना है लेकिन अधिनियम के तहत निषिद्ध निर्माण को नियमित न करें जिसमें योजना अधिनियम की धारा 13 के अनुसार संशोधित के समय को छोड़कर कोई छूट अनुमन्य नहीं है।**

29. धनन्जंय रेड्डी बनाम कर्नाटक राज्य 2001 (4) SCC 9 फैसले के पैरा 23 में, उच्चतम नयायालय ने कहा:-"यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि जहां किसी निश्चित कार्य को एक निश्चित तरीके से करने की शक्ति दी जाती है, तो वह कार्य उसी तरीके से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए।"

30. आयकर आयुक्त, मुंबई बनाम अंजुम एम.एच. घासवाला 2002 (1) एससीसी 633,के मामले यह अवधारित किया गया था :-

"यह निर्माण का एक सामान्य नियम है कि जब कोई क़ानून किसी प्राधिकारी को एक विशेष तरीके से प्रयोग करने के लिए कुछ शक्तियाँ प्रदान करता है तो उक्त प्राधिकारी को इसका प्रयोग केवल क़ानून में प्रदान किए गए तरीके से ही करना होता है।"

31. अंजुम एम.एच घासवाला (उपरोक्त) और धनंजय रेड्डी (उपरोक्त) के निर्णयों में एवं कैप्टन सूबे सिंह और अन्य बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल एवं अन्य, 2004 (6) एससीसी 440 उपरोक्त सिद्धांत का पालन किया गया है।

32. सक्षम प्राधिकारी बनाम बारांगोर जूट फैक्ट्री एवं अन्य, 2005 (13) एससीसी 477,के मामले मेंं यह अवधारित किया गया :-

"यह स्थापित कानून है कि जहां किसी क़ानून के लिए किसी विशेष कार्य को एक विशेष तरीके से करने की आवश्यकता होती है, तो कार्य को केवल उसी तरीके से किया जाना चाहिए। क़ानून के प्रत्येक शब्द को उसका उचित अर्थ दिया जाना चाहिए।"

33. झारखंड राज्य और अन्य बनाम अंबे सीमेंट्स और अन्य, 2005 (1) एससीसी 368फैसले के पैरा 26 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया: -

"*यह व्याख्या का मुख्य नियम है कि जहां कोई क़ानून यह प्रावधान करता है कि कोई विशेष कार्य किया जाना चाहिए, उसे निर्धारित तरीके*

से किया जाना चाहिए, किसी अन्य तरीके से नहीं।"

34. इस मामले में यह न्यायालय डॉ. संतोष दीक्षित एवं अन्य उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य. 2017 (3) एडीजे 401 (डीबी) के अनधिकृत निर्देशों के संयोजन के मुद्दे पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है और यह माना गया है कि कानून का उल्लंघन करने वालों को किसी ऐसी चीज की आड़ में लाभ नहीं पहुंचाया जा सकता है जिसकी कानून अनुमति नहीं देता है। यह माना गया है कि किसी योजना या योजना से विचलन या उल्लंघन को अपराधियों /उल्लंघनकर्ताओं से भारी राशि एकत्र करके और उन्हें इस तरह के विचलन का आनंद लेने की अनुमति देकर मुनाफाखोरी का साधन नहीं बनाया जा सकता है। यदि यह रुख बरकरार रहता है, तो इसका मतलब यह होगा कि क़ानून को इस तरह से पढ़ा जा रहा है ताकि साधन संपन्न लोगों को कानून का उल्लंघन करने से छूट मिल सके और प्राधिकरण को कुछ राशि का भुगतान करके आने वाले समय में इस तरह के उल्लंघन का आनंद लेने की अनुमति मिल सके। ये उल्लंघनकर्ता मूलतः संभ्रांत वर्ग से आते हैं। उन्हें यह आसान लगता है कि योजना की जानकारी को पाने किसी मात्रा में राशी देने के लिये तैयार रहते है। इससे उनका रुतबा भी बढ़ता है. अधिकांश बिल्डरों ने इसे अपने व्यवसाय का हिस्सा बना लिया है। साथ ही, विध्वंस आदि की कार्रवाई करके बहाली की अपनी शक्ति का उपयोग किए बिना योजना के उल्लंघन और वैधानिक प्रतिबंध के उल्लंघन की अनुमति देने में विकास प्राधिकरण वित्तीय रूप से (आधिकारिक और निजी तौर पर) लाभान्वित होता है। यदि इस तरह की व्याख्या को बरकरार रखा जाता है, तो यह न केवल प्रोत्साहित करेगा भ्रष्टाचार और बाहरी विचार का तत्व, लेकिन इससे दो वर्ग भी बनेंगे; एक वे जो मास्टर प्लान से कोई विचलन करने के अपने प्रयासों में पीड़ित होने के लिए बाध्य हैं क्योंकि उनके पास अवैध और गैरकानूनी विचलन का आनंद जारी रखने के लिए तथाकथित समझौता शुल्क का भुगतान करने के लिए वित्तीय संसाधनों की कमी है; और, जो अमीर, साधन संपन्न और ऐसा करने में सक्षम हैं।

35. समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के संबंध में कुछ टिप्पणियाँ करते हुए, इस न्यायालय ने श्रीमती मिथिलेश कुमारी बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2011(1) एडीजे 40ने पाया है कि ऐसी रचना और वर्गीकरण जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है, भेदभावपूर्ण है और मानवाधिकारों के भी खिलाफ है। न्यायालय ने कहा कि आजादी के पिछले 60 वर्षों में, यदि कोई एक क्षेत्र है जिसमें हम राष्ट्रीय सर्वांगीण विकास का दावा कर सकते हैं और वह भी कई गुना, तो वह भ्रष्टाचार का क्षेत्र है। इसके विभिन्न शेड्स हैं. यह केवल रिश्वतखोरी, नकदी और वस्तु के एक ही क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके अलग-अलग रंग और बारीकियां हैं।

36. यह भी देखा गया है कि यद्यपि एक सभ्य समाज में, भ्रष्टाचार को हमेशा विशेष घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और हर कोई इसकी निंदा और आलोचना करता है, लेकिन

फिर भी यदि अवसर मिलता है तो कोई भी व्यक्ति आमतौर पर इसमें शामिल होना पसंद करता है, क्योंकि प्रलोभन का विरोध करना मुश्किल होता है। यह अक्सर "रिश्वत" शब्द के समानान्तर होता है, जिसका अर्थ राजनेताओं या नौकरशाहों के संदर्भ में होता है, जो भ्रष्ट बनने के लिए प्रेरित होते हैं।

37.चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने कहा था, "गणतंत्र में केवल वे राजनेता ही शासन करने के योग्य होंगे जिन्हें अपनी नीतियों से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं मिलता है। यह इस सूत्र में भी माना गया है कि जो लोग सत्ता पर कब्ज़ा करना चाहते हैं वे ही सबसे अधिक हैं संभवतः वे ऐसा करने के लिए सबसे कम उपयुक्त हैं।

38. 18वीं सदी के उत्तरार्ध में हाउस ऑफ लॉर्ड्स के सामने भाषण देते हुए विलियम पिट ने कहा, "असीमित शक्ति उन लोगों के दिमाग को भ्रष्ट कर सकती है जिनके पास यह है।" बिशप क्रेइटन को संबोधित अपने पत्र में लॉर्ड एक्टन अब प्रसिद्ध उद्धरण में से एक है, "शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूरी तरह से भ्रष्ट होती है।

39. भ्रष्टाचार एक ऐसा शब्द है जिसे हम सभी जानते हैं। सटीक अर्थ रोजगार के दौरान किया गया अवैध, अनैतिक या अनधिकृत कार्य है, लेकिन इसका शाब्दिक अर्थ है "अनुचित तरीकों से (रिश्वत के रूप में) कर्तव्य का उल्लंघन करने के लिए प्रेरित करना (जैसे कि कोई अपराध करना)।" यह भेदभाव का एक विशेष रूप से हानिकारक रूप है। जाहिर तौर पर इसका उद्देश्य अनुकूलता की तलाश करना है, जो लोग सत्ता में हैं उनसे विशेषाधिकार प्राप्त करना। यदि जो लोग सत्ता में हैं, वे सभी के साथ समान व्यवहार करके अपनी सेवा का निर्वहन करें तो कोई भी भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं होगा।

40. भ्रष्टाचार मानव अधिकारों का उल्लंघन करता है। यह गरीबों को सार्वजनिक सेवाओं तक पहुंच से वंचित करके और भ्रष्टाचार में लिप्त होने में असमर्थता के कारण, निश्चित रूप से गरीबी और अन्य समान संबंधित कारकों के कारण उनके राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करने से रोककर उनके साथ भेदभाव करता है। इसलिए, भ्रष्टाचार विभाजनकारी है और सामाजिक असमानता और संघर्ष में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह अधिकार के प्रति सम्मान को कम करता है और संशयवाद को बढ़ाता है। यह सभ्य समाज में व्यक्तियों की भागीदारी को हतोत्साहित करता है और आचरण के मार्गदर्शक के रूप में स्वार्थ को बढ़ाता है। सामाजिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि भ्रष्टाचार व्यवहार, दृष्टिकोण और विश्वासों के एक सीमाबद्ध क्षेत्र को विकसित करता है। भ्रष्टाचार सुशासन और लोकतांत्रिक राजनीति का विरोधी है। ऐसा कहा जाता है कि जब भ्रष्टाचार सर्वव्यापी हो जाता है, तो यह लोगों के जीवन के हर पहलू में व्याप्त हो जाता है। यह उस हवा को प्रभावित कर सकता है जिसमें वे सांस लेते हैं, जो पानी वे पीते हैं और जो भोजन वे खाते हैं। यदि हम आगे बढ़ें, तो हम भ्रष्टाचार के विभिन्न रंगों जैसे वित्तीय भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक भ्रष्टाचार, नैतिक

भ्रष्टाचार, वैचारिक भ्रष्टाचार आदि को कुछ शब्दावली भी दे सकते हैं। तथ्य यह है कि हम इसे जिस भी कोण से देखते हैं, अंतिम परिणाम यही निकलता है, और भ्रष्टाचार का वास्तविक प्रभाव यह है कि गरीबों को सबसे अधिक परेशानी होती है, गरीबी और भी गहरी हो जाती है, और अमीर और अमीर हो जाते हैं।"

41. इसके अलावा इस न्यायालय के मामले में श्री जी.एस.जे. शापूरजी बनाम इलाहाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य, 2016 11 एडीजे 524अनुच्छेद 45, 46, 56, 57 और 58 में निम्नानुसार आयोजित किया गया है: -

45.....सिर्फ तथ्य यह है कि नक्शा स्वीकृत हो गया था और इसके बाद निर्माण कार्य बढ़ाए गए, इस कारण से कोई अंतर नही था कि सभी लेन-देन प्रारंभ से शून्य थे। याचिकाकर्ताओं का जमीन पर कोई अधिकार नहीं है वे अनधिकृत कब्जेदार थे, इसलिए एडीए से मानचित्र स्वीकृत कराकर निर्माण कराने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता है एडीए के किसी भी कृत्य से याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई विधिक अधिकार नहीं बनेगा समान अधिकार जो अन्यथा वे भी नहीं है।

46..... एक अतिक्रमणी मंजूरी पाने का हकदार नहीं है और ऐसी भूमि पर निर्माण करना जिस पर उसका कोई अधिकार नहीं है ठीक है, ताकि जमीन पर अधिकार बनाया जा सके। सारी बातें अवैध और प्रारंभ से ही शून्य हैं।

56. एक और तर्क यह है कि चूंकि कंपाउंडिंग शुल्क का भुगतान किया जा चुका है और इसलिए, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए किसी भी निर्माण को वैध निर्माण माना जाना चाहिए, उसी कारण से कोई बल नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं के पास भूमि पर कोई अधिकार नहीं है। अन्यथा भी, हमारा विचार है कि अनधिकृत निर्माण को कंपाउंडिंग शुल्क के भुगतान पर नियमित नहीं किया जाएगा, क्योंकि कंपाउंडिंग शुल्क की अवधारणा अनधिकृत निर्माण को नियमित करने के लिए नहीं है, बल्कि एक अपराध को कंपाउंड करने के लिए है ताकि अन्यथा मुकदमे में अदालत के समक्ष प्रताडित न किया जाये।

57. हम इसके दूसरे अंग पर विचार करना भी स्वीकार कर सकते हैं तर्क है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ताओं ने आगे कहा कि अंतरिम आदेश जारी रखा जाए, निर्माण पूरा हो चुका है और एडीए को निर्देशित किया जाए कि कंपाउंडिंग का भुगतान स्वीकार कर इसे नियमित करें। हमारे विचार से न तो ऐसा कोई निर्देश जारी किया जा सकता है या ऐसी राहत दी जा सकती है और संपूर्ण तर्ककथित कंपाउंडिंग और नियमितीकरण के संबंध में पूरी तरह गलत धारणा है।

58. हम क़ानून से पाते हैं कि उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम,1973 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1973" कहा गया है) के अधीन क़ानून में भवन निर्माण की अनुमति है लेकिन यदि कोई अवैध या अनाधिकृत निर्माण किया गया है तो विकास प्राधिकरण को ऐसे

अवैध अनाधिकृत निर्माणों को कुछ राशि प्राप्त करके जारी रखने का अधिकार नहीं है।

42. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मुझे लगता है कि एक बार आयुक्त ने अपने आदेश दिनांक 02.05.1994 में प्रत्यर्थी क्रमांक 5 द्वारा किये गये निर्माणों को अवैध ठहराया था। अनाधिकृत, अवैध और कानून के विपरीत और उक्त आदेश को हालांकि रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई, लेकिन 16.12.2005 को याचिका खारिज होने के संदर्भ में चुनौती विफल रही और फिर कमिश्नर द्वारा समीक्षा पर पारित आदेश दिनांक 30.01.2006 को इस न्यायालय द्वारा 14.05.2012 को रद्द कर दिया गया और 09.11.2012 को विशेष अनुमति याचिका को खारिज करते समय उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया था, यह दिखाने या स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि प्रत्यर्थी नंबर 5 द्वारा उठाए गए निर्माण वैध थे। इन आदेशों का असर इसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि क्या आक्षेपित आदेश योग्यता के आधार पर या केवल रिमांड के आदेश पर एक आदेश है।

43. जहां तक, राज्य के साथ-साथ विकास प्राधिकरण के इस तर्क का संबंध है कि कंपाउंडिंग का आदेश नहीं दिया गया है, लेकिन इस पर विचार किया जाएगा और विवादित भूमि पर किए गए निर्माणों को कंपाउंड नहीं किया जाएगा, इस न्यायालय ने पाया कि उक्त रुख इसका समर्थन करता है। आक्षेपित आदेश ख़ारिज किये जाने योग्य है। इस राय के बनने के पीछे कई कारण हैं. सबसे पहले, जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है, 2009 के उपनियम कंपाउंडिंग "अपराध" की बात करते हैं और नहीं "अपराध" "कंस्ट्रक्शन" की नहीं। दूसरे, यदि इसे निर्माणों की कंपाउंडिंग तक बढ़ाया जाता है, हालांकि मुझे इसके लिए कोई औचित्य नहीं मिलता है, तो यह एक ऐसा मामला होगा, जहां के अनुसार विकास प्राधिकरण, इस मामले की जांच उन विवादित भूमि के निर्माणों के संदर्भ में की जाएगी जिन पर सवाल उठाए गए थे।

44. विकास प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता श्री निशीथ यादव ने जोरदार तर्क दिया कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 5 के बीच कोई स्वामित्व विवाद नहीं है और इसलिए, जिस भूमि पर निर्माण किया गया है वह (विवादित) नहीं है। प्रतिवादी-प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता का आग्रह यह है कि, जहां तक स्वामित्व विवाद का संबंध है, इसका निर्णय सिविल/राजस्व न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए और इस तरह के निर्णय का निर्माणों की कंपाउंडिंग के गुण/दोषों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

45. मैं उक्त तर्क को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हूं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों द्वारा (विवादित) शब्द को नागरिक या राजस्व मुकदमे का विषय समझा जा रहा है। हालाँकि, अधिनियम 1973 की पूरी योजना और यहां तक कि 2009 के उपनियमों पर

विचार करते हुए, मेरी राय है कि "विवादित" (विवादित) शब्द को उसकी आत्मा और इरादे के अनुसार समझा जाना चाहिए और जो गलत समझा जाना चाहिए, उससे गलत नहीं समझा जाना चाहिए। सिविल/राजस्व न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रहा है या जो ऐसी मुकदमेबाजी का विषय बन सकता है।

46. ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार, शब्द"विवाद" के रूप में परिभाषित किया गया है"संघर्ष या विवाद" और न्यू लेक्सिकन वेबस्टर डिक्शनरी के अनुसार, शब्द"विवाद" "झगड़ना, बहस करना, सत्य पर प्रश्न उठाना खूब लड़ो, विवाद के रूप में परिभाषित है ।"

47. रिट याचिका का रिकॉर्ड बताता है कि जनवरी 1990 में कब्जा लेने या मौके पर निर्माण करने की पहली कार्रवाई से ही, भूमि याचिकाकर्ता, प्रत्यर्थी नंबर-5, उसके पति और अन्य सहयोगियों के बीच विवादित हो गई, जिसका विवरण इसमें शामिल है। इस निर्णय के प्रारंभिक भाग में. विवाद मौके पर निजी व्यक्तियों के बीच व्यक्तिगत झगड़े से शुरू होकर जिला प्रशासन, फिर पुलिस अधिकारियों, फिर विकास प्राधिकरण, फिर मंडल के आयुक्त, फिर विभिन्न रिट याचिकाओं में इस न्यायालय, फिर आयुक्त, उसके बाद एक और तक पहुंच गया। इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप, फिर उच्चतम न्यायालय और उसके बाद, राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण ने वर्तमान रिट याचिका को जन्म दिया। एक बार इस तरह से जमीन विवादित हो गई तो विकास प्राधिकरण के अनुसार भी कंपाउंडिंग की अनुमति नहीं है।

48. जहां तक विवादित आदेश का प्रश्न है कि राज्य सरकार ने पाया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया विवाद स्वामित्व विवाद से संबंधित है, जिसका निर्णय केवल सिविल/राजस्व अदालत द्वारा किया जा सकता है और याचिकाकर्ता ऐसी अदालत के समक्ष मुकदमा दायर कर सकता है। मुझे लगता है कि उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, निर्माणों की कंपाउंडिंग से संबंधित मामले में, यह निष्कर्ष रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के महत्वपूर्ण विश्लेषण पर आधारित नहीं है, जो कि राज्य सरकार द्वारा पुनरीक्षण का निर्णय लेने से पहले भी मौजूद था और न ही यह है उसी के अनुसार निर्माणों/अपराधों के संयोजन की अवधारणा, जैसा कि यहां ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है।

49. जहां तक रिमांड की दिशा का संबंध है, निश्चित रूप से विकास प्राधिकरण, 1973 की योजना के अनुसार, राज्य सरकार के अधीनस्थ होने के नाते, निर्माणों के संयोजन का मामला उठाएगा और किसी न किसी मामले में इससे निपटेगा। रास्ता और इस तरह का निर्णय दोनों पक्षों द्वारा मुकदमेबाजी के आगे के दौर को जन्म देगा। इस समय, मैं कानूनी कहावत का उल्लेख करना चाहता हूं"इंट्रेस्ट रिपब्लिक उट सिट

फिनिस लिटियम" जिसका मतलब यह है कि राज्य का हित यह है कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए। इस न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ने भी बार-बार माना है कि न्यायिक/अर्ध न्यायिक अधिकारियों को अनावश्यक रिमांड से बचना चाहिए, इसलिए, जब भी यह पाया जाए कि रिमांड तथ्यात्मक और/या कानूनी रूप से अनुचित एव गैरकानूनी है, तो इसमें हस्तक्षेप किया जाना चाहिए।

50. बहस के दौरान, इस न्यायालय के विवेक में एक स्पष्ट तस्वीर भी आई, जैसा कि दोनों पक्षों ने तर्क दिया था कि याचिकाकर्ता का प्लॉट दिनांक 16.07.1987 को पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा खरीदा गया था, जो प्रत्यर्थी संख्या-5 द्वारा किए गए निर्माणों के कारण उपरोक्त तरीके से मौके पर उसके कब्जे में नहीं है।

51. पुरानी ब्रिटिश अवधारणा कि "न्यायाधीश" एक तटस्थ निष्क्रिय अंपायर है, जिसके द्वारा एक स्पष्ट परिवर्तन आया है। एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ, 1981 एसयूपीपीएल एस.सी.सी. 87के मामले में माननीय न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने पाया कि ब्रिटिश दृष्टिकोण उपयुक्त नहीं होगा भारतीय परिस्थितियों के अनुसार और यह माना गया कि न्यायपालिका केवल एक मूक-दर्शक या दर्शक संस्था नहीं हो सकती लेकिन इसे 'सक्रिय लक्ष्य-उन्मुख दृष्टिकोण' के माध्यम से सामाजिक न्याय की सेवा में कानून का उपयोग करने के लिए तैयार न्यायिक प्रक्रिया में एक सक्रिय भागीदार बनना चाहिए।

52. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मैं इस बात से संतुष्ट हूं कि मुकदमेबाजी एक बार अंतिम रूप लेने के बाद, मेरे मन में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि वर्तमान मामले में कंपाउंडिंग की अनुमति नहीं है और इसलिए, कंपाउंडिंग मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए मामले को विकास प्राधिकरण को भेजने का विवादित आदेश दिया गया है। यह पोषणीय नहीं है और रिकॉर्ड पर अच्छी तरह से स्थापित तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति के विपरीत है।

53. इसलिए, रिट याचिका सफल होती है और है **अनुमति** प्रदान की जाती है।

54. राज्य सरकार द्वारा पुनरीक्षण संख्या-33/2012 (श्रीमती लक्ष्मी सिंह बनाम इलाहाबाद विकास प्राधिकरण और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 07.01.2016 को रद्द कर दिया गया है।

55. उक्त आदेश को रद्द करने के परिणामस्वरूप आवश्यक परिणाम होंगे।

(2023) 5 ILRA 1172

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

रिट-सी संख्या 7127/2023

अखिलेश सिंह और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अजय पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री नरेंद्र कुमार तिवारी

ए. सिविल कानून - विद्युत अधिनियम, 2003 - धारा 164 -भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 -धारा 10 और 16 - 33 केवी विद्युत लाइन की स्थापना- जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए खतरा - विद्युत लाइन को हटाने के लिए प्रतिवादी द्वारा 29,77,848/- रुपये की मांग - वैधता को चुनौती दी गई -विद्युत लाइन की स्थापना के लिए भूमि के मालिकों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया था - प्रभाव - माना गया, चूंकि प्रश्नगत विद्युत लाइन की स्थापना के लिए भूमि के मालिकों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया था, इसलिए, अधिनियम, 1885 की धारा 17 के अनुसार याचिकाकर्ताओं या अन्य प्रभावित व्यक्तियों द्वारा प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए कोई राशि जमा किए जाने की आवश्यकता नहीं थी - प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी 29,77,848/- रुपये की मांग या 3578595/- रुपये की संशोधित मांग, कानून के अधिकार के बिना थी। (पैरा 17 और 18)

बी. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226- रिट- प्रकृति और सीमा - वैकल्पिक उपाय - अपवाद जब वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने पर भी रिट शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है - माना गया, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को रिट जारी करने के लिए बहुत ही स्पष्ट शक्तियाँ प्रदान करता है, लेकिन यह शक्ति विवेकाधीन है और उच्च न्यायालय विवेक का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है, यदि वह संतुष्ट हो कि पीड़ित व्यक्ति के पास कहीं और पर्याप्त या उपयुक्त उपाय है। यह विवेक का नियम है न कि बाध्यता का नियम या कानून का नियम - उच्च न्यायालय ने वैकल्पिक उपचार के नियम के अनुसार आठ अपवाद निर्धारित किए: (i) जहां अधिकारी या प्राधिकारी के पास कार्रवाई करने या आदेश पारित करने के लिए अधिकारिता का पूर्ण अभाव हो; (ii) जहां किसी अधिनियम, नियम, अधिसूचना या उसके किसी प्रावधान की वैधता को चुनौती दी गई हो; (iii) जहां रिट याचिकाकर्ता के प्रतिकूल कोई आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया हो; (iv) जहां याचिकाकर्ता द्वारा किसी मौलिक अधिकार का प्रवर्तन मांगा गया हो; (v) जहां निर्णय के लिए अपेक्षित प्रक्रिया नहीं अपनाई गई हो; (vi) जहां कर कानून के प्राधिकार के बिना लगाया गया हो; (vii) जहां निर्णय कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो; (viii) जहां याचिकाकर्ता के साथ स्पष्ट अन्याय होगा, यदि उसे भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत किसी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए कानून के तहत उपचार अपनाने के लिए मजबूर किया जाता है। (पैरा 20)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सिविल विविध रिट याचिका (कर) संख्या 255/2012; मेसर्स श्री भवानी पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 10.09.2015 को निर्णीत
2. हिम्मतलाल हरिलाल मेहता बनाम म.प्र. राज्य, एआईआर 1954 एससी 403

3. कलेक्टर ऑफ कस्टम्स बनाम रामचंद शोभराज वाधवानी; एआईआर 1961 एससी 1506

4. कलेक्टर ऑफ कस्टम्स एंड एक्साइज, कोचीन व अन्य, बनाम ए.एस. बावा; एआईआर 1968 एससी 13

5. डॉ. श्रीमती कुन्तेश गुप्ता बनाम हिन्दू कन्या महाविद्यालय प्रबंधन

6. एल.के. वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड एवं अन्य; (2006) 2 एससीसी 269

7. एम.पी. राज्य एग्रो इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम जहान खान; (2007) 10 एससीसी 88

8. धामपुर शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य; (2007) 8 एससीसी 338

9. बीसीपीपी मजदूर संघ बनाम एनटीपीसी; (2007) 14 एससीसी 234 (के लिए 19)

10. राजस्थान विद्युत बोर्ड बनाम भारत संघ, (2008) 5 एस.सी.सी. 632 (पैरा 3)

11. मुमताज पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री कॉलेज बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय; (2009) 2 एससीसी 630 (पैरा 22 और 23)

12. गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त (एए); (2009) 14 एससीसी 338. 14

13. भारत संघ बनाम मंगल टेक्सटाइल मिल्स (आई) (पी) लिमिटेड; (2010) 14 एससीसी 553 (पैरा 6,7,10 और 12)

14. भारत संघ बनाम टांटिया कंस्ट्रक्शन (पी) लिमिटेड; (2011) 5 एससीसी 697

15. साउथर्न इलेक्ट्रिसिटी सप्लाई कंपनी ऑफ उड़ीसा लिमिटेड बनाम श्री सीताराम राइस मिल, (2012) 2 एससीसी 108 (पैरा 79,80,81,82,86,87 और 88)

16. म.प्र. राज्य बनाम संजय नगाइच; (2013) 7 एससीसी 25 (पैरा 34,35,38,39)

17. एच.पी. राज्य बनाम गुजरात अंबुजा सीमेंट लिमिटेड; (2005) 6 एससीसी 499 (पैरा 11 से 19)

18. स्टार पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; जेटी (2006) 12 एससी 92

19. त्रिपुरा राज्य बनाम मनोरंजन चक्रवर्ती; (2001) 10 एससीसी 740 (पैरा 4)

20. पारादीप पोर्ट ट्रस्ट बनाम सेल्स टैक्स अधिकारी और अन्य; (1998) 4एससीसी 90

21. फेल्डोहफ़ ऑटो एंड गैस इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ (1998) 9 एससीसी 710

22. ईशा बीबी बनाम कर वसूली अधिकारी; (1976) 1 एससीसी 70 (पैरा 5)

23. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेडमार्क्स; (1998) 8 एससीसी 1

24. गुरुवायुर देवास, प्रबंध समिति बनाम सीके राजन; (2003) 7 एससीसी 546 (पैरा 67,68)

25. भारत संघ एवं अन्य बनाम मेजर जनरल श्री कांत शर्मा; (2015) 6 एससीसी 773

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी, एवं माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री अजय पांडे, प्रतिवादी संख्या 1 और 3 के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील श्री राजीव गुप्ता और प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील

श्री नरेंद्र कुमार तिवारी को सुना गया।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:

"(I) प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 18/07/2018 के आदेश के अनुपालन में प्रतिवादी संख्या 2 को आदेश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ताओं के मंझनपुर, जिला कौशाम्बी स्थित घरों से 33 केवी फीडर की बिजली केबल को हटा दे।"

3. दिनांक 06/04/2023 को इस न्यायालय ने एक विस्तृत आदेश पारित किया और प्रतिवादी संख्या 2 को अपने व्यक्तिगत हलफनामे के माध्यम से जवाबी हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया। प्रतिवादी संख्या 2 को आगे निम्नलिखित प्रश्नों का विशेष रूप से उत्तर देने का निर्देश दिया गया:

(i) क्या प्रश्नगत विद्युत लाइन बिछाते समय भूमि स्वामियों को कोई मुआवजा दिया गया था?
(ii) यदि प्रश्न संख्या (i) का उत्तर सकारात्मक है, तो भुगतान की गई मुआवजा राशि का खुलासा किया जाए।
(iii) किस कानूनी प्राधिकार के तहत प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रश्नगत 33 के.वी. विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने के लिए स्थानांतरण शुल्क के रूप में 35,78,595/- रुपए की राशि की मांग की है?

4. समय दिए जाने के बावजूद प्रतिवादी संख्या 1 और 3 ने न तो जवाबी हलफनामा दायर किया और न ही अतिरिक्त समय की प्रार्थना की।

5. उपरोक्त आदेश दिनांक 06/04/2023 के अनुपालन में, प्रतिवादी संख्या 2 ने आज अपने व्यक्तिगत हलफनामे दिनांक 12/04/2023 के माध्यम से जवाबी हलफनामा दायर किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

तथ्य :

6. वर्तमान मामले के संक्षिप्त रूप से बताए गए निर्विवाद तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उस भूमि के स्वामी हैं, जिस पर प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा 33 केवी विद्युत लाइन

स्थापित की गई थी। प्रतिवादियों के अपने मामले के अनुसार, याचिकाकर्ताओं सहित कुल 81 व्यक्ति उक्त 33 केवी विद्युत लाइन से प्रभावित हैं, जो प्रतिवादी संख्या 2 के अनुसार वर्ष 1995 में विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 के प्रावधानों के अनुसार किसी भी मुआवजे का भुगतान किए बिना स्थापित की गई थी, जिसे भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 (जिसे आगे "अधिनियम, 1885" के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 10 और 16 के साथ पढ़ा गया है। याचिकाकर्ताओं की शिकायत है कि ओशा क्रॉसिंग और जिला अस्पताल के बीच चल रही उक्त विद्युत लाइन याचिकाकर्ताओं सहित 81 व्यक्तियों की भूमि/घरों के ऊपर से गुजर रही है, जिससे जान-माल को गंभीर खतरा है। याचिकाकर्ताओं और अन्य प्रभावित व्यक्तियों ने लाइन को स्थानांतरित करने के लिए प्रतिवादियों के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया है। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा उक्त विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने के लिए 29,77,847/- रुपये के स्थानांतरण शुल्क के अनुमान के आधार पर दिनांक 18/07/2018 को एक आदेश पारित किया गया था। हालांकि, प्रतिवादी क्रमांक 2 अर्थात अधिशासी अभियंता ने दिनांक 26/05/2022 के आदेश द्वारा अनुमान संशोधित किया तथा उक्त विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने के लिए 35,78,595/- रुपए जमा करने की मांग की। याचिकाकर्ताओं और दो अन्य प्रभावित व्यक्तियों ने मजबूरी में आनुपातिक धनराशि जमा कर दी, जबकि शेष लोगों ने धनराशि जमा नहीं की। इन परिस्थितियों में, शिफ्टिंग चार्ज जमा न करने के कारण उपरोक्त विद्युत लाइन को स्थानांतरित नहीं किया जा सका है।

7. व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त राहत की प्रार्थना करते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

प्रस्तुतियाँ :

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता कोई भी राशि

जमा करने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं, क्योंकि प्रश्नगत विद्युत लाइन बिछाते समय भूमि स्वामियों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया था। उन्होंने कहा कि एक बार जब प्रतिवादियों ने स्वयं लाइन को स्थानांतरित करने का आदेश पारित कर दिया है, तो वे विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने में तब तक देरी नहीं कर सकते, जब तक कि सभी प्रभावित व्यक्तियों द्वारा विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने के लिए शुल्क की मांग का भुगतान नहीं कर दिया जाता। उन्होंने कहा कि प्रतिवादियों की कार्रवाई विद्युत अधिनियम, 2003 के प्रावधानों के साथ भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 का उल्लंघन है।

9. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी ने कहा कि प्रतिवादी विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि सभी प्रभावित व्यक्ति मांगी गई राशि 35,78,595/- रुपये जमा कर दें। उन्होंने कहा कि यदि याचिकाकर्ता व्यथित हैं, तो उनके पास 18/07/2018 के जिला मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देने के लिए एक वैकल्पिक उपाय है, जिसे कार्यकारी अभियंता के दिनांक 26/05/2022 के संचार के साथ पढ़ा जाए, जो कि वर्क्स ऑफ लिनेन्सी नियम, 2006 के नियम 3(3) के तहत है।

10. हमने पक्षों के विद्वान वकीलों के प्रस्तुतिकरणों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और रिट याचिका के अभिलेख तथा प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा आज दायर व्यक्तिगत हलफनामे के माध्यम से जवाबी हलफनामे का अवलोकन किया है। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 4 से 9 में प्रतिवादी संख्या 2 ने निम्नलिखित कहा है:

4. यह कि, पैरावाइज उत्तर देने से पहले कुछ तथ्यों को इंगित करना उचित है कि 33 केवी बिजली लाइन वर्ष 1995 में स्थापित की गई है। **बिजली ओवरहेड लाइनों की स्थापना के संबंध में भूमि मालिकों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया है।**

5. यह कि, भूमिधरों की भूमि पर विद्युत लाइन बिछा दी गई है तथा खंभे खड़े कर दिए गए हैं। स्थापना का सर्वेक्षण किया गया था, लेकिन किसी भी भूमि स्वामी

द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। **लाइसेंसधारी ने विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 के प्रावधानों के साथ ओवरहेड विद्युत लाइन स्थापित करने के लिए किया है।** भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 की प्रति इस शपथ पत्र के साथ संलग्न की जा रही है तथा इसे **अनुलग्नक संख्या CA1** के रूप में अंकित किया गया है।

6. यह कि, वर्ष 1995 से अब तक किसी भी भू-स्वामी द्वारा विद्युत लाइन बिछाने तथा खंभे लगाने के विरुद्ध कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई है। कार्य एवं लाइसेंसिंग नियम 2006 की धारा 3 (1) में प्रावधान है कि सर्वेक्षण या विद्युत लाइन बिछाने के कार्य के दौरान किसी भी भू-स्वामी/कब्जाधारी द्वारा आपत्ति किए जाने की स्थिति में, लाइसेंसधारी जिला मजिस्ट्रेट से लिखित में अनुमति लेगा, बशर्ते कि उसे मुआवजा या किराया, जैसा भी मामला हो, देना होगा। वर्तमान मामले में 33 केवी विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने का अनुरोध किया गया है। ऐसे अनुरोध पर विचार करना जिला मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में आता है। कार्य एवं लाइसेंसिंग नियम 2006 की प्रति इस शपथ-पत्र के साथ संलग्न की जा रही है तथा इसे **अनुलग्नक संख्या CA-2** के रूप में अंकित किया गया है।

7. यह कि, उत्तर देने वाले प्रतिवादी ने किसी भी निवासी से कोई राशि नहीं मांगी है, बल्कि उनके अभ्यावेदन पर विचार करते हुए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 18-07-2018 के आदेश के अनुपालन में उन्हें सूचित किया है। किसी भी निवासी ने जिला मजिस्ट्रेट के उक्त आदेश की वैधता को चुनौती नहीं दी है। मकानों का निर्माण हाल के वर्षों में किया गया है, जबकि बिजली की लाइन वर्ष 1995 में डाली गई थी।

8. यह कि, जिला मजिस्ट्रेट कौशाम्बी ने दिनांक 18-07-2018 को स्पीकिंग ऑर्डर पारित कर प्रतिवादी को निर्देशित किया कि वे निवासियों की सूची तैयार करें तथा 33 केवी विद्युत लाइन को हटाने के लिए आनुपातिक अनुमानित लागत जमा करने का निर्देश दें। निवासियों की सूची तहसीलदार एवं निगम के अवर अभियंता द्वारा संयुक्त रूप से दिनांक 10-05-2022 को तैयार की गई।

अनुवादित

9. कि, जिला मजिस्ट्रेट के आदेश का अनुपालन नहीं किया जा सका क्योंकि जमा करने के लिए निर्देशित आनुपातिक राशि तहसीलदार और उत्तरदाता प्रतिवादी के संयुक्त खाते में जमा नहीं की गई है। जिला मजिस्ट्रेट ने 18-07-2018 को आदेश जारी करके निर्देश दिया है कि प्रभावित व्यक्तियों की सूची तैयार की जाए और ऐसे निवासियों को आनुपातिक रूप से स्थानांतरण की अनुमानित लागत जमा करने का निर्देश दिया है।

11. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा लिए गए अपने स्वयं के रुख के अवलोकन से, यह निर्विवाद है कि वर्ष 1995 में भूमि स्वामियों को किसी भी मुआवजे का भुगतान किए बिना 33 केवी बिजली लाइन स्थापित की गई थी। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि लाइसेंसधारी ने संबंधित ओवरहेड बिजली लाइन स्थापित करने के लिए भारतीय टेलीग्राफिक अधिनियम, 1885 के प्रावधानों के साथ विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दाखिल जवाबी हलफनामे के पैरा 7 में किया गया दावा कि उन्होंने कोई धनराशि की मांग नहीं की है, बल्कि जिला मजिस्ट्रेट, कौशाम्बी द्वारा पारित आदेश दिनांक 18/07/2018 के अनुसरण में उन्हें सूचित किया है, गलत है और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा लिए गए अपने रुख के विपरीत है कि निवासियों ने 21/03/2017 को 1,000/- रुपये की प्रक्रिया शुल्क जमा कर दिया है और उसके बाद अधिशासी अभियंता ने पत्र संख्या 3686, दिनांक 11/08/2017 के माध्यम से उन्हें अवगत कराया कि प्रश्नगत विद्युत लाइन को स्थानांतरित करने के लिए, नियमों और शर्तों के अनुसार, 29,77,848/- रुपये की धनराशि विभाग के पास जमा की जाए ताकि स्थानांतरण कार्य पूरा किया जा सके।

12. उपरोक्त तथ्य जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 18/07/2018 के आदेश में सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के उक्त आदेश में यह भी उल्लेख किया गया है कि प्रश्नगत विद्युत लाइन को जनहित में स्थानांतरित किया जाना आवश्यक है, अन्यथा इससे कभी भी जनहानि हो सकती है। जिलाधिकारी, कौशाम्बी द्वारा पारित दिनांक 18.07.2018 का आदेश नीचे पुन: प्रस्तुत है:

न्यायालय जिलाधिकारी कौशाम्बी।

संख्या - सन् 2018
अन्तर्गत धारा- विविध
शत्रुघन मिश्र पुत्र नागेश दत्त मिश्र
निवासी- मंझनपुर जनपद कौशाम्बी

नाम1- उप खण्ड अधिकारी (विद्युत) मंझनपुर जनपद कौशाम्बी2- अधिभाषी अभियन्ता (विद्युत) कौशाम्बी।

_____

''आदेश''

परिवादी ने विविध प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ओसा स्थित मण्डी परिषद के सामने आवासीय भवनों के ऊपर से खिची 11000 बोल्ट के विद्युत तारों का जनहित में हटाना आवश्यक है। अन्यथा किसी भी समय कोई घटना घटित हो सकती है, क्योंकि विद्युत तारो के नीचे लगभग 50 से अधिक आवास निर्मित है।

आवेदक के प्रार्थना पत्र के क्रम में विपक्षी को नोटिस भेजी गयी। बाद तामीला विपक्षी हाजिर अदालत आकर कहा कि आवेदक शिफ्टिंग राशि बावत प्रासेस फीस के रूप में 1000/- कार्यालय में जमा कर, जिससे हटाने में आने वाली सम्भावित खर्च का आकलन विभाग कर सके। आवेदक ने दिनांक 21.03.2017 को 1000/- रू० प्रासेस फीस जमा कर दिया, जिसके पश्चात दिनांक 11.08.17 को अधिशाषी अभियन्ता ने अपने पत्राक 3686 के माध्यम से अवगत कराया गया कि प्रश्नगत 33 के०वी० लाइन हटाने में नियम व शर्तो के आधार पर 2977848.00 रू० विभाग में आवेदक जमा करे, ताकि को कार्य को पूर्ण किया जा सके।

आवेदक ने दिनांक 01.06.2018 को प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि लम्बे अरसे से मामला विचाराधीन है। मामले को गुणदोष पर निस्तारण शीघ्र किया जाय। प्रार्थना पत्र का संज्ञान लेते हुए सुनवाई की गयी। सुनवाई के दौरान विपक्षी के विभागीय पैरोकार भी उपस्थित रहे।

प्रकरण में पूर्व में भी दिनांक 28.04.2017 को प्रबन्ध निदेशक पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड वाराणसी को न्यायालय द्वारा पत्र प्रेषित करते हुए यह राय व्यक्त की गयी थी कि प्रश्नगत मामले में आवासीय भवनों के सामने राजकीय अतिथिगृह स्थित है जहां पर शासन के प्रतिनिधी व उच्चाधिकारी प्रायः निवास करते है। नव सृजित जनपद में ऐसे बहुतायत आवासीय भवन प्रभावित है। जनहित व लोकहित में स्वयमेव कार्यवाही करना आपेक्षित है। अन्यथा किसी भी समय जनहानि हो सकती है। किन्तु विपक्षी द्वारा कोई कार्यवाही आज तक अग्रेतर संचालित नही की गयी। आवेदक के अनुसार विपक्षी द्वारा तैयार की गयी प्राकलन रिपोर्ट में जो स्टीमेट के अनुसार धन जमा करना है. जो अत्यधिक है और किसी एक व्यक्ति द्वारा इतनी लम्बी धनराशि नही जमा किया जा सकता। आवेदक के तर्को में बल प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में विपक्षी को चाहिए था कि प्राकलन

रिपोर्ट के अनुसार जो भी धनराशि जमा होना है उसे प्रश्नगत विद्युत पारेषण लाइन के नीचे स्थापित भवन स्वामियों से हिस्सानुसार धनराशि जमा कराकर निर्माण किया जा सकता था।

अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि प्राकलन रिपोर्ट में प्रस्तावित धनराशि मु० 2977848.00 रु० जमा कराने हेतु जिला चिकित्सालय कौशाम्बी से ओसा चैराहा तक के प्रभावित भवन स्वामियों का चिन्हीकरण करते हुए सूचीबद्ध पर समानुपातिक दृष्टि से धनराशि जमा कराना उचित होगा।

अतः आदेश हुआ कि अधिशाषी अभियन्ता (विद्युत) कौशाम्बी को आदेशित किया जाता है कि जिला चिकित्सालय कौशाम्बी से ओसा चैराहा तक 33 के०वी० फीडर को पारेषित विद्युत लाइन के नीचे स्थित भवन स्वामियों का चिन्हीकरण कराया जाय। सूचीबद्ध करने के पश्चात इन भवन स्वामियों से आनुपातिक सिद्धान्त से प्राक्कन रिपोर्ट में प्रस्तावित धनराशि को 30 दिन के अन्दर जमा कराकर विद्युत लाइन को समुचित स्थल पर स्थापित किया जाय, जिससे किसी भी प्रकार की जन धन हानि से बचा जा सके। प्रगति आख्या दिनांक 07.08.2018 तक अधोहस्ताक्षरी के पास प्रेषित की जाय।

दिनांक 18.7.2018

Sd

(मनीष कुमार वर्मा)जिलाधिकारी कौशाम्बी

13. जिला मजिस्ट्रेट, कौशाम्बी द्वारा उपर्युक्त आदेश दिनांक 18/07/2018 पारित करने के बाद, प्रतिवादी संख्या 2 ने संशोधित अनुमान पारित किया और अपने पत्र संख्या 2916, दिनांक 26/05/2022 द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 को निम्नानुसार सूचित किया:

"उपरोक्त के सम्बन्ध में आपको अवगत कराना है कि तहसील दिवस मंझनपुर में दिनांक 16.4.2022 को प्रस्तुत प्रार्थना पत्र में अधोहस्ताक्षरी को निर्देशित किया गया था कि दिनांक 18.07.2018 को मा० न्यायालय जिलाधिकारी कौशाम्बी के आदेश के अनुपालन में **प्राक्कलन आख्या में प्रस्तावित धनराशि रू० 2977847.00 पुनः संशोधित धनराशि रू० 3578595.00 वसूली हेतु 33 के०वी० लाइन के नीचे ओसा चैराहे से जिला अस्पताल के बीच प्रभावित भुखण्ड स्वामी व भवन स्वामियों को चिन्हित किया गया** मा० तहसीलदार महोदय मंझनपुर की आख्या के अनुसार कुल 81 भूखण्ड एवं भवन स्वामी है। (सूची संलग्न है)

आपको सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित है।"

14. परिस्थिति से मजबूर होकर, प्रत्येक याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 के पास क्रमशः 15/06/2022 और 24/08/2022 को 44200/- रुपये की आनुपातिक राशि जमा कर दी है। हालाँकि, कुछ निवासियों द्वारा राशि जमा नहीं किए जाने के कारण बिजली की लाइन को स्थानांतरित नहीं किया जा सका।

15. मामले के स्वीकृत तथ्यों और कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में याचिकाकर्ताओं की शिकायत की जांच की जानी चाहिए। इसलिए, आसान संदर्भ के लिए विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 और भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 की धारा 17 के प्रावधानों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

विद्युत अधिनियम, 2003

"164. कुछ मामलों में टेलीग्राफ प्राधिकरण की शक्तियों का प्रयोग.- समुचित सरकार, लिखित आदेश द्वारा, विद्युत के संचरण के लिए विद्युत लाइन या विद्युत संयंत्र लगाने के लिए या कार्यों के समुचित समन्वय के लिए आवश्यक टेलीफोन या टेलीग्राफिक संचार के प्रयोजन के लिए, इस अधिनियम के तहत विद्युत आपूर्ति के व्यवसाय में लगे किसी भी सार्वजनिक अधिकारी, लाइसेंसधारी या किसी अन्य व्यक्ति को, ऐसी शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन, यदि कोई हों, जिन्हें समुचित सरकार लगाना उचित समझे और भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 के प्रावधानों के अनुसार, सरकार द्वारा स्थापित या अनुरक्षित या इस प्रकार स्थापित या अनुरक्षित किए जाने वाले टेलीग्राफ के प्रयोजनों के लिए टेलीग्राफ लाइनें और पोस्ट लगाने के संबंध में टेलीग्राफ प्राधिकरण के पास अधिनियम के तहत मौजूद कोई भी शक्ति प्रदान कर सकती है।"

भारतीय तार अधिनियम, 1885

17. स्थानीय प्राधिकरण की संपत्ति से भिन्न संपत्ति पर तार लाइन या डाक को हटाना या परिवर्तित करना।-(1) *जब, इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबंधों के अधीन, तार लाइन या डाक को तार प्राधिकरण द्वारा किसी ऐसी संपत्ति के नीचे, ऊपर, साथ में, पार, में या उस पर रखा गया है, जो स्थानीय प्राधिकरण में निहित या उसके नियंत्रण या प्रबंध के अधीन संपत्ति नहीं है, और ऐसा करने का हकदार कोई व्यक्ति उस संपत्ति के साथ इस प्रकार से व्यवहार करना चाहता है* ***जिससे यह आवश्यक या सुविधाजनक हो जाए कि तार लाइन या डाक को उसके किसी अन्य भाग में या उच्चतर या निम्नतर स्तर***

पर हटा दिया जाए या उसके रूप में परिवर्तन कर दिया जाए, तो वह तार प्राधिकरण से तदनुसार उस लाइन या डाक को हटाने या परिवर्तित करने की मांग कर सकता है:

परन्तु यदि धारा 10 के खण्ड (घ) के अधीन प्रतिकर दे दिया गया है तो ***वह अध्यपेक्षा करते समय तार प्राधिकारी को हटाने या परिवर्तन के व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित रकम या प्रतिकर के रूप में दी गई रकम का आधा, जो भी छोटी राशि हो, देगा।***

(2) यदि टेलीग्राफ प्राधिकारी अध्यपेक्षा का अनुपालन करने में चूक करता है, तो अध्यपेक्षा करने वाला व्यक्ति उस जिला मजिस्ट्रेट को, जिसके अधिकार क्षेत्र में संपत्ति स्थित है, ***हटाने या परिवर्तन का आदेश देने के लिए आवेदन कर सकेगा।***

(3) उपधारा (2) के अधीन आवेदन प्राप्त करने वाला जिला मजिस्ट्रेट अपने विवेकानुसार उसे अस्वीकार कर सकता है या टेलीग्राफ लाइन या पोस्ट को संपत्ति के किसी अन्य भाग या उच्चतर या निम्नतर स्तर पर हटाने या उसके स्वरूप में परिवर्तन करने के लिए, पूर्णतः या शर्तों के अधीन रहते हुए आदेश दे सकता है; और इस प्रकार दिया गया आदेश अंतिम होगा।"

16. प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 4 में प्रतिवादी संख्या 2 ने विशेष रूप से स्वीकार किया है कि 33 के.वी. ओवरहेड विद्युत लाइन की स्थापना के संबंध में भूमि स्वामियों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया। इस प्रकार, प्रतिवादियों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि विचाराधीन विद्युत लाइन स्थापित करते समय स्वामियों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया। प्रतिवादियों द्वारा यह भी स्वीकार किया जाता है कि उक्त विद्युत लाइन विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 164 के साथ अधिनियम, 1885 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्थापित की गई थी। अधिनियम, 1885 की धारा 17 में स्थानीय प्राधिकरण की संपत्ति के अलावा अन्य संपत्ति पर टेलीग्राफ लाइन या पोस्ट को हटाने या बदलने का प्रावधान है। अधिनियम, 1885 की धारा 17 की उपधारा (1) में विशेष रूप से यह प्रावधान है कि अधिनियम, 1885 के प्रावधानों के तहत टेलीग्राफ प्राधिकरण द्वारा किसी ऐसी संपत्ति के नीचे, ऊपर, साथ में, पार, में या उस पर

टेलीग्राफ लाइन या पोस्ट लगाई गई है, जो स्थानीय प्राधिकरण के नियंत्रण या प्रबंधन में निहित संपत्ति नहीं है, और **ऐसा करने का हकदार कोई व्यक्ति उस संपत्ति के साथ इस तरह से व्यवहार करना चाहता है जिससे यह आवश्यक या सुविधाजनक हो कि टेलीग्राफ लाइन या पोस्ट को उसके किसी अन्य भाग में या उच्च या निम्न स्तर पर हटा दिया जाए या उसके रूप में परिवर्तन किया जाए, तो वह टेलीग्राफ प्राधिकरण से लाइन या पोस्ट को तदनुसार हटाने या बदलने की मांग कर सकता है।**

17. इस प्रकार, प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए मांग करते समय, याचिकाकर्ताओं को हटाने या परिवर्तन के व्यय को वहन करने के लिए अपेक्षित राशि या मुआवजे के रूप में भुगतान की गई राशि का आधा, जो भी कम हो, जमा करना आवश्यक था। **चूंकि, प्रतिवादी संख्या 2 के स्वीकृत मामले के अनुसार, प्रश्नगत विद्युत लाइन की स्थापना के लिए भूमि के मालिकों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया था, इसलिए, प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए अधिनियम, 1885 की धारा 17 के अनुसार याचिकाकर्ताओं या अन्य प्रभावित व्यक्तियों द्वारा कोई राशि जमा करने की आवश्यकता नहीं थी।** इन परिस्थितियों में, प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी 29,77,848/- रुपये की मांग या 3578595/- रुपये की संशोधित मांग, कानून के अधिकार के बिना थी।

18. इन परिस्थितियों में, जिला मजिस्ट्रेट का दिनांक 18/07/2018 का आदेश, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए 29,77,848/- रुपए की मांग को लागू करना शामिल था, पूरी तरह से कानून के अधिकार के बिना था।

19. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील की दलीलें कि याचिकाकर्ताओं के पास वर्क्स ऑफ लिंकेन्सिस रूल्स, 2006 के नियम 3 के तहत वैकल्पिक उपाय है, में कोई दम नहीं है क्योंकि प्रतिवादियों द्वारा की गई 29,77,848/- रुपये की मांग या प्रश्नगत विद्युत लाइन को हटाने के लिए 35,78,595/- रुपये की संशोधित मांग कानून के अधिकार के बिना है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के कारण वर्जित नहीं है। इस संबंध में कानून अच्छी तरह से स्थापित है। सिविल विविध रिट याचिका (कर) संख्या 255/2012

(मेसर्स श्री भवानी पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में इस न्यायालय के दिनांक 10/09/2015 के निर्णय का संदर्भ देना पर्याप्त है।

20. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को रिट जारी करने के लिए बहुत ही स्पष्ट शक्तियाँ प्रदान करता है, लेकिन यह शक्ति विवेकाधीन है और उच्च न्यायालय विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है, यदि वह संतुष्ट हो कि पीड़ित व्यक्ति के पास कहीं और पर्याप्त या उपयुक्त उपाय है। यह विवेकाधिकार का नियम है, न कि बाध्यता का नियम या कानून का नियम। हालाँकि, वैकल्पिक उपाय हो सकते हैं, फिर भी उच्च न्यायालय प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर रिट याचिका पर विचार कर सकता है। रिट याचिका पर विचार करने के लिए कठोर नियम बनाना न तो संभव है और न ही वांछनीय है। वैकल्पिक उपाय के नियम के कुछ अपवाद, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया है; इस प्रकार हैं: -

(i) जहां अधिकारी या प्राधिकारी के पास कार्रवाई करने या आदेश पारित करने का पूर्ण अधिकार नहीं है।

(ii) जहां किसी अधिनियम, नियम, अधिसूचना या उसके किसी प्रावधान की वैधता को चुनौती दी गई है।

(iii) जहां रिट याचिकाकर्ता के प्रति प्रतिकूल कोई आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है।

(iv) जहां याचिकाकर्ता द्वारा किसी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन की मांग की गई है।

(v) जहां निर्णय के लिए आवश्यक प्रक्रिया नहीं अपनाई गई है।

(vi) जहां कर कानून के अधिकार के बिना लगाया गया है।

(vii) जहां निर्णय कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

(viii) जहां याचिकाकर्ता के साथ स्पष्ट अन्याय किया जाएगा, यदि उसे भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए क़ानून के तहत उपाय अपनाने के लिए मजबूर किया जाता है

(ix) जहां सरकार द्वारा पहले ही कोई निर्णय या नीतिगत निर्णय लिया जा चुका है,

जिससे अपील का उपाय एक खोखली औपचारिकता या निरर्थक प्रयास रह जाता है।

(x) जहां कोई तथ्यात्मक विवाद नहीं है, बल्कि केवल कानून या व्याख्या का शुद्ध प्रश्न शामिल है।

21. उपरोक्त सिद्धांत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हिम्मतलाल हरिलाल मेहता बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1954 एससी 403, कलेक्टर ऑफ कस्टम्स बनाम रामचंद शोभराज वाधवानी, एआईआर 1961 एससी 1506, कलेक्टर ऑफ कस्टम्स एंड एक्साइज, कोचीन और अन्य बनाम एएस बावा, एआईआर 1968 एससी 13, डॉ. श्रीमती कुंतेश गुप्ता बनाम हिंदू कन्या महाविद्यालय प्रबंधन, एलके वर्मा बनाम एचएमटी लिमिटेड और अन्य, (2006) 2 एससीसी 269, पैरा 13 और 20, एमपी स्टेट एग्रो इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम जहान खान (2007) 10 एससीसी 88 पैरा 12, धामपुर शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम यूपी राज्य और अन्य (2007) 8 एससीसी 338, बीसीपीपी मजदूर संघ बनाम एनटीपीसी में निर्धारित कानून द्वारा समर्थित हैं। (2007) 14 एससीसी 234 (पैरा 19), राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड बनाम भारत संघ, (2008) 5 एससीसी 632 (पैरा 3), मुमताज पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री कॉलेज बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (2009) 2 एससीसी 630 (पैरा 22 और 23), गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त (एए), (2009) 14 एससीसी 338. 14, भारत संघ बनाम मंगल टेक्सटाइल मिल्स (आई) (पी) लिमिटेड, (2010) 14 एससीसी 553 (पैरा 6,7,10 और 12),

भारत संघ बनाम तांतिया कंस्ट्रक्शन (पी) लिमिटेड, (2011) 5 एससीसी 697, दक्षिणी विद्युत आपूर्ति कंपनी उड़ीसा लिमिटेड बनाम श्री सीताराम राइस मिल, (2012) 2 एससीसी 108 (पैरा 79,80,81,82,86,87 और 88), मध्य प्रदेश राज्य बनाम संजय नगाइच (2013) 7 एससीसी 25 (पैरा 34,35,38,39), हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम गुजरात अंबुजा सीमेंट लिमिटेड, (2005) 6 एससीसी 499 (पैरा 11 से 19),

स्टार पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, जेटी (2006) 12 एससी 92, त्रिपुरा राज्य बनाम मनोरंजन चक्रवर्ती, (2001) 10 एससीसी 740 पैरा 4;

पारादीप पोर्ट ट्रस्ट बनाम बिक्री कर अधिकारी और अन्य (1998) 4 एससीसी 90,

फेल्डोफ ऑटो एंड गैस इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ (1998) 9

एससीसी 710; ईशा बीबी बनाम कर वसूली अधिकारी (1976) 1 एससीसी 11 70 (पैरा 5); व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेडमार्क्स (1998) 8 एससीसी 1; गुरुवायुर देवस्वोर्न मैनेजिंग कमेटी बनाम सीके राजन (2003) 7 एससीसी 546 (पैरा 67,68)।

22. **भारत संघ एवं अन्य बनाम मेजर जनरल श्री कांत शर्मा, (2015) 6 एससीसी 773** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में सामान्य रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जहां वैधानिक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है लेकिन यह भी समान रूप से स्थापित है कि कानून का यह सिद्धांत अपवादों से मुक्त नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय सहित न्यायालयों ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि यदि वैधानिक उपाय किसी विशिष्ट कानून के तहत प्रदान किया जाता है तो वह निहित रूप से सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को बाहर कर देगा। उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के बावजूद रिट या उचित कार्यवाही पर विचार कर सकता है। उच्च न्यायालय इस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग असाधारण मामलों में कुछ सावधानी के साथ करेगा

23. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, स्थापित कानून के मद्देनजर, हम प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील द्वारा वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के संबंध में उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति में कोई तथ्य नहीं पाते हैं और, परिणामस्वरूप, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील द्वारा उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया जाता है।

24. प्रतिवादी संख्या 2 को निर्देश दिया जाता है कि वे अपने स्वयं के निर्णय के अनुसार, शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने के भीतर, संबंधित विद्युत लाइन को हटा दें, तथा संबंधित विद्युत लाइन को हटाने/स्थानांतरित करने के शुल्क के लिए याचिकाकर्ताओं या अन्य प्रभावित व्यक्तियों से कोई राशि नहीं मांगें। याचिकाकर्ताओं को इस निर्णय के अनुसार राशि की वापसी के लिए प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष आवेदन करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

25. उपर्युक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका को ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2023) 5 ILRA 1181

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-सी संख्या 10419 / 2023

और

रिट-सी संख्या 23212 / 2021

मैसर्स जागरण प्रकाशन लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्री अमर कुमार सिंह एवं अन्य ..प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री चंद्रभान गुप्ता, श्री संजय कौशल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री मन मोहन सिंह, श्री निखिल अग्रवाल

ए. श्रम कानून - श्रमजीवी पत्रकार और अन्य समाचार पत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955- धारा 2 (डी), 9, 13, 13-ए, 13-सी और 16-मजदूरी, परिलब्धियां और अन्य लाभ - गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों की पात्रता -कार्यरत पत्रकारों को प्रदान किए जाने वाले अन्य लाभों को गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों तक नहीं बढ़ाया जाना- वैधता- चुनौती - समझौते की प्रवर्तनीयता, सीमा- आयोजित, अधिनियम की धारा 13 और 16 के संयुक्त वाचन पर, यह स्पष्ट है कि कानून के प्रावधानों के साथ असंगत कोई भी समझौता या सेवा का अनुबंध पक्षों के बीच अधिकारों को नियंत्रित नहीं करेगा -अधिनियम से मिलने वाले लाभ, अर्थात अधिनियम के तहत परिभाषित 'मजदूरी' को केवल तभी समझौते द्वारा संशोधित किया जा सकता है जब वह अधिनियम के तहत निर्धारित की गई तुलना में बेहतर हो और किसी भी मामले में, कोई भी समझौता जो बोर्ड द्वारा अधिसूचित और निर्धारित वेतन या परिलब्धियों से कम लाभ निर्धारित करता है, अधिनियम की धारा 13 के आधार पर वर्जित नहीं है। (पैरा 27, 28 और 29)

बी. विधि की व्याख्या- सामंजस्यपूर्ण निर्माण के नियम - प्रयोज्यता - सामाजिक लाभकारी कानून - इसकी व्याख्या का तरीका यह अधिनियम, समाचार पत्र प्रतिष्ठान के कर्मचारियों को उचित कार्य स्थितियां प्रदान करने के उद्देश्य से बनाया गया एक सामाजिक लाभकारी कानून है, इसकी व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए, जिससे वह उद्देश्य प्राप्त हो सके जिसके लिए यह अधिनियम बनाया गया था। (पैरा 31 और 32)

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. कस्तूरी एंड संस (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम सालिवतेश्वरन, एआईआर 1958 एससी 507
2. एबीपी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य; (2014) 3 एससीसी 327
4. आयकर आयुक्त बनाम मेसर्स हिंदुस्तान बल्क कैरियर्स; (2003) 3 एससीसी 57

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. मामले की सुनवाई के बाद इस न्यायालय ने रिट-सी संख्या 23212 वर्ष 2021 की

पत्रावली मंगाई थी। क्योंकि दोनों रिट याचिकाओं में उठाए गए मुद्दे समान हैं, इसलिए दोनों रिट याचिकाएं इस समान आदेश द्वारा निर्णित की जा रही हैं।संक्षिप्तता के लिए, रिट-सी संख्या 10149 वर्ष 2023 को प्रमुख मामले के रूप में निर्णित किया जा रहा है।

2. वर्तमान याचिका दिनांक 11.10.2022, दिनांक 07.11.2022 और दिनांक 04.01.2023 के आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत कुल 57 संदर्भों को समेकित और निर्णित किया गया है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता एक समाचार पत्र प्रतिष्ठान है, जैसा कि श्रमजीवी पत्रकार और अन्य समाचारपत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1955 (जिसे आगे 'डब्ल्यूजे एक्ट' कहा जाएगा) की धारा 2 (डी) के तहत परिभाषित किया गया है। याचिकाकर्ता नोएडा में स्थित है और 'दैनिक जागरण' के नाम और शैली में समाचार पत्र की छपाई के व्यवसाय में लगा हुआ है। इसके अलावा याचिकाकर्ता इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और वेबसाइट आदि के माध्यम से भी खबरों में संलग्न है।

4. दावा किया गया है कि रिट याचिका संख्या 10419 वर्ष 2023 के प्रतिवादी संख्या 1 को याचिकाकर्ता के साथ दिनांक 01.11.2007 से परिवीक्षा आधार पर डिस्पैचर के पद पर नियुक्त किया गया था। इसी तरह छप्पन संदर्भों में अन्य दावेदार भी इसी तरह की क्षमता में कार्यरत थे।

5. तर्क दिया गया है कि केंद्र सरकार ने 'डब्ल्यूजे एक्ट' के अधिदेश के अनुपालन में, 'डब्ल्यूजे एक्ट' की धारा 9 और 13-सी के तहत पत्रकार और गैर-पत्रकार कर्मचारियों के लिए दो वेतन बोर्ड गठित किए। उक्त वेतन बोर्ड ने अपनी सिफारिशें दीं, जिन्हें केंद्र सरकार ने दिनांक 11.11.2011 को अधिसूचित किया। यह तर्क दिया गया है कि मजीठिया वेतन बोर्ड (जिसे आगे 'वेतन बोर्ड' कहा जाएगा) द्वारा की गई सिफारिशों को 1955 के अधिनियम की वैधता के साथ चुनौती दी गई थी, जो सुप्रीम कोर्ट के आदेश दिनांक 07.02.2014 द्वारा निर्णित किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि वेतन बोर्ड द्वारा की गई सिफारिशों के संदर्भ में, उक्त सिफारिशों के पैरा 20-जे में विशेष रूप से निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं:

> 20(जे) संशोधित वेतनमान 1 जुलाई 2010 से सभी कर्मचारियों पर लागू होंगे। हालांकि, यदि कोई कर्मचारी इन सिफारिशों को लागू करने वाले अधिनियम की धारा 12 के तहत सरकारी अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर अपने मौजूदा वेतनमान और मौजूदा परिलब्धियों को बनाए रखने के लिए अपना विकल्प चुनता है, तो वह अपने मौजूदा वेतनमान और ऐसी परिलब्धियों को बनाए रखने का हकदार होगा।

6. यह तर्क दिया गया है कि चूंकि केंद्र सरकार द्वारा वेतन बोर्ड की सिफारिशों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था, इसलिए खंड

20(जे) का प्रावधान भी अधिसूचित हो गया। यह तर्क दिया गया है कि केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित सिफारिशों के पैरा 20(जे) के अधिदेश के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 1 ने अन्य व्यक्तियों के साथ, जो निर्णयों में शामिल हैं, स्वैच्छिक उपक्रम के माध्यम से मौजूदा वेतन और मौजूदा परिलब्धियों को बनाए रखने का विकल्प दिया। यह तर्क दिया गया है कि वेतन बोर्ड के खंड 20(जे) के अनुसार उपक्रम देने के बावजूद, प्रतिवादी संख्या 1 ने 198 व्यक्तियों के समूह के साथ उप श्रम आयुक्त, नई दिल्ली के कार्यालय के समक्ष अधिनियम की धारा 17(1) के तहत दावा दायर किया। चूंकि अधिकार क्षेत्र का मुद्दा अंततः उठा, रिट याचिका संख्या 5606 वर्ष 2016 में पारित दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार, मामलों को नोएडा में अधिकारियों के समक्ष उठाने के लिए भेज दिया गया और उसके बाद धारा 17(1) के तहत नया आवेदन दिनांक 01.02.2018 को उप श्रम आयुक्त, नोएडा के समक्ष प्रतिवादी संख्या 1 (संलग्नक संख्या 7) के संबंध में 36,28,430/- रुपये की राशि का दावा करते हुए दायर किया गया। अन्य कर्मचारियों द्वारा भी इसी तरह के आवेदन दायर किए गए थे। याचिकाकर्ता ने दिनांक 17.04.2018 को धारा 17(1) के तहत उक्त आवेदनों पर अपना उत्तर/आपत्ति (विपक्षी पक्ष संख्या 1 के संबंध में) दायर की।

7. याचिकाकर्ताओं ने कर्मचारियों द्वारा दायर आवेदन पर अपनी आपत्ति दर्ज की और मुख्यतः कर्मचारियों द्वारा स्वैच्छिक उपक्रम के साथ पठित वेतन बोर्ड के खंड 20 (जे) के आधार पर किसी भी राशि का भुगतान करने के अपने दायित्व से इनकार किया। यह भी आपत्ति की गई कि धारा 17 (2) के तहत विवाद पर निर्णय के बिना धारा 17 के तहत कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

8. यह तर्क दिया गया है कि सहायक श्रम आयुक्त (नोएडा) ने दो मुद्दे (संलग्नक संख्या 10) तैयार करके दिनांक 07.08.2018 को एक संदर्भ दिया था। श्रम न्यायालय के सम्मन के जवाब में, याचिकाकर्ता उपस्थित हुए और मामले को दिनांक 01.11.2018 के लिए स्थगित कर दिया गया, जिस तारीख को याचिकाकर्ताओं ने अपनी प्रारंभिक प्रस्तुतियाँ दायर कीं और दोनों पक्षों ने अपनी दलीलों का आदान-प्रदान किया। यह रिकॉर्ड में है कि दिनांक 26.08.2019 को पोषणीयता और क्षेत्राधिकार के संबंध में निम्नलिखित प्रभाव के दो मुद्दे तय किए गए थे:

> i. क्या इस माननीय न्यायालय को औद्योगिक विवाद के वर्तमान मुद्दों पर निर्णय देने का अधिकार है, विशेष रूप से मुद्दा संख्या 2 के संदर्भ में, यदि हां, तो इसका प्रभाव क्या होगा?
>
> ii. क्या दावेदार ने मौजूदा वेतनमान और मौजूदा परिलब्धियों को बनाए रखने के लिए अपने विकल्प का प्रयोग किया था और केंद्र सरकार की अधिसूचना संख्या एसओ532, दिनांक 11.11.2011 के माध्यम से

अधिसूचित मजीठिया वेतन बोर्ड की सिफारिशों के पैरा 20(जे) के तहत अपना उपक्रम दिया है, जैसा कथित है। यदि हां, तो इसका प्रभाव क्या होगा?

9. यह तर्क दिया गया है कि मामले में तय की गई अगली तारीख यानी दिनांक 06.07.2021 को सभी समान मामलों को समेकित कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने मुख्य रूप से इस आधार पर समेकन के आदेश को वापस लेने की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया कि सभी दावों के तथ्य अलग-अलग थे और उन्हें समेकित नहीं किया जा सकता था। यह रिकॉर्ड पर है कि श्रम न्यायालय ने पहले दिनांक 02.03.2021 को एडीजे केस नंबर 584 वर्ष 2018 के एक प्रमुख मामले में अधिकार क्षेत्र के मुद्दे पर फैसला किया था और दिनांक 16.07.2021 के आदेश के माध्यम से श्रम न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र पर तय किए गए मुद्दा नंबर 1 पर फैसला सुनाया गया और दिनांक 02.03.2021 के आदेश का पालन किया। यह तर्क दिया जाता है कि कुल 62 मामलों को समेकित किया गया था और प्रमुख मामले वाद संख्या 584 वर्ष 2018 में दिनांक 01.07.2021 को एक आदेश पारित किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 23212 वर्ष 2021 दायर करके दिनांक 02.03.2021 के आदेश, जिसके द्वारा एडीजे केस संख्या 584 वर्ष 2018 में प्रारंभिक मुद्दे का फैसला किया गया था, को चुनौती दी। इस न्यायालय ने दिनांक 17.09.2021 के आदेश द्वारा वाद संख्या 584 वर्ष 2018 की कार्यवाही पर रोक लगा दी, जिसमें मुख्य रूप से **कस्तूरी एंड संस (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम सालिवतेस्वरन, एआईआर 1958 एससी 507** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का आधार लिया गया। चूंकि मामलों को सहायक श्रम आयुक्त द्वारा समेकित किया गया था, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश को रिकॉर्ड पर लाते हुए एक आवेदन दायर किया और अनुरोध किया कि अन्य मामले जिन्हें प्रमुख केस संख्या 584 वर्ष 2018 के साथ समेकित किया गया था, को भी स्थगित कर दिया जाए, क्योंकि मामला उच्च न्यायालय में विचाराधीन है। उक्त स्थगन आवेदन को दिनांक 06.06.2022 के आदेश द्वारा 10,000/- (दस हजार) रुपये की लागत के साथ खारिज कर दिया गया और मामले की सुनवाई आगे बढ़ाई गई। सहायक श्रम आयुक्त ने दिनांक 11.10.2022 के आदेश द्वारा सभी सत्तावन लंबित मामलों का फैसला किया। उक्त आदेश को चुनौती देते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्र भान गुप्ता द्वारा सहायता प्राप्त श्री संजय कौशल, वरिष्ठ अधिवक्ता और प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री मन मोहन सिंह और श्री निखिल अग्रवाल को सुना गया।

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि वर्तमान रिट याचिका में दिया गया आदेश एक से अधिक कारणों से कानून की दृष्टि में खराब है। उन्होंने सबसे पहले तर्क दिया कि मुख्य मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश

के मद्देनजर, श्रम न्यायालय ने मामलों को तय करके गलती की है जब प्रारंभिक मुद्दा न्यायालय के समक्ष विचाराधीन था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि कर्मचारियों/प्रतिवादी संख्या 1 ने वेतन बोर्ड के खंड 20(जे) के अधिदेश के अनुसार मौजूदा वेतनमान और मौजूदा परिलब्धियों को बनाए रखने के विकल्प को स्वीकार करते हुए एक वचन दिया था और इस प्रकार, वे अधिनियम की धारा 17 के तहत आवेदन दायर करके दावा नहीं उठा सकते थे।

12. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सेवा के लाभ बहुत व्यापक अवधारणा है और इसके दायरे में वेतन और परिलब्धियों के अलावा अन्य लाभों की एक पूरी श्रृंखला शामिल है, उदाहरण के लिए, किसी विशेष क्षेत्र में काम करने के लाभ आदि।

13. तर्कों के दौरान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रबंधन गवाहों द्वारा दिए गए बयानों और प्रति परीक्षा की तरफ मेरा ध्यान ले जाते हुए तर्क दिया कि यह सुस्थापित है कि प्रतिवादियों और इसी तरह के अन्य व्यक्तियों ने वेतन बोर्ड के खंड 20 (जे) के तहत मौजूदा वेतनमान, मौजूदा परिलब्धियों और सेवा के लाभों को यथावत बनाए रखने को स्वेच्छा से स्वीकार किया था और इस प्रकार, रिकॉर्ड पर भारी सबूतों के मद्देनजर, श्रम न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के माध्यम से राहत देने में गलती की है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती के संबंध में निर्णय के बाद, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक अवमानना याचिका दायर की गई थी और उक्त अवमानना याचिका में, एक स्टेटस रिपोर्ट आगे भेजी गई थी, जिसने इंगित किया गया था कि अधिकांश व्यक्तियों ने वेतन बोर्ड के खंड 20 (जे) के अनुपालन में मौजूदा परिलब्धियों को स्वीकार किया था।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 सहित प्रतिवादियों द्वारा चुने गए विकल्प की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा किए गए दावे के साथ-साथ, उन्होंने दावों को स्पष्ट और परिमाणित किए बिना वेतन बोर्ड द्वारा की गई सिफारिशों से पहले की अवधि के लिए धारा 13-ए के अधिदेश के अनुसार अंतरिम वेतन के लाभों का भी दावा किया है। उन्होंने अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है और विशेष रूप से धारा 17 का आधार लेते हुए तर्क दिया है कि धारा 17 के तहत दावा उचित आवेदन दायर करके किया जा सकता है, हालांकि, यदि कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो उसे अधिनियम की धारा 17(2) के तहत श्रम न्यायालय को भेजा जाना चाहिए, जिसे तथ्य का मुद्दा होने के नाते, कानून की प्रक्रिया का पालन करने और सबूतों और जिरह के सार को देखने के बाद फैसला करना है, जो याचिकाकर्ता के अनुसार, उस तरीके से नहीं किया गया है जिस तरह से श्रम न्यायालय ने इस मुद्दे पर फैसला किया है। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 20(जे) में निहित अनिवार्य खंड के अनुसार वचनबद्धता के संबंध में मुद्दा पवित्र है तथा दोनों पक्षों के बीच बाध्यकारी है और एक बार उक्त विकल्प का प्रयोग कर लेने के बाद, कर्मचारी के लिए अधिनियम की धारा 17 का सहारा लेना संभव नहीं है।

अनुवादित

15. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि श्रम न्यायालय ने समाचार पत्र प्रतिष्ठान को, जिसे अधिनियम की धारा 2(डी) के तहत विशेष रूप से परिभाषित किया गया है, कंपनी के रूप में मानने में गलती की है और कंपनी की वित्तीय स्थिति के संबंध में इंटरनेट से डाउनलोड किए गए दस्तावेजों के आधार पर, इसने कंपनी के वित्तीय आंकड़ों को समाचार पत्र प्रतिष्ठान का माना है और इस प्रकार, कंपनी के सकल राजस्व के आधार पर समाचार पत्र प्रतिष्ठान को श्रेणी-I में मानकर और समाचार पत्र प्रतिष्ठान, जो कंपनी से अलग और विशिष्ट है, के राजस्व को अनदेखा करते हुए आदेश पारित करने में गलती की है। उनका तर्क है कि हालांकि समाचार पत्र प्रतिष्ठान यानी याचिकाकर्ता एक छत्र कंपनी के तहत काम करता है, लेकिन कंपनी और प्रतिष्ठान के बीच अंतर है।

16. दूसरी ओर, प्रतिवादियों की ओर से पेश हुए श्री निखिल अग्रवाल ने तर्क दिया कि इस न्यायालय ने रिट याचिका में आदेश पारित करते समय केवल एडीजे केस संख्या 584 वर्ष 2018 की आगे की कार्यवाही पर रोक लगाई थी और इस प्रकार, अन्य मामलों का फैसला करने में सहायक श्रम आयुक्त द्वारा कोई कानूनी त्रुटि नहीं की गई है। उन्होंने तर्क दिया कि स्थगन आवेदन खारिज होने के बाद याचिकाकर्ता को दिनांक 17.09.2021 के स्थगन आदेश के दायरे को अन्य मामलों तक बढ़ाने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का अधिकार था, जो याचिकाकर्ता को ही सबसे अच्छी तरह से ज्ञात कारणों से, नहीं किया गया। उन्होंने तर्क दिया कि वेतन बोर्ड के खंड 20(जे) की प्रयोज्यता के संबंध में मुद्दे की व्याख्या इस न्यायालय द्वारा अधिनियम के प्रावधानों और विशेष रूप से अधिनियम की धारा 16 को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि एक बार जब भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर रिट याचिका में आदेश को चुनौती दिनांक 07.12.2014 को **एबीपी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य; (2014) 3 एससीसी 327** में खारिज कर दी गई, तो अधिनियम के दायरे और इरादे को लागू किया जाना था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि रिट याचिका को खारिज करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं निर्देश दिया था कि मार्च 2014 तक के बकाया के साथ, संशोधित/निर्धारित वेतन दिनांक 11.11.2021 अर्थात जिस तारीख को बोर्ड की सिफारिशें अधिसूचित की गई थीं, एक वर्ष की अवधि के भीतर चार समान किस्तों में देय होगा, जबकि प्रतिवादी ऐसा करने में विफल रहे।

17. उन्होंने आगे तर्क दिया कि अवमानना याचिका (**अविशेक राजा बनाम संजय गुप्ता (2017) 8 एससीसी 435**) में टिप्पणियों के संबंध में लिया गया आधार याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं पैराग्राफ संख्या 24 में कहा है कि इस मुद्दे पर निर्णय नहीं लिया जा रहा है।

18. समाचार पत्र प्रतिष्ठान की परिभाषा के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क के जवाब में, उन्होंने तर्क दिया कि धारा 2(डी) की परिभाषा तथा अधिनियम की अनुसूची के साथ

पठित वेतन बोर्ड के खंड 11 के तहत स्पष्ट किए गए अनुसार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क अस्वीकार किए जाने योग्य हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में, श्रम न्यायालय ने कंपनी के राजस्व को डाउनलोड करने में कोई गलती नहीं की है क्योंकि याचिकाकर्ता ने श्रम न्यायालय के समक्ष कभी भी इसके विरोध में कोई कागजात प्रस्तुत नहीं किए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यदि याचिकाकर्ता के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो अधिनियम के अधिनियमन का पूरा उद्देश्य विफल हो जाएगा। उन्होंने तर्क दिया कि वेतन बोर्ड अधिनियम के खंड 20(जे) को अधिनियम की धारा 13 और 16 के साथ सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए, जो विशेष रूप से इस बात पर रोक लगाता है कि किसी भी स्थिति में, समाचार पत्र कर्मचारी का वेतन अधिनियम की धारा 12 के अनुसार केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित बोर्ड की सिफारिश से कम नहीं हो सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 17(1) और 17(2) के तहत शक्ति के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क खारिज करने योग्य है क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने स्वयं स्पष्ट किया था कि वेतन बोर्ड की सिफारिशों को लागू न करने के मामले से अधिनियम की धारा 17 के अधिदेश के अनुसार निपटा जाना चाहिए। उक्त दलीलों के समर्थन में, वह रिट याचिका संख्या 18372 वर्ष 2018 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले का आधार लेते हैं।

19. पक्षों के बीच ऊपर प्रस्तुत की गई और दर्ज की गई दलीलों के मद्देनजर, जो बात सामने आती है वह यह है, कि याचिकाकर्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि एक बार वेतन बोर्ड का खंड 20(जे) अस्तित्व में आ गया और उसे इस रूप में अधिसूचित कर दिया गया तो कर्मचारियों द्वारा दिए गए वचन के अलावा कोई भी दावा स्वीकार्य नहीं होगा। मैं निर्णय लेने के तरीके के संबंध में अन्य मुद्दों पर जाने से पहले इस मुद्दे को तय करने का प्रस्ताव करता हूं।

20. यद्यपि 1955 का अधिनियम अब व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थिति संहिता, 2020 की धारा 143(2) के आधार पर निरस्त कर दिया गया है, फिर भी यह संहिता, 2020 की धारा 143(2) के आधार पर अधिनियम से उत्पन्न दायित्वों से निपटना जारी रखेगा। डब्लू जे एक्ट का संक्षिप्त विधायी इतिहास यह है कि उक्त अधिनियम वर्ष 1955 में 20 दिसंबर, 1955 को अधिनियम संख्या 45, 1955 के रूप में समाचार पत्र प्रतिष्ठान के साथ काम करने वाले श्रमजीवी पत्रकारों को लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। अधिनियम के तहत परिकल्पित लाभ में धारा 4 से 13 और 13-ए के तहत निर्दिष्ट लाभ शामिल थे। इसके बाद, अधिनियम को संशोधन अधिनियम संख्या 70 वर्ष 1974 के आधार पर संशोधित किया गया, जिसके तहत पहली बार केंद्र सरकार ने समाचार पत्र प्रतिष्ठान के गैर-श्रमिक कर्मचारी पत्रकारों के पक्ष में प्रवाहित हो सकने वाले लाभ को उसके दायरे में लाने के लिए अधिनियम में संशोधन किया। संशोधन अधिनियम ने समाचार पत्र प्रतिष्ठान के अंतर्गत कार्यरत पत्रकारों के संबंध में 1955 अधिनियम में दिए गए सभी लाभों को शामिल

नहीं किया तथा गैर-कार्यरत पत्रकारों को मिलने वाले लाभों को अध्याय-2ए में निर्दिष्ट सीमा तक सीमित कर दिया। इस प्रकार, समाचार पत्र प्रतिष्ठान के कार्यरत पत्रकारों तथा गैर-पत्रकार कर्मचारियों को मिलने वाले लाभों के बीच अधिनियम में स्पष्ट अंतर है। अध्याय-2-ए को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि गैर-कार्यरत पत्रकारों को दिए जाने वाले लाभों में गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारी के संबंध में वेतन निर्धारण हेतु बोर्ड के गठन के माध्यम से वेतन की दर निर्धारित करने या संशोधन करने का लाभ शामिल है। धारा 4, 5, 5ए, 6 तथा 7 से 9 के अंतर्गत उल्लिखित अन्य लाभ गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों को नहीं दिए गए।

21. धारा 2-ए में बोर्ड का अर्थ कार्यरत पत्रकारों के संबंध में धारा 9 के अंतर्गत गठित बोर्ड तथा गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों के रूप में कार्यरत कर्मचारियों के संबंध में धारा 13-सी के अंतर्गत गठित वेतन बोर्ड है। वर्तमान मामले में, हमारा सरोकार गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों के संबंध में वेतन बोर्ड की सिफारिशों से है।

22. धारा 2(घ) में 'समाचारपत्र स्थापन' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"(घ) समाचार-स्थापन में एक या अधिक समाचारपत्रों के उत्पादन या प्रकाशन के लिए अथवा कोई समाचार एजेन्सी या सिंडिकेट चलाने के लिए किसी व्यक्ति का व्यक्तियों के निकाय के, चाहे वह निगमित हो या नहीं, नियन्त्रण के अधीन कोई स्थापन अभिप्रेत है **और इसके अन्तर्गत ऐसे समाचारपत्र स्थापन भी हैं जो अनुसूची के अधीन एक स्थापन के रूप में विनिर्दिष्ट है**।

स्पष्टीकरण इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए,

(क) समाचारपत्र-स्थापनों के विभिन्न विभागों, शाखाओं और केन्द्रों को उनका भाग समझा जाएगा,

(ख) मुद्रणालय समाचारपत्र-स्थापन समझा जाएगा, यदि उसका मुख्य कारोबार समाचारपत्र मुद्रित करना है।"

अधिनियम की अनुसूची आगे स्पष्ट करती है कि सामान्य नियंत्रण के तहत 'समाचार पत्र स्थापन' को अधिनियम के तहत परिभाषित 'समाचार पत्र स्थापन' के रूप में कैसे माना जाए।

23. धारा 2(ङङ) में 'मजदूरी' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :

"(ङङ) "मजदूरी" से अभिप्रेत है धन के रूप में अभिव्यक्त किए जाने योग्य सभी ऐसे पारिश्रमिक, जो नियोजन के अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधनों के पूरा किए जाने की दशा में समाचारपत्र कर्मचारी को उसके नियोजन या ऐसे नियोजन में किए गए कार्य की बाबत संदेय होंगे, और इसके अंतर्गत निम्नलिखित हैं-

(i) ऐसे भत्ते (जिनके अंतर्गत मंहगाई भत्ता भी है), जिनका समाचारपत्र कर्मचारी तत्समय हकदार है;

(ii) किसी गृह-वास सुविधा या बिजली, पानी, चिकित्सीय परिचर्या या अन्य सुख-सुविधा के प्रदाय या किसी सेवा का या खाद्यान्न या अन्य वस्तुओं के किसी रियायती प्रदाय का मूल्य;

(iii) कोई यात्रा रियायत,

किंतु इसके अंतर्गत निम्नलिखित नहीं है-

(क) कोई बोनस;

(ख) नियोजक द्वारा तत्समय प्रवृत किसी विधि के अधीन किसी पेंशन निधि या भविष्य निधि में या समाचारपत्र कर्मचारी के फायदे के लिए संदत्त या संदेय कोई अभिदायः

(ग) उसकी सेवा की समाप्ति पर संदेय कोई उपदान ।

स्पष्टीकरण इस खण्ड में, "मजदूरी" शब्द के अंतर्गत समय-समय पर नियत किए गए किसी भी वर्णन के नए भत्ते यदि कोई हों, होंगे :

24. धारा 13-सी, केंद्रीय सरकार द्वारा धारा 13-सी के तहत निर्दिष्ट व्यक्तियों से मिलकर गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों के संबंध में वेतन बोर्ड के गठन का आदेश देती है। धारा 13-डी के आधार पर, धारा 10 से धारा 13-ए के प्रावधान धारा 13-सी के तहत गठित बोर्ड पर और उसके संबंध में लागू किए गए हैं। धारा 12 केंद्र सरकार को अधिनियम की धारा 13-सी के तहत गठित वेतन बोर्ड की सिफारिशों को लागू करने की शक्ति प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 13, जो धारा 13-डी के आधार पर गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों पर लागू होती है, निम्नानुसार प्रावधान करती है:

13. **श्रमजीवी पत्रकारों का आदेश में विनिर्दिष्ट दरों से अन्यून दरों पर मजदूरी का हकदार होना-** धारा 12 के अधीन केन्द्रीय सरकार के आदेश के प्रवर्तन में आने पर, प्रत्येक श्रमजीवी पत्रकार **इस बात का हकदार होगा कि उसे उनके नियोजक द्वारा उस दर पर मजदूरी दी जाए जो आदेश में विनिर्दिष्ट मजदूरी की दर से किसी भी दशा में कम न होगी।**

25. धारा 13-ए, जो भी गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों पर लागू है, सरकार को तब तक अंतरिम मजदूरी तय करने की शक्ति प्रदान करती है जब तक कि अधिनियम की धारा 12 के तहत वेतन बोर्ड की सिफारिशें अधिसूचित नहीं हो जातीं।

26. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अधिनियम की धारा 16 इस अधिनियम के साथ असंगत कानूनों और समझौतों के संबंध में स्थिति को और स्पष्ट करती है। धारा 16 को नीचे उद्धृत किया गया है:

16. **इस अधिनियम से असंगत विधियों और करारों का प्रभाव** (1) इस अधिनियम के उपबन्ध, किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व या पश्चात् किए गए किसी अधिनिर्णय, करार या सेवा संविदा के निबंधनों में अन्तर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे :

परन्तु जहां समाचारपत्र कर्मचारी ऐसे किसी अधिनिर्णय, करार या सेवा संविदा के अधीन या अन्यथा, किसी विषय के संबंध में ऐसे फायदों का हकदार है जो उसके लिए उनसे अधिक अनुकूल हैं जिनका वह इस अधिनियम के अधीन हकदार है तो वह समाचारपत्र कर्मचारी उस विषय के संबंध में उन अधिक अनुकूल फायदों का इस बात के होते हुए भी हकदार बना रहेगा कि वह अन्य विषयों के संबंध में फायदे इस अधिनियम के अधीन प्राप्त करता है।

(2) इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी समाचारपत्र कर्मचारी को किसी विषय के संबंध में उसके ऐसे अधिकार या विशेषाधिकार जो उसके लिए उनसे अधिक अनुकूल हैं जिनका वह इस अधिनियम के अधीन हकदार है, अनुदत्त कराने के लिए किसी नियोजक के साथ कोई करार करने से रोकती है।

27. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अधिनियम के अनुसार गैर-पत्रकार समाचारपत्र कर्मचारियों के पक्ष में क्या लाभ प्रवाहित होते हैं, जो केवल 'मजदूरी' हैं क्योंकि अधिनियम संख्या 60 वर्ष 1974 में संशोधन करके डाला गया अध्याय II-A केवल मजदूरी की सुरक्षा देता है, और श्रमजीवी पत्रकारों के पक्ष में धारा 4, 5, 6 और 7 से प्रवाहित होने वाले अन्य लाभ गैर-पत्रकार समाचारपत्र कर्मचारियों को नहीं दिए गए हैं।

28. अधिनियम की धारा 13 और 16 को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि कानून के प्रावधानों के साथ असंगत कोई भी समझौता या सेवा का अनुबंध पक्षों के बीच अधिकारों को नियंत्रित नहीं करेगा। वास्तव में, धारा 16 (1) का प्रावधान विशेष रूप से स्पष्ट करता है कि जो नियम और शर्तें अधिक अनुकूल हैं, वे समाचारपत्र प्रतिष्ठान के कर्मचारियों के अधिकारों को नियंत्रित करना जारी रखेंगी। धारा 16(2) के आधार पर आशय को और स्पष्ट किया गया है, जो कर्मचारी को किसी भी मामले के संबंध में उसे अधिकार या विशेषाधिकार प्रदान करने के लिए करार करने की शक्ति प्रदान करता है, जो कर्मचारी के लिए अधिनियम के तहत निर्धारित अधिकार या विशेषाधिकार से अधिक अनुकूल हैं।

29. गैर पत्रकार कर्मचारियों के संबंध में अधिनियम की धारा 13 और 16 के दो प्रावधानों के सामंजस्यपूर्ण विचार पर, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अधिनियम से मिलने वाले लाभ, अर्थात अधिनियम के तहत परिभाषित 'मजदूरी' को केवल तभी समझौते

द्वारा संशोधित किया जा सकता है जब वह अधिनियम के तहत निर्धारित वेतन से बेहतर हो और किसी भी स्थिति में, कोई भी समझौता जो बोर्ड द्वारा अधिसूचित और निर्धारित वेतन या परिलब्धियों से कम लाभ निर्धारित करता है, अधिनियम की धारा 13 के आधार पर वर्जित है।वास्तव में मजीठिया वेतन बोर्ड के प्रावधानों ने खुद ही खंड 20 के स्पष्टीकरण में 'मौजूदा परिलब्धियों' शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है, जो इस प्रकार है:

(ञ) संशोधित वेतनमान 1 जुलाई 2010 से सभी कर्मचारियों पर लागू होंगे। तथापि, यदि कोई कर्मचारी अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत इन सिफारिशों को लागू करने वाली सरकारी अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि से तीन सप्ताह के भीतर अपने विद्यमान वेतनमान और "विद्यमान परिलब्धियों" को बनाए रखने के लिए अपना विकल्प चुनता है, तो वह अपने विद्यमान वेतनमान और ऐसी परिलब्धियों को बनाए रखने का हकदार होगा।

स्पष्टीकरण:

(1) किसी कर्मचारी की "मौजूदा परिलब्धियों" का अर्थ उसका मूल वेतन होगा, जो औद्योगिक श्रमिकों के लिए अखिल भारतीय औसत उपभोक्ता मूल्य सूचकांक संख्या (आधार 2001-100) पर जुलाई 2009 से जून 2010 की अवधि के दौरान 167 पर परिवर्तनशील महंगाई भत्ता, जो 4.53 के परिवर्तन कारक द्वारा सीपीआई-आईडब्ल्यू (आधार 1982-100) में परिवर्तनीय है, और अधिसूचना 5.0, संख्या 2524 (ई) और 2525 (ई) दिनांक 25 अगस्त 2008 के द्वारा स्वीकृत मूल वेतन का 30% की अंतरिम राहत, जो क्रमशः श्रमजीवी पत्रकारों और गैर-पत्रकार समाचार पत्र कर्मचारियों के लिए लागू है।

(2) किसी कर्मचारी की "अतिरिक्त परिलब्धियों" का अर्थ होगा समाचार पत्र प्रतिष्ठानों द्वारा सामूहिक सौदेबाजी, समझौते या पुरस्कार के परिणामस्वरूप मूल वेतन, महंगाई भत्ते या अंतरिम राहत में वृद्धि के रूप में प्रदान की गई खंड (1) में वर्णित "मौजूदा परिलब्धियों" के अलावा अन्य परिलब्धियां।

(3) किसी कर्मचारी के "अतिरिक्त भत्ते" का अर्थ किसी भी मासिक भुगतान से होगा, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए, जो किसी विशिष्ट उद्देश्य से संबंधित न हो और न ही वेतन या महंगाई भत्ते के किसी संशोधन के विरुद्ध

समायोजित किए जाने के लिए सहमत हो।"

30. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक बार जब प्रतिवादियों ने वचन देकर मौजूदा वेतन, परिलब्धियां और लाभ स्वीकार कर लिए हैं, तो उन्हें अधिनियम की धारा 17 के तहत दावा करने से रोक दिया जाता है, यह केवल इस कारण से खारिज किया जा सकता है कि वेतन बोर्ड के खंड 20(जे) को अधिनियम की धारा 13 और धारा 16 के साथ पठित खंड 20(जे) के तहत स्पष्टीकरण के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए।

31. यह सुस्थापित है कि अधिनियम, जो समाचार पत्र प्रतिष्ठान के कर्मचारियों को उचित कार्य स्थितियां देने के उद्देश्य से अधिनियमित सामाजिक लाभकारी कानून का एक हिस्सा है, की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए, जिससे वह उद्देश्य प्राप्त हो सके जिसके लिए अधिनियम बनाया गया था। धारा 13 और 16 के साथ खंड 20(जे) के प्रावधानों की सामंजस्यपूर्ण ढंग से व्याख्या की जानी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि इनमें से कोई भी प्रावधान निष्प्रभावी न हो जाए।

32. सामंजस्यपूर्ण निर्माण का नियम, जिसपर **आयकर आयुक्त बनाम मेसर्स हिंदुस्तान बल्क कैरियर (2003) 3 एससीसी 57** के प्रमुख मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया, ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए :

14. ऐसी रचना से बचना चाहिए जो विधि को निरर्थक बना दे। विधि या उसमें कोई अधिनियमित करने वाला प्रावधान इस तरह से व्याख्यायित किया जाना चाहिए कि वह विधि के सिद्धांत पर प्रभावी और क्रियाशील हो, अर्थात लिखित संसाधनों पर उदार रचना की जानी चाहिए, ताकि यदि संभव हो तो उन्हें बनाए रखा जा सके और पक्षों की मंशा को प्रभावी बनाया जा सके।

15. विधि को व्यावहारिक होने के लिए बनाया गया है और न्यायालय द्वारा उसकी व्याख्या उस उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए होनी चाहिए, जब तक कि महत्वपूर्ण चूक या स्पष्ट निर्देश उस लक्ष्य को अप्राप्य न बना दें।

16. न्यायालयों को उस रचना को अस्वीकार करना होगा जो विधानमंडल के स्पष्ट इरादे की अवहेलना करेगी, भले ही इस्तेमाल की गई भाषा में कुछ अशुद्धि हो।

17. यदि दो व्याख्याओं के बीच चयन करना हो, जिनमें से संकीर्ण व्याख्या विधान के स्पष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल होगी, तो हमें ऐसी व्याख्या से बचना चाहिए जो विधान को निरर्थक बना दे, तथा इसके बजाय हमें अधिक साहसिक व्याख्या को स्वीकार करना चाहिए, जो इस दृष्टिकोण पर आधारित हो कि संसद केवल प्रभावी परिणाम लाने के उद्देश्य से विधान बनाएगी।

18. कानून को संपूर्ण रूप में पढ़ा जाना चाहिए तथा अधिनियम के एक प्रावधान की व्याख्या उसी अधिनियम के अन्य प्रावधानों के संदर्भ में की जानी चाहिए, ताकि संपूर्ण कानून का सुसंगत अधिनियमन हो सके।

19. न्यायालय को अपना ध्यान केवल व्याख्या किए जाने वाले खंडों पर ही नहीं, बल्कि संपूर्ण कानून पर केंद्रित करके विधायिका की मंशा का पता लगाना चाहिए; उसे खंड की तुलना कानून के अन्य भागों तथा उस परिवेश से करनी चाहिए जिसमें व्याख्या किए जाने वाले खंड आता है। (देखें आर.एस. रघुनाथ बनाम कर्नाटक राज्य [(1992) 1 एससीसी 335: 1992 एससीसी (एल एंड एस) 286: (1992) 19 एटीसी 507: एआईआर 1992 एससी 81]।) इस तरह के निर्माण में किसी खंड के भीतर या एक ही क़ानून के दो विभिन्न खंडों या प्रावधानों के बीच किसी भी असंगति या प्रतिकूलता से बचने का गुण है। एक ही अधिनियम के दो खंडों के बीच सीधे टकराव से बचना न्यायालय का कर्तव्य है।

20.जब भी ऐसा करना संभव हो, तो विरोधाभासी प्रतीत होने वाले प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि उनमें सामंजस्य हो। यह आसानी से नहीं मान लेना चाहिए कि संसद ने एक हाथ से जो दिया वह दूसरे हाथ से ले लिया।

21. क़ानून की एक धारा के प्रावधानों का उपयोग दूसरे धारा के प्रावधानों को हराने के लिए नहीं किया जा सकता जब तक कि उनके बीच सामंजस्य स्थापित करना असंभव न हो। इस प्रकार ऐसा निर्माण जो प्रावधानों में से किसी एक को "बेकार का सामान" या "मृत पत्र" बना देता है, सामंजस्यपूर्ण निर्माण नहीं है। सामंजस्यपूर्ण होना नष्ट करना नहीं है।"

33. खंड 20(जे) के प्रावधानों के आलोक में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क, यदि स्वीकार कर लिया जाता है, तो पूरे अधिनियम को अयोग्य बना देगा और यदि उक्त तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह अधिनियम की धारा 12, 13, 13-सी, 13-डी और धारा 16 के अधिदेश का स्पष्ट उल्लंघन होगा।

34. वर्तमान मामले में कर्मचारियों द्वारा धारा 17 के तहत उठाई गई शिकायतों को वेतन बोर्ड द्वारा निर्धारित लाभों की मात्रा के विवादों के संबंध में धारा 17(2) के तहत न्यायनिर्णयन के लिए भेजा जा सकता है। याचिकाकर्ता का यह बचाव कि कर्मचारियों द्वारा दिया गया वचन वेतन बोर्ड की सिफारिशों को दरकिनार कर देगा, केवल तभी स्वीकार किया जा सकता है जब यह प्रथम दृष्टया प्रदर्शित किया जा सके कि वचन के अनुसार कर्मचारियों को दिया जा रहा 'वेतन और परिलब्धियां' (केवल) वेतन बोर्ड की अधिसूचित सिफारिशों के तहत निर्धारित और देय राशि से अधिक है। याचिकाकर्ताओं द्वारा ऐसा कोई बचाव लिया जाना प्रतीत नहीं होता है।

35. यह भी समझ से परे है कि यदि कर्मचारी को वेतन बोर्ड द्वारा निर्धारित राशि से अधिक राशि मिल रही है तो वह धारा 17 के तहत

कार्यवाही शुरू करके वेतन और परिलब्धियों के लिए आंदोलन क्यों करेगा, यह भी उतना ही समझ से परे है कि कोई समाचार पत्र प्रतिष्ठान ऐसी कार्यवाही का विरोध क्यों करेगा, यदि उन्हें लगता है कि किसी कर्मचारी को समझौते के तहत दिया गया वेतन और परिलब्धियां बोर्ड की सिफारिशों से अधिक हैं।

36. पक्षों के बीच विवाद का एकमात्र मुद्दा जो बोधगम्य है, वह यह है कि यदि वेतन बोर्ड द्वारा निर्धारित समाचार पत्र प्रतिष्ठान की श्रेणी गलत तरीके से निर्धारित की जाती है, तो इससे प्रतिकूल वित्तीय प्रभाव हो सकता है। वर्तमान मामले में अधिनियम के तहत समाचार पत्र प्रतिष्ठान की परिभाषा को अधिनियम के स्पष्टीकरण और अनुसूची के साथ पढ़ने पर यह व्याख्या करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि यह याचिकाकर्ता कंपनी है जो इस मामले के प्रयोजनों के लिए 'समाचार पत्र प्रतिष्ठान' है। चूंकि इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता कंपनी का राजस्व एक हजार करोड़ रुपये से अधिक है, इसलिए 'समाचार पत्र प्रतिष्ठान' के रूप में याचिकाकर्ता वेतन बोर्ड के खंड 6 के तहत प्रदान किए गए वर्गीकरण मानदंड के खंड-I के अंतर्गत आएगा।

37. ऊपर दर्ज प्रावधानों की व्याख्या और वर्णित तथ्यों के मद्देनजर, मुझे प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं लगती है, जो दिनांक 04.01.2023 का आदेश है, दोनों ही रिट याचिकाओं में योग्यता की कमी है और उन्हें **खारिज किया जाता है**। दावों के संबंध में, जो कि रिट याचिका संख्या 23212 वर्ष 2021 में विषय वस्तु है, आगे की कार्रवाई शीघ्रता से की जाएगी।

38. प्रतिवादी द्वारा वहन की गई मुकदमेबाजी की लागत, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किया जाना है, 25,000/- (पच्चीस हजार) रुपये आंकी जाती है, जिसे याचिकाकर्ता कंपनी द्वारा रिट-सी संख्या 10419 वर्ष 2023 के प्रतिवादी संख्या 1 को भुगतान किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 1191

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल,

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला,

रिट-सी संख्या 30088/2022

श्रीमती सबिता शर्मा एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राज नारायण तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री आलोक मिश्रा, श्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह

ए. अधिग्रहण कानून- भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013-धारा 24 (1) (ए) - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894-धारा 11- मुआवजा- बाजार मूल्य के निर्धारण की तिथि -चाहे वह 2013 के अधिनियम के लागू होने की तिथि अर्थात 1.1.2014 हो या

अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि हो- अनुतोष - प्रासंगिकता - माना जाता है कि जब अधिनियम, 1894 की धारा 11 के तहत कोई पंचाट नहीं बनाया गया है, मुआवजे के निर्धारण से संबंधित आरएफसीटीएलएआरआर अधिनियम, 2013 के सभी प्रावधान लागू होंगे- ऐसे मामले में जहां आरएफसीटीएलएआरआर अधिनियम, 2013 के प्रारंभ होने से पहले धारा 11 के तहत अनुतोष प्रदान किया गया, तो सभी बाद की कार्यवाही अधिनियम, 1894 के अनुसार संचालित होगी। (पैरा 16 और 17)

बी. अधिग्रहण कानून- भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013- धारा 113- अनुतोष- मुआवजे की गणना- बाजार मूल्य के निर्धारण की तिथि- केन्द्र सरकार द्वारा जारी निर्देश, राज्य सरकार पर किस हद तक बाध्यकारी है - माना गया कि अधिनियम, 2013 की धारा 113 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा जारी निर्देश वैधानिक बल रखते हैं और राज्य सरकार पर बाध्यकारी हैं - दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 के डी.ओ. पत्र की वैधानिक प्रकृति को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि धारा 24(1)(ए) के तहत बाजार मूल्य की गणना के लिए संदर्भ तिथि 01.01.2014 होनी चाहिए- उच्च न्यायालय ने नया पंचाट बनाकर 01.01.2024 को भूमि का बाजार मूल्य फिर से निर्धारित करने का निर्देश जारी किया। (पैरा 21, 22, 25 और 29)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल व अन्य; (2020) 8 एससीसी 129
2. रिट सी संख्या 44731/2016; होरी लाल बनाम यूपी राज्य व अन्य, 09.03.2017 को निर्णय हुआ
3. रिट सी संख्या 15804/2016; प्रहलाद सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य
4. रिट सी संख्या 44720/2016; कृष्णा औतार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।
5. रिट सी संख्या 60276/2015; ईशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसाइटी थ्रू डायरेक्टर बनाम सेंट ऑफ यूपी व अन्य, दिनांक 09.05.2017 को निर्णीत
6. विशेष अपील अनुमति (सी) संख्या 17660/2017; गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम ईशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसायटी एवं अन्य, दिनांक 19.7.2017 को निर्णयित
7. विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 26271/2017; मुरादाबाद विकास प्राधिकरण बनाम कृष्ण औतार एवं अन्य, दिनांक 14.11.2017 को निर्णीत
8. सिविल अपील संख्या 1462/2019; होरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, दिनांक 05.02.2019 को निर्णीत
9. सिविल अपील संख्या 4821/2016 में आईए संख्या 4/2016; अलीगढ़ विकास प्राधिकरण बनाम मेघ सिंह एवं अन्य, दिनांक 12.02.2019 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राज नारायण तिवारी और राज्य प्रत्यर्थी की

ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अम्बरीश शुक्ला को सुना गया। विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा ने प्रत्यर्थी-नोएडा की ओर से नोटिस प्राप्त कर लिया है।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता द्वारा, जो रघुनाथ राय शर्मा पुत्र श्री मुंशीराम शर्मा, निवासी 85 मॉडल न्यू कॉलोनी, फिल्मिस्तान, नई दिल्ली के उत्तराधिकारी और कानूनी प्रतिनिधि हैं, राजस्व ग्राम गेझा तिलपताबाद, परगना और तहसील दादरी, जिला गौतमबुद्ध नगर में स्थित खसरा संख्या 39एम रकबा 0-14-0 बीघा के मूल खातेदार, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत अधिग्रहीत भूमि पर भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के तहत क्रमशः दिनांक 13.1.1995 और 21.9.1995 की अधिसूचनाओं के तहत निम्नलिखित राहत की मांग की गई है: -

"(i) एक रिट, आदेश या निर्देश जो परमादेश की प्रकृति का है, प्रत्यर्थी अधिकारियों को आदेश देता है कि वे वर्ष 1995 में अधिग्रहित भूमि, खसरा संख्या 39एम रकबा-0-14-0 बीघा, ग्राम गेझा तिलपताबाद, परगना, तहसील दादरी, जिला गौतम बुद्ध नगर में स्थित, याचिकाकर्ता के पूर्वजों रघुनाथ राय शर्मा से संबंधित है, के लिए मुआवजे के आदेश का भुगतान निर्धारित अवधि के भीतर भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 की धारा - 24 (1) (क) के प्रकाश में प्रचलित बाजार दर के अनुसार करें, अन्यथा उचित क्षतिपूर्ति के साथ संबंधित भूमि को तुरंत खाली कर दें।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्धारित अवधि के भीतर दिनांक 18.2.2021 के लंबित अभ्यावेदन पर विचार करने और निर्णय लेने का आदेश और निर्देश दिया गया हो।

(iii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और उचित समझे।
(iv) इस याचिका में याचिकाकर्ता की आदेश लागत जारी करें।"

3. रिट याचिका में दावा किया गया है कि अधिग्रहित भूमि के 44.312 एकड़ क्षेत्र का प्रतीकात्मक कब्जा 6.2.1998 को लिया गया था, तथापि, शेष 76.848 एकड़ क्षेत्र पर कब्जा महर्षि वेद विज्ञान विद्यापीठ और अन्य काश्तकारों द्वारा दायर रिट याचिकाओं के लंबित रहने के कारण नहीं लिया जा सका, जिस पर इस न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश दिया गया था। रिट याचिकाएं 7.4.2004 को खारिज कर दी गईं और विशेष अनुमति याचिका संख्या 21130/2004 और 21143/2004 दिनांक 21.4.2006 को खारिज कर दी गईं। विशेष अनुमति याचिकाओं के खारिज होने के बाद 31.5.2006 को 76.848 एकड़ अधिग्रहित भूमि का कब्जा ज्ञापन तैयार किया गया, जिसके तहत खसरा संख्या 39 रकबा 2-9-0 बीघा का कब्जा ले लिया गया। कब्जे संबंधी ज्ञापन की एक प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक "4" के रूप में संलग्न है।

4. रिट याचिका में कहा गया है कि खसरा संख्या 39 रकबा 1-15-0 बीघा (0.4430

हेक्टेयर) महर्षि वेद विज्ञान विद्यापीठ के नाम पर दर्ज है तथा खसरा संख्या 39एम रकबा 0-14-0 बीघा इस मामले में याचिकाकर्ताओं के हित पूर्ववर्ती रघुनाथ राय शर्मा के नाम पर दर्ज है। महर्षि वेद विज्ञान विद्यापीठ के नाम से खसरा संख्या 39 के राजस्व रिकार्ड की प्रतिलिपि रिट याचिका के अनुलग्नक '5' के रूप में संलग्न है। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती रघुनाथ राय शर्मा के नाम पर खसरा संख्या 39एम की प्रविष्टि का रिकॉर्ड रिट याचिका के साथ संलग्न नहीं किया गया है। 5. जैसा भी हो, वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया विवाद खसरा संख्या 39एम रकबा 0-14-0, अर्थात 0.1771 हेक्टेयर के मुआवजे के निर्धारण के संबंध में है।

6. रिट याचिका प्रस्तुत होने पर, अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर के हस्ताक्षर के तहत दिनांक 17.12.2022 को विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद को संबोधित विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रदान किए गए लिखित निर्देशों पर, प्रतिवादी-राज्य के रुख को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 10.1.2023 का आदेश पारित किया गया था। लिखित निर्देशों की विषय-वस्तु दिनांक 10.1.2023 के आदेश में उद्धृत की गई है, जो इस प्रकार है:-

"अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर द्वारा दिए गए लिखित निर्देशों में यह दर्शाया गया है कि खसरा संख्या 39 का कुल क्षेत्रफल 2-9-0 बीघा भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के अंतर्गत क्रमशः दिनांक 13.1.1995 और 21.9.1995 के अधिग्रहण अधिसूचनाओं द्वारा अधिग्रहित किया गया था। यह प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है कि अधिग्रहित भूमि का कब्जा 31.5.2006 को नोएडा को सौंप दिया गया है। अधिग्रहण के समय, खसरा संख्या 39, खाता संख्या 306 के रकबा 1-15-0 पर महर्षि वेद विज्ञान पीठ महर्षि गाजियाबाद का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज था, जबकि खसरा संख्या 39, खाता संख्या 372 के शेष रकबा 0-14-0 पर रघुनाथ राय शर्मा पुत्र मुंशी राम शर्मा, निवासी 85 मॉडल नई बस्ती फिल्मिस्तान, नई दिल्ली का नाम दर्ज था। आगे यह भी दर्ज है कि भूस्वामियों को मुआवजा नहीं मिला है। जिन भूस्वामियों ने अपनी सहमति दे दी है, उनके लिए 'करार नियमावली' के तहत अवार्ड घोषित कर दिया गया है। हालांकि, शेष क्षेत्र के लिए कोई पंचाट नहीं है। तर्क यह है कि भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 (संक्षेप में "अधिनियम, 2013") के अंतर्गत मुआवजा देने के लिए पंचाट की घोषणा की कार्यवाही चल रही है।"

उल्लेखनीय है कि राज्य की ओर से प्रस्तुत लिखित निर्देशों में यह स्वीकार किया गया था कि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती श्री रघुनाथ राय शर्मा का नाम खसरा संख्या 39 रकबा 0-14-0 पर दर्ज है। यह भी स्वीकार किया गया कि दो खाता संख्या 306 और 372 में गाटा संख्या 39 के खातेदारों को मुआवजा नहीं मिला। यह भी कहा गया कि अधिग्रहित भूमि का कब्ज़ा 31.5.2006 को अधिग्रहणकर्ता निकाय अर्थात् नोएडा को सौंप दिया गया था।

'करार नियमावली' के अंतर्गत अधिग्रहित भूमि के लिए अवार्ड पारित किया जा चुका है, लेकिन शेष क्षेत्र के लिए कोई पंचाट घोषित नहीं किया गया था और भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 (संक्षेप में "आरएफसीटीएलएआरआर अधिनियम, 2013") के तहत पंचाट की घोषणा की कार्यवाही चल रही थी।

इस न्यायालय द्वारा दिनांक 10.1.2023 के आदेश में जारी निर्देशों के अनुसरण में, दिनांक 6.2.2023 को एक हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 11(1) के अंतर्गत उप कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण विभाग/अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर द्वारा दिनांक 4.2.2023 को घोषित आदेश की एक प्रति रिकॉर्ड पर रखी गई है। दिनांक 4.2.2023 का उक्त अवार्ड गाटा संख्या 39एम रकबा 0-14-0 बीघा या 0.1771 हेक्टेयर के संबंध में, कथित रूप से इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 10.1.2023 के आदेश के अंतर्गत पारित किया गया है।

7. यह भी ध्यान देने योग्य है कि उपरोक्त रिट याचिका के अनुलग्नक '4' के रूप में संलग्न दिनांक 31.5.2006 के कब्जे के ज्ञापन से पता चलता है कि पार्क के रूप में दिखाए गए गाटा संख्या 39 के रकबा 2-9-0 का कब्जा 31.5.2006 को नोएडा को सौंप दिया गया था। कब्जा ज्ञापन में ही उल्लेख किया गया है कि राजस्व ग्राम गेझा तिलपताबाद, परगना एवं तहसील दादरी, जिला गौतमबुद्ध नगर के कुल क्षेत्रफल 121.16 एकड़ का अधिग्रहण उपरोक्त अधिग्रहण अधिसूचनाओं द्वारा किया गया है। 44.312 एकड़ भूमि का कब्जा 6.2.1998 को विकास प्राधिकरण को सौंप दिया गया था तथा शेष 76.848 एकड़ भूमि के लिए, रिट याचिकाओं के लंबित रहने के कारण कब्जा देने की कार्यवाही नहीं की जा सकी थी, जैसा कि उसमें उल्लेख किया गया है। उपरोक्त चुनौती में इस न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के क्रमशः दिनांक 7.4.2004 तथा 21.4.2006 के निर्णय के पश्चात् 76.848 एकड़ भूमि का कब्जा ज्ञापन तैयार किया गया तथा 31.5.2006 को विकास प्राधिकरण को कब्जा सौंप दिया गया।

8. इस मामले का यह स्वीकृत तथ्य है कि खसरा संख्या 39 दो व्यक्तियों महर्षि वेद विज्ञान विद्यापीठ के नाम पर 1-15-0 बीघा (0.4430 हेक्टेयर) क्षेत्र में दर्ज है और खसरा संख्या 39एम 0-14-0 बीघा (0.1771 हेक्टेयर) क्षेत्र में याचिकाकर्ताओं के हित पूर्ववर्ती रघुनाथ राय शर्मा के नाम पर दर्ज है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्लॉट संख्या 39 का कुल क्षेत्रफल, जो 2-9-0 है, अधिग्रहण कार्यवाही को चुनौती देने में इस न्यायालय के निर्णय के बाद विकास प्राधिकरण को सौंप दिया गया था। इस मामले में यह भी स्वीकृत तथ्य है कि शेष क्षेत्र के लिए अवार्ड घोषित नहीं किया गया था, जिसका मुआवजा पट्टेधारकों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था तथा अधिग्रहित भूमि के लिए 'करार नियमावली' के तहत एकमात्र अवार्ड घोषित किया गया था।

खसरा संख्या 39 रकबा 0-14-0 बीघा (0.1771 हेक्टेयर) के आदेश दिनांक

10.1.2023 के तहत घोषित दिनांक 4.2.2023 का आदेश आगे इंगित करता है कि प्रश्नगत भूखण्ड के बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए, दिनांक 1 जून, 2015 के सरकारी आदेश के मद्देनजर, जिसका संदर्भ आदेश में ही दिया गया है, कट-ऑफ तिथि को भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत धारा 4(1) अधिसूचना की तिथि के रूप में निर्धारित किया गया है। 1 जून, 2015 के सरकारी आदेश की प्रति याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उनके द्वारा उपलब्ध कराए गए संकलन में उपलब्ध कराई गई है।

9. इसके अवलोकन से पता चलता है कि यह आयुक्त एवं निदेशक, भूमि अधिग्रहण निदेशालय, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के दिनांक 18 मार्च, 2015 के पत्र के संदर्भ में जारी किया गया था, जिसमें ऐसे मामलों में बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए कट-ऑफ तिथि के निर्धारण के संदर्भ में स्पष्टीकरण मांगा गया था, जहां अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के अंतर्गत अधिग्रहण अधिसूचना 1.1.2014 से पहले जारी की गई थी। इसमें यह स्पष्ट किया गया कि ऐसे मामलों में बाजार मूल्य के निर्धारण की कट-ऑफ तिथि को अधिनियम, 1894 के अंतर्गत धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि माना जाएगा।

10. तथापि, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 113 के अंतर्गत भूमि संसाधन विभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार, द्वारा जारी दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 की अधिसूचना पर अवलम्ब लिया।

11. निवेदन यह है कि उक्त अधिसूचना संदेह को स्पष्ट करती है और आर.एफ.सी.टी.एल .ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 24(1)(ए) के तहत बाजार मूल्य की गणना के लिए संदर्भ तिथि से संबंधित विवाद का निपटारा करती है और यह प्रावधान करती है कि आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 24(1)(ए) के मद्देनजर 1.1.2014 बाजार मूल्य की गणना की तारीख होगी। इस प्रकार, यह विवाद आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 24(1)(ए) के प्रावधानों को लागू करने के लिए आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के तहत कट-ऑफ तिथि से संबंधित है।

12. विरोधी प्रस्तुतियों में, याचिकाकर्ताओं और राज्य सरकार और नोएडा के दोनों अधिवक्तागणों ने केंद्र सरकार और उ.प्र. राज्य द्वारा जारी उपर्युक्त अधिसूचनाओं पर अवलम्ब लिया, ताकि उन मामलों में बाजार मूल्य की गणना के लिए तिथि के निर्धारण की तिथि के संबंध में अपना रुख स्पष्ट किया जा सके जहां आदेश आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के लागू होने के बाद किया गया है, हालांकि अधिग्रहण की कार्यवाही भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई थी।

13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागणों के तर्कों को समझने के लिए, हमें सर्वप्रथम आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम,

2013 के उद्देश्य और प्रयोजन तथा उसके प्रासंगिक प्रावधानों को समझना होगा।

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्स्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 को इस उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था कि जिनकी भूमि छीन ली गई है, उन्हें उचित प्रतिकर प्रदान किया जाए, ढांचागत परियोजनाओं, कारखानों या भवनों की स्थापना के लिए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में पारदर्शिता लाई जाए तथा प्रभावित लोगों के पुनर्वास का आश्वासन दिया जाए। आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में यह उल्लेख किया गया था कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रावधान, जो सार्वजनिक प्रयोजन के लिए तथा कम्पनियों के लिए भी भूमि अधिग्रहण करने तथा ऐसे अधिग्रहण के फलस्वरूप किए जाने वाले मुआवजे की राशि निर्धारित करने से संबंधित हैं, निजी भूमि और संपत्ति के अनैच्छिक अधिग्रहण के लिए राज्य की वैधानिक शक्तियों के प्रयोग, प्रभावित व्यक्तियों और उनके परिवारों के पुनर्वास और पुनर्स्थापन के मुद्दों से संबंधित कुछ मुद्दों के समाधान में अपर्याप्त पाए गए हैं। भूमि अधिग्रहण से निपटने के लिए एक एकीकृत कानून बनाने, न्यायसंगत एवं उचित मुआवजा प्रदान करने तथा प्रभावित व्यक्तियों एवं उनके परिवारों के लिए पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन तंत्र हेतु पर्याप्त प्रावधान करने के लिए, उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 को निरस्त करने एवं प्रतिस्थापित करने के लिए विधेयक 7 सितम्बर, 2011 को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया था तथा इसे 2013 में राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया, 27 सितंबर, 2013 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई तथा 1.1.2014 को इसे लागू किया गया। हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 24 नीचे दी गई है:-

"धारा 24. कतिपय मामलों में 1894 के अधिनियम 1 के अधीन भूमि अर्जन की प्रक्रिया का व्यपगत हुआ समझा जाना-

(1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के अधीन आरंभ की गई भूमि अर्जन की कार्यवाहियों के ऐसे किसी मामले में-

(क) जहां उक्त भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 11 के अधीन कोई अधिनिर्णय नहीं किया गया है, वहां प्रतिकर का अवधारण किए जाने से संबंधित इस अधिनियम के सभी उपबंध लागू होंगे; या

(ख) जहां उक्त धारा 11 के अधीन कोई अधिनिर्णय किया गया है, वहां ऐसी कार्यवाहियां उक्त भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंधों के अधीन उसी प्रकार जारी रहेंगी मानो उक्त अधिनियम निरसित नहीं किया गया है।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के अधीन आरंभ की गई भूमि अर्जन की कार्यवाहियों की दशा में, जहां उक्त धारा 11 के अधीन अधिनिर्णय इस अधिनियम के प्रारंभ के पांच वर्ष या उससे अधिक वर्ष पूर्व किया गया है, किंतु भूमि का भौतिक कब्जा नहीं लिया

गया है या प्रतिकर का संदाय नहीं किया गया है, वहां उक्त कार्यवाहियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे व्यपगत हो गई हैं और समुचित सरकार, यदि वह ऐसा विकल्प अपनाती है, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे भूमि अर्जन की कार्यवाहियां नए सिरे से आरंभ करेगी :

परन्तु जहां अधिनिर्णय किया गया है और अधिकांश भू-धृतियों की बाबत प्रतिकर फायदाग्राहियों के खाते में जमा नहीं किया गया है, वहां अधिसूचना में विनिर्दिष्ट सभी फायदाग्राही उक्त भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अर्जन के लिए इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार प्रतिकर के हकदार होंगे।"

आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 113 और धारा 114 भी प्रासंगिक हैं, जिन्हें नीचे नोट किया जाना चाहिए :-

"धारा 113. कठिनाइयां दूर करने की शक्ति-

(1) यदि इस भाग के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केंद्रीय सरकार, ऐसे आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी या ऐसे निदेश दे सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उस कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु ऐसी किसी शक्ति का प्रयोग इस अधिनियम के प्रारंभ से दो वर्ष की अवधि के पश्चात् नहीं किया जाएगा।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा।

धारा 114. निरसन और व्यावृत्ति-

(1) भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) इस अधिनियम में यथा उपबंधित के सिवाय, उपधारा (1) के अधीन ऐसा निरसन, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के साधारणतया लागू होने पर ऐसे निरसनों के प्रभाव के बारे में प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला या उसे प्रभावित करने वाला नहीं समझा जाएगा।"

उपर्युक्त प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि आर.एफ.सी.टी.एल.ए. आर.आर. अधिनियम, 2013 के दिनांक 1.1.2014 से लागू होने के साथ ही भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 निरसित हो गया।

14. तथापि, धारा 24(1) भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के निरसन के कारण उत्पन्न कुछ स्थितियों से संबंधित है।

15. यह एक गैर-बाधा खंड से शुरू होता है और धारा 24 की उप-धारा (1) कुछ आकस्मिकताओं का प्रावधान करती है, जिसमें भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही जारी रखी जानी थी। उप-धारा (1) का खंड (ए) उन आकस्मिकताओं से संबंधित है जहां अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई कार्यवाही में धारा 11 के तहत आदेश नहीं दिया गया था और कहा गया है कि मुआवजे के निर्धारण से संबंधित आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के सभी प्रावधान लागू होंगे।

हम आगे यह भी नोट कर सकते हैं कि धारा 24 की उप-धारा (1) का खंड (ख) भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की

गई भूमि अधिग्रहण की संपूर्ण कार्यवाही को बचाता है, जहां उक्त अधिनियम की धारा 11 के तहत पहले ही आदेश दिया जा चुका है। इसमें यह प्रावधान किया गया है कि ऐसी कार्यवाहियां भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के अंतर्गत जारी रहेंगी, मानो उक्त अधिनियम निरसित नहीं किया गया हो।

धारा 24 की उपधारा (2) उस स्थिति से संबंधित है जहां न तो मुआवजा दिया गया है और न ही 1894 अधिनियम के तहत अर्जित भूमि पर कब्जा लिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल एवं अन्य**[1] के प्रकरण में धारा 24 की उपधारा (2) की व्याख्या की गई है तथा विभिन्न कोणों से उक्त प्रावधान की व्याख्या से संबंधित विवाद का निराकरण किया गया है। यहां उठाए गए मुद्दों के लिए धारा 24 की उपधारा (1)(ए) के प्रावधान प्रासंगिक हैं।

16. प्रश्न यह है कि जहां भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 11 के तहत कोई पंचाट नहीं किया गया है, वहां मुआवजे के निर्धारण से संबंधित आर.एफ.सी.टी.एल.ए. आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों को लागू करके पंचाट करते समय, बाजार मूल्य के निर्धारण की तारीख क्या होगी, क्या यह आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रवर्तन की तारीख अर्थात 1.1.2014 होगी या अधिनियम, 1894 की धारा 23(1) में दिए गए अनुसार अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख होगी।

17. आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 114 सपठित धारा 24 के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 23 के तहत मुआवजे के निर्धारण से संबंधित प्रावधान, जो अधिनियम, 1894 के तहत अधिग्रहित भूमि के लिए दिए जाने वाले मुआवजे की राशि के निर्धारण के लिए प्रावधान करते थे, निरसित हो गए हैं। इसलिए, अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि पर भूमि के बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए धारा 23 की उपधारा (1) में निहित प्रावधान लागू नहीं किया जा सकता। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही में एकमात्र छूट 2013 अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1) के खंड (क) और (ख) के तहत है। आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 114 की उपधारा (2) में दिए गए अनुसार निरसन के प्रभाव के संबंध में सामान्य खंड अधिनियम, 1894 की उपधारा (6) का सामान्य अनुप्रयोग, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही में मुआवजे के निर्धारण की कार्यवाही पर लागू नहीं होता है।

परिणाम यह है कि धारा 24 की उपधारा (1) के खंड (क) के अनुसार, जब अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अंतर्गत कोई पंचाट नहीं किया गया है, तो मुआवजे के निर्धारण से

---

11 (2020) 8 एससीसी 129

संबंधित आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के सभी प्रावधान लागू होंगे।

ऐसे मामले में जहां धारा 11 के अंतर्गत निर्णय आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के लागू होने से पहले दिया गया था, वहां सभी अनुवर्ती कार्यवाहियां अधिनियम, 1894 के प्रावधानों के अंतर्गत जारी रहेंगी, मानो अधिनियम को निरसित नहीं किया गया हो।

18. अब प्रश्न यह है कि आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के अंतर्गत मुआवजे के निर्धारण के लिए लागू प्रक्रिया क्या होगी।

19. हम आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 26 के प्रावधानों पर गौर कर सकते हैं, जो भूमि के बाजार मूल्य का आकलन और निर्धारण करने में कलेक्टर द्वारा अपनाए जाने वाले मानदंडों को प्रदान करता है, प्रासंगिक खंड (क), (ख) और (ग) और धारा 26 की उप-धारा (1) के प्रावधान नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"26. कलक्टर द्वारा भूमि के बाजार मूल्य का अवधारण-

(1) कलक्टर, भूमि के बाजार मूल्य का निर्धारण और अवधारण करने में निम्नलिखित मानदंड अपनाएगा, अर्थात-

(क) उस क्षेत्र में, जहाँ भूमि स्थित है, यथास्थिति, विक्रय विलेखों या विक्रय के करारों के रजिस्ट्रीकरण के लिए भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 में विनिर्दिष्ट बाजार मूल्य, यदि कोई हो; या

(ख) निकटवर्ती ग्राम या निकटवर्ती सामीप्य क्षेत्र में स्थित उसी प्रकार की भूमि के लिए औसत विक्रय कीमत; या

(ग) प्राइवेट कंपनियों के लिए या पब्लिक-प्राइवेट भागीदारी परियोजनाओं के लिए भूमि के अर्जन के मामले में धारा 2 की उपधारा (2) के अधीन करार पाए गए प्रतिकर की सम्मत रकम, इनमें से जो भी अधिक हो:

परन्तु बाजार मूल्य के अवधारण की तारीख वह तारीख होगी, जिसको धारा 11 के अधीन अधिसूचना जारी की गई है।"

उप-धारा (1) के प्रावधान के अनुसार, आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के तहत अधिग्रहण के लिए बाजार मूल्य के निर्धारण की तारीख वह तारीख है जिस दिन आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 11 के तहत अधिसूचना जारी की गई है, जो किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किसी भी क्षेत्र में भूमि अधिग्रहण करने के लिए उपयुक्त सरकार के इरादे को अधिसूचित करने वाली प्रारंभिक अधिसूचना के प्रकाशन का प्रावधान करती है। अधिग्रहण के प्रस्ताव की प्रारंभिक अधिसूचना की घोषणा जारी करने के मामले में अधिनियम, 2013 की धारा 11, अधिनियम, 1894 की धारा 4 के समरूप है। इस प्रकार, ऐसे मामले में जहां अधिग्रहण आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के लागू होने के बाद, अर्थात 01.01.2014 को या उसके बाद किया गया हो, मुआवजे की गणना के प्रयोजनों के लिए बाजार मूल्य के निर्धारण की तारीख के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है। हालाँकि,

आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 24(1)(ए) की प्रयोज्यता पर संक्रमणकालीन चरण के संबंध में अस्पष्टता बनी हुई है।

20. भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही में बाजार मूल्य के निर्धारण की तारीख की अस्पष्टता पर, जहां आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के लागू होने से पहले अधिनियम, 1894 की धारा 11 के तहत कोई पंचाट नहीं दिया गया था, केंद्र सरकार ने महाराष्ट्र सरकार द्वारा उठाए गए इसी तरह के मुद्दे पर दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 को एक अधिसूचना जारी की थी। संयुक्त सचिव (एलआर), भारत सरकार, भूमि संसाधन विभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी दिनांक 26.10.2015 के डी.ओ. संख्या 13013/01/2014-एलआरडी(पीटी), जिसकी प्रतिलिपि राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के सभी प्रधान सचिवों को सूचना एवं आवश्यक कार्रवाई हेतु भेजी गई थी, में धारा 24(1)(क) के अंतर्गत बाजार मूल्य की गणना के लिए महाराष्ट्र सरकार द्वारा उठाए गए मुद्दों का समाधान निम्नानुसार किया गया है:-

क्र.सं.	***महाराष्ट्र सरकार द्वारा उठाए गए मुद्दे***	***डी.ओ. एल.आर. की राय***
1	*क्या आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर. आर. अधिनियम, 2013 की धारा 27 के अंतर्गत मुआवजे की राशि का निर्धारण करते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का पालन किया जाता है या भूमि की लागत के अतिरिक्त परिसंपत्तियों की लागत की भी अलग से गणना की जानी है?*	*आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर. आर. अधिनियम, 2013 की धारा 26 के तहत भूमि का बाजार मूल्य निर्धारित किया जाता है, जबकि धारा 27 के तहत मुआवजे की राशि निर्धारित करने के लिए भूमि से जुड़ी सभी परिसंपत्तियों का मूल्य बाजार मूल्य में जोड़ा जाता है। इस प्रकार, यह महाराष्ट्र सरकार के पत्र में उद्धृत सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के विपरीत नहीं है।*
2	*धारा 24(1) के तहत 12% ब्याज की गणना के लिए संदर्भ तिथि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत प्रारंभिक अधिसूचना की तारीख होनी चाहिए।*	*धारा 24(1) के तहत 12% ब्याज की गणना के लिए संदर्भ तिथि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत प्रारंभिक अधिसूचना की तारीख होनी चाहिए। भूमि संसाधन विभाग इस पर सहमत है, क्योंकि ऐसी कोई अन्य संदर्भ तिथि नहीं है, जिसे आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर. आर. अधिनियम, 2013 के तहत एसआईए अधिसूचना की तिथि के समतुल्य माना जा सके।*
3.	*धारा 24(1)(ए) के अंतर्गत बाजार मूल्य की गणना के लिए संदर्भ तिथि 01.01.2014 (आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर. आर. अधिनियम, 2013 का प्रारंभ) या भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के अंतर्गत प्रारंभिक अधिसूचना जारी करने की तिथि होनी चाहिए?*	*धारा 24(1)(ए) के तहत बाजार मूल्य की गणना के लिए संदर्भ तिथि 01.01.2014 (आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर. आर. अधिनियम, 2013 का प्रारंभ) होनी चाहिए क्योंकि धारा में कहा गया है "भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के किसी भी मामले में, जहां उक्त भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11 के तहत कोई पुरस्कार नहीं दिया गया है, तो मुआवजे के निर्धारण से संबंधित इस अधिनियम के सभी प्रावधान लागू होंगे। धारा 26 के अंतर्गत संदर्भ तिथि प्रारंभिक अधिसूचना की तिथि है, लेकिन धारा 24 पूर्वव्यापी मामलों में अधिनियम के लागू होने*

		का एक विशेष मामला है, और बाजार मूल्य के निर्धारण की एक बाद की तिथि (अर्थात 01.01.2014) का सुझाव दिया गया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भूमि मालिकों/किसानों/प्रभावित परिवारों को आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर. आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के अंतर्गत बढ़ा हुआ मुआवजा मिले (जैसा कि स्थायी समिति ने अपनी 31वीं रिपोर्ट में सिफारिश की है)।

21. केन्द्र सरकार के संबंधित मंत्रालय द्वारा जारी दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 के डी.ओ. पत्र, जो उत्तर प्रदेश राज्य के प्रमुख सचिव को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्रवाई हेतु भेजा गया था, के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उक्त निर्देश, अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही में धारा 24(1)(क) के तहत बाजार मूल्य की गणना के मामले में आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों को प्रभावी करने में उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए दिया गया था। आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 113 के तहत शक्ति के तहत केंद्र सरकार द्वारा जारी किए गए उक्त निर्देश वैधानिक बल रखते हैं और आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों को प्रभावी करने में उत्पन्न होने वाली किसी भी कठिनाई को दूर करने के लिए ऐसे प्रावधान करने या ऐसे निर्देश देने के लिए केंद्र सरकार को प्रदत्त शक्ति के मद्देनजर सभी राज्य सरकारों पर बाध्यकारी हैं, जो आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं।

22. दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 के डी.ओ. पत्र की वैधानिक प्रकृति को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि धारा 24(1)(ए) के तहत बाजार मूल्य की गणना के लिए संदर्भ तिथि 1.1.2014 होनी चाहिए, जो भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 के लागू होने की तिथि है। दिनांकित उक्त डी.ओ. पत्र में आगे स्पष्ट किया गया है कि आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 26 के अंतर्गत यद्यपि संदर्भ तिथि प्रारंभिक अधिसूचना की तिथि है, किन्तु धारा 24 पूर्वव्यापी मामलों में अधिनियम, 2013 के लागू होने का विशेष मामला है तथा बाजार मूल्य के निर्धारण की बाद की तिथि, अर्थात् 1.1.2014 का सुझाव यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से दिया गया है कि भूमि मालिकों/किसानों/प्रभावित परिवारों को आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के अंतर्गत, स्थायी समिति की 31वीं रिपोर्ट की सिफारिश के अनुसार, बढ़ा हुआ मुआवजा मिले।

(प्रभाव वर्धित)

23. केन्द्र सरकार के संबंधित मंत्रालय द्वारा जारी दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 के डी.ओ. पत्र में निहित निर्देशों के मद्देनजर, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी दिनांक 1 जून, 2015 की अधिसूचना पर भरोसा करना पूरी तरह से अनुचित है।

24. किसी भी स्थिति में, राज्य सरकार की उक्त अधिसूचना ने केंद्र सरकार द्वारा दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 के डी.ओ. पत्र के माध्यम

से आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 113 के अंतर्गत निर्देश जारी करके दिए गए स्पष्टीकरण के साथ अपनी प्रभावशीलता खो दी है। दिनांक 4.2.2023 को दिए गए निर्णय में कलेक्टर द्वारा मुआवजे की गणना करते समय मामले के इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया है, जिसमें बाजार मूल्य के निर्धारण की तारीख को 13.1.1995 माना गया था, जो कि अधिनियम, 1894 की धारा 11 के प्रावधानों के अनुसार, आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 26 (1) के साथ अधिनियम, 1894 की धारा 4/17 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख थी। आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 113 के तहत केंद्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों की पूरी तरह से अनदेखी की गई है।

25. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हम **होरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य[2]; प्रहलाद सिंह और 6 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य[3]; कृष्ण औतार और 5 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य[4] तथा ईशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसाइटी द्वारा डायरेक्टर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य[5]** में इस न्यायालय की खंडपीठों के निर्णयों को भी नोट कर सकते हैं, जिन्होंने 2013 अधिनियम की धारा 113 के तहत दिनांक 26 अक्टूबर, 2015 के डी.ओ. पत्र में निहित निर्देशों पर विचार करते हुए यही दृष्टिकोण अपनाया है कि धारा 24(1)(क) के तहत आने वाले मामलों में भूमि के बाजार मूल्य के निर्धारण की तिथि केन्द्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार 1.1.2014 मानी जाएगी। इसमें विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी को नया निर्णय देकर दिनांक 1.1.2014 की स्थिति के अनुसार संबंधित भूमि का बाजार मूल्य पुनः निर्धारित करने का निर्देश दिया गया था।

26. **इशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसाइटी (उपरोक्त)** में दिनांक 9.5.2017 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने वाली **विशेष अपील (सी) संख्या 17660/2017 (गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम इशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसाइटी और अन्य)** को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 19.7.2017 को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि हस्तक्षेप के लिए कोई कानूनी और वैध आधार नहीं था। **कृष्ण औतार** (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के संबंध में भी स्थिति ऐसी ही है, जहां **विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 26271/2017 (मुरादाबाद विकास प्राधिकरण बनाम कृष्ण औतार एवं अन्य)** को दिनांक 14.11.2017 को खारिज कर दिया गया था। **विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 17660/2017 [इशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसाइटी** (उपरोक्त) के मामले में] में दायर समीक्षा याचिका भी दिनांक 5 दिसंबर, 2017 को खारिज कर दिया गया था।

होरी लाल (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष उठाया गया मुद्दा अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही में मुआवजे के निर्धारण

---

2 रिट सी संख्या – 44731 सन् 2016

3 रिट सी संख्या – 15804 सन् 2016

4 रिट सी संख्या - 44720 सन् 2016

5 रिट सी संख्या - 60276 सन् 2015

की तारीख के बारे में था। इसमें रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से तर्क दिया गया कि भूमि के बाजार मूल्य के निर्धारण की तिथि वह तिथि होनी चाहिए जिस तिथि को विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा वर्ष 2015-16 में अवार्ड दिए गए थे तथा यह 1.1.2014 नहीं हो सकती, जिसे डिवीजन बेंच ने मुआवजे के निर्धारण के मामले में आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 113 और 2013 अधिनियम के प्रावधानों के तहत जारी 26.10.2015 के डीओ पत्र पर भरोसा करते हुए खारिज कर दिया था। **होरी लाल** (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच के दिनांक 9.3.2017 के निर्णय और आदेश को रिट याचिकाकर्ता द्वारा **विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 14820/2017** में चुनौती दी गई थी। **सिविल अपील संख्या 1462/2019** में परिवर्तित होने पर, अनुमति प्रदान करने के साथ, अपील को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 5 फरवरी, 2019 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

27. **सिविल अपील संख्या 1462/2019 (होरी लाल बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती मुआवजा निर्धारित करने की तारीख के संबंध में थी और यह तर्क दिया गया था कि यह वह तारीख होनी चाहिए जिस दिन भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने पंचाट पारित किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त दलीलों को निम्नलिखित तरीके से खारिज कर दिया है:-

"20. इसलिए, हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करने का कोई अच्छा आधार नहीं पाते हैं, जिसमें उन्होंने तर्क दिया है कि मुआवजा निर्धारित करने की तिथि वह तिथि होनी चाहिए, जिस तिथि को भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने निर्णय पारित किया था। इस तर्क का कोई आधार नहीं है और इसलिए यह स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि ऐसी तारीख का प्रावधान न तो पुराने अधिनियम, 1894 में है और न ही अधिनियम, 2013 में।

21. वास्तव में, मुआवजा किस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए तथा किस तिथि के संदर्भ में, इसका प्रावधान अधिनियम के तहत किया गया है तथा विद्वान अधिवक्ता द्वारा सुझाई गई तिथि न तो पुराने अधिनियम में और न ही नए अधिनियम में निर्धारित तिथि है। इसलिए, इस प्रस्तुति में कोई मेरिट नहीं है और इसे अस्वीकार किया जाना चाहिए। तदनुसार इसे अस्वीकार किया जाता है।

22. इसलिए, हम उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में लिए गए निर्णय से भिन्न निर्णय लेने का कोई अच्छा आधार नहीं पाते हैं।"

इस प्रकार, आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के लागू होने के बाद अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही में मुआवजे के निर्धारण की तिथि 1.1.2014 होने के संबंध में **होरी लाल** (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की गई है।

28. दिनांक 12 फरवरी, 2019 को **सिविल अपील संख्या 4821/2016, इंटरलोक्यूटरी एप्लीकेशन संख्या 4/2016 (अलीगढ़ विकास प्राधिकरण बनाम मेघ सिंह एवं अन्य)** में दिए गए एक अन्य निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि अधिनियम की धारा 113 के तहत केंद्र सरकार के आदेशों के

मद्देनजर बाजार मूल्य के निर्धारण की तारीख 1.1.2014 दर्ज की जानी चाहिए। **होरी लाल** (उपरोक्त) के मामले में उपर्युक्त निर्णय, **ईशान इंटरनेशनल एजुकेशनल सोसाइटी** (उपरोक्त) में इस न्यायालय के दिनांक 9.5.2017 के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है, ताकि उसमें दिनांक 5.11.2016 के पंचाट को रद्द करके, 1.1.2014 को बाजार मूल्य के अनुसार मुआवजे को फिर से निर्धारित करने के लिए विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी, अलीगढ़ को निर्देश जारी किया जा सके।

उपर्युक्त मामलों में दायर समीक्षा आवेदनों में सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न अन्य आदेशों को याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उपलब्ध कराए गए संकलन में हमारे समक्ष रखा गया है ताकि यह दावा किया जा सके कि आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 की धारा 24(1)(क) के अंतर्गत आने वाले मामले में 1.1.2014 को बाजार मूल्य के निर्धारण से संबंधित मुद्दा अब प्रासंगिक नहीं है।

29. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित दिनांक 4.2.2023 का पंचाट ऊपर बताई गई कानूनी स्थिति के विपरीत पाया गया है, इसलिए इसे प्रभावी नहीं किया जा सकता है। संबंधित अधिकारी अर्थात अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर को निर्देश दिया जाता है कि वे दिनांक 1.1.2014 को प्रश्नगत भूमि के बाजार मूल्य को ध्यान में रखते हुए गाटा संख्या 39एम रकबा 0-14-0 या 0.1771 हेक्टेयर में भूमि का बाजार मूल्य निर्धारित करके एक नया पंचाट बनाएं। याचिकाकर्ताओं/भूमि स्वामियों के लिए यह स्वतंत्र होगा कि वे बाजार मूल्य निर्धारित करने के लिए अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर/विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के समक्ष नमूने प्रस्तुत करें। संबंधित अधिकारी का दायित्व होगा कि वह संबंधित भूमि का उचित एवं न्यायसंगत बाजार मूल्य निर्धारित करे तथा मुआवजे के सभी तत्वों को शामिल करते हुए मुआवजे की गणना आर.एफ.सी.टी.एल.ए.आर.आर. अधिनियम, 2013 के तहत मुआवजे के निर्धारण के प्रावधानों के अनुसार, यथासंभव शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर करे। आदेश के तहत निर्धारित मुआवजे की राशि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दो सप्ताह की अतिरिक्त अवधि के भीतर जारी की जाएगी, इसके बाद, पट्टाधारकों/इच्छुक व्यक्तियों के पक्ष में उनकी हिस्सेदारी के निर्धारण और उनकी पहचान के सत्यापन के बाद, निर्णय लिया जाएगा।

उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1204

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

रिट-सी संख्या 3000051/1999

प्रीतम सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अवधेश कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सीलिंग कानून - उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिनियम, 1960 - धारा 29 - उत्तर प्रदेश भूमि जोत (संशोधन) अधिनियम, 1972 पर सीलिंग का अधिरोपण - कुछ क्षेत्रों को अधिशेष भूमि घोषित करने के लिए पहले नोटिस जारी किया गया था - न्यायनिर्णय का सिद्धांत - प्रयोज्यता- धारा 29 का संशोधित प्रावधान कुछ परिस्थितियों में सीलिंग क्षेत्र के पुनः निर्धारण की अनुमति देता है - प्रभाव - माना गया कि यदि असिंचित भूमि सिंचित हो जाती है तो कार्यवाही 1960 के अधिनियम की धारा 29 के अनुसार हो सकती थी - उच्च न्यायालय ने न्यायनिर्णय की प्रयोज्यता की दलील को खारिज कर दिया। (पैरा 14)

बी. सीलिंग कानून-यूपी भूमि जोत पर सीलिंग लागू करना (संशोधन) अधिनियम, 1960- धारा 13-ए-अतिरिक्त भूमि - सिंचाई की स्थिति और दो फसल उगाने की क्षमता की घोषणा - तथ्य की खोज-हस्तक्षेप की सीमा- निष्कर्ष का खंडन करने के लिए कोई ठोस सबूत दाखिल नहीं किया गया - प्रभाव - माना गया कि याचिकाकर्ता की आबादी और ग्रोवलैंड को छोड़कर याचिकाकर्ता की सारी भूमि प्रासंगिक वर्ष के खसरा, रिकॉर्ड पर सामग्री और सबूतों के आधार पर सिंचित पाई गई है, और निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी गई है और इसके विपरीत कोई सामग्री पेश नहीं की गई है, इसलिए तथ्यात्मक निष्कर्ष पर इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। (पैरा 21 और 35)

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. यू.पी. राज्य बनाम मुख राम सिंह व अन्य; 1991 (9) एलसीडी 232
2. बड़ी बहू बनाम यूपी राज्य और अन्य; 1997(15) एलसीडी 1265
3. विभूति कुमार बाजपेयी बनाम यूपी राज्य और अन्य; 2008 (26) एलसीडी 832
4. बाल कृष्ण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 1984 एलसीडी 115
5. राम सागर बनाम सिविल जज, बहराइच एवं अन्य; 1984(2) एलसीडी 300
6. एस. राम चंद्र राव बनाम नागभूषण राव और अन्य; 2023 (41) एलसीडी 1
7. भगवान सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 1996(14) एलसीडी 387
8. राज बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 1996(14) एलसीडी 248
9. राजा महिपाल सिंह बनाम यू.पी. राज्य और अन्य; 2007(25) एलसीडी 1196
10. कौशलेंद्र बहादुर सिंह बनाम यूपी राज्य; 2022(40) एलसीडी 765
11. आदि कुमार जैन बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) फैजाबाद व अन्य; 2016(34) एलसीडी 699
12. श्रीमती बिंदा गुप्ता व अन्य बनाम यू.पी. राज्य व अन्य; 2003(21) एलसीडी 511
13. राजेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम यूपी राज्य और अन्य; 2022 (40) एलसीडी 1836
14. कुंवर बहादुर सिंह बनाम विहित प्राधिकारी/एडीएम सीलिंग, उन्नाव व अन्य; 2022(40) एलसीडी 891
15. शांतनु कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य; 1979 एडब्ल्यूसी (एफ.बी.) 585

16. उत्तर प्रदेश बनाम अपर आयुक्त न्यायिक एवं अन्य; MANU/UP/2168/2022

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अवधेश कुमार और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री एस.के. खरे को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता प्रीतम सिंह, वर्तमान याचिका के माध्यम से इस न्यायालय में आए हैं, जिसमें उन्होंने विहित प्राधिकारी (सीलिंग/अपर कलेक्टर, खीरी) द्वारा पारित दिनांक 11.04.1997 के आदेश को जो कि याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में निहित है और अपर आयुक्त (प्रशासन), लखनऊ मंडल, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 12.01.1999 के आदेश को जो कि याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 में निहित है, को चुनौती दी है।

3. वर्तमान मामले के निर्णय के लिए, मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि विवादित भूमि के संबंध में याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत-सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 (जिसे आगे 1960 का अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 29 के अनुसार नोटिस दिया गया था। जिसमें 19.682 एकड़ सिंचित भूमि को अधिशेष के रूप में प्रस्तावित किया गया था, जिससे याचिकाकर्ता को 18.03 एकड़ सिंचित भूमि का लाभ मिले। जिसके जवाब में याचिकाकर्ता ने दिनांक 06.03.1995 को आपत्तियाँ प्रस्तुत की, इस आधार पर कि नोटिस पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) द्वारा बाधित है और यह समय-सीमा पार कर चुकी है। याचिकाकर्ता ने यह भी आपत्ति की कि याचिकाकर्ता की भूमि असिंचित है और वह अधिकतम लाभ का हकदार है। यह दलील भी दी गई कि जोत (होल्डिंग्स) को गलत तरीके से दिखाया गया है। दलीलों के आधार पर, निम्नलिखित 7 मुद्दे तैयार किए गए :

<u>वाद बिन्दु</u>

1. क्या पुनर्निर्गत नोटिस में आपत्तिकर्ता की जोत का विवरण गलत दिखाया गया है,

यदि हाँ तो उसका प्रभाव?

2. क्या आपत्तिकर्ता के विरुद्ध सीलिंग अधिनियम अंतर्गत वाद चलकर अन्तिम रूप

से निर्णीत हो चुका है, जो पक्षकारों के मध्य रेसजुडिकाटा रखता है, यदि हाँ तो उसका

प्रभाव?

3. क्या आपत्तिकर्ता के विरुद्ध पुनर्निर्गत नोटिस कालबाधित है, यदि हाँ तो उसका

प्रभाव?

4. क्या आपत्तिकर्ता की समस्त भूमि असिंचित है तथा इस आशय हेतु पूर्वनिर्णीत अभिमत पक्षकारों के मध्य

रेसजुडिकाटा का प्रभाव रखता है, यदि हाँ तो उसका प्रभाव?

5. क्या आपत्तिकर्ता अ०जो०सी० अधिनियम के अन्तर्गत प्रदत्त अधिकतम लाभ पाने
का अधिकारी है, यदि हाँ तो उसका प्रभाव?

6. क्या आपत्तिकर्ता के विरुद्ध पुर्ननिर्गत नोटिस धारणीय नहीं है, यदि हाँ तो उसका
प्रभाव?

7. आपत्तिकर्ता किस सहायता का अधिकारी है?

4. क्षेत्रीय लेखपाल श्री हुसैन अली, फाइल तैयार करने वाले लेखपाल श्री अवधेश कुमार और सहायक रजिस्ट्रार कानूनगो श्री कृष्ण के द्वारा राज्य की ओर से मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए, इसके साथ ही सीएच फार्म 45 तथा 1399-1404 फसली के तीन इंतेखाब खतौनी और 1402 फसली का इंतेखाब खसरा दाखिल किया गया। याचिकाकर्ता ने श्री हिमाचल पुत्र मोती लाल और स्वयं के मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए। दस्तावेजी साक्ष्य में याचिकाकर्ता ने धारा 10(2) के तहत राज्य बनाम प्रीतम सिंह का दाखिल खारिज और अपर जिला न्यायाधीश, खीरी द्वारा अपील 36/1985प्रीतम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में पारित आदेश दिनांक 18.07.1985 की प्रति प्रस्तुत की।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री एवं साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात विहित प्राधिकारी ने 19.682 एकड़ सिंचित भूमि को अधिशेष घोषित कर दिया, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा कोई विकल्प नहीं दिया गया था तथा याचिकाकर्ता को 18.03 एकड़ का लाभ दिया गया। अधिशेष घोषित की गई भूमि का विवरण नीचे दिया गया है:-

विवरण भूमि

जिला	तहसील	परगना	ग्राम	गा0सं0	क्षेत्रफल
खीरी	निघासन	पलिया	बालपुर	117	10-69 एकड़ सिंचित
				112	7-43
				118 मि0	1-562

19-682 एकड़ सिंचित अर्थों में

6. याचिकाकर्ता ने विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील संख्या 253/1996-97 प्रस्तुत की थी, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों पर विचार करने के पश्चात दिनांक 12.01.1999 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया। अतः याचिकाकर्ता द्वारा उक्त आदेशों को चुनौती देते हुए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि चकबंदी कार्यवाही में याचिकाकर्ता के दो पुत्रों को जो कि

बालिग हो चुके थे, को पृथक चक आवंटित किया गया लेकिन उन्हें इसकी कोई नोटिस नहीं दी गयी, जबकि अधिनियम 1960 की धारा 3(17) के अन्तर्गत खातेदार होने के नाते उन्हें नोटिस दिया जाना आवश्यक था। उन्होंने आगे दलील दी कि अधिनियम 1960 की धारा 10(2) के अन्तर्गत याचिकाकर्ता को नोटिस 2 वर्ष की निर्धारित अवधि के बाद दी गई जो कि अधिनियम 1960 की धारा 13ए का उल्लंघन है, जिसे अधिनियम 1960 की धारा 29 के साथ ही पढ़ा जायेगा। उन्होंने यह भी कहा कि नोटिस पूर्वनिर्णीत (रेस ज्यूडिकाटा) द्वारा बाधित थी क्योंकि पहले ही दो बार नोटिस दी जा चुकी थी, हालाँकि निर्धारित प्राधिकारी ने कुछ क्षेत्र को अधिशेष घोषित किया था लेकिन जिला न्यायाधीश द्वारा अपील में उक्त आदेश को रद्द कर दिया गया था। अंत में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि आक्षेपित आदेश अनुमान और धारणा के आधार पर राज्य द्वारा किसी भी सबूत के बिना पारित किया गया और 1960 के अधिनियम की धारा 4 ए के प्रावधानों पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता की भूमि को अधिशेष और सिंचित घोषित किया गया। इसलिए आक्षेपित आदेश कानून की नजर में मान्य नहीं है और इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्न वादों का उल्लेख न्यायालय के समक्ष किया :- ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुखराम सिंह व अन्य; 1991(9)एलसीडी 232, बड़ी बहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 1997(15)एलसीडी 1265, विभूति कुमार बाजपेयी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 2008(26)एलसीडी 832, बाल कृष्ण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 1984एलसीडी 115, राम सागर बनाम सिविल जज बहराइच व अन्य; 1984(2)एलसीडी 300, एस राम चंद्र राव बनाम नागभूषण राव व अन्य; 2023(41)एलसीडी 1, भगवान सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 1996(14)एलसीडी 387, राज बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 1996(14) एलसीडी 248, राजा महिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 2007(25) एलसीडी 1196, कौशलेंद्र बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2022(40) एलसीडी 765, आदि कुमार जैन बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) फैजाबाद व अन्य; 2016(34) एलसीडी 699, श्रीमती बिंदा गुप्ता व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 2003(21) एलसीडी 511, राजेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 2022 (40) एलसीडी 1836, कुंवर बहादुर सिंह बनाम विहित प्राधिकारी/एडीएम सीलिंग, उन्नाव व अन्य; 2022(40)***

एलसीडी 891 व शांतनु कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 1979 एडब्ल्यूसी (एफ.बी.) 585 ।

9. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी कि याचिकाकर्ता को 1960 के अधिनियम की धारा 29 के आधार पर नोटिस दिया गया था, क्योंकि असिंचित भूमि सिंचित भूमि बन गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) और समय सीमा के बारे में दिए गए तर्क का कोई औचित्य नहीं है और यह गलत है तथा मान्य नहीं है। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता ने याचिका में कभी भी विहित प्राधिकारी या अपीलीय न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष यह दलील नहीं दी कि याचिकाकर्ता के बेटे वयस्क हो गए हैं और उन्हें चकबंदी कार्यवाही में अलग-अलग चक आवंटित किए गए हैं, इसलिए यह मान्य नहीं है। अन्यथा भी, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के बेटों को आदेश पारित होने के बाद और याचिकाकर्ता के जीवनकाल के दौरान भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता इस आधार पर किसी भी लाभ के लिए हकदार नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि विहित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किये गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, विहित प्राधिकारी ने यह पाया कि विवादित भूमि में एक ट्यूबवेल है जिसके द्वारा सभी भूमि की सिंचाई की जा रही है। गेहूं और गन्ना जैसी फसलें बोई जा रही हैं, जो पानी के बिना संभव नहीं है। जमीन भी दोमट मिट्टी की है और दो फसलें उगाने में सक्षम है तथा उच्च गुणवत्ता वाली है। याचिकाकर्ता विहित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों का खंडन करने में भी विफल रहा है, जो कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर दर्ज किए गए हैं। उन्होंने यह भी दलील दी कि अपीलीय प्राधिकारी या इस न्यायालय के समक्ष भी याचिकाकर्ता, यह दिखाने में विफल रहा है कि उसकी जमीन असिंचित है।

10. उपरोक्त के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी कि आक्षेपित आदेश कानून के अनुसार सही तरीके से पारित किया गया है। आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं है। रिट याचिका गलत और निराधार आधार पर दायर की गई है, जिसे लागत के साथ खारिज किया जाना चाहिए। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस परिपेक्ष में ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अपर आयुक्त न्यायिक एवं अन्य; मनु/यूपी/2168/2022*** वाद का भी उल्लेख किया :-

11. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर विचार किया और अभिलेखों का अवलोकन किया ।

12. याचिकाकर्ता को वर्ष 1995 में अधिनियम 1960 की धारा 29 के आधार पर नोटिस दिया गया था, जिसमें 19.682 एकड़ सिंचित भूमि को अधिशेष के रूप में प्रस्तावित किया गया था, जिससे याचिकाकर्ता को 18.03 एकड़ सिंचित भूमि का लाभ मिला। याचिकाकर्ता ने दिनांक 06.03.1995 को जवाब प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता द्वारा जवाब प्रस्तुत करने के बाद, पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए गए। पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद, विहित प्राधिकारी ने दिनांक 11.04.1997 को आदेश पारित किया, जिसमें अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों और दस्तावेजों पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता की 19.682 एकड़ भूमि को सिंचित दृष्टि से अधिशेष घोषित किया गया तथा 18.038 एकड़ भूमि याचिकाकर्ता को उपयोग के लिए दी गई। याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश को अपील में चुनौती दी थी, जिसे खारिज कर दिया गया था। इसलिए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का पहला तर्क यह है कि वर्ष 1995 में जारी किया गया नोटिस 1960 के अधिनियम की धारा 13ए, पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) के साथ-साथ समय सीमा द्वारा भी बाधित है। 1960 के अधिनियम की धारा 29, जिसके आधार पर नोटिस जारी किया गया था, यह प्रावधान करती है कि उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के लागू होने की तिथि के पश्चात कोई असिंचित भूमि अगर राज्य सिंचाई कार्य से सिंचाई के परिणामस्वरूप सिंचित भूमि बन जाती है या कोई उपवन भूमि, उपवन भूमि के रूप में अपना चरित्र खो देती है या इस अधिनियम के तहत छूट प्राप्त कोई भूमि, छूट प्राप्त श्रेणियों में से किसी के अंतर्गत नहीं आती है, तो अधिकतम सीमा क्षेत्र का पुनर्निर्धारण किया जा सकेगा और तदनुसार इस अधिनियम के उपबंध, धारा 16 को छोड़कर, यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे। धारा 29 का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

29. बाद में किसी अन्य भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में घोषित करना- *जहाँ उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के लागू होने की तिथि के पश्चात-*

(I) कोई भूमि किसी न्यायालय के आदेश या डिक्री के तहत या उत्तराधिकार या हस्तांतरण के परिणामस्वरूप या प्रतिकूल कब्जे के परिणामस्वरूप किसी भूमिधर के पास आ गई है और ऐसी भूमि उसके पास पहले से मौजूद भूमि के साथ मिलकर उस पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल से अधिक है; या

(ग) कोई असिंचित भूमि, राज्य सिंचाई कार्य से सिंचाई के

परिणामस्वरूप सिंचित भूमि बन जाती है या कोई उपवन भूमि, उपवन भूमि के रूप में अपना स्वरूप खो देती है या इस अधिनियम के तहत छूट प्राप्त कोई भूमि छूट प्राप्त श्रेणियों में से किसी के अंतर्गत नहीं आती है, ऐसी स्थिति में अधिकतम क्षेत्र पुनः निर्धारित किया जा सकेगा [और तदनुसार धारा 16 को छोड़कर इस अधिनियम के प्रावधान यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे]।

14. उपरोक्त के मद्देनजर, जहाँ उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के लागू होने की तिथि के बाद, असिंचित भूमि सिंचित भूमि बन जाती है या कोई उपवन भूमि, उपवन भूमि के रूप में अपना चरित्र खो देती है या इस अधिनियम के तहत छूट प्राप्त कोई भूमि, छूट प्राप्त श्रेणियों में से किसी के अंतर्गत नहीं आती है, वहाँ अधिकतम सीमा क्षेत्र को पुनः निर्धारित किया जाना चाहिए था और उक्त उद्देश्य के लिए, धारा 16 को छोड़कर, अधिनियम के सभी प्रावधान यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू थे। इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पहले की कार्यवाही के पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) के आधार पर बाधित है, यह गलत है और मान्य नहीं है तथा खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि यदि असिंचित भूमि सिंचित हो जाती तो कार्यवाही 1960 के अधिनियम की धारा 29 के अनुसार की जा सकती थी।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***एस. रामचंद्र राव बनाम एस. नागभूषण राव एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में माना है कि पूर्वनिर्णीत (रेसजुडिकाटा) का सिद्धांत, जिसका इतिहास बहुत पुराना है, सार्वभौमिक कानून के नियम को दर्शाता है और यह सार्वजनिक नीति का योग है जो विभिन्न कहावतों में परिलक्षित होता है जैसे कि 'रेसजुडिकाटा प्रो वेरिटेट ऑक्सिपिटर ', जिसका अर्थ है कि न्यायिक निर्णय को सही माना जाना चाहिए और 'नेमो डेबेट बिस वेक्सारी प्रो ऊना एट ईएडीएम कॉसा', जिसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को एक ही कारण से दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए। यह मामला वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि वर्तमान मामले में कार्यवाही 1960 के अधिनियम की धारा 29 के तहत बदली हुई परिस्थितियों के आधार पर वैधानिक प्रावधान के तहत की गई थी, इसलिए यह पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) द्वारा बाधित नहीं है।

16. जहाँ तक धारा 13ए के मद्देनजर समय सीमा की दलील का संबंध है, उक्त प्रावधान धारा 14 की उपधारा (4) के तहत अधिसूचना की तारीख से

दो वर्ष की अवधि के भीतर, रिकॉर्ड पर स्पष्ट किसी भी गलती को सुधारने के लिए है। 1960 के अधिनियम की धारा 13-ए और धारा 14(4) नीचे उद्धृत हैं:-

[13ए. कुछ मामलों में अधिशेष भूमि का पुनर्निर्धारण। *- (1) विहित प्राधिकारी, धारा 14 की उपधारा (4) के अधीन अधिसूचना की तारीख से दो वर्ष की अवधि के भीतर किसी भी समय अभिलेख में स्पष्ट किसी गलती को सुधार सकता है परंतु ऐसा कोई सुधार, जिसका प्रभाव अधिशेष भूमि में वृद्धि करने का हो, तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक विहित प्राधिकारी ने भू-स्वामी को ऐसा करने के अपने इरादे की सूचना नहीं दे दी हो और उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दे दिया हो।*

(2) धारा 10, 11, 12, 12-ए, 13, 14, 15 और 16 के प्रावधान उपधारा (1) के तहत किसी भी कार्यवाही के संबंध में यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे। और धारा 10 के लागू होने के प्रयोजनों के लिए, उपधारा (1) के परन्तुक के अधीन नोटिस, धारा 9 के अधीन नोटिस समझी जाएगी।]

14(4) *विहित प्राधिकारी, उपधारा (1) के खंड (क), खंड (ख) या खंड (ग) में उल्लिखित तारीख के पश्चात यथाशीघ्र, इस अधिनियम के अधीन या उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1974 की धारा 9 के अधीन या उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 31 के अधीन निर्धारित प्रत्येक अधिशेष भूमि को राजपत्र में अधिसूचित करेगा।*

17. उपरोक्त के मद्देनजर, 1960 के अधिनियम की धारा 29 के तहत की गई कार्यवाही को 1960 के अधिनियम की धारा 13 ए के मद्देनजर पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) या समय सीमा से बाधित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि दोनों प्रावधान अलग-अलग स्थितियों/आकस्मिकता के लिए हैं।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि याचिकाकर्ता के पुत्र वयस्क हो गए थे तथा चकबंदी कार्यवाही के पश्चात उन्हें अलग-अलग जोत आवंटित कर दी गई थी, इसलिए उन्हें भी नोटिस दिया जाना आवश्यक था, लेकिन उन्हें नोटिस नहीं दिया गया, इसलिए आक्षेपित आदेश मान्य नहीं है। नोटिस के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.1995 को दायर आपत्ति के

अनुवादित

अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा ऐसी कोई दलील नहीं ली गई। यहाँ तक कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 11.04.1997 को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध दायर अपील में भी यह दलील नहीं ली गई। यहाँ तक कि इस याचिका और प्रत्युत्तर हलफनामे में भी याचिकाकर्ता ने यह दलील नहीं ली है। दिनांक 23.11.2022 को दायर अनुपूरक हलफनामे में पहली बार यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता के दोनों पुत्रों को अलग-अलग चक मिले हैं, वे बालिग हैं और अलग-अलग खातेदार हैं तथा सीलिंग एक्ट के तहत 7.30 हेक्टेयर जमीन पाने के हकदार हैं। यह दलील इस बात का खुलासा किए बिना दी गई है कि वे कब बालिग हुए और उन्हें अलग-अलग चक कब मिले और याचिकाकर्ता के जीवनकाल में कैसे मिले। याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए फॉर्म 45 में हालाँकि, याचिकाकर्ता के बेटों गुरमीत सिंह और परमजीत सिंह के नाम अलग-अलग चक बताए गए हैं लेकिन इसमें यह नहीं बताया गया है कि ये कब तैयार किए गए हैं, जबकि ये दिनांक 18.10.2022 को जारी किए गए हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से जब विशिष्ट प्रश्न किया गया कि चकबंदी की कार्यवाही कब हुई थी तथा याचिकाकर्ता के पुत्रों के नाम अलग-अलग कब दर्ज किए गए थे, तब उन्होंने बताया कि चकबंदी वर्ष 1998 में हुई थी तथा याचिकाकर्ता के पुत्रों के नाम अलग-अलग दर्ज किए गए थे। विहित प्राधिकारी ने दिनांक 11.04.1997 के आदेश के माध्यम से मामले का निर्णय किया था। अतः यह स्पष्ट है कि 1960 के अधिनियम की धारा 29 के अनुसार कार्यवाही शुरू होने के समय या विहित प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित होने के समय भी याचिकाकर्ता के पुत्रों के नाम अलग से दर्ज नहीं किए गए थे। अतः यह तर्क नहीं लिया गया कि याचिकाकर्ता के पुत्र 1960 के अधिनियम की धारा 3(17) के अनुसार अलग खातेदार थे तथा उन्हें अलग से नोटिस की आवश्यकता थी, अतः अब इस स्तर पर यह तर्क नहीं लिया जा सकता, अन्यथा भी यह गलत है तथा मान्य नहीं है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से यह प्रश्न भी किया गया कि याचिकाकर्ता के जीवनकाल में उसके पुत्रों के नाम अलग से कैसे दर्ज किए गए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इसका कोई उत्तर नहीं दे पाए।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि याचिकाकर्ता की भूमि को अधिनियम 1960 की धारा 4 ए के अनुसार सिंचित घोषित नहीं किया गया है। विहित प्राधिकारी ने बिना किसी साक्ष्य के विवादित भूमि को सिंचित माना है,

जबकि वह असिंचित थी। अधिनियम 1960 की धारा 4 ए का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

*[**4ए. सिंचित भूमि का निर्धारण**:- विहित प्राधिकारी वर्ष 1378 फसली, 1979 फसली और 1380 फसली के सुसंगत खसरों, नवीनतम ग्राम मानचित्र और ऐसे अन्य अभिलेखों की जाँच करेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे और जहाँ वह आवश्यक समझे वहाँ स्थानीय निरीक्षण भी कर सकता है और उसके बाद यदि विहित प्राधिकारी की राय हो कि:-*

प्रथमतः, (क) कि, उपर्युक्त वर्षों में से किसी एक वर्ष में किसी भी फसल के लिए किसी भूमि पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध थी;

(i) अधिसूचना संख्या 1579-डब्लू/XXIII-62-डब्लू-1946, दिनांक 31 मार्च, 1953 में अधिसूचित सिंचाई दरों की अनुसूची संख्या 1 में शामिल कोई नहर, जिसे समय-समय पर संशोधित किया गया हो; या

(ii) कोई उद्वहन सिंचाई नहर; या

(iii) कोई राजकीय नलकूप या निजी सिंचाई कार्य; और

(ख) कि उक्त वर्षों में से किसी एक वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों; या

दूसरा, कि उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के लागू होने के पश्चात् प्रचालन में आने वाले राज्य सिंचाई कार्य द्वारा किसी भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध हुई हो और ऐसे कार्य के प्रचालन में आने की तिथि और धारा 10 के अधीन नोटिस जारी करने की तिथि के बीच किसी कृषि वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों; या

तीसरा, (क) यदि कोई भूमि उद्वहन सिंचाई नहर या राजकीय नलकूप या निजी सिंचाई कार्य के प्रभावी कमान क्षेत्र में स्थित है; और

(ख) यदि उसकी मिट्टी का वर्ग और संरचना ऐसी है कि वह एक कृषि वर्ष में कम से कम दो फसलें उगाने में सक्षम है; तो विहित प्राधिकारी ऐसी भूमि को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सिंचित भूमि के रूप में निर्धारित करेगा।

स्पष्टीकरण I - इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'प्रभावी कमान क्षेत्र' से तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से है, जिसके किसी भी दिशा में सबसे दूर के खेत की सिंचाई की गई थी-

(क) 1378 फसली, 1379 फसली और 1380 फसली में से किसी वर्ष में या,

(ख) खंड 'द्वितीयक' में निर्दिष्ट किसी कृषि वर्ष में

स्पष्टीकरण II - निजी सिंचाई कार्य का स्वामित्व और स्थान इस धारा के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण III - जहाँ किसी भूमि पर 1378 फसली, 1379 फसली और 1380 फसली में से किसी वर्ष में गन्ने की फसल उगाई गई हो, वहाँ

यह माना जाएगा कि इनमें से किसी वर्ष में उस पर दो फसलें उगाई गई थीं और वह भूमि एक कृषि वर्ष में दो फसलें उगाने में सक्षम है।]

20. अधिनियम 1960 की उक्त धारा 4ए उन स्थितियों पर विचार करती है, जिनमें भूमि को सिंचित कहा जा सकता है। सबसे पहला, सिंचाई सुविधा और तीन वर्षों में से किसी भी वर्ष में दो फसलें उगाना। दूसरा, जहाँ 1972 के संशोधन अधिनियम के लागू होने के बाद किसी भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो गई हो और ऐसे कार्य के संचालन की तिथि और धारा 10 के तहत नोटिस जारी करने की तिथि के बीच किसी भी कृषि वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों। अंत में भूमि, उद्वहन सिंचाई नहर, ट्यूबवेल, निजी सिंचाई कार्य के प्रभावी कमांड क्षेत्र में स्थित होनी चाहिए और मिट्टी का वर्ग और संरचना ऐसी होनी चाहिए कि वह दो फसलें उगाने में सक्षम हो। उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिरोपण नियम 1961 के नियम 3 में, जैसा कि 18.09.1975 की अधिसूचना के माध्यम से 19.09.1975 से संशोधित किया गया था, प्रावधान है; 'क्षेत्रों में जहाँ चकबंदी संक्रियाओं या अभिलेख प्रचालनों या किसी अन्य कारण से धारा 4-ए में उल्लिखित वर्षों के दौरान कोई खसरा तैयार नहीं किया गया हो, वहाँ विहित प्राधिकारी अन्य अभिलेखों की जाँच करते समय उस वर्ष से पहले के तीन नवीनतम वर्षों के उपलब्ध खसरों की भी जाँच कर सकता है, जिसमें खसरा तैयार नहीं किया गया था।

21. विहित प्राधिकारी ने वाद संख्या 2, 3 व 4 को एक साथ निर्णीत किया। विहित प्राधिकारी ने अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य व सामग्री तथा खतौनी 1399-1404 फसली व खसरा 1402 फसली व सीएच फार्म 45 व 41 व मौखिक साक्ष्य, जो इसे प्रमाणित करते हैं, पर विचार करने के पश्चात स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया कि सभी भूखंडों में सिंचाई की व्यवस्था है तथा गेहूं व गन्ना आदि की फसल बोई जा रही है, जो पानी की सुविधा के बिना संभव नहीं है। यह भी स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया कि याची के गाटा संख्या 115 में नलकूप है, जिससे याची के सभी गाटों की सिंचाई हो रही है। यह 1402 फसली के खसरे अर्थात जिस वर्ष नोटिस जारी किया गया था तथा लेखपाल एवं सहायक रजिस्ट्रार कानूनगो के साक्ष्य से सिद्ध हुआ है। सीएच फार्म 41 से भी पता चलता है कि भूमि उच्च गुणवत्ता की है, मिट्टी दोमट कछारी है तथा कई अन्य गाटाओं में नलकूप भी हैं। तदनुसार यह निष्कर्ष दर्ज किया गया कि याची की आबादी एवं उपवन भूमि को छोड़कर शेष सभी सिंचित भूमि है तथा दो फसलें उगाने योग्य है। इन निष्कर्षों को याची द्वारा न तो अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष चुनौती

दी गई है और न ही इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है तथा इन निष्कर्षों का खंडन करने के लिए कोई ठोस साक्ष्य प्रस्तुत भी नहीं किया गया है।

22. इस न्यायालय ने ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मुखराम सिंह और अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में यह माना है कि विहित प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष, विशेष रूप से दर्ज नहीं किया है कि मिट्टी की श्रेणी और संरचना ऐसी है कि यह एक कृषि वर्ष में कम से कम दो फसलें उगाने में सक्षम है। अतः केवल इसलिए कि विवादित भूखंड के पास दो ट्यूबवेल हैं, धारा 4-ए और उस धारा के खंड तीन के मद्देनजर यह नहीं माना जा सकता कि यह एक सिंचित भूखंड है। इसके अलावा खसरा सहित साक्ष्य की सराहना के आधार पर दर्ज तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

23. इस न्यायालय ने ***बड़ी बहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में माना है कि जहाँ तक भूमि की कृषि प्रकृति पर विचार का प्रश्न है, यह भी ध्यान देने योग्य है कि नोटिस 1982 में जारी किया गया था, तब सक्षम प्राधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह देखे कि क्या संबंधित वर्ष में धारा 4-ए के तहत सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध थी।

24. ***विभूति कुमार बाजपेयी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में इस न्यायालय ने माना है कि भूमि किस सीमा तक जलमग्न है और किस सीमा तक जलमग्न होने के कारण उस पर कोई खेती नहीं हो रही है, इस प्रश्न पर विहित प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया है।

25. इस न्यायालय ने ***बाल कृष्ण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में माना है कि कल्लू बनाम राज्य (1979 एएलजे 1113) में उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण अधिनियम की धारा 4-ए के उप-खंड (ए) की व्याख्या करते हुए यह देखा गया था कि यदि धारा 4-ए के खंड 'प्रथम' के उप-खंड (ए) में वर्णित प्रकृति की सिंचाई सुविधाएँ केवल उस कुल क्षेत्रफल के एक हिस्से के लिए उपलब्ध हैं, जिसमें एक भूखंड शामिल है, तो यह नहीं माना जा सकता है कि पूरे भूखंड के लिए सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध थीं, जिसका अर्थ है कि अन्य भूखंड असिंचित नहीं है।

26. इस न्यायालय ने ***राम सागर बनाम सिविल जज बहराइच एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में माना है कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि सिंचित क्षेत्र की गणना करते समय, विहित प्राधिकारी को यह पता लगाने के लिए खसरा और प्रासंगिक राजस्व अभिलेखों पर विचार करना होगा कि किसी भी फसल के संबंध में किसी भी भूमि पर सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध थीं या नहीं। यह भी समान रूप से स्थापित तथ्य है कि, यह स्थापित

करने का दायित्व राज्य पर है कि नोटिस में उल्लिखित भूमि सिंचित भूमि है।

27. इस न्यायालय ने ***भगवान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में 1960 के अधिनियम की धारा 4ए के दायरे पर विचार किया है। अनुच्छेद 5 का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है :

"धारा 4 ए में 3 शर्तों के तहत सिंचित भूमि का निर्धारण करने का प्रावधान है, जो इसमें पहले, दूसरे और तीसरे रूप में उल्लिखित हैं। उक्त प्रावधान को लागू करते समय विधानमंडल को एक कृषि वर्ष में कम से कम दो फसल उगाने की मिट्टी की क्षमता और दो फसलों की वास्तविक खेती के बीच के अंतर के बारे में पता था। उक्त धारा के पहले और दूसरे मामलों में, इस्तेमाल की गई भाषा में, कम से कम दो फसलें उगाई गई थी, जबकि तीसरे के तहत परीक्षण प्रदान किया गया है, वह यह है कि मिट्टी की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि वह कम से कम दो फसलें उगाने में सक्षम हो । विधानमंडल दोनों के बीच के अंतर के बारे में जागरूक थी और विधानमंडल ने विभिन्न परिस्थितियों के तहत अलग-अलग परीक्षण प्रदान करने के कारण धारा 4 ए के तहत दो फसलों की वास्तविक खेती के लिए विशिष्ट प्रावधान बनाया है । उपर्युक्त कारणों से यह माना जाना चाहिए कि धारा 4-ए के तहत जब तक कि संशोधन अधिनियम के लागू होने की तारीख और धारा 29 (बी) के तहत नोटिस जारी करने की तारीख के बाद वास्तव में दो फसलें नहीं उगाई जाती हैं, तब तक भूमि को सिंचित नहीं माना जा सकता है।"

28. इस न्यायालय ने ***राज बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में यह माना है कि यदि भूमि धारा 4-ए के तहत निर्धारित परीक्षण के अंतर्गत आती है, तो भूमि को अधिशेष घोषित किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 4-ए के तहत निर्धारित परीक्षण का पालन उन सभी मामलों में किया जाना चाहिए जहाँ उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा आरोपण (संशोधन) अधिनियम 1972 के लागू होने के बाद अधिकतम सीमा का पुनर्निर्धारण किया जाना है।

29. इस न्यायालय ने ***राजा महिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में यह टिप्पणी की है कि विहित प्राधिकारी को हस्तान्तरितियों के पक्ष में दाखिल खारिज की तिथि पर विचार करना आवश्यक है, तथा यह भी देखना होगा कि कुछ भूखंड सिंचित है या नहीं, या उपवन है या नहीं, तथा चकबंदी कार्यवाही में भूखंडों के परिवर्तन के

कारण भूमि के मूल्यांकन में कमी तो नहीं हुई है।

30. इस न्यायालय ने ***कौशलेन्द्र बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में यह टिप्पणी की है कि 1960 के अधिनियम की धारा 4-ए को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि यह वैधानिक आदेश है कि विहित प्राधिकारी को सबसे पहले संबंधित खसरों की जाँच करनी होगी तथा 1960 के अधिनियम की धारा 4-ए के विशिष्ट प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह कहना उचित होगा कि स्थानीय निरीक्षण का उद्देश्य केवल पुष्टि करना है और यह सिंचित भूमि के निर्धारण के लिए आधार नहीं बन सकता है।

31. इस न्यायालय ने ***आदि कुमार जैन बनाम अपर आयुक्त एवं अन्य (पूर्व में वर्णित), राजेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** तथा ***श्रीमती बिंदा गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया है।

32. इस न्यायालय ने ***कुंवर बहादुर सिंह एवं अन्य बनाम विहित प्राधिकारी एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में माना है कि 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के अंतर्गत नया नोटिस जारी करने के लिए धारा 29 के अंतर्गत निर्धारित शर्तों को पूरा करना आवश्यक है। संबंधित अनुच्छेद 14 और 15 नीचे उद्धृत किए गए हैं:

*"**14.** 1972 के संशोधन अधिनियम के लागू होने के बाद अतिरिक्त भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में घोषित करने से संबंधित 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के तहत नए नोटिस के प्रयोजनों के लिए, यह आवश्यक है कि भूमि किसी न्यायालय के आदेश या डिक्री के तहत या उत्तराधिकार या हस्तांतरण के परिणामस्वरूप या किसी प्रतिकूल कब्जे के परिणामस्वरूप निर्धारित तरीके से भूमिधर के पास आ गई हो, और ऐसी भूमि उसके पास पहले से मौजूद भूमि के साथ मिलकर उस पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल से अधिक हो या कोई अन्य असिंचित भूमि कुछ शर्तों के तहत सिंचाई के परिणामस्वरूप सिंचित भूमि बन जाए।*

***15.** धारा 29 की उक्त शर्तें पूरी होने पर अधिनियम की धारा 30 के प्रावधान लागू हो जाते हैं। उपरोक्त कार्यवाही के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अधिनियम 1960 की धारा 10(2) के अंतर्गत नया नोटिस जारी करने के लिए अधिनियम 1960 की धारा 29 के अंतर्गत निर्धारित शर्तों को पूरा करना अनिवार्य है।"*

33. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने ***शांतनु कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में माना है कि अधिनियम के तहत किसी अन्य उपाय का अस्तित्व उन कार्यवाहियों को वैध नहीं ठहरा सकता जो क्षेत्राधिकार के अभाव में शून्य हैं

और जिसके परिणामस्वरूप उस क्षेत्र को अधिशेष भूमि के रूप में घोषित किया गया है, जिस पर सुनवाई किए गए भूमिधर के अलावा कोई अन्य व्यक्ति दावा करता है।

34. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अपर आयुक्त न्यायिक व अन्य (पूर्व में वर्णित)*** के मामले में यह पाया है कि धारा 4ए के स्पष्टीकरण (III) में जहाँ किसी फसली वर्ष में खसरे पर गन्ना की फसल दर्ज की गई है, वहाँ यह माना जाएगा कि उस भूमि पर दो फसलें उगाई गई हैं और वह भूमि एक कृषि वर्ष में दो फसलें उगाने में सक्षम है। आगे यह भी पाया गया है कि जहाँ तक निजी नलकूप का संबंध है, याचिकाकर्ता ने विहित प्राधिकारी के समक्ष नलकूप की बोरिंग के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई थी। एक फसली वर्ष में की गई प्रविष्टियाँ संबंधित भूमि पर सिंचाई कार्य और फसलों के संबंध में पुष्टि करने के लिए पर्याप्त है। क्षेत्र के लेखपाल का मौखिक बयान एक अच्छा सबूत माना जा सकता है, यदि वह दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा समर्थित हो। प्रतिवादी भी विहित प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष, क्षेत्र लेखपाल के कथन पर अविश्वास करने का कारण बताने के लिए कोई सबूत प्रस्तुत करने में विफल रहा है। वर्तमान मामले में भी, प्रासंगिक वर्ष के खसरा यानी 1402 फसली के आधार पर निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं और क्षेत्र लेखपाल, फाइल तैयार करने वाले लेखपाल और सहायक रजिस्ट्रार, कानूनगो के साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं, जिनका याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी स्तर पर किसी भी ठोस सबूत से खंडन नहीं किया गया है।

35. मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए तथा कानून और उपरोक्त संदर्भित वादों में निर्धारित किये गए कानूनों के प्रकाश में विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को कानून के अनुसार तथा 1960 के अधिनियम की धारा 29 के अनुसार नोटिस जारी की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा ली गई सीमा अवधि और पूर्वनिर्णीत के सिद्धांत (रेसजुडिकाटा) की दलील ऊपर चर्चा के अनुसार मान्य नहीं है। यह दलील कि याचिकाकर्ता के बेटों को नोटिस दिया जाना आवश्यक था, भी मान्य नहीं है क्योंकि यह नवंबर 2022 में दायर पूरक हलफनामे को छोड़कर कभी नहीं लिया गया था, इसलिए चूँकि यह विहित प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष नहीं लिया गया था और यहाँ तक कि इस याचिका में भी प्रतिउत्तर हलफनामे के चरण तक यह विचारणीय नहीं है, अन्यथा भी याचिकाकर्ता इस संबंध में प्रासंगिक विवरण देने में विफल रहा है और जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है, अलग-अलग चक 1998 में आवंटित किए गए थे, अर्थात विहित प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित करने

के बाद याचिकाकर्ता की आबादी और बाग़ की ज़मीन को छोड़कर बाकी सारी ज़मीन संबंधित वर्ष के खसरे के आधार पर सिंचित पाई गई है, इस सन्दर्भ में अभिलेख पर सामग्री और साक्ष्य मौजूद हैं और विहित प्राधिकारी द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी गई है और इसके विपरीत कोई भी साक्ष्य पेश नहीं किया गया है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा तथ्यात्मक निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि आक्षेपित आदेश कानून के अनुसार था और याचिकाकर्ता को पर्याप्त अवसर प्रदान करने के बाद ही सही रीति से पारित किया गया है। रिट याचिका गलत धारणा और निराधार आधारों पर दायर की गई है, इसलिए इसमें कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

36. तदनुसार, रिट याचिका **खारिज** की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

(2023) 5 ILRA 1214

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 271/2023

नवीन कुमार शर्मा एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री उत्कर्ष दीक्षित, श्री अनुपम श्याम द्विवेदी, श्री सुधीर दीक्षित

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अर्धेंदु शेखर शर्मा, श्री राम बाबू शर्मा

ए. आपराधिक/बैंकिंग कानून- परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881: धारा 138 - सुरक्षा के रूप में चेक सौंपने से अभियुक्त को ऐसे चेक से उत्पन्न होने वाले दायित्व से मुक्ति नहीं मिलेगी। (पैरा 8, 18)

वर्तमान वाद में, क्या जिस खाते से उक्त चेक काटा गया था, उसमें प्रतिवादी के पक्ष में काटे गए 90,000,00/- रुपये के उक्त चेक द्वारा एकत्रित राशि का भुगतान करने के लिए पर्याप्त शेष था, क्या याचिकाकर्ता के पास ऊपर बताए अनुसार अवरुद्ध खाते के अलावा कोई अन्य खाता था, जिस पर उसके द्वारा दावा किए गए कुछ ऋण और देयता के निर्वहन में प्रतिवादियों के पक्ष में चेक काटा जाता, क्या याचिकाकर्ता का वास्तव में चेक भुनाने का आशय था, इन सभी प्रश्नों का निर्णय परीक्षण के दौरान किया जाना है और वर्तमान याचिका में लिए गए आधारों को याचिकाकर्ता द्वारा बचाव का नेतृत्व करने के चरण में उठाया जा सकता है। याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उक्त चेक प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में सुरक्षा चेक के रूप में जारी किया गया था, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 2 पर बड़ी राशि बकाया थी और इस कारण से फर्म से अलगाव की सभी औपचारिकताएं पूरी करने के बाद चेक का भुगतान किया जाना था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रस्ताव द्वारा समाप्त कर दी गई है।

विवादित आदेश विधिनुसार हैं और उनमें कोई अवैधता या अनियमितता नहीं पाई गई है। इस मामले को देखते हुए, विचारणीय न्यायालय को पक्षों के साक्ष्य रिकॉर्ड करने और स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने की आवश्यकता है कि क्या एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत कोई अपराध बनता है या नहीं। (पैरा 18)

रिट याचिका निरस्त की गई। समन आदेश की पुष्टि की जाती है। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. वॉम्ब लैबोरेटरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम विजय आहूजा एवं अन्य, 2019 लीगल ईगल (एससी) 1447 (पैरा 8)
2. मेसर्स गो गो इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड बनाम मेसर्स लिलिपुट किड्सवियर, कर्नाटक उच्च न्यायालय आपराधिक याचिका संख्या 2726/2014 (पैरा 16)
3. डी.पी. गुलाटी प्रबंधक लेखा मेसर्स जेटकिंग इन्फोट्रेन लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, सर्वोच्च न्यायालय, निर्णय दिनांक 31.03.2015, सीआरएल अपील संख्या 1550/2014 (पैरा 17)

<u>विधि व्यवस्था उद्धृत:</u>

1. मेसर्स सीजफायर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम राज्य एवं अन्य, दिनांक 01.05.2017 को निर्णयित (पैरा 10)

2. राजेश मीना बनाम हरियाणा राज्य (पैरा 11)

वर्तमान याचिका में एल.डी. अतिरिक्त सिविल जज, (जे.डी.)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर की अदालत में लंबित आपराधिक परिवाद संख्या 496/2022, धारा 138 एन.आई. अधिनियम की संपूर्ण कार्यवाही को निरस्त करने के लिए उपयुक्त निर्देश देने की प्रार्थना की गई है, साथ ही एल.डी. अतिरिक्त सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत द्वारा पारित दिनांक 13.10.2022 के आक्षेपित समन आदेश और सी.आर.एल. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट, बुलंदशहर की अदालत द्वारा सी.आर.एल. पुनरीक्षण संख्या 361/2022 में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 13.12.2022 को भी निरस्त करने का प्रार्थना की गई।

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत तत्काल याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है:-

(i) आपराधिक शिकायत केस संख्या 496 वर्ष 2022 (श्रीमती शशि शर्मा बनाम मैसर्स नवीन ऑटोज और अन्य, धारा 138 एनआई नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट, पीएस कोतवाली नगर, जिला बुलंदशहर) की पूरी कार्यवाही को रद्द करते हुए उपयुक्त प्रकृति का आदेश या निर्देश जारी करना, जो एलडी अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, (जेडी) की अदालत के समक्ष लंबित है। न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 9, बुलंदशहर के साथ- साथ एलडी एडिशनल सिविल जज (जूनियर डिवीजन) / न्यायिक

मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 9, बुलंदशहर की अदालत द्वारा 2022 के सीआरपीसी शिकायत केस नंबर 496 (श्रीमती शशि शर्मा बनाम मेसर्स नवीन ऑटो और अन्य) में 13.10.2022 को एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत पारित समन आदेश जारी किया गया है। पी.एस. कोतवाली नगर, जिला बुलंदशहर (इस याचिका का अनुलग्नक संख्या 6) और 2022 के संशोधन संख्या 361 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट, कोर्ट नंबर 2, बुलंदशहर की अदालत द्वारा पारित दिनांक 13.12.2022 के निर्णय और आदेश को लागू किया।

(ii) समान प्रकृति का कोई अन्य आदेश या निदेश जारी करना, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उपयुक्त और उचित समझे।

2. मैंने याचिकाकर्ता के वकील, प्रतिवादी नंबर 2 के वकील और राज्य के लिए एजीए को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

3. संक्षेप में मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि प्रतिवादी नंबर 2 ने एक शिकायत दर्ज की जो 2022 के केस नंबर 496 (श्रीमती शशि शर्मा बनाम मेसर्स नवीन ऑटो और अन्य) के रूप में एन.आई. अधिनियम की धारा 138, पीएस कोतवाली नगर, जिला बुलंदशहर के तहत दर्ज की गई है, जिसमें कहा गया है कि शिकायतकर्ता और प्रतिवादी नंबर 2 राजे बाबू रोड पर मेसर्स नवीन ऑटो के नाम से एक साझेदारी फर्म में काम कर रहे हैं। बुलंदशहर। शिकायतकर्ता और प्रतिवादी नंबर 2, दोनों फर्म में भागीदार हैं। यह फर्म टीवीएस बाइक के स्पेयर पार्ट्स और रिपेयरिंग आदि का कारोबार करती है। फर्म के मुनाफे में, शिकायतकर्ता का हिस्सा 30% है, प्रतिवादी संख्या 2 की पत्नी का हिस्सा 30% है, प्रतिवादी संख्या 2 का हिस्सा 20% है और उमा शर्मा का हिस्सा 20% है। प्रतिवादी संख्या 2 को फर्म की ओर से व्यवसाय करने का निर्देश दिया गया है, हालांकि, पिछले तीन वर्षों से शिकायतकर्ता को कोई लाभ नहीं दिया गया था और फर्म के मामलों के संबंध में प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा उसे टाल दिया गया था। जब उसने प्रतिवादी नंबर 2 के साथ बातचीत की, तो उसने उसे फर्म के साथ अपने संबंधों को समाप्त करने के लिए कहा और शिकायतकर्ता और फर्म के भागीदारों के बीच इस बात पर सहमति हुई कि शिकायतकर्ता को उसके 30% हिस्से और मुनाफे के बदले 3,00,000 रुपये दिए जाएंगे। भागीदारों के बीच यह भी सहमति हुई कि जब तक शिकायतकर्ता को 3,00,000,00,00/- रुपये का भुगतान नहीं किया जाता है, तब तक वह लाभ प्राप्त करती रहेगी और उस आधार पर फर्म द्वारा शिकायतकर्ता के पक्ष में 15.06.2022 को 90,00,000/- रुपये का चेक जारी किया गया था, जिस पर प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा फर्म के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में

हस्ताक्षर किए गए थे। यह चेक फर्म के केनरा बैंक खाते से निकाला गया था। शिकायतकर्ता ने उसी दिन अपने बैंक पीएनबी, यमुनापरम शाखा बुलंदशहर में अपने बैंक खाते पर चेक प्रस्तुत किया, हालांकि, इसे डिशपोषित किया गया और 20.7.2022 को "खाता अवरुद्ध" होने के साथ वापस कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप चेक बाउंस हो गया। जब उसने प्रतिवादी नंबर 2 से इस बारे में पूछा, तो वह कोई संतोषजनक जवाब नहीं दे सका और उसके साथ दुर्व्यवहार किया। उसने 25.7.2022 को अपने पते पर एक मांग नोटिस भेजा जो उन्हें 28.7.2022 को प्राप्त हुआ था, हालांकि, इसका गलत जवाब उनके द्वारा 2.8.2022 को भेजा गया था, इसलिए, शिकायतकर्ता के पास एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत आरोप के लिए फर्म और प्रतिवादी नंबर 2 के अभियोजन के लिए वर्तमान शिकायत दर्ज करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

4. विद्वान मजिस्ट्रेट ने सीआरपीसी की धारा 200 के तहत शिकायतकर्ता और धारा 202 सीआरपीसी के तहत उसके गवाहों के बयान दर्ज किए और आक्षेपित समन आदेश पारित किया, जिसके तहत वर्तमान याचिकाकर्ताओं को एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत आरोप के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया था।

5. अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, (जूनियर डिवीजन), कोर्ट नंबर 9, बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 13.10.2022 के आक्षेपित समन आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, मामले में वर्तमान याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों ने सत्र न्यायाधीश, बुलंदशहर की अदालत के समक्ष 2022 का आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 361, नवीन कुमार शर्मा और एक अन्य बनाम शशि शर्मा और एक अन्य दायर किया, हालांकि, उक्त संशोधन को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एफटीसी द्वारा खारिज कर दिया गया था। न्यायालय संख्या 2, बुलन्दशहर दिनांक 13.12.2022 के आदेश द्वारा। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की उसमें पुष्टि की गई थी। उक्त संशोधन में लिया गया आधार यह था कि भागीदारों का हिस्सा फर्म द्वारा तय किया गया था जो शिकायत में दिखाया गया है जिसे स्वीकार किया गया है और तदनुसार श्रीमती शशि शर्मा, शिकायतकर्ता को फर्म में 30% शेयर आवंटित किया गया था, जबकि आरोपी नवीन और उसकी पत्नी को क्रमशः 20%, 30% शेयर और उमा शर्मा को फर्म में 20% शेयर आवंटित किया गया था। 90,00,000/- रुपये की राशि का विवादित चेक नंबर 149610 शिकायतकर्ता को दिया गया था क्योंकि भागीदारों के बीच यह सहमति बनी थी कि वह फर्म से अलग होने की सभी औपचारिकताओं को स्वयं

पूरा करेगी और औपचारिकताओं और लेखांकन के पूरा होने तक, वह चेक को सुरक्षित रूप से अपने पास रखेगी। फर्म की बैलेंस शीट के अनुसार शशि शर्मा के खिलाफ फर्म का 1,53,34,470 रुपये बकाया था। उक्त चेक प्राप्त करने के बाद शिकायतकर्ता शशि शर्मा ने दुर्भावनापूर्ण इरादे से 10.11.2021 को बैंक अधिकारियों को फर्म के खाता संख्या 2154261011432 को ब्लॉक और जब्त करने के लिए एक पत्र लिखा और उन्होंने बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय को भी लिखा कि चूंकि फर्म के भागीदारों के बीच संघर्ष है, इसलिए फर्म के उक्त खाते को जब्त और अवरुद्ध किया जाए और शिकायतकर्ता के 30.11.2021 के उक्त पत्र के कारण, फर्म का खाता 1.12.2021 से अवरुद्ध कर दिया गया था।

6. याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि सत्र न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण में पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा विशिष्ट आधार लिया गया था कि उक्त चेक शिकायतकर्ता/प्रतिवादी नंबर 2 को भागीदारों के बीच हुई सहमति के अनुसरण में सुरक्षा के रूप में दिया गया था और उसे चेक को सुरक्षित रूप से रखना था, लेकिन उसने याचिकाकर्ताओं को शर्मिंदा करने और मजबूर करने के लिए इसे तुरंत प्रस्तुत किया। इस तथ्य ने पुनरीक्षण न्यायालय के ध्यान में यह भी लाया कि उक्त चेक को धन की अपर्याप्तता या राशि की व्यवस्था नहीं किए जाने के आधार पर अस्वीकृत नहीं किया गया था, जिसे एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अभियोजन के आधार के रूप में गिना जाता है, लेकिन इस आधार पर कि खाता अवरुद्ध कर दिया गया था और यह आधार एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत नहीं आता है। इसलिए, खाता अवरुद्ध होने के आधार पर चेक के अनादरण को देखते हुए, याचिकाकर्ताओं पर एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत आरोप के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, क्योंकि फर्म के भागीदारों के बीच संघर्ष के कारण फर्म के खाते को अवरुद्ध करने और जब्त करने के लिए संबंधित बैंक को पत्र जारी करके शिकायतकर्ता के कहने पर खाते को अवरुद्ध किया गया था। इसलिए, नीचे दी गई अदालत के दोनों आदेश टिकाऊ नहीं हैं और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए और ट्रायल कोर्ट के समक्ष याचिकाकर्ताओं के खिलाफ की गई कार्यवाही रद्द की जानी चाहिए अन्यथा याचिकाकर्ताओं को बिना किसी कानूनी आधार के अपूरणीय क्षति का सामना करना पड़ेगा।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2 के वकील ने प्रस्तुत किया कि नीचे दी गई अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या कोई

स्वामित्व नहीं है। एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर शिकायत सिर्फ एक कानूनी आधार पर आधारित है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका में याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए आधारों पर विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और एक विस्तृत आदेश पारित करने या मामले में शामिल बिंदुओं पर विचार करने के बाद। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 13.10.2022 के समन आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

8. प्रतिवादी के वकील ने कोम्ब लेबोरेटरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम विजय आहूजा और अन्य, 2019 लीगल ईगल (एससी) 1447 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का हवाला दिया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 5 और 6 में निम्नानुसार कहा है:-

"5. हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने पूरे मुद्दे को अव्यवस्थित कर दिया है। शिकायत में कहा गया है कि हस्ताक्षरित चेक आरोपी द्वारा शिकायतकर्ता को सौंपे गए थे। चेक सुरक्षा के माध्यम से दिए गए थे, यह बचाव का विषय है। इसके अलावा, यह किसी भी ऋण के निर्वहन के लिए नहीं था या कोई दायित्व भी बचाव का विषय है। बचाव पक्ष को स्वीकार करने के लिए प्रासंगिक तथ्यों को साबित करना होगा - कि इस तरह की प्रतिभूति को आरोपी के ऋण या अन्य दायित्व के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह एक व्यवहार्य मुद्दा होगा। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि प्रतिभूति के रूप में चेक सौंपने से आरोपी ऐसे चेकों से उत्पन्न दायित्व के निर्वहन से मुक्त नहीं हो जाएगा।

6. यह देखने के लिए पर्याप्त है कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय न्यायिक जांच की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता है। इसलिए इसे रद्द किया जाता है।

9. एनआई अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

138 खाते में निधियों की अपर्याप्तता आदि के लिए चेक का अनादर। जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी बैंकर के पास रखे गए खाते पर किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए उस खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए लिया गया कोई चेक, पूरी तरह से या आंशिक रूप से, किसी भी ऋण या अन्य देयता के निर्वहन के लिए, बैंक द्वारा अवैतनिक वापस कर दिया जाता है, या तो उस खाते के क्रेडिट में खड़ी राशि चेक का सम्मान करने के लिए अपर्याप्त है या यह अधिक है। उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली 4 राशि की व्यवस्था की गई है, ऐसे व्यक्ति को अपराध माना जाएगा और इस अधिनियम के किसी भी

अन्य प्रावधानों के पूर्वाग्रह के बिना, 1 [एक अवधि जिसे दो साल तक बढ़ाया जा सकता है) के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा, या जुर्माना जो चेक की राशि का दोगुना तक हो सकता है, या दोनों के साथः बशर्ते कि इस धारा में निहित कुछ भी तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि-

(ए) चेक को बैंक को उस तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर प्रस्तुत किया गया है जिस तारीख को इसे तैयार किया गया था या इसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो;

(ख) आदाता या धारक, जैसा भी मामला हो, चेक की वापसी के संबंध में बैंक से सूचना प्राप्त होने के 20 (तीस दिनों के भीतर) चेक के दराज को लिखित में नोटिस देकर उक्त धनराशि के भुगतान की मांग करता है; और (ग) ऐसे चेक का आहरणकर्ता उक्त नोटिस प्राप्त होने के पंद्रह दिनों के भीतर आदाता को या, जैसा भी मामला

हो, उक्त धनराशि का भुगतान चेक के नियत समय में करने में विफल रहता है।

10. याचिकाकर्ता के वकील ने मेसर्स सीजफायर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम राज्य और अन्य मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया। 1 मई, 2017 को, जिसमें याचिकाकर्ता ने ओखला इंडस्ट्रीज क्षेत्र, नई दिल्ली के साथ प्रतिवादी द्वारा जारी किए गए दो चेकों के अनादर के सवाल में प्रतिवादी आरोपी के खिलाफ एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत दो शिकायतें दर्ज की थीं, हालांकि, उक्त चेक को बैंक द्वारा मेमो के साथ वापस कर दिया गया था, जिसमें "खाता ब्लॉक" होने के कारणों का उल्लेख किया गया था। शिकायतकर्ता ने बैंक द्वारा भुगतान न किए गए उक्त चेक ोवं की वापसी के बाद कानूनी मांग नोटिस जारी किया और उत्तरदाताओं को भुगतान करने के लिए कहा और उनकी ओर से भुगतान में चूक पर एक शिकायत दर्ज की गई। मजिस्ट्रेट ने सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत जांच करने के बाद दूसरे से चौथे प्रतिवादी को तलब किया, हालांकि, ट्रायल करने के बाद मजिस्ट्रेट ने एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत प्रतिवादी को आरोप से बरी कर दिया। यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता को स्वयं पता था कि कुछ वैधानिक प्राधिकारी के निर्देशों के अनुसार खाते को फ्रीज कर दिया गया है। इन परिस्थितियों में अवैतनिक चेकों की वापसी का कारण एनआई अधिनियम की धारा 138 में परिकल्पित नहीं है, ये याचिकाएं मेरिट से रहित हैं और खारिज कर दी जाती हैं।

11. राजेश मीणा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य में याचिकाकर्ता के वकील द्वारा उद्धृत एक अन्य फैसले में, उच्च न्यायालय ने कहा कि दिए गए तथ्यों में, इस न्यायालय को यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जिस तारीख को शिकायतकर्ता द्वारा आहरणकर्ता बैंक को चेक प्रस्तुत किए गए थे, खाताधारक उक्त खाते का रखरखाव नहीं कर रहा था। नतीजतन, इस भौतिक स्थिति के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध बनाया जाएगा।

12. रिकॉर्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता नवीन कुमार ने प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ अतिरिक्त सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/ न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 9, बुलंदशहर की अदालत के समक्ष शिकायत भी दायर की थी, जिसमें पीड़िता द्वारा उसे सिक्योरिटी के रूप में दिए गए 90,00,000 रुपये के सुरक्षा चेक के दुरुपयोग का आरोप लगाया गया था और उस बैंक को लिखा गया था जहां फर्म का खाता रखा जा रहा था। उक्त खाते को ब्लॉक कर दिया गया था। उस शिकायत में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने प्रतिवादी संख्या 2 श्रीमती शशि शर्मा और उनके पति को 17.11.2022 के आदेश के तहत धारा 417, 406, 420, 504, 506 आईपीसी के तहत आरोप के लिए तलब किया, हालांकि, उक्त शिकायत में उक्त विपरीत पक्षों नवीन कुमार शर्मा और श्रीमती शशि शर्मा ने उक्त शिकायत मामले की कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस अदालत के समक्ष 2022 की धारा 482 सीआरपीसी संख्या 40041 के तहत याचिका दायर की। उक्त शिकायत मामले की कार्यवाही पर छह सप्ताह की अवधि के लिए रोक लगा दी गई।

13. अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत दो शिकायतें दर्ज की गई हैं, एक वर्तमान प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा और एक उसके पति द्वारा फर्म द्वारा जारी चेक के अनादर के लिए क्रमशः 90,00,000/- रुपये और 12,50,000/- रुपये है।

14. केनरा बैंक द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत वर्तमान याचिकाकर्ता के आवेदन पर 12.10.2022 को केनरा बैंक द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत यह जानकारी दी गई है, जिसमें यह कहा गया है कि मेसर्स नवीन ऑटो राजे बाबू, बुलंदशहर का खाता संख्या 2154261011432 केनरा बैंक की संबंधित शाखा में पड़ा हुआ है, हालांकि, बुलंदशहर शाखा से प्राप्त जानकारी के अनुसार 1.12.2021 को इसका संचालन अवरुद्ध कर दिया गया है। ओ.डी. की समय-सीमा समाप्त होने के कारण इसका संचालन स्वतः ही रोक दिया गया था और इसके अलावा, उक्त ओडी सीमा के नवीकरण के लिए दस्तावेज पर, एक भागीदार श्रीमती शशि शर्मा ने दस्तावेज पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं और अन्य भागीदार के साथ आपसी विवाद के कारण बैंक से सभी प्रकार की निकासी को अवरुद्ध करने का भी अनुरोध किया था।

15. प्रतिवादी के वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर खाते पर एक चेक निकाला था जिसे अवरुद्ध कर दिया गया था। उनका इरादा चेक में जमा राशि का भुगतान करने का नहीं था, जिसे बैंक ने अस्वीकार कर दिया था। याचिकाकर्ता ने खुद यह मामला उठाया कि उक्त चेक के अनादरण के बाद प्रतिवादी द्वारा दिए गए मांग नोटिस के जवाब में उक्त चेक को सुरक्षा के रूप में दिया गया था। वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते हुए पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सभी मुद्दों को संबोधित किया गया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका में नीचे दिए गए विद्वान न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में

कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है जो एक असाधारण उपाय है।

16. कर्नाटक उच्च न्यायालय ने 2014 की आपराधिक याचिका संख्या 2726, मैसर्स गो गो इंटरनेशनल Pvt.Ltd बनाम मैसर्स लिलीपुट किड्सवियर में मैसर्स सीजफायर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम राज्य और अन्य मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर विचार किया। (सुप्रा) दिनांक 24.1.2019 के आदेश के तहत कहा गया है कि जब खाता अवरुद्ध होने के कारण चेक बाउंस हो जाता है, तो यह एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध है, इसलिए उच्च न्यायालयों के बीच इस मुद्दे पर मतभेद है।

17. डी.पी. गुलाटी प्रबंधक लेखा मैसर्स जेटकिंग इंफोट्रेन लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2014 के सीआरएल अपील संख्या 1550 में दिनांक 31.3.2015 के फैसले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया। आरोपी व्यक्तियों द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 468 के तहत उक्त न्यायालय ने याचिका का निपटारा कर दिया और 2013 के आपराधिक शिकायत केस नंबर 1446 की कार्यवाही और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं द्वारा दायर एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत को इस आधार पर रद्द करने से इनकार कर दिया कि यह प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग का एक स्पष्ट मामला था।

18. क्या जिस खाते से उक्त चेक निकाला गया था, उसमें प्रतिवादी के पक्ष में लिए गए 90,000,00/- रुपये के उक्त चेक द्वारा एकत्र की गई राशि का भुगतान करने के लिए पर्याप्त शेष राशि थी, क्या याचिकाकर्ता के पास उस खाते के अलावा कोई अन्य खाता था जिसे ऊपर बताए गए अनुसार अवरुद्ध किया गया था, जिस पर उसके द्वारा दावा किए गए कुछ ऋण और देयता के निर्वहन में प्रतिवादियों के पक्ष में चेक निकाला जाएगा, क्या याचिकाकर्ता वास्तव में चेक को भुनाने का इरादा रखता है, इन सभी सवालों पर परीक्षण के दौरान फैसला किया जाना है और वर्तमान याचिका में लिए गए आधारों को याचिकाकर्ता द्वारा बचाव के स्तर पर उठाया जा सकता है। याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उक्त चेक प्रतिवादी नंबर 2 के पक्ष में सुरक्षा चेक के रूप में जारी किया गया था, क्योंकि प्रतिवादी नंबर 2 पर बड़ी राशि बकाया थी और इस कारण से फर्म से अलग होने की सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद चेक को भुनाया जाना था, ओम लेबोरेटरी प्राइवेट लिमिटेड में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के उपरोक्त प्रस्ताव से खारिज हो जाता है। जिसमें यह माना गया था कि प्रतिभूति के रूप में चेक सौंपना, आरोपी को उक्त चेक से उत्पन्न दायित्व के निर्वहन से मुक्त नहीं करेगा, इसलिए, पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय को नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है, जिन्हें वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है। आक्षेपित आदेश कानून के अनुसार हैं और उनमें कोई अवैधता या अनियमितता नहीं पाई

गई है। मामले के उस दृष्टिकोण में, ट्रायल कोर्ट को पार्टियों के साक्ष्य दर्ज करने और एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने की आवश्यकता है कि क्या एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध बनता है या नहीं।

18. परिणाम में याचिका खारिज की जाती है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित समन आदेश की पुष्टि की जाती है। ट्रायल कोर्ट आरोपी याचिकाकर्ता की उपस्थिति और आरोप पर बयान दर्ज करने के बाद पार्टियों के साक्ष्य दर्ज करने के लिए आगे बढ़ेगा और कानून के अनुसार एनआई अधिनियम की धारा 138 के संदर्भ में सवार्ता का फैसला करेगा।

19. अंतरिम आदेश का निर्वहन किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1221

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

अनुच्छेद के अंतर्गत वाद 227 संख्या 11228/2022

फूल कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

श्याम सिंह एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आदित्य कुमार सिंह, श्री निपुण सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री सैयद अली इमाम, श्री सैयद अली इमाम

ए. सिविल कानून - निषेधाज्ञा - यथास्थिति - जहां कोई संपत्ति कई सह-स्वामियों के पास होती है, वहां प्रत्येक सह-स्वामी का संपत्ति के प्रत्येक भाग में हित होता है, लेकिन ऐसा हित अन्य सह-स्वामियों के समान हित द्वारा योग्य होता है, और इसलिए, उस सीमा तक, संपत्ति को कोई क्षति या बर्बादी या संपत्ति का अवैध उपयोग किसी सह-स्वामी द्वारा अन्य सह-स्वामियों के लिए नुकसानदेह नहीं होने दिया जा सकता है। (पैरा 28, 29)

स्वामित्व में तीन आवश्यक अधिकार अर्थात् कब्जे का अधिकार, आनंद लेने का अधिकार और निपटान का अधिकार शामिल हैं। यदि किसी मालिक को गलत तरीके से उसकी संपत्ति के कब्जे से वंचित किया जाता है, तो उसे उस पर कब्जा पाने का अधिकार है। भूमि के सह-स्वामी के मामले में तीनों आवश्यक तत्व संतुष्ट हैं। सभी सह-स्वामियों के पास संपत्ति में समान अधिकार और समन्वित हित हैं, हालांकि उनके हिस्से या तो निश्चित या अनिश्चित हो सकते हैं। प्रत्येक सह-स्वामी को अन्य सह-स्वामी या सह-स्वामियों के बराबर आनंद और कब्जे का अधिकार है। प्रत्येक सह-स्वामी का, सिद्धांत रूप में, विषय-वस्तु के हर छोटे से छोटे हिस्से में हित होता है और प्रत्येक को, उसके हित की मात्रा की परवाह किए बिना, संपत्ति के हर हिस्से और हिस्से पर दूसरों के साथ संयुक्त रूप से कब्जा करने का अधिकार है। (पैरा 30)

न्यायशास्त्रीय दृष्टि से यह कहना सही नहीं है कि किसी संपत्ति का सह-स्वामी उसका स्वामी नहीं है। वह संयुक्त संपत्ति के हर हिस्से का स्वामी है और अन्य लोगों के साथ मिलकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह संपत्ति का केवल आंशिक स्वामी या आंशिक स्वामी है।

स्थिति तभी बदलेगी जब बंटवारा होगा। (पैरा 30)

बी. यदि किसी सह-हिस्सेदार को सह-हिस्सेदार होने के कारण अपने हिस्से में आने वाली भूमि का उपयोग करने और उसका आनंद लेने से रोका जा रहा है, तो ऐसा पीड़ित सह-हिस्सेदार निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर कर सकता है। (पैरा 31)

वादपत्र में सामान्य दलील अविभाजित शेयरों के संबंध में है और एकमात्र अपवाद पैरा 9 है जिसमें आरोप लगाया गया है कि सह-हिस्सेदारों अर्थात् प्रतिवादियों द्वारा भूमि की प्रकृति बदलने की धमकी दी गई थी। (पैरा 32)

निषेधाज्ञा की पुष्टि नहीं की जा सकती थी और इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता को या तो विभाजन की मांग करने वाले वाद में राहत खंड में संशोधन करना चाहिए था या विभाजन के लिए एक नया मुकदमा दायर करना चाहिए था। चूंकि प्रतिवादियों ने यह तर्क दी है कि वे कोई नया निर्माण कार्य नहीं कर रहे थे और केवल पुराने मौजूदा निर्माण में कुछ मरम्मत कार्य चल रहा था, जहां प्रतिवादी रह रहे हैं, इस तरह का कार्य संयुक्त संपत्ति को कोई नुकसान या क्षति नहीं पहुंचाएगा, न ही प्रतिवादियों द्वारा निर्माण के नाम पर भूमि के किसी हिस्से को हड़पने का परिणाम होगा। इन परिस्थितियों में, जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय में कानून और तथ्यों की कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं है। (पैरा 33, 34)

याचिकाकर्ता के लिए यह विकल्प खुला छोड़ दिया गया है कि वह या तो विभाजन के लिए राहत जोड़ने के लिए मुकदमे में संशोधन की मांग करे या विभाजन के लिए एक नया मुकदमा दायर करे और संयुक्त भूमि पर कोई भी नया निर्माण कार्य शुरू होने की स्थिति में निषेधाज्ञा के लिए नए सिरे से आवेदन भी जारी रखे। (पैरा 35)

रिट याचिका का निस्तारण किया गया। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. अवध नारायण बनाम अपर जिला जज-चतुर्थ, जौनपुर एवं अन्य, 2001 एएलएलजे 2551 (पैरा 4)
2. राधाय श्याम एवं अन्य बनाम उमा शंकर एवं अन्य, 1997 ALLCJ 9 (पैरा 4)
3. राम प्रसाद तिवारी बनाम शंकुर तिवारी, मनु/उ.प्र./0282/1964; (2003) 5 एससीसी पृष्ठ 150 (पैरा 4)
4. टी. लक्ष्मी पति एवं अन्य बनाम टी. रेड्डी एवं अन्य और गिरधर लाल बनाम राम लाल, एससीसी ऑनलाइन जेएंडके 693; एआईआर 2019 जम्मू-कश्मीर 1 (पैरा 4)
5. वीरेंद्र कुमार बनाम ए.डी.जे., कन्नौज एवं अन्य; 2014 (3) वर्तमान सिविल मामले 43 (पैरा 7)
6. छेदी लाल बनाम छोटे लाल, एआईआर 1951 सभी 199 (पैरा 7)
7. बी.सी. अबूबकर बनाम के. कुन्हामू एवं अन्य, 1958 एआईआर मद्रास 287 (पैरा 7)
8. रॉबर्ट वॉटसन एंड कंपनी बनाम राम चंद दत्त एवं अन्य, (1989-90) एल.आर. 17

आई.ए. 110 (पैरा 14)

9. मिदनापुर जमींदारी कॉम्प. लिमिटेड बनाम नरेश नारायण रॉय एवं अन्य, (1923-24) एल.आर. 51 आई.ए. 293 (पैरा 15)

10. पारस राम बनाम शेरजीत, (1887) आईएलआर 9 सभी 661 (पैरा 14)

11. लाला विश्वंभर लाल बनाम राजा राम, (1869) 3 बेंग। एल.आर. परिशिष्ट 67 (पैरा 15)

12. शादी बनाम अनुप सिंह, (1890) आईएलआर 12 ऑल 430 (पैरा 15)

13. राम लाल बनाम जगन नाथ, 1950 एडब्ल्यूआर 336 (पैरा 16)

14. लाला शिव नाथ बनाम लाला श्याम बिहारी, द्वितीय अपील सं. 445/1942, 23.12.1948 को निर्णय लिया गया (पैरा 16)

15. अभय सिंह बनाम ज्ञान सिंह, 1971 जेकेएलआर 326 (पैरा 26)

16. छगन लाल बनाम राजस्थान राज्य., 2022 नवीनतम केसलॉ 9493 राज. (पैरा 26)

17. संत राम नगीना राम बनाम दया राम नगीना राम एवं अन्य, एआईआर 1961 पीएच 528 (पैरा 26)

18. कोचकुंजु नायर बनाम कोशी अलेक्जेंडर एवं अन्य, एआईआर 1999 एससी 2272 (पैरा 28)

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री निपुण सिंह और प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सैयद अली इमाम को सुना।

2. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता स्थायी निषेधाजा के लिए स्थापित वाद ओएस नंबर 106/2020 में वादी है। वाद में, उन्होंने एक शपथपत्र सहित दस्तावेज़ संख्या 6 सी के रुप में एक अस्थायी निषेधाजा आवेदन प्रस्तुत किया। प्रतिवादी-उत्तरदाताओं द्वारा लिखित बयान और लंबित 6C आवेदन पर आपत्ति भी दायर किए जाने के पश्चात और उक्त आवेदन को अंततः विचारणीय न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता 16.3.2021 के माध्यम से वाद संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया।

3. हालांकि, प्रतिवादी-उतरदाताओं द्वारा आदेश XLII नियम 1(r) के तहत एक विविध अपील दायर किए जाने पर उक्त अपील को जिला न्यायाधीश, गौतमबुद्धनगर ने दिनांक 24.11.2022 के आदेश के तहत विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित यथास्थिति के आदेश को निरस्त करते हुए अनुमति दी।

4. याचिकाकर्ता की और से तर्क प्रस्तुत किया गया कि यदि वाद संपति का कोई विभाजन सह-हिस्सेदारों के बीच नहीं हुआ है, तो अदालत ने वाद संपति की रक्षा करने के लिए और किसी भी तरह से किसी भी निर्माण या विध्वंस कवायद से क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए पक्षों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दें। इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयाँ अवध

नारायण बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश-चतुर्थ, जौनपुर और अन्यः 2001 एएलजे 2551, राधाय श्याम और अन्य बनाम उमा शंकर और अन्य; 1997 एएलसीजे 9, राम प्रसाद तिवारी बनाम शकूर तिवारी, मनु / उत्तर प्रदेश / 0282/1964 (2003) 5 एससीसी पृष्ठ 150, टी. लक्ष्मी पति और अन्य बनाम टी रेड्डी और अन्य और गिरधारी लाल बनाम राम लालः एससीसी ऑनलाइन जम्मू एवं कश्मीर 693: एआईआर 2019 जम्मू एवं कश्मीर पृष्ठ 1 पर निर्भरता व्यक्त की गई।

5. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि चूंकि प्रतिवादी- उत्तरदाताओं ने एक संयुक्त भूमि पर निर्माण करना प्रारंभ कर दिया था इसलिए स्थायी निषेधाजा के लिए वाद दायर करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि वादी ने विभाजन के लिए वाद दायर किया होगा, लेकिन उसने स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया ताकि भूमि के एक हिस्से को सह-हिस्सेदार द्वारा विनियोजित किए जाने के एक प्रमुख खतरे को दूर किया जा सके।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता दुवारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने संपति को संयुक्त संपति के रूप में स्वीकार किया है, निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा बनाए रखने योग्य नहीं था और वादी के कारण विभाजन के लिए मुकदमा दायर करना था जिसमें उसने निषेधाज्ञा का भी दावा किया होगा। यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी अन्य सह-हिस्सेदार के विरुद्ध कोई निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि एक का कब्जा समान माप में सभी सह-हिस्सेदारों किया जाता है तो अन्य सह शेयरधारको का कब्जा है और यदि कोर्ड निषेधाज्ञा आदेश पारित संपति के उपभोग में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होगा।

7. प्रतिवादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने वीरेंद्र कुमार बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कन्नौज और अन्य 2014 (3) वर्तमान इस न्यायालय की सिविल मामले, पृष्ठ 43, में इस न्यायालय के निर्णय व के छेदी लाल बनाम छोटे लाल, एआईआर 1951 सभी 199 और केपीएम अबूबकर बनाम के कुन्हामू और अन्य के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय का निर्णयः 1958 एआईआर मद्रास 287 के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की है।

8. इससे पूर्व कि मैं संबंधित पक्षों द्वारा किए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों से निपटने के लिए आगे बढ़ू, वाद में और प्रतिवादियों द्वारा दायर लिखित बयान में कुछ बुनियादी तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। वाद संपति खसरा प्लॉट नंबर 112 से संबंधित है, जिसमें कन्हैया लाल (उदय सिंह के दूसरे पुत्र) की शाखा से एक कृपाल को छोड़कर उत्तराधिकारियों

को प्रतिवादी प्रथम सेट के रूप में शामिल किया गया है और नत्थू सिंह (उदय सिंह के पहले पुत्र) की शाखा के उत्तराधिकारियों और कन्हैया लाल के एक कृपाल पुत्र को प्रतिवादी दूसरे सेट के रूप में शामिल किया गया है। वादी मामले में स्थायी निषेधाज्ञा की डिकी की मांग करते हुए, वाद के सभी पक्षों की वंशावली दी गई और सामान्य पूर्वज उदय सिंह हैं। वादी-याचिकाकर्ता कन्हैया लाल का बेटा भी है।

9. वाद संपति को नाथू सिंह और कन्हैया लाल के उत्तराधिकारियों को समान माप यानी 1/2 भाग में हस्तांतरित किया गया है। न्यू ओखला विकास प्राधिकरण (नोएडा) के लिए राज्य द्वारा प्लॉट नंबर 112 से कुल क्षेत्रफल 1.846 हेक्टेयर में से 1.138 हेक्टेयर क्षेत्र के अधिग्रहण के पश्चात विवाद उत्पन्न हुआ और इस प्रकार केवल 0.7080 हेक्टेयर भूमि पक्षकारों के पास बची थी। प्रस्तर 8 में कहा गया है कि वाद के पक्षकार संयुक्त रूप से प्लॉट नंबर 112 के 0.7080 हेक्टेयर की संपति का आनंद ले रहे हैं। जो अब एक मिंजुमला संख्या यानी 112 एम है।

10. अब प्रस्तुत परिवेदना यह है कि प्रतिवादियों के प्रथम समूह ने ने जानबूझकर निर्माण गतिविधि प्रारंभ की और इस तरह प्लॉट संख्या 112एम के 0.7080 हेक्टेयर के शेष क्षेत्र में भूमि के एक विशिष्ट टुकड़े पर कब्जा कर लिया। इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से तक प्रस्तुत किया गया कि इस तरह के एकतरफा कृत्य पर किसी भी विभाजन के अभाव में प्रतिवादियों की ओर से मौके पर भूमि की प्रकृति को बदलने और निर्माण करके उस भूमि के एक विशेष टुकड़े पर कब्जा करने की अनुमति नहीं थी और इसलिए वाद दायर किया गया।

11. जब मुकदमा दायर किया गया था, तो विचारणीय न्यायालय ने अति-आवश्यकता पर विचार करते का निषेधाज्ञा आदेश दिया। इसके पश्चात प्रतिवादी हुए यथास्थिति वाद में पेश हुए और लिखित बयान दायर किया। लिखित बयान में, यह तर्क दी गई है कि प्रतिवादी भूमि में 1/2 हिस्से के हकदार थे और जिसका आपसी विभाजन लगभग 30 वर्ष पूर्व पारिवारिक व्यवस्था के माध्यम से हुआ था और तब व से पक्षों ने अपने-अपने घरों का स्थायी निर्माण किया था और उस पर अधिग्रहण कर लिया था। लिखित बयान के प्रस्तर संख्या - 6 में कहा गया है कि प्रत्येक खातेदार हिस्सा मिला था और उसने अपने हिस्से में आने वाली अपनी जमीन को मजबूत किया था। लेकिन यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि प्लॉट संख्या 112एम का क्षेत्र प्रस्तर संख्या 9 के अनुसार विवादित है और प्रतिवादी वादी मामले में वास्तव में बताए गए क्षेत्र से बड़े क्षेत्र का दावा करते प्रतीत होते हैं। राजस्व अभिलेखों पर दोनों

पक्षों की दलीलों का परीक्षण किया जाए तो मैं पाता हूं कि प्लॉट संख्या 112 मिंजुमला में दिखाया गया कुल क्षेत्रफल 0.7080 हेक्टेयर है जिसमें पक्षों के नाम 1428 फासली के राजस्व रिकॉर्ड में जारी रहे हैं और न्यू ओखला विकास प्राधिकरण को भी प्लॉट संख्या 112 मिंजुमला 1.1380 हेक्टेयर के कब्जे में दिखाया गया है। वाद के प्रस्तर 7 में तर्क में कुल क्षेत्रफल 1.846 हेक्टेयर दिखाया गया है, जबकि प्लॉट नंबर 112 एम में दिखाया गया क्षेत्र 1.1380 हेक्टेयर है। कहीं भी वाद में या लिखित बयान में यह तर्क नहीं दी गई है कि प्लॉट नंबर 112एम का कुल क्षेत्रफल क्या है। यदि पक्षकार किसी समय पारिवारिक व्यवस्था के लिए आपसी समझ के लिए सहमत हो गए थे, तो कम से कम उस क्षेत्र के बारे में विवाद नहीं होना चाहिए था जो न्यू ओखला विकास प्राधिकरण के लिए भूमि के हिस्से के अधिग्रहण के बाद खाताधारकों के पास छोड़ दिया गया था।

12. उपरोक्तनुसार, प्रथम दृष्टया से यह प्रतीत होता है कि मेट्स और बाउंड्स में कोई विभाजन नहीं हुआ है। हालांकि, जब वाद का विचारण होगा तो यह सबूत का विषय होगा। विभाजन की अनुपस्थिति में एक संयुक्त भूमि पर निर्माण निश्थित रूप से वाद भूमि की प्रकृति को दुषित करेगा और इसलिए, इस तर्क के साथ, वादी ने वाद में निषेधाज्ञा की मांग की।

13. इस न्यायालय ने वर्ष 1950 की प्रारंभ में पहले ही यह माना था कि आमतौर पर सह- खाताधारक को अन्य सह-मालिक के विरुद्ध निषेधाज्ञा नहीं दी जानी चाहिए।

14. छेदी लाल (सुप्रा) में पूर्ण पीठ के निर्णय दिनांक 16.11/1950 को आज तक निरस्त नहीं किया गया है। पूर्ण पीठ ने कहा कि जबकि यह एक सहू-खाताधारक को दूसरे सह-खाताधारक के 16.11950 विरुद्ध निषेधाज्ञा से इनकार करने के लिए एक पूर्ण नियम नहीं था, लेकिन यह तब दिया जा सकता है जब एक विशेष रूप से सह-खाताधारक दूसरों के सह-खाताधारक के अधिकार के बहिष्कार के लिए एक असंबद्ध संपति का उपयोग करता है। दूसरे शब्दों में, पूर्ण पीठ ने सह-खाताधारक द्वारा संपत्ति के अधिकार को स्वीकार किया, अर्थात उन अन्य लोगों के साथ एक संपत्ति में एक को स्वीकार। सह-हिस्सेदार का हित और अधिकार निरपेक्ष है, लेकिन यह अन्य सह-खाताधारक के हित से योग्य है। पूर्ण पीठ ने रॉबर्ट वाटसन एंड कंपनी बनाम राम चंद दत्त और अन्य; (1989-90)) एलआर 17 आइ.ए. 110 से न्यायिक समिति के निर्णय का उल्लेख किया जो निम्नानुसार है:

"यह माननीय को प्रतीत होता है कि, वर्तमान वाद में, एक निषेधाज्ञा

उचित उपाय नहीं है। भारत में भूमि का एक बड़ा हिस्सा, जिसमें कई बहुत बड़ी सम्पदाएं शामिल हैं, अविभाजित शेयरों में आयोजित की जाती हैं, और यदि एक शेयरधारक दूसरे को संपति के एक हिस्से को उचित और आधिपत्य आचरण से रोक सकता है, तो पूरी संपति, विरोध-निषेधाज्ञा के माध्यम से, खेती के बिना पूरी तरह से रहना पड़ सकता है जब तक कि सभी शेयरधारक खेती के एक तरीके को अपनाने पर सहमत नहीं हो सकते, या जब तक मेट्स और बाउंड्स द्वारा एक विभाजन को प्रभावित नहीं किया जा सकता है-एक काम जो साधारण पाठ्यक्रम में बड़े सम्पदा में संभवतः कई मौसमों सहित अवधि पर कब्जा कर लिया जाएगा। ऐसी स्थिति में, भारत जैसी जलवायु में, जिस भूमि को खेती के लिए लाया गया था, वह शायद बेकार या जंगल बन जाएगी, और मूल्य में बहुत कम हो जाएगी। बंगाल में न्यायालय, उन मामलों में जहां कोई विशिष्ट नियम मौजूद नहीं है, न्याय, समानता और अच्छे विवेक के अनुसार कार्य करती है, और यदि, आम तौर पर भूमि रखने वाले शेयरधारकों के मामले में, यह पाया जाना चाहिए कि एक शेयरधारक भूमि के एक हिस्से पर खेती करने के कार्य में है जो वास्तव में दूसरे द्वारा उपयोग नहीं किया जा रहा है; यह शायद ही ऊपर दिए गए नियम के अनुरूप होगा जो उसे अपने काम के साथ आगे बढ़ने से रोकने के लिए इंगित किया गया है, या किसी अन्य शेयरधारक को दूसरे के श्रम या पूंजी के फल को खुद के लिए उपयुक्त करने की अनुमति देने के लिए है।

15. पीठ द्वारा मिदनापुर जमींदारी कंपनी लिमिटेड बनाम नरेश नारायण रॉय और अन्य; (1923-24) एलआर 51 आईए 293 में की गई टिप्पणियों को भी उद्धृत कियाः

"जहां भारत में भूमि सह-खातेदारों द्वारा आम तौर पर अधिग्रहित की जाती है, प्रत्येक सह-खातेदार अपने स्वयं के हितों में उचित और रकर्ता की तरह भूमि के किसी भी हिस्से में खेती करने का हकदार है, जिस पर उसके किसी अन्य सह-खातेदार द्वारा खेती नहीं की जा रही है, लेकिन वह भूमि के ऐसे अनन्य उपयोग के संबंध में अपने सह-खातेदारों को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। एक सह-खातेदार द्वारा आम तौर S पर रखी गई भूमि का ऐसा अनन्य उपयोग उसके सह-खातेदारों को भूमि में सह-खातेदार के रूप में उनके मालिकाना अधिकारों से थे हो सकते हैं जैसे बेदखल नहीं करता है। कि उनके है, तो किसी भी दद्वारा अनन्ना जब सह-खातेदार इस बात से सहमत नहीं द्वारा आयोजित किसी भी भूमि का उपयोग कैसे किया जा सकता सह-खातेदार जो आम तौर पर आयोजित भूमि के किसी अन्य सह-खातेदारों

उपयोग पर आपति करता है, उसका उपाय भूमि का विभाजन प्राप्त करना है। कोई भी सह-खातेदार अपने सह-खातेदारों के विरुद्ध, आम तौर पर आयोजित भूमि में कोई भी जोट अधिकार, स्थायी कब्जे का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है और न ही वह अपने किरायेदारों के रूप में किसानों को भूमि पर कब्जा करने का कोई अधिकार देकर उनमें भूमि के कब्जे का कोई अधिकार नहीं बना सकता है।

14. पारस राम बनाम शेरजीत (1887) आईएलआर 9 ऑल. 661, में महमूद के निर्णय को संदर्भित करते हुए पूर्ण पीठ ने देखाः

"इस बिंदु पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय के बाद कहीं अधिक हैं। पारस राम बनाम शेरजीत (1887) आईएलआर 9 एआईएल 661 में महमूद द्वारा एक ऐसे वाद में निर्णय है जहां एक सह-खातेदार ने अपने विरोध के बावजूद एक संयुक्त मालिक द्वारा निर्मित एक इमारत को ध्वस्त करने की मांग की थी। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि विधि के प्रश्न के रूप में, जैसा कि समानता के नियमों से अलग है, वादी डिक्री के हकदार हो सकते हैं, लेकिन भारत में न्यायालय कानून और शिष्टता के सयुक्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती हैं और उपायों को लागू करने में न्यायसंगत सिद्धांतों की अवहेलना नहीं कर सकते हैं। उन्होंने उन मामलों को प्रतिष्ठित किया जिसमें एक इमारत को दूसरे की भूमि पर एक रैंक अतिचारक द्वारा खड़ा किया जाता है और ऐसे मामले जिनमें इमारत संयुक्त मालिक द्वारा संयुक्त भूमि पर उसके संयुक्त मालिकों की अनुमति के बिना या उनके विरोध के बावजूद बनाया जाता है।

15. अन्य सह-खातेदारों की सहमति से एक सह-खातेदारों द्वारा संयुक्त भूमि पर निर्माण की पर संरचना के विध्वंस के प्रश्न पर, पूर्ण पीठ ने पहले लाला विश्वंभर लाल बनाम राजा राम (1869) 3 बेंग एल.आर. परिशिष्ट 67 और फिर शादी बनाम अनूप सिंह (1890) आईएलआर 12 सभी 430 में 5 न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ का निर्णय का उल्लेख किया और इस प्रकार देखाः

"लाला विश्वंभर लाल बनाम राजा राम (1869) 3 बैगएलआर परिशिष्ट 67 में सर बार्स पीकॉक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब भूमि का एक संयुक्त मालिक, अपने सह-मालिकों की अनुमति प्राप्त किए बिना, ऐसी भूमि पर निर्माण करता है, तो ऐसे भवनों को ऐसे सह- मालिकों के विरोध पर ध्वस्त नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि वे यह साबित न कर दें कि संयुक्त भूमि पर निर्माण में उनके संयुक्त मालिक की कार्रवाई ने उन्हें एक सामग्री और पर्याप्त क्षति पहुंचाई है जैसे कि संयुक्त भूमि के विभाजन द्वारा ठीक नहीं किया जा

सकता है। इस वाद पर शादी बनाम अनूप सिंह (1890) आईएलआर 12 ऑल 430 में महमूद, जे सहित पांच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ द्वारा विचार किया गया था। प्रतिवादी द्वारा संयुक्त भूमि पर निर्माण प्रारंभ करने के तीन या चार दिनों के भीतर निषेधाज्ञा की प्रार्थना के लिए वाद प्रस्तुत किया गया था। प्रतिवादी ने भूमि पर अत्यधिक अधिकार का दावा किया। वादी ने एक अंतरिम निषेधाजा प्राप्त की, लेकिन अपील पर जिला न्यायाधीश, पारस राम (सुप्रा) के निर्णय के अनुसार, इस प्रश्न पर गए कि क्या वादी को विभाजन के समय प्रतिवादी द्वारा क्षतिपूर्ति दिया जा सकता है। उन्होंने पाया कि प्रतिवादी भूमि पर निर्माण कर रहा था जो उस हिस्से से अधिक था जो विभाजन पर उसके प्राप्त होगा और इसलिए वादी को पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया जा सकता था। सर जॉन एज, मुख्य न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि जिला न्यायाधीश इस प्रश्न पर विचार करने में गलत थे कि क्या अतिरिक्त भूमि का विनियोजन किया गया था और उनके द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्ष पर निषेधाज्ञा दी जानी चाहिए थी। पारस राम (सुप्रा) में निर्णय के पाठन से यह स्पष्ट है कि इसने इस प्रश्न की जांच को सही नहीं ठहराया कि क्या सह-हिस्सेदार की तुलना में अधिक भूमि विनियोजित की गई थी। विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने पाया कि प्रतिवादी, विभाजन न्यायालय में जाने के स्थान पर स्वयं को उन जमीनों को विनियोजित करने के लिए अग्रशित हुए, जिसमें उनके प्रत्येक सह-हिस्सेदार का हित था और इस प्रकार उन्होंने उन्हें सार्वजनिक भूमि के एक हिस्से के सभी उपयोग और आनंद से का प्रस्ताव दिया। उन्होंने आगे कहा। हमें इस मामले में विचार करने की आवश्यकता नहीं है" एक सिविल न्यायालय को क्या करना चाहिए यदि प्रतिवादी ने बड़ी कीमत पर इमारतों का निर्माण किया है, जिसे सामान्यतः न्यायालय उसें नष्ट करने का आदेश पारित करने में संकोच कर सकती है। यह अवलोकन स्पष्ट रूप से विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 55 के तहत अदालत की शक्ति को न्यायालय की समानता के रूप में बचाता है ताकि निषेधाज्ञा के अनुसार अपने विवेक को विनियमित किया जा सके।

16. इसके बाद पूर्ण पीठ ने खंडपीठ के दो निर्णयों राम लाल बनाम जगन नाथ; 1950 AWR 336 और दूसरी अपील संख्या 445/1942 लाला शिव नाथ बनाम लाला श्याम बिहारी 1942 निर्मित दिनांक 23 दिसंबर, 1948 को आगे संदर्भित किया।

"अबतक हमने विलय से पूर्व इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णयों का संदर्भ दिया था लेकिन विलय के पश्चात नवीन न्यायालय के दो निर्णयों पर गौर करने की जरूरत

है। इनमें से एक रामलाल बनाम जगन नाय 1950 एडब्ल्यूआर 336 है जो वर्तमान मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्णित है। दूसरा एक पीठ का निर्णय है, जिसे द्वितीय अपील संख्या 445/1942 लाला शेव नाथ बनाम ताता श्याम बिहारी निर्णित दिनांक 23 दिसंबर, 1948 है जो न्यायमूर्ति चंदीरमानी के साथ वर्तमान मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्णित किया गया था। पूर्व वाद में विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने सिद्धांत दिया था कि संयुक्त भूमि के अनन्य कब्जे में एक सह-हिस्सेदार कब्जे के चरित्र को बदलने का हकदार नहीं है ताकि अन्य सह शेयरधारकों का निष्कासन का एक पूर्ण प्रभाव हो सके। पहले से मौजूद लोगों के लिए अधिक निर्माण करके, एक सह-हिस्सेदार को अपने कब्जे की प्रकृति को बदलने या भूमि का उपयोग करने के लिए नहीं कहा जा सकता है जिसके लिए यह नहीं था और अन्य सह-हिस्सेदार निर्माण को हटाने के हकदार नहीं हैं। ऐसे वाद को सुविधा के संतुलन पर तय किया जाना चाहिए और न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या शिकायत किए गए कार्य ऐसे हैं जो सह-हिस्सेदारों के हित के लिए हानिकारक थे और कुछ ऐसा है जिसे उन्होंने पहले ही स्वीकार नहीं किया था। विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने इलाहाबाद के निर्णयों और असूचित वादों की एक बड़ी संख्या का भी उल्लेख किया है। यह विचार अवध के पूर्व निर्णों के साथ पूरी तरह से मेल जिसका हमने उल्लेख किया है।

17. फिर उपरोक्त के रूप में विधि पर चर्चा करने के बाद, पूर्ण पीठ ने अंत में निम्नानुसार आयोजित कियाः

"पूर्वगामी चर्चा के परिणामस्वरूप, हमें यह प्रतीत होता है कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-हिस्सेदारों के अधिकार का प्रश्न इससे विरक्त और अलग रखा जाना चाहिए कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-खातेदार को क्या राहत दी जानी चाहिए जिसका अधिकार अन्य सह- हिस्सेदारों द्वारा या तो विशेष से विनियोग और खेती करके या उस पर निर्माण करके अतिक्रमण किया गया है। कुर कुछ निर्णयों सह-खातेदार से बढ़ा है। जबकि एक हानि के लिए विशेष रूप से भूमि में संघर्ष स्पष्ट रूप से अलग-अलग मामलों के भ्रम एक अन्य सह-खातेदार है जो अन्य सह-खातेदारों की का विनियोजन करता है, यह सवाल कि उसके अधिकारों के हनन की स्थिति में वादी को क्या राहत दी जानी चाहिए, प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। विध्वंस और निषेधाज्ञा के लिए राहत का अधिकार न्यायालय द्वारा वाद स्थापित परिस्थितियों के अनुसार दिया जाएगा या रोक दिया जाएगा। न्यायालय दोनों राहतों को प्रदान के लिए सहमत हो सकती है यदि सबूत यह स्थापित करते हैं कि विभाजन के समय वादी को पर्याप्त रूप से मुआवजा नहीं प्रदान किया जा सकता है और इससे अधिक क्षति उसे राहत देने की तुलना में इनकार करने के

परिणामस्वरूप होगी। इसके विपरीत, यदि राहत देने से प्रतिवादी को सामग्री और पर्याप्त क्षति होगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय इस तरह की राहत को रोकने में उचित विवेक का प्रयोग करेगी। जैसा कि कुछ मामलों में बताया गया है, प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने विशिष्ट तर्थों पर किया जाएगा और यह अदालत को परिस्थितियों के प्रमाण पर अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए छोड़ दिया जाता है कि सुविधा का संतुलन किस तरफ है। अदालत अपने विवेक के प्रयोग में न्याय, समानता और अच्छे विवेक के विचारों द्वारा निर्देशित होगी, इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है और अदालत के लिए उन परिस्थितियों के बारे में एक अनम्य नियम निर्धारित करना संभव नहीं है जिनमें विध्वंस निषेधाज्ञा के लिए राहत दी जानी चाहिए या इनकार कर दिया जाना चाहिए। "

18. एक सह-खातेदार को निषेधाज्ञा के अनुदान पर कानून के सिद्धांत के उपरोक्त विस्तार को ध्यान में रखते हुए, अन्य सह-खातेदारों को निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए संपूर्ण विवेक को प्रत्येक वाद के तथ्यों पर निर्भर माना जाता हैं और परीक्षण बिंदु यह है कि क्या एक सह-खातेदार दूसरे सह-खातेदारों की क्षति के लिए निर्माण करके अविभाजित भूमि को विनियोजित करने का प्रयास कर रहा है।

19. संत राम नगीना राम (सुप्रा) के मामले में, पंजाब और कि संयुक्त खातेदारी के संबंध न्यायालय ने माना में विभाजन के लिए किसी भी वाद की अनुपस्थिति में, जबकि यह सच है कि एक सह-खातेदार को दूसरे सह-खातेदार की सहमति के बिना भूमि के सबसे अच्छे भाग पर आधिपत्य की अनुमति नहीं दी जा सकती है। न्यायालय संयुक्त कब्जे के बारे में विधिक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो प्रकार है:

"14. अधिकारियों और ने पैराग्राफ -14 के तहत संपति के जिन पर चर्चा की गई है:
(1) एक सह-मालिक का पूरी संपति में और उसके प्रत्येक हिस्से में भी हित होता है।
(2) संयुक्त संपति का कब्जा सह-स्वामी कानून की नज़र में है, सभी का कब्ज़ा भले ही सभी वास्तव में कब्जे से बाहर हो।
(3) एक बडे हिस्से या यहाॅ तक कि एक संपूर्ण संयुक्त सम्पत्ति का मात्र कब्जा जरूरी नहीं है कि एक का कब्जा सभी की ओर से माना जाता है।

(4) उपरोक्त नियम एक अपवाद को स्वीकार करता है जब किसी अन्य द्वारा सह- मालिक को हटा दिया जाता है। लेकिन सभी की ओर से संयुक्त कब्जे के अनुमान को नकारात्मक करने के लिए, निष्कासन के आधार पर, एक सह-मालिक का कब्जा न केवल विशिष्ट होना चाहिए, बल्कि दूसरे के ज्ञान के प्रति भी शत्रुतापूर्ण होना चाहिए, जब एक सह-मालिक खुले तौर पर अपने स्वयं के शीर्षक का दावा करता है और दूसरे का विरोध करता है।
(5) समय बीतने से सह-स्वामी का अधिकार समाप्त नहीं होता है जो बेदखली या परित्याग की स्थिति को छोड़कर संयुक्त संपत्ति के कब्जे से बाहर हो गया है।

(6) प्रत्येक सह-स्वामी को कर्ता की भांति संयुक्त संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार

है जो अन्य सह-स्वामियों के समान अधिकारों के साथ असंगत नहीं है।

(7) जहां एक सह-मालिक अन्य सह-मालिकों द्वारा सहमति से एक व्यवस्था के तहत अलग-अलग भाग के कब्जे में है, यह बिना विभाजन के लिए एक मुकदमा दायर करके किसी के लिए भी दूसरों की सहमति के बिना व्यवस्था को परेशान करने के लिए स्वतंत्र नहीं है।

(8) संयुक्त संपत्ति के किसी हिस्से के कब्जे में नहीं होने या कब्जे में न न होने वाले सह स्वामी का उपाय विभाजन के लिए या वास्तविक संयुक्त कब्जे के से है, लेकिन निष्कासन के लिए नहीं। वहां भी समान स्तिथि के माध्यम एक सह-मालिक अपने आप में एक विशेष शीर्षक स्थापित करता है।

(9) जहाँ संयुक्त सम्पत्ति का एक हिस्सा, सह मालिकों की आम सहमति से, किसी विशेष सामान्य उददेश्य के लिये आरक्षित है, इसे एक सह खातेदार द्वारा एक असंगत उपयोगकर्ता को नहीं दिया जा सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो उसे बेदखल किया जा सकता है और विशेष भाग अपनी मूल स्थिति में बहाल होने के लिये उत्तरदायी होगा। ऐसे मामले में यह प्रदर्शित करना आवश्यक नहीं है कि विशेष क्षति हुयी है।

20. अवध नारायण (सुप्रा) (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने माना था कि यदि सह-हिस्सेदारों में से एक ने सीमा में अर्थात संपत्ति में विशेष रूप से उनके अधिकारों के शेयरों का सीमांकन करते हुए, सह- हिस्सेदारों के सह-हिस्सेदार के बीच कोई विभाजन किए बिना निर्माण बढ़ाने का आशय किया था, फिर निषेधाज्ञा को दूसरे के विरुद्ध केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए कि निर्माण संबंधित व्यक्ति के जोखिम पर उठाया जाएगा और डिक्री पारित होने के समय इसे ध्वस्त किया जाएगा। इसलिए, न्यायालय ने माना कि यदि कोई सह-खातेदार एक अविभाजित और अविभाजित भूमि पर निर्माण कर रहा है, तो उसे ऐसा करने से रोका जा सकता है।

21. राधेश्याम (सुप्रा) में, न्यायालय ने जस्टिस वॉच एच एआईआर 1960 ऑल 322 के निर्णय का उल्लेख किया, कि संयुक्त भूमि के गलत उपयोग के लिए सह-हिस्सेदार के विरुद्ध निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती है, इसलिए खंडपीठ द्वारा तय किया गया वाद यह था कि संयुक्त मालिक को अन्य संयुक्त मालिक की सहमति के बिना संयुक्त संपति से निस्तारण का कोई अधिकार नहीं था। विद्वान न्यायाधीश ने इस न्यायालय की एक खंडपीठ, ILR 18 ALL 115 पर निर्भरता व्यक्त किया और फिर न्यायालय ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय (सुप्रा) के निर्णय का उल्लेख किया।

22. टी. लक्ष्मीपति और अन्य (सुप्रा) में, यह माना गया था कि एक सह-मालिक को संपति का अनन्य कब्जा लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और न ही उसे संयुक्त संपति का अपशिष्ट करने या नाजायज उपयोग करने की अनुमति दी जा सकती है। संयुक्त रूप से और विशेष रूप से संपति का आनंद लेने के लिए सह-हिस्सेदार के अधिकार को मान्यता दी गई है और उस सीमा तक कब्जे की रक्षा के अधिकार को भी मान्यता दी गई है। एक की संपत्ति में खातेदार द्वारा मजबूत होता है और

उस सीमा तक किसी को भी अनन्य विशेष क्षेत्र पर उसके नाजायज उपयोग के माध्यम से कब्जा करने या भूमि की प्रकृति को परिवर्तित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

23. इस उपरोक्त वाद में, विवाद आंध्र प्रदेश भवन और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1960 के तहत न्यायालय द्वारा बेदखली के लिए पारित आदेश से हुआ है। उस मामले में किराया नियंत्रक ने किरायेदार अर्थात् प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को बेदखल करने का निर्देश दिया था। एस.एल.पी. में और इसलिए कब्जे में शामिल किए गए व्यक्तियों को वेदखली के लिए उत्तरदायी माना गया था। प्रधान वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश द्वारा किराया नियंत्रक के आदेश की पुष्टि करते हुए विरुद्ध अपील निरस्त कर दी गई थी। उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किए गए पुनरीक्षण में, हालांकि यह एसएलपी में आवेदक संख्या 3 से 5 और फिर आवेदक संख्या 1 और 2 के पक्ष में अपंजीकृत बिक्री विलेख के रूप में गलत तरीके से दर्ज इसलिए शीर्षक को पक्षों के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने स्थानांतरित करने का कोई प्रभाव नहीं था, लेकिन संबंधित उच्चतम न्यायालय के समक्ष सहमति व्यक्त की कि बिक्री विलेख पंजीकृत थे। इस प्रकार, उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दी गई थी कि बिक्री विलेख के आधार पर अपीलकर्ता को कब्जे में स्थानांतरित किया जा रहा है, उसने सह-खातेदार का दर्जा भी हासिल कर लिया है और इसलिए वे प्रतिवादी संख्या 1 के किरायेदार नहीं हो सकते हैं जो अन्य सह-खातेदारों में से एक थे और इसलिए यह भी तर्क दी गई थी कि मकान मालिक और किरायेदार के संबंध मौलिक रूप से गलत पाए गए थे और वाद निरस्त करने योग्य था। यह उस पृष्ठभूमि में है कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका ली गई थी कि एक सह-खातेदार के लिए कब्जे वाले दूसरे सह-मालिक के विरुद्ध विभाजन वाद प्रस्तुत करने का उपाय था।

24. उपरोक्त वाद में न्यायालय के समक्ष प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों ने कहा गयाः

"अ. यदि अपीलकर्ताओं को संपत्ति के कब्जे में सह-खातेदार माना जाता था, तो अन्य डिक्री धारक की ओर सेबेदखली के लिए मुकदमा झूठ नहीं होगाः

ब. चूंकि अपीलकर्ताओं को किरायेदार द्वारा उसकी सहमति के बिना वाद संपत्ति में शामिल किया गया था, इसलिए वे बेदखली के हकदार थे।

25. यह विधिक प्रार्थना की इस उपरोक्त पृष्ठभूमि में है कि उस मामले में प्रश्न को निषेधाज्ञा के बारे में माना गया था। प्रस्तर - 25 द्वारा इस प्रकार आयोजित किया गयाः

"वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस याचिका में बचाव या आश्रय उपलब्ध नहीं है किए हैं। सह-मालिकों के रूप में कि उन्होंने कुछ अपीलकर्ता सह-खातेदार के के लिए कोई अधिकार प्राप्त कानून अच्छी तरह जहां कोई कई सह-मालिकों द्वारा अधिकृत की जाती है, प्रत्येक इंच में रुचि होती है, लेकिन उसका है. नियत है। प्रत्येक सह-मालिक भी संपत्ति को आम संपत्ति के सह-मालिकों के समान हित से

योग्य और सीमित होता है। एक सह- खातेदार संपत्ति का अनन्य कब्जा नहीं ले सकता है और न ही अपशिष्ट, यदि वह ऐसा करता नाजायज उपयोग का कार्य कर सकता है, और निषेधाजा द्वारा रोका जा सकता है। एक सह-मालिक, एक व्यवस्था द्वारा व्यक्त या निहित, अपने अन्य सह-मालिकों के साथ, विशेष रूप से किसी भी संपत्ति का अधिकारी और आनंद ले सकता है। ऐसा सह-मालिक अन्य मालिकों के विरुद्ध अपने कब्जे की रक्षा भी कर सकता है और यदि यह बाद वाले सह-मालिकों बेदखल किया जाता है तो वह अनन्य कब्जा पुनः प्राप्त कर सकता है। (देखें जहुरी साह और अन्य बनाम द्वारिका प्रसाद झुनझुनवाला और अन्य, (1966) सप्प एससीआर 280) यह किसी विवाद से परे हैं कि देर से पी. नारायण रेड्डी की मृत्यु पर, उनके अधिकार प्रतिवादी संख्या 1 सहित कई उत्तराधिकारियों को सौंप दिए गए। प्रतिवादी संख्या 1 सह-मालिकों में एकमात्र पुरुष व्यक्ति है, अन्य सभी महिलाएं हैं। यह इस कारण से हो सकता है, या अन्यथा, कि प्रतिवादी संख्या 1 किरायेदारों के रूप में और स्वर्गीय पी. नित्यानंद रेड्डी के अन्य सह-उत्तराधिकारियों की सहमति से, व्यक्त या निहित के साथ शांति से संपत्ति के कब्जे में था। जहां तक प्रतिवादी संख्या 2 और 3 का संबंध है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 16 के संचालन से, उन्हें प्रतिवादी संख्या 1 के स्वामित्व और किरायेदारी परिसर में उसके अधिकारों को चुनौती देने या अस्वीकार करने से रोक दिया गया था। जैसा कि वासुदेव बनाम बालकिशन, (2002) 2 एससीसी 50 में आयोजित किया गया था, मकान मालिक और किरायेदार के बीच विबंधन का नियम तब तक संचालित होता रहता है जब तक कि किरायेदारी जारी रहती है और जब तक किरायेदार ने मकान मालिक को कब्जा सौंप नहीं दिया है। विबंधन केवल किरायेदार पर काम करना बंद कर देगा, मकान मालिक को आत्मसमर्पण करके खुले तौर पर कब्जा बहाल करेगा। न तो प्रतिवादी संख्या 2 और 3 और न ही उत्तराधिकारी या उनके तहत दावा करने वाले व्यक्ति किरायेदारी की निरंतरता के दौरान प्रतिवादी संख्या 1 के अधिकार से इनकार कर सकते थे और उसके बाद भी जब तक कि उन्होंने किरायेदारी परिसर पर कब्जा प्रतिवादी संख्या 1 को बहाल नहीं किया था। अपीलकर्ताओं की स्थिति को देखते हुए चाहे सह-मालिक के रूप में या किरायेदारों द्वारा कब्जे में शामिल व्यक्तियों के रूप में उनके पास कोई आधिपत्य नहीं है। यदि अन्य सह मालिक ने प्रतिवादी संख्या 1 को निस्काशित न किया होता या प्रतिवादी संख्या 1 की सहमति के बिना संपत्ति को ध्वस्त कर दिया, यह कल्पना करना मुश्किल है कि उनके हस्तांतरणकर्ता किरायेदारी परिसर को कैसे ध्वस्त कर सकते थे और उस भूमि पर अपना निर्माण कैसे कर सकते थे जिस पर किरायेदारी परिसर पहले से निर्मित था।"

26 . गिरधारी लाल के मामले में, न्यायालय को इस विधिक मुद्दे का विचारण करना पड़ा कि क्या एक सह-खातेदार विभाजन की राहत की मांग किए बिना संयुक्त संपत्ति का उपयोग करने या उस पर निर्माण करने से अन्य सह-खातेदारों, के लिए निषेधाज्ञा की मांग कर सकता है। न्यायालय ने तथ्यों का उल्लेख करने और विभिन्न निर्णयों पर चर्चा करने के

पश्चात अभय सिंह बनाम ज्ञान सिंह 1971 जेकेएलआर पृष्ठ 326 के वाद में निर्णय का उल्लेख किया है जिसमें न्यायालय ने कहा था कि एक सह-खातेदार को दूसरे की सहमति के बिना संयुक्त भूमि पर निर्माण करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, इस तरह के निर्माण से अन्य संयुक्त मालिकों को प्रत्यक्ष नुकसान नहीं हो सकता है। विद्वान न्यायाधीश ने छगन लाल बनाम राजस्थान राज्यः 2022 नवीनतम कैसला 9493 राज में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय और संत राम नगीना राम बनाम दया राम नगीना राम और अन्य एआईआर 1961 पीएच 528 में पंजाब और हरियाणा खंडपीठ के निर्णय का भी उल्लेख किया। इस प्रकार न्यायालय ने अंततः यह माना कि यदि संपति एक संयुक्त संपति पाई गई थी और प्रतिवादियों पर अतिक्रमण किया जा रहा था, तो विचारणीय न्यायालय को निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे की डिक्री करनी चाहिए थी।

27. पूर्वोक्त वादों में निर्णय को ध्यान में रखते हुए, जबकि मुझे कोई विवाद नहीं लगता है कि जहां कोई संपति कई सह-मालिकों द्वारा अधिकृत की जाती है, प्रत्येक सह-मालिक का संपति के हर हिस्से में हित होता है, लेकिन इस तरह के हित अन्य सह-मालिकों के समान हित से योग्य है. और इसलिए, उस हद तक संपति को कोई नुकसान या अपशिष्ट या संपति के नाजायज उपयोग की अनुमति सह-मालिक द्वारा अन्य सह-मालिकों के नुकसान के लिए नहीं दी जा सकती है।

28. वीरेंद्र कुमार (सुप्रा) में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने इस कानूने बिंदु के साथ विचारण किया गया था कि क्या स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद पोषणीय और सुनवाई योग्य होगा यदि एक सह-खातेदार द्वारा दूसरे सह-खातेदार के विरुद्ध स्थापित किया गया था और उस मामले में अंतरिम निषेधाज्ञा विचारणीय न्यायालय द्वारा यथास्थिति बनाए रखने के लिए दी गई थी। विचारणीय न्यायालय के आदेश को न्यायालय द्वारा अपील में अपास्त कर दिया था और इसलिए सह-खातेदार वादी उच्च न्यायालय में प्रस्तुत था। उसे मामले में विवाद यह था कि हालांकि संपति संयुक्त थी, लेकिन एक भाई ने प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के पक्ष में 40,000 रुपये के प्रतिफल के लिए संपति का एक हिस्सा बेच विक्री द्वारा संपति का ऐसा दिया था हस्तांतरण और इसलिए शिकायत यह थी कि बिना विभाजन के स्वीकार्य नहीं था। यह भी पता चला कि उक्त मामले में विक्री विलेख पर सवाल उठाते हुए कोई मुकदमा दायर नहीं किया गया था और इसलिए, खरीदार ने सह-खातेदार होने का भी भी दावा किया था। इसलिए न्यायालय ने कोचकुंजू नायर आर कोशी अलेक्जेंडर और अन्य एआईआर 1999 एससी 2272 में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त और अन्य करते हुए यह माना कि विभाजन के बिना निषेधाज्ञा के लिए एक वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। कोचकुंजू नायर (सुप्रा) में उच्चतम न्यायालय एक सह-मालिक द्वारा दावा किए गए कुडिकिडप्पुकरन के अधिकार से निपट रहा था। कुदिकिदप्पुकरन को घर बनाने का अधिकार है। प्रस्तर -9, 10 और 11 के तहत संयुक्त संपत्ति के संबंध में सह-मालिकों के अधिकारों की व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया थाः

"9. स्वामित्व तीन आवश्यक अधिकारों का आयात करता है, अर्थात्, कब्जे का अधिकार, आनंद का अधिकार और निपटान का अधिकार। यदि किसी मालिक को गलत तरीके से अपनी संपति के कब्जे से वंचित किया जाता है, तो उसे उसके कब्जे में रखने का अधिकार है। भूमि के सह-मालिक के मामले में सभी तीन घटक संतुष्ट हैं। सभी सह-मालिकों के पास संपति में समान अधिकार और समन्वय हित हैं, हालांकि उनके शेयर या तो निश्चित या अनिश्चित हो सकते हैं। प्रत्येक सह-मालिक को अन्य सह-मालिक या सह-मालिकों के बराबर आनंद और कब्जे का अधिकार है। प्रत्येक सह-मालिक के पास विषय वस्तु के हर असीम हिस्से में सिद्धांत रूप में रुचि है और प्रत्येक का अधिकार उसकी अधिकार की मात्रा के बिना संपति के हर हिस्से और भाग के कब्जे में होने के लिए दूसरों के साथ संयुक्त रूप से है। (मित्रा के सह-स्वामित्व और विभाजन, सातवें संस्करण के अनुसार)

10. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने श्री राम पसरीचा बनाम जगन्नाथ, एएलआर 1976 एससी 2335 में कहा है कि एक सह-मालिक दूसरों के साथ समग्र संपत्ति के हर हिस्से का मालिक है। लॉर्डशिप द्वारा निष्कर्ष निम्न है (पैरा 29)

> न्यायिक रूप से यह कहना उचित नहीं है कि किसी संपति मालिक उसका मालिक नहीं है। वह दूसरों के साथ समय संपति के का मालिक है और यह नहीं कहा जा सकता है कि वह केवल एक हिस्से का मालिक या वर्तमान संपत्ति का एक आंशिक मालिक है" स्थिति तभी बदलेगी जम विभाजन होगा।

11. यह धारण करना कि सह-स्वामी स्वामी नहीं है और उसका कब्जा अधिनियम की धारा 2(25) में परिकल्पित कब्जा नहीं है. सही कानूनी स्थिति के विरुद्ध है। यदि कोई सह-मालिक भूमि पर वासभूमि बनाना चाहता है तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है। जब सह-स्वामित्व संपति का विभाजन होता है, तो सह-मालिक जो होमस्टेड लगाता है, वह दावा कर सकता है। कि उक्त हिस्से को उसके हिस्से में आवंटित किया जा सकता है। दावा किए जाने पर अदालतें आमतौर पर ऐसी न्यायसंगत राहत प्रदान करती हैं। [फवीद नुतबिहारी दास बनाम नानीलाल दास, एआईआर 1937 पीसी 611] यदि दूसरा सह- मालिक वासभूमि के निर्माण पर आपत्ति करता है तो वह सह-स्वामित्व वाली संपति को विभाजन द्वारा विभाजित करवा सकता है, और यदि दूसरा पक्ष उस मार्ग के लिए आसानी से तैयार नहीं है तो यह उसके लिए वाद के माध्यम से विभाजन करने के लिए स्वतंत्र है। ये सह-मालिक को उसकी भूमि के संबंध में उपलब्ध विभिन्न उपाय हैं। केवल इसलिए कि उसे ऐसे उपाय का पुनः चयन किया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि

एक सह- स्वामी अपनी भूमि पर वासभूमि नहीं बना सकता है।"

29. **राम प्रसाद तिवारी (सुप्रा)** में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि यदि एक सह-खातेदार को उस भूमि का उपयोग करने और उसका आनंद लेने से रोका जा रहा है जो सह-स्वामित्य होने के कारण उसके हिस्से में आती है, तो ऐसा पीड़ित सह-खातेदार निषेधाज्ञा के लिए एक वाद दायर कर सकता है।

30. विचरित निर्णयों के प्रकाश में और मामले के तथ्यों के लिए उपरोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, मुझे प्रतीत होता है कि वाद में, सामान्य तर्क अविभाजित हिस्से के संबंध में है और एकमात्र अपवाद प्रस्तर 9 है जिसमें आरोप लगाए गए हैं कि सह-खातेदार, अर्थात् उत्तरदाताओं द्वारा भूमि की प्रकृति को बदलने की धमकी दी गई थी।

31. इन तर्कों की पृष्ठभूमि में, मुझे प्रतीत होता है कि वाद में प्रतिवादी-उत्तरदात द्वारा प्रारंभ की गई किसी भी निर्माण गतिविधि के संबंध में कोई तर्क नहीं है और अंतिम राहत खंड में राहल-ए इस आशय का है कि विभाजन के बिना उत्तरदाताओं को से रोका जाए। न्यायालय ने बिना विचार किए हुए को भूमि की 10.6.2020 दिनांक प्रकृति को बदलने को अंतरिम निषेधाज्ञा के लिए निर्देश दिया। हालांकि, इसके बाद, लिखित बयान द्वायर किया गया था जिसमें मूल तर्क दी गई थी कि सह-मालिकों के साथ संपत्ति का आपसी विभाजन पहले से था और कोई निर्माण ही को देखते हुए केवल कुछ मरम्मत कार्य परिस्थितियों में, मूल प्रार्थना विभाजन के कार्य नहीं चल रहा था, लेकिन भूमि पर किए जा पुराने निर्माण रहे थे जो उनके हिस्से में गिर गए थे। इन लिए होनी चाहिए थी यदि वादी दावों कर रहा था कि संपति को सीमा में विभाजित नहीं किया गया था। आपत्तियां दर्ज किए जाने के बाद विचारणीय न्यायालय ने हालांकि मुकदमे में प्रतिवादियों की आपतियों के कि संपत्ति अविभाजित 6 सी आवेदन पर ध्यान दिया, लेकिन यह मानने के लिए आगे बढ़ा थी क्योंकि कार्यकाल धारकों को संयुक्त खाते में दर्ज किया जाना जारी था।

32. उपरोक्त तर्क की पृष्ठभूमि में, एक निषेधाज्ञा आदेश पूरी तरह से अवांछित था। निषेधाज्ञा वाद पर विचार करने के लिए जिन सिद्धांतों पर अंतिम रूप से चर्चा की गई है, उन मापदंडों पर, निषेधाज्ञा को बनाए नहीं रखा जा सकता था और इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता को या तो विभाजन की मांग करने वाले वाद में राहत खंड में संशोधन करना चाहिए था या विभाजन के लिए एक नया मुकदमा दायर करना चाहिए था। चूंकि प्रतिवादियों की ओर से तर्क दी है कि वे कोई नई निर्माण गतिविधि नहीं कर रहे थे और केवल कुछ पुराना मौजूदा निर्माण मरम्मत कार्य चल रहे थे जहां प्रतिवादी रह रहे हैं. इस तरह के कृत्य से संयुक्त संपति को कोई विनाश या क्षति नहीं होगी, न ही निर्माण बढ़ाने के नाम पर भूमि के किसी भी हिस्से के प्रतिवादियों द्वारा विनियोग होगा। इन परिस्थितियों में, मुझे नहीं प्रतीत होता है कि जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय में कानून और तथ्यों की कोई स्पष्ट त्रुटि है।

33. हालांकि, याचिकाकर्ता विभाजन के लिए प्रार्थना जोड़ने के लिए वाद में संशोधन की मांग करने या विभाजन के लिए एक नया वाद दायर करने के लिए स्वतंत्र है और संयुक्त भूमि पर कोई भी नया निर्माण कार्य किए जाने की स्थिति में नए सिरे से निषेधाज्ञा का आवेदन करे।

34. उपरोक्त स्वतंत्रता के साथ, इस याचिका का निस्तारण किया जाता है।

35. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1233

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 1695/2023

राकेश मिश्रा एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री सैयद इमरान इब्राहिम, श्री विनय कुमार राय

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) **दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482- अंतर्निहित शक्ति- धारा 156(3), 200,202- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323, 427, 504, 506 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989- धारा 3 (1) दा धा - अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अधिनियम में पारित निर्णय एवं आदेशों के विरुद्ध अधिनियम 1989 की धारा 14-ए के अंतर्गत उपचार प्रदान किया गया है परंतु इसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अंतर्गत चुनौती नहीं दी जा सकती, धारा 397 सीआरपीसी के अंतर्गत पुनरीक्षण या सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन द्वारा यदि आवेदक एससी एसटी अधिनियम की धारा 14-ए के अंतर्गत अपील दायर करने में असफल रहा हो तो भी कभी भी अपील की जा सकती है। (पैरा 15,16)**

वादी (विपक्षी संख्या 2) ने धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया -परिवाद में परिवर्तित कर दिया- धारा 200 और 202 सीआरपीसी के अंतर्गत बयान -आवेदकों को अभियुक्त के रूप में उपस्थित होने के लिए समन - सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित परिस्थितियों में उपस्थित नहीं - याचिका की पोषणीयता - चुनौती दिए गए समन आदेश - जो एस.सी. / एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए के तहत अपील योग्य है। (पैरा - 6,11)

निर्णय:- धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार्य नहीं है और निरस्त किए जाने योग्य है। आवेदक एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए के तहत अपील दायर कर सकते हैं। (पैरा-22)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

1. गुलाम रसूल खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1000/2018
2. पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2020) 4 एससीसी 727
3. ललिता कुमारी, (2014) 2 एससीसी 1
4. भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2020) 4 एससीसी 761
5. राम अवतार बनाम एम.पी. राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 966
6. राम गोपाल एवं अन्य बनाम एम.पी. राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 834
7. गुलाम रसूल खान बनाम यूपी राज्य, आपराधिक अपील संख्या 1000/2018
8. डॉ. साह फैसल बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2020) 4 एससीसी- 1
9. एन.आई.सी. लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य, (2017) 16 S.C.C 680
10. संदीप कुमार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 16 एससीसी 623

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र यादव, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री सैयद इमरान इब्राहिम, राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
2. द.प्र.सं. सीआरपीसी की धारा 482 के तहत यह आवेदन धारा 323, 427, 504, 506 भा.दं.सं. के तहत विशेष वाद संख्या 70/2019 (अमर सिंह बनाम राकेश मिश्रा और अन्य) से उत्पन्न समन आदेश दिनांक 10.11.2022 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (1) एक्स, थाना हाईवे, जनपद मथुरा के साथ-साथ मुकदमा संख्या 70/2019 की समस्त परिणामी कार्यवाही, जो न्यायालय विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी एक्ट, मथुरा में विचाराधीन है, को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।
3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या 2, अमर सिंह, शिकायतकर्ता ने धारा 156 (3) द.प्र.सं. के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें 28.07.2019 को सुबह 09:00 बजे अपराध के संबंध में आवेदकों के खिलाफ उपरोक्त धाराओं के तहत प्राथमिकी दर्ज करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आवेदक और चार पांच अन्य व्यक्ति लाठी से लैस थे, लाठी और अन्य हथियार उसकी जमीन पर पहुंच गए तथा जेसीबी मशीन के माध्यम से चारदीवारी को तोड़ दिया और 50,000/- रुपये की क्षति पहुंचायी। जब उन्हें रोका गया तो उन्होंने आवेदक और उसके भाई को चमार ढेर कहकर गाली दी और शिकायतकर्ता और उसके भाई के साथ मारपीट की।
4. शिकायतकर्ता ने 100 नंबर पर फोन किया और जब पुलिस मौके पर पहुंची तो वे जान से मारने की धमकी देकर

भाग गए। 100 नंबर पुलिस फरियादी और उसके भाई कुन्दन सिंह, केदार सिंह को थाने ले गई, जहां फरियादी ने लिखित शिकायत दी, लेकिन हाईवे थाना पुलिस ने मामले में कोई कार्रवाई नहीं की। आरोपी गुंडा और बदमाश हैं, जो अपने बाहुबल के दम पर शिकायतकर्ता की जमीन पर कब्जा करना चाहते हैं। आवेदक ने 31 जुलाई, 2019 को एसएसपी, मथुरा को एक शिकायत भी भेजी, और फिर से एसएसपी, मथुरा और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को 13.08.2019 को एक आवेदन भेजा, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए धारा 156 (3) द.प्र.सं. के तहत आवेदन किया गया।

5. उपरोक्त आवेदन को शिकायत में बदल दिया गया। शिकायतकर्ता का बयान द.प्र.सं. की धारा 200 के तहत दर्ज किया गया था। पी.डब्ल्यू. 1 कुंदन सिंह, पी.डब्ल्यू. 2 केदार सिंह और पी.डब्ल्यू. 3 विनोद कुमार के बयान धारा 202 द.प्र.सं. के तहत दर्ज किए गए थे। 10.11.2022 को, विद्वान विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम) मथुरा ने आवेदकों को धारा 323, 504, 506, 427 भा.दं.सं. और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) दा धा के तहत 16.12.2022 को उनकी उपस्थिति के लिए तलब किया।

6. व्यथित होकर आरोपी आवेदकों ने द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत यह आवेदन दिया है। सुनवाई के समय विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आपति उठाई कि 28.07.2022 को आपराधिक अपील संख्या 1000/2018 में गुलाम रसूल खान और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य में पारित इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले के मद्देनजर, (अपील एस.सी./एस.टी एक्ट की धारा 14-ए के तहत की जा सकती है), यह याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। इस आवेदन के द्वारा मूलतः समन आदेश को चुनौती दी गयी है, जो अपील योग्य है।

7. इसके विपरीत, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कई निर्णयों पर भरोसा करते हुए, जिनकी यहां चर्चा की गई है, तर्क दिया कि धारा 482 द.प्र.सं. के तहत आवेदन विद्वान विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम) द्वारा पारित आदेश के खिलाफ सुनवाई योग्य है, यहां तक कि उन मामलों में भी जहां एससी/एसटी अधिनियम के तहत आदेश पारित किया गया है।

8. **अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 14-ए** का उल्लेख करना उचित होगा, जो नीचे दिया गया है:-

> "14क. (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी, किसी विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश से, जो कि कोई वादकालीन

आदेश नहीं है, उच्च न्यायालय में तथ्यों और विधि दोनों के आधार पर अपील की जा सकेगी।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 की उपधारा (3) में किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के किसी आदेश के विरुद्ध जमानत देने यां अस्वीकार करने के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

(3) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील उस निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से नब्बे दिन की अवधि के भीतर की जाएगी, जिस पर निम्नलिखित से अपील की जाएगीः

परन्तु उच्च न्यायालय नब्बे दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास नब्बे दिन की अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण थाः परन्तु यह और कि एक सौ अस्सी दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् कोई अपील विचारित नहीं की जाएगी।

(4) उप-धारा (1) के तहत की गई प्रत्येक अपील का निपटारा, जहां तक संभव हो, अपील स्वीकार होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा।

9. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित न्यायिक उदाहरण पर स्पष्ट रूप से नीचे चर्चा की गई है।

क) **पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य (2020) 4 SCC 727,** यह वह मामला था, जिसमें धारा 438 द.प्र.सं. के तहत अग्रिम जमानत को प्राथमिकता दी गई थी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि एससी/एसटी अधिनियम, 1989 के तहत अपराधों के संबंध में द.प्र.सं. की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत देना वर्जित है, हालांकि, जहां प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है, धारा 482 द.प्र.सं. के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उचित परिस्थितियों में अग्रिम जमानत दी जा सकती है।

ख). यह भी माना गया है कि 1989 के अधिनियम के तहत घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण से पहले प्रारंभिक जांच केवल **ललिता कुमारी, (2014) 2 एससीसी 1** में उल्लिखित परिस्थितियों में हो सकती है।

ग). निर्णय के पैरा 12 में यह माना गया है कि असाधारण परिस्थितियों में और निर्णय में निर्धारित पैरामीटर में, कानून के दुरुपयोग को रोकने के लिए धारा 482 द.प्र.सं. के तहत

1989 के अधिनियम के तहत कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की जा सकती है।

घ). निर्णय का पैरा 12 नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

> "12) सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता डॉ. अशोक धमीजा ने प्रस्तुत किया कि संहिता की धारा 154 (1) के तहत "करेगा" शब्द का उपयोग स्पष्ट रूप से यह बताता है कि यदि किसी पुलिस अधिकारी को दी गई जानकारी एक संज्ञेय अपराध के आयोग से संबंधित है, तो उसके लिए अपराध दर्ज करना अनिवार्य है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, ऐसी परिस्थितियों में, पुलिस को कोई विकल्प या विवेक नहीं दिया जाता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि शब्द "करेगा" स्पष्ट रूप से एक जनादेश का अर्थ है और वैधानिक इरादे का स्पष्ट रूप से संकेत है। उनके अनुसार, केवल यह आवश्यक है कि पुलिस को दी गई जानकारी में संज्ञेय अपराध होने का खुलासा होना चाहिए। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि संहिता की धारा 154 में "सूचना" शब्द का उपयोग सरल रूप में किया गया है और "विश्वसनीय जानकारी" या "उचित शिकायत" जैसे योग्य शब्दों का उपयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार, संसद की मंशा इस्तेमाल की गई भाषा से स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि एक संज्ञेय अपराध से संबंधित केवल प्राथमिकी दर्ज करने के लिए पर्याप्त है। उन्होंने भजन' लाल (उपरोक्त), रमेश कुमारी (उपरोक्त), अलेक पदमसी (उपरोक्त), लल्लन चौधरी (उपरोक्त), पुलिस अधीक्षक, सीबीआई बनाम तपन कुमार सिंह (2003) 6 एससीसी 175, मेसर्स हीरालाल रतनलाल (उपरोक्त), वी प्रेमानंद (उपरोक्त), खूब चंद बनाम राजस्थान राज्य एआईआर 1967 एससी 1074, पी सिराजुद्दीन (उपरोक्त). राजिंदर सिंह कटोच (उपरोक्त), भगवंत किशोर जोशी (उपरोक्त), पश्चिम बंगाल राज्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के लिए समिति, पश्चिम बंगाल (2010) 3 एससीसी पर भी भरोसा किया।

571. उन्होंने संहिता में झूठे मामले दर्ज करने के खिलाफ प्रदान किए गए विभिन्न सुरक्षा उपायों को भी इंगित किया। अंत में, उन्होंने यह दोहराते हुए निष्कर्ष निकाला कि संहिता की धारा 154 के तहत एफआईआर दर्ज करना अनिवार्य है, अगर सूचना से संज्ञेय अपराध होने का पता चलता है और ऐसी स्थिति में कोई प्रारंभिक जांच की अनुमति नहीं है। इसके अलावा, उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सीबीआई अपराध मैनुअल के तहत प्रदान की गई कुछ स्थितियों के तहत सीबीआई द्वारा की गई प्रारंभिक जांच, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 में निहित

सीबीआई से संबंधित विशेष प्रावधानों के कारण अलग स्तर पर है, जो संहिता की धारा 4 (2) एवं 5 के अंतर्गत सुरक्षित है।

इ. उपरोक्त से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि केवल असाधारण मामलों में उच्च न्यायालय एससी/एसटी अधिनियम के तहत पारित किसी भी आदेश के मामले में द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। यहां ऐसी कोई असाधारण परिस्थितियां अस्तित्व में नहीं हैं, इसलिए इस न्यायालय का विचार है कि वर्तमान मामले में उपरोक्त मिसाल लागू नहीं होती है।

च. **भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2020) 4 एससीसी 761**, यह मामला 1989 के अधिनियम के तहत किए गए अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत देने के संबंध में भी था। इस मामले में यह माना गया है कि यदि सूचना एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है, तो प्रथम सूचना रिपोर्ट का पंजीकरण अनिवार्य है और धारा 438 द.प्र.सं. का कोई सहारा स्वीकार्य नहीं है, जहां तक धारा 482 द.प्र.सं. के तहत शक्ति के प्रयोग का संबंध है, इस फैसले के पैरा 52 और 60 प्रासंगिक हैं जो नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

> **52. यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि देश में जाति व्यवस्था अभी भी प्रचलित है और लोग मलिन बस्तियों में रहते हैं, विशेष रूप से, गगनचुंबी इमारतों के नीचे, और वे ऐसी इमारतों के निवासियों की सेवा करते हैं।**
>
> **60. जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार, कई मामलों में विसंगतिपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यदि नियुक्ति प्राधिकारी यह विचार बनाता है कि चूंकि कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं है, इसलिए पदधारी को गिरफ्तार नहीं किया जाना है, कई जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं। अपराधी, चाहे वह लोक सेवक हो, की गिरफ्तारी के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के सामान्य कानून का यह उपबंध नहीं है कि नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति आवश्यक है। भा.दं.सं. और द.प्र.सं. के तहत गिरफ्तारी के मामले में किसी लोक सेवक को ऐसा कोई वैधानिक संरक्षण प्रदान नहीं किया गया है, इसलिए 1989 के अधिनियम के तहत मामलों में इस तरह के राइडर को लागू करना भेदभावपूर्ण होगा। केवल आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के मामले में, कुछ अपराध किए गए प्रतीत होते हैं, उस मामले में, मुकदमा चलाने की मंजूरी की आवश्यकता हो सकती है और अन्यथा नहीं। यदि अधिनियम आधिकारिक कर्तव्य निर्वहन के दायरे से बाहर है, तो ऐसी किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। "**

10. निर्णय के पूर्वोक्त भाग की जांच से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कुछ झूठे मामले हो सकते हैं जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.सं. के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक हो सकता है। निर्णय के पैरा 60 के अनुसार, यदि गिरफ्तारी, उत्पीड़न और झूठे फंसाने की आशंका है, तो आवेदक द.प्र.सं.

की धारा 482 के तहत प्राथमिकी को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है और इस मामले में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पृथ्वीराज चौहान (उपरोक्त)** के मामले में कानून की समान पूर्वधारणा का प्रस्ताव किया है।

11. शिकायतकर्ता को सुनें विपक्षी संख्या 2 ने धारा 156 (3) द.प्र.सं. के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसे शिकायत में बदल दिया गया था और जिसमें धारा 200 और 202 द.प्र.सं. के तहत गवाही के बाद, आवेदकों को आरोपी के रूप में उनकी उपस्थिति के लिए बुलाया गया था। यहां सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित परिस्थितियां मौजूद नहीं हैं। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह मिसाल भी आवेदकों के तर्क का समर्थन नहीं करती है।

12. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायिक मिसाल राम अवतार बनाम स्टेट ऑफ एमपी 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 966 और राम गोपाल और अन्य बनाम स्टेट ऑफ एमपी 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 834 पर भी भरोसा किया है। दोनों मामलों में पक्षकारों ने समझौता किया था और उसके बाद एक प्रश्न उठा था कि जब एससी/एसटी अधिनियम के तहत एक आपराधिक मामला द.प्र.सं. की धारा 320 के मद्देनजर शमनीय नहीं है, तो क्या उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 142 के तहत पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए याचिका पर विचार कर सकते हैं, भारत के संविधान की धारा 226 और 227 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में संशोधन किया गया है।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यदि पक्षों ने मामले से समझौता किया है तो मामले को लंबित रखते हुए कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। चूंकि पक्षों ने समझौता किया था और मामले के पुराने लंबित रहने पर भी विचार किया गया था, इसलिए यह माना गया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, एससी/एसटी अधिनियम के तहत आपराधिक मामले की कार्यवाही को भी द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत रद्द किया जा सकता है।

14. यहां समझौते के संबंध में ऐसी कोई परिस्थितियां मौजूद नहीं हैं। आवेदक सम्मन आदेश को चुनौती दे रहे हैं और विपक्षी संख्या 2. शिकायतकर्ता आक्षेपित आपराधिक मामले पर मुकदमा चला रहा है, इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में बदलाव के कारण इन न्यायिक मिसालों की आवेदकों के पक्ष में कोई प्रयोज्यता नहीं है।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने **गुलाम रसूल खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 1000/2018 में 28 जुलाई, 2022** को पारित निर्णय पर भरोसा किया है, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय, जिसमें पुनः **एससी एसटी (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 (2018) 6 एएलजे 631 की धारा 14 (ए)** के प्रावधान में फैसले पर भरोसा करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया कि एस.सी/एस.टी अधिनियम में

पारित निर्णय और आदेशों के खिलाफ 1989 के अधिनियम की धारा 14-ए के तहत उपाय प्रदान किया गया है, लेकिन इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227, धारा 397 द.प्र.सं. के तहत संशोधन या धारा 482 द.प्र.सं. के तहत आवेदन द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है।

16. यह भी माना गया है कि चूंकि एससी एसटी संशोधन अधिनियम 2015 (उपरोक्त) की धारा 14-ए के प्रावधानों में, धारा 14-ए (3) के प्रावधानों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन माना गया है और इसे रद्द कर दिया गया है। इसलिए, भले ही कोई आवेदक एससी एसटी अधिनियम की धारा 14-ए के तहत अपील दायर करने में विफल रहा हो, लेकिन इसे किसी भी समय प्राथमिकता दी जा सकती है।

17. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि **पृथ्वीराज चौहान, राम अवतार, राम गोपाल और भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य** के फैसले पर इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा उचित रूप से चर्चा नहीं की गई है, जबकि गुलाम रसूल खान और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय पारित किया गया है। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को कानून की अज्ञानता के सिद्धांत द्वारा वर्जित किया जाएगा।

18. इस संबंध में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **डॉ. साह फैसल बनाम भारत संघ और अन्य (2020) 4 एससीसी-1, एनआईसी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य (2017) 16 एससीसी 680 संदीप कुमार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2014) 16 एससीसी 623** पर भरोसा किया है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि यदि डिवीजन बेंच का एक निर्णय, पूर्ण पीठ, या उच्च न्यायालय पर मामले में शामिल बहुत ही आक्षेपित बिंदु पर चर्चा नहीं की गई है, बाद के निर्णयों को कानून की अज्ञानता के सिद्धांत द्वारा रोक दिया जाएगा।

19. निश्चित रूप से, **गुलाम रसूल खान और अन्य (उपरोक्त)** में निर्णय सुनाते समय, उपरोक्त निर्णयों पर इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा चर्चा नहीं की गई है, लेकिन इस न्यायालय दद्वारा यह भी चर्चा की गई है कि **पृथ्वीराज चौहान, राम अवतार, राम गोपाल (उपरोक्त), और भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य (उपरोक्त)**, संबंधित मामलों के तथ्य और परिस्थितियां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से पूरी तरह से अलग थीं। चूंकि प्रासंगिक चर्चा का भी पहले उल्लेख किया गया है, इसे फिर से दोहराने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन यह बहुत स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक आज्ञाकारी राय बनाई है कि असाधारण और असाधारण मामलों में, द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत एक याचिका पर विचार किया जा सकता है।

20. इस न्यायालय का विचार है कि आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय में बताई गई परिस्थितियां यहां नहीं हैं। इसलिए, **गुलाम रसूल खान और अन्य (उपरोक्त)** सुप्रीम कोर्ट का निर्णय कानून की अज्ञानता के सिद्धांत द्वारा वर्जित नहीं है।

21. यह निर्णय सीधे एससी/एसटी अधिनियम और अपील के प्रावधान के संबंध में पूर्वोक्त

अधिनियम की धारा 14-ए के संबंध में पारित किया गया है।

22. तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि द.प्र.सं. की धारा

482 के तहत यह आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है और इसे अस्वीकार कर दिया जा सकता है। तथापि, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 14-क के अंतर्गत अपील दायर करने के लिए आवेदकों के लिए उपाय खुला है।

23. धारा 482 के तहत यह आवेदन तदनुसार **खारिज** कर दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1239

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 4003/2023

अशोक कुमार सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री रविकांत पांडे

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) **आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482- अंतर्निहित शक्ति, धारा 319 -अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के खिलाफ आगे बढ़ने की शक्ति - उन मामलों में केवल मिलीभगत की संभावना की तुलना में अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है, जहां विचारणीय न्यायालय आरोपी को समन करते समय सीआरपीसी की धारा 319 के तहत क्षेत्राधिकार का आह्वान कर रहा है -**

सीआरपीसी की धारा 319 के तहत अदालत को दी गई शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण है- जिसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए और इसके अलावा इसे लापरवाह और लापरवाह तरीके से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए - संतुष्टि की डिग्री के परीक्षण के लिए मजबूत और ठोस सबूत की आवश्यकता है। (पैरा - 27)

धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन - विचारणीय न्यायालय ने आवेदक को बुलाया- दर्ज आदेश में पी.डब्लू.-1 से पी.डब्लू.-3 के बयानों का शब्दशः उल्लेख किया गया - आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला है - इसलिए आवेदक को बुलाया गया -प्रारंभिक सूचना रिपोर्ट में शुरू में नाम था - जांच हटा दी गई -कोई भौतिक साक्ष्य नहीं मिला- आवेदक की भागीदारी के बिना अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। (पैरा - 25)

निर्णय:- विचारणीय न्यायालय ने प्रथम दृष्टया में आवेदक के विरुद्ध वाद पाया। ऐसा कोई निष्कर्ष या संतुष्टि की डिग्री दर्ज नहीं की गई है कि आवेदक के खिलाफ़ कोई और मजबूत मामला उपलब्ध है। विचारणीय न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताए गए कानून की अनदेखी की। विवादित आदेश को निरस्त किया जाता है। वाद को नए सिरे

से निर्णय लेने के लिए विचारणीय न्यायालय को वापस भेज दिया गया। (पैरा - 29,30,31)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री कैलाश नाथ मिश्रा ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गोंडा द्वारा पारित आदेश दिनांक 06-04-2023 के विरुद्ध सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत यह आवेदन पोषणीय नहीं है।

2. उन्होंने कहा कि आक्षेपित आदेश, सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए पारित किया गया है और यह कोई अंतरिम आदेश नहीं है व पुनरीक्षणीय है और इसलिए सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत अंतर्निहित शक्तियों का आह्वान करना वर्जित है क्योंकि अंतर्निहित शक्ति का आह्वान तब किया जा सकता है, जब दंड प्रक्रिया संहिता में कोई प्रत्यक्ष या स्पष्ट प्रावधान न हो या अन्यथा कोई वैकल्पिक उपाय उपलब्ध न हो।

3. अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने 1 जुलाई, 2013 को निर्णीत मोहित उर्फ सोनू व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (आपराधिक अपील संख्या 814/2013) के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है और पैराग्राफ संख्या-23 का उल्लेख किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"23. जहां तक सीआरपीसी की धारा 482 में निहित उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का संबंध है, इस संबंध में कानून को इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में स्थापित कर दिया गया है। हालांकि, हम यह दोहराना चाहेंगे कि जब कोई आदेश, जो प्रकृति में अंतरिम नहीं है, को पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, तो उच्च न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार को लागू करने पर रोक होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जब शिकायत के निवारण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में कोई उपाय प्रदान नहीं किया गया हो। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग आमतौर पर तब किया जा सकता है जब संहिता में कोई स्पष्ट प्रावधान न हो जिसके अंतर्गत आदेश को चुनौती दी जा सके।"

4. उपरोक्त पर भरोसा करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि यदि कोई आदेश अंतरिम नहीं है, तो उसे उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अंतर्गत चुनौती दी जा सकती है और इसलिए, आवेदक के पास पुनरीक्षण का उपाय उपलब्ध है और ऐसी परिस्थितियों में अंतर्निहित शक्तियों का आह्वान करना वर्जित है, इस प्रकार केवल इसी आधार पर वर्तमान आवेदन को खारिज किया जा सकता है।

5. इसके विपरीत, आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अमरेन्द्र नाथ सिंह ने तर्क दिया कि मोहित

उर्फ सोनू एवं अन्य (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय का सिद्धान्त एक अच्छा कानून नहीं है और उन्होंने प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, एबीसी 2016(II)126 एससी में दिए गए निर्णय पर भरोसा रखा है और उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 6 और 7 का संदर्भ दिया है, जो नीचे उद्धृत हैं:-

"6. हमारे विचार से धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति से संबंधित मुद्दे के संबंध में कानून को और अधिक स्पष्ट करने का कोई भी प्रयास अनुचित है। हम केवल यह दोहराना चाहेंगे कि धारा 482 एक गैर-बाधा खंड के साथ शुरू होती है, जिसमें कहा गया है: "इस संहिता में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा जो इस संहिता के अंतर्गत किसी भी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करता हो।" इसके अलावा, ऐसे स्वस्थ अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं हो सकता है, जहां, कृष्ण अय्यर, जे के शब्दों में "न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को उत्तेजित करती है। सीमा आत्म-संयम है, इससे ज्यादा कुछ नहीं।" हम इसके समर्थन में एक और कारण जोड़ने का साहस करते हैं। चूंकि धारा 397 सीआरपीसी अंतरिम आदेशों के अलावा अन्य सभी आदेशों के खिलाफ लागू होती है, इसलिए एक विपरीत दृष्टिकोण धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत निहित शक्तियों की उपलब्धता को केवल छोटे अंतरिम आदेशों तक सीमित कर देगा! एक ऐसी स्थिति, जो पूरी तरह से अनुचित और अवांछनीय है।

"7. परिणामस्वरूप, हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि खंडपीठ, विशेष रूप से मोहित उर्फ सोनू और अन्य (उपरोक्त) के मामले में पैराग्राफ 28 में सीआरपीसी की धारा 482 में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के संबंध में कानून को सही ढंग से नहीं बताती है। हम अपनी सम्मानजनक असहमति दर्ज करते हैं।"

6. पूर्वोक्त पर भरोसा करते हुए, वह तर्क देते हैं कि मोहित उर्फ सोनू बनाम राज्य उत्तर प्रदेश (उपरोक्त) के मामले में प्रतिपादित कानून पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के सिद्धान्त को खारिज कर दिया है, जो पैराग्राफ संख्या-28 में दिया गया था और माना कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति, जिसकी पूर्व पीठ द्वारा अन्यथा व्याख्या की गई थी, सही कानून नहीं है। उन्होंने कहा कि बाद के निर्णयों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि सीआरपीसी की धारा 482 गैर-बाधित खंड से शुरू होती है और इसलिए, कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के मामले में, अंतर्निहित शक्ति का आह्वान किया जा सकता है और आत्म संयम को छोड़कर कोई सीमा नहीं है, इस प्रकार, सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत पारित समन आदेश को धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए बहुत अच्छी तरह से चुनौती दी जा सकती है।

7. श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह, विद्वान ए.जी.ए.-I ने राज्य के लिए उपस्थित होकर तर्क दिया है कि सीआरपीसी की धारा 482 के

दायरे और क्षेत्र को समझने के लिए, उक्त प्रावधान के अधिनियमन के इतिहास में जाना उचित होगा। उन्होंने कहा कि 01-01-1862 को भारत में पहली दंड प्रक्रिया संहिता लागू हुई और उसमें उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को मान्यता देने वाला कोई प्रावधान नहीं था। इसके बाद 1898 में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को मान्यता देने वाले प्रावधानों में भी यह प्रावधान नहीं था और 1908 में जब सिविल प्रक्रिया संहिता लागू की गई और सी.पी.सी. की धारा 151 के अंतर्गत अंतर्निहित शक्तियों की परिकल्पना की गई, तब पूरे देश में न्यायिक राय इस बात पर अलग-अलग हो गई कि क्या आपराधिक पक्ष में उच्च न्यायालयों को भी अंतर्निहित शक्तियां होनी चाहिए। 1923 से पहले उच्च न्यायालयों के कई फैसले आए कि सी.पी.सी. की धारा 151 जैसा प्रावधान सी.आर.पी.सी. में कहीं नहीं है और कहा गया कि कानून निर्माताओं की जानबूझकर की गई चूक से आपराधिक न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियां छूट जाती हैं। सी.आर.पी.सी. में संशोधन करके इस मतभेद को दूर किया गया। 1923 में, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (संशोधन अधिनियम, 1923) के नाम से जाना जाता है। उपर्युक्त संशोधन के आधार पर, धारा 561-ए डाली गई, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"उच्च न्यायालय "डिवीजन" की अंतर्निहित शक्ति की व्यावृत्ति-

561-ए। इस संहिता में कोई भी बात उच्च न्यायालय "डिवीजन" की इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक आदेश देने की अंतर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।"

8. उन्होंने आगे कहा कि इसके बाद, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में, इसे संहिता के अध्याय XXXVII के अंतर्गत धारा 482 के रूप में समाहित किया गया, जिसका शीर्षक विविध अध्याय है।

9. पूर्वोक्त का संदर्भ देते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि सीआरपीसी की धारा 561-ए के अंतर्गत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संहिता के अंतर्गत किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए, या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए और अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए है। उन्होंने आगे कहा कि सीआरपीसी की धारा 482 में दी गई उच्च न्यायालयों की शक्तियों पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती, जिन्हें निहित शक्तियों के रूप में जाना जाता है और यदि विधानमंडल की किसी भी तरह की सीमा के लिए कोई इरादा होता, तो ऐसा प्रावधानों में ही दिया गया होता।

10. आगे तर्क यह है कि मोहित उर्फ सोनू और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय का सिद्धान्त अब एक अच्छा कानून नहीं है, क्योंकि निर्णय के उपरोक्त सिद्धान्त पर विचार करते हुए बहुत समय बीत चुका है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय सहित कई निर्णय पारित किए गए हैं, जिसमें मोहित उर्फ सोनू और

अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के सिद्धान्त को खारिज कर दिया गया है। इस प्रकार, तर्क यह है कि विपक्षी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

11. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों तथा सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत निहित शक्तियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करने पर यह पता चलता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधिनियमन से पूर्व, पुरानी सीआरपीसी अर्थात सीआरपीसी 1898 (संशोधन) अधिनियम, 1923 में पहली बार उच्च न्यायालयों की निहित शक्तियों को धारा 561-ए के अंतर्गत प्रख्यापित किया गया था। उपरोक्त प्रावधान भारतीय विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में गहन विचार-विमर्श के पश्चात अस्तित्व में आया। विधि आयोग की रिपोर्ट में की गई टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

"हालांकि, यह वैधानिक मान्यता केवल उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों तक ही सीमित है। इसकी तुलना सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 द्वारा सभी सिविल न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों की मान्यता से की जा सकती है। धारा 561-ए के अधिनियमन से पहले और बाद के कई निर्णयों में, विभिन्न उच्च न्यायालयों ने अधीनस्थ न्यायालयों में भी ऐसी शक्ति के अस्तित्व को मान्यता दी है। इसलिए, हम ऐसी अंतर्निहित शक्ति की वैधानिक मान्यता की सिफारिश करेंगे, जिसे सभी अधीनस्थ आपराधिक न्यायालयों में निहित माना गया है। हालांकि, कानून का सामान्य सिद्धांत यह है कि किसी न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग केवल उसके द्वारा दिए गए आदेशों को प्रभावी बनाने या अपनी प्रक्रियाओं के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया जा सकता है।"

हम इस सिफारिश से सहमत हैं। हालांकि, हम इसे आवश्यक या वांछनीय नहीं मानते हैं कि आगे जाकर सत्र न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में किसी अधीनस्थ न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उचित आदेश पारित करने की "अंतर्निहित शक्ति" को मान्यता दी जाए।"

12. संसद ने भारत के विधि आयोग की इकतालीसवीं रिपोर्ट की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए, सीआरपीसी की धारा 561-ए (पुरानी) के अंतर्गत अंतर्निहित शक्तियों के प्रावधानों की परिकल्पना की।

13. उपरोक्त प्रावधानों के अधिनियमित होने के बाद; बार-बार, सर्वोच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत दी गई अंतर्निहित शक्तियों के अर्थ की व्याख्या की है और यह तय किया गया है कि उच्च न्यायालय संहिता के अंतर्गत आदेशों को प्रभावी करने और न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए व न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और इसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए, लेकिन, साथ ही, यह भी ध्यान देने योग्य है कि सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके अंतर्निहित शक्तियों को लागू करने के संबंध में किसी भी निर्णय में कोई रोक नहीं दी गई है। उच्च न्यायालयों और वास्तव में, यह उपरोक्त प्रावधानों को अधिनियमित करते समय

विधायिका की मंशा भी है क्योंकि उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों पर कोई रोक नहीं लगाई गई है और यह प्रावधान सीआरपीसी 1973 में विविध अध्याय में रखा गया है। प्रावधान के शुरुआती शब्द कहते हैं 'इस संहिता में कुछ भी उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा; जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सीआरपीसी का कोई प्रावधान सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों को ओवरराइड करते हुए नहीं पढ़ा जा सकता है।

14. इससे पता चलता है कि मोहित उर्फ सोनू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि उच्च न्यायालय को अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत आदेश की वैधता और औचित्य पर विचार करते हुए, किसी व्यक्ति को नोटिस और सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता होती है और आगे माना था कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जब शिकायत के निवारण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कोई उपाय प्रदान नहीं किया गया हो, हालांकि यह प्रश्न फिर से उठाया गया है और प्रभु चावड़ा (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा संख्या 6 और 7 में बहुत स्पष्ट रूप से माना है कि सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीआरपीसी के अंतर्गत प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय से बाधित नहीं किया जा सकता है।

15. जब यह न्यायालय इस बिन्दु की आगे जांच करता है, तो यह सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों के मात्र पढ़ने से स्पष्ट है। यह बात ऑब्स्टेंटे क्लॉज से शुरू होती है, यानी "इस संहिता में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा जो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करता हो"। यह विधायिका के इरादों को इतने स्पष्ट शब्दों में दर्शाता है कि सीआरपीसी के किसी भी प्रावधान को सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों के संदर्भ में वैकल्पिक उपाय नहीं कहा जा सकता है और यहां तक कि सीआरपीसी का कोई भी प्रावधान उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित नहीं कर सकता है।

16. उपर्युक्त तर्कों और चर्चाओं के दृष्टिगत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार किया जाता है।

17. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि कांत पांडे की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ सिंह, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री के एन मिश्रा, राज्य के विद्वान ए जी ए-I श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को सुना।

18. धारा 482 सीआरपीसी के वर्तमान आवेदन के माध्यम से, मुकदमा अपराध संख्या-184/2020, धारा 302, 201 आईपीसी थाना-उमरी बेगमगंज, जिला-गोंडा से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या-1028/2020, (राज्य बनाम अवध किशोर तिवारी एवं अन्य) में विद्वान अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, कोर्ट

नंबर 3, गोंडा द्वारा धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत पारित समन आदेश दिनांक 06-04-2023 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

19. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान आवेदन के माध्यम से आवेदक ने सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत पारित दिनांक 06-04-2023 के आदेश को चुनौती दी है। उन्होंने कहा कि मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि एक प्रथम सूचना रिपोर्ट इस आरोप के साथ दर्ज की गई थी कि राजवीर उर्फ रानू की उसके भाई ने हत्या कर दी, जिसमें आरोपीगण अर्थात् अवध किशोर तिवारी, राम किशोर, अशोक कुमार सिंह (वर्तमान आवेदक) और ललित सिंह को नामजद किया गया था और मामले की गहन जांच के बाद जांच अधिकारी द्वारा आरोपीगण अर्थात् अवध किशोर और कमला के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। वर्तमान आवेदक का नाम जांच के समय ही हटा दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि मुकदमा आगे बढ़ा और आरोप पत्र दायर किया गया और अन्य सह-आरोपियों के खिलाफ समन जारी किए गए और जब पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 के बयान ट्रायल कोर्ट के समक्ष दर्ज किए गए, तो सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया गया और वर्तमान आवेदक द्वारा आपत्ति भी प्रस्तुत की गई। उन्होंने कहा कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने 06-04-2023 को आक्षेपित आदेश पारित करते समय अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों को अक्षरशः आदेश में शामिल किया है और इस बात की संतुष्टि के लिए कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि अधिक मजबूत मामला उपलब्ध था। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2014) 3 सुप्रीम कोर्ट केस, 92 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, और उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 117.5 का उल्लेख किया है, जिसमें प्रश्न संख्या (iv) का उत्तर दिया गया है। उक्त निर्णय की पैरा संख्या 117.5 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"प्रश्न IV किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति का उपयोग करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की प्रकृति क्या है? क्या धारा 319 (1) सीआरपीसी के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब अदालत को यह विश्वास हो कि समन किए गए अभियुक्त के दोषी ठहराए जाने की पूरी संभावना है?

117.5. हालांकि धारा 319(4)(बी) सीआरपीसी के अंतर्गत बाद नामजद अभियुक्त को अभियुक्त माना जाना चाहिए जैसे कि वह तब अभियुक्त था जब न्यायालय ने अपराध का प्रारंभिक संज्ञान लिया था, धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत किसी व्यक्ति को बुलाने के लिए संतुष्टि की डिग्री की आवश्यकता होगी जो आरोप तय करने के लिए समान होगी। मूल अभियुक्त और बाद के अभियुक्त को बुलाने के लिए संतुष्टि की डिग्री में अंतर इस तथ्य के कारण है कि मूल अभियुक्त के खिलाफ मुकदमा पहले ही शुरू हो चुका है और इस तरह मुकदमे के दौरान नामजद अभियुक्त के खिलाफ सामग्री का खुलासा किया जाता है। किसी अभियुक्त को फिर से बुलाने से मुकदमे में देरी होगी, इसलिए अभियुक्त (मूल और बाद

में नामजद) को बुलाने के लिए संतुष्टि की डिग्री अलग-अलग होनी चाहिए।"

20. उपर्युक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत एक आवेदन पर फैसला करते समय संतुष्टि की डिग्री दर्ज की जानी आवश्यक है। उन्होंने आगे कहा कि धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन पर फैसला करने के दौरान, नए समन किए गए अभियुक्त के खिलाफ सामग्री का खुलासा किया जाना चाहिए।

21. उन्होंने इसके बाद बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, , (2017) 7 सुप्रीम कोर्ट केसेस, 706 के मामले में निर्णय का उल्लेख किया है और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 15 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"15. यह रिकॉर्ड ट्रायल कोर्ट के समक्ष था। इसके बावजूद, ट्रायल कोर्ट ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के मुख्य परीक्षा में दिए गए बयानों को ही आधार बनाया, जबकि उनके तथाकथित मौखिक/चक्षु साक्ष्य को समर्थन देने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं थी। इस प्रकार, ट्रायल के दौरान दर्ज किए गए 'साक्ष्य' मामले की जांच के समय धारा 161 सीआरपीसी के अंतर्गत पहले से मौजूद बयानों से अधिक कुछ नहीं थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ट्रायल कोर्ट मुख्य परीक्षा में उसके समक्ष दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होगा। हालांकि, वर्तमान जैसे मामले में, जहां जांच के दौरान आईओ द्वारा बहुत सारे सबूत एकत्र किए गए थे, जो अन्यथा सुझाव देते थे, ट्रायल कोर्ट का कम से कम यह कर्तव्य था कि वह प्रथम दृष्टया राय बनाते समय उन पर गौर करे और देखे कि क्या उनकी (यानी अपीलकर्ताओं) मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत रिकॉर्ड पर आए हैं। इस तरह की कोई संतुष्टि नहीं है। अगर हम यह भी मान लें कि ट्रायल कोर्ट को आदेश पारित करते समय इस बारे में जानकारी नहीं थी (क्योंकि उस समय अपीलकर्ता घटनास्थल पर नहीं थे), तो इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि जब अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में रिकॉर्ड पर मौजूद इस सामग्री को विशेष रूप से उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया, तब भी उच्च न्यायालय ने उक्त सामग्री को अनदेखा कर दिया। ट्रायल कोर्ट के आदेश में निहित चर्चा को फिर से प्रस्तुत करने और उससे सहमति व्यक्त करने के अलावा और कुछ नहीं किया गया। ऐसे आदेश न्यायिक जांच के दायरे में नहीं आ सकते।"

22. उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने कहा कि यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा माना गया है कि सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत आवेदन का फैसला करते समय, ट्रायल कोर्ट को यह देखना होगा कि क्या मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत रिकॉर्ड पर उपलब्ध हैं और इस संबंध में संतुष्टि भी दर्ज की जानी चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, ट्रायल कोर्ट ने आरोपित समन आदेश पारित करते समय अपने न्यायिक दिमाग और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून को

लागू नहीं किया और इस प्रकार, 06-04-2023 का आदेश कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है और इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए।

23. उपर्युक्त तर्कों का विरोध करते हुए, विपक्षी सं-2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के अधिवक्ता की दलीलों और तर्कों का पुरजोर विरोध किया है और कहा है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने विस्तृत निष्कर्ष दर्ज किया है और अभियोजन पक्ष के गवाह संख्या 1 से 3 के बयानों का भी उल्लेख किया है, जो आदेश से ही स्पष्ट हैं। उन्होंने कहा कि निष्कर्ष खंड में यह भी दर्ज किया गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत बयानों और साक्ष्यों के अनुसार वर्तमान आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है और अभियोजन पक्ष द्वारा ट्रायल कोर्ट के समक्ष इसकी जांच भी की गई है। उन्होंने यह भी कहा कि आक्षेपित आदेश में ट्रायल कोर्ट द्वारा विस्तृत चर्चा और तर्क दिए गए हैं और इस तरह, कोई त्रुटि या दुराग्रह नहीं है और इस तरह, वर्तमान आवेदन में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

24. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने भी आवेदक के अधिवक्ता के तर्कों का विरोध किया है और कहा है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों पर विचार करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है, जो आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक साबित होता है और इस तरह, कोई हस्तक्षेप उचित नहीं है।

25. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित समन आदेश दिनांक 06-04-2023, धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत एक आवेदन पर पारित है। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि पी.डब्लू.-1 से पी.डब्लू.-3 के बयानों का आदेश में शब्दशः उल्लेख किया गया है तथा यह दर्ज किया गया है कि आवेदक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है, अतः आवेदक को समन किया गया है।

26. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि प्रारंभ में वर्तमान आवेदक का नाम भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में था तथा जांच की गई थी, जिसमें उसका नाम हटा दिया गया था, क्योंकि आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध साक्ष्य एकत्रित करते समय जांच अधिकारी को वर्तमान आवेदक की संलिप्तता के संबंध में कोई ठोस साक्ष्य नहीं मिला था तथा उसके पश्चात अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी।

27. यह भी आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि ट्रायल कोर्ट ने पाया कि वर्तमान आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, ऐसे आरोपियों को समन करने के लिए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक या बहुत मजबूत मामलों की आवश्यकता होती है, जिससे सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का आह्वान होता है। सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत अदालत को दी गई शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है और इसलिए, इसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए और इसके

अलावा इसे सुस्त और लापरवाह तरीके से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। संतुष्टि की डिग्री के परीक्षण के लिए मजबूत और ठोस सबूत की आवश्यकता होती है।

28. यह अदालत बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए फैसले व सिद्धान्त से भी अनभिज्ञ नहीं है, जिसमे यह स्पष्ट रूप से माना है कि ऐसे मामलों में, जहां ट्रायल कोर्ट अभियुक्त को समन करते समय सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का आह्वान कर रहा है, मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है।

29. जब यह न्यायालय उपरोक्त निर्णयों के सिद्धान्त के प्रकाश में विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गोंडा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की जांच करता है, तो आदेश से ही यह उभर कर आता है कि विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला पाया है और ऐसा कोई निष्कर्ष या संतुष्टि की डिग्री दर्ज नहीं की गई है कि आवेदक के खिलाफ अधिक मजबूत मामला उपलब्ध है और इस तरह, यह न्यायालय पाता है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून की अनदेखी की है।

30. परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश दिनांक 06-04-2023 अपास्त किया जाता है।

31. मामले को संबंधित ट्रायल कोर्ट को वापस भेजा जाता है, ताकि इस आदेश की तिथि से साठ दिनों की अवधि के भीतर, सीआरपीसी की धारा 319 के अंतर्गत आवेदन पर विचार करने के बाद नया निर्णय लिया जा सके।

32. उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान आवेदन को **स्वीकार** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1246

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 12560/2023

योगराज सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री विवेक कुमार माहेश्वरी, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री निपुण सिंह

(ए) **दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति, धारा 216- न्यायालय आरोप में परिवर्तन कर सकता है, धारा 319- अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति, धारा 212 - समय, स्थान और व्यक्ति के संबंध में विवरण, भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 302 - हत्या -यदि आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि किसी भी पक्षकार को कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है, तो न्यायालय अपने विवेकानुसार उक्त तकनीकी त्रुटियों को संशोधित करके मुकदमे को आगे बढ़ा सकता है।** (पैरा - 17)

(बी) **आपराधिक कानून- पूर्वाग्रह वाद के तथ्यों के आधार पर दिखाया जाता है - पूर्वाग्रह के एक प्रश्न का निर्णय करते समय, अपराध के रूप में - न्यायालय को एक व्यापक दृष्टि के साथ कार्य करना चाहिए और सार को देखना चाहिए न कि तकनीकी पहलुओं को - उनकी मुख्य चिंता यह होनी चाहिए कि क्या अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई मिली थी - क्या वह जानता था कि उसके खिलाफ क्या मुकदमा चलाया जा रहा था -क्या उसके खिलाफ स्थापित किए जाने वाले मुख्य तथ्यों को उसे निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से समझाया गया था- और क्या उसे अपना बचाव करने का पूरा और निष्पक्ष मौका दिया गया।** (पैरा-15)

आवेदक का आरोप संशोधित कर 'घटना स्थल' करने का आवेदन - धारा 216 सीआरपीसी के तहत खारिज कर दिया गया - अभियोजन पक्ष के गवाहों से घटना स्थल के संबंध में पूछताछ की गई - आरोप में घटना स्थल को भी शामिल किया गया - इससे किसी भी पक्ष को कोई नुकसान नहीं हुआ। (पैरा 2,17)

निर्णय:- निचली अदालत को निर्देश दिया जाता है कि वह सीआरपीसी की धारा 216(3) के प्रावधान के अनुसार मूल आरोप में 'घटना स्थल' को शामिल करके आरोप को संशोधित करे, बिना किसी अतिरिक्त साक्ष्य का सहारा लिए, सर्वोच्च न्यायालय की समय-सीमा का पालन करते हुए शीघ्रता से मुकदमा आगे बढ़ाए। (पैरा-18)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निस्तारित। (ई- 7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. दरबार सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 10 एससीसी 476
2. मेन पाल बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2010 एससी 3292

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव, द्वारा प्रदत्त)

श्री अनूप त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक कुमार माहेश्वरी, आवेदक के अधिवक्ता, श्री निपुण सिंह, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता, श्री आरपी मिश्रा, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा सहायता को सुना और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया।

इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक/सूचनाकर्ता ने विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, मुजफ्फरनगर द्वारा सत्र विचारण संख्या 561 वर्ष 2004 (राज्य बनाम नरेश टिकैत) में पारित आदेश दिनांक 20.3.2023 को रद्द करने की प्रार्थना की है, जो केस अपराध संख्या-97 वर्ष 2003, धारा 302 भ०द०वि, थाना-भऊराकलां, जिला मुजफ्फरनगर के तहत अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-5, मुजफ्फरनगर की अदालत में लंबित है जिसमें 'घटनास्थल' की सीमा तक आरोप में संशोधन के लिए धारा 216 द०प्र०स० (पेपर संख्या-337 ख) के तहत आवेदक के आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आवेदक ने अपने पिता जगवीर सिंह की हत्या के संबंध में 7.09.2003 को मामला अपराध संख्या-97 वर्ष 2003 के तहत धारा 302 भ०द०वि के तहत थाना-भाऊराकलां, जिला मुजफ्फरनगर में

प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें आरोप लगाया गया कि 6.9.2003 को, जब सूचनाकर्ता अपने पिता और एक रामवीर सिंह के साथ, बताया जाता है? कि अपने गांव की ओर जाते समय शाम करीब 6 बजे अंबासडोर कार में रामफल के पुत्र परवीन पुत्र के घर के सामने पहुंचे थे, जिसे सूचनाकर्ता के पिता द्वारा चलाया जा रहा था, उस समय एक नरेश टिकैत पुत्र महेंद्र टिकैत, परवीन पुत्र रामफल और बिट्टू @ पटवारी पुत्र रामफल उनके घर के सामने सफेद रंग की मारुति कार में रास्ते में खड़े थे और जैसे ही सूचनाकर्ता के पिता ने अपने वाहन की गति कम की, तीनों अभियुक्त हाथ में देसी पिस्तौल लिए अपनी कार से बाहर आए और सूचना देने वाले की गाड़ी को चारों ओर से टक्कर मार दी और उसके बाद अभियुक्त प्रवीण और नरेश ने देशी पिस्तौलों से उसके पिता की गोली मारकर हत्या कर दी। यह भी आरोप लगाया गया है कि घटना के समय, पर्याप्त धूप थी और शोर गुल पर तीनों आरोपी व्यक्ति अपनी मारुति कार छोड़कर मौके से भाग गए। आरोप है कि सूचनाकर्ता तुरंत अपने पिता को सरकारी अस्पताल ले गया लेकिन रास्ते में ही उसकी मौत हो गई।

इस मामले की पुलिस द्वारा जांच की गई और उसके बाद मामले को सीबीसीआईडी, यूपी पुलिस को स्थानांतरित कर दिया गया और जांच के बाद आरोपी नरेश टिकैत को बरी करते हुए, जिसे बाद में धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग में विचारण न्यायालय, कोर्ट संख्या-6, मुजफ्फरनगर द्वारा बुलाया गया था, संबंधित अदालत के समक्ष आरोप पत्र दायर किया गया, जो कि नीचे उद्धृत किया गया है: -

"कि 6.9.2003 को शाम 6 बजे गांव अलावलपुर मजरा, थाना-बौरा कलां, जिला मुजफ्फरनगर में आपने और आपके साथियों पवीन कुमार और राजीव कुमार ने सूचनाकर्ता के पिता जगवीर सिंह को देशी पिस्तौल से गंभीर चोटें पहुंचाईं और उक्त चोटों के कारण, उन्होंने दम तोड़ दिया, इस तरह आपने हत्या की जो धारा 34 भ०द०वि सपठित धारा 302 के तहत दंडनीय है और इस न्यायालय द्वारा संज्ञेय है।

आवेदक की शिकायत यह है कि प्राथमिकी में ही सूचनाकर्ता/आवेदक ने घटनास्थल का विशेष रूप से उल्लेख किया है कि आरोपी व्यक्तियों ने गांव अलावलपुर मजरा में आरोपी प्रवीण कुमार के घर के सामने उसके पिता की हत्या कर दी और जांच के दौरान, विवेचनाधिकारी ने नक़्शा नज़री भी तैयार किया है जिसमें उसने यह भी उल्लेख किया है कि यह घटना प्रवीण के घर के सामने हुई थी लेकिन विचारण न्यायालय ने घटना के विशिष्ट स्थान का उल्लेख न करके आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने में अवैधता बरती। इसके अलावा, आवेदक, जिसे अपने बयान में अ०सा०-1 के रूप में जांच की गई है, उसने विशेष रूप से कहा था कि 6.9.2003 को शाम 6 बजे, आरोपी व्यक्तियों ने गांव अलावलपुर मजरा में आरोपी प्रवीण के घर के सामने उसके पिता पर गोली चलाई थी। एक अन्य चश्मदीद गवाह अर्थात अ०सा०-2, अर्थात् यशपाल ने भी अपने बयान में इसी आशय की बात कही है। यह भी आरोप लगाया गया है कि अंतिम बहस के

दौरान, आवेदक के अधिवक्ता ने देखा कि आरोपी नरेश टिकैत के खिलाफ तैयार आरोप दोषपूर्ण है और आरोपी के खिलाफ तय आरोप में बदलाव की आवश्यकता है। इसलिए, आवेदक/सूचनाकर्ता ने 17.3.2023 को विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप में घटना का स्थान ग्राम अलावलपुर टाइप किया गया है और किसी विशिष्ट स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है, जबकि प्राथमिकी और नक़्शा नज़री में घटना का स्थान गांव अलावलपुर मजरा में आरोपी प्रवीण के घर के सामने है। इस प्रकार, अभियुक्त प्रवीण कुमार के घर के सामने घटना की जगह तय करने के लिए, और भविष्य में किसी भी तकनीकी त्रुटि से बचने के लिए किसी भी पक्ष द्वारा उसी का लाभ प्राप्त करने के लिए, आरोप को उस सीमा तक संशोधित करना आवश्यक हो जाता है जहां तक घटनास्थल का उल्लेख किया जाए। उक्त आवेदन को निचली अदालत ने आक्षेपित आदेश के तहत खारिज कर दिया है, जो इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय है।

रिकॉर्ड से आगे पता चलता है कि आवेदक ने 5 वें अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, मुजफ्फरनगर, यूपी की अदालत के समक्ष लंबित सत्र विचारण को जिला और सत्र न्यायाधीश, तीस हज़ारी न्यायालय, नई दिल्ली की अदालत में स्थानांतरित करने की प्रार्थना के साथ आरोपी द्वारा दी गई धमकियों के कारण स्थानांतरण आवेदन दायर करके शीर्ष न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 10.2.2023 के आदेश के तहत इस तथ्य पर विचार करते हुए खारिज कर दिया था कि मुकदमा पिछले 19 वर्षों से लंबित है और तथ्य यह है कि सबूत पहले ही खत्म हो चुके हैं और मुकदमा बहस के अंतिम चरण में है। हालांकि, यह निर्देश दिया गया था कि विचारण शांतिपूर्ण और निष्पक्ष तरीके से आयोजित किया जाए क्योंकि आवेदक की ओर से यह आशंका है कि आरोपियों को एक 'विशेष उपचार' दिया जाता है। विचारण न्यायालय को यह भी निर्देश दिया गया था कि वह मुकदमे को जल्द से जल्द और अधिमानतः आज से छह महीने की अवधि के भीतर समाप्त करे।

रिकॉर्ड आगे खुलासा करता है कि इसके बाद आवेदक ने जिला और सत्र न्यायाधीश, मुजफ्फरनगर के समक्ष स्थानांतरण आवेदन भी दायर किया, जिसमें उक्त सत्र परीक्षण को जिला मुजफ्फरनगर के अन्य उपयुक्त न्यायालय में स्थानांतरित करने की प्रार्थना की गई थी, जिसे भी जिला और सत्र न्यायाधीश, मुजफ्फरनगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.02.2023 द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश से व्यथित होकर, आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष स्थानांतरण आवेदन (आपराधिक) संख्या 156 वर्ष 2023 को प्राथमिकता दी, जिसे लंबित बताया गया है।

आवेदक के अधिवक्ता का कहना है कि धारा 212 द०प्र०स० के प्रावधान के मद्देनजर आरोपी के खिलाफ तय किया गया आरोप कानून में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है क्योंकि आरोपी के खिलाफ तय किए गए आरोप में विशिष्टता: घटना के स्थल का उल्लेख नहीं किया गया है।

अभियुक्त/प्रतिवादी संख्या-2 के अधिवक्ता ने कहा कि आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप में कोई अनियमितता नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घटना की जगह के बारे में अपने बयान में बताया है और जिरह के दौरान घटनास्थल के बारे में सवाल पूछे गए हैं, इसलिए, किसी भी पक्ष को कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा। आगे यह तर्क दिया गया है कि आरोपों को तैयार करने में दोष इतना गंभीर होना चाहिए कि इसे धारा 464/465 द०प्र०स० के तहत आच्छादित नहीं किया जा सकता है, जो प्रदान करता है कि सजा या दोषसिद्धि का आदेश केवल इस आधार पर अमान्य नहीं माना जाएगा कि कोई आरोप नहीं बनाया गया था या कुछ अनियमितता या चूक या आरोपों का गलत संयोजन था जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि परिणामस्वरूप, न्याय की विफलता/हानि भी थी। यह निर्धारित करने में कि क्या प्रासंगिक आरोपों को तैयार करने में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता, न्याय की विफलता/हानि का कारण बनी, अदालत को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कार्यवाही के दौरान पहले चरण में आपत्ति उठाई जा सकती थी या नहीं। पूर्वाग्रह या अपराध के सवाल पर निर्णय लेते समय, अदालत को यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार है, जहां उसे पता होता है कि उसके खिलाफ क्या मुकदमा चलाया जा रहा है और जहां उसके खिलाफ स्थापित किए जाने वाले तथ्यों को निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से समझाया जाता है, और आगे, जहां उसे उक्त आरोप (आरोपों) के खिलाफ खुद का बचाव करने का पूर्ण और उचित मौका दिया जाता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने (2012) 10 एस.सी.सी. 476 दरबार सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले पर भरोसा किया।

इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अभियुक्त के खिलाफ आरोप 11.06.2007 को धारा 302/34 भ०द०वि के तहत तय किया गया था। आरोप से स्पष्ट है कि घटनास्थल, घटना की तारीख और समय को छोड़कर उसमें उल्लेख किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोप किसी व्यक्ति के खिलाफ उसके द्वारा किए गए कथित अपराध के संबंध में लगाया गया आरोप है और बुनियादी आवश्यकता यह है कि इसे इस तरह से तैयार किया जाना चाहिए कि आरोपी व्यक्ति को मामले का काफी उचित विचार दिया जा सके जिसका उसे सामना करना है। अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने में मात्र अनियमितता से विचारण समाप्त नहीं होता है, जब तक कि अभियुक्त के प्रति कोई पूर्वाग्रह न हो। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि धारा 216 द०प्र०स० के तहत किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने के लिए अदालत की शक्तियों का दायरा प्रकृति में बहुत व्यापक है और यह ऐसे मामलों के संबंध में अदालत को विशेष अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है जिन्हें निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय प्रयोग किया जा सकता है। इसके संबंध में पक्षों के अधिकार बेहद सीमित होंगे और इसके संबंध में कोई जोड़ या परिवर्तन या आपत्ति अधिकार के मामले के रूप में नहीं उठाई जा सकती है।

अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे बताया कि धारा

215 द०प्र०स० में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अपराध या आरोप में बताए जाने वाले विवरणों को बताने में कोई त्रुटि नहीं है, और अपराध या उन विवरणों को बताने में कोई चूक नहीं मानी जाएगी, जब तक कि अभियुक्त वास्तव में इस तरह की त्रुटि या चूक से गुमराह न हो और इसने न्याय की विफलता/हानि का अवसर दिया है। धारा 464 द०प्र०स० में यह भी प्रावधान है कि सक्षम न्यायालय द्वारा कोई भी सजा या आदेश केवल इस आधार पर अमान्य नहीं माना जाएगा कि कोई आरोप तय नहीं किया गया है या आरोप में कुछ त्रुटियां, चूक या अनियमितता है, जब तक कि उस आधार पर न्याय की कुछ विफलता नहीं हुई है। उसी का लाभ लेने के लिए, किसी भी पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि न्याय की विफलता/हानि आरोप में विवरण बताने में त्रुटि या दोष के कारण हुई है। साक्ष्य के साथ किसी पूर्वाग्रह की ऐसी कोई दलील नहीं दी गई जो आरोप तय करने में किसी दोष के कारण न्याय की विफलता का संकेत देती हो। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर भी कुछ भी नहीं है कि इस तरह की चूक के कारण आवेदक को कोई पूर्वाग्रह हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में आरोप में घटनास्थल का उल्लेख करने से चूक परीक्षण को दूषित नहीं करती है, जब परीक्षण अंतिम छोर पर होता है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह भी बताया है कि आरोपी के खिलाफ पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, जिसे मुकदमे के दौरान साक्ष्य में ज्यादा से ज्यादा समझा जा सकता है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश किसी भी अवैधता, दुर्बलता या कानून की किसी भी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है जो इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप को उचित ठहराता है।

पक्षकारों के अधिवक्ताओं की प्रस्तुति पर विचार किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदन को खारिज करते समय, विचारण न्यायालय ने इस आशय का निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह के दौरान, अभियुक्त द्वारा घटनास्थल के बारे में प्रश्न पूछा गया है। साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि अभियुक्तों को उनके द्वारा किए गए अपराध के घटित होने के स्थान के बारे में पूरी जानकारी थी और विचारण के दौरान अभियुक्तों के पास उनके द्वारा किए गए अपराध की स्थिति को समझाने का पर्याप्त अवसर होता है। आरोपी नरेश कुमार के अधिवक्ता द्वारा अदालत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आरोपी को उसके खिलाफ कथित घटना के बारे में कोई संदेह नहीं था और अभियोजन पक्ष के गवाहों से घटना की जगह के बारे में स्पष्ट रूप से जिरह की गई है। इस प्रकार दोनों पक्षों में से किसी के प्रति पूर्वाग्रह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

इसमें कोई संदेह नहीं है, यह एक पुराना स्थापित कानून है कि आरोप तय करने में किसी भी चूक के मामले में, यदि अपराध की सुनवाई करने वाली अदालत की जानकारी में आता है, तो धारा 216 द०प्र०स० के तहत आरोप को बदलने की शक्ति हमेशा अदालत में निहित होती है, जिसे निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय प्रयोग किया जा सकता है। यह धारा न्यायालय के लिए कुछ

आकस्मिकताओं के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक सक्षम प्रावधान की प्रकृति में है, जब इसके संबंध में प्रासंगिक तथ्यों को इसके ध्यान में लाया जाता है। ऐसे मामले में जहां एक स्थिति की मांग होती है यदि यह न्यायालय के ज्ञान में आता है कि आरोप को बदलने या जोड़ने के लिए एक आवश्यकता उत्पन्न हुई है, तो न्यायालय अपने दम पर या पक्षों के आवेदन पर ऐसा कर सकता है।

पूर्वाग्रह कैसे दिखाया जाए? बहुत कुछ मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मेन पाल बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 3292 के मामले में निम्नलिखित सिद्धांत को निम्नानुसार प्रतिपादित किया।

(i) आरोप विरचित करने का उद्देश्य किसी अभियुक्त को इस बात की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करने में समर्थ बनाना है कि उसके लिए क्या विचारण किया जा रहा है और वह किन आवश्यक तथ्यों से मिलना है। आरोप में तारीख, समय, स्थान और व्यक्ति का विवरण भी शामिल होना चाहिए, जिसके खिलाफ अपराध किया गया था, क्योंकि अभियुक्त को उस मामले की सूचना देने के लिए यथोचित रूप से पर्याप्त है जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है।

(ii) अभियुक्त निश्चितता और सटीकता के साथ, उसके खिलाफ आरोप की सही प्रकृति जानने का हकदार है, और जब तक उसे ऐसा ज्ञान नहीं है, उसका बचाव पूर्वाग्रह से ग्रसित होगा। जहां एक अभियुक्त पर एक व्यक्ति के खिलाफ अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, लेकिन पेश किए गए सबूतों के आधार पर, उसे किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ अपराध करने के लिए दोषी ठहराया जाता है, इसके संबंध में आरोप लगाए बिना, अभियुक्त पूर्वाग्रह से ग्रसित होगा, जिसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता/हानि होगी। लेकिन जहां आरोप में त्रुटि थी और आरोपी को त्रुटि के बारे में पता था, वहां कोई पूर्वाग्रह या न्याय की विफलता नहीं होगी। इस तरह के ज्ञान का अनुमान बचाव पक्ष से लगाया जा सकता है, अर्थात, यदि अभियुक्त के बचाव से पता चलता है कि वह सही और वास्तविक आरोप के खिलाफ खुद का बचाव कर रहा था, न कि गलत आरोप के खिलाफ।

(iii) पूर्वाग्रह के प्रश्न में न्याय करने में, अपराध के रूप में, न्यायालयों को एक व्यापक दृष्टि के साथ कार्य करना चाहिए और तत्व को देखना चाहिए न कि तकनीकियों को, और उनकी मुख्य चिंता यह देखना होना चाहिए कि क्या अभियुक्त का निष्पक्ष विचारण हुआ था; क्या वह जानता था कि उस पर किस लिए मुकदमा चलाया जा रहा है; क्या उसके विरुद्ध स्थापित किए जाने वाले मुख्य तथ्यों को उसे निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से समझाया गया था; और क्या उसे अपना बचाव करने का पूर्ण और उचित मौका दिया गया था।

हालाँकि, यह न्यायालय धारा 216(3) द०प्र०स० के प्रावधानों के प्रति भी सचेत है, जो निम्नानुसार है: -

"(3) यदि किसी आरोप में परिवर्तन या कोई जोड़ ऐसा है कि विचारण के साथ तुरंत कार्यवाही करने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय की राय में, मामले के संचालन में अभियुक्त या अभियोजक को उसके बचाव में

या अभियोजक को पूर्वाग्रह करने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय अपने विवेक से, इस तरह के परिवर्तन या जोड़ के बाद, परीक्षण के साथ आगे बढ़ें जैसे कि परिवर्तित या जोड़ा गया आरोप मूल आरोप था।

पूर्वोक्त प्रावधान के माध्यम से जाने पर, यह बहुत स्पष्ट है कि यदि किसी आरोप में परिवर्तन या जोड़ ऐसा है कि किसी भी पक्ष को कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है, तो अदालत अपने विवेक से, उक्त तकनीकी दोषों में संशोधन करके मुकदमे को आगे बढ़ा सकती है। पक्षकारों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों से घटनास्थल के संबंध में पूछताछ की गई है और उक्त आरोप में घटनास्थल को जोड़ने से दोनों पक्षों में से किसी के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है।

उपरोक्त के मद्देनजर, निचली अदालत को निर्देश दिया जाता है कि वह धारा 216(3) द०प्र०स० के प्रावधान के अनुसार मूल आरोप में 'घटनास्थल' को शामिल करके बिना किसी साक्ष्य के सहारा लिए आरोप में संशोधन करे, और उसके बाद मुकदमे को आगे बढ़ा सकता है और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित समय सीमा को ध्यान में रखते हुए इसे जल्द से जल्द समाप्त कर सकता है।

पूर्वोक्त अवलोकन के साथ, आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1252

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या संख्या 33349/2022

कालिका प्रताप सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री श्रीकृष्ण मिश्र, श्री अजय मिश्र, श्री शेषाद्रि त्रिवेदी, श्री सतीश त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री आशीष पांडे, प्रज्ञा पांडे, श्री राधे श्याम शुक्ला

(ए) **आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482- निहित शक्ति, धारा 173 (8)- वाद की अग्रिम विवेचना- भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 420, 376,306, 406,120-बी, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000- धारा 67- इलेक्ट्रॉनिक रूप में अश्लील सूचना का प्रकाशन- न्यायालय धारा 482 सीआरपीसी के तहत विवादित तथ्य के प्रश्न पर निर्णय नहीं दे सकता; केवल प्रथम दृष्टया मामला माना जाता है- इस स्तर पर आरोपी के विवादित बचाव पर विचार नहीं किया गया- आवेदक के पास धारा 239 या 227/228 सीआरपीसी के तहत उन्मोचन अधिकार हैं।** (पैरा-11)

अभियुक्त ने मृतका के साथ मित्रता विकसित की- लंबे समय से संबंध था- अचानक संबंध तोड़ लिया- जिससे पीड़िता को अवसाद या शर्मिंदगी हो सकती है -यह मामला धारा 306 के तहत शादी से इनकार करने का नहीं है - बल्कि यह ऐसा वाद है जिसमें अभियुक्त ने पीड़िता के साथ संबंध विकसित किया और बाद में इसे जारी रखने से इनकार कर दिया -

पीड़िता ने जहर को संभावित समाधान के रूप में माना होगा। (पैरा-12)

निर्णय: न्यायालय इस चरण में मृतक और आवेदक के बीच संबंधों की जांच नहीं कर सकता, क्योंकि यह आरोप पत्र चरण से संबंधित नहीं है। न्यायालय को पुलिस द्वारा जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजों और परीक्षण के दौरान किसी भी कथित साक्ष्य की जांच करनी चाहिए। न्यायालय ऐसे किसी भी बचाव पक्ष की जांच नहीं कर सकता जो अभी तक निचली अदालत के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है, क्योंकि बचाव पक्ष का पक्ष प्रस्तुत करने का चरण इस स्तर पर नहीं आता है। मामले की कार्यवाही और आरोप पत्र को रद्द करने का अनुरोध अस्वीकार कर दिया गया; आवेदन में बल का अभाव है। (पैरा - 12,13)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक एवं अन्य, 2012 (2) सुप्रीम (एससी) 903
2. मेसर्स पेप्सी फूड लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य, 1998 यूपीसीआर.आर. पृष्ठ 118
3. मंदार दीपक पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (आपराधिक अपील संख्या 442/2022)
4. गंगुला मोहन रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य, (2010)1 एससीसी 750
5. दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य, एसएलपी आपराधिक संख्या 1132-1155/ 2022
6. मेसर्स नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2021 एससी 1918
7. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866
8. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एससीसी (सीआर.) 426
9. बिहार राज्य बनाम पी.पी.शर्मा, 1992 एससीसी (सीआर.) 192
10. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक एवं अन्य, (पैरा-10) 2005 एससीसी (सीआर) 283,
11. एम.पी. बनाम अवध किशोर गुप्ता एवं अन्य, (2004) 1 एससीसी 691
12. डॉ. मोनिका कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2008) 8 एससीसी 781

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव, द्वारा प्रदत्त)

आवेदक के लिए श्री सतीश त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता जिन्हें श्री शेषाद्री त्रिवेदी ने सहायता प्रदान की थी, को सुना; निजी प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री राधेश्याम शुक्ला, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। इस आवेदन के माध्यम से आवेदक ने धारा 420, 376, 306, 406, 120-बी भ०द०वि० और आई.टी. एक्ट की धारा 67 और डी.पी. एक्ट की धारा 3/4 के तहत केस अपराध संख्या 401 वर्ष 2019 से उत्पन्न आपराधिक मामला संख्या 13802 वर्ष 2022 (राज्य बनाम

अनुवादित

कालिका प्रताप सिंह) थाना-झूंसी, जिला प्रयागराज जिसमें आरोप पत्र दिनांक 12.05.2022 और सम्मन आदेश दिनांक 18.06.2022 शामिल हैं, की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर आवेदन के आधार पर 2.5.2019 को अपराध संख्या 401 वर्ष 2019 के तहत थाना-झूंसी, जिला प्रयागराज में धारा 420 भ०द०वि० और डी.पी. एक्ट की धारा 3/4 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आवेदक और प्रतिपक्षी संख्या-2 की बेटी फेसबुक के माध्यम से संपर्क में आई थी और वे दो बार भोपाल आए थे और एक दूसरे के साथ बात करते थे; और उसके बाद सूचनाकर्ता के ससुर और उसके दो चाचा इलाहाबाद में आवेदक के घर गए। 05/07/2017 को बातचीत हुई और उसके बाद सूचनाकर्ता और उसके चाचा 20/08/2017 को मथुरा में आवेदक के भाई के घर गए और उसके बाद आवेदक का भाई लड़की को देखने के लिए भोपाल में मेरे घर आया और उसके बाद लौट आया। यह आगे आरोप लगाया गया है कि ठीक एक साल बाद यानी 18/08/2018 को, सूचनाकर्ता मथुरा गया था, जहां आवेदक के चाचा, अर्थात् जय प्रकाश सिंह, भाई, अर्थात्, अरविंद सिंह और एक अन्य भाई विश्वनाथ प्रताप सिंह मौजूद थे, और वहां सूचनाकर्ता ने 24,80,000 रुपये का भुगतान किया था और फिर से सूचनाकर्ता 16/11/2018 को इलाहाबाद में आवेदक के घर गया था, जहां विवाह की तिथि फाइनल कर तिलक की तिथि 07/05/2019 तथा विवाह तिथि 15/05/2019 निर्धारित की गई है। आगे आरोप है कि जिस डिजायर कार को तिलक समारोह पर देने का वादा किया गया था, उसे सूचनाकर्ता ने 30/04/2019 को खरीद लिया है और जब शादी की तारीख और तिलक नजदीक आ गए और निमंत्रण पत्र बांटे जा चुके और तारीखें नजदीक पहुंच गई, तब आवेदक ने बिना किसी कारण के शादी से इनकार कर दिया क्योंकि आवेदक के परिवार के सदस्यों ने शादी से इनकार कर दिया था। बताया जाता है कि इसके बाद, सूचनाकर्ता और पीड़िता सहित परिवार के अन्य सदस्य इलाहाबाद में आवेदक के घर पहुंचे और वहां उन्हें घर से भाग जाने की धमकी दी गई। इस पर, सूचनाकर्ता की बेटी ने कुछ जहरीला पदार्थ खा लिया था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी हालत बिगड़ गई और उस समय आवेदक ने पीड़िता को स्वरूपरानी अस्पताल ले जाकर वहां भर्ती कराया और जब उसकी हालत सभल नहीं सकी तो, तो उसे बाद में स्थानांतरित कर शकुंतला अस्पताल में भर्ती कराया गया।

जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा पीड़िता का एक सुसाइड नोट बरामद किया गया, इसके बाद, विवेचनाधिकारी ने धारा 376, 306, 406, 120-बी भ०द०वि० और आई.टी. अधिनियम की धारा 67 के रूप में नई धारा जोड़ी और जांच के बाद, विवेचनाधिकारी ने आवेदक के खिलाफ कोई मामला नहीं पाया और इसलिए आवेदक के खिलाफ 18.09.2021 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिस पर मृतका की मां ने मामले की आगे की जांच के लिए पुलिस प्राधिकरण के समक्ष आवेदन देकर आपत्ति जताई थी, जिस पर जांच का आदेश दिया गया और विवेचनाधिकारी ने धारा 173 (8) द०प्र०स० के तहत मामले में आगे की जांच की सिफारिश

की थी। इसके बाद एस.एस.पी, प्रयागराज ने आदेश दिनांक 18.2.2022 के तहत मामले की आगे की जांच का आदेश दिया और दिनांक 18.02.2022 के आदेश के अनुसार विवेचनाधिकारी ने जांच की और उसके बाद आवेदक के खिलाफ मामला अपराध संख्या 401 वर्ष 2019 में 7.5.2022 को धारा 420, 376, 306, 406, 120-बी भ०द०वि० और आई.टी. अधिनियम की धारा 67 और डी.पी. अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया, जिस पर निचली अदालत ने दिनांक 12.05.2022 के आदेश द्वारा संज्ञान लिया और आवेदक को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। इसके अलावा, आवेदक के खिलाफ दिनांक 26.08.2022 के आदेश के तहत एन.बी.डब्ल्यू भी जारी किया गया है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि पीड़ित और आवेदक फेसबुक पर चैट करते थे और समय बीतने के साथ, उन्होंने प्यार और अंतरंगता विकसित की और परिवार के सदस्यों की सहमति से उनकी शादी तय हो गई थी, लेकिन यह पता चलने पर कि सूचनाकर्ता की बेटी कई आपराधिक मामलों में शामिल है, जिसमें केस अपराध संख्या 0005 वर्ष 2018 के रूप में दर्ज किया गया है, मध्य प्रदेश विधान सभा के एक सदस्य द्वारा कथित रूप से ब्लैकमेल करने के लिए थाना अपराध शाखा, भोपाल मध्य प्रदेश में धारा 384, 388, 120-बी भ०द०वि० के तहत दर्ज किया गया और उक्त तथ्य आवेदक के परिवार के सदस्यों के संज्ञान में आने के बाद, आवेदक ने उक्त विवाह करने से इनकार कर दिया।

आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि पुलिस ने मामले में आगे की जांच करने के लिए मजिस्ट्रेट की अनुमति नहीं ली है और **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक और अन्य, 2012 (2) सुप्रीम (एस.सी.) 903 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के घोर उल्लंघन में पूरक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।**

आवेदक के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 12.05.2022 का आदेश उनके न्यायिक दिमाग को लागू किए बिना पारित किया गया है क्योंकि आदेश, आरोपों की प्रकृति और मौखिक और दस्तावेजी दोनों सबूतों पर विचार किए बिना पारित किया गया है। इस तर्क के समर्थन में, उन्होंने **मेसर्स पेप्सी फूड लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, 1998 यू.पी.सी.आर.आर पृष्ठ 118** के मामले पर भरोसा किया। आवेदक के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि यदि सहमति से शारीरिक संबंध शादी के वास्तविक वादे पर आधारित था, जिसे पूरा नहीं किया जा सका, तो यह बलात्कार नहीं है। इस तर्क के समर्थन में, उन्होंने **मंदार दीपक पवार बनाम महाराष्ट्र और अन्य, (आपराधिक अपील संख्या 442 वर्ष 2022) के मामले पर भरोसा किया।** आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक द्वारा मृतका से शादी करने से इनकार करना आवेदक की ओर से उकसावा नहीं कहा जा सकता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि उकसाने में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। अभियुक्त की ओर से एक प्रत्यक्षवादी कार्य के बिना आत्महत्या के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा

जा सकता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट मेन्स-री होना चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है जो मृतका को आत्महत्या करने की ओर ले जाता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **गंगुला मोहन रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2010) 1 एस.सी.सी 750 के मामले पर भरोसा किया।**

आवेदक के अधिवक्ता का तर्क यह है कि आवेदक के खिलाफ किसी अपराध का खुलासा नहीं किया गया है और उत्पीड़न के उद्देश्यों के लिए दुर्भावनापूर्ण इरादों के साथ वर्तमान अभियोजन शुरू किया गया है।

श्री आर.पी मिश्रा, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने आवेदन का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि मृतका की लिखावट में एक सुसाइड नोट पाया गया है और इसे हैंडराइटिंग विशेषज्ञ के समक्ष भेजा गया है और इस आशय की एक रिपोर्ट है कि वह पीड़िता ने खुद लिखा था। विवेचनाधिकारी ने मामले की जांच की और आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। यह गंभीर अन्याय या कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग का मामला नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 173 (8) द०प्र०स० के तहत आगे की जांच पुलिस का वैधानिक अधिकार है जिसे किसी मजिस्ट्रेट से अनुमति की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान धारा 173(8) द०प्र०स० के तहत निहित प्रावधानों की ओर आकर्षित किया है, जिसमें मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति पर विचार नहीं किया गया है। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आगे दावा किया है कि **विनय त्यागी के मामले** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय तत्काल मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि यह धारा 173 (8) द०प्र०स० के स्पष्ट प्रावधानों के खिलाफ है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि भले ही यह माना जाए कि मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति आवश्यक है, तो भी पूर्व अनुमति का अभाव एक अनियमितता है जिसे बाद में मजिस्ट्रेट द्वारा पूरक आरोप पत्र पर संज्ञान लेकर ठीक किया गया है।

इसके अलावा, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने डेक्सबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 1132-1155 वर्ष 2022 निर्णीत 29.07.2022 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया कि इस मामले में एक राय प्रदर्शित की गई थी कि आत्महत्या करने के लिए उकसाने का अप्रत्यक्ष कार्य भी आत्महत्या के लिए उकसाने का अपराध होगा। उक्त मामले में, यह भी किया गया है कि जहां यह स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय असाधारण रूप से दुर्लभ मामलों को छोड़कर शिकायत में आरोप की शुद्धता की जांच नहीं करता है।

रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन और इस स्तर पर मामले के तथ्यों को देखने से यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदक के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। बार में की गई सभी प्रस्तुतियाँ तथ्य के विवादित प्रश्न से संबंधित हैं, जिस पर इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत निर्णय नहीं लिया जा सकता

है। इस स्तर पर केवल प्रथम दृष्टया मामले को मेसर्स निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर 2021 एस.सी. 1918, आर.पी कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर 1960 एस.सी. 866, हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एस.सी.सी (सी.आर) 426, बिहार राज्य बनाम पी.पी शर्मा, 1992 एस.सी.सी (सी.आर) 192, अंत में झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मो. (2004) 1 एस.सी.सी 691, डा मोनिका कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2008) 8 एस.सी.सी 81, दिनांक 10 जून, 2005 एस.सी.सी (सी.आर) 283, मध्य प्रदेश राज्य बनाम अवध किशोर गुप्ता एवं अन्य [(2004) 1 एस.सी.सी 691, डा मोनिका कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2008) 8 एस.सी.सी 81 के मामले में उच्चतम न्यायालय के आदेश दिए हैं। इस स्तर पर अभियुक्त के विवादित बचाव पर विचार नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, आवेदक को धारा 239 या 227/228 द०प्र०स० या 245 द०प्र०स० के तहत निर्वहन का अधिकार है, जैसा भी मामला हो, निचली अदालत के समक्ष और वह विचारण न्यायालय के समक्ष उक्त डिस्चार्ज आवेदन में सभी प्रस्तुतियाँ लेने के लिए स्वतंत्र है।

आरोपी ने मृतका को जहर खाने के लिए उकसाया या नहीं, इस स्तर पर विचार नहीं किया जा सकता है। अन्य तथ्य जो प्रासंगिक हैं कि आरोपी ने मृतका के साथ दोस्ती विकसित की और उसने काफी समय तक उसके साथ संबंध बनाए और अचानक वह रिश्ते से हट गया, जिससे पीड़िता को गंभीर अवसाद हो सकता था या उसके साथ संबंध टूटने से उसे इतनी शर्मिंदगी हो सकती थी कि उसने जहर खाने के अलावा किसी अन्य उपाय के बारे में नहीं सोचा होगा। यह ऐसा मामला नहीं है जहां आरोपी पर केवल शादी से इनकार करने पर धारा 306 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है, लेकिन यहां आवेदक ने पहले से पीड़िता के साथ संबंध विकसित किए थे। वह काफी समय तक संबंध में रहा और बाद में उसने संबंध जारी रखने और पीड़िता से शादी करने से इनकार कर दिया। क्या यह मृतका के साथ सहमति के साथ या उसके बिना संबंध में प्रवेश करने का मामला है या क्या उसने कोई सक्रिय, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका निभाई है जिसके कारण मृतका आत्महत्या करती है, इस स्तर पर नहीं देखा जा सकता है। आरोप पत्र के चरण में, संबंधित न्यायालय को केवल पुलिस द्वारा जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजों की जांच करनी होती है, जिन्होंने आरोप पत्र प्रस्तुत किया और आवेदक द्वारा कथित अन्य सभी सबूतों की जांच मुकदमे के दौरान की जाएगी जब दोनों पक्षों द्वारा बचाव पेश किया जाता है। आरोप पत्र को रद्द करने के लिए प्रार्थना पर विचार करते समय, यह न्यायालय अभियुक्त के ऐसे किसी भी बचाव की जांच नहीं कर सकता है जिसे अभी तक निचली अदालत के समक्ष रखा जाना है। आरोप पत्र के चरण में बचाव पक्ष को बचाव रखने का चरण उत्पन्न नहीं होता है और इसलिए, यह न्यायालय इस स्तर पर कथित बचाव की जांच नहीं करेगा।

इन परिस्थितियों में, मामले की कार्यवाही के साथ-साथ आरोप पत्र को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार किया जाता है। आवेदन में कोई

बल नहीं है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1256

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 34816/2022

अवतार सिंह और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: सुश्री गुंजन जादवानी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) **दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 229, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 - धारा 2 एवं 3, उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा निर्धारण अधिनियम, 1960 - धारा 11(2), 13(2) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को तब रद्द किया जा सकता है जब यह पाया जाता है कि प्रयास किसी विवाद को "आपराधिक अपराध का आवरण" देने का था, जो अनिवार्य रूप से सिविल प्रकृति का है।** (पैरा - 12)

आवेदकों पर अधिशेष कृषि भूमि जोतने का आरोप - एफआईआर दर्ज -आरोप पत्र दाखिल - तलब पक्षों के बीच विवाद - जो सिविल प्रकृति का है- उसे केवल आवेदकों की भूमि हड़पने के उद्देश्य से आपराधिक रंग देने का प्रयास किया गया। (पैरा - 2,6)

निर्णय:- यह सिविल विवाद कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग माना जाता है और न्याय सुनिश्चित करने के लिए इसे समाप्त करने की आवश्यकता है। याचिका स्वीकार की गई, सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 के तहत आवेदकों के खिलाफ आपराधिक वाद निरस्त कर दिया गया। (पैरा - 14,15)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निस्तारण। (ई- 7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मोहम्मद इब्राहिम व अन्य बनाम बिहार राज्य व अन्य, 2009 (67) एसीसी 679;
2. आई.ओ.सी. लिमिटेड बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड, 2006 लॉ सूट (एससी) 488,
3. इंद्र मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, 2007(12) एससीसी 1
4. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम चौधरी भजन लाल एवं अन्य 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335
5. इंद्र मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य.., 2007(12) एससीसी 1
6. उषा चक्रवर्ती एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य एसएलपी (सीआरएल) 5866/2022

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव, द्वारा प्रदत्त)

<u>क्रिमनल प्रकीर्ण प्रत्याहवन आवेदन संख्या-2 वर्ष 2023</u>

यह राज्य के अधिवक्ता द्वारा दिनांक 24.4.2023 के आदेश को वापस लेने के लिए दायर किया गया एक आवेदन है, जहां तक यह अगली तारीख पर इस न्यायालय के समक्ष वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, रामपुर की उपस्थिति से संबंधित है, साथ ही व्यक्तिगत हलफनामे के साथ यह बताते हुए कि जवाबी हलफनामा आज तक दायर क्यों नहीं किया गया है।

अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि जिस तारीख को उक्त आदेश पारित किया गया था, उस तारीख को राज्य की फाइल का पता नहीं चल पाया था, जबकि, इस मामले में जवाबी हलफनामा तैयार था और इसलिए इसे मामले के रिकॉर्ड पर नहीं लाया जा सका। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले में अब जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, इसलिए, अपर शासकीय अधिवक्ता ने संबंधित एस.एस.पी की उपस्थिति से छूट मांगी।

उपरोक्त आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे का अवलोकन किया। इस मामले में जवाबी और प्रत्युत्तर हलफनामों का आदान-प्रदान किया गया है।

आवेदन की अनुमति है। एस.एस.पी, रामपुर की व्यक्तिगत उपस्थिति को छूट दी गई।

आदेश दिनांक :- 3.5.2023

कोर्ट नं. - 70

मामला :- आवेदन धारा 482 नं. - 34816 वर्ष 2022

आवेदक :- अवतार सिंह और अन्य

प्रतिपक्षी :- उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

आवेदक के अधिवक्ता :- गुंजन जड़वानी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता :- शासकीय अधिवक्ता

<u>माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव</u>

सुश्री गुंजन जड़वानी, आवेदकों के अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन आवेदकों द्वारा केस संख्या-1053 वर्ष 2020 से उत्पन्न केस संख्या-1053 वर्ष 2020 की पूरी कार्यवाही को सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984, थाना-बिलासपुर, जिला: रामपुर की धारा 2 और 3 के तहत आरोप पत्र और समन आदेश सहित रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

संक्षेप में, आवेदकों के खिलाफ आरोप यह है कि वे कृषि भूमि की जुताई कर रहे थे, जिसे सीलिंग कार्यवाही में अधिशेष घोषित किया गया था। बताया जाता है कि आवेदकों ने खसरा संख्या-123 पर खड़ी फसलों की खेती की है। जिसके लिए प्रकरण अपराध संख्या-0497 वर्ष 2019 के तहत सार्वजनिक सम्पत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 2 एवं 3 के अन्तर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, जिसमें विवेचना के बाद आरोप-पत्र दाखिल किया गया है, जिसके पश्चात आवेदकों को तलब किया गया है।

रिकॉर्ड से पता चलता है कि विवादित भूमि 1338 (एफ) से आवेदकों के पूर्ववर्तियों के नाम पर दर्ज की गई थी और तब से वे भूमि के कृषक कब्जे में हैं। इसके बाद जब यह पता चला कि उक्त भूमि को सीलिंग भूमि के रूप में दर्ज किया गया है और उक्त भूमि के बहाने, प्रतिवादियों ने आवेदकों के कब्जे में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया, जैसे कि उन्होंने इस

न्यायालय के समक्ष रिट याचिका रिट सी संख्या-35056 वर्ष 2010 (कुलविंदर सिंह और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य), दायर की जिसमें आवेदकों की भूमि को अधिकतम भूमि घोषित करने के आदेश को चुनौती दी गई है और इस न्यायालय ने दिनांक 9.9.2010 के आदेश के तहत पक्षकारों को यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229 के तहत दायर किए गए मुकदमे के साथ दायर अंतरिम राहत आवेदन के निपटान तक या यूपी जोत अधिनियम पर अधिकतम सीमा के अधिरोपण की धारा 11(2) के तहत आवेदन के निपटान तक यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया। उक्त आदेश, प्रतिवादियों ने एसएलपी सीसी संख्या-10765 वर्ष 2012 दायर करके सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे भी निर्णय और आदेश दिनांक 23.09.2013 के माध्यम से खारिज कर दिया गया है और एसएलपी को खारिज करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि आवेदकों और अन्य सह-तकनीकी धारकों के कब्जे में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है जब तक कि उनके स्वामित्व के संबंध में विवाद सक्षम प्राधिकारी द्वारा तय नहीं किया जाता है। इसके बाद, 5.11.2019 को, निर्धारित प्राधिकारी ने आवेदकों और अन्य लोगों की आपत्ति पर विचार किए बिना और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों पर ध्यान दिए बिना आवेदकों की भूमि को सीलिंग में अधिशेष भूमि माना और यहां तक कि फसल को हटाने का कोई अवसर दिए बिना, फसलों की नीलामी के लिए आगे बढ़े। उक्त आदेश के खिलाफ यूपी जोत अधिनियम, 1960 पर सीलिंग की धारा 13 (2) के तहत अपील दायर की गई है और निर्धारित प्राधिकारी के आदेश पर रोक लगा दी गई है और अपीलीय अदालत ने यह भी निर्देश दिया कि अपीलकर्ताओं द्वारा फसल की बुवाई और कटाई में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। इसलिए, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 23.12.2019 के आदेश के तहत आवेदकों का कृषक कब्जा भी संरक्षित है।

आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि भूमि अधिशेष होने के संबंध में, इस न्यायालय और राजस्व अदालत के समक्ष कार्यवाही पहले से ही लंबित है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान प्राथमिकी केवल उन आवेदकों को बेदखल करने के लिए दर्ज की गई है, जो विवादित भूमि पर कब्जे में हैं।

आवेदकों का मुख्य जोर इस बात पर है कि प्रश्नगत आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि अनिवार्य रूप से पक्षकारों के बीच एक विवाद है जो दीवानी प्रकृति का है और जिसे आपराधिक रंग देने की मांग की गई है, केवल आवेदकों की भूमि हड़पने की दृष्टि से। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने मोहम्मद अली खान के मामले पर भरोसा किया। इब्राहिम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2009 (67) ए.सी.सी. 679; (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका (दीवानी) इंडियन आयल कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड, 2006 विधि वाद (एस.सी.) 488, इंद्रा मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, 2007(12) एस.सी.सी. 1 इंडियन आयल कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड, 2006 विधि वाद (एस.सी.) 488,

इंद्रा मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, 2007(12) एस.सी.सी. 1 इंडियन आयल कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड, 2006 विधि वाद (एस.सी.) 488, इंद्रा मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, 2007(12) एस.सी.

इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद नहीं करता है कि सक्षम अदालतों के समक्ष पक्षों के बीच एक दीवानी कार्यवाही लंबित है।

मामले के रिकॉर्ड से निकलने वाले तथ्यों का विश्लेषण करने से पहले, उपरोक्त आपराधिक मामले की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों के दायरे के संबंध में कानूनी स्थिति पर ध्यान देना उपयुक्त होगा।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है। न्यायालय का अधिकार न्याय की उन्नति के लिए मौजूद है और यदि उक्त प्राधिकरण का दुरुपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है, तो न्यायालय के पास उस दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। उच्च न्यायालय की ये अंतर्निहित शक्तियाँ अपने दायरे में व्यापक हैं। शक्ति जितनी व्यापक होगी, उस अधिकार पर जिम्मेदारी की डिग्री उतनी ही अधिक होगी जो इसे सावधानी से प्रयोग करने की शक्ति के साथ निहित है। इन शक्तियों का प्रयोग आम तौर पर न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है।

हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने 1992 सप्ल (1) एस.सी.सी. 335 के रूप में रिपोर्ट किया है, धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति के दायरे से विस्तृत तरीके से निपटा है। पैराग्राफ 102 और 103, जो सात श्रेणियों के मामलों की गणना करता है, जहां धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, निम्नानुसार निकाले गए हैं: -

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियां जिन्हें हमने ऊपर निकाला और पुन: प्रस्तुत किया है; हम उदाहरण के रूप में मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर संहिता के 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जाता है।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए अकाट्य आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी भी अपराध के कमीशन का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनते बल्कि केवल एक असंज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां किसी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत विचार किया गया है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से अनुचित हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था को एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही जारी है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावोत्पादक निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने के उद्देश्य से शुरू की जाती है।

103. हम इस आशय की चेतावनी भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि अदालत प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में जांच शुरू करने में न्यायसंगत नहीं होगी और यह कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां अदालत को अपनी सनक या कपोल-कल्पना के अनुसार कार्य करने के लिए मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य को नोट किया है कि कभी-कभी दीवानी विवाद को आपराधिक रंग देकर इसे आपराधिक कार्यवाही में परिवतत करने की प्रवृत्ति होती है। इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य के मामले में 2007 (12) एस.सी.सी. 1 में रिपोर्ट किया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 23 और 24 में निम्नानुसार दर्ज किया है: -

"23. इस अदालत ने कई मामलों में धारा 482 द०प्र०स० के तहत अदालत की शक्तियों का दायरा और सीमाएं निर्धारित किया है। प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए न्यायसंगत रूप से कार्य करने की अंतर्निहित शक्ति है, जिसके प्रशासन के लिए अकेले वह मौजूद है, या अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है:

(i) संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करना; (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, और (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए।

24. धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग हालांकि व्यापक है, उन्हें संयम से, सावधानी से और बहुत सतर्कता के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए और केवल तभी जब इस तरह के अभ्यास को विशेष रूप से इस धारा में निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता है। न्याय की उन्नति के लिए न्यायालय का अधिकार मौजूद है। यदि अन्याय की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग न्यायालय के ध्यान में लाया जाता है, तो न्यायालय क़ानून में विशिष्ट प्रावधानों के अभाव में निहित शक्तियों का आह्वान करके अन्याय को रोकने में न्यायसंगत होगा।

हाल ही में एक फैसले में, 30.01.2023 को मामले अर्थात् उषा चक्रवर्ती और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और एसएलपी (सीआरएल) 5866 वर्ष 2022 में एक अन्य, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (द०प्र०स०) की धारा 482 के तहत शक्तियों के प्रयोग में जब यह पाया जाता है कि एक विवाद को "आपराधिक कृत्य का लबादा" देने का प्रयास किया गया था जो अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का था तो आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यह न्यायालय जांच कर सकता है कि क्या एक मामला जो अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का है, उसे आपराधिक कृत्य का लबादा उढ़ा दिया गया है। इस मामले में, रिकॉर्ड के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि एक आपराधिक प्रकृति के साथ एक नागरिक विवाद को छिपाने का प्रयास किया गया है। रिकॉर्ड से पता चलता है कि पार्टियां पहले से ही अपने स्वामित्व के संबंध में विवाद में संपत्ति के संबंध में दीवानी मुकदमे लड़ रही हैं। विवाद में प्रस्तुत मामले में निश्चित रूप से उन मुद्दों का निर्धारण शामिल है जो दीवानी प्रकृति के हैं, कोई भी विवाद को किसी भी तरह से एक हद तक खींच नहीं सकता है, ताकि इसे आपराधिक रंग प्रदान किया जा सके।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का विवाद है। इसलिए, इसे कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग का मामला कहा जा सकता है और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए इसे रद्द करने की आवश्यकता है।

उपरोक्त कारणों से, प्रस्तुत याचिका की अनुमति दी जाती है और आवेदक के खिलाफ सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984, थाना-बिलासपुर, जिला: रामपुर की धारा 2 और 3 के तहत केस अपराध संख्या-1053 वर्ष 2020 से उत्पन्न आपराधिक मामला

संख्या-1053 वर्ष 2020 की कार्यवाही रद्द की जाती है।

तदनुसार, आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1261

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 38478/2022

अफजल अंसारी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री उपेन्द्र उपाध्याय, श्री अजय श्रीवास्तव, श्री दिलीप कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

(ए) **आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482- अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 307, 302, 404 और 120-बी, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 - धारा 3 (1), 12- अधिनियम के तहत किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए अनिवार्य शर्त "गैंगस्टर" के रूप में अपराध करना है - कानून की यह आवश्यकता नहीं है कि यदि उसके विरुद्ध कोई एफआईआर दर्ज नहीं है तो किसी पर अधिनियम के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है -किसी व्यक्ति की गतिविधि ही उसे अधिनियम के अंतर्गत लाने के लिए निर्णायक कारक है, इसके अलावा कुछ नहीं - गवाह के पक्षद्रोही होने या अन्यथा के कारण अभियुक्त-प्रतिवादी को दोषमुक्त करना कोई महत्वपूर्ण पहलू नहीं है। (पैरा-18)**

आवेदक एक सामाजिक कार्यकर्ता और राजनीतिज्ञ है - आरोपी- याचिकाकर्ता क्रूर और वीभत्स हत्या के अपराध में आरोपी था- और छह अन्य आरोपी- याचिकाकर्ता, सह-आरोपियों के साथ, आरोप पत्र दायर किए गए थे - मामले की सुनवाई सुप्रीम कोर्ट द्वारा सीबीआई को स्थानांतरित कर दी गई थी- अदालत ने सभी आरोपियों को बरी कर दिया -सभी चश्मदीद गवाह और अन्य महत्वपूर्ण गवाह मुकर गए- आरोपी-याचिकाकर्ता के निर्वहन आवेदन को रद्द कर दिया गया और आरोपी-याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को खारिज कर दिया गया। (पैरा - 1 से 6)

आयोजित:- गैंगस्टर्स के तहत अपराध में वाद मूल अपराध के लिए विचरण से पहले अधिनियम का संचालन नहीं किया जाता है क्योंकि मूल अपराध और गैंगस्टर अधिनियम के विचरण एक ही न्यायालय में नहीं किए जा सकते हैं क्योंकि मूल अपराध के विचरण को सुप्रीम कोर्ट ने नई दिल्ली स्थानांतरित कर दिया था, लेकिन गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध के विचरण को स्थानांतरित नहीं किया गया था और इसलिए, गैंगस्टर अधिनियम की धारा 12 लागू नहीं होगी। यदि कोई अभियुक्त किसी गिरोह का सदस्य है और आईपीसी के अध्याय XVI, XVII या अध्याय XXII के तहत अपराध करता है, तो उसे गैंगस्टर अधिनियम के तहत दंडित किया जा सकता है। (पैरा - 20)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. महेंद्र चावला और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2018 (12) जेटी 21
2. धर्मेंद्र किरठल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2013 0 सुप्रीम (एससी) 699

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद "द०प्र०स०" के रूप में संदर्भित) की धारा 482 के तहत, जिसमें दिनांक 04.08.2022 के आदेश को रद्द करने की मांग की गई है, जिसके तहत आरोपी-याचिकाकर्ता के डिस्चार्ज आवेदन को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-1, गाजीपुर द्वारा 2012 के विशेष सत्र परीक्षण संख्या-980 (राज्य बनाम अफज़ाल अंसारी) थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर में दर्ज 2007 के केस अपराध संख्या-01052 से उत्पन्न 1986 (इसके बाद "गैंगस्टर अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के साथ-साथ विशेष न्यायाधीश (एम.पी./एम.एल.ए.) कोर्ट/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गाजीपुर द्वारा पारित दिनांक 23.09.2022 के आदेश, में उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम की धारा 3 (1) के तहत खारिज कर दिया गया है, को रद्द करने के लिए प्रस्तुत याचिका दायर की गई है। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2012 के विशेष सत्र विचारण सं 980 की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रार्थना की गई है।

2. श्री दिलीप कुमार, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री उपेंद्र उपाध्याय और श्री अजय श्रीवास्तव, अभियुक्त-याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ताओं, साथ ही श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह, प्रतिवादी-राज्य का प्रतिनिधित्व करते हुए, को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

3. बताया जाता है कि आवेदक एक सामाजिक कार्यकर्ता और राजनीतिज्ञ है। वह 1985 से मोहम्मदाबाद निर्वाचन क्षेत्र, जिला गाजीपुर से विधान सभा के सदस्य (इसके बाद "विधायक" के रूप में संदर्भित) बने रहे और पांच बार चुने गए। वर्तमान में आरोपी याचिकाकर्ता गाजीपुर निर्वाचन क्षेत्र से दूसरी बार सांसद है।

4. अभियुक्त-याचिकाकर्ता तत्कालीन मौजूदा विधायक, स्वर्गीय कृष्ण नंद राय और छह अन्य लोगों की क्रूर और भीषण हत्या के अपराध में आरोपी था, जिसके लिए केस अपराध संख्या-0589 वर्ष 2005 में थाना-भंवर कोल, जिला गाजीपुर में धारा 147, 148, 149, 307, 302, 404 और 120-बी भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी। आरोपी-याचिकाकर्ता, सह-अभियुक्तों के साथ, उक्त अपराध में आरोप पत्र दायर किए गए थे। उक्त मामले का विचारण उच्चतम न्यायालय द्वारा राउज एवेन्यू न्यायालय परिसर, नई दिल्ली स्थित केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो न्यायालय में अंतरित कर दिया गया था। श्री अरुण भारद्वाज, विशेष न्यायाधीश (पीसी अधिनियम): सी.बी.आई.-09 (सांसदों/विधायकों के मामले) आर.ए.सी.सी, नई दिल्ली की अध्यक्षता वाली सी.बी.आई. अदालत ने सभी

आरोपियों को दिनांक 03.07.2019 के निर्णय और आदेश के माध्यम से बरी कर दिया था क्योंकि सभी चश्मदीद गवाह और अन्य महत्वपूर्ण गवाह मुकर गए थे। उक्त निर्णय और आदेश दिनांक 03.07.2019 के पैराग्राफ 936 से 943 यहां उद्धृत करने के लिए प्रासंगिक होंगे: -

"936. मुकरने वाले गवाह: - यह सात व्यक्तियों की हत्या से जुड़ा एक भीषण मामला है। मामले की जांच यूपी पुलिस से सी.बी.आई. को स्थानांतरित कर दी गई थी। मामले की सुनवाई भी उत्तर प्रदेश से दिल्ली स्थानांतरित कर दी गई थी। दुर्भाग्य से, अभियोजन पक्ष का मामला प्रभावित हुआ है क्योंकि सभी चश्मदीद गवाह और अन्य महत्वपूर्ण गवाह मुकर गए हैं।

937. महेंद्र चावला और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 2018 (12) जेटी 21 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से एक आपराधिक मुकदमे में गवाह के महत्व को निम्नानुसार नोट किया है: - सत्य की खोज में, वह सूर्य की उस पवित्र भूमिका को निभाता है, जो अज्ञानता के अंधेरे को समाप्त करता है और मानवता और करुणा के शैतानों से घिरे न्याय के चेहरे को रोशन करता है।

xxx xxx

गवाहों की अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता है, गवाही पर आपराधिक कार्यवाही की निर्भरता और कार्यवाही के सभी चरणों में गवाहों के सहयोग को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से उन मामलों में जहां अभियोजन पक्ष को बड़े पैमाने पर दुनिया के लिए खुली सुनवाई में गवाहों की मौखिक जिरह के माध्यम से पूर्ण निश्चितता के साथ अपराध स्थापित करना होता है। ऐसे मामलों में, एक गवाह की गवाही, भले ही एक चश्मदीद गवाह के रूप में नहीं हो, उन परिस्थितियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण साबित हो सकती है जिनमें अपराध किया जा सकता है ...

938. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह भी कहा जाता है कि:-

"इसके बावजूद, भारतीय कानूनी प्रणाली में गवाहों की स्थितियों को 'दयनीय' कहा जा सकता है। जांच के विभिन्न चरणों में और फिर किसी मामले के विचारण के दौरान गवाहों को कई धमकियों का सामना करना पड़ता है। खुद को और अपने रिश्तेदारों को जान से मारने की धमकी का सामना करने के अलावा, उसे नियमित रूप से अदालत में उपस्थित होने के आघात का सामना करना पड़ सकता है। भारत में गवाह संरक्षण कार्यक्रम की कमी और उनके साथ किए जाने वाले व्यवहार के कारण, जांच के दौरान आगे आने और बयान देने और/या अदालतों में गवाही देने में अनिच्छा की प्रवृत्ति है। इन गवाहों के पास न तो कोई कानूनी उपाय है और न ही उनके साथ उपयुक्त व्यवहार किया जाता है। वर्तमान कानूनी प्रणाली गवाहों को पूरी तरह से हल्के में लेती है। उन्हें उनकी वित्तीय और व्यक्तिगत स्थितियों की परवाह किए

बिना अदालत में बुलाया जाता है। कई बार उन्हें कथित अपराध की घटना के लंबे समय बाद पेश किया जाता है, जो वास्तविक अपराध के समय आवश्यक विवरणों को याद करने की उनकी क्षमता को काफी बाधित करता है। उन्हें समय की हानि और वाहन आदि के लिए खर्च के लिए भी उपयुक्त रूप से पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है।

939. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है: -

"5) इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि गवाहों के मुकरने का एक मुख्य कारण यह है कि उन्हें राज्य द्वारा उचित संरक्षण नहीं दिया जाता है। यह एक कठोर वास्तविकता है, विशेष रूप से, उन मामलों में जहां अभियुक्तों/अपराधियों पर जघन्य अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जाता है, या जहां आरोपी व्यक्ति प्रभावशाली व्यक्ति हैं या हावी होने की स्थिति में हैं कि वे गवाहों को आतंकित करने या डराने का प्रयास करते हैं, जिसके कारण ये गवाह या तो अदालतों में आने से बचते हैं या सच्चाई से गवाही देने से बचते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति इस कारण से बनी हुई है कि राज्य ने इन गवाहों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कोई सुरक्षात्मक उपाय नहीं किया है, जिन्हें आमतौर पर 'गवाह संरक्षण' के रूप में जाना जाता है।

6) पिछले कई वर्षों से इस देश में आपराधिक न्याय प्रणाली दर्दनाक अनुभव की गवाह रही है जहां गवाह मुकर जाते हैं। ऐसा बार-बार होता रहा है। इस घिनौनी घटना के कई कारण हो सकते हैं।

940. विभिन्न मामलों के विश्लेषण पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गवाहों द्वारा न्यायालय के समक्ष अपने बयानों से मुकरने और पक्षद्रोही होने के निम्नलिखित कारणों को नोट किया है:-

"(i) धमकी/चेतावनी

(ii) विभिन्न माध्यमों से प्रलोभन।

(iii) अभियुक्त द्वारा बाहुबल और धन बल का प्रयोग।

(iv) स्टॉक गवाहों का उपयोग।

(v) दीर्घ परीक्षण।

(vi) जांच और विचारण के दौरान गवाहों द्वारा सामना की जाने वाली परेशानियां

(vii) गवाह के विरोध की जांच करने के लिए किसी स्पष्ट विधान का अस्तित्व में न होना।

941. पैरा-10 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"8) इस सब ने भारत में कम विश्वास की समस्याएं पैदा की हैं। इसका आपराधिक न्याय प्रणाली पर ही गंभीर असर पड़ता है। आपराधिक न्याय मानव अधिकारों के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। जबकि, एक ओर, यह सुनिश्चित किया जाना है कि किसी भी निर्दोष व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जाए और इस तरह उसकी स्वतंत्रता से वंचित न किया जाए, दूसरी ओर, यह सुनिश्चित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि

अपराध के पीड़ितों को अपराधी को दंडित करके न्याय मिले। इस पूरी प्रक्रिया में, गवाहों की सुरक्षा महत्वपूर्ण हो जाती है ताकि वे निडर और सच्चाई से गवाही दे सकें। इससे निष्पक्ष सुनवाई भी सुनिश्चित होगी, जो कानून के शासन का एक और सहवर्ती है।

942. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नोट किया है कि केंद्र सरकार ने अब गवाह संरक्षण योजना, 2018 को अंतिम रूप दे दिया है। इस योजना की आवश्यक विशेषताओं में खतरे की अवधारणा की श्रेणियों की पहचान करना, पुलिस प्रमुख द्वारा खतरा विश्लेषण रिपोर्ट तैयार करना, सुरक्षा उपायों के प्रकार जैसे यह सुनिश्चित करना कि जांच के दौरान गवाह और अभियुक्त आमने-सामने न आएं, पहचान का संरक्षण, पहचान में परिवर्तन, गवाहों का स्थानांतरण, गवाहों को योजना से अवगत कराना शामिल है। अभिलेखों की गोपनीयता और परिरक्षण, खर्चों की वसूली आदि। माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस योजना को अपनी अनुमति दे दी है और इसे अनुमोदित कर दिया है। इस स्कीम को भारत संघ तथा राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा अक्षरश: लागू किया जाना है। यह योजना संविधान के अनुच्छेद 141/142 के तहत इस विषय पर उपयुक्त संसद और/या राज्य विधान के अधिनियमित होने तक कानून है।

943. प्रस्तुत मामला अभियोजन पक्ष के मुकर जाने वाले गवाहों के कारण विफल होने का एक और उदाहरण है। अगर गवाहों को मुकदमे के दौरान गवाह संरक्षण योजना, 2918 का लाभ मिलता तो नतीजा कुछ और हो सकता था।

5. सी.बी.आई. कोर्ट, राउज एवेन्यू कोर्ट कॉम्प्लेक्स, नई दिल्ली द्वारा पारित बरी करने के उक्त निर्णय और आदेश के खिलाफ, दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की गई है और इसे स्वीकार कर लिया गया है। पेपर-बुक तैयार करने और सुनवाई के लिए अपील को सूचीबद्ध करने के लिए निदेश जारी किए गए हैं।

6. प्रस्तुत आवेदक और सह-अभियुक्त के खिलाफ थाना-भंवर कोल, जिला गाजीपुर में धारा 147, 148, 149, 307, 302, 404 और 120-बी भ०द०वि० के तहत 2005 के केस अपराध संख्या-0589 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, गैंगस्टर एक्ट की धारा 3(1) के तहत तीन आरोपी व्यक्तियों, अफज़ाल अंसारी (प्रस्तुत आवेदक) के खिलाफ मामला दर्ज किया गया। उसके भाई मुख्तार अंसारी और एजाज़ उर्फ अजाज-उल-हक को 2007 के मामला अपराध सं 1052 के तहत थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर में दर्ज किया गया था। दो सह-अभियुक्तों के संबंध में, गैंगस्टर अधिनियम की धारा 3(1) के तहत 2007 के केस अपराध संख्या-1051 और 1053 के तहत अलग-अलग प्राथमिकी दर्ज की गई और उनके खिलाफ अलग-अलग आरोप पत्र दायर की गई।

7. यह आरोप लगाया गया है कि आरोपी-याचिकाकर्ता अपराधियों के एक खूंखार गिरोह का सदस्य है और यह गिरोह हत्या, अपहरण, जबरन वसूली, लूट, फिरौती जैसे जघन्य अपराधों को करने और इन अपराधों को करने से सक्रिय रूप से शामिल है और राज्य में

सामान्य रूप से जनता के मन और दिल में भय और आतंक पैदा करता है। उन्होंने भारी अवैध संपत्ति अर्जित की थी और अभी भी जघन्य अपराध करके अवैध धन जमा कर रहे हैं। आरोप है कि गिरोह का सरगना मुख्तार अंसारी जेल से ही गिरोह की गतिविधियों को निर्देशित कर रहा था। यह आगे आरोप लगाया गया है कि गिरोह का नेता जघन्य अपराधों का बहुत लंबा आपराधिक इतिहास रखने वाला सबसे खूंखार अपराधी है और उसके डर और आतंक और राजनीतिक शक्ति/प्रभाव के कारण, कोई भी प्रस्तुत आरोपी-याचिकाकर्ता या गिरोह के किसी अन्य सदस्य के खिलाफ सबूत देने की हिम्मत नहीं करेगा और न ही कोई शिकायत / प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आगे आएगा। यह भी आरोप लगाया गया है कि यह गिरोह मोहम्मदाबाद निर्वाचन क्षेत्र के मौजूदा विधायक स्वर्गीय कृष्ण नंद राय की हत्या में शामिल था, जहां से प्रस्तुत आरोपी-याचिकाकर्ता निर्वाचित होता था और छह अन्य व्यक्तियों की हत्या बहुत ही भीषण, क्रूर और जघन्य तरीके से किया था, जिसके लिए धारा 147 के तहत 2005 के केस अपराध संख्या-0589 में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। मुख्तार अंसारी, अफज़ाल अंसारी (प्रस्तुत आरोपी-याचिकाकर्ता) और अन्य के खिलाफ थाना-भंवर कोल, जिला गाजीपुर में भ०द०वि० की धारा 148, 149, 307, 302, 404 और 120-बी के तहत मामला दर्ज किया गया।

8. 2005 के केस अपराध संख्या-0589 में दर्ज प्राथमिकी में, 21.02.2006 को आरोप पत्र प्रस्तुत की गई थी और 15.03.2006 को अतिरिक्त आरोप पत्र दायर की गई थी। आगे कहा गया है कि दिनांक 22-01-1997 को 17.45 बजे एक व्यापारी, नंद किशोर संगरा उर्फ नानू बाबू का एक सफेद मारुति कार में अपहरण कर लिया गया था जिसमें सी.बी.आई. द्वारा खूंखार अपराधियों, मुख्तार अंसारी, शहाबुद्दीन, मरागुर्रहमान, बरबिंदर, गुरमीत सिंह, जसवीर सिंह, लक्ष्मी यादव और जितेंद्र तिवारी के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था और अपराध की जांच के बाद सी.बी.आई. अदालत में आरोप पत्र दायर किया गया था।

9. इन तीन व्यक्तियों, मुख्तार अंसारी, अफज़ाल अंसारी (प्रस्तुत आरोपी-आवेदक) और एजाज़ उर्फ अजाज-उल-हक के खिलाफ 19.11.2007 को जिला मजिस्ट्रेट, गाजीपुर द्वारा गैंग-चार्ट को मंजूरी दी गई थी।

10. प्रस्तुत आवेदन के पैरा-42 में, अभियुक्त-याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामलों का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार हैं: -

1. थाना-नोनहरा जिला गाजीपुर में दर्ज लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 135 (2) सपठित धारा 171-एफ भ०द०वि० के तहत 1998 का मामला अपराध संख्या-028;

2. मामला अपराध संख्या-0260 वर्ष 2001, धारा 147, 148 और 353 भ०द०वि० के तहत सार्वजनिक संपत्ति क्षति अधिनियम की धारा 3 और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर;

3. आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 सपठित धारा 147, 148, 149, 302, 404 और 120-बी भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या-0584 वर्ष 2005, थाना-भंवर कोल, जिला गाजीपुर;

4. केस अपराध संख्या-0493 वर्ष 2005, यू/एस 302, 506 और 120-बी भ०द०वि०, थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर;

5. धारा 345 विस्फोटक अधिनियम सपठित धारा 302, 120-बी, 436 और 427 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या-01051 वर्ष 2007, और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला गाजीपुर;

6. केस अपराध संख्या-01052 वर्ष 2007, धारा 3 (1) गैंगस्टर एक्ट, थाना-मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर; और

7. केस अपराध संख्या-018 वर्ष 2014, धारा 171-जेए और 88 भ०द०वि० और 12(2) जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, थाना-चकर घट्टा, जिला चंदौली के तहत।

11. आरोपी-याचिकाकर्ता के भाई, मुख्तार अंसारी, गिरोह के सरगना, एक गैंगस्टर, देश का सबसे बड़ा बाहुबली और एक खूंखार अपराधी के खिलाफ निम्नलिखित मामले दर्ज हैं: -

1. मामला अपराध संख्या 028 वर्ष 1998, धारा 171-एफ भ०द०वि० के तहत लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 135 (2) के साथ पठित पुलिस थाना नोनहरा जिला गाजीपुर में दर्ज किया गया;

2. मामला अपराध संख्या 0260 वर्ष 2001, धारा 147, 148 और 353 भ०द०वि० के तहत सार्वजनिक संपत्ति क्षति अधिनियम की धारा 3 और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पीएस मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर;

3. आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 के साथ पठित धारा 147, 148, 149, 302, 404 और 120-बी भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 0584 वर्ष 2005, पीएस भंवर कोल, जिला गाजीपुर;

4. केस अपराध नंबर 0493 वर्ष 2005, धारा 302, 506 और 120-बी भ०द०वि०, पीएस मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर;

5. केस अपराध नंबर 01051 वर्ष 2007, धारा 302, 120-बी, 436 और 427 भ०द०वि० के साथ धारा 345 विस्फोटक अधिनियम और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पीएस कोतवाली, जिला गाजीपुर;

6. केस अपराध नंबर 01052 वर्ष 2007, धारा 3 (1) गैंगस्टर एक्ट, पीएस मोहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर; और

7. केस अपराध नंबर 018 वर्ष 2014, धारा 171-जेए और 88 भ०द०वि० और 12(2) जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, पीएस चकर घट्टा, जिला चंदौली।

11. आरोपी-याचिकाकर्ता के भाई, मुख्तार अंसारी, गिरोह के सरगना, एक गैंगस्टर, देश का सबसे बड़ा बाहुबली और एक खूंखार अपराधी के खिलाफ निम्नलिखित मामले दर्ज हैं: -

"1. एनसीआर नंबर 219 वर्ष 1978, धारा 506 भ०द०वि० के तहत;

2. केस अपराध नंबर 169 वर्ष 1986, धारा 302 भ०द०वि० के तहत,

3. केस अपराध नंबर 106 वर्ष 1988, धारा 302 भ०द०वि० के तहत,

4. केस अपराध नंबर 410 वर्ष 1988, धारा 147, 148, 149, 302 और 307 भ०द०वि०

5. एनसीआर नंबर 233 वर्ष 1988, धारा 504 और 506 भ०द०वि० के तहत,

6. केस अपराध नंबर 124 वर्ष 1990, धारा 364, 395 और 397 भ०द०वि० के तहत,

7. केस अपराध नंबर 399 वर्ष 1990, धारा 147, 148, 149 और 307 भ०द०वि०

8. केस अपराध नंबर 682 वर्ष 1990, भ०द०वि० की धारा 147 और 506 के तहत,

9. केस अपराध नंबर 266 वर्ष 1990, धारा 467, 468, 420, 120-बी भ०द०वि० के तहत,

10. केस अपराध नंबर 44 वर्ष 1991, भ०द०वि० की धारा 302 के तहत,

11. केस अपराध नंबर 172 वर्ष 1991, धारा 147, 148 और 302 भ०द०वि० के तहत,

12. केस अपराध नंबर 294 वर्ष 1991, भ०द०वि० की धारा 307 और 302 के तहत,

13. केस अपराध नंबर 229 वर्ष 1991, भ०द०वि० की धारा 147, 148, 149 और 302

14. केस अपराध नंबर 456 वर्ष 1993, धारा 365 और 387 भ०द०वि० के तहत,

15. केस अपराध नंबर 503 वर्ष 1993, धारा 5 टाडा के तहत,

16. केस अपराध नंबर 834 वर्ष 1995, धारा 353, 504 और 506 भ०द०वि० के तहत,

17. केस अपराध नंबर 165 वर्ष 1996, भ०द०वि० की धारा 323, 352 और 307 के तहत,

18. प्रकरण अपराध क्रमांक 192 वर्ष 1996, धारा 3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के अन्तर्गत

19. केस अपराध नंबर 264 वर्ष 1996, एनएसए,

20. मुकदमा अपराध संख्या 237 वर्ष 1996, धारा 120, 135, 136 लो.प्र.अधि.;

21. केस अपराध नंबर 19 वर्ष 1997, धारा 364 ए, 365, 302, 120-बी और 34 भ०द०वि० के तहत;

22. एनसीआर नंबर 19 वर्ष 1997, धारा 506 भ०द०वि० के तहत,

23. केस अपराध नंबर 121 वर्ष 1997, धारा 364 ए भ०द०वि० के तहत;

24. केस अपराध नंबर 377 वर्ष 1997, भ०द०वि० की धारा 506 के तहत;

25. केस अपराध नंबर 58 वर्ष 1998, एनएसए;

26. केस अपराध नंबर 33 वर्ष 1999, एनएसए;

27. केस अपराध नंबर 17 वर्ष 1999, भ०द०वि० की धारा 506 के तहत;

28. केस अपराध नंबर 60 वर्ष 1999, धारा 419, 420, 109 और 120-बी भ०द०वि०

29. केस अपराध नंबर 106 वर्ष 1999, धारा 307, 302 और 120-बी भ०द०वि०

30. केस अपराध नंबर 126 वर्ष 1999, भ०द०वि० की धारा 506 के तहत;

31. प्रकरण अपराध क्रमांक 428 वर्ष 1999, उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट की धारा 2/3

32. केस अपराध नंबर 66 वर्ष 2000, धारा 147, 336, 353 और 506 भ०द०वि०;

33. केस अपराध नंबर 209 वर्ष 2002, धारा 3/7/25 आर्म्स एक्ट के तहत;

34. केस अपराध नंबर 131 वर्ष 2003, भ०द०वि० की धारा 353, 504 और 506 के तहत;

35. मामला अपराध संख्या 9 ए वर्ष 2004, धारा 147, 148, 149, 307 भ०द०वि० के तहत;

36. केस अपराध नंबर 808 वर्ष 2004, धारा 147, 148, 149, 393, 307, 507, 506, 504 और 342 भ०द०वि० के तहत;

37. केस अपराध नंबर 493 वर्ष 2005, धारा 302, 506 और 120-बी भ०द०वि० के तहत;

अनुवादित

38. धारा 147, 148, 149, 302, 307, 404, 120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक

कानून संशोधन अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या 589 वर्ष 2005;

39. केस अपराध नंबर 1580 वर्ष 2005, धारा 147, 148, 149, 302, 435, 436,

153 ए भ०द०वि० के तहत;

40. प्रकरण अपराध क्रमांक 1051 वर्ष 2007, धारा गैंगस्टर अधिनियम के तहत;

41. मुकदमा अपराध संख्या 361 वर्ष 2009, धारा 302, 120-बी भ०द०वि० और

धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत;

42. केस अपराध नंबर 1182 वर्ष 2009, धारा 307, 506 और 120-बी भ०द०वि०

43. केस अपराध नंबर 66 वर्ष 2009, धारा 3 मकोका अधिनियम के तहत;

44. धारा 147, 148, 149, 307, 302, 325, 404, 120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत मुकदमा अपराध संख्या 1866 वर्ष 2009;

45. केस अपराध नंबर 399 वर्ष 2010, धारा 302, 307, 120- बी, 34 भ०द०वि०, धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम और धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत;

46. प्रकरण अपराध क्रमांक 482 वर्ष 2010, धारा 3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के अंतर्गत;

47. प्रकरण अपराध क्रमांक 891 वर्ष 2010, उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के तहत;

48. मुकदमा अपराध संख्या 20 वर्ष 2014, धारा 147, 148, 149, 302, 307, 506,

120-बी भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत;

49. केस अपराध नंबर 05 वर्ष 2019, भ०द०वि० की धारा 386 और 506 के तहत;

50. केस अपराध नंबर 04 वर्ष 2020, धारा 419, 420, 467, 468, 471,

120B भ०द०वि० धारा 30 आर्म्स एक्ट के तहत;

51. प्रकरण अपराध क्रमांक 160 वर्ष 2020, धारा 3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर एक्ट के अंतर्गत;

52. केस अपराध नंबर 236 वर्ष 2020, धारा 468, 471, 120- बी भ०द०वि० और

धारा 3 Sa.Sa.Nu, अधि के तहत;

53. केस अपराध नंबर 55 वर्ष 2021, धारा 3(1) यूपी गैंगस्टर एक्ट के तहत;

54. केस अपराध नंबर 369 वर्ष 2021, धारा 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी,

506, 177 भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत;

55. केस अपराध नंबर 121 वर्ष 2021, धारा 25/26 आर्म्स एक्ट के तहत; और

56. केस अपराध नंबर 185 वर्ष 2021, धारा 419, 420, 467, 468, 471

और 120-बी भ०द०वि० के तहत"

12. अभियुक्त-याचिकाकर्ता की ओर से, श्री दिलीप कुमार, वरिष्ठ अधिवक्ता, ने याचिका के समर्थन में दो प्रस्तुतियाँ दी हैं; (ए) चूंकि अभियुक्त-याचिकाकर्ता को मौजूदा विधायक, स्वर्गीय कृष्ण नंद राय और छह अन्य लोगों की हत्या के अपराध में बरी कर दिया गया है, इसलिए गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है; विशेष न्यायाधीश द्वारा अपराध के विचारण को अभियुक्त-याचिकाकर्ता के विरुद्ध किसी अन्य मामले के विचारण की तुलना में वरीयता दी जानी चाहिए थी और प्रस्तुत मामले में मूल

अपराध में विचारण करने से पहले व्यक्तियों का विचारण पहले किया जाना चाहिए था। चूंकि गैंगस्टर अधिनियम की धारा 12 के तहत अनिवार्य प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, इसलिए आक्षेपित कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।

13. अपने तर्कों के समर्थन में, आरोपी-याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता ने 2013 0 उच्चतम न्यायालय (एस.सी.) 699 (धर्मेंद्र किरथल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में रिपोर्ट किए गए फैसले पर भरोसा किया है।

14. दूसरी ओर, प्रतिवादी-राज्य की ओर से, श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह आरोपी-याचिकाकर्ता, उसके भाई और उसके गिरोह के सदस्यों की अधिकांश जघन्य अपराधों में बरी होने का एक तरीका रहा है क्योंकि गवाह अपने डर, आतंक और राजनीतिक शक्ति/प्रभाव के कारण मुकर जाएंगे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि बरी होने के खिलाफ, दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार कर ली गई है और अपील, मुकदमे की निरंतरता के नाते, यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी-याचिकाकर्ता के खिलाफ मूल अपराध नहीं होता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त मामले में भी, गवाहों के मुकरने के कारण बरी किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि बरी करना या दोषसिद्धि किसी व्यक्ति के खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने का मानदंड नहीं है, जो किसी गिरोह का सदस्य है या गिरोह का कोई भी सदस्य गंभीर और जघन्य अपराध करता है जैसा कि प्रस्तुत मामले में है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि गैंगस्टर अधिनियम की धारा 12 के जनादेश का अनुपालन नहीं किया गया था क्योंकि मूल अपराध का परीक्षण उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थानांतरित कर दिया गया था और प्रस्तुत मामले की सुनवाई स्थानांतरित नहीं की गई थी। इसके अलावा, आरोपी याचिकाकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई./एम.पी./एम.एल.ए., नई दिल्ली के समक्ष कभी भी इस तरह की आपत्ति नहीं उठाई, केवल इस कारण से, यह नहीं कहा जा सकता है कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही दूषित हो जाएगी। अतिरिक्त महाधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में सरकारी अपील संख्या-779 वर्ष 2021 में पारित इस न्यायालय के दिनांक 23.09.2022 के फैसले पर भरोसा किया है।

15. मैंने अभियुक्त-याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार और प्रतिवादी-राज्य की ओर से अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

16. गैंगस्टर अधिनियम का उद्देश्य, उत्तर प्रदेश राज्य में गिरोहों द्वारा किए गए गैंगस्टरों और असामाजिक गतिविधियों को रोकना और उनका सामना करना है। विशेष प्रावधानों को लागू करके राज्य में संगठित अपराधों को रोकने के लिए गैंगस्टर अधिनियम अधिनियमित किया गया है। यह एक निवारक कानून है। गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) के तहत प्रदान की गई गिरोह की परिभाषा पर ध्यान देना उपयुक्त होगा, जो निम्नानुसार होगा: -

(ख) "गिरोह" से व्यक्तियों का ऐसा समूह अभिप्रेत है जो अकेले या सामूहिक रूप से

हिंसा, या धमकी या हिंसा दिखाकर, या धमकी देकर, या अववेश करके या अन्यथा लोक व्यवस्था को भंग करने के उद्देश्य से या अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से असामाजिक गतिविधियों में लिप्त है, अर्थात्-

(i) भारतीय दंड संहिता के अध्याय XVI या अध्याय XVII या अध्याय XXII (1860 का अधिनियम संख्या-45) के तहत दंडनीय अपराध, या

(ii) उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 (1910 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-4) या स्वापक औषधि और मनप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1910 के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन करते हुए आसवन या विनिर्माण या भंडारण या परिवहन या आयात या निर्यात या विक्रय या विक्रय या किसी पादप की खेती करना, 1985 (1985 का अधिनियम संख्या-61), या उस समय के लिए लागू कोई अन्य कानून, या

(iii) विधि के अनुसार स्थावर संपत्ति पर कब्जा करना, या स्थावर संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे के लिए झूठे दावे स्थापित करना, चाहे वह स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति में हो, या

(iv) किसी लोक सेवक या किसी साक्षी को उसके विधिपूर्ण कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकना या निवारित करना, या

(v) महिलाओं और लड़कियों में अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम संख्या-104) के तहत दंडनीय अपराध, या

(vi) सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 (1867 का अधिनियम संख्या-3) की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध, या

(vii) किसी व्यक्ति को किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से विधिपूर्वक आमंत्रित नीलामी या निविदा में किसी पट्टे या अधिकार या माल या कार्य की आपूर्ति के लिए विधिपूर्वक आमंत्रित बोलियों की पेशकश करने से रोकना, या

(viii) किसी व्यक्ति द्वारा अपने विधिपूर्ण व्यवसाय, व्यापार या नियोजन या उससे संबंधित किसी अन्य विधिपूर्ण गतिविधि के सुचारू संचालन को रोकना या उसमें बाधा डालना, या

(ix) भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम सं० 45) की धारा 171-ङ के अधीन दंडनीय अपराध, या मतदाता को उसके निर्वाचन अधिकारों का प्रयोग करने से भौतिक रूप से रोककर विधिपूर्वक कराए जा रहे किसी लोक निर्वाचन को रोकना या उसमें बाधा डालना, या

(x) साम्प्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने के लिए दूसरों को हिंसा का सहारा लेने के लिए उकसाना, या

(xi) सार्वजनिक रूप से आतंक, अलार्म या आतंक पैदा करना, या

(xii) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या स्वामियों या अधिभोगियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी संपत्तियों के संबंध में शरारत कारित करना, या

(xiii) किसी व्यक्ति को मिथ्या अभ्यावेदन पर विदेश जाने के लिए प्रलोभन देना या प्रलोभन

देना कि ऐसे विदेशी देश में उसे कोई रोजगार, व्यापार या पेशा प्रदान किया जाएगा, या

(xiv) फिरौती वसूलने के इरादे से किसी व्यक्ति का अपहरण या व्यपहरण, या

(xv) किसी विमान या सार्वजनिक परिवहन यान को उसके निर्धारित मार्ग का अनुसरण करने से विपथित करना या अन्यथा निवारना;

[(xvi) साहूकार विनियमन अधिनियम, 1976 के अधीन दंडनीय अपराध;

(xvii) गोपशुओं का अवैध रूप से परिवहन करना और/या तस्करी करना और गोवध निवारण अधिनियम, 1955 और पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 के उपबंधों के उल्लंघन में संलिप्त होना;

(xviii) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ मजदूरी, बाल श्रम, यौन शोषण, अंग निकालने और अवैध व्यापार, भिक्षावृत्ति और इसी प्रकार के कार्यकलापों के प्रयोजनार्थ मानव दुर्व्यवहार।

(xix) विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1966 के अंतर्गत दंडनीय अपराध:

(xx) जाली भारतीय करेंसी नोटों का मुद्रण, परिवहन और परिचालन;

(xxi) नकली औषधों के उत्पादन, बिक्री और वितरण में शामिल होना;

(xxii) आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 5, 7 और 12 के उल्लंघन में हथियारों और गोलाबारूद के निर्माण, बिक्री और परिवहन में शामिल होना;

(xxiii) आथक लाभ के लिए कटाई या हत्या, भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 का उल्लंघन करते हुए उत्पादों की तस्करी;

(xxiv) मनोरंजन और सट्टेबाजी कर अधिनियम, 1979 के तहत दंडनीय अपराध;

(xvv) ऐसे अपराधों में लिप्त होना जो राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और यहां तक कि जीवन की गति को भी प्रभावित करते हैं।

17. इस न्यायालय ने 2021 की शासकीय अपील संख्या-779 में पारित अपने निर्णय और आदेश दिनांक 23.09.2022 में 'गिरोह' की परिभाषा पर विचार किया है और माना है कि यदि यह साबित हो जाता है कि एक अभियुक्त एक गिरोह से संबंधित है और व्यक्तिगत रूप से या अन्य गिरोह के सदस्यों के साथ सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने के उद्देश्य से या अपने या गिरोह के किसी अन्य सदस्य के लिए कोई अनुचित अस्थायी और आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए अपराध करता है, उस पर गैंगस्टर्स अधिनियम के प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है और दंडित किया जा सकता है। सरकारी अपील संख्या-779 वर्ष 2021 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.09.2022 के पैरा-12 से 17 प्रासंगिक होंगे, जिन पर ध्यान दिया जाएगा: -

"12. इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति व्यक्तियों के ऐसे समूह से संबंधित है, जो या तो अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करते हुए, सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति को कोई अनुचित लौकिक और आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से हिंसा या धमकी या हिंसा और जबरदस्ती आदि में लिप्त होता है, तो वह असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होता है और, अपराध करता है, जैसा कि उक्त धारा के तहत परिभाषित किया गया है, व्यक्तियों का समूह, एक गिरोह होगा।

13. गैंगस्टर को धारा 2(सी) गैंगस्टर अधिनियम के तहत परिभाषित किया गया है, जो निम्नानुसार है: - "2(सी) "गैंगस्टर" का अर्थ है एक सदस्य या नेता या एक गिरोह का आयोजक और इसमें कोई भी व्यक्ति शामिल है जो खंड (बी) में उल्लिखित गिरोह की गतिविधियों में सहायता करता है या सहायता करता है, चाहे वह ऐसी गतिविधियों के कमीशन से पहले या बाद में हो या ऐसी गतिविधियों में लिप्त किसी भी व्यक्ति को शरण देता हो।

14. गैंग-लीडर और गैंग के सदस्य को गैंगस्टर कहा जाता है। यहां तक कि एक व्यक्ति, जो धारा 2(बी) के तहत परिभाषित गिरोह की गतिविधियों में सहायता करता है या सहायता करता है, चाहे वह ऐसी गतिविधियों के आयोग से पहले या बाद में हो, या किसी भी व्यक्ति को शरण देता है, जो इस तरह की गतिविधियों में लिप्त है, वह भी एक गैंगस्टर होगा। धारा 3(1) के अंतर्गत गैंगस्टर को दंड देने का प्रावधान है जो दो वर्ष से दस वर्ष तक हो सकता है और जुर्माना 5,000/- रुपए से कम नहीं होना चाहिए। यदि कोई गैंगस्टर लोक सेवक या लोक सेवक के किसी भी सदस्य के खिलाफ अपराध करता है, तो न्यूनतम सजा तीन साल और जुर्माना होगी।

15. गैंगस्टर एक्ट के तहत अपराध मूल अपराध से स्वतंत्र अपराध है। यदि यह साबित हो जाता है कि कोई व्यक्ति व्यक्तियों के समूह से संबंधित है और व्यक्तिगत रूप से या व्यक्तियों के समूह के साथ अपराध करता है, जिसे गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) के तहत परिभाषित किया गया है, तो ऐसा व्यक्ति गैंगस्टर है और उसे एक अवधि के लिए दंडित किया जाएगा, जो दो या तीन साल हो सकती है और न्यूनतम पांच हजार रुपये के जुर्माने के साथ दस साल तक बढ़ाई जा सकती है।

16. अपीलकर्ता-राज्य की ओर से, श्री उमेश वर्मा, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता के साथ, श्री राव नरेंद्र सिंह, ने प्रस्तुत किया है कि गैंगस्टर के रूप में अपराध करने के लिए गैंगस्टर अधिनियम के तहत किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए मूल तत्व वह गिरोह का सदस्य है। यहां तक कि अगर किसी व्यक्ति के खिलाफ कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की जाती है, तब भी उस पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। गैंगस्टर एक्ट का मकसद संगठित अपराध और गैंग और गैंगस्टरों की आपराधिक गतिविधियों पर अंकुश लगाना है।

17. यदि यह साबित हो जाता है कि कोई अभियुक्त किसी गिरोह से संबंधित है और सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या स्वयं या गिरोह के किसी अन्य सदस्य के लिए कोई अनुचित अस्थायी और आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यक्तिगत रूप से या अन्य गिरोह के सदस्यों के साथ अपराध करता है, तो उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है और दंडित किया जा सकता है।

18. इस न्यायालय ने शासकीय अपील संख्या-779 वर्ष 2021 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.09.2022 में इस प्रश्न से निपटा है

कि यदि अभियुक्त को उन अपराधों के लिए बरी कर दिया गया है जो गैंगचार्ट (मूल अपराध) में थे, तो क्या उस पर गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(3) के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है और अपराध के लिए दंडित किया जा सकता है। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय के पैरा-22 से 27 में उक्त प्रश्न पर विचार किया, जो निम्नानुसार है: -

22. इस मामले में विचार के लिए उठने वाला विवादास्पद प्रश्न यह है कि यदि अभियुक्त-प्रतिवादी को उन अपराधों के लिए बरी कर दिया गया है, जिनका उल्लेख गिरोह-चार्ट (मूल अपराध) में किया गया था, तो क्या उसे अभी भी धारा 2/3 गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। जैसा कि पहले कहा गया है, धारा 2/3 गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध मूल अपराध की तुलना में एक अलग अपराध है। यदि अभियोजन पक्ष यह साबित करता है कि व्यक्ति एक गिरोह से संबंधित है और सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी और आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपराध करने में लिप्त है, तो उसे गैंगस्टर अधिनियम के तहत दंडित किया जा सकता है।

23. 2007 (8) एडीजे 716 (विष्णु दयाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना कि अधिनियम का उद्देश्य संगठित अपराधियों और उनके गिरोह के सदस्यों की गतिविधियों को गिरफ्तार करना है। न्यायालय ने यह भी कहा कि हाल के दिनों में गैंगस्टरवाद ने खतरनाक आयाम ले लिए हैं और नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता को संगठित अपराधों की दीवारों के खिलाफ धकेल दिया गया है। विष्णु दयाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य मामले (उपरोक्त) के पैरा-11 और 12, जो इस मामले के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, निम्नानुसार पढ़ेंगे: -

"11. परिभाषा खंड से यह स्पष्ट है कि एक गिरोह एक या एक से अधिक व्यक्तियों का एक समूह है जो अनुचित लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से परिभाषा खंड के तहत उल्लिखित अपराधों को अंजाम देता है, चाहे वह आर्थिक, सामग्री या अन्यथा हो। यहां तक कि एक गिरोह द्वारा किया गया एक भी अपराध गिरोह के ऐसे सदस्यों पर गैंगस्टर अधिनियम लागू करने के लिए पर्याप्त है और उक्त अधिनियम के तहत अपराधों को लागू करने के लिए अपराध की पुनरावृत्ति वांछित नहीं है। परिभाषा खंड, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, गैंगस्टर अधिनियम लागू करने से पहले अपराध की बहुलता को शामिल नहीं करता है। यह संगठित अपराधियों और उनके गिरोह के सदस्यों की गतिविधियों को गिरफ्तार करने के एक घोषित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक अधिनियम है। हाल के दिनों में गैंगस्टरवाद ने खतरनाक आयाम ले लिया है और नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता को संगठित अपराधों की दीवारों के खिलाफ धकेल दिया गया है। इस प्रकार के अपराधों से सख्ती और दृढ़ता से निपटना होगा। इसके अलावा, गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध उन व्यक्तियों के समूह पर लगाया जा सकता है जो व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कार्य करते हैं।

12. प्रस्तुत मामले में घटना मृतक की संपत्ति हड़पने के कारण प्रेरित और निष्पादित की गई थी क्योंकि आरोपी व्यक्ति मृतक के बहुत करीबी रिश्तेदार हैं और वास्तव में, उसके असली भतीजे और उसके असली भाई की पत्नी हैं। इन आरोपियों की मृतक की संपत्ति पर बुरी नजर थी, जिसके चलते उन्होंने अपने ही खून के रिश्ते की हत्या की है। अपराध अच्छी तरह से तैयार किया गया था और पूर्व नियोजित था। यह निश्चित रूप से गैंगस्टरवाद है। यह तथ्य स्पष्ट रूप से गैंगस्टर अधिनियम के दायरे में आवेदकों की गतिविधि को सामने लाता है। आवेदकों के अधिवक्ता श्री सेंगर का तर्क यह है कि यह एक व्यक्तिगत कार्य था और प्राथमिकी से यह नहीं कहा जा सकता है कि हत्या संपत्ति की लालच के कारण हुई थी और इसलिए, गैंगस्टर अधिनियम लागू नहीं होता है, बिल्कुल भी अपील नहीं करता है क्योंकि उक्त विवाद मामले के तथ्यों के खिलाफ है। मैंने अशोक कुमार दीक्षित, (1987 इला० एलजे 806) (उपरोक्त) के मामले में इस अदालत के फैसले को पढ़ा है। उक्त निर्णय आवेदकों के अधिवक्ता श्री सेंगर द्वारा उठाए गए सबमिशन का समर्थन नहीं करता है। मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि दोषियों के दिमाग में अंतर्निहित मकसद संपत्ति हड़पना और उनके लिए आर्थिक लाभ हासिल करना था। यह निश्चित रूप से उनके मामले को गैंगस्टर अधिनियम के दायरे में लाता है।

24. 2008 (2) जेआईसी 227 (इला०) (उधम सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में, इस न्यायालय ने इस सवाल से निपटने के दौरान कि क्या एकल घटना के आधार पर गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को ऐसे व्यक्ति के खिलाफ लागू किया जा सकता है, इस न्यायालय ने माना कि धारा 2/3 गैंगस्टर अधिनियम के तहत, यदि गिरोह-चार्ट प्राथमिकी के हिस्से की पुष्टि करता है और गिरोह-चार्ट में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि एक गिरोह है, गिरोह के चार्ट के अवलोकन के आधार पर प्राधिकारी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की मंजूरी देने के लिए संतुष्ट हो जाते हैं। यह फिर से दोहराया गया कि गैंगस्टर अधिनियम का उद्देश्य संगठित गिरोहों और गैंगस्टरों की गतिविधियों को नियंत्रित करना है। जब विशिष्ट अपराध बनाया गया है, यदि यह कानून की आवश्यकता के अंतर्गत आता है, तो यह किसी व्यक्ति को एक कार्य के लिए भी दंडित करने के लिए खुला है।

25. सर्वोच्च न्यायालय ने गीता देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (आपराधिक अपील संख्या-78 वर्ष 2022) में भी, गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को चित्रित करते हुए कहा कि यहां तक कि एक व्यक्ति, जिसके खिलाफ एकल अपराध के लिए, धारा 2/3 गैंगस्टर अधिनियम के तहत उल्लिखित किसी भी गतिविधि के लिए आरोप पत्र दायर किया गया है, उस पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है।

26. उधम सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य मामले (उपरोक्त) के पैराग्राफ 8 और 10, जो प्रस्तुत मामले के निर्णय के उद्देश्य से प्रासंगिक हैं, यहां नीचे दिए गए हैं: -

"8. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के पहले तर्क पर आते हुए कि एक घटना के आधार पर, याचिकाकर्ताओं को अधिनियम के तहत

बुक नहीं किया जा सकता है, हमें केवल इतना देखने की आवश्यकता है कि सुभाष (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-14 के अनुसार, जिस निर्णय पर याचिकाकर्ताओं द्वारा स्वयं भरोसा किया गया है, उक्त विवाद को पहले ही इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। सुभाष (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय में यह निम्नानुसार माना गया है:--

"धारा 2 में प्रयुक्त शब्द बहुवचन में कोई संदेह नहीं है जो "असामाजिक गतिविधियों में लिप्त" को दर्शाता है, लेकिन वाक्य "असामाजिक गतिविधियों" शब्दों के साथ समाप्त नहीं होता है। इसमें शब्दों के बाद असामाजिक क्रियाकलापों के 15 खण्ड दिए गए हैं। बहुवचन "असामाजिक गतिविधियों" में इस एकल अपराध की छतरी के नीचे लाई जाने वाली बड़ी संख्या में गतिविधियों को संदर्भित करता है और इसका मतलब यह कभी नहीं होगा कि किसी व्यक्ति पर अधिनियम के तहत किसी अपराध के लिए मुकदमा चलाने या दोषी ठहराए जाने से पहले कार्यों की बहुलता होनी चाहिए। जब कोई विशिष्ट अपराध सृजित किया गया है तो उसे किसी एक कार्य के लिए भी दण्डित किया जा सकता है, यदि वह कानून की अपेक्षाओं के अंतर्गत आता हो। इस प्रकार हमने अपने द्वारा तैयार किए गए बिंदु संख्या-1 का उत्तर दिया।

10. इस मामले का एक और पहलू है जिस पर हम चर्चा करना चाहेंगे। अधिनियम की धारा 2(बी) और (सी) के तहत परिभाषा खंड के तहत, यह आवश्यक नहीं है कि अधिनियम के तहत मामला दर्ज करने से पहले गैंगस्टर के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की जानी चाहिए। अधिनियम के तहत किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए अनिवार्य रूप से "गैंगस्टर" के रूप में अपराध करना है। गिरोह का अर्थ है व्यक्तियों का एक समूह, जो सांकेतिक रूप से या सामूहिक रूप से, हिंसा या धमकी दिखाकर, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक, सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य करता है, असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होता है। यह कानून की आवश्यकता नहीं है कि किसी के खिलाफ कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं होने पर अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। यह एक व्यक्ति की गतिविधि है जो उसे अधिनियम में दी गई शरारत के तहत लाने के लिए निर्धारक कारक है और कुछ नहीं। यदि वह किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में कार्य करता है, तो उसके खिलाफ अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया जा सकता है, भले ही उसके खिलाफ कोई पिछली प्राथमिकी दर्ज हो या नहीं। विभिन्न परिभाषा खंडों का सादा पठन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यदि व्यक्ति धारा 2(बी)(आई) से (XV) के तहत किसी अनुचित अस्थायी, आर्थिक, सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए एक सदस्य या नेता के रूप में अपराध करता है तो उसे अधिनियम के दायरे में देखा जाता है और यह कानून की आवश्यकता नहीं है कि इनपुट अपराध के लिए प्राथमिकी उसके समक्ष दर्ज की जानी चाहिए। चूंकि अधिनियम का उद्देश्य गैंगस्टर की गतिविधियों पर अंकुश लगाना है, जो अक्सर किसी भी सार्वजनिक नज़र में नहीं होते हैं, इसलिए अधिनियम के प्रावधानों की इस तरह से व्याख्या करना होगा जो इसके उद्देश्य और

विधायिका के इरादे को सर्वोत्तम रूप से बढ़ावा देता है।

27. यह विवाद में नहीं है कि गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) की परिभाषा खंड के तहत अपराधों के लिए कई प्राथमिकी और चार्ज-शीट, आरोपी प्रतिवादी के खिलाफ दर्ज किए गए थे और उसके खिलाफ आरोप पत्र दायर किए गए थे, जिसमें जिला जेल, लखनऊ के जेल अधीक्षक की हत्या का मामला भी शामिल था। किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए बरी या दोषसिद्धि का कोई मतलब नहीं है, जो अन्यथा गिरोह का सदस्य है और कथित रूप से अपराध करता है, जिसे गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) के तहत परिभाषित किया गया है। यदि प्राथमिकी दर्ज की जाती है या आरोप पत्र दायर किया जाता है और व्यक्ति गिरोह का सदस्य है, जिसे धारा 2(बी) गैंगस्टर एक्ट के तहत परिभाषित किया गया है, तो यह गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 के अवयवों को पूरा करता है और उसे गैंगस्टर अधिनियम की धारा 3 के तहत दंडित किया जा सकता है। विचारण न्यायालय ने आरोपी प्रतिवादी को इस आधार पर बरी कर दिया है कि आरोपी-प्रतिवादी को उन सभी अपराधों में बरी कर दिया गया था, जिनका उल्लेख गैंगचार्ट में किया गया था। गैंग-चार्ट को मंजूरी दे दी गई और आरोपी-प्रतिवादी के साथ अन्य लोगों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई। इस न्यायालय का विचार है, उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करने पर, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, और गैंगस्टर अधिनियम के सभी प्रावधानों को ध्यान से पढ़ने पर, कि अभियुक्त-प्रतिवादी गिरोह का सदस्य था और उसकी आपराधिक गतिविधियों और अपराधों के लिए उसके खिलाफ प्रस्तुत की गईं और के लिए कई प्राथमिकी और आरोप पत्र दर्ज की गईं, जो धारा 2/3 गैंगस्टर अधिनियम के तहत परिभाषित हैं। गवाह मुकरने या अन्यथा करने के लिए आरोपी-प्रतिवादी का बरी होना एक अहम पहलू नहीं है।

19. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित पूर्वोक्त कानून के मद्देनजर, मुझे आरोपी-याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों में कोई तथ्य नहीं मिलता है कि चूंकि याचिकाकर्ता को मूल अपराध में बरी कर दिया गया है, इसलिए गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही बंद कर दी जानी चाहिए। गैंगस्टर अधिनियम की धारा 12, जिस पर आरोपी याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, निम्नानुसार है: -

"12. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारण को प्राथमिकता दी जाएगी। - विशेष न्यायालय द्वारा किसी अपराध के इस अधिनियम के तहत विचारण को किसी अन्य न्यायालय (विशेष न्यायालय न हो) में अभियुक्त के खिलाफ किसी अन्य मामले के विचारण पर पूर्वता दी जाएगी और ऐसे अन्य मामले के विचारण को वरीयता देते हुए समाप्त किया जाएगा और तदनुसार ऐसे अन्य मामले का विचारण आस्थगित रहेगा।

20. गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध में विचारण मूल अपराध के लिए विचारण से पहले अवधारित नहीं किया गया है क्योंकि मूल अपराध और गैंगस्टर अधिनियम के विचारण

एक ही न्यायालय में इस कारण से नहीं किए जा सके कि मूल अपराध का विचारण उच्चतम न्यायालय द्वारा नई दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया था, लेकिन गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध का परीक्षण स्थानांतरित नहीं किया गया था और, इसलिए, गैंगस्टर अधिनियम की धारा 12 प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होगी। इसके अलावा, अभियुक्त-याचिकाकर्ता ने नई दिल्ली में विशेष अदालत द्वारा मूल अपराध के परीक्षण के दौरान इस दलील को कभी नहीं लिया। इसलिए, मुझे आरोपी-याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील में कोई बल नहीं मिलता है कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही इस आधार पर दूषित हो जाएगी। यदि कोई अभियुक्त गिरोह का सदस्य पाया जाता है और वह या गिरोह का कोई सदस्य अध्याय XVI या अध्याय XVII या अध्याय XXII भ०द०वि० के तहत अपराध कर रहा है, तो उसे गैंगस्टर अधिनियम के तहत दंडित किए जाने की संभावना है।

21. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, मुझे प्रस्तुत याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है और इसलिए, इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1274

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ विद्यार्थी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 3504/2023

कपिल वाधवान ...आवेदक (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री प्रांजल कृष्ण

अधिवक्ता विपक्षी: श्री अनुराग कुमार सिंह

ए. **दंड कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 439- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 120-बी, 409, 420, 467, 468, 471 -धारा 7-ए, 8 और 13 (2) सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13 (1) (डी)- आवेदक ने अन्य सह-आरोपियों के साथ एक आपराधिक साजिश में प्रवेश किया और उक्त आपराधिक साजिश को आगे बढ़ाने में, यूपीपीसीएल ट्रस्ट के अधिशेष धन को भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा जारी दिनांक 02.03.2015 के निवेश दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते हुए डीएचएफएल की सावधि जमा में निवेश किया गया- आरोपी व्यक्तियों ने झूठी और फर्जी ऑडिट की गई बैलेंस शीट और फर्जी वित्तीय विवरणों के आधार पर रेटिंग एजेंसियों से बेईमानी और धोखाधड़ी से उच्च रेटिंग प्राप्त की थी- आवेदक और सह-आरोपियों ने अन्य सह-आरोपियों के साथ आपराधिक साजिश में फर्जी परियोजना ऋण स्वीकृत करने के माध्यम से अन्य कंपनियों के बैंक खातों में सेंध लगाई और उक्त निधियों को अपनी कंपनियों में डायवर्ट कर दिया और उक्त निधियों का उपयोग किया- प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि डीएचएफएल के पास सावधि जमा में राशि जमा करने से ट्रस्ट और डीएचएफएल के बीच लेनदार और देनदार का संबंध बनेगा और यह सौंपने के बराबर नहीं होगा, ताकि विश्वास के उल्लंघन का अपराध आकर्षित हो- जहां तक 420, 467, 468 और 471 आईपीसी के तहत अपराधों का संबंध है, यह आरोप नहीं लगाया गया है कि उपरोक्त कृत्य आवेदक द्वारा स्वयं किए गए थे और**

यह आरोप लगाया गया है कि उसने साजिश रची और डीएचएफएल के कुछ अधिकारियों के माध्यम से इसे अंजाम दिया, और उन अधिकारियों को पहले ही जमानत मिल चुकी है - आरोप पत्र और इस मामले में 5 पूरक आरोप-पत्र पहले ही दाखिल किए जा चुके हैं और विचारणीय न्यायालय ने पहले ही मामले का संज्ञान ले लिया है-आरोप पत्र में मामले के 57 गवाहों के नाम का उल्लेख है और विचरण अभी शुरू होना है और इसे समाप्त होने में निश्चित रूप से बहुत लंबा समय लगेगा और आवेदक को उसके अपराध की पुष्टि किए बिना जेल में रखना उचित नहीं होगा, जब तक कि उसका मामला किसी अपवाद के अंतर्गत न आता हो जो उसे जमानत पर रिहा किए जाने के लिए अयोग्य ठहराता हो-आवेदक विचरण के समापन तक जमानत पर रिहा होने का पात्र है। (पैरा 1 से 62)

बी. कानून में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब बैंक में पैसा जमा किया जाता है, तो बैंकर और ग्राहक के बीच जो संबंध बनता है, वह ऋणी और लेनदार का होता है, न कि ट्रस्टी और लाभार्थी का। बैंकर को इस तरह के उपयोग के लिए जवाबदेह ठहराए बिना धन का उपयोग करने का अधिकार है, उसका एकमात्र दायित्व उसके और ग्राहक के बीच सहमत शर्तों के अनुसार राशि वापस करना है। (पैरा 49)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शांति प्रसाद जैन बनाम प्रवर्तन निदेशक, फेरा (1963) 2 एससीआर 297

2. अनुमति बनाम पीएनबी, (2004) 8 एससीसी 498

3. बलिया बनाम एम.पी. राज्य (2012) 9 एससीसी 696

4. संजय चंद्रा बनाम सीबीआई (2012) 1 एससीसी 40

5. सतेंदर कुमार अंतिल बनाम सीबीआई (2022) 10 एससीसी 51

6. महेश कुमार एवं अन्य बनाम सीबीआई एससीसी ऑनलाइन डेल 3903

7. प्रवीण कुमार अग्रवाल बनाम सीबीआई (2022) एससीसी ऑनलाइन डेल 1768

8. वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई (2013) 7 एससीसी 439

9. बिहार राज्य बनाम अमित कुमार (2017) 13 एससीसी 751

10. रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशक (2018) 11 एससीसी 46

11. महिपाल बनाम राजेश कुमार (2020) 2 एससीसी 118

12. शिवनारायण लक्ष्मीनारायण जोशी बनाम सेंट ऑफ मा. (1980) 2 एससीसी 465.

13. संजय चंद्रा बनाम सीबीआई (2012) 1 एससीसी 40

14. वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई (2013) 7 एससीसी 439

15. दाताराम सिंह बनाम यूपी राज्य (2018) 3 एससीसी 22

16. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशक (2020) 13 एससीसी 791

17. सतेंदर कुमार अंतिल बनाम सीबीआई (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 825

18. पीयूष कुमार जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 121 एसीसी 448 = (2023) 1 सभी 10

19. शिवनारायण लक्ष्मीनारायण जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य (1980) 2 एससीसी 465

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता सुश्री सौम्या चतुर्वेदी, श्री प्रांजल कृष्ण, श्री समर्थ अग्रवाल, श्रीमती पूजा कोठारी और सुश्री उर्वी पूर्वे की सहायता से श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, श्री सतीश चंद्र मिश्रा और श्री नंदित कुमार श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ताओं को और केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह को सुना।

2. यह आवेदन, अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण, सीबीआई (पश्चिम), लखनऊ के न्यायालय में विचाराधीन आपराधिक वाद संख्या-370/2020 में जमानत पर आवेदक की रिहाई की मांग करते हुए दायर किया गया है, जो मुकदमा अपराध संख्या-RC0062020A0005 से उत्पन्न हुआ है और पुलिस स्टेशन-सीबीआई/एसीबी, लखनऊ में धारा 120-बी सहपठित धारा 409, 420, 467, 468, 471 आईपीसी तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7-ए, 8 तथा धारा 13 (2) सहपठित धारा 13 (1) (डी) के अंतर्गत पंजीकृत है।

3. दिनांक 02.11.2019 को श्री आई.एम. कौशल, सचिव, उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन अंशदायी भविष्य निधि ट्रस्ट द्वारा (1) ट्रस्ट के तत्कालीन सचिव प्रवीण कुमार गुप्ता और (ii) तत्कालीन निदेशक वित्त सुधांशु द्विवेदी के विरुद्ध थाना हजरतगंज, लखनऊ में धारा 409, 420, 467, 468 तथा 471 आईपीसी के अन्तर्गत अपराध कारित करने की प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या-540/2019 दर्ज कराई गई, जिसमें कहा गया है कि दिनांक 09.05.2013 को ट्रस्ट के न्यासी मंडल ने निर्णय लिया था कि सामान्य भविष्य निधि की धनराशि को 1 से 3 वर्ष के लिए राष्ट्रीयकृत बैंकों की सावधि जमा योजनाओं में निवेश किया जाएगा। दिनांक 21.04.2014 को न्यासी मंडल द्वारा अन्य विकल्पों पर विचार करने का निर्णय लिया गया, जो बैंक में किए गए निवेश की तरह सुरक्षित हों और जो उच्चतर सुनिश्चित ब्याज देते हों और निदेशक वित्त को आवश्यकतानुसार वित्तीय परामर्शदाता की सेवाएं लेने के लिए अधिकृत किया गया। अक्टूबर 2016 तक भविष्य निधि की धनराशि को राष्ट्रीयकृत बैंकों की सावधि जमा योजनाओं में निवेश किया गया था। दिसंबर 2016 में ट्रस्ट के सचिव प्रवीण कुमार गुप्ता द्वारा दिए गए प्रस्ताव पर, जिसे तत्कालीन निदेशक वित्त सुधांशु द्विवेदी और तत्कालीन प्रबंध निदेशक ए.पी. मिश्रा ने मंजूरी दी थी, सामान्य भविष्य निधि और अंशदायी भविष्य निधि की राशि को पीएनबी हाउसिंग की सावधि जमा योजनाओं में निवेश किया जाना शुरू किया गया था। मार्च 2017 में, उपर्युक्त नामित आरोपी व्यक्ति प्रवीण कुमार गुप्ता और सुधांशु द्विवेदी ने भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 02.03.2015 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए

जीपीएफ और सीपीएफ की राशि को डीएचएफएल में निवेश करना शुरू कर दिया, जिसके अनुसार गैर-सरकारी भविष्य निधि का अधिकतम 50% अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों में निवेश किया जा सकता है।

4. एफ.आई.आर. आगे कहा गया है कि 24.03.2017 को आयोजित न्यासी मंडल की बैठक में, राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमाराशियों के अलावा अन्य प्रतिभूतियों में, उच्च सुरक्षा और उच्च ब्याज दर देने वाली एएए रेटेड कंपनियों में, सरकारी अधिसूचना दिनांक 02.03.2015 के अनुसार निवेश प्रस्तावों पर विचार करने पर सहमति हुई थी। कर्मचारी भविष्य निधि की राशि को अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के अलावा अन्य संस्थाओं में निवेश करने पर रोक लगाने वाली अधिसूचना दिनांक 02.03.2015 में निहित भारत सरकार के स्पष्ट दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते हुए, ट्रस्ट के सचिव प्रवीण कुमार गुप्ता ने निदेशक वित्त सुधांशु द्विवेदी से अनुमोदन प्राप्त करने के बाद, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि डीएचएफएल एक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक नहीं है और यह एक असुरक्षित निजी संस्था है, डीएचएफएल में ₹2,631.90 करोड़ का निवेश किया। उपरोक्त राशि में से, ₹1185.50 करोड़ ट्रस्ट को वापस मिल गए थे और ₹1445.70 करोड़ प्राप्त होने बाकी थे। इसी तरह, अंशदायी भविष्य निधि राशि से डीएचएफएल में ₹1491.50 करोड़ का निवेश किया गया था, जिसमें से ₹669.30 करोड़ प्राप्त हो चुका है और ₹822.20 करोड़ का भुगतान लंबित है। इस प्रकार कुल ₹2267.90 करोड़ की मूल राशि डीएचएफएल से प्राप्त की जानी है। एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि नामित अभियुक्तों प्रवीण कुमार गुप्ता और सुधांशु द्विवेदी ने आपराधिक विश्वासघात का अपराध किया है।

5. मामला दर्ज होने के बाद उसी दिन यानी 02.11.2019 को जांच उत्तर प्रदेश पुलिस की आर्थिक अपराध शाखा (ईओडब्ल्यू) को सौंप दी गई। ईओडब्ल्यू ने 01.02.2020 को प्रवीण कुमार गुप्ता, सुधांशु द्विवेदी और यूपीपीसीएल के तत्कालीन प्रबंध निदेशक अयोध्या प्रसाद मिश्रा के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया। इसके बाद ईओडब्ल्यू ने 11.02.2020 को नवीन कुमार गुप्ता के बेटे अभिनव गुप्ता और उसके दोस्त आशीष चौधरी के विरुद्ध पहला पूरक आरोप पत्र दाखिल किया। ईओडब्ल्यू ने 02.03.2020 को सात अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध दूसरा पूरक आरोप पत्र दाखिल किया। ईओडब्ल्यू ने 05.03.2020 को चार और व्यक्तियों के विरुद्ध तीसरा पूरक आरोप पत्र दाखिल किया।

6. बाद में मामला सीबीआई को स्थानांतरित कर दिया गया और 05.03.2020 को सीबीआई ने धारा 409, 420, 467, 468 और 471 आईपीसी के तहत अपराध कारित करने के लिए एक नई प्राथमिकी संख्या आरसी 00620208ए0005 दर्ज की। इसके बाद सीबीआई ने उपरोक्त एफआईआर के आगे जांच की और 29.12.2020 को एक अन्य आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध चौथा पूरक आरोप पत्र दायर किया।

7. आवेदक का नाम सूचनादाता द्वारा दर्ज की गई एफआईआर और ईओडब्ल्यू द्वारा

दायर चार्जशीट या तीन पूरक चार्जशीट में नहीं था। सीबीआई द्वारा दर्ज की गई एफआईआर और सीबीआई द्वारा प्रस्तुत चौथे पूरक चार्जशीट में भी उसका नाम नहीं था।

8. ट्रायल कोर्ट ने सभी आरोपित अभियुक्तों के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान लिया।

9. 22.08.2022 को, सीबीआई ने (i) कपिल वधावन (आवेदक), (ii) धीरज वधावन और (iii) मेसर्स दीवान हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड (डीएचएफएल) के विरुद्ध एक और आरोप पत्र तर्क दिया, जिसमें धारा 120 बी के साथ 420, 409, 467, 468, 471 आईपीसी और धारा 7-ए, 8 और 13 (2) के साथ 13 (1) (डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 और इसके मूल अपराधों के तहत अपराध कारित करने का आरोप लगाया गया। आरोप-पत्र में कहा गया है कि सामान्य भविष्य निधि और अंशदायी भविष्य निधि की भारी मात्रा को अवैध रूप से सावधि जमा बनाने के लिए डीएचएफएल के बैंक खातों में स्थानांतरित किया गया था और आवेदक कपिल वधावन डीएचएफएल के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक थे और सह-अभियुक्त धीरज वधावन प्रासंगिक अवधि के दौरान कंपनी के निदेशक थे और दोनों ने मार्च 2017 के आसपास सह-अभियुक्तों प्रवीण कुमार गुप्ता, अमित प्रकाश, महेश गुप्ता और आलोक गर्ग के साथ एक आपराधिक साजिश की और उक्त आपराधिक साजिश को आगे बढ़ाने के लिए आवेदक और धीरज वधावन ने बेईमानी और धोखाधड़ी से यूपीपीसीएल ट्रस्ट के अधिशेष धन को डीएचएफएल की सावधि जमा में निवेश किया, जो वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 02.03.2015 को जारी निवेश दिशानिर्देशों का उल्लंघन है।

10. आरोप-पत्र में आगे कहा गया है कि आरोपी व्यक्तियों ने झूठी और फर्जी ऑडिट की गई बैलेंस शीट और फर्जी वित्तीय विवरणों के आधार पर रेटिंग एजेंसियों से बेईमानी और धोखाधड़ी से उच्च रेटिंग प्राप्त की और इस तरह मार्च 2017 से दिसंबर 2018 के दौरान डीएचएफएल की सावधि जमाओं में यूपीपीसीएल फंड के ₹ 4,122 करोड़ के निवेश को बेईमानी और धोखाधड़ी से प्राप्त किया, जिसमें से ₹ 2267.9 करोड़ की अधिशेष निधि को आवेदक और सह-अभियुक्त धीरज वधावन ने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ आपराधिक साजिश में गबन कर लिया और उन्होंने फर्जी परियोजना ऋण स्वीकृत करने के माध्यम से उक्त निधियों को डीएचएफएल के बैंक खातों से अन्य कंपनियों के बैंक खातों में डायवर्ट कर दिया और आगे उक्त निधियों को अपनी कंपनियों में डायवर्ट कर दिया और उक्त निधियों का उपयोग किया।

11. आवेदक को सीबीआई के साथ-साथ ईडी ने भी एक अन्य मामले में गिरफ्तार किया था और उसे न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया था और मई 2020 से तलोजा जेल में बंद था। प्रवर्तन निदेशालय ने ईसीआईआर/एमबीजेडओ-आई/02/2020 दिनांक 03.02.2020 (वर्तमान मामले से उत्पन्न) पंजीकृत किया और शिकायत दर्ज की। विशेष न्यायालय, पीएमएलए, मुंबई में विशेष वाद संख्या-1389/2021 के तहत आवेदक को भी आरोपी

बनाया गया, जबकि उस समय तक आवेदक को वर्तमान मामले में आरोपी नहीं बनाया गया था। आवेदक को धारा 188 सीआरपीसी के तहत बांड प्रस्तुत करने पर रिहा कर दिया गया। दिनांक 14.02.2022 के आदेश द्वारा, जबकि आवेदक पहले से ही किसी अन्य मामले में न्यायिक हिरासत में था, 24.05.2020 को आवेदक को तलोजा जेल से ले जाया गया और उसे 26.05.2020 को विशेष न्यायाधीश, सीबीआई, लखनऊ के समक्ष पेश किया गया, जहां से उसे शुरू में 14 दिनों के लिए सीबीआई की हिरासत में भेज दिया गया और उसके बाद उसे न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया और तब से आवेदक वर्तमान मामले में जेल में बंद है।

12. श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार भी, मार्च 2017 से दिसंबर 2018 की अवधि के दौरान डीएचएफएल की सावधि जमा योजनाओं में ₹ 4,122 करोड़ का निवेश किया गया था और कंपनी ने ₹ 1,854.8 करोड़ का भुगतान किया। बिना किसी रुकावट और बिना किसी शिकायत के त्रैमासिक किश्तों में नियमित रूप से पुनर्भुगतान किया जा रहा था। 30.09.2019 को, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने रिलायंस निप्पॉन लाइफ एसेट मैनेजमेंट लिमिटेड बनाम दीवान हाउसिंग फाइनेंस कॉरपोरेशन लिमिटेड और दो अन्य शीर्षक वाले वाणिज्यिक वाद (एल) संख्या 134/2019 में एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसमें डीएचएफएल को किसी भी असुरक्षित लेनदार और सुरक्षित लेनदार को आगे भुगतान करने से रोक दिया गया, सिवाय उन मामलों को छोड़कर जहां वादी सहित सभी सुरक्षित लेनदारों को आनुपातिक आधार पर भुगतान किया गया था, जिसमें उसके वर्तमान और भविष्य के प्राप्तियों में से, वादी को देय भुगतानों के बजाय, न्यायालय की मंजूरी के बिना प्राथमिकता दी गई थी। बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त आदेश पारित करने के बाद, डीएचएफएल ट्रस्ट को देय भुगतान करने में असमर्थ हो गया। उपरोक्त अंतरिम आदेश को 10.10.2019 के आदेश के माध्यम से निरपेक्ष बना दिया गया था। डीएचएफएल ने ट्रस्ट को दिनांक 08.11.2019 को एक पत्र भेजकर उपरोक्त आदेश के बारे में सूचित किया था।

13. दिनांक 18.11.2019 को, ट्रस्ट ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मुकदमे में एक हस्तक्षेप आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 30.09.2019 और 10.10.2019 के आदेशों के अनुसरण में, डीएचएफएल ने ट्रस्ट को देय राशि जारी करने से इनकार कर दिया है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश ने यूपीपीसीएल के कर्मचारियों के साथ घोर अन्याय किया है और यदि इसमें बदलाव नहीं किया गया तो यह ऐसा जारी रहेगा। आवेदन में कहा गया कि मार्च 2017 से 319 सावधि जमा के रूप में ₹2631,20,00,000/-, जिनमें से ₹1185,50,00,000/- मूल्य के 158 सावधि जमा को मापा और भुगतान किया गया था और ₹352,00,00,000/- मूल्य के 41 सावधि जमा परिपक्व हो गए थे और बकाया थे। 30.09.2019 तक, जब भी सावधि जमा परिपक्व होती थी, उसके तहत देय सभी ब्याज

देय हो जाते थे, परिपक्वता राशि/ब्याज का भुगतान डीएचएफएल द्वारा किया जाता था। अंतरिम आदेश पारित होने के बाद, डीएचएफएल ने ट्रस्ट को कोई राशि नहीं दी और ट्रस्ट ने कहा कि ट्रस्ट को राशि जारी करने में बाधा डालने वाली एकमात्र चीज उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश था। ट्रस्ट ने उच्च न्यायालय से अनुरोध किया कि वह डीएचएफएल को देय राशि जारी करने का निर्देश देने वाला आदेश पारित करे।

14. उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर, श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी का पहला तर्क यह है कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि डीएचएफएल ने बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा भुगतान करने से रोकने वाले अंतरिम आदेश पारित होने तक ट्रस्ट को भुगतान करना जारी रखा और उसके बाद केवल बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के कारण पुनर्भुगतान नहीं किया जा सका। उन्होंने दलील दी है कि चूंकि बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में भुगतान रोक दिया गया था, इसलिए राशि का भुगतान न करना अपराध नहीं होगा, जैसा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 78 में प्रावधान है, जो इस प्रकार है: -

> *"**78. न्यायालय के निर्णय या आदेश के अनुसरण में किया गया कार्य.**- न्यायालय के निर्णय या आदेश के अनुसरण में किया गया कोई भी कार्य, यदि ऐसे निर्णय या आदेश के प्रभावी रहने के दौरान किया जाता है, तो वह अपराध नहीं है, भले ही न्यायालय को ऐसा निर्णय या आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र न हो, बशर्ते कि सद्भावपूर्वक कार्य करने वाला व्यक्ति यह विश्वास करता हो कि न्यायालय को ऐसा अधिकार क्षेत्र प्राप्त है।"*

15. श्री चतुर्वेदी ने आगे दलील दी है कि अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोपों से आपराधिक विश्वासघात का अपराध नहीं बनता है, क्योंकि यह एक स्वीकृत मामला है कि ट्रस्ट द्वारा डीएचएफएल के साथ सावधि जमा में राशि का निवेश किया गया था और ऐसी जमा राशि राशि के "सौंपने" के बराबर नहीं है। उपरोक्त दलील के समर्थन में श्री. चतुर्वेदी ने **शांति प्रसाद जैन बनाम प्रवर्तन निदेशक, फेरा,** (1963) 2 एससीआर 297 और **अनुमति बनाम पंजाब नेशनल बैंक**, (2004) 8 एससीसी 498 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

16. श्री चतुर्वेदी ने तर्क दिया है कि चूंकि डीएचएफएल और ट्रस्ट के बीच संबंध ऋणी और लेनदार का है, न कि ट्रस्टी और लाभार्थी का, इसलिए धारा 405 आईपीसी में परिभाषित और धारा 409 आईपीसी में दंडनीय अपराध करने का कोई अवसर नहीं है।

17. श्री चतुर्वेदी ने आगे तर्क दिया है कि धोखाधड़ी का अपराध भी नहीं बनता है, क्योंकि ट्रस्ट ने स्वयं डीएचएफएल के साथ सावधि जमा में निवेश किया था। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि यह पहली बार नहीं था कि ट्रस्ट ने इस तरह का निवेश किया था। डीएचएफएल में निवेश करने से पहले ट्रस्ट ने वर्ष 2016 में

एलआईसी हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड और पीएनबी हाउसिंग में भी इसी तरह की जमा राशि जमा की थी। ट्रस्ट ने बेहतर रिटर्न पाने के लिए डीएचएफएल में स्वेच्छा से सावधि जमा में निवेश किया था और निवेश किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी या बेईमानी से निवेश करने के लिए प्रेरित करके प्राप्त नहीं किया गया था। उन्होंने तर्क दिया है कि ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदक ने कोई झूठा दस्तावेज तैयार किया है या उसमें जालसाजी की है और इसलिए आवेदक को धारा 467 या 468 के तहत दंडित करने का कोई मामला नहीं बनता है।

18. श्री चतुर्वेदी ने तर्क दिया है कि धारा 405 और 415 आईपीसी दो अलग-अलग क्षेत्रों में काम करती हैं और दोनों को एक साथ लागू नहीं किया जा सकता है। आपराधिक विश्वासघात के अपराध को आकर्षित करने के लिए, संपत्ति का सौंपना आवश्यक है, जिसका अर्थ है कि शिकायत करने वाले व्यक्ति ने खुद ही संपत्ति को स्वेच्छा से सौंपा था, जबकि धोखाधड़ी के अपराध को आकर्षित करने के लिए, यह आवश्यक है कि अपराधी ने धोखाधड़ी या बेईमानी से पीड़ित को संपत्ति उसे सौंपने के लिए प्रेरित किया हो।

19. श्री चतुर्वेदी ने आगे कहा है कि आपराधिक साजिश के आरोप को प्रथम दृष्टया स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है। उन्होंने **बलिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य**, (2012) 9 एससीसी 696 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि: -

"17. आपराधिक षड्यंत्र का अपराध किसी अपराध को करने या गैरकानूनी साधनों के माध्यम से किसी वैध उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किए गए समझौते पर आधारित होता है। इस तरह की साजिश शायद ही कभी खुलेआम रची जाती है और इसलिए, इसे साबित करने के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य हमेशा सामने नहीं आ सकते हैं। इस तरह की साजिश का सबूत या अन्यथा अनुमान का विषय है और इस तरह का निष्कर्ष निकालने में अदालत को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या मूल तथ्य यानी जिन परिस्थितियों से निष्कर्ष निकाला जाना है, वे सभी उचित संदेह से परे साबित हो चुकी हैं और उसके बाद, क्या ऐसी साबित और स्थापित परिस्थितियों से इस बात के अलावा कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त ने अपराध करने के लिए सहमति व्यक्त की थी। स्वाभाविक रूप से, अभियुक्त के प्रतिकूल कोई निष्कर्ष निकालने के प्रयोजनों के लिए साबित परिस्थितियों का मूल्यांकन करते समय, किसी भी संदेह का लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए।"

20. श्री. चतुर्वेदी ने दलील दी है कि आवेदक की सोच किसी अन्य आरोपी व्यक्ति से मेल नहीं खाती, क्योंकि प्रथम दृष्टया यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि आवेदक ने यूपीपीसीएल की निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई भूमिका निभाई थी, जिसके तहत पीएनबी एचएफएल, एलआईसी एचएफएल और डीएचएफएल में निवेश करने और दलालों को

ब्रोकरेज का भुगतान करने का निर्णय लिया गया था।

21. श्री. एस. सी. मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी आवेदक की ओर से दलीलें पेश की हैं और उन्होंने कहा है कि आरोप-पत्र में कहा गया है कि सह-आरोपी व्यक्तियों में से एक ललित गोयल चार्टर्ड अकाउंटेंट ने आलोक गर्ग, एसोसिएट वाइस प्रेसिडेंट, वितरण, (लेखा और संचालन), एसएमसी ग्लोबल सिक्योरिटीज लिमिटेड और महेश कुमार गुप्ता, वरिष्ठ उपाध्यक्ष, वितरण, एसएमसी ग्लोबल सिक्योरिटीज लिमिटेड के साथ एक आपराधिक साजिश रची थी और उक्त आपराधिक साजिश के अनुसरण में, ब्रोकर एसएमसी ग्लोबल सिक्योरिटीज लिमिटेड के माध्यम से दिसंबर 2016 में पीएनबी हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड में पहली बार निवेश किया गया था। ललित गोयल ने पीएनबी एचएफएल, डीएचएफएल और एलआईसी एचएफएल में निवेश के लिए यूपीपीसीएल को मेसर्स एसएमसी ग्लोबल सिक्योरिटीज लिमिटेड को संदर्भित किया था। पीएनबी एचएफएल में निवेश वर्ष 2016 में किया गया था ट्रस्ट के सचिव द्वारा दर्ज की गई प्रारंभिक एफआईआर में, एकमात्र आरोप यह था कि दो नामित सह-आरोपी व्यक्ति, जो यूपीपीसीएल के अधिकारी थे, ने सरकारी दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते हुए निवेश किया था और आवेदक के विरुद्ध कोई आरोप नहीं था। आवेदक के विरुद्ध आरोप पहली बार 5वें अतिरिक्त आरोप-पत्र में लगाया गया था जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसने गलत तरीके से निवेश प्राप्त किया था। डीएचएफएल में किए गए निवेश अपनी तरह के पहले नहीं थे और इसी तरह के निवेश वर्ष 2016 में पीएनबी एचएफएल और एलआईसी एचएफएल में भी किए गए थे।

22. श्री मिश्रा ने तर्क दिया है कि मामले में चौथे अतिरिक्त आरोप-पत्र के दाखिल होने तक आवेदक आरोपी नहीं था और किसी को भी डीएचएफएल या आवेदक के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी। वर्ष 2017-18 के दौरान, डीएचएफएल में कुल ट्रेजरी प्रवाह ₹ 34,000 करोड़ से अधिक था और वर्ष 2018-19 में यह ₹ 38,000 करोड़ से अधिक था। यूपीपीसीएल द्वारा किए गए निवेश डीएचएफएल द्वारा प्राप्त कुल निवेश का बहुत छोटा हिस्सा थे। आवेदक डीएचएफएल का अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक था, जिसमें 15,000 से अधिक कर्मचारी थे और सावधि जमा विभाग का प्रबंधन प्रदीप भदौरिया द्वारा किया जाता था, जो संयुक्त प्रबंध निदेशक श्री हर्षिल मेहता को रिपोर्ट करते थे। यूपीपीसीएल ने एसएमसी ब्रोकर्स के माध्यम से डीएचएफएल में निवेश किया है और पहले भी इसी तरह के निवेश यूपीपीसीएल द्वारा पीएनबी हाउसिंग फाइनेंस और एलआईसी हाउसिंग फाइनेंस में किए गए थे, जो गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थान भी हैं।

23. श्री मिश्रा ने आगे कहा है कि जब बॉम्बे हाईकोर्ट द्वारा पारित अंतरिम आदेश के कारण डीएचएफएल पुनर्भुगतान करने में असमर्थ हो गया, तो आरबीआई ने 20.11.2019 को अपने निदेशक मंडल को भंग कर दिया और कंपनी का प्रशासक नियुक्त कर दिया, जिसके बाद आवेदक का कंपनी के मामलों में कोई अधिकार नहीं रह गया। आरबीआई ने दिवाला और दिवालियापन संहिता 2016 के तहत

डीएचएफएल के लिए कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया शुरू करने के लिए राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण, मुंबई के समक्ष 2019 की कंपनी याचिका संख्या 4 से 58 दायर की और उक्त प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए, पिरामल हाउसिंग फाइनेंस कैपिटल लिमिटेड ने राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण मुंबई द्वारा पारित दिनांक 07.06.2021 के आदेश के तहत डीएचएफएल का प्रबंधन और नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया है। पिरामल हाउसिंग फाइनेंस कैपिटल लिमिटेड डीएचएफएल की व्यावसायिक प्रतिद्वंद्वी थी और उसके डीएचएफएल पर नियंत्रण करने के बाद ही कंपनी के दो कर्मचारियों प्रदीप भदौरिया और गोविंदन श्रीनिवासन ने आवेदक और सह-आरोपी प्रवीण कुमार गुप्ता, ट्रस्ट के तत्कालीन सचिव के बीच कथित बातचीत का संदर्भ दिया है। हालांकि, ट्रस्ट के किसी भी अधिकारी ने अपराधों के कमीशन में आवेदक की संलिप्तता के बारे में कुछ नहीं कहा है।

24. श्री मिश्रा ने आगे कहा है कि आवेदक और उसके भाई-सह-आरोपी धीरज वधावन को छोड़कर, अन्य सभी सह-आरोपी व्यक्तियों को वर्तमान मामले में जमानत दी गई है और इसलिए, आवेदक भी समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

25. श्री मिश्रा ने **संजय चंद्रा बनाम सीबीआई**, (2012) 1 एससीसी 40, **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई**, (2022) 10 एससीसी 51, **महेश कुमार एवं अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो**, एससीसी ऑनलाइन डेल 3903 और **प्रवीण कुमार अग्रवाल बनाम सीबीआई**, 2022 एससीसी ऑनलाइन डेल 1768 में माननीय उच्च न्यायालय के निर्णयों का हवाला दिया है।

26. श्री नंदित कुमार श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी आवेदनों के समर्थन में दलीलें पेश की हैं और उन्होंने कहा है कि आवेदक को दिल्ली भेजा गया था, जिससे पता चलता है कि वर्तमान मामले के संबंध में आवेदक की हिरासत की आवश्यकता नहीं है और इस कारण से भी आवेदक वर्तमान मामले में जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

27. इसके विपरीत, प्रतिवादी-सीबीआई की ओर से श्री अनुराग कुमार सिंह, अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वर्तमान मामले में षड्यंत्र दो भागों में रचा गया था, पहला यूपीपीसीएल के कार्यालय में, जहां राष्ट्रीयकृत बैंकों के अलावा अन्य कंपनियों में भविष्य निधि की राशि का निवेश करने का निर्णय लिया गया था और दूसरा भाग आवेदक और सह-अभियुक्त धीरज वधावन द्वारा केयर (क्रेडिट एनालिसिस एंड रिसर्च रेटिंग्स) और बीडब्ल्यूआर (ब्रिक वर्क्स रेटिंग्स) से एएए रेटिंग प्राप्त करके फर्जी दस्तावेजों के बल पर 2.5 लाख काल्पनिक व्यक्तियों को दिए गए 15,000 करोड़ रुपये के ऋण दिखाए गए थे, जो राशि वास्तव में डीएचएफएल की गैर-निष्पादित संपत्ति थी और एएए रेटिंग प्राप्त करने के लिए एनपीए को छिपाने के लिए काल्पनिक ऋणों को खाता पुस्तकों में दिखाया गया था।

28. श्री सिंह ने आगे कहा है कि डीएचएफएल ने जमाराशियों पर 8.05% ब्याज देने के लिए यूपीपीसीएल को प्रस्ताव दिया था। यूपीपीसीएल

अंशदायी भविष्य निधि ट्रस्ट के ट्रस्टियों की दिनांक 24.03.2017 की बैठक के फर्जी कार्यवृत्त तैयार किए गए, जिसमें यह दर्ज किया गया कि न्यासी मंडल ने राष्ट्रीयकृत बैंकों और एएए रेटेड कंपनियों की सावधि जमाराशियों के अलावा उच्च सुरक्षा और उच्च ब्याज दर वाली प्रतिभूतियों में दिनांक 02.03.2015 की सरकारी अधिसूचना के अनुसार निवेश प्रस्तावों पर विचार करने के लिए सहमति व्यक्त की थी और यह भी संकल्प लिया गया था कि प्रतिभूतियों में आगे के निवेश का निर्णय सचिव (ट्रस्ट) द्वारा निदेशक (वित्त), यूपीपीसीएल और ट्रस्टी की सहमति/अनुमोदन के साथ केस-दर-केस आधार पर किया जाएगा। उपरोक्त फर्जी प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के लिए सचिव/निदेशक ने दलालों को लगाया। कई गैर-मौजूद ब्रोकर फर्मों को ब्रोकरेज का भुगतान किया गया और ब्रोकरेज के रूप में भुगतान की गई राशि को बैंकों से नकद में निकाल लिया गया। अभिनव गुप्ता और अमित प्रकाश के कॉल डिटेल रिकॉर्ड से उनके बीच संबंध स्थापित होते हैं।

29. श्री सिंह ने आगे कहा है कि जांच में यह बात सामने आई है कि डीएचएफएल के खातों से कई अन्य कंपनियों को असुरक्षित ऋण के रूप में भारी मात्रा में धनराशि हस्तांतरित की गई, जो डीएचएफएल की सहयोगी कंपनियां हैं और आवेदक तथा सह-आरोपी धीरज वधावन द्वारा नियंत्रित हैं। बिना किसी कागजी कार्रवाई के ऋण प्रदान किए गए।

30. श्री सिंह ने जांच के दौरान दर्ज किए गए डीएचएफएल के कुछ कर्मचारियों के बयानों के माध्यम से न्यायालय को अवगत कराया, जिन्होंने कहा है कि समूह द्वारा अपने कर्मचारियों को बैंक खातों में अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता और अन्य कंपनियों में निदेशक बनाना आम बात थी। उन्होंने यह भी कहा है कि कंपनी की झूठी वित्तीय स्थिति दिखाने के लिए कंपनी के खातों में झूठी प्रविष्टियां की जाती थीं और कंपनी ने झूठे दस्तावेजों और झूठे खातों के आधार पर एएए क्रेडिट रेटिंग प्राप्त की।

31. श्री सिंह ने कहा है कि डीएचएफएल के खातों से कई अन्य कंपनियों को असुरक्षित ऋण के रूप में भारी मात्रा में धनराशि हस्तांतरित की गई, जो डीएचएफएल की सहयोगी कंपनियां हैं और आवेदक तथा सह-आरोपी धीरज वधावन द्वारा नियंत्रित हैं। सिंह ने आगे तर्क दिया है कि आवेदक दो अन्य मामलों में शामिल है और हिरासत में है (i) एफआईआर संख्या आरसी2102020ई0004 दिनांक 07.03.2020, जो सीबीआई द्वारा धारा 120 बी, 409, 420 और 477ए आईपीसी और धारा 13 (2) सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (डी) और इसके मूल अपराधों के तहत दर्ज की गई है और (ii) एफआईआर संख्या आरसी2242022ए0001 दिनांक 20.06.2022 जो सीबीआई द्वारा धारा 120 बी के साथ धारा 420 आईपीसी और धारा 7, 12 और 13 (2) सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की 13 (1) (डी) के तहत दर्ज की गई है। आवेदक कई अन्य मामलों में शामिल है, जिनका खुलासा जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में नहीं किया गया है।

32. श्री. अनुराग कुमार सिंह ने **वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई**, (2013) 7 एससीसी 439, **बिहार राज्य बनाम अमित कुमार**, (2017) 13 एससीसी 751, **रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय**, (2018) 11 एससीसी 46, **महिपाल बनाम राजेश कुमार**, (2020) 2 एससीसी 118 और **शिवनारायण लक्ष्मीनारायण जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य**, (1980) 2 एससीसी 465 पर भरोसा किया है।

33. आवेदक के आपराधिक इतिहास को द्वितीय पूरक हलफनामा दाखिल करके स्पष्ट किया गया है, जिसके अनुसार वह वर्तमान मामले के अलावा कुल नौ मामलों में शामिल है और उसे निम्नलिखित आठ मामलों में जमानत दी गई है: -

(i) प्रवर्तन निदेशालय द्वारा पीएमएलए की धारा 3 और 4 के तहत पंजीकृत ईसीआईआर /एमबीजेडओ-आई / 08/2019 में, आवेदक को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, सिटी सेशंस कोर्ट /स्पेशल कोर्ट, सी.आर. नंबर 16, मुंबई द्वारा पारित दिनांक 21.02.2020 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई है, और उपरोक्त आदेश के माध्यम से, आवेदक को जांच अधिकारी के समक्ष अपना पासपोर्ट सरेंडर करने का निर्देश दिया गया है।

(ii) पीएमएलए की धारा 3 और 4 के तहत एफआईआर संख्या RC2192020E0004 के संबंध में प्रवर्तन निदेशालय द्वारा पंजीकृत ईसीआईआर/एमबीजेडओ-आई/03/2020 में, आवेदक को बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.08.2020 के आदेश के माध्यम से डिफ़ॉल्ट जमानत दी गई है, और इस आदेश की पुष्टि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या 701-702/2020 में पारित दिनांक 27.03.2023 के निर्णय और आदेश के माध्यम से की गई है।

(iii) सीबीआई दिल्ली द्वारा धारा 120 बी, 409, 420, 477 ए आईपीसी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (2) और 13 (1) (डी) के तहत दर्ज एफआईआर संख्या RC2242022A0001 दिनांक 22.06.2022, जिसमें आवेदक को डिफ़ॉल्ट जमानत दी गई है जमानत सत्र न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 03.12.2022 के आदेश के माध्यम से दी जा सकती है।

(iv) ईओडब्ल्यू दिल्ली द्वारा धारा 420, 406, 409 और 120 बी आईपीसी के तहत पंजीकृत एफआईआर संख्या 66/2017, जिसमें आवेदक को सत्र न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.05.2022 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई है।

(v) ईओडब्ल्यू चेन्नई द्वारा धारा 120 बी, 420, 409 आईपीसी और तमिलनाडु प्रोटेक्शन ऑफ इंटरेस्ट डिपॉजिटर्स एक्ट की धारा 5 के तहत पंजीकृत एफआईआर संख्या 9/2020, जिसमें आवेदक को सत्र न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.10.2020 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई है।

(vi) प्रवर्तन निदेशालय द्वारा पीएमएलए की धारा 3 और 4 के

तहत पंजीकृत ईसीआईआर /एमबीजेडओ-आई/02/2020 में, एफआईआर संख्या आरसी 0062020ए0005/2020 (ईओडब्ल्यू लखनऊ द्वारा पंजीकृत पूर्व सीआर संख्या 540/2019) के संबंध में, जिसमें आवेदक को बुलाया गया था और विशेष न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 14.02.2022 के आदेश के माध्यम से धारा 88 सीआरपीसी के तहत बांड पर रिहा किया गया था।

(vii) प्रवर्तन निदेशालय द्वारा पंजीकृत ईसीआईआर/एमबीजेडओ-आई/05/2019 में पीएमएलए की धारा 3 और 4 के तहत एफआईआर संख्या आरसी2192020ई0004 के संबंध में, सीबीआई मुंबई द्वारा पंजीकृत एफआईआर संख्या आरसीबीएसएम 2019ई0002 दिनांक 04.01.2019 के संबंध में, जिसमें आवेदक को बुलाया गया था और विशेष न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 15.02.2022 के आदेश के माध्यम से धारा 88 सीआरपीसी के तहत बांड पर रिहा किया गया था।

(viii) ईओडब्ल्यू, मुंबई द्वारा धारा 465, 467, 468, 471, 406, 409, 420 और 120 बी आईपीसी के तहत पंजीकृत सीआर नंबर 84 ऑफ 2021 दिनांक 25.03.2021, जिसमें आवेदक को बुलाया गया था और विशेष न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.04.2022 के माध्यम से धारा 88 सीआरपीसी के तहत बांड पर रिहा किया गया था।

34. वर्तमान मामले के अलावा, आवेदक को धारा 120 बी, 409 और 420 आईपीसी के तहत सीबीआई दिल्ली द्वारा दर्ज एफआईआर संख्या आरसी 209 2020 ई 0004 दिनांक 07.03.2020 में जमानत पर रिहा किया जाना बाकी है।

35. मैंने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुत विस्तृत तर्कों पर विचार किया है।

36. चूंकि आरोप आर्थिक अपराध करने का है, इसलिए तर्कों पर आगे बढ़ने से पहले ऐसे अपराधों में जमानत देने के संबंध में कानून पर एक नज़र डालना उचित होगा। मैं सबसे पहले इस संबंध में प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस-लॉ का उल्लेख करूँगा।

37. **संजय चंद्रा बनाम सीबीआई**, (2012) 1 एससीसी 40 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

"21. जमानत आवेदनों में, आम तौर पर, यह आरंभिक समय से ही निर्धारित किया गया है कि जमानत का उद्देश्य उचित जमानत राशि द्वारा अभियुक्त व्यक्ति की सुनवाई में उपस्थिति सुनिश्चित करना है। जमानत का उद्देश्य न तो दंडात्मक है और न ही निवारक। स्वतंत्रता से वंचित करना एक दंड माना जाना चाहिए, जब तक कि यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक न हो कि अभियुक्त व्यक्ति बुलाए जाने पर अपने मुकदमे का सामना

करेगा। न्यायालयों को इस सिद्धांत के प्रति मौखिक सम्मान से अधिक सम्मान देना चाहिए कि सजा दोषसिद्धि के बाद शुरू होती है, और प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि विधिवत परीक्षण और विधिवत दोषी न पाया जाए।

22. आरंभिक समय से ही, यह माना जाता रहा है कि मुकदमे के पूरा होने तक हिरासत में रखना बहुत कठिनाई का कारण हो सकता है। समय-समय पर, आवश्यकता की मांग होती है कि कुछ गैर-दोषी व्यक्तियों को मुकदमे में उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए मुकदमे तक हिरासत में रखा जाना चाहिए, लेकिन ऐसे मामलों में, "आवश्यकता" ही क्रियाशील परीक्षण है। इस देश में, यह संविधान में निहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा के बिल्कुल विपरीत होगा कि किसी व्यक्ति को किसी ऐसे मामले के संबंध में दंडित किया जाए, जिस पर उसे दोषी नहीं ठहराया गया हो या किन्हीं भी परिस्थितियों में, उसे केवल इस विश्वास के आधार पर उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया जाए कि यदि उसे स्वतंत्र छोड़ दिया गया तो वह गवाहों के साथ छेड़छाड़ करेगा, सिवाय अत्यंत असाधारण परिस्थितियों के।

जमानत से इनकार करने का उद्देश्य रोकथाम के प्रश्न के अलावा, किसी को इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि दोषसिद्धि से पहले किसी भी कारावास में पर्याप्त दंडात्मक सामग्री होती है और किसी भी अदालत के लिए यह अनुचित होगा कि वह पूर्व आचरण की अस्वीकृति के निशान के रूप में जमानत से इनकार करे, चाहे अभियुक्त को इसके लिए दोषी ठहराया गया हो या नहीं या किसी गैर-दोषी व्यक्ति को सबक के रूप में कारावास का स्वाद चखाने के उद्देश्य से जमानत से इनकार करे।

* * *

39. वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, दोनों अदालतों ने दो आधारों पर जमानत देने के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया है: प्राथमिक आधार यह है कि अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपित अपराध बहुत गंभीर है जिसमें गहरी योजना शामिल है, जिससे राज्य के खजाने को भारी वित्तीय नुकसान हुआ है; दूसरा आधार यह है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा गवाहों के साथ छेड़छाड़ की संभावना है। वर्तमान मामले में, आरोप धोखाधड़ी और बेईमानी से संपत्ति की डिलीवरी के लिए प्रेरित करने और धोखाधड़ी के उद्देश्य से जाली दस्तावेज़ को असली के रूप में उपयोग करने का है। अपराध के लिए सजा कारावास है, जो सात साल तक बढ़ाई जा सकती है। यह निस्संदेह सच है कि आरोप की प्रकृति प्रासंगिक होती है, लेकिन साथ ही, अगर दोषी ठहराया जाता है तो पक्ष को जो सजा दी जा सकती है, उसका भी इस बिन्दु पर प्रभाव होता है। इसलिए, यह निर्धारित करने में कि जमानत दी जाए या नहीं, आरोप की गंभीरता और सजा की गंभीरता दोनों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

40. जमानत देना या न देना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है। जमानत देना या न देना, काफी

हद तक, प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों द्वारा विनियमित होता है। लेकिन साथ ही, अभियुक्त के विरुद्ध समुदाय की भावनाओं के कारण जमानत के अधिकार से इनकार नहीं किया जाना चाहिए। आपराधिक मामले में जमानत का प्राथमिक उद्देश्य अभियुक्त को कारावास से मुक्त करना, राज्य को उसे मुकदमे तक रखने के बोझ से मुक्त करना और साथ ही, अभियुक्त को न्यायालय की हिरासत में रखना है, चाहे दोषसिद्धि से पहले या बाद में, यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन रहेगा और जब भी उसकी उपस्थिति की आवश्यकता होगी, वह न्यायालय में उपस्थित होगा।

* * *

42. जब विचाराधीन कैदियों को अनिश्चित अवधि के लिए जेल हिरासत में रखा जाता है, तो संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है। हिरासत में लिया गया या गिरफ्तार किया गया प्रत्येक व्यक्ति शीघ्र सुनवाई का हकदार है, सवाल यह है कि क्या वर्तमान मामले में भी ऐसा संभव है।

* * *

46. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि अभियुक्तों पर बहुत बड़े पैमाने पर आर्थिक अपराध का आरोप है। हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि यदि आरोपित अपराध सिद्ध हो जाते हैं, तो देश की अर्थव्यवस्था को खतरा हो सकता है। साथ ही, हम इस तथ्य को भी नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते कि जांच एजेंसी ने पहले ही जांच पूरी कर ली है और विशेष न्यायाधीश, सीबीआई, नई दिल्ली के समक्ष आरोप-पत्र पहले ही दाखिल किया जा चुका है। इसलिए, आगे की जांच के लिए हिरासत में उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं हो सकती है। हमारा विचार है कि अपीलकर्ता सीबीआई द्वारा व्यक्त की गई आशंका को संतुष्ट करने के लिए कठोर शर्तों पर मुकदमा लंबित रहने तक जमानत पाने के हकदार हैं।"

38. **वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई**, (2013) 7 एससीसी 439 में, जिस पर प्रतिवादी-सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि: -

"34. आर्थिक अपराध एक अलग श्रेणी का गठन करते हैं और जमानत के मामले में एक अलग दृष्टिकोण के साथ विचार किए जाने की आवश्यकता है। गहरी साजिशों वाले तथा सार्वजनिक धन की भारी हानि वाले आर्थिक अपराधों को गंभीरता से लिया जाना चाहिए तथा उन्हें गंभीर अपराध माना जाना चाहिए, जो पूरे देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं तथा इस प्रकार देश की वित्तीय सेहत के लिए गंभीर खतरा पैदा करते हैं।

35. जमानत देते समय न्यायालय को आरोपों की प्रकृति, उनके समर्थन में साक्ष्य की प्रकृति, दोषसिद्धि के पश्चात दी जाने वाली सजा की गंभीरता, अभियुक्त का चरित्र, अभियुक्त के लिए विशिष्ट परिस्थितियां, मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने की उचित संभावना, गवाहों के साथ छेड़छाड़ किए जाने की उचित आशंका, जनता के व्यापक हित, राज्य तथा अन्य समान विचारों को ध्यान में रखना चाहिए।

39. **बिहार राज्य बनाम अमित कुमार**, (2017) 13 एससीसी 751 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि: -

"यह अच्छी तरह से स्थापित है कि सामाजिक-आर्थिक अपराध एक अलग वर्ग बनाते हैं और जमानत के मामले में उन्हें एक अलग दृष्टिकोण के साथ देखा जाना चाहिए। आमतौर पर सामाजिक-आर्थिक अपराध समाज के नैतिक ताने-बाने को प्रभावित करने वाली गहरी साजिशें होती हैं और अपूरणीय क्षति पहुंचाती हैं, इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।"

40. **रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय**, (2018) 11 एससीसी 46, जो कि धन शोधन निवारण अधिनियम से उत्पन्न मामला था, धारा 45 जिसमें जमानत देने के संबंध में कुछ अतिरिक्त शर्तें निर्धारित की गई हैं, जिसमें न्यायालय की संतुष्टि भी शामिल है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है, हालांकि, वर्तमान मामले में धन शोधन निवारण अधिनियम के तहत किसी अपराध का आरोप शामिल नहीं है और इसलिए, उपरोक्त निर्णय हाथ में मामले के लिए प्रासंगिक नहीं है।

41. श्री अनुराग कुमार सिंह द्वारा उद्धृत **महिपाल बनाम राजेश कुमार**, (2020) 2 एससीसी 118 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय, राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा एक आरोपी व्यक्ति को जमानत देने के आदेश की वैधता की जांच कर रहा था, जिसमें केवल यह दर्ज किया गया था कि *"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और मामले के गुण-दोष पर राय व्यक्त किए बिना, यह न्यायालय याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करना उचित और सही समझता है।"* माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

"25. केवल "रिकॉर्ड का अवलोकन करने" और "मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर" दर्ज करना तर्कसंगत न्यायिक आदेश के उद्देश्य को पूरा नहीं करता है। यह न्याय का एक मूलभूत आधार है, जिसके लिए हमारी न्यायिक प्रणाली प्रतिबद्ध है, कि जमानत को अस्वीकार करने या देने में न्यायाधीश के दिमाग में जो कारक

सत्यमेव जयते

आए हैं, उन्हें पारित आदेश में दर्ज किया जाता है। खुला न्याय इस धारणा पर आधारित है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से और निस्संदेह किया जाना चाहिए। तर्कसंगत निर्णय देने का न्यायाधीशों का कर्तव्य इस प्रतिबद्धता के केंद्र में है। जमानत देने का सवाल आपराधिक अभियोजन का सामना कर रहे व्यक्तियों की स्वतंत्रता के साथ-साथ आपराधिक न्याय प्रणाली के हितों से भी संबंधित है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अपराध करने वालों को न्याय में बाधा डालने का अवसर न मिले। न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि वे उस आधार को स्पष्ट करें जिसके आधार पर वे किसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं।"

42. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि:

"12. यह निर्धारित करना कि कोई मामला जमानत दिए जाने के लिए उपयुक्त है या नहीं, इसमें कई कारकों का संतुलन शामिल है, जिनमें अपराध की प्रकृति, दंड की गंभीरता और अभियुक्त की संलिप्तता का प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। न्यायालयों के लिए जमानत दिए जाने या खारिज किए जाने के लिए आवेदन का आकलन करने के लिए कोई बना-बनाया सिद्धान्त मौजूद नहीं है। यह आकलन करने के चरण में कि कोई मामला जमानत दिए जाने के लिए उपयुक्त है या नहीं, न्यायालय को अभियुक्त द्वारा अपराध किए जाने को उचित संदेह से परे स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य का विस्तृत विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है। यह परीक्षण का विषय है। हालाँकि, न्यायालय को यह जांचने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने के लिए कोई प्रथम दृष्टया या उचित आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है और इसमें शामिल विचारों के संतुलन पर, अभियुक्त की निरंतर हिरासत आपराधिक न्याय प्रणाली के उद्देश्य को पूरा करती है। जहां निचली अदालत द्वारा जमानत दी गई है, एक अपीलीय अदालत को हस्तक्षेप करने में धीमा होना चाहिए और शक्ति के प्रयोग के लिए निर्धारित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होना चाहिए। जमानत रद्द की जाए।"

43. **दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, (2018) 3 एससीसी 22 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत के कानून को निम्नलिखित शब्दों में दोहराया:-

"2. आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मूलभूत सिद्धांत निर्दोषता की धारणा है, जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसे दोषी न पाया जाए। हालाँकि, हमारे आपराधिक कानून में ऐसे उदाहरण हैं जहाँ किसी विशिष्ट अपराध के संबंध में अभियुक्त पर विपरीत दायित्व डाला गया है, लेकिन

यह एक अलग मामला है और अन्य अपराधों के संबंध में मौलिक सिद्धांत से अलग नहीं होता है। हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जमानत देना सामान्य नियम है और किसी व्यक्ति को जेल या कारागार या सुधार गृह (जो भी अभिव्यक्ति कोई इस्तेमाल करना चाहे) में रखना अपवाद है। दुर्भाग्य से, इनमें से कुछ बुनियादी सिद्धांतों की अनदेखी की गई है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक लोगों को कैद किया जा रहा है और वे लंबे समय तक जेल में हैं। यह हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र या हमारे समाज के लिए कोई अच्छा नहीं है।

* * *

5. जमानत के प्रावधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ, [(2018) 11 एससीसी 1] में हाल ही में दिए गए निर्णय में विस्तृत और स्पष्ट रूप से समझाया गया है, जो मैग्ना कार्टा के दिनों तक जाता है। उस निर्णय में, गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य [(1980) 2 एससीसी 565] का संदर्भ दिया गया था जिसमें यह देखा गया था कि नागेंद्र बनाम किंग-एम्परर [एआईआर 1924 कैल 476] में यह माना गया था कि सजा के तौर पर जमानत नहीं रोकी जानी चाहिए। एम्परर बनाम हचिंसन [एआईआर 1931 ऑल 356] का भी संदर्भ दिया गया था जिसमें यह देखा गया था कि जमानत देना नियम है और इनकार करना अपवाद है। इसलिए जमानत का प्रावधान सदियों पुराना है और जमानत के प्रावधान की उदार व्याख्या लगभग एक सदी पुरानी है, जो औपनिवेशिक दिनों से चली आ रही है।"

44. आर्थिक अपराध करने के आरोपी व्यक्ति को जमानत देने के सवाल से निपटने वाले पूर्व के निर्णयों पर विचार करने के बाद, **पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय** (2020) 13 एससीसी 791 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

"23. इस प्रकार, इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय सहित दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत निर्णयों के संचयी अवलोकन से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ***जमानत से संबंधित मूल न्यायशास्त्र वही रहता है क्योंकि जमानत देना नियम है और इनकार करना अपवाद है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर मिले।*** *हालाँकि, इस पर विचार करते समय अपराध की गंभीरता एक पहलू है जिसे न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। उक्त उद्देश्य के लिए गंभीरता को प्रत्येक मामले में उत्पन्न तथ्यों और परिस्थितियों से प्राप्त करना होगा। वित्तीय अनियमितताओं के मामलों में समाज पर पड़ने वाले परिणामों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया है कि* ***आर्थिक अपराध भी "गंभीर अपराध" की श्रेणी में आते हैं और ऐसी परिस्थिति में ऐसे मामलों***

में जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को आरोपी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की प्रकृति के प्रति संवेदनशील होकर उनसे निपटना होगा। अपराध की गंभीरता पर विचार करने की परिस्थितियों में से एक सजा की अवधि भी है जो उस अपराध के लिए निर्धारित की गई है जिसका आरोप आरोपी ने लगाया है। अपराध की गंभीरता के संबंध में ऐसा विचार एक ऐसा कारक है जो सामान्य रूप से लागू किए जाने वाले ट्रिपल टेस्ट या ट्राइपॉड टेस्ट के अतिरिक्त है। इस संबंध में यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भले ही आरोप गंभीर आर्थिक अपराध का हो, यह नियम नहीं है कि हर मामले में जमानत से इनकार कर दिया जाना चाहिए क्योंकि विधायिका द्वारा पारित प्रासंगिक अधिनियम में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं बनाया गया है और न ही जमानत न्यायशास्त्र ऐसा प्रावधान करता है। इसलिए, निष्कर्ष यह है कि आरोप की प्रकृति और गंभीरता से इतर, किसी अन्य मामले की मिसाल अकेले जमानत देने या न देने का आधार नहीं होगी, हालांकि इसका सिद्धांत पर असर हो सकता है। *लेकिन अंततः मामले-दर-मामला आधार पर इसमें शामिल तथ्यों और मुकदमे में खड़े होने के लिए अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने पर विचार करना होगा*

(जोर दिया गया)

45. **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो**, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 825 में अपने हालिया फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आर्थिक अपराधों में जमानत देने के संबंध में कानून को संक्षेप में तर्क दिया है और दोहराया है, जैसा कि इसके पिछले फैसलों में निर्धारित किया गया है, निम्नलिखित शब्दों में:--

"66. अब हमारे लिए आर्थिक अपराधों पर चर्चा करना बाकी है। विचारणीय प्रश्न यह है कि इसे अपने वर्ग के रूप में माना जाना चाहिए या अन्यथा। इस मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा पहले ही पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय (2020)13एससीसी791 के मामले में इस क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले पिछले फैसलों पर ध्यान देने के बाद विचार किया जा चुका है। अपराध की गंभीरता, विशेष अधिनियम का उद्देश्य और उपस्थित परिस्थितियाँ कुछ ऐसे कारक हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए, साथ ही सजा की अवधि भी। ***आखिरकार, एक आर्थिक अपराध को इस तरह वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसमें विभिन्न गतिविधियाँ शामिल हो सकती हैं और एक मामले से दूसरे मामले में भिन्न हो सकती हैं। इसलिए, यह नहीं है न्यायालय को सभी अपराधों को एक समूह में वर्गीकृत करने और उस आधार पर जमानत देने से इनकार करने की सलाह दी जाती है।"***

(बल प्रदत्त)

46. इस प्रकार उपरोक्त मामलों से जो कानूनी स्थिति उभर कर आती है, उसे इस न्यायालय ने **पीयूष कुमार जैन बनाम भारत संघ,** (2022) 121 एसीसी 448 = (2023) 1 इला एलजे 10 में निम्नलिखित शब्दों में संक्षेपित किया है: -

"31. जमानत देने के संबंध में कानून की स्थिति जो ऊपर संदर्भित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से उभर कर आती है, वह यह है कि आर्थिक अपराधों में जमानत से संबंधित मूल

न्यायशास्त्र वही रहता है, क्योंकि जमानत देना नियम है और इनकार करना अपवाद है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर मिले। सभी आर्थिक अपराधों को एक समूह में वर्गीकृत करना और उस आधार पर जमानत देने से इनकार करना उचित नहीं है। अपराध की गंभीरता पर विचार करने के लिए परिस्थितियों में से एक सजा की अवधि है जो अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध के लिए निर्धारित है। भले ही आरोप गंभीर आर्थिक अपराध का हो, यह नियम नहीं है कि हर मामले में जमानत देने से इनकार कर दिया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। विधानमंडल द्वारा पारित प्रासंगिक अधिनियम में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं बनाया गया है और न ही जमानत न्यायशास्त्र में ऐसा प्रावधान है। आर्थिक अपराध सहित किसी भी अपराध में जमानत देने की प्रार्थना पर विचार करते समय न्यायालय को निम्नलिखित बातों पर विचार करना होता है:--

(i) आरोप की प्रकृति और सजा की गंभीरता जिसके लिए पक्षकार दोषसिद्धि के मामले में उत्तरदायी हो सकता है और अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई सामग्री की प्रकृति;

(ii) गवाहों के साथ छेड़छाड़ या शिकायतकर्ता या गवाहों को धमकी की उचित आशंका;

(iii) परीक्षण के समय अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने की उचित संभावना या उसके फरार होने की संभावना;

(iv) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार और स्थिति तथा अभियुक्त के लिए विशिष्ट परिस्थितियाँ;

(v) जनता या राज्य का व्यापक हित और इसी तरह के अन्य विचार।

32. जमानत के लिए प्रार्थना को केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि समुदाय की भावनाएँ अभियुक्त के विरुद्ध हैं। आपराधिक मामले में जमानत का प्राथमिक उद्देश्य अभियुक्त को कारावास से मुक्त करना, राज्य को उसे विचारण तक रखने के भार से मुक्त करना, तथा साथ ही, अभियुक्त को, चाहे दोषसिद्धि से पहले या बाद में, न्यायालय की हिरासत में रखना, यह आश्वासन देना है कि वह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन रहेगा तथा जब भी उसकी उपस्थिति अपेक्षित होगी, वह न्यायालय में उपस्थित होगा।"

47. जब हम मामले के तथ्यों की जांच करते हैं, जैसा कि इस स्तर पर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री से प्रतीत होता है, तो आवेदक के विरुद्ध आरोप यह है कि (i) उसने अन्य सह-आरोपियों के साथ एक आपराधिक षडयंत्र किया तथा उक्त आपराधिक षडयंत्र को आगे बढ़ाने के लिए, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी दिनांक 02.03.2015 के निवेश दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते हुए, यूपीपीसीएल ट्रस्ट के अधिशेष धन को डीएचएफएल की सावधि जमा में निवेश करवा दिया, (ii) आरोपी व्यक्तियों ने गलत और

फर्जी ऑडिटेड बैलेंस शीट और फर्जी वित्तीय विवरणों के आधार पर रेटिंग एजेंसियों से बेईमानी और धोखाधड़ी से उच्च रेटिंग प्राप्त की, (iii) आवेदक और सह-आरोपी धीरज वधावन ने अन्य सह-आरोपियों के साथ आपराधिक षडयंत्र में फर्जी परियोजना ऋण स्वीकृत करने के माध्यम से डीएचएफएल के बैंक खातों से धन को अन्य कंपनियों के बैंक खातों में डायवर्ट किया तथा उक्त धन को अपनी कंपनियों में डायवर्ट किया और उक्त धन का उपयोग किया।

48. ट्रस्ट ने डीएचएफएल की सावधि जमाओं में निवेश किया था, जिसे बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश द्वारा डीएचएफएल पर रोक लगाए जाने के बाद चुकाया नहीं गया है।

49. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न बिंदुओं पर विस्तृत तर्क दिये हैं, जिसमें यह बिंदु भी शामिल है कि आवेदक के विरुद्ध अपराध नहीं बनते हैं। हालाँकि, इस स्तर पर, न्यायालय आवेदक को जमानत देने या न देने के प्रश्न से चिंतित है और न्यायालय इस स्तर पर लघु-परीक्षण नहीं कर सकता है। इन दलीलों को उचित चरण में ट्रायल कोर्ट द्वारा तय किए जाने के लिए खुला छोड़ दिया गया है। **शांति प्रसाद जैन बनाम प्रवर्तन निदेशक, फेरा**, (1963) 2 एससीआर 297 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि: -

> *"37. अब कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि जब बैंक में पैसा जमा किया जाता है, तो बैंकर और ग्राहक के बीच जो संबंध बनता है वह ऋणी और लेनदार का होता है न कि ट्रस्टी और लाभार्थी का। बैंकर को ऐसे उपयोग के लिए जवाबदेह ठहराए बिना धन का उपयोग करने का अधिकार है, उसका एकमात्र दायित्व उसके और ग्राहक के बीच सहमत शर्तों के अनुसार राशि वापस करना है।"*

50. **अनुमति बनाम पंजाब नेशनल बैंक**, (2004) 8 एससीसी 498 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि "*इस प्रकार बैंक जमा की गई राशि के संबंध में खाताधारकों का ऋणी है-एक ऋण जो बैंक द्वारा खाताधारकों को सहमत अवधि की समाप्ति पर ब्याज के साथ चुकाया जाना है।*"

51. इसके विरोध में, श्री. अनुराग कुमार सिंह, सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता ने **शिवनारायण लक्ष्मीनारायण जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य**, (1980) 2 एससीसी 465 पर भरोसा जताया है। मामले के तथ्य यह थे कि अपीलकर्ता 1 ने लक्ष्मी बैंक के प्रबंध निदेशक के पद से इस्तीफा दे दिया था और यह तर्क दिया गया था कि पद छोड़ने के बाद किए गए गबन के लिए उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उच्च न्यायालय ने पाया कि भले ही वह बैंक के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा था और उसने प्रबंध निदेशक के रूप में पद छोड़ दिया था, लेकिन वह सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए पूरे समय बैंक के प्रबंध निदेशक के रूप में कार्य कर रहा था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "*यह निष्कर्ष न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के गहन विश्लेषण और*

विचार पर आधारित है। इस निष्कर्ष के मद्देनजर यह स्पष्ट है कि भले ही प्रथम अपीलकर्ता ने प्रबंध निदेशक के रूप में अपना पद छोड़ दिया हो, फिर भी उसका बैंक के मामलों पर पूरा नियंत्रण था और वह वस्तुतः वास्तविक प्रबंध निदेशक के रूप में कार्य कर रहा था।"

52. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "*निदेशक स्पष्ट रूप से एक ट्रस्टी की स्थिति में था और जो संपत्ति उसके हाथ में आई थी, उसका ट्रस्टी होने के नाते उसका उस पर प्रभुत्व और नियंत्रण था।*" इस प्रकार यह माना गया कि बैंक का निदेशक बैंक की उन संपत्तियों का ट्रस्टी था, जो उसके हाथ में आई थीं और उसका उस पर प्रभुत्व और नियंत्रण था। हालाँकि, उपरोक्त मामले में निवेशक और बैंक के बीच संबंध प्रश्नगत नहीं था।

53. इस प्रकार प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि डीएचएफएल में सावधि जमा में राशि जमा करने से ट्रस्ट और डीएचएफएल के बीच लेनदार और देनदार का संबंध स्थापित होगा और यह किसी भी तरह से सौंपने के समान नहीं होगा, जिससे कि विश्वास भंग करने का अपराध हो। जहां तक 420, 467, 468 और 471 आईपीसी के तहत अपराधों का संबंध है, यह आरोप नहीं लगाया गया है कि आवेदक ने स्वयं उक्त कृत्य किए हैं और यह आरोप लगाया गया है कि उसने साजिश रची और डीएचएफएल के कुछ अधिकारियों के माध्यम से इसे करवाया और उन अधिकारियों को पहले ही जमानत दे दी गई है। हालांकि, चूंकि न्यायालय केवल आवेदक की जमानत देने की प्रार्थना से संबंधित है, इसलिए लघु परीक्षण आयोजित करने और कोई निर्णायक निष्कर्ष दर्ज करने की अनुमति नहीं है और यह उचित स्तर पर ट्रायल कोर्ट द्वारा किया जाएगा।

54. मामले में आरोप-पत्र और 5 पूरक आरोप-पत्र पहले ही दाखिल किए जा चुके हैं और ट्रायल कोर्ट ने पहले ही मामले का संज्ञान ले लिया है।

55. आरोप-पत्र में मामले के 57 गवाहों के नाम दर्ज हैं और मुकदमा अभी शुरू होना है तथा इसे समाप्त होने में निश्चित रूप से बहुत लंबा समय लगेगा और आवेदक को उसके अपराध सिद्ध हुए बिना जेल में रखना उचित नहीं होगा, जब तक कि उसका मामला किसी अपवाद के अंतर्गत न आता हो जो उसे जमानत पर रिहा किए जाने के लिए अयोग्य ठहराता हो।

56. जब आवेदक पहले से ही किसी अन्य मामले में न्यायिक हिरासत में था, तो 24.05.2020 को आवेदक को जेल से ले जाया गया और 26.05.2020 को विशेष न्यायाधीश, सीबीआई, लखनऊ के समक्ष पेश किया गया, जहां से उसे शुरू में 14 दिनों के लिए सीबीआई की हिरासत में भेज दिया गया और उसकी हिरासत में पूछताछ पहले ही हो चुकी है। इसके बाद उसे न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया और तब से आवेदक वर्तमान मामले में जेल में बंद है।

57. ऐसा कोई भी साक्ष्य अभिलेख पर नहीं रखा गया है जिससे यह आशंका उत्पन्न हो कि यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता

है तो वह गवाहों को प्रभावित करेगा या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करेगा।

58. आवेदक को पहले ही अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, सिटी सेशंस कोर्ट/स्पेशल कोर्ट, सी.आर. नंबर 16, मुंबई द्वारा रिमांड आवेदन संख्या 107/2020 में पारित दिनांक 21.02.2020 के आदेश के माध्यम से जांच अधिकारी के समक्ष अपना पासपोर्ट सरेंडर करने का आदेश दिया जा चुका है और इसलिए, उसके भागने का खतरा नहीं दिखता है।

59. चूंकि अन्य सभी आरोपी व्यक्तियों, जिनके विरुद्ध अपराध करने का आरोप है, को वर्तमान मामले में जमानत दे दी गई है, आवेदक, जिसके विरुद्ध अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ साजिश में शामिल होने का आरोप है, वह भी समानता के आधार पर जमानत पाने का हकदार है।

60. उपरोक्त संदर्भित मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, ऐसी कोई सामग्री नहीं है, जो जमानत देने के आधार के विरुद्ध हों।

61. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए और मामले के गुण-दोष को प्रभावित करने वाली किसी भी टिप्पणी के बिना, मेरा विचार है कि आवेदक मुकदमे के समापन तक जमानत पर रिहा होने का हकदार है। तदनुसार जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

62. आवेदक-**कपिल वधावन** को अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण, सीबीआई (पश्चिम), लखनऊ के न्यायालय में विचाराधीन आपराधिक वाद संख्या-370/2020, जो मुकदमा अपराध संख्या-RC0062020A0005, धारा-120-बी, 409, 420, 467, 468, 471 आईपीसी सपठित धारा 7-ए, 8 तथा धारा 13 (2), 13 (1) (डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, पुलिस स्टेशन-सीबीआई/एसीबी, लखनऊ से उत्पन्न हुआ है, में जमानत पर रिहा किया जाए तथा आवेदक को व्यक्तिगत बंधपत्र तथा दस लाख रुपये (₹10,00,000/-) के दो विश्वसनीय जमानतदारों के साथ निचली अदालत की संतुष्टि करने पर, निम्नलिखित शर्तों के अधीन:--

(i) आवेदक सुनवाई के दौरान साक्ष्यों से छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ii) आवेदक किसी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(iii) आवेदक तय तिथियों पर निचली अदालत के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी जाए।

(iv) आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा, जिससे वह अदालत में ऐसे तथ्यों को किसी पुलिस अधिकारी को बताने से विमुख हो जाए या साक्ष्यों से छेड़छाड़ न करे।

63. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में अभियोजन पक्ष जमानत रद्द करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2023) 5 ILRA 1292

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 14402/2023

प्रीतम सिंह ...आवेदक (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री राज कुमार सिंह, श्री सुनील कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

ए. **दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 439- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302- आवेदन- आवेदक, जो मृतक व्यक्ति का भतीजा है, ने पारिवारिक विवाद के कारण अपने चाचा पर चाकू से हमला किया, जिससे उनकी घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई-पीडब्लू-1 महत्वपूर्ण गवाह पक्षद्रोही हो गया- पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता, तथा उसके प्रासंगिक भाग, जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा उपयोग किए जा सकते हैं- जमानत आवेदन में कोई बल नहीं पाया गया- इसलिए निरस्त किया जाता है। (पैरा 1 से 12)**

बी. अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य को सिर्फ़ इसलिए पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे शत्रुतापूर्ण मानकर उससे जिरह की। ऐसे गवाहों के साक्ष्य को पूरी तरह से मिटाया हुआ या रिकॉर्ड से हटा हुआ नहीं माना जा सकता, लेकिन उन्हें इस हद तक स्वीकार किया जा सकता है कि उनके बयान को सावधानीपूर्वक जांच के बाद विश्वसनीय पाया जाता है। (पैरा 8)

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भगवान सिंह बनाम हरियाणा राज्य (1976) 1 एससीसी 389: (एआईआर 1976 एससी 202)
2. रवींद्र कुमार डे बनाम उड़ीसा राज्य (1976) 4 एससीसी 233: (एआईआर 1977 एससी 170)
3. सैयद अकबर बनाम कर्नाटक राज्य (1980) 1 एससीसी 30: (एआईआर 1979 एससी 1848)
4. खुज्जी बनाम एम.पी. राज्य (1991) 3 एससीसी 627: (एआईआर 1991 एससी 1853), एससीसी पी. 635, पैरा 6.)
5. उत्तर प्रदेश बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा [(1996) 10 एससीसी 360: (एआईआर 1996 एससी 2766): 1996 एससीसी (क्रि) 1278]
6. सोहराब बनाम एम.पी. राज्य, [(1972] 3 एससीसी 751: (1972) एससीसी (क्रि) 819: एआईआर 1972 एससी 2020]
7. यू.पी. राज्य बनाम एम.के.एंथोनी, [(1985) 1 एस.सी.सी. 505 : 1985 एस.सी.सी. (क्रि) 105]: (ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 48)
8. भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य [(1983) 3 एससीसी 217: 1983 एससीसी (सीआरआई) 728: एआईआर 1983 एससी 753

अनुवादित

9. राजस्थान राज्य बनाम ओम प्रकाश, [(2007) 12 एससीसी 381 : (2008) 1 एससीसी (क्रि) 411]: (एआईआर 2007 एससी 2257)

10. पृथु बनाम एच.पी. राज्य, [(2009) 11 एससीसी 585: (2009) 3 एससीसी (क्रि) 1502]: (एआईआर 2009 एससी 2070)

11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संतोष कुमार, [(2009) 9 एससीसी 626 (2010) 1 एससीसी (क्रि) 88]: (2009 एआईआर एससीडब्लू 6177)

12. राज्य बनाम सरवनन, [(2008) 17 एससीसी 587: (एआईआर 2009 एससी 152): (2010) 4 एससीसी (सीआरआई) 580]

13. विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य (2015) 3 एससीसी 220 : (एआईआर 2015 एससी 1206)

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत्त)

1. सूची को संशोधित किया गया है।

2. आज दायर पूरक शपथ पत्र रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

3. आवेदक के अधिवक्ता श्री सुनील कुमार सिंह और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता वैभव आनंद सिंह को सुना।

4. आवेदक द्वारा केस अपराध संख्या-101 वर्ष 2022 में धारा 302 भ०द०वि०, थाना-डुभार, जिला बलिया के तहत उसे जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत जमानत आवेदन दायर किया गया है।

<u>अभियोजन की कहानी</u>

5. अभियोजन की कहानी के अनुसार, आवेदक, जो मृत व्यक्ति का भतीजा होता है, ने कथित तौर पर अपने चाचा पर चाकू से हमला किया, जिससे पारिवारिक विवाद को लेकर 03.07.2022 को शाम लगभग 4:00 बजे मौके पर ही उसकी मौत हो गई।

<u>प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ</u>

6. आवेदक के अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक बिल्कुल निर्दोष है और उसे प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है। अधिवक्ता ने आगे कहा है कि तथ्य के सभी गवाहों की जांच की गई है और उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है। प्रस्तुत मामले में आवेदक की दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है। अन्य गवाह केवल औपचारिक गवाह हैं। आवेदक की ओर से उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की मिथ्याता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य प्रस्तुतियाँ की गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आवेदक को झूठा फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक 04.07.2022 से जेल में बंद है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

7. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस आधार पर जमानत याचिका का जोरदार विरोध किया है कि सूचनाकर्ता के अ०सा०-1 के रूप में मुख्य परीक्षण 14.11.2021 को लिया गया था और उसने आवेदक के खिलाफ स्पष्ट रूप से गवाही दी है और उसे अपने भाई की मौत का कारण बनने के हमलावर के रूप में

नामित किया है और उसी दिन कुछ जिरह भी की गई थी। इसके बाद, अ०सा०-1 की आगे की जिरह 14.12.2021 को की गई, यानी उक्त मुख्य परीक्षण के लगभग एक महीने बाद और पहले सूचनाकर्ता ने अपने पहले के बयान से मुकर गया है और उसे शासकीय अधिवक्ता द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

निष्कर्ष

8. मुकरने वाले गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, और उसके प्रासंगिक हिस्से जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा उपयोग किए जा सकते हैं। राजेश यादव और अन्य. आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मुकर जाने वाले गवाहों के साक्ष्य मूल्य से निपटा है। प्रासंगिक पैराग्राफ को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

22. एक मुद्दे पर एक गवाह की गवाही से निपटने में निर्धारित कानून पर, हम सी. मुनियप्पन बनाम भारत संघ के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करना चाहेंगे। तमिलनाडु राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी. 567: (ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 3718):

"81. यह तय कानूनी प्रस्ताव है कि:

"6. ... अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही माना और उससे जिरह की। ऐसे गवाहों के साक्ष्य को उपेक्षित या रिकॉर्ड से पूरी तरह से मिटाया नहीं जा सकता है, लेकिन इसे इस हद तक स्वीकार किया जा सकता है कि उनका संस्करण सावधानीपूर्वक जांच करने पर निर्भर पाया जाता है। (वीडी भगवान सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1976) 1 एस.सी.सी. 389: (ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 202), रवींद्र कुमार डे बनाम उड़ीसा राज्य, (1976) 4 एस.सी.सी. 233: (ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 170), सैयद अकबर बनाम कर्नाटक राज्य, (1980) 1 एस.सी.सी. 30: (ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 1848) और खुज्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1991) 3 एस.सी.सी. 627: (ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1853), एस.सी.सी. पी. 635, पैरा 6.)

82. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा (1996) 10 एस.सी.सी. 360: (ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 2766): 1996 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1278] में इस न्यायालय ने कहा कि (एस.सी.सी. पृष्ठ 363, पैरा 7 पर) एक पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य को, यदि अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में बोला जाता है, पूरी तरह से खारिज नहीं किया जाएगा लेकिन गहन जांच के अधीन होना आवश्यक है और साक्ष्य का वह हिस्सा जो अभियोजन पक्ष के मामले के अनुरूप है या बचाव पर भरोसा किया जा सकता है। इसी तरह के विचार को इस न्यायालय ने बालू सोनबा शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2002)7 एस.सी.सी. 543 2003 एस.सी.सी. (सीआरआई) 112] (ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 3137), गगन कनौजिया बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2002) 7 एस.सी.सी. 543 2003 एस.सी.सी. (सीआरआई) 112] (ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 3137), गगन कनौजिया बनाम महाराष्ट्र राज्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2002) 7 एस.सी.सी. 543 2003 एस.सी.सी. (सीआरआई) 112] (ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 3137), गगन कनौजिया बनाम महाराष्ट्र राज्य बनाम

महाराष्ट्र राज्य बनाम महाराष्ट्र राज्य पंजाब राज्य [(2006) 13 एस.सी.सी. 516: (2008) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 109] (ए.आई.आर.ओ 2006 एस.सी. 574), राधा मोहन सिंह बनाम पंजाब राज्य [(2006) 13 एस.सी.सी. 516: (2008) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 109] (ए.आई.आर.ओ 2006 एस.सी. 574), राधा मोहन सिंह बनाम पंजाब राज्य बनाम पंजाब राज्य [(2006) 13 एस.सी.सी. 516: (2008) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 109] (ए.आई.आर.ओ 2006 एस.सी. 574), राधा मोहन सिंह बनाम पंजाब राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2006) 2 एस.सी.सी. 450: (2006) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 661: (ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 951)], सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दरोगा सिंह [(2007) 13 एस.सी.सी. 360: (2009) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 188]: (ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 320) और सुब्बू सिंह बनाम सुब्बू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2006) 2006 एस.सी.सी. 450: (2006) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 661 (ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 951)], सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दरोगा सिंह [(2007) 13 एस.सी.सी. 360: (2009) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 188] : (ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 320) और सुब्बू सिंह बनाम सुब्बू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य राज्य [(2009) 6 एस.सी.सी. 462: (2009) 2 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1106] (2009 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू 3937) मामले में दोहराया है।

83. इस प्रकार, कानून एक पक्षद्रोही गवाह के सबूत पूर्ण रूप में खारिज नहीं किया जा सकता है कि प्रभाव के लिए संक्षेप किया जा सकता है, और कानून में स्वीकार्य हैं जो उसके प्रासंगिक भागों, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

84. इस मामले में, कुछ महत्वपूर्ण गवाह अर्थात बी. कमल (अ०सा०-86) और आर. मारुथु (अ०सा०-51) मुकर गए। उनके साक्ष्य को निचली अदालतों ने कानून के अनुसार सख्ती से ध्यान में रखा है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा अ०सा०-के साक्ष्य में कुछ चूक, सुधार की ओर इशारा किया गया है, लेकिन हम उन्हें प्रकृति में बहुत तुच्छ पाते हैं।

85. यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि भले ही कुछ चूक, विरोधाभास और विसंगतियां हों, पूरे सबूत की अवहेलना नहीं की जा सकती है। असत्य, अतिशयोक्ति और सुधारों से सत्य को अलग करने के लिए सावधानी और सतर्कता बरतने और सबूतों के माध्यम से छानने के बाद, अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि क्या अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए अवशिष्ट साक्ष्य पर्याप्त हैं। इस प्रकार, चूक, विरोधाभासों और विसंगतियों को अनुचित महत्व नहीं दिया जाना चाहिए जो मामले की तह तक नहीं जाते हैं और अभियोजन पक्ष के गवाह के मूल संस्करण को हिला देते हैं। चूंकि घटना के सभी विवरणों को अवशोषित करने के लिए इंसान की मानसिक क्षमताओं को अभ्यस्त करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है, गवाहों के बयानों में मामूली विसंगतियां होना तय है। "सोहराब बनाम मध्य प्रदेश राज्य, [(1972] 3 एस.सी.सी. 751: (1972) एस.सी.सी. (सीआरआई) 819: ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 2020], उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एमके एंथोनी, [(1985) 1 एस.सी.सी. 505: 1985 एस.सी.सी. (सीआरआई) 105]:

(ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 48), भरवाड़ा भोगीभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, [(1983) 3 एस.सी.सी. 217: 1983 एस.सी.सी. (सीआरआई) 728: ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 753], राजस्थान राज्य बनाम ओम प्रकाश, [(2007) 12 एस.सी.सी. 381: (2008) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 411]: (ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 2257), पृथु बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, [(2009) 11 एस.सी.सी. 585: (2009) 3 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1502]: (ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 2070), उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संतोष कुमार, [(2009) 9 एस.सी.सी. 626: (2010) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 88] : (2009 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू 6177) और राज्य बनाम सरवनन, [(2008) 17 एस.सी.सी. 587: (ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 152): (2010) 4 एस.सी.सी. (सीआरआई) 580]।

23. विनोद कुमार बनाम भारत संघ के मामले में इस न्यायालय ने पंजाब राज्य, (2015) 3 एस.सी.सी. 220: (ए.आई.आर. 2015 एस.सी. 1206) में पहले ही एक ऐसी स्थिति से निपटा था जहां एक गवाह ने अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुरूप गवाही देने के बाद, पैंतरेबाज़ी के कार्य की अनुमति देने वाले लंबे स्थगन को देखते हुए इसे पूरी तरह से छोड़ दिया था। बहुधा होने वाली ऐसी स्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इसने अपनी पीड़ा व्यक्त की और कहा कि:

"51. यह हालांकि दर्दनाक लेकिन आवश्यक है, यह नोट करने के लिए कि अ०सा०-7 की 30-9-1999 को मुख्य जांच की गई थी और लगभग 1 साल और 8 महीने के बाद 25-5-2001 को जिरह की गई थी। उक्त जिरह में देरी, जैसा कि हमने पहले कहा है, ने कई कारणों से टालमटोल के लिए पर्याप्त समय दिया था। एक निष्पक्ष सुनवाई बचाव पक्ष और अभियोजन पक्ष दोनों के साथ-साथ पीड़ित के लिए भी निष्पक्ष होनी चाहिए। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत दर्ज अपराध पर पूरी गंभीरता से विचारण किया जाना चाहिए। हम इस बात की मूल्यांकन करने में विफल हैं कि विद्वान विचारण न्यायाधीश इस प्रकार के मामले में प्रतिपरीक्षा के लिए इतना समय देने में इतनी शिथिलता कैसे प्रदर्शित कर सकते हैं। विद्वान विचारण न्यायाधीश की ओर से यह नितांत उचित होता कि वह उक्त गवाह की परीक्षा के दिन प्रतिपरीक्षा समाप्त कर दे। जैसा कि स्पष्ट है, बिना किसी कारण के इसे स्थगित कर दिया गया और 20 महीने बाद प्रतिपरीक्षा हुई। साक्षी के पास दुनिया में हासिल करने के लिए हर समय था। हम पहले ही कह चुके हैं कि उन्हें मुकर जाने वाला घोषित किया गया और फिर से जांच की गई।

52. यह एक पक्षद्रोही गवाह की गवाही अभियोजन पक्ष के साथ ही बचाव पक्ष द्वारा पर भरोसा किया जा सकता है कि कानून में तय है। लोक अभियोजक द्वारा पुन: परीक्षा में, अ०सा०-7 ने 13-9-1999 को अदालत में अपने बयान की शुद्धता के बारे में स्वीकार किया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने अदालत के पीठासीन अधिकारी को लिखित या मौखिक रूप से कोई शिकायत नहीं की थी कि इंस्पेक्टर उन्हें अदालत में गलत बयान देने के लिए धमका रहा था। उनके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि उन्होंने निरीक्षक द्वारा झूठे फंसाए जाने के डर से अदालत में बयान दिया था। वह अपने दिनांक 13-9-1999

के वक्तव्य को पढ़ने और इसे सही मानने के बाद हस्ताक्षर करने के लिए सहमत हो गए हैं। पुनः परीक्षा में यह आया है कि अ०सा०-7 ने न्यायालय में दिनांक 13-9-1999 के अपने बयान में यह नहीं कहा था कि अभियुक्त से उसकी उपस्थिति में दागी धन की बरामदगी नहीं की गई थी या उसे निरीक्षक द्वारा बताया गया था कि अभियुक्त से राशि वसूल की गई है। उन्होंने अपने उक्त बयान में यह भी नहीं कहा था कि आरोपियों और गवाहों को तहसील में ले जाया गया था और यह वहां था कि उन्होंने सभी ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए थे।

53. सबूतों को पूरी तरह से पढ़ने पर, अ०सा०-7 के सबूतों को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। जिरह में देरी के कारण वह मुख्य परीक्षण से दूर हो गया है। लेकिन, एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी मुख्य परीक्षा और पुन जांच हमें इस गवाही को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है कि वह चुंगी पर गए थे और अभियुक्त द्वारा धन की मांग और स्वीकार किए जाने के बारे में देखा था। अपनी जिरह में उसने कहा है कि वह बाज सिंह के साथ कभी भी सतर्कता विभाग नहीं गया था और उसकी मौजूदगी में कोई बरामदगी नहीं हुई थी। गवाही का उक्त हिस्सा, हमारे सुविचारित विचार में, मुख्य परीक्षण और पुन: परीक्षा में संपूर्ण साक्ष्य की पृष्ठभूमि में स्वीकृति की संस्तुति नहीं करता है।

57. मामले के साथ भाग लेने से पहले हम जो हमने शुरुआत में कहा है उसे दोहराने के लिए विवश हैं। जिस तरह से निचली अदालतों द्वारा भ्रष्टाचार से संबंधित गंभीर अपराधों के संबंध में मुकदमे चलाए जा रहे हैं, उसके लिए हमने अपना दर्द और पीड़ा व्यक्त की है:

57.1. अधिवक्ता द्वारा, एक परीक्षण अवधारित करने के सभी सिद्धांतों के विपरीत तुरंत ही स्थगन की मांग की जाती है। भले ही गवाह अदालत में मौजूद हो, इसके अलावा, गवाह की जिरह समाप्त होने के बाद, प्रतिपरीक्षा के लिए स्थगन की मांग की जाती है और परेशान करने वाली बात यह है कि विचारण न्यायालय समय प्रदान करते हैं। कानून में समय प्रदान करने के लिए विशेष कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता होती है लेकिन उन पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

57.2. जैसा कि पहले देखा गया है, इस मामले में प्रतिपरीक्षा एक साल और 8 महीने के बाद हुई है, जिससे गवाह पर दबाव डालने और सभी प्रकार की रणनीति अपनाकर उस पर हावी होने के लिए पर्याप्त समय मिल गया है।

57.3. इस प्रस्ताव पर कोई लापरवाही नहीं है कि एक निष्पक्ष और उचित सुनवाई होनी चाहिए, लेकिन मुकदमे का संचालन करते समय अदालत का कर्तव्य कानून के जनादेश, वैचारिक निष्पक्षता और सबसे बढ़कर रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री के आधार पर सच्चाई तक पहुंचने के अपने पवित्र कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए निर्देशित होना है। यदि कोई अभियुक्त अपने लाभ के लिए मुकदमे को पूरी तरह मज़ाक बनाने की कोशिश करता है तो इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अदालत का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह यह देखे कि मुकदमा कानून के अनुसार संचालित हो। यदि इस तरह से स्थगन दिया जाता है तो यह कानून के शासन का उल्लंघन होगा और अंततः इस तरह के परीक्षणों को एक तमाशा में बदल देगा। यह कानूनी रूप से अनुमेय और न्यायिक रूप से घृणित है। कानून में विचारण न्यायालय

से अपेक्षा की जाती है कि वे विचारण से संबंधित प्रक्रिया के आदेश का पालन करें और गैर-स्वीकार्य कारणों से स्थगन देने के अधिवक्ता के अनुरोध को न मानें।

57.4. वास्तव में, इतने लंबे समय के बाद जिरह के लिए गवाह को बुलाना बिल्कुल भी सराहनीय नहीं है। यह जरूरी है कि यदि मुख्य परीक्षण समाप्त हो गई है, तो उसी दिन जिरह पूरी की जानी चाहिए। यदि गवाह की परीक्षा देर तक जारी रहती है, तो मुकदमे को जिरह के लिए अगले दिन के लिए स्थगित किया जा सकता है। कानून में यह अकल्पनीय है कि जिरह को इतने लंबे समय के लिए टाला जाए। यह उचित और निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा के लिए अभिशाप है।

57.5. अदालत का कर्तव्य यह देखना है कि न केवल कानून के अनुसार अभियुक्त के हित की रक्षा की जाती है, बल्कि सामाजिक और सामूहिक हित की भी रक्षा की जाती है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय के कई निर्णयों के बावजूद, स्थगन देने की आदत, जो वास्तव में एक बीमारी है, जारी है। हम कब तक कहेंगे, "जागो! उठो!"। व्याकुलता लगातार बनी रहती है। इसलिए, हम यह उचित समझते हैं कि निर्णय की प्रतियां सभी उच्च न्यायालयों के विद्वान मुख्य न्यायाधीशों को भेजी जाएं ताकि वे विचारण से संबंधित सिद्धांतों का अपेक्षित तरीके से पालन करने के आदेश के साथ विचारण से संबंधित सिद्धांतों का पालन कर सकें और गवाह की जिरह को उनकी इच्छा से या बचाव पक्ष के अधिवक्ता के अवकाश पर स्थगित न करें। क्योंकि यह अंततः मुकदमे को मुकदमे के लिए बहाना बनाता है और पूरे समाज को धोखेबाजी का शिकार होने के लिए मजबूर करता है। यह याद रखना चाहिए कि कानून को अकेला, एक बेसहारा छोड़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। धारा 33, भारतीय साक्ष्य अधिनियम

"33. साबित करने के लिए कुछ साक्ष्य की प्रासंगिकता, बाद की कार्यवाही में, उसमें बताए गए तथ्यों की सत्य-न्यायिक कार्यवाही में एक गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य, या इसे लेने के लिए कानून द्वारा अधिकृत किसी भी व्यक्ति से पहले, साबित करने के उद्देश्य से प्रासंगिक है, बाद की न्यायिक कार्यवाही में, या उसी न्यायिक कार्यवाही के बाद के चरण में, तथ्यों की सच्चाई जो यह बताती है, जब गवाह मर चुका है या नहीं मिल सकता है, या सबूत देने में असमर्थ है, या प्रतिकूल पक्ष द्वारा रास्ते से बाहर रखा गया है, या यदि उसकी उपस्थिति देरी से, या खर्च की राशि के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती है, जो मामले की परिस्थितियों में, न्यायालय अनुचित मानता है:

बशर्ते - कि कार्यवाही एक ही पक्ष या उनके प्रतिनिधियों के हित में थी; कि पहली कार्यवाही में प्रतिकूल पक्ष को जिरह करने का अधिकार और अवसर था; कि मुद्दे में प्रश्न पहली कार्यवाही में काफी हद तक समान थे।

स्पष्टीकरण- एक आपराधिक परीक्षण या जांच को इस धारा के अर्थ के भीतर अभियोजक और अभियुक्त के बीच एक कार्यवाही माना जाएगा।

24. धारा 33 सामान्य नियम का अपवाद है जो गवाह से जिरह करने के लिए पर्याप्त सुविधा को अनिवार्य करता है। हालांकि, ऐसे मामले में जहां एक गवाह ने मुख्य परीक्षा पूरी होने के बाद और उसे पर्याप्त और कठोर जिरह के अधीन करते हुए, जानबूझकर गवाह के

कठघरे में जाने का विकल्प नहीं चुना, यह अदालत के लिए है कि वह उक्त साक्ष्य का उचित उपयोग करे। जिन मुद्दों पर साक्ष्य पूरे हो गए हैं, उन्हें अदालत द्वारा इस तरह माना जा सकता है और फिर आगे बढ़ा जा सकता है। परिणामस्वरूप, जिन मुद्दों के लिए जिरह समाप्त नहीं हुई है, वे पूरी परीक्षा को अग्राह्य बना देंगे। अंततः यह पूर्वोक्त पहलू अदालत को ही तय करना है।

9. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अ०सा०-1 ने स्पष्ट रूप से आवेदक को हमलावर होने के लिए नामित किया है, मुझे आवेदक को जमानत देने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं लगता है।

10. जमानत आवेदन योग्यता से रहित पायाजाता है और तदनुसार, खारिज किया जाता है।

11. हालांकि, यह निर्देश दिया जाता है कि विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित पूर्वोक्त मामले का फैसला विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य और हुसैन और अन्य बनाम भारत संघ के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, यदि कोई कानूनी बाधा नहीं है तो जल्द से जल्द किया जाए।

12. यह स्पष्ट किया जाता है कि यहां की गई टिप्पणियां जमानत आवेदन के निपटान से संबंधित पक्षों द्वारा लाए गए तथ्यों तक सीमित हैं और उक्त टिप्पणियों का परीक्षण के दौरान मामले के गुणों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

(2023) 5 ILRA 1297

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति गौतम चौधरी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 25623/ 2022

बृजेश यादव ...आवेदक (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री शेषनाथ सिंह यादव, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अथर्व दीक्षित, श्री औशिम लूथरा, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. **आपराधिक कानून -आपराधिक संहिता, 1973-धारा 439 - धारा 7 सीएलए अधिनियम भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147] 149] 323] 302-** वादी मुकदमा अपने धारा 161 दं0प्र0सं0 के बयान में कथन किया है कि उसका तथा उसके पट्टीदार से बॅटवारे को लेकर काफी दिनों से विवाद चल रहा है, कथित घटना की तिथि एवं समय पर स्कार्पियो गाड़ी सं0 यूपी 61 एपी 4999 से विपक्षी का बहनोई दरवाजे पर आये जहाॅ पर दो मोटरसाईकिल से हरेराम यादव, हरेकृष्ण यादव, हरिशंकर यादव व केशव यादव मौजूद थे, मौके पर सभी लोग आपस में बात किये, वह बगल में खड़ा था तो सभी लोग उसे मारने पीटने लगे। तब तक उसकी मा रेनू यादव उसे बचाने आयी तो उनको भी मारने पीटने लगे।शोर सुनकर

उसके पिता अवधेश यादव मौके पर आये तो सभी लोग उनसे उलझ गये और मारने पीटने लगे तथा आवेदक बृजेश यादव ने उसके पिता को गोली मार दिया तथा उन्हें अस्पताल ले जाते समय रास्ते में उनकी मृत्यु हो गयी। गाॅव के लोग आवेदक बृजेश यादव व किशुन यादव को पकड़ लिये थे और काफी मारपीट किया था तथा वे लोग उन्हें थाने लेकर गये थे, जहाॅ से दोनों को अस्पताल भेजा गया। बयान मजरूबा रेनू यादव ने भी अपने बयान अन्तर्गत धारा 161 दं0प्र0सं0 में अभियोजन कथानक का समर्थन किया है तथा आवेदक बृजेश यादव द्वारा उसके पति को गोली मारने का कथन किया है। साक्षीगण धर्मादेवी, अरविन्द यादव, तहसीलदार यादव, तालुक राज यादव आदि ने भी आवेदक बृजेश यादव द्वारा मृतक अवधेश यादव को गोली मारने का कथन किया है। फर्द बरामदगी के अनुसार आवेदक की निशानदेही पर हत्या में प्रयुक्त आग्नेयास्त्र भी बरामद हुआ है। तर्को के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध सारवान तथ्यों एवं परिस्थितियों का समग्र रूप से अवलोकन करने के बाद, सबूतों की प्रकृति और किसी भी ठोस विरोधात्मक सामग्री की अनुपस्थिति एवं उपलब्ध सामग्री से छेड़छाड़ की संभावना न होने के तथ्य को देखते हुए मेरी राय में आवेदक को जमानत पर मुक्त करने का उपयुक्त आधार है।

आवेदन अस्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राजस्थान राज्य बनाम बालचंद @ रिटर्न (1978) एआईआर 2447
2. बाबू राम और अन्य बनाम पंजाब राज्य (2008) सीआरएलजे 1651
3. मनफूल सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2019)(105 एसीसी 284

(माननीय न्यायमूर्ति गौतम चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

वर्तमान दाण्डिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र, आवेदक बृजेश यादव की ओर से मु.अ.सं. 322 सन 2020, अन्तर्गत धारा 147, 149, 323, 302 भा०दं०वि० एवं धारा 7 सी०एल०ए० ऐक्ट, थाना नन्दगंज, जिला गाजीपुर में जमानत पर मुक्त करने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

वाद के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि वादी मुकदमा अभिषेक यादव उर्फ गोलू यादव द्वारा संबंधित थाने में तहरीर दी गयी कि उसका तथा उसके पड़ोसी शेभनाथ यादव से जमीन के हिस्से को लेकर काफी दिनों से विवाद चल रहा है । दि0 21-10-2020 को सुबह 9.00 बजे के करीब स्कार्पियो गाड़ी सं0 यू0पी0 61 ए0पी0 4999 से विपक्षी हरे राम यादव का बहनोई बृजेश यादव अपने एक साथी किशन यादव के साथ उसके दरवाजे पर आये जहाँ पर हरेराम यादव, हरेकृष्ण यादव, हरिशंकर यादव तथा केशव यादव मिले तथा आपस में बात किये और वह वहीं पर खड़ा था, उसे पकड़कर मारने लगे। उसकी माता रेनू यादव उसे बचाने आयी तो उनको भी मारने-पीटने लगे। शोर सुनकर उसके पिता अवधेश यादव मौके पर आये तो सभी लोग उनसे उलझ गये और मारने पीटने लगे तथा बृजेश यादव ने पिस्टल निकालकर उसके पिता को गोली मार दी जिनको लेकर वह लोग अस्पताल

भागे लेकिन रास्ते में उनकी मृत्यु हो गयी। गाँव के लोग घेरकर बृजेश यादव और किशन यादव को पकड़कर थाने लाये हैं। घटना के समय गाँव में अफरा-तफरी मच गयी, सभी लोग डर कर अपने-अपने घर का दरवाजा बन्द करने लगे। मौके पर काफी भय का माहौल हो गया। सभी लोग घबड़ाकर इधर-उधर भागने लगे। प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखकर कार्यवाही करने की कृपा करें। उक्त तहरीर के आधार पर अभियुक्तगण बृजेश यादव, किशन यादव, हरेराम यादव, हरेकृष्ण यादव, हरिशंकर यादव तथा केशव यादव के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 149, 323, 302 तथा धारा 7 सी०एल०ए० ऐक्ट के तहत मु0अ0सं0 322 सन 2020, थाना नन्दगंज, जिला गाजीपुर में प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत कर विवेचना प्रारम्भ की गयी ।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री शेष नाथ सिंह यादव एवं उनके वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी० पी० श्रीवास्तव, परिवादी के विद्वान अधिवक्तागण सर्वश्री अथर्व दीक्षित, ए० लूथरा तथा उनके वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अनिल कुमार कुशवाहा को सुना तथा पत्रावली का परिशीलन किया।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि :-

1- आवेदक को इस प्रकरण में गलत एवं फर्जी तरीके से झूठा फँसाया गया है, उसने कथित अपराध कारित नहीं किया है।

2- वर्तमान जमानत आवेदन पत्र से संबंधित अपराध दि0 21-10-2020 को 9 बजे प्रातः का कहा जाता है और उसी दिन 9.48 पर संबंधित थाने पर प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखायी जाती है। कुल मिलाकर 6 अभियुक्तों का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में लिखाया गया है, जिसमें केवल आवेदक को पिस्टल निकालकर सूचनाकर्ता के पिता को मारना कहा जाता है एवं दो घायल को अन्य द्वारा मारने हेतु नामित किया गया है।

3- मृतक अवधेश यादव को शव विच्छेदन आख्या के अनुसार मृतक को एक गोली की चोट है, अन्य घायलों के चिकित्सीय परीक्षण आख्या के अनुसार लाठी डण्डे से मारा गया है।

4- आवेदक अपने सास की सर्पदंश की सूचना पर अपने ससुराल जा रहा था कि रास्ते में पहले से घात लगाकर बैठे वादी मुकदमा व उसके दोस्त व उसके परिवार के सदस्य आवेदक व चचेरे भाई किशन यादव को मारने पीटने लगे। इसी दौरान मृतक बीच बचाव करने लगा कि वादी मुकदमा के दोस्त ने फायर कर दिया जिससे मृतक को गोली लग गयी और उसकी मृत्यु हो गयी।

5- इस घटनाक्रम का एक कास केस भी है, जिसे धारा 156 (3) दं०प्र०सं० के अन्तर्गत सात आदमियों के विरूद्ध प्रस्तुत किया गया, जिसे अवर न्यायालय ने परिवाद के रूप में पंजीकृत किया तथा आदेश दि0 15-5-2022 द्वारा दूसरे पक्ष को धारा 323, 325, 379, 427, 504, 506 भा0दं०वि० के अन्तर्गत तलब किया गया।

6- इस मामले में आवेदक बृजेश यादव को दि0 21-10-2020 को ही अपराह्न 2.35 बजे बी0एच0यू0 के हास्पिटल में उपचार कराया गया, आवेदक को एक्स-रे के लिए भी भेजा गया और उसका दाहिना अलना फैक्चर पाया गया, दाहिना Navicular Fracture पाया गया एवं बांया distal fibula fracture पाया गया।

7- उसी दिन आवेदक की ओर से दूसरे घायल किशन यादव का भी उपचार बी0एच0यू0 में कराया गया।

8- घटना घटित होने के समय आवेदक भी घायल अवस्था में था ऐसी स्थिति में उसके द्वारा किसी को चोट नहीं पहुॅचायी जा सकती।

9- विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि न्यायहित में यह आवश्यक है कि अभियोजन पक्ष इस बात को बतावें कि आवेदक/अभियुक्त पक्ष को चोटें कैसे आयीं, यदि अभियोजन इस बात को नहीं बताता है तो जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने Lakshmi Singh Vs. State of Bihar, (1976 SCC (4) 397) में निर्धारित किया है कि अभियोजन सही तथ्य को सामने नहीं ला रहा है तो ऐसी स्थिति में निम्नलिखित तीन धारणायें स्थापित की गयीं।

1- अभियोजन सही तथ्यों को छुपा रहा है।

2- घटना की शुरूआत क्या है इसे वादी पक्ष छुपा रहा है।

3- गवाह झूठ बोल रहे हैं।

10- यह व्यवस्था आज भी सर्वमान्य है तथा Babu Ram & Another Vs. State of Punjab 2008 CRLJ 1651 तथा 2019 (105) ACC 284 Manfool Singh Vs. State of Haryana एवं अन्य बहुत से वाद के निर्णयों में भी मान्यता प्राप्त है।

11- आवेदक निर्दोष है तथा वह इस प्रकरण में दि0 21-10-2020 से कारागार में निरूद्ध है, इसलिए आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाय।

परिवादी के विद्वान अधिवक्तागण एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का प्रबल विरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया किः-

1- मृतक के शव परीक्षण आख्या के अवलोकन से पाया गया है कि मृतक अवधेश यादव की मृत्यु का कारण Haemorrhagic shock as a result of antemortem firearm injury दर्शित किया गया है तथा मृतक के एण्टीमार्टम इंजरीज के रूप में निम्नलिखित चोटें पायी गयी हैं।

3. आग्नेयास्त्र से फटा हुआ घाव। प्रवेश होने के आकार का 0.7 सेमी x 0.5 सेमी व्यास का उलटा घाव। अंडाकार आकार में, छाती के दाहिने निप्पल से 7.5 सेमी ऊपर घाव के चारों ओर 0.25 सेमी काला निशान। विच्छेदन के बाद यह दाईं ओर के प्लेयूरा, फेफड़े के तीसरे और चौथे

ऊपरी भाग तथा बाईं ओर के प्लेयूरा, फेफड़े के ऊपरी भाग के बीच पसलियों

से होकर गुजरता है, तथा बाईं प्लेयूरा और बाईं छाती की दीवार के बीच पीली धातु की गोली बरामद की गई।

4. आग्नेयास्त्र से फटा हुआ घाव, उलटा घाव जिसका प्रवेश आकार 0.7 सेमी x 0.5 सेमी व्यास का है। अंडाकार आकार, घाव के चारों ओर 0.25 सेमी काला निशान मौजूद, दाएं कलाई के जोड़ से 12 सेमी ऊपर (आंतरिक पार्श्व की ओर) और कोहनी के जोड़ से 14 सेमी दूर और रेडियस और अल्ना हड्डी से होकर गुजरता है, फ्रैक्चर, 1.25 सेमी x 1 सेमी 15 सेमी आकार का बाहर निकला हुआ घाव, कोहनी के जोड़ से 15 सेमी नीचे और दाएं कलाई के जोड़ से 10 सेमी ऊपर (बाहरी पार्श्व की ओर)

2- घटना के संबंध में वादी मुकदमा अभिषेक यादव उर्फ गोलू यादव ने अपने धारा 161 दं०प्र०सं० के बयान में कथन किया है कि उसका तथा उसके पट्टीदार शोभनाथ यादव से बॅटवारे को लेकर काफी दिनों से विवाद चल रहा है, पूर्व में भी बातचीत हो चुकी है।

3- कथित घटना की तिथि एवं समय पर स्कार्पियो गाड़ी सं० यूपी 61 एपी 4999 से विपक्षी हरेराम यादव का बहनोई बृजेश यादव, किशन यादव दरवाजे पर आये जहाँ पर दो मोटरसाईकिल से हरेराम यादव, हरेकृष्ण यादव, हरिशंकर यादव व केशव यादव मौजूद थे, मौके पर सभी लोग आपस में बात किये, वह बगल में खड़ा था तो सभी लोग उसे मारने पीटने लगे। तब तक उसकी मॉ रेनू यादव उसे बचाने आयी तो उनको भी मारने पीटने लगे।

4- शोर सुनकर उसके पिता अवधेश यादव मौके पर आये तो सभी लोग उनसे उलझ गये और मारने पीटने लगे तथा आवेदक बृजेश यादव ने उसके पिता को गोली मार दिया तथा उन्हें अस्पताल ले जाते समय रास्ते में उनकी मृत्यु हो गयी।

5- गॉव के लोग आवेदक बृजेश यादव व किशुन यादव को पकड़ लिये थे और काफी मारपीट किया था तथा वे लोग उन्हें थाने लेकर गये थे, जहाँ से दोनों को अस्पताल भेजा गया।

6- बयान मजरूबा रेनू यादव ने भी अपने बयान अन्तर्गत धारा 161 दं0प्र0सं0 में अभियोजन कथानक का समर्थन किया है तथा आवेदक बृजेश यादव द्वारा उसके पति को गोली मारने का क किया है।

7- साक्षीगण धर्मादेवी, अरविन्द यादव, तहसीलदार यादव तालुक राज यादव आदि ने भी आवेदक बृजेश यादव द्वारा मृतक अवधेश यादव को गोली मारने का कथन किया है।

8- फर्द बरामदगी के अनुसार आवेदक की निशानदेही पर हत्या में प्रयुक्त आग्नेयास्त्र भी बरामद हुआ है।

9- परिवादी द्वारा आवेदक एवं अन्य अभियुक्तगण को झूठा आरोपित करने का कोई हेतुक नहीं है।

10- आवेदक द्वारा कारित अपराध संज्ञेय एवं गम्भीर प्रकृति का है, इसलिए आवेदक को जमानत पर न छोड़ा जाय।

मैंने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का गहनतापूर्वक परिशीलन किया तथा उभय पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर सम्यक रूप से विचार किया। मेरा अभिमत है कि :-

1- **Rajasthan Vs. Balchand alias Baliay (AIR 2447, 1978)** के ऐतिहासिक फैसले में 1978 के मामले में सटीक रूप से कहा गया है कि: "मूल नियम को शायद जमानत के रूप में रखा जा सकता है, जेल नहीं।" इसे आधार बनाने के लिए भारत के संविधान के तहत एक अभियुक्त को गारंटीकृत अधिकारों पर जोर दिया। इन अधिकारों में सबसे विशिष्ट अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत दिया गया अधिकार है। किसी व्यक्ति की हिरासत उसके जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को प्रभावित करती है और हिरासत का मुख्य उद्देश्य बिना किसी असुविधा के मुकदमे के लिए आरोपी की आसानी से उपलब्धता सुनिश्चित करना है।

2- इस प्रकार, यदि यह सुनिश्चित किया जाता है कि अभियुक्त विचारण चरण के लिए आवश्यक होने पर उपलब्ध हो, तो व्यक्ति को हिरासत में लेना अनिवार्य नहीं है। इसलिए, यह माना गया कि अदालतों को, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से संबंधित दंड प्रक्रिया संहिता (सी०आर०पी०सी०) के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, हिरासत से बचना चाहिए जब तक कि यह अपरिहार्य न लगे और आरोपी को जमानत दे देनी चाहिए।

3- मानवाधिकार सक्रियता पिछले कुछ वर्षों में अधिक विकसित हुई है और वर्तमान में जेल में डाले जा रहे किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज के हित के बीच संतुलन की समझ की आवश्यकता है। इसलिए, दोनों के बीच इस तरह के संतुलन को बनाए रखने के लिए यह विचार करना बहुत महत्वपूर्ण है कि जब तक कोई मजबूत आधार न हो जैसे कि एक अभियुक्त के न्याय से भागने की संभावना या उसके द्वारा सबूतों से छेड़छाड़ करने या मामले के गवाह या पीड़ित को धमकी देने की संभावना, किसी अभियुक्त को हिरासत में लेने से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसे दिए गए उसके मौलिक अधिकार यानी जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होगा।

4- इसके अलावा, सजा के सुधारवादी सिद्धांत का प्रयोग दंड के दो अन्य सिद्धांतों क्रमश: निवारक सिद्धांत और दंडात्मक सिद्धांत के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। सुधारवादी सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य एक अभियुक्त को सुधारना और उसे जेल में आदतन अपराधियों से दूर रखना है, जिन्हें अपराधों की विविधता माना जाता है।

5- यह सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि दंड एक निवारक के बजाय अधिक उपचारात्मक होना चाहिए। इस प्रकार के सिद्धांत के तहत किसी अपराध को एक बीमारी माना जाता है। जिसे मारने से ठीक नहीं किया जा सकता है; बल्कि इस तरह के रोग को 'सुधार की प्रक्रिया' (process of reformation) के नाम की दवा की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

6- इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट द्वारा अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य (A.I.R 1277 OF 2014) के मामले में पारित ऐतिहासिक फैसले में, उच्चतम न्यायालय ने गिरफ्तारी से पहले और गिरफ्तारी के बाद पुलिस की शक्तियों पर कई नियंत्रण और संतुलन लगाए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने देश भर की सभी राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि वे पुलिस अधिकारियों को निर्देश दें कि वे मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों की जांच किए बिना किसी आरोपी को गिरफ्तार न करें और गिरफ्तारी से पहले प्रारंभिक जांच करें।

7- एक सार्वभौमिक सत्य यह भी है कि गिरफ्तारी अपने साथ बहुत अपमान भी लाती है, किसी की स्वतंत्रता को कम करती है और एक अभियुक्त के चरित्र पर हमेशा के लिए एक निशान छोड़ जाती है। एक जेल में बंद अभियुक्त अपनी नौकरी / प्रतिष्ठा खो देता है। इस तरह उसकी नजरबंदी का बोझ उसके परिवार के निर्दोष सदस्यों पर भी पड़ता है। स्थिति तब और भी खराब हो जाती है जब जेल में बंद व्यक्ति परिवार में एकमात्र कमाने वाला होता है और उसके कारावास से उसके निर्दोष आश्रितों को अनावश्यक पीड़ा होती है।

8- इस प्रकार न्यायालय को सबूतों की प्रकृति और किसी भी ठोस विरोधाभाष सामग्री की अनुपस्थिति एवं उपलब्ध सामग्री से छेड़छाड़ की संभावना न होने के तथ्य को देखते हुए अभियुक्त को जमानत पर मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त अभिमत के मद्देनजर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध

सारवान तथ्यों एवं परिस्थितियों का समग्र रूप से अवलोकन करने के बाद, सबूतों की प्रकृति और किसी भी ठोस विरोधात्मक सामग्री की अनुपस्थिति एवं उपलब्ध सामग्री से छेड़छाड़ की संभावना न होने के तथ्य को देखते हुए मेरी राय में आवेदक को जमानत पर मुक्त करने का उपयुक्त आधार है।

अतः वाद के गुण दोष पर बिना कोई टिप्पणी किए हुए आवेदक को उपरोक्त वर्णित अपराध में संबंधित न्यायालय की सन्तुष्टि पर व्यक्तिगत बंध-पत्र एवं अधिक धनराशि के दो स्थानीय प्रतिभू प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर छोड़ दिया जाय।

1- आवेदक विवेचना या परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

2- आवेदक अभियोजन साक्षियों व पीड़ित / शिकायतकर्ता को डरायेगा / धमकायेगा नहीं।

3- आवेदक न्यायालय के आदेशों का पालन करेगा, वह परीक्षण के दौरान बिना कोई अनावश्यक स्थगन लिए नियत तिथि पर न्यायालय में उपस्थित होगा तथा परीक्षण में ईमानदारी से सहयोग करेगा।

4- आवेदक जमानत पर रिहा होने के बाद जमानत की स्वतंत्रता का दुरूपयोग नहीं करेगा और किसी भी अपराधिक गतिविधि में लिप्त नहीं होगा न कोई अपराधिक कृत्य करेगा।

5- आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति या पुलिस अधिकारियों को कोई प्रलोभन या धमकी नहीं देगा न ही उनसे कोई वायदा करेगा, जिसके कारण उन्हें न्यायालय में तथ्यों को उजागर करने से विरत रहना पड़े।

उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, परीक्षण न्यायालय आवेदक की जमानत नियमानुसार रद्द करने को स्वतंत्र है।

———

(2023) 5 ILRA 1302

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.09.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1323 / 2022

किशोर- एक्स लीगल गुसर्डियन/ विनोद पांडे

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री चंचल कुमार राय, श्री मंगला प्रसाद राय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री मानवेन्द्र नाथ सिंह, श्री नर सिंह नारायण वर्मा

(ए) **दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 302, 396 एवं 412 -किशोर न्याय अधिनियम, 2015 - धारा 102 - पुनरीक्षण - धारा 12- ऐसे व्यक्ति को जमानत, जो स्पष्टतः विधि का उल्लंघन करने वाला बालक है- अपराध की गंभीरता को अपराधी किशोर को जमानत देने से इंकार करने में बाधा के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए - किशोर न्याय अधिनियम विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर/बालक के**

सुधार के लिए एक लाभकारी कानून है-न्याय केवल अभियुक्त को ही नहीं, अपितु आरोप लगाने वाले को भी किया जाना चाहिए - केवल किशोर होने की घोषणा कर देने मात्र से विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर अधिकार के रूप में जमानत पर रिहा होने का हकदार नहीं हो जाता। (पैरा - 6,7,12)

(बी) शब्द और वाक्यांश- 'न्याय का उद्देश्य' शून्य में नहीं रह सकता 'सर्वोत्तम हित का सिद्धांत'- न्याय का उद्देश्य वाक्यांश दोनों पक्षों की मांगों को संतुलित करने में महत्वपूर्ण है - न्यायालयों को जमानत पात्रता का मूल्यांकन करते समय अपराध की प्रकृति, लागू की गई कार्यप्रणाली, मानसिक स्थिति, संलिप्तता और उपलब्ध साक्ष्य जैसे कारकों पर विचार करना चाहिए - वाक्यांश में किशोर न्याय अधिनियम की धारा 12(1) के प्रयोजनों के लिए कारक अप्रासंगिक या महत्वहीन प्रतीत होने वाले तथ्य शामिल हो सकते हैं। (पैरा-13)

किशोर को सार्वजनिक धन की लूट के लिए एक शाखा प्रबंधक के जीवन से जुड़े एक भयावह अपराध में सहभागी पाया गया - 16 वर्ष से अधिक आयु के किशोर को सीमांत वयस्क माना गया - यदि जमानत पर रिहा किया गया - तो संभवतः उन्हीं हाथों और परिवेश में पड़ जाएगा जिसने उसके आपराधिक व्यवहार में योगदान दिया था - किशोर न्याय बोर्ड और अपीलीय न्यायालय ने जमानत आवेदन निरस्त कर दिया-इसलिए पुनरीक्षण। (पैरा - 15,16)

आयोजितः- किशोर को स्वस्थ आदतें विकसित करने के लिए पेशेवर पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन की आवश्यकता है। किशोर ने पढ़ाई छोड़ दी है और शैक्षणिक गतिविधियों में उसकी कोई रुचि नहीं है, जो उनके जीवन में सकारात्मक दिशा की आवश्यकता को दर्शाता है। अपीलीय न्यायालय और बोर्ड ने पाया कि संशोधनकर्ता जमानत का हकदार नहीं है, और कहा कि प्रभावी संरक्षण और पर्यवेक्षण की आवश्यकता है। मामला जमानत के लिए उपयुक्त नहीं है। (पैरा - 17,18)

पुनरीक्षण निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अमित कुमार बनाम यूपी राज्य, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2732/2010
2. कंचन सोनकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, क्रिमिनल रिव्यू नं. 1266 का
3. अमित बनाम यूपी राज्य, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1852/2015
4. प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य, 2006 क्रि.एल.जे. 1373.
5. अमित बनाम यूपी राज्य, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1852/2015
6. विजेन्द्र कुमार माली बनाम यू.पी. राज्य, 2003 (1) जे.आई.सी. 103
7. ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2012) 5 एससीसी 201
8. मंगेश राजभर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2018 (2) एसीआर 1941

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री चंचल कुमार राय, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री ओ.पी. मिश्रा तथा विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मानवेन्द्र नाथ सिंह को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण वाद किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 102 के अंतर्गत नाबालिग 'X' की ओर से उसके प्राकृतिक संरक्षक/पिता विनोद पाण्डेय पुत्र स्व. बसंत पाण्डेय निवासी ग्राम- खुटहन नमजद करमैता (बभनौली), थाना शादियाबाद, जिला गाजीपुर के माध्यम से दायर किया गया है, जिसमें नाबालिग को जमानत पर स्वीकार करने की प्रार्थना के साथ-साथ किशोर न्याय बोर्ड, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 16.11.2021 के आदेश और अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, पोक्सो अधिनियम, वाराणसी द्वारा प्रकीर्ण मुकदमा संख्या 331/2021 में आदेश दिनांक 06.01.2022 को अपास्त करने के लिए प्रार्थना की गयी है, जो मुकदमा अपराध संख्या 188/2021 धारा 302, 396, 412 भा0दं0सं0, थाना- फूलपुर, जिला-वाराणसी से उत्पन्न हुआ है, जिसके द्वारा आपराधिक अपील खारिज कर दी गई।

3. मृतक फूलचंद राम की पत्नी श्रीमती बिंदु देवी द्वारा दर्ज कराई गई एफआईआर के अनुसार, जो अपनी मृत्यु के समय पंजाब नेशनल बैंक, शाखा- करखियांव, फूलपुर, वाराणसी के शाखा प्रबंधक के पद पर थे ; अपने कार्यालय में भाग लेने के बाद, वह 09.06.2021 को शाम लगभग 6 बजे अपने घर लौट रहे थे; लगभग शाम 6 बजे उनकी अपनी पत्नी से अंतिम बार बात हुई थी, हालांकि, कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने उनका अपहरण कर हत्या कर दी। एफआईआर के आधार पर मुकदमा अपराध संख्या 0188/2021 धारा 364 और 302 भा0दं0सं0 के तहत पंजीकृत किया गया और जांच की गई। जांच के दौरान, कुछ साक्ष्य एकत्र करने और गवाहों के धारा 161 सीआरपीसी के तहत बयान दर्ज करने के बाद , वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता, विनोद के नाबालिग बेटे को गिरफ्तार किया गया और लूटी गई रकम में से कुल 12,50,500/- रुपये बरामद किए गए। पंजाब नेशनल बैंक की मुहर लगे 47 लाख रुपये और कुछ अन्य आपत्तिजनक सामान जैसे कि मृतक फूलचंद राम का आई-कार्ड और आग्नेयास्त्र बरामद किए गए। गिरफ्तार किए गए अन्य सह-आरोपियों में से तीन, आलोक राय, अरुण मिश्रा और राहुल तिवारी ने पुलिस के समक्ष अपने इकबालिया बयानों में एक किशोर का भी नाम लिया।

4. किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष कार्यवाही के दौरान पाया गया कि घटना के दिन पुनरीक्षणकर्ता की आयु 17 वर्ष, 8 माह और 14 दिन थी और उसे दिनांक 17.09.2021 के आदेश के तहत किशोर घोषित किया गया। अभिभावक के माध्यम से किशोर न्याय बोर्ड, वाराणसी के समक्ष जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया, लेकिन उसे खारिज कर दिया गया। इसके बाद किशोर

के वास्तविक पिता और अभिभावक द्वारा आपराधिक अपील संख्या 123/2021 पेश की गई और उसे भी खारिज कर दिया गया।

5. उपरोक्त आदेशों से व्यथित होकर, इन्हें निरस्त करने तथा किशोर को जमानत देने के लिए यह आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया है।

6. पहला और सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह है कि अपराध की गंभीरता किशोर को जमानत देने से इनकार करने के लिए प्रासंगिक विचार नहीं है, जैसा कि उस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2732/2010 (अमित कुमार बनाम उ0प्र0 राज्य) 14.09.2010 को निर्णीत, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1266/2020 (कंचन सोनकर बनाम उ0प्र0 राज्य) 01.12.2020 को निर्णीत, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1852/2015 (अमित बनाम उ0प्र0 राज्य) 16.03.2016 को निर्णीत** और सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य, 2006 दाण्डिक एल.जे. 1373** में अभिनिर्धारित किया है।

7. दिनांक 16.03.2016 को निर्णीत **आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1852/2015 (अमित बनाम उ0प्र0 राज्य)** में न्यायालय ने **विजेंद्र कुमार माली बनाम उ0प्र0 राज्य, 2003 (1) जे.आई.सी. 103** में पूर्व के निर्णय का हवाला दिया, जिसमें यह देखा गया था कि अनेक निर्णयों में यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि किशोर को जमानत देने से केवल तभी इनकार किया जा सकता है, जब किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 12(1) के प्रावधान में दिए गए आधारों में से कोई एक आधार मौजूद हो। जहां तक गंभीरता के आधार का संबंध है, यह प्रासंगिक प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आता है। यदि किशोर की जमानत अर्जी पर सीआरपीसी के प्रावधानों के तहत विचार किया जाना होता , तो उक्त अधिनियम के अधिनियमन की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं होती। अधिनियम की धारा 12 में एक गैर-बाधा खंड है, जो इंगित करता है इसलिए, अपराध की गंभीरता को अपराधी किशोर को जमानत देने से इनकार करने में बाधा के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।

8. यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम की धारा 12 में परिकल्पित आधारों पर जमानत अस्वीकार करने का औचित्य सिद्ध करने के लिए कोई सामग्री मौजूद नहीं है। उपरोक्त प्रावधानों के मद्देनजर, 'कानून से संघर्षरत बच्चा', जो काफी समय से हिरासत में है, जमानत पर रिहा होने का हकदार है, अन्यथा किशोर न्याय अधिनियम की धारा 12 के प्रावधानों का उद्देश्य विफल हो जाएगा। यह भी तर्क दिया गया है कि बाल देखभाल संस्थान में किशोर की देखभाल को उसके जैविक परिवार में उसकी देखभाल से बेहतर नहीं माना जा सकता।

9. विद्वान ए.जी.ए. तथा विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने जमानत प्रार्थना का विरोध किया है।

10. **ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य और अन्य; (2012) 5 एससीसी 201** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि किशोर न्याय

अधिनियम को किशोरों के प्रकरण में सुनवाई के लिए एक अलग मंच या विशेष अदालत प्रदान करने के प्रशंसनीय उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था क्योंकि यह महसूस किया गया था कि बच्चे परिस्थितियों के कारण अपराधी बनते हैं न कि अपनी इच्छा से और इसलिए आपराधिक अपराध से जुड़े प्रकरण से निपटने और सुनवाई करते समय उनके साथ सावधानी और संवेदनशीलता से पेश आने की आवश्यकता है। यह भी देखा गया कि ऐसे प्रकरण में जब कोई अभियुक्त गंभीर और गंभीर अपराध में शामिल होता है जिसे उसने अपनी मानसिक परिपक्वता को दर्शाते हुए सुनियोजित तरीके से अंजाम दिया है, तो न्यायालय को अधिक सावधान रहना चाहिए। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अपराध की प्रकृति, अपराध करने में नियोजित तरीके में परिलक्षित अभियुक्त के आचरण को किशोर के प्रकरण पर विचार करते समय एक प्रासंगिक विचार के रूप में सामने लाया है।

11. यह ध्यान देने योग्य है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह राय इस तथ्य की पृष्ठभूमि में दी कि निचली अदालतों द्वारा निर्धारित किशोर की आयु संदेह से मुक्त नहीं थी। परिस्थितियों में, न्यायालय ने टिप्पणी की कि जहां अभियुक्त गंभीर और जघन्य अपराध करता है और उसके बाद नाबालिग होने की आड़ में वैधानिक आश्रय लेने का प्रयास करता है, उसकी आयु दर्ज करते समय लापरवाही या लापरवाही स्वीकार्य नहीं है। यह भी देखा गया है कि किशोर न्याय अधिनियम के उदार कानून के सिद्धांत का आश्रय नाबालिगों के लिए है, जो निर्दोष कानून तोड़ने वाले हैं। फिर भी, मेरे विचार में, जिस अपराध में किशोर शामिल पाया गया, उसकी प्रकृति फिर से केंद्र में है।

12. **मंगेश राजभर बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य; 2018 (2) एसीआर 1941** में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने बहुत महत्वपूर्ण टिप्पणियां कीं, जिनका मैं उत्सुकता से उल्लेख करना चाहता हूं:

"13. इसमें कोई संदेह नहीं है कि किशोर न्याय अधिनियम कानून का उल्लंघन करने वाले किशोर/बच्चे के सुधार के लिए एक लाभकारी कानून है, लेकिन कानून यह भी मांग करता है कि न्याय केवल आरोपी के साथ ही नहीं, बल्कि आरोप लगाने वाले के साथ भी होना चाहिए।"

25. ऐसा नहीं है कि अपराध की गंभीरता के इस पहलू को अतीत में और वर्तमान अधिनियम 2015 के लागू होने से पहले नाबालिग को जमानत देने या न देने के मुद्दे पर अप्रासंगिक माना गया है। किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के तहत इस न्यायालय के एक निर्णय में, जहाँ समाज के हित किशोर के साथ समान स्तर पर नहीं रखे गए थे, इस न्यायालय ने उस अधिनियम में धारा 12 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कहा कि वे समान थे। मोनू @ मोनी @ राहुल @ रोहित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (74) एसीसी 353 के प्रकरण में नाबालिग को जमानत देने के प्रकरण में अधिनियम की धारा 12 की धारा 12 के अनुसार रिपोर्ट के पैरा संख्या 14 और 15 में निम्नानुसार उल्लेख किया गया है :

"14. उपर्युक्त धारा कहीं भी यह आदेश नहीं देती है कि सभी प्रकरण में किशोर को जमानत देना अनिवार्य है, क्योंकि इसे निम्नलिखित कारणों से अस्वीकार किया जा सकता है".....यदि यह मानने के लिए उचित आधार प्रतीत होते हैं कि रिहाई से उसका किसी ज्ञात अपराधी के साथ संबंध होने की संभावना है या वह नैतिक, शारीरिक या मनोवैज्ञानिक खतरे में पड़ सकता है या उसकी रिहाई से न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा।"

15. उपरोक्त वैधानिक प्रावधान के आलोक में किशोर पुनरीक्षणकर्ता की जमानत प्रार्थना पर आस-पास के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। केवल किशोर होने की घोषणा से कानून का उल्लंघन करने वाले किशोर को अधिकार के रूप में जमानत पर रिहा करने का अधिकार नहीं मिल जाता। इस अधिनियम का एक गंभीर उद्देश्य किशोर अपराधियों की बेहतरी हासिल करना है, लेकिन यह उन किशोर अपराधियों के लिए आश्रय गृह नहीं है, जिनमें आपराधिक प्रवृत्ति और आपराधिक मनोविज्ञान है। इसमें सुधारात्मक दृष्टिकोण है, लेकिन यह प्रतिशोधात्मक सिद्धांत को पूरी तरह से त्याग नहीं देता है। विधानमंडल ने किशोर को जमानत देने के प्रकरण में भी समाज के व्यापक हित को संरक्षित किया है। अधिनियम किशोर अपराधी की नैतिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बेहतरी हासिल करने का प्रयास करता है और इसलिए, यदि यह पाया जाता है कि न्याय के उद्देश्य विफल हो जाएंगे या विधानमंडल द्वारा वांछित लक्ष्य किशोर अपराधी को किशोर गृह में बंद करके प्राप्त किया जा सकता है, तो उसे जमानत देने से इनकार किया जा सकता है। यह धारा 12 की शब्दावली से ही स्पष्ट है। इसलिए विधानमंडल ने अपने विवेक से किशोर को जमानत देने के नियम में अपवाद बनाए हैं।"

13. मैं उपरोक्त टिप्पणियों से सम्मानपूर्वक सहमत हूँ। आम तौर पर, प्रकरण की योग्यता महत्वपूर्ण नहीं हो सकती है, जहाँ न्यायालय किशोर न्याय अधिनियम की धारा 12 में परिकल्पित जमानत का लाभ देने के लिए इच्छुक हैं, मेरा दृढ़ मत है कि प्रकरण की अन्य योग्यताओं सहित अपराध की प्रकृति तब पर्याप्त महत्व प्राप्त कर सकती है, जब न्यायालय को न्याय के उद्देश्यों के बारे में कोई राय बनानी हो । यह ध्यान दिया जा सकता है कि 'न्याय के उद्देश्य' वाक्यांश शून्य में नहीं रह सकता। किसी भी पक्ष की न्याय की माँगों के बीच संतुलन बनाते समय अपराध के तरीके, उसकी प्रकृति को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपराध की प्रकृति, लागू की गई विधि या कार्यप्रणाली, संलिप्तता की सीमा और उपलब्ध साक्ष्य ऐसे प्रकरण में किशोरों की जमानत के अधिकार का न्याय करते समय कोई प्रासंगिकता नहीं रखते हैं, जहाँ जघन्य अपराध किए गए हैं। न्याय के उद्देश्य निस्संदेह बहुआयामी निहितार्थों वाला एक सार्थक वाक्यांश है। न्यायालयों का दायित्व दोनों पक्षों की चिंताओं को संबोधित करना और न्याय की प्रतिस्पर्धी और अक्सर परस्पर विरोधी मांगों के बीच एक नाजुक संतुलन बनाना है। न्याय के उद्देश्यों को समझने के इस विशेष कोण से जमानत के प्रकरण को

देखते समय न केवल अपराध की प्रकृति, बल्कि उसके करने का तरीका, लागू की गई कार्यप्रणाली, मानसिक स्थिति, संलिप्तता की सीमा, उपलब्ध साक्ष्य ऐसे कारक होंगे जिन पर विचार किया जाना चाहिए। 'न्याय के उद्देश्य' वाक्यांश अपनी व्याख्या के अंतर्गत ऐसे कारक ला सकता है जो अन्यथा इतने महत्वपूर्ण नहीं लग सकते हैं या किशोर न्याय अधिनियम की धारा 12(1) के प्रावधान के अंतिम भाग की प्रयोज्यता के उद्देश्य से पहली नज़र में बाहरी, अप्रासंगिक या महत्वहीन प्रतीत हो सकते हैं।

14. निम्नलिखित तथ्यों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि पंजाब नेशनल बैंक, वाराणसी के शाखा प्रबंधक पर उस समय जानलेवा हमला किया गया और उनकी हत्या कर दी गई जब वे अपने आधिकारिक कर्तव्यों के तहत लगभग 47 लाख रुपये एक शाखा से दूसरी शाखा में ले जा रहे थे, जांच अधिकारी ने बैंक के कैशियर, वाहन के चालक और कुछ अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए और पाया कि उन्हें गोली मारकर हत्या कर दी गई थी और नकदी से भरा एक बैग लूट लिया गया था। जांच के दौरान, वर्तमान संशोधक को गिरफ्तार कर लिया गया और पंजाब नेशनल बैंक, मरियाहू की मुहर लगी 12,50,500/- रुपये की नकदी, मृतक का आई-कार्ड और एक बन्दूक भी बरामद की गई।

15. संक्षेप में, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किशोर को इस भयावह अपराध में मिलीभगत पाई गई, जिसमें सार्वजनिक धन की लूट के लिए एक शाखा प्रबंधक की जान ले ली गई। घटना की तारीख को किशोर की उम्र 16 वर्ष से अधिक यानी 17 वर्ष 8 महीने और 14 दिन पाई गई। यह एक सीमा रेखा वाला प्रकरण था, जिसमें आरोपी वयस्कता की आयु प्राप्त कर रहा था। जिस तरह से अपराध किया गया और उसकी प्रकृति मुझे यह निष्कर्ष निकालने के लिए मजबूर करती है कि यदि किशोर को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह उन्हीं हाथों और परिवेशों में फंस जाएगा, जिन्होंने संभवतः उसके आपराधिक मन को बढ़ावा दिया।

16. यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि किशोर न्याय बोर्ड और अपीलीय न्यायालय ने जमानत याचिकाओं को खारिज करते समय निश्चित रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखा था कि यदि किशोर को उसके परिवार के पास छोड़ दिया जाता है, तो उसके बेहतर और स्वस्थ व्यक्ति बनने की कोई भी संभावना समाप्त हो जाएगी और वह निश्चित रूप से उसी तरह की चीजों में पड़ जाएगा, जहां से उसे अपने कल्याण के लिए बचाया जाना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 3 में वर्णित 'सर्वोत्तम हित के सिद्धांत' को अधिनियम के प्रावधानों में विशेष रूप से लाया गया है, लेकिन मोटे तौर पर इसे 'न्याय के उद्देश्य' वाक्यांश में भी शामिल किया गया है।

17. मेरे विचार में, किशोर न्याय अधिनियम का उद्देश्य और लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि किशोरों द्वारा किए गए अपराधों को उनके स्वयं के कल्याण के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाता और बड़े पैमाने पर समाज की चिंताओं को संबोधित नहीं किया

जाता। हालाँकि, सामाजिक जाँच रिपोर्ट एक मुद्रित प्रारूप में तैयार की गई है, बल्कि यंत्रवत् रूप से बहुत उपयोगी नहीं हो सकती है। फिर भी, इसमें कुछ संकेतक हैं जो यह दर्शाते हैं कि किशोर को एक पेशेवर परामर्शदाता की प्रभावी देखरेख और सहायता की आवश्यकता है ताकि यहाँ से वह स्वस्थ आदतों वाला वयस्क बन सके। सामाजिक जाँच रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि उसने अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी और किसी भी शैक्षणिक गतिविधि में उसकी रुचि नहीं है। यह न्यायालय को यह संकेत देने के लिए पर्याप्त है कि उसके दिमाग को सकारात्मक दिशा की ओर मोड़ने की आवश्यकता है।

18. विद्वान अपीलीय न्यायालय और बोर्ड ने समवर्ती राय दी है और पाया है कि वह ज़मानत के लिए बिल्कुल भी हकदार नहीं है और यह टिप्पणी की है कि उसे प्रभावी संरक्षण और पर्यवेक्षण की आवश्यकता है। प्रकरण की परिस्थितियों की समग्रता में ज़मानत अस्वीकार करने के लिए इस तरह की टिप्पणी को गलत नहीं ठहराया जा सकता। मेरा मानना है कि वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को ज़मानत देने के लिए यह उपयुक्त स्थिति नहीं है।

19. तदनुसार, पुनरीक्षण **खारिज** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1307

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1856 / 2022

राजेश गोंड ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री अरविन्द सिंह सेंगर

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अजीत कुमार सिंह

(ए) **दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 397/401- पुनरीक्षण, धारा 319 -अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 307, 34 -दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, मजबूत और ठोस सबूतों से पुनरीक्षणकर्ता की मिलीभगत को दर्शाना चाहिए, जो प्रथम दृष्टया मामलों से बेहतर हो - इसका प्रयोग लापरवाही या लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए। (पैरा - 9,10)**

धारा 319 सीआरपीसी के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता को बुलाया गया - पुनरीक्षणकर्ता की घटना के स्थान से भिन्न स्थान पर उपस्थिति - अभियोजन पक्ष के गवाहों (घायल की मां और भाई) ने फुटेज में पुनरीक्षणकर्ता की पहचान की - गवाहों की गवाही का खंडन किया- परीक्षण न्यायालय जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य की सराहना करने में विफल रहा - जिसके कारण लापरवाहीपूर्ण आदेश दिया गया - सर्वोच्च न्यायालय के परीक्षण पूर्ण नहीं किया गया - विचारणीय न्यायालय ने दो लोगों के बयानों

पर भरोसा किया जिन्होंने फुटेज में पुनरीक्षणवादी आरोपी की पहचान की पुष्टि की। (पैरा - 10)

निर्णय:- विचारणीय न्यायालय सम्पूर्ण तथ्य, साक्ष्य और सामग्री का मूल्यांकन करने में विफल रहा तथा धारा 319 सीआरपीसी के तहत अभियुक्त को बुलाने के लिए आवश्यक संतुष्टि की डिग्री दर्ज करने में विफल रहा। परिणामस्वरूप विवादित आदेश कानून की नजर में अस्थिर है और इसे रद्द किया जा सकता है। धारा 319 सीआरपीसी के तहत

3. श्रीमती नीलम देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

4. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पेज 1400

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफ़ताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

राज्य के लिए पुनरीक्षणकर्ता अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता और प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना।

यह आपराधिक पुनरीक्षण अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या-3 बलिया द्वारा सत्र विचारण संख्या-297 वर्ष 2017 (राज्य बनाम गुलाब गोंड) अपराध संख्या-745 वर्ष 2017, धारा 307, 34 भ०द०वि०,थाना-उभांव, जिला बलिया में पारित आदेश दिनांक 23.12.2021 के विरुद्ध दायर किया गया है। आक्षेपित आदेश द्वारा, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों के प्रयोग में अभियोजन के आवेदन पर निचली विद्वान अदालत ने पुनरीक्षणवादी अभियुक्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्तों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने के लिए कोई मजबूत और ठोस कारण नहीं है (पैरा - 11,12)

पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पेज 1400,
2. बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एससीसी पृष्ठ 706

को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

घटना दिनांक 17.06.2017 को रात्रि लगभग 9:00 बजे प्रथम सूचनाकर्ता प्रीतम द्वारा उसी तारीख को 20:30 बजे एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि शिकायतकर्ता ग्राम जाम बसनई थाना-रसड़ा, जिला बलिया का निवासी है। वह अपने मामा सुनील की 18.06.2017 को होने वाली शादी के सिलसिले में अपने गांव बभनौली में आया था। आज दिनांक 17.06.2017 को रात्रि लगभग 9:00 बजे वह अपने मामा सोनू उर्फ रोहित के साथ मोटरसाइकिल पर जा रहा था। जब वे पंडित दीन दयाल उपाध्याय इंटर कॉलेज के पास पहुंचे और एक विक्रेता के साथ बात कर रहे थे, तो शाहपुर अफगाह रोड की तरफ से एक मोटरसाइकिल आई, जिस पर तीन लोग सवार थे। दो व्यक्ति मोटरसाइकिल से नीचे उतरे और उनके पास पहुंचे, उनमें से एक ने अपने मामा से पूछा कि क्या उसका नाम सोनू है, उसने जवाब दिया कि उसका नाम रोहित है, इस पर उसने कहा कि उसने उसकी बहन को

छेड़ा है और उस पर गोली चला दी। दूसरे व्यक्ति ने उसके मामा पर भी गोली चला दी और मोटरसाइकिल सवार दोनों मौके से फरार हो गए। शिकायतकर्ता का मामा नीचे गिर गया, अंधेरा होने के कारण शिकायतकर्ता हमलावरों की पहचान नहीं कर सका। घायल को सीयर अस्पताल ले जाया गया, जहां से उसे जिला मऊ रेफर कर दिया गया। आगे यह आरोप लगाया गया है कि शिकायतकर्ता का पड़ोसी गुलाब गोंड के साथ भूमि संपत्ति के बारे में विवाद में है और उसे इस घटना में उसके हाथ होने का संदेह है। जांच के दौरान गुड्डू गोंड और राजेश गोंड के नाम सामने आए। जांच के बाद गुलाब गोंड और गुड्डू गोंड के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल की गई। पुनरीक्षणकर्ता राजेश गोंड को दोषमुक्त कर दिया गया। मुकदमा सत्र अदालत के समक्ष शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष के चार गवाहों की जांच के बाद, धारा 319 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया ताकि पुनरीक्षणकर्ता राजेश गोंड को मुकदमे के लिए बुलाया जा सके। आक्षेपित आदेश द्वारा निचली अदालत ने आवेदन की अनुमति दी और पुनरीक्षक अभियुक्त को मुकदमे के लिए बुलाया।

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने दलील दी कि प्राथमिकी में पुनरीक्षणकर्ता का नाम नहीं है। शिकायतकर्ता ने अपने बयान में प्राथमिकी के संस्करण को दोहराया है और पुनरीक्षणकर्ता आरोपी का नाम नहीं लिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि अंधेरा होने के कारण वह हमलावरों की पहचान नहीं कर सके। घटना के 22 दिन बाद और अस्पताल से छुट्टी मिलने के 15 दिन बाद घायलों के बयान में पहली बार पुनरीक्षणकर्ता का नाम आया है। यह आगे तर्क दिया गया है कि शिकायतकर्ता अ०सा०-1 ने अपने बयान में विशेष रूप से कहा है कि वह गुलाब गोंड के परिवार के सदस्यों की पहचान करता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए मौखिक साक्ष्य में प्रमुख विरोधाभास और विसंगतियां हैं। इसके अतिरिक्त, विचारण के दौरान विवेचनाधिकारी ने इस तथ्य के बारे में साक्ष्य एकत्र किया है कि घटनास्थल पर पुनरीक्षणकर्ता उपस्थित नहीं था। घटना के समय, वह बॉम्बे में थे, जिस मॉल से वह खरीदारी कर रहे थे, उसके सी.सी.टी.वी. फुटेज को विवेचनाधिकारी के सामने पेश किया गया था, इस सी.सी.टी.वी. फुटेज की तस्वीर विवेचनाधिकारी द्वारा घायल और उसकी मां से पहचानी गई थी और उन्होंने इसमें पुनरीक्षणकर्ता आरोपी की पहचान की है। पुनरीक्षणकर्ता के मोबाइल की सीडीआर भी घटना के समय घटनास्थल पर नहीं बल्कि किसी अन्य स्थान पर उसकी उपस्थिति दर्शाती है। उपरोक्त साक्ष्यों से विवेचनाधिकारी ने पुनरीक्षक के विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है, लेकिन विचारण के दौरान घायल रोहित कुमार उर्फ सोनू के कथन के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित सम्मन आदेश पारित किया है, जबकि उसकी गवाही विश्वसनीय नहीं है। घटना रात की है और सबूतों में आया है कि घटना के समय अंधेरा था जिसके कारण शिकायतकर्ता हमलावरों की पहचान नहीं कर पा रहा था। संदेह के आधार पर ही प्राथमिकी दर्ज की गई थी। यह आगे तर्क दिया गया है कि घटना के मकसद के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा

अलग-अलग बयान रखे गए हैं। इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूत ठोस और पर्याप्त नहीं हैं। अंत में, यह तर्क दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में माना है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति एक असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए न कि नियमित तरीके से। कारण पर्याप्त और ठोस होने चाहिए। अधिवक्ता ने हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 2014 सुप्रीम कोर्ट पेज 1400, बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एस.सी.सी. पेज 706 और श्रीमती नीलम देवी और दो अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और इस न्यायालय द्वारा 28.01.2023 को तय किए गए एक अन्य मामले पर भरोसा किया।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से पेश अधिवक्ता ने दलील दी कि घायल के ममेरे भतीजे प्रीतम ने प्राथमिकी दर्ज कराई है। वह दूसरे गांव का रहने वाला है, इसलिए हमलावरों को उनके नाम से नहीं पहचान सका। लेकिन घायल ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में पुनरीक्षणकर्ता आरोपी की मिलीभगत के बारे में स्पष्ट रूप से कहा है; उसने पुनरीक्षक अभियुक्त को गोली चलाने की भूमिका भी सौंपी है। विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान को दोहराया है और घटना में पुनरीक्षणकर्ता की सक्रिय भागीदारी के बारे में कहा है। यह आगे तर्क दिया गया है कि सी.सी.टी.वी. फुटेज और सीडीआर में आई.टी अधिनियम की धारा 65 के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र नहीं है। यह विचारण का मामला है, इस स्तर पर इसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। सोनू उर्फ रोहित को घटना में गोली लगी है, उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया था, डिस्चार्ज के बाद उसका बयान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था जिसमें उसने स्पष्ट रूप से पुनरीक्षणकर्ता आरोपी को आरोपित किया है। इसलिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त और ठोस सबूत हैं जिनके आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है और पुनरीक्षणकर्ता अभियुक्त को तलब किया है। आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 2014 उच्चतम न्यायालय पृष्ठ 1400 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अपेक्षित साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इतनी आवश्यक हैं। इसका प्रयोग सिर्फ इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल जहां अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होता है, तो इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना

चाहिए और आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं।

"99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी जटिलता की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है, जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह ऐसा है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किया जाता है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि अगर सबूतों का खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 द०प्र०स० में यह प्रावधान करने का उद्देश्य कि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने अभियुक्त नहीं होने के कारण कोई अपराध किया है, इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है। प्रयोग किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके। इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

इस मामले की प्राथमिकी अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ धारा 307, 120 बी भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई है। गुलाब गोंड का नाम प्राथमिकी में संदेह के आधार पर आरोपों के साथ है कि वह घटना में शामिल हो सकता है क्योंकि उसके साथ दुश्मनी है। शिकायतकर्ता प्रीतम ने अपने बयान में धारा 161 द०प्र०स० के तहत वही तथ्य बताए हैं जो प्राथमिकी में कथित हैं, उन्होंने गोली चलाने वाले हमलावरों का नाम नहीं लिया है। प्राथमिकी में किसी चश्मदीद गवाह का नाम नहीं है। विवेचनाधिकारी ने घायल रोहित का बयान दर्ज किया है, घटना के 21 दिन बाद और इस बयान में पुनरीक्षणकर्ता समेत हमलावरों का नाम सामने आया है. कथित घटना के बारे में, गवाह मंशा राम गुप्ता ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कहा है कि लगभग 9:00 बजे रोहित प्रीतम के साथ उसके घर पर आया और उसे ठेला ले जाने के लिए कहा लेकिन उसने इनकार कर दिया और अपने घर के अंदर चला गया। इसी दौरान उसे फायरिंग की आवाज सुनाई दी। जब वह बाहर निकला तो देखा कि मोटरसाइकिल मौके पर पड़ी है। वह किसी को पहचान नहीं पा रहा था। रोहित उर्फ सोनू को गोली लगी है और वह वहीं पड़ा था। सूचना मिलने पर उसका भाई आशीष कुमार वहां आया और उसे अस्पताल ले गया। आशीष ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में खुद को चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है। मुकदमे के दौरान, शिकायतकर्ता प्रीतम ने अपने बयान में बताए गए संस्करण को दोहराया है कि धारा 161 द०प्र०स० अ०सा०-2 रोहित उर्फ सोनू घायल ने पुनरीक्षणकर्ता राजेश गोंड को आरोपित किया है और कहा है कि उसे मारने के इरादे से उसने गोली चलाई। अ०सा०-3 उषा देवी चश्मदीद गवाह नहीं है, वह घायल की मां है। आशीष कुमार (अ०सा०-4) खुद को चश्मदीद गवाह

बताता है और उसने पुनरीक्षणकर्ता को आरोपित भी किया है। यह भी प्रतीत होता है कि जांच के दौरान पुनरीक्षणकर्ता ने पुलिस अधीक्षक बलिया को एक आवेदन दिया है जिसमें आरोप लगाया गया है कि पिछले 10-15 वर्षों से वह बॉम्बे में रह रहा है और निर्माण कार्य में लगा हुआ है। उसे पता चला है कि इस मामले की जांच में उसका नाम भी सामने आया है। जबकि वास्तविक तथ्य यह है कि घटना की तारीख 17.06.2017 को, वह बॉम्बे में था और वह कोरुम मॉल मेट्रो शूज़, ठाणे में खरीदारी में व्यस्त था। उन्होंने शॉपिंग के लिए अपने क्रेडिट कार्ड का भी इस्तेमाल किया है। उसने सी.सी.टी.वी. फुटेज जुटा लिए हैं। उसने ठाणे में केसर मिल से सटे एस.बी.आई. के ए.टी.एम. से भी पैसे निकाले हैं। विवेचनाधिकारी ए.टी.एम. बूथ के सी.सी.टी.वी. फुटेज प्राप्त कर सकते हैं। उसके मोबाइल का संख्या-8652101111 है और उसकी लोकेशन का पता इसी से लगाया जा सकता है। सी.सी.टी.वी. फुटेज इस एप्लिकेशन के साथ संलग्न है। विवेचनाधिकारी ने इसे केस डायरी का हिस्सा बनाया। सी.सी.टी.वी. फुटेज लैपटॉप के सीडी प्लेयर पर प्रदर्शित किया गया था और उषा देवी की मां और आशीष घायल के भाई रोहित ने इस सी.सी.टी.वी. फुटेज में राजेश कुमार गोंड की पहचान की है। विवेचनाधिकारी ने केस डायरी में इन तथ्यों का उल्लेख किया है। उन्होंने आगे कहा है कि राजेश कुमार गोंड के मोबाइल नंबर की कॉल डिटेल प्राप्त करने के लिए एक पत्र लिखा गया था, लेकिन निगरानी सेल ने सूचित किया कि घटना दो साल से अधिक पुरानी है, इसलिए इसे पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता है। न ही एस.बी.आई. के ए.टी.एम. ठाणे की सी.सी.टी.वी. फुटेज हासिल की जा सकी है। विवेचनाधिकारी ने कुछ अन्य गवाहों के बयान भी दर्ज किए हैं और उन्होंने घटना के समय घटना के स्थान पर पुनरीक्षक की उपस्थिति से इनकार किया है।

पुनरीक्षण करने वाले का नाम न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में है और न ही प्रथम सूचनादाता ने, जो एक चश्मदीद गवाह भी है, धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में किसी का नाम लिया है। साक्ष्य में यह भी आया है कि घटना के समय अंधेरा था। रोहित कुमार ने घटना के 21 दिन बाद धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में घायल को फंसाया है। पुनरीक्षणकर्ता ने कोरुम मॉल, ठाणे के सी.सी.टी.वी. फुटेज के रूप में जांच के दौरान विवेचनाधिकारी को ऐलिबी के बारे में सबूत प्रदान किए हैं। विवेचनाधिकारी ने इस सी.सी.टी.वी. फुटेज को घायल रोहित की मां उषा देवी और भाई आशीष के सामने प्रदर्शित किया है और उन्होंने इस सी.सी.टी.वी. फुटेज में पुनरीक्षणकर्ता राजेश कुमार गोंड की पहचान की है।

बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एस.सी.सी. 706 (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने हरदीप सिंह मामले में निर्धारित सिद्धांतों को दोहराते हुए निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:

"13. प्रश्न का उत्तर देने के लिए, हरदीप सिंह के मामले में प्रतिपादित कुछ सिद्धांतों को धारा 319 द०प्र०स० के तहत पुन: दोहराया जा

सकता है, विचारण न्यायालय द्वारा विचारण के दौरान किसी भी स्तर पर यानी विचारण के समापन से पहले, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने और चल रहे मामले में मुकदमे का सामना करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। एक बार विचारण न्यायालय को पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ 'सबूत' हैं, जिसके आधार पर यह सबूत इकट्ठा किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है। यहां 'सबूत' का अर्थ है वह सामग्री जो मुकदमे के दौरान अदालत के सामने लाई जाती है। जहां तक जांच के चरण में विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का संबंध है, इसका उपयोग पुष्टि के लिए किया जा सकता है और धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज साक्ष्य का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। हालाँकि, चूंकि यह धारा 319 द०प्र०स० के तहत न्यायालय को दी गई एक विवेकाधीन शक्ति है और यह असाधारण भी है, इसलिए इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां ऐसी हैं। संतुष्टि की मात्रा उस डिग्री से अधिक है जो उन लोगों के खिलाफ आरोप तय करते समय जरूरी है, जिनके संबंध में आरोप पत्र दायर किया गया था। केवल जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होता है वहीं इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग आकस्मिक या लापरवाह तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया जो राय बनाई जानी है, उसके लिए उसकी संलिप्तता की संभावना की तुलना में मजबूत सबूत की आवश्यकता है।

14. जब हम पूर्वोक्त सिद्धांतों को इस मामले के तथ्यों पर उनके आवेदन के साथ व्यवहृत करते हैं, तो हम यह धारणा पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ सम्मन आदेश पारित करने में एक आकस्मिक और लापरवाह तरीके से काम किया। अपीलकर्ताओं को प्राथमिकी में नामजद किया गया था। पुलिस की ओर से जांच की गई। जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, जिसका हमारे द्वारा ऊपर उल्लेख किया गया है, विवेचनाधिकारी ने पाया कि जब यह घटना कनौर में हुई थी, ये अपीलकर्ता जयपुर शहर में थे जो वर्ष 175 किलोमीटर की दूरी पर थी। शिकायतकर्ता और अन्य जिन्होंने घटनास्थल पर अपीलकर्ताओं की कथित उपस्थिति के संबंध में प्राथमिकी में संस्करण का समर्थन किया था, ने भी इसी आशय के लिए धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दिए थे। इसके बावजूद, पुलिस जांच से पता चला कि घटना के स्थान पर अपीलकर्ताओं की उपस्थिति के बारे में इन व्यक्तियों के बयान संदिग्ध थे और जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजी और अन्य सबूतों के मद्देनजर विश्वास को प्रेरित नहीं करते थे, जिसमें एक और कहानी को दर्शाया गया था और स्पष्ट रूप से दिखाया गया था कि अपीलकर्ताओं की दलील सही थी।

15. यह रिकॉर्ड विचारण न्यायालय के सामने था। इसके बावजूद, विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के

अपने मुख्य परीक्षण में गवाही दी, उनके तथाकथित मौखिक/चक्षुक संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं थी। इस प्रकार, मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए 'सबूत' उन बयानों से ज्यादा कुछ नहीं थे जो पहले से ही धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विचारण न्यायालय अपने समक्ष दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होगा। हालांकि, वर्तमान जैसे मामले में जहां जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा सबूतों की अधिकता एकत्र की गई थी, जो अन्यथा सुझाव देती थी, विचारण न्यायालय कम से कम प्रथम दृष्टया राय बनाते समय उस पर गौर करने के लिए बाध्य था और यह देखने के लिए कि क्या 'उनकी (यानी अपीलकर्ताओं) की मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत रिकॉर्ड पर आए हैं। इस प्रकृति की कोई संतुष्टि नहीं है। यहां तक कि अगर हम यह मानते हैं कि विचारण न्यायालय को उस समय इसके बारे में अवगत नहीं कराया गया था जब उसने आदेश पारित किया था (क्योंकि अपीलकर्ता उस समय घटनास्थल पर नहीं थे), तो अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि रिकॉर्ड पर यह सामग्री विशेष रूप से अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में उच्च न्यायालय के ध्यान में लाई गई थी और उच्च न्यायालय ने भी उक्त सामग्री की अनदेखी की। विचारण न्यायालय के आदेश में निहित चर्चा को पुन: प्रस्तुत करने और उसके साथ सहमति व्यक्त करने के अलावा, और कुछ भी नहीं किया गया है। इस तरह के आदेश न्यायिक जांच में टिक नहीं सकते।

इस मामले के तथ्य बृजेंद्र सिंह मामले (उपरोक्त) के लगभग समान हैं। कोरम मॉल, ठाणे के सी.सी.टी.वी. फुटेज से संबंधित समय पर घटनास्थल से दूर एक अलग स्थान पर पुनरीक्षणकर्ता की उपस्थिति स्थापित होती है। अभियोजन पक्ष के दो गवाहों, घायलों की मां और भाई ने सी.सी.टी.वी. फुटेज में पुनरीक्षणकर्ता की विधिवत पहचान की है। इसलिए यह सबूत जो जांच का हिस्सा है, घटना में पुनरीक्षणकर्ता की संलिप्तता के बारे में गवाहों की गवाही का पूरी तरह से खंडन करता है। विद्वान विचारण न्यायालय घटनास्थल से बहुत दूर एक स्थान पर आरोपी की उपस्थिति के बारे में जांच के दौरान एकत्र किए गए मामलों का मूल्यांकन करने में विफल रहा है। इसलिए आक्षेपित आदेश को लापरवाह तरीके से पारित किया गया है और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को पूरा नहीं करता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने उषा देवी (अ०सा०-3) और आशीष कुमार (अ०सा०-4) के बयान पर भरोसा किया है, जबकि इन गवाहों ने कोरुम मॉल, ठाणे के सी.सी.टी.वी. फुटेज में पुनरीक्षणकर्ता आरोपी की पहचान को सत्यापित किया है। धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अभियुक्त की मिलीभगत दिखाने वाले मजबूत और ठोस सबूत होने चाहिए जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है।

रिकार्ड में मौजूद समस्त तथ्यों, साक्ष्यों और सामग्री पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचारणकर्ताओं को मुकदमे का सामना करने

के लिए बुलाने का कोई ठोस और मज़बूत कारण नहीं है। धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय विद्वान विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरे तथ्यों, सबूतों और अन्य सामग्री का मूल्यांकन करने में विफल रहा है। निचली अदालत भी उस संतुष्टि की डिग्री दर्ज करने में विफल रही है जो धारा 319 द०प्र०स० के तहत एक अभियुक्त को तलब करने के लिए आवश्यक है। संतुष्टि की डिग्री प्रथम दृष्टया मामले में से एक नहीं है। नतीजतन, विचारण न्यायालय निर्णयों की एक श्रृंखला में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के अनुसार अपनी शक्ति का प्रयोग करने में विफल रहा है। आक्षेपित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, आक्षेपित आदेश भौतिक अवैधता से ग्रस्त है और कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है और दिनांक 23.12.2021 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1313

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आपराधिक अपील संख्या 917 / 2022

छोटे लाल ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री विपिन कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण अधिनियम), 1986-धारा 18-अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 14(1) के तहत कारण बताओ नोटिस जारी किया गया-अपीलकर्ता ने ट्रैक्टर खरीदने के लिए संबंधित कागजात और स्रोत के साथ वाहन को रिलीज करने की प्रार्थना की-ट्रैक्टर रिलीज नहीं किया गया और वाद विशेष न्यायाधीश गैंगस्टर एक्ट को भेज दिया गया-आवेदन निरस्त-स्वामित्व पर विवाद नहीं था-केवल विवाद खरीद का स्रोत है-स्पष्टीकरण दिया गया लेकिन विचार नहीं किया गया-न्यायालय को हक के सवाल पर विचार करना चाहिए था-प्रथम दृष्टया-ट्रैक्टर गैंगस्टर के सदस्य के रूप में अर्जित धन का स्रोतों से नहीं खरीदा गया यह पूरी तरह से स्थापित है।

अपील स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

बदन सिंह उर्फ बद्दो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2002 सीआरएल एलजे 1392

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री विपिन कुमार मिश्रा तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विनय कुमार शाही को सुना गया तथा अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण अधिनियम), 1986, (इसके बाद गिरोहबन्द अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 18 के तहत इस आपराधिक अपील के माध्यम से अपीलकर्ता ने उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण अधिनियम), 1986 की धारा 14 (1) के तहत विद्वान जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 05.04.2021 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत जिला मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया था। अपीलकर्ता ने संबंधित कागजात और कथित ट्रैक्टर की खरीद के स्रोत के साथ विचाराधीन वाहन को अवमुक्त करने की प्रार्थना की, परन्तु जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने ट्रैक्टर को अवमुक्त नहीं किया और दिनांक 11.09.2021 के आदेश के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने मामले को उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण अधिनियम), 1986 की धारा 16 (1) के तहत विद्वान विशेष न्यायाधीश गिरोहबन्द अधिनियम / अपर सत्र न्यायाधीश, लखनऊ को संदर्भित किया, जिसे गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 16 (2) के तहत आपराधिक विविध वाद संख्या 659/2021 के रूप में पंजीकृत किया गया था। जाँच करने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण अधिनियम), 1986 की धारा 17 के तहत दिनांक 17.02.2022 को आदेश पारित किया और अपीलकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया। अपीलकर्ता ने आगे विद्वान विशेष न्यायाधीश गिरोहबन्द अधिनियम/अपर सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 17.02.2022 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत अपीलकर्ता के पक्ष में ट्रैक्टर की अवमुक्ति हेतु आवेदन खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त आदेशों से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने यह आपराधिक अपील दायर की है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आवेदक ट्रैक्टर संख्या UP 32 LR 0454, चेसिस संख्या MEA11FA1KK2271719, इंजन संख्या S33411404 का स्वामी है, जिसे उसने 21.02.2020 को संतोष सर्विस थाना, सीतापुर रोड, इटौंजा, लखनऊ से 5,15,000/- रुपए में खरीदा था। ट्रैक्टर प्राप्त करने से पूर्व आवेदक ने अपने खाते से 10,000/- रुपए नकद संतोष सर्विस थाना, सीतापुर रोड, इटौंजा, लखनऊ को 21.02.2020 को दिए थे तथा शेष राशि हेतु 20,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से बराबर किस्त तय कर विक्रेता को वापस कर दिया था।

उपरोक्त समस्त धनराशि भारतीय स्टेट बैंक के खाता संख्या 38937795036 से डेबिट कर ली गई थी। यह भी आरोप लगाया गया है कि 25.03.2021 को प्रभारी निरीक्षक, पुलिस थाना इटौंजा ने पुलिस अधीक्षक, लखनऊ को एक पत्र लिखकर अपीलकर्ता के ट्रैक्टर संख्या यू.पी.32 एलआर 0454, चेसिस संख्या MEA11FA1KK2271719, इंजन संख्या S33411404 को उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 14(1) के तहत कुर्क करने हेतु कहा। पुलिस अधीक्षक, लखनऊ ने दिनांक 26.02.2021 को जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ को अपीलकर्ता की उक्त संपत्ति को कुर्क करने हेतु आगे के निर्देश हेतु पत्र प्रेषित किया, जिसमें कहा गया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध चार मामले लंबित हैं, अर्थात् (i) मुकदमा अपराध संख्या 10/2013, अंतर्गत धारा 402/211 भा०द०सं०, (ii)मुकदमा अपराध संख्या 133/2014, अंतर्गत धारा 457/380/411 भा०द०सं० और (iii) मुकदमा अपराध संख्या 176/2014, अंतर्गत धारा 457/380/411 भा०द०सं० व (iv) मुकदमा अपराध संख्या 95/2015, अंतर्गत धारा 2/3 उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द अधिनियम। परिणामस्वरूप, चार मामलों के आधार पर, जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने संज्ञान लिया और दिनांक 5.4.2021 के आदेश के तहत अपीलकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया।

4. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इससे पहले 16.11.2019 को अपीलकर्ता ने ग्राम शिवपुरी, बी.के.टी., लखनऊ में स्थित गाटा संख्या 1727/1 क्षेत्रफल 0.0400 हेक्टेयर तथा गाटा संख्या 1727/2 क्षेत्रफल 0.9670 हेक्टेयर भूमि आलोक कुमार वर्मा को बेची थी तथा उसे 12,00,000/- रुपये के दो चेक प्राप्त हुए थे। उक्त धनराशि अपीलकर्ता के खाते में 21.11.2019 तथा 04.01.2020 को चेक संख्या 136176 तथा 136177 के माध्यम से जमा की गई थी। उक्त ट्रैक्टर अपीलकर्ता द्वारा उक्त धनराशि अर्जित करके खरीदा गया था।

5. जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ के कारण बताओ नोटिस के अनुपालन में अपीलकर्ता ने जवाब प्रस्तुत किया था, जिसमें कहा गया था कि अपीलकर्ता ने उक्त ट्रैक्टर UP 32 LR 0454 को संतोष सर्विस थाना, सीतापुर रोड, इटौंजा, लखनऊ से दिनांक 21.02.2020 को खरीदा था तथा उसका पंजीकरण दिनांक 04.09.2020 को कराया गया था। ट्रैक्टर की क्रय मूल्य 5,15,000/- रुपये था। उसने दिनांक 21.02.2020 को 1,00,000/- रुपये नकद दिए थे तथा शेष राशि हेतु 20,000/- रुपये प्रतिमाह की दर से

बराबर किस्त तय की गई थी, जिसे डीलर को वापस कर दिया गया था। उपरोक्त समस्त धनराशि भारतीय स्टेट बैंक के खाता संख्या 38937795036 से डेबिट कर दी गई थी। इसके बावजूद भी, विद्वान जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने दिनांक 11.09.2021 के आदेश द्वारा उक्त ट्रैक्टर की कुर्की का आदेश पारित किया तथा संबंधित थाने में जब्त कर लिया। विचाराधीन वाहन को जब्त करने के बाद, अपीलकर्ता ने आपराधिक विविध वाद संख्या 659/2021 धारा 14 (1) यू.पी. गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत विद्वान विशेष न्यायाधीश, गिरोहबन्द अधिनियम / अपर सत्र न्यायाधीश, लखनऊ के समक्ष संपर्क किया, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के मामले को खारिज कर दिया और विद्वान जिला मजिस्ट्रेट के आदेश की पुष्टि की।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलार्थी को वर्तमान मामले में झूठा फँसाया गया है। आवेदक ने विचाराधीन वाहन की किस्त नियमित रूप से जमा की है। आगे तर्क यह है कि आवेदक ने जिस स्रोत से विचाराधीन वाहन क्रय किया है, उसके बारे में अपीलार्थी ने जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ विशेष न्यायाधीश के समक्ष स्पष्टीकरण दिया है, परन्तु बिना कोई निष्कर्ष दर्ज किए, प्रश्नगत आदेश पारित कर दिया गया है, जो अवैधानिक, अनुचित और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के विरुद्ध है। आगे तर्क यह है कि आवेदक ने प्रश्नगत वाहन वैध स्रोत से खरीदा है, इसलिए धारा 14 (1) का प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा। आगे तर्क यह है कि जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रश्नगत आदेश न्यायिक विवेक के साथ-साथ अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के बिना पारित किए गए हैं। आगे तर्क यह है कि जाँच के दौरान, बिना किसी ठोस साक्ष्य को एकत्र किए जाँच करने से आवेदक का कथित अपराध से सीधा संबंध स्थापित हो गया, इसलिए प्रश्नगत आदेश रद्द किए जाने योग्य है। आगे तर्क यह है कि जब तक जब्त वाहन आवेदक के पक्ष में जारी नहीं किया जाता, तब तक उसके साथ गंभीर पक्षपात होगा और मुकदमे के लंबित रहने के दौरान वाहन को रखने का कोई उपयोगी उद्देश्य नहीं है, इसलिए आवेदक वाहन को जारी करने हेतु जमानत देने हेतु तैयार है।

7. दूसरी ओर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का विरोध करते हुए, विद्वान

अपर शासकीय अधिवक्ता ने वाहन को अवमुक्त करने की प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया तथा प्रस्तुत किया कि जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ विचारण न्यायालय ने भी उचित रीति से प्रश्नगत आदेश पारित किया है, जो उचित और न्यायसंगत है तथा इसमें कोई अवैधता या कमी नहीं है।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

9. वर्तमान रिट याचिका में शामिल मुद्दे से निपटने हेतु, अधिनियम, 1986 की धारा 14 से 18 के प्रावधानों की चर्चा आवश्यक है और इसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

14. संपत्ति की कुर्की - (1) यदि जिला मजिस्ट्रेट के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यक्ति के कब्जे में कोई संपत्ति, चाहे वह चल हो या अचल, इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप किसी गिरोहबन्द द्वारा अर्जित की गई है, तो वह ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है, चाहे किसी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान लिया गया हो या नहीं।

(2) संहिता के प्रावधान, यथावश्यक परिवर्तनों सहित, ऐसी प्रत्येक कुर्की पर लागू होंगे।

(3) संहिता के प्रावधानों के बावजूद, जिला मजिस्ट्रेट उपधारा (1) के तहत कुर्क की गई किसी भी संपत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकता है और प्रशासक के पास ऐसी संपत्ति के सर्वोत्तम हित में प्रशासन करने की सभी शक्तियाँ होंगी।

(4) जिला मजिस्ट्रेट ऐसी संपत्ति के उचित और प्रभावी प्रशासन हेतु प्रशासक को पुलिस सहायता प्रदान कर सकता है।

15. संपत्ति की रिहाई - (1) जहाँ कोई संपत्ति धारा 14 के अधीन कुर्क की जाती है, वहाँ उसका दावेदार ऐसी कुर्की की जानकारी की तारीख से तीन महीने के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को एक अभ्यावेदन दे सकेगा, जिसमें वह उन परिस्थितियों और स्रोतों को दर्शाएगा जिनसे ऐसी संपत्ति उसके द्वारा अर्जित की गई थी।

(2) यदि जिला मजिस्ट्रेट उपधारा (1) के अधीन किए गए दावे की वास्तविकता के बारे में संतुष्ट हो जाता है, तो वह संपत्ति को तुरंत कुर्की से मुक्त कर देगा और उसके बाद ऐसी संपत्ति दावेदार को सौंप दी जाएगी।

16. न्यायालय द्वारा संपत्ति के अधिग्रहण के स्वरूप की जाँच - (1) जहाँ धारा 15 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई अभ्यावेदन नहीं किया जाता है या जिला मजिस्ट्रेट धारा 15 की

उपधारा (2) के अधीन संपत्ति को मुक्त नहीं करता है, तो वह मामले को अपनी रिपोर्ट के साथ इस अधिनियम के अधीन अपराध का विचारण करने हेतु अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को संदर्भित करेगा। (2) जहाँ जिला मजिस्ट्रेट ने धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन किसी संपत्ति को कुर्क करने से इंकार कर दिया है या धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन किसी संपत्ति को छोड़ने का आदेश दिया है, वहाँ राज्य सरकार या ऐसे इंकार या छोड़ने से व्यथित कोई व्यक्ति उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय को यह जाँच करने हेतु आवेदन कर सकता है कि क्या संपत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय अपराध के किए जाने के परिणामस्वरूप या उसके द्वारा अर्जित की गई थी। ऐसा न्यायालय, यदि वह न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझता है, तो ऐसी संपत्ति को कुर्क करने का आदेश दे सकता है।

(3)(a) उपधारा (1) के अधीन निर्देश या उपधारा (2) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर न्यायालय जाँच हेतु तारीख नियत करेगा और इसकी सूचना उपधारा (2) के अधीन आवेदन करने वाले व्यक्ति को या, यथास्थिति, धारा 15 के अधीन अभ्यावेदन करने वाले व्यक्ति को और राज्य सरकार को और किसी अन्य व्यक्ति को भी देगा, जिसका हित मामले में अंतर्ग्रस्त प्रतीत होता है।

(b) इस प्रकार निर्धारित तिथि को या किसी पश्चातवर्ती तिथि को, जिसके लिए जाँच स्थगित की जा सकती है, न्यायालय पक्षकारों की सुनवाई करेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य प्राप्त करेगा, ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य लेगा जैसा वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि संपत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी या नहीं और धारा 17 के अधीन ऐसा आदेश पारित करेगा जो मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और आवश्यक हो।

(4) उपधारा (3) के अधीन जाँच के प्रयोजन हेतु न्यायालय को निम्नलिखित मामलों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. 5) के अधीन वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय की शक्ति होगी, अर्थात्:-

(a) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसे उपस्थित कराना तथा शपथ पर उसकी जाँच करना;

(b) दस्तावेजों की खोज और उन्हें प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना;

(c) शपथपत्र पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(d) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई लोक अभिलेख या उसकी प्रति मांगना;

(e) गवाह या दस्तावेजों की जाँच हेतु कमीशन जारी करना; (च) चूक हेतु किसी संदर्भ को खारिज करना या उस पर एकपक्षीय निर्णय करना।

(f) चूक हेतु खारिज करने के आदेश या एकपक्षीय निर्णय को अपास्त करना।

(g) इस धारा के अधीन किसी कार्यवाही में, यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत संपत्ति या उसका कोई भाग इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध के परिणामस्वरूप किसी गिरोहबन्द द्वारा अर्जित नहीं किया गया था, संपत्ति का दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा, भले ही भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का अधिनियम सं. 1) में इसके विपरीत कोई बात क्यों न हो।

17. जाँच के पश्चात आदेश - यदि ऐसी जाँच के पश्चात न्यायालय पाता है कि संपत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध के परिणामस्वरूप किसी गिरोहबन्द द्वारा अर्जित नहीं की गई थी, तो वह उस व्यक्ति की संपत्ति को छोड़ने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह संपत्ति कुर्क की गई थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे, संपत्ति को कुर्क करके, जब्त करके या उस पर कब्जे के हकदार किसी व्यक्ति को सौंपकर या अन्यथा उसके निपटान हेतु।

18. अपील - संहिता के अध्याय XXIX के प्रावधान, यथावश्यक परिवर्तनों सहित, किसी भी निर्णय के विरुद्ध अपील पर लागू होंगे।

10. वर्तमान मामले में, उक्त वाहन का स्वामित्व विवाद में नहीं था। एकमात्र विवाद यह है कि आवेदक ने जिस स्रोत से प्रश्नगत वाहन खरीदा है, उसके बारे में आवेदक ने स्पष्ट किया है, उस पर जिला मजिस्ट्रेट और विशेष न्यायाधीश दोनों ने विचार नहीं किया है। परिणामस्वरूप, जब एक बार निचली न्यायालय के समक्ष उक्त वाहन को मुक्त करने हेतु प्रार्थना की गई और आवेदक ने आय का वह स्रोत दिखाया, जिससे उसने प्रश्नगत वाहन खरीदा, तो न्यायालय को मात्र कब्जे के अधिकार के प्रश्न पर विचार करना चाहिए था।

11. **बदन सिंह उर्फ बद्दो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2002 सी.आर.एल. एल.जे. 1392** के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्न टिप्पणी की थीः

"..... उसके आपराधिक कृत्य और उसके द्वारा अर्जित संपत्ति के बीच

संबंध अवश्य होना चाहिए। किसी अपराध में उसकी संलिप्तता मात्र उसकी संपत्ति कुर्क करने हेतु पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या संपत्ति का उसका अर्जन अधिनियम में वर्णित किसी अपराध के परिणामस्वरूप हुआ था, जो किसी गिरोह का सदस्य, नेता या आयोजक होने के नाते हुआ था। एक व्यक्ति ने कई अपराध किए होंगे, परन्तु यदि उसके द्वारा अर्जित संपत्ति कानूनी स्रोत से उसकी कमाई की सहायता से थी, तो अधिनियम की धारा 14 के तहत उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती।"

12. उपर्युक्त दृष्टिकोण निश्चित रूप से आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क का समर्थन करता है कि वाहन को पुलिस थाने में रोके रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

13. प्रथम दृष्टया यह सामने आता है कि अपीलकर्ता द्वारा खरीदा गया ट्रैक्टर गिरोहबन्द के सदस्य के रूप में अर्जित स्रोतों से नहीं खरीदा गया है और अपीलकर्ता ने अपने धन के स्रोत को पूरी तरह से स्थापित कर दिया है जहाँ से उक्त ट्रैक्टर खरीदा गया है।

14. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, **तत्काल आपराधिक अपील को स्वीकार किया जाता है**। विचारण न्यायालय के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ को निर्देश दिया जाता है कि संबंधित वाहन यानी अपीलकर्ता का ट्रैक्टर संख्या UP32LR0454यू, चेसिस संख्या MEA11FA1KK2271719, इंजन संख्या S33411404 को अपीलकर्ता के पक्ष में तुरंत निम्नलिखित शर्तों के अधीन जारी किया जाए:-

1. वह संबंधित पुलिस थाना के समक्ष मूल पंजीकरण प्रमाण पत्र, बीमा पत्र प्रस्तुत करेगा, जिसका उचित सत्यापन किया जाएगा और उसकी सत्य सत्यापित प्रतियाँ प्रस्तुत करेगा।

2. वह संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की संतुष्टि हेतु दो सक्षम प्रतिभूओं के साथ एक अनुबन्ध निष्पादित करेगा।

3. वह मुकदमे के समापन तक हर समय वाहन का बीमा रखेगा और आवश्यकता पड़ने पर बीमा प्रमाण पत्र को विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेगा; उसे न्यायालय को यह संतुष्टि देनी होगी कि वह वाहन का पंजीकृत स्वामी है।

4. वह वाहन के रंग या इंजन के किसी भाग और चेसिस संख्या को नहीं बदलेगा।

अनुवादित

5. वह वाहन को न्यायालय के समक्ष या न्यायालय द्वारा निर्देशित अन्य प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

6. वह मामले के निस्तारण तक वाहन को किसी अन्य को हस्तांतरित नहीं करेगा और न ही उसका कब्जा किसी और को देगा।

7. वह वाहन को किसी अपराध हेतु प्रयोग नहीं होने देगा।

(2023) 5 ILRA 1319

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

आपराधिक अपील संख्या 1496/1995

कमल सिंह **...अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...विपक्षी**

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री महेश कुमार कुंतल, श्री आर. भार्गव

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 307-दोषी- 3 वर्ष का कठोर कारावास- वादी ने तहरीर प्रस्तुत की - वह सोहन सिंह की हत्या से संबंधित मामले में गवाह था- अभियुक्त ने उसे धमकाया- वादी पर और रोहन सिंह की छाती पर दो गोलियां चलाई गईं- धारा 307 के प्रावधान को लागू करने के लिए केवल घातक हथियार का उपयोग पर्याप्त है- यह आवश्यक नहीं है कि हमले के परिणामस्वरूप चोट लगनी चाहिए- अभियोजन पक्ष ने भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के तहत आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया- अपराध को किए जाने के बाद से 32 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है- अभियोजन पक्ष द्वारा कोई आपराधिक इतिहास प्रस्तुत नहीं किया गया- सजा घटाकर दो वर्ष का कठोर कारावास कर दी गई।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. चिमनभाई जगभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2009) 11 एससीसी 273
2. महाराष्ट्र राज्य बनाम काशीराव, (2003) 10 एससीसी 434,
3. प्रकाश चंद्र यादव बनाम बिहार राज्य, (2007) 13 एससीसी 134
4. एम.पी. राज्य बनाम केदार यादव, 2011 (1) एससीसी (सीआरआई) 108
5. रंजीत कुमार राम बनाम बिहार राज्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 500
6. राम बली बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2004 एससी 2329
7. दयाल सिंह और अन्य. बनाम उत्तरांचल राज्य, (2012) 8 एससीसी 263

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-प्रथम द्वारा प्रदत्त)

1 - यह आपराधिक अपील अपराध संख्या 138/1990 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 94/1992 (राज्य बनाम रतन सिंह और अन्य) में छठे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.09.1995 के खिलाफ धारा 307 और 506 आईपीसी पुलिस स्टेशन फरह, जिला मथुरा के तहत शुरू की गयी है। आक्षेपित निर्णय और आदेश के

अनुसार ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता कमल सिंह को धारा 307 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और उसे तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। उन्हें आईपीसी की धारा 506 के तहत आरोप से बरी कर दिया गया।

2 - अभियोजन की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है कि सूचनादाता शिव सिंह पुत्र थान सिंह निवासी महुअन, थाना फरह ने दिनांक 21.07.1990 को थाना फरह, मथुरा में इस आशय की लिखित रिपोर्ट दी कि वह सोहन सिंह की हत्या से संबंधित मुकदमे में गवाह है। जिसको लेकर उसके गांव के ही निवासी आरोपी रतन सिंह पुत्र प्यारे, रतन सिंह के दोनों बेटे कमल सिंह और भारत सिंह उससे दुश्मनी रखते हैं। उन्होंने उसे धमकी दी है कि अगर उसने उनके खिलाफ गवाही दी तो उसे जान से मार दिया जायेगा। दिनांक 20/21.07.1990 की मध्य रात्रि लगभग 12:00 बजे रोहन सिंह पुत्र ज्योति के गांव की छत पर सूचनादाता शिव सिंह रोहन सिंह के साथ बातचीत कर रहा था, तभी उपरोक्त आरोपियों ने छत पर आकर उसे धमकी दी कि वह उनके खिलाफ गवाही देने से बाज आए नहीं तो बाद में पछताएगा। सूचनादाता शिव सिंह ने उनसे कहा कि वह उन तथ्यों का प्रमाण देगा जो उसने देखें हैं। यह सुनकर आरोपी रतन सिंह ने अपने बेटों कमल सिंह और भारत सिंह को सूचनादाता को गोली मारने के लिए उकसाया। उसके उकसाने पर अपीलकर्ता कमल सिंह और भारत सिंह ने जान से मारने की नियत से सूचनादाता पर दो गोलियां चलाईं। गोली के छर्रे मुखबिर शिव सिंह की आंख के पास और रोहन सिंह के सीने पर लगे। सूचनादाता और रोहन सिंह के शोर मचाने पर ग्रामीण राम हंस पुत्र नेतराम, सोरन पुत्र नथिया, मान सिंह पुत्र राम खिलाड़ी और बलराम पुत्र खचेरा घटना स्थल पर पहुंचे। आरोपी सूचनादाता को धमकी देते हुए मौके से भाग गए कि आज तो उसकी जान बच गयी लेकिन किसी और दिन उसे मार डालेंगे।

3. सूचनादाता शिव सिंह ने दिनांक 21.07.1990 को प्रातः 06:15 बजे थाना फरह पर अपनी लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का-1) प्रस्तुत की जिसके द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 138/1990 धारा 307 व 506 आईपीसी के तहत पंजीकृत किया गया। चिक एफआईआर प्रदर्श का - 4 है।

4 - घायल रोहन सिंह और शिव सिंह की चिकित्सकीय जांच दिनांक 21.07.1990 को क्रमशः सुबह 8:00 बजे और सुबह 08:30 बजे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, फरह, मथुरा में डॉ. जी.एस.अवस्थी द्वारा की गई । चोट रिपोर्ट (प्रदर्श का-6) के अनुसार, शिव सिंह के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं :-

" 1- चेहरे के दाहिनी ओर बंदूक के कई खरोंच बिखरे हुए हैं, आकार में अंडाकार, 05 सेमी X 0.5 सेमी लाल रंग का। मुंह के दाहिने कोण से 3.5 सेमी ऊपर कालापन मौजूद है।

2- माथे के दाहिनी ओर आग्नेयास्त्र का घर्षण 0.5 सेमी X 0.5 सेमी, लाल रंग, अंडाकार आकार। दाहिनी भौंह से 1.5 सेमी ऊपर कालापन मौजूद है।"

डॉक्टर की राय में चोट नंम्बर 1 और 2 घर्षण के कारण लगी थी। चोट साधारण

प्रकृति की थी, अवधि लगभग आधे दिन पुरानी थी। आग्नेयास्त्र से चोट लग सकती है।

5 - चोट रिपोर्ट (प्रदर्श का-7) के अनुसार रोहन सिंह के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

"1. बंदूक की गोली का घाव दाहिनी ओर, छाती के ऊपरी भाग पर, आकार में अंडाकार, आकार 0.5 सेमी लाल रंग, उपस्थित।"

चिकित्सा अधिकारी की राय में, चोट कुंद वस्तु से लगी है और सामान्य प्रकृति की है, अवधि लगभग आधे दिन पुरानी है। चोट आग्नेयास्त्र से लग सकती है।

6 - मामले की जांच एस.आई. किशन सिंह द्वारा की गई। जिन्होने घटनास्थल का दौरा किया और साइट प्लान (प्रदर्श का-2) तैयार किया, गवाहों के बयान दर्ज किए और जांच के बाद आरोपी रतन सिंह, भारत सिंह और कमल सिंह खिलाफ आईपीसी की धारा 307 और 506 (प्रदर्शनी का-3) के तहत आरोप पत्र दाखिल किया।

7 - केस सुपुर्द होने के बाद, 03.07.1992 को कोर्ट ने आरोपी रतन सिंह, कमल सिंह और भारत सिंह के खिलाफ धारा 307/34 और 506 आईपीसी के तहत आरोप तय किया, जिन्होंने आरोप से इनकार कर दिया और मुकदमे का दावा किया।

8 - विचारण के दौरान अभियुक्त भारत सिंह की मृत्यु हो गयी तथा उसके विरूद्ध आपराधिक मामला समाप्त कर दिया गया है।

9 - अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आरोप साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने तथ्यों के गवाह के रूप में पी.डब्ल्यू.-1 शिव सिंह, पी.डब्ल्यू.-2 रोहन सिंह, पी.डब्ल्यू.-3 राम हंस और पी.डब्ल्यू.-4 सोरन की जांच की, जिन्होंने घटना के संबंध में गवाही दी थी। अभियोजन पक्ष ने औपचारिक गवाहों के रूप में पी.डब्ल्यू.-5, जांच अधिकारी एस.आई. किशन सिंह और पी.डब्ल्यू.-6 चिकित्सा अधिकारी डॉ. जी.एस.अवस्थी से भी पूछताछ की है।

10 - पीडब्लू-1 शिव सिंह ने अपनी लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का-1) को साबित कर दिया है। जांच अधिकारी एस.आई. किशन सिंह (पीडब्लू-5) ने चिक एफआईआर (प्रदर्श का-4), साइट प्लान (प्रदर्श का-2) और आरोप पत्र (प्रदर्श Ka-3) को साबित कर दिया है।

11 - 22.06.1994 को न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अभियुक्तों का बयान दर्ज किया। उन्होंने यह कहते हुए आरोप से इनकार किया कि गवाह उनके खिलाफ झूठे सबूत दे रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि घायलों ने फर्जी मेडिकल रिपोर्ट तैयार करायी है और उनके खिलाफ गलत आरोप पत्र दाखिल किया गया है। आरोपियों ने आगे कहा है कि गांव की राजनीति के कारण उन्हें हत्या के एक मामले में झूठा फंसाया गया था, जो पहले अज्ञात आरोपियों के खिलाफ दर्ज किया गया था। उन्होंने अपने बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया।

12 - अभियुक्त- अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि

अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना 20/21.07.1990 को रात 12 बजे हुई थी लेकिन लिखित रिपोर्ट में प्रकाश का कोई स्रोत नहीं बताया गया है। जांच अधिकारी ने अपने साइट प्लान में प्रकाश का स्रोत नहीं दर्शाया है। इसलिए, गवाहों के लिए अंधेरी रात में अपीलकर्ता- अभियुक्त को पहचानना संभव नहीं है। अपीलकर्ता- अभियुक्त की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार, आरोपी- अपीलकर्ता कमल सिंह और सह- अभियुक्त भारत सिंह (जो अब मृत है) ने आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल किया और शिव सिंह और रोहन सिंह को चोट पहुंचाई। लेकिन रोहन सिंह की चोट रिपोर्ट के अनुसार डॉक्टर ने राय दी है कि चोट कुंद वस्तु से लगी है और प्रकृति में सरल है। कोई पूरक चिकित्सा रिपोर्ट या एक्स- रे रिपोर्ट नहीं है, इसलिए बन्दूक की चोट साबित नहीं होती है। यह भी कहा गया है कि पुलिस को घटनास्थल से खाली कारतूस या घटना से संबंधित कोई अन्य सामान बरामद नहीं हुआ है। अपीलकर्ता के कब्जे से कोई हथियार या अन्य वस्तु बरामद नहीं हुई। जांच अधिकारी को घटना स्थल से खून से सनी मिट्टी या सादी मिट्टी भी बरामद नहीं हुई है। इसलिए केवल मौखिक साक्ष्य के आधार पर आरोपी के खिलाफ आरोप साबित नहीं होता है।

13 - इसके विपरीत राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दोनों घायल पीडब्लू-1 शिव सिंह और पीडब्लू-2 रोहन सिंह की चोट रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उनके शरीर पर आग्नेयास्त्र की चोटों का उल्लेख है। चोटों की प्रकृति के संबंध में डॉक्टर की राय अनुकूल नहीं है और न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है। अभियुक्त अपीलकर्ता को कोई लाभ केवल अभियुक्त- अपीलकर्ता की हिरासत से या घटना के स्थान से अपराध के हथियार, कट्टा और प्रयुक्त या अप्रयुक्त कारतूस को जब्त/ बरामद नहीं करने में जांच अधिकारी की ओर से चूक के कारण प्रदान नहीं किया जा सकता है।

14 - मैंने अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री महेश कुमार कुन्तल, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

15 - आईपीसी की धारा 307 के तहत हत्या के प्रयास की परिभाषा और सजा का प्रावधान किया गया है। **चिमनभाई जगभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2009) 11 एससीसी 273** के मामले में **महाराष्ट्र राज्य बनाम काशीराव, (2003) 10 एससीसी 434** के फैसले पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अभियोजन पक्ष को आईपीसी की धारा 307 के तहत अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित तत्वों को साबित करना होगा :-

"20... धारा 307 के तहत अपराध के मामले में साबित करने के लिए आवश्यक सामग्री हैं :-

(I) कि एक इंसान की हत्या का प्रयास किया गया,

(II) कि ऐसी मृत्यु अभियुक्त के कृत्य के परिणामस्वरूप या उसके द्वारा करने का प्रयास किया गया था, और

(III) कि ऐसा कार्य मृत्यु कारित करने के इरादे से किया गया था, या

यह ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से किया गया था :- (ए) आरोपी को पता था कि मौत होने की संभावना है, या (बी) प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त था या अभियुक्त ने ऐसा कार्य करके मृत्यु कारित करने का प्रयास किया कि जिसके बारे में उसे ज्ञात हो कि यह इतना आसन्न खतरनाक है कि इसके कारण सभी संभावित रूप से (ए) मृत्यु या (बी) ऐसी शारीरिक चोट जिससे मौत होने की संभावना हो , अभियुक्त के पास ऐसी मृत्यु या चोट कारित करने का जोखिम उठाने का कोई बहाना नहीं है।"

16 - इस धारा के तहत दोषसिद्धि को उचित ठहराने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि मौत का कारण बनने वाली शारीरिक चोट पहुंचाई गई हो। हालांकि वास्तव में पहुंचाई हुई चोट की प्रकृति अक्सर आरोपी के इरादे के बारे में निष्कर्ष निकालने में काफी सहायता कर सकती है, ऐसे इरादे का अनुमान अन्य परिस्थितियों से भी निकाला जा सकता है, और यहां तक कि कुछ मामलों में बिना किसी संदर्भ के भी पता लगाया जा सकता है। वास्तविक घावों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हमले के शिकार व्यक्ति को वास्तव में लगी चोट सामान्य परिस्थितियों में उसकी मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हो। न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या कार्य, इसके परिणाम की परवाह किए बिना, इरादे या ज्ञान के साथ और धारा में उल्लिखित परिस्थितियों के तहत किया गया था। अपराधी बनने के प्रयास में उपान्त कार्य की आवश्यकता नहीं है। यह कानून में यथेष्ट है, अगर उसके कार्यान्वयन में कुछ अति सक्रियता के साथ कोई इरादा मौजूद है तो किसी मामले को धारा 307 के दायरे में लाने के लिए अभियोजन पक्ष को धारा 300 द्वारा परिकल्पित तथ्यों और परिस्थितियों को सामने रखना होगा। यदि धारा 300 के संघटक की पूरी तरह से कमी है, तो धारा 307 के तहत कोई दोषसिद्धि नहीं हो सकती है। धारा के संघटक हैं (1) हत्या करने से संबंधित इरादा या ज्ञान, और (2) इसके प्रति कोई कार्य करना।

17 - धारा 307 आई.पी.सी. में वर्णित प्रयास एक जानबूझकर की गई प्रारंभिक कार्रवाई है जो अपने उद्देश्य में विफल हो जाती है, जो उस व्यक्ति की स्वतंत्र परिस्थितियों के कारण विफल हो जाती है जो इसकी उपलब्धियों की पूर्णता चाहता है। **प्रकाश चंद्र यादव बनाम बिहार राज्य, (2007) 13 एससीसी 134** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"मौत का कारण बनने के इरादे या ज्ञान के साथ कोई कार्य करना एक आवश्यक घटक है। आईपीसी की धारा 307 के पहले भाग के तहत दोषी ठहराए जाने के लिए पीड़ित को चोट लगना कोई पूर्व- आवश्यकता नहीं है। दूसरा भाग तब लागू होता है जब पीड़ित को चोट लगती है।"

18 - केवल घातक हथियार का उपयोग ही धारा 307 के प्रावधानों को लागू करने के लिए पर्याप्त है। अपराध गठित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हमले के परिणामस्वरूप

चोट लगनी चाहिए। यदि अपेक्षित इरादा हो तो एक प्रयास ही पर्याप्त है। हत्या का इरादा चोट के अस्तित्व या प्रकृति के अलावा अन्य परिस्थितियों से पता लगाया जा सकता है।

19 - **म.प्र. राज्य बनाम केदार यादव, 2011 (1) एससीसी (सीआरआई) 108,** शीर्ष अदालत ने माना है कि :-

"यह धारा आरोपी के कार्य और उसके परिणाम,यदि कोई हो, के बीच अंतर करती है। न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या कार्य, परिणाम की परवाह किए बिना, इरादे या ज्ञान के साथ और धारा में उल्लिखित परिस्थितियों के तहत किया गया था, इसलिए धारा 307 आईपीसी के तहत आरोपित एक आरोपी को केवल इसलिए बरी नहीं किया जा सकता क्योंकि पीड़ित को लगी चोटें साधारण चोट की प्रकृति की थीं।"

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का विश्लेषण किया जाना है।

20 - सूचनादाता घायल पीडब्लू-1 शिव सिंह ने अपनी गवाही दिनांक 27.11.1992 में बताया कि घटना लगभग दो वर्ष चार माह पूर्व घटित हुई थी। रात के 12 बज रहे थे। वह अपनी छत पर रोहन सिंह से बातचीत कर रहा था। आरोपी कमल सिंह, रतन सिंह और भारत सिंह उनकी छत पर आये। रतन सिंह ने उसे धमकी दी कि वह सोहन सिंह की हत्या के मामले में गवाही न दे, अन्यथा बाद में उसे पछताना पड़ेगा। शिव सिंह ने उसे उत्तर दिया कि उसने जो देखा है उसका सही प्रमाण दूंगा। यह सुनकर आरोपी रतन सिंह ने अपने बेटों से सूचनादाता शिव सिंह की हत्या करने को कहा। इस पर कार्रवाई करते हुए आरोपी भारत सिंह और कमल सिंह ने सूचनादाता को जान से मारने की नियत से सूचना दाता पर दो गोलियां चलाईं, जो सूचनादाता की आंखों के पास और रोहन सिंह की छाती पर लगीं। घायलों ने छिपकर शोर मचाया, जिस पर उनके गांव के राम हंस, सोरन, मान सिंह और बलराम वहां पहुंच गए, इस पर आरोपियों ने धमकी दी कि आज तो तुम बच गए, लेकिन अगली बार ऐसा करने पर तुम्हें बख्शा नहीं जाएगा और वापस अपने घर चले गए। पीडब्लू-1 शिव सिंह ने साबित किया कि उनमें से एक देशी पिस्तौल थी जिसका इस्तेमाल उन पर फायरिंग में किया गया था। उन्होंने प्राथमिकी दर्ज करने के संबंध में भी गवाही दी और बताया कि घायलों को पुलिस के साथ पीएचसी ले जाया गया, जहां उनकी मेडिकल जांच की गयी।

21 - पीडब्लू-1 शिव सिंह ने अपनी जिरह में बताया कि रोहन सिंह का घर आरोपी रतन सिंह के दक्षिण की ओर है। रतन सिंह के मकान के पूर्व दिशा में तीन- चार कमरे हैं। रतन सिंह के मकान के दक्षिण दिशा में एक खड़ंजा रास्ता स्थित है। रतन सिंह के घर और खरंजा रोड के बीच 3-4 फीट चौड़ा एक चबूतरा स्थित है। खरंजा के दक्षिण में रोहण का 4-5 फुट चौड़ा चबूतरा स्थित है। रोहन के चबूतरे के बाद उसका घर है जिसकी चौड़ाई 8 फीट है। फायरिंग के समय पीडब्लू-1 शिव सिंह और रोहन अपने घर की छत पर बैठे थे। पी.डब्ल्यू.-1 ने इस बात से इनकार किया कि कोठा के दक्षिण की ओर उसके कमरे स्थित हैं। पीडब्लू-

1 ने इस बात से इनकार किया कि गोलीबारी के समय वे कमरे में बैठे थे। उन्होंने कहा कि उन्होंने जांच अधिकारी को उस स्थान के बारे में बताया था जहां वे बैठे थे और रोहन के कोठे पर बिजली की रोशनी जल रही थी। पीडब्लू-1 ने कहा कि वह और रोहन कोठे की छत पर एक बिस्तर पर बैठे थे। फायरिंग के बाद उसके कपड़ों पर खून फैल गया। जांच अधिकारी ने न तो उससे पूछा और न ही उसके खून से सने कपड़े अपने कब्जे में लिए। पीडब्लू-1 ने अपनी जिरह में यह भी बताया कि राम हंस का घर घटनास्थल के बगल में है। उन्होंने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि उनके और आरोपियों के बीच दुश्मनी का मकसद उनके बेटे सोहन सिंह की हत्या थी। पीडब्लू-1 ने घटना के तुरंत बाद एफआईआर दर्ज न करने का कारण बताया है। उन्होंने कहा कि आरोपियों के डर से वह तुरंत एफआईआर दर्ज नहीं करा सके। उन्होंने सुबह थाने का दौरा किया। पीडब्लू-1 ने इस बात से इनकार किया कि रतन सिंह के घर और घटनास्थल के बीच की दूरी 50-60 फीट है।

22 - इस प्रकार, सूचनादाता घायल पीडब्लू-1 ने अपने साक्ष्य में घटना की तारीख, समय, स्थान और घटना स्थल पर घायल रोहन सिंह, राम हंस और सोरन सिंह की उपस्थिति को दर्शाया है। उन्होंने यह भी साबित किया कि रतन सिंह के घर और घटनास्थल के बीच की दूरी लगभग 15-20 फीट थी। पीडब्लू-1 ने आरोपियों की भागीदारी और उनके और रोहन सिंह को चोट पहुंचाने के तरीके के बारे में भी बताया है।

23 - घायल पीडब्लू-2 रोहन सिंह ने दिनांक 27.11.1992 को अपने साक्ष्य में बताया कि घटना लगभग दो साल और चार महीने पहले रात 12:00 बजे हुई थी, जब वह अपनी छत पर शिव सिंह के साथ बातचीत कर रहा था। रतन सिंह ने शिव सिंह को धमकी दी कि वह सोहन सिंह की हत्या के मामले में गवाही न दे और अगर गवाही देगा तो बाद में पछताना पड़ेगा। शिव सिंह ने कहा कि उसने जो देखा है उसका सबूत देगा, इसलिए रतन सिंह ने अपने बेटों को गोली मारकर शिव सिंह को मारने के लिए कहा। उसके उकसाने पर कमल सिंह और भारत सिंह ने शिव सिंह पर गोली चला दी। उनकी देशी पिस्तौल की गोली शिव सिंह की आंखों के पास और सीने पर लगी। पीडब्लू-2 ने आगे बताया कि उनके शोर मचाने पर सोरन सिंह, राम हंस और अन्य गवाह वहां पहुंचे। उन्होंने बताया कि सुबह करीब छह- साढ़े छह बजे संबंधित थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई गई।

24 - पीडब्लू-2 ने अपनी जिरह में कहा है कि उसके घर और आरोपी रतन सिंह के घर के बीच की दूरी लगभग 15 फीट है। अंधेरी रात थी लेकिन उसके घर में और शिव सिंह के घर में रोशनी जल रही थी। उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने जांच अधिकारी को आरोपियों द्वारा की गई दो फायरिंग के बारे में सूचित किया था। उन्होंने कहा है कि घाव से खून शरीर के साथ- साथ जमीन पर भी गिरा था। उन्होंने जिरह में कहा कि गवाह घटनास्थल पर तुरंत पहुंच गये । रोहन सिंह ने यह भी बताया कि आरोपियों के डर के कारण वे तुरंत एफआईआर दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन नहीं गए। पीडब्लू-2 ने इस बात से इनकार किया है कि

उनके घर और रतन सिंह के घर के बीच की दूरी लगभग 50-60 फुट है।

25 - इस प्रकार, पीडब्लू-2 घायल रोहन सिंह ने समय, स्थान, घटना के तरीके, घटना में आरोपियों की भागीदारी और उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए आग्नेयास्त्र, उसे और पीडब्लू 1 को प्राप्त चोटों के संबंध में पीडब्लू-1 शिव सिंह के साक्ष्य की पुष्टि की है। शिव सिंह द्वारा घटना के बाद एफआईआर दर्ज कराना और उसका तथा शिव सिंह का मेडिकल परीक्षण पीएचसी फरह, मथुरा में कराया गया।

26 - पी.डब्ल्यू.-3 राम हंस और पी.डब्ल्यू.-4 सोरन घटनास्थल के बगल में रहते हैं। घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति पीडब्लू-1 शिव सिंह और पीडब्लू-2 रोहन सिंह की गवाही से साबित होती है। पीडब्लू-3 राम हंस ने अपनी गवाही में कहा है कि घायल रोहन सिंह के परिजनों द्वारा किये गये शोर- शराबे को सुनकर वह घटनास्थल पर पहुंचे। उन्होंने अपने साक्ष्य दिनांक 05.12.1992 में कहा है कि घटना लगभग दो वर्ष चार माह पूर्व रात्रि 12 बजे की है । पीडब्लू-4 सोरन वहां मौजूद थे। उसने नीचे गोली के घाव शिव सिंह की नजर और रोहन सिंह की छाती पर देखे। जब उसने उनसे चोटों के बारे में पूछा तो रोहन सिंह ने उन्हें बताया कि अपीलकर्ता-आरोपी कमल और सह- आरोपी भारत (मृतक) ने उन पर फायरिंग की थी। पीडब्लू-3 राम हंस ने अपने साक्ष्य में कहा है कि छत पर बिजली की रोशनी थी। और रोहन के कमरे में रोशनी थी। पीडब्लू-3 राम हंस ने अपनी जिरह में स्वीकार किया और कहा कि उसने खुद आरोपी को नहीं देखा है जिसने फायरिंग कर शिव सिंह और रोहन सिंह को घायल कर दिया। वह वहां रोहन के परिजनों का रोना- धोना सुनकर पहुंच गया। जब वह वहां पहुंचा तो रोहन, उनकी पत्नी, भाई और बच्चे छत पर मौजूद थे। बाहर कमरे की छत पर खून फैला हुआ था।

27 - पीडब्लू-4 सोरन ने भी घटना की तारीख, समय और स्थान के संबंध में साक्ष्य दिए हैं। पीडब्लू-4 सोरन ने कहा है कि वह रोहन और शिव सिंह के घर से आ रही आवाज सुनकर जाग गया। राम हंस के वहां पहुंचने के बाद वह वहां पहुंचा। शिव सिंह और रोहन को चोटें आई थीं। रोहन के सीने से और शिव सिंह के माथे से खून बह रहा था। दोनों घायल वहां मौजूद लोगों को बता रहे थे कि अपीलकर्ता-अभियुक्त कमल सिंह और सह- आरोपी भारत सिंह ने उन पर गोलीबारी करके उन्हें घायल कर दिया था। पीडब्लू-4 ने बताया कि वहां लाइट जल रही थी। उन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि जांच अधिकारी ने उनसे घटना स्थल पर रोशनी की मौजूदगी के बारे में नहीं पूछा था, इसलिए उन्होंने उन्हें वहां जल रही रोशनी के बारे में नहीं बताया। पीडब्लू-4 सोरन ने बताया कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे तो घायल लोग छत पर थे और पास में ही छत पर एक खटिया पड़ी हुई थी।

28 - इस प्रकार, पीडब्लू-3 राम हंस और पीडब्लू-4 सोरन ने अपने बयान से घटना की तारीख, समय और स्थान, भागीदारी के संबंध में पीडब्लू-1 शिव सिंह और पीडब्लू-2 रोहन सिंह के आरोपियों की संख्या, उनके द्वारा पीडब्लू-1 शिव सिंह और पीडब्लू-2 रोहन सिंह को चोट पहुंचाने का तरीके के बयान की पुष्टि

की है जो कि एफआईआर और घायल शिव सिंह और रोहन सिंह के पीएचसी फराह, मथुरा में मेडिकल परीक्षण में दर्ज है। पीडब्लू-1 शिव सिंह, पीडब्लू-2 रोहन सिंह, पीडब्लू-3 राम हंस और पीडब्लू-4 सोरन के साक्ष्य ठोस, सच्चे और विश्वसनीय हैं। उनकी जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आता जिससे उनके सबूतों की सत्यता और विश्वसनीयता पर संदेह पैदा हो।

29 - देशी पिस्तौल एक घातक हथियार है। देशी पिस्तौल से लगी आग्नेयअस्त्र की चोट घातक प्रकृति की हो सकती है। अपीलकर्ता-अभियुक्त कमल सिंह और सह- अभियुक्त भारत सिंह ने अपने पिता रतन सिंह के उकसावे पर शिव सिंह और रोहन सिंह को मारने के लिए उन पर देशी पिस्तौल से गोली चलाई, जिससे उनके माथे और छाती पर क्रमशः एक- एक चोट आई। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, चोट पहुंचाने में प्रयुक्त हथियार और शरीर के जिस हिस्से पर चोट लगी है, उसे ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त कमल सिंह ने सह- अभियुक्त भारत सिंह के साथ मिलकर घायल शिव सिंह और रोहन सिंह पर उन्हें मौत के घाट उतारने के इरादे से गोली चलाई।

30 - जांच करने में जांच अधिकारी द्वारा कथित चूक/ अनियमितता के संबंध में अपीलकर्ता- अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत तर्क के संबंध में, शीर्ष न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा यह स्थापित किया गया है कि ऐसी चूक दोषमुक्ति का आधार नहीं हो सकती है और अन्य मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों से मामला सिद्ध होने पर आरोपी को इसका कोई लाभ नहीं मिलेगा।

31 - **रंजीत कुमार राम बनाम बिहार राज्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 500** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है :-

> *"21. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि आपराधिक मुकदमों में भले ही जांच दोषपूर्ण हो, बाकी सबूतों की जांच पड़ताल, जांच के दोषों के प्रभाव से स्वतंत्र रूप से की जानी चाहिए। अन्यथा आपराधिक मुकदमा निम्न स्तर तक गिर जाएगा जांच अधिकारी द्वारा की गई किसी भी चूक के लिए आपराधिक मुकदमों को हताहत नहीं किया जाना चाहिए। म.प्र. राज्य बनाम मानसिंह, (2003) 10 एससीसी 414 में यह माना गया कि भले ही जांच में कमियां थीं लेकिन वो अभियोजन संस्करण को बदनाम करने का आधार नहीं हो सकता । शिव शंकर सिंह बनाम झारखंड राज्य, (2011) 3 एससीसी 654 और सी. मुनिअप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2010) 9 एससीसी 567 में भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया था।"*

32 - **राम बाली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2004 एससी 2329** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है :-

> *"12. जांच को भी दोषपूर्ण बताया गया क्योंकि बंदूक को फोरेंसिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था। दोषपूर्ण जांच के मामले में अदालत को सबूतों के*

मूल्यांकन में सतर्क रहना होगा। लेकिन किसी आरोपी व्यक्ति को केवल जांच में दोष के कारण बरी करना सही नहीं होगा। यदि जांच जानबूझकर दोषपूर्ण है तो ऐसा करना जांच अधिकारी के हाथों में खेलने के समान होगा।"

33 - **दयाल सिंह और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, (2012) 8 एससीसी 263** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार प्रतिपादन किया है :-

"34. जहां हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली किसी आरोपी को दोष सिद्ध होने तक निष्पक्ष सुनवाई और निर्दोष होने की सुरक्षा प्रदान करती है, वहां यह भी विचार करती है कि एक आपराधिक मुकदमा आरोपी, समाज और सभी के लिए न्याय करने और अभियोजन को साबित करने का उचित मौका देने के लिए है। तभी कानून और व्यवस्था बनाए रखी जा सकती है। अदालतें केवल यह सुनिश्चित करने के लिए कार्य नहीं करती हैं कि किसी निर्दोष व्यक्ति को दंडित न किया जाए, बल्कि यह भी सुनिश्चित करें कि कोई दोषी व्यक्ति बच न जाए। दोनों न्यायाधीश के सार्वजनिक कर्तव्य हैं। इस दौरान मुकदमे के दौरान, विद्वान पीठासीन न्यायाधीश से निष्पक्षतापूर्वक और सही परिप्रेक्ष्य में काम करने की अपेक्षा की जाती है। जहां अभियोजन पक्ष लापरवाही या जानबूझकर दोषपूर्ण जांच के आधार पर मुकदमे को गलत दिशा देने का प्रयास करता है, वहां न्यायालय को गहराई से सतर्क रहना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि इसके बावजूद इस तरह के प्रयास से, निर्धारक प्रक्रिया विकृत नहीं होती है। वास्तव में "निष्पक्ष सुनवाई" के इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, न्यायालय को न्याय करने और साथ ही समाज के हितों की रक्षा करने में कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए।"

34 - पीडब्लू-3 राम हंस और पीडब्लू-4 सोरन, जो घटना स्थल के बगल में रहते हैं और जिनकी घटना के समय उपस्थिति पीडब्लू-1 शिव सिंह और पीडब्लू-2 रोहन सिंह के साक्ष्य से साबित होती है। दिनांक, समय, घटना का स्थान, तरीके, अभियुक्तों की भागीदारी, पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 को चोट पहुंचाने के तरीके, एफआईआर में दर्ज और मेडिकल जांच के संबंध में पीएचसी फरह मथुरा में दर्ज घायल पीडब्लू-1 शिव सिंह और पीडब्लू-2 रोहन सिंह के साक्ष्य की भी पुष्टि की गई। पीडब्लू-1, पीडब्लू-2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के साक्ष्य ठोस, सच्चे और विश्वसनीय हैं। उनकी जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आता जिससे उनके सबूतों की सत्यता और विश्वसनीयता पर संदेह पैदा हो।

35 - पीडब्लू-1 शिव सिंह, पीडब्लू-2 रोहन सिंह, पीडब्लू-3 राम हंस और पीडब्लू-4 सोरन के मौखिक साक्ष्यों की पुष्टि दस्तावेजी साक्ष्य, लिखित रिपोर्ट, चिक एफआईआर, शिव सिंह और रोहन सिंह की चोट रिपोर्ट द्वारा की गई है। आरोपी कमल सिंह और भारत सिंह (जो

अब मृत है) के खिलाफ साइट प्लान और आरोप पत्र दायर किया गया।

36 - दोषपूर्ण जांच के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया जाता है।

37 - अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क के संबंध में कि घायल रोहन सिंह की चोट रिपोर्ट में डॉक्टर ने कहा है कि चोट कठोर और कुंद वस्तु से हुई थी और मेडिकल रिपोर्ट के अवलोकन से सरल प्रकृति की है। ऐसा देखा गया है कि इसमें आगे उल्लेख किया गया है कि "चोटें आग्नेयास्त्र के कारण हो सकती हैं"। अत: अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क इस आधार पर आधारहीन है। इसके अलावा मेडिकल ऑफिसर पीडब्लू-6 डॉ. जी.एस.अवस्थी ने अपने साक्ष्य में शिव सिंह के शरीर पर पाई गई चोट संख्या 2 और रोहन सिंह के शरीर पर पाई गई चोट के संबंध में कहा है कि यह संभव है कि यह 20/ 21.07.1990 को आग्नेयास्त्र द्वारा लगी हो।

38 - मेडिकल ऑफिसर पी.डब्ल्यू.-6, डॉ. जी.एस.अवस्थी के मौखिक साक्ष्य के साथ मेडिकल रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए इस बिंदु पर अपीलकर्ता के विद्वान वकील के तर्क ज्यादा आधार नहीं रखते हैं और स्वीकार नहीं किए जाते हैं।

39 - रिकॉर्ड पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभियोजन ने उचित संदेह से परे साबित कर दिया है कि घटना की तारीख, समय और स्थान पर अभियुक्त- अपीलकर्ता कमल सिंह ने सह-अभियुक्तों के साथ शिव सिंह और रोहन सिंह पर गोली चलाई जो उनकी मौत का कारण बनने के इरादे से था। जिससे वे घातक रूप से घायल हो गए। अभियोजन पक्ष ने आईपीसी की धारा 307 के तहत आरोप को संदेह से परे साबित कर दिया है। आरोपी- अपीलकर्ता के खिलाफ ट्रायल कोर्ट ने उस धारा के तहत अपीलकर्ता- अभियुक्त को सही तरीके से दोषी ठहराया है।

40 - अभियुक्त- अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने यह भी प्रस्तुत किया है कि यदि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की अनुमति नहीं दी जाती है, तो यह मानते हुए कि घटना 32 वर्ष से अधिक पहले वर्ष 1990 में हुई थी और अपीलकर्ता-अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। या वह किसी अन्य आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं है, तो उसे परिवीक्षा पर रिहा किया जा सकता है।

41 - राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आरोपी- अपीलकर्ता को परिवीक्षा पर रिहा किये जाने की प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि अपीलकर्ता ने धारा 307 आईपीसी के तहत अपराध किया है। जिसके लिए आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान है, इसलिए वह परिवीक्षा का लाभ पाने का हकदार नहीं है।

42 - मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता- अभियुक्त ने घायल पी.डब्ल्यू.-1

शिव सिंह से उस मामले में गवाही न देने के लिए कहा था जिसमें अपीलकर्ता-अभियुक्त पर सूचनादाता (पी.डब्ल्यू.1) के बेटे की हत्या का मुकदमा चल रहा था और जब सूचनादाता शिव सिंह ने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो आरोपी-अपीलकर्ता कमल सिंह ने सह- अभियुक्तों के साथ देसी पिस्तौल से शिव सिंह और रोहन सिंह पर गोली चला दी, जिससे उनके महत्वपूर्ण अंगों पर चोटें आईं। अपीलकर्ता को परिवीक्षा पर रिहा करने का कोई आधार नहीं है।

43 - मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, विशेषकर यह कि अपराध किए हुए 32 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है और अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता- अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास प्रस्तुत नहीं किया है, अपीलकर्ता-अभियुक्त को दी गई सजा की अवधि कम कर दी गई है। उस पर लगाए गए जुर्माने को संशोधित किए बिना तीन साल से दो साल के कठोर कारावास की सजा दी जाती है। आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

44 - अपीलकर्ता- अभियुक्त को 30 दिनों के भीतर संबंधित ट्रायल कोर्ट के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा। ट्रायल कोर्ट उसे हिरासत में ले लेगी और सजा काटने के लिए उचित जेल भेज देगी। अपीलकर्ता-अभियुक्त ने जांच और परीक्षण के दौरान जो अवधि पहले ही काट ली है, वह सीआरपीसी की धारा 428 के प्रावधानों के अनुसार उसे दी गई सजा के खिलाफ समायोजित की जाएगी ।

45 - इस फैसले की एक प्रति ट्रायल कोर्ट के रिकॉर्ड के साथ अनुपालन के लिए संबंधित अदालत को भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 1328

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद असलम,

आपराधिक अपील संख्या 2198 / 2018

सत्ता@सत्य प्रकाश ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एस.पी.एस.चौहान, श्रीमती मीनाक्षी चौहान

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

ए. **दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 374(2)- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 377- धारा 5/6 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम-2012- चुनौती- दोषसिद्धि- चिकित्सा रिपोर्ट और डॉ. (पीडब्लू-4) द्वारा तैयार की गई पूरक चिकित्सा रिपोर्ट से यह साबित होता है कि पीड़िता को चोटें आईं हैं - पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयानों की पुष्टि चिकित्सा रिपोर्ट से होती है- अभियुक्त-अपीलकर्ता की भी चिकित्सा जांच की गई जिसमें 'उसकी सांसों में शराब की गंध पाई गई' और उसे भी चोटें आईं लेकिन अभियुक्त-अपीलकर्ता की चोटें साबित नहीं हुई हैं- पीडब्लू-2 का बयान स्वाभाविक है, उसमें कोई विरोधाभास नहीं है और वह विश्वास जगाता है- उसके बयान की पुष्टि पीडब्लू-1 और पीडब्लू-3 के बयानों और चिकित्सा**

रिपोर्टों से होती है- इस प्रकार, विद्वान निचली अदालत ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को सही रूप से दोषी ठहराया और सजा सुनाई थी। (पैरा 1 से 43)

बी. यह सिद्ध करना आरोपी का काम है कि उसने कोई अपराध नहीं किया है या POCSO अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत अपराध करने के लिए उकसाया नहीं है और, यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो उसके खिलाफ अनुमान लागू होगा जिससे अधिनियम के प्रावधान के तहत उसे दोषी ठहराया जा सकेगा। यह विवादित नहीं हो सकता है कि कोई भी अनुमान निरपेक्ष नहीं है और हर अनुमान का खंडन किया जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि POCSO अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान निरपेक्ष है। यह तभी लागू होगा जब अभियोजन पक्ष पहले तथ्य स्थापित करने में सक्षम होगा और यह POCSO अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान के संचालन का आधार बनेगा। अन्यथा, इसके विपरीत साबित करने का पूरा भार अभियुक्त पर होगा। कानून की ऐसी स्थिति या POCSO अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान की व्याख्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्पष्ट रूप से संवैधानिक जनादेश का उल्लंघन करेगा और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को स्वतंत्रता से वंचित किया जा सकता है। (पैरा 29)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एपी राज्य बनाम थुम्मला अंजनेयुलु (2010) 14 एस.सी.सी. 621
2. जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य (2012) 4 एससीसी 379 पैरा 12
3. थुलिया काली बनाम टी.एन. राज्य (1972) 3 एससीसी 393
4. पंजाब राज्य बनाम सुरजा राम (1995) सप्लिमेंट 3 एससीसी 419
5. गिरीश यादव बनाम एम.पी. राज्य (1996) 8 एससीसी 186
6. समसुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य (2011) 10 एससीसी 158.)}
7. वूलमिंगटन बनाम सरकारी अभियोजक का निदेशक (1935) यूकेएचएल1
8. रेक्स बनाम अब्रामोविच (1914) 11 Cr. ऐप. आर 45
9. बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीसी 189 पैरा 27,28

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद असलम द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री एस.पी.एस.चौहान और उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान सरकारी अधिवक्ता श्री राजकमल को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आपराधिक अपील को आपराधिक मामले संख्या 67 वर्ष 2014 (राज्य बनाम सत्ता @ सत्य प्रकाश) में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-8, अलीगढ़ द्वारा पारित सजा के आदेश दिनांक 30.03.2018 के खिलाफ दायर किया

गया है, (जो भ०द०वि० की धारा 377 और यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम-2012 (इसके बाद 'पॉक्सो अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के तहत मामला अपराध संख्या 76/2014) पुलिस स्टेशन- लोढ़ा, जिला-अलीगढ़, से उत्पन्न हुआ है, जिसके तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता सट्टा @ सत्य प्रकाश को दोषी ठहराया गया था और धारा 5/6 पॉक्सो अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए एक वर्ष के अतिरिक्त कारावास की सजा काटने के लिए और 10,000 रुपये के जुर्माने की सजा और जुर्माना के भुगतान में चूक करने पर 10 साल की अवधि के कठोर कारावास सुनाई गई थी।

3. अभियोजन का मामला, संक्षेप में, यह है कि राकेश कुमार (अ०सा०-1) पुत्र रामजी लाल निवासी गांव लहौसरा, थाना-लोढ़ा, जिला अलीगढ़ ने 21.03.2014 को शाम 06:30 बजे की लिखित शिकायत (प्रदर्श क-1) के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई जिसमें आरोप लगाया गया था कि 21.03.2014 को, सूचनाकर्ता और उसकी पत्नी (सत्यवती, अ०सा०-2) कुछ घरेलू सामान खरीदने के लिए दिन में 12 बजे बाजार गए थे। वे करीब तीन साल के अपने बेटे को घर पर छोड़ आए थे। शाम करीब पांच बजे जब वे बाजार से लौटे तो उनका बेटा घर में मौजूद नहीं था। जब उन्होंने अपने बेटे की तलाश की, तो उन्होंने पीड़ित को अपने पड़ोसी-सट्टा @ सत्य प्रकाश, निवासी लहौसाना, थाना-लोढ़ा, जिला-अलीगढ़ के घर में पाया। पीड़िता नग्न पाई गई और आरोपी-अपीलकर्ता सट्टा @ सत्य प्रकाश उस पर सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) का कृत्य कर रहा था। जब उन्होंने शोर गुल मचाया, तो सूचनाकर्ता के चाचा-सुनील और उनकी पत्नी ने पीड़ित को जबरदस्ती अपनी हिरासत में ले लिया और वे आरोपी-अपीलकर्ता को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए थाना ले गए। कांस्टेबल मनीष कुमार (अ०सा०-5) ने दिनांक 21.03.2014 को सायं 6:30 बजे सूचनादाता की लिखित शिकायत के आधार पर चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) तैयार की और जी.डी. में आवश्यक प्रविष्टि करते हुए धारा 377 भ०द०वि० एवं धारा 5/6 पॉस्को अधिनियम के तहत केस अपराध संख्या-76 वर्ष 2014 के रूप में मामला दर्ज किया था और आरोपी-अपीलकर्ता को हिरासत में ले लिया गया। पीड़िता की मजरूबी चिट्ठी कांस्टेबल मनीष कुमार द्वारा तैयार की गई थी और पीड़ित और आरोपी-अपीलकर्ता सट्टा @ सत्य प्रकाश को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र भेजा गया था, जहां से उन्हें उसी दिन जिला मलखान सिंह अस्पताल-अलीगढ़ में रेफर कर दिया गया था। डॉ. एम. के. माथुर ने दिनांक 21.03.2014 को रात्रि 8:20 बजे पीड़िता की चिकित्सा जांच की। मेडिकल जांच के समय पीड़िता की उम्र तीन साल पाई गई।

4. चिकित्सा जांच के समय पीड़िता के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

गुदा भाग को छोड़कर शरीर पर कोई बाहरी चोट नहीं देखी गई।

गुदा भाग की ल्यूकल परीक्षा.

गुदा दबानेवाला यंत्र का म्यूकोसा।

घर्षण गुदा छिद्र के भाग के पूर्वकाल को प्रस्तुत करता है।

गुदा नहर में मौजूद बलगम का निर्वहन और हिस्टोपैथोलॉजिकल परीक्षा के लिए संरक्षित निर्वहन की दो स्लाइड।

राय - गुदा में कुछ कठिन लंबी चीज के बलपूर्वक प्रविशटि का संकेत मौजूद है और हिस्टोपैथोलॉजिकल परीक्षा के लिए संरक्षित गुदा भाग से निर्वहन की दो स्लाइड।

अवधि: ताजा।

5. डॉ. एम. के. माथुर (अ०सा०-4) ने मेडिकल जांच के समय अपनी लिखावट में और अपने हस्ताक्षर के तहत चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) तैयार की। पैथोलॉजिकल जांच में वरिष्ठ परामर्शदाता पैथोलोजिस्ट, मलखान सिंह जिला अस्पताल, और डॉ सईद मोहम्मद द्वारा स्मीयर में किसी शुक्राणुजोआ का पता नहीं चला था। पीड़ित की पैथोलॉजिकल रिपोर्ट के आधार पर डॉ. एम.के माथुर द्वारा पूरक रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) तैयार की गई। उन्होंने कहा कि गुदा स्मीयर में नहीं देखे गए। शुक्राणुजोज़ा के कारण सक्रिय यौन हमले के बारे में कोई पुष्टि राय नहीं दी जा सकती है।

6. अभियुक्त-अपीलकर्ता सट्टा @ सत्य प्रकाश को भी चिकित्सा परीक्षण के लिए भेजा गया था और मलखान सिंह जिला अस्पताल में 21.03.2014 को डॉक्टर चरण सिंह द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई थी।

7. चिकित्सा जांच के समय आरोपी सट्टा @ सत्यप्रकाश के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

"सामान्य स्थिति - सचेत उन्मुख

मरीज की सांस लेने में शराब की गंध पाई गई

पल्स रेट -100 प्रति मिनट,

बीपी 126/80 एचजी

पोस्ट पोलियो अवशिष्ट पक्षाघात बाएं निचले अंग में मौजूद है।

<u>चोटें</u>:-

1. संलयन 11 सेमी X 3 सेमी बाईं ओर स्कैपुला के मध्य में पीछे- लाल रंग का।
2. संलयन 15 सेमी X 3 सेमी बाईं ओर पीछे बाईं ओर 4 सेमी नीचे-लाल रंग का।
3. चोट संख्या-1 से 5 सेमी नीचे बाईं ओर से दाईं ओर स्कैपुला 25 सेमी X 3 सेमी पीछे का संलयन।

उपस्थित जननांग-जघन बालों की जांच.

-लिंग और अंडकोश सामान्य रूप से विकसित हैं।

-परेपूस आसानी से वापस लेने योग्य।

-लिंग, ग्लाना और बाहरी मांस पर कोई बाहरी चोट नहीं

-शुक्राणुजोअल और सूक्ष्म परीक्षा के लिए ग्लाना और बाहरी मांस से तैयार दो स्लाइड।

राय - उपरोक्त ने शराब का सेवन किया है, ऊपर की चोटें प्रकृति में सरल हैं और कुंद और कठोर वस्तु के कारण हैं; अवधि ताजा। दो स्लाइड तैयार की गईं, सील की गईं, लेबल लगाई गईं और सूक्ष्म जांच के लिए सौंपी गईं, अंडरवियर को सील किया गया, लेबल लगाया गया और संबंधित कांस्टेबल को सूक्ष्म जांच के लिए सौंप दिया गया।

8. पैथोलॉजिकल रिपोर्ट के बाद डॉक्टर चरण सिंह ने पूरक रिपोर्ट तैयार की। उन्होंने कहा कि कोई शुक्राणुजोज़ा नहीं पाया गया था। पूरक रिपोर्ट में डॉ. चरण सिंह ने बताया कि अंडरवियर की सूक्ष्म जांच का इंतजार है,

इसलिए अंडरवियर की रिपोर्ट के बाद ही राय दी जा सकती है। लेकिन निचली अदालत में अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता की चोट रिपोर्ट और पूरक चोट रिपोर्ट साबित नहीं की गई।

9. मामले की जांच उप-निरीक्षक डोरी लाल यादव द्वारा 21.3.2014 को की गई थी। उन्होंने सीडी व जी.डी. में सूचनाकर्ता की लिखित शिकायत दर्ज कर प्रकरण दर्ज किया और पीड़ित सत्यवती की माता कांस्टेबल मनीष कुमार, सूचनाकर्ता राकेश कुमार के बयान भी दर्ज किए। उन्होंने पीड़िता का बयान दर्ज करने की भी कोशिश की लेकिन कम उम्र के कारण वह बोल नहीं पा रही थी और घटना का वर्णन नहीं कर सकती थी। उन्होंने थाना-लोढ़ा के पुलिस लॉकअप में आरोपी-अपीलकर्ता सट्टा @ सत्य प्रकाश का बयान भी दर्ज किया। उन्होंने पीड़िता और आरोपी सट्टा @ सत्य प्रकाश की चोट रिपोर्ट की नकल की। 22.3.2014 को, उन्होंने सूचनाकर्ता के साथ घटनास्थल यानी अभियुक्त-अपीलकर्ता-सत्ता @ सत्य प्रकाश के घर का दौरा किया और नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-3) तैयार किया। उन्होंने पीड़िता और आरोपी-अपीलकर्ता की पूरक मेडिकल रिपोर्ट की भी नकल की। उन्होंने डॉ. एम. के. माथुर और डॉ. चरण सिंह के बयान भी दर्ज किए और जांच पूरी करने के बाद आरोप पत्र (प्रदर्श क-2) प्रस्तुत किया। अपराध का संज्ञान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, अदालत संख्या-8, अलीगढ़ द्वारा धारा 377 भ०द०वि० और धारा 5/6 पॉक्सो अधिनियम के तहत लिया गया था।

10. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की अदालत, न्यायालय संख्या-8, अलीगढ़ ने धारा 377 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम की धारा 5/6 के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोप तय किए थे। आरोपी-अपीलकर्ता ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

11. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सूचनाकर्ता राकेश कुमार, पीड़ित के पिता राकेश कुमार (अ०सा०-1), सत्यवती, पीड़ित की माँ को तथ्य के गवाह के रूप में, एस.आई. डोरीलाल यादव को अ०सा०-3 के रूप में जांच में उठाए गए कदमों को साबित करने के लिए, आरोप पत्र (प्रदर्श क-2) और नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-3), डॉ. एम.के माथुर से अ०सा०-4 के रूप में पूरक चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) और पीड़ित की चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) को साबित करने के लिए जांच की थी और कांस्टेबल मनीष कुमार अ०सा०-5 के रूप में चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) और जी.डी. (प्रदर्श क-7) मामला दर्ज किया।

12. निचली अदालत ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान दर्ज किया, जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया था और कहा था कि गवाह उसके खिलाफ झूठी गवाही दे रहे हैं और उसे झूठा फंसाया गया था। आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा यह कहा गया है कि सूचनाकर्ता-राकेश कुमार ने झूठा मामला दर्ज कराया था क्योंकि कथित रूप से सूचनाकर्ता की बुआ (चाची) आरोपी अपीलकर्ता के कालू (भांजा) के साथ गई थी जिसमें आरोपी को भी झूठा नामजद किया गया था और पुलिस ने इसमें अंतिम रिपोर्ट दायर की थी और इसी दुश्मनी के कारण

अपीलकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

13. सबूतों के मूल्यांकन के बाद निचली अदालत ने राकेश कुमार-सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) और सत्यवती, पीड़ित की मां (अ०सा०-2) की गवाही को विश्वसनीय पाया, जिसकी पुष्टि डॉ. एम.के माथुर (अ०सा०-4) द्वारा तैयार की गई मेडिकल रिपोर्ट और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से होती है और यह माना जाता है कि अभियोजन पक्ष ने धारा 377 भ०द०वि० और धारा 5/6 पॉक्सो पॉक्सो अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को स्थापित किया था, आरोपी-अपीलकर्ता को आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 30.03.2018 के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

14. व्यथित महसूस करते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने द०प्र०स० की धारा 374 (2) के तहत इस अपील को दायर की है।

15. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने शुरुआत में ही बताया कि इस मामले में चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि नहीं करते हैं और अभियुक्त को पूरी तरह से मनगढ़ंत कहानी पर दोषी ठहराया गया था और राकेश कुमार (अ०सा०-1) और सत्यवती (अ०सा०-2) द्वारा दिए गए सबूतों को अभियोजन पक्ष के मामले से पुष्टि नहीं मिलती है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि गवाह अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही में विसंगतियां थीं। आगे यह तर्क दिया गया है कि पैथोलॉजिकल परीक्षा के लिए गए गुदा स्मीयर में कोई शुक्राणुजोज़ा नहीं पाया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इस वर्णन पर, पूरक रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) डॉ एम.के. माथुर द्वारा तैयार की गई थी, जहां उन्होंने कहा कि शुक्राणुजोज़ा के कारण सक्रिय यौन हमले के बारे में कोई पुष्टि की गई राय नहीं दी जा सकती है, जो गुदा स्मीयर में नहीं देखी गई है। आगे यह तर्क दिया गया है कि पीड़ित को लगी चोट रिकॉर्ड पर सबूतों द्वारा स्थापित नहीं की गई थी कि उक्त चोटें आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा किए गए सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) के कारण हुई थीं। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि यदि आरोपी ने सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) का कृत्य किया होता, तो पीड़ित को शरीर के अन्य हिस्सों में भी चोटें आतीं, लेकिन गुदा में चोट के अलावा कोई चोट नहीं मिली, जो अभियोजन पक्ष के मामले को झुठलाती है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में स्वीकार किया था कि आरोपी-अपीलकर्ता दुर्गा देवी की मां घर में मौजूद थी जब सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) का कृत्य कथित रूप से किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि 5.2.2016 को, अ०सा०-1 और अ०सा०- 2 ने विचारण न्यायाधीश को अपने हलफनामे प्रस्तुत किए थे, जिसमें उन्होंने अभियोजन मामले से इनकार किया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयानों में महत्वपूर्ण विरोधाभास है क्योंकि राकेश कुमार (अ०सा०-1) ने अपनी मुख्य परीक्षण में स्वीकार किया था कि वह अपनी पत्नी के साथ अपने बेटे को अभियुक्त-अपीलकर्ता के घर में पीड़ित पाया था और उस

अनुवादित

समय आरोपी पीड़िता के साथ अप्राकृतिक अपराध कर रहा था, जबकि सत्यवती (अ०सा०-2) ने अपनी जिरह में कहा कि वह पहले अपने बेटे की तलाश में गई थी और जब वह अपने बेटे को आरोपी-अपीलकर्ता के घर में पाया, इसके बाद, उसने अपने पति को बुलाया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि बयान में उपरोक्त विरोधाभास मामले की जड़ तक जाता है और यह स्थापित करता है कि उपरोक्त नामित दो गवाहों ने घटना नहीं देखी है और उनकी गवाही अविश्वसनीय है और निचली अदालत ने उनकी गवाही पर गलत विश्वास किया है और क़यास और अनुमानों के आधार पर आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और सजा सुनाई है। विद्वान निचली अदालत के फैसले को रद्द किया जाना चाहिए। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि राकेश कुमार (अ०सा०-1) ने मुख्य परीक्षण में कहा कि जब उसने आरोपी-अपीलकर्ता को देखा, तो वह वास्तव में उसके बेटे पर हमला कर रहा था, लेकिन इसके विपरीत, अपनी जिरह में, उसने स्वीकार किया कि जब उसने आरोपी अपीलकर्ता को देखा तो उसने जींस पैंट और टी-शर्ट पहन रखी थी। उन्होंने आगे स्वीकार किया था कि अपीलकर्ता अपने पैर से विकलांग है और वह केवल अपने घुटने और हाथ के सहारे चल सकता है। उपरोक्त परिस्थितियों में, अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा है। सब इंस्पेक्टर डोरी लाल यादव (अ०सा०-3) ने स्वीकार किया था कि कथित घटना के समय गांव में पार्टी बंदी थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता के पिता और मां को छोड़कर, अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ मामला साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप झूठे और निराधार हैं और रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है जो अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप को साबित कर सके। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने सबूतों को गलत तरीके से पढ़ा है और रिकॉर्ड पर तथ्यों और सबूतों पर विचार किए बिना अवैध रूप से आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित किया है जिसे रद्द किया है और अपील की अनुमति दिए जाने योग्य है।

16. इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश विद्वान सरकारी अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का जोरदार विरोध किया है और तर्क दिया है कि यह घटना 21.3.2014 को लगभग 05:00 बजे हुई थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट उसी दिन यानी 21.3.2014 को शाम 06:30 बजे थाना-लोढ़ा, जिला अलीगढ़ में दर्ज की गई थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई थी, जिसमें आरोपी के झूठे फंसाने के लिए किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत और विचार-विमर्श से इनकार किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पीड़ित को 21.3.2014 को मजरूबी चिट्ठी के साथ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया था और उसके बाद, उसे मलखान सिंह जिला अस्पताल-अलीगढ़ में रेफर कर दिया गया था। पीड़ित की मलखान सिंह जिला अस्पताल में दिनांक 21.03.2014 को रात्रि 08:20 बजे डॉ एम.के. माथुर (अ०सा०-4) द्वारा तुरंत चिकित्सा जांच

की गई, जिन्होंने 'गुदा छिद्र पर चोट पाई और दूसरा गुदा छिद्र के पूर्ववर्ती भाग पर था' और चोट रिपोर्ट तैयार की (प्रदर्श क-5)। डॉक्टर ने कहा था कि 'गुदा नहर में कुछ कठोर लंबी चीज आक्रमण का संकेत मौजूद था'। विद्वान सरकारी अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उक्त चोटें उचित संदेह से परे साबित हुई थीं। आगे यह तर्क दिया गया है कि राकेश कुमार (अ०सा०-1) और सत्यवती (अ०सा०-2) के बयानों में विरोधाभास मामूली प्रकृति के हैं और मामले की जड़ तक नहीं जाते हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि भेदन यौन हमले के हर मामले में, शुक्राणुजोज़ा हमेशा पीड़ित के गुदा धब्बा में पाया जाएगा। विद्वान सरकारी अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि राकेश कुमार (अ०सा०-1) और सत्यवती (अ०सा०-2) ने बाजार में अपनी कार्यवाही के समय और बाजार से उनकी वापसी के समय के बारे में विस्तृत विवरण दिया था। उन्होंने यह भी विस्तृत विवरण दिया था कि वे घरेलू सामान खरीदने के लिए बाजार गए थे। उन्होंने अपने गांव से अलीगढ़ बाजार की दूरी भी बताई है और यह भी बताया है कि वे किस वाहन से बाजार गए थे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह संदेह से परे साबित हुआ था कि आरोपी ने सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) की है या दूसरे शब्दों में पीड़िता पर यौन हमला किया है और निचली अदालत ने उसे दोषी ठहराया है और उचित सजा दी है जिसके लिए इस अपील में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

17. इस मामले में, जैसा कि कथित रूप से घटना 21.3.2014 को शाम लगभग 5 बजे हुई थी और प्राथमिकी उसी दिन शाम 06:30 बजे दर्ज की गई थी। राकेश कुमार (अ०सा०-1) द्वारा लिखित शिकायत (प्रदर्श क-1) के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी। राकेश कुमार (अ०सा०-1) ने गवाही दी कि उन्होंने लिखित रिपोर्ट को डिक्टेट करके लिखा था, इसके बाद उन्होंने उस पर हस्ताक्षर किए। प्राथमिकी की मनगढ़ंत कहानी के बारे में कोई सवाल नहीं पूछा गया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह चुनौती नहीं दी गई थी कि राकेश कुमार (अ०सा०-1) के निर्देश पर लिखित शिकायत दी गई थी। आरोपी के साथ शिकायतकर्ता की दुश्मनी के बारे में कोई सवाल नहीं पूछा गया। प्राथमिकी दर्ज करने के समय के बारे में कोई सवाल नहीं पूछा गया। जिरह में प्राथमिकी में मनगढ़ंत या विचार-विमर्श को लेकर कोई सवाल नहीं पूछा गया.

18. बेबी एलियास सेबस्टेन और अन्य बनाम सर्किल इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस, आदिमाली (2016) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 742 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्राथमिकी का शीघ्र दर्ज करना किसी भी व्यक्ति को झूठा फंसाने के लिए विचार-विमर्श की संभावना को रोकता है। इस मामले में, प्राथमिकी दर्ज करने को चुनौती नहीं दी गई है। यह भी नहीं कहा गया कि प्राथमिकी मनगढ़ंत और उचित विचार-विमर्श का परिणाम थी।

19. उपरोक्त परिस्थितियों में, प्राथमिकी को तुरंत दर्ज करना बहुत महत्वपूर्ण है जो

अभियुक्त के विचार-विमर्श, मनगढ़ंत और झूठे फंसाने की किसी भी प्रकार की संभावना को खारिज करता है। प्राथमिकी के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि आरोपी को पीड़िता पर सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) का कृत्य करते हुए मौके पर ही पकड़ लिया गया था। राकेश कुमार (अ०सा०-1) और सत्यवती (अ०सा०-2) के बयानों से, यह साबित होता है कि सुनील (चाचिया ससुर) भी उनके साथ था और आरोपी को पकड़ा, उसे पीटा, उसे थाना-ले गया और प्राथमिकी दर्ज की, जिसकी पुष्टि आरोपी-अपीलकर्ता की मेडिकल रिपोर्ट से भी होती है। उसकी चोट की रिपोर्ट के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि आरोपी अपीलकर्ता को तीन चोटें आईं, लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त मेडिकल रिपोर्ट साबित नहीं की गई है।

20. द०प्र०स० की धारा 53 पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर चिकित्सक द्वारा अभियुक्त की परीक्षा के लिए प्रदान करती है जो निम्नानुसार है: -

"53. पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर चिकित्सक द्वारा अभियुक्त की परीक्षा। (1) जब कोई व्यक्ति ऐसी प्रकृति का अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जाता है और ऐसी परिस्थितियों में किए जाने का आरोप लगाया जाता है कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि उस व्यक्ति की परीक्षा किसी अपराध के किए जाने के बारे में साक्ष्य प्रदान करेगी, तो यह रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी के लिए विधिपूर्ण होगा, पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर कार्य करना जो उप-निरीक्षक के रैंक से नीचे का न हो, और उसकी सहायता में और उसके निर्देशन में सद्भावपूर्वक कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की ऐसी परीक्षा करना जो तथ्यों का पता लगाने के लिए यथोचित रूप से आवश्यक हो, जो इस तरह के सबूत को वहन कर सकते हैं, और उस उद्देश्य के लिए यथोचित रूप से आवश्यक बल का उपयोग करना।

(2) जब कभी किसी स्त्री के व्यक्ति की? इस धारा के अधीन परीक्षा की जानी है तो परीक्षा केवल किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सक द्वारा या उसके पर्यवेक्षण के अधीन की जाएगी।

स्पष्टीकरण-इस धारा में और धारा 53-ए और 54 में, -

(क) परीक्षा में यौन अपराधों के मामले में रक्त, रक्त के धब्बे, वीर्य, स्वैब, थूक और पसीना, बालों के नमूने और नाखूनों की कतरनों, जिनके अंतर्गत डीएनए प्रोफाइलिंग और ऐसी अन्य जांचें, जो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी किसी विशेष मामले में आवश्यक समझते हैं, का प्रयोग करके जांच करना शामिल होगा;

(ख) "पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी" का अर्थ है एक चिकित्सा व्यवसायी जो भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956 (102 वर्ष 1956) की धारा 2 के खंड (एच) में परिभाषित किसी भी चिकित्सा योग्यता रखता है और जिसका नाम राज्य चिकित्सा रजिस्टर में दर्ज किया गया है।

21. रिकॉर्ड के अवलोकन से यह साबित होता है कि विवेचनाधिकारी ने आरोपी की चिकित्सकीय जांच की, लेकिन यह एक खेदजनक स्थिति है कि अदालत में, आरोपी

अपीलकर्ता की चिकित्सा जांच रिपोर्ट साबित नहीं हुई।

22. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम थुम्मला अंजनेयुलु (2010) 14 एस.सी.सी. 621 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में शामिल स्वतंत्र चश्मदीद गवाह के साथ तुरंत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और प्राथमिकी की सहजता भी प्रत्यक्षदर्शी विवरण का समर्थन करती है, अभियोजन पक्ष के मामले पर भरोसा किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य (2012) 4 एस.सी.सी. 379 पैरा-'12' में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"12. एक आपराधिक मामले में प्राथमिकी एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान सबूत है, हालांकि सबूत का ठोस टुकड़ा नहीं हो सकता है। किसी अपराध के संबंध में प्राथमिकी को तुरंत दर्ज करने पर जोर देने का उद्देश्य उन परिस्थितियों के बारे में प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करना है जिनमें अपराध किया गया था, वास्तविक अपराधियों के नाम और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका के साथ-साथ घटनास्थल पर मौजूद चश्मदीद गवाहों के नाम भी शामिल हैं। यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट शुरू करने में विलंब होता है तो यह स्वतःस्फूर्तता का लाभ खो देता है, बड़ी संख्या में परामर्श/विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप रंगीन संस्करण, अतिरंजित विवरण या मनगढ़ंत कहानी को पेश करने का खतरा पैदा हो जाता है। निस्संदेह, प्राथमिकी दर्ज करने में तत्परता सूचनाकर्ता के संस्करण की सच्चाई के बारे में एक आश्वासन है। तुरंत दर्ज की गई प्राथमिकी में इस बात का प्रत्यक्ष विवरण दिया जाता है कि वास्तव में क्या हुआ था, और विचाराधीन अपराध के लिए कौन जिम्मेदार था। {(थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य, (1972) 3 एस.सी.सी. 393, पंजाब राज्य बनाम सुरजा राम (1995) सप्प (3) एस.सी.सी. 419, गिरीश यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1996) 8 एस.सी.सी. 186, और तकदीर शम्सुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य (2011) 10 एस.सी.सी. 158

23. राकेश कुमार (अ०सा०-1) और सत्यवती (अ०सा०-2) के बयानों को देखने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी जिरह में कुछ भी नहीं आया जो यह बताता है कि कोई दुश्मनी थी जो उन्हें आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाने के लिए प्रेरित करती है। अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कहा गया है कि राकेश की बुआ कालू (आरोपी-अपीलकर्ता का भांजा) के साथ गई थी। गवाह राकेश कुमार (अ०सा०-1) ने स्वीकार किया था कि रेशमिया आरोपी की बहन थी और ओमकार @ कालू उसका बेटा था। उन्होंने इस दलील का खंडन किया था कि ओमकार ने चिरमौली दास की बेटी को बहला-फुसलाकर भगा दिया था। उन्होंने इस दलील से इनकार किया कि आरोपी-अपीलकर्ता को दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था।

24. इस मोड़ पर, मुझे आपराधिक मामले के सबूत के बारे में कानून पर चर्चा करना आवश्यक लगता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम-1872 की धारा 3 'साबित', 'अप्रमाणित' और 'साबित नहीं' को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

"साबित": एक तथ्य तब साबित होता है, जब उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद, न्यायालय या तो मानता है कि यह अस्तित्व में है, या इसके अस्तित्व को इतना संभावित मानता है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति को विशेष मामले की परिस्थितियों में, इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि यह मौजूद है।

"अप्रमाणित" - एक तथ्य को अप्रमाणित कहा जाता है, जब उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद, न्यायालय या तो मानता है कि यह अस्तित्व में नहीं है, या इसकी गैर-मौजूदगी को इतना संभावित मानता है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति को विशेष मामले की परिस्थितियों में, इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि यह मौजूद नहीं है।
"साबित नहीं हुआ" - एक तथ्य को साबित नहीं कहा जाता है जब यह न तो साबित होता है और न ही अप्रमाणित होता है।

25. आपराधिक मामले में सबूत का आवश्यक मानक उचित संदेह से परे है और सिविल मामलों में, यह संभावनाओं की प्रधानता है। यह भेद मूल रूप से वूलमिंगटन बनाम लोक अभियोजक निदेशक (1935 यूकेएचएल 1), रेक्स बनाम अब्रामोविच (1914) 11 सीआर आर 45) में न्यायिक घोषणा के माध्यम से किया गया है।

26. मामला बच्चों के खिलाफ यौन अपराध के खतरे से संबंधित है, इसलिए, इस तरह के अपराध में मकसद की कोई भूमिका नहीं है। एक गवाह की मौखिक गवाही को उसकी जिरह पर विचार करके, यदि वह जिरह में निर्विवाद रहता है, तो उसकी गवाही को अन्य गवाहों की गवाही के साथ तौलकर, क्या उसकी गवाही को अन्य गवाहों की विश्वसनीय गवाही से पुष्टि मिलती है और विश्लेषण और मूल्यांकन करके कि क्या उसकी गवाही विरोधाभासी है या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है, की मूल्यांकन की जा सकती है, तो उसकी गवाही विश्वसनीय है।

27. पूर्वोक्त के आलोक में, धारा 29 पॉक्सो अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली धारणा के प्रभाव की जांच करना आवश्यक है।
"धारा 29-कुछ अपराधों के बारे में अनुमान - जहां किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत कोई अपराध करने या उकसाने या करने का प्रयास करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, विशेष न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या दुष्प्रेरित किया है या अपराध करने का प्रयास किया है, जैसा भी मामला हो, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो।

28. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से संकेत मिलता है कि यह अभियुक्त के लिए है कि वह इसके विपरीत साबित करे कि उसने पॉक्सो अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत अपराध नहीं किया है या उसे उकसाया नहीं है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो अनुमान उसके खिलाफ लागू होगा जिससे अधिनियम के प्रावधान के तहत उसकी दोषसिद्धि होगी। यह विवादित नहीं हो सकता है कि कोई भी अनुमान निरपेक्ष नहीं है और हर अनुमान खंडन योग्य है। यह नहीं कहा जा

सकता है कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान पूर्ण है। यह तभी परिचालन में आएगा जब अभियोजन पक्ष पहले इस तथ्य को स्थापित करने में सक्षम होगा और यह पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत संचालित होने के लिए अनुमान की नींव बनाएगा। अन्यथा, इसके विपरीत साबित करने का सारा भार अभियुक्त पर होगा। पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत कानून की ऐसी स्थिति या अनुमान की व्याख्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से संवैधानिक जनादेश का उल्लंघन करेगा और किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार छोड़कर स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है।

29. जिस तरीके से अभियुक्त के खिलाफ इस तरह की धारणा संचालित होगी, उसका विश्लेषण और विचार-विमर्श अदालतों द्वारा किया गया है, क्योंकि इस तरह की धारणा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम-1988 जैसे विभिन्न कानूनों में भी प्रदान की गई है। बाबू बनाम केरल राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी. 189 के मामले में पैरा-27 और पैरा-28 में निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

(IV) प्रमाण का बोझ और निर्दोषता का सिद्धांत।

"27. प्रत्येक अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि अपराध साबित न हो जाए। निर्दोषता की धारणा एक मानव अधिकार है। तथापि, सांविधिक अपवादों के अध्यधीन, उक्त सिद्धांत दांडिक न्यायशास्त्र का आधार बनता है। इस प्रयोजन के लिए, अपराध की प्रकृति, इसकी उसकी गंभीरता को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अदालतों को यह देखने के लिए सतर्क रहना चाहिए कि केवल अनुमान के आवेदन से कोई अन्याय या गलत दोषसिद्धि नहीं हो सकती है। परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 जैसे क़ानून; भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 और आतंकवादी और विघटनकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 में यदि इन संविधियों में उपबंधित परिस्थितियों को पूरा करते हुए पाया जाता है तो दोष की परिकल्पना का प्रावधान है और निर्दोष साबित करने का भार अभियुक्त पर डाल दिया गया है। हालांकि, इस तरह की धारणा केवल तभी उठाई जा सकती है जब अभियोजन पक्ष द्वारा कुछ मूलभूत तथ्य स्थापित किए जाते हैं। नकारात्मक तथ्य को साबित करने में कठिनाई हो सकती है।

28. हालांकि, ऐसे मामलों में जहां क़ानून अभियुक्त पर सबूत के बोझ के लिए प्रदान नहीं करता है, यह हमेशा अभियोजन पक्ष पर निहित है। यह केवल असाधारण परिस्थितियों में है, जैसे कि उन विधियों में से जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कि सबूत का बोझ अभियुक्त पर है। किसी विशेष क़ानून के तहत अभियुक्त के अपराध की धारणा के लिए भी वैधानिक प्रावधान को संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 में निहित तर्कसंगतता और स्वतंत्रता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। "

30. कानून की उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की जांच करनी होगी ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियोजन पक्ष ने पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत एक धारणा स्थापित की है या नहीं।

31. इस प्रकरण में सूचनाकर्ता / पीड़िता राकेश कुमार (अ०सा०-1) के पिता ने अपनी परीक्षा में बताया था कि दिनांक 21.03.2014 को दिन के लगभग 12 बजे वह अपनी पत्नी श्रीमती सत्यवती (अ०सा०-2) के साथ पीड़ित को उसके दो अन्य पुत्रों के साथ घर पर छोड़कर कुछ घरेलू सामान खरीदने अलीगढ़ बाजार गया था और जब वे लगभग 05:30 बजे बाजार से वापस लौटे, उन्हें पीड़िता घर पर नहीं मिली। उनके द्वारा तलाशी लेने पर, उन्होंने पीड़िता को आरोपी-अपीलकर्ता के घर में पाया। उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता को पकड़ लिया और देखा कि आरोपी-अपीलकर्ता पीड़िता को निर्वस्त्र करके उसके साथ यौनाचार का कृत्य कर रहा था। उन्होंने शोर मचाया और अन्य ग्रामीण भी वहां जमा हो गए। आरोपी-अपीलकर्ता को जनता ने पीटा और उसे थाना ले जाया गया जहां उसके खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई। लिखित शिकायत को (प्रदर्श क-1) के रूप में वर्णित किया गया था। जिरह में उसने पीड़िता समेत अपने बेटों के नाम बताए। उसने अपने गांव से बाजार की दूरी का भी खुलासा किया और कहा कि वह अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ रहता है। वह पेशे से राजमिस्त्री है और वह आमतौर पर काम के लिए सुबह 08:30 बजे घर से निकलता है और शाम 06:00 बजे वापस लौटता है। उन्होंने पुष्टि की कि घटना के दिन वह अपनी पत्नी के साथ बाजार गया था और आरोपी अपीलकर्ता (दुर्गा देवी) की मां घटना के समय आरोपी के घर में मौजूद थी। उन्होंने आगे कहा कि जब वह अपनी पत्नी के साथ वापस लौटे, तो उन्होंने पीड़ित के बारे में पूछताछ की और उन्हें बताया गया कि पीड़ित बाहर खेल रहा होगा। उन्होंने उसे ज़ोर से पुकारा लेकिन किसी ने जवाब नहीं दिया। उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता के घर से अपने बेटे के रोने की आवाज सुनी। उस समय आरोपी-अपीलकर्ता जींस पैंट, टी-शर्ट पहने हुए था और आरोपी-अपीलकर्ता विकलांग है और वह घुटने के बल रेंगता है। उन्होंने आगे कहा कि पीड़ित ने टी-शर्ट और अंडरवियर पहना हुआ था। जब वे वहां पहुंचे तो उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को पकड़ लिया। आरोपी पीड़िता के साथ सोडोमी (अप्राकृतिक मैथुन) की वारदात कर रहा था और आरोपी-अपीलकर्ता की मां अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि उनकी आरोपी-अपीलकर्ता के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी और कहा था कि आरोपी अपने नितंब की तरफ से जमीन पर गिर गया था और इसके परिणामस्वरूप, उसे चोटें आई थीं। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि शपथ पत्र (प्रदर्श क-2) पर हस्ताक्षर किए गए थे, जिसमें घटना से इनकार किया गया था।

32. रिकॉर्ड पर उपरोक्त साक्ष्य से, यह पता चलता है कि राकेश कुमार (अ०सा०-1) के बयान में कोई विरोधाभास नहीं है और पूरे बयान को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि हलफनामे पर हस्ताक्षर धोखाधड़ी से प्राप्त किए गए थे। वे अनपढ़ लोग होने के कारण शायद ही हलफनामे की सामग्री पढ़ सकते थे।

33. जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता के इस बयान के बारे में तर्क है कि वह अपनी पत्नी के साथ अभियुक्त-अपीलकर्ता के घर गया था, अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में स्पष्ट किया था कि सबसे पहले उसकी पत्नी (अ०सा०-2) घटनास्थल पर गई और जब उसने शोर गुल

मचाया, तो वह सुनील और अन्य व्यक्तियों के साथ वहां पहुंचा और आरोपी-अपीलकर्ता को पकड़ लिया। इस प्रकार, राकेश कुमार (अ०सा०-1) का कथन विश्वसनीय है।

34. जहां तक सत्यवती (अ०सा०-2) के बयानों का संबंध है, उसने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया था और कहा था कि 21.3.2014 को दिन में 12 बजे, वह अपने पति के साथ कुछ घरेलू सामान खरीदने के लिए अलीगढ़ बाजार गई थी। वे अपने बच्चों को घर पर छोड़ गए। जब वे शाम करीब 05:00 बजे बाजार से लौटे तो उन्होंने पीड़ित को गायब देखा। उन्होंने पीड़िता की तलाश शुरू की और पीड़िता को आरोपी-अपीलकर्ता के घर पर पाया जो पीड़िता के साथ गलत हरकत कर रहा था। उसने आगे कहा कि पुलिस ने उसके बेटे की मेडिकल जांच कराई थी और जिरह में उसने कहा था कि आरोपी-अपीलकर्ता का घर उनके घर के सामने है। उसने यह भी कहा था कि जब वह बाजार जा रही थी तो उसने एक मुन्नी देवी से अपने बच्चों की देखभाल करने के लिए कहा। उसने कहा कि उसकी सास उनके साथ अलग रह रही थी और जब वे अपने घर के लिए आगे बढ़े, तो उसकी सास भी घर में आ गई। उसने आगे कहा कि उसे पीड़िता के अंडरवियर में खून मिला और उसने इसे पुलिस को सौंप दिया। उन्होंने यह भी पुष्टि की कि शपथ पत्र में हस्ताक्षर धोखाधड़ी करके कपटपूर्ण तरीकों से प्राप्त किए गए थे।

35. डॉ. एम.के. माथुर (अ०सा०-4) द्वारा तैयार की गई मेडिकल रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) और पूरक मेडिकल रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) के अवलोकन से, यह साबित होता है कि पीड़ित को चोटें लगी थीं क्योंकि 'गुदा दबाने वाला यंत्र और घर्षण का एब्रेडेड म्यूकोसा गुदा छिद्र के पूर्व भाग में मौजूद था और हिस्टोपैथोलॉजिकल परीक्षा के लिए दो स्लाइड ली गई थीं' जहां गुदा स्मीयर में कोई शुक्राणुजोज़ा नहीं पाया गया था।

36. उपरोक्त साक्ष्य से पता चलता है कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयानों को मेडिकल रिपोर्ट से पुष्टि मिलती है।

37. यहां यह ध्यान रखना उचित है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता की भी चिकित्सकीय जांच की गई जिसमें 'उसकी सांस में मादक (शराब) की गंध मौजूद पाई गई' और उसने उन चोटों को भी बरकरार रखा जो पहले से ही निर्णय के शरीर में ऊपर वर्णित हैं। यह संबंधित अधिकारी की ओर से अजीब और सरासर चूक का मामला है कि आरोपी अपीलकर्ता की चोटें साबित नहीं हुई हैं।

38. सत्यवती (अ०सा०-2) का कथन स्वाभाविक है, महत्वपूर्ण विरोधाभास से रहित है और आत्मविश्वास को प्रेरित करता है। उसके बयान की पुष्टि राकेश कुमार (अ०सा०-1) के बयान और मेडिकल रिपोर्ट से होती है। एस.आई. डोरी लाल यादव (अ०सा०-3) ने आरोप पत्र (प्रदर्श क-2), नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-3) और जांच में उठाए गए कदमों को भी साबित किया जबकि कांस्टेबल मनीष कुमार (अ०सा०-5) ने चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) और जी.डी. (प्रदर्श क-7) को साबित किया है जो प्रकृति में औपचारिक हैं।

39. यहां यह भी ध्यान रखना उचित है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने सबूतों के साथ छेड़छाड़

करने और नष्ट करने की कोशिश की थी क्योंकि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के हस्ताक्षर धोखाधड़ी से शपथ पत्र में प्राप्त किए गए थे जिसमें घटना से इनकार किया गया था।

40. रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से, यह उचित संदेह से परे साबित होता है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता सट्टा @ सत्य प्रकाश ने धारा 377 भ०द०वि० और धारा 5/6 पॉक्सो अधिनियम के तहत दंडनीय गंभीर अपराध किया था और विद्वान निचली अदालत ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया था और सजा सुनाई थी।

41. उपरोक्त परिस्थिति में, मुझे अपील में कोई योग्यता नहीं मिलती है।

42. अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-08, अलीगढ़ की अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.03.2018 की पुष्टि की जाती है।

43. तदनुसार अपील खारिज की जाती है।

44. निचली अदालत के रिकॉर्ड को तुरंत संबंधित अदालत को वापस भेज दिया जाए।

(2023) 5 ILRA 1339

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद असलम,

आपराधिक अपील संख्या 3169 / 2020

अमृता नंद@त्रिभुवन अरजरिया@बाबा

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राम कृष्ण चौरसिया, श्री ब्रिजेश सहाय (वरिष्ठ अधिवक्ता),

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 374(2)-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 376 और 511-लैंगिक अपराधों से बच्चों का संरक्षण (पोक्सो) अधिनियम, 2012-धारा 7, 9(एम) और 10- दोषसिद्धि को चुनौती दी गई- 60 वर्षीय अपीलकर्ता ने चार साल की बच्ची को बहला-फुसलाकर ले गया-ट्रायल कोर्ट ने आरोपी को पोक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत दोषी ठहराया-एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया क्योंकि पीड़िता के पिता घटना के समय बाहर थे-बच्चे की गवाही को विश्वसनीय माना गया, योग्यता प्रमाण पत्र की अनुपस्थिति उसकी गवाही को अस्वीकार्य नहीं बनाती अगर वह तर्कसंगतता और समझ को प्रदर्शित करती है-इस प्रकार, दोषसिद्धि बरकरार रखी गई। (पैरा 1 से 50)

बी. यदि कोई बाल गवाह तथ्यों के बारे में गवाही देने में सक्षम और विश्वसनीय पाया जाता है तो ऐसा साक्ष्य दोषसिद्धि का आधार हो सकता है। दूसरे शब्दों में शपथ के अभाव में भी बाल गवाह के साक्ष्य पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के तहत विचार किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसा गवाह प्रश्नों को समझने में सक्षम हो और उनके तर्कसंगत उत्तर देने में सक्षम हो। बाल गवाह का साक्ष्य और उसकी विश्वसनीयता प्रत्येक

मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। बाल गवाह के साक्ष्य का आकलन करते समय न्यायालय को केवल एक ही सावधानी रखनी चाहिए कि गवाह विश्वसनीय होना चाहिए और उसका आचरण किसी अन्य सक्षम गवाह की तरह होना चाहिए और उसे किसी तरह की सलाह दिए जाने की संभावना नहीं होनी चाहिए। (पैरा 30)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पी. रमेश बनाम राज्य जरिए पुलिस निरीक्षक (2019) 20 एससीसी 598
2. वूलिंगटन बनाम पब्लिक प्रॉसिक्यूशन के निदेशक (1935 यूकेएचएल1), रेक्स बनाम अब्रामोविच (1914 11 सीआर. आवेदन आर 45)
3. बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीसी 189
4. दत्तू रामराव सखारे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1997) 5 एससीसी 341

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद असलम द्वारा प्रदत्त)

1. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री बृजेश सहाय, वरिष्ठ अधिवक्ता, सहायता प्राप्त द्वारा श्री राम कृष्ण चौरसिया और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. प्रस्तुत अपील, धारा 376, 511 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम की धारा 8, 10 के तहत थाना कोतवाली नगर, बांदा, अपराध संख्या-617 वर्ष 2015 से उद्भूत विशेष मामला संख्या-68 वर्ष 2015 (राज्य बनाम अमृता नंद @ त्रिभुवन अर्जरिया) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-IV/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), बांदा द्वारा पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और सजा के आदेश दिनांक 21.10.2020 के खिलाफ धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई है जिसके द्वारा आरोपी अपीलकर्ता को पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत दोषी ठहराया गया है और पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत 7 साल के कठोर कारावास के साथ 10,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। इसके डिफ़ॉल्ट में उसको दो महीने के साधारण कारावास की सजा भुगतनी होगी।

3. इस अपील के निस्तारण के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह है कि सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी पुत्र राजा राम सोनी निवासी छोटी बाजार, थाना-कोतवाली नगर, जिला बांदा ने दिनांक 23.08.2015 को 20:50 बजे थाना-कोतवाली नगर में इस आरोप के साथ लिखित शिकायत के आधार पर प्राथमिकी दर्ज कराई है कि दिनांक 22.08.2015 को सायं 05:00 बजे, उनकी बेटी पीड़िता एक्स उम्र लगभग 4 साल घर के सामने खेल रही थी। आरोपी अमृता नंद @ त्रिभुवन अर्जरिया उम्र लगभग 60 वर्ष, जो मोहल्ले के लोगों द्वारा बाबा कहे जाने वाले उसके पड़ोसी हैं, ने उसकी बेटी को पीड़िता एक्स कहा और उसे टॉफी दी और उसे अपने घर के अंदर ले गए और उसके साथ बुरा कृत्य करने की कोशिश की। पीड़िता एक्स की मां द्वारा हाई पिच में बुलाए जाने पर, उसे आरोपी ने अपने घर से बाहर निकाल दिया और पीड़िता एक्स ने अपनी मां के पास आने के बाद अपनी मां को पूरी घटना सुनाई। उसके बाद सूचनाकर्ता की पत्नी श्रीमती खुशबू आरोपी के पास गई और उससे पूछा कि तुमने

अपनी बेटी के साथ क्या किया है, इसके बाद वह अपना घर बंद कर कहीं और चला गया और वापस अपने घर नहीं लौटा। सूचनाकर्ता ने अनुरोध किया कि उसकी प्राथमिकी दर्ज की जाए और आरोपी के खिलाफ आवश्यक कार्रवाई की जाए।

4. हेड कांस्टेबल मोहर्रिर राम प्रसाद पाल ने आरोपी अमृता नंद @ त्रिभुवन अरजरिया के खिलाफ अपराध संख्या-617 वर्ष 2015 की जांच धारा 376, 511 भ०द०वि० और पॉक्सो एक्ट की धारा 4 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दर्ज की है। मामले की जांच एस.आई. राम बाबू यादव को दी गई। वह सरकारी काम के सिलसिले में लखनऊ गए थे, अतः एस.आई. राम बाबू यादव की ओर से एस.एस.आई. पंकज कुमार पाण्डेय द्वारा विवेचना की गई और दिनांक 23.8.2015 को प्रकरण दर्ज किया गया। उन्होंने 23.8.2015 को सी.डी. में 20:50 बजे चिक रिपोर्ट और जी.डी. प्रविष्टि संख्या-64 की नकल की और चिक लेखक और जी.डी. लेखक हेड कांस्टेबल मोहर्रिर राम प्रसाद पाल का बयान दर्ज किया और कांस्टेबल शशांक / कंप्यूटर ऑपरेटर का बयान भी दर्ज किया, जिन्होंने हेड कांस्टेबल मोहर्रिर राम प्रसाद पाल के निर्देश पर चेक लिखा था। वीडियोग्राफी के तहत पीड़िता एक्स का बयान थानाध्यक्ष रीता सिंह ने दर्ज किया। उसी दिन, उन्होंने सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी का बयान दर्ज किया और पुलिस हिरासत में क्रीम रंग की चड्डी (अंडरवियर) ली और गवाहों राजन सेन और कल्पना सिंह की उपस्थिति में उसका फ़र्द तैयार किया। उन्होंने उसी दिन चड्ढी को पुलिस कब्जे में लेने की फ़र्द की सी.डी. में नकल भी की।

5. पीड़िता एक्स की 23.8.2015 को जिला महिला अस्पताल, बांदा में डॉ. उषा सिंह (अ०सा०-5) द्वारा मेडिकल जांच की गई, जहां उसने डॉक्टर को बताया कि 22.8.2015 को शाम 05:00 बजे आरोपी टॉफी का लालच देकर उसे अपने घर के अंदर ले गया और उसके साथ बुरा काम करने की कोशिश की। पीड़िता एक्स के शरीर पर किसी भी चोट का कोई निशान नहीं मिला और उसके कपड़े सील कर थाना भेज दिए गए। डॉ. उषा सिंह (अ०सा०-5) ने मेडिकल जांच के समय मेडिकल रिपोर्ट तैयार की है। 25.8.2015 को पीड़िता एक्स की मेडिकल रिपोर्ट की नकल की गई और लखनऊ से एस.आई. राम बाबू यादव की वापसी पर 27.8.2015 को विवेचना फिर से शुरू की गई। उन्होंने पीड़िता एक्स की मां श्रीमती खुशबू का बयान दर्ज किया और घटनास्थल का निरीक्षण किया और 27.8.2015 को नक़्शा नज़री प्रदर्श क-5 तैयार किया और 12.9.2015 को गवाहों अजय कुमार गुप्ता और अतुल सोनी के बयान दर्ज किए। वह आरोपी के घर गया, जहां उसे उसके घर के दरवाजे पर ताला लगा मिला और पता चला कि घटना के दिन के बाद वह फरार है। उसे सूचनाकर्ता से सूचना मिली कि आरोपी बापू मिष्ठान भंडार स्टेशन रोड की दुकान पर सफेद दाढ़ी पहने लाल रंग के कपड़े पहने खड़ा है। सूचनाकर्ता की सूचना मिलने पर वह एस.आई. राकेश कुमार सरोज, कॉन्सट. शिव कुमार यादव व सूचनाकर्ता के साथ स्टेशन रोड तिराहा पर उस स्थान पर गया जहां बापू ने सी.डी. में अपठनीय लिखा था और पुलिस पार्टी को देखते ही आरोपी ने इधर-उधर भागने का प्रयास किया और 07:30

बजे उसे पुलिस ने पकड़ लिया और पूछताछ करने पर उसने अपना नाम अमृता नंद @ त्रिभुवन अरजरिया पुत्र लक्ष्मी नारायण अरजरिया निवासी मोहल्ला बताया ठठराही, छोटी बाजार, थाना-कोतवाली नगर, जिला बांदा और गिरफ्तारी की सूचना देकर पुलिस पार्टी ने उसे गिरफ्तार कर लिया। विवेचनाधिकारी ने आरोपी का बयान दर्ज किया है, जिसमें उसने घटना से इनकार किया और कहा कि वह अदालत में अधिवक्ता के माध्यम से बचाव पक्ष को पेश करेगा। बाद में पीड़िता एक्स को एल/सीटी संध्या साहू द्वारा धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए अदालत में पेश किया गया। धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता X का बयान अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा 7.10.2015 को दर्ज किया गया था, जिन्होंने धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान पर पीड़िता X की तस्वीरों को भी सत्यापित किया है। धारा 161 और 164 द०प्र०स० के तहत बयानों में, पीड़िता X ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। आरोपी की गिरफ्तारी के बाद, 1.10.2015 को ईएमओ, जिला अस्पताल, बांदा द्वारा उसकी चिकित्सकीय जांच की गई, जहां उसके शरीर पर कोई चोट नहीं मिली। जांच पूरी करने के बाद एस.आई. राम बाबू ने आरोपियों के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 376, 511 और पॉक्सो एक्ट की धारा 4 के तहत आरोप पत्र दाखिल की है।

6. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, बांदा द्वारा 21.12.2015 को संज्ञान लिया गया और पुलिस के कागजात की प्रति आरोपी को दी गई। आरोपी के अधिवक्ता को सुनने के बाद, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, बांदा द्वारा 18.2.2016 को आरोपी के खिलाफ धारा 376, 511 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम की धारा 8 के तहत आरोप तय किए गए, जिससे आरोपी ने इनकार किया और विचारण चाहा। बाद में विशेष न्यायाधीश/ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-4, बांदा द्वारा 1.9.2016 को आरोप में पुनरीक्षण किया गया और आरोपी के खिलाफ पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत आरोप तय किया गया, जिसमें भी उसने अपना दोष स्वीकार नहीं किया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

7. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी को अ०सा०-1 (पीड़िता एक्स के पिता) के रूप में भी परीक्षित किया है, जिन्होंने तहरीरी रिपोर्ट प्रदर्श क-1, श्रीमती खुशबू (पीड़िता एक्स की मां) को अ०सा०-2, पीड़िता एक्स को अ०सा०-3, गवाह अजय कुमार को अ०सा०-4 के रूप में साबित किया है, जो इस तथ्य के गवाह के रूप में प्रतिपरीक्षण में मुकर गए हैं। अभियोजन पक्ष ने मेडिकल रिपोर्ट साबित करने के लिए डॉ. उषा सिंह से अ०सा०-5 के रूप में और कॉन्सट. अनूप कुमार सचान से आरोप पत्र प्रदर्श क-4 और नक़्शा नज़री प्रदर्श क-5 को द्वितीयक साक्ष्य में साबित करने के लिए भी जांच की है और साक्ष्य बंद कर दिए।

8. धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी का बयान दर्ज किया गया था, जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया है और कहा है कि पीड़िता एक्स अपनी मां के प्रभाव में उसके खिलाफ झूठी गवाही दे रही थी। उसने यह भी कहा है कि मामले की गलत जांच की गई और उनके खिलाफ गलत आरोप पत्र दायर किया गया। उसने आगे कहा

है कि कोई घटना नहीं हुई है और दुश्मनी के कारण उसे झूठा फंसाया गया है।

9. आरोपी-अपीलकर्ता और अतिरिक्त लोक अभियोजक के अधिवक्ता की दलीलें सुनने के बाद विद्वान निचली अदालत ने माना है कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी को अभियोजन पक्ष द्वारा अवधेश कुमार सोनी (अ०सा०-1) और श्रीमती खुशबू (अ०सा०-2) के बयानों से समझाया गया है। आगे यह माना गया है कि पीड़िता X एक बाल गवाह है और उसे सक्षम गवाह पाया गया था और उसका बयान जिरह में हिल नहीं सका है। उसका बयान सच्चा पाया गया और विश्वास को प्रेरित करता है और यह भी माना जाता है कि यौन अपराधों में आरोपी को पीड़िता के बयान के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है। यह भी माना गया है कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है और यह मान लिया है कि आरोपी ने अपराध किया है और उसे दोषी ठहराया है और 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ 7 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई है।

10. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि गवाह अवधेश कुमार सोनी और श्रीमती खुशबू चश्मदीद गवाह नहीं हैं और गवाह अजय कुमार (अ०सा०-4) भी चश्मदीद गवाह नहीं हैं, जिन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि उन्होंने विवेचनाधिकारीको कोई बयान नहीं दिया है और आगे कहा है कि उन्हें याद नहीं है कि घटना के दिन वह अपने घर पर थे या नहीं और उन्होंने स्वीकार किया है कि वह घटना नहीं देखी है। उन्होंने आगे कहा है कि उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि श्रीमती खुशबू ने अपने पति को घटना के बारे में बताया था या नहीं। उन्होंने आगे कहा है कि वह यह नहीं बता सकते कि आरोप पत्र में चश्मदीद गवाह के रूप में उनके नाम का उल्लेख कैसे किया गया है। आरोपी-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि डॉ उषा सिंह (अ०सा०-5) के बयान के अनुसार पीड़िता एक्स के शरीर पर या निजी हिस्से पर कोई चोट नहीं पाई गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि गवाह पीड़िता एक्स का बयान कानूनी प्रावधानों के अनुपालन में दर्ज नहीं किया गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि निचली अदालत ने गवाह पीड़िता एक्स की योग्यता के बारे में, जो एक बाल गवाह है, कोई प्रमाण पत्र नहीं दिया है, इसलिए, उसके बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होनें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "पी रमेश बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक (2019) 20 एस.सी.सी. 598" में निर्धारित कानून पर भरोसा किया और पैरा-13 को संदर्भित किया है। पूर्वोक्त विनिर्णय की धारा 14 और 16 के अनुसार, उन्होंने आगे तर्क दिया है कि पीड़िता X ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि उसे उसके माता-पिता और अधिवक्ता द्वारा बयान देने के लिए सिखाया गया था जो उन्होंने उसे बताया था, इसलिए, वह गवाह है और उसकी गवाही पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि घटना के 26 घंटे से अधिक की देरी के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि घटना 22.8.2015 को शाम 17:00 बजे हुई थी और अगले दिन यानी 23.8.2015 को लगभग 20:50 बजे दर्ज की गई थी, यानी एक दिन,

26 घंटे के अंतराल के बाद और रिपोर्ट दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं की गई है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा देरी के लिए रखा गया आधार है कि घटना के दिन सूचनाकर्ता कानपुर गया और अगले दिन लौट आया, यह विचार के बाद है। वैकल्पिक रूप से उसने आगे तर्क दिया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता X के बयान के अनुसार, उसने कहा है कि आरोपी ने उसे बुलाया और उसे अपने कपड़े उतारने के लिए कहा और उसके बाद आरोपी ने अपने कपड़े भी उतार दिए और उसे अपने निजी अंग दिखाने के लिए कहा और फिर वह रस्सी लेने गया। इसी बीच वह वहां से फरार हो गई। आरोपी के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि पूरा बयान दिखाता है कि उसने पीड़िता एक्स के निजी हिस्से को नहीं छुआ है और यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने 12 साल से कम उम्र के बच्चे पर यौन हमला किया है और यह अधिनियम पॉक्सो अधिनियम की धारा 9 (एम) के दायरे में नहीं आएगा। यह अधिनियम यौन उत्पीड़न के अपराध तक जाता है, जो अधिनियम की धारा 12 के तहत दंडनीय है, जिसमें से किसी भी भांति के कारावास जिसे तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माने की भी सजा दी जा सकती है।

11. अपर शासकीय अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और तर्क दिया है कि सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी (अ०सा०-1) के साक्ष्य से, यह साबित होता है कि वह सुनार का काम कर रहा था और सोने और चांदी का कच्चा माल लेने के लिए कानपुर गया था, जिसमें वह गहने तैयार करने के बाद ज्वैलर्स को वापस कर देता है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी (अ०सा०-1) ने कहा है कि 22.8.2015 को वह शाम को सोने का कच्चा माल लेने के लिए कानपुर गया था और उसी दिन 09:30 बजे लौटा और अपनी पत्नी श्रीमती खुशबू (अ०सा०-2) और बेटी पीड़िता एक्स के साथ पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए थाना गया। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि सूचनाकर्ता ने पुलिस को एक लिखित शिकायत दी है और उसके बाद वहां से लौट आया है और उसका बयान पुलिस द्वारा 23.8.2015 को दर्ज किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि आरोपी अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्कों में कोई दम नहीं है कि सूचनाकर्ता बेरोजगार था, जबकि वह सुनार का काम कर रहा था और गहने तैयार कर रहा था, इसलिए, गहने तैयार करने के लिए कच्चा माल लेने के लिए उसका कानपुर जाना स्वाभाविक है और इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा संतोषजनक रूप से देरी को समझाया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि इस मामले में सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी (अ०सा०-1), श्रीमती खुशबू (अ०सा०-2) और गवाह अजय कुमार (अ०सा०-4) चश्मदीद गवाह नहीं हैं, एकमात्र चश्मदीद गवाह पीड़िता X है, जिसने थानाध्यक्ष रीता सिंह द्वारा अपना बयान दर्ज करने के समय विस्तृत विवरण दिया है और पीड़िता X को धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष पेश किया गया था जहां उसने पूरी कहानी सुनाई है और अ०सा०-3 के रूप में अपने बयान में घटना का विवरण भी दिया है। उन्होंने आगे

तर्क दिया है कि आरोपी ने केवल उसके निजी अंग को छुआ है और उससे अपने निजी अंग को छुलावाया है और उसके बाद रस्सी लेने के लिए चला गया है। इस बीच, पीड़िता एक्स खुद वहां से बच निकली, इसलिए, चिकित्सा जांच के समय किसी भी चोट का पता नहीं चलने का कोई परिणाम नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि प्राथमिकी में पीड़िता X की उम्र चार साल के रूप में दिखाई गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि पीड़िता एक्स ने मेडिकल जांच के समय डॉ उषा सिंह को बताया है कि 22.8.2015 को 05:00 बजे आरोपी ने उसे टॉफी देने का लालच देकर बुलाया और उसके साथ बुरा काम करने की कोशिश की। उसने धारा 164 द०प्र०स० के तहत दिए गए अपने बयान में अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन किया है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि उपरोक्त परिस्थितियों में, यह उचित संदेह से परे साबित होता है कि यौन हमला आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा लगभग चार साल के बच्चे के साथ किया गया था, जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 9(एम) के अनुसार गंभीर यौन हमले की परिभाषा के भीतर आता है।

12. मैंने फाइल देखी है। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की मूल्यांकन करने से पहले, मुझे पॉक्सो अधिनियम की धारा 7 को पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक लगता है, जो यौन हमले को परिभाषित करता है, पॉक्सो अधिनियम की धारा 7 इस प्रकार है: -

"7. लैंगिक हमला- जो कोई लैंगिक आशय से बालक के योनि, लिंग, गुदा या वक्ष को स्पर्श करेगा या बालक से ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति की योनि, लिंग, गुदा या वक्ष को स्पर्श कराएगा या लैंगिक आशय से कोई अन्य कार्य करेगा जिसमें प्रवेश किए बिना शारीरिक संपर्क सम्मिलित है, लैंगिक आक्रमण करना कहलाता है।

13. गंभीर यौन हमले को पॉक्सो अधिनियम की धारा-9 में परिभाषित किया गया है। पॉक्सो अधिनियम की धारा-9 का प्रासंगिक भाग नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

(क) जो कोई पुलिस अधिकारी होते हुए किसी बालक पर लैंगिक आक्रमण करता है-

..... (ड) जो कोई भी बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर लैंगिक आक्रमण करता है, अर्थात् यदि पोक्सो अधिनियम की धारा 6 में कोई लैंगिक हमला परिभाषित किया गया है, जो कोई पोक्सो अधिनियम की धारा 7 और पोक्सो अधिनियम की धारा 9(ड) को पढ़ने के बिन्दु से यौन हमला करता है, तो यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि जो कोई भी बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर लैंगिक आक्रमण करता है, उसे यौन आक्रमण करना कहा जाता है जिसके लिए पॉक्सो एक्ट की धारा 10 के तहत सजा का प्रावधान है।

14. पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 इस प्रकार है: -

"10. गंभीर लैंगिक हमले के लिए दंड- जो कोई गंभीर यौन हमला करता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि पाँच वर्ष से अन्यून होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा।

15. यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि बच्चे के बयान दर्ज करने के लिए विशेष

प्रावधान किया गया है। पॉक्सो अधिनियम की धारा 25 में मजिस्ट्रेट द्वारा बच्चे का बयान दर्ज करने का प्रावधान है जो इस प्रकार है: -

"25. मजिस्ट्रेट द्वारा बालक के कथन का अभिलेखन- (1) यदि बालक का कथन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) (जिसे इसके पश्चात् संहिता कहा गया है) की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया जा रहा है तो ऐसे कथन को अभिलिखित करने वाला मजिस्ट्रेट, उसमें अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, बालक द्वारा बोले गए कथन को अभिलिखित करेगा:

परन्तु संहिता की धारा 164 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक में अन्तर्विष्ट उपबन्ध, जहाँ तक वह अभियुक्त के अधिवक्ता की उपस्थिति की अनुज्ञा देता है, इस दशा में लागू नहीं होंगे।

(2) मजिस्ट्रेट, बालक और उसके माता-पिता या उसके प्रतिनिधि को, संहिता की धारा 207 के अधीन विनिर्दिष्ट दस्तावेज की एक प्रति, संहिता की धारा 173 के अधीन पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट फाइल किए जाने पर, उपलब्ध कराएगा।

16. पॉक्सो अधिनियम की धारा 26 में बाल गवाह के बयान दर्ज करने के संबंध में अतिरिक्त प्रावधान भी हैं, जो इस प्रकार हैं:-

"(1) मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, यथास्थिति, बालक के माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में, जिस पर बालक का भरोसा या विश्वास है, बालक द्वारा बोले गए कथन को अभिलिखित करेगा।

(2) यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, बालक का कथन अभिलिखित करते समय ऐसे अर्हताएं, अनुभव रखने वाले और ऐसी फीस का संदाय करने पर, जो विहित की जाए, अनुवादक या दुभाषिए की सहायता ले सकेगा।

(3) यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, मानसिक या शारीरिक निशक्तता वाले बालक की दशा में, किसी विशेष शिक्षक या बालक के संप्रेषण की रीति से परिचित किसी व्यक्ति या उस क्षेत्र के किसी विशेषज्ञ से, जिसकी अर्हताएं, अनुभव हैं और ऐसी फीस के संदाय पर, जो विहित की जाए, बच्चे का बयान दर्ज करने के लिए सहायता ले सकेगा।

(4) यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि बालक का कथन भी श्रव्य-दृश्य इलेक्ट्रॉनिक साधनों द्वारा अभिलिखित किया जाए।

17. पॉक्सो अधिनियम की धारा 36 में प्रावधान है कि बच्चे को गवाही देते समय आरोपी को नहीं देखना चाहिए, जो इस प्रकार हैं:-

"(1) विशेष न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि साक्ष्य दर्ज करने के समय बालक किसी भी प्रकार से अभियुक्त के सामने उजागर न हो, साथ ही यह भी सुनिश्चित करे कि अभियुक्त बालक का कथन सुनने और अपने अधिवक्ता के साथ संवाद करने की स्थिति में है।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, विशेष न्यायालय वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से या एकल दृश्यता दर्पण या पर्दे या किसी अन्य उपकरण का उपयोग करके किसी बच्चे का बयान दर्ज कर सकता है।

उपरोक्त प्रावधान से, यह स्पष्ट है कि पॉक्सो अधिनियम में बाल गवाह के संबंध में कानून द्वारा कुछ विचलन किया गया है और यहां

तक कि उसका बयान उसके माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में दर्ज किया जाएगा, जिस पर बच्चे का भरोसा या विश्वास है। धारा 26 के अनुसार अतिरिक्त रक्षोपाय दिया गया है।

18. धारा 33(2) और (3) बच्चे को विशेष सुरक्षा प्रदान करती है जो निम्नानुसार बोलती है: -

"(2). यथास्थिति, विशेष लोक अभियोजक या अभियुक्त की ओर से उपस्थित अधिवक्ता, बालक की मुख्य-परीक्षा प्रतिपरीक्षा या पुनर्परीक्षा रिकार्ड करते समय, बालक से पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूचना विशेष न्यायालय को देगा जो बालक से पूछे जाने वाले प्रश्नों को प्रस्तुत करेगा।

(3) विशेष न्यायालय, यदि वह आवश्यक समझे, विचारण के दौरान बालक के लिए बार-बार विराम की अनुमति दे सकेगा।

उपरोक्त प्रावधान से, यह स्पष्ट है कि बाल गवाह के साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के संबंध में कानून में कुछ विचलन किया गया है ताकि वह अदालत के समक्ष निष्पक्ष और औपचारिक साक्ष्य दे सके।

19. धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने की प्रक्रिया पॉक्सो अधिनियम में प्रदान की गई है, इसलिए, यह प्रक्रिया परीक्षण के समय भी बाल गवाह के साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के समय भी लागू होगी।

20. इस मोड़ पर, मुझे आपराधिक मामले के सबूत के बारे में कानून पर चर्चा करना आवश्यक लगता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 'प्रमाणित', 'अप्रमाणित' और 'साबित नहीं' को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

"साबित"। एक तथ्य तब साबित होता है, जब उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद, न्यायालय या तो मानता है कि यह अस्तित्व में है, या इसके अस्तित्व को इतना संभावित मानता है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति को विशेष मामले की परिस्थितियों में, इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि यह मौजूद है।

"अप्रमाणित" - एक तथ्य को अप्रमाणित कहा जाता है, जब उसके समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद, न्यायालय या तो मानता है कि यह अस्तित्व में नहीं है, या इसकी गैर-मौजूदगी को इतना संभावित मानता है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति को, विशेष मामले की परिस्थितियों में, इस धारणा पर कार्य करना चाहिए कि यह मौजूद नहीं है।

"साबित नहीं हुआ" - एक तथ्य को साबित नहीं कहा जाता है जब यह न तो साबित होता है और न ही अप्रमाणित होता है।

21. आपराधिक मामले में सबूत का आवश्यक मानक उचित संदेह से परे है और दीवानी मामलों में, यह संभावनाओं की प्रधानता है। यह भेद मूल रूप से "वूलमिंगटन बनाम लोक अभियोजक निदेशक (1935 यूकेएचएल 1), रेक्स बनाम अब्रामोविच (1914 11 सीआर आर आर 45)" में न्यायिक घोषणा के माध्यम से किया जाता है।

22. मामला बच्चों के खिलाफ यौन अपराध के खतरे से संबंधित है, इसलिए, मकसद इस तरह के अपराध में कोई भूमिका नहीं निभाता है।

एक गवाह की मौखिक गवाही को उसकी जिरह पर विचार करके, यदि वह जिरह में निर्विवाद रहता है, तो उसकी गवाही को अन्य गवाहों की गवाही के साथ तौलकर, कि क्या उसकी गवाही को अन्य गवाहों की विश्वसनीय गवाही से पुष्टि मिलती है और विश्लेषण और मूल्यांकन करके कि क्या उसकी गवाही विरोधाभासी है या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई है, का मूल्यांकन किया जा सकता है कि उसकी गवाही विश्वसनीय है।

23. पूर्वोक्त के आलोक में, धारा 29 पॉक्सो अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली धारणा के प्रभाव की जांच करना आवश्यक है।

"धारा 29-कुछ अपराधों के बारे में अनुमान - जहां किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत कोई अपराध करने या उकसाने या करने का प्रयास करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, विशेष न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या दुष्प्रेरित किया है या अपराध करने का प्रयास किया है, जैसा भी मामला हो, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो।

24. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से संकेत मिलता है कि यह अभियुक्त के लिए है कि वह इसके विपरीत साबित करे कि उसने पॉक्सो अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत अपराध नहीं किया है या उसे उकसाया नहीं है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो अनुमान उसके खिलाफ लागू होगा जिससे अधिनियम के प्रावधान के तहत उसकी दोषसिद्धि होगी। यह विवादित नहीं हो सकता है कि कोई भी अनुमान निरपेक्ष नहीं है और हर अनुमान खंडन योग्य है। यह नहीं कहा जा सकता है कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान पूर्ण है। यह तभी परिचालन में आएगा जब अभियोजन पक्ष पहले इस तथ्य को स्थापित करने में सक्षम होगा और यह पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान की नींव बनाएगा। अन्यथा, इसके विपरीत साबित करने का सारा भार अभियुक्त पर होगा। पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत कानून की ऐसी स्थिति या अनुमान की व्याख्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से संवैधानिक जनादेश का उल्लंघन करेगा और किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार छोड़कर स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है।

25. जिस तरह से इस तरह के अनुमान अभियुक्त के खिलाफ काम करेंगे विश्लेषण और अदालतों द्वारा विचार-विमर्श किया गया है, क्योंकि इस तरह के एक अनुमान भी भ्रष्टाचार की रोकथाम अधिनियम, 1988 के रूप में विभिन्न विधियों में प्रदान की जाती है. बाबू बनाम केरल राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी. 189" के मामले में पैरा-27 और पैरा-28 में निम्नानुसार अवधारित किया गया: -

(IV) प्रमाण का बोझ और निर्दोषता का सिद्धांत।

"27. प्रत्येक अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि अपराध साबित न हो जाए। निर्दोषता की धारणा एक मानव अधिकार है। तथापि, सांविधिक अपवादों के अध्यधीन, उक्त सिद्धांत दांडिक न्यायशास्त्र

का आधार बनता है। इस प्रयोजन के लिए, अपराध की प्रकृति और उसकी गंभीरता को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अदालतों को यह देखने के लिए सतर्क रहना चाहिए कि केवल अनुमान के प्रयोग से कोई अन्याय या गलत दोषसिद्धि नहीं हो सकती है। परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 जैसे क़ानून; भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 और आतंकवादी और विघटनकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 में यदि इन संविधियों में उपबंधित परिस्थितियों को पूरा करते हुए पाया जाता है तो दोष की परिकल्पना का प्रावधान है और निर्दोष साबित करने का भार अभियुक्त पर डाल दिया गया है। हालांकि, इस तरह की धारणा केवल तभी उठाई जा सकती है जब अभियोजन पक्ष द्वारा कुछ मूलभूत तथ्य स्थापित किए जाते हैं। नकारात्मक तथ्य को साबित करने में कठिनाई हो सकती है।

28. हालांकि, ऐसे मामलों में जहां क़ानून अभियुक्त पर सबूत के बोझ के लिए प्रदान नहीं करता है, यह हमेशा अभियोजन पक्ष पर निहित है। यह केवल असाधारण परिस्थितियों में है, जैसे कि उन विधियों में से जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कि सबूत का बोझ अभियुक्त पर है। किसी विशेष क़ानून के तहत अभियुक्त के अपराध की धारणा के लिए भी वैधानिक प्रावधान को संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 में निहित तर्कसंगतता और स्वतंत्रता के परीक्षणों को पूरा करना चाहिए।

26. कानून की उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत मामले में अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की जांच की जाएगी ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियोजन पक्ष ने पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत एक धारणा स्थापित की है या नहीं।

27. साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 में निम्नानुसार प्रावधान है:-

"118. गवाही कौन दे सकता है- सभी व्यक्ति गवाही देने के लिए सक्षम होंगे जब तक कि न्यायालय यह न समझे कि उन्हें पूछे गए प्रश्नों को समझने से या उन प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर देने से, आयु, अत्यधिक वृद्धावस्था, बीमारी, चाहे वह शरीर या मन का हो, या उसी तरह के किसी अन्य कारण से रोका गया है।

स्पष्टीकरण- एक पागल गवाही देने में अक्षम नहीं है, जब तक कि उसे अपने पागलपन से उससे पूछे गए प्रश्नों को समझने और उनके तर्कसंगत उत्तर देने से रोका न जाए।

28. सिद्धांत और कार्यक्षेत्र साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 में प्रतिष्ठापित है कि इस धारा के अधीन कौन गवाही दे सकता है, सभी व्यक्ति तब तक गवाही देने के लिए सक्षम हैं जब तक कि न्यायालय की कोई सूचना न हो। (ए) उनसे पूछे गए प्रश्न करने में असमर्थ या (बी) उन प्रश्नों का तर्कसंगत उत्तर देने के लिए- i) आयु, ii) अत्यधिक वृद्धावस्था, iii) मन या शरीर की बीमारी या, iv) कोई अन्य ऐसा कारण पागल भी, यदि वह उससे पूछे गए प्रश्न को समझने में सक्षम है और तर्कसंगत उत्तर दे रहा है तो सक्षम गवाह है।

29. जहां तक श्री बृजेश सहाय, वरिष्ठ अधिवक्ता की प्रस्तुति का संबंध है कि सक्षम गवाह के रूप में पीड़िता एक्स की क्षमता के

बारे में उसकी योग्यता का पता लगाने के बाद कोई प्रमाण पत्र संलग्न नहीं किया गया था, इसलिए, उसके साक्ष्य को पढ़ा नहीं जा सकता है और उसने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित "पी. रमेश बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया, पर कानून पर भरोसा किया है। उस मामले में तथ्य यह था कि अ०सा०-3 और अ०सा०-4 उस मामले में बाल गवाह थे और यह देखा गया था कि वे यह समझने में असमर्थ थे कि वे किसके सामने खड़े थे और यहां तक कि वे न्यायाधीश या अधिवक्ता को भी नहीं जानते थे और बयान दर्ज नहीं किया गया था और यह माना गया था कि वे सक्षम गवाह नहीं थे जिसे उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। निचली अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि धारा 302 भ०द०वि० के साथ-साथ धारा 498 भ०द०वि० के तहत आरोप को बनाए रखने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत थे और अभियोजन पक्ष अभियुक्त के दोषी को उचित संदेह से परे क़ानून के दायरे में लाया है। दोषसिद्धि के उक्त निर्णय से व्यथित होकर अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के फैसले को रद्द कर दिया है और मामले को विचारण न्यायालय को इस निर्देश के साथ भेज दिया है कि बाल गवाहों अ०सा०-3 और अ०सा०-4 को गवाही देने की उनकी क्षमता का पता लगाने के बाद जांच की जाए। तत्पश्चात्, इसे माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसे अस्वीकार कर दिया।

30. जहां तक पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-13 के अवलोकन का संबंध है, पैरा-13 में यह उल्लेख किया गया है कि यदि न्यायालय संतुष्ट है कि बारह वर्ष से कम आयु का बाल गवाह एक सक्षम गवाह है, तो ऐसे गवाह की शपथ या प्रतिज्ञान के बिना जांच की जा सकती है और नियम "दत्तू रामराव सखारे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1997) 5 एस.सी.सी. 341" में कहा गया था जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बाल गवाहों के संबंध में निम्नानुसार निर्णय दिया:- (एस.सी.सी. पृष्ठ 343, पैरा-5)

"5....एक बाल गवाह यदि तथ्यों और विश्वसनीय गवाही देने के लिए सक्षम पाया जाता है, तो ऐसा एक सबूत दोषसिद्धि का आधार हो सकता है। दूसरे शब्दों में, शपथ के अभाव में भी बाल गवाह के साक्ष्य पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के तहत विचार किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसा गवाह प्रश्नों को समझने में सक्षम हो और उसके तर्कसंगत उत्तर देने में सक्षम हो। बाल गवाह का साक्ष्य और उसकी विश्वसनीयता प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। बाल गवाह के साक्ष्य का आकलन करते समय अदालत को केवल एक ही सावधानी बरतनी चाहिए कि गवाह विश्वसनीय होना चाहिए और उसका आचरण किसी अन्य सक्षम गवाह की तरह होना चाहिए और उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की कोई संभावना न हो।

31. उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि अदालत के लिए गवाह की योग्यता के संबंध में प्रमाण पत्र दर्ज करना अनिवार्य है और पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-14 और 16 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार हैं: -

"14. एक बच्चे को पहले एक सक्षम गवाह होना चाहिए, उसके बाद ही उसका बयान स्वीकार्य है। नियम व्हीलर बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका 7 में अमेरिकी सुप्रीम न्यायालय के एक फैसले में निर्धारित किया गया था, जिसमें यह इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"... जबकि कोई भी केवल दो या तीन साल के शिशु को गवाह के रूप में बुलाने के बारे में नहीं सोचेगा, कोई सटीक उम्र नहीं है जो योग्यता के सवाल को निर्धारित करती है। यह बच्चे की क्षमता और बुद्धिमत्ता, सत्य और असत्य के बीच के अंतर की उसकी मूल्यांकन, साथ ही साथ पूर्व को बताने के उसके कर्तव्य पर निर्भर करता है। इस प्रश्न का निर्णय मुख्य रूप से विचारण न्यायाधीश के पास रहता है, जो प्रस्तावित गवाह को देखता है, उसके तरीके, उसके स्पष्ट मेधा या बुद्धि की कमी को नोटिस करता है, और किसी भी परीक्षा का सहारा ले सकता है, जो उसकी क्षमता और बुद्धिमत्ता के साथ-साथ शपथ के दायित्वों की उसकी समझ का खुलासा करेगा। चूंकि इनमें से कई मामलों की तस्वीर रिकॉर्ड में नहीं खींची जा सकती है, इसलिए विचारण न्यायाधीश के फैसले को समीक्षा पर परेशान नहीं किया जाएगा, जब तक कि जो संरक्षित है, उससे यह स्पष्ट न हो कि यह गलत था। (महत्व सन्निविष्ट)

"16. एक बाल गवाह की योग्यता निर्धारित करने के लिए, न्यायाधीश को उसकी राय बनानी होगी। न्यायाधीश को बाल गवाह की क्षमता का परीक्षण करने की स्वतंत्रता है और बुद्धि और ज्ञान की डिग्री के बारे में कोई सटीक नियम नहीं रखा जा सकता है जो बच्चे को एक सक्षम गवाह बनाएगा। बाल गवाह की योग्यता का पता उससे पूछताछ करके लगाया जा सकता है ताकि वह गवाह की घटना को समझने और अदालत के समक्ष सच बोलने की क्षमता का पता लगा सके। आपराधिक कार्यवाही में, किसी भी उम्र का व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए सक्षम है यदि वह (i) गवाह के रूप में पूछे गए प्रश्नों को समझने और (ii) ऐसे प्रश्नों के उत्तर दीजिए जिन्हें समझा जा सके, समझने में सक्षम है। कम उम्र के बच्चे को गवाही देने की अनुमति दी जा सकती है यदि उसके पास प्रश्नों को समझने और तर्कसंगत उत्तर देने की बौद्धिक क्षमता है। एक बच्चा केवल तभी अक्षम हो जाता है जब अदालत यह मानती है कि बच्चा समझने में असमर्थ था। इसके बाद, निवृत्ती पांडुरंग कोकाटे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 12 एस.सी.सी. 565 दलसुखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य (2004)1 एस.सी.सी. 64 प्रश्नों पर भरोसा किया और उन्हें सुसंगत और बोधगम्य तरीके से उत्तर दिया। अगर बच्चा उससे पूछे गए सवालों को समझता है और उन सवालों के तर्कसंगत जवाब देता है, तो यह माना जा सकता है कि वह एक सक्षम गवाह है जिसकी जाँच की जा सकती है।

32. निर्णय के पैरा-16 से यह स्पष्ट है कि न्यायाधीश बाल गवाह की क्षमता का परीक्षण करने के लिए स्वतंत्र है और बुद्धि और ज्ञान की डिग्री के बारे में कोई सटीक नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है जो बच्चे को एक सक्षम गवाह बनाएगा और बाल गवाह की योग्यता का पता लगाया जा सकता है या उससे पूछताछ करके यह पता लगाया जा सकता है कि घटना को समझने और बोलने की

क्षमता का पता लगाया जा सकता है। अदालत के समक्ष सच्चाई आपराधिक कार्यवाही में, किसी भी उम्र का व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए सक्षम है यदि वह (i) गवाह के रूप में पूछे गए प्रश्नों को समझने में; और (ii) ऐसे प्रश्नों के उत्तर दीजिए जिन्हें समझा जा सके, समझने में सक्षम है। कम उम्र के बच्चे को गवाही देने की अनुमति दी जा सकती है यदि उसके पास प्रश्नों को समझने और तर्कसंगत उत्तर देने की बौद्धिक क्षमता है। एक बच्चा केवल तभी अक्षम होता है जब अदालत यह मानती है कि बच्चा सवालों को समझने और सुसंगत और समझने योग्य तरीके से उनका जवाब देने में असमर्थ था। यदि बच्चा उससे पूछे गए प्रश्नों को समझता है और उन सवालों के तर्कसंगत उत्तर देता है, तो यह माना जा सकता है कि वह जांच के लिए एक सक्षम गवाह है।

33. पूर्वोक्त निर्णय का पैरा-15 इस प्रकार है:-

"7. ... इस प्रश्न पर निर्णय कि क्या बाल गवाह के पास पर्याप्त बुद्धि है, मुख्य रूप से विचारण न्यायाधीश पर निर्भर करता है जो उसके शिष्टाचार, उसके स्पष्ट बुद्धि की कमी या ज्यादती को नोटिस करता है, और उक्त न्यायाधीश किसी भी परीक्षा का सहारा ले सकता है जो उसकी क्षमता और बुद्धिमत्ता के साथ-साथ शपथ के दायित्व की उसकी समझ को प्रकट करेगा। हालाँकि, विचारण न्यायालय के फैसले को उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है यदि रिकॉर्ड में जो संरक्षित है, उससे यह स्पष्ट है कि उसका निष्कर्ष गलत था। यह सावधानी इसलिए ज़रूरी है क्योंकि बच्चे के गवाह सिखाने-पढ़ाने के जिम्मेदार होते हैं और अक्सर कल्पना की दुनिया में रहते हैं। हालांकि यह एक स्थापित सिद्धांत है कि बाल गवाह खतरनाक गवाह होते हैं क्योंकि वे लचीले होते हैं और आसानी से प्रभावित होने के लिए उत्तरदायी होते हैं, लेकिन यह भी एक स्वीकृत मानदंड है कि यदि उनके सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच के बाद अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि इसमें सच्चाई की छाप है, तो बाल गवाह के साक्ष्य को स्वीकार करने के रास्ते में कोई बाधा नहीं है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

34. उपरोक्त निर्णय से, कहीं भी यह प्रदान नहीं किया गया है कि बाल गवाह की योग्यता के बारे में प्रमाण पत्र अनिवार्य है; यदि यह दर्ज किया गया है तो यह अब तक अच्छा है, लेकिन अगर अदालत ने प्रश्न को समझने के लिए उसकी बुद्धि को समझने के लिए प्रश्न रखा है और यदि उसने तर्कसंगत उत्तर का उत्तर दिया और उसके बाद गवाह की योग्यता के बारे में प्रमाण पत्र रिकॉर्ड किए बिना उसकी परीक्षा दर्ज की गई और उसके बाद उसकी जिरह अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा की गई और ऊसने संतोषजनक उत्तर दिया था और तर्कसंगत उत्तर दिया था, इसलिए, उपरोक्त परिस्थितियों में गवाह की योग्यता के संबंध में विचारण न्यायाधीश द्वारा प्रमाण पत्र संलग्न नहीं करना कोई परिणाम नहीं है और यह उसके बयान को अग्राह्य नहीं बनाएगा।

35. पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 इस प्रकार है:-

"29. कुछ अपराधों के बारे में उपधारणा- जहां किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के अधीन कोई अपराध

करने या दुष्प्रेरित करने या करने का प्रयत्न करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है वहां विशेष न्यायालय यह मान लेगा कि यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या दुष्प्रेरित किया है या करने का प्रयत्न किया है, जब तक कि इसके विपरीत सिद्ध न हो जाए।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "दत्तू रामराव सखारे बनाम महाराष्ट्र राज्य 1997 5 एस.सी.सी. 341" के मामले में कहा है कि यदि न्यायालय संतुष्ट है कि बारह वर्ष से कम आयु का बाल गवाह सक्षम गवाह है, तो ऐसे गवाह की शपथ या प्रतिज्ञान के बिना जांच की जा सकती है और अदालत ने आगे कहा है कि निम्नानुसार है: -

"..... शपथ के अभाव में भी, बाल गवाह के साक्ष्य पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के तहत विचार किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसा गवाह प्रश्नों को समझने में सक्षम हो, और उसके तर्कसंगत उत्तर देने में सक्षम हो। बाल गवाह का साक्ष्य और उसकी विश्वसनीयता प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। बाल गवाह के साक्ष्य का आकलन करते समय अदालत को केवल एक ही सावधानी बरतनी चाहिए कि गवाह विश्वसनीय होना चाहिए और उसका आचरण किसी अन्य सक्षम गवाह की तरह होना चाहिए और उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की कोई संभावना न हो।

37. इस मामले में, सूचनाकर्ता अ०सा०-1 पीड़िता एक्स का पिता है, जिसने अदालत के समक्ष गवाही दी है कि यह घटना 22.8.2015 को शाम 05:00 बजे हुई थी और वह गहने तैयार करने के लिए कच्चा माल लेने के लिए कानपुर गया था और उसकी पत्नी ने उसे फोन पर इस घटना के बारे में सूचित किया कि पीड़िता एक्स घर के सामने खेल रही थी और उसका पड़ोसी अमृता नंद @ त्रिहुवन अरजरिया जिसकी उम्र लगभग 60 साल थी, टॉफी के लिए और उसे अपने घर के अंदर बुलाया और दरवाजा बंद कर दिया, इसके बाद जब उसकी पत्नी ने अपनी बेटी को तेज आवाज में बुलाया तो आरोपी ने पीड़िता को उसके घर से निकाल दिया। आरोपी ने पीड़िता एक्स के साथ उसके घर के अंदर छेड़छाड़ करने की कोशिश की। पीड़िता एक्स ने पूरी कहानी अपनी मां को बताई जिस पर वह आरोपी के घर गई और उससे उसके बुरे कृत्य के बारे में पूछा कि उसने उसकी बेटी के साथ क्या किया। इसके बाद, आरोपी ने अपना दरवाजा बंद कर लिया और कहीं फरार हो गया और बाद में महीनों के अंतराल के बाद आरोपी को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने लिखित शिकायत को भी साबित किया है। अ०सा०-2 पीड़िता की मां है, जिसने यह भी बयान दिया है कि यह घटना 22.8.2015 को शाम 05:00 बजे हुई है, जब उसकी बेटी घर के बाहर खेल रही थी, आरोपी ने उसे प्रसाद के रूप में लड्डू दिया और उसे अपने घर के अंदर ले गया और पीड़िता एक्स को धमकी दी कि वह घटना के बारे में किसी को न बताए। आरोपी ने पीड़िता को अपने कपड़े उतारने के लिए कहा और उसने अपने कपड़े भी उतार दिए और फिर पीड़िता एक्स को अपना प्राइवेट पार्ट हिलाने को कहा और उसे किसी को न बताने के लिए भी कहा। उसकी बेटी ने आकर उसे पूरी घटना बताई। पीड़िता

एक्स की मां अ०सा०-2 इसके बाद आरोपी के घर गई और घटना की शिकायत की। आरोपी ने घटना से इनकार किया और उसके बाद वह उस समय अपने घर पर ताला लगाकर फरार हो गया। घटना के दिन उसका पति कानपुर गया था और उसके आने पर वह अपने पति और पीड़िता एक्स के साथ थाने गई और प्राथमिकी दर्ज कराई।

38. यह साबित होता है कि पीड़िता X (अ०सा०-3) घटना के समय लगभग चार साल की थी और उसने पूरी घटना अपनी माँ को सुनाई है, जो स्वीकार्य है।

39. साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 में निम्नानुसार कहा गया है:-

"8. अभिप्रेरण, तैयारी और पूर्व या बाद का आचरण- कोई भी तथ्य प्रासंगिक है जो मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में किसी तथ्य के लिए एक मकसद या तैयारी को दर्शाता है या गठित करता है।

किसी भी पक्ष का आचरण, या किसी भी पक्ष के लिए किसी भी एजेंट का, किसी भी वाद या कार्यवाही के लिए, इस तरह के वाद या कार्यवाही के संदर्भ में, या उसमें जारी किए गए किसी भी तथ्य के संदर्भ में या उससे प्रासंगिक है; और किसी भी व्यक्ति का आचरण एक अपराध जिसके खिलाफ किसी भी कार्यवाही का विषय है, प्रासंगिक है, यदि ऐसा आचरण प्रभावित करता है या मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में किसी तथ्य से प्रभावित होता है, और चाहे वह पहले था या बाद में।

40. साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के उदाहरण (i) और (j) निम्नानुसार कहते हैं: -

(i). A पर अपराध का आरोप लगाया जाता है।

तथ्य यह है कि, कथित अपराध के आयोग के बाद, वह फरार हो गया, या वह संपत्ति या अपराध द्वारा अर्जित संपत्ति की आय के कब्जे में था, या उन चीजों को छिपाने का प्रयास किया गया था जो इसे करने में इस्तेमाल किए गए थे या हो सकते हैं, प्रासंगिक हैं।

(ज). प्रश्न यह है कि क्या क को नष्ट कर दिया गया था।

तथ्य यह है कि, कथित बलात्कार के तुरंत बाद, उसने अपराध से संबंधित शिकायत की, जिन परिस्थितियों में, और जिन शर्तों में शिकायत की गई थी, वे प्रासंगिक हैं।

तथ्य यह है कि, शिकायत किए बिना, उसने कहा कि उसे बर्बाद कर दिया गया था, इस धारा के तहत आचरण के रूप में प्रासंगिक नहीं है, हालांकि यह धारा 32 खंड (1) के तहत मृत्यु पूर्व घोषणा के रूप में प्रासंगिक हो सकता है, या धारा 157 के तहत पुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में प्रासंगिक हो सकता है।

41. अ०सा०-1 सूचनाकर्ता अवधेश कुमार सोनी एवं अ०सा०-2 श्रीमती खुशबू के साक्ष्य तथा विवेचनाधिकारी के बयान से कि आरोपी के घर पर कई बार छापे के दौरान वह अनुपस्थित पाया गया, यह साबित हुआ कि घटना के बाद वह फरार था।

42. उपर्युक्त आचरण इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि आरोपी ने अपराध किया है और उसे अपने कपड़े उतारने और अपने निजी अंगों को दिखाने के लिए कहकर उससे अपने निजी अंगों को छुलवाया है।

43. इस केस की स्टार गवाह पीड़िता एक्स (अ०सा०-3) है, उसका बयान विद्वान पीठासीन अधिकारी ने कुछ सवाल पूछकर दर्ज किया, उसने अपना नाम बताया और अपनी मां का नाम भी बताया और बताया कि वह गुरु राम पब्लिक स्कूल में एल.के.जी कक्षा में पढ़ रही थी। पूछताछ करने पर, उसने यह भी खुलासा किया कि

उसने भगवान से प्रार्थना की और उसने यह भी स्पष्ट किया है कि उसने गणेश जी और लक्ष्मी जी की प्रार्थना की थी। वह जानती थी कि झूठ नहीं बोलना चाहिए। उन्होंने आगे कहा है कि वह इस तथ्य को सही मायने में बताएंगी। उन्होंने आगे कहा है कि शपथ लेने के बाद झूठ नहीं बोलना चाहिए। इसके बाद, अदालत के तत्कालीन पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रमाण पत्र दर्ज किए बिना, गवाह को मुख्य परीक्षण में प्रश्न पूछने के लिए लोक अभियोजक को सौंप दिया गया था।

44. उपरोक्त के मद्देनजर, ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता एक्स उससे पूछे गए प्रश्न को समझ सकती है और तर्कसंगत उत्तर देने में सक्षम थी और उसके पास पर्याप्त बुद्धि है और उससे पूछे गए प्रश्न को समझ सकती है और तर्कसंगत उत्तर दे सकती है, इसलिए, प्रमाण पत्र के अभाव में ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह सक्षम गवाह नहीं थी। यहां यह भी स्पष्ट किया जाता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 नकारात्मक शब्दों में निहित है। इसलिए, यदि न्यायालय किसी को सक्षम गवाह घोषित नहीं करता है, तो वह अक्षम गवाह होगा। गवाह की क्षमता के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के अनुसार किसी प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं है। अ०सा०-3 पीड़िता एक्स ने मुख्य परीक्षण ने गवाही दी है कि आरोपी अमृता नंद @ त्रिभुवन अर्जरिया, जो अदालत में मौजूद है, वह बाबा है जिसने उसे अपने घर में बुलाया और उसके बुलाने पर वह उसके घर में गई और उसके बाद, उसने उसे बिस्तर पर लिटा दिया। उसने आगे कहा है कि उस समय वह रो रही थी और आरोपी ने उसे टॉफी दी और उसकी चड्डी उतार दी और लड्डू देने का लालच भी दिया। उसने आगे कहा है कि आरोपी ने उसके निजी अंगों को छुआ और स्पष्ट किया है कि आरोपी ने अपनी उंगली से उसके मूत्रालय स्थान (सुसु) को छुआ है। उसने आगे कहा है कि आरोपी ने उसके कपड़े भी उतार दिए। उसने धारा 164 द०प्र०स० के तहत दी गई गवाही और जिरह में दिए गए बयान की भी पुष्टि की है कि पुलिस ने उससे पूछताछ की और उसके माता-पिता ने पुलिस को उसका पायजामा दिया था। उसने अपनी जिरह में इस बात की भी पुष्टि की है कि बाबा ने अपने कपड़े उतार दिए हैं और उसने वहां पेशाब नहीं किया। आगे उसने कहा है कि उसे उसके पिता और मां ने बताया था कि उसने क्या बयान दिया है।

45. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह काफी स्पष्ट है कि माता और पिता और अधिवक्ता एक बच्चे के गवाह के मन में विश्वास पैदा करने के लिए, उसे क्या सबूत देना है के बारे में उससे पूछताछ कर सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह प्रशिक्षित/ट्यूटर्ड गवाह है। उसने पूरी घटना का समर्थन किया है और पूरी घटना अपनी मां को बताई है, जिसकी गवाही उसकी मां ने दी थी, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत स्वीकार्य है। घटना के दिन सूचनाकर्ता अपने घर पर नहीं था और गहने तैयार करने के लिए कच्चा माल लेने कानपुर गया था और जब वह वहां से लौटा तो उसके बाद, अगले दिन प्राथमिकी दर्ज की गई, इसलिए, प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया गया है।

46. इस मामले में आरोपी लगभग 60 साल का था और सबूतों से यह पता चलता है कि उसने पीड़िता एक्स को बिस्तर पर लिटा दिया और उसके कपड़े उतार दिए और उसके निजी अंगों को छुआ और उसने उससे अपने निजी हिस्से को छुलवाया और उसके बाद वह रस्सी लाने गया है, जिससे पता चलता है कि इस बीच अगर पीड़िता वहां से नहीं भागी तो उसके साथ क्या हो सकता होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

47. उपरोक्त के मद्देनजर, पीड़िता X (अ०सा०-3) का बयान विश्वसनीय है और उसकी मां के साक्ष्य से पुष्टि की जाती है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के तहत स्वीकार्य है और उसकी मां ने उसी दिन शाम को अपने पति को फोन पर सूचित किया जो प्रासंगिक भी है और उसके बाद अगले दिन पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

48. पॉक्सो अधिनियम को यौन अपराध के शिकार बच्चों के खतरे को खत्म करने के लिए कानून बनाया गया था। इसलिए उपरोक्त के मद्देनजर, पॉक्सो अधिनियम के प्रावधान की व्याख्या इस तरह से की जाएगी ताकि इस खतरे को समाप्त किया जा सके और उपरोक्त परिस्थितियों में प्रावधान की व्याख्या 'मिसचीफ़ रूलिंग' की मदद से की जाएगी।

49. उपरोक्त परिस्थितियों में, यह साबित होता है कि आरोपी ने लगभग 4 साल की लड़की के साथ यौन उत्पीड़न किया है, इसलिए, विद्वान निचली अदालत ने गवाह पीड़िता एक्स की गवाही पर सही भरोसा किया है और आरोपी को सही दोषी ठहराया है; और उसे पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 के तहत दोषी ठहराया है और उसे 10000/- रुपये के जुर्माने के साथ 7 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई है।

50. ऐसी परिस्थितियों में, निचली अदालत के आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और अपील खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार, अपील खारिज कर दी जाती है।

51. निचली अदालत का रिकॉर्ड तुरंत संबंधित अदालत को वापस लौटा दिया जाए।

(2023) 5 ILRA 1354

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण,

आपराधिक अपील संख्या 3175 / 2017

संजय कुमार ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजेश यादव, श्री दिलीप कुमार सिंह, श्री मुख्तार आलम, श्री साकिब मुख्तार, श्री केशरी नाथ त्रिपाठी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 363 और 366-वादी द्वारा आरोप- नाबालिग बेटी को आरोपी द्वारा बहला-फुसलाकर अपहरण किया गया था-पीड़िता का बयान सीआरपीसी की धारा 164 के तहत- वह उससे प्यार करती थी-कथित दिन-वह आरोपी के साथ रिश्तेदार के यहां गई थी-आरोपी द्वारा कोई जबरदस्ती नहीं की गई-पीड़िता की एक्स-रे रिपोर्ट-16 साल-आरोपों के समर्थन में कोई सबूत नहीं - धारा 363 आईपीसी के तहत आरोप अपीलकर्ता के खिलाफ साबित नहीं हुआ कहा जा सकता-धारा 366 आईपीसी के तहत अपराध स्वतः ही विफल हो जाता है क्योंकि पीड़िता ने आरोपी के खिलाफ दुर्भावनापूर्ण या यौन इरादे का कोई आरोप नहीं लगाया है-अभियोजन उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा।

अपील स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मफत लाल और अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2022 लाइव लॉ एससी 362
2. एस. वरदराजन बनाम मद्रास राज्य 1964, 1965 एससीआर (1) 243

3. रजि. बनाम क्रिश्चियन ओलिफायर(1) (1866) 10 कॉक्स सीसी 402

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण, द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 374(2) के अधीन वर्तमान दाण्डिक अपील को अभियुक्त संजय कुमार द्वारा धारा 366 तथा 363 भा0द0सं0 पुलिस थाना पीपागंज, जिला गोरखपुर के अधीन मामला अपराध सं0 313 वर्ष 2015 से उद्भूत एस0टी0 सं0 89 वर्ष 2016 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं0 7, गोरखपुर द्वारा पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक 02-06-2017 के विरूद्ध अधिमानित किया गया है जिसके द्वारा अभियुक्त अपीलार्थी को धारा 363, 366 भा0द0सं0 के अधीन आरोप हेतु दोषसिद्ध किया गया है तथा निम्नवत् दण्डादिष्ट किया गया है:-

(i) धारा 363 भा0द0सं0 के अधीन, 5 वर्ष के कठोर कारावास को भुगतना तथा रू0 5000/- का जुर्माना

(ii) धारा 366 भा0द0सं0 के अधीन 7 वर्ष के कठोर कारावास को भुगतना तथा रू0 10,000/- का जुर्माना सभी दण्डादेशों को साथ-साथ चलाये जाने का निदेश दिया गया था तथा जुर्माना के कुल धनराशि में से इसके पचास प्रतिशत को पीड़िता को प्रतिकर के रूप में संदत्त किये जाने का निदेश दिया जाता है।

2. मामले का तथ्यात्मक आव्यूह, जो वर्तमान अपील के लिए सुसंगत है, यह है कि इत्तिला देने वाले शिव कुमार ने 3-12-2015 को 06:45 बजे संबंधित पुलिस थाना में प्र0सू0रि0 दर्ज कराया था, जिसमें इसने कहा था कि 26-11-2015 की रात में, इसके अप्राप्तवय लड़की उम्र लगभग 15 वर्ष का अपहरण अभियुक्त संजय द्वारा इसे बहकाते तथा प्रलोभन देते हुए किया गया था, जो भी इसके वार्ड में रहता है। जब इसने अपने परिवार के सदस्यों से इस संबंध में शिकायत किया था, इसके परिवार के सदस्यों ने इसे गाली तथा धमकी दिया था। प्र0सू0रि0 के अन्तर्वस्तुओं को पुलिस थाना पीपीगंज में 3-12-2015 को 06:45 बजे रिपोर्ट सं0 10 (प्रदर्श क-1) में खोला गया था। पुलिस ने मामले का अन्वेषण किया था, पीड़िता को बोरीगंज रेलवे स्टेशन तिराहा, पीपागंज के निकट अभियुक्त संजय के संगति में 3-12-2015 को पुलिस द्वारा बरामद किया गया था, अभियुक्त को भी 3-12-2015 को गिरफ्तार किया गया था तथा जेल भेजा गया था।

3. पीड़िता ने 11-12-2015 को मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 164 द0प्र0सं0 के अधीन लेखबद्ध अपने कथन में कहा था कि वह विगत चार वर्षों से अभियुक्त से परिचित है तथा वह इसे प्यार करती है। वह इसके घर गया जहाँ वह, संजय तथा इसकी छोटी बहन एक साथ इसके बहन के विवाह का वीडियो कैसेट देख रहे थे। इस बीच इसका पिता तथा चाची उपस्थित हुए तथा इन लोगों ने यहां अभियुक्त संजय को देखा था तथा इसे मारा पीटा था, इसने इसे धमकी भी दिया था, इसलिए वह डर गयी थी। उसी दिन, सायंकाल में, वह इसके साथ संजय के संबंधी के घर गई। पुलिस ने इन दोनों को तीन दिनों के बाद पकड़ा था। अभियुक्त ने इसके साथ कोई जबरदस्ती का कार्य नहीं किया था। पीड़िता का चिकित्सा विधिक परीक्षण 4-12-2015 को 6:20 बजे

अपराह्न किया गया था जो प्रदर्श के 15 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है। मामले के विवरण में डाक्टर ने कहा है "वह अकेली घर से भागी है, किसी लड़के के साथ नहीं"। इसका योनिच्छेद फटा, पुराना तथा भरा पाया गया था। उम्र के निर्धारण हेतु, पीड़िता का विकिरण चिकित्सा परीक्षण वैज्ञानिक तरीके से किया गया था तथा सी0एम0ओ0 ने अपने रिपोर्ट दिनांक 7-12-2015 में विचार व्यक्त किया था कि एक्स-रे रिपोर्ट तथा सामान्य रूप रंग के अनुसार इसकी राय है कि वह लगभग 16 वर्ष के उम्र की थी। प्रदर्श के-13 पीड़िता का एक्स-रे रिपोर्ट है। पीड़िता के योनिक चिकनाई के विकिरण चिकित्सा वैज्ञानिक परीक्षण दिनांक 5-15-2015 में डाक्टर ने विचार व्यक्त किया था कि दोनों स्लाइड के परीक्षण के बाद, आरबीसी, शुक्राणु या अण्डाणु भी देखा गया था। हाईस्कूल के अंकपत्र प्रदर्श के-17 में पीड़िता की जन्मतिथि 17-08-2001 है। तद्नुसार अन्वेषण अधिकारी ने पाया कि घटना के तिथि को, पीड़िता 14 वर्ष 3 माह के उम्र की थी, अभियुक्त को इस न्यायालय के आदेश दिनांक 6-4-2016 द्वारा जमानत पर छोड़ा गया था। अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूरा होने के बाद धारा 263, 366 भा0द0सं0 के अधीन आरोपों हेतु इसे अभियोजित करने के अनुरोध के साथ अभियुक्त के विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल किया था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामले को सुपुर्द किया था तथा सत्र न्यायालय ने मामले का पूर्व संदाय किया था, अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं0 7 गोरखपुर द्वारा 27-08-2015 को धारा 363, 366 भा0द0सं0 के अधीन अभियुक्त अपीलार्थी के विरूद्ध आरोपों को विरचित किया था। अभियुक्त ने आरोपों का खण्डन किया था। अभियोजन प्रति परीक्षा के दौरान, अ0सा02, शिवकुमार, इत्तिला देने वाला जो पीड़िता का पिता है ने पुलिस थाना पर स्वयं को दाखिल लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श के (1) के रूप में, अभियुक्त तथा पीड़िता के बरामदगी सह गिरफ्तारी मेमो को प्रदर्श के (2) के रूप में साबित किया था, जिसे अन्वेषण अधिकारी, ओंकारनाथ श्रीवास्तव द्वारा तैयार किया गया है। इसने पीड़िता तथा अभियुक्त के हस्ताक्षर के संबंध में अपनी पत्नी के साथ इस पर अपने हस्ताक्षर को स्वीकार किया था। इसने प्रदर्श के (3) के अनुसार पीड़िता के संबंध में अभिरक्षा पत्रावली पर अपना हस्ताक्षर स्वीकार किया था। अ0सा0 2 खुशबू पीड़िता है जिसने अपने परीक्षा के तिथि दिनांक 21.09.2016 को अपनी उम्र 18 वर्ष बताई है। इसने धारा 164 द0प्र0सं0 के अधीन अपने कथन को स्वीकार किया था, जो प्रदर्श के (4) के रूप में अंकित है। फिर भी, इसे पक्षद्रोही घोषित किया गया था तथा एडीसी (अपराध) राजकुमार द्वारा प्रति परीक्षित की गई थी। इत्तिला देने वाले के भाई को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था जब न्यायालय की अनुमति से अभियोजन द्वारा प्रति परीक्षित किया गया था। अ0सा0 4 रंजना जायसवाल पीड़िता की चाची है, अ0सा0 5 जगदीश इत्तिला देने वाला का चाचा है, अ0सा0 6 फिरोज अली इत्तिला देने वाले का पड़ोसी है, इसे भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है। अ0सा07 श्री मोहन को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था, अ0सा0 8 डा0 सुषमा सिन्हा ने पीड़िता के चिकित्सा परीक्षण पत्रावली को प्रदर्श के (5) के रूप में तथा अनुपूरक चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श के (6) के रूप में साबित किया है।

अ0सा0 9 मंजू देवी पीड़िता के बरामदगी तथा 3-12-2015 को अभियुक्त के गिरफ्तारी की साक्षी है। अ0सा0 10 कान्सटेबल राम विलास भास्कर प्र0सू0रि0 प्रदर्श के (7) तथा प्रदर्श के (8) के रूप में मामले के पंजीकरण के जीडी के उद्धरण का लेखक है। अन्वेषण अधिकारी को विचारण के दौरान पेश नहीं किया गया था तथा स्थल नक्शा जैसे इसके द्वारा लिखित पत्रावली, आरोप पत्र को साक्ष्य में स्वीकार किया गया है तथा विचारण के दौरान अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्वीकृत इनके यथार्थता के आधार पर प्रदर्शित किया गया है। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों को सुनने तथा अभिलेख पर साक्ष्य का मूल्यांकन करने के बाद निष्कर्ष दिया था कि अभियुक्त संजय ने पीड़िता का अपहरण किया था तथा तत्पश्चात इससे विवाह भी किया था। अभियोजन अभियुक्त के विरूद्ध धारा 363, 366 भा0द0सं0 के अधीन आरोपों से साबित करने में सफल रहा है। धारा 363, 366 भा0द0सं0 का संघटक मामले में लागू होता है क्योंकि पीड़िता अपराध के समय पर अप्राप्तवय थी तथा इसे इसके माता पिता के विधिपूर्ण संरक्षकता से अभियुक्त द्वारा बहलाकर तथा प्रलोभन देकर ले जाया गया था। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने यह भी संप्रेक्षित किया कि यद्यपि पीड़िता सहित तथ्य के किसी भी साक्षीगण ने अभियोजन कथन का समर्थन नही किया है लेकिन पीड़िता के हाईस्कूल अंकपत्र में उल्लिखित जन्मतिथि के अनुसार, इसने 15 वर्ष की आयु को भी पूरा नहीं किया था, फिर भी, पक्षद्रोही होने वाले तथ्य के साक्षीगण के बाद भी मामले के तथ्यों तथा विद्यमान परिस्थितियों तथा अन्य साक्ष्य को यह ज्ञात करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या अकाट्य साक्ष्य अभिलेख पर है जिसके आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जा सकता है तथा इस स्थिति में, अभियुक्त को इस आधार पर दोषमुक्त नही किया जा सकता है कि तथ्य के साक्षीगण पक्षद्रोही हो गये है। इसने संप्रेक्षित किया कि अ0स0 1 शिवकुमार पीड़िता के पिता ने प्र0सू0रि0 में कहा है कि इसकी बेटी लगभग 14 वर्ष के उम्र की थी तथा अभिलेख पर साक्ष्य का मूल्यांकन करने के बाद विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त के विरूद्ध अपराध का निर्णय लेखबद्ध किया था तथा इसे पूर्वोक्तानुसार दण्डादिष्ट किया था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अ0शा0 अधि0 को सुना तथा अभिलेख पर सामग्री का परिशीलन किया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपराध के निर्णय को लेखबद्ध किया है तथा अपीलार्थी को अभिलेख पर साक्ष्य के बल के विरूद्ध दण्डादिष्ट किया है एवं आक्षेपित निर्णय विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं है। अपीलार्थी को विचारण के दौरान तथा इस न्यायालय के आदेश द्वारा वर्तमान दाण्डिक अपील के लंबित रहने के दौरान जमनत पर छोड़ा गया था तथ्य के किसी साक्षीगण ने पीड़िता सहित अभियोजन कथन का समर्थन नहीं किया है इसके बावजूद विचारण न्यायालय ने अभियुक्त अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया है तथा इसे इसके विरूद्ध प्रस्तुत अकाट्य साक्ष्य

के बिना दण्डादिष्ट किया है। विचारण न्यायालय के समक्ष अपने कथन में पीड़िता ने विशेष रूप से कहा है कि वह अपीलार्थी के साथ अपने स्वेच्छा से गई थी, इसने यह भी कहा है कि वह साक्ष्य हेतु अपने पति संजय के साथ आई थी तथा वकालतनामा पर अपनी फोटो चस्पा करने के बाद अधिवक्ता को भी मुकर्रर किया था। इसने यह भी कहा था कि इसने अपने पति के विरूद्ध पुलिस में कोई कथन नहीं किया था। अ0स0 1 शिव कुमार ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने प्रति परीक्षा में कहा है कि इसकी शादी वर्ष 1995 में हुई थी तथा विवाह के दो वर्ष बाद वर्ष 1997 में, पीड़िता खुशबू पैदा हुई थी तथा घटना के समय पर वह कक्षा 11 में पढ़ रही थी। इसकी उम्र लगभग 18 वर्ष थी। इसने यह भी कहा कि इसके हाईस्कूल अंकपत्र में दर्ज पीड़िता की जन्म तिथि 4 वर्ष से कम है तथा इसके वास्तविक आयु को इसके शिक्षक द्वारा गलत तरीके से प्रविष्ट किया गया था। धारा 363, 366 भा0द0सं0 के अधीन अपराध का संघटक अपीलार्थी के विरूद्ध अभिलेख पर साक्ष्य के आधार पर नही बनता है। इसलिए वह इन आरोपों से दोषमुक्त किये जाने योग्य है।

6. तत्प्रतिकूल, राज्य के लिए उपस्थित होते हुए विद्वान अ0शा0अधि0 ने निवेदन किया है कि इस तथ्य के बावजूद कि पीड़िता सहित तथ्य के साक्षीगण ने विचारण के दौरान अपने कथन में अभियोजन कथन का समर्थन नही किया है, फिर भी, दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, यह तथ्य साबित होता है कि पीड़िता घटना के समय अप्राप्तवय थी तथा वह उस समय पर 15 वर्ष से कम उम्र की थी। इसे अपने माता पिता के संरक्षकता से अपने माता पिता का घर छोड़ने के लिए अभियुक्त द्वारा बहला कर तथा प्रलोभन देकर ले जाया गया था तथा तत्पश्चात, अभियुक्त ने इससे शादी किया था। स्वयं इस तथ्य से पता चलता है कि पीड़िता को इसके माता पिता के विधि पूर्ण संरक्षकता से अभियुक्त द्वारा अपहृत किया गया था, जिससे इसे शील भंग करने तथा यौन सहवास के लिए मजबूर किया जा सके तथा इसलिए धारा 363, 366 भा0द0सं0 के अधीन अपराध मामले में बनता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को ठीक ही पूर्वोक्तानुसार दोषसिद्ध तथा दण्डादिष्ट किया है तथा वर्तमान दाण्डिक अपील में आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप आवश्यक नही है।

7. अ0सा0 2 के शपथ पत्र साक्ष्य के परिशीलन से यह पाया जाता है कि इसने इसमें कहा था कि वह अपने माता पिता की सबसे बड़ी संतान है, वह वार्ड सं0 3 पीपागंज में अपने माता पिता के घर में रह रही थी। इसके हाईस्कूल अंकपत्र में इसकी जन्मतिथि 17.08.2001 है, 26.11.2015 को घटना के तिथि को, सायंकाल में, वह अपने घर में अपने परिचित संजय के साथ विवाह का वीडियो कैसेट देख रही थी, इसकी बहन वहां आई तथा इसे अपने घर जाने के लिए कही तथा वह इसके साथ गई थी, जब यह तथ्य इसके पिता के जानकारी में आया था, इसने इसकी हत्या करने की धमकी दिया था तथा तत्पश्चात् इसने सायंकाल में संजय को बुलाया था तथा इसके साथ इसके संबंधी के घर गई थी। तत्पश्चात् इसे मालूम हुआ कि इसके पिता ने इस आशय का रिपोर्ट पुलिस थाना में दर्ज कराया था कि

वह लापता है, 3-12-2015 को वह अपने पिता के घर आई थी तथा पुलिस वहाँ पहुँची थी तथा कुछ कागजी कार्य किया था जिस पर इसने अपने माता पिता के साथ अपना हस्ताक्षर किया था। पीड़िता ने प्रदर्श के2, बरामदगी मेमो पर अपना हस्ताक्षर स्वीकार किया था, लेकिन कहा कि इसने पुलिस थाना में कोई कथन नहीं किया था तथा इसे न्यायालय के आदेशों द्वारा इसके पिता के अभिरक्षा में दिया गया था। इसने अपने हाईस्कूल अंकपत्र पर अपने फोटोग्राफ के फोटो छाप को भी स्वीकार किया है जिसमें इसकी जन्मतिथि 17-8-2001 के रूप में उल्लिखित है। इसने इस तथ्य का खण्डन किया था कि इसके माता पिता ने अभियुक्त को गाली या धमकी दिया था। इसने यह भी कहा कि वह संजय के साथ मामले में अभिसाक्ष्य देने आई थी, जो अब इसका पति है। इसने मजिस्टे्ट द्वारा लेखबद्ध धारा 164 द0प्र0सं0 के अधीन अपने कथन में स्वीकार किया था जिस पर प्रदर्श के-4 अंकित था। इस कथन के बाद पीड़िता को एडीसी शासकीय अधिवक्ता (अपराध) द्वारा इसके प्रति-परीक्षा में पक्षद्रोही घोषित किया था, इसने कहा कि वह लगभग 18 वर्ष के आयु की थी, इसने अन्वेषण अधिकारी द्वारा धारा 161 द0प्र0सं0 के अधीन लेखबद्ध अपने कथन को अस्वीकार किया था। इसने स्पष्ट किया कि अभियुक्त ने बलपूर्वक इसके साथ कुछ भी गलत नहीं किया था, इसने अपने कथन 164 द0प्र0सं0 में अपने पिता के हिदायतों पर अपनी उम्र 16 वर्ष बताया था। इसने यह भी कहा था कि इसने 20-07-2016 को संजय से विवाह किया था, इसने अभियोजन द्वारा दिये गये सुझाव को अस्वीकार किया था कि अभियुक्त ने इसके माता पिता के विधिपूर्ण संरक्षकता से विवाह के बहाने इसे लुभाकर प्रलोभन देते हुए ले गया था तथा तत्पश्चात्, इससे शादी किया था तथा इस कारण वह अपनी उम्र बढ़ा चढ़ाकर बता रही है। प्रतिरक्षा द्वारा प्रति परीक्षा में, इसने स्वीकार किया था कि वर्तमान में वह तथा अभियुक्त पति तथा पत्नी के रूप में एक साथ रह रहे हैं। अ0सा0 3, जय कुमार, अ0सा0 4 रंजना जायसवाल, अ0सा0 5 जगदीश, अ0सा0 6 फिरोज अली तथा अ0सा0 7 श्रीमोहन ने अभियोजन के पक्ष में कोई कथन नही किया है तथा इन्हें अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया था तथा विद्वान ए0डी0सी0 (अपराध) द्वारा प्रति परीक्षा की अनुमति दी गयी थी लेकिन इनके प्रति परीक्षा में कुछ भी सामग्री का निष्कर्ष नही निकाला जा सका है, जो अभिलेख के लिए लाभदायक संभाव्य हो।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **मफतलाल तथा एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2022 लाइव ला एससी 362** में मा0 शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा है, जो उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध दाखिल दाण्डिक अपील सं0 592 वर्ष 2022 है जिसने लड़की का अपहरण या व्यपहरण करने हेतु अपीलार्थी अभियुक्त के विरूद्ध दाण्डिक कार्यवाहियों का अभिखण्डन करने से इंकार किया था। अपील को अनुज्ञात किया गया था। इस मामले में, पीड़िता के पिता ने पुलिस थाना में प्र0सू0रि0 दर्ज कराया था कि इसके अप्राप्त लड़की का अपहरण अभियुक्त द्वारा किया गया है तथा अभियुक्त के विरूद्ध धारा 363/366 भा0द0सं0 के अधीन मामला पंजीकृत किया गया था। अपहर्ता तथा

अभियुक्त का पता लंबे समय तक नहीं चल सका था तथा पुलिस के धारा 363, 366, 120ख भा0द0सं0 के अधीन अभियुक्त के पिता के विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल किया था, वर्ष 2020 में अभियुक्त ने अपहर्ता के साथ प्र0सू0रि0 तथा इससे उद्भूत सभी कार्यवाहियों के अभिखण्डन हेतु अनुरोध करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 482 द0प्र0सं0 के अधीन याचिका दाखिल किया था। इसमें प्रस्थिति यह है कि ये लोग एक दूसरे को भलीभांति जानते थे तथा गहरे प्रेमप्रसंग में थे, जो संबंध अप्रतिरोध्य परिस्थितियों में अपहर्ता के पिता को स्वीकार्य नही था, ये दोनों वर्ष 2005 में अपने परिवार के सदस्यों से अलग हो गये थे तथा बाद में 25-12-2006 को शादी किये थे। इन लोगों ने यह भी कहा कि लगभग 15 वर्ष बीत चुके हैं, अभियुक्त तथा अपहर्ता राजी खुशी विवाहित जीवन जी रहे हैं तथा इन्हें लड़का भी पैदा हुआ था। इन लोगों ने यह भी कहा कि अपहर्ता को कभी भी उत्पीड़ित, व्यपहृत न ही अपहृत किया गया था बल्कि अपने स्वतंत्र इच्छाशक्ति से अपने पिता द्वारा पैदा किये गये दुःखद तथा असामान्य परिस्थितियों के कारण अपने माता पिता के घर से गई थी। यह भी कहा गया है कि उस समय पर अपहर्ता की आयु 17 वर्ष थी जब इसने अपने स्वयं के इच्छाशक्ति पर अपना घर छोड़ा था तथा यह कि इसके अपने परिवार से अलग होने में अभियुक्त की कोई भूमिका नही थी। मा0 शीर्ष न्यायालय ने पाया कि अभियुक्त तथा पीड़िता ने उच्च न्यायालय के समक्ष कहा है कि इसने स्वेच्छा से अपने माता पिता का घर छोड़ा था, इन लोगों ने दिसम्बर 2006 से विवाह किया है तथा हँसी खुशी रह रहे हैं। मामले को विचारण करने हेतु पीछे धकेलने से कोई लाभदायक प्रयोजन पूरा नहीं होगा क्योंकि यह किसी अपीलार्थीगण के लिए सहायक नही होगा। यह निरर्थक कवायद होगा। व्यपहरण में आवश्यक रूप से धारा 363 भा0द0सं0 के अधीन अपराध हेतु अठारह वर्ष से कम, यदि स्त्री है, किसी अप्राप्तवय को प्रलोभन देना या ले जाना शामिल होगा। धारा 366 भा0द0सं0 केवल वहाँ लागू होगा जहाँ स्त्री का व्यपहरण करते हुए या प्रलोभन देते हुए विवाह करने की बलात बाध्यता होती है। यह अपराध भी नही बनेगा जब एक बार अपीलार्थी सं0 2 अपहर्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह अपीलार्थी सं0 1 से प्यार करती थी तथा यह कि इसने अपने माता पिता के घर में असामान्य परिस्थितियों के कारण अपना घर छोड़ा था।

9. मा0 शीर्ष न्यायालय ने **एस0 वरदराजन बनाम मद्रास राज्य 1964, 1965 एससीआर (1) 243** में धारा 363 तथा 366 भा0द0सं0 पर सविस्तार विचार किया था। मा0 शीर्ष न्यायालय ने निम्न पैरा में संप्रेक्षित किया था:-

(9) फिर भी, यह ध्यान में रखना चाहिए कि अप्राप्तवय को व्यक्ति के साथ जाने तथा ले जाने के बीच अंतर है। दोनों अभिव्यक्तियाँ पर्याप्त नही है यद्यपि हम यह अधिकथित करने से स्वयं को चैकन्ना रखना चाहेंगें कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 361 के प्रयोजन हेतु किसी कल्पनीय परिस्थिति को दो एक ही बात के अर्थ के रूप में नही माना जा सकता है। हम स्वयं को वर्तमान तैसे मामले तक सीमित करेंगें जहाँ अभियुक्त द्वारा ले जाने के लिए अभिकथित अप्राप्तवय ने वह क्या कर

रही है के पूरे अभिप्राय को जानने की क्षमता रखते हुए तथा यह जानते हुए अपने पिता की सुरक्षा को छोड़ दिया था स्वेच्छा से अभियुक्त व्यक्ति से जुड़ती है। इस प्रकार के मामले में, हम नहीं मानते है कि अभियुक्त को इसके विधिपूर्ण संरक्षक के संरक्षण से इसे दूर ले जाया गया कहा जा सकता है। इस प्रकार के मामले में कुछ बातें और बताई जानी चाहिए तथा यह संरक्षक के घर को छोड़ने के अप्राप्तवय के आशय के निर्माण में किसी प्रकार का अभियुक्त व्यक्ति द्वारा व्यपनिदेशित उत्प्रेरणा या इसके द्वारा सक्रिय भागीदारी है।

(10) फिर भी, यह पर्याप्त होगा यदि अभियोजन साबित करता है कि अप्राप्तवय के पिता की सुरक्षा को छोड़ने के तत्काल पहले अभियुक्त द्वारा सक्रिय भूमिका अदा नहीं की गई थी, इसने कुछ पहले के प्रक्रम पर अप्राप्तवय को ऐसा करने के लिए राजी या अनुनय विनय किया था। हमारी राय में, यदि इन बातों को साबित करने के लिए साक्ष्य नही है यह निष्कर्ष निकालना उचित नही होगा कि अभियुक्त अप्राप्तवय को विधि पूर्ण संरक्षक के संरक्षण से ले जाने का दोषी है मात्र इसलिए क्योंकि इसके वास्तव में अपने संरक्षक के घर को छोड़ने के बाद या घर जहाँ इसके संरक्षक ने इसे रखा था, अभियुक्त से मिली थी तथा अभियुक्त ने इसे अपने साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हुए इसके संरक्षक के घर वापस न लौटने के इसके उद्देश्य में इसकी सहायता किया था। निःसन्देह, अभियुक्त द्वारा अदा किये गये भूमिका को लड़की के आशय को पूरा करने को सुकर बनाने के रूप में माना जा सकता है। हमारी राय में यह भाग अपने विधि पूर्ण संरक्षक के संरक्षण से चुपचाप चले जाने के अप्राप्तवय की उत्प्रेरणा कम पड़ता है तथा इसलिए "अपहरण" के तुल्य नहीं है।

मा0 न्यायालय ने **रेग बनाम क्रिश्चियन ओलीफियर (1) (1866) 10 काक्स सीसी 402** के अंग्रेजी निर्णय को उत्कथित किया था, जिसमें यह संप्रेक्षित किया गया था:

"मेरी राय है कि यदि नवयुवती पुरूष द्वारा किसी अनुनय उत्प्ररेणा या प्रलोभन व्यपदेशन के बिना अपने पिता के घर से जाती है, जिससे वह घर से पूर्णरूपेण दूर हो जाती है तथा तत्पश्चात् इसके पास जाती है, यद्यपि अपने माता पिता के अभिरक्षा में इसका वापस आना इसका नैतिक कर्तव्य है, फिर भी ऐसा न करना संसद के इस अधिनियम का उल्लंघन नही है क्योंकि अधिनियम यह नही कहता है कि वह इसे लौटायेगा बल्कि केवल यह कि वह इसे दूर नही ले जायेगा।"

10. भा0द0सं0 की धारा 363 निम्नवत् उपबंध करता हैः-

<u>363. व्यपहरण के लिए दण्ड</u> *- जो कोई भारत में से या विधि पूर्ण संरक्षकता में से किसी व्यक्ति का व्यपहरण करेगा, वह दोनों मे से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।*

<u>363-क भीख मांगने के प्रयोजनों के लिए अप्राप्तवय का व्यपहरण या विकलांगीकरण -</u>

(1) जो कोई किसी अप्राप्तवय का इसलिए व्यपहरण करेगा या अप्राप्तवय का विधिपूर्ण संरक्षक स्वयं न होते हुए अप्राप्तवय की अभिरक्षा इसलिए अभिप्राप्त करेगा कि ऐसा अप्राप्तवय भीख मांगने के प्रयोजनों के लिए

नियोजित या प्रयुक्त किया जाए, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

(2) जो कोई किसी अप्राप्तवय को विकलांग इसलिए करेगा कि ऐसा अप्राप्तवय भीख मांगने के प्रयोजनों के लिए नियोजित या प्रयुक्त किया जाए, वह आजीवन कारावास से दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

(3) जहाँ कि कोई व्यक्ति जो अप्राप्तवय का विधिपूर्ण संरक्षक नहीं है और उस अप्राप्तवय को भीख मांगने के प्रयोजनों के लिए नियोजित या प्रयुक्त करेगा, वहाँ जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, यह उपधारणा की जाएगी कि उसने इस उद्देश्य से उस अप्राप्तवय का व्यपहरण किया था या अन्यथा उसकी अभिरक्षा अभिप्राप्त की थी कि वह अप्राप्तवय भीख मांगने के प्रयोजनों के लिए नियोजित या प्रयुक्त किया जाए।

(4) इस धारा में-

1. "भीख मांगने" से अभिप्रेत है-

1.1 लोक स्थान में भिक्षा की याचना या प्राप्ति चाहे गाने, नाचने, भाग्य बताने, करतब दिखाने या चीजें बेचने के बहाने अथवा अन्यथा करना

1.2 भिक्षा की याचना या प्राप्ति करने के प्रयोजन से किसी प्राइवेट परिसर में प्रवेश करना।

1.3 भिक्षा अभिप्राप्त या उद्दापित करने के उद्देश्य से अपना या किसी अन्य व्यक्ति का या जीव जन्तु का कोई व्रण, घाव, क्षति, विरुपता या रोग अभिदर्शित या प्रदर्शित करना,

1.4 भिक्षा की याचना या प्राप्ति के प्रयोजन से अप्राप्तवय का प्रदर्शित के रूप में प्रयोग करना।

2. "अप्राप्तवय" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो-

2.1 यदि नर है, तो सोलह वर्ष से कम आयु का है तथा

2.2 यदि नारी है तो अठारह वर्ष से कम आयु है,

इस प्रकार धारा 363 भा0द0सं0 के संघटकों को निम्नवत् उत्कीर्ण किया जा सकता है:-

(i) अप्राप्तवय या विकृतचित्त व्यक्ति को ले जाना या प्रलोभन देकर ले जाना (ii) यदि नर है, इस प्रकार के अप्राप्तवय की उम्र सोलह वर्ष से कम होना चाहिए या यदि नारी है अठारह वर्ष की आयु से कम (iii) ले जाना या प्रलोभन इस प्रकार के अप्राप्तवय या विकृतचित्त व्यक्ति के विधिपूर्ण संरक्षक के संरक्षण के बाहर होना चाहिए (iv) इस प्रकार ले जाना या प्रलोभन इस प्रकार के संरक्षक के सहमति के बिना होना चाहिए। ले जाये जाने का केवल वास्तविक का आन्वयिक द्वारा होना आवश्यक नही है। बालक को संरक्षक के कब्जे से बाहर ले जाया जाना चाहिए। धारा 361 का स्पष्टीकरण उपबंध करता है कि उक्त धारा मं शब्दावली ''विधिपूर्ण संरक्षक'' के इस प्रकार के अप्राप्तवय या अन्य व्यक्ति के अभिरक्षा या देखरेख में विधिपूर्ण तरीके से सौंपा गया कोई व्यक्ति शामिल है। शब्द 'ले जाना' अभिप्रेत है ले जाया जाना, रक्षार्थ ले जाना या कब्जे में रखना। इसमें इच्छा का अभाव तथा ले जाये गये व्यक्ति के इच्छा का अभाव विवक्षित है। फिर भी, व्यक्ति के साथ अप्राप्तवय को ले जाने

तथा ले जाने की अनुमति के बीच अंतर है। शब्द 'प्रलोभन' में अन्य में आशा या इच्छा जागृत करते हुए उत्प्रेरणा या प्रलोभन का विचार शामिल है।

11. भा0द0सं0 की धारा 366 निम्नवत् उपबंध करता है-

<u>366. विवाह आदि के करने को विवश करने के लिए किसी स्त्री को व्यपहृत करना, अपहृत करना या उत्प्रेरित करना</u> - *जो कोई किसी स्त्री का व्यपहरण या अपहरण उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए उस स्त्री को विवश करने के आशय से या वह विवश की जाएगी, यह संभाव्य जानते हुए अथवा अयुक्त संभोग करने के लिए उस स्त्री को विवश या विलुब्ध करने के लिए या वह स्त्री अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जाएगी, यह संभाव्य जानते हुए करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।*

और जो कोई किसी स्त्री को किसी अन्य व्यक्ति से अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने के आशय से या वह विवश या विलुब्ध की जाएगी यह संभाव्य जानते हुए इस संहिता में यथा परिभाषित आपराधिक अभित्रास द्वारा अथवा प्राधिकार के दुरूपयोग या विवश करने के अन्य साधन द्वारा उस स्त्री को किसी स्थान से जाने को उत्प्रेरित करेगा, वह भी पूर्वोक्त प्रकार से दण्डित किया जायेगा।

धारा 366 भा0द0सं0 के प्रावधानों की जांच करने के बाद इसके आवश्यक संघटकों को निम्नवत् सार संक्षेपित किया जा सकता है: (i) किसी स्त्री का व्यपहरण या अपहरण (ii) इस प्रकार का अपहरण या व्यपहरण (क) इस आशय से कि किया जाना चाहिए कि इसे विवश किया जा सकता है या यह संभाव्य जानते हुए कि इसे इसकी इच्छा के विरूद्ध किसी व्यक्ति के साथ शादी करने के लिए विवश किया जायेगा या (ख) ताकि इसे अयुक्त संभोग के लिए विवश या प्रलोभन दिया जा सकता है या यह संभाव्य जानते हुए कि इसे अयुक्त संभोग के लिए विवश किया जायेगा या विलुब्ध किया जायेगा।

धारा 366 के दूसरे भाग के लिए दो बातें आवश्यक है (1) आपराधिक उत्प्रेरणा या प्राधिकार के दुरूपयोग द्वारा या बाध्यता द्वारा किसी स्त्री को किसी स्थान से जाने के लिए उत्प्रेरित करना तथा (2) इस प्रकार का जाना इस आशय के साथ होना चाहिए कि इसे या इस ज्ञान से कि यह संभाव्य है कि इसे किसी व्यक्ति के साथ अयुक्त संभोग के लिए विवश या विलुब्ध किया जायेगा। शब्द स्त्री को संहिता की धारा 10 में परिभाषित किया गया है जो शब्द 'स्त्री' को किसी उम्र की नारी के रूप में द्योतित करता है। इस प्रकार इसमें अप्राप्तवय नारी शामिल है। यदि लड़की अठारह वर्ष या ऊपर है इसका केवल अपहरण किया जा सकता है, व्यपहरण नही, लेकिन यदि वह अठारह वर्ष से कम उम्र की है इसका व्यपहरण तथा अपहरण किया जा सकता है यदि ले जाया जाना बल द्वारा या ले जाना का प्रलोभन देना वंचनापूर्ण साधनों द्वारा किया जाता है। अभियुक्त का आशय आधार तथा धारा 366 के अधीन अपराध अभियोग की मुख्य बातें है। स्त्री की इच्छाशक्ति, आशय तथा आचरण अपराध का निर्धारण नहीं करता है। व्यपहरण तथा अपहरण दो भिन्न अपराध है। व्यपहरण

संरक्षकता के विरूद्ध अपराध है, इसमें इसके सहमति के बिना विधिपूर्ण संरक्षक के संरक्षण से लड़की को फुसलाकर ले जाना या दूर करना शामिल है, अपहरण अपराध है जैसा धारा 362 भा0द0सं0 के अधीन परिभाषित है, जब व्यक्ति को बल द्वारा विवश किया जाता है या वंचनापूर्ण संसाधनों द्वारा किसी स्थान से जाने के लिए प्रेरित किया जाता है। अपहरण में, अपहृत व्यक्ति अप्राप्तवय या प्राप्तवय हो सकता है। व्यपहरण स्वयमेव किसी विनिर्दिष्ट आशय के बिना धारा 363 के निबंधनों के अनुसार दण्डनीय है, दूसरी तरफ, अपहरण स्वतः दण्डनीय नही है तथा केवल तभी दण्डनीय है जब विशेष उद्देश्य के साथ होता है जैसा धारा 364 से 366 में अनुध्यात है। कभी-कभी अपहरण तथा व्यपहरण एक ही प्रयोजन हेतु किया जाता है, लेकिन प्रत्येक मामले में यह आवश्यक नही है।

12. वर्तमान मामले में, पीड़िता की आयु इसके हाईस्कूल अंकपत्र के आधार पर 14 से 15 वर्ष के बीच प्रतीत होता है तथा चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार 16 वर्ष जैसा सी0एम0ओ0 द्वारा विचार किया गया है। किसी भी स्थिति में यह संदेह नही किया जा सकता है कि पीड़िता घटना के समय पर अप्राप्तवय थी। न्यायालय के समक्ष इस बिन्दु पर इसके पिता का कथन कि इसके उम्र को स्कूल अभिलेख में इसके वास्तविक उम्र से 4 वर्ष कम के रूप में दर्ज किया गया था किसी ठोस तर्क या सबूत पर आधारित नही है। फिर भी, यदि हम विचारण के दौरान मजिस्ट्रेट के समक्ष या न्यायालय के समक्ष धारा 164 द0प्र0सं0 के अधीन लेखबद्ध पीड़िता के कथन का परिशीलन करते हैं, यह नही कहा जा सकता है कि अभियुक्त पीड़िता को इसके माता-पिता के विधिपूर्ण संरक्षकता के संरक्षण में से ले गया था या फुसलाकर ले गया था, क्योंकि पीड़िता ने दोनों प्रक्रमों पर कहा है कि अपने पिता द्वारा धमकी दिये जाने पर तथा भयवश, इसने अभियुक्त को बुलाया था तथा इसके साथ इसके संबंधी के घर गई थी। इसलिए, यदि हम पीड़िता का कथन स्वीकार करते हैं, इसके माता पिता के घर से जाने में अभियुक्त द्वारा अदा की गई भूमिका निष्क्रिय कार्य के प्रकृति का है तथा यह देखा नही जा सकता है कि इसने पीड़िता को अपने माता पिता के घर से इसकी सहमति के बिना जाने में सक्रिय भूमिका अदा किया था। ले जाने के मामले में अप्राप्तवय का मानसिक दृष्टिकोण तत्वहीन, बलहीन है जब अभियुक्त अप्राप्तवय को अपने साथ ले जाता है चाहे वह चाह रहा/रही हो या नहीं। लेकिन शब्द फुसलाकर, ले जाने में उत्प्रेरणा या प्रलोभन का विचार अन्तर्वलित है। कोई एक दूसरे को फुसलाकर नही ले जाता है जब तक परवर्ती चीज को करने का प्रयत्न नहीं करता है जिसे वह अन्यथा नही करेगा/करेगी। वर्तमान मामले में जो भी हो इन अभिकथनों के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त पीड़िता को फुसलाकर इसके माता पिता के घर से ले गया था तथा कहीं और साथ गया था। यदि हम धारा 161 द0प्र0सं0 के अधीन लेखबद्ध पीड़िता के कथन का परिशीलन करते हैं, साक्ष्य में ग्राह्य नही है, यह पाया जाता है कि स्वयं पीड़िता अभियुक्त को फुसलाकर ले गई थी तथा अपने माता के संरक्षण से बाहर किसी अन्य उपयुक्त स्थान पर इसके साथ गई थी। इसलिए, अभियुक्त की भूमिका को अधिक से

अधिक सुकरकर्ता के रूप में कहा जा सकता है तथा यह अभिनिर्धारित नही किया जा सकता है वह इसके माता पिता के विधि पूर्ण संरक्षकता से इसे ले गया था या इसे फुसलाकर ले गया था। पहल का तत्व पीड़िता के सिरा पर है न कि अभियुक्त पर।

13. अब, पूर्वगामी विवेचनाओं के आधार पर इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि संभावनाओं की प्रबलता से संकेत मिलता है कि पीड़िता स्वेच्छा से अभियुक्त अपीलार्थी के साथ गई थी तथा इस प्रक्रिया में अभियुक्त ने सक्रिय भूमिका अदा नहीं किया था, इसलिए, धारा 363 भा0द0सं0 के अधीन आरोप को अपीलार्थी के विरूद्ध साबित हुआ नहीं कहा जा सकता है तथा एक बार इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है, धारा 366 के अधीन अपराध स्वयमेव असफल हो जाता है क्योंकि पीड़िता ने अभियुक्त के विरूद्ध दुर्भावनापूर्ण या यौन आशय के किन्हीं अभिकथनों को आरोपित नहीं किया है। परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अभियोजन अभियुक्त के विरूद्ध अपना मामला युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने में असफल है।

14. उपरोक्त विवेचना के दृष्टिगत, अपील को **अनुज्ञात** किया जाता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 363 तथा 366 के अधीन अभियुक्त अपीलार्थी के विरूद्ध पारित दोष सिद्धि तथा दण्डादेश को अपास्त किया जाता है तथा अपीलार्थी को दोनों आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है क्योंकि इसे इसके विरूद्ध युक्तियुक्त संदेह से परे साबित नहीं पाया जाता है। जुर्माना, यदि वसूल किया जाता है, इसे तत्काल वापस किया जाय। केस प्रापर्टी पर विचार उस तरीके से किया जायेगा जैसा विचारण न्यायालय द्वारा निदेशित किया जाता है।

15. धारा 437(क) द0प्र0सं0 जो छह माह के लिए प्रवर्तन में रहेगा के अनुपालन में अपीलार्थी को स्वीयबंध पत्र तथा संबंधित न्यायालय के समाधान पर इतनी ही धनराशि में प्रत्येक दो प्रतिभुओं को दाखिल करने का निदेश दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1363

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

आपराधिक अपील संख्या 4124 / 2018

प्रदीप बिंद ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री इन्द्रजीत कुमार शुक्ल, श्री शैलेन्द्र नाथ तिवारी

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 376-ए-पीड़िता से शादी का झांसा देकर घनिष्ठता विकसित करने का आरोप-कुछ समय बाद आरोपी ने शादी से इनकार कर दिया-रेडियोलॉजिकल उम्र 18 से 24 वर्ष-पीड़िता ने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत बयान दर्ज कराया कि वह 18 वर्ष की है-एफआईआर दर्ज कराने से पहले पिछले छह वर्षों से शारीरिक संबंध-सहमति से संबंध थे-शादी का झूठा वादा साबित नहीं हुआ।

अपील स्वीकृत हुई। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. शंभू खरवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2022 मुकदमा (एससी) 973
2. सोनू उर्फ सुभाष कुमार बनाम यू.पी. राज्य

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. दोषी -अपीलार्थी के अधिवक्ता श्री इन्द्रजीत कुमार शुक्ला को सुना , विद्वान ए.जी.ए राज्य की ओर से उपस्थित हुए और रिकार्ड पर रखी गयी सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक अपील, सत्र विचारण संख्या 31 सन 2016 , राज्य बनाम प्रदीप बिंद में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ,कोर्ट संख्या 1 गाजीपुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 04.06.2018 के खिलाफ दायर की गई है जिसमें अपराध संख्या 2058सन 2015 , धारा 376- ए आईपीसी एवं धारा 3 /5 पाक्सो एक्ट , पुलिस स्टेशन कोतावाली , जिला गाजीपुर के तहत उत्पन्न हुआ। जिसके तहत अपीलकर्ता को धारा 376-ए आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। सात वर्ष के कठोर कारावास के साथ 10000/- रुपये के जुर्माने की सजा दी गयी ,जुर्माना अदा न करने पर उसे छह माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा। अपीलकर्ता को संदेह का लाभ देते हुए पाक्सो एक्ट की धारा 3 /5 के तहत आरोप सी बरी कर दिया गया है।

3. वर्तमान अपील के प्रयोजन के लिए मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि प्रथम सूचनाकर्ती श्रीमती जगरानी पत्नी श्री नारायण बिंद , निवासी मोहल्ला कपूरपुर , पुलिस स्टेशन कोतवाली जिला गाजीपुर , ने लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 20.11.2015 को लगभग 16.00 बजे संबंधित थाने में एफ.आई.आर दर्ज कराई , जिसमें बताया गया है कि उनकी बेटी , पीडित महमूदपुर में अपने रिश्तेदार जयराम से मिलने जाती थी , जहाँ आरोपी भी अक्सर आता रहता था क्योंकि वह जयराम का रिश्तेदार है। प्रदीप ताडीशाप में जयराम के यहाँ "ताडी " बेचता था , जहाँ 6 साल पहले उसकी मुलाकात अभियोक्ता से हुई और उनके बीच घनिष्टता हो गई । वह कहता था कि वह पीड़िता के साथ विवाह सम्पन्न करेगा और उसके आश्वासन पर पीडिता के साथ-साथ उसके माता - पिता भी भरोसा करते थे ।वह सूचना देने वाले के घर भी जाता था और शादी का आश्वासन देकर पीडिता के साथ संबन्ध बनाता था । कुछ समय बाद , उसे सीआईएसएफ में नौकरी मिल गई और तब भी उसने पीडिता को उससे शादी करने का आश्वासन दिया, लेकिन कुछ समय बाद उसने यह कहकर उससे शादी करने से

इन्कार कर दिया कि वह अपने माता पिता की इच्छा के खिलाफ शादी नहीं करेगी । अभियोक्ता की चिकित्सीय कानूनी जाँच दिनांक 21.11.2015 को सरकारी अस्पताल , गाजीपुर मे आयोजित की गई थी , जिसमें डाक्टर ने राय दी कि हालही में योनि संभोग के कोई संकेत /सूझाव नहीं है , फिर भी पुराने जननांग हमले के सबूत /सूझाव हैं। कोई शारीरिक चोट नहीं पाई गई । पीडिता के योनि स्मीयर की पैथोलाजिकल जाँच मे किसी भी जीवित या मृत शुक्राणु का पता नहीं चलता है । डाक्टर द्वारा पीडिता की रेडियोलाजिकल उम्र 18 वर्ष पाई गयी क्योंकि उसकी एक्स -रे रिपोर्ट मे कोहनी और रिट जोड़ के आसपास एपिफीसिस जुड़े हुए पाये गये थे । उसकी आंतरिक जाँच मे 6 बजे की स्थिति मैं पुराना ठीक हुआ हाइमन फटा हुआ पाया गया । पीडिता ने सीआर पीसी की धारा 161 के साथ साथ 164 के तहत दर्ज अपने बयान मे अपनी माँ के कहने पर दर्ज की गई एफ.आई.आर मे बताए गये संस्करण का समर्थन किया । उसने दिनांक 02.12.2015 को सी आर पी सी की धारा 164 के तहत अपने बयान मे कहा कि उसकी उम्र लगभग 18 वर्ष थी। वह अपने मामा के यहाँ गयी थी जहाँ उसके मामा का साला (पत्नी का भाई) भी रहता था । उसने उसे अच्छे से रखा और शादी का आश्वासन देकर करीब छह साल तक उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए और उसकी सलाह पर वह इस पर चुप रही और अपने घर वापस चली गई । वह उसके माता पिता के घर जाता था और चोरी छिपे उसके साथ शारीरिक संबन्ध बनाता था । दो साल पहले वह गर्भवती हो गई और उसने उसे कुछ दवाए दी, जिसके परिणाम स्वरुप गर्भपात हो गया । जब उसकी माँ ने दोनो को पकड लिया तो उसने उससे शादी करने की बात कही लेकिन जब उसकी नौकरी लग गई तो उसने उससे शादी करने से इन्कार कर दिया। उसने पंचायत के समक्ष भी इन्कार कर दिया और बाद में वह शादी के लिए दहेज के रुप में 5 लाख रुपये की माँग करने लगा ।पुलिस द्वारा जाँच पूर्ण होने के बाद अपीलार्थी के विरुद्ध आई.पी.सी की धारा 376 ए और पाक्सो अधिनियम की धारा 3/5 के तहत मुकदमा चलाने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया ।मुकदमें के दौरान इस न्यायालय के आदेश से आरोपी को जमानत पर रिहा कर दिया गया था। आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मामला सत्र न्यायालय ,गाजीपुर को समर्पित कर दिया गया। अभियोजन साक्ष्य के चरण में पीडब्लू -1 श्रीमती जगरानी देवी , अभियोक्त्री की माँ ,पीडब्ल्यू -2 अभियोक्ता , पी डब्ल्यू -3 प्रवीन कुमार,पीडब्ल्यू -4 कांस्टेबल मुहर्रिर राजकुमार , पीडब्ल्यू -5 डाक्टर चन्द्र

सिंहा , पीडब्ल्यू -6 श्री नारायण पाण्डे -अभियोक्ता के पिता , पीडब्ल्यू -7 लल्लन सिंह यादव , से अभियोजन मामले के समर्थन में पूछताछ की गई।

4. अभियोजन साक्ष्य के समापन के बाद , अभियुक्त का बयान सी आर पी सी की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया , जिसमें उसने कोई विशेष बचाव नहीं किया है। उनका बचाव इन्कार का है।

5. विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान ए.डी.सी. (आपराधिक) राज्य की ओर से की दलीले सुनी और रिकार्ड पर सबूतो की सराहना करने और पार्टियो के विद्वान अधिवक्ता की दलीलो पर विचार करने के बाद, यह निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त ने पीडिता को शादी का आश्वासन देने पर उसके साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित किए और शारीरिक संबन्ध स्थापित करने के लिए उसकी सहमति नहीं दी जा सकती । एक स्वतंत्र सहमति के रुप में समझा जायेगा । दिनांक 24.06.2017 को अपनी जिरह में अभियोजक अपने मुख्य परीक्षण में अपने रुख से भटक गई और आरोपी की दोषमुक्त करने की कोशिश की और कहा कि अदालत के समक्ष उसके पिछले बयान दबाब का परिणाम थे लेकिन वह व्यक्ति को निर्दिष्ट नहीं कर सकी । किसके दबाव पर उसने पहले भी आरोपियो के खिलाफ गवाही दी थी । निचली अदालत ने यह भी देखा कि यद्यपि पीडब्ल्यू-7 लल्लन सिंह यादव , फूलचन्द यादव , इन्टर कालेज , डंडापुर , गाजीपुर में शिक्षक ने स्कालर रजिस्टर में अभियोक्ता की जन्म तिथि 10.8.1997 साबित की थी , लेकिन उन्होने जिरह मे स्वीकार कर लिया कि 2013 का स्कालर रजिस्टर नही लाए है, जिसमे उनके विद्यालय में अभियोक्त्री की प्रवेश तिथि दर्ज है । उन्होने यह भी स्वीकार किया कि पीडिता ने अपने पिछले स्कूल द्वारा जारी कक्षा 8 का उत्तीर्ण प्रमाण पत्र दाखिल नहीं किया था और इस कारण से , उसके स्कूल द्वारा स्थानान्तरण प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया था। पीडिता के माता पिता द्वारा उसकी जन्म तिथि की पुष्टि में कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया गया था उन्हे ज्ञात हुआ कि अभियोक्त्री की प्राथमिक शिक्षा रायगंज विद्यालय द्वितीय , गाजीपुर मे हुई तथा विद्यालय के अभिलेख में उसकी जन्म तिथि अंकित है । बाद में उन्हे पता चला कि उनके पिछले स्कूल के रिकार्ड में उनकी जन्म तिथि 01.07.1993 दर्ज है । निचली अदालत को पीडब्ल्यू -7 के पूरे साक्ष्य और जिरह में अभियोजन पक्ष के बयान पर विचार करने के बाद पता चला कि उसकी वास्तविक जन्म तिथि 01.07.1993 है । उसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक पाई गयी और विचारण

न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि घटना के समय पीडिता बालिग थी और उसने कहा है कि आरोपी के साथ उसकी पहली बातचीत वर्ष 2012 मे हुई थी, हालाँकि निचली अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि साक्ष्य के आधार पर यह पाया गया है कि पीडिता ने सहमति दी थी । आरोपी द्वारा उसके साथ शारीरिक संबन्ध बनाना एक स्वतंत्र सहमति नहीं थी और यह आरोपी के आश्वासन पर दी गई थी कि वह समय के साथ उससे शादी करेगा , इस प्रकार निचली अदालत ने पीडिता के प्रारम्भिक बयान पर भरोसा किया , जो सीआरपीसी की धारा 164 के तहत उसके बयान के अनुरुप था । आरोपी को आईपीसी की धारा 376-ए के तहत आरोप का दोषी पाया , लेकिन उसे पाक्सो अधिनियम की धारा 3/5 के तहत आरोप से बरी कर दिया ।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान निचली अदालत के खिलाफ अपराध का फैसला दर्ज किया है , जो रिकार्ड पर सबूत के बजन के खिलाफ है । विद्वान विचारण न्यायालय ने अपराध का निषकर्ष दर्ज करते समय और अपीलकर्ता को सजा सुनाते समय रिकार्ड पर मौजूद सबूतो की गलत सराहना की है । उन्होने आगे कहा कि एफ.आई.आर मे लगाए गये आरोपो को देखने से यह स्पष्ट है कि इसे छह साल की अस्पष्ट देरी के बाद दर्ज किया गया है । अपीलकर्ता को मुकदमे के दौरान और साथ ही वर्तमान आपराधिक अपील में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 16.01.2019 के आदेश के तहत जमानत पर रिहा कर दिया गया था । अपीलकर्ता के खिलाफ यह आरोप कि उसने शादी का झूठा वादा करके पीडिता के साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित किया था , निराधार है । उन्होने आगे कहा कि पीडब्ल्यू 5 डॉ चन्द्र सिंहा जिन्होने 21.01.2015 को पीडिता की चिकित्सीय कानूनी जाँच की थी , ने अदालत के समक्ष कहा है कि चिकित्सा जाँच की तारिख पर ,पीडिता ने कहा था कि एक लडका जिसका नाम प्रदीप कुमार है, जो उसका रिश्तेदार है, उसने उसे बहला फुसलाकर उसके साथ शारीरिक संबन्ध बनाए हैं। वह उससे अपने मामा के घर मिली थी । वह बीच बीच में उसके साथ शारीरिक संबन्ध बनाता था । हालाँकि ,जब उसे नौकरी मिल गई , तो उसने उससे शादी करने से इनकार कर दिया और पंचायत के फैसलों का पालन करने से भी इनकार कर दिया । डाक्टर ने आगे बताया कि पीडिता के शरीर पर चोट का कोई निशान नहीं पाया गया। दिनांक 31.11.2015 की एक्स -रे रिपोर्ट के अनुसार , उसकी कोहनी और रिट जोडो की सतहे आपस में जुडी हुई पायी गयी और तदनुसार उसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक पाई

गयी । जिरह में डाक्टर ने स्पष्ट किया कि 18 से 24 वर्ष की उम्र के बीच लडकियो मे रिट और कोहनी के जोडो का संलयन होता है , इसलिए उसकी उम्र18 से 24 वर्ष के बीच हो सकती है । डाक्टर ने यह भी स्पष्ट किया कि उसके द्वारा रिकार्ड किया गया पुराना ठीक हुआ हाइमन टूटना , यौन उत्पीडन के कारण नहीं होना चाहिए । डाक्टर ने यह भी स्पष्ट किया है कि पुरानी ठीक हुई हाइमन का फटना संभोग के कारण भी हो सकता है और नहीं भी , इस संबन्ध मे कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती है । अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि एफ.आई.आर में घटना की कोई तारीख या समय का उल्लेख नहीं किया गया है । सी.आर.पी.सी की धारा 164 के तहत दर्ज किये गये पहले मुखबिर और अभियोजक के बयान के बीच कोई स्थिरता नहीं है । जाँच के दौरान , पीडिता ने बताया कि अपीलकर्ता और उसके बीच प्यार हो गया था और जब उसकी माँ ने उसे रंगे हाथो पकड लिया ,तभी आरोपी ने शादी की बात कही । आरोपी को मामले में झुठा फँसाया गया है । उन्होने कोई अपराध नही किया है । उपरोक्तानुसार ,वह उस आरोप से बरी किए जाने का पात्र है, जिसके लिए उसे दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **शंभू खरवार बनाम उ0प्र0 राज्य एवं एक अन्य 2022 लॉ सूट (एससी) 973**, के मामले मे शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया , जिसके तहत उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार इलाहाबद के एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 05.10.2018 के तहत आपराधिक मामले संख्या 785 सन 2018 को रद्द करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 482 के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर एक आवेदन को खारिज कर दिया जो अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम) बलिया की अदालत में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376 के तहत दण्डनीय अपराध के लिए पुलिस हस्ताक्षर सत्यापित स्टेशन रसडा , जिला बलिया में पंजीकृत केस अपराध संख्या 11 सन 2018 से उत्पन्न हुआ । अपीलकर्ता ने उस मामले मे एक आरोपपत्र को रद्द करने की माँग की थी ।माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि मामले के तथ्य जैसा कि वे मौजूद है , जो विवाद में नहीं है , यह संकेत देगा कि आई.पी.सी. की धारा 376 के तहत अपराध की सामग्री स्थापित नहीं की गई थी। इसलिए उच्च न्यायालय ने पूरी तरह से गलत धारणा के आधार पर सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन को खारिज कर दिया है ।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सोनू एलियास सुभाष कुमार बनाम उ0प्र0 राज्य , के मामले पर भरोसा जताया है , जिसमें यह देखा गया है कि :

" 12. इस न्यायालय ने बार बार माना है कि आईपीसी की धारा 375 के संबन्ध मे सहमति में प्रस्तावित अधिनियम की परिस्थितियो कार्यो और परिणामो की सक्रिय समझ शामिल है । एक व्यक्ति जो विभिन्न वैकल्पिक कार्यो का मूल्यांकन करने के बाद कार्य करने के लिए एक तर्क संगत विकल्प बनाता है (या निष्क्रियता) के साथ साथ ऐसी कार्यवाही या निष्क्रियता से उत्पन्न होने वाले विभिन्न संभावित परिणाम , ऐसी कार्यवाही के लिए सहमति.....[.....]

14. .....विशेष रुप से शादी करने के बाद के संदर्भ में , इस न्यायालय ने देखा है कि निर्माता द्वारा यह समझकर दिए गये झुठे वादे कि वह टूट जायेगा ,और उस वादे के उलंघन के बीच अन्तर है जो अच्छे विश्वास से बनाया गया है लेकिन वाद मे पूरा नहीं किया गया..... [.....]

16. जहां शादी करने का वादा झूठा है और वादा करते समय निर्माता का इरादा उसका पालन करने का नहीं था , बल्कि महिला को यौन संबन्धों में शामिल होने के लिए ,मनाने के लिए धोखा देना था , वहाँ " तथ्य की गलत धारणा" है जो महिला की " सहमति" को खराब करता है । दूसरी ओर , किसी वादे के उलंघन को झूठा वादा नही कहा जा सकता 7 2019 (9) एससीसी 6088 2021 एससीसी आन लाइन एस सी 181 एक झूठा वादा स्थापित करता है , वादा करने वाले का वादा करते समय अपने वचन को बरकरार रखने का कोई इरादा नहीं होना चाहिए । धारा 375 के तहत एक महिला की "सहमति " को "तथ्य की गलत धारणा " के आधार पर खराब कर दिया गया है , जहाँ ऐसी गलत धारणा उसके उक्त कार्य में शामिल होने का चयन करने का आधार थी.....

18. उक्त मामलों से उभरने वाली कानूनी स्थित को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए , धारा 375 के संबन्ध में एक महिला की "सहमति "में प्रस्तावित अधिनियम के प्रति सक्रिय और तर्क संगत विचार विमर्श होना चाहिए । यह स्थापित करने के लिए कि क्या "सहमति "शादी के वादे से उत्पन्न "तथ्य की गलत धारणा " से दूषित हो गई थी , दो प्रस्ताव स्थापित किए जाने चाहिए । विवाह का वादा एक झूठा वादा रहा होगा, जो बुरे विश्वास में दिया गया था और जिस समय यह वादा किया गया था उस समय इसका पालन करने का कोई इरादा नहीं था । झूठा वादा स्वयं तत्काल प्रासंगिक होना चाहिए , या यौन क्रिया में शामिल होने के महिला के निर्णय से सीधा संबन्ध होना चाहिए।"

8. विद्वान ए.जी.ए ने अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई ददीलों का पुरजोर विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण अदालत द्वारा पारित किए गये फैसले और आदेश मे कोई त्रुटि या कमजोर नहीं है और यह कानून और इस दौरान पेश किए गये सबूतो के अनुरुप है । विचारण के दौरान , उक्त वर्तमान आपराधिक अपील में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. मैने विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज गवाहों की शपथ ली हुई गवाही को देखा है और रिकार्ड पर मौजूद अन्य दस्तावेज सबूतों के आलोक में उस पर विचार किया है । आरोपी पर आई.पी.सी की धारा 376 - ए और पाक्सो अधिनियम की धारा 3/5 के तहत दण्डनीय अपराध का आरोप दिनांक 22.06.2016 को लगाया था।

10. श्रीमती जगरानी देवी - पीडिता की माँ और मामले की सूचनाकर्ती ,पीडब्ल्यू-1 ने एफ.आई.आर संस्करण का समर्थन किया है और उसकी लिखित रिपोर्ट को एक्स क- 1 साबित किया है । उसने कहा है कि आरोपी प्रदीप कुमार बिन्द ने शादी का आश्वासन देकर उसकी नाबालिग बेटी के साथ शारीरिक संबन्ध बनाए और वह कहता था कि वह उससे प्यार करेगा । उसने थाने के बाहर बैठे एक व्यक्ति से लिखित रिपोर्ट लिखवाई और एफ.आई.आर दर्ज कराने के लिए पेश करने से पहले उस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया । अपने पति की मौजूदगी में अदालत के आदेश से उन्हे अपनी बेटी की सपुर्दगी मिल गई । उनकी शादी बचपन में ही हो गई थी और उनके छह बच्चे है। पीडिता उसका चौथा मुद्दा है। उनके भाई जयराम ने ताडी का व्यवसाय शुरु किया। इसके लिए उसने कोई आज्ञप्ति लिया है या नहीं , इसकी जानकारी उसे नहीं है । वह उसके मायके आता जाता था । फसल कटाई के समय उसका भाई अपनी बेटी (पीडिता) को बुलाता था, जब कभी भी , वह जयराम के यहाँ जायेगी , परिवार का कोई सदस्य भी उनके साथ आयेगा । उनकी बेटी साल में एक बार वहाँ जाती थी।

11. पीडब्ल्यू -2 पीड़िता ने धारा 164 सीआरपीसी के तहत अपना बयान स्वीकार किया । मजिस्ट्रेट द्वारा अदालत के समक्ष उसकी गवाही के दौरान पीडब्ल्यू -2 के रुप मे दर्ज किया गया । उसने बताया कि आरोपी उसके मामा जयराम विंद का साला है और उससे उसकी जान-पहचान मामा के घर पर हुई थी । 5 से 6 साल पहले एक बार उसने उसे अकेला पाकर उसके साथ जबरदस्ती शारीरिक संबन्ध बनाया और उसके बाद उसने उससे कहा कि वह उससे प्यार करेगा और शादी का आश्वासन देकर उसके साथ बाद मे भी शारीरिक

संबन्ध बनाए । जब वह अपने मायके लौटी तो वह आरोपी के साथ टेलीफोन पर भी संपर्क में थी । वह उसके मायके भी जाता था और शादी का आश्वासन देकर उसके साथ शारीरिक संबन्ध बनाता रहा। हालाँकि , जब उसकी सीआईएसएफ में नौकरी लग गई तो उसने सितम्बर 2015 में उसने शादी करने से इनकार कर दिया और पंचायत के सामने 5 लाख रुपये की माँग भी की । जिरह में उसने बताया कि उसने कक्षा एक से कक्षा छह तक की शिक्षा रायगंज सेकेन्ड , गाजीपुर से प्राप्त की । वह सातवी कक्षा से उत्तीर्ण नहीं है । उसने बताया कि उसकी मेडिको लीगल जाँच जिला अस्पताल , गाजीपुर में हुई थी। उसने बताया कि प्राइमरी स्कूल के रिकार्ड में उसकी जन्मतिथि 01.07.1993 दर्ज है । आरोपी प्रदीप बिंद से उसकी पहली मुलाकात साल 2012 में हुई और दोनों मे दोस्ती हो गई । वह उससे संबंधित है । उनके माता पिता ने उसकी शादी के संबंध में उनके माता पिता से बात की थी लेकिन प्रदीप बिंद के माता पिता ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । वह वर्ष 2012 से सी आईएसएफ में तैनात है. दिनांक 24.06.2017 को जिरह में उसने कहा कि आरोपी ने उसे कभी धोखा नहीं दिया और उसने उसके साथ बलात्कार नहीं किया । उन्होने पहले भी जो बयान दिए हैं , वे किसी दबाव का नतीजा थे। इस बयान के बाद ,उन्हे विद्वान ए.डी.सी (आपराधिक) द्वारा जिरह करने की अनुमति दी गई थी , जिसमें उन्होने कहा था कि उन्होने अदालत में अपना पिछला बयान दबाव मे दिया था,हालांकि ,उन्होने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया कि उनका अगला बयान आरोपियो के साथ किसी प्रकार का समझौता किसी दबाव का परिणाम था।

12. पीडब्ल्यू-3 कांस्टेबल प्रवीण कुमार ने चिक एफ आई आर को प्रपत्र क्रमांक क- 4 और दिनांक 20.11.2015 के मामले के पंजीकरण की जी.डी. के उद्धरण को प्रपत्र क्रमांक क-5 साबित किया और कहा कि ये कागजात उनके लेखन और हस्ताक्षर में है । पीडब्ल्यू -4 मोहर्रिर राजकुमार ने भी इन कागजो को अपने बयानों में साबित किया ।

13. पीडब्ल्यू-5 डाक्टर चन्द्र सिंहा , जिन्होने 21.12.2015 को पीडिता का मेडिको लीगल परीक्षण किया , ने कहा कि पीडिता ने उन्हे बताया कि उसके रिश्तेदार प्रदीप बिंद ने उसे बहलाया और शादी के बहाने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए और बाद में इनकार कर दिया । पंचायत के सामने उससे शादी कर लो । उन्होने बताया कि पीडिता की आंतरिक जाँच में उसका हाइमन 6 बजे की स्थिति में पाया गया , जिस पर चोट के पुराने निशान थे

और उसकी एक्स -रे रिपोर्ट के आधार पर उसकी रेडियोलाजिकल उम्र 18 वर्ष से अधिक पाई गई । उसकी उम्र उसकी कोहनी और कलाई के जोडो के संलयन के आधार पर और इस तथ्य के आधार पर निर्धारित की गई थी कि इन हड्डियों की एपिफीसिस आपस में जुड गई है। उसकी उम्र 18 से 24 साल के बीच रही होगी।

14. पीडब्ल्यू -6 पीडिता के पिता , राम नारायण बिंद ने कहा कि आरोपी उनकी बेटी और उनके पूरे परिवार का करीबी था । उनकी शादी को लेकर बात चीत चल रही थी और उनकी शादी का समय भी तय हो गया था , लेकिन 6 से 7 महीने पहले आरोपी को सीआई एसएफ में नौकरी मिल गई और उसने उससे शादी करने से इनकार कर दिया । उसने मेरी बेटी के साथ संबन्ध बनाए । इस बीच मामले में पंचायत भी बुलाई गई। घटना के वक्त उसकी बेटी की उम्र करीब 17 साल थी ।हालांकि , जिरह में गवाह ने कहा कि जाँच अधिकारी ने कभी उसका बयान दर्ज नहीं किया था । उसके परिवार के सदस्यों ने उसे बताया कि आरोपी ने शादी के बहाने उनकी बेटी के साथ शारीरिक संबन्ध बनाए। प्राइमरी स्कूल के रिकार्ड में उनकी बेटी की जन्मतिथि 01.07.1993 है। उन्होने यह भी कहा कि जब आरोपी को नौकरी मिल गई ,तो उसके परिवार के सदस्यो ने उसकी बेटी से शादी करने से इनकार कर दिया ।उन्होने यह भी स्वीकार किया कि शादी नहीं हो पाने के कारण ,आरोपी पर शादी का दबाव बनाने के उद्देश्य से यह गलत प्राथमिकी दर्ज करायी गयी थी।

15. पीडब्ल्यू -7 लल्लन सिंह यादव , फूलचन्द यादव इन्टर कालेज ,डंडापुर ,गाजीपुर के शिक्षक ने पीडिता के शैक्षणिक रिकार्ड को साबित किया है , जिसमें उसकी जन्मतिथि 10.03.1997 दर्ज है । हालाँकि जिरह में उन्होने कहा है कि टी.सी. पीडिता द्वारा उसके निर्देशो के बावजूद पिछले स्कूल का मामला दायर नहीं किया गया था इसके बाद उन्हे पता चला कि उसकी वास्तविक जन्मतिथि 01.07.1993 है।

16. एफ.आई.आर के आधार पर अभियोजन मामले में और जाँच के दौरान दर्ज किए गये सूचक और पीडिता के बयान के आधार पर , यह तथ्य सामने आया कि मामले में एफ.आई.आर में यह तथ्य सामने आयाकि आरोपी शारीरिक संबंध बना रहा था । पीडिता के साथ , एफ.आई.आर दर्ज होने से छह साल पहले , लेकिन उक्त आरोप के संबंध में कोई पूर्व रिपोर्ट या शिकायत नहीं की गई है। पीड़िता ने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज अपने बयान में कहा है , साथ ही अदालत के समक्ष अपने बयान में कहा कि जब वह अपने मामा के घर से वापस आई तब भी उसने आरोपी के साथ

शारीरिक संबन्ध बनाए रखा । सूचक , जो पीडिता की माँ है , के बयान में यह तथ्य सामने आया कि पीड़िता साल में एक बार कटाई के मौसम में अपने मामा के घर जाती थी और वह भी उसके साथ परिवार का कोई सदस्य होता था । फूलचन्द यादव इन्टर कालेज के स्कूल रिकार्ड में दर्ज उसकी जन्मतिथि के आधार पर ,वह एफ.आई.आर दर्ज होने से 8 महीने पहले बालिग हो चुकी है। मेडिको लीगल जाँच रिपोर्ट में भी डाक्टर ने स्पष्ट कहा है कि एक्स -रे रिपोर्ट के आधार पर उसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक थी। रेडियोलाजिकल पीड़िता ने अपनी जिरह में आरोपी को उन कारणों से दोषमुक्त कर दिया है जो उसे ही मालूम है। पीडिता ने मंच दर मंच अपना रुख बदला है । इसलिए , उसके संस्करण पर भरोसा करना मुश्किल है। हालाँकि रिकार्ड पर मौजूद साक्ष्यों और सी.आर.पी.सी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गये पीडिता के बयान सहित, पीडिता के बयान के अवलोकन से यह पता चलता है कि पीडिता और आरोपी के बीच संबन्ध सहमति से बने थे और यह तथ्य साबित नहीं होता है कि आरोपी ने शादी का वादा किया था । अभियोक्त्री शुरुआत से ही झुठा वादा अभियुक्त के साथ यौन कृत्य में शामिल होने के अभियोजक के निर्णय से सीधा संबन्ध रखता था । सी.आर.पी.सी. की धारा 164 के तहत दर्ज किए गये अपने विभिन्न बयानों में पीडिता द्वारा यौनकृयों की तारीख , समय और महीनों का कोई विवरण, साथ ही परीक्षण के दौरान भी नहीं दिया गया है । पीडिता के पिता ने अदालत के समक्ष अपने साक्ष्य के दौरान कहा कि मामले में प्राथमिकी इस तथ्य के कारण दर्ज की गई थी कि नौकरी मिलने के बाद आरोपी पक्ष ने उनकी बेटी से शादी करने से इनकार कर दिया था । रिकार्ड पर मौजूद साक्ष्यों की सूक्ष्मता से जाँच करने पर , यह उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है कि आरोपी अपीलकर्ता ने पीडिता को उसके साथ शादी करने का वादा किया था, जो शुरुआत में झूठा था और इसके आधार पर , उसे यौन संबन्ध बनाने के लिए प्रेरित किया गया था । इसलिए , यह माना जा सकता है कि पार्टियों के बीच संबन्ध पूरी तरह से सहमति प्रकृति के थे। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में अदालत के समक्ष दर्ज की गई पीडिता और उसके माता पिता की गवाही पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष सामने आया। स्कूल के रिकार्ड में दर्ज पीडिता की उम्र के साक्ष्य , हेड मास्टर के साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित उसकी रेडियोलाजिकल उम्र और पीडिता की लीगल चिकित्सीय जाँच करने वाले डाक्टर के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए , यह माना जायेगा। यह जरुर है कि आरोपी के

साथ कथित यौन संबन्ध के समय वह नाबालिग नहीं थी। निचली अदालत ने आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध का फैसला दर्ज करते समय और उसे सजा सुनाते समय इन तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया। मेरी सुविचारित राय में, अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अपना मामला उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है । इसलिए , निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश टिकाऊ नहीं है और रद्द किए जाने योग्य है।

17. तदनुसार , यह अपील सफल होती है और **स्वीकार** की जाती है सत्र परीक्षण संख्या 31 सन 2016, राज्य बनाम प्रदीप बिन्द में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश , कोर्ट संख्या 1 गाजीपुर द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश दिनांक 04.06.2018 को पारित किया गया। अपराध संख्या 2058 सन 2015, धारा 376-ए आई.पी.सी. और पाक्सो अधिनियम की धारा 3/5 पुलिस स्टेशन कोतवाली , जिला गाजीपुर से उत्पन्न मामले को खारिज कर दिया गया है और आरोपी अपीलकर्ता प्रदीप बिन्द को आई.पी.सी. की धारा 376-ए के तहत आरोप से बरी कर दिया गया है।

18. यह निर्देश दिया जाता है कि आरोपी अपीलकर्ता संबन्धित अदालत की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बाण्ड और विचारण न्यायालय के समक्ष समान राशि के दो विश्वसनीय जमानतदार प्रस्तुत करेगा, जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी होगा, साथ ही यह वचन भी देगा कि तत्काल फैसले के खिलाफ या छुट्टी की मंजूरी के लिए विशेष अनुमति याचिका दायर करने की स्थिति में, नोटिस प्राप्त होने पर अपीलकर्ताओं को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना होगा।

19. **22.** निचली अदालत के रिकार्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति अनुपालन और आवश्यक कार्यवाही के लिए संबन्धित अदालत को वापस भेजी जाये।

(2023) 5 ILRA 1370

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 4697 / 2015

अहमद शेर ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री मौहम्मद नदीम, श्री अभिषेक त्रिपाठी, श्री दुर्गविजय

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 304 - मृतका को उसके ससुराल वालों

द्वारा प्रताड़ित और परेशान किया जाता था-जिसके लिए सिविल मुकदमा दायर किया गया और लगभग सात साल तक जारी रहा-समझौते के साथ समाप्त हुआ-आरोपी अपीलकर्ता ने किसी और के साथ दोबारा शादी कर ली-जब समझौता होने के बाद मृतका अपने ससुराल पहुंची-ससुराल वालों ने समझौते में दी गई जमीन को वापस लेने के लिए उसे परेशान करना शुरू कर दिया-मृतका की उसके पति ने हत्या कर दी-आरोपी अपीलकर्ता ने अपने भाई और दूसरी पत्नी की मदद से-मृत्यु की योजना पहले से नहीं बनाई गई थी-हालांकि आरोपी को जानकारी और आशय था-लेकिन वह मृतका को खत्म नहीं करना चाहता था-अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है-गैर इरादतन हत्या-आजीवन कारावास को घटाकर 10 वर्ष कारावास कर दिया गया।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. आपराधिक अपील संख्या 4345/2014 (नफा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश) 10.02.2023 को तय;
2. आपराधिक अपील संख्या 5657/2011 (संतोष बनाम उत्तर प्रदेश) [4] 22.02.2021 को तय;
3. आपराधिक अपील संख्या 1838 से 840/ 2019 2022 0 सुप्रीम (एससी) 564 12.07.2022 को तय किया गया।
4. एस.एल.पी. (सीआरएल.) संख्या 8847/2009 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या 923/2011 का निर्णय 13.04.2011 को हुआ।
5. वीरन व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300
6. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए.पी. राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]
7. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]
8. रवादा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166,
9. जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532]
10. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734];
11. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323],
12. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441],
13. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, एवं माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।
2. वर्तमान आपराधिक अपील सत्र परीक्षण संख्या 121/2013 (राज्य बनाम अहमद शेर) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय, कन्नौज द्वारा पारित के फैसले और आदेश दिनांक 24.9.2015 को चुनौती देती है, जिसके तहत विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलकर्ता, अहमद शेर को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भादंसं') की धारा 304 के तहत अपराध करने के लिए

दोषी ठहराया गया और 20,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा न करने पर चार माह अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई गयी।

3. अभिलेख से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आरोपी अपीलकर्ता की शादी घटना से 15-16 साल पहले मृतक से हुई थी, लेकिन शादी के तुरंत बाद मृतक को उसके ससुराल वालों द्वारा परेशान और प्रताड़ित किया जाने लगा, जिसके लिए एक दीवानी वाद दायर किया गया था जो लगभग सात वर्षों तक जारी रहा और पार्टियों के बीच समझौते के साथ समाप्त हुआ। समझौते के अनुसार, मृतका को उसके ससुराल वालों द्वारा तीन बीघे जमीन दी गई थी, इस बीच दीवानी मुकदमे के आरोपी-अपीलार्थी की शादी उसके गांव सतौरा की हुरबानो से हुई थी। दोनों पक्षों के बीच समझौता होने के बाद जब मृतका अपने मायके पहुंची तो उसके ससुराल वालों ने दी गई जमीन का टुकड़ा वापस लेने के लिए उसे फिर से प्रताड़ित करना शुरू कर दिया और 08.10.2012 को लगभग 12:00 बजे मृतका को उसके पति-अभियुक्त अपीलकर्ता ने अपने भाइयों और दूसरी पत्नी हूरबानो की मदद से मौत के घाट उतार दिया।

4. प्र.सु.रि के आधार पर जांच शुरू हुई और आरोप पत्र दाखिल किया गया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी को बुलाया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया क्योंकि कथित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भादंसं की धारा 304 के तहत आरोप तय किये।

5. तलब किये जाने पर, अभियुक्त ने खुद को दोषी नहीं बताया और मुकदमा चलाना चाहा।

6. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 7 गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं:

1	दिलदार बेग का बयान	अभि.साक्ष्य 1
2	" "अंसार	अभि.साक्ष्य 2
3	" "कुमारी सरजुमन	अभि.साक्ष्य 3
4	" "मो. जाहर अली	अभि.साक्ष्य 4
5	" "गीतम सिंह	अभि.साक्ष्य 5
6	" "बृजकिशोर	अभि.साक्ष्य 6
7	" "विनोद कुमार यादव	अभि.साक्ष्य 7
8	" "विजय कुमार	अभि.साक्ष्य 8

7. आँखों देखी वृतांत के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज़ दायर किए गए और अभियोजन द्वारा साबित किए गए:

1	प्र.सू.रि	प्रदर्श क

		11
2	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 1
3	शव विच्छेदन रिपोर्ट	प्रदर्श क 3
4	पंचायतनामा	प्रदर्श क 2
5	आरोप पत्र	प्रदर्श क 7
6	अनुक्रमणिका के साथ नक्शा नजरी	प्रदर्श क 8
7	खून से सना हुआ और सादी मिट्टी का फर्द बरामदगी	प्रदर्श क 9
8	'टकोरा' की फर्द बरामदगी	प्रदर्श क 10

8. मुकदमे के अंत में, द.प्र.सं की धारा 313 के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त को उपरोक्त अनुसार दोषी ठहराया।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने शुरुआत में तर्क दिया कि यह बरी होने का मामला है, हालांकि, वैकल्पिक रूप से उन्होंने प्रस्तुत किया है कि चोटें कुल्हाड़ी के कुंद पक्ष के उपयोग के कारण हुई थीं, न कि तेज धार के कारण। आरोपी ने दलील दी थी कि वह मानसिक रूप से बीमार है और उसे जंजीरों में बांधकर रखा जाना चाहिए, इसी बात को अवर न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया है. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दोषसिद्धि अनुमान पर आधारित है और गलत है क्योंकि अपीलकर्ता का मृतक को खत्म करने का कोई इरादा नहीं था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित आधिकारिक निर्णयों पर भरोसा किया है: -

(i) आपराधिक अपील संख्या 4345/2014 (नफा सिंह बनाम यूपी राज्य) का निर्णय 10.02.2023 को हुआ;

(ii) आपराधिक अपील संख्या 5657/2011 (संतोष बनाम यूपी राज्य) पर 22.02.2021 को फैसला सुनाया गया;

(iii) 2019 2022 की आपराधिक अपील संख्या 1838 से 840 0 सुप्रीम (एससी) 564 पर 12.07.2022 को निर्णय लिया गया।

(iv) एसएलपी (सीआरएल) संख्या 8847,/2009 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या 923,/ 2011 जिसका निर्णीत 13.04.2011 को हुआ

यह तर्क देने के लिए कि यह स्पष्ट रूप से बरी होने का मामला है/यदि कोई अपराध बनता है तो यह भादंसं की धारा 304 (1) के तहत है।

10. विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि द.प्र.सं की धारा 313 के तहत बयान पूरी तरह से अविश्वसनीय है। आगे यह भी प्रस्तुत

किया गया है कि यह एक पूर्व-निर्धारित हत्या थी क्योंकि आरोपी-अपीलकर्ता और उसके भाइयों और दूसरी पत्नी ने दी गई जमीन छीनने के लिए उसे चोट पहुंचाई थी।

11. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को सुनने पर, हमें दो विवादास्पद प्रश्नों का समाधान करना है, अर्थात् क्या मृत्यु मानव वध थी और क्या यह अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 या 304 भाग I या भाग II या धारा 304 बी के तहत दंडनीय होगा। सबूतों को छांटने से पहले, हत्या की श्रेणी में आने वाले अपराधिक मानव वध, हत्या की श्रेणी में न आने वाले अपराधिक मानव वध और दहेज हत्या से संबंधित कानून पर चर्चा करना यहां प्रासंगिक है। भारतीय दंड संहिता की धारा 299, जो इस प्रकार है:

*"**299.** आपराधिक **मानव वध**: जो भी कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति पहुँचाने के आशय से जिससे मृत्यु होना सम्भाव्य हो, या यह जानते हुए कि यह सम्भाव्य है कि ऐसे कार्य से मृत्यु होगी, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह गैर इरादतन हत्या / आपराधिक मानव वध का अपराध करता है ।*

12. 'हत्या' और 'गैर इरादतन हत्या' के बीच शैक्षिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को नजरअंदाज कर देते हैं और खुद को छोटे-छोटे निष्कर्षों में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भा.दं संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए मूलशब्दो को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	**धारा 300**
कोई व्यक्ति गैर इरादतन हत्या करता है यदि वह कार्य किया जाता है जिसके कारण मृत्यु हुई है	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।

इरादा

(ए) मौत कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसकी संभावना हो मृत्यु का कारण;	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता हो कि जिस व्यक्ति को

या	नुकसान पहुंचाया गया है, उसकी मृत्यु होने की संभावना है
ज्ञान	**ज्ञान**
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि यह कृत्य तुरंत इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है

13. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्ष से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्तों द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्तों को यह ज्ञान और इरादा था कि उनके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वे मृतक को खत्म नहीं करना चाहते थे। इसलिए तत्काल मामला भादंसं की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है, किया गया अपराध **वीरान और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300** में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार धारा 304 भाग-1 के अंतर्गत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखना होगा। .

14. यह हमें अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की वैकल्पिक दलील की ओर ले जाता है कि सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

15. **मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]** में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा है:

"अपराध एक रोगात्मक विपथन है।अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होता है। जो उपसंस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण से करना होगा। इसलिए, व्यक्ति में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और बर्बर सज़ा देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मानव सज़ा देने को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और

अनुवादित

आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है [11]। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आंतरिक' दृष्टिकोण के बजाय उपचारात्मक दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर कारावास से केवल उसके दिमाग को नुकसान पहुंचता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते।"

16. **देव नारायण मंडल बनाम उ.प्र. राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** में 'उचित सजा ' की व्याख्या यह कहते हुए की गई थी कि वाक्य अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

17. **रावदा शशिकला बनाम एपी राज्य एआईआर 2017 एससी 1166** में, सर्वोच्च न्यायालय ने **जमील बनाम उ.प्र. राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** में निर्णयों का उल्लेख किया। और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगी। . इसके अलावा, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र

रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और संसोधन है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

18. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और संशोधात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए ,उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए।

19. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अवर न्यायालय द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

20. अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार करने की अनुमति नहीं देंगे कि यह बरी होने का मामला है, बल्कि यह सबूतों से साबित हुई एक मानव वध की मौत थी।

21. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम मानते हैं कि अभियुक्त ने गैर इरादतन हत्या की है। आरोपी को 10 साल के कठोर कारावास और 5000/- रुपये के जुर्माने से दंडित किया जाता है, जिसे उसकी रिहाई के चार सप्ताह के भीतर भुगतान किया जाना चाहिए,

यदि भुगतान न करने पर तीन महीने की सजा दी जाती है। यदि 10 साल की कैद पूरी हो जाती है, तो जेल प्राधिकरण किसी अन्य अपराध में वांछित न होने पर आरोपी को रिहा कर देगा।

22. यह अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश का निर्णय और आदेश उपरोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। अभिलेख और कार्यवाही तुरंत अवर न्यायालय को वापस भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 1375

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 3701/2023

श्रीमती नीटू और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री संजय कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री मिथिलेश कुमार शुक्ला

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 366- महिला को शादी के लिए मजबूर करने के लिए अपहरण, व्यपहरण या उत्प्रेरित करना एफआईआर को रद्द करना- एफआईआर याचिकाकर्ता संख्या 1 के पति द्वारा दर्ज की गई थी- वादी की पत्नी याचिकाकर्ता संख्या 2 के साथ लंबे समय से प्रेम संबंध में थी- इससे पहले वह याचिकाकर्ता संख्या 2 के घर में पाई गई थी, जिसे उसके पति द्वारा वापस लाया गया था- राज्य ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता संख्या 2 को राहत नहीं दी जा सकती क्योंकि वह याचिकाकर्ता संख्या 1 के साथ रह रहा था, जो दो बच्चों वाली एक विवाहित महिला थी - आयोजित, याचिकाकर्ता संख्या 1 द्वारा दायर हलफनामे से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 ने उसे अपने वैवाहिक घर को छोड़ने के लिए मजबूर नहीं किया, उसने अपने पति और ससुराल वालों द्वारा उत्पीड़न और यातना के कारण इसे छोड़ दिया - याचिकाकर्ता संख्या 1, याचिकाकर्ता संख्या 2 की पत्नी के अनुरोध पर अपनी स्वतंत्र इच्छा से याचिकाकर्ता संख्या 2 के घर पर रह रही थी, और याचिकाकर्ता संख्या 2, ने उसे अपने घर में रहने के लिए बाध्य नहीं किया है -धारा की सामग्री पूरी नहीं की गई है, एफआईआर निरस्त कर दी गई। (पैरा 9, 10, 12)

रिट याचिकाएं स्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. गब्बू बनाम एम.पी. राज्य, एआईआर 2006 एससी 2461
2. शाहजहाँ बनाम राज्य, 2011 Cr.L.J. 573

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री मिथिलेश कुमार शुक्ला और राज्य के लिए श्री

जी.पी सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका को इस प्रार्थना के साथ दायर किया गया है कि धारा 366 भ०द०वि०, थाना-रसूलपुर, जिला फिरोजाबाद के तहत केस अपराध संख्या-77 वर्ष 2023 के रूप में दर्ज दिनांक 17.02.2023 की आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द किया जाए और उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज को गिरफ्तार या परेशान न करने का निर्देश दिया जाए।

अभियोजन पक्ष के अनुसार सूचनाकर्ता श्याम सुंदर की पत्नी नीतू निवासी टी हट्स संख्या-2296, सोनिया कैंप, जीटी रोड, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, दिलशान गार्डन के पास, मेट्रो स्टेशन, शाहदरा, पुरानी दिल्ली की निवासी है। 12.02.2023 को दोपहर 1.30 बजे सूचनाकर्ता के छोटे भाई ने नीतू को उसके दो बेटों संगम 8 वर्ष और सुशांक 6 वर्ष के साथ आसफाबाद चौराहा में आगरा के लिए बस में छोड़ दिया। तब से लेकर अब तक नीतू का कोई अता-पता नहीं है। सूचना देने वाले की पत्नी नीतू का याचिकाकर्ता संख्या-2 निवासी शाहदरा, पुरानी दिल्ली निवासी सूरज के साथ लंबे समय से प्रेम संबंध था, जो दिलशाद गार्डन, मेट्रो स्टेशन पर हाउस कीपिंग सुपरवाइजर के रूप में तैनात था। उसकी पत्नी अक्सर सूरज से मोबाइल पर ही बात करती थी। सूचनाकर्ता ने पहले भी आरोपी सूरज के घर में नीतू को पाया था लेकिन वह नीतू को वापस अपने घर ले आया था। सूचनाकर्ता के लिखित बयान पर याचिकाकर्ता संख्या-2 सूरज के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई।

4. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि बिना किसी स्पष्टीकरण के लगभग 5 दिनों की देरी के बाद पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, जो स्पष्ट रूप से झूठे आरोपों के साथ एक विचार और परामर्श है। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या-2, नीतू ने याचिकाकर्ताओं के मामले का समर्थन करते हुए एक हलफनामा दायर किया है कि उसके पति, श्याम सुंदर और उसके ससुराल वाले उसे परेशान करते थे और प्रताड़ित करते थे। वह अपने माता-पिता के घर आई लेकिन उसके माता-पिता उसकी कोई मदद नहीं कर सके। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि बाध्यकारी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू ने याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज के साथ अपनी स्वतंत्र सहमति से शरण ली है। याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज ने याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू को उसकी इच्छा के खिलाफ या अवैध संभोग के लिए शादी करने के लिए अपने ससुराल छोड़ने के लिए जबरदस्ती या प्रलोभन देकर अपहरण नहीं किया है, इस प्रकार, धारा 366 भ०द०वि० के तहत कोई अपराध नहीं बनता है।

5. याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू ने अपने हलफनामे में यह भी कहा है कि 10.12.2021 को उसे अपने ससुराल वालों के घर से निकाल दिया गया था। इसके बाद, वह अपने दो बच्चों के साथ परतापुर, जिला मेरठ में किराए के मकान में रहने लगी। बाद में, सूचनाकर्ता याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू के घर आया और क्षमा मांगने के बाद, उसके साथ परतापुर में किराए के मकान में रहने लगा, लेकिन विवाद के कारण, सूचनाकर्ता अपने मूल

स्थान पर वापस आ गया। याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू और उसके दो बच्चों को परतापुर, मेरठ में अकेला छोड़ दिया। याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू ने यह भी गवाही दी है कि याचिकाकर्ता संख्या-2 की पत्नी श्रीमती डॉली का स्कूल की अवधि से ही उनके साथ घनिष्ठ संबंध है और इस तरह केवल उन्हें आश्रय प्रदान करने के उद्देश्य से, याचिकाकर्ता संख्या-2 की पत्नी ने याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू को याचिकाकर्ता संख्या-2 के घर पर जनवरी, 2023 के पहले सप्ताह से रहने की अनुमति दी। सूरज याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज को कथित अपराध से कोई लेना-देना नहीं है।

6. इसके विपरीत, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू और याचिकाकर्ता संख्या-2 सूरज, दोनों विवाहित हैं, जिनके दो बच्चे हैं। याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज को कोई अनुग्रह नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू के साथ रह रहा है जो दो बच्चों के साथ एक विवाहित महिला है। हालांकि, अपर शासकीय अधिवक्ता याचिकाकर्ताओं की ओर से दी गई प्रस्तुतियों से इनकार नहीं कर सका कि याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू बालिग हैं और उन्होंने अपनी मर्जी से अपना वैवाहिक घर छोड़ा है।

7. यह पता लगाने के लिए कि क्या धारा 366 भ०द०वि० के तहत प्रथम दृष्टया अपराध बनता है, धारा 362 और 366 भ०द०वि० का अवलोकन करना आवश्यक है जो यहां उद्धृत हैं: -

362. व्यपहरण- जो कोई बलपूर्वक या किसी छल से किसी व्यक्ति को किसी स्थान से जाने के लिए विवश करे, वह उस व्यक्ति का व्यपहरण करने वाला कहलाता है।

सामग्री :- इस खंड में दो चीजों की आवश्यकता होती है: -

(1) कपटपूर्ण साधनों द्वारा बलपूर्वक विवश करना या प्रलोभन देना;

(2) ऐसी विवशता या प्रलोभन का उद्देश्य किसी व्यक्ति का किसी स्थान से जाना होना चाहिए।

अभिव्यक्ति "धोखेबाज साधन" में एक भ्रामक कथन शामिल है। वास्तव में, यह इरादे का मामला है। आरोपी की मंशा ही आरोप का आधार और गंभीरता है। यदि व्यक्ति की सहमति स्वतंत्र रूप से और स्वेच्छा से दी जाती है, तो कोई अपहरण नहीं होगा। अपहरण के विपरीत, धारा 362 भ०द०वि० के तहत परिभाषित अपहरण संहिता के तहत एक महत्वपूर्ण अपराध नहीं है, लेकिन व्यपहरण एक सहायक कार्य है और इसे आपराधिक और दंडनीय तभी बनाया जाता है जब यह धारा 366 भ०द०वि० में निर्दिष्ट एक या अन्य इरादे से किया जाता है।

366. स्त्री का अपहरण, व्यपहरण या उसे विवाह के लिए विवश करने के लिए प्रलोभन देना आदि-जो कोई किसी स्त्री का इस आशय से अपहरण या व्यपहरण करेगा कि वह विवश हो जाए या यह जानते हुए कि वह विवश होगी, किसी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के लिए विवश करे या बहकाए

जाने के क्रम में कि वह विवश हो या बहकाया जाए, या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जाएगा या बहकाया जाएगा, उसे किसी भी भांति के कारावास से दंडित किया जाएगा जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकती है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा; और जो कोई, इस संहिता में यथा परिभाषित आपराधिक अभित्रास के माध्यम से या प्राधिकार के दुरूपयोग या बाध्यता के किसी अन्य तरीके से, किसी महिला को किसी स्थान से इस आशय से जाने के लिए प्रेरित करेगा कि वह हो सकती है, या यह जानते हुए कि यह संभावना है कि उसे किसी अन्य व्यक्ति के साथ अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जाएगा, पूर्वोक्त के रूप में दंडनीय होगा।

सामग्री :- इस खंड की आवश्यकता है: -

(1) किसी महिला का अपहरण या व्यपहरण;

(2) ऐसा अपहरण या व्यपहरण निम्नलिखित होना चाहिए -

(i) इस आशय से कि उसे मजबूर किया जा सकता है या यह जानते हुए कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति से शादी करने के लिए मजबूर किया जाएगा; नहीं तो

(ii) ताकि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जा सके या बहकाया जा सके या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जाएगा; नहीं तो

(iii) किसी महिला को किसी स्थान से जाने के लिए प्रेरित करके या यह जानकर कि उसे किसी भी जगह से जाने के लिए प्रेरित करके अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जाएगा या बहकाया जाएगा।

धारा 366 भ०द०वि० केवल तभी लागू होती है जब अपहरण की गई महिला का अपहरण होने पर शादी या वैध संभोग का कोई इरादा नहीं होता है। केवल अपहरण अभियुक्त को इस दंड धारा के दायरे में नहीं लाता है।

गब्बू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2461 में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जहां तक धारा 366 भ०द०वि० के तहत आरोप का संबंध है, केवल यह पता लगाना पर्याप्त नहीं है कि एक महिला का अपहरण किया गया था। यह भी साबित किया जाना चाहिए कि अपहरण धारा 366 भ०द०वि० में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए है।

शाहजहां बनाम राज्य, 2011 क्रीएलजे 573 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है: -

"*धारा 366 भ०द०वि० के तहत अपराध स्थापित करने के लिए, पहले यह स्थापित किया जाना चाहिए कि धारा 361 भ०द०वि० के तहत अपहरण या धारा 362 भ०द०वि० के तहत व्यपहरण का अपराध साबित हो गया है। तब यह दिखाया जाना चाहिए कि इस तरह का अपहरण धारा 366 भ०द०वि० के तहत निर्दिष्ट इरादे से किया गया था।*

8. धारा 366 भ०द०वि० को लागू करने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि किसी महिला का अपहरण या व्यपहरण उसे मजबूर करने के इरादे से या यह जानते हुए कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति से शादी करने के लिए मजबूर किया जाएगा या अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जाएगा या बहकाया जाएगा।

9. याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू द्वारा दायर हलफनामे से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज ने उसे अपने वैवाहिक घर छोड़ने के लिए मजबूर या प्रेरित नहीं किया, लेकिन उसने अपने पति, श्याम सुंदर और उसके ससुराल वालों द्वारा उस पर किए गए उत्पीड़न और यातना के कारण इसे छोड़ दिया। हलफनामे से, यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता संख्या-1, श्रीमती नीतू याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज के घर पर अपनी स्वतंत्र इच्छा पर रह रही है। याचिकाकर्ता संख्या-2 की पत्नी श्रीमती डॉली, जो याचिकाकर्ता संख्या-1 की दोस्त थी, श्रीमती नीतू और याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज ने उसे अपने घर में रहने के लिए रोका या कैद नहीं किया है।

10. इस मामले के मद्देनजर, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता संख्या-2, सूरज के खिलाफ धारा 362 भ०द०वि० या यहां तक कि धारा 366 भ०द०वि० के आवश्यक तत्व पूरे नहीं होते हैं।

11. मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, हम रिट याचिका की अनुमति देने के इच्छुक हैं।

12. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। धारा 366 भ०द०वि०, थाना-रसूलपुर, जिला- फिरोजाबाद के तहत मामला अपराध संख्या-77 वर्ष 2023 के रूप में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 17.02.2023 के साथ-साथ सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1379

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4318/2023

प्राची एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री नीरज कुमार पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री शिव सागर सिंह

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 366 और 368- एफआईआर को रद्द करना- महिला को शादी के लिए मजबूर करने के लिए अपहरण, भगा ले जाना या प्रेरित करना - याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप है कि उसने वादी की बेटी को उसकी इच्छा के विरुद्ध शादी करने के आशय से उसके घर से बहला-फुसलाकर भगा ले गया और उसे किसी स्थान पर बंद कर दिया - राज्य ने प्रार्थना का विरोध किया - आयोजित, याचिकाकर्ता संख्या 1 ने अपने हलफनामे में कहा है कि वह एक वयस्क लड़की थी, उसे याचिकाकर्ता संख्या 2, आरोपी से प्यार हो गया था - उसके पिता ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ उसकी शादी तय कर दी थी - इसलिए वह खुश नहीं थी, उसका पिछले एक साल से आरोपी के साथ प्रेम संबंध था और वह अपनी मर्जी से आरोपी के घर गई थी- उपरोक्त धाराओं की सामग्री पूरी नहीं हुई, एफआईआर निरस्त कर दी गई। (पैरा 7, 14, 16)

रिट याचिकाएं स्वीकृत (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बीरबल चौधरी बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2017 एससी 4866
2. गब्बू बनाम एम.पी. राज्य, एआईआर 2006 एससी 2461
3. शाहजहां बनाम राज्य, 2011 सीआर.एल.जे. 573

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरज कुमार पांडे, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह तथा राज्य की विद्वान ए.जी.ए. श्रीमती मंजू ठाकुर को सुना गया।

2. विद्वान ए.जी.ए. ने बताया कि जांच के दौरान धारा 368 आई.पी.सी. जोड़ी गई है।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि उन्हें प्रार्थना खंड को सही करने की अनुमति दी जाए।

4. प्रार्थना की अनुमति दी जाती है।

5. वह दिन के दौरान ऐसा कर सकते हैं।

6. वर्तमान रिट याचिका दिनांक 03/03/2023 को मामला अपराध संख्या 129/2023 के रूप में धारा 366, 368 आईपीसी के तहत पुलिस स्टेशन- ट्रोनिका सिटी, जिला- (कमिश्नरिएट) गाजियाबाद में पंजीकृत आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की प्रार्थना के साथ पेश की गई है, और आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में याचिकाकर्ता संख्या 2, आशीष चौहान को गिरफ्तार न करने के लिए प्रतिवादियों को निर्देश देने के लिए है।

7. अभियोजन पक्ष के अनुसार 01.03.2023 को रात्रि 11.45 बजे याचिकाकर्ता आशीष चौहान ने सूचक की पुत्री प्राची उम्र 21 वर्ष को उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के इरादे से उसके घर से बहला-फुसलाकर अपहरण कर लिया। यह जानते हुए कि प्राची का अपहरण हो गया है, उसने उसे गलत तरीके से किसी स्थान पर छिपाकर रखा।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का कहना है कि याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची की उम्र प्रथम सूचना रिपोर्ट में दी गई उम्र के अनुसार, कथित पीड़िता प्राची 21 वर्ष की है और उसने वर्तमान याचिका के समर्थन में अपना हलफनामा दायर किया था। इसलिए, धारा 366 आईपीसी के तहत कोई अपराध नहीं किया गया है क्योंकि कोई प्रलोभन नहीं है। चूंकि धारा 366 आईपीसी के तहत कोई अपराध नहीं किया गया है, इसलिए धारा 368 आईपीसी के तहत भी कोई अपराध नहीं किया जाएगा। याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची त्यागी ने जांच अधिकारी, पुलिस स्टेशन - ट्रॉनिका सिटी, जिला- गाजियाबाद को दिनांक 13/03/2023 (अनुलग्नक संख्या 4) एक आवेदन दिया था, जिसमें कहा गया था कि उसके पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति से उसका विवाह तय कर दिया था। इसलिए, वह नाखुश थी। वह 01/03/2023 को अपनी मर्जी से

अनुवादित

याचिकाकर्ता क्रमांक 2 आशीष चौहान के घर गई थी और याचिकाकर्ता क्रमांक 2 आशीष चौहान ने उसे शादी के लिए घर से नहीं बुलाया था। एफआईआर में दी गई कहानी पूरी तरह से झूठी और मनगढ़ंत है।

9. वर्तमान याचिका की अभिसाक्षी और याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची, इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित है, जिसकी पहचान याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई है।

10. इसके विपरीत, याचिका का विरोध करने वाले सूचक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता संख्या 2, आशीष चौहान नाबालिग है और आरोपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने का कोई अच्छा आधार नहीं है।

11. विद्वान ए.जी.ए. ने प्रार्थना का विरोध किया है। हालाँकि, वह तथ्यों पर विवाद नहीं कर सकी और उसने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि निर्देशों के अनुसार, सी.बी.एस.ई. प्रमाण पत्र के अनुसार, याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची की जन्म तिथि 01/01/2002 है और इसलिए, वह वयस्क है।

12. आगे बढ़ने से पहले, धारा 359, 362, 366 और 368 आईपीसी का ध्यान रखना उचित होगा जो नीचे उद्धृत हैं: -

359. अपहरण - अपहरण दो प्रकार का होता है: भारत से अपहरण, और वैध संरक्षकता से अपहरण।

362. अपहरण - जो कोई किसी व्यक्ति को बलपूर्वक या किसी कपटपूर्ण तरीके से किसी स्थान से जाने के लिए मजबूर करता है, उसे उस व्यक्ति का अपहरण कहा जाता है।

सामग्री:- इस भाग में दो चीजों की आवश्यकता होती है:-

(1) छलपूर्ण तरीकों से बलपूर्वक मजबूरी या प्रलोभन;

(2) ऐसी मजबूरी या प्रलोभन का उद्देश्य किसी व्यक्ति का किसी स्थान से जाना होना चाहिए।

"धोखेबाज़ साधनों" में भ्रामक कथन शामिल है। वास्तव में, यह इरादे का मामला है। अभियुक्त का इरादा आरोप का आधार और गंभीरता है। यदि व्यक्ति की सहमति स्वतंत्र और स्वेच्छा से दी गई है, तो कोई अपहरण नहीं होगा। अपहरण के विपरीत, धारा 362 आईपीसी के तहत परिभाषित अपहरण संहिता के तहत एक मूल अपराध नहीं है, लेकिन अपहरण एक सहायक कार्य है और इसे केवल तभी आपराधिक और दंडनीय बनाया जाता है जब यह धारा 368 आईपीसी में निर्दिष्ट एक या अन्य इरादे से किया जाता है।

366. स्त्री को विवाह के लिए विवश करने के लिए व्यपहरण, अपहरण या उत्प्रेरित करना, आदि--जो कोई किसी स्त्री को इस आशय से व्यपहरण या अपहरण करेगा कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए विवश किया जाए, या यह सम्भाव्य जानते हुए कि उसे विवश किया जाएगा, या इस प्रयोजन से कि उसे अवैध संभोग के लिए विवश या बहकाया जाए, या यह सम्भाव्य जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए विवश या बहकाया जाएगा, वह दोनों में से किसी

भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा; और जो कोई इस संहिता में परिभाषित आपराधिक धमकी या प्राधिकार के दुरुपयोग या विवश करने की किसी अन्य विधि द्वारा किसी स्त्री को किसी स्थान से जाने के लिए इस आशय से या यह सम्भाव्य जानते हुए कि उसे किसी अन्य व्यक्ति के साथ अवैध संभोग के लिए विवश या बहकाया जाएगा, उत्प्रेरित करेगा, वह पूर्वोक्त रूप में दण्डनीय होगा।

सामग्री:- इस अनुभाग के लिए आवश्यक है:-

(1) किसी महिला का अपहरण या अपहरण;

(2) ऐसा अपहरण या अपहरण होना चाहिए -

(i) इस इरादे से कि उसे मजबूर किया जा सके या यह जानते हुए कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए मजबूर किया जाएगा; या

(ii) इस इरादे से कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जा सके या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जाएगा; या

(iii) आपराधिक धमकी के माध्यम से या अन्यथा किसी महिला को किसी भी स्थान से जाने के लिए प्रेरित करके इस इरादे से कि वह जा सकती है, या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जाएगा।

धारा 366 आईपीसी केवल तभी लागू होती है जब अपहृत महिला का अपहरण किए जाने पर विवाह या वैध संभोग का कोई इरादा नहीं होता है। केवल अपहरण से आरोपी इस दंडात्मक धारा के दायरे में नहीं आता है।

गब्बू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2006 एससी 2461 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जहां तक धारा 366 आईपीसी के तहत आरोप का सवाल है, केवल यह पता लगाना कि महिला का अपहरण किया गया था, पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा यह भी साबित किया जाना चाहिए कि अपहरण धारा 366 आईपीसी में वर्णित उद्देश्यों के लिए किया गया है।

शाहजहां बनाम राज्य, 2011 सीआरएलजे 573 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है:-

"आईपीसी की धारा 366 के तहत अपराध साबित करने के लिए, सबसे पहले यह साबित होना चाहिए कि धारा 361 आईपीसी के तहत अपहरण या धारा 362 आईपीसी के तहत अपहरण का अपराध साबित हो चुका है। फिर यह दिखाया जाना चाहिए कि ऐसा अपहरण या अपहरण धारा 366 आईपीसी के तहत उल्लिखित हिंसक इरादे से किया गया था।"

368. व्यपहृत या अपहृत व्यक्ति को गलत तरीके से छिपाना या परिरोध में रखना।- जो कोई यह जानते हुए कि किसी व्यक्ति का व्यपहरण किया गया है या अपहरण किया गया है, ऐसे व्यक्ति को गलत तरीके से छिपाएगा या परिरोध में रखेगा, वह उसी प्रकार से दण्डित किया जाएगा, मानो उसने ऐसे व्यक्ति को उसी आशय या ज्ञान से या उसी प्रयोजन से व्यपहृत या अपहृत किया हो, जिससे या जिसके लिए वह ऐसे व्यक्ति को छिपाता या परिरोध में रखता है।

सामग्री:- धारा 368 आईपीसी के तहत अपराध का गठन करने के लिए, निम्नलिखित तत्वों को स्थापित करना आवश्यक है:-

(1) संबंधित व्यक्ति का अपहरण/अपहरण किया गया है;

(2) अभियुक्त को पता था कि उक्त व्यक्ति का अपहरण/अपहरण किया गया है;

(3) अभियुक्त को ऐसी जानकारी होने पर संबंधित व्यक्ति को गलत तरीके से छुपाया या सीमित किया गया है;

यह धारा मुख्य अपराधी पर लागू नहीं होती है, बल्कि उन व्यक्तियों पर लागू होती है जो अपहृत या अपहृत व्यक्ति को छुपाने में उसकी सहायता करते हैं। अपहरणकर्ता को इस धारा के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

13. बीरबल चौधरी बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2017 एससी 4866 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है:

"दूसरा पक्ष जो यह जानते हुए कि अपहृत व्यक्ति का अपहरण किया गया है, उसे गलत तरीके से छुपाता है या बंधक बनाता है, उसे उसी इरादे या ज्ञान या उसी उद्देश्य से अपहृत व्यक्ति का अपहरण करने वाले व्यक्ति के समान ही परिणाम भुगतने होंगे।"

14. याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची ने अपने हलफनामे में कहा है कि वह एक बालिग लड़की है, उसे याचिकाकर्ता संख्या 2, आरोपी/आशीष चौहान से गहरा प्यार हो गया। याचिकाकर्ता संख्या 1 के पिता ने 01/03/2023 को उसकी शादी किसी दूसरे व्यक्ति से तय कर दी है। इसलिए, याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची किसी दूसरे व्यक्ति से शादी से खुश नहीं थी। वह 01/03/2023 को अपनी मर्जी से याचिकाकर्ता संख्या 2, आरोपी/आशीष चौहान के घर चली गई थी। याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची का याचिकाकर्ता संख्या 2, आरोपी/आशीष चौहान से पिछले एक साल से प्रेम संबंध था और वह अपनी मर्जी से उसके साथ रह रही थी।

15. धारा 366 के तहत अपराध बनने के लिए, एक वयस्क महिला को उसके घर से उसकी सहमति के बिना बहला-फुसलाकर ले जाना चाहिए, लेकिन वर्तमान मामले में, अपहृत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसे याचिकाकर्ता संख्या 2, आरोपी/आशीष चौहान द्वारा न तो बहला-फुसलाकर ले जाया गया था और न ही घर छोड़ने के लिए बहलाया गया था, बल्कि वह अपनी मर्जी से घर छोड़कर गई थी, क्योंकि उसके पिता ने उसकी शादी किसी दूसरे व्यक्ति से तय कर दी थी, जबकि उसका याचिकाकर्ता संख्या 2 के साथ पिछले एक साल से प्रेम संबंध था और वह उससे शादी करना चाहती थी। धारा 366 आईपीसी केवल तभी लागू होगी, जब धारा 366 आईपीसी में वर्णित उद्देश्यों के लिए किसी महिला का अपहरण या अपहरण किया गया हो। इसी तरह, धारा 368 आईपीसी केवल तभी लागू होगी, जब अपहृत या अपहृत व्यक्ति को आरोपी द्वारा छिपाया या कैद किया गया हो। चूंकि याचिकाकर्ता संख्या 1, प्राची त्यागी का उसके घर से अपहरण नहीं किया गया था, इसलिए प्रथम दृष्टया याचिकाकर्ता संख्या 2 आरोपी/आशीष चौहान के खिलाफ धारा 368 आईपीसी के तहत अपराध नहीं बनता है।

16. इस मामले को देखते हुए, हम पाते हैं कि धारा 366 आईपीसी या यहां तक कि धारा 368 आईपीसी (जांच के दौरान जोड़ी गई) के आवश्यक तत्व पूरे नहीं हुए हैं क्योंकि इसमें विशुद्ध रूप से कानूनी प्रश्न शामिल है और इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि

पीड़िता वयस्क है और इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित है।

17. मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, हम रिट याचिका को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं।

18. तदनुसार, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है। धारा 366, 368 आईपीसी के तहत केस क्राइम नंबर 129/2023 के रूप में पंजीकृत प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 03.03.2023, पुलिस स्टेशन- ट्रोनिका सिटी, जिला- (कमिश्नरिएट) गाजियाबाद के साथ-साथ सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द कर दिया गया है।

(2023) 5 ILRA 1383

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्र

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ल

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4451/2023

विशाल (नाबालिग) ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री बलराम मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- यू.पी. गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 -धारा 3(1)- एफआईआर निरस्त करना -याचिकाकर्ता की उम्र घटना के दिनांक को 16 वर्ष से अधिक थी, लेकिन चूंकि गैंग चार्ट में याचिकाकर्ता के खिलाफ दिखाए गए दो आधार मामले यू.पी. गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियम, 2021 के नियम 22(2), 27 के तहत वर्णित मामलों की श्रेणी में नहीं आते हैं - चूंकि आपत्तिजनक गैंग चार्ट में उक्त मामले धारा 379, 380 और 411 आईपीसी के तहत हैं, इसलिए उनके खिलाफ यू.पी. गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 के तहत कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है - इसलिए, पुलिस अधिकारियों को गैंग चार्ट से याचिकाकर्ता का नाम हटाने का निर्देश दिया जाता है। (पैरा 9, 10)

रिट याचिकाएं स्वीकृत (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 244/2022, थाना-महोली, जिला-संत कबीर नगर को जन्म देने वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 30/07/2022 को चुनौती दी है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का तर्क यह है कि गैंग चार्ट में दिखाए गए दो आधार मामलों के संबंध में याचिकाकर्ता घटना के समय नाबालिग था और उसे उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स

और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत झूठा फंसाया गया है। दिनांक 24/07/2022 के गैंग चार्ट में दिखाए गए आपराधिक गतिविधियों / आधार मामलों का विवरण इस प्रकार है:

1. मुकदमा अपराध संख्या 180/2022 धारा 379 आईपीसी के अन्तर्गत, थाना-महोली, जिला-संत कबीर नगर।
2. मुकदमा अपराध संख्या 188/2022 धारा 380, 411 आईपीसी, थाना-महोली, जिला-संत कबीर नगर

आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को 23/06/2022 को केस क्राइम नंबर 180/2022 में पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है और उसे 07/12/2022 के आदेश के तहत किशोर घोषित किया जा चुका है। याचिकाकर्ता को 23/06/2022 को केस क्राइम नंबर 188/2022 में भी जमानत पर रिहा किया जा चुका है। याचिकाकर्ता के वकील ने आगे तर्क दिया कि जब आरोपित एफआईआर दर्ज की गई थी, तब याचिकाकर्ता नाबालिग था, इसलिए उस पर उक्त अधिनियम के तहत मामला दर्ज नहीं किया जा सकता।

हाई स्कूल मार्कशीट (रिट याचिका के अनुलग्नक '3') के अनुसार, याचिकाकर्ता की जन्म तिथि 09/10/2005 दर्ज है और घटना की तारीख को उसकी उम्र कथित एफआईआर के अनुसार लगभग 17 वर्ष और 21 दिन थी और वह नाबालिग था, इसलिए उस पर यूपी गैंगस्टर्स एक्ट के प्रावधानों के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। यह भी कहा गया कि "नाबालिग" शब्द "व्यक्ति" के दायरे में नहीं आता है। "व्यक्ति" शब्द में 18 वर्ष से कम उम्र का बच्चा शामिल नहीं है, इसलिए उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

इसके विपरीत, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. ने भारतीय दंड संहिता की धारा 11 के प्रावधानों का हवाला दिया, जिसमें "व्यक्ति" शब्द को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है- "व्यक्ति" शब्द में कोई भी कंपनी या संघ या व्यक्तियों का निकाय शामिल है, चाहे वह निगमित हो या नहीं।

हालाँकि, दोनों पक्षों को सुनने के बाद, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियम, 2021 के नियम 27 का संदर्भ देना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:-

'27. अधिनियम सामान्यतः नाबालिग पर लागू नहीं होगा:- यदि अभियुक्त नाबालिग है तथा उसकी आयु 18 वर्ष से कम है तो उसे गैंग चार्ट में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए:- परन्तु यदि किसी किशोर का कृत्य नियम 22 में वर्णित अपराधों की श्रेणी में आता है तथा उसकी आयु 16 वर्ष से अधिक है तो उसके विरूद्ध नियम 64 में वर्णित जिला स्तरीय पर्यवेक्षण समिति के निर्णय के अधीन अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों के अन्तर्गत कार्यवाही की जा सकेगी ''

उत्तर प्रदेश गुंडागर्दी एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली, 2021 का नियम 22 भी प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:-

22. आपराधिक इतिहास अनिवार्य नहीं है और जांच के दौरान अधिनियम की धाराएं लगाई जा सकती हैं:- 1. अधिनियम के तहत एक भी कार्य/चूक अपराध माना जाएगा, प्रथम सूचना रिपोर्ट एक ही मामले के आधार पर पंजीकृत की जा सकती है, यानी यह अनिवार्य नहीं है कि अधिनियम के तहत अपराध दर्ज करने से पहले कोई आपराधिक इतिहास दर्ज किया जाए और आरोपित किया जाए।

2. यह अधिनियम कुछ विशेष श्रेणी के मामलों में एकल अभियोजन पर भी लागू हो सकता है, जैसे

यदि ऐसा प्रतीत होता है कि गिरोह ने अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (ख) के उपखण्ड (i) अथवा अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (ख) के उपखण्ड (ii), (iii), (v), (vii), (x), (xii), (x), (xiv), (xv), (xvii), (xviii), (xix), (xx) अथवा (xxi) में वर्णित अपराधों में से दण्ड संहिता की धारा 302, 376डी, 395, 396 अथवा 397 में वर्णित कोई एक भी अपराध किया है, जो वर्तमान में अनुसंधानाधीन है, तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध एकत्रित साक्ष्यों से सिद्ध हो रहा है, तो विचाराधीन आपराधिक कृत्य के साथ-साथ उक्त अपराध के अनुसंधान में सम्मिलित सम्बन्धित पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गैंग-चार्ट भी अनुमोदित किया जाना चाहिए तथा अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार दोनों अपराधों का एक साथ अनुसंधान करते हुए अधिनियम के उपबन्ध लगाए जा सकते हैं। साथ ही, आरोप-पत्र अधिनियम के अन्तर्गत गठित विशेष न्यायालय को भेजा जा सकता है।

इस प्रकार, ऊपर बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों और नियम 27 के प्रावधान से, यह स्पष्ट है कि याची की आयु घटना की तिथि को 16 वर्ष से अधिक थी, लेकिन चूंकि गैंग चार्ट में याची के खिलाफ दिखाए गए आधार मामले यूपी गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) नियम, 2021 के नियम 22 उप नियम (2) के तहत वर्णित मामलों की श्रेणी में नहीं आते हैं, इसलिए कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। चूंकि आरोपित गैंग चार्ट में याची के खिलाफ दिखाए गए दो आधार मामले धारा 379, 380 और 411 आईपीसी के तहत हैं, इसलिए उसके खिलाफ यूपी गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, हम पुलिस अधीक्षक, संत कबीर नगर को यह सुनिश्चित करने का निर्देश देते हैं कि याचिकाकर्ता का नाम गैंग चार्ट से हटा दिया जाए और याचिकाकर्ता पर दिनांक 30/07/2022 की एफआईआर के अनुसरण में मुकदमा न चलाया जाए, जिससे यूपी गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप

(रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के तहत केस अपराध संख्या 244/2022, थाना-महोली, जिला संत कबीर नगर को जन्म मिलता है।

रिट याचिका केवल याचिकाकर्ता के संबंध में ही स्वीकार की जाती है। हालांकि, सह-आरोपी के खिलाफ जांच कानून के अनुसार आगे बढ़ेगी।

इस आदेश की प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु विद्वान AGA को उपलब्ध कराई जाए।

(2023) 5 ILRA 1385

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 200/1996

दिनेश बाबू ...अपीलकर्ता

बनाम

प्रबंधक, मेसर्स कंडिया जमशेदपुर ट्रांसपोर्ट कंपनी, एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री बी.आर. सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री ए.ए. खान

सिविल कानून -मोटर दुर्घटना दावा- दुर्घटना और लापरवाही विवाद में नहीं है- न ही देयता को चुनौती दी गई है- मात्रा विवादित है- घायल 15 वर्षीय छात्र था- न्यायाधिकरण ने उसकी आय शून्य मानी- आय संभावित रूप से 1500 रुपये प्रतिमाह है- विकलांगता के लिए आय का 50%- चिकित्सा व्यय और दर्द, आघात और पीड़ा के तहत राशि मंजूर की गई है- ब्याज दर- 7.5%।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. संजय कुमार बनाम अशोक कुमार एवं अन्य, (2014) 5 एससीसी 330;
2. सैयद सादिक व अन्य बनाम डिवीजनल मैनेजर, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2014) 2 एससीसी 735;
3. वी. मेकला बनाम एम. मलाथी एवं अन्य, (2014) 11 एससीसी 178
4. उत्तर प्रदेश मोटर यान (ग्यारहवां संशोधन) नियमावली, 2011
5. हरि बाबू बनाम अमृत लाल एवं अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 718 (ऑल)
6. काजल बनाम जगदीश चंद 2020 (0) AIJEL-SC 65725
7. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442
8. श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 291
9. आदेश से प्रथम अपील संख्या 23 / 2001 में पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1 / 2020- श्रीमती सुदेशना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य।
10. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री बी. आर. सिंह और प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.ए. खान को सुना।

2. दावेदार की ओर से यह अपील, एम.ए.सी.पी. संख्या 60/1993 में एम.ए.सी.टी./ चतुर्थ अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, मैनपुरी (इसके बाद "न्यायाधिकरण" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.11.199 को चुनौती देती है, जिसमें 12% की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 57,000/- रुपये की राशि देने का आदेश दिया गया है।

3. दुर्घटना विवाद में नहीं है है। न्यायाधिकरण द्वारा तय की गई लापरवाही का विवाद्यक विवाद में नहीं है। प्रतिवादी-बीमा कंपनी ने उन पर लगाए गए दायित्व को चुनौती नहीं दी है। निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र विवाद्यक यह है कि कितने मुआवजे दिए गए हैं।

4. अभिलेख से लिए गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 15.09.1992 को, याचिकाकर्ता दिनेश बाबू अपने भाई सूर्य प्रकाश के साथ अपने स्कूल देवनागरी इंटर कॉलेज कुरौली से अपने गांव नानामऊ के लिए सड़क के बाईं ओर साइकिल पर जा रहे थे, जैसे ही लगभग 12:20 बजे वह जीटी रोड पर गैलानाथ पुल के पास पहुंचे, एक नई चेसिस नंबर बी.आर. एक्स-9252 भागांव की ओर से तेजी से और लापरवाही से बिना किसी अलार्म के आई, याचिकाकर्ता से टकरा गई और उसका भाई गंभीर रूप से घायल हो गया और उनकी साइकिल क्षतिग्रस्त हो गई। याचिकाकर्ता और उसका छोटा भाई सूर्य प्रकाश सड़क के दाई ओर साइकिल चला रहे थे।

5. घायल 15 वर्षीय छात्र था। न्यायाधिकरण ने उनकी आय को शून्य माना है, चिकित्सा व्यय के नुकसान के लिए 15,000 रुपये दिए हैं, अतीत और भविष्य के लिए परिचर शुल्क के लिए 2000 रुपये और दर्द, सदमे और पीड़ा के लिए 40,000 रुपये दिए हैं और अंततः कुल मुआवजे का आकलन 57,000 रुपये किया है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा आय के नुकसान के शीर्ष के तहत कोई राशि नहीं दी गई है जो अन्यायपूर्ण है और कम से कम 2,000/- रुपये प्रति माह होनी चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि घायलों को मासिक नुकसान के शीर्ष के तहत कोई राशि नहीं दी जाती है जो अन्यायपूर्ण भी है और कम न से कम 50% होनी चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि भविष्य में आय के नुकसान के शीर्ष के तहत कोई राशि प्रदान नहीं की गई है। यह भी भी प्रस्तुत किया गया है कि गैर- आर्थिक शीर्षों के तहत राशि और दिया गया

अनुवादित

ब्याज भी कम तरफ है और निम्नलिखित आधिकारिक घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए इसे बढ़ाने की आवश्यकता है:

(i) संजय कुमार बनाम अशोक कुमार और अन्य, (2014) 5 एससीसी 330;

(ii) सैयद सादिक और अन्य बनाम डिवीजनल मैनेजर, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2014) 2 एससीसी 735;

(iii) वी. मेकला बनाम एम. मालाथी और (अन्य, (2014) 11 एससीसी 178; और

(iv) उत्तर प्रदेश मोटर यान (ग्यारहवां संशोधन) नियमावली, 2011.

(v) हरि बाबू बनाम अमृत लाल अन्य, 2019 (2) टीएसी 718 (ऑल)

(vi) 2020 (0) एआईजेईएल-एससी 65725 में प्रतिवेदित काजल बनाम जगदीश चंद।

7. क्या अतिरिक्त ब्याज दिया जा सकता है, इसका उत्तर नहीं है। दावेदार दावा कर रहा है कि उसकी आय 25000/- रुपये प्रति वर्ष थी। चोट का 100% नुकसान है। न्यायाधिकरण ने इस बात पर विचार नहीं किया है कि कमाई की क्षमता का नुकसान क्या है, लेकिन 15 साल के छात्र को अपंग हुए 30 साल बीत चुके हैं।

8. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.ए. खान द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्ष 1992 में भी अनुमानित आय 18,000/- रुपये प्रति माह हो सकती है और अधिक नहीं, आय का 100% नुकसान नहीं है, 15 का गुणक न्यायसंगत और उचित है और इसे तब भी दिया जा सकता है जब यह न्यायालय महसूस करता है कि दावेदार बढ़ी हुई राशि का हकदार है।

9. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और निर्णय और आदेश को पढ़ने के बाद, क्योंकि वह एक छात्र था, इस न्यायालय को लगता है कि कमाई की क्षमता वाली आय को 1500/- रुपये प्रति माह माना जा सकता है। दुर्घटना के समय घायल की उम्र 15 साल थी, विकलांगता के लिए आय का 50%। इसके अलावा, चिकित्सा व्यय के लिए 50,000 / जहां तक दर्द, सदमे और पीड़ा के तहत राशि का संबंध है, 50,000/- रुपये प्रदान किए जाते हैं।

10. इसलिए, अपीलकर्ता को देय कुल मुआवजे की गणना नीचे की गई है:

i. आय: रु.1500/-

ii. भविष्य की संभावनाओं के प्रति प्रतिशतः 40% अर्थात् रु.600/-

iii. कुल आय: रु. 1500+600= रु. 2100/-

अनुवादित

iv. कमाई क्षमता का नुकसान: 50% अर्थात् रु. 1000/- (राउंडेड अप)

v. वार्षिक नुकसान: रु. 1000 x 12 = रु. 12000/-

vi. लागू गुणक: 15

vii. कुल नुकसान : रु. 12000 x 15 = रु. 1,80,000/-

viii. चिकित्सा व्ययः रु. 50,000/-

ix. दर्द, सदमे और पीड़ा के तहत राशि रु.50,000/-

x. कुल मुआवजा: 2,80,000/-

11. जहा तक ब्याज दर जारी करने का संबंध है, यह दावा याचिका दायर करने की तारीख से अब तक 7.5% होनी चाहिये।

12. जब मामले की सुनवाई हुई तो किसी अन्य आधार पर मौखिक रूप से आग्रह नहीं किया गया है।

13. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय और डिक्री पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित हो जाएगी। प्रतिवादी-बीमा कंपनी द्वारा दावा याचिका दायर करने की तारीख से 7.5% की दर से ब्याज के साथ आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर राशि जमा होने तक राशि जमा की जाएगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाए।

14. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह पहले घाटे की कोर्ट फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। **2012 (1) जीएलएच (एससी), 442 में प्रतिवेदित ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ है और न ही देहाती ग्रामीण है।

15. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, **2007 (2) जीएलएच 291 में प्रतिवेदित श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**,, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वितीय वर्ष से वितीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वितीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50000 रुपये से अधिक होता है, तो बीमा कंपनी/स्वामी आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194क (3) (ix) के अंतर्गत यथा उपबंधित स्त्रोत पर कर कटौती शीर्ष के अंतर्गत उपयुक्त राशि की कटौती करने के लिए पात्र है और यदि ब्याज की राशि किसी वितीय वर्ष में 50,000/- रुपए से अधिक नहीं होती

अनुवादित

है तो इस अधिकरण की रजिस्ट्री को निदेश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकारी से प्रमाणपत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति दे। उपरोक्त दृष्टिकोण को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 के रिव्यू प्रार्थना पत्र संख्या 1/2020 **(श्रीमती सुदेसना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य)** में राशि का संवितरण करते समय दोहराया गया है।

16. न्यायाधिकरण दद्वारा उपरोक्त याचिका में किए गए संशोधन के अनुसार तदनुसार नया अधिनिर्णय लिया जाए। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देश का पालन करेंगे, जैसा कि यहां पूर्वोक्त है, जहां तक संवितरण का संबंध है, इसे वादी की स्थिति और मामले के लंबन और **ए.वी. पद्मा (पूर्वोक्त)** के फैसले को देखना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को है देखते हुए इसे लागू किया जाना है।

17. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** में दिनांक 27.1.2022 के आदेश के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि लम्बी अवधि बीत चुकी है, इसलिए राशि बिना एफडीआर के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जाएगी।

18. अभिलेख अधिकरण को तत्काल वापस प्रेषित की जाए।

19. यह न्यायालय दोनों विद्वान अधिवक्तागण का इस न्यायालय की सहायता करने के लिए आभारी है।

(2023) 5 ILRA 1388

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1054/1995

योगेन्द्र नाथ उपाध्याय एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

शैलेश कुमार सिंह एवं अन्य ,.. प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री ए.के. पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री कामेश्वर सिंह, श्री अमरेश सिन्हा, श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा

सिविल कानून -मोटर वाहन अधिनियम- धारा 166 & 140- जीप और ट्रैक्टर चालकों की संयुक्त लापरवाही के कारण दुर्घटना- मृतक की आयु 60 वर्ष थी- वह कृषक था- 2000 रुपए प्रतिमाह कमाता था- न्यायाधिकरण ने आय को शून्य माना- न्यायाधिकरण ने दावेदार को केवल दोष रहित देयता के आधार पर राशि का हकदार माना- गलत- धारा 140 के तहत राशि

दोष रहित देयता के अधीन है और धारा 166 से स्वतंत्र है- समग्र लापरवाही का मामला- मृतक अपकारक नहीं था या दोनों चालक लापरवाह थे- राशि दोनों अपकारक के बीच विभाजित की जाए, आय 15,000 रुपए प्रति वर्ष मानी गई- गैर-आर्थिक क्षति की मद- 5 का गुणक- भविष्य की संभावनाओं में कोई वृद्धि नहीं।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 0 सुप्रीम (एससी) 105
2. आदेश से प्रथम अपील संख्या 1818/2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य)
3. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2015 मुकदमा (एससी) 469
4. दीपल गिरीशभाई सोनी और अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2004) 5 एससीसी 385
5. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल एवं अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.)
6. श्रीमती हंसागोरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2007(2) जीएलएच 29
7. आदेश से प्रथम अपील संख्या 23/2001 (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) में पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1/2020
8. आदेश से प्रथम अपील संख्या 2871/2016 (तेज कुमारी शर्मा बनाम चोला मंडलम एम.एस. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) 19.3.2021 को तय

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थीगण के विद्वान वकील श्री ए. के. पांडेय, प्रतिवादी संख्या 2/न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के विद्वान वकील श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा और प्रतिवादी संख्या 4/ यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी के विद्वान वकील श्री अमरेश सिंहा को सुना।

2. यह अपील दावेदारों की प्रार्थना पर 21.08.1995 को मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/ 5वें-अपर जिला न्यायाधीश बलिया, (जिसे इसके बाद न्यायाधिकरण के रूप में संदर्भित किया जाएगा) द्वारा 1991 के एम.ए.सी. संख्या 2 में पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देती है।

3. रिकॉर्ड से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य यह है कि दिनांक 14.10.1990 को दोपहर करीब 3:00 बजे मृतक ठाकुरजी उपाध्याय जीप से जिसका नंबर B. H.N.793 है, बलिया से अपने घर लौट रहे थे, जब जीप बलिया सिकंदरपुर मार्ग पर हनुमान चट्टी के पास पहुंची तो एक ट्रैक्टर जिसका नंबर

U.R.I. 732 है, ने जीप से सामने से टक्कर मार दी। जीप और ट्रैक्टर चालकों की संयुक्त

लापरवाही से दुर्घटना हुई, जिससे ठाकुरजी उपाध्याय की मौके पर ही मौत हो गई।

4. दुर्घटना के समय मृत की उम्र 60 वर्ष थी। वह एक किसान थे और प्रति माह रू. 2,000 कमाते थे। उनके परिवार में उनके 2 बेटे थे। न्यायाधिकरण ने उनकी आयु शून्य मानते हुए कल मुआवजे के तौर पर रू. 50,000 दिए । न्यायाधिकरण ने दोनों चालकों यानी जीप का चालक जिसमें मृतक यात्रा कर रहा था और ट्रैक्टर के चालक को 50-50% उपेक्षा का दोषी माना।

5. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि मृतक किसान था और रू.2,000 प्रति माह कमाता था, किंतु न्यायाधिकरण ने उनकी आय शून्य मानी है तथा इसे रू.15,000 प्रतिवर्ष माना जाना चाहिए। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण ने न तो मृतक की आय के भविष्य के नुकसान हेतु कोई राशि दी है और नहीं गैर-आर्थिक मदो के तहत कोई राशि दी गई है जो कि उच्चतम न्यायालय के **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य 2017 0 सुप्रीम (S.C) 105** निर्णय के अनुसार होनी चाहिए।

6. प्रतिवादी संख्या 2 और 4 के वकीलों द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे की मात्रा और ब्याज उचित है और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

7. पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुनने के पश्चात आइए हम निर्धारित कानून के परिप्रेक्ष्य में उपेक्षा पर विचार करें।

8. उपेक्षा शब्द का अर्थ है- दूसरों के प्रति सावधानी बरतने में विफलता जो एक उचित और विवेकपूर्ण व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या ऐसा कदम उठाना जो ऐसा विवेकपूर्ण व्यक्ति नहीं करेगा। उपेक्षा जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है, जो कि सामान्यतः आकस्मिक होती है। विशेष रूप से यह असावधानीपूर्ण ड्राइविंग को दर्शाता है और घायल को हमेशा यह साबित करना होगा कि दूसरे पक्ष ने लापरवाही की है। यदि चोट या मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदाई है अन्यथा "रेस इप्सा लोक्वीटर" का सिद्धांत लागू होगा जिसका अर्थ है। "घटनाएं स्वयं बोलती हैं।"

9. अंशदाई उपेक्षा के सिद्धांत पर कई बार चर्चा हुई है। वह व्यक्ति जो दुर्घटना में योगदान देता है या जो दुर्घटना कारित करता है, दुर्घटना घटित होने में अपने योगदान के लिए उत्तरदाई है।

10. इस न्यायालय की खंड पीठ ने 2012 के आदेश संख्या 1818 से प्रथम अपील **(बजाज एलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह एवं अन्य)** 19.07.2016 का निर्णय निम्नानुसार लिया है:-

16. उपेक्षा का अर्थ है एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित देखभाल और सावधानी बरतने में उपेक्षा। उपेक्ष कुछ ऐसा करने में चूक है जो एक समझदार व्यक्ति, विचारों पर निर्देशित होकर करेगा, जो आमतौर पर मानवीय मामलों के संचालन को नियंत्रित करता है या कुछ ऐसा

करना जो एक विवेकपूर्ण और समझदार व्यक्ति नहीं करेगा। उपेक्षा सदैव प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रश्न नहीं है। यह साबित तथ्यों से निकला जाने वाला एक अनुमान है। उपेक्षा कोई निरपेक्ष शब्द नहीं है बल्कि यह सापेक्ष शब्द है। यह एक तुलनात्मक शब्द है। कोई बात जो किसी एक मामले के लिए उपेक्षा है यह किसी अन्य मामले के लिए उपेक्षा नहीं हो सकती। जहां सावधानी बरतने का कर्तव्य नहीं है, वहां लोकप्रिय अर्थो में उपेक्षा का कोई विधिक परिणाम नहीं होता है। जहां सावधानी बरतना कर्तव्य है, वहां ऐसे कृत्यों या चूर्कों से बचने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरतनी चाहिए जिनसे व्यक्ति को शारीरिक चोट कारित होने की संभावना हो। बेशक आवश्यक सावधानी की मात्रा प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों पर चालकों की लापरवाही का आकलन आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा की मृतक की ओर से अंशदाई उपेक्षा के लिए सबूत का भार विपक्षी पर होगा। दुर्घटना की व्याख्या करना अपराधी वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह सुस्थापित विधि है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक दूसरे को पार करती है, तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमी गति से चले और यदि चालक ने चौराहे पर गति धीमी नहीं की, बल्कि इस बात की परवाह किए बिना कि कोई दूसरा वाहन पार कर रहा था, तेज गति से आगे बढ़ना जारी रखा तो चालक के आचरण से निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह वाहन तेजी से और लापरवाही से चला रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम से जुड़ी 10वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने के लिए वैधानिक नियम शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा है। ऐसे विनियमन के खंड-6 में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वहां की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन से तब तक प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह इससे किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल इस कारण कि ट्रक का चालक सड़क के बाई ओर वाहन चला रहा था, वह सड़कों के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने के अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो जाएगा, खासकर जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था, चौराहे के पास आ रहा था।

19. यातायात की तेज और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक **रायलैंड्स बनाम फ्लेचर (1868) 3 LR (HL) 330** के वाद में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत माना जा सकता है। मोटर वाहनों के प्रयोग से इस देश की सड़क पैदल चलने वालों के लिए अत्यधिक खतरनाक हो गई है। " हिट एंड रन के मामले में जहां दुर्घटनाएं करने वाले मोटर वाहनों के ड्राइवर अज्ञात हैं। दरअसल ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है। जहां एक पैदल यात्री अपनी ओर से उपेक्षा किए बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मर जाता है, चाहे उसने उपेक्षा बरती हो या नहीं, तो यदि

सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ है, उसे या उसके विधिक प्रतिनिधियों को जैसा भी मामला हो नुकसान की वसूली का हकदार होना चाहिए।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110A और धारा 110B) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पक्षकारों के अधिकारों को सारवान रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा निर्मित कार्यवाही का अधिकार अपनी प्रजाति, अपनी गुणवता, अपने सिद्धातों में हर तरह से नया था। मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने के लिए अधिनियम, 1988 के तहत विधिक प्रतिनिधियों को दिया गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत कार्यवाही की सीमाओं से रोका नहीं जा सकता है। नई स्थितियां और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपचारों की आवश्यकता होती है।

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही अदालतें निर्वाचन द्वारा विधि के सिद्धांतों को विस्थापित न करें, जिन्हें सुस्थापित माना जाता है और इसलिए, न्यायालय मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में उपेक्षा के साक्ष्य से छूट नहीं दे सकता है। मोटर वाहन दुर्घटनाओं के संबंध में विधि को निम्नलिखित आधार पर आगे विकसित करना संभव है; जब एक मोटर वाहन को उचित सावधानी के साथ चलाया जा रहा है, तो यह आमतौर पर दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में रेस्ट इप्सा लोक्वीटर का नियम सामान्य सिविल वाद की तुलना में मोटर दुर्घटना के मामलों में अधिक प्रभावी रूप से लागू किया जा सकता है। **(जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 AC (SC) 1840)** ।

22. उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा मोटर दुर्घटना दावा याचिका में यह साबित करने का भार आमतौर पर प्रतिवादी पर डाला जा सकता है कि मोटर वाहन युक्तियुक्त सावधानी से चलाया जा रहा था या यह कि दूसरे पक्ष ने भी उतनी ही उपेक्षा बरती है।"

11. उच्चतम न्यायालय ने **खेनेयी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य 2015 LawSuit (SC) 469 के** बाद में निम्नानुसार धारित किया है:-

"4. यह पूर्ण उपेक्षा का मामला है जहां संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के संयुक्त दोषपूर्ण कार्य के कारण दावेदारों को चोटें आई हैं। संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं की उपेक्षा के कारण हुई दुर्घटना के मामले में, वे सभी व्यक्ति जो किसी गलत कार्य में सहायता या सलाह देते हैं या निर्देशन करते हैं या उसमें शामिल होते हैं, उत्तरदाई है ऐसे मामले में उत्तरदायित्व सदैव संयुक्त और पृथक होती है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्यकती की उपेक्षा की सीमा वादी / दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए महत्वहीन है और इस न्यायालय दद्वारा निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ता न्यायालय के समक्ष हैं, तो यह उचित स्तर पर उनके बीच अंतर- इक्विटी को समायोजित करने के उद्देश्य से उनके दायित्व की सीमा

निर्धारित कर सकता है। वादी/ दावेदार की तुलना मैं प्रत्येक संयुक्त अपकृत्यकर्ता का दायित्व विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संयुक्त और पृथक दायित्व है। पूर्ण उपेक्षा के मामले में वादी को भुगतान करने के लिए अपकृत्य करने वालों के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है क्योंकि वादी / दावेदार को सबसे आसान लक्ष्य /शोधनक्षम प्रतिवादी से पूरी राशि वसूल करने का अधिकार है।

14. अंशदायी और पूर्ण उपेक्षा के बीच अंतर है। अंशदाई उपेक्षा के मामले में, जिस व्यक्ति ने स्वयं इस हद तक योगदान दिया है, वह अपनी उपेक्षा की सीमा तक दुर्घटना में लगी चोटों के लिए मुआवजे का दावा नहीं कर सकता है; जबकि पूर्ण उपेक्षा के मामले में जिस व्यक्ति को नुकसान उठाना पड़ा है उसने दुर्घटना में योगदान नहीं दिया है बल्कि दुर्घटना दो या दो से अधिक अन्य व्यक्तियों की उपेक्षा के संयोजन का परिणाम है। इस न्यायालय ने **टी. ओ. एंथोनी बनाम करवर्नन एवं अन्य [2008 (3) एसीसीसी 748]** में यह माना है कि अशदाई उपेक्षा के मामले में, घायल को प्रत्येक दोषकर्ता के उत्तरदायित्व की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, और न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक दोषकर्ता के दायित्व की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। यह केवल अंशदाई उपेक्षा मामले में है कि दुर्घटना में घायल ने स्वयं अपनी उपेक्षा से योगदान दिया है। उसकी उपेक्षा की सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता है क्योंकि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति को उसकी अंशदाई उपेक्षा के अनुपात में कम किया जाना चाहिए। प्रासंगिक भाग यहां निकाला गया है:

"6. पूर्ण उपेक्षा का तात्पर्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों की ओर से की गई उपेक्षा से है। जहां एक व्यक्ति दो या दो से अधिक दोषपूर्ण कार्य करने वालों की ओर से उपेक्षा के परिणामस्वरुप घायल हो जाता है, ऐसा कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन दोषपूर्ण कार्य करने वालों की पूर्ण उपेक्षा के कारण घायल हुआ था। ऐसे मामले में प्रत्येक दोषकर्ता संपूर्ण क्षति के भुगतान के लिए घायल के प्रति संयुक्त रूप से और पृथक-पृथक उत्तरदाई होता है और घायल व्यक्ति के पास उनमें से सभी या किसी एक के विरुद्ध कार्यवाही करने का विकल्प होता है। ऐसे मामले में घायल को प्रत्येक दोषकर्ता के दायित्व की सीमा अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक दोषकर्ता के उत्तरदायित्व की सीमा अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जहां एक व्यक्ति को आंशिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से लापरवाही के कारण और आंशिक रूप से उसकी अपनी लापरवाही के परिणामस्वरुप चोट लगती है, तब घायल की उस हिस्से की उपेक्षा, जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, को उसकी अंशदायी उपेक्ष जाता है। जहां गयाल कुछ उपेक्षा का दोषी है, नुकसान के लिए उसका दावा केवल उसकी ओर से उपेक्षा के कारण विफल नहीं हो जाता है, बल्कि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली योग्य क्षति उसकी अंशदायी उपेक्षा के अनुपात में कम हो जाती है।

7. इसलिए, जब दो वाहन दुर्घटना में शामिल होते हैं, और उनमें से एक चालक उपेक्षा का आरोप लगाते हुए दूसरे चालक से मुआवजे का दावा करता है, और दूसरा चालक उपेक्षा से इनकार करता है या दावा करता है। कि घायल दावेदार खुद उपेक्षावान था तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार उपेक्षावान था और यदि हां तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह या आंशिक रूप से उत्तरदाई था और उसके दायित्व की सीमा, यह उसकी अंशदाई अपेक्षा है। इसलिए जहां घायल स्वयं आंशिक रूप से उत्तरदाई है, वहां पूर्ण उपेक्षा का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही कोई स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है कि उपेक्षा 50-50 थी जैसा कि इस मामले में माना गया है। न्यायाधिकरण को अपीलार्थी की अंशदाई उपेक्षा की सीमा की जांच करनी चाहिए थी और इस तरह पूर्ण उपेक्षा और अंशदाई उपेक्षा के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटि को सुधारने में विफल रहा है।

18. चल्ला भरतम्मा एवं नंजप्पन (सुप्रा) में इस न्यायालय ने स्वामी द्वारा पॉलिसी की शर्तों के उल्लंघन से निपटा है जब बीमाकर्ता को न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित मुआवजे का भुगतान करने के लिए कहा गया था और उसे संबंध निष्पादन न्यायालय में पुनर्प्राप्त करने का अधिकार बीमाकर्ता को दिया गया था। यदि बीमाकर्ता और स्वामी के बीच का विवाद न्यायाधिकरण के लिए निर्धारण का विषय वस्तु था और इसमें बीमाधारक के पक्ष में निर्णय लिया गया। यही सादृश्य मौजूदा मामलों पर भी लागू किया जा सकता है क्योंकि संयुक्त अपकृत्यकर्ता का दायित्व संयुक्त और पृथक दोनों है। मौजूदा मामले में संबंधित ड्राइवर के 2/3 और 1/3 की लापरवाही की सीमा तक पूर्ण उपेक्षा की पारस्परिक देयता का निर्धारण होता है। इस प्रकार, वाहन ट्रेलर-ट्रक जिसका बीमाकर्ता के पास बीमा नहीं था, 2/3 की सीमा तक उपेक्षवान था। दावेदार को भुगतान करने के बाद बस का बीमा करने वाला बीमाकर्ता निष्पादन कार्यवाही में ट्रेलर-ट्रक के मालिक से उपरोक्त सीमा तक राशि वसूल करने के लिए खुला होगा। यदि साक्ष्य के अभाव में पारस्परिक दायित्व का कोई निर्धारण नहीं किया गया था या अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ता को पक्षकार नहीं बनाया गया था, तो ऐसे विवाद को निपटाने और निष्पादन कार्यवाही में राशि की वसूली करना संभव नहीं था, लेकिन उपचार एक अन्य वाद दायर करना या विधि के अनुसार उचित कार्यवाही करना होगा ।

उपरोक्त चर्चा से जो बात निकाल कर सामने आती है वह इस प्रकार है:

(i) पूर्ण उपेक्षा के मामले में, वादी / दावेदार दोनों या संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं में से किसी एक पर वाद दायर करने और पूरे मुआवजे की वसूली करने का हकदार है क्योंकि संयुक्त अपकृत्यकर्ता का दायित्व संयुक्त और पृथक दोनों है।

(ii) पूर्ण उपेक्षा के मामले में वादी / दावेदार की तुलना में दो अपकृत्यकर्ताओं के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार उनमें से किसी से भी संपूर्ण क्षति की वसूली कर सकता है।

(ii) यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को पक्षकार बना दिया गया है और साक्ष्य पर्याप्त है, तो यह न्यायालय / न्यायाधिकरण के लिए

खुला है कि वह ड्राइवरों की पूर्ण उपेक्षा की सीमा निर्धारित कर सके। हालांकि, संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के बीच उपेक्षा की सीमा का निर्धारण केवल उनके पारस्परिक दायित्व के प्रयोजन के लिए है ताकि उनमें से किसी एक द्वारा वादी / दावेदार को पूरा भुगतान करने के बाद अन्य संयुक्त अपकृत्यकताओं से उस सीमा तक राशि की वसूली कर सके, जिस हद तक वह दूसरे के दायित्व से संतुष्ट है। यदि उन दोनों को पक्षकार बनाया गया है और उनकी उपेक्षा का बंटवारा / सीमा न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई है, तो मुख्य मामले में एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे से राशि वसूल कर सकता है।

(iv) न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह अन्य संयुक्त अपकृत्यकताओं को दोषी ठहराए जाने की अनुपस्थिति में दो वाहनों के चालकों की पूर्ण उपेक्षा की सीमा निर्धारित करें। ऐसे मामले में डिक्री या पंचाट के पारित होने के बाद स्वतंत्र कार्यवाही में अन्य संयुक्त अपकृत्य करता पर वाद चलाने के लिए, यदि वह चाहे तो संयुक्त अपकृत्यकर्ता पक्षकार को छोड़ दिया जाना चाहिए ।

12. शीर्ष न्यायालय ने हाल ही के निर्णय **खेनेयी (सुप्रा)** में उपेक्षा को अधिक विशेष रूप से पूर्ण/अंशदाई उपेक्षा पर विचार करने के बारे में एक और पहलू रखा है। यह दिखाया जाना चाहिए कि मृतक या संबंधित व्यक्ति ने दुर्घटना में योगदान दिया है और यदि उसने सावधानी बरती होती तो पीड़ित पर दुर्घटना के प्रभाव को कम किया जा सकता था। इस मामले में मृतक दुर्घटना का कर्ता या सह-कर्ता नहीं था।

13. विद्वान न्यायाधिकरण की यह गलत धारणा है कि यदि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 140 सपठित धारा 166 के तहत दवा याचिका दायर की जाती है, तो दावेदार केवल त्रुटि रहित दायित्व के आधार पर राशि पाने के हकदार हैं और पीठासीन अधिकारी का मानना है कि दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने केवल मोटर वाहन अधिनियम की धारा 140 के तहत राशि प्राप्त करने का विकल्प चुना, यह विधायन का आदेश नहीं हो सकता था। इस आशय का निष्कर्ष विधि की दृष्टि में अनुचित है। मोटर वाहन अधिनियम की धारा 140 के प्रावधान को इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"140. त्रुटि न होने के सिद्धांत पर कतिपय मामलों में प्रतिकार का संदाय करने का दायित्व-

(1) जहां मोटर वाहन या मोटर वाहनों के उपयोग में हुई दुर्घटना के परिणामस्वरुप किसी व्यक्ति की मृत्यु या अस्थाई निःशक्तता हुई है वहां, यथास्थिति वाहन का स्वामी या वाहनों के स्वामी ऐसी मृत्यु या निःशक्तता के बारे में प्रतिकर का सदन इस धारा के उपबंधों के अनुसार संयुक्ततः और पृथकत करने के लिए दायी होंगे।

(2) ऐसे प्रतिकर की राशि जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के बारे में उपाधारा (1) के अधीन संदेय होगी. 50,000 की नियत राशि होगी और किसी व्यक्ति की अस्थाई निःशक्तता के बारे में उस उपधारा के अधीन संदेय प्रतिकर की राशि 25,000 रुपए की नियत राशि होगी।

(3) उपाधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में दावेदार से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवाक दे और यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु या अस्थाई निःशक्तता जिसके बारे में प्रतिकर का दावा किया गया है संबंधित वाहन या वाहनों के स्वामी या स्वामियों के या किसी अन्य व्यक्ति के किसी दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी।

(4) उपाधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए दावा, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति के जिसकी मृत्यु या अस्थाई निःशक्तता के बारे में दावा किया गया है, किसी दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण विफल नहीं होगा और ऐसी मृत्यु या अस्थाई निःशक्तता के बारे में वसुलीय प्रतिकर की मात्रा ऐसी मृत्यु या अस्थाई निःशक्तता के उत्तरदायित्व में ऐसे व्यक्ति के अंश के आधार पर कम नहीं की जाएगी।

(5) किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति के संबंध में उपाधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, जिसके लिए वाहन का स्वामी अनुतोष के रूप में प्रतिकर देने का दायी है, वह तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन प्रतिकर का संदाय करने का भी दायी होगा, परंतु किसी अन्य विधि के अधीन किए जाने वाले प्रतिकर की राशि को इस धारा या धारा 163A के अधीन संदेय प्रतिकर की राशि में से घटा दिया जाएगा।

अब यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित एक प्रमुख सिद्धांत है कि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 140 के तहत राशि त्रुटि रहित दायित्व के अंतर्गत है और मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 से स्वतंत्र है। अंतर यह है कि यदि दावा याचिका मोटर वाहन अधिनियम की धारा 163A और 166 के तहत दायर की गई है, तो दावेदारों को **दीपल गिरीश भाई सोनी एवं अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2004) 5 S.C.C. 385,** के निर्णय के अनुसार चयन करना होगा, इसलिए इस संक्षिप्त आधार पर इस अपील को स्वीकार करना होगा। यह पूर्ण उपेक्षा का मामला था, मृतक अपकृत्यकर्ता नहीं था और इसलिए राशि में कटौती करना भी तथ्यों का गलत निष्कर्ष है।

14. इस न्यायालय द्वारा इस तथ्य के निष्कर्ष को कि दोनों ड्राइवर उपेक्षावान थे, राशि को दोनो अपकृत्यकर्ताओं के बीच विभाजित किया जाएगा, बरकरार रखा गया है, हालांकि आमतौर पर ऐसा नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन इस मामले में जब दो बीमा कंपनियां हैं, जिनके साथ उत्तरदायित्व का समझौता किया गया है, वे दोनों उपेक्षा के अनुसार प्रतिकर जमा करेंगे अर्थात उनमें से प्रत्येक कुल मुआवजे का 50% जमा करेगा।

15. यह इस न्यायालय को प्रतिकर के मुद्दे पर ले जाता है। दुर्घटना के वर्ष मृतक के पेशे औरआय को देखते हुए उसकी आय ₹15,000/- प्रतिवर्ष मानी जा सकती है जहां तक गैर-आर्थिक क्षति के मद में राशि का प्रश्न है, यह ₹70,000/- होनी चाहिए। जहां तक गुणक का प्रश्न है तो यह 5 का होना चाहिए। बेटे भले ही बालिग हो लेकिन विधिक प्रतिनिधि हैं और इसलिए मुआवजे के हकदार हैं, भविष्य की संभावनाओं में कोई बढ़ोतरी नहीं हो सकती।

16. इसलिए अपील करता को दिए कल मुआवजे की गणना नीचे दी गई है;

i. आय: रू.15,000/- प्रति वर्ष

ii. व्यक्तिगत खर्चों की कटौती के बाद आय: रू.7,500/-

iii .गुणक लागू: 5

iv. निर्भरता का नुकसान: रू.7,500 x 5 = रू.37,500/-

v. गैर आर्थिक मद के तहत राशि: रू.30,000/-

vi. कुल पतिकर: रू.67,500/-

17. जहां तक ब्याज दर का सवाल है तो यह 7.5% होनी चाहिए उच्चतम न्यायालय के हाल ही के निर्णय **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल एवं अन्य, 2019 (2)T.A.C. 705 (S.C.)** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्न अनुसार व्यवस्था दी है

"13. उपरोक्त विशेषताएं ब्याज दर के संबंध में दावेदारों की ओर से दिए गए तर्कों पर समान रूप से लागू होती है। न्यायाधिकरण ने 12% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज दिया था, लेकिन यह उसकी तुलना में बहुत अधिक थी जो आमतौर पर इन मामलों में परिकल्पना की गई है। उच्च न्यायालय ने प्रदत्त राशि में पर्याप्त वृद्धि करने के बाद 7.5% प्रतिवर्ष की उचित दर पर ब्याज घटक को संशोधित किया है और हमे इस मामले में इससे अधिक किसी भी दर पर ब्याज की अनुमति देने का कोई कारण नहीं दिखता है जो उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त की गई है।"

18. जब मामले की सुनवाई हुई तो मौखिक रूप से किसी अन्य आधार का आग्रह नहीं किया गया।

19. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पंचाट उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी बीमा कंपनी दावा याचिका दायर करने की तारीख से राशि जमा होने तक 7.5% की दर से ब्याज के साथ आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर राशि जमा करेगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जानने वाली राशि से काट लिया आएगा। जो बीमा कंपनी पूरी राशि जमा करेगी उसे वाहन के स्वामी और दूसरी बीमा कंपनी से राशि वसूलने का अधिकार हो सकता है। जहां तक मृतक का सवाल है यह पूर्ण उपेक्षा का मामला है, इसलिए उन दावेदारों को दिए गए मुआवजे से राशि नहीं काटी जा सकती जो गैर अपकृत्यकता की उत्तराधिकारी है।

20. इस उच्च न्यायालय में और माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा **श्रीमती हंसगोरी पी.. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 2007 (2) G.LH. 291** के मामले में निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष से वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को दिए ब्याज रू. 50,000/- से अधिक है तो बीमा कंपनी / मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194A (3) (ix) के तहत दिए गए प्रावधान के अनुसार "स्रोत पर कर कटौती" के तहत इसके हकदार है/हैं कि उचित राशि काट ले और यदि ब्याज की राशि किसी भी वित्तीय वर्ष में रू.50,000/- से अधिक नहीं है, इस

न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। इस उच्च न्यायालय द्वारा 2001 के आदेश संख्या 23 **(श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य)** की प्रथम अपील में 2020 के समीक्षा आवेदन संख्या 1 और 2016 के आदेश संख्या 2871 से प्रथम अपील **(तेज कुमारी शर्मा बनाम चोल मंडलम एम एस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड)** निर्णय तिथि 1932021 में राशि का विवरण देते हुए उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराया गया है।

21. यह न्यायालय विद्वान अधिवक्ताओं का इस न्यायालय की सहायता करने के लिए आभारी है।
845/18

श्री हरिप्रताप गुप्ता को और विद्वान ए. जी.ए को सुना और राज्य के लिए रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया।

दिनांक 05.01.2017 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि पिछली रात आरोपी ने आरोपी के पिता और सूचक रामनाथ की हत्या कर दी थी।

बताया गया है कि सूचक विजय के पिता पन्ना लाल कुशवाह की उम्र लगभग 90 वर्ष थी और अभियुक्त पन्ना लाल उन पर लगातार दबाव बना रहा था कि उसे पैसे दे ताकि वह शराब आदि खरीद सके। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि प्रथम सूचक का भाई मानसिक रूप से थोड़ा विक्षिप्त था। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर मुकदमा अपराध संख्या 14 वर्ष 2017 धारा 304 आईपीसी के तहत पंजीकृत किया गया। जांच की गई और उसके बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। इसके बाद कोर्ट ने आरोप तय किए और सुनवाई शुरू हुई। मुकदमे के बाद जब मामले में बरी कर दिया गया, तो राज्य ने तत्काल सरकारी अपील दायर की।

ट्रायल कोर्ट में अभियोजन पक्ष की ओर से पीडब्लू-1 विजय कुशवाह, पीडब्लू-2 केशव खां, पीडब्लू-3 कांस्टेबल अजय कुमार, पीडब्लू-4 डॉ. पारुतोष शुक्ला, पीडब्लू-5 उपनिरीक्षक विजय सिंह यादव, पीडब्लू-6 सब इंस्पेक्टर नितेश कुमार का परीक्षण किया गया। एफआईआर, चिक रिपोर्ट, मौका निरीक्षण, पंचायत नामा, नक्शा फोटोनाश, शव का चालान और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य मौजूद थे।

आरोपी ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपना बयान दिया है और अपराध करने से इनकार कर दिया था,

ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपने बयान में पीडब्लू-1, जो पहला मुखबिर था, ने कहा था कि आरोपी मृतक (पिता) के साथ रह रहा था और क्योंकि पीडब्लू-1 को हर समय इस बात का डर था कि आरोपी पन्ना लाल भी मारपीट में इसमें शामिल होगा। अतः परिवार से अलग रहता था। उन्होंने यह भी बताया कि आरोपी पन्ना लाल विभिन्न प्रकार का नशा करता था और इसके लिए वह हमेशा अपने पिता से पैसे

अनुवादित

की मांग करता था और जब पैसे नहीं दिए जाते थे तो वह मार-पिटाई करता था।

दिनांक 04/05.01.2017 की रात्रि में उसके द्वारा बताया गया कि पन्ना लाल ने मृतक रामनाथ को से पीटा था बेरहमी से पिता था और जब सुबह सूचना देने वाला पहला व्यक्ति मृतक के घर पहुंचा तो उसने देखा कि उसके पिता अभी भी सांस ले रहे थे और वह यह भी कहा था कि पन्ना लाल ने उसे पीटा था। इसलिए पहला सूचक अपने पिता के साथ अस्पताल गया जहां रास्ते में उनकी मृत्यु हो गई और इसके परिणामस्वरूप वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने गया था। पीडब्लू- 2 इस तथ्य का एक और गवाह है। उसने कहा है कि पड़ोस में उसकी ताला- चाबी की दुकान है और 4/5.1.2017 की रात में वह मृतक रामनाथ के घर के पास से गुजरा था और पिता-पुत्र के बीच कुछ कहा-सुनी हो रही थी, यह सुना था। अभियोजन पक्ष के अन्य औपचारिक गवाह पुलिस गवाह थे। हालाँकि, विद्वान ए.जी.ए. चूंकि पीडब्लू-4 के बयान पर जोर दिया गया था, जिसने पोस मॉर्टम रिपोर्ट को साबित किया था और विचारण न्यायालय के ध्यान में लाया था कि मृतक के शरीर पर 12 चोटें पाई गईं। पीडब्लू-5 फिर से उप-निरीक्षक है जिसने प्रथम सूचना रिपोर्ट को साबित किया है और वह जांच अधिकारी भी था।

निचली अदालत ने अपने सामने पेश किए गए सभी सबूतों से निपटने के बाद निष्कर्ष निकाला कि मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का था और 1984 में रिपोर्ट किए गए शरद बिरधी चंद बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले पर भरोसा करने के बाद (4) एससीसी 116 ने पाया था यह साबित करने के लिए कि अभियुक्त द्वारा किया गया अपराध सही नहीं पाया जा रहा था, इसलिए मामले में दोषी को बरी कर दिया जाना था। इसमें यह भी कहा गया है कि पर्याप्त सबूत ऐसे नहीं थे जिससे यह निष्कर्ष निकले कि अपराध इस तथ्य के कारण हुआ था कि आरोपी ने अपराध की पूर्व-योजना बनाई थी और उसके बाद उसे अंजाम दिया था।

विद्वान ए.जी.ए. तर्क दिया है कि यदि विचारण न्यायालय के समक्ष मौजूद साक्ष्यों और विशेष रूप से पीडब्लू-2 केशव खान के बयान पर गौर किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि केशव खान ने वास्तव में अपराध होते देखा था।

सुनकर विद्वान ए.जी.ए. और रिकॉर्ड देखने के बाद, न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण था।

रिकॉर्ड पर दिए गए फैसले का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर, हम पाते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता है कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण विकृत या अनुचित था। सिर्फ इसलिए कि उपलब्ध साक्ष्यों पर एक और दृष्टिकोण अपनाया गया होगा, इससे हमें बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलेगा। जब तक विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक ऐसा दृष्टिकोण नहीं था जिसे संभवतः रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर नहीं लिया जा सकता था, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया

गया दृष्टिकोण उचित एवं संभावित नहीं था। वास्तव में, गवाहों के बयानों के अवलोकन से निश्चित रूप से पता चलता है कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष उचित थे।

यह अदालत जो **मुरलीधर उर्फ गिद्दा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2014) 5 एससीसी 730** में रिपोर्ट की गई अपील के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार बरी किए जाने के फैसले पर बैठ रही है उसमे केवल तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है यदि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण संभावित दृष्टिकोण नहीं था। विसंगतियों, सुधारों और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आरोपी के खिलाफ लगाए गए अपराध को गठित करने के लिए आवश्यक सामग्री उचित संदेह से परे साबित नहीं हुई, अतः हमारा विचार है कि विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण निश्चित रूप से एक संभावित दृष्टिकोण था। अतः तत्कालिक अपील खारिज किये जाने योग्य है।

ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय का मानना है कि विचारण न्यायालय के मूल्यांकन में बिल्कुल कोई त्रुटि नहीं है।

उपरोक्त के मद्देनजर, अपील को प्रवेश चरण पर ही खारिज कर दिया गया है और अपील करने की कोई अनुमति प्रदान नहीं की जा रही है।

(2023) 5 ILRA 1396

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम,

शासकीय अपील संख्या 845/2018

उत्तर प्रदेश राज्य ...अपीलकर्ता

बनाम

पन्ना लाल ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: जी.ए., श्रीहरि प्रताप सिंह

अधिवक्ता विपक्षी:

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 304- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 313 - दोषमुक्ति के खिलाफ अपील - परिस्थितिजन्य साक्ष्य - दिनांक 05.01.2017 को एफआईआर दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपी ने अपने पिता की हत्या कर दी थी, जो लगभग 90 वर्ष के हैं - आरोपी ने अपने पिता पर दबाव डाला कि वे उसे पैसे दें ताकि वह शराब खरीद सके - आरोप तय, दोषमुक्ति - राज्य ने तर्क दिया कि पीडब्लू -2 ने वास्तव में अपराध होते देखा था - आयोजित, जब तक कि विचारणीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण ऐसा दृष्टिकोण नहीं था जो रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर संभवतः नहीं लिया जा सकता था, यह नहीं कहा जा सकता है कि विचारणीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित रूप से संभव दृष्टिकोण नहीं था- गवाहों के बयानों का अवलोकन दिखाता है कि विचारणीय न्यायालय के निष्कर्ष उचित थे ट्रायल कोर्ट का दृष्टिकोण निश्चित रूप से एक संभावित दृष्टिकोण था, विकृत नहीं इसलिए, अपील निरस्त कर दी गई। (पैरा 2, 7, 10)

अनुवादित

अपील निरस्त (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शरद बिरधी चंद बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1984 (4) एससीसी 116
2. मुरलीधर @ गिद्दा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2014) 5 एससीसी 730

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम, द्वारा प्रदत्त)

श्री हरिप्रताप गुप्ता को और विद्वान ए. जी.ए को सुना और राज्य के लिए रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया।

दिनांक 05.01.2017 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि पिछली रात आरोपी ने आरोपी के पिता और सूचक रामनाथ की हत्या कर दी थी।

बताया गया है कि सूचक विजय के पिता पन्ना लाल कुशवाह की उम्र लगभग 90 वर्ष थी और अभियुक्त पन्ना लाल उन पर लगातार दबाव बना रहा था कि उसे पैसे दे ताकि वह शराब आदि खरीद सके। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि प्रथम सूचक का भाई मानसिक रूप से थोड़ा विक्षिप्त था। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर मुकदमा अपराध संख्या 14 वर्ष 2017 धारा 304 आईपीसी के तहत पंजीकृत किया गया। जांच की गई और उसके बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। इसके बाद कोर्ट ने आरोप तय किए और सुनवाई शुरू हुई। मुकदमे के बाद जब मामले में बरी कर दिया गया, तो राज्य ने तत्काल सरकारी अपील दायर की।

ट्रायल कोर्ट में अभियोजन पक्ष की ओर से पीडब्लू-1 विजय कुशवाह, पीडब्लू-2 केशव खां, पीडब्लू-3 कांस्टेबल अजय कुमार, पीडब्लू-4 डॉ. पारुतोष शुक्ला, पीडब्लू-5 उपनिरीक्षक विजय सिंह यादव, पीडब्लू-6 सब इंस्पेक्टर नितेश कुमार का परीक्षण किया गया। एफआईआर, चिक रिपोर्ट, मौका निरीक्षण, पंचायत नामा, नक्शा फोटोनाश, शव का चालान और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य मौजूद थे।

आरोपी ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपना बयान दिया है और अपराध करने से इनकार कर दिया था,

ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपने बयान में पीडब्लू-1, जो पहला मुखबिर था, ने कहा था कि आरोपी मृतक (पिता) के साथ रह रहा था और क्योंकि पीडब्लू-1 को हर समय इस बात का डर था कि आरोपी पन्ना लाल भी मारपीट में इसमें शामिल होगा। अतः परिवार से अलग रहता था। उन्होंने यह भी बताया कि आरोपी पन्ना लाल विभिन्न प्रकार का नशा करता था और इसके लिए वह हमेशा अपने पिता से पैसे की मांग करता था और जब पैसे नहीं दिए जाते थे तो वह मार-पिटाई करता था।

दिनांक 04/05.01.2017 की रात्रि में उसके द्वारा बताया गया कि पन्ना लाल ने मृतक रामनाथ को से पीटा था बेरहमी से पिता था और जब सुबह सूचना देने वाला पहला व्यक्ति मृतक के घर पहुंचा तो उसने देखा कि उसके पिता अभी भी सांस ले रहे थे और वह यह भी कहा था कि पन्ना लाल ने उसे पीटा था। इसलिए पहला सूचक अपने पिता के साथ

अस्पताल गया जहां रास्ते में उनकी मृत्यु हो गई और इसके परिणामस्वरूप वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने गया था। पीडब्लू- 2 इस तथ्य का एक और गवाह है। उसने कहा है कि पड़ोस में उसकी ताला- चाबी की दुकान है और 4/5.1.2017 की रात में वह मृतक रामनाथ के घर के पास से गुजरा था और पिता-पुत्र के बीच कुछ कहा-सुनी हो रही थी, यह सुना था। अभियोजन पक्ष के अन्य औपचारिक गवाह पुलिस गवाह थे। हालाँकि, विद्वान ए.जी.ए. चूंकि पीडब्लू-4 के बयान पर जोर दिया गया था, जिसने पोस मॉर्टम रिपोर्ट को साबित किया था और विचारण न्यायालय के ध्यान में लाया था कि मृतक के शरीर पर 12 चोटें पाई गईं। पीडब्लू-5 फिर से उप-निरीक्षक है जिसने प्रथम सूचना रिपोर्ट को साबित किया है और वह जांच अधिकारी भी था।

निचली अदालत ने अपने सामने पेश किए गए सभी सबूतों से निपटने के बाद निष्कर्ष निकाला कि मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का था और 1984 में रिपोर्ट किए गए शरद बिरधी चंद बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले पर भरोसा करने के बाद (4) एससीसी 116 ने पाया था यह साबित करने के लिए कि अभियुक्त द्वारा किया गया अपराध सही नहीं पाया जा रहा था, इसलिए मामले में दोषी को बरी कर दिया जाना था। इसमें यह भी कहा गया है कि पर्याप्त सबूत ऐसे नहीं थे जिससे यह निष्कर्ष निकले कि अपराध इस तथ्य के कारण हुआ था कि आरोपी ने अपराध की पूर्व-योजना बनाई थी और उसके बाद उसे अंजाम दिया था।

विद्वान ए.जी.ए. तर्क दिया है कि यदि विचारण न्यायालय के समक्ष मौजूद साक्ष्यों और विशेष रूप से पीडब्लू-2 केशव खान के बयान पर गौर किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि केशव खान ने वास्तव में अपराध होते देखा था।

सुनकर विद्वान ए.जी.ए. और रिकॉर्ड देखने के बाद, न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण था।

रिकॉर्ड पर दिए गए फैसले का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर, हम पाते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता है कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण विकृत या अनुचित था। सिर्फ इसलिए कि उपलब्ध साक्ष्यों पर एक और दृष्टिकोण अपनाया गया होगा, इससे हमें बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलेगा। जब तक विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक ऐसा दृष्टिकोण नहीं था जिसे संभवतः रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर नहीं लिया जा सकता था, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित एवं संभावित नहीं था। वास्तव में, गवाहों के बयानों के अवलोकन से निश्चित रूप से पता चलता है कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष उचित थे।

यह अदालत जो **मुरलीधर उर्फ गिद्दा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2014) 5 एससीसी 730** में रिपोर्ट की गई अपील के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार

अप्रमाणित

बरी किए जाने के फैसले पर बैठ रही है उसमे केवल तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है यदि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण संभावित दृष्टिकोण नहीं था। विसंगतियों, सुधारों और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आरोपी के खिलाफ लगाए गए अपराध को गठित करने के लिए आवश्यक सामग्री उचित संदेह से परे साबित नहीं हुई, अतः हमारा विचार है कि विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण निश्चित रूप से एक संभावित दृष्टिकोण था। अतः तत्कालिक अपील खारिज किये जाने योग्य है।

ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय का मानना है कि विचारण न्यायालय के मूल्यांकन में बिल्कुल कोई त्रुटि नहीं है।

उपरोक्त के मद्देनजर, अपील को प्रवेश चरण पर ही खारिज कर दिया गया है और अपील करने की कोई अनुमति प्रदान नहीं की जा रही है।

(2023) 5 ILRA 1398

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट टैक्स संख्या 4 / 2022

और

रिट टैक्स संख्या 5 / 2022

मेसर्स डायमंड स्टील, फतेहपुर ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आलोक कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. कर कानून - निर्धारण -उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 67 और 74- धारा 74 का सहारा लेने के लिए, यह आवश्यक है कि तलाशी और जब्ती रिपोर्ट के साथ, माल की आपूर्ति और कर का भुगतान न करने के संबंध में कुछ विशिष्ट कथन किए जाएं, साथ ही यह तथ्य भी दिया जाए कि यह धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छिपाने और कर से बचने के इरादे से किया गया हो। न्याय निर्णायक प्राधिकारी ने आयकर अधिकारियों द्वारा जारी कुछ दिशानिर्देशों का सहारा लेकर मांग का आकलन और मात्रा निर्धारित करने और जुर्माना लगाने में स्पष्ट रूप से गलती की है (कारण बताओ नोटिस जारी करने का एकमात्र आधार एसआईबी रिपोर्ट थी, जिसका उल्लेख नोटिस के साथ-साथ अतिरिक्त नोटिस में भी है) जो कि धारा 74 के तहत कर देयता निर्धारित करते समय अनुमेय नहीं है। अपीलीय प्राधिकारी का आदेश कानून की दृष्टि से और भी खराब है जहाँ एक ओर अपीलीय प्राधिकारी ने न्याय निर्णय प्राधिकारी द्वारा कर और जुर्माने की मांग का आकलन और परिमाणन करने के तरीके को अस्वीकार कर दिया, वहीं दूसरी ओर वह कर और जुर्माने की मांग का परिमाणन करने के लिए आगे बढ़ता है और बिना कोई कारण बताए जुर्माना लगाया गया। (पैरा 15)

बी. धारा 73 और 74 के तहत मूल्यांकन के बीच अंतर यह है कि धारा 73 कर के सामान्य निर्धारण के लिए निर्धारित है और धारा 74 धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयान या कर के

अनुवादित

भुगतान से बचने के इरादे से तथ्यों को छिपाने के कारण भुगतान न किए गए कर के निर्धारण के लिए निर्धारित है। वर्तमान वाद में यह स्पष्ट है कि विभाग ने कर की मांग और लगाए जाने वाले जुर्माने का आकलन करने के लिए धारा 74 का सहारा लिया है। (पैरा 12)

जिस तरीके से मांग उठाई गई है और मात्रा निर्धारित की गई है वह धारा 74 के अधिदेश के अनुरूप नहीं है और इस प्रकार केवल इस आधार पर, अपीलीय आदेशों के साथ-साथ न्यायनिर्णयन प्राधिकरण के आदेश भी रद्द किए जाने योग्य हैं। (पैरा 16)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-4)

वर्तमान याचिका में उपायुक्त, वाणिज्यिक कर - सेक्टर-1, फतेहपुर द्वारा पारित दिनांक 03.06.2021 के आदेश को चुनौती दी गई है, साथ ही दिनांक 03.06.2021 के आदेश के खिलाफ दिनांक 13.07.2021 की अपील में आदेश को भी चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. दोनों रिट याचिकाएं याचिकाकर्ता के विरुद्ध समान कार्यवाहियों से उत्पन्न हुई हैं, यद्यपि ये अलग-अलग वित्तीय वर्षों के संबंध में हैं।

2. संक्षिप्तता के लिए, रिट टैक्स नंबर 4 सन् 2022 के तथ्य दर्ज किए जा रहे हैं।

3. उक्त रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 03.06.2021 के आदेश के साथ-साथ दिनांक 03.06.2021 के आदेश के खिलाफ दिनांक 13.07.2021 की अपील के आदेश को चुनौती दी है।

4. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता एक साझेदारी कंपनी है और जीएसटी विभाग के साथ विधिवत पंजीकृत है। याचिकाकर्ता का दावा है कि सभी आवक और जावक आपूर्ति विभाग के पोर्टल पर विधिवत दर्शाई गई थी और याचिकाकर्ता ने उसके द्वारा की गई आपूर्ति को जीएसटीआर-1 में अपलोड किया और जीएसटीआर-2ए में दर्शाए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करने के बाद, इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ प्राप्त करने के लिए जीएसटीआर-3बी के रूप में अपना रिटर्न दाखिल किया। यह तर्क दिया गया कि दाखिल रिटर्न स्वीकार कर लिए गए थे और उन पर कभी सवाल नहीं उठाया गया तथा याचिकाकर्ता के मामले में कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई।

5. यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 31.10.2019 को याचिकाकर्ता के व्यावसायिक परिसर का निरीक्षण किया गया और एक पंचनामा तैयार किया गया, जिसमें व्यावसायिक परिसर में मौजूद स्टॉक को रिकॉर्ड किया गया और जीएसटी अधिनियम की धारा 67 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए कुछ कागजात जब्त किए गए।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि तलाशी और जब्ती मेमो कानून के अनुसार नहीं था, हालांकि, उक्त मुद्दा इस न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया है और उस सीमा तक कोई राहत नहीं मांगी गई है। ऐसा कहा गया है कि एसआईबी अधिकारियों द्वारा तलाशी और जब्ती की गई थी। याचिकाकर्ता ने तलाशी और जब्ती के तरीके

पर आपत्ति जताते हुए 18.12.2019 को एक हलफनामे के साथ एक आवेदन दायर किया और उसके बाद कुछ नहीं हुआ। दिनांक 08.01.2021 को प्रत्यर्थी संख्या 3 ने जुलाई, 2017 से मार्च, 2018 की अवधि के लिए यूपीजीएसटी अधिनियम की धारा 74 के तहत एक नोटिस जारी किया (रिट याचिका के अनुलग्नक-7)। यह तर्क दिया गया है कि उक्त नोटिस में जवाब दाखिल करने की तारीख 22.01.2021 बताई गई थी और व्यक्तिगत सुनवाई की तारीख और समय भी 22.01.2021 बताया गया था, लेकिन व्यक्तिगत सुनवाई के स्थान का खुलासा नहीं किया गया था जैसा कि नोटिस (अनुलग्नक-7) के अवलोकन से स्पष्ट है। उक्त कारण बताओ नोटिस के साथ, याचिकाकर्ता को जीएसटी डीआरसी-01 (अनुलग्नक-8) के रूप में दिनांक 08.01.2021 के कारण बताओ नोटिस का सारांश भी प्रदान किया गया।

7. यह तर्क दिया गया है कि कारण बताओ नोटिस में, मामले के संक्षिप्त तथ्य को दर्शाने वाले कॉलम में "एसआईबी में प्रतिकूल सामग्री पाई गई" का उल्लेख किया गया था और कारण बताओ नोटिस जारी करने के आधार के कॉलम में, यह फिर से उल्लेख किया गया था कि "एसआईबी में प्रतिकूल सामग्री पाई गई। याचिकाकर्ता ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को 24.12.2020 तक जवाब प्रस्तुत करने के लिए एक और नोटिस जारी किया गया था। उक्त नोटिस में एसआईबी की रिपोर्ट का भी उल्लेख किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि सभी नोटिसों में एसआईबी रिपोर्ट का संदर्भ है, जो धारा 74 के तहत नोटिस जारी करने का आधार थी, हालांकि, उक्त रिपोर्ट याचिकाकर्ता को कभी नहीं दी गई। इसके बावजूद भी याचिकाकर्ता ने 08.01.2021 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। यह विशेष रूप से आरोप लगाया गया है कि न तो कारण बताओ नोटिस जारी करने के समय और न ही सुनवाई की तिथि पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया, यहां तक कि एसआईबी का जवाब भी कभी प्रस्तुत नहीं किया गया, हालांकि, 03.06.2021 को यूपीजीएसटी अधिनियम की धारा 74 के तहत एक आदेश पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ कर और जुर्माने की मांग 14,84,099.82/- रुपये निर्धारित की गई थी। उन्होंने मेरा ध्यान धारा 74 के तहत पारित आदेश की ओर आकर्षित किया, जिसमें एसआईबी रिपोर्ट और उसमें संदर्भित दस्तावेजों के साथ-साथ विभाग द्वारा कुछ एकपक्षीय प्रस्तुतिकरण के आधार पर, जिसमें उसने दावा किया था कि 20% लाभ को उचित माना जाना चाहिए, जिसके विरुद्ध, मूल्यांकन प्राधिकारी का विचार था कि आयकर अधिनियम, 1961 के तहत भी 8% लाभ एक उचित अनुमान होगा और उक्त आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ मांग और जुर्माना निर्धारित किया गया था। याचिकाकर्ता ने विभिन्न आधारों पर उक्त आदेश के विरुद्ध अपील दायर की। अपीलीय प्राधिकारी ने अपील पर निर्णय लिया तथा उसे आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया। अपील को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने माना कि आयकर अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा किए गए मूल्यांकन के तरीके को उचित नहीं ठहराया जा सकता है, तथापि, किसी भी आधार का खुलासा किए बिना, कर और जुर्माने की राशि

9,30,969.60/- रुपए निर्धारित की गई। उक्त आदेश इस न्यायालय के समक्ष चुनौतीाधीन है क्योंकि अपीलीय न्यायाधिकरण का अभी तक गठन नहीं हुआ है।

8. याचिकाकर्ता श्री आलोक कुमार के अधिवक्ता का तर्क यह है कि धारा 74 के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए, यह आवश्यक है कि जिन सभी प्रस्तावित दस्तावेजों पर भरोसा किया जाना है, उन्हें प्रदान किया जाना चाहिए, जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि धारा 74 के अधिदेश के अनुसार, यह आवश्यक है कि कर की मांग को माल की आपूर्ति, आपूर्ति के समय और मूल्य पर विचार करने के बाद निर्धारित किया जाए तथा यह रिकार्ड किया जाए कि याचिकाकर्ता ने कर का भुगतान नहीं किया है, जिसका भुगतान करना उसके लिए अपेक्षित था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि न्याय निर्णय प्राधिकारी तथा अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मुद्दों पर निर्णय देते समय, विभाग ने सर्वोत्तम निर्णय के आधार पर मांग और जुर्माने का आकलन किया है, जो केवल तभी संभव है जब धारा 62 का सहारा लिया जाए और उक्त सर्वोत्तम निर्णय मूल्यांकन प्रक्रिया न तो धारा 74 के तहत निर्धारित है और न ही परिकल्पित है।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि मूल्यांकन पूरा करने के लिए आयकर अधिकारियों को जारी दिशानिर्देशों का सहारा नहीं लिया जा सकता जैसा कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी द्वारा किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपीलीय प्राधिकारी ने कर और जुर्माने की मात्रा निर्धारित करने के लिए कोई भी कारण दर्ज नहीं किया है, हालांकि निर्णय लेने वाले अधिकारियों द्वारा इसका आकलन काफी हद तक कम कर दिया गया था।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता इस आधार पर मांग को उचित ठहराने की कोशिश करते हैं कि की गई तलाशी और जब्ती के आधार पर, भारी मात्रा में स्टॉक, जो कि मात्रा निर्धारित संपत्ति नहीं थी, व्यावसायिक परिसरों में पाया गया था। उक्त आधार पर, विभाग ने याचिकाकर्ता के खिलाफ कर्तव्य और दंड का सही आकलन किया है।

11. न्यायालय में उक्त प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए, यूपीजीएसटी अधिनियम की योजना पर ध्यान देना आवश्यक है।

12. जीएसटी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, धारा 7 के तहत निर्दिष्ट वस्तुओं की आपूर्ति पर कर लगाया जाता है और उक्त कर का भुगतान वस्तुओं की आपूर्ति के समय किया जाना होता है, जिसे यूपीजीएसटी अधिनियम के अध्याय IV के तहत स्पष्ट किया गया है। जिस मूल्य पर कर लगाया जाना है, वह अधिनियम की धारा 15 से प्राप्त होता है, जो करयोग्य आपूर्ति का मूल्यांकन करने के तरीके को अनिवार्य बनाता है। उक्त अधिनियम के अध्याय IX में करदाता द्वारा रिटर्न दाखिल करने का प्रावधान है तथा अध्याय X में उक्त अधिनियम के अध्याय IX के तहत निर्धारित अनुसार दाखिल रिटर्न के आधार पर कर, ब्याज, जुर्माना और अन्य राशि का भुगतान करने का आदेश दिया गया है। अधिनियम का अध्याय XIV निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी के संबंध में प्राधिकृत अधिकारियों को शक्ति प्रदान करता है तथा

अध्याय XV में न चुकाए गए कर या कम चुकाए गए कर या गलत तरीके से वापस किए गए कर या गलत तरीके से प्राप्त इनपुट टैक्स क्रेडिट के संबंध में मांग और वसूली का प्रावधान है। धारा 73 और 74 के अंतर्गत मूल्यांकन के बीच अंतर यह है कि धारा 73 कर के सामान्य निर्धारण के लिए निर्धारित है और धारा 74 धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या कर के भुगतान से बचने के इरादे से तथ्यों को छिपाने के कारण भुगतान न किए गए कर के निर्धारण के लिए निर्धारित है। वर्तमान मामले में यह स्पष्ट है कि विभाग ने कर एवं जुर्माने की मांग का आकलन करने के लिए धारा 74 का सहारा लिया है।

13. धारा 74 के अंतर्गत कारण बताओ नोटिस जारी करने का एकमात्र आधार एसआईबी रिपोर्ट थी, जिसका उल्लेख नोटिस में तथा याचिकाकर्ता को दिए गए अतिरिक्त नोटिस में भी किया गया है। एसआईबी रिपोर्ट के रूप में कोई भी सामग्री याचिकाकर्ता को कभी भी उपलब्ध नहीं कराई गई, जैसा कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ 31 में विशेष रूप से दावा किया है। यद्यपि जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा एसआईबी रिपोर्ट की कभी मांग नहीं की गई थी, तथापि करदाता के अनुरोध पर कर निर्धारण कार्यवाही के समय रिपोर्ट दे दी गई थी तथा उसने उक्त रिपोर्ट के विरूद्ध प्रतिउत्तर प्रस्तुत कर दिया था। आरोपित आदेश में, याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता को एसआईबी रिपोर्ट उपलब्ध कराने या आरोपित आदेश पारित करते समय कथित उत्तर पर विचार करने का कोई उल्लेख नहीं है।

14. जो भी हो, तथ्य यह है कि मूल्यांकन आदेश पारित करते समय, न्याय निर्णयक प्राधिकारी ने आयकर प्राधिकारियों द्वारा जारी कुछ दिशा-निर्देशों के आधार पर कर की मांग का मूल्यांकन किया और जुर्माना लगाया, तथा 8% का औसत लिया, जो धारा 74 के तहत न्याय निर्णय करते समय पूरी तरह से अनुचित है, प्रतिवादी विभाग द्वारा अपनाए गए न्याय निर्णय के तरीके को सर्वोत्तम निर्णय मूल्यांकन कहा जा सकता है, जिसका सहारा केवल धारा 62 के तहत लिया जा सकता है और वह भी केवल उन व्यक्तियों के संबंध में जिन्होंने रिटर्न दाखिल नहीं किया है। रिटर्न दाखिल करने वाले व्यक्तियों के संबंध में, धारा 61(3) बहुत स्पष्ट है जिसके तहत विभाग को धारा 73 या 74 के तहत कार्रवाई करने का अधिकार है, यदि प्रस्तुत रिटर्न में विसंगतियां हैं और करदाता उक्त विसंगतियों के संबंध में सुधारात्मक उपाय करने में विफल रहता है।

15. धारा 74 का सहारा लेने के लिए यह आवश्यक है कि तलाशी और जब्ती रिपोर्ट के साथ-साथ माल की आपूर्ति और कर का भुगतान न करने के संबंध में कुछ विशिष्ट कथन दिए जाएं, साथ ही यह तथ्य भी दिया जाए कि यह धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छिपाने तथा कर से बचने के इरादे से किया गया है। न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ने मांग का आकलन करने और उसकी मात्रा निर्धारित करने तथा जुर्माना लगाने में स्पष्ट रूप से गलती की है, क्योंकि उन्होंने आयकर प्राधिकारियों द्वारा जारी कुछ दिशानिर्देशों का सहारा लिया है, जो धारा 74 के तहत कर देयता का निर्धारण करते समय

अनुचित है। अपीलीय प्राधिकारी का आदेश कानून की दृष्टि से और भी अधिक खराब है, क्योंकि इसमें कर का आकलन करने तथा देयता निर्धारित करने का कोई भी कारण नहीं बताया गया है। एक ओर, अपीलीय प्राधिकारी ने न्याय निर्णय प्राधिकारी द्वारा कर और जुर्माने की मांग का आकलन और परिमाणन करने के तरीके को अस्वीकार कर दिया, वहीं दूसरी ओर, वह बिना कोई कारण बताए कर और लगाए गए जुर्माने का परिमाणन करने की कार्यवाही कर देता है।

16. न्याय निर्णय प्राधिकारी के आदेश के साथ-साथ अपीलीय आदेश के अवलोकन से, जिस तरीके से मांग उठाई गई है और मात्रा निर्धारित की गई है वह धारा 74 के अधिदेश के अनुरूप नहीं है और इस प्रकार केवल इस आधार पर, अपीलीय आदेशों के साथ-साथ न्याय निर्णय प्राधिकारी के आदेश भी रद्द किए जाने योग्य हैं।

17. तदनुसार, रिट टैक्स संख्या 4/2022 में चुनौती दिए गए अपीलीय आदेश दिनांक 13.07.2021 और आदेश दिनांक 03.06.2021 तथा रिट टैक्स संख्या 5/2022 में चुनौती दिए गए अपीलीय आदेश दिनांक 13.07.2022 और आदेश दिनांक 09.06.2021 को रद्द किया जाता है।

18. दोनों रिट याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं।

19. याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई कोई भी राशि कानून के अनुसार उचित आवेदन प्रस्तुत करने पर उसे वापस कर दी जाएगी।

(2023) 5 ILRA 1402

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट टैक्स संख्या 1569 / 2022

और

रिट टैक्स संख्या 1570 / 2022

मेसर्स लारी आलमीरा हाउस, गोरखपुर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आलोक कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. कर कानून - कर का भुगतान न करने पर मूल्यांकन- उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017- धारा 74 और 104 (4)- अधिनियम की धारा 75 (4) के अनुसार विभाग के लिए सुनवाई का अवसर देना अनिवार्य है। यह भी समान रूप से स्थापित है कि जिस भी दस्तावेज़ पर भरोसा किया जाना प्रस्तावित है, उसे कार्यवाही के समापन से पहले करदाता को प्रदान किया जाना चाहिए। (पैरा 17)

वर्तमान मामले में, दिनांक 24.01.2022 का आदेश स्पष्ट रूप से न्याय के प्राकृतिक सिद्धांत का उल्लंघन करता है, क्योंकि निश्चित रूप से एसआईबी रिपोर्ट, जो कि आधार है, याचिकाकर्ता को कभी भी उपलब्ध नहीं कराई गई, अधिनियम की धारा 75(4) के तहत याचिकाकर्ता की कोई सुनवाई नहीं की गई और एसआईबी द्वारा कथित रूप से रिटर्न की जांच और निरीक्षण के समय पाई गई विसंगतियों की पुष्टि करने के लिए एसआईबी

रिपोर्ट के अलावा प्रथम दृष्टया कोई अन्य सामग्री मौजूद नहीं है। (पैरा 14, 18)

बी. केवल निरीक्षण की रिपोर्ट और रिटर्न की जांच में विसंगतियां कर का आकलन और अधिरोपण करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, उक्त विसंगतियां, भले ही विभाग द्वारा देखी गई हों, उन्हें साक्ष्य के रूप में या किसी अन्य रूप में सामग्री के साथ पुष्टि की जानी चाहिए, जिसे विभाग उचित समझे। (पैरा 16)

अधिनियम की धारा 61 के तहत रिटर्न की जांच या अधिनियम की धारा 67 के तहत किए गए निरीक्षण के परिणाम के बावजूद, कर के कम भुगतान या इनपुट टैक्स क्रेडिट के गलत लाभ का आकलन करने का भार अभी भी विभाग पर है, जिसे विभाग द्वारा ही पूरा किया जाना है। (पैरा 15)

धारा 74 अपने सरल अर्थ में धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या कर चोरी के इरादे से तथ्यों को छिपाने के कारण आपूर्ति पर कर का भुगतान न करने या इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत लाभ उठाने का आकलन करने की शक्ति प्रदान करती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि करदाता द्वारा की गई कर योग्य आपूर्ति और कर का भुगतान न करने के संबंध में विभाग द्वारा प्रासंगिक साक्ष्य जुटाए जाएं, जो कि अधिनियम की धारा 13 के तहत निर्दिष्ट आपूर्ति के समय किया जाना आवश्यक है। विभाग पर यह भी दायित्व है कि वह उन वस्तुओं पर कर योग्य आपूर्ति के मूल्य की गणना करे, जिन पर यह आरोप लगाया गया है कि कर का भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या कम लगाया गया है। इसके अलावा, यह स्थापित करने का भार विभाग पर है कि उक्त भुगतान न करना धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छिपाने के कारण था। किसी भी पुष्टि सामग्री के बिना, केवल रिटर्न की जांच में पाई गई विसंगतियों या निरीक्षण के दौरान पाई गई विसंगतियों के आधार पर कर का आकलन करना पर्याप्त नहीं है। (पैरा 16)

रिट याचिका स्वीकार की गई। मामला वापस भेजा गया। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

एम.पी. स्टील कॉर्पोरेशन बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, 2015 (7) एससीसी 58 (पैरा 5)

वर्तमान याचिकाएं उत्तर प्रदेश जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत पारित आदेश दिनांक 24.01.2022 के साथ-साथ प्रथम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.09.2022 को चुनौती दी गई जिसके अनुसार अपील को सीमा से परे मानते हुए निरस्त कर दिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. दोनों रिट याचिकाएँ विषय-वस्तु के संदर्भ में समान हैं और एक ही करदाता से संबंधित हैं, हालाँकि अलग-अलग वर्षों के लिए, इसलिए, इस सामान्य आदेश के माध्यम से उनका निर्णय किया जा रहा है। संक्षेप में, रिट टैक्स सं. 1570 सन् 2022 के तथ्यों का संदर्भ दिया जा रहा है।

2. दोनों रिट याचिकाएं याचिकाकर्ता के खिलाफ उत्तर प्रदेश जीएसटी अधिनियम की धारा 74 के तहत शक्ति के प्रयोग में पारित दिनांक 24.01.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई हैं, साथ ही प्रथम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 30.09.2022 के आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसके तहत अपील को परिसीमा से परे बताते हुए खारिज कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलीय प्राधिकारी ने विलंब माफी आवेदन को खारिज करके त्रुटि की है, हालांकि उनका तर्क है कि इस घटना में, यह न्यायालय पाता है कि अपीलीय अदालत ने परिसीमा अवधि के विस्तार के लिए आवेदन को उचित रूप से खारिज कर दिया था, इस न्यायालय को दिनांक 24.01.2022 के आदेश को चुनौती देने के संबंध में मामले की सुनवाई उन आधारों पर करनी चाहिए जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के प्रयोग में अर्ध न्यायिक आदेश को चुनौती देने के लिए उपलब्ध हैं, और इसलिए भी कि विलय का सिद्धांत लागू नहीं होगा, क्योंकि अपील को मेरिट के आधार पर नहीं बल्कि परिसीमा के आधार पर खारिज किया गया है।

4. अपीलीय आदेश (अनुलग्नक सं. 13) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इसे उत्तर प्रदेश जीएसटी अधिनियम की धारा 104 (4) के तहत निर्धारित परिसीमा से परे होने के कारण खारिज कर दिया गया है।

5. **एम.पी. स्टील कॉर्पोरेशन बनाम कमिश्नर ऑफ सेंट्रल एक्साइज 2015(7) एस.सी.सी. 58** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किए गए कानून को ध्यान में रखते हुए, मुझे दिनांक 30.09.2022 के अपीलीय आदेश में कोई त्रुटि नहीं दिखती, जिसके तहत अपील को परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था। हालाँकि, इस न्यायालय को सीमित आधारों पर दिनांक 24.01.2022 के आदेश की वैधता पर विचार करना है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के लिए उपलब्ध हैं क्योंकि दिनांक 24.01.2022 के आदेश का दिनांक 30.09.2022 के आदेश में विलय नहीं हुआ है।

6. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता एक करदाता होने का दावा करता है और उसके पास यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम के तहत वैध पंजीकरण है। यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता ने बिक्री और आवक आपूर्ति के प्रासंगिक दस्तावेज अपलोड किए थे और कानून के अनुसार इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा किया था, हालांकि, वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए, दिनांक 20.04.2018 को डिप्टी कमिश्नर (एसआईबी), वाणिज्य कर, गोरखपुर द्वारा एक निरीक्षण किया गया था और इस तरह किए गए निरीक्षण के अनुसरण में एक पंचनामा तैयार किया गया था। निरीक्षण रिपोर्ट अनुलग्नक सं. 2 और 3 के रूप में रिकॉर्ड पर है।

7. यह तर्क दिया गया है कि उक्त तलाशी और जब्ती के संदर्भ में, याचिकाकर्ता को

दिनांक 28.04.2018 को अधिनियम की धारा 70 के तहत समन जारी किया गया था, याचिकाकर्ता उक्त समन के अनुपालन में उपस्थित हुआ और जवाब भी दाखिल किया। इसके बाद, लगभग तीन साल बाद दिनांक 02.09.2021 को, याचिकाकर्ता को एसआईबी सर्वेक्षण रिपोर्ट के आधार पर यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 के तहत कारण बताओ नोटिस दिया गया। उक्त कारण बताओ नोटिस अनुलग्नक सं. 8 के रूप में रिकॉर्ड पर है। उक्त कारण बताओ नोटिस के साथ, किसी भी अवलंबित दस्तावेज का उल्लेख नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता को एसआईबी रिपोर्ट की एक प्रति भी नहीं दी गई थी। याचिकाकर्ता ने स्थगन की मांग की और एसआईबी रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रहा था, हालांकि, दिनांक 24.01.2022 को केवल उक्त एसआईबी रिपोर्ट (अनुलग्नक सं. 9) के आधार पर एक पक्षीय आदेश पारित किया गया।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि दिनांक 02.09.20221 को याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई पूरी कार्यवाही एसआईबी रिपोर्ट पर आधारित थी और एसआईबी रिपोर्ट की प्रति दिए बिना याचिकाकर्ता कारण बताओ नोटिस का जवाब दाखिल करने की स्थिति में नहीं था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दिनांक 24.01.2022 का आदेश पूरी तरह से एसआईबी रिपोर्ट पर आधारित एक एकपक्षीय आदेश है और विभाग द्वारा किसी भी साक्ष्य के माध्यम से इसकी पुष्टि करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यदि तर्क के लिए यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि एसआईबी द्वारा किए गए सर्वेक्षण में सामग्रियों की रिकॉर्डिंग में कुछ विसंगति थी, तो भी विभाग के लिए यह स्थापित करना आवश्यक है कि वह यह सिद्ध करे कि आपूर्ति पर कर का भुगतान नहीं किया गया था, जिसकी किसी साक्ष्य द्वारा चाहे उक्त माल के क्रेता द्वारा साक्ष्य के रूप में या अन्यथा प्रस्तुत करना होगा।

9. उन्होंने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए तर्क दिया है कि यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 7 के अनुसार माल की आपूर्ति पर जी.एस.टी. देय होती है और कर के भुगतान का समय यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 12 और 13 द्वारा शासित है और माल की आपूर्ति का मूल्यांकन यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 15 के अनुसार किया जाना चाहिए, जो निस्संदेह नहीं किया गया है जैसा कि दिनांक 24.01.2022 के आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है। उनका तर्क है कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जिस दस्तावेज़ के आधार पर आदेश पारित किया जाना चाहिए, उसे करदाता को प्रदान किया जाना चाहिए और इसका कोई भी गैर-अनुपालन कानून की दृष्टि से आदेश को गलत ठहराएगा और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का भी उल्लंघन करेगा। उन्होंने अंत में तर्क दिया कि अनुचित रिटर्न केवल यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 61(3) के आलोक में अधिनियम की धारा 74 के तहत कार्यवाही शुरू करने का अधिकार विभाग को देता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि किसी भी मामले में याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अधिकार नहीं

दिया गया, जो कि यू.पी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 75(4) के तहत अनिवार्य आवश्यकता है। एस.आई.बी. रिपोर्ट न दिए जाने के संबंध में विशेष आरोप रिट याचिका के पैराग्राफ 19, 36 और 38 में लगाए गए हैं।

10. दूसरी ओर, स्थायी अधिवक्ता ने दिनांक 24.01.2022 के आदेश को उचित ठहराते हुए तर्क दिया कि एसआईबी ने याचिकाकर्ता के परिसर में की गई तलाशी और जब्ती में कुछ विसंगतियां पाई थीं और तलाशी, जब्ती और पंचनामा की एक प्रति याचिकाकर्ता के पास उपलब्ध है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि एसआईबी द्वारा की गई तलाशी और जब्ती के अनुसरण में याचिकाकर्ता को समन भी जारी किया गया था और याचिकाकर्ता ने उक्त समन का जवाब दाखिल किया था और उसके बाद एसआईबी ने अपनी रिपोर्ट आगे बढ़ा दी थी।

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की इस दलील के जवाब में कि एसआईबी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराई गई, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 28 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने कभी भी रिपोर्ट की प्रति की मांग नहीं की और वैसे भी, रिपोर्ट में उल्लिखित सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं का कारण बताओ नोटिस में ही उल्लेख किया गया था। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 43 में आगे दलील दी गई है कि एसआईबी द्वारा एसआईबी इकाई द्वारा जांच के दौरान पाए गए प्रतिकूल तथ्यों के आधार पर रिपोर्ट भेजी गई थी और एसआईबी रिपोर्ट में सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं का कारण बताओ नोटिस में उल्लेख किया गया था।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की अन्य दलीलों के संबंध में, प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ 42 में विशेष रूप से कहा गया है कि चूंकि सर्वेक्षण के समय एसआईबी द्वारा पाए गए स्टॉक को याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापित किया गया था और व्यापारी द्वारा लेखा पुस्तकों से स्टॉक में भिन्नता के कारण, स्टॉक को "अभिसप्त खरीद" के रूप में माना गया है। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 44 में आगे दलील दी गई है कि शुल्क का निर्धारण एसआईबी इकाई द्वारा असत्यापित अभिलेखों और स्टॉक के आधार पर किया गया था, जिसने सत्यापन के आधार पर रिपोर्ट तैयार की है न कि प्रत्यक्ष आकलन के आधार पर और इस प्रकार, उक्त आधार पर, नियमों के अनुसार मांग बनाई गई है।

13. यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को सुनवाई के लिए कई उचित अवसर प्रदान किए गए लेकिन कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया, जिसके कारण एकपक्षीय आदेश पारित किया गया।

14. उपर्युक्त दलीलों के आलोक में, यह बात सामने आती है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ दिनांक 24.01.2022 को एकपक्षीय आदेश पारित किया गया था, उक्त आदेश पारित करने का आधार केवल एसआईबी रिपोर्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया है और

अनुवादित

न ही दिनांक 24.01.2022 के आदेश में इसका उल्लेख किया गया है।

15. अधिनियम की योजना के अनुसार, अधिनियम की धारा 67 के आधार पर तलाशी और जब्ती की शक्ति प्रदान की गई है और अधिनियम की धारा 61 के अनुसार दाखिल रिटर्न की जांच की शक्ति सम्यक प्राधिकारी को प्रदान की जाती है। उक्त धाराएं 61 और 67 दोनों ही अधिनियम की धारा 73 या धारा 74, जैसा भी मामला हो, के तहत कार्यवाही शुरू करने की दिशा में कदम हैं। वे अपने आप में कर चोरी का निष्कर्ष निकालने के लिए कोई आधार नहीं बनाते हैं, जिसे अधिनियम की धारा 73 और धारा 74, जैसा भी मामला हो, के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके स्थापित किया जाना चाहिए। धारा 74 अपने सामान्य अर्थ में धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या कर चोरी के इरादे से तथ्यों को छिपाने के कारण आपूर्ति पर कर का भुगतान न करने या इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत लाभ उठाने का आकलन करने की शक्ति प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 61 के तहत रिटर्न की जांच या अधिनियम की धारा 67 के तहत किए गए निरीक्षण के परिणाम के बावजूद, कर के कम भुगतान या इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत लाभ उठाने का आकलन करने का भार अभी भी विभाग पर है जिसे विभाग द्वारा ही पूरा किया जाना चाहिए।

16. कर का भुगतान न करने की गणना और आकलन करने के लिए, यह आवश्यक है कि करदाता द्वारा की गई कर योग्य आपूर्ति और कर का भुगतान न करने के संबंध में विभाग द्वारा प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएं, जो कि अधिनियम की धारा 13 के तहत निर्दिष्ट आपूर्ति के समय किया जाना आवश्यक है। विभाग पर यह भी दायित्व होता है कि वह उन वस्तुओं पर कर योग्य आपूर्ति के मूल्य की गणना करे, जिन पर यह आरोप लगाया गया है कि कर का भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या कम लगाया गया है। इसके अलावा, विभाग पर यह स्थापित करने का दायित्व होता है कि उक्त भुगतान न किया जाना धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छिपाने के कारण हुआ था। कर का आकलन करने और उसे लगाने के लिए केवल निरीक्षण की रिपोर्ट और रिटर्न की जांच में विसंगतियां ही पर्याप्त नहीं हैं, उक्त विसंगतियां, भले ही विभाग द्वारा देखी गई हों, उन्हें साक्ष्य के रूप में या किसी अन्य रूप में सामग्री के साथ पुष्टि की जानी चाहिए, जिसे विभाग उचित समझे। बिना किसी पुष्टिकारी सामग्री के, केवल रिटर्न की जांच में पाई गई विसंगतियों या निरीक्षण के दौरान पाई गई विसंगतियों के आधार पर कर का आकलन करना पर्याप्त नहीं है।

17. अधिनियम की धारा 75(4) के अनुसार सुनवाई का अवसर देना भी विभाग का दायित्व है, जिसका पालन विभाग द्वारा किया जाना अनिवार्य है। यह भी समान रूप से स्थापित है कि जिस भी दस्तावेज का अवलंब लिया जाना हो, उसे कार्यवाही के समापन से पहले करदाता को प्रदान किया जाना चाहिए।

18. वर्तमान मामले में, दिनांक 24.01.2022 का आदेश स्पष्ट रूप से न्याय के प्राकृतिक सिद्धांत के अनुसार नहीं है, क्योंकि निश्चित रूप से एसआईबी रिपोर्ट, जो आधार है,

याचिकाकर्ता को कभी भी प्रदान नहीं की गई थी, अधिनियम की धारा 75(4) के तहत याचिकाकर्ता की कोई सुनवाई नहीं की गई थी और रिटर्न और निरीक्षण की जांच के समय एसआईबी द्वारा कथित रूप से पाई गई विसंगतियों की पुष्टि करने के लिए एसआईबी रिपोर्ट के अलावा कोई अन्य सामग्री प्रथम दृष्टया नहीं है।

19. इस प्रकार, तीनों आधारों पर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दिनांक 24.01.2022 का आक्षेपित आदेश अपोषणीय है और इसे रद्द किया जाता है। एसआईबी रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराने तथा याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने तथा जवाब दाखिल करने का अवसर देने के पश्चात नया आदेश पारित करने के लिए मामले को न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के पास वापस भेजा जाता है।

20. उक्त आदेश के अनुसार दोनों रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं।

(2023) 5 ILRA 1407

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रितिंकर दिवाकर,

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर,

विशेष अपील संख्या 136/2023

जिला बेसिक शिक्षा कार्यालय, गोरखपुर एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

प्रबंधन समिति करवल देवी कन्या लघु माध्यमिक विद्यालय करवल मझगवां, गोरखपुर एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री नागेन्द्र कुमार पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री इंद्र राज सिंह

ए. सिविल कानून - सेवा वाद - नियमावली में संशोधन - प्रभाव - निजी प्रबंधन द्वारा प्रशासित मान्यता प्राप्त एवं सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल की प्रधानाध्यापिका के पद के लिए चयन प्रक्रिया- उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अध्यापकों की भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियमावली, 1978 - 7वें संशोधन नियमावली द्वारा 1978 के नियमों में संशोधन, जो 04.12.2019 से प्रभावी हुआ - 7वां संशोधन नियमावली, जो 04.12.2019 से लागू हुआ, ने अशासकीय सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों के प्रबंधन से चयन की शक्ति वापस ले ली और इसे चयन बोर्ड में निहित कर दिया। यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि इनका पूर्वव्यापी संचालन होता है। मौजूदा नियमों के तहत शुरू की गई चयन प्रक्रिया नियमों में किसी भी बदलाव या संशोधन से अप्रभावित रहती है, जब तक कि संशोधित नियम, स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से, पूर्वव्यापी प्रभाव न डालें।

बी. वर्तमान मामले में, संस्था की प्रधानाध्यापिका का पद रिक्त था। बीएसए ने 08.03.2019 को अनुमति प्रदान की, जिससे संस्था को प्रधानाध्यापिका के पद का विज्ञापन करने और चयन की प्रक्रिया पूरी करने के लिए अधिकृत किया गया। प्रधानाध्यापिका का पद 09.03.2019 को विज्ञापित किया गया।

साक्षात्कार 10.06.2019 को आयोजित किए गए। प्रबंधन समिति द्वारा चयन प्रक्रिया पूरी की गई और 12.06.2019 को अनुमोदन के लिए कागजात बीएसए को भेजे गए। आयोजित: शासनादेश दिनांक 31.10.2019 के जारी होने से बहुत पहले, सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बाद, 1978 के असंशोधित नियमों के तहत चयन की प्रक्रिया शुरू की गई थी और 7वें संशोधन नियमों द्वारा 1978 के नियमों में 04.12.2019 से संशोधन के अनुसार, ऐसे वाद में नियुक्ति की प्रक्रिया तत्कालीन मौजूदा नियमों के तहत संरक्षित रहेगी और 7वें संशोधन नियम, जो बाद में अस्तित्व में आए, इसकी वैधता को प्रभावित नहीं करेंगे। 7वें संशोधन नियमों को अधिसूचित किए जाने से पहले चयन की प्रक्रिया पूरी हो गई थी। इसलिए, चयन की प्रक्रिया 1978 के नियमों द्वारा शासित होगी, जो 7वें संशोधन नियमों से अप्रभावित होगी। (पैरा 19, 21)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. प्रबंधन समिति, आदर्श जनता माध्यमिक विद्यालय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 10509/2019, दिनांक 04.03.2020
2. संतोष कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2015 (5) एडब्ल्यूसी 4719

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. यह उत्तर प्रदेश राज्य और बेसिक शिक्षा विभाग में उसके कर्मचारियों द्वारा एक अपील है, जिसमें एकल न्यायामूर्ति द्वारा रिट-ए संख्या-21411 वर्ष 2019 की अनुमति देते हुए पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.03.2022 की वैधता को चुनौती दी गई है।

2. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि एक जूनियर हाई स्कूल है, जिसका नाम करवाल देवी कन्या लघु माध्यमिक विद्यालय, करवाल, मझगवां, गोरखपुर है, जो एक मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल है, जिसे एक निजी प्रबंधन द्वारा प्रशासित किया जाता है। उपरोक्त जूनियर हाई स्कूल को इसके बाद 'संस्था' कहा जाएगा। संस्था के शिक्षकों की सेवाएं उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल)(शिक्षकों की भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1978 (संक्षेप में, 'नियम वर्ष 1978') के प्रावधानों द्वारा शासित होती हैं। संस्था के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन राज्य अनुदान पर वहन किया जाता है और उत्तर प्रदेश जूनियर हाई स्कूल (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1978 (संक्षेप के लिए, 'अधिनियम वर्ष 1978') के प्रावधानों के अनुसार भुगतान किया जाता है। पक्षों का मानना है कि संस्थान की प्रधानाध्यापिका का पद खाली हो गया था और संस्थान के प्रबंधन ने पद पर भर्ती करने के लिए 22.12.2018 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, गोरखपुर (संक्षेप में 'बी.एस.ए.') की अनुमति मांगी थी। बी.एस.ए. ने 05.01.2019 को अपेक्षित अनुमति प्रदान की, संस्था को प्रधानाध्यापिका के पद का विज्ञापन करने और

चयन की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए अधिकृत किया। तदनुसार, संस्थान की प्रधानाध्यापिका के पद का विज्ञापन देने के लिए दिनांक 08.01.2019 को दो दैनिक समाचार पत्रों में 'आज' और 'स्वतंत्र भारत' प्रकाशित किया गया था। उक्त विज्ञापन में, पद के लिए न्यूनतम योग्यता का कोई उल्लेख नहीं था, जिससे उस कारण से यह गलत हो गया। संस्थान के प्रबंधन ने उक्त विज्ञापन को रद्द करने और त्रुटि को सुधारने के लिए बी.एस.ए. से इसके स्थान पर एक नया विज्ञापन जारी करने की अनुमति मांगी।

3. बी.एस.ए. ने दिनांक 08.03.2019 के आदेश के तहत एक नए विज्ञापन को जारी करने की अनुमति दी। तदनुसार, संस्थान ने 09.03.2019 को प्रधानाध्यापिका के पद का नए सिरे से विज्ञापन दिया, इसे दैनिक समाचार पत्रों, 'आज' और 'स्वतंत्र भारत' में प्रकाशित किया। विज्ञापन ने 25.03.2019 तक संस्थान की हेडमिस्ट्रेस के पद के लिए पात्र और योग्य उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए थे, जिसमें यह दर्शाया गया था कि आवेदन पंजीकृत डाक द्वारा प्रस्तुत किए जाने थे। साक्षात्कार की तिथि 29.03.2019 को निर्धारित की गई थी। संस्था के प्रबंधक ने बी.एस.ए. को दिनांक 18.03.2019 को एक पत्र संबोधित किया, जिसमें प्रधानाध्यापिका का चयन करने के लिए बुलाई गई चयन समिति में भाग लेने के लिए एक नामांकित व्यक्ति के प्रावधान का अनुरोध किया गया था।

4. दिनांक 18.03.2019 के पत्र के जवाब में, बी.एस.ए. ने संस्था को दिनांक 26.03.2019 को एक ज्ञापन भेजा, जिसमें कहा गया था कि एक नामांकित व्यक्ति प्रदान करना संभव नहीं था क्योंकि विधान सभा के आगामी चुनावों के कारण आदर्श आचार संहिता लागू थी। तदनुसार, संस्थान ने साक्षात्कार की तारीख 29.03.2019 से 29.05.2019 तक स्थगित कर दी। आवेदन करने वाले सभी उम्मीदवारों को बदली हुई तारीख की जानकारी दे दी गई थी। बाद में, 16.05.2019 को, बी.एस.ए. को एक ज्ञापन संबोधित किया गया था जिसमें एक नामांकित व्यक्ति के प्रावधान के लिए अनुरोध किया गया था क्योंकि आदर्श आचार संहिता जल्द ही समाप्त होने वाली थी। साक्षात्कार को 10.06.2019 को फिर से निर्धारित करने के अनुरोध के साथ 25.05.2019 को एक अनुस्मारक भेजा गया था। बी.एस.ए. ने इस अवसर पर चयन समिति में बैठने के लिए एक नामित व्यक्ति प्रदान किया और दिनांक 01.06.2019 को एक आदेश जारी किया, जिसमें अरुण प्रताप सिंह, खंड शिक्षा अधिकारी, गागाहा, गोरखपुर को संस्थान की प्रधानाध्यापिका का चयन करने के लिए बुलाई गई चयन समिति में बी.एस.ए. के नामित के रूप में कार्य करने का निर्देश दिया गया। संस्था ने तीन सदस्यीय चयन समिति का गठन किया, जिसमें संस्थान के प्रबंधक, संस्था की प्रबंधन समिति के उपाध्यक्ष और बी.एस.ए. के नामित अरुण प्रताप सिंह शामिल थे।

5. साक्षात्कार पुनर्निर्धारित तिथि यानी 10.06.2019 को आयोजित किए गए। चयन समिति ने बैठक की और पात्र और योग्य उम्मीदवारों के साक्षात्कार आयोजित किए। सदस्यों ने व्यक्तिगत रूप से मूल्यांकन योग्यता के अनुसार प्रत्येक उम्मीदवार को अंक

प्रदान किए। चयन समिति के सभी सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित उम्मीदवारों की उपस्थिति रजिस्टर भी तैयार की गई थी। चयन के समापन पर, उपस्थित होने वाले सभी उम्मीदवारों की सापेक्ष योग्यता तैयार की गई थी। एक श्रीमती काजल सिंह को उनके लिए मूल्यांकन की गई उच्चतम योग्यता के कारण उम्मीदवारों में सबसे उपयुक्त पाया गया। उनके बाद श्रीमती अलका सिंह और श्रीमती इंद्रकला सिंह थीं, जिन्हें क्रम संख्या-2 और 3 पर रखा गया था। संस्था के प्रबंधक ने दिनांक 12.06.2019 को एक पत्र जारी किया, जिसमें चयन समिति के सदस्यों द्वारा मूल्यांकन की गई योग्यता के अनुसार उम्मीदवारों के नाम बी.एस.ए. को भेज दिए गए। प्रबंधक ने श्रीमती काजल सिंह के चयन के लिए बी.एस.ए. की स्वीकृति मांगी।

6. बी.एस.ए. ने दिनांक 04.07.2019 को एक आदेश पारित किया, जिसमें श्रीमती काजल सिंह के चयन को स्वीकृति देने से इनकार कर दिया गया। प्रबंधन, जो इस अपील के रिट याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी हैं, बी.एस.ए. द्वारा पारित दिनांक 11.07.2019 के आदेश से व्यथित होकर, रिट-ए संख्या-11919 वर्ष 2019 संस्थित करके इस न्यायालय में चले गए। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त याचिका में, इस न्यायालय के बी.एस.ए. को दिनांक 13.08.2019 के आदेश के तहत अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करने की आवश्यकता थी। अनुपालन में, बी.एस.ए. ने अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करते हुए कहा कि लिखित में दिनांक 07.06.2019 का कोई आदेश नहीं है, लेकिन अतिरिक्त मुख्य सचिव (बेसिक शिक्षा) द्वारा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से एक मौखिक निर्देश जारी किया गया था, जिसमें मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों में सहायक शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों/ प्रधानाध्यापिका की नियुक्ति को मंजूरी देने पर रोक लगाई गई थी। उपरोक्त रुख के मद्देनजर, इस न्यायालय ने दिनांक 26.08.2019 के आदेश के तहत बी.एस.ए. को निर्देश के साथ रिट-ए संख्या-11919 वर्ष 2019 का निपटारा किया, जिसमें संस्थान से संबंधित हेडमिस्ट्रेस के चयन को मंजूरी देने के लिए रिट-याचिकाकर्ताओं के दावे का फैसला करने का निर्देश दिया गया।

7. रिट-याचिकाकर्ता प्रबंधन ने इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या-11919 वर्ष 2019 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.08.2019 की प्रमाणित प्रति बी.एस.ए. को दिनांक 07.09.2019/09.09.2019 के प्रतिनिधित्व के साथ हेडमिस्ट्रेस के चयन की मंजूरी मांगी। चूंकि चयनित प्रधानाध्यापिका के अनुमोदन के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए रिट-याचिकाकर्ताओं ने इसे नियम वर्ष 1978 के नियम 10(5)(iii) के तहत डीम्ड अनुमोदन का मामला मानते हुए [जैसा कि यह उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूलों (जूनियर हाई स्कूल)(शिक्षकों की भर्ती और सेवा की शर्तें)(सातवें पुनरीक्षण) नियमों के प्रवर्तन से पहले था, 2019] (संक्षेप के लिए, '7वां पुनरीक्षण नियम'), श्रीमती काजल सिंह को दिनांक 10.10.2019 को नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए आगे बढ़े। श्रीमती काजल सिंह,

रिट-याचिकाकर्ता प्रबंधन द्वारा जारी नियुक्ति पत्र के अनुपालन में, 24.10.2019 को प्रधानाध्यापिका के रूप में संस्थान में शामिल हुईं। उक्त कार्रवाई के संबंध में एक सूचना संस्था के प्रबंधक द्वारा बी.एस.ए. को ज्ञापन दिनांक 30.10.2019 के माध्यम से अग्रेषित की गई थी। इस स्तर पर, बी.एस.ए. ने दिनांक 06.11.2019 को एक आदेश पारित किया, जिसमें प्रधानाध्यापिका की नियुक्ति को मंजूरी देने के लिए संस्थान के दावे को खारिज कर दिया गया।

8. तदनुसार, संस्था ने बी.एस.ए. द्वारा पारित दिनांक 06.11.2019 के आदेश को चुनौती देते हुए रिट-ए संख्या-21411 वर्ष 2019 दायर की। साथ ही 31.10.2019 के सरकारी आदेश को चुनौती दी, जिसके आधार पर बी.एस.ए. ने पूर्व आदेश पारित किया था। बी.एस.ए. को प्रधानाध्यापिका की नियुक्ति की स्वीकृति देने पर विचार करने का निर्देश देते हुए एक परमादेश भी प्रार्थना की गई। 23.03.2022 को एकल न्यायामूर्ति के समक्ष हलफनामों के आदान-प्रदान के बाद रिट याचिका सुनवाई के लिए आई, जिन्होंने रिट याचिका की अनुमति दी और बी.एस.ए. द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.11.2019 को रद्द कर दिया। श्रीमती काजल सिंह की दो सप्ताह की अवधि के भीतर संस्था की प्रधानाध्यापिका के रूप में नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान करने के लिए बी.एस.ए. को एक परमादेश जारी किया गया था। यह भी आदेश दिया गया कि श्रीमती काजल सिंह 10.10.2019 से, यानी बी.एस.ए. को संस्थान के प्रबंधन द्वारा अनुमोदन के लिए कागजात जमा करने की तारीख के एक महीने के बाद से अपने वेतन और अन्य सेवा लाभों के लिए हकदार होंगी।

9. एकल न्यायामूर्ति के निर्णय से व्यथित उत्तर प्रदेश राज्य और बेसिक शिक्षा विभाग में उसके दो अधिकारी, जो रिट याचिका के प्रतिपक्षी हैं, ने न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत ये अपील दायर की है।

10. अपीलकर्ताओं की ओर से पेश स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादियों की ओर से पेश अधिवक्ता श्री इंद्र राज सिंह को सुना।

11. रिट याचिका की अनुमति देते समय एकल न्यायामूर्ति की राय थी कि 31.10.2019 का सरकारी आदेश उस तारीख से प्रभावी हुआ, लेकिन प्रबंधन समिति द्वारा चयन प्रक्रिया पूरी कर ली गई और कागजात 12.06.2019 को बी.एस.ए. को भेज दिए गए। विद्वान न्यायामूर्ति ने रिट-ए संख्या-10509 वर्ष 2019, प्रबंधन समिति, आदर्श जनता माध्यमिक विद्यालय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया, जिसमें 04.03.2020 को फैसला सुनाया गया था, जिसमें कहा गया था कि चयन की प्रक्रिया 31.10.2019 के सरकारी आदेश और 7वें पुनरीक्षण नियमों द्वारा नियम वर्ष 1978 में पुनरीक्षण के जारी होने से बहुत पहले शुरू की जा रही थी। ऐसे मामले में नियुक्ति की प्रक्रिया तत्कालीन मौजूदा नियमों के तहत संरक्षित रहेगी। आदर्श जनता माध्यमिक विद्यालय (उपरोक्त) की प्रबंधन समिति में इस न्यायालय द्वारा यह राय दी गई थी कि चयन की प्रक्रिया जो सक्षम

प्राधिकारी की उचित अनुमति के बाद असंशोधित नियम वर्ष 1978 के तहत शुरू की गई थी, उस प्रक्रिया और बाद में जारी सरकारी आदेश या 7 वें पुनरीक्षण नियमों द्वारा शासित होती रहेगी, जो बाद में अस्तित्व में आई। इसकी वैधता को प्रभावित नहीं करेगा।

12. न्यायमूर्ति ने तर्क के समर्थन में, प्रबंधन समिति, आदर्श जनता माध्यमिक विद्यालय में एकल न्यायामूर्ति ने संतोष कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2015 (5) एडब्ल्यूसी 4719 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा किया। यह कहना उचित होगा कि एकल न्यायामूर्ति ने संतोष कुमार सिंह (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले के बारे में प्रबंधन समिति, आदर्श जनता माध्यमिक विद्यालय में क्या ध्यान दिया:

"इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने 22.7.2015 को विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या-215 वर्ष 2015 (संतोष कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में निर्णय दिया था कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-13 वर्ष 1999 की धारा 33-ई द्वारा कठिनाइयों को हटाने के आदेश को रद्द करने से पहले विज्ञापन जारी करके नियुक्ति की प्रक्रिया शुरू की गई थी और ऐसा अवधारित किया गया था जो निम्नानुसार है:-

"हम निम्नलिखित शब्दों में संदर्भ का उत्तर देते हैं:

(ए) 25 जनवरी 1999 से उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-13 वर्ष 1999 की धारा 33-ई द्वारा कठिनाइयों को हटाने के आदेशों को रद्द करने के बावजूद, अल्पकालिक रिक्तियों के खिलाफ नियुक्ति करने के लिए प्रबंधन समिति की शक्ति, जहां नियुक्ति की प्रक्रिया 25 जनवरी 1999 से पहले एक विज्ञापन के प्रकाशन द्वारा शुरू की गई थी, को संरक्षित किया जाना जारी रहेगा;

(ख) धारा 33-ङ के उपबंधों के प्रवर्तन पर, अल्पकालिक रिक्तियों के विरुद्ध तदर्थ नियुक्तियां करने की प्रबंधन समिति की शक्ति उस मामले में निरस्त नहीं मानी जाएगी जहां चयन की प्रक्रिया 25 जनवरी, 1999 से पहले शुरू की गई थी;

(ग) इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16-ङ के तहत प्रबंधन समिति को किसी पदधारी को छह माह से अनधिक अवधि के लिए छुट्टी मंजूर किए जाने अथवा शैक्षिक सत्र के दौरान किसी पदधारी की मृत्यु, समाप्ति अथवा अन्यथा होने की स्थिति में हुई अस्थायी रिक्ति के विरुद्ध नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त है। धारा 16-ङ की उपधारा (11) के अधीन की गई नियुक्ति, जैसा कि परंतुक में उपबंधित है, किसी भी दशा में, शैक्षिक सत्र के अंत से आगे जारी नहीं रहेगी, जिसके दौरान नियुक्ति की गई थी; और

(घ) सुभाष चन्द्र त्रिपाठी (उपरोक्त) मामले में खंडपीठ के निर्णय की पुष्टि ए.ए. कैल्टन (उपरोक्त) मामले में निर्णय की सही व्याख्या निर्धारित करने के रूप में की जाती है।

पूर्ण पीठ के संदर्भ का उत्तर पूर्वोक्त शब्दों में दिया गया है। विशेष अपील अब इस फैसले के आलोक में निपटान के लिए उपयुक्त पीठ के समक्ष रखी जाएगी। (महत्त्व सन्निविष्ट)

13. हमारे सामने, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या-6 में किए गए कथनों के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि 07.06.2019 को, अतिरिक्त मुख्य सचिव (बेसिक शिक्षा), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ने वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से सभी अधिकारियों को गैर-सरकारी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों में प्रधानाध्यापकों और सहायक शिक्षकों के पदों को भरने के लिए चयन रोकने का निर्देश दिया था। जाहिर है, यह अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा जारी एक मौखिक निर्देश था। यह बताया गया है कि यह निर्देश नियम वर्ष 1978 के विचाराधीन संशोधनों की प्रत्याशा में जारी किया गया था। तदनुसार, राज्य सरकार ने दिनांक 26.09.2019 और 31.10.2019 के आदेशों के तहत गैर-सरकारी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों में प्रधानाध्यापकों और सहायक शिक्षकों के चयन और नियुक्ति पर प्रतिबंध लगा दिया। उन आदेशों की प्रतियां, जवाबी हलफनामे के लिए, अनुपत्र सीए-1 के रूप में संलग्न की गई हैं, जिस पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था।

14. हमने दिनांक 26.09.2019 और 31.10.2019 के दोनों शासनादेशों का अवलोकन किया है। एकल न्यायामूर्ति ने 31.10.2019 के सरकारी आदेश की वैधता पर गौर नहीं किया है, क्योंकि उनकी राय में, और हम सही सोचते हैं, उक्त सरकारी आदेश इस मामले में हेडमिस्ट्रेस के पद पर नियुक्ति करने के लिए संस्थान के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगा। इधर, अपर मुख्य सचिव (बेसिक शिक्षा) के मौखिक आदेश की तारीख से बहुत पहले चयन प्रक्रिया शुरू हो गई, जिसमें गैर-सरकारी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों के सहायक शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों के पदों से संबंधित सभी चयन प्रक्रियाओं को रोकने का निर्देश दिया गया। उक्त निर्देश 07.06.2019 को जारी किया गया था।

15. हम इस आधार पर मामले की जांच करने के लिए आगे बढ़ेंगे कि इस तरह के निर्देश अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा जारी किए जा सकते हैं, और देखें कि क्या यह नियुक्तियां करने के संस्थान के अधिकार को प्रभावित करता है। हमारी राय में, ऐसा नहीं है। इसका कारण यह है कि चयन की प्रक्रिया, जिसे बी.एस.ए. के अनुमोदन के साथ शुरू किया गया था, जिसे 05.01.2019 को दी गई थी, को नियम वर्ष 1978 के अनुसार पूरा करना होगा, जैसा कि उस समय लागू था जब चयन प्रक्रिया शुरू की गई थी। बी.एस.ए. के आदेश के अनुसार, संस्थान को हेडमिस्ट्रेस के पद को भरने की अनुमति देने वाला विज्ञापन, पहली बार 08.01.2019 को प्रकाशित किया गया था। इसके बाद बी.एस.ए. द्वारा 08.03.2019 को संस्थान के प्रबंधन के अनुरोध पर विज्ञापन में तकनीकी दोष को दूर करने के लिए एक नया विज्ञापन जारी करने की अनुमति के साथ इसे रद्द कर दिया गया था। संशोधित विज्ञापन 09.03.2019 को प्रकाशित किया गया था। साक्षात्कार शुरू में 29 मार्च, 2019 के लिए निर्धारित किए गए थे, लेकिन अंततः 10.06.2019 को बी.एस.ए. ने चयन समिति में बैठने के लिए अपने उम्मीदवार को भेजने के साथ अवधारित किया। चयन समिति की कार्यवाही से संबंधित कागजात बी.एस.ए. को

12.06.2019 को प्रस्तुत किए गए थे। इस प्रकार पूरी भर्ती प्रक्रिया में से, अतिरिक्त मुख्य सचिव के मौखिक आदेश दिनांक 07.06.2019 को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से नियुक्तियों को रोकने के लिए किए गए थे, अर्थात, चयन समिति द्वारा 10.06.2019 को आयोजित साक्षात्कार और 12.06.2019 को बी.एस.ए. को चयन समिति की कार्यवाही प्रस्तुत करने के बाद केवल दो घटनाएं हुईं। उपरोक्त दो घटनाओं के अलावा, पूरी भर्ती प्रक्रिया अतिरिक्त मुख्य सचिव के मौखिक 'रोक' आदेश से बहुत पहले शुरू की गई थी।

16. मौखिक आदेशों के बाद दिनांक 26.09.2019 और 31.10.2019 के शासनादेशों द्वारा गैर-सरकारी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों में प्रधानाध्यापकों/सहायक शिक्षकों के चयन और नियुक्ति पर राज्य सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाया गया था। बाद में, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972 (संक्षेप के लिए, 'अधिनियम वर्ष 1972') की धारा 19 (1) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, नियम वर्ष 1978 में पुनरीक्षण करते हुए 7 वें पुनरीक्षण नियमों को अधिसूचित करते हुए दिनांक 04.12.2019 को एक अधिसूचना जारी की और 04.12.2019 से लागू 7वें पुनरीक्षण नियमों ने गैर-सरकारी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों के प्रबंधन से चयन की शक्ति वापस ले ली, इसे अंतिम उल्लिखित नियमों के तहत गठित चयन बोर्ड में निहित कर दिया। इस प्रकार देखा गया, अतिरिक्त मुख्य सचिव का मौखिक आदेश, जिसमें बेसिक शिक्षा विभाग के अधिकारियों को निजी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों में सहायक शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों के चल रहे चयन और नियुक्ति को रोकने के लिए कहा गया था और साथ ही 26.09.2019 और 31.10.2019 के दो शासनादेश तत्कालीन प्रस्तावित 7 वें पुनरीक्षण नियमों के लागू होने की प्रत्याशा में किए गए प्रयास थे। मौखिक आदेशों और सरकारी आदेशों में निजी सहायता प्राप्त जूनियर हाई स्कूलों में हेडमास्टरों और सहायक शिक्षकों के सभी चल रहे चयन और नियुक्ति को रोककर इसे प्राप्त करने की मांग की गई, जब तक कि 7 वें पुनरीक्षण नियमों को अधिसूचित नहीं किया गया था। तदनुसार, हम यह भी जांच करने का प्रस्ताव करते हैं कि क्या 07.06.2019 के मौखिक आदेश के अलावा, दिनांक 26.09.2019 और 31.10.2019 के दो सरकारी आदेश उन उपायों में से किसी से पहले शुरू की गई चल रही मौखिक या लिखित चयन प्रक्रिया को कानूनी रूप से रोक सकते हैं।

17. जैसा कि पहले से ही अतिरिक्त मुख्य सचिव के मौखिक आदेशों के संबंध में देखा गया है, यह मानते हुए कि इनका चयन करने और नियुक्ति करने के संस्थान के अधिकार पर बाध्यकारी प्रभाव था, इस मामले में चयन और नियुक्ति को प्रभावित नहीं करेगा, क्योंकि प्रक्रिया अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा मौखिक आदेश जारी किए जाने से पहले ही शुरू हो चुकी थी। इसी तरह, दिनांक 26.09.2019 और 31.10.2019 के दो सरकारी आदेशों का भी मामला है, जो दोनों संस्थान के प्रधानाध्यापिका के पद से संबंधित चयन प्रक्रिया शुरू होने के

बहुत बाद जारी किए गए थे। बल्कि, दो सरकारी आदेश जारी होने से बहुत पहले ही पूरी प्रक्रिया पूरी कर ली गई थी।

18. ये सिद्धांत, कि चयन के नियमों में बदलाव को भविष्यलक्षी रूप से लागू किया जा सकता है, लेकिन असंशोधित या पुराने नियमों के तहत पहले से शुरू की गई चयन प्रक्रिया को प्रभावित नहीं किया जा सकता है, संतोष कुमार सिंह (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा बड़े पैमाने पर जांच की गई थी। संतोष कुमार सिंह में, यह पूर्ण पीठ के द्वारा अवधारित किया गया था:

"9. एए कैल्टन (उपरोक्त) में निर्णय, इसलिए, इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकरण है कि एक बार चयन की प्रक्रिया शुरू हो जाने के बाद, कानून का एक बाद का पुनरीक्षण जिसके द्वारा नियुक्ति करने की शक्ति विशेष रूप से एक वैधानिक प्राधिकरण से छीन ली गई है - उस मामले में निदेशक से - लंबित चयन प्रक्रिया पर कोई आवेदन नहीं होगा जिसे कानून द्वारा शासित किया जाना चाहिए क्योंकि यह चयन प्रक्रिया के दौरान चल रहा था या शुरू किया गया था। निस्संदेह, विधायिका के पास भूतलक्षी प्रभाव से कानून बनाने की शक्ति है, लेकिन जब तक कानून को आवश्यक निहितार्थ द्वारा स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी नहीं बनाया जाता है, तब तक चयन प्रक्रिया शुरू होने के समय कानून की स्थिति वैसी ही रहेगी जैसी वह चयन प्रक्रिया शुरू की गई थी।

10. उदाहरण के लिए, कुछ अन्य संदर्भों में, उच्चतम न्यायालय ने माना है कि एक चयन प्रक्रिया को उस तारीख को अस्तित्व में नियमों और सरकारी आदेशों द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए जिस तारीख को प्रक्रिया शुरू की गई है। एनटी बेविन कट्टी बनाम कर्नाटक लोक सेवा आयोग, (1990) 3 एस.सी.सी. 157 में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"... जहां विज्ञापन जारी करके चयन के लिए कार्यवाही शुरू की जाती है, चयन को सामान्य रूप से तत्कालीन मौजूदा नियमों और सरकारी आदेशों द्वारा विनियमित किया जाना चाहिए और चयन लंबित नियमों या सरकारी आदेश के किसी भी पुनरीक्षण से चयन प्राधिकारी या लोक सेवा आयोग द्वारा किए गए चयन की वैधता प्रभावित नहीं होनी चाहिए जब तक कि संशोधित नियम या संशोधित सरकारी आदेश, अपनी सांविधिक शक्ति का प्रयोग करते हुए या तो व्यक्त प्रावधान द्वारा या आवश्यक आशय से जारी किया गया है, यह दर्शाता है कि संशोधित नियम लंबित चयनों पर लागू होंगे। पी. महेंद्रन बनाम कर्नाटक राज्य, (1990) 1 एस.सी.सी. 411: जेटी (1989) 4 एस.सी. 459 देखें।

11. बिहार राज्य बनाम मिथिलेश कुमार, (2010) 13 एस.सी.सी. 467 में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भर्ती के मानदंडों में बदलाव भविष्यलक्षी रूप से लागू किया जा सकता है और उन लोगों को प्रभावित नहीं कर सकता है जिन्हें चयन प्रक्रिया शुरू होने के समय लागू मानदंडों का पालन करने के बाद नियुक्ति के लिए अनुशंसित होने के लिए चुना गया है। इसके विपरीत ये प्रस्तुत करना शंकरासन दास बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1612 में निर्णय पर आधारित था, इस आशय के लिए कि केवल एक चयन पैनल में शामिल करने से नियुक्ति का

अपरिहार्य अधिकार नहीं मिलता है। उच्चतम न्यायालय ने कानून में स्थिति को इस प्रकार समझाया:

"प्रतिपक्षी की ओर से जिन निर्णयों का हवाला दिया गया है, उन्होंने स्पष्ट रूप से नियमों की प्रयोज्यता के संबंध में कानून की व्याख्या की है जो चयन प्रक्रिया के दौरान संशोधित और/या बदल दिए गए हैं। वे सभी एक स्वर में कहते हैं कि चयन की प्रक्रिया शुरू होने की तारीख को मौजूदा मानदंड या नियम इस तरह के चयन को नियंत्रित करेंगे और ऐसे मानदंडों में कोई भी बदलाव सतत प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करेगा, जब तक कि विशेष रूप से इसे पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जाता है ... हालांकि कोई व्यक्ति केवल चयन के आधार पर नियुक्ति का अपरिहार्य अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है, लेकिन इस मामले में तथ्य अलग है क्योंकि प्रतिपक्षी के दावे को चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद नीति में बदलाव से नकार दिया गया था।

12. आंध्र प्रदेश सरकार बनाम श्री सेवादास विद्यामंदिर हाई स्कूल, (2011) 9 एस.सी.सी. 613 में बाद के फैसले में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अनुदान सहायता पदों पर भर्ती पर प्रतिबंध तब जारी किया गया था जब प्रश्नगत स्कूल को राज्य द्वारा रिक्त पदों को भरने की अनुमति दी गई थी। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इन परिस्थितियों में, राज्य यह तर्क नहीं दे सकता है कि युक्तिकरण की प्रक्रिया, जिसे बाद में शुरू किया गया था, निजी सहायता प्राप्त स्कूलों पर भी लागू होगी, जहां भर्ती की प्रक्रिया पहले से दी गई मंजूरी के अनुसार पहले ही शुरू की जा चुकी है।

13. ए.ए. कॉटन (उपरोक्त) में निर्णय हाल ही में कुलवंत सिंह बनाम दया राम, (2015) 3 एस.सी.सी. 177 में उच्चतम न्यायालय के एक फैसले में इस सिद्धांत के संदर्भ में किया गया है कि नियमों के पुनरीक्षण से पहले हुई रिक्तियां असंशोधित नियमों द्वारा शासित होंगी न कि संशोधित नियमों द्वारा जहां संशोधित नियमों को पूर्वव्यापी रूप से या निहितार्थ द्वारा नहीं बनाया गया है।

14. सुभाष चंद्र त्रिपाठी के मामले में डिवीजन बेंच का फैसला ए.ए. कॉटन (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर आधारित था। संदर्भित निर्णय में, डिवीजन बेंच ने शंकरसन दास (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के एक फैसले के आधार पर उस दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदेह किया है। खण्ड न्यायपीठ के विचार में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि चयन से भी नियुक्ति का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। इसलिए, खण्ड न्यायपीठ द्वारा यह विचार किया गया है कि चयन की प्रक्रिया शुरू करने मात्र से संबंधित प्राधिकारी द्वारा नियुक्ति की शक्ति को बनाए नहीं रखा जाएगा, भले ही इस मामले में धारा 33-ङ के अंतर्गत नियुक्ति की शक्ति को सांविधिक उपबंध के अंतर्गत वापस ले लिया गया हो। उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के शंकरासन दास (उपरोक्त) में दिए गए फैसले में इस मुद्दे पर विचार किया गया कि क्या एक उम्मीदवार जिसका नाम प्रतियोगी

अनुवादित

परीक्षा के आधार पर मेरिट सूची में आता है, सरकारी कर्मचारी के रूप में नियुक्ति का अपरिहार्य अधिकार केवल इसलिए प्राप्त करता है क्योंकि रिक्ति मौजूद है। उस संदर्भ में, उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"7. यह कहना सही नहीं है कि यदि नियुक्ति के लिए रिक्तियों की संख्या अधिसूचित की जाती है और पर्याप्त संख्या में उम्मीदवार फिट पाए जाते हैं, तो सफल उम्मीदवारों को नियुक्ति के लिए एक अपरिहार्य अधिकार प्राप्त होता है जिसे वैध रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आमतौर पर अधिसूचना केवल योग्य उम्मीदवारों को भर्ती के लिए आवेदन करने के लिए निमंत्रण के समान होती है और उनके चयन पर उन्हें पद का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। जब तक संगत भर्ती नियमों में ऐसा संकेत न दिया गया हो, सभी या किसी भी रिक्तियों को भरने के लिए राज्य का कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि राज्य के पास मनमाने तरीके से कार्य करने का लाइसेंस है। रिक्तियों को न भरने का निर्णय उचित कारणों से सदाशयी रूप से लिया जाना है। और यदि रिक्तियों या उनमें से किसी को भरा जाता है, तो राज्य उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता का सम्मान करने के लिए बाध्य है, जैसा कि भर्ती परीक्षा में परिलक्षित होता है, और किसी भी भेदभाव की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस न्यायालय द्वारा इस सही स्थिति का लगातार पालन किया गया है, और हमें हरियाणा राज्य बनाम सुभाष चंद्र मारवाहा, (1974) 1 एस.सी.आर 165: (ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 2216), मिस नीलिम शांगला बनाम हरियाणा राज्य, (1986) 4 एस.सी.सी. 268: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 169, या जितेंद्र कुमार बनाम पंजाब राज्य, (1985) 1 एस.सी.आर 899: ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1850 के निर्णयों में कुछ भी मतभेद करने लायक नहीं मिलता।

15. उच्चतम न्यायालय की इन टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि शंकरासन दास (उपरोक्त) में मुद्दा पूरी तरह से अलग था। एक उम्मीदवार जो एक चयन सूची में है, उसे केवल इसलिए नियुक्ति का अपरिहार्य अधिकार नहीं है क्योंकि एक रिक्ति मौजूद है। वर्तमान मामले में यह मुद्दा नहीं है। वर्तमान मामले में मुद्दा यह है कि क्या चयन की एक प्रक्रिया जो धारा 33-ई के सम्मिलन से पहले शुरू की गई थी, जिसने कठिनाइयों को दूर करने के आदेशों को रद्द कर देने वाले कानून द्वारा शासित होना चाहिए क्योंकि यह उस समय लागू था जब विज्ञापन जारी करके प्रक्रिया शुरू की गई थी। स्पष्ट रूप से, मुद्दा किसी विशेष उम्मीदवार की नियुक्ति के अधिकार के बारे में नहीं है, बल्कि यह है कि क्या चयन प्रक्रिया कानून द्वारा शासित होनी चाहिए जैसा कि चयन प्रक्रिया शुरू होने के समय थी। इस पहलू पर, ए.ए. कॉटन (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के फैसले में कानून की सुसंगत स्थिति निर्धारित की गई है।

19. संतोष कुमार सिंह में पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए उत्तरों को इस निर्णय में बहुत पहले संदर्भित किया गया है और ऊपर संदर्भित न्यायमूर्ति की टिप्पणियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौजूदा नियमों के तहत शुरू की गई चयन प्रक्रिया नियमों में किसी भी बदलाव या पुनरीक्षण से अप्रभावित रहती है, जब तक

कि संशोधित नियम, स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा पूर्वव्यापी प्रभाव से है।

20. दिलचस्प बात यह है कि इस मामले में, संदर्भ के तहत अतिरिक्त मुख्य सचिव के मौखिक आदेश या इस मामले में जारी किए गए दो सरकारी आदेश मौजूदा नियमों अर्थात नियम वर्ष 1978 में किसी भी प्रकार का पुनरीक्षण नहीं हैं; संशोधित नियमों के लागू होने तक चयन प्रक्रियाओं को रोकने के लिए ये सिर्फ अंतरिम उपाय थे। यदि संशोधित नियम, अर्थात 7वां पुनरीक्षण नियम, जो 04.12.2019 से लागू किया गया था, पहले से शुरू की गई चयन प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करता है, तो संशोधित नियमों की शुरूआत से पहले अंतराल में किए गए उपायों को पहले से शुरू की गई चयन प्रक्रिया पर भी लागू नहीं किया जाएगा। यह संस्थान की प्रधानाध्यापिका के चयन के मामले में है।

21. सातवें पुनरीक्षण नियमों के अवलोकन से पता चलता है कि नियम 1 के उप-नियम (2) के आधार पर इन नियमों को राजपत्र में उनके प्रकाशन की तारीख से प्रभावी होने के लिए ठहराया गया है। संशोधित नियमों में स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि ये पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू हैं। इसलिए, संतोष कुमार सिंह में पूर्ण पीठ द्वारा दिया गया सिद्धांत, संस्थान के प्रधानाध्यापिका के पद के लिए चयन की प्रक्रिया को बचाने के लिए लागू होगा, जिसे 7 वें पुनरीक्षण नियमों के लागू होने से बहुत पहले शुरू किया गया था। वास्तव में, चयन की प्रक्रिया, 7 वें पुनरीक्षण नियमों को अधिसूचित किए जाने से पहले पूरी हो गई थी। इसलिए, चयन की प्रक्रिया नियम वर्ष 1978 द्वारा शासित होगी, जो 7 वें पुनरीक्षण नियमों से अप्रभावित रहेगी।

22. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, यदि 7वें पुनरीक्षण नियम संस्थान के प्रधानाध्यापिका के पद के लिए चयन प्रक्रिया को बहुत पहले शुरू नहीं करते हैं, तो राज्य सरकार द्वारा 7वें पुनरीक्षण नियमों के तहत नई व्यवस्था के आवेदन को सुविधाजनक बनाने के लिए अंतराल में किए गए उपाय, चयन प्रक्रिया की वैधता को भी प्रभावित नहीं करेंगे। आखिरकार, चयन पर प्रतिबंध, यह मानते हुए कि यह अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा मौखिक रूप से लगाया जा सकता है, 7 वें पुनरीक्षण नियमों के प्रवर्तन के लंबित होने तक, चयन प्रक्रिया की वैधता को प्रभावित नहीं करेगा, क्योंकि प्रतिबंध केवल 7 वें पुनरीक्षण नियमों की सहायता में एक अंतरिम उपाय था। और यदि यह मान लिया जाए कि प्रतिबंध फिर भी चल रही चयन प्रक्रिया को रोक देगा, जो जब इसे अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा मौखिक रूप से जारी किया गया था, तो पहले से ही पूरा होने के करीब है, तो भर्ती प्रक्रिया को, 7 वें पुनरीक्षण नियमों के लागू होने पर अपने तार्किक निष्कर्ष पर ले जाना होगा क्योंकि 7 वें पुनरीक्षण नियम इसे प्रभावित नहीं करेंगे। दिनांक 26.09.2019 और 31.10.2019 के दो शासनादेश भी उस समय विचारित 7वें पुनरीक्षण नियमों की सहायता में

जारी किए गए उपायों की प्रकृति के हैं। उन आदेशों के तहत लगाया गया प्रतिबंध अतिरिक्त मुख्य सचिव के मौखिक आदेशों के समान प्रभावी होगा, जो प्रतिबंध लगाने के लिए पहले जारी किए गए थे। प्रधानाध्यापिका के पद से संबंधित चयन प्रक्रिया अप्रभावित रहेगी।

23. किसी अन्य बिंदु पर बल नहीं दिया गया।

24. ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, हमें निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

25. अपील विफल होती है और खारिज की जाती है।

26. लागत आसान।

(2023) 5 ILRA 1416

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 25213/2019

प्रेम चंद्र ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अखिलेश कुमार मिश्रा, श्री पवन किशोर मिश्रा, श्री राज कुमार सिंह, श्री विजय कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून -न्यूनतम वेतनमान- 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत, जो संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या से उभरा है और सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून बना हुआ है। यह सभी पर बाध्यकारी है। इसे अस्थायी कर्मचारियों पर भी लागू किया जाता है, जिसमें कार्यभार, दैनिक वेतन, आकस्मिक, तदर्थ, संविदा आदि शामिल हैं। इस प्रकार, यह माना गया कि वे वेतनमान (नियमित वेतनमान में सबसे निचले ग्रेड पर) के न्यूनतम वेतन पर वेतन पाने के हकदार हैं, जो समान पद पर नियमित कर्मचारियों पर भी लागू होता है। (पैरा 13)

वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता, जो कृत्रिम अवकाशों को छोड़कर 2013 से लगातार काम कर रहा है, वह भी प्रतिवादी विभाग में समान कार्य करने वाले नियमित कर्मचारियों को दिए जाने वाले न्यूनतम वेतनमान के भुगतान का हकदार है। (पैरा 14)

बी. **केवल सेवा प्रदाता एजेंसी के माध्यम से दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों को नियोजित करने से राज्य सरकार न्यूनतम वेतनमान प्रदान करने की अपनी जिम्मेदारी से दूर नहीं हट सकती जिसे वह कानून के अनुसार भुगतान करने के लिए बाध्य है।** (पैरा 17)

प्रतिवादी-राज्य ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता एक सेवा प्रदाता एजेंसी के माध्यम से नियुक्त है, इसलिए वह न्यूनतम वेतनमान का हकदार नहीं है, तथा इसका कोई बल नहीं है, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि उक्त लाभ सभी अस्थायी कर्मचारियों के लिए उपलब्ध है, चाहे उनका नाम कुछ भी हो। (पैरा 16)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम जगजीत सिंह एवं अन्य, (2017) 1 एससीसी 148 (पैरा 12)

वर्तमान याचिका में निदेशक, उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.07.2019 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत न्यूनतम वेतनमान के लिए उनके अभ्यावेदन को निरस्त कर दिया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2-निदेशक, उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.7.2019 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत न्यूनतम वेतनमान के लिए उसका प्रत्यावेदन निरस्त कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के अनुसार मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता वर्ष 2013 में वैज्ञानिक, राज्य टिशू कल्चर लैब, सेक्टर-जी, अलीगंज, लखनऊ के कार्यालय में श्रेणी-IV पद (माली) पर दैनिक वेतनभोगी के रूप में लगाया गया था, जहां उसे केवल दैनिक वेतन दिया जा रहा था। उसका दावा है कि इसी तरह की स्थिति वाले अन्य दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी, जिन्होंने पांच वर्ष से अधिक की सेवा पूरी कर ली है, उन्हें न्यूनतम वेतनमान दिया जा रहा है, जबकि उसे इससे वंचित किया जा रहा है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि आक्षेपित आदेश झूठे और गलत तथ्यों के आधार पर पारित किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर या तो विचार नहीं किया गया या गलत तथ्य गढ़कर उन्हें निरस्त कर दिया गया।

5. दूसरी ओर विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका का बलपूर्वक विरोध करते हुए कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता एक सेवा प्रदाता एजेंसी के माध्यम से दैनिक वेतनभोगी के रूप में काम कर रहा है, इसलिए वह न्यूनतम वेतनमान का हकदार नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि आक्षेपित आदेश कानून के अनुसार पारित किया गया है।

6. यह विवाद का विषय नहीं है कि उक्त लैब, उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग द्वारा संचालित है और उसी का हिस्सा है। उत्तर प्रदेश राज्य के उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग के अधिकारी और कर्मचारी उक्त लैब में काम कर रहे हैं और इसे चला रहे हैं। प्रत्यावेदन को निरस्त करते हुए, यह नोट किया गया कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 2013 में 2 महीने, 2014 में फिर 2 महीने, 2016 में 5 महीने, 2017 में 4 महीने,

अनुवादित

2018 में 2 महीने काम किया और सितंबर, 2018 से वह एक सेवा प्रदाता एजेंसी के माध्यम से काम कर रहा है।

7. दिनांक 5.12.2019 के प्रतिशपथपत्र में भी उक्त तथ्यों को दोहराया गया है। हालाँकि, 8.2.2023 को एक विस्तृत पूरक प्रतिशपथपत्र दायर किया गया और सितंबर, 2013 से याचिकाकर्ता के कार्य चार्ट को अनुलग्नक-एससीए-9 के रूप में संलग्न किया गया है। उक्त चार्ट से पता चलता है कि वर्ष 2013 से आज तक, याचिकाकर्ता के केवल मस्टर-रोल पर काम करने पर ही उसके प्रत्यावेदन को निरस्त करते समय विचार किया गया है। इससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने सितंबर, 2013 से काम करना शुरू किया और वर्ष 2013 के सभी चार महीनों के लिए काम किया और उसके बाद 2014 में, उन्होंने 8 महीने, 2015 में 7 महीने, 2016 में 11 महीने, 2017 में 10 महीने, 2018 में 7 महीने, 2019 में 12 महीने और 2020 में, वह समय चार्ट तैयार होने तक लगातार काम कर रहे थे।

8. इस प्रकार, उपर्युक्त चार्ट से यह स्पष्ट है कि गलत एवं अशुद्ध तथ्यों का हवाला देकर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। निदेशक, उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण एक वरिष्ठ अधिकारी हैं। यह अपेक्षित नहीं है कि वे इस न्यायालय के आदेश के तहत किसी व्यक्ति के मामले पर विचार करते समय गलत एवं अपूर्ण तथ्यों का हवाला देंगे। उन्हें भविष्य में इस प्रकार की कार्यवाही न करने की चेतावनी दी जाती है।

9. उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि याचिकाकर्ता प्रतिवादी विभाग में लगभग दस वर्षों से काम कर रहा है।

10. याचिकाकर्ता का दावा है कि जो व्यक्ति पांच वर्षों से अधिक समय से दैनिक वेतनभोगी के रूप में काम कर रहे हैं, उन्हें इस न्यायालय के आदेश के तहत न्यूनतम वेतनमान का भुगतान किया जाता है। उक्त प्रयोजन के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने संयुक्त निदेशक/प्रभारी अधिकारी, राजकीय उपभोक्ता संवर्धन परियोजना, अलीगंज, लखनऊ द्वारा निदेशक, उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण, लखनऊ को दिनांक 4.11.2004 को भेजे गए पत्र का हवाला दिया है। उक्त पत्र में संयुक्त निदेशक/प्रभारी अधिकारी ने विशेष रूप से कहा है कि विभाग में कार्यरत ऐसे दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी, जिन्होंने पांच वर्ष या उससे अधिक की सेवा पूरी कर ली है, उच्च न्यायालय के आदेश के तहत न्यूनतम वेतनमान 3050-4590 रुपये प्राप्त कर रहे हैं। श्री पंकज श्रीवास्तव, दैनिक वेतनभोगी को उक्त वेतनमान न्यूनतम मिल रहा है। इस प्रकार उन्होंने संस्तुति की है कि अन्य समान स्थिति वाले चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को भी उक्त वेतनमान न्यूनतम दिया जाना चाहिए। उक्त दस्तावेज रिट याचिका के अनुलग्नक-4 के रूप में दाखिल किया गया है। उक्त पत्र दिनांक 4.11.2004 को प्रति शपथ पत्र के पैरा-16 में स्वीकार किया गया है, लेकिन इसकी व्याख्या यह कहकर की गई है कि उक्त पत्र दिनांक 4.11.2004 पर राज्य स्तर पर कोई निर्णय नहीं लिया गया है।

11. यह याचिकाकर्ता को न्यूनतम वेतनमान का लाभ देने से इंकार करने का आधार नहीं हो सकता है, जो कि प्रतिवादी विभाग द्वारा अन्य समान स्थिति वाले व्यक्तियों को पहले से ही दिया जा रहा है। वास्तव में, याचिकाकर्ता के उक्त निवेदन को यद्यपि आक्षेपित आदेश में नोट किया गया है, लेकिन उस पर कहीं भी विचार नहीं किया गया और निर्णय नहीं लिया गया।

12. न्यूनतम वेतनमान के भुगतान के संबंध में कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम जगजीत सिंह एवं अन्य (2017) 1 एससीसी 148*** में तय किया गया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 56 से 61 इस प्रकार हैं:

> *"56. अब हम इस न्यायालय के समक्ष अस्थायी कर्मचारियों के दावे पर विचार करेंगे।*
>
> *57. इस बात में कोई संदेह नहीं है कि "समान कार्य के लिए समान वेतन" का सिद्धांत संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या से उभरा है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा दिए गए कई निर्णयों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है, तथा यह इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत भारत के सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी है। इस सिद्धांत के मापदंडों को हमने ऊपर पैरा 42 में संक्षेपित किया है। "समान कार्य के लिए समान वेतन" के सिद्धांत को अस्थायी कर्मचारियों (जिन्हें अलग-अलग रूप से वर्क-चार्ज, दैनिक वेतन, आकस्मिक, तदर्थ, संविदात्मक और इसी तरह के रूप में वर्णित किया गया है) पर भी लागू किया गया है। अस्थायी कर्मचारियों से संबंधित कानूनी स्थिति को हमने ऊपर पैरा 44 में संक्षेपित किया है। उपरोक्त कानूनी स्थिति जिसे बार-बार घोषित किया गया है, हम फिर से दोहरा रहे हैं।*
>
> *58. हमारे विचार से, श्रम के फल को अस्वीकार करने के लिए कृत्रिम मापदंडों को निर्धारित करना भ्रामक है। एक ही काम के लिए लगे एक कर्मचारी को उसी कर्तव्य और जिम्मेदारियों को निभाने वाले दूसरे कर्मचारी से कम वेतन नहीं दिया जा सकता। कल्याणकारी राज्य में तो बिल्कुल नहीं। ऐसा कदम अपमानजनक होने के साथ-साथ मानवीय गरिमा की बुनियाद पर भी प्रहार करता है। कोई भी व्यक्ति, जिसे कम वेतन पर काम करने के लिए मजबूर किया जाता है, वह स्वेच्छा से ऐसा नहीं करता है। वह अपने परिवार को भोजन और आश्रय प्रदान करने के लिए अपने आत्मसम्मान और गरिमा की कीमत पर, अपने आत्म-मूल्य की कीमत पर और अपनी ईमानदारी की कीमत पर ऐसा करता है। क्योंकि वह जानता है कि यदि वह कम वेतन स्वीकार नहीं करता है तो उसके आश्रितों को काफी कष्ट उठाना पड़ेगा। इसी तरह की स्थिति में दूसरों की*

तुलना में कम वेतन देने का कोई भी कार्य एक दबंग स्थिति से उभर कर शोषणकारी दासता का कार्य है। निस्संदेह, यह कार्रवाई दमनकारी, दमनकारी और जबरदस्ती वाली है, क्योंकि यह अनैच्छिक अधीनता को मजबूर करती है।

59. हम यहां आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा, 1966 के अनुच्छेद 7 को भी उद्धृत करना चाहेंगे। इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"7. वर्तमान वाचा के पक्षकार राज्य प्रत्येक व्यक्ति के काम की न्यायसंगत और अनुकूल परिस्थितियों का आनंद लेने के अधिकार को मान्यता देते हैं जो विशेष रूप से सुनिश्चित करते हैं:

(क) पारिश्रमिक जो सभी श्रमिकों को न्यूनतम रूप से प्रदान करता है:

(i) किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना समान मूल्य के काम के लिए उचित मजदूरी और समान पारिश्रमिक, विशेष रूप से महिलाओं को पुरुषों द्वारा प्राप्त की जाने वाली समान कार्य स्थितियों की गारंटी दी जाती है, समान काम के लिए समान वेतन;

(ii) वर्तमान वाचा के प्रावधानों के अनुसार स्वयं और अपने परिवार के लिए एक सभ्य जीवन;

(ख) सुरक्षित और स्वस्थ कार्य स्थितियां;

(ग) वरिष्ठता और योग्यता के अलावा किसी अन्य विचार के अधीन, प्रत्येक व्यक्ति को अपने रोजगार में उचित उच्च स्तर पर पदोन्नत करने का समान अवसर;

(घ) आराम, अवकाश और काम के घंटों की उचित सीमा और वेतन के साथ आवधिक छुट्टियां, साथ ही सार्वजनिक छुट्टियों के लिए पारिश्रमिक।"

भारत उपरोक्त प्रसंविदा का एक हस्ताक्षरकर्ता है, जिसने 10-4-1979 को इसकी पुष्टि की है। ऊपर संदर्भित संविधान के विभिन्न प्रावधानों के मद्देनजर उपरोक्त दायित्व से कोई बच नहीं सकता है, और इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत घोषित कानून के मद्देनजर, "समान काम के लिए समान वेतन" का सिद्धांत एक स्पष्ट और सुस्पष्ट अधिकार का गठन करता है और प्रत्येक कर्मचारी में निहित है-चाहे वह नियमित या अस्थायी आधार पर लगे हों।

60. अस्थायी कर्मचारियों (दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी, तदर्थ नियुक्त, आकस्मिक आधार पर नियुक्त कर्मचारी, संविदा कर्मचारी और इसी तरह के) के संबंध में "समान काम के लिए समान वेतन" के सिद्धांत के आवेदन के संदर्भ में कानूनी मापदंडों को पार करने के बाद, एकमात्र कारक जिसके लिए हमें निर्धारण की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या संबंधित कर्मचारी (इस न्यायालय के समक्ष) समान कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रहे थे इस अभ्यास के लिए "समान कार्य के लिए

समान वेतन" के सिद्धांत के मापदंडों को लागू करने की आवश्यकता होगी, जिसका सारांश हमने पैरा 42 में दिया है। हालांकि, जहां तक मामले के तात्कालिक पहलू का सवाल है, हमारे लिए तथ्यात्मक स्थिति दर्ज करना मुश्किल नहीं है। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं, क्योंकि पंजाब राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वकील ने यह उचित रूप से स्वीकार किया है कि वर्तमान अपीलों में सभी अस्थायी कर्मचारियों को ऐसे पदों पर नियुक्त किया गया था, जो नियमित कैडर/अधिष्ठान में भी उपलब्ध थे। यह भी स्वीकार किया गया कि अपने रोजगार के दौरान, संबंधित अस्थायी कर्मचारियों को बेतरतीब ढंग से उन कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए प्रतिनियुक्त किया जा रहा था, जो किसी समय नियमित कर्मचारियों को सौंपी जाती थीं। इसी तरह, मूल पदों पर आसीन नियमित कर्मचारियों को भी उसी कार्य को करने के लिए तैनात किया गया था, जो समय-समय पर अस्थायी कर्मचारियों को सौंपा जाता था। इसलिए, इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि वर्तमान अपीलों में अस्थायी कर्मचारियों द्वारा निभाई गई जिम्मेदारियां और कर्तव्य वही थे, जो नियमित कर्मचारियों द्वारा निभाए जा रहे थे। अपीलकर्ताओं का यह मामला नहीं है कि प्रतिवादी कर्मचारियों के पास नियमित आधार पर नियुक्ति के लिए निर्धारित योग्यताएं नहीं थीं। इसके अलावा, राज्य का यह मामला नहीं है कि कोई भी अस्थायी कर्मचारी हमारे द्वारा पैरा 42 में संक्षेपित किसी भी सिद्धांत पर वेतन समानता का हकदार नहीं होगा। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि "समान कार्य के लिए समान वेतन" का सिद्धांत संबंधित सभी अस्थायी कर्मचारियों पर लागू होगा, ताकि उन्हें समान पद पर नियमित रूप से नियुक्त सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान के न्यूनतम के बराबर वेतन का दावा करने का अधिकार प्राप्त हो सके।

61. पूर्वगामी पैराग्राफ में हमारे द्वारा व्यक्त की गई स्थिति के मद्देनजर, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वर्तमान मामलों में संबंधित सभी अस्थायी कर्मचारी उसी पद पर नियमित कर्मचारियों को दिए जाने वाले वेतनमान (नियमित वेतनमान में सबसे निचले ग्रेड पर) के न्यूनतम पर वेतन पाने के हकदार होंगे।"

13. सर्वोच्च न्यायालय ने इस बिन्दु पर पहले से तय सभी कानूनों पर विचार करने के बाद फिर से दोहराया है कि समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत, जो संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या से उभरा है और सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों के माध्यम से प्रतिपादित किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून है। यह सभी पर बाध्यकारी है। यह अस्थायी कर्मचारियों पर भी लागू है, जिसमें कार्यभार, दैनिक वेतन, आकस्मिक, तदर्थ, संविदा आदि शामिल हैं। इस प्रकार, यह निर्धारित किया जाता है कि वे समान पद पर कार्यरत नियमित कर्मचारियों के लिए लागू न्यूनतम वेतनमान (नियमित वेतनमान में सबसे निचले ग्रेड पर) पर वेतन पाने के हकदार हैं।

14. उपर्युक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता, जो कृत्रिम विराम को छोड़कर, 2013 से लगातार काम कर रहा है, वह भी न्यूनतम वेतनमान के भुगतान का हकदार है, जो प्रतिवादी विभाग में समान कार्य करने वाले नियमित कर्मचारियों को दिया जा रहा है।

15. प्रतिवादी फिर से यह तर्क लेते हैं कि उन्होंने प्रयोगशाला में किसी भी चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी को नहीं रखा है। प्रयोगशाला स्वयं बागवानी और खाद्य प्रसंस्करण विभाग का हिस्सा है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि उद्यान विभाग में नियमित चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी कार्यरत हैं। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में विभाग के अन्य चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी याचिकाकर्ता द्वारा किए जा रहे कर्तव्यों का पालन करने के लिए बाध्य होंगे। इसलिए, याचिकाकर्ता न्यूनतम वेतनमान का हकदार है, जो किसी भी चतुर्थ श्रेणी के नियमित रूप से नियुक्त कर्मचारी को मिलेगा, यदि याचिकाकर्ता अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए उपलब्ध नहीं है।

16. प्रतिवादी का यह तर्क कि याचिकाकर्ता एक सेवा प्रदाता एजेंसी के माध्यम से नियुक्त है, इसलिए वह न्यूनतम वेतनमान का हकदार नहीं है, का भी कोई बल नहीं है क्योंकि उपरोक्त निर्णय के पैरा-60 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि उक्त लाभ सभी अस्थायी कर्मचारियों को उपलब्ध है, चाहे उनका नामकरण कुछ भी हो।

17. केवल सेवा प्रदाता एजेंसी के माध्यम से दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों को नियुक्त करके, राज्य सरकार न्यूनतम वेतनमान प्रदान करने की अपनी जिम्मेदारी से पीछे नहीं हट सकती है, जिसे वह कानून के अनुसार भुगतान करने के लिए बाध्य है।

18. इसलिए, दिनांक 15.7.2019 का आक्षेपित आदेश कायम नहीं रह सकता और उसे रद्द किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे बिना किसी देरी के याचिकाकर्ता को न्यूनतम वेतनमान का भुगतान करें, जैसा कि प्रतिवादी विभाग में समान कार्य करने वाले समान स्थिति वाले कर्मचारियों को किया जा रहा है।

19. तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1421

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 3192/2017

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रम न्यायालय गोरखपुर एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: कृतिका सिंह, सी.एस.सी., श्री धनंजय सिंह, एस.सी.

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री गोपाल नारायण श्रीवास्तव, एस.सी., श्री सुधांशु नारायण

श्रम कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14, 15, 226- उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947-धारा 6-एन, 6-पी और 6-क्यू, 11) (ए) -साक्ष्य अधिनियम, 1872 -धारा 114 और 114 (जी): रिट याचिका - सेवाओं की समाप्ति के विवादित पुरस्कार को चुनौती देते हुए औद्योगिक विवाद श्रम न्यायालय, सेवाओं की समाप्ति के आदेश को अनुचित और अवैध घोषित करता है, साथ ही कामगार को पिछले वेतन का 50% देने के साथ बहल करने और साथ ही वह आदेश के प्रकाशन की तारीख से पूरे वेतन का हकदार है - न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता/नियोक्ता ने कामगार के तर्क का खंडन करने के लिए मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य पेश नहीं करके और यह दलील देने या किसी भी तरह से यह साबित करने में भी विफल रहा कि कामगार लाभकारी रूप से कार्यरत था, इसलिए उसे पिछला वेतन देने से इनकार करना प्रतिकूल निष्कर्ष के अधीन होगा - जिसे श्रम अदालत ने सही ढंग से निकाला - आयोजित, इस आधार पर, आरोपित पुरस्कार में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है- और- यह पूरे पिछले वेतन का मामला हो सकता है, लेकिन अदालत इसे बढ़ाने के लिए इच्छुक नहीं है क्योंकि कामगार द्वारा रिट याचिका दायर नहीं की गई है - आदेश को चार महीने के भीतर निष्पादित करने के निर्देश जारी किए गए - तदनुसार याचिका निरस्त कर दी गई।

रिट याचिका निरस्त. (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम एवं अन्य। बनाम गीतम सिंह - (2013) 5 एससीसी 136,

2. दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक एवं अन्य: 2013 (139) एफएलआर 541 (एससी),

3. इलाहाबाद बैंक एवं अन्य बनाम अवतार भूषण भारतीय एसएलपी (सिविल) नंबर 32518, निर्णय 22.04.2022,

4. कृष्ण सिंह बनाम कार्यकारी अभियंता, हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड, रोहतक (हरियाणा) (2010) 3 एससीसी 637,

5. देविंदर सिंह बनाम नगर परिषद, सनौर: (2011) 6 एससीसी 584,

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चरण सिंह: 2015 मुकदमा (एससी) 302,

7. जसमेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य: (2015) 4 एससीसी 458,

8. आर.एम. येलत्ती बनाम सहायक कार्यकारी अभियंता: (2006) 1 एससीसी 106, 2006।

9. हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य वेयरहाउसिंग कॉर्पोरेशन: (2010) 3 एससीसी 192,

10. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमर नाथ यादव: 2014 लॉ सूट (एससी) 32,

11. बागवानी निदेशक एवं अन्य बनाम एच.ए. कुमार: 2013 (138) एफएलआर 1089 (एससी),

12. गौरी शंकर बनाम राजस्थान राज्य.: 2015 लॉ सूट (एससी) 357,

13. दीप चंद्र बनाम यूपी राज्य: (2001) 10 एससीसी 606,

14. राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद बनाम विहित प्राधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण (वी), उ.प्र., -2002 (2) यूपीएलबीईसी 1475,

15. यू.पी. राज्य बनाम लेबर कोर्ट, हल्द्वानी - 1998 लॉ सूट (सभी) 788,

16. महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम कास्टेरिबे राज्य परिवहन कर्मचारी संगठन - (2009) 8 एससीसी 556,

17. हरि नंदन प्रसाद बनाम एफ.सी.आई. (2014) 7 एससीसी 190,

18. हरियाणा रोडवेज बनाम रुधन सिंह (2005) 5 एससीसी 591,

19. भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड (2014) 11 एससीसी 85,

20. मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी एवं अन्य: एआईआर 1979 एससी 75,

21. भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम मेसर्स हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड: 2014 (142) एफएलआर 20,

22. मैकिनन मैकेंज़ी एंड कंपनी लिमिटेड बनाम मैकिनन कर्मचारी संघ: 2015 (145) एफएलआर 184,

23. सिविल अपील संख्या 6890/2022 जीतूभा खानसांगजी जडेजा बनाम कच्छ जिला पंचायत, निर्णय दिनांक 23.09.2022 (विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 8393/2022 से उत्पन्न)।

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, सिंचाई, लखनऊ और उक्त विभाग के अधिकारियों के माध्यम से श्रम न्यायालय, गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 08.01.2016 के आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई है जिसे 07.06.2016 को नोटिस बोर्ड पर अधिनिर्णयन मामले संख्या 170/1992 में अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत श्रम न्यायालय ने 01.01.1991 से प्रतिवादी संख्या-2 की सेवाओं की समाप्ति को अनुचित और अवैध माना है और उक्त प्रतिवादी को उसकी पिछली सेवाओं में निरंतरता बनाए रखने के लिए 50% की दर से बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश दिया है। एक और निर्देश जारी किया गया है कि प्रतिवादी संख्या-2 निर्णय दिये जाने की तारीख से पूर्ण वेतन का हकदार होगा।

2. मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी संख्या-2 (एतस्मिनपश्चात कर्मकार के रूप में संदर्भित) एक मामला लेकर आया था कि वह अक्टूबर, 1988 से सिंचाई विभाग में कैंप धावक के रूप में नियमित रूप से कार्यरत था और डाक वितरण से संबंधित कर्तव्यों का पालन कर रहा था। आगे यह भी तर्क दिया गया कि 01.01.1991 को अचानक उसकी सेवाएं मौखिक रूप से समाप्त कर दी गईं और मार्च, 1990 से दिसंबर, 1990 तक उनके वेतन का भुगतान भी नहीं किया गया, जिस पर कर्मकार ने पहले मजदूरी भुगतान अधिनियम के तहत नियंत्रण प्राधिकारी, देवरिया के समक्ष मामला दायर किया था जो लंबित था। आगे यह तर्क दिया गया कि श्रमिक द्वारा किए गए कार्य की प्रकृति स्थायी थी और इंद्रासन, केशव और श्रवण आदि जैसे कनिष्ठों को सेवा में बनाए रखा गया था; यह कि उ.प्र. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947

की धारा 6-एन, 6-पी एवं 6-क्यू के प्रावधान और नियमावली के नियम 42 का अनुपालन नहीं किया गया; यह कि कर्मकार ने 240 दिनों से अधिक की अवधि तक काम किया था; और यह कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद अपनी सेवाएँ समाप्त होने के बाद वह पूरी तरह से बेरोजगार था।

3. कर्मकार ने दलील दी कि यह मामला उप श्रम आयुक्त, गोरखपुर द्वारा दिए गए संदर्भ के अनुसार न्यायनिर्णयन मामले संख्या 170/1992 के रूप में पंजीकृत किया गया था, जहां प्रश्न यह था कि क्या विभाग द्वारा 01.01.1991 से कर्मचारी की सेवा समाप्त करना उचित और/या कानूनी था? यदि नहीं, तो कर्मकार किस लाभ/राहत/मुआवजे को प्राप्त करने का हकदार था?

4. विभाग ने यह कहते हुए अपना बचाव भी किया कि कर्मकार की सेवाएं समाप्त नहीं की गई थीं और उसे मार्च, 1990 से दिसंबर, 1990 तक वेतन का भुगतान करने का कोई सवाल ही नहीं था क्योंकि उसने उक्त अवधि के दौरान काम नहीं किया था। न्यायालय ने पाया कि रिट याचिका का संलग्नक संख्या 2 विभाग द्वारा दायर लिखित बयान की एक प्रति है जिसमें उपरोक्त के अलावा कुछ भी विशेष नहीं बताया गया है, हालांकि आक्षेपित निर्णय में श्रम न्यायालय ने विभाग द्वारा किये गए बचाव में इस आशय की भी चर्चा की है कि कर्मकार आवश्यकताओं के अनुसार दैनिक वेतनभोगी के रूप में काम कर रहा था और उसे उसके द्वारा किए गए कार्य के अनुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता था। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि विभाग द्वारा कुछ अतिरिक्त लिखित बयान दायर किया गया है जिसे दलीलों के समर्थन में रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है, हालाँकि न्यायालय इस बचाव पर भी विचार करेगा क्योंकि श्रम न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में इसी पर विचार किया गया है।

5. पक्षों ने अपने-अपने मामलों के समर्थन में साक्ष्य पेश किए। कर्मकार की मौखिक गवाही को प्रति शपथपत्र के संलग्नक संख्या सीए-1 के रूप में दायर किया गया है जिसमें कर्मकार ने कहा है कि उसे मासिक वेतन मिलता था और उसकी सेवाएं 01.01.1991 से मौखिक रूप से समाप्त कर दी गई थीं; मार्च, 1990 से दिसंबर, 1990 तक वेतन का भुगतान प्राप्त करने के लिए, उसने पी.डब्लू. मामला संख्या 46/1991 दायर किया था, जिसका निर्णय 17.02.1995 को उनके पक्ष में हुआ था, जिसके आदेश के खिलाफ नियोक्ता ने मिसलेनियस केस नंबर 3/2000 दायर किया, जिसे भी खारिज कर दिया गया। शपथ में आगे कहा गया कि यद्यपि कर्मचारी की सेवाएं अवैध रूप से समाप्त कर दी गई थीं, उसके कनिष्ठों, इंद्रासन, केशव और श्रवण को सेवा में बरकरार रखा गया था; यह कि बर्खास्तगी की तारीख से कर्मकार पूरी तरह से बेरोजगार था और खोजने के बावजूद उसे नौकरी नहीं मिल सकी; यह कि उसके आवेदन 17-डी पर श्रम न्यायालय द्वारा पारित आदेश के बावजूद विभाग द्वारा दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किये गये। कर्मकार ने अपने द्वारा दायर किए गए दस्तावेजों को भी साबित किया जिसमें मस्टर रोल भी शामिल था। कर्मकार से जिरह की गई और विभाग द्वारा दिए गए सुझाव को

अनुवादित

विशेष रूप से खारिज कर दिया गया कि यह कहना गलत था कि वह दैनिक वेतन के आधार पर काम कर रहा था। कर्मकार अपने से कनिष्ठ लोगों को सेवा में बनाए रखने के मामले में भी अपने रुख पर अड़ा रहा कि विभाग ने 1990 के मस्टर रोल को छोड़कर कोई मस्टर रोल प्रस्तुत नहीं किया था, जिसे कर्मकार ने प्राप्त किया था और रिकॉर्ड में कागज संख्या 6 के रूप में दाखिल किया था।

6. पक्षों की दलीलों पर विचार करने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद श्रम न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पी.डब्लू. मामला संख्या 46/1991 में सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के मद्देनजर 240 दिनों से अधिक की अवधि का कार्य पूरा हुआ। श्रम न्यायालय ने कर्मकार द्वारा दायर आवेदन 17-डी के बावजूद अक्टूबर, 1988 से जनवरी, 1991 तक की अवधि के लिए उपस्थिति रजिस्टर/मस्टर रोल दाखिल नहीं करने के लिए विभाग के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला, जिसके संबंध में अनुमति दी गई थी। श्रम न्यायालय ने यह भी पाया कि विभाग ने केवल जुलाई, 1990 का मस्टर रोल पेश करके अपनी औपचारिकता पूरी कर ली, जिसमें कहा गया कि जुलाई, 1990 में कर्मकार ने केवल 26 दिनों की अवधि के लिए काम किया था।

7. नियोक्ता के इस तर्क के संबंध में कि श्रमिक दैनिक वेतनभोगी के रूप में काम कर रहा था,विभिन्न प्राधिकारियों पर चर्चा के बाद, श्रम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि तब भी विभाग को अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए था और कर्मचारी अपनी सेवा में बहाली का हकदार होगा क्योंकि यह स्थापित हो गया है कि उसने एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिनों से अधिक काम किया है। तदनुसार, 50% बकाया वेतन के भुगतान के साथ पिछली सेवाओं में निरंतरता बनाए रखते हुए कर्मकार की बहाली का निर्णय पारित किया गया।

8. मैंने राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री धनंजय सिंह - याचिकाकर्ताओं और प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु नारायण को सुना और रिकॉर्ड का परिशीलन किया है।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क इस आशय का है कि श्रम न्यायालय का निर्णय पोषणीय नहीं है क्योंकि प्रतिवादी संख्या-2 केवल एक दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी था और इसलिए, उसकी बहाली का आदेश नहीं दिया जा सकता है। आगे तर्क दिया गया कि प्रतिवादी संख्या-2 ने स्वयं स्वेच्छा से नौकरी छोड़ दी और गलत तरीके से मामला दायर किया। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि यदि कर्मचारी के मामले को स्वीकार भी कर लिया जाए, तो उसने दो साल की बहुत ही कम अवधि के लिए काम किया और इसलिए कथित सेवा के उक्त कार्यकाल को ध्यान में रखते हुए, पिछली निरंतरता को बनाए रखते हुए सेवा में बहाली का निर्देश और 50% बकाया वेतन का भुगतान अवैध है। ***असिस्टेंट इंजीनियर, राजस्थान डेवलपमेन्ट कार्पोरेशन और अन्य बनाम गीतम सिंह: (2013) 5***

एससीसी 136 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया गया है।

10. **इसके विपरीत,** प्रतिवादी-कर्मकार के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि कामगार नियमित क्षमता में काम कर रहा था और मासिक वेतन प्राप्त कर रहा था और उसने न केवल श्रम न्यायालय के समक्ष बल्कि मजदूरी भुगतान अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी के समक्ष भी अपना मामला संस्थित किया था, जहां उसने विभाग के विरुद्ध सफल होने पर अधिनियम 1947 के प्रावधानों का पालन किये बिना दिनांक 01.01.1991 से उसकी सेवाओं की मौखिक समाप्ति अवैध है और चूँकि कर्मकार के कनिष्ठों को सेवा में बनाए रखा गया था और यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि कर्मकार को उसकी सेवाओं की समाप्ति के बाद लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया था, श्रम न्यायालय का निर्णय न्यायसंगत और उचित है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

11. अपनी प्रस्तुति के समर्थन में, प्रतिवादी-कर्मचारी के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित अधिकारियों पर भरोसा किया है:-

(i) दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक और अन्य: 2013 (139) एफएलआर 541 (एससी);

(ii) इलाहाबाद बैंक और अन्य बनाम अवतार भूषण भारतीय विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 32554/2018, दिनांक 22.04.2022 को निर्णीत:

(iii) कृष्ण सिंह बनाम कार्यकारी अभियंता, हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड, रोहतक (हरियाणा): (2010) 3 एससीसी 637;

(iv) देविंदर सिंह बनाम नगर परिषद, सनौर: (2011) 6 एससीसी 584;

(v) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चरण सिंह: 2015 मुकदमा (एससी) 302;

(vi) जसमेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य: (2015) 4 एससीसी 458;

(vii) आर.एम. येलत्ती बनाम सहायक कार्यकारी अभियंता: (2006) 1 एससीसी 106;

(viii) हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य भण्डारण निगम: (2010) 3 एससीसी 192;

(ix) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमर नाथ यादव: 2014 लॉ सूट (एससी) 32;

(x) डायरेक्टर ऑफ हॉर्टीकल्चर और अन्य बनाम एच.ए. कुमार: 2013 (138) एफएलआर 1089 (एससी);

(xi) गौरी शंकर बनाम राजस्थान राज्य: 2015 लॉ सूट (एससी) 357;

(xii) दीप चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2001) 10 एससीसी 606;

(xiii) राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिषद बनाम विहित प्राधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण (वी), उ.प्र., मेरठ: 2002 (2) यूपीएलबीईसी 1475; और

(xiv) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्रम न्यायालय, हलद्वानी: 1998 लॉ सूट (ऑल) 788।

12. उपरोक्त प्राधिकारियों पर भरोसा करते हुए, प्रतिवादी-कर्मकार के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि यद्यपि कर्मकार नियमित क्षमता में काम कर रहा था, भले ही उसे दैनिक-मजदूर के रूप में माना जाता हो,

औद्योगिक कानून श्रमिकों/कर्मचारियों के बीच कोई भेदभाव नहीं करता है और रोजगार का स्रोत, भर्ती की विधि, रोजगार/सेवा अनुबंध के नियम और शर्तें, वेतन/भुगतान की मात्रा और भुगतान का तरीका यह तय करने के लिए बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं हैं कि कोई व्यक्ति कर्मकार है या नहीं। आगे प्रस्तुत करना यह है कि मौखिक समाप्ति को इस तथ्य के साथ अवैध पाया गया है कि श्रम न्यायालय ने इस तथ्य की का निष्कर्ष दर्ज किया है कि कर्मकार ने 240 दिनों से अधिक समय तक काम किया था और विभाग कर्मचारी के तर्क के खिलाफ कोई दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य पेश करने में विफल रहा था, निर्णय पूरी तरह से कानून के अनुरूप है।

13. मैंने विकसित तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का परिशीलन किया है।

14. **दीपाली गुंडू सुरवासे (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 33 में बहाली और बकाया वेतन से संबंधित पूरे कानून पर चर्चा के बाद, इस प्रकार अवधारित किया है:-

33. उपर्युक्त निर्णयों से जो प्रस्ताव निकाले जा सकते हैं वे हैं:

i) गलत तरीके से सेवा समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है।

ii) उपरोक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि पिछले वेतन के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी या न्यायालय कर्मचारी/कर्मकार की सेवा की अवधि, कदाचार की प्रकृति, यदि कोई हो, कर्मचारी/कर्मकार के खिलाफ साबित हुआ हो, तो नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी तरह के अन्य कारकों पर विचार कर सकता है।

iii) आम तौर पर, एक कर्मचारी या कर्मकार जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक है, उसे निर्णय लेने वाले प्राधिकारी या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष या तो तर्क देना होगा या कम से कम एक बयान देना होगा कि वह लाभकारी रूप से नियोजित नहीं था या कम वेतन पर नियोजित किया गया था। यदि नियोक्ता पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान से बचना चाहता है, तो उसे तर्क देना होगा और यह साबित करने के लिए ठोस साक्ष्य भी पेश करना होगा कि कर्मचारी/ कर्मकार लाभप्रद ढंग से नियोजित था और उसे सेवा समाप्ति से पहले प्राप्त वेतन के बराबर वेतन मिल रहा था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्थापित कानून है कि किसी विशेष तथ्य के अस्तित्व को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो इसके अस्तित्व के बारे में सकारात्मक अनुमान लगाता है। किसी नकारात्मक तथ्य को साबित करने की तुलना में सकारात्मक तथ्य

को साबित करना हमेशा आसान होता है। इसलिए, एक बार जब कर्मकार यह दिखाता है कि वह नियोजित नहीं था, तो नियोक्ता पर जिम्मेदारी आती है कि वह विशेष रूप से तर्क दे और साबित करे कि कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे समान या काफी हद तक समान परिलब्धियां मिल रही थीं।

iv) वे मामले जिनमें श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 11-ए के तहत शक्ति का प्रयोग करता है और पाता है कि भले ही कर्मचारी/कर्मचारी के खिलाफ की गई जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप है और/या प्रमाणित स्थायी आदेश, यदि कोई हो, लेकिन यह अवधारित है कि साबित हुए कदाचार के अनुपात से सज़ा अधिक थी, तो उसके पास पूर्ण बकाया वेतन न देने का विवेकाधिकार होगा। हालाँकि, यदि श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण को पता चलता है कि कर्मचारी या कर्मकार किसी भी कदाचार का दोषी नहीं है या नियोक्ता ने गलत आरोप लगाया है, तो पूरा पिछला वेतन देने का पर्याप्त औचित्य होगा।

v) ऐसे मामले जिनमें सक्षम न्यायालय या न्यायाधिकरण को पता चलता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को प्रताड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित न्यायालय या न्यायाधिकरण पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान का निर्देश देना पूरी तरह उचित है। ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय आदि द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि कर्मचारी/कर्मकार की पूरा बकाया वेतन पाने की पात्रता या उसे भुगतान करने की नियोक्ता की बाध्यता पर अलग-अलग राय बनने की संभावना है। न्यायालयों को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गलत/अवैध सेवा समाप्ति के मामलों में, गलत करने वाला नियोक्ता है और पीड़ित कर्मचारी/कर्मकार है और कर्मचारी/कर्मकार को पूर्ण बकाया वेतन के रूप में उसका बकाया भुगतान करने के बोझ से मुक्त करके नियोक्ता को उसके अनुचित कार्यों का अधिमूल्य देने का कोई औचित्य नहीं है।

vi) कई मामलों में, उच्च न्यायालयों ने इस आधार पर प्राथमिक न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के फैसले में हस्तक्षेप किया है कि मुकदमेबाजी को अंतिम रूप देने में काफी समय लग गया है, यह नजरअंदाज करते हुए कि

अधिकांश मामलों में पक्षकार ऐसे विलंब के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। मामलों के निस्तारण में विलंब का प्रमुख कारण बुनियादी ढांचे और जनशक्ति की कमी है। इसके लिए वादकारियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता। यह किसी कर्मचारी या कर्मकार के साथ घोर अन्याय होगा यदि उसे केवल इसलिए पिछला वेतन देने से इनकार कर दिया जाए क्योंकि उसकी सेवा समाप्ति और बहाली के आदेश को अंतिम रूप दिए जाने के बीच लंबा अंतराल है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कामगार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में है। वह पीड़ित की पीड़ा को बढ़ाने के लिए सर्वोत्तम कानूनी विचारों की सेवाओं का लाभ उठा सकता है, यानी कर्मचारी या कर्मकार जो किसी प्रसिद्धि अधिवक्ता पर पैसा खर्च नहीं कर सकता। इसलिए, ऐसे मामलों में हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में सुझाए गए रास्ते को अपनाना समझदारी होगी।

vii) जे.के. सिंथेटिक्स लिमिटेड बनाम के.पी. अग्रवाल (उपरोक्त) मामले में की गई टिप्पणी कि बहाली पर कर्मचारी/कर्मकार अधिकार के रूप में सेवा की निरंतरता का दावा नहीं कर सकता है, यहां ऊपर उल्लिखित तीन न्यायाधीश पीठों के निर्णयों के अनुपात के विपरीत है और इसे अच्छे कानून के रूप में नहीं माना जा सकता है।

15. जहां तक दिहाड़ी मजदूर की बहाली या बकाया मजदूरी के अधिकार से संबंधित मुद्दे का सवाल है, सर्वोच्च न्यायालय ने **कृष्ण सिंह (उपरोक्त)** मामले में एक ऐसे व्यक्ति के पक्ष में फैसला सुनाया, जिसके बारे में कहा गया था कि वह दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्यरत था और उसे 50% बकाया मजदूरी के साथ दैनिक मजदूर के रूप में बहाल करने का निर्देश दिया था।

16. **जसमेर सिंह (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया था, जहां यह अवधारित किया गया था कि सेवाओं की समाप्ति के मामले में वैधानिक प्रावधानों का अनुपालन न करना, यहां तक कि एक दैनिक-मजदूरी कर्मकार को भी पिछले भुगतान के साथ बहाली का निर्णय देना उचित होगा।

17. **आरएम येलट्टी (उपरोक्त)** में, एक कथित दैनिक वेतनभोगी की सेवाओं को समाप्त करने के संबंध में विभाग की त्रुटि के संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय ने नाममात्र मस्टर रोल में एक कामगार को दैनिक वेतन भोगी के रूप में बहाल करने का निर्देश दिया और यह माना गया कि दैनिक वेतन भोगी नियमित कर्मचारी नहीं हैं। उन्हें नियुक्ति पत्र नहीं दिया गया है। उन्हें सेवा समाप्ति का पत्र नहीं दिया गया है। उन्हें कोई लिखित दस्तावेज़ नहीं दिया जाता

जिसे वे मजदूरी की प्राप्ति के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत कर सकें। उनके मस्टर रोल का रखरखाव लूज शीट में किया जाता है। ऐसे मामलों में भी, जहां सरकारी विभागों द्वारा रजिस्टर बनाए रखा जाता है, प्रविष्टियां करने वाले अधिकारी/क्लर्क अपने हस्ताक्षर नहीं करते हैं। यहां तक कि जहां क्लर्कों के हस्ताक्षर दिखाई देते हैं, वहां भी प्रविष्टियों को नियुक्ति प्राधिकारियों द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित या प्रमाणित नहीं किया जाता है।

18. ***महाराष्ट्र एसआरटीसी वी कास्टराइब राज्य परिवहन कर्मचारी संगठन (2009) 8 एससीसी 556*** मामले में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि ***कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी*** का मामला श्रमिकों के स्थायित्व का आदेश देने के लिए एमआरटीयू और पीयूएलपी अधिनियम की धारा 32 सपठित धारा 30 के तहत औद्योगिक और श्रम न्यायालयों को उनकी वैधानिक शक्ति से वंचित नहीं करता है जो अनुसूची IV के मद संख्या 6 के तहत नियोक्ता की ओर से अनुचित श्रम व्यवहार के शिकार हुए हैं, जहां वे पद मौजूद हैं जिन पर वे काम कर रहे हैं। एक बार अनुसूची IV के मद 6 के तहत नियोक्ता की ओर से अनुचित श्रम व्यवहार स्थापित हो जाने के बाद, उमादेवी को एमआरटीयू और पीयूएलपी अधिनियम की धारा 30 के तहत उचित आदेश पारित करने में औद्योगिक और श्रम न्यायालयों की शक्तियों को खत्म करने के लिए नहीं माना जा सकता है।

19. उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त निर्णयों पर विचार करते हुए ***हरि नंदन प्रसाद बनाम भारतीय खाद्य निगम (2014) 7 एससीसी 190*** मामले में इस प्रकार अवधारित किया कि क्या उमादेवी मामले में निहित सिद्धांत लागू हैं:-

"34. इस प्रकार, दोनों मामलों की बारीकी से जांच से पता चलेगा कि उन मामलों में निर्धारित कानून एक-दूसरे के विरोधाभासी नहीं हैं। उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन मामले में, इस न्यायालय ने श्रम न्यायालय की शक्तियों को मान्यता दी है और साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि श्रम न्यायालय को यह ध्यान में रखना है कि यदि यह संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, जिस पर उमादेवी मामले का निर्णय मुख्य रूप से आधारित है, तो नियमितीकरण की कोई दिशा नहीं होनी चाहिए। दूसरी ओर, भोन्डे मामले में, न्यायालय ने इस सिद्धांत को मान्यता दी है कि श्रमिकों को कुछ राहत देने के लिए श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायालय को प्रदत्त वैधानिक शक्तियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अनुबंध कर्मचारियों को स्थायीता का दर्जा देने की राहत शामिल है, उमादेवी के मामले में फैसले से ऐसी वैधानिक शक्ति समाप्त नहीं होती है। इस निर्णय को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग तब किया जाना चाहिए जब नियोक्ता ने उपलब्ध होने पर भी स्थायी पद न भरकर और

अस्थायी/दैनिक वेतन के आधार पर श्रमिकों को जारी रखकर और उनसे वही काम लेकर उन्हें किसी उद्देश्य के लिए नियुक्त करके अनुचित श्रम व्यवहार में लिप्त हो जो नियमित श्रमिकों द्वारा किया जाता था लेकिन उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता था। ऐसा तभी होता है जब कोई विशेष प्रथा एमआरटीपी और पीयूएलपी अधिनियम की अनुसूची IV में उल्लिखित अनुचित श्रम प्रथा पाई जाती है और उक्त अधिनियम की धारा 30 के तहत निर्देश देने की आवश्यकता होती है, कि न्यायालय ऐसा निर्देश देगा।"

20. **हरि नंदन प्रसाद मामले (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय ने यह ध्यान में रखते हुए कहा कि औद्योगिक विवादों को निष्पक्ष नियम और न्याय के सिद्धांतों पर औद्योगिक न्यायनिर्णायक द्वारा निस्तारित किया जाता है, ने निष्कर्ष निकाला कि जब पद उपलब्ध हों, तो किसी भी अनुचित श्रम अभ्यास के अभाव में श्रम न्यायालय केवल इसलिए नियमितीकरण का निर्देश नहीं दिया जाएगा क्योंकि कोई कर्मचारी कई वर्षों से दैनिक वेतन भोगी/तदर्थ/अस्थायी कर्मचारी के रूप में काम करता रहा है। इसके अलावा, यदि कोई पद उपलब्ध नहीं है, तो नियमितीकरण के लिए ऐसा निर्देश अस्वीकार्य होगा। उपरोक्त परिस्थितियों में ऐसे व्यक्ति को केवल दैनिक वेतनभोगी आदि के रूप में बिताए गए वर्षों की संख्या के आधार पर नियमित करने का निर्देश देना सेवा में पिछले दरवाजे से प्रवेश के समान हो सकता है जो संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। इसके अलावा, ऐसा निर्देश तब नहीं दिया जाएगा जब संबंधित कर्मचारी भर्ती नियमों के अनुसार संबंधित पद की पात्रता आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है। हालाँकि, जहाँ भी यह पाया जाता है कि समान स्थिति वाले कर्मकारों को किसी योजना या अन्यथा के तहत नियोक्ता द्वारा नियमित किया जाता है और जिन श्रमिकों ने औद्योगिक/श्रम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है वे उनके बराबर हैं, तो ऐसे मामलों में नियमितीकरण की दिशा कानूनी रूप से उचित हो सकती है, अन्यथा, बचे हुए श्रमिकों का नियमितीकरण न करना ऐसे मामलों में उनके साथ घृणित भेदभाव होगा और संविधान की धारा 14 का उल्लंघन होगा। इस प्रकार, औद्योगिक निर्णायक इस संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करने के बजाय, अनुच्छेद 14 को बरकरार रखते हुए समानता प्राप्त करेगा।

21. ***हरियाणा रोडवेज बनाम रुधन सिंह (2005) 5 एससीसी 591*** मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायधीशों की बेंच ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या अवैध छंटनी के प्रत्येक मामले में कर्मचारी को पिछला वेतन दिया जाना चाहिए और यह अवधारित हुआ कि ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है कि हर मामले में जहां औद्योगिक न्यायाधिकरण यह निष्कर्ष देता है कि सेवा की समाप्ति अधिनियम की धारा 25-एफ का उल्लंघन है, पूरा पिछला वेतन दिया जाना चाहिए। चयन और नियुक्ति के प्रणाली और तरीके जैसे कई कारक, यानी क्या रिक्ति के उचित विज्ञापन के बाद या रोजगार कार्यालय से आवेदन आमंत्रित करने के बाद, नियुक्ति की प्रकृति, अर्थात्

तदर्थ, अल्पावधि, दैनिक वेतन, अस्थायी या स्थायी प्रकृति में क्या नौकरी के लिए आवश्यक कोई विशेष योग्यता और इसी तरह का मूल्यांकन किया जाना चाहिए और बकाया वेतन देने के संबंध में निर्णय लेने में संतुलित किया जाना चाहिए। महत्वपूर्ण कारकों में से एक, जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, वह सेवा की अवधि है, जो कर्मचारी ने नियोक्ता के साथ प्रदान की थी। यदि कर्मकार ने काफी लंबी सेवा अवधि पूरी कर ली है और उसकी सेवाएं गलत तरीके से समाप्त कर दी गई हैं, तो उसे इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पूर्ण या आंशिक बकाया वेतन दिया जा सकता है कि उसकी उम्र और उसके पास मौजूद योग्यता के आधार पर वह दूसरा रोजगार पाने की स्थिति में नहीं हो सकता है। हालाँकि, जहां किसी कर्मकार द्वारा प्रदान की गई सेवा की कुल अवधि बहुत कम है, वहां पूरी अवधि के लिए बकाया वेतन का निर्णय, यानी समाप्ति की तारीख से लेकर निर्णय की तारीख तक, जो कि हमारे अनुभव से पता चलता है, अक्सर काफी बड़ा होता है, पूरी तरह से अनुचित होगा। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक, जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है वह है रोजगार की प्रकृति। स्थायी प्रकृति की नियमित सेवा की तुलना अल्प या रुक-रुक कर होने वाले दैनिक वेतन वाले रोज़गार से नहीं की जा सकती, भले ही यह एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिनों के लिए हो।

22. ***भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड (2014) 11 एससीसी 85*** में उच्चतम न्यायालय ने उस मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया कि कर्मकार को उत्पीड़न का सामना करना पड़ा था, इसलिए, श्रम न्यायालय द्वारा बकाया वेतन बहाली का पारित निर्णय उचित था। मुआवज़ा देने के उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया गया।

23. कर्मकार के विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु नारायण ने ***देविंदर सिंह बनाम नगर परिषद, सनौर (2011) 6 एससीसी 584*** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है, जहां श्रमिक की बहाली के निर्देश देने वाले श्रम न्यायालय के निर्णय को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय में जो तर्क प्रचलित था वह यह था कि कर्मकार की नियुक्ति संविदा के आधार पर प्रतिवादी-नगर परिषद में दिनांक 01.08.1994 से 19.09.1996 तक थी और यह भर्ती नियमों के विपरीत की गई नियुक्ति थी। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया था कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन होगा, और लंबे समय के अंतराल के बाद बहाली के निर्णय को बरकरार रखना सार्वजनिक हित में नहीं होगा। यह भी माना गया कि धारा 2(एस) में "कर्मकार" शब्द की विस्तृत परिभाषा शामिल है। यह परिभाषा किसी भी उद्योग में नियोजित प्रशिक्षु सहित किसी भी व्यक्ति को भाड़े या ईनाम के लिए कोई शारीरिक, अकुशल, कुशल, तकनीकी, संक्रियात्मक, लिपिकीय या पर्यवेक्षणिक कार्य करने के लिए अपने दायरे में लेती है और यह सारहीन है कि रोजगार की शर्तों को लिखित रूप में कम नहीं किया गया है। परिभाषा में वह व्यक्ति भी शामिल है, जिसे किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में या ऐसे विवाद के परिणामस्वरूप पदच्युत, उन्मोचित या

छंटनी कर दी गई हो या जिसके पदच्युत, उन्मोचन या छंटनी के कारण वह विवाद उत्पन्न हुआ हो।

आगे यह माना गया कि रोजगार का स्रोत, भर्ती की विधि, रोजगार/सेवा अनुबंध के नियम और शर्तें, वेतन/वेतन की मात्रा और भुगतान का तरीका यह तय करने के लिए बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं हैं कि अधिनियम की धारा 2(एस) के अर्थ में कोई व्यक्ति कर्मकार है या नहीं। यह देखना उचित है कि कर्मकार की परिभाषा भी पूर्णकालिक और अंशकालिक कर्मचारी या अनुबंध के आधार पर नियुक्त व्यक्ति के बीच कोई अंतर नहीं करती है। धारा 2(एस) की स्पष्ट भाषा में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि केवल नियमित आधार पर नियोजित व्यक्ति या पूर्णकालिक नौकरी करने के लिए नियोजित व्यक्ति ही कर्मकार है और जो व्यक्ति अस्थायी, अंशकालिक या संविदा के आधार पर निश्चित वेतन पर या आकस्मिक कर्मचारी के रूप में या निश्चित घंटों के लिए ड्यूटी करने के लिए नियोजित है, वह कर्मकार नहीं है।

24. ***मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मेसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी और अन्य: एआईआर 1979 एससी 75*** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया है कि अब यह बहस का विषय नहीं रह गया है कि औद्योगिक न्यायशास्त्र के क्षेत्र में यह घोषणा दी जा सकती है कि सेवा समाप्ति गलत है और कर्मचारी सेवा में बना रहेगा। सामान्य कानून सिद्धांत का छलावा यह है कि व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध को विशेष रूप से लागू नहीं किया जा सकता है या क्षति के शमन का सिद्धांत कानून की इस शाखा में मौजूद नहीं है। जहां सेवा समाप्ति अवैध पाई जाती है वहां सेवा की निरंतरता के साथ बहाली की राहत दी जा सकती है। इसका मतलब यह होगा कि नियोक्ता ने संबंधित कानून के विपरीत या अनुबंध का उल्लंघन करके अवैध रूप से कर्मकार के काम का अधिकार छीन लिया है और साथ ही कर्मकार को उसकी कमाई से वंचित कर दिया है। इस प्रकार नियोक्ता को गलत पाया गया, जिसके परिणामस्वरूप कर्मकार को बहाल करने का निर्देश दिया गया, नियोक्ता मजदूरी का भुगतान करने की अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकता, जिससे श्रमिक नियोक्ता की अवैध या अमान्य कार्रवाई से वंचित हो गया है। वास्तविक रूप से कहें तो, जहां सेवा समाप्ति को अमान्य या अवैध माना जाता है और कर्मचारी को मुकदमेबाजी के दौर से गुजरना पड़ता है और लंबे समय तक मुकदमेबाजी के दौरान खुद को बनाए रखने की उसकी क्षमता अपने आप में इतनी अद्भुत है कि वह उस दिन को देखने के लिए जीवित नहीं रह सकता जब राहत दी जाएगी। इससे भी अधिक हमारा तंत्र कमजोर हो गया है, जहां कानून की लोकसिद्ध में विलंब होता है। यदि इतने लंबे समय और थका देने वाली मुकदमेबाजी के बाद भी कर्मकार अपना भरण-पोषण करता है, तो अंततः उसे बताया जाएगा कि यद्यपि उसे बहाल कर दिया जाएगा, लेकिन उसे बकाया मजदूरी से वंचित कर दिया जाएगा, जो उसे देय होगा। बिना किसी गलती के किसी प्रकार का दंड दिया जाना पूरी तरह से अनुपयुक्त है।

इसलिए सामान्यतः एक कर्मचारी जिसकी सेवा अवैध रूप से समाप्त कर दी गई हो, वह उस सीमा को छोड़कर पूर्ण बकाया वेतन का हकदार होगा, जब तक कि उसे लागू निष्क्रियता के दौरान लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया था। यह सामान्य नियम है। कोई भी अन्य दृष्टिकोण नियोक्ता की अनुचित मुकदमेबाजी गतिविधि पर एक लाभ होगा।

25. इसके अलावा, ***दीपाली गुंड्र सुरवासे (उपरोक्त)*** मामले में उच्चतम न्यायालय ने किसी कर्मचारी को उसी पद पर बहाल करने के विचार पर विस्तृत रूप से चर्चा की जिस पर वह बर्खास्तगी या निष्कासन या उसकी सेवाओं की समाप्ति से पहले था और, पैराग्राफ 17 में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि किसी कर्मचारी को उसी पद पर बहाल करने का विचार, जिस पर वह बर्खास्तगी, निष्कासन या सेवा समाप्ति से पहले था, का तात्पर्य यह है कि कर्मचारी को उसी स्थिति में रखा जाएगा जिसमें वह नियोक्ता द्वारा की गई अवैध कार्रवाई के बिना होता। किसी व्यक्ति को लगी चोट, जिसे बर्खास्त कर दिया गया हो या हटा दिया गया हो या अन्यथा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया हो, को आसानी से पैसे के संदर्भ में नहीं मापा जा सकता है। एक आदेश पारित होने से नियोक्ता-कर्मचारी संबंध विच्छेद हो जाता है, नियोक्ता की आय का स्रोत समाप्त हो जाता है। न केवल संबंधित कर्मचारी, बल्कि उसके पूरे परिवार को गंभीर प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। वे जीविका के स्रोत से वंचित हैं। बच्चे पौष्टिक भोजन और शिक्षा तथा जीवन में उन्नति के सभी अवसरों से वंचित हैं। कई बार भुखमरी से बचने के लिए परिवार को रिश्तेदारों और अन्य परिचितों से उधार लेना पड़ता है। ये कष्ट तब तक जारी रहते हैं जब तक सक्षम न्यायिक मंच नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई की वैधता पर निर्णय नहीं ले लेता। ऐसे कर्मचारी की बहाली, जो सक्षम न्यायिक/अर्ध न्यायिक निकाय या न्यायालय के निष्कर्ष से पहले होती है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है, जो कर्मचारी को पूर्ण बकाया वेतन का दावा करने का अधिकार देती है।

26. उच्चतम न्यायालय ने आगे अवधारित किया कि यदि नियोक्ता कर्मचारी को पिछला वेतन देने से इनकार करना चाहता है या परिणामी लाभ प्राप्त करने के उसके अधिकार का विरोध करना चाहता है, तो यह उसका विशेष दायित्व है कि वह विशेष रूप से तर्क दे और साबित करे कि बीच की अवधि के दौरान कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे समान परिलब्धियां मिल रही थीं। नियोक्ता के अवैध कार्य के कारण पीड़ित कर्मचारी को पिछला वेतन देने से इनकार करना अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्मचारी को दंडित करने और नियोक्ता को परिलब्धियों सहित बकाया वेतन का भुगतान करने के दायित्व से मुक्त करना पुरस्कार देने के समान होगा।

27. उसी रिपोर्ट में, बकाया वेतन के निर्णय के संबंध में, यह अवधारित किया गया कि विवेकाधीन तत्व वाले पिछले वेतन के भुगतान को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार निस्तारित किया जाना चाहिए और कोई सीधा-सीधा सिद्धान्त विकसित नहीं किया जा सकता है, हालाँकि, बकाया वेतन के संपूर्ण

भुगतान को निर्देशित करने की वैधानिक मंजूरी है।

28. ***भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम मेसर्स हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड: 2014 (142) एफएलआर 20*** के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय का संदर्भ भी उल्लेखनीय है, जिसमें **दीपाली गुंडू सुरवासे (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय का संदर्भ देते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह अवधारित किया कि अगर किसी कर्मचारी या कामगार को केवल इसलिए बकाया वेतन देने से इनकार कर दिया जाता है क्योंकि उसकी सेवा समाप्त होने और बहाली के आदेश को अंतिम रूप देने के बीच लंबा अंतराल है तो यह उसके साथ गंभीर अन्याय होगा। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कर्मकार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में है। वह पीड़ित की परेशानी को अधिक समय तक बढ़ाने के लिए सर्वोत्तम कानूनी विचारों का लाभ उठा सकता है, यानी कर्मचारी या कर्मकार, जो एक निश्चित मात्रा में बड़े वकील पर पैसा खर्च नहीं कर सकता है। इसलिए, ऐसे मामलों में हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम इम्प्लाईज ऑफ हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में सुझाए गए विषय को अपनाना समझदारी होगी.....।"

29. पिछले वेतन के साथ-साथ बहाली के मुद्दे पर चर्चा के बाद, ***मैकिनॉन मैकेंज़ी एंड कंपनी लिमिटेड बनाम मैकिनॉन कर्मचारी संघ: 2015 (145) एफएलआर 184*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दीपाली गुंडू (उपरोक्त) में निर्धारित अनुपात को दोहराया है।

30. उपरोक्त विचारों को सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में ***सिविल अपील संख्या 6890/2022 (विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 8393/2022 से उत्पन्न) जीतुभा खानसांगजी जाडेजा बनाम कच्छ जिला पंचायत*** मामले में पारित दिनांक 23.09.2022 के अपने निर्णय में दोहराया है।

31. वर्तमान मामले में, मुझे लगता है कि कर्मकार ने सफलतापूर्वक पैरवी की और मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्यों द्वारा अपना मामला पूरी तरह सिद्ध कर दिया कि दिनांक 01.01.1991 से उसकी सेवाओं की मौखिक रूप से समाप्ति किया जाना अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के विपरीत थी और उनसे कनिष्ठ कर्मचारियों को सेवा में बनाए रखा गया था। मुझे यह भी लगता है कि कर्मचारी के तर्क का खंडन करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करने पर नियोक्ता को प्रतिकूल निष्कर्ष का सामना करना पड़ेगा, जो कि श्रम न्यायालय द्वारा सही ढंग से निकाला गया है, विशेष रूप से धारा 114, दृष्टांत (जी) के मद्देनजर भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872।

32. वर्तमान मामले में, कर्मकार ने न केवल तर्क दिया है, बल्कि अपनी मौखिक गवाही में शपथ भी ली है और जिरह में भी यह रुख कायम रखा है कि उसकी सेवाओं की समाप्ति के बाद उसे लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया था। इसके विपरीत, याचिकाकर्ता/

नियोक्ता यह दलील देने या किसी भी तरीके से यह साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा कि कर्मकार को लाभकारी तरीके से नियोजित किया गया था ताकि उसे बकाया वेतन से वंचित किया जा सके। इसलिए, इस स्तर पर पूर्वोक्त प्राधिकारियों में निर्धारित अनुपात पूरी तरह से बकाया वेतन के निर्णय के लिए कर्मकार के मामले का समर्थन करता है, जिसका श्रम न्यायालय ने 50% की सीमा तक मूल्यांकन किया है, हालांकि यह एक ऐसा मामला हो सकता है जहां कर्मकार पूर्ण बकाया मजदूरी का हकदार था। हालाँकि, न्यायालय बकाया वेतन बढ़ाने का इच्छुक नहीं है क्योंकि रिट याचिका कर्मकार द्वारा नहीं बल्कि नियोक्ता द्वारा दायर की गई है।

33. उपरोक्त मुद्दों पर प्राधिकारियों को गुणा करने या उक्त प्राधिकारियों के अधिक से अधिक पैराग्राफों को संदर्भित/उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह केवल निर्णय को कठिन बना देगा और जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि श्रम न्यायालय ने उपरोक्त शर्तों के अनुसार निर्णय देने में कोई गलती नहीं की है, तो मुझे लगता है कि आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका योग्यता से रहित है।

34. तदनुसार, रिट याचिका विफल होती है और इसे **खारिज** किया जाता है। **आक्षेपित निर्णय को बरकरार रखा गया है।**

35. इस फैसले के समापन से पहले,न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामले में दिनांक 23.01.2017 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसके तहत याचिकाकर्ता को श्रम न्यायालय, गोरखपुर में 2,00,000/- रूपये की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया था और आक्षेपित निर्णय के संचालन को स्थगित रखा गया था। हालाँकि, उक्त अंतरिम आदेश के तहत यह भी प्रावधान किया गया था कि उक्त 25% को दिनांक 03.10.2017 के बाद के आदेश के बावजूद जारी नहीं किया जा सका और जारी न करने का कारण यह था कि संबंधित श्रम न्यायालय खाली था, जैसा कि दिनांक 30.04.2019 के आदेश में देखा गया था। इसके बाद, एक संशोधन आवेदन दायर किया गया था और कर्मकार की ओर से यह तर्क दिया गया था कि पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण, गोरखपुर को पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय के रूप में कार्य करने के लिए निर्देश जारी किया जा सकता है, और तदनुसार संशोधन आवेदन दिनांक 11.07.2019 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। इसके बाद ऐसा कोई आदेश नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि 25% राशि जारी करने की शर्त पूरी हो गई है या कर्मकार को राशि मिल गई है।

36. इसलिए, रिट याचिका को खारिज करते समय, यह देखा गया है कि श्रम न्यायालय के फैसले को वैसे ही क्रियान्वित किया जाएगा और निष्पादन की कार्यवाही संबंधित अदालत के समक्ष इस फैसले की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से **चार महीने** की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी। दिनांक 23.01.2017 के अंतरिम आदेश के तहत निर्देशित 25% की राशि, यदि प्रतिवादी-कर्मकार के पक्ष में जारी

नहीं की जाती है, तो उसे दिए जाने वाले पिछले वेतन में समायोजित की जाएगी।

37. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1433

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय अजय भनोट,

रिट-सी संख्या 6626/2023

सार्थक चौबे ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अर्जुन प्रसाद यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., श्री हेम प्रताप सिंह

प्रवेश -विश्वविद्यालय-याचिकाकर्ता प्रतिवादी-विश्वविद्यालय द्वारा बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में भुगतान सीटों पर प्रवेश देने से इनकार करने से व्यथित है - उनसे भुगतान वाली सीटों और नियमित सीटों दोनों में आवेदन किया है- याचिकाकर्ता को बी.ए. (ऑनर्स) समाजशास्त्र में प्रवेश मिल गया है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसने बी.ए. (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में दाखिला लेने के अपने अधिकार को छोड़ दिया है- याचिकाकर्ता उच्चतर वरीयता का पाठ्यक्रम आवंटित किए जाने की पूर्व-आवश्यकताएं पूरी करता है- निर्धारित समय सीमा के भीतर प्रारंभिक आवंटन के बाद शुल्क का भुगतान किया- रिक्ति बनाई गई थी- योग्यता के आधार पर रिक्ति उसके द्वारा भरी जा सकती थी- विश्वविद्यालय द्वारा इनकार करना अवैध है- याचिकाकर्ता भुगतान वाली सीटों की श्रेणी में बी.ए. (ऑनर्स) अर्थशास्त्र का हकदार है।

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा सशुल्क सीट की श्रेणी में बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश देने से इनकार करने से व्यथित है। निर्विवाद तथ्य ये हैं:

याचिकाकर्ता ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से संबद्ध डी.ए.वी. पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज में नियमित सीटों के साथ-साथ भुगतान वाली सीटों की श्रेणी में बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता ने सीयूईटी-2022 परीक्षा में 279.46/400 अंक हासिल किए थे। भुगतान वाली सीटों की श्रेणी में बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने वाले अंतिम उम्मीदवार ने याचिकाकर्ता से कम अंक प्राप्त किए थे। भुगतान वाली सीटों की श्रेणी में बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विश्वविद्यालय ने उसके आवेदन और प्रवेश के लिए पात्रता के बावजूद कभी विचार नहीं किया। याचिकाकर्ता ने इस तथ्य का तर्क दिया है लेकिन विश्वविद्यालय ने अपने जवाबी हलफनामे में इसका खंडन नहीं किया है । इसके अलावा,प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री हेम प्रताप सिंह ने निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया है कि विश्वविद्यालय ने भुगतान वाली सीटों की श्रेणी में बी.ए. (ऑनर्स)

अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए याचिकाकर्ता पर विचार नहीं किया है।

इन तथ्यों के स्थापित हो जाने के बाद, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री हेम प्रताप सिंह ने विश्वविद्यालय के प्रासंगिक अध्यादेश प्रस्तुत किए, जिन्हें संदर्भ की सुविधा के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:

"(i) कुछ पाठ्यक्रमों में कुल सीटों के अधिकतम 15% तक 'भुगतान सीटों' (अतिरिक्त) का प्रावधान है। भुगतान सीटों पर प्रवेश केवल नियमित शुल्क वाली सीटों के भर जाने के बाद ही दिया जाएगा।

(ii)...

(iii) यूजी काउंसलिंग के मामले में , वरीयता प्रविष्टि के दौरान उम्मीदवारों द्वारा भुगतान की गई सीटों के विकल्प का प्रयोग किया जाएगा। भुगतान की गई सीटों का आवंटन उन उम्मीदवारों के बीच योग्यता के क्रम में किया जाएगा।"

उक्त अध्यादेशों में प्रवेश के उन्नयन और लॉकिंग का भी प्रावधान है, जो नीचे दिया गया है:

"उन्नयन और लॉकिंग नियम:

द्वितीय और/या बाद की प्रवेश सूचियों में पुनर्व्यवस्था: उम्मीदवारों को वरीयता प्रविष्टि प्रपत्र में अपने पाठ्यक्रम की वरीयता (जहां विकल्प उपलब्ध है) दर्ज करनी होगी । मॉड्यूल को इस तरह से विकसित किया गया है कि यदि शुल्क भुगतान की समय सीमा समाप्त होने पर सीटें खाली हो जाती हैं (परिणामों के किसी भी दौर की घोषणा के बाद उच्च मेरिट वाले उम्मीदवारों द्वारा प्रवेश न लेने के कारण), तो संभावना है कि जिस उम्मीदवार को शुरू में उसकी वरीयता के निचले क्रम का पाठ्यक्रम आवंटित किया गया था, उसे उसकी वरीयता क्रम के अनुसार अधिक पसंदीदा पाठ्यक्रम में अपग्रेड किया जा सकता है। तदनुसार, काउंसलिंग के समय उम्मीदवार द्वारा दी गई वरीयता के आधार पर, प्रारंभिक आवंटन के बाद पाठ्यक्रम आवंटन में बदलाव हो सकता है। **पुनर्व्यवस्था प्रक्रिया केवल उम्मीदवार द्वारा भरी गई वरीयता के क्रम, रिक्ति के निर्माण और उसके मेरिट क्रम में ऊपर की ओर गतिशीलता को सक्षम करेगी, बशर्ते कि निर्धारित समय सीमा के भीतर प्रारंभिक आवंटन के लिए प्रवेश शुल्क का भुगतान पहले ही किया जा चुका हो। "**

(जोर दिया गया)

"कोर्स आवंटन को लॉक करना: कई बार, यदि उम्मीदवार शुरू में आवंटित कोर्स में कोई बदलाव नहीं चाहता है (मान लीजिए कि परिणाम के 1" या उसके बाद के दौर के बाद) तो इसका मतलब है कि वह अगले दौर में पूर्वोक्त पुनर्व्यवस्था प्रक्रिया से बाहर होना चाहता है। यदि वह प्रवेश सूची की घोषणा के किसी भी दौर के बाद कोर्स आवंटन से संतुष्ट है, तो ऐसे मामलों में उम्मीदवार अपने पंजीकृत ईमेल आईडी के माध्यम से संबंधित प्रवेश समिति के संयोजक को अपने कोर्स आवंटन को लॉक करने के लिए तुरंत ईमेल करेगा। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक प्रवेश समिति एक समर्पित ईमेल आईडी बनाएगी। यदि कोई उम्मीदवार पूर्वोक्त तरीके से लॉक विकल्प मांगता है, तो उसे अगले दौर में पूर्वोक्त पुनर्व्यवस्था प्रक्रिया से बाहर कर दिया जाएगा।

टिप्पणी:

I....

II....

III. प्रत्येक अभ्यर्थी को सलाह दी जाती है कि वे वरीयता प्रविष्टि फॉर्म में विषय की अपनी वरीयताएं भरते समय बहुत स्पष्ट और सावधान रहें, क्योंकि पाठ्यक्रम आवंटन को लॉक करने के बाद, कम्प्यूटरीकृत ऑनलाइन प्रवेश मॉड्यूल द्वारा ऑनर्स विषय के साथ आवंटित संयोजन को पूरे पाठ्यक्रम अवधि के दौरान किसी भी परिस्थिति में नहीं बदला जाएगा।"

याचिकाकर्ता को बीए (ऑनर्स) समाजशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया गया था। उसने प्रवेश शुल्क जमा कर दिया और तब से वह उपरोक्त पाठ्यक्रम में लगा हुआ है। याचिकाकर्ता को बीए (ऑनर्स) समाजशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश मिलने का मतलब यह नहीं है कि उसने बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने के अपने अधिकार को छोड़ दिया है, न ही यह उसे भुगतान सीटों की श्रेणी में बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम के लिए उम्मीदवार के रूप में विचार किए जाने के अपने अधिकार पर जोर देने से रोकता है।

विश्वविद्यालय की ओर से यह तर्क कि एक बार जब कोई छात्र अपनी फीस का भुगतान कर देता है और किसी अन्य पाठ्यक्रम में प्रवेश ले लेता है, तो 'लॉकिंग नियम' के मद्देनजर उसका पसंदीदा विकल्प प्रयोग नहीं किया जा सकता, गलत है। नियम के रेखांकित भाग का संदर्भ दर्शाता है कि याचिकाकर्ता उसके द्वारा भरे गए वरीयता क्रम में ऊपर की ओर गतिशीलता का हकदार था। नियम में प्रवेश में पुनर्व्यवस्था की बात कही गई है।

याचिकाकर्ता उच्च वरीयता के पाठ्यक्रम आवंटित किए जाने के लिए आवश्यक पूर्व-आवश्यकताओं को पूरा करता है। उसने निर्धारित समय सीमा के भीतर अपने प्रारंभिक आवंटन के बाद फीस का भुगतान किया था। इसके अलावा, पाठ्यक्रम में रिक्ति बनाई गई थी और याचिकाकर्ता की योग्यता के आधार पर रिक्ति उसके द्वारा भरी जा सकती थी।

लॉकिंग नियम एक पूरी तरह से अलग अवधारणा है और इसका इस मामले में कोई असर नहीं है। पाठ्यक्रम आवंटन तभी लॉक होता है जब कोई उम्मीदवार विश्वविद्यालय से अनुरोध करता है कि वह शुरू में आवंटित कोर्स में कोई बदलाव नहीं चाहता है और पुनर्व्यवस्था प्रक्रिया से बाहर होना चाहता है। बेशक, उम्मीदवार ने बीए (ऑनर्स) समाजशास्त्र में अपने प्रवेश को लॉक करने का विकल्प नहीं चुना था और इसलिए उसे ऊपर की व्यवस्था प्रक्रिया से बाहर नहीं किया जा सकता था।

विश्वविद्यालय द्वारा याचिकाकर्ता को बी.ए. (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में भुगतान वाली सीटों की श्रेणी में प्रवेश देने से इनकार करना मनमाना और अवैध था।

पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर इस न्यायालय का मानना है कि याचिकाकर्ता सशुल्क सीटों की श्रेणी में बीए (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम के लिए हकदार था।

प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को आदेश दिया जाता है कि वह बी.ए. (ऑनर्स) अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए उनकी उम्मीदवारी पर तुरंत कार्रवाई करे ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विश्वविद्यालय की गलती के कारण याचिकाकर्ता के उक्त पाठ्यक्रम में प्रवेश में देरी हुई है, विश्वविद्यालय अतिरिक्त कक्षाएं, विशेष परीक्षा आयोजित करने और आवश्यक सहायता सहित सभी उपाय करेगा ताकि याचिकाकर्ता का एक शैक्षणिक वर्ष बर्बाद न हो।

रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1436

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय,

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार,

रिट-सी संख्या 8724/2013

सतीश केवलानी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री वेद प्रकाश, श्री दिनेश कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून -भारतीय संविधान, 1950 अनुच्छेद-226, 252(2)- नगरीय भूमि अधिकतम सीमा एवं विनियमन अधिनियम, 1976 - धारा 8(3), 10(1), 10(3), 10(4), 10(5), 10(6) एवं 35- नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 - धारा 3, 4 एवं 5(2) - विपक्षीगण को शांतिपूर्ण कब्जे में व्यवधान न डालने का आदेश देने हेतु रिट याचिका - पूर्व में, वर्ष 1990 में -प्रश्नगत गाटा के मूल खातेदार के विरुद्ध प्रतिवादी प्राधिकारियों द्वारा धारा 8(3) के तहत नोटिस जारी किया गया था -जिसका कभी जवाब नहीं दिया गया - जिसके परिणामस्वरूप उक्त गाटा को अधिशेष भूमि घोषित कर दिया गया - वर्ष 1996 में धारा 10(3) एवं 10(5) के तहत अधिसूचना प्रकाशित की गई, उक्त भूमि अधिनियम 1976 की धारा 10(6) के तहत एलडीए को हस्तांतरित कर दी गई - मूल भूमिधर की मृत्यु के बाद, उसकी बेटी ने उत्तराधिकारी होने के नाते वर्ष 2000 में याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री-विलेख निष्पादित किया, पुराने अधिनियम, 1976 को नए अधिनियम, 1999 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया- न्यायालय ने पाया कि भूमिधर का कब्जा अभी भी है और भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा कभी भी राज्य द्वारा नहीं लिया गया था, तब निरस्त अधिनियम, 1976 के तहत सभी कार्यवाही और उसके आदेश अधिनियम, 1999 के लागू होने पर समाप्त हो गए - इसलिए, याचिकाकर्ता अधिनियम, 1999 की धारा 3 और 4 के लाभ के लिए हकदार है- परिणामस्वरूप, रिट याचिका की अनुमति है - राजस्व रिकॉर्ड में अधिशेष भूमि के संबंध में बेचान को हटाने और याचिकाकर्ता के नाम को बहाल करने के लिए निर्देश जारी किए गए। पैरा(13, 18, 22, 23, 24)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. यू.पी. राज्य बनाम हरि राम, (2013) 4 एससीसी 280,
2. यासीन बनाम यूपी राज्य व अन्य, (2014) 4 एडीजे 305 (डीबी),
3. बाबू व अन्य बनाम सचिव, शहरी भूमि सीलिंग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (विविध बेंच संख्या 1960/2019)
4. यू.पी. राज्य व अन्य बनाम बाबू व अन्य (एस.एल.पी. संख्या 4160/2022 निर्णीत दिनांक 14.03.2022),
5. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड, (2016) 12 एससीसी 493,

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय एवं माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार द्वारा प्रदत्त)

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित मुख्य प्रार्थनाओं के साथ प्रस्तुत की गई है:-

*"**अ)** परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे विपक्षी पक्षों को आदेश दिया जा सके कि वे ग्राम चंदन, परगना, तहसील एवं जिला लखनऊ में स्थित गाटा संख्या- 72, खाता संख्या- 178, क्षेत्रफल- 1606.13 वर्ग मीटर पर याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे को बाधित न करें।*

***ब)** परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे विपक्षी पक्षों को निर्देश दिया जा सके कि वे ग्राम चंदन, परगना, तहसील और जिला- लखनऊ में स्थित गाटा संख्या- 72, खाता संख्या- 178, क्षेत्रफल- 1606.13 वर्ग मीटर पर याचिकाकर्ता के नाम पर प्रविष्टियों को पुनर्स्थापित करें, जैसा कि 04.02.2008 से पूर्व था।"*

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि ग्राम चंदन, परगना, तहसील व जिला- लखनऊ में स्थित गाटा संख्या- 72 (1606.13 वर्ग मीटर) मूल खातेदार सुक्खा के नाम दर्ज थी, जो संक्रमणीय अधिकारों के साथ उसका भूमिधर था। उक्त भूमि के संबंध में शहरी भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 (जिसे आगे 'अधिनियम, 1976' कहा जाएगा) की धारा 8(3) के अंतर्गत नोटिस जारी किया गया था और प्रतिवादीगण के अनुसार सुक्खा ने कोई जवाब नहीं दिया, इसलिए उक्त 1606.13 वर्ग मीटर भूमि अधिशेष घोषित कर दी गई। दिनांक 09.09.1978 को अधिनियम, 1976 की धारा 10(1) के अंतर्गत अधिसूचना जारी की गई। तत्पश्चात, दिनांक 12.05.1990 को अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित की गई। सुक्खा को निर्देशित किया गया कि अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के मद्देनजर विपक्षीगण द्वारा दावा किए अनुसार उक्त भूमि का कब्जा 24.01.1991 को सौंप दिया जाए। तत्पश्चात, विपक्षीगण के अनुसार उक्त भूमि को शासनादेश दिनांक 11.12.1996 तथा अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के मद्देनजर लखनऊ विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया गया, यद्यपि इस हस्तांतरण की सही तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। वस्तुतः राज्य के प्रति शपथपत्र में यद्यपि यह उल्लेख किया गया है कि सुक्खा से भूमि का कब्जा सौंपने के लिए कहा

गया था, परन्तु यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि उसने अपना कब्जा स्वेच्छा से राज्य प्राधिकारियों को सौंपा या समर्पित किया या यह कि उसे जबरन लिया गया। प्रति शपथपत्र में विपक्षीगण द्वारा इस प्रकार के हस्तांतरण या कब्जा लेने का कोई प्रमाण संलग्न नहीं किया गया है। अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के तहत केवल नोटिस की एक प्रति संलग्न की गई है, जो अपने आप में वास्तविक कब्जे को सौंपने या लेने को साबित नहीं करती है। 11.03.1999 को, शहरी भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) निरसन अध्यादेश, 1999 जारी किया गया था, जिसे 18.03.1999 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 252(2) के तहत यू.पी. के राज्य विधानमंडल द्वारा अपनाया गया था। इस अध्यादेश को शहरी भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (अधिनियम संख्या- 5, 1999) (जिसे आगे 'निरसन अधिनियम, 1999' कहा गया है) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, जिसके द्वारा अधिनियम, 1976 को निरस्त कर दिया गया था। इस अधिनियम, 1999 की धारा 5(2) के अनुसार, अध्यादेश, 1999 के निरसन के बावजूद, उक्त अध्यादेश के अधीन किया गया कोई कार्य या की गई कार्रवाई अधिनियम के समतुल्य उपबंधों के अधीन की गई मानी जाएगी। अत: उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दिनांक 18.03.1999 को अपनाया जाना अधिनियम, 1999 के लिए भी मान्य है।

निरसन अधिनियम, 1999 के प्रावधानों का उल्लेख करने से पूर्व यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि किसी समय सुक्खा की मृत्यु हो गई थी तथा उनकी भूमि के संबंध में उनकी पुत्री ने उनका स्थान ग्रहण किया तथा निरसन अधिनियम, 1999 के लागू होने के पश्चात उन्होंने याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 18.09.2000 को एक विक्रय-विलेख निष्पादित किया, जो याचिकाकर्ता के दिनांक 11.02.2020 के पूरक शपथ-पत्र के अनुसार था, जिसकी प्रति राज्य को तामील करा दी गई थी, जिसकी विषय-वस्तु से राज्य द्वारा इन्कार नहीं किया गया है। विक्रय-विलेख की प्रति भी इसके साथ संलग्न है। उक्त विक्रय-विलेख के आधार पर याचिकाकर्ता को राजस्व अभिलेखों में भूमिधर के रूप में हस्तान्तरणीय अधिकारों के साथ दर्ज किया गया था। गाटा संख्या- 72 से संबंधित खतौनी की प्रति याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या- 1 के रूप में संलग्न है। तब तक राज्य को उक्त भूमि के संबंध में अभिलेख भी नहीं मिला था तथा यह अभिलेख दिनांक 04.02.2008 को ही दर्ज हुआ था। निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 और 4 इस प्रकार है:-

*"**3. व्यावृतियाँ:-** (1) मूल अधिनियम के निरसन से निम्नलिखित प्रभावित नहीं होंगे:-*

***(क)** धारा 10 की उपधारा (3) के अधीन किसी रिक्त भूमि का निहित होना, जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विधिवत् प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा ले लिया गया हो।*

***(ख)** धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन छूट प्रदान करने वाले किसी आदेश या उसके*

अधीन की गई किसी कार्रवाई की वैधता, किसी न्यायालय के विपरीत किसी निर्णय के बावजूद;
(ग) *धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन छूट प्रदान करने की शर्त के रूप में राज्य सरकार को किया गया कोई भुगतान।*
(2) *जहां-.*

(क) *कोई भूमि मूल अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार में निहित समझी जाती है, किन्तु जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा विधिवत् प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं लिया गया है; और*

(ख) *ऐसी भूमि के संबंध में राज्य सरकार द्वारा कोई राशि अदा की गई है, तो ऐसी भूमि तब तक वापस नहीं की जाएगी, जब तक कि अदा की गई राशि, यदि कोई हो, राज्य सरकार को वापस नहीं कर दी जाती।*

4. विधिक कार्यवाहियों का उपशमन:- *इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पहले किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकरण के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन किए गए या किए जाने हेतु प्रकल्पित किसी आदेश से संबंधित सभी कार्यवाहियां उपशमित होंगी:*

बशर्ते कि यह धारा मूल अधिनियम की धारा 11, 12, 13 और 14 से संबंधित कार्यवाही पर लागू नहीं होगी, जहां तक ऐसी कार्यवाही उस भूमि से संबंधित है, <u>जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विधिवत प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा लिया गया है।</u>"

निरसन अधिनियम, 1999 के इन प्रावधानों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम [(2013) 4 एससीसी 280]*** के मामले में विचार किया तथा अन्य बातों के साथ-साथ यह माना गया कि धारा-10 की उपधारा (3) के तहत निहित होने का अर्थ पूर्ण रूप से स्वामित्व निहित होना है, न कि कब्जा, हालांकि किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से कब्जा सौंपने या सौंपने में कोई बाधा नहीं आती है। पुनः सुस्थापित किया कि राज्य के लिए अधिनियम, 1976 की धारा- 10 (5) के तहत नोटिस जारी करना अनिवार्य था, जिसमें याचिकाकर्ता/भूमिधारक को राज्य को कब्जा सौंपने का निर्देश दिया गया था, ऐसा न करने पर राज्य के लिए यह अनिवार्य था। अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के तहत राज्य को बलपूर्वक कब्जा लेने का अधिकार नहीं है। न्यायालय ने आगे कहा कि:-

*"**42.** धारा 10 की उपधारा (3) के तहत भूमि का निहित होना मात्र राज्य सरकार को खाली भूमि पर वास्तविक कब्जा करने का कोई अधिकार नहीं देता, जब तक कि 18.03.1999 से पहले खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण न हुआ हो। राज्य को यह स्थापित करना होगा कि खाली भूमि का स्वैच्छिक समर्पण हुआ है या धारा 10 की उपधारा (5) के तहत शांतिपूर्ण कब्जे का समर्पण और वितरण हुआ है या धारा 10 की उपधारा (6) के तहत बलपूर्वक बेदखली हुई है। इनमें से किसी भी स्थिति को स्थापित करने में विफल रहने पर, भूमि स्वामी या धारक निरसन अधिनियम की धारा 4 के लाभ का दावा कर सकता है। राज्य सरकार इस अपील में ऐसी कोई भी स्थिति स्थापित नहीं*

कर सकी एवं इसलिए उच्च न्यायालय का यह मानना सही है कि प्रतिवादी निरसन अधिनियम की धारा - 4 का लाभ पाने का हकदार है।"

इस प्रकार, अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के तहत भूमि का निहित होने का मतलब वास्तविक भौतिक कब्जा नहीं है और ऐसा निहित होना भी अपने आप में काश्तकार के कब्जे को अवैध नहीं बनाता है। इस प्रकार मामले का सार यह है कि क्या इस मामले में निरसन अधिनियम, 1999 के लागू होने से पहले वास्तविक कब्जा लिया गया था या स्वेच्छा से दिया गया था या नहीं। यदि नहीं, तो याचिकाकर्ता को निरसन अधिनियम का लाभ मिलेगा। यदि लिया जा चुका है, तो नहीं मिलेगा।

अब इस न्यायालय द्वारा ***यासीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य [(2014) 4 एडीजे 305 (डीबी)]*** के मामले में कब्जा लेने की विधि/प्रक्रिया पर चर्चा की गई। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 और 16 में निम्नांकित उल्लेख है:-

"15. *उपरोक्त के आलोक में न्यायालय को यह देखना है कि अधिनियम की धारा 10(5) या 10(6) के अन्तर्गत राज्य द्वारा वास्तविक भौतिक कब्जा लिया गया है या नहीं। कब्जा लेने की प्रक्रिया 1983 के निर्देशों के अन्तर्गत प्रदान की गई है, जिसे राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 35 के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी किया है। निर्देशों के पैराग्राफ 3 का उद्धरण नीचे दिया गया है:-*

'3. *अधिकतम सीमा से अधिक खाली भूमि पर कब्जा लेने की प्रक्रिया- (1)सक्षम प्राधिकारी प्रत्येक मामले के लिए प्रपत्र संख्या यूएलसी-1 में रजिस्टर बनाए रखेगा, जिसके सम्बन्ध में अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (3) के अन्तर्गत अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की गई है।*

(2) *अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (5) के अन्तर्गत निर्धारित फॉर्म संख्या यूएलसी-II में आदेश प्रत्येक भू-धारक को भेजा जाएगा। तथा आदेश जारी करने और तामील की तारीख प्रपत्र संख्या यूएलसी-1 के स्तंभ 8 में दर्ज की जाएगी।*

(3) *अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (5) या उपधारा (6) के प्रावधानों के अनुसार अतिरिक्त खाली भूमि पर कब्जा लिए जाने पर, प्रपत्र संख्या यूएलसी-III में एक रजिस्टर में प्रविष्टियां की जाएंगी तथा प्रपत्र संख्या यूएलसी-I के स्तंभ 9 में भी प्रविष्टियां की जाएंगी। सक्षम प्राधिकारी प्रविष्टियों के सत्यापन के प्रतीक स्वरूप प्रपत्र संख्या यूएलसी-I के स्तंभ II तथा प्रपत्र संख्या यूएलसी-III के स्तंभ 10 में अपने हस्ताक्षर करेगा।"*

16. *उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि सक्षम प्राधिकारी को यूएलसी-I के अंतर्गत एक रजिस्टर बनाए रखना आवश्यक है, जिसमें अधिनियम की धारा 10(5)के अंतर्गत जारी नोटिस की तिथि तथा नोटिस की तामील की तिथि के साथ-साथ कब्जा लेने की तिथि तथा सक्षम प्राधिकारी के हस्ताक्षर अंकित होने*

अनुवादित

आवश्यक हैं। प्रपत्र संख्या यूएलसी-II धारा 10(5) के अंतर्गत नोटिस जारी करने के संबंध में है। प्रारूप में यह दर्शाया गया है कि काश्तकार को भेजे जाने वाले नोटिस के अतिरिक्त अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (6) के अंतर्गत कब्जा लेने के अनुरोध के साथ कलेक्टर को सूचना भी भेजी जानी आवश्यक है। प्रपत्र संख्या यूएलसी-III उस भूमि का रजिस्टर है, जिसका कब्जा धारा 10(5) के अंतर्गत लिया गया है। अधिनियम की धारा 10(5) या 10(6) के अनुसार सक्षम प्राधिकारी को भी कब्जा लेने की तिथि पर हस्ताक्षर करने होंगे।"

उपरोक्त उद्धृत निर्णय में उल्लिखित 1983 के निर्देश अधिनियम, 1976 की धारा 35 के अंतर्गत जारी किए गए हैं।

यासीन (उपरोक्त) के मामले में खंडपीठ ने कब्जे के तरीके पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद यह भी पाया कि कब्जे का सामान्य तरीका पंचनामा तैयार करना और पंचों की उपस्थिति में कब्जा लेना और लाभार्थियों को, यदि कोई हो, कब्जा सौंपना।

प्रति-शपथपत्र में ऐसी कोई दलील नहीं है और न ही पूर्वोक्त प्रक्रिया के अनुसार कब्जा लेने को प्रदर्शित करने के लिए कोई दस्तावेज संलग्न किया गया है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, वास्तव में, पूर्वोक्त प्रक्रिया के बिना भी, राज्य के प्रति-शपथपत्र में ऐसा कोई कथन नहीं है कि प्रश्नगत भूमि पर उसके द्वारा वास्तविक कब्जा लिया गया था। यह भी मामला नहीं है कि वास्तविक कब्जा काश्तकार द्वारा स्वेच्छा से दिया गया था।

अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत जारी प्रपत्र संख्या न० भू० अ० सी० - दो के अवलोकन से मूल काश्तकार सुक्खा का नाम पता चलता है, लेकिन रिकॉर्ड से ऐसा कुछ नहीं मिला है कि किसी भी समय मूल काश्तकार या याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 10 (5) के अनुसार स्वेच्छा से भौतिक कब्जा दिया हो। जवाबी हलफनामे में यह भी नहीं कहा गया है कि लखनऊ विकास प्राधिकरण को वास्तविक भौतिक कब्ज़ा सौंपा गया था और उसने उस पर कोई निर्माण किया है। ***यासीन*** (सुप्रा) और ***बाबू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा-सचिव, शहरी भूमि सीलिंग, लखनऊ और अन्य (प्रकीर्ण बेंच संख्या- 1960/2019)*** के मामलों में इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णयों के आलोक में कोई भी दस्तावेजी सबूत नहीं है जो मूल काश्तकार द्वारा स्वैच्छिक रूप से कब्ज़ा छोड़ने या राज्य द्वारा जबरन वास्तविक कब्ज़ा दिखाने के लिए हो।

सक्षम प्राधिकारी को यू.एल.सी.-I के अन्तर्गत एक रजिस्टर बनाए रखना आवश्यक है, जिसमें अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के अन्तर्गत जारी नोटिस की तिथि तथा नोटिस की तामील की तिथि के साथ-साथ कब्जा लेने की तिथि तथा सक्षम प्राधिकारी के हस्ताक्षर अंकित होने आवश्यक हैं। प्रपत्र संख्या यू.एल.सी.-II धारा 10(5) के अन्तर्गत नोटिस जारी करने के संबंध में है। प्रारूप में यह दर्शाया गया है कि काश्तकार को भेजे जाने वाले नोटिस के अतिरिक्त, अधिनियम की धारा

10 की उपधारा (6) के अन्तर्गत कब्जा लेने के अनुरोध के साथ कलेक्टर को भी सूचना भेजी जानी आवश्यक है। प्रपत्र संख्या यू.एल.सी.-III उस भूमि का रजिस्टर है, जिसका कब्जा अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) या 10(6) के अन्तर्गत लिया गया है। सक्षम प्राधिकारी को विचारण लेने की तिथि का समर्थन करते हुए अपने हस्ताक्षर भी करने आवश्यक हैं। इस मामले में ऐसा कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है, जिससे विपक्षीगण को मदद मिल सके। प्रति शपथ पत्र के साथ कब्जे का कोई ज्ञापन संलग्न नहीं है। प्रति शपथ पत्र में कब्जा लेने की तिथि का भी उल्लेख नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैरा 6 में विशेष रूप से दलील दी है कि भूमि पर कभी कब्जा नहीं लिया गया। इसमें निम्नांकित लिखा है:-

*"**6**. 1976 के अधिनियम संख्या- 33 की धारा 10(1) के अंतर्गत अधिसूचना संख्या-8540/3228, दिनांक 09.09.1978 द्वारा की गई थी, लेकिन कब्जा नहीं लिया गया।"*

उपर्युक्त पैरा का उत्तर प्रति शपथ-पत्र के पैरा 24 में दिया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

*"**24.** रिट याचिका के पैरा 6 की विषय-वस्तु पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।"*

रिट याचिका के पैरा 11 में उन्होंने आगे उल्लेख किया है कि वह भूमि पर वास्तविक और भौतिक कब्जे में बने हुए हैं। इसमें निम्नांकित लिखा है:-

*"**11**. याचिकाकर्ता सम्मानपूर्वक प्रस्तुत करता है कि विपक्षी पक्ष संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित विक्रय-विलेख के निष्पादन के पश्चात उसका नाम राजस्व अभिलेखों में परिवर्तित कर दिया गया था और वह प्रश्नगत भूमि पर वास्तविक और भौतिक कब्जे में बने हुए हैं।"*

राज्य द्वारा पैरा 26 में इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है:-

"रिट याचिका के पैरा 11 की विषय-वस्तु जैसा कि कहा गया है, उपरोक्त प्रस्तुतियों के मद्देनजर अस्वीकृत की जाती है।"

प्रति-शपथ पत्र के अन्य पैराग्राफों के अवलोकन से हमें इस बात का कोई तर्क या प्रमाण नहीं मिला कि वास्तविक भौतिक कब्जा राज्य अधिकारियों को सौंपा गया है या उनके द्वारा लिया गया है। वास्तव में, प्रति-शपथपत्र का पैरा 24 याचिकाकर्ता के मामले को स्वीकार करता है। राज्य के प्रति-शपथपत्र में संदर्भित कब्जा और हस्तांतरण केवल कागज पर है। इस संबंध में हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए मूल अभिलेखों में भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वास्तव में कब्जा स्वेच्छा से लिया गया है या दिया गया है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***हरि राम*** (सुप्रा) के मामले में दिए गए निर्णय के मद्देनजर, केवल भूमि राज्य में निहित होने के

कारण भूमिधारक या याचिकाकर्ता के कब्जे को अवैध नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि ***बाबू एवं अन्य*** (सुप्रा) के मामले पहले ही कहा जा चुका है। उपरोक्त के मद्देनजर, भूमि स्वामी या धारक निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 और 4 का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

जहां तक श्री खरे का यह तर्क है कि याचिका विलम्ब से दायर की गई है, यह भी अप्रासंगिक है क्योंकि याचिकाकर्ता का अभी भी भूमि पर कब्जा है और इसका कब्जा वास्तव में राज्य द्वारा कभी नहीं लिया गया था। इसके अलावा, याचिकाकर्ता को 04.02.2008 को रिकॉर्ड में अवैध रूप से की गई प्रविष्टि के बारे में पता चलने के बाद याचिका दायर की गई थी। ***बाबू और अन्य*** (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के फैसले में भी इस पहलू पर विचार किया गया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:-

*"**16**. श्री सरीन के इस तर्क के संबंध में कि चुनौती देरी से दी गई थी इस संबंध में हमारा मत है कि चूंकि वास्तविक भौतिक कब्जा अभी भी याचिकाकर्ताओं के पास है और इसे राज्य द्वारा नहीं लिया गया है, इसलिए उपरोक्त राहत मांगने में देरी का कोई सवाल ही नहीं है। श्री सरीन द्वारा लिया गया निर्णय, जो 2015 (5) एससीसी 321 असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा तथा अन्य, 2017 (7) एडीजे 362 धनी राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य तथा अन्य एवं 2015 (7) एडीजे 630 शिव राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में रिपोर्ट किया गया है, इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। भास्कर ज्योति (सुप्रा) के मामले में तथ्य यह था कि वास्तविक भौतिक कब्जा 07.12.1991 को तत्कालीन भूमि मालिक से लिया गया था, इसलिए इस संदर्भ में अवैध रूप से कब्जा लेने के बारे में उठाई गई दलील बहुत देरी से की गई। यहां तथ्य बहुत अलग हैं। याचिकाकर्ताओं के पास अभी भी कब्जा है और ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि इसे राज्य ने लिया था। शिव राम सिंह (सुप्रा) के मामले के संबंध में यहां भी आरोप धारा 10(5) के तहत उचित नोटिस के बिना भूमि से बेदखल करने का था और चूंकि यह एक देरी से किया गया तर्क था, इसलिए यह स्वीकार्य नहीं था। धनी राम (सुप्रा) के मामले में अधिनियम, 1976 की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना को देरी से चुनौती दी गई थी, जो यहां मामला नहीं है। इसलिए, इनमें से कोई भी निर्णय विपक्षी पक्षों के मामले का समर्थन नहीं करता है।"*

बाबू एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में दिनांक 30.07.2021 के निर्णय के विरुद्ध, ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम बाबू एवं अन्य द्वारा एस.एल.पी. संख्या 4160/2022*** प्रस्तुत की गई थी, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 14.03.2022 के अपने आदेश द्वारा खारिज कर दिया था।

चूंकि धारा 10(5) के तहत सुक्खा द्वारा भूमि का स्वैच्छिक समर्पण या धारा 10(6) के तहत उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जबरन वास्तविक कब्जा स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है, इसलिए निरसन अधिनियम, 1999 स्पष्ट रूप से लागू होता है और याचिकाकर्ता निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 और 4 के लाभ का हकदार है।

जब हम एक बार इस निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं कि राज्य द्वारा वास्तविक भौतिक कब्जा कभी नहीं लिया गया था, तो निरसन अधिनियम, 1999 के मद्देनजर, निरसित अधिनियम, 1976 के तहत सभी कार्यवाहियाँ और उसमें पारित आदेश 18.03.1999/22.03.1999 को समाप्त हो गए, जब अधिनियम, 1999 लागू हुआ। अधिनियम, 1976 स्वयं उक्त तिथि से प्रभावी होना बंद हो गया, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि 18.09.2000 को याचिकाकर्ता के पक्ष में सुक्खा की बेटी द्वारा भूमि का बिक्री अधिनियम, 1976 के किसी भी प्रावधान, जैसे धारा 10 (4) के अंतर्गत आती है।

इस संबंध में श्री खरे का तर्क, जो ***उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड; (2016) 12 एससीसी 493*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित है, यह है कि याचिकाकर्ता अनुवर्ती क्रेता होने के कारण किसी राहत का हकदार नहीं है, गलत है। ***आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड*** (उपरोक्त) के मामले में, भूमि का विक्रय-विलेख, जो सीलिंग कार्यवाही का विषय था, वर्ष 1991-92 में बेचा/खरीदा गया था, जब अधिनियम 1976 लागू था और भूमि राज्य में निहित हो गई थी एवं उक्त अधिनियम की धारा 10(4) द्वारा बिक्री प्रतिबंधित थी, किंतु, इस मामले में, अधिनियम 1976 दिनांक 18.03.1999/ 22.03.1999 को लागू नहीं रहा जब यह निरसित हो गया और भूमि की बिक्री याचिकाकर्ता के पक्ष में काश्तकार द्वारा 18.09.2000 को की गई, इसलिए, यह धारा 10(4) के दायरे में नहीं आया क्योंकि यह अब अस्तित्व में नहीं थी। कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो दर्ज किए गए पट्टेदार को उक्त तिथि पर याचिकाकर्ता को उक्त भूमि बेचने से रोकता हो। ***आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड*** (उपरोक्त) में दिया गया निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

उपरोक्त बहस के दृष्टगत याचिका ***स्वीकृत*** की जाती है। हम संबंधित राजस्व प्राधिकारियों को निर्देशित करते हैं कि वे खतौनी, जिसकी प्रति अनुलग्नक 1 के रूप में संलग्न है, के टिप्पणी स्तम्भ से सीलिंग एक्ट के तहत अधिशेष भूमि के बारे में निहित पृष्ठांकन को हटा दें एवं जहां तक उसमें उसके हिस्से का संबंध है, राजस्व रिकॉर्ड में प्रश्नगत भूमि के सापेक्ष याचिकाकर्ता का नाम पुनः स्थापित करें। यह किसी तीसरे व्यक्ति के अधिकारों के प्रति पूर्वाग्रह के बिना है, जिसका याचिकाकर्ता के खिलाफ दावा हो सकता है।

मूल अभिलेख जो प्रस्तुत किए गए थे और न्यायालय द्वारा प्रतिधारित किये गए थे, उन्हें राज्य की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को वापस किया जाता है।

———

(2023) 5 ILRA 1443

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

माननीय न्यायामूर्ति अजय भनोट,

रिट-सी संख्या 9252/2023

श्री महिला हितकारिणी आर्य महापरिषद, वाराणसी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: डॉ प्रदीप कुमार मिश्रा, श्री शिवेंदु ओझा, श्री राधाकांत ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., सुश्री विशाखा पांडे, श्री अशोक कुमार सिंह, श्री राकेश पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून -भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 -सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860- सोसायटी के उपनियम 29 और 35:- रिट याचिका- आक्षेपित आदेश - सोसायटी के प्रतिद्वंद्वी दलों द्वारा दो चुनावों की गणना की गई - रिट याचिका - विशेष अपील ने मामले को निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष वापस भेज दिया - जिसने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा स्थापित चुनाव को बरकरार रखा है और याचिकाकर्ताओं के चुनाव संबंधी दावे को अमान्य कर दिया - न्यायालय ने पाया कि, निर्धारित प्राधिकारी ने चुनाव के लिए बुलाई गई बैठक की वैधता निर्धारित करने के लिए सोसायटी के उपनियमों - अर्थात उपनियम संख्या 29 और 35 के परस्पर प्रभाव पर विचार किया - न्यायालय ने पाया कि, उपनियम संख्या 35 एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए बनाया गया विशेष प्रावधान है, जबकि उपनियम संख्या 29 अन्य सभी उद्देश्यों के लिए बनाया गया एक सामान्य प्रावधान है - कानून के अच्छे प्राधिकारियों ने व्याख्या के सिद्धांत को स्थापित किया है कि विशेष कानून सामान्य कानून पर हावी होता है - इसलिए, एक चुनाव बैठक केवल उपनियम संख्या 35 द्वारा शासित और विनियमित होगी और बैठक के स्थान के बारे में अगला विवाद विद्वान खंडपीठ के निर्णय के विरुद्ध था - इसके अलावा, निर्वाचक मंडल के बारे में कोई मुद्दा नहीं है - परिणामस्वरूप, विवादित आदेश रद्द किया जा सकता है और मामले को निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से चुनाव कराने के लिए सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स को भेजा जाता है - रिट याचिका की अनुमति है - तदनुसार निर्देश जारी किए जाते हैं।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रिट संख्या 20203/2022 (श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य) दिनांक 20.10.2022 को निर्णय लिया गया।

2. विशेष अपील संख्या 692/20222 (डॉ शशि कांत दीक्षित बनाम यूपी राज्य व अन्य) दिनांक 16.12.2022 को निर्णीत।

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता डा0 प्रदीप कुमार मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राधाकान्त ओझा तथा सुश्री विशाखा पाण्डेय द्वारा सहातया प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पाण्डेय तथा प्रत्यर्थी संख्या- 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार सिंह को सुना।

2. सोयायटीज पंजीकरण अधिनियम 1860 के अन्तर्गत विहित प्राधिकारी/ ज्वाइंट मजिस्ट्रेट/ उप जिलाधिकारी, सदर वाराणसी द्वारा पारित अक्षेपित आदेश दिनांक 27.02.2023 द्वारा प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा

गठित चुनाव की अभिपुष्टि की गई है जब याचीगण के चुनाव दावा को अविधिमान्य ठहराया गया है।

3. संक्षिप्त तथ्य यह है। सोसायटी का चुनाव 18.02.2022 को मुख्य सचिव/ समरक्षक सभा के महासचिव के नोटिस दिनांक 23.01.2022 द्वारा कराया गया था। उक्त नोटिस द्वारा आर्य महिला पीजी कालेज वाराणसी को चुनाव स्थान के रूप में नियत किया गया था। 04.02.2022 को अखिल भारतीय परिषद के संयुक्त सचिव द्वारा बुलाये गये बैठक में चुनाव का स्थान भारत धरम महामण्डल बिल्डिंग, जगतगंज बनारस में बदलने का निश्चय किया गया था।

4. प्रतिद्वन्दी पक्षकारों द्वारा अपने-अपने स्थानो पर दोनो चुनाव कराया गया था। प्रतिस्पर्धी चुनाव दावो को सहायक रजिस्ट्रार, फर्म सोसायटी तथा चिट वाराणसी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। सहायक रजिस्ट्रार ने आदेश दिनांक 28.06.2022 द्वारा प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा गठित चुनाव को स्वीकार किया था तथा याची के दावा को अविधिमान्य ठहराया था। व्यथित याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के असाधारण अधिकारिता का अवलंब लिया था तथा रिट याचिका संस्थित किया था जिसे रिट सी सं0 20203 वर्ष 2022 (श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद तथा एक अन्य बनाम उ0 प्र0 राज्य तथा अन्य) के रूप में पंजीकृत किया गया था। विद्वान एकल न्यायमूर्ति ने 20.10.2022 को दिये गये निर्णय द्वारा निम्नवत निर्णीत किया था;

"इसलिए इस प्रकार के तथ्यो तथा परिस्थितियों तथा इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अन्तर्गत रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है तथा सहायक रजिस्ट्रार प्रत्यर्थी संख्या-2 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 28.06.2022 को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थी सं0 2 को दोनो प्रतिद्वन्दी समूहो के चुनाव प्रस्तावो के साथ दो सप्ताह के अन्दर विहित प्राधिकारी को मामला निर्दिष्ट किये जाने का निदेश दिया जाता है। विहित प्राधिकारी को आगे याची, प्रत्यर्थी सं0 3 तथा सभी अन्य संबद्व, यदि कोई है तो सुनवाई का अवसर देने के बाद अधिकतम छह सप्ताह के अन्दर मामले में अंतिम निर्णय लेने का निदेश दिया जाता है।

5. विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित आदेश को प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा अपील में वर्णित किया गया था जिसे विशेष अपील सं0 692 वर्ष 2022 (डा0 शशीकान्त दीक्षित बनाम उ0 प्र0 राज्य तथा 3 अन्य) के रूप में पंजीकृत किया गया था। विद्वान खण्डपीठ ने विद्वान एकल न्यायमूर्ति के निर्णय की पुष्टि किया था तथा निर्णय दिनांक 16.12.2022 द्वारा अपील को खारिज किया था। फिर भी, विद्वान खण्डपीठ द्वारा विभिन्न संप्रेक्षणों को किया गया था जो आज की तिथि तक विवाद को प्रभावित करता है। नोटिस के अवैधता तथा चुनाव स्थान के बदलने के संबंध में तर्क पर विचार करते हुए विद्वान खण्डपीठ ने विशेष

अपील सं0 692 वर्ष 2022 (ऊपर) में इस प्रकार संप्रेक्षित किया था;

" पहले तर्क पर विचार करते हुए कि 29.01.2022 को बैठक बुलाने हेतु नोटिस में अन्तर्निहित त्रुटि है, यह ध्यान में रखना उपयुक्त होगा कि चुनाव कार्यक्रम को अपीलार्थी द्वारा 18.02.2022 निर्धारित करते हुए अधिसूचित किया गया था। यह विवादित नही है कि बैठक बुलाना चुनाव कराने की ओर एक कदम है।

संघ नियमावली का खण्ड 30 बैठक बुलाने के लिए तीन सप्ताह के नोटिस का उपबंध करता है। पक्षकारगण सहमत है कि चुनाव करवाने हेतु अपीलार्थी द्वारा नियत चुनाव तिथि अपरिवर्तित थी। फिर भी स्थान को बदलवाया गया था। अब प्रश्न पैदा होता है कि क्या स्थान बदलने के लिए 04.02.2022 को बैठक करवाना चुनाव कार्यक्रम को तात्विक तथा सारवान रूप से बदलने के तुल्य होगा। उक्त का उत्तर संघ नियमावली के नियम 35 में उल्लिखित है, जिसमें यह उपबंधित है कि चुनाव वाराणसी में सम्पन्न होने की दशा में वाराणसी में मुख्यालय होना चाहिए। मुख्यालय एओए के खण्ड-2 मेंे विर्निदिष्ट है जो भारत धरम महामण्डल बिल्डिंग, जगतगंज, बनारस में है। सर्व सम्मति से, अपीलार्थी द्वारा अधिसूचित चुनावो का स्थान आर्य कन्या पीजी कालेज, चेतगंज, वाराणसी में था जो चुनावी को आयोजित करने हेतु एमओए में विनिर्दिष्ट स्थान नही था। यह भी विवादित नही है कि छल साधन के संभावना के संबंध में अभिकथनों को आरोपित किया गया था। इस प्रकार, न्यायालय की राय में चुनाव स्थान में बदलाव मात्र तीन सप्ताह का नोटिस देते हुए नये सिरे से चुनाव कार्यक्रम के जारी करने तथा प्रकाशन के अपेक्षा के संबंध में चुनाव कार्यक्रम को तात्विक रूप से बदलने का लक्षण सम्मिलित नही होगा।

6. अन्य संप्रेक्षण भी निर्णय में था। फिर भी, सबसे अधिक सुसंगत संप्रेक्षण जिस पर इस न्यायालय के समक्ष मामले का भाग्य पलटता हैं को ऊपर उद्धृत किया गया है।

7. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता डा0 प्रदीप कुमार मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राधाकान्त ओझा ने निवेदन किया है कि ऊपर उद्धृत निष्कर्षो द्वारा चुनाव के स्थान के विवाद्यक को अंतिम रूप से विनिश्चित किया गया था। आपेक्षित आदेश विद्वान खण्डपीठ के धारित किये जाने के आरम्भ मे है।

8. तत्प्रतिकूल, प्रत्यर्थी सं0 4 के विद्वान अधिवक्ता सुश्री विशाखा पाण्डेय द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पाण्डेय ने निम्नवत तर्क दिया हैं:-

9. विशेष अपील सं0 692 वर्ष 2022 (ऊपर) मे विद्वान खण्डपीठ का निष्कर्ष केवल इस संदर्भ मे किया गया था कि क्या विचारण योग्य मामला पैदा हुआ जिसमें विहित प्राधिकारी का संदर्भ था। उक्त संप्रेक्षण अधिकारियो को बाध्य नही करता है। प्रतिप्रेषण पर विहित प्राधिकारी विद्वान खण्डपीठ के निर्णय में किये गये संप्रेक्षणों द्वारा अप्रभावित अपने स्वतंत्र निर्णय का प्रयोग करने के लिए दायी था।

10. पक्षकारो के विद्वान अधिवक्तागण को सुना ।

11. दोनो विवाद्यक विवाद को परिभाषित किरता है। पहला प्रतिद्वन्दी पक्षकारों द्वारा बुलाये गये बैठको का संकल्प क्रमशः दिनांक 23.01.2022 तथा 04.02.2022 की वैधता। दूसरा अलग-अलग स्थानो पर क्रमशः पक्षकारों द्वारा कराये गये चुनाव की वैधता।

12. आपेक्षित आदेश में विहित प्राधिकारी ने 04.02.2022 को बुलाये गये बैठक की वैधता को अवधारित करने के लिए सोसायटी के सुसंगत उपविधियों अर्थात उपविधि सं0 29 तथा उपविधि सं0 35 के परस्पर प्रभाव पर विचार किया था।

13. संदर्भ हेतु प्रावधानो को एतस्मिन् नीचे उद्धृत किया जाता है:

उपविधि सं0 29 - संरक्षक सभा की बैठक प्रत्येक पाँच वर्ष में कम से कम एक बार या जब कभी मुख्य सचिव, संयुक्त मुख्य सचिव द्वारा आवश्यक समझा जाता है या बैठक बुलाने के लिए मुख्य सचिव को लिखित संरक्षक सभा के कम से कम सात सदस्यो के अनुरोध पर आयोजित की जायेगी।

उपविधि सं0 35 - भगवान महर्षि स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के शिष्य के अलावा अखिल भारतीय परिषद के सदस्य, श्री भारत धर्म महामण्डल तथा श्री महामाया न्यास के प्रतिनिधि को प्रत्येक पाँच वर्ष पर अखिल भारतीय संरक्षक सभा द्वारा वाराणसी मुख्यालय मे या सामान्य अध्यक्ष, मुख्य सचिव या महासचिव द्वारा उपयुक्त माने गये भारत में किसी अन्य स्थान पर निर्वाचित किया जायेगा।

14. उपविधियाँ बैठको की दो श्रेणीयाँ वर्णित करता है। प्रथम श्रेणी की बैठक सामान्य प्रकृति का है जिसे उपविधि सं0 29 में वर्णित अधिकारियों द्वारा विहित समयावधि के अन्दर तथा अन्य अवसरों पर बुलाया जा सकता हैं। अन्य बैठके जिसे उपविधि सं0 35 मे अनुध्यात किया गया है एक मात्र चुनावों के संबंध में है। उपविधि सं0 35 के अनुसार चुनाव केवल सामान्य अध्यक्ष, मुख्य सचिव या महासचिव द्वारा कराया जा सकता हैं। उक्त उपविधि में बैठक हेतु स्थानों का भी उपबंध किया गया है।

15. उपविधि सं0 35 स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट प्रयोजन हेतु बनाया गया विशेष प्रावधान हैं, जबकि उपविधि सं0 29 सभी अन्य प्रयोजनो हेतु बनाया गया सामान्य प्रावधान है।

16. विधि में अच्छे प्रमाण निवर्चन के सिद्धान्त को स्थापित करना है कि विशेष विधि सामान्य विधि पर अभिभावी होता है। अतः चुनाव की बैठक केवल उपविधि सं0 35 द्वारा नियंत्रित तथा विनियमित की जायेगी।

17. 23.01.2022 को प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा बुलाई गई बैठक चुनाव कराने से संबधित थी। उक्त चुनाव की माँग करने वाले पदाधिकारी उपविधि के स्कीम के अनुसार ऐसा करने के लिए सक्षम था। इसके विपरीत, संयुक्त मुख्य

सचिव उपविधि द्वारा 04.02.2022 को चुनाव बैठक बुलाने के लिए अधिकृत नही था। आक्षेपित आदेश मे निष्कर्षों में कोई आपत्ति नही की जा सकती है जहाँ तक यह समान कारणों पर बैठक दिनांक 04.02.2022 तथा परिणामी चुनाव केो अविधिमान्य ठहराता है।

18. विद्वान खण्डपीठ ने शब्द ''प्रथम दृष्टया'' का प्रयोग करते हुए विवाद्यक का विनिश्चय नही किया था बल्कि स्पष्ट रूप से इसे विहित प्राधिकारी के समक्ष निवेदित करने के लिए पक्षकारों को खुला छोड़ दिया था।

'' हमारे विचार मे एक बार संयुक्त मुख्य सचिव नोटिस/कार्यसूची जारी करने तथा बैठक बुलाने के लिए अधिकृत था तब, प्रथम दृष्टया नोटिस/ कार्यसूची में कोई अन्तर्निहित त्रुटि होना प्रतीत नही होता है।

19. अगल महत्वपूर्ण विवाद्यक चुनाव के स्थान से सबंधित है। 23.01.2022 को प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा कराया गया चुनाव आर्य महिला पी0 जी0 कालेज वाराणासी में सम्पन्न हुआ था। बैठक का स्थान विद्वान खण्डपीठ के धारित करने के आरम्भ में था। विद्वान खण्डपीठ ने निश्चायक रूप से चुनाव स्थान के विवाघक का न्याय निर्णयन किया था जैसा पहले उद्धृत निष्कर्षो में देखा जाता है।

20. प्राइवेट प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि नजीर के रूप में चुनाव का स्थान विगत कई दशकों से आर्य महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी रहा है। फिर भी, इस निवेदन का विरोध विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीराधा कान्त ओझा द्वारा किया गया है। बहरहाल विद्वान खण्डपीठ के धारित किये जान केे दृष्टिगत स्थान का विनिश्चय करना इस न्यायालय का काम नही है।

21. जब कि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पाण्डेय का तर्क विश्वासोत्पादक प्रतीत होता हैं लेकिन विद्वान खण्डपीठ के धारित किये जाने का अतिक्रमण करना एकल न्यायमूर्ति के लिए काफी नही हैं। मामले को अधिक संख्या के खण्डपीठ द्वारा गुणावगुण पर सुलझाया जाना चाहिए।

22. आक्षेपित आदेश जहाँ तक यह आर्य महिला पी0 जी0 कालेज, वाराणसी में सम्पन्न चुनाव दिनांक 23.01.2022 का अनुमोदन करता है, उलटे जाने योग्य हैं तथा उलट दिया जाता है। आर्य महिला पी0 जी0 कालेज वाराणसी में सम्पन्न चुनाव के आधार पर प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा प्रस्तुत चुनाव दावा अपास्त किये जाने योग्य हैं तथा अपास्त किया जाता है।

23. 04.02.2022 को याची द्वारा गठित बैठक तथा महामण्डल बिल्डिंग, लहुराबीर, वाराणसी में 18.02.2022 को सम्पन्न चुनावो को अविधि मान्य ठहराने वाले विहित प्राधिकारी के निष्कर्ष हस्तक्षेप किये जाने योग्य नही है।

24. निर्वाचक मण्डल के बारे में कोई विवाद नही है।

25. मामले को इस आदेश के प्रमाणित प्रति को प्राप्त करने की तिथि से छह सप्ताह के

अवधि के अन्दर विधि के अनुसार निष्पक्ष तथा पारदर्शी तरीके से चुनाव कराने हेतु सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटीज एवं चिट, वाराणसी को प्रति प्रेषित किया जाता है।

26. आक्षेपित आदेश जहाँ तक यह प्रत्यर्थी सं0 4 द्वारा प्रस्तुत चुनाव दावा का अनुमोदन करता हैं, अपास्त किये जाने योग्य है तथा अपास्त किया जाता है।

27. जिला मजिस्ट्रेट, वाराणसी को यह सुनिश्चित करने का निदेश दिया जाता हैं कि चुनाव स्थान पर पर्याप्त सुरक्षा इंतजाम किया जाय।

28. रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1447

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

रिट-सी संख्या 9866/2023

शिक्षा प्रसार समिति, कानपुर एवं अन्य की प्रबंधन समिति ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शरद चंद्र, श्री संकल्प नारायण

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री संजीव कुमार यादव

(ए) **सिविल कानून - अनुच्छेद 226- भारतीय संविधान, 1950- सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 -धारा 4(1), 5(ए)(जी), 16-ए और 25(1) -भारतीय दंड संहिता - धारा 302-** रिट याचिका -याचिकाकर्ता सोसायटी के निर्वाचित सचिव के रूप में दावा करता है कि रजिस्ट्रार द्वारा धारा 4(1) के तहत पारित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें पदाधिकारियों की सूची को इस आधार पर पंजीकृत करने से मना कर दिया गया है कि धारा 25(1) के तहत एक संदर्भ लंबित है - अयोग्यता का प्रश्न- न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों ही हत्या के अपराध में दोषी हैं - 'नैतिक अधमता'- नैतिक अधमता शब्द को सभी मामलों में फिट करने के लिए एक कठोर नियम या एक अनम्य सूत्र द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता है - जांच की दिशा अपराध की गंभीरता, अपराधी की भूमिका, अपराध में दोष की प्रकृति और अधिनियमन की योजना की जांच करेगी, इससे पहले कि आपराधिक अपराध नैतिक अधमता का कार्य बन जाए जो अयोग्यता को आकर्षित करता है - आयोजित, हत्या का अपराध जिसके लिए याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है, अधिनियम की धारा 16-ए के तहत नैतिक अधमता के दायरे में शामिल है - इसलिए ऐसे आपराधिक पूर्ववृत्त वाले व्यक्तियों को एक शैक्षणिक संस्थान के मामलों को चलाने की अनुमति नहीं दी जा सकती देश के युवाओं की शिक्षा की संभावनाओं को देखते हुए याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों को न तो सोसायटी के चुनाव लड़ने का अधिकार है और न ही शैक्षणिक संस्थान के संचालन में कोई भूमिका निभाने का अधिकार है - रिट याचिका निरस्त की जाती है। (पैरा-9, 13, 15, 16)

(बी) **सिविल कानून -भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद - 226 - सोसायटी पंजीकरण**

अधिनियम, 1860- धारा 4(1), 5(ए)(जी), 16-ए और 25(1)- भारतीय दंड संहिता - धारा - 302 -रिट याचिका -अयोग्यता का प्रश्न - नैतिक अधमता - याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों ही हत्या के अपराध के दोषी हैं - वे पहली बार में अदालत के समक्ष अपने पूर्ववृत्त का खुलासा करने में विफल रहे - इस तरह की प्रथाओं को केवल निवारण के द्वारा ही हतोत्साहित किया जा सकता है - इसलिए, प्रत्येक पर एक लाख रुपये का जुर्माना लगाया जाता है और उसे उनसे भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा - मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट दो महीने के भीतर रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष वसूली का खुलासा करने वाली एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा-17)

(सी) **सिविल कानून- भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226- सोसायटी पंजीकरण अधिनियम,**

1860- धारा 4(1), 5(ए)(जी), 16-ए एवं 25(1) -भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302-रिट याचिका -अयोग्यता का प्रश्न- नैतिक पतन - याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों ही हत्या के अपराध में दोषी हैं -सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के संबंधित प्रावधान समान प्रकृति की शरारतों पर अंकुश लगाने के लिए बनाए गए हैं - इसे आपराधिक तत्वों से शैक्षणिक संस्थानों को शुद्ध करने और विकासशील दिमागों पर आपराधिक प्रभाव के अभिशाप से मुक्ति दिलाने के लिए लागू किया जाना चाहिए - कानून ऐसी स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता, जिसमें दोषी अपराधी अधिकार के रूप में शैक्षणिक संस्थान चलाते हैं और दण्ड से मुक्ति की भावना के साथ तथ्यों को छिपाते हैं - इसलिए उन्हें निष्पादित करने के लिए अतिरिक्त मुख्य सचिव, संस्थागत वित्त, सरकार को विभिन्न निर्देश जारी किए गए - उत्तर प्रदेश सरकार ने बेईमान वादियों को अदालती प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए एक आदेश जारी किया है -उत्तर प्रदेश के सभी जिलों में सभी सहायक/उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स यह सुनिश्चित करेंगे कि धारा 4(1) और 25(1) के तहत प्रत्येक कार्यवाही से पहले प्रत्येक सदस्य/आवेदक से उनके आपराधिक इतिहास का खुलासा करने वाला एक घोषणापत्र लिया जाएगा, जिसे शपथपत्र पर रखा जाएगा और रिकॉर्ड में रखा जाएगा और वर्तमान में राज्य में चल रही सभी सोसायटी के पदाधिकारियों से भी शपथपत्र पर इसी तरह की घोषणाएं मांगी जाएंगी - संबंधित अधिकारियों को निर्देश दिए गए हैं कि वे एक अनुपालन रिपोर्ट तैयार करें और तदनुसार उसे प्रस्तुत करें। (पैरा-15, 18, 19)

रिट याचिका निर्देशों के साथ निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बालेश्वर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट एवं कलेक्टर, बनारस एवं अन्य (एआईआर 1959 सभी 71),
2. महाक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 1999 (2) यूपीएलबीईसी 1336,
3. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम पी. सौप्रामणियन, 2019 (18) एससीसी 135,

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

1. आक्षेपित आदेश दिनांक 12.12.2022 द्वारा उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4(1) के तहत पदाधिकारियों की सूची इस आधार पर दर्ज करने से इनकार कर दिया है कि सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 25 (1) के तहत निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष एक संदर्भ लंबित है।

2. याचिकाकर्ता का दावा है कि वह 'शिक्षा प्रसार बंकातु बुजुर्ग इटावा के नाम और शैली के तहत पंजीकृत सोसायटी का सचिव है, जो एक शैक्षणिक संस्थान चलाता है। याचिकाकर्ता का कहना है कि वह 24.07.2022 को विधिवत निर्वाचित हुआ था।

3. श्री संजीव कुमार यादव, नए पक्षकार प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को पदाधिकारी के रूप में नहीं चुना जा सकता है, क्योंकि उसे सत्र परीक्षण संख्या 419/1993 (राज्य बनाम प्रेमा देवी और अन्य) में हत्या के लिए दोषी ठहराया गया है।

4. इस मुद्दे को फिर से जोड़ते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री संकल्प नारायण उपरोक्त तथ्य पर विवाद नहीं करते हैं। हालांकि, उनका तर्क है कि नव अभियुक्त प्रतिवादी स्वयं सत्र परीक्षण संख्या 120/1991 (राज्य बनाम अजीत सिंह और अन्य) में धारा 302 भा.दं.सं. के तहत दोषी है।

5. इस मामले का निर्विवाद तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता प्रबंधन समिति का प्रबंधक होने का दावा करता है। याचिकाकर्ता को सत्र परीक्षण संख्या 419/1993 (राज्य बनाम प्रेमा देवी और अन्य) में 11.05.2017 को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302 भा.दं.सं. के तहत अपराध के लिए दिए गए एक फैसले द्वारा दोषी ठहराया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया है कि याचिकाकर्ता एक प्रमुख अपराधी था जिसने मृतक को मौत के घाट उतार दिया था। यह अपराध विरोधियों के बीच एक पुरानी प्रतिद्वंद्विता से प्रेरित था। इसके अलावा, हत्या के लिए याचिकाकर्ता की सजा अभी भी कायम है, और किसी भी अपीलीय न्यायालय ने इसे खारिज नहीं किया है।

6. नव अभियुक्त प्रतिवादी को सत्र परीक्षण संख्या 120/1991 (राज्य बनाम अजीत सिंह और अन्य) में 30.10.2001 को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि नव अभियुक्त प्रतिवादी उन प्रमुख अपराधियों में से एक था जिन्होंने मृतक की हत्या की थी। दोनों पक्षों के बीच पुरानी रंजिश के चलते मृतक की हत्या की गई है।

अनुवाद

7. याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों विश्वसनीय सबूतों द्वारा संबंधित मामलों में हत्या के अपराध से जुड़े हुए हैं।

8. सोसायटी के सचिव के रूप में नियुक्त किए जाने के याचिकाकर्ता के अधिकार को सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 16 ए के प्रकाश में लगाया जाना चाहिए। प्रावधान निम्नानुसार बताता है:

> "16क, समाज में पद धारण करने के लिए निरर्हता- कोई व्यक्ति जो अनुमोचित दिवालिया है या जिसे किसी सोसायटी या किसी निगमित निकाय के कार्यों के गठन, पदोन्नति, प्रबंध या आचरण के संबंध में किसी अपराध के लिए या नैतिक अधमता वाले अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है, शासी निकाय या अध्यक्ष का सदस्य, सचिव या किसी सोसायटी के किसी अन्य पदाधिकारी होने के रूप में चुने जाने के लिए और होने के लिए अयोग्य ठहराया जाएगा।

9. सोसायटी पंजीकरण अधिनियम की धारा 16 ए के तहत याचिकाकर्ता की अयोग्यता का प्रश्न इस तथ्य पर मुड़ जाएगा कि क्या जिस अपराध के लिए उसे दोषी ठहराया गया है वह 'नैतिक अधमता" है। वाक्यांश 'नैतिक अधमता" एक व्यापक दायरे का है और इसे विधायिका द्वारा परिभाषित नहीं किया गया है। विभिन्न शब्दकोशों और अधिकारियों का सहारा लिया जा सकता है जो उपरोक्त शब्द को परिभाषित करते हैं:

(i) **ब्लैक लॉ डिक्शनरी** (6 वां संस्करण) में परिभाषित "नैतिक अधमता" इस प्रकार है:

> "नैतिक अधमता-मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिकार और कर्तव्य के स्वीकृत और प्रथागत नियम के विपरीत, निजी और सामाजिक कर्तव्यों में नीचता, नीचता या भ्रष्टता का कार्य, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिकार और कर्तव्य के स्वीकृत और प्रथागत नियम के विपरीत है। [ब्लैक लॉ डिक्शनरी (6 वां संस्करण) पृष्ठ 10081
>
> "कानून द्वारा दंडनीय होने की परवाह किए बिना अपने आप में कुछ अनैतिकता का तात्पर्य है"; "गंभीरतम अपराधों तक ही सीमित, जिनमें गुंडागर्दी, कुख्यात अपराध और वे अपराध शामिल हैं जो अवैध हैं और एक भ्रष्ट दिमाग का खुलासा करते हैं।" [आईडी, पृष्ठ 1517।

(ii). **बाउवियर लॉ डिक्शनरी** के अनुसार, "नैतिक अधमता" है:

> " मनुष्य और मनुष्य के बीच अधिकार और कर्तव्य के स्वीकृत और प्रथागत नियम के

विपरीत, किसी व्यक्ति द्वारा अपने साथी पुरुषों या सामान्य रूप से समाज के प्रति दिए जाने वाले निजी और सामाजिक कर्तव्यों में नीचता, नीचता या भ्रष्टता का कार्य।"

(iii). **बर्टन लीगल थिसॉरस** "नैतिक अधमता" को परिभाषित करता है:

"बुरा विश्वास, बुरी बदनामी, भ्रष्टाचार, अशुद्धता, अपराध, बदनामी, अपमान, शर्म, अपराध, गुंडागर्दी, दुराचार, विकृति, शर्म, उपकार, गलत।

10. बालेश्वर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर, बनारस और अन्य में इस न्यायालय ने "नैतिक अधमता" शब्द के दायरे की खोज करते हुए निम्नानुसार आयोजित कियाः

"26. अभिव्यक्ति 'नैतिक अधमता' कहीं भी परिभाषित नहीं है। लेकिन इसका मतलब न्याय, ईमानदारी, शील या अच्छी नैतिकता के विपरीत कुछ भी करना है। इसका तात्पर्य उस व्यक्ति के चरित्र या स्वभाव की अस्वीकृति और दुष्टता से है जिस पर विशेष आचरण का आरोप लगाया गया है। किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया हर गलत बयान नैतिक अधमता नहीं हो सकता है, लेकिन ऐसा तब होगा जब यह किसी भी निजी और सामाजिक कर्तव्य को करने में नीचता या अभाव का खुलासा करता है जो एक व्यक्ति अपने साथियों या सामान्य रूप से समाज के लिए देता है। यदि इसलिए एक निश्चित आचरण के साथ आरोपित व्यक्ति का कर्तव्य है, या तो किसी अन्य व्यक्ति या सामान्य रूप से समाज के लिए, एक विशिष्ट तरीके से कार्य करने के लिए या ऐसा नहीं करने के लिए और वह अभी भी इसके विपरीत कार्य करता है और जानबूझकर ऐसा करता है, तो उसका आचरण नीचता और अभाव के कारण होना चाहिए। यह मनुष्य और मनुष्य के बीच स्वीकृत प्रथागत नियम और कर्तव्य के विपरीत होगा।

11. यह प्रश्न कि क्या हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्धि "नैतिक अधमता" की व्यापकता में आएगी और ग्राम पंचायत के प्रधान की अयोग्यता का कारण बनेगी, इस न्यायालय के समक्ष महक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में मुद्दा था। महक सिंह (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने मामले के तथ्यों की जांच करने के बाद कहा:

"12..... अभिव्यक्ति 'नैतिक अधमता', जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी भी स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूले में परिभाषित किए जाने वाले कठोर अर्थ का शब्द नहीं है, लेकिन सामाजिक-नैतिक लोकाचार, और लोगों की नैतिकता को ध्यान में रखते हुए, एक निश्चित समय और उनकी सांस्कृतिक विरासत के लिए, न्यायालयों के लिए यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल नहीं होगा कि याचिकाकर्ता द्वारा अपनी ही सौतेली मां को भयानक तरीके से भगाने में किए गए अपराध में नैतिक दुष्टता शामिल है। याचिकाकर्ता इस निष्कर्ष से बच नहीं सकता है कि श्रीमती राज कुमारी की हत्या का अपराध उसके द्वारा किया गया था और जिसके लिए उसे अंततः दोषी ठहराया गया था, नैतिक अधमता का कार्य था। नैतिक अधमता से जुड़े

भा.दं.सं. की धारा 302/34 के तहत उनकी सजा अधिनियम की
धारा 5 ए (जी) के प्रावधान के अर्थ के भीतर अयोग्यता अर्जित करने के लिए पर्याप्त थी।

12. "नैतिक अधमता" शब्द का दायरा और एक कर्मचारी की सेवाओं के लिए इसकी प्रयोज्यता भारतीय स्टेट बैंक बनाम पी. सौप्रमणियन में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उत्पन्न हुई, जिसने कानून की स्थिति इस प्रकार बताईः

> "12. इसमें कोई संदेह नहीं है कि बैंक के प्रबंधन पर एक कर्मचारी की सेवाओं को बंद करने का दायित्व है जिसे नैतिक अधमता से जुड़े अपराध के लिए आपराधिक न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है। [सुशील कुमार सिंघल बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2010) 8 एससीसी 573: (2010) 2 एससीसी (एल एंड एस) 674] हालांकि प्रत्येक अपराध समाज के खिलाफ अपराध है, बैंकिंग विनियमन अधिनियम के अनुसार सेवा से बाहर करना केवल नैतिक अधमता से जुड़े अपराध को करने के लिए हो सकता है। चरित्र की भ्रष्टता और दुष्टता का खुलासा करने वाले कृत्यों को नैतिक अधमता से जुड़े अपराधों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। किसी अपराध में नैतिक अधमता शामिल है या नहीं, यह तथ्यों [इलाहाबाद बैंक बनाम दीपक कुमार भोला, (1997) 4 एससीसी 1: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 897] और परिस्थितियों [पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (1996) 4 एससीसी 17, पैरा 12: 1996 एससीसी (सीआरआई) 583] पर निर्भर करता है।

13. पूर्ववर्ती कथन से, यह स्पष्ट है कि एक आपराधिक अपराध में हर सजा "नैतिक अधमता" नहीं हो सकती है। नैतिक अधमता शब्द को अपवाद के अधीन नियम या सभी मामलों में फिट करने के लिए एक अनम्य सूत्र द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता है। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या कोई अपराध "नैतिक अधमता" शब्द के दायरे में आता है, एक तथ्य आधारित जांच की जानी चाहिए। जांच की लाइन अपराध की गंभीरता, अपराधी की भूमिका, अपराध में सदोष की प्रकृति, और आपराधिक अपराध के नैतिक अधमता का कार्य बनने और अयोग्यता को आकर्षित करने से पहले अधिनियमन की योजना की जांच करेगी।

14. इस मामले में विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया है कि याचिकाकर्ता द्वारा हत्या के जघन्य अपराध को उचित संदेह से परे स्थापित किया गया है।

15. याचिकाकर्ता एक शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन का दावा करता है। शिक्षा भारत के भविष्य का पोषण करती है और हमारी राष्ट्रीय शक्ति और चरित्र की रीढ़ है। ऐसे आपराधिक अतीत वाले व्यक्तियों को किसी शैक्षणिक संस्थान के मामलों को चलाने और देश के युवाओं की शिक्षा संभावनाओं को प्रभावित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसके मद्देनजर, हत्या का अपराध जिसके लिए याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 16 ए के तहत "नैतिक अधमता" के दायरे में शामिल है। यह प्रावधान समान प्रकृति की शरारतों को रोकने के लिए बनाया गया है; इसे आपराधिक तत्वों के शैक्षिक संस्थानों को शुद्ध करने और रचनात्मक दिमागों पर आपराधिक प्रभाव के अभिशाप को उठाने के लिए लागू किया जाना चाहिए।

16. इसी तरह के कारणों से, नए प्रतिवादी को न तो समाज के चुनाव लड़ने का अधिकार है और न ही शैक्षणिक संस्थान के संचालन में उसकी कोई बात हो सकती है।

17. मामला यहीं खत्म नहीं हो सकता। याचिकाकर्ता और नव अभियुक्त प्रतिवादी दोनों दोषी हैं। वे पहली बार में न्यायालय के समक्ष अपने पूर्ववृत का खुलासा करने में विफल रहे। ये तथ्य तब सामने आए जब संबंधित विरोधियों ने अपनी प्रतिबद्धता बताई। इस तरह की प्रथाओं को केवल निरोध द्वारा हतोत्साहित किया जा सकता है। याचिकाकर्ता और नए प्रतिवादी प्रतिवादी पर क्रमशः 1,00,000 रुपये (एक लाख रुपये) की लागत लगाई गई है। जिला मजिस्ट्रेट, इटावा द्वारा छह सप्ताह के भीतर भू-राजस्व के बकाया के रूप में उनसे लागत वसूल की जाएगी। जिला मजिस्ट्रेट, इटावा, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट दो महीने की अवधि के भीतर इस न्यायालय के महानिबंधक के समक्ष वसूली का खुलासा करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

18. कानून ऐसी स्थिति का सामना नहीं कर सकता जिसमें दोषी अपराधी शैक्षणिक संस्थानों को अधिकार के रूप में चलाते हैं और दंडमुक्ति की भावना के साथ तथ्यों को छिपाते हैं। न्यायालय द्वारा बेईमान वादियों को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए निषेधात्मक लागत लगाई गई है।

19. अपर मुख्य सचिव, संस्थागत विल, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को निम्नलिखित निर्देशों को निष्पादित करने का निर्देश दिया जाता है:

I. उत्तर प्रदेश राज्य के सभी जिलों में सभी सहायक/उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट यह सुनिश्चित करेंगे कि सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4 (1) और धारा 25 (1) के तहत प्रत्येक कार्यवाही से पहले

प्रत्येक सदस्य/आवेदक से उनके आपराधिक पूर्ववृत का खुलासा करते हुए एक घोषणा की जाएगी।

II. सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4 (1) के तहत किसी भी कार्यवाही में कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा, जो शैक्षिक संस्थान चला रहे हैं, जब तक कि प्रत्येक सदस्य द्वारा शपथ पत्र पर आपराधिक पूर्ववृत की ऐसी घोषणाएं प्रस्तुत नहीं की जाती हैं और रिकॉर्ड में रखी जाती हैं।

III. उत्तर प्रदेश राज्य के सभी जिलों में सहायक/उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट भी उत्तर प्रदेश राज्य में वर्तमान में शैक्षिक संस्थान चला रहे सोसाइटियों के सभी पदाधिकारियों से शपथ पत्र पर इसी तरह की घोषणाएं मांगेंगे और कानून के अनुसार कार्यवाही करेंगे।

IV. अपर मुख्य सचिव, संस्थागत वित, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ इस निर्णय को इन निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के सभी जिलों में सभी सहायक/उप रजिस्ट्रार, फर्मों, समितियों और चिट को प्रसारित करेंगे।

v. मामले के महत्व पर विचार करते हुए, अतिरिक्त मुख्य सचिव, संस्थागत वित, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ एक अनुपालन रिपोर्ट तैयार करेंगे और छह महीने के भीतर मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के समक्ष प्रस्तुत करेंगे ताकि राज्य शैक्षणिक संस्थानों को हड़पने वाले आपराधिक तत्वों के खतरे के प्रति सतर्क हो सके और इसे रोकने के लिए उचित कानूनी उपाय कर सके।

VI. इस आदेश का पालन करने में किसी भी सहायक/उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट की विफलता न केवल अधिकारी को इस न्यायालय के आदेशों के उल्लंघन के लिए कार्यवाही के लिए उजागर करेगी, बल्कि एक गंभीर कदाचार भी होगा जिसके लिए कानून के अनुसार संबंधित अधिकारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की जाएगी।

20. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता इस आदेश को आवश्यक अनुपालन के लिए अतिरिक्त मुख्य सचिव, संस्थागत वित, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को सूचित करेंगे।

21. रिट याचिका खारिज की जाती है।

22 न्यायालय श्री संकल्प नारायण, विद्वान वकील और श्री संजीव कुमार सिंह, विद्वान वकील द्वारा प्रदान की गई सहायता की सराहना करना चाहेगा, जिन्होंने पेशे के उच्च नैतिक मानकों के सही मायने में अनुकरणीय ईमानदारी और छात्रवृत्ति के साथ न्यायालय के अधिकारियों के रूप में कानून की प्रक्रिया में सहायता की।

———

(2023) 5 ILRA 1452

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट-सी संख्या 10228/2023

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, आगरा

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्री भूरी सिंह एवं अन्य **...प्रतिवादी**

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सुनील कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री जमाल अहमद खान

श्रम कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद-20(2) एवं 226-औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947- धारा 4(ए) -साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 114 एवं 114(जी): - रिट याचिका - आक्षेपित आदेश को चुनौती - यूपीएसआरटीसी बस में चालक के रूप में तैनात कर्मचारी - पर वाहन से डीजल चोरी करने का आरोप - आरोपों से इनकार - सेवा से हटा दिया गया और निलंबन अवधि के लिए उसका वेतन जब्त कर लिया गया - औद्योगिक विवाद - श्रम न्यायालय ने यह पाते हुए वापसी की कि कर्मचारी को डीजल चोरी के आरोप में फंसाने के लिए कोई सामग्री नहीं थी और इसलिए सेवा से हटाने का आदेश अवैध और मनमाना था, तदनुसार पूर्ण बकाया वेतन के साथ आदेश को रद्द कर दिया -रिट याचिका -यूपीएसआरटीसी ने तर्क दी कि उन्हें फिर से जांच करने की अनुमति दी जाए - न्यायालय ने कहा कि, - यूपीएसआरटीसी कर्मचारी के विरुद्ध कानून के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए अधिदेश के तहत था और आरोप तय किया जाना आवश्यक था और आरोप को साबित करने के लिए उपलब्ध सभी साक्ष्य और सामग्री को दोषी कर्मचारी को बताया जाना चाहिए और जांच अधिकारी द्वारा भी उस पर विचार किया जाना चाहिए - यदि ऐसी सामग्री उपलब्ध है, जिस पर अभियोजन अधिकारी ने विचार नहीं किया है, तो उन्हें मामले की पुनः जांच करने की अनुमति नहीं दी जा सकती और उन्हें उपलब्ध सामग्री पर विचार करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिस पर पिछली जांच में विचार नहीं किया गया था - यदि इसकी अनुमति दी जाती है तो यह दोषमुक्त करने/दोषी ठहराने के सुस्थापित कानूनी सिद्धांत के विपरीत होगा - आयोजित, नियोक्ता को उसी जांच के साथ नए सिरे से आगे बढ़ने की अनुमति देना 'दोहरे खतरे' के सिद्धांत से प्रभावित होगा -इसलिए, कोई नई कार्यवाही करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है - रिट याचिका खारिज कर दी गई है। (पैरा - 14, 16, 17, 18)

रिट याचिका निरस्त। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार मिश्रा और प्रत्यर्थी संख्या 1 - कामगार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जमाल अहमद खान को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता - उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम (जिसे आगे "यूपीएसआरटीसी" कहा जाएगा) ने श्रम न्यायालय, आगरा द्वारा दावा संख्या 79/2021 में पारित आदेश को चुनौती दी है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1 - कामगार के दिनांक 28.04.2015 के सेवा से निष्कासन के आदेश के विरुद्ध दावा स्वीकार किया गया है।

3. मामले के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक वर्तमान मामले का संक्षिप्त अवलोकन यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 को 05.07.2009 को

क्षेत्रीय कार्यशाला, आगरा में चालक के रूप में नियुक्त किया गया था और स्टोर ट्रक संख्या यूटीएफ-7775 पर उसकी ड्यूटी लगाई गई थी। श्री वी.के. शुक्ला, यातायात अधीक्षक, फोर्ट डिपो ने पत्र संख्या 995, दिनांक 17.07.2009 द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें खुलासा किया कि वह अपने सहायक विशम्भर दयाल, सहायक यातायात निरीक्षक, शिवकरन, कार्यालय सहायक के साथ स्टाफ कार यू.पी.-32-6842 पर सवार होकर सौंख से मथुरा आ रहे थे और ग्राम नगला भूरिया में पाया कि स्टोर ट्रक संख्या यू.टी.एफ.-7775 के डीजल टैंक से डीजल निकालकर स्टील टैंक और अन्य प्लास्टिक के डिब्बों में भरा जा रहा था, जिसकी कुल मात्रा 16 लीटर प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा निकाली गयी थी।

4. शिकायत को क्षेत्रीय प्रबंधक, यूपीएसआरटीसी आगरा को भेजा गया और प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई जिसके अनुसार उसे 31.07.2009 को निलंबित कर दिया गया और उसी दिन उसे आरोप पत्र भी जारी किया गया। सहायक क्षेत्रीय प्रबंधक, महानगर डिपो को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। मौखिक जांच शुरू की गई जिसमें शिकायतकर्ता समिति के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने बताया कि घटना की तिथि पर उसने प्रत्यर्थी संख्या 1 को उक्त वाहन से डीजल चोरी करते हुए पाया था। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने शिकायतकर्ता से जिरह की और जांच अधिकारी ने जांच पूरी कर अपनी रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंप दी, जिन्होंने दिनांक 08.04.2015 को कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिस पर प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपना जवाब प्रस्तुत किया और अंतिम दण्ड आदेश 28.04.2015 को पारित किया गया, जिसमें प्रत्यर्थीसंख्या 1 को सेवा से हटा दिया गया और निलंबन अवधि के लिए उसका वेतन जब्त कर लिया गया।

5. सेवा से हटाने के आदेश का विरोध करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 1 ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत एक औद्योगिक विवाद उठाया, जहां कार्यवाही शुरू की गई और दंड आदेश की वैधता पर उप श्रम आयुक्त, आगरा द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 4 ए के तहत विचार किया गया। याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के दावे का विरोध करते हुए 14.03.2022 को लिखित बयान दायर किया। पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, आगरा ने दण्ड आदेश दिनांक 28.04.2015 को रद्द कर दिया

6. श्रम न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद संपूर्ण सामग्री तथा उक्त कार्यवाही के दौरान गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की जांच की थी। न्यायाधिकरण इस तथ्य से सहमत था कि शिकायत के अनुसार घटना के समय चार कर्मचारी थे जो संबंधित वाहन के चारों ओर खड़े थे तथा चार लोगों में से एक मैकेनिक, फिटर तथा हेल्पर था। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपने जवाब में प्रस्तुत किया है कि उन्होंने पाइप लाइन में कुछ अवरोध पाया तथा इसलिए दोष को दूर करने के लिए डीजल टैंक को खाली करना आवश्यक था तथा फिर दोष/एयर ब्लॉक को हटाया जाना था तथा जिसके लिए मैकेनिक, फिटर तथा हेल्पर मौके पर मौजूद थे, तथा उन्होंने इस बात से इनकार

किया कि वे डीजल चोरी करने का प्रयास कर रहे थे।

7. श्रम न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के दावे को स्वीकार कर लिया है तथा यह निष्कर्ष दिया है कि वे डीजल चोरी नहीं कर रहे थे, बल्कि डीजल पाइप लाइन में एयर ब्लॉक को हटा रहे थे, जिसके लिए मैकेनिक तथा फिटर मौके पर मौजूद थे तथा वे संबंधित वाहन की मरम्मत में शामिल थे, जब उन्हें यातायात अधीक्षक ने देखा। बेशक याचिकाकर्ता द्वारा कोई और जांच या सामग्री पेश नहीं की गई जो कामगार द्वारा उठाए गए रुख को चुनौती दे सके। इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि डीजल टैंक अच्छी स्थिति में था और एयर ब्लॉक को हटाने की कोई जरूरत नहीं थी। कामगार के संबंध में, प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा स्वयं साक्ष्य दिया गया था जो रिकॉर्ड में है, जिसमें कहा गया है कि वे डीजल टैंक की मरम्मत कर रहे थे जिसमें एयर ब्लॉक विकसित हो गया था और याचिकाकर्ता द्वारा कामगार द्वारा दिए गए साक्ष्य को खारिज करने के लिए कोई सामग्री पेश नहीं की गई थी।

8. श्रम न्यायालय ने साक्ष्यों पर उचित रूप से विचार किया है तथा यह निष्कर्ष दिया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 - कामगार के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुआ है, तथा फलस्वरूप, पूर्ण बकाया वेतन के साथ सेवा से हटाने के आदेश को निरस्त कर दिया है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि न्यायाधिकरण को नियोक्ता - याचिकाकर्ता को कामगार के विरुद्ध कार्यवाही करने का एक और अवसर देना चाहिए था। इस तथ्य पर विचार करते हुए कि न्यायाधिकरण ने यह दर्ज किया है कि मौके पर तीन अन्य व्यक्ति उपस्थित थे, लेकिन याचिकाकर्ता ने उनके द्वारा की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान अन्य तीन व्यक्तियों में से किसी से भी पूछताछ नहीं करने का विकल्प चुना।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

11. इस न्यायालय का विचार है कि सेवा से हटाने के आदेश की श्रम न्यायालय के समक्ष जांच चल रही थी। हटाने के आदेश पर विचार करते समय, कामगार के विरुद्ध नियोक्ता द्वारा की गई जांच पर उचित रूप से विचार किया गया तथा पाया गया कि कामगार को सेवा से हटाने का दंड देने के लिए नियोक्ता द्वारा अपर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की गई थी। यह साबित नहीं किया जा सका कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने संबंधित वाहन के टैंक से डीजल चुराने की कोशिश की। प्रत्यर्थी द्वारा दिया गया बचाव कि वह ट्रक के दोष को दूर करने का प्रयास कर रहा था, जिसमें एयर ब्लॉक हो गया था और जिसके लिए मैकेनिक और फिटर मौके पर मौजूद थे, को उचित रूप से स्वीकार किया गया और याचिकाकर्ता द्वारा उक्त दलील को कोई चुनौती नहीं दी गई, जिससे कर्मचारी पर अविश्वास किया जा सके। याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष

से अलग निष्कर्ष दर्ज करने के लिए कोई कारण या उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया है।

12. इस न्यायालय को याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों में कोई मेरिट नहीं दिखती। यह प्रस्तुत किया गया है कि श्रम न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 को डीजल चोरी के आरोप में फंसाने के लिए कोई सामग्री नहीं थी और इसलिए सेवा से हटाने के आदेश को अवैध और मनमाना माना है और तदनुसार उक्त आदेश को रद्द कर दिया है।

13. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के मद्देनजर कि मौके पर अन्य गवाह मौजूद थे, जिनकी कभी याचिकाकर्ता द्वारा जांच नहीं की गई थी, जो प्रत्यर्थी कर्मचारी पर मुकदमा चला रहा था, और उक्त निष्कर्ष के मद्देनजर मामले को फिर से जांच के लिए भेजा जा सकता है, ताकि वे नए साक्ष्य रिकॉर्ड कर सकें जो उपलब्ध थे लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ कार्यवाही के दौरान दर्ज नहीं किए गए थे।

14. मैंने याचिकाकर्ता के प्रस्तुतीकरण पर विचार किया है। यह केवल नियोक्ता के कहने पर था कि प्रत्यर्थी संख्या 1/कर्मचारी के खिलाफ जांच कार्यवाही की गई थी जहां उसके खिलाफ गंभीर आरोप लगाए गए थे। नियोक्ता को कानून के अनुसार दोषी कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही करने और उसके खिलाफ लगाए गए कदाचार के आरोपों में उसे दोषी ठहराने से पहले उसे अपना बचाव करने का पूरा अवसर देने का अधिकार है। कर्मचारी पर मुकदमा चलाने वाले नियोक्ता का यह कर्तव्य है कि वह उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में सभी सामग्री तुरंत सामने लाए और दोषी कर्मचारी को उक्त सामग्री के बारे में सूचित करे ताकि उसे पर्याप्त रूप से अपना बचाव करने का पूरा अवसर मिल सके।

15. वर्तमान मामले में, कार्यवाही में कर्मचारी को कदाचार का दोषी पाया गया और तदनुसार उसे सेवा से हटाने की सजा/दंड दिया गया है। आरोपों के समर्थन में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए निष्कर्षों और अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण सामग्री की जांच करने के बाद श्रम न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि कर्मचारी के खिलाफ आरोप साबित नहीं हुए हैं।

16. इस न्यायालय ने श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की भी जांच की है और उन्हें उचित पाया है तथा श्रम न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों में कोई कमी नहीं है। नियोक्ता की प्रार्थना है कि उसे दोबारा जांच करने की अनुमति दी जाए ताकि वे आगे ऐसे साक्ष्य दर्ज कर सकें जो पिछली जांच में पेश नहीं किए गए थे। ऐसी प्रार्थना गलत है और तदनुसार निम्नलिखित कारणों से खारिज की जाती है:

सबसे पहले, कोई व्यक्ति अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता। याचिकाकर्ता का कर्तव्य था कि वह दोषी कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में सभी उपलब्ध सामग्री प्रस्तुत करे और जब जांच समाप्त हो गई है और श्रम न्यायालय ने पाया है कि

आरोप साबित नहीं हुए हैं, तो कर्मचारी को उक्त आरोपों से मुक्त किया जाता है। नियोक्ता को उसी जांच के साथ नए सिरे से आगे बढ़ने की अनुमति देना 'दोहरे खतरे' के सिद्धांत से प्रभावित होगा क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक बार किसी व्यक्ति को आरोपों से बरी कर दिया जाता है या उसे दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो उक्त आरोपों के संबंध में कोई नई कार्यवाही, परीक्षण या जांच शुरू नहीं की जा सकती है। उक्त सिद्धांत भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(2) के तहत अपनी जड़ें पाता है और यह दोषमुक्ति को कम करने/दोषी को कम करने का सिद्धांत है क्योंकि किसी व्यक्ति को उसी अपराध के लिए दोबारा मुकदमा नहीं चलाने का अधिकार है जिसके लिए उसे या तो बरी किया गया है या दोषी ठहराया गया है और यही सिद्धांत अनुशासनात्मक कार्यवाही पर भी लागू होता है।

17. केवल तभी जब जांच कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में की जाती है, नियोक्ता को कर्मचारी के खिलाफ उस चरण से आगे बढ़ने की अनुमति है जहां कार्यवाही में उच्च अधिकारी द्वारा देखी गई त्रुटि है, केवल यह सुनिश्चित करने के लिए कि दोषी कर्मचारी को उचित अवसर दिया जाए और उसे बिना सुनवाई के दंडित न किया जाए। याचिकाकर्ता जो प्रत्यर्थी संख्या 1 का नियोक्ता है, कानून के अनुसार कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए अधिकृत था और उस उद्देश्य के लिए आरोप तैयार किया जाना आवश्यक था और आरोप को साबित करने के लिए उपलब्ध सभी साक्ष्य और सामग्री को दोषी कर्मचारी को बताया गया और जांच अधिकारी द्वारा भी विचार किया गया। यदि ऐसी सामग्री उपलब्ध है जिस पर अभियोजन अधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया है, तो उन्हें मामले की फिर से जांच करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और उन्हें उपलब्ध सामग्री पर विचार करने का मौका दिया जा सकता है जिस पर पिछली जांच में विचार नहीं किया गया था। यदि इसकी अनुमति दी जाती है तो यह दोषमुक्ति/दोषी ठहराए जाने के स्थापित कानूनी सिद्धांत के विपरीत होगा, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है।

18. यदि नियोक्ता के पास कुछ सामग्री उपलब्ध थी और उसे जानबूझकर या अन्यथा अनुशासनात्मक कार्यवाही/घरेलू जांच में प्रस्तुत नहीं किया गया था, तो ऐसे कृत्य/चूक के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है, लेकिन आरोपों के समर्थन में अपर्याप्त सामग्री/साक्ष्य को ठीक करने के लिए कोई नई कार्यवाही शुरू करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा आधार पिछले वेतन के संबंध में है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण ने प्रत्यर्थी संख्या 1 - कर्मचारी को गलत तरीके से पूरा पिछला वेतन दिया है। इस न्यायालय ने न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय तथा रिट याचिका में प्रस्तुत किए गए निवेदनों की भी जांच की है। न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का हमारे पास कोई कारण नहीं है, क्योंकि इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई तथ्य नहीं है, जिससे यह पता

चले कि प्रत्यर्थी संख्या 1 उस अवधि के दौरान लाभकारी रूप से कार्यरत था, जब उसे निलंबित रखा गया था या कोई अन्य परिस्थिति है, जो इस न्यायालय को इस संबंध में श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य कर सकती है।

20. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय को श्रम न्यायालय के निर्णय में कोई अवैधता या दोष नहीं लगता है। तदनुसार, रिट याचिका गुण-दोष से रहित होने के कारण खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1457

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट-सी संख्या 17496 /2022

रोहित कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अमित कुमार राय, श्री सलिलेंदु कुमार उपाध्याय, श्री अभिषेक द्विवेदी, श्री एच.एन. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री भुवनेश कुमार सिंह

सिविल कानून- भारतीय संविधान, 1950 अनुच्छेद-226-यूपी ग्राम पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 14, 95(जी) (1) - रिट याचिका- निर्वाचित ग्राम प्रधान - कुछ शिकायतें - कारण बताओ नोटिस - नोटिस का जवाब 15 दिनों के भीतर देना आवश्यक है- याचिकाकर्ता द्वारा तर्क दी गई है कि कोई भी जवाब भेजने से पहले उनकी स्वास्थ्य स्थिति गंभीर थी और किसी भी जवाब के अभाव में, जिला मजिस्ट्रेट ने आपत्तिजनक आदेश पारित किया - न्यायालय ने पाया कि, आक्षेपित आदेश में, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की गई एक स्पष्ट खोज है, कि याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर विधिवत प्रस्तुत किया गया है और उसी पर विचार करने के बाद आदेश पारित किया - पिछले 40 वर्षों में, मूल्य नीचे चले गए हैं और अब एक वादी अदालत को गुमराह करने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है- मैक्सिम सुप्रेशियो वेरी, एक्सप्रेशन फैसी, यानी सत्य का दमन झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है, आकर्षित होता है-आयोजित, एक वादी, जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो न्याय के शुद्ध फव्वारे को दागदार हाथों से छूता है, वह किसी भी राहत, अंतरिम या अंतिम का हकदार नहीं है- इसलिए, याचिका 25,000/- रुपये की लागत के साथ खारिज करने योग्य है, तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा -8,17, 18)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अभ्युदय संस्था बनाम भारत संघ ., (2011) 6 एससीसी 145,
2. हरि नारायण बनाम बद्री दास एआईआर 1963 एससी 1558,
3. जी. नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार (1991) 3 एससीसी 261,
4. दलीप सिंह बनाम यूपी राज्य, (2010) 2 एससीसी 114,

5. मोती लाल सोनगरा बनाम प्रेम प्रकाश उर्फ पप्पू एवं अन्य (2013) 9 एससीसी 199
6. अमर सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2011)7 एससीसी 69,
7. किशोर समरिते बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2013) 2 एससीसी 398।
8. एबीसीडी बनाम भारत संघ और अन्य (2020 खंड 2 एससीसी 52,
9. के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य (2008) 12 एससीसी 481,
10. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य. (1995) 3 एससीसी 757,
11. ए. शनमुगम बनाम अध्यक्ष, अरिया क्षत्रिय राजकुल वामसथु मदालय नन्दवना परिपालनई संगम और अन्य (2012) 6 एससीसी 430
12. रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ. (2010 खंड 14 एस.सी.सी. 38)।

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक द्विवेदी द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह को सुना।
2. याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट,बिजनौर/प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 25/26.05.2022 को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की है। याचिकाकर्ता द्वारा एक और प्रार्थना यह की गयी है कि प्रतिवादीगण को निर्देशित किया जाय कि वे याचिकाकर्ता को ग्राम पंचायत बल्दिया ब्लॉक हल्दौर जिला बिजनौर के ग्राम प्रधान के कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु अनुमति प्रदान करें ।
3. रिट याचिका में निहित संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को 19.04.2021 को हुए चुनाव में ग्राम पंचायत बल्दिया ब्लॉक हल्दौर जिला बिजनौर के प्रधान के रूप में चुना गया था। पंचायत के काम और आचरण के संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कुछ शिकायतें की गई थीं और इस संबंध में जिला मजिस्ट्रेट बिजनौर/प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 11.04.2022 को एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि एक सक्रिय कोड से संख्या हेड में भुगतान किया गया था और याचिकाकर्ता को अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए पंद्रह (15) दिन का समय दिया गया था। यद्यपि दिनांक-11.04.2022 के नोटिस के अनुसार, पंद्रह दिनों का समय 26.04.2022 को समाप्त होने वाला था, लेकिन इस बीच तीव्र कोण ग्लूकोमा की गंभीर स्वास्थ्य स्थिति के कारण, याचिकाकर्ता दि०- 15.04.2022 से 15.05.2022 तक गंभीर चिकित्सा उपचार और पर्यवेक्षण में बिजनौर के एक अस्पताल में था । उपरोक्त उपचार के बाद, याचिकाकर्ता

अनुवादित

अपने घर आया और पूरे दो सप्ताह तक बिस्तर पर स्वास्थ्य लाभ व औषधि सेवन किया। दि०-31.05.2022 को अपनी बीमारी से उबरने के बाद जब याचिकाकर्ता ने अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए खंड विकास कार्यालय हल्दौर का दौरा किया, तो उसे ज्ञात हुआ कि प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा आक्षेपित आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश सुनवाई और साथ ही उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किए बिना पारित किया गया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश को निरस्त कर दिया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि धारा 95 (1) (जी) का दूसरा परंतुक यह प्रावधान करता है कि उत्तर प्रदेश ग्राम पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 95 की उपधारा (1 (जी) के तहत प्रधान या ग्राम पंचायत के सदस्य के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी, जब तक कि संबंधित निकाय या व्यक्ति को कारण बताने का उचित अवसर प्रदान नहीं किया जाएगा, प्रकरण के इस दृष्टिकोण में यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि कारण बताने का कोई अवसर नहीं दिया गया है, इसलिए आदेश को निरस्त कर दिया जाना चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि आक्षेपित आदेश बिना विवेक के और उपेक्षित ढंग से पारित किया गया है। अनुच्छेद संख्या 8, 10, 11 नीचे पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं: -

8. *यह कि दिनांक 11.04.2022 के नोटिस के अनुसार, याचिकाकर्ता को पत्र जारी होने की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करना आवश्यक था, जोन दिनांक 26.04.2022 को समाप्त हो रहा था, इस बीच यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि तीव्र एंपल ग्लूकोमा गंभीर स्वास्थ्य स्थिति के कारण, याचिकाकर्ता दिनांक 15.04.2022 से 15.05.2022 तक बिजनौर के एक अस्पताल में गंभीर चिकित्सा उपचार और पर्यवेक्षण में चिकित्साधीन था, यद्यपि, अस्पताल में इलाज के बाद याचिकाकर्ता अपने घर आया और पूरी तरह से दो सप्ताह तक बिस्तर पर स्वास्थ्य लाभ व औषधि सेवन किया, ताकि वह बीमारी से तेजी से मुक्त सके; नयन नेत्र अस्पताल द्वारा संबंधित डॉक्टर के माध्यम से दिनांक 16.05.2022 को जारी चिकित्सा प्रमाण पत्र की सत्य-प्रतिलिपि/फोटोकॉपी इसके साथ प्रस्तुत की जा रही है और इस रिट याचिका के संलग्नक संख्या 2 के रूप में चिह्नित की जा रही है।*

10.यह कि 31.05.2022 को, अपनी बीमारी से उबरने के बाद, जब याचिकाकर्ता ब्लॉक विकास कार्यालय का दौरा करने की स्थिति में था, तो उसने तुरंत 11.04.2022 के नोटिस के अपने उत्तर के संबंध में खंड विकास कार्यालय, हल्दौर का दौरा किया, लेकिन साथ ही उन्होंने एक जानकारी एकत्र की कि जिला मजिस्ट्रेट, बिजनौर द्वारा एक

आदेश पहले ही धारा 95(1)(g) के परंतुक के अंतर्गत दि०-25/26.05.2022) को पारित किया जा चुका है । इससे सम्बंधित जिला मजिस्ट्रेट, बिजनौर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 25/26.05.2022 की सत्य प्रतिलिपि इसके साथ प्रस्तुत की जा रही है और इस रिट याचिका के संलग्नक संख्या 4 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

11. यह कि याचिकाकर्ता को दि० 31.05.2022 को ब्लॉक में ही, जब वह दिनांक 11.04.2022 के नोटिस पर अपना उत्तर देने गया था, दि०-25/26.05.2022 को पारित आक्षेपित आदेश दे दिया गया था । साथ ही जिला मजिस्ट्रेट, बिजनौर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दि०-31.05.2022 को याचिकाकर्ता को दिया गया था।

5. प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 की ओर से श्री वीरेंद्र यादव खंड विकास अधिकारी हल्दौर बिजनौर द्वारा एक प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया गया है । इस प्रति-शपथपत्र के अनुच्छेद 11 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता को उसके चिकिसकीय प्रमाण-पत्र, जिसकी प्रतिलिपि रिट याचिका के संलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है, से कोई लाभ नहीं मिलेगा । यह तर्क दिया गया है कि चिकिसक का परामर्श, दवाओं के बिल आदि उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किए गए थे, इसलिए, याचिकाकर्ता किसी भी उपशम का पात्र नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने याचिका में कहा है कि वह 15.04.2022 से 15.05.2022 तक शय्या विश्राम पर था, जबकि याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.04.2022 को जिला पंचायत राज अधिकारी बिजनौर के कार्यालय में दिनांक 11.04.2022 के नोटिस का उत्तर प्रस्तुत किया है और उपरोक्त उत्तर के साथ, उसने अपने हस्ताक्षर और मुहर के साथ बैंक स्टेटमेंट की प्रतिलिपि भी प्रस्तुत की, जिस पर दिनांक 19.04.2022 की तिथि अंकित है, उत्तर की प्रतिलिपि शपथ-पत्र के संलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है। यह तर्क दिया गया है कि उसी के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता दिनांक 19.04.2022 से दिनांक 27.04.2022 तक स्वस्थ था। प्रकरण के इस दृष्टिकोण से, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष स्वच्छ हृदय से नहीं आया है, इसलिए,याचिका निरस्त करने योग्य है। प्रति-शपथपत्र के अनुच्छेद 11 में रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ (2010) 14 एससीसी 38 में रिपोर्ट किए गए निर्णय का उद्धरण दिया गया है और प्रासंगिक अनुच्छेद को भी उद्धृत किया गया है और उसी के आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि यदि कोई वादी स्वच्छ हृदय से न्यायालय के समक्ष नहीं आता है, वह सुनवाई का अधिकारी नहीं है और वास्तव में, ऐसा व्यक्ति किसी भी न्यायिक मंच से किसी भी उपशम का अधिकारी नहीं है।

6. प्रति-शपथपत्र का खंडन करने के लिए, याचिकाकर्ता द्वारा कोई प्रत्युत्तर शपथपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, इसलिए प्रति-शपथपत्र में किए गए कथनों को सही माना जाता है।

7.पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

8. अभिलेख के अवलोकन से, यह ज्ञात होता है कि दिनांक 11.04.2022 के नोटिस के अनुसार, याचिकाकर्ता को पंद्रह दिनों के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन खराब स्वास्थ्य के कारण इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित प्रकरण के अनुसार, वह अपना उत्तर प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं था और जब वह दिनांक 31.05.2022 को जिला पंचायत राज अधिकारी, हल्दौर के कार्यालय में गया तब उसे ज्ञात होता है कि उसके विरुद्ध आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है। प्रति-शपथपत्र में दिनांक 27.04.2022 के उत्तर की प्रतिलिपि संलग्नक सीए1 के रूप में संलग्न की गई थी। इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश में स्पष्ट रूप से निष्कर्ष अंकित है कि जिला मजिस्ट्रेट बिजनौर/प्रतिवादी संख्या 2 ने कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत उत्तर प्रस्तुत किया गया है और उसी पर विचार करने के बाद, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। संबंधित भाग नीचे उद्धृत किया गया है: -

"कारण बताओं नोटिस निर्गत किया गया था तथा निर्गत कारण बताओं नोटिस के सम्बन्ध में ग्राम प्रधान एवं सम्बंधित सचिव द्वारा अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया। "

9. उसी के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत करते समय, कारण बताओ नोटिस से सम्बंधित उत्तर प्रस्तुत करने सम्बन्धी तथ्य विचारपूर्वक और जान-बूझकर छुपाया गया है।

10. तथ्यों को छिपाकर न्यायालय जाने से संबंधित प्रकरण की माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर परीक्षा की गई है और यह विचार व्यक्त किया है कि इससे न्याय प्रवाह प्रदूषित हो रहा है।

11. ***अभ्युदय संस्था बनाम भारत संघ, (2011) 6 एससीसी 145*** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को, जिन्होंने स्वच्छ हृदय से न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया, उपशम देने से इन्कार करते हुए, निम्नानुसार विचार व्यक्त किया : -

"18. ... हमारे विचार में, अपीलकर्ता गैर-उपयुक्त होने के योग्य हैं क्योंकि उन्होंने साफ हाथों से न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया है। अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अनजाने में की गई गलती की तर्क और उनका यह प्रस्तुत करना कि न्यायालय उदार दृष्टिकोण अपना सकता है और पहले से ही किए गए प्रवेशों के नियमितीकरण का आदेश दे सकता है, आकर्षक लगता है लेकिन स्वीकृति के योग्य नहीं है। अपीलकर्ताओं में से प्रत्येक ने जान-बूझकर एक बयान दिया कि इसे एनसीटीई द्वारा मान्यता दी गई थी, जिसका अनिवार्य रूप से अर्थ है कि मान्यता 2007 के विनियमों के विनियम 7 और 8 के साथ पठित अधिनियम की धारा 14 के संदर्भ में दी गई थी। अपीलकर्ताओं के मामलों का प्रबंधन करने वाले निर्दोष, अनपढ़/अशिक्षित व्यक्तियों की श्रेणी से संबंधित नहीं हैं, जो प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों और अदालती प्रक्रिया से परिचित नहीं हैं। तथ्य यह है कि अपीलकर्ताओं में से प्रत्येक

ने विनियमन 7 के संदर्भ में एलपीएएसडब्ल्यू संख्या 82/2019 पृष्ठ 7 आवेदन प्रस्तुत किया था और डब्ल्यूआरसी, भोपाल द्वारा गठित टीम द्वारा निरीक्षण के लिए खुद को उपलब्ध कराया था, यह दर्शाता है कि वे इस तथ्य से पूरी तरह अवगत थे कि वे अधिनियम और विनियमों और डब्ल्यूआरसी में निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करने के बाद ही मान्यता प्राप्त कर सकते हैं, भोपाल ने उन्हें मान्यता नहीं दी थी। इसके बावजूद, उन्होंने साहसिक बयान दिया कि उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा मान्यता दी गई थी और इस तरह इस न्यायालय को विशेष अनुमति याचिकाओं पर विचार करने और अंतरिम आदेश पारित करने के लिए राजी करने में सफल रहे। अपीलकर्ताओं के बारे में जो न्यूनतम कहा जा सकता है, वह यह है कि उन्होंने साफ हाथों से न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया है और स्पष्ट रूप से गलत बयान देकर न्याय की धारा को प्रदूषित करने में सफल रहे हैं। इसलिए, वे संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत राहत के अधिकारी नहीं हैं। इस दृष्टिकोण को ढेर सारी मिसालों से समर्थन मिलता है।

19. ***हरि नारायण बनाम बद्री दास एआईआर 1963 एससी 1558, जी नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार (1991) 3 एससीसी 261*** *और बड़ी संख्या में अन्य मामलों में, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता को इस आधार पर उपशम देने से इनकार कर दिया कि वह स्वच्छ हृदय से न्यायालय के समक्ष नहीं आया था।* ***हरि नारायण बनाम बद्री दास (सुप्रा)*** *में, न्यायालय ने अपीलकर्ता को दिए गये अवकाश को निरस्त कर दिया और कहा:*

"यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत किए गए विशेष अनुमति के लिए आवेदनों में भौतिक बयान देते समय और आधार निर्धारित करते समय, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई भी बयान गलत, असत्य या भ्रामक न हो। विशेष अवकाश के लिए आवेदनों से निपटने में, न्यायालय स्वाभाविक रूप से याचिकाओं में निहित तथ्यों और तथ्यों के आधारों को उनके अंकित मूल्य पर लेता है और यह असत्य और भ्रामक बयान देकर न्यायालय के विश्वास को धोखा देने के लिए अनुचित होगा। इस प्रकार, यदि अपील की सुनवाई में सर्वोच्च न्यायालय संतुष्ट है कि अपीलकर्ता द्वारा विशेष अनुमति के लिए अपने आवेदन में दिए गए भौतिक बयान गलत और भ्रामक हैं, और प्रतिवादी यह तर्क देने का पात्र है कि अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति के लिए याचिका में निहित तथ्यों की गलत व्याख्या के रूप में जो विशेषता है, उसके बल पर सुप्रीम न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त की हो सकती है, सुप्रीम न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि ऐसे प्रकरण में अपीलकर्ता को दी गई विशेष अनुमति को निरस्त कर दिया जाना चाहिए।

20. ***जी. नारायणस्वामी रेड्डी बनाम कर्नाटक सरकार के प्रकरण (सुप्रा)*** *में, न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश के बारे में तथ्य को देखते हुए, जिसने निर्धारित समय अवधि के भीतर भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा पुरस्कार पारित करने पर रोक लगा दी थी, छुपाया गया था और पूर्वोक्त संदर्भ में, यह देखा कि:*

"2. ...आश्चर्यजनक बात यह है कि विशेष अनुमति याचिकाओं में किसी भी स्थगन आदेश का कोई संदर्भ नहीं है और हमें इन आदेशों के बारे में तभी पता चला जब प्रतिवादी नोटिस के उत्तर में उपस्थित हुए और अपना प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया। हमारे विचार में, उक्त अंतरिम आदेशों का उठाए गए प्रश्न पर सीधा असर पड़ता है और इसका खुलासा न करना निश्चित रूप से भौतिक तथ्यों को छिपाने के समान है। अकेले इस आधार पर, विशेष अनुमति याचिकाएं निरस्त की जा सकती हैं। यह विधि में अच्छी तरह से तय है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत उपशम विवेकाधीन है और एक याचिकाकर्ता जो इस तरह की उपशम के लिए इस न्यायालय से संपर्क करता है, उसे तथ्यों के स्पष्ट और पूर्ण प्रकटीकरण के साथ आना चाहिए। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है और भौतिक तथ्यों को दबाता है, तो उसका आवेदन निरस्त कर दिया जा सकता है। तदनुसार, हम विशेष अनुमति याचिकाओं को निरस्त करते हैं।

*21. **दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 2 एससीसी 114** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन के मूल्यों में प्रगतिशील गिरावट देखी और कहा:*

1. कई शताब्दियों तक भारतीय समाज ने जीवन के दो आधारभूत मूल्यों अर्थात् "सत्य" (सत्य) और "अहिंसा" (अहिंसा) को पोषित किया। महावीर, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी ने लोगों को अपने दैनिक जीवन में इन मूल्यों को शामिल करने के लिए निर्देशित किया। सत्य ने न्याय-वितरण प्रणाली का एक अभिन्न अंग का गठन किया जो स्वतंत्रता-पूर्व युग में प्रचलन में था और लोग परिणामों की परवाह किए बिना न्यायालयों में सच बोलने में गर्व महसूस करते थे। यद्यपि , स्वतंत्रता के बाद की अवधि में हमारे मूल्य प्रणाली में भारी बदलाव देखे गए हैं। भौतिकवाद ने पुराने लोकाचार को समाप्त कर दिया है और व्यक्तिगत लाभ की तलाश इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी में शामिल लोग न्यायालयी कार्यवाही में असत्यता, मिथ्या निरूपण और तथ्यों के दमन की शरण लेने में संकोच नहीं करते हैं।

2. पिछले 40 वर्षों में, वादियों का एक नया पंथ सामने आया है। जो लोग इस पंथ से संबंधित हैं, उनमें सत्य के प्रति कोई सम्मान नहीं है। वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बेशर्मी से झूठ और अनैतिक साधनों का सहारा लेते हैं। वादियों के इस नए पंथ द्वारा उत्पन्न चुनौती का सामना करने के लिए, न्यायालयों ने समय-समय पर नए नियम विकसित किए हैं और अब यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक वादी, जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो न्याय के विशुद्ध प्रवाह को दूषित हाथों से स्पर्श करता है, वह किसी भी अंतरिम या अंतिम उपशम का पात्र नहीं है, । (महत्त्व सन्निविष्ट)

*12. **मोती लाल सोंगारा बनाम प्रेम प्रकाश @ पप्पू और अन्य (2013) 9 एससीसी 199**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालय के समक्ष तथ्यों को छिपाने के प्रकरण में विचार करते हुए, यह*

टिप्पणी करते हुए कि "न्यायालय एक प्रयोगशाला नहीं है जहां बच्चे खेलने के लिए आते हैं", निम्नानुसार विचार व्यक्त किया:-

"19. प्रस्तुत करने का दूसरा अंग यह है कि क्या तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में, उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी-प्रतिवादी को उन्मोचित करने का आदेश न्यायोचित है। हमने स्पष्ट रूप से कहा है कि यद्यपि प्रतिवादी इस तथ्य के बारे में पूरी तरह से अवगत था कि विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा उसके विरुद्ध आरोप तय किए गए थे, फिर भी उसने संज्ञान लेने वाले आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण की सुनवाई करने वाली पुनरीक्षण न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया। यह दमन का एक स्पष्ट प्रकरण है। यह आरोपी के विशेष ज्ञान में था। जो कोई भी विधि के न्यायालय में दमन के तरीके का सहारा लेता है, वह वास्तव में न्यायालय के साथ धोखाधड़ी कर रहा है, और कहावत दमन वेरी, अभिव्यक्ति फैसी, अर्थात् सच्चाई का दमन झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है, आकर्षित हो जाता है। हम ऐसा कहने के लिए मजबूर हैं क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष इस तथ्य को सुनियोजित रूप से छिपाया गया है। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि अभियुक्त-प्रतिवादी ने इस तरह के तथ्यात्मक दमन से लाभ उठाने की कोशिश की। धोखाधड़ी का इरादा बड़ा है। वास्तव में, उसने उपेक्षा करने का दुस्साहस करते हुए बीमार होने का स्वांग किया है ।

20. जैसा कि हमने देखा है, उच्च न्यायालय ने सिद्धांत को लागू किया कि "जब आधारभूत ढांचा ढह जाता है, तो अधिरचना का पतन होना तय है"। यद्यपि, चूंकि यह आदेश धोखाधड़ी करके और लाभ प्राप्त करने के लिए विधि की न्यायालय के समक्ष मूलभूत तथ्य को दबाकर प्राप्त किया गया है, इसलिए उक्त आदेश को स्थिर रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (महत्व सन्निविष्ट)

13. इसी तरह का विचार ***अमर सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, (2011) 7 एससीसी 69 और किशोर समरीते बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2013) 2 एससीसी 398*** में व्यक्त किया गया है।

14. ***एबीसीडी बनाम भारत संघ और अन्य (2020) 2 एससीसी 52*** के नवीनतम निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकरण में जहां महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया गया था, याचिकाकर्ता को नोटिस जारी करते हुए, अपनी स्वतः संज्ञान अवमानना शक्ति का प्रयोग करते हुए, निम्नानुसार विचार व्यक्त किया:-

"15. शपथ पर गलत बयान देना आईपीसी की धारा 181 के तहत दंडनीय अपराध है, जबकि लोक सेवक को किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाने के लिए अपनी वैध शक्ति का उपयोग करने के इरादे से झूठी जानकारी देना आईपीसी की धारा 182 के तहत दंडनीय है। संहिता की धारा 195 (1) (ए) (आई) के आधार पर इन अपराधों का संज्ञान किसी भी

न्यायालय द्वारा केवल लिखित रूप में उचित शिकायत पर लिया जा सकता है जैसा कि उक्त धारा में कहा गया है। संहिता की धारा 195 (1) (बी) (i) के तहत आने वाले मामलों के संबंध में, पुष्पदेवी एम. जटिया बनाम एमएल वधावन आदि, (1987) 3 एससीसी 367 अभियोजन को इस न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज किए जाने के बाद प्रारंभ करने का निर्देश दिया गया था।

16. चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा (1995) 1 एससीसी 421 में इस न्यायालय द्वारा यह भी निर्धारित किया गया है कि एक व्यक्ति जो न्यायालय को धोखा देने का प्रयास करता है, न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करता है और उसे न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया जा सकता है। उस प्रकरण में, एक पति जिसने वैवाहिक कार्यवाही के हस्तांतरण की मांग करने वाली अपनी पत्नी की प्रार्थना का विरोध करने के लिए एक मनगढ़ंत दस्तावेज प्रस्तुत किया था, उसे न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया गया और दो सप्ताह के कारावास की सजा सुनाई गई। यह निम्नानुसार देखा गया था:-

"1. न्याय प्रशासन की धारा को अप्रदूषित रहना होगा ताकि न्यायालय के वातावरण की शुद्धता राज्य के सभी अंगों को जीवन शक्ति दे सके। इसलिए, न्यायिक फर्म के प्रदूषकों को न्यायालय के पर्यावरण की उदात्तता बनाए रखने के लिए अच्छी तरह से ध्यान रखने की आवश्यकता है; इसलिए इसे निष्पक्ष रूप से और सभी संबंधितों की संतुष्टि के लिए न्याय प्रदान करने में सक्षम बनाने के लिए भी।

2. जो कोई भी धोखाधड़ी का सहारा लेता है, वह न्यायिक कार्यवाही के पाठ्यक्रम को टाल देता है; या यदि कोई काम परोक्ष उद्देश्य से किया जाता है, तो वही न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करता है। ऐसे व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार किया जाना चाहिए, न केवल उन्हें गलत किए जाने के लिए दंडित करने के लिए, बल्कि दूसरों को भी इसी तरह के कृत्यों में लिप्त होने से रोकने के लिए जो न्याय प्रशासन की प्रणाली में लोगों के विश्वास को हिला देते हैं।

** * **

14. इस प्रकार कानूनी स्थिति यह है कि यदि प्रकाशन न्यायालय को धोखा देने के इरादे से हो या धोखाधड़ी के इरादे से किया गया हो, तो यह अवमानना होगी, क्योंकि यह न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करेगा। यह किसी भी प्रकरण में, उसी के साथ हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखता है। यह निश्चित रूप से ऐसा होगा यदि उपरोक्त मेन्स रीआ के साथ एक मनगढ़ंत दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है। प्रकरण में मनगढ़ंत दस्तावेज स्पष्ट रूप से न्यायालय को धोखा देने

के लिए था; ठगी करने का इरादा बड़ा है। इसलिए अनिल कुमार अवमानना के दोषी हैं।

15. ***केडी शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य (2008) 12 एससीसी 481*** में व्यक्त किया गया था:-

"39. यदि केंसिंग्टन आयकर आयोग, (1917) 1 केबी 486: 86 एलजेकेबी 257: 116 एलटी 136 (सीए) में प्रकाश में लाये गए प्राथमिक उद्देश्य को ध्यान में रखा जाता है, तो एक आवेदक जो स्पष्ट तथ्यों और "सत्यता" के साथ नहीं आता है, वह "गंदे हाथों" से न्यायालय की रिट नहीं पकड़ सकता है। भौतिक तथ्यों को छिपाना या छिपाना कोई वकालत नहीं है। यह एक बाजीगरी, हेरफेर, पैंतरेबाज़ी या गलत बअर्थात् है, जिसका न्यायसंगत और विशेषाधिकार क्षेत्राधिकार में कोई स्थान नहीं है। यदि आवेदक सभी भौतिक तथ्यों को निष्पक्ष और सही मायने में प्रकट नहीं करता है, लेकिन उन्हें विकृत तरीके से बताता है और न्यायालय को दिग्भ्रमित करता है, तो न्यायालय के पास खुद को बचाने और नियम का निर्वहन करने के लिए अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अंतर्निहित शक्ति है और योग्यता के आधार पर प्रकरण की जांच के साथ आगे बढ़ने से इनकार कर देता है। यदि न्यायालय उस आधार पर याचिका को निरस्त नहीं करता है, तो न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल हो जाएगा । वास्तव में, ऐसे आवेदक को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए न्यायालय की अवमानना का सामना किया जाना चाहिए।

18. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1995) 3 एससीसी 757 में एक झूठा शपथ-पत्र प्रस्तुत करना अवमानना क्षेत्राधिकार में कार्यवाही प्रारंभ करने का आधार था और संबंधित व्यक्तियों को दंडित किया गया था।

16. ***ए. शनमुगम बनाम एरिया कषात्रिय राजकुला वामसथु मडालय नंदवाना परिपलानई संगम के प्रकरण में (2012) 6 एससीसी 430*** में रिपोर्ट किए गए इसके अध्यक्ष और अन्य लोगों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि जब न्यायालय को तर्कों और अभिलेखों में झूठ, छिपाव, विरूपण, बाधा और भ्रम मिलता है, तो न्यायालय को पूर्ण बहाली के अतिरिक्त वास्तविक यथार्थवादी लागत लगानी चाहिए। पूर्वोक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद 42 और 43 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

42. अपीलकर्ता भी अस्थिर तर्कों को पेश करने का दोषी है। प्रतिकूल कब्जे की तर्क 9 जिसका प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई आधार या आधार नहीं है, अनुचित

लाभ प्राप्त करने के लिए पेश किया गया था। न्यायालय को ऐसेअभिलेखों और तर्कों को पेश करके अनावश्यक भ्रम पैदा करने के लिए जिम्मेदार जानबूझकर अप्रासंगिक और अस्थिर तर्कों को पेश करने के दोषी पक्ष को उपशम देने में सावधानी बरतनी चाहिए। उपशम प्रदान करते समय और/या लागत लगाते समय इन कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

43.वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर, निम्नलिखित सिद्धांत उभरते हैं:

43.1.सच्चाई को बनाए रखना और न्याय करना न्यायालय का बाध्यकारी कर्तव्य है।

43.2.प्रत्येक वादी से अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय के समक्ष सच्चाई बताए, चाहे वह दलीलें हों, शपथ-पत्र हों या साक्ष्य। अधर्मी और निर्लज्ज वादकारियों का विधि न्यायालयों में कोई स्थान नहीं है।

43.3. न्यायिक कार्यवाही का अंतिम उद्देश्य सत्य को समझना और न्याय करना है। यह जरूरी है कि न्यायालय के समक्ष तर्क और अन्य सभी प्रस्तुतियां सच्ची होनी चाहिए।

43.4.एक बार जब न्यायालय को तर्कों और अभिलेखों में झूठ, छिपाव, विकृति, बाधा या भ्रम का पता चलता है, तो न्यायालय को पूर्ण क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त उचित अर्थ-दंड लगाना चाहिए। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्याय के मंदिर में गलत करने वाले के लिए कोई प्रोत्साहन न हो। सत्य न्याय की नींव है और सच्चाई को बनाए रखने के लिए सभी का साझा प्रयास होना चाहिए और किसी को भी न्याय की धारा को प्रदूषित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

17. ऊपर उल्लिखित निर्णयों में यह माना गया था कि सदियों से भारतीय समाज द्वारा पोषित दो आधारभूत मूल्यों में से एक "सत्य" (सत्य) है और इसे याचिकाकर्ता द्वारा कालीन के नीचे रखा गया है। स्वतंत्रता-पूर्व युग में सत्य ने न्याय-वितरण प्रणाली का एक अभिन्न अंग का गठन किया, यद्यपि , स्वतंत्रता के बाद की अवधि में हमारे मूल्य प्रणाली में भारी बदलाव देखे गए हैं। भौतिकवाद ने पुराने लोकाचार को समाप्त कर दिया है और व्यक्तिगत लाभ की तलाश इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी में शामिल लोग न्यायालायीय कार्यवाही में असत्यता, मिथ्या निरूपण और तथ्यों के दमन की शरण लेने में संकोच नहीं करते हैं। विगत 40 वर्षों में, मूल्य नीचे चले गए हैं और अब वादकारी न्यायालय को दिग्भ्रमित करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है। उनमें सत्य के प्रति कोई सम्मान नहीं है। इस नई पीढ़ी के मुकदमेबाजों द्वारा पेश की गई चुनौती का सामना करने के लिए सिद्धांत विकसित किया गया है। अब यह अच्छी तरह से तय है कि एक वादी, जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो दूषित हाथों से न्याय के विशुद्ध प्रवाह को स्पर्श करता है, वह किसी भी उपशम, अंतरिम या अंतिम का पात्र नहीं है। न्यायालय से भौतिक तथ्यों को

छिपाना वास्तव में न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करना है। कहावत सप्रेसियो वेरी, एक्सप्रेशन फैसी, अर्थात् सत्य का दमन झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है, आकर्षित हो जाता है।

18. ऊपर वर्णित कारणों से, मेरी राय में, वर्तमान याचिका 25,000/- रुपये की लागत के साथ निरस्त कर दिया जाना चाहिए।

19. तदनुसार आदेश दिया गया ।

20. याचिकाकर्ता को लागत की राशि आज से चार सप्ताह के भीतर उत्तर प्रदेश राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, लखनऊ में जमा करानी होगी।

(2023) 5 ILRA 1465

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र,

रिट-सी संख्या 18666/2017

संयुक्त निदेशक कृषि (विस्तार) एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्री छोटे लाल ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री विवेक शांडिल्य, सी.एस.सी., श्री धनन्जय सिंह (एस.सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री रूद्र प्रताप सिंह, श्री अनिल कुमार यादव, श्री सुधांशु नारायण

ए. **सिविल कानून - उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947- धारा 6(4) 4के, 6एन**- बहाली- याचिकाकर्ताओं का मामला इस आशय का है कि प्रतिवादी-कर्मचारी की नियुक्ति चावल योजना के तहत काम करने के प्रयोजनार्थ एक अस्थायी व्यवस्था के तहत की गई थी, जो 1987 के बाद प्रभावी नहीं रही और, इसलिए प्रतिवादी-कर्मचारी की सेवाओं की परिणामी समाप्ति अवैध नहीं थी -जिसका संदर्भ समाप्ति के 10-11 वर्ष बाद बहुत विलम्बित चरण में किया गया था और श्रम न्यायालय द्वारा आरोपित पुरस्कार में इस बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया कि प्रतिवादी बीच की अवधि के दौरान या उसके बाद लाभकारी रूप से कार्यरत था या नहीं, मैं पाता हूं कि पिछली सेवा में निरंतरता के साथ 25% पिछले वेतन के साथ बहाली न्यायोचित नहीं थी- हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मुआवजे की एक समेकित और एकमुश्त राशि प्रतिवादी को सांत्वना देने के उद्देश्य की पूर्ति कर सकती थी जिनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं, न केवल दस्तावेजों के प्रकाश में बल्कि उनकी सेवा पुस्तिका पर भी विचार करते हुए जो उनकी नियुक्ति की प्रकृति और इसके साथ जुड़े अन्य सभी पहलुओं का वर्णन करती है - वर्तमान याचिका में पारित 25.05.2017 के अंतरिम आदेश की प्रकृति पर विचार करते हुए, जिसके अनुसरण में याचिकाकर्ताओं द्वारा 5,00,000/- रुपये की राशि जमा की गई थी, जिसमें से 2,00,000/- रुपये की राशि प्रतिवादी के पक्ष में जारी की गई है। (पैरा 1 से 48)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सचिव सिंचाई, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद रईस (2021) 169 एफएलआर 520

अनुवादित

2. यूपी राज्य व अन्य बनाम उत्तम सिंह (2021) एआईआर एससी 3909

3. चेयरमैन, टाउन एरिया एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2013) 11 एडीजे 197

4. कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम रवि कुमार (2009) 13 एससीसी 746

5. हरियाणा राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक बनाम नीलम (2005) 5 एससीसी 91

6. सहायक अभियंता, राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, उपखंड, कोटा बनाम मदन लाल (2013) 14 एससीसी 543

7. नगर महापालिका बनाम यूपी राज्य व अन्य.. (2006) 5 एससीसी 127

8. नगर परिषद, सुजानपुर बनाम सुरिंदर कुमार (2006) 5 एससीसी 173

9. हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम लिमिटेड बनाम ममनी (2006) 9 एससीसी 434

10. उत्तरांचल वन विकास निगम बनाम एम.सी. जोशी (2007) 9 एससीसी 353

11. जी.डी.ए. एवं अन्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य (2008) 4 एससीसी 261

12. दूरसंचार जिला प्रबंधक बनाम केशब देब, 2008 में रिपोर्ट किया गया (8) एससीसी 402

13. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड (2009) 15 एससीसी 327

14. उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता (2009) 16 एससीसी 562

15. बीएसएनएल बनाम मान सिंह (2012) 1 एससीसी 558

16. वरिष्ठ अधीक्षक टेलीग्राफ (यातायात), भोपाल बनाम संतोष कुमार सील एवं अन्य (2010) 6 एससीसी 773

17. सहायक अभियंता, राज. देव. कार्पोरेशन एवं अन्य. बनाम गीतम सिंह (2013) 5 एससीसी 136

18. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पी.ओ., श्रम न्यायालय एवं अन्य (2017) 7 एडीजे 393

19. नगर महापालिका बनाम यूपी राज्य (2006) एआईआर एससी 2113

20. हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम बनाम ममनी (2006) एआईआर एससी 2427

21. सीता राम बनाम मोती लाल नेहरू किसान प्रशिक्षण संस्थान (2008) एआईआर एससी 1955

22. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड एवं अन्य (2009) एआईआर एससी 3004

23. वरिष्ठ अधीक्षक, टेलीग्राफ (यातायात) भोपाल बनाम संतोष कुमार सील एवं अन्य (2010) एआईआर एससी 2140

24. प्रभारी अधिकारी बनाम शंकर शेट्टी (2010) 9 जेटी एससी 262

25. प्रभाग. इंजीनियरिंग, टेलीकॉम, झाँसी बनाम पी.ओ. एवं अन्य.. (2011) 4 एडीजे 199

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

1. संयुक्त निदेशक कृषि (विस्तार), गोरखपुर मंडल, गोरखपुर, जिला कृषि अधिकारी, जिला बस्ती के अधीन परियोजना अधिकारी (कृषि) और खंड विकास अधिकारी, फरींडा, जिला महाराजगंज, सह-याचिकाकर्ता, ने अधिनिर्णय वाद संख्या-75 वर्ष 1999 में पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, गोरखपुर द्वारा

पारित दिनांक 30.11.2015 के आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय दिनांक 30.11.2015 को चुनौती देते हुए प्रस्तुत रिट याचिका दायर की है।

रिट याचिका

2. रिट याचिका में निहित दलीलों के अनुसार, प्रतिवादी छोटे लाल (इसके बाद "कामगार" के रूप में संदर्भित) को वर्ष 1986-87 में चावल योजना के तहत कामदार/चौकीदार के रूप में आंतरिक व्यवस्था के रूप में अस्थायी रूप से लगाया गया था और जब चावल योजना को समाप्त कर दिया गया, तो 96 कामदारों/चौकीदारों की निरंतरता को 17.10.1987 के सरकारी आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया और, तत्पश्चात्, कामगार को दिनांक 01-08-1988 का नोटिस देने के बाद उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई। तत्पश्चात्, उप श्रमायुक्त, गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 11-05-1999 के आदेश के अंतर्गत इस प्रश्न की जांच करने के लिए इसे औद्योगिक विवाद श्रम न्यायालय, उत्तर प्रदेश, गोरखपुर को भेजा गया था कि क्या 01-09-1988 से कामगार की बर्खास्तगी उचित अथवा कानूनी थी; और यदि नहीं, तो कामगार किस राहत/मुआवजे का हकदार था। आगे यह दलील दी गई है कि श्रम न्यायालय के समक्ष, पक्षों ने अपनी प्रस्तुतियाँ दीं और साक्ष्य का नेतृत्व किया। याचिकाकर्ताओं का मामला यह था कि कामगार ने धोखाधड़ी करके अपनी नियुक्ति प्राप्त की थी और जब उक्त धोखाधड़ी याचिकाकर्ताओं के संज्ञान में आई थी, तो प्रतिवादी-कामगार की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। आगे यह दलील दी गई है कि चावल योजना के उन्मूलन के बाद, कोई रिक्ति नहीं थी और इसलिए, कामगार को बहाली का कोई अधिकार नहीं था। आगे यह दलील दी गई है कि विवाद समाप्ति की तारीख से 10-11 साल की लंबी अवधि के बाद उठाया गया था और प्रतिवादी को 31.08.1988 तक वेतन का भुगतान किया गया था जिसमें नोटिस की तारीख से एक महीने का वेतन शामिल है। श्रम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं का आगे का मामला, जैसा कि रिट याचिका में भी दलील दी गई थी, कि कृषि विभाग एक सरकारी विभाग है न कि 'उद्योग' और इसलिए श्रम न्यायालय ने विवाद को उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों के तहत आच्छादित करने में गलती की थी और इसलिए, यह अधिनिर्णय अवैध है।

3. संक्षेप में, याचिकाकर्ताओं का मामला इस आशय का है कि प्रतिवादी-कामगार की एक श्रमिक के रूप में चावल योजना के तहत काम करने के प्रयोजनों के लिए एक अस्थायी व्यवस्था के तहत नियुक्ति हुई थी जो 1987 के बाद से लागू नहीं हुई और इसलिए, प्रतिवादी कामगार की सेवाओं की परिणामी समाप्ति अवैध नहीं थी।

4. श्रम न्यायालय ने दिनांक 30.11.2015 के आक्षेपित अधिनिर्णय द्वारा, प्रतिवादी-कामगार को 01.09.1988 से 25% बैक-वेज के साथ पिछली सेवाओं में निरंतरता के साथ उसके पद पर बहाल करने का निर्देश दिया।

जवाबी हलफनामा

5. प्रतिवादी-कामगार की ओर से एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा

गया है कि कृषि विभाग 'उद्योग' की परिभाषा के अंतर्गत आता है और प्रतिवादी कामगार की सेवाएं न तो अस्थायी थीं और न ही चावल योजना पर निर्भर थीं। विभिन्न अनुलग्नकों पर भरोसा किया गया है जो प्रतिवादी-कामगार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए रिट याचिका का हिस्सा भी हैं।

प्रतिउत्तर हलफनामा

6. याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट याचिका में निहित संस्करण को दोहराते हुए एक प्रतिउत्तर हलफनामा दायर किया गया है। यह भी उल्लेख किया गया है कि प्रस्तुत रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.05.2017 के अंतरिम आदेश के अनुसरण में, 5,00,000/- रुपये की राशि आरटीजेएस के माध्यम से श्रम न्यायालय, गोरखपुर के खाते में ट्रेजरी टोकन संख्या-331769925, दिनांक 07.09.2017 और वाउचर संख्या-14, दिनांक 08.09.2017 के माध्यम से जमा की गई थी।

इस मामले में पारित हुआ अंतरिम आदेश

7. इस न्यायालय ने प्रस्तुत रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 22.05.2017 के अंतरिम आदेश के बाद पारित किया: -

"यह रिट याचिका श्रम न्यायालय, गोरखपुर के 30.11.2015 के पंचाट/अधिनिर्णय के खिलाफ दायर की गई है, जिसके द्वारा उक्त श्रम न्यायालय ने प्रतिवादी-कामगार के पक्ष में संदर्भ का जवाब दिया है और 25% बैक वेज के साथ उसकी बहाली की सभी राहत दी है।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी-कामगार ने चावल योजना के तहत कामगार के पद पर दो साल की अवधि के लिए काम किया था और उसे 01.08.1988 को समाप्त कर दिया गया था। कामगार ने वर्ष 1999 में देर से संदर्भ की मांग की, जिसका उत्तर 28.03.2016 को प्रकाशित आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय द्वारा उसके पक्ष में दिया गया है। इसलिए वह प्रस्तुत करेगा कि इस तरह के मामले में बहाली की राहत प्रतिवादी-कामगार को नहीं दी जा सकती क्योंकि संदर्भ ग्यारह साल की देरी के बाद किया गया है और इसलिए भी कि प्रतिवादी-कामगार लगभग 29 वर्षों से काम से बाहर रहा है। इसलिए, वह एकमात्र दावा प्रस्तुत करेगा जिस पर श्रम न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता था, वह बहाली और वापस मजदूरी के बदले मुआवजे का था। हालांकि, श्रम न्यायालय ने 25% वापस मजदूरी के साथ बहाली की राहत दी है, यहां तक कि यह निष्कर्ष भी दर्ज किए बिना कि विवाद की पेंडेंसी के दौरान प्रतिवादी-कामगार को लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं किया गया था।

दूसरी ओर प्रतिवादी कामगार के अधिवक्ता श्री सुधांशु नारायण का तर्क है कि प्रतिवादी 25% वापस मजदूरी के साथ बहाली का हकदार है। मामले पर विचार की आवश्यकता है।

प्रतिवादी कामगार के अधिवक्ता श्री सुधांशु नारायण ने जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए चार सप्ताह का समय मांगा और उन्हें समय दिया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता के पास प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करने के लिए दो सप्ताह का समय होगा।

08.08.2017 को सूचीबद्ध करें। इस बीच यह श्रम न्यायालय, गोरखपुर के समक्ष 5,00,000/- रुपये जमा करने के अधीन प्रदान किया जाता है, आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर पंचाट/अधिनिर्णय के कार्यान्वयन पर रोक रहेगी। इस प्रकार जमा की गई राशि में से 2,00,000/- रुपये प्रतिवादी कामगार को बिना किसी प्रतिभूति के भुगतान किए जाएंगे और शेष राशि को राष्ट्रीयकृत बैंक के ब्याज वाले सावधि जमा खाते में निवेश किया जाएगा और इस न्यायालय द्वारा पारित अंतिम आदेश का पालन किया जाएगा।

कार्यवाही के दौरान एक बाद का चरण

8. बाद में, वर्ष 2019 में, अंतरिम आदेश के संशोधन के लिए तर्क दिए गए थे, जिसमें 3,00,000/- रुपये की शेष राशि जारी करने की प्रार्थना की गई थी, क्योंकि 22.05.2017 के अंतरिम आदेश के तहत निर्देशित 2,00,000/- रुपये की राशि प्रतिवादी-कामगार को स्वीकार की गई थी, लेकिन शेष राशि जमा की गई थी। हालांकि, इस न्यायालय ने यह ध्यान में रखते हुए कि मामला गुण-दोष के आधार पर सुनवाई के लिए परिपक्व है, 24.05.2019 के आदेश द्वारा अंतरिम आदेश को पूर्ण बना दिया।

9. मैंने याचिकाकर्ता के स्थायी अधिवक्ता श्री धनंजय सिंह और एकमात्र प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री अनिल कुमार यादव को सुना है।

याचिकाकर्ता पक्ष की ओर से उठाई गई दलीलें

10. याचिकाकर्ताओं के स्थायी अधिवक्ता ने मुख्य रूप से निम्नलिखित तर्क दिए हैं: -

(i) सरकार का कृषि विभाग 'उद्योग' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है और इसलिए, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के तहत आक्षेपित पंचाट अस्थिर है;

(ii) प्रतिवादी कामगार को सरकार की चावल योजना के तहत अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था जिसे वर्ष 1987 में समाप्त कर दिया गया था और उसके बाद, प्रतिवादी को सेवा में रखने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी और परिणामस्वरूप, उसकी सेवाओं की समाप्ति अवैध नहीं है; और

(iii) औद्योगिक विवाद, अन्यथा भी, 10-11 वर्षों के बहुत विलम्बित चरण में उठाया गया था और इसलिए पिछली सेवा की निरंतरता के साथ-साथ 25% बैक-वेज के साथ बहाली का निर्देश कानून के अनुसार नहीं है।

(i) पहले तर्क का विश्लेषण

11. जहां तक पहले विवाद का संबंध है, प्रस्तुत करना यह है कि कृषि विभाग एक सरकारी विभाग है, इस मामले पर श्रम न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

12. इस तर्क को पूरा करते हुए, प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि कौन सा प्रतिष्ठान 'उद्योग' की परिभाषा और अर्थ के भीतर आएगा, इस मुद्दे को उच्चतम न्यायलय द्वारा बार-बार समझाया गया है और कानून के स्थापित प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, यहां तक कि उत्तर प्रदेश सरकार का कृषि विभाग भी 'उद्योग' की परिभाषा के भीतर आएगा और, इसलिए, इस

दायरे पर आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय में कोई अवैधता नहीं है।

13. अपने सबमिशन के समर्थन में, प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता ने 2021 (169) एफएल.आर. 520 में रिपोर्ट किए गए सचिव सिंचाई बनाम मोहम्मद रईस के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में पैरा-5, 7, 8, 9, 10 और 11 के विशेष संदर्भ के साथ इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

"5. प्रतिपक्षी संख्या-1 की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण का खंडन करते हुए ए.आई.आर. 1988 उच्चतम न्यायलय 1182 में रिपोर्ट किए गए देस राज बनाम पंजाब राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है कि सिंचाई विभाग जैसे सरकारी विभाग को पहले ही 'उद्योग' शब्द के दायरे में आने के लिए अवधारित किया गया है, लेकिन बाद में के. सोमा सेट्टी (उपरोक्त) के मामले में दिया गया निर्णय उपरोक्त दो निर्णयों पर ध्यान दिए बिना पारित किया गया है, जो इसलिए प्रबल होना चाहिए। अधिवक्ता ने ए.आई.आर. 1986 उच्चतम न्यायालय 458 में रिपोर्ट किए गए अमेरिकन एक्स्प्रेस इंटरनेशनल बैंकिंग कारपोरेशन के कामगार बनाम अमेरिकन एक्सप्रेस इंटरनेशनल बैंकिंग कारपोरेशन के प्रबंधन के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है कि 240 दिनों की सेवा की गणना के प्रयोजनों के लिए, सप्ताहांतों और अन्य राजपत्रित अवकाशों को ध्यान में रखा जाना अपेक्षित है। अधिवक्ता ने गंगा सरन बनाम सिविल जज, हापुड़ में ए.आई.आर. 1991 इलाहाबाद 114 में दिए गए इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर भी भरोसा किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच संघर्ष के मामले में, जिसमें समान प्राधिकारी शामिल हैं, संबंधित उच्च न्यायालय को निर्णय का पालन करना चाहिए जो समय सीमा के बावजूद विस्तृत और सटीक रूप से कानून निर्धारित करता प्रतीत होता है। अधिवक्ता ने कार्यकारी अभियंता, यवंतमाल मध्यम परियोजना प्रभाग और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य बनाम भारत संघ में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एकल न्यायाधीश के फैसले पर भी भरोसा किया। माननीय उच्चतम न्यायालय के विरोधाभासी निर्णयों पर विचार करने के बाद सिंचाई विभाग के एक 'उद्योग' होने के संबंध में देस राज (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का पालन किया है।

.....

7. जैसा कि ऊपर बताया गया है, देस राज (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विशेष सरकार का सिंचाई विभाग 1947 के अधिनियम के संदर्भ में एक उद्योग होगा। उक्त निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न अन्य निर्णयों को ध्यान में रखा गया है, विशेष रूप से बंगलौर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा में दिए गए संविधान पीठ के निर्णय को ध्यान में रखा गया है, जो (1978)2 एस.सी.सी. 213 में रिपोर्ट किया गया है। इसके विपरीत, के. सोमा सेट्टी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए बाद के निर्णय ने देस राज (उपरोक्त) और

बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णयों का विज्ञापन नहीं किया है।

8. के. सोमा सेट्टी (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय की तुलना में देश राज (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि देश राज (उपरोक्त) के मामले में सिंचाई विभाग को उद्योग की परिभाषा के भीतर माना गया है जबकि के. सोमा सेट्टी का निर्णय अन्यथा है। इस प्रकार, दो निर्णयों में स्पष्ट विरोधाभास है जो समन्वय पीठ के हैं।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समन्वय शक्ति की पीठों द्वारा दिए गए परस्पर विरोधी निर्णयों में पालन किए जाने वाले कानून के प्रस्ताव पर गंगा सरन (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ में चर्चा की गई है। संबंधित पहलू पर विचार करने के बाद पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

7. निर्णय की एक पंक्ति यह है कि यदि उच्चतम न्यायलय के दो फैसलों में कोई टकराव है, तो जो निर्णय बाद में समय पर होगा, वह उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। निर्णयों की दूसरी पंक्ति यह है कि यदि समान प्राधिकरणों से युक्त सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच कोई संघर्ष होता है, तो समय की घटना एक प्रासंगिक कारक नहीं है और उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है।

8. इसी तरह की स्थिति मेसर्स इंडो स्विस टाइम लिमिटेड, डूंडाहेड़ा बनाम उमराव, ए.आई.आर. 1981 पंजाब एवं हरियाणा 213 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष उत्पन्न हुई। उक्त मामले में पूर्ण पीठ ने जो कहा वह नीचे दिया गया है (आकाशवाणी के पीपी 219-220 पर):

अब यह तर्क कि एक समन्वय पीठ के नवीनतम निर्णय का यांत्रिक रूप से पालन किया जाना है और किसी अन्य विचार के बावजूद इसे श्रेष्ठता मिलनी चाहिए, मेरे अपील नहीं करता है। जब उच्चतर न्यायालय के निर्णय सह-समान पीठों के होते हैं और इसलिए, बराबर अधिकार के होते हैं, तो उनके वजन को अनिवार्य रूप से तर्क और बुद्धि द्वारा माना जाना चाहिए, न कि उस समय और तारीख की केवल आकस्मिक परिस्थितियों से, जिस पर उन्हें प्रदान किया गया था। यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालय और समान अधिकार के दो सीधे परस्पर विरोधी निर्णय मौजूद होते हैं तो वे दोनों निचली अदालतों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते हैं। अनिवार्य रूप से एक विकल्प, हालांकि एक मुश्किल है, ऐसी स्थिति में बनाया जाना है। सिद्धांत रूप में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करता प्रतीत होता है। समय की घटना मात्र कि क्या उच्चतर न्यायालय की सह-समान पीठों के निर्णय पहले बाद में हैं, एक विचार है जो मुझे शायद ही प्रासंगिक लगता है।

इस निर्णय का अनुसरण विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम नगर निगम, ए.आई.आर. 1988 बॉम्बे 9 के मामले में बॉम्बे हाईकोर्ट ने किया था। पूर्ण पीठ में अधिकांश न्यायाधीशों ने माना कि यदि समान पीठों के दो निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास था, जो संभवतः सामंजस्य नहीं कर सकता है, तो अदालतों को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो उन्हें कानून को सटीक और विस्तृत रूप से बताता है। हम मैसर्स इंडो स्विस टाइम लिमिटेड बनाम भारत संघ और हरियाणा के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। उमराव, (ए.आई.आर. 1981 पुंज एंड हर 213) (उपरोक्त) खासकर जब उच्चतम न्यायलय ने कमरूद्दीन के मामले (1990 इला० डब्ल्यूसी 308) (उपरोक्त) का फैसला करते हुए यूपी संशोधन को एस.115, सी.पी.सी. में यूपी संशोधन और उच्चतम न्यायलय के पहले के फैसले पर ध्यान नहीं दिया।

10. पूर्वोक्त पहलू पर बॉम्बे उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा भी विचार किया गया है जिसमें देस राज (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का पालन किया गया है:

"13. उद्योग की सभी अवधारणाओं पर विचार करने और विभिन्न परीक्षणों की समीक्षा करने के बाद, जिन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि परीक्षण बैंगलोर जल आपूर्ति मामले (उपरोक्त) में निर्धारित किए गए थे। संप्रभु और शाही कार्य की अवधारणा को मुख्य वन संरक्षक (उपरोक्त) में समझाया गया था। शीर्ष न्यायालय ने पैरा-13 में विशेष रूप से इस तर्क को खारिज कर दिया कि कल्याणकारी गतिविधियां संप्रभु कार्यों में हिस्सा लेती हैं, इस आधार पर कि यदि ऐसा दृष्टिकोण लिया गया तो यह बैंगलोर जल आपूर्ति के मामले में उसके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को नष्ट कर देगा। यह देखते हुए कि कल्याणकारी गतिविधियाँ संप्रभु कार्यों में भाग लेती हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने सब-डिवीजनल इंस्पेक्टर ऑफ पोस्ट, वैकम और अन्य (उपरोक्त) में इस पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न उदाहरणों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून यह है कि कल्याणकारी गतिविधियां आवश्यक रूप से संप्रभु कार्यों में शामिल नहीं होती हैं। अधिशासी अभियंता, कर्णाटक राज्य में भारत संघ बनाम जय नारायण सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय पर भरोसा किया गया था। भारत संघ बनाम जय नारायण सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने केवल यह नोट किया है कि केन्द्रीय भूजल बोर्ड कोई उद्योग नहीं है। उस निर्णय से यह समझना संभव नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसा करने के क्या कारण थे। जिस अन्य निर्णय पर भरोसा किया गया वह हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम सुरेश कुमार वर्मा और अन्य (उपरोक्त) है। इस तथ्य और निर्धारित कानून के अवलोकन पर ऐसा नहीं लगता कि यह मुद्दा कि कोई विशेष विभाग उद्योग था या नहीं। मुद्दा यह था कि क्या अस्थायी प्रकृति के कर्तव्य निभाने वाले कर्मचारियों को पदों पर नियुक्त किया गया था और उनकी नियुक्तियां किसी पद पर नियुक्ति

में दैनिक वेतन के आधार पर की गई थीं। शीर्ष अदालत ने कहा कि ऐसी नियुक्तियां पदों पर नियुक्ति नहीं थीं और इसलिए उन्हें किसी भी काम में फिर से शामिल करने या मौजूदा रिक्तियों के लिए उन्हें नियुक्त करने का कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता था। इस प्रकार अधिशासी अभियंता, कर्नाटक राज्य (उपरोक्त) में निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जिन दो निर्णयों पर भरोसा किया गया था, उनमें कहीं भी यह परीक्षण नहीं किया गया है कि सिंचाई विभाग को उद्योग की परिभाषा से बाहर क्यों रखा जाए। जैसा कि पहले बताया गया है, यहां तक कि सब-डिविजनल इंस्पेक्टर ऑफ पोस्ट, वैकम और अन्य के मामले पर भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला में विचार किया गया था और निर्णय के पैरा-10 में इसकी व्याख्या की गई थी। उसके बाद, यह बैंगलोर जल आपूर्ति में निर्धारित परीक्षणों को लागू करने के लिए आगे बढ़ा। देस राज बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के पहले के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित परीक्षणों पर विचार किया था, जिसकी परिणति बैंगलोर जल आपूर्ति (उपरोक्त) के फैसले में हुई और उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सिंचाई विभाग आईडी अधिनियम की धारा 2(जे) के अर्थ के भीतर उद्योग की परिभाषा के भीतर आता है। इसलिए, मेरी सुविचारित राय है कि देशराज के मामले में निर्धारित दृष्टिकोण कानून की दृष्टि से बेहतर है और इसलिए देस राज के मामले में यह दृष्टिकोण है जिसका पालन करना होगा। एक बार ऐसा हो जाने के बाद, और जैसा कि मैंने पहले ही निर्धारित किया है, पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग के काम और याचिकाकर्ताओं की ओर से दायर लिखित प्रस्तुतियों सहित इस न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री से पता चलता है कि महाराष्ट्र राज्य के सिंचाई विभाग द्वारा शुरू की गई परियोजनाएं पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग के समान या समान कार्यों का निर्वहन कर रही हैं। इसलिए, यह इस प्रकार है कि सिंचाई विभाग की परियोजनाएं या महाराष्ट्र राज्य से जुड़े कार्य, उसी परीक्षण पर जो देस राज के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लागू किए गए थे, आईडी अधिनियम की धारा 2(जे) के उद्देश्य के लिए एक उद्योग की परिभाषा के भीतर आएंगे।

11. प्रस्तुत मामले में उक्त कारकों के लागू होने पर, यह स्पष्ट है कि देस राज (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है कि क्या सरकार का सिंचाई विभाग उद्योग की परिभाषा के भीतर आएगा या नहीं। बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड (उपरोक्त) में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ के फैसले पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच गया है कि सरकार का सिंचाई विभाग उद्योग की परिभाषा के भीतर आएगा।

14. उन्होंने पैरा-10 और 11 के संदर्भ में उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम उत्तम सिंह बनाम उत्तम सिंह के मामले में उच्चतम न्यायलय के 03.08.2021 के फैसले पर भरोसा किया है, जो यहां नीचे उद्धृत हैं: -

"10. हमने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि अपने 13 लंबे वर्षों के रोजगार के दौरान और इससे पहले अपीलकर्ताओं को अपना बकाया पाने के लिए 6 साल की अवधि के लिए लड़ने के बाद, प्रतिवादी के पिता को भी एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया था, सामान्य रूप से एक पहलू जो उस व्यक्ति से जुड़ा होगा जिसके पास नियमित रोजगार था। सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यदि प्रतिवादी के पिता को नियमित नियुक्त व्यक्ति नहीं माना गया होता, तो विभाग के लिए चुनाव ड्यूटी करने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग को अपनी सेवाएं देने का कोई अवसर नहीं होता, जो केवल एक सरकारी कर्मचारी द्वारा ही किया जा सकता था, जैसा कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 की धारा 159 के तहत निर्दिष्ट है ("कुछ अधिकारियों के कर्मचारियों को चुनाव कार्य के लिए उपलब्ध कराया जाना है")

11. इस प्रकार प्रस्तुत मामला वह है जो अपने दिए गए तथ्यात्मक परिदृश्य में विशिष्ट है जिसकी हमने ऊपर चर्चा की है और इस प्रकार सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, यह एक नियमित रिक्ति के खिलाफ नियुक्ति का मामला है। प्रतिवादी के पिता को अपीलकर्ताओं के उपरोक्त आचरण द्वारा एक नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता था, भले ही उन्हें पार्ट टाइम ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में लेबल किया गया था।

15. उन्होंने आगे अध्यक्ष, टाउन एरिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, 2013 (11) एडीजे 197 में रिपोर्ट किया गया, पैरा-14 के विशेष संदर्भ में, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत परिभाषित अभिव्यक्ति 'उद्योग' के सही अर्थ और आयात के संबंध में, बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा और अन्य, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 548 में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की शुद्धता पर कॉयर बोर्ड में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संदेह किया गया है। एर्नाकुलम, कोचीन और अन्य बनाम इंदिरा देवी थाना-और अन्य, (1998) 3 एस.सी.सी. 259 और आगे उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जय बीर सिंह (2005) 5 एस.सी.सी. पृष्ठ 1 और बैंगलोर जल आपूर्ति मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को बड़ी बेंच को भेजा गया है। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय पर उंगली नहीं उठा सके इसलिए, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि शीर्ष न्यायालय द्वारा पहले लिया गया दृष्टिकोण अभी भी अच्छा कानून है और इसे अब तक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही विचलित नहीं किया जा सकता है। तदनुसार, इस संबंध में इस अदालत द्वारा कोई अलग राय नहीं दी जा सकती है।

16. पूर्वोक्त विधि निर्णयों में निर्धारित अनुपात की व्याख्या करते हुए, प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता ने दिनांक 20.08.1987 के एक आदेश का उल्लेख किया है, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-4 का हिस्सा है, जिसके तहत प्रतिवादी-कामगार को बस्ती से गोरखपुर

स्थानांतरित कर दिया गया था, जिसमें स्थानांतरण आदेश में लिखा गया था कि सेवाएं उन्हीं नियमों द्वारा शासित होंगी जो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए लागू थे। इसके अलावा हस्तांतरित स्थान पर कार्यभार ग्रहण करने के दस्तावेजों पर और दिनांक 20.05.1987 के नियुक्ति आदेश पर भी भरोसा किया गया है, जिसके तहत प्रतिवादी को 315-6-35/Da Ro-6-363-7-384-8-400 Da. Re10-9-440 के वेतनमान में अस्थायी क्षमता में नियुक्त करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि प्रतिवादी-कामगार को स्वीकार्य भत्ते भी देय होंगे। उन्होंने परियोजना अधिकारी (कृषि), बस्ती द्वारा संयुक्त निदेशक कृषि (विस्तार), गोरखपुर मंडल, गोरखपुर को भेजे गए दिनांक 14.07.1988 के पत्र पर भी भरोसा किया है, जिसमें प्रतिवादी-कामगार के अवशोषण के तथ्य को स्वयं याचिकाकर्ताओं के समक्ष स्वीकार किया गया था। उन्होंने जवाबी हलफनामे का हिस्सा बने दिनांक 10.09.1987 के राहत पत्र का भी उल्लेख किया है, जिसके तहत प्रतिवादी-कामगार को बस्ती से गोरखपुर तक मुक्त कर दिया गया था और यह स्थापित करने के लिए कई अन्य दस्तावेज भी हैं कि प्रतिवादी कामगार को हमेशा याचिकाकर्ता विभाग में एक नियमित कर्मचारी/कामगार के रूप में माना जाता था।

17. इसलिए, प्रतिवादी कामगार के अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण यह है कि एक बार उच्चतम न्यायलय के साथ-साथ इस न्यायालय ने पहले ही पूर्वोक्त प्राधिकरणों में यह निर्णय दे दिया है कि सिंचाई विभाग और उक्त विभागों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के आधार पर समान प्रकृति के विभाग भी 'उद्योग' की परिभाषा के अंतर्गत आएंगे और, इसके अलावा, एक बार जब प्रतिवादी को याचिकाकर्ता के प्रतिष्ठान में एक कर्मचारी के रूप में माना जाता था, तो श्रम न्यायालय द्वारा विवाद के अधिनिर्णय में कोई त्रुटि नहीं बताई जा सकती है और उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधान पूरी तरह से लागू थे।

18. मुझे प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों में सार मिलता है जैसा कि देस राज बनाम भारत संघ के मामले में है। पंजाब राज्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के पहले के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित परीक्षणों पर विचार किया था, जिसकी परिणति बैंगलोर जल आपूर्ति (उपरोक्त) के फैसले में हुई और उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सिंचाई विभाग आईडी अधिनियम की धारा 2 (जे) के अर्थ के भीतर उद्योग की परिभाषा के भीतर आता है। यह माना गया कि देस राज के मामले में लिया गया दृष्टिकोण कानून की दृष्टि से बेहतर था और इसलिए देस राज के मामले में यह दृष्टिकोण है जिसका पालन करने का निर्देश दिया गया था। एक बार यह माना गया था कि पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग का कार्य और संबंधित याचिकाकर्ताओं की ओर से दायर लिखित प्रस्तुतियों सहित उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री कि महाराष्ट्र राज्य का सिंचाई विभाग पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग के समान कार्यों का निर्वहन कर रहा था, यह माना गया कि सिंचाई विभाग की परियोजनाएं या महाराष्ट्र राज्य से

जुड़े कार्य, उन्हीं परीक्षणों पर जो देस राज के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लागू किए गए थे, आईडी अधिनियम की धारा 2 (जे) के उद्देश्य के लिए एक उद्योग की परिभाषा के भीतर आएंगे।

19. उपरोक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं का पहला तर्क कि उत्तर प्रदेश का कृषि विभाग 'उद्योग' की परिभाषा के भीतर नहीं आता है, में कोई योग्यता नहीं है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

(ii) दूसरे विवाद का विश्लेषण

20. जहां तक इस आशय का दूसरा विवाद है कि प्रतिवादी चावल योजना के तहत अस्थायी रूप से लगा हुआ था, जिसे वर्ष 1987 में 17.10.1987 के सरकारी आदेश के तहत समाप्त कर दिया गया था और इसलिए, श्रम न्यायालय का निर्देश प्रतिवादी कामगार को 25% बैक-वेज के साथ सेवा में निरंतरता के साथ बहाल करने के लिए अस्थिर है, इस न्यायालय ने प्रतिवादी की सेवाओं से संबंधित विभिन्न दस्तावेजों की उपरोक्त चर्चा से पाया कि यह नहीं माना जा सकता है कि केवल इसलिए कि चावल योजना को समाप्त कर दिया गया था, प्रतिवादी 'एक कामगार' के रूप में अपनी स्थिति खो देगा। इसका कारण यह है कि कृषि विभाग विभाग के किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी भी श्रम को तैनात कर सकता है और यहां तक कि अगर यह स्वीकार किया जाता है कि प्रतिवादी सरकार की चावल योजना के तहत काम कर रहा था, केवल इसलिए कि योजना समाप्त हो गई थी, इसका मतलब यह नहीं होगा कि प्रतिवादी की सेवाओं की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, वह एक कामगार नहीं रहेगा, खासकर जब उसे वेतनमान के तहत नियुक्त किया गया था और उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया था और याचिकाकर्ता-विभाग के आदेशों के तहत विभिन्न भत्ते प्राप्त करने का हकदार भी माना जाता था।

21. उपर्युक्त के मद्देनजर, दिनांक 01.08.1988 की समाप्ति की सूचना, जिसके द्वारा प्रतिवादी कामगार को सूचित किया गया था कि उसकी सेवा की अब कोई आवश्यकता नहीं है, अस्थिर पाया जाता है। इसलिए, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया दूसरा बिंदु कि प्रतिवादी को छंटनी किए गए कामगार के रूप में नहीं माना जाएगा, इसमें कोई योग्यता नहीं है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

(iii) तीसरे विवाद का विश्लेषण

22. जहां तक याचिकाकर्ताओं के इस आशय के तीसरे विवाद का संबंध है कि औद्योगिक विवाद वर्ष 1999 में 10-11 वर्षों के विलम्बित चरण के बाद उठाया गया था, जबकि प्रतिवादी कामगार की सेवाओं को वर्ष 1988 में समाप्त कर दिया गया था और इसलिए 25% बैकवेज के साथ पिछली सेवा में निरंतरता के साथ बहाली की राहत कानून के अनुसार नहीं है, यह न्यायालय इस न्यायालय और इस मुद्दे को नियंत्रित करने वाले सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में मामले के इस पहलू की जांच करने के लिए आगे बढ़ता है।

23. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने 1987 से 1988 तक काम

किया और किसी भी कारण से उसकी सेवाओं को अगस्त-सितंबर, 1988 में समाप्त कर दिया गया और विवाद 11 साल बाद उठाया गया।

24. याचिकाकर्ताओं के स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि श्रम न्यायालय ने आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि प्रतिवादी कामगार 11 साल की उपरोक्त अवधि के दौरान लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था और इसलिए, अन्य राहत के साथ बहाली के लिए निर्देश कानून के विपरीत है।

25. प्रतिवादी कामगार के अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि एक बार समाप्ति अवैध थी, श्रम न्यायालय का पंचाट/अधिनिर्णय पूरी तरह से विधिसम्मत है।

26. इस संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले, इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के कुछ विधि निर्णयों को संदर्भित करना आवश्यक है कि ऐसी परिस्थितियों में श्रम न्यायालय द्वारा अन्य परिणामी राहतों के साथ बहाली का आदेश कब दिया जा सकता है।

27. कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम रवि कुमार में 2009 13 एस.सी.सी. 746 में रिपोर्ट किया गया, विवाद के संदर्भ की मांग में लंबे समय तक देरी ने संदर्भ को पुराना/बासी बना दिया और उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इसे श्रम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाना चाहिए था। उस मामले में चौदह साल बाद संदर्भ मांगा गया था।

28. हरियाणा राज्य सहयोग भूमि विकास बैंक बनाम नीलम में 2005 (5) एस.सी.सी. 91 में रिपोर्ट किया गया, उच्चतम न्यायालय ने बहाली की राहत से इनकार करने के लिए प्रासंगिक कारक होने के लिए श्रम न्यायालय से संपर्क करने में सात साल की देरी को जिम्मेदार ठहराया।

29. 2014 (7) एस.सी.सी. 177 में रिपोर्ट किए गए भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भुरूमल में, यह माना गया है कि पूर्ण बैक-वेज के साथ बहाली की राहत, जब समाप्ति अवैध पाई जाती है, सभी मामलों में यांत्रिक रूप से नहीं दी जानी चाहिए। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 25 एफ के उल्लंघन में किए गए दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी की बर्खास्तगी के मामले में यह कहा गया था कि बैक-वेज के साथ बहाली स्वचालित नहीं थी और इसके बजाय कामगार को मौद्रिक मुआवजा दिया जाना चाहिए।

30. सहायक अभियंता, राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, उपमंडल, कोटा बनाम मदन लाल के मामले में उच्चतम न्यायलय (2013) 14 एस.सी.सी. 543 में रिपोर्ट किया गया, इस विषय पर कानून पर विचार करने के बाद, माना कि हालांकि सीमा अधिनियम ऐसे मामलों पर लागू नहीं होता है, फिर भी विवाद को उठाने में देरी एक महत्वपूर्ण परिस्थिति है और श्रम न्यायालय को विवेक का प्रयोग करने से पहले विचार करना चाहिए, भले ही दूसरी तरफ से आपत्ति उठाई गई हो या नहीं उठाई गई हो।

31. इसके अलावा सहायक अभियंता, राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, उप-प्रभाग, कोटा बनाम मोहन लाल के मामले में (2013) 14 एस.सी.सी. 543 इसी तरह की परिस्थितियों में, एक सरकारी प्रतिष्ठान में एक मस्टर रोल कर्मचारी जो पाया गया था कि उसने अपनी नियुक्ति से पहले एक बारह कैलेंडर महीने की अवधि में 286 दिनों के लिए काम किया था, और जिसके मामले में औद्योगिक विवाद छह साल बाद उठाया गया था, तो उसे पुन नियुक्ति का हकदार न पते हुए, केवल एक लाख रुपये का हरजाना दिया गया था।

32. नगर महापालिका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (5) एस.सी.सी. 127 2006 में रिपोर्ट किया गया, उच्चतम न्यायलय द्वारा यह माना गया था कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन के प्रावधानों का अनुपालन न करना (यह प्रावधान मोटे तौर पर धारा 25-एफ के साथ समरूप है), हालांकि, कामगार के पक्ष में पूर्ण बैक वेतन और सेवा की निरंतरता के साथ बहाली की राहत प्रदान करता है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि इस तरह की राहत स्वचालित रूप से या निश्चित रूप से दी जानी चाहिए। इस बात पर जोर दिया गया कि श्रम न्यायालय को राहत प्रदान करने में अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

33. नगर परिषद, सुजानपुर बनाम सुरिंदर कुमार में उच्चतम न्यायलय ने 2006 (5) एस.सी.सी. 173 में रिपोर्ट किए गए में, उपरोक्त कानूनी स्थिति को दोहराया। यह एक ऐसा मामला था जिसमें श्रम न्यायालय ने कर्मकार को पूर्ण बकाया मजदूरी के साथ सेवा में बहाली प्रदान की थी क्योंकि सांविधिक उपबंधों का पालन नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा पंचाट/अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया गया था। हालांकि, अदालत ने बहाली के बदले मौद्रिक मुआवजा दिया।

34. हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम लिमिटेड बनाम ममनी ने नगर महापालिका (उपरोक्त) के बाद 2006 (9) एस.सी.सी. 434 में रिपोर्ट की, उच्चतम न्यायलय ने माना कि धारा 25 एफ का उल्लंघन होने के कारण कामगार को दी गई बहाली उचित नहीं थी और यह निर्देश देकर बहाली के आदेश को संशोधित किया कि कामगार को बहाली के आदेश के बजाय 25,000 रुपये की राशि का भुगतान करके मुआवजा दिया जाएगा।

35. उत्तरांचल वन विकास निगम बनाम एम.सी जोशी 2007 (9) एस.सी.सी. 353 में रिपोर्ट किया गया था, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 6-एन के प्रावधानों के उल्लंघन में 24.11.1991 को सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। उन्होंने समाप्ति के आदेश से पहले बारह महीने की अवधि में 240 दिनों का निरंतर कार्य पूरा किया था। कामगार ने दिनांक 02-09-1996 को अथवा उसके आसपास, अर्थात् लगभग पांच वर्षों की अवधि के बाद सुलह अधिकारी से संपर्क किया। श्रम न्यायालय ने कामगार एम.सी जोशी को 50% वापस मजदूरी के साथ बहाली की राहत दी। निगम द्वारा दायर रिट याचिका में, बहाली की

दिशा को बनाए रखा गया था लेकिन बैक वेज को 50% से घटाकर 25% कर दिया गया था। उच्चतम न्यायलय ने 75,000 रुपये की राशि के मुआवजे द्वारा बहाली के पंचाट/अधिनिर्णय को प्रतिस्थापित किया।

36. गाजियाबाद विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम अशोक कुमार और अन्य 2008 (4) एस.सी.सी. 261] में, सर्वोच्च न्यायालय इस सवाल से चिंतित था कि क्या श्रम न्यायालय ने उस कामगार के पक्ष में बहाली की राहत देने में उचित था जिसने दो साल तक दैनिक मजदूर के रूप में काम किया था। उनकी बर्खास्तगी को उ0प्र0 औद्योगिक विवाद अधिनियम का उल्लंघन माना गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि श्रम न्यायालय को सेवा में कामगार की बहाली का निर्देश नहीं देना चाहिए था और बहाली के आदेश के स्थान पर 50,000/- रुपये का मुआवजा देना चाहिए था।

37. दूरसंचार जिला प्रबंधक बनाम केशब देब में, 2008 (8) एस.सी.सी. 402 में रिपोर्ट किए गए में, दैनिक मजदूर की बर्खास्तगी को धारा 25-एफ के प्रावधानों के उल्लंघन सहित विभिन्न आधारों पर अवैध ठहराया गया था। न्यायालय ने बहाली के आदेश के स्थान पर 1,50,000/- रुपये का मुआवजा दिया।

38. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड 2009 (15) एस.सी.सी. 327 में रिपोर्ट किया गया था, कामगार ने 01.09.1995 से 18.07.1996 तक दैनिक मजदूर के रूप में काम किया था और उसे फिर से मजदूरी के साथ बहाली के बदले 50,000 रुपये का मुआवजा दिया गया था।

39. 2009 में रिपोर्ट किए गए उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता (16) एस.सी.सी. 562, भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम मान सिंह (1) एस.सी.सी. 558 और वरिष्ठ अधीक्षक टेलीग्राफ (यातायात), भोपाल बनाम संतोष कुमार सील और अन्य, 2010 में रिपोर्ट किए गए में उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता के बाद के तीन निर्णयों का उल्लेख करना भी आवश्यक है (6) एस.सी.सी. 773, जहां ऊपर चर्चा किए गए मामलों के अनुरूप दृष्टिकोण लिया गया है। संतोष कुमार सील (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध रूप से छंटनी किए गए प्रत्येक कामगार को 40,000 रुपये का मुआवजा दिया क्योंकि वे लगभग 25 साल पहले दैनिक मजदूरों के रूप में लगे हुए थे और मुश्किल से दो या तीन साल काम करते थे। यह माना गया कि बहाली की राहत को उचित नहीं कहा जा सकता है और इसके बजाय मौद्रिक मुआवजा दिया गया।

40. सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम और अन्य बनाम गीतम सिंह के मामले में 2013 (5) एस.सी.सी. 136] में रिपोर्ट किया गया, उच्चतम न्यायलय ने ऊपर उद्धृत अधिकांश मामलों पर विचार करने पर श्रम न्यायालय द्वारा न्यायिक विवेक के प्रयोग के बारे में सिद्धांत को दोहराया, जहां कामगार की समाप्ति को अवैध माना जाता है, धारा 25-एफ के उल्लंघन में यह मानते हुए कि श्रम न्यायालय को रखना है नियुक्ति की विधि और तरीका, रोजगार की प्रकृति, सेवा अवधि, जिस आधार पर बर्खास्तगी को रद्द किया गया है और औद्योगिक में राहत प्रदान करने से पहले

औद्योगिक विवाद को उठाने में विलंब सहित सभी संगत कारकों को ध्यान में रखते हुए।

41. उपरोक्त विधि निर्णयों पर इस न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय के मामले में अपने फैसले में विचार किया गया है और 2017 (7) एडीजे 393 में रिपोर्ट किया गया है।

42. इसके अलावा, कई प्राधिकरणों में उच्चतम न्यायलय जिनमें से कुछ नीचे उल्लिखित हैं, ने माना है कि यदि समाप्ति आदेश में एकमात्र दोष औद्योगिक विवाद अधिनियम (या यूपी आईडी अधिनियम की धारा 6 एन) की धारा 25 एफ द्वारा आवश्यक छंटनी मुआवजे का भुगतान नहीं करना है, तो पूर्ण बैक मजदूरी के साथ बहाली का निर्देश देना हमेशा आवश्यक नहीं होता है और ऐसी स्थिति में अक्सर उचित राहत समेकित क्षतिपूर्ति/हर्जाना नहीं हो सकती है, विशेष रूप से जब नियोक्ता सरकारी या सरकारी एजेंसी हो और नियुक्ति से पहले प्रासंगिक नियमों का पालन नहीं किया गया हो।

• नगर महापालिका वि. उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2113

• हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम मामनी, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2427

• सीता राम बनाम मोती लाल नेहरू किसान प्रशिक्षण संस्थान, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 1955

• जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड और अन्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 3004

43. ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 2140 में रिपोर्ट किए गए वरिष्ठ अधीक्षक, टेलीग्राफ (यातायात) भोपाल बनाम संतोष कुमार सील और अन्य में, यह माना गया है कि यदि दैनिक मजदूरों ने 2 या 3 साल तक काम किया था और उनकी सेवाओं को छंटनी मुआवजे के भुगतान के बिना समाप्त कर दिया गया था, तो उन्हें समेकित हर्जाना दिया जाना चाहिए (उक्त मामले में प्रत्येक कामगार को 40,000 / यह भी माना गया है कि दैनिक वेतन भोगी किसी पद पर नहीं है और उसे स्थायी कर्मचारी के बराबर नहीं माना जा सकता है। इस विचार को जेटी 2010 (9) एस.सी. 262 में रिपोर्ट किए गए प्रभारी अधिकारी बनाम शंकर शेट्टी में दोहराया गया है।

44. उपरोक्त विधि निर्णयों पर इस न्यायालय द्वारा 2011 (4) एडीजे, 199: डिवीजनल इंजीनियर, टेलीकॉम, झांसी बनाम पीठासीन अधिकारी और अन्य में रिपोर्ट किए गए अपने फैसले में विचार किया गया है।

निष्कर्ष

45. पूर्वोक्त विधि निर्णयों में निर्धारित कानून के साथ-साथ निर्विवाद तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि संदर्भ समाप्ति के बाद 10-11 वर्षों के बहुत ही विलंबित चरण में किया गया था और श्रम न्यायालय द्वारा आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था कि बीच की अवधि के दौरान या उसके बाद लाभप्रद रूप से क्या प्रतिवादी नियोजित किया गया था या नहीं। मुझे लगता है कि पिछली सेवा में निरंतरता के

साथ 25% बैक-वेज के साथ बहाली उचित नहीं थी।

46. हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मुआवजे की एक समेकित और एकमुश्त राशि प्रतिवादी जिसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था, न केवल दस्तावेजों के प्रकाश में बल्कि उसकी सेवा पुस्तिका पर विचार करने के उद्देश्य से सेवा कर सकता था जो इसके साथ जुड़े अन्य सभी पहलुओं के साथ उनकी नियुक्ति की प्रकृति का वर्णन करता है।

47. उपरोक्त के मद्देनजर और प्रस्तुत याचिका में पारित दिनांक 25.05.2017 के अंतरिम आदेश की प्रकृति पर विचार करते हुए, जिसके अनुसरण में याचिकाकर्ताओं द्वारा 5,00,000/- रुपये की राशि जमा की गई थी, जिसमें से 2,00,000/ - रुपये की राशि प्रतिवादी के पक्ष में जारी की गई है, रिट याचिका को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

48. 1999 के अधिनिर्णय वाद संख्या-75 में पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 30.11.2015 को प्रकाशित दिनांक 30.11.2015 को आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय को आंशिक रूप से रद्द किया जाता है और प्रतिवादी कामगार को मुआवजे के भुगतान का निर्देश देते हुए संशोधित किया जाता है, जिसे यह न्यायालय 5,00,000/ चूंकि अंतरिम आदेश के तहत, 2,00,000/- रुपये (केवल दो लाख रुपये) की राशि कामगार के पक्ष में पहले ही जारी की जा चुकी है और शेष 3,00,000/- रुपये की राशि एक राष्ट्रीयकृत बैंक के साथ ब्याज वाले जमा खाते में निवेश की गई थी, यह निर्देश दिया जाता है कि 3,00,000/- रुपये की उपरोक्त राशि, इस आदेश की प्रमाणित प्रति उचित आवेदन के साथ श्रम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तारीख से दो माह की अवधि के भीतर प्रतिवादी-कामगार के पक्ष में दिनांक तक उपार्जित ब्याज सहित जारी की जाएगी। श्रम न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि संबंधित बैंक बिना किसी बाधा के प्रतिवादी-कामगार के पक्ष में उक्त राशि को अब तक अर्जित ब्याज के साथ जारी करने की सुविधा प्रदान करेगा।

(2023) 5 ILRA 1478

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र

रिट-सी संख्या 19644/2016

राज कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री निपुण सिंह, श्री सुमित सूरी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

(ए) **सिविल कानून -भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद-226-स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 2(14), 47 एवं 47-ए - उत्तर प्रदेश स्टाम्प संपत्ति मूल्यांकन नियम, 1997- नियम 3(1)(ए), 7(3)(सी)- उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 3(14) एवं 143-** विक्रय विलेख- कृषि

भूमि - अधिनियम, 1899 की धारा 47-ए के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क में कमी के लिए कार्यवाही - आपत्ति - लगाई गई जुर्माना सहित स्टाम्प शुल्क की वसूली के लिए आदेश पारित किया गया -अपील- निरस्त- साबित करने का भार- न्यायालय ने पाया कि, सर्किल रेट के अनुसार स्टाम्प शुल्क, अधिनियम, 1950 की धारा 143 के अंतर्गत कोई घोषणा नहीं की गई है और निश्चित रूप से, नियम 7(3

)(सी) के अनुसार कोई स्थल निरीक्षण भी नहीं किया गया है, जो कि अनिवार्य था - सारा भाग राज्य सरकार का है जिसे उचित संदेह सिद्ध करना है, और इस आशय की कोई बात रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है, बल्कि, न केवल आरोपित आदेशों में दर्ज निष्कर्ष अधिनियम, 1899 और नियम, 1997 के प्रावधानों के विपरीत हैं, बल्कि स्टाम्प शुल्क की प्रभार्यता की जांच निष्पादन की तारीख के संदर्भ में की जानी चाहिए - आयोजित, स्टांप शुल्क की प्रभार्यता की जांच लिखत के निष्पादन की तारीख के संदर्भ में की जानी चाहिए और इसके अलावा, यदि निरीक्षण आज किया जाता है तो यह पूरी तरह से अप्रासंगिक होगा और इसलिए, मामले को अधिकारियों को भेजना एक व्यर्थ अभ्यास होगा - इसलिए, रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है - इसके द्वारा विवादित आदेशों को निरस्त किया जाता है - और याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका दायर करने से पहले जमा की गई राशि को 6% प्रति वर्ष ब्याज के साथ तीन महीने की अवधि के भीतर वापस करने के लिए परमादेश रिट भी जारी की जाती है। (पैरा-17, 19, 24, 25, 26, 27)

(बी) **सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद-226-स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 2(14), 47 एवं 47-ए - उत्तर प्रदेश स्टाम्प संपत्ति मूल्यांकन नियम, 1997- नियम 3(1)(ए), 7(3)(सी), उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950- धारा 3(14) एवं 143** - विक्रय विलेख -कृषि भूमि -स्टाम्प शुल्क में कमी - आपत्ति वसूली उद्धरण -स्टाम्प शुल्क के साथ जुर्माना लगाया गया -अपील -खारिज - स्टाम्प शुल्क की मात्रा - न्यायालय ने पाया कि, यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि जब तक क्रेता की ओर से 'मेन्स रीया' स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है, भले ही जुर्माने का प्रावधान क़ानून का निर्माण हो और रिकॉर्ड पर कोई नकारात्मक निष्कर्ष न हो, जिसके तहत अधिकारियों द्वारा कोई राय तैयार की गई हो कि याचिकाकर्ता - आयोजित, जुर्माना दोषसिद्धि और तथ्य को छिपाने या धोखाधड़ी करने के इरादे को पूर्वकल्पित करता है - अत: नियम 1997 के नियम 3(1)(ए) के अनुसार जुर्माना लगाना कानून के विपरीत है। (पैरा-19, 20)

(सी) **सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद-226-स्टाम्प अधिनियम, 1899-एस 2(14), 47 एवं 47-ए-यूपी स्टाम्प संपत्ति मूल्यांकन नियम, 1997- नियम 3(1)(ए), 7(3)(सी) - यूपी जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950-धारा 3(14) एवं 143**-विक्रय विलेख - कृषि भूमि - स्टाम्प शुल्क में कमी- आपत्ति -वसूली उद्धरण -स्टाम्प शुल्क के साथ जुर्माना लगाया गया -अपील - खारिज - साधन- याचिकाकर्ता का मानना है कि चूंकि विक्रय विलेख शून्य या अवैध घोषित किया गया था, इसलिए कोई कमी वाला

स्टाम्प शुल्क नहीं लगाया जा सकता है - न्यायालय ने कहा कि, परिभाषा के अनुसार, यह स्पष्ट है कि भले ही, किसी साधन द्वारा कोई अधिकार नहीं बनाया गया हो, लेकिन उन्हें बनाया जाना अभिप्रेत है - इसलिए, केवल इसलिए कि विक्रय विलेख को किसी भी बाद की कार्यवाही में अवैध घोषित कर दिया गया है, वर्तमान मामले में स्टाम्प अधिनियम के तहत कोई परिणाम नहीं होगा - इसलिए, इस संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क अस्वीकार किया जाता है। (पैरा - 21, 22)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. वरुण गोपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2015 खंड 2 एडीजे 311),
2. विजय कुमार बनाम कमिश्नर बनाम कमिश्नर मेरठ मंडल 2008(7) एडीजे 293,
3. इंस्टीट्यूट ऑफ द फ्रांसिस्कन क्लैरिस्ट सिस्टर्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य- एआईआर 2020 ऑ। 189,
4. अनिरुद्ध कुमार एवं अश्वनी कुमार बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, यूपी इलाहाबाद एवं अन्य- 2000 (3) एडब्ल्यूसी 2587,
5. श्रीमती सुशीला वर्मा बनाम यूपी राज्य व अन्य (2006 (2) एडब्ल्यूसी 1492),
6. सुदामा बनाम मुख्य नियंत्रण प्राधिकरण - 2013 (4) एडब्ल्यूसी 3571,
7. अजय अग्रवाल एवं अन्य बनाम कमिश्नर लखनऊ एवं अन्य - 2023 (2) एडीजे 561 (एलबी),
8. राम खेलावन @ बच्चा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2005(2) एडब्ल्यूसी 1087),
9. श्रीमती आशा कपूर बनाम अपर कलेक्टर (एफ एंड आर), गाजियाबाद एवं अन्य 2008 (72) एएलआर 125,
10. ओम प्रकाश उमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2014 (1) एडब्ल्यूसी 120,
11. शाहिद अली बनाम कमिश्नर बरेली मंडल बरेली व अन्य (2013)(v) ए.डी.) 425),
12. हर चरण लाल आइस एंड कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूपी एंड अन्य (2013 (2) एडब्ल्यूसी 1731)।

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री निपुण सिंह और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री सुमित सूरी को सुना गया।
2. याचिकाकर्ता ने 27/01/2011 को पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा 1.1152 हेक्टेयर कृषि भूमि खरीदी, जिसमें कहा गया है कि दस्तावेज द्वारा कवर की गई भूमि पूरी तरह से कृषि प्रकृति की है और इसे खेती की गतिविधियों के लिए खरीदा गया है।
3. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है) की धारा 47ए के तहत कार्यवाही याचिकाकर्ता के खिलाफ इस आधार पर स्टाम्प ड्यूटी में कमी की ओर इशारा करते हुए दर्ज की गई थी कि उसी खसरा नंबर 69/1 मिनजुमला के संबंध में, अतीत में, चार अन्य बिक्री

विलेख निष्पादित किए गए थे, जिन पर आवासीय दरों पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था। इसलिए, यह राय बनाई गई कि याचिकाकर्ता के बिक्री विलेख के संबंध में स्टाम्प ड्यूटी कम थी।

4. याचिकाकर्ता कार्यवाही में उपस्थित हुआ और दिनांक 08/08/2011 को आपत्तियां दर्ज कीं, जिसमें कहा गया कि कृषि भूमि के लिए लागू प्रचलित सर्किल दर के अनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया था। यह भी कहा गया कि उपकरण द्वारा कवर की गई भूमि के संबंध में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के तहत घोषणा नहीं की गई थी; कृषि क्षेत्र में धान की फसल खड़ी थी; अधिकारियों द्वारा कोई मौके का निरीक्षण नहीं किया गया था और उप रजिस्ट्रार ने मौके की वास्तविक स्थिति की जांच किए बिना ही रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी।

5. दिनांक 06/05/2013 को पारित प्रथम आदेश के द्वारा स्टाम्प ड्यूटी के भुगतान में 2,78,600/- (दो लाख अट्ठारह हजार छह सौ रुपये मात्र) की कमी के साथ-साथ चार गुना जुर्माना 11,14,400/- (ग्यारह लाख चौदह हजार चार सौ रुपये मात्र) लगाया गया है, साथ ही यह भी शर्त रखी गई है कि याचिकाकर्ता को उपकरण के निष्पादन की तिथि से वसूली तक 1.5% प्रति माह की दर से ब्याज देना होगा। याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश के विरुद्ध अपील दायर की, जिसे मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी ने दिनांक 07/09/2015 को पारित दूसरे आदेश द्वारा खारिज कर दिया।

6. आरोपित आदेश चार में से एक बिक्री विलेख पर चुकाए गए स्टाम्प शुल्क पर आधारित हैं, जिसे याचिकाकर्ता के बिक्री विलेख के संबंध में स्टाम्प शुल्क की मात्रा निर्धारित करने के लिए एक उदाहरण के रूप में माना गया था। उक्त बिक्री विलेख का दस्तावेज संख्या 7353/2010 है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न की गई है। उक्त विलेख के अवलोकन से पता चलता है कि इसके अंतर्गत आने वाला क्षेत्र 139.36 वर्ग मीटर था, जिसके लिए क्रेता ने आवासीय दरों पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया था और संपत्ति को आवासीय भूखंड के रूप में वर्णित किया गया था। जहां तक कार्यवाही में याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों का संबंध है, मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी द्वारा यह देखा गया है कि यदि याचिकाकर्ता को मौके पर निरीक्षण न किए जाने से व्यथित होना था, तो उसे लगातार आवेदन प्रस्तुत करना चाहिए था, लेकिन उसने केवल एक बार ही ऐसा किया। दिनांक 06/05/2013 के अन्य आवेदन के संबंध में, यह देखा गया कि वास्तव में, यह प्रथम प्राधिकारी द्वारा अंतिम

आदेश पारित करने के लिए निर्धारित तिथि थी और ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदन निर्णय की तिथि पर प्रस्तुत किया गया था और, इसलिए, यह बाद में लिया गया विचार हो सकता है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री निपुण सिंह ने दलील दी कि दस्तावेज में वर्णित भूमि पूरी तरह से कृषि योग्य थी और आज भी है। उन्होंने आगे दलील दी कि एक बार जब दस्तावेज में शामिल संपत्ति के संबंध में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के तहत कोई घोषणा नहीं की गई, तो भूमि की प्रकृति कृषि योग्य बनी रहेगी। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता द्वारा खरीदी गई भूमि का क्षेत्रफल लगभग 11000 वर्ग मीटर है, जबकि नीचे के अधिकारियों द्वारा जिस उदाहरण बिक्री विलेख संख्या 7353/2010 पर भरोसा किया गया है, वह उसी गाटा के बहुत छोटे हिस्से यानी 139.36 वर्ग मीटर के संबंध में है, जिसे आवासीय भूखंड बताया गया था। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे मामले में स्थल निरीक्षण करना उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति मूल्यांकन) नियम, 1997 के नियम 7(3)(सी) के अनुसार आवश्यक है और इसलिए, जब याचिकाकर्ता द्वारा स्थल निरीक्षण के संबंध में आपत्ति विशेष रूप से उठाई गई थी, तो अधिकारियों के लिए स्थल निरीक्षण करना और फिर कथित कमी के संबंध में एक राय बनाना आवश्यक था और इसलिए, भूमि के एक बहुत छोटे हिस्से के मात्र एक बिक्री विलेख पर भरोसा करना और स्टाम्प शुल्क के भुगतान के मामले को तय करने के लिए इसे एक उदाहरण के रूप में मानना कानून के अनुसार नहीं है।

8. उन्होंने आगे कहा कि प्राधिकारियों ने मामले को साबित करने का भार याचिकाकर्ता पर डाल दिया है, बल्कि चूंकि ये कार्यवाहियां राज्य द्वारा शुरू की गई थीं, इसलिए स्टाम्प शुल्क के भुगतान में कथित कमी को साबित करने का भार राज्य पर था और याचिकाकर्ता पर कोई विपरीत भार नहीं डाला जा सकता था।

9. उन्होंने **वरुण गोपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जो 2015 (2) एडीजे 311 में रिपोर्ट किया गया था, उसी के पैराग्राफ 24 के विशेष संदर्भ के साथ, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"24. अधिनियम की धारा 47-ए(3) के प्रावधानों को लागू करने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि कलेक्टर के पास यह मानने का कारण था कि संपत्ति के बाजार मूल्य के अनुसार उपकरण में मूल्य ठीक से निर्धारित नहीं किया गया था। एक बार जब उपकरण पंजीकृत हो जाता है और कलेक्टर द्वारा निर्धारित स्टाम्प शुल्क का

भुगतान किया जाता है, **तो यह साबित करने का भार कि बाजार मूल्य नियमों के तहत कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम से अधिक था, कलेक्टर पर था।** उप-पंजीयक या तहसीलदार की रिपोर्ट उस भार को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। (**विजय कुमार बनाम कमिश्नर मेरठ डिवीजन,** 2008(7) एडीजे 293)।"

10. उन्होंने **इंस्टीट्यूट ऑफ फ्रांसिस्कन क्लैरिस्ट सिस्टर्स बनाम स्टेट ऑफ यूपी व अन्य** के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य फैसले पर भरोसा जताया है, जिसकी रिपोर्ट एआईआर 2020 ऑल 189 में दी गई है, जिसमें खरीदी गई संपत्ति कृषि प्रकृति की थी और यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के तहत कोई घोषणा नहीं की गई थी।

11. श्री निपुण सिंह ने आगे तर्क दिया है कि, अन्यथा भी, बिक्री विलेख संख्या 7353/2010 को एक आदर्श के रूप में नहीं माना जा सकता था, क्योंकि तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 27/09/2014 के आदेश के तहत, म्यूटेशन कार्यवाही में, उक्त बिक्री विलेख को इस कारण से अवैध माना गया है कि इसे एक नाबालिग द्वारा निष्पादित किया गया था और, इसलिए, इसके द्वारा कोई अधिकार हस्तांतरित या प्रदान नहीं किए गए थे।

12. राज्य द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसके पैराग्राफ 10 में कहा गया है कि यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के प्रावधान स्टाम्प शुल्क की प्रभार्यता तय करने के उद्देश्य से अप्रासंगिक हैं। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 17 में कहा गया है कि वर्तमान मामले में मौके पर निरीक्षण की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि संपत्ति पहले गैर-कृषि दरों को लागू करके हस्तांतरित की गई थी। इसलिए, विद्वान स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि विवादित आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. रिट याचिका में निहित संस्करण को दोहराते हुए जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, और यह स्थापित करने के लिए आगे के साक्ष्य रिकॉर्ड पर लाए गए हैं कि भूमि की प्रकृति न केवल बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख पर है, बल्कि आज भी पूरी तरह से कृषि प्रकृति की है और मौके पर विभिन्न फसलें खड़ी हैं।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, मैं पाता हूँ कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के अन्तर्गत भूमि को आबादी घोषित न करना एक स्वीकृत तथ्य

है। राज्य का यह तर्क कि उक्त गैर-घोषणा भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही में प्रासंगिक नहीं है, इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अन्तर्गत वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997 बनाए गए हैं। नियम के नियम 3(1)(ए) में निम्नलिखित प्रावधान है:

"किसी लिखत में वर्णित किए जाने वाले तथ्य.-ऐसी लिखत के मामले में जो अचल संपत्ति से संबंधित हो और जिस पर मूल्यानुसार शुल्क लगाया जाता हो, संपत्ति के बाजार मूल्य के अतिरिक्त निम्नलिखित विवरण भी लिखत में पूर्णतः और सत्यतापूर्वक वर्णित किए जाएंगे-

(1) भूमि के मामले में-

(क) भूमि काश्तकारों से संबंधित कानून में परिभाषित अनुसार, काश्तकार की जोत में शामिल है।

(i) प्रत्येक भूखंड का खसरा नंबर और क्षेत्रफल जो उपकरण की विषय-वस्तु का हिस्सा है;

(ii) सिंचित है या असिंचित और यदि सिंचित है, तो सिंचाई का स्रोत;

(iii) यदि खेती हो रही है, तो दो-फसाली है या अन्यथा;

(iv) भूमि राजस्व या लगान, चाहे छूट प्राप्त हो या नहीं और ऐसे पट्टेदार द्वारा देय;

(v) मिट्टी का वर्गीकरण, जो बीस हजार रुपये से अधिक मूल्य के उपकरणों के मामले में, विधि के अनुसार जारी किए गए प्रमाणित प्रतियों या प्रासंगिक राजस्व अभिलेखों से उद्धरणों द्वारा समर्थित है;

(vi) स्थान (चाहे वह शहरी क्षेत्र, अर्ध-शहरी क्षेत्र या ग्रामीण क्षेत्र में हो); और

(vii) जिले के कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल्य।"

15. बेशक, बिक्री विलेख के निष्पादन की तिथि पर, यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के प्रावधान लागू थे। यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 3(14) के तहत निहित "भूमि" की परिभाषा इस प्रकार है:

(14) "भूमि" [धारा 109, 143 और 144 तथा अध्याय VII को छोड़कर] से कृषि, बागवानी या पशुपालन से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोगित भूमि अभिप्रेत है, जिसके अंतर्गत मत्स्यपालन और मुर्गीपालन भी है;

16. भूमि स्वामित्व से संबंधित कानून, यानी यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 में निहित भूमि की परिभाषा के मद्देनजर, यह तथ्य कि भूमि को यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के तहत आबादी के रूप में घोषित नहीं किया गया था, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 3(14) के तहत स्पष्ट किया गया है, अपने आप में उस भूमि की प्रकृति का निर्धारण करने के लिए एक प्रासंगिक कारक बन जाता है जो साधन की विषय वस्तु थी। इस न्यायालय ने विभिन्न प्राधिकरणों में माना है कि जब भूमि कृषि उद्देश्यों के लिए खरीदी जाती है और यूपी ज़मींदारी और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के तहत घोषणा नहीं की गई है और केवल इसलिए कि भूमि गैर कृषि भूमि के करीब स्थित है, तो यह स्टांप शुल्क लगाने के प्रयोजनों के लिए कृषि भूमि के रूप में अपना चरित्र नहीं खोएगी। इस न्यायालय के कुछ प्राधिकारियों का संदर्भ दिया जा सकता है, जैसे अनिरुद्ध कुमार और अश्विनी कुमार बनाम मुख्य नियंत्रण राजस्व प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद और अन्य, 2000 (3) एडब्ल्यूसी 2587 में रिपोर्ट किया गया; श्रीमती सुशीला वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2006 (2) एडब्ल्यूसी 1492 में रिपोर्ट किया गया और सुदामा बनाम मुख्य नियंत्रण प्राधिकरण और अन्य, 2013 (4) एडब्ल्यूसी 3571। में रिपोर्ट किया गया ।

17. इसके अलावा, अगर राज्य का आरोप यह होता कि हालांकि जमीन कृषि उद्देश्यों के लिए खरीदी गई थी, लेकिन इसका उपयोगकर्ता तुरंत बदल गया और बिक्री विलेख की तारीख पर इसका उपयोग किसी अन्य उद्देश्य जैसे औद्योगिक, वाणिज्यिक या यहां तक कि आवासीय के लिए किया जा रहा था, तो स्थिति अलग होती। उन स्थितियों में भी, प्रासंगिक समय पर स्पॉट निरीक्षण एक आवश्यकता थी, लेकिन, बेशक, वर्तमान मामले में, कोई स्पॉट निरीक्षण नहीं किया गया है। 1997 के उक्त नियमों के नियम 7 (3) (सी) के संदर्भ में स्पॉट निरीक्षण की आवश्यकता और इसकी अनिवार्य प्रकृति को इस न्यायालय द्वारा **अजय अग्रवाल और अन्य बनाम कमिश्नर लखनऊ और अन्य**, 2023 (2) एडीजे 561 (एलबी) में रिपोर्ट किए गए, और **राम खेलावन उर्फ बच्चा बनाम यूपी राज्य और एक**

अन्य, 2005 (2) एडब्ल्यूसी 1087 में रिपोर्ट किए गए सहित विभिन्न प्राधिकरणों में बार-बार दोहराया गया है।

18. जहां तक उदाहरण पर भरोसा करने का सवाल है, याचिकाकर्ता द्वारा खरीदे गए क्षेत्र, यानी लगभग 11000 वर्ग मीटर की तुलना में, लगभग 139.36 वर्ग मीटर के बहुत छोटे क्षेत्र को कवर करने वाले बिक्री विलेख को तर्कसंगत दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता है।

19. विवादित आदेशों में दर्ज की गई टिप्पणियां/निष्कर्ष भी सबूत के बोझ के सिद्धांतों के विपरीत हैं, खासकर ऐसे मामले में जहां कार्यवाही राजकोषीय क़ानून से उत्पन्न होती है। एक बार जब राज्य याचिकाकर्ता पर अपर्याप्त स्टाम्प शुल्क लगाने के लिए आगे बढ़ रहा था, तो पूरी जिम्मेदारी राज्य पर थी कि वह बिना किसी संदेह के यह साबित करे कि याचिकाकर्ता ने अपने पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करते समय कुछ छिपाया था या कि तारीखों के करीब होने के दौरान, विवादित भूमि का उपयोग बदल दिया गया था ताकि अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क लगाया जा सके। इस आशय की कोई बात रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है, बल्कि, न केवल विवादित आदेशों में दर्ज निष्कर्ष भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रावधानों के विपरीत हैं, जैसा कि यूपी राज्य में लागू है और साथ ही यूपी स्टाम्प (संपत्ति का मूल्यांकन) नियम, 1997, बल्कि निश्चित रूप से इस न्यायालय द्वारा लगातार निर्धारित कानून के विपरीत हैं।

20. जहां तक चार गुना जुर्माना लगाने का सवाल है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जब तक खरीदार की ओर से "मनुष्य का इरादा" स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है, भले ही जुर्माने का प्रावधान क़ानून द्वारा बनाया गया हो। जुर्माना लगाने के संबंध में, श्रीमती आशा कपूर बनाम अतिरिक्त कलेक्टर (वित्त और राजस्व), गाजियाबाद और अन्य के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसे 2008 (72) एएलआर 125 में रिपोर्ट किया गया था, जहां इस न्यायालय ने माना है कि अगर स्टांप ड्यूटी से बचने का प्रयास किया जाता है तो जुर्माना लगाया जा सकता है और जुर्माना दोषसिद्धि और अधिकारियों के साथ धोखाधड़ी करने या छिपाने के इरादे को पूर्व निर्धारित करता है। मुझे रिकॉर्ड पर ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं मिला, जिसके तहत प्रतिवादी

अधिकारियों द्वारा कोई राय बनाई गई हो कि याचिकाकर्ता ने बिक्री विलेख निष्पादित करने के समय सरकार के साथ धोखाधड़ी की है। यहां तक कि भूमि की प्रकृति का खुलासा करने वाली रिट याचिका के अनुलग्नकों पर भी राज्य द्वारा जवाबी हलफनामे में विवाद नहीं किया गया है। मैं यह भी पाता हूं कि विचाराधीन बिक्री विलेख 1997 के नियम 3(1)(ए) के अनुसार आवश्यक विवरणों के प्रकटीकरण की वैधानिक आवश्यकताओं के अनुरूप है। इसलिए, जुर्माना लगाना भी देश के कानून के विपरीत है।

21. जहां तक श्री निपुण सिंह की इस दलील का सवाल है कि चूंकि बिक्री विलेख को शून्य या अवैध घोषित किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता पर कोई अपर्याप्त स्टांप शुल्क नहीं लगाया जा सकता है, अदालत भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के तहत निहित **"साधन"** की परिभाषा के मद्देनजर उक्त दलील से प्रभावित नहीं है, जो इस प्रकार है:

14. साधन.- " साधन" में निम्नलिखित सम्मिलित हैं-

(क) प्रत्येक दस्तावेज, जिसके द्वारा कोई अधिकार **या दायित्व सृजित**, अन्तरित, सीमित, विस्तारित, समाप्त या अभिलिखित किया गया है या किया जाना प्रकल्पित है; .....

22. उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार, यह स्पष्ट है कि भले ही किसी उपकरण द्वारा कोई अधिकार नहीं बनाया गया हो, लेकिन उन्हें बनाया जाना माना जाता है, दस्तावेज़ भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रावधानों को लागू करने के लिए "उपकरण" की परिभाषा के अंतर्गत आएगा। **ओम प्रकाश उमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में इस न्यायालय ने 2014 (1) AWC 120 में रिपोर्ट की, यह माना है कि हस्तांतरिती के पक्ष में किए गए हस्तांतरण की वैधता स्टाम्प शुल्क के भुगतान से छूट देने के लिए प्रासंगिक मानदंड नहीं है। इसलिए, केवल इसलिए कि बिक्री विलेख को किसी भी बाद की कार्यवाही में अमान्य घोषित किया गया है, भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत वर्तमान मामले के संबंध में इसका कोई महत्व नहीं होगा। इस आशय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दी गई दलील को खारिज किया जाता है।

23. विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि मौके पर

निरीक्षण न करना आदेश पारित करने के पीछे एक अवैधता के रूप में माना जाता है, तो मामले को अधिकारियों को मौके पर निरीक्षण करने या करवाने के लिए वापस भेजा जा सकता है और फिर एक नया आदेश पारित किया जा सकता है।

24. तथापि, मेरा मानना है कि मामले को प्राधिकारियों के पास वापस भेजने से कोई सार्थक उद्देश्य पूरा नहीं होगा और वस्तुतः इस मामले में रिमांड एक निरर्थक कार्य होगा, क्योंकि विचाराधीन दस्तावेज 27/01/2011 को निष्पादित किया गया था और यह अच्छी तरह से स्थापित है कि स्टाम्प शुल्क की प्रभार्यता की जांच दस्तावेज के निष्पादन की तारीख के संदर्भ में की जानी चाहिए। इस आशय का प्रस्ताव इस न्यायालय द्वारा विभिन्न प्राधिकरणों में लगातार रखा गया है, जिनमें शाहिद अली बनाम कमिश्नर बरेली डिवीजन बरेली और अन्य, 2013 (6) एडीजे 425 और हर चरण लाल आइस एंड कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ यूपी और अन्य, 2013 (2) एडब्ल्यूसी 1731 में रिपोर्ट शामिल हैं। इसलिए, रिमांड के संबंध में विद्वान शासकीय अधिवक्ता का आग्रह खारिज करने योग्य है, इस कारण से भी कि यदि निरीक्षण आज किया जाता है, अर्थात वर्ष 2023 में, तो यह बिक्री विलेख के निष्पादन की तिथि अर्थात 2011 पर स्टांप शुल्क के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए पूरी तरह अप्रासंगिक होगा। इसलिए, इस तरह का स्पॉट निरीक्षण न तो किसी महत्व का होगा और न ही मामले को तय करने के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक होगा।

25. उपर्युक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे **अनुमति** दी जाती है।

26. प्रतिवादी संख्या 3, कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, गौतम बुद्ध नगर द्वारा केस संख्या 14/2011-12 (राज्य बनाम राजकुमार) में पारित दिनांक 06/05/2013 के आदेश के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 2, मुख्य नियंत्रण प्राधिकारी/राजस्व बोर्ड, यूपी सर्किट रोड, मेरठ द्वारा अपील संख्या 107/एम/2013-14 (राजकुमार भाटी बनाम यूपी राज्य) में पारित दिनांक 07/09/2015 के आदेश को **उत्प्रेषण** रिट जारी करके **रद्द** किया जाता है।

27. इस आशय का एक **परमादेश** भी जारी किया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा इस रिट

याचिका को दायर करने से पहले या वर्तमान मामले में पारित किसी अंतरिम आदेश के अनुसरण में जमा की गई कोई भी राशि, याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ उचित आवेदन प्रस्तुत करने पर, जमा की तारीख से वास्तविक भुगतान की तारीख तक 6% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ **तीन महीने** की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को वापस कर दी जाएगी।

(2023) 5 ILRA 1485

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय,

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,

रिट-सी संख्या 26600/2007

आज़ा पाल सरीन ...याचिकाकर्ता

बनाम

ए.डी.एम., जी.बी. नागर एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आर.के. पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री वी.पी. माथुर, श्री रामेन्द्र प्रताप सिंह

सिविल कानून -उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894- मुआवजे का दावा समय बीत जाने के कारण खारिज कर दिया गया-आक्षेपित आदेश-याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत अपना आवेदन प्रस्तुत किया-दिनांक 12.04.2004 को जारी किया गया नोटिस, याचिकाकर्ता को दिए गए निर्णय की प्रति के साथ नहीं था-याचिकाकर्ता को दिनांक 12.08.2004 के नोटिस की प्रति प्राप्त होने के बाद ही 13.01.2004 को पता चला-अधिनियम, 1894 की धारा 18 (2) के परंतुक (बी) में उल्लिखित कलेक्टर के निर्णय की तिथि-वह तिथि मानी जानी चाहिए जिस तिथि को याचिकाकर्ता को निर्णय के बारे में पता चला-सौहार्दपूर्ण निर्माण-कलेक्टर के निर्णय की तिथि से छह महीने की अवधि 24.08.2004 से प्रारंभ होगी और 24.02.2005 को समाप्त होगी-आवेदन समय के भीतर था-आक्षेपित आदेश गलत है।

रिट याचिका स्वीकृत. (ई-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. विशेष कार्य अधिकारी (भूमि अधिग्रहण) व अन्य बनाम शाह मणिलाल चंदूलाल व अन्य (1996) 9 एससीसी 414
2. भगवान दास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 3 एससीसी 545
3. मदन एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 2 एससीसी 720
4. विजय महादेव राव कुबड़े बनाम. महाराष्ट्र राज्य (2018) 8 एससीसी 266

(माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री अनुज श्रीवास्तव, प्रतिवादी संख्या 2 के

विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादी संख्या 1 और 3 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित आदेश दिनांक 27/28.04.2007 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा मुआवजे की राशि के संबंध में न्यायालय के निर्धारण के लिए संदर्भित करने के लिए, याचिकाकर्ता के आवेदन अन्तर्गत धारा 18 उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (जिसे आगे "अधिनियम, 1894" कहा जाएगा) को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसकी समय सीमा समाप्त हो चुकी थी।

3. वर्तमान मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि राज्य ने प्रतिवादी संख्या 2- नोएडा विकास प्राधिकरण द्वारा योजना विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने के लिए "अधिनियम, 1894" की धारा 4 के तहत अधिसूचना दिनांक 06.01.1992 जारी की और उसके बाद "अधिनियम, 1894" की धारा 6 के तहत अधिसूचना दिनांक 22.09.1992 जारी की। उपरोक्त अधिसूचना के माध्यम से, खसरा संख्या 151 का 1/3 हिस्सा जो याचिकाकर्ता के स्वामित्व में गांव हाजीपुर, परगना और तहसील दादरी, जिला-गौतमबुद्ध नगर में है, को अधिग्रहीत कर लिया गया था। खसरा संख्या 151 में याचिकाकर्ता की भूमि के हिस्से का मुआवजा भी प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दिनांक 13.01.2004 को दिया गया था। मुआवजा देने के बाद, याचिकाकर्ता को पंजीकृत नोटिस दिनांक 12.08.2004 अन्तर्गत धारा 12(2), अधिनियम, 1894 भी जारी की गई, जिसे याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.08.2004 को प्राप्त होना स्वीकार किया। उक्त नोटिस प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने नोटिस दिनांक 12.08.2004 के खिलाफ दिनांक 25.08.2004 को आपत्ति दाखिल की, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। इसके बाद याचिकाकर्ता ने कलेक्टर, गौतमबुद्ध नगर के समक्ष याचिकाकर्ता की अधिग्रहीत भूमि के लिए उच्च/सही मुआवजे के निर्धारण हेतु मामले को न्यायालय को संदर्भित करने के लिए एक आवेदन दिनांक 20.09.2004 अन्तर्गत धारा 18, अधिनियम, 1894 प्रस्तुत किया। जब उपरोक्त आवेदन दिनांक 20.09.2004 का निपटारा नहीं हुआ तो याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 6180 वर्ष 2007 प्रस्तुत की और उसका निपटारा दिनांक 08.02.2007 के आदेश द्वारा किया गया जिसमें कलेक्टर को याचिकाकर्ता द्वारा "अधिनियम, 1894" की धारा 18 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन दिनांक 20.09.2004 पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

4. इस न्यायालय के आदेश दिनांक 08.02.2007 के अनुसरण में, प्रतिवादी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता सहित पक्षों को सुनने के बाद आक्षेपित आदेश दिनांक 27.04.2007 पारित किया और इसे इस आधार पर खारिज कर दिया कि आवेदन हेतु समय सीमा समाप्त हो चुकी है क्योंकि याचिकाकर्ता का धारा 18 के तहत आवेदन दिनांक 20.09.2004 को प्रस्तुत किया गया

था, लेकिन "अधिनियम, 1894" की धारा 18(2)(बी) के अनुसार इसे मुआवजे की तिथि से छह महीने के भीतर यानी 12.07.2004 तक दायर किया जाना चाहिए था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 27/28.04.2007 पूरी तरह से गलत है, क्योंकि याचिकाकर्ता को पहली बार दिनांक 13.01.2004 के मुआवजे के बारे में दिनांक 24.08.2004 को "अधिनियम, 1894" की धारा 12(2) के तहत नोटिस दिनांक 12.04.2004 प्राप्त होने के बाद पता चला। इसके बाद उन्होंने तुरंत "अधिनियम, 1894" की धारा 18 के तहत अपना आवेदन दिनांक 20.09.2004 दायर किया, इसलिए यह "अधिनियम, 1894" की धारा 12(2) के तहत नोटिस प्राप्त करने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर था। इसलिए, अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत उनका आवेदन समय के भीतर था और इसलिए आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की।

6. प्रतिवादी संख्या 2 के अधिवक्ता और राज्य के स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश बिल्कुल सही है क्योंकि याचिकाकर्ता का "अधिनियम, 1894" की धारा 18 के तहत आवेदन समय बाधित था क्योंकि इसे मुआवजे की तारीख से छह महीने के बाद दायर किया गया था और साथ ही उन्होंने **(1996) 9 एससीसी 414** में प्रकाशित **ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी (भूमि अधिग्रहण) और अन्य बनाम शाह मणिलाल चंदूलाल और अन्य** और **(2010) 3 एससीसी 545** में प्रकाशित **भगवान दास बनाम यूपी राज्य** के निर्णयों का आधार यह दिखाने के लिए लिया कि "अधिनियम, 1894" की धारा 18 के तहत आवेदन में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती है।

7. पक्षकारों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करते हुए और पत्रावली के अवलोकन पर, हम पाते हैं कि यह स्वीकार्य स्थिति है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.09.2004 को "अधिनियम, 1894" की धारा 18 के तहत अपना आवेदन प्रस्तुत किया, जबकि उसे दिनांक 24.08.2004 को "अधिनियम, 1894" की धारा 12(2) के तहत नोटिस दिनांक 12.04.2004 प्राप्त हुई।

8. "अधिनियम, 1894" की धारा 18(2) मामले को न्यायालय में भेजने के लिए आवेदन दाखिल करने की सीमा प्रदान करती है। त्वरित संदर्भ के लिए, "अधिनियम, 1894" की धारा 18 को नीचे उद्धृत किया गया है;

"18(2) आवेदन में उन आधारों का उल्लेख किया जाना चाहिए जिन पर पंचाट के प्रति आपत्ति की गई है:

परंतु ऐसा प्रत्येक आवेदन, किया जाएगा -

(क) यदि उसे करने वाला व्यक्ति पंचाट दिए जाने के समय कलेक्टर के समक्ष उपस्थित था या उसका प्रतिनिधित्व किया गया था, तो कलेक्टर के पंचाट की तारीख से छह सप्ताह के भीतर;

(ख) अन्य मामलों में, धारा 12 की उपधारा (2) के अन्तर्गत कलेक्टर से नोटिस प्राप्त होने के छह सप्ताह के भीतर, या कलेक्टर के

निर्णय की तारीख से छह महीने के भीतर, जो भी अवधि पहले समाप्त हो जाए।"

9. अधिनियम, 1894 की धारा 18(2)(ए) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति/पट्टाधारक पंचाट दिए जाने के समय कलेक्टर के समक्ष उपस्थित था या उसका प्रतिनिधित्व किया गया था, तो सीमा अवधि कलेक्टर के पंचाट की तिथि से छह सप्ताह है। जबकि धारा 18(2)(बी) अन्य मामलों में प्रावधान करती है, जहां व्यक्ति पंचाट दिए जाने के समय कलेक्टर के समक्ष उपस्थित/प्रतिनिधित्व किया गया नहीं था, तो सीमा अवधि अधिनियम, 1894 की धारा 12(2) के तहत कलेक्टर से नोटिस प्राप्त होने की तिथि से छह सप्ताह या कलेक्टर के पंचाट दिए जाने की तिथि से छह महीने के भीतर होगी, **जो भी अवधि पहले समाप्त हो रही हो**।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2014) 2 एससीसी 720** में प्रकाशित **मदन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में देखा कि अधिनियम की धारा 18(2) के प्रावधान (बी) में प्रयुक्त वाक्यांश कलेक्टर के निर्णय की तिथि का अर्थ उस तिथि से समझा जाना चाहिए जब निर्णय पक्ष को सूचित किया जाता है या वह वास्तव में या रचनात्मक रूप से उसकी जानकारी प्राप्त करता है। उपरोक्त निर्णय में यह भी माना गया कि धारा 18 के प्रावधान में प्रयुक्त "कलेक्टर के निर्णय की तिथि से" शब्दों को शाब्दिक या यांत्रिक तरीके से समझना अनुचित होगा। **मदन और अन्य (सुप्रा)** में निर्णय के पैरा 9 और 10 को नीचे उद्धृत किया गया है;

"9. एलएआर संख्या 75 वर्ष 1992 में पारित आदेश दिनांक 29.10.1993 से, अन्य बातों के साथ-साथ, यह स्पष्ट है कि भूमि स्वामियों (अपीलकर्ता ऐसे भूमि स्वामियों का एक समूह हैं) के बीच अधिग्रहीत भूमि में अपने-अपने हिस्से के संबंध में विवाद था, जिसके कारण कलेक्टर, जिन्होंने अधिनियम की धारा 30 के तहत न्यायालय को संदर्भ दिया था, द्वारा मुआवज़े का कोई बंटवारा नहीं किया गया था। इसके अलावा, दिनांक 29.10.1993 के आदेश में यह दर्ज किया गया है कि धारा 30 के तहत संदर्भ में आदेश दिनांक 4.9.1991 पारित होने तक अपीलकर्ताओं को पंचाट के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। हरीश चंद्र राज सिंह (सुप्रा) में इस न्यायालय ने माना है कि अधिनियम की धारा 18(2) के प्रावधान (बी) में प्रयुक्त वाक्यांश "पंचाट की तिथि" का अर्थ उस तिथि से समझा जाना चाहिए जब पंचाट या तो पक्षकार को सूचित किया जाता है या उसे वास्तव में या रचनात्मक रूप से उसका ज्ञान होता है। इस न्यायालय ने आगे माना कि यह अनुचित होगा कि धारा 18 के प्रावधान में प्रयुक्त "कलेक्टर के निर्णय की तिथि से" शब्दों का शाब्दिक या यांत्रिक अर्थ लगाया जाये। वर्तमान मामले में, यह पहले ही देखा जा चुका है कि संदर्भ न्यायालय द्वारा दिनांक 29.10.1993 के अपने आदेश में यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि "याचिकाकर्ताओं को 5.9.1991 को मुआवजे के भुगतान की तिथि तक पंचाट पारित होने के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, क्योंकि उन्हें संदर्भ अन्तर्गत धारा 30 के निर्णय दिनांक 4.9.1991 के बाद मुआवजा प्राप्त करने का हकदार माना गया था।"

10. उपरोक्त से यह पता चलता है कि दिनांक 4.9.1991 (अधिनियम की धारा 30 के तहत आदेश की तिथि) को पहली बार अपीलकर्ताओं को पता चला कि वे मुआवजे के हकदार हैं और उसकी मात्रा भी। यह विवाद में नहीं है कि धारा 18 के तहत संदर्भ उक्त तिथि यानी दिनांक 4.9.1991 से 6 सप्ताह के भीतर किया गया था।उपरोक्त तथ्यों में, उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण से सहमत होना कठिन है कि धारा 18 के तहत संदर्भ सीमा द्वारा वर्जित था।"

11. इसी तरह **(2018) 8 एससीसी 266** में प्रकाशित **विजय महादेव राव कुबड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य** के फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि यदि भूमि मालिक को "अधिनियम, 1894" की धारा 12(2) के तहत नोटिस के साथ पंचाट की प्रति नहीं मिली तो नोटिस को वैध नोटिस नहीं माना जाएगा, इसलिए, धारा 18(2) के तहत संदर्भ के लिए बाद में आवेदन प्रस्तुत करना समय बाधित नहीं माना जाएगा। उपर्युक्त निर्णय के पैरा 10 और 11 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है;

"10. याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री बांसुरी स्वराज, प्रेमजी नाथू बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2012) 5 एससीसी 250 के फैसले केआ आधार लेती हैं, जहां इस न्यायालय ने इस प्रकार देखा;

"20. उपरोक्त के आलोक में, यह देखा जाना चाहिए कि क्या संदर्भ न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष, जिसे उच्च न्यायालय ने अनुमोदित किया है, कि अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन समय द्वारा वर्जित था, कानूनी रूप से संधारणीय है।

21. धारा 18(1) के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन के पैरा 2 में निहित कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि कलेक्टर द्वारा धारा 12(2) के तहत जारी नोटिस दिनांक 22.2.1985 को उसे दिया गया था। इसके बाद, उसके अधिवक्ता ने पंचाट की प्रमाणित प्रति प्राप्त की और न्यायालय को संदर्भ देने के लिए दिनांक 08.04.1985 को आवेदन दायर किया। इसका तात्पर्य यह है कि नोटिस के साथ अपीलकर्ता को पंचाट की प्रति नहीं भेजी गई थी और उसके बिना वह संदर्भ मांगने के लिए प्रभावी रूप से आवेदन नहीं कर सकता था।

22. राज्य सरकार की ओर से, संदर्भ न्यायालय के समक्ष यह दिखाने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि नोटिस के साथ अपीलकर्ता को पंचाट की प्रति भी भेजी गई थी। दुर्भाग्य से, मुद्दा 3 का निर्णय करते समय, संदर्भ न्यायालय द्वारा इस पहलू को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया, जिसने यंत्रवत् निष्कर्ष निकाला कि दिनांक 8.4.1985 को दायर किया गया आवेदन धारा 18(2)(बी) में निर्दिष्ट समय से परे था। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी, यद्यपि इस तथ्य पर विचार किए बिना कि धारा 12(2) के तहत कलेक्टर द्वारा जारी किया गया नोटिस धारा 18(1) के तहत संदर्भ प्राप्त करने के लिए अपीलकर्ता में निहित अधिकार के प्रभावी प्रयोग के लिए आवश्यक था, संदर्भ न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को मंजूरी देकर गंभीर त्रुटि की।
(जोर दिया गया)।

11. सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कानून के उपरोक्त प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं किया है। तदनुसार, हमारा मत है कि उपरोक्त अवलोकन वर्तमान मामले पर पूरी तरह लागू होते हैं क्योंकि दिनांक 04.12.1987 का नोटिस, पंचाट के साथ नहीं था। इस मामले में, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (2) के तहत दिनांक 04.12.1987 के पत्र द्वारा पंचाट की वैध सूचना तब तक नहीं हो सकती थी, जब तक कि अपीलकर्ता को पंचाट की प्रमाणित प्रति प्राप्त नहीं हो जाती, जो उसे दिनांक 03.02.1988 को प्राप्त हुई। इसलिए, वृद्धि के लिए संदर्भ, तदनुसार, सीमा अवधि द्वारा वर्जित नहीं था।"

12. रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि पंचाट दिनांक 13.01.2004 की प्रति के साथ, याचिकाकर्ता को दिनांक 24.08.2004 को तामील हुई नोटिस दिनांक 12.04.2004 अन्तर्गत धारा 12(2) भूमि अधिग्रहण अधिनियम, नहीं दी गई थी और याचिकाकर्ता को नोटिस दिनांक 12.08.2004 अन्तर्गत धारा 12(2), अधिनियम, 1894 की प्रति प्राप्त होने के बाद ही पंचाट दिनांक 13.01.2004 के बारे में पता चला। ऊपर चर्चा की गई कानूनी स्थिति से, **यह स्पष्ट है कि "अधिनियम, 1894" की धारा 18(2) के प्रावधान (बी) में उल्लिखित कलेक्टर के पंचाट की तारीख को वह तारीख माना जाना चाहिए जिस तारीख को याचिकाकर्ता को उपरोक्त पंचाट के बारे में पता चला।** जैसा कि स्वीकार किया गया है, याचिकाकर्ता को पंचाट दिनांक 13.01.2004 के बारे में नोटिस दिनांक 12.08.2004 अन्तर्गत धारा 12(2) के बाद ही पता चला।

13. उपरोक्त के मद्देनजर, कलेक्टर के पंचाट की तारीख से छह महीने की समयावधि दिनांक 24.08.2004 से शुरू होगी, जिस दिन याचिकाकर्ता को पंचाट दिनाँक 13.01.2004 के बारे में पता चला। यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता ने कलेक्टर के समक्ष दिनांक 20.09.2004 को आवेदन अन्तर्गत धारा 18(2) प्रस्तुत किया था, जो कि "अधिनियम, 1894" की धारा 12(2) के अन्तर्गत नोटिस दिनांक 12.08.2004 प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर था। इसलिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के साथ "अधिनियम, 1894" की धारा 18(2) के प्रावधान (बी) की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या पर कलेक्टर के पंचाट की तारीख से छह महीने की अवधि दिनांक 24.08.2004 से शुरू होगी और दिनांक 24.02.2005 को समाप्त होगी और दिनांक 24.08.2004 को प्राप्त नोटिस दिनांक 12.08.2004 की प्राप्ति की तारीख से छह सप्ताह दिनांक 05.10.2004 को समाप्त होगा। इसलिए नोटिस अन्तर्गत धारा 12(2) की प्राप्ति की तारीख से छह सप्ताह की अवधि पहले 5 अक्टूबर, 2004 को समाप्त हो गई थी और कलेक्टर के पंचाट की तारीख से छह महीने का समय बाद में यानी दिनांक 24.02.2005 को समाप्त हुआ था।

इसलिए, याचिकाकर्ता का आवेदन दिनांक 20.09.2004 नोटिस अन्तर्गत धारा 12(2) के

छह सप्ताह के भीतर भली प्रकार से समय के भीतर था, इसलिए, याचिकाकर्ता के आवेदन दिनांक 20.09.2004 को समय बीत जाने के कारण खारिज करने वाला आक्षेपित आदेश दिनांक 27.04.2017 पूरी तरह से गलत है, इसलिए यह रद्द किये जाने योग्य है। इसलिए, इसे रद्द किया जाता है और प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देश दिया जाता है कि वह मुआवजे के निर्धारण के लिए अपने मामले को न्यायालय में भेजने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन दिनांक 20.09.2004 अन्तर्गत धारा 18, अधिनियम, 1894 को समय के भीतर मानते हुए उस पर उचित आदेश पारित करे।

14. उपरोक्त प्रक्रिया प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा इस आदेश की प्रति प्राप्त करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

15. उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है। लागत के विषय में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1490

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

रिट-सी संख्या 31340/2017

हरि सागर तिवारी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अंबिका प्रसाद मिश्र, दिनेश कुमार ओझा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., दिलीप कुमार पांडे, एच.एस. तिवारी, योगेन्द्र नाथ यादव

रिट याचिका - प्राधिकारी को निर्देश देने के लिए - गांव सभा के प्रस्ताव के अनुसरण में उचित मूल्य की दुकान आवंटित करने के लिए, जो याचिकाकर्ता के पक्ष में था - शिकायत - उक्त प्रस्ताव प्रधान की पुष्टि और हस्ताक्षर के बिना पारित किया गया था - न्यायालय ने पाया कि, बैठकों की कार्यवाही के लिए एक वैधानिक प्रावधान है, एक प्रस्ताव जिसकी पुष्टि और प्रधान द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया है, इसे एक वैध प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता है और उसमें किया गया प्रस्ताव वैध होगा - आयोजित, उक्त प्रस्ताव के अनुसरण में निर्णय लेने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है, जिसकी पुष्टि और हस्ताक्षर प्रधान द्वारा नहीं किए गए हैं, इसलिए इस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है - परिणामस्वरूप, रिट याचिका निरस्त। (पैरा-10,12)

रिट याचिका निरस्त। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार ओझा, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अजय सिंह और प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री एच.एस. तिवारी को सुना गया।

2. यह याचिका प्रतिवादी संख्या 3 को दिनांक 11.10.2017 के प्रस्ताव के अनुसरण में याचिकाकर्ता को ग्राम-रामपुर कसिहा (रामपुर),

विकास खंड-सांगीपुर, तहसील-लालगंज, जिला-प्रतापगढ़ की उचित दर की दुकान आवंटित करने के निर्देश के लिए प्रस्तुत की गई है ।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण यह है कि दिनांक 11.10.2017 को प्रश्नगत उचित दर की दुकान के आवंटन के लिए याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रस्ताव रखा गया था, परन्तु इस पर कोई निर्णय लिए बिना ही दूसरे प्रस्ताव के माध्यम से प्रतिवादी क्रमांक 5 को उचित दर की दुकान आवंटित करने की अनुशंसा की गई तथा दुकान उसके पक्ष में आवंटित कर दी गई, जो कि दिनांक 11.10.2017 के प्रस्ताव पर कोई निर्णय लिए बिना नहीं किया जा सकता था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि ग्राम प्रधान बैठक में पूरे समय तक उपस्थित थे लेकिन अंत में वह बैठक छोड़कर चले गए और उन्होंने प्रस्ताव पर हस्ताक्षर नहीं किए, जो प्रस्ताव को अमान्य नहीं बनाता है ।

4. दूसरी ओर प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 11.10.2017 के प्रस्ताव पर ग्राम प्रधान द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे, इसलिए यह एक मान्य प्रस्ताव नहीं है और इस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि ग्राम प्रधान ने स्वयं दिनांक 11.10.2017 के उक्त प्रस्ताव के लिए मतदान में गड़बड़ी के संबंध में शिकायत की थी, इसलिए इस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी और एक नए प्रस्ताव के आधार पर जिसमें प्रतिवादी संख्या 5 की संस्तुति की गई थी, उसे प्रश्नगत उचित दर की दुकान का लाइसेंस प्रदान किया गया है। इसमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। उत्तर प्रदेश पंचायत राज नियम, 1947 पर विस्वास करते हुए प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रधान के हस्ताक्षर और पुष्टि के बिना कोई भी प्रस्ताव मान्य प्रस्ताव नहीं है। इसलिए उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती।

5. मैंने पक्षकारो के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रस्तुति पर विचार किया तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

6. यह याचिका दिनांक 11.10.2017 के प्रस्ताव के अनुसरण में याचिकाकर्ता के पक्ष में उचित दर की दुकान के आवंटन के लिए निर्देश देने हेतु प्रस्तुत की गई है, जिस पर ग्राम प्रधान द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं। इसलिए एकमात्र विचारणीय वाद-विषय यह है कि क्या ग्राम प्रधान द्वारा हस्ताक्षर न किया गया प्रस्ताव एक मान्य प्रस्ताव हो सकता है या शुन्य और उस पर कार्रवाई की जा सकती है या नहीं तथा उक्त प्रस्ताव के अनुसरण में याचिकाकर्ता के पक्ष में निर्णय लेने के लिए निर्देश जारी किया जा सकता है या नहीं।

7. उ.प्र. पंचायत राज नियमावली 1947 (जिसे आगे नियमावली 1947 कहा जाएगा) के नियम 46 में यह प्रावधान है कि प्रधान तथा उसकी अनुपस्थिति में उप-प्रधान, ग्राम सभा तथा ग्राम पंचायत की बैठक की अध्यक्षता करेंगे तथा ऐसी किसी बैठक में दोनों के अनुपस्थित रहने की स्थिति में नियम 46-ए के अंतर्गत नामित सदस्य बैठक की अध्यक्षता करेंगे अथवा यदि प्रधान ने ऐसा कोई नामांकन नहीं किया है तो विहित प्राधिकारी किसी सदस्य को

नामित कर सकता है। नियमावली 1947 के नियम 47 में प्रधान के कर्तव्यों का प्रावधान है। प्रधान का एक कर्तव्य ग्राम सभा और ग्राम पंचायत की सभी बैठको का आयोजन और उनकी अध्यक्षता करना है, तथा दूसरा बैठक में कामकाज के संचालन को नियंत्रित करना और व्यवस्था बनाए रखना है।

8. नियम 1947 के नियम 35-ए में ग्राम सभा की बैठकों की प्रक्रिया का प्रावधान है, जो नीचे उद्धृत है:-

"35-ए. ग्राम सभा की बैठक की प्रक्रिया.- *अधिनियम की धारा 11 के प्रावधान के अधीन, ग्राम सभा की बैठक में निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन किया जाएगा:*

(क) बैठक की कार्यवाही को पढ़ा जाएगा और पुष्टि की जाएगी और फिर प्रधान द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे।

(ख) सूचना और विचार के लिए पिछली बैठक के बाद से बीते समय का लेखा-जोखा, प्रस्तुत किया जाएगा।

(ग) इसके बाद अन्य विषय पर, यदि कोई हों, तो विचार किया जाएगा।"

9. उपर्युक्त के दृष्टिगत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ग्राम सभा की बैठक प्रधान द्वारा बुलाई जाएगी तथा वह बैठक की अध्यक्षता करेगा तथा बैठक में कामकाज के संचालन को भी नियंत्रित करेगा। बैठक की अध्यक्षता प्रधान तथा उसकी अनुपस्थिति में उप-प्रधान तथा उसकी अनुपस्थिति में प्रधान या निर्धारित प्राधिकारी द्वारा नामित सदस्य करेगा। जैसा भी प्रकरण हो, बैठक के बाद, बैठक की कार्यवाही को प्रधान द्वारा पढ़ा जाएगा और उसकी पुष्टि की जाएगी तदोपरांत उस पर प्रधान द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे। इसलिए प्रधान द्वारा न केवल बैठक की कार्यवाही की अध्यक्षता तथा नियंत्रण किया जाएगा, अपितु बैठक के बाद प्रधान द्वारा उसकी पुष्टि भी की जाएगी तथा उस पर हस्ताक्षर भी किए जाएंगे।

10. जब की बैठक की कार्यवाही के लिए वैधानिक प्रावधान है, तो कोई प्रस्ताव जिसकी पुष्टि प्रधान द्वारा नहीं की गई है और उस पर हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं, उसे एक मान्य प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता है और ऐसा किया गया प्रस्ताव शून्य होगा। स्वीकार्य रूप से दिनांक 11.10.2017 की बैठक की कार्यवाही की पुष्टि प्रधान द्वारा नहीं की गई है और उस पर हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं, इसलिए इसे एक मान्य प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता है और यह शून्य है।

11. यह भी संज्ञान में आया है कि गांव के ग्राम प्रधान ने स्वयं इस संबंध में 11.10.2017 को ही तहसीलदार, लालगंज, प्रतापगढ़ तथा उप-विभागीय अधिकारी, लालगंज को लिखित शिकायत कर पुनः मतदान की अनुमति मांगी थी। तहसीलदार ने 18.10.2017 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें 304 व्यक्तियों की सूची संलग्न थी, जिनका विचार था कि चुनाव वैध है और 340 व्यक्तियों का विचार था कि चुनाव अवैध था और वे गुप्त मतदान के पक्ष में थे।

12. उपरोक्त के दृष्टिगत, दिनांक 11.10.2017 का प्रस्ताव मान्य प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता है, इसलिए इस पर कार्रवाई

नहीं की जा सकती है। इसलिए उक्त प्रस्ताव के अनुसरण में निर्णय लेने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। तत्पश्चात् एक और प्रस्ताव भी रखा गया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 5 के नाम की संस्तुति की गई और उसे नियुक्त कर दिया गया। इसलिए 11.10.2017 के उक्त प्रस्ताव, जिसकी पुष्टि प्रधान द्वारा नहीं की गई है और जिस पर हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं तथा जो विधि के अनुसार नहीं है, पर निर्णय लेने के लिए कोई भी निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। याचिका भ्रामक और निराधार रूप में प्रस्तुत की गई है और यह निरस्त किये जाने योग्य है।

13. तदनुसार, रिट याचिका **निरस्त** की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं ।

(2023) 5 ILRA 1492

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.04.202

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

रिट-सी संख्या 34819 / 2022

प्रबंधन समिति, महर्षि दयानंद सरस्वती वैदिक शिक्षा समिति, मेरठ एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री ब्रिजेश कुमार, श्री सौरभ त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री अवनीश त्रिपाठी

सिविल कानून- भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226-यूपी शैक्षिक संस्थाएं (परिसंपत्तियों के अपव्यय की रोकथाम) अधिनियम, 1974- धारा 5: रिट याचिका- डीएम द्वारा पारित आदेश के खिलाफ, इंटरमीडिएट कॉलेज से डिग्री कॉलेज को भूमि हस्तांतरित करने से इनकार - न्यायालय ने पाया कि भूमि हस्तांतरण के लिए अधिनियम की धारा 5 के तहत अनुमति प्राप्त नहीं की गई है - आयोजित, अधिनियम, 1974 के प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य हैं और उक्त प्रावधानों के उल्लंघन में किए गए भूमि हस्तांतरण शुरू से ही शून्य हैं - इसलिए न्यायालय ने विवादित आदेश को बरकरार रखा और वाद को शिक्षा निदेशक, लखनऊ को तीन महीने की अवधि के भीतर कानून के अनुसार भूमि परिसंपत्तियों के हस्तांतरण के लिए प्रतिनिधित्व तय करने के लिए भेज दिया - रिट याचिका का निस्तारण किया गया। (पैरा - 6, 12)

रिट याचिका निस्तारित (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

मेसर्स जी.एस. कॉन्वेंट स्कूल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 (11) एडीजे 274

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. दिनांक 24/02/2022 के विवादित आदेश द्वारा, जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ ने डिग्री कॉलेज की स्थापना के लिए भूमि की आवश्यकताओं के संबंध में

अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने से इनकार कर दिया है। विवादित आदेश में पाया गया है कि यह भूमि याचिकाकर्ता-प्रबंधन समिति द्वारा संचालित इंटरमीडिएट कॉलेज की है और इसे यूपी शैक्षिक संस्थान (संपत्ति अपव्यय निवारण) अधिनियम, 1974 (जिसे आगे 'अधिनियम', 1974 के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 5 के तहत डिग्री कॉलेज को हस्तांतरित किया गया था।

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं। याचिकाकर्ता प्रबंधन समिति द्वारा संचालित इंटरमीडिएट कॉलेज की भूमि अधिनियम, 1974 की धारा 5 के तहत पूर्वोक्त हस्तांतरण को प्रभावी करने के लिए पूर्व अनुमोदन के बिना डिग्री कॉलेज को हस्तांतरित कर दी गई थी।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री सौरभ त्रिपाठी की सहायता से विद्वान वकील श्री प्रभाकर अवस्थी ने अपनी सामान्य निष्पक्षता में कहा कि अधिनियम, 1974 की धारा 5 के तहत अनुमति प्राप्त नहीं की गई है। हालांकि, उनका तर्क है कि चूंकि संस्थान एक डिग्री कॉलेज है और इंटरमीडिएट कॉलेज द्वारा केवल अतिरिक्त भूमि हस्तांतरित की गई थी, इसलिए किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं थी।

4. इसके विपरीत, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आई.पी. श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि प्रावधान अनिवार्य प्रकृति का है और उक्त प्रावधान के विरुद्ध भूमि हस्तांतरण निरस्त किये जाने योग्य है।

5. शैक्षणिक संस्थानों की सबसे महत्वपूर्ण संपत्ति भूमि जोत है, और इसका सीधा असर वहां दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ता है। आज शैक्षणिक संस्थानों की भूमि संपत्ति लगातार अलगाव के खतरे में है। प्रबंधन अक्सर लाभ कमाने के लिए कोनों में कटौती करता है और भूमि जोत सबसे पहले हताहत होती है। लंबे समय से संस्थानों की भूमि संपत्ति के अपव्यय ने यूपी राज्य के विभिन्न स्कूलों और कॉलेजों से खेल के मैदानों को लगभग गायब कर दिया है [देखें: **मेसर्स जीएस कॉन्वेंट स्कूल बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य ने 2019 (11) एडीजे 274 पर रिपोर्ट की**]

6. शैक्षणिक संस्थानों की भूमि परिसंपत्तियों के ह्रास से समग्र शैक्षणिक मानकों में गिरावट आती है। इंटरमीडिएट कॉलेज की भूमि परिसंपत्तियों के हस्तांतरण को उत्तर प्रदेश शैक्षणिक संस्थान (संपत्तियों के अपव्यय की रोकथाम) अधिनियम, 1974 द्वारा नियंत्रित और विनियमित किया जाता है। इस कानून का उद्देश्य शैक्षणिक संस्थान की भूमि परिसंपत्तियों के अपव्यय की समस्या को रोकना है। अधिनियम, 1974 के उक्त प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं और इनका कड़ाई से अनुपालन किया

जाना चाहिए। उक्त प्रावधानों के उल्लंघन में शैक्षणिक संस्थानों की भूमि और संपत्ति का हस्तांतरण शुरू से ही अमान्य है। समस्या की गंभीरता को देखते हुए विधानमंडल शैक्षणिक संस्थानों की परिसंपत्तियों के अपव्यय को हतोत्साहित करने के लिए अधिक कठोर प्रावधानों और अनुकरणीय दंडों पर विचार कर सकता है।

7. अधिनियम, 1974 की धारा 5 का उल्लंघन सिद्ध होता है। इंटरमीडिएट कॉलेज की भूमि का डिग्री कॉलेज के पक्ष में हस्तांतरण दोषपूर्ण और शून्य है।

8. इस परिप्रेक्ष्य में, प्रतिवादी संख्या 3-जिला मजिस्ट्रेट, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 24/02/2022 के आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। तदनुसार रिट याचिका में मांगी गई राहत अस्वीकार की जाती है।

9. इस स्तर पर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री प्रभाकर अवस्थी ने श्री सौरभ त्रिपाठी की सहायता से तर्क दिया कि संस्थान के पास इंटरमीडिएट कॉलेज के साथ-साथ डिग्री कॉलेज चलाने के लिए पर्याप्त भूमि संपत्ति है। उन्होंने यह भी कहा कि संस्थान को प्रस्तावित डिग्री कॉलेज के पक्ष में उपरोक्त भूमि जोत के हस्तांतरण के लिए आवश्यक अनुमोदन के लिए आवेदन करना चाहिए। उन्होंने राहत को फिर से परिभाषित किया और प्रार्थना की कि याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर निर्धारित समय अवधि के भीतर निर्णय लिया जाए।

10. राज्य प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आई.पी. श्रीवास्तव को उपरोक्त प्रार्थना पर कोई गंभीर आपत्ति नहीं है।

11. प्रतिवादी संख्या 2-विश्वविद्यालय के विद्वान वकील श्री अवनीश त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया कि संस्था को मान्यता तभी दी जा सकती है जब भूमि परिसंपत्तियों के संबंध में अनापत्ति प्रमाण पत्र की उपलब्धता सहित सभी प्रासंगिक पात्रता मानदंड उपलब्ध कराए जाएं।

12. इसके मद्देनजर, मामला शिक्षा निदेशक, लखनऊ को निम्नलिखित निर्देशों को क्रियान्वित करने हेतु प्रेषित किया जाता है:

1. प्रबंधन की याचिकाकर्ता समिति इंटरमीडिएट कॉलेज द्वारा डिग्री कॉलेज को भूमि परिसंपत्तियों के हस्तांतरण की मंजूरी प्राप्त करने के लिए सभी सहायक दस्तावेजों के साथ एक नया आवेदन करेगी, जिसमें भूमि जोत में संरचनाओं के मौजूदा नक्शे और डिग्री कॉलेज के लिए प्रस्तावित संरचनाएं भी शामिल होंगी।

2. शिक्षा निदेशक, लखनऊ संस्था का भौतिक निरीक्षण करवाएंगे। निरीक्षण में मौजूदा संरचनाओं की

सत्यापित

तुलना अभ्यावेदन में उल्लिखित संरचनाओं से भी की जाएगी।

3. शिक्षा निदेशक, लखनऊ इस आदेश की प्रमाणित प्रति तथा प्रत्यावेदन की नई प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार भूमि परिसम्पत्तियों के हस्तांतरण हेतु प्रत्यावेदन पर निर्णय लेंगे।

4. यह सुनिश्चित किया जाएगा कि भूमि हस्तांतरण के बाद भी दोनों संस्थानों में अलग-अलग खेल के मैदान (निर्धारित आयामों के) उपलब्ध हों।

उपर्युक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1495

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट-सी संख्या 41480/1999

मेसर्स शालीमार पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड, मुजफ्फरनगर ...याचिकाकर्ता

बनाम

विशेष न्यायाधीश/ई.सी. अधिनियम, मुजफ्फरनगर एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रमोद कुमार जैन, श्री बी.सी. राय, श्री दीपक कुमार पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी, श्री निपेन्द्र मिश्रा, श्री पी.के. शुक्ला, श्री आर.के. शुक्ला, श्री मनोज कुमार द्विवेदी

सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226- विद्युत अधिनियम, 1910 - धारा 26(vi), - मध्यस्थता अधिनियम, 1996 -धारा 34 -रिट याचिका- उस आदेश का विरुद्ध योजित है जिसके द्वारा विशेष न्यायाधीश ईसी अधिनियम ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत आवेदन को स्वीकार करते हुए प्रतिवादी विभाग द्वारा स्वीकृत भार के लिए बिजली की आपूर्ति के लिए पक्षों के बीच एक समझौता किया था - याचिकाकर्ता ने विद्युत अधिनियम की धारा 26(vi) के अनुसार प्रतिवादी द्वारा उठाए गए बिजली बिलों को चुनौती दी थी, जो दोषपूर्ण मीटर के मामले में विद्युत निरीक्षक को संबोधित करना आवश्यक है - सिविल वाद लंबित - न्यायालय ने पाया कि विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26(6) के तहत विशिष्ट प्रावधान समझौते में सामान्य मध्यस्थता खंड पर प्रभावी है, और इसलिए, मामले को समाधान के लिए विद्युत निरीक्षक को भेजा जाना चाहिए - आयोजित, विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26(6) के अनुसार विवाद का समाधान विद्युत निरीक्षक द्वारा किया जाना चाहिए, और याचिकाकर्ता को सिविल मुकदमा वापस लेने और समाधान के लिए विद्युत निरीक्षक से संपर्क करने का निर्देश दिया - तदनुसार निर्देश जारी किया गया - रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है। (पैरा 13, 14, 15, 16)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

अनुवादित

बेलवाल स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम यू.पी. स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड एवं अन्य, 1997 (6) एस.सी.सी. 740.

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.सी. राय के साथ-साथ श्री दीपक कुमार पाण्डेय तथा प्रतिवादी संख्या 2 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी के ब्रीफ होल्डर विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार द्विवेदी को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, ई.सी. अधिनियम, मुजफ्फरनगर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.07.1999 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत प्रतिवादियों द्वारा विवाद को मध्यस्थ के पास स्थानांतरित करने के लिए मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत आवेदन को अनुमति दी गई थी।

3. तथ्यों का संक्षिप्त सार यह है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी ने 470 केवीए के स्वीकृत भार के लिए बिजली की आपूर्ति के लिए दिनांक 15.02.1985 को एक समझौता किया था। याचिकाकर्ता एक पेपरमिल है जिसने कागज निर्माण के लिए मुजफ्फरनगर में अपनी यूनिट स्थापित की है।

4. यह विवाद प्रतिवादी विद्युत विभाग द्वारा दिनांक 05.06.1985 और 07.06.1985 को जारी किए गए बिलों से संबंधित है, जिनकी राशि क्रमशः 41527.60/- रुपये और 1,07,605.50/- रुपये है। उक्त बिलों में कहा गया था कि परिसर में लगा मीटर खराब था तथा बिजली की सही आपूर्ति दर्ज नहीं कर रहा था, इसलिए उक्त बिल जारी किए गए। याचिकाकर्ता ने उक्त बिलों पर विवाद किया और उनका मत था कि विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26 (vi) के प्रकाश में, यदि विद्युत मीटर दोषपूर्ण है, तो 1910 के अधिनियम के अनुसार एकमात्र उपाय यह है कि मामले को विद्युत निरीक्षक को भेजा जाना चाहिए, जो उक्त अधिनियम के तहत यह निष्कर्ष निकालने वाला एकमात्र प्राधिकारी है कि मीटर दोषपूर्ण है या नहीं और उसके बाद ही विद्युत निरीक्षक द्वारा बिल जारी किया जा सकता है। यह दलील दी गई कि निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना बिजली बिल जारी नहीं किया जा सकता।

5. चूंकि याचिकाकर्ता की शिकायत का निवारण नहीं किया गया और उपरोक्त बिलों से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, ई.सी. अधिनियम, मुजफ्फरनगर के समक्ष सिविल वाद संख्या 288/1985 दायर किया। प्रतिवादियों को नोटिस जारी किए गए, जिन्होंने सिविल न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर याचिकाकर्ता द्वारा किए गए दावे का विरोध करते हुए अपने लिखित बयान दाखिल किए थे।

6. याचिकाकर्ता के दावे पर आपत्ति जताने के अलावा, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए एक

आवेदन भी दिया गया था, क्योंकि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी के बीच हुए समझौते में मध्यस्थता की प्रक्रिया द्वारा समझौते से उत्पन्न विवादों का निर्णय लेने से संबंधित विशिष्ट खंड था। समझौते का खंड 20 इस प्रकार है:-

"(20) यदि इस करार के पक्षकारों के बीच इसमें निहित किसी उपबंध या खंड की व्याख्या या प्रभाव या उसके निर्माण या इस करार से किसी भी तरह संबंधित या इससे उत्पन्न होने वाले किसी अन्य मामले या उसके संचालन या उससे संबंधित किसी भी पक्षकार के अधिकार, कर्तव्य या दायित्व के संबंध में कोई प्रश्न या विवाद या मतभेद उत्पन्न होता है, तो ऐसे प्रश्न, विवाद या मतभेद को मध्यस्थ/अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद या उनके द्वारा नामित व्यक्ति को संदर्भित किया जाएगा और उक्त मध्यस्थ का पंचाट/निर्णय अंतिम होगा तथा पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा।

परंतु यदि प्रश्न, विवाद या मतभेद इस समझौते के अनुसार उपभोक्ता से वसूले जाने वाले किसी बकाया से संबंधित है या संबंधित है, तो ऐसे उपभोक्ता के कहने पर मध्यस्थता के लिए कोई संदर्भ तब तक नहीं किया जाएगा जब तक उपभोक्ता ने आपूर्तिकर्ता के पास मतभेद के विवाद में बकाया राशि जमा नहीं कर दी है या आपूर्तिकर्ता के पक्ष में ऐसी राशि की बैंक गारंटी नहीं दे दी है, जो उस तारीख से एक वर्ष की अवधि तक वैध होगी, जिस तारीख को निर्णय अंतिम हो जाता है या बकाया राशि का भुगतान हो जाता है, जो भी पहले हो।"

7. याचिकाकर्ताओं ने मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए प्रतिवादी द्वारा की गई प्रार्थना पर आपत्ति जताई थी और विशिष्ट दलील दी गई थी कि विद्युत अधिनियम, 1910 के तहत एक विशिष्ट प्रावधान मौजूद है, जहां वर्तमान मामले में उत्पन्न विवाद 1910 के अधिनियम की धारा 26 (vi) के तहत संदर्भित किया जा सकता है और उक्त समझौते के तहत मध्यस्थता की सामान्य शक्ति को लागू करने के बजाय इसे विद्युत निरीक्षक को भेजा जाना चाहिए था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में **बेलवाल स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य, 1997 (6) एससीसी 740** के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"अभिव्यक्ति 'चेक मीटर' का कोई विशेष महत्व या कानूनी प्रभाव नहीं है, जिसके लिए कोई प्रतिबंध हो कि यदि लाइसेंसधारी दोषपूर्ण मीटर को चेक मीटर द्वारा प्रतिस्थापित करने का इरादा रखता है तो चेक मीटर को परिवर्तित मीटर नहीं माना जा सकता है। जब विवाद को विद्युत निरीक्षक द्वारा निर्णय के लिए भेजा जाता है और लाइसेंसधारी को चेक मीटर के संदर्भ में अपना मामला मिल जाता है, तो आक्षेपित मीटर के साथ-साथ चेक मीटर की सत्यता सुनिश्चित करना विद्युत निरीक्षक के लिए स्वतंत्र होगा। विद्युत अधिनियम की धारा 26(6) में संशोधन से पूर्व विद्युत निरीक्षक

या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से नियुक्त सक्षम व्यक्ति का यह वैधानिक कर्तव्य था कि वह पहले यह निर्धारित करे कि संबंधित मीटर दोषपूर्ण है या नहीं और उसके बाद उस समय के दौरान खपत की गई विद्युत की मात्रा का अनुमान लगाए, जब विद्युत निरीक्षक या सक्षम व्यक्ति की राय में मीटर 'सही नहीं रहा होगा'। धारा 26 की उपधारा (6) में संशोधन के पश्चात् विद्युत निरीक्षक मीटर की शुद्धता के बारे में विवाद का निर्णय करने वाला एकमात्र वैधानिक प्राधिकारी है, यदि ऐसा विवाद किसी भी पक्ष द्वारा उठाया जाता है। यदि विद्युत निरीक्षक किसी संदर्भ में यह निष्कर्ष निकालता है कि मीटर सही होना बंद हो गया है, तो उक्त निरीक्षक का यह वैधानिक कर्तव्य है कि वह उपभोक्ता को आपूर्ति की गई ऊर्जा की मात्रा या आपूर्ति में निहित विद्युत ऊर्जा का अनुमान लगाए, जो छह महीने से अधिक समय तक नहीं होगी, क्योंकि मीटर, ऐसे निरीक्षक की राय में, सही नहीं रहा है।"

9. वर्तमान मामले में ध्यान आकर्षित करने वाला प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता को समझौते के खंड 20 के तहत मध्यस्थता के लिए उपाय के लिए भेजा जाना चाहिए या मामले को विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26 (vi) के अनुसार विद्युत निरीक्षक को भेजा जाना चाहिए।

10. उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26 की उपधारा 6 के प्रावधानों पर गौर करना आवश्यक है, जिसमें निम्नानुसार प्रावधान है:-

"जहां इस बारे में कोई मतभेद या विवाद उत्पन्न होता है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई मीटर सही है या नहीं, वहां मामले का निर्णय किसी भी पक्षकार के आवेदन पर विद्युत निरीक्षक द्वारा किया जाएगा; और जहां मीटर, ऐसे निरीक्षक की राय में सही नहीं रह गया है, वहां ऐसा निरीक्षक उपभोक्ता को आपूर्ति की गई ऊर्जा की मात्रा या आपूर्ति में निहित विद्युत मात्रा का अनुमान, छह माह से अधिक नहीं, ऐसे समय के दौरान लगाएगा, जब मीटर, ऐसे निरीक्षक की राय में, सही नहीं रहा होगा; किन्तु जैसा पूर्वोक्त है उसके सिवाय, मीटर का रजिस्टर, कपट के अभाव में, ऐसी मात्रा या मात्रा का निर्णायक सबूत होगा।

परन्तु यह कि इस उपधारा के अधीन विद्युत निरीक्षक को आवेदन करने से पूर्व लाइसेंसधारी या उपभोक्ता को दूसरे पक्ष को ऐसा करने के अपने इरादे की कम से कम सात दिन की सूचना देनी होगी।"

11. उपर्युक्त वैधानिक प्रावधानों के अलावा, यह भी देखा गया है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी के बीच किए गए समझौते में ऐसी स्थिति में विवादों के समाधान का भी प्रावधान है जब बिजली मीटर दोषपूर्ण पाया गया हो। समझौते के खंड 10 उप-खंड (सी) में यह प्रावधान है कि:-

(सी) यदि उपभोक्ता को आपूर्तिकर्ता के मीटर/मीटरों की सटीकता पर विवाद हो, तो वह

निर्धारित शुल्क का भुगतान करते हुए नोटिस देकर आपूर्तिकर्ता से या अधिनियम की धारा 26 की उपधारा (6) के अनुसार राज्य सरकार के विद्युत निरीक्षक से उसका परीक्षण करा सकता है। यदि आपूर्तिकर्ता द्वारा मीटर का परीक्षण किया जाता है और भारतीय विद्युत नियम, 1956 द्वारा निर्धारित सटीकता की सीमा से परे गलत पाया जाता है, तो परीक्षण की लागत और उससे संबंधित सभी उचित व्यय आपूर्तिकर्ता द्वारा वहन किए जाएंगे, और बिल की राशि, विवाद उत्पन्न होने वाले माह से पूर्व के तीन महीनों के मीटर रीडिंग के संबंध में किए गए परीक्षण के परिणाम के अनुसार समायोजित की जाएगी, जिसमें विवादित माह के दौरान कार्य करने की स्थिति, सटीकता आदि को ध्यान में रखा जाएगा, और विवादित माह के दौरान, और उन तीन महीनों के दौरान, जब मीटर/मीटर भारतीय विद्युत नियम, 1956 या उसके किसी अन्य वैधानिक संशोधन में निर्धारित सीमाओं के भीतर सही पाए जाते हैं, तो उपभोक्ता द्वारा भुगतान किया गया शुल्क आपूर्तिकर्ता को जब्त कर लिया जाएगा।"

12. उपर्युक्त खंड के अवलोकन से यह पता चलता है कि समझौते में यह शर्त रखी गई है कि यदि बिजली मीटर के संबंध में कोई विवाद है, तो उसे विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26 (vi) के अनुसार हल किया जा सकता है।

13. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक विशिष्ट प्रावधान एक सामान्य प्रावधान पर हावी होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि कोई विशेष विवाद जो वर्तमान मामले में उत्पन्न हुआ है, तो मामले को विद्युत निरीक्षक को संदर्भित करने के बाद पर्याप्त रूप से हल किया जा सकता है। धारा 26 (vi) के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि विद्युत निरीक्षक को एक संदर्भ दिया जाना चाहिए जो बिजली मीटर के बारे में अपनी राय देगा और उपभोक्ता को आपूर्ति की गई बिजली की मात्रा के बारे में भी अनुमान लगाएगा।

14. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विवाद के समाधान के लिए एक विशिष्ट प्रावधान मौजूद है और यह किसी भी पक्ष द्वारा विवादित नहीं है, मामले को विद्युत निरीक्षक द्वारा संदर्भित और हल किया जा सकता है और समझौते में भी इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है और इसलिए यह दोनों को बाध्य करता है। पक्षकारों, इस न्यायालय का स्पष्ट मत है कि विवाद को धारा 26 (vi) के संदर्भ में हल किया जा सकता है।

15. विद्युत विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता इस प्रस्ताव पर विवाद नहीं करते हैं।

16. उपरोक्त के आलोक में, याचिकाकर्ता का तर्क बलवान है और तदनुसार पक्षकारों की सहमति से, इस रिट याचिका का निस्तारण निम्नलिखित शर्तों के साथ किया जा रहा है:

(i) इस तथ्य पर विचार करते हुए कि मामले को विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 26 की उपधारा 6 के अनुसार विद्युत निरीक्षक द्वारा हल किया जाना चाहिए, यह प्रावधान किया जाता है कि याचिकाकर्ता विशेष न्यायाधीश, ई.सी. अधिनियम, मुजफ्फरनगर के समक्ष लंबित सिविल वाद संख्या 288/1985 को वापस लेने का वचन देता है।

(ii). वापसी के लिए आवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात, याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा नियुक्त संबंधित विद्युत निरीक्षक के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत करना होगा, जिसमें अगले एक माह के भीतर दोषपूर्ण मीटर संख्या 1418020 के संबंध में अपनी सभी शिकायतें तथा दिनांक 05.06.1985 और 07.06.1985 के बिलों के बारे में जानकारी देनी होगी। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन/दावे की प्राप्ति पर, विद्युत निरीक्षक मीटर की स्थिति तथा उक्त दोनों बिलों से संबंधित अवधि के दौरान खपत की गई बिजली की मात्रा का निर्धारण करेगा तथा अगले तीन महीनों के भीतर कानून के अनुसार आदेश पारित करेगा।

(iii). यह प्रावधान किया गया है कि जब तक विद्युत निरीक्षक द्वारा आदेश पारित नहीं किया जाता है, तब तक याचिकाकर्ता से दिनांक 05.06.1985 और 07.06.1985 के बिलों के अनुसरण में कोई वसूली नहीं की जाएगी।

(iv). यह संरक्षण केवल इस न्यायालय के निर्देशानुसार विद्युत निरीक्षक द्वारा उचित आदेश पारित किये जाने तक ही उपलब्ध रहेगा।

17. उपर्युक्त निर्देश के आलोक में, रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1499

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट-सी संख्या 45294/2010

अनिल कुमार गुप्ता @ राजेंद्र गुप्ता एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आर.के. गुप्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 अनुच्छेद-226 - स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47, 47-ए, 47(ए)(3), 47-ए/33, 48-ए, 56(1-ए) एवं 56(2) - उत्तर प्रदेश संपत्ति का स्टाम्प मूल्यांकन नियम, 1997- नियम 7, 7(2)(सी), 7(3)(सी) - कृषि भूमि के विक्रय विलेख- स्टाम्प ड्यूटी में कमी के लिए नोटिस, जबकि एक शिकायत स्वीकार की गई कि, कृषि भूखंड खरीदा गया था, लेकिन दो मंजिला घर के साथ, जिसका मूल्यांकन में शामिल नहीं किया गया था- वसूली उद्धरण -अपील - एक विशिष्ट तर्क के साथ कि आरोपित वसूली आदेश जारी करने से पहले कोई स्वतंत्र जांच या निरीक्षण नहीं किया गया था -अपील खारिज कर दी गई- रिट याचिका -निस्संदेह, जैसा कि स्वयं आयुक्त के आदेश में दर्ज है, ऐसा अनुरोध याचिकाकर्ता द्वारा उसके द्वारा प्रस्तुत अपील में किया गया था- जब ऐसा अनुरोध किया जाता है, तो संबंधित अधिकारियों के लिए नियमों की धारा 7(3)(सी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करना और पक्षों को उचित नोटिस देने के बाद संपत्ति का निरीक्षण करना अनिवार्य है और उसके बाद ही मामले को आगे बढ़ाना है- यदि पूर्वोक्त प्रयोग नहीं किया गया है तो उस व्यक्ति में निहित मूल्यवान अधिकार खो गया है जिसे नोटिस दिया गया है और उसके द्वारा मूल्यवान अधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है

और निर्धारित प्रक्रिया का अक्षरशः पालन किया जाना आवश्यक है - और याचिकाकर्ता द्वारा आवेदन किए जाने के बाद भी संपत्ति का निरीक्षण नहीं करना स्पष्ट रूप से मनमाना और अवैध है - इसलिए, मामला वापस भेज दिया जाता है अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट जो तदनुसार जारी किए गए कानून के अनुसार मामले में नए सिरे से कार्यवाही करेंगे, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (पैरा 13, 15, 16)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. वसी उर रहमान एवं अन्य बनाम कमिश्नर मुरादाबाद मंडल एवं अन्य, (रिट-सी संख्या 47533/2010 निर्णय दिनांक 26.2.2015)
2. चिरंजी लाल (डॉ.) बनाम हरि दास (2005) 10 एससीसी 746,
3. रमेश चंद बंसल बनाम जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, 4(1999) 5 एससीसी 62,
4. आगरा सिटी रियल स्टेट डेवलपमेंट आर्गेनाइजेशन, आगरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) 2003 (2) एसएसी 361,
5. विजय कुमार एवं अन्य बनाम कमिश्नर, 2008(3) एडब्ल्यूसी 299 ऑल.,
6. रत्ना शंकर द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 ऑल 100,

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री आर. के. गुप्ता के साथ-साथ प्रतिवादी क्रमांक 1 से 4 के विद्वान स्थायी वकील को सुना गया।
2. याचिकाकर्ता ने सहायक स्टाम्प आयुक्त/कलेक्टर, स्टाम्प, फ़तेहपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.3.2008 के साथ-साथ अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन), इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.11.2009 को चुनौती दी है, जिससे उनकी अपील खारिज कर दी गई है। याचिकाकर्ता ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 56 (1-ए) के तहत आवेदन किया है। उन्होंने उन परिणामी आदेशों को भी चुनौती दी है जिसमें कम स्टाम्प शुल्क की वसूली के लिए दिनांक 26.7.2010 को वसूली उद्धरण जारी किया गया है।
3. याचिकाकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 5 ने 21 फरवरी, 2007 को पंजीकृत बिक्री पत्र के माध्यम से गाटा संख्या 863 की 0.0405 वर्ग मीटर भूमि बेची थी और उसने विचार पर पर्याप्त अदालत शुल्क का भुगतान किया है। जैसा कि विक्रय पत्र में उल्लिखित है, पार्टियों के बीच सहमति हुई थी। सहायक स्टाम्प आयुक्त/कलेक्टर स्टाम्प ड्यूटी ने याचिकाकर्ता को इस आधार पर मामला दर्ज करने के बाद नोटिस जारी किया कि याचिकाकर्ता ने उक्त भूखंड के पंजीकरण के लिए पर्याप्त स्टांप शुल्क का भुगतान नहीं किया

था और नोटिस जारी किया गया था कि घाटे की राशि याचिकाकर्ता से क्यों नहीं वसूली जाए। याचिकाकर्ता ने उक्त नोटिस का जवाब दिया था और अपना जवाब सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, सदर, फतेहपुर को प्रस्तुत किया था।

4. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने फूल सिंह के नाम पर कृषि भूमि खरीदी है और राम सजीवन नामक व्यक्ति के आदेश पर झूठी शिकायत के आधार पर कार्यवाही शुरु की गई है। उन्होंने आगे कहा कि स्टांप शुल्क का पर्याप्त भुगतान कर दिया गया है और इसलिए उन्होंने प्रार्थना की कि उन्हें जारी किया गया नोटिस खारिज कर दिया जाए। अपर जिलाधिकारी (वित एवं राजस्व) ने याची के जवाब पर विचार किया और उनके बचाव को खारिज कर दिया और इस तथ्य को बरकरार रखा कि याचिकाकर्ता ने स्टांप शुल्क का पर्याप्त भुगतान नहीं किया था। उन्होंने इस तथ्य को ध्यान में रखा कि विक्रय पत्र के अनुसार कृषि भूखंड खरीदा गया था, लेकिन मौके पर दो मंजिला मकान मौजूद था, जिसका मूल्यांकन विक्रय पत्र में शामिल नहीं किया गया था और तदनुसार याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान की गई स्टांप ड्यूटी में कमी थी।

5. याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), फतेहपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.3.2008 से व्यथित होकर स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 (2) के तहत आयुक्त, इलाहाबाद के समक्ष अपील दायर की। आयुक्त ने भी याचिकाकर्ता द्वारा की गई याचिका में कोई मेरिट नहीं पाई और दिनांक 30.11.2009 के आदेश के माध्यम से अपील को खारिज करके अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), फतेहपुर के आदेश की पुष्टि की।

6. अधिकारियों के दोनों आदेशों की आलोचना करते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि दोनों संबंधित अधिकारियों ने यूपी स्टाम्प अधिनियम के साथ-साथ उत्तर प्रदेश स्टाम्प (संपत्तियों का मूल्यांकन), नियम, 1997 (इसके बाद 1997 की नियमावली के रूप में संदर्भित) की धारा 47-ए के तहत स्थापित प्रक्रिया का पालन नहीं किया है। उनका कहना है कि पूरी कार्यवाही केवल राम सजीवन नामक व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के आधार पर शुरु की गई थी और किसी भी तथ्य का पता लगाए बिना उत्तरदाताओं ने इस आधार पर आगे बढ़ना शुरू कर दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा खरीदे गए भूखंड पर दो मंजिला घर मौजूद था और परिणामस्वरूप वहां कोर्ट फीस में कमी थी. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने उत्तरदाताओं से 1997 के नियमों की धारा 7(2) (सी) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पार्टियों को उचित नोटिस के बाद

संपति का निरीक्षण करने का अनुरोध किया था, लेकिन ऐसा कोई निरीक्षण नहीं किया गया और उत्तरदाताओं ने आगे बढ़ना शुरू कर दिया। याचिकाकर्ता की दलील को खारिज कर दिया और याचिकाकर्ता द्वारा पंजीकृत किए जाने वाले उक्त दस्तावेज में स्टांप शुल्क में कमी को बरकरार रखा। अपनी दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि उन्होंने अपनी अपील में आयुक्त के समक्ष विशिष्ट दलील दी थी, जहां मामले के इस पहलू को उनके द्वारा विधिवत दर्ज किया गया था कि याचिकाकर्ता ने उक्त प्लॉट के मामले की स्वतंत्र जांच निरीक्षण की मांग की है और उसके बाद ही अपीलीय प्राधिकारी को मामले में आगे बढ़ना चाहिए। याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई दलीलों पर विचार किए बिना आयुक्त ने अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), फतेहपुर के आदेश को बरकरार रखा तथा स्वयं कदाचार किया तथा नियमावली 1997 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत कार्यवाही की है।

7. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी वकील ने रिट याचिका का विरोध किया है। उनका कहना है कि संबंधित अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों में कोई खामी नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा खरीदे गए भूखंड पर एक दो मंजिला इमारत मौजूद थी, जिसका विक्री विलेख में खुलासा नहीं किया गया था और परिणामस्वरूप जब संबंधित अधिकारियों ने इस पर ध्यान दिया तो याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया। नोटिस के तहत रखा गया और कार्यवाही स्टाम्प अधिनियम की धारा 48 (ए) के तहत प्रावधानों के अनुसार सख्ती से शुरू और समाप्त की गई और इसलिए, उत्तरदाताओं द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया गया।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने मूल्यांकन आदेश के साथ-साथ स्टाम्प अधिनियम की धारा 47 ए के तहत पारित अपीलीय आदेश की आलोचना करते हुए प्रस्तुत किया है कि संपति पर कभी कोई निरीक्षण नहीं किया गया था और यदि निरीक्षण किया गया होता तो याचिकाकर्ता की उपस्थिति में वह यह प्रदर्शित करने की स्थिति में होता कि उसके द्वारा खरीदे गए भूखंड पर कोई इमारत मौजूद नहीं थी और इस संबंध में उसका कहना है कि उत्तरदाताओं ने 1997 के नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए कार्रवाई की है। नियम 7 1997 के नियों का (सी) संदर्भ प्राप्त होने पर या स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत स्वतः संज्ञान कार्रवाई प्रस्तावित होने पर प्रक्रिया प्रदान करता है। नियम 7 (2) (सी) में प्रावधान है कि कलेक्टर दस्तावेज के पक्षकारों को उचित

नोटिस देने के बाद संपत्ति का निरीक्षण कर सकता है।

9. अधिनियम का उद्देश्य किसी उपकरण या वाहन पर उचित स्टांप शुल्क एकत्र करना है। अधिकारियों पर इसका सही मूल्य ठीक से पता लगाने का दायित्व डाला गया है। किसी संपति का बाजार मूल्य एक गांव से दूसरे गांव, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न हो सकता है और यहां तक कि भूमि क्षेत्र के आकार और अन्य प्रासंगिक कारकों से भी भिन्न हो सकता है, जैसे प्रमुख भूमि-उपयोग। राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टि हालांकि प्रासंगिक है, अधिनियम के तहत बाजार मूल्य का एकमात्र निर्धारण कारक नहीं है। इसके अलावा प्राधिकारी के समक्ष कुछ सामग्री होनी चाहिए कि उस क्षेत्र में ऐसी संपति का संभावित मूल्य क्या है। ऐसा 'विश्वास करने का कारण' ठोस, प्रासंगिक और कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित होना चाहिए। 'कारण' और विश्वास के बीच एक समझदार संबंध होना चाहिए। इस तरह का विश्वास घूमती पूछताछ या अधिकारियों के 'संदेह के कारण' का विकल्प नहीं होना चाहिए।

10. याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई उपरोक्त आपतियों के आलोक में कलेक्टर के लिए 1997 के नियों के नियम 7 (3) (सी) के तहत शक्तियों का प्रयोग करना और याचिकाकर्ता की उपस्थिति में स्पॉट निरीक्षण करना आवश्यक था और उसके बाद भूमि के मूल्यांकन का आकलन करने के लिए धारा 47 ए के तहत आगे बढ़ना था।

11. इस न्यायालय ने 2010 की रिट संख्या 47533 **(वसी उर रहमान और अन्य बनाम आयुक्त मुरादाबाद डिवीजन और अन्य)** में 26.2.2015 को फैसला सुनाया है: -

"भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 राजस्व/स्टाम्प से संबंधित एक कानून है। इस प्रकार इसकी प्रयोज्यता अधिनियम की योजना तक ही सीमित है। स्टाम्प अधिनियम एक राजकोषीय उपाय है जिसे कुछ निश्चित वर्गों के लिखतों पर राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करने के उद्देश्य से लागू किया गया है।

यह राजस्व के मामले को खराब करने के लिए किसी वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है। अधिनियम के कड़े प्रावधान राजस्व के हित में बनाये गये हैं।

यह सामान्य ज्ञान की बात है कि अनुचित व्यवहार द्वारा इस तरह के कर्तव्य से बचने के लिए, कई बार किसी संपत्ति के कम मूल्यांकन या कम कीमत का उल्लेख बिक्री विलेख में किया जाता है। (चिरंजी लाल (डॉ.) बनाम हरि दास (2005) 10 एससीसी 746; रमेश चंद बंसल बनाम जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, 4(1999) 5 एससीसी 621 स्टांप अधिनियम

एक कर लगाने वाला कानून है और जहां तक कर लगाने वाले क़ानून का संबंध है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि इक्विटी का इसमें कोई स्थान नहीं है। कर के संबंध में उपधारणा में कुछ भी पढ़ने योग्य नहीं है, कुछ भी निहित नहीं है, (आगरा सिटी रियल स्टेट डेवलपमेंट ऑर्गनाइजेशन, आगरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) 2003 (2) एसएसी 361।

अधिनियम के तहत बाजार मूल्य को परिभाषित नहीं किया गया है, धारा 47-ए (3) के तहत कार्यवाही में "उस साधन को संदर्भित किया जाता है जिस पर संपति के बाजार मूल्य पर शुल्क लगाया जाता है", अनुच्छेद 23 देय स्टांप शुल्क का प्रावधान करता है कन्वेयंस जो अचल संपति के बाजार मूल्य को संदर्भित करता है जो ऐसे कन्वेयंस का विषय है।

अभिव्यक्ति कन्वेयंस में उल्लिखित बाजार मूल्य वह कीमत है जो एक इच्छुक क्रेता संपत्ति के लिए इच्छुक विक्रेता को भुगतान करेगा। विजय कुमार और अन्य बनाम आयुक्त, 2008(3) एडब्ल्यूसी 299 ऑल में अदालत ने "बाजार मूल्य" अभिव्यक्ति की व्याख्या कीः

"बाजार मूल्य' का मतलब है कि एक इच्छुक खरीदार क्या करेगा संपति को ध्यान में रखते हुए इच्छुक विक्रेता को भुगतान करें भूमि और विकास गतिविधियों को उपलब्ध लाभ- ऐसी स्थितियाँ जो आसपास के क्षेत्र में जा सकती हैं और उस भूमि की संभावनाएँ।"

फिर रत्ना शंकर द्विवेदी बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2012 ऑल 100 में कोर्ट ने कहा कि

"शब्द "बाजार मूल्य" को अधिनियम के तहत परिभाषित नहीं किया गया है। हालांकि कुछ उदाहरण हैं जो कुछ दिशानिर्देश देते हैं कि बाजार मूल्य कैसे और किस तरीके से निर्धारित किया जाएगा। आम सहमति यह है कि किसी का बाजार मूल्य संपत्ति वह कीमत है जो खुले बाज़ार में बेचने पर संपति को मिलेगी या मिलती होगी।"

अधिनियम की धारा 47-ए (3) के प्रावधानों को लागू करने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि कलेक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण है कि संपति के बाजार मूल्य के अनुसार मूल्य साधन में उचित रूप से निर्धारित नहीं किया गया है। एक बार जब लिखत पंजीकृत हो जाता है और कलेक्टर द्वारा निर्धारित स्टांप शुल्क का भुगतान कर दिया जाता है, तो यह साबित करने का भार कलेक्टर पर होता है कि बाजार मूल्य नियमों के तहत कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम से अधिक है। उप-रजिस्ट्रार या तहसीलदार की रिपोर्ट उस बोझ से मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं थी। **(विजय कुमार बनाम कमिश्नर, मेरठ मंडल) एआईआर 2008** सभी 176।

अभिव्यक्ति "विश्वास करने का कारण" अधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि का पर्याय नहीं है। विश्वास सद्भावना से होना चाहिए, यह महज दिखावा नहीं हो सकता। अदालत इस सवाल

की जांच करने के लिए स्वतंत्र है कि क्या विश्वास के कारणों का तर्कसंगत संबंध है या विश्वास के निर्माण से कोई प्रासंगिक संबंध है और वे धारा के उद्देश्य के लिए अप्रासंगिक नहीं हैं।

12. वर्तमान मामले में, कलेक्टर ने केवल स्थल निरीक्षण रिपोर्ट पर भरोसा किया है, जबकि दूसरी ओर, याचिकाकर्ता ने उक्त रिपोर्ट पर सवाल उठाया था और आपति दर्ज की थी, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों का निपटारा भी नहीं किया गया। कलेक्टर द्वारा और वह केवल स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर भूमि के मूल्यांकन का पता लगाने के लिए आगे बढ़े, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत चुनौती दी गई थी। भूमि के स्टांप मूल्यांकन का आकलन करते समय कलेक्टर के लिए वर्तमान परिस्थितियों में यह खुला था कि वह 1997 के नियमों के नियम 7 उप खंड 3 (सी) के तहत उनमें निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकते थे और भूमि का निरीक्षण करवा सकते थे। जैसा कि याचिकाकर्ता ने अपने आवेदन में अनुरोध किया था।

13. यह देखा गया है कि नियम 7 के अनुसार जब कलेक्टर द्वारा पक्षकारों को नोटिस जारी करने के बाद संदर्भ प्राप्त होता है तो उन्हें यह कारण बताने के लिए निर्देशित किया जाता है कि नियम 7 (3) के उप खंड 3 में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए लिखत में उद्धृत संपति का स्टांप शुल्क क्यों नहीं वसूला गया और लिखत के पर्थों को उचित नोटिस के बाद संपति का निरीक्षण किया जाए। निस्संदेह, जैसा कि स्वयं आयुक्त के आदेश में दर्ज है. ऐसा अनुरोध याचिकाकर्ता द्वारा उनके द्वारा की गई अपील में किया गया था। जब ऐसा अनुरोध किया जाता है तो संबंधित अधिकारियों के लिए यह अनिवार्य है कि वे 1997 के नियमों की धारा 7 (3) (सी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करें और पार्टियों को उचित नोटिस देने के बाद संपति का निरीक्षण करें और उसके बाद ही मामले में आगे बढ़ें। यदि उपरोक्त कार्यवाही नहीं की गई है तो जिस व्यक्ति को नोटिस दिया गया है उसमें निहित मूल्यवान अधिकार खो गया है और उसके द्वारा मूल्यवान अधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है और निर्धारित प्रक्रिया का अक्षरशः पालन करना आवश्यक है और इसके बाद भी संपति का निरीक्षण नहीं करना चाहिए। याचिकाकर्ता द्वारा किया गया आवेदन स्पष्ट रूप से मनमाना और गैरकानूनी है और धारा 7 (3) (सी) के तहत प्रदत शक्ति का प्रयोग किए बिना मामले को आगे बढ़ा रहा है, उत्तरदाताओं ने स्पष्ट रूप से अवैध और मनमाने तरीके से आगे बढ़ाया है, जबकि यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता स्टांप का भुगतान करने

के लिए उत्तरदायी था। यहां तक कि उक्त भूखंड पर बने डबल स्टोरी मकान के लिए भी शुल्क वसूला गया।

14. याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य पहलुओं की गुणदोष पर विचार किए बिना, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि लगाए गए आदेश अवैध और मनमाने हैं, जो 1997 के नियमों और तदनुसार आदेशों के तहत निर्धारित प्रावधानों का पालन किए बिना पारित किए गए हैं। स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए/33 के अंतर्गत 2007-08 के प्रकरण क्रमांक 12 में प्रतिवादी क्रमांक 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.3.2008 तथा अपील क्रमांक 7/21 में प्रतिवादी क्रमांक 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.11.2009 भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 (1-ए) के तहत 2008 के साथ-साथ वसूली उद्धरण दिनांक 26.7.2010 को रद्द कर दिया गया है।

15. मामला अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), फ़तेहपुर को वापस भेज दिया जाता है, जो कानून के अनुसार 1997 के नियमों के नियम 7 के तहत प्रदान की गई संपति का निरीक्षण करने के बाद मामले में नए सिरे से आगे बढ़ेंगे। उन्हें संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद कार्यवाही शीघ्रता से समाप्त करने का निर्देश दिया गया है। इस आदेश की प्रमाणित प्रति उनके समक्ष रखे जाने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर इस तरह की कार्यवाही समाप्त की जाए।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि इस न्यायालय के पहले के निर्देश के अनुसरण में स्टांप शुल्क की एक तिहाई कमी राशि उनके द्वारा पहले ही तहसीलदार, फतेहपुर के समक्ष जमा कर दी गई है। इसलिए, यह प्रावधान किया गया है कि उक्त जमा राशि को इस न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), फतेहपुर द्वारा पारित किए जाने वाले आदेश में समायोजित किया जाएगा।

17. रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1504

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 09.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र,

रिट-सी संख्या 58632/2017

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड...याचिकाकर्ता

बनाम

दीपक कुमार एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री तरूण वर्मा, श्री आशीष मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री राहुल जैन

सिविल कानून - भारतीय संविधान 1950 - अनुच्छेद 226, 227- सार्वजनिक परिसर अनधिकृत अधिभोगियों की बेदखली अधिनियम, 1971 - धारा 9 और 83(9)- याचिकाकर्ता को प्रतिवादियों से परिसर खाली कराने की अनुमति देने के लिए उचित निर्देश जारी करने के लिए आवेदन, जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैं और अब याचिकाकर्ता से संबद्ध नहीं हैं - 'एलआईसी बनाम नंदिनी जे शाह' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा करते हुए प्रतिवादियों की ओर से तर्क दी कि अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका पोषणीय नहीं है - न्यायालय का मानना है कि, अनुच्छेद 226 के तहत या 227 के तहत अधिकार क्षेत्र में बैठकर अदालत इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकती है कि उत्तरदाताओं ने आधिकारिक आवासों पर कब्जा कर रखा है, जिसके बारे में वे अपनी सेवाओं से जुड़े होने का दावा करते हैं और इसलिए, माना जाता है कि, जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैंउनकी सेवाओं की प्रकृति चाहे जो भी हो या यहां तक कि इस आधार पर भी कि उन्हें कथित तौर पर देय कुछ रकम उन्हें अवैतनिक रहती है, उन्हें आवास पर कब्जे में रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, उच्च न्यायालय, चाहे वह किसी भी क्षेत्राधिकार में बैठता हो, हमेशा इस पर कार्य करता है। के बुनियादी सिद्धांतसमानता, निष्पक्षता और तर्कसंगतता, और इसलिए, याचिकाकर्ता के रुख पर विचार करने की आवश्यकता है और इसे केवल इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि रिट याचिका को अंततः अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के तहत सुना जाना चाहिए, इसलिए रिट याचिका परिसर को खाली करने और शांतिपूर्ण तरीके से सौंपने के निर्देश जारी करती है। (पैरा - 20, 21, 22)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम नंदिनी जे. शाह (2018) 15 एससीसी 356,
2. किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुनी वक्फ बोर्ड और अन्य (2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 280,
3. मेसर्स हिंदुस्तान ऑटो एजेंसी बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (2021) 4 जेबीसीजे 653,

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा, प्रत्यर्थी संख्या 1 से 8 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल जैन को और प्रत्यर्थी संख्या 9 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान प्रार्थना पत्र याचिकाकर्ता को ऐसे निजी-प्रतिवादियों और अन्य अनुबंधित व्यक्तियों से परिसर खाली कराने की अनुमति देने के लिए उचित निर्देश जारी करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है, जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैं और अब याचिकाकर्ता के साथ किसी भी तरह से जुड़े नहीं हैं।

3. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल जैन ने ***(2018) 15 एससीसी 356 में रिपोर्ट किए गए भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम नंदिनी जे. शाह*** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विश्वास जताया है और तर्क दिया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिका सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत कब्जाधारियों की बेदखली) अधिनियम, 1971, के तहत अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश के खिलाफ है और अनुरक्षणीय नही है और पीड़ित पक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर करने के उपचार का लाभ उठा सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका में दायर प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र भी सुनवाई के लिए अनुरक्षणीय नहीं है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा का कहना है कि इस प्रक्रम पर वह केवल अपने दिनांक 24.12.2021 के प्रार्थना पत्र पर बल दे रहे हैं और जहां तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका की अनुरक्षणीयता का सवाल है, वही भी वैसे ही अनुरक्षणीय है जैसा कि माननीय सर्वोच न्यायालय ने ***"किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुनी वक्फ बोर्ड और अन्य (2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 280)*** के मामले में अभिनिर्धारित किया था।

5. श्री राहुल जैन ने भारतीय जीवन बीमा निगम (उपर्युक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विश्वास जताते हुए, उसी के प्रस्तर संख्या 48, 49 और 50 का संदर्भ दिया, जिन्हें यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

> *"48. भले ही प्रत्यर्थीगण ने हमारा ध्यान उच्च न्यायालयों और सर्वोच न्यायालय के ऐसे अन्य निर्णयों की ओर आकृष्ट किया है, जिनमें अन्य विधियों के प्रावधानों का विश्लेषण किया गया है, उन निर्णयों पर विस्तार करना अनावश्यक है क्योंकि हम ठाकुर दास (उपर्युक्त) एस्न्यू ड्रम्स प्राइवेट लिमिटेड (उपर्युक्त), महाराष्ट्र राज्य वित्तीय निगम (उपर्युक्त), राम चंदर अग्रवाल (उपर्युक्त) और मुकरी गोपालन (उपर्युक्त) में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की खंडपीठ के निर्णयों के अंतर्निहित सिद्धांतों को लागू करना चाहते हैं। विशेष रूप से, यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि 1971 अधिनियम की धारा 9 में संदर्भित अपीलीय अधिकारी एक नामोदिष्ट व्यक्ति नहीं है किन्तु एक सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करता है।*

49. दूसरे शब्दों में, अपीलीय अधिकारी 1971 अधिनियम की धारा 9 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, एक नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं करता है, बल्कि जिले में पूर्व विध्यमान न्यायिक प्राधिकारी (जिला न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट अनिवार्य अहर्ता रखने वाला न्यायिक अधिकारी) के रूप में कार्य करता है। जिला न्यायपालिका का हिस्सा होने के नाते, न्यायाधीश एक न्यायालय के रूप में कार्य करता है और उसके द्वारा पारित आदेश अधीनस्थ न्यायालय का आदेश होगा जिसके खिलाफ ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उल्लिखित मामलों पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपचार का लाभ उठाया जा सकता है।

50. वर्तमान मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, प्रत्यर्थीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत रिट याचिका के द्वारा निदान का सहारा लिया था। हमारे निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि अपीलीय अधिकारी के रूप में जिला न्यायाधीश (इस मामले में, मुंबई में बॉम्बे सिटी सिविल न्यायालय के न्यायाधीश) द्वारा पारित आदेश अधीनस्थ न्यायालय का आदेश है, उसपर चुनौती पर कार्यवाही आमतौर पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत ही आगे बढ़नी चाहिए न कि अनुच्छेद 226 के तहत। इसके अलावा, बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 14.08.2012 के फैसले की बारीकी से जांच करने पर हमें यह विचार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश की वास्तविक प्रकृति एवं सार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग था और इस बात का कोई संकेत नहीं है कि न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग किया है। वास्तव में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए निर्णय की शुरुवात की है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत थी। हालाँकि, राम किशन फौजी (उपर्युक्त) के मामले में इस न्यायालय की व्याख्या को ध्यान में रखते हुए, जिसमें यह बताया गया है कि यह निर्धारित करने में कि क्या विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश अनुच्छेद 226 या 227 के तहत शक्तियों के प्रयोग के अनुसार है, महत्वपूर्ण कारक किसी पक्ष द्वारा लागू क्षेत्राधिकार की प्रकृति और विद्वान

एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की वास्तविक प्रकृति और लक्षण तथा जारी दिशानिर्देश, है। रिपोर्ट किए गए निर्णय के प्रस्तर 40 में, न्यायालय ने अपने पहले के निर्णय को आगे बढ़ाते हुए यह माना:

40. xxx xxx xxx क्या विद्वान एकल न्यायाधीश ने अनुच्छेद 226 के तहत या अनुच्छेद 227 या दोनों के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है, यह विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करेगा। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश ऐसे हो सकते हैं जिन्हें दोनों अनुच्छेदों के तहत समग्र तरीके से एक आदेश के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि वे सह-अस्तित्व में हो सकते हैं, मेल खा सकते हैं और एकीकृत हो सकते हैं। यह दोहराया गया कि यह आदेश की प्रकृति, रूपरेखा और चरित्र पर निर्भर करेगा और यह पत्र पेटेंट अपील की सुनवाई करने वाली खंडपीठ का दायित्व होगा कि वह यह समझे और निर्णय ले कि आदेश विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 या दोनों के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए पारित किया गया है या नहीं। दो-न्यायाधीशों की खंडपीठ ने आगे स्पष्ट किया कि खंड पीठ को यह भी जांचने की आवश्यकता होगी कि क्या मामले के तथ्य दोनों अनुच्छेदों के तहत क्षेत्राधिकार और उस आधार पर मांगी गई राहत को लागू करने के लिए याचिका में किए गए दावों को न्यायोचित ठहराते हैं। आवश्यक पक्ष के संबंध में चित्रण वर्तमान मामले में प्रासंगिक नहीं है, उक्त पहलू पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। फिर प्रस्तर 41 और 42 में, जो संबंधित मामले का उत्तर देने के लिए उपयोगी हो सकता है, न्यायालय ने इस प्रकार मानाः

41. हमने इन निर्णयों का उल्लेख केवल यह उजागर करने के लिए किया है कि यह किसी भी संदेह से परे है कि सिविल कोर्ट के आदेश को केवल संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है और ऐसी चुनौती से, कोई भी अंतर-न्यायालीय अपील नहीं होगी और अन्य में मामलों में, यह उसमें उल्लिखित अन्य कारकों पर निर्भर करेगा।

42. इस स्तर पर, उपरोक्त घोषणाओं से निकाले जाने निष्कर्ष को उल्लिखित करना अत्यंत आवश्यक है। वे हैं.

42.1 यदि पत्र पेटेंट के दायरे में अनुमति दी गई है तो एकल

न्यायाधीश के निर्णय से लेकर उच्च न्यायालय की खण्डपीठ तक अपील की जा सकती है।

42.2 पत्र पेटेंट द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति को सक्षम विधायिका द्वारा उचित कानून लाकर समाप्त या कम किया जा सकता है। 42.3 एक रिट याचिका जो उच्च न्यायालय में एक सिविल कोर्ट के आदेश के खिलाफ दायर करी गई है, उसे सभी परिस्थितियों में, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक चुनौती समझा जाना चाहिए और, उक्त अनुच्छेद के तहत उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारण नहीं किया जाना चाहिए और इसलिए अंतर-न्यायालय अपील विचारण योग्य नहीं है। 42.4 अंतर न्यायलीय अपील की स्वीकार्यता वाद पर न्यायनिर्णयन करने वाली पीठ पर निर्भर करेगी कि वह विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को कैसे समझती और देखती है। इसके लिए कोई स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला नहीं हो सकता। (बल दिया गया)"

6. श्री राहुल जैन ने **"एम/एस हिंदुस्तान ऑटो एजेंसी बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (2021) 4 जेबीसीजे 653"** में झारखंड उच न्यायालय के फैसले पर विश्वास जताया है जिसमें भारतीय जीवन बीमा निगम के उपरोक्त निर्णय पर विश्वास जताया गया है।

7. इसलिए, उनका कहना है कि इस मामले की सुनवाई केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत की जा सकती है, और इसलिए, वर्तमान रिट याचिका अनुरक्षणीय नहीं है क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई थी।

8. इसके विपरीत, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा ने किरण देवी (उपर्युक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विश्वास जताते हुए उसके प्रस्तर संख्या 20, 21 और 22 का उल्लेख किया है, जो निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है:

"20. अतः जब उच्च न्यायालय के समक्ष वक्फ न्यायाधिकरण के विरुद्ध कोई याचिका दायर की जाती है तो उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करता है। इसलिए, यह पूरी तरह से असंगत है कि याचिका को एक याचिका आवेदन के रूप में शीर्षक दिया गया था। यह देखा जा सकता है कि कतिपय उच्च न्यायालयों में, अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका का शीर्षक रिट याचिका, कतिपय अन्य उच्च न्यायालयों में पुनरीक्षण

याचिका और कतिपय अन्य उच्च न्यायालयों में विधिक याचिका है। तथापि, पारित किए गए आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के परंतुक को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने केवल अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग किया। उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा उल्लेखित निष्कर्ष की शुद्धता, वैधता या उपयुक्तता की जांच करने तक नियंत्रित है। उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के परंतुक के अधीन प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है।

21. हम श्री सान्याल द्वारा उठाए गए तर्क में योग्यता पाते हैं कि उच न्यायालय के समक्ष दायर याचिका के शीर्षक का नामकरण महत्वहीन है। अहमदाबाद नगर निगम बनाम बेन हीराबेन मणिलाल वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सरकार द्वारा जिस शक्ति के अधीन कार्रवाई की गई थी उसके गलत संदर्भ से कार्रवाई स्वतः दूषित नहीं होगी, यदि उसे किसी अन्य शक्ति के अधीन न्यायोचित ठहराया जा सकता है जिसके द्वारा सरकार उस कार्य को विधिपूर्ण रूप से कर सकती है। न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित कियाः

"5. .... यह अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है कि किसी शक्ति का प्रयोग, यदि वास्तव में कोई शक्ति है, तो उस शक्ति के प्रयोग की वैधता के मुद्दे पर किसी अधिकारिता के लिए संदर्भित होगा, जो उसे वैधता प्रदान करती है, न कि ऐसी अधिकारिता के लिए जिसके तहत वह अमान्य होगी, हालांकि धारा का उल्लेख नहीं किया गया था, और विभिन्न उपबंधो के एक अलग या गलत खण्ड का उल्लेख किया गया था। इस संबंध में पीतांबर वजीरशेत बनाम धोंडु नवलपा [आईएलआर (1888) 12 बम 486, 489] में टिप्पणियों को देखें।। इस संबंध में एल हजारी मल कुठियाला बनाम आईटीओ, स्पेशल सर्कल, अंबाला कैंट के मामले में भी इस न्यायालय की टिप्पणियों को देखें। (एआईआर 1961 एससी 200:

(1961) 1 एससीआर 892: (1961) 41 आईटीआर 12, 16: (1961) 1 एससीजे 617] इस मुद्दे को इस न्यायालय द्वारा हुकुमचंद मिल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य [एआईआर 1964 एससी 1329: (1964) 6 एससीआर 857: (1964) 52 आईटीआर 583: (1964) 1 एससीजे 561] जहां यह पाया गया कि यह अच्छी तरह से तय किया गया था कि अगर उस शक्ति का गलत संदर्भ है जिसके तहत कार्रवाई की गई थी तो सरकार द्वारा जिस शक्ति के तहत कार्रवाई की गई थी, उसके बारे में गलत संदर्भ से उस कार्यवाही को स्वतः दूषित नहीं किया जा सकता है, यदि इसे किसी अन्य शक्ति के तहत उचित ठहराया जा सकता है, जिसके तहत सरकार कानूनी रूप से वह कार्य कर सकती है। नानी गोपाल विश्वास बनाम हावड़ा नगर पालिका [ए. आई. आर 1958 एस.सी. 141: 1958 एससीआर 774, 779: 1958 एससी जे 297: 1958 सीआरआई एलजे 271] मामले में भी सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ देखें।"

22. बाद में, पेप्सी फूड्स लिमिटेड में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जिस नामकरण के तहत याचिका दायर की जाती है वह काफी प्रासंगिक नहीं है और यह न्यायालय को अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है। यदि न्यायालय यह पाता है कि अपीलकर्ता 16 (1983) 2 एससीसी 422 अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का अविलंब ले सका, तो न्यायालय निश्चित रूप से अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका के रूप में विचार कर सकता है। इस न्यायालय ने निम्नालिखित रूप में अभिनिर्धारित कियाः

"26. जिस नाम के तहत याचिका दायर की जाती है वह काफी प्रासंगिक नहीं है और यह अदालत को अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है जब तक निर्धारित विशेष प्रक्रिया न हो जो प्रक्रिया अनिवार्य है। यदि वर्तमान मामले जैसे मामले में न्यायालय को पता चलता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के तहत अपनी अधिकारिता का ऊपयोग नहीं कर सकते हैं, तो न्यायालय निश्चित रूप से

अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के तहत याचिका पर विचार कर सकती है। तथापि, यह ध्यान से नहीं देखा जाना चाहिए कि पुनरीक्षण और अपील संहिता में उपबंध विद्यमान हैं, लेकिन तत्काल राहत के लिए कुछ समय संहिता की धारा 482 या अनुच्छेद 227 का आश्रय अधीनस्थ न्न्यायालयों द्वारा की जा सकने वाली कुछ गंभीर त्रुटियों को सुधारने के लिए लिया जा सकता है। वर्तमान याचिका हालांकि अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय में दायर की गई है लेकिन इसे संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अच्छी तरह से माना जा सकता है।

9. इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिका का नामकरण, जो या तो अनुच्छेद 226 के तहत है या अनुच्छेद 227 के तहत है, सारहीन है और चुनौती के तहत आदेश की प्रकृति कार्यवाही को नियंत्रित करेगी और न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत या अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकारिता का प्रयोग करने से नहीं रोकेगी।

10. श्री आशीष मिश्रा ने आगे कहा कि रिट याचिका की अनुरक्षणीयता के सवाल को किसी आगामी चरण में विचार किए जाने के लिए छोड़ते हुए याचिका के नामकरण के बावजूद, 24.12.2021 के प्रार्थना पत्र की सामग्री और उसमें की गई प्रार्थना की इस न्यायालय द्वारा बहुत अच्छी तरह से जांच की जा सकती है।

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

12. वर्तमान रिट याचिका प्रकीर्ण सिविल अपील संख्या 54/2016 में प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, गौतमबुद्ध नगर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 24.08.2017 से संबंधित अभिलेख मंगाने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है। अग्रेतर प्रार्थना दिनांक 24.08.2017 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की है। प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, गौतमबुद्धनगर की न्यायालय ने दिनांक 24.08.2017 के आक्षेपित आदेश के तहत, निजी प्रत्यर्थीगण (इस याचिका में) द्वारा दायर अपील को स्वीकार करते हुए मामले को नए सिरे से कार्यवाही के लिए संपदा अधिकारी को भेज दिया।

13. यह न्यायालय, इस स्तर पर, दिनांक 24.12.2021 के प्रार्थना पत्र की जांच कर रहा है और पाता है कि याचिकाकर्ता की शिकायत इस आशय

की है कि निजी प्रत्यर्थीगण की सेवाओं/नियुक्तियों के बावजूद, वे कब्जाधारी जिन्होंने सेवानिवृत्ति की आयु अर्थात 60 वर्ष प्राप्त कर ली है, उन्हें सरकारी आंवास खाली करने का निर्देश दिया जाए। प्रार्थना पत्र के प्रस्तर 9 में यह अनुरोध किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 (अकबर) और प्रत्यर्थी संख्या 6 (रणवीर सिंह) ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है, और इसलिए, उन्हें परिसर खाली करने का निर्देश दिया जा सकता है क्योंकि याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में आवासीय इकाइयों की संख्या सीमित है और याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान के कई नियमित कर्मचारी परिसर में आवास की मांग कर रहे हैं, हालांकि, प्रत्यर्थीगण द्वारा परिसर पर लगातार कब्जे के कारण, इसे खाली नहीं किया जा रहा है, जिससे याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान के अन्य कर्मचारियों के मन में बहुत बड़ा और अप्रतिकार्य पूर्वाग्रह आ जाएगा।

14. यद्यपि, दिनांक 14.3.2023 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दिनांक 24.12.2021 के प्रार्थना पत्र पर प्रति शपथ पत्र दायर करने का समय दिया, लेकिन कोई प्रति शपथ पत्र दायर नहीं किया गया है, और इसलिए, शपथ पत्र में उल्लिखित तथ्य जो प्रार्थना पत्र संख्या 14/2021 के पक्ष में हैं, उनका खंडन नहीं किया गया है, कम से कम जहां तक कुछ व्यक्तियों की सेवानिवृत्ति का संबंध है।

15. श्री राहुल जैन का तर्क इस आशय का है कि चूंकि रिट याचिका अनुरक्षणीय नहीं है, इसलिए वर्तमान प्रार्थना पत्र पर भी विचार नहीं किया जा सकता है, इस न्यायालय द्वारा जांच की गई है और मैंने पाया है कि क्या रिट याचिका में आक्षेपित आदेश जिसे सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत कब्जेदारों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के तहत शक्तियों के प्रयोग करके पारित किया गया है, में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करके हस्तक्षेप किया जा सकता है, यह ऐसा मामला है जिसकी जाँच न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर या अनुरक्षणीयता के प्रश्न पर वर्तमान रिट याचिका पर अंतिम रूप से सुनवाई करते समय की जानी चाहिए।

16. जहां तक प्रार्थना पत्र संख्या 14/2021 का सवाल है, इसका निर्णय याचिका के नामकरण पर निर्भर नहीं है, इसका अर्थ है कि वर्तमान रिट याचिका जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई है, इसे अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका में परिवर्तित करने की जरूरत है या नहीं या क्या वर्तमान रिट याचिका पर सुनवाई करने वाला न्यायालय

अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग कर सकता है, इस स्तर पर महत्वपूर्ण नहीं है।

17. न्यायालय इस तथ्य पर विचार कर रहा है कि क्या प्रत्यर्थीगण, जो याचिकाकर्ता के प्रतिष्ठान के कर्मचारी होने का दावा करते हैं, जिस तथ्य पर याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थीगण की भागीदारी की प्रकृति से संबंधित कथनों के प्रकाश में गंभीरता से विवाद किया गया है, के पास सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद भी सरकारी आवास पर कब्जा बनाए रखने का कोई अधिकार है।

18. श्री राहुल जैन इस तथ्य पर विवाद नहीं करते हैं कि कुछ प्रत्यर्थीगण ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है। इसके अलावा, उन्होंने कहा कि आधिकारिक आवास खाली न करने का कारण यह है कि याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान ने उक्त प्रत्यर्थीगण को स्वीकार्य वित्तीय बकाया का भुगतान नहीं किया है, जिसमें उनके सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ भी शामिल हैं।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री आशीष मिश्रा का कहना है कि किसी भी पारिश्रमिक/राशि/बकाया/सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया के भुगतान का प्रश्न, यदि कोई हो, एक अलग मामला बनेगा, लेकिन किसी भी परिस्थिति में, इसे परिसर खाली न करने के आधार के रूप में नहीं लिया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि कथित बकाया भुगतान के संबंध में कार्यवाही एक अलग फोरम में लंबित है।

20. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, इस न्यायालय की राय है कि जहां तक प्रार्थना पत्र में की गई प्रार्थना का संबंध है, विवाद के अंतिम न्यायनिर्णयन के बावजूद राहत दी या अस्वीकार की जा सकती है। **यह न्यायालय, चाहे वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत या अनुच्छेद 227 के तहत अधिकारिता में हो, इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि प्रत्यर्थीगण ने आधिकारिक आवासों पर कब्जा कर रखा है, जिसे वे अपनी सेवाओं से जुड़े होने का दावा करते हैं, और इसलिए, माना जाता है कि वे प्रत्यर्थी जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें आवास में रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती, भले ही उनकी सेवाओं की प्रकृति कुछ भी हो या यहां तक कि इस आधार पर भी कि कथित तौर पर उन्हें देय कुछ राशियां उन्हें भुगतान नहीं की गई हैं।**

21. उच्च न्यायालय, चाहे वह किसी भी क्षेत्राधिकार में हो, हमेशा समानता,

22. <u>निष्पक्षता और तर्कसंगतता के बुनियादी सिद्धांतों पर कार्य करता है, और इसलिए, याचिकाकर्ता- भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड का रुख इस आशय का है कि इस तथ्य पर विचार करने की आवश्यकता है कि सेवानिवृत्त प्रत्यर्थीगण द्वारा परिसर खाली न करने के कारण आधिकारिक आवास की कमी प्रतिष्ठान के साथ-साथ उनके नियमित कर्मचारियों के लिए गंभीर समस्याएं पैदा कर रही है। इसे केवल इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि रिट याचिका को अंततः या तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत या अनुच्छेद 227 के तहत सुना जाना चाहिए।</u>

23. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत प्रार्थना पत्र **स्वीकार** किया जाता है। जिन प्रत्यर्थीगण ने सेवानिवृत्ति की आयु, यानी 60 वर्ष प्राप्त कर ली है, उन्हें 15.07.2023 को या उससे पहले अपने कब्जे वाले परिसर को खाली करना होगा। यदि ऐसे प्रत्यर्थी अपने कब्जे वाले परिसर को खाली करने और याचिकाकर्ता को शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंपने में विफल रहते हैं, तो याचिकाकर्ता के लिए उन्हें बेदखल करने को आवश्यक बल का उपयोग करने के लिए पुलिस और जिला प्रशासन से सहायता लेने का मार्ग खुला होगा।

24. यह आदेश प्रत्यर्थीगण को किसी भी राशि का भुगतान न करने की उनकी शिकायत के संबंध में किसी अन्य फोरम के समक्ष उचित राहत का दावा करने के रास्ते में नहीं आएगा, जो पहलू वर्तमान रिट याचिका के दायरे से परे है।

25. तदनुसार, उपरोक्त शर्तों के अनुसार प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1510

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 719/1997

श्री होती लाल एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

लखपत सिंह और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री माधव जैन

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री सुभाष चन्द्र श्रीवास्तव, श्री एस.के. मेहरोत्रा

मोटर दुर्घटना दावा -दुर्घटना 14.05.1985 को घटित हुई थी। मृतक 25 वर्षीय मजदूर (राजमिस्त्री) था जो 1050/- रुपये प्रति माह कमाता था। उसके परिवार में पिता, विधवा और दो नाबालिग बच्चे - एक बेटा और एक बेटी हैं। आयोजित: पिता, भाई और बहन को गैर-आर्थिक क्षति नहीं दी जा सकती है, जब पत्नी, जो वर्ग-1 उत्तराधिकारियों के अंतर्गत आती है, लाभ की प्राप्तकर्ता है। मृतक की आय 750/- रुपये प्रति माह मानी गई। चूंकि मृतक 35 वर्ष का था, इसलिए भविष्य की आय के नुकसान के लिए 40% जोड़ा गया, 1/3 व्यक्तिगत खर्चों के लिए काट लिया गया और मृतक की उम्र को ध्यान में रखते हुए 18

का गुणक लागू किया गया। इसके अतिरिक्त, गैर-आर्थिक क्षति के लिए 50,000/- रुपये दिए गए। बीमा कंपनी को दावा याचिका दायर करने की तारीख से ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था, भले ही वह एक पक्ष प्रतिवादी के रूप में कब शामिल हुई थी। दावा याचिका दाखिल करने से लेकर न्यायाधिकरण के निर्णय की अंतिम तिथि तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दिया गया, तथा उसके बाद अधिनिर्णित राशि पर 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दिया जाएगा। (पैरा 9, 10)

अनुमति दी गई. (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. गोबल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुसामी, 1962 एससीआर (1) 929
2. वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442
3. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य, निर्णय दिनांक 27.1.2022

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन और बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुभाष चंद्र श्रीवास्तव को सुना।

2. इस अपील द्वारा, दावेदारों के कहने पर, एम.ए.सी.पी. सं0 185/1987 में एम.ए.सी.टी./15वें अपर जिला न्यायाधीश, आगरा (एतदपश्चात ''न्यायाधिकरण'' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 29.04.1997 को चुनौती दी गई है, जिसमें 98000/- रूपए की राशि का मुआवजा मय 10 प्रतिशत ब्याज के दिया गया।

3. मृतक के परिवार में उसके पिता, पत्नी, पुत्र और पुत्री हैं। मृतक की आयु 25 वर्ष होना विवादित नहीं है। वह मजदूरी करने वाला मजदूर था, इस पर कोई विवाद नहीं है। दुर्घटना पर कोई विवाद नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा तय किया गया लापरवाही का मुद्दा विवाद में नहीं है। प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी ने उन पर लगाए गए दायित्व को चुनौती नहीं दी है। निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र मुद्दा मुआवजे की मात्रा है।

4. अभिलेखों से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि दिनांक 14.05.1985 को लगभग 6.30 बजे, मृतक मोहर सिंह अपनी साइकिल से आगरा जा रहा था और जब वह ग्राम डिग्नेर के पास पहुंचा तो एक बस सं0 यू.एस.वाई.-9555 को उसके चालक ने तेजी व लापरवाही से चलाकर मोहर सिंह की साइकिल में टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप मोहर सिंह की मौके पर ही मृत्यु हो गई।

5. दुर्घटना दिनांक 14.05.1985 को घटित हुई। मृतक 25 वर्षीय मजदूर (राजमिस्त्री) था और 1050/- रुपये प्रतिमाह कमाता था। उसके परिवार में उनके पिता, विधवा और दो

अनुवादित

नाबालिग बच्चे, एक बेटा और एक बेटी हैं। न्यायाधिकरण ने उनकी आय 750/- रुपये मानी है और 16 रुपये का गुणक दिया है तथा उनकी विधवा को गैर आर्थिक क्षति के अंतर्गत 2000/- रुपये दिए गए और अंततः कुल मुआवजा 98,000/- रुपये मय 10 प्रतिशत ब्याज दिनांक 22.02.1993 से भुगतान होने तक, का आकलन किया गया।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन का तर्क है कि आय 1000/- रुपये पर विचार किया जाना चाहिए साथ ही भविष्य में आय की हानि के अंतर्गत 40 प्रतिशत जोड़कर, यहां तक कि **गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड व अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुसामी, 1962 एस.सी.आर. (1) 929** के निर्णय के अंतर्गत पुराने अधिनियम के अंतर्गत भी भविष्य में आय की हानि के लिए जोड़ा जाना चाहिए तथा व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 कटौती की जानी चाहिए और 18 का गुणक स्वीकार्य होगा, गैर आर्थिक क्षति के अंतर्गत 70,000/- रुपये दिए जाए।

7. इसके विपरीत, बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुभाष चंद्र श्रीवास्तव ने जोरदार ढंग से कथन किया कि अभिलेखों पर किसी भी साक्ष्य के अभाव में न्यायाधिकरण द्वारा विचार की गई आय न्यायसंगत एवं उचित है, हालांकि, वह भविष्य में होने वाली आय की हानि के बारे में नहीं इंगित कर सके, जो आय नहीं दी गई है वह न्यायसंगत एवं उचित है, गुणक जो दिया गया है वह न्यायसंगत एवं उचित है।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुभाष चंद्र श्रीवास्तव के तर्कों को स्वीकार करता है कि जब पत्नी वर्ग 1 के अंतर्गत आती है और परिलाभों की प्राप्तकर्ता है तो पिता, भाई और बहन को गैर आर्थिक हानि नहीं प्रदान की जा सकती। इस न्यायालय का मानना है कि मृतक की आय 750/- रुपये प्रतिमाह मानी जा सकती है क्योंकि उसकी आयु 35 वर्ष थी और अंगूठे के नियम के अनुसार **और गोबाल्ड मोटर सर्विसेज (उपरोक्त) और सुसम्मा थॉमस (उपरोक्त)** में निर्णयों को ध्यान में रखते हुए 40 प्रतिशित भविष्य में आय की हानि के लिए जोड़ा जाना चाहिए, 1/3 घटाना होगा और मृतक की आयु के दृष्टिगत 18 का गुणक देना होगा तथा 50,000/- रूपए गैर आर्थिक हानि के लिए देने होंगे।

9. इसलिए, अपीलकर्ता को देय कुल मुआवजे की गणना नीचे दी गई हैः-

i. आय: रु. 750/- प्रति माह

ii. भविष्य की संभावनाओं का प्रतिशतः 40 प्रतिशत अर्थात रु. 300/-

iii. कुल आय रु. 750 + 300 = रु. 1050/-

iv. व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/3 की कटौती के बाद आय: रु 700/-

v. वार्षिक हानि: रु. 700 x 12 = रु. 8400

vi. लागू गुणकः 18

vii. निर्भरता की हानिः रु 84,00 x 18 = रु 1,51,200/-

viii. गैर आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि: रु 50,000/-

ix. कुल मुआवजा: रु 2,01,200/-

10. जहां तक ब्याज दर के मुद्दे का प्रश्न है, न्यायाधिकरण ने बीमा कंपनी को प्रत्यर्थी पक्ष के रूप में शामिल करने के बाद ही ब्याज देने पर विचार किया है। दावा याचिका दायर होने पर मुआवजा देने का दायित्व उत्पन्न होता है। पुराने अधिनियम के अंतर्गत भी ब्याज पर प्रश्न, दावा याचिका दायर होने की तिथि से मुआवजा देने का है। न्यायाधिकरण के उक्त निर्णय पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और ब्याज देने के सिद्धांतों पर भी गौर करना होगा। दुर्घटना वर्ष 1987 में हुई थी, बीमा कंपनी 1993 से नहीं अपितु दावा याचिका दायर करने की तिथि से ब्याज देने के लिए उत्तरदायी होगी। इसलिए, बीमा कंपनी के प्रत्यर्थी पक्ष के रूप में शामिल होने के बावजूद, दावा याचिका दायर करने की तिथि से ब्याज दिया जाना है। यह इस न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए ब्याज के प्रतिशत और बीमा कंपनी द्वारा की गई आपत्ति की ओर ले जाता है। इस प्रकार वर्ष 1987 में ब्याज की दर 10 प्रतिशत नहीं हो सकती थी, यहाँ तक कि दुर्घटना के वर्ष में और जब वर्ष 1997 में मामले का निर्णय हुआ तब रेपो दरें भी 9 प्रतिशत से अधिक नहीं थीं, ऐसा बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है, जिन्होंने ब्याज में कटौती के लिए मौखिक रूप से आपत्ति की है क्योंकि बीमा कंपनी की कोई गलती नहीं होने के कारण मामला इस न्यायालय के समक्ष लंबित है। श्री सुभाष चंद्र श्रीवास्तव का आदेश 43 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत मौखिक आपत्ति स्वीकार की जाती है। ब्याज का भुगतान दावा याचिका दायर करने की तिथि से किया जाना है जो कि कानून है और यह उस तिथि से नहीं हो सकता जिस दिन बीमा कंपनी को पक्षकार बनाया गया था, हालांकि, लंबा समय बीतने के कारण उक्त आदेश को दी गई राशि पर ब्याज के लिए बाधा डाली गई है जो कि दावा याचिका दायर करने से लेकर न्यायाधिकरण के निर्णय तक 7 प्रतिशत और उसके बाद यह प्रदत्त राशि पर 6 प्रतिशत होगा।

11. जब मामले की सुनवाई हुई तो मौखिक रूप से किसी अन्य आधार का आग्रह नहीं किया गया।

12. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। कुल मुआवजा रु. 2,01,200/- मय 7 प्रतिशत ब्याज दावा याचिका दायर करने की तिथि से न्यायाधिकरण के निर्णय एवं अधिनिर्णय तक तथा उसके बाद राशि जमा होने तक 6 प्रतिशत ब्याज के साथ स्वीकृत है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय व डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त निर्देशानुसार धनराशि मय ब्याज आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर जमा की जाए। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काटा जाए।

13. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले न्यायालय शुल्क

की राशि की कमी, यदि कोई हो, काटने का निर्देश दिया जाता है। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 में सूचित (1) जी.एल.एच. (एस.सी.) 442**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अनपढ़ हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

14. यहां किए गए संशोधन के अनुसार न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका के अनुसार नया अधिनिर्णय दिया जाएगा। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जहां तक संवितरण का प्रश्न है, इसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और **ए.वी. पद्मा (उपरोक्त)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना चाहिए।

15. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश दिनांकित 27.01.2022 के अंतर्गत जारी दिशानिर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवजा प्रदान करने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। लम्बी अवधि बीत जाने के कारण धनराशि दावेदारों के राष्ट्रीयकृत बैंक के बचत खाते में बिना एफ.डी.आर. के जमा करायी जाये।

16. अभिलेख तुरंत न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाए।

17. यह न्यायालय इस न्यायालय की सहायता करने के लिए दोनों विद्वान अधिवक्ताओं का आभारी है।

(2023) 5 ILRA 1513

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 944/2018

श्रीमती मीना एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री संजय कुमार श्रीवास्तव, श्री अजय कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी

ए. मोटर दुर्घटना दावा- मृतक की आयु - अपीलकर्ताओं ने दावा किया कि दुर्घटना के समय मृतक की आयु 19 वर्ष थी। मृतक के स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र की मूल प्रति प्रस्तुत की गई। पीडब्लू-1 ने गवाही दी कि मृतक की आयु 19 वर्ष थी, जिसे जिरह के दौरान नहीं बदला जा सका। प्रतिवादियों द्वारा स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र पर आपत्ति नहीं जताई गई। हालांकि, विचारणीय न्यायालय ने अखबार की कतरनों, एफ.आई.आर. और पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर भरोसा किया और दर्ज किया कि मृतक की आयु 16 वर्ष थी। आयोजित: वाद के तथ्यों में समाचार पत्रों की रिपोर्ट को स्वीकार्य साक्ष्य नहीं माना जा सकता। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के कॉलम में की गई प्रविष्टि मृतक की आयु का निर्णायक सबूत

नहीं है। मृतक की आयु के बारे में विचारणीय न्यायालय का निष्कर्ष गलत था और इसे खारिज किया जाना चाहिए। मृतक की आयु 19 वर्ष माना गया। (पैरा 9, 10, 11, 12)

बी. मोटर दुर्घटना दावा - मृतक की आय- मृतक एल्युमिनियम वर्कशॉप में कर्मचारी के रूप में काम करता था। ऐसे मामलों में आय निर्धारित करने के लिए विश्वसनीय मार्गदर्शक उचित सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी है। एल्युमिनियम वर्कशॉप में काम करने वाले एक कर्मचारी के पास कई तरह के कौशल होते हैं, जो अक्सर काम के दौरान हासिल किए जाते हैं। इस श्रेणी के कामगारों के पास औपचारिक योग्यता नहीं हो सकती है, लेकिन उनके तकनीकी कौशल पर संदेह नहीं किया जा सकता है। इन कौशलों के कारण ही वे उपयोगी काम करते हैं और प्रतिष्ठानों में बने रहते हैं। न्यायालय ने माना कि मृतक एक कुशल कामगार था जिसका काम बारहमासी प्रकृति का था, और वह नियमित मासिक वेतन प्राप्त कर रहा था। मृतक की मासिक मजदूरी 5,000 रुपये तय की गई थी। (पैरा 21, 22, 23)

अनुमति दी गई. (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

अपीलकर्ताओं-दावेदारों के वकील श्री संतोष कुमार श्रीवास्तव, भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले वकील श्री अरविंद कुमार गोस्वामी को सुना।

2. यह अपील मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 10, मेरठ (इसके बाद "ट्रिब्यूनल" के रूप में संदर्भित) द्वारा 2014 के मोटर दुर्घटना दावा केस नंबर 293 में पारित 25.11.2017 के फैसले और आदेश से उत्पन्न होती है, जिसमें ब्याज @ 7% वार्षिक ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 1,42,000 रुपये की राशि प्रदान की गई थी।

3. ट्रिब्यूनल आंशिक रूप से एक आकिब (मृतक) की मृत्यु के लिए अपीलकर्ताओं-दावेदारों के दावे की अनुमति देता है। दावेदार मृतक आकिब के कानूनी उत्तराधिकारी और आश्रित हैं, जिनकी 26.02.2014 को हुई दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी।

4. दावेदारों-अपीलकर्ताओं के वकील श्री संतोष कुमार श्रीवास्तव का तर्क है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई राशि को बढ़ाया जाना चाहिए। ट्रिब्यूनल ने मृतक की आय के संबंध में विकृत निष्कर्ष दर्ज किए।

5. श्री अरविंद कुमार गोस्वामी, विद्वान केंद्र सरकार के वकील ने प्रस्तुत किया कि ट्रिब्यूनल द्वारा अनुमानित आधार पर आय का सही निर्धारण किया गया था क्योंकि अपीलकर्ता-दावेदार मृतक की आय साबित करने में विफल रहे।

6. उत्तरदाताओं-भारत संघ ने दुर्घटना के तथ्य या चालक के दायित्व को चुनौती नहीं दी है। वे केवल दावेदारों-अपीलकर्ताओं को दिए गए मुआवजे में वृद्धि का विरोध कर रहे हैं।

I. ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया मुआवजा:

7. दिनांक 25.11.2017 के आक्षेपित निर्णय में ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए मुआवजे को नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:

सीनियर नं.	सिर	कुल धनराशि
1	मासिक आय (A)	1,250/-
2	वार्षिक आय (A x 12 = B)	1,250/- x 12 = 15,000/-
3	भविष्य की संभावनाएं (C)	15,000/- का 50% = 7,500/-
4	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं (B+C=D)	15,000 + 7,500 / - = 22,500/-
5	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (E)	22,500/- का 1/3 = 7,500/-
	निर्भरता की वार्षिक हानि (F)	7,500/-
6	गुणक (G)	16
7	निर्भरता की कुल हानि (F x G = H)	7,500 x 16 = 1,20,000/-
8	पारंपरिक लक्ष्य: (I) (a) प्यार और स्नेह की हानि (b) मानसिक दर्द की हानि (c) अंतिम संस्कार	(a) 10,000 + (b) 10,000 + (c) 2,000/- = 22,000/-
9	कुल मुआवजा (H + I = J)	1,42,000/-
10	सूद	7.00%

8. इस अपील में विचार के लिए जो मुद्दा उठता है वह यह है कि:-

(क) क्या अधिकरण ने अभिलेख में मृतक की आयु का सही निर्धारण किया था?

(ख) क्या अधिकरण ने मृतक की आय का सही निर्धारण किया था या नहीं?

(ग) क्षतिपूत जिसके दावेदार हकदार हैं।

8 (ए)। आयु का निर्धारण :-

9. दुर्घटना 26.02.2014 को हुई थी। दावेदारों-अपीलकर्ताओं ने दावा याचिका में दावा किया है कि दुर्घटना के समय मृतक की उम्र 19 वर्ष थी। मृतक के स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र की मूल प्रति ट्रिब्यूनल के समक्ष पेश की गई थी और पेपर नंबर 21 सी /12 के रूप में चिह्नित की गई थी। पीडब्ल्यू -1 - आबिद अली ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपनी गवाही में गवाही दी थी कि मृतक की उम्र 19 वर्ष थी। उनका बयान दावा याचिका के साथ-साथ सबूतों और रिकॉर्ड में दी गई दलीलों के अनुरूप था। जिरह के दौरान उसकी गवाही को हिलाया नहीं जा सका। ट्रिब्यूनल के समक्ष प्रतिवादियों द्वारा स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र पर महाभियोग नहीं लगाया गया था। इस न्यायालय ने स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र की भी जांच की है और इसके अवलोकन पर यह एक मुद्रित दस्तावेज प्रतीत होता है।

10. ट्रायल कोर्ट ने पाया कि मृतक की पीड़िता की उम्र 16 वर्ष थी, जैसा कि अखबार की कटिंग, एफ.आई.आर. और पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर निर्भर करता है। उपरोक्त दस्तावेजों में मृतक की सही उम्र नहीं बताई गई है। समाचार पत्रों की रिपोर्टों को मामले के तथ्यों में स्वीकार्य साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता

अनुवादित

है। पोस्टमार्टम के कॉलम में प्रविष्टि मृतक की उम्र का निर्णायक प्रमाण नहीं है।

11. दावेदारों-अपीलकर्ताओं द्वारा पेश की गई उम्र के संबंध में साक्ष्य विश्वसनीय हैं और नीचे दिए गए न्यायालय ने निष्कर्षों को वापस करके गलती की।

12. इस न्यायालय ने पाया कि मृतक के पीड़ित की उम्र के फैसले पर नीचे दिए गए न्यायालय का निष्कर्ष विकृत है और रद्द करने योग्य है। मृतक की उम्र 19 साल थी।

8 (बी) मृतक की आय :-

13. दावेदारों-अपीलकर्ताओं का लगातार दावा यह था कि मृतक एल्यूमीनियम वर्क शॉप में एक कर्मचारी के रूप में काम कर रहा था। पी.डब्ल्यू.1-आबिद अली (मृतक के पिता) ने नीचे की अदालत के समक्ष गवाही दी थी कि मृतक अपने प्रतिष्ठान में एक एल्यूमीनियम ठेकेदार के तहत काम कर रहा था। वह प्रति माह लगभग 9000/- रुपये का वेतन प्राप्त कर रहा था।

14. पीडब्ल्यू -3 - महबूब, जो मृतक का नियोक्ता था, ने ट्रिब्यूनल के समक्ष यह भी कहा कि मृतक उसके प्रतिष्ठान में एक कर्मचारी था जो प्रति माह 8,000 रुपये से 9,000 रुपये का वेतन ले रहा था। जिरह के दौरान पी.डब्ल्यू.3-महबूब ने स्वीकार किया कि उसने अपने प्रतिष्ठान में श्रमिकों का रजिस्टर नहीं रखा था।

15. ट्रिब्यूनल ने पीडब्ल्यू -1 और पीडब्ल्यू -3 की गवाही पर अविश्वास किया, जहां तक मृतक की आय और रोजगार के संबंध में यह नहीं था कि पीडब्ल्यू -3 ने स्वीकार किया था कि वह अपने प्रतिष्ठान में नियमित कर्मचारियों का रजिस्टर नहीं रख रहा था। मृतक के कर्मचारी द्वारा जारी किए गए प्रमाण पत्र में एक पाठ होता है कि मृतक प्रति माह 8,000/- रुपये से 9,000/- रुपये कमाता है। उक्त प्रमाण पत्र को ट्रिब्यूनल द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि कर्मचारी ने अपनी जिरह में स्वीकार किया था कि उसने अपने प्रतिष्ठान में कामगार का नियमित रजिस्टर नहीं रखा था।

16. मुझे डर है कि ट्रिब्यूनल को तथ्यों और कानून में गलत तरीके से निर्देशित किया गया था। आवेदक अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में काम कर रहा था। पूर्वोक्त क्षेत्र काफी हद तक अनिर्दिष्ट है। यह सामान्य ज्ञान है कि ऐसे छोटे प्रतिष्ठानों में नियोक्ता अक्सर अपने कर्मचारियों के नियमित रजिस्टर नहीं रखते हैं।

17. पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.3 की गवाही, दलीलों और सबूतों से यह स्थापित होता है कि मृतक एल्यूमीनियम कार्यशाला में एक आकस्मिक कामगार के रूप में काम कर रहा था।

18. पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.3 ने अपनी गवाही में मृतक को पी.डब्ल्यू.3 के एल्यूमीनियम कारखाने में एक आकस्मिक श्रमिक के रूप में रोजगार देने के संबंध में दृढ़ रहना जारी रखा। इस मुद्दे पर गवाहों को जिरह के तहत हिलाया नहीं जा सका।

19. पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.3 के उपरोक्त बयानों, अभिलेखों में दी गई दलीलों और सबूतों के मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि

मृतक पी.डब्ल्यू.3 की एल्यूमीनियम कार्यशाला में एक आकस्मिक कामगार के रूप में काम कर रहा था।

20. ट्रिब्यूनल ने इस मामले के तथ्यों पर 15,000/- रुपये प्रति वर्ष की अनुमानित आय को यांत्रिक रूप से लागू करके कानून में गलती की।

21. ऐसे मामलों में आय का निर्धारण जब नियोक्ता कर्मचारियों के उचित दस्तावेज नहीं रखते हैं, अक्सर एक जटिल प्रश्न होता है। हालांकि, ऐसे मामलों में आय निर्धारित करने के लिए विश्वसनीय गाइड हैं, जिसमें समय-समय पर उपयुक्त सरकार द्वारा अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी भी शामिल है। एक एल्यूमीनियम कार्यशाला में एक कार्यकर्ता के पास विभिन्न कौशल होते हैं जो अक्सर नौकरी पर हासिल किए जाते हैं। इस श्रेणी के कामगारों के पास औपचारिक योग्यता एं नहीं हो सकती हैं, लेकिन उनके तकनीकी कौशल पर संदेह नहीं किया जा सकता है। यह इन कौशलों के कारण है कि वे उपयोगी काम प्रदान करते हैं और प्रतिष्ठानों में बनाए रखा जाता है।

22. कार्य की प्रकृति और पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.3 की गवाही पर विचार करते हुए, यह न्यायालय सुरक्षित रूप से यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि मृतक एक कुशल कामगार था जिसका काम बारहमासी प्रकृति का था और वह नियमित मासिक मजदूरी प्राप्त कर रहा था।

23. पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर, मृतक की मासिक मजदूरी 5,000/- रुपये निर्धारित की गई है।

24. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 10, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 25.11.2017 के निर्णय और आदेश को निरस्त किया जाता है और तदनुसार संशोधित किया जाता है।

8 (सी)। मुआवजे का निर्धारण जिसके दावेदार-उत्तरदाता हकदार हैं:

25. पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर, दावेदारों को दिए गए मुआवजे की राशि नीचे सारणीबद्ध है:

i. दुर्घटना की तिथि -26.02.2014

ii. मृत्यु की तिथि - 26.02.2014

मृतक का नाम - आकिब

iv. मृतक की आयु -19 वर्ष

v. मृतक का व्यवसाय - एल्यूमीनियम फैब्रिकेशन प्रतिष्ठान में कार्यकर्ता

मृतक की आय - रु.7,000/-

7. मृतक के साथ दावेदारों का नाम, आयु और संबंध

क्रम संख्या	नाम	उम्र	रिश्तेदार
1	मीना	43	माँ
2	आबिद अली	45	पिता
3	आसिफ	15	भाई

(viii) मुआवजे की गणना

सीरियल नं.	सिर	राशि (रुपये में)
1	मासिक आय (A)	5,000 /-
2	वार्षिक आय (A x 12 = B)	5,000/- x 12 = 60,000/-
3	भविष्य की संभावनाएं (C)	60,000 का 50% = 30,000/-
4	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं (B + C = D)	60,000 + 30,000/- =90,000/-
5	व्यक्तिगत के लिए कटौती व्यय (E)	90,000 रुपये का 1/2 = 45,000/-
	निर्भरता की वार्षिक हानि (D-E = F)	90,000-45,000/- = 45,000/-
6	गुणक (G)	18
7	निर्भरता का कुल नुकसान (F x G = H)	45,000 x 18 =8,10,000/-
8	पारंपरिक सिर: (I) (a) प्यार और स्नेह की हानि (b) मानसिक दर्द की हानि (ग) अंतिम संस्कार	70,000/-
9	कुल मुआवजा (H + I = J)	8,10,000 + 70,000/- =8,80,000/-
10	सूद	7.00%

II. निष्कर्ष और निर्देश:

26. क्षतिपूर्ति की वह राशि जिसके दावेदार-अपीलकर्ता इस प्रकार हकदार पाए गए हैं, निगम द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष तीन महीने के भीतर जमा की जाएगी। इसके बाद ट्रिब्यूनल बिना देरी के दावेदारों को राशि जारी करेगा। दावेदारों को पहले से ही वितरित राशि (यदि कोई हो) को विधिवत समायोजित किया जाएगा।

27. तत्काल अपील को आंशिक रूप से ऊपर उल्लिखित सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2023) 5 ILRA 1518

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

प्रथम अपील संख्या 43/2023

श्रीमती मोनिका सरवनन ...अपीलकर्ता

बनाम

आर सरवनन ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सुजान सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सिविल कानून - पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984-धारा 10-हिंदू विवाह अधिनियम, 1955-धारा 13- तलाक याचिका - पावर ऑफ अटॉर्नी -क्या पत्नी विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से अपनी ओर से तलाक याचिका की पैरवी करने के लिए अपने पिता को नियुक्त कर सकती है? - आयोजित, सैयद वसीफ हुसैन रिजवी बनाम हसन रजा खान और 6 अन्य, एआईआर 2016 सभी 5

अनुवादित

में उल्लिखित सुरक्षा उपाय आम तौर पर प्रिंसिपल/दाता या किसी लिस के पक्षकार की ओर से अदालती कार्यवाही में दायर पावर ऑफ अटॉर्नी पर लागू होंगे। पावर ऑफ अटॉर्नी जिसके द्वारा दाता दानकर्ता को अधिकृत करता है, उसे अभिलेख पर लाया जाना चाहिए और याचिका/आवेदन के साथ दायर किया जाना चाहिए; पावर ऑफ अटॉर्नी के धारक द्वारा निष्पादित हलफनामे में यह कथन होना चाहिए कि दाता जीवित है और शपथ पत्र पर शपथ लेने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में दाता की असमर्थता के कारणों को निर्दिष्ट करना चाहिए; और दानकर्ता को केवल उन्हीं कार्यों तक सीमित रहना चाहिए जिन्हें करने के लिए उसे पावर ऑफ अटॉर्नी द्वारा अधिकृत किया गया है। यदि न्यायालय को मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता होती है, तो उसे वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है। (पैरा 11, 12, 14)

अनुमति दी गई. (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. एस. रामचन्द्र राव बनाम एस. नागभूषण राव एवं अन्य (एआईआर 2022 एससी 517)
2. मंजू देवी बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2019) 0 सुप्रीम (एससी) 462।
3. हसीन सिद्दीकी उर्फ जहांगीर बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य, (2013) 0 सुप्रीम (सभी) 2700।
4. सैयद वासिफ़ हुसैन रिज़वी बनाम हसन रज़ा खान और अन्य, (एआईआर 2016 सभी 52)

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV द्वारा प्रदत्त)

1. वादी-अपीलार्थी/पत्नी के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान अपील, वाद संख्या 3039 वर्ष 2022 (श्रीमती मोनिका सरवनन बनाम आर सरवनन) में अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन (8-जीए) पर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आगरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.11.2022, जिसमें अपीलार्थी की प्रार्थना है कि अटॉर्नी की विशेष शक्तियों द्वारा उसके पिता को मामले में पैरवी करने के लिए नियुक्त किया जाए, क्योंकि अपीलार्थी देश में नहीं होगी, क्योंकि वह अपने करियर के विकास हेतु कनाडा जाने का इरादा रखती है, के विरुद्ध दायर की गई है। आवेदन को आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई कि आदेश 3 नियम 2 सीपीसी के तहत आवेदन किसी एजेंट या पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से संस्थित नहीं किया गया है। आगे यह भी टिप्पणी की गई है कि अपीलार्थी-वादी न्यायालय में मौजूद है और प्रस्तुत करती है कि आगे की कार्यवाही के लिए उसने मामले में पैरवी करने के लिए विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से अपने पिता को नियुक्त किया है। आवेदन अस्वीकार कर दिया गया, क्योंकि न्यायालय की राय में, पावर ऑफ अटॉर्नी प्रतिनिधि क्षमता में दायर नहीं की गई है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि निचली अदालत ने आवेदन (8-जीए) को खारिज करने में त्रुटि की है, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के तहत मुकदमा अपीलार्थी द्वारा दायर किया गया था, और अपने करियर को आगे बढ़ाने के लिए उसे विदेश जाना है, इसलिए, अपीलार्थी का पैरवी हेतु विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से एक विश्वासपात्र नियुक्त करना उचित था। इसके अलावा, एक शपथ पत्र भी दिया गया था कि वह न्यायिक कार्यवाही के नतीजे से बंधी रहेगी। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मौखिक साक्ष्य हेतु, यदि आवश्यक हो, या न्यायालय द्वारा निर्देशित किया जाए, तो अपीलार्थी वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से न्यायालय की कार्यवाही में शामिल होने के लिए तैयार है, जो नागरिक प्रक्रिया संहिता के साथ-साथ साक्ष्य अधिनियम के तहत स्वीकार्य है।

4. न्यायालय का ध्यान परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 10 की ओर भी आकर्षित किया गया है, जो परिवार न्यायालयों पर लागू प्रक्रिया के बारे में बताती है, जो इस प्रकार है:-

"10. सामान्य प्रक्रिया - (1) **इस अधिनियम और नियमों के अन्य प्रावधानों के अधीन, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) के प्रावधान और उस समय लागू किसी भी अन्य कानून के प्रावधान, परिवार न्यायालय के समक्ष मुकदमों और कार्यवाही** [आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के अध्याय IX के अंतर्गत कार्यवाही के अलावा] पर लागू होंगे और संहिता के उक्त प्रावधानों के प्रयोजन हेतु, परिवार न्यायालय को एक सिविल न्यायालय माना जाएगा और उसके पास ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी।

(2) इस अधिनियम और नियमों के अन्य प्रावधानों के अधीन, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के प्रावधान अथवा उसके तहत बनाए गए नियम, एक परिवार न्यायालय के समक्ष उस संहिता के अध्याय IX के तहत कार्यवाही पर लागू होंगे।

(3) **उप-धारा (1) या उप-धारा (2) में कुछ भी, परिवार न्यायालय को मुकदमे या कार्यवाही की विषय-वस्तु के संबंध में किसी समाधान, अथवा एक पक्ष द्वारा आरोपित और दूसरे पक्ष द्वारा नकारे गए तथ्यों की सत्यता, पर पहुंचने की दृष्टि से, अपनी स्वयं की प्रक्रिया निर्धारित करने से नहीं रोकेगा।**

5. परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 11 यह अनिवार्य करती है कि कार्यवाही कैमरे में आयोजित की जाएगी, जो निम्नवत है:-

"11. कार्यवाही कैमरे में आयोजित की जाएगी- प्रत्येक मुकदमे या कार्यवाही, जिस पर यह अधिनियम लागू होता है, में, पारिवारिक न्यायालय यदि चाहे तो कार्यवाही कैमरे के सामने आयोजित की जा सकती है और यदि कोई भी पक्षकार चाहे तो ऐसा ही किया जाएगा।"

6. सुप्रीम कोर्ट द्वारा **एस.रामचंद्र राव बनाम एस.नागभूषण राव और अन्य(ए आई आर**

२०२२ एस सी 517) पैराग्राफ 14 एवं **मंजू देवी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2019) 0 सुप्रीम (एस सी) 462** में पारित निर्णयों का आश्रय लिया गया है।

7. इसके अलावा, **हसीन सिद्दीकी उर्फ जहांगीर बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2013) 0 सुप्रीम (सभी) 2700** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय एवं **सैयद वासिफ हुसैन रिजवी बनाम हसन रजा खान और 6 अन्य, (एआईआर 2016 सभी 52)** में पूर्ण पीठ के निर्णय का भी आश्रय लिया गया है।

8. पावर ऑफ अटॉर्नी शब्द एक विधिक प्राधिकार को संदर्भित करता है जो एक नामित व्यक्ति को किसी और के लिए कार्य करने की शक्ति देता है। इस प्रकार, पावर ऑफ अटॉर्नी एजेंट या यथार्थ प्रतिनिधि को प्रधान व्यक्ति की ओर से कार्य करने का अधिकार देती है। एजेंट को प्रधान की संपत्ति, वित्त, निवेश या किसी अन्य उद्देश्य के बारे में निर्णय लेने के लिए व्यापक या सीमित अधिकार दिया जा सकता है। पावर ऑफ अटॉर्नी एक कानूनी दस्तावेज है जिसमें एजेंट या यथार्थ प्रतिनिधि और प्रधान शामिल होते हैं। इसका उपयोग प्रधान की अस्थायी या स्थायी बीमारी या विकलांगता की स्थिति में, या जब वे आवश्यक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते हैं, तब किया जाता है।

9. **एसी नारायणन बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2014 एससी 630** में उच्चतम न्यायालय के तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार कहा: -

"पावर ऑफ अटॉर्नी धारक अनुदाता का एजेंट है। जब अनुदाता अटॉर्नी धारक को विधिक कार्यवाही शुरू करने हेतु अधिकृत करता है और अटॉर्नी धारक तदनुसार ऐसी विधिक कार्यवाही शुरू करता है, वह अनुदाता के एजेंट के रूप में ऐसा करता है और शुरुआत अनुदाता द्वारा अपने अटॉर्नी धारक के प्रतिनिधित्व में की जाती है, न कि अटॉर्नी धारक द्वारा अपनी व्यक्तिगत क्षमता में।

10. विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी एक कानूनी दस्तावेज है जो प्रधान द्वारा एक एजेंट, जिसे "यथार्थ प्रतिनिधि" कहा जाता है, को दिए गए अधिकार के दायरे को रेखांकित करता है। विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी के अंतर्गत, एक एजेंट को विशिष्ट कानूनी या वित्तीय निर्णय लेने के लिए प्रधान की ओर से कार्य करने की शक्तियां दी जाती हैं। इसे सीमित पावर ऑफ अटॉर्नी के रूप में भी जाना जाता है और इसका उपयोग तीसरे व्यक्ति जिसके साथ प्रधान व्यापार कर रहा है, पर प्रधान के प्राधिकार के साक्ष्य के रूप में किया जाता है।

11. **सैयद वासिफ हुसैन रिज़वी (उपरोक्त)** में पूर्ण पीठ ने संदर्भ का जवाब देते हुए कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से दायर की जा सकती है, लेकिन चेतावनी दी कि याचिका पर्याप्त सुरक्षा उपायों

का पालन करते हुए दायर की जा सकती है, जिसमें शामिल हैं:-

(1) पावर ऑफ अटॉर्नी जिसके द्वारा दाता ग्रहीता को अधिकृत करता है, उसे पत्रावली पर लाया जाना चाहिए और याचिका/आवेदन के साथ दायर किया जाना चाहिए;

(2) पावर ऑफ अटॉर्नी के धारक द्वारा निष्पादित शपथ पत्र में यह कथन होना चाहिए कि दाता जीवित है और शपथ पत्र पर शपथ लेने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहने में दाता की असमर्थता के कारणों को निर्दिष्ट करना चाहिए; और

(3) ग्रहीता को उन कार्यों तक ही सीमित रहना चाहिए जिनके निर्वहन के लिए वह पावर ऑफ अटॉर्नी द्वारा अधिकृत है।

12. यहां ऊपर उल्लिखित सुरक्षा आम तौर पर प्रधान/दाता की ओर से या किसी पक्षकार की ओर से न्यायालय की कार्यवाही में दायर की गई पावर ऑफ अटॉर्नी पर लागू होगी।

13. विचारण न्यायालय ने पावर ऑफ अटॉर्नी को स्वयं पत्रावली पर लाने वाली अपीलार्थी के आवेदन को खारिज करने में त्रुटि की। पावर ऑफ अटॉर्नी धारक (अपीलार्थी के पिता) को अपीलार्थी द्वारा उसकी ओर से कार्यवाही में उपस्थित होने के लिए विधिवत अधिकृत किया गया है। अपीलार्थी उस स्थिति में वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से उपस्थित हो सकती है, जब उसकी उपस्थिति जिरह के लिए या न्यायालय के निर्देशानुसार किसी अन्य उद्देश्य के लिए आवश्यक हो। पावर ऑफ अटॉर्नी धारक को अपीलार्थी की ओर से शपथ पत्र दायर करने और पैरवी करने का सीमित अधिकार प्रदान किया गया है, इसलिए, अपीलार्थी की अनुपस्थिति में पावर ऑफ अटॉर्नी धारक को उसकी ओर से उपस्थित होने के लिए विधिवत अधिकृत किया गया है।

14. तदनुसार, **आवेदन 8-जीए पर पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 17.11.2022 को रद्द किया जाता है।** मुकदमे की कार्यवाही अपीलार्थी की ओर से विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा संचालित की जाएगी।यदि विचारण न्यायालय को अपीलार्थी के मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता होती है, तो उसे वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है।

15. तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1521

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

जनहित याचिका (पीआईएल) संख्या 415/2023

सदाराम ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: विनय कुमार तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., पंकज गुप्ता

जनहित याचिका- सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवैध अतिक्रमण को हटाना- न्यायालय ने

अनुवादित

प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, सिविल सचिवालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को निर्देश दिया कि वे आवश्यक निर्देश/निर्देश/परिपत्र जारी करें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि गांव सभा की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि अतिक्रमण से मुक्त हो और ऐसी सार्वजनिक उपयोगिता भूमि का उपयोग केवल उसी उद्देश्य के लिए किया जाए जिसके लिए इसे राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया है।
अनुमति दी गई. (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विनय कुमार तिवारी और राज्य-प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री योगेश कुमार अवस्थी को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 4/गांव सभा का नोटिस श्री पंकज गुप्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

2. श्री गणेश नाथ मिश्रा, विद्वान अधिवक्ता, ने प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से वकालतनामा दाखिल किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

3. इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोष की प्रार्थना की है:-

"(i) परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की कृपा करे जिसमें प्रतिवादी पक्षों/संबंधित अधिकारियों को गांव सभा भूमि की रिहाई सुनिश्चित करने का आदेश दिया जाए अर्थात गाटा संख्या 653/0.1980 हेक्टेयर, जो कि राजस्व अभिलेख में रास्ता के रूप में दर्ज है एवं जो ग्राम - वेशाहूपुर, मोतीगंज, सीहा गांव, गोंडा में स्थित है, तथा राजस्व अभिलेखों में सार्वजनिक उपयोगिता वाली भूमि के रूप में दर्ज है, उसे भू-हड़पने वालों के अवैध अतिक्रमण से मुक्त कराए तथा उसे उसके मूल स्वरूप में बहाल कराए।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 ग्राम सभा अतिक्रमण न हटाने में संबंधित अधिकारियों की निष्क्रियता के खिलाफ जांच शुरू करे, अर्थात गाटा संख्या 653/0.1980 हेक्टेयर, जो कि राजस्व अभिलेख में रास्ता के रूप में दर्ज है जो ग्राम - वेशाहूपुर, मोतीगंज, सीहा गांव, गोंडा में स्थित है, तथा राजस्व अभिलेखों में सार्वजनिक उपयोगिता वाली भूमि के रूप में दर्ज है, जिसमें भू-हड़पने वालों के अवैध अतिक्रमण में दोषी व्यक्तियों/अधिकारियों को दंडित किया जाए।"

4. सबसे पहले, प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री गणेश नाथ मिश्रा ने इस आशय पर आपत्ति जताई कि वर्तमान याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय के नियमों के अनुसार अपनी पूरी साख का खुलासा नहीं किया है, इसलिए, यह जनहित याचिका अकेले इसी आधार पर खारिज कर दी जानी चाहिए। उपरोक्त तर्क के प्रतिउत्तर में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 4, 5 और 6 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें उन्होंने उच्च न्यायालय के नियमों के तहत कानून के अनुसार सख्ती से अपनी साख का खुलासा किया है।

5. रिट याचिका के उपरोक्त पैराग्राफ यानी पैराग्राफ संख्या 4, 5 और 6 पर विचार करने के बाद, मुझे लगता है कि जहां तक रिट याचिका की प्रार्थना का संबंध है, वर्तमान जनहित याचिका विचारणीय योग्य है।

6. श्री योगेश कुमार अवस्थी, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उप प्रभागीय अधिकारी, सदर, गोंडा द्वारा प्रस्तुत निर्देश पत्र दिनांक 14.05. 2023 जो कि मुख्य स्थायी अधिवक्ता को संबोधित है जिसमें टिप्पणियां संलग्न है, उपजिलाधिकारी, सदर, गोण्डा द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.05.2023, स्थल निरीक्षण रिपोर्ट, ग्रामीणों का बयान, नक्शा नजरी, खेतौनी की नकल, अन्य दस्तावेज तथा विपक्षी संख्या 5 व अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत पुनःस्थापनआवेदन पत्र दिनांक 04.05.2023 की प्रतियां, को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसको रिकॉर्ड पर ले लिया गया है।

7. विचाराधीन विवाद्यक पर विचार करने से पहले, न्यायालय सक्षम राजस्व प्राधिकारी के आकस्मिक और संवेदनहीन दृष्टिकोण के संबंध में अपनी नाराजगी प्रकट कर रहा है जिसने 25.11.2008 को विशिष्ट आदेश पारित होने के बावजूद सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर यदि कोई अवैध अतिक्रमण है तो उस अतिक्रमण के विरूद्ध खाली/ हटाने के लिए कोई उचित और सकारात्मक प्रयास नहीं किए हैं। अत: यह अपेक्षा की जाती है कि जिला मजिस्ट्रेट, गोंडा इस पहलू को देखेंगे और प्रशासनिक पक्ष पर उचित आदेश पारित करेंगे क्योंकि इस न्यायालय ने जनहित याचिका की कुछ याचिकाओं में बार-बार निर्देश दिया है कि यदि किसी सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर कोई अवैध अतिक्रमण है, तो उसे तत्काल हटाया जाना चाहिए। और यदि अवैध अतिक्रमण हटाने का कोई आदेश पारित किया जाता है, तो उसे कानून के अनुसार सख्ती से तुरंत निष्पादित किया जाएगा। विशेष रूप से, वर्तमान मामले में, आदेश दिनांक 25.11.2008 को आज तक निष्पादित नहीं किया गया है और दिनांक 25.11.2008 के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन, जो लगभग 15 वर्षों के बाद दायर किए गए हैं, पर तहसीलदार (न्यायिक) द्वारा विचार किया गया है और आवेदनों को लंबित रखा गया है। चूँकि 04.05.2023 को विपक्षी संख्या 5 सहित कुछ ग्रामीणों द्वारा पुनःस्थापनआवेदन दायर किया गया है, जिसका अर्थ है कि दिनांक 25.11.2008 के आदेश को आज तक अपीलीय अधिकारी के समक्ष अपील नहीं किया गया है। इसलिए, दिनांक 25.11.2008 के आदेश के विरुद्ध सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश पारित न किए जाने के कारण, सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवैध अतिक्रमण अभी भी विद्यमान है, इसलिए यह सक्षम राजस्व प्राधिकारी के आकस्मिक और संवेदनहीन दृष्टिकोण का ज्वलंत उदाहरण है। जिसे प्रशासनिक स्तर पर वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा उदाहरण स्थापित करने के उद्देश्य से नियंत्रित किया जाना चाहिए कि यदि कोई सक्षम राजस्व प्राधिकारी सार्वजनिक उपयोगिता भूमि से अवैध अतिक्रमण को हटाने के लिए कानून के अनुसार सख्ती से कार्य नहीं करता है, तो उस पर कोई भी उचित कार्रवाई की जा सकती है, जो प्रश्नगत मुद्दे के तथ्यों और परिस्थितियों में आवश्यक होगी।

8. यहां यह बताना भी उचित है कि सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर कोई भी अवैध

अतिक्रमण न केवल अवैध और अनधिकृत है, बल्कि यह बड़े पैमाने पर ग्रामीणों के लिए गंभीर पूर्वाग्रह पैदा करता है और सार्वजनिक उपयोगिता भूमि का उद्देश्य ही विफल हो जाता है क्योंकि कुछ व्यक्तियों द्वारा ऐसी भूमि अवैध कब्जा कर लिया गया है। अत: इस आदेश के माध्यम से उ.प्र. राज्य के समस्त सक्षम राजस्व अधिकारीयों को निर्देशित किया जाता है कि अवैध अतिक्रमण के मामले को गंभीरता से लेवें तथा यदि कहीं से भी गांव सभा की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवैध अतिक्रमण के संबंध में कोई शिकायत प्राप्त होती है तो राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों की टीम द्वारा तत्काल मौके पर जाकर निरीक्षण किया जाए तथा यदि यह पाया जाता है कि गाँव सभा की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर कोई अवैध अतिक्रमण है, तो उपरोक्त अवैध अतिक्रमण को हटाने का त्वरित कार्य किया जाना चाहिए और उस अवैध अतिक्रमण को हटाने के लिए पंजीकृत मामले के निष्कर्ष के बाद, आदेश पारित किया जाना चाहिए। सक्षम राजस्व प्राधिकारी को तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए क्योंकि यदि अवैध अतिक्रमण को हटाने के लिए उचित आदेश समय पर निष्पादित नहीं किया जाता है, तो अवैध अतिक्रमण को हटाने/खाली कराने के लिए उचित आदेश पारित करने का उद्देश्य निरर्थक होगा और अवैध अतिक्रमण काफी लंबे समय तक बना रहेगा। वर्तमान मामला अवैध अतिक्रमण हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश का अनुपालन नहीं किये जाने का ज्वलंत उदाहरण है।

9. वर्तमान प्रकरण में उपजिलाधिकारी, सदर, गोण्डा द्वारा दिनांक 14.05.2023 को आदेश पारित किया गया है जिसमें यह तथ्य दर्शाया गया है कि सात व्यक्तियों ने गाटा संख्या 653/0.198 हेक्टेयर के कुछ भाग पर अवैध कब्जा कर लिया है तथा तहसीलदार (न्यायिक), सदर, गोंडा ने उन व्यक्तियों के खिलाफ हटाने और मुआवजे के लिए दिनांक 25.11.2008 को आदेश पारित किया है, लेकिन इस तरह के अवैध अतिक्रमण को हटाने की कवायद चल रही है, इसलिए, उपजिलाधिकारी ने अवैध कब्जा हटवाने के लिए नायब तहसीलदार, राजस्व निरीक्षक, चार लेखपाल और एक क्षेत्रीय लेखपाल की एक टीम गठित की है। मेरी समझ में यह नहीं आ रहा कि उपजिलाधिकारी, सदर, गोण्डा के संज्ञान में यह तथ्य कब आया कि अवैध अतिक्रमण को हटाने लेकर का आदेश 25.11.2008 को पारित हो चुका है इसके लिए प्रशासनिक स्तर पर सक्षम राजस्व प्राधिकारी के खिलाफ क्या कार्रवाई की गई, क्या इसका स्पष्टीकरण मांगा गया है कि पिछले 14 वर्षों से अधिक समय में अवैध अतिक्रमण क्यों नहीं हटाया गया।

10. यदि तर्क के लिए यह मान लिया जाए कि दिनांक 25.11.2008 का आदेश अवैध अतिक्रमणकारियों के विरुद्ध एक पक्षीय आदेश है जिसके विरुद्ध 04.05.2023 को पुनःस्थापनआवेदन दायर किए गए हैं जिसमें सुनवाई की अगली तारीख 27.05.2023 निर्धारित है, मैं यह समझने और समझाने में असफल हूं कि दिनांक 25.11.2008 के आदेश को उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 के तहत निर्धारित समय के भीतर निष्पादित करने के

लिए कोई उचित अभ्यास क्यों नहीं किया गया है। यद्यपि यदि आदेश दिनांक 25.11.2008 को तुरंत निष्पादित किया जाता, तो पुनःस्थापन आवेदन, यदि आवश्यक होता, उसके तुरंत बाद दायर किया जाता और उसका निपटान सक्षम प्राधिकारी द्वारा कानून के अनुसार सख्ती से किया जाता, लेकिन सक्षम राजस्व प्राधिकारी के उदासीन रवैये के कारण, आदेश दिनांक 25.11.2008 को आज तक निष्पादित नहीं किया गया है और अब, दिनांक 25.11.2008 के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन विचाराधीन हैं। उपरोक्त सभी तथ्य स्वतः स्पष्ट हैं, जिनमें कोई साक्ष्य मांगने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए यह दोहराया जाता है कि यदि संबंधित जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दोषी राजस्व अधिकारियों/कर्मचारियों के खिलाफ प्रशासनिक स्तर पर कोई उचित कार्रवाई नहीं की जाती है, तो यह गांव सभा की सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवैध अतिक्रमण को हटाने के लिए पारित आदेशों के निष्पादन को लंबित रखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करेंगे।

11. खतौनी, जिसे निर्देश पत्र के साथ संलग्न किया गया है, यह भी इंगित करता है कि प्रश्नगत गाटा राजस्व रिकॉर्ड में रास्ता (सार्वजनिक रास्ता) के रूप में दर्ज है और सार्वजनिक रास्ते/रास्ते पर किसी भी व्यक्ति द्वारा अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अतिक्रमण बड़े पैमाने पर जनता के लिए गंभीर पूर्वाग्रह और बाधा उत्पन्न करेगा। चूंकि बहाली/वापसी आवेदनों की सुनवाई की अगली तारीख 27.05.2023 तय की गई है, इसलिए, मुझे इस जनहित याचिका को अब और लंबित रखने का कोई अच्छा आधार या कारण नहीं दिखता है, तदनुसार, इस जनहित याचिका का प्रवेश स्तर पर निपटारा किया जाता है। सक्षम राजस्व प्राधिकारी को संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देकर, यदि संभव हो तो निर्धारित तिथि पर या अगले पंद्रह दिनों के भीतर, पुनःस्थापनआवेदनों को सख्ती से कानून के अनुसार निपटाए और यह सुनिश्चित करें कि सार्वजनिक उपयोगिता भूमि पर अवैध अतिक्रमण को हटाने का अनुपालन कड़ाई से कानून के अनुसार किया जाये।

12. इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, सिविल सचिवालय, यूपी, लखनऊ और कलेक्टर, गोंडा को तीन कार्य दिवसों के भीतर अवलोकन और दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों के खिलाफ आवश्यक कार्रवाई के लिए उपलब्ध कराएंगे।

13. चूँकि उपरोक्त निर्देश सम्पूर्ण राज्य अर्थात् उ.प्र. राज्य के लिये जारी किया गया है, अतः प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, सिविल सचिवालय, उ.प्र., लखनऊ आवश्यक दिशा-निर्देश/निर्देश/परिपत्र जारी कर यह सुनिश्चित करें कि सार्वजनिक उपयोगिता की भूमि गाँव सभा अतिक्रमण से मुक्त है और ऐसी सार्वजनिक उपयोगिता भूमि का उपयोग केवल उसी उद्देश्य के लिए किया जाएगा जो राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज है।

14. इस जनहित याचिका का तदनुसार **निस्तारण** किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1524

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

रिट बी संख्या 1002222/1999

कमलेश कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड लखनऊ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: टी.एन गुप्ता, दुर्गा प्रसाद, आई.डी. शुक्ला, मेहदी अब्बास रिज़वी, एस.के. मेहरोत्रा, एस.के. सिंह, टी.एन. गुप्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., आर.एन. गुप्ता, सीमा देवी

सिविल कानून -यू.पी. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901- धारा 218- भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 218 को यू.पी. अधिनियम संख्या 20 वर्ष 1997 द्वारा 18.08.1997 से निरस्त कर दिया गया - 1997 संशोधन अधिनियम की धारा 10- आरोपित आदेश द्वारा, राजस्व परिषद ने मामले को भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 218 के अनुसार आयुक्त को नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज दिया। निर्णय: श्री राम बनाम राजस्व परिषद यू.पी. लखनऊ एवं अन्य, 1999 (1) जेसीएलआर 1010 और रवि शंकर त्रिपाठी बनाम राजस्व परिषद, यू.पी. लखनऊ इसके अध्यक्ष एवं अन्य के माध्यम से, 2007 (1) एडीजे 23 में प्रतिपादित कानून का अनुसरण करते हुए, न्यायालय ने माना कि 1997 संशोधन अधिनियम की धारा 10 में निहित संक्रमणकालीन प्रावधान ने केवल उन कार्यवाहियों को बचाया जो राजस्व परिषद के समक्ष लंबित थीं। इसलिए, 18.08.1997 को आयुक्त या अतिरिक्त आयुक्त के समक्ष लंबित कार्यवाही को संशोधित अधिनियम की धारा 219 के प्रावधानों के तहत तय किया जाना आवश्यक था। विवादित आदेश को निरस्त कर दिया गया।

अनुमति दी गई. (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्री राम बनाम राजस्व बोर्ड उ.प्र., लखनऊ एवं अन्य, 1999 (1) जेसीएलआर 1010
2. काली शंकर द्विवेदी बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, 2000 (18) एलसीडी 1401
3. रवि शंकर त्रिपाठी बनाम अध्यक्ष, राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ एवं अन्य, 2007 (1) एडीजे 23

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मेहदी अब्बास रिजवी, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री ए.एस. तिवारी और हस्तक्षेपकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री सीमा देवी को सुना गया, जिनकी सहायता श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी ने की, जिन्होंने विपक्षी पक्ष संख्या 5/हस्तक्षेपकर्ता की ओर से वकालतनामा दाखिल किया है। उक्त वकालतनामा रिकॉर्ड पर लिया गया है।

इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने विपक्षी पक्षकार संख्या.1 द्वारा पारित दिनांक

29.06.1999 (अनुलग्नक संख्या.1) के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा उन्होंने यूपी भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 218 के तहत पुनरीक्षण को नए सिरे से निर्णय के लिए आयुक्त को वापस भेज दिया है (जिसे आगे "भूमि राजस्व अधिनियम" कहा जाएगा) जैसा कि 18.08.1997 से पहले प्रचलित था।

उपरोक्त विवादित आदेश पर आपत्ति जताते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि विपक्षी पक्ष संख्या.1 ने भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 218 के अनुसार आयुक्त को नए सिरे से निर्णय के लिए मामला वापस भेजकर स्पष्ट कानूनी त्रुटि की है, जैसा कि 18.08.1997 से पहले लागू था। इसके अलावा, चूंकि भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 218 को 18.08.1997 से प्रभावी रूप से यूपी अधिनियम संख्या 20/1997 द्वारा निरस्त कर दिया गया है, इसलिए अब इस धारा के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मेहदी अब्बास रिजवी ने यह भी कहा है कि विपक्षी पक्ष संख्या.1 के पास भूमि राजस्व अधिनियम के कानूनी प्रावधानों को अपने अर्ध न्यायिक आदेश द्वारा निरस्त करने और गलत, भ्रामक और गलत अधिकार क्षेत्र निर्धारित करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। इसके अलावा, विपक्षी पक्ष संख्या.1 ने गलत तरीके से माना है कि विद्वान आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 16.04.1999 का आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर है, लेकिन वास्तव में उक्त आदेश पूरी तरह से न्यायसंगत, उचित और कानूनी है। इसलिए, दिनांक 29.06.1999 का विवादित आदेश पूरी तरह से अवैध, शून्य, कानून और प्राकृतिक न्याय के विपरीत है। स्वीकृति की पहली तारीख को, इस न्यायालय ने दिनांक 17.08.1999 को आदेश पारित किया, जो इस प्रकार है: -

"स्वीकार किया गया
विपक्षी पक्ष संख्या 2 को नोटिस जारी करें।

विपक्षी पक्ष संख्या.1 की ओर से नोटिस विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है तथा विपक्षी पक्ष संख्या.3 की ओर से श्री आर.एन. गुप्ता, अधिवक्ता द्वारा नोटिस स्वीकार कर लिया गया है।"

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि **श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राजस्व बोर्ड लखनऊ एवं अन्य, 1999 (1) 1010** में इस न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, विचाराधीन मुद्दा अब प्रासंगिक नहीं रह गया है और निम्नानुसार निर्णय दिया है :-

"इस अस्थाई प्रावधान के मद्देनजर केवल राजस्व बोर्ड के समक्ष लंबित संदर्भों को बचाया गया और आयुक्त या अतिरिक्त आयुक्त के समक्ष लंबित संशोधनों को नहीं बचाया गया, और इस तरह आयुक्त या अतिरिक्त आयुक्त को अधिनियम की धारा 219 के तहत 18.08.1997 को उनके समक्ष लंबित संशोधनों का फैसला करना चाहिए था। इन परिस्थितियों में राजस्व बोर्ड द्वारा

11.01.1999 को पारित निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता है।

रिट याचिका सफल होती है और उसे स्वीकार किया जाता है। राजस्व बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 11.01.1999 के आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2) को अपास्त किया जाता है। याचिकाकर्ता को निर्देश दिया जाता है कि वह पुनरीक्षण की स्थिरता के बारे में राजस्व बोर्ड के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत करे, जिस पर कानून के अनुसार शीघ्र निर्णय लिया जाएगा।"

उल्लेखनीय रूप से, दो परस्पर विरोधी विचारों के कारण, एक; **काली शंकर द्विवेदी बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, 2000 (18) एलसीडी 1401 और श्री राम (सुप्रा)** के संबंध में एवं एक अन्य मामले में, इस मुद्दे को **रवि शंकर त्रिपाठी बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के माध्यम से इसके अध्यक्ष और अन्य, 2007 (1) एडीजे 23** के संबंध में डिवीजन बेंच के समक्ष भेजा गया था। इसलिए, प्रश्नगत विवाद को हल करने के लिए**, रवि शंकर त्रिपाठी (सुप्रा)** के संबंध में पैरा 5, 12 और 8 को नीचे पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक होगा: -

"5. हमें 1997 के संशोधन अधिनियम की धारा 10 को भी पुनः उद्धृत करना होगा जो एक अस्थायी प्रावधान है:

10. अस्थाई प्रावधान - इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 218 या उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 333-ए के अधीन बोर्ड को संदर्भित सभी मामले, जैसे वे इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व थे और ऐसे प्रारम्भ की तारीख को बोर्ड के समक्ष लम्बित थे, बोर्ड द्वारा इस प्रकार सुने और विनिश्चित किये जाते रहेंगे मानो यह अधिनियम अधिनियमित ही नहीं हुआ है।

12. वर्तमान मामले में असंशोधित अधिनियम की धारा 218 के तहत आवेदन 18.08.1997 से पहले दायर किया गया था, लेकिन 18.08.1997 से संशोधन लागू होने के बाद इस पर निर्णय लिया गया। उक्त तिथि को, इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त को संशोधित अधिनियम की धारा 219 के तहत संशोधन पर निर्णय लेने का अधिकार था। अधिनियम की धारा 10 में निहित अस्थाई प्रावधान यह प्रदान करता है कि केवल वे कार्यवाही जो ऐसे प्रारंभ की तिथि पर बोर्ड के समक्ष लंबित थीं, बोर्ड द्वारा उसी प्रकार सुनवाई जारी रखी जाएगी जैसे कि संशोधन लागू नहीं हुआ था। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अन्य लंबित कार्यवाही को संशोधित अधिनियम के प्रावधानों के तहत तय किया जाना आवश्यक था।

18. वर्तमान मामले में संशोधन अधिनियम की धारा 10 में एक अस्थायी प्रावधान है जो केवल उन कार्यवाहियों को बचाता है जो राजस्व बोर्ड के समक्ष लंबित थीं। इस प्रकार, 18.08.1997 को अतिरिक्त आयुक्त के समक्ष लंबित कार्यवाही को संशोधित अधिनियम की धारा 219 के प्रावधानों के तहत तय किया जाना आवश्यक था। इसलिए, हम काली शंकर

द्विवेदी (सुप्रा) में विद्वान न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं और श्री राम (सुप्रा) में लिए गए दृष्टिकोण से सहमत हैं।"
(जोर दिया गया)

उपर्युक्त संदर्भ में, डिवीजन बेंच ने **रवि शंकर त्रिपाठी** (सुप्रा) के पैरा 34 में संदर्भ का उत्तर दिया है, जो इस प्रकार है: -

"34. उपरोक्त सभी कारणों से, हम इस संदर्भ का उत्तर देते हैं कि काली शंकर द्विवेदी (सुप्रा) मामले में निर्णय सही कानून निर्धारित नहीं करता है। हालाँकि, हम श्री राम (सुप्रा) के मामले में विद्वान न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं।"

इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियां **श्री राम** (सुप्रा) के मामले के समान हैं, इस प्रकार**, श्री राम** (सुप्रा) और **रवि शंकर त्रिपाठी** (सुप्रा) के संबंध में इस न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर , यह रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

हस्तक्षेपकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी ने कहा है कि इस न्यायालय के श्री राम (सुप्रा) तथा रविशंकर त्रिपाठी (सुप्रा) के संबंध में दिए गए निर्णय में इस बिन्दु पर विधिक स्थिति स्पष्ट नहीं की गई है कि यदि आयुक्त/अपर आयुक्त के समक्ष धारा 218 के अंतर्गत कोई पुनरीक्षण वाद दाखिल किया गया है और धारा 218 के हटा दिए जाने के पश्चात क्या यह संशोधित अधिनियम की धारा 219 के प्रावधानों के अंतर्गत स्वतः ही तय हो जाएगा।

श्री अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी ने आगे दलील दी कि चूंकि इस कानूनी स्थिति को स्पष्ट रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क कानून की नजर में मान्य नहीं हैं।

श्री ए.एस. तिवारी, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता तथापि, उन्होंने दिनांक 29.06.1999 के आदेश का बचाव करने का प्रयास किया, लेकिन वे **श्री राम** (सुप्रा) और **रविशंकर त्रिपाठी** (सुप्रा) के संबंध में इस न्यायालय के निर्णयों के आलोक में उक्त आदेश का बचाव नहीं कर सके।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री तथा **श्री राम** (सुप्रा) और **रविशंकर त्रिपाठी** (सुप्रा) के संबंध में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलोकन करने के बाद, मैं कानून की इस स्थिति से सहमत हूं कि चूंकि वर्तमान मामले में, 1997 के संशोधन अधिनियम की धारा 10 में एक अस्थाई प्रावधान निहित है, जो केवल उन कार्यवाहियों को बचाता है जो राजस्व बोर्ड के समक्ष लंबित हैं, इसलिए, 18.08.1997 को आयुक्त या अतिरिक्त आयुक्त के समक्ष लंबित कार्यवाहियों को संशोधित अधिनियम की धारा 219 के प्रावधानों के तहत तय किया जाना आवश्यक था।

इन परिस्थितियों में, राजस्व बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 29.06.1999 (अनुलग्नक संख्या 1) का

निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता। इसलिए, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 29.06.1999 के आदेश को अपास्त किया जाता है।

पक्षकारों को कानून के अनुसार राजस्व बोर्ड के समक्ष उचित आवेदन/याचिका दायर करने की स्वतंत्रता दी गई है और यदि ऐसा आवेदन दायर किया जाता है, तो संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करके, उस पर शीघ्रता से, अधिमानत: उसके दायर होने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाएगा।

उपर्युक्त शर्तों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1527

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

रिट-बी संख्या 340/2023

श्रीमती सावित्री देवी और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उप निदेशक, चकबंदी, वाराणसी एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अंकित मिश्रा, श्री मो. अली

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री उमेश चंद्र पांडे

सिविल कानून - विलम्ब क्षमा - परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा 5 - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, धारा 11 (1), 48 (1) - निजी विपक्षी दलों ने ए.सी.ओ. के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें श्री भगौती नामक व्यक्ति द्वारा कथित रूप से निष्पादित वसीयत-पत्र के आधार पर नामांतरण की मांग की गई, जो संपत्ति का मूल धारक था, जिसमें स्वर्गीय भगौती की पत्नी को पक्षकार बनाए बिना यह कहा गया कि वह जीवित रहते हुए मर चुकी है। चकबंदी अधिकारी ने निर्देश दिया कि निजी विपक्षी दलों का नाम संबंधित चक में दर्ज किया जाए। स्वर्गीय भगौती की पत्नी विपक्षी के साथ रह रही थी तथा उसे उपरोक्त आदेश के बारे में जानकारी नहीं थी, क्योंकि वह अशिक्षित महिला थी; इसलिए वह दिनांक 26.03.1981 के आदेश को चुनौती देते हुए कोई अपील दायर नहीं कर सकी। उक्त आदेश की जानकारी उसे मई 2005 में तब हुई जब निजी विपक्षीगण का व्यवहार उसके प्रति अभद्र हो गया। इसके बाद उसने अपील और पुनरीक्षण दाखिल किया। दोनों को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 26.03.1981 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देने में 24 वर्षों का अत्यधिक विलम्ब हुआ था। निर्णय: स्वर्गीय भगौती की पत्नी को कम से कम एक अवसर दिया जाना चाहिए था ताकि वह प्राधिकारी को यह बताते हुए साक्ष्य प्रस्तुत कर सके कि निजी विपक्षीगण के पक्ष में उसके दिवंगत पति की कोई वसीयत-विलेख नहीं थी। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें पुनरीक्षण का निर्णय केवल इस आधार पर किया जाना चाहिए था कि दिनांक 26.03.1981 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देने में अत्यधिक विलम्ब हुआ था। अनुमति दी गई. (ई-5)

अनुवादित

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रिखदेव एवं अन्य बनाम अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त), आजमगढ़ एवं अन्य [2012 (30) एलसीडी 712]
2. रूप नारायण व अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी व अन्य 2020 (38) एलसीडी 2577
3. राम पदारथ व अन्य बनाम द्वितीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर व अन्य; रिट याचिका संख्या 1732/1982

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

श्री मोहम्मद अली, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, श्री उपेन्द्र सिंह, राज्य-विपक्षीगणों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा श्री उमेश चन्द्र पाण्डेय, केविएटेर्स/निजी विपक्षी पक्ष संख्या-4 से 7 के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की है:-

"(i) उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48(1) के अन्तर्गत दायर पुनरीक्षण संख्या 530/2017 (सावित्री एवं अन्य बनाम राम धीरज (मृत) अपने विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य के माध्यम से) में उप संचालक चकबंदी, गोण्डा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 27.03.2023, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत दायर अपील संख्या-769/2015-16 (श्रीमती कलावती बनाम राम धनी व अन्य) में बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, गोण्डा द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.07.2016 और वाद संख्या 140/1980 (राम धनी एवं अन्य बनाम भगौती एवं अन्य) में चकबंदी अधिकारी, क्षेत्र 3, उतरौला, जिला गोंडा द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.03.1981, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1, 2 एवं 3 के रूप में संलग्न है, को उत्प्रेष्ण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करते हुए निरस्त किया जाए ।

(ii) परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश करते हुए विपक्षीगण को निर्देशित किया जाए कि वे उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48(1) के अन्तर्गत दायर पुनरीक्षण संख्या 530/2017 (सावित्री एवं अन्य बनाम राम धीरज (मृत) अपने विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य के माध्यम से) में उप संचालक चकबंदी, गोण्डा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 27.03.2023, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत दायर अपील संख्या-769/2015-16 (श्रीमती कलावती बनाम राम धनी व अन्य) में बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, गोण्डा द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.07.2016 और वाद संख्या 140/1980 (राम धनी एवं अन्य बनाम भगौती एवं अन्य) में चकबंदी अधिकारी, क्षेत्र 3, उतरौला, जिला गोंडा द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.03.1981, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1, 2 एवं 3 के रूप में संलग्न है, का अनुपालन न करे।

विपक्षी पक्षकार संख्या 1, 2 एवं 3 को अग्रेतर निर्देशित किया जाए कि वे आराजी चक संख्या- 268, खाता संख्या 267/2 एवं 269 की भूमि के संबंधित अभिलेखों में याचिकाकर्ताओं के नाम पर परिणामी प्रविष्टि करें, क्योंकि वे स्वर्गीय भगौती की कानूनी

उत्तराधिकारी एवं पुत्रियां हैं, जो उक्त भूमि के पंजीकृत खातेदार थे।"

विवादित आदेशों का विरोध करने का मूल आधार यह है कि निजी विपक्षीगणों ने दिनांक 06.01.1981 को सहायक चकबंदी अधिकारी के न्यायालय में एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसमें कथित रूप से श्री भगौती नामक व्यक्ति द्वारा दिनांक 28.11.1980 को निष्पादित वसीयत-विलेख के आधार पर नामांतरण की मांग की गई थी, जो कि उक्त संपत्ति के मूल खातेदार थे, तथा उन्होंने उस मामले में स्वर्गीय भगौती की पत्नी को पक्षकार बनाए बिना यह कहते हुए नामांतरण की मांग की थी कि उनकी मृत्यु हो गई है, जबकि वे जीवित थीं और उसके बाद भी काफी लंबे समय तक जीवित रहीं।

याचियों के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान दिनांक 06.01.1981 के एक आवेदन (अनुलग्नक संख्या 5) की ओर आकृष्ट किया है, जिसमें स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि प्रश्नगत भूमि के मूल खातेदार श्री भगौती की मृत्यु हो चुकी है तथा अपने जीवनकाल में ही उन्होंने विपक्षी निजी पक्षकारों के पक्ष में वसीयतनामा निष्पादित कर दिया था। श्री भगौती के कोई पुत्र (पुरुष संतान) नहीं था तथा उनकी पत्नी भी जीवित नहीं है। उक्त आवेदन के आवेदकगण/ विपक्षी निजी पक्षकारों ने अपने को सगा चचेरा भाई बताया है तथा चूंकि वे श्री भगौती के जीवनकाल में उनकी देखभाल कर रहे थे, अतः श्री भगौती ने उनके पक्ष में वसीयतनामा निष्पादित कर दिया है। उक्त आवेदन के आधार पर चकबंदी अधिकारी ने प्रकाशन हेतु निर्देश दिया तथा उक्त प्रकाशन दिनांक 08.01.1981 को जारी कर दिया गया। चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.08.1981 के अनुसार उक्त प्रकाशन पर कोई आपत्ति दाखिल नहीं की गयी है। अत: उन्होंने वसीयत-पत्र के हाशिये के गवाह के साक्ष्य को दर्ज करने के पश्चात निर्देश दिया कि प्रश्नगत चक अर्थात चक संख्या 268, 267/2 एवं 269 में निजी विपक्षीगणों का नाम दर्ज किया जाए।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं की मां श्रीमती कलावती 26.03.1981 को जीवित थीं तथा दिनांक 06.01.1981 का आवेदन एक कपटपूर्ण आवेदन था, जिसमें यह कहा गया था कि वर्तमान याचिकाकर्ता की मां श्रीमती कलावती जीवित नहीं थीं, अत: चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 26.03.1981 का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है, क्योंकि उपरोक्त आदेश कपटपूर्ण दस्तावेजों के आधार पर पारित किया गया है। हालांकि, याचीगण की मां विपक्षीगण के साथ रह रही थी तथा वह अनपढ़ महिला होने के कारण उक्त आदेश के बारे में नहीं जान सकी, इसलिए वह उक्त आदेश दिनांक 26.03.1981 को चुनौती देते हुए कोई अपील दाखिल नहीं कर सकी। हालांकि, याचीगण की मां को दिनांक 26.03.1981 के आदेश के बारे में मई, 2005 में पता चला जब विपक्षीगण का व्यवहार उसके प्रति अभद्र हो गया तथा उन्होंने कहा कि वह उनके साथ नहीं रहेगी, इसलिए उसने दिनांक 24.05.2005 को उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 11 (1) के तहत अपील प्राधिकारी अर्थात चकबंदी के बंदोबस्त

अधिकारी के समक्ष परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन के साथ अपील दाखिल की।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने आगे कहा है कि याचिकाकर्ताओं की मां को निजी विपक्षी पक्षों द्वारा वर्ष 1981 में मृत बताया गया था, लेकिन वह जीवित होते हुए भी स्वयं 24.05.2005 को अपील दायर कर चुकी हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ताओं की मां द्वारा दायर की जा रही सीमा अधिनियम की धारा 5 के आवेदन पर सुनवाई की और 24 वर्षों के अत्यधिक विलंब के आधार पर उस आवेदन को खारिज करते हुए दिनांक 04.07.2016 के आदेश के तहत फैसला सुनाया। अपीलीय प्राधिकारी ने अपने आदेश में कहा है कि अपीलकर्ता श्रीमती कलावती को वृद्धावस्था पेंशन मिल रही थी और वह राशन कार्ड धारक थीं, इसलिए वह यह नहीं कह सकतीं कि वह एक अनपढ़ व्यक्ति हैं और उन्हें कानून की जानकारी नहीं हो सकती है। अपीलीय प्राधिकारी ने आगे कहा है कि सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत दायर आवेदन में 24 वर्षों के अत्यधिक विलंब को ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है।

मैंने सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत दायर उस आवेदन का अवलोकन किया है और पाया है कि उक्त आवेदन में उचित शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। हालांकि, तथ्य यह है कि दिनांक 26.03.1981 का आक्षेपित आदेश उस आवेदन पर पारित किया गया था, जिसमें वर्तमान याचिकाकर्ताओं की मां को मृत कहा गया था। दिनांक 26.03.1981 और 04.07.1916 के आदेशों से व्यथित होकर याचिकाकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 (1) के तहत पुनरीक्षण प्राधिकारी यानी उप संचालक चकबंदी के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी याचिकाकर्ताओं के पुनरीक्षण को दिनांक 27.03.2023 के आदेश के द्वारा इस आधार पर निरस्त कर दिया है कि बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी यानी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 04.07.2016 के आदेश में कोई त्रुटि या अवैधानिकता नहीं है, क्योंकि 24 वर्षों का अस्पष्ट विलम्ब पुनरीक्षणकर्ताओं/याचिकाकर्ताओं के दावे को अमान्य कर देगा।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि चूंकि निजी विपक्षीगण द्वारा चकबंदी अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया आधार ही गलत तथ्य और एक कपटपूर्ण दस्तावेज पर आधारित है, इसलिए ऐसे आदेश को चुनौती देने में विलम्ब निरर्थक होगा, क्योंकि कपटपूर्ण तथ्य सम्पूर्ण कार्यवाही और चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश को अमान्य कर देगा। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान ***रिखदेव एवं अन्य बनाम अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त), आजमगढ़ एवं अन्य, [2012 (30) एलसीडी 712]*** मामले में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय की ओर आकर्षित किया है, जिसका पैरा 36 इस प्रकार है:-

"36. इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, (1996) 5 एससीसी 550: जेटी 1996 (7) एससी 135 में, लाजरस एस्टेट्स और स्मिथ बनाम ईस्ट एलो रूरल

डिस्ट्रिक्ट काउंसिल, 1956 एसी 336: (1956) 1 ऑल ईआर 855: (1956) 2 डब्ल्यूएलआर 888 का जिक्र करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"22. भारत में न्यायपालिका के पास भी निहित शक्ति है, विशेष रूप से धारा 151 सीपीसी के तहत, अपने फैसले या आदेश को वापस लेने की, अगर यह अदालत से धोखाधड़ी करके प्राप्त किया गया हो। मुकदमे या कार्यवाही में किसी पक्ष पर धोखाधड़ी के मामले में, न्यायालय प्रभावित पक्ष को धोखाधड़ी से प्राप्त डिक्री को अपास्त करने के लिए एक अलग मुकदमा दायर करने का निर्देश दे सकता है। निहित शक्तियाँ वे शक्तियाँ हैं जो सभी न्यायालयों में, विशेष रूप से उच्च अधिकार क्षेत्र की होती हैं। ये शक्तियां विधान से नहीं, बल्कि न्यायाधिकरणों या न्यायालयों की प्रकृति और संविधान से आती हैं, ताकि वे अपनी गरिमा बनाए रख सकें, अपनी प्रक्रिया और नियमों का पालन सुनिश्चित कर सकें, अपने अधिकारियों को अपमान और गलत कार्यों से बचा सकें तथा अनुचित व्यवहार के लिए दंडित कर सकें। न्यायालय के कामकाज के व्यवस्थित प्रशासन के लिए यह शक्ति आवश्यक है।"

सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के आधार पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चकबंदी अधिकारी द्वारा दिनांक 26.03.1981 को पारित आदेश निरस्त किये जाने योग्य है।

उन्होंने आगे तर्क दिया है कि धोखाधड़ी से संबंधित उपरोक्त आधार पर अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए था, लेकिन दोनों प्राधिकारियों ने केवल 24 वर्षों के अत्यधिक विलंब के आधार पर अपील और पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है।

इसके विपरीत, निजी विपक्षीगणों के विद्वान अधिवक्ता श्री उमेश चंद्र पांडे ने कहा है कि चूंकि अपील दायर करते समय याचिकाकर्ताओं द्वारा 24 वर्षों के विलंब को स्पष्ट नहीं किया गया है, इसलिए अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित किए जा रहे आक्षेपित आदेश पूरी तरह से न्यायसंगत और उचित हैं। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान ***रूप नारायण और अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी और अन्य [2020 (38) एलसीडी 2577].*** निर्णय की ओर आक्रष्ट किया, जिसका पैरा-39 इस प्रकार है:-

"39. इसके अतिरिक्त, यह स्वीकार किया जा सकता है कि तथ्य और विधि दोनों के प्रश्नों पर निर्णय करने के लिए उप संचालक चकबंदी का क्षेत्राधिकार बहुत व्यापक है। उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 3, 2002 के तहत स्पष्टीकरण (3) के रूप में अधिनियम की धारा 48 में किए गए संशोधन से पूर्व, इसे कुछ सीमाओं में बांधा गया था। असंशोधित कानून के तहत भी, सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तिगणों ने इस सिद्धांत को मंजूरी दी थी कि जहां निष्कर्ष विकृत हों या साक्ष्य द्वारा समर्थित न हों, वहां उप संचालक का कर्तव्य होगा कि वह पूरे मामले की जांच करें। यह शिवानंद (उपरोक्त) में माना गया था, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। अब धारा 48 के

संशोधित प्रावधानों के तहत उप संचालक को किसी भी अधीनस्थ प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए तथ्य और विधि के सभी प्रश्नों पर निर्णय करने के लिए बहुत व्यापक शक्तियां प्रदान की गई हैं। उन्हें किसी भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य की सराहना करने की शक्ति भी प्रदान की गई है। वास्तव में, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 3, 2002 के तहत उप संचालक को धारा 48 के तहत दी गई विस्तारित शक्तियां 2002 के अधिनियम संख्या 3, 10 नवंबर, 1980 से पूर्वव्यापी रूप से, एक बहुत ही अपरंपरागत प्रकार का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार बनाते हैं। लेकिन, कानून इसे ऐसा ही होने का आदेश देता है। धारा 48 के संशोधित प्रावधानों को स्पष्टीकरण (3) के साथ पूर्ण प्रभाव देना इस न्यायालय का कर्तव्य है। धारा 48 के संशोधित प्रावधान (जैसा कि यू.पी. अधिनियम संख्या 3, 2002 द्वारा संशोधित किया गया है) इस प्रकार हैं:

"मूल अधिनियम की धारा 48 में, स्पष्टीकरण (2) के पश्चात निम्नलिखित स्पष्टीकरण डाला जाएगा, अर्थात्:--
स्पष्टीकरण (3).-इस धारा के अन्तर्गत किसी आदेश की सत्यता, वैधानिकता या औचित्य की जांच करने की शक्ति में किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष, चाहे वह तथ्य हो या विधि का, की जांच करने की शक्ति सम्मिलित है, तथा इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने की शक्ति भी सम्मिलित है।"

श्री पाण्डेय ने आगे कहा है कि यदि याचिकाकर्ता वसीयत-पत्र से व्यथित भी हैं, तो उन्हें इस रिट याचिका को दाखिल करने के बजाय वसीयत-पत्र को चुनौती देने वाला वाद दाखिल करना चाहिए था, तथा यदि वसीयत-पत्र को शून्य घोषित कर दिया जाता है, तो याचिकाकर्ता सिविल न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश के आधार पर प्रश्नगत सम्पत्ति पर अपना दावा प्रस्तुत कर सकते हैं, परन्तु इस स्तर पर रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी। उपरोक्त तर्क के उत्तर में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि निर्विवाद रूप से याचिकाकर्ताओं की माता दर्ज खातेदार की विधवा थी, तथा जब निजी विपक्षीगण द्वारा आवेदन दाखिल किया गया था, तब वह जीवित थी, तो उन्हें निजी विपक्षीगण द्वारा दाखिल किए गए वाद में विपक्षीगण के रूप में पक्षकार बनाया जाना चाहिए था, परन्तु निजी विपक्षीगण ने जानबूझकर ऐसा नहीं किया है। याचिकाकर्ता की मां (श्रीमती कलावती) को विपक्षी पक्षकार बनाया गया और वह प्रकाशन के बारे में नहीं जान सकी क्योंकि वह अपने पति (श्री भगौती) की मृत्यु के बाद निजी विपक्षी पक्षों के साथ रह रही थी और निजी विपक्षी पक्ष उसकी देखभाल कर रहे थे। उपरोक्त तर्कों के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा ***राम पदारथ और अन्य बनाम द्वितीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर और अन्य; रिट याचिका संख्या- 1732/1982 सबद्ध रिट याचिका संख्या-1126 व 1129/1983: 6351/1982 व अन्य, जो 26 सितम्बर, 1988 को निर्णीत हुई,*** उसके पैरा 40 के संदर्भ में, जो इस प्रकार है:-

"40. हमारा विचार है कि इन्द्र देव बनाम श्रीमती राम प्यारी, 1982 ए.एल.जे. 1308 का

वाद सही ढंग से तय किया गया है और उक्त निर्णय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, जबकि खंडपीठ का वाद, डॉ. अयोध्या प्रसाद बनाम गंगोत्री, 1981 ए.डब्लू.सी. 469, चकबंदी अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र के बारे में है, लेकिन जहां तक यह माना जाता है कि शून्य दस्तावेजों के संबंध में मुकदमा राजस्व न्यायालय में चलेगा, यह एक अच्छा कानून नहीं है। शून्य दस्तावेज को रद्द करने के लिए मुकदमा या कार्रवाई आम तौर पर सिविल न्यायालय में चलेगी और किसी पक्ष को कानून के तहत इस राहत को पाने के अपने अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है, सिवाय इसके कि अधिकार या स्थिति की घोषणा और काश्तकार आवश्यक रूप से आवश्यक है जिसमें निरस्तीकरण के लिए राहत भी अनावश्यक और निरर्थक होगी। एक दर्ज काश्तकार जिसके पास प्रथम दृष्टया उसके पक्ष में शीर्षक है, उसे शून्य दस्तावेजों के निरस्तीकरण के लिए राहत मांगने के संबंध में राजस्व न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए शायद ही निर्देशित किया जा सकता है, जिसके कारण उसे कानून की अदालत का दरवाजा खटखटाना पड़ा और ऐसे मामले में वह सहायक राहत का भी दावा कर सकता है, भले ही उसे राजस्व न्यायालय द्वारा प्रदान किया जा सकता है।

संदर्भ का उत्तर

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात्, मैं यह पाता हूँ कि चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 26.03.1981 को चुनौती देते समय याचिकाकर्ताओं की माता (श्रीमती कलावती) ने अपील दायर करने में विलम्ब के कारणों को उचित रूप से स्पष्ट नहीं किया है। तथापि, उन्होंने केवल इतना कहा है कि वे अशिक्षित महिला होने के कारण दिनांक 26.03.1981 के आदेश के बारे में नहीं जान सकीं। तथापि, उन्होंने अपील में तथा पुनरीक्षण में यह कहा है कि उनके पति (श्री भगौती) जो मूल खातेदार थे, की मृत्यु के पश्चात् वे अपने पति के परिवार के सदस्यों के साथ रह रही थीं, जो निजी विपक्षी हैं, तथा वे उनकी सम्पत्ति की देखभाल कर रहे थे, इसलिए, वे यह नहीं जान सकीं कि उनके दिवंगत पति के परिवार के सदस्य, जो निजी विपक्षी हैं, एक वसीयत-पत्र के आधार पर उनके दिवंगत पति की सम्पत्ति हड़पने के लिए अपने मन में कोई दुर्भावनापूर्ण इरादा रखते थे, जबकि उनकी जानकारी में ऐसी कोई वसीयत-पत्र नहीं थी। उन्होंने अपील में तथा पुनरीक्षण में यह भी कहा है कि इस तथ्य के बावजूद कि दिनांक 26.03.1981 को आक्षेपित आदेश पारित होने के समय वह जीवित थीं, यहां तक कि जब दिनांक 06.01.1981 को निजी विपक्षीगण द्वारा आवेदन प्रस्तुत किया गया था, तब उन्हें मृत घोषित कर दिया गया। उन्होंने अपनी अपील तथा पुनरीक्षण में यह भी कहा है कि उन्हें चकबंदी अधिकारी के समक्ष सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया। तथापि, उस बिन्दु पर चकबंदी अधिकारी द्वारा यह निष्कर्ष लौटाया गया है कि दिनांक 26.03.1981 को आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व प्रकाशन जारी किया गया था, परन्तु किसी ने उस पर आपत्ति दर्ज नहीं की।

चूंकि याचिकाकर्ताओं की मां द्वारा यह विशिष्ट आधार लिया गया था कि दिनांक 06.01.1981

का आवेदन (अनुलग्नक संख्या 5) उचित नहीं था, जिसमें उन्हें मृत घोषित किया गया था, इसलिए कम से कम मूल खातेदार की विधवा को अपना मामला रखने का अवसर दिया जाना चाहिए था। जहां तक इस तथ्य का प्रश्न है कि वसीयत-पत्र के हाशिये के गवाह चकबंदी अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए तथा उन्होंने वसीयत-पत्र के तथ्य को सिद्ध कर दिया, तो कम से कम उन्हें एक अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए था, ताकि वे साक्ष्य प्रस्तुत कर प्राधिकारी को अवगत करा सकें कि उनके दिवंगत पति की कोई वसीयत-पत्र निजी विपक्षी पक्षों के पक्ष में नहीं थी। विशेष रूप से, यह ऐसा मामला है, जिसमें एक वसीयत-पत्र के आधार पर नामांतरण की मांग की गई है, जो पंजीकृत नहीं है, क्योंकि इस आशय का कोई विवरण किसी भी पक्ष की ओर से नहीं दिया गया है तथा मूल पट्टेदार की विधवा को जानबूझकर आवश्यक पक्ष नहीं बनाया गया है, इसलिए प्रकाशन के माध्यम से कमी को पूरा नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त चर्चाओं के दृष्टिगत, मैं यह पाता हूं कि पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा उपरोक्त सभी तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए था और यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें केवल इस आधार पर पुनरीक्षण का निर्णय लिया जाना चाहिए था कि चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 26.03.1981 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देने में अत्यधिक विलम्ब हुआ था। इसलिए, पुनरीक्षण प्राधिकारी को उपरोक्त तथ्यों और याचिकाकर्ताओं द्वारा पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष उठाए गए आधारों पर विचार करते हुए एक नया आदेश पारित करना चाहिए था।

तदनुसार, पुनरीक्षण प्राधिकारी अर्थात उप संचालक चकबंदी, गोंडा द्वारा पारित दिनांक 27.03.2023 के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है। मामले को पुनरीक्षण प्राधिकारी को पुनः वापस भेजा जाता है ताकि पुनरीक्षण में याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तथ्यों और आधारों पर विचार करके संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए कानून के अनुसार पूर्णतः नया आदेश पारित किया जा सके। ऐसा आदेश, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर पारित किया जाएगा।

अतः, वर्तमान रिट याचिका आंशिक रूप से **स्वीकृत** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1534

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 20823/2022

उषा कुमार और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रवीण कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., सुश्री अर्चना सिंह, श्री प्रणेश दत्त त्रिपाठी

सिविल कानून- सेवा वाद - नियुक्ति -सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा, 2019- ऑनलाइन फॉर्म में याचिकाकर्ताओं ने दूरस्थ शिक्षा माध्यम से बीटीसी के स्थान पर बीटीसी का उल्लेख किया था। इस आधार पर उम्मीदवारी खारिज कर दी गई कि ऑनलाइन आवेदन पत्र में दूरस्थ शिक्षा

से बीटीसी की जानकारी नहीं दी गई थी। विवाद: क्या याचिकाकर्ताओं द्वारा बीटीसी (दूरस्थ शिक्षा द्वारा) की पात्रता का खुलासा न करना उन्हें जिले के आवंटन से वंचित करेगा। आयोजित: उम्मीदवारों के पास बीटीसी होना आवश्यक है, भले ही उन्होंने प्रशिक्षण योग्यता कहाँ से और किस माध्यम से प्राप्त की हो। न्यायालय ने प्रतिवादियों के इस तर्क में कोई तथ्य नहीं पाया कि याचिकाकर्ताओं ने अपने ऑनलाइन आवेदन पत्र में यह खुलासा नहीं किया कि वे शिक्षा मित्र हैं जिन्होंने दूरस्थ शिक्षा से बीटीसी योग्यता प्राप्त की है। उक्त खुलासा न करने के कारण, सॉफ्टवेयर ने उन्हें शिक्षा मित्र के रूप में नहीं पहचाना और परिणामस्वरूप, उन्हें स्वीकार्य वेटेज नहीं दिया। न्यायालय की राय में, यह दोषपूर्ण प्रोग्रामिंग के कारण था और चूंकि याचिकाकर्ताओं ने पात्रता मानदंडों को पूरा किया था, इसलिए उन्हें नियुक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता था। प्रतिवादियों को जिलों के आवंटन के लिए सफल उम्मीदवारों की सूची में याचिकाकर्ताओं के नाम शामिल करने का निर्देश दिया गया था। (पैरा 10, 12, 13)

अनुमति दी गई. (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रेकशर खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट याचिका संख्या 4677/2020, दिनांक 08.07.2020
2. राम मनोहर यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, विशेष अपील संख्या 834/2013, दिनांक 30.05.2013
3. आशुतोष कुमार श्रीवास्तव और 60 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 4070/2020, दिनांक 30.05.2020

(माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री प्रवीण कुमार श्रीवास्तव, प्रतिवादी संख्या 3 और 4 के लिए उपस्थित हुए विद्वान वकील श्री पीडी त्रिपाठी और राज्य प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान स्थायी वकील को सुना।

शिक्षा मित्र के रूप में काम करने वाले रिट याचिकाकर्ताओं ने क्रमशः 05.11.2020 और 10.11.2020 (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 7 और 8) के आदेशों को रद्द करने की मांग करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। परमादेश की प्रकृति में एक और प्रार्थना उत्तरदाताओं को आदेश देती है कि वे याचिकाकर्ताओं को अपने आवेदन पत्रों में जानकारी को सही करने की अनुमति दें और उत्तरदाताओं को शिक्षा मित्र के 25 अंकों का वेटेज देने और सहायक शिक्षकों के पद के लिए याचिकाकर्ताओं के लिए उम्मीदवारी पर विचार करने का निर्देश दिया जाए।

आक्षेपित आदेशों दिनांक 05.11.2020 और 10.11.2020 द्वारा सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकरण, यूपी प्रयागराज ने 2020 की रिट याचिका संख्या 4609 में पारित अपने आदेश दिनांक 27.08.2020 द्वारा इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया है।

यह रिट याचिकाकर्ताओं का मामला है कि उनके पास बीटीसी (दूरस्थ शिक्षा) के साथ बीए की शैक्षिक योग्यता है और वर्ष 2006 से शिक्षा मित्र के रूप में काम कर रहे हैं। याचिकाकर्ता सहायक शिक्षक के पद के लिए आवेदन करने के लिए पात्र थे। तदनुसार, याचिकाकर्ताओं ने ओबीसी श्रेणी के तहत सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 के तहत आवेदन किया। याचिकाकर्ताओं को ओबीसी/एससी/एसटी उम्मीदवारों के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता अंकों के मुकाबले क्रमशः 92 अंक और 96 अंक प्राप्त करने के बाद सफल घोषित किया गया। याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि उन्हें सहायक शिक्षकों के 69000 पदों के चयन में 25 अंकों को वेटेज के रूप में नहीं दिया गया है क्योंकि उन्होंने दूरस्थ शिक्षा मोड के माध्यम से बीटीसी के स्थान पर बीटीसी का उल्लेख किया था। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि वे सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्रता शर्त को पूरा करते हैं और उनकी उम्मीदवारी को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि ऑनलाइन आवेदन फॉर्म में दूरस्थ शिक्षा मोड द्वारा बीटीसी का खुलासा नहीं किया गया था। उनका तर्क है कि बीटीसी और बीटीसी (दूरस्थ शिक्षा मोड द्वारा) के बीच कोई अंतर नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं ने फिर भी ऑनलाइन आवेदन पत्र में सुधार के लिए और शिक्षा मित्र को स्वीकार्य महत्व प्रदान करने के लिए 03.06.2020 को अभ्यावेदन दिया, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। नतीजतन, याचिकाकर्ताओं ने **2020 की रिट (ए) संख्या 4609 के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा** खटखटाया, जिसे याचिकाकर्ताओं के दावे/प्रतिनिधित्व पर फैसला करने के निर्देश के साथ दिनांक 27.08.2020 के आदेश द्वारा निपटाया गया।

सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश प्रयागराज ने आक्षेपित आदेशों के तहत याचिकाकर्ताओं के प्रतिवेदनों को खारिज कर दिया है, जिन्हें रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील के तर्क का मुख्य जोर यह है कि प्रत्येक याचिकाकर्ता सहायक शिक्षकों की नियुक्ति के लिए पात्रता मानदंडों को पूरा करता है। उन्होंने दूरस्थ शिक्षा मोड से बीटीसी योग्यता प्राप्त की है जो उत्तरदाताओं द्वारा विधिवत मान्यता प्राप्त है। उनकी उम्मीदवारी को इस आधार पर खारिज नहीं किया जाना चाहिए था कि बीटीसी (दूरस्थ शिक्षा) के बजाय ऑनलाइन फॉर्म में बीटीसी का उल्लेख किया गया था। ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ता पात्र नहीं हैं और इस मामले के मद्देनजर रिट याचिका की अनुमति दी जा सकती है और सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 के अनुसार सहायक शिक्षक के रूप में याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी पर विचार किया जा सकता है। बीटीसी और बीटीसी (दूरस्थ शिक्षा मोड) के बीच कोई अंतर नहीं है और किसी भी मामले में याचिकाकर्ताओं की ओर से गलती को जानबूझकर और इच्छानुरूप नहीं कहा जा सकता है ताकि कोई लाभ प्राप्त किया जा सके। यह भी तर्क दिया गया है कि उत्तरदाताओं ने समान रूप से परिस्थितिजन्य उम्मीदवारों से निपटने में पिक एंड चूज़ नीति अपनाई है, जबकि समान रूप से

परिस्थितिजन्य उम्मीदवारों की उम्मीदवारी रद्द नहीं की गई है, याचिकाकर्ताओं के उम्मीदवारों को रद्द कर दिया गया है। कुछ उम्मीदवारों का विवरण रिट याचिका के पैरा संख्या 29 में दिया गया है।

इसके विपरीत, श्री पीडी त्रिपाठी, प्रतिवादी संख्या 3 और 4 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वकील के साथ-साथ विद्वान स्थायी वकील ने सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकरण /प्रतिवादी नंबर 2 के निर्णय का समर्थन करते हुए कहा है कि याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज करने का आदेश पूरी तरह से उचित है और इसमें न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता वाली कोई दुर्बलता नहीं है।

पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। दिनांक 05.11.2020 और 10.11.2020 के आक्षेपित आदेशों के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन को शब्दशः तर्क द्वारा खारिज कर दिया गया है। सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकरण, यूपी, प्रयागराज ने ऑनलाइन आवेदन पत्र भरने के तौर-तरीकों और उम्मीदवारों द्वारा बरती जाने वाली सावधानियों को निर्धारित करने वाले 01.12.2018 के सरकारी आदेश पर बहुत अधिक भरोसा किया है, खासकर जब यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत घोषणा पर भी बहुत भरोसा किया जाता है। 01.12.2018 के सरकारी आदेश के खंड 17 पर भी भरोसा किया गया है, जिसने याचिकाकर्ताओं को प्रदान किए गए समय के भीतर अपेक्षित शुल्क जमा करने के बाद नए ऑनलाइन फॉर्म जमा करके अपने ऑनलाइन आवेदन पत्रों में की गई किसी भी गलती को सुधारने का अवसर दिया ।याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को अस्वीकार करने के लिए **2020 की रिट याचिका संख्या 4677 (रेक्सर खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में दिए गए इस न्यायालय के दिनांक 08.07.2020 के निर्णय पर भी भरोसा किया गया है तथा 17 सम्बद्ध रिट याचिकाओं में भी और **2013 की विशेष अपील संख्या 834 (राम मनोहर यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में पारित निर्णय में भी**, दिनांक 30.05.2020** में पारित निर्णय रिट याचिका **(आशुतोष कुमार श्रीवास्तव और 60 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में भी।

न्यायालय ने प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का अध्ययन किया है, जबकि आक्षेपित आदेशों द्वारा याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया है। निर्णय स्पष्ट रूप से अलग-अलग हैं और उसमें निर्धारित अनुपात उस मामले के समान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू होता है। न्यायालय की राय में निर्धारित अनुपात यहां रिट याचिकाकर्ताओं के मामले पर लागू नहीं होता है, क्योंकि **रुखसार खान (सुप्रा)** का मामला एक ऐसे मामले से संबंधित है जहां याचिकाकर्ता ने ऑनलाइन आवेदन पत्र में उल्लेख करने के लिए छोड़ दिया था, एक आरक्षण श्रेणी के लिए दावा जिसे न्यायालय ने अनुमति नहीं दी क्योंकि यह संबंधित आरक्षण पूल में एक नए उम्मीदवार को पेश करेगा और सभी संभावनाओं में नेतृत्व कर सकता है पहले

से ही चयनित उम्मीदवार के विस्थापन के लिए। **2013 की विशेष अपील संख्या 834, राम मनोहर यादव (सुप्रा)** में निर्णय ऑनलाइन आवेदन पत्र को गलत तरीके से भरने से संबंधित है जो प्रस्तुत मामला नहीं है। **आशुतोष कुमार श्रीवास्तव (सुप्रा)** का तीसरा मामला पिछली परीक्षाओं में याचिकाकर्ताओं द्वारा प्राप्त अंकों के संबंध में ऑनलाइन फॉर्म गलत तरीके से भरने से संबंधित था, जो कि प्रस्तुत मामला नहीं है।

न्यायालय की राय में प्रतिवादी नंबर 2, सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकरण ने इस मुख्य मुद्दे पर विचार नहीं किया है कि क्या याचिकाकर्ताओं द्वारा उनकी पात्रता योग्यता बीटीसी (दूरस्थ शिक्षा द्वारा) का खुलासा न करने से उन्हें अपनी पसंद के अनुसार जिले के आवंटन के साथ-साथ शिक्षा मित्र को स्वीकार्य वेटेज के लिए भी अयोग्य घोषित किया जाएगा। उम्मीदवारों को अपनी प्रशिक्षण योग्यता का खुलासा करना आवश्यक था। मान्यता प्राप्त प्रशिक्षण योग्यताएं इस प्रकार थीं: -

1. एनसीटीई द्वारा मान्यता प्राप्त और राज्य सरकार से संबद्ध संस्थान से डी. एल. एड. (बीटीसी)।

2. शिक्षामित्र (दूरस्थ शिक्षा पद्धति से प्रशिक्षित और स्नातक शिक्षामित्र ने दो साल बीटीसी उत्तीर्ण किया।

3. डीएड (एनसीटीई मान्यता प्राप्त संस्थान से एजुकेशन में दो साल का डिप्लोमा)।

4. डी. एड. विशेष एजुकेशन (भारतीय पुनर्वास परिषद (आरसीआई) मान्यता प्राप्त संस्थान)

5. विशिष्ट बीटीसी (एनसीटीई द्वारा मान्यता प्राप्त उत्तर प्रदेश में संचालित)।

6. दो वर्षीय बीटीसी उर्दू विशेष प्रशिक्षण (उत्तर प्रदेश में संचालित)

7. बी.एल.एड (4 वर्षीय बैचलर ऑफ एलिमेंट्री एजुकेशन)

8. बी.एड - बैचलर ऑफ एजुकेशन (यूजीसी / एनसीटीई मान्यता प्राप्त संस्थान से)

उम्मीदवारों को कोई निर्देश नहीं हैं कि उम्मीदवारों को सीरियल नंबर के अनुरूप जानकारी भरने की आवश्यकता थी जिसे श्रेणी कोड के रूप में माना जाना था। तथ्य यह है कि उम्मीदवारों को बीटीसी होना आवश्यक था, चाहे उन्होंने कहां से और किस माध्यम से प्रशिक्षण योग्यता प्राप्त की हो।

न्यायालय को उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वकील के प्रस्तुत करने में कोई तथ्य नहीं मिला कि याचिकाकर्ता ने यह जानकारी नहीं भरी कि वे शिक्षा मित्र थे, जिन्होंने अपने ऑनलाइन आवेदन पत्र में दूरस्थ शिक्षा द्वारा बीटीसी योग्यता प्राप्त की थी और उक्त गैर-प्रकटीकरण के कारण सॉफ्टवेयर ने उन्हें शिक्षा मित्र के रूप में नहीं पहचाना और परिणामस्वरूप, उन्हें स्वीकार्य वेटेज नहीं दिया गया। न्यायालय की राय में, यह दोषपूर्ण प्रोग्रामिंग है और याचिकाकर्ताओं ने संतुष्ट किया है कि पात्रता मानदंडों को नियुक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। हालांकि, न्यायालय उत्तरदाताओं के रुख को बरकरार रखता है कि याचिकाकर्ताओं के ऑनलाइन फॉर्म में कोई सुधार नहीं किया जा सकता है।

अनुवाद

उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका को **आंशिक रूप से अनुमति दी** जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 05.11.2020 और 10.11.2020 (क्रमशः रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 7 और 8)) को इस हद तक रद्द कर दिया जाता है कि यह सहायक शिक्षकों के रूप में नियुक्ति के लिए जिले के आवंटन के लिए चयनित उम्मीदवारों की सूची में याचिकाकर्ताओं के नाम शामिल करने की राहत से इनकार करता है। आक्षेपित आदेश, जहां तक यह माना जाता है कि ऑनलाइन आवेदन पत्रों में कोई सुधार नहीं किया जा सकता है, को बरकरार रखा गया है। प्रतिवादी अब जिलों के आवंटन के लिए सफल उम्मीदवारों की सूची में याचिकाकर्ताओं के नाम शामिल करने के लिए आगे बढ़ेंगे और जिलों को उनकी वरीयता और गुणवत्ता बिंदु अंकों के अनुसार आवंटित करेंगे और तदनुसार नियुक्ति पत्र जारी करेंगे। पूरी कवायद संबंधित उत्तरदाताओं को इस न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति की सेवा की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर की जाएगी।

(2023) 5 ILRA 1537

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट-ए संख्या 49679/2003

महेंद्र शुक्ला ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सत्येन्द्र पांडे, श्री विशाल टंडन, श्री विजय शंकर शुक्ल, श्री जय शंकर मिश्र

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - सेवा वाद - अनुशासनात्मक कार्यवाही- सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999, नियम 7। विवाद: यदि किसी बड़े दंड के लिए प्रक्रिया शुरू की गई थी, तो क्या नियमित जांच करना और संबंधित कर्मचारी को मौखिक साक्ष्य का अवसर प्रदान करना अनिवार्य है? निर्णय: एक बार जब किसी बड़े दंड के लिए प्रक्रिया शुरू हो जाती है, तो उसे नियमों में दिए गए अनुसार पूरा करना होता है, और यदि उसे बीच में ही छोड़ दिया जाता है, तो जांच कार्यवाही रद्द हो जाएगी। एक बार जांच कार्यवाही रद्द हो जाने पर, कर्मचारी पर कोई भी दंड, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, नहीं लगाया जा सकता। (पैरा 24, 25)

याचिकाकर्ता को सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के नियम 7 के तहत निहित प्रावधानों को लागू करते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही के विचार के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निलंबित कर दिया गया था, ताकि एक बड़ा जुर्माना लगाया जा सके। जांच अधिकारी ने आरोप पत्र दिया। याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र में लगाए गए सभी आरोपों से इनकार करते हुए अपना जवाब/स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। नियमित जांच किए बिना और उन दस्तावेजों और कागजातों को उपलब्ध कराए बिना जिनके आधार पर याचिकाकर्ता को निलंबित किया गया था, प्रतिवादी नंबर 3 ने एकतरफा आरोपों को साबित मान लिया और याचिकाकर्ता को एक मामूली सजा दी गई। निर्णय: याचिकाकर्ता को एक बड़ा जुर्माना लगाने के लिए निलंबित करने

के बाद जांच कार्यवाही शुरू की गई थी, लेकिन अंततः इसे पूरा किए बिना, एक मामूली जुर्माना लगाया गया, जो नियमों के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का उल्लंघन था। कानून की नजर में ऐसा आदेश कायम नहीं रह सकता। (पैरा 25)

स्वीकृत (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सोहन लाल बनाम यू.पी. कोऑपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड एवं अन्य; 2013 (6) एडीजे 250 (डीबी)
2. यूपी राज्य व अन्य बनाम अष्टभुजा मिश्रा व अन्य; 2017(9) एडीजे 373 (डीबी)
3. कमला चरण मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2008 वाद (ऑल) 1016 (डीबी)
4. एच.बी.वी.एन.एल. विद्युत नगर, हिसार एवं अन्य बनाम यशवीर सिंह गुलिया; 2013 (एससी) 568
5. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एससीसी 772
6. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570
7. सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक एवं अन्य रिपोर्ट 2000(1) यूपीएलबीईसी 541
8. मींगलास टी ईएसटी बनाम द वर्कमेन, एआईआर 1963 एससी 1719
9. एस.सी. गिरोत्रा बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक 1995 सप्प. (3) एससीसी 212
10. सुभाष चंद्र शर्मा बनाम यू.पी. को-ऑपरेटिव स्पिनिंग मिल्स एवं अन्य, 2001 (2) यूपीएलबीईसी 1475
11. राजेश प्रसाद मिश्रा बनाम आयुक्त, झाँसी मण्डल, झाँसी एवं अन्य 2010 (1) यूपीएलबीईसी 216
12. महेश नारायण गुप्ता बनाम यूपी राज्य व अन्य, (2011) 2 आईएलआर 570
13. सुभाष चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2012 (1) यूपीएलबीईसी 166
14. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम अष्टभुजा मिश्रा व अन्य; 2017(9) एडीजे 373 (डीबी)

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी नंबर 3/जिला मजिस्ट्रेट बलिया द्वारा पारित दिनांक 22.09.2000 के आदेश के साथ-साथ प्रतिवादी नंबर 2/आयुक्त, आजमगढ़ क्षेत्र आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.04.2003 को रद्द करने के लिए सर्टिओरारी रिट जारी करने के लिए इस रिट याचिका को प्राथमिकता दी है, जिसे याचिकाकर्ता को 04.06.2003 को सूचित किया गया था।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि जिला आपूर्ति अधिकारी बलिया के कार्यालय में तैनात याचिकाकर्ता को प्रतिवादी नंबर 3/जिला मजिस्ट्रेट बलिया ने अपने आदेश दिनांक 13.01.2000 के तहत निलंबित कर दिया था और जिला आपूर्ति अधिकारी को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था। जिला आपूर्ति अधिकारी/जांच अधिकारी/प्रतिवादी संख्या 5 ने याचिकाकर्ता को 29.04.2000 को कुछ कागजों के आधार पर आरोप-पत्र दिया, जिन्हें याचिकाकर्ता को कभी भी जवाब प्रस्तुत

करने का निर्देश नहीं दिया गया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.05.2000 के पत्र के तहत अपना उत्तर/स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जिसमें आरोप पत्र में लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया गया।

3. जवाब प्रस्तुत करने के बाद, याचिकाकर्ता यह अनुमान लगा रहा था कि मामले में एक नियमित जांच की जाएगी और उसे अभियोजन पक्ष के गवाह से जिरह करने और अभियोजन के साक्ष्य की विश्वसनीयता का परीक्षण करने का अवसर भी दिया जाएगा और उसे अपने बचाव में साक्ष्य पेश करने का अवसर भी दिया जाएगा। लेकिन नियमित जांच किए बिना और उन दस्तावेजों और कागजात की आपूर्ति किए बिना, जिनके आधार पर याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था, प्रतिवादी नंबर 3 ने बिना किसी नोटिस या सुनवाई के अवसर प्रदान किए आरोपों को स्वीकार किया और निलंबन का आदेश पारित करते हुए कहा कि याचिकाकर्ता ने जवाब के साथ कोई सबूत नहीं दिया है। प्रस्तावित दंड पर कारण बताने के लिए प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा जारी दिनांक 11.09.2000 के नोटिस की प्राप्ति के बाद, याचिकाकर्ता ने अपने पत्र/उत्तर दिनांक 13.09.2000 के माध्यम से कारण दिखाया जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता पर जो भी दोष लगाए गए हैं वे परिस्थितिजन्य थे और याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए सामूहिक और कथित आरोपों के कारण हुए थे और उनके द्वारा नहीं किया गया है और काम के अधिक बोझ के कारण गलती की गई है, लेकिन प्रतिवादी नंबर 3 इस पर विचार किए बिना और सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना, दस्तावेजों और कागजात की आपूर्ति किए बिना और केवल जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर भरोसा करके, प्रतिवादी नंबर 3 ने एकतरफा तरीके से आदेश पारित किया। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 22.09.2000 के आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने 02.11.2000 को प्रतिवादी नंबर 2/आयुक्त, आजमगढ़ डिवीजन आजमगढ़ के समक्ष अपील को प्राथमिकता दी और प्रतिवादी नंबर 2 ने अपील को खारिज कर दिया, अपील में कोई बल नहीं है।

4. पूर्वोक्त आदेशों को चुनौती देने का मुख्य आधार यह है कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के अवलोकन के तहत निलंबित कर दिया गया था, जबकि सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के नियम 7 के तहत निहित प्रावधानों को लागू करते हुए बड़ा जुर्माना लगाने के लिए, लेकिन जब कार्यवाही चल रही थी, याचिकाकर्ता को सोहन लाल बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य; 2013 (6) एडीजे 250 (डीबी) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत मामूली सजा दी गई है उसी के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अष्टभुजा मिश्रा और अन्य;2017 (9) एडीजे 373 (डीबी) के मामले में इस न्यायालय की लखनऊ पीठ द्वारा निर्धारित कानून; और कमला चरण मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2008 लॉ सूट (सभी) 1016 (डीबी) की तुलना में भी।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दलीलों का खंडन करते हुए, विद्वान स्थायी वकील ने डी.एच.बी.वी.एन.एल. विद्युत नगर, हिसार और अन्य बनाम यशवीर सिंह गुलिया 2013 (एससी) 568 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया; माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका (सिविल) में अपने माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश में कहा है कि यदि बड़ी शास्ति लगाने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई है और इस बीच प्राधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह लघु शास्ति अधिरोपित करने का मामला है और लघु शास्ति दी गई है, तो आदेश को गलत नहीं ठहराया जा सकता।

6. तर्क के जवाब में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि डी.एच.बी.वी.एन.एल (सुप्रा) के मामले में नियमों के तहत एक ऐसे मामले में भी मामूली जुर्माना देने का प्रावधान है जहां बड़ी जुर्माना देने की प्रक्रिया चल रही है, जबकि सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) 1999 नियमों के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू की गई है।

7. हमने पक्षों के लिए विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

8. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि न तो मौखिक गवाहों की जांच की गई थी और न ही जांच अधिकारी द्वारा तारीख, समय और स्थान तय किया गया था, इसलिए, इसके प्रकाश में, कोई आरोप साबित नहीं हुआ है। यह कहा गया है कि जांच कार्यवाही उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम 1999 और नियम 1999 के नियम 7 के प्रावधान के तहत शुरू की गई थी जो स्पष्ट रूप से बड़ी जुर्माना लगाने की प्रक्रिया प्रदान करती है। तैयार संदर्भ के लिए, इसे नीचे उद्धृत किया जा सकता है;

"7. बड़ी शास्ति अधिरोपित करने की प्रक्रिया। - किसी सरकारी कर्मचारी पर कोई बड़ा जुर्माना लगाने से पहले, निम्नलिखित तरीके से जांच की जाएगी:

(i) अनुशासनिक प्राधिकारी स्वयं आरोपों की जांच कर सकता है या आरोपों की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में अपने अधीनस्थ प्राधिकारी को नियुक्त कर सकता है।

(ii) कदाचार का गठन करने वाले तथ्य, जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में कम हो जाएंगे जिन्हें आरोप पत्र कहा जाएगा। आरोप पत्र अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया जाएगा: बशर्ते कि जहां नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल है, आरोप पत्र प्रधान सचिव या सचिव द्वारा अनुमोदित किया जा सकता है; जैसा भी मामला हो, संबंधित विभाग का।

(iii) विरचित आरोप इतने सटीक और स्पष्ट होने चाहिए कि आरोपित सरकारी सेवक को उसके विरुद्ध तथ्यों और परिस्थितियों का पर्याप्त संकेत मिल सके। प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य, यदि कोई हो, के साथ इसे साबित करने के लिए प्रस्तावित गवाहों के नाम का उल्लेख आरोप पत्र में किया जाएगा।

(iv) आरोपित सरकारी सेवक से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह अपने बचाव का लिखित विवरण एक विनिर्दिष्ट तारीख को व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत करे जो आरोप पत्र जारी होने की तारीख से 15 दिन से कम नहीं होगी और यह बताने के लिए कि क्या वह आरोप पत्र में उल्लिखित किसी गवाह से प्रतिपरीक्षा करना चाहता है और क्या वह अपने बचाव में साक्ष्य देना चाहता है या प्रस्तुत करना चाहता है। उसे यह भी सूचित किया जाएगा कि यदि वह उपस्थित नहीं होता है या निर्दिष्ट तिथि पर लिखित बयान दर्ज नहीं करता है, तो यह माना जाएगा कि उसके पास प्रस्तुत करने के लिए कुछ भी नहीं है और जांच अधिकारी जांच को एकपक्षीय पूरा करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(v) आरोप-पत्र, उसमें उल्लिखित दस्तावेजी साक्ष्य की प्रति और गवाहों की सूची और उनके बयान, यदि कोई हों, के साथ आरोपित सरकारी सेवक को व्यक्तिगत रूप से या पंजीकृत डाक द्वारा सरकारी अभिलेखों में उल्लिखित पते पर तामील किया जाएगा। यदि आरोप पत्र पूर्वोक्त रीति से तामील नहीं किया जा सका तो आरोप पत्र व्यापक प्रसार वाले दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा तामील किया जाएगा:

परन्तु जहां दस्तावेजी साक्ष्य बहुत बड़ा है, वहां आरोपित सरकारी सेवक को उसकी प्रति आरोप-पत्र के साथ प्रस्तुत करने के बजाय, आरोपित सरकारी सेवक को जांच अधिकारी के समक्ष उसका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी।

(vi) जहां आरोपित सरकारी सेवक उपस्थित होता है और आरोपों को स्वीकार करता है, जांच अधिकारी ऐसे प्रवेश के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(vii) जहां आरोपित सरकारी सेवक आरोपों से इंकार करता है वहां जांच अधिकारी आरोप-पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाने की कार्यवाही करेगा और आरोपित सरकारी सेवक की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य को अभिलिखित करेगा जिसे ऐसे गवाहों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा। पूर्वोक्त साक्ष्य को अभिलिखित करने के पश्चात्, जांच अधिकारी उन मौखिक साक्ष्यों को मंगाएगा और अभिलिखित करेगा जो आरोपित सरकारी सेवक अपने लिखित बयान में अपने बचाव में प्रस्तुत करना चाहता था: परन्तु जांच अधिकारी लिखित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के कारण गवाह को बुलाने से मना कर सकेगा।

(viii) जांच अधिकारी, उत्तर प्रदेश विभागीय जांच (साक्षियों को हाजिर कराना तथा दस्तावेज पेश कराना) अधिनियम, 1976 के उपबंधों के अनुसार किसी गवाह को साक्ष्य देने के लिए बुला सकता है या किसी व्यक्ति से दस्तावेज प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकता है।

(ix) जांच अधिकारी सच्चाई का पता लगाने या आरोपों से संबंधित तथ्यों का उचित प्रमाण प्राप्त करने की दृष्टि से किसी भी गवाह या आरोपित व्यक्ति से किसी भी समय कोई भी प्रश्न पूछ सकता है।

(x) जहां आरोपित सरकारी सेवक जांच में नियत तारीख को या कार्यवाही के किसी भी चरण में उसे नोटिस दिए जाने या तारीख की जानकारी होने के बावजूद उपस्थित

नहीं होता है, तो जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच करेगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी सेवक की अनुपस्थिति में आरोप पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।

(xi) अनुशासनिक प्राधिकारी, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, तो एक आदेश द्वारा, एक सरकारी सेवक या एक कानूनी व्यवसायी को नियुक्त कर सकता है, जिसे आरोप के समर्थन में मामले को अपनी ओर से पेश करने के लिए "प्रस्तुतकर्ता अधिकारी" के रूप में जाना जाता है।

(xii) सरकारी सेवक अपनी ओर से मामला प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता ले सकेगा, किन्तु इस प्रयोजन के लिये किसी विधिक व्यवसायी को नियुक्त नहीं कर सकेगा जब तक कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी का विधिक व्यवसायी न हो, इस प्रकार अनुमति देता है:

बशर्ते कि यह नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगा:

(i) जहां किसी व्यक्ति पर आचरण के आधार पर कोई बड़ा जुर्माना लगाया जाता है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है; नहीं तो

(ii) जहां अनुशासनिक प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि उसके द्वारा लिखित में अभिलिखित किए जाने के कारण से इन नियमों में उपबंधित रीति से जांच करना युक्तियुक्त रूप से व्यवहार्य नहीं है; नहीं तो

(iii) जहां राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में, इन नियमों में उपबंधित रीति से जांच करना समीचीन नहीं है।

9. इस न्यायालय के समक्ष बुनियादी मुद्दा यह है कि यदि बड़े दंड की प्रक्रिया शुरू की गई थी, तो क्या नियमित जांच करना अनिवार्य है और संबंधित कर्मचारी को मौखिक साक्ष्य का अवसर प्रदान करना अनिवार्य है? इस संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसमें इस मुद्दे पर विचार किया गया था।

10. **कमला चरण मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2009 (2) ए.डब्ल्यू.सी 1259** के मामले में इस माननीय न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया है। तैयार संदर्भ के लिए, इस निर्णय के पैरा 9 और 10 को नीचे उद्धृत किया गया है;

9. एक और कारण है जिसके लिए जांच अधिकारी को नियमित जांच करने की आवश्यकता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को एक आरोप-पत्र दिया गया था और आरोप पत्र प्राप्त होने के बाद, याचिकाकर्ता ने उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए एक जवाब प्रस्तुत किया था। आरोप-पत्र का उत्तर प्राप्त होने के बाद जांच अधिकारी ने 4-8-1992 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत करते हुए, याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से दलील दी है कि जांच अधिकारी ने निष्पक्ष रूप से जांच नहीं की है। चूंकि प्रतिवादी बड़ी शास्ति की प्रक्रिया अपनाकर आगे बढ़े हैं और जांच अधिकारी ने जांच पूरी

कर ली है और एक रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है, इसलिए विद्वान स्थायी वकील द्वारा लिया गया बचाव टिकाऊ प्रतीत नहीं होता है। एक बार अनुशासनिक प्राधिकारी ने बड़ी शास्ति के लिए जांच की प्रक्रिया को अपना लिया और एक अधिकारी को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त कर दिया, जिसने जांच की और रिपोर्ट प्रस्तुत की, ऐसी स्थिति में, जांच अधिकारी की ओर से यह हमेशा अनिवार्य होगा कि वह नियमित जांच के लिए प्रक्रिया अपनाते हुए जांच करे। नियमित जांच का अर्थ है, आरोप पत्र के उत्तर के बाद, जांच अधिकारी को मौखिक साक्ष्य दर्ज करना चाहिए जिसमें अपराधी कर्मचारी को गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए और उसके बाद, अपराधी कर्मचारी को बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए। व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर भी अपराधी कर्मचारी को दिया जाना चाहिए। यहां तक कि अगर आरोपित कर्मचारी जांच में सहयोग नहीं करता है, तो यह जांच अधिकारी पर निर्भर होगा कि वह, जगदीश प्रसाद सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1990 एलसीडी 486;अवतार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1998 एलसीडी 199; टाउन एरिया कमेटी, जलालाबाद बनाम जगदीश प्रसाद : एआईआर1978एससी1407 ; प्रबंध निदेशक, उ०प्र० कल्याण आवास निगम बनाम विजय नारलन बाजपेयी : (1980) आईएलएलजे222 एससी; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शत्रुघ्न लाल : [1998]3 एससीआर939; चंद्रमा तिवारी बनाम भारत संघ और अन्य। एआईआर1998एससी 117 और अनिल कुमार बनाम पीठासीन अधिकारी और अन्य। एआईआर 1985 एससी 1121 के तहत मौखिक साक्ष्य दर्ज करके एकपक्षीय कार्यवाही करे।

10. भारतीय स्टेट बैंक बनाम टी.जे पाल 1999 एससीसी (एल एंड एस) 922 और भारत संघ बनाम एससी परासर 2006 एससीसी (एल एंड एस) 496: 2006 (5) एडब्ल्यूसी 5129 (एससी) के एक मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि एक विभागीय कार्यवाही में, जहां बड़े दंड की प्रक्रिया शुरू की जाती है, भले ही अनुशासनिक प्राधिकारी मामूली जुर्माना देता हो, बड़ी शास्ति के लिए निर्धारित प्रक्रिया अपनाकर जांच पूरी की जानी चाहिए।

उपरोक्त के मद्देनजर, विद्वान स्थायी वकील द्वारा दिया गया तर्क कि मामूली दंड के लिए निर्धारित प्रक्रिया का सही तरीके से पालन किया गया था, टिकाऊ नहीं लगता है।

11. यह भी सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एक मुद्दा था, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एससीसी 772 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि: -

"अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में होता है। वह विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि अपराधी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त है

कि आरोप साबित हो गए हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता है कि उत्तरदाताओं के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

जब सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की जाती है तो इसे एक आकस्मिक अभ्यास के रूप में नहीं माना जा सकता है। जांच की कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करना आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न केवल न्याय किया जाए बल्कि प्रकट रूप से किया जाता हुआ दिखाई दे। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि ऐसी कार्यवाहियों में सरकारी कर्मचारी के साथ उचित व्यवहार हो जिसमें सेवा से बर्खास्तगी या हटाने सहित सजा दी जा सकती हो।

12. इसी तरह का दृष्टिकोण सुप्रीम कोर्ट द्वारा रूप **सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570** में लिया गया था: -

"निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित सबूतों को अनुशासनात्मक कार्यवाही में सबूत नहीं माना जा सकता है। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी ने एफआईआर पर अन्य बातों के साथ भरोसा किया था, जिसे सबूत के तौर पर नहीं माना जा सकता था।

13. इस न्यायालय ने **सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक और अन्य रिपोर्ट 2000 (1) यूपीएलबीईसी 541** में भी यही दृष्टिकोण लिया है: -

अदालत ने कहा, 'हमारी राय में याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र का जवाब देने के बाद जांच के लिए एक तारीख तय की जानी चाहिए थी और याचिकाकर्ता को जांच की तारीख, समय और स्थान की सूचना दी जानी चाहिए थी और उस तारीख को याचिकाकर्ता के खिलाफ मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य उसकी उपस्थिति में पेश किए जाने चाहिए थे और उसे अपने खिलाफ गवाहों से जिरह करने का मौका दिया जाना चाहिए था और उसे एक बयान भी दिया जाना चाहिए था। अपने स्वयं के गवाह और सबूत पेश करने का अवसर। यदि याचिकाकर्ता इस सूचना के जवाब में जांच के लिए उपस्थित होने में विफल रहता तो एक पक्षीय जांच की जानी चाहिए थी, लेकिन याचिकाकर्ता की सेवा बिना जांच किए समाप्त नहीं की जानी चाहिए थी। वर्तमान मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि कोई नियमित जांच

नहीं की गई थी। यह सब किया गया था कि आरोप-पत्र पर याचिकाकर्ता का जवाब प्राप्त होने के बाद उसे कारण बताओ नोटिस दिया गया था और उसके बाद बर्खास्तगी आदेश पारित किया गया था। हमारी राय में यह सही कानूनी प्रक्रिया नहीं थी और प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन था। चूंकि जांच के लिए कोई तारीख तय नहीं की गई थी और न ही कोई जांच की गई थी जिसमें सबूत दिए गए थे, हमारी राय में, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मींगलास टी एस्टेट बनाम द वर्कमेन, एआईआर 1963 एससी 1719** के मामले में माना है कि; "यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि एक व्यक्ति जिसे किसी आरोप का जवाब देने की आवश्यकता होती है, उसे न केवल आरोप पता होना चाहिए, बल्कि उस गवाही को भी जानना चाहिए जिसके द्वारा आरोप का समर्थन किया जाता है। उसे आरोप के समर्थन में साक्ष्य सुनने और जिरह के लिए ऐसे प्रासंगिक प्रश्नों को पूछने का उचित मौका दिया जाना चाहिए जैसा कि वह चाहता है। फिर उसे अपने खिलाफ दिखाए गए सबूतों का खंडन करने का मौका दिया जाना चाहिए। यह इस चरित्र की जांच की सबसे बड़ी आवश्यकता है और जांच के परिणाम को स्वीकार किए जाने से पहले इस आवश्यकता को पर्याप्त रूप से पूरा किया जाना चाहिए।

15. **एससी गिरोत्रा बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक 1995 सप्लीमेंट (3) एससीसी 212** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि;

"सुप्रीम कोर्ट ने एक बर्खास्तगी के आदेश को रद्द कर दिया जो कर्मचारी को जिरह का अवसर दिए बिना पारित किया गया था। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सीएस शर्मा, एआईआर 1968 एससी 158 में, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि अधिकारी को अपने गवाहों को पेश करने और अपने बचाव में साक्ष्य पेश करने का अवसर देने का लोप कार्यवाही को दूषित करता है। न्यायालय ने यह भी कहा कि जांच में आरोपों के समर्थन में गवाहों की जांच की जानी चाहिए, और अपराधी को इन गवाहों से जिरह करने और अपने बचाव में सबूत पेश करने का अवसर दिया जाना चाहिए। पंजाब नेशनल बैंक बनाम एआईपीएनबीई फेडरेशन, एआईआर 1960 एससी 160, (पैरा 66 के अनुसार) सुप्रीम कोर्ट ने माना कि इस तरह की जांच में चार्जशीट किए गए कर्मचारी की उपस्थिति में साक्ष्य दर्ज किया जाना चाहिए और उसे उक्त साक्ष्य का खंडन करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यही दृष्टिकोण ए.सी.सी. लिमिटेड बनाम उनके कामगार, (1963) द्वितीय एलएलजे 396, और टाटा ऑयल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उनके कामगार, (1963) द्वितीय एलएलजे। 78 (एससी) मामले में लिया गया था।

यहां तक कि अगर कर्मचारी जांच में भाग लेने से इनकार करता है, तो नियोक्ता उसे सीधे खारिज नहीं कर सकता है, लेकिन उसे इंपीरियल टोबैको कंपनी लिमिटेड बनाम इसके कामगार एआईआर 1962 एससी 1348, उमा शंकर बनाम रजिस्ट्रार, 1992 (65)

एफएलआर 674 (सभी)। के तहत सबूत का नेतृत्व किया जाना चाहिए।

16. उपरोक्त निर्णय सुभाष चंद्र शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी स्पिनिंग मिल्स और अन्य 2001 (2) यूपीएलबीईसी 1475 में एक डिवीजन बेंच द्वारा न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया:

"ऐसे मामलों में जहां एक बड़ी सजा का प्रस्ताव लगाया जाना है, एक मौखिक जांच जरूरी है, चाहे कर्मचारी इसके लिए अनुरोध करे या नहीं। इसके लिए संबंधित कर्मचारी को नोटिस जारी करना आवश्यक है, जिसमें उसे जांच की तारीख, समय और स्थान की सूचना दी जाए, जैसा कि सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक, (2000) 1 यूपीएलबीईसी 541 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा आयोजित किया गया था, जिसके खिलाफ एसएलपी को सुप्रीम कोर्ट ने 16-8-2000 को खारिज कर दिया है।

17. इस न्यायालय ने **राजेश प्रसाद मिश्रा बनाम आयुक्त, झांसी डिवीजन, झांसी और अन्य 2010 (1) यूपीएलबीईसी 216 की रिपोर्ट** के मामले में भी यही दृष्टिकोण अपनाया है और निम्नानुसार देखा है:

अब इस प्रश्न पर आते हैं कि मौखिक जांच न कराने का क्या प्रभाव पड़ता है, मैं पाता हूं कि ऐसे मामले में जहां जांच अधिकारी नियुक्त किया जाता है, मौखिक जांच अनिवार्य है। आरोपों को केवल आरोप पत्र के माध्यम से उन्हें आरोपित करने के कारण स्वतः सिद्ध नहीं माना जाता है, जब तक कि विभाग द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष इसे साबित नहीं किया जाता है और उसके बाद ही अपराधी कर्मचारी को अपना बचाव करने की बारी आती है। एक बड़ा जुर्माना लगाने से पहले मौखिक जांच करना अनिवार्य है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम टीपी लाल श्रीवास्तव, 1997 (1) एलएलजे 831 के साथ-साथ सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक और अन्य, 2000 (1) यू.पी.एल.बी.ई.सी. 541 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा आयोजित किया गया था।

इस प्रश्न पर कि क्या मौखिक जांच न करने से पूरी कार्यवाही समाप्त हो सकती है या नहीं, इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच (जिसमें मैं भी सदस्य था) द्वारा सलाहुद्दीन अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2008 (3) ईएससी 10 1667 के मामले में विस्तार से विचार किया गया है और न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि मौखिक जांच न करना एक गंभीर दोष है जो पूरे अनुशासन को दूषित करता है, सजा के आदेश सहित कार्यवाही।

18. महेश नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य रिपोर्ट (2011) 2 आईएलआर 570 के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने भी इसी मुद्दे से निपटा था। यह आयोजित किया गया:

"इस स्तर पर, हमें यह देखना है कि एक अपराधी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में, विभाग एक वादी की तरह है और प्रारंभिक बोझ विभाग पर आरोपों को साबित करने के लिए निहित है जो निश्चित रूप से केवल कुछ मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य

एकत्र करके साबित किया जा सकता है। यहां तक कि अगर विभाग को अपने स्वयं के रिकॉर्ड / दस्तावेज पर भरोसा करना है जो पहले से ही उपलब्ध हैं, तो भी जांच अधिकारी को उनकी जांच करके और विश्लेषण के बाद अपना कारण बताकर, यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि होज दस्तावेज आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं।

किसी भी मामले में, जांच अधिकारी का दृष्टिकोण यह नहीं है कि चूंकि कोई जवाब प्रस्तुत नहीं किया गया है, इसलिए आरोप को स्वचालित रूप से साबित करना होगा, अनुमोदित नहीं किया जा सकता है। यह गलत होगा। यह बार-बार कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दोषी कर्मचारी के खिलाफ एकपक्षीय तरीके से आगे बढ़ने का अधिकार है, लेकिन कुछ सबूत एकत्र करने होंगे और आरोपों को बनाए रखने के औचित्य को विस्तार से बताना होगा। जवाब दाखिल न करने के कारण आरोपों के स्वत: साबित होने के बारे में जांच अधिकारी का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत और गलत है। यह नैसर्गिक न्याय, निष्पक्ष विचार, निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांत के खिलाफ है और इसलिए जांच अधिकारी को इस संबंध में आगाह किया जाना चाहिए।

19. **सुभाष चंद्र गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ने 2012 (1) यूपीएलबीईसी 166** के एक अन्य मामले में इस मुद्दे पर विभिन्न निर्णयों का अध्ययन करने के बाद इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने निम्नानुसार देखा:

'यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जब कानून किसी चीज को किसी विशेष तरीके से करने का प्रावधान करता है तो उस चीज को उसी तरीके से किया जाना चाहिए। हमारी सुविचारित राय है कि जांच के आधार पर दी गई कोई भी सजा जो उस उद्देश्य के लिए बनाए गए जांच नियमों के अनुसार नहीं की गई है, कानून की नजर में अस्थिर है। हमारा यह भी विचार है कि बड़ी शास्ति लगाने के लिए जांच नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया प्रकृति में अनिवार्य है और जब तक उन प्रक्रियाओं का पालन नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी निष्कर्ष का कोई फायदा नहीं होगा जब तक कि आरोप इतने स्पष्ट और अकाट्य न हों कि किसी सबूत की आवश्यकता न हो। हमारे द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम टीपी लाल श्रीवास्तव, 1997 (1) एलएलजे 831 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक और अन्य, 2000 (1) यू.पी.एल.बी.ई.सी. 541 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा समर्थन मिलता है।

सलाहुद्दीन अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2008 (3) ईएससी 1667 के मामले में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले ने माना कि मौखिक जांच न करना एक गंभीर दोष है जो सजा के आदेश सहित अनुशासनात्मक कार्यवाही के आदेश को समाप्त कर सकता है: निम्नानुसार देखा गया है: -

10..... ऐसे मामले में मौखिक जांच न करना एक गंभीर मामला है और मामले की जड़ तक जाता है।

11. सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक और अन्य, 2000 (1) यू.पी.एल.बी.ई.सी. 541 में

इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने इस सवाल पर विचार करते हुए कि मौखिक जांच करना आवश्यक है या नहीं, यह माना कि यदि कोई मौखिक जांच नहीं की जाती है, तो यह अपराधी कर्मचारी को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से वंचित करने के बराबर है। उपरोक्त विचार सुभाष चंद्र शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी स्पिनिंग मिल्स और अन्य, 2001 (2) यू.पी.एल.बी.ई.सी.1475 और लातूरी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण और अन्य, 2001 की रिट याचिका संख्या 12939, 06.05.2005 को सुनाया गया था।

20. **सोहन लाल बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य के मामले में; 2013 (6) एडीजे 250 (डीबी)** के मामले में, यही मुद्दा न्यायालय के समक्ष बहुत अधिक था और न्यायालय ने उपरोक्त मुद्दे पर विचार किया है। तैयार संदर्भ के लिए, इस निर्णय के पैरा 31, 32, 33, 34 और 35 को नीचे उद्धृत किया गया है;

"31. हालांकि, उत्तरदाताओं की ओर से यह बताया गया था कि याचिकाकर्ता को वास्तव में दी गई सजा केवल वसूली और निंदा/विशेष प्रतिकूल प्रविष्टि है और दोनों मामूली सजा हैं, सजा के आदेश में इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए कि कोई मौखिक जांच नहीं की जाती है क्योंकि मामूली सजा देने से पहले मौखिक जांच अनिवार्य नहीं है।

32. हमारे विचार में प्रस्तुत करना पूरी तरह से गलत है। आरोप पत्र के अवलोकन से यह संदेह नहीं किया जा सकता है कि आरोप, यदि साबित हो गए हैं, तो याचिकाकर्ता को एक बड़ा दंड दिया जा सकता था। सक्षम प्राधिकारी ने भी इस आशय से कार्यवाही की कि यदि आरोप सिद्ध हो जाते हैं तो उनके परिणामस्वरूप बड़ी शास्ति हो सकती है और इसी कारण से उन्हें पहले निलम्बित किया गया था और तत्पश्चात् उन्होंने एक जांच अधिकारी नियुक्त किया था। मौखिक जांच करने के लिए जांच अधिकारी की नियुक्ति अनुशासनिक प्राधिकारी के इरादे को दर्शाती है कि कर्मचारी को बड़ी सजा भुगतनी पड़ सकती है। उन मामलों में जहां मौखिक जांच आवश्यक है यानी बड़ी शास्ति के मामले, जांच अधिकारी को आमतौर पर नियुक्त किया जाता है अन्यथा केवल आरोप पत्र जारी करके और जवाब प्राप्त करके, एक मामूली जुर्माना दिया जा सकता था, जो यहां मामला नहीं है।

33. अनुशासनात्मक प्राधिकारी का इरादा इस तथ्य से और स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को निलंबित रखा गया था। निलंबन केवल तभी स्वीकार्य है जब आरोप इतने गंभीर हों कि बड़ा जुर्माना लगाया जा सके। इसके अलावा, याचिकाकर्ता को जारी कारण बताओ नोटिस में भी एक बड़े दंड का प्रस्ताव किया गया था।

34. हम स्पष्ट रूप से विचार कर रहे हैं कि अंतिम परिणाम अधिकारियों के रूप में पूर्ववर्ती अनुशासनात्मक कार्यवाही के तरीके को नियंत्रित नहीं करेगा, अगर प्रमुख दंड को सही ठहराने के लिए गंभीर आरोपों का कोई सबूत नहीं मिला, इसलिए, मामूली जुर्माना लगाया, यह इस तथ्य से विचलित नहीं होगा कि

कार्यवाही प्रमुख दंड के लिए शुरू की गई थी और अपराधी कर्मचारी को पर्याप्त अवसर से इनकार करने के बावजूद, यानी, मौखिक जांच न करके, वह आरोपों की उथली दिखाने में सक्षम था जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को संतुष्ट करता है कि बड़ी शास्ति की आवश्यकता नहीं है। यदि दोषी कर्मचारी को पर्याप्त अवसर दिया गया होता, तो वह यह प्रदर्शित कर सकता था कि उस पर कोई भी दंड नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि पूरी तरह से आरोप निराधार हैं आदि। यह कार्यवाही की शुरुआत है जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के तरीके को नियंत्रित करेगी और अंतिम परिणाम नहीं। इसलिए, केवल यह तथ्य कि अंततः याचिकाकर्ता को केवल मामूली जुर्माना लगाया जा सकता था, उसके कानूनी अधिकार को कम नहीं करेगा कि अनुशासनात्मक जांच जब शुरू की गई हो, तो जांच की शुरुआत में लागू प्रावधानों को आकर्षित करने वाली निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप आयोजित की जानी चाहिए।

35. तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद हमारा विचार है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही पूर्वोक्त कारणों से दूषित है। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 29.8.2000 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जा सकता है। तदनुसार इसे रद्द किया जाता है।

21. यह न्यायालय **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अष्टभुजा मिश्र और अन्य 2017 (9) एडीजे 373 (डीबी)** के मामले में भी यही विचार लिया है।

22. विद्वान स्थायी वकील ने डी.एच.बी.वी.एन.एल. विद्युत नगर, हिसार और अन्य बनाम यशवीर सिंह गुलिया213 लीगल ईगल (एससी) 568 के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भरोसा किया है; और प्रस्तुत किया कि भले ही बड़ी शास्ति के लिए प्रक्रिया शुरू की गई हो, अनुशासनिक प्राधिकारी मामूली शास्ति लगा सकता है।

23. मैंने सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है, जो इस कारण से अलग है कि नियमों के तहत यह प्रदान किया गया है कि यदि बड़ी शास्ति के लिए प्रक्रिया शुरू की गई है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी बड़ी शास्ति के स्थान पर मामूली जुर्माना लगा सकता है। यहां ऐसा नहीं है।

24. इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रकाश में और समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा पालन किया जाता है, यह तथ्य बहुत स्पष्ट है कि एक बार बड़े दंड के लिए प्रक्रिया शुरू हो जाने के बाद, इसे नियमों के अनुसार पूरा किया जाना चाहिए और यदि इसे बीच में छोड़ दिया जाता है, जांच की कार्यवाही को निरस्त किया जाएगा।

25. एक बार जांच की कार्यवाही समाप्त हो जाने के बाद, कर्मचारी पर कोई बड़ा या छोटा जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है। कमला चरण मिश्रा और सोहन लाल (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय ने यह विचार किया है कि एक बार शुरू की गई जांच की कार्यवाही पूरी

नहीं हुई है जैसा कि नियम में प्रदान किया गया है और अंततः मामूली जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है। वर्तमान मामले में भी, यह तथ्य बहुत स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को बड़ा जुर्माना लगाने के लिए निलंबित करने के बाद जांच की कार्यवाही शुरू की गई थी, लेकिन अंततः इसे पूरा किए बिना, मामूली जुर्माना लगाया गया है, जो नियम के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का उल्लंघन है, इसलिए, इस तरह के आदेश को कानून की नजर में कायम नहीं रखा जा सकता है।

26. उपरोक्त के मद्देनजर, प्रतिवादी नंबर 3/जिला मजिस्ट्रेट बलिया द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.09.2000 के साथ-साथ प्रतिवादी नंबर 2/आयुक्त, आजमगढ़ क्षेत्र आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.04.2003 को रद्द किया जाता है। **रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है।**

27. प्रतिवादी कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र हैं।

(2023) 5 ILRA 1548

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

रिट-ए संख्या 18527/2021

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

राज कुमार सिंह ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सी.एस.सी., श्री जगदीश पाठक

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री राम नारायण

ए. सिविल कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - उत्तर प्रदेश पुलिस अधीनस्थ रैंक के अधिकारी (दंड और अपील) नियम, 1991 -नियम 14 - विवाद: क्या न्यायाधिकरण दंड आदेश को रद्द करके अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका को हड़पने में सक्षम था, जबकि, निश्चित रूप से, छुट्टी के अधिक समय तक रहने के आरोप के तथ्य को कर्मचारी द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया था? निर्णय: न्यायालयों/न्यायाधिकरणों को अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारियों के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए। न्यायाधिकरण ने प्रतिवादी पर दंड लगाने वाले अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित विवादित आदेश को रद्द करने में अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया। अधिक से अधिक, न्यायाधिकरण इस मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को एक नया आदेश पारित करने के लिए भेज सकता था। न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र और क्षमता के भीतर यह नहीं था कि वह अपील में बैठे हुए दंड को रद्द कर दे, बिना यह निष्कर्ष निकाले कि अनुशासनात्मक जांच नियम, 1991 के वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के कारण दोषपूर्ण थी, या यह कि दंड दोष या विकृतता के अनुरूप नहीं था। (पैरा 35, 36)

बी. उत्तर प्रदेश पुलिस अधीनस्थ अधिकारी (दंड एवं अपील) नियमावली, 1991 - नियमावली, 1991 का परिशिष्ट-1- नियमावली, 1991 का परिशिष्ट-1, विशेष रूप से यह प्रावधान करता

है कि जांच अधिकारी विभागीय कार्यवाही समाप्त करने के पश्चात प्रस्तावित दंड की संस्तुति कर सकता है। इस परिशिष्ट के प्रावधान में यह प्रावधान है कि जांच अधिकारी इन कार्यवाहियों से अलग, आरोपित पुलिस अधिकारी पर लगाए जाने वाले दंड के संबंध में अपनी संस्तुति भी कर सकता है। (पैरा 32)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन एआईआर 1964 एससी 477
2. भारत संघ बनाम पी. गुणसेकरन 2015 (2) एससीसी 610
3. भारत संघ बनाम फ्लाइट कैडेट आशीष राय 2006 (2) एस.सी.सी. 364
4. होम्बे गौड़ा एजुकेशनल ट्रस्ट बनाम कर्नाटक राज्य 2006 (1) एससीसी 430
5. कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य. 2012 (30) एलडीसी 519
6. मसूद असगर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवा अधिकरण, इंदिरा भवन, लखनऊ एवं अन्य 2019 (5) एडीजे 179 (डीबी) (एलबी)

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV, द्वारा प्रदत्त)

1. सुश्री मोनिका आर्य, याचिकाकर्ताओं के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील और प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री राम नारायण, को सुना।

2. प्रतिवादी-याचिकाकर्ता तत्काल रिट याचिका द्वारा राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण, लखनऊ (संक्षेप में, "ट्रिब्यूनल") द्वारा 2016 की दावा याचिका संख्या 707 में पारित दिनांक 23 मार्च, 2021 के आदेश का विरोध कर रहे हैं, जिसमें आवेदक- प्रतिवादी की याचिका को अनुशासनात्मक कार्यवाही में आवेदक-प्रतिवादी पर लगाए गए दंड के आदेश को रद्द करने की अनुमति दी गई है।

3. विचार के लिए जो छोटा प्रश्न उठता है, वह यह है कि क्या ट्रिब्यूनल सजा के आदेश को रद्द करके अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका को हड़पने के लिए सक्षम था, जब स्वीकार्य रूप से, कर्मचारी द्वारा छुट्टी के ओवरस्टे के आरोप के तथ्य से इनकार नहीं किया गया था।

4. तत्काल रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह है कि प्रतिवादी 2003 से एक कांस्टेबल के रूप में काम कर रहा था, उस पर 10 नवंबर, 2006 से 09 अगस्त, 2007 तक ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए आरोप लगाया गया था, और बाद में गिरफ्तार किए जाने के घटनाक्रम मे , और धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत 2008 के अपराध संख्या 252 में कैद किया गया था; 2008 का मामला अपराध संख्या 252, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 8/20 के तहत और 2008 का मामला अपराध संख्या 184, धारा 392 और 411 आईपीसी के तहत, इन सभी मामलों में प्रतिवादी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

5. उत्तर प्रदेश पुलिस अधीनस्थ रैंक के पुलिस अधिकारी (सजा और अपील) नियम, 1991 (संक्षेप में, "नियम, 1991") के नियम 14 (1) के तहत बड़ी शास्ति लगाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी ने जांच में भाग

नहीं लिया, परिणामस्वरूप, उसे 09 अगस्त, 2007 के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया, जिसे नियम, 1991 के नियम 8 (2) के तहत पारित किया गया था। हालांकि, इस आदेश को इस न्यायालय द्वारा 2008 की रिट-ए संख्या 16992 में 18 अप्रैल, 2008 के आदेश के माध्यम से रद्द कर दिया गया था। हालांकि, अदालत ने नियमों के अनुसार प्रतिवादी के खिलाफ जांच करने का विकल्प अधिकारियों पर छोड़ दिया।

6. न्यायालय द्वारा आदेश पारित करने की तारीख को, प्रतिवादी उपरोक्त आपराधिक मामलों में गिरफ्तार होने पर जेल में बंद था। प्रतिवादी को 16 जुलाई, 2008 को जमानत दे दी गई, लेकिन वह ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया, न ही वह उसे सेवा में बहाल करने के लिए प्राधिकरण के समक्ष उपस्थित हुआ। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी ने अधिकारियों को अपने कारावास और उसके खिलाफ आपराधिक मामलों के पंजीकरण के बारे में सूचित नहीं किया। वर्ष 2013 में ही उन्होंने 5 अप्रैल, 2013 को संबंधित प्राधिकारी को एक आवेदन दिया जिसमें सेवा में बहाली का अनुरोध किया गया था। इसके बाद, प्रतिवादी को सेवा में बहाल किया गया और राज्य सरकार के 17 जनवरी, 2014 के आदेश के अनुपालन में उसके खिलाफ एक नई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की मांग की गई।

7. उसकी अनधिकृत अनुपस्थिति और आपराधिक मामलों में प्रतिवादी की बाद में हिरासत के संबंध में रिपोर्ट करने के लिए एक तथ्यान्वेषी जांच स्थापित की गई थी। अधिकारी ने 30 जून, 2014 को प्रारंभिक जांच रिपोर्ट और 23 सितंबर, 2014 को अनुपूरक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके बाद, प्रतिवादी को 07 अक्टूबर, 2014 को आरोप पत्र जारी किया गया, जिसमें नियम, 1991 की धारा 14 (1) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, 16 नवंबर, 2016 से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने और प्रतिवादी के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामलों में गिरफ्तार और कैद किए जाने के आरोप में। प्रतिवादी ने 24 अक्टूबर, 2014 को अपनी अनुपस्थिति को स्वीकार करते हुए आरोप पर अपनी आपत्तियां प्रस्तुत कीं, लेकिन अपनी अनुपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। आरोप के समर्थन में नोट किए गए गवाहों की प्रतिवादी की उपस्थिति में जांच की गई और जांच अधिकारी द्वारा निर्धारित तारीख और समय पर गवाहों से जिरह करने की अनुमति दी गई। इसके बाद, जांच अधिकारी द्वारा प्रतिवादी को 05 नवंबर, 2014 के पत्र के माध्यम से अपना बचाव दायर करने की अनुमति दी गई। प्रतिवादी ने 15 नवंबर, 2014 को अपना जवाब/आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया कि वह बचाव में कोई अन्य सबूत या गवाह पेश नहीं करना चाहता था और जांच अधिकारी से अनुरोध किया कि वह पहले प्रस्तुत किए गए उसके स्पष्टीकरण पर विचार करे और उचित आदेश पारित करे। प्रतिवादी का बयान भी उसी तारीख यानी 15 नवंबर, 2014 को दर्ज किया गया था। इसके बाद, जांच अधिकारी ने 07 जनवरी, 2015 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें प्रतिवादी के खिलाफ अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप साबित हुआ।

8. प्रतिवादी के खिलाफ आरोप यह था कि उसे 16 नवंबर, 2006 को माणिक चंद्रा के साथ आगरा से लखनऊ विश्वविद्यालय में अपने गंतव्य स्थान पर जाने और लखनऊ में ड्यूटी के लिए रिपोर्ट करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन बीच में वह गायब हो गया और लखनऊ में गंतव्य पर टीम में शामिल नहीं हुआ। इसके अलावा, प्रतिवादी ने अपने खिलाफ दर्ज प्राथमिकी के पंजीकरण को दबा दिया था और अपनी गिरफ्तारी के संबंध में अधिकारियों को सूचित नहीं किया था। तदनुसार, जांच अधिकारी का विचार था कि प्रतिवादी का आचरण अपने कर्तव्य के प्रति गंभीर अनुशासनहीनता और लापरवाही की श्रेणी में आता है। जांच अधिकारी ने उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रतिवादी को तीन साल के लिए न्यूनतम वेतनमान पर वापस करने और ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि अर्थात 16 नवंबर, 2006 से 09 अगस्त, 2007 तक वेतन और अन्य परिलब्धियों का भुगतान नहीं करने की सजा की सिफारिश की।

9. अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने 15 फरवरी, 2015 को कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिसमें प्रतिवादी को प्रस्तावित सजा पर अपनी आपत्ति प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। प्रतिवादी ने 03 मार्च, 2015 को नोटिस पर आपत्तियां दर्ज कीं। तृतीय याचिकाकर्ता-कमांडेंट, 15वीं बटालियन, आगरा/अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 14 मई, 2015 के आदेश के तहत 10 नवंबर, 2006 से 09 अगस्त, 2007 तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने पर तीन वर्ष के लिए न्यूनतम वेतनमान में कटौती की सजा दी।

10. इससे असंतुष्ट प्रतिवादी ने दूसरे याचिकाकर्ता पीएसी आगरा के पुलिस उप महानिरीक्षक के समक्ष अपील दायर की, जिसे 26 दिसंबर, 2015 के स्पष्ट आदेश से खारिज कर दिया गया। प्रतिवादी ने अगले उच्च अधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण दायर करने के बजाय, सजा के आक्षेपित आदेशों को चुनौती देते हुए एक दावा याचिका शुरू करके ट्रिब्यूनल का दरवाजा खटखटाया।

11. विद्वान ट्रिब्यूनल ने दावा याचिका की अनुमति दी, यह खोज लौटाते हुए कि जांच अधिकारी ने प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों की अनदेखी की थी, जो उसकी अनुपस्थिति के लिए एक उचित स्पष्टीकरण था। एक खोज वापस कर दिया गया था कि अनुपस्थिति जानबूझकर नहीं बल्कि अरोक परिस्थितियों के कारण थी। ट्रिब्यूनल की राय थी कि जांच अधिकारी द्वारा अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति के बचाव में प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों की वैधता के संबंध में कोई जांच नहीं की गई थी। इसके अलावा, ट्रिब्यूनल का विचार था कि जांच अधिकारी ने प्रतिवादी को दी जाने वाली सजा का प्रस्ताव करते हुए एक अवैधता की है, इसलिए, अनुशासनिक प्राधिकारी ने बिना दिमाग के यांत्रिक रूप से जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तावित सजा दी।

12. विद्वान ट्रिब्यूनल ने मुख्य रूप से इस आधार पर आक्षेपित दंड आदेशों को रद्द कर दिया कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों की वैधता के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय

प्राधिकारी द्वारा कोई जांच या तहकीकात नहीं की गई थी, परिणामस्वरूप, जांच अधिकारी द्वारा चिकित्सा प्रमाण पत्र पर अविश्वास नहीं किया जा सकता था।

13. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी वकील प्रस्तुत करते है कि विद्वान ट्रिब्यूनल ने जांच अधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों पर अपील में बैठने में त्रुटि की है। जांच अधिकारी ने किसी भी सजा की सिफारिश नहीं की, बल्कि, प्रतिवादी पर लगाए जा सकने वाले दंड का प्रस्ताव रखा। कारण बताओ नोटिस के बाद अनुशासनिक प्राधिकारी ने तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश द्वारा दंड अधिरोपित किया। प्रतिवादी के खिलाफ आरोप की प्रकृति के संबंध में गंभीर सजा देना अनुशासनात्मक प्राधिकरण के लिए हमेशा खुला था।

14. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चिकित्सा प्रमाण पत्र स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि प्रतिवादी साधारण स्वास्थ्य समस्याओं के लिए एक बाह्य रोगी था और उसे इन-हाउस अस्पताल में भर्ती होने की आवश्यकता नहीं थी। इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी को अपनी अनुपस्थिति और बाद में गिरफ्तारी के बारे में अधिकारियों को सूचित करना चाहिए था।

15. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि जांच अधिकारी ने चिकित्सा प्रमाण पत्र स्वीकार नहीं किए थे क्योंकि इस स्तर पर, किसी भी गंभीर बीमारी का खुलासा नहीं किया था जिसके लिए इनडोर उपचार या बिस्तर तक सीमित रखने की आवश्यकता थी। अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्रिब्यूनल ने सजा को रद्द करने में अनुशासनात्मक प्राधिकरण की भूमिका को हड़पने में एक त्रुटि की है, बल्कि, सजा का एक नया आदेश पारित करने के लिए मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकरण को भेज दिया जाना चाहिए था। ट्रिब्यूनल एक निष्कर्ष वापस किए बिना सजा के आदेश को रद्द नहीं कर सकता था कि नियम, 1991 के प्रावधानों का अनुपालन न करने के कारण अनुशासनात्मक कार्यवाही को निष्फलीत किया गया था, या अन्यथा।

16. प्रतिवादी की ओर से पेश विद्वान वकील तथ्यों पर विवाद नहीं करते हैं और स्वीकार करते हैं कि प्रतिवादी कर्मचारी ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में भाग लिया था, अपनी आपत्तियां दर्ज की थीं और गवाहों से जिरह की थी। दूसरे शब्दों में वह इस बात पर विवाद नहीं करता है कि नियम, 1991 के तहत अपेक्षित प्रक्रिया का विधिवत अनुपालन नहीं किया गया था।

17. विशिष्ट प्रश्न पर, वह स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है कि अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप का तथ्य और प्रतिवादी को आपराधिक मामलों में गिरफ्तार किया गया था, विवादित नहीं था, लेकिन अनधिकृत अनुपस्थिति को समझाने और उचित ठहराने के लिए चिकित्सा प्रमाणपत्रों पर भरोसा किया गया था। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्रिब्यूनल ने चिकित्सा प्रमाणपत्रों के संबंध में सजा के आदेश को रद्द करने में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं की है। कर्तव्य से अनुपस्थिति खुदराय और जानबूझकर नहीं थी।

18. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ विचार के लिए राजी हैं।

19. परस्पर पक्षकार तथ्य विवादित नहीं हैं।

20. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि अदालतें/ट्रिब्यूनल अनुशासनात्मक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपील में नहीं बैठ सकते हैं और अनुशासनात्मक कार्यवाही में नेतृत्व किए गए साक्ष्य की पर्याप्तता की जांच नहीं कर सकते हैं। अनुशासनात्मक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा इस प्रक्रिया तक सीमित और सीमित है कि क्या नियमों के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही निष्पक्ष रूप से आयोजित की गई थी और प्रतिवादी कर्मचारी को जांच अधिकारी के समक्ष अपना मामला पेश करने का पूर्ण और निष्पक्ष अवसर दिया गया था।

21. अनुशासनिक कार्यवाहियों की न्यायिक समीक्षा के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अधिकरण/न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप कर सकते हैं जब जांच अधिकारी के निष्कर्ष विकृत हों या बिना किसी साक्ष्य के आधारित हों। साक्ष्य की सराहना करने पर, ट्रिब्यूनल/ न्यायालय साबित किए गए आरोपों पर रिकॉर्ड पर सामग्री की सराहना के आधार पर अपनी राय को प्रतिस्थापित करने के लिए खुला नहीं है।

22. अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए संगत और तात्विक साक्ष्य निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए नामुनासिब या अपर्याप्त हैं। एक बिंदु पर नेतृत्व किए गए साक्ष्य की पर्याप्तता और उक्त तथ्य से निकाले गए तथ्य का निष्कर्ष ट्रिब्यूनल के अनन्य अधिकार क्षेत्र के भीतर है। [देखें: सैयद याकूब बनाम केएस राधाकृष्णन1; भारत संघ बनाम पी. गुणशेखरन2 ; यूनियन ऑफ इंडिया बनाम फ्लाइट कैडेट आशीष राय 3 और होम्बे गौड़ा एजुकेशनल ट्रस्ट बनाम कर्नाटक राज्य4]।

23. वर्तमान मामले के स्वीकृत तथ्यों में, अनधिकृत अनुपस्थिति और बाद में गिरफ्तारी और जेल में कैद करने के आरोप का तथ्य विवादित नहीं है। इसके अलावा, यह स्वीकार किया जाता है कि ड्यूटी के दौरान प्रतिवादी बीच में गायब हो गया और अपने सहयोगी के साथ ड्यूटी के स्टेशन पर रिपोर्ट नहीं किया। यह स्वीकार किया जाता है कि प्रतिवादी ने अधिकारियों को सूचित नहीं किया कि वह अपनी गंभीर बीमारी के कारण ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं कर सका। यह भी स्वीकार किया जाता है कि बाद में उन्हें गंभीर प्रकृति के तीन आपराधिक मामलों में गिरफ्तार किया गया और 16 जुलाई, 2008 को जमानत पर रिहा किए जाने पर, उन्होंने 05 अप्रैल, 2013 को यानी लगभग पांच साल की अनुपस्थिति के बाद बहाली के लिए रिपोर्ट की।

24. इन परिस्थितियों में, वर्ष 2006 से 2013 तक, लगभग सात वर्षों तक, प्रतिवादी एक अनुशासित बल का सदस्य होने के नाते बिना सूचना के अनुपस्थित रहा जो एक घोर कदाचार है। अपने बचाव में प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों के अवलोकन पर जांच अधिकारी प्रमाण पत्र स्वीकार नहीं करने में न्यायसंगत था क्योंकि यह प्रतिवादी द्वारा उसकी अनधिकृत अनुपस्थिति को सही ठहराने के लिए प्राप्त किया गया था। प्रतिवादी द्वारा

जिन चिकित्सा प्रमाणपत्रों पर भरोसा किया गया है, उन्हें रिकॉर्ड पर रखा गया है।

25. चिकित्सा अधीक्षक अधिकारी, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र सादाबाद, मथुरा से 07 दिसंबर, 2016 को चिकित्सा प्रमाण पत्र प्राप्त किए गए थे, जिसमें प्रमाणित किया गया था कि प्रतिवादी 'हल्का हल्का दर्द' से पीड़ित था। तदनुसार, चिकित्सा अधिकारी की राय में, प्रतिवादी की 17 नवंबर, 2006 से 07 दिसंबर, 2006 तक अनुपस्थिति 'उसके स्वास्थ्य की बहाली' के लिए नितांत आवश्यक थी। वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी, जिला अस्पताल, मथुरा द्वारा जारी किए गए 26 अक्टूबर, 2007 के अन्य चिकित्सा प्रमाण पत्र में दर्ज है कि चूंकि प्रतिवादी कटिस्नायुशूल के साथ तीव्र काठ से पीड़ित था, इसलिए 20 फरवरी, 2007 से 26 अक्टूबर, 2007 तक आराम करने की सलाह दी गई। जिला अस्पताल, मथुरा द्वारा जारी किए गए अन्य चिकित्सा प्रमाण-पत्र, जो अप्रकाशित हैं, में दर्ज है कि प्रतिवादी को ओपीडी संख्या 203920 जारी की गई थी और 08 दिसंबर, 2006 से 19 फरवरी, 2007 तक 15 दिन और 8 सप्ताह के आराम की सलाह दी गई थी। यह आगे ध्यान दिया जाता है कि प्रमाण पत्र एम/सी (चिकित्सा प्रमाणपत्र) उद्देश्य के लिए निर्भर नहीं हैं।

26. कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि कर्मचारी की अनुपस्थिति जानबूळाकर नहीं बल्कि बाध्यकारी परिस्थितियों में होनी चाहिए। रिपोर्ट के पैराग्राफ 16 और 17 को निम्नानुसार बताया गया है: -

> "16. प्रश्न यह है कि क्या 'ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति' कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता के बराबर है या सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार को इस प्रश्न का निर्णय किए बिना तय नहीं किया जा सकता है कि क्या अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है या बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण है।
>
> 17. यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है जिसके तहत रिपोर्ट करना या कर्तव्य निभाना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है।"

27. जांच अधिकारी की राय में प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों ने इस कारण से विश्वास को प्रेरित नहीं किया कि प्रतिवादी एक बाहरी रोगी था और प्रतिवादी की चिकित्सा बीमारी गंभीर प्रकृति की नहीं थी ताकि उसे ड्यूटी के लिए रिपोर्ट करने से रोका जा सके। जांच अधिकारी ने कहा कि अगर प्रतिवादी की चिकित्सा बीमारी इतनी गंभीर होती, तो उस घटना में, सादाबाद स्टेशन से वह इलाज के लिए पास के आगरा स्टेशन पर जाता, जहां बेहतर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हैं। इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी का स्पष्टीकरण कि वह सादाबाद में बीमार पड़ गया और वहां से वह घर चला गया, चिकित्सा प्रमाणपत्रों के आधार पर स्वीकार नहीं किया गया। यह ऐसा मामला नहीं है कि जांच अधिकारी ने चिकित्सा

प्रमाणपत्रों की उपेक्षा की या उस पर अविश्वास किया, बल्कि, उसके द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों के आधार पर प्रतिवादी के स्पष्टीकरण को जांच अधिकारी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था। चिकित्सा प्रमाण पत्र मामूली प्रकृति की बीमारी को स्वीकार करते हैं। इसके अलावा, प्रतिवादी एक बाहरी रोगी था और यह उसका मामला नहीं है कि वह बिस्तर तक ही सीमित था और ड्यूटी के लिए रिपोर्ट करना संभव नहीं था। दूसरे शब्दों में, यह कर्तव्य से बचने के लिए मजबूर प्रकृति का मामला नहीं है। यह जानबूझकर और जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित रहने का मामला है।

28. प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि चिकित्सा प्रमाण पत्र के समर्थन में प्रतिवादी द्वारा किए गए चिकित्सा नुस्खे और उपचार को प्रस्तुत नहीं किया गया था, न ही जांच अधिकारी के समक्ष दायर किया गया था। इसके अलावा, वह स्वीकार करता है कि प्रतिवादी एक वाह्य रोगी था। यह किसी भी समय प्रतिवादी का मामला नहीं है, कि प्रतिवादी ने अपनी बीमारी के कारण या एफआईआर के अनुसार जेल में नजरबंदी के कारण विभाग को सूचित किया था।

29. इस प्रश्न पर कि क्या जांच अधिकारी अपनी रिपोर्ट में दंड का प्रस्ताव कर सकता है। उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम खड़क सिंह के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने एएन डिसिल्वा बनाम भारत संघ में दिए गए पूर्व निर्णय पर भरोसा करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या कोई जांच अधिकारी अपनी रिपोर्ट में प्रस्तावित दंड का संकेत दे सकता है, न्यायालय ने कहा कि यह दंडात्मक/अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए है कि वह उचित दंड दे और जांच अधिकारी की सजा देने में कोई भूमिका नहीं है। दंड देने का प्रश्न जांच किए जाने और जांच अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद ही उठ सकता है। दण्ड देने वाले प्राधिकारी/अनुशासनिक प्राधिकारी को दंड का प्रस्ताव करना है न कि जांच प्राधिकारी का।

30. खड़क सिंह (सुप्रा) मामले में न्यायालय ने कहा कि हालांकि जांच अधिकारी द्वारा विचार देने में कोई विशिष्ट रोक नहीं है, लेकिन, दिए गए तथ्यों में, यह माना गया कि जांच अधिकारी ने यह कहकर अपनी सीमा पार कर दी कि अपराधी अधिकारी को सरकारी सेवा में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और उसे तत्काल प्रभाव से सेवा से बर्खास्त कर दिया जाए।

31. हमने नियम 91 के परिशिष्ट -1 का अवलोकन किया है, जो निम्नानुसार बताता है:

"पुलिस अधिकारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही के संचालन से संबंधित प्रक्रिया [नियम 14 (1) देखें]

औपचारिक जांच शुरू होने पर, ऐसे पुलिस अधिकारी को, जिसके विरुद्ध जांच शुरू की गई है, उन आधारों के बारे में लिखित रूप में सूचित किया जाएगा जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव किया गया था और उसे अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर दिया जाएगा .....

..... कार्यवाही में साक्ष्य और निष्कर्ष के बयान और उसके आधार का पर्याप्त

रिकॉर्ड होगा। जांच अधिकारी इन कार्यवाहियों में से अलग, आरोपित पुलिस अधिकारी पर लगाए जाने वाले दंड के संबंध में अपनी सिफारिश भी कर सकता है।

32. अत नियमावली, 1991 के परिशिष्ट-1 में विशेष रूप से प्रावधान है कि जांच अधिकारी विभागीय कार्यवाही समाप्त करने के बाद प्रस्तावित दंड की सिफारिश कर सकता है। इस परिशिष्ट के परंतुक में यह प्रावधान है कि जांच अधिकारी इस कार्यवाही से अलग भी आरोपित पुलिस अधिकारी पर लगाए जाने वाले दंड के बारे में अपनी सिफारिश कर सकता है।

33. मसूद असगर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवा अधिकरण, इंदिरा भवन, लखनऊ और अन्य में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने पहले के एक फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि सजा की सिफारिश करने वाले जांच अधिकारी केवल एक अनियमितता है और इससे जांच खराब नहीं होगी। एकमात्र आवश्यकता यह है कि अपराधी कर्मचारी को प्रस्तावित सजा का नोटिस होना चाहिए। पैराग्राफ संख्या 9 यह बताता है: -

> "9. यशपाल सिंह के मामले में इलाहाबाद में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने सजा के बिंदु पर जांच अधिकारी की सिफारिश को अनियमितता के रूप में माना है और मामले के तथ्यों पर अपना दिमाग लगाते हुए सजा के पुरस्कार पर पुनर्विचार करने के लिए मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंप दिया है। उपर्युक्त तथ्यों पर स्थायी वकील द्वारा विवाद नहीं किया गया है।"

34. इसके मद्देनजर, हमारी राय है कि विद्वान ट्रिब्यूनल ने प्रतिवादी पर सजा देने वाले अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द करने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया। ज्यादा से ज्यादा ट्रिब्यूनल इस मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकरण को भेज सकता था ताकि वह नया आदेश पारित कर सके। ट्रिब्यूनल अपने अधिकार क्षेत्र और क्षमता के भीतर अपील में बैठे सजा को रद्द करने के लिए नहीं था, बिना यह निष्कर्ष दिए कि नियम, 1991 के वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के लिए अनुशासनात्मक जांच खराब हो गई थी, या यह कि सजा अपराध के अनुरूप नहीं थी, या विकृत थी।

35. पी. गुणशेखरन (सुप्रा) मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने दोहराया और न्यायालयों/न्यायाधिकरणों को अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य न करने के लिए आगाह किया।

"12. अच्छी तरह से स्थापित स्थिति के बावजूद, यह नोट करना दर्दनाक रूप से परेशान करने वाला है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य किया है, यहां तक कि जांच अधिकारी के समक्ष सबूतों की भी सराहना की है....."

[संदर्भ: बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ और अन्य और एस. श्रीसंत बनाम भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड]

36. किसी भी मामले में, हमारी राय में, प्रतिवादी पर लगाया गया दंड बहुत कम कठोरता का है और इस तथ्य के संबंध में अपराध के अनुरूप नहीं है कि प्रतिवादी एक अनुशासित बल का सदस्य था, दिए गए तथ्यों में अधिक गंभीर सजा की आवश्यकता थी। अनुशासनिक प्राधिकारी ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सजा देते समय उदार दृष्टिकोण अपनाया कि प्रतिवादी लगभग सात वर्षों से अनुपस्थित था और आपराधिक गतिविधियों में लिप्त था।

37. ऊपर दर्ज किए गए कारणों के लिए, ट्रिब्यूनल द्वारा पारित 23 मार्च, 2021 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अलग रखा जाता है और रद्द किया जाता है।

38. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

39. लागत के संबंध मे कोई आदेश नहीं है।

(2023) 5 ILRA 1555

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी,

रिट-ए संख्या 13327 / 2020

रणवीर सिंह और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अखिलेश मिश्रा, श्री राहुल मिश्रा, श्री उत्सव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री श्री राम पांडे

सिविल कानून- जल संस्थान (ग्रामीण) उत्तर प्रदेश नगरपालिका अकेंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ विनियमन, 1984 (नियम 1984) - उत्तर प्रदेश पेंशन एवं मान्यकरण हेतु अर्हक सेवा अधिनियम, 2021- विवाद: क्या जल संस्थान में तृतीय श्रेणी के पदों पर कार्यरत दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों द्वारा नियमितीकरण से पहले की गई सेवाओं को, जिन्हें बाद में उनकी सेवाओं के जारी रहने पर नियमित कर दिया गया था, पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के प्रयोजन के लिए गिना जाना है? निर्णय: दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान कर्तव्य निभाते हैं और उन्हें हमेशा नियमित कर्मचारी माना जाता है। उन्हें उनकी कार्यभार सेवाओं के जारी रहने पर भी नियमित किया गया था। जहां तक 2021 के अधिनियम का संबंध है, यह केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होता है। वैसे भी, 2021 के अधिनियम को इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 8968/2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित दिनांक 17.02.2023 के अपने निर्णय में पहले ही पढ़ा जा चुका है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया कि तीन महीने की अवधि के भीतर वे पेंशन नियमों के तहत पहले से ही सेवानिवृत्त हो चुके याचिकाकर्ताओं को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें, जिसमें उनकी नियमितीकरण से पहले दैनिक दर वाले कर्मचारियों के रूप में उनके द्वारा की गई

सेवाओं सहित उनकी संपूर्ण सेवा को पेंशन लाभ के लिए अर्हक सेवाओं के रूप में माना जाता है।

स्वीकृत (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. जय प्रकाश बनाम यूपी राज्य व अन्य, रिट-ए नं. 10405/2022 दिनांक 17.03.2023
2. प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य व अन्य, (2019) 10 एससीसी 516
3. डॉ. श्याम कुमार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 8968/2022 दिनांक 17.02.2023

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल मिश्रा, प्रतिवादी जल संस्थान की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री राम पांडे और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

याचिकाकर्ताओं ने इस अदालत में दिनांक 20.02.2020 के आदेश को चुनौती दी है जिसके तहत प्रतिवादी प्राधिकरण ने जल-संस्थान के कर्मचारियों को पुरानी पेंशन योजना के अन्तर्गत इस आधार पर नामांकित करने से इनकार कर दिया है कि उन्हें पुरानी पेंशन योजना समाप्त होने के बाद नियमित किया गया था, और प्रतिवादियों को प्रतिवादी-संस्थान में दैनिक वेतन के पदों पर प्रदान की गई उनकी पिछली सेवाओं को गिनकर याचिकाकर्ताओं को नियमित पेंशन का भुगतान करने का आदेश देने की प्रार्थना की है।

मामले के तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं को वर्ष 1989-1991 के बीच जल संस्थान में तृतीय श्रेणी के पद पर दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें पूरे समय नियमित कर्मचारी माना गया और बाद में 2005-2011 के बीच जल संस्थान में नियमित कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने बताया कि कुछ याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पत्र दिनांक 30.08.2018 के द्वारा, प्रतिवादी- जल संस्थान (ग्रामीण) ने अपने कर्मचारियों की पेंशन को विनियमित करने के लिए 'यूपी नगरपालिका गैर-केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ विनियम, 1984 (1984 के नियम)' को अपनाया है। उसी नियम के तहत, याचिकाकर्ता पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ के हकदार हैं। आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि नगर पालिका के कर्मचारियों के संबंध में समान नियमों की व्याख्या इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 17.03.2023 के फैसले में **WRIT - A नंबर - 10405 ऑफ 2022 (जय प्रकाश बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य)** में की थी जिसमें यह माना गया था कि नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ के प्रयोजनों के लिए गिना जाना चाहिए। उन्होंने **प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 516** के मामले में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच के फैसले को भी आधार बनाया है, जिसमें यह माना गया था कि

नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ के प्रयोजनों के लिए गिना जाना चाहिए। प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"8. हम सबसे पहले उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 (संक्षेप में '1961 नियम') में निहित प्रावधानों पर विचार करते हैं। 1961 नियमावली का नियम 3(8), जिसमें अर्हक सेवा के संबंध में प्रावधान शामिल हैं, यहां दिया गया है: "3. इन नियमों में, जब तक कि विषय या सन्दर्भ में कोई कुछ भी प्रतिकूल न हो-

(1)-(7) * * *

(8) 'अर्हकसेवा' का अर्थ वह सेवा है जो सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्हता प्राप्त करती है:

बशर्ते कि उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के बाद उसी या किसी अन्य पद पर बिना किसी रुकावट के स्थायीकरण द्वारा किया जाए, सिवाय इसके कि-

(i) गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; और

(iii) आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

टिप्पणी:- यदि गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में या आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद पर प्रदान की गई सेवा, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या अस्थायी सेवा की अवधि और पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में स्थायी सेवा के बीच आती है, तो इसे सेवा में रुकावट नहीं माना जाएगा।

9. उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 361, 368 एवं 370 भी प्रासंगिक हैं। उन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"361. किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए अर्ह नहीं होती जब तक वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:

पहला - सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरा - रोज़गार मूल और स्थायी होना चाहिए।"

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित विनियमों में पूरी तरह से समझाया गया है।

"368. सेवा तब तक योग्य नहीं होती जब तक कि अधिकारी किसी स्थायी प्रतिष्ठान में कोई वास्तविक पद धारण न कर ले।

370. उत्तर प्रदेश सरकार के तहत निरंतर अस्थायी या कार्यवाहक सेवा जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के अर्हता प्राप्त होगी, सिवाय इसके कि-

(i) गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या कार्यवाहक सेवा की अवधि;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; और

(iii) किसी पद पर आकस्मिक व्यय से भुगतान की गई सेवा की अवधि।"

10. अर्हक सेवा वह है जो विनियम 368 के प्रावधानों के अनुसार है अर्थात किसी स्थायी प्रतिष्ठान पर एक मूल पद धारण करना। नियम 3(8) के परंतुक में स्पष्ट किया गया है कि एक गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी और कार्यवाहक सेवा की अवधि के मामले को छोड़कर, उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के पालन की जाने वाली निरंतर अस्थायी या कार्यवाहक सेवा भी अर्हक सेवा में शामिल है। कार्यभारित स्थापना में सेवा और आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद में सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा.

11. नियम 3(8) से जुड़ी टिप्पणी में यह प्रावधान है कि यदि सेवा गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर प्रदान की जाती है, तो पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच आती है, या किसी पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच आती है, तो इसे सेवा में रुकावट नहीं माना जाएगा। इस प्रकार, टिप्पणी में कार्य-प्रभारित, आकस्मिक भुगतान और गैर-पेंशन योग्य स्थापना में प्रदान की गई अर्हक सेवा को पेंशन योग्य सेवा के रूप में गिना जाने वाला एक स्पष्ट प्रावधान है, जो इसमें प्रदान की गई अत्यावश्यकताओं में शामिल है।

12. सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 370 में निहित प्रावधानों में गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान और आकस्मिकव्यय से भुगतान किए गए पद पर सेवा को अर्हक सेवा के दायरे से बाहर रखा गया है। सिविल सेवा विनियम के विनियम 361 के तहत, सेवाएँ सरकार के अधीन होनी चाहिए और नौकरी मूल और स्थायी आधार पर होनी चाहिए।

.....

30. हम उपरोक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। संदर्भित कार्य-प्रभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी तथा उन्हें दक्षता सीमा भी पार करनी थी। उनकी सेवाएँ नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से किस प्रकार भिन्न हैं? साक्ष्य रहित स्पष्ट बयान देने के अलावा गुणात्मक अंतर दर्शाने वाला कोई भी तथ्य इंगित नहीं किया गया है। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कार्यभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है। बल्कि, कार्य-प्रभारित रोजगार की अवधारणा का उस कार्य के लिए शोषक शर्तों पर रोजगार की पेशकश करके दुरुपयोग किया गया है जो प्रकृति में नियमित और बहुवार्षिक है। कार्यभारित कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था, जैसा कि रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों से स्पष्ट है। नारायण दत्त शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में [सीए संख्या _____2019 एसएलपी (सी) संख्या 2018 की 5775 से उत्पन्न] अपीलकर्ताओं को कार्य-प्रभारित सेवाओं की अवधि के दौरान भी, "8" वर्षों की निरंतर सेवा

के बाद, दक्षता बार को पार करने की अनुमति दी गई थी। अपीलकर्ता नारायण दत्त शर्मा को 15-9-1978 से गेज मापक के रूप में कार्यभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक होता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये वेतनमान में की गयी थी। प्रारंभ में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें दक्षता सीमा पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि वेतनमान का लाभ उन्हें उस अवधि के दौरान दिया गया था जब उन्होंने कार्यभारित कर्मचारियों के रूप में तीन से चार दशकों तक सेवा की थी और बाद में विभिन्न आदेशों द्वारा समय-समय पर सेवाओं को नियमित किया गया था। हालाँकि, कुछ याचिकाओं/अपील में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, भले ही उन्होंने कई दशकों तक सेवा की और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गए थे।

31. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में राज्य सरकार एवं उसके अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों से कार्य-प्रभार के आधार पर कार्य लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लंबे समय तक कार्य-प्रभार के आधार पर काम लेना लाभकारी/शोषणकारी युक्ति अपनाने के समान है। हालांकि, बाद में उनकी सेवाएं नियमित कर दी गयीं थीं फिर भी, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में उनके द्वारा बिताई गई अवधि को योग्यता सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान उन्हें न केवल उनके उचित परिलब्धियों से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभ के लिए अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है जैसे कि उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान ही नहीं की गई थी। अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

32. 1961 के नियमों के नियम 3(8) से जुड़े नोट के मद्देनजर, कार्य-प्रभारित, आकस्मिकताओं या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा की गणना करने का प्रावधान है, यदि किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों की अवधि के बीच दी गई अवधि में ऐसी सेवा प्रदान की है या अस्थायी और स्थायी नौकरी की दो अवधियों में इस तरह की सेवा प्रदान की है। उपरोक्त अत्यावश्यक परिस्थितियों में कार्यभारित सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. प्रश्न उठता है कि क्या यह शर्त लागू करना कि ऐसी सेवा की गणना अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो चरणों के बीच की होनी चाहिए, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण किया गया था, हालांकि नियुक्ति की प्रकृति को देखते हुए, कर्मचारी ने इससे पहले अस्थायी आधार पर सेवा नहीं की थी, यह मासिक वेतन पर किया गया था और उसके बाद कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान के वेतनमान में दक्षता सीमा को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के नोट में निहित शर्त के कारण यह अत्यधिक भेदभावपूर्ण और अतार्किक होगा, विशेष रूप से

ऐसी सेवा की गणना न करना जब इसे गिना जा सकता है, यदि ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच में स्थित है। यदि कार्यभारित अवधि की सेवा नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई है तो उसकी गणना न करने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारी राय में नियम 3(8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को अर्हक सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और अतार्किक होगा। कार्यभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार इसे एक वर्ग के लिए गिना जाना होता है तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में बिताई गई अवधि की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। यह शर्त लागू करना कि कार्य प्रभारित सेवा-अस्थायी क्षमता से पहले होना चाहिए थी, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3(8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि नियमितीकरण से पहले कार्यभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारी या गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान की क्षमता में प्रदान की गई सेवाओं को भी अर्हक सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति से पहले क्यों न हुई हो।

35. नियम 3(8) में जुड़ी टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 370 में निहित प्रावधान के साथ-साथ वित्तीय पुस्तिका के प्रस्तर 669 में निहित अनुदेशों को भी निरस्त किया जाना चाहिए।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएँ देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूँकि उन्होंने कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, किसी विशेष परियोजना के अंतर्गत नहीं, उनकी सेवाओं को सरकारी निर्देशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753] मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार भी नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश सहारे के बिना दस वर्षों से अधिक समय तक सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो एक बार के उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाएगा। मामले के तथ्यों के अनुसार जिन कर्मचारियों ने दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। नियमितीकरण पर विचार के लिए उन्हें विनियमित करना उचित नहीं होगा जबकि अन्य लोगों को नियमित कर दिया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। तथापि, यह स्पष्ट किया

जाता है कि यदि उन्हें सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में जारी रख्खा जाता है तो वे वेतन में अंतर के किसी भी बकाया का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हों और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के प्रयोजन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. यूपी सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3(8) के मद्देनजर, हम मानते हैं कि कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन अनुदान के लिए उपरोक्त नियम के तहत अर्हक सेवा माना जाएगा। पेंशन के बकाया की राशि आदेश की तिथि से तीन वर्ष पहले तक ही सीमित रहेगी। तीन माह के अंदर तदनुसार अनुमन्य लाभ का भुगतान किया जाये। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों द्वारा दायर की गई अपील को स्वीकार कर लिया जाता है और राज्य द्वारा दायर की गई अपील को खारिज किया जाता है।"

उन्होंने आगे कहा कि चूंकि प्रतिवादी प्राधिकारी में पेंशन लाभ के लिए समान नियम मौजूद हैं, इसलिए, मामला पूरी तरह से उक्त निर्णय द्वारा कवर किया गया है और याचिकाकर्ताओं को प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में तय किए गए कानून का लाभ भी दिया जाना चाहिए।

जल संस्थान के विद्वान वकील ने प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में फैसले की प्रयोज्यता का इस आधार पर विरोध किया कि उत्तर प्रदेश पेंशन और मान्यता के लिए अर्हकारी सेवा अधिनियम, 2021 के अधिनियमन के कारण उपरोक्त निर्णय का प्रभाव समाप्त हो गया है। जहां तक 2021 के अधिनियम का सवाल है, यह केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होता है। अन्य प्रकार भी 2021 के अधिनियम को इस न्यायालय द्वारा 2022 की **रिट-ए नं. 8968 (डॉ. श्याम कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में पारित निर्णय दिनांक 17.02.2023 द्वारा पहले ही पढ़ा जा चुका है। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"9. इसलिए, अब इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या 2021 का अधिनियम लाकर, राज्य सरकार ने प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई खामियों को दूर कर दिया है। उक्त निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि राज्य सरकार ने नियमित कर्मचारियों को मिलने वाले लाभों से वंचित रखते हुए बिना किसी तर्कसंगत वर्गीकरण के कार्य-प्रभारित कर्मचारियों से दीर्घकालिक आधार पर नियमित कर्मचारियों का काम लेकर शोषणकारी श्रम प्रथा अपनाई है। सुप्रीम कोर्ट ने विशेष रूप से कहा कि राज्य सरकार भ्रष्ट श्रम प्रथाओं में संलिप्त नहीं हो सकती है। उपरोक्त आधार पर, सुप्रीम कोर्ट ने 1961 के नियमों के नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ा और सिविल सेवा विनियमों के विनियम 370 और वित्तीय पुस्तिका के प्रस्तर 669 को रद्द कर दिया।

10. राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी आवश्यकता के अनुसार नए अस्थायी या स्थायी पद सृजित करे और उन पर नियुक्तियाँ करे। कानून राज्य को दैनिक वेतनभोगी या कार्य-प्रभारित कर्मचारियों को नियुक्त करने की

भी अनुमति देता है, लेकिन केवल तभी जब काम कम अवधि के लिए हो या किसी कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में निश्चित अवधि के लिए हो। कानून राज्य को अस्थायी या कार्य प्रभार के आधार पर किसी व्यक्ति से लंबी अवधि, यहां तक कि पूरे कामकाजी जीवन तक काम लेने की अनुमति नहीं देता है। ऐसे मामलों में, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह नियमित कर्मचारियों के सभी लाभ देते हुए नए पद सृजित करे और नियुक्तियाँ करे। अन्यथा, राज्य शोषणकारी श्रम प्रथा अपनाता हुआ पाया जायेगा। यह कार्य-प्रभारित कार्य-प्रभारित प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले सुप्रीम कोर्ट द्वारा इंगित किया गया दोष है, और इसे हटाने के बजाय, राज्य ने 2021 अधिनियम के धारा 2 द्वारा इसकी अवैधता का दायरा बढ़ा दिया है। 2021 के अधिनियम की धारा 2 के अनुसार, यह पेंशन लाभ के लिए ऐसी सेवा की उक्त अवधि की गणना न करके, समय पर पद सृजित करने और उस पर नियुक्तियाँ करने में अपनी विफलता का लाभ उठाना चाहता है। राज्य अभी भी उस तर्क को समझाने में विफल है जिसके आधार पर उसने यह नया वर्गीकरण बनाया है और किस तरीके से, संशोधित प्रावधान द्वारा, उसने अतार्किकता को दूर किया है।

यदि 2021 के अधिनियम की धारा 2 का शाब्दिक अर्थ दिया जाए तो इसका मतलब यह होगा कि किसी व्यक्ति द्वारा केवल अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाओं को ही पेंशन के लिए गिना जा सकता है। यह फिर से एक शोषणकारी युक्ति और श्रम कदाचार होगा, क्योंकि इसके द्वारा, राज्य सरकार फिर से नियमित कर्मचारियों की तरह व्यक्तियों को दीर्घकालिक आधार पर काम करने के लिए उपयोग करने का प्रयास कर रही है, बिना उन्हें वे लाभ दिए जो वे नियमित कर्मचारियों के रूप में हकदार होते हैं। कार्यभारित कर्मचारियों के संबंध में प्रेम सिंह (सुप्रा) के फैसले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा बताई गई बहुत ही गलत बातें, वास्तव में, अब और भी बड़ी संख्या में कर्मचारियों पर लागू की गई हैं और दैनिक वेतन भोगी और अन्य व्यक्तियों पर लागू की गई है जो अस्थायी या स्थायी पद पर काम नहीं कर रहे हैं, जिसमें कार्यभारित कर्मचारी भी शामिल हैं।

वी. सुकुमारन बनाम केरल राज्य (2020) 8 एससीसी 106 के मामले में , सुप्रीम कोर्ट ने कहा:

"22. हम एक बार फिर से इस बात पर जोर देकर शुरुआत करते हैं कि पेंशन संबंधी प्रावधानों को एक सामाजिक कल्याण उपाय के रूप में एक उदार संरचना दी जानी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि नियमों के विपरीत कुछ भी दिया जा सकता है, लेकिन ऐसी पेंशन देने के मूल आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को अपने जीवन की कठिन दिनों में सम्मान के साथ जीने की सुविधा मिले और इस प्रकार, किसी कर्मचारी को इन लाभों से खासकर तकनीकी पहलुओं पर अनुचित तरीके से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।"

इस प्रकार, 2021 के अधिनियम की धारा 2 को फिर से बुराई/मनमानी से बचाने के लिए, प्रेम सिंह (सुप्रा) के फैसले में, 'पोस्ट' शब्द को हटाने की आवश्यकता है और इसलिए, 2021 के अधिनियम की धारा 2 में प्रयुक्त शब्द 'पोस्ट', चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, को 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएं, चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति की हो' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

प्रतिवादी जल संस्थान (ग्रामीण) द्वारा अपनाए गए पेंशन नियमों को इस न्यायालय द्वारा जय प्रकाश (सुप्रा) के मामले में पहले ही पढ़ा जा चुका है, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जा रहा है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"1984 के वर्तमान नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं जिन्हें सुप्रीम कोर्ट ने पढ़ा है, इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जाता है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान मामले में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, क्योंकि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान कार्य करते हैं और उन्हें नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। उन्हें उनकी सेवाओं की निरंतरता में नियमित भी किया गया था। इस प्रकार, मामला पूरी तरह से प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में तय किए गए कानून के तहत आता है।"

वर्तमान मामले में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, क्योंकि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान कर्तव्यों का पालन करते हैं और उन्हें नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। उनकी कार्य-प्रभारित सेवाओं को जारी रखते हुए उन्हें नियमित भी किया गया। इस प्रकार, मामला पूरी तरह से प्रेम सिंह (सुप्रा) और डॉ. श्याम कुमार (सुप्रा) और जय प्रकाश (सुप्रा) के मामले में तय किए गए कानून के तहत आता है।

इस प्रकार, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है और दिनांक 20.02.2020 के आदेश को रद्द किया जाता है।

प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे तीन महीने की अवधि के भीतर, उन याचिकाकर्ताओं को जो पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं, पेंशन नियमों के तहत, उनकी पूरी सेवा को ध्यान में रखते हुए जिसमें उनके नियमितीकरण से पहले दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के रूप में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा भी पेंशन लाभ के लिए अर्हक सेवाओं के रूप शामिल है, पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें।

उत्तरदाताओं को उन याचिकाकर्ताओं को जो अभी तक सेवानिवृत्त नहीं हुए हैं, उनके द्वारा प्रदान की गई दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के रूप में सेवाओं को जोड़कर पुरानी पेंशन योजना के तहत नामांकित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1562

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

विशेष अपील संख्या 139 / 2022

श्रीमती सुमन सिंह ...अपीलकर्ता

बनाम

अध्यक्ष, राम मनोहर लोहिया संस्थान, चिकित्सा विज्ञान, एलकेओ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री रानी सिंह, श्री अभिनीत जयसवाल, श्री चिन्मय मिश्रा, श्री गौरव मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अनुप्रास सिंह, सी.एस.सी., श्री विनायक सक्सेना

ए. व्याख्या -उदार व्याख्या: किसी भी लाभकारी प्रावधान की उदार व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए कि वह लाभार्थी के लिए इच्छित लाभों को बढ़ाए और आगे बढ़ाए, अन्यथा नहीं। ऐसे मामलों में जहां ऐसे प्रावधान के लिए दो व्याख्याएं संभव हैं, लाभार्थी को लाभ पहुंचाने वाली व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

बी. सिविल कानून - सेवा संबंधी मामले - पेंशन - डॉ. राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 2015- पुरानी पेंशन योजना - नई पेंशन योजना -जी.ओ. दिनांक 16.09.2010 -16.09.2010 वित्त विभाग में राज्य सरकार द्वारा जारी शासनादेश -शासनादेश के खण्ड 3 में प्रावधान है कि वे कर्मचारी जो 01.04.2005 से पूर्व राज्य सरकार की किसी सेवा/पद पर पेंशन योग्य थे, और उन्हें पुनः राज्य सरकार के किसी अन्य पद, संवर्ग या राज्य सरकार या स्वायत्त संस्थाओं के अधीन सेवा में नियुक्त किया जाता है, 01.04.2005 के बाद किसी पेंशन योग्य सेवा में अपने पूर्व पद से कार्यमुक्त हो जाने या पूर्व पद से त्यागपत्र दे देने वाले कर्मचारी भी पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत आएंगे। उक्त शासनादेश दिनांक 16.09.2010 के खण्ड 2 और 3 में पेंशन योग्य पद/पेंशन योग्य सेवा (पेंशन योग्य पद/पेंशन योग्य सेवा) शब्द आए हैं। शासनादेश दिनांक 16.09.2010 के खण्ड 2 और 3 की एक संभावित व्याख्या यह है कि दोनों खण्डों में 'पद' और 'सेवा' शब्दों को अर्हता प्रदान करने वाला 'पेंशन योग्य' शब्द केवल पुरानी पेंशन योजना तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। इसकी व्याख्या दोनों पेंशन योजनाओं अर्थात पुरानी पेंशन योजना, जो 01.04.2005 से पूर्व उपलब्ध थी, और नई पेंशन योजना, जो 01.04.2005 से प्रभावी है, को शामिल करने के रूप में की जा सकती है। 'पेंशन योग्य सेवा' या 'पेंशन योग्य पद' शब्दों का अर्थ केवल पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत आने वाले पदों और सेवाओं तक सीमित करने से सेवानिवृत्त कर्मचारियों या भविष्य में सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों के पेंशन लाभ में कटौती होगी। दिनांक 16.09.2010 के सरकारी आदेश में 'पेंशन योग्य सेवा' और 'पेंशन योग्य पद' शब्दों की व्याख्या इस प्रकार पुरानी पेंशन योजना या यहां तक कि नई पेंशन योजना के अंतर्गत आने वाले पद या सेवा के रूप में की जानी चाहिए। यह विवाद में नहीं है कि आरएमएल

संस्थान में पद और सेवाएं नई पेंशन योजना के अंतर्गत आती हैं। इसलिए, 16.09.2010 के सरकारी आदेश में 'पेंशन योग्य पद/पेंशन योग्य सेवा' शब्द को सीमित अर्थ देना स्वीकार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने निर्देश दिया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता आरएमएल संस्थान में सेवा करते समय भी पुरानी पेंशन योजना के लाभों का हकदार होगा। (पैरा 21, 22, 29, 34).

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भारत संघ एवं अन्य बनाम प्रदीप कुमारी एवं अन्य (1995) 2 एससीसी 736
2. बैंगलोर टर्फ क्लब लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय निदेशक, कर्मचारी राज्य निगम, (2014) 9 एससीसी 657 बीमा
3. इलाहाबाद बैंक एवं अन्य बनाम अखिल भारतीय इलाहाबाद बैंक सेवानिवृत्त कर्मचारी संघ, (2010) 2 एससीसी 44
4. सोम प्रकाश रेखी बनाम यू.ओ.आई., (1981) 1 एससीसी 449

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय, एवं माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, डॉ. राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री अनुप्रास सिंह, संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान (एतस्मिनपश्चात "एसजीपीजीआईएमएस" के रुप में सन्दर्भित) का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री विनायक सक्सेना और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

2. इस विशेष अपील की कार्यवाही शुरू करके, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित दिनांक 17.02.2022 के आदेश पर प्रश्न उठाती है, जिसके अन्तर्गत 2015 की रिट-ए संख्या 2001877 को खारिज कर दिया गया है और राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान (एतस्मिनपश्चात 'आरएमएल' के रूप में संदर्भित) में नियुक्ति के बाद पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष प्रदान करने के उसके दावे को स्वीकार नहीं किया गया है।

3. विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित आदेश को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश का अर्थ-निरूपण/व्याख्या जिस रूप में विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा किया गया है, वह इस कारण से स्वीकार्य नहीं है कि उक्त शासनादेश सेवानिवृत्त कर्मचारियों को कुछ अनुतोष प्रदान करने हेतु निर्गत किया गया था और तदनुसार, इसे इस तरह से पढ़ा और समझा जाना चाहिए जिससे इससे मिलने वाले अनुतोष को बढ़ाया जा सके न कि कम किया जा सके। पुनः अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओर से यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 16.09.2010 का राज्य सरकार द्वारा वित्त विभाग में जारी किया गया शासनादेश लागू होता है, क्योंकि

यह राज्य सरकार के सभी पर लागू सामान्य नीतिगत निर्णय को दर्शाता है, न कि दिनांक 29.08.2014 का शासनादेश, जो वित्त विभाग के साथ परामर्श किये बिना चिकित्सा शिक्षा विभाग द्वारा जारी किया गया था। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि लाभकारी विधान के मामले में जिसमें लाभकारी अधीनस्थ विधान शामिल होंगे, यदि दो व्याख्याएँ/ अर्थ-निरूपण संभव हैं, तो जो व्याख्या लाभार्थी के पक्ष में है, उसे अपनाया जाना चाहिए, न कि दूसरी।

1. अतः प्रस्तुत तर्क यह है कि यदि दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश की व्याख्या उपरोक्त विधिक प्रस्तावों के दृष्टिगत की जाती है, तो एकमात्र व्यवहार्य निष्कर्ष जो निकाला जा सकता है वह यह है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को आरएमएल संस्थान में उनकी नियुक्ति के बाद पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार होगा।

2. इस विशेष अपील में किए गए उपरोक्त प्रार्थनाओं का विरोध करते हुए, आरएमएल संस्थान का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता और साथ ही विद्वान राज्य अधिवक्ता ने एक स्वर में प्रस्तुत किया है कि दिनांक 16.09.2010 का शासनादेश स्पष्ट है जिसकी उसमें दी गई विषयवस्तु के सरल वाचन से भिन्न व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। उनकी ओर से तर्क प्रस्तुत किया गया है कि निस्सन्देह आरएमएल संस्थान में पद न तो पेंशनयुक्त हैं और न ही आरएमएल संस्थान में सेवाएँ पेंशनयुक्त हैं, अतः दिनांक 16.09.2010 का शासनादेश अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष प्राप्त करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है।

3. पुनः तर्क यह है कि पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष मात्र उसी कर्मचारी को मिलेगा, जो नई पेंशन योजना के लागू होने के बाद किसी पेंशनयुक्त पद पर या पेंशनयुक्त सेवा में कार्यरत हो और ऐसा कर्मचारी, नई पेंशन योजना के प्रख्यापन के बाद, किसी पेंशनयुक्त पद पर या पेंशनयुक्त सेवा में नियुक्त होता है। न्यायालय का ध्यान उस तिथि की ओर आकर्षित करते हुए, जिस दिन आरएमएल संस्थान अस्तित्व में आया था, अर्थात जून 2005 में, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि आरएमएल संस्थान में कोई भी सेवा या पद पेंशनयुक्त नहीं है, अतः एसजीपीजीआईएमएस से सेवा से इस्तीफा देने के बाद आरएमएल संस्थान में अपनी नियुक्ति पर अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ गैर-पेंशनयुक्त होने के कारण, वह पुरानी पेंशन योजना के अनुतोष प्राप्त करने की हकदार नहीं होगी।

4. इस प्रकार, विद्वान राज्य अधिवक्ता और आरएमएल संस्थान का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है कि विशेष अपील खारिज किए जाने योग्य है।

5. हमने संबंधित पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए विरोधी दलीलों पर विचार किया है और इस विशेष अपील पर

हमारे समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का भी अवलोकन किया है।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत विरोधी दलीलों पर विचार करने से पूर्व, हम कुछ तथ्यों पर ध्यान दे सकते हैं जो इस मामले में शामिल मुद्दों के उचित समाधान हेतु आवश्यक हैं।

7. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता वर्ष 1996 में एसजीपीजीआईएमएस में सिस्टर ग्रेड-द्वितीय के पद पर नियुक्त हुई थी। वह उक्त पद पर कार्य करती रहीं, जो कि स्वीकार्यतः पेंशनयुक्त है। इसी दौरान, मुख्य नर्सिंग अधिकारी के पद पर नियुक्ति हेतु विज्ञापन जारी किया गया, जिसके बाद अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने अपना आवेदन किया और चयन के बाद, उन्हें दिनांक 08.12.2010 के आदेश द्वारा आरएमएल संस्थान में मुख्य नर्सिंग अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया। दिनांक 08.12.2010 के नियुक्ति आदेश के अनुसरण में, उन्होंने 11.01.2011 को एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि पर अपना कार्यभार ग्रहण हेतु स्वयं को प्रस्तुत किया। आरएमएल संस्थान में मुख्य नर्सिंग अधिकारी के पद पर अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी करने के बाद, उन्हें दिनांक 31.05.2012 के आदेश द्वारा दिनांक 11.01.2012 से उक्त पद पर स्थायी कर दिया गया। इस प्रकार, वह वर्तमान में आरएमएल संस्थान में एक स्थायी कर्मचारी के रूप में मुख्य नर्सिंग अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं।

8. ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 897/2015 प्रस्तुत की थी, जिसमें अन्य बातों के अलावा पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष देने हेतु आरएमएल संस्थान के अधिकारियों को निर्देश जारी करने की प्रार्थना की गई थी। उक्त रिट याचिका का अंततः इस न्यायालय द्वारा दिनांक 22.06.2015 के आदेश द्वारा निस्तारण कर दिया गया, जिसके द्वारा संस्थान के निदेशक को अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार करने और निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था।

9. रिट याचिका संख्या 897/2015 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.06.2015 के उक्त आदेश के अनुपालन में, निदेशक ने अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर विचार किया, यद्यपि, उक्त अभ्यावेदन को निदेशक का समर्थन नहीं मिला जिसे दिनांक 17.08.2015 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। हम इसी समय पर यह भी ध्यान दे सकते हैं कि निदेशक ने दिनांक 17.08.2015 का आदेश पारित करते समय यह कथन किया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष देने से संबंधित मामला राज्य सरकार को प्रेषित किया गया था, जिसने दिनांक 29.08.2014 के शासनादेश/पत्र द्वारा आरएमएल संस्थान को अवगत कराया था कि चूँकि संस्थान 01.04.2005 के बाद स्थापित किया गया था, अतएव संस्थान में उपलब्ध या सृजित कोई भी पद पुरानी पेंशन योजना के अंतर्गत नहीं आता है और तदनुसार, दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश के अनुसार,

अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष पाने की हकदार नहीं होगी। उक्त आदेश दिनांक 17.08.2015 को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने रिट-ए नंबर 2001877/2015 की कार्यवाही शुरू की, जिसे दिनांक 17.02.2022 के आदेश द्वारा माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया है, जिसे इस विशेष अपील में हमारे समक्ष चुनौती दी गई है।

10. इस मामले में, हमारे विचार हेतु एकमात्र प्रश्न यह है कि वित्त विभाग में राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश का किस प्रकार से समझा और व्याख्या किया जाए और उक्त शासनादेश की व्याख्या के आधार पर यह निर्धारित करना है कि क्या अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को पुरानी पेंशन योजना का अनुतोष दिया जाएगा, जो कि राज्य सरकार के कर्मचारियों के साथ-साथ राज्य सरकार के अधीन कार्य कर रहे विभिन्न स्वायत्त संस्थानों/निकायों के कर्मचारियों हेतु भी 01.04.2005 से पूर्व प्रचलित थी।

11. नई पेंशन योजना राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2005 की अधिसूचना के माध्यम से प्रख्यापित की गई थी, जिसके अनुसार राज्य सरकार ने नई पेंशन योजना लागू करने का निर्णय लिया था जो कर्मचारी के अंशदान पर आधारित थी। दिनांक 28.03.2005 की अधिसूचना के अनुसार उक्त पेंशन योजना 01.04.2005 से लागू कर दी गई है; जिसका अर्थ यह है कि 01.04.2005 को या उसके बाद राज्य सरकार के कर्मचारी या राज्य सरकार के स्वायत्त संस्थानों में नियुक्त कर्मचारी पेंशन योजना द्वारा शासित होंगे जो प्रकृति में अंशदायी है और ऐसे कर्मचारी पुरानी पेंशन योजना के अधीन नहीं होंगे जो कि मुख्य रूप से अकेले राज्य द्वारा किए गए योगदान पर आधारित थी।

12. इसमें कोई विवाद नहीं है कि राज्य सरकार ने जून, 2005 में राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान स्थापित करने का निर्णय लिया था। इससे पूर्व, इसे सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत एक राज्य के स्वामित्व वाली सोसायटी द्वारा चलाया और प्रबंधित किया जाता था। यद्यपि, वर्ष 2015 में डॉ. राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 2015 को अधिनियमित करके, संस्थान राज्य विधानमंडल द्वारा पारित उक्त अधिनियम में उपलब्ध प्रावधानों के अन्तर्गत कार्य करता है। तथापि, जैसा कि ऊपरिवर्णित है, इसमें कोई विवाद नहीं है कि आरएमएल संस्थान 01.04.2005, दिनांक जिससे नई पेंशन योजना लागू की गई है, के बाद स्थापित किया गया था।

13. कुछ भ्रान्तियों को दूर करने हेतु राज्य सरकार के वित्त विभाग ने 16.09.2010 को एक शासनादेश जारी किया जो नई पेंशन योजना के कार्यान्वयन के कारण उत्पन्न हुए प्रश्नों पर निष्कर्ष तैयार करता है। दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश में तैयार किए गए प्रश्न उक्त शासनादेश के खंड 2 में सन्निहित हैं, जो अधोउद्धृत है:-

"2. वित्त विभाग में इस बिंदु पर स्पष्टीकरण प्रदान किये जाने सम्बन्धी संदर्भ प्राप्त होते

रहे हैं कि ऐसे कर्मचारी जो राज्य सरकार की किसी पेंशनयुक्त सेवा में दिनांक 01 अप्रैल, 2005 के पूर्व नियुक्त हो चुके थे तथा दिनांक 01 अप्रैल, 2005 को अथवा उसके उपरान्त राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य सेवा/संवर्ग में पेंशनयुक्त पद पर नियुक्त होते हैं, तो उन्हें पुरानी पेंशन योजना, जो दिनांक 01 अप्रैल, 2005 के पूर्व लागू थी, से आच्छादित माना जायेगा अथवा नई पेंशन योजना से।"

14. उक्त प्रश्न का स्पष्टीकरण, 16.09.2010 के उक्त शासनादेश के खंड 3 में पाया जा सकता है, जिसे संदर्भ हेतु अधोउद्धृत किया जा रहा है:-

"3. इस संबंध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि शासन द्वारा सम्यक विचारोपरान्त यह निर्णय लिया गया है कि ऐसे सभी कर्मचारी जिन्होंने राज्य सरकार की अथवा ऐसे समस्त शासन के नियन्त्रणाधीन स्वायत्तशासी संस्थाओं और शासन से सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं जिनमें राज्य कर्मचारियों की पेंशन योजना की भाँति पेंशन योजना लागू थी और उनका वित्त पोषण राज्य सरकार की समेकित निधि से किया जाता है, की पेंशनयुक्त सेवा में दिनांक 01 अप्रैल, 2005 के पूर्व योगदान किया था तथा दिनांक 01 अप्रैल, 2005 को अथवा उसके पश्चात् राज्य सरकार की अथवा शासन की नियन्त्रणाधीन उक्त उल्लिखित स्वायत्तशासी संस्थाओं और शासन से सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं की, पेंशनयुक्त सेवा में अपनी पूर्व सेवा से कार्यमुक्त होकर अथवा तकनीकी त्याग-पत्र देकर नियुक्त होते हैं, तो उसी पेंशन योजना से आच्छादित माने जायेंगे जिसे पेंशन योजना से वे दिनांक 01 अप्रैल, 2005 के पूर्व आच्छादित थे।"

15. शासनादेश दिनांक 16.09.2010 के खंड 2 से हम यह समझ सकते हैं कि सरकार यह स्पष्ट कर रही थी कि क्या ऐसे कर्मचारी जो 01.04.2005 से पूर्व पेंशनयुक्त सेवा में नियुक्त हुए हैं और उसके बाद पुनः 01.04.2005 के बाद राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य सेवा/संवर्ग में पेंशनयुक्त पद पर नियुक्त किए जाते हैं, तो क्या वे पुरानी पेंशन योजना द्वारा आच्छादित होने के हकदार होंगे या वे नई पेंशन योजना के अधीन होंगे। इसे स्पष्ट करते हुए, शासनादेश के खंड 3 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि वे कर्मचारी, जिन्हें राज्य सरकार की ऐसी सेवा/पद पर नियुक्त किया गया था जो 01.04.2005 से पूर्व पेंशनयुक्त थी और उन्हें पुनः राज्य सरकार के किसी अन्य पद या संवर्ग या सेवा अथवा स्वायत्त संस्थानों के अधीन, अपनी पूर्व तैनाती से कार्य-मुक्त होकर या 01.04.2005 के बाद किसी पेंशनयुक्त सेवा के पूर्व पद से इस्तीफा देकर नियुक्त किया जाता है, वे भी पुरानी पेंशन योजना के अधीन होंगे।

16. दिनांक 17.08.2015 के आदेश में अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करते समय निदेशक द्वारा दिया गया कारण दिनांक 29.08.2014 के एक शासनादेश पर आधारित है, जिसकी अब हम जाँच करेंगे। दिनांक 29.08.2014 का शासनादेश राज्य सरकार के वित्त विभाग द्वारा जारी नहीं किया

गया है; न ही इसमें कहीं उल्लेख है कि इसे वित्त विभाग के सहमति से या परामर्श से जारी किया गया था। अपितु यह चिकित्सा शिक्षा विभाग जो कि आरएमएल संस्थान का प्रशासनिक विभाग है, द्वारा जारी एक शासनादेश है। इस प्रकार, चिकित्सा शिक्षा विभाग ने दिनांक 29.08.2014 का शासनादेश जारी करते समय वित्त विभाग द्वारा 16.09.2010 को जारी शासनादेश की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है और निष्कर्ष निकाला है कि चूँकि आरएमएल संस्थान में स्वीकृत पद पेंशनयुक्त नहीं हैं, अतएव 01.04.2005 के बाद आरएमएल संस्थान में नियुक्त किसी भी कर्मचारी को, जिसे उसकी पूर्व की तैनाती से मुक्त कर दिया गया है या उसने अपने पूर्व के पद से इस्तीफा दे दिया है जहाँ वह पेंशनयुक्त पद पर कार्यरत था, नई पेंशन योजना के दायरे में नहीं आएगा।

17. चिकित्सा शिक्षा विभाग द्वारा जारी उक्त शासनादेश दिनांक 29.08.2014 के सन्दर्भ में हम वित्त विभाग द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 16.09.2010 का पुनः अवलोकन कर सकते हैं। उक्त शासनादेश दिनांक 16.09.2010 के खंड 2 एवं 3 में "पेंशनयुक्त पद/पेंशनयुक्त सेवा" (पेंशनयुक्त पद/पेंशनयुक्त सेवा) शब्द आता है। शासनादेश दिनांक 16.09.2010 के खंड 2 एवं 3 में निहित उक्त प्रावधान की व्याख्या संभवतः दो प्रकार से की जा सकती है।

18. सरकारी आदेश दिनांक 16.09.2010 के उक्त वाक्यांश की प्रथम व्याख्या यह है कि "पेंशनयुक्त पद" और "पेंशनयुक्त सेवा" शब्द उस सेवा या पद हेतु अर्हता प्राप्त करने हेतु हैं जिसके विरुद्ध एक कर्मचारी 01.04.2005 से पूर्व काम कर रहा था और उस पद या सेवा के विरुद्ध भी जहाँ उसे 01.04.2005 के बाद नियुक्त किया गया हो। इस तरह की व्याख्या में कोई अस्पष्टता नहीं है, यद्यपि, यदि हम उक्त सरकारी आदेश को आगे पढ़ते हैं तो हम पाते हैं कि "पेंशनयुक्त पद" और "पेंशनयुक्त सेवा" शब्दों को मात्र पुरानी पेंशन योजना अंतर्गत आने वाले पद/सेवा के अर्थ में पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह संभावित व्याख्याओं में से एक हो सकती है। यद्यपि, दिनांक 16.09.2010 के सरकारी आदेश के खंड 2 और 3 की अन्य संभावित व्याख्या यह हो सकती है कि दोनों खंडों में "पद" और "सेवा" शब्दों को अर्ह बनाने वाला शब्द "पेंशनयुक्त" मात्र पुरानी पेंशन योजना तक ही सीमित नहीं रहेगा। इसे दोनों पेंशन योजनाओं को शामिल करने हेतु पढ़ा जा सकता है, अर्थात् पुरानी पेंशन योजना जो 01.04.2005 से पूर्व उपलब्ध थी और नई पेंशन योजना जो अब 01.04.2005 से उपलब्ध है।

19. हमारी राय में, "पेंशनयुक्त सेवा" या "पेंशनयुक्त पद" शब्दों की व्याख्या को मात्र उन पदों और सेवाओं तक सीमित करने से, जो पुरानी पेंशन योजना द्वारा आच्छादित हैं, सेवानिवृत्त कर्मचारियों या भविष्य में सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों के पेंशन अनुतोष में कटौती का असर होगा। ऐसा नहीं है कि आरएमएल संस्थान में सृजित और स्वीकृत सेवाएँ और पद पेंशनयुक्त नहीं हैं। ये

पद और सेवाएँ पेंशनयुक्त हैं, यद्यपि, 28.03.2005 की अधिसूचना के माध्यम से प्रख्यापित नई पेंशन योजना द्वारा शासित और आच्छादित हैं।

20. एक सेवानिवृत्त कर्मचारी को पेंशन, वास्तव में, एक लाभदायक प्रावधान है जो नियोक्ताओं द्वारा न मात्र कर्मचारियों को उनके जीवन के सर्वोत्तम समय में नियोक्ता को प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बदले सेवानिवृत्ति के बाद कुछ वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु अपितु वृद्धावस्था में ऐसे कर्मचारियों की जरूरतों का भी ख्याल रखने हेतु प्रदान किया जाता है। तदनुसार, हम पाते हैं कि 16.09.2010 का शासनादेश प्रकृति में लाभकारी है और अतएव, ऐसे शासनादेश की व्याख्या और आशय बतलाने हेतु हमें यह विचार करना होगा कि ऐसे लाभकारी शासनादेश की व्याख्या कैसे की जानी है।

21. इस संबंध में, हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों का संदर्भ ले सकते हैं, जिनमें पहला है, ***यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम प्रदीप कुमारी और अन्य, (1995) 2 एससीसी 736***, जिसमें यह देखा गया है कि, ***'लाभकारी विधान के संबंध में, यह सुस्थापित विधि है कि ऐसे विधान के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, न्यायालय को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो विधान की नीति को आगे बढ़ाते हुए अनुतोष का विस्तार करे, बजाय ऐसी व्याख्या के जो इसके द्वारा प्रदत्त लाभों को सीमित करने का प्रभाव डाले।'***

22. इसी प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***बंगलौर टर्फ क्लब लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय निदेशक कर्मचारी राज्य बीमा निगम, (2014) 9 एससीसी 657*** के मामले में बताया है कि यद्यपि अधिनियमों की व्याख्या का प्राथमिक नियम शाब्दिक नियम है, तथापि लाभकारी विधानों के मामलों में, न्यायालय को यह सुनिश्चित करने हेतु व्याख्या के उदार नियम अपनाने होंगे कि अनुतोष संबंधित कर्मचारियों तक पहुंचाया जाए। उक्त निर्णय के प्रस्तर 16 का यहाँ नीचे उद्धरण दिया गया है:-

"16. विधियों की व्याख्या का मुख्य नियम भले ही शाब्दिक नियम हो, परन्तु, लाभकारी विधानों तथा कर्मचारियों, श्रमिकों के कल्याण हेतु बनाए गए विधानों के मामलों में, इस न्यायालय ने कई अवसरों पर यह सुनिश्चित करने हेतु कि विधायिका की मंशा के आधार पर उन श्रमिकों को अनुतोष प्रदान किया जाए जिन्हें आच्छादित करने की आवश्यकता है, व्याख्या के उदार नियम को अपनाया है ।"

23. उपदान के भुगतान से संबंधित मुद्दे के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इलाहाबाद बैंक और अन्य बनाम अखिल भारतीय ***इलाहाबाद बैंक सेवानिवृत्त कर्मचारी संघ, (2010) 2 एससीसी 44*** के मामले में पाया है कि कल्याणकारी विधियों की हमेशा उदार व्याख्या की जाती है और पुनः यह भी कहा है कि इन्हें इस प्रकार व्याख्यायित किया जाना चाहिए कि विधियों द्वारा परिकल्पित अनुतोष प्राप्त हो सके।

24. ***सोम प्रकाश रेखी बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 449*** के मामले में

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय का संदर्भ देते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि पेंशन, भविष्य निधि भुगतान और उपदान आदि जैसे कल्याणकारी अनुतोष हमारे संविधान में निहित राज्य के नीति के निदेशक सिद्धांतों की पूर्ति हेतु हैं, अतएव, भले ही ऐसे प्रावधान हेतु दो व्याख्याएं स्वीकार्य हों, वह व्याख्या जो लाभकारी उद्देश्यों को आगे बढ़ाये उसे वरीयता दी जानी चाहिए।

25. ***इलाहाबाद बैंक (ऊपरिवर्णित)*** के मामले में निर्णय के प्रस्तर 17 को यहाँ उद्धृत किया गया है:

> ***"17. न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने सोम प्रकाश रेखी बनाम भारत संघ1 में अपनी अनूठी शैली में इस सिद्धांत को बताया कि एक कल्याणकारी प्रावधान को एक कल्याणकारी अर्थ प्राप्त होना चाहिए, और यदि दो व्याख्याएं संभव हों, तो वह व्याख्या जिससे लाभकारी उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके, को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। आगे यह भी देखा गया है: (एससीसी पीपी. 483-84, प्रस्तर 66)***
>
> ***"66. ... हम एक कल्याणकारी राज्य, एक 'समाजवादी' गणराज्य में, एक संविधान के अन्तर्गत रहते हैं जो कमजोर वर्गों सहित श्रमिकों हेतु गहरी चिंता रखता है (भाग IV)। पेंशन, भविष्य निधि भुगतान और उपदान जैसे कल्याणकारी अनुतोष निदेशक सिद्धांतों की पूर्ति हेतु हैं। उपदान या भविष्य निधि के भुगतान में पेंशन से "सेट-ऑफ" के रूप में किसी भी प्रकार की कटौती नहीं होनी चाहिए। अन्यथा, भविष्य निधि और उपदान सुनिश्चित करने वाले पवित्र वैधानिक प्रावधान भ्रामक हो जाएंगे। पेंशन पिछली उत्कृष्ट सेवाओं के सम्मान में दी जाती है। ग्रेच्युटी की जड़ और भविष्य निधि की नींव अलग-अलग हैं। प्रत्येक एक दूसरे से स्वतंत्र, वैधानिक रूप से गारंटीकृत लाभकारी उपकार है। मान लिया जाए कि निजी संधि द्वारा पार्टियां इन लाभकारी अधिनियमों के लागू होने से पूर्व ही कटौतियों हेतु सहमत हो गई थीं, फिर भी वे अब अभावग्रस्त नहीं हो सकती हैं। इसी तरह की दुरभिधानों को रोकने हेतु ही इन विधियों में गैर-अस्पष्ट और अध्यारोही प्रावधान शामिल किए गए हैं।""***

26. ऊपर चर्चा किए गए विधिक सिद्धांतों से, हमें इस बात पर कोई संदेह नहीं है कि किसी भी लाभकारी प्रावधान को इस तरह से उदार व्याख्या दी जानी चाहिए, जो लाभार्थी को दिए जाने वाले लाभों का विस्तार और वृद्धि करती है, न कि अन्यथा। हमारे मस्तिष्क में यह भी स्पष्ट है कि कि यदि ऐसे प्रावधान की दो व्याख्याएं संभव हैं, तो वह व्याख्या जिससे लाभार्थी को दिए जाने वाले लाभों का विस्तार और वृद्धि हो, को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और यदि हम दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश की इन विधिक सिद्धांतों के आलोक में जाँच करें, हमारी राय है कि सरकार द्वारा चिकित्सा शिक्षा विभाग में दिनांक 29.08.2014 के सरकारी आदेश के माध्यम से इसकी व्याख्या इस तरीके से की गई है जो

मान्य नहीं है। इस प्रकार 16.09.2010 के शासनादेश में उल्लिखित "पेंशन योग्य सेवा" और "पेंशन योग्य पद" शब्दों का अर्थ या तो पुरानी पेंशन योजना या यहाँ तक कि नई पेंशन योजना के अंतर्गत आने वाले पद या सेवा के रूप में किया जाना है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि आरएमएल संस्थान में पद और सेवाएँ नई पेंशन योजना के अंतर्गत आती हैं। तदनुसार, दिनांक 16.09.2010 के शासनादेश में वर्णित "पेंशनयुक्त पद/'पेंशनयुक्त सेवा' शब्द को सीमित अर्थ देना, हमारी सुविचारित राय में, स्वीकार नहीं किया जा सकता।

27. उपरोक्त चर्चाओं और दिए गए कारणों के दृष्टिगत, हम पाते हैं कि निदेशक द्वारा 17.08.2015 का आदेश पारित करते समय दिए गए कारण उचित नहीं हैं।

28. विद्वान एकल न्यायाधीश भी प्रश्नगत शासनादेश की व्याख्या से सहमत हैं, जैसी कि चिकित्सा शिक्षा विभाग में राज्य सरकार द्वारा दी गयी थी। अतएव, हम माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय से सहमत होने हेतु खुद को प्रेरित नहीं पाते हैं जो हमारे समक्ष अपील में है।

29. अतः विशेष अपील **स्वीकार की जाती है।**

30. दिनांक 17.02.2022 को माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए सं. 2001877/2015 में पारित आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। निदेशक, आरएमएल संस्थान द्वारा पारित दिनांक 17.08.2015 का आदेश और राज्य सरकार द्वारा चिकित्सा शिक्षा विभाग में जारी दिनांक 29.08.2014 का शासनादेश भी एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

31. हम आगे निर्देश देते हैं कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता आरएमएल संस्थान में सेवा करते समय भी पुरानी पेंशन योजना के लाभों की हकदार होगी।

वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 1570

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 5635/2023

जयदेव सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री ज्ञान प्रकाश ओझा, श्री संतोष यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री श्याम मणि शुक्ला

सिविल कानून - सिविल सेवा विनियमन, अनुच्छेद 368- उत्तर प्रदेश पालिका (केंद्रीयकृत) सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1981- नियम 2(10) - उत्तर प्रदेश पेंशन अर्हक सेवा एवं विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021। सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ - याचिकाकर्ता को 25.09.1990 को नगर निगम में क्लर्क के रूप में तृतीय श्रेणी के पद पर दैनिक वेतनभोगी के

रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें 03.01.2006 को नियमित किया गया और 30.06.2022 को सेवानिवृत्त किया गया। याचिकाकर्ता ने अपने नियमितीकरण से पहले की गई अपनी पिछली सेवाओं की गणना करके ग्रेच्युटी और नियमित पेंशन सहित सभी सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करने की प्रार्थना की। प्रेम सिंह और डॉ. श्याम कुमार के मामले में कानून द्वारा पूरी तरह से कवर किए गए मामले का निपटारा किया गया। न्यायालय ने नगर निगम के मुख्य नगर अधिकारी को निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता को 1981 के नियमों के तहत पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का नियमित भुगतान तीन महीने की अवधि के भीतर सुनिश्चित करें, जिसमें नगर निगम के दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में निभाई गई ड्यूटी सहित उसकी पूरी सेवा शामिल है। (पैरा 9)

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम भानु प्रताप शर्मा, विशेष अपील संख्या 97/2021

2. डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए नंबर 8968/2022

3. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2019) 10 एससीसी 516

4. नगर आयुक्त नगर निगम बनाम देवदत्त व 2 अन्य, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 482/2022

5. श्री चामुंडी मोपेड्स लिमिटेड बनाम चर्च ऑफ साउथ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन सीएसआई सिनोड सचिवालय, मद्रास, 1992 (3) एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय से अनुरोध किया है कि वह उत्तर प्रदेश पालिका (केन्द्रीयकृत) सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1981 (जिसे आगे नियम 1981 कहा जाएगा) के तहत ग्रेच्युटी और नियमित पेंशन सहित सभी सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश दे, जिसमें उनके नियमितीकरण से पहले की गई उनकी पिछली सेवाओं को शामिल किया गया हो। याचिकाकर्ता को 25.09.1990 को क्लर्क के रूप में तृतीय श्रेणी के पद पर दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्त किया गया था। वह 03.01.2006 को नियमित हुआ और 30.06.2022 को सेवानिवृत्त हुआ।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता 1981 के नियम 2(10) के अनुसार सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के लिए हकदार है, जो सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 368 के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करता है। 1981 के नियम 2(10) में लिखा है:

"(10) "अर्हकारी सेवा" से ऐसी सेवा अभिप्रेत है जो समय-समय पर संशोधित सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 368 के उपबंधों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह हो, सिवाय निम्नलिखित के-

(i) किसी नगर निगम या नगर परिषद के अधीन किसी गैर-पेंशनयोग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि;

(ii) वर्क-चार्टेड स्टेब्लिशमेंट में सेवा की अवधि; तथा

भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि :

परन्तु किसी नगर निगम या नगर परिषद के अधीन अस्थाई या स्थानापन्न सेवा जारी रखने की अवधि को अर्हक सेवा माना जाएगा, यदि उसके बाद सेवा में किसी व्यवधान के बिना उसी पद या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण हो जाता है।

टिप्पणी-यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिक व्यय से भुगतान प्राप्त पद पर की गई सेवा , पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच आती है, तो इसे सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा।"

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष अपील संख्या 97/2021 (उ0प्र0 राज्य और अन्य बनाम भानु प्रताप शर्मा) में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय, रिट-ए संख्या 8968/2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम उ0प्र0 राज्य) के प्रकरण में एकल न्यायाधीश की पीठ के निर्णय और प्रेम सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य (2019) 10 एससीसी 516 के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें पेंशन के लिए पात्रता पर विचार किया गया और उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 और सिविल सेवा विनियमन के प्रावधानों को कम करके आंका गया। प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"8. हम सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 (संक्षेप में 1961 नियमावली) में निहित प्रावधानों पर विचार करते हैं। 1961 नियमावली का नियम 3(8) जिसमें अर्हकारी सेवा के संबंध में प्रावधान हैं, नीचे उद्धृत है:

"3. इन नियमों में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई बात प्रतिकूल न हो:

*(1)-(7) * * **

(8) "अर्हकारी सेवा" से तात्पर्य ऐसी सेवा से है जो सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह हो:

बशर्ते कि उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन लगातार अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के बाद उसी या किसी अन्य पद पर बिना किसी रुकावट के स्थायीकरण किया गया हो, सिवाय:

(i) किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि ;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; तथा

भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि भी अर्हक सेवा के रूप में गिनी जाएगी।

नोट: यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिक व्यय से भुगतान प्राप्त पद पर की गई सेवा , पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा।

9. उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 361, 368 और 370 भी प्रासंगिक हैं। वे नीचे उद्धृत हैं:

"361. किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होगी जब तक कि वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:

प्रथम: सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरा: रोजगार ठोस और स्थायी होना चाहिए।"

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित विनियमों में पूरी तरह से स्पष्ट किया गया है।

"368. सेवा तब तक योग्य नहीं मानी जाएगी जब तक कि अधिकारी किसी स्थायी प्रतिष्ठान में कोई महत्वपूर्ण पद धारण न करता हो।

370. उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन लगातार अस्थायी या स्थानापन्न सेवा जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर बिना किसी रुकावट के स्थायीकरण किया गया हो, अर्ह होगी, सिवाय:

(i) गैर-पेंशन योग्य स्थापना में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि ;

(ii) कार्य-प्रभारित स्थापना में सेवा की अवधि; तथा

भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि ।"

10. अर्हक सेवा वह है जो विनियमन 368 के प्रावधानों के अनुसार है, अर्थात स्थायी प्रतिष्ठान में मूल पद धारण करना। नियम 3(8) के प्रावधान स्पष्ट करते हैं कि निरंतर, अस्थायी या स्थानापन्न सेवा जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण द्वारा बिना किसी रुकावट के सेवा की जाती है, उसे भी अर्हक सेवा में शामिल किया जाता है, सिवाय गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी और स्थानापन्न सेवा की अवधि के। कार्यभारित प्रतिष्ठान में सेवा और आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा।

11. नियम 3(8) से जुड़े नोट में यह प्रावधान है कि यदि सेवा किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए जाने वाले पद पर की जाती है, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा। इस प्रकार, नोट में कार्य-प्रभारित, आकस्मिकता भुगतान और गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में की गई अर्हक सेवा को, उसमें दी गई आवश्यकताओं के अनुसार, पेंशन योग्य सेवा में शामिल करने का स्पष्ट प्रावधान है।

12. सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 370 में निहित प्रावधानों के अनुसार गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान और आकस्मिकताओं से भुगतान किए जाने वाले पद पर की गई सेवा को अर्हक सेवा के दायरे से बाहर रखा गया है। सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 361 के अनुसार, सेवाएँ सरकार के अधीन होनी चाहिए और रोजगार मूल और स्थायी आधार पर होना चाहिए।

.....

30. हम उपर्युक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। विचाराधीन कार्यभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी और उन्हें दक्षता बार भी पार करना था। उनकी सेवाएँ नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से कैसे भिन्न हैं। गुणात्मक अंतर को इंगित करने वाली कोई भी सामग्री नहीं बताई गई है, सिवाय एक स्पष्ट बयान के। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी, जो कार्यभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है। बल्कि, कार्यभारित रोजगार की मूल अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है, जिसमें नियमित और बारहमासी प्रकृति के काम के लिए शोषणकारी शर्तों पर रोजगार की पेशकश की

गई है। कार्यभारित कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था, जैसा कि रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों से स्पष्ट है। नारायण दत्त शर्मा बनाम उ0प्र0 राज्य [सीए नंबर _____2019 एसएलपी (सी) नंबर 5775 ऑफ 2018 से उत्पन्न] में अपीलकर्ताओं को कार्यभारित सेवाओं की अवधि के दौरान भी, "8" वर्षों की निरंतर सेवा के बाद दक्षता बार पार करने की अनुमति दी गई थी। अपीलकर्ता नारायण दत्त शर्मा को गेज के रूप में कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। मापक को 15-9-1978 से नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक किया जाता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये के वेतनमान में की गई थी। शुरुआत में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें कार्यकुशलता बार पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि उन्हें उस अवधि के दौरान वेतनमान का लाभ दिया गया था जब वे कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में सेवा करते थे, उन्होंने तीन से चार दशकों तक सेवा की और बाद में विभिन्न आदेशों द्वारा समय-समय पर सेवाओं को नियमित किया गया। हालाँकि, कुछ याचिकाओं/अपीलों में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, भले ही उन्होंने कई दशकों तक सेवा की हो और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुँच गए हों।

31. उपर्युक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में राज्य सरकार एवं उसके पदाधिकारियों द्वारा कार्यभारित आधार पर कर्मचारियों से कार्य लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लम्बे समय तक कार्यभारित आधार पर कार्य लेना शोषणकारी तरीका अपनाने के समान है। यद्यपि बाद में उनकी सेवाएं नियमित कर दी गई हैं। तथापि कार्यभारित स्थापना में उनके द्वारा व्यतीत की गई अवधि को अर्हकारी सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, उन्हें कार्यभारित स्थापना में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान न केवल उनके देय पारिश्रमिक से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभों की अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है, मानो उन्होंने कोई सेवा प्रदान ही न की हो। कार्यभारित स्थापना में कम वेतन पर अपने जीवन के उत्कर्ष काल में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

32. 1961 के नियमों के नियम 3(8) में संलग्न नोट के मद्देनजर, कार्य-प्रभारित, आकस्मिक व्यय या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा को पेंशन योग्य सेवा में शामिल करने का प्रावधान है, यदि किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों के बीच की अवधि में ऐसी सेवा प्रदान की है या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के बीच ऐसी सेवा प्रदान की है। कार्य-प्रभारित सेवा को उपर्युक्त आपात स्थितियों में पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. सवाल यह उठता है कि क्या यह शर्त लगाना कि ऐसी सेवा को गिना जाना है, दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा अवधियों के बीच में की गई हो, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण हो जाने के बाद, हालांकि कर्मचारी ने उससे पहले अस्थायी आधार पर

सेवा नहीं की थी, नियुक्ति की प्रकृति को देखते हुए, हालांकि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर किया गया था और उसके बाद कार्यभारित स्थापना के वेतनमान में दक्षता की सीमा को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के नोट में निहित शर्त के कारण, ऐसी सेवा को न गिनना अत्यधिक भेदभावपूर्ण और तर्कहीन होगा, खासकर जब इसे गिना जा सकता है, अगर ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच में हो। अगर कार्यभारित अवधि की सेवा नियमितीकरण से पहले की गई है, तो उसे न गिनने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारी राय में, नियम 3(8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को योग्यता सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और तर्कहीन होगा। कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार जब इसे एक वर्ग के लिए गिना जाता है, तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए । वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में बिताए गए समय की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा । यह शर्त कि कार्य-प्रभारित सेवा अस्थायी क्षमता से पहले होनी चाहिए, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3(8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, इसलिए हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि कार्यभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारियों या गैर-पेंशनभोगी प्रतिष्ठान की हैसियत से नियमितीकरण से पहले की गई सेवाओं को भी अर्हक सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा से पहले किसी पेंशनभोगी प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति न हुई हो।

35. नियम 3(8) से जुड़े नोट के मद्देनजर, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 370 में निहित प्रावधान को रद्द किया जाना है , साथ ही वित्तीय पुस्तिका के पैरा 669 में निहित निर्देशों को भी रद्द किया जाना है।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएं देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूंकि उन्होंने किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध नहीं बल्कि कार्यभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, इसलिए उनकी सेवाओं को सरकारी निर्देशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एलएंडएस) 753] में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश के बिना दस वर्षों से अधिक समय तक सेवाएं दी गई हैं, तो एक बार के उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए। प्रकरण के तथ्यों में, जिन कर्मचारियों ने दस वर्ष या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना

चाहिए था। उन्हें नियमितीकरण पर विचार करने के लिए विनियमित करना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य को नियमित किया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। हालांकि, यह स्पष्ट किया गया है कि यदि वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में बने रहे होते तो वे वेतन में अंतर के किसी भी बकाया का दावा करने के हकदार नहीं होते। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हों और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश करने के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 3(8) को ध्यान में रखते हुए, हम मानते हैं कि कार्यभारित स्थापना में की गई सेवाओं को पेंशन प्रदान करने के लिए उक्त नियम के तहत अर्हकारी सेवा माना जाएगा। पेंशन का बकाया आदेश की तिथि से तीन वर्ष पहले तक ही सीमित रहेगा। तदनुसार, स्वीकार्य लाभों का भुगतान तीन महीने के भीतर किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों द्वारा दायर अपीलों को अनुमति दी जाती है और राज्य द्वारा दायर अपीलों को खारिज किया जाता है।"

उन्होंने आगे कहा कि चूंकि प्रत्यर्थी प्राधिकरण में पेंशन लाभ के लिए समान नियम मौजूद हैं, इसलिए, प्रकरण पूरी तरह से उक्त निर्णय के अंतर्गत आता है और याचिकाकर्ता को प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में तय कानून का लाभ भी दिया जाना चाहिए।

श्री श्याम मणि शुक्ला ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का विरोध किया। उन्होंने कहा कि पेंशन लाभ अब उत्तर प्रदेश पेंशन और वैधीकरण अध्यादेश, 2020 (जिसे बाद में उत्तर प्रदेश पेंशन और वैधीकरण अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया) के अनुसार विनियमित किए जाते हैं, जो नियमितीकरण से पहले की गई सेवाओं को पेंशन के लिए 'योग्य सेवाओं' की परिभाषा से बाहर रखता है। उन्होंने रिट ए संख्या 5082/2022 में पारित दिनांक 20.04.2022 के निर्णय और आदेश से उत्पन्न **विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 482/2022 (नगर आयुक्त नगर निगम बनाम देवदत्त और 2 अन्य)** में इस न्यायालय के दिनांक 21.12.2022 के अंतरिम आदेश पर भरोसा किया है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"अपील के संबंध में

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 20.04.2022 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा प्रेम सिंह के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों और चेतराम के प्रकरण में खंडपीठ के निर्णय के आलोक में याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के दावे पर विचार करने का निर्देश दिया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि कई बाद के घटनाक्रम हैं जो याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के दावे के अनुरूप नहीं हो सकते हैं और यहां तक कि प्रकरण विशेष अनुमति अपील (सी) संख्या 5859/2022 में सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रहा है, जो इस न्यायालय के दिनांक 24.08.2021 के

रिट-ए संख्या 4224/2021 के निर्णय से उत्पन्न हुआ है, जिसमें एक अंतरिम आदेश पारित किया गया है जिससे अवमानना कार्यवाही पर रोक लगा दी गई है।

इस प्रकरण पर विचार करने की आवश्यकता है।

याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की है कि उन्हें जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया जाए।

इस प्रकरण को 18 जनवरी, 2023 को सूचीबद्ध करें।

सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक, रिट-ए संख्या 5082/2022 में दिनांक 20.04.2022 के विवादित निर्णय और आदेश का प्रभाव और संचालन स्थगित रहेगा।"

खण्ड पीठ द्वारा पारित उपरोक्त आदेश किसी भी तरह से किसी स्थापित कानून को प्रभावित नहीं करता है या कोई नया कानून स्थापित नहीं करता है। **श्री चामुंडी मोपेड्स लिमिटेड बनाम चर्च ऑफ साउथ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन सीएसआई सिनोड सचिवालय, मद्रास 1992 (3) एससीसी 1** के प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का हवाला देना ही पर्याप्त होगा, जो स्पष्ट करता है कि अंतरिम आदेश किसी भी तरह से न्यायालय द्वारा स्थापित कानून को प्रभावित नहीं करता है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए **भानु प्रताप (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में दिए गए निर्णय में पेंशन के प्रयोजन के लिए 'अर्हक सेवाओं' की व्याख्या पर विचार नहीं किया गया है, जैसा कि उ0प्र0 पेंशन और वैधीकरण अध्यादेश, 2020 (अब 2021 का अधिनियम) के लिए अर्हक सेवाओं के अनुसार किया गया है।

रिट-ए संख्या 8968/2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय ने 2021 के अधिनियम की धारा 2 में प्रयुक्त 'पद' शब्द की व्याख्या की है, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, और इसे 'कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी प्रकृति की' के रूप में पढ़ा है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है:

"14. यह बहुत पहले से तय है कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी अपनी सेवाओं की गणना अपनी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से करते हुए पेंशन लाभ के हकदार हैं, न कि अपने नियमितीकरण की तारीख से। हरि शंकर असोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1989(1) उ0प्र0एलबीईसी 501; यशवंत हरि कटककर बनाम भारत संघ और अन्य, 1996 (7) एससीसी 113; और प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के मामलों में दिए गए फैसले का हवाला देना ही काफी होगा। वास्तव में पहले वे उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 और अन्य सिविल सेवा विनियमों के नियम 2 के अंतर्गत आते थे।

15. अब विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि 2021 के अधिनियम की धारा 2 के मद्देनजर, चूंकि याचिकाकर्ताओं को शुरू में अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त नहीं किया गया था, इसलिए उन्हें उक्त सेवाओं का लाभ नहीं दिया जा सकता है।

16. प्रकरण के उक्त पहलू पर पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। 2021 के अधिनियम की धारा 2 को पहले ही पढ़ा जा

चुका है और यह माना जाता है कि 2021 के अधिनियम की धारा 2 में प्रयुक्त शब्द 'पद' , चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, को 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं, चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति की हों' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

17. इसके मद्देनजर, याचिकाकर्ता भी वर्तमान निर्णय में दिए गए अधिनियम 2021 की धारा 2 की पूर्वोक्त व्याख्या के अंतर्गत आते हैं। ऊपर बताए गए आधारों पर विभिन्न रिट याचिकाओं में दिए गए आदेश पहले के निर्णयों के साथ-साथ इस निर्णय में दिए गए निष्कर्षों के अंतर्गत आते हैं और इसलिए, याचिकाकर्ताओं को पेंशन लाभ के लिए दैनिक वेतनभोगी के रूप में दी गई उनकी सेवाओं की गणना करने का हकदार माना जाता है। सभी विवादित आदेश रद्द किए जाते हैं।"

1981 के मौजूदा नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें सुप्रीम कोर्ट ने प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में पढ़ा था, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना गया था, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान प्रकरण में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, जैसा कि माना जाता है, क्योंकि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान ही कार्य करते हैं और उन्हें हमेशा नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। उन्हें उनकी दैनिक वेतनभोगी सेवाओं को जारी रखते हुए नियमित भी किया गया था। इस प्रकार, यह प्रकरण प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) और डॉ. श्याम कुमार (पूर्वोक्त) के प्रकरण में तय कानून के अंतर्गत आता है।

अतः रिट याचिका **स्वीकार की जाती है** ।

प्रत्यर्थी संख्या 2-मुख्य नगर अधिकारी, नगर निगम, बरेली को निर्देश दिया जाता है कि वे तीन माह की अवधि के भीतर नगर निगम के दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी के रूप में निभाई गई ड्यूटी सहित उनकी संपूर्ण सेवा की गणना करते हुए, 1981 के नियमों के अंतर्गत याचिकाकर्ता को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें।

(2023) 5 ILRA 1577

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

विशेष अपील संख्या 344 / 2021

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई ....अपीलकर्ता

बनाम

विजय अग्रवाल ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री विष्णु प्रताप, श्री विजय कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अजय राजेंद्र

सिविल कानून - सेवा वाद - बकाया वेतन - जब बर्खास्तगी आदेश दंड की मात्रा के आधार पर रद्द किया गया न कि योग्यता के आधार पर - वर्तमान मामले में कर्मचारी 04.08.2006 के बर्खास्तगी आदेश के अनुसार 24.08.2013 को अपनी बहाली तक सेवा से बाहर था। बर्खास्तगी आदेश से व्यथित होकर, कर्मचारी ने एक रिट याचिका दायर किया, जिसे केवल सजा की मात्रा के आधार पर ही

स्वीकार किया गया। रिट न्यायालय का मानना था कि लगाई गई सजा अपराध के अनुरूप नहीं थी। रिट न्यायालय ने कर्मचारी की बर्खास्तगी को गलत नहीं माना। बल्कि, रिट न्यायालय का मानना था कि कर्मचारी के अपराध को देखते हुए कम सजा ही काफी होगी। कर्मचारी ने कहीं भी यह तर्क नहीं दी कि वह नौकरी से निकाले जाने की अवधि के दौरान लाभकारी रूप से कार्यरत नहीं था या कम वेतन पर कार्यरत था। निर्णय: यह नहीं कहा जा सकता कि कर्मचारी का अपराध मिट गया; बल्कि, कम सजा दिए जाने के परिणामस्वरूप उसे बहाल करने का निर्देश दिया गया। कर्मचारी उस अवधि के लिए पिछले वेतन का हकदार नहीं होगा, जब उसने अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया है और न ही ऐसी बहाली के परिणामस्वरूप परिणामी लाभ। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कर्मचारी आठ वर्षों तक नौकरी से बाहर था, उसे उस अवधि के लिए पिछले वेतन का 30% भुगतान करने का निर्देश दिया गया, जब वह नौकरी से बाहर था। (पैरा 12, 13, 14)

स्वीकृत (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. प्रदीप पुत्र राज कुमार जैन बनाम मैंगनीज अयस्क (इंडिया) लिमिटेड एवं अन्य, (2022) 3 एससीसी 683

2. दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय, (2013) 10 एससीसी 324

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, एवं माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता/प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विष्णु प्रताप और प्रतिवादी/याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अजय राजेंद्र को सुना गया।

2. यहां याचिकाकर्ताओं-बैंक ने, तत्काल इंट्रा कोर्ट अपील द्वारा रिट-ए संख्या 43450/2014 (विजय अग्रवाल बनाम अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और अन्य) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26 जुलाई 2021 को इस सीमा तक चुनौती दी है कि आक्षेपित आदेश में अपीलकर्ता को बर्खास्तगी से लेकर बहाली तक की अवधि के लिए वेतन और परिणामी लाभों का बकाया भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

3. प्रतिवादी/याचिकाकर्ता बर्खास्तगी आदेश दिनांक 4 अगस्त 2006 के तहत 24 अगस्त 2013 को अपनी बहाली तक सेवा से बाहर था। बर्खास्तगी आदेश से व्यथित होकर प्रतिवादी/याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 17804/2007 के तहत रिट याचिका दायर की, जिसे प्रतिवादी/याचिकाकर्ता पर लगाए गए दंड की मात्रा के आधार पर ही स्वीकार किया गया। रिट कोर्ट का मानना था कि दी गई सज़ा अपराध के अनुरूप नहीं है, इसलिए कम सज़ा ही पर्याप्त होगी। आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"इसलिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ दी गई सजा उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से असंगत है। अतः अनुशासनिक प्राधिकारी, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 4.8.2006 का आदेश, अपीलीय प्राधिकारी, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 19.12.2006 का आदेश तथा दिनांक 6.6.2005 का आरोप पत्र (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1,2 और 3 क्रमशः) को रद्द किया जाता है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के अलावा कोई भी कम सजा देने के लिए मामले पर नए सिरे से विचार करेगा और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के पश्चात यथाशीघ्र, अधिमानतः दो माह के भीतर, समुचित आदेश पारित करेगा।

तदनुसार, वर्तमान याचिका स्वीकार की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।"

4. ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता-प्रतिवादी ने समीक्षा आवेदन संख्या 380227/2011 के तहत समीक्षा याचिका दायर की है, जिसमें 20 नवंबर 2012 के रिट न्यायालय के आदेश की समीक्षा की मांग की गई है। रिट कोर्ट ने समीक्षा आवेदन का निस्तारण करते हुए स्पष्ट किया कि याचिकाकर्ता/कर्मचारी को बहाल करने के बाद रिट कोर्ट के आदेश का अनुपालन किया जाना आवश्यक है, उसके बाद कम सजा देने के लिए मामले पर नए सिरे से विचार किया जाएगा। आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"तथ्यों के मद्देनजर रिट याचिका के दिनांक 6.6.2005 के आरोप पत्र अनुलग्नक-3 के निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया गया। यह स्पष्ट किया जाता है कि दिनांक 20.11.2012 के निर्णय एवं आदेश द्वारा केवल अनुशासनिक प्राधिकारी एवं अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 4.8.2006 एवं 19.12.2006 को पारित आदेश ही रद्द किये जाते हैं।

प्रतिवादीगण सर्वप्रथम याचिकाकर्ता कर्मचारी को बहाल करके तथा तत्पश्चात कम सजा देने के लिए मामले पर नए सिरे से विचार करके दिनांक 20.11.2012 के निर्णय एवं आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करेंगे।

तदनुसार, समीक्षा याचिका को अंतिम रूप से निस्तारित किया जाता है।"

5. दूसरे शब्दों में, रिट न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अपीलकर्ता/ बैंक को बर्खास्तगी/ निष्कासन के अलावा कोई कम सजा देने की आवश्यकता है। हालाँकि, रिट न्यायालय ने यह निष्कर्ष नहीं निकाला कि अनुशासनात्मक जांच दोषपूर्ण थी या याचिकाकर्ता को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप में दोषी नहीं पाया गया। इसके बाद, अनुपालन में, प्रतिवादी/याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल कर दिया गया और आरोप-पत्र के चरण से एक नई जांच की गई, अंततः

अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 11 जून 2014 के आदेश के तहत दंड लगाया, जिसके तहत 31 जुलाई 2013 से वेतनमान के दो निचले चरणों को स्थायी रूप से नीचे कर दिया गया (अपीलकर्ता द्वारा दायर सुधार आवेदन पर पारित आदेश), जो समीक्षा याचिका पर पारित आदेश के अनुसार था। दण्ड आदेश से व्यथित होकर प्रतिवादी/याचिकाकर्ता ने पुनः रिट न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसमें आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

6. अपीलकर्ता/प्रतिवादी इस बात से व्यथित हैं कि रिट न्यायालय ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को आंशिक रूप से बरकरार रखते हुए, रिट याचिका को अनुमति दे दी, जहां तक कि उसने प्रतिवादी/याचिकाकर्ता को उस अवधि के वेतन के बकाए से वंचित कर दिया, जिसके लिए बर्खास्तगी का आदेश प्रभावी था। आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

यह नोट करना प्रासंगिक हो जाता है कि मामले को प्रतिप्रेषित किये जाने पर प्रतिवादियों के लिए विचार करने हेतु केवल यही शेष रह गया था कि बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के अलावा प्रतिस्थापन में क्या दंड लगाया जा सकता है। जब न्यायालय द्वारा बर्खास्तगी का आदेश रद्द कर दिया गया, तो एकमात्र दंड जो लगाया जा सकता था और वास्तव में प्रतिवादियों द्वारा स्वयं लगाया गया था, वह था याचिकाकर्ता को वेतनमान में दो निचले स्तरों पर लाना। न्यायालय को प्रतिवादियों में निहित कोई शक्ति नहीं दिखाई गई है, जिसके आधार पर वह याचिकाकर्ता को उस अवधि के लिए पारिश्रमिक से वंचित कर सके, जिस अवधि के दौरान बर्खास्तगी का आदेश प्रभावी रहा। उपर्युक्त चर्चा और उस सीमित सीमा तक, न्यायालय प्रतिवादियों के निर्णय को बरकरार रखने में खुद को असमर्थ पाता है।

श्री तिवारी का यह अतिरिक्त निवेदन कि "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत पर, याचिकाकर्ता को उस अवधि के बकाया से वंचित किया जाना चाहिए, जब बर्खास्तगी का आदेश प्रभावी था, केवल निम्नलिखित कारणों से खारिज किया जाता है। "काम नहीं तो वेतन नहीं" का सिद्धांत तब लागू होगा जब कोई कर्मचारी या कर्मचारी खुद काम नहीं करना चाहता या अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करना चाहता। हालांकि, यह उस मामले में लागू नहीं हो सकता जहां नियोक्ता ने अपनी कार्रवाई से कर्मचारी को कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोका हो। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है। इसलिए यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें याचिकाकर्ता ने अपनी इच्छा से कर्तव्यों का निर्वहन न करने का फैसला किया हो।

तदनुसार, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। यह आक्षेपित आदेश, जहां तक कि यह याचिकाकर्ता को उस अवधि के बकाया से वंचित करता है, जिस अवधि से बर्खास्तगी का आदेश प्रभावी था, अपास्त किया जाता है। याचिकाकर्ता सभी परिणामी लाभों का हकदार होगा।

7. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि सेवा से बर्खास्तगी/हटाने के पूर्व के दंड आदेश को रिट न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर रद्द नहीं किया गया था। इस बात का कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया कि जांच में प्राप्त निष्कर्ष स्वयं में विकृत थे या प्रतिवादी/याचिकाकर्ता पर लागू नियमों पर आधारित नहीं थे। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी/याचिकाकर्ता के अपराध के संबंध में जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्ष को बरकरार रखा गया। रिट न्यायालय ने मामले को केवल कम सजा देने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेज दिया, क्योंकि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए न्यायालय की राय में, प्रतिवादी/याचिकाकर्ता को दी गई बर्खास्तगी/सेवा से हटाने की सजा उसके अपराध के अनुरूप नहीं थी।

8. अपीलकर्ता/प्रतिवादी द्वारा दायर समीक्षा याचिका में रिट न्यायालय द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट किया गया था। इसके बाद, चूंकि बर्खास्तगी के आदेश को अपास्त कर दिया गया था और अदालत ने अपीलकर्ता/बैंक को प्रतिवादी को बहाल करने और उसके बाद दंड का आदेश पारित करने का निर्देश दिया था, इसका मतलब निश्चित रूप से यह नहीं होगा कि बर्खास्तगी का आदेश उस तारीख से संबंधित होगा जिस दिन इसे पारित किया गया था। रिट न्यायालय की यह राय कि बर्खास्तगी आदेश को अपास्त करते समय यह माना जाएगा कि कानून की नजर में यह कभी अस्तित्व में ही नहीं था, इसलिए प्रतिवादी/याचिकाकर्ता पिछले वेतन का हकदार है, तर्कसंगत नहीं है। दंड का आदेश केवल तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया गया था, क्योंकि यह दोष के अनुरूप नहीं था, लेकिन प्रतिवादी/याचिकाकर्ता को दोषी मानते हुए उसके खिलाफ जांच को बरकरार रखा गया था और अनुशासनात्मक प्राधिकारी को बर्खास्तगी/बर्खास्तगी से कम दंड का नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि बर्खास्तगी आदेश को रद्द करने से यथास्थिति बहाल हो जाएगी तथा सभी परिणामी प्रभाव होंगे। यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लगाए जाने वाले दंड के परिणाम के अधीन था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी बकाया वेतन के संबंध में अलग से आदेश पारित करने की अपनी क्षमता के भीतर था।

9. **प्रदीप पुत्र राज कुमार जैन बनाम मैंगनीज ओर (इंडिया) लिमिटेड एवं अन्य (2022) 3 एससीसी 683** में, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या प्रतिवादी/याचिकाकर्ता को बहाल करने का उच्च न्यायालय का निर्देश उसे पिछली मजदूरी का लाभ देने से इनकार करने के लिए उचित था। **दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (2013)**

10 एससीसी 324 में दिए गए तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया, जिसमें सेवा की गलत तरीके से समाप्ति पर पिछले वेतन के हकदार होने के सिद्धांतों को फिर से बताया गया था। न्यायालय ने अवधारित किया कि गलत तरीके से सेवा समाप्त किए जाने के मामलों में सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है। पैरा 38.1 इस प्रकार है:

> *"38.1. सेवा की गलत समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है।"*

10. इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि उपरोक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि बकाया वेतन का निर्धारण करते समय अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना होगा, जैसे कि कदाचार की प्रकृति, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी प्रकार के अन्य कारक। जिस कर्मचारी या कामगार की सेवाएँ समाप्त की गई हैं और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक है, उसे या तो न्यायाधिकरण या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष दलील देनी होगी या कम से कम बयान देना होगा कि उसे लाभप्रद रोजगार नहीं मिला था या उसे कम वेतन पर रोजगार मिला था। पैरा 38.2 और 38.3 इस प्रकार हैं:

> *38.2. उपर्युक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि बकाया वेतन के मुद्दे पर निर्णय करते समय, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी या न्यायालय कर्मचारी/कर्मचारी की सेवा की अवधि, कर्मचारी/कर्मचारी के विरुद्ध सिद्ध किए गए कदाचार की प्रकृति, यदि कोई हो, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी प्रकार के अन्य कारकों को ध्यान में रख सकता है।*
>
> *38.3. सामान्यतः, किसी कर्मचारी या कर्मकार, जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हों और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक हो, को या तो न्यायिक प्राधिकारी या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष यह दलील देनी होती है या कम से कम यह बयान देना होता है कि वह लाभकारी रोजगार में नहीं था या उसे कम वेतन पर नियुक्त किया गया था।...*

11. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सिद्धांतों को लागू करते हुए, रिट कोर्ट ने प्रतिवादी/याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी को गलत नहीं माना। बल्कि, रिट कोर्ट का मानना था कि प्रतिवादी/याचिकाकर्ता के अपराध को देखते हुए कम सजा ही पर्याप्त होगी। इसके अलावा, प्रतिवादी ने कहीं भी यह तर्क नहीं दिया कि सेवा से बर्खास्तगी की अवधि के दौरान वह लाभकारी रोजगार में नहीं था या कम वेतन पर कार्यरत था। तदनुसार, यह नहीं कहा जा सकता कि दण्डित किए जाने के दौरान प्रतिवादी/याचिकाकर्ता का अपराध मिट गया,

बल्कि कम दण्ड दिए जाने के परिणामस्वरूप उसकी बहाली की गई, प्रतिवादी/याचिकाकर्ता ऐसी बहाली के परिणामस्वरूप न तो पिछली मजदूरी का हकदार होगा, न ही उसे कोई अन्य लाभ मिलेगा।

12. विशिष्ट प्रश्न पर, प्रतिवादी/याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी ने आक्षेपित रिट न्यायालय के आदेश पर कोई आपत्ति नहीं की है, इस सीमा तक कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने जांच और याचिकाकर्ता के अपराध को बरकरार रखा है।

13. इन परिस्थितियों में, कम सजा देते हुए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी की राय में प्रतिवादी उस अवधि के लिए वेतन पाने का हकदार नहीं है, जब उसने अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया है, दीपाली गुंडू (उपरोक्त) के मद्देनजर यह उचित होगा।

14. तदनुसार, आक्षेपित आदेश को इस सीमा तक रद्द किया जाता है कि इसमें सभी परिणामी लाभों के साथ बकाया वेतन के भुगतान का निर्देश दिया गया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी/याचिकाकर्ता आठ वर्षों तक बेरोजगार था, यह न्यायसंगत होगा कि प्रतिवादी/याचिकाकर्ता को उस अवधि के लिए बकाया वेतन का 30% भुगतान किया जाए, जब वह बेरोजगार था। इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तारीख से तीन महीने के भीतर अपीलकर्ता बैंक द्वारा इसकी गणना की जाएगी और इसे जारी किया जाएगा।

15. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1581

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

रिट-ए संख्या 1078/2023

इमरान खान ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य .. प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अखिलेश कुमार, श्री अखिलेश चन्द्र शुक्ल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून - सेवा मामला - अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति- विवाहित भाई -उत्तर प्रदेश सेवा में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियम, 1974- नियम 2 खण्ड (सी) उपखण्ड (iv), 'मृत सरकारी सेवक पर आश्रित अविवाहित भाई, अविवाहित बहनें और विधवा मां, यदि मृत सरकारी सेवक अविवाहित था' - उक्त नियम में 'अविवाहित' अभिव्यक्ति को अधिकारहीन घोषित करने की मांग करते हुए रिट याचिका दायर की गई। निर्णय: नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने मृत सरकारी सेवक के भाइयों/बहनों को परिवार की परिभाषा में शामिल किया, परंतु वे अविवाहित थे, और साथ ही, सरकारी सेवक भी अविवाहित था। यदि सरकारी सेवक विवाहित है, तो उसके पास एक आश्रित पत्नी/बच्चे हैं जो प्राथमिक रूप से उसकी जिम्मेदारी हैं। न्यायालय एक विवाहित सरकारी सेवक के परिवार की परिभाषा में अविवाहित भाइयों और बहनों को

शामिल नहीं करने के नियोक्ता के निर्णय और विवेक पर अपील नहीं कर सकता। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय की यह निर्धारित करने में कोई भूमिका नहीं होगी कि अनुकंपा नियुक्ति के उद्देश्य से परिवार के किस सदस्य को परिवार की परिभाषा में शामिल किया जाना चाहिए या बाहर रखा जाना चाहिए। न्यायालय यह सुझाव नहीं दे सकता कि नियम बनाने वाले प्राधिकरण को परिवार की परिभाषा को किस तरह से संरचित या पुनर्गठित करना चाहिए। इस बारे में कुछ भी नहीं दिखाया गया है कि विवाहित सरकारी कर्मचारी के परिवार की परिभाषा से अविवाहित भाइयों/बहनों को बाहर रखना स्पष्ट रूप से मनमाना है। विवादित नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत नहीं आता। (पैरा 18, 19)

निरस्त (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मोहम्मद इकराम बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, रिट-ए संख्या 59704/2012, दिनांक 19.11.2012 को निर्णय हुआ

2. टी.एन. राज्य बनाम पी. कृष्णमूर्ति, (2006) 4 एससीसी 517

3. सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया एवं अन्य, (2016) 7 एससीसी 703

4. इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (पी) लिमिटेड बनाम यूओआई, (1985) 1 एससीसी 641

5. शायरा बानो बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2017) 9 एस.सी.सी.

6. खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, (1996) 10 एससीसी 304

7. शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम ए.पी. राज्य एवं अन्य, (2002) 2 एससीसी 188

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,
द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका के द्वारा याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश सेवा में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 के नियम 2 के खंड (ग) के उपखंड (iv) में 'अविवाहित' अभिव्यक्ति को अधिकारातीत घोषित करने की मांग की है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने दूसरे प्रतिवादी, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, बुलंदशहर द्वारा पारित आदेश दिनांक 7 सितंबर 2020 को रद्द करने की मांग की है, जिसमें मृतक-कर्मचारी की पत्नी द्वारा प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया गया था, जिसमें नियमावली, 1974 के तहत याचिकाकर्ता (साले) की नियुक्ति की मांग की गई थी।

3. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्य संक्षेप में यह हैं कि याचिकाकर्ता के भाई, अर्थात् जावेद खान, जो सिविल पुलिस में कांस्टेबल के रूप में कार्यरत थे, दुर्भाग्य से 27 अगस्त 2021 को एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। मृतक कर्मचारी अपने पीछे लगभग 33 वर्षीय पत्नी तथा लगभग 10, 9 तथा 5 वर्ष

के तीन नाबालिग पुत्रों को छोड़ गया है। मृतक कर्मचारी अपने परिवार के अलावा अपने माता-पिता और तीन भाइयों को छोड़ गया है, जिनमें याचिकाकर्ता भी शामिल है। तीसरे प्रतिवादी/मृतक कर्मचारी की पत्नी ने दिनांक 12 अगस्त 2022 को दूसरे प्रतिवादी को एक आवेदन दिया, जिसमें अनुरोध किया गया कि याचिकाकर्ता को नियमावली, 1974 के तहत अनुकंपा नियुक्ति दी जाए, क्योंकि वह उसके पति की मृत्यु के बाद उसके नाबालिग बच्चों की देखभाल कर रहा था। आगे कहा गया कि याचिकाकर्ता अविवाहित है और उसके पति पर निर्भर था। आवेदन को दूसरे प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश दिनांक 7 सितंबर 2022 द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें दर्ज किया गया कि याचिकाकर्ता नियमावली, 1974 के तहत 'कुटुम्ब' की परिभाषा में नहीं आता है, क्योंकि वह मृतक कर्मचारी का अविवाहित भाई था, जो विवाहित था।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **मो. इकराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य** मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है।

5. 'कुटुम्ब' की परिभाषा इस प्रकार है:

> *"2(सी) "कुटुम्ब" के अन्तर्गत मृत सरकारी सेवक के निम्नलिखित संबंधी होंगे:*
> *(i) पत्नी या पति;*
> *(ii) पुत्र/दत्तक पुत्र;*
> *(iii).....*
> *(iv) मृत सरकारी सेवक पर निर्भर अविवाहित भाई अविवाहित बहन और विधवा माता, यदि मृत सरकारी सेवक अविवाहित था।"*

6. नियमावली, 1974 में समय-समय पर संशोधन किया गया। तथापि, उप-खण्ड (iv) यथावत जारी रहा। तदनुसार, विवाहित सरकारी सेवक के अविवाहित भाई/बहन को कुटुम्ब की परिभाषा में शामिल नहीं किया गया।

7. दिए गए तथ्यों में, आक्षेपित नियम वही रहता है, जहां तक यह संशोधन से पहले और उसके बाद याचिकाकर्ता से संबंधित है। नियम 2 (सी) के उप खंड (iv) में यह अनिवार्य किया गया है कि मृत सरकारी सेवक पर आश्रित अविवाहित भाई, 'यदि मृत सरकारी सेवक अविवाहित था, 'कुटुम्ब'की परिभाषा के अंतर्गत आएंगे। याचिकाकर्ता अविवाहित है लेकिन उसके मामले के अनुसार, उसका भाई/मृत कर्मचारी विवाहित था, उसकी पत्नी और तीन बेटे थे। दूसरे शब्दों में, मृत कर्मचारी अविवाहित नहीं था, अर्थात उसका कोई परिवार नहीं था, बल्कि अन्यथा था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि उप-खण्ड (iv) में मृत 'अविवाहित' सरकारी कर्मचारी के 'अविवाहित' भाई/बहन की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से मनमाना है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

9. यह दलील दी गई है कि अविवाहित भाई अपने परिवार यानी पत्नी और बच्चों के अलावा विवाहित सरकारी कर्मचारी पर आश्रित

हो सकता है। इस पृष्ठभूमि में, यह दलील दी गई है कि नियम 2(सी) का उप-खंड (iv) स्पष्ट रूप से मनमाना है, जबकि यह शर्त लगाई गई है कि 'अविवाहित'भाई विवाहित मृत कर्मचारी पर आश्रित नहीं हो सकता।

10. राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विवाहित सरकारी कर्मचारी का एक अलग एवं विशिष्ट परिवार होता है तथा अविवाहित भाई/बहनों को विवाहित सरकारी कर्मचारी पर आश्रित नहीं कहा जा सकता। उसका पहला दायित्व अपने परिवार के प्रति है। मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता के अन्य भाई और माता-पिता भी हैं। याचिकाकर्ता उन पर निर्भर है। रिट याचिका में गुण-दोष का अभाव है।

11. विरोधी तर्क विचाराधीन हैं।

12. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या आरोपित नियम अर्थात नियम 2(सी) का उप-खण्ड (iv) स्पष्टतः मनमाना/अनुचित है, जिससे यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

13. अधीनस्थ विधान की संवैधानिकता या वैधता के पक्ष में एक पूर्वधारणा होती है और जो इसे चुनौती देता है, उसका यह दायित्व होता है कि वह यह सिद्ध करे कि यह अधिकार-बाह्य/अवैध है। यह भी सर्वविदित है कि अधीनस्थ विधान को निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है:

"(क) अधीनस्थ कानून बनाने के लिए विधायी क्षमता का अभाव।

(ख) भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन।

(ग) भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन।

(घ) उस क़ानून के अनुरूप होने में विफलता जिसके तहत इसे बनाया गया है या सक्षम अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार की सीमा से अधिक है।

(ङ) देश के कानूनों, यानी किसी भी अधिनियम के प्रति प्रतिकूलता।

(च) स्पष्ट मनमानी/अनुचितता (इस हद तक कि न्यायालय यह कह सकता है कि विधायिका का कभी भी ऐसे नियम बनाने का अधिकार देने का इरादा नहीं था)।"

*(संदर्भ: **तमिलनाडु राज्य बनाम पी. कृष्णमूर्ति एवं सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण एवं अन्य**)"*

अनुवादित

14. अधीनस्थ विधान की संवैधानिकता को चुनौती देने के लिए एक परीक्षण यह है कि अधीनस्थ विधान स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं होना चाहिए। इसके अलावा, यह स्थापित कानून है कि अधीनस्थ विधान को पूर्ण विधान को चुनौती देने के लिए उपलब्ध किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है। **(संदर्भ: इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (प्रा.) लिमिटेड बनाम भारत संघ)**

15. **शायरा बानो बनाम भारत संघ एवं अन्य** मामले में न्यायमूर्ति रोहिंटन फली नरीमन ने उदाहरणों की जांच करने के बाद यह राय बनाई थी कि दो प्रकार के विधानों अर्थात् अधीनस्थ विधान और पूर्ण विधान के बीच कोई तर्कसंगत अंतर नहीं है, जब इसे अनुच्छेद 14 के तहत चुनौती दी जाती है। पैरा 101 इस प्रकार है:

> "101. यह ध्यान देने योग्य है कि इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ, (1985) 1 एससीसी 641 में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने कहा था कि यह स्थापित कानून है कि अधीनस्थ विधान को पूर्ण विधान के विरुद्ध चुनौती के लिए उपलब्ध किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है। ऐसा होने पर, अनुच्छेद 14 के तहत चुनौती के इस आधार पर दो प्रकार के कानूनों के बीच कोई तर्कसंगत अंतर नहीं है। इसलिए, जैसा कि पूर्वोक्त निर्णयों में निर्धारित किया गया है, स्पष्ट मनमानी का परीक्षण अनुच्छेद 14 के तहत अमान्य विधान के साथ-साथ अधीनस्थ विधान पर भी लागू होगा। इसलिए, स्पष्ट मनमानी, विधायिका द्वारा स्वेच्छाचारितापूर्वक, अतार्किक रूप से और/या पर्याप्त निर्धारण सिद्धांत के बिना की गई कार्रवाई होगी। इसके अलावा, जब कोई कार्य अत्यधिक और असंगत हो, तो ऐसा कानून स्पष्टतः मनमाना होगा। इसलिए, हमारा विचार है कि जैसा कि हमने ऊपर बताया है, स्पष्ट मनमानी के अर्थ में मनमानी अनुच्छेद 14 के तहत अस्वीकृत विधान पर भी लागू होगी।"

16. यह हमें 'प्रकट मनमानी' के परीक्षण पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। इसे **खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य** में अच्छी तरह से समझाया गया है, जो इस प्रकार है:

> *"13... मनमाने कार्यवाही के जो परीक्षण कार्यकारी कार्यों पर लागू होते हैं, वे आवश्यक रूप से प्रत्यायोजित विधान पर भी लागू नहीं होते। प्रत्यायोजित विधान को रद्द*

करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसा विधान स्पष्ट रूप से मनमाना हो; ऐसा कानून जिसके बारे में यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह कानून बनाने की शक्ति प्रत्यायोजित प्राधिकारी से ही उत्पन्न होगा। इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (प्रा.) लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1985) 1 एससीसी 641: 1985 एससीसी (कर) 121: (1985) 2 एससीआर 287] के मामले में, इस न्यायालय ने अवधारित किया कि अधीनस्थ कानून का एक भाग उसी स्तर की प्रतिरक्षा प्राप्त नहीं करता है जो एक सक्षम विधायिका द्वारा पारित क़ानून द्वारा प्राप्त है। ***अनुच्छेद 14 के अंतर्गत अधीनस्थ विधान पर इस आधार पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि वह अनुचित है; "अनुचित इस अर्थ में नहीं कि वह उचित नहीं है, बल्कि इस अर्थ में कि वह स्पष्टतः मनमाना है"। भारत में मनमानी कोई अलग आधार नहीं है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत आता है। लेकिन अधीनस्थ विधान इतना मनमाना होना चाहिए कि यह न कहा जा सके कि वह कानून के अनुरूप है या संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।"***

(प्रभाव वर्धित)

17. **शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य** मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवधारित किया था:

"25... कार्यकारी कार्रवाई पर लागू मनमानी कार्रवाई के परीक्षण आवश्यक रूप से प्रत्यायोजित विधान पर भी लागू नहीं होते। किसी प्रत्यायोजित विधान को मनमाना करार देकर रद्द करने के लिए यह स्थापित करना होगा कि उसमें स्पष्ट मनमानी है। ***किसी को मनमाना कहने के लिए यह दिखाना होगा कि वह उचित नहीं था और स्पष्टतः मनमाना था। "मनमाने ढंग से" का अर्थ है: अनुचित तरीके से, जैसा कि तय किया गया हो या स्वेच्छा से या इच्छानुसार किया गया हो, पर्याप्त निर्धारण सिद्धांत के बिना, चीजों की प्रकृति पर आधारित न हो, गैर-तर्कसंगत, तर्क या निर्णय के अनुसार न किया गया हो या कार्य न किया गया हो, केवल इच्छा पर निर्भर हो....।"***

(प्रभाव वर्धित)

18. कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में, नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने मृत सरकारी कर्मचारी के भाइयों/बहनों को भी परिवार की परिभाषा में शामिल किया, बशर्ते कि वे अविवाहित हों और साथ ही सरकारी कर्मचारी भी अविवाहित हो। दूसरे शब्दों में, यदि सरकारी कर्मचारी विवाहित है तो उसकी पत्नी/बच्चे उस पर आश्रित हैं, जिनकी जिम्मेदारी मुख्य रूप से उसकी है। प्रस्तावित नियम में 'अविवाहित' शब्द का समावेश इस उद्देश्य से किया गया है कि विवाहित सरकारी कर्मचारी का अपना परिवार होगा, इसलिए नियम बनाने वाले प्राधिकारी की राय में अविवाहित भाइयों और बहनों को इस अर्थ में विवाहित सरकारी कर्मचारी पर आश्रित नहीं कहा जा सकता कि पत्नी/बच्चों की निर्भरता मुख्य रूप से सरकारी कर्मचारी के भाइयों/बहनों के बहिष्कार के लिए है। विवाहित भाई/बहनों का निश्चित रूप से सरकारी कर्मचारी के परिवार से स्वतंत्र परिवार होगा।

19. न्यायालय एक विवाहित सरकारी कर्मचारी के परिवार की परिभाषा में अविवाहित भाई-बहनों को शामिल न करने के नियोक्ता के फैसले और समझदारी पर अपील नहीं कर सकता। न ही, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय की यह निर्धारित करने में कोई भूमिका होगी कि अनुकंपा नियुक्ति के उद्देश्य से परिवार के किस सदस्य को कुटुम्ब की परिभाषा में शामिल/बाहर किया जाना चाहिए। न्यायालय यह सुझाव नहीं दे सकता कि नियम बनाने वाले प्राधिकारी को कुटुम्ब की परिभाषा की संरचना या पुनर्गठन किस प्रकार करना चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह साबित करने में असमर्थ हैं कि अविवाहित भाइयों/बहनों को विवाहित सरकारी कर्मचारी के परिवार की परिभाषा से बाहर रखना स्पष्ट रूप से मनमाना है।

20. दिए गए तथ्यों में, यह विवाद का विषय नहीं है कि याचिकाकर्ता के भाई होने के साथ-साथ उसके माता-पिता भी हैं। इसके अलावा, मृत कर्मचारी अपने पीछे अपनी पत्नी और तीन नाबालिग बच्चों को छोड़ गया है। इन परिस्थितियों में, कुटुम्ब की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता मृत सरकारी कर्मचारी पर आश्रित था। किसी व्यक्ति के आश्रित होने और दूसरे व्यक्ति द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त करने के बीच अंतर है। सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के समय याचिकाकर्ता की आयु लगभग 25 वर्ष थी तथा वर्तमान में उसकी आयु लगभग 29 वर्ष है। याचिकाकर्ता को समय-समय पर वित्तीय सहायता प्राप्त होती रही होगी, लेकिन इससे वह अपने भाई पर निर्भर नहीं हो जाएगा, क्योंकि मृतक सरकारी कर्मचारी का अपना परिवार भी है।

21. यह नियम, विवाहित सरकारी कर्मचारी के परिवार की परिभाषा से अविवाहित भाइयों/बहनों को बाहर रखने के कारण मनमाना प्रतीत हो सकता है, लेकिन यह नियम को स्पष्ट रूप से मनमाना बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है, जिससे कि नियम को अनुच्छेद 14 के तहत मनमाना घोषित किया

जा सके। यह नियम न तो तर्कहीन है और/या, सिद्धांत को पर्याप्त रूप से निर्धारित किए बिना या अविवाहित भाइयों/बहनों को बाहर करने के लिए मनमाना है। न ही आक्षेपित नियम तर्कसंगत या तर्कसंगत न होने के अर्थ में अनुचित है। केवल यह आरोप लगाना कि यह नियम मनमाना है, इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत लाने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा। अधीनस्थ विधान इतना मनमाना होना चाहिए कि उसे कानून के अनुरूप नहीं कहा जा सके या वह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन न करता हो, अर्थात वह चीजों की प्रकृति पर आधारित न हो, गैर-तर्कसंगत हो, तर्क या निर्णय के अनुसार न किया गया हो या कार्य करता हो, केवल प्राधिकारी की इच्छा पर निर्भर हो। आक्षेपित नियम को केवल इस कारण से स्पष्टतः मनमाना नहीं माना जा सकता कि यह सरकारी कर्मचारी के भाई-बहनों पर सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं होता है, बल्कि केवल अविवाहित सरकारी कर्मचारी और अविवाहित भाइयों/बहनों तक ही सीमित है।

22. **मोहम्मद इकराम (उपरोक्त)** ने यह टिप्पणी करते हुए कि 'इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि मृत सरकारी कर्मचारी अविवाहित व्यक्ति हो, नियम 2(सी) के उप-खण्ड (iv) को गलत तरीके से पढ़ा है। इसमें उत्पन्न तथ्यों के अनुसार, मृतक/सरकारी कर्मचारी एक विवाहित व्यक्ति था, इसलिए मृतक सरकारी कर्मचारी का अविवाहित भाई कुटुम्ब की परिभाषा से बाहर रखा गया है। **मोहम्मद इकराम (उपरोक्त)** में दिया गया निर्णय मनमाना है, इसलिए इसे खारिज कर दिया गया।

23. तदनुसार उपर्युक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका गुण-दोष रहित होने के कारण **खारिज** की जाती है। आक्षेपित नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत नहीं आता।

24. हालांकि, रिट याचिका खारिज होने से मृत सरकारी कर्मचारी की प्रतिवादी पत्नी को अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करने से नहीं रोका जा सकेगा। यदि ऐसा कोई आवेदन किया जाता है तो सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाएगा।

25. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1587

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

रिट-ए संख्या 6062/2023

प्रभात कुमार तिवारी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सीमत सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून- सेवा वाद- उत्तर प्रदेश उपनिरीक्षक एवं निरीक्षक (नागरिक पुलिस)

सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2016 - नियम 10 में प्रावधान है - 'सीधी भर्ती के लिए अभ्यर्थी की आयु 21 वर्ष होनी चाहिए तथा सीधी भर्ती के लिए रिक्तियों के विज्ञापन वाले कैलेंडर वर्ष की पहली जुलाई को 28 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।' याचिकाकर्ता ने नियम 10 की वैधता को चुनौती दी। याचिकाकर्ता का जन्म 01 जुलाई को हुआ था, फलस्वरूप उसकी आयु कटऑफ तिथि को 28 वर्ष और एक दिन थी, इसलिए वह नियम 10 के दायरे में आता है। आयोजित, याचिकाकर्ता यह दिखाने में असमर्थ रहा कि 2016 की नियमावली में संशोधन से नियम 10 किस प्रकार स्पष्ट रूप से मनमाना हो जाता है, मात्र इसलिए कि नियम बनाने वाला प्राधिकारी नहीं चाहता कि उपनिरीक्षक के पद के लिए कोई अभ्यर्थी, जिसने कटऑफ तिथि को 28 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो, पद के लिए योग्य माना जाए। (पैरा 24)

निरस्त (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. टी.एन. राज्य बनाम पी. कृष्णमूर्ति, (2006) 4 एससीसी 517
2. सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया एवं अन्य, (2016) 7 एससीसी 703
3. इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (पी) लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई., (1985) 1 एससीसी 641
4. खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, (1996) 10 एससीसी 304
5. शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम ए.पी. सरकार एवं अन्य, (2002) 2 एससीसी 188
6. भारत संघ बनाम पुष्पा रानी एवं अन्य, (2019) 9 एससीसी 242
7. चंडीगढ़ प्रशासन बनाम उषा खेतरपाल वाई एवं अन्य, (2011) 9 एससीसी 645
8. महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वराडे, (2019) 6 एससीसी 362
9. पंजाब नेशनल बैंक बनाम अनित कुमार दास, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 897
10. ज़हूर अहमद रथेर वीएस सिख इम्तियाज़ अहमद, (2019) 2 सी सी 404
11. संजय कुमार मंजुल वीएस चेयरमैन, यूपीएससी, (2006) 8 सी सी 42

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सीमांत सिंह और राज्य-प्रत्यर्थी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने द्वितीय प्रतिवादी, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ (संक्षेप में "बोर्ड") द्वारा दिनांक 25 फरवरी 2021 की अधिसूचना के तहत सीधी भर्ती 2020-21 के अंतर्गत उप-निरीक्षक (सिविल पुलिस) एवं अन्य समकक्ष पद के लिए आवेदन किया था।

3. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस) सेवा (द्वितीय संशोधन) नियमावली, 2016 (संक्षेप में 'नियमावली 2016') के नियम 10 की वैधता को चुनौती दे रहा है।

4. नियम 10 आयु के संबंध में पात्रता प्रदान करता है। प्रारंभ में अधिनियमित नियम इस प्रकार है:

*"**आयु-10.** सीधी भर्ती के लिए आवश्यक है कि जिस कैलेण्डर वर्ष में सीधी भर्ती की रिक्तियां विज्ञापित की जाय, **उसकी जुलाई के प्रथम दिन अभ्यर्थी ने 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो और 28 वर्ष से अधिक की आयु प्राप्त न की हो;***

परन्तु....."

5. बाद में नियम को निम्नलिखित शर्तों में संशोधित किया गया। संशोधित नियम इस प्रकार है:

*"**आयु-10.** सीधी भर्ती के लिए आवश्यक है कि जिस कैलेण्डर वर्ष में सीधी भर्ती की रिक्तियाँ विज्ञापित की जायं, **उसकी जुलाई के प्रथम दिन अभ्यर्थी ने 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो और 28 वर्ष की आयु प्राप्त न की हो;***

परन्तु..... "

6. याचिकाकर्ता का तर्क है कि नियमावली 2016 के नियम 10 के अनुसार, अभ्यर्थी की आयु कैलेंडर वर्ष की पहली जुलाई को 28 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभ्यर्थी की आयु 28 वर्ष से कम होनी चाहिए, अर्थात 30 जून को दोपहर 12 बजे 28 वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला अभ्यर्थी अयोग्य हो जाएगा, क्योंकि कैलेंडर वर्ष की पहली जुलाई को उसकी आयु 28 वर्ष हो जाएगी। पहले के नियम के अनुसार यह अनिवार्य था कि अभ्यर्थी की आयु कैलेंडर वर्ष की पहली जुलाई को 28 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए, अर्थात पहली जुलाई को 28 वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला अभ्यर्थी ही पात्र होगा। दूसरे शब्दों में, चुनौती दिए गए नियम के अनुसार अभ्यर्थी की आयु कैलेंडर वर्ष की पहली जुलाई को 28 वर्ष से कम होनी चाहिए। याचिकाकर्ता का जन्म 01 जुलाई को हुआ था, फलस्वरूप उसकी आयु 28 वर्ष हो गई तथा कट ऑफ तिथि से एक दिन अधिक हो गई, अर्थात् उसकी आयु 28 वर्ष हो गई, अतः वह नियम 10 के अधीन आता है।

7. उपरोक्त उद्धृत किया गया नियम चुनौती के अधीन है।

8. इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि नियम 10 स्पष्टतः मनमाना है तथा इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के विरुद्ध घोषित किया जा सकता है।

9. विरोधी प्रस्तुतियाँ विचार के लिए आती हैं।

10. सवाल यह उठता है कि क्या आक्षेपित नियम स्पष्ट रूप से मनमाना/अनुचित है जो इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन बनाता है।

अनुवादित

11. किसी अधीनस्थ कानून की संवैधानिकता या वैधता के पक्ष में एक धारणा है और यह दिखाने का बोझ उस पर है जो इसे चुनौती देता है कि यह अधिकारातीत/अमान्य है। यह भी सर्वमान्य है कि अधीनस्थ कानून को निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है:

"(क) अधीनस्थ कानून बनाने के लिए विधायी क्षमता का अभाव।

(ख) भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन।

(ग) भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन।

(घ) उस क़ानून के अनुरूप होने में विफलता जिसके तहत इसे बनाया गया है या सक्षम अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार की सीमा से अधिक है।

(ङ) देश के कानूनों, यानी किसी भी अधिनियम के प्रति प्रतिकूलता।

(च) मनमानी/अनुचितता प्रकट करना (उस हद तक जहां न्यायालय यह कह सकता है कि विधायिका ने कभी भी ऐसे नियम बनाने का अधिकार देने का इरादा नहीं किया था)।"

(देखें: तमिलनाडु राज्य बनाम पी. कृष्णमूर्ति और सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया और अन्य)

12. अधीनस्थ कानून की संवैधानिकता को चुनौती देने के लिए एक परीक्षण यह है कि अधीनस्थ कानून स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं होना चाहिए। साथ ही, यह स्थापित कानून है कि पूर्ण कानून को चुनौती देने के लिए उपलब्ध किसी भी आधार पर अधीनस्थ कानून को चुनौती दी जा सकती है। **(संदर्भ: इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (प्रा.) लिमिटेड बनाम भारत संघ)**

13. यह हमें 'स्पष्ट मनमानी' के परीक्षण पर विचार करने के लिए ले जाता है। इसे **खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य** मामले में अच्छी तरह से समझाया गया है, जो इस प्रकार है:

"13... मनमाने कार्यवाही के जो परीक्षण कार्यकारी कार्यों पर लागू होते हैं, वे आवश्यक रूप से प्रत्यायोजित विधान पर भी लागू नहीं होते। प्रत्यायोजित विधान को रद्द करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसा विधान स्पष्ट रूप से मनमाना हो; ऐसा कानून जिसके बारे में यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह कानून बनाने की शक्ति प्रत्यायोजित प्राधिकारी से ही उत्पन्न होगा। इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (प्रा.) लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1985) 1 एससीसी 641: 1985 एससीसी (कर) 121:

(1985) 2 एससीआर 287] के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि अधीनस्थ कानून को उतनी प्रतिरक्षा प्राप्त नहीं होती जितनी किसी सक्षम विधायिका द्वारा पारित कानून को प्राप्त होती है। ***अनुच्छेद 14 के अंतर्गत अधीनस्थ विधान पर इस आधार पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि वह अनुचित है; "अनुचित इस अर्थ में नहीं कि वह उचित नहीं है, बल्कि इस अर्थ में कि वह स्पष्टतः मनमाना है" ..... भारत में मनमानी कोई अलग आधार नहीं है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत आता है। लेकिन अधीनस्थ विधान इतना मनमाना होना चाहिए कि यह न कहा जा सके कि वह कानून के अनुरूप है या संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।"***

(प्रभाव वर्धित)

14. इसके अलावा **शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य** में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया:

"25... कार्यकारी कार्रवाई पर लागू मनमानी कार्रवाई के परीक्षण आवश्यक रूप से प्रत्यायोजित विधान पर भी लागू नहीं होते। किसी प्रत्यायोजित विधान को मनमाना करार देने के लिए यह स्थापित करना होगा कि उसमें स्पष्ट मनमानी है। ***मनमाना करार दिए जाने के लिए यह दिखाना होगा कि वह उचित नहीं था और स्पष्ट रूप से मनमाना था। "मनमाने ढंग से" का अर्थ है: अनुचित तरीके से, जैसा कि तय किया गया हो या स्वेच्छा से या इच्छानुसार किया गया हो, पर्याप्त निर्धारण सिद्धांत के बिना, चीजों की प्रकृति पर आधारित न हो, गैर-तर्कसंगत, तर्क या निर्णय के अनुसार न किया गया हो या कार्य न किया गया हो, केवल इच्छा पर निर्भर हो.....।"***

(प्रभाव वर्धित)

15. यह सुस्थापित है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग ऐसे मामलों में केवल तभी किया जा सकता है जब यह दिखाया जाए कि नियोक्ता की कार्रवाई किसी भी संविधान या वैधानिक प्रावधान के विपरीत है या स्पष्ट रूप से मनमानी है या दुर्भावना के कारण दोषपूर्ण हो गई है। यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि पदों के निर्माण और समाप्ति या संवर्गों की संरचना और पुनर्गठन, भर्ती का तरीका और योग्यता निर्धारित करना, चयन के मानदंड, उम्मीदवारों/कर्मचारियों का मूल्यांकन से संबंधित मामले नियोक्ता के विशेष क्षेत्र में आते हैं।

16. **भारत संघ बनाम पुष्पा रानी और अन्य** मामले में, यह अवधारित किया गया कि न्यायालय और न्यायाधिकरण न तो योग्यता निर्धारित कर सकते हैं और न ही भर्ती और चयन के मानदंड और पद्धति निर्धारित करने वाले नियोक्ता के फैसले पर अपील कर सकते हैं। प्रस्तर 37 इस प्रकार है:

"3..... प्रशासन की दक्षता में सुधार के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए यह भी नियोक्ता का अधिकार है। ऐसे

अनुवादित

मामलों में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब यह दिखाया जाए कि नियोक्ता की कार्रवाई किसी संवैधानिक या वैधानिक प्रावधान के विपरीत है या स्पष्ट रूप से मनमाना है या दुर्भावना के कारण दूषित है। ***न्यायालय नियोक्ता के फैसले पर अपील नहीं कर सकता और यह आदेश नहीं दे सकता कि कोई विशेष पद सीधी भर्ती या पदोन्नति या स्थानांतरण द्वारा भरा जाए। भर्ती की पद्धति निर्धारित करने या चयन के मानदंड निर्धारित करने में न्यायालय की कोई भूमिका नहीं है।*** *न्यायालय को अभ्यर्थियों की योग्यता का तुलनात्मक मूल्यांकन करने का भी अधिकार नहीं है।* ***न्यायालय यह सुझाव नहीं दे सकता कि नियोक्ता को प्रशासन की दक्षता में सुधार के उद्देश्य से कैडर की संरचना या पुनर्गठन कैसे करना चाहिए।"***

(प्रभाव वर्धित)

17. इसी प्रकार, **चंडीगढ़ प्रशासन बनाम उषा खेतरपाल वाई और अन्य** में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 22 में, इस प्रकार अवधारित किया:

"22. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि किसी भी भर्ती के लिए चयन का तरीका और न्यूनतम योग्यता निर्धारित करना नियम बनाने वाले प्राधिकारी या नियुक्ति प्राधिकारी का कार्य है। अदालतें और न्यायाधिकरण न तो योग्यता निर्धारित कर सकते हैं और न ही इसकी शक्ति बढ़ा सकते हैं। प्राधिकारी तब तक चिंतित हैं जब तक नियोक्ता द्वारा निर्धारित योग्यताएं उचित रूप से प्रासंगिक हैं और पद से जुड़े कार्यों और कर्तव्यों के साथ तर्कसंगत संबंध रखती हैं और संविधान, क़ानून और नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती हैं [देखें जे. रंगास्वामी बनाम ए.पी. सरकार (1990) 1 एससीसी 288 और पी.यू. जोशी बनाम महालेखाकार (2003) 2 एससीसी 632]। किसी भी नियम के अभाव में, अनुच्छेद 309 या क़ानून के तहत, अपीलकर्ता के पास प्रशासन की अपनी सामान्य शक्ति के तहत नियुक्ति करने और निर्धारित करने की शक्ति थी। इस तरह के पात्रता मानदंड को आवश्यक और उचित माना जाता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि पी.एच.डी. का निर्धारण अनुचित है।"

18. कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि नियोक्ता कानून बनाने और उम्र सहित भर्ती और चयन की शर्तें प्रदान करने के लिए स्वतंत्र है। न्यायालय नियोक्ता के विवेक को तब तक प्रतिस्थापित नहीं करेगा जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि नियम स्वयं अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के लिए स्वाभाविक रूप से मनमाना है। नियमावली 2016 के नियम 10 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते समय ऐसा कोई आधार नहीं उठाया गया है।

19. तदनुसार, नियोक्ता को योग्यता, आयु निर्धारित करने और भर्ती का तरीका तय करने का पूर्ण विवेकाधिकार है। न्यायिक समीक्षा की आड़ में न्यायालय, भर्ती प्रक्रिया में नियोक्ता के लिए क्या सबसे उपयुक्त है, यह निर्णय लेने के लिए नियम बनाने वाले प्राधिकारी का स्थान नहीं लेगा। चयनित अभ्यर्थियों को जो कार्य करना है उसकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, नियोक्ता को हमेशा अधिकतम आयु सीमा निर्धारित करने की स्वतंत्रता होती है। आयु में मात्र एक दिन की कमी करने से नियम 10 स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं हो जाएगा, जिससे वह संविधान के विरुद्ध हो जाएगा।

20. **महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वारडे** मामले में, न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

*"9. किसी पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएं नियोक्ता को तय करना है। **नियोक्ता***

***किसी भी वरीयता अनुदान सहित अतिरिक्त या वांछनीय योग्यताएं निर्धारित कर सकता है। यह नियोक्ता ही है जो नियोक्ता की जरूरतों और काम की प्रकृति के अनुसार उम्मीदवार की आवश्यकताओं को तय करने के लिए सबसे उपयुक्त है।** किसी भी मामले में न्यायालय, न्यायिक समीक्षा की आड़ में, नियुक्ति प्राधिकारी की कुर्सी पर बैठकर यह तय नहीं कर सकता कि नियोक्ता के लिए सबसे अच्छा क्या है और विज्ञापन की शर्तों की स्पष्ट भाषा के विपरीत व्याख्या नहीं कर सकता है।"*

21. **पंजाब नेशनल बैंक बनाम अनित कुमार दास** में, न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

*"21. किसी भी पद के लिए योग्यता की प्रासंगिकता और उपयुक्तता का निर्धारण और निर्णय करना नियोक्ता का काम है, इस पर विचार करना और मूल्यांकन करना न्यायालय का काम नहीं है। न्यायालयों द्वारा नियोक्ता को किसी भी पद के लिए योग्यता निर्धारित करने की अधिक छूट दी गई है। इसके पीछे एक औचित्य है। योग्यताएं किसी संस्थान या उद्योग या प्रतिष्ठान की आवश्यकता और रुचि को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जाती हैं। **न्यायालय ऐसी योग्यताओं के निर्धारण की समीचीनता, उपयुक्तता या उपयोगिता का आकलन करने के लिए उपयुक्त साधन नहीं हैं..."***

22. इसी प्रकार, **जहूर अहमद राथर बनाम शेख इम्तियाज अहमद** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

*"27. **राज्य को अपनी सार्वजनिक सेवाओं की आवश्यकताओं का आकलन करने का अधिकार सौंपा गया है। प्रशासन की अत्यावश्यकताएँ, यह घिसा-पिटा कानून है, प्रशासनिक निर्णय लेने के क्षेत्र में आती हैं।** एक*

अनुवाद

सार्वजनिक नियोक्ता के रूप में राज्य उन सामाजिक परिप्रेक्ष्यों को ध्यान में रख सकता है जिनके लिए सामाजिक संरचना में नौकरी के अवसरों के निर्माण की आवश्यकता होती है। ये सभी मूलतः नीति के मामले हैं। न्यायिक समीक्षा को सावधानी से चलना चाहिए"

23. सर्वोच्च न्यायालय ने इसी तरह **संजय कुमार मंजुल बनाम अध्यक्ष, यूपीएससी** मामले में निम्नानुसार टिप्पणी की:

"25. वैधानिक प्राधिकारी सेवा के नियमों और शर्तों के साथ-साथ किसी विशेष पद को धारण करने के लिए आवश्यक योग्यताएं निर्धारित करने वाले वैधानिक नियम बनाने का हकदार है। इसलिए केवल संबंधित प्राधिकारी ही अंतिम निर्णय ले सकता है।

27. यह सुस्थापित है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 32 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय आमतौर पर किसी नियोक्ता को किसी विशेष पद को धारण करने के लिए योग्यता निर्धारित करने का निर्देश नहीं देते हैं।

(प्रभाव वर्धित)

24. विशिष्ट प्रश्न पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह बताने में असमर्थ हैं कि कैसे नियमावली 2016 में संशोधन नियम 10 को केवल इस कारण से मनमाना बना देता है कि नियम बनाने वाला प्राधिकारी उप-निरीक्षक के पद के लिए उम्मीदवार नहीं चाहता है जिसने पद के लिए पात्र माने जाने की तिथि पर 28 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है।

25. तदनुसार, उपरोक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका में मेरिट न होने के कारण **खारिज** की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1592

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार IV

रिट-ए संख्या 6089/2023

सत्य नारायण दुबे ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री संतोष कुमार कुशवाहा

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: ए.एस.जी.आई.

सिविल कानून- सेवा वाद- रेलवे सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1968 - नियम 14(1) -जहां किसी रेलवे सेवक पर आचरण के आधार पर कोई जुर्माना लगाया जाता है, जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों पर विचार कर सकता है और इस पर ऐसे आदेश दे सकता है जैसा वह ठीक समझे । विवाद: क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी को नियम, 1968 के नियम 14(1) के तहत तर्कपूर्ण और स्पष्ट

आदेश पारित करने की आवश्यकता है? आयोजित, नियम की आवश्यकता अनुशासनात्मक प्राधिकारी को मामले की 'परिस्थितियों पर विचार' अर्थात, अधिकारी की सजा के लिए निचली अदालत का निर्णय करने का आदेश देती है। आपराधिक आरोप में अधिकारी के दोषी होने के लिए जिस आचरण/भूमिका की वजह बनी, उस पर विचार किया जाना चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को परीक्षण कार्यवाही के गुण/साक्ष्य में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है। नियम प्राधिकारी को तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश पारित करने के लिए अनिवार्य नहीं करता है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सरकारी कर्मचारी को दोषी ठहराते हुए निचली अदालत द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों पर अपील में बैठने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड के आदेश में स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण पर विचार किया गया था और मुकदमे में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप विधिवत साबित हुआ था। न्यायालय ने माना कि यह नियम, 1968 के नियम 14(1) का पर्याप्त अनुपालन था। (पैरा 16, 17)

निरस्त (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार IV द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता - आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और भारत संघ/रेलवे विभाग के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ, इलाहाबाद (संक्षेप में, "न्यायाधिकरण") द्वारा मूल आवेदन संख्या 330/1393 सन् 2011, (सत्य नारायण दुबे बनाम भारत संघ और अन्य) में पारित दिनांक 28.03.2022 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित है।

3. याचिकाकर्ता की सेवाएं रेलवे सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1968 (संक्षेप में "नियमावली 1968") के नियम 14(1) के अनुसार समाप्त कर दी गईं, जिससे विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा उन्हें भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409 और 477-क तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13(2) और 13(1) के तहत 7 वर्ष, 2 वर्ष और 5 वर्ष के कठोर कारावास तथा जुर्माना लगाने का आदेश दिया गया।

4. याचिकाकर्ता को अपीलीय न्यायालय द्वारा जमानत दे दी गई है। विद्वान न्यायाधिकरण का विचार था कि अनुशासनिक प्राधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित कोई भी आदेश तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश के रूप में योग्य नहीं है। लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता को ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषी ठहराया गया है और उस पर लगाया गया जुर्माना बरकरार रखने योग्य है।

5. आक्षेपित आदेश के पैराग्राफ संख्या 5 और 6 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"5. इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारा यह दृढ़ मत है कि तीनों आदेशों में से कोई भी, अर्थात् अनुशासनिक प्राधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी का आदेश, तर्कपूर्ण और वाक्पटु आदेश नहीं माना जा सकता, हमें इस तथ्य का भी संज्ञान लेना होगा कि आवेदक को सक्षम आपराधिक न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है, और भले ही आदेश कानूनी अशक्तता से ग्रस्त हैं, सेवा से निष्कासन के दंड का मूल कारण कायम है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक ने अपनी सजा के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है, जो अभी भी लंबित है।

6. मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में आवेदक को कोई राहत देना उचित नहीं होगा, भले ही उसे गुप्त और अनाख्यापक आदेश के माध्यम से सेवा से हटा दिया गया हो। इसलिए, चूंकि इस समय कोई राहत संभव नहीं है, इसलिए इस ओ.ए. का निस्तारण किया जाता है। यदि आवेदक अपनी आपराधिक अपील में पर्याप्त और उचित राहत का प्रबंधन करता है तो वह इसे पुनर्जीवित करने के लिए स्वतंत्र होगा।"

6. जमानत पर रिहा होने के बाद याचिकाकर्ता प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ और ट्रायल कोर्ट के आदेश की प्रति प्रस्तुत की, जिसके अनुसरण में, दिनांक 01.11.2007 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने के प्रस्तावित दंड पर आपत्ति/अभ्यावेदन दायर करने के लिए कहा गया। इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 08.11.2007 को उपस्थित होकर अपनी आपत्ति दर्ज कराई, जिसमें एक रहस्यमय उत्तर दिया गया कि वह सीबीआई अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश से संतुष्ट नहीं है। इसके अलावा, यह भी कहा गया है कि उन्होंने एक अपील दायर की है जिसे स्वीकार कर लिया गया है, फलस्वरूप, उन्होंने प्रार्थना की है कि उनकी बहाली के मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाए।

7. अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक 18.12.2007 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन/स्पष्टीकरण पर ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात उसे अस्वीकार कर दिया तथा उनकी राय थी कि दोषी कर्मचारी के विरुद्ध आपराधिक मुकदमे में आरोप सिद्ध हो चुका है। तदनुसार, निष्कासन की सजा अधिरोपित की गई। याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण के बाद अपील दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया।

8. इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता पर दंड लगाने वाले आक्षेपित आदेश तर्कसंगत और आख्यापक आदेश के रूप में योग्य नहीं हैं, इसलिए, मामले को नियम 1968 के नियम 14 (i) के अनुसार एक नया आदेश पारित करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को भेजा जाना चाहिए था, जिसमें यह प्रावधान है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी मामले की

परिस्थितियों पर विचार कर सकता है और उसके आधार पर आदेश पारित कर सकता है।

9. विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी को नियमावली, 1968 के नियम 14(i) के तहत एक तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश पारित करने की आवश्यकता है।

10. याचिकाकर्ता की सेवाएं सीसीएस (सीसीए) नियम, 1968 (संक्षेप में 'नियम, 1968') के नियम 14 (i) के तहत समाप्त कर दी गईं। नियम, 1968 का नियम 14 निम्नलिखित है:-

"14. कुछ मामलों में विशेष प्रक्रिया

नियम 9 से 13 में निहित किसी बात के होते हुए भी:

(i) जहां किसी रेलवे कर्मचारी पर आचरण के आधार पर कोई जुर्माना लगाया जाता है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया हो; या

(ii) .....

(iii) .....

अनुशासनिक प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों पर विचार कर सकेगा और उसके आधार पर ऐसे आदेश दे सकेगा जो वह उचित समझे:

[परन्तु कि रेलवे कर्मचारी को खंड (i) के अंतर्गत आने वाले मामले में कोई आदेश दिए जाने से पहले लगाए जाने वाले प्रस्तावित दंड पर अभ्यावेदन करने का अवसर दिया जा सकता है।

परन्तु कि इस नियम के तहत किसी भी मामले में कोई भी आदेश देने से पहले, जहां ऐसा परामर्श आवश्यक हो, आयोग से परामर्श किया जाएगा।]"

11. जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निर्णय के पीछे कारण बताता है, तो उस निर्णय को तर्कसंगत निर्णय माना जाता है। आख्यापक आदेश या तर्कपूर्ण आदेश को प्राकृतिक न्याय का तीसरा स्तंभ माना जाता है। न्यायिक समीक्षा के लिए आख्यापक आदेश आवश्यक हैं। मामले की परिस्थितियाँ साक्ष्य का एक हिस्सा है जो किसी घटना (जैसे अपराध) की संभावना या असंभावना को इंगित करती है।

12. यह सच है कि याचिकाकर्ता को रेलवे द्वारा की गई शिकायत पर भ्रष्टाचार के एक मामले में दोषी ठहराया गया था, जबकि याचिकाकर्ता सेक्शन इंजीनियर था। भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों में अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए मामले की परिस्थितियों पर विचार करने के लिए अधिक कुछ नहीं होता है, क्योंकि तथ्यों के विस्तृत निष्कर्ष तथा उनके समर्थन में साक्ष्य पर विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित निर्णय तथा आदेश में विचार किया गया था।

13. याचिकाकर्ता का मामला यह नहीं है कि उसे केवल भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया था। उस स्थिति में अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपराध करने वाले अधिकारी की परिस्थितियों, भूमिका और आचरण पर विचार करने के लिए बाध्य था। उदाहरण के लिए, क्या अपराध करने में दोषी कर्मचारी की भूमिका केवल प्रोत्साहन देने तक ही सीमित थी, इससे अधिक कुछ नहीं, उस स्थिति में अनुशासनात्मक प्राधिकारी अधिकारी पर दंड लगाने का प्रस्ताव करते समय मामले की परिस्थितियों पर विचार करेगा। अपराध में प्रत्यक्ष भूमिका के मामले में विभागीय दंड कठोर होगा।

14. भ्रष्टाचार के मामले अलग-अलग स्तर पर होते हैं, तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास दोषी कर्मचारी से संबंधित मामले की परिस्थितियों पर विचार करने के लिए अधिक कुछ नहीं होता। भ्रष्टाचार के अपराध में याचिकाकर्ता की संलिप्तता प्रत्यक्ष है, क्योंकि वह इसका मुख्य सरगना है।

15. हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील में दम नहीं पाते कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा एक तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश पारित किया जाना चाहिए था।

16. नियम 14 के तहत सरकारी कर्मचारी की दोषसिद्धि के मामले में 'मामले की परिस्थितियों' पर विचार करना तथा उसके आधार पर आदेश देना अपेक्षित है। नियम में प्राधिकरण को तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश पारित करने का अधिकार नहीं दिया गया है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सरकारी कर्मचारी को दोषी ठहराने वाले ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए निष्कर्षों पर अपील में बैठने की आवश्यकता नहीं है।

17. अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड के आदेश में स्पष्ट रूप से दर्ज है कि याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण पर विचार किया गया था और मुकदमे में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप विधिवत साबित हुआ था। यह नियम 1968 के नियम 14 (i) का पर्याप्त अनुपालन है। विद्वान न्यायाधिकरण ने नियम 14 (i) को गलत पढ़ा, जिसके लिए तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश की आवश्यकता थी, जो नियम 14 (i) के तहत अनिवार्य नहीं है। नियम की आवश्यकता यह है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों पर विचार करेगा, अर्थात ट्रायल कोर्ट के निर्णय पर विचार करेगा जिसके आधार पर अधिकारी को दोषी ठहराया गया है। उस आचरण/भूमिका पर विचार किया जाना चाहिए जिसके कारण अधिकारी को आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को परीक्षण कार्यवाही के गुण-दोष/साक्ष्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। याचिकाकर्ता का यह मामला नहीं है कि अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व के निर्वहन के दौरान भ्रष्टाचार के कृत्य में उसकी भूमिका प्राथमिक न होकर गौण थी।

18. हमें याचिका में कोई दम नहीं दिखता। इसलिए रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

19. लागत के लिए कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1595

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

रिट-ए संख्या 21096/2018

विजय पल और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री श्यामल नारायण, श्री रवि प्रकाश भट्ट

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री विवेक कुमार राय, श्री मनीष पांडे, श्री रजनीश कुमार राय

सिविल कानून- सेवा वाद - नियुक्ति - नियुक्ति की अस्वीकृति - विशेषज्ञ की राय के आधार पर, याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी को हस्तलेखन/अंगूठे के निशान के मेल न खाने की टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया था। रेलवे का निर्णय केवल विशेषज्ञ की राय पर आधारित था, याचिकाकर्ताओं को कोई अवसर दिए बिना या उन्हें सामग्री/राय, यानी संदिग्ध दस्तावेजों के लिए सरकारी परीक्षक (जीईक्यूडी) की राय से सामना कराए बिना। आयोजित, अगर याचिकाकर्ताओं को अवसर दिया गया होता, तो वे अपने बचाव में रेलवे का सामना करने के लिए किसी अन्य विशेषज्ञ की राय प्राप्त कर सकते थे। याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी को निरस्त करने का आक्षेपित आदेश केवल हस्तलेखन विशेषज्ञ की राय के आधार पर बरकरार नहीं रखा जा सकता था, जो कि याचिकाकर्ताओं की पीठ पीछे, उन्हें दोषपूर्ण सामग्री के साथ सामना किए बिना और किसी अन्य सबूत के समर्थन के बिना प्राप्त किया गया था। प्रतिवादियों की कार्रवाई प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं थी। प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं को ग्रुप-डी पदों पर तुरंत नियुक्त करने का निर्देश दिया गया। (अनुच्छेद 25, 33, 34, 36)

स्वीकृत (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राजेश कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2014 (10) एडीजे 672
2. रण विजय सिंह एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट ए संख्या 2813/2017
3. भारत संघ एवं अन्य बनाम रण विजय सिंह एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 1045/2018, 8 मई 2019 को निर्णीत
4. भूपेंद्र सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट ए संख्या 35333/2016, दिनांक 30.10.2018 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार IV द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री श्यामल नरैन श्री के सहायक अधिवक्ता श्री रवि प्रकाश भट्ट और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष पांडे को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता/मूल आवेदक, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण इलाहाबाद बेंच,

इलाहाबाद (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण') द्वारा पारित 1 मई 2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती दे रहे हैं, जिसके तहत ग्रुप-डी पद पर नियुक्ति के लिए उनकी उम्मीदवारी को खारिज कर दिया गया है।

3. रेलवे भर्ती सेल, उत्तर मध्य रेलवे, इलाहाबाद (संक्षेप में 'आरआरसी') के तहत ग्रुप-डी पदों यानी खलासी, हेल्पर, ट्रैकमैन, चपरासी, पार्सल पोर्टर, सफाईवाला आदि पर भर्ती के लिए उत्तर मध्य रेलवे, विज्ञापन संख्या 01/2013, दिनांक 27 जुलाई, 2013 के माध्यम से योग्य उम्मीदवारों के लिये आवेदन जारी किए गए हैं।

4. याचिकाकर्ता लिखित परीक्षा में शामिल हुए और सफल घोषित किए गए। चयन सूची आर.आर.सी. की आधिकारिक वेबसाइट पर प्रकाशित की गई थी। इसके बाद, याचिकाकर्ता 10 मार्च 2015 से 14 मार्च 2015 के बीच आयोजित शारीरिक परीक्षा (संक्षेप में 'पी.ई.टी.') के लिए उपस्थित हुए, अंततः याचिकाकर्ताओं सहित 2609 उम्मीदवारों को पी.ई.टी. में सफल घोषित किया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं सहित सभी उम्मीदवारों को दस्तावेजों के सत्यापन और चिकित्सा परीक्षण के लिए बुलाया गया। चयन सूची 15 दिसंबर 2015 को वेबसाइट पर प्रकाशित की गई, जो चौदह पैराग्राफों के एक नोट के साथ था। इस मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक पैरा नीचे प्रस्तुत किया गया है:

> *"जांच और दस्तावेज़ सत्यापन के विभिन्न चरणों के दौरान 339 उम्मीदवार प्रतिरूपण में लिप्त पाए गए। प्रचलित प्रक्रिया के अनुसार यह पाया गया है कि ये अभ्यर्थी लिखित परीक्षा में शामिल नहीं हुए थे, बल्कि इन अभ्यर्थियों के स्थान पर कोई और उपस्थित हुआ था या इन अभ्यर्थियों की लिखावट/अंगूठे का निशान विभिन्न दस्तावेजों में मेल नहीं खाता था। इसलिए 339 उम्मीदवारों की उम्मीदवारी रद्द करने के अलावा उन्हें पूरे भारतीय रेलवे में सभी रेलवे परीक्षाओं से वंचित किया जा रहा है और साथ ही उनके खिलाफ मामले दर मामले के आधार पर आपराधिक मामला भी दर्ज किया जा सकता है।"*

5. याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी को 'हस्तलेख/अंगूठे का निशान बेमेल' टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया था।

6. व्यथित याचिकाकर्ताओं ने ओ.ए. संख्या 1789/ 2015 होने के नाते मूल आवेदन दायर करके न्यायाधिकरण से संपर्क किया। की, विजय पाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, जिसे 1 मई 2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

7. मूल आवेदन के लंबित रहने के दौरान, न्यायाधिकरण द्वारा 31 दिसंबर 2015 को एक अंतरिम आदेश दिया गया था, जिसमें प्रत्यर्थियों को 23 ग्रुप-डी पदों को खाली रखने का निर्देश दिया गया था। आदेश का ऑपरेटिव भाग निकाला जाता है:

असंशोधित

"दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि अस्वीकृति के आधार कलंकपूर्ण हैं और इसलिए प्रत्यर्थियों द्वारा उनकी उम्मीदवारी को अस्वीकार करने से पहले आवेदकों को कुछ अवसर दिया जाना चाहिए था। इसलिए प्रथम दृष्टया अंतरिम सुरक्षा का मामला बनता है। तदनुसार, प्रत्यर्थियों को अगली तारीख तक 23 पद रिक्त रखने का निर्देश दिया जाता है।

यदि तथ्य अन्यथा हैं, तो प्रत्यर्थी स्थगन समाप्ति आवेदन दाखिल करने के लिए स्वतंत्र हैं।"

8. मूल आवेदन के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ताओं को 23 जनवरी 2016 को ज्ञापन जारी किया गया, जिसमें कहा गया था कि हालांकि याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी पहले ही रद्द कर दी गई थी, हालांकि, याचिकाकर्ताओं को प्रत्यर्थियों द्वारा कारण बताने के लिए बुलाया गया था कि वे क्यों भविष्य में सभी आर.आर.सी./आर.आर.बी. से वंचित नहीं किया जा सकता। परीक्षाओं, इसके अलावा, उनके खिलाफ आपराधिक मामला क्यों नहीं शुरू किया जा सकता है धोखाधड़ी और गलत बयानी द्वारा सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए कदाचार में लिप्त होना।

9. नोटिस में आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ताओं ने प्रतिरूपण का सहारा लिया था, इसके अलावा, यह आरोप लगाया गया था कि उम्मीदवारों की लिखावट और/या अंगूठे के निशान में बेमेल था। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप यह था कि उन्होंने अपनी ओर से लिखित परीक्षा में किसी और की सेवाएं हासिल कीं। एक ही तारीख के दो ज्ञापनों में लगाए गए आरोप निकाले गए हैं:

"I. जैसा कि प्रश्नगत दस्तावेज़ों के सरकारी परीक्षक द्वारा पुष्टि की गई है, आवेदन पत्र पर लिखावट और उत्तर पुस्तिका (ओएमआर)/सत्यापन पत्रक पर लिखावट अलग-अलग व्यक्तियों की है। यह स्थापित किया गया है कि उम्मीदवार लिखित परीक्षा या पीईटी परीक्षा में स्वयं उपस्थित नहीं हुआ था, बल्कि उसकी जगह कोई और उपस्थित हुआ था, जो प्रतिरूपण, कदाचार और अपराध का मामला है।

II. जैसा कि आप जानते हैं कि परीक्षा के प्रत्येक चरण के दौरान बायो-मेट्रिक्स उपस्थिति प्राप्त की गई थी। यह आपके ध्यान में लाना है कि दस्तावेज़ सत्यापन के दौरान आपके अंगूठे का निशान लिखित और पीईटी परीक्षा से मेल नहीं खाता है। इसका मतलब है कि कोई अन्य व्यक्ति आपकी उम्मीदवारी का प्रतिरूपण करके लिखित और पीईटी परीक्षा में शामिल हुआ था।"

10. याचिकाकर्ताओं ने प्रतिरूपण या लिखावट, और/या अंगूठे के निशान में बेमेल

के आरोपों से इनकार करते हुए कारण बताओ नोटिस/ज्ञापन पर अपनी आपत्तियां दर्ज कीं। प्रत्यर्थी प्राधिकारी ने 31 मार्च 2016 के आदेश के तहत आपत्ति को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ताओं को भविष्य में आर.आर.बी./आर.आर.सी. में भविष्य में परीक्षा में सम्मिलित होने से रोक दिया गया। .

11. व्यथित याचिकाकर्ताओं ने एक पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से 22 जनवरी 2016 के ज्ञापन और 31 मार्च 2016 के डिबारमेंट आदेश को चुनौती दी।

12. विद्वान न्यायाधिकरण ने दलीलों के आदान-प्रदान और संबंधित पक्षों के अधिवक्ताआेंं को सुनने के बाद, आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं के मूल आवेदन को आंशिक रूप से अनुमति दे दी। याचिकाकर्ताओं को भविष्य में आर.आर.बी./आर.आर.सी. से वंचित करने की हद तक आक्षेपित आदेश परीक्षा क्योंकि डिबार किया गया था। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी रद्द करने के प्रतिवादियों के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया गया।

13. आक्षेपित आदेश का प्रभावी भाग इस प्रकार है:

> *"24. इन परिस्थितियों में, इस मामले में संतोष कुमार तिवारी (उपरोक्त) के मामले में लिए गए निर्णय के बाद, हम भी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से और जैसा कि पैरा 22 में चर्चा की गई है, प्रत्यर्थी आवेदकों के खिलाफ प्रतिरूपण के आरोप को स्थापित करने में सक्षम नहीं हैं, क्योंकि आरोप में केवल अंगूठे के निशान या लिखावट का बेमेल होना शामिल है, आवेदकों के हस्ताक्षर का कोई बेमेल नहीं है। प्रतिरूपण के मामले में हस्ताक्षर में बेमेल का भी पता चल गया होगा। **इस मामले में किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर के बेमेल होने की सूचना नहीं दी गई है या उसका पता नहीं लगाया गया है। हालाँकि, विज्ञापन संख्या 1/2023 के अनुसार परीक्षा के निर्देशों का उल्लंघन है, जिसके लिए आवेदकों की लिखावट में बेमेल या अंगूठे के निशान में बेमेल है और इन बेमेलताओं को एक आवेदक के स्पष्टीकरण के रूप में संतोषजनक ढंग से समझाया नहीं गया है। स्पष्टीकरण/उत्तर** OA के अनुलग्नक A-10 से पता चलता है। वास्तव में, आवेदक द्वारा प्रस्तुत किये गये सपथपत्र में उल्लिखित ऐसे कई उल्लंघन हैं। **इसके अलावा, किसी भी आवेदक के खिलाफ प्रतिरूपण के आरोप के समर्थन में कारण बताओ नोटिस या आक्षेपित आदेश में कोई विशेष कारण नहीं***

बताया गया है। इसलिए, मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हम विज्ञापन संख्या 1/2013 के लिए आवेदकों की उम्मीदवारी रद्द करने को उचित और उचित मानते हैं। लेकिन आरआरसी/आरआरबी की सभी परीक्षाओं के लिए कुछ आवेदकों को वंचित करने का प्रत्यर्थियों का निर्णय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर बिल्कुल भी उचित नहीं है। तदनुसार, आवेदकों को आरआरसी/आरआरबी की सभी परीक्षाओं से वंचित करने वाले दिनांक 31.03.2016 के आक्षेपित आदेश को अपास्त कर दिया जाता है। *हालाँकि, हम विज्ञापन संख्या 1/2013 से संबंधित परीक्षा के लिए आवेदकों की उम्मीदवारी रद्द करने के प्रत्यर्थी संख्या 2 के निर्णय/आदेश को बरकरार रखते हैं। प्रत्यर्थी नंबर 2 को आवेदकों के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई को तदनुसार संशोधित करने का निर्देश दिया जाता है। मामले में OA संख्या 1789/2015 में 23 पद रिक्त रखने और OA संख्या 73/2016 में एक पद रिक्त रखने के अंतरिम आदेशों को निरस्त किया जाता है और यदि कुछ आवेदक अंतरिम आदेशों के आधार पर बाद की परीक्षाओं में अनंतिम रूप से उपस्थित हुए हैं। इस आदेश के अनुसार आरआरसी/आरआरबी की सभी परीक्षाओं से डिबारमेंट की सजा को रद्द करने के मद्देनजर उनकी उम्मीदवारी पर प्रत्यर्थी नंबर 2 द्वारा उक्त परीक्षा के लिए लागू नियमों के अनुसार विचार किया जाएगा।*

25. ओए नंबर 73/2016 के लिए, आवेदक के खिलाफ आरोप जीईक्यूडी द्वारा सत्यापित लिखावट के बेमेल होने का है, जैसे कि ओए नंबर 1789/2015 में आवेदक नंबर 1 का मामला कारण बताओ नोटिस का दिया गया जवाब और आवेदक द्वारा दायर पूरक शपथ पत्र के अनुलग्नक एसए-2 में संलग्न, लिखावट के बेमेल होने के लिए कोई ठोस स्पष्टीकरण नहीं देता है। इसलिए, पैरा 24 के अनुसार निष्कर्ष ओए संख्या 73/2016 के लिए भी लागू होगा।

26. मामले से अलग होने से पहले, हमने देखा कि ऐसा प्रतीत होता है कि आरआरसी/आरआरबी द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करने के लिए कोई नियम या विनियमन नहीं है, उन स्थितियों में जहां किसी उम्मीदवार के लिए लिखावट या अंगूठे के निशान का बेमेल होना या विसंगतियां हैं। हस्ताक्षर आदि या परीक्षा में प्रतिरूपण का आरोप, क्योंकि इस मामले में हमारे सामने ऐसा कोई नियम/विनियम प्रस्तुत नहीं किया गया है। प्रत्यर्थी कानून के प्रावधान के अनुसार उचित और निष्पक्ष

तरीके से ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए एक उचित नियम/विनियम बनाने पर विचार कर सकते हैं।"

14. याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट याचिका दायर करने पर इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने 1 अक्टूबर 2018 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसमें अगले आदेश तक न्यायाधिकरण के विवादित आदेश पर रोक लगा दी गई और प्रतिवादियों को 23 पद खाली रखने का निर्देश दिया गया। रिट याचिका के नतीजे का पालन करें। अंतरिम आदेश का प्रभावी भाग प्रस्तुत किया गया है:

"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अगले आदेश तक, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ, इलाहाबाद द्वारा ओ.ए. क्रमांक 1789/2015 में पारित आदेश दिनांक 01.05.2018 को स्थगित रखा जाएगा और प्रतिवादियों को 23 पद रिक्त रखने का निर्देश दिया जाता है।"

15. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, विशिष्ट प्रश्न पर, स्वीकार करते हैं कि प्रतिवादी-रेलवे ने विद्वान न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका दायर नहीं की है, जहां तक कि, आक्षेपित आदेश में प्रतिरूपण के संबंध में एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि '... प्रत्यर्थियों आवेदकों के खिलाफ प्रतिरूपण के आरोप को स्थापित करने में सक्षम नहीं है, क्योंकि आरोप में आवेदकों के हस्ताक्षर के बिना किसी भी बेमेल के केवल अंगूठे के निशान या लिखावट का बेमेल होना शामिल है। प्रतिरूपण के मामले में, हस्ताक्षर में बेमेल का भी पता लगाया जाएगा। इस मामले में किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर के बेमेल होने की सूचना नहीं दी गई है या उसका पता नहीं लगाया गया है...'

16. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जहां तक याचिकाकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए प्रतिरूपण के आरोप को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा विश्वास के योग्य नहीं माना गया था, बल्कि, प्रतिरूपण के आरोप को विशेष रूप से खारिज कर दिया गया था। इस आशय का निष्कर्ष अंतिम रूप ले चुका है क्योंकि इसे प्रत्यर्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है।

17. इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिरूपण के अविश्वसनीय होने के संबंध में एक स्पष्ट निष्कर्ष लौटाने के बाद, न्यायाधिकरण ने परीक्षा में याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी रद्द करने के प्रत्यर्थियों के निर्णय को बरकरार रखने में त्रुटि की। दूसरे शब्दों में, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता परीक्षा में शामिल हुए थे और नियुक्ति के हकदार हैं। ऐसी स्थिति में लिखावट/अंगूठे के निशान के बेमेल होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

18. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज की गई स्पष्ट खोज कि '...प्रत्यर्थी आवेदकों के खिलाफ प्रतिरूपण के आरोप को स्थापित करने में सक्षम नहीं हैं...' लिखावट, या अंगूठे के

निशान के बेमेल होने के कारण विरोधाभासी है , प्रतिरूपण की स्थिति में संभव है।

19. आगे आग्रह किया गया है कि यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सभी याचिकाकर्ता प्रतिरूपण के मुख्य आरोप से पूरी तरह से बरी हो गए हैं जो उन्हें जारी किए गए कारण बताओ नोटिस/ज्ञापन का सार और आधार था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी कारण बताओ नोटिस/ज्ञापन जारी होने से पहले ही रद्द कर दी गई थी, तदनुसार, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ प्रतिवादी-रेलवे के मन में पूर्व-निर्धारण का एक तत्व है। ज्ञापन प्रतिरूपण का सहारा लेने के लिए भविष्य की सभी परीक्षाओं से प्रतिबंधित करने तक सीमित था।

20. प्रत्यर्थी द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में, इस बात पर विवाद नहीं किया जा रहा है कि यहां याचिकाकर्ताओं को विशेषज्ञ की राय या संदिग्ध दस्तावेजों के लिए सरकारी परीक्षक (जीईक्यूडी) की राय का सामना नहीं करना पड़ा। यह स्वीकार किया गया है कि विशेषज्ञ की राय के आधार पर आरोपों पर, याचिकाकर्ताओं को उनके डिबारमेंट के संबंध में कारण बताने के लिए ज्ञापन दिया गया था, न कि परीक्षा में उनकी उम्मीदवारी रद्द करने के संबंध में। दूसरे शब्दों में, जहाँ तक याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी रद्द करना अंतिम था क्योंकि ज्ञापन आरआरबी/आरआरसी में उनके भविष्य के निषेध के साथ सीमित था। परीक्षाएं. आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं के जवाब पर विचार करने के बाद, उम्मीदवारों को वंचित कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी आक्षेपित आदेश में उल्लेखित अनियमितताओं/चूक के कारण रद्द कर दी गई थी। हालाँकि, इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ताओं के लिए उपयुक्त सामग्री पर भरोसा नहीं किया गया था, अर्थात, विशेषज्ञ की राय याचिकाकर्ताओं को प्रदान नहीं की गई थी, न ही इस न्यायालय या न्यायाधिकरण के समक्ष दायर की गई थी। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी रद्द करते समय उनकी पीठ पीछे उम्मीदवारी रद्द करने के आदेश पारित किए गए, इसके बाद, नोटिस पर, याचिकाकर्ताओं को भविष्य की सभी आरआरबी परीक्षाओं के लिए वंचित कर दिया गया।

21. यह प्रतिवादी-रेलवे का मामला नहीं है कि कारण बताओ नोटिस/ज्ञापन को हस्तलेखन विशेषज्ञ की राय सहित किसी भी सामग्री द्वारा समर्थित किया गया था। आवेदन पत्र पर या लिखित परीक्षा/पी.ई.टी. से संबंधित बाद के प्रश्नपत्रों पर लिखावट/अंगूठे के निशान के बेमेल होने के आरोप को सही ठहराने के लिए ज्ञापन के समर्थन में हस्तलेखन विशेषज्ञ की राय प्रदान नहीं की गई थी। याचिकाकर्ताओं द्वारा किया गया। यह पूरी कवायद याचिकाकर्ताओं के पीछे रेलवे द्वारा की गई।

22. जिस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या प्रत्यर्थियों को रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर याचिकाकर्ताओं को प्रतिरूपण, और/या, विभिन्न दस्तावेजों पर लिखावट/अंगूठे के

निशान के बेमेल होने का दोषी ठहराना उचित था।

23. **राजेश कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य**[1] में, इस न्यायालय ने कहा कि लिखावट विशेषज्ञ की राय सर्वोत्तम रूप से एक राय है, जो लिखावट या प्रतिरूपण के बेमेल होने का निर्णायक प्रमाण नहीं है। विशेषज्ञ की राय को बहुत कमजोर प्रकृति का माना गया है, जिसके लिए आरोप से संबंधित अन्य भौतिक तथ्यों की पुष्टि की आवश्यकता होती है।

24. इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

> *"**किसी विशेषज्ञ का साक्ष्य केवल एक राय है. विशेषज्ञ साक्ष्य केवल साक्ष्य और बाहरी साक्ष्य का एक टुकड़ा है। इस पर अन्य साक्ष्यों के साथ विचार किया जाना चाहिए।** जो मुख्य साक्ष्य होगा और इसकी पुष्टि प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है। न्यायालय को एक वैज्ञानिक राय प्रस्तुत करने के लिए एक विशेषज्ञ की राय स्वीकार्य है जो न्यायाधीश के अनुभव और ज्ञान से बाहर होने की संभावना है। **हालाँकि, इस प्रकार की गवाही को बहुत कमजोर प्रकृति का माना जाता है और विशेषज्ञ को आमतौर पर तथ्यों के बारे में नहीं, बल्कि राय के बारे में बात करने की आवश्यकता होती है।** यह देखकर अक्सर आश्चर्य होता है कि किस सुविधा के साथ, और किस हद तक, उनके विचारों को उन पार्टियों की इच्छाओं और हितों के अनुरूप बनाया जाएगा जो उन्हें बुलाती हैं।"*

25. प्रत्यर्थी का निर्णय केवल प्रतिरूपण, और/या, बिना अवसर दिए या याचिकाकर्ताओं को सामग्री/राय से सामना किए बिना लिखावट/अंगूठे के निशान के बेमेल होने का अपराध स्थापित करने के लिए विशेषज्ञ की राय पर आधारित है। यदि ऐसा होता तो याचिकाकर्ता अपने बचाव में रेलवे का सामना करने के लिए विशेषज्ञ की राय भी ले सकते थे। याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी रद्द करने का विवादित आदेश हस्तलेखन विशेषज्ञ की राय पर कायम नहीं रखा जा सकता था।

26. **रण विजय सिंह एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य** में के मामले में इसी तरह के तथ्यों में, इस न्यायालय ने विशेषज्ञ की राय के आधार पर उम्मीदवारी को रद्द करने और आयोग की किसी भी परीक्षा में बैठने से तीन साल के लिए रोक को रद्द कर दिया।

> *"23. वर्तमान मामले के तथ्यों में, दिनांक 5.8.2015 के नोटिस में अंगूठे के निशान, हस्ताक्षर और लिखावट का मिलान नहीं होने के आरोप के बावजूद, प्रत्यर्थियों ने अपने निष्कर्ष को लिखावट विशेषज्ञ की राय तक ही सीमित रखा है। ऐसी राय को निर्णायक नहीं माना जा सकता।*
>
> *24. **वर्तमान मामले में न केवल याचिकाकर्ताओं को नियुक्ति से***

वंचित कर दिया गया है, बल्कि उन्हें तीन साल के लिए आयोग द्वारा आयोजित किसी भी परीक्षा में बैठने से भी वंचित कर दिया गया है। आयोग का ऐसा आदेश स्पष्ट रूप से कलंकात्मक प्रकृति का है। *चुनौती के तहत आदेश में नागरिक परिणाम भी शामिल हैं।* ***इस तरह के आदेश को केवल लिखावट रिपोर्ट के बल पर कायम नहीं रखा जा सकता है, जिसकी प्रकृति एक राय की बनी रहती है, और इसे निर्णायक नहीं माना जा सकता है।***

25. ***इसके अलावा, हस्तलेखन विशेषज्ञ की राय पर आधारित सीएफएसएल की रिपोर्ट याचिकाकर्ताओं को प्रस्तुत नहीं की गई है। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ताओं के पास इसका विरोध करने का कोई अवसर नहीं था।"***

27. **भारत संघ एवं अन्य बनाम रण विजय सिंह एवं अन्य** में दिया गया निर्णय **रण विजय सिंह** (उपरोक्त), में इंट्रा कोर्ट अपील की गई थी, डिवीजन बेंच ने इस प्रकार टिप्पणी की:

> *"इस स्तर पर, हम यह भी बताना चाहेंगे कि यह अपीलकर्ता-प्रतिवादियों का मामला नहीं है कि चयन की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर अनियमितता से ग्रस्त है, बल्कि कुछ व्यक्तियों द्वारा अपनाई गई अनुचित प्रथाओं से ग्रस्त है।*
>
> *इस पृष्ठभूमि को भी देखते हुए,* ***हमारी सुविचारित राय है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ताओं की परीक्षा रद्द करते समय और उसे लगातार तीन परीक्षाओं के लिए प्रतिबंधित करते समय अपीलकर्ता को लिखावट विशेषज्ञ द्वारा दी गई राय की एक प्रति प्रदान करनी चाहिए थी। उसकी आपूर्ति न करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।"***

28. उपरोक्त प्राधिकारियों का अनुसरण डिवीजन बेंच द्वारा किया गया **भूपेन्द्र सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य**[4], आदेश का प्रासंगिक भाग निकाला गया है:

> *"रण विजय सिंह और तुलसी राम प्रजापति दोनों के मामले में, विद्वान न्यायाधीश ने पाया कि याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी को विशेषज्ञ द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों का खंडन करने का अवसर दिए बिना एकतरफा रद्द नहीं किया जा सकता था। ये सिद्धांत स्पष्ट रूप से आकर्षित करते हैं वर्तमान मामले के तथ्य विद्वान स्थायी अधिवक्ता की यह दलील कि आदेश कलंकपूर्ण नहीं है और संविधान के अनुच्छेद 311 का कोई उल्लंघन नहीं है, विचार के योग्य नहीं है क्योंकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत उन सभी स्थितियों में स्पष्ट रूप से*

लागू होंगे जहां किसी व्यक्ति से गंभीर नागरिक परिणाम भुगतने पड़ते हैं। ***एक बार जब याचिकाकर्ता का नाम चयन सूची में शामिल हो गया, तो प्रतिरूपण के आरोप पर उसे हटाने से पहले एक नोटिस जारी किया जाना चाहिए या कम से कम याचिकाकर्ता को यह साबित करने के लिए सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए कि प्रतिकूल सामग्री जिस पर प्रत्यर्थियों ने भरोसा किया था वह स्वीकार किए जाने योग्य नहीं था। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी विशेषज्ञ की राय निर्णायक नहीं होती है और वह केवल एक राय बनकर रह जाती है।"***

29. मामले के दिए गए तथ्यों में प्रत्यर्थियों से अपेक्षा की गई थी कि वे याचिकाकर्ताओं को उनके खिलाफ भरोसा की गई सामग्री के साथ सामना करेंगे, खासकर, जब याचिकाकर्ताओं को आरआरबी/आरआरसी द्वारा आयोजित किसी भी आगे की परीक्षा में उपस्थित होने और उनकी उम्मीदवारी से वंचित किया जा रहा था। लिखावट/अंगूठे के निशान का मिलान न होने पर परीक्षा रद्द कर दी गई।

30. विशेषज्ञ की राय को रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों के साथ देखा और विचार किया जाना आवश्यक था। विद्वान न्यायाधिकरण ने प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा स्थापित प्रतिरूपण के सिद्धांत को खारिज कर दिया है, तो उस स्थिति में, याचिकाकर्ताओं की लिखावट/अंगूठे के निशान का बेमेल होना अस्थिर हो जाता है, जब तक कि किसी अन्य सामग्री या साक्ष्य द्वारा समर्थित न हो कि याचिकाकर्ता परीक्षा में उपस्थित नहीं हुए हैं या अपनी लिखावट में आवेदन पत्र नहीं भरा।

31. प्रतिवादी-रेलवे ने अपने जवाबी शपथपत्र में इस बात से इनकार नहीं किया है कि परीक्षा के सभी चरणों, यानी लिखित परीक्षा और पीईटी में, उम्मीदवारों के अंगूठे का निशान और हस्ताक्षर लिए गए थे और पूरी प्रक्रिया की वीडियोग्राफी की गई थी। इस पृष्ठभूमि में, यह नहीं कहा जा सकता है कि यद्यपि याचिकाकर्ता परीक्षा के लिए उपस्थित हुए थे, फिर भी उसी समय लिखावट/अंगूठे के निशान में बेमेल था।

32. प्रत्यर्थियों का मामला यह नहीं है कि याचिकाकर्ता, पहचान पत्र सहित प्रासंगिक दस्तावेज परीक्षा केंद्र में नहीं ले गए थे या पी.ई.टी./मेडिकल परीक्षा में भाग नहीं लिया था।

33. इन परिस्थितियों में, रेलवे के पास उपलब्ध किसी अन्य सामग्री के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह लिखावट/अंगूठे के निशान में बेमेल का मामला है। रेलवे का अनुमान किसी अन्य सामग्री द्वारा समर्थित किए बिना एक राय पर आधारित है, यानी, याचिकाकर्ता चयन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में उपस्थित नहीं हुए थे।

34. सेवा न्यायशास्त्र में, हालांकि साक्ष्य अधिनियम लागू नहीं है, आरोप को उचित

संदेह से परे साबित करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कुछ भौतिक साक्ष्य के आधार पर, संभाव्यता की प्रधानता के सिद्धांत पर यह कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही का मामला नहीं है, न ही, यह रेलवे द्वारा स्थापित मामला है, कि परीक्षा प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर अनियमितताएं हुईं, केवल एक राय पर कुछ उम्मीदवारों को उठाया गया और उनका चयन रद्द कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं को आपत्तिजनक सामग्री का सामना किए बिना याचिकाकर्ताओं के पीछे से प्राप्त किया गया।

35. प्रत्यर्थी की कार्रवाई अन्यथा असंगत नहीं है प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार, 1 मई 2018 का आक्षेपित आदेश कलंकात्मक होने के कारण कायम नहीं रखा जा सकता।

36. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को ग्रुप-डी पद पर तुरंत नियुक्त करें।

37. यह स्पष्ट किया जाता है कि संबंधित पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा किसी अन्य आधार या बिंदु पर जोर नहीं दिया गया।

38. कोई लागत नही।

(2023) 5 ILRA 1603

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 29840/2010

और

रिट-ए संख्या 18844/2010

मदन कुमार सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री भगवती प्रसाद, श्री आलोक कुमार यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सेवा कानून -ट्यूबवेल मैकेनिक- ट्यूबवेल मैकेनिक सेवा नियम, 1951- 1951 के नियम 9(बी) के तहत, आईटीआई धारक के लिए आवश्यक न्यूनतम अनुभव केवल 2 वर्ष है। वर्तमान मामले में, विज्ञापन अधिसूचना के अनुसार, ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति पाने के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता 5 साल के अनुभव के साथ आईटीआई थी। याचिकाकर्ता, एक आईटीआई प्रमाणपत्र धारक, ने 7 साल और 4 महीने का अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया, लेकिन बाद में पता चला कि इस अनुभव के केवल 3 साल और 4 महीने आईटीआई प्रमाणपत्र प्राप्त करने के बाद थे। याचिकाकर्ता का चयन निरस्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने इस आधार पर रद्दीकरण को चुनौती दी कि ट्यूबवेल मैकेनिक सेवा नियम, 1951 के तहत आईटीआई के बाद केवल 2 साल का अनुभव आवश्यक है न कि 5 साल का, और यह कि एक सरकारी परिपत्र नियमों को नहीं बदल सकता है। अदालत ने माना कि याचिकाकर्ता ने विज्ञापन न्यायालय में उल्लिखित नियमों और शर्तों को स्वीकार कर लिया है और अयोग्य पाए जाने के बाद अब वह उन्हें चुनौती नहीं दे सकता। (पैरा 19, 20, 21, 22)

निरस्त (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

शिक्षक प्रशिक्षण अनुसंधान शिक्षा एवं अन्य के निदेशक बनाम ओ.एम. जेसीमोल

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से इन दोनों याचिकाओं को एक साथ सुना जाएगा और एक सामान्य आदेश से निपटारा किया जाएगा।
2. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आलोक कुमार यादव और राज्य के विद्वान स्थायी वकील श्री सत्येन्द्र कुमार त्रिपाठी को सुना गया प्रतिवादी संख्या 1 से 3।
3. 2010 की रिट ए संख्या 29840 निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई हैं:-

"ए. प्रतिवादी संख्या 3 (अनुलग्नक संख्या 21) द्वारा पारित दिनांक 31.03.2010 के विवादित बर्खास्तगी आदेश को रद्द करते हुए, सर्टिओरीरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

बी. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को निर्देश दिया जाए कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 2 के नलकूप मंडल और प्रतिवादी के डिवीजन के तहत नलकूप मिस्त्री, नलकूप अनुरक्षण खंड, भदोही के रूप में काम करने की अनुमति दी जाए। नंबर 31

ई. मुख्य अभियंता द्वारा दिनांक 09.09.2008 को जारी किए गए कार्यालय ज्ञापन के पैराग्राफ जीए को सेवा नियमों के नियम 9-खा के दायरे से बाहर घोषित करते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

4. 2010 की रिट ए संख्या 18844 निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई हैः-

ए) प्रतिवादी संख्या 2 (अनुलग्नक संख्या 20) द्वारा पारित दिनांक 25.03.2010 के विवादित बर्खास्तगी आदेश को रद्द करते हुए, सर्टिओरीरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

बी. प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें याचिकाकर्ता के कामकाज में हस्तक्षेप न करने का निर्देश दिया जाए क्योंकि प्रतिवादी संख्या 2 के नलकूप मंडल के तहत नलकूप मिस्त्री, नलकूप अनुरक्षण खंड, भदोही और प्रतिवादी संख्या 3 का विभाजन,

5. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि आईटीआई प्रमाणपत्र धारक होने के नाते उसने विज्ञापन अधिसूचना के अनुसरण में ट्यूबवेल मैकेनिक के पद के लिए आवेदन किया था, जिसमें ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति पाने के लिए न्यूनतम निर्धारित योग्यता आईटीआई और 5 वर्ष की

अनुवादित

अनुभव का उल्लेख किया गया था। अधिसूचना में उल्लिखित निर्दिष्ट संस्थानों से अनुभव। याचिकाकर्ता ने विज्ञापन अधिसूचना के तहत निर्धारित पात्रता मानदंडों के अनुसरण में योग्य उम्मीदवार के तहत नियुक्ति पाने के लिए 7 साल और 4 महीने का अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता का चयन हो गया और वह 29.05.2009 को उक्त पद पर शामिल हो गया।

6. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर शिकायत और रिट याचिका में, नियुक्ति करते समय विसंगति और अनियमितता को विशेष रूप से याचिकाकर्ता के पक्ष में उजागर किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता ने 16.09 को अनुभव प्रमाण पत्र जमा किया है। 2008 विज्ञापन अधिसूचना में निर्धारित अनुसार नहीं है।

7. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अनुभव प्रमाण पत्र की दोबारा जांच के बाद, यह पता चला है कि याचिकाकर्ता द्वारा आईटीआई के बाद प्राप्त अनुभव केवल 3 साल और 4 महीने के लिए था और आईटीआई पूरा होने से पहले, यह 4 साल था।

8. चयन प्रक्रिया के प्रमुख होने के नाते सक्षम प्राधिकारी ने दिनांक 25.03.2010 के आदेश के तहत निर्णय लिया कि आईटीआई से पहले याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अनुभव को कोई विश्वसनीयता नहीं दी जा सकती है और आईटीआई के बाद याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अनुभव निर्धारित से कम है। विज्ञापन अधिसूचना दिनांक 16.9.2008 में अनुभव और इस प्रकार, याचिकाकर्ता का चयन अंतिम चयन सूची में डालने के बाद भी रद्द कर दिया गया, जिसकी परिणति सेवाओं में शामिल होने और कुछ महीनों के लिए प्रदान की गई। आदेश दिनांक 25.03.2010 के साथ- साथ आदेश दिनांक 31.03.2010 को पारित करते समय निर्धारित निर्धारण को चुनौती देने का सटीक आधार ट्यूबवेल मैकेनिक से संबंधित नियमों में उल्लिखित अनुभव है जैसा कि ट्यूबवेल मैकेनिक सेवा नियम, 1951 में उल्लिखित है। आईटीआई धारक के लिए आवश्यक न्यूनतम अनुभव केवल नियम 9 (बी) के तहत निर्धारित न्यूनतम 2 वर्ष है और इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 से निकाली गई शक्तियों के तहत बनाए गए नियमों को कार्यालय ज्ञापन द्वारा प्रतिस्थापित या पूरक नहीं किया जा सकता है। सरकारी आदेश और 1951 के नियों के नियम 9 (बी) के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के पास ट्यूबवेल मैकेनिक के पद के लिए आवश्यक अनुभव के साथ-साथ अपेक्षित योग्यता भी थी और इस प्रकार, आदेश दिनांक 31.03.2010 को पारित किया गया था। प्रतिवादी

क्रमांक 3 नियमों के विपरीत है और यह कायमी योग्य है। एक तरफ.

9. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी वकील ने याचिका में की गई प्रार्थना का इस आधार पर जोरदार विरोध किया कि याचिकाकर्ता ने विज्ञापन अधिसूचना दिनांक 16.09.2008 में परिभाषित नियमों और शर्तों को कभी चुनौती नहीं दी, जिसमें आईटीआई धारक के लिए आवश्यक न्यूनतम अनुभव 5 वर्ष था। ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति की मांग के लिए, बल्कि याचिकाकर्ता ने 7 साल और 4 महीने का अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके इसमें भाग लिया था, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा उल्लिखित चार साल के अनुभव के बाद से सक्षम प्राधिकारी द्वारा कानूनी रूप से नजरअंदाज कर दिया गया था। आईटीआई का प्रमाण पत्र प्राप्त करने से पहले और इस तरह, इसे ट्यूबवेल मैकेनिक के पद के लिए नियुक्ति के प्रयोजनों के लिए नहीं गिना जा सकता है, जिसमें न्यूनतम योग्यता आईटीआई है, याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अनुभव।

आईटीआई का प्रमाण पत्र रखने के बाद ही उक्त पद पर नियुक्ति पाने के लिए गिना जा सकता है।

10. याचिकाकर्ता का यह स्वीकार किया गया मामला है कि विज्ञापन अधिसूचना के तहत आवश्यक न्यूनतम योग्यता रखने के बाद अनुभव केवल तीन साल और चार महीने था और इस प्रकार, वह अधिसूचना दिनांक 16.09 के अनुसार आवश्यक न्यूनतम अनुभव को पूरा नहीं कर रहा था। 2008 और इस प्रकार, याचिकाकर्ता का चयन सक्षम प्राधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया था।

11. विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा विस्तारित प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को सुनने के बाद, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित करने के लिए एकमात्र बिंदु उपलब्ध है कि क्या विज्ञापन अधिसूचना दिनांक 16.09.2008 के माध्यम से अधिसूचित ट्यूबवेल मैकेनिक के पद के लिए आवश्यक न्यूनतम अनुभव को उचित ठहराया जाना था। 09.09.2008 को जारी परिपत्र के अनुसरण में अधिसूचना में उल्लेख किया गया है जिसके माध्यम से अनुभव की निर्धारित अवधि बढ़ा दी गई है या 1951 के नियमों में उल्लिखित न्यूनतम अनुभव को सक्षम अधिकारियों द्वारा ध्यान में रखा जा सकता है?

12. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्कों को प्रमाणित करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि 1951 के नियों के आकार में बनाए गए विशिष्ट नियमों में से किसी भी नियम और प्रावधानों के विपरीत हस्तक्षेप, परिवर्तन, संशोधन या निर्धारण नहीं किया जा सकता है। राज्य-प्रतिवादियों के किसी भी प्राधिकारी द्वारा केवल एक सरकारी आदेश/परिपत्र जारी करने से भी ऐसा

ही होता है। संपूर्ण अनुभव उस सक्षम निकाय द्वारा किया जाना चाहिए जिसने स्वयं नियम बनाए हैं।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्कों और कानूनी तर्कों के जवाब में, फिर से विद्वान स्थायी वकील ने जोरदार तर्क दिया कि यदि याचिकाकर्ता संशोधित नियमों से व्यथित था, तो उसे उसी समय चुनौती देनी चाहिए थी जब वह था ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति पाने का इरादा है, जिसमें निर्धारित न्यूनतम योग्यता 5 साल के साथ आईटीआई थी। अनुभव, यह वह याचिकाकर्ता है जिसने इसके लिए आवेदन किया था और विज्ञापन अधिसूचना के माध्यम से अपेक्षित सभी न्यूनतम योग्यताओं को स्वीकार करने के बाद और याचिकाकर्ता के चयन को रद्द करने के बाद, उस परिपत्र को चुनौती देने के लिए उसके पक्ष में कार्रवाई का कारण नहीं बचा है जिसके माध्यम से नियमों को दिनांक 09.09.2008 के परिपत्र के माध्यम से संशोधित या समझाया या स्पष्ट किया गया है। याचिकाकर्ता के वकील द्वारा उठाए गए तर्कों में बहुत दम है कि केवल एक परिपत्र या सरकारी आदेश जारी करके नियमों को संशोधित नहीं किया जा सकता है, लेकिन साथ ही, याचिकाकर्ता का यह स्वीकार किया गया मामला है कि उसने कभी भी किसी को चुनौती नहीं दी है। विज्ञापन अधिसूचना दिनांक 16.09.2008 में उल्लिखित आवश्यक पात्रता मानदंड के अनुसार, अधिसूचना में उल्लिखित निर्धारित पात्रता मानदंड के तहत पात्र उम्मीदवार होने के नाते, उन्होंने अनुभव प्रमाण पत्र जमा करके अपेक्षित न्यूनतम अनुभव प्रमाण पत्र के साथ एक आवेदन के माध्यम से अपना दावा प्रस्तुत किया। 7 साल और 4 महीने, याचिकाकर्ता के वकील ने यह भी माना कि आईटीआई के बाद अनुभव केवल 3 साल और 4 महीने का था।

14. एक बार, याचिकाकर्ता ने अनुभव प्रमाण पत्र के साथ अपना आवेदन जमा कर दिया, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विज्ञापन अधिसूचना में उल्लिखित सभी नियम और शर्तें याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत स्वीकार की गई थीं, यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि न्यूनतम अनुभव लंबाई को स्वीकार किए बिना जैसा कि अधिसूचना में उल्लेख किया गया है, उन्होंने ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति के लिए अपना दावा प्रस्तुत किया और इस प्रकार, विज्ञापन अधिसूचना के माध्यम से आवश्यक न्यूनतम अनुभव के आधार पर ट्यूबवेल मैकेनिक के पद के लिए उपयुक्त नहीं घोषित होने के बाद, कानूनी आधार याचिकाकर्ता के पास उपलब्ध है कि नियमों में उल्लिखित न्यूनतम अनुभव को कार्यालय

ज्ञापन/परिपत्र/आदेश जारी करके बदला नहीं जा सकता है, जिसमें याचिका पर लागू आदेशों को अवैध माना गया है।

15. याचिकाकर्ता ने एक बार विज्ञापन अधिसूचना में उल्लिखित नियमों और शर्तों को स्वीकार कर लिया, तो उसे कोई भी लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति की मांग के समय प्रस्तुत किए जाने वाले अनिवार्य दस्तावेजों की पुनः जांच के आधार पर उन्हें असफल घोषित किए जाने के बाद जो भी उपलब्ध आधार उपलब्ध है, जिसमें यह पाया गया है कि अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा अधिसूचना में उल्लिखित प्रकृति से काफी कम थी, जो 5 वर्ष थी और याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अनुभव प्रमाण पत्र केवल 3 वर्ष और 4 महीने का था।

16. याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए रुख के समर्थन में उन्होंने शिक्षक प्रशिक्षण अनुसंधान शिक्षा निदेशक और अन्य बनाम के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित फैसले पर भरोसा जताया है। ओ.एम. जेसिमोल"।

17. उपरोक्त सिविल अपील में, मामले की शुरुआत उस शिक्षक द्वारा शुरू की गई चुनौती से होती है जिसने नागालैंड राज्य से शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र प्राप्त किया और 50% से कम अंक प्राप्त किए और इस तरह, अपीलकर्ता को नियुक्ति के लिए अयोग्य माना गया। माध्यमिक ग्रेड शिक्षक के रूप में शिक्षक पद के लिए विज्ञापन की अधिसूचना जारी करते समय, शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र में प्राप्त अपेक्षित 50% अंकों का उल्लेख किया गया था, लेकिन नियमों में यह मौन था जिसके बाद माननीय द्वारा निर्धारण किया गया है शीर्ष अदालत ने कहा कि एक बार जब नियमों में न्यूनतम अंकों की आवश्यकता की स्थिति स्पष्ट नहीं हो जाती है, तो शिक्षकों के पद पर नियुक्ति के लिए जारी विज्ञापन अधिसूचना में इसका उल्लेख नहीं किया जा सकता है।

18. वर्तमान मामले में, नियमों के अनुसार न्यूनतम अनुभव की आवश्यकता केवल 2 वर्ष है, लेकिन विज्ञापन अधिसूचना जारी करते समय विज्ञापन अधिसूचना में उल्लिखित समान पद के लिए न्यूनतम अनुभव 5 वर्ष था। उक्त निर्णय की सादृश्यता और अनुपात वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से लागू है लेकिन मामला उस मामले से थोड़ा अलग है जिसका निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही किया जा चुका है।

19. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने विज्ञापन अधिसूचना में उल्लिखित सभी नियमों और शर्तों और आवश्यकताओं को स्वीकार करते हुए ट्यूबवेल मैकेनिक के पद पर नियुक्ति के लिए 7 साल और 4 महीने के अनुभव प्रमाण पत्र के साथ अपना

आवेदन प्रस्तुत किया, जो कि पत्र था। यह पाया गया कि आईटीआई के प्रमाण पत्र रखने के बाद याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अनुभव वास्तव में केवल 3 वर्ष और 4 महीने का था जिसे याचिकाकर्ता ने स्वीकार कर लिया है।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा संदर्भित मामले में, जिसका निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया है, शिक्षकों के पद के लिए आवेदन करने वाले उम्मीदवारों/ उम्मीदवारों के पास शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र में 50% अंक नहीं थे, जैसा कि उल्लेख किया गया है। विज्ञापन अधिसूचना में लेकिन यह नियमों में उपलब्ध नहीं था और एक बार उसने इस तथ्य का खुलासा करके आवेदन किया कि उसके पास शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र में 50% अंक नहीं हैं और उसकी उम्मीदवारी प्रारंभिक स्तर पर ही खारिज कर दी गई थी, उसके बाद ही पूरी विवाद उठाया गया है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसका विधिवत निर्णय लिया गया है।

21. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने जानबूझकर 7 साल और 4 महीने का अनुभव प्रमाण पत्र संलग्न करके सब कुछ प्रस्तुत किया, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि याचिकाकर्ता ने 5 साल का न्यूनतम अनुभव प्राप्त करने के लिए नियमों और शर्तों को स्वीकार कर लिया है जैसा कि उल्लेख किया गया है। विज्ञापन अधिसूचना.

22. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों और तथ्यात्मक स्थिति, कानूनी प्रावधानों के साथ-साथ उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की लंबी चर्चा के मद्देनजर, दोनों याचिकाएं खारिज कर दी जाती हैं।

(2023) 5 ILRA 1608

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 12717/2023

नीलम **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपक्षी**

अधिवक्ता आवेदक: श्री शशि प्रकाश मिश्रा, श्री जय प्रकाश सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री प्रमोद कुमार पांडे

(ए) दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482- अंतर्निहित शक्ति- भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 363, 366 और 120-बी, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012-धारा 2(डी), 16/17 -धारा 376 आईपीसी और पोक्सो अधिनियम के तहत कार्यवाही, अभियुक्त और पीड़ित के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं की जा सकती। (पैरा-10)

(बी) आपराधिक कानून- लिंग संबंधी अपराधों से संबंधित मामलों में न्यायनिर्णयन - न्यायालयों को अभियोक्ता और अभियुक्त के बीच विवाह करने के लिए समझौता करने की

दिशा में कोई सुझाव या विचार नहीं करना चाहिए (या किसी कदम को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए), अभियुक्त और उत्तरजीवी के बीच मध्यस्थता का सुझाव या आदेश नहीं देना चाहिए, या किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए क्योंकि यह उनकी शक्तियों और अधिकार क्षेत्र से परे है। (पैरा - 8)

हस्ताक्षरित समझौता आवेदन दायर- आवेदक, अभियोक्ता, वादी और अभियोक्ता की मां और पिता द्वारा किया गया - आवेदक के खिलाफ वाद- दर्ज किया गया कि उसने अभियोक्ता को दसवीं कक्षा की छात्रा के साथ भागने के लिए मजबूर किया। आवेदन में कहा गया है - अभियोक्ता, वादी और पति आगे अभियोजन नहीं चलाना चाहते - अभियोक्ता और उसके माता-पिता ने एक समझौता आवेदन दायर किया। (पैरा - 2,3)

निर्णय: उपलब्ध कराए गए तथ्यों के आधार पर चल रही सुनवाई को रद्द करने का कोई अच्छा आधार नहीं है। (पैरा-11)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अपर्णा भट एवं अन्य बनाम एमपी राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 230
2. प्रवीण कुमार सिंह एवं अन्य बनाम मुख्य सचिव गृह विभाग, उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन सभी 131
3. नरदीप सिंह चीमा @ नवदीप सिंह चीमा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, सीआरएम-एम-2270-2020
4. ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन सभी 93

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह आवेदन आईपीसी की धारा 363, 366 और 120-बी और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 16/17, थाना बखिरा, जिला संत कबीर नगर, के तहत विशेष सत्र परीक्षण संख्या 71/2018 (केस अपराध संख्या 1888/2017 (राज्य बनाम नीलम और अन्य) से उत्पन्न) जो अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), संत कबीर नगर के न्यायालय में विचाराधीन है, की कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए दायर किया गया है।

आवेदक के विद्वान वकील की दलील यह है कि दिनांक 13.12.2023 को एक समझौता आवेदन दायर किया गया है. जिस पर आवेदक, अभियोक्ता, साथ ही पहले सूचनाकर्ता और उसके पति, यानी कि अभियोक्ता के माता और पिता के हस्ताक्षर हैं। आवेदक के खिलाफ मामला यह है कि उसने अमन नामक व्यक्ति के साथ मिलकर पीड़िता को अमीउल्लाह नाम के व्यक्ति के साथ भगाने की साजिश रची। जिस समय अभियोक्त्री भागी, उसकी उम्र पंद्रह वर्ष थी और वह स्थानीय इंटर कॉलेज में दसवीं कक्षा की छात्रा थी। यह सच है कि एक समझौता आवेदन दायर किया गया है, जिस पर सूचक, पीड़िता, पीड़िता के पिता और

अनुवादित

आवेदक द्वारा भी हस्ताक्षर किए गए हैं, जहां यह कहा गया है कि पीडिता, सूचक और उसका पति अभियोजन को आगे नहीं बढ़ाना चाहते हैं। मुकदमे के दौरान अभियोजक की गवाही दर्ज की गई, जहां उसने दिनांक 10.05.2019 को पी.डब्ल्यू, 2 के रूप में गवाही दी। उसकी गवाही का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है

> "अमिउल्लाह मुझे लेकर मुम्बई गया वहाँ अमिउल्लाह मुझको लेकर एक जगह गया था और रात में मेरे साथ मेरी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार किया और धमकी दिया किसी से कहोगी तो तुम्हारे भाई की हत्या कर देगे। बलात्कार वाली बात मैंने डर के कारण महिला सिपाही को नहीं बताया था। अमन मुम्बई में मिला था बस स्टेशन से "अमीउल्लाह के साथ कमरे पर ले गया। मुझे भगाने में नीलम और अमन की साजिस थी।"

अब, उस गवाही के बहुत बाद, पीड़िता और उसके माता-पिता ने 13.12.2022 को समझौता करने की मांग वाला आवेदन दायर किया।

आवेदक के विद्वान वकील श्री शशि प्रकाश मिश्रा का पक्ष रखते हुए वकील श्री जय प्रकाश सिंह, विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री प्रमोद कुमार पांडे एवं राज्य की और से विद्वान ए.जी.ए. श्री शशि शेखर तिवारी को सुना गया।

यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (संक्षेप में, '2012 का अधिनियम) के तहत मामला कोई निजी विवाद या किसी प्रकार का अपराध नहीं है जो सूचनाकर्ता और आरोपी के हित तक सीमित हो सकता है, जिसके बारे में राज्य के पास कहने के लिए बहुत कुछ नहीं है। इसके विपरीत, 2012 का अधिनियम एक विशेष कानून है, जिसे निम्नलिखित उद्देश्यों और कारणी से अधिनियमित किया गया है।

"वस्तुओं और कारणों का विवरण

संविधान का अनुच्छेद 15, अन्य बातों के साथ-साथ, राज्य को बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने की शक्तियों प्रदान करता है। इसके अलावा, अनुच्छेद 39, अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करता है कि राज्य विशेष रूप से अपनी नीति को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित करेगा कि बर्चा की कोमल उम का दुरुपयोग न हो और उनके बचपन और युवावस्था को शोषण से बचाया जाए और उन्हें स्वस्थ रूप से और स्वतंत्रता एवं गरिमा की स्थितियों में विकसित होने की सुविधाएं दी जाती हैं।

2. बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन 11 दिसंबर, 1992 को भारत द्वारा अनुसमर्पित किया गया था, जिसमे राज्य पार्टियों से निम्लिखित रोकथाम के लिए राष्ट्रीय, विद्वपक्षीय और बहुपक्षीय उपाय, समेत सभी उचित कदम उठाने की अपेक्षा की जाती है जिससे (ए) किसी बच्चे को शामिल होने के लिए प्रेरित करना या जबरदस्ती करना कोई भी गैरकानूनी यौन गतिविधिः (बी) उनका शोषणकारी उपयोग वेश्यावृति या अन्य

गैरकानूनी यौन संबंधों में लिप्त होना; और (सी) बच्चों का अश्लील प्रदर्शन और सामग्री हेतु शोषणकारी उपयोग करना ।

3. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा एकत्र किए गए डेटा से पता चलता है कि बच्चों के विरुद्ध यौन अपराध के मामलों में बढ़ोतरी हुई है और महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा आयोजित किया गया 'बाल दुर्व्यवहार पर अध्ययनः भारत 2007' इसकी पुष्टि करता है। इसके अलावा मौजूदा कानून द्वारा, बच्चों के खिलाफ यौन अपराधों को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं किया जाता है। बड़ी संख्या में ऐसे अपराध का न तो विशेष रूप से प्रावधान किया गया है और न ही इनपर पर्याप्त रूप से दंड की व्यवस्था किया गया है। बच्चे के हित की सुरक्षा पीड़ित और गवाह, दोनो के रूप में होने की जरूरत है। यह महसूस किया जाता है कि बच्चों के खिलाफ अपराधों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने की जरूरत है और आनुपातिक दंड के माध्यम से इसका प्रभावी निवारक के रूप में प्रतिकार किया जाना चाहिए।

4. इसलिए, हर स्तर पर बच्चे के हित और कल्याण की रक्षा के लिए उचित सम्मान के साथ यौन उत्पीड़न और अश्लील साहित्य के अपराधों से बच्चों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ एक स्व-निहित व्यापक कानून बनाने का प्रस्ताव है। न्यायिक प्रक्रिया में रिपोर्टिंग, साक्ष्यों की रिकॉर्डिंग, जांच और अपराधों की सुनवाई के लिए बच्यो के अनुकूल प्रक्रियाओं को शामिल करना। और ऐसे अपराधों की शीघ्र सुनवाई के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान।

5. यह विधेयक सभी बच्चर्चा की सुरक्षा, सुरक्षा और यौन दुर्व्यवहार और शोषण से सुरक्षा के अधिकार को लागू करने में योगदान देगा।

6. खंडों पर टिप्पणियाँ विधेयक में निहित विभिन्न प्रावधानों को विस्तार से बताती है।

7. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है।"

अधिनियम का अधिनियमित खंड इस प्रकार है:

"वस्तुओं और कारणों का विवरण

लैंगिक हमला, लैंगिक उत्पीड़न और अश्लील साहित्य के अपराधों से बालकों का संरक्षण करने और ऐसे अपरार्धा का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम । संविधान के अनुच्छेद 15 का खंड (3), अन्य बातों के साथ राज्य को बालकों के लिए विशेष उपबंध करने के लिए सशक्त करता है.

संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अंगीकृत बालकों के अधिकारों से संबंधित अभिसमय को, जो बालक के सर्वोतम हितों को सुरक्षित करने के लिए सभी राज्य पक्षकारों द्वारा पालन किए जाने वाले मानको को विहित करता है, भारत सरकार ने तारीख 11 दिसम्बर, 1992 को अंगीकृत किया है,

बालक के उचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसकी निजता और गोपनीयता के अधिकार का सभी प्रकार से तथा बालकों को अंतर्वलित करने वाली न्यायिक

प्रक्रिया के सभी प्रक्रमों के माध्यम से संरक्षित और सम्मानित किया जाए, यह अनिवार्य है कि विधि ऐसी रीति से प्रवर्तित हो कि बालक के अच्छे शारीरिक, भावात्मक, बौद्धिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक प्रक्रम पर बालक के सर्वोतम हित और कल्याण पर सर्वोपरि महत्व के रूप में ध्यान दिया जाए, बालक के अधिकारों से संबंधित अभिसमय के राज्य पक्षकारों से निम्मलिखित का निवारण करने के लिए सभी समुचित राष्ट्रीय, द्विपक्षीय या बहुपक्षीय उपाय करना अपेक्षित होगाः

(क) किसी विधिविरुद्ध लैंगिक क्रियाकलाप में लगाने के लिए किसी बालक को उत्प्रेरित या प्रपीड़न करना; '

(ख) वेश्यावृति या अन्य विधिविरुद्ध लैंगिक व्यवसार्यों में बालकों का शोषणात्मक उपयोग करना;

(ग) अश्लील गतिविधियों और सामग्रियों में बालकों का शोषणात्मक उपयोग करना; बालकों के लैंगिक शोषण और लैंगिक दुरुपयोग जघन्य अपराध हैं, और उन पर प्रभावी रूप से कार्यवाही करने की आवश्यकता है।

भारत गणराज्य के तिरसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्मलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-."

यह स्पष्ट है कि 2012 का अधिनियम, एक विशेष कानून है जिसे समाज में विशेष रूप से हानिकारक शरारतो का दमन करने के लिए बनाया गया है, और वह है, बच्चों की यौन गतिविधियों और उनके शोषण में लिप्तता। 2012 का अधिनियम की धारा 2(डी) के तहत एक बच्चे को अठारह वर्ष से कम आयु के किसी भी व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है। समाज की सामूहिक चेतना और विधायी आदेश जिसके तहत इसे कानून में तब्दील किया गया है, बच्चर्चा के यौन शोषण या ऐसी गतिविधियों में उनकी भागीदारी को दबाने के अपने संकल्प में दृढ़ है। यह 2012 के अधिनियम का उद्देश्य और इसके अधिनियमन का उद्देश्य होने के कारण, यह सूचना देने वाले या यहां तक कि पीडित के मुंह में भी निहित है कि वे यह दलील है कि वे अभियोजन से समझौता करने का इरादा रखते हैं। अभियोजन राज्य के आदेश पर होता है और मुखबिर या अभियोजक का इसमें कोई योगदान नहीं होता है। अन्यथा भी, जिस समय यह घटना घटी उस समय पीड़िता नाबालिग थी और केवल इसलिए कि वह इसकी शिकार थी, समाज के खिलाफ किसी अपराध को छोटा मान लेना उसके लिए संभव नहीं है।

इस प्रश्न ने अपर्णा भट्ट और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 230 मामले में सुप्रीम कोर्ट का ध्यान आकर्षित किया है, जहां सुप्रीम कोर्ट के माननीय न्यायमूर्ति द्वारा निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए हैं:

"44. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह निर्देशित किया जाता है कि अब सेः

(ए) जमानत की शर्तों में आरोपी और पीड़ित के बीच संपर्क को अनिवार्य, अपेक्षित या अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ऐसी शर्तों का

उद्देश्य शिकायतकर्ता को आरोपी द्वारा आगे किसी भी उत्पीड़न से बचाना होना चाहिए;

(बी) जहां अदालत को यह विश्वास करने के लिए परिस्थितियां मौजूद हैं कि पीड़ित के उत्पीड़न का संभावित खतरा हो सकता है, या आशंका व्यक्त होने पर, पुलिस से रिपोर्ट मांगने के बाद, सुरक्षा की प्रकृति पर अलग से विचार किया जाएगा और उचित आदेश दिया जाएगा, इसके अलावा आरोपी को पीड़िता से कोई संपर्क न करने का निर्देश भी दिया गयाः

(सी) सभी मामलों में जहां जमानत दी जाती है, शिकायतकर्ता को तुरंत सूचित किया जाना चाहिए कि आरोपी को जमानत दे दी गई है और जमानत आदेश की प्रति दो दिनों के भीतर उसे दे दी जानी चाहिए;

डी) जमानत की शर्तों और आदेशों को महिलाओं और समाज में उनके स्थान के बारे में रुढ़िवादी या पितृसतात्मक धारणाओं को प्रतिबिंबित करने से बचना चाहिए, और सख्ती से सीआरपीसी की आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभियोजक की पोशाक, व्यवहार, या पिछले "आचरण" या "नैतिकता" के बारे में चर्चा जमानत देने के फैसले में शामिल नहीं होनी चाहिए;

(ई) अदालतों को लिंग संबंधी अपराधों से जुड़े मामलों का फैसला करते समय, अभियोजक और आरोपी के बीच शादी करने के लिए समझौते की दिशा में किसी भी विचार का सुझाव या विचार नहीं करना चाहिए (या किसी भी कदम को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए), आरोपी और उत्तरजीवी के बीच मध्यस्थता का सुझाव या जनादेश नहीं देना चाहिए, या किसी भी प्रकार का समझौता क्योंकि यह उनकी शक्तियों और अधिकार क्षेत्र से परे है:

(एफ) न्यायाधीशों द्वारा हर समय संवेदनशीलता प्रदर्शित की जानी चाहिए, जिन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कार्यवाही के दौरान, या बहस के दौरान कही गई किसी भी बात से अभियोजक को कोई आघात न पहुंचे, और

(जी) न्यायाधीशों को विशेष रूप से मौखिक या लिखित शब्दों का उपयोग नहीं करना चाहिए, जो अदालत की निष्पक्षता में उत्तरजीवी के विश्वास को कमजोर या हिला देगा।

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

इस न्यायालय के पास प्रवीण कुमार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (प्रमुख सचिव, गृह विभाग के माध्यम से) और अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन ऑल 131 मामले में इस मुद्दे पर विचार करने के अवसर थे कि क्या 2012 के अधिनियम के तहत अभियोजन को समझौते के आधार पर सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक आवेदन पर रद्द किया जा सकता है। प्रवीण कुमार सिंह (उपरोक्त) में यह माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव, द्वारा अभिनिर्धारित किया गया थाः

“14. जहां तक मुकदमा अपराध संख्या 345/2013 से उत्पन्न धारा 376, 363, 366, 504, 506 आई.पी.सी. और 3/4 पोक्सो अधिनियमके तहत सत्र परीक्षण संख्या

20/2014 "राज्य बनाम प्रवीण कुमार सिंह और अन्य की आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के प्रश्न का संबंध है, नरिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2014) 6 एससीसी 466 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से माना है कि मामला धारा 376 आई.पी.सी. के तहत भी एक ऐसा अपराध है, जो भले ही किसी विशेष पीड़ित के संबंध में किया गया हो, लेकिन इसे पक्षों के बीच का निजी विवाद नहीं कहा जा सकता है। इसका गंभीर प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, कोई भी कार्यवाही कथित समझौते के आधार पर की जाती है। पीड़िता की तुलना में आरोपी को खारिज नहीं किया जा सकता है। मध्य प्रदेश राज्य बनाम मदनलाल में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2015) 7 एससीसी 681 में दर्ज धारा 376 सपठित धारा 511 आई.पी.सी. से संबंधित मामले में समझौते के आधार पर बरी कर दिया जिसमे शिम्भू बनाम हरियाणा राज्य (2014) 13 एससीसी 318 में तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांतों पर भरोसा किया गया है।"

इसे पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने भी नरदीप सिंह चीमा नवदीप सिंह चीमा बनाम पंजाब राज्य और अन्य, सीआरएम-एम-2270-2020, 07.09.2022 को निर्णीत. में इसी तरह से माना है। मुझे भी ऐसा अवसर ओम प्रकाश बनाम यूपी राज्य और अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन ऑल 93 के मामले में विचार करने हेतु मिला था, जहां यह माना गया कि धारा 376 आई.पी.सी. और पॉक्सो एक्ट के तहत की गई कार्यवाही को आरोपियों और पीड़ित के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता।

उपरोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, मुझे वर्तमान मुकदमे की कार्यवाही को खारिज करने का कोई अच्छा आधार नहीं दिखता।

तद्नुसार, यह आवेदन अस्वीकार किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1612

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र,

रिट-सी संख्या 7730/2016

डॉ. अशोक कुमार तोमर ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

(ए) सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226- ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972- धारा 1(3)(सी) और 2(ई) - रिट याचिका- उन आदेशों को रद्द करने के लिए जिनके द्वारा अधिकारी ग्रेच्युटी देने से इनकार कर रहे हैं - याचिकाकर्ता को उसके बाद एक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान में लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया गया - उन्होंने आवेदन किया और प्रिंसिपल के रूप में नियुक्त हुए -2009 में 50 वर्ष की आयु होने पर उन्होंने 27 वर्ष, 9 महीने की सेवा पूरी करने के बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुना - सभी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति बकाया

अधिकारियों द्वारा स्वीकार किए गए और ग्रेच्युटी का भुगतान किया गया - याचिकाकर्ता ने पीजी अधिनियम, 1972 के तहत नियंत्रण प्राधिकारी के समक्ष पीजी केस दायर किया- अनुमति- राज्य सरकार ने जिसे अपील में चुनौती दी- अपील स्वीकार की गई - याचिकाकर्ता ने अपीलीय अदालत के आदेश को चुनौती दी, जिसमें प्राधिकारियों का अस्वीकृत आदेश भी शामिल था - न्यायालय ने पाया कि, संशोधन अधिनियम, संख्या 47/2009 के मद्देनजर यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता 'कर्मचारी' की परिभाषा के अपवाद या बहिष्करण खंड के अंतर्गत आएगा - और सरकारी आदेश या विनियमन- 11 किसी शिक्षक को 58 वर्ष या उससे पहले स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने से नहीं रोकेगा- आयोजित, याचिकाकर्ता कर्मचारी की परिभाषा के अंतर्गत पूरी तरह आता है, ताकि वह ग्रेच्युटी पाने का हकदार हो, - रिट याचिका स्वीकार की गई - 9% वार्षिक ब्याज के साथ ग्रेच्युटी के भुगतान के लिए निर्देश जारी किए गए।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य (2019 खंड 4 एससीसी 513),
2. अहमदाबाद प्राइवेट प्राइमरी टीचर्स एसोसिएशन बनाम प्रशासनिक अधिकारी (2004 खंड 1 एससीसी 755),
3. इंडिपेंडेंट स्कूल्स फेडरेशन ऑफ इंडिया बनाम भारत संघ और अन्य (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1113),

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे और राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता की नियुक्ति वर्ष 1982 में एक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान में व्याख्याता के पद पर हुई थी। तत्पश्चात, प्राचार्य के पद पर नियुक्ति हेतु जारी प्रक्रिया के अनुसार याचिकाकर्ता ने आवेदन किया तथा दिनांक 23.10.2002 को प्राचार्य के पद पर नियुक्ति हुई।

3. याचिकाकर्ता की जन्म तिथि 5.11.1959 है, जब वह 2009 में 50 वर्ष का हुआ, तो उसने 27 वर्ष, 9 महीने और 28 दिन की सेवा अवधि पूरी करने के बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुना। याचिकाकर्ता की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को अधिकारियों ने स्वीकार कर लिया।

4. जब याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति देय राशि का भुगतान नहीं किया जा रहा था, तब याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 58376/2010 दायर की, जिसका निपटारा इस न्यायालय ने 22.9.2010 के आदेश द्वारा किया, जिसके तहत संयुक्त शिक्षा निदेशक, सहारनपुर क्षेत्र सहारनपुर को याचिकाकर्ता की देय राशि का भुगतान न किए जाने के संबंध में शिकायत पर विचार करने का निर्देश दिया गया। इस न्यायालय द्वारा पारित 22.9.2010 के आदेश के अनुसरण में, संयुक्त शिक्षा निदेशक, सहारनपुर ने 9.12.2010 को एक आदेश पारित

किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को पेंशन का भुगतान प्रदान किया गया, लेकिन ग्रेच्युटी देने से इनकार कर दिया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 (जिसे आगे 'अधिनियम, 1972' कहा जाएगा) के तहत नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष पीजी केस संख्या 2/2012 दायर किया। उक्त प्राधिकरण ने दिनांक 6.9.2013 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी की राशि के रूप में 6,46,041 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया।

5. दिनांक 6.9.2013 के आदेश को चुनौती देते हुए, राज्य ने रिट-सी संख्या 5108/2014 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 27.1.2014 के आदेश द्वारा वैधानिक अपील दायर करके वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने के आधार पर खारिज कर दिया।

6. इसके बाद, प्रत्यर्थीगण ने अधिनियम, 1972 के अंतर्गत अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष पीजीए अपील संख्या 2/2014 दायर की, जिसे दिनांक 3.12.2015 के आदेश द्वारा अनुमति दे दी गई।

7. यह याचिका वर्ष 2016 में दायर की गई थी और रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थीगण की ओर से एक हलफनामा दायर किया गया था, जिसके साथ दिनांक 11.9.2020 का एक अन्य आदेश संलग्न किया गया था, जिसके तहत उप शिक्षा निदेशक (इंटरमीडिएट), सहारनपुर मंडल सहारनपुर ने 29.8.1981 के सरकारी आदेश का हवाला देकर याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी देने से फिर इनकार कर दिया था। याचिकाकर्ता ने संशोधन आवेदन के माध्यम से दिनांक 11.9.2020 के आदेश को चुनौती दी थी। संशोधन आवेदन को स्वीकार कर लिया गया और इसलिए, उक्त आदेश भी चुनौती के अधीन है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने कहा कि आरोपित आदेश 1972 अधिनियम की धारा 2 (ई) की गलत व्याख्या पर आधारित है और प्राधिकारी ने गलत दृष्टिकोण अपनाया है कि याचिकाकर्ता 'कर्मचारी' की परिभाषा के बहिष्करण खंड के अंतर्गत आता है, क्योंकि वह राज्य सरकार का कर्मचारी है। श्री खरे ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी देने से इनकार करने का एक और आधार 29.8.1981 के सरकारी आदेश की प्रयोज्यता है, जो वास्तव में याचिकाकर्ता के प्रकरण में लागू नहीं होता है। उन्होंने आगे कहा कि 11.9.2020 का बाद का आदेश भी 29.8.1981 के सरकारी आदेश की प्रयोज्यता के उसी प्रस्ताव पर आधारित है।

9. श्री खरे ने अधिनियम, 1972 की धारा 2(ई) के अंतर्गत 'कर्मचारी' की परिभाषा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:

***"(ई)** "कर्मचारी" से ऐसा कोई व्यक्ति (प्रशिक्षु को छोड़कर) अभिप्रेत है, जो किसी प्रतिष्ठान, कारखाने, खान, तेल क्षेत्र, बागान, बंदरगाह, रेलवे कंपनी या दुकान में कोई कुशल, अर्ध-कुशल या अकुशल, शारीरिक, पर्यवेक्षी, तकनीकी या लिपिकीय कार्य करने के लिए मजदूरी पर नियोजित है, चाहे ऐसे रोजगार की शर्तें स्पष्ट या निहित हों, और चाहे ऐसा व्यक्ति प्रबंधकीय या प्रशासनिक क्षमता में*

नियोजित हो या नहीं, लेकिन इसमें ऐसा कोई व्यक्ति शामिल नहीं है, जो केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार के अधीन कोई पद धारण करता है और किसी अन्य अधिनियम या ग्रेच्युटी के भुगतान के लिए प्रावधान करने वाले किसी नियम द्वारा शासित होता है।"

10. उन्होंने आगे कहा कि अधिनियम की धारा 1 (3) (सी) के अनुसार, अधिनियम के प्रावधान ऐसे अन्य प्रतिष्ठानों पर भी लागू होंगे जिन्हें केंद्र सरकार अधिसूचना द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकती है। श्री खरे ने अधिसूचना एफ.सं. एस-42013/1/95-एसएस दिनांक 3.4.1997 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:

"एफ. सं . एस-42013/1/95-एसएस दिनांक 3 अप्रैल, 1997-- ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 (1972 का 39) की धारा 1 की उपधारा (3) के खंड (ग) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्र सरकार, उस शैक्षणिक संस्थान को, जिसमें दस या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं या 12 महीने पहले किसी भी दिन नियोजित थे, प्रतिष्ठानों की एक श्रेणी के रूप में निर्दिष्ट करती है, जिस पर उक्त अधिनियम इस अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से लागू होगा:

बशर्ते कि इस अधिसूचना में निहित कोई भी बात श्रम मंत्रालय की अधिसूचना, एस.ओ. संख्या 239, दिनांक 8 जनवरी, 1982 (ऊपर देखें) के संचालन को प्रभावित नहीं करेगी।"

11. इसलिए, उन्होंने दलील दी कि चूंकि 10 या उससे अधिक व्यक्तियों को रोजगार देने वाले शैक्षणिक संस्थान अधिनियम, 1972 की धारा 1 (3) (सी) के तहत शक्तियों के प्रयोग में जारी अधिसूचना के अंतर्गत आते हैं, इसलिए धारा 2 (ई) पर भरोसा करके याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने का आधार अस्थिर हो जाता है। श्री खरे ने आगे बताया कि बाद में , वर्ष 2009 में, अधिनियम, 1972 की धारा 2 (ई) में निहित 'कर्मचारी' की परिभाषा को 3.4.1997 की पूर्वव्यापी अधिसूचना के आलोक में **3.4.1997 से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ** अधिनियम संख्या 47/2009 द्वारा संशोधित किया गया था।

12. इस संबंध में, उन्होंने बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी बनाम झारखंड राज्य और अन्य, (2019) 4 एससीसी 513 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने अहमदाबाद प्राइवेट प्राइमरी टीचर्स एसोसिएशन बनाम प्रशासनिक अधिकारी, (2004) 1 एससीसी 755 के प्रकरण में लिए गए विपरीत फैसले पर विचार किया था। हालांकि, 2009 के संशोधन अधिनियम संख्या 47 द्वारा किए गए संशोधन के पूर्वव्यापी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि अहमदाबाद प्राइवेट प्राइमरी टीचर्स एसोसिएशन (पूर्वोक्त) के फैसले पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी देखा कि यद्यपि 2009 के संशोधन अधिनियम संख्या 47 की संवैधानिक वैधता को एक रिट याचिका में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चुनौती दी गई थी, रिट याचिका के लंबित रहने मात्र से संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता प्रभावित नहीं होगी और न ही यह संबंधित पक्षों के अधिकारों को प्रभावित करेगा

13. श्री खरे ने आगे तर्क दिया कि जहां तक 2009 के संशोधन अधिनियम संख्या 47 की संवैधानिक वैधता का संबंध है, इसे सर्वोच्च न्यायालय ने **इंडिपेंडेंट स्कूल्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (पंजीकृत) बनाम भारत संघ और अन्य**, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1113 के प्रकरण में पारित अपने बाद के निर्णय दिनांक 29.8.2022 में बरकरार रखा है।

14. श्री खरे ने आगे **सरनाम सिंह बनाम श्रीमती पुष्पा देवी एवं अन्य** [1986 यूपीएलबीईसी 348] प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है , जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि किसी शैक्षणिक संस्थान की प्रबंधन समिति राज्य सरकार की एजेंसी या साधन नहीं है और न ही कोई शिक्षक सरकार के अधीन कोई पद रखता है।

15. उपर्युक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि आदेश में लिया गया पहला आधार यह है कि याचिकाकर्ता अधिनियम, 1972 की धारा 2 (ई) के अपवादात्मक खंड के अंतर्गत आता है और इसलिए वह ग्रेच्युटी का भुगतान पाने का हकदार नहीं है, जो टिकने योग्य नहीं है।

16. जहां तक विवादित आदेश में निहित दूसरे आधार अर्थात दिनांक 29.8.1991 के सरकारी आदेश की प्रयोज्यता का सवाल है, श्री खरे ने दलील दी है कि उक्त सरकारी आदेश उस स्थिति से संबंधित है, जहां संबंधित शिक्षक 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति का विकल्प देता है। इसलिए, उन्होंने दलील दी है कि याचिकाकर्ता के प्रकरण में सरकारी आदेश लागू नहीं होता है और न ही यह उन मामलों को प्रभावित करता है, जहां कोई प्रिंसिपल या शिक्षक किसी भी उम्र में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुनता है।

17. प्रत्यर्थीगण ने जवाबी हलफनामा दायर किया है जिसमें यह रुख अपनाया गया है कि शिक्षकों की सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई है और चूंकि याचिकाकर्ता ने 58 वर्ष के स्थान पर 60 वर्ष की सेवानिवृत्ति आयु का विकल्प चुना है, इसलिए वह ग्रेच्युटी के लिए पात्र नहीं होगा।

18. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता को ग्रेच्युटी के भुगतान का दावा करने से रोका गया है क्योंकि 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति का विकल्प देने के बावजूद, उन्होंने 50 वर्ष की आयु में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-17 के संदर्भ में तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता 60 वर्ष से पहले सेवाओं को नहीं छोड़ सकता।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, मैं पाता हूँ कि 2009 के संशोधित अधिनियम संख्या 47, जो 3.4.1997 को भूतलक्षी प्रभाव से लागू हुआ था, तथा बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (पूर्वोक्त) और इंडिपेंडेंट स्कूल्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता 'कर्मचारी' की परिभाषा के अपवाद या बहिष्करण खंड के अंतर्गत आएगा। मैं पाता हूँ कि याचिकाकर्ता कर्मचारी की परिभाषा के

अंतर्गत पूरी तरह से आता है, जिससे वह ग्रेच्युटी पाने का हकदार है। जहाँ तक 29.8.1981 के सरकारी आदेश की प्रयोज्यता का प्रश्न है, मैं नहीं पाता कि यह संबंधित शिक्षक द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का दावा करने में कोई प्रतिबंध है। उक्त सरकारी आदेश में केवल 58 वर्ष या 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति के लिए विकल्प प्रस्तुत करने का प्रावधान है तथा इसका स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पहलू से कोई लेना-देना नहीं है। मैं उक्त सरकारी आदेश के अवलोकन से यह भी पाता हूँ कि इसके साथ विनियम भी हैं, जिसका खण्ड-4 इस प्रकार है:

"**4.** इस नियमावली की विज्ञप्ति की तिथि के उपरांत नियुक्ति अध्यापकों द्वारा स्थायीकरण की तिथि के दो वर्षों के अंदर 58 वर्ष की आयु पर सेवानिवृत्त होने के पक्ष में अपना विकल्प न देने पर यह नियमावली उस पर लागू नहीं होगी. विकल्प का एक बार प्रयोग कर लेने पर वह अंतिम समझा जायेगा।"

20. उपर्युक्त खंड-4 के अवलोकन से पता चलता है कि यह विनियमन उन शिक्षकों पर लागू नहीं होगा, जिन्होंने 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति का विकल्प नहीं दिया है। विनियमन-11 स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पहलू से संबंधित है और मुझे ऐसा कुछ भी नहीं मिला, जो किसी शिक्षक को 58 वर्ष की आयु में या उससे पहले स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने से रोके।

21. सरकारी आदेश और उसके भाग के रूप में गठित विनियमों की समग्र व्याख्या से, मैं पाता हूं कि इस संबंध में आरोपित दोनों आदेशों में ग्रेच्युटी देने से इनकार करने के लिए बताए गए कारण टिकने योग्य नहीं हैं।

22. परिणामस्वरूप, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। दिनांक 3.12.2015 और 11.9.2020 के विवादित आदेशों को **उत्प्रेषण** रिट जारी करके रद्द किया जाता है।

23. याचिकाकर्ता की सुनवाई के बाद याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी की राशि की गणना करने तथा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से **दो महीने** की अवधि के भीतर उसे उसके पक्ष में जारी करने के लिए प्रत्यर्थी 3, 4 तथा 6 को परमादेश रिट जारी की जाती है। याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक ग्रेच्युटी की राशि पर 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज पाने का भी हकदार होगा। यह राशि पेंशन की राशि के अतिरिक्त होगी, जो याचिकाकर्ता को पहले से मिल रही है।

(2023) 5 ILRA 1617

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट-ए संख्या 59655/2011

मो. इसहाक ...याचिकाकर्ता

बनाम

ए.डी.जे./विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. एक्ट), झांसी एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अरविन्द श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री अरविन्द श्रीवास्तव, श्री अतुल दयाल, श्री पुष्कर श्रीवास्तव

आयोजित: पैरा-

विधि व्यवस्था अनुसरित:

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. यह किरायेदार की रिट याचिका है जो श्री विज्ञानराम मिश्रा, तत्कालीन अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एसटी अधिनियम, झांसी द्वारा 2009 के किराया नियंत्रण अपील संख्या-6 में पारित एक निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई है, जिसमें अपील की अनुमति दी गई है, निर्धारित प्राधिकारी द्वारा किए गए निर्णय और आदेश दिनांक 07.05.2009 को रद्द करते हुए और 1972 के यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा 21(1)(ए) के तहत निकासी के लिए मकान मालिक के आवेदन को मंजूरी दी गई है।

2. कैलाश बाबू अग्रवाल की ओर से इसहाक के खिलाफ़ दुकान संख्या-13, मोहल्ला ननझाई बाजार, झांसी स्थित अपनी सदाशयी आवश्यकता के आधार पर आवेदन 1972 के यूपी अधिनियम (संक्षेप के लिए, 'अधिनियम') की धारा 21(1)(ए) के तहत दायर की गई है। मामला ये था कि दुकान संख्या-13, नांझाई बाजार, झांसी (संक्षेप के लिए, 'हस्तांतरित दुकान') कैलाश बाबू अग्रवाल (इसके बाद 'मकान मालिक' के रूप में संदर्भित) द्वारा 11.01.1993 को अपनी जरूरत के उद्देश्य से खरीदा गया था। यह मकान मालिक का मामला है कि उसके पास न तो रहने के लिए घर है और न ही अपना खुद का व्यवसाय करने के लिए कोई दुकान है। यह दुकान मो. इसहाक (इसके बाद 'किरायेदार' के रूप में संदर्भित) मकान मालिक द्वारा अपने निवास के उद्देश्य के साथ-साथ अपनी आजीविका कमाने के लिए अपनी दुकान स्थापित करने के लिए आवश्यक है। एक बार जब मकान मालिक को यह दुकान उपलब्ध हो जाती, तो वह अपनी आवश्यकता के अनुसार इसे फिर से बनवा लेता, जहां भूतल पर वह अपनी आजीविका कमाने के लिए एक दुकान चलाता था, और पहली मंजिल पर अपने रहने वाले क्वार्टर स्थापित करता था। फिलहाल, मकान मालिक मकान संख्या-207, दारू भौंडेला, झांसी में रहता है, जो एक छोटा सा घर है। इसमें 5-6 कमरे हैं, जबकि मकान मालिक के परिवार में 20 सदस्य हैं। मकान मालिक के कब्जे में 10x10 फीट का एक कमरा है, जिसमें वह अपनी पत्नी, 14 साल की बेटी और 10 साल के बेटे के, सभी बहुत कठिनाई के साथ रहते हैं।

3. मकान मालिक की मां तेज स्वभाव की है और जगह की कमी के कारण उसकी पत्नी और मां के बीच अक्सर झगड़े होते हैं। फिर मकान मालिक के भाई, रमेश चंद्र हैं, जिनके बेटे बड़े हो गए हैं और बड़े बेटे की शादी वर्ष 2000 में हुई है। मकान मालिक की मां अपने बड़े भाई के प्रभाव में है और जोर दे रही है कि मकान मालिक को दूसरे घर में जाना चाहिए। रोजी-रोटी कमाने के लिए उनकी अपनी कोई दुकान नहीं है। पिछले कुछ समय से वह रमेश चंद्र की दुकान पर काम करता था। रमेश चंद्र ने अब उसे अपनी दुकान पर नहीं बैठने के लिए कहा है, जिससे मकान मालिक बेरोजगार हो गया है। इस वजह से दोनों भाइयों के रिश्ते

में खटास आ गई है। यह दुकान 12x60 फीट की है, जो आवासीय उद्देश्य के लिए पर्याप्त जगह है। किरायेदार घर पर स्टील की अलमारी बनाता है और उन्हें बेचने के उद्देश्य से दुकान का उपयोग करता है। वह मकान मालिक से प्रीमियम वसूलने के लिए दुकान का कब्जा अपने पास रख रहा है।

4. निकासी के लिए कार्यवाही लंबित है, एक पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से, इस आशय का एक पुनरीक्षण मांगा गया था कि मकान मालिक के बच्चे बड़े हो गए हैं। उनकी बेटी B.Com में पढ़ रही है जबकि उनका बड़ा बेटा इंटरमीडिएट कॉलेज में पढ़ता है। दोनों बच्चों को अपनी पढ़ाई के लिए एक अलग कमरे की आवश्यकता है, एक ऐसा तथ्य जिसने मकान मालिक की दुकान की वास्तविक आवश्यकता को बढ़ा दिया है। इन्हीं आधारों पर दुकान को छोड़ने की प्रार्थना की गई।

5. किरायेदार, मो. इसहाक ने आम तौर पर मकान मालिक के मामले से इनकार करते हुए एक लिखित बयान दिया। यह कहा गया कि गलत तथ्यों पर किरायेदार को परेशान करने और उस पर गैरकानूनी दबाव डालने के लिए निकासी आवेदन बिना आधार के किया गया है। किरायेदार का मामला है कि जब से मकान मालिक ने दुकान खरीदी है, तब से वह किरायेदार के साथ मुकदमेबाजी कर रहा है। यह दलील दी गई है कि 1993 का पीए केस संख्या-26 11.03.1993 को अधिनियम की धारा 21(1)(बी) के तहत झूठे परिसर में स्थापित किया गया था, इस मामले के साथ कि हस्तांतरित दुकान जीर्ण-शीर्ण स्थिति में थी, जिसकी पुनर्निर्माण के बाद मकान मालिक द्वारा आवश्यकता थी।

6. उक्त आवेदन निर्धारित प्राधिकारी द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 07.09.1996 द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश की अपील 1996 की किराया नियंत्रण अपील संख्या-27 होने के कारण झांसी के जिला न्यायाधीश ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 07.07.2000 द्वारा खारिज कर दी थी। इसके बाद, मकान मालिक ने अधिनियम की धारा 21(1)(ए) के तहत 19.08.1994 को 1994 का पीए केस संख्या-95 शुरू किया, उसी आधार पर जैसा कि प्रस्तुत आवेदन में आग्रह किया गया था। निर्धारित प्राधिकारी ने दिनांक 29.01.1998 के निर्णय और आदेश द्वारा उस आवेदन को खारिज कर दिया। निर्धारित प्राधिकारी के उक्त आदेश के विरुद्ध मकान मालिक ने जिला न्यायाधीश के पास अपील की जिसे 11-05-2001 को खारिज कर दिया गया।

7. यह किरायेदार का मामला है कि 1994 के पीए केस संख्या-95 को जन्म देने वाले पहले निकासी आवेदन को जिस भी आधार पर स्थापित किया गया था और मकान मालिक इंटर पार्टेस के खिलाफ फैसला किया गया था, प्रस्तुत आवेदन उसी आधार पर लाया गया है। इसलिए, पहले के फैसले में निष्कर्ष वर्तमान कार्यवाही को न्यायिक निर्णय के रूप में रोकते हैं। इस बात से इनकार किया जाता है कि मकान मालिक ने कभी अपनी जरूरत के लिए दुकान खरीदी थी। इसके विपरीत, मकान मालिक एक संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य है और वे सभी पैसे उधार देने के व्यवसाय में

होने के अलावा सोने और चांदी के व्यापार में लगे हुए हैं। मकान मालिक एक शक्तिशाली व्यक्ति और एक संपत्ति डीलर है, जो अपनी आय बढ़ाने के लिए संपत्ति खरीदता है। खाली करवाने की कार्यवाही किरायेदार के खिलाफ उस पर अनुचित दबाव डालने के लिए लाई जाती है। मकान मालिक और उसके भाई एक संयुक्त परिवार के सदस्य हैं।

8. यह दलील दी गई है कि मकान मालिक ने अपनी पत्नी मीना अग्रवाल के नाम पर एक दुकान खरीदी है, जिसका संख्या-98, जवाहर चौक, झांसी 22.11.2001 को है। इसके अलावा, उन्होंने संजय अग्रवाल की पत्नी मंजू अग्रवाल के नाम पर दुकान संख्या-190, बड़ा बाजार, चौधरीना के पिछले मालिक श्रीमती विमला देवी से 2 मई, 2004 को एक और दुकान खरीदी है। आगे कहा गया है कि मकान मालिक ने संजय अग्रवाल के नाम से एक और दुकान खरीदी है, जिसका संख्या-22, जवाहर चौक, झांसी है, जिसमें राम बिहारी और अन्य किराएदार थे। उक्त दुकान पर कब्जा करने वाले किरायेदारों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर उन्हें खाली कराने की मांग की गई थी। दबाव में उक्त किरायेदारों के खाली होने के बाद उस दुकान को बेच दिया गया।

9. यह किरायेदार का आगे का मामला है कि मकान मालिक के बड़े भाई, संजय अग्रवाल द्वारा 11.01.1994 को खरीदी गई दुकान संख्या-14, नांझाई बाजार के अलावा किरायेदार के खिलाफ एक मुकदमा दायर किया गया था, इरशाद खान बेदखली के लिए 1994 का एस.सी.सी. सूट संख्या-123 था और 23.09.1995 को डिक्री की गई थी। इरशाद खान के पुनरीक्षण को इस न्यायालय ने खारिज कर दिया था और संदर्भ के तहत दुकान का कब्जा संजय अग्रवाल को दिया गया था। इस प्रकार खाली की गई दुकान पिछले तीन वर्षों से खाली पड़ी है और बंद है। इन संपत्तियों के अलावा, मकान मालिक अपने परिवार के साथ एक महलनुमा तीन मंजिला घर में रहता है, जिसका संख्या-207, दारू भौंडेला, झांसी है, जो सभी आधुनिक सुविधाओं से लैस है। इस घर में कई हिस्से हैं और इसमें लगभग 20-25 बड़े आकार के कमरे हैं। इसके अलावा, दो बरामदे, एक स्टोर, रसोईघर और कई शौचालय और बाथरूम हैं।

10. जमींदार और उनके भाइयों के पास झांसी के मुख्य बाजार क्षेत्र में मित्रा मार्केट नामक दो मंजिला बाजार है, जिसका निर्माण वर्ष 1990 में किया गया था। उक्त बाजार में मकान मालिक और उसके भाइयों के स्वामित्व वाली दुकानें किराए पर दी जाती हैं। मकान मालिक साहूकार के अलावा केबी ज्वैलर्स के नाम और शैली के तहत व्यवसाय करता है। परिवार में उक्त व्यवसाय के अलावा, राम सेवक रमेश चंद्र कामराय ज्वेलर्स और एमके ज्वैलर्स के नाम और शैली के तहत अन्य व्यवसाय हैं। जमींदार के परिवार की अन्य कंपनियां भी हैं, जो सभी सोने और चांदी के व्यापार में लगी हुई हैं। उनके परिवार का एक सदस्य बुलियन रिफाइनरी के नाम और शैली के तहत व्यवसाय करता है, जहां चांदी और सोने को

शुद्ध किया जाता है और कारखाने में चांदी के सिक्कों का खनन किया जाता है।

11. जमींदार और उसके भाइयों के पास झांसी के मोहल्ला नई बस्ती में नवीन यूनिट स्कूल के नाम से एक इमारत है। मकान मालिक के परिवार के सभी सदस्य, पुरुष और महिलाएं शिक्षित और सक्षम हैं, जो सौहार्दपूर्वक एक साथ रहते हैं। उनके पास जगह की कोई कमी नहीं है। किरायेदार की ओर से इस आशय की दलील भी है कि मकान मालिक और उसकी पत्नी ने कभी मकान मालिक की मां से लड़ाई नहीं की जो एक सरल और सीधी महिला है। मकान मालिक का यह कहना कि दारू भौंडेला, झांसी में उसका घर 5-6 कमरों वाला एक छोटा सा घर है और उसके परिवार में कुल 20 व्यक्ति हैं, जहां मकान मालिक के पास अपने लिए 10x10 फीट का एकांत कमरा है, गलत तथ्यों(?) पर टिका हुआ है। मकान मालिक और उसके भाई, रमेश चंद्र और अन्य लोगों ने एक इदरीस से अपनी दुकान संख्या-164 वाली एक बड़ी दुकान खाली कर दी है और इसके साथ एक बगल की दुकान को मिलाकर, उन्होंने एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स बनाया है, जिसमें सभी भाइयों की अलग-अलग दुकानें हैं।

12. मकान मालिक ने शारदा हिल्स कॉलोनी में एक नवनिर्मित घर में एक पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदा है, जिसमें कई बड़े कमरे, एक बरामदा, एक रसोईघर और एक बाथरूम है। इससे पहले भी मकान मालिक और उनके भाइयों, संजय अग्रवाल और रमेश चंद्र ने 21.05.2008 को झांसी-ग्वालियर रोड पर स्थित जमीन का एक कीमती प्लॉट अपनी पत्नियों, मीना अग्रवाल, मंजू अग्रवाल और ममता अग्रवाल के नाम पर खरीदा था, जो सभी उनके कब्जे में हैं। मकान मालिक के पास पहले बताए गए घरों और दुकानों के अलावा, मकान संख्या-212, 213, दारू भौंडेला, झांसी भी हैं, जो बड़े आवासीय परिसर हैं। किरायेदार दुकान संख्या-13, परिसर संख्या-13 और 14 की ऊपरी मंजिल पर 32.50 रुपये प्रति माह की दर से रहता है। उक्त दुकान में किरायेदार स्टील की अलमारी, बक्से, ट्रंक, बुक शेल्फ, पैकिंग केस आदि बनाकर उसकी मरम्मत भी करता है। वह कच्चे माल का भंडारण करता है। मकान की यह एकमात्र दुकान है, जहां वह और उनके पांच बेटे एक साथ काम करते हैं। यह स्थान उन्हें उनकी आजीविका का एकमात्र स्रोत प्रदान करता है।

13. किरायेदार का घर, जिसका संख्या-233, मुकुरियाना, झांसी है, एक निर्मित गली में स्थित एक घर है, जहां कोई दुकान या बाजार नहीं है। किरायेदारों के उस घर में छह कमरे हैं, जिसमें वह परिवार के 39 सदस्यों के साथ रहता है। उन परिसरों में, वह स्टील की अलमारी नहीं बनाता है और न ही वह ऐसा कर सकता है। किरायेदार और उसके परिवार की आजीविका के स्रोत का समर्थन करने के लिए यह दुकान आवश्यक है। यदि इसे जारी किया जाता है, तो किरायेदार को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। किरायेदार के व्यवसाय ने गुडविल प्राप्त की है। मकान मालिक को दुकान की कोई जरूरत नहीं है। यदि निकासी आवेदन को अस्वीकार कर दिया जाता है, तो मकान मालिक को कोई कठिनाई नहीं होगी। निकासी आवेदन खारिज किए जाने के योग्य है।

14. मकान मालिक ने अपने स्वयं के शपथ पत्र द्वारा अपने मामले का समर्थन किया, जिसमें पेपर संख्या-25 ए, रमेश चंद्र अग्रवाल का एक शपथपत्र, पेपर संख्या-26 ए और संजय अग्रवाल का एक और शपथपत्र, पेपर संख्या-27 ए था। किरायेदार ने अपने साक्ष्य के लिए अपने स्वयं के हलफनामे, पेपर संख्या-30 ए, मनमोहन श्रीवास्तव का एक हलफनामा, पेपर संख्या-31 ए और अनीस का एक शपथ पत्र, पेपर संख्या-32 ए में रखा। मकान मालिक ने अपना प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया, जिसमें पेपर संख्या-53 ए था। मकान मालिक की ओर से एक अतिरिक्त शपथ पत्र पेपर संख्या-69 ए दायर किया गया था, जो उसका अपना था। किरायेदार ने शपथ पत्र, पेपर संख्या-75 ए दायर किया। मकान मालिक की ओर से दो अन्य हलफनामे दायर किए गए थे, जिनमें पेपर संख्या-81 ए और 99 ए था। किरायेदार ने एक सूची के साथ आवेदन किया, जिसमें पेपर संख्या-33 सी, चौदह दस्तावेज थे। एक अन्य सूची, 76सी के माध्यम से चार दस्तावेज दाखिल किए गए। एक एकल दस्तावेज सूची 94C के माध्यम से दायर किया गया था, उसके बाद सूची 102C के माध्यम से दो अन्य, सूची 108C के माध्यम से एक और सात और सूची 116C के माध्यम से एक एकल दस्तावेज दाखिल किए गए।

15. निर्धारित प्राधिकारी, जिसने निकासी के लिए मकान मालिक के आवेदन की सुनवाई की, ने उसके खिलाफ सदाशयी आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई दोनों के मुद्दों पर अवधारित किया। मकान मालिक के आवेदन को निर्धारित प्राधिकारी द्वारा उसके निर्णय और आदेश दिनांक 07.05.2009 द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। मकान मालिक ने अधिनियम की धारा 22 के तहत अपील के माध्यम से निर्धारित प्राधिकारी के फैसले पर सवाल उठाया, जिसे झांसी के जिला न्यायाधीश के पास ले जाया गया। अपील को अधिनियम के अंतर्गत अपीलीय प्राधिकारी के रूप में बैठे विद्वान जिला न्यायाधीश की फाइल पर 2009 की किराया नियंत्रण अपील संख्या-6 के रूप में क्रमांकित किया गया था। मकान मालिक की अपील दिनांक 22-09-2011 को अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, झांसी के समक्ष निर्धारण के लिए आई। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने निर्धारित प्राधिकारी के फैसले को उलट दिया, मकान मालिक की अपील की अनुमति दी, निकासी के लिए आवेदन को मंजूरी दी और किरायेदार के निष्कासन का आदेश दिया।

16. व्यथित होकर किरायेदार ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस रिट याचिका को दायर की दी है।

17. किरायेदार के अधिवक्ता श्री अरविंद श्रीवास्तव और मकान मालिक के अधिवक्ता श्री अरविंद श्रीवास्तव को सुना।

18. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, किरायेदार का निधन हो गया और उसके उत्तराधिकारियों एल.आर.?, जो संख्या में पांच हैं, को याचिकाकर्ता संख्या-1/1 से 1/5 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। इसलिए, किरायेदार के सभी आगे के उल्लेख मूल

किरायेदार के पांच उत्तराधिकारियों में से प्रत्येक के संदर्भ में हैं, जिन्हें संयुक्त किरायेदारी विरासत में मिली है।

19. किरायेदार की ओर से सबसे महत्वपूर्ण निवेदन यह है कि वर्तमान निकासी आवेदन पोषणीय नहीं है क्योंकि इसे मकान मालिक द्वारा उसी आधार पर किए गए पहले निकासी आवेदन की अस्वीकृति के दो महीने और दस दिनों के भीतर स्थानांतरित कर दिया गया है। किरायेदार के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि प्रस्तुत आवेदन उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए, किराया और बेदखली का विनियमन) नियम, 1972 (संक्षेप में, 'नियम') के नियम 18(2) द्वारा वर्जित है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि, अन्यथा भी, अधिनियम की धारा 21(1)(ए) के तहत अंतिम आवेदन की अस्वीकृति के बाद से परिस्थितियां नहीं बदली हैं, कि मकान मालिक को प्रस्तुत आवेदन को बनाए रखने का अधिकार दिया जा सके।

20. किरायेदार की ओर से इस बिंदु पर घटनाओं का संक्षिप्त सारांश यह है कि मकान मालिक द्वारा 15.03.1993 को पहला निकासी आवेदन किया गया था, जिसमें केस संख्या-26 वर्ष 1993 था। इसे अधिनियम की धारा 21(1)(बी) के तहत स्थानांतरित किया गया था। इस आवेदन को दिनांक 09.07.1996 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त आदेश से दायर अपील को 07.07.2000 को खारिज कर दिया गया था, और अपीलीय आदेश को चुनौती देने वाली एक रिट याचिका को इस न्यायालय द्वारा 14.03.2012 को खारिज कर दिया गया था। अधिनियम की धारा 21(1)(ए) के तहत सदाशयता के आधार पर निकासी की मांग करने वाला दूसरा आवेदन 19.08.1994 को किया गया था, जिसे निर्धारित प्राधिकारी की फाइल पर केस संख्या-95 वर्ष 1994 के रूप में गिना गया था। इस आवेदन को निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दिनांक 29.01.1998 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इस आदेश से अपील अपीलीय प्राधिकारी के पास की गई थी, जो किराया नियंत्रण अपील संख्या-9 वर्ष 1998 थी, जिसे निर्णय और आदेश दिनांक 11.05.2001 द्वारा खारिज कर दिया गया था। रिट याचिका संख्या-30896 वर्ष 2001 होने के कारण अपीलीय आदेश को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की गई थी, जिसे दिनांक 27.04.2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

21. किरायेदार के अधिवक्ता अपीलीय आदेश की तारीख से अधिनियम की धारा 21(1)(ए) के तहत प्रस्तुत आवेदन की प्रस्तुति की अवधि की गणना करता है, यानी निकासी आवेदन से उद्भूत कार्यवाही में पारित 11.05.2001, दूसरे उदाहरण में ले जाया गया। यह उस आधार पर है कि किरायेदार के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रस्तुत आवेदन निकासी के लिए दूसरे आवेदन की अस्वीकृति के दो महीने और दस दिनों के भीतर किया गया था। इसलिए, वह आग्रह करता है कि आवेदन नियमों के नियम 18 के उप-नियम (2) के प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से वर्जित है, इसके अलावा यह प्रस्तुत करने के अलावा कि मकान मालिक और किरायेदार के बीच उनकी वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई के बारे

में परिस्थितियों में कोई भौतिक परिवर्तन नहीं है।

22. दूसरी ओर मकान मालिक के अधिवक्ता का कहना है कि प्रस्तुत आवेदन बिल्कुल भी वर्जित नहीं है क्योंकि नियमों के नियम 18(2) के तहत परिकल्पित एक वर्ष की अवधि की गणना निर्धारित प्राधिकारी द्वारा आवेदन की अस्वीकृति की तारीख से की जानी चाहिए, न कि मूल आदेश से की गई अपील को खारिज करने से। वह प्रस्तुत करता है कि अन्यथा भी नियम 18 निर्देशिका है; अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार, मकान मालिक के अधिवक्ता के अनुसार, कोई रोक नहीं है, जो अधिकारियों को अधिनियम के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने और बाद में निकासी आवेदन पर विचार करने से रोकती है। यह भी तर्क दिया जाता है कि परिस्थितियां महत्वपूर्ण रूप से बदल गई हैं, जिसके कारण पहले के आवेदन में दिया गया निर्णय पक्षों को वास्तविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई के मुद्दों के बारे में बाध्य नहीं करेगा।

23. अपीलीय प्राधिकारी ने निर्धारित प्राधिकारी से असहमत इस स्कोर पर किरायेदार के तर्क को खारिज कर दिया है और माना है कि एक दूसरा आवेदन पहले निकासी आवेदन की अस्वीकृति के एक वर्ष के भीतर नियमों के नियम 18 द्वारा बिना किसी बाधा के बनाए रखा जाएगा, और पहले आवेदन में पारित आदेश से अपील को खारिज नहीं किया जाएगा। अपीलीय प्राधिकरण ने मकान मालिक की ओर से दी गई प्रस्तुतियों के अनुरूप भी माना है कि नियम 18 के प्रावधान निर्देशिका हैं और अनिवार्य नहीं हैं।

24. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने पर, इस न्यायालय ने पाया कि नियमों के नियम 18(2) के तहत परिकल्पित, भले ही इसे सख्ती से लागू किया जाना था, अपील में निर्णय की तारीख से नहीं गिना जाना चाहिए, लेकिन निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पहले के आवेदन की अस्वीकृति की तारीख से। यह सिद्धांत इस न्यायालय द्वारा हीरा लाल बनाम IXवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कानपुर और अन्य, (2005) 61 एएल.आर. 488(इला०) में निर्धारित किया गया था, यह भी दर्शाता है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पहले आवेदन की अस्वीकृति की तारीख से एक वर्ष की अवधि की गणना क्यों की जानी है; अपीलीय प्राधिकरण द्वारा नहीं। हीरा लाल (उपरोक्त) में, यह अवधारित किया गया है:

"5. ..... दूसरे, एक वर्ष की अवधि निर्धारित प्राधिकारी के निर्णय से गिनी जाएगी। यदि उक्त निर्णय के खिलाफ दायर अपील खारिज कर दी जाती है, तो पूर्वोक्त नियम के तहत प्रदान की गई एक वर्ष की अवधि को अपील की बर्खास्तगी की तारीख से नहीं गिना जाएगा। उपर्युक्त नियम के पीछे कारण यह है कि एक वर्ष के भीतर आवश्यकता की स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन नहीं होता है। हालांकि, एक साल बाद यह बदल सकता है। निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष निकासी के अंतिम निर्णय तक प्रचलित आवश्यकता की स्थिति को अधिकार के रूप में रिकॉर्ड पर लाया जा सकता है। तथापि, अपील के लंबित रहने के दौरान बाद के घटनाक्रमों को अधिकार के रूप में रिकार्ड में नहीं लाया जा सकता है। अपीलीय अदालत ने बस इतना कहा कि जैसा कि पहले प्रतिपक्षी संख्या-3 बाबू सिंह के खिलाफ

निकासी आवेदन खारिज कर दिया गया था, इसलिए यह माना जाएगा कि मकान मालिक की कोई वास्तविक आवश्यकता नहीं थी। अपीलीय न्यायालय का दृष्टिकोण कानून में पूरी तरह से गलत था।

25. यह मुद्दा, कि क्या नियमों के नियम 18(2) के तहत बार निर्देशिका या अनिवार्य है, अम्मल चंद्र दत्त बनाम भारत संघ में विचार के लिए गिर गया। द्वितीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य, (1989)1 एस.सी.सी.- अम्मल चंद्र दत्त (उपरोक्त) में, यह सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा अवधारित किया गया था:

"9. अब हम उन कारणों को निर्धारित कर सकते हैं कि नियम 18(1) में दिए गए नुस्खे को केवल निर्देशिका के रूप में क्यों माना जाना चाहिए और अनिवार्य नहीं। पहली जगह में, नियम दो प्रकार की स्थितियों की परिकल्पना करता है, उनमें से एक जहां दूसरा आवेदन उस तारीख से छह महीने के अंतराल के भीतर किया जाता है, जिस पर पिछले आवेदन में अंतिम आदेश पारित किए गए थे और दूसरा जहां दूसरा आवेदन छह महीने के अंतराल से परे किया जाता है, जो कई वर्षों तक भी जा सकता है, जैसा कि इस मामले में जहां अंतराल पांच साल से अधिक था, लेकिन अधिनियम के लागू होने के छह महीने के भीतर। निश्चित रूप से, विधायिका का इरादा यह नहीं होगा कि नियम 18(1) में दिए गए निर्देशात्मक दिशानिर्देश के कठोर और अनम्य अनुप्रयोग को अपनाकर स्थितियों के दो सेटों में अंतराल कारक को समान परिणामों के साथ देखा जाना चाहिए। दूसरा कारक यह है कि भले ही अंतराल कारक नियम 18(1) में निहित सूत्र के आवेदन के लिए एकमात्र मानदंड हो, विधायिका यह इरादा नहीं कर सकती थी कि जहां पहले आवेदन के निपटान के बाद कठोर परिवर्तन हुए हों, वहां भी विहित प्राधिकारी को स्थिति की वास्तविकताओं के प्रति अपनी आंखें बंद कर लेनी चाहिए और नियम 18(1) में सूत्र को आंख मूंदकर और यांत्रिक रूप से लागू करना चाहिए और दूसरे अनुप्रयोग को अस्वीकार कर देना चाहिए। कुछ उदाहरणों का हवाला देने के लिए यह हो सकता है कि पहले आवेदन के निपटान के बाद, मकान मालिक को उसके कब्जे वाले घर के क्षय या भारी बारिश के कारण गिरने या आग से नष्ट होने के कारण बेघर कर दिया गया था। क्या कोई यह कह सकता है कि जो भी बदलाव हुए हैं, उसके बावजूद, पिछले आवेदन में दिए गए निष्कर्षों में नियम के तहत निर्धारित छह महीने की अवधि समाप्त होने तक प्रासंगिकता का बल होगा? इसलिए, यह प्रकट होता है कि, यदि वह परिस्थितियों को अपरिवर्तित पाता है और पहले के आवेदन में दिए गए निष्कर्षों को दूसरे आवेदन में निर्धारित तथ्यों के संदर्भ में भी प्रासंगिक पाता है, नियम 18(1) में प्रतिपादित अनुमान का नियम केवल निर्धारित प्राधिकारी द्वारा अनुसरण किए जाने वाले दिशानिर्देश के रूप में कार्य करने के लिए है। नियम का उद्देश्य कार्यवाही की बहुलता से बचना है क्योंकि नियम को दिया गया शीर्षक यह स्पष्ट करेगा। इसलिए नियम 18(1) को केवल पहले आवेदन में दिए गए निष्कर्षों के आधार पर निर्धारित समय सीमा के भीतर दायर किए गए दूसरे आवेदन को खारिज करने के लिए, एक

कठोर कानूनी नुस्खे के रूप में समझना असमान और अवास्तविक होगा।

26. यह इन निर्णयों, जो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा किरायेदार के तर्कों को पीछे हटाने के लिए भरोसा किया गया है, और हमारी राय में सही है। इस मामले में नियमों के नियम 18(2) के अंतर्गत रोक लागू नहीं होगी क्योंकि पहले का आवेदन, अर्थात् निकासी के लिए प्रस्तुत आवेदन से पहले का दूसरा आवेदन निर्धारित प्राधिकारी द्वारा 29-01-1998 को अस्वीकृत कर दिया गया था, जबकि प्रस्तुत आवेदन 23-07-2001 को प्रस्तुत किया गया था। इसलिए, तात्कालिक आवेदन निर्धारित प्राधिकारी द्वारा जारी किए जाने के लिए दूसरे आवेदन को अस्वीकार किए जाने से एक वर्ष की अवधि से काफी अधिक था। मकान मालिक की ओर से उठाया गया तर्क कि नियम 18(2) के तहत एक वर्ष की अवधि की गणना निकासी के लिए दूसरे आवेदन में पारित अपीलीय आदेश की तारीख से की जानी चाहिए, यानी 11.05.2001 को, को नहीं माना जा सकता है। अन्यथा भी, नियम को निर्देशिका माना गया है और रखरखाव को प्रभावित करने के लिए कानून में समझे गए अर्थ में एक बार के रूप में काम नहीं करेगा।

27. तत्व की बात यह है कि क्या पहले निकासी आवेदन की अस्वीकृति के बाद से पक्षों की परिस्थितियां बदल गई हैं। इस न्यायालय की राय में, अपीलीय न्यायालय की तरह, उनके पास भी है। मकान मालिक की बेटी ने B.Com कोर्स में प्रवेश लिया है, जबकि बेटा इंटरमीडिएट कक्षा में पहुंच गया है। साक्ष्य पर मकान मालिक भी अपनी खुद की दुकान के बिना पाया गया है, हालांकि उसके पास अपनी जरूरत के उस हिस्से की देखभाल करने के लिए आवासीय आवास है। ये परिस्थितियां मकान मालिक को अपने पिछले आवेदन की अस्वीकृति के बाद, क्षतिग्रस्त दुकान की निकासी के लिए अपनी प्रार्थना को नवीनीकृत करने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त बदल गई हैं। अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्ष को इस आधार पर बिल्कुल भी गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

28. किरायेदार की ओर से यह तर्क दिया जाता है कि मकान मालिक द्वारा स्थापित कोई वास्तविक आवश्यकता नहीं है, जो उसे हस्तांतरित दुकान से मुक्त करने का हकदार है। यह बताया गया है कि निकासी आवेदन के जवाब में दायर आपत्तियों/लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या-8 और 9 में, यह दलील दी गई है कि मकान मालिक, उसके भाई और मां संयुक्त रूप से रह रहे हैं। मकान मालिक ने हाल ही में 22-11-2001 को मोहल्ला जवाहर चौक, झांसी में स्थित 98 संख्या-की एक दुकान खरीदी है। उन्होंने अपने भाई संजय अग्रवाल की पत्नी श्रीमती मंजू अग्रवाल के नाम पर 25.05.2004 को एक दुकान संख्या-190 भी खरीदी है। उक्त तथ्यों को लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या-10 में कहा गया है।

29. किरायेदार की ओर से यह बताया गया है कि यह नीचे के अधिकारियों के ध्यान में लाया गया था कि मकान मालिक के पास कई आवास हैं, दुकान संख्या-14, परिसर संख्या-207, जहां वह रह रहा है, मित्रा मार्केट के नाम

पर एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, फर्म, अर्थात्, मैसर्स राम सेवक रमेश चंद्र, के. बी. ज्वैलर्स, कमरिया ज्वैलर्स और एम.के. उनके पास शारदा हिल्स, नई बस्ती और अन्य संपत्तियों में दिनांक 01.08.2008 के बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदा गया एक आवासीय घर भी है। यह आग्रह किया जाता है कि यह इन सभी आवासों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए निर्धारित प्राधिकारी ने निकासी के लिए मकान मालिक के आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया।

30. अधिवक्ता द्वारा किरायेदार की ओर से यह तर्क दिया गया है कि अपील में मकान मालिक ने निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए इन निष्कर्षों को चुनौती नहीं दी। आगे यह तर्क दिया गया है कि मकान मालिक के भाई की पत्नी श्रीमती मंजू अग्रवाल के नाम पर खरीदी गई दुकान संख्या-190 को मकान मालिक द्वारा 24.02.2011 को बेच दिया गया था। यह दुकान मकान मालिक के लिए व्यवसाय करने के लिए उपलब्ध थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं करने का फैसला किया है, और इसके बजाय, बंद होने पर बेच दिया। किरायेदार के अधिवक्ता के अनुसार, यह इस कारण से है कि उसे उपरोक्त दुकान की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वह व्यवसाय में अच्छी तरह से व्यवस्थित है। इसी तरह, उसे बंद हो चुकी दुकान की कोई वास्तविक आवश्यकता नहीं है।

31. इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया जाता है कि मकान मालिक ने शारदा हिल्स कॉलोनी में 01.08.2008 को अपने स्वयं के संसाधनों से एक आवासीय घर खरीदा है, जो वह परिसर संख्या-164, सर्राफ़ा बाजार, झांसी में करता है। इस संबंध में, उन्होंने पेपर-बुक के पृष्ठ संख्या-226 पर बिक्री विलेख की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। किरायेदार के अधिवक्ता के अनुसार, मकान मालिक ने ओम शांति नगर में एक और घर खरीदा है। उक्त तथ्य को साबित करने के लिए, नीचे दिए गए विधि निर्णयों के निष्कर्षों का हवाला देने के अलावा, अधिवक्ता ने पेपर-बुक के अनुलग्नक संख्या-19 के रूप में संलग्न बिक्री विलेख की एक फोटोस्टेट प्रति की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। यह आग्रह किया जाता है कि वास्तविक आवश्यकता के सवाल पर, इसहाक, मनमोहन श्रीवास्तव और अनीस खान के हलफनामों पर, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-21, 22, 23 के रूप में संलग्न हैं, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपीलीय प्राधिकारी ने वास्तविक आवश्यकता के प्रश्न पर अपनी खोज दर्ज करते समय रिकॉर्ड पर विचार किए गए अहम साक्ष्य की उपेक्षा की थी।

32. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने वास्तविक आवश्यकता के मुद्दे का उत्तर देने में रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि भी की है। यह पुष्टि में प्रस्तुत किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी ने इस आशय के निष्कर्ष दर्ज किए हैं कि मकान मालिक का परिवार एक संयुक्त परिवार के रूप में खुशी से एक साथ रह रहा था, और यह भी कि मकान मालिक के पास अपने परिवार के साथ आवासीय उद्देश्य और व्यवसाय करने के

उद्देश्य दोनों के लिए उपलब्ध कई आवास हैं। उसे बंद दुकान की जरूरत नहीं है। किरायेदार के अधिवक्ता के अनुसार, चूंकि उक्त प्राधिकरण द्वारा दिए गए कारणों की वजह से निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए इस निष्कर्ष पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है, इसलिए आक्षेपित निर्णय स्पष्ट त्रुटि से दूषित है।

33. दूसरी ओर, मकान मालिक के अधिवक्ता ने अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि किरायेदारों द्वारा मकान मालिक को उपलब्ध होने के लिए बताए गए सभी विभिन्न आवासों को वास्तविक आवश्यकता के मुद्दे पर मकान मालिक के पक्ष में रखने से पहले विचार किया गया है। मकान मालिक की सदाशयी आवश्यकता को केवल व्यवसाय के उद्देश्य से स्वीकार किया गया है। यह आग्रह किया जाता है कि अपीलीय प्राधिकरण ने किसी भी सबूत पर विचार करने से नजरअंदाज नहीं किया है या स्पष्ट त्रुटि नहीं की है, ताकि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में तथ्य की शुद्ध खोज के साथ इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सके।

34. इस न्यायालय ने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और आक्षेपित निर्णय और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। विहित प्राधिकारी के निर्णय की भी जांच की गई है।

35. इस न्यायालय पाता है कि मकान मालिक की प्रस्तुतियाँ है कि अपीलीय प्राधिकारी ने विचार सामग्री से सबूत को नजरअंदाज कर दिया है, वास्तविक जरूरत के मुद्दे पर रिकॉर्ड निष्कर्षों में स्पष्ट त्रुटि है और ये पोषणीय नहीं हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने मकान सं-207, दारू भौंडेला में मकान मालिक को उपलब्ध आवासीय आवास और उसमें उस स्थान के बारे में पक्षकारों के मामले पर विचार किया है जहां मकान मालिक अपने तीन अन्य भाइयों और उनके परिवारों के साथ रहता है। अपीलीय प्राधिकरण ने मकान मालिक के मामले को स्वीकार नहीं किया है कि उक्त घर में 5-6 कमरे हैं और न ही किरायेदार के कि इसमें बाथरूम और अन्य सुविधाओं के अलावा 20-25 बड़े कमरे हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने अमीन की रिपोर्ट, पेपर संख्या-85-सी पर विचार किया है और यह निष्कर्ष दिया है कि इस घर में भूतल, पहली मंजिल और दूसरी मंजिल है, जिसमें कुल 10 कमरे हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने तब मकान मालिक के एकल परिवार में परिवार के सदस्यों और उसके तीन भाइयों की संख्यापर विचार किया है, जिनमें से सभी को मकान संख्या-207, दारू भौंडेला में संयुक्त परिवार के रूप में रहने के लिए कहा जाता है।

36. यह माना गया है कि रिकॉर्ड पर राशन कार्ड के अनुसार, मकान मालिक के भाई, रमेश चंद्र का सात का परिवार है, मकान मालिक का चार का परिवार है, महेश चंद्र का परिवार पांच का है, अजय कुमार का परिवार चार का परिवार है और संजय अग्रवाल फिर से चार का परिवार है। अपीलीय प्राधिकारी ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि कार्यवाही लंबित रहने तक मकान मालिक की मां का निधन हो गया है। मकान मालिक और उसके भाइयों में कुल

मिलाकर 25 सदस्य हैं। माना जाता है कि अन्य आवासीय आवास चार घर हैं, जिनका संख्या-33, 210, 212 और 213, दारू भौंडेला, एक अन्य घर संख्या-22, नांझाई बाजार और शारदा हिल्स कॉलोनी और ओम शांति नगर में खरीदे गए दो घर हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि मकान संख्या-207 के अलावा, मकान मालिक के पास परिसर संख्या-212, 213, दारू भौंडेला में स्थित घर हैं और उसने अपील लंबित रहने के लिए दो घर भी खरीदे हैं; एक ओम शांति नगर में और दूसरा शारदा हिल्स कॉलोनी, नई बस्ती में। पहला वाला 162 वर्ग मीटर का क्षेत्र और बाद का क्षेत्रफल 54.03 वर्ग मीटर है। अपीलीय प्राधिकारी ने मकान मालिक के परिवार के राशन कार्ड के आधार पर एक निष्कर्ष भी दर्ज किया है कि उसका भाई महेश चंद्र परिसर संख्या-213, दारू भौंडेला में रहता है, जबकि अजय कुमार परिसर संख्या-33 में और संजय कुमार 210 में रहता है। यह माना गया है कि मकान मालिक के भाई मकान संख्या-33, 210, 212, 213, दारू भौंडेला में रहते हैं। अपीलीय प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष दिया है कि जहां तक उसकी आवासीय आवश्यकता का संबंध है, मकान मालिक की कोई वास्तविक आवश्यकता नहीं है। यहां, अपीलीय प्राधिकारी अपने स्वयं के और बहुत विस्तृत कारणों से निर्धारित प्राधिकारी के साथ सहमत है।

37. जहां तक मकान मालिक के व्यवसाय के रहने के लिए आवास का संबंध है, अपीलीय प्राधिकारी ने बहुत सावधानीपूर्वक उन सभी संपत्तियों की जांच की है जो मकान मालिक को उनके स्वामित्व, उपयोगिता और उपयुक्तता के बारे में इस उद्देश्य के लिए उपलब्ध हैं। इसमें मकान मालिक की पत्नियों मीना अग्रवाल, मंजू अग्रवाल और ममता अग्रवाल और उनके दो भाइयों के नाम पर संयुक्त रूप से 21-05-2008 को खरीदी गई एक निश्चित भूमि का उल्लेख है। यह जमीन ग्वालियर रोड पर स्थित है। अपीलीय प्राधिकारी ने यह मत व्यक्त किया है कि भूमि कृषि योग्य है जैसा कि कागज सं 95-ग वाले दस्तावेज से स्पष्ट है। इसका कोई निर्मित क्षेत्र नहीं है और यह कृषि के लिए उपयुक्त है। अपीलीय प्राधिकरण ने माना है कि इस तरह की भूमि का स्वामित्व मकान मालिक की दुकान की आवश्यकता का न्याय करने के लिए अप्रासंगिक है। उक्त निष्कर्ष हमारी राय में अपवाद से परे है। इसके बाद एक दुकान संख्या-14, ननझाई बाजार, झांसी का संदर्भ दिया गया है, जिसे मकान मालिक के भाई संजय अग्रवाल ने 11.01.1994 को खरीदा है। दुकान में बैठे किरायेदार, एक इरशाद के खिलाफ एक मुकदमा स्थापित किया गया है, जो 1994 का एस.सी.सी. सूट संख्या-123 है। इस वाद की डिक्री दिनांक 23-09-1995 को की गई थी और डिक्री से पुनरीक्षण को निरस्त कर दिया गया था। उक्त दुकान के बारे में यह टिप्पणी की गई है कि यह संजय अग्रवाल की है; मकान मालिक नहीं।

38. फिर संजय अग्रवाल की पत्नी मंजू अग्रवाल के नाम पर खड़ी एक दुकान संख्या-190, बड़ा बाजार, चौधरियाना का संदर्भ है, जिसे उस तारीख के बिक्री विलेख के माध्यम से 25.05.2005 को खरीदा गया था। इस दुकान में भी वसी-उर्रहमान नाम का एक

किराएदार था, जिसके खिलाफ पीए केस संख्या-13 वर्ष 2005 शुरू किया गया था, जिसमें निकासी की मांग की गई थी। निकासी आवेदन को 16-04-2010 को अनुमति दी गई थी। इसी प्रकार, संजय अग्रवाल ने नं.-72, जवाहर चौक, झांसी के परिसर को खरीदा और उक्त परिसर में बैठे किरायेदार के खिलाफ 1992 का एस.सी.सी. उक्त वाद पुनरीक्षण में किरायेदार के साथ समझौता किया गया था।

39. यह टिप्पणी की गई है कि यदि इनमें से कोई भी दुकान जिसका संख्या-14, नांझाई बाजार, झांसी, दुकान संख्या-190, बड़ा बाजार, चौधरियाना, या दुकान संख्या-72, जवाहर चौक, झांसी है, संजय अग्रवाल या उनकी पत्नी द्वारा खरीदी गई है और खाली कर दी गई है, तो यह मकान मालिक की दुकान की आवश्यकता के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इनमें से कोई भी दुकान संयुक्त परिवार या मकान मालिक की नहीं है। ये मकान मालिक के भाई, संजय अग्रवाल या उनकी पत्नी के हैं। उपलब्ध बताई गई सभी संपत्तियों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते हुए, यह माना गया है कि मकान मालिक के पास अपने व्यवसाय के उद्देश्य के लिए कोई परिसर उपलब्ध नहीं है।

40. अपीलीय प्राधिकारी ने मकान मालिक को व्यावसायिक आवास की उपलब्धता के बारे में रिकॉर्ड पर साक्ष्य का विश्लेषण करने के बाद, सावधानीपूर्वक विस्तार से निष्कर्ष दर्ज किए हैं। निर्णय के पैराग्राफ संख्या-8 और 10 में, अपीलीय प्राधिकारी ने निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए हैं:

8- विपक्षी ने सायल के स्वामित्व के मकान सं0-22 नझाई बाजार झाँसी भी बताया जो तिमंजिला है और जिसके प्रथमतल पर 15 दूकानें है कहा, प्रलेख 80 सी के आधार पर 22 नझाई बाजार के स्वामी महेशचन्द्र अग्रवाल एवं अजय अग्रवाल सायल के भाई है, स्वीकार किया जावेगा। न तो यह संयुक्त परिवार की सम्पति है और न ही यह सायल की है तथा 210 डरु भौंडेला एवं 213 डरु भोंडेला सायल के पिता रामसेवक के स्वामित्व के मकानात है यह प्रलेख 78 व 79 सी पंचसाला की नकल से स्पष्ट होता है। इन दोनों ही मकानों में किरायेदार क्रमशः रमेशचन्द्र तिवारी एवं रामदास गुप्ता है जो सायल के कब्जे में नहीं है तथा भवन सं0-33 डरु भोंडेला कैलाशबाबू, महेश, काशीप्रसाद एवं अजय के स्वामित्व के हैं प्रलेख 77 सी से स्पष्ट होता है इनमें से कोई जगह सायल के कारोबार के लिए उपलब्ध नही है।"

"10..... उपरोक्त विवेचना से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सायल / किरायेदार के पास एक पैत्रिक मकान सं0-207 डरु भोंडेला में है उसका स्वयं का मकान ओमशांतिनगर एवं शारदाहिल्स कालौनी नईबस्ती झाँसी में है जिसे दौरान मुक़दमा सायल ने खरीदा है। सायल की संयुक्त हिन्दू परिवार की सम्पति की दूकान नं0- 190 बडाबाजार, 72 जवाहर चौक झाँसी, एवं दूकान नं0-14 नझाई बाजार न होकर तनहा संजय अग्रवाल की है सायल एवं उसके भाइयों

का मित्र मार्केट या नवीन यूनिट स्कूल नईबस्ती में स्वामित्व की कोई जगह नही है तथा 164 सराफा बाजार झाँसी तथा 238, 239, 240 सराफा बाजार सायल के बड़े भाई रमेश अग्रवाल की है जिससे कोई सरोकार व वास्ता सायल का नही है इन दूकानों में सायल का कोई हक व हिस्सा नहीं है सायल के पिता के नाम मकान नं० 210, 213 डरु भौंडेला है जिसमें कारोबार के लिए कोई जगह नहीं है तथा इनमें किरायेदारान रमेशचन्द्र तिवारी एवं रामदास गुप्ता रहते हैं जो खाली स्थिति में नहीं है। निर्मुक्ति प्रार्थनापत्र के कथन कि विवादित दूकान रिलीज होने पर वह इसका निर्माण कराकर रिहायश एवं कारोबार के लिए बनवा लेगा। इसमें से रिहायश की आवश्यकता सायल की पूर्ण हो चुकी है। कारोबार के लिए कोई जगह न होने से विवादित दूकान सायल के कारोबार के लिए निर्मुक्त की जाने योग्य है।"

41. अपने व्यवसाय को स्थापित करने के लिए मकान मालिक की वास्तविक आवश्यकता के सवाल पर अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्षों के बारे में ऐसी कोई विकृति नहीं है जो इस न्यायालय को उन निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए मजबूर कर सकती है। किरायेदार द्वारा जिन विभिन्न दुकानों को मकान मालिक के लिए उपलब्ध के रूप में संदर्भित किया गया है, वे या तो मकान मालिक से संबंधित नहीं हैं या उपलब्ध नहीं हैं। ये संयुक्त हिंदू परिवार या मकान मालिक के स्वामित्व में नहीं हैं।

42. जहां तक मित्रा मार्केट या नवीन यूनिट स्कूल, नई बस्ती में शॉपिंग कॉम्प्लेक्स का संबंध है, अपीलीय प्राधिकारी का निष्कर्ष यह है कि मकान मालिक या उसके भाइयों के पास ऐसा कोई आवास उपलब्ध नहीं है। यह एक अस्तित्वहीन आवास है।

43. अब, तुलनात्मक कठिनाई के बारे में खोज की ओर मुड़ते हुए, एक कारक जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने ध्यान में रखा है, यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि किरायेदार ने 40 वर्षों की अवधि के दौरान प्रयास किए हैं कि वह वैकल्पिक आवास की तलाश के लिए हस्तांतरित दुकान के कब्जे में रहा है। वास्तव में, इसके बारे में कोई सबूत नहीं है। प्रस्ताव अच्छी तरह से तय है कि ऐसे मामले में जहां किरायेदार वैकल्पिक आवास की तलाश नहीं करता है, विशेष रूप से, मकान मालिक द्वारा उसके खिलाफ निकासी के लिए कार्यवाही शुरू करने के बाद, तुलनात्मक कठिनाई के मुद्दे का जवाब हमेशा किरायेदार के खिलाफ होना चाहिए। इस संबंध में, सरजू प्रसाद बनाम आठवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फैजाबाद और अन्य, 2007 (2) एडब्ल्यूसी 1068(एल.बी.) और अरविंद कुमार मिश्र बनाम जितेंद्र कुमार गुप्ता और अन्य, 2016 (1) एआरसी 634 में निर्णयों का संदर्भ लिया जा सकता है।

44. वहाँ फिर से एक और कारक है कि किरायेदार के खिलाफ तुलनात्मक कठिनाई के सवाल का फैसला करने में अपीलीय प्राधिकारी के साथ तौला गया है। यह तथ्य है कि किरायेदार 32.50 रुपये के मामूली किराए पर 40 वर्षों से हस्तांतरित दुकान पर कब्जा कर रहा है। अपीलीय प्राधिकारी ने शिव शंकर दास बनाम विशेष न्यायाधीश एवं अन्य, 2006 (3) एएलजे (एनओसी) 467 (इला०) में इस संबंध में भरोसा किया है। यह न्यायालय सोचता है कि एक बेतुका कम किराए पर लंबे

समय तक रखने वाले किरायेदार को तुलनात्मक कठिनाई के मुद्दे का निर्धारण करते समय, मकान मालिक की तुलना में निश्चित रूप से वंचित रखा जाना चाहिए। सभी तुलनात्मक कठिनाइयों के बाद, हालांकि अधिनियम की धारा 21(1)(ए) के तहत एक वैधानिक आवश्यकता है, फिर भी समानता पर निर्मित एक सिद्धांत है। इक्विटी यह है कि अगर किरायेदार को निकासी आवेदन के अनुदान से अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, जो कि मकान मालिक को इसके इनकार से भुगतना होगा। एक किरायेदार जो बहुत लंबे समय तक किराए के परिसर में रहता है, हास्यास्पद रूप से कम किराए पर, वस्तुतः कुछ विशेष 'मालिकाना सा' करता है। उसके लिए, किसी भी इक्विटी या इक्विटी पर स्थापित वैधानिक नियम का कोई लाभ नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।

45. पूर्वोक्त मुद्दों के अलावा, यह एक सुसंगत सिद्धांत है कि हमारे रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, इस न्यायालय को क़ानून के तहत कार्य करने वाले तथ्य के विधि निर्णयों द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों में आसानी से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यहां, शामिल सदाशयता के बारे में निष्कर्षों को कानून के अनुरूप तैयार किए गए सबूतों और निष्कर्षों के आधार पर निर्धारण की आवश्यकता होती है। अपीलीय प्राधिकरण ने संतोषजनक ढंग से दोनों कार्य किए हैं। अपीलीय प्राधिकरण के निर्णय के बारे में कोई विकृति नहीं है। यहां तक कि अगर अपीलीय प्राधिकरण ने निर्धारित प्राधिकारी द्वारा साक्ष्य के बारे में एक अलग दृष्टिकोण लिया है, तो वह प्रथम अपील की अदालत के रूप में ऐसा करने का हकदार है। इसमें कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता। निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए परिणाम का कोई निष्कर्ष नहीं है, जिसे अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उलट नहीं किया गया हो। यह सिद्धांत कि इस न्यायालय को अधिनियम के तहत वैधानिक प्राधिकरणों द्वारा दर्ज तथ्य की शुद्ध खोज में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, अशोक कुमार और अन्य बनाम सीता राम, (2001) 4 एस.सी.सी. 478 में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है, जहां यह अवधारित किया गया है:

"17. जिस प्रश्न पर विचार किया जाना बाकी है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अपीलीय प्राधिकरण के आदेश को रद्द करने में उचित था। अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश किसी भी गंभीर अवैधता से ग्रस्त नहीं था, और न ही यह कहा जा सकता है कि इस मामले को देखा गया था जो किसी भी उचित व्यक्ति द्वारा लेने की संभावना नहीं थी। इस मामले के मद्देनजर, उच्च न्यायालय के लिए अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं था। प्रस्तुत मामले जैसे मामले में जहां वैधानिक प्राधिकरण द्वारा अर्ध-न्यायिक रूप से कार्य करने की शक्ति के साथ पारित आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है, न्यायालय की भूमिका पर्यवेक्षी और सुधारात्मक है। इस तरह के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय से वैधानिक प्राधिकरण द्वारा पारित अंतिम आदेश में हस्तक्षेप करने की उम्मीद नहीं की जाती है, जब तक कि आदेश स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त न हो, और यदि

इसे खड़े होने की अनुमति दी जाती है, तो यह गंभीर अन्याय को बनाए रखने के समान होगा। न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह इस मामले में एक और अपीलीय अदालत के रूप में कार्य नहीं कर रहा है। हम यह देखने के लिए विवश हैं कि प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय मामले पर फैसला करते समय हितकारी सिद्धांतों को ध्यान में रखने में विफल रहा है।

46. मामले के इस दृष्टिकोण में, हमारी सुविचारित राय में, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय के साथ हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

47. परिणाम में, यह रिट याचिका विफल होती है और खारिज की जाती है।

48. पहले दिया गया अंतरिम आदेश, एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

49. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1629

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.03.2023

समक्ष

माननीय श्रीमती संगीता चंद्रा,

रिट ए संख्या 11593/2021

एवं अन्य संबंधी वाद

वेद प्रकाश मित्तल और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सत्येन्द्र सिंह, श्री अनिल कुमार बाजपाई

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्रीप्रकाश सिंह

सेवा कानून- 01.01.2006 से पहले सेवानिवृत्त हुए सरकारी कर्मचारियों के लिए पहले के फैसले को संशोधित करते हुए 18.07.2017 के सरकारी आदेशों में दी गई पेंशन की गणना के लिए फार्मूला और प्रक्रिया याचिकाकर्तागण पर लागू होगी और साथ ही उनकी पेंशन/पारिवारिक पेंशन के निर्धारण के लिए समय-समय पर जारी की गई सहमति तालिकाएं भी सरकारी आदेश दिनांक 04.09.2017 में संलग्न हैं। 01.05.2018 का सरकारी आदेश भी याचिकाकर्तागण पर लागू होगा 01.01.2016 से संशोधित पेंशन का पूर्वव्यापी संचालन और भुगतान किया जाने वाला बकाया, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि 01.01.2016 से 24.02.2021 तक बकाया भुगतान के सवाल पर गंभीरता से विचार-विमर्श किया गया था- यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि तैयार प्रारूपों में जानकारी प्रशासनिक विभाग द्वारा आपत्तिजनक कार्यालय ज्ञापन जारी करने के बाद भी एकत्र की जाती रही। इसलिए यह निर्देश दिया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 सभी आवश्यक जानकारी एकत्र करेगा और वित्त की उपलब्धता का भी निर्धारण करेगा और इस आदेश की एक प्रति उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर उचित आदेश जारी करेगा, जिसमें इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को भी ध्यान में रखा जाएगा - (पैरा 79)

याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-15)

<u>उद्धृत प्रकरण की सूची:</u>

अनुवादित

1. प्रवीण कुमार अग्रवाल बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य (2011) आईएलआर 1 इलाहाबाद 21

2. (शकुंतला सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य) 2019 (11) एडीजे 495

3. सुब्रत सेन बनाम भारत संघ एवं अन्य 2021 (8) एससीसी 71

4. डी.एस. नाकारा बनाम भारत संघ 1983 (1) एससीसी 305

5. इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग बनाम भारत संघ 1991 (2) एससीसी 104

6. कृष्ण कुमार बनाम भारत संघ 1990 (4) एससीसी 207

7. सुब्रत सेन अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 2001(8) एससीसी 71

8. अखिल भारतीय रिजर्व बैंक सेवानिवृत्त अधिकारी संघ बनाम भारत संघ एआईआर 1992 सुप्रीम कोर्ट 767

9. भारतीय भूतपूर्व सैनिक आंदोलन बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 (7) एससीसी 323

10. बीजे अक्कारा बनाम भारत (2006) 11 एससीसी 709

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा प्रदत्त)

1. उपरोक्त सात रिट याचिकाएं उ॰ प्र॰ विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवाओं के सेवानिवृत्त सदस्य या उनके परिवार के आश्रित सदस्यों द्वारा दायर की गई हैं। वे विभिन्न विकास प्राधिकरणों में मुख्य वास्तुकार, नगर नियोजक, मुख्य नगर नियोजक, मुख्य अभियंता, अधिशाशी अभियंता, और सहायक अभियंता जैसे पदों पर कार्यरत थे एवं 01.01.2016 से पहले सेवानिवृत्त हो गए थे। 2019 और 2020 में दायर की गई कुछ रिट याचिकाएं मुख्य रूप से सातवें वेतन आयोग की सिफारिश और राज्य कर्मचारियों के लिए जारी किए गये दिनांक 18.07.2017 एवं 04.09.2017 के साशनादेशों के साथ पढ़े गये दिनांक 23.12.2016 के साशनादेश के अनुसार याचिकाकर्ताओं की पेंशन को पुनरीक्षित करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई थीं। कुछ याचिकाकर्ता 20% अतिरिक्त पेंशन दिये जाने की भी प्रार्थना कर रहे थे क्योंकि उन्होंने अस्सी साल की आयु प्राप्त कर ली थी। पक्षों के बीच दलीलें पूरी हो चुकी थीं और मामले अंतिम सुनवाई के लिए तैयार थे, किंतु इसी बीच राज्य सरकार ने दिनांक 24.02.2021 का कार्यालय ज्ञापन जारी किया जिसने सातवें वेतन आयोग की सिफारिश अनुसार याचिकाकर्ताओं की पेंशन का पुनरीक्षण किया जाना स्वीकार्य कर दिया लेकिन ये उस आदेश के जारी किए जाने की तारीख से प्रभावी था, यानी कि भविष्यलक्षी रूप से। बाद में इस कार्यालय ज्ञापन को 2021 की कुछ रिट याचिकाओं द्वारा चुनौती दी गई क्योंकि ज्ञापन में प्रावधान है कि पुनरीक्षित पेंशन / पारिवारिक पेंशन की गणना करते समय दिनांक 23.12.2016 के साशनादेश में दिए गए फॉर्मूले का पालन केवल काल्पनिक रूप से किया जाएगा, एवं पुनरीक्षित पेंशन का वास्तविक लाभ 24.02.2021 से प्रभावी होगा, जिसका मतलब हुआ कि पांच वर्ष से ज़्यादा की बकाया राशि देने से इनकार कर दिया गया है। आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन पेंशन और पारिवारिक पेंशन की गणना के लिए दिनांक 04.09.2023 के साशनादेश के साथ पढ़े गये दिनांक 18.07.2023 के साशनादेश में बताए गये उपांतरित फार्मूले और तरीक़े का लाभ देने से भी इनकार करता है, ये कहते हुए कि

ये केवल सेवानिवृत्त सरकारी सेवकों और उनके आश्रितों के लिए हैं।

2. सभी रिट याचिकाओं में जो तथ्य समान हैं वो यह हैं कि सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के बाद राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश राज्य में सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने हेतु वेतन समिति 2016 का गठन किया। वेतन समिति 2016 ने आवास और शहरी नियोजन विभाग एवं स्थानीय निकायों, वैधानिक संस्थानों, विकास प्राधिकरणों जैसे स्वायत्त निकायों सहित विभिन्न विभागों के विभिन्न वर्ग और श्रेणी के कर्मचारियों/सेवानिवृत्तों के लिए सातवां वेतन आयोग लागू करने के संबंध में राज्य सरकार के समक्ष अपनी सिफारिशें/रिपोर्ट प्रस्तुत की। राज्य कैबिनेट ने शहरी स्थानीय निकायों, जिला पंचायतों, जल संस्थान और विकास प्राधिकरणों के लिए पुनरीक्षित वेतन, महंगाई भत्ता/राहत के साथ-साथ पेंशन/पारिवारिक पेंशन और सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले अन्य लाभों के संबंध में वेतन समिति 2016 की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप, दिनांक 16.12.2016 को एक सरकारी संकल्प जारी किया गया जो राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। उस संकल्प के खंड 1 में प्रावधान है कि पुनरीक्षित वेतन मैट्रिक्स (सातवें वेतन आयोग द्वारा प्रदान की गई) में विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों के वेतन के पुनरीक्षण के संबंध में वेतन समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त संकल्प के खंड 5 में प्रावधानित है कि विकास प्राधिकरणों के सेवानिवृत्त लोगों की पेंशन, जिन्हें पहले सरकारी कर्मचारियों के समान पेंशन मिल रही थी, राज्य सरकार के पेंशनभोगियों के समान ही पुनरीक्षित की जाएगी। इसमें आगे प्रावधानित है कि स्थानीय निकायों, जिला पंचायतों, विकास प्राधिकरणों आदि के लिए सातवें वेतन आयोग की सिफारिशें लागू करने का वित्तीय बोझ ऐसे संस्थानों द्वारा वहन किया जाएगा। इसे लागू करने से पड़ने वाले अतिरिक्त वित्तीय बोझ के लिए राज्य सरकार द्वारा ऐसे प्राधिकरणों को पहले से ही दी जा रही धनराशि के अलावा किसी अन्य धनराशि का हस्तांतरण नहीं किया जाएगा। विकास प्राधिकरणों के संबंध में ये सिफारिशें केवल इस शर्त पर स्वीकार्य होंगी कि ऐसी स्वीकृति के कारण पड़ने वाला वित्तीय बोझ राज्य सरकार द्वारा वहन नहीं किया जाएगा। ऐसे विकास प्राधिकरणों को ऋण देने वाले वित्तीय संस्थानों द्वारा दिए गए ऋणों के संबंध में किश्तें समय पर जमा करने की जिम्मेदारी नियमित रूप से निभाई जाएगी, और सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के तहत स्वीकार्य लाभ प्रदान करने के कारण अधिष्ठान लागत में होने वाली वृद्धि ऐसे विकास प्राधिकरणों द्वारा वहन की जाएगी।

3. राज्य सरकार ने 01.01.2016 से पहले सेवानिवृत्त हुए शासकीय कर्मचारियों हेतु साशनादेश क्रमांक 39 दिनांक 23.12.2016 जारी किया जिसमें प्राविधानित था कि 01.01.2023 से पहले सेवानिवृत्त होने या मरने वाले ऐसे व्यक्तियों की पेंशन और पारिवारिक पेंशन वेतन समिति 2008, यानी छठे केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने हेतु गठित समिति के अनुसार होगी और उन्हें जो पेंशन/पारिवारिक पेंशन 2016 से पहले मिल

रही थी उसे 2.57 से गुणा करके पुनरीक्षित किया जाएगा। उक्त साशनादेश में यह प्रावधान भी है कि 80 वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले पेंशनभोगियों को 20% अतिरिक्त पेंशन का भुगतान किया जाएगा। पेंशन पुनरीक्षण पर बकाया राशि का भुगतान भी 01.01.2016 से किया जाएगा।

4. ऐसा ही शासनादेश क्रमांक 38 दिनांकित 23.12.2016 उन सरकारी कर्मचारियों के लिए जारी किया गया था जो 01.01.2016 के बाद सेवानिवृत्त हुए थे। इसमें भी प्रावधान किया गया था कि अंतिम आहरित मूल वेतन का 50% पेंशन के रूप में दिया जाएगा। ग्रेच्युटी की अधिकतम राशि की सीमा 10 लाख से बढ़ाकर 20 लाख कर दी गई थी, जैसा कि छठे केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफ़ारिशों में कहा गया था।

5. इसके बाद 2016 से पहले और 2016 के बाद सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारियों के बीच समानता बनाए रखने के लिए राज्य सरकार ने 18.07.2017 को एक और साशनादेश जारी किया, जिसमें ऐसे सरकारी कर्मचारियों की पेंशन/पारिवारिक पेंशन के पुनरीक्षण के लिए फॉर्मूला/विधि में बदलाव किया गया। शासनादेश संख्या 39 दिनांक 23.12.2016 के अनुसार मौजूदा पेंशन को 2.57 से गुणा करने की विधि के अलावा, पेंशन/पारिवारिक पेंशन के पुनरीक्षण की गणना प्रत्येक मध्यवर्ती वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के तहत काल्पनिक वेतन निर्धारण द्वारा भी की जाएगी, वेतन पुनरीक्षण के फार्मूले के आधार पर, और दोनों में से जो राशि अधिक होगी वही पुनरीक्षित पेंशन/पारिवारिक पेंशन होगी। उक्त सरकारी आदेश के खंड 11 में पेंशन बढ़ने के कारण 01.01.2016 से प्रभावी बकाये के भुगतान का प्रावधान है। इसके बाद राज्य सरकार ने 04.09.2017 को एक आदेश जारी किया जिसमें दिनांक 18.07.2017 के साशनादेश में प्रदान की गई विधि/सिद्धांत के अनुसार अपने कर्मचारियों की पुनरीक्षित पेंशन/पारिवारिक पेंशन के लिये गणना पद्धति एवं समवर्ती तालिकाएं प्रदान की गयीं।

6. लेकिन उन साशनादेशों में दिए गए फॉर्मूले को विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के सदस्यों की पेंशन/पुनरीक्षित पेंशन की गणना करने के लिए नहीं लगाया गया। सरकार ने स्पष्ट कर दिया था कि आवास एवं शहरी नियोजन विभाग द्वारा अलग से आदेश जारी किये जायेंगे। आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन सरकारी कर्मचारियों के वेतन और पेंशन के संबंध में सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने के पांच साल बाद 24.02.2021 को जारी किया गया। उक्त कार्यालय ज्ञापन में कहा गया कि पुनरीक्षित पेंशन/ पुनरीक्षित पारिवारिक पेंशन की गणना करते समय दिनांक 23.12.2016 के साशनादेश में दिये गये सूत्र का पालन किया जाएगा, लेकिन ऐसे पुनरीक्षण का वास्तविक लाभ कार्यालय ज्ञापन जारी होने की दिनांक यानी 24.02.2021 से दिया जाएगा जिससे पांच वर्ष से अधिक का बकाया अस्वीकृत हो गया। उक्त कार्यालय ज्ञापन ने राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले दिनांक 04.09.2017 के साशनादेश के साथ पठित दिनांक 18.07.2017 के साशनादेश में पेंशन की गणना हेतु प्रदान

किए गए संशोधित फार्मूले और विधि का लाभ देने से भी इनकार कर दिया।

7. दूसरी ओर, महंगाई भत्ते को छोड़कर वेतन और अन्य भत्तों के पुनरीक्षण के संबंध में सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को दिनांक 04.01.2017 के एक साशनादेश द्वारा विकास प्राधिकरणों में 01.01.2016 से सम्यक रूप से लागू किया गया, और दिनांक 04.01.2017 के शासनादेश द्वारा 01.01.2016 से प्रभावी वेतन पुनरीक्षण के बाद सेवानिवृत्त हुए विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों को दिनांक 04.09.2017 के शासनादेश द्वारा निर्धारित दरों पर पेंशन मिल रही है (यानी सेवानिवृत्ति के समय के मूल वेतन का 50%)। ऐसे कर्मचारियों में से एक रतन कुमार निगम के पेंशन भुगतान आदेश का उदाहरण 2025 की रिट याचिका संख्या 11593 के उपाबन्ध 12 के रूप में दायर किया गया है, जो प्रयागराज विकास प्राधिकरण के सहायक अभियंता पद से दिनांक 31.08.2017 को 1,02,500/- रुपये (दिनांक 04.01.2017 के साशनादेश द्वारा सातवें वेतन आयोग के अनुसार पुनरीक्षित) के अंतिम आहरित मूल वेतन के साथ सेवानिवृत्त हुए थे और 51,250/- रुपये यानी अंतिम आहरित मूल वेतन का 50% पेंशन पा रहे हैं।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र सिंह द्वारा ये तर्क दिया गया है कि उ० प्र० राज्य में विकास प्राधिकरणों का गठन उ० प्र० शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम 1973 (जिसे आगे '1973 का अधिनियम' कहा जाएगा) के अन्तर्गत किया गया है। विकास प्राधिकरणों के गठन के बाद राज्य सरकार ने दिनांक 17.03.1983 और 29.09.1983 को साशनादेश जारी किए थे जिसमें प्रावधानित था कि जब तक राज्य सरकार द्वारा 1973 के अधिनियम की धारा 56 (2) के तहत मॉडल सेवानिवृत्ति लाभ नियम नहीं बनाए जाते, तब तक विकास प्राधिकरण के कर्मचारी उत्तर प्रदेश पालिका केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1981 (जिसे आगे 'पालिका नियमावली 1981' कहा जाएगा) के अनुसार पेंशन/पारिवारिक पेंशन पाने के हकदार होंगे। पालिका नियमावली 1981 में राज्य सरकार के कर्मचारियों के बराबर पेंशन और पारिवारिक पेंशन प्राविधान था।

9. इसके बाद राज्य सरकार ने उ० प्र० विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा नियमावली 1985 (इसके बाद सेवा नियमावली 1985 के रूप में संदर्भित) को अधिसूचित किया और ऐसी केंद्रीकृत सेवाओं के लिए सेवानिवृत्ति लाभ नियम या विनियम बनाने के बजाय राज्य सरकार ने 05.04.1999 को एक आदेश जारी किया जिसमें प्रावधान था कि चूंकि केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों को पेंशन भुगतान हेतु कोई निर्णय अभी तक नहीं हुआ था, इसलिए वे पेंशन/पारिवारिक पेंशन के भुगतान के हकदार नहीं हैं और परिणामस्वरूप ऐसी पेंशन बंद कर दी गई थी।

10. दिनांक 05.04.1999 के साशनादेश को इस न्यायालय के समक्ष लखनऊ और इलाहाबाद दोनों स्थानों पर कई रिट याचिकाओं में चुनौती दी गई थी, और इस न्यायालय ने 20.11.2010 को निर्णीत **आईएलआर 1 इलाहाबाद 21 (2011)** में रिपोर्ट की गई रिट

याचिका संख्या 556 (एस/बी) 2009 **प्रवीण कुमार अग्रवाल बनाम उ० प्र० राज्य और अन्य** में ऐसी रिट याचिकाओं को स्वीकृत किया, एवं साशनादेश दिनांक 05.04.1999 समेत दिनांक 09.11.2004 के पारिणामिक साशनादेश को रद्द कर दिया जिनके द्वारा पेंशन/पारिवारिक पेंशन को परिणामिक लाभों समेत रोक दिया गया था। इस न्यायालय ने एक निष्कर्ष दर्ज किया था कि दिनांक 05.04.1999 एवं 09.11.2004 के दो साशनादेश 1973 के अधिनियम की धारा 24 में निहित वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में जारी किए गए थे, जिसमें प्रावधान था कि एक विकास प्राधिकरण अपने अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को लाभ देने के लिए पेंशन या भविष्य निधि का गठन करेगा। नियम 34(2) में प्रावधान है कि उक्त नियमों के अनुसार सेवानिवृत होने वाले विकास प्राधिकरणों के सभी कर्मचारी सेवानिवृतति पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के हकदार होंगे। नियम 37(2) में प्रावधान है कि नियमों या विशेष आदेशों के अंतर्गत ना आने वाले मामलों के संबंध में सेवा के सदस्य आम तौर पर उ॰ प्र० राज्य के मामलों के संबंध में सेवारत सरकारी कर्मचारियों पर लागू होने वाले नियमों, विनियमों, और आदेशों द्वारा शासित होंगे। न्यायालय ने कहा कि राज्य सरकार द्वारा केवल इसलिए पेंशन देने से इनकार करना क्योंकि उसके द्वारा पेंशन नियम नहीं बनाए गए थे एक पूरी तरह से मनमाना निर्णय था जिसे रद्द किया जाना चाहिए। न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को रिट याचिकाकर्ताओं एवं समान स्थिति वाले अन्य कर्मचारियों को राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले नियमों के अनुसार बकाया सहित नियमित पेंशन का भुगतान सुनिश्चित करने का निर्देश देते हुए एक परमादेश जारी किया।

11. इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुसरण में राज्य सरकार ने विकास प्राधिकरणों के गठन के लगभग चार दशकों बाद अंततः उ० प्र० विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियम 2011 (जिसे आगे '2011 के सेवानिवृत्ति लाभ नियम' कहा जाएगा) अधिसूचित किये। उक्त नियम विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के उन सदस्यों को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करते हैं जिन्हें 01.04.2005 से पहले नियुक्त किया गया था। बाद में कट-ऑफ तिथि को दिनांक 22.12.2011 के एक आदेश द्वारा संशोधित किया गया जिसमें प्रावधान किया गया था कि ऐसी पेंशन और सेवानिवृत्ति लाभ उन कर्मचारियों को भी उपलब्ध होंगे जो 11.11.2011 को नियमों के प्रभाव में आने से पहले सेवानिवृत हुए थे।

12. सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के भाग VI में उ.प्र. विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा पेंशन निधि की स्थापना का प्रावधान है जो वित्त नियंत्रक, लखनऊ विकास प्राधिकरण के नियंत्रण में एक समेकित और सामान्य पेंशन निधि होगी, एवं वित्त नियंत्रक, एलडीए के अनुमोदन के अधीन संबंधित विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष द्वारा पेंशन/पारिवारिक पेंशन के वितरण की प्रक्रिया का भी प्रावधान है।

13. प्रवीण कुमार अग्रवाल और अन्य (ऊपर) के मामले में डिवीजन बेंच द्वारा की गई

टिप्पणियों के अनुसरण में 01.01.2006 से पहले सेवानिवृत्त होने वाले सभी याचिकाकर्ताओं की पेंशन राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले साशनादेश संख्या 1515 दिनांकित 08.12.2008 के आधार पर 01.01.2006 से छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार पुनरीक्षित की गई थी, एवं राज्य सरकार के कर्मचारियों हेतु जारी किए गये दिनांक 08.12.2008 के साशनादेश के अलावा राज्य सरकार ने छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार केंद्रीकृत सेवाओं से सेवानिवृत्त होने वालों की पेंशन के पुनरीक्षण हेतु आवास एवं शहरी नियोजन विभाग द्वारा अलग से कोई साशनादेश जारी नहीं किया। सरकारी संकल्प दिनांकित 16.12.2016 जारी करते समय भी यह प्रावधान किया गया था कि राज्य सरकार के पेंशनभोगियों के समान लाभ पाने वाले विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों की पेंशन/पारिवारिक पेंशन राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान ही पुनरीक्षित की जाएगी। तत्पश्चात राज्य सरकार के कर्मचारियों हेतु दिनांक 23.12.2016 के साशनादेश संख्या 38 और 39 जारी किए गए जिसमें पुनरीक्षित पेंशन/पारिवारिक पेंशन की बकाया राशि का भुगतान 01.01.2016 से किये जाने का प्रावधान किया गया था। उन साशनादेशों के बाद दिनांक 18.07.2017 और 04.09.2017 के दो अन्य आदेश जारी किए गए जिसमें उक्त कार्यालय ज्ञापन के साथ संलग्न पदानुक्रमणिका के आधार पर प्रत्येक वेतन पुनरीक्षण के अनुसार काल्पनिक वेतन निर्धारण को ध्यान में रखते हुए पेंशन/पारिवारिक के पुनरीक्षण का प्रावधान किया गया था। पेंशन और पारिवारिक पेंशन में ऐसा वृद्धिशील पुनरीक्षण विभागाध्यक्ष/कार्यालयाध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जाना था जिसके लिये पेंशनभोगियों/पारिवारिक पेंशनभोगियों को किसी तरह का आवेदन देने की आवश्यकता नहीं थी। दिनांक 04.09.2017 के शासनादेश के खंड 5 में राज्य सरकार के कर्मचारियों को पुनरीक्षित पेंशन/पारिवारिक पेंशन की बकाया राशि का भुगतान 01.01.2016 से करने का प्रावधान है। 01.05.2018 को एक अन्य साशनादेश भी जारी किया गया है जिसमें स्पष्ट किया गया है कि 2016 से पहले सेवानिवृत्त होने वालों की पेंशन किसी भी स्थिति में सातवें वेतन आयोग द्वारा निर्धारित वेतन मैट्रिक्स में उनके काल्पनिक वेतन के 50% से कम नहीं होगी, भले ही ऐसे सेवानिवृत्त लोगों ने पूर्ण पेंशन के लिए आवश्यक योग्यता से कम सेवा की हो।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के नियम 4 में विकास प्राधिकरणों के सेवानिवृत्त लोगों की पेंशन की गणना उसी फॉर्मूले और उसी प्रक्रिया के अनुसार किए जाने का प्रावधान है जो राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होती है। नियम 5 के तहत ग्रेच्युटी के संबंध में भी इसी तरह का प्रावधान किया गया है। 2011 की उक्त नियमवली के नियम 7 में प्रावधान है कि मृत कर्मचारियों के परिजनों को मिलने वाली पारिवारिक पेंशन राज्य के मामलों के संबंध में सेवारत सरकारी कर्मचारियों पर लागू होने वाले प्रासंगिक नियमों द्वारा विनियमित की जाएगी। चूंकि विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के सदस्य राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान पेंशन, पारिवारिक पेंशन और ग्रेच्युटी

पाने के हकदार हैं और ऐसे लाभों की गणना/पुनरीक्षण हेतु उसी प्रक्रिया और सूत्र का उपयोग किया जाएगा, यानी राज्य सरकार के कर्मचारियों पर समय-समय पर लागू होने वाली पदानुक्रमणिका का ही उपयोग किया जाएगा।

15. इस न्यायालय द्वारा 2016 की रिट ए संख्या 54211 *(शकुंतला सिंह बनाम उ० प्र० राज्य और अन्य)*, जिसे **2019 (11) एडीजे 495** में रिपोर्ट किया गया, में दिए गए फैसले के आधार पर भी यह तर्क दिया गया है कि सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 में पेंशन/पारिवारिक पेंशन के लिए वही फॉर्मूला एवं प्रक्रिया अपनाई गई है जो राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होती है और इसलिए सरकारी सेवकों को सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभ से संबंधित बाद के साशनादेश स्वतः लागू होते हैं और विधि के संचालन द्वारा जारी होने की तिथि से विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों पर लागू होते हैं। न्यायालय ने यह भी कहा था कि वित्त नियंत्रक एलडीए, जो कि समेकित पेंशन निधि के प्रभारी थे, ने स्वीकार किया था कि सेवानिवृत्ति पेंशन लाभ नियमावली 2011 के नियम 16 के तहत गठित ऐसी पेंशन निधि में अपेक्षित राशि उपलब्ध थी, इसलिए सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार पेंशन/पारिवारिक पेंशन को पुनरीक्षित करने वाले साशनादेशों को विकास प्राधिकरण राज्य सरकार के अनुमोदन के बिना अपने कर्मचारियों के संबंध में तत्काल लागू कर सकते हैं। इसलिए न्यायालय ने कहा कि छठे वेतन आयोग की सिफारिशों को अपनाने पर पेंशन/पारिवारिक पेंशन और अन्य लाभों की गणना और पुनरीक्षण से संबंधित दिनांक 08.12.2008 एवं बाद के साशनादेश एवं उनमें संलग्न पदानुक्रमणिका ऐसे विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों पर समुचित रूप से एवं बिना किसी संशोधन के लागू होंगे।

16. तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा *शकुंतला सिंह* (ऊपर) में की गई टिप्पणियों के बाद दिनांक 23.12.2016, 18.07.2017, 04.09.2017, एवं 01.05.2018 के साशनादेश ऐसे पुनरीक्षण के परिणामस्वरूप 01.01.2016 से बकाया राशि के भुगतान सहित अपने जारी किए जाने की तिथि से याचिकाकर्ताओं पर पूरी तरह से लागू हो जाते हैं, और इसलिए दिनांक 24.02.2021 के आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन में उल्लिखित कट ऑफ़ तिथि को रद्द किया जाता है।

17. याचिकाकर्ताओं की तरफ़ से ये तर्क दिया गया है कि 01.01.2016 से पुनरीक्षित पेंशन/पारिवारिक पेंशन की बकाया राशि, यानी पांच साल से अधिक के बकाये का भुगतान न करने के अलावा दिनांक 24.02.2021 का आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन दिनांक 18.07.2017, 04.09.2017, एवं 01.05.2018 के शासनादेशों में दिए गए फार्मूले को लागू न करके याचिकाकर्ताओं को प्रत्येक माह भारी मौद्रिक हानि पहुंचा रहा है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान 2021 की रिट याचिका संख्या 11593 के पैराग्राफ- 54 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें याचिकाकर्ता क्रमांक 1- वेद प्रकाश मित्तल को होने वाली मासिक हानि का एक उदाहरण सारणीबद्ध किया गया है। वेद प्रकाश

मित्तल 31.10.2003 को सेवानिवृत्त हुए, एवं उनका अंतिम आहरित वेतन 20,000/- रुपये था। पांचवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार मूल पेंशन की गणना 7273/- रुपये की गई थी। छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार मूल पेंशन की गणना 17,855/- रुपये की गई थी। जब दिनांक 26.12.2016 के साशनादेश को अकेले लागू किया जाता है एवं मौजूदा मूल पेंशन को 2.57 से गुणा किया जाता है तो यह 45,887/- रुपये हो जाती है। हालाँकि, यदि मूल पेंशन को दिनांक 18.07.2017 के साशनादेश के साथ पठित दिनांक 04.09.2017 के साशनादेश अनुसार पुनरीक्षित किया जाता है तो पदानुक्रमणिका के अनुसार देय पेंशन लगभग 69,550/- रुपये होती है। प्रति माह का अंतर 23,663/- रुपये है। रिट याचिका के पैराग्राफ-55 में आगे कहा गया है कि राज्य सरकार हर छह माह पर महंगाई भत्ते में पुनरीक्षण करती है। चूंकि रिट याचिका दायर करने के समय महंगाई भत्ता मूल पेंशन राशि का 28% था, इसलिए जब भी राज्य सरकार द्वारा महंगाई भत्ते की दर बढ़ाई जाएगी, याचिकाकर्ता को होने वाला नुकसान बढ़ता जाएगा।

18. तर्क दिया गया है कि वेतन के संबंध में सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को दिनांक 04.01.2017 के साशनादेश द्वारा विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों हेतु 01.01.2016 से सम्यक रूप से लागू किया गया है। अत: 01.01.2016 से प्रभावी वेतन पुनरीक्षण के पश्चात सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों को दिनांक 04.09.2017 के शासनादेश द्वारा निर्धारित दर, अर्थात सेवानिवृत्ति के समय के मूल वेतन का 50 प्रतिशत की दर से पेंशन मिल रही है। एक कर्मचारी रतन कुमार निगम 31.08.2017 को सेवानिवृत्त हुए, और वे अंतिम आहरित मूल वेतन के 50% की दर से पेंशन पा रहे हैं।

19. यह तर्क दिया गया है कि 01.01.2016 के बाद सेवानिवृत्त होने वालों को सातवें वेतन आयोग का लाभ देकर, एवं उससे पहले सेवानिवृत्त होने वालों को ये लाभ ना दे कर विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों के एक समरूपी वर्ग के भीतर दो अलग-अलग वर्ग बन गए हैं। इतना ही नहीं, संशोधित पेंशन का लाभ बिना बकाये के एवं केवल दिनांक 24.02.2021 का कार्यालय ज्ञापन जारी होने की तिथि से दिया जाना शत्रुतापूर्ण भेदभाव के समान है क्योंकि जिला पंचायत जैसे स्थानीय निकायों के अन्य कर्मचारियों को दिनांक 16.12.2016 के संकल्प का लाभ दिया जा चुका है, और पंचायती राज विभाग ने दिनांक 16.02.2018 का साशनादेश जारी कर दिनांक 23.12.2016, 18.07.2017 एवं 04.09.2017 के उपरोक्त साशनादेशों को समग्रता से बिना किसी संशोधन के लागू किया है। दूसरी ओर, आवास एवं शहरी नियोजन विभाग ने दिनांक 24.02.2021 का आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन जारी किया जो न केवल उपरोक्त तीन साशनादेशों द्वारा प्रदत्त वर्धित पेंशन का लाभ देने से इनकार करता है बल्कि पेंशन के बकाये का भुगतान 01.01.2016 से करने की अनुमति भी नहीं देता।

20. याचिकाकर्ताओं के पक्ष में यह तर्क दिया गया है कि चूंकि प्रत्यर्थियों ने वैधानिक

नियमावली 2011 के अनिवार्य प्रावधानों एवं इस न्यायालय द्वारा प्रवीण कुमार अग्रवाल एवं शकुंतला सिंह (ऊपर) के मामले में की गई टिप्पणियों की अनदेखी करते हुए सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के प्रारंभ होने से पांच साल से ज़्यादा की अवधि तक याचिकाकर्ताओं की पेंशन/पारिवारिक पेंशन के पुनरीक्षण को लंबित रखा है, याचिकाकर्ता पुनरीक्षित पेंशन/पारिवारिक पेंशन के विलंबित निपटान पर 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज पाने के हकदार हैं जो उसके देय होने की तिथि अर्थात 01.01.2016 से प्रभावी होगा।

21. स्थायी अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार त्रिपाठी की सहायता से राज्य के प्रत्यर्थियों की ओर से पेश हुए विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं के सेवानिवृत्ति लाभ सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 द्वारा शासित होते हैं। पेंशन से संबंधित नियम 4, मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी से संबंधित नियम 5, और पारिवारिक पेंशन से संबंधित नियम 7 राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाली प्रक्रिया और सूत्र के अनुसार इनकी गणना करने का प्रावधान करते हैं। हालाँकि उक्त नियमावली के नियम 15 में यह प्रावधान भी है कि नियमावली के किसी भी प्रावधान की व्याख्या के संबंध में उत्पन्न होने वाले विवाद या समस्या के मामले में राज्य सरकार का निर्णय अंतिम और निर्णायक होगा, एवं जो मामले नियमावली में शामिल नहीं हैं वे ऐसे आदेशों द्वारा शासित होंगे जैसा कि राज्य सरकार जारी करना उचित समझे।

22. प्रत्यर्थियों के लिए आगे तर्क दिया गया कि इसमें कोई संदेह नहीं कि विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों की पेंशन का भुगतान विकास प्राधिकरण के कोष से ही किया जा रहा है और राज्य सरकार ऐसे कर्मचारियों के भुगतान का बोझ नहीं उठा रही है, सातवें वेतन आयोग और वेतन समिति, 2016 की सिफारिशों को लागू करने की तिथि तय करना राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में अता है।

23. प्रत्यर्थियों की ओर से तर्क दिया गया है कि विकास प्राधिकरणों के कर्मचारी सरकारी कर्मचारी नहीं हैं। विकास प्राधिकरण एक कॉर्पोरेट निकाय एवं एक स्वायत्त संस्था है। इसलिए, सरकारी सेवकों के संबंध में जारी किए गए साशनादेश विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों पर स्वतः लागू नहीं होते, एवं उन्हें संबंधित विकास प्राधिकरण की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए लागू किया जाता है। उ०प्र० शासन के वित्त विभाग द्वारा दिनांक 23.12.2016 का साशनादेश जारी किया गया जिसमें विशेष रूप से प्रावधान किया गया था कि यह आदेश स्थानीय निकायों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, विकास प्राधिकरणों, एवं अन्य स्वायत्त संस्थानों के कर्मचारियों पर लागू नहीं होगा। दिनांक 18.07.2017 एवं 04.09.2017 के साशनादेशों में भी स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया था कि वे उच्च न्यायालय, वैधानिक निगमों, बेसिक स्कूलों, सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों, विकास प्राधिकरणों सहित स्वायत्त निकायों जैसे उन विभिन्न संस्थानों के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे जो अपने स्वयं के वित्तीय संसाधनों पर निर्भर होते हैं।

प्रशासनिक विभाग द्वारा विकास प्राधिकरणों के लिए वेतन समिति की सिफारिशों को लागू करते हुए अलग साशनादेश जारी किए गए थे एवं इसलिए ऐसे आदेशों में दिए गए वित्तीय लाभ राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले लाभों के ठीक जैसे नहीं हो सकते। प्रशासनिक विभाग प्राधिकरणों की वित्तीय बोझ सह पाने की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए साशनादेशों को लागू करता है। हालाँकि कुछ विकास प्राधिकरणों ने अपने कर्मचारियों को सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों का लाभ ऐसे लाभ राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने की तिथि से देने के लिए अपनी सहमति का संकेत दिया, राज्य सरकार ने सभी विकास प्राधिकरणों की वित्तीय स्थिति और ऐसे विकास प्राधिकरणों के वित्तीय संसाधनों को प्रभावित करने वाले अन्य सहायक कारकों पर विचार करने के बाद सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 24.02.2021 का कार्यालय ज्ञापन जारी किया।

24. श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने राजकीय प्रत्यर्थियों द्वारा दायर जवाबी हलफनामे का भी हवाला दिया है जिसमें भी ये दोहराया गया है कि राजकीय कर्मचारी विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों से अलग होते हैं, इसलिए राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में जारी किए गए साशनादेश विकास प्राधिकरणों जैसे स्वायत्त संस्थानों के कर्मचारियों पर स्वतः लागू नहीं होते। राज्य सरकार के कर्मचारियों को उपलब्ध वित्तीय लाभ विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों को स्वतः उपलब्ध नहीं कराये जा सकते क्योंकि उनकी वित्तीय स्थितियाँ अलग होती हैं। यद्यपि राज्य सरकार ने दिनांक 16.12.2016 के अपने संकल्प द्वारा शहरी स्थानीय निकायों, जिला पंचायतों, जल संस्थान, एवं विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों के संबंध में वेतन समिति 2016 की सिफारिशों को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार किया, लेकिन इस शर्त पर कि ऐसे कर्मचारियों को उन सिफारिशों का लाभ तभी दिया जाएगा जब उसका वित्तीय भार राज्य सरकार पर न पड़े। राज्य सरकार कोई धनराशि हस्तांतरित नहीं करेगी। इसके अलावा, विकास प्राधिकरणों को विभिन्न वित्तीय ऋण संस्थानों द्वारा उन्हें दिए गए ऋण/अग्रिम के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन भी करना होगा। स्थापना लागत में होने वाली वृद्धि को ऐसे विकास प्राधिकरणों को अपनी स्वयं की निधि से वहन करना होगा। वित्त विभाग द्वारा जारी किए गए दिनांक 23.12.2016 के शासनादेश क्रमांक 38 एवं 39 सरकारी कर्मचारियों को स्वीकार्य पेंशन, ग्रेच्युटी और अन्य भुगतानों से संबंधित हैं और विशेष रूप से प्रावधान करते हैं कि वे स्थानीय निकायों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, एवं स्वायत्त संस्थानों के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे। दिनांक 18.07.2017 एवं 04.09.2017 के शासनादेशों में विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों की पेंशन, ग्रेच्युटी और पारिवारिक पेंशन की राशि की गणना राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए निर्धारित सूत्र और प्रक्रिया के अनुसार करने का प्रावधान है, लेकिन वे राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान राशि के भुगतान का प्रावधान नहीं करते।

25. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता सरकारी कर्मचारियों के

लिए जारी साशनादेशों का लाभ चाहते हैं। ऐसे सभी साशनादेश, जिनका याचिकाकर्ताओं ने सहारा लिया है और चाहते हैं कि उनका लाभ यह न्यायालय उन्हें भी दे, स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे स्वायत्त संस्थानों, स्थानीय निकायों, वैधानिक निगमों आदि के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे। उन्हें लाभ से बाहर रखने वाली प्रासंगिक धाराओं को याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती नहीं दी गई है।

26. प्रत्यर्थियों की ओर से यह तर्क भी दिया गया है कि पेंशन एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के संबंध में वेतन आयोग की सिफारिशों के लागू होने की तिथि सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली के नियम 4 या नियम 5 में नहीं दी गई है। केवल यह कि ऐसी पेंशन और सेवानिवृत्ति लाभों के निर्धारण के लिए अपनाया जाने वाला फॉर्मूला और प्रक्रिया राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान होनी चाहिए। इसलिए प्रशासनिक विभाग को वेतन समिति की सिफारिशों के लागू होने की तिथि तय करने के लिये अलग से आदेश जारी करने थे। इस मामले में प्रत्यर्थी संख्या 1 ने निर्णय लिया कि वेतन समिति की सिफारिशें विकास प्राधिकरणों के पेंशनभोगियों पर 01.01.2016 से काल्पनिक रूप से लागू होंगी, एवं वास्तविक लाभ इस संबंध में साशनादेश जारी होने की तिथि यानी 24.02.2021 से प्रभावी होंगे। सरकार ने विकास प्राधिकरणों की वित्तीय स्थिति को देखते हुए बकाया देने से इंकार करने का सोंचा समझा निर्णय लिया है। इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत रिकॉर्ड से पता चलता है कि सभी विकास प्राधिकरण लाभ में नहीं चल रहे हैं। उनमें से ज्यादातर घाटे में चल रहे हैं। भूतलक्षी प्रभाव से पेंशन लाभ दे पाने की वित्तीय क्षमता संदिग्ध थी, इसलिए सरकार ने सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों का लाभ केवल भविष्यलक्षी प्रभाव से देने का निर्णय लिया। विकास प्राधिकरणों के प्रशासन पर राज्य सरकार के पूर्ण प्रशासनिक नियंत्रण को ले कर ज़रा भी संदेह नहीं है। 2011 की नियमावली का नियम 37 किसी विवाद पर निर्णय लेने या किसी संदेह का समाधान करने का अंतिम अधिकार राज्य सरकार के पास होने का उल्लेख करता है।

27. राज्य प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने 2021 की रिट याचिका संख्या 11593 में दायर जवाबी हलफनामे के अनुबंध CA-6 के रूप में दायर विकास प्राधिकरणों की वित्तीय स्थितियों और संसाधनों से संबंधित रिपोर्ट/चार्ट का सहारा लिया है। श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने CA-6 पढ़ा जो निदेशक आवास बंधु, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दिनांक 01.03.2021 के सरकारी पत्र के संदर्भ में आवास एवं शहरी नियोजन विभाग के अवर सचिव को भेजा गया दिनांक 17.06.2021 का एक पत्र है। यह फॉर्म संख्या 7 से 10 एवं फॉर्म संख्या 11 से 13 में दी गई जानकारी को संदर्भित करता है, जिसकी जांच की गई एवं टिप्पणियां उनके द्वारा लिखे गए दिनांक 03.03.2021 के पत्र के माध्यम से भेजी जा रही हैं। यह प्रमुख सचिव आवास एवं शहरी नियोजन द्वारा 11.06.2021 को आयोजित एक बैठक का उल्लेख करता है जहां आवास बन्धु द्वारा निर्धारित प्रपत्र संख्या 1 से 6 में दी गई जानकारी की जांच, एवं तत्पश्चात सरकार के समक्ष एक आख्या प्रस्तुत करने का निर्देश जारी किया गया था। फलस्वरूप प्रमुख

सचिव द्वारा दिनांक 11.06.2021 की बैठक में वांछित आख्या शासन के विचारार्थ संलग्न की जा रही है। पत्र का संलग्नक एक सारणीबद्ध चार्ट के रूप में है जिसमें 33 विकास प्राधिकरणों एवं उ० प्र० आवास विकास परिषद की वर्ष 2018-19, 2019-20 एवं 2020-21 की आय और व्यय का ब्योरा मौजूद है। इस जानकारी को यह कहते हुए सारांशित किया गया है कि पिछले तीन वर्षों में रायबरेली, अलीगढ़, बरेली, मुजफ्फरनगर, गोरखपुर, रामपुर, आगरा, चित्रकूट, गाजियाबाद, सहारनपुर एवं प्रयागराज विकास प्राधिकरणों का व्यय उनकी आय से अधिक रहा है। तर्क दिया गया है कि 33 विकास प्राधिकरणों में से कम से कम 11 विकास प्राधिकरण अपनी आय से अधिक व्यय कर रहे थे। हालाँकि, सभी विकास प्राधिकरणों की पिछले दो वर्षों की आय पर विचार करने पर यह पाया गया है कि वित्तीय वर्ष 202-21 में ऐसी आय में 8% से अधिक की वृद्धि हुई है। निदेशक, आवास बन्धु आगे कहते हैं कि देश में व्याप्त कोविड-19 महामारी के बावजूद, विकास प्राधिकरणों ने सराहनीय प्रयास किए हैं एवं पिछले वित्तीय वर्ष की तुलना में उनकी आय में 8% से अधिक की वृद्धि हुई है।

श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने यह कहते हुए शकुंतला सिंह (ऊपर) के मामले में दिए गए निर्णय को अलग बताने की कोशिश की है कि रिट याचिका की प्रार्थना में दिनांक 05.07.2016 के साशनादेश की धारा 6 को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी, जहां तक कि ऊक्त सशनादेश ने केंद्रीयकृत सेवाओं के कर्मचारियों को पुनरीक्षित पेंशन के बकाये का भुगतान 01.01.2006 से करने से मना किया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.07.2016 के उक्त साशनादेश एवं दिनांक 21.01.2016 के साशनादेश का लाभ प्रदान करने के लिए भी प्रार्थना की थी, जो छठे वेतन आयोग की सिफारिशों का लाभ देने से संबंधित थे। न्यायालय ने इस तर्क पर विशेष रूप से विचार किया था कि सातवें वेतन आयोग का लाभ प्रदान करने से संबंधित मामला राज्य सरकार के समक्ष विचाराधीन है। विकास प्राधिकरण ने श्रीमती शकुंतला सिंह के पति की पेंशन की गणना राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले सूत्र के अनुसार नहीं की थी, इसलिए न्यायालय ने, यह कहते हुए कि प्रशासनिक विभाग ने पेंशन/पारिवारिक पेंशन की गणना हेतु पृथक विधि प्रदान करते हुए स्वतंत्र रूप से कोई आदेश जारी नहीं किया था, सरकारी कर्मचारियों पर लागू होने वाले गणना सूत्र के अनुसार पेंशन एवं परिणामिक पारिवारिक पेंशन की गणना करने का निर्देश दिया था। शकुंतला सिंह के मामले में न्यायालय ने दिनांक 18.07.2017 के साशनादेश, जिसके द्वारा दिनांक 23.12.2016 के पिछले साशनादेश को संशोधित किया गया था एवं स्पष्ट किया गया था कि यह स्वायत्त संस्थानों पर लागू नहीं होगा, पर विचार नहीं किया था। इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा शकुंतला सिंह मामले में पारित निर्णय पर निर्भर होना त्रुटिपूर्ण एवं खारिज किए जाने योग्य है।

28. श्री सत्येन्द्र सिंह एवं याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर में प्रस्तुत किया है कि दिनांक 24.02.2021 का कार्यालय ज्ञापन

विकास प्राधिकरणों की वित्तीय स्थितियों पर ध्यान दिए बिना जारी किया गया था, जिनके पेंशनभोगियों को वेतन समिति 2016 की सिफारिशों के अनुसार पुनरीक्षित दर से पेंशन देने का प्रस्ताव किया गाया था। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने 2021 की रिट याचिका संख्या 11593 में दायर जवाबी हलफनामे के पैरा संख्या 28 एवं दिसंबर, 2021 में नारायण जी गोपाल की पुरानी रिट याचिका में दायर जवाबी हलफनामे का उल्लेख किया है। तर्क दिया गया है कि वेद प्रकाश मित्तल में दायर जवाबी हलफनामे के पैरा 28 एवं अनुबंध सीए-6 में उल्लिखित किसी भी सामग्री का पुरानी वाली रिट याचिका में दायर जवाबी हलफनामे में कोई ज़िक्र ही नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 2021 की रिट याचिका संख्या 11593 में दायर सीए-6 पढ़ कर इस न्यायालय को सुनाया, यह दिखाने के कि निदेशक उ.प्र. आवास बंधु ने दिनांक 17.06.2021 का पत्र केवल 01.03.2021 को जारी किए गए एक पत्र और 11.06.2021 को हुई बैठक के बाद किए गए पत्राचार के अनुसरण में लिखा था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त पत्र के संलग्नक की बिंदु संख्या 2 एवं 3 के ज़रिये दिखाया है कि जब विभिन्न विकास प्राधिकरणों की बैलेंस शीट के पिछले तीन वर्षों के औसत को देखा गया तो उनमें से केवल 11 प्राधिकरण घाटे में थे, यहां तक कि कोविड - 19 महामारी की कठिनाइयों के बावजूद सभी विकास प्राधिकरणों की पिछले दो वर्षों की बैलेंस शीट का कुल योग उनकी पिछली आय के मुक़ाबले 8% से ज़्यादा का लाभ दर्शाता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय पर यह प्रभाव डालने का प्रयास किया है कि दिनांक 24.02.2021 का निर्णय रिकॉर्ड पर किसी प्रासंगिक सामग्री की मौजूदगी के बिना लिया गया था। बाद में विभिन्न विकास प्राधिकरणों की आय और बैलेंस शीट के संबंध में जवाबी हलफ़नामे के साथ कुछ दस्तावेज अनुबोध होने पर दायर किए गए। कार्योत्तर दिए गए ऐसे स्पष्टीकरण को ध्यान में नहीं रखा जा सकता।

29. यह भी तर्क दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में कहा है कि केवल वित्तीय बाधाएं किसी समान पेंशन योजना के सदस्यों के बीच भेदभाव का आधार नहीं हो सकती हैं। सेवानिवृत्ति की तारीख के आधार पर पेंशनभोगियों की दो श्रेणियां नहीं बनाई जा सकतीं।

30. यह भी तर्क दिया गया है कि संयुक्त सचिव उ.प्र. साशन ने विकास प्राधिकरणों के उपाध्यक्षों को दिनांक 28.08.2017 को एक पत्र भेजकर पेंशन पुनरीक्षण के संबंध में वेतन समिति 2016 की सिफारिशों के कार्यान्वयन के संबंध में सिफारिशें/राय मांगी। उक्त पत्र के जवाब में सभी विकास प्राधिकरणों ने राज्य सरकार को सम्यक रूप से सूचित किया है कि उन्हें सेवानिवृत्त होने वालों को पुनरीक्षित पेंशन का लाभ देने में कोई आपत्ति नहीं है और वे सातवें वेतन आयोग के अनुसार पुनरीक्षित पेंशन का लाभ देने में आर्थिक रूप से सक्षम हैं। 19 विकास प्राधिकरणों के ऐसे अनुशंसा पत्रों की प्रतियां वेद प्रकाश मित्तल के मामले में दायर प्रत्युत्तर शपथ पत्र के अनुलग्नक के रूप में दायर की गई हैं। यहां तक कि वित्त नियंत्रक, लखनऊ विकास प्राधिकरण, जो

सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011 के नियम 16 के तहत गठित सामान्य पेंशन फंड के संरक्षक हैं, ने 2016 से पहले सेवानिवृत्त हुए लोगों के लिए सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के संबंध में अनुमति/दिशा-निर्देश का अनुरोध करते हुए कई पत्र भेजे, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मामले को पांच वर्ष से अधिक समय तक लंबित रखा एवं 24.02.2021 को अंततः बकाये का लाभ देने से मना करते हुए आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन जारी किया।

31. यह तर्क दिया गया था कि राज्य सरकार विकास प्राधिकरणों को उनकी स्थापना लागत को पूरा करने या सेवानिवृत्त लोगों को पेंशन देने के लिए वित्तीय सहायता भी नहीं प्रदान करती है। विकास प्राधिकरण पेंशनभोगियों को सेवानिवृत्ति की तारीख देखे बिना समान रूप से पेंशन का भुगतान करने के लिए इच्छुक और आर्थिक रूप से सक्षम हैं, लेकिन राज्य सरकार ने मनमाने ढंग से अन्यथा निर्णय लिया है।

32. इसलिए, इस न्यायालय ने दिनांक 19.09.2022 के अपने आदेश द्वारा राज्य प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता को विकास प्राधिकरणों की पेंशन एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के संबंध में सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने हेतु सरकार द्वारा लिए गए निर्णय से संबंधित अभिलेख इस न्यायालय के समक्ष रखने का निर्देश दिया। ऐसे लाभों को भविष्यलक्षी रूप से देने के लिए सरकार के निर्णय से संबंधित अभिलेख इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, और प्रत्यर्थियों के अध्वक्ता ने फ़ाइल पर की गई नोटिंग के कई पृष्ठ, उदाहरण के लिए फ़ाइल संख्या 06E/2016 आवास-5 के क्रमशः पृष्ठ संख्या 164 से 167 और पृष्ठ संख्या 172 से 176 तक, पूरी तरह पढ़े थे। इस न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को अपनी लिखित दलीलों के साथ अभिलेख के प्रासंगिक पृष्ठों की फोटोकॉपी प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

33. राज्य प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत फाइल संख्या 06E/2016 के अभिलेखों की बात करते वक़्त सातवें वेतन आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार पेंशन देने पर पड़ने वाले वित्तीय दायित्व के संबंध में माननीय मुख्यमंत्री के प्रश्न का ज़िक्र किया है। प्रशासनिक विभाग ने कहा था कि यदि पेंशन एवं अन्य सेवानिवृत्ति देय राशि में पूर्वलक्षी प्रभाव से बढ़ोतरी की जाती है तो 33.30 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। केन्द्रीयकृत सेवा में कुल 405 पेंशनभोगी थे। माननीय मुख्यमंत्री ने पिछले तीन वर्षों की आय और व्यय की प्रवृत्ति के संबंध में एक विशिष्ट प्रश्न पूछा था। इस प्रश्न का उत्तर पृष्ठ 164 पर यह कहते हुए दिया गया कि पिछले तीन वर्षों से यह प्रवृत्ति धनात्मक रही है, यानी विकास प्राधिकरणों की आय उनके व्यय से अधिक थी। हालाँकि यह केवल कुछ ही विकास प्राधिकरणों के लिए सत्य था, सभी के लिए नहीं। प्रशासनिक विभाग ने आशंका व्यक्त की थी कि विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों पर दिनांक 23.12.2016 का शासनादेश पूर्वलक्षी प्रभाव से लागू करने पर 20 वर्ष की सेवा पूरी करने पर पूरी पेंशन एवं 80 वर्ष एवं उससे अधिक आयु होने पर अतिरिक्त पेंशन भी मिलेगी। इसमें

20 साल की सेवा पूरी करने के मामलों में 20 लाख रुपये तक की ग्रेच्युटी का भुगतान करने की देनदारी भी बताई गई थी। प्रशासनिक विभाग ने 500 करोड़ रुपये की कॉर्पस निधि के गठन की बात कही थी, लेकिन यह नहीं बताया कि ऐसी कॉर्पस निधि के प्रति विभिन्न विकास प्राधिकरणों का योगदान कैसे सुनिश्चित किया जाएगा। बताया गया था कि दिनांक 29.12.2020 के एक साशनादेश द्वारा पेंशन फंड में योगदान के रूप में विभिन्न विकास प्राधिकरणों द्वारा सालाना 35.5 करोड़ रुपये जमा करने का प्रावधान किया गया है, लेकिन प्राधिकरणों द्वारा ऐसे योगदान का भुगतान पूर्ण रूप से नहीं किया गया है। श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने रिकॉर्ड से बताया है कि योगदान के अपने अंश को जमा करने के लिए विभिन्न विकास प्राधिकरणों को योगदान के उनके अंश को जमा करने के लिए बार-बार अनुस्मारक भेजे गए हैं, जिनमे से ऐसा अंतिम अनुस्मारक अगस्त 2022 में भेजा गया था। यह भी बताया गया था कि 35.50 करोड़ रुपये का ये योगदान केवल वित्तीय वर्ष 2020-21 से 2023-24 तक का अतिरिक्त व्यय वहन करने के लिये था। 04.02.2021 को मुख्यमंत्री द्वारा दी गई मंजूरी सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार पेंशन लाभ भविष्यलक्षी प्रभाव से प्रदान करने पर उत्पन्न होने वाली वित्तीय देनदारी के संबंध में थी। बकाये की गणना के अभाव में उर्ध्वगामी पुनरीक्षण के पूर्वलक्षी संचालन हेतु कोई मंजूरी नहीं दी गई थी।

34. श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने कहा कि प्रशासनिक विभाग द्वारा फाइल पर लगाई गई नोटिंग भ्रामक थी एवं यहां तक कि अपनी आय को व्यय से अधिक दिखाने वाले सभी बीस विकास प्राधिकरण वास्तव में लाभ में नहीं चल रहे थे, एवं इसलिए उन्होंने पेंशन फंड में अपना योगदान नहीं जमा किया था।

35. श्री सत्येन्द्र सिंह ने ***सुब्रत सेन बनाम भारत संघ एवं अन्य 2021 (8) SCC 71*** के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए निर्णय का सहारा लिया है (उसके पैरा 6 से 10, 13 से 17)।

36. इससे पहले कि यह न्यायालय विरोधी दावों के गुणागुण में प्रवेश करे, विवाद में निर्णय देने के लिए प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों पर विचार करना उचित रहेगा। विकास प्राधिकरणों का गठन उ०प्र० शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 की धारा 4 के अन्तर्गत किया गया है। 1973 के अधिनियम की धारा 5 में प्रावधान है कि प्राधिकरण के सचिव और मुख्य लेखा अधिकारी को राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा जो ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेंगे एवं ऐसे कर्तव्यों का पालन करेंगे जो नियमों द्वारा निर्धारित किए जाएँगे या प्राधिकरण के अध्यक्ष या उसके उपाध्यक्ष द्वारा उन्हें प्रत्यायोजित किए जाएँगे। राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेशों द्वारा निर्धारित किए जाने वाले नियंत्रण एवं निर्बंधों के अधीन प्राधिकरण अपने कार्यों के कुशल प्रतिपादन हेतु आवश्यक संख्या में अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नियुक्त कर सकते हैं एवं उनके पदनाम और ग्रेड निर्धारित कर सकते हैं। प्राधिकरण के सचिव एवं मुख्य लेखा अधिकारी, एवं प्राधिकरण के उनके कर्मचारी प्राधिकरण के कोष से ऐसे वेतन एवं भत्ते प्राप्त करने के

हकदार होंगे एवं सेवा की ऐसी अन्य शर्तों द्वारा शासित होंगे जैसा कि उस संबंध में बनाए गए विनियमों द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

37. इन प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एक विकास प्राधिकरण अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकता है, लेकिन ऐसे कर्मचारी केवल प्राधिकरण के कोष से ही वेतन एवं भत्ते प्राप्त करने के हकदार होंगे। सेवा की शर्तें इस संबंध में बनाए गए विनियमों द्वारा नियंत्रित की जा सकती हैं। धारा 59 की उप-धारा (4) में उल्लिखित सभी विकास प्राधिकरणों के लिए सामान्य पदों के अलावा पदों के लिए एक या एक से अधिक केंद्रीकृत सेवाएं अधिसूचना द्वारा सृजित करने की शक्ति धारा 5-ए राज्य सरकार को प्रदान करती है। ऐसे पदों के पदधारी एक विकास प्राधिकरण से दूसरे विकास प्राधिकरण में स्थानांतरणीय होते हैं। राज्य सरकार ऐसी सेवा में भर्ती के तरीके एवं शर्तें, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा के नियम एवं शर्तें निर्धारित कर सकती है। ऐसे सृजन से ठीक पहले ऐसी सेवा में शामिल किसी पद पर कार्यरत व्यक्ति को समाहित करने या केंद्रीकृत सेवा में प्रतिनियुक्ति करने का प्रावधान किया गया था, जब तक कि वो व्यक्ति अन्यथा विकल्प नहीं चुनता। विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा में किसी भी पद पर बैठे किसी भी व्यक्ति को एक विकास प्राधिकरण से दूसरे विकास प्राधिकरण में स्थानांतरित करने का अधिकार भी राज्य सरकार को दिया गया था।

38. 1973 के अधिनियम के अध्याय VII के तहत धारा 24 में पेंशन एवं भविष्य निधि हेतु प्रावधान किया गया है, जिसे प्राधिकरण द्वारा अपने पूर्णकालिक सदस्यों, अधिकारियों, एवं अन्य कर्मचारियों के लाभ हेतु गठित किया जाएगा, किंतु ऐसी शर्तों के अधीन जो राज्य सरकार निर्दिष्ट कर सकती है। यदि किसी विकास प्राधिकरण द्वारा भविष्य निधि का गठन किया जाता है तो राज्य सरकार ऐसी भविष्य निधि पर भी भविष्य निधि अधिनियम, 1925 लागू कर सकती है।

39. धारा 56 विकास प्राधिकरणों को अपने कर्मचारियों के वेतन, भत्ते, सेवा शर्तों समेत प्राधिकरण के मामलों के प्रशासन हेतु राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से विनियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है।

40. राज्य सरकार ने धारा 5-ए के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उ०प्र० विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा नियमावली 1985 को अधिसूचित किया। नियम 31 वित्तीय हैंडबुक खंड II भाग 2 से 4 के तहत समान स्थिति वाले सरकारी कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य छुट्टी, छुट्टी भत्ते, स्थानापन्न वेतन, शुल्क, एवं मानदेय का प्रावधान करता है। नियम 34 सेवा का कैडर एवं संख्या समेत सेवानिवृत्ति की आयु एवं सेवानिवृत्त पेंशन का प्रावधान करता है। नियम 37 आदेशित करता है कि इन नियमों या विशेष आदेशों के अंतर्गत न आने वाले किसी भी मामले में सेवा के सदस्य उत्तर प्रदेश के सरकारी कर्मचारियों पर सामान्यतः लागू होने वाले विनियमों और आदेशों द्वारा शासित होंगे।

41. प्रवीण कुमार अग्रवाल (ऊपर) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के बाद राज्य सरकार ने 2011 की सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली बनायी। उक्त नियमों का भाग I पेंशन और ग्रेच्युटी से संबंधित है। नियम 4 और 5 में

पेंशन एवं ग्रेच्युटी की गणना राज्य सरकार के कर्मचारियों हेतु लागू प्रक्रिया एवं सूत्र के अनुसार किये जाने का प्रावधान है। भाग III के तहत पारिवारिक पेंशन का प्रावधान किया गया है जिसे उ०प्र० सरकार के कर्मचारियों पर लागू प्रासंगिक नियमों द्वारा विनियमित किया जाना है। राज्य सरकार ने दिनांक 08.12.2008 के एक आदेश द्वारा छठे केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था एवं इसे 01.01.2006 से पहले सेवानिवृत्त होने वाले अपने सभी कर्मचारियों पर लागू कर दिया था। राज्य सरकार के आदेश में एक सारणीबद्ध चार्ट भी था, जो पेंशन/पुनरीक्षित पेंशन की गणना से संबंधित था। वित्त विभाग ने दिनांक 07.02.2009 को एक संकल्प प्रकाशित किया, जिसमें छठे वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार किया गया एवं विकास प्राधिकरणों सहित सभी स्थानीय निकायों पर लागू किया गया। इसने आगे स्पष्ट किया कि राज्य सरकार उस व्यय को पूरा करने हेतु धन उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी नहीं होगी, जिसे संबंधित स्थानीय निकाय / विकास प्राधिकरण द्वारा वहन किया जाएगा। हालाँकि, 01.01.2006 से पहले सेवानिवृत्त हुए विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों की पेंशन के निर्धारण हेतु दिनांक 08.12.2008 के शासनादेश के साथ संलग्न सारणीबद्ध चार्ट / पदानुक्रमणिका का पालन नहीं किया गया था। तत्पश्चात राज्य सरकार ने दिनांक 19.07.2010 एवं 07.11.2014 के दो अन्य शासनादेश जारी किए, साथ ही पुनरीक्षित वेतन संरचना एवं संबंधित न्यूनतम पेंशन एवं पारिवारिक पेंशन को दर्शाने वाली एक पदानुक्रमणिका भी जारी की। 21.01.2016 को एक अन्य शासनादेश ke जारी किया गया जिसमें स्पष्ट किया गया कि पारिवारिक पेंशन मूल पेंशन के 30% से कम नहीं होगी। विकास प्राधिकरणों के सेवानिवृत्त लोगों की पेंशन एवं पारिवारिक पेंशन की गणना में भी इन शासनादेशों का पालन नहीं किया गया।

42. एक सेवानिवृत्त मुख्य अभियंता की विधवा ने 2016 की रिट याचिका संख्या 54211: शकुंतला सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य में इस न्यायालय से संपर्क किया। इस न्यायालय ने 1973 के अधिनियम एवं 2011 की सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली पर विचार करने के बाद पाया कि अधिनियम की धारा 24 एवं 2011 की नियमावली के नियम 4 एवं 7 के तहत, राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले सभी नियम/आदेश एवं उनके तहत पेंशन एवं पारिवारिक पेंशन की गणना का सूत्र विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों के संदर्भ में भी लागू होगा। ऐसे नियम एक विधायी अभ्यास की तरह होते हैं, जिन्हें किसी शासनादेश/संकल्प द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने पैरा 43 और 44 में सम्मिलन द्वारा विधान एवं निर्देश द्वारा विधान की अवधारणा पर विचार किया और पाया कि दोनों के बीच ये अंतर है कि *"निर्देश द्वारा विधान के मामले में निर्देशित विधान में किए गए संशोधन नए विधान पर भी लागू होंगे। इस सिद्धांत को वर्तमान मामले में लागू करते हुए, सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 सभी शासनादेशों को लागू करती है जहां तक वे निर्देश द्वारा पेंशन/पारिवारिक पेंशन से संबंधित हैं। इसलिए उसमे होने वाले बाद के संशोधन भी लागू होंगे।"*

43. पैरा 44 में न्यायालय ने निम्नवत कहा: -

"44. बाजया बनाम गोपिकाबाई 1978 (2) SCC 542 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश और सम्मिलन द्वारा विधान के बीच अंतर समझाया।

"--निर्देशात्मक सम्मिलन द्वारा विधान दो श्रेणियों में आता है, (ए) जहां कोई क़ानून किसी अन्य क़ानून के प्रावधानों को विशिष्ट निर्देश द्वारा शामिल करता है, जैसा कि वे अंगीकरण के समय थे और (बी) जहां कोई क़ानून किसी विशेष विषय से संबंधित अन्य कानून को सामान्य निर्देश द्वारा स्वयं में शामिल करता है। (ए) वाले मामले में निर्देशित क़ानून में किए गए बाद के संशोधनों को निर्देश देने वाले क़ानून में स्वतः नहीं पढ़ा जा सकता। लेकिन (बी) वाले मामले में माना जाएगा कि विधायी मंशा यह थी कि समय-समय पर किए गए बाद के संशोधनों को भी उस विषय पर सामान्य निर्देश द्वारा अंगीकृत किए गए कानून में शामिल किया जाएगा। - -" (देखें: वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण, कोरबा 1982 SCC 125)"

44. *शकुंतला सिंह* मामले में दिए गए फैसले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना था कि सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011 विधायी प्रकृति की है, और इसलिए विकास प्राधिकरणों, यहां तक कि राज्य सरकार पर भी समान रूप से बाध्यकारी है। सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011 विकास प्राधिकरणों को राज्य सरकार के अनुमोदन के बिना शासनादेशों को लागू करने से नहीं रोकती है। बल्कि उक्त नियम यह आदेश देते हैं कि सरकारी सेवकों के संबंध में जारी किए गए पेंशन/पारिवारिक पेंशन से संबंधित शासनादेश विधि के संचालन द्वारा विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों पर लागू और प्रवर्तनीय हो जाते हैं। राज्य सरकार की ओर से किसी अन्य अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के प्रावधानों को दरकिनार करते हुए और *शकुंतला सिंह* (ऊपर) में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय की परिवंचना करते हुए दिनांक 24.02.2021 का कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया है।

45. समन्वय पीठ ने *उ.प्र. राज्य बनाम शिवश्रेय सिंह एवं उ.प्र. राज्य बनाम प्रीतम सिंह 2014* (15) SCC 774 के मामले में दिए गए फैसले; एवं उ.प्र. आवास विकास परिषद से संबंधित अन्य निर्णय का भी संदर्भ दिया जहां प्रासंगिक शासनादेशों के साथ-साथ वैधानिक प्रणाली यानी उ.प्र.. सिविल सेवा नियमावली, पेंशन नियमावली, उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961, नवीन पारिवारिक पेंशन योजना 1965, और राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू पेंशन/पारिवारिक पेंशन/ग्रेच्युटी के संबंध में वित्त विभाग के सभी आदेशों को निर्देश द्वारा स्वचालित रूप से शामिल माना गया। माना गया था कि दिनांक 08.12.2008 के शासनादेश को छोड़कर राज्य सरकार के कर्मचारियों को छठे वेतन आयोग की रिपोर्ट के तहत वित्तीय लाभ देने या पेंशन और ग्रेच्युटी के भुगतान को विनियमित करने वाला कोई अन्य शासनादेश मौजूद नहीं था। इसलिए, यह शासनादेश 2009 के वैधानिक विनियमों के आधार पर आवास विकास परिषद

के कर्मचारियों पर पूरी तरह से लागू होता है, जिसमें प्रावधान है कि परिषद के कर्मचारी वैसी पेंशन/पारिवारिक पेंशन और ग्रेच्युटी पाने के हकदार हैं जैसा कि राज्य सरकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को स्वीकार्य है।

46. *शकुंतला सिंह* (ऊपर) में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने राज्य प्रत्यर्थियों द्वारा दिए गए इस तर्क को खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता दिनांक 08.12.2008 के शासनादेश के अनुसार पेंशन लाभ पाने का दावा करने का हकदार नहीं था, जो राज्य के पेंशनभोगियों पर लागू था और विकास प्राधिकरणों पर बाध्यकारी नहीं था। दिनांक 08.12.2008 के शासनादेश को दिनांक 19.07.2010, 14.07.2014 और 27.01.2016 के शासनादेशों द्वारा आगे संशोधित किया गया था, जिसे पेंशन और अन्य लाभों के भुगतान के उद्देश्य से विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों पर तब तक लागू नहीं किया गया था।

47. न्यायालय ने कहा था कि प्रत्यर्थियों ने स्वीकार किया था कि पेंशन/पारिवारिक पेंशन की गणना के लिए राज्य सरकार के आदेशों के अलावा कोई वैकल्पिक सूत्र नहीं था। सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011 के अनुसार राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होने वाले सूत्र के अलावा कोई अन्य सूत्र अपनाने का अधिकार प्रत्यर्थियों के पास नहीं था। इसके अलावा, विकास प्राधिकरणों ने राज्य सरकार को बताया था कि उनके पास 01.01.2016 से पहले सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों के लिए सातवें वेतन आयोग द्वारा अनुशंसित वर्धित पेंशन/पुनरीक्षित पारिवारिक पेंशन पर होने वाले व्यय को वहन करने की वित्तीय क्षमता थी।

48. समन्वय पीठ ने एक कदम आगे जाते हुए एक अनुषंगी प्रश्न की विरचना की कि क्या विकास प्राधिकरण विभिन्न शासनादेशों के माध्यम से सरकारी कर्मचारियों पर लागू की गई संबंधित वेतन आयोग की सिफारिशों का क्रियान्वयन करने से पहले राज्य सरकार की मंजूरी लेने के लिए बाध्य थे। न्यायालय ने कहा कि विकास प्राधिकरण स्वायत्त निकाय होते हैं जिनकी अपनी अलग निधि होती है। अपने कर्मचारियों के वेतन, पेंशन और अन्य परिलब्धियों को विकास प्राधिकरण अपने संसाधनों से वित्त पोषित करते हैं। राज्य सरकार विकास प्राधिकरणों का वित्त पोषण नहीं करती। 2011 की सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली विकास प्राधिकरणों द्वारा शासनादेशों को लागू करने के लिए राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी लेने का प्रावधान नहीं करती।

49. समन्वय पीठ ने *प्रीतम सिंह* (ऊपर) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा की गई टिप्पणी का सहारा लिया, जिसमें कहा गया था कि अपने कर्मचारियों की पेंशन इत्यादि सहित सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले विनियम विरचित करने के लिए परिषद द्वारा राज्य सरकार का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक नहीं था।

यहां ध्यान देना प्रासंगिक है कि प्रीतम सिंह मामले में दिए गए निर्णय को उ.प्र. राज्य बनाम वीरेंद्र कुमार 2022 की दीवानी अपील संख्या 6622 मामले में एक बड़ी बेंच को भेजा गया था, और सुप्रीम कोर्ट की बड़ी बेंच द्वारा

25.11.2022 को पारित निर्णय को 2022 SCC ऑनलाइन सुप्रीम कोर्ट 1628 में रिपोर्ट किया गया जिसमें एक मामूली उपान्तरण के साथ खंडपीठ द्वारा प्रीतम सिंह मामले में की गई टिप्पणियों की अभिपुष्टि की गई।

50. *शकुंतला सिंह* मामले में समन्वय पीठ ने कहा कि विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों और उनके आश्रितों को पेंशन/पारिवारिक पेंशन की गणना और भुगतान को नियंत्रित वाली सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 एवं पेंशन / पारिवारिक पेंशन के संबंध में समय-समय पर जारी किए गए शासनादेशों को लागू करने के लिए राज्य सरकार का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करने का प्रावधान कहीं भी नहीं करती। चूंकि लखनऊ विकास प्राधिकरण के वित्त नियंत्रक, जो सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के नियम 16 के तहत गठित विकास प्राधिकरण पेंशन निधि के संरक्षक हैं, ने विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों की पेंशन/पारिवारिक पेंशन को पुनरीक्षित करने वाले शासनादेशों को लागू करने की इच्छा व्यक्त की थी, इसलिये विकास प्राधिकरण पेंशन/पारिवारिक पेंशन को पुनरीक्षित करने वाले शासनादेशों को अपने सेवानिवृत्तों के पक्ष में तत्काल और बिना किसी अनुमोदन के लागू कर सकते हैं।

51. *शकुंतला सिंह* मामले में समन्वय पीठ ने इस प्रश्न पर भी विचार किया था कि क्या राज्य सरकार द्वारा सेवानिवृत्ति की तिथि के आधार पर पेंशनभोगियों का वर्गीकरण उचित था, और क्या इस कदम का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई संबंध था। इसमें इस न्यायालय की अनेक खंडपीठों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले का भी हवाला दिया गया, जिसमें अपने सचिव के माध्यम से ऑल मणिपुर पेंशनर्स एसोसिएशन बनाम मणिपुर राज्य 2020 (14) SCC 625 का मामला शामिल है जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रश्न का उत्तर दिया था कि क्या राज्य सरकार द्वारा वित्तीय बाधा के आधार पर पुनरीक्षित पेंशन, वेतन के भुगतान के उद्देश्य से पेंशनभोगियों की दो श्रेणियां बनाना उचित होगा, यानी 1996 से पहले सेवानिवृत्त होने वाले और 1996 के बाद सेवानिवृत्त होने वाले । सुप्रीम कोर्ट ने कट-ऑफ तिथि को खारिज कर दिया, क्योंकि उसके अनुसार इस तरह के वर्गीकरण का पुनरीक्षित पेंशन का लाभ देने के उद्देश्य से कोई संबंध नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की:-

"- - - - - हमारे विचार में, इस तरह के वर्गीकरण का पुनरीक्षित पेंशन का लाभ देने के उद्देश्य से कोई संबंध नहीं है। सभी छोटे पेंशनभोगी एक ही वर्ग बनाते हैं, जो पेंशन नियमावली के अनुसार पेंशन के हकदार हैं। भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष सभी को समानता और सभी को कानूनों की समान सुरक्षा सुनिश्चित करता है। यहाँ वैध वर्गीकरण की अवधारणा की जांच करना भी आवश्यक है। एक वैध वर्गीकरण वास्तव में वैध भेदभाव होता है। यह सच है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 16 एक वैध वर्गीकरण की अनुमति देता है। किंतु एक वैध वर्गीकरण उचित उद्देश्य पर आधारित होना चाहिए। उस न्यायोचित उद्देश्य द्वारा प्राप्त किया जाने वाला परिणाम कुछ की पसंद पर दूसरों की तुलना में अलग तरह से विचार करता है।

किसी वर्गीकरण को वैध माने जाने के लिए उसे दो परीक्षणों को आवश्यक रूप से पूरा करना होगा। पहला कि विभेदक तर्क उचित उद्देश्य पर आधारित होना चाहिए, और दूसरा कि व्यक्तियों के एक समूह को दूसरे से अलग करने वाले कारकों के चुनाव का प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ उचित संबंध होना चाहिए। संक्षेप मे कहा जाए तो वैध वर्गीकरण एक ऐसा भेद होता है जो किसी स्पष्ट अंतर पर आधारित वर्गीकरण होता है, जिसका प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्य के साथ एक तर्कसंगत संबंध होत है - -।"

52. अंत में, समन्वय पीठ ने कहा कि प्रत्यर्थियों द्वारा इस पर कोई विवाद नहीं है कि विकास प्राधिकरणों के वर्तमान कर्मचारियों के संबंध में छठे वेतन आयोग और सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को राज्य सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और विकास प्राधिकरणों द्वारा क्रमशः 01.01.2006 और 01.01.2016 से लागू किया गया है। हालाँकि, सेवानिवृत्त कर्मचारियों को समय-समय पर जारी शासनादेशों के अनुसार पुनरीक्षित पेंशन का भुगतान नहीं किया जा रहा था। पुनरीक्षित पेंशन उन कर्मचारियों के लिए उपलब्ध है जो क्रमशः 01.01.2006 और 01.01.2016 के बाद सेवानिवृत्त हुए थे। हालाँकि, उससे पहले सेवानिवृत्त होने वाले पेंशनभोगियों को ऐसे वर्धक पुनरीक्षण के कार्यान्वयन की तिथि पर आधारित एक कृत्रिम वर्गीकरण के कारण पुनरीक्षित पेंशन और पारिवारिक पेंशन के लाभ से वंचित किया जा रहा था। *"...इस तरह का कृत्रिम वर्गीकरण किसी ऐसे स्पष्ट अंतर पर नहीं आधारित था जिसकी बिना पर एक साथ समूहीकृत किए गए व्यक्तियों को अपवर्जित किये गए अन्य लोगों से अलग किया जा सके।"*

53. इस न्यायालय ने फाइल संख्या 06E/2016 आवास की धारा 5 के मूल अभिलेख के प्रासंगिक उद्धरण का अवलोकन किया है। फाइल नोटिंग पृष्ठ संख्या 158 से शुरू होती है जहां प्रशासनिक विभाग वित्त विभाग के दिनांक 23.12.2016 के शासनादेश क्रमांक 38 एवं 39 के अनुसार सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को सेवानिवृत्ति लाभों के सम्बंध में अपनाने पर विचार कर रहा है। ऐसे शासनादेश को अपनाने के प्रस्ताव में शामिल होगा: (ए) सातवें वेतन आयोग के अनुसार पेंशन और महंगाई भत्ता देना; (बी) पेंशन में प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हक सेवा वर्ष 20 वर्ष से घटाकर 10 वर्ष किया जाना; (सी) 33 वर्ष की सेवा के स्थान पर 20 वर्ष की सेवा प्रदान करने पर पूर्ण पेंशन उपलब्ध होने की स्वीकार्यता; (डी) 20 वर्षों की ऐसी सेवा प्रदान करने पर ग्रेच्युटी की अधिकतम सीमा 10 लाख रुपये से बढ़ाकर 20 लाख रुपये किया जाना; (ई) वृद्ध पेंशनभोगियों को अतिरिक्त पेंशन देना और पारिवारिक पेंशन में भी वर्धक पुनरीक्षण किया जाना।

54. निदेशक, आवास बन्धु उ0प्र0 ने दिनांक 08.10.2020 के अपने पत्र द्वारा दर्शाया था कि वर्तमान में 29 विकास प्राधिकरणों में 2578 पेंशनभोगी हैं जिन्हें प्रतिवर्ष 3,802.98 लाख रूपये की पेंशन एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभ दिये जा रहे हैं। सातवें वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को अअंगीकृत करने पर यह वित्तीय

बोझ बढ़कर 4,898.89 लाख रुपये हो जाएगा। सालाना अतिरिक्त बोझ 1,095.89 लाख रुपये आएगा। वित्त नियंत्रक एलडीए ने दिनांक 07.10.2020 के अपने पत्र द्वारा संकेत दिया था कि यदि केंद्रीकृत सेवाओं के पेंशनभोगियों को महंगाई राहत सहित पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार प्रदान लिये जाते हैं तो प्रति माह 190.18 लाख रुपये की आवश्यकता होगी। वित्त नियंत्रक ने दिनांक 15.09.2020 के अपने पूर्व पत्र में पेंशन की 31.03.2022 तक की बकाया राशि वितरित किये जाने की सूचना भी दी थी। उन्होंने बताया कि वर्तमान में पेंशन/पारिवारिक पेंशन हेतु 160.71 लाख रूपये मासिक भुगतान किया जा रहा है। यदि वेतन आयोग की सिफारिशों को 01.01.2016 से अपनाया जाता है, तो 31.03.2022 तक पेंशन/पारिवारिक पेंशन का बकाया 5500/- लाख रुपये होगा। दूसरी ओर, आईडीबीआई बैंक में खोले गए पेंशन निधि खाते में केवल 750 लाख रुपये बचे थे। विभिन्न विकास प्राधिकरणों द्वारा पेंशन निधि में योगदान के रूप में प्रति माह केवल 1000 लाख रुपये उपलब्ध कराए जाने की उम्मीद है। फलस्वरूप सभी विकास प्राधिकरणों द्वारा पेंशन निधि में किये जाने वाले मासिक अंशदान को बढ़ाकर 3550/- लाख रूपये की व्यवस्था की जानी थी। निदेशक, आवास बन्धु और वित्त नियंत्रक, लखनऊ विकास प्राधिकरण के इस पत्राचार के परिणामस्वरूप 29.12.2020 को एक शासनादेश जारी किया गया था जिसमें विभिन्न विकास प्राधिकणों द्वारा पेंशन निधि में योगदान के रूप में 35.50/- करोड़ रुपये का अतिरिक्त भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।। लेकिन यह पर्याप्त नहीं था और इसलिए, सभी विकास प्राधिकरणों की एक बैठक आयोजित की जानी थी ताकि पेंशन फंड में उनमें से प्रत्येक के योगदान की राशि निर्धारित की जा सके और यह भी सुनिश्चित किया जा सके कि पेंशन फंड में इसका भुगतान समय पर किया जाए। सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार बकाया देने के परिणामों के संबंध में पहले पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में प्रशासनिक विभाग ने 190.18/- लाख रुपये की राशि की गणना की थी, लेकिन इस राशि में बकाया भुगतान हेतु आवश्यक धन की गणना नहीं की गई थी।

55. इस न्यायालय ने गौर किया है कि प्रशासनिक विभाग ने अपनी टिप्पणी में पुनरीक्षित पेंशन और सेवानिवृत्ति पर देय होने वाली अन्य राशि का भुगतान केवल भविष्यलक्षी रूप से करने पर पड़ने वाले वित्तीय दायित्व/बोझ की बात की है क्योंकि जो चार्ट तैयार किया गया है वह वर्ष 2020-21 से 2023-24 तक के लिये है। केवल उक्त उद्देश्य के लिए 500 करोड़ रुपये का एक कॉर्पस फंड बनाने का सुझाव दिया गया था, जिसे इस तरह से निवेश किया जाना था कि उस पर सालाना 30/- करोड़ रुपये का ब्याज प्राप्त हो सके। हालाँकि, ये नहीं बताया गया था कि ऐसे कॉर्पस फंड का गठन कैसे किया जाएगा और इसमें प्रत्येक विकास प्राधिकरण का विशिष्ट योगदान क्या होगा।

56. माननीय मुख्यमंत्री ने इस मामले में वित्त विभाग से भी परामर्श लेने का निर्देश दिया था।

57. वित्त विभाग ने अपनी सलाह में केवल इतना कहा कि वेतन समिति 2016 की रिपोर्ट

और इस संबंध में जारी किये गये दिनांक 23.12.2016 के शासनादेश क्रमांक 38 और 39 को अंगीकृत करने वाले दिनांक 16.12.2016 के संकल्प के अनुसार निधि की अतिरिक्त आवश्यकता की व्यवस्था विकास प्राधिकरणों को अपने संसाधनों से करनी होगी और अतिरिक्त स्थापना लागत के प्रयोजन के लिए राज्य सरकार उन्हें कोई निधि हस्तांतरित नहीं करेगी। विभाग ने यह सलाह भी दी कि यदि दिनांक 23.12.2016 के शासनादेशों को यथास्थिति में अपनाया जाता है तो पेंशन के लिए अर्हक सेवा 20 वर्ष से घट कर 10 वर्ष हो जाएगी, और पूर्ण पेंशन के लिए अर्हक सेवा 33 वर्ष से घट कर 20 वर्ष हो जाएगी। इसके अलावा पेंशन अंतिम आहरित मूल वेतन के 50% की दर से स्वीकार्य होगी और किसी भी स्थिति में 9000/- रुपये प्रति माह से कम नहीं होगी। इसके अलावा, 80 वर्ष से अधिक आयु के पेंशनभोगियों के लिए मूल पेंशन के 20% की दर से अतिरिक्त पेंशन स्वीकार्य होगी, 85 वर्ष से अधिक आयु के पेंशनभोगियों के लिए 30% की दर से स्वीकार्य होगी, इत्यादि इत्यादि, और सौ वर्ष या उससे अधिक आयु वाले पेंशनभोगी के लिए मूल पेंशन में शत-प्रतिशत वृद्धि होगी। ऐसे प्रावधान विकास प्राधिकरणों के पेंशनभोगियों पर न तो पहले और न ही उस समय लागू होते थे। मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी भी बढ़ाई जाएगी और बीस साल की पूरी सेवा प्रदान करने पर अधिकतम सीमा अब 10 लाख के बजाय 20 लाख रुपये होगी।

58. प्रशासनिक विभाग ने यह भी बताया कि वर्तमान में प्राधिकरणों के सेवारत कर्मचारियों को सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों का लाभ दिया जा चुका है और पेंशनभोगियों और पारिवारिक पेंशनभोगियों द्वारा सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों का लाभ मांगने के लिए उच्च न्यायालय में कई रिट याचिकाएं लंबित हैं।

59. उक्त फाइल नोटिंग पर माननीय मुख्यमंत्री ने दिनांक 27.10.2020 को एक प्रश्न कर विभिन्न विकास प्राधिकरणों की पिछले कई वर्षों की आय एवं व्यय की प्रवृत्ति के संबंध में विवरण मांगा था।

60. इसके बाद विभिन्न विकास प्राधिकरणों से जानकारी मांगने के लिए एक प्रारूप तैयार किया गया जिसे प्रसारित किया गया। जानकारी 29 विकास प्राधिकरणों से एकत्र की गई थी, जिसका संदर्भ पृष्ठ 166 और आगे की पर फ़ाइल नोटिंग में दिया गया था। विकास प्राधिकरणों ने प्रशासनिक विभाग को सूचित किया था कि वे पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों को सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार पुनरीक्षित करने का वित्तीय बोझ उठाने के लिए तैयार हैं।

इसके बाद माननीय मुख्यमंत्री ने 05.01.2021 को पिछले वर्षों में आय और व्यय की प्रवृत्ति और देनदारी को पूरा करने के लिए आवश्यक अतिरिक्त धनराशि के संबंध में फिर से एक प्रश्न पूछा।

61. पिछले सभी घटनाक्रम को फ़ाइल संख्या 06E/2016 में पृष्ठ 169 से शुरू होने वाली प्रशासनिक फ़ाइल नोटिंग में संक्षेपित किया

गया था। केवल सात विकास प्राधिकरणों द्वारा सूचना प्रदान की गई, जिनमें से चार ने बताया था कि पिछले तीन वर्षों में उनकी आय उनके व्यय से कम थी। अधिकांश विकास प्राधिकरणों ने पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों में बढ़ोतरी के संबंध में सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने के परिणामस्वरूप होने वाले अतिरिक्त वित्तीय बोझ को वहन करने की सहमति व्यक्त की थी।

62. हालांकि प्रशासनिक विभाग फाइल पर की गयी अपनी नोटिंग के पैरा-16 में केवल सेवानिवृत्ति लाभों के संबंध में सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को वित्तीय वर्ष 2020-21 से वित्तीय वर्ष 2023-24 तक अपनाने के कारण भविष्य में होने वाले अपेक्षित वित्तीय बोझ का ही उल्लेख करता है। पुनरीक्षित पेंशन के बकाये का भुगतान 01.01.2016 से करने पर पड़ने वाले वित्तीय बोझ का कोई ज़िक्र नहीं है। इसके बाद अचानक पेज-175 पर फाइल पर उक्त नोटिंग के पैराग्राफ-18 में एक सुझाव है कि वेतन आयोग की सिफारिशों को 01.01.2016 से काल्पनिक रूप से लागूय् किया जाए एवं वास्तविक भुगतान को तत्काल प्रभाव से स्वीकार किया जाए। इसके बाद कार्यालय ज्ञापन का प्रासंगिक प्रारूप तैयार किया गया जो अनुमोदित किये जाने के बाद दिनांक 24.02.2021 के शासनादेश के रूप में जारी किया गया।

63. **डी.एस. नकारा बनाम भारत संघ, 1983 (1) SCC 305** में संविधान पीठ को एक कट-ऑफ तारीख के प्रश्न पर विचार करना था जो उस पेंशन योजना में दी गई थी जो केंद्र सरकार के सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू होती थी, जो सेवानिवृत्ति के समय एक ही वर्ग में आते थे और पेंशन के हकदार थे। प्रश्न यह था कि क्या उपलब्ध फॉर्मूले के अनुसार गणना की गयी उनकी पेंशन राशि को बाद के अधिक लाभकारी फॉर्मूले के आधार पर और बढ़ाया जा सकता था, और क्या उन्हे ये लाभ केवल इस आधार पर देने से मना किया जा सकता था कि वे पेंशनभोगियों को ऐसी बढ़ी हुई पेंशन प्रदान किये जाने की तिथि से पहले सेवानिवृत्त हो चुके थे। तथ्यों की उपरोक्त स्थिति के आलोक में न्यायालय ने कहा कि सभी कर्मचारी पेंशन योजना द्वारा शासित होते थे और सेवानिवृत्ति के समय पेंशन अर्जित करने के पात्र बनने के बाद वे सभी एक ही वर्ग के अंतर्गत आते थे। कहा गया कि कर्मचारियों के एक ही वर्ग के कुछ पेंशनभोगियों को अतिरिक्त लाभ देने के लिए तय की गयी ऐसी कटऑफ तारीख को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर खरा नहीं माना जाएगा। डी.एस. नकारा के मामले में केंद्र सरकार के सभी कर्मचारी पेंशन योजना द्वारा शासित होते थे और सेवानिवृत्ति पर पेंशन प्राप्त करने के पात्र थे। इसलिए वे सभी एक ही वर्ग का हिस्सा थे।

64. *नकारा* मामले के निर्णय का औचित्य बाद की दो संविधान पीठों के निर्णयों से अलग था। **इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग बनाम भारत संघ 1991 (2) SCC 104** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने रिपोर्ट के पैरा 12 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं: -

"12. उदारीकृत पेंशन योजना, जिसके संदर्भ में नकारा में निर्णय दिया गया था, एक अधिक

उदार फार्मूले के अनुसार पेंशन की गणना का प्रावधान करती थी जिसके तहत "औसत परिलब्धियाँ" पहले प्रावधानित किए गए 36 महीने के वेतन के बजाय पिछले 10 महीने के वेतन के संदर्भ में निर्धारित की जानी थीं जिससे उच्च औसत प्राप्त होता और स्लैब प्रणाली के साथ-साथ पेंशन की अधिकतम सीमा को भी बढाया जाता। इस न्यायालय ने कहा कि यदि पेंशन की गणना की विधि को एक निर्दिष्ट तिथि से उदार बनाया जाता है, तो इसका लाभ न केवल उस तिथि के बाद सेवानिवृत्त होने वाले लोगों को दिया जाना चाहिए बल्कि सेवानिवृत्ति की तिथि पर गौर किये बगैर अन्य सेवानिवृत्त लोगों को भी दिया जाना चाहिए, लेकिन उदारीकृत फार्मूले के अनुसार की गई पुनरीक्षित गणना के आधार पर वे निर्दिष्ट तिथि से पहले के किसी समय के लिये बकाये के हकदार नहीं होंगे। ऐसी योजना के लिए सभी मौजूदा सेवानिवृत्त लोगों को, उनकी सेवानिवृत्ति की तिथि की परवाह किए बिना, एक ही वर्ग का हिस्सा माना जाएगा और उस वर्ग के भीतर कोई विभाजन विभाजन अस्वीकार्य होगा। उस निर्णय के अनुसार, पहले सेवानिवृत्त होने वाले सभी लोगों की पेंशन की गणना प्रत्येक व्यक्ति को उनकी सेवानिवृत्ति की तारीख पर देय औसत परिलब्धियों के आधार पर उदारीकृत फार्मूले के अनुसार निर्दिष्ट तिथि पर की जानी थी। इस प्रयोजन के लिए पहले सेवानिवृत्त हुए लोगों की परिलब्धियों में योजना के तहत कोई पुनरीक्षण नहीं किया गया था। स्पष्ट रूप से कहा गया था कि "यदि सारे पेंशनभोगी एक वर्ग बनाते हैं तो उनकी गणना अलग-अलग फॉर्मूले से नहीं की जा सकती, और केवल इस आधार पर असमान व्यवहार नहीं किया जा सकता है कि कुछ पहले सेवानिवृत्त हुए थे और कुछ बाद में "। हमारे अनुसार नकारा के निर्णय का कुल निचोड़ बस इतना ही है . .."

(जोर दिया गया)

65. **कृष्ण कुमार बनाम भारत संघ, 1990 (4) SCC 207** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की एक अन्य संविधान पीठ के निर्णय में नकारा मामले के निर्णय से इस आधार पर भेद किया गया कि:

"नाकरा मामले में न्यायालय ने केवल पेंशनभोगियों को एक सजातीय वर्ग के रूप में माना था। यह कभी नहीं माना गया था कि पेंशन सेवानिवृत्त और भविष्य निधि सेवानिवृत्त एक सजातीय वर्ग बनाते हैं, और आगे उनके बीच कोई भी वर्गीकरण अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। दूसरी ओर, न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह किसी निधि की समस्या से नहीं निपट रही थी।

ध्यान में रखना होगा कि वर्तमान मामला पेंशन निधि से जुड़ा हुआ है और जहां तक पेंशन फंड का सवाल है, नकारा का निर्णय यहां लागू नहीं होगा जैसा कि उसी निर्णय के पैरा 45 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। ..."

(जोर दिया गया)

66. इस न्यायालय ने **सुब्रत सेन एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2001(8) SCC 71** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अध्ययन किया है; जिसका सहारा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने

लिया है। सुप्रीम कोर्ट ने वी. कस्तूरी बनाम प्रबंध निदेशक, भारतीय स्टेट बैंक, बॉम्बे और अन्य 1998 (8) SCC 30 में दिए गए अपने निर्णय का सहारा लिया जिसमें पेंशनभोगियों की दो श्रेणियों का जिक्र करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि *"यदि सेवानिवृत्त होने वाला व्यक्ति अपनी सेवानिवृत्ति के समय पेंशन के लिए पात्र है और यदि वह संबंधित पेंशन योजना में बाद में होने वाले संशोधनों के समय तक जीवित रहता है, तो वह वर्धित पेन्शन पाने के लिये पात्र हो जाएगा या बाद में लागू किए गए पेंशन गणना के नए फॉर्मूले के अनुसार अधिक पेंशन प्राप्त करने के पात्र बन जाएंगे। वह ऐसे आदेश की तारीख से संशोधित पेंशन का लाभ पाने का हकदार होगा क्योंकि जब उन सभी को अतिरिक्त लाभ प्रदान किया जा रहा होगा तो वह पेंशनभोगियों के उसी वर्ग का सदस्य होगा। ऐसी स्थिति में पेंशनभोगियों के उसी वर्ग को मिलने वाले अतिरिक्त लाभ उसे इस आधार पर देने से मना नहीं किया जा सकता कि वह उक्त अतिरिक्त लाभ पेंशनभोगियों के उसी वर्ग के सभी जीवित सदस्यों को प्रदान किये जाने की तिथि से पहले सेवानिवृत्त हो गया था। हालाँकि, यदि कोई कर्मचारी अपनी सेवानिवृत्ति के समय सेवानिवृत्त पेंशन के लिए पात्र नहीं है और पेंशनभोगियों की श्रेणी से बाहर है, और बाद में प्रासंगिक पेंशन नियमों में संशोधन कर पेंशन योजना की किसी लाभकारी छत्र के अंतर्गत पेंशनभोगियों की एक नई श्रेणी को शामिल किया जाता है और यदि पूर्व गैर-पेंशनभोगी तब तक जीवित रहता है तो वो विस्तारित पेंशन योजना के लाभ पर तभी दावा कर सकते हैं जब उस योजना को प्रख्यापित करने वाले प्राधिकारियों द्वारा ऊक्त पेंशन को पूर्व पेंशनभोगियों तक विस्तारित करने के लिये स्पष्ट रूप से पूर्वलक्षी बनाया गया हो। यदि ऐसी कोई नई योजना केवल भविष्यलक्षी है तो पुराने सेवानिवृत्त गैर-पेंशनभोगियों को ऐसी योजना का लाभ नहीं मिल सकता है, भले ही वे ऐसी नई योजना आने तक जीवित बचे हों। वे इसके दायरे से बाहर रहेंगे- - --"*

(जोर दिया गया)

67. डी.एस. नकारा के मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 45 का भी सहारा भी लिया गया, जो इस प्रकार है: -

"45. आइए एक ग़लतफ़हमी दूर कर लें। सरकारी कर्मचारियों के लिए उपलब्ध उदारीकृत योजना सहित पेंशन योजना चरित्र में गैर-अंशदायी है। यह नहीं बताया गया कि कोई पेंशन निधि है - - - पेंशन का भुगतान सरकार द्वारा वहन किया जाने वाला एक वैधानिक दायित्व है और जो कुछ भी देय होता है उसके लिए बजट रखा जाता है। इस तर्क की सराहना वहां की जा सकती है जहां योजना अंशदायी हो और पेंशन का वितरण सिर्फ एक पेंशन निधि से ही किया जा सकता हो। पर मामला ऐसा नहीं है, इसलिये पेंशनभोगियों द्वारा पेंशन निधि को आपस में विभाजित करने का कोई प्रश्न ही नहीं क्योंकि यदि अधिक व्यक्तियों को योजना में शामिल किया जाता है तो उन्हें मिलने वाले हिस्से पर भी यथानुपात प्रभाव पड़ेगा।"

(जोर दिया गया)

68. इसके अलावा, ऑल इंडिया रिजर्व बैंक रिटायर्ड ऑफिसर्स एसोसिएशन बनाम भारत

संघ, AIR 1992 सुप्रीम कोर्ट 767 में, सर्वोच्च न्यायालय ने डी.एस. नकारा मामले के निर्णय में पैरा 46 में की गई टिप्पणियों पर निम्नलिखित प्रभाव से ज़ोर दिया: -

"46. - - - पेंशन की गणना उदारीकृत पेंशन योजना में अधिनियमित फॉर्मूले के आलोक में फिर से की जानी होगी और पुनरीक्षित योजना लागू होने की तिथि से प्रभावी होगी। और सावधान रहें कि यह कोई नई योजना नहीं केवल मौजूदा योजना का पुनरीक्षण है। यह कोई नया सेवानिवृत्ति लाभ नहीं बल्कि एक मौजूदा लाभ का वर्धक पुनरीक्षण है। यदि यह पूरी तरह से एक नई अवधारणा, एक नया सेवानिवृत्ति लाभ होता, तो इस तर्क की सराहना की जा सकती थी कि पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके लोग उसे पाने की आशा नहीं कर सकते थे।"

69. न्यायालय ने आगे कहा:-

"- - - यह समझना होगा कि अंशदायी भविष्य निधि योजना द्वारा शासित कर्मचारी के मामले में नियोक्ता के साथ उसके संबंध उसकी सेवानिवृत्ति और सीपीएफ राशि की प्राप्ति पर समाप्त हो जाते हैं, लेकिन पेंशन योजना के तहत शासित कर्मचारी के मामले में नियोक्ता के साथ उसके संबंधों में केवल बदलाव आता है, पूरी तरह टूटता नहीं। <u>यही कारण है कि नाकारा के मामले में इस न्यायालय ने किसी मौजूदा लाभ के उदारीकरण और एक पूरी तरह से नई योजना की शुरूआत के बीच अंतर किया।</u> पेंशनभोगियों के मामले में पेंशन को समय-समय पर पुनरीक्षित करना आवश्यक है क्योंकि रुपये के मूल्य में लगातार गिरावट और आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि के कारण पेंशन राशि का समायोजन आवश्यक हो जाता है, लेकिन सीपीएफ योजना के तहत शासित कर्मचारियों के मामले में ऐसा नहीं है क्योंकि उन्हें एकमुश्त भुगतान प्राप्त हुआ था, जिसे वे इस तरह से निवेश करने के लिए स्वतंत्र थे जिससे अधिकतम प्रतिफल प्राप्त हो और मुद्रास्फीति से निपटा जा सके। पेंशन योजना से संबंधित लोगों और सीपीएफ योजना से संबंधित लोगों के बीच इस अंतर पर कृष्णा वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उचित रूप से जोर दिया गया है।"

(जोर दिया गया)

70. इस न्यायालय ने पाया कि सुब्रत सेन के मामले में दिया गया निर्णय अलग तथ्यों पर आधारित है। उक्त मामले में भारत संघ ने असम ऑयल कंपनी का अधिग्रहण कर लिया था, याचिकाकर्ता जिसमें कर्मचारी थे। नियमों के अनुसार पेंशन का भुगतान नियोक्ता का दायित्व था और कंपनी का अधिग्रहण करने के मद्देनजर भारत संघ द्वारा दायित्व का निर्वहन किया जाना था। कर्मचारियों के अधिकार बर्मा ऑयल कंपनी (ऑयल इंडिया

लिमिटेड, और असम ऑयल कंपनी लिमिटेड और बर्मा ऑयल कंपनी लिमिटेड के भारत में स्थित उपक्रमों के शेयरों का अधिग्रहण) अधिनियम 1981 के तहत संरक्षित थे। पेंशन में होने वाली वृद्धि को केंद्र सरकार के सामान्य राजस्व से पूरा किया जा सकता थ, लेकिन याचिकाकर्ताओं के मामले में ऐसा नहीं है। विकास प्राधिकरणों के पेंशनभोगियों के लिए ऐसी कोई धनराशि उपलब्ध नहीं है। अधिकांश याचिकाकर्ताओं को नगर पालिका सेवाओं से विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं में समाहित किया गया था। 1973 का अधिनियम और 1985 के नियम, जो उनकी सेवा की शर्तों को नियंत्रित करते हैं, एक भविष्य निधि और एक पेंशन निधि के गठन का प्रावधान करते हैं। सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के तहत लखनऊ विकास प्राधिकरण के वित्त नियंत्रक को पेंशन निधि के रख-रखाव के लिए जिम्मेदार बनाया गया था। याचिकाकर्ताओं को केवल पेंशन निधि से ही सेवानिवृत्ति लाभ मिलना था। पेंशन निधि विकास प्राधिकरणों द्वारा नियमों में प्रावधानित विधि से अपने सेवारत कर्मचारियों के संबंध में किए गए योगदान से बनाया गया है। योगदान प्रत्येक कर्मचारी के वेतन के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में होता है। इसलिए किसी नियोक्ता के लिए अपने भूतपूर्व कर्मचारियों, जो मौजूदा पेंशनभोगी हैं, के संबंध में अतिरिक्त योगदान करने का कोई प्रावधान नहीं है।

71. हालाँकि, याचिकाकर्ताओं के मामले में स्वयं विकास प्राधिकरणों ने सेवानिवृत्त लोगों को सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार बढ़ी हुई पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ देने की सहमति और तत्परता व्यक्त की है। सरकार का उक्त पेंशन निधि से कोई लेना-देना ना होने के कारण यह विकास प्राधिकरणों पर है कि वे अतिरिक्त वित्तीय बोझ वहन करें, और अपने सेवानिवृत्त कर्मचारियों के लिए बढ़े हुए पेंशन लाभ के प्रभावी होने की तारीख भी निर्धारित करें।

72. इसके अलावा, आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन पुनरीक्षित पेंशन की गणना के लिए दिनांक 18.07.2017 एवं 04.09.2017 के शासनादेश में प्रदान किये गये सूत्र और विधि को संशोधित करके राज्य सरकार के सेवानिवृत्त लोगों को प्रदान की जाने वाली बढ़ी हुई पेंशन का लाभ, एवं पुनरीक्षित पेंशन के बकाये का भुगतान 01.01.2016 से करने की अनुमति नहीं देता। शासनादेश में। दिनांक 23.12.2016 के शासनादेश और दिनांक 16.12.2016 के शासकीय संकल्प में प्रावधान है कि अन्य स्वायत्त संस्थानों और वैधानिक निकायों के कर्मचारियों को पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान उपलब्ध होंगे, यदि उन्हें ऐसी समानता अतीत में मिल रही हो तो। सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 के नियम 4, 5, 7 और 34 के तहत, विकास प्राधिकरणों के पेंशनभोगी इस सम्बंध में प्रासंगिक शासनादेश जारी होते ही राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान पेंशन, पारिवारिक पेंशन और ग्रेच्युटी के भुगतान के हकदार हो जाते हैं चूंकि उन्हें 2011 की सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली में संदर्भ द्वारा शामिल किया गया था। इसलिए, वेतन के संबंध में सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों के लिए

शासनादेश दिनांक 04.01.2017 द्वारा 01.01.2016 से सम्यक रूप से लागू किया जा चुका है।

73. प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत नहीं किया गया है कि शकुंतला सिंह मामले में दिये गये समन्वय पीठ के निर्णय पर अपील में प्रश्न उठाया गया था और किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा इसे रद्द कर दिया गया था। समन्वय पीठ के निर्णय ने राज्य प्रत्यर्थियों की इस दलील का निपटारा किया है कि विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारी सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 2011 और 1985 की केंद्रीकृत सेवा नियमावली का हवाला देकर राज्य सरकार के कर्मचारियों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकते हैं, जबकि यह स्पष्ट रूप से प्रावधानित है कि उन सभी मामलों में जहां नियमावली में विशेष रूप से कोई प्रावधान नहीं किया गया है, कर्मचारी राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू नियमों, विनियमों और आदेशों द्वारा शासित होंगे। **भारतीय पूर्व सैनिक आंदोलन बनाम भारत संघ और अन्य 2022 (7) SCC 323** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 34 में कहा कि:-

> *".....कानून में विधान और नियम के बीच एक पदानुक्रम होता है। यदि किसी वैधानिक प्रावधान का किसी प्रत्यायोजित विधान से टकराव होता है तो वैधानिक प्रावधान को प्राथमिकता दी जाएगी। इसी तरह, कार्यकारी निर्देश किसी विधान या विधान के अनुसरण में बनाए गए नियमों के विरुद्ध नहीं जा सकते।"*

74. *अखिल भारतीय पूर्व सैनिक आंदोलन (ऊपर)* में दिए गए निर्णय के पैरा 55 और 56 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत कहा: -

"नकारा में इस न्यायालय के फैसले में संविधान पीठ इस मुद्दे पर निर्णय ले रही थी कि क्या पेंशन की गणना के लिए पुनरीक्षित सूत्र लागू करने के लिए सेवानिवृत्ति की तिथि प्रासंगिक होनी चाहिये। उदारीकृत पेंशन योजना 1972 के नियमों के तहत आने वाले सरकारी कर्मचारियों के मामले में 31 मार्च 1979 या उसके बाद सेवानिवृत होने वाले कर्मचारियों के लिए और रक्षा कर्मियों के संबंध में 1 अप्रैल 1979 या उसके बाद अप्रभावी होने वालों के लिये भविष्यलक्षी रूप से लागू की गई थी। नतीजतन, इस तिथि से पहले सेवानिवृत होने वाले लोग उदारीकृत पेंशन योजना का लाभ पाने के हकदार नहीं थे। माना गया था कि पेंशन का भुगतान अतीत में प्रदान की गई सेवा का मुआवजा होता है और राज्य को सेवा प्रदान करने वालों को सामाजिक आर्थिक न्याय प्रदान करने के लिए सामाजिक कल्याण का एक उपाय है। अदालत ने कहा कि पहले पेंशन का माप सेवानिवृत्ति से पहले के 36 महीनों की औसत परिलब्धियों से संबंधित था। उदारीकृत योजना द्वारा उपरोक्त पहलुओं के साथ सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले की अवधि को घटाकर 10 महीने का औसत कर दिया गया, गणना के लिए एक स्लैब प्रणाली शुरू की गई, और अधिकतम सीमा बढ़ा दी गई। इस न्यायालय ने माना कि योजना के तहत लाभ देने के लिए सेवानिवृत्ति की तिथि के आधार पर पात्रता मानदंड का मनमाने ढंग से चयन करने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए, इस

अदालत ने माना कि सभी पेंशनभोगी एक सजातीय वर्ग का गठन करते हैं और जहां पेंशन की किसी मौजूदा योजना का उदारीकरण किया गया हो वहां एक निर्दिष्ट कट-ऑफ तिथि के आधार पर भेद नहीं किया जा सकता।

"56. साथ ही, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि नकारा वाले निर्णय में कहा गया था कि "ऐसे मामलों में वित्तीय निहितार्थ की कुछ प्रासंगिकता होती है"। इस न्यायालय ने जापन के उस हिस्से को रद्द कर दिया जिसके द्वारा उदारीकृत पेंशन योजना का लाभ केवल निर्दिष्ट तिथि पर या उसके बाद सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों तक ही सीमित था, जिसके परिणामस्वरूप सभी सेवानिवृतों को सेवानिवृत्ति की तारीख देखे बिना लाभ दिया गया।"

75. हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने एक रैंक एक पेंशन मामले में रिपोर्ट के पैरा 61 में निम्नलिखित टिप्पणियां करते हुए इंडियन एक्स सर्विसेज लीग (ऊपर) में की गई टिप्पणियों पर जोर दिया: -

"61. इंडियन एक्स सर्विसेज लीग (सुप्रा) में, यह तर्क दिया गया था कि नकारा निर्णय के मद्देनजर, सेवानिवृत्ति की तारीख देखे बिना समान रैंक रखने वाले सभी सेवानिवृत्त लोगों को समान राशि की पेंशन मिलनी <u>चाहिए। इस न्यायालय ने पाया कि नकारा में ऐसा कुछ भी नहीं था जो अपीलकर्ताओं के इस दावे का समर्थन करता हो कि समान रैंक के सभी सेवानिवृत्त लोगों को समान पेंशन दी जानी चाहिए। न्यायालय ने कहा कि नाकारा में यह माना गया था कि पेंशन की गणना के लिए उसी फॉर्मूले का उपयोग किया जाना चाहिए और सेवानिवृत्त लोगों की परिलब्धियां उसी आधार पर पुनरीक्षित किया जाना चाहिए।</u>

(जोर दिया गया)

76. न्यायालय ने कहा कि नाकारा वाले निर्णय का यह कहना था कि उदारीकृत फार्मूले के अनुसार गणना 1 अप्रैल 1979 के पहले और बाद सेवानिवृत्त होने वालों पर समान रूप से लागू होनी चाहिए, और उस निर्णय का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि पेंशन में मिलने वाली राशि समान होनी चाहिए। वन रैंक वन पेंशन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने के.एल. राठी बनाम भारत संघ, 1997 (6) एससीसी 7 में दिए गए अपने निर्णय का भी हवाला दिया, जहां नकारा वाले निर्णय को पैरा 6 और 7 में समझाया गया था। के.एल. राठी के पैरा 7 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत् कहा: -

"7. यह देखा जा सकता है कि निर्णय परिलब्धियों की परिभाषा पर प्रहार नहीं करता। इसने केवल यह कहा कि यदि 1 अप्रैल 1979 के बाद पेंशन की गणना किसी सरकारी कर्मचारी की अंतिम 10 महीने की परिलब्धियों के आधार पर की जानी थी, तो 1 अप्रैल 1979 से पहले सेवानिवृत्त हुए लोगों के लिए पिछले 36 महीनों की परिलब्धियों के औसत के आधार पर पेंशन की गणना करने का कोई औचित्य नहीं है। <u>दूसरे शब्दों में, गणना का नियम समान होना चाहिए।</u>

न्यायालय ने यह नहीं कहा कि पेंशन की गणना के उद्देश्य से 1 अप्रैल 1979 से पहले सेवानिवृत्त होने वाले लोगों को 1 अप्रैल 1979 या उसके बाद सेवानिवृत्त होने वालों के समान परिलब्धियाँ प्राप्त करने वाला माना जाना चाहिए। इसलिए, नकारा मामले के आधार पर, याचिकाकर्ता उन परिलब्धियों के संदर्भ में पेंशन की गणना करने की माँग करने के का हकदार नहीं है जो उसे कभी मिलती ही नहीं थीं -- -।"

(जोर दिया गया)

77. के.एल. में. राठी और वन रैंक वन पेंशन मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया था कि पेंशन की गणना का नियम एक ही होना चाहिए, यानी सेवानिवृत्ति की तिथि देखे बिना पिछले दस महीने की परिलब्धियों का औसत, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि एक ही रैंक के सेवानिवृत्तों की पेंशन की राशि समान होनी चाहिए उनके सेवानिवृत्ति की तिथि चाहे कुछ भी हो। अर्थात जो लोग अपनी सेवा के अंतिम दस महीनों में वास्तव में बड़ी परिलब्धियाँ प्राप्त कर रहे थे, या उनकी सेवानिवृत्ति के समय उनका अंतिम मूल वेतन अधिक था, उन्हें पेंशन में अधिक राशि मिलेगी।

78. ***बी.जे. अक्कारा बनाम भारत संघ (2006) 11 SCC 709*** में सर्वोच्च न्यायालय ने पेंशन से संबंधित सिद्धांतों को सारांशित किया। पैरा 20 में न्यायालय ने कहा:-

"20. इस मुद्दे के संदर्भ में पेंशन से संबंधित सिद्धांत अच्छी तरह से तय हो चुके हैं, जो निम्नवत हैं:-

(ए) एक वर्ग बनाने वाले पेंशनभोगियों के संबंध में, पेंशन की गणना अलग अलग फॉर्मूले से नहीं की जा सकती, जिससे केवल इस आधार पर असमान व्यवहार लागू होता है कि उनमे से कुछ पहले सेवानिवृत्त हुए थे और कुछ बाद में। यदि सेवानिवृत्त व्यक्ति अपनी सेवानिवृत्ति के समय पेंशन के लिए पात्र है और संबंधित पेंशन योजना में बाद में संशोधन किया जाता है, तो वह संशोधन प्रभावी होने की तारीख से पेंशन की गणना के नए फॉर्मूले के अनुसार बढ़ी हुई पेंशन पाने के लिए पात्र हो जाएगा। ऐसी स्थिति में, उसी श्रेणी के पेंशनभोगियों को शासनादेश के तहत उपलब्ध कराए गए अतिरिक्त लाभ उसे देने से इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता है कि वह उपरोक्त अतिरिक्त लाभ प्रदान किए जाने की तिथि से पहले सेवानिवृत्त हो गए थे।

(बी) लेकिन एक ही रैंक पर सेवानिवृत्त होने वाले सभी सेवानिवृत्त हर उद्देश्य के लिए एक ही वर्ग नहीं माने जाएंगे। जहां सेवानिवृत्ति की तारीख के अनुसार एक ही रैंक से सेवानिवृत्त होने वाले पेंशनभोगियों के दो समूहों की गणना योग्य परिलब्धियां (पेंशन की गणना के उद्देश्य से) भिन्न हैं, कम पेंशन पाने वाला समूह यह तर्क नहीं दे सकता कि उनकी पेंशन अधिक परिलब्धियाँ प्राप्त करने वाले समूह के समान या बराबर होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, समान रैंक से सेवानिवृत्त होने वाले पेंशनभोगियों को समान पेंशन देने की आवश्यकता नहीं है, जहां वेतन में अंतर के मद्देनजर, या अलग-अलग वेतनमान लागू होने के मद्देनजर, उनकी सेवानिवृत्ति के समय गणना योग्य औसत परिलब्धियां अलग-अलग थीं।

****

एक समूह दूसरे समूह को दिए गए लाभ का दावा इस आधार पर नहीं कर सकता कि उनकी स्थिति समान हैं। भले ही वे एक ही रैंक से सेवानिवृत्त हुए हों, लेकिन वे एक ही वर्ग या सजातीय समूह के नहीं हैं। नियोक्ता किसी भी मौजूदा योजना को बंद करने या किसी भी नई पेंशन/सेवानिवृत्ति योजना को शुरू करने के लिए वैध रूप से एक कट-ऑफ तारीख तय कर सकता है। जो भेदभावपूर्ण है वह है मनमाने ढंग से एक कट-ऑफ तिथि तय करके पूर्वलक्षी (या भविष्यलक्षी रूप से) कोई लाभ देना, जिससे पेंशनभोगियों के एक समरूप वर्ग को दो समूहों में विभाजित हो जाता है और उनके साथ अलग अलग बर्ताव किया जाता है।

79. न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए निर्णय लेने से संबंधित अभिलेख और उपरोक्त प्रासंगिक और बाध्यकारी पूर्वनिर्णयों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि 01.01.2006 से पहले सेवानिवृत्त हुए सरकारी कर्मचारियों के लिए पहले के निर्णय को संशोधित करने वाले दिनांक 18.07.2017 के शासनादेशों में दिए गए पेंशन गणना के सूत्र और प्रक्रिया के साथ-साथ उनकी पेंशन/पारिवारिक पेंशन के निर्धारण के लिए समय-समय पर जारी की गई तालिकाएँ, जिनमें शासनादेश दिनांक 04.09.2017 से जुड़ी तालिकाएँ भी शामिल हैं, याचिकाकर्ताओं पर भी लागू होंगी। *शकुंतला सिंह* मामले में इस न्यायालय के फैसले के मद्देनजर दिनांक 01.05.2018 का शासनादेश याचिकाकर्ताओं पर भी लागू होगा।

पुनरीक्षित पेंशन का 01.01.2016 से पूर्वलक्षी संचालन और बकाये के संबंध में इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया गया है जो साबित करता हो कि 01.01.2016 से लेकर 24.02.2021 तक के बकाये के भुगतान के प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया गया था। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रशासनिक विभाग ने आक्षेपित कार्यालय ज्ञापन जारी होने के बाद भी तैयार किए गए प्रारूप में सूचना एकत्र करना जारी रखा। इसलिए यह निर्देशित किया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 समस्त आवश्यक सूचना एकत्र करेगा और वित्त की उपलब्धता भी निर्धारित करेगा, और इस न्यायालय द्वारा यहां ऊपर की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए इस आदेश की एक प्रति उसके सामने प्रस्तुत होने की तिथि के तीन महीनों के भीतर उचित आदेश जारी करेगा।

नतीजतन, पेंशन/पारिवारिक पेंशन की गणना की विधि के संबंध में मांगी गई राहत के संबंध में रिट याचिकाएं ***आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं***। बकाया राशि ना देने से संबंधित मामला उपरोक्तानुसार उचित निर्णय लेने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास भेजा जाता है।

2021 की रिट-ए संख्या 11020: *रतन कुमार निगम* बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य में मांगी गई राहत अभी नहीं प्रदान की जा सकती क्योंकि राज्य सरकार ने विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों के लिए सातवें वेतन आयोग की संपूर्ण सिफारिशों को लागू करने के मुद्दे पर अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया है।

(2023) 5 ILRA 1657

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 945/2004

सुजान सिंह बुंदेला एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

कृपाल सिंह यादव एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वी.सी. श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री शरद कुमार पुरवार, श्री सत्य प्रकाश सिंह

सिविल कानून- सीमा अधिनियम, 1963-धारा 5- 2 वर्ष और 93 दिन की भारी देरी हुई है- यह मामला इस न्यायालय में 19 वर्षों से लंबित है और इस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई है- जिस तरह का स्पष्टीकरण दिया गया है, वह सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को संतुष्ट नहीं करता है कि यदि देरी ऐसे कारणों से हुई है, जो दुर्भावना से प्रेरित नहीं हैं, तो न्यायालय को क्षमा करने से इनकार करने में अनिच्छुक होना चाहिए- इसके विपरीत आवेदक की ओर से पूरी तरह से लापरवाही और लापरवाही से लंबी देरी हुई है, जिसका बिल्कुल भी स्पष्टीकरण नहीं है- वर्तमान मामले में देरी को क्षमा करने को उचित ठहराने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग करने का कोई कारण नहीं है। (पैरा 13) (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम काटिजी, 1987(2) एससीसी 107
2. पी.के. रामचंद्रन बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 2276
3. शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, एआईआर 1969 एससी 575
4. बृज इंदर सिंह बनाम कांशीराम आईएलआर (1918) 45 कलकत्ता 94
5. नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ व अन्य, एआईआर 2005 एससी 2191
6. वेदाबाई @ वैजयानताबाई बाबूराव बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल एवं अन्य , जेटी 2001(5) एससी 608
7. पुंडलिक जालम पाटिल (मृत) जरिए उत्तराधिकारी बनाम कार्यकारी अभियंता, जलगांव मिडियम परियोजना व अन्य (2008) 17 एससीसी 448
8. मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन् मुंबई नगर निगम, 2012 (5) एससीसी 157

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा प्रदत्त)

<u>सिविल विविध विलंब क्षमा आवेदन पर आदेश</u>

1. यह आवेदन वर्ष 2004 में दायर अपील में हुई देरी के लिए क्षमा मांगने वाला है।

2. इसमें 2 साल और 93 दिन की बड़ी देरी हुई है। यह मामला 19 साल से इस न्यायालय में लंबित है और इस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। आज भी अपीलकर्ताओं की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है।

3. इस आवेदन के साथ संलग्न हलफनामे में देरी के कारण निम्नानुसार बताए गए हैं:

"2. यह कि आरोपित निर्णय 8.11.2001 को पारित किया गया तथा डिक्री 24.11.2001 को पारित की गई, लेकिन आदेश की प्रमाणित प्रति 17.3.2004 को आवेदित की गई तथा उसी दिन प्राप्त हुई, तथा डिक्री की प्रमाणित प्रति भी 17.3.2004 को आवेदित की गई तथा उसी दिन प्राप्त हुई।

3. अपीलकर्ता इस मामले में पक्षकार नहीं थे। पूरण सिंह बुंदेला पक्षकार थे तथा कार्यवाही अपीलकर्ताओं के ज्ञान में थी।

4. जब संग्रह अधिकारियों को अपीलकर्ताओं से राशि वसूलने का निर्देश दिया गया, तब अपीलकर्ताओं को कार्यवाही के बारे में पता चला।

5. निर्णय और डिक्री की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के बाद, अपीलकर्ता बीमार पड़ गए और वे माननीय न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामला दायर करने के लिए वकील से संपर्क करने के लिए अभिसाक्षी को निर्देश नहीं दे सके। अपीलकर्ताओं की कार्यवाही की जानकारी की तारीख 17.3.2004 है, जब उन्होंने निचली अदालतों के निर्णय और डिक्री की प्रति प्राप्त की थी।"

3. उपरोक्त कारणों को समय-समय पर न्यायालयों द्वारा विलम्ब क्षमा के लिए प्रतिपादित सिद्धांत के साथ देखा जाना होगा। अधिनियम, 1963 की धारा 5 में "पर्याप्त कारण" की अभिव्यक्ति को उदार अर्थ में लिया गया है, ताकि पर्याप्त न्याय प्राप्त हो सके और सामान्यतः अपील में विलम्ब को न्याय के हित में माफ किया जा सके, जहां विलम्ब के लिए माफी मांगने वाले पक्षकारों पर कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर की गई निष्क्रियता या सद्भावना का अभाव आरोपित नहीं किया जा सकता है। कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम काटिजी, 1987(2) एससीसी 107 में न्यायालय ने कहा कि जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक दूसरे के खिलाफ लिए जाते हैं, तो पर्याप्त न्याय के कारण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि दूसरा पक्ष गैर-जानबूझकर की गई देरी के कारण किए गए अन्याय में निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। न्यायालय ने आगे कहा कि न्यायपालिका का सम्मान तकनीकी आधार पर अन्याय को वैध बनाने की उसकी शक्ति के कारण नहीं, बल्कि इसलिए किया जाता है क्योंकि वह अन्याय को दूर करने में सक्षम है और उससे ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है।

4. पी.के. रामचंद्रन बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 2276 में न्यायालय ने कहा:

" सीमा अवधि का कानून किसी विशेष पक्ष को कठोरता से प्रभावित कर सकता है, लेकिन जब कानून ऐसा निर्धारित करता है तो इसे पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए और न्यायालयों को न्यायसंगत आधार पर सीमा अवधि बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है।"

5. परिसीमा नियम का उद्देश्य पक्षों के अधिकारों को नष्ट करना नहीं है। वे वस्तुतः

उपचार को छीन लेते हैं। इनका उद्देश्य यह है कि पार्टियां विलंबकारी रणनीति न अपनाएं और अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह न हों। उन्हें तुरंत उपाय ढूंढना चाहिए। कानूनी उपाय प्रदान करने का उद्देश्य कानूनी चोट के कारण हुई क्षति की मरम्मत करना है। सीमा से संबंधित क़ानून, किसी व्यक्ति को हुई कानूनी क्षति के निवारण के लिए ऐसे कानूनी उपाय की जीवन अवधि निर्धारित करता है। समय बहुमूल्य है और बर्बाद किया गया समय कभी वापस नहीं आता। समय बीतने के साथ, नए मामले सामने आएंगे, जिससे नए व्यक्तियों को अदालतों में जाकर कानूनी उपाय तलाशने की आवश्यकता होगी। इसलिए प्रत्येक उपचार के लिए एक जीवन अवधि निश्चित होनी चाहिए। उपाय शुरू करने के लिए अंतहीन अवधि से अंतहीन अनिश्चितता और परिणामस्वरूप अराजकता पैदा हो सकती है। सीमा-निर्धारण संबंधी कानून सार्वजनिक नीति पर आधारित है। यह कहावत में निहित है कि 'इंटरेस्ट रिपब्लिका अप सिट फिनिस लिटियम' (यह सामान्य कल्याण के लिए है कि मुकदमेबाजी के लिए एक अवधि निर्धारित की जाए)। यही कारण है कि जब कोई कार्रवाई समय के कारण प्रतिबंधित हो जाती है, तो न्यायालय को विलंब को नजरअंदाज करने में देरी करनी चाहिए, क्योंकि एक बार सीमा अवधि समाप्त हो जाने पर, दूसरा पक्ष अंतिमता प्राप्त करने के साथ विषय पर अपने अधिकारों को परिपक्व कर लेता है। यद्यपि इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि विलम्ब को माफ करने से इंकार करने पर मुकदमा शुरू करने वाले व्यक्ति को अपना पक्ष रखने से वंचित कर दिया जाएगा, लेकिन साथ ही दूसरी ओर पक्षकार भी एक निश्चित अवधि के बाद बैठकर चिंतामुक्त महसूस करने का हकदार है, जिससे उसे लगातार और निरंतर मुकदमेबाजी से मुक्ति मिल जाएगी।

6. ऐसी कोई धारणा नहीं है कि अदालत जाने में देरी हमेशा जानबूझकर की जाती है। किसी भी व्यक्ति को समय के भीतर उचित कानूनी उपाय न करके जानबूझकर किसी मामले में देरी करने से लाभ नहीं होता है, लेकिन फिर "पर्याप्त कारण" शब्द यह दर्शाते हैं कि यदि कोई देरी हुई है, तो वह जानबूझकर, लापरवाही से और संबंधित वादी के लापरवाही भरे दृष्टिकोण के कारण नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह सद्भावनापूर्ण होनी चाहिए और उसके नियंत्रण से परे कारणों से होनी चाहिए और किसी भी मामले में सद्भावना की कमी नहीं होनी चाहिए। यदि स्पष्टीकरण में सद्भावना की कमी की बू नहीं आती है, तो न्यायालय को वादी के प्रति उचित विचार करना चाहिए, लेकिन, जब वादी की ओर से स्पष्ट रूप से लापरवाही बरती जाती है, तो न्यायालय का दृष्टिकोण भी बदलने के लिए बाध्य है। समय के भीतर न्यायालय पहुंचने में वादी की ओर से हुई चूक समझ में आती है, लेकिन बिना किसी स्पष्टीकरण के लंबे समय तक विलंब करना और वह भी वादी की ओर से कोई ईमानदार प्रयास न करना, उसकी लापरवाही को बढ़ाएगा और यह उसके खिलाफ जाने वाला प्रासंगिक कारक होगा।

7. हमें इस निर्णय को अनेक निर्णयों से बोझिल करने की आवश्यकता नहीं है, जो यह स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत "पर्याप्त कारण" की व्याख्या

करने के संबंध में न्यायालय का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए, तथा पहले से संदर्भित के अतिरिक्त उनमें से कुछ का उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

8. शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, एआईआर 1969 एससी 575 में न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि, जब तक सद्भावना की कमी या ऐसी निष्क्रियता या लापरवाही साबित नहीं हो जाती जो किसी पक्ष को धारा 5 के संरक्षण से वंचित करती हो, तब तक आवेदन को खारिज नहीं किया जाना चाहिए या किसी भी देरी को माफ करने से इनकार नहीं किया जा सकता है।

9. बृज इंदर सिंह बनाम कांशीराम आईएलआर (1918) 45 कैल 94 में प्रिवी काउंसिल ने कहा कि धारा 5 के तहत विवेक का प्रयोग करने के लिए अदालत के लिए सही मार्गदर्शक यह है कि क्या अपीलकर्ता ने अपील पर मुकदमा चलाने में उचित परिश्रम के साथ काम किया है। यह सिद्धांत अभी भी मान्य है, क्योंकि प्रिवी काउंसिल के उपरोक्त निर्णय का बार-बार उल्लेख किया गया है, तथा हाल ही में **नागालैंड राज्य बनाम लिपोक ए.ओ. एवं अन्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 2191** में भी इसका उल्लेख किया गया है।

10. वेदाबाई @ वैजयंतीबाई बाबूराव बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल एवं अन्य, जे.टी. 2001(5) एस.सी. 608 में न्यायालय ने कहा कि अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत उसे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। ऐसे मामले में जहां देरी अत्यधिक है और ऐसे मामले में जहां देरी कुछ दिनों की है, अंतर किया जाना चाहिए। पहले मामले में दूसरे पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह का विचार एक प्रासंगिक कारक होगा, इसलिए इस मामले में अधिक सतर्क दृष्टिकोण की आवश्यकता है, लेकिन दूसरे मामले में ऐसा कोई विचार उत्पन्न नहीं हो सकता है और ऐसा मामला एक उदार दृष्टिकोण का हकदार है। इस संबंध में कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है और मूल मार्गदर्शक कारक पर्याप्त न्याय की उन्नति है।

11. पुंडलिक जालम पाटिल (मृत) एलआरएस बनाम कार्यकारी अभियंता, जलगांव मध्यम परियोजना और अन्य (2008) 17 एससीसी 448 में, फैसले के पैरा 17 में, न्यायालय ने कहा:

"... रिकार्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि अपील दायर करने में लम्बे समय तक अपने अधिकारों की उपेक्षा की गई। न्यायालय समता के आधार पर विलम्बित और राज्य के दावों की जांच नहीं कर सकता। देरी समता को पराजित करती है। न्यायालय उन लोगों की मदद करता है जो सतर्क रहते हैं और "अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह नहीं रहते।"

12. मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन मुंबई नगर निगम, 2012 (5) एससीसी 157, निर्णय के पैरा 18 में न्यायालय ने निम्नलिखित कहा:

" इस बात पर बल दिए जाने की आवश्यकता है कि यद्यपि सीमा अधिनियम की धारा 5 तथा अन्य समान कानूनों के तहत शक्तियों के प्रयोग में उदार तथा न्यायोन्मुख दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है, तथापि न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकते

कि सफल वादी ने चुनौती दिए गए निर्णय के आधार पर कुछ अधिकार अर्जित किए हैं तथा मुकदमेबाजी के विभिन्न चरणों में लागत के अलावा बहुत अधिक समय भी खर्च होता है। किसी दिए गए मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में 'पर्याप्त कारण' अभिव्यक्ति को क्या रंग मिलेगा, यह काफी हद तक स्पष्टीकरण की वास्तविक प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि न्यायालय को लगता है कि आवेदक की ओर से कोई लापरवाही नहीं हुई है तथा विलम्ब के लिए दर्शाए गए कारण में सद्भावना का अभाव नहीं है, तो वह विलम्ब को माफ कर सकता है। दूसरी ओर, यदि आवेदक द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या वह अपने मामले को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से लापरवाह है, तो देरी को माफ न करना विवेक का वैध प्रयोग होगा। राज्य और उसकी एजेंसियों/संस्थाओं से संबंधित मामलों में, न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान दे सकता है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में पर्याप्त समय लिया जाता है, लेकिन राज्य और/या उसकी एजेंसियों/संस्थाओं के अधिकारियों की ओर से पूर्ण सुस्ती या घोर लापरवाही को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता है और विलम्ब के लिए क्षमा के लिए उनके द्वारा दायर आवेदनों को स्वाभाविक रूप से इस तर्क को स्वीकार करके अनुमति नहीं दी जा सकती है कि बार- सीमा के आधार पर मामले को खारिज करने से जनहित को क्षति पहुंचेगी।"

13. हमारे विचार में, यहां दिया गया स्पष्टीकरण सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी को संतुष्ट नहीं करता है कि यदि विलम्ब ऐसे कारणों से हुआ है जो दुर्भावना से प्रेरित नहीं हैं, तो न्यायालय को क्षमादान देने से इनकार करने में संकोच करना चाहिए। इसके विपरीत, हम पाते हैं कि यह एक ऐसा मामला है जो आवेदक की ओर से पूर्णतया लापरवाही और अविवेकी लम्बी देरी को दर्शाता है, जो वस्तुतः बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है। इसलिए, हम वर्तमान मामले में विलंब को माफ करने को उचित ठहराने के लिए अपने न्यायिक विवेक का विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

14. उपरोक्त के मद्देनजर, इस आवेदन को अस्वीकार किए जाने की आवश्यकता है, इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है।

<u>अपील पर आदेश</u>

चूंकि इस अपील को दाखिल करने में देरी के लिए माफी मांगने वाला आवेदन आज के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, इसलिए अपील समय-सीमा से वर्जित होने के कारण तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1660

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

रिट-सी संख्या 1000408 / 2001

मो. नाइम ...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर आयुक्त, प्रशासन, गोंडा एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्याम कृष्ण श्रीवास्तव, नजीम जफर, रफार फारूकी, टी.एच. खान, जेड जिलानी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., डी.सी. मुखर्जी, दीपक सेठ, इकबाल अहमद, जीतेन्द्र सक्सैना, कुमार आयुष, मो. असलम खान, मो. कुमैल हैदर, मो. मुस्तफिजुल हक, मोहिउद्दीन खान, आर.एन. गुप्ता

आयोजित: पैरा-

विधि व्यवस्था अनुसरित:

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.एम. हक, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.एस. तिवारी, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद कुमैल हैदर और इकबाल अहमद को सुना।

इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम1950 की धारा 122C(6) के तहत दायर केस संख्या 7/11/19/49/31 में अपर जिला मजिस्ट्रेट / अपर जिला कलेक्टर, बलरामपुर द्वारा पारित दिनांक 29.12.2000 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा निजी विपक्षी द्वारा दायर एक मुकदमे में प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के पक्ष में धारा 122C के तहत दिए जा रहे पट्टे को रद्द कर दिया है। याचिकाकर्ता ने एक पुनरीक्षण में अपर आयुक्त, प्रशासन, देवी पाटन मंडल, गोंडा द्वारा पारित दिनांक 23.1.2001 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके तहत पुनरीक्षण प्राधिकारी ने यह कहते हुए पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम धारा 122C(6) के तहत पारित आदेश एक अंतिम आदेश है, इसलिए कोई पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं होगा।

याची के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि प्रारम्भ में उत्तर प्रदेश उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122C(6) के अन्तर्गत एक वाद संख्या 195: राज्य बनाम नईम, मुख्य राजस्व अधिकारी, गोण्डा के समक्ष दाखिल किया गया था तथा मुख्य राजस्व अधिकारी, गोण्डा ने अपने आदेश दिनांक 05.02.1996 द्वारा याची को दिया गया पट्टा इस आधार पर निरस्त कर दिया था कि याची को गाटा संख्या 396 पर दिया गया पट्टा राजस्व अभिलेखों में **'सड़क खास'** के रूप में दर्ज भूमि है। उन्होंने अपने आदेश में आगे कहा है कि सम्बन्धित उपखण्ड अधिकारी द्वारा दिया गया पट्टा अपने आप में अवैध है, क्योंकि सार्वजनिक उपयोगिता वाली भूमि पर पट्टा नहीं दिया जा सकता है तथा अधिमान्य सूची तैयार नहीं की गई है।

उपरोक्त आदेश का याचिकाकर्ता ने आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल कर विरोध किया है और याचिकाकर्ता के उस पुनरीक्षण को अपर आयुक्त, प्रशासन, फैजाबाद मंडल, फैजाबाद द्वारा दिनांक 13.01.1998 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी, जिसमें मुख्य राजस्व अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 05.02.1996 के आदेश को रद्द कर दिया गया था। उपरोक्त

आदेश में पुनरीक्षण प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से इंगित किया है कि धारा 122C(6) के तहत कोई भी आदेश कलेक्टर द्वारा कानून की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद पारित किया जा सकता है, इसलिए मुख्य राजस्व अधिकारी द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार के बाहर है।

इसके बाद निजी विपक्षी पक्ष इस तथ्य से व्यथित होकर कि गाटा संख्या 396 पर याचिकाकर्ता को दिए गए पट्टे के कारण, जो एक सार्वजनिक उपयोगिता की भूमि है, आसन्न गाटा संख्या का काश्तकार होने के नाते ऐसी भूमि के उपयोग का उसका अधिकार है, ने अपर जिला मजिस्ट्रेट/ सहायक कलेक्टर, बलरामपुर के समक्ष वाद दायर किया है। उपरोक्त वाद में याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए और याचिकाकर्ता ने कार्यवाही में भाग लिया । अपर जिला मजिस्ट्रेट/सहायक कलेक्टर, बलरामपुर ने निजी विपक्षी पक्ष के मामले को दिनांक 29.12.2000 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया है, जिसमें उप-विभागीय अधिकारी, उतरौला द्वारा याची को पट्टा देने के दिनांक 08.02.1991 के आदेश को निरस्त कर दिया गया है तथा निर्देश दिया है कि दस्तावेजों को तदनुसार दुरुस्त किया जाए। याची ने दिनांक 29.12.2000 के उक्त आदेश का विरोध करते हुए अपर आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया तथा उक्त पुनरीक्षण को दिनांक 23.01.2001 के आदेश द्वारा पोषणीय न होने के कारण खारिज कर दिया गया, लेकिन याची के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि जब विचाराधीन मुद्दे पर पहले ही निर्णय हो चुका है, तो उसी मुद्दे पर कानून के किसी प्रावधान के तहत निर्णय नहीं होना चाहिए था। उन्होंने आगे कहा है कि जब संबंधित एसडीओ द्वारा याची को पट्टा दिया गया था, तो उक्त पट्टे को अपर जिला मजिस्ट्रेट/सहायक कलेक्टर द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122C(6) की शक्तियों का प्रयोग करते हुए निरस्त नहीं किया जा सकता है।

इसलिए, दिनांक 29.12.2000 का विवादित आदेश रद्द किए जाने योग्य है और पुनरीक्षण आदेश रद्द किए जाने योग्य है क्योंकि यदि धारा 122C(6) के तहत कोई आदेश क्षेत्राधिकार के बाहर पारित किया गया है, तो इसका निर्णय पुनरीक्षण प्राधिकारी के द्वारा लिया जा सकता है।

विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और निजी विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त प्रस्तुतीकरण का विरोध किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि मुख्य राजस्व अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 05.02.1996 के आदेश को रद्द करते हुए पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 13.01.1998 के आदेश के तहत स्वयं यह टिप्पणी की है कि धारा 122C(6) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल कलेक्टर द्वारा किया जा सकता है और वर्तमान मामले में दिनांक 29.10.2000 का विवादित आदेश अपर जिला मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त कलेक्टर, बलरामपुर द्वारा पारित किया गया है, इसलिए दिनांक 29.12.2000 का आदेश पूर्णतः कानून के अनुसार पारित किया गया है। आगे धारा 122C(7) की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है जो यह प्रावधान करती है कि उपधारा

4 के अन्तर्गत सहायक कलेक्टर द्वारा पारित प्रत्येक आदेश धारा 122C(6) के उपबन्धों के अधीन होगा तथा उपधारा 6 के अन्तर्गत कलेक्टर द्वारा पारित प्रत्येक आदेश अन्तिम होगा तथा धारा 333A के उपबन्ध उस पर लागू नहीं होंगे। अतः पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 23.01.2000 को पारित आदेश स्पष्टतः विधि सम्मत एवं न्यायोचित है।

विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि वर्तमान मामले में याची को भूमि प्रबन्ध समिति के प्रस्ताव के बिना ही दिनांक 08.02.1991 को पट्टा दे दिया गया तथा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122C(3) के अन्तर्गत कोई अधिमान्य सूची भी तैयार नहीं की गई। उन्होंने यह भी कहा है कि इस सुसंगत तथ्य पर विचार नहीं किया गया है कि याची का स्वयं प्रश्नगत गांव में अपना मकान था, अतः उसे आवास प्रयोजन हेतु पट्टा नहीं दिया जाना चाहिए था। इसके अलावा, जब दिनांक 29.12.2000 को विवादित आदेश पारित किया गया था, तो प्रश्नगत गाटा पर कोई मकान या निर्मित क्षेत्र नहीं था, हालांकि, याचिकाकर्ता ने दिनांक 29.12.2000 के बाद क्षेत्र में एक मकान का निर्माण किया है जो कि अवैध और अनुचित है।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के बाद, मैं इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.04.2023 के आदेश का उल्लेख करना चाहूंगा जिसमें विद्वान स्थायी अधिवक्ता को प्रश्नगत क्षेत्र की वर्तमान स्थिति के बारे में निर्देश प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया गया था। उपरोक्त आदेश के अनुपालन में श्री ए.एस. तिवारी, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने दिनांक 02.05.2023 के निर्देश पत्र की प्रति प्रस्तुत की है, उसे अभिलेख पर लिया गया है।

उपरोक्त पत्र दिनांक 24.04.2023 के अनुसार तहसीलदार, उतरौला ने गाटा संख्या 396/0.053 हेक्टेयर के संबंध में नए सिरे से मौका निरीक्षण किया। उक्त गाटा संख्या आज भी राजस्व अभिलेखों में '**सड़क खास**' के रूप में दर्ज है। वर्तमान में याची ने उक्त गाटा संख्या की 0.008 हेक्टेयर भूमि पर अतिक्रमण कर एक पक्का कमरा बना लिया है, तथापि, वह पक्का कमरा खाली है, क्योंकि उस पक्के कमरे में कोई नहीं रहता है, क्योंकि याची का संबंधित गांव में अपना पक्का मकान है, जहां वह अपने पूरे परिवार के साथ रहता है। इसके अलावा गाटा संख्या 396 के शेष भाग पर खाली रास्ता है, जिसका उपयोग ग्रामीणों द्वारा किया जा रहा हैं। इस आशय का नक्शा नजरी भी निर्देशों के साथ संलग्न किया गया है, जो इसी तथ्य को इंगित करता है। इसलिए भूमि की प्रकृति दर्शाने के लिए खतौनी व खसरा की नकल निर्देशों के साथ दाखिल की गई है।

इसलिए, उपर्युक्त निर्देशों से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 29.12.2000 के बाद प्रश्नगत गाटा पर एक पक्का कमरा बनाया है, जब विवादित आदेश पारित किया गया था, जिसमें यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि प्रश्नगत गाटा पर कोई निर्माण नहीं था और उस तथ्य को याचिकाकर्ता ने राजस्व अधिकारियों के समक्ष विवादित नहीं किया है।

उल्लेखनीय रूप से, याचिकाकर्ता को भूमि आवंटित करने के लिए ग्राम सभा/भूमि प्रबंधन समिति का कोई प्रस्ताव नहीं था क्योंकि ऐसा कोई दस्तावेज अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अनुसार न्यायालय को यह विश्वास दिलाने के लिए कोई सूची दायर नहीं की गई है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122C(3) के अनुसार एक वरीयता सूची तैयार की गई है। दिनांक 29.12.2000 के विवादित आदेश में यह प्रावधान है कि याची का गांव में अपना आवासीय मकान है और इस तथ्य को उप जिला अधिकारी, उतरौला, बलरामपुर ने अपनी टिप्पणियों में पुनः इंगित किया है, जिससे पता चलता है कि याची अपने परिवार के साथ अपने मकान में रह रहा है तथा गाटा संख्या 396 रकबा 0.008 हेक्टेयर पर बने पक्के कमरे में कोई नहीं रह रहा है। पूर्व आदेश दिनांक 05.02.1996 मुख्य राजस्व अधिकारी द्वारा पारित किया गया था और उस आदेश को धारा 122C(6) के तहत पारित आदेश नहीं माना जा सकता है, क्योंकि धारा 122C(6) के तहत कोई भी आदेश पारित करने की शक्ति कलेक्टर में निहित है, इसलिए पूर्व पुनरीक्षण प्राधिकारी ने मुख्य राजस्व अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 05.02.1996 के आदेश को खारिज करते हुए इस तथ्य को सही रूप से इंगित किया है। हालाँकि, दिनांक 29.12.2000 का विवादित आदेश अपर जिला मजिस्ट्रेट/ अपर कलेक्टर द्वारा पारित किया गया है, जिसके पास उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122C(6) के तहत शक्ति है। दिनांक 29.12.2000 का विवादित आदेश एकपक्षीय आदेश नहीं है, बल्कि इसे याचिकाकर्ता सहित सभी पक्षों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के बाद पारित किया गया है। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने दिनांक 23.01.2001 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को सही रूप से खारिज कर दिया है, क्योंकि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122C(7) के मद्देनजर कलेक्टर द्वारा धारा 122C(6) के तहत पारित आदेश अंतिम होगा।

अतः उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम 1950 की धारा 122C(6) के तहत दायर वाद संख्या 7/11/19/49/31 में अपर जिला मजिस्ट्रेट/अपर जिला कलेक्टर, बलरामपुर द्वारा पारित दिनांक 29.12.2000 के आदेश और अपर आयुक्त, प्रशासन, देवी पाटन मंडल, गोंडा द्वारा पारित दिनांक 23.01.2001 के आदेश में कोई त्रुटि या अवैधानिकता नहीं दिखती। तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

अनुसरण करने योग्य परिणाम।

(2023) 5 ILRA 1664

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट-सी संख्या 20901/2022

कुँवर पाल @ कुमार पाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री कृपा शंकर शुक्ला
अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री राजीव सिंह (एस.सी.), सुश्री आर्ची अग्रवाल

आयोजित: पैरा-

विधि व्यवस्था अनुसरित:

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल और माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. यह रिट याचिका विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संयुक्त संगठन), अलीगढ़ के दिनांक 30.04.2022 के आदेश के विरुद्ध है, जिसमें भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 28ए के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन को समय बीत जाने के कारण खारिज कर दिया गया था।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री के.एस. शुक्ला, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राजीव सिंह और प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता सुश्री आर्ची अग्रवाल को सुना गया।

3. याचिकाकर्ता, कुंवर पाल ने कलेक्टर-सह-भूमि अधिग्रहण अधिकारी, अलीगढ़ को दिनांक 29.01.2001 को एक आवेदन दिया था जिसमें कहा गया था कि उनकी जमीन, जिसमें खसरा संख्या 7/0-2-0, खसरा संख्या 10/0-4-0, खसरा संख्या 27(एम)/0-10-0 और खसरा संख्या 414 (एम)/1-14-0 शामिल हैं, जिसका कुल क्षेत्रफल 2 बीघा 2 बिस्वा है और जो गांव तलासपुर कलां, पोस्ट क्वार्सी , पगराना और तहसील कोइल, जिला अलीगढ़ में स्थित है, को उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विभाग निगम, कानपुर द्वारा योजनाबद्ध औद्योगिक विकास के उद्देश्य से राज्य द्वारा अधिग्रहित किया गया था। याचिकाकर्ता का मामला यह था कि एलएआर संख्या 70/1993, महेंद्र सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में, अलीगढ़ के ग्यारहवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने उसी अधिसूचना 4(1) से संबंधित अधिनियम की धारा 18 के तहत संदर्भ का फैसला करते हुए जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता की भूमि अधिग्रहित की गई थी, उनके दिनांक 25.10.2000 के निर्णय और पुरस्कार ने अन्य वैधानिक अधिकारों में आनुपातिक वृद्धि के साथ मुआवजे को 50 रुपये प्रति वर्ग गज तक बढ़ा दिया। याचिकाकर्ता का दावा है कि वह न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त रूप से दिए गए पुरस्कार के अनुसार मूल रूप से दिए जाने वाले मुआवजे के पुनर्निर्धारण का हकदार था।

4. विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने पाया कि याचिकाकर्ता ने न्यायालय के दिनांक 25.10.2000 के निर्णय और पुरस्कार के आधार पर अधिनियम की धारा 28ए के तहत अपना आवेदन 29.01.2001 को किया था। भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने माना कि न्यायालय के पुरस्कार की प्रमाणित प्रति की जांच करने पर, जिसके आधार पर अधिनियम की धारा 28ए(1) के तहत आवेदन पेश किया

अनुवादित

गया था, यह स्पष्ट है कि आवेदन पुरस्कार की तिथि से तीन महीने की अवधि के बाद किया गया है, जो अधिनियम की धारा 28ए के तहत परिकल्पित अवधि के विपरीत है। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी की राय में, अधिनियम की धारा 28ए के तहत आवेदन समय सीमा से बाहर था। यह उपर्युक्त तर्क पर है कि धारा 28ए के तहत आवेदन को समय सीमा से बाहर बताते हुए खारिज करने का आदेश पारित किया गया है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शुक्ला ने हमें धारा 28ए के तहत आवेदन, विशेष रूप से उसके पैराग्राफ 6 में दिए गए कथनों और एलएआर संख्या 70/1993 में अलीगढ़ के ग्यारहवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और पुरस्कार की प्रमाणित प्रति की छायाप्रति के माध्यम से अवगत कराया है, जिसे अधिनियम की धारा 28ए के तहत आवेदन के समर्थन में विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के समक्ष दायर किया गया था। पेपर बुक के पेज संख्या 21 पर प्रमाणित प्रति की छायाप्रति का हिस्सा यानी फोलियो के अवलोकन से हमें पता चलता है कि संदर्भ न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन 20.12.2000 को किया गया था और यह 25.01.2001 को तैयार हो गया था। प्रतिलिपि की प्राप्ति 25.01.2001 को ली गई थी। इन परिस्थितियों में, संदर्भ न्यायालय के निर्णय की प्रमाणित प्रति तैयार करने में लगा समय, जो अधिनियम की धारा 28ए के तहत अधिकार क्षेत्र के आह्वान का आधार है, सीमा अवधि से बाहर रखा जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 28ए के तहत आवेदन के पैराग्राफ संख्या 6 में ठीक यही कहा गया है। धारा 28 ए (1) का प्रावधान, कलेक्टर को आवेदन करने के उद्देश्य से, तीन महीने की सीमा अवधि से संदर्भ न्यायालय द्वारा निर्णय दिए जाने की तारीख और उसकी प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगे समय को बाहर रखने का आदेश देता है। 20.12.2000 और 25.01.2001 के बीच संदर्भ न्यायालय के निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगा समय 36 दिन है जिसे न्यायालय द्वारा पारित निर्णय की तारीख से गणना करते हुए तीन महीने की उपलब्ध सीमा अवधि में जोड़ा जाना है । यदि उन 36 दिनों को जोड़ दिया जाए, तो 25.10.2000 के आदेश के आधार पर 27.01.2001 का आवेदन अधिनियम की धारा 28 ए (1) के तहत निर्धारित तीन महीने की अवधि के भीतर होगा। स्पष्ट रूप से, याचिकाकर्ता उस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में खर्च किए गए 36 दिनों को छोड़ने का हकदार है, जिसके आधार पर उसने अधिनियम की धारा 28 ए के तहत विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी को आवेदन किया था। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 28 ए के तहत कार्यवाही को समय से वर्जित करने वाला विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी का आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है।

6. विवादित आदेश में एक और टिप्पणी है कि गाटा संख्या 414 का अधिग्रहण ही नहीं किया गया है। यह साक्ष्य का मामला है। विवादित आदेश ने अधिनियम की धारा 28ए के तहत आवेदन को शुरू में ही खारिज कर दिया है,

और याचिकाकर्ता को साक्ष्य प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं दिया है। एक बार जब अधिनियम की धारा 28ए के तहत कार्यवाही हमारे द्वारा दिए गए आदेशों के तहत विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पास वापस आ जाती है, तो विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी याचिकाकर्ता को अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देगा। इसके बाद विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी इस मुद्दे पर निर्णय ले सकता है।

7. इन परिस्थितियों में, यह याचिका सफल होती है और इसे स्वीकार किया जाता है। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संयुक्त संगठन), अलीगढ़ द्वारा पारित दिनांक 30.04.2022 के विवादित आदेश, रिट याचिका के अनुलग्नक 4 को इसके द्वारा रद्द किया जाता है। अधिनियम की धारा 28ए के तहत आवेदन को विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संयुक्त संगठन), अलीगढ़ की फाइल में वापस लाया जाता है, ताकि पक्षकारों को उचित अवसर प्रदान करने के बाद कानून के अनुसार सुनवाई और निर्णय लिया जा सके।

(2023) 5 ILRA 1666

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 4747 /2019

(सिविल)

श्रीमती जीरा देवी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

ए.डी.जे. कोर्ट सं. 12 वाराणसी एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री ब्रिज राज, श्री अतुल दयाल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री शंभू नाथ, श्री प्रतीक जे. नागर, श्री त्रिवेणी शंकर, श्री अवधेश कुमार

आयोजित: पैरा-

विधि व्यवस्था अनुसरित:

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत श्रीमती जीरा देवी और घनश्याम पटेल, मूल वाद संख्या-154 वर्ष 1999, मुन्नान देवी बनाम श्रीमती अमरावती देवी के तीसरे पक्षकार द्वारा दायर की गई याचिका है, जिन्हें असाइनमेंट पेंडेंट लाइट के आधार पर मुकदमा जारी रखने के लिए अपील से वंचित कर दिया गया है और आगे, वादी द्वारा वाद को वापस लेने की अनुमति देने वाले आदेश का सामना करना पड़ रहा है। याचिकाकर्ताओं के लिए यह आदेश अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-12, वाराणसी द्वारा एक अपील में पारित किया गया है, जिसमें विचारण न्यायालय को उलट दिया गया था?, जिसने याचिकाकर्ताओं को मुकदमा जारी रखने की अनुमति दी थी और वादी को इसे वापस लेने की अनुमति देने से इनकार कर दिया था।

2. इस याचिका को जन्म देने वाले तथ्य, आवश्यक विस्तार से, ये हैं:

प्लाट संख्या-40 जिसका क्षेत्र 0.243 हेक्टेयर और प्लॉट संख्या-156 जिसका क्षेत्र 0.72 डेसिमल था, जो ग्राम मौजा सरायमुगल, परगना अथगांव, तहसील पिंडरा, जिला वाराणसी में स्थित है, जिसे श्रीमती मुन्नन देवी के नाम पर दर्ज किया गया था। वह अपने सह-जोत धारक, रामदास की पत्नी श्रीमती रामदेई देवी के साथ आधे हिस्से की सीमा तक दो भूखंडों में सह-हिस्सेदार थी। स्वर्गीय पन्ना लाल की पत्नी श्रीमती अमरावती देवी ने दावा किया कि श्रीमती मुन्नन देवी ने 09.10.1998 को उपरोक्त भूमि के भूखंडों में अपने आधे हिस्से का विक्रय विलेख निष्पादित किया था। श्रीमती अमरावती देवी ने दिनांक 11.08.1999 को राजस्व अभिलेखों में श्रीमती मुन्नन देवी का नाम नामान्तरित कर श्रीमती रामदेई देवी के साथ सह-जोत धारक के रूप में अपना नाम दर्ज करवाया। यह दिनांक 09.10.1998 के बिक्री विलेख के आधार पर किया गया था। 08.02.1999 को, श्रीमती मुन्नन देवी ने श्रीमती अमरावती देवी के खिलाफ एक त्वरित कार्रवाई की, जिसमें यह घोषणा करने की मांग की गई कि दिनांक 09.10.1998 का विक्रय विलेख शून्य था, इस प्रार्थना के साथ कि दी गई घोषणा उप-पंजीयक को सूचित की जाए, जहां घोषणा दर्ज करने के लिए विलेख पंजीकृत किया गया था। श्रीमती अमरावती देवी के खिलाफ इस आशय के एक स्थायी निषेधाज्ञा का भी दावा किया गया था कि प्रतिपक्षी को वादी के स्वामित्व/हक़्के मिल्कियत और वाद संपत्ति में कब्जे में हस्तक्षेप करने या अन्यथा किसी भी तरह से बाधा पैदा करने से, और आगे वाद संपत्ति में खड़ी फसलों को नष्ट न करने से रोका जाए। श्रीमती अमरावती देवी के विरुद्ध श्रीमती मुन्नन देवी द्वारा लाया गया उपरोक्त वाद सिविल जज (जूनियर डिवीजन) हवेली, वाराणसी की फाइल पर मूल वाद संख्या-154 वर्ष 1999 के रूप में क्रमांकित था। वाद में श्रीमती मुन्नन देवी का संक्षिप्त मामला यह था कि दिनांक 09.10.1998 का विवादित हस्तांतरण उनका विलेख नहीं था। इसे श्रीमती अमरावती देवी ने श्रीमती मुन्नन देवी से भिन्न एक धोखेबाज महिला के माध्यम से निष्पादित किया था। इसलिए, बिक्री विलेख को एक शून्य दस्तावेज के रूप में आरोपित किया गया था।

3. दिनांक 03.07.2000 को वादी का वाद लड़ते हुए श्रीमती अमरावती देवी द्वारा लिखित बयान दर्ज कराया गया। इस याचिका के प्रयोजन के लिए, यह बताना महत्वपूर्ण नहीं होगा कि उसका बचाव क्या था। श्रीमती मुन्नन देवी ने 29.08.2000 को एक प्रतिकृति प्रस्तुत की। 30.08.2000 को, विचारण न्यायालय ने कुल सात मुद्दों को विरचित किया। मुद्दे क्या थे, यह भी इस याचिका के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं है। एकमात्र वादी श्रीमती मुन्नन देवी की अ०सा०-1 के रूप में परीक्षा की गई। उसने 11.02.2003 और 17.07.2003 को कटघरे में गवाही दी। लंबित मुकदमा दायर होने पर, श्रीमती मुन्नन देवी ने दो बिक्री विलेख निष्पादित किए - एक श्रीमती जीरा देवी के पक्ष में, प्लॉट संख्या-156 में अपना आधा हिस्सा बताते हुए, यानी कुल 0.596 हेक्टेयर में से 0.298 हेक्टेयर क्षेत्र; और दूसरा घनश्याम पटेल के पक्ष में, प्लॉट संख्या-40 में अपना आधा हिस्सा कुल 0.243 हेक्टेयर में से 0.121 हेक्टेयर है। इन दोनों बिक्री विलेखों को

दिनांक 21-05-2011 को निष्पादित किया गया था और दिनांक 23-05-2011 को उप-रजिस्ट्रार, पिंडरा, वाराणसी द्वारा पंजीकरण के लिए स्वीकार किया गया था। 9 फरवरी, 2013 को श्रीमती मुन्नन देवी का निधन हो गया, जबकि मुकदमा अभी भी लंबित था।

4. दिनांक 15.04.2013 को श्रीमती मुन्नन देवी की पुत्री श्रीमती फूलपत्ती देवी ने एकमात्र वादी के स्थान पर प्रतिस्थापित होने के लिए आवेदन किया। प्रतिस्थापन आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा 05.07.2013 को मंजूर कर लिया गया था। ऐसा लगता है कि प्रतिस्थापित वादी श्रीमती फूलपत्ती देवी ने 05.04.2018 तक लगभग पांच साल की अवधि के लिए मुकदमा चलाया था, जब उन्होंने सिविल प्रक्रिया संहिता, 19081 के आदेश XXIII नियम 1 के तहत बिना शर्त मुकदमा वापस लेने की मांग करते हुए एक आवेदन किया था। उपरोक्त आवेदन विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड पर पेपर संख्या-45 ग के रूप में गिना जाता है।

5. श्रीमती फूलपत्ती देवी द्वारा अचानक कार्रवाई समाप्त करने के बाद, श्रीमती जीरा देवी ने संहिता के आदेश XXII नियम 10 के तहत पेपर संख्या-48 के साथ एक आवेदन दायर किया, जिसमें मुकदमा जारी रखने के लिए अदालत की अनुमति मांगी गई।

6. दिनांक 22.08.2018 को श्रीमती फूलपत्ती देवी द्वारा दिनांक 05.04.2018 को किए गए आवेदन पर श्रीमती जीरा देवी ने आपत्ति दर्ज कर वाद वापस लेने की मांग की। 4 जुलाई, 2018 को, घनश्याम पटेल ने संहिता के आदेश XXII नियम 10 के तहत एक आवेदन किया, जिसमें मुकदमा जारी रखने के लिए अदालत की अनुमति मांगी गई। 13.07.2018 को, श्रीमती जीरा देवी और घनश्याम पटेल ने श्रीमती फूलपत्ती देवी के पक्ष में प्रतिस्थापन देने के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन दिया, लेकिन विचारण न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया। विचारण न्यायालय ने दिनांक 04.09.2018 के अपने आदेश द्वारा, क्रमशः श्रीमती जीरा देवी और घनश्याम पटेल द्वारा किए गए आवेदनों 48-क और 54 को अनुमति दी, जिसमें मुकदमा जारी रखने की अनुमति मांगी गई थी और श्रीमती फूलपत्ती द्वारा किए गए आवेदन 45-ग को खारिज कर दिया गया, जिसमें मुकदमा वापस लेने की प्रार्थना की गई थी।

7. श्रीमती फूलपत्ती देवी ने संहिता के आदेश XLIII नियम 1(एल) के तहत वाराणसी के जिला न्यायाधीश को प्रकीर्ण दीवानी अपील संख्या-143 वर्ष 2018 को दायर की, जिसमें अतिरिक्त सिविल जज (जूनियर डिवीजन) न्यायालय संख्या-7, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.09.2018 को उलटने की मांग की गई। समनुदेशन पर अपील 04.05.2019 को अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय क्रमांक 12, वाराणसी के समक्ष निर्धारण के लिए आई, जिन्होंने अपील की अनुमति देने के लिए कार्यवाही की, दिनांक 04.09.2018 के आदेश को रद्द कर दिया,

वाद को जारी रखने की अनुमति मांगने वाले दो आवेदनों को खारिज कर दिया और श्रीमती फूलपत्ती देवी के आवेदन को वापस लेने के लिए स्वीकार कर लिया।

8. दिनांक 04.05.2019 के आदेश से व्यथित होकर श्रीमती जीरा देवी एवं घनश्याम पटेल ने संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत यह याचिका दायर की है।

9. श्री अतुल दयाल, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बृज राज, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता, श्री शंभूनाथ, प्रतिपक्षी संख्या-3 की ओर से पेश अधिवक्ता और श्री त्रिवेणी शंकर के साथ श्री अवधेश कुमार, प्रतिपक्षी संख्या-4 के लिए पेश होने वाले अधिवक्ता को सुना।

10. इस मामले में विचार के लिए आने वाला प्रश्न है: इस मामले में विचार के लिए आने वाला प्रश्न यह है: क्या इस तथ्य के बावजूद कि एक मिलीभगत वादी और एक प्रतिवादी ने तीसरे पक्ष के अधिकारों को हराने के लिए संघर्ष किया हो सकता है और वादी, उस उद्देश्य को प्रभावित करने के लिए, संहिता के आदेश XXIII नियम 1 के तहत बिना शर्त मुकदमा वापस लेने के लिए एक आवेदन करता है, क्या खतरे में पड़े तीसरे पक्ष को वापस लेने वाले वादी के लिए प्रतिस्थापित करने की अनुमति दी जा सकती है और मुकदमे पर मुकदमा चलाने की अनुमति दी जा सकती है; या किसी भी घटना में, क्या उसे संहिता के आदेश I नियम 10 के तहत वादी के रूप में अभियोजित किया जा सकता है और मुकदमे को आगे बढ़ाने की अनुमति दी जा सकती है?

11. श्री अतुल दयाल, वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि संहिता के आदेश XXIII नियम 1 के तहत प्रत्याहरण का अधिकार पूर्ण नहीं है और न्यायालय द्वारा आदेश पारित करने के बाद प्रत्याहरण प्रभावी हो जाती है। यह इस कारण से है कि निकासी इसके आवश्यक परिणामों के बिना नहीं है, सबसे स्पष्ट लागत के आइटम पर एक आदेश है। वह प्रस्तुत करते हैं कि जब तक न्यायालय यह आदेश नहीं देता, तब तक न्यायालय को फंक्टस ऑफिशियो नहीं कहा जा सकता है और मुकदमे को फाइल से हटा दिया गया है, केवल इसलिए कि वादी द्वारा बिना शर्त प्रत्याहरण की प्रार्थना की गई है, इस उद्देश्य के लिए एक आवेदन दर्ज किया गया है।

12. प्रस्तुतीकरण का दूसरा अंग यह है कि यदि न्यायालय यह देख सकता है कि बिना शर्त प्रत्याहरण के लिए आवेदन, यह मानते हुए कि यह अन्यथा वाद की प्रत्याहरण के रूप में स्वतः ही संचालित होता है, तो तीसरे पक्ष के हित को हराने के लिए एक उपकरण है, जो या तो संहिता के आदेश I नियम 10 के तहत अभियोग की मांग करने वाले आवेदन या आदेश XXII नियम 10 के तहत एक आवेदन, वाद को आगे बढ़ाने की अनुमति मांगते हुए, आगे आया है। न्यायालय को वादी को वाद वापस लेने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। वह प्रस्तुत करते हैं कि यदि इस तरह की स्थिति के सामने, वादी को मुकदमा वापस लेने की अनुमति दी जाती है, तो इसे एक टर्मिनस में

लाया जाता है, दो परिणाम अनिवार्य रूप से होंगे: पहला यह है कि तीसरा पक्ष जिसके अधिकार दांव पर हैं, बिना मुकदमे के उन अधिकारों के बारे में पराजित होने के खतरे में पड़ जाएगा; और, दूसरा, कि तीसरा पक्ष, मजबूरी के अनुसार, अपनी कार्रवाई करने के लिए प्रेरित होगा, जो अनिवार्य रूप से कार्यवाही की बहुलता को जन्म देगा।

13. श्री दयाल ने अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, मीरा राय बनाम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश और अन्य में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है। संक्षेप में, मीरा राय (उपरोक्त) में, तथ्य यह थे कि वादी एक घोषणा के लिए एक मुकदमा लाया था कि वाद संपत्ति, लगभग 1800 वर्ग फुट की भूमि, एक सामान्य मार्ग था जिसे एक बसंत कुमार द्वारा प्रतिपक्षियों के पक्ष में अवैध रूप से बेचा गया था। वादी ने पहले प्रतिपक्षी के खिलाफ एक स्थायी निषेधाज्ञा के लिए कहा, उसे वाद संपत्ति पर किसी भी निर्माण को बढ़ाने से रोक दिया। मुकदमे के प्रतिपक्षी संख्या-1 ने इसका विरोध किया। वाद लंबित होने पर, वादी ने यह कहते हुए वाद वापस लेने के लिए आवेदन किया कि उसने प्लॉट संख्या- C9 में स्थित अपना मकान एक तीसरे पक्ष को बेच दिया है, और यह कि उसे वाद संपत्ति की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उसके द्वारा बेचे गए घर तक पहुंचने के लिए दो सड़कें थीं। इन सबसे ऊपर, उसे वाद की संपत्ति में कोई अधिकार, स्वामित्व/हक़के मिल्कियत या रुचि नहीं थी, क्योंकि वह पहले ही इसे बेच चुका था। इससे पहले कि प्रत्याहरण आवेदन पर आदेश पारित किया जा सके, संहिता के आदेश XXII नियम 10 के तहत एक आवेदन खरीदारों द्वारा दायर किया गया प्रतीत होता है ताकि उन्हें मुकदमा चलाने की अनुमति मिल सके, क्योंकि वाद संपत्ति के अधिकार उन्हें सौंपे गए थे। उक्त आवेदन को प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा चुनौती दी गई, जिन्होंने कहा कि वाद संपत्ति में कोई अधिकार खरीदारों के पास नहीं आया था, जो अब मूल वादी के माध्यम से दावा करते हैं। विचारण न्यायालय ने संहिता के आदेश XXII नियम 10 के तहत आवेदन की अनुमति दी और प्रत्याहरण आवेदन को खारिज कर दिया। उक्त आदेश की प्रकीर्ण अपील जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दी गई थी। मीरा राय में इस न्यायालय के समक्ष आग्रह किए गए कई तर्कों में से तीन पर ध्यान देने की आवश्यकता है और यह रिपोर्ट से उद्धृत करके सबसे अच्छा किया जा सकता है, जिस तरह से तर्कों का आग्रह किया गया था:

4. उक्त आदेश को चुनौती देते हुए, प्रकीर्ण अपील संख्या-37 वर्ष 2014 दायर की गई थी जिसे 9.12.2016 को खारिज कर दिया गया था और इसलिए यह याचिका दायर की गई।

5. प्रतिस्थापन के आदेश को चुनौती देने के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार आग्रह किया:

(i) वाद संपत्ति में हित का दावा करते हुए प्रतिपक्षियों 2 से 5 द्वारा दायर आवेदन वास्तव में आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. के तहत दायर एक संशोधन आवेदन था क्योंकि उन्होंने वादी के नाम को हटाने और पक्षों की सारणी में संशोधन करने की प्रार्थना की थी। उक्त आवेदन को निचली अदालतों द्वारा गलत

तरीके से आदेश 22 नियम 10 सी.पी.सी. के तहत प्रतिस्थापन आवेदन के रूप में माना गया था।

(ii) आदेश 22 नियम 10 सी.पी.सी. के तहत प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करने के लिए न्यायालय की अनुमति की आवश्यकता होगी और इस तरह की अनुमति मंजूर करने के लिए, न्यायालय को इस बात पर ध्यान देना होगा कि क्या प्रतिस्थापन की मांग करने वाले व्यक्ति को कोई अधिकार या हित हस्तांतरित किया गया था। मूल वादी के स्थानांतरणकर्ताओं अर्थात् आवेदकों द्वारा प्रस्तुत आवेदन में अनुमति मांगने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई है और इस प्रकार प्रतिस्थापन के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

(iii) विचारण न्यायालय ने अनुमति प्रदान किए बिना यांत्रिक रूप से उक्त आवेदन को अनुमति दे दी थी। कारणों के अभाव में, आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

(iv) वादी द्वारा दायर प्रत्याहरण आवेदन प्रतिपक्षी 2 से 5 द्वारा प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने से पहले था। प्रत्याहरण आवेदन को स्थानांतरित करने का प्रभाव यह होगा कि मुकदमा स्वतः वापस ले लिया गया और आवेदन दाखिल करने की तारीख तक कोई मुकदमा लंबित न होने के कारण, प्रतिपक्षी संख्या-2 से 5 के आवेदन पर विचार नहीं किया जा सका। दूसरे शब्दों में, यह प्रस्तुत किया गया है कि निकासी आवेदन के स्थानांतरित होने के साथ, निकासी स्वचालित थी, उक्त आवेदन पर कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं थी। राम पलाट चतुर्वेदी (मृतक) बनाम चंद्र बली शास्त्री और अन्य, (2008) 1 ए.आर.सी. 143 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

(v) इसके अलावा, किसी भी मामले में, वाद संपत्ति में किसी भी अधिकार या हित के असाइनमेंट की स्थिति में, समनुदेशिती को प्रतिस्थापित किया जा सकता है लेकिन समनुदेशिती का नाम पक्षों की सारणी से नहीं हटाया जाएगा। संशोधित वाद (पूरक-हलफनामे के साथ संलग्न) के संदर्भ में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह जोरदार तर्क दिया गया है कि वादी के संशोधन यानी वादी को हटाने के साथ, यह एक नया मुकदमा होगा। वाद के लंबित रहने के दौरान वादी द्वारा किया गया कोई भी अंतरण यद्यपि समनुदेशक को न्यायालय की अनुमति से आदेश 22 नियम 10 के अधीन वाद को आगे बढ़ाने का अधिकार देता है, किन्तु उक्त वाद को नए वाद के रूप में नहीं चलाया जा सकता है। चूंकि आवेदकों/प्रतिपक्षियों के पास कार्रवाई का कोई कारण नहीं बचता है, इसलिए उन्हें नया वाद लाने की अनुमति दी जा सकती है, लेकिन उन्हें पहले के वाद में पक्षकार/प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता था, खासकर तब जबकि यह पहले ही वापस ले लिया गया था।

(vi) विवाद यह है कि वादी डोमिनस लिटस है, यह उसकी इच्छा है कि वह अपना मुकदमा जारी रखे और न्यायालय उसे वाद को आगे बढ़ाने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है, वह भी तब जबकि उसने आदेश 23 नियम 1 सी.पी.सी. के तहत प्रत्याहरण आवेदन प्रस्तुत किया था।

(vii) मूल वादी के नाम को हटाने का अधिनियम स्वयं यह स्थापित करता है कि यह एक संशोधन आवेदन था जिसमें उन व्यक्तियों द्वारा वाद में संशोधन की मांग की गई थी जिन्होंने वाद संपत्ति में अधिकार और हित प्राप्त करने का दावा किया था। हाफिज मुश्ताक और अन्य बनाम मोहम्मद इदरीस और अन्य, 1965 इलाहाबाद एल.जे. 828 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

(viii) प्रतिपक्षी संख्या-2 (स्वर्गीय केदारनाथ सिंह) के पूर्ववर्ती द्वारा सहकारी समिति अर्थात् मूल वाद संख्या-978 वर्ष 1993 के खिलाफ दायर मुकदमा विचाराधीन है। प्रतिपक्षी संख्या-1 के पक्ष में निष्पादित दिनांक 5.6.2012/6.6.2012 के बिक्री-विलेख को रद्द करने की कोई राहत मूल वादी हेमंत कुमार अग्रवाल द्वारा नहीं मांगी गई थी। पंजीकृत बिक्री-विलेख के अस्तित्व में होने के मद्देनजर, आवेदक/बाद के खरीदार घोषणा और निषेधाज्ञा की राहत नहीं मांग सकते हैं।

(ix) अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि मुकदमा करने का अधिकार संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 6 (ई) के तहत स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। वादी के बिक्री-विलेख के आधार पर प्रतिस्थापन/अभियोग के लिए आवेदन में, कथित रास्ता के हस्तांतरण के संबंध में याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता था क्योंकि यह केवल उक्त रास्ता के लिए मुकदमा करने के अधिकार का हस्तांतरण होगा। चौधरी सज्जनमल बनाम बोध राज रामकिशन मल और अन्य, ए.आई.आर. 1934 पेशावर 89 के मामले में निर्णय पर भरोसा किया गया है। इसके अलावा, मूल वादी द्वारा आवेदकों के पक्ष में ऐसा कोई अधिकार हस्तांतरित नहीं किया गया है। कथित रास्ता (तत्काल वाद की विषय-वस्तु) को स्केच मैप में भी नहीं दिखाया गया है जो संपत्ति का विवरण देता है और आवेदकों के बिक्री-विलेख का हिस्सा है।

6. दूसरी ओर, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 19.10.2013 के बिक्री-विलेख द्वारा, वाद संपत्ति में सभी अधिकार और हित आवेदकों को हस्तांतरित किए गए थे। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 10 के तहत, उन्हें लिस पेंडेंस के सिद्धांत पर मुकदमा चलाने का अधिकार है। इसके किसी भी इनकार से उन्हें अनुपयुक्त बना दिया जाएगा। इसके अलावा, प्रस्तुत मुकदमे द्वारा, वादी ने सुगमता अधिकारों की घोषणा की मांग की, यानी एक आम सड़क से अपने घर तक पहुंचने के रास्ते का अधिकार जो प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा बाधित किया गया है। अमित कुमार शॉ और एक अन्य बनाम फरीदा खातून और अन्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 2209 और शारदाम्मा बनाम मोहम्मद पायरेजान (मृत) में विधि परामर्शीs और अन्य, 2015 (6) ए.डब्ल्यू.सी. 5721 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया जाता है, यह प्रस्तुत करने के लिए कि ट्रांसफेरी पेंडेंट लाइट को एक उचित पक्ष के रूप में जोड़ा जा सकता है यदि वाद की विषय-वस्तु में उसकी रुचि पर्याप्त है और न केवल परिधीय।

14. प्रतिपक्षी-याचिकाकर्ता की ओर से पूर्वोक्त आग्रह किए गए तर्कों को निरस्त करते हुए, यह अवधारित किया गया था:

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का पहला तर्क कि वादी द्वारा प्रस्तुत आदेश 23 नियम 1 सी.पी.सी. के तहत आवेदन द्वारा वर्तमान वाद को वापस लेने के साथ, समनुदेशिती प्रतिस्थापन के लिए अपना अधिकार खो चुके हैं, बल से रहित पाया जाता है क्योंकि निकासी आवेदन पर कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं थी। राम पलाट चौधरी (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भरोसा किया कि हालांकि वादी की ओर से प्रत्याहरण आवेदन को स्थानांतरित करने के साथ, प्रत्याहरण प्रभावी हो जाती है, लेकिन उक्त आवेदन पर न्यायालय द्वारा पारित आदेश प्रत्याहरण से उत्पन्न परिणामों को प्रभावी बनाने के लिए है (शेख खलीकुजमा (डी) को एलआरएस और अन्य बनाम शेख के माध्यम से भी संदर्भ दिया गया है (2) ए.डब्ल्यू.सी. 1636 और श्रीमती रायसा सुल्ताना बेगम और अन्य बनाम अब्दुल कादिर और अन्य, 1966 ए.आई.आर. (इला०) 318)।

15. यदि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के उक्त तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसके परिणामस्वरूप मुकदमेबाजी की बहुलता होगी क्योंकि आवेदकों को मूल वादी द्वारा प्रस्तुत कार्रवाई के उसी कारण पर घोषणा के लिए एक नया मुकदमा लाने की आवश्यकता होगी। यह आदेश 23 नियम 1 सी.पी.सी. इस प्रकार यह माना जाता है कि प्रत्याहरण के परिणामों को प्रभावी करने के लिए, प्रत्याहरण आवेदन पर संबंधित न्यायालय द्वारा एक विशिष्ट आदेश पारित किया जाना है। अन्यथा भी, लिस पेंडेंस के सिद्धांत और आदेश 22 नियम 10 सी.पी.सी. में निहित प्रावधानों के सिद्धांत पर हस्तांतरणकर्ताओं को प्रतिस्थापन से वंचित नहीं किया जा सकता था। इस सिद्धांत पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि विचारण न्यायालय ने बाद के हस्तांतरणकर्ताओं के लंबित प्रतिस्थापन आवेदन को देखते हुए मूल वादी द्वारा दायर प्रत्याहरण आवेदन को खारिज करने में गलती की थी।

16. इस न्यायालय द्वारा लिया गया उक्त दृष्टिकोण अमित कुमार शाह (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पुष्ट होता है, जिसमें यह माना गया है कि अंतरिती हालांकि अधिकार के रूप में, वाद में पक्षकार होने का हकदार नहीं है, हालांकि, न्यायालय के पास उसे एक पक्ष बनाने का विवेक है। अंतरिती पेंडेंट लाइट को एक उचित पक्ष के रूप में जोड़ा जा सकता है, यदि, वाद के विषय-वस्तु में उसकी रुचि पर्याप्त है और न केवल परिधीय। आदेश 22 नियम 10 सी.पी.सी. के तहत एक समनुदेशिती पेंडेंट लाइट को अचल संपत्ति में ब्याज के हस्तांतरण के साथ पक्ष के रूप में शामिल किया जा सकता है। वह उस हस्तांतरणकर्ता का प्रतिनिधि है जिससे उसने वह ब्याज प्राप्त किया है।

17. अन्यथा भी ऐसी स्थिति हो सकती है जहां वादी या प्रतिपक्षी, जैसा भी मामला हो, संपत्ति में अपने हित के हस्तांतरण के बाद, लंबित वाद की विषय-वस्तु के तहत अन्य पक्षों के साथ मिलीभगत कर सकता है। सी.पी.सी. के आदेश 22 नियम 10 का उद्देश्य ऐसी किसी भी स्थिति पर अंकुश लगाना और मुकदमेबाजी की बहुलता से बचना है।

18. हालांकि, यह न्यायालय का विवेक है कि वह वाद के लंबित रहने के दौरान किसी पक्षकार के समनुदेशिती के प्रतिस्थापन की अनुमति दे। आदेश 22 नियम 10 सी.पी.सी. में प्रयुक्त शब्द "न्यायालय की अनुमति से" का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि ऐसी अनुमति की मांग करने वाले एक अलग आवेदन पर न्यायालय द्वारा कोई विशिष्ट आदेश पारित किया जाना आवश्यक है। आदेश 22 नियम 10 सी.पी.सी. के तहत प्रतिस्थापन की अनुमति देने वाले आदेश का मतलब यह होगा कि न्यायालय ने मुकदमे को आगे बढ़ाने के लिए समनुदेशिती को अनुमति देना उचित समझा। इस संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलील में दम नहीं पाया गया।

15. इस न्यायालय की समझ के लिए, यह धारण करना एक बात है कि पक्षकारों द्वारा मुकदमेबाजी या शरारत की बहुलता को रोकने के लिए धोखाधड़ी या उनके बीच मिलीभगत के माध्यम से एक निर्वाह मुकदमेबाजी को रोकने के लिए, तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करने के लिए, न्यायालय अपने विवेक से, मुकदमे को आगे बढ़ाने या बचाव करने के लिए लंबित पक्षों में से एक समनुदेशिती को अनुमति दे सकता है, या उसके अधिकारों के उन्मुखीकरण के आधार पर, अन्यथा कार्रवाई के लिए एक वादी के समनुदेशिती या प्रतिपक्षी हो सकता है, लेकिन यह कहना काफी अलग है कि एक मुकदमा केवल संहिता के आदेश XIII नियम 1 तहत आवेदन करने से वापस नहीं लिया जाता है, यदि मामला तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करने वाली मिलीभगत का हो आदि, और फिर भी न्यायालय आदेश XXII नियम 10 के तहत स्थानापन्न करने या संहिता के आदेश I नियम 10 के तहत प्रभावित तीसरे पक्ष को प्रभावित करने के लिए क्षेत्राधिकार बनाए रखेगा। इस प्रस्ताव के बारे में थोड़ा संघर्ष प्रतीत होता है कि एक लंबित मुकदमे के लिए, एक समनुदेशिती पेंडेंट लाइट के पक्ष में प्रतिस्थापन को संहिता के आदेश XXII नियम 10 के तहत मुकदमे को आगे बढ़ाने की अनुमति के साथ दिया जाना चाहिए ताकि उस पक्ष के अधिकारों की पर्याप्त रक्षा की जा सके जिसके पक्ष में मूल वादी से हित सौंपा गया है, हस्तांतरित किया गया या हो सकता है। हालांकि, कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब मूल वादी ने समनुदेशिती के आने से पहले वाद वापस लेने के लिए आवेदन किया हो और आदेश XXII नियम 10 के तहत या आदेश I नियम 10 के तहत प्रतिस्थापन और/या अभियोग की मांग करते हुए अपना आवेदन किया है। उक्त मुद्दे का उत्तर, बदले में, इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि क्या संहिता के आदेश XXIII नियम 1 के तहत आवेदन करने मात्र से वाद स्वतः वापस ले लिया जाता है या न्यायालय द्वारा उस आवेदन को मंजूर करने के लिए एक सकारात्मक आदेश देना आवश्यक है।

16. इस प्रश्न ने देश में लंबे समय तक न्यायालयों का ध्यान आकर्षित किया है और अतीत में, उच्च न्यायालयों के बीच राय में काफी भिन्नता रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमती रायसा सुल्ताना बेगम और अन्य बनाम अब्दुल कादिर और अन्य में दिए गए इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले के साथ विवाद कुछ समय के लिए शांत हो गया है। रायसा

सुल्ताना बेगम (उपरोक्त) देसाई में, सीजे, डिवीजन पीठ के लॉर्डशिप के लिए बोलते हुए, विभिन्न अलग-अलग अधिकृत विधि निर्णयों को नोटिस करने के बाद, अवधारित किया:

8. चूंकि एक मुकदमा वापस लेना वादी द्वारा किया जाने वाला एकतरफा कार्य है, इसके लिए न्यायालय के प्रति मिशन या आदेश की आवश्यकता नहीं है और यह किसी भी शर्त के अधीन नहीं है, यह जल्द से जल्द प्रभावी हो जाता है जैसे कि एक समझौता करता है। न्यायालय को दी गई कोई भी जानकारी इसका हिस्सा नहीं है, इसलिए सूचना प्राप्त करने पर न्यायालय द्वारा पारित कोई भी आदेश इसका हिस्सा नहीं है। अधिनियम एक बिंदु की तरह है और एक शुरुआत और अंत वाली रेखा की तरह निरंतर नहीं है। या तो यह किया जाता है या नहीं किया जाता है; ऐसा कुछ भी नहीं है जैसे इसे अपूर्ण या अप्रभावी रूप से किया जा रहा है। प्रत्याहरण के एक अधिनियम का परिणाम यह है कि वादी न्यायालय के समक्ष वादी नहीं रह जाता है। यदि वह एकमात्र वादी है और पूरे वाद को वापस ले लेता है, तो मुकदमा समाप्त हो जाता है और न्यायालय के समक्ष कुछ भी लंबित नहीं रहता है; यदि वह कई वादियों में से केवल एक है, तो वह एक पक्ष नहीं रह जाता है और केवल अन्य वादी का मुकदमा जारी रहता है। यदि वह वाद का केवल एक भाग वापस लेता है तो वह भाग न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाता है और यह केवल दूसरे भाग के पास रह जाता है। यह अधिनियम का स्वाभाविक परिणाम है; उप-रजिस्ट्रार द्वारा लगाया गया एक और परिणाम। (3) यह है कि वह विषय-वस्तु के संबंध में कोई नया वाद संस्थित नहीं कर सकता। जैसे ही वह मुकदमा वापस लेता है, वह इस बार के अधीन हो जाता है। यदि उसे एक नया मुकदमा शुरू करने से पूरी तरह से रोक दिया गया है, तो इसका मतलब है कि वह अदालत के समक्ष वादी के रूप में अपनी स्थिति को पुनर्जीवित करने से पूरी तरह से वर्जित है। यदि उसे प्रत्याहरण को रद्द करने और वापस लिए गए मुकदमे के संबंध में खुद को वादी की स्थिति में बहाल करने की अनुमति दी गई थी, तो एक नया मुकदमा शुरू करने पर रोक निरर्थक होगी। निकासी को रद्द करने की अनुमति देने का कोई प्रावधान नहीं है। हम राजगोपाल राव बनाम भानोजी राव, ए.आई.आर. 1940 मैड 765 में होरविल से सम्मानपूर्वक सहमत हैं, जहां उन्होंने पृष्ठ 766 पर टिप्पणी की थी: -

"23 . . . . निकासी वापस लेने का कोई प्रावधान नहीं करता है; और इसलिए ऐसा लगता है कि संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत एक मुकदमा वापस लिया जा सके। ... रद्द किया जा सकता है। केवल एक चीज जो अब वादी के लिए की जा सकती है, वह है उसे अनुमति देना ..... एक नया मुकदमा दायर करने के लिए।

इसका कारण यह है कि जब प्रत्याहरण पर वादी एक पक्षकार नहीं रह गया और न्यायालय का उसके मुकदमे पर अधिकार क्षेत्र समाप्त हो गया और इस तरह फंक्टस ऑफिशियो बन गया, तो एक नए मुकदमे के अलावा कुछ भी नहीं है कि वो फिर से न्यायालय को अधिकार क्षेत्र के साथ संपर्क कर सके। जहां तक वापस लिए गए वाद का संबंध है, वाद समाप्त हो

गया है और इसमें आगे कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है; वाद और वादी मौजूद नहीं हैं और प्रत्याहरण को रद्द करने के लिए कोई आवेदन वाद में या वादी द्वारा या विचार नहीं किया जा सकता है। जब तक मुकदमा लंबित था, वादी की एक स्थिति थी और वह वाद को वापस लेने के अधिकार का प्रयोग कर सकता था जो वादी में निहित है; प्रत्याहरण पर वादी नहीं रहने के बाद उसके पास कोई स्थिति नहीं रह जाती है और वह कोई आवेदन नहीं कर सकता है या वादी के रूप में कोई कार्य नहीं कर सकता है। हम इस दृष्टिकोण से रॉस और पियर्सन, जेजे के फैसले से समर्थित हैं, राजा शमशेर बहादूर बनाम मोहम्मद अली बेग, (1867) 2 आगरा एच.सी.आर. 158।

9. राम भरोस लाल बनाम गोपी बीबी (1874) 6 एन.डब्ल्यू.पी. 66 में, यह इस न्यायालय की एक अन्य पीठ द्वारा अवधारित किया गया था, जिसमें पियर्सन, यह एक सदस्य था, कि एक वादी जिसने अपना मुकदमा वापस ले लिया है, अंतिम निर्णय से पहले किसी भी समय प्रत्याहरण के कार्य को रद्द करने के लिए स्वतंत्र है क्योंकि: -

"यह समझना मुश्किल है कि एक वादी को एक मुकदमे से वापस लेने की स्वतंत्रता क्यों होनी चाहिए और अंतिम निर्णय से पहले किसी भी समय प्रत्याहरण के कार्य को रद्द करने की समान स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए"।

हम सम्मान के साथ कारण बता सकते हैं और वो यह है कि वादी का अपना मुकदमा वापस लेने का अधिकार एक दैवीय अधिकार नहीं है, बल्कि 23-आर द्वारा उसे स्पष्ट रूप से दिया गया अधिकार है और प्रत्याहरण को रद्द करने के लिए उसे कोई अधिकार नहीं दिया गया है। जब तक वह वादी बना रहता है, तब तक वह कोई भी कार्य कर सकता है जो वह उस क्षमता में कर सकता है; वह वाद वापस लेने के बाद जिसके परिणामस्वरूप क्षमता की हानि होती है, ऐसा कार्य नहीं कर सकता है जो केवल उसी क्षमता में किया जा सकता है। विद्वान न्यायाधीशों ने राजा शमशेर बहादूर, (1867) 2 आगरा एच.सी.आर. 158 (उपरोक्त) को इस आधार पर प्रतिष्ठित किया कि उस मामले में प्रत्याहरण और प्रत्याहरण के निरसन के बीच समय का एक लंबा अंतराल था जबकि इस मामले में केवल एक दिन का अंतराल था। बहुत सम्मान के साथ, हमें यह समझना मुश्किल लगता है कि निकासी को रद्द किया जा सकता है या नहीं, यह उस देरी पर निर्भर करता है जिसके साथ इसे रद्द किया जाता है। प्रश्न अधिकार का है न कि विलंब का जिसके साथ इसका प्रयोग किया जाना है। राज कुमारी देवी बनाम नित्य काली देबी, (1910) 7 इंड कैस 892 (कलकत्ता) में, यह पृष्ठ 893 पर अवधारित किया गया था कि

"वादी के लिए अंतिम आदेश पारित होने से पहले किसी भी समय प्रत्याहरण की अपनी याचिका को वापस लेने के लिए सक्षम था।

विद्वान न्यायाधीशों ने (1874)6 एन.डब्ल्यू.पी. 66 के मामले पर भरोसा किया, और शमशेर बहादूर (1867)2 आगरा एच.सी.आर. 158 के मामले को प्रतिष्ठित किया। उनके द्वारा यह नहीं बताया गया है कि प्रत्याहरण को पूरा करने या प्रभावी करने के लिए न्यायालय के आदेश की आवश्यकता क्यों है और इस शर्त को लागू करने के लिए किसी भी प्राधिकरण

की तारीख नहीं दी है। हमने बताया है कि वापस लेने पर न्यायालय द्वारा कुछ आदेश पारित किए जा सकते हैं लेकिन वे प्रत्याहरण को प्रभावी बनाने के लिए नहीं हैं, बल्कि प्रत्याहरण से उत्पन्न होने वाले परिणामों को प्रभावी करने के लिए हैं। ओ-23-आर को किसी आदेश की आवश्यकता नहीं है; यदि वादी द्वारा कोई आवेदन नहीं किया जाना है तो आदेश का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। इसलिए, हम सम्मानपूर्वक कलकत्ता उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से असहमत हैं। मुक्कम्मल बनाम कालीमुथु पिल्लै, 15 इंडस्ट्रीज़ कैस 852 (एमएडी) में, सुंदर अय्यर का विचार था कि वादी को प्रत्याहरण के कार्य को रद्द करने का अधिकार है, जबकि सदाशिव अय्यर इस विचार के इच्छुक थे कि न तो वह अच्छे आधार को छोड़कर अपने प्रत्याहरण आवेदन को रद्द कर सकते हैं और न ही उन्हें अपनी मर्जी और खुशी पर उनके द्वारा शुरू की गई मुकदमेबाजी के साथ किसी भी तरह से खेलने की अनुमति दी जा सकती है। सुंदर अय्यर ने संहिता में किसी भी प्रावधान की अनुपस्थिति का उल्लेख करते हुए एक प्रतिपक्षी को इस बात पर जोर देने के लिए प्रकाश दिया कि अदालत द्वारा कार्रवाई नहीं की गई कि प्रत्याहरण की याचिका को वादी के खिलाफ लागू किया जाना चाहिए और सोचा कि केवल प्रत्याहरण की याचिका वादी को वाद के साथ आगे बढ़ने से नहीं रोकती है जब तक कि इस बीच न्यायालय द्वारा वाद को खारिज कर दिया जाय। हम सम्मानपूर्वक असहमत हैं क्योंकि जब कोई वादी मुकदमा वापस लेता है तो न्यायालय के किसी आदेश की आवश्यकता नहीं होती है और यह कहने का कोई औचित्य नहीं है कि प्रत्याहरण का कार्य तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि न्यायालय वाद को खारिज नहीं करता। उप-रजिस्ट्रार द्वारा लगाए गए बार प्रत्याहरण पर काम करता है और न्यायालय द्वारा वाद को खारिज करने के किसी आदेश पर नहीं और इसे वाद के पुनरुद्धार की रोकथाम को शामिल करने के लिए समझा जाना चाहिए।

लक्ष्मण पिल्लई बनाम अप्पलवार अलवर अय्यंगार, ए.आई.आर. 1923 एमएडी 246 में, ओल्डफील्ड द्वारा यह माना गया था कि लागत के संबंध में आदेश पारित करने पर मुकदमा वापस लेने के लिए एक आवेदन शर्त है। लेकिन विद्वान न्यायाधीश के संबंध में हमें ऐसा लगता है कि वाद के वादी द्वारा वापस लिए जाने और वाद की लागत दिए जाने के उसके दायित्व के बीच अंतर है। देयता प्रत्याहरण से उत्पन्न होती है, लेकिन यह तर्क देना गलत होगा कि जब तक दायित्व नहीं लगाया जाता है, तब तक निकासी पूरी नहीं होती है। प्रत्याहरण के प्रभाव से किसी भी तरह से अपमानजनक होने के बिना एक आदेश के माध्यम से देयता को वापस लेने और लागू करने के बीच समय का अंतराल हो सकता है। मिदनापुर जमींदारी कंपनी लिमिटेड बनाम राजा बिजॉय सिंह दुधुरिया, ए.आई.आर. 1941 कलकत्ता1 के तथ्य अलग-अलग थे क्योंकि वादी ने एक नया मुकदमा दायर करने की अनुमति के साथ वाद से वापस लेने की मांग की थी और इसके लिए न्यायालय से अनुमति देने के आदेश की आवश्यकता थी। एक नया मुकदमा दायर करने की स्वतंत्रता के बिना प्रत्याहरण के बीच एक अंतर है जो वादी के

पूर्ण विवेक पर है और स्वतंत्रता के साथ प्रत्याहरण जो केवल तभी की जा सकती है जब न्यायालय अनुमति देता है। इस मामले में न्यायालय ने स्वतंत्रता के साथ वापस लेने की अनुमति के लिए आवेदन पर पारित आदेश को स्थगित कर दिया और आदेश पारित होने से पहले वादी ने आवेदन वापस ले लिया। एक वादी को स्वतंत्रता के साथ प्रत्याहरण के लिए एक आवेदन वापस लेने का अधिकार हो सकता है, लेकिन यह इस बात का पालन नहीं करता है कि एक वादी जो उप-रजिस्ट्रार के तहत मुकदमा वापस लेता है। न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित करने से पहले प्रत्याहरण को रद्द करने का अधिकार है। फिर हम यशवंत गोवर्धन बनाम तोताराम अवसु, ए.आई.आर. 1958 बॉम्बे 28 पर आते हैं, जिसमें दीक्षित और व्यास न्यायमूर्तियों ने कहा कि एक वादी द्वारा मुकदमा वापस लेने के लिए एक आदेश की आवश्यकता होती है, कि जब तक कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है तब तक इसे वापस लिया जा सकता है और आवेदन वापस लेने के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं है। बहुत सम्मान के साथ हमें सहमत होना मुश्किल लगता है। यह सच है कि एक अदालत का एक वाद के माध्यम से वादी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही पर नियंत्रण होता है, लेकिन वादी को किसी भी स्तर पर इससे हटने का पूर्ण अधिकार दिया गया है और अदालत का प्रत्याहरण के इस कार्य पर कोई नियंत्रण नहीं है। विद्वान न्यायाधीशों ने पृष्ठ 29 पर कहा:

"अगर. . . . . वादी को अपना मुकदमा वापस लेने का अधिकार है, उसके पास समान रूप से, अपनी प्रत्याहरण वापस लेने का अधिकार है, और जब तक न्यायालय ने यह दिखाने का आदेश नहीं दिया है कि प्रत्याहरण पूर्ण या प्रभावी हो गई है, तब तक वादी के लिए अपनी प्रत्याहरण वापस लेने के लिए हमेशा एक लोकस पेनिटेंशिया होता है।

वापस लेने का अधिकार नियम 1(1) द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है; प्रत्याहरण को रद्द करने का अधिकार प्रदान करने का कोई प्रावधान नहीं है और यह कहने का कोई औचित्य नहीं है कि वापस लेने के अधिकार में प्रत्याहरण को रद्द करने का अधिकार शामिल है। जैसा कि हमने पहले कहा, प्रत्याहरण से कुछ परिणाम उत्पन्न होते हैं जो उसे प्रत्याहरण को रद्द करने से रोकते हैं, प्रत्याहरण पूर्ण या प्रभावी होती है जैसे ही यह होती है, और किसी भी मामले में, जैसे ही इसकी जानकारी न्यायालय को दी जाती है, और इसे लागू करने या यहां तक कि इसे मान्यता देने के लिए न्यायालय के किसी आदेश की आवश्यकता नहीं होती है। तब विद्वान न्यायाधीशों ने लागत के संबंध में आदेश का उल्लेख किया और अनुमान लगाया कि न्यायालय को प्रत्याहरण के बाद एक आदेश देना होगा। न्यायालय जो भी आदेश दे सकता है, या जो उसे करना पड़ सकता है, वह प्रत्याहरण के संबंध में नहीं है, बल्कि प्रत्याहरण के प्रभाव या परिणामों के बारे में है, जो काफी अलग मामला है। यह प्रस्ताव कि एक वादी को प्रत्याहरण के लिए अपना आवेदन वापस लेने का पूर्ण अधिकार है, सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया है और हम

पहले ही इसके विपरीत टिप्पणियों का उल्लेख कर चुके हैं। अंत में, हम मसूलीपट्टम नगर पालिका बनाम वेंकटप्पय्या, ए.आई.आर. 1960 अंध्र प्र उमामहेश्वरम और एस. ओअमर हसन 572 पर आते हैं।

जे.जे. "ओ-23, आर 1, उप-रजिस्ट्रार (3) के तहत न्यायिक कलम के स्ट्रोक के बिना सी.पी.सी. वाद समाप्त नहीं किया जाता है और उपयुक्त मामलों में ओ 1, आर 10 या ओ 22, आर 10 सी.पी.सी. के प्रावधान लागू किए जा सकते हैं।

आदेश आर.1, उप-रजिस्ट्रार (3) में संदर्भित है। वाद से अपनी प्रत्याहरण के कारण वादी पर केवल एक लागत लगा रहा है; यह प्रावधान किसी आदेश पर विचार नहीं करता है।

10. ए.आई.आर. 1958 बॉम्बे 28 (उपरोक्त) और ए.आई.आर. 1923 मद्रास 246 में, लोकस पेनिटेंशिया का सिद्धांत उन्नत किया गया था और यह माना गया था कि एक वादी प्रत्याहरण के संबंध में न्यायालय द्वारा आदेश दिए जाने से पहले किसी भी समय एक वाद की अपनी प्रत्याहरण को रद्द कर सकता है। हम पूरे सम्मान के साथ यह कह सकते हैं कि यदि लोकस पेनिटेंशिया की अनुमति दी जानी है तो इसकी अनुमति विधायिका द्वारा दी जानी चाहिए न कि न्यायालयों द्वारा। हमें कोई कारण नहीं दिखता कि हमें अपने मुकदमे को वापस लेने की दहलीज पर एक वादी के बारे में इतना चिंतित क्यों होना चाहिए कि हमें उसे लोकस पेनिटेंशिया की अनुमति देनी चाहिए। ऐसा कोई कारण नहीं है कि एक वादी को लोकस पेनिटेंशिया होने का दावा करना चाहिए और किसी भी मामले में उसे जो भी लोकस पेनिटेंशिया चाहिए, वह पहले से ही वापस लेने के उसके मानसिक निर्णय और प्रत्याहरण के न्यायालय को सूचित करने के बीच है। किसी वाद के संस्थापन या समझौते के मामले में उसका कोई अधिकार नहीं है और यह कहने का कोई औचित्य नहीं है कि वाद वापस लेने के बाद उसे अधिकार प्राप्त है। लोकस पेनिटेंशिया का सिद्धांत जमीन पर गिर जाता है जब यह महसूस किया जाता है कि उसे वापस लेने के लिए आवेदन नहीं करना है न तो और न ही प्रत्याहरण की अनुमति देने, मान्यता देने या पुष्टि करने के आदेश की आवश्यकता है।

11. इसलिए, हमें संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर नकारात्मक है।

17. रायसा सुल्ताना बेगम में डिवीजन पीठ के निर्णय ने संहिता के आदेश XXIII नियम 1 के तहत बिना शर्त प्रत्याहरण की, जो वादी द्वारा आवेदन करने मात्र पर प्रभावी थी, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा सुन्नी सेंट्रल बोर्ड बनाम श्री गोपाल सिंह विशारद4 में खारिज कर दिया गया था, जहां यह अवधारित किया गया था:

1035. एक बार एक मुकदमा विधिवत स्थापित हो जाने के बाद, न्यायालय प्रतिपक्षियों को उपस्थित होने और वाद का जवाब देने के लिए सम्मन जारी करने का आदेश पारित करेगा। आदेश V नियम 3 के तहत ऐसे सम्मन पर न्यायाधीश या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाने और न्यायालय की मुहर पर हस्ताक्षर किए जाने की आवश्यकता होती है। एक बार विधिवत रूप से संस्थापित और न्यायालय में पंजीकृत एक मुकदमा वादी

द्वारा मौखिक रूप से या लिखित रूप में केवल संचार पर न्यायालय के रिकॉर्ड से नहीं हटाया जाएगा कि वह वापस लेने का इरादा रखता है जब तक कि न्यायालय द्वारा उक्त प्रभाव का आदेश पारित नहीं किया जाता है, जिसका कानूनी परिणाम होगा मुकदमा शुरू करके कार्यवाही को गति में लाने का एक पड़ाव के लिए। वाद वापस लेने के लिए वादी द्वारा दायर आवेदन को वापस लेने की अनुमति देने वाले किसी प्रावधान की अनुपस्थिति का अर्थ यह नहीं है कि वादी में ऐसी कोई शक्ति निहित नहीं है। जब तक न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है, यदि वादी न्यायालय को एक आवेदन देकर सूचित करता है कि वह मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन वापस लेने का इरादा रखता है, तो वह हमेशा न्यायालय से अनुरोध कर सकता है या सूचित कर सकता है कि वह आवेदन पर जोर नहीं देना चाहता है और इसे खारिज किया जा सकता है क्योंकि उसे दबाया या वापस नहीं लिया गया है। यह केवल तभी होता है जब वादी न्यायालय के समक्ष अपने आवेदन को दबाता है जिसमें उसे वाद वापस लेने के लिए आदेश पारित करने की आवश्यकता होती है, न्यायालय उक्त आदेश को कानून के अनुसार पारित करेगा क्योंकि यह वादी को वाद को आगे बढ़ाने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है, हालांकि वह इसे वापस लेना चाहता है। इस प्रकार यह धारण करना पूरी तरह से अन्यायपूर्ण होगा कि एक बार वादी द्वारा मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन दायर करने के बाद, वह इसे वापस नहीं ले सकता है और मुकदमा वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया जाएगा। इसके गंभीर और कठोर परिणाम होंगे क्योंकि वह कार्रवाई के उसी कारण पर एक नया मुकदमा दायर नहीं कर सकता है।

1036. इसके अलावा, एक प्रावधान यानी नियम 1(3) का अस्तित्व, न्यायालय को यह विचार करने के लिए सशक्त बनाता है कि क्या वादी को लागत के भुगतान के दायित्व से दुखी किया जाना चाहिए या नहीं, यह भी विचार करता है कि अपने आप में मुकदमा वापस लेने के लिए एक आवेदन का परिणाम किसी भी परिणाम में नहीं होगा जब तक कि न्यायालय ने लागत के बारे में अपना दिमाग नहीं लगाया है। यदि श्रीमती रायसा सुल्ताना बेगम (उपरोक्त) में जो कहा गया है उसे सही माना जाता है, तो इसका मतलब यह होगा कि न्यायालय के लिए नियम 1(3) के तहत लागत के सवाल पर अपना दिमाग लगाने का कोई अवसर नहीं होगा क्योंकि जैसे ही वादी मौखिक रूप से या लिखित रूप में मुकदमा वापस लेने के अपने फैसले के बारे में अदालत को सूचित करता है, मुकदमा खारिज कर दिया जाएगा। यह और कुछ नहीं बल्कि नियम 3(1) को अनावश्यक बना देना है। राजा शमशेर बहादुर बनाम मिर्जा मोहम्मद अली (1867) आगरा एच.सी.आर. 158 में इस न्यायालय के पहले के फैसले में यह विचार लिया गया था कि प्रत्याहरण को स्वचालित रूप से समाप्त करने के रूप में माना जाना चाहिए, जिसमें वाद की तत्काल बर्खास्तगी शामिल है, बाद में राम भरोस लाल में डिवीजन पीठ द्वारा सही नहीं पाया गया था। इसलिए, हम पूरे तथ्यों और परिस्थितियों में एक अलग दृष्टिकोण लेना उचित समझते हैं और पीठ के प्रति बहुत

सम्मान के साथ यह मानने में कोई संकोच नहीं करते हैं कि श्रीमती रायसा सुल्ताना बेगम (उपरोक्त) में निर्धारित कानून सही नहीं है। हमारे विचार में, राम भरोस लाल (उपरोक्त), मुक्कम्मल बनाम कालीमुथु पिल्लै (उपरोक्त), राज कुमारी देवी बनाम नृत्य काली देवी (उपरोक्त) और यशवंत गोवर्धन बनाम तोताराम (उपरोक्त) में निर्धारित कानून सही कानून निर्धारित करता है। हम यह भी पाते हैं कि प्रेमा चंदा बारिक बनाम प्रफुल्ल कुमार मोहंती ए.आई.आर. 1988 उड़ीसा 33 में उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है और श्रीमती रायसा सुल्ताना बेगम (उपरोक्त) में डिवीजन पीठ के फैसले से खुद को सहमत नहीं पाया है। वास्तव में, रामेश्वर सरकार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य ए.आई.आर. 1986 कलकत्ता 19 में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने यह देखते हुए थोड़ा आगे बढ़ाया है कि जहां संहिता के तहत मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन वापस लेने का प्रावधान नहीं है, वहां धारा 151 सी.पी.सी. लागू होगी।

18. इसलिए, रायसा सुल्ताना बेगम को मेसर्स ऑटो ऑयल कंपनी और दूसरे बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य में इस न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा और भजन लाल और अन्य बनाम कामता प्रसाद की बेटी श्रीमती राजमाला द्वारा एक अन्य विद्वान न्यायाधीश द्वारा अब अच्छा कानून नहीं माना गया था, जिन्होंने मेसर्स ऑटो ऑयल कंपनी (उपरोक्त) में निर्णय पर भी ध्यान दिया था। यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय के दोनों निर्णयों में, बुद्धि, भजन लाल (उपरोक्त) और मेसर्स ऑटो ऑयल कंपनी, राजेंद्र प्रसाद गुप्ता बनाम प्रकाश चंद्र मिश्रा और अन्य में उच्चतम न्यायालय के फैसले का उल्लेख किया गया था, जहां यह अवधारित किया गया है:

1. अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी 1 से 3 के अधिवक्ता को सुना। प्रतिपक्षी 4 के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह अपील, विशेष अनुमति द्वारा, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के दिनांक 6-2-2004 के आक्षेपित निर्णय के खिलाफ दायर की गई है, जो एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-2103 वर्ष 2003 में पारित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता सिविल जज (जूनियर डिवीजन), वाराणसी की अदालत के समक्ष वाद संख्या-1301 वर्ष 1997 में वादी था। उन्होंने उक्त वाद वापस लेने के लिए अर्जी दी। तत्पश्चात्, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपना विचार बदल दिया और इससे पहले कि प्रत्याहरण आवेदन में कोई आदेश पारित किया जा सके, उन्होंने पहले के निकासी आवेदन को वापस लेने की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन दायर किया। दूसरा आवेदन खारिज कर दिया गया था और उस आदेश को उच्च न्यायालय ने बरकरार रखा था। इसलिए विशेष अनुमति से यह अपील।

3. उच्च न्यायालय का विचार था कि एक बार मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन दायर होने के बाद मुकदमा वापस लेने के आवेदन पर किसी भी आदेश के बिना भी वापस ले लिया गया माना जाता है। इसलिए, दूसरा आवेदन सुनवाई योग्य नहीं था।

4. हम सहमत नहीं हैं। प्रक्रिया के नियम न्याय की दासी हैं। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 न्यायालय को न्याय करने की अंतर्निहित शक्तियां प्रदान करती है। उस उपबंध का अर्थ यह निकाला जाना चाहिए कि न्यायालय को न्याय करने के लिए प्रत्येक प्रक्रिया की अनुमति है जब तक कि स्पष्ट रूप से निषिद्ध न हो, और यह नहीं कि प्रत्येक प्रक्रिया तब तक निषिद्ध है जब तक कि स्पष्ट रूप से अनुमति न दी जाए। निकासी आवेदन वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल करने में कोई स्पष्ट रोक नहीं है।

5. नरसिंह दास बनाम मंगल दुबे [आई.एल.आर. (1883) 5 इलाहाबाद 163] में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रसिद्ध न्यायाधीश महमूद ने कहा:

"अदालतों को इस सिद्धांत पर कार्य नहीं करना है कि प्रत्येक प्रक्रिया को निषिद्ध माना जाना चाहिए जब तक कि यह संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है, लेकिन इसके विपरीत सिद्धांत पर कि प्रत्येक प्रक्रिया को तब तक अनुमेय माना जाना चाहिए जब तक कि इसे कानून द्वारा निषिद्ध नहीं दिखाया जाता है। सामान्य सिद्धांत के रूप में निषेध नहीं माना जा सकता है।

6. उपरोक्त दृष्टिकोण का अनुसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने राज नारायण सक्सेना बनाम भीम सेन [ए.आई.आर. 1966 इलाहाबाद 84] में किया था और हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं। तदनुसार, हमारी राय है कि निकासी आवेदन को वापस लेने की प्रार्थना करने वाला आवेदन सुनवाई योग्य था। हम तदनुसार आदेश देते हैं।

7. परिणाम में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाता है और अपील की अनुमति दी जाती है। कोई लागत नहीं। वाद की कार्यवाही होगी और गुण-दोष के आधार पर शीघ्रता से निर्णय लिया जाएगा।

19. भजन लाल का निर्णय करने वाले विद्वान न्यायाधीश ने उच्चतम न्यायालय के फैसलों में कुछ मतभेद देखा और सुन्नी सेंट्रल बोर्ड (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ और राजेंद्र प्रसाद गुप्ता में उच्चतम न्यायालय के विधि निर्णय पर भरोसा करते हुए विचार के पक्ष में कहा कि प्रत्याहरण तब तक नहीं होती जब तक कि न्यायालय द्वारा इसकी अनुमति देने का आदेश पारित नहीं किया जाता। भजन लाल में, न्यायिक राय के टकराव से उत्पन्न कठिनाइयों पर विचार करने और अलग-अलग परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले पक्षों के अधिकारों की पृष्ठभूमि में विचार करने के बाद, यह अवधारित किया गया था:

31. यह तर्क उठाया गया है कि आदेश 21 नियम 89 (II) में समान शब्द हैं और न्यायालय का आदेश आवश्यक नहीं है, आकर्षित नहीं होता है, क्योंकि आदेश XXIII की सामग्री पूरी तरह से अलग है जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। एक वादी किसी मामले को लड़ने के अपने अधिकार को आत्मसमर्पण कर सकता है जो आदेश XXIII का सार है। आत्मसमर्पण के ऐसे इरादे को वापस लेने या उसे रद्द करने का अधिकार जो ऊपर चर्चा की गई परिस्थितियों में उत्पन्न हो सकता है, एक अलग मुद्दा है। इसलिए, दावे के संपूर्ण अस्वीकरण के संबंध में ये सामग्री निष्पादन से

उत्पन्न मामले में आदेश 21 नियम 89(2) के प्रावधानों के साथ तुलनीय नहीं है।

20. श्रीमती कांतेश्वरी तिवारी (मृत) विधि परामर्शी बनाम बद्री प्रसाद और अन्य के माध्यम से, इस न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने सुन्नी सेंट्रल बोर्ड में पूर्ण पीठ का अनुसरण किया और मेसर्स ऑटो ऑयल कंपनी में एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण का समर्थन किया। कांतेश्वरी तिवारी (उपरोक्त) में, यह देखा गया था:

26. मुझे लगता है कि निर्णय का यह हिस्सा अब एक अच्छा कानून नहीं है क्योंकि रायसा सुल्तान बेगम (उपरोक्त) में डिवीजन पीठ के फैसले को पहले ही सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ बनाम श्री गोपाल सिंह विशारद [2010 एडीजे पेज 1(एसएफबी) (एलबी): 2010 (83) ए.एल.आर. 26 (योग) में बहुमत के फैसले में इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है। तेल कंपनी मझोला देवी बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड [2011(5) एडीजे 800। माननीय एकल न्यायाधीश ने पाया है कि हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने भी राजेंद्र प्रसाद गुप्ता बनाम प्रकाश चंद्र मिश्रा [2011(85) ए.एल.आर. 715 (एस.सी.)] में इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है, जो इस न्यायालय के एक फैसले को उलट रहा है। इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि एक बार मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन दायर करने के बाद पहले के आवेदन को वापस लेने के लिए आगे प्रत्याहरण आवेदन दायर करने का कोई अवसर नहीं है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह देखते हुए अस्वीकार कर दिया गया है कि प्रत्याहरण आवेदन वापस लेने की प्रार्थना करने वाला आवेदन सुनवाई योग्य था।

21. जहां तक यह प्रस्ताव है कि रायसा सुल्ताना बेगम में पीठ का फैसला अब अच्छा कानून नहीं है, क्योंकि यह वादी द्वारा संहिता के आदेश XXIII नियम 1 के तहत आवेदन करने के प्रभाव के बारे में खारिज कर दिया गया है, सुन्नी सेंट्रल बोर्ड में पूर्ण पीठ की पकड़ के मद्देनजर मान्य नहीं है। सुन्नी सेंट्रल बोर्ड में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को उच्चतम न्यायालय ने कानूनी प्रतिनिधियों (राम जन्मभूमि मंदिर मामला) बनाम महंत सुरेश दास और अन्य के माध्यम से एम सिद्दीक (मृत) में रद्द कर दिया है। इस न्यायालय के ध्यान में कुछ भी नहीं लाया गया है कि संहिता के आदेश XXIII नियम 1 के तहत आवेदन करने के प्रभाव के संबंध में पूर्ण पीठ में कानून का सिद्धांत, जहां न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, को सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा अनुमोदित किया गया है। इस न्यायालय की राय में, एम. सिद्दीक (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस न्यायालय के फैसले को रद्द करने के प्रभाव से सुन्नी सेंट्रल बोर्ड में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित बिंदु पर सिद्धांत का उन्मूलन होगा और इसके बाद मेसर्स ऑटो ऑयल कंपनी और भजन लाल में विद्वान न्यायाधीशों द्वारा पालन किया गया था।

22. इसके विपरीत, अनुराग मित्तल बनाम शैली मिश्रा मित्तल में उच्चतम न्यायालय का बाद का एक निर्णय है, जहां यहां विचार के लिए

आने वाले मुद्दे पर, यह अवधारित किया गया है:

17. अनिल दिनमणि शंकर जोशी बनाम पनवेल नगर परिषद [अनिल दिनमणि शंकर जोशी बनाम पनवेल नगर परिषद, 2003 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम्बे 24, पैरा 3-4: ए.आई.आर. 2003 बॉम्बे 238, पृष्ठ 239] में बॉम्बे उच्च न्यायालय ने शिव प्रसाद [शिव प्रसाद बनाम दुर्गा प्रसाद, (1975)1 एस.सी.सी. 405] में इस न्यायालय के फैसले का पालन किया और कहा कि उक्त निर्णय मुकदमों पर भी लागू होता है। उच्च न्यायालय ने वादी के बिना शर्त अपने मुकदमे को वापस लेने के अधिकार को मान्यता दी और माना कि जैसे ही वादी प्रत्याहरण की अपनी अर्ज़ी दायर करता है, प्रत्याहरण पूरी हो जाएगी।

23. इस न्यायालय की समझ के अनुसार, अनुराग मित्तल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का आयोजन, जो राजेंद्र प्रसाद गुप्ता की तुलना में बहुत बाद का निर्णय है, इस न्यायालय को बाध्य करेगा। सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों के बीच संघर्ष की स्थिति में, सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ और कम ताकत वाली पीठ के बीच संघर्ष के संदर्भ में उच्च न्यायालय के समक्ष एक प्रश्न उठ सकता है, या यह समान संख्या की पीठ द्वारा दिए गए दो परस्पर विरोधी निर्णयों के संदर्भ में उत्पन्न हो सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा पालन किया जाने वाला सिद्धांत, जिसके बारे में सर्वोच्च न्यायालय की मिसाल बाध्य होगी, गोपाल कृष्ण इंडले बनाम 5 वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कानपुर और अन्य में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के विचार के लिए आया। गोपाल कृष्ण इंडले (उपरोक्त) में, केसी अग्रवाल ने पीठ के लिए बोलते हुए कहा:

19. सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में अपनी घोषणाओं की बाध्यकारी प्रकृति पर विचार किया है। उन मामलों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। ऐसे मामले में जहां एक उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय की बड़ी और छोटी पीठों द्वारा व्यक्त विचारों के बीच कोई विरोधाभास पाता है, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ऐसे उच्च न्यायालय के लिए उचित रास्ता उच्चतम न्यायालय की बड़ी पीठों द्वारा व्यक्त की गई राय का पालन करना है, जो कि न्यायालय की छोटी पीठों द्वारा व्यक्त की गई राय का पालन करते हैं (देखें उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम चंद्र, (1976) 4 एस.सी.सी. 52: ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2547)।

20. हालांकि, हमारे सामने कठिनाई थोड़ी अलग है, और ऊपर उद्धृत प्राधिकरण द्वारा आच्छादित नहीं की गई है। हम ऐसी स्थिति का सामना कर रहे हैं जहां उच्चतम न्यायालय के दो समान क्षमता वाले न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णयों के बीच टकराव होता है। हम यहां उन कारणों से चिंतित नहीं हैं जिनके कारण ये संघर्ष हुए।

21. रूपर्ट क्रॉस ने “Precedent in English Law” पर अपनी पुस्तक में तीसरे संस्करण पृष्ठ 133 में इस मामले पर निम्नलिखित शब्दों में चर्चा की है:

"यदि इस संभावना को पहचानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है कि एक ही न्यायालय के पिछले फैसले संघर्ष कर सकते हैं, तो यह एक प्रवृत्ति है जिसकी मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

न्यायालय का ध्यान अक्सर सभी संबंधित विधि निर्णयों की ओर आकर्षित नहीं किया जाता है, कुछ मामलों में विशेष रूप से अच्छी तरह से बहस नहीं की जाती है और अनारक्षित निर्णय अक्सर दिए जाते हैं। इन घटनाओं की निंदा करना बेकार है क्योंकि वे तब तक जारी रहेंगे जब तक बैरिस्टर, न्यायाधीश और वादी मानव बने रहेंगे.....।

22. वर्तमान संदर्भ जैसी स्थिति को पूरा करने के लिए यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम राज्य सड़क परिवहन न्यायाधिकरण, उत्तर प्रदेश लखनऊ (ए.आई.आर. 1977 इला.1): (1976 इला. एल.जे. 683) में हमारे न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय के लिए किया जा सकता है, जहां पूर्ण पीठ ने अवधारित किया: -

"भले ही उच्चतम न्यायालय के दो फैसलों में कुछ विरोधाभास हो, हमें मैसूर राज्य परिवहन निगम के बाद के मामले में घोषित कानून का पालन करना होगा।

23. इसी आशय का विचार गोविंदनायक जी कलघतगी बनाम वेस्ट पेटेंट प्रेस कंपनी लिमिटेड (ए.आई.आर. 1980 कांत 92) में कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा और सोवचंद मूलचंद बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क और भूमि सीमा शुल्क कलेक्टर (ए.आई.आर. 1968 कलकत्ता 174) में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया है। इस प्रकार, स्पष्ट संघर्ष होने की स्थिति में, ऐसी बाद की पीठ का निर्णय हम पर बाध्यकारी होगा।

24. XXXXX

25. इसलिए, हम सर्वोच्च न्यायालय के बाद के फैसले को इस आधार पर नजरअंदाज नहीं कर सकते कि यह प्रति इंकुरियम है।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

24. गंगा सरन बनाम सिविल जज, हापुड़, गाजियाबाद और अन्य में इस न्यायालय की बाद की पूर्ण पीठ के फैसले में, लॉर्डशिप द्वारा यह देखा गया था:

6. पहले प्रश्न के संबंध में, कमरुद्दीन के मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय, जो बाद में एक तरफ़ा निर्णय है और विशेष कुमार बनाम शांति प्रसाद (उपरोक्त) और विष्णु अवतार बनाम शिव अवतार (उपरोक्त) में निर्णय जो बृहस्पति चिट फंड (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम द्वारका देश (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करता है, यह दर्शाता है कि उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण की स्थिरता के सवाल पर सीधा संघर्ष है। धारा 115, सी.पी.सी. उच्चतम न्यायालय के दोनों निर्णय दो माननीय न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में विचारणीय प्रश्न इस प्रकार हैं: जब समान शक्ति वाले न्यायाधीशों द्वारा दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों के बीच सीधा संघर्ष होता है, तो उनमें से किसका उच्च न्यायालय द्वारा पालन किया जाना चाहिए और क्या सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णय का सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णय को रद्द करने का प्रभाव पड़ता है?

7. निर्णय की एक पंक्ति यह है कि यदि सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों में कोई

विरोधाभास है, तो वह निर्णय जो बाद में समय पर होता है, उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। निर्णयों की दूसरी पंक्ति यह है कि यदि समान प्राधिकरणों से युक्त सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच कोई संघर्ष होता है, तो समय की घटना एक प्रासंगिक कारक नहीं है और उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है।

8. इंडो स्विस टाइम लिमिटेड, डूंडाहेड़ा बनाम उमराव, ए.आई.आर. 1981 पंजाब एंड हरियाणा 213 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई। उक्त मामले में पूर्ण पीठ ने जो कहा वह नीचे दिया गया है (आकाशवाणी के पीपी 219-220 पर):

"अब यह तर्क कि एक समन्वय पीठ के नवीनतम निर्णय का यांत्रिक रूप से पालन किया जाना है और किसी भी अन्य विचार के बावजूद इसे श्रेष्ठता होनी चाहिए, मेरे लिए खुद की सिफारिश नहीं करता है। जब उच्चतर न्यायालय के निर्णय सह-समान पीठों के होते हैं और इसलिए, मिलान प्राधिकार के होते हैं, तो उनके वजन पर अनिवार्य रूप से तर्क वितर्क द्वारा विचार किया जाना चाहिए, न कि उस समय और तारीख की केवल आकस्मिक परिस्थितियों से, जिस पर उन्हें प्रदान किया गया था। यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालय और समान अधिकार के दो सीधे परस्पर विरोधी निर्णय मौजूद होते हैं तो वे दोनों निचली अदालतों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते हैं। अनिवार्य रूप से एक विकल्प, हालांकि एक मुश्किल है, ऐसी स्थिति में बनाया जाना है। सिद्धांत रूप में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करता प्रतीत होता है। समय की घटना मात्र कि क्या उच्चतर न्यायालय की सह-समान पीठों के निर्णय पहले बाद में हैं, एक विचार है जो मुझे शायद ही प्रासंगिक लगता है।

9. xxxxxxx

10. उपरोक्त कारणों से यह माना जाना चाहिए कि कमरूद्दीन के मामले (1990 इलाहाबाद डब्ल्यूसी 308) (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय का निर्णय इस हद तक माना जाता है कि जिला न्यायालय द्वारा पारित अपीलीय या पुनरीक्षण आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण उच्च न्यायालय में धारा 115, सी.पी.सी. (यूपी अधिनियम 31/78 द्वारा संशोधित) के तहत बनाए रखने योग्य है, कानून को सही ढंग से नहीं बताता है या इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को रद्द नहीं करता है। (ख) मैसर्स जुपिटर चिट फंड (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम द्वारका देश (ए.आई.आर. 1979 इलाहाबाद 218) (उपरोक्त) के मामले में विशेष रूप से तब जब इसे उच्चतम न्यायालय के पूर्व के दो निर्णयों द्वारा विशेष रूप से अनुमोदित किया गया हो।

25. यह प्रश्न हाल के समय में रमन गोपी और एक अन्य बनाम कुंजू राम उथमान में केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष भी आया था। इस मुद्दे पर रमन गोपी (उपरोक्त) में, यह राय दी गई है:

77. विधिक स्थिति, जो इस न्यायालय सहित सर्वोच्च न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों में वर्णित सिद्धांतों की चर्चा और विश्लेषण पर उभरती है, ताकि परस्पर विरोधी निर्णयों का सामना करने पर उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के मार्गदर्शन के रूप में कार्य किया जा सके, नीचे संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है: -

(i) उच्चतम न्यायालय की समान पद संख्या वाली दो न्यायपीठों के निर्णयों में परस्पर विरोधी विचारों के मामले में, बाद में लिया गया निर्णय पहले वाले पर अभिभावी होगा;

(ii) जो बाध्यकारी है वह अनुपात निर्धारक है। एक निर्णय केवल एक प्राधिकरण है जो वह वास्तव में निर्णय लेता है।

(iii) एक निर्णय जो व्यक्त नहीं किया गया है और कारणों पर नहीं पाया जाता है और न ही मुद्दे पर विचार करने पर कार्यवाही करता है, उसे बाध्यकारी प्रभाव घोषित कानून नहीं माना जा सकता है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 141 द्वारा विचार किया गया है। इसी तरह, बिना दिमाग लगाए या बिना किसी कारण के पहले की गई कोई भी घोषणा या निष्कर्ष, कानून की घोषणा नहीं हो सकती है, या एक बाध्यकारी मिसाल के रूप में अधिकृत विधि निर्णय नहीं हो सकता है;

(iv) यह अच्छी तरह से तय है कि निर्णय का सार अनुपात है और प्रत्येक अवलोकन नहीं है, न कि इसमें किए गए विभिन्न अवलोकनों से तार्किक रूप से क्या अनुसरण करता है।

(v) उस कारण या सिद्धांत का प्रतिपादन, जिस पर न्यायालय के समक्ष किसी प्रश्न का विनिश्चय किया गया है, केवल पूर्वोदाहरण के रूप में बाध्यकारी है। अकेले ठोस निर्णय इसके पक्षों के बीच बाध्यकारी है, लेकिन यह अमूर्त अनुपात निर्णय है, जो निर्णय के विषय-वस्तु के संबंध में निर्णय के विचार पर पता लगाया जाता है, जिसमें अकेले कानून का बल है और जो, जब यह स्पष्ट है कि यह क्या था, बाध्यकारी है। निर्णय में निर्धारित सिद्धांत ही संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत बाध्यकारी कानून है।

(vi) एक निर्णय उप-मौन से गुजरता है, तकनीकी अर्थ में जो उस वाक्यांश से जुड़ा हुआ है, जब निर्णय में शामिल कानून का विशेष बिंदु अदालत द्वारा नहीं माना जाता है या उसके दिमाग में मौजूद नहीं होता है। (न्यायशास्त्र पर सैल्मंड, 12 वां संस्करण, पृष्ठ 153)।

(vii) दो न्यायाधीशों की खण्ड न्यायपीठ के निर्णय और बड़ी न्यायपीठ और विशेष रूप से संविधान पीठ के निर्णय के बीच विवाद की स्थिति में खण्ड न्यायपीठ बाद वाले निर्णय से आबद्ध होगी।

(viii) प्रति इंकुरियम का अर्थ है पिछले, जैसे कि स्वयं का या समन्वय या उच्चतर क्षेत्राधिकार के न्यायालय का निर्णय या किसी क़ानून की शर्तों या कानून के बल वाले नियम की अज्ञानता में बाध्यकारी निर्णय की अज्ञानता से दिया गया निर्णय। पहले के बाध्यकारी मिसाल के लिए एक विशिष्ट संदर्भ बनाने वाला एक निर्णय सही हो सकता है या नहीं भी हो सकता है, लेकिन इसे प्रति इंकुरियम नहीं कहा जा सकता है। (न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

26. डी. वी. लक्ष्मण राव बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले में भी यही मुद्दा दोहराया गया था, जहां यह देखा गया था:

14. अब यह सुस्थापित है कि यदि उच्चतम न्यायालय के दो परस्पर विरोधी निर्णय हों, जिनमें न्यायाधीशों की संख्या समान हो, तो उच्चतम न्यायालय पहले वाले न्यायाधीशों पर अभिभावी होगा। लेकिन जहां पहले का फैसला बड़ी पीठ का हो और बाद वाला फैसला छोटी पीठ का हो, तो बड़ी पीठ का फैसला बाध्यकारी होगा। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रामचंद्र [ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2574] में उच्चतम न्यायालय ने माना कि जहां उच्च न्यायालय एक बड़ी पीठ और एक छोटी पीठ द्वारा व्यक्त विचारों के बीच विरोधाभास पाता है, उच्च न्यायालय के लिए उचित तरीका यह है कि बड़ी पीठ के फैसले के अनुपात निर्णय का पता लगाया जाए और छोटी पीठ द्वारा व्यक्त राय को वरीयता देते हुए उसका पालन किया जाए। इसलिए मैं मरियप्पा के फैसले का पालन करने के बजाय सतेंद्र प्रसाद जैन और प्रताप के फैसलों का पालन करने के लिए बाध्य हूं जो बड़ी पीठ के हैं।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

27. यहां न्यायालय ने जो पाया वह यह है कि राजेंद्र प्रसाद गुप्ता मामले में उच्चतम न्यायालय का फैसला अनुराग मित्तल से पहले का है। दोनों निर्णय दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किए जाते हैं। 'थंब रूल' के अनुसार, जिसके बारे में आम सहमति है, बाद का निर्णय इस न्यायालय को बाध्य करेगा। इसलिए, यह न्यायालय अनुराग मित्तल के सिद्धांत से बंधा होगा। यहां तक कि अगर अन्य सिद्धांत जिसे हमारे न्यायालय की बाद की पूर्ण पीठ ने बाद के निर्णय नियम के विकल्प के रूप में प्रतिपादित किया है, अर्थात गंगा सरन में पूर्ण पीठ का पालन किया गया था, तो इस न्यायालय को यह देखना होगा कि किस निर्णय ने कानून को विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित किया है। उस दृष्टिकोण से भी निर्णय लिया जाए, तो अनुराग मित्तल में निर्णय अधिक विस्तृत प्रतीत होता है, जहां इस मुद्दे पर पूर्ण विचार किया गया है। किसी भी आधार पर, हालांकि यह न्यायालय बाद के निर्णय के बारे में 'थंब रूल' नियम के साथ जाता है, अनुराग मित्तल में सिद्धांत इस न्यायालय को बाध्य करता प्रतीत होता है।

28. रायसा सुल्ताना बेगम में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत, इसलिए, एम. सिद्दीक में उच्चतम न्यायालय के बाद के फैसले और विशेष रूप से, अनुराग मित्तल के फैसले के मद्देनजर अच्छा कानून प्रतीत होता है। जहां तक मीरा राय मामले में इस न्यायालय के निर्णय का संबंध है, निश्चित रूप से यह मामले का एक अलग दृष्टिकोण है। रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या-15 में संहिता के आदेश XIII नियम 1 के तहत वादी द्वारा एक आवेदन पर एक सकारात्मक आदेश दिया गया है, जो अनिवार्य है। इसलिए, न्यायालय द्वारा एक सकारात्मक आदेश पारित करने, आवेदन की अनुमति देने और वाद को वापस लेने की अनुमति देने के बाद मुकदमा

वापस लेना प्रभावी हो सकता है। यह अनुराग मित्तल मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप नहीं लगता है।

29. इस न्यायालय ने ऊपर जो कहा है, उसके मद्देनजर, हम मीरा राय में पूर्वोक्त के रूप में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक असहमत हैं। हालांकि, इस न्यायालय के लिए अकेले इस निर्णय पर आगे बढ़ना उचित नहीं होगा।

30. इसलिए कानून के निम्नलिखित प्रश्नों को एक बड़ी पीठ द्वारा विचार के लिए भेजा जाता है:

(i) क्या रायसा सुल्ताना बेगम, ए.आई.आर. 1996 इलाहाबाद 318 में इस न्यायालय का यह निर्णय कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXIII नियम 1 के तहत एक बार प्रस्तुत किया गया आवेदन, न्यायालय द्वारा सकारात्मक आदेश पारित किए बिना वाद को स्वत वापस लेने की ओर ले जाता है। सुन्नी सेंट्रल बोर्ड बनाम श्री गोपाल सिंह विशारद में पूर्ण पीठ के बाद के निर्णय को देखते हुए, अभी भी अच्छा कानून है, 2010 एडीजे 1(एसएफबी) (एलबी) और कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से एम. सिद्दीक (मृत) में उच्चतम न्यायालय (राम जन्मभूमि मंदिर मामला) बनाम महंत सुरेश दास और अन्य, (2020) 1 एस.सी.सी. 1 और अनुराग मित्तल बनाम शैली मिश्रा मित्तल, (2018) 9 एस.सी.सी. 691?

(ii) क्या मीरा राय बनाम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश और अन्य, 2017 (12) एडीजे 817 में निर्णय अनुराग मित्तल बनाम शैली मिश्रा मित्तल, (2018)9 एस.सी.सी. 691 में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, इस मुद्दे पर सही ढंग से कानून नहीं बनाता है कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXII नियम 1 के तहत बिना शर्त मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन दर्ज करना, 1908 वाद की प्रत्याहरण के रूप में एक सकारात्मक आदेश के बिना, संचालित होता है?

31. विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या-6526 वर्ष 2020 दिनांक 28.02.2022 में विविध आवेदन संख्या-315 वर्ष 2022 में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के मद्देनजर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह इस मामले को तत्काल एक बड़ी पीठ के गठन के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय के समक्ष रखे।

(2023) 5 ILRA 1684

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक अपील संख्या 8454/2022

और

आपराधिक अपील संख्या 7997/2022

हेमराज पटवा ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राहुल पांडे, श्री रंग नाथ पांडे

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 389(1) और 439- पूर्व-परीक्षण गिरफ्तारी के मामले में दं0प्र0सं0 की धारा 439 के तहत जमानत देने और दं0प्र0सं0 की धारा 389(1) के तहत सजा के निलंबन और दोषसिद्धि के

बाद जमानत देने में अंतर है। पहले के मामले में, निर्दोषता की धारणा हो सकती है, जो आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मौलिक सिद्धांत है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय उदार दृष्टिकोण अपना सकती हैं, जबकि दोषसिद्धि के बाद जमानत के मामले में, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दोष का पता चलता है। दोषसिद्धि की धारणा का सवाल ही नहीं उठता। सजा के निलंबन और जमानत देने के लिए आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय को अन्य कारकों के साथ-साथ अपील की प्रथम दृष्टया योग्यता पर विचार करना होता है। जमानत देने के लिए मजबूत, सम्मोहक कारण होने चाहिए, जिन्हें जमानत देने वाले आदेश में दर्ज किया जाना चाहिए। (पैरा 11) (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. प्रीत पाल सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य 2020 (8) एससीसी 645
2. कश्मीरा सिंह बनाम पंजाब राज्य 1977 (4) एससीसी 291
3. बाबू सिंह एवं अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य 1978 (1) एससीसी 579
4. कल्याण चद्र सरकार बनाम राजेश रंजन एवं अन्य 2004 (7) एससीसी 528
5. चमन लाल बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य 2004 (7) एससीसी 525

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा प्रदत्त)

1. अभियुक्तों-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. राज्य बनाम भोला पटेल (लीड केस) शीर्षक से केस संख्या-14 वर्ष 2012 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफटीसी-II/विशेष न्यायाधीश, एन.डी.पी.एस. अधिनियम, कौशांबी द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.09.2022 से व्यथित, अभियुक्त-आवेदक हेमराज पटवा और विनीता देवी ने क्रमश: आपराधिक अपील संख्या-8454 वर्ष 2022 और आपराधिक अपील संख्या-7997 वर्ष 2022 वाली अलग-अलग अपीलों को दायर किया है। अभियुक्त, भोला पटेल, राजू मौर्य @ अनिल कुमार और मनोज कुमार मौर्य को संदेह का लाभ देते हुए धारा 8/20 एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत बरी कर दिया गया है, जबकि अभियुक्त-अपीलकर्ता हेमराज पटवा और विनीता देवी को दोषी ठहराया गया है और प्रत्येक को 1,00,000/- रुपये के जुर्माने के साथ दस साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है।

अभियोजन के अनुसार, दिनांक 17.04.2012 को लगभग 12.30 बजे थानाध्यक्ष दिनेश प्रकाश पांडेय अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ गश्त कर रहे थे और असामाजिक तत्वों की जांच कर रहे थे। वहीं, एस.आई. ओंकार नाथ पांडेय, हवलदार सिंह और लेडी कांस्टेबल रुक्मणी देवी भी पुलिस दल में शामिल हो गई। गुप्त सूचना मिलने पर कि ग्राम पचासा निवासी आरोपी भोला थाना-सैनी ने अपने छप्पर में भारी मात्रा में गांजा छिपाया है और उसे अन्य संदिग्धों के साथ गिरफ्तार किया जा सकता है। छापेमारी करने पर पुलिस ने एक पुरुष और एक महिला को पकड़ लिया, लेकिन एक व्यक्ति अंधेरे का फायदा उठाकर घटनास्थल से भाग गया। पकड़े गए संदिग्धों

से पूछताछ करने पर एक ने अपना नाम हेमराज पटवा बताया और महिला ने अपना नाम विनीता देवी पत्नी भोला पटेल बताया। संदिग्धों से पूछताछ करने पर पता चला कि भोला पटेल अंधेरे का फायदा उठाकर फरार हो गया था। वैधानिक प्रावधानों के अनुपालन पर, भारी मात्रा में बरामदगी की गई और आरोपी व्यक्तियों के कब्जे से कुल वर्ष 152 किलोग्राम गांजा बरामद किया गया। 152 किलोग्राम गांजा को चार बैग में रखा गया, प्रत्येक में 47 किलोग्राम, 45 किग्रा, 35 किग्रा और 25 किग्रा हैं। हेमराज पटवा के कब्जे से गांजा के दो बैग बरामद किए गए, जिनमें 47 किलोग्राम और 45 किलोग्राम गांजा था, जबकि आरोपी विनीता देवी के पास से 60 किलोग्राम गांजा बरामद किया गया, जिसे दो बैगों में रखा गया था, जिसमें 35 किलोग्राम और 25 किलोग्राम थे।

4. विचारण पूरा होने पर, दोनों अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को अधिकतम 10 वर्ष की सजा और 1,00,000/- रुपये का जुर्माना की सज़ा दी गई और जुर्माना अदा न करने पर, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दो साल की अवधि के लिए साधारण कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया।

5. आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोपी अपीलकर्ताओं को पुलिस के इशारे पर मामले में झूठा फंसाया गया था। उन्होंने आगे आग्रह किया कि जब यह मामला राष्ट्रीय स्तर पर मीडिया और स्थानीय समाचार पत्रों में उजागर हुआ था कि थाना सैनी, जिला कौशांबी के अधिकार क्षेत्र में ट्रक कंटेनर से भारी मात्रा में प्रतिबंधित पदार्थ बरामद किया गया है, तो ट्रक के चालक और खलासी को पुलिस ने भारी रिश्वत लेकर जाने दिया। वास्तविक अपराधियों ने रिश्वत का भुगतान किया, और उन्हें पुलिस द्वारा मुक्त कर दिया गया और आरोपी अपीलकर्ताओं से वसूली की गई। उन्होंने आगे आग्रह किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा वसूली के लिए कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया है और न ही एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 का अनुपालन किया गया है। विवेचनाधिकारी ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 57 का भी अनुपालन नहीं किया है। उन्होंने आगे आग्रह किया कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 42 की भावना का उल्लंघन करते हुए वरिष्ठ अधिकारियों को कथित बरामदगी की जानकारी तुरंत प्रदान नहीं की गई। धारा 42, 50 और 57 का पालन न करने से अभियोजन पक्ष के मामले को गंभीर नुकसान पहुंचा है, और अभियोजन पक्ष आरोपी व्यक्तियों के कब्जे से वसूली को साबित करने में विफल रहा है और अंत में आग्रह किया कि दोनों आरोपी व्यक्ति मुकदमे के दौरान जमानत पर थे।

6. प्रतिरोध, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 42, 50 और 57 के प्रावधानों का जांच एजेंसी द्वारा विधिवत अनुपालन किया गया है, एस.आई. दिनेश प्रकाश पांडेय, इंस्पेक्टर राज कुमार पांडेय, एस.आई. ओंकार नाथ पांडे और इंस्पेक्टर रवींद्र तिवारी की गवाही के अवलोकन से इसे विधिवत साबित किया गया है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया, विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के अवलोकन पर, यह पता चलता है कि आरोपी व्यक्तियों के

कब्जे से 152 किलोग्राम गांजा की भारी मात्रा बरामद की गई थी। अपर शासकीय अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि अभियोजन पक्ष के गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष का मामला प्रस्तुत मामले में आधिकारिक गवाहों द्वारा साबित किया गया है। एस.आई. दिनेश प्रकाश पांडेय, इंस्पेक्टर राजकुमार पांडेय, एस.आई. ओंकार नाथ पांडे और इंस्पेक्टर रवींद्र तिवारी ने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरा समर्थन किया है, और उनकी गवाही सुसंगत और विश्वसनीय है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि आरोपी अपीलकर्ताओं हेमराज पटवा और विनीता देवी के कब्जे से प्रतिबंधित पदार्थों की बरामदगी की गई है।

7. बेशक, अभियुक्त-अपीलकर्ता हेमराज पटवा और विनीता देवी के कब्जे से गांजा 152 किलोग्राम की भारी वाणिज्यिक मात्रा बरामद की गई है, और उन्हें उपरोक्त प्रतिबंधित पदार्थ रखने के लिए आपराधिक मानसिक स्थिति का माना जाता है, और इसलिए आपराधिक इरादे की अनुपस्थिति को साबित करने का बोझ उन पर है।

8. भले ही पुलिस गवाह हितबद्ध गवाह हैं, लेकिन उपरोक्त गवाहों की गवाही पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

9. इसलिए, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 35 और 54 का संयुक्त प्रभाव यह है कि यदि अभियुक्त को निषिद्ध पदार्थ के कब्जे में पाया जाता है, तो न्यायालय यह मान लेगा कि उसने अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपराध किया है जब तक कि इसके विपरीत साबित नहीं होता है, यदि अपराध के लिए अभियुक्त की आपराधिक मानसिक स्थिति स्थापित करना आवश्यक है। उस मामले में, न्यायालय यह भी मान लेगा कि अभियुक्त की मानसिक स्थिति होगी, और यह साबित करना केवल अभियुक्त का बचाव है कि उसके पास निषिद्ध रखने की ऐसी कि किसी मानसिक स्थिति में नहीं है।

10. इस आवेदन में विचार के लिए जो छोटा सवाल उठता है, वह यह है कि क्या अभियुक्त-अपीलकर्ता जमानत पर रिहा होने के हकदार हैं जब वे मुकदमे के दौरान जमानत पर थे।

11. जैसा कि प्रीत पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय द्वारा देखा गया है, पूर्व-परीक्षण गिरफ्तारी के मामले में धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत देने और धारा 389(1) द०प्र०स० के तहत सजा के निलंबन और दोषसिद्धि के बाद जमानत देने के बीच अंतर है। पहले के मामले में, निर्दोषता का अनुमान लगाया जा सकता है, जो आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मौलिक अभिधारणा है। अदालतें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उदार दृष्टिकोण अपना सकती हैं, जबकि दोषसिद्धि के बाद जमानत के मामले में, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अपराध का निष्कर्ष निकलता है। दोषसिद्धि की पूर्वधारणा का प्रश्न नहीं उठता। सजा के निलंबन और जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय को अन्य कारकों के साथ मिलकर अपील के प्रथम दृष्टया गुणों पर

विचार करना है। जमानत देने के लिए मजबूत, बाध्यकारी कारण होने चाहिए, जिन्हें जमानत देने के आदेश में दर्ज किया जाना चाहिए।

12. धारा 389(1) के तहत विवेक का प्रयोग न्यायिक रूप से किया जाना है, और उच्च न्यायालय इस बात पर विचार करने के लिए बाध्य है कि क्या अभियुक्त के पास अपील में सफल होने की प्रबल संभावना है, और अपील के निपटान में कोई अनुचित देरी नहीं है, जैसा कि कश्मीरा सिंह बनाम पंजाब राज्य और बाबू सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था।

13. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था

"11. जमानत देने या अस्वीकार करने के संबंध में कानून बहुत अच्छी तरह से तय है। जमानत देने वाले न्यायालय को अपनी मेधा का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना चाहिए, न कि सामान्य क्रम के रूप में। हालांकि जमानत देने के चरण में सबूतों की विस्तृत जांच और मामले के गुण-दोष के विस्तृत दस्तावेज की आवश्यकता नहीं है, ऐसे आदेशों में प्रथम दृष्टया निष्कर्ष निकालने के कारणों को इंगित करने की आवश्यकता है कि जमानत क्यों दी जा रही थी, खासकर जहां अभियुक्त पर गंभीर अपराध करने का आरोप लगाया गया है। ऐसे कारणों से रहित कोई भी आदेश दिमाग के गैर-उपयोग से पीड़ित होगा।

14. भले ही जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय अदालतों द्वारा मामले की योग्यता की विस्तृत जांच की आवश्यकता नहीं हो सकती है, साथ ही, क्षेत्राधिकार का प्रयोग अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों पर और विवेकपूर्ण तरीके से आधारित होना चाहिए, न कि सामान्य क्रम के रूप में जैसा कि इस न्यायालय ने चमन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में कहा था।

15. जैसा कि यह हो सकता है, जमानत पर निलंबन के आवेदन पर निर्णय लेते समय मामले के गुणों पर साक्ष्य और विस्तृत दस्तावेज की विस्तृत जांच करने की आवश्यकता नहीं है। धारा 389(1) द०प्र०स० के तहत जमानत देने की इस न्यायालय की शक्ति, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की संशोधित धारा 37 में निहित सीमाओं के अधीन है, और उक्त धारा के तहत न्यायालय की शक्ति पर लगाए गए प्रतिबंध जमानत देने के मामले में इस न्यायालय पर लागू होते हैं।

16. प्रीत पाल सिंह (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"35. द०प्र०स० की धारा 389 के तहत पूर्व-परीक्षण गिरफ्तारी और सजा के निलंबन के मामले में द०प्र०स० की धारा 439 के तहत जमानत देने और दोषसिद्धि के बाद जमानत देने के बीच अंतर है। पहले के मामले में, निर्दोषता का अनुमान लगाया जा सकता है, जो आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मौलिक अभिधारणा है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अदालतें उदार हो सकती हैं, इस सिद्धांत पर कि जमानत नियम है और जेल एक अपवाद है, जैसा कि इस न्यायालय ने दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश

राज्य और अन्य (उपरोक्त) में कहा था। तथापि, दोषसिद्धि के बाद जमानत के मामले में, सजा के अमल को निलंबित करके दोष पाया जाता है और निर्दोषता की धारणा का प्रश्न नहीं उठता। न ही जमानत का सिद्धांत नियम है और जेल एक अपवाद है जो मुकदमे पर दोषसिद्धि के बाद आकर्षित होता है। बल्कि, सजा के निलंबन और जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय को अन्य कारकों के साथ अपील के प्रथम दृष्टया गुणों पर विचार करना है। दोषसिद्धि के आदेश के बावजूद, सजा को निलंबित करके जमानत देने के लिए मजबूत, बाध्यकारी कारण होने चाहिए। इस मजबूत और बाध्यकारी कारण को जमानत आदेश में दर्ज किया जाना चाहिए, जैसा कि धारा 389(1) द०प्र०स० में अनिवार्य है।

38. सजा के निलंबन के लिए एक आवेदन पर विचार करने में, अपीलीय न्यायालय केवल यह जांचने के लिए है कि क्या दोषसिद्धि के आदेश में ऐसी पेटेंट दुर्बलता है जो दोषसिद्धि के आदेश को प्रथम दृष्टया गलत बनाती है। जहां विचारण न्यायालय ने इस बात के सबूत पर विचार किया है, वहां इस अदालत के पास धारा 389(1) द०प्र०स० के तहत उसी साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन और/या पुन: विश्लेषण करने और सजा के निष्पादन को निलंबित करने और दोषी को जमानत पर रिहा करने के लिए एक अलग दृष्टिकोण अपनाने के आवेदन पर विचार करने का विकल्प नहीं है।

17. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के कब्जे से भारी मात्रा में 152 किलोग्राम गांजा बरामद किया गया है, और उन्हें उपरोक्त निषिद्ध पदार्थ रखने के लिए आपराधिक मानसिक स्थिति में माना जाता है; इसलिए आपराधिक इरादे की अनुपस्थिति को साबित करने का भार उन पर है।

18. आरोपी-अपीलकर्ता, हेमराज पटवा थाना-धूमनगंज, जिला प्रयागराज में दर्ज चार मामलों में शामिल है। इसका विवरण निम्नानुसार है:-

(i) अपराध संख्या-186/2012, धारा 8/20 एन.डी.पी.एस. अधिनियम, थाना सैनी, जिला कौशांबी।

(ii) केस अपराध संख्या-233 वर्ष 2016, धारा 3/25 आर्म्स एक्ट, थाना पिपरी, जिला कौशांबी।

(iii) अपराध संख्या-199 वर्ष 2016, धारा 3025/120 बी भ०द०वि०, थाना पिपरी, जिला कौशांबी।

(iv) अपराध संख्या-348/2016, धारा 2/3(1) उ0प्र0 गैंगस्टर अधिनियम, थाना-पिपरी, जिला कौशाम्बी।

19. अभियुक्त-अपीलकर्ता हेमराज पटवा की कुल हिरासत अवधि छूट के साथ 10 महीने और 15 दिन है, जबकि अभियुक्त-अपीलकर्ता विनीता देवी की कुल हिरासत अवधि छूट के साथ 11 महीने और 2 दिन है।

20. (i) अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता दोषसिद्धि के आदेश में पेटेंट दुर्बलता को इंगित नहीं कर सके जो दोषसिद्धि के आदेश को प्रथम दृष्टया गलत बनाता है। इस स्तर पर, यह इस न्यायालय के लिए एक अलग दृष्टिकोण लेने के लिए एक ही साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन और/पुन: विश्लेषण करने, सजा

के निष्पादन को निलंबित करने और दोषी को जमानत पर रिहा करने के लिए खुला नहीं है।

20. (ii) आरोपी-अपीलकर्ताओं की वास्तविक अभिरक्षा को ध्यान में रखते हुए, आरोपी-अपीलकर्ताओं के कब्जे से बरामद गांजा की भारी वाणिज्यिक मात्रा।

20. (iii) और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 37 में निहित शर्तें संतुष्ट नहीं हैं।

21. आपराधिक अपील संख्या-8454 वर्ष 2022 और आपराधिक अपील संख्या-7997 वर्ष 2022 में दायर सजा के निलंबन के आवेदन को खारिज किया जाता है।

22. इस सामान्य/संयुक्त आदेश के माध्यम से, आरोपी-अपीलकर्ता हेमराज पटवा और विनीता देवी की सजा के निलंबन के लिए आवेदनों का तदनुसार निपटारा किया जाता है।

23. आपराधिक अपील संख्या-8454 वर्ष 2022 और आपराधिक अपील संख्या-7997 वर्ष 2022 में सजा के निलंबन के लिए आवेदन का निपटान करते समय इस माननीय न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी का अंतिम अपील के परिणाम पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

24. इस अपील को छह महीने के बाद सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करें। यदि अभियुक्तों के सहयोग और प्रयासों के बावजूद अपील पर दो साल के भीतर सुनवाई नहीं की जाती है, तो वे जमानत देने के लिए प्रार्थना को पुनर्जीवित करने के लिए स्वतंत्र होंगे।

(2023) 5 ILRA 1689

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक,

द्वितीय अपील संख्या 318/2023

मेसर्स चौधरी प्रॉपर्टीज और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती लक्ष्मी देवी ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राम दयाल तिवारी, श्री एम.डी. सिंह शेखर (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री राहुल मिश्रा, श्री संजय मिश्रा, श्री सतेन्द्र कुमार सिंह, श्री सुरेश चन्द्र वर्मा, श्री एस.के. वर्मा

सिविल कानून - अनुबंध अधिनियम, 1872 - धारा 10 को धारा 2(ई) के साथ पढ़ें - किसी भी पक्ष का ऐसा कोई मामला नहीं है कि मौखिक समझौते का गठन गलत बयानी या अनुचित प्रभाव या स्वतंत्र इच्छा के बिना हुआ था, इसलिए, अनुबंध अधिनियम की धारा 2 (ई) और (एच) के साथ धारा 10 के तहत अनुबंध के गठन से इनकार नहीं किया जा सकता है - समझौता मौखिक हो सकता है और यह लागू करने योग्य है बशर्ते अनुबंध का गठन स्वतंत्र इच्छा से हो। लिखित दस्तावेज की अनुपस्थिति में विशेष अवधि/समय सीमा, प्रथम दृष्टया, समझौते के लिए एक सार नहीं कहा जा सकता है और लिखित नियमों

और शर्तों की अनुपस्थिति में इसका पता नहीं लगाया जा सकता है। (पैरा 10, 13 और 15)

विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963-धारा 39-न्यायालय अपने विवेकानुसार अनिवार्य निषेधाज्ञा दे सकता है, जब कुछ संविदाओं के निष्पादन को बाध्य करना आवश्यक हो, जिन्हें न्यायालय लागू करने में सक्षम हो, किसी दायित्व के उल्लंघन को रोकने के लिए तथा अपेक्षित कार्य के निष्पादन को बाध्य करने के लिए भी। (पैरा 19)

अपील खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. (2020) 3 एससीसी 311 में प्रतिवेदित आत्मा राम बनाम चरणजीत सिंह
2. बद्री प्रसाद बनाम म0प्र0 राज्य एवं अन्य, एआईआर 1970 सुप्रीम कोर्ट 706
3. बृज मोहन और अन्य बनाम श्रीमती सुगरा बेगम और अन्य (1990) 4 एससीसी 147
4. आलोक बोस एवं अन्य बनाम परमात्मा देवी एवं अन्य (2009) 2 एससीसी 582

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री एम.डी. सिंह शेखर, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.डी. तिवारी, और प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री एस.के. वर्मा और श्री एस.के. सिंह को प्रस्तुत अपील की अनुमति पर सुना और रखे गए रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्लॉट संख्या-1 के संबंध में वादी-प्रतिवादी के पक्ष में पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए निर्देश जारी करने के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद; गंगा विहार कॉलोनी (गुलाबी शहर), ग्राम सादुलाबाद, परगना लोनी, तहसील और जिला गाजियाबाद में स्थित सी-107 क्षेत्र 300 वर्ग गज में 252.70 रुपये की शेष राशि प्राप्त करने के बाद और वादी-प्रतिवादी की ओर से दायर रद्दीकरण पत्र दिनांक 7.10.2011 को शून्य घोषित करने के लिए निचले दोनों न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से डिक्री की गई है। वाद की डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने दीवानी अपील संख्या-117/19 में विद्वान जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 17.1.2023 को चुनौती देते हुए तत्काल द्वितीय अपील दायर की है, जिसमें मूल वाद संख्या-601 वर्ष 2011 में सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/फास्ट ट्रैक कोर्ट, गाजियाबाद द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 3.9.2019 की पुष्टि की गई है।

3. वादी-प्रतिवादी इस दलील के साथ आया कि प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने वर्ष 1986 में ग्राम सदुल्लाबाद, परगना लोनी, तहसील और जिला गाजियाबाद में हाल गंगा विहार कॉलोनी (गुलाबी शहर) के नाम से एक कॉलोनी विकसित की है और उक्त कॉलोनी में कई आकार के भूखंडों के आवंटन के लिए विज्ञापन दिया है। विज्ञापन के अनुसरण में, वादी-प्रतिवादी ने भूखंड के आवंटन के लिए आवेदन किया था। परिणामस्वरूप, उसे प्लाट नं 10 आबंटित किया गया है। सी-107 क्षेत्र 300 वर्ग गज @ 23.12.1987 को 252.70 रुपये प्रति वर्ग गज मूल प्रस्तावित दर से छूट प्राप्त करने के बाद अर्थात 266/- रुपये प्रति वर्ग गज की दर पे। वादी-प्रतिवादी ने 5.1.1988 को

80,500/- रुपये की राशि जमा की है। प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने दिनांक 30.12.2008 के पत्र द्वारा 83,000/- रुपये की राशि जमा करने की बात स्वीकार की है और आगे 22,592/- रुपये की मांग की है। इसके अनुसरण में, वादी-प्रतिवादी ने 28.1.2009 को मांगी गई राशि यानी 25,592/- रुपये की तुलना में अधिक राशि 51,350 रुपये जमा की है। जब वादी-प्रतिवादी ने दिनांक 30.12.2008 के पत्र के आलोक में बिक्री विलेख निष्पादित करने का अनुरोध किया है, तो प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या-22445 वर्ष 2007 के लंबित होने के बहाने बिक्री विलेख के निष्पादन को स्थगित कर दिया है, जिसमें भूमि का उपयोग, जिसे गाजियाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा बदल दिया गया है, को चुनौती दी गई थी। दिनांक 15.11.2009 के पत्र के माध्यम से, प्रतिवादी अपीलकर्ताओं ने पूर्वोक्त रिट याचिका के अंतिम निपटान की सूचना दी है और यह भी आश्वासन दिया है कि बिक्री विलेख शीघ्र ही निष्पादित किया जाएगा। बाद में, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के मन में बेईमानी आ गई, जिन्होंने अधिक धन की मांग करना शुरू कर दिया है, जबकि सहमत राशि का बड़ा हिस्सा वादी-प्रतिवादी द्वारा पहले ही जमा किया जा चुका है। वादी द्वारा प्रतिवादियों को दिनांक 12/13.1.2010 का एक पंजीकृत पत्र भेजा गया है, जिसमें उसके पक्ष में एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने का अनुरोध किया गया है। हालांकि प्रतिवादी पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने से बच रहे हैं, इसलिए, बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर किया गया है।

4. वाद के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने दिनांक 7.10.2011 को एक रद्दीकरण पत्र जारी किया है, जिसमें वादी-प्रतिवादी को उसके पक्ष में किए गए भूखंड के आवंटन को रद्द करने की सूचना दी गई है। वादी-प्रतिवादी ने प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं को उक्त रद्दीकरण पत्र वापस लेने और बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए मनाने की कोशिश की है, हालांकि प्रतिवादी अपीलकर्ताओं ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया, इसलिए, वादी-प्रतिवादी ने एक संशोधन आवेदन दायर किया है जिसमें 7.10.2011 के रद्दीकरण पत्र को शून्य घोषित करने के लिए सहायक राहत की मांग की गई है।

5. प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने हालांकि प्लॉट नं. सी-107 क्षेत्र 300 वर्ग गज वादी-प्रतिवादी के पक्ष में और 80,500/- रुपये की राशि जमा करने के साथ-साथ, हालांकि वादी-प्रतिवादी की ओर से भूखंड की दर और सदाशयता के संबंध में विवाद उठाया। लिखित बयान में यह कहा गया है कि वादी-प्रतिवादी ने 5.1.1988 को प्लॉट की दर @ 550/- रुपये प्रति वर्ग गज की दर से स्वीकार करते हुए 80,500/ प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने दिनांक 30.12.2008 के पत्र की वास्तविकता पर विवाद किया है, जिसके लिए उन्होंने इसे शून्य घोषित करने के लिए मूल मुकदमा संख्या-572 वर्ष 2010 दायर किया है। लिखित बयान में प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने दिनांक 7.10.2011 के पत्र के जारी होने का भी उल्लेख किया है, जिसे संशोधन आवेदन देकर शून्य घोषित करने की

मांग की गई है। प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने वादी के वाद दायर करने के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाया है और साथ ही आदेश 7 नियम-11 सी.पी.सी. और विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 41 के तहत वाद दायर किया है।

6. विद्वान विचारण न्यायालय ने 9 मुद्दे विरचित किए हैं और रिकॉर्ड पर सबूतों की सावधानीपूर्वक चर्चा के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रतिवादी-अपीलकर्ता समझौते को पूरा करने के लिए अपनी भूमिका निभाने के लिए बाध्य हैं। मुद्दा संख्या-1 और 8 का निर्णय लेते हुए, विचारण न्यायालय ने देखा है कि बिक्री विलेख के निष्पादन के संबंध में पक्षों के बीच मौखिक समझौता, 23.12.1987 को दिए गए आवंटन पत्र और प्रतिवादी अपीलकर्ताओं की ओर से 05.01.1988 को भुगतान की गई 80,500/- रुपये की राशि प्राप्त करने की स्वीकारोक्ति से स्पष्ट है। मुद्दा संख्या-2 का निर्णय लेते हुए, विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी के खिलाफ देखा है कि मुकदमा दायर करने के लिए कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 41 के तहत वाद की गैर-विचारणीयता के संबंध में मुद्दा संख्या-4 और आदेश 7 नियम-11 सी.पी.सी. के तहत वाद की सलाखों के संबंध में मुद्दा संख्या-5 का निर्णय नकारात्मक में किया गया है। विचारण न्यायालय ने मुद्दा संख्या-9 पर निर्णय लेते हुए एक निश्चित निष्कर्ष दिया है कि वादी-प्रतिवादी दिनांक 7.10.2011 के कथित निरस्तीकरण पत्र के खिलाफ घोषणात्मक निषेधाज्ञा का हकदार है। प्रथम अपीलीय अदालत, प्रतिवादियों की ओर से दायर की जा रही अपील पर, निर्धारण के लिए चार बिंदुओं को तैयार किया है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की है।

7. निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का विरोध करते हुए, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता ने तीन गुना प्रस्तुत करने पर मुकदमे की पोषणीयता के संबंध में अपने तर्क को सीमित कर दिया है; (ए) कि पक्षों के बीच कोई लिखित समझौता नहीं था, इसलिए, वादी-प्रतिवादी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा कानून की नजर में बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि कार्रवाई का कोई कारण उत्पन्न नहीं हुआ है और वादी-प्रतिवादी के पास मुकदमा दायर करने का कोई अधिकार नहीं है; (ख) कि विक्रय विलेख निष्पादित करवाने के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद संविदा के विशिष्ट निष्पादन के लिए एक वाद है, इसलिए, विक्रय विलेख निष्पादित करने की डिक्री वादी-प्रतिवादी की ओर से तत्परता और इच्छा के संबंध में निश्चित निष्कर्ष लौटाए बिना पारित नहीं की जा सकती है और (ग) कि संविदा के विशिष्ट निष्पादन के लिए समय सार है, इसलिए, वादी प्रतिवादी की ओर से एक बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए दायर किया गया वाद, आवंटन आदेश दिनांक 10.12.1987 के आलोक में, सीमा की निर्धारित अवधि द्वारा वर्जित है, इसलिए, इसे लापरवाही के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए। अपनी दलीलों के समर्थन में, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने (2020)3 एस.सी.सी. 311 में रिपोर्ट किए गए

आत्मा राम बनाम चरणजीत सिंह के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया है।

8. इसके विपरीत, प्रतिवादी-प्रतिवादी के अधिवक्ता ने प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया है और तर्क दिया है कि पक्षों के बीच लिखित समझौते के अभाव में, अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा बनाए रखने योग्य नहीं है, इसलिए, विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16 के तहत प्रतिपादित प्रावधानों के तहत वादी-प्रतिवादी की ओर से तत्परता और इच्छा पर विचार करने का कोई सवाल ही नहीं है। यह आगे तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं से दिनांक 23.12.1987 को आवंटन पत्र जारी करना और उनकी ओर से दिनांक 5.1.1988 को 80,500/- रुपये की राशि की धनराशि की स्वीकृति स्पष्ट रूप से पक्षों के बीच हुई वैध मौखिक सहमति को स्थापित करती है, इसलिए, प्रतिवादी-अपीलकर्ता समझौते के अपने हिस्से में दायित्व से खुद को वापस नहीं ले सकते। इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 39 के तहत, न्यायालय एक दायित्व के उल्लंघन को रोकने के लिए कुछ कृत्यों के प्रदर्शन के लिए निषेधाज्ञा देने के लिए अपने विवेक में सक्षम है। यह भी तर्क दिया जाता है कि किसी भी लिखित समझौते के अभाव में, समय कारक को पक्षों के बीच मौखिक समझौते के सार के रूप में नहीं लिया जा सकता है, इसलिए, दी गई परिस्थितियों में, मुकदमा दायर करने में सीमा के बिंदु पर विचार करने का कोई सवाल ही नहीं है। वादी-प्रतिवादी के अधिवक्ता ने द्वितीय अपील संख्या-439 वर्ष 2020 में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित दिनांक 11.1.2021 के निर्णय पर जोर दिया है; मैसर्स चौधरी प्रॉपर्टीज और दो अन्य बनाम विपिन बहादुर और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा मैसर्स चौधरी प्रॉपर्टीज और अन्य के खिलाफ समान मामले का फैसला किया गया है जो वर्तमान में दूसरी अपील में प्रतिवादी-अपीलकर्ता भी हैं। उपरोक्त द्वितीय अपील संख्या-439 वर्ष 2020 में, वाद इसी प्रकार के तथ्यों के आधार पर दायर किया गया था, जिसमें वादी (उक्त वाद में) को प्लॉट संख्या- ए-74 गुलाबी शहर के नाम से जानी जाने वाली कॉलोनी में आवंटित किया गया था।

9. पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों और रिकॉर्ड के अवलोकन पर विचार करने के बाद, यह पता चलता है कि प्रतिवादी उपनिवेशवादी हैं, जिन्होंने 'पिंक सिटी' के रूप में जानी जाने वाली कॉलोनी में अपने भूखंडों को बेचने के लिए व्यापक रूप से विज्ञापन दिया है। विज्ञापन की ओर आकर्षित होते हुए, वादी ने प्लॉट सी-107, क्षेत्र 3 वर्ग गज आवंटित करने के लिए आगे बढ़ा है और तदनुसार, धन जमा किया है। वादी के पक्ष में भूखंड के आवंटन के संबंध में तथ्य, दिनांक 23.12.1987 के आवंटन पत्र के माध्यम से, और 5.1.1988 को 80,500/- रुपये की राशि प्राप्त करते हुए, प्रतिवादियों द्वारा स्वीकार किए गए हैं। हालांकि प्रतिवादियों ने वादी द्वारा दावा किए गए 252.70 पैसे प्रति वर्ग गज के स्थान पर भूखंड की प्रति वर्ग गज की दर से विवाद को 550 रुपये प्रति वर्ग गज कर

दिया है, जिस पर मूल दर से रियायत के बाद पक्षों के बीच सहमति हुई थी अर्थात 266 रुपये प्रति वर्ग गज की दर से। प्रतिफल राशि के भुगतान में चूक के संबंध में भी विवाद है। वादी के मामले के अनुसार, उसने दिनांक 3.12.2008 के पत्र के माध्यम से प्रतिवादियों द्वारा मांग की गई आवश्यकता से अधिक पूरी धनराशि जमा कर दी है, जबकि दूसरी ओर प्रतिवादियों ने पूरे पैसे के भुगतान पर विवाद किया है और भुगतान में चूक के लिए वादी को दोषी ठहराया है।

10. प्रस्तुत मामले की दी गई परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि 'पिंक सिटी' के रूप में जानी जाने वाली कॉलोनी में भूखंड के आवंटन के संबंध में प्रतिवादी की ओर से किए गए प्रस्ताव को वादी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और इसके आगे, वादी ने 23.12.1987 को 2500/- रुपये की राशि जमा की है, (पेपर संख्या-8सी)। और उक्त राशि स्वीकार करने के बाद, प्रतिवादी/ कॉलोनाइज़र (प्रोमिसर) ने उसी दिन यानी 23.12.1987 को प्लॉट संख्या-आवंटित करने के लिए आवंटन पत्र जारी किया है। सी-107 का माप क्षेत्र 300 वर्ग गज वादी के पक्ष में, जिसने बदले में, 5.1.1988 को 80,500/- रुपये (पेपर संख्या-9- सी) की राशि जमा की है। बाद के चरण में, प्रतिवादियों ने 30.12.2008 (पेपर संख्या-10-सी) को एक पत्र जारी किया है जिसमें 22,592 / इसके अनुसरण में वादी ने 28.1.2009 को 51,350/- रुपये जमा किए हैं। मामले के इस दृष्टिकोण में, पक्षों के बीच हुए मौखिक समझौते के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मुद्दे संख्या-1 और 8 पर निर्णय देते समय सावधानीपूर्वक विचार किया गया है। किसी भी पक्ष का कोई मामला नहीं है कि संपन्न मौखिक समझौते का गठन गलत बयानी या अनुचित प्रभाव के परिणामस्वरूप या स्वतंत्र इच्छा के बिना था, इसलिए, अनुबंध अधिनियम की धारा 2 (ई) और (एच) सपठित धारा 10 के तहत अनुबंध के गठन से इनकार नहीं किया जा सकता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षों के बीच हस्तांतरणकर्ता और अंतरिती के वैध संबंध को माना है। अपनी खोज के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित मामलों पर भरोसा किया है:

(i) बद्री प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 1970 उच्चतम न्यायालय 706,

(ii) बृज मोहन और अन्य बनाम श्रीमती सुगरा बेगम और अन्य (1990) 4 एस.सी.सी. 147 और

(iii) आलोक बोस और अन्य बनाम परमात्मा देवी और अन्य (2009) 2 एस.सी.सी. 582।

11. मैं विचारण न्यायालय द्वारा परावर्तित किए गए निष्कर्षों से आश्वस्त हूं, जिन्होंने सही परिप्रेक्ष्य में रिकॉर्ड पर साक्ष्य पर विचार करने के बाद मामले का फैसला किया है, जिसकी प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा उचित रूप से पुष्टि की गई है, कि पक्षों के बीच निष्कर्ष मौखिक समझौते का अस्तित्व था, जो कानून की नजर में लागू करने योग्य है।

12. जहां तक पक्षों के बीच लिखित समझौते की गैर-मौजूदगी का संबंध है, जैसा कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने अपने पहले

सबमिशन में प्रस्तुत किया है, मेरा विचार है, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में चर्चा की गई है, कि पक्षों के बीच हुए समझौते को लागू करने के लिए लिखित दस्तावेज के लिए कानून के तहत कोई कानूनी आवश्यकता नहीं है। करार मौखिक भी हो सकता है तथा उसे प्रवर्तनीय भी बनाया जा सकता है बशर्ते संविदा स्वतन्त्र इच्छा से बनाई गई हो । बृज मोहन और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 20 में स्पष्ट रूप से निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"कानून की कोई आवश्यकता नहीं है कि अचल संपत्ति की बिक्री का एक समझौता या अनुबंध केवल लिखित में होना चाहिए। हालांकि ऐसे मामले में जहां वादी अकेले मौखिक समझौते के आधार पर अचल संपत्ति की बिक्री के अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री की मांग करने के लिए आगे आते हैं, वादी पर यह साबित करने का भारी बोझ होता है कि अचल संपत्ति की बिक्री के लिए एक संपन्न मौखिक समझौते के लिए पक्षों के बीच आम सहमति थी। इस तरह का एक निष्कर्ष मौखिक अनुबंध था या नहीं, प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निर्धारित किए जाने वाले तथ्य का प्रश्न होगा। वादी द्वारा यह स्थापित किया जाना है कि अचल संपत्ति की बिक्री के लिए महत्वपूर्ण और मौलिक शर्तें पक्षों के बीच मौखिक रूप से संपन्न हुई थीं और एक लिखित समझौता, यदि कोई हो, तो बाद में निष्पादित किया जाना चाहिए, केवल एक औपचारिक समझौता होगा जिसमें ऐसी शर्तें शामिल होंगी जो पहले ही तय हो चुकी थीं और मौखिक समझौते में संपन्न हुई थीं। (पैरा 20)

12. आलोक बोस (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यही विचार व्यक्त किया गया था। फैसले के पैराग्राफ संख्या-16, 17 और 18 में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"बिक्री का एक समझौता तब अस्तित्व में आता है जब विक्रेता बेचने के लिए सहमत होता है और खरीदार सहमत शर्तों पर विचार के लिए या खरीद के लिए सहमत होता है। यह मौखिक हो सकता है। यह संचार के आदान-प्रदान द्वारा हो सकता है जिस पर हस्ताक्षर किए जा सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं। यह दोनों पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित एक ही दस्तावेज़ द्वारा हो सकता है। यह दो भागों में एक दस्तावेज़ द्वारा भी हो सकता है, प्रत्येक पक्ष एक प्रति पर हस्ताक्षर करता है और फिर हस्ताक्षरित प्रति का आदान-प्रदान करता है, जिसके परिणामस्वरूप क्रेता के पास विक्रेता द्वारा हस्ताक्षरित प्रति होती है और विक्रेता के पास क्रेता द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रति होती है। या यह विक्रेता द्वारा दस्तावेज़ को निष्पादित करने और इसे स्वीकार करने वाले क्रेता को वितरित करने के द्वारा हो सकता है। (पैरा 16)

संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 10 और उसके परंतुक पर विचार करते हुए, संगत समय पर संबंधित राज्य में लागू किसी कानून की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है, जिसके लिए बिक्री का करार लिखित रूप में या गवाहों की उपस्थिति में किया जाना या पंजीकृत किया जाना अपेक्षित है। इसलिए, बेचने के लिए एक

मौखिक समझौता भी मान्य है। यदि हां, तो पक्षों में से एक द्वारा हस्ताक्षरित एक लिखित समझौता, यदि यह इस तरह के मौखिक समझौते का सबूत देता है, तो यह भी मान्य होगा। भारत में, बिक्री का एक समझौता अकेले विक्रेता द्वारा हस्ताक्षरित और क्रेता को दिया जाता है, और क्रेता द्वारा स्वीकार किया जाता है, हमेशा एक वैध अनुबंध माना जाता है। विक्रेता द्वारा उल्लंघन की स्थिति में, इसे क्रेता द्वारा विशेष रूप से लागू किया जा सकता है। हालांकि क्रेता द्वारा अकेले बिक्री के समझौते पर हस्ताक्षर करने का कोई अभ्यास नहीं है।

(अनुच्छेद 17 और 18)

13. पक्षकारों की दलील और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर विचार करने के बाद, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि स्थापित मौखिक समझौता प्रवर्तनीय नहीं है और वादी की ओर से बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद बनाए रखने योग्य नहीं है। वादी ने एक वास्तविक क्रेता होने के नाते, आश्रितों को 2,500/- + 80,500/- रुपये का भुगतान किया है, जिन्होंने बदले में उक्त राशि स्वीकार की है और 23.12.1987 को आवंटन पत्र जारी किया है, हालांकि बाद में उन्होंने बिक्री विलेख निष्पादित करने से इनकार कर दिया है। इसलिए, वादी को अपने कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए एक दीवानी वाद स्थापित करने के लिए मजबूर करने के लिए कार्रवाई की गई। इस प्रकार, मुझे प्रतिवादी/अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दी गई पहली दलील में कोई बल नहीं मिला।

14. जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन और तत्परता और इच्छा पर खोजने की आवश्यकता के लिए वाद के रूप में मानने के लिए दी गई दूसरी प्रस्तुति का संबंध है, लिखित बयान से पता चलता है कि प्रतिवादियों ने अपने लिखित बयान में ऐसी दलील नहीं ली है। उन्होंने केवल भूमि की दर पर विवाद किया है और वादी की ओर से मांगे गए धन के भुगतान में चूक का अनुरोध किया है। हालांकि दी गई परिस्थितियों में, पक्षों का आचरण स्पष्ट रूप से प्रश्नगत भूखंड की बिक्री और खरीद के प्रयोजनों के लिए एक समझौते में प्रवेश करने के उनके इरादे को इंगित करता है। प्रतिवादी (वचनबद्ध) द्वारा विज्ञापन के माध्यम से किए गए प्रस्ताव को वादी/क्रेता (वादाकर्ता) द्वारा स्वीकार किया गया था, इससे उनके बीच अनुबंध का गठन होता है। लिखित दस्तावेज के अभाव में भी वादी को उसके अधिकारों की रक्षा करने से वंचित नहीं किया जा सकता है जो वचनकर्ता द्वारा किए गए प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद हुआ है और उसने उस प्रस्ताव के अनुसरण में कार्रवाई की है। यद्यपि, मेरी राय में, विशिष्ट नियमों और शर्तों की व्याख्या करने वाले पक्षों के बीच किसी भी लिखित समझौते के अभाव में, विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16(सी) के तहत आवश्यक सामग्री के रूप में तत्परता और अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए वादी की ओर से इच्छा का पता नहीं लगाया जा सकता है; आवंटित भूमि खरीदने के लिए वादी का इरादा उसके आचरण से स्पष्ट है जब उसने जल्दबाजी में पैसा जमा किया था और प्राप्त किया था, उसके पक्ष में

आवंटन आदेश और, वादी के अनुसार, उसने पूरा भुगतान किया है। पक्षकारों द्वारा की गई दलीलों के अनुसार, रिट याचिका संख्या-22445 वर्ष 2007 होने के कारण बिक्री विलेख का निष्पादन बाधित हुआ था। दिनांक 15.11.2009 के पत्र के तहत प्रतिवादियों ने उक्त रिट याचिका में दिनांक 26.10.2009 के निर्णय के बारे में वादी को सूचित किया है। यहां तक कि तर्कों के लिए यह मानते हुए कि निचली अदालतों ने तत्परता और इच्छा के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है, मेरा विचार है कि प्रथम दृष्टया, मौखिक अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने में वादी की सदाशयता को उसके द्वारा किए गए अंतिम भुगतान पर विचार करने से इनकार नहीं किया जा सकता है; दिनांक 30.12.2008 और पंजीकृत नोटिस दिनांक 12/13.9.2010 को प्रतिवादियों को आवंटित पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए किया षड्यंत्र(?) यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि प्रतिवादियों द्वारा निर्धारित अंतिम कीमत 1,11,150/- थी, जबकि उक्त राशि के खिलाफ, वादी ने पहले ही 1,34,350/- रुपये की राशि जमा कर दी है। वादी के मामले के अनुसार, वह बिक्री विलेख के निष्पादन के प्रयोजनों के लिए शेष राशि, यदि कोई हो, का भुगतान करने के लिए तैयार है, इसलिए, इस मामले में वादी की ओर से उचित परिश्रम और लाभ से इनकार नहीं किया जा सकता है।

15. तीसरा सबमिशन, जैसा कि मुकदमा दायर करने में अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे बढ़ाया गया है, निराधार भी है। प्रस्तुत मामले की दी गई परिस्थितियों में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए समय सीमा/अवधि की शर्त का उल्लेख करने वाले लिखित दस्तावेज का कोई अस्तित्व नहीं है, जिसे दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया जाता है, इसलिए, विशेष अवधि/समय सीमा, प्रथम दृष्टया, समझौते के लिए एक सार नहीं कहा जा सकता है और लिखित नियमों और शर्तों के अभाव में इसका पता नहीं लगाया जा सकता है। इस विशिष्ट परिस्थितियों में, अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा का कानून तत्काल मामले में लागू नहीं कहा जा सकता है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता आत्मा राम (उपरोक्त) के मामले पर भरोसा करते हुए यह प्रस्तुत करने की कोशिश की है कि भले ही मुकदमा अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए दायर किया गया था और इसे अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद के रूप में माना गया है, इसलिए, उस स्थिति में, आदेश 6 नियम-17 सी.पी.सी. के तहत वाद में संशोधन की आवश्यकता थी, और सीमा को वाद में किए गए संशोधन की तारीख से वाद की क्षमता के लिए विचार किया जाएगा। कानून के प्रस्ताव में कोई संदेह नहीं है कि विशिष्ट समय, यदि संविदा के नियमों और शर्तों के तहत निर्धारित पक्षों के बीच हुआ है, तो अनुबंध के प्रवर्तन के लिए वही प्रासंगिक तारीख होगी और सीमा का कानून तदनुसार लागू होगा। यह भी तय किया गया है कि जहां संशोधन, वाद दायर करने की सीमा से संबंधित है, वहां परिसीमा की गणना दलील में संशोधन की तारीख पर विचार करते हुए की जाएगी जो वाद की सक्षमता का निर्णय करने के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक तारीख होगी जिसे सीमा की

निर्धारित अवधि के भीतर दायर किया जाना आवश्यक था। इस तरह के संशोधन सीमा के कानून पर आधारित हैं और संबंध के सिद्धांत के अपवाद हैं। उद्धृत मामले में, जैसा कि वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अवलंबन किया गया था, प्रतिवादी को शेष बिक्री प्रतिफल प्राप्त करने के बाद प्रश्न में संपत्ति के हस्तांतरण के दस्तावेजों को निष्पादित करने का निर्देश देने के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर किया गया था और तदनुसार, वादी द्वारा न्यायालय की फीस का भुगतान किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त मुकदमा दिनांक 12.10.1994 के एक समझौते के आधार पर दायर किया गया था जो पक्षों के बीच हुआ था। प्रतिवादियों ने लिखित बयान दायर किया है जिसमें वादी द्वारा समझौते के निष्पादन सहित की गई दलील से इनकार किया गया है। उन्होंने उस रूप में मुकदमा दायर करने की, जिस रूप में इसे दायर किया गया था, पोषणीयता पर भी सवाल उठाया है। उक्त वाद के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी ने वाद की पोषणीयता के संबंध में इस आधार पर एक आवेदन प्रस्तुत किया है कि वाद बिक्री के अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के प्रवर्तन के लिए बनाए रखने योग्य नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन का निपटारा किया है जिसमें कहा गया है कि वाद वास्तव में बिक्री के लिए समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए था और रखरखाव के बारे में तकनीकी आपत्ति को वादी को अपेक्षित अदालत की फीस का भुगतान करने का निर्देश देकर दूर किया जा सकता है और तदनुसार, विचारण न्यायालय ने वादी को अदालत शुल्क जमा करके दोष को ठीक करने का निर्देश दिया है। उक्त आदेश के अनुसरण में वादी ने कोर्ट फीस जमा करा दी है। मामले की इस पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद की स्थिति में, वादी को समझौते में उल्लिखित बिक्री प्रतिफल के आधार पर मूल्य का अपेक्षित न्यायालय शुल्क प्रस्तुत करना चाहिए था। आगे यह देखा गया है कि यदि मुकदमा केवल अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए है, तो वादी के लिए सी.पी.सी. के आदेश 6 नियम-17 के तहत संशोधन की मांग करने का सहारा खुला है। यह आगे देखा गया है कि तदनुसार, सीमा का कानून लागू होगा। अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अवलंबन किए गए निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या-7, 8 और 9 को यहां उद्धृत किया गया है:

7. तथ्य की बात के रूप में, यदि वाद वास्तव में विशिष्ट प्रदर्शन के लिए था, तो याचिकाकर्ता को कम से कम समझौते में उल्लिखित बिक्री विचार के आधार पर वाद का मूल्यांकन करना चाहिए था। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। यदि मुकदमा केवल अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए था (जो वास्तव में यह था), तो याचिकाकर्ता के लिए खुला एकमात्र सहारा सी.पी.सी. के आदेश 6 नियम-17 के तहत संशोधन की मांग करना था। यदि ऐसा कोई आवेदन दायर किया गया होता, तो इसे या तो सीमा के आधार पर खारिज कर दिया जाता (के. रहेजा कंस्ट्रक्शंस लिमिटेड बनाम गठबंधन मंत्रालय) या यहां तक कि अगर अनुमति दी जाती, तो संशोधन के माध्यम से सम्मिलित निश्चित रूप से, वाद की तारीख विशिष्ट प्रदर्शन के लिए प्रार्थना नहीं

होती। (तरलोक सिंह बनाम विजय कुमार सभरवाल, वन विभाग कर्मचारी गृह निर्माण सहकारी संस्था मर्यादित बनाम रमेश चंदर) इसलिए, याचिकाकर्ता-वादी द्वारा वाद को बनाए रखने के लिए एक शॉर्ट-कट पाया गया था, लेकिन घाटे की अदालत की फीस का भुगतान करने की अनुमति लेने के लिए, जैसे कि पहली बार में जो दायर किया गया था वह वास्तव में विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक मुकदमा था। इस तरह के संदिग्ध दृष्टिकोण की अनुमति विशेष रूप से विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि विशिष्ट प्रदर्शन की राहत विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 20 के तहत विवेकाधीन है।

8. यह सच हो सकता है कि याचिकाकर्ता-वादी को परिसीमा के आधार पर गैर-वाद करने में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण, मूल दोष को ठीक करने और उसे अंतिम रूप देने के बावजूद, दोषपूर्ण हो सकता है। लेकिन हम याचिकाकर्ता को धारा 149 सी.पी.सी. के तहत आश्रय लेकर इसका लाभ उठाने की अनुमति नहीं देंगे, खासकर जब उसने मुकदमा दायर किया (बिक्री के समझौते के तहत निर्धारित तारीख के तीन साल से अधिक समय के बाद) केवल अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए, उसी के रूप में मूल्यवान और तदनुसार अदालत शुल्क का भुगतान किया, लेकिन मुकदमा खारिज करने के लिए एक आवेदन के साथ सामना होने के बाद उचित अदालत शुल्क का भुगतान करने का विकल्प चुना। चतुर चालें हमेशा लाभांश का भुगतान नहीं दिला सकती है।

9. धारा 16(सी) के इर्द-गिर्द घूमने वाले दूसरे पहलू पर आते हुए, विचारण न्यायालय के फैसले पर एक नज़र डालने से पता चलता है कि विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 16(सी) के संदर्भ में याचिकाकर्ता वादी की ओर से तत्परता और इच्छा के सवाल पर कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने 12-11-1996 को एक कानूनी नोटिस जारी करने का विकल्प चुना और तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने 7-10-1996 को उप-रजिस्ट्रार के समक्ष निष्पादित एक हलफनामे के रूप में एक ऐलिबी बनाई (एक्सटेंशन पी-2 के रूप में चिह्नित) यह दिखाने के लिए कि वह लेनदेन को पूरा करने के उद्देश्य से उप-रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित था, इसके प्रदर्शन के लिए निर्धारित समय के भीतर, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं था कि तीन साल बाद भी, 13-10-1999 को जब वाद प्रस्तुत किया गया था, याचिकाकर्ता तैयार और इच्छुक रहा। 12-11-1996 को कानूनी नोटिस जारी करने के बाद मुकदमा दायर करने में (13-10-1999 को) तीन साल की लंबी देरी के लिए याचिकाकर्ता से कोई स्पष्टीकरण नहीं आया। विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद में वादी का आचरण बहुत महत्वपूर्ण है। एक व्यक्ति जो तत्परता और इच्छा का दावा करते हुए 12-11-1996 को कानूनी नोटिस जारी करता है, लेकिन जो केवल 13-10-1999 को एक मुकदमा शुरू करता है और वह भी केवल एक अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना के साथ जिसमें एक निश्चित न्यायालय शुल्क होता है जो केवल उक्त राहत से संबंधित है, विशिष्ट निष्पादन के विवेकाधीन राहत का हकदार नहीं होगा।

16. उद्धृत मामलों के तथ्य और परिस्थितियां मौजूदा मामले में दी गई परिस्थितियों से अलग हैं। प्रस्तुत मामले में, समझौते के नियमों और शर्तों को दस्तावेज की प्रकृति में नहीं लिया जाता है, हालांकि पक्षों के बीच मौखिक समझौता उनके आचरण से संपन्न होता है। आवंटन पत्र जारी करना और प्रतिवादी/कॉलोनाइजर (वचनबद्ध) की ओर से बिक्री प्रतिफल की स्वीकृति पक्षों के बीच अनुबंध के गठन को साबित करने के लिए पर्याप्त है। यह साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि समय समझौते का सार था क्योंकि इसे कहीं भी निर्दिष्ट नहीं किया गया है। यदि हाथ में है, तो अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद में अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद को मानने/परिवर्तित करने के लिए कोई न्यायिक आदेश नहीं है और न ही वाद को किसी संशोधन आवेदन को स्थानांतरित करके या अदालत शुल्क जमा करके इसे अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद मानकर संशोधित/सही किया गया है, इसलिए, मेरी राय में, निर्धारित समय-सीमा तक वाद की अक्षमता का कोई मामला नहीं है। इसके अलावा, रिट याचिका संख्या-22445 वर्ष 2007 का निर्णय 26.10.2019 को किया गया था, इसके बाद, वादी ने प्रतिवादियों को दिनांक 12/13.9.2010 को पंजीकृत नोटिस भेजकर तीन साल के भीतर यानी 12.3.2011 को मुकदमा दायर करने का अनुरोध किया है। इसलिए, वाद को कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने की तारीख से सीमा की निर्धारित अवधि से परे दायर किया जाना नहीं माना जा सकता है।

17. प्रस्तुत अपील दायर करते समय, अपीलकर्ता ने कानून के 12 महत्वपूर्ण प्रश्नों को तैयार किया है जैसा कि अपील के ज्ञापन के नीचे बताया गया है। तैयार संदर्भ के लिए, उन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:

"ए। क्या निचली अदालतों ने अवैध रूप से वाद में अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन की राहत दी थी जिसमें वाद में किसी भी राहत के संशोधन के बिना अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए राहत मांगी गई थी, जो अनिवार्य निषेधाज्ञा का सरल वाद था?

ब) क्या निचली अदालतों ने अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन की राहत के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के वाद को एक वाद के रूप में मानते हुए प्रकट अवैधता की है और राहत प्रदान की है?

ग. क्या वादी-प्रतिवादी का वाद सुनवाई योग्य नहीं था और सी.पी.सी. के आदेश-VII नियम-11 के अधीन वाद निरस्त किया जा सकता है?

घ. क्या निचली अदालतों द्वारा दी गई राहत के लिए वादी प्रतिवादी का मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित था, निचली अदालत इस बात पर विचार करने में विफल रही थी कि भूखंड का आवंटन कथित रूप से 23.12.1987 को किया गया था और मुकदमा मूल वाद 601 वर्ष 2011 को 24 साल बाद 17.3.2011 को दायर किया गया था?

ई। क्या अनुबंध वाद के विशिष्ट प्रदर्शन की राहत को सीमा द्वारा रोक दिया गया था, भले ही निचली अदालत ने अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद में अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन की राहत देने वाले वाद को डिक्री दी थी?

एफ) क्या, पक्षों के बीच पंजीकृत या अपंजीकृत बेचने के लिए कोई समझौता नहीं था और न ही कोई निष्कर्ष निकाला गया प्रवर्तन अनुबंध था, भले ही निचली अदालतों ने अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वाद का फैसला किया था जिसे अलग रखा जा सकता है?

जी) क्या 1.1.1977 को संपत्ति अधिनियम के हस्तांतरण की धारा 54 और पंजीकरण अधिनियम के 17(2) में संशोधन किया गया था, जिसके द्वारा कृषि संपत्ति के संबंध में बेचने के लिए समझौते को पंजीकृत दस्तावेज होना आवश्यक है, वर्तमान में कोई पंजीकृत या अपंजीकृत समझौता नहीं है, भले ही निचली अदालत ने अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए इसे वाद के रूप में मानते हुए अनिवार्य निषेधाज्ञा के वाद की डिक्री की थी, इसलिए निर्णय और डिक्री द्वारा पारित किया गया था। निचली अदालतें रद्द करने के लिए उत्तरदायी हैं?

H. क्या वादी-प्रतिवादी के वाद में विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 41-ई और 41-एच के प्रावधान के अनुसार कोई राहत नहीं दी जा सकती थी, लेकिन निचली अदालत ने मामले के उक्त पहलू पर विचार नहीं किया था, क्योंकि निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अलग रखा जा सकता है?

I. क्या निचली अदालतों ने विवादित भूखंड का मूल्यांकन 266 रुपये प्रति वर्ग गज के रूप में किया था, जबकि वर्ष 1987 में भूखंड की बुकिंग के समय मूल्यांकन 550 रुपये प्रति वर्ग गज तय किया गया था और वादी-प्रतिवादी द्वारा मूल्यांकन के बारे में कोई सबूत पेश नहीं किया गया था, भले ही निचली अदालतों ने मनमाने तरीके से मूल्यांकन 266 रुपये प्रति वर्ग गज रखा था?

J. क्या बुकिंग विकास शुल्क के अनुसार भूखंड के बुकिंग धारक द्वारा भुगतान किया जाना उत्तरदायी है, लेकिन निचली अदालतों ने मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया है क्योंकि निचली अदालतों का ऐसा निर्णय और आदेश रद्द करने के लिए उत्तरदायी है?

K. क्या विशिष्ट निष्पादन के लिए वाद किसी मुद्दे को तैयार किए बिना और विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16(सी) के तहत अपेक्षित तत्परता और इच्छा का निर्णय किए बिना डिक्री की जा सकती है?

क्या प्लॉट की बुकिंग 23.12.1987 को की गई थी और 24 साल बाद 17.3.2011 को मुकदमा दायर किया गया था, इसलिए मुकदमा समय वर्जित था और आदेश VII नियम -11 सी.पी.सी. के तहत वर्जित होने के लिए उत्तरदायी था?

18. मैंने अपीलकर्ताओं द्वारा तैयार किए गए कानून के सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, जो प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से उभरने वाले गलत और गैर-महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। प्रस्तुत मामले की दी गई परिस्थितियों के आलोक में अपीलकर्ताओं के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दी गई संक्षिप्त प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि निचली अदालतों ने अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद की सही डिक्री की है, जिसमें प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं को 2500/- रुपये की राशि प्राप्त करने के बाद वादी के पक्ष में बिक्री विलेख

निष्पादित करने का निर्देश दिया गया है और दिनांक 7-10-2011 के निरसन पत्र को अमान्य घोषित कर दिया है। वाद के लंबित रहने के दौरान बाद के चरण में दिनांक 7.10.2011 को रद्दीकरण पत्र जारी करना स्पष्ट रूप से प्रतिवादियों के दुर्भावनापूर्ण इरादे को इंगित करता है, जिन्होंने जानबूझकर अपने दायित्व से बचने के लिए मुकदमा शुरू करने के बाद ऐसा कदम उठाया है, जिसे उन्होंने प्रश्नगत भूखंड के आवंटन के समय, दिनांक 23-12-1987 के आवंटन पत्र के माध्यम से पूरा करने का वादा किया था अर्थात प्लॉट सं सी-107 जिसका माप क्षेत्र 300 वर्ग गज है। विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 39 के प्रावधानों का हवाला देना संदर्भ से बाहर नहीं होगा, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"39. अनिवार्य निषेधाज्ञा- जब, किसी दायित्व के उल्लंघन को रोकने के लिए, कुछ कृत्यों के प्रदर्शन को मजबूर करना आवश्यक है, जिन्हें अदालत लागू करने में सक्षम है, तो अदालत अपने विवेक से शिकायत किए गए उल्लंघन को रोकने के लिए निषेधाज्ञा दे सकती है, और अपेक्षित कृत्यों के प्रदर्शन को मजबूर करने के लिए भी।

19. विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 39 के तहत प्रतिपादित प्रावधानों का एक सरल पढ़ने का अर्थ है कि अदालत, जब कुछ अनुबंधों के प्रदर्शन को मजबूर करना आवश्यक होता है, अपने विवेक से अनिवार्य निषेधाज्ञा प्रदान कर सकती है जिसे अदालत एक दायित्व के उल्लंघन को रोकने के लिए और अपेक्षित अधिनियम के प्रदर्शन को मजबूर करने के लिए भी लागू करने में सक्षम है। उपरोक्त प्रावधान को लागू करते हुए, दी गई परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी गलती पर हैं जो अपने अनुबंध के हिस्से को पूरा करने के लिए अपने दायित्व को टालने की कोशिश कर रहे हैं, जो पक्षों के बीच संपन्न हुआ था। अपीलकर्ताओं को प्रतिफल राशि प्राप्त हुई है, हालांकि वादी/प्रतिवादी के पक्ष में पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए उनके हिस्से को टाल दिया गया है। मामले की इस पृष्ठभूमि में, अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद वादी-प्रतिवादी द्वारा प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ दायर किया गया है और निचली अदालतों ने अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वादी की पात्रता को बरकरार रखते हुए घोषणात्मक निषेधाज्ञा के साथ-साथ 7.10.2011 के रद्दीकरण पत्र को शून्य घोषित करते हुए वाद की सही डिक्री की है। वादी का समग्र आचरण, धन जमा करने की तारीख से नोटिस की प्रकृति में पंजीकृत पत्र भेजने की तारीख तक, वादी के बिक्री विलेख को उसके पक्ष में निष्पादित करने के वास्तविक इरादे को इंगित करता है।

20. इसके अलावा, न्यायालय इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा द्वितीय अपील संख्या-439 वर्ष 2020 में पारित दिनांक 11.1.2021 के निर्णय से भी अनजान नहीं हो सकता है, जो मामले के समान तथ्यों और परिस्थितियों में दिया गया था, जिसमें 'गुलाबी शहर' में स्थित एक अन्य प्लॉट नं. ए-74 को वर्तमान प्रतिवादी/अपीलकर्ताओं द्वारा स्थानांतरित करने का वादा किया गया है। वादी (आवंटी) की ओर से दायर वाद को विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा समवर्ती

रूप से डिक्री किया गया है, और अंततः प्रतिवादी (कॉलोनाइजर) की ओर से दायर दूसरी अपील को 11.1.2021 के फैसले के अनुसार खारिज करके वादी के पक्ष में समाप्त किया गया है।

21. उपरोक्त के रूप में इस परिदृश्य में, मेरा विचार है कि वादी के वास्तविक दावे को अति तकनीकी आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है जैसा कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है, जबकि वे निर्णय और डिक्री, जो कि चुनौती के तहत निचली अदालतों द्वारा पारित किया गया, के खिलाफ तत्काल दूसरी अपील पर विचार करने के लिए कानून के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न को बनाने में विफल रहे हैं।

22. प्रस्तुत मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, मैं कानून के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न का पता लगाने में विफल रहा ताकि धारा 100 सी.पी.सी. के तहत द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में निचली अदालतों द्वारा पहुंचे गए तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष में हस्तक्षेप किया जा सके। यह तय है कि तथ्य के प्रश्नों के संबंध में, प्रथम अपीलीय न्यायालय ही अंतिम न्यायालय 16 - 17 तथ्य है(?) दूसरे अपीलीय चरण में, कानून का पर्याप्त प्रश्न बनाए बिना धारा 100 सी.पी.सी. के तहत कोई दूसरी अपील पर विचार नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सबमिशन को प्रस्तुत मामले की दी गई परिस्थितियों में कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं माना जा सकता है।

23. परिणामस्वरूप, वर्तमान रिट याचिका, योग्यता से रहित और गलत होने के कारण, लागत के रूप में बिना किसी आदेश के खारिज की जाती है।

(2023) 5 ILRA 1700

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

विशेष अपील संख्या 228/2023

डॉ. आर.एम.एल. इन्स. मेडिकल साइंस, लखनऊ एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

डॉ. चारु महाजन और अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: अनुप्रास सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी: गौरव मेहरोत्रा, सी.एस.सी.

सेवा कानून- डॉ. राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 2015- धारा 42 - भारत का संविधान 1950-अनुच्छेद 226- रिट अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए इस न्यायालय में आने वाले पक्ष द्वारा वैकल्पिक उपाय का प्रयोग न किए जाने मात्र से न्यायालय का अधिकार क्षेत्र समाप्त नहीं हो जाता जो रिट याचिका को पोषणीय नहीं बनाए रखेगा-याचिकाकर्ता ने अधिनियम 2015 की धारा 42 का सहारा नहीं लिया है, बल्कि संस्थान के निदेशक द्वारा दिनांक 22.02.2023 के आदेश के माध्यम से उसे बताए गए राष्ट्रपति के आदेश को चुनौती दी है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि

सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर करके चुनौती नहीं दी जा सकती जब तक कि इसे संस्थान के विजिटर द्वारा अंतिम रूप नहीं दिया जाता है। (पैरा 23, 26 और 37)

विशेष अपील खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. (1998) 8 एससीसी 1 में प्रतिवेदित व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य
2. 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 95 में प्रतिवेदित गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी एवं कराधान अधिकारी-सह-मूल्यांकन प्राधिकरण व अन्य,
3. (2021) 6 एससीसी 771 में प्रतिवेदित मेसर्स राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य एवं अन्य, 20.04.2021 को निर्णीत,
4. प्रबंधन समिति एवं अन्य बनाम कुलपति एवं अन्य (2009) 2 एससीसी 630

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय द्वारा प्रदत्त)

1. डॉ. राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान, लखनऊ (इसके बाद **'संस्थान'** के रूप में संदर्भित) न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 के तहत दायर इस अंतरा-न्यायालय अपील में हमारे सामने है, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 2023 के रिट-ए संख्या 2822 में पारित दिनांक 13.04.2023 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत अपीलकर्ता-संस्थान की ओर से रिट याचिका की पोषणीयता/विचारणीयता के संबंध में उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को निरस्त कर दिया गया है और अपीलकर्ता-संस्थान को रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा अंतरिम राहत प्रदान करने की प्रार्थना पर अपना जवाबी हलफनामा दाखिल करने को कहा गया है।

3. श्री असित कुमार चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अनुप्रास सिंह, अपीलकर्ता-संस्थान का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायतित और प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा को सुना। राज्य-प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान राज्य अधिवक्ता को भी सुना गया है। हमने इस विशेष अपील पर हमारे सामने उपलब्ध अभिलेख का भी परिशीलन किया है।

4. शुरुआत में, प्रतिवादी संख्या 1 याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यह विशेष अपील इस कारण से पोषणीयता नहीं है कि अपील के तहत आदेश किसी भी मुद्दे का फैसला नहीं करता है; बल्कि उक्त आदेश द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने केवल अपीलकर्ता-संस्थान की आपत्ति को निरस्त करते हुए रिट याचिका पर विचार किया है कि रिट याचिका में चुनौती के तहत आदेश के विरुद्ध, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को कुलाध्यक्ष के समक्ष

डॉ. राम मनोहर लोहिया आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 2015 (इसके बाद '**अधिनियम, 2015**' के रूप में संदर्भित) की धारा 42 के तहत एक वैकल्पिक उपाय मिला है, क्योंकि इस तरह की रिट याचिका पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, इस विशेष अपील की विचारणीयता के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है कि एक बार विद्वान एकल न्यायाधीश ने एक वैकल्पिक उपाय होने की आपत्ति को निरस्त करते हुए रिट याचिका पर विचार करने का फैसला किया है, तो इस विशेष अपील में इस न्यायालय द्वारा ऐसे विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

5. इस अंतर-न्यायालय अपील की पोषणीयता के संबंध में प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए उपरोक्त प्रस्तुति का उत्तर देते हुए, श्री चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रबल तर्क दिया है कि अधिनियम, 2015 की धारा 42 के तहत वैधानिक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के मद्देनजर, जो प्रभावी भी है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को बनाए रखने में विधिक त्रुटि की है। अपने प्रस्तुति में, उन्होंने आग्रह किया है कि पूर्वोक्त के मद्देनजर रिट याचिका पोषणीय नहीं है और इसे प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को अधिनियम, 2015 की धारा 42 के तहत उपाय के लिए निरस्त कर दिया जाना चाहिए था। अपने प्रस्तुति के समर्थन में, श्री चतुर्वेदी ने (i) **डॉ. जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय और अन्य, (1976) 3 एससीसी 585** में रिपोर्ट किया गया, **(ii) गोवा राज्य और अन्य बनाम ल्यूकोप्लास्ट** (**इंडिया**) **लिमिटेड, (1997) 4 एससीसी 82** में रिपोर्ट किया गया, **(iii) ए.पी. फूड्स बनाम एस. सैमुअल और अन्य, (2006) 5 SCC 469** में रिपोर्ट किया गया (**iv) ट्रांसपोर्ट एंड डॉक वर्कर्स यूनियन और अन्य बनाम मुंबई पोर्ट ट्रस्ट और अन्य, (2011) 2 एससीसी 575** में रिपोर्ट किया गया, (v) **अंसल हाउसिंग एंड कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2016) 13 एससीसी 305** में रिपोर्ट किया गया **और** (**vi**) **कृष्ण कुमार बनाम निदेशक, संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, (2008) लॉसूट (एलल) 1060** में रिपोर्ट किया गया।

6. हमने संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है।

7. पक्षकारों द्वारा की गई प्रतिस्पर्धी प्रस्तुतियों से निपटने से पहले, हम कुछ तथ्यों पर ध्यान देना उचित समझते हैं, जिन्हें अभिलेख पर

उपलब्ध अभिवचनों से एकत्र किया जा सकता है, साथ ही पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों से भी।

8. संस्थान को शुरू में सुपर-स्पेशियलिटी चिकित्सा देखभाल उपलब्ध कराने के लिए संजय गांधी स्नातकोत्तर चिकित्सा विज्ञान संस्थान के एक केंद्र के रूप में शुरू किया गया था। यह शुरू में सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत किया गया था और वर्ष 2006 से स्वायत्त संस्थान के रूप में कार्य कर रहा था। तथापि, राज्य सरकार ने उक्त संस्थान को विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान करने का निर्णय लिया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि संस्थान चिकित्सा, पराचिकित्सा और संबद्ध स्वास्थ्य सेवा में उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान की आवश्यकता को पूरा करने के लिए शिक्षण और अनुसंधान केन्द्र के रूप में अधिक दक्षतापूर्वक कार्य करे। तदनुसार राज्य विधानमंडल ने अधिनियम, 2015 (2018 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 41) को अधिनियमित किया, जिसमें *अन्य बातों के साथ-साथ* अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली की तर्ज पर संस्थान की स्थापना का प्रावधान किया गया।

9. अधिनियम, 2015 की धारा 5 के अनुसार संस्थान में विभिन्न सदस्य होते हैं जिनमें उत्तर प्रदेश के राज्यपाल शामिल होते हैं जो इसके कुलाध्यक्ष (*पदेन*) और उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव होते हैं, जो इसके अध्यक्ष (*पदेन*) *होते हैं*। अधिनियम, 2015 की धारा 10 में यह प्रावधान है कि कुलाध्यक्ष, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, निदेशक, संस्थान के संकायाध्यक्ष, वित्त अधिकारी और ऐसे अन्य अधिकारी जो विनियमन द्वारा अपेक्षित हो सकते हैं, संस्थान के अधिकारी हैं। उक्त अधिनियम की धारा 11 में यह प्रावधान है कि उत्तर प्रदेश का राज्यपाल संस्थान का कुलाध्यक्ष होगा। धारा 11 की उपधारा 6 में यह प्रावधान है कि धारा 42 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कुलाध्यक्ष, लिखित आदेश द्वारा, संस्थान की किसी कार्यवाही को निष्प्रभावी कर सकता है यदि वह अधिनियम या नियमों या अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अनुरूप नहीं पाई जाती है। अधिनियम, 2015 की धारा 12 के अनुसार उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव संस्थान के अध्यक्ष हैं और वह शासी निकाय के अध्यक्ष भी हैं। धारा 18 संस्थान के प्राधिकारियों को परिभाषित करती है जिसमें शासी मंडल भी शामिल है। धारा 19 में कहा गया है कि शासक मंडल संस्थान का प्रमुख शासी निकाय होगा जिसमें मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार इसके अध्यक्ष (*पदेन*) *होंगे*। धारा 26 में प्रावधान है कि संस्थान के आचार्यों, सह-आचार्यों, सहायक

आचार्यों और समूह 'ए' अधिकारियों की नियुक्ति शासी निकाय के अध्यक्ष यानी उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव द्वारा की जाएगी। धारा 34 संस्थान को राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से विनियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है ताकि उसमें उल्लिखित मामलों का प्रावधान किया जा सके। धारा 40 राज्य सरकार को समय-समय पर नीतिगत मामलों पर ऐसे निर्देशों जारी करने का अधिकार देती है जो अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं होंगे। इसमें यह भी प्रावधान है कि संस्थान द्वारा ऐसे निर्देश का अनुपालन किया जाएगा। निर्देश जारी करने की शक्ति के अलावा, राज्य सरकार को संस्थान का निरीक्षण कराने की शक्ति भी प्रदान की गई है।

10. अधिनियम, 2015 की धारा 42, जिसके साथ हम इस मामले में विचारत है, यह प्रदान करता है कि यदि कोई मुद्दा उठता है कि क्या कोई व्यक्ति चुना गया है या नियुक्त किया गया है या संस्थान, शासी निकाय, किसी प्राधिकरण या संस्थान के किसी निकाय का सदस्य होने का हकदार है या क्या संस्थान, शासी निकाय या संस्थान के किसी प्राधिकरण या निकाय का कोई निर्णय अधिनियम या नियमों के अनुरूप है या नहीं। नियमों के अनुसार, मामला कुलाध्यक्ष को भेजा जाएगा और उस संबंध में कुलाध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा। धारा 42 के साथ संलग्न प्रथम परंतुक यह उपबंध करता है कि उक्त उपबंध के अधीन कोई भी संदर्भ उस नियत तारीख के तीन मास से अधिक नहीं किया जाएगा जब प्रश्न पहली बार उठाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, दूसरा परंतुक कुलाध्यक्ष को आपवादिक परिस्थितियों में तीन माह की अवधि की समाप्ति के बाद स्वप्रेरणा से कार्य करने अथवा संदर्भ पर विचार करने की शक्ति प्रदान करता है। अधिनियम, 2015 की धारा 42 नीचे उद्धृत की गई है:

"42. यदि कोई प्रश्न उठे कि कोई व्यक्ति संस्थान, शासी निकाय, संस्थान के किसी प्राधिकारी या अन्य निकाय का सम्यक् रूप से निर्वाचित या नियुक्त सदस्य है या नहीं, या उसका सदस्य होने का हकदार है या नहीं या संस्थान, शासी निकाय या संस्थान के किसी प्राधिकारी या अन्य निकाय का कोई विनिश्चय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाये गये नियमों या विनियमों के अनुरूप है या नहीं, तो वह मामला कुलाध्यक्ष को निर्दिष्ट किया जायेगा और उस पर कुलाध्यक्ष का विनिश्चय अन्तिम होगा।

11. अधिनियम की व्यापक योजना को ध्यान में रखते हुए, अब हम उन तथ्यों को बताने के लिए आगे बढ़ते हैं जो इस मामले में हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। संस्थान द्वारा 08.09.2016 को एक विज्ञापन जारी किया गया था जिसमें प्रसूति एवं स्त्री

रोग विभाग में सहायक आचार्य के दो पदों सहित कई विभागों में विभिन्न रिक्त शिक्षण पदों को भरने के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे। विज्ञापन में उल्लिखित आवश्यक योग्यता एमसीआई (भारतीय चिकित्सा परिषद) की आवश्यकता के अनुसार थी। विज्ञापन में आगे यह प्रावधान किया गया है कि अनिवार्य अर्हता के रूप में चिकित्सा योग्यता "चिकित्सा संस्थानों में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता विनियम, 1998" संशोधन सहित के अनुसार होगी। सहायक आचार्य के पद के लिए, विज्ञापन में विज्ञापित अपेक्षित अनुभव 30.06.2016 को किसी मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थान में निर्धारित स्नातकोत्तर (एमडी / एमएस / पीएचडी आदि) के बाद तीन साल का शिक्षण अनुभव था। सहायक आचार्य, प्रसूति एवं स्त्री रोग के पद का उल्लेख उक्त विज्ञापन में क्रम संख्या 29 पर किया गया है। उक्त पद के विरुद्ध निर्धारित "न्यूनतम योग्यता" एमडी / एमएस (प्रसूति एवं स्त्री रोग) है। शैक्षिक योग्यता के साथ, विज्ञापन में किसी मान्यता प्राप्त मेडिकल कॉलेज / शिक्षण संस्थान में वरिष्ठ निवासी / कुलसचिव / प्रदर्शक / अनुशिक्षक / व्याख्याता के रूप में विषय में तीन साल के एमडी / एमएस शिक्षण अनुभव की आवश्यकता का उल्लेख किया गया है।

12. याचिकाकर्ता ने खुद को पात्र मानते हुए 08.09.2016 के विज्ञापन के अनुसार सहायक आचार्य (प्रसूति एवं स्त्री रोग) के पद पर नियुक्ति के लिए अपना आवेदन किया और चयन के अधीन था। आयोजित चयन के आधार पर, उन्हें प्रसूति और बाल कल्याण-सह-व्याख्याता/प्रसूति और स्त्री रोग में सहायक आचार्य के पद पर 15600-39100 रुपये के नियमित वेतनमान में 8,700 रुपये के शैक्षणिक ग्रेड वेतन के साथ नियुक्त किया गया था।

13. उक्त नियुक्ति संस्थान के निदेशक द्वारा 16.12.2016 को जारी नियुक्ति आदेश के तहत की गई थी। उनकी नियुक्ति पर, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने उक्त पद पर अपना प्रभार ग्रहण किया और तब से अपने पद के कार्यों और कर्तव्यों का निर्वहन कर रही थीं।

14. इस न्यायालय के समक्ष 2018 की एक जनहित याचिका (सिविल) संख्या 24194 दायर की गई थी, जिसमें राज्य सरकार के साथ-साथ संस्थान के अधिकारियों को संस्थान में शिक्षण संकायों के चयन में कथित कदाचार के संबंध में संस्थान के तत्कालीन निदेशक के विरुद्ध महानिदेशक, चिकित्सा शिक्षा, उत्तर प्रदेश द्वारा की गई जांच के आधार पर दिनांक 25.04.2018 की रिपोर्ट पर कार्रवाई करने का निर्देश जारी करने की प्रार्थना की गई थी। उक्त पीआईएल का

निस्तारण किया गया था, यह देखते हुए कि महानिदेशक, चिकित्सा शिक्षा ने एक जांच की थी और दिनांक 28.06.2019 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी और उक्त जांच में कुछ विसंगतियां देखी गई थीं और मामला राज्य सरकार के समक्ष लंबित था, जिसमें 28.06.2016 की जांच रिपोर्ट के अनुसार उचित कार्रवाई करने का निर्देश था। इसके बाद इस मामले पर शासक मंडल द्वारा 30.07.2020 को आयोजित अपनी बैठक में विचार किया गया था, जिसमें निदेशक मंडल द्वारा यह देखा गया था कि प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को संबंधित विभाग में सहायक आचार्य के पद पर अनियमित रूप से नियुक्त किया गया था और तदनुसार निदेशक मंडल ने निर्णय लिया कि निदेशक को प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता की नियुक्ति को *प्रारम्भ से ही शून्य मानते हुए* उसकी सेवा समाप्ति के लिए उचित कार्रवाई करनी चाहिए।

15. इसके बाद निदेशक द्वारा 11.02.2021 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि निदेशक मंडल ने 30.07.2020 को हुई अपनी बैठक में उनकी नियुक्ति को *प्रारम्भ से ही शून्य मानते हुए* उनकी सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय लिया था और तदनुसार उन्हें एक पखवाड़े के भीतर स्पष्टीकरण देना चाहिए कि सहायक आचार्य, प्रसूति-विज्ञान और स्त्री रोग के रूप में उनकी सेवाएं, निदेशक मंडल द्वारा दिनांक 30.07.2020 की बैठक में दर्ज निष्कर्षों और लिए गए निर्णय के आलोक में, क्यों समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने 23.02.2021 को उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें इस आरोप का खंडन किया गया कि प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने अपेक्षित शिक्षण अनुभव को पूरा नहीं किया और उसकी नियुक्ति में कोई अवैधता नहीं थी, इसलिए उनकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए उन्हें दिया गया कारण बताओ नोटिस विधिक दृष्टि से गलत है, इसलिए उसे वापस लिया जाना चाहिए ।

16. दिनांक 11.02.2021 के कारण बताओ नोटिस और प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा 23.02.2021 को उक्त कारण बताओ नोटिस पर कार्रवाई करने के बजाय, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को दिनांक 18.01.2022 को एक आरोप पत्र जारी किया गया था, जिसमें एकमात्र आरोप था कि उसने अपने आवेदन दिनांक 26.09.2016 के माध्यम से अपने अनुभव के बारे में कथित रूप से गलत तथ्यों का उल्लेख करते हुए नियुक्ति के लिए आवेदन किया था

और उसे तदनुसार नियुक्ति मिली थी। उक्त आरोप-पत्र में जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था, वे थे - (i) प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र की छायाप्रति, (ii) उसके अनुभव प्रमाण पत्रों की छायाप्रति और (iii) महानिदेशक, चिकित्सा शिक्षा और प्रशिक्षण, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट की छायाप्रति। प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने 31.01.2022 को उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्रस्तुत करते हुए कहा कि उसने विज्ञापन के विरुद्ध आवेदन करते समय अपने शिक्षण अनुभव से संबंधित कोई गलत तथ्य प्रस्तुत नहीं किया था। दिनांक 18.01.2022 की उक्त आरोप पत्र के अनुसरण में कुछ भी नहीं किया गया था, इसके बजाय प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को दिनांक 04.02.2022 को एक और आरोप-पत्र जारी किया गया था, जिसमें वही आरोप था जो आरोप पत्र दिनांक 18.01.2022 में उल्लिखित है, सिवाय इसके कि आरोप पत्र दिनांक 18.01.2022 में उल्लिखित तीन दस्तावेजों पर भरोसा करने के अलावा, दो और दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था, जिनमें से एक विज्ञापन की छायाप्रति थी और दूसरी एमसीआई विनियम, 1998, 13 जुलाई, 2016 तक संशोधित, थी ।

17. प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने 22.02.2022 को उक्त आरोप-पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों का खंडन किया गया और उसमें कहा गया कि उसके विरुद्ध गलत तरीके से आरोप तय किया गया था क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 याचिकाकर्ता ने कोई तथ्य नहीं छिपाया। उन्होंने यह भी कहा कि यदि उनके द्वारा प्रस्तुत उत्तर/स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जाता है, तो वह जांच समिति के सदस्यों, डॉ रीना श्रीवास्तव, आचार्य, प्रसूति एवं स्त्री रोग, बी.आर.डी. मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर, डॉ अलका कृपलानी, आचार्य, प्रसूति एवं स्त्री रोग, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली, डॉ दीपक मालवीय, चयन समिति के सदस्य और महानिदेशक चिकित्सा शिक्षा, उत्तर प्रदेश, चयन समिति के एक अन्य सदस्य की प्रतिपरीक्षा करेंगी।

18. प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने 12.04.2022 को आरोप पत्र का पूरक उत्तर भी दिया। जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को संस्थान के कार्यकारी कुलसचिव द्वारा दिनांक 04.07.2022 के एक पत्र के माध्यम से दी गई थी, जिसमें उसे जांच रिपोर्ट पर अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने तदनुसार दिनांक 20.07.2022 के पत्र के माध्यम से जांच रिपोर्ट पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत

की, जिसमें *अन्य बातों के साथ-साथ* कहा गया है कि उसने आरोप पत्र में प्रस्तुत उत्तर में उसके द्वारा उल्लिखित पांच व्यक्तियों से प्रतिपरीक्षा करने के लिए मौखिक जांच का अनुरोध किया था और इसलिए जांच अधिकारी की ओर से साक्षियों को बुलाने के बाद इस तरह की मौखिक जांच के लिए तिथि तारीख तय करना अनिवार्य था। उन्होंने यह भी कहा कि जांच अधिकारी ने महानिदेशक, चिकित्सा शिक्षा, उत्तर प्रदेश की राय पर विश्वास व्यक्त किया था, जो अनुरोध के बावजूद, जांच के दौरान पेश नहीं किए गए थे, जिससे उन्हें प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति मिल सके। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने जांच रिपोर्ट में जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को भी चुनौती दी और अंत में प्रस्तुत किया कि उसके विरुद्ध की गई जांच *अन्य बातों के साथ-साथ* प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध थी।

19. इसके बाद निदेशक द्वारा अनुमोदन के साथ और संस्थान के अध्यक्ष के आदेश के अनुपालन में दिनांक 22.02.2023 को एक कार्यालय आदेश पारित किया गया है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को सरकार के तहत भविष्य में भर्ती के लिए आवेदन करने के लिए बिना किसी रोक के संस्थान की सेवा से पदच्युत कर दिया गया है।

20. यह निदेशक द्वारा राष्ट्रपति की मंजूरी से जारी किया गया दिनांक 22.02.2023 का उपरोक्त आदेश है जिसके तहत उसे सेवा से पदच्युत कर दिया गया है जिसे प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने 2023 की रिट-ए संख्या 2822 को संस्थित करके चुनौती दी है। दिनांक 22.02.2023 के कार्यालय आदेश को चुनौती देने के अलावा, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने निदेशक मंडल के दिनांक 30.07.2020 के संकल्प को भी चुनौती दी है, जिसके तहत यह निर्णय लिया गया था कि प्रतिवादी संख्या 1 याचिकाकर्ता की नियुक्ति को *प्रारम्भ से ही शून्य मानते हुए*, निदेशक को उसकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए उचित निर्णय लेना चाहिए।

21. अपीलकर्ता-संस्थान द्वारा तर्क के रूप में रिट याचिका की पोषणीयता के बारे में आपत्ति को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उस आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया है जो हमारे समक्ष अपील के अधीन है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका पर विचार करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने का निर्णय लिया है।

22. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, जो प्रश्न हमारे विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक13.04.2023, जो यहां अपील के अधीन है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 1-

याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका पर विचार किया गया है और विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले में अपने विवेक का प्रयोग करने का निर्णय लिया है, क्या इस विशेष अपील में हस्तक्षेप किया जा सकता है या नहीं?

22. ***व्हर्लपूल कारपोरेशन बनाम व्यापार चिन्ह पंजीयक, मुंबई और अन्य*** **(*1998) 8 एससीसी 1*** में रिपोर्ट किए गए के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को उद्धृत करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने टिप्पणी की है कि उनके समक्ष प्रस्तुत मामले के तथ्यों ने उन्हें रिट याचिका पर विचार करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया।

23. इस विधिक प्रतिपादना पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि उच्च न्यायालयों द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग विवेकाधीन है। विधिक सिद्धांत पर भी कोई विवाद नहीं है कि संबंधित विधि द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता एक रिट याचिका पर विचार करने के लिए एक पूर्ण बाधा नहीं है; बल्कि न्यायालय के समक्ष लाए जा रहे मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय के पास विवेक है कि वह रिट याचिका पर विचार करे या नहीं, एक रिट याचिका पर विचार करने पर स्व-लगाए गए प्रतिबंधों में से एक यह है कि इस न्यायालय को सामान्य रूप से रिट याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए जहां प्रभावी और प्रभावोत्पादक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, हालांकि, साथ ही यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस न्यायालय में रिट अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने वाले पक्ष द्वारा वैकल्पिक उपाय का प्रयोग न किए जाने मात्र से न्यायालय का अधिकार क्षेत्र समाप्त नहीं हो जाता, जो रिट याचिका को पोषणीय नहीं बनाता।

24. वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के मद्देनजर रिट याचिका की "विचारणीयता और पोषणीयता" के बीच अंतर को रेखांकित करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी और कराधान अधिकारी-सह-निर्धारण प्राधिकरण और अन्य** जिसे **2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 95** में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में एक नवीनतम फैसले में माना है कि **व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त)** के मामले में अपवाद बनाए गए हैं वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के मद्देनजर भी एक रिट याचिका पर विचार करने के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिए। **गोदरेज सारा ली लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय के प्रस्तर 4 से 8 प्रासंगिक हैं जो यहां उद्धृत किए गए हैं:

"4. ***प्रश्नों का उत्तर देने से पहले, हम संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त रिट शक्तियों के प्रयोग पर कुछ शब्द कहने का आग्रह महसूस करते हैं, उच्च न्यायालयों द्वारा रिट याचिकाओं को "अपोषणीय" के रूप में पारित कुछ आदेशों के बारे में पता चला है, क्योंकि प्रासंगिक विधियों द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय का अनुसरण रिट क्षेत्राधिकार के आह्वान के इच्छुक पक्षों द्वारा नहीं किया गया है। अनुच्छेद 226 के तहत विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्ति प्रकृति में पूर्ण है।***

ऐसी शक्ति के प्रयोग पर किसी भी सीमा का पता संविधान में ही लगाया जाना चाहिए। इस संबंध में संविधान के अनुच्छेद 329 और इसी तरह के अन्य अनुच्छेदों के आदेशों का लाभदायक संदर्भ दिया जा सकता है। अनुच्छेद 226, रिट जारी करने की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा या प्रतिबंध नहीं लगाता है। हालांकि यह सच है कि रिट शक्तियों का प्रयोग उसी विधि के तहत एक उपाय की उपलब्धता के बावजूद किया गया है जिसे लागू किया गया है और रिट याचिका में आक्षेपित कार्रवाई को जन्म दिया है, इसे नियमित तरीके से नहीं किया जाना चाहिए, फिर भी, केवल तथ्य यह है कि उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता, किसी दिए गए मामले में, उसके पास उपलब्ध वैकल्पिक उपाय का अनुसरण नहीं किया गया है इसे यांत्रिक रूप से इसकी निरस्तीकरण के आधार के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह स्वयंसिद्ध है कि उच्च न्यायालयों (प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए) के पास एक विवेक है कि वह रिट याचिका पर विचार करे या नहीं। अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के प्रयोग पर स्व-लगाए गए प्रतिबंधों में से एक, जो न्यायिक उदाहरणों के माध्यम से विकसित हुआ है, यह है कि उच्च न्यायालयों को आमतौर पर एक रिट याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए, जहां एक प्रभावी और प्रभावोत्पादक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हो। साथ ही, यह याद रखना चाहिए कि अपील या पुनरीक्षण के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता, जिसे अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने वाले पक्ष ने आगे नहीं बढ़ाया है, उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त नहीं करेगा और एक रिट याचिका को "अपोषणीय" नहीं बनाएगा। निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला में, इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि एक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता एक रिट याचिका की "पोषणीयता" के लिए एक पूर्ण बाधा के रूप में काम नहीं करती है और यह नियम, जिसके लिए एक विधि द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय को आगे बढ़ाने के लिए एक पक्ष की आवश्यकता होती है, विधि के शासन के बजाय नीति, सुविधा और विवेक का नियम है। हालांकि प्राथमिक, यह बहाल करने की आवश्यकता है कि एक रिट याचिका की "विचारणीयता" और "अपोषणीयता" अलग-अलग अवधारणाएं हैं। दोनों के बीच के बारीक लेकिन वास्तविक अंतर को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। "अपोषणीयता" के रूप में आपत्ति मामले की जड़ तक जाती है और यदि ऐसी आपत्ति को तथ्यात्मक पाया जाता है, तो न्यायालय न्यायनिर्णयन के लिए मुकदमा स्वीकार करने में भी असमर्थ हो जाएंगे। दूसरी ओर, "विचारणीयता" का प्रश्न पूरी तरह से उच्च न्यायालयों के विवेक के दायरे में है, रिट उपाय विवेकाधीन है। एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होने के बावजूद उच्च न्यायालय द्वारा बहुत सारे कारणों से विचार नहीं किया जा सकता है या याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार भी किया जा सकता है, भले ही एक ठोस विधिक बिंदु स्थापित किया गया हो, अगर दावा की गई राहत का अनुदान सार्वजनिक हित को आगे नहीं बढ़ाएगा। इसलिए, एक उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर एक रिट याचिका को निरस्त करना कि याचिकाकर्ता ने वैकल्पिक उपाय का लाभ नहीं उठाया है, हालांकि, यह जांच करना कि

क्या इस तरह के विचारण के लिए एक असाधारण मामला बनाया गया है, उचित नहीं होगा।

5. संविधान की शुरुआत के कुछ समय बाद, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने 1958 *एससीआर* 595 *(उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद अली खान) में रिपोर्ट किये गए में अपने निर्णय में कहा है कि* :

"10. *इसके बाद यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उत्प्रेषण के संबंध में कोई नियम नहीं है, जैसा कि परमादेश के साथ है, कि यह केवल वहीं होगा जहां कोई अन्य समान रूप से प्रभावी उपाय नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि, बशर्ते अपेक्षित आधार मौजूद हों, उत्प्रेषण मान्य होगा, हालांकि अपील का अधिकार विधि द्वारा प्रदान किया गया है, (इंग्लैंड के हाल्सबरी के विधि, तीसरा संस्करण, वॉल्यूम* 11, *पृष्ठ* 130 *और वहां उद्धृत मामले)। तथ्य यह है कि पीड़ित पक्ष के पास एक और और पर्याप्त उपाय है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने में उच्चतर न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है कि क्या उसे अपने विवेक का प्रयोग करते हुए, अधीनस्थ अवर न्यायालयों की कार्यवाही और निर्णयों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी करनी चाहिए और आमतौर पर उच्चतर न्यायालय तब तक हस्तक्षेप करने से इनकार करेगा जब तक कि पीड़ित पक्ष ने अपने अन्य वैधानिक उपायों को समाप्त नहीं कर दिया है, यदि कोई हो। लेकिन रिट दिए जाने से पहले वैधानिक उपायों की समाप्ति की आवश्यकता वाला यह नियम विधि के शासन के बजाय नीति, सुविधा और विवेक का नियम है और ऐसे कई उदाहरण हैं जहां इस तथ्य के बावजूद कि पीड़ित पक्ष के पास अन्य पर्याप्त विधिक उपाय थे, उत्प्रेषण रिट जारी की गई है। ****"

6. पिछली शताब्दी के अंत में, इस न्यायालय ने (1998) 8 SCC 1 *(व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम कुलसचिव ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई) में रिपोर्ट किए गए अपने निर्णय के प्रस्तर* 15 *में अस्तित्व पर अपवादों को उकेरा, जिसमें एक रिट न्यायालय एक रिट याचिका पर विचार करने में न्यायसंगत होगा, इसके बावजूद कि पार्टी ने विधि द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय का लाभ नहीं उठाया है। उपरोक्तानुसार निम्नवत है*:

(1) जहां रिट याचिका किसी भी मौलिक अधिकार को लागू करने की मांग करती है;

(2) जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है;

(3) जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है; नहीं तो

(4) जहां किसी अधिनियम की शक्ति को चुनौती दी जाती है।

7. बहुत समय पहले, इस न्यायालय ने 2021 SCC *ऑनलाइन* SC 884 *(राज्य कर के सहायक आयुक्त बनाम कमर्शियल स्टील लिमिटेड) में रिपोर्ट*

किए गए अपने निर्णय में प्रस्तरग्राफ **11** *में समान सिद्धांतों को दोहराया है।*

8. *इसके अलावा, हम* **(1977) 2** *एससीसी* **724** *(उत्तर प्रदेश राज्य बनाम इंडियन ट्यूम पाइप कंपनी लिमिटेड) और* **(2000) 10** *एससीसी* **482** *(भारत संघ बनाम हरियाणा राज्य) में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के निर्णयों का भी उपयोगी रूप से उल्लेख कर सकते हैं। पूर्व निर्णय के एक सामान्य पठन पर जो प्रतीत होता है वह यह है कि क्या एक निश्चित वस्तु बिक्री कर विधि में एक प्रविष्टि के भीतर आती है, विधि का एक शुद्ध प्रश्न उठाती है और यदि तथ्यों की जांच अनावश्यक है, तो उच्च न्यायालय अपने विवेक से एक रिट याचिका पर विचार कर सकता है, भले ही वैकल्पिक उपाय का लाभ नहीं उठाया गया हो; और, जब तक विवेक का प्रयोग अनुचित या विकृत नहीं दिखाया जाता है, यह न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा। बाद के फैसले में, इस न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे को मूल रूप से विधिक पाया, जिसके लिए उच्च न्यायालय द्वारा पदानुक्रम में वैधानिक अपीलों के समूह के माध्यम से अपीलकर्ता को रखे बिना निर्धारण की आवश्यकता थी। उक्त निर्णयों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां विवाद पूरी तरह से विधिक है और इसमें तथ्य के विवादित प्रश्न शामिल नहीं हैं, बल्कि केवल विधि के प्रश्न हैं, तो वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने के आधार पर रिट याचिका को निरस्त करने के बजाय इसे उच्च न्यायालय द्वारा तय किया जाना चाहिए।"*

25. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त) के मामले में बनाए गए अपवाद निम्नानुसार हैं:

(1) जहां न्यायालय को पहुंचने वाले पक्ष किसी भी मौलिक अधिकार को लागू करने की मांग करता है,

(2) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है,

(3) जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना हैं या

(4) जहां किसी अधिनियम की शक्ति को चुनौती दी जा रही है।

26. गोदरेज सारा ली लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से पहले इसी तरह की टिप्पणियां की गई थीं और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मैसर्स राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** के मामले में विधिक सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था, जिसका निर्णय **20.04.2021** को किया गया था, जिसे **(2021) 6 एससीसी 771** में रिपोर्ट किया गया था। विभिन्न निर्णयों पर चर्चा करने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **व्हर्लपूल कारपोरेशन (उपरोक्त)** के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा विकसित विधिक सिद्धांत पर भी विचार किया है और उक्त निर्णय के

प्रस्तर 24 में विधि के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। **मैसर्स राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विकसित विधिक सिद्धांतों में से एक यह है कि वैकल्पिक उपचार के नियम के कुछ अपवाद हैं और ऐसे अपवाद वे हैं जहां भारत के संविधान के भाग-III द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए एक रिट याचिका दायर की गई है, जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है, जहां आदेश या कार्यवाही पूर्णत: क्षेत्राधिकार के बिना है और जहां विधान की शक्तियों को चुनौती दी गई है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मैसर्स राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज (उपरोक्त)** के उक्त मामले में यह भी निर्णय दिया है कि कोई वैकल्पिक उपाय अपने आप में किसी उपयुक्त मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को उसकी शक्ति से वंचित नहीं करता है, हालांकि सामान्यतः जब विधि द्वारा प्रभावोत्पादक और वैकल्पिक उपाय प्रदान किया जाता है तो रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उक्त मामले में यह भी माना गया है कि वैधानिक उपचारों के समाप्त होने का नियम नीति, सुविधा और विवेक का नियम है। **मेसर्स राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय के प्रस्तर 24 से 27 निम्नानुसार है:-

"24. ***उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका की पोषणीयता पर विचार किया है। सीसीटी बनाम ग्लैक्सो स्मिथ क्लाइन कंज्यूमर हेल्थ केयर लिमिटेड* [*सीसीटी बनाम ग्लैक्सो स्मिथ क्लाइन कंज्यूमर हेल्थ केयर लिमिटेड*, (2020) 19 *एससीसी* 681: 2020 *एससीसी ऑनलाइन एससी* 440] *में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने कहा कि हालांकि वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका पर विचार कर सकता है, लेकिन जब पीड़ित व्यक्ति के पास विधि में एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हो, तो उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। हालांकि, इस "वैकल्पिक उपाय के नियम" के कुछ अपवादों में शामिल हैं, जहां वैधानिक प्राधिकरण ने विधि के प्रावधानों के अनुसार कार्य नहीं किया है या न्यायिक प्रक्रिया के मौलिक सिद्धांतों की अवहेलना की है, या प्रावधानों को लागू करने का सहारा लिया है, जो निरस्त कर दिए गए हैं, या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में एक आदेश पारित किया गया है। इस सूत्रीकरण को लागू करते हुए, उच्च न्यायालय ने कहा कि अपीलकर्ता के पास जीएसटी अधिनियम के तहत एक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है और इस प्रकार, याचिका पोषणीय नहीं थी।***

25. *इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के लिए "वैकल्पिक उपचार के नियम" और इसके न्यायिक प्रदर्शन पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स* [*व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स*, (1998) 8 SCC 1], *इस बिंदु पर निर्णय विधि की समीक्षा करने के बाद इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने नोट किया:* (SCC pp. 9-10, *प्रस्तर* 1415)

"14. *संविधान के अनुच्छेद* 226 *के तहत विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्ति प्रकृति*

में पूर्ण है और संविधान के किसी अन्य प्रावधान द्वारा सीमित नहीं है। उच्च न्यायालय द्वारा इस शक्ति का प्रयोग न केवल संविधान के भाग III में निहित किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, यथास्थिति और उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए किया जा सकता है, बल्कि "किसी अन्य उद्देश्य" के लिए भी किया जा सकता है।

15. *संविधान के अनुच्छेद* 226 *के तहत, उच्च न्यायालय, मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, एक रिट याचिका पर विचार करने या न करने का विवेक रखता है। लेकिन उच्च न्यायालय ने अपने ऊपर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं, जिनमें से एक यह है कि यदि कोई प्रभावी और प्रभावोत्पादक उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय सामान्य रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा। लेकिन इस न्यायालय द्वारा कम से कम तीन आकस्मिकताओं में एक बार के रूप में काम नहीं करने के लिए वैकल्पिक उपाय लगातार माना गया है, अर्थात्, जहां किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गई है या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है या जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है या किसी अधिनियम की शक्ति को चुनौती दी गई है। इस बिंदु पर निर्णय विधि के बहुत सारे मामले हैं, लेकिन न्यायिक भँवर के इस चक्र को काटने के लिए, हम संवैधानिक विधि के विकासवादी युग के कुछ पुराने फैसलों पर भरोसा करेंगे क्योंकि वे अभी भी प्रासंगिक हैं।*

(*महत्व सन्निविष्ट*)

26. व्हर्लपूल (उपरोक्त) में इस न्यायालय के आदेश के बाद, हरबंसलाल साहनिया बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड में, इस न्यायालय ने नोट किया कि:

"7. *जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण है कि मध्यस्थता खंड के सहारा के माध्यम से उपाय अपीलकर्ताओं के लिए उपलब्ध था और इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका निरस्त करने योग्य थी, यह देखने के लिए पर्याप्त है कि वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता द्वारा रिट क्षेत्राधिकार के बहिष्करण का नियम विवेक का नियम है और बाध्यता का नहीं। एक उपयुक्त मामले में, वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के बावजूद, उच्च न्यायालय अभी भी कम से कम तीन आकस्मिकताओं में अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है:* (i) *जहां रिट याचिका किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन की मांग करती है;* (ii) *जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की विफलता है; या* (iii) *जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना हैं या किसी अधिनियम की शक्तियों को चुनौती दी गई है।* (*देखें व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स* [*व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स*, (1998) 8 SCC 1].) *वर्तमान मामला पहली दो आकस्मिकताओं की प्रयोज्यता को आकर्षित करता है। इसके अलावा, जैसा कि उल्लेख किया गया है, अपीलकर्ताओं की डीलरशिप, जो उनकी रोजी रोटी है, एक अप्रासंगिक और गैर-मौजूद कारण के लिए समाप्त हो गई। ऐसी परिस्थितियों में, हमें लगता है कि अपीलकर्ताओं को मध्यस्थता कार्यवाही शुरू*

करने की आवश्यकता के लिए प्रेरित करने के बजाय उच्च न्यायालय द्वारा ही राहत की अनुमति दी जानी चाहिए थी।

(*महत्व सन्निविष्ट*)

27. विधि के सिद्धांत जो उभर कर सामने आते हैं:

1. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट जारी करने की शक्ति का प्रयोग न केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किया जा सकता है, बल्कि किसी अन्य उद्देश्य के लिए भी किया जा सकता है।

1. उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका पर विचार नहीं करने का विवेकाधिकार है। उच्च न्यायालय की शक्ति पर लगाए गए प्रतिबंधों में से एक यह है कि पीड़ित व्यक्ति के लिए एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है।

2. वैकल्पिक उपाय के नियम के अपवाद उत्पन्न होते हैं जहां: (क) संविधान के भाग III द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गई है; (ख) नैसगक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ है; (ग) आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना हैं; या (घ) किसी विधान की शक्तियों को चुनौती दी गई है।

3. एक वैकल्पिक उपाय अपने आप में उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों से एक उपयुक्त मामले में वंचित नहीं करता है, हालांकि आमतौर पर, एक रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए जब विधि द्वारा एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय प्रदान किया जाता है।

4. जब कोई अधिकार किसी संविधि द्वारा सृजित किया जाता है, जो स्वयं अधिकार या दायित्व को लागू करने के लिए उपाय या प्रक्रिया विहित करता है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विवेकाधीन उपाय को लागू करने से पहले उस विशेष सांविधिक उपाय का सहारा लिया जाना चाहिए। वैधानिक उपचारों के समाप्त होने का यह नियम नीति, सुविधा और विवेक का नियम है।

5. ऐसे मामलों में जहां तथ्य के विवादित प्रश्न हैं, उच्च न्यायालय एक रिट याचिका में क्षेत्राधिकार को अस्वीकार करने का निर्णय ले सकता है। हालांकि, अगर उच्च न्यायालय निष्पक्ष रूप से इस विचार का है कि विवाद की प्रकृति को अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग की आवश्यकता है, तो इस तरह के दृष्टिकोण में आसानी से हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

27. फिर भी **प्रबंधन समिति और एक अन्य बनाम कुलपति और अन्य, (2009) 2 एससीसी 630** में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में, जो उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय

अधिनियम, 1973 की धारा 68 में निहित प्रावधानों के संबंध में इस न्यायालय के एक निर्णय से उत्पन्न हुआ था, जिसे अधिनियम 2015 की धारा 42 के समान कहा गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि वैकल्पिक उपाय कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है और वैकल्पिक उपाय की ओर तब कोई दबाव नहीं डाला जाएगा जब किसी प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार के बाहर हो या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता हो। उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 68, जिसके संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रबंधन समिति और एक अन्य (उपरोक्त)** के मामले में उपरोक्त टिप्पणियां की हैं यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"68. कुलपति को संदर्भ - यदि इस विषयक कोई प्रश्न उठता है कि क्या किसी व्यक्ति को विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण या अन्य निकाय के सदस्य के रूप में चुना या नियुक्त किया गया है अथवा वह सदस्य होने का हकदार है, अथवा क्या विश्वविद्यालय के किसी भी प्राधिकारी या अधिकारी का विनिश्चय परिनियम, अध्यादेश या विनियम की वैधता के बारे में प्रश्न सहित न कि राज्य सरकार द्वारा या कुलपति द्वारा दिये गये या अनुमोदित परिनियम अथवा अध्यादेश की वैधता के बारे में इस अधिनियम या परिनियम अथवा उसके अधीन तैयार किये गये अध्यादेश के अनुरूप है, तो मामला कुलपति के समक्ष निर्दिष्ट किया जायेगा और उस पर कुलपति का निर्णय अन्तिम होगा:

परन्तु यह कि इस धारा के अधीन कोई भी संदर्भ निम्न दशाओं में नहीं किया जायेगा-

(क) उस तारीख से तीन माह के अधिक के पश्चात् जब प्रश्न पहली बार उठाया जा रहा हो;

(ख) विश्वविद्यालय के किसी भी प्राधिकारी या अधिकारी को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति या क्षुब्ध व्यक्ति द्वारा:

परन्तु अग्रेतर यह कि कुलपति आपवादिक परिस्थितियों में-

(क) पूर्ववर्ती परन्तुक में उल्लिखित अवधि के समाप्त होने के पश्चात् स्वप्रेरणा से कार्य कर सकेगा या संदर्भ को ग्रहण कर सकेगा;

(ख) जहां निर्दिष्ट मामले का सम्बन्ध चुनाव के बारे में विवाद से है और इस प्रकार चुने गये व्यक्ति की पात्रता संदिग्ध है, तो रोक के ऐसे आदेशों को पारित कर सकेगा जिसे वह न्यायसंगत अथवा समीचीन समझे;

(ग) * *

28. इस प्रकार, उपर्युक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों से, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। यह भी समान रूप से तय है कि वैकल्पिक वैधानिक उपचार की उपलब्धता एक पूर्ण रोक नहीं है, बल्कि यह स्व-लगाए गए अनुशासन/प्रतिबंध और सार्वजनिक नीति का नियम है, और कुछ मामलों में अपवाद के भीतर आता है जैसा कि **व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनाया गया

है, यहां तक कि वैकल्पिक वैधानिक उपाय की उपलब्धता के मद्देनजर भी, यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेक का प्रयोग करने का निर्णय ले सकता है।

29. अब, यदि हम वर्तमान मामले में उपरोक्त विधिक सिद्धांतों को लागू करते हैं, तो हमारे विचार के लिए जो प्रश्न उठता है, वह यह है कि क्या प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा अपनी रिट याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत मामले के तथ्य अधिनियम 2015 की धारा 42 के तहत वैकल्पिक वैधानिक उपाय की उपलब्धता के मद्देनजर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेक के प्रयोग के लिए मामला बनाते हैं या नहीं।

30. हमने पहले ही मामले के तथ्यों पर ध्यान दिया है, जिसने प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को 2023 की रिट-ए संख्या 2822 को संस्थित करने के लिए प्रेरित किया है। 22.02.2023 के पदच्युति के आदेश को चुनौती देने के लिए उठाए गए आधारों में से एक यह है कि जांच के दौरान, हालांकि प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से अनुरोध किया था कि कुछ गवाहों को प्रतिपरीक्षा के लिए पेश किया जाए, हालांकि, उक्त प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था। इस संबंध में, हम यह कह सकते हैं कि दिनांक 04.02.2022 के आरोप पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत करते हुए, दिनांक 22.02.2022 के अपने पत्र के माध्यम से, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने उसमें स्पष्ट रूप से संकेत दिया था कि यदि जांच अधिकारी उसके द्वारा आरोप-पत्र में प्रस्तुत स्पष्टीकरण/उत्तर से सहमत नहीं थी, तो वह पांच व्यक्तियों से प्रतिपरीक्षा करना चाहती थी, जिसमें जांच समिति के सदस्य शामिल थे, जिन्होंने शुरू में प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र की जांच की थी, और प्रसूति एवं स्त्री रोग विभाग में दो आचार्य, एक गोरखपुर में राज्य मेडिकल कॉलेज में और दूसरा अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में और चयन समिति के दो सदस्य भी। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि जांच रिपोर्ट में अपनी टिप्पणियां प्रस्तुत करते समय प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने फिर से उल्लेख किया था कि उसने आरोप पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत करते समय मौखिक जांच और पांच व्यक्तियों से प्रतिपरीक्षा की इच्छा जताई थी और इसलिए जांच अधिकारी की ओर से गवाहों को बुलाने के बाद इस तरह के मौखिक साक्ष्य को अभिलेखित करने की तिथि तय करना अनिवार्य था।

31. हम यह भी देखते हैं कि गवाहों से प्रतिपरीक्षा के लिए स्पष्ट शब्दों में उपरोक्त अनुरोध के बावजूद, हमारे सामने अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह स्थापित कर सके कि प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को उक्त व्यक्तियों से प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति दी गई थी। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि जिन गवाहों को प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने जांच के दौरान प्रतिपरीक्षा करने का आशय किया था, उन्हें जांच के विषय के संदर्भ में अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि जांच समिति के सदस्य जिन्होंने शुरू में प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत

आवेदन पत्र की जांच की थी और आगे यह कि चयन समिति के सदस्य, जिनमें क्षेत्र के विशेषज्ञ शामिल थे, ने भी प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र में कुछ भी गलत नहीं पाया था। इस प्रकार, *प्रथम दृष्टया* हमारी राय है कि जांच के दौरान कुछ गवाहों से प्रतिपरीक्षा करने के लिए प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थना के लिए एक तर्क मौजूद था। बिना किसी न्यायोचित कारण के जांच के दौरान प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अनुरोध के अनुसार गवाहों की प्रतिपरीक्षा से इनकार करना या गवाहों को बुलाने से इनकार करना, निश्चित रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। न तो जांच रिपोर्ट और न ही प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता को सेवा से पदच्युत करने वाले दिनांक 22.02.2023 के आदेश में ऐसा कोई उल्लेख है कि प्रतिपरीक्षा के लिए उसकी प्रार्थना को कारण बताकर अस्वीकार कर दिया गया था।

32. इस दृष्टिकोण में, रिट याचिका पर उपलब्ध दलील में, *अन्य बातों के साथ-साथ,* यह दावा किया गया है कि जिस जांच के आधार पर रिट याचिका में आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, वह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से ग्रस्त है।

33. तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित मामला अपवादों में से एक के भीतर आता है जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **व्हर्लपूल कारपोरेशन (उपरोक्त), मैसर्स राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज (उपरोक्त)** और **गोदरेज सारा ली लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में उपर्युक्त निर्णयों में निर्णय दिया है।

34. जहां तक अपीलकर्ता-संस्थान के विद्वान अधिवक्ता, श्री चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों का संबंध है, हम यह नोट कर सकते हैं कि **डॉ. जी. सरना (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय जो उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 68 पर आधारित है, इस मामले में इस कारण से कोई अनुप्रयोग नहीं है कि उक्त मामले में चयन समिति द्वारा की गई सिफारिशों को कार्यकारी परिषद द्वारा अभी तक अनुमोदित/अस्वीकृत नहीं किया गया था और इसलिए संबंधित विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा विचार किए बिना चयन समिति द्वारा की गई सिफारिशों को चुनौती देना भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका संस्थित करके असमर्थनीय माना था। हम यह भी नोट करते हैं कि **डॉ. जी. सरना (उपरोक्त)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जिसके द्वारा रिट याचिका पर यह कारण देते हुए विचार नहीं किया गया कि उक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने चयन समिति के सदस्यों के विरुद्ध व्यक्तिगत पूर्वाग्रह की दलील दी थी, तथापि, सभी संगत तथ्यों को जानने के बावजूद उसने चयन समिति के गठन के विरुद्ध उपस्थित होने से पहले या साक्षात्कार के समय उक्त मुद्दों को नहीं उठाया था। इस दृष्टिकोण में, **डॉ. जी. सरना (उपरोक्त)** के मामले में

निर्णय, हमारी राय में, इस मामले के तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है।

35. जहां तक अपीलकर्ता-संस्थान के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अन्य निर्णयों का संबंध है, वे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रस्तुत किए गए हैं। हालांकि, उक्त निर्णयों को **व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (उपरोक्त), राधा कृष्णा इंडस्ट्रीज (उपरोक्त)** और **गोदरेज सारा लील लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के विपरीत कहा जा सकता है।

36. अपीलकर्ता-संस्थान का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों में से एक यह है कि अधिनियम की धारा 42 में प्रयुक्त भाषा के संबंध में, यह कुलाध्यक्ष का निर्णय है जो किसी भी प्रश्न के उत्पन्न होने पर अंतिम है कि क्या संस्थान या शासी निकाय या किसी प्राधिकरण का कोई निर्णय अधिनियम या नियमों या विनियमों के अनुरूप है। इस प्रकार उनका निवेदन यह है कि प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता की सेवाओं को पदच्युत करने के राष्ट्रपति के निर्णय को अंतिम रूप दिया गया है, जैसा कि निदेशक द्वारा कार्यालय आदेश दिनांक 22.02.2023 के माध्यम से सूचित किया गया है, केवल एक बार उस संबंध में एक आदेश कुलाध्यक्ष द्वारा पारित किया जा सकता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का उपरोक्त प्रस्तुतिकरण पूरी तरह से गलत और भ्रामक है। यदि हम अधिनियम, 2015 की धारा 42 की भाषा को बारीकी से पढ़ते हैं, तो हम पाते हैं कि कुलाध्यक्ष का निर्णय केवल तभी अंतिम होता है जब अधिनियम, 2015 की धारा 42 के तहत कुलाध्यक्ष को कोई संदर्भ दिया जाता है। अधिनियम, 2015 की धारा 42 में उपलब्ध अंतिम खंड को उस आदेश के रूप में पढ़ा जाना चाहिए जो कुलाध्यक्ष द्वारा पारित किया जा सकता है और *उस आदेश के अनुसार* नहीं जो शासी निकाय या किसी प्राधिकरण या संस्थान के किसी निकाय द्वारा पारित किया जा सकता है। यह कहना कि राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश, जिसे इस मामले में निदेशक द्वारा कार्यालय आदेश दिनांक 22.02.2023 के माध्यम से सूचित किया गया है, अंतिम नहीं है और यह तभी अंतिम होगा जब कुलाध्यक्ष अधिनियम 2015 की धारा 42 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा, नितांत भ्रामक है। शासी निकाय या किसी प्राधिकरण या संस्थान के किसी अन्य निकाय द्वारा पारित आदेश की जांच करने के लिए कुलाध्यक्ष के समक्ष अवसर केवल तभी उत्पन्न होगा जब कुलाध्यक्ष को ऐसे आदेश के संबंध में कोई संदर्भ प्राप्त होता है या वह स्वयं ही संदर्भ को विचार करने का निर्णय लेता है।

37. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता ने अधिनियम 2015 की धारा 42 का सहारा नहीं लिया है, बल्कि राष्ट्रपति के आदेश को चुनौती दी है, जैसा कि संस्थान के निदेशक ने दिनांक 22.02.2023 के आदेश के माध्यम से उन्हें सूचित किया था। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि सेवा से पदच्युति के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर करके चुनौती नहीं दी जा सकती है जब तक कि इसे संस्थान के कुलाध्यक्ष द्वारा अंतिम रूप नहीं दिया जाता है। हमारी राय में

अपीलकर्ता-संस्थान के विद्वान अधिवक्ता की उक्त प्रस्तुति, अस्वीकृति के योग्य है जिसे एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

38. अन्यथा भी यह ऐसा मामला नहीं है जहां प्रतिवादी संख्या 1-याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को सुनवाई योग्य नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका की विचारणीयता और पोषणीयता के बीच अंतर है। यदि किसी वैध कारण से रिट याचिका पोषणीय नहीं है, तो ऐसी स्थिति को अलग तरह से देखा जाना चाहिए। हालांकि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका की विचारणीयता के संबंध में आपत्ति के मामले में, यदि यह न्यायालय वैध कारणों से अपने विवेक का प्रयोग करने का निर्णय लेता है, तो हमारी राय में, इस तरह के आदेश को त्रुटिपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता है।

39. उपरोक्त कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 13.04.2023 को रिट-ए संख्या 2822/2023 में पारित आदेश, जो यहां अपील के अधीन है, में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं पाते हैं ।

40. परिणामस्वरूप, विशेष अपील **निरस्त की जाती है ।**

41. हालांकि, वादव्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं होगा ।

(2023) 5 ILRA 1714

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

रिट ए संख्या 23693/2018

शैलेश खंडेलवाल ....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री कृष्ण मोहन अस्थाना

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री संजय कुमार द्विवेदी

सेवा कानून- उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921-शासनादेश दिनांक 21 अगस्त, 2014 में स्पष्ट किया गया है कि 15 मार्च, 2012 के शासनादेश के तहत मान्यता प्राप्त इंटरमीडिएट कॉलेजों में रिक्त पदों पर नियुक्तियों पर लगाया गया प्रतिबंध अल्पसंख्यक संस्थान पर लागू नहीं होगा- अध्याय-II लिपिकीय संवर्ग से संबंधित नहीं है, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा लिया गया यह रुख कि लिपिक का पद 2011 में रिक्त हो गया था और तीन महीने तक रिक्त रहा तथा तीन महीने के भीतर कोई भर्ती अभियान नहीं चलाया गया तो पद समाप्त हो जाएगा, पूरी तरह से प्रावधान की गलत व्याख्या और परिणामस्वरूप कानून के गलत प्रयोग का मामला है।

जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा आपत्ति लेने और आपत्ति का विधिवत उत्तर दिए जाने के पश्चात् उसे उत्तर का मूल्यांकन और मूल्यांकन करना होता है- वित्तीय स्वीकृति के दावे को अस्वीकार करने के लिए वह तीसरा और चौथा आधार नहीं बना सकता- विवादित आदेश से यह स्पष्ट है कि उसने प्रबंधन समिति के उत्तर को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं लिया है और कानूनी

स्थिति का मूल्यांकन करने की परवाह नहीं की है। जिला विद्यालय निरीक्षक का यह कृत्य और आचरण उसके पद के अनुकूल नहीं है क्योंकि उसका आदेश किसी व्यक्ति के कैरियर को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा-परिणामस्वरूप याचिका को डी.आई.ओ.एस. को निर्देश दिया जाता है कि वह संस्था में सहायक लिपिक के रूप में याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए वित्तीय स्वीकृति प्रदान करे। (पैरा 23, 29, 33 और 42) (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मोहम्मद फैजान व अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य, 2013 (5) एडीजे 471
2. नगर पंचायत किठौर, जिला मेरठ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, उ0प्र0, मेरठ एवं अन्य, (2007) 1 एसएसी 567
3. रामरामेश्वरी देवी एवं अन्य बनाम निर्मला देवी एवं अन्य, (2011) 8 एससीसी 249
4. सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु बनाम भारत संघ एआईआर 2005 एससी 3353

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मोहन अस्थाना, प्रत्यर्थी संख्या 4-प्रबंधन समिति के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार द्विवेदी और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. प्रत्यर्थी-प्रबंधन समिति, जो जैन इंटर कॉलेज, चौरासी, मथुरा (एतस्मिनपश्चात प्रत्यर्थी संख्या 4 'के रूप में संदर्भित) के नाम से एक अल्पसंख्यक संस्थान चलाती है, ने संस्थान के संकाय के साथ-साथ लिपिकीय संवर्ग में रिक्त पदों को भरने के लिए दो समाचार पत्रों यथा, कल्पतरु एक्सप्रेस और इंडियन एक्सप्रेस, जिनका उस क्षेत्र में व्यापक प्रसार है, में अलग-अलग विज्ञापन जारी किए। जबकि हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, कला, गणित, विज्ञान और समाजशास्त्र विषय में सहायक अध्यापकों के संबंध में कल्पतरु एक्सप्रेस समाचार दैनिक में 24 अगस्त, 2015 को और इंडियन एक्सप्रेस समाचार दैनिक में दिनांक 24 अगस्त, 2015 को विज्ञापन प्रकाशित किया गया था, क्लर्क/सहायक क्लर्क के रिक्त पदों के संबंध में विज्ञापन दिनांक 23 जुलाई, 2015 को समाचार दैनिक कल्पतरु में और 5 अगस्त, 2018 को इंडियन एक्सप्रेस में जारी किया गया था। संस्था के संकाय में सहायक अध्यापक तथा संस्था के लिपिकीय संवर्ग में लिपिक के पद पर चयन हेतु दो अलग-अलग चयन समितियों का गठन किया गया।

3. याचिकाकर्ता के पास वाणिज्य में स्नातकोत्तर डिग्री एम.कॉम तथा राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान से सीसीसी प्रमाण पत्र है, तथा उसने सहायक क्लर्क के पद के लिए आवेदन किया था। चयन समिति ने याचिकाकर्ता को सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार घोषित किया और तदनुसार, नियुक्ति के लिए उसकी सिफारिश की।

4. प्रबन्ध समिति ने चयन समिति की संस्तुति को अनुमोदित कर दिया तथा वित्तीय अनुमोदन हेतु संस्था के प्रबन्धक के दिनांक 21 जुलाई, 2016 के कवरिंग पत्र के माध्यम से पत्रावली जिला विद्यालय निरीक्षक को भेज दी। इसी प्रकार, विज्ञापित विषयों में सहायक अध्यापकों के विभिन्न पदों पर चयन हेतु गठित चयन समिति द्वारा विज्ञापित सहायक अध्यापकों के

पदों के सापेक्ष सम्बन्धित विषयों में श्रीमती श्वेता तिवारी, श्रीमती बबीता, श्री जितेन्द्र सिंह, श्री राजीव कुमार, डा. हेमन्त चौधरी व एक अन्य का चयन कर पत्रावलियां वित्तीय अनुमोदन हेतु जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रेषित कर दी गयीं।

5. इन सभी संस्तुतियों के संबंध में जिला विद्यालय निरीक्षक ने विभिन्न आपत्तियां लीं तथा इन चयनों के संबंध में श्रीमती श्वेता तिवारी, श्रीमती बबीता, श्री जितेन्द्र सिंह और श्री राजीव कुमार के वित्तीय अनुमोदन के दावे को अस्वीकार कर दिया तथा कोई आदेश पारित नहीं किया।

6. अंततः, इन सभी चयनितों में से चार शिक्षकों, अर्थात्, श्रीमती श्वेता तिवारी, श्रीमती बबीता, श्री जितेंद्र सिंह और श्री राजीव कुमार ने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 26403/2018 दायर की, जिसमें जिला विद्यालय निरीक्षक को वेतन के अनुमोदन और भुगतान के लिए उनके अभ्यावेदन का निस्तारण करने का निर्देश जारी किया गया था। जिला विद्यालय निरीक्षक श्री कृष्ण पाल सिंह ने विभिन्न आधारों पर उनके दावे को खारिज कर दिया:

(i) पद समाप्त हो गया था इसलिए इन पदों को पुनर्सृजित किए बिना कोई नियुक्ति नहीं हो सकती थी;

(ii) चयन और नियुक्ति के लिए संस्थान में कोई वैध प्रबंधन समिति नहीं थी;

(iii) लिखित परीक्षा आयोजित की जानी चाहिए थी और फिर उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर चयन किया जाना चाहिए था।

7. इस आदेश को उन्हीं रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा रिट-ए संख्या 7856/2019 द्वारा इस न्यायालय के समक्ष फिर से चुनौती दी गई। रिट याचिका को जिला विद्यालय निरीक्षक के 17 मई, 2019 के निर्णय और आदेश को रद्द करते हुए मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए भेज दिया गया। जिला विद्यालय निरीक्षक श्री कृष्ण पाल सिंह ने दिनांक 11.11.2019 के आदेश द्वारा दावे को पुनः खारिज कर दिया तथा कहा कि चयन अमान्य प्रबन्ध समिति द्वारा किया गया था। श्रीमती बबीता और श्री जितेन्द्र सिंह ने उक्त आदेश को पुनः इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 18983/2019 के तहत चुनौती दी, जिसमें इस न्यायालय ने जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश पर आपत्ति जताई और उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी किया कि क्यों न उनके विरुद्ध उचित अवमानना कार्यवाही के लिए उन्हें न्यायालय की अवमानना के लिए भेजा जाए। यह आदेश 3 जनवरी, 2020 को पारित किया गया। 3 जनवरी, 2020 के आदेश का प्रभावी भाग यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

जैसा भी हो, इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 7856/2019 में याचिकाकर्ताओं के मामले में फैसला सुनाते हुए चयन करने में सरकारी आदेश दिनांक 12.03.2018 में प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन न करने और अस्तित्वहीन पद पर याचिकाकर्ताओं के चयन के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा उठाई गई आपत्ति को पहले ही खारिज कर दिया है, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा उठाई गई उक्त आपत्ति गलत है क्योंकि रिट याचिका

संख्या 7856/2019 में इस न्यायालय का निर्णय पक्षकारों के बीच अंतिम हो गया है। इसके अलावा, इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 7856/2019 में इस मुद्दे पर फैसला करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 3 को प्रबंधन समिति के चुनाव के संबंध में दस्तावेजों की जांच करने की स्वतंत्रता दी है और इस न्यायालय ने पाया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने आरोपित आदेश पारित करते समय प्रबंधन समिति, जिसने चयन प्रक्रिया शुरू की थी, की वैधता को सत्यापित करने के लिए याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर किसी भी दस्तावेज पर ध्यान नहीं दिया है। प्रत्यर्थी संख्या 3 ने आदेश के पैरा 9 में तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक के दिनांक 08.12.2017 के पत्र पर अवलम्ब लिया है, जिसमें कहीं भी प्रबंधन समिति की वैधता का उल्लेख नहीं है, और इस प्रकार, मामले के तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने आपत्तिजनक आदेश पारित करते समय इस न्यायालय के आदेशों की पूरी तरह से अनदेखी की है, और इस प्रकार, जानबूझकर इस न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन किया है। इस तथ्य के मद्देनजर, यह न्यायालय याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क में तथ्य पाता है।

इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, प्रत्यर्थी संख्या 3, जिला विद्यालय निरीक्षक, जिला मथुरा को कारण बताने के लिए नोटिस जारी किया जाता है कि मामले को उनके खिलाफ अवमानना कार्यवाही शुरू करने के लिए अवमानना न्यायालय को क्यों नहीं भेजा जाना चाहिए और मामले में उनकी व्यक्तिगत जिम्मेदारी क्यों नहीं तय की जानी चाहिए। वह अगली तिथि को अपने उत्तर के साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेंगे।

अतिरिक्त वाद सूची में दिनांक 20.01.2020 को प्रस्तुत किया जाएगा।

(प्रभाव वर्धित)

8. अवमानना से बचने के लिए, चूंकि जिला विद्यालय निरीक्षक, श्री कृष्ण पाल सिंह ने कानून की गंभीर त्रुटि की थी, 23 जनवरी, 2020 को एक आदेश पारित कर याचिकाकर्ता, अर्थात् श्रीमती बबीता और श्री जितेंद्र सिंह के चयन और नियुक्ति को मंजूरी दे दी। श्री राजीव कुमार ने जिला विद्यालय निरीक्षक के 23 जनवरी, 2020 के आदेश का हवाला देते हुए रिट-ए संख्या 2039/2020 के तहत 11.11.2019 के आदेश को भी चुनौती दी। इस रिट याचिका को 10 फरवरी, 2020 के विस्तृत निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई, जिसमें इस न्यायालय ने न केवल जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित 23 जनवरी, 2020 के आदेश पर गौर किया, बल्कि यह निष्कर्ष भी दर्ज किया कि याचिकाकर्ताओं के मामले पर श्रीमती बबीता के मामले में दिए गए निर्णय के आलोक में पुनर्विचार किया जाना चाहिए। रिट-ए संख्या 2039/2020 में पारित दिनांक 10 फरवरी, 2020 के निर्णय और आदेश में प्रासंगिक पैराग्राफ 8, 9, 10, 11 और 12 को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"8. उसी के अनुसरण में, प्रत्यर्थी संख्या 3 ने दिनांक 23.1.2020 के आदेश पारित कर श्रीमती बबीता (उपरोक्त) द्वारा दायर रिट

याचिका के याचिकाकर्ताओं को एल.टी. ग्रेड में चयन/नियुक्ति प्रदान की।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता का मामला श्रीमती बबिता (उपरोक्त) की रिट याचिका के याचिकाकर्ताओं के मामले के समान है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का चयन श्रीमती बबीता (उपरोक्त) की रिट याचिका के याचिकाकर्ताओं के साथ समान रूप से किया गया है, इसलिए वह भी एल.टी. ग्रेड में अपने चयन/नियुक्ति के अनुमोदन की समान राहत के लिए हकदार है।

श्रीमती बबीता (उपरोक्त) की रिट याचिका के याचिकाकर्ताओं के पक्ष में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 23.01.2020 के आदेश के बाद, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 11.11.2019 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से इस रिट याचिका का अंतिम रूप से निस्तारण किया जाता है।

अभिलेखों के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा रिट ए संख्या 7856/2019 (राजीव कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में दिनांक 17.05.2019 को पारित आदेशों के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ता एवं अन्य के दावे को खारिज करते हुए दिनांक 23.11.2019 को एक आदेश पारित किया गया। उपरोक्त आदेश के द्वारा राजीव कुमार, सहायक अध्यापक हिन्दी, श्रीमती बबीता, सहायक अध्यापक हिन्दी तथा जितेन्द्र सिंह, सहायक अध्यापक सामाजिक विज्ञान के दावे को अस्वीकार कर दिया गया। उपरोक्त आदेश को केवल दो व्यक्तियों श्रीमती बबीता और जितेंद्र द्वारा रिट ए संख्या 18986/2019 दायर करके इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उक्त रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा 03.01.2020 को एक विस्तृत आदेश पारित किया गया था, जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उसी के अनुसरण में, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा 23.01.2020 को एक निर्णय लिया गया, जिसके द्वारा रिट याचिका संख्या 18986/2019 (श्रीमती बबीता) (उपरोक्त) में याचिकाकर्ताओं को सहायक शिक्षक के रूप में उनके चयन/नियुक्ति के संबंध में अनुमोदन प्रदान किया गया। जहां तक वर्तमान याचिकाकर्ता का संबंध है, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और मामले की योग्यता में प्रवेश किए बिना, इस रिट याचिका का अंतिम रूप से निस्तारण किया जाता है तथा प्रत्यर्थी संख्या 3 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता के मामले में कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करें, जैसा कि श्रीमती बबीता के मामले में पारित किया गया है, तथा यह आदेश उनके समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर पारित किया जाना चाहिए।"

9. डॉ. हेमंत चौधरी और एक अन्य शिक्षक भी संस्थान के संकाय के लिए उसी चयन में चयनित हुए थे और उन्होंने अनुमोदन प्रदान करने के उनके दावे को खारिज करने वाले 11.11.2019 के आदेश को भी चुनौती दी थी। इस न्यायालय ने डॉ. हेमंत चौधरी और श्रीमती श्वेता तिवारी के मामले में क्रमशः रिट-ए संख्या 8069/2019 और 4791/2019 में पारित दिनांक 13 फरवरी, 2019 के आदेश पर गौर किया, दिनांक 13 फरवरी, 2019 के आदेश को अपास्त कर दिया और अनुमोदन प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश जारी किया। इस प्रकार रिट याचिका को दिनांक 3 मार्च, 2020 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई, जिसमें कहा गया कि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश इस न्यायालय द्वारा पूर्व की कार्यवाहियों में पारित निर्णय और आदेश की पूर्ण अवहेलना है, जो उसी चयन से संबंधित थे। दिनांक 3 मार्च, 2020 के निर्णय और आदेश का पैराग्राफ 44, 45 और 46 में निहित प्रभावी भाग यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"44) उपरोक्त के मद्देनजर, मेरा मानना है कि डीआईओएस ने विवादित आदेश पारित करते समय अपने विचार के दायरे से बाहर जाकर काम किया है। आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा पूर्व में पारित निर्णय एवं आदेश की पूर्णतया अवहेलना है तथा उसी चयन के अध्यापकों को डी.आई.ओ.एस. द्वारा अनुमोदन प्रदान किया गया है, अतः आरोपित आदेश द्वारा इन्कार करना अवैध है तथा इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता। तदनुसार, दिनांक 11.11.2019 का आरोपित आदेश अपास्त किया जाता है।

45) रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है।

46) तथापि, डीआईओएस को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर सहायक अध्यापकों के पद पर याचिकाकर्ताओं के चयन के अनुमोदन हेतु उचित तर्कपूर्ण और ठोस आदेश पारित करें।"

10. इस उपरोक्त आदेश को विशेष अपील संख्या 179/2021 नामक विशेष अपील में चुनौती दी गई, जिसे 3 सितंबर, 2021 निम्नलिखित आदेश से खारिज कर दिया गया:-

"इस अपील के द्वारा, दिनांक 03.03.2020 के निर्णय को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका को अनुमति दी गई थी। जिला विद्यालय निरीक्षक, मथुरा द्वारा पारित दिनांक 11.11.2019 के आदेश को चुनौती देने के लिए रिट याचिका दायर की गई थी, जिसके द्वारा सहायक अध्यापक के पद पर याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति को मंजूरी देने से इनकार कर दिया गया था।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की और गैर-अपीलकर्ता/याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका में पहले के फैसले का जिक्र करते हुए, यह अवधारित किया गया कि जब यह मुद्दा न्यायालय द्वारा निस्तारित किया गया था तो यह मुद्दा जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा

पुनर्विचार के लिए उपलब्ध नहीं था। एक बार जब विद्वान एकल न्यायाधीश ने पहले की रिट याचिका में गैर-अपीलकर्ता/याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति को मंजूरी देने से इनकार करने के संदर्भ में मुद्दे पर विचार किया और राज्य द्वारा अपील को खारिज कर दिया गया, तो स्कूलों के जिला निरीक्षक उसी मुद्दे को नहीं खोल सकते थे।

दिनांक 11.11.2019 का आदेश दिनांक 16.03.2018 के आदेश के संदर्भ में पारित किया गया था जिसके द्वारा संबंधित पद को पुनर्सृजित किया गया था और इसके द्वारा चयन किया गया था। नियुक्ति को मंजूरी इस कारण नहीं दी गई कि चयन की शुरुआत पूर्व अनुमोदन से नहीं की गई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त पर भी विचार किया।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि उसी चयन प्रक्रिया के संबंध में, अन्य कर्मचारी को अनुमोदन से वंचित कर दिया गया था, लेकिन 11.11.2019 को आदेश वापस ले लिया गया और अनुमोदन प्रदान किया गया। याचिकाकर्ताओं का चयन भी उसी चयन में हुआ था, इसलिए उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं किया जा सकता था। उनके मामले को समान स्थिति वाले लोगों के बीच समानता बनाए रखते हुए निस्तारित किया जाना चाहिए था। तदनुसार, रिट याचिका को अनुमति दी गई, जिसमें जिला विद्यालय निरीक्षक को सहायक अध्यापक के पद पर याचिकाकर्ताओं के चयन के अनुमोदन के लिए उचित आदेश पारित करने का आख्यापक आदेश दिया गया।

अपील मुख्यतः इस आधार पर की गई है कि पद को पुनर्जीवित करने के बाद, सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति के बिना चयन शुरू नहीं किया जा सकता था।

हमने पूर्वोक्त प्रस्तुतियों पर विचार किया है और पाया है कि पद के पुनर्सृजन और चयन के बाद, यदि चयन आरंभ करने के लिए पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता थी, तो जिला विद्यालय निरीक्षक के लिए उसी चयन से चयनित अन्य सहायक अध्यापकों की नियुक्ति को अनुमोदन देने का कोई कारण नहीं था। उसी चयन में से सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति को अनुमोदित किया गया, जबकि गैर अपीलार्थी/याचिकाकर्ताओं के मामले में भेदभाव करते हुए नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया गया।

हम यह समझने में विफल रहे कि राज्य द्वारा अपील क्यों की गई है। यदि अपील स्वीकार कर ली जाती है तो हम प्रत्यर्थियों की भेदभावपूर्ण कार्रवाई का समर्थन करेंगे।

इस स्तर पर, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इसी प्रकार के पद पर नियुक्ति आदेश का अनुमोदन उनकी स्वयं की रिट याचिका में इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में दिया गया था। यदि ऐसा है, तो अपील दायर करने का कोई कारण नहीं है, बल्कि निर्णय का अनुपालन उसी तरह किया जाना चाहिए जैसा कि समान पद पर कार्यरत सहायक अध्यापकों के मामले में किया गया था।

उपरोक्त कारणों से, अपील को हमारे समक्ष उठाए गए एकमात्र प्रश्न के संदर्भ में कोई

मेरिट न पाते हुए तथा किसी अन्य आधार पर जोर न देते हुए खारिज किया जाता है।

इस स्तर पर, गैर-अपीलकर्ता/याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि नियुक्ति को स्वीकृति चुनौती दिए गए निर्णय के अनुसरण में दी गई है। उपर्युक्त तथ्य इस अपील को निष्फल बनाते हैं और अन्यथा हमने इसका निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया है।"

(प्रभाव वर्धित)

11. श्रीमती श्वेता तिवारी और एक अन्य चयनित अभ्यर्थी की रिट याचिका रिट-ए संख्या 2386/2020, जिसमें उसी आदेश दिनांक 11.11.2019 को चुनौती दी गई थी, को रिट-ए संख्या 1821/2020 और 18983/2019 में पारित निर्णय के आधार पर दिनांक 7 जनवरी, 2020 के निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई। न्यायालय ने विशेष अपीलीय पीठ के आदेश का भी हवाला दिया। श्रीमती बबीता और अन्य के मामले में पारित आदेश का प्रभावी हिस्सा यहां इस प्रकार प्रस्तुत है:

"इस आदेश को विशेष अपील संख्या 179/2021 (उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम हेमंत चौधरी और अन्य) के रूप में एक विशेष अपील में चुनौती दी गई थी, जिसे 3.9.2021 को खारिज कर दिया गया। विशेष अपीलीय न्यायालय के आदेश दिनांक 3.9.2021 से स्पष्ट है कि रिट-ए संख्या 1821/2020 के याचिकाकर्ताओं को स्वीकृति प्रदान कर दी गई है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते कि जिला विद्यालय निरीक्षक का आदेश पूरी तरह से गलत तथ्यों पर आधारित था, अर्थात पदों के पुनरुद्धार के बाद विज्ञापन वैध नहीं था और प्रबंधन समिति विधिवत रूप से निर्वाचित प्रबंधन समिति नहीं थी, जिसके निष्कर्षों को इस न्यायालय के दिनांक 13.12.2018 के निर्णय में पहले ही खारिज कर दिया गया था, मेरा विचार है कि अनुमोदन जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिया जाना चाहिए था। इससे भी अधिक, जब रिट-ए संख्या 1821/2020 और रिट-ए संख्या 18983/2019 में याचिकाकर्ताओं को अनुमोदन प्रदान किया गया है।

ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं के संबंध में दिनांक 11.11.2019 का आदेश रद्द किया जाता है। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ताओं की योग्यता की जांच करने के बाद अनुमोदन आदेश पारित करने के लिए मामला जिला विद्यालय निरीक्षक को वापस भेजा जाता है। इसके अलावा, जब भी अनुमोदन प्रदान किया जाएगा, याचिकाकर्ताओं को उनके संस्थानों में कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से वेतन का भुगतान किया जाएगा।

उपरोक्त कारणों से, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।"

12. उपरोक्त आदेश के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य द्वारा विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 34/2023 दायर की गई तथा न्यायालय ने रिट याचिकाओं एवं पूर्व अपील (उपरोक्त) में पारित विभिन्न आदेशों का उल्लेख करते हुए 13 मार्च, 2023 को विशेष अपील को निम्नांकित शब्दों में खारिज कर दिया, जिसमें कानून के बिन्दु पर चर्चा के साथ-साथ अपील

में उठाई गई आपत्ति एवं आधारों पर विचार किया गया:

"राज्य-अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री ज्ञानेंद्र श्रीवास्तव और उत्तरदाताओं/याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मोहन अस्थाना को सुना।

वर्तमान अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 07.01.2022 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध है, जिसके तहत जिला विद्यालय निरीक्षक, मथुरा द्वारा पारित दिनांक 11.11.2019 के आदेश को अपास्त करते हुए, मामले को इस निर्देश के साथ वापस भेज दिया गया है कि उक्त आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ताओं की योग्यता पर गौर करने के बाद अनुमोदन आदेश पारित किया जाए। आगे निर्देश दिया गया कि याचिकाकर्ताओं को उनके चयन की मंजूरी मिलने के बाद, उनके संस्थानों में कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से वेतन का भुगतान किया जाए। प्रत्यर्थी/याचिकाकर्ता (संख्या में दो) का चयन संबंधित संस्था की प्रबंध समिति द्वारा उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16-एफएफ के प्रावधानों के साथ उसके अंतर्गत बनाए गए विनियमों के विनियम 17 के अध्याय-II के अनुसार किया गया था। अभिलेख से पता चलता है कि 13.02.2019 के आदेश द्वारा एलटी ग्रेड शिक्षक के पद पर चयनित नौ अन्य व्यक्तियों के साथ याचिकाकर्ताओं के चयन की अस्वीकृति के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ था। प्रत्यर्थियों/याचिकाकर्ताओं में से एक द्वारा रिट-ए संख्या 4791/2019 में जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 13.02.2019 के आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसमें अनुमोदन देने से इनकार कर दिया गया था, रिट याचिका को 11.04.2019 को दिनांक 13.02.2019 के आदेश को रद्द करते हुए अनुमति दी गई थी, साथ ही जिला विद्यालय निरीक्षक को निर्देश दिया गया था कि वे याचिकाकर्ता के दावे पर नए सिरे से विचार करें और उसमें की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए उनके चयन को मंजूरी प्रदान करें।

उपरोक्त रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 11.04.2019 के अवलोकन से संकेत मिलता है कि अनुमोदन को अस्वीकार करने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा तीन आधार उठाए गए थे। पहला आधार यह था कि संस्था में एल.टी. ग्रेड में सहायक अध्यापकों के 11 पदों को दिनांक 10.11.2016 और 20.03.2017 के आदेशों द्वारा पुनर्सृजित किया गया था और इन दोनों आदेशों को दिनांक 14.12.2017 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया और सहायक अध्यापकों के केवल 7 पद पुनर्सृजित हुए। संबंधित संस्थान की प्रबंधन समिति ने दिनांक 14.12.2017 के पत्र में दिए गए निर्देशों के अनुसार चयन नहीं किया। दूसरा आधार यह था कि संबंधित संस्था की प्रबंधन समिति वैध रूप से निर्वाचित नहीं थी और इसलिए वह चयन करने के लिए सक्षम नहीं थी। तत्कालीन समिति द्वारा की गई नियुक्ति अवैध थी। तीसरा आधार यह था कि दिनांक 12.03.2018 के शासनादेश द्वारा धारा 16-एफएफ और उसके अंतर्गत बनाए गए विनियमों के अध्याय

2 विनियमन 17 में संशोधन किए गए हैं और संशोधन के माध्यम से लाई गई प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। इन तीन आधारों को, जैसा कि दिनांक 11.04.2019 के निर्णय और आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है, इस न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि प्रश्नगत चयन के लिए प्रबंधन समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं थी, क्योंकि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा 1921 अधिनियम की धारा 16-एफएफ के तहत किए गए चयन की जांच का दायरा चयनित उम्मीदवारों की पात्रता तक ही सीमित था। विचाराधीन पद की बहाली का प्रश्न इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 26403/2018 और रिट-ए संख्या 25087/2018 में पारित पूर्व आदेश द्वारा सुलझा लिया गया था।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमने जिला मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा पारित दिनांक 11.11.2019 के आदेश का अध्ययन किया है, जो रिट याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनौती का विषय था, जिससे वर्तमान विशेष अपील उत्पन्न हुई है। जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेश का अवलोकन करने से यह भी पता चलता है कि आदेश दिनांक 13.02.2019 द्वारा अनुमोदन को अस्वीकार करने के लिए जो बातें पहले उठाई गई थीं, दिनांक 11.04.2019 के निर्णय और आदेश द्वारा रद्द कर दी गई थीं, उन्हें ही दिनांक 11.11.2019 आदेश में दोहराया गया है। मामले के इस पहलू पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 07.01.2022 के निर्णय और आदेश में विधिवत विचार किया गया है, जो यहां चुनौती का विषय है।

उपरोक्त नोट करने के बाद, हम आगे पाते हैं कि वर्तमान विशेष अपील में 338 दिनों की देरी हुई है और विलंब माफी आवेदन के साथ हलफनामे में कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यहां चुनौती के चयन विषय वस्तु के संबंध में समान तथ्यों और परिस्थितियों में, राज्य द्वारा दायर विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 996/2020 और विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 995/2020 को अत्यधिक, अस्पष्टीकृत देरी के कारण दिनांक 24.11.2020 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 03.03.2020 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने वाली एक अन्य विशेष अपील संख्या 179/2021, जिसमें समान स्थिति वाले व्यक्तियों द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दी गई थी, को दिनांक 03.09.2021 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, जिसकी एक प्रति प्रत्यर्थी 1 और 2 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न है। दिनांक 03.09.2021 के निर्णय और आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा एल.टी. ग्रेड में सहायक अध्यापक के पद पर याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति को अस्वीकार करने के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 11.11.2019 के आदेश को अपास्त करते हुए लौटाए गए निष्कर्ष को रद्द कर दिया गया था। उक्त विशेष अपील में चुनौती का आधार यह था कि पद को पुनर्जीवित करने के बाद सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति के बिना चयन शुरू नहीं किया जा सकता था, जिसे खारिज कर दिया गया है।

इस प्रकार, हम पाते हैं कि प्रत्यर्थी भी इसी प्रकार की स्थिति में हैं, सहायक अध्यापक उसी चयन में चयनित हुए थे जिसे इस न्यायालय के अन्य विशेष अपीलीय पीठों ने भी बरकरार रखा था।

यह देखते हुए कि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 11.11.2019 का आदेश, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 13.02.2019 के पिछले आदेश की पुनरावृत्ति मात्र है, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 11.04.2019 के निर्णय और आदेश में अपास्त कर दिया है, और ऊपर उल्लिखित अतिरिक्त तथ्यों के लिए, हम इसे हस्तक्षेप के लिए उपयुक्त मामला नहीं पाते हैं। वर्तमान विशेष अपील को अपीलकर्ताओं की ओर से अत्यधिक, अस्पष्टीकृत विलंब के आधार पर तथा तदनुसार, गुण-दोष के आधार पर खारिज किया जाता है।"

(प्रभाव वर्धित)

13. अब वर्तमान मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, मैं पाता हूं कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने प्रबंधन द्वारा भेजे गए कागजात की जांच करने के बाद 19 अगस्त, 2016 को अपने पत्र में पांच आपत्तियों को कमियों के रूप में लिया। ये आपत्तियाँ थीं: (i) 15 मार्च, 2012 के सरकारी आदेश के तहत मान्यता प्राप्त इंटरमीडिएट कॉलेजों में नियुक्तियों पर प्रतिबंध था; (ii) याचिकाकर्ता के पास अपेक्षित शैक्षणिक योग्यता नहीं थी; (iii) आरक्षण कोटा प्रमाणित नहीं किया गया था; (iv) 31 मार्च, 2011 को क्लर्क का पद रिक्त हो गया था, इसलिए उस पर कोई नियुक्ति नहीं हो सकती थी और (v) दस्तावेजों के साथ कार्यरत वर्ग-3 और वर्ग-4 कर्मचारी का कोई विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया। तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक श्री इंद्र प्रकाश सोलंकी द्वारा दिनांक 19.8.2016 को लिखे गए आपत्ति पत्र को पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक है तथा उसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"प्रेषक,

जिला विद्यालय निरीक्षक,

मथुरा।

सेवा में,

प्रबन्धक,

जैन इण्टर कालेज,

चौरासी, मथुरा।

पत्रांकः मा.अ.सं./2880-81 /2016-17 दिनांकः 19-08-16

विषयः सहायक लिपिक की कथित नवीन नियुक्ति के संबंध में।

महोदय,

उपरोक्त विषयक अपने पत्र संख्याः नियु./670/16-17 दिनांक 21.07.2016 का संदर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें, जिसके द्वारा शैलेश खण्डेलवाल की सहायक लिपिक पर कथित नवीन नियुक्ति कर अनुमोदन हेतु पत्राजात/पत्रावली इस कार्यालय को प्रस्तुत की है। पत्रावली के परीक्षणोपरान्त निम्नवत कमियां परिलक्षित हुई हैं:-

1- शासनादेश संख्याः20/1/91-का-2-2012 कार्मिक अनुभाग-2 लखनऊ दिनांकः 15 मार्च, 2012 के द्वारा /नियुक्ति पर रोक/ प्रतिबन्ध है।

2- भर्ती नवीनतम शासनादेशानुसार लिपिक पद हेतु शासन द्वारा निर्धारित शैक्षिक योग्यता पूर्ण नहीं है।

3- आरक्षण कोटा के संबंध प्रमाण-पत्र नहीं है।

4- इस पद जो 31.03.2011 को रिक्त हुआ है इतनी अवधि के बाद भरे जाने का औचित्य स्पष्ट नही है।

5- विद्यालय में कार्यरत चतुर्थश्रेणी कर्मचारी व लिपिक वर्ग का आरक्षण/ वर्गवार विवरण संलग्न नहीं है।

अतः तदनुसार उपरोक्त के फलस्वरूप उक्त शैलेश खण्डेलवाल की सहायक लिपिक पर कथित नवीन नियुक्ति संबंधी पत्रावली इस पत्र के साथ मूल रूप में संलग्न कर आपको प्रत्यावर्तित/वापिस की जाती है।

संलग्नकः उक्तवत मूल पत्रावली।

भवदीय

डॉ० (इन्द्र प्रकाश सिंह सोलंकी)

जिला विद्यालय निरीक्षक मथुरा"

(प्रभाव वर्धित)

14. प्रबन्ध समिति ने संस्था के प्रबन्धक के दिनांक 19.8.2016 के पत्र द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक को विधिवत उत्तर देते हुए अपना बिन्दुवार रुख स्पष्ट किया:

(i) शासनादेश दिनांक 15 मार्च, 2012 ही स्पष्ट करता है कि नियुक्तियों पर प्रतिबंध अल्पसंख्यक संस्थानों के संबंध में लागू नहीं होगा;

(ii) चयनित उम्मीदवार राज्य द्वारा निर्धारित सीसीसी प्रमाणपत्र जैसे शैक्षणिक योग्यता के मानदंडों को पूरा करता है और वे दस्तावेज संलग्न हैं;

(iii) लिपिक संवर्ग में केवल तीन पद होने के कारण आरक्षण लागू नहीं होगा, इसलिए कोटा के संबंध में कोई प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का सवाल ही नहीं उठता;

(iv) संलग्न दस्तावेज़ और शासनादेश दिनांक 29.10.2014 स्पष्ट करेंगे कि ऐसी परिस्थितियों में कोई भी पद समाप्त नहीं होगा और वर्ग-3 और वर्ग-4 पदों पर आरक्षण के संबंध में;

(v) यह कहा गया कि यह मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान पर लागू नहीं होगा।

15 प्रस्तुत उत्तर को भी मूल्यांकन हेतु नीचे दिए अनुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"महोदय,

उपरोक्त पंत्राक के संबंध में निम्न आधारों पर जबाब दिया जा रहा है-

1- आपके उपरोक्त पत्रांक में नं. 1 कमी शासनादेश संख्याः20/1/91-का-2-2012 कार्मिक अनुभाग-2 लखनऊ दिनांक 15/03/2012 के द्वारा/नियुक्ति पर रोक/ प्रतिबन्ध है।

इस संबंध में शासनादेश पत्रांक - सा.(1)/शि./5794-5868/2014-15) दिनांक 29.10.2014 जो संलग्नक दो है। अशासकीय अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में की जाने वाली नियुक्ति के अनुमोदन के विषय में शासन द्वारा आदेश संख्या रिट -249/15-12-2012-1601(404)/2012, दिनांक 17 अक्टूबर 2012, 1964/15-12-1601(404)/2012 टी.सी., दिनांक 17 अक्टूबर 2012 तथा 2032/15-12-

अनुवादित

2012-1601(404)/2012 टी.सी., दिनांक 25 अक्टूबर 2012 से यह स्पष्ट है कि कार्मिक विभाग का शासनादेश संख्या-20/1/91-का-2-2012, दिनांक 15 मार्च 2012 अशासकीय सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थाओं में प्रभावी नहीं है।

2- आपके उपरोक्त पत्रांक में नं. 2 कमी भर्ती नवीनतम शासनादेश अनुसार सहायक लिपिक पद हेतु शासनादेश द्वारा निर्धारित शैक्षिक योग्यता पूर्ण नहीं है।

इस संबंध में आपको अवगत कराया जा रहा है कि शासन द्वारा निर्धारित शैक्षिक योग्यता पूर्ण है संलग्नक तीन शैक्षिक योग्यता से संबंधित प्रमाण पत्रों की छायाप्रतियाँ है।

3- आपके उपरोक्त पत्रांक नं० तीन कमी आरक्षण कोटा के संबंध में प्रमाण पत्र नहीं है।

इस संबंध में आपको अवगत कराया जा रहा है कि उक्त भर्ती में आरक्षण कोटा न होने के कारण प्रमाण पत्र होना आवश्यक नहीं है।

4- आपके उपरोक्त पत्रांक में नं. चार पर जो कमी दर्शायी गयी है।

इस सम्बन्ध में संलग्नक दो द्वारा स्पष्ट है।

5- आपके उपरोक्त पत्रांक में नं. पांच पर कमी दर्शायी गयी है।

इस सम्बन्ध में आपको अवगत कराना है कि अल्पसंख्यक अशासकीय शिक्षण संस्थाओं में इसकी आवश्यक्ता नहीं है।

अतः उपरोक्त पत्रांक सं. द्वारा उक्त श्री शैलेश खण्डेलवाल की सहायक लिपिक पद पर नवीन नियुक्ति नियमानुसार की गई है।

अतः निवेदन है कि उक्त नियुक्ति को अनुमोदित किया जावे। भवदीय(मुनीष कुमार जैन) प्रबंधक"(प्रभाव वर्धित)

16. इसके बाद भी जब जिला विद्यालय निरीक्षक की ओर से कोई आदेश पारित नहीं किया गया तो प्रबंध समिति ने पुनः जिला विद्यालय निरीक्षक को पत्र लिखकर याचिकाकर्ताओं की दिनांक 21 जुलाई, 2016 को सहायक लिपिक के पद पर नियुक्ति को मंजूरी प्रदान करने के लिए पत्र लिखा। हालाँकि, जब कुछ नहीं हुआ, तो याचिकाकर्ताओं ने रिट-ए संख्या 9127/2018 के तहत इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और न्यायालय ने जिला विद्यालय निरीक्षक को आदेश की प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 3 महीने की अवधि के भीतर निर्णय लेने का निर्देश दिया। रिट-ए संख्या 9127/2018 में पारित दिनांक 3 अप्रैल, 2018 के आदेश का प्रभावी भाग यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत है:

"तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस रिट याचिका का निस्तारण प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश के साथ किया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर, पारित किए जाने वाले तर्कसंगत आदेश के माध्यम से, कानून के अनुसार, सहायक क्लर्क के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करे।"

17. याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति पंजीकृत पत्र दिनांक 7.8.2018 द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक और संस्था के प्रबंधक को भेजी और उसके बाद जिला विद्यालय निरीक्षक ने पत्र दिनांक

25.8.2018 द्वारा सुनवाई के लिए 6 सितंबर, 2018 की तारीख तय की। 6 सितम्बर, 2018 को याचिकाकर्ताओं तथा प्रबन्ध समिति दोनों ने स्वयं उपस्थित होकर उन्हें प्रबन्ध समिति द्वारा पूर्व में की गई कमियों व दोषों को दूर करने की याद दिलाई। जिला विद्यालय निरीक्षक श्री कृष्ण पाल सिंह ने इस बार 25.9.2018 को उसी तर्ज पर एक आदेश पारित कर याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति के लिए वित्तीय अनुमोदन से इनकार कर दिया, जिसमें उन्होंने सहायक अध्यापकों के संबंध में अनुमोदन से इनकार कर दिया था, जिनका चयन किया गया था और जिनके मामले को भी वह देख रहे थे।

18. यह देखना काफी आश्चर्यजनक है कि इस बार जो आपत्तियां ली गईं, वे यह थीं कि रिक्ति के विज्ञापन के लिए पूर्वानुमति नहीं ली गई थी, जिन दो समाचार पत्रों में विज्ञापन दिया गया था, उनका क्षेत्र में कोई प्रचलन नहीं था, 2011 तक कोई नियुक्ति न होने के कारण संबंधित पद समाप्त हो गया था, डीओईएसीसी से ट्रिपल 'सी' प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया गया था, कोई वैध प्रबंधन समिति नहीं थी और नियुक्तियों पर प्रतिबंध था।

19. इस याचिका में जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 25.9.2018 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आदेश का विरोध करने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर तर्क दिया है:

(i) जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा प्रारम्भ में जो भी आपत्तियां ली गई थीं तथा उन आपत्तियों का प्रबन्ध समिति द्वारा समुचित उत्तर दे दिया गया था, अतः जिला विद्यालय निरीक्षक के लिए वित्तीय स्वीकृति के दावे को अस्वीकार करने के लिए नई आपत्ति उठाना सम्भव नहीं था। इसके अलावा, जब शासनादेश में स्वयं कहा गया था कि अल्पसंख्यक संस्थान के संबंध में रिक्त पदों पर नियुक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है, तो जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा यह आधार लेना उचित नहीं था कि उसी शासनादेश के तहत प्रतिबंध था;

(ii) याचिकाकर्ता द्वारा शैक्षणिक योग्यता से संबंधित दस्तावेज विधिवत उपलब्ध कराए गए थे, लेकिन उन पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि डीओईएसीसी संगठन ने अपना नाम बदलकर राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान कर लिया है, इसलिए उसके द्वारा जारी ट्रिपल 'सी' प्रमाण पत्र उसी संगठन द्वारा पहले जारी किए गए प्रमाण पत्र के समान नहीं माना जाएगा;

(iii) जिला विद्यालय निरीक्षक ने दो समाचार दैनिक समाचार पत्रों अर्थात् कल्पतरु एक्सप्रेस और इंडियन एक्सप्रेस में संस्थान में संकाय पदों को भरने के लिए जारी विज्ञापनों के संबंध में कोई आपत्ति नहीं ली है, इसलिए वे अब अनुमोदन से इनकार करने को आपत्ति के रूप में नहीं ले सकते थे, विशेषकर तब जब उन्होंने अपने पत्र दिनांक 19.8.2016 में उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति में उन समाचार पत्रों पर आपत्ति नहीं की थी जिनमें विज्ञापन दिए गए थे।

(iv) संकाय सदस्यों द्वारा दायर विभिन्न रिट याचिकाओं में इस न्यायालय के निर्णयों में यह बात आई है कि यह वही प्रबंधन समिति है जो संस्थान के कर्मचारियों को वेतन वितरित करती रही है और, इसलिए, इसके द्वारा किया गया

चयन और नियुक्ति खराब नहीं होगी। ऐसी प्रबंधन समिति याचिकाकर्ता के चयन और नियुक्ति के मामले में अक्षम नहीं होगी।

21. वहीं दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उसमें निर्दिष्ट कारणों के आधार पर आदेश का बचाव करने की मांग की।

22. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा दलीलों और अभिलेखों और आदेश का अवलोकन करने के बाद, साथ ही उसी प्रबंधन समिति द्वारा चयनित और नियुक्त संकाय सदस्यों के मामलों में उद्धृत विभिन्न निर्णयों और बार में प्रस्तुत तर्कों के बाद, मुझे वर्तमान मामले में तीन मुख्य बिंदु उभर कर आते हुए दिखाई देते हैं:

क. क्या विचाराधीन पद समाप्त माना जाएगा;

ख. क्या याचिकाकर्ता के पास अपेक्षित योग्यता है; और

ग. क्या जिला विद्यालय निरीक्षक याचिकाकर्ता के चयन और नियुक्ति के लिए वित्तीय अनुमोदन हेतु प्रबंधन द्वारा भेजे गए कागजात प्राप्त करने और उनकी जांच करने के बाद अपनी आपत्ति में लिए गए आधारों के अलावा अन्य आधार ले सकते थे।

23. इससे पहले कि मैं उपरोक्त तीन बिंदुओं पर चर्चा करूं, यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि जहां तक प्रतिबंध का प्रश्न है, 21 अगस्त, 2014 के सरकारी आदेश में यह स्पष्ट किया गया है कि दिनांक 15 मार्च, 2012 के शासनादेश के तहत मान्यता प्राप्त इंटरमीडिएट कॉलेजों में रिक्त पदों पर नियुक्तियों पर लगाया गया प्रतिबंध अल्पसंख्यक संस्थान पर लागू नहीं होगा। दिनांक 21 अगस्त, 2014 के शासनादेश का प्रासंगिक हिस्सा यहाँ निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"शासन के आदेश संख्या-रिट-116/15-12-7-1600(574)/2007 दिनांक 12 फरवरी 2014 में यह स्पष्ट किया गया है कि अल्पसंख्यक शिक्षण, संस्थाओं में नियुक्ति प्रधानाचार्य/अध्यापकों के संबंध में माध्यमिक शिक्षा अधिनियम -1921 की धारा-18 चच प्रभावी है। जिसके अनुसार अशासकीय सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक विद्यालयों में नियुक्ति किये जाने के लिए पूर्वानुमति दिये जाने का कोई प्राविधान नहीं है। ***अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में नियुक्ति पर रोक नहीं है।*** *अशासकीय अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में की जाने वाली नियुक्ति के अनुमोदन के विषय में शासन द्वारा आदेश संख्या रिट-240/15-12-2012-160(404)/2012 नियुक्ति 17 अक्टूबर 2012, 1964/15-12-2012-1601(404)/2012 टी०सी०, दिनांक 17 अक्टूबर 2012 तथा 2032/15-12-2012-1601(404)/2012 टी०सी०, दिनांक 25 अक्टूबर 2012 से यह स्पष्ट है कि कर्मिक विभाग का शासनादेश संख्या-20/1/91-का-2-2012 दिनांक 15 मार्च 2012 अशासकीय सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थाओं में प्रभावी नहीं है।"*

(प्रभाव वर्धित)

24. यह शासनादेश जिला विद्यालय निरीक्षक के पूर्ण ज्ञान में था, इसलिए, इस आदेश में इसके विपरीत पाया जाना कानून की दृष्टि से दोषपूर्ण है।

25. इसी प्रकार, यह न्यायालय पहले ही **मोहम्मद फैजान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2013 (5) एडीजे 471** के मामले में यह मान चुका है कि अल्पसंख्यक संस्थानों में नियुक्तियों के संबंध में जिला विद्यालय निरीक्षक से पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 के अनुसार, न्यायालय ने तर्कों पर गौर किया और फिर निम्नलिखित विचार व्यक्त किया:

"4. इन दोनों आधारों को उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 में निहित प्रावधानों के आधार पर चुनौती दी गई है, जिसमें कहा गया है कि जहां तक अल्पसंख्यक संस्थानों में नियुक्तियों का संबंध है, वहां पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है। दूसरा आधार यह है कि सोसायटी की आम सभा के सदस्यों के साथ संबंध, 1921 अधिनियम के तहत बनाए गए विनियमों के अध्याय 3 विनियमन 4 में निहित निषेध नहीं है। एक अभ्यावेदन के माध्यम से की गई शिकायत में आरोप लगाया गया है कि विज्ञापन कानून के अनुरूप नहीं था, इस तथ्य को भी विवादित किया गया है, हालांकि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा इस आधार पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है। यह आरोप लगाया गया है कि सम्पूर्ण प्रक्रिया लागू नियमों के अनुसार अपनाई गई थी, तथा चयन प्रक्रिया में किसी भी अवैधता के अभाव में, दिनांक 6.8.2012 का विवादित आदेश रद्द किये जाने योग्य है।

6. दो रिट याचिकाओं में विद्वान अधिवक्ता श्री जे.जे. मुनीर और रिट याचिका संख्या 60172/2002 में श्री यतीन्द्र तथा सभी रिट याचिकाओं में राज्य प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुनने के बाद, जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है, चूंकि सबसे पहले, विनियमन 101 को अल्पसंख्यक संस्थानों पर लागू करने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, लेकिन यह मानते हुए कि यह नियामक है, अनुमति का मतलब नियमों के तहत परिकल्पित पूर्व अनुमोदन नहीं है, जिसे पहले ही जगदीश सिंह बनाम राज्य, 2006 (2) यूपीएलबीईसी 1851 के डिवीजन बेंच के फैसले में स्पष्ट किया जा चुका है।"

26. इस प्रकार जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा लिया गया यह विचार कि रिक्ति के विज्ञापन के लिए पूर्व अनुमोदन नहीं लिया गया था और प्रबंधन समिति द्वारा चयन आयोजित करना बिल्कुल भी तर्कसंगत नहीं है। इसके अलावा, संस्थान में संकाय पदों पर चयन के संबंध में वैध प्रबंधन समिति के पहलू पर, इस न्यायालय ने पहले ही उनके संबंध में उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया है और उन निर्णयों को इस निर्णय के पहले भाग में ऊपर संदर्भित किया गया है। इस प्रकार इस पहलू पर निष्कर्ष भी अस्थिर है।

27. अब पहले मुद्दे पर आते हैं, यहां इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अध्याय-II का शीर्षक संदर्भित करना उचित है, जिसे नीचे इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"संस्थानों के प्रमुखों एवं शिक्षकों की नियुक्ति"

28. विनियमन 1 परिशिष्ट-क के अनुसार संस्थानों के प्रमुख और शिक्षकों की नियुक्ति

के लिए योग्यता से संबंधित है, जबकि विनियमन 2 चयन समिति के संदर्भ के बाद सीधी भर्ती द्वारा संस्था के प्रमुख की नियुक्ति की बात करता है। विनियमन 3 और 3क वरिष्ठता से संबंधित हैं। विनियमन 4, हाई स्कूल के रूप में अपग्रेड किए गए जूनियर हाई स्कूल में कार्यरत शिक्षकों की स्थिति से संबंधित है। विनियमन 5 और 6 दोनों ही पदोन्नति से संबंधित हैं। विनियमन 7 को निरस्त/हटा दिया गया है। विनियम 8 में उस स्थिति में प्रतिनिधित्व के अधिकार का उल्लेख है, जब कोई शिक्षक विनियम 5, 6 और 7 के अंतर्गत प्रबन्ध समिति द्वारा लिए गए निर्णय से व्यथित हो। विनियमन 9क पदोन्नति पर स्थायीकरण से संबंधित है। विनियमन 10 संस्था प्रमुख और शिक्षकों के पद पर सीधी भर्ती से संबंधित है। धारा 11 सीधी भर्ती के लिए अभ्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों की जांच से संबंधित है। विनियम 12, 13, 14, 15, 16, 17 और 18 संस्था प्रमुख और शिक्षकों के पद पर सीधी भर्ती के माध्यम से चयन और नियुक्ति से संबंधित हैं। विनियमन 19 स्कूलों के जिला निरीक्षक को वेतन के भुगतान से इनकार करने का अधिकार देता है यदि शिक्षकों और संस्था के प्रमुख की नियुक्ति अध्याय के तहत निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत होती है और फिर धारा 20 में प्रावधान है कि यदि प्रबंधन किसी स्वीकृत पद को विज्ञापित करने में विफल रहता है, जो इस अध्याय में निहित विनियमों के अनुसार रिक्त हो गया है, तो ऐसी रिक्ति को समर्पित माना जाएगा और किसी भी नई भर्ती अभियान से पहले निदेशक द्वारा इसके सृजन को मंजूरी दी जाएगी। विनियमन 20 को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"20. जहां प्रबंध समिति किसी स्वीकृत पद को, जो इस अध्याय में निहित विनियमों के अनुसार रिक्त हो गया है, रिक्ति होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर विज्ञापित करने में विफल रहती है, ऐसे पद को समर्पित माना जाएगा और उसे तब तक नहीं भरा जाएगा जब तक कि निदेशक द्वारा उसके सृजन को नए सिरे से मंजूरी नहीं दी जाती है।"

(प्रभाव वर्धित)

29. इस प्रकार, उपर्युक्त प्रावधान और अध्याय-II में निहित विभिन्न विनियमों के संबंध में मैंने जो ऊपर चर्चा की है, उसके अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय-II का विनियम 20 शिक्षकों और संस्थानों के प्रमुखों के रिक्त पदों के लिए है। चूंकि अध्याय-II लिपिकीय संवर्ग से संबंधित नहीं है, इसलिए जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा लिया गया यह रुख कि लिपिक का पद 2011 में तीन महीने तक रिक्त रहा तथा तीन महीने के भीतर कोई भर्ती अभियान नहीं चलाया गया, इसलिए यह पद समाप्त हो गया, पूरी तरह से प्रावधान को गलत तरीके से पढ़ने और परिणामस्वरूप कानून के गलत प्रयोग का मामला है। इस प्रकार, जिस पद पर याचिकाकर्ता का चयन किया गया है, अर्थात सहायक लिपिक का पद, समाप्त नहीं कहा जा सकता।

30. अब अपेक्षित योग्यता के दूसरे मुद्दे पर आते हैं, याचिकाकर्ता के पास एम.कॉम, बैचलर

ऑफ लॉ में स्नातकोत्तर डिग्री और राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान से कंप्यूटर कोर्स कॉन्सेप्ट सर्टिफिकेट है जिसे सीसीसी प्रमाणपत्र कहा जाता है। यह हमेशा देखा जाना चाहिए कि उस समय नियम क्या था और योग्यता क्या निर्धारित की गई थी। शासनादेश दिनांक 3 नवंबर, 2015 में सहायक क्लर्क के लिए योग्यता निर्धारित की गई थी कि उम्मीदवार को सीसीसी प्रमाणपत्र के साथ इंटरमीडिएट होना चाहिए और 25-30 शब्द प्रति मिनट की गति के साथ टाइपिंग स्पीड होनी चाहिए।

31. इस मामले में याचिकाकर्ता ने स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त कर ली है तथा वह निश्चित रूप से इंटरमीडिएट पास है, इसके अलावा उसने अपेक्षित न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता की मार्कशीट भी संलग्न की है। जहां तक सीसीसी प्रमाण पत्र का सवाल है, उन्होंने राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (एन.आई.ई.एल.आई.टी.) का प्रमाण पत्र संलग्न किया था। एन.आई.ई.एल.आई.टी. की आधिकारिक वेबसाइट पर इसकी स्थिति निम्नानुसार दी गई है:

"एन.आई.ई.एल.आई.टी. इम्फाल केन्द्र एन.आई.ई.एल.आई.टी. नई दिल्ली का केन्द्र है, जो इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त निकाय है। यह केंद्र राजधानी इम्फाल में स्थित है और इसके दो विस्तार केंद्र चुराचांदपुर और सेनापति जिले में हैं।

इस केंद्र की स्थापना वर्ष 1987 में इलेक्ट्रॉनिक्स डिजाइन एवं प्रौद्योगिकी केंद्र (सीईडीटी) के रूप में की गई थी और दिसंबर 2002 में इसका नाम बदलकर डी.ओ.ई.ए.सी.सी. कर दिया गया। केंद्र ने 2011 से अपना वर्तमान नाम एन.आई.ई.एल.आई.टी. अपना लिया है।

एन.आई.ई.एल.आई.टी. सेंटर इम्फाल का परिसर शहर के प्रमुख स्थल से दक्षिण-पूर्व दिशा में लगभग 5 किलोमीटर दूर अकामपट में स्थित है। 20 एकड़ से अधिक क्षेत्र में फैले इस भवन में मुख्य संस्थान भवन है जिसमें प्रशासनिक विंग, व्याख्यान कक्ष, संकाय कक्ष, कंप्यूटर प्रयोगशालाएं, मैकेनिकल वर्कशॉप शामिल हैं। इलेक्ट्रोमेडिकल प्रयोगशाला, पीसीबी लैब, सर्विसिंग सेल और अन्य प्रयोगशालाएँ। मुख्य संस्थान भवन के अलावा, परिसर में स्टाफ क्वार्टर, छात्रों के छात्रावास, विद्युत सबस्टेशन और अन्य आवश्यक सुविधाएँ मौजूद हैं।

एन.आई.ई.एल.आई.टी. इम्फाल विभिन्न दीर्घकालिक और अल्पकालिक पाठ्यक्रमों के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक्स और संचार इंजीनियरिंग और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कौशल विकास में विशेषज्ञता रखता है।"

(प्रभाव वर्धित)

32. इसलिए, उपरोक्त के मद्देनजर, जब वर्ष 2011 से संस्थान डी.ओ.ई.ए.सी.सी. का नाम बदलकर एन.आई.ई.एल.आई.टी. कर दिया गया है, तो इसके द्वारा जारी सीसीसी प्रमाणपत्र, एक वैध सीसीसी प्रमाणपत्र होगा। ऐसा नहीं है कि प्रमाण पत्र जारी करने वाली यह संस्था मान्यता प्राप्त संस्था नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने वित्तीय स्वीकृति को अस्वीकृत करने का पूर्व निर्णय ले

लिया था और इसीलिए उन्होंने प्रस्तुत प्रमाण पत्र का सत्यापन नहीं कराया।

इसके अलावा, जिला विद्यालय निरीक्षक के दिनांक 19.8.2016 (उपरोक्त) के पत्र में ऐसी कोई आपत्ति नहीं ली गई है कि याचिकाकर्ता को टाइपिंग बिल्कुल नहीं आती थी या उसके पास टाइपिंग की अपेक्षित गति नहीं थी।

33. जहां तक तीसरे मुद्दे का सवाल है, मेरे विचार से, जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा एक बार आपत्ति ले लेने और उसका उत्तर दे देने के बाद, उसे उत्तर का मूल्यांकन करना होता है। वह वित्तीय स्वीकृति के दावे को खारिज करने के लिए तीसरा और चौथा आधार नहीं बता पा रहे हैं। उक्त आदेश से यह स्पष्ट है कि उन्होंने प्रबन्ध समिति के उत्तर पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है तथा कानूनी स्थिति को समझने का प्रयास नहीं किया है। जिला विद्यालय निरीक्षक का यह कृत्य और आचरण उनके पद के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उनके आदेश से किसी व्यक्ति के कैरियर पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

34. इसके अलावा, मुझे यह भी पता चला है कि एक ही कॉलेज के संकाय सदस्यों के चयन और नियुक्ति के मामले में, जिला विद्यालय निरीक्षक, जो कि वही व्यक्ति थे, अर्थात् श्री कृष्ण पाल सिंह, द्वारा वित्तीय अनुमोदन के दावे को खारिज करने के लिए कमोबेश समान आधार लिए गए थे, जिसे इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेशों द्वारा रद्द कर दिया गया है और परिणामस्वरूप उन सभी शिक्षकों को वित्तीय अनुमोदन प्रदान किया गया है।

35. रिट याचिका के पैराग्राफ 15-16 में, जिसमें याचिकाकर्ता की नियुक्ति आदेश और परिणामी कार्यभार ग्रहण का उल्लेख किया गया है और उसके निरंतर कार्य करने का, जिसका खंडन तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक श्री कृष्ण पाल सिंह द्वारा शपथपूर्वक दिए गए जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 18 में नहीं किया गया है, पैराग्राफ 18 में उन्होंने केवल यह कहा है कि "रिट याचिका के पैराग्राफ 15 और 16 की विषय-वस्तु पर टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उत्तर दिए गए इन पैराग्राफों का उत्तर देने वाले प्रत्यर्थी से कोई संबंध नहीं है" और प्रबंधन समिति ने जवाबी हलफनामे में नियुक्ति आदेश और संस्था में सहायक लिपिक के रूप में याचिकाकर्ता की ज्वाइनिंग को स्वीकार किया है।

36. प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग कभी भी विवेक के अनियंत्रित प्रयोग से निहित नहीं होता। शक्ति का प्रयोग करने वाले अधिकारियों को विवेकशील और साथ ही जिम्मेदार होना चाहिए। उन्हें मनमौजी होने की अनुमति नहीं दी जा सकती। एक सार्वजनिक कार्यालय में पद पर आसीन अधिकारियों में पद से जुड़े अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में नैतिकता और जिम्मेदारी की बहुत उच्च भावना होती है। यह कृत्य और वह भी जानबूझकर किसी को गिराने के लिए पत्ते डालना, बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। जिस तरह से जिला विद्यालय निरीक्षक ने एक ही संस्थान में शिक्षकों के चयन और नियुक्ति के लिए दो समाचार पत्रों को विज्ञापन देने की मंजूरी दी, उससे याचिकाकर्ता के क्लर्क पद के विज्ञापन के मामले में उन्हीं समाचार पत्रों पर

सवाल नहीं उठाया जा सकता था। इसी प्रकार प्रतिबंध का मुद्दा भी नहीं उठाया जाना चाहिए था, क्योंकि शासनादेश में ही इसे अल्पसंख्यक संस्थानों पर लागू नहीं माना गया था। इस मामले में याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करना केवल अस्वीकृति के लिए प्रतीत होता है। हम एक कानून आधारित समाज हैं, जिसके पास शासन की एक पूरी पुस्तक है जिसे 'भारत का संविधान' कहा जाता है। संविधान के तहत राज्य/कार्यपालिका एक महत्वपूर्ण अंग है, इसलिए उसे अपने अधिकारियों को कानून के अनुसार काम करने की शिक्षा देनी चाहिए। किसी पक्ष को अनावश्यक मुकदमेबाजी के लिए मजबूर करने से सार्वजनिक धन और सार्वजनिक समय दोनों की बर्बादी होती है। इस प्रकार, अभिलेखों में दिखाई देने वाली प्रत्येक गलती विधि के शासन के लिए एक गंभीर क्षति है और न केवल ऐसे कृत्य या कार्रवाई को रद्द करके उसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि एक गरीब वादी को भी उस पर थोपे गए ऐसे अनावश्यक मुकदमे की लागत के साथ पर्याप्त मुआवजा दिया जाना चाहिए।

37. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के अध्याय XXI, नियम 11 के अंतर्गत लागत के निर्धारण हेतु पर्याप्त प्रावधान है। प्रावधान इस प्रकार है:

"11. लागत. - इस अध्याय के अधीन किसी आवेदन का निपटारा करते समय न्यायालय लागत के सम्बन्ध में ऐसा आदेश दे सकेगा जिसे वह उचित समझे।"

38. इसलिए, न्याय करने के लिए, नियम (उपरोक्त) मामले का निस्तारण करते समय लागत लगाने का प्रावधान करते हैं, जैसा कि न्यायालय द्वारा न्यायसंगत और उचित माना जा सकता है। **नगर पंचायत किठौर, जिला मेरठ बनाम पीठासीन प्राधिकारी, श्रम न्यायालय, उत्तर प्रदेश, मेरठ व अन्य, (2007) 1 एसएसी 567** के मामले में न्यायालय ने अवधारित किया कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अनुकरणीय लागत का अधिरोपण करना न्यायोचित होगा। **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, तमिलनाडु बनाम भारत संघ, एआईआर 2005 एससी 3353** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि "जहां तक निर्णय के समय लागत निर्धारित करने का प्रश्न है, लागत निर्धारित करना सामान्यतः अनिवार्य माना जाना चाहिए, क्योंकि पक्षकारों को स्वयं अपनी लागत वहन करने का निर्देश देने में न्यायालयों के उदार रवैये के कारण पक्षकारों ने न्यायालयों में अनेक तुच्छ मामले दायर किए हैं या तुच्छ तथा अनावश्यक मुद्दे उठाए हैं। लागत हमेशा सम संख्या के अनुसार होनी चाहिए। लागतों का उचित बंटवारा होना चाहिए। यदि लागत का भुगतान नहीं किया जा रहा है तो विशेष कारण बताए जाने चाहिए। लागत का आकलन लागू नियम के अनुसार किया जाना चाहिए।"

39. उपरोक्त के अलावा, अनेक निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि न्यायालय उन वादियों को अनुकरणीय लागत का भुगतान कर सकता है, जिन्होंने राज्य प्राधिकारियों की चूक के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

हालांकि अंतरिम आदेश के संरक्षण के दौरान किसी भी वादकारी को लंबित रहने के कारण कोई लाभ नहीं मिल सकता है, वादकारियों को

सेवा लाभ के लिए उनके मामले पर विचार न करने के लिए भी पक्षपातपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता है, जो नियमों के तहत सेवा की शर्त के रूप में उन्हें गारंटीकृत है, केवल प्रतिवादी अधिकारियों की ओर से गलत कार्रवाई या निष्क्रियता के लिए है।

40. **रामरामेश्वरी देवी एवं अन्य बनाम निर्मला देवी एवं अन्य, (2011) 8 एससीसी 249** के मामले में न्यायालय ने अवधारित किया कि "अनावश्यक और निरर्थक मुकदमेबाजी पर अंकुश लगाने के लिए, न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना होगा कि अनावश्यक मुकदमेबाजी के लिए कोई प्रेरणा या मकसद न हो। यह सामान्य अनुभव की बात है कि न्यायालय का अन्यथा सीमित एवं बहुमूल्य समय, अनावश्यक मामलों की बड़ी संख्या में सुनवाई में खर्च हो जाता है या अधिक उचित रूप से कहें तो बर्बाद हो जाता है।"

41. हालाँकि, इस मामले में नरम रुख अपनाते हुए, इस उम्मीद के साथ कि राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा कि उसके अधिकारी अपने प्रशासनिक कर्तव्यों के निर्वहन में मामलों पर विचार करने में उचित और तार्किक रहें, मैं लागत 25,000/- रुपये निर्धारित करता हूं, जिसे आज से दो महीने के भीतर याचिकाकर्ता को भुगतान किया जाना है। राज्य सरकार को दोषी अधिकारियों से लागत वसूलने का अधिकार होगा।

42. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और इसे ऊपर निर्धारित एवं निर्देशित लागत के साथ अनुमति दी जाती है। जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 25.9.2018 को पारित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक-15) रद्द किया जाता है। जिला विद्यालय निरीक्षक को संस्था में सहायक लिपिक के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए वित्तीय स्वीकृति प्रदान करने का निर्देश दिया जाता है, जिसे प्रबंधन समिति द्वारा अपने दिनांक 27.7.2016 के आदेश के तहत पहले ही नियुक्त किया जा चुका है, जिसके अनुसरण में याचिकाकर्ता ने 1.8.2016 को अपनी कार्यभार ग्रहण किया था तथा वह संस्था में निरंतर उसी पद पर कार्य कर रहा है।

43. याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए वित्तीय अनुमोदन दिनांक 27.7.2016 से संबंधित होगा और याचिकाकर्ता 1.8.2016 से वेतन पाने का हकदार होगा।

44. अनुमोदन मिलने के बाद प्रबंधन समिति वेतन के सम्पूर्ण बकाया की गणना करेगी। जिला विद्यालय निरीक्षक यह सुनिश्चित करेंगे कि याचिकाकर्ता को वर्तमान वेतन का भुगतान तुरंत किया जाए तथा वेतन का बकाया भी ऐसे अनुमोदन आदेश के तीन माह के भीतर चुका दिया जाए।

(2023) 5 ILRA 1730

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट ए संख्या 4293/2022

अन्य वाद के साथ

डॉ. राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: विजय दीक्षित

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अतुल कुमार द्विवेदी

सेवा कानून- उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999, परिनियम 9.07, परिनियम 9.04 -मुख्यतः इसलिए कि याचीगण की नियुक्ति किसी विशेष कुलपति के कार्यकाल में हुई थी, तथा उनके विरुद्ध कुछ आरोप थे, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उनके कार्यकाल में की गई नियुक्तियां अवैधानिक एवं मनमानी थी- ऐसा कोई आरोप नहीं है कि याचीगण ने अपनी शैक्षिक योग्यता के बारे में गलत जानकारी दी थी, अथवा किसी प्रकार से स्वयं को नियुक्त कराने के लिए उत्तरदायी थे-किसी व्यक्ति को लम्बे समय तक सेवा में बने रहने की अनुमति देने के पश्चात् चयन निरस्त नहीं किया जा सकता, अथवा चयन में कुछ त्रुटियों के कारण सेवा समाप्त नहीं की जा सकती। याचीगण पिछले 6 से 7 वर्षों से कार्यरत हैं तथा सेवा समाप्ति के आदेश अवैधानिक एवं मनमानी पाए गए हैं, वे सेवा समाप्ति की तिथि से बकाया वेतन सहित सभी परिणामी लाभों के हकदार हैं। (पैरा 80 एवं 82)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेडमार्क्स, (1998) 8 एससीसी 1 पृष्ठ 9 पर
2. महिपाल सिंह तोमर बनाम उ0प्र0 राज्य, (2013) 16 एससीसी 771: (2014) 3 एससीसी (एल एंड एस) 610: 2013 एससीसी ऑनलाइन एससी 1135 पृष्ठ 796 पर
3. मोहम्मद ज़मील अहमद बनाम बिहार राज्य, (2016) 12 एससीसी 342: (2017) 1 एससीसी (एल एंड एस) 396: 2016 एससीसी ऑनलाइन एससी 416 पृष्ठ 34 पर
4. विकास प्रताप सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2013) 14 एससीसी 494: (2013) 3 एससीसी (एल एंड एस) 100: 2013 एससीसी ऑनलाइन एससी 599 पृष्ठ 502 पर
5. सौरभ पाल बनाम चांसलर, वीर बहादुर एवं अन्य अपील (सिविल) 596/2008 का निर्णय 22/01/2008 को हुआ
6. बसवैया (डॉ.) बनाम डॉ. एच.एल. रमेश, (2010) 8 एससीसी 372
7. अशोक कुमार सोनकर बनाम भारत संघ एवं अन्य (2007) 4 एससीसी 54
8. मोहम्मद अबुल लश बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य
9. नाहर सिंह व अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य तथा सावित्री देवी व अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य
10. निशा देवी बनाम एच.पी. राज्य, (2014) 16 एससीसी 392
11. विकास प्रताप सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2013) 14 एससीसी 494

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. रिट याचिकाओं के इस वर्ग में, प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा पारित चयन निरसन आदेश दिनांक 6.7.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके परिणामस्वरूप एक जांच करने के पश्चात् उन्हें सेवा से पदच्युत किया गया था। उनके चयन के निरसन का सामान्य आधार उनके चयन के समय, वर्ष 2014 में उनकी शैक्षणिक योग्यता के संबंध में आवश्यक योग्यताओं का आभाव था।

2. रिट याचिकाओं के वर्तमान वर्ग में सभी याचीगण, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय में विज्ञापन दिनांक 17.2.2014 के अनुसरण में अध्यापक हैं। उन्होंने अपनी योग्यताओं के संबंध में सुसंगत दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं और पश्चात्वर्ती रूप से साक्षात्कार में जांच समिति के समक्ष उपस्थित हुए हैं, जिसने नियुक्ति के लिए उनकी अभ्यर्थिता की अनुशंसा की है। अनुशंसाएं सम्यक् रूप से विश्वविद्यालय की कार्यकारी समिति के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं, जिसके अनुसरण में वे नियुक्त किए गए थे और रिट याचिकाओं के संबंध में आक्षेपित आदेश के माध्यम् से उनकी सेवाएं समाप्त किए जाने तक, निरंतर थे।

3. वादों का वर्ग एकसाथ सुना गया है और एक सामान्य निर्णय द्वारा विनिश्चित किया जा रहा है क्योंकि, संबंधित शैक्षणिक योग्यताओं के संबंध के सिवाय, अंतर्ग्रस्त विवाद्यक समान हैं।

4. चयन के निरसन के आक्षिप्त आदेश, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलपति द्वारा पारित किए गए हैं, जो बहुत स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं कि साधारण सभा की 5वीं बैठक में पूर्व कुलपति डॉ. निशीथ राय के विरुद्ध एक जांच संस्थित की गई थी और उनके विरुद्ध सभी आरोप साबित किए गए थे और उन्हें प्रशासनिक और वित्तीय अनियमितताओं का दोषी पाया गया था। विधिक राय ईप्सित करने के पश्चात् यह विनिश्चित किया गया था कि उनके कार्यकाल के दौरान की गई सभी नियुक्तियों की जांच प्रत्येक वाद के आधार पर की जाएगी। यह अग्रेतर कथन करता है कि कार्यकारी समिति ने एक तीन-सदस्यीय समिति नियुक्त की थी जिसने इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें यह पाया गया है कि नियुक्तियां आरक्षण के नियमों का अनुसरण किए बिना की गई थीं, और विशेषज्ञों के पैनल की नियुक्ति के लिए कुलाध्यक्ष से कोई अनुमोदन ईप्सित नहीं किया गया था और वे व्यक्ति इस तथ्य के बाद भी नियुक्त किए गए थे कि उनके पास अपेक्षित ए पी आई स्कोर नहीं था, जो नियमों के विरुद्ध था।

5. कार्यकारी समिति ने इसकी 35वीं बैठक में 7.10.2021 को, पूर्व कुलपति द्वारा की गई सभी नियुक्तियों की जांच के लिए, उच्च न्यायालय के 2 सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को सम्मिलित करते हुए, दो-सदस्यीय समिति गठित करने का विनिश्चय किया था। उक्त समिति द्वारा जांच संचालित की गई थी, जिसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जो कार्यकारी परिषद् के समक्ष प्रस्तुत की गई थी और इसकी 38वीं बैठक में सम्यक् रूप से अनुमोदित की गई थी।

6. याचीगण को, उनके उत्तर ईप्सित करते हुए, कारण बताओ नोटिस दिए गए थे। उत्तर, एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय न्यायाधीश से गठित एक अन्य समिति और भर्ती प्रकोष्ठ, इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज के प्रभारी,

अनुवादित

विषय-विशेषज्ञ नामतः प्रोफेसर धनंजय यादव के समक्ष, प्रस्तुत किया गया था। समिति ने 9.6.2022 को विश्वविद्यालय को इसकी अनुशंसाएं की थीं, जो कार्यकारी समिति द्वारा स्वीकृत की गई थीं। समिति ने निष्कर्ष निकाला था कि याचीगण ने विज्ञापन की तारीख को विहित योग्यताएं पूरी नहीं की थीं और इसलिए उनकी सेवाएं समाप्त की गई थीं। अग्रेतर उपबंध किया गया था कि यह विचार करते हुए कि सभी याचीगण ने 6-7 वर्ष तक कार्य किया है, वे नए विज्ञापन में, जो जारी किया जाएगा, आवेदन करने के लिए अर्ह होंगे, और यदि उनका चयन किया जाता है, उनका वेतन और भत्ते सुरक्षित किए जाएंगे।

7. प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ ने रिट याचिकाओं की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्तियां की थीं। उन्होंने निवेदन किया था कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय को, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 लागू थी, जो पदच्युति के आदेश के विरुद्ध अपील के एक आनुकल्पिक उपचार का उपबंध करती है, जबकि याचीगण ने सीधे तौर पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय में उपागम किया था और निवेदन किया था कि याचीगण आनुकल्पिक उपचार के आधार पर पदच्युत किए जाने के लिए दायी हैं। अग्रेतर, प्रतिवादित किया गया था कि याचीगण के पास डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय (दिव्यांगजनों के लिए) उत्तर प्रदेश अधिनियम, 2009 (एतद्पश्चात् अधिनियम वर्ष 2009 के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 7 के अधीन कुलाध्यक्ष के समक्ष एक अन्य आनुकल्पिक उपचार है।

8. याचीगण के अधिवक्ता ने आनुकल्पिक उपचार का उत्तर देते हुए निवेदित किया था कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 (एतद्पश्चात् नियमावली वर्ष 1999 के रूप में निर्दिष्ट) लागू होती है, किन्तु प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने स्वयं उक्त नियमावली के निबंधनों में कार्यवाही नहीं की थी, क्योंकि न तो उन्हें कोई आरोप पत्र दिया गया था, न उक्त नियमावली के नियम 7 में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसरण में जांच संचालित की गई थी, न उनके द्वारा कारण बताओ नोटिस के साथ पूर्ण जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। अग्रेतर, यह निवेदित किया गया है कि जब प्रत्युत्तरदातागण स्वयं नियमावली वर्ष 1999 का पालन करने में विफल रहे थे, वे यह प्रतिवाद करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं कि याचीगण को उक्त नियमावली का अनुसरण करने के लिए निदेशित किया जाना चाहिए। यह निवेदित किया गया है कि याचीगण को नियमावली वर्ष 1999 के अधीन एक अपील के लिए केवल तब वापस भेजा जा सकता है, जब कार्यवाही उक्त नियमावली के अधीन की गई होती, अन्यथा नहीं।

9. अग्रेतर निवेदित किया गया था कि आनुकल्पिक उपचार, कोई पूर्ण वर्जन नहीं है, और उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 के अधीन इसकी शक्तियों के प्रयोग में याचिकओं पर विचार करेगा जहां, प्रथमदृष्ट्या, यह दर्शित किया जा सकता है कि निर्णय-निर्धारण प्रक्रिया प्रत्यक्ष अवैधता से ग्रसित है या अत्यधिक स्वच्छंद रूप से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में संचालित की गई है।

10. नियमावली वर्ष 1999 के अधीन एक अपील के प्रभावी आनुकल्पिक उपचार के आधार पर रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में प्रत्युत्तरदाता द्वारा की गई प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करने के लिए, यह अविवादित है कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने, याचीगण के विरुद्ध कार्यवाही करते समय, स्वयं नियमावली वर्ष 1999 का पालन/अनुसरण नहीं किया था। जब स्वयं विश्वविद्यालय द्वारा कार्यवाही नियमावली वर्ष 1999 के निबंधनों में संस्थित या संचालित नहीं की गई है, तब उन्हें आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है, कि याचीगण से उक्त नियमावली का अनुसरण करना अपेक्षित किया जाना चाहिए। नियमावली वर्ष 1999 के अधीन एक अपील की जाएगी, जब कार्यवाही उक्त नियमावली के अधीन संचालित की जाती है। जब कार्यवाही किसी अन्य उपबंध के अधीन संचालित की जाती है तब याचीगण से नियमावली वर्ष 1999 का अनुसरण करने और उक्त नियमावली के नियम 11 के अधीन अपील के उपचार का आश्रय लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के विद्वान् अधिवक्ता ने उचित रीति से निवेदित किया है कि याचीगण के विरुद्ध कार्यवाही नियमावली वर्ष 1999 के अधीन संचालित नहीं की गई थी, तब स्वाभाविक परिणाम अनुसरित होगा, और नियमावली वर्ष 1999 के अधीन याचीगण को अपील का उपचार उपलब्ध नहीं होगा और इसलिए इस संबंध में आनुकल्पिक उपचार के संबंध में प्रत्युत्तरदाता की प्रारंभिक आपत्ति विफल होती है।

11. द्वितीयतः, आनुकल्पिक उपचार के विद्यमान होने पर भी, रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में विधि सुप्रतिष्ठित है। उच्च न्यायालय पर्याप्त आनुकल्पिक उपचार के विद्यमान होने पर भी रिट याचिका पर विचार कर सकते हैं, जहां मूल अधिकारों के उल्लंघन के अभिकथन हैं या नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है या कि चुनौती के अधीन आदेश पूर्णतः क्षेत्राधिकार रहित है। वर्तमान वाद में, पदच्युति के आदेश को चुनौती का आधार यह है कि याचीगण को सुनवाई का कोई उचित अवसर प्रदत्त नहीं किया गया था, भिन्न व्यक्तियों के वर्ग द्वारा विभिन्न प्रक्रमों पर जांच की गई थी, जिसके लिए, नियमावली या विश्वविद्यालय की विनियमावली में कोई उपबंध नहीं है और, इसके अतिरिक्त संपूर्ण कार्यवाही विद्वेष के कारण दूषित थी, क्योंकि केवल याचीगण को पूर्व कुलपति के कार्यकाल में नियुक्त किया गया है, जिनका कुछ अवचार किया जाना अभिकथित है, प्रतिशोधात्मक उपाय के रूप में, उसके अधीन की गई सभी नियुक्तयों की जांच ईप्सित की गई थी। यह कहा गया है कि पुलिस शक्ति का ऐसा प्रयोग अधिनियम या विश्वविद्यालय की नियमावली

के अधीन विहित नहीं है, और तदनुसार ऐसे तथ्यों के संबंध में अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका पोषणीय होगी।

12. विशेषाधिकार रिटें जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति पर उच्चतम न्यायालय द्वारा ***व्हर्लपूल कार्पो. बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स***, (1998) 8 **एस सी सी** 1 के वाद में पृष्ठ 9 पर विचार किया गया और निम्नवत् निर्णीत किया गया थाः-

"14. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन विशेषाधिकार रिटें जारी करने की शक्ति पूर्ण प्रकृति की है और संविधान के किसी अन्य उपबंध द्वारा सीमित नहीं है। इस शक्ति का उच्च न्यायालय द्वारा, संविधान के भाग III में अंतर्विष्ट किसी मूल अधिकार को प्रवर्तित करने के लिए न केवल बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण की प्रकृति की रिटें जारी करने के लिए, बल्कि किसी अन्य प्रयोजन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है"।

15. *संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, उच्च न्यायालय को वाद के तथ्यों के संबंध में, रिट याचिका पर विचार करने या न करने का विवेकाधिकार है। किन्तु उच्च न्यायालय ने स्वयं पर कुछ निर्बंधन अधिरोपित किए हैं, जिनमें से एक यह है कि यदि कोई प्रभावी और प्रभावोत्पादक उपचार उपलब्ध है, उच्च न्यायालय सामान्य रूप से इसके क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा। किन्तु इस न्यायालय द्वारा निरंतर निर्णीत किया गया है कि आनुकल्पिक उपचार कम से कम तीन आकस्मिकताओं में वर्जन के रूप में प्रवर्तित नहीं होता है, नामतः, जहां रिट याचिका किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिए दाखिल की गई है या जहां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है या जहां आदेश या कार्यवाहियां पूर्णतः क्षेत्राधिकार रहित हैं या अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई है। इस बिंदु पर निर्णयज विधियों का भंडार है किन्तु न्याय के इस भंवर से निकलने के लिए, हम सांविधानिक विधि के विकासकाल के कुछ पुराने विनिश्चयों पर विश्वास करेंगे, क्योंकि वे अभी भी क्षेत्र में लागू हैं।*

16. *राशिद अहमद बनाम म्युनिसिपल बोर्ड, कैराना* (1950 एस सी सी 221 : ए आई आर 1950 एस सी 163 : 1950 एस सी आर 566) *ने प्रतिपादित किया था कि पर्याप्त विधिक उपचार का अस्तित्व, रिट प्रदान के मामले में विचार में लिए जाने के लिए एक कारक है। इसका एक अन्य राशिद वाद में अनुसरण किया गया था, नामतः, के. एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर अन्वेषण आयोग* (ए आई आर 1954 एस सी 207 : (1954) 25 आई टी आर 167), *जिसने उपर्युक्त प्रतिपादना दोहराई थी और निर्णीत किया था कि जहां आनुकल्पिक उपचार विद्यमान है, अनुच्छेद 226 के अधीन एक याचिका में हस्तक्षेप करने से इंकार करना विवेकाधिकार का अच्छा प्रयोग होगा। तथापि, यह प्रतिपादना महत्वपूर्ण शब्दों द्वारा विशेषित थी, "जब तक उसके लिए अच्छा आधार नहीं है", जो इंगित करता है कि आनुकल्पिक उपचार पूर्ण वर्जन के रूप में लागू नहीं होगा और कि अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका*

पर अभी भी आपवादिक परिस्थितियों में विचार किया जा सकता है।

17. *एक विनिर्दिष्ट और स्पष्ट नियम, उ. प्र. राज्य बनाम मोह. नूह* (ए आई आर 1958 एस सी 86 *:* 1958 एस सी आर 595) *में निम्नवत् पारित किया गया थाः*

"किन्तु रिट जारी करने से पूर्व विधिक उपचार निःशेष करने की अपेक्षा करने वाला यह नियम नीति, सुविधा और विवेकाधिकार का एक नियम है, न कि विधि का एक नियम, और अनेक दृष्टांत हैं जहां इस तथ्य के बाद भी उत्प्रेषण की रिट जारी की गई है कि व्यथित पक्षकार के पास अन्य पर्याप्त विधिक उपचार थे।"

18. *इस प्रतिपादना पर इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा, ए. वी. वेंकटेश्वरन, कलेक्टर ऑफ कस्टम्स बनाम रामचंद सोभराज वाधवानी* (ए आई आर 1961 एस सी 1506 *:* (1962) 1 एस सी आर 753) *में विचार किया गया था और निम्नलिखित शब्दों में अभिपुष्ट और अनुसरित किया गया थाः*

"इस न्यायालय के निर्णयों के पैरा में हमने जो उद्धृत किया है, इंगित करता है (1) कि दो अपवाद जो विद्वान् महासालिसिटर ने पर्याप्त आनुकल्पिक उपचार के अस्तित्व के प्रभाव के संबंध में साधारण नियम के लिए विरचित किए थे, किसी प्रकार पूर्ण नहीं थे, और (2) कि उनके बाहर भी उच्च न्यायालय में याचिका पर विचार करने और आनुकल्पिक उपचार का अस्तित्व होने पर भी याची को अनुतोष प्रदान करने का विवेकाधिकार निहित है। हमें केवल यह कहने की आवश्यकता है कि सामान्य सिद्धांतों की व्यापक रूपरेखा जिन पर न्यायालय को कार्य करना चाहिए, स्पष्ट रूप से प्रतिपादित की गई है, प्रत्येक विशिष्ट वाद के तथ्यों के लिए उनका प्रवर्तन आवश्यक रूप से विशिष्ट तथ्यों की विविधता पर निर्भर करना चाहिए, जिसे न्यायालय के विवेकाधिकार के उचित प्रयोग को शासित चाहिए, और कि ऐसे मामले में जो इस प्रकार एक सर्वोपरि विवेकाधिकार है, यह संभव नहीं है या भले ही यह होता, अनम्य नियम प्रतिपादित करना वांछनीय नहीं होगा, जो प्रत्येक वाद में, जो न्यायालय के सामने आता है, कठोरता से लागू किया जाना चाहिए।"

19. *एक अन्य संविधान पीठ ने कलकत्ता डिस्काउंट कं. लि. बनाम आई टी ओ, कंपनीज डिस्ट. I* (ए आई आर 1961 एस सी 372 : (1961) 41 आई टी आर 191) *में प्रतिपादित किया थाः*

"यद्यपि, प्रतिषेध या उत्प्रेषण की रिट किसी कार्यपालक प्राधिकारी के विरुद्ध जारी नहीं की जाएगी, उच्च न्यायालय को एक उपयुक्त वाद में क्षेत्राधिकार के बिना कार्य करने से किसी कार्यपालक प्राधिकारी को प्रतिषेध करते हुए एक आदेश जारी करने की शक्ति है। जहां एक कार्यपालक प्राधिकारी क्षेत्राधिकार विषय के बिना कार्य कर रहा है या किसी व्यक्ति को लंबी प्रक्रिया में डालने या अनावश्यक परेशानी में डाले जाने की संभावना है, उच्च न्यायालय ऐसे परिणाम रोकने के लिए उपयुक्त आदेश या निदेश जारी करेगा। धारा 34, *आयकर अधिनियम के अधीन क्षेत्राधिकार के बिना कार्य करने वाले आयकर अधिकारी के विरुद्ध*

उत्प्रेषण और प्रतिषेध की रिट जारी कर सकता है।"

20. *तब से बहुत समय व्यतीत हो चुका है किन्तु इन विनिश्चयों पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है, जो यद्यपि पुराने हैं, निरंतर क्षेत्र में इस परिणाम के साथ लागू हैं कि संविधान के अनुच्छेद* 226 *के अधीन एक रिट याचिका पर विचार करने में उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के संबंध में विधि पर, आनुकल्पिक विधायी उपचारों के बाद भी, प्रभाव नहीं पड़ा है, विशेषकर ऐसे मामले में जहां प्राधिकारी का, जिसके विरुद्ध रिट दाखिल की जाती है, कोई क्षेत्राधिकार नहीं होना दर्शित किया जाता है या बिना किसी विधिक आधार के क्षेत्राधिकार हड़पने के लिए आशयित था।*

21. *ऐसा होने के कारण, उच्च न्यायालय प्रतिविरोध की परीक्षा किए बिना आरंभिक प्रक्रम पर रिट याचिका खारिज करने में न्यायोचित नहीं था कि अपीलार्थी को जारी किया गया कारण बताओ नोटिस पूर्णतः क्षेत्राधिकार के बिना था और कि वाद की परिस्थितियों में, रजिस्ट्रार, "अधिकरण" के रूप में कार्य करने में न्यायोचित नहीं था।*

सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कं. लि. बनाम उल्हासनगर म्युनिसिपल काउंसिल, (1970) 1 **एस सी सी** 582 *के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया था कि लोक निकाय या प्राधिकारी के कार्य से व्यथित होने के इस अभिवचन पर कि कार्य अवैध, कठोर, स्वच्छंद या अनुचित है, दावा करने वाला पक्षकार, रिट याचिका की सुनवाई के लिए अधिकृत है।*

नाथी मल राम सहाय मल बनाम वी. सी., मेरठ, 1998 **यू पी एल बी ई सी** 161 *के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णीत किया था कि आनुकल्पिक उपचार का अस्तित्व कोई वर्जन नहीं होना निर्णीत किया गया है, जहां यह अभिकथन किया गया है कि उपबंध अधिकारातीत है या कार्य नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन में है।*

याची के विद्वान् अधिवक्ता ने अग्रेतर ***डॉ. श्याम नरायन पांडेय बनाम वी. सी. गोरखपुर विश्वविद्यालय***, 1985 **यू पी एल बी ई सी** 99 *के वाद पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें आक्षेपित आदेश विधि के अधीन पूर्णतः शून्य और अप्रभावी पाया गया था, सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया था कि रिट याचिका, गुणावगुण पर सुने जाने के पश्चात् आनुकल्पिक उपचार के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती है।*

31. ***हृदय नारायन बनाम आयकर अधिकारी, बरेली***, **ए आई आर** 1971 **एस सी** 33 *के वाद में, याची के पास आयुक्त, आयकर के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करने का आनुकल्पिक उपचार था किन्तु उच्च न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया था कि हृदय नारायन पुनरीक्षण में आयुक्त के पास जा सकता था क्योंकि उस तारीख को जब याचिका दाखिल की गई थी, अधिनियम की धारा* 33ए *द्वारा विहित अवधि समाप्त नहीं हुई थी। उनके प्रभुत्व ने अग्रेतर निर्णीत किया था कि धारा* 35 *के अधीन आयकर अधिकारी के आदेश को सही करने के आदेश के लिए पुनरीक्षण नहीं किया गया था, उच्च न्यायालय,*

पोषणीय नहीं, के रूप में याचिका खारिज करने में न्यायोचित नहीं होगा, जिस पर गुणावगुण पर विचार किया गया था और सुना गया था।

32. ***अशोक कुमार बनाम मैनेजिंग डायरेक्टर, यू. पी. लेदर डेवलपमेंट एंड मार्केटिंग कार्पोरेशन***, 1986 **(16) एल सी डी** 6 *के वाद में,* ***जय किशन बनाम यू. पी. कोआपरेटिव बैंक लि.***, 1989 **(2) यू पी एल बी ई सी** 144 **(डी बी)** *और* ***हृदय नारायन बनाम आई टी ओ, बरेली***, **ए आई आर** 1971 **एस सी** 33 *के वाद पर विश्वास करते हुए, इस न्यायालय की खंडपीठ ने संप्रेक्षित किया था कि यदि एक आदेश शून्य है और याचिका में तथ्यों का विवादित प्रश्न अंतर्ग्रस्त नहीं है, न्यायालय इसके क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इंकार नहीं कर सकता है। उच्च न्यायालय में अनेक वर्षों से रिट याचिका का लंबित रहना भी, पक्षकारों को औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबंधों के अधीन उनकी व्यथा का प्रतितोष पाने के लिए याचीगण को वापस नहीं भेजने के लिए, लिया जाने वाला एक न्यायोचित आधार था। यह अभिनिर्धारित करते हुए कि इन परिस्थितियों में यह किसी प्रकार से न्याय हेतुक को अग्रसर नहीं करता है यदि अनेक वर्ष व्यतीत होने के पश्चात्, इस न्यायालय को कर्मकारों से उनकी व्यथा का प्रतितोष ईप्सित करने के लिए श्रम न्यायालय जाने के लिए कहना है, वह भी ऐसे वाद में जहां सुसंगत तथ्यों पर कोई विवाद नहीं था।*

33. ***अशोक कुमार बनाम मैनेजिंग डायरेक्टर, यू. पी. लेदर डेवलपमेंट एंड मार्केटिंग कार्पोरेशन***, 1986 **(16) एल सी डी** 6 *के वाद में, उच्च न्यायालय ने यह संप्रेक्षित करने के पश्चात् कि रिट प्रदान करने के पूर्व, विधिक उपचार के निःशेष होने का नियम, नीति, सुविधा और विवेकाधिकार का नियम है, विधि का नियम नहीं और इसने अग्रेतर संप्रेक्षित किया था कि यह न्यायालय के विवेकाधिकार का विषय है, जो प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार प्रयोग किया जाना है।*

34. ***अखिलेश कुमार सक्सेना बनाम शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) उ. प्र., लखनऊ***, 1999 **(17) एल सी डी** 904 *के वाद में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने संप्रेक्षित किया था कि जहां न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के प्रवर्तन को रोकते हुए, शपथपत्रों के विनिमय के पश्चात् याचिका पर विचार किया है, न्यायालय को याचिका को केवल आनुकल्पिक उपचार के आधार पर खारिज करके मामले का अंतिम रूप से निस्तारण नहीं करना चाहिए। इस दृष्टि से, आदेश अपास्त करते हुए और यह निदेशित करते हुए अपील अनुज्ञात की गई थी कि रिट याचिका गुणावगुण पर सुनवाई के पश्चात् निस्तारित की जाए।*

35. ***सुधाकर मालवीय बनाम बनारस हिंदू विश्विद्यालय***, 1997 **(2) ई एस सी** 1213, *के वाद में, यह निर्णीत किया गया है कि उच्च न्यायालय आनुकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर रिट याचिका खारिज करने में गलत था जब रिट याचिका पर विचार किया गया था और 11 वर्ष तक लंबित रही थी। यह ऐसा वाद था जिसमें याची को, राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 68 के अधीन विधिक उपचार उपलब्ध था किन्तु उसने आक्षेपित आदेश के विरुद्ध सीधे तौर पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च*

न्यायालय में उपागम किया था और उच्च न्यायालय ने राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 68 के अधीन आनुकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर रिट याचिका खारिज की थी।

36. *उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों की श्रृंखला से विस्तृत रूप से निम्नलिखित प्रतिपादनाएं निकलती हैः*

(i) विधिक आनुकल्पिक उपचार, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक रिट याचिका पर विचार करने में उच्च न्यायालय के लिए कोई पूर्ण वर्जन नहीं है।

(ii) विधिक आनुकल्पिक उपचार के अस्तित्व पर रिट याचिका पर विचार करने से इंकार करना स्वअधिरोपित निर्बंधन है, जिसके लिए निम्नलिखित विचार महत्वपूर्ण हैं, नामतः

(क) आनुकल्पिक उपचार पर्याप्त, प्रभावी और द्रुतगामी है।

(iii) उच्च न्यायालय तथ्य के विवाद्यकों पर विचार कर सकता है किन्तु ऐसी याचिका पर विचार नहीं कर सकता है जहां तथ्यों का प्रश्नगत् विवाद अवधारित किया जाना है और ऐसे वादों में याची आनुकल्पिक विधिक फोरम को वापस भेजा जा सकता है।

(iv) यदि एक रिट याचिका पर, विधिक उपचार होने के बाद भी, विचार किया गया है, जो पर्याप्त हो सकता है, और उक्त याचिका लंबे समय से लंबित रही है, तब याची को आनुकल्पिक उपचार के लिए वापस भेजने का क्षेत्राधिकार कम ही है, जब तक ऐसा करने के लिए वैध और ठोस कारण नहीं हैं।

(v) यद्यपि आनुकल्पिक फोरम में, पर्याप्त आनुकल्पिक, प्रभावी, द्रुतगामी उपचार विद्यमान है, उच्च न्यायालय रिट याचिका पर निम्नलिखित परिस्थितियों में विचार कर सकता हैः

(क) किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिए,

(ख) जहां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन किया गया है,

(ग) जहां आदेश या कार्यवाहियां पूर्णतः क्षेत्राधिकार रहित हैं, या

(घ) अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई है।

अंततः, यह प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि विधिक उपचार के होने पर भी रिट याचिका पर विचार करने के विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाना है या नहीं।"

13. आनुकल्पिक उपचार के आधार पर रिट याचिकाओं के खारिज किए जाने के संबंध में विरोधी प्रतिविरोधों पर विचार करने पर, वर्तमान वाद में यह देखा जाता है, अभिकथन हैं कि याचीगण के विरुद्ध संपूर्ण कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के घोर उल्लंघन में की गई है, क्योंकि सुनवाई एक समिति द्वारा उपलब्ध की गई थी जबकि विनिश्चय कार्यकारी परिषद द्वारा किया गया था, यह निर्णय-निर्धारण के सभी सिद्धांतों के प्रतिकूल है। इसने अग्रेतर प्रतिवादित किया था कि याचीगण, सम्यक् रूप से गठित चयन समिति द्वारा चयन के अनुसरण में पिछले 6 से 7 वर्ष से कार्य कर

रहे हैं और सेवा से हटाना, इसे देखने से ही, अवैध और स्वच्छंद है और तदनुसार इस न्यायालय का उक्त तथ्यों के प्रकाश में विमर्शित दृष्टिकोण है, आनुकल्पिक उपचार का वर्जन, याचीगण के विरुद्ध लागू नहीं होता है और इसलिए इस संबंध में प्रत्युत्तरदाता का तर्क तदनुसार निरस्त किया जाता है।

14. याचीगण के पास कुलाध्यक्ष के समक्ष एक आनुकल्पिक उपचार होने के संबंध में अन्य आपत्ति भी सारहीन है क्योंकि कार्यवाहियां, जिन पर इस न्यायालय के समक्ष आपत्ति की जा रही है, डॉ. अभय कृष्ण की ओर से, कुलपति द्वारा पहले ही जांच के अध्यधीन रह चुकी हैं। कुलाध्यक्ष ने पहले ही आदेश दिनांक 11.3.2016 के माध्यम से निर्णीत किया है कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और चयन समिति के गठन के परिणामस्वरूप याचीगण की नियुक्ति वैध है। कुलाध्यक्ष के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है, और रिट याचिका विचाराधीन लंबित है। जब कुलाध्यक्ष का आदेश पहले से अभिलेख पर है, उसी विवाद्यक पर कुलाध्यक्ष के समक्ष याचीगण को वापस भेजने से कोई उपयोगी प्रयोजन पूरा नहीं होगा। यह भी निवेदित किया गया है कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने स्वयं कुलाध्यक्ष के विनिश्चय का विरोध किया है, जिसका स्वतः मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। वर्तमान वाद में याचीगण को उपचार के लिए वापस कुलाध्यक्ष के समक्ष वापस भेजने से कोई उपयोगी प्रयोजन पूरा नहीं होगा। याचीगण द्वारा की गई आपत्ति में बल है और कुलाध्यक्ष के समक्ष आनुकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर खारिज किए जाने का तर्क तदनुसार निरस्त किया जाता है।

15. याचीगण द्वारा उसके विरुद्ध संस्थित कार्यवाहियों पर, जिसके परिणामस्वरूप सेवा समाप्ति का आक्षेपित आदेश किया गया था, आपत्ति करते हुए उठाया गया प्रथम आधार, प्रत्युत्तरदातागण द्वारा जांच संचालित करने में अनुसरित प्रक्रिया के संबंध में है। यह निवेदित किया गया है कि प्रत्युत्तरदातागण ने इसकी बैठक दिनांक 7.10.2021 में उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 गृहीत की है, जिसमें सेवा-समाप्ति का लिए उपबंध दिया गया है। यह कथन किया गया है कि जब प्रत्युत्तरदातागण द्वारा नियमावली वर्ष 1999 को गृहीत किया गया है, यह उक्त नियमावली का अनुसरण करने के लिए बाध्य था, जबकि इसने ऐसी प्रक्रिया अपनाई है जो अधिनियम वर्ष 2009, या तद्धीन विरिचत किसी नियमावली में विहित नहीं है और इसलिए, प्रत्युत्तरदातागण द्वारा अनुसरित संपूर्ण प्रक्रिया अवैध और स्वच्छंद है और, इसलिए, अपास्त किए जाने के लिए दायी है।

16. प्रत्युत्तरदातागण ने अपने कार्य की प्रतिरक्षा करते समय, निवेदित किया था कि अनुशासनिक नियमावली वर्ष 1999 केवल तब आकृष्ट होगी जब कर्मचारी द्वारा अवचार का अभिकथन है, जबकि वर्तमान वाद में संपूर्ण चयन नियमावली के बाहर था, क्योंकि

याचीगण ने विहित न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता पूर्ण नहीं की थी और इसलिए उनकी सेवा समाप्त की गई थी और उनका चयन निरस्त किया गया था, और मामले में किसी दृष्टि से, याचीगण को उनका चयन निरस्त करने के पूर्व सुनवाई का पूर्ण अवसर उपलब्ध नहीं किया गया था और परिणामतः जांच कार्यवाहियों और सेवासमाप्ति के आदेश का समर्थन किया था।

17. प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए शक्ति के संबंध में उपबंध 2009 की विधियों में देखे जा सकते हैं। नियम 9.04 उपबंध करता है कि विश्वविद्यालय में एक अध्यापक की, निम्नलिखित में एक या अधिक आधार पर पदच्युति या हटाया या उसकी सेवा समाप्त की जा सकती है, जिसमें कर्तव्य की जानबूझकर उपेक्षा, अवचार, सेवा-संविदा के किसी निबंधन का उल्लंघन सम्मिलित है। अग्रेतर नियम 9.07 निम्नवत् उपबंध करता हैः-

'9.07. नियम 9.04 के खंड (1) में उल्लिखित किसी आधार पर विश्वविद्यालय के किसी अध्यापक की पदच्युति, हटाने या सेवासमाप्ति का कोई आदेश (नैतिक अधमता से अंतर्ग्रस्त किसी अपराध के लिए दोषसिद्धि या पद उन्मूलन के मामले के सिवाय) पारित नहीं किया जाएगा, जबतक अध्यापक के विरुद्ध आरोप विरचित नहीं किया जाता है और आधारों के कथन के साथ, जिन पर कार्रवाई की जानी प्रस्तावित की है, उसे संसूचित नहीं किया जाता है, और,

व्यक्तिगत रूप से सुने जाने की उसकी प्रतिरक्षा का लिखित कथन प्रस्तुत करने का, यदि वह ऐसा चुनाव करता है और उसकी प्रतिरक्षा में ऐसे साक्षियों को, जिन्हें वह चाहे, बुलाने और परीक्षा करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है - परंतु यह कि कार्यकारी परिषद या इसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारी, जांच संचालित करने के लिए, लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने वाले पर्याप्त कारण से किसी साक्षी को बुलाने से इंकार कर सकता है,

(2) कार्यकारी परिषद, किसी समय जांच अधिकारी की रिपोर्ट की तारीख से 2 मास के भीतर संबंधित अध्यापक को सेवा से पदच्युत करते हुए या हटाते हुए, ऐसी पदच्युति, हटाने या सेवासमाप्ति के लिए उल्लिखित आधारों पर संकल्प पारित कर सकता है या सेवा-समाप्त कर सकता है।''

18. विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद ने 7.10.2021 को आयोजित इसकी 35वीं बैठक में, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 अपनाने का संकल्प किया था और विश्वविद्यालय के अधिकारी और कर्मचारियों के विरुद्ध जांच संचालित करने के लिए उक्त नियमावली इंगित करते हुए 25.10.2021 को ज्ञाप जारी किया गया था।

19. विश्वविद्यालय ने बहुत स्पष्ट रूप से कथन किया है कि इसने नियमावली वर्ष 1999 का केवल इस कारण अनुसरण नहीं किया था क्योंकि कोई अवचार नहीं था और इसलिए

उक्त नियमावली वर्तमान वाद पर लागू नहीं होती है। नियमावली वर्ष 1999 का परिशीलन इंगित करता है कि नियम 6 के अनुसार सरकारी सेवक का नियुक्ति प्राधिकारी उक्त नियमावली में विनिर्दिष्ट कोई शास्ति अधिरोपित कर सकता है। धारा 7 गंभीर शास्ति अधिरोपित करने के लिए अनुसिरत किए जाने वाली विस्तृत प्रक्रिया का उपबंध करती है। गंभीर शास्तियों में कम प्रभाव के साथ वेतनवृध्दि रोकना, निम्न पद या श्रेणी में पदावनत, सेवा से हटाना, सेवा से पदच्युति सम्मिलित है, जैसा नियम 3 में उपबंधित है, जबकि लघु शास्तियों में निंदा, वेतनवृध्दि रोकना आदि सम्मिलित हैं।

20. प्रत्युत्तरदातागण द्वारा उठाए गए तर्कों का मूल्यांकन करने के लिए, नियमावली वर्ष 1999 का अनुसरण किया जाना अपेक्षित नहीं था क्योंकि अवचार का कोई अभिकथन नहीं था, और द्वितीयतः याचीगण का चयन अपास्त किया गया था, जिसके लिए नियमावली वर्ष 1999 में कोई उपबंध नहीं है।

21. इस न्यायालय का विरोधी तर्कों पर विचार करने के पश्चात् दृष्टिकोण है कि नियमावली वर्ष 1999 वर्तमान वाद में लागू थी और प्रत्युत्तरदातागण द्वारा अनुसरण किया जाना अपेक्षित था। आक्षेपित आदेश का परिशीलन स्पष्ट करता है कि कार्यकारी समिति ने याचीगण की सेवा-समाप्ति की अनुशंसा की थी, जबकि कुलपति ने कार्यकारी समिति के आदेश का पालन करते हुए याचीगण का चयन अपास्त किया था। हम, आक्षेपित आदेश को सेवासमाप्ति का आदेश मानते हुए वर्तमान वाद में विवाद का विनिश्चय करने की कार्यवाही करते हैं। किसी कर्मचारी की सेवा केवल शास्ति के मानक के रूप में ही समाप्त की जा सकती है, जैसा नियमावली वर्ष 1999 में, या विश्वविद्यालय की विधियों में उपबंधित है। सभी वादों में सामान्य आधार है कि याचीगण में चयन के समय शैक्षणिक योग्यता का अभाव था।

22. यह अभिकथन याचीगण पर सीधे तौर पर अधिरोपित किए जाने योग्य है, और ऐसा आचरण अवचार की श्रेणी में सम्मिलित किए जाने के लिए दायी होगा, जो नियोजन, उसके लिए सम्यक् रूप से योग्य हुए बिना प्राप्त करने का कार्य होगा। यह अपनी शैक्षणिक योग्यताएं प्रस्तुत करने का याचीगण का आचरण है, जो प्रत्युत्तरदातागण के अनुसार, वे आधार पूरा नहीं करते थे, जैसा विज्ञापन या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रकाशित दिशानिर्देश में प्रतिपादित था, जिसके लिए उनकी सेवासमाप्त की गई थी। इन दोनों आधारों पर, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि यह आज्ञापक था कि प्रत्युत्तरदातागण द्वारा स्थापित और स्वीकृत प्रक्रिया का, जो नियमावली वर्ष 1999 है, अनुसरण किया जाए, और ऐसा न करने में प्रत्युत्तरदातागण ने अत्यधिक स्वच्छंद और अवैध रीति में कार्य किया है, और आक्षेपित सेवासमाप्ति विधि के अनुसरण में नहीं थी।

23. पदच्युति या हटाने का दंड अधिरोपित करने के लिए, नियमावली वर्ष 1999 का अनुसरण किया जाना होगा। गंभीर दंड

अनुवादित

अधिरोपित करने के लिए, अवचार गठित करने वाले तथ्य जिन पर यह कार्रवाई की जानी प्रस्तावित की गई है, आरोपपत्र में अंतर्विष्ट निश्चित आरोप के रूप में लिखा जाएगा, जिसमें प्रस्तावित साक्ष्य और साक्षियों के नाम उल्लिखित किए जाने अपेक्षित हैं। कर्मचारी से आरोपपत्र में उल्लिखित आरोप का उत्तर दाखिल किया जाना अपेक्षित है और यदि वह आरोप से इंकार करता है, जांच अधिकारी, आरोपपत्र में प्रस्तावित साक्षियों को मौखिक साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए बुलाएगा और साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् अनुशासनिक प्राधिकारी को अपनी जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा, जो या तो उसे स्वीकार कर सकता है या रिपोर्ट से असहमत हो सकता है या यथास्थिति, पुनः जांच का आदेश कर सकता है। यदि वह पुनः जांच का आदेश नहीं करता है, उसे कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति देते हुए कारण बताओ नोटिस देनी है और अंतिम रूप से कर्मचारी को उन्मुक्त करते हुए या दंड देते हुए कार्यवाही पूर्ण करनी है।

24. उपर्युक्त प्रक्रिया प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के नियम 9.07 में भी परिकल्पित है। वर्तमान वाद में याची को कोई आरोपपत्र नहीं दिया गया था, न याचीगण की उपस्थिति में अभियोजन का कोई मौखिक साक्ष्य अभिलिखित किया गया था और उन्हें उनके द्वारा ईप्सित सुसंगत दस्तावेज गोपनीयता के आधार पर सुपुर्द नहीं किए गए थे और समितियों की जांच रिपोर्ट की प्रतियां भी याचीगण को कभी नहीं दी गई थीं और कारण बताओ नोटिस के साथ केवल एक उद्धरण दिया गया था और, इसलिए, प्रक्रिया जैसी नियम 9.07 में उपबंधित है, अनुसरित नहीं की गई थी, और परिणामतः संपूर्ण प्रक्रिया विश्वविद्यालय की विधियों और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन में निर्णीत किया गया था।

25. प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा संचालित कार्यवाहियों की वैधता की परीक्षा करने के लिए, जिसके परिणामस्वरूप चयन के निरसन के आक्षेपित आदेश किए गए हैं, यह विचार किया गया है कि विश्वविद्यालय के 'प्राधिकार', अधिनियम वर्ष 2009 की धारा 8 एवं 13 के अधीन विहित किए गए हैं। यह प्रतिपादित किया गया है कि कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय का मुख्य कार्यकारी निकाय होगा। धारा 16 कार्यकारी परिषद की शक्ति और कार्य प्रतिपादित करती है, जिसके अनुसार इसे प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर और शैक्षणिक अध्यापन वर्ग के अन्य सदस्यों को, जैसी आवश्यकता हो, विधियों द्वारा तद्निमित्त गठित चयन समिति की सिफारिश पर, नियुक्त करने की शक्ति है। अधिनियम वर्ष 2009 की धारा 32(1) के अधीन शक्तियों के प्रयोग में, राज्य सरकार ने 8.7.2009 को डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय (दिव्यांग व्यक्तियों के लिए) प्रथम विधि, 2009 (एतद्पश्चात् 'विधियां' के रूप में निर्दिष्ट) विरचित की थी, जिसमें नियम 8.01, विश्वविद्यालय में, विशेष शिक्षा संकाय से भिन्न जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विहित योग्यताओं के अनुसार होगी, अध्यापकों की नियुक्ति और कैरियर उन्नति के

लिए अपेक्षित योग्यता का उपबंध करता है। अग्रेतर नियम 8.04 में, यह उपबंधित किया गया है कि नियम 8.01, 8.02, 8.03 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए, कार्यकारी परिषद, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर, रीडर का पद या अन्य शैक्षणिक पद ग्रहण करने के लिए, उच्च शैक्षणिक प्रतिष्ठा और व्यावसायिक उपलब्धि प्राप्त व्यक्ति को, यथास्थिति, ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो यह उचित समझे, आमंत्रित कर सकता है।

26. विश्वविद्यालय की विधियों का अध्याय IX , विशेषकर नियम 9.07 उपबंध करता है कि विश्वविद्यालय के अध्यापक की पदच्युति, सेवा से हटाने या सेवासमाप्त करने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा जबतक अध्यापक के विरुद्ध आरोप विरचित नहीं कर दिये गए हैं और आधारों के कथन, इसकी प्रस्तावित कार्रवाई उसे सूचित नहीं की गई है और पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है। नियम 9.09 में, यह उपबंध किया गया है कि कार्यकारी परिषद, विश्वविद्यालय में ऐसी अवधि के लिए, जो यह उचित समझे, एक अनुशासनिक समिति गठित करेगी, जिसमें कुलपति और इसके द्वारा नामित अन्य व्यक्ति सम्मिलित होंगे।

27. यह प्रतीत होता है कि पूर्व कुलपति के विरुद्ध अनेक अभिकथन थे, जिसके विरुद्ध जांच संस्थित करने के पश्चात् कार्रवाई की गई थी। पूर्व कुलपति डॉ. निशीथ राय के विरुद्ध कार्यवाही पर भी विशेष अनुमति याचिका सं. 9830/2018 में उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, और आदेश दिनांक 6.4.2018 द्वारा, विश्वविद्यालय को उसके विरुद्ध सभी मामलों पर, सिवाय जो रिट याचिका सं. 7695(एस बी) वर्ष 2016 की विषयवस्तु थे, कार्रवाई करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

28. कार्यकारी परिषद ने 7.10.2021 को आयोजित इसकी 35वीं बैठक में पूर्व कुलपति के विरुद्ध जांच आरंभ करने का विनिश्चय किया था और उच्च न्यायालय के 2 न्यायाधीशों को सम्मिलित करते हुए एक समिति गठित की थी।

29. वर्तमान वाद में, संपूर्ण विवाद का मूल, विश्वविद्यालय की साधारण सभा द्वारा 25.1.2019 को पारित संकल्प में है। उक्त बैठक में न्यायमूर्ति शैलेंद्र सक्सेना (से. नि.) द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट पर विचार किया गया था। पूर्व कुलपति डॉ. निशीथ राय के विरुद्ध संस्थित जांच, न्यायमूर्ति शैलेंद्र सक्सेना (से. नि.) द्वारा संचालित की गई थी। विश्वविद्यालय की साधारण सभा को प्रस्तुत उक्त जांच रिपोर्ट में, पूर्व कुलपति के विरुद्ध अभिकथन साबित किए गए थे। उक्त जांच रिपोर्ट स्वीकार करते समय, साधारण सभा ने भी संकल्प किया था कि विधिक राय ईप्सित करने के पश्चात् पूर्व कुलपति द्वारा कारित तकनीकी, प्रशासनिक या वित्तीय सहित सभी अनियमितताओं के संबंध में कार्रवाई की जाएगी।

30. विश्वविद्यालय की साधारण सभा ने 16.9.2021 को इसकी बैठक में, पूर्व कुलपति द्वारा की गई नियुक्तियों की जांच करने का विनिश्चय किया था, जिसके अनुसरण में कार्यकारी परिषद ने इसकी 35वीं बैठक दिनांक 17.10.2021 में नियुक्तियों से संबंधित मामलों

की उच्च न्यायालय के 2 पूर्व न्यायाधीशों को सम्मिलित करते हुए एक समिति द्वारा जांच करवाने का संकल्प किया था और तद्नुसार, तद्निमित्त, न्यायमूर्ति एस. वी. एस. राठौर (से. नि.), न्यायमूर्ति प्रत्यूष कुमार (से. नि.) को सम्मिलित करते हुए एक समिति गठित की गई थी। साधारण सभा ने इसके संकल्प दिनांक 16.9.2021 में जांच की व्याप्ति केवल शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक पदों के लिए **नियुक्तियां करने में अनुसरित प्रक्रिया** तक सीमित की थी।

31. उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीशों से गठित उक्त समिति ने चयन समिति के अभिलेख पर विचार करके जांच संचालित की थी। समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट दिनांक 28.1.2022 में, चयन समिति की नियुक्ति की प्रक्रिया पर विचार किया गया था। उन्होंने इस तथ्य पर विचार किया था कि अधिनियम वर्ष 2009 की धारा 25(2)(क)(iv) के उपबंधों के अनुसार, जो चयन समिति के गठन पर विचार करती है, निम्नवत उपबंध करते हैः-

25.*(1) कार्यकारी परिषद, विश्वविद्यालय में अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों के पदों पर नियुक्ति के लिए कार्यकारी परिषद को अनुशंसा करने के लिए एक चयन समिति का गठन करेगी।*

(2)(क) चयन समिति निम्नलिखित सदस्यों से गठित होगी, नामतः-

(i) कुलपति जो शैक्षणिक और वर्ग 'क' और वर्ग 'ख' के गैर-शैक्षणिक सभी पदों के लिए समिति का अध्यक्ष होगा ,

(ii) रजिस्ट्रार वर्ग 'ग' और वर्ग 'घ' के गैर-शैक्षणिक सभी पदों के लिए समिति का अध्यक्ष होगा,

(iii) संबंधित विभाग का प्रमुख, यदि कोई है, जो उस पद से निम्न श्रेणी का नहीं है जिसके लिए चयन किया जाना है ,

(iv)(क) जहां किसी शैक्षणिक पद के लिए कोई नियुक्ति की जाती है, शैक्षणिक परिषद द्वारा अनुशंसा किए गए और कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित नामों के पैनल से कुलाध्यक्ष द्वारा नामित तीन विशेषज्ञः

परंतु कि शैक्षणिक परिषद और कार्यकारी परिषद का गठन होने तक उपर्युक्त निर्दिष्ट विशेषज्ञ कुलपति द्वारा नामित किए जाएंगे।

(ख) जहां कोई नियुक्ति अध्यापन से भिन्न संबंधित किसी पद पर की जानी है, रजिस्ट्रार, उत्तर प्रदेश सीधी भर्ती नियमावली, 2002 (लोक सेवा आयोग की परिधि से बाहर), समय-समय पर यथासंशोधित, के उपबंधों के अनुसार वर्ग "ग" के लिए चयन समिति गठित करेगा।

32. समिति की राय थी कि धारा 25 के खंड (iv)(क) के अनुसार, कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित शैक्षणिक परिषद द्वारा अनुशंसा पर तीन विशेषज्ञ कुलाध्यक्ष द्वारा नामित किए जाने हैं और इस शर्त से केवल वहां छूट दी जा सकती है जहां शैक्षणिक परिषद् और कार्यकारी परिषद का गठन नहीं किया गया है। जांच समिति के अनुसार, विशेषज्ञ पैनल की नियुक्ति के समय, कार्यकारी समिति और कार्यकारी परिषद का गठन किया गया था और परिणामतः कुलपति अपनी शक्ति का प्रयोग

नहीं कर सकता था जैसा अधिनियम, 2009 की धारा 25(iv)(क) के परंतुक में उपबंधित है। उन्होंने अग्रेतर विचार किया था कि अधिनियम, 2009 की धारा 44 के अनुसार, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी, समिति या निकाय की कार्यवाही केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं की जाएगी कि विश्वविद्यालय की साधारण परिषद, कार्यकारी परिषद, शैक्षणिक परिषद या कोई अन्य प्राधिकारी या निकाय सम्यक् रूप से गठित नहीं है या इसके गठन या पुनर्गठन में कोई त्रुटि है।

33. उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर समिति ने निष्कर्ष निकाला था कि विज्ञापन सं. 17 वर्ष 2014 और 19 वर्ष 2015 के अनुसरण में शैक्षणिक पद पर नियुक्तियां विधिक उपबंधों के अनुरूप नहीं थीं, क्योंकि चयन समिति का, शैक्षणिक परिषद का अनुमोदन लिए बिना गठन किया गया था और निर्णीत किया था कि चयन समिति का गठन अवैध था।

34. इस प्रक्रम पर, यह विचार करना सुसंगत है कि मामले के इस पहलू पर कि क्या चयन समिति सम्यक रूप से गठित की गई थी या नहीं, कुलाध्यक्ष द्वारा आदेश दिनांक 11.3.2016 द्वारा पहले ही, असफल अभ्यर्थी, नामतः, डॉ. अभय कृष्ण द्वारा किए गए परिवाद का विनिश्चय करते समय, जांच की गई थी । अपने परिवाद में, परिवादी ने यह भी कथन किया है कि चयन समिति, कुलपति द्वारा कार्यकारी परिषद को उसका निर्देश किए बिना गठित की गई थी। उसने अग्रेतर स्पष्ट रूप से कथन किया था कि चयन समिति अधिनियम, 2009 की धारा 25(2)(क)(iv)(क) के निबंधनों के अंतर्गत गठित नहीं की गई थी।

35. कुलाध्यक्ष ने इन सभी प्रतिविरोधों और विधिक उपबंधों पर विचार किया था और उनका विमर्शित दृष्टिकोण था किः-

"मामले के उपर्युक्त तथ्यों की दृष्टि से, चयन समिति के कुलाध्यक्ष द्वारा तीन विशेषज्ञों को कोई महत्व नहीं दिया गया है, चयन समिति के गठन को दूषित कर दिया गया था, अधिनियम की धारा 16(ii) उपबंध करती है कि पुनर्वास विश्वविद्यालय के अध्यापक और पुस्तकालयाध्यक्ष चयन समिति की अनुशंसा पर कार्यकारी परिषद द्वारा नियुक्त किए जाएंगे, अधिनियम की धारा 25(2)(क) चयन समिति के गठन के लिए उपबंध करती है। धारा 44(1) पुनर्वास विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों के विनिश्चय विधिमान्य करती है, भले ही ऐसे प्राधिकारियों के गठन में कोई त्रुटि, आदि हो। इसलिए, अभ्यावेदनकर्ता डॉ. अभय कृष्ण के प्रतिकूल प्रतिविरोधों में कोई सार नहीं है।"

36. अविवादित रूप से, कुलाध्यक्ष विश्वविद्यालय का सर्वोच्च प्राधिकारी है और जब कुलाध्यक्ष द्वारा एक विनिश्चय किया गया है, वह विनिश्चय विश्वविद्यालय पर बाध्यकारी था और मामले में किसी दृष्टि से, कुलाध्यक्ष के विनिश्चय का, कुलाध्यक्ष के अधीनस्थ किसी अन्य प्राधिकारी, साधारण सभा या कुलपति द्वारा पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता है।

अनुवादित

37. यह विधि की प्रतिष्ठित प्रतिपादना है कि जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता है, अप्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता है। कुलाध्यक्ष का आदेश अविवादित रूप से प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय पर बाध्यकारी था, और केवल कुलाध्यक्ष के आदेश को अस्थिर करने की दृष्टि से, विश्वविद्यालय ने उच्च न्यायालय के 2 पूर्व न्यायाधीशों को सम्मिलित करते हुए गठित समिति का आश्रय लिया था, जिन्होंने उत्तर में निष्कर्ष अभिलिखित किया था कि चयन समिति सम्यक रूप से गठित नहीं थी, और वह विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत किया गया था। विश्वविद्यालय द्वारा गृहीत प्रक्रिया स्पष्ट रूप से अवैध, स्वच्छंद और विद्वेषपूर्ण थी, केवल कुलाध्यक्ष के विनिश्चय का उल्लंघन करने के आशय से की गई थी। कुलाध्यक्ष का आदेश अंतिम और विश्वविद्यालय पर बाध्यकारी था, और कुलाध्यक्ष के आदेश को अवैध, स्वच्छंद अभिनिर्धारित करना या उक्त आदेश के प्रतिकूल कोई निष्कर्ष अभिलिखित करना विश्वविद्यालय की क्षमता से परे था। सेवा निवृत्त न्यायाधीश से गठित समिति द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष केवल अनुशंसात्मक थे, किन्तु विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद विधि के अनुसरण में कार्य करने के लिए बाध्य थी, और यह कुलाध्यक्ष के आदेश के प्रतिकूल उक्त निष्कर्ष का अनुमोदन नहीं कर सकती थी, और परिणामतः अनुशंसाओं की स्वीकृति स्पष्ट रुप से अवैध और स्वच्छंद हैं। रीति, जिसमें विश्वविद्यालय ने मामले में कार्य किया है स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि अपने उद्देश्य को प्राप्त करने और पूर्व कुलपति के कार्य को अकृत करने के लिए, उन्होंने नियमों और मूल सिद्धांतों का अनुसरण नहीं करने का चुनाव किया था जो उनके कार्यों को दिशानिर्देशित करते हैं।

38. जांच समिति की अनुशंसाएं पुनः कार्यकारी परिषद के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं जिस पर सम्यक रूप से विचार किया गया था और इसकी 38वीं बैठक दिनांक 19.4.2022 में उक्त अनुशंसाएं स्वीकृत की गई थीं। अग्रेतर कथन किया गया था कि पूर्व कुलपति श्री निशीथ राय के कार्यकाल में की गई नियुक्तियां निम्नलिखित अनियमितताओं से ग्रसित हैः-

(क) आरक्षण से संबंधित नियमों का अनुसरण नहीं किया गया था ;

(ख) चयन समिति नियमों के अनुसार गठित नहीं की गई थी ;

(ग) विज्ञापन में प्रकाशित संख्या से अधिक व्यक्ति नियुक्त किए गए थे ;

(घ) अनर्ह अभ्यर्थी केवल साक्षात्कार के आधार पर नियुक्त किए गए थे।

39. अग्रेतर यह विनिश्चित किया गया था कि व्यक्तियों से, जो सुसंगत समय पर अपेक्षित योग्यताएं नहीं रखते थे, सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय न्यायाधीश और विषय-विशेषज्ञ से गठित दो सदस्यीय समिति के समक्ष उनके उत्तर प्रस्तुत करने के लिए कहा जाए और केवल तभी उनके चयन के संबंध में अंतिम विनिश्चय किया जाएगा।

40. डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलपति द्वारा यह

कथन करते हुए कारण दर्शित करने के लिए, याचीगण को 22.4.2022 को कारण बताओ नोटिस दिए गए थे, कि पूर्व कुलपति श्री निशीथ राय के कार्यकाल के दौरान नियुक्तियां की गई थीं, जिनकी उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों से गठित समिति द्वारा जांच की गई थी, जिन्होंने 29.10.2021 को यह इंगित करते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि याचीगण नियुक्ति के लिए योग्य नहीं थे। जांच समिति द्वारा अशक्तता की नोटिस की विभिन्न याचीगण को सूचना दी गई थी, जिनसे बदले में 15 दिन के भीतर उत्तर देने के लिए कहा गया था। कुछ याचीगण ने नोटिस का उत्तर दिया था, जबकि अन्य ने सुसंगत दस्तावेजों की प्रति और जांच समिति की संपूर्ण रिपोर्ट भी ईप्सित की थी।

41. कारण बताओ नोटिस दिनांक 22.4.2022 के लिए प्रस्तुत उत्तर पर, न्यायमूर्ति हर्ष कुमार, सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय न्यायाधीश और विषय-विशेषज्ञ से गठित समिति द्वारा विचार किया गया था। याचीगण द्वारा प्रस्तुत कारण बताओ नोटिस के उत्तर पर विचार करने के पश्चात्, उक्त समिति ने 9.6.2022 को इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जो कार्यकारी परिषद द्वारा 13.6.2022 को आयोजित इसकी बैठक के समक्ष प्रस्तुत की गई थी और उस पर विचार किया गया था और उक्त जांच समिति द्वारा की गई अनुशंसा स्वीकार करने का विनिश्चय किया गया था और याचीगण की सेवासमाप्त करने का विनिश्चय किया गया था। अग्रेतर संकल्प किया गया था कि आदेश, विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा संसूचित किया जाएगा और तदनुसार याचीगण का चयन आक्षेपित आदेश दिनांक 6.7.2022 के माध्यम से निरस्त किया गया है।

42. उपर्युक्त आदेश दिनांक 6.7.2022 को याचीगण द्वारा निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई थीः-

(क) याचीगण का चयन 7 वर्ष से अधिक समय के पश्चात् अवैध रूप से निरस्त किया गया है जबकि स्वीकृत रूप से नियुक्ति ईप्सित करने वाले याचीगण की ओर से कोई त्रुटि या दुर्विनियोग नहीं था।

(ख) समिति की जांच रिपोर्ट की प्रति याचीगण को कभी उपलब्ध नहीं की गई थी, परिणामतः आदेश, नैसर्गिक न्याय के घोर उल्लंघन में पारित किए गए हैं।

(ग) आदेश दिनांक 6.7.2022 से पूर्व व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था, और प्रस्तावित आदेश याचीगण को कभी संसूचित नहीं किया गया था, परिणामतः नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन किया गया था।

(घ) जब कुलाध्यक्ष ने संपूर्ण मामले पर विचार किया है और चयन विधितः वैध और उचित निर्णीत किए हैं, प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय उसी आधार पर याचीगण का चयन अपास्त करने के लिए स्वतंत्र नहीं है।

(ङ) संपूर्ण चयन प्रक्रिया को पुनः देखना, वास्तव में विभिन्न पदों पर किए गए संपूर्ण चयन का पुनर्विलोकन करना है जो उनके पूर्ववर्ती आदेश का पुनर्विलोकन करने के बराबर है, जिसकी शक्ति स्पष्ट रूप से प्रत्युत्तरदातागण में निहित नहीं है।

(च) कारण बताओ नोटिस के उत्तर पर विचार करने के लिए समिति गठित करना अवैध और स्वच्छंद है। आवश्यक निर्णय-निर्धारण कार्य प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है।

(छ) वास्तव में सभी याचीगण नियुक्त किए जाने के लिए पूर्णतः योग्य और अर्ह थे और उद्देश्यपरक और उचित परिप्रेक्ष्य में विचार न करके उनकी सेवा समाप्त करने में न्याय की विफलता होगी।

(ज) संपूर्ण प्रक्रिया आरंभ से ही विद्वेषपूर्ण है, क्योंकि इसने पहले ही पूर्व कुलपति द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का पूर्व-निश्चय कर लिया था। साधारण सभा के संकल्प और कार्यकारी परिषद ने भी स्पष्ट रूप से यह कथन किया है।

(झ) गृहीत प्रक्रिया अवैध और स्वच्छंद थी; न तो नियमावली का अनुसरण किया गया था, न ही विश्वविद्यालय की विधियों का अनुसरण किया गया था, जिससे संपूर्ण प्रक्रिया आरंभतः शून्य हो गई थी और आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने के लिए दायी हैं।

नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघनः-

43. याची की ओर से किया गया निवेदन कि याचीगण की सेवा की समाप्ति केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् की जा सकती है, जो वर्तमान वाद में उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 थी, जो प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा सम्यक् रूप से गृहीत की गई है। अग्रेतर निवेदित किया गया है कि उपर्युक्त नियमावली के प्रवर्तन के अतिरिक्त, विश्वविद्यालय की विधि में ही प्रक्रिया दी गई है, जिसमें नियम 9.07 में अध्यापकों की पदच्युति, हटाना या सेवा की समाप्ति, उक्त अध्यापक के विरुद्ध आरोप विरचित करके और अपनी प्रतिरक्षा में उसे उत्तर प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर देने और व्यक्तिगत रुप से सुनने और ऐसे साक्षियों को, जिसे वह चाहे, परीक्षा के लिए बुलाने के पश्चात् नियम 9.07 के निबंधनों में, की जा सकती है।

44. यद्यपि नियमावली वर्ष 1999 का अनुसरण नहीं किया गया था, प्रत्युत्तरदातागण नियम 9.07 में अंतर्विष्ट उपबंधों का पालन कर सकते थे। उपर्युक्त उपबंधों की कसौटी पर सेवासमाप्ति के आदेश का परीक्षण करते हुए, यह विचार किया गया है कि याचीगण को कभी कोई आरोपपत्र नहीं दिया गया था और दो अवसर पर, अर्थात् 21.1.2021 एवं 22.4.2022 को उन्हें केवल कारण बताओ नोटिस जारी किए गए थे, जहां उन्होंने उत्तर प्रस्तुत किया था, किन्तु पुनः जांच रिपोर्ट की प्रति उन्हें कभी नहीं दी गई थी। उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि याचीगण के विरुद्ध आरोप विरचित करने के अभाव में, वे पर्याप्त रूप से अपनी प्रतिरक्षा करने में असमर्थ थे जो प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के नियम 9.07 के उपबंधों के घोर उल्लंघन में है।

45. यह भी निवेदित किया गया है कि किसी भी समय उन्हें उनके चयन के निरसन या उनकी सेवा-समाप्ति सहित परिणामों की सूचना नहीं दी गई थी।

46. प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय का आधार कि आक्षेपित आदेश पारित करने के पूर्व पूर्ण

अवसर दिया गया था, अविश्वसनीय है और इस बात से इंकार नहीं किया गया है कि उक्त प्रक्रिया में याचीगण को कभी आरोपपत्र नहीं दिया गया था। तदनुसार, इस न्यायालय का विमर्शित दृष्टिकोण है कि नियम 9.07 में उपबंधित आदेश का अनुसरण नहीं करके, प्रत्युत्तरदातागण ने अत्यधिक स्वच्छंद और अवैध रीति में कार्य किया है और इस प्रकार याचीगण की सेवा-समाप्ति विधि में संधार्य नहीं है और अपास्त किये जाने योग्य है।

47. सुनवाई के अनुक्रम के दौरान, याचीगण के तर्कों पर विचार करते हुए कि जांच रिपोर्टों की प्रति कभी याचीगण को नहीं दी गई है और केवल उक्त रिपोर्टों का उद्धरण याचीगण को दिए गए कारण बताओ नोटिस में उद्धृत किया गया था, इस न्यायालय ने प्रत्युत्तरदातागण से जांच रिपोर्ट दाखिल करने के लिए कहा है। इस न्यायालय द्वारा जारी निदेशों के अनुसरण में प्रत्युत्तरदातागण ने, याचीगण को उसकी प्रतियां प्रस्तुत करने के पश्चात्, अनुपूरक शपथपत्र दाखिल करके उसे अभिलेख पर प्रस्तुत किया है। इस संबंध में विधि, उच्चतम न्यायालय द्वारा विभिन्न वादों में प्रतिष्ठित की गई है, जिनमें से कुछ निम्नवत् हैः-

48. ***महिपाल सिंह तोमर बनाम उ. प्र. राज्य, (2013) 16 एस सी सी 771 : (2014) 3 एस सी सी (एल एंड एस) 610 : 2013 एस सी सी ऑनलाईन एस सी 1135 पृष्ठ 796*** के वाद में, निम्नवत् निर्णीत किया गया हैः-

"44. हम अब आक्षेपित आदेश पर विचार करेंगे। क्योंकि उसका विश्लेषण दर्शित करता है कि उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार की गई तथ्य अन्वेषक रिपोर्ट पर विश्वास किया था, अधिनियम, 1980 के उपबंधों का निर्देश किया था और निर्णीत किया था कि अपीलार्थीगण की विशिष्ट महाविद्यालय में नियुक्ति विधि के प्रतिकूल थी और वे ऐसी नियुक्ति के लिए उत्तरदायी थे। उच्च न्यायालय ने विचार किया था कि कुछ अपीलार्थीगण को ऐसे महाविद्यालय में नियुक्त किया गया था जिनका आयोग द्वारा विज्ञापन भी नहीं किया गया था और कुछ को पूर्ववर्ती वर्षों में अधिसूचित रिक्तियों के प्रति नियुक्त किया गया था। उच्च न्यायालय की राय में, अपीलार्थीगण की नियुक्ति अनिवार्य रूप से अवैध और शून्य थी। तथापि, इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत रिपोर्ट विशिष्ट महाविद्यालय में उनकी नियुक्ति में उनका प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होना दर्शित नहीं करती है। इसके अतिरिक्त, प्रश्न क्या अपीलार्थीगण की विशिष्ट महाविद्यालय में नियुक्ति विधि के प्रतिकूल थी और क्या उनकी नियुक्ति, बाह्य कारणों से पश्चातवर्ती रूप से परिवर्तित की गई थी, उनमें से प्रत्येक को जांच रिपोर्ट की प्रति दिए बिना, और जिला मजिस्ट्रेट, जिसने सिक्के के एक पहलू पर विचार करते हुए रिपोर्ट तैयार की थी, द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष का खंडन करने के लिए उसे प्रभावी अवसर दिए बिना, विनिश्चित नहीं किया जा सकता था। उसने अपीलार्थीगण में से किसी को अपना कारण प्रस्तुत करने या अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर नहीं दिया था। केवल यही नहीं, उसने उसके समक्ष प्रस्तुत प्रतिकूल सामग्री से किसी अपीलार्थी का सामना नहीं कराया था। इसलिए, जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट पर, राज्य सरकार द्वारा विशिष्ट महाविद्यालय में अपीलार्थीगण की

नियुक्ति का निरसन निदेशित करने के लिए विश्वास नहीं किया जा सकता था और निदेशक ने उनकी सेवा समाप्त करने का आदेश करके घोर अवैधता कारित की थी।

45. अपीलार्थीगण के प्रतिविरोध को, 'दूसरे पक्ष को भी सुनो' के सिद्धांत के उल्लंघन के विवाद्यक पर निरस्त करने के लिए उच्च न्यायालयों द्वारा विश्वास किए गए तीनों निर्णय स्पष्ट रूप से भिन्न थे। सभी मामलों में, इस न्यायालय ने पाया था कि अपीलार्थीगण की नियुक्ति विधि और समानता की सांविधानिक संहिता के प्रतिकूल थी। इसने यह भी पाया था कि अपीलार्थीगण ने योग्यता की शर्तें पूरी नहीं की थीं। उन वादों की तथ्यात्मक सांचे की पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने अपीलार्थीगण की सेवा समाप्त करने के लिए नियोजक द्वारा उठाए गए कदम का अनुमोदन किया था। तथ्यात्मक धरातल पर, अपीलार्थीगण के वादों और उनके बीच, जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया है, कोई समानता नहीं है। इसलिए, सिद्धांत कि न्यायालय एक अवैध आदेश को पुनर्स्थापित नहीं करेगा, आयोग द्वारा उनके चयन के आधार पर, अपीलार्थीगण द्वारा अर्जित अधिकारों को विफल करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा आश्रय नहीं लिया जा सकता था।

46. परिणामतः, अपीलें अनुज्ञात की जाती हैं। आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं। अपीलार्थीगण की सेवासमाप्ति अवैध घोषित की जाती है और खंडित की जाती है। उन्हें निम्नलिखित अनुवृद्धियों के अधीन प्राचार्यों के पदों पर निरंतर माना जाएगाः

(i) यदि विशिष्ट महाविद्यालय के प्रबंधतंत्र ने अपीलार्थीगण में से किसी के विरुद्ध, सेवा के अनुक्रम के दौरान कारित अवचार के लिए कोई अनुशासनिक कार्रवाई आरंभ की है, तब यह आदेश, उस मामले में अंतिम विनिश्चय करने के लिए एक वर्जन के रूप में लागू नहीं होगा।

(ii) निदेशक, सुसंगत विधिक उपबंधों के अनुसरण में अपीलार्थीगण की नियुक्ति स्थानांतरित करने या परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र होगा और इस न्यायालय के निर्णय निदेशक द्वारा उपयुक्त कार्रवाई करने में बाधा के रूप में लागू नहीं होंगे।"

निस्संदेह, वर्तमान वाद में, याचीगण को केवल जांच रिपोर्ट के उद्धरण की प्रति दी गई थी और उन्हें कभी संपूर्ण रिपोर्ट नहीं दी गई थी, जिसमें गठन, निर्देश के निबंधन और विवाद्यक के संबंध में पहलू की उनके द्वारा विस्तृत रूप से चर्चा की गई थी। सभी मामले याचीगण के लिए उनकी प्रतिरक्षा के लिए और उक्त समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में आपत्ति करने के लिए भी सुसंगत थे।

49. याचीगण को संपूर्ण रिपोर्ट नहीं दिया जाना, स्पष्ट रूप से उनकी प्रतिरक्षा के प्रतिकूल है और परिणामतः इस न्यायालय का विमर्शित दृष्टिकोण है कि कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के घोर उल्लंघन में संचालित की गई थी और इसलिए इस आधार पर भी कार्यवाही स्वच्छंद, अवैध थी और खंडित की जाने के लिए दायी है।

क्या जांच संचालित करने के लिए अनुसरित प्रक्रिया संधारित की जा सकती है ?

50. जैसी पहले चर्चा की गई थी, इस न्यायालय के दो पूर्व न्यायाधीशों से जांच समिति गठित की गई थी जिसने राय व्यक्त की थी कि चयन समिति उचित रूप से गठित नहीं की गई थी और इसलिए इसने उक्त चयन समिति द्वारा की गई सभी नियुक्तियों के निरसन की अनुशंसा की थी। उक्त समिति ने मुख्य रूप से अधिनियम, 1999 की धारा 25(2)(क)(iv)(क) के उपबंधों पर विश्वास किया है। उक्त अनुशंसा का प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय की साधारण सभा द्वारा सम्यक् रूप से अनुमोदन किया गया था और उन अध्यापकों के विरुद्ध कार्यवाही करने का विनिश्चय किया गया था जिनमें उनके चयन के समय शैक्षणिक योग्यता का अभाव था।

51. मामले के इस पहलू पर विचार करने के लिए, याचीगण को कारण बताओ नोटिस दिया गया था और उनकी शैक्षणिक योग्यता के संबंध में उनसे उत्तर ईप्सित किया गया था। अध्यापकों के उत्तर, कार्यकारी परिषद द्वारा विचार किए जाने के स्थान पर, जो उनकी नियुक्ति प्राधिकारी थी, सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और विषय-विशेषज्ञ से गठित समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और उक्त समिति की अनुशंसा पर कार्यकारी परिषद द्वारा पुनः निर्णय किया गया था, जिसने याचीगण की सेवासमाप्ति प्रस्तावित की थी और याचीगण को उक्त आदेश संसूचित करना कुलपति पर छोड़ा था। कुलपति ने उनका चयन निरस्त करने का आक्षेपित आदेश पारित किया था।

52. प्रक्रिया जो अनुसरित की गई थी अधिनियम वर्ष 1999 में या प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा विरचित विधि में विहित नहीं है, जो वास्तव में, जबकभी अध्यापक को सेवा से हटाया/पदच्युत किया जाता है, अनुसरित की जानी वाली प्रक्रिया का उपबंध करती है। जब प्रक्रिया सम्यक् रूप से अपनाई गई है जो अध्यापक की सेवा-समाप्त करने के लिए उपबंध करती है, तब, प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय उक्त प्रक्रिया का अनुसरण करने के आदेश के अधीन था। प्रथमतः, संपूर्ण प्रक्रिया विहित प्रक्रिया के बाहर है और इसलिए, वह विधिमान्य या संधारित नहीं की जा सकती है। द्वितीय, जब कभी अवचार के, नियोजन की संविदा के उल्लंघन के अभिकथन हैं, यह विचार किया गया है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही करने का नियोजक का अधिकार है । मामले में जांच करने के लिए जांच अधिकारी नियुक्त किया जा सकता है, किन्तु जांच रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् निर्णय-निर्धारण का आवश्यक पहलू किसी अन्य प्राधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान वाद में, कारण बताओ नोटिस का उत्तर उस समिति, जो इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश और एक विषय-विशेषज्ञ से गठित थी, के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए निदेशित किया गया था। उन्होंने उत्तर पर विचार किया था कि क्या याचीगण ने विहित सभी योग्यताएं पूरी की थीं और इसकी अनुशंसा कार्यकारी परिषद के समक्ष प्रस्तुत की गई थी जिसने उसे सम्यक रूप से स्वीकार किया था। कारण बताओ नोटिस के उत्तर पर विचार करने की शक्ति का यह प्रत्यायोजन, और व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर उपलब्ध करना अपचारी कर्मचारी के विरूद्ध संचालित जांच की आवश्यक विशेषता है और ऐसी

प्रक्रिया जो वर्तमान वाद में अनुसरित की गई है, किसी नियम, विधि या अधिनियम में उपबंधित नहीं की गई है, किसी बाहरी अभिकरण को प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती थी, यह कहना अनावश्यक है, सुनवाई उस प्राधिकारी के समक्ष उपलब्ध की जानी चाहिए जिसे मामले पर विनिश्चय करना है। यदि सुनवाई एक प्राधिकारी द्वारा की गई है और आदेश दूसरे द्वारा पारित किया जाता है, ऐसे मामले में सुनवाई भ्रामक हो जाती है और केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अनुसरण के संबंध में छलावरण है। समिति द्वारा सुनवाई की गई थी, जबकि कार्यकारी परिषद द्वारा, जिसके समक्ष कोई सुनवाई नहीं की गई थी, विनिश्चय किया गया था, और परिणामतः कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन में निर्णीत की गई थी। अनुसरित की गई प्रक्रिया भी स्वच्छंद थी और विहित नहीं थी और तदनुसार संपूर्ण कार्यवाही अवैध और स्वच्छंद और नैसर्गिक न्याय की उल्लंघनकारी है और केवल इस आधार पर खंडित की जाने के लिए दायी है।

53. अन्य आधार, जो याचीगण द्वारा निवेदित किया गया है, यह है कि उनकी भर्ती वर्ष 2015 में की गई थी और वे उस पद पर, प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा उनके चयन को निरस्त करने वाला, विनिश्चय किए जाने तक, पिछले 7-8 वर्ष से निरंतर बने हैं। प्रथम विवाद्यक कि क्या चयन जो भिन्न क्षेत्रों से विषय-विशेषज्ञ को सम्मिलित करते हुए सम्यक् रूप से गठित समिति द्वारा और याचीगण की योग्यता की परीक्षा करने के पश्चात् किया गया है और अनुशंसा, विश्वविद्यालय द्वारा सम्यक् रूप से स्वीकृत की गई है और अभिलेख पर किसी अतिरिक्त सामग्री के बिना, चयन निरस्त किया जा सकता है ? यह निवेदित किया गया था कि विश्वविद्यालय द्वारा इतना लंबा समय व्यतीत होने के पश्चात् संपूर्ण मामले का पुनर्विलोकन, जिसका परिणाम चयन के निरसन का आक्षेपित आदेश है, नहीं किया जा सकता था।

54. अग्रेतर अतिरिक्त तथ्य है कि उनके चयन के पश्चात् याचीगण ने उनकी सेवा में एक वर्ष से अधिक का समय पूर्ण कर लिया है, उनकी सेवा स्थायी की गई थी। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के वाद में यह है कि याचीगण के विरुद्ध उनके कार्य के संबंध में या कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में उनके कार्य में कोई कमी देखी गई थी, कोई परिवाद नहीं था।

55. जब चयन सम्यक रूप से गठित समिति द्वारा किया गया है जैसा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बनाई गई नियमावली के अधीन विहित है, और ऐसी अनुशंसाएं विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत की गई थीं, तब किसी शक्ति के अभाव में, विश्वविद्यालय को नियुक्तियों/चयन का पुनर्विलोकन करने की कोई शक्ति नहीं है, जबतक उनकी शैक्षणिक योग्यता के संबंध में त्रुटि या अन्यथा कोई परिवाद नहीं है।

56. अधिनियम वर्ष 2009 का परिशीलन इंगित करता है कि जब चयन, सम्यक् रूप से गठित समिति द्वारा किया गया है तब भले ही

कोई कमी है, वह उपेक्षणीय है और किए गए चयन, उस प्रभाव से संरक्षित और सुरक्षित किए जाने हैं। अधिनियम वर्ष 2009 की धारा 44 भी उपबंध करती है कि विश्वविद्यालय द्वारा गठित समिति केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि विश्वविद्यालय की साधारण सभा, कार्यकारी परिषद या कोई अन्य निकाय गठित नहीं किया गया है या इसके गठन या पुनर्गठन में कोई कमी है। रिट याचिका वर्तमान वर्ग में, सभी मामलों में जिनकी इस न्यायालय द्वारा परीक्षा की गई है, ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण में से किसी ने अपनी योग्यता के संबंध में सारवान् तथ्य छिपाया है या अपने चयन के संबंध में कोई कूटरचित दस्तावेज या डिग्री दी है।

57. दूसरी तरफ, चयन समिति सम्यक रूप से गठित की गई थी और इसका गठन किसी भी स्थिति में अधिनियम वर्ष 2009 की धारा 44 के उपबंध द्वारा सुरक्षित है। विशेषज्ञ सदस्यों के चयन के संबंध में विश्वविद्यालय के अभिकथन का भी, कुलाध्यक्ष द्वारा इस पहलू की सम्यक् परीक्षा के पश्चात् समर्थन नहीं किया जा सकता है, जिसने प्रतिकूल अभिकथन निरस्त किए थे। केवल इस कारण कि उक्त चयन पूर्व कुलपति के कार्यकाल के दौरान किए गए थे, जिनकी नियुक्ति को स्वतः चुनौती दी गई थी और उसके कार्यकाल के दौरान की गई नियुक्तियों की जांच की गई थी, जो प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय की ओर से पूर्व-निश्चय इंगित करता है। केवल विश्वविद्यालय के वर्तमान प्रशासन की, पूर्व कुलपति, जिसके विरुद्ध अनेक अभिकथन थे, के कार्यकाल के दौरान की गई नियुक्ति की जांच के लिए दृढ़ता, पूर्व कुलपति के कार्यकाल के दौरान नियुक्त अध्यापकों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए मुख्य आधार नहीं हो सकती है।

58. इस तथ्य के अतिरिक्त कि जांच रिपोर्ट न दिया जाना, याचीगण के विरुद्ध कार्यवाही संचालित करने में सारवान अनियमितता गठित करता है। यह भी विचार किया गया था कि विश्वविद्यालय ने स्पष्ट किया था कि कुलाध्यक्ष द्वारा नामित किए जाने वाले तीन विशेषज्ञों के चयन संबंधी पहलू पर पहले ही कुलाध्यक्ष द्वारा डॉ. अभय कृष्ण द्वारा किए गए परिवाद के आधार पर परीक्षा की गई थी और कुलाध्यक्ष ने आदेश दिनांक 11.3.2016 पारित किया था, जहां यह अभिलिखित किया गया था कि चयन समिति उचित रूप से गठित की गई थी, और अभी भी, न्यायाधीशों की समिति, अर्थात् उक्त विवाद्यक की परीक्षा करने और कुलाध्यक्ष द्वारा पारित आदेश के प्रतिकूल निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए है। उक्त समिति कुलाध्यक्ष द्वारा पारित आदेश के प्रतिकूल अनुशंसा नहीं कर सकती थी क्योंकि अधिकतम यह विश्वविद्यालय के प्राधिकारी के प्रत्यायोजित कार्य कर रही थी और इस प्रकार कुलाध्यक्ष द्वारा किए गए विनिश्चय से बाध्य थी।

59. इस न्यायालय ने साधारण सभा और कार्यकारी परिषद के विभिन्न संकल्पों की परीक्षा करने के पश्चात्, जहां यह विचार किया

गया है कि पूर्व कुलपति के कार्यकाल के अधीन की गई सभी नियुक्तियों की जांच अपेक्षित है, जो वर्तमान प्रशासन की मानसिकता इंगित करता है जो प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के कार्य कर रहा है। 6 से 7 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् ऐसा कार्य करना स्पष्ट रूप से इस तथ्य के बाद भी स्वच्छंद है कि याचीगण की नियुक्ति के विरुद्ध कोई परिवाद नहीं था, और साधारण सभा और कार्यकारी परिषद के संकल्पों में स्पष्ट किया गया एकमात्र कारण, 2014 में अध्यापकों के चयन के लिए गठित चयन समिति नियुक्त करने में अनुसरित प्रक्रिया के संबंध में है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विचार करना सुसंगत है।

60. **मो. जमील बनाम बिहार राज्य, (2016) 12 एस सी सी 342 . (2012) 1 एस सी सी (एल एंड एस) 396 . 2016 एस सी सी ऑनलाईन एस सी 416 पृष्ठ 345** के वाद में निम्नवत निर्णीत किया गया हैः-

"15. इन परिस्थितियों में, हमारा दृष्टिकोण है कि 15 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् जागने के लिए और ऐसे आधार पर अपीलार्थी की सेवा-समाप्त करने का राज्य को कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। किसी भी स्थिति में, हमारा दृष्टिकोण है कि क्या यह अपीलार्थी को नियुक्ति देने का राज्य का एक सचेत विनिश्चय है जैसा हमने उपर्युक्त निर्णीत किया है या अपीलार्थी को नियुक्ति देने में राज्य की ओर से त्रुटि का एक मामला है जो अब राज्य के अनुसार नीति के प्रतिकूल था जैसा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा निर्णीत किया गया है, राज्य ने स्वयं अपने आचरण से 15 वर्ष का समय व्यतीत होने की उनकी चूक को क्षमा किया है, अपीलार्थी की नियुक्ति को निरसित करने और उसकी सेवासमाप्ति के लिए ऐसा आधार उठाने के लिए राज्य की ओर से अत्यधिक विलंब हो गया था। अग्रेतर यह भी था क्योंकि अपीलार्थी कोई मिथ्या घोषणा करने के लिए उत्तरदयी नहीं था, न उसने नियुक्ति प्राप्त करने के लिए कोई सारवान तथ्य छिपाया था। इसलिए राज्य स्वयं अपनी त्रुटि का लाभ लेने के लिए अधिकृत नहीं था यदि उन्होंने ऐसा अनुभव किया था। स्थिति भिन्न होगी यदि अपीलार्थी ने नियुक्ति प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार का कपट या छेड़छाड़ कारित की होती या सारवान तथ्यों को छिपाया होता। जैसा उपर्युक्त उल्लिखित है राज्य का वाद ऐसा नहीं था।

61. ***विकास प्रताप सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य***, **(**2013**)** 14 **एस सी सी** 494 **: (**2013**)** 3 **एस सी सी (एल एंड एस)** 100 **: एस सी सी ऑनलाईन एस सी** 599 **पृष्ठ** 502 के वाद में निम्नलिखित निर्णीत किया गया हैः-

"22. फ्रास एट जस नानकाम कोहेबिटेंट (कपट और न्याय कभी साथ नहीं चलते हैं) की पुरानी कहावत ने शताब्दियों से अपना महत्व कभी नहीं खोया है और यह निरंतर सेवा विधि विधिशास्त्र की भावना और शरीर में निवास करती है। यह प्रतिष्ठित विधि है कि किसी पद पर नियुक्ति के संबंध में कोई विधिक अधिकार ऐसे अभ्यर्थी में निहित नहीं होता है जिसने कपट, रिष्टि, दुर्व्यपदेशन या विद्वेष से नियोजन प्राप्त किया है (देखिए *विजयनगरम*

सोशल वेलफेयर रेजीडेंसियल स्कूल बनाम एम. त्रिपुरा सुंदरी देवी ((1990) 3 एस सी सी 655 : 1990 एस सी सी (एल एंड एस) 520 : (1990) 14 ए टी सी 766), एस. पी. चेंगलवाराया नायडू बनाम जगन्नाथ ((1994) 1 एस सी सी 1) और भारत संघ बनाम एम. भाष्करन (1995 सप (4) एस सी सी 100 : 1996 एस सी सी (एल एंड एस) 162 : (1996) 32 ए टी सी 94)। यह भी सुप्रतिष्ठित विधि है कि किसी पद पर त्रुटिपूर्वक नियुक्त व्यक्ति को, मेधावी और योग्य व्यक्ति के हित को जोखिम में डालते हुए सदोष नियुक्ति का लाभ प्राप्त नहीं करना चाहिए। तथापि, ऐसे मामलों में जहां एक सदोष या अनियमित नियुक्ति, नियुक्ति पाने वाले की किसी त्रुटि के बिना की जाती है और ऐसी त्रुटि या अनियमितता के पता चलने पर नियुक्ति पाने वाले की सेवासमाप्त की जाती है, इस न्यायालय ने ऐसी नियुक्ति में अभ्यर्थी के सद्भाव और ऐसी नियुक्ति के पश्चात् अभ्यर्थी की सेवा-अवधि सहित विभिन्न कारकों के प्रकाश में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है (देखिए *विनोदन टी. बनाम कालीकट विश्वविद्यालय ((2002) 4 एस सी सी 726 : 2002 एस सी सी (एल एंड एस) 606) : उ. प्र. राज्य बनाम नीरज अवस्थी ((2006) 1 एस सी सी 667 : [2006 एस सी सी (एल एंड एस) 190]*)'

62. उक्त चयनों की परीक्षा करते समय प्रत्युत्तरदाता-विश्वविद्यालय को उनके दृष्टिकोण में सावधान और सतर्क रहना चाहिए और प्रक्रिया और मानकों का अनुसरण करना चाहिए। प्रत्युत्तरदाता-विश्वविद्यालय द्वारा संचालित प्रक्रिया पूर्व कुलपति के विनिश्चय अकृत करने में इसका अति-उत्साह दर्शित करती है जो उन्होंने याचीगण के विरुद्ध बहुत स्पष्ट रीति में किया है जो प्रशंसनीय नहीं है विशेषकर उच्च शिक्षा के लिए अभिप्रेत शिक्षा संस्था में, जो विशेष छात्रों पर भी विचार करती है जिन्हें अधिक देखभाल, ध्यान और संवेदनशीता की आवश्यकता है। नियुक्ति के पश्चात्, याचीगण की सेवाएं स्थायी की गई थीं और 6-7 वर्ष के इतने लंबे समय के पश्चात् प्रत्युत्तरदाता-विश्वविद्यालय ने कार्यवाही आरंभ की है, स्पष्ट रूप से अवैध और स्वच्छंद है, और कोई नई सामग्री न होने के कारण, किए गए चयन के पुनर्विलोकन के बराबर है, जो शक्ति अधिनियम वर्ष 2009 या विश्वविद्यालय की विधियों में निहित नहीं है और इस आधार पर भी प्रत्युत्तरदाता-विश्वविद्यालय द्वारा संचालित कार्यवाही और आक्षेपित आदेश अवैध और स्वच्छंद हैं।

63. नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के प्रवर्तन के संबंध में, प्रत्युत्तरदातागण ने निवेदित किया है कि यह मूल तथ्य कि प्रत्युत्तरदातागण ने विभिन्न पदों की भर्ती के लिए न्यूनतम अर्हता योग्यताएं पूरी नहीं की थीं जिन पर उन्हें नियुक्त किया गया था, उन्हें सम्यक सुनवाई का अवसर देना कोरी औपचारिकता होगी, और परिणामतः निवेदित किया था कि भले ही नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का कुछ उल्लंघन हो, वह सेवासमाप्ति के आक्षेपित आदेश को दूषित नहीं करेगा।

64. याची के तर्क का मूल्यांकन करने के लिए याचीगण की शैक्षणिक योग्यताओं पर विचार करना आवश्यक होगाः-

(क) रिट ए सं. 4293/2022 (डॉ. राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य)

(i) प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा 16.2.2015 को कंप्यूटर विज्ञान के प्रोफेसर सहित अनेक विषयों के लिए आवेदनपत्र आमंत्रित करते हुए एक विज्ञापन जारी किया गया था और अभ्यर्थी द्वारा अपेक्षित योग्यताएं क्रम सं. 07 में उल्लिखित थीं जो निम्नवत् थीः-

(क) योग्यताएं यथा उपर्युक्त अर्थात सहायक प्रोफेसर के पद के लिए लागू हैं;

(ख) पोस्ट पीएच डी छात्र और गाइडिंग पीएच डी छात्र,

(ग) न्यूनतम 10 वर्ष अध्यापन/शोध/ एसोसिएट प्रोफेसर के स्तर पर न्यूनतम 5 वर्ष के साथ व्यावसायिक अनुभव,

या

अध्यापन/शोध/उद्योग में न्यूनतम 13 वर्ष का अनुभव

(घ) शोध अनुभव के मामले में चयन समिति के विशेषज्ञ द्वारा उपयुक्त माने गए के रूप में अच्छा शैक्षणिक रिकॉर्ड और पुस्तक/शोध पत्र प्रकाशन/ पी आर/ पेटेंट रिकॉर्ड अपेक्षित होगा।

(ङ) यदि उद्योग में अनुभव पर विचार किया जाता है, वह एसोसिएट प्रोफेसर के बराबर प्रबंधन के स्तर पर होगा, डिवाइजिंग/डिजाइनिंग, निष्पादन, विश्लेषण, गुणवत्ता नियंत्रण, इन्नोवेटिंग, प्रशिक्षण, तकनीकी पुस्तक/शोध पत्र प्रकाशन/आई पी आर/ पेटेंट्स आदि में सक्रिय योगदान जो चयन समिति के विशेषज्ञ सदस्य द्वारा वास्तव में उचित हो।

(ii) एसोसिएट प्रोफेसर के पद के लिए अपेक्षित योग्यताएं उक्त विज्ञापन के क्रम सं. 18 में उपबंधित है जो निम्नवत हैः-

संबंधित शाखा में प्रथम श्रेणी के साथ बी-ई/ बी-टेक और एम-ई/एम टेक या बी-ई/ बी-टेक या एम-ई/एम टेक में समकक्ष

या

प्रथम श्रेणी के साथ बी-ई/ बी-टेक और एम सी ए या बी-ई/ बी-टेक या एम-ई/एम टेक में समकक्ष

या

प्रथम श्रेणी के साथ एम सी ए या 2 वर्ष के संबंधित अनुभव के साथ समकक्ष

(iii) याची की योग्यताएं हैं, एम. एस सी कंप्यूटर विज्ञान, एम. एस सी. भौतिक शास्त्र, एम. ए. गणित और पी एच डी कंप्यूटर विज्ञान। याची के विरुद्ध अभिकथन था कि वह कंप्यूटर विज्ञान में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए योग्य नहीं था क्योंकि उसके पास एम सी ए की डिग्री नहीं थी। दूसरी तरफ, याची ने निवेदन किया था कि वह पूर्णतः योग्य था क्योंकि उसने 1999 में गणित में स्नातकोत्तर और 2001 में कंप्यूटर विज्ञान में एम एस सी की डिग्री प्राप्त की थी और ए आई सी टी ई की कार्यकारी समिति के विनिश्चय दिनांक 1.6.2016 के अनुसार कंप्यूटर विज्ञान में एम एस सी की डिग्री ऐसी डिग्री है, जो एम सी ए की डिग्री के समकक्ष मानी गई है। वरिष्ठ अधिवक्ता श्री

अनुवादित

सुदीप सेठ ने निष्पक्ष रूप से कहा है कि 2016 के पश्चात्, जब ए आई सी टी ई ने स्पष्ट किया था कि एम एस सी कंप्यूटर विज्ञान, एम सी ए के समकक्ष होगा, याची नियुक्ति के लिए अधिकृत होगा किन्तु उक्त तारीख से पूर्व नहीं।

(iv) आक्षेपित आदेश में, याची का प्रतिविरोध सम्यक रूप से अभिलिखित किया गया था किन्तु कोई कारण दिए बिना गोपनीय आदेश के माध्यम से निरस्त किया गया था। आक्षेपित आदेश, याची द्वारा किए गए प्रतिविरोध पर विचार नहीं करता है, और यह इंगित करता है कि उसके प्रतिविरोध पर विचार भी नहीं किया गया था और किसी कारण के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका प्रतिविरोध निरस्त करते समय किसी प्राधिकारी द्वारा मस्तिष्क का कोई प्रयोग किया गया था।

(v) यह विचार करने के लिए कि क्या याची के पास कंप्यूटर विज्ञान में प्रोफेसर के पद पर उसकी नियुक्ति किए जाने के लिए सुसंगत योग्यता थी और कि क्या कंप्यूटर विज्ञान में एम एस सी, एम सी ए के समकक्ष है, बिल्कुल आरंभ में ही यह विचार किया गया था कि विशेष क्षेत्र में विचार करने के लिए गठित व्यावसायिक निकाय के अनुसार, मानक विहित किए गए हैं जो सभी संस्थाओं द्वारा अनुसरित किए जाने हैं। 1.6.2016 को प्रकाशित अधिसूचना में इस तथ्य सहित कुछ स्पष्टीकरण जारी किए गए हैं कि एम एस सी कंप्यूटर विज्ञान, एम सी ए के समकक्ष है। प्रत्युत्तरदातागण इस तथ्य को विवादित नहीं करते हैं कि उक्त अधिसूचना 2016 में जारी की गई थी जबकि याची उक्त दिनांक के पूर्व नियुक्त किया गया था।

(vi) ए आई सी टी ई द्वारा जारी स्पष्टीकरण का परिशीलन, एम सी ए के एम एस सी कंप्यूटर विज्ञान के समकक्ष होने के बारे में संदेह के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ता है। क्योंकि यह केवल एक स्पष्टीकरण है, यह योग्यताओं के आरंभिक विवरण की तारीख के पहले से संबंधित होगा। ए आई सी टी ई ने, न केवल स्पष्टीकरण जारी किया था, बल्कि उसके पूर्व भी भारतीय तकनकी संस्थान मद्रास ने उस समकक्षता को मान्यता दी थी जब उन्होंने वर्ष 2013-2014 में भर्ती के लिए एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। मामले के इस पहलू पर भी उच्चतम न्यायालय द्वारा **सौरभ पाल बनाम कुलाधिपति, वीर बहादुर सिंह एवं अन्य** अपील (सिविल) 596 वर्ष 2008, 22.1.2008 को विनिश्चित के वाद में विचार किया गया था।

5) तथापि, विश्विद्यालय ने. जो 5वें प्रत्युत्तरदाता द्वारा दाखिल रिट याचिका में एक प्रत्युत्तरदाता था, प्रतिवादित किया था कि दोनों अपीलार्थीगण के पास भर्ती विज्ञापन में इसके द्वारा विहित योग्यता थी और इसके द्वारा विहित योग्यता ए आई सी टी ई मानकों के अनुसरण में थी। विज्ञापन में विहित योग्यता निम्नवत् थीः लेक्चररः (अभियांत्रिक शाखा के लिए) आवश्यकः अभियांत्रिकी तकनीकी शाखा में उपयुक्त प्रथम श्रेणी स्नातक डिग्री।

वांछनीयः संबंधित शाखा में स्नातकोतर डिग्री।

विश्विद्यालय ने निवेदित किया था कि "एम. एस सी. (कंप्यूटर विज्ञान) 'एम सी ए' के समकक्ष माना गया था" और, इसलिए, अपीलार्थीगण लेक्चरर-एम सी ए के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए योग्य थे,

6) उच्च न्यायालय ने सारणी - ए आई सी टी ई मानक का ई-2 पर विश्वास करते हुए निर्णीत किया था कि दोनों अपीलार्थीगण के पास अपेक्षित योग्यता नहीं थी और इसलिए, उनका चयन निरस्त किया था। उससे व्यथित होकर, वर्तमान अपील दाखिल की गई है।

7) हमने अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता और 5वें प्रत्युत्तरदाता के विद्वान् अधिवक्ता को सुना।

8) ए आई सी टी ई द्वारा जारी सारणी - ई-2 का जब, सारणी - ई-2 के अधीन टिप्पणी (2) के साथ पठन किया जाता है, दर्शित करता है कि अपीलार्थीगण द्वारा धृत डिग्री भी एम सी ए में प्रवक्ता के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अपेक्षित योग्यता थी। उच्च न्यायालय की खंडपीठ स्पष्ट रूप से ए आई सी टी ई मानक का ई-2 का गलत पठन किया था क्योंकि यह सारणी-ई-2 की टिप्पणी (2) पर विचार करने में विफल रही थी। हमें सूचित किया गया था कि रिट याचिका में 5वें प्रत्युत्तरदाता द्वारा प्रस्तुत की गई सारणी-ई-2 की प्रति, पूर्ण नहीं थी और टिप्पणी अंतर्विष्ट नहीं थी। जो भी हो, हम संतुष्ट हैं कि अपीलार्थीगण के पास अपेक्षित योग्यता थी। क्योंकि उनकी नियुक्तियां अपास्त करते हुए उच्च न्यायालय का विनिश्चय त्रुटिपूर्ण है, यह अपास्त किया जाता है और प्रवक्ता के रूप में अपीलार्थीगण की नियुक्ति को चुनौती निरस्त की जाती है। उनकी नियुक्ति का अनुमोदन किया जाता है। अपील तदनुसार निस्तारित की जाती है।

65. उपर्युक्त निर्णय स्पष्ट रूप से विवाद का समाधान करते हैं कि एम. एस सी. को, 2016 में ए आई सी टी ई द्वारा स्पष्टीकरण करने के बहुत पहले, जैसा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार किया गया है, एम. एस सी. कंप्यूटर विज्ञान के समकक्ष निर्णीत किया गया था। यह इंगित करता है कि याची कंप्यूटर विज्ञान में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए पूर्णतः अर्ह और योग्य था और इस संबंध में सभी शर्तें पूर्ण की थीं। प्रत्युत्तरदाता ने अत्यधिक अवैध और स्वच्छंद रीति में कार्य किया था और याची के प्रतिविरोध पर विचार भी नहीं किया था, जब उसने विश्विद्यालय द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिया था।

66. प्रत्युत्तरदातागण द्वारा गृहीत प्रक्रिया, और उनके द्वारा गृहीत निर्णय-निर्धारण प्रक्रिया जहां समिति द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई की गई थी और कार्यकारी परिषद द्वारा किया गया विनिश्चय इंगित करता है कि सेवासमाप्ति का आक्षिप्त आदेश पारित करने के पूर्व याचीगण को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। मामले के इस पहलू पर याची के चयन के समय, चयन समिति द्वारा सम्यक रूप से विचार किया गया था, और इसीलिए यू जी सी द्वारा विहित मानकों के अनुसार पैनल के विशेषज्ञ सदस्य सम्मिलित किए गए थे, किन्तु जांच समिति में कोई विशेषज्ञ सदस्य नहीं था और इसलिए याची द्वारा लिए गए आधार का मूल्यांकन नहीं कर सकती थी। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने भी ***बासावैया (डॉ.) बनाम डॉ. एच. एल. रमेश, (2010) 8 एस सी सी 372*** के वाद में निर्णीत किया हैः

20. विश्वविद्यालय द्वारा दाखिल शपथपत्र द्वारा यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विशेषज्ञ समिति ने रेशम उत्पादन में रीडर के पद पर उनके चयन के पूर्व अपीलार्थीगण की योग्यता, अनुभव और प्रकाशित कार्य की सावधानीपूर्वक परीक्षा और जांच की थी। हमारी विमर्शित राय में, खंडपीठ, पांच विशेषज्ञों की सर्वसम्मत अनुशंसा पर अपील की सुनवाई में न्यायोचित नहीं थी। विशेषज्ञ समिति ने वास्तव में योग्यता और समकक्ष प्रकाशित कार्य सहित प्रत्येक अभ्यर्थी की योग्यता और अयोग्यता की जांच की थी और इसकी अनुशंसाएं नियुक्ति के लिए विश्वविद्यालय को भेजी गई थीं जो विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत की गई थीं।

21. यह प्रतिष्ठित विधिक स्थिति है कि न्यायालय को, क्षेत्र में प्रतिष्ठित विशेषज्ञों को सम्मिलित करते हुए विशेषज्ञ समिति की अनुशंसा का सम्मान करना चाहिए और विचार करना चाहिए। प्रस्तुत वाद में, विशेषज्ञ ने अपीलार्थीगण की योग्यता, अनुभव और प्रकाशित कार्य का मूल्यांकन किया था और तत्पश्चात् उनकी नियुक्तियों के लिए अनुशंसाएं की गई थीं। उच्च न्यायालय की खंडपीठ को रेशम उत्पादन के क्षेत्र में देश के प्रमुख विशेषज्ञ द्वारा की गई अनुशंसाओं पर एक अपीलीय न्यायालय के रूप में नहीं बैठना चाहिए था।

67. उपर्युक्त के प्रकाश में, इस न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि याची नियुक्त किए जाने के लिए पूर्णतः योग्य था और किसी योग्यता का, जैसी अभिकथित थी, अभाव नहीं था, इस प्रकार, आक्षेपित आदेश अवैध और स्वच्छंद घोषित किया जाता है और अपास्त किए जाने के लिए दायी है।

68. **रिट याचिका सं. 4316 वर्ष 2022 (रिट ए) (विपिन कुमार पांडेय बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य)**

(i). याची ने सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) के पद के लिए आवेदन किया था और एकमात्र आधार जिस पर याची की सेवासमाप्त की गई थी, वह है, अपनी अभ्यर्थिता का आवेदन करते समय ए पी आई स्कोर के संबंध में दिया गया विवरण, जो इंगित करता है कि उसका 300 का स्कोर नहीं था जैसा यू जी सी विनियमावली के अधीन विहित है। अभिकथन था कि याची ने श्रेणी III धारा III ई (i) में 50 प्वाइंट अधिनिर्णीत करके श्रेणी III के अधीन 304.5 प्वाइंट ए पी आई स्कोर का दावा किया था, जबकि इस धारा के अधीन अधिकतम 30 प्वाइंट का दावा किया जा सकता था, और इसलिए याची 284.5 पर आ गया था जो न्यूनतम अपेक्षित ए पी आई स्कोर से कम था। चयन समिति के समक्ष याची ने 4 और शोध पत्र प्रस्तुत किए थे, जो सभी विज्ञापन के जारी करने के पूर्व की अवधि से संबंधित थे। चयन समिति ने याची द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से संतुष्ट होकर ए पी आई स्कोर की अपेक्षा पूर्ण मान ली थी, और परिणामतः याची चयनित घोषित किया गया था। विशेषज्ञों से गठित चयन समिति, जिसने सम्यक विचार के पश्चात कि याची उक्त पद के लिए अर्हता शर्तें पूरी करता है, उसका चयन किया था। प्रत्युत्तरदातागण द्वारा किया गया एकमात्र प्रतिविरोध है कि आवेदन पत्र भरते समय,

याची ने विशिष्ट वर्ग में अनुमत से कहीं अधिक अंक स्वयं को दिए थे। यह भी विवादित नहीं किया जा सकता है कि याची ने विज्ञापन की तारीख से पूर्व लिखित कुछ अन्य पत्र प्रस्तुत किए थे जिसके लिए वह अंक के लिए अधिकृत था, और उस पर विचार करने के पश्चात उसने उससे अधिक अंक प्राप्त किए थे जितने अपेक्षित थे, और इसलिए, उसके चयन में कोई कमी नहीं थी।

(ii) वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ ने अपने निवेदन का समर्थन करने के लिए ***अशोक कुमार सोनकर बनाम भारत संघ एवं अन्य (2007) 4 एस सी सी 54*** के वाद में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया था कि अभ्यर्थी को आवेदन की तारीख को सभी योग्यताएं धृत करनी चाहिए। यदि वह आवेदन दाखिल करने के लिए नियत अंतिम तारीख को योग्यताएं धृत नहीं करता है, वह उक्त चयन के लिए सम्यक विचार के लिए अधिकृत नहीं होगा। वर्तमान वाद में, प्रत्युत्तरदाता का वाद यह नहीं है कि, याची ने आवेदन की अंतिम तारीख को अर्हता शर्तें पूरी नहीं की थीं क्योंकि उसने उसके द्वारा लिखित 4 अन्य पत्र प्रस्तुत किए थे जो अंतिम तारीख के पूर्व थे। अशोक कुमार सोनकर के वाद में तथ्य वर्तमान वाद के तथ्यों से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं। केवल इस आधार पर उसकी नियुक्ति निरस्त करना कि याची द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने की तारीख को उसका ए पी आई स्कोर उससे कम था जो अपेक्षित था, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। याची ने विज्ञापन की तारीख के पूर्व तक लिखित लेख प्रस्तुत किए थे जो चयन समिति द्वारा सम्यक रूप से स्वीकृत किए गए थे। विशेषज्ञों के पैनल से गठित चयन समिति, अभ्यर्थी की योग्यताओं का निर्णय करने के लिए सर्वश्रेष्ठ है, जिसने परीक्षण के पश्चात् याची का चयन किए जाने के लिए पूर्णतः योग्य पाया था। विशेषज्ञों के पैनल के विरुद्ध विद्वेषपूर्ण होने या पक्षपातपूर्ण होने का कोई अभिकथन नहीं है, इसलिए, उनका विनिश्चय, मामले में न्यूनतम /मूल विशेषज्ञता के अभाव वाले दूसरे निकाय द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय का विमर्शित दृष्टिकोण है कि याची ने सभी योग्यताएं पूरी की हैं और प्रत्युत्तरदाता प्राधिकारियों का प्रतिकूल विनिश्चय स्वच्छंद, अवैध है और अपास्त किए जाने के लिए दायी है।

69. **<u>रिट ए सं. 4307 वर्ष 2022 (डॉ. आद्या शक्ति राय बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य)</u>** :

(i) प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने, दृष्टि बाधित विभाग, विशेष शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद सहित विभिन्न पदों के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए 17.2.2014 को एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। याची प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय में 2009 से दृष्टि बाधित विभाग में प्रवक्ता/ सहायक प्रोफेसर के पद पर पहले से कार्य कर रही थी और सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए इच्छुक थी और उसने उपर्युक्त विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन किया था। उसके आवेदन के अनुसरण में उसकी अभ्यर्थिता की प्रत्युत्तरदातागण द्वारा नियुक्त चयन समिति द्वारा सम्यक रूप से परीक्षा की गई थी और साक्षात्कार भी लिया गया था, और अन्य दस्तावेजों की सम्यक रूप

से परीक्षा की गई थी। उसे योग्य पाया गया था और इसलिए सम्यक रूप से चयन किया गया था। चयन समिति की अनुशंसाओं को कार्यकारी परिषद द्वारा भी अनुमोदित किया गया था, और उसे दृष्टि बाधित विभाग, विशेष शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया था। उसके विरुद्ध अभिकथन है कि उसे केवल 4 वर्ष और 7 मास का अनुभव था, न कि 5 वर्ष का जो उक्त पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित था।

(ii) याची के अधिवक्ता द्वारा यह निवेदित किया गया है कि उक्त पद 2010 में भी विज्ञापित किया गया था, और उक्त पद के लिए किसी ने आवेदन नहीं किया था, क्योंकि उक्त पाठ्यक्रम के विकल्प के लिए बहुत कम व्यक्ति थे। इसी प्रकार से, 3.12.2012 को एक नया विज्ञापन प्रकाशित किया गया था, जिसमें पुनः उक्त पद के लिए किसी अभ्यर्थी ने आवेदन नहीं किया था। यह तब है जब पुनः 2014 में विज्ञापन जारी किया गया था, याची ने, जो पहले से प्रवक्ता/ सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रही थी, आवेदन किया था। यह भी कथन किया गया था कि क्योंकि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के पास दृष्टि बाधित विभाग में कोई संकाय नहीं था और भारतीय पुनर्वास परिषद ने उक्त पाठ्यक्रम के लिए अनुमोदन देते समय प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय की कमियों पर विचार किया था जो पर्याप्त संकाय की नियुक्ति सहित तत्काल रूप से दूर की जानी थी। कमियां दूर करने के लिए जैसी भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा इंगित की गई थी, पद का विज्ञापन निकाला गया था, और याची को सम्यक रूप से नियुक्त किया गया था। यह कहा गया है कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने, जब इसका अनुमोदन प्रत्याहृत किए जाने के कगार पर था, प्रवक्ता/ सहायक प्रोफेसर के पद पर याची की नियुक्ति की थी। यह कहा गया है कि अन्यथा भी, सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्य करते हुए याची की एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर समय के सम्यक अनुक्रम में प्रोन्नति की जाती, यदि उसने 2014 में नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं किया होता, और अग्रेतर निवेदित किया गया है कि अब एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर 7 वर्ष कार्य करने के बाद सेवा केवल इस तथ्य के आधार पर समाप्त नहीं की जा सकती है कि नियुक्ति के समय 5 मास का कम अनुभव था।

(iii) वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ ने निष्पक्ष रूप से निवेदित किया था कि यद्यपि याची के पास नियुक्ति के समय अपेक्षित अनुभव नहीं था, किन्तु यदि नया विज्ञापन जारी किया जाता है तब वह आवेदन करने के लिए अर्ह होगी और उसी पद पर नियुक्त की जाएगी।

(iv) विरोधी तर्कों पर विचार करने पर, यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि याची की वर्ष 2009 में विशेष शिक्षा के संकाय में दृष्टि बाधित विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त की गई थी, और उक्त पद पर 4 वर्ष और 7 मास पूर्ण किए थे, जब उसने वर्ष 2014 में एसोसिएट प्रोफेसर के पद के लिए आवेदन किया था। यद्यपि उसकी नियुक्ति के समय अनुभव की कुछ अवधि कम थी किन्तु स्वीकृत रूप से वह उक्त पद पर पिछले 7 वर्ष से काम कर रही है और उसके विरुद्ध कोई

शिकायत नहीं है, और वह आज सभी अपेक्षाएं भी पूरी करती है। इस न्यायालय ने भी इस तथ्य पर विचार किया है कि 2 पूर्ववर्ती अवसर पर प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विज्ञापन दिया था, किन्तु कोई आवेदन प्राप्त नहीं हुआ था, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि प्रथमतः, उक्त पाठ्यक्रम अपनाने वाले बहुत कम व्यक्ति थे और अपेक्षित शैक्षणिक योग्यताओं के व्यक्तियों की कमी के कारण, और द्वितीयतः, भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा दिया गया अनुमोदन पर्याप्त संकाय की नियुक्ति के अध्यधीन था। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने, क्योंकि एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर याची को नियुक्त करने की उसकी तात्कालिक अपेक्षा थी, उसे उक्त पद पर उसके अनुभव पर सम्यक रूप से विचार करने के पश्चात् नियुक्त किया था। यह ऐसा वाद नहीं है कि याची ने दुर्व्यपदेशन किया है, क्योंकि आवेदन पत्र भी स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि सहायक प्रोफेसर के पद पर उसका अनुभव चार वर्ष और सात मास का है। उन्हें अब वापस लौटने, और अपेक्षित अनुभव के अभाव के आधार पर याची के चयन को निरस्त करने के लिए अनुमत नहीं किया जा सकता है। ***मो. अबुल लाश बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य***, के वाद में, माननीय सर्वेच्च न्यायालय ने ऐसे वाद पर विचार करते समय जहां एक व्यक्ति नियुक्ति के समय योग्य नहीं था, किन्तु बाद में, अपेक्षित योग्यता अर्जित की थी, नियुक्ति में हस्तक्षेप करने से इंकार किया था और विशेष अपील (त्रुटिपूर्ण) सं. 701 वर्ष 2014 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.12.2014 अपास्त किया था। ***नाहर सिंह एवं अन्य बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य, और सावित्री देवी एवं अन्य बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य***, के एक अन्य वाद में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने सिविल अपील सं. 3904 वर्ष 2013 में निर्णीत किया था कि जब एक व्यक्ति दीर्घ अवधि से सेवा में निरंतर है, उसकी निरंतरता बाधित नहीं की जाएगी। उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के उपर्युक्त आधार का अनुसरण करते हुए, विशेष अपील सं. 313 वर्ष 2015 में इस न्यायालय की खंडपीठ ने निर्णीत किया था कि सेवा में दीर्घ अवधि तक निरंतर बने रहने के बाद एक व्यक्ति की सेवा में उसकी नियुक्ति बाधित नहीं की जानी चाहिए।

(v) अन्यथा भी, जब नियुक्ति के निरसन के पहलू पर विचार किया गया था, सुसंगत तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए था कि याची ने ऐसे विचारण की तारीख पर, अध्यापन अनुभव सहित सभी शैक्षणिक योग्यताएं पूर्ण की थीं। कमी, यदि कोई है, पूरी की जानी चाहिए और इस पर विचार नहीं करके, प्रत्युत्तरदातागण ने बहुत स्वच्छंद रीति में कार्य किया है। उपर्युक्त परिस्थितियों में इस न्यायालय का विमर्शित दृष्टिकोण है कि उसका चयन निरस्त करने वाला और सेवासमाप्त करने वाला आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और स्वच्छंद है।

70. **रिट ए सं. 4310 वर्ष 2022 (डॉ. मृत्युंजय मिश्रा बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य)**

(i) याची ने विज्ञापन सं. 17/2013-14 के अनुसरण में एसोसिएट प्रोफेसर, श्रवण बाधित विभाग, विशेष शिक्षा संकाय के पद के लिए आवेदन किया था। यह निवेदित किया गया था कि एसोसिएट प्रोफेसर, श्रवण बाधित विभाग,

विशेष शिक्षा संकाय के रूप में नियुक्ति के पूर्व भी, याची पहले से प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय में 25.8.2009 से प्रवक्ता के पद पर कार्य कर रहा था और 2009 में प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय में उसकी नियुक्ति के पूर्व, वह पाठ्यक्रम समन्वयक के रूप में, ऐसा पद जो शोध शिक्षा और श्रवण विज्ञान विकास सोसाइटी में प्रवक्ता के पद के समकक्ष है, जो सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है और भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा 15.9.2003 से24.8.2009 तक मान्यताप्राप्त है, कार्य कर रहा था। विज्ञापन सं. 17/2013-14 के अनुसार पद के लिए अपेक्षित आवश्यक योग्यता निम्नवत् हैः-

i. 50 % से अनिम्न अंकों के साथ किसी क्षेत्र में स्नातकोत्तर की डिग्री,

ii. 55 % से अनिम्न अंकों के साथ विनिर्दिष्ट दिव्यांग क्षेत्र में स्नातकोत्तर की डिग्री या 7-प्वाइंट स्केल में ग्रेड बी के समकक्ष,

या

आर. सी. आई. द्वारा मान्यताप्राप्त विदेशी विश्वविद्यालय से समकक्ष डिग्री,

iii. विशिष्ट शिक्षा पर बल सहित शोध के साथ शिक्षा में पी एच डी,

iv. विशिष्ट दिव्यांग क्षेत्र में प्रवक्ता के रूप में 5 वर्ष का अनुभव पूर्ण होना चाहिए,

v. यू जी सी की शिक्षा/ विशेष शिक्षा में कम से कम एक सामान्य उन्मुख पाठ्यक्रम और दो पुनश्चर्या पाठ्यक्रम पूर्ण होना चाहिए।

(ii) **वांछनीय अतिरिक्त योग्यताएः**

क. अनुक्रमित पत्रिका और शोध अनुभव में विशेष शिक्षा संबंधी प्रकाशन।

(iii) याची के विद्वा अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि अपने आवेदन पत्र में उसने शिक्षा/अनुभव के पूर्ण विवरण का वर्णन किया है और यह भी कि उसे विशेष दिव्यांग क्षेत्र में प्रवक्ता के रूप में पांच वर्ष का अनुभव है। उसने अग्रेतर निवेदन किया है कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय की, याची को कारण बताओ नोटिस जारी करते समय राय थी कि प्रवक्ता के पद पर प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के साथ याची का अनुभव केवल 4 वर्ष और 7 मास का है और उक्त आधार पर राय बनाई थी कि याची, विशेष दिव्यांग क्षेत्र में प्रवक्ता के रूप में 5 वर्ष का अनुभव रखने की अपेक्षा पूर्ण नहीं करती है। याची का वाद है कि वह श्रवण बाधित विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए पूर्ण अर्ह और योग्य है क्योंकि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में 4 वर्ष 7 मास कार्य करने के अतिरिक्त, उसने डी. एस. ई. (श्रवण बाधित) में पोस्ट समन्वयक और शोध शिक्षा श्रवण विकास सोसाइटी, जयपुर में बी. एड. (एस ई सी) के रूप में कार्य किया था, जो सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत है और भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा मान्यताप्राप्त है। 15.10.2003 से 24.8.2009 तक उसका अनुभव विचार में लिया गया माना गया था क्योंकि 2009 के प्रथम नियम के खंड 8.01 से 8.03 के अनुसार यह उपबंधित किया गया है कि विशेष शिक्षा संकाय में शैक्षणिक योग्यता वह होगी, जो

अनुवादित

भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा विहित की गई है। अग्रेतर यह निवेदित किया गया है कि याची ने 2008 में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की थी और एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर दो वर्ष का अनुभव है और यदि 2008 से अनुभव की गणना की जाती है, याची का अनुभव पांच वर्ष की अपेक्षित योग्यता का अनुभव होगा जब उसने विज्ञापन सं. 17/2013-14 के अनुसरण में आवेदन किया था।

(iv) याची की अभ्यर्थिता पर, कुलपति और इसके चेयरमैन और विश्वविद्यालय के बाहर से तीन सदस्यों और विश्वविद्यालय से एक विशेषज्ञ को सम्मिलित करते हुए पांच-सदस्यीय चयन समिति द्वारा सम्यक् रूप से विचार किया गया था और उनके सामूहिक विवेक से याची के मामले पर, श्रवण बाधित विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद के लिए सम्यक् रूप से अनुशंसा की गई थी। अनुशंसाओं और योग्यताओं पर अग्रेतर प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा सम्यक् रूप से विचार किया गया था और याची को पूर्ण रूप से योग्य और अर्ह पाए जाने की अनुशंसाओं के पश्चात् नियुक्ति का प्रस्ताव किया गया था।

(v) श्री सुदीप सेठ ने निष्पक्ष रूप निवेदित किया था कि यद्यपि जांच समिति विज्ञापन सं. 17/2013-14 के अनुसरण में नियुक्त व्यक्तियों की योग्यता की जांच करने के लिए गठित की गई थी, इसकी राय थी कि याची के पास उस समय अपेक्षित योग्यता नहीं थी जब चयन किया गया था किन्तु पश्चात्वर्ती रूप से उस समय जब चयन निरस्त किया जाना ईप्सित किया गया था, याची ने अनुभव प्राप्त कर लिया था क्योंकि उसने 2015 में अपनी नियुक्ति से 2022 में आक्षेपित आदेश पारित किए जाने की तारीख तक, निरंतर रूप से विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्य किया था। यह विचार किया गया है कि भले ही प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय का वाद स्वीकार किया जाता है याची का सम्यक रूप से चयन किया गया था और सम्यक रूप से नियुक्ति की गई थी और यदि एक क्षण के लिए विश्वविद्यालय का तर्क स्वीकार भी किया जाता है तब भी याची की सेवा इस आधार पर कि उसका अनुभव 5 मास कम था, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि वह 2009 से विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में कार्य कर रही है, समाप्त नहीं की जा सकती है।

71. याचीगण ने विश्वविद्यालय में एसोसएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के पश्चात् सेवा में 8 वर्ष से अधिक पूर्ण कर लिए हैं। ***मो. अबुल लाश बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य***, के वाद में, माननीय सर्वेच्च न्यायालय ने ऐसे वाद पर विचार करते समय जहां एक व्यक्ति नियुक्ति के समय योग्य नहीं था, किन्तु बाद में, उसने अपेक्षित योग्यता अर्जित की थी, नियुक्ति में हस्तक्षेप करने से इंकार किया था और विशेष अपील (त्रुटिपूर्ण) सं. 701 वर्ष 2014 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.12.2014 को अपास्त किया था। ***नाहर सिंह एवं अन्य बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य, और सावित्री देवी एवं अन्य बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य***, के एक अन्य वाद में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने सिविल अपील सं. 3904 वर्ष 2013 में निर्णीत किया था कि जब एक व्यक्ति दीर्घ अवधि से निरंतर

सेवा में है, उसकी निरंतरता बाधित नहीं की जानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के उपर्युक्त आधार का अनुसरण करते हुए, विशेष अपील सं. 313 वर्ष 2015 में इस न्यायालय की खंडपीठ ने निर्णीत किया था कि सेवा में दीर्घ अवधि तक निरंतर बने रहने के बाद एक व्यक्ति की सेवा में उसकी नियुक्ति बाधित नहीं की जानी चाहिए।

72. उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने के पश्चात इस न्यायालय की विमर्शित राय है कि उस अवधि की, जिसमें याची ने, रीड्स में पोस्ट समन्वयक के रूप में कार्य किया था, अर्थात् 2003 से 2009, प्रवक्ता के रूप में उसके अनुभव में गणना की जानी अपेक्षित है। विशेषज्ञों के पैनल ने उक्त विवाद्यक की परीक्षा करने के पश्चात, याची को अपेक्षित योग्यता का पाया था। पश्चातवर्ती रूप से, विषय में अपेक्षित योग्यता या विशेषज्ञता न रखने वाला कोई निकाय, विशेषज्ञ निकाय/ चयन समिति द्वारा किए गए विनिश्चय की वैधता परीक्षित करने के लिए और इस तथ्य पर विचार करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं होगा कि आक्षेपित आदेश पारित करने के दिनांक को याची के पास अपेक्षित योग्यता है, प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के पास, प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफसर के रूप में उसके कार्य करने के 7 वर्ष के पश्चात् उसकी सेवासमाप्त करने का कोई अवसर नहीं था।

73. **<u>रिट अ. सं. 4312 वर्ष 2022 (अविनाश चंद्र मिश्रा बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य) :</u>**

याची ने विज्ञापन दिनांक 17.2.2014 के अनुसरण में इतिहास विभाग में प्रोफेसर के पद के लिए आवेदन किया था। आवश्यक योग्यता मानक, विश्वविद्यालय/ महाविद्यालय में अध्यापन का 10 वर्ष का अनुभव, और/या डाक्टरेट स्तर पर शोध के लिए अभ्यर्थियों को दिशानिर्देशित करने के अनुभव सहित, विश्वविद्यालय/ राष्ट्रीय स्तर संस्था/ उद्योग में शोध में अनुभव था। याची ने निवेदन किया था कि उसने जगतगुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट में स्थायी आधार पर 1.1.2004 से 15.1.2014 तक एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्य किया था, जो 10 वर्ष से अधिक अवधि का है। इस संबंध में उसने सभी न्यूनतम योग्यताएं पूरी की थीं। वर्तमान वाद में विवाद इस तथ्य के संबंध में है कि जगतगुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट में सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्य करते समय याची को रजिस्ट्रार के पद का अतिरिक्त प्रभार भी दिया गया था। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने याची की नियुक्ति इस आधार पर निरस्त की थी कि जब याची ने रजिस्ट्रार के पद पर कार्य किया था, वह अध्यापन में कार्यरत नहीं हो सकता था और रजिस्ट्रार के रूप में कार्य की अवधि उसके अध्यापन अनुभव में से कम की गई है। याची ने निवेदन किया था कि उसे अध्यापन कार्य के साथ, जो बिना किसी बाधा के निरंतर था, रजिस्ट्रार का केवल अतिरिक्त प्रभार दिया गया था। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय के पास यह इंगित करने की कोई सामग्री नहीं थी कि क्या इस अवधि के दौरान याची ने पूर्णकालिक रजिस्ट्रार के रूप में कार्य किया था या किसी अध्यापन कार्य में संलग्न नहीं था। यह विचार किया गया है कि मुख्य रूप से इस धारणा के आधार पर रजिस्ट्रार के रूप में अपने कार्य के निर्वहन में याची अध्यापन कार्य में संलग्न नहीं

हुआ होगा, उक्त पद पर इस प्रकार प्राप्त अनुभव कम किया गया है। किसी सामग्री के अभाव में और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याची सहायक प्रोफेसर के रूप में अपने अध्यापन कार्य के अतिरिक्त केवल रजिस्ट्रार के कार्य का निर्वहन कर रहा था, यह नहीं कहा जा सकता है कि उस अवधि के दौरान वह केवल रजिस्ट्रार के कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था, जिससे कि उसके अध्यापन अनुभव की गणना नहीं की जा सकती है। इस संबंध में याची के प्रतिविरोध में बल है और प्रतिकूल तर्क तदनुसार निरस्त किया जाता है।

74. नियुक्ति के निरसन का द्वितीय आधार शोध पत्र के प्रकाशन के संबंध में है। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा जारी 2014 के विज्ञापन में इतिहास में प्रोफेसर के पद के लिए अपेक्षित योग्यताएं थीं कि अभ्यर्थी को, ''संबद्ध/ संबंधित/ सुसंगत क्षेत्र में पी एच डी के साथ प्रबुद्ध अध्येता और उच्च गुणवत्ता का प्रकाशित कार्य, पुस्तकों, और/ या शोध/ नीति पत्र के रूप में न्यूनतम 10 प्रकाशन के साक्ष्य सहित शोध में सक्रिय रूप से कार्यरत होना चाहिए''। याची ने अपने आवेदन पत्र में 8 शोधपत्र और लिखित 3 पुस्तकें प्रकाशित होने का दावा किया था। यह कहा गया है कि 8 शोधपत्र में से 5 पहले ही प्रकाशित हो चुके थे और शेष 3 प्रकाशन के लिए स्वीकृत हो चुके थे। याची ने उल्लिखित किया था कि 2 पुस्तकें पहले ही प्रकाशित हो चुकी थीं और 1 प्रकाशन के लिए स्वीकृत की गई थी। उस समय जब याची दस्तावेजों के सत्यापन के लिए उपस्थित हुआ था, शोधपत्र और पुस्तक जो प्रकाशन के लिए स्वीकृत की गई थीं वास्तव में प्रकाशित हो चुकी थीं और उसका साक्ष्य चयन समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। याची ने आवेदन पत्र के साथ प्रकाशन के लिए स्वीकृति के संबंध में भी साक्ष्य प्रस्तुत किया था। उसने निवेदित किया था कि यद्यपि प्रकाशन के लिए पत्र स्वीकृत किए गए हैं, विश्विद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार वह प्रकाशन का पर्याप्त साक्ष्य है। विश्विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अंशकालिक शोध सहयोगी के लिए जारी दिशानिर्देश के अनुसार यह उपबंध किया गया है।

"(क) यदि हां, मानक निर्दिष्ट पत्रिका (i) भारतीय (ii) विदेशी, में प्रकाशित/स्वीकृत पत्रों की संख्या इंगित करें (प्रकाशन के लिए प्रकाशित - स्वीकृत शोधपत्रों की सूची संलग्न की जानी चाहिए)। यदि, ई-प्रकाशन के लिए है, शीर्षक, सभी लेखकों के नाम, पत्रिका का नाम, भाग, संख्या, वर्ष और पृष्ठ। पत्रों और स्वीकृत पत्र की प्रतियां संलग्न करें। स्वीकृति-पत्र की फोटो प्रति और यह प्रकाशन के लिए स्वीकृत पत्र के लिए संलग्न की जानी चाहिए।"

75. यह देखा गया है कि विश्विद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार भी यदि शोधपत्र प्रकाशन के लिए स्वीकार किए गए हैं, वह शोधपत्रों के प्रति गणना में लिया जाएगा और उसे सम्यक महत्व दिया जाएगा। वर्तमान वाद में प्रकाशन के लिए 3 शोधपत्र स्वीकृत किए गए थे, और परिणामतः वे अभ्यर्थी के प्रकाशन कार्य की गणना में लिए गए थे। प्रत्युत्तरदातागण ने, मामले के इस पहलू पर विचार न करते हुए स्वच्छंद रूप से और

विश्विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी दिशानिर्देशों के प्रतिकूल कार्य किया है और अन्यथा भी आक्षेपित आदेश के परिशीलन में कोई कारण अंतर्विष्ट नहीं है और यह ज्ञात नहीं है क्या इस पहलू पर समिति द्वारा या कार्यकारी परिषद द्वारा विचार भी किया गया था। याची द्वारा लिखित शोधपत्र, जो प्रकाशन के लिए स्वीकृत किए गए हैं, विचार किए जाने के लिए अपेक्षित थे, जिन पर चयन समिति द्वारा सम्यक रूप से विचार किया गया था किन्तु स्वच्छंदतापूर्वक जांच समिति द्वारा विचार नहीं किया गया था और परिणातः इस संबंध में याची की योग्यता में कोई कमी/त्रुटि नहीं थी।

76. अग्रेतर यह प्रतिवादित किया गया है कि प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा ए पी आई स्कोर भी गलत तौर पर आकलित किया गया है, परिणामतः उसकी नियुक्ति निरस्त की गई थी। याची ने कथन किया है कि उसका ए पी आई स्कोर 469.5 है जो अपेक्षित ए पी आई स्कोर से अधिक है। याची द्वारा प्रकाशन का विवरण संलग्न किया गया है जो स्पष्ट रूप उसका ए पी आई स्कोर इंगित करता है। चयन समिति ने याची के ए पी आई स्कोर पर सम्यक रूप से विचार किया है, और वह संतुष्ट थी कि यह विश्विद्यालय अनुदान आयोग मानकों के अनुसार अपेक्षित न्यूनतम स्कोर से अधिक था और परिणातः उसे चयनित निर्णीत किया गया था। प्रत्युत्तरदातागण ने इंगित नहीं किया था कि किस प्रकार याची का ए पी आई स्कोर न्यूनतम अपेक्षित से कम है। इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याची का ए पी आई स्कोर न्यूनतम अपेक्षित से अधिक है, प्रत्युत्तरदातागण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अवैध और स्वच्छंद है।

77. उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि याची पूर्णतः योग्य था, उसकी योग्यता पर चयन समिति द्वारा सम्यक रूप से विचार किया गया था, इतिहास में प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए उसकी अभ्यर्थिता की अनुशंसा की गई थी। 7 वर्ष की अवधि के पश्चात्, याची द्वारा कारित किए गए कपट और अवचार के किसी कथन के अभाव में, उसकी योग्यताओं का पुनर्विलोकन करने का कोई कारण नहीं है, उसके चयन का निरसन स्पष्ट रूप से अवैध और स्वच्छंद है और अपास्त किए जाने के लिए दायी है।

78. याचीगण ने सेवासमाप्ति के आदेश पर इस आधार पर आपत्ति की है कि यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन था, जबकि दूसरी तरफ प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय ने निवेदन किया है कि क्योंकि याचीगण के पास न्यूनतम योग्यता नहीं है और इसलिए सुनवाई का अवसर देने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा। विरोधी तर्कों पर सम्यक विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय का विमर्शित दृष्टिकोण है कि केवल सुनवाई का अवसर देने के पश्चात विनिश्चय किया जा सकता है कि क्या याचीगण ने सभी योग्यताएं पूरी की थीं या नहीं। यह घोषित करना, कि वे योग्यताएं पूरी नहीं करते हैं, विवाद्यक का पूर्व विनिश्चय करने के बराबर है जो अनुमत नहीं है। ***निशा***

देवी बनाम हि. प्र. राज्य, (2014) 16 एस सी सी 392 के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया था किः-

5. यद्यपि यह प्रचलित सिद्धांत है, तथापि हम पुनः दोहराते हैं कि दूसरे पक्ष को भी सुनो के सिद्धांत का कोई अपवाद नहीं है, और सभी परिस्थितियों में इसका पालन किया जाना है। दूसरे शब्दों में, कोई विनिश्चय करने के पूर्व, जिसका किसी पक्षकार पर गंभीर प्रभाव और परिणाम है, ऐसे व्यक्ति को उसकी प्रतिरक्षा में सुना जाना चाहिए। हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने विधि के इस लाभप्रद सिद्धांत के उल्लंघन और अतिक्रमण पर विचार नहीं किया था। तदनुसार, इस संक्षिप्त आधार पर, आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाने अपेक्षित हैं और इस प्रकार किए जाते हैं। मामला मंडल आयुक्त को, अपीलार्थी को सम्यक नोटिस देने के पश्चात् और उसे सुने जाने का अवसर देने के पश्चात्, नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए वापस प्रतिप्रेषित किया जाता है। खंड मजिस्ट्रेट, कुल्लू शीघ्रतापूर्वक और उस तारीख से, , जब इस आदेश की प्रति उस पर तामील की जाती है, छह मास से अनधिक अवधि में, कार्यवाही पूरी करेंगे।''

79. जैसी हमने पहले प्रत्येक वाद की चर्चा की है, और इस न्यायालय का विमर्शित दृष्टिकोण है कि सभी याचीगण सम्यक रूप से योग्य हैं और उनकी सेवा समाप्त नहीं की जा सकती थी। प्रत्युत्तरदातागण के लिए उनकी सेवा समाप्त करने के पूर्व उचित प्रक्रिया और नियमों का अनुसरण करना और उन्हें सुनवाई का उचित अवसर देना आज्ञापक था। जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निर्दिष्ट वाद में कहा गया है, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का कोई अपवाद नहीं है, और इसलिए, वर्तमान वाद में भी सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए, और विहित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए। यह केवल वहां है जहां बिना किसी जांच के और अभिलेख के परिशीलन मात्र से, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि व्यक्ति योग्यता धृत नहीं करता है, तब उन आपवादिक मामलों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की प्रवर्तनीयता में छूट दी जा सकती है किन्तु जहां विवाद्यक अवधारित करने के लिए जांच संचालित की जानी है और यह अभिलेख के परिशीलन मात्र से प्रत्यक्ष नहीं है कि क्या अभ्यर्थी योग्यताएं पूरी करता है और मामला विवाद योग्य है तब, संबद्ध व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए बिना कोई आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान वाद में, प्रत्येक वाद की परीक्षा करने के पश्चात्, और इस तथ्य पर विचार करने के पश्चात् कि याचीगण को 7 वर्ष तक निरंतर रहने के लिए अनुमत किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की उपेक्षा की जा सकती है और इस संबंध में प्रत्युत्तरदातागण का बिना किसी कारण के तर्क सारहीन है और तदनुसार निरस्त किया जाता है। जैसी हमने पहले चर्चा की है, न तो प्रक्रिया का पालन किया गया है, क्योंकि न तो नियमावली वर्ष 1999 का पालन किया गया था, न नियम 9.07 में विहित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था, किन्तु एक नवीन प्रक्रिया अपनाई गई थी जो कहीं विहित नहीं है न कहीं अनुसरित की गई थी। याचीगण को जांच रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गई थी, और उस

प्राधिकारी ने, जिसने अंतिम रूप से अर्हता योग्यताओं के प्रश्न का विनिश्चय किया था, उन्हें सुनवाई का कभी अवसर नहीं दिया था, और परिणामतः हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि संपूर्ण प्रक्रिया अवैध और स्वच्छंद थी और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का स्पष्ट उल्लंघन थी।

80. इस न्यायालय का, शैक्षणिक योग्यताओं और विभिन्न पदों के लिए याचीगण की नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हता मानक पर विचार विचार करने के पश्चात विमर्शित दृष्टिकोण था कि इस तथ्य के साथ संलग्न, उनकी शैक्षणिक योग्यताओं या अनुभव में कोई कमी नहीं थी कि इन सभी तथ्यों की, चयन समिति के विशेषज्ञ पैनल द्वारा सम्यक रूप से जांच की गई थी जिसने संतुष्ट होने के पश्चात नियुक्ति के लिए याचीगण के मामले की अनुशंसा की थी। चयन समिति के विद्वेषपूर्ण होने या प्रक्रिया आदि का अनुसरण न करने के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं है। चयन समिति की अनुशंसा पर सम्यक रूप से विचार किया गया था और प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित किया गया था और पश्चातवर्ती रूप से नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे। एक वर्ष कार्य करने के पश्चात् उन्हें उनके संबंधित पद पर स्थायी किया गया था। इस प्रक्रम पर भी प्रत्युत्तरदातागण ने इन सभी मामलों पर विचार किया होगा। इस बीच, मुख्यतः इस कारण से क्योंकि पूर्व कुलपति के विरुद्ध कुछ अभिकथन थे, उसके कार्यकाल के दौरान 7 वर्ष पूर्व की गई सभी नियुक्तियों की जांच की जानी ईप्सित की गई थी। मुख्य रूप से इस कारण कि याचीगण विशिष्ट कुलपति की अवधि के दौरन नियुक्त किए गए थे, और उसके विरुद्ध कुछ अभिकथन थे, इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता है कि उसके कार्यकाल में की गई नियुक्ति अवैध और स्वच्छंद थीं। खतरे की ऐसी तलवार, कि नियुक्ति किसी समय निरस्त की जा सकती है, किसी संस्था में संपूर्ण कार्यकाल के दौरान चयनित अभ्यर्थी के सिर पर लटकती नहीं छोड़ी जा सकती है। जब कोई नियुक्ति सम्यक रूप से की जाती है, तब यदि उक्त चयन में कोई कमी है जो ऐसी प्रकृति की है कि उसे माफ नहीं किया जा सकता है, विधि के अनुसरण में उक्त चयन किए जाने के शीघ्र पश्चात् शीघ्रतापूर्वक कार्रवाई की जानी है। वर्तमान वाद में, ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण ने उनकी शैक्षणिक योग्यताओं के बारे में कोई दुर्व्यपदेशन किया था या किसी भी प्रकार अपने को नियुक्त करवाने के लिए उत्तरदायी थे। याचीगण द्वारा कारित किए गए किसी त्रुटि या दुर्व्यपदेशन के अभाव में, क्या सम्यक चयन की सात वर्ष की दीर्घ अवधि के पश्चात् सेवा समाप्त की जा सकती है, वर्तमान वाद में इस न्यायालय के समक्ष मुख्य विवाद्यक है।

81. इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, ***विकास प्रताप सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2013) 14 एस सी सी 494*** के वाद में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विचार करना सुसंगत होगा, जिसने निम्नवत निर्णीत किया हैः-

"22. फ्रास एट जस नानकाम कोहेबिटेंट (कपट और न्याय कभी साथ नहीं चलते हैं) की पुरानी

कहावत ने शताब्दियों से इसका महत्व कभी नहीं खोया है और यह निरंतर सेवा विधि विधिशास्त्र में भावना और शरीर से साथ है। यह प्रतिष्ठित विधि है कि किसी पद पर नियुक्ति के संबंध में कोई विधिक अधिकार ऐसे अभ्यर्थी में निहित नहीं होता है जिसने कपट, रिष्टि, दुर्व्यपदेशन या विद्वेष से नियोजन प्राप्त किया है (देखिए विजयनगरम सोशल वेलफेयर रेजीडेंसियल स्कूल बनाम एम. त्रिपुरा सुंदरी देवी ((1990) 3 एस सी सी 655 : 1990 एस सी सी (एल एंड एस) 520 : (1990) 14 ए टी सी 766), एस. पी. चेंगलवाराया नायडू बनाम जगन्नाथ ((1994) 1 एस सी सी 1) और भारत संघ बनाम एम. भाष्करन (1995 सप (4) एस सी सी 100 : 1996 एस सी सी (एल एंड एस) 162 : (1996) 32 ए टी सी 94)।) यह भी सुप्रतिष्ठित विधि है कि किसी पद पर त्रुटिपूर्वक नियुक्त व्यक्ति को, मेधावी और योग्य व्यक्ति के हित को जोखिम में डालते हुए सदोष नियुक्ति का लाभ प्राप्त नहीं करना चाहिए। तथापि, ऐसे मामलों में जहां एक सदोष या अनियमित नियुक्ति, नियुक्ति पाने वाले की किसी त्रुटि के बिना की जाती है और ऐसी त्रुटि या अनियमितता के पता चलने पर नियुक्ति पाने वाले की सेवा समाप्त की जाती है, इस न्यायालय ने ऐसी नियुक्ति में अभ्यर्थी के सद्भाव और ऐसी नियुक्ति के पश्चात् अभ्यर्थी की सेवा अवधि सहित विभिन्न कारकों के प्रकाश में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है (देखिए विनोदन टी. बनाम कालीकट विश्वविद्यालय ((2002) 4 एस सी सी 726 : 2002 एस सी सी (एल एंड एस) 606) , उ. प्र. राज्य बनाम नीरज अवस्थी ((2006) 1 एस सी सी 667 : 2006 एस सी सी (एल एंड एस) 190))।

23. गिरीश श्रीवास्तव बनाम म. प्र. राज्य, ((2010) 10 एस सी सी 707 : (2011) 1 (एल एंड एस) 192, में उच्च न्यायालय ने चयन प्रक्रिया विहित करने वाले नियम को अविधिमान्य किया था जिसने 25 प्रतिशत अनुग्रह अंक और अभ्यर्भियों को तीन वर्ष तक अनौपचारिक शिक्षण अनुभव के साथ आयु छूट अधिनिर्णीत की थी, जिसके परिणामस्वरूप, उक्त नियम के अधीन औपचारिक शिक्षण संस्था में शिक्षक के रूप में नियुक्त अनेक अभ्यर्थी बाहर हो गए थे। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षण से सहमत होते हुए इस बात को ध्यान में रखा था कि बहुत लंबे समय पश्चात नियुक्ति में अनियमितताओं के सुधार पर नियुक्ति निरस्त करने का आदेश अनेक अभ्यर्थियों की आर्थिक सुरक्षा को गंभीर रूप से प्रभावित करेगी और निम्नवत संप्रेक्षित किया थाः (एस सी सी पृ. 714 पैरा 31)

"31. ..... उनमें से अनेक पूर्वतन अनौपचारिक शिक्षण केंद्र में शिक्षक थे, जहां से उन्होंने विज्ञापन के कारण आवेदन करने के लिए त्यागपत्र दे दिया था। उन्होंने तीन वर्ष के अध्यापन अनुभव के तथ्य की दृष्टि से नियोजन पाने के लिए अपना पूर्ववर्ती नियोजन छोड़ दिया था, वर्तमान चयन में साक्षात्कार प्रक्रिया ने उन्हें 25% का अनुग्रह अंक अधिनिर्णीत किया था। इसने उन्हें उनकी आयु के संबंध में 8 वर्ष की छूट भी प्रदान की थी। अब, यदि वे उच्च न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप अपनी नौकरी खोते हैं, वे पूर्णतः

बेरोजगार हो जाएंगे, क्योंकि वे अनौपचारिक शिक्षण केंद्र की अपनी पूर्वतर नौकरी पर वापस नहीं जा सकते हैं, जो तब से उन्मूलित हो गई थी। यह अनेक परिवारों की आर्थिक सुरक्षा को बुरी तरह प्रभावित करेगा। उनमें से अनेक 35-45 आयु वर्ग के हैं, और उनकी कोई अन्य नौकरी पाने की संभावना बहुत कम है। उनमें से कुछ वास्तव में उच्च न्यायालय द्वारा उनकी नियुक्ति खंडित करने के समय वेतन वृध्दि की प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

इसलिए, उपर्युक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने अविधिमान्य नियम के अधीन नियुक्त अभ्यर्थियों को न हटाने के लिए निदेशित किया था।

24. भारत संघ बनाम नरेंद्र सिंह, ((2008) 2 एस सी सी 750 : (2008) 1 एस सी सी (एल एंड एस) 547) में, इस न्यायालय ने कर्मचारियों की आयु, जिसे त्रुटिपूर्वक प्रोन्नत किया गया था और प्रोन्नत पद पर उसकी सेवा की अवधि और अधिवर्षिता पर सेवा से सेवानिवृत्त होने के कारक पर विचार किया था और निम्नवत् संप्रेक्षित किया थाः (एस सी सी पृ. 758, पैरा 35-36)

''35. तथापि, प्रत्युत्तरदाता की ओर से अंतिम प्रार्थना पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। प्रत्युत्तरदाता पिछले सत्रह वर्ष से वरिष्ठ लेखाकार (कार्यकारी) का पद धृत किए था। वह सेवानिवृत्ति के इतना अधिक पास था कि केवल कुछ दिन शेष बचे थे। वह इस मास के अंत में, अर्थात् 31.12.2007, तक अधिवर्षिता की आयु तक पहुंचने वाला था। इसलिए, हमारी दृष्टि में, अब प्रत्युत्तरदाता को बहुत अल्पकाल के लिए लेखाकार के पद पर पदावनत करना उपयुक्त नहीं होगा। इसलिए, हम अपीलार्थीगण को प्रत्युत्तरदाता को वरिष्ठ लेखाकार (कार्यकारी) के रूप में अधिवर्षिता की आयु तक पहुंचने तक, अर्थात् 31.12.2007 तक निरंतर रखने का निदेश देते हैं। इसी के साथ, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि क्योंकि प्राधिकारियों का कार्य विधिक नियमों के अनुसरण में था, प्रत्युत्तरदाता की प्रोन्नति को निरस्त करने वाला और उसे उसके लेखाकार के उसके मूल पद पर प्रत्यावर्तित करने वाला उप महालेखाकार द्वारा पारित आदेश विधिक और वैध था और प्रत्युत्तरदाता को वरिष्ठ लेखाकार (कार्यकारी) के रूप में प्रोन्नत नहीं किया जा सकता था, उसे लेखाकार के रूप में सेवानिवृत्त माना जाएगा और वरिष्ठ लेखाकार (कार्यकारी) के रूप में नहीं और उसके पेंशन और सेवानिवृत्त लाभ तदनुसार उसे पूरे समय लेखाकार के रूप में मानते हुए नियत किए जाएंगे।

36. पूर्वोक्त कारणों से, अपील भागतः अनुज्ञात की जाती है। यद्यपि प्रत्युत्तरदाता को वरिष्ठ लेखाकार (कार्यकारी) के पद पर, अधिवर्षिता की आयु तक पहुंचने तक, अर्थात् 31.12.2007 तक निरंतर रहने के लिए अनुज्ञात किया जाता है और उस हैसियत में उसे दिया गया वेतन वसूला नहीं जाएगा, उसके सेवानिवृत्ति लाभ वरिष्ठ लेखाकार (कार्यकारी) के रूप में नहीं बल्कि लेखाकार के रूप में नियत किए जाएंगे, व्यय के लिए कोई आदेश नहीं होगा।''

25. इस न्यायालय ने, गुजरात राज्य डिप्टी एक्जूक्यूटिव इंजीनियर्स एसो. बनाम गुजरात राज्य (1994 सप (2) एस सी सी 591 : 1994 एस सी सी (एल एंड एस) 1159 :

(1994) 28 ए टी सी 78) में यद्यपि निष्कर्ष अभिलिखित किया था कि "प्रतीक्षा सूची" के अधीन दी गई नियुक्तियां विधि के अनुसरण में नहीं थीं किन्तु सेवा की अवधि (पांच वर्ष और अधिक) की दृष्टि से ऐसी नियुक्तियां अपास्त करने से इंकार किया था।

26. बुद्धिनाथ चौधरी बनाम अबही कुमार ((2001) 3 एस सी सी 328 : 2001 एस सी सी (एल एंड एस) 589 : (2001) 2 एस सी आर 18) में यद्यपि नियुक्तियां अनुचित निर्णीत की गई थीं, इस न्यायालय ने इस आधार पर नियुक्तियों को बाधित नहीं किया था कि पदाधिकरियों ने अनेक वर्षों तक कार्य किया था और अनुभव प्राप्त किया था और संप्रेक्षित किया थाः (एस सी सी पृ. 331, पैरा 6)

"6. .....हमने ऐसे चयनित अभ्यर्थियों पर साम्यापूर्ण विचार किया है जिन्होंने दीर्घ अवधि तक कार्य किया है ....."

(देखिए एम. एस. मुधोल बनाम एस. डी. हलेगकर ((1993) 3 एस सी सी 591 : 1993 एस सी सी (एल एंड एस) 986 : (1993) 25 ए टी सी 91 : (1993) एल एल जे 1159) और त्रिदीप कुमार डिंगल बनाम प. बं. राज्य ((2009) 1 एस सी सी 768 (2009) 2 एस सी सी (एल एंड एस) 119))

27. स्वीकृत रूप से, प्रस्तुत वाद में उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन के मामले में प्रत्युत्तरदाता बोर्ड द्वारा कारित त्रुटि का भार, अपीलार्थीगण पर नहीं डाला जा सकता था क्योंकि उन्हें न तो प्रथम सूची के प्रति नियुक्ति के लिए कोई कपट या दुर्व्यपदेशन कारित करने, न त्रुटिपूर्ण आदर्श उत्तर कुंजी की तैयारी का या उन्हें दिखावटी परिणाम के लिए योगदायी पाया गया है। यदि विपरीत स्थिति होती, उनकी दीर्घ सेवा से असंगत, पुनर्मूल्यांकन पर उन्हें बाहर करना और इस न्यायालय द्वारा किसी सहानुभूति से वंचित करना न्यायोचित होता।

28. हमारे विमर्शित दृष्टिकोण में, अपीलार्थीगण ने सफलतापूर्वक प्रशिक्षण किया है और तीन वर्ष से अधिक से प्रत्युत्तरदाता राज्य की कुशलतापूर्वक सेवा कर रहे हैं और निरपवाद रूप से उनकी सेवासमाप्ति न केवल अपीलार्थीगण की आर्थिक सुरक्षा और आश्रितों पर चोट करेगी बल्कि उनकी जीविका पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। यह अपीलार्थीगण के प्रति अत्यधिक अन्यायपूर्ण और घोर रूप से अनुचित होगा जो उत्तर पुस्तिका के त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन के निर्दोष कर्मचारी हैं। तथापि, सेवा में उनका बना रहना अपीलार्थीगण को कोई अनुचित लाभ नहीं देगा, न पुनरीक्षित योग्यता सूची के प्रति चयनित अभ्यर्थियों पर असम्यक प्रतिकूल प्रभाव कारित करेगा।

29. तदनुसार, हम प्रत्युत्तरदाता राज्य को अपीलार्थीगण को, पुनरीक्षित सूची में उन्हें नीचे रखते हुए नियुक्त करने का निदेश करते हैं। ऐसे अभ्यर्थियों को, जिन्होंने नियुक्ति के लिए न्यूनतम विधिक आयु पार कर ली है, उपयुक्त आयु छूट दी जाएगी।

30. हम स्पष्ट करते हैं कि उनकी नियुक्ति सभी आशय और प्रयोजन के लिए नई नियुक्ति होगी जो अपीलार्थीगण को, उनकी पूर्ववर्ती नियुक्ति के आधार पर किसी पिछले वेतन,

वरिष्ठता या किसी अन्य लाभ के लिए अधिकृत नहीं करेगी।

31. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश उपर्युक्त सीमा तक संशोधित होगा। अपीलें निस्तारित होती हैं। व्यय के लिए कोई आदेश नहीं होगा।"

82. ***विकास प्रताप सिंह (उपर्युक्त)*** के वाद में उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को वर्तमान वाद के तथ्यों को लागू करते हुए, इस न्यायालय की विमर्शित राय है कि एक व्यक्ति को दीर्घकाल तक सेवा में बने रहने के लिए अनुमत करने के पश्चात्, चयन में कुछ कमियों के कारण चयन निरस्त नहीं किया जा सकता है, या सेवा समाप्त नहीं की जा सकती है, और तदनुसार याचीगण का वाद पूर्णतः उच्चतम न्यायालय के निर्णय, जैसी उपर्युक्त चर्चा की गई है, द्वारा आवरित है।

83. उपर्युक्त की दृष्टि से, रिट याचिकाएं **अनुज्ञात** होती हैं। वर्ग के भागरूप सभी रिट याचिकाओं में सभी याचीगण की चुनौती के संबंध में आक्षेपित आदेश दिनांक 6.7.2022 अपास्त किए जाते हैं। प्रत्युत्तरदाता विश्वविद्यालय को याचीगण को तत्काल पुनर्स्थापित करने के लिये निदेशित किया जाता है। इस तथ्य पर विचार करते हुए कि वे पिछले 6 से 7 वर्ष से कार्य कर रहे हैं और सेवासमाप्ति का आदेश अवैध और स्वच्छंद निर्णीत किया गया है, वे उनकी सेवासमाप्ति की तारीख से पिछले वेतन सहित, सभी पारिणामिक लाभों के लिए अधिकृत हैं।

(2023) 5 ILRA 1767

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

द्वितीय अपील संख्या 795/2011

शांति स्वरूप एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

ओंकार प्रसाद मृतक एवं अन्य .. प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री विनोद सिन्हा, श्री अरुण कुमार शर्मा, श्री महेश शर्मा, श्री प्रदीप कुमार राय

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री संजलि कुमार दुबे, श्री प्रमोद कुमार द्विवेदी, श्री संजय कुमार दुबे

सिविल कानून - सीमा अधिनियम, 1963 - अनुच्छेद 59 और 113 - सीमा अधिनियम का अनुच्छेद 59 वसीयतनामा निस्तारण के मामलों में लागू नहीं होता है और यह अनुच्छेद 113 है जो ऐसे मामलों में लागू होता है। (पैरा 26)

मूल वाद वसीयतकर्ता की मृत्यु के तीन वर्ष के भीतर दायर किया गया था। वसीयतकर्ता की वसीयत में वादी को शामिल नहीं किया गया था और वसीयत को रद्द करने के लिए वाद दायर करने का कारण वसीयतकर्ता की मृत्यु तक वादी के पक्ष में नहीं आया था- वाद दायर की गई संपत्ति में वादी के अधिकारों पर पहली बार प्रतिवादियों द्वारा आक्रमण किया गया था जब उन्होंने वसीयतकर्ता की वसीयत के आधार पर राजस्व अभिलेखों में अपना नाम बदलवा लिया था- यदि वादी अपीलकर्ता ने वसीयतकर्ता के जीवनकाल में ही वसीयत को रद्द करने के लिए वाद दायर किया होता, जो कि एक ऐसा दस्तावेज है जिसे बृज लाल द्वारा रद्द किया जा सकता था, तो उक्त वाद हास्यास्पद होता-

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि निचली अदालत और अवर अपीलीय न्यायालय ने वादी को हास्यास्पद वाद दायर न करने के लिए वाद खारिज कर दिया है। (पैरा 29 और 35)

अवर न्यायालयों के निर्णय और आदेश कानून के विपरीत हैं और अपास्त किये जाने योग्य है। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. वुण्डावल्ली रत्ना मनिक्यम और अन्य बनाम वीएसपी. पी.आर.एन. प्रसाद राव 2020 (3) एससीसी 289
2. जानकी वाशदेव भोजवानी एवं अन्य बनाम इंडसइंड बैंक लिमिटेड एवं अन्य (एआईआर 2005 एससी 439)
3. बोंदर सिंह व अन्य बनाम निहाल सिंह व अन्य 2003 (4) एससीसी 161
4. श्री डी.एम. देशपांडे और अन्य बनाम श्री जनार्दन काशीनाथ कदम 1998 (8) एससी 39
5. राजस्थान राज्य टी.पी.टी. निगम एवं अन्य बनाम बजरंग लाल (2014) एआईआर एससीडब्ल्यू 2058
6. ठाकुर किशन सिंह (मृत) बनाम अरविंद कुमार एआईआर (1995) सुप्रीम कोर्ट 73
7. मथाई सैमुअल एवं अन्य बनाम ईपेन ईपेन (मृत) जरिए उत्तराधिकारी एवं अन्य एआईआर द्वारा (2013) एससी 532
8. ह्यूबर्ट पी. जेम्स बनाम गुलाम हुसैन पाकसीम एआईआर (1949) प्रिवी काउंसिल 151
9. बद्री बनाम नियादर और उमराव कुँवर और अन्य (1915) XXXVII ILR 422 (इलाहाबाद सीरीज)
10. एमएसटी. बोलो बनाम एमएसटी. कोकलन एआईआर (1930) प्रिवी काउंसिल 270
11. अन्नामलाई चेट्टियार बनाम ए.एम.के.सी.टी. मुथुकरुप्पन चेट्टियार एआईआर (1931) प्रिवी काउंसिल 9
12. एमएसटी. रुखमाबाई बनाम लाला लक्ष्मीनारायण एआईआर (1960) सुप्रीम कोर्ट 335
13. मेदा बीबी बनाम इमामन बीबी व अन्य 1884 (6) आईएलआर 207 (इलाहाबाद सीरीज) (पूर्ण पीठ)
14. इबाद अली बनाम साजिद अली व अन्य 1895 आईएलआर 23 पीसी
15. फिरोज व अन्य बनाम सुल्तान सुर्खरू एआईआर (1926) लाहौर 635
16. राज कुमार जैन व अन्य बनाम श्रीमती जगवती देवी व अन्य एआईआर (1980) इलाहाबाद 225
17. रामभजन कुँवर एवं अन्य बनाम गुरुचरण कुँवर की रिपोर्ट 1905 आईएलआर 27 (इलाहाबाद सीरीज) 14

(माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

यह मूल वाद संख्या 13/1978 को खारिज करने वाले द्वितीय अपर मुंसिफ, हाथरस, अर्थात विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 20.11.1979 को चुनौती देने वाली और साथ ही विचारण न्यायालय की डिक्री के खिलाफ दायर सिविल अपील संख्या 23 वर्ष 1980 को खारिज करने वाले जिला न्यायाधीश, हाथरस, अर्थात निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 6.9.2011 के खिलाफ दायर की गई वादी की द्वितीय अपील है।

वर्तमान द्वितीय अपील के लिए सुसंगत तथ्य यह है कि बृज लाल, जो वादी और प्रतिवादियों का संयुक्त पूर्वज था, भूखंड संख्या 174-एए (क्षेत्रफल 24-6-10) जिसे इसके बाद संक्षेप में "वाद संपत्ति" कहा जाएगा, के भूमिधर के रूप में दर्ज था। बृज लाल के चार बेटे थे, अर्थात् नंदन लाल, बाबू लाल, शांति स्वरूप (वादी) और ओंकार (प्रतिवादी/प्रतिवादी सं. 1)। पक्षकारों का यह सामूहिक मामला है कि नंदन लाल ने संसार त्याग दिया और उसका ठिकाना ज्ञात नहीं था और बाबू लाल की निःसंतान मृत्यु बृज लाल से पहले हो गई। ओंकार, अर्थात प्रतिवादी सं. 1 के पांच बेटे थे, अर्थात् कमलेश, ह्रदेश, जानकी प्रसाद, भगवती प्रसाद और लालता प्रसाद, जो वर्तमान अपील में प्रतिवादी सं. 2 से 6 हैं और निचली अदालत में प्रतिवादी सं. 2 से 6 थे। प्रतिवादियों का दावा है कि बृज लाल ने एक पंजीकृत वसीयत दिनांक 05.08.1972 निष्पादित की, जिसमें उन्होंने मुकदमे की संपत्ति सहित अपनी सभी चल और अचल संपत्तियों को प्रतिवादियों/प्रतिवादी सं. 2 से 6 को दे दिया। हौती लाल शर्मा और शोभा राम उपरोक्त वसीयत के सत्यापनकर्ता गवाह थे। बृज लाल की मृत्यु दिनांक 05.11.1976 को हुई। बृज लाल की मृत्यु के बाद प्रतिवादी सं. 2 से 6 ने दिनांक 05.11.1976 की वसीयत के आधार पर राजस्व अभिलेखों में अपने नाम दर्ज करा लिए। वादी ने इस दलील के साथ, दिनांक 05.08.1972 की वसीयत को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 दायर किया, कि वसीयत एक जाली दस्तावेज है और इस प्रकार शून्य है। वैकल्पिक रूप से, वादी ने यह भी दलील दी कि वाद संपत्ति पैतृक संपत्ति थी और बृज लाल को उनके पिता से हस्तांतरित हुई थी और इसलिए यूपी किरायेदारी अधिनियम 1939 के तहत बृजलाल के साथ वादी और प्रतिवादी क्रमांक 1 वाद संपत्ति के सह किरायेदार थे और यूपी जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 के तहत सह-किराएदार बने रहे और, इसलिए, वादी के पास वाद संपत्ति में 1/3 हिस्सा था और वाद संपत्ति में उसके 1/3 हिस्से के बारे में वसीयत शून्य थी। वादी का मामला यह है कि उसे वसीयत के बारे में मुकदमा दाखिल करने से मात्र छह महीने पहले गांव के ग्राम प्रधान से पता चला और वाद सीमा के भीतर था क्योंकि मुकदमा दायर करने की कार्रवाई का कारण तब उत्पन्न हुआ जब वादी को वसीयत के बारे में पता चला अर्थात, मुकदमा दायर करने की तारीख से छह महीने पहले। वाद को विचारण न्यायालय में दिनांक 04.01.1978 को पंजीकृत किया गया था।

प्रतिवादियों ने शिकायत में किए गए कथनों से इनकार करते हुए अपना लिखित बयान दायर किया और कहा कि वसीयत बृज लाल द्वारा अपनी स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से निष्पादित की गई थी, और बृज लाल वाद संपत्ति का एकमात्र किरायेदार था। अपने लिखित बयान में, प्रतिवादियों ने स्वीकार किया कि बृज लाल की मृत्यु दिनांक 05.11.1976 को हुई थी, लेकिन मुकदमा दायर करने के लिए कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने की तारीख के बारे में किए गए दावों से इनकार किया और कहा कि वादी को बृज लाल की मृत्यु से पहले ही वसीयत के निष्पादन के बारे में पता था। उपर्युक्त दलीलों पर, प्रतिवादियों ने दलील दी कि मुकदमा योग्यता के साथ-साथ इस आधार पर भी खारिज करने योग्य है कि यह सीमा द्वारा वर्जित था।

विचारण न्यायालय द्वारा तैयार किए गए और वर्तमान द्वितीय अपील के लिए प्रासंगिक

मुद्दे ये हैं कि क्या वसीयत एक जाली दस्तावेज थी और बृज लाल द्वारा निष्पादित नहीं की गई थी, क्या बृज लाल मुकदमे वाली संपत्ति का एकमात्र किरायेदार था और उसे दिनांक 05.08.1972 की वसीयत को निष्पादित करने का अधिकार था और वादी किस राहत के हकदार थे? यह ध्यान देना प्रासंगिक है कि मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 में विचारण न्यायालय द्वारा परिसीमा के संबंध में कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया था।

विचारण न्यायालय ने अपने फैसले और डिक्री दिनांक 20.11.1979 के द्वारा मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 को खारिज कर दिया। विचारण न्यायालय ने यह मानने के बाद कि बृज लाल वाद संपत्ति का एकमात्र किरायेदार था और वसीयत के सत्यापनकर्ता गवाह शोभा राम की गवाही और इस तथ्य कि वसीयत एक पंजीकृत दस्तावेज थी, पर विचार करने के बाद, यह माना कि वादी यह साबित करने में विफल रहा है कि वसीयत एक जाली दस्तावेज थी। विचारण न्यायालय ने माना कि वादी को वसीयत के निष्पादन के बारे में वादी द्वारा अपनी शिकायत में बताई गई तारीख से पहले से पता था और चूंकि वादी को वसीयत के बारे में पता चलने की तारीख से तीन वर्ष के भीतर वाद दायर नहीं किया गया था, इसलिए वाद परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 के तहत वर्जित था। नतीजतन, विचारण न्यायालय ने माना कि वादी किसी भी राहत का हकदार नहीं था।

व्यथित होकर, वादी ने सिविल अपील संख्या 23 वर्ष 1980 दायर की, जिसे निचली अपीलीय न्यायालय ने अपने फैसले और डिक्री दिनांक 21.09.1983 के जरिए स्वीकार कर लिया। निचली अपीलीय न्यायालय ने माना कि वादी के पास वाद संपत्ति में 1/3 हिस्सा था क्योंकि वह बृज लाल और प्रतिवादी संख्या 1 के साथ उसका सह-किराएदार था। निचली अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 21.09.1983 के अपने फैसले में इस तथ्य पर गौर करने के बाद कि सत्यापनकर्ता साक्षी शोभा राम द्वारा वसीयत के निष्पादन को प्रमाणित किये जाने की तिथि तक मूल वसीयत निचली न्यायालय में दाखिल नहीं की गई थी, यह माना कि वसीयत के उचित निष्पादन के मुद्दे पर फैसला करने के लिए शोभा राम की गवाही पर विचार नहीं किया जा सकता है और इसलिए, दिनांक 05.08.1972 की वसीयत का उचित निष्पादन साबित नहीं हुआ। नतीजतन, निचली अपीलीय न्यायालय ने सिविल अपील संख्या 23 वर्ष 1980 को स्वीकार कर लिया, और निचली न्यायालय के फैसले और डिक्री को खारिज कर दिया, मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 को डिक्री कर दिया और दिनांक 05.08.1972 की वसीयत को रद्द कर दिया।

निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, प्रतिवादियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत द्वितीय अपील संख्या 2281 वर्ष 1983 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने अपने दिनांक 06.02.2006 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया।

इस स्तर पर, यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि निचली न्यायालय के निष्कर्ष कि मुकदमा परिसीमा अधिनियम की धारा 59 द्वारा वर्जित था, को निचली अपीलीय

न्यायालय या द्वितीय अपील संख्या 2281 वर्ष 1983 में इस न्यायालय द्वारा, विशेष रूप से उलट नहीं दिया गया था।

द्वितीय अपील संख्या 2281 वर्ष 1983 को खारिज करने वाले, इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 06.02.2006, से व्यथित होकर प्रतिवादियों ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 10058 वर्ष 2006 दायर की, जिसे बाद में सिविल अपील संख्या 2815 वर्ष 2008 के रूप में पंजीकृत किया गया। उक्त सिविल अपील को सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 16.04.2008 के अपने निर्णय और आदेश के द्वारा स्वीकार कर लिया और मामले को इस मुद्दे पर आदेश पारित करने के लिए प्रथम अपीलीय न्यायालय के पास वापस भेज दिया गया कि क्या मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 पर समय बाधित था। दिनांक 16.04.2008 के अपने आदेश में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि चूंकि निचली न्यायालय ने भी परिसीमा के आधार पर वाद को खारिज कर दिया था और उक्त निष्कर्षों को प्रथम और द्वितीय अपीलीय न्यायालय द्वारा उलट नहीं किया गया था, इसलिए वाद का समय बाधित रहना जारी रहेगा। दिनांक 16.4.2008 के अपने आदेश में, सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निर्देश दिया कि यदि परिसीमा का प्रश्न वादी के पक्ष में तय किया जाता है, तो निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 21.09.1983 के निर्णय में दर्ज अन्य निष्कर्ष लागू रहेंगे और उनमें कोई छेड़छाड़ नहीं की जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 16.4.2008 के आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

"22. उक्त प्रस्ताव के पीछे तर्क यह है कि न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित कुछ प्रश्न, जिसमें परिसीमा भी शामिल है, किसी मामले को लेने और निर्णित करने के न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जड़ तक जाते हैं, अन्यथा, अधिकार क्षेत्र के बिना दिया गया निर्णय अमान्य हो जाएगा। हालांकि, हमें उक्त प्रस्ताव पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि, इस मामले में इस तरह की दलील उठाई गई थी और विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय किया गया था, लेकिन मुकदमे में तैयार किए गए मुद्दों पर विचारण न्यायालय के निर्णय को पलटते समय प्रथम अपीलीय न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा इसे उलट नहीं किया गया था। इसलिए, हमें उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द करने और इस सीमित प्रश्न का निर्णय करने के लिए कि क्या मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित था जैसा कि विचारण न्यायालय ने पाया था, मुकदमे को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि मुकदमा इस प्रकार वर्जित पाया जाता है, तो अपील को खारिज कर दिया जाना चाहिए। **यदि वाद समय बाधित नहीं पाया जाता है, तो अन्य मुद्दों पर प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा।**"

(जोर दिया गया)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिमांड के बाद, सिविल अपील संख्या 23 वर्ष 1980 को निचली अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपने

मूल संख्या पर बहाल कर दिया गया और निचली अपीलीय न्यायालय ने अपने फैसले और आदेश दिनांक 06.09.2011 के द्वारा सिविल अपील संख्या 23 वर्ष 1980 को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 समय बाधित है। निचली अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 1 की गवाही पर भरोसा करते हुए, वादी की इस दलील को खारिज कर दिया कि उसे वसीयत के बारे में वाद पेश किए जाने से छह महीने पहले पता चला था और माना कि वादी को वसीयत के निष्पादन के 3 से 4 दिन बाद इसके बारे में पता चल गया था जब वसीयतकर्ता, यानी बृज लाल ने उसे वसीयत के बारे में बताया और चूंकि वाद वादी को वसीयत के बारे में पता चलने के तीन साल बाद दायर किया गया था, इसलिए वाद परिसीमा द्वारा बाधित था।

अतः, यह वर्तमान द्वितीय अपील है।

अपील की सुनवाई 26.09.2011 को नए मामले के रूप में की गई, जिस दिन इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि वर्तमान अपील में शामिल एकमात्र प्रश्न यह था कि मुकदमा दायर करने की परिसीमा किस तारीख से चलेगी, यानी वसीयत के निष्पादन की तारीख से या वसीयत के पता चलने की तारीख से या निष्पादनकर्ता की मृत्यु की तारीख से। हालाँकि, उक्त तिथि पर अपील को सुनवाई के लिए स्वीकार नहीं किया गया। दिनांक 21.11.2022 को, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि यदि अगली तिथि पर विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को तैयार करके अपील को प्रवेश चरण में ही अंतिम रूप से तय कर दिया जाए तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। दिनांक 21.02.2023 को, जब अपील को सुनवाई के लिए लाया गया, तो इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान अपील में शामिल महत्वपूर्ण प्रश्न न्यायालय के दिनांक 26.09.2011 के आदेश में की गई टिप्पणियों से स्पष्ट है और पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहमति से, दिनांक 21.02.2023 को महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने की कार्यवायी की और उसी तिथि को कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपील की सुनवाई की। अपील को दिनांक 21.2.2023 को ही स्वीकार कर लिया गया और निम्नलिखित महत्वपूर्ण कानून का प्रश्न तैयार किया गया:-

"क्या वसीयत दिनांक 05.08.1972 को रद्द करने हेतु मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978, परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 के आलोक में, परिसीमा द्वारा बाधित थी?"

पक्षकारों को उस महत्वपूर्ण कानून के प्रश्न की जानकारी थी जिस पर अपील में बहस की जानी थी और उपरोक्त महत्वपूर्ण कानून के प्रश्न पर मामले की सुनवाई उसी तिथि को की गई।

अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि परिसीमा अधिनियम, 1963 केए अनुच्छेद 113 के आधार पर, वसीयत को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा उस तारीख से शुरू होती है जिस तारीख को मुकदमा करने का अधिकार प्राप्त होता है और वसीयत को रद्द करने के लिए मुकदमा करने का अधिकार केवल वसीयतकर्ता की मृत्यु पर प्राप्त होगा। यह तर्क दिया गया कि परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद

59 वसीयत को रद्द करने के मुकदमों पर लागू नहीं होता है और निचले न्यायालयों ने परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 के कारण मुकदमे को सीमा बाधित मानकर गलत किया है। यह तर्क दिया गया कि स्वीकार्यतः बृज लाल की मृत्यु दिनांक 5.11.1976 को हुई थी और मुकदमा वसीयतकर्ता की मृत्यु की तारीख से तीन साल के भीतर दायर किया गया था, इसलिए मुकदमा परिसीमा के भीतर था। अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने **वुंडावल्ली रत्ना मणिक्यम और अन्य बनाम वीपीपीआरएन प्रसाद राव 2020 (3) एससीसी 289** में उच्चतम न्यायालय के फैसले का आश्रय लिया है।

अपीलकर्ता के अधिवक्ता की दलील का खंडन करते हुए, प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वसीयत एक पंजीकृत दस्तावेज थी और इसलिए, पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 47 के आधार पर यह इसके निष्पादन की तारीख, यानी दिनांक 05.08.1972 से लागू होगी। यह तर्क दिया गया कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वादी को वसीयत के विषय में निष्पादन के तुरंत बाद पता चला। यह तर्क दिया गया कि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 के आधार पर, वसीयत को रद्द करने का मुकदमा उस तारीख से तीन साल के भीतर दायर किया जाना था, जब वादी को वसीयत रद्द करवाने का अधिकार देने वाले तथ्य पहली बार उसके सामने आए और चूंकि मुकदमा वादी को वसीयत के बारे में पता चलने की तारीख से तीन साल बाद दायर किया गया था, इसलिए वाद सीमा से परे था, और उसे सीमा बाधित मानकर खारिज किया जाना सही था। यह आगे तर्क दिया गया कि मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 को संस्थित करने वाली अपनी शिकायत में वादी ने दलील दी थी कि वाद दायर करने की कार्रवाई का कारण वाद दायर करने से छह महीने पूर्व उत्पन्न हुआ था, अर्थात उस तारीख को जब उसे गांव के ग्राम प्रधान से वसीयत के निष्पादन के बारे में पता चला और इसलिए, वर्तमान मामले में वादी-अपीलकर्ता यह तर्क देने के लिए किसी अन्य आधार की दलील नहीं दे सकता कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था और वाद दायर करने की कार्रवाई का कारण वसीयतकर्ता की मृत्यु पर उत्पन्न हुआ। यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त कारणों से, कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष में और वादी के खिलाफ दिया जाना चाहिए। अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने **जानकी वशदेव भोजवानी एवं अन्य बनाम इंडसइंड बैंक लि. एवं अन्य (एआईआर 2005 एससी 439); बोंदर सिंह एवं अन्य बनाम निहाल सिंह एवं अन्य 2003 (4) एससीसी 161; श्री डी.एम. देशपांडे एवं अन्य बनाम श्री जनार्दन काशीनाथ कदम 1998 (8) एस.सी. 39; राजस्थान राज्य टीपीटी कॉर्पोरेशन. और अन्य बनाम बजरंग लाल (2014) एआईआर एससीडब्लू 2058 और ठाकुर किशन सिंह (मृत) बनाम अरविंद कुमार एआईआर (1995) सुप्रीम कोर्ट 73** में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का आधार

लिया है।

मैंने पक्षों के अधिवक्ताओं की दलीलों पर विचार किया है और निचली अदालत की पत्रावली का भी अवलोकन किया है।

वसीयत दिनांक 05.08.1972 को बृज लाल द्वारा निष्पादित की गई थी और अभिलेखों से पता चलता है कि वसीयत दिनांक 08.08.1972 को पंजीकृत की गई थी। बृज लाल की मृत्यु दिनांक 05.11.1976 को हुई थी। उक्त वसीयत को रद्द करने के लिए दायर मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 दिनांक 04.01.1978 को पंजीकृत किया गया था। उपरोक्त तथ्य पक्षों के बीच स्वीकार किए गए हैं। वादी ने अपने वाद में दावा किया है कि उसे वाद पेश किए जाने से छह महीने पहले वसीयत के बारे में पता चला। वादी के उक्त कथन को प्रतिवादियों द्वारा अस्वीकार किया गया है। निचले न्यायालयों ने भी वादी की उस तारीख के बारे में दलील को स्वीकार नहीं किया है जब उसे वसीयत के बारे में पता चला था और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने माना है कि वादी को वसीयत के निष्पादन के चार से पांच दिन बाद इसके बारे में पता चला जब बृज लाल ने खुद वादी को वसीयत के बारे में सूचित किया था। प्रतिवादी संख्या 1 की गवाही पर भरोसा करते हुए निचली न्यायालय ने उक्त निष्कर्ष दर्ज किए हैं और ये रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर आधारित तथ्यात्मक निष्कर्ष हैं और उपरोक्त निष्कर्षों में कोई विकृति नहीं है। उपरोक्त के मद्देनजर, मैं निचली अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों पर मामले का फैसला करने के लिए आगे बढ़ता हूं कि वादी को बृज लाल की मृत्यु से पहले वसीयत के बारे में जानकारी मिली जब इसके निष्पादन के तुरंत बाद बृज लाल ने उसे वसीयत के बारे में बताया।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2 (एच) 'वसीयत' को एक वसीयतकर्ता की अपनी संपत्ति के संबंध में इरादे की कानूनी घोषणा के रूप में परिभाषित करती है जिसे वह अपनी मृत्यु के बाद लागू करना चाहता है। वसीयत की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि वसीयत केवल वसीयतकर्ता के इरादे की घोषणा है। अपनी संपत्ति के संबंध में वसीयतकर्ता की इच्छा उसकी मृत्यु के बाद प्रभावी होती है। वसीयत अपने स्वभाव के कारण ही खंडन करने योग्य होती है, और वसीयतकर्ता के द्वारा अपनी मृत्यु के पूर्व कभी भी खंडित की जा सकती है। वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान वसीयत में शामिल संपत्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान वसीयत के लाभार्थियों को संपत्तियों का कोई अधिकार नहीं मिलता है। दूसरे शब्दों में, वसीयत में निर्दिष्ट संपत्ति का वितरण वर्तमान में संचालित नहीं होता है, बल्कि भविष्य में वसीयतकर्ता की मृत्यु पर लागू होता है।

मथाई सैमुअल एवं अन्य बनाम ईपेन ईपेन (मृत) द्वारा एलआरएस एवं अन्य एआईआर (2013) एससी 532 में, सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि, "एक वसीयतनामा की आवश्यक गुणवत्ता निष्पादनकर्ता के जीवनकाल के दौरान उसे वापस लिए जा सकने की क्षमता है और ऐसा **दस्तावेज़ अपनी शक्ति और प्रभाव के लिए निष्पादनकर्ता की मृत्यु पर निर्भर है।**

वसीयतनामा की उपरोक्त विशेषताएँ, इसे संपत्ति के उपहार/ समझौते से अलग करती हैं जो कि मौजूदा संपत्ति का स्वैच्छिक और बिना किसी विचार के दाता कहे जाने वाले एक व्यक्ति द्वारा ग्रहीता कहे जाने वाले दूसरे व्यक्ति को और या ग्रहीता द्वारा या उसकी ओर से स्वीकार किया गया हस्तांतरण है। सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि वसीयत के मामले में, महत्वपूर्ण परिस्थिति वसीयतकर्ता की संपत्ति के निपटान या वितरण का उसकी मृत्यु पर प्रभावी होने के प्रावधान, का अस्तित्व है, जबकि दूसरी ओर, उपहार के मामले में, प्रावधान तुरंत प्रभावी हो जाता है और हस्तांतरण वर्तमान में आशयित और प्रभावी होता है। **यह भी देखा गया कि वसीयत के मामले में, संपत्ति के मालिक के जीवनकाल के दौरान कोई हितों का हस्तांतरण नहीं होता है और वसीयत के पंजीकरण मात्र से दस्तावेज़ समझौता नहीं हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, वसीयत के पंजीकरण मात्र से वसीयत में निर्धारित संपत्ति का निपटान वसीयत के निष्पादन पर तुरंत और वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान तत्काल प्रभाव से लागू नहीं हो जाएगा।**

इससे पहले, **ह्यूबर्ट पी. जेम्स बनाम गुलाम हुसैन पाकसीम एआईआर (1949) प्रिवी काउंसिल 151** में, प्रिवी काउंसिल ने देखा कि वसीयत का वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान कोई भी कानूनी प्रभाव नहीं था और जीवित व्यक्ति की वसीयत पर कोई कानूनी अधिकार समर्थित नहीं किया जा सकता है। **ह्यूबर्ट पी. जेम्स (सुप्रा)** में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ क्रमांक 15 और 16 में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियां नीचे प्रस्तुत की गई है: -

"15. यह अजीब है कि भारत में इस मामले से निपटने वाले तीन न्यायाधीशों में से किसी ने भी, और अपीलकर्ता की ओर से नियुक्त किसी भी अधिवक्ता ने, और न ही बोर्ड के समक्ष अपीलकर्ता के मामले पर हस्ताक्षर करने वाले अधिवक्ता ने यह विचार किया कि ***न्यायालय एक जीवित व्यक्ति की वसीयत पर कार्यवायी करते हुए कुछ असामान्य कर रहा था, एक ऐसी वसीयत, जिसे मुकदमे के शुरू होने से पहले ही रद्द कर दिया गया था****। दस्तावेज़ को हर जगह वसीयत के रूप में संदर्भित किया गया था और जाहिर तौर पर इसे उसी तरह की गंभीरता और महत्व का हकदार माना गया था जैसा कि इसे वास्तव में एक वसीयत, यानी एक मृत व्यक्ति की वसीयत होने पर, प्रदान किया जाता।* ***वसीयत, निष्पादक की मृत्यु पर प्रभावी होती है और उसके जीवनकाल के दौरान एक चल दस्तावेज़ है, जिसे किसी भी समय रद्द किया जा सकता है, जिसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं होता है****। यह एक गुप्त और गोपनीय दस्तावेज़ है जिसे निष्पादक को कभी भी पेश करने का आदेश नहीं दिया जाता है। भारत में, जहाँ वसीयत भारतीय पंजीकरण अधिनियम के तहत रजिस्ट्रार के पास जमा की जा सकती है, अधिनियम की शर्तें सुनिश्चित करती हैं कि निष्पादनकर्ता की मृत्यु तक अंर्तवस्तु गुप्त रहेगी।*

16. इस मामले के अलावा माननीय न्यायाधीशों को कोई ऐसा मामला नहीं पता है, और अधिवक्ताओं के उद्योग ने ऐसा कोई मामला पेश नहीं किया है, जिसमें किसी

न्यायालय ने किसी जीवित व्यक्ति की वसीयत पर कानूनी अधिकार स्थापित किया हो या उसका समर्थन किया हो। *हालाँकि अपीलकर्ता, जो अपनी वसीयत को रद्द करने के बाद उसे नष्ट कर सकता था और वसीयत की विषय-वस्तु को प्रकट करने के किसी भी प्रयास का सफलतापूर्वक, माननीय न्यायाधीशों को लगता है, विरोध कर सकता था, ने इनमें से कोई भी रास्ता नहीं अपनाया। उसने बिना किसी आपत्ति के दस्तावेज को साक्ष्य के रूप में पेश करने की अनुमति दी। इन परिस्थितियों में, माननीय न्यायाधीश, इस व्यापक प्रश्न पर कोई राय व्यक्त किए बिना कि क्या किसी जीवित व्यक्ति की वसीयत कभी भी कानूनी दावे का समर्थन करने के लिए प्रासंगिक हो सकती है, प्रतिवादी के तर्क पर इस धारणा के साथ विचार करेंगे कि दस्तावेज में निहित स्वीकृति साबित हुई थी। प्रतिवादी का तर्क है कि यहाँ एक कागज़ का टुकड़ा है जिस पर, अपीलकर्ता के हस्ताक्षर के ऊपर एक तथ्य की स्वीकृति है, और ऐसी स्वीकृति साबित की जा सकती है और उस पर कार्रवाई की जा सकती है, हालाँकि जिस दस्तावेज़ में यह निहित है, उसका शायद वह कानूनी प्रभाव नहीं हो सकता है, जिसका इरादा था।* ***यह मानते हुए कि स्वीकृति सिद्ध हो चुकी है, इसका दायरा, न केवल सभी लिखित स्वीकृतियों के साथ, उस संपूर्ण दस्तावेज़ के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए जिसमें यह प्रकट होता है, बल्कि इस तथ्य के प्रकाश में भी कि दस्तावेज़, स्वीकृति देने वाले व्यक्ति की मृत्यु तक, प्रभावी होने का अभिप्राय नहीं था।*** *इस मामले में जिस स्वीकृति पर भरोसा किया गया है, वह साझेदारी की तिथि या शर्तों या जिन परिस्थितियों में इसे दर्ज किया गया था, के बारे में विशिष्ट नहीं है; यह केवल यह स्वीकार करता है कि साझेदारी का संबंध वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान बना था। माननीय न्यायाधीशों का मानना है कि स्वीकृति केवल यह स्वीकार करने से आगे नहीं जाती है कि अपीलकर्ता की मृत्यु पर प्रतिवादी को उसका भागीदार माना जाना था, और संपत्ति को उस आधार पर वितरित किया जाना था जब तक कि वसीयत को रद्द नहीं किया जाता। माननीय न्यायाधीशों के विचार में वसीयत के खंड 4 को वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले प्रभावी साझेदारी, जिसमें ऐसे संबंध से उत्पन्न होने वाले सभी परिणाम शामिल हैं, के अस्तित्व को स्वीकार करने के रूप में मानने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए माननीय न्यायाधीशों के विचार में अपीलकर्ता की वसीयत का प्रतिवादी के साथ उसके संबंध पर कोई प्रभाव नहीं है।"*

(जोर दिया गया)

जीवित व्यक्ति की वसीयत किसी व्यक्ति के अधिकारों पर आक्रमण नहीं करती है और वसीयत में शामिल संपत्तियों के संबंध में किसी व्यक्ति के पक्ष में कोई हित नहीं सृजित करती है। **चूँकि जीवित व्यक्ति की वसीयत का कोई कानूनी प्रभाव नहीं होता है, इसलिए वसीयतकर्ता के जीवनकाल में इसे रद्द करवाने की कोई आवश्यकता नहीं है।** किसी भी दस्तावेज़ पर महाभियोग लगाने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब वह कानून में प्रभावी हो जाता है। **बद्री बनाम नियादर और उमराव कुंवर और अन्य (1915) XXXVII ILR 422 (इलाहाबाद श्रृंखला)** में मुद्दा यह था कि क्या

किसी उत्तराधिकारी को वसीयत के निष्पादन मात्र से यह घोषणा करने के लिए मुकदमा दायर करने का अधिकार है कि प्रश्नगत वसीयत उसके हित के विरुद्ध शून्य और अप्रभावी है। इस न्यायालय की खंडपीठ ने माना कि वसीयत के निष्पादन मात्र से निकटतम उत्तराधिकारी की ओर से यह घोषणा करने के लिए मुकदमा दायर करने का कारण नहीं बनता है कि वसीयत उसके हित के विरुद्ध शून्य और अप्रभावी है। **उमराव कुंवर (सुप्रा)** में इस न्यायालय की खंडपीठ की टिप्पणियों को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"1. यह एक वादी द्वारा इस दावे के साथ दायर किया गया मुकदमा था कि वह हिंदू कानून के तहत किसी देवा की संपत्ति की अगली उत्तराधिकारी है। उक्त देवा अपनी मृत्यु के बाद अपने पीछे अपनी विधवा उमराव कुँअर छोड़ गया। इस महिला ने देवा की विधवा के रूप में अपनी संपत्ति उक्त देवा के भाई टीका राम, पुत्र नियादर को देते हुए एक वसीयत निष्पादित की है। वसीयत में इस बात का उल्लेख है कि वसीयत देवा द्वारा दिए गए मौखिक निर्देशों के अनुसार की गई है। वादी ने यह घोषणा मांगी थी कि विचाराधीन वसीयत उसके हित के विरुद्ध शून्य और अप्रभावी है, और टीका राम, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 के रूप में शामिल किया गया था, उक्त वसीयत के तहत कोई अधिकार प्राप्त नहीं करेगा। विचारण न्यायालय ने प्रारंभिक बिंदु पर मुकदमा खारिज कर दिया, यह मानते हुए कि उमराव कुँअर द्वारा उसकी संपत्ति का कोई हस्तांतरण नहीं किया गया था, और इन परिस्थितियों में केवल वसीयत का निष्पादन घोषणात्मक डिक्री देने के लिए पर्याप्त कारण नहीं होगा। इसने मुल्ला के हिंदू कानून के सिद्धांत के एक उद्धरण द्वारा खुद को समर्थित किया। अपील पर विद्वान जिला न्यायाधीश ने प्रारंभिक बिंदु पर निष्कर्ष को उलट दिया और मामले को गुण-दोष के आधार पर सुनवाई के लिए वापस भेज दिया। उन्होंने अपना निर्णय जयपाल कुंवर बनाम इंदर बहादुर सिंह (1904) आईएलआर 26 ऑल 238 के रिपोर्टेड मामले पर आधारित किया। यह स्पष्ट है कि उस मामले में प्रिवी काउंसिल के माननीय न्यायाधीशों ने भारत में न्यायालयों के निर्णय को काफी अनिच्छा के साथ बनाए रखा, और सावधानी से खुद को इस बात से बचाया कि यह न समझा जाए कि वर्तमान परिस्थितियों में वसीयत का निष्पादन निकटतम उत्तराधिकारी की ओर से घोषणात्मक वाद के लिए कार्रवाई का कारण बन सकता है। ***निश्चित रूप से इस तरह के मुकदमों को प्रोत्साहित करना इस न्यायालय का चलन नहीं है,*** *द्वारा राम भजन और अन्य बनाम गुरचरण (1904) 1 एएलजेआर 468। इसके अलावा, विद्वान जिला न्यायाधीश अपने द्वारा उद्धृत प्रिवी काउंसिल के फैसले का पालन करने का दावा करते हुए, वास्तव में विचारण न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करके उस फैसले की भावना से विमुख हो गए हैं। हमारा मानना है कि विद्वान अतिरिक्त अधीनस्थ न्यायाधीश ने वादी द्वारा मांगी गई घोषणा को देने से मना करके सही किया और अपने निर्णय के लिए अच्छे कारण बताए। हम निचली न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं और मुकदमे को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय के*

फैसले को बहाल करते हैं। प्रतिवादी-अपीलकर्ता इस न्यायालय और निचली अपीलीय न्यायालय में अपनी लागत प्राप्त करेंगे।"

(जोर दिया गया)

एमस्ट. बोलो बनाम एमस्ट. कोकलान एआईआर (1930) प्रिवी काउंसिल 270 में प्रिवी काउंसिल द्वारा यह देखा गया था कि तब तक मुकदमा करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता जब तक कि मुकदमे में बताए गए अधिकार का उपार्जन न हो और उसका उल्लंघन न हो या कम से कम प्रतिवादी, जिसके खिलाफ मुकदमा दायर किया गया है, द्वारा उस अधिकार के उल्लंघन की स्पष्ट या असंदिग्ध धमकी न दी जाए। उक्त सिद्धांत का पालन प्रिवी काउंसिल ने **अन्नामलाई चेट्टियार बनाम एएमकेसीटी मुथुकरुप्पन चेट्टियार एआईआर (1931) प्रिवी काउंसिल 9** में और बाद में उच्चतम न्यायालय ने **एमस्ट. रुखमाबाई बनाम लाला लक्ष्मीनारायण एआईआर (1960) उच्चतम न्यायालय 335** में किया। **एमस्ट. रुखमाबाई (सुप्रा)** में, उच्चतम न्यायालय ने **एमस्ट बोलो (सुप्रा)** में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों का सन्दर्भ देने के बाद और परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120, जो कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 113 के अनुरूप है, पर विचार करते समय, देखा कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120 के तहत मुकदमा करने का अधिकार तब प्राप्त होता है जब **प्रतिवादी** ने स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से वादी द्वारा मुकदमे में बताए गए अधिकार का उल्लंघन करने की धमकी दी हो। यह भी देखा गया कि किसी पक्ष द्वारा इस तरह के अधिकार के विरुद्ध हर धमकी, चाहे वह कितनी भी अप्रभावी और अहानिकर क्यों न हो, उसे स्पष्ट और असंदिग्ध धमकी नहीं माना जा सकता जिससे कि वह मुकदमा दायर करने के लिए मजबूर हो जाए। उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर टिप्पणी की कि क्या कोई विशेष धमकी कार्रवाई के लिए अनिवार्य कारण को जन्म देती है, यह इस सवाल पर निर्भर करता है कि क्या वह धमकी प्रभावी रूप से उक्त अधिकार पर आक्रमण करती है या उसे खतरे में डालती है।

एमस्ट रुखमाबाई (सुप्रा) के पैराग्राफ क्रमांक 31, 32 और 33 में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियां निम्नलिखित हैं:-

"31. सीमा के प्रश्न पर तर्क इस प्रकार दिया गया है: वादी, यहाँ पर प्रतिवादी, को ट्रस्ट डीड के धोखाधड़ीपूर्ण चरित्र का ज्ञान 1917 में ही था, या किसी भी स्थिति में, रुखमाबाई और चंदनलाल के बीच वर्ष 1929 में शुरू किए गए विभाजन के वाद के लंबित रहने के दौरान था, और 1940 में दायर किया गया मुकदमा, स्वीकार्य रूप से उक्त ज्ञान के छह वर्ष बाद, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120 के अंतर्गत वर्जित होगा। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120 में लिखा है:

मुकदमे का विवरण	*सीमा की अवधि*	*वह समय जब से अवधि प्रारंभ होती है*
120. मुकदमा जिसके लिए कोई अन्य विधान नहीं है	*छह वर्ष*	*जब मुकदमा करने का अधिकार प्राप्त*

लिए इस अनुसूची में होता है।

कहीं और, सीमा की अवधि प्रदान नहीं की गई है।

यह अनुच्छेद न्यायिक समिति के साथ-साथ विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा के अधीन था। इस विषय पर अग्रणी निर्णय माउंट बोलो बनाम माउंट कोकलान, 57 इंड ऐप 325 पृष्ठ 331 पर: (एआईआर 1930 पीसी 270 पृष्ठ 272 पर) के मामले में न्यायिक समिति का है। इसमें, सर बेनोड मिटर ने टिप्पणी की:

"मुकदमा करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता है जब तक कि प्रतिवादी, जिसके खिलाफ मुकदमा शुरू किया गया है, द्वारा मुकदमे में दावा किए गए अधिकार का संग्रहण और उसका उल्लंघन न हो, या कम से कम उस अधिकार का उल्लंघन करने की स्पष्ट और असंदिग्ध धमकी न हो।"

32. उक्त सिद्धांत को न्यायिक समिति ने अन्नामलाई चेट्टियार बनाम मुथुकरुप्पन चेट्टियार, आईएलआर 8 रंग 645: (एआईआर 1931 पीसी 9) और गोबिंद नारायण सिंह बनाम शाम लाल सिंह, 58 इंड ऐप 125: (एआईआर 1931 पीसी 89) में दोहराया और उसका पालन किया। अगला सवाल यह है कि अगर किसी अधिकार पर लगातार आक्रमण या इनकार किया जाता है, तो यह कब माना जा सकता है कि किसी व्यक्ति के अधिकार को स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से धमकी दी गई है ताकि वह उस अधिकार को स्थापित करने के लिए मुकदमा दायर करने के लिए मजबूर हो जाए। पोथुकुची अप्पा राव बनाम राज्य सचिव, एआईआर 1938 मद 193 पृष्ठ 198 में, मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ को उक्त प्रश्न पर विचार करना पड़ा। उस मामले में, संबंधित निर्णयों पर विचार करने के बाद, न्यायमूर्ति वेंकटसुब्बा राव ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार व्यक्त किया:

"कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो कहता है कि जिस क्षण किसी व्यक्ति के अधिकार को अस्वीकार किया जाता है, वह अपने जोखिम पर घोषणा के लिए मुकदमा दायर करने के लिए बाध्य है। *सरकार ने आदेश पारित करने के अलावा वादी के कब्जे को बाधित करने के लिए कुछ भी नहीं किया।* ***यह मानना सबसे अनुचित होगा कि किसी व्यक्ति के स्वामित्व का केवल खंडन, यहां तक कि किसी प्रत्यक्ष कार्य के बिना, उसे घोषणात्मक वाद दायर करने के लिए बाध्य करेगा।"***

उन्होंने पृष्ठ 199 पर जोड़ा:

"यह एक अधिक कठिन प्रश्न है, कि चोट या उल्लंघन की सीमा क्या है, जो, जिसे एक अनिवार्य कार्रवाई का कारण कहा जा सकता है, को जन्म देती है?"

33. कानूनी स्थिति को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है: परिसीमा अधिनियम के

अनुच्छेद 120 के तहत मुकदमा दायर करने का अधिकार तब प्राप्त होता है जब प्रतिवादी ने मुकदमे में वादी द्वारा दावा किए गए अधिकार का उल्लंघन करने की स्पष्ट और सुबोध रूप से धमकी दी हो। ***ऐसे अधिकार के विरुद्ध किसी पक्ष द्वारा दी गई हर धमकी, चाहे वह कितनी भी अप्रभावी और अहानिकर क्यों न हो, उसे स्पष्ट और असंदिग्ध धमकी नहीं माना जा सकता है, जिससे वह मुकदमा दायर करने के लिए मजबूर हो जाए। क्या कोई विशेष धमकी अनिवार्य कार्रवाई के कारण को जन्म देती है, यह इस सवाल पर निर्भर करता है कि क्या वह धमकी प्रभावी रूप से उक्त अधिकार पर आक्रमण करती है या उसे खतरे में डालती है।"***

(जोर दिया गया)

मेदा बीबी बनाम इमामन बीबी एवं अन्य 1884 (6) आईएलआर 207 (इलाहाबाद सीरीज) (पूर्ण पीठ) में, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या उपहार को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा उस तिथि से शुरू होगी, जिस दिन उपहार निष्पादित किया गया था, हालांकि दाता द्वारा गृहीता को कब्ज़ा नहीं दिया गया था या उपहार पर अतिक्रमण करने का अधिकार तब अर्जित होगा, जब यह कानून में प्रभावी हो जाएगा, यानी, दाता को उसका कब्ज़ा दिए जाने के बाद। **मेदा बीबी (सुप्रा)** में, दाता अपनी मृत्यु तक स्वामित्व में रहा और इसलिए, संपत्ति का कब्ज़ा दाता की मृत्यु के बाद गृहीता को दिया गया। पूर्ण पीठ ने माना कि मुकदमे को सीमा द्वारा वर्जित मानने से पहले, यह देखा जाना चाहिए कि क्या कथित उपहार दाता के जीवनकाल के दौरान कभी कानून में प्रभावी हुआ था ताकि वादी को न्यायालय में आने के लिए कार्रवाई का पूरा कारण मिल सके। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना कि उपहार को चुनौती देने का अधिकार वादी के पक्ष में तभी उत्पन्न होता है जब गृहीता द्वारा कब्जा प्राप्त करने के बाद, उपहार कानून में प्रभावी हो गया। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ की टिप्पणियों को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"हमें ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधीश ने इसके निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण तथ्यों का पर्याप्त रूप से पता लगाए बिना ही सीमा की दलील को स्वीकार कर लिया है।

मुकदमे को वर्जित मानने से पहले, उनके लिए यह आवश्यक था कि वे इस बात का पता लगा लें कि गुलाम गौस द्वारा कथित उपहार उनके जीवनकाल में कभी कानून के रूप में प्रभावी हुआ था या नहीं, ताकि वादी को न्यायालय में आने के लिए कार्रवाई का पूरा कारण मिल सके। उनका मामला यह है कि गुलाम गौस अपनी मृत्यु तक उस साधन द्वारा आवृत की गई पूरी संपत्ति के कब्जे में रहे, और उस पर कोई भी कब्जा, जैसा कि मुस्लिम कानून द्वारा लेनदेन को कानूनी और बाध्यकारी बनाने के लिए आवश्यक है, गृहीता द्वारा कभी भी उनके जीवित रहने तक प्राप्त नहीं किया गया। यह जरूरी नहीं है कि क्योंकि कथित उपहार विलेख एक विशेष तिथि पर था, परिसीमा अधिनियम की धारा 91 के तहत समय वादी के खिलाफ तुरंत बीतने लगा। ***उस पर***

महाभियोग लगाने का उनका अधिकार केवल उस क्षण से ही प्राप्त हो सकता था, जब कब्जे की प्राप्ति के द्वारा, यह कानून में प्रभावी हो गया था। *चूंकि मामले के इस दृष्टिकोण में न्यायाधीश ने न केवल प्रारंभिक बिंदु पर मुकदमे का निपटारा किया है, बल्कि अपर्याप्त सामग्रियों के आधार पर उस बिंदु का निर्धारण किया है, इसलिए हमारे पास इस अपील को स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, और मामले को संहिता की धारा 562 के तहत उनके पास वापस भेजते हुए, हम उन्हें निर्देश देते हैं कि वे इसे लंबित अपीलों की अपनी फाइल में वापस रखे और कानून के अनुसार इसका निपटारा करें। इस न्यायालय में अपील की लागत मामले में लागत होगी।"*

(जोर दिया गया)

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जीवित व्यक्ति की वसीयत किसी व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन नहीं करती है और किसी व्यक्ति के पक्ष में कोई कानूनी हित नहीं बनाती है। इस प्रकार, वसीयत को रद्द करने के लिए मुकदमा करने का कोई अधिकार वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान किसी भी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता है। वसीयत को, वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद, उस व्यक्ति द्वारा चुनौती दी जा सकती है जिसके विरुद्ध वसीयत कार्य करती है और उक्त मामले में, वसीयत का बचाव वसीयत के लाभार्थियों द्वारा किया जाएगा जो स्पष्ट रूप से मुकदमे में प्रतिवादी होंगे। प्रिवी काउंसिल और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को पढ़ने से पता चलता है कि वसीयत को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर करने हेतु कार्यवायी का कारण वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले उत्पन्न नहीं होगा। किसी दस्तावेज़ को रद्द करने का कारण तभी पूरा होगा जब दस्तावेज़ पक्षों के कब्जे या स्वामित्व के अधिकारों को प्रभावित करता हो। वसीयत का लाभार्थी वसीयत में शामिल संपत्तियों के संबंध में और वसीयत के आधार पर अपने अधिकार का दावा केवल वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद ही कर सकता है और केवल तभी, लाभार्थी वसीयत में शामिल संपत्तियों के संबंध में वादी के अधिकार पर आक्रमण करेगा या आक्रमण करने की धमकी देगा।

परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 59 वसीयतनामा के मामलों में लागू नहीं होता है और ऐसे मामलों में अनुच्छेद 113 लागू होता है। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 59 और 113 नीचे प्रस्तुत किये गए हैं:-

वाद का विवरण	*सीमा की अवधि*	*वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होना शुरू होती है*
59. किसी अनुबंध के निरसन या रद्द या निरस्त के लिए किसी साधन या डिक्री को रद्द करने का अधिकार देने को रद्द या निरस्त रखना।	*तीन साल*	*जब वादी को साधन या डिक्री को रखने या अनुबंध को वाले तथ्य पहली बार उसे ज्ञात होते हैं।*
वाद का विवरण	*सीमा की अवधि*	*वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होना शुरू होती है।*
113. कोई भी वाद जिसके लिए इस अधिनियम द्वारा कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है।	*तीन साल*	*जब वाद दायर करने का अधिकार प्राप्त होता है।*

लिए इस अनुसूची में कहीं

और सीमा की अवधि प्रदान

नहीं की गई है।

जैसा कि पूर्व में ही स्थापित किया गया है, वादी के पक्ष में मुकदमा दायर करने का अधिकार केवल वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद ही उत्पन्न होता है, और इसलिए वसीयत के मामलों में अनुच्छेद 113 लागू होता है। वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले वसीयत के निष्पादन का ज्ञान यह तय करने के लिए प्रासंगिक नहीं है कि वसीयत को रद्द करने का मुकदमा क़ानून द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर शुरू किया गया था या नहीं। इस स्तर पर, **इबाद अली बनाम साजिद अली और अन्य 1895 आईएलआर 23 पीसी 1** में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों का संदर्भ देना प्रासंगिक होगा जिसमें यह देखा गया था कि परिसीमा अधिनियम, 1877 की अनुसूची 2 का अनुच्छेद 91 जो वर्तमान परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 के अनुरूप है, वसीयत के मामले में कहीं लागू नहीं होता है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"9. इस अपील की सुनवाई के समय अपीलकर्ता के अधिवक्ता, माननीय न्यायाधीशों की राय में, जिला न्यायाधीश द्वारा पहली बार सुझाए गए, कार्यवाही पर रोक लगाने की दलील पर जोर न देने के लिए, अच्छी तरह से सलाह देकर एकमत किए गये थे। **परिसीमा अधिनियम 1877 की अनुसूची II के अनुच्छेद 91, माननीय न्यायाधीशों की नज़र में, वसीयत के मामले में कहीं लागू नहीं होता है।** दूसरी ओर, प्रतिवादी ने अपनी प्रति-अपील को उठाया या उस पर जोर नहीं दिया, जो यह सवाल उठाने के उद्देश्य से लाई गई थी कि क्या मृतक को अपने उत्तराधिकारी के प्रति पक्षपात में, या तो मुस्लिम कानून या 1869 के अधिनियम I के माध्यम से, वसीयत द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान करने से रोका गया था।"

(जोर दिया गया)

प्रिवी काउंसिल की उपरोक्त टिप्पणियों को **फिरोज और अन्य बनाम सुल्तान सुर्खरू एआईआर (1926) लाहौर 635** में लाहौर के उच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया था, जिसमें उच्च न्यायालय ने माना कि वसीयत रद्द करने के मामले में, सीमा अधिनियम, 1887 का अनुच्छेद 120 लागू होगा जो कि वर्तमान परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 113 के अनुरूप है। लाहौर उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 7 में की गई टिप्पणियों को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

*"7. सीमा का प्रश्न बना हुआ है। **साजिद बनाम इबदाद (1986) 23 कैल 1 में प्रिवी काउंसिल में माननीय न्यायाधीशों द्वारा यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 91 वसीयत को नियंत्रित नहीं करता है। यह सच है, जैसा कि अधिवक्ता ने बताया, कि यह इस अर्थ में एक आज्ञाकारी कथन था कि प्रश्न पर विवाद नहीं किया गया था, लेकिन माननीय न्यायाधीशों का कहना है कि वादी ने समझबूझकर इस अनुच्छेद पर भरोसा करने से परहेज किया क्योंकि यह वसीयत के मामले में***

लागू नहीं होता। *इसके अलावा राय की अभिव्यक्ति और अनुच्छेद के शब्दों से ही बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। अनुच्छेद 91 लागू नहीं होने और मुकदमा मुख्य रूप से वसीयत को रद्द करने के लिए होने से अनुच्छेद 120 लागू हुआ। वादी ने यहां कहा है कि उसे मुकदमा दायर होने के छह साल के भीतर वसीयत के बारे में पता था, लेकिन दुर्भाग्य से उसके लिए यह तर्क वाद में निहित कथनों से ही असंभव हो जाता है, जहां यह कहा गया है कि मेहरा की मृत्यु पर संपत्ति के आधे भाग के लिए उत्तराधिकार परिवर्तन का प्रतिवादियों का आवेदन वादी के स्वयं के पिता की आपत्ति के कारण खारिज हो गया था। वादपत्र के पिछले पैराग्राफ में पंजीकृत वसीयत के निष्पादन के तथ्य का उल्लेख किया गया है, इसलिए वादी के स्वयं के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि उसे अपने वाद के शुरू होने से लगभग नौ वर्ष पहले ही इसकी जानकारी थी और इसलिए उसका वाद समय बाधित है।"*

(जोर दिया गया)

मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 वसीयतकर्ता की मृत्यु के तीन वर्ष के भीतर दायर किया गया था। बृज लाल की वसीयत में वादी को शामिल नहीं किया गया था और वसीयत को रद्द करने के लिए वाद संस्थित करने हेतु कार्यवायी का कारण वादी के पक्ष में वसीयतकर्ता बृज लाल की मृत्यु तक उत्पन्न नहीं हुआ था। वाद संपत्ति में वादी के अधिकारों पर पहली बार प्रतिवादी संख्या 2 से 6 द्वारा तब आक्रमण किया गया था, जब उन्होंने बृज लाल की वसीयत के आधार पर राजस्व अभिलेखों में अपना नाम परिवर्तित करवाया था। किसी भी स्थिति में, वसीयत को रद्द करने के लिए वाद संस्थित करने का कारण वादी के पक्ष में दिनांक 05.11.1976 से पहले उत्पन्न नहीं हो सकता था और वसीयत को रद्द करने के लिए वाद, परिसीमा अधिनियम की धारा 113 के तहत, दिनांक 04.11.1979 तक के समय के भीतर होना चाहिए था। वाद दिनांक 04.01.1978 को पंजीकृत किया गया था। जाहिर है, मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 समय के भीतर दायर किया गया था।

प्रतिवादी- प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 को संस्थित करने वाली अपनी शिकायत में वादी ने दलील दी थी कि वाद दायर करने का कारण वाद दायर करने से छह माह पूर्व उत्पन्न हुआ था, अर्थात वह तारीख जब उसे गांव के ग्राम प्रधान से वसीयत के निष्पादन के बारे में पता चला और इसलिए वाद सीमा अवधि के भीतर था या नहीं, इस बात पर उपरोक्त दलीलों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए न कि वादी के इस तर्क पर कि वाद सीमा अवधि के भीतर था क्योंकि वाद दायर करने का कारण वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुआ था।

मैं प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के अधिवक्ता की उपरोक्त दलील से सहमत नहीं हूं। **राज कुमार जैन एवं अन्य बनाम श्रीमती जगवती देवी एवं अन्य एआईआर (1980) इलाहाबाद 225** में इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह माना था, कि सीमा अवधि की गणना करते समय, वाद-पत्र को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि कारण किस तिथि को उत्पन्न हुआ और वाद-पत्र में वर्णित

कार्यवायी के कारण की तिथि से वादी को बांधा नहीं जा सकता। उपर्युक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने वसीयत द्वारा उल्लंघन किए गए अधिकारों की घोषणा के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा पर चर्चा करते हुए कहा कि ऐसा मुकदमा दायर करने की सीमा उस तिथि से गिनी जाएगी जब प्रतिवादियों ने वसीयत का प्रोबेट प्राप्त किया था। इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पैराग्राफ संख्या 18 और 19 में की गई टिप्पणियों को नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

"18. हो सकता है कि प्रतिवादियों ने, वादीगण के ज्ञान में, राम कटोरी की मृत्यु पर यह दावा किया हो कि वे राम कटोरी द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर विवादित संपत्ति के हकदार थे और उनके अनुसार वादीगण उसके मालिक नहीं थे, ***यह इनकार अपने आप में उन वादीगण के अधिकारों का उल्लंघन करने की उनकी ओर से स्पष्ट धमकी नहीं थी, जो राम कटोरी की मृत्यु के बाद स्वीकार्य रूप से संपत्ति के कब्जे में थे। जैसा कि रुखमा बाई के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा गया है, कि वह धमकी जिसके परिणामस्वरूप मुकदमा दायर करने का अधिकार प्राप्त होता है, वह वादीगण द्वारा मुकदमे में दावा किए गए अधिकार का उल्लंघन करने की स्पष्ट धमकी होनी चाहिए। मामले की परिस्थितियों में वादीगण के अधिकारों का उल्लंघन करने की वास्तविक धमकी तब उत्पन्न हुई, जब प्रतिवादियों ने 26 अक्टूबर, 1961 को वसीयत का प्रोबेट सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया और इस बात की संभावना थी कि उस प्रोबेट के अनुसरण में वे वादीगण के अधिकारों में हस्तक्षेप करने के लिए कदम उठाएंगे।*** *इन परिस्थितियों में वादी द्वारा 26 अक्टूबर 1961 के 6 वर्षों के भीतर दायर किया गया घोषणात्मक वाद पूरी तरह से सीमा अवधि के भीतर था।*

19. ***तब अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि वादी ने स्वयं वाद में उल्लेख किया था कि वाद दायर करने का कारण 30 अक्टूबर 1955 को उत्पन्न हुआ था, इसलिए उन्हें उस कथन के पीछे जाने और उस तारीख से सीमा अवधि का दावा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, जिस दिन प्रतिवादी ने जिला न्यायाधीश, मेरठ की न्यायालय से प्रोबेट प्राप्त किया था। हम इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।*** *जैसा कि फतेह अली शाह बनाम मोहम्मद बख्श एआईआर 1928 लाह 516 के मामले में लाहौर उच्च न्यायालय ने माना था कि* ***सीमा अवधि की गणना करने में, उस तारीख जिस दिन वाद दायर करने का कारण उत्पन्न हुआ था, का पता लगाने के उद्देश्य से, वाद को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए, और वादियों को वाद में उल्लिखित कार्यवायी के कारण की तारीख से नहीं बांधा जाना चाहिए।*** *इस मामले में, हम पाते हैं कि संपूर्ण शिकायत और विशेष रूप से इसके पैरा 12 और 13 को पढ़ने से पता चलता है कि वादीगण के अनुसार उनके अधिकारों के उल्लंघन का खतरा तब पैदा हुआ जब दिनांक 28-10-1961 को प्रतिवादियों ने जिला न्यायाधीश, मेरठ की न्यायालय से राम कटोरी द्वारा निष्पादित दिनांक 26 अक्टूबर,*

1955 की वसीयत का प्रोबेट सफलतापूर्वक प्राप्त किया। इसलिए, उस तारीख से 6 साल के भीतर दायर किया गया मुकदमा स्पष्ट रूप से सीमा के भीतर था।

(जोर दिया गया)

इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणियों के प्रकाश में मुकदमा शुरू करने के लिए कार्रवाई के कारण के बारे में प्रतिवादी- प्रत्यर्थी के अधिवक्ता का तर्क स्वीकार्य नहीं है।

प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि वसीयत एक पंजीकृत दस्तावेज थी और इसलिए, पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 47 के मद्देनजर, वसीयत इसके निष्पादन की तारीख से लागू होनी चाहिए, न कि वसीयतकर्ता की मृत्यु की तारीख से। इस तर्क को बिना किसी चर्चा के सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाना चाहिए। वसीयत का संचालन भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 द्वारा नियंत्रित होता है, न कि पंजीकरण अधिनियम, 1908 द्वारा। पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 के तहत वसीयत का पंजीकरण अनिवार्य नहीं है। यह बताना पर्याप्त है कि पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 वसीयतनामा पर लागू नहीं होती है। प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के अधिवक्ता चाहते हैं कि न्यायालय एक हास्यास्पद स्थिति के अस्तित्व पर विश्वास करे जहां वसीयतनामा द्वारा संपत्ति का निपटान, जो यह बताता है कि वसीयत में शामिल संपत्ति वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद लाभार्थियों को हस्तांतरित हो जाएगी, वसीयत के निष्पादन की तारीख से लागू होगी, यानी वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले लागू होगी और इस तरह संपत्ति का हस्तांतरण वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले होगा। यदि प्रतिवादियों के अधिवक्ता का तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो एक पंजीकृत वसीयत इसके निष्पादन की तारीख से प्रभावी होगी और एक अपंजीकृत वसीयत वसीयतकर्ता की मृत्यु की तारीख से प्रभावी होगी। ऐसी स्थिति की मूर्खता स्वयं स्पष्ट है और इसे और अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

1902 में, वसीयतकर्ता के जीवनकाल के दौरान एक वसीयत को रद्द करने के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में एक सिविल न्यायालय में एक मुकदमा दायर किया गया था। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **1905 आईएलआर 27 (इलाहाबाद सीरीज) 14 में रिपोर्ट किए गए रामभजन कुंवर और अन्य बनाम गुरचरण कुंवर** में इस वाद को हास्यास्पद बताया है। इस न्यायालय की खंडपीठ की टिप्पणियां नीचे प्रस्तुत की गई हैं:-

"जिस मुकदमे से यह अपील उत्पन्न हुई है, वह हास्यास्पद है। वादी ने प्रतिवादी संख्या 1, एक जीवित व्यक्ति की वसीयत को रद्द करने के लिए यह मुकदमा दायर किया है। *लिखित बयान में प्रतिवादियों ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया कि इस तरह की राहत का दावा करने वाला मुकदमा कायम नहीं रह सकता।* ***एक जीवित व्यक्ति की वसीयत तब लागू नहीं होती जब उसे***

निष्पादित किया जाता है, बल्कि केवल उसकी मृत्यु के बाद ही लागू होती है। *जब तक वसीयतकर्ता जीवित है, वह किसी भी समय अपनी वसीयत को रद्द कर सकता है और अपनी संपत्ति का पूरी तरह से अलग निपटान कर सकता है। यह शक्ति उसके पास उसकी मृत्यु के समय तक रहती है, बशर्ते कि वह उस समय वैध वसीयत निष्पादित करने में सक्षम हो।* ***यह तर्क देना बेकार है कि कोई पक्ष न्यायालय में आकर जीवित व्यक्ति की वसीयत को सफलतापूर्वक रद्द करने का दावा कर सकता है। दुर्भाग्य से विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश की राय अलग थी। अपने फैसले में उन्होंने पाया कि वसीयत को रद्द करने का मुकदमा कायम रह सकता है। इसमें हम उनसे पूरी तरह सहमत नहीं हो सकते हैं।*** *वादी प्रत्यर्थी, जिसने निचली अदालत में डिक्री प्राप्त की है, के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि अपील के ज्ञापन में यह प्रश्न नहीं उठाया गया था। हालाँकि, यह ऐसा मामला है जिस पर न्यायालय ध्यान देने के लिए बाध्य है और जो किसी भी अधिवक्ता के लिए स्पष्ट है या स्पष्ट होना चाहिए। हम अपील स्वीकार करते हैं, निचली न्यायालय की डिक्री को खारिज करते हैं और सभी न्यायालयों में लागत के साथ मुकदमा खारिज करते हैं।"*

(जोर दिया गया)

यदि वादी अपीलकर्ता ने बृजलाल के जीवनकाल में ही वसीयत को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर किया होता, जो दस्तावेज बृजलाल द्वारा रद्द किया जा सकता था, तो उक्त मुकदमा हास्यास्पद होता, जैसा कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने **रामभजन कुंवर (सुप्रा)** में कहा है। वादी-अपीलकर्ता को हास्यास्पद मुकदमा दायर न करने के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता। इस न्यायालय की खंडपीठ ने 1904 में, यानी लगभग 120 साल पहले फैसला सुनाया था। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि निचली न्यायालय और निचली अपीलीय न्यायालय ने वादी को हास्यास्पद मुकदमा दायर न करने के लिए अयोग्य ठहराया है। निचली न्यायालयों के फैसले और डिक्री कानून के विपरीत हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं।

ऊपर दिए गए कारणों के मद्देनजर प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित न्यायिक मिसालें वर्तमान मामले में प्रासंगिक नहीं हैं और उन पर चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

अपील **स्वीकार की जाती है**। तदनुसार, विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर दिया जाता है।

मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय के दिनांक 20.11.1976 के निर्णय और डिक्री के साथ-साथ सिविल अपील संख्या 23 वर्ष 1980 को खारिज करने वाले निचली अपीलीय न्यायालय के दिनांक 06.09.2011 के निर्णय और आदेश को, एतद्द्वारा, निरस्त किया जाता है।

सिविल अपील संख्या 2815 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 16.04.2008 के अपने निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के मद्देनजर, अपील संख्या 23

वर्ष 1980 में निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.09.1983 के निर्णय और डिक्री को बहाल किया जाता है और परिणामस्वरूप मूल वाद संख्या 13 वर्ष 1978 को निर्णित किया जाता है।

पक्षकारों को अपना खर्च स्वयं वहन करना होगा।

(2023) 5 ILRA 1782

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

द्वितीय अपील संख्या 813/1975

श्रीमती फ़ारूक़ी बेगम ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री सुनील गुप्ता, श्री अमित कृष्ण, श्री अनिल कृष्ण, श्री के.पी. उपाध्याय, श्री एम.के. पांडे, श्री मुरलीधर, श्री आर.पी. सिंह, श्री रविकांत, श्री एस.सी. अग्रवाल, श्री एस.पी. गुप्ता, श्री एस.पी. सिंह, श्री वी.डी. ओझा, श्री अश्वथ सीतारमन, सुश्री प्रज्ञा पांडे, श्री मेहुल, सुश्री नित्या रामकृष्णन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: एस.सी.

सिविल कानून- उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950-विवादित बाग का स्वामी होने की घोषणा के लिए तथा प्रतिवादी अपीलकर्ता को उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद-अनुदान केवल फारूकी बेगम के उपयोग और लाभ के लिए तथा केवल फारूकी बेगम के जीवनकाल के लिए किया गया था तथा यह विरासत में नहीं मिला था- प्रतिवादी अपीलकर्ताओं ने राजस्व कानूनों या तत्कालीन रामपुर सेंट के नियमों के तहत अपने पक्ष में विधिवत बनाए गए अधिकारों का कोई रिकॉर्ड दाखिल नहीं किया है, जिसमें उनके नाम मध्यस्थ के रूप में दर्ज हों-फारूकी बेगम के पास केवल अपने जीवनकाल के लिए उपयोग और उपभोग का अधिकार था, इससे अधिक कुछ नहीं- ऐसा पाया गया कि रामपुर सेंट के पुराने राजस्व कानूनों के तहत उनके पास कोई अधिकार नहीं था, जिसे यूपीजेडए और एलआर अधिनियम के तहत भूमिधरी या अन्य अधिकार के रूप में परिवर्तित किया जा सके। (पैरा 14, 19 और 20)

अपील खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

मोहसिन अली बनाम म0प्र0 राज्य व अन्य (1975) 2 एससीसी 122।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के तरफ से वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री नित्या रामकृष्णन को उनके सहायक श्री अश्वथ सीतारमन, सुश्री प्रज्ञा पांडे, श्री मेहुल व अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह के साथ स्थायी अधिवक्ता श्री ऋषिकांत को सुना और अभिलेखो का अवलोकन किया।

2. वाद पत्र के कथन के अनुसार मामले के तथ्य यह हैं कि बाग हुजूर पसंद का 20 बीघा 10 बिस्वास (पुख्ता)

3. स्थित ग्राम थोटर, तहसील सदर, जिला रामपुर दिनांक 17.04.1924 के एक विलेख पत्र द्वारा रामपुर रियासत के नवाब महामहिम नवाब हामिद अली खान की बेगमों में से एक विपक्षी अपीलार्थी फारूकी बेगम को अनुदान के रूप में दिया गया था। इसी तरह के अनुदान नवाब की अन्य बेगमों के पक्ष में भी दिए गए थे। उक्त अनुदान स्वेच्छा से फिर से शुरू किए गए और 1930 में नवाब हामिद अली खान की मृत्यु के बाद, उनके उत्तराधिकारी नवाब रज़ा अली खान ने अपने पिता की सभी विधवाओं के पक्ष में सभी अनुदान फिर से शुरू कर दिए, जिसमें फारूकी बेगम का अनुदान भी शामिल था।कब्ज़ा राज्य के अधिकारियों द्वारा ले लिया गया था और इसे संबंधित कागजात में विधिवत दर्ज किया गया था और इस प्रकार, संबंधित उपवन राज्य (शमिल खलासा) के नाम पर दर्ज किया गया था।फारूकी बेगम और उनके नौकरों ने, राजस्व अधिकारियों के साथ मिलीभगत के माध्यम से, उनका नाम पटवारी के अभिलेखमें दर्ज कर लिया, हालांकि, वह कब्जे से बाहर थी और उसकी प्रविष्टि रजिस्टर मुआफियात में पहले से ही की गई थी, जो विशेष रूप से इस उद्देश्य के लिए पूर्व रामपुर राज्य द्वारा बनाए रखा गया था। विलय के समय भूमि अंततः उ.प्र राज्य में निहित हो गई और उ.प्र राज्य का बागवानी विभाग अपने बहार को बेच रहा है। प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने राजस्व अभिलेख में अवैध रूप से दर्ज अपने नाम के आधार पर राज्य के कब्जे में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया और अपने स्वामित्व का दावा कर रही थी। उ.प्र राज्य ने राजस्व अभिलेख में सुधार के लिए कदम उठाए लेकिन इसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि संक्षिप्त कार्यवाही में यह संभव नहीं है क्योंकि यह लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि है। इस प्रकार, उ.प्र राज्य ने यह घोषित करने के लिए कि वह विवादित उपवन का मालिक है और प्रतिवादी-अपीलकर्ता को इसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए एक स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वर्तमान मुकदमा दायर किया। इसने हर्जाना/मीनस लाभ का भी दावा किया और बदले में कब्जे के लिए प्रार्थना की, यदि यह कब्जे से बाहर पाया जाता है। एकमात्र प्रतिवादी फारूकी बेगम ने लिखित बयान दायर कर वाद के आरोपों से इनकार किया, सिवाय इसके कि राजस्व न्यायालय के समक्ष कार्यवाही उसके पक्ष में समाप्त हुई और दावा किया कि वह 1924 से लगातार कब्जे में है। उसने 1924 के विलेख के आधार पर उ.प्र जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उ.प्र. ज. उ. और भू सु अधिनियम, 1950) के विस्तार से पहले भी स्वामित्व का दावा किया था। इसके अलावा, रामपुर राज्य के

विस्तार के बाद उन्होंने भूमिधर के अधिकार हासिल करने का दावा किया। उन्होंने यह भी दावा किया कि लड्डन खान के खिलाफ निष्कासन की कार्यवाही उनके द्वारा शुरू की गई थी, और चूंकि राज्य एक पार्टी थी, इसलिए विबन्धन से ग्रषित होने के कारण वाद दाखिल करने से बाधित है। उन्होंने अन्य औपचारिक दलीलें भी उठाईं। मुकदमे का फैसला विचारण न्यायालय द्वारा सुनाया गया था। इसके खिलाफ दायर अपील को लिखित बयान में संशोधन करने के लिए आवेदन की अनुमति देने के बाद दिनांक 08.09.1971 के आदेश द्वारा अपीलीय अदालत द्वारा नए सिरे से सुनवाई के लिए भेज दिया गया था। विचारण न्यायालयने फिर से मुकदमे की सुनवाई की और 01.05.1973 को उसी पर फैसला सुनाया। इसके विरुद्ध दायर सिविल अपील दिनांक 06.03.1975 के निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई। इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा दायर दूसरी अपील संख्या 813/1975 को भी दिनांक 21.07.2006 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसी के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में एक एसएलपी दायर की गई थी जिसे मंजूर कर लिया गया और सिविल अपील संख्या 1534/2009 में परिवर्तित कर दिया गया, और अंततः दूसरी अपील को उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले दिनांक 12.07.2022 द्वारा वापस उच्च न्यायालय में भेज दिया। इस प्रकार, वर्तमान दूसरी अपील इस न्यायालय के समक्ष है। दूसरी अपील के लंबित रहने के दौरान फारूकी बेगम की मृत्यु हो गई और उनकी एकमात्र बेटी, जिसे प्रतिस्थापित किया गया था, की भी मृत्यु हो गई और अब बेटी के बेटे इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता हैं।

32. अपीलकर्ता की विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री नित्या रामकृष्णन ने निचली अदालत और अपीलीय न्यायालय के निर्णयों को चुनौती देने के लिए इस न्यायालय के समक्ष तीन कानूनी दलीलें पेश की हैं। वही हैं:-

(i) दिनांक 17.04.1924 का विलेख मुस्लिम विधि (हिबानामा) के तहत एक उपहार-विलेख है जो एक पति द्वारा अपनी पत्नी के पक्ष में निष्पादित किया गया है, और अपरिवर्तनीय है।

(ii) यह मानते हुए भी कि विलेख रामपुर राज्य द्वारा अनुदान है, चूँकि इसे कभी भी फिर से शुरू नहीं किया गया था, मुकदमा विफल होने के लिए उत्तरदायी है।

(iii) उ.प्र. ज उ और भू सु अधिनियम, 1950 को रामपुर राज्य तक बढ़ाए जाने के बाद, फारूकी बेगम विवाद में उपवन के हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन गईं और इस प्रकार अपीलकर्ताओं को, विरासत में भूमिधारी अधिकार प्राप्त होने के बाद, बरी नहीं किया जा सकता है।

4. चूंकि, प्रतिवादी-अपीलकर्ता की पहली और दूसरी दलीलें दिनांक 17.04.1924 के विलेख

की प्रकृति से संबंधित हैं, इसलिए, उन पर एक साथ विचार किया जा रहा है। प्रतिवादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ताने जोरदार तर्क दिया कि दिनांक 17.04.1924 का विलेख वास्तव में मुस्लिम विधि (हिबानामा) के तहत एक पति द्वारा अपनी पत्नी के पक्ष में निष्पादित एक उपहार विलेख है और एक अपरिवर्तनीय दस्तावेज है। विकल्प में, वह प्रस्तुत करती है कि यह मानते हुए कि पहली प्रस्तुति स्वीकार नहीं की गई है और विलेख को अनुदान माना जाता है, तब भी, इसे किसी भी नवाब या राज्य सरकार द्वारा कभी भी रद्द नहीं किया गया था और इसलिए, आज तक लागू है।

5. प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने शुरू में 13.02.1964 को लिखित बयान दायर किया था। उस समय विलेख के हिबानामा होने का कोई मामला कायम नहीं हुआ था। बाद में लिखित बयान को दिनांक 08.09.1971 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया और लिखित बयान में निम्नलिखित पैराग्राफ जोड़े गए: -

"5-ए कि विवादित संपत्ति प्रतिवादी का माफ़ी ला खिरा 'राजस्व मुक्त अनुदान' थी। वादपत्र में यह आरोप कि प्रतिवादी ग्रोव का किराया मुक्त अनुदानग्राही था, सही नहीं है।

5-बी. यह कि वाद में उपवन प्रतिवादी को तत्कालीन रामपुर राज्य के तत्कालीन शासक द्वारा 17.4.1924 को सनद माफ़ी के माध्यम से इसके पुनरुद्धार या अन्यथा के लिए कोई प्रतिबंध या शर्त लगाए बिना उपहार में दिया गया था इसलिए, इसे दोबारा शुरू नहीं किया गया था और इसे दोबारा शुरू नहीं किया जा सकता था, और इसे किसी भी समय फिर से शुरू नहीं किया गया।

5-सी. यदि अदालत की राय है कि मुकदमे में उपवन किराया मुक्त अनुदान था (जिसे प्रतिवादी स्वीकार नहीं करता है), तो ऐसे मामले में भी कानून के तहत अनुदान अनुदानकर्ता के उत्तराधिकारियों द्वारा दोबारा कानूनन शुरू करने योग्य नहीं था और इसलिए इसे फिर से शुरू नहीं किया जा सका, यदि शुरू करने का कोई अधिकार था भी तो वह 1930 से बहुत पहले खो गया था। वादी का मुकदमा कायम रखने योग्य नहीं है।"

6. लिखित बयान का अवलोकन, जैसा कि यह शुरू में या संशोधन के बाद भी था, यह दर्शाता है कि प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा उक्त विलेख के हिबानामा होने का कोई भी मामला प्रस्तुत नहीं किया गया है। प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा संशोधित अनुच्छेद-5बी में सबसे अच्छा मामला यह है कि यह पूर्व रामपुर राज्य के तत्कालीन शासक द्वारा प्रतिवादी-अपीलकर्ता को बिना किसी प्रतिबंध या शर्त लगाए सनद माफ़ी के माध्यम से एक उपहार था और इस प्रकार इसे दोबारा शुरू नहीं किया जा सकता था, और इसे किसी भी समय दोबारा शुरू नहीं किया गया। इस बात की कोई दलील नहीं है कि यह विलेख पर्सनल लॉ के तहत एक हिबानामा था या पर्सनल लॉ के तहत एक पति द्वारा अपनी पत्नी को उपहार था। ऐसी दलील के अभाव में प्रतिवादी अपीलकर्ता के लिए इस स्तर पर यह तर्क देना संभव नहीं है कि विलेख एक हिबानामा है। अन्यथा भी पक्षों के बीच निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए: -

"1. क्या प्रतिवादी के पक्ष में अनुदान 1930 में फिर से शुरू किया गया था जैसा कि वादपत्र के पैरा संख्या 3 में बताया गया है?

2. क्या वादी के पूर्ववर्ती, रामपुर राज्य ने अनुदान को फिर से शुरू करने के बाद वाद में उपवन पर कब्ज़ा कर लिया?

3. क्या मुकदमा समय के भीतर है?

4. क्या वाद का मूल्य अधिक लगाया गया है?

5. क्या इस अदालत को इस मुकदमे की सुनवाई का क्षेत्राधिकार है?

6. क्या मुकदमा आदेश 21 नियम 103 सीपीसी द्वारा वर्जित है?

7. क्या मुकदमा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 42 द्वारा वर्जित है?

8. प्रतिवादी से वसूली योग्य क्षति की सही मात्रा, यदि कोई हो, क्या है?

9. क्या प्रतिवादी ने इस क्षेत्र में उ.प्र जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के लागू होने के मुकदमे में उपवन में भूमिदारी अधिकार हासिल कर लिया है, और बेदखली के लिए उत्तरदायी नहीं है?

10. वादी किस राहत का, यदि कोई हो, हकदार है?

11. क्या मुकदमे में संपत्ति प्रतिवादी का राजस्व मुक्त अनुदान (मुआफी लखेराज) थी?

12. <u>क्या वाद में उपवन प्रतिवादी को 17.4.24 को रामपुर राज्य के तत्कालीन शासक द्वारा सनद मुआफी के माध्यम से इसके पुनरुद्धार के लिए कोई प्रतिबंध या शर्त लगाए बिना उपहार में दिया गया था?</u>

13. क्या अनुदान किसी भी मामले में अनुदानकर्ता के उत्तराधिकारी द्वारा कानून के तहत फिर से शुरू करने योग्य नहीं था और यदि कोई हो, तो फिर से शुरू करने का अधिकार 1930 से पहले खो गया है।

14. क्या मुक़दमा विबंधन द्वारा वर्जित है?" (जोर दिया गया)

7. पर्सनल लॉ के तहत किसी उपहार विलेख के संबंध में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया है। दान के आधार पर सबसे निकटतम विन्दु वाद विन्दु 12 है। यह पर्सनल लॉ के तहत उपहार का दावा नहीं कर रहा है, बल्कि सनद मुआफी के माध्यम से शासक द्वारा उपहार का दावा कर रहा है। इसके अलावा, प्रतिवादी अपीलकर्ता द्वारा हिबानामा के संबंध में दिया गया एकमात्र साक्ष्य लिखित बयान में संशोधन के बाद 29.03.1973 को दिए गए उसके दूसरे मौखिक बयान में है, जिसमें वह कहती है -

"ब्यान किया कि मुदमेंवाले बाग की मैं मालिक हूँ। मेरे शौहर हामिद अली खां ने हिबा किया।

मैने अपने बहनोई करनल मुहम्मद अली खां से कहा कि आप इस इन्तेजाम करें । नवाब साहब ने नूरजहां बेगम को अब्बास वाला बाग दिया था । हमने कहा आप ने हमें कुछ नहीं दिया तो कहा कि हम हुजूर पसंद बाग आपको हिबा करते हैं। मैंने हिबा कबूल किया और अपने बहनोई के इंतेजाम में दे दिया। नवाब साहब ने कुछ तहरीर लिखकर दी जो फ़ाइल में

दाखिल कर दी। नूरजहा बेगम हमारी सौत थी जिनका इंतेकाल हो गया। जब से बाग में मेरा कर्जा रहा मैं खेती कराती रही और कराती हूं। जब तक कर्नल मोहम्मद अली खां हयात रहे मेरी तरफ से इन्तेजाम रते रहे। उनके इंतेकाल के बाद से मै इन्तेजाम कर रही हूँ। बाग में मेरा डेरा बना हुआ है।

जिस वक्त नवाब साहब ने कहा कि हमने बाग हुज़ूर पसंद तुम्हारे नामहिबा किया उस वक्त ना कुछ कहा, फरमान जारी किया गया। नवाबसाहब के फरमान गजट में होते थे। यह फरमान गजट में नही छपा इसकी वजह से मैं कुछ नहीं बता सकती।"

8. प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा मौखिक बयान में यह दावा किया गया है कि एक पति द्वारा अपनी पत्नी को एक मौखिक उपहार दिया गया था, जिसके बाद पति द्वारा निष्पादित विलेख दायर किया गया था। जैसा कि पहले ही ऊपर पाया जा चुका है, वाद में न तो मौखिक उपहार का कोई मामला स्थापित किया गया है और न ही ऐसा कोई वाद्विंदु बनाया गया है। कानून दलीलों और मुद्दों से परे किसी भी सबूत की इजाजत नहीं देता। मौखिक बयान भी गलत और अविश्वसनीय है, क्योंकि दिनांक 17.04.1924 का विलेख रामपुर राज्य के मुख्य सचिव द्वारा निष्पादित किया गया है, न कि नवाब साहब द्वारा, जैसा कि मौखिक बयान में दावा किया गया है। नवाब साहब द्वारा निष्पादित कोई अन्य हिबानामा दाखिल नहीं किया गया है। स्थानीय भाषा में दिनांक 17.04.1924 के विलेख का प्रासंगिक भाग इसके अंग्रेजी अनुवाद के साथ जैसा कि अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है और राज्य द्वारा विवादित नहीं है, पढ़ता है: -

"बाग़ हुज़ूर पसंद फ़ारूक़ी बेगम साहिबा को अता किया जाता है। कुब्ज़ा बाग पर कर्नल कमांडेंट मोहम्मद अली खान बहादुर ब्रिगेड कमांडर को दिला दिया जय क्योंके ये बाग उनके ज़ेरे इंतेज़ाम रहेगा। इस बाग में 130 बीघे की आराजी खत्म है, मगर फारूकी बेगम साहिबा को 82 बीघे की आराजी खत्म हो गई है। ये इस लिए है कि अब्बास खान वाला के मसावी रहे जो हाल में नूरजहाँ बेगम साहिबा को आता हुआ है। बाकी आराज़ी बागे-ए मज़कुर की बा इंतेज़ाम सरिश्ता-एबाग़ाहत बा दस्तूर रहे गी। सनद दारुल इंशा से दी जाए. अहकाम-ए-ज़बीता जारी हो.

आदेशानुसार Sd/- मुख्य सचिव"

इसका अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है:

"बाग़ हुज़ूर पसंद (अता) फ़ारूक़ी बेगम साहिबा को दिया गया है। कर्नल कमांडेंट मोहम्मद अल्ल खान को यह बाग सौंप दिया गया है ताकि यह बाग उनके प्रबंधन में रहे। बाग में 130 बीघे खाम भूमि है। हालाँकि, फ़ारूक़ी बेगम साहिबा को बराबर रखने के लिए उसी में से 82 बीघे खाम ज़मीन दी गई है

बाग अब्बास खान के साथ जो हाल ही में नूरजहाँ बेगम साहिबा को प्रदान किया गया है। उक्त उद्यान की शेष भूमि यथावत उद्यानिकी विभाग के प्रबंधन में रहेगी। प्रमाणपत्र नियमानुसार अभिलेख कार्यालय से जारी किया जा सकता है।

आदेशानुसार Sd/- मुख्य सचिव"

9. इसके अवलोकन से पता चलता है कि यह इजलास (न्यायालय या सम्मानित व्यक्तियों की बैठक) में फ़ाइल संख्या 3/28 में राज्य के मुख्य सचिव द्वारा पारित और हस्ताक्षरित आदेश है। विलेख में यह कहा गया है बाग हुज़ूर पसंद फारूकी बेगम साहिबा को दिया गया है और कब्ज़ा कर्नल कमांडेंट मोहम्मद अली को दिया जाना है। बाग की 130 बीघे (खाम) में से 82 बीघे (खाम) दे दी जाती है और शेष भूमि बागवानी विभाग के प्रबंधन में रख दी जाती है। विलेख में आगे कहा गया है कि प्रमाणपत्र अभिलेखकार्यालय से नियम के अनुसार जारी किया जा सकता है। इसे किसी भी तरह से पर्सनल लॉ के तहत पति द्वारा अपनी पत्नी को दिया गया उपहार विलेख नहीं कहा जा सकता है। यह राज्य के मुख्य सचिव द्वारा आधिकारिक कार्यवाही में निष्पादित एक आधिकारिक दस्तावेज है, जिसमें फारूकी बेगम साहिबा के पक्ष में रामपुर राज्य की ओर से अनुदान दिया जाता है। मौखिक बयान में यह दावा कि बाग का कब्ज़ा मौखिक हिबा करने के बाद दिया गया था और उसका प्रबंधन अपीलकर्ता-प्रतिवादी ने अपने जीजा को दे दिया था, विलेख के विपरीत है, जिसे दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है और उस पर भरोसा किया है, और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, किसी भी व्यक्तिगत कानून के तहत किसी भी मौखिक या लिखित उपहार के संबंध में प्रतिवादी-अपीलकर्ता की दलील टिकाऊ नहीं पाई गई है।

10. अगला प्रश्न दिनांक 17.04.1924 के विलेख की प्रकृति का है। यह पहले से ही ऊपर माना गया है, इसे मोहम्मडन कानून के तहत हिबानामा नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, विलेख फारूकी बेगम साहिबा को हुज़ूर पसंद के 130 बीघे (खाम) उपवन में से 82 भीगा (खाम) अनुदान (अता) देता है। इजलास में राज्य के मुख्य सचिव ने भी इस पर हस्ताक्षर किये हैं. प्रदान किए गए अनुदान का कारण समानता बनाए रखना है, क्योंकि एक अन्य उपवन, अर्थात् अब्बास खान वाला, नूरजहाँ बेगम साहिबा को (अता) प्रदान किया गया था। विलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि नवाब साहब (रामपुर राज्य के तत्कालीन शासक) की बेगम साहिबा के दर्जे के लिए, तत्कालीन रामपुर राज्य के मुख्य सचिव ने उनकी बेगमों को अलग-अलग बाग दिए थे। एक पूर्ववर्ती भारतीय राज्य या उसके शासक द्वारा दिए गए अनुदान की प्रकृति पर सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने 'मोहसिन अली बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य' के मामले में विचार किया है, (1975) 2 एससीसी 122 में प्रकाशित किया गया है। यहां तक कि उक्त मामले में निष्पादित दस्तावेज़ की भाषा भी वर्तमान मामले के काफी समानांतर है। उक्त मामले में, भोपाल राज्य के नवाब द्वारा दिनांक 24.10.1934 को फ़रमान जारी किया गया था, सर लियाकत अली के जीवन और विशिष्ट सेवा की सराहना करते हुए, जिसके द्वारा उन्होंने बाद में पेंशन देने के अलावा, 'इनायत अता' के रूप में घर का आवासीय उपयोग भी दिया। विवाद उक्त दस्तावेज़ की व्याख्या का था। इसलिए, उक्त निर्णय के तथ्यों और निष्कर्षों पर बारीकी से नजर रखना आवश्यक है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:-

"9. मूल फ़रमान उर्दू में है। जैसा कि नीचे की अदालतों द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित किया गया है, यह इस प्रकार है:

"माननीय मोतमिद-उ-सुल्तान नासिर-उल-मुल्क सैयद सर लियाकत अली।

आपकी बहुमूल्य सेवाओं और वफादार बलिदानों को ध्यान में रखते हुए, जो आपने 30 वर्षों से अधिक समय तक प्रदान किया है और राज्य की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जो आपने पिछले 2 वर्षों से बिना पारिश्रमिक के सेवा की है, आपका आवेदन (पेंशन के लिए) मंजूर किया जाता है। आपको 1 अक्टूबर, 1934 से अपनी बहुमूल्य सेवाओं के बदले सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जाती है। आपको मुशीर-उल-मुहामी रुबकारी खास का प्रभार माननीय शोएब कुरेशी को सौंप देना चाहिए।

उस पेंशन के अलावा आप राज्य कोषागार के पेंशन नियमों के तहत प्राप्त करने के हकदार हैं,आप इयोढ़ी खास की बहुमूल्य सेवाओं के बदले इयोढ़ी के खजाने से मासिक पेंशन के रूप में 400 रुपये प्राप्त करने के भी हकदार हैं और आपको (आगे) उपहार के रूप में बारा महल शाहजहानाबाद में स्थित अपना आवासीय घर भी दिया जाता है।

10. महत्वपूर्ण वाक्य का मूल, जिसे रेखांकित किया गया है (मोटे अक्षरों में) इस प्रकार है:

"और आपका सकून्ती मकान वाकया बड़ा महल शाहजहानाबाद आपको इनायत अता किया जाता है।"

11. यह फ़रमान 31 अक्टूबर, 1934 को भोपाल सरकार के राजपत्र में प्रकाशित आदेश के अनुसार था, जिसका शीर्षक था: "आली मोर्तबत सर सैयद लियाकत अली साहब को पेंशन"। अंग्रेजी में प्रस्तुत, इसका भौतिक भाग इस प्रकार चलता है:

"अब उक्त माननीय ने तीस वर्षों से अधिक समय तक सेवा प्रदान करने के कारण अपने पिछले आवेदन को स्वीकार करने का पुनः अनुरोध किया है। इसलिए भोपाल के शासक महामहिम खुल्द-अल्लाह-मुल्कहुम ने राज्य की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पिछले दो वर्षों से बिना पारिश्रमिक के उनकी बहुमूल्य सेवाओं और उनके वफादार बलिदानों पर विचार किया। (उनकी सभी मूल्यवान सेवाओं को) कृतज्ञतापूर्वक मानते हुए (राज्य के महामहिम शासक) उन्हें 1 नवंबर, 1934 से सेवानिवृत्त होने की अनुमति देते हैं और उन्हें उपहार के रूप में बारा महल शाहजहानाबाद में स्थित उनका आवासीय घर भी देते हैं।

भोपाल राज्य के महामहिम शासक आगे यह आदेश देते हैं कि माननीय सैयद सर लियाकत अली साहब को राज्य के खजाने के नियमों के तहत उनकी नियमित पेंशन के अलावा, देवरी खास की सेवाओं के संबंध में देवरी खास के खजाने से 400 रुपये मासिक पेंशन का भुगतान किया जाना चाहिए, जिसके लिए वह राज्य के खजाने से प्राप्त करने के हकदार हैं।

12. राजपत्र अधिसूचना में रेखांकित वाक्य का मूल (मोटे अक्षरों में) इस प्रकार है:

"और उनको सकून्ती मकान वाकया बड़ा महल शाहजहांनाबाद इनायत मरहमत फरमाते हैं।"

13. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि फ़रमान, एक्सटेंशन पी-1 द्वारा प्रमाणित स्वभाव, एक निरंकुश शासक द्वारा अपनी प्रजा को दी गई

लंबी, मेधावी सेवाओं की मान्यता में दिया गया त्रिपक्षीय अनुदान है। यह अनुदान स्वभाव की श्रेणी से संबंधित है, जिसे अंग्रेजी आम कानून के तहत "क्राउन अनुदान" के रूप में जाना जाता है।

14. फ़िरमान का भाव और भाषा, विशेष रूप से शब्द "आपको इनायत अता किया जाता है" स्पष्ट रूप से इसे एक संप्रभु अनुदान के रूप में चिह्नित करता है। स्टिंगास के फ़ारसी-अंग्रेज़ी शब्दकोश के अनुसार "इनायत" (संज्ञा) का अर्थ है "एक उपकार, एक उपहार, एक उपहार, एक इनाम"; और "अता" (क्रिया) का अर्थ है "देना, लाभ प्रदान करना या उपहार देना"। “अता” (संज्ञा) का अर्थ है “देना, उपहार, उपहार, दान, उपकार, अनुदान, बंदोबस्ती, रियायत; सोच-विचार"।

15. व्यापक अर्थ में, "अनुदान" से वह सब कुछ समझा जा सकता है जो विलेख द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे को प्रदान किया जाता है या पारित किया जाता है। लेकिन आम तौर पर, यह शब्द क्राउन द्वारा बनाए गए या हस्तांतरित अधिकारों पर लागू होता है, उदाहरण के लिए, पेंशन, पेटेंट, चार्टर, फ्रैंचाइजी का अनुदान (अर्ल जॉट्स डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लॉ देखें)।

16. इंग्लैंड में, किसी विषय द्वारा अनुदान पर लागू सामान्य नियम के विपरीत, क्राउन द्वारा अनुदान को आमतौर पर क्राउन के लिए सबसे अनुकूल माना जाता है। रॉयल अनुदान के मामले में नियम यह है कि सामान्य शब्द निहितार्थ से विशेषाधिकार अधिकार पारित नहीं करेंगे।

17. हालाँकि, यह सामान्य नियम विषय के पक्ष में महत्वपूर्ण छूट देने में सक्षम है। यदि संप्रभु का इरादा उस दस्तावेज़ से स्पष्ट है जो सटीक, स्पष्ट शब्दों में प्रदत्त लाभ की सीमा और प्रकृति को परिभाषित करता है, तो इसे प्रभावी होना चाहिए। इसके निर्माण के लिए बाहरी सहायता मांगने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि अनुदान मूल्यवान विचार के लिए है तो इसे अनुदान प्राप्तकर्ता के पक्ष में, संप्रभु के सम्मान के लिए सख्ती से समझा जाना चाहिए और जहां दो निर्माण संभव हैं, एक वैध और दूसरा शून्य, सम्मान के लिए जो वैध है उसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए संप्रभु के सम्मान को संप्रभु के लाभ से अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। हालाँकि, जहाँ अनुदान की दो व्याख्याएँ दी जा सकती हैं, जिनमें से दोनों ही अच्छी हैं, कई मामलों में जो क्राउन के लिए सबसे अनुकूल है उसे प्राथमिकता दी जाती है।

(हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड, तीसरा संस्करण, खंड 7, पैरा 669 और 670, पृष्ठ 314-316 देखें)।

18. व्याख्या के ये नियम भारत में संप्रभु अनुदानों पर भी लागू किए गए हैं। (देखें राजा राजिंदर चंद बनाम सुखी [एआईआर 1957 एससी 286: 1956 एससीआर 889, एस.के. दास, जे. के अनुसार पृष्ठ 902 पर]; गुलाबदास जुगजीवनदास बनाम सूरत के कलेक्टर [6 आईए 54: आईएलआर 3 बॉम 186 (पीसी)] ; शेख सुल्तान सानी बनाम शेख अजमोदीन [20 आईए 50: आईएलआर 17 बॉम 431 (पीसी)] ; अज़ीज़ुन-निसा बनाम तसद्दुक हुसैन खान [28 आईए 65: आईएलआर 23 सभी 324 (पीसी)] ; राम नारायण सिंह बनाम राम सरन

लाल [एआईआर 1918 पीसी 203: आईएलआर 46 कैल 683 (पीसी: 46 आईए 88])

19. उपरोक्त सिद्धांतों के आलोक में हमें यह निर्धारित करना होगा कि क्या फ़रमान, एक्सटेंशन पी-1 द्वारा, शासक का इरादा सूट हाउस में जीवन-संपत्ति या पूर्ण संपत्ति देने का था।

11. उक्त मामले में अपीलकर्ता सर लियाकत अली के उत्तराधिकारी थे जिन्होंने दावा किया था कि उक्त दस्तावेज़ मुस्लिम कानून के तहत उपहार है और इस प्रकार, एक पूर्ण हस्तांतरण है। दूसरे पक्ष ने इस पर कड़ा विरोध जताया और अन्य बातों के अलावा यह दावा किया गया कि प्रस्तावना के साथ पढ़े गए फ़रमान के अंतिम वाक्य से पता चलता है कि इसने जीवन के लिए निवास का अधिकार बनाया है, न कि पूर्ण और वंशानुगत स्वामित्व। प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए, न्यायालय ने कहा:-

“23. हम अपीलकर्ता के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं कि फरमान, सटीक और स्पष्ट शब्दों में, अनुदान प्राप्तकर्ता को सूट हाउस का पूर्ण और निरपेक्ष स्वामित्व बताता है। हमारी राय में, फ़रमान के अंतिम वाक्य की भाषा, जो इस विवाद का आधार है, अपने आप में भी, निस्संदेह और स्पष्ट रूप से यह संकेत नहीं देती है कि शासक का इरादा पूर्ण संपत्ति प्रदान करना था। फ़रमान किसी भी ऐसे शब्द के गैर-उपयोग से स्पष्ट है जो यह घोषणा करता है कि अब से अनुदान प्राप्तकर्ता के पास घर में एक विरासत योग्य संपत्ति होगी या अनुदानकर्ता ने संपत्ति में अपने सभी अधिकार पूरी तरह से अनुदान प्राप्तकर्ता के पक्ष में हस्तान्तरित कर दिए हैं। ऐसे शब्दों का कोई उपयोग नहीं है कि अनुदान "नसालन-दार-नसालन", "पीढ़ी से पीढ़ी तक" "वारसन, कयाम यू क़मान" "अनुदान प्राप्तकर्ता और उसके उत्तराधिकारियों को" आदि के रूप में प्रभावी होगा, जो एक पैतृक संपत्ति. सृजन की ओर इशारा करता है। यहां तक कि ऐसे शब्दों का उपयोग भी अनुदानकर्ता के पूर्ण, वंशानुगत अधिकार प्रदान करने के इरादे का एक अनिर्णायक संकेत माना गया है। इस प्रकार गुलाबदास जुगजीवनदास मामले में [6 आईए 54: आईएलआर 3 बॉम 186 (पीसी)], सनद में अनुदान प्राप्तकर्ता के बच्चों या वंशजों के संदर्भ के बावजूद, न्यायिक समिति ने माना कि अनुदान "उन शर्तों पर नहीं दिया गया था जो उन्हें वंशानुगत बना देगा”।

24. फिर से, शेख सुल्तान बनाम शेख अजमोदीन में, बोर्ड का निर्णय सुनाते हुए, लॉर्ड हैनन ने अनुमोदन के साथ, सर थॉमस मुनरो द्वारा दर्ज 15 मार्च, 1922 के कार्येवाही को उद्धृत किया।

"जिसमें उन्होंने कहा है कि ऐसे दस्तावेज़ (सुन्नड्स) में शब्द 'हमेशा के लिए' पीढ़ी-दर-पीढ़ी या हिंदू अनुदानों में, 'जबकि सूर्य और चंद्रमा मौजूद हैं', 'केवल अभिव्यक्ति के रूप हैं', और दाता या रिसीवर द्वारा कभी भी यह नहीं माना गया कि वे टिकाऊपन को दर्शता है जैसा उनका अर्थ है या संप्रभु की इच्छा से परे।

सर थॉमस मुनरो द्वारा अभिलेखकिए गए एक और कार्येवाही के अधिकार पर, इसे आगे देखा गया

"जबकि देशी राजाओं द्वारा निजी संपत्ति की जब्ती को देश द्वारा

अन्यायपूर्ण माना गया होगा, जागीर अनुदान को लोगों द्वारा निजी संपत्ति के आलोक में नहीं माना गया था"।

25. ऐसी पारंपरिक शर्तों के निर्माण के संबंध में अधिकारियों को गुणा करना आवश्यक नहीं है जो संभवतः अनुदानकर्ता के वंशानुगत अनुदान देने के इरादे का संकेत हो सकता है, क्योंकि फ़रमान एक्सटेंशन पी-1, ऐसी सभी शर्तों से रहित है। यह कहना पर्याप्त होगा कि फ़रमान की भाषा स्पष्ट और सटीक शब्दों में अनुदान प्राप्तकर्ता और उसके उत्तराधिकारियों के पक्ष में एक पूर्ण संपत्ति बनाने का इरादा व्यक्त नहीं करती है। इसलिए फ़रमान को संप्रभु अनुदानों पर लागू निर्माण के सुस्थापित नियम के अनुसार समझा जाना चाहिए।

26. ध्यान में रखने योग्य व्याख्या का एक और प्रमुख सिद्धांत यह है कि अनुदान देने वाले के वास्तविक इरादे का पता लगाने के लिए, फ़रमान को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। यह सही नहीं होगा - जैसा कि अपीलकर्ता हमसे चाहते हैं - फ़रमान को तीन वॉटर-टाइट डिब्बों में विच्छेदित करना या फ़रमान के अंतिम वाक्य को संदर्भ से बाहर पढ़ना। आस-पास की परिस्थितियों और उस अवसर पर विचार करना भी स्वीकार्य है जिस पर यह अनुदान दिया गया था, फ़रमान के निर्माण के लिए वैध सहायता के रूप में [गुलाबदास जुगजीवनदास बनाम सूरत के कलेक्टर देखें [6 आईए 54: आईएलआर 3 बॉम 186 (पीसी)]] .

27. जैसा कि फ़रमान, एक्सटेंशन पी-1, (अधिसूचना एक्सटेंशन पी-2 में पुनरुत्पादित) की प्रस्तावना से स्पष्ट है, अनुदान का अवसर यह था कि

अनुदान प्राप्तकर्ता सर लियाकत अली, सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद, दो वर्षों सहित तीस वर्षों से अधिक समय तक "मूल्यवान" और "वफादार" सेवा करने के बाद, अनुदानकर्ता की अनुमति से सेवानिवृत्त हो रहे थे जिसके लिए उन्होंने राज्य की खराब आर्थिक स्थिति को देखते हुए बिना पारिश्रमिक के सेवा की। फ़रमान के विश्लेषण से पता चलेगा कि यह अनुदान प्राप्तकर्ता को तीन गुना लाभ प्रदान करता है। सबसे पहले, यह उसे ऐसी पेंशन प्रदान करता है जो सेवा नियमों के तहत स्वीकार्य होगी। यह वह राज्य के खजाने से प्राप्त करेगा।

दूसरे, पहले के अलावा, यह उसे 400 रुपये प्रति माह की दर से पेंशन देता है, जिसे पेंशनभोगी ड्योढ़ी राजकोष यानी शासक के प्रिवी पर्स से निकालने का हकदार होगा। तीसरा, यह उसे आवासीय घर में लाभकारी हित प्रदान करता है, इन शर्तों में: "और आपका सकूंती मकान मालिक बड़ा महल शाहजहानाबाद आपको इनायत अता किया जाता है"।

28. जैसा कि फ़रमान (उदा. पी-1), अधिसूचना (पी2) में दर्शाया गया है, इस त्रिपक्षीय अनुदान को बनाने में शासक अनुदान प्राप्तकर्ता द्वारा प्रदान की गई मूल्यवान सेवाओं के लिए कृतज्ञता के विचारों से प्रेरित था। इन तीन गुना लाभों को प्रदान करने का उद्देश्य एक ही था, अर्थात्, सेवानिवृत्त नौकर को उसके शेष जीवन के लिए एक सुंदर रखरखाव और

आरामदायक आवास सुनिश्चित करना। दूसरे शब्दों में, इस फ़रमान के तहत दिए गए सभी तीन लाभ एक ही अवसर से उत्पन्न होने वाले सजातीय लाभ थे, और एक ही उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए बनाए गए थे ताकि अनुदान प्राप्तकर्ता को सेवानिवृत्ति में आराम से रहने में सक्षम बनाया जा सके। इन संबंधित लाभों को संक्षेप में "सेवानिवृत्ति लाभ" के रूप में वर्णित किया जा सकता है। पहले दो लाभ निर्विवाद रूप से पेंशन लाभ थे जो केवल अनुदान प्राप्तकर्ता के जीवनकाल के लिए सुनिश्चित थे। प्रश्नगत लाभ सहित सभी तीन समान लाभ स्पष्ट रूप से अनुदान प्राप्तकर्ता के व्यक्ति के लिए थे। यह "आपको" शब्द से स्पष्ट है जिसका अर्थ "आपको इनायत अता किया जाता है" वाक्यांश में "आपके लिए" है। फ़रमान के अंतिम वाक्य की शुरुआत में संयोजन "और" (और) आवासीय घर में ब्याज के अनुदान को फ़रमान के पूर्वगामी भागों में दिए गए पेंशन लाभ के साथ जोड़ता है। संक्षेप में, इस फ़रमान के तहत दिए गए सभी तीन गुना लाभ एक ही वंश की संतान हैं। प्रश्न में अनुदान से सीधे संबंधित फ़रमान की भाषा, जीवन के लिए अनुदान प्राप्तकर्ता को दिए गए पेंशन लाभों से संबंधित फ़रमान के पूर्ववर्ती भागों से अपना रंग लेती है। इस प्रकार, यदि ऊपर उद्धृत महत्वपूर्ण शब्दों को समान अनुदान के संदर्भ में और समग्र रूप से फ़रमान के सामान्य कार्यकाल के अनुसार समझा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि

शासक का इरादा केवल अनुदान प्राप्तकर्ता के जीवनकाल तक सीमित निवास का अधिकार देना था, न कि घर में पूर्ण संपत्ति प्रदान करना।

29. आसपास की परिस्थितियाँ भी हमारे द्वारा अपनाई गई व्याख्या की पुष्टि करती हैं। पहली ऐसी परिस्थिति यह थी कि अनुदान के समय अनुदान प्राप्तकर्ता के पास न तो कोई संतान था और न ही कोई निकट संबंधी। सचमुच, वह विधवा और निःसन्तान मर गया। इस संदर्भ में, "अनुदान प्राप्तकर्ता और उसके उत्तराधिकारी" या "नासलन-दरनासलन" जैसे किसी भी शब्द के छूटने से अनुदान को वंशानुगत होने का संकेत मिलता है, यह मानना उचित होगा कि अनुदान केवल जीवन के लिए था।

30. एक और परिस्थिति है जो इसी निष्कर्ष की ओर इशारा करती है. यह है कि अनुदान के समय अनुदान प्राप्तकर्ता पहले से ही सूट हाउस में रह रहा था। इस संदर्भ में, फ़रमान के अंतिम भाग में "मकान" (घर) के साथ प्रयोग किया गया शब्द "सकुंती" (आवासीय) महत्व रखता है। इससे पता चलता है कि अनुदानकर्ता का इरादा अनुदान प्राप्तकर्ता को उस घर में निवास के अधिकार से अधिक कुछ नहीं बताना था जिसका वह पहले से ही आनंद ले रहा था।

.....

33. अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया: कि विचाराधीन अनुदान एक मुसलमान द्वारा दूसरे मुसलमान को मुस्लिम विधि के अनुसार दिया गया एक "हिबा" था, जिसे केवल अस्वीकार करने के लिए कहा गया है। सभी इरादों और उद्देश्यों के लिए, यह एक पूर्ण शासक द्वारा अपनी प्रजा को दिया गया

अनुदान था जिसने अपनी सेवानिवृत्ति की पूर्व संध्या पर लंबी, मेधावी सेवाएं प्रदान की थीं। इसलिए मुस्लिम कानून का संदर्भ गलत है। हालाँकि, हम यह कह सकते हैं कि प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियों के अनुसार भी, जिस पर अधिवक्ताने भरोसा किया था, संपत्ति के उपभोग में समय-सीमा तक सीमित हित का सृजन आवश्यक रूप से मुस्लिम कानून के प्रतिकूल नहीं है।

12. जैसा कि मोहसिन अली (पूर्वोक्त) के उपरोक्त मामले में है, वर्तमान मामले में बाग भी रामपुर राज्य द्वारा फारूकी बेगम को दिया गया था। पूरे अनुदान में ऐसा कोई शब्द इस्तेमाल नहीं किया गया है जिससे यह पता चले कि राज्य ने बाग पर अपने सभी अधिकार वापस ले लिए हैं या ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसे वंशानुगत हित वाला अनुदान माना जा सके। अनुदान में लिखा है कि यह फारूकी बेगम को दिया गया है क्योंकि इसी तरह का अनुदान एक अन्य बेगम को भी दिया गया है। अनुदान अधिक से अधिक उपयोगकर्ता और बेगम साहिबा के लाभ के लिए है और इससे अधिक कुछ नहीं। दस्तावेज़ में कुछ भी नहीं है

जिसे रामपुर राज्य द्वारा उक्त बाग से अपने सभी अधिकारों को वापस लेने और/या फारूकी बेगम के पक्ष में अपने सभी अधिकारों को आत्मसमर्पण करने या फारूकी बेगम और उनके बच्चों के पक्ष में किसी भी वंशानुगत हित के निर्माण के रूप में पढ़ा जा सकता है। इसलिए, जैसा कि मोहसिन अली (पूर्वोक्त)1 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने पहले ही तय कर दिया है कि इस तरह के अनुदान को हमेशा राज्य द्वारा फिर से शुरू किया जा सकता है, क्योंकि राज्य के सभी अधिकार और शक्तियां, जिसमें इसे फिर से शुरू करने की शक्ति भी शामिल है, जारी रहेगी। फ़ारूक़ी बेगम को केवल जीवन भर, या संप्रभु की इच्छा तक बाग का आनंद लेने का अधिकार था।

13. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताकी अगली दलील यह है कि रामपुर राज्य या उ.प्र राज्य द्वारा अनुदान कभी भी फिर से शुरू नहीं किया गया था और अभिलेखपर ऐसा कोई दस्तावेज नहीं है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ताका दावा है कि बहाली को साबित करने के लिए अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए गए द्वितीयक साक्ष्य, रजिस्टर और सूची ठीक से साबित नहीं हुई थी और विश्वसनीय सबूत नहीं थे। उक्त तथ्य का उत्तर प्रदेश राज्य के अधिवक्ताद्वारा दृढ़ता से खंडन किया गया है, उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान अधिवक्ताका दावा है कि दोनों अदालतों ने निष्कर्ष दिया है कि पुनः आरंभ करने का तथ्य दायर किए गए द्वितीयक साक्ष्य से साबित होता है और तथ्य की समवर्ती खोज होने के कारण, दूसरी अपील के चरण में इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है।

14. पक्षों की उक्त दलील पर विचार करने से पहले, यह कहना पर्याप्त है कि, जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, अनुदान केवल फारूकी बेगम के उपयोगकर्ता और लाभ के लिए दिया गया था। यह केवल फारूकी बेगम के जीवनकाल के लिए था और वंशानुगत नहीं था। माना जाता है कि, फारूकी बेगम की वर्तमान दूसरी अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उसके बाद, उनकी बेटी को

उनके कानूनी उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिस्थापित किया गया, जिसकी भी मृत्यु हो गई और, अब, इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता उक्त बेटी के बेटे हैं। विवादग्रस्त बाग पर न तो उनकी बेटी और न ही दिवंगत फारूकी बेगम के वर्तमान उत्तराधिकारी का कोई अधिकार है। इसलिए उनके पक्ष में कोई राहत नहीं दी जा सकती. यह तथ्य अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ताके सामने बहस के दौरान रखा गया था और इस पर विवाद करते हुए उन्होंने अपना तीसरा तर्क पेश किया और दावा किया कि रामपुर राज्य पर उ.प्र ज. वि. और भू. सु. अधिनियम के विस्तार के बाद, स्वर्गीय फारूकी बेगम भूमिधर बन गईं और उनके अधिकार पूर्ण हो गए। इस प्रकार, अब स्वर्गीय फारूकी बेगम के उत्तराधिकारियों को भूमिधर के रूप में पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं और उन्हें विवादित बाग से बेदखल नहीं किया जा सकता है। इस दलील पर बाद में विचार किया जाएगा और सबसे पहले यह अदालत रामपुर के अगले नवाब द्वारा बाग पर फिर से कब्ज़ा साबित करने के लिए उ.प्र राज्य द्वारा दायर किए गए द्वितीयक साक्ष्य के संबंध में अपीलकर्ता की दलीलों पर विचार करेगी।

15. 1930 में अनुदान की बहाली को साबित करने के लिए प्रस्तुत किए गए द्वितीयक साक्ष्य के संबंध में मूल और अपीलीय न्यायालयों के निष्कर्षों पर विवाद करने के लिए, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ताने प्रस्तुत किया कि उ.प्र राज्य द्वारा दायर मुआफ़ियात रजिस्टर में अलग-अलग स्याही में दर्ज प्रविष्टियों के साथ ढीले कागज़ थे। उक्त उद्देश्यों के लिए उसने रूप किशोर, अरेंजर, राजस्व अभिलेखके मौखिक बयान पर भरोसा किया है। जिन्होंने कहा है कि आम तौर पर ऐसे रजिस्टर के पहले और आखिरी पन्नों पर एक मोहर लगाई जाती है और अधिकारी के हस्ताक्षर किए जाते हैं जो इस न्यायालय के समक्ष जमा किए गए रजिस्टर में नहीं पाया जाता है।उन्होंने आगे कहा कि रजिस्टर में पृष्ठ संख्या नहीं है। इस प्रकार, इसे ध्यान में नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह एक विश्वसनीय दस्तावेज़ नहीं है।

16. माना जाता है कि आग लग गई थी जिसमें पूर्व रामपुर राज्य के राजस्व अभिलेख नष्ट हो गए थे। इसलिए, अनुदान की बहाली के मूल आदेश खो गए हैं। रजिस्टर के अवलोकन से पता चलता है कि रामपुर राज्य के सभी मुआफ़ियात अनुदान और उनकी बहाली उक्त रजिस्टर में दर्ज की गई है। ऐसा नहीं है कि रजिस्टर के अंत में सिर्फ विवादित बाग हुज़ूर पसंद के संबंध में ही बहाली की प्रविष्टि की गई है। बाग हुज़ूर पसंद के प्रवेश से पहले और बाद में, उसी अवधि (1930) की, विभिन्न बेगमों को दिए गए अन्य बागों के संबंध में, कई बहाली प्रविष्टियाँ भी उक्त रजिस्टर में दर्ज हैं। केवल यह तथ्य कि प्रविष्टियाँ अलग-अलग स्याही से की गई हैं या इसके कुछ पन्ने ढीले हैं, रजिस्टर पर अविश्वास करने का कारण नहीं हो सकता। गवाह रूप किशोर का बयान है कि आम तौर पर रजिस्टर के आरंभ और अंत में एक मोहर लगाई जाती है या पृष्ठ नंबरों की अनुपस्थिति ही रजिस्टर पर अविश्वास करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है क्योंकि ऐसे किसी भी प्रचलित प्रक्रिया को साबित करने के लिए ऐसे

टिकटों और मुहरों वाला कोई अन्य रजिस्टर न्यायालय के समक्ष दायर नहीं किया गया था। ऐसे किसी नियम का उल्लेख नहीं किया गया जिसके तहत ऐसी कोई मोहर या टिकटों लगाने की आवश्यकता हो। वैसे भी गवाह रूप किशोर राजस्व विभाग में लिपिक होने के कारण रजिस्टर ही लाया था। उन्होंने मुंशी गोपीनाथ की सूची भी सिद्ध की। उन्होंने दावा किया कि उनकी सगाई 1926 में रामपुर राज्य के मुहाफिजखाना माल में हुई थी. उन्हें जुलाई, 1930 में हटा दिया गया और अक्टूबर, 1931 में फिर से नियुक्त किया गया और इस प्रकार वे उक्त अवधि (जुलाई, 1930-अक्टूबर, 1931) के घटनाक्रम से अनभिज्ञ हैं। 1930 तक वे अतिरिक्त निराई-गुड़ाई का कार्य करते रहे तथा कोई अन्य कार्य नहीं किया। उनकी पुनः नियुक्ति उद्यान विभाग में हुई। इसलिए, वह कभी भी किसी राजस्व अभिलेख के बजाय विवादित रजिस्टर को बनाए रखने का प्रभारी नहीं था। राजस्व विभाग में उनकी व्यस्तता केवल निराई-गुड़ाई करने वाले के रूप में थी और वे निराई-गुड़ाई की फाइलों के बंडल बनाने का काम करते थे। इसलिए, मुआफ़ी रजिस्टर की तैयारी और रखरखाव के तरीके के संबंध में उनका बयान उनके कार्य क्षेत्र से बाहर होने के कारण विश्वसनीय नहीं है। उन्हें इस बात की भी जानकारी नहीं थी कि उक्त रजिस्टर किस कार्यालय में रखा जाता है क्योंकि उनका कहना है कि मुआफ़ी रजिस्टर शुरुआती समय में दारुलनिशा या मुहाफ़िज़खाना में रखा गया होगा। इसलिए, वह केवल एक गवाह है जो उ.प्र राज्य के राजस्व विभाग से रिकॉर्ड/रजिस्टर लाया था और उसके साक्ष्य को केवल उसी सीमा तक पढ़ा जा सकता है। उन्होंने कभी भी रामपुर राज्य के अभिलेखका रखरखाव नहीं किया और जिस तरीके से उनका रखरखाव किया गया, उसका सबूत नहीं दे सकते। इसलिए, इस न्यायालय को मूल और अपीलीय न्यायालय दोनों द्वारा दिए गए तथ्यों के निष्कर्ष पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं मिलता है। प्रतिवादी सहित रामपुर राज्य के सभी मुआफियातों के विवरण वाले एक पुराने रजिस्टर को केवल ऐसे कमजोर आधार पर विवादित नहीं किया जा सकता है, जब अन्य बेगमों सहित ऐसे सभी व्यक्तियों के पक्ष में अन्य अनुदानों की बहाली की सामग्री विधिवत और सही ढंग से नोट की गई हो।

17. अब अपने भूमिधारी अधिकारों के संबंध में अपीलकर्ता-प्रतिवादी की प्रस्तुति की योग्यता पर विचार करने के लिए, रामपुर राज्य में उ.प्र जेडए और एल.आर अधिनियम की प्रयोज्यता पर विचार करना आवश्यक है। उ.प्र जेडए और एल.आर अधिनियम 24.011951 से लागू हुआ। उस समय इसे रामपुर राज्य पर लागू नहीं किया गया था। इसे अधिसूचना संख्या 3168/आईए-599-1951, दिनांक 30.06.1954 द्वारा पूर्व रामपुर राज्य के क्षेत्रों पर लागू किया गया था और अधिसूचना संख्या 3169/आईए-599-1951, दिनांक 01.07.1954 द्वारा क्रमशः संपत्ति राज्य में निहित की गई थी। . उक्त अधिसूचनाओं के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:-

"राजपत्र अधिसूचना संख्या 3168/आईए-559-1951

दिनांक लखनऊ, 30 जून, 1954

उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उ.प्र अधिनियम संख्या I, 1951) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ई) के उप-खंड (ii) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इसके बाद इसे उक्त अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश यह निर्देश देते हुए प्रसन्न हैं कि उक्त अधिनियम, इसके साथ संलग्न अनुसूची में निर्दिष्ट संशोधनों और संशोधनों के अधीन, रामपुर (प्रशासन) आदेश, 1949. में परिभाषित पूर्व रामपुर राज्य के क्षेत्रों पर लागू होगा।

राज्यपाल को उक्त अधिनियम की धारा I की उप-धारा (3) के तहत आदेश देते हुए खुशी हो रही है कि यह अधिनियम इस अधिसूचना की तारीख से उपरोक्त क्षेत्रों में लागू होगा।

"राजपत्र अधिसूचना संख्या 3169/आईए-559-1951,

दिनांक लखनऊ, 1 जुलाई, 1954।

उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (उ.प्र अधिनियम संख्या 1, 1951) की धारा 4 की उप-धारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जैसा कि पूर्व रामपुर राज्य के क्षेत्रों पर लागू होता है,जैसा कि रामपुर (प्रशासन) आदेश, 1949, अधिसूचना संख्या 3168/आईए-559-1951, दिनांक 30 जून, 1954 द्वारा परिभाषित किया गया है, राज्य सरकार के स्वामित्व वाली संपत्तियों को छोड़कर सभी संपत्तियां उपरोक्त क्षेत्र में स्थित हैं और 15 मई, 1949 को गवर्नर जनरल और महामहिम रामपुर के नवाब के बीच हुए समझौते के अनुच्छेद 4 के तहत महामहिम रामपुर के नवाब को आवंटित भूमि, 15 मई, 1949 के संपार्श्विक पत्र के आइटम (xviii) के साथ पढ़ी गई, राज्य मंत्रालय, भारत सरकार से, महामहिम रामपुर के नवाब को, और उनकी निजी संपत्तियों की सूची में उल्लिखित, उत्तर प्रदेश राज्य में निहित होगी, और उस तिथि की शुरुआत से, ऐसी सभी सम्पदाएं, उक्त अधिनियम में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, सभी बाधाओं से मुक्त होकर, राज्य को हस्तांतरित और निहित हो जाएंगी।" (महत्व जोड़ें)

18. 'एस्टेट' शब्द को समय-समय पर यू.पी.जेड.ए और एल.आर अधिनियम में संशोधित किया गया था और साथ ही अधिसूचनाओं में भी प्रावधान किया गया था जिसके द्वारा यू.पी. जेड.ए और एल.आर अधिनियम को रामपुर और अन्य राज्यों में लागू किया गया था। 'एस्टेट' शब्द की परिभाषा अंततः 1958 के यू.पी. अधिनियम संख्या XIV द्वारा प्रदान और तय की गई, जिसके द्वारा यू.पी. जेड.ए और एल.आर. अधिनियम में संशोधन किया गया। उपरोक्त यू.पी. अधिनियम संख्या XIV, 1958, एक संक्षिप्त अधिनियम होने के कारण, नीचे उद्धृत किया गया है:-

"यू. 1958 का पी. एक्ट संख्या XIV.

यू.पी. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950, (यू.पी. अधिनियम 1, 1951) में संशोधन करने के लिए अधिनियम।

चूँकि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 में इसके बाद प्रकट

होने वाले उद्देश्य के लिए संशोधन करना समीचीन है:

इसे भारत गणराज्य के नौवें वर्ष में निम्नानुसार अधिनियमित किया गया है:

1. लघु शीर्षक और प्रारंभ.-(1) इस अधिनियम को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1958 कहा जा सकता है।

(2) इसे जुलाई 1952 के प्रथम दिन से लागू माना जायेगा।

2. उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 3 में खण्ड (8) के स्थान पर निम्नलिखित सदैव प्रतिस्थापित किया जायेगा और समझा जायेगा:

"(8) संपदा, का अर्थ है और माना जाएगा कि खंड (ए), (बी), (सी) या (डी) में वर्णित किसी भी रजिस्टर में एक प्रविष्टि के तहत शामिल क्षेत्र का हमेशा मतलब होता है और, जहां तक यह यू.पी. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 32 के खंड (ई) में वर्णित किसी भी रजिस्टर में एक स्थायी किरायेदार से संबंधित है, क्योंकि यह इस अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले था, या उक्त अधिनियम की धारा 33 के तहत बनाए गए किसी भी रजिस्टर में खंड (ई) में वर्णित रजिस्टर के संबंध में उल्लिखित प्रतिबंध के अधीन या किसी भी समय लागू अधिकारों के अभिलेखकी तैयारी या रखरखाव से संबंधित किसी अन्य अधिनियम, नियम, विनियमन या आदेश में वर्णित या तैयार या बनाए रखा गया एक समान रजिस्टर में और 'संपदा' में हिस्सेदारी शामिल है।

स्पष्टीकरण.-इस खंड में निर्दिष्ट अधिनियम, नियम, विनियम या आदेश इसमें पूर्ववर्ती भारतीय राज्यों द्वारा बनाए गए या प्रख्यापित अधिनियम, नियम, विनियमन या आदेश शामिल होंगे, जिनके क्षेत्र इस अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचित होने की तिथि से पहले उत्तर प्रदेश राज्य में विलय या अवशोषित कर लिए गए थे।"

19. यू.पी. ज उ और भू सु अधिनियम, 1950के प्रावधानों और उपरोक्त अधिसूचनाओं के अवलोकन से पता चलता है कि रामपुर राज्य के स्वामित्व वाली सम्पदाएं उक्त अधिनियम के तहत कभी भी निहित नहीं हुईं, क्योंकि विलय के बाद वे यू.पी. राज्य में निहित थीं। यह केवल भूमि धारकों और बिचौलियों से संबंधित संपत्ति है, तत्कालीन भारतीय राज्यों में लागू राजस्व कानूनों के तहत तैयार और बनाए गए रजिस्टर में विधिवत नोट किया गया था, जो यू.पी. जेड.ए और एल.आर अधिनियम के प्रावधानों के तहत निहित थे और उक्त भूमि धारकों या मध्यस्थों को यू.पी. जेड.ए और एल.आर अधिनियम के तहत अलग-अलग अधिकार दिए गए थे। यह दिखाने के लिए अभिलेखपर कुछ भी नहीं है कि पूर्ववर्ती रामपुर राज्य द्वारा दिए गए अनुदान को भूमि धारकों या मध्यस्थों से संबंधित संपत्ति के रूप में माना गया था। यह पहले से ही माना गया है कि रामपुर राज्य द्वारा दिया गया अनुदान हमेशा रामपुर राज्य की संपत्ति बना रहता है, जिसे इच्छानुसार पुनः प्राप्त किया जा सकता है। रामपुर राज्य के स्वामित्व वाली भूमि और संपत्तियां विलय के बाद उत्तर प्रदेश राज्य में निहित हो गईं और

इसके संबंध में इस न्यायालय के समक्ष कोई विपरीत प्रस्तुतिकरण नहीं किया गया है। उक्त भूमि निहित अधिसूचना संख्या 3169/आईए-559-1951 दिनांक 01.07.1954 में 'राज्य सरकार के स्वामित्व वाली संपत्तियों को छोड़कर' द्वारा बनाए गए अपवाद के अंतर्गत आती है। प्रतिवादी अपीलकर्ताओं ने मध्यस्थ के रूप में अपना नाम दर्ज करते हुए पूर्ववर्ती रामपुर राज्य के राजस्व कानूनों या नियमों के तहत अपने पक्ष में विधिवत बनाए गए अधिकारों का कोई अभिलेखदाखिल नहीं किया है। उसी के अभाव में, प्रतिवादी-अपीलकर्ता का दावा है कि उन्हें पूर्ववर्ती राज्य रामपुर के राजस्व कानूनों के तहत भूमि धारकों/मध्यस्थों के रूप में माना जाना चाहिए और इस प्रकार, उन्होंने उ.प्र जेडए और एल.आर अधिनियम के तहत भूमिधारी या अन्य राजस्व अधिकार अर्जित किए हैं, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने फारूकी बेगम को भूमिधरी अधिकार घोषित करने के लिए यू.पी.जेड.ए और एल.आर अधिनियम के तहत किसी भी सक्षम राजस्व प्राधिकारी का आदेश भी दाखिल नहीं किया है, जिससे यह पता चलता है कि फारूकी बेगम का नाम गलत/अवैध रूप से भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि राज्य सरकार की भूमि पर यू.पी.जेड.ए और एल.आर अधिनियम के तहत कोई भूमिधरी या अन्य अधिकार नहीं हो सकते हैं। यह पहले से ही माना जाता है कि विवादग्रस्त बाग एक राज्य भूमि थी जिसमें फारूकी बेगम को केवल अपने जीवन के लिए उपयोग और उपभोग का अधिकार था और इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिए, रामपुर राज्य के पुराने राजस्व कानूनों के तहत उसके पास कोई अधिकार नहीं पाया गया है जिसे उ.प्र जेडए और एल.आर अधिनियम के तहत भूमिधारी या अन्य अधिकार के रूप में परिवर्तित किया जा सके। इसलिए, प्रतिवादी अपीलकर्ता की उक्त दलील में भी कोई बल नहीं है और इसे खारिज कर दिया गया है।

20. इस प्रकार, यह न्यायालय वर्तमान दूसरी अपील में कोई बल नहीं पाता है और इसे **खारिज** कर दिया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1795

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय,

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन,

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट-ए संख्या 2001647/2015

अनुकूल प्रकाश ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: रमेश पांडे, अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, आशुतोष शाही

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय, द्वारा प्रदत्त)

इस न्यायालय की एकल पीठ ने पूर्ववर्ती ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड (जिसे आगे 'एटीएल' कहा जाएगा) में संबंधित व्यक्तियों द्वारा प्रदान की गई विगत सेवाओं की गणना और उनके आमेलित होने के परिणामस्वरूप राज्य सरकार द्वारा देय पेंशन लाभों के प्रश्न पर विभिन्न खंडपीठों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी मत पर

विचार किया और विषय को एक बड़ी पीठ के समक्ष विचारण हेतु निर्दिष्ट किया ।

तदनुसार, माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश से इस पूर्ण पीठ का गठन किया गया। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा हमें भेजे गए प्रश्नों पर हमने विचार किया और उन्हें निम्नानुसार पुनःवाक्यांशित/पुनः रचित किया:

" (i) क्या खंडपीठ के निर्णयों ने शंकठा प्रसाद मिश्रा (उपरोक्त); हृदयेश दयाल श्रीवास्तव (उपरोक्त); मिर्तुयंजय प्रसाद सिंह (उपरोक्त); केशव राम पांडे (उपरोक्त) और उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अमर पाल सिंह, [विशेष अपील (डिफेक्टिव) संख्या 646/2016 दिनांक 25.10.2016 को निर्णीत] के विषय में शुद्धतया इस पर विश्वास किया है कि ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों द्वारा की गई पिछली सेवाओं का लाभ, जिन्हें बाद में सरकारी सेवा में सम्मिलित कर लिया गया है जैसा की याचिकाकर्ता जैसे व्यक्तियों की सेवा अवधि को राज्य सरकार द्वारा देय सेवानिवृत्ति बकाया की गणना के प्रयोजनार्थ उनकी अर्हक सेवा में गिना जाएगा?

(ii) क्या ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड के एक छंटनीग्रस्त कर्मचारी जैसे की याचिकाकर्ता, जो बाद में प्रासंगिक नियमों जिसे उत्तर प्रदेश सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियमावली, 1991 जानतें है, के अनुसार उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा में आमेलित हो गए वे अपने पूर्ववर्ती नियोक्ता अर्थात ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड के अधीन की गई अपनी पिछली सेवाओं को उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 और इस संबंध में अन्य सहायक नियम और शासनादेश तथा साथ ही दिनांक 11.11.1993 और 10.07.1998, का शासनादेश जिसे दिनांक 28.12.2001 द्वारा संशोधित किया गया है के अंतर्गत सेवानिवृत्ति लाभ के प्रयोजनार्थ अर्हक सेवा के रूप में गणना के लिए पात्र हैं ?

उपरोक्त के अतिरिक्त, हमने निम्नलिखित प्रश्न भी विरचित किया है:

"(iii) क्या इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम शंकर गुप्ता के वाद में विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 553/2015 दिनांक 27.11.2015 को निर्णीत हुए निर्णय का समन्वय पीठों द्वारा शंकठा प्रसाद मिश्रा (उपरोक्त); हृदयेश दयाल श्रीवास्तव (उपरोक्त); मिर्तुयंजय प्रसाद सिंह (उपरोक्त); केशव राम पांडे (उपरोक्त) और उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अमर पाल सिंह, [विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 646/2016 दिनांक 25.10.2016 को निर्णीत] हुए निर्णय से मत्भिन्नता है या नहीं ? यदि ऐसा है, तो खंडपीठ के दोनों निर्णयों में से कौन सा निर्णय प्रश्न संख्या 2 के संबंध में विधि को सही तरीके से निर्धारित करता है, जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर पुनः लिखा गया है।"

हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी के साथ श्री आशुतोष शाही, बार के विद्वान अधिवक्ता श्री आई.एम.

पांडे और श्री अरुण कुमार पांडे तथा विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी को सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक कुमार पाण्डेय, श्री विवेक शुक्ला तथा श्री प्रफुल्ल यादव के साथ विस्तार से सुना।

संक्षेप में हमारे समक्ष प्रश्नों से संबंधित तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को 17.10.1984 को तत्कालीन एटीएल में कार्यकारी (कार्मिक और प्रशासन) के पद पर नियुक्त किया गया था और उसने उक्त कंपनी में 20.11.1990 तक यानि इसके बंद होने तक काम किया। याचिकाकर्ता को 21.11.1990 को एटीएल के सरकारी सेल में कार्यकारी (कार्मिक और प्रशासन) के रूप में नियुक्त किया गया था और वह 06.03.1998 तक उक्त सेल में काम करता रहा। उसे राज्य के राजकोष से नियमित रूप से वेतन दिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रकोष्ठ याचिकाकर्ता जैसे छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के लिए तब तक बनाया गया था जब तक कि उनके प्रकरण में समायोजन के लिए विचार नहीं हो जाता, जिसका प्रस्ताव संबंधित समय पर किया गया था। अंततः, राज्य सरकार ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियम, 1991 (जिसे आगे '1991 नियम' कहा जाएगा) के नाम से नियम बनाए। उक्त 1991 नियम संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की नियम बनाने की शक्ति के अधीन पदों पर लागू होते हैं।

यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि उस समय 11 सार्वजनिक निगमों को बंद कर दिया गया था या उनका समापन कर दिया गया था तथा उनके कर्मचारियों की छंटनी कर दी गई थी।

जैसा कि 1991 के नियमों के नामकरण से स्पष्ट है, वे सभी छंटनीग्रस्त कर्मचारियों पर लागू थे, चाहे वे सरकारी या सार्वजनिक निगमों के हों, जिन्हें सरकारी सेवा में आमेलित किया गया था। 1991 के नियमों की अधिसूचना के बाद, राज्य सरकार ने सरकारी सेवा के प्रयोजनों के लिए एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों की पात्रता और अनुमेयता के विषय पर दिनांक 11.11.1993 को एक शासनादेश जारी किया। अंततः, याचिकाकर्ता को उपरोक्त 1991 के नियमों और दिनांक 11.11.1993 के शासनादेश के अधीन 07.03.1998 को सरकारी सेवा में आमेलित कर लिया गया। उन्हें वर्ष 1991 की नियमावली एवं उपर्युक्त शासनादेश के अन्तर्गत पिछड़ा वर्ग कल्याण निदेशालय, उ.प्र. में आमेलित किया गया है। एटीएल में उनके द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन, सरकारी सेवा में प्रवेश की तिथि पर संरक्षित था। अंततः याचिकाकर्ता 31 अक्टूबर 2014 को उक्त निदेशालय में विशेष कार्य अधिकारी के पद पर कार्यरत रहते हुए सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, अर्थात द्वितीय श्रेणी का पद। अपनी सेवानिवृत्ति के बाद, उन्होंने एटीएल में उनके द्वारा प्रदान की गई पिछली सेवाओं के लाभ का दावा करते हुए सरकार से पेंशन लाभ के लिए 2015 में रिट याचिका संख्या 182 (एसबी) (अनुकूल प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर की, उक्त याचिका पर विचार

करने के लिए दिनांक 18.05.2015 को पारित आदेश के अनुसरण में, निदेशक द्वारा दिनांक 19.08.2015 को उस पर विचार किया गया तथा उसे अस्वीकार कर दिया गया। इस आदेश को इस न्यायालय के समक्ष तत्काल याचिका अर्थात रिट याचिका संख्या 1647 (एसबी) 2015 (अब रिट ए संख्या 1001647 2015) के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जो 15.10.2015 को दायर की गई थी। और इस याचिका पर सुनवाई के दौरान विद्वान एकल न्यायमूर्ति ने विभिन्न खंडपीठों के बीच मतभिन्नता पर ध्यान दिया और मामले को बड़ी पीठ को भेज दिया। उपर्युक्त पृष्ठभूमि के विरुद्ध यह संदर्भ हमारे समक्ष आया तथा इस पर सुनवाई की गई।

ऊपर उल्लिखित नियम 1991 निम्नानुसार हैं:

"उत्तर प्रदेश सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियम, 1991"

1. (1) उक्त नियमावली का नाम उत्तर प्रदेश सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनी किये गये कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियमावली, 1991 है।

(2) ये तत्काल प्रभाव से लागू होंगे।

(3) ये संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की नियम बनाने की शक्ति के अधीन पदों पर लागू होंगे।

2. जब तक विषय या संदर्भ में कोई प्रतिकूल अभिव्यक्ति की बात न हो-

(क) किसी ऐसे पद के संबंध में जिसके लिए किसी कर्मचारी की छंटनी की गई हो, "नियुक्ति प्राधिकारी" से अभिप्रेत ऐसे पद पर नियुक्ति करने के लिए सशक्त प्राधिकारी से है।

(ख) "सार्वजनिक निगम" का तात्पर्य किसी विश्वविद्यालय या स्थानीय प्राधिकरण को छोड़कर उत्तर प्रदेश अधिनियम के अधीन स्थापित या गठित निगमित किसी निकाय से है, जो स्थानीय स्वशासन के उद्देश्य से गठित किया गया हो और इसमें कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 617 के अर्थ में कोई सरकारी कंपनी भी सम्मिलित है, जिसमें राज्य सरकार का विशेष हित हो:

(ग) "छंटनीग्रस्त कर्मचारी" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसे सरकार या किसी सार्वजनिक निगम

के अधीन किसी पद पर 1 अक्टूबर, 1986 को या उससे पूर्व उस पद पर भर्ती के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नियुक्त किया गया था और वह सरकार या सार्वजनिक निगम के किसी प्रतिष्ठान में कटौती या उसके परिसमापन के कारण, जैसी भी स्थिति हो, अपनी छंटनी की तारीख तक ऐसे निगम की सरकार के अधीन किसी पद पर लगातार काम कर रहा था और जिसके संबंध में उसके नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा छंटनीग्रस्त कर्मचारी होने का प्रमाण-पत्र जारी किया गया है।

(घ) "सेवा नियम" से संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन बनाए गए नियम और जहां ऐसे नियम नहीं हैं, वहां सरकार द्वारा जारी किए गए कार्यकारी अनुदेश

अभिप्रेत हैं, जो सुसंगत सेवा में नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तों का विनियमन करते हैं।

3. (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य सेवा नियम में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, राज्य सरकार, अधिसूचित आदेश द्वारा, छंटनीग्रस्त कर्मचारियों को सरकार के अधीन किसी पद या सेवा में आमेलित करने की अपेक्षा कर सकेगी और ऐसे आमेलन के लिए प्रक्रिया निर्धारित कर सकेगी, जिसके अंतर्गत ऐसे छंटनीग्रस्त कर्मचारी के संबंध में भर्ती की विभिन्न शर्तों और नियमों में छूट सम्मिलित है।

(2) प्रासंगिक सेवा नियमों में निहित प्रावधानों को उप-नियम (1) में निर्दिष्ट अधिसूचित आदेश में किए गए प्रावधानों के साथ उनकी असंगतता की सीमा तक संशोधित माना जाएगा।"

उक्त नियमों में 'सार्वजनिक निगम' और 'छंटनीग्रस्त कर्मचारी' शब्दों को परिभाषित किया गया है। 1991 के नियम 3 के उप-नियम (1) के अनुसार, वर्तमान में लागू किसी अन्य सेवा नियम में किसी विपरीत बात के होते हुए भी, राज्य सरकार अधिसूचित आदेश द्वारा सरकार के अधीन किसी पद

या सेवा में छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के आमेलन की अपेक्षा कर सकती है और ऐसे छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के संबंध में भर्ती के विभिन्न नियमों और शर्तों में छूट सहित ऐसे आमेलन के लिए प्रक्रिया निर्धारित कर सकती है। नियम 1991 के नियम 3 के उपनियम (2) के अनुसार, प्रासंगिक सेवा नियमों में निहित प्रावधानों को उपनियम (1) में निर्दिष्ट अधिसूचित आदेश में किए गए प्रावधानों के साथ उनकी असंगतता की सीमा तक संशोधित माना जाएगा।

'अधिसूचित' शब्द को यू.पी. सामान्य खण्ड अधिनियम, 1904 की धारा 4 (29 ए) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

"(29-ए) "अधिसूचना" या "सार्वजनिक अधिसूचना" का तात्पर्य राज्य के राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना से होगा और "अधिसूचित" शब्द का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा।"

दोनों पक्षों में से किसी ने भी हमारे समक्ष 1991 के नियमों के नियम 3 के संदर्भ में कोई अधिसूचित आदेश नहीं रखा है। यद्दपि, उन्होंने 11.11.1993 का एक शासनादेश अभिलेख में लाया है, जो उनके अनुसार, 1991 के नियमों के संदर्भ में है और यह शासनादेश ही है जो एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों की सेवा की शर्तों को नियंत्रित करता है जिन्हें सरकार में शामिल किया गया था। यद्दपि उक्त आदेश एक अधिसूचित आदेश नहीं है, फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि यह शासनादेश ही है जिसने एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के आमेलन की शर्तों के संबंध में अब तक प्रभाव डाला है, इसलिए हम उक्त आधार पर आगे बढ़ते हैं।

शासनादेश दिनांक 11.11.1993 निम्नानुसार है:

"संख्या: 3/3/3/91-का0-2/93

प्रेषक ,

कालिका प्रसाद ,

सचिव,

उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

1. समस्त प्रमुख सचिव/सचिव, उ0प्र0 शासन।

2. समस्त विभागाध्यक्ष एवं प्रमुख कार्यालयाध्यक्ष, उ0प्र0।

3. समस्त मण्डलायुक्त/जिलाधिकारी, उ0प्र0।

कार्मिक अनुभाग-2

विषय : आटो टैक्टर्स लिमिटेड (ए0टी0एल0) के छटनीशुदा कर्मचारियों/अधिकारियों को सरकारी सेवा हेतु अर्हता एवं अनुमन्यता।

महोदय,

उपरोक्त विषय पर मुझे यह कहने का निर्दे हुआ है कि मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हुये शासन ने आटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड (ए0टी0एल0) के छटनी शुदा कर्मचारिया/अधिकारियों को निम्नांकित शर्तो के अधीन सरकारी सेवा अर्हता एवं अनुमन्यता प्रदान करने का निर्णय लिया है:-

1. सरकारी सेवा हेत केवल वे ही कर्मचारी पात्र होंगे जोदिनांक 1 अक्टूबर 1986 या उसके पूर्व ए0टी0एल0 की सेव में नियुक्त हुये हों तथा ए0टी0एल0 के बन्द होने की तिथि तक निरन्तर कार्यरत हो ।

2. लोक सेवा आयोग की परिधि के बाहर, अधीनस्थ सेवा चयन आयोग की परिधि के भीतर या बाहर के पदों पर "उपयुक्तता" के आधार पर नियुक्ति हेतु अर्हता मानी जायेगी । ऐसी सेवाओं/पदों हेतु जिनके लिये भर्ती/चयन के निमित्त किसी सेवा नियमावली/कार्यकारी आदेश में कोई प्रक्रिया विद्यमान हो, छटनीशुदा कार्मिकों के विषय में उक्त प्रक्रिया से शिथिलता बरतते हुये "उपयुक्तता" आंकने के लिए अलग से उत्तर प्रदेश सरकार या सार्वजनिक निगमों के छटनीशुदा कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियमावली, 1991 प्रख्यापित की गयी है ।

3. सरकारी सेवा में भर्ती हेतु निर्धारित न्यनू तम शैक्षिक अर्हता, अनुभव तथा आयु विषयक शर्तें पूरा करने वाले ए0टी0एल0 के कर्मचारी / अधिकारी ही उक्त आमेलन हेतु पात्र होंगे । यदि ऐसे कर्मचारी ए0टी0एल0 में ऐसे पद पर नियुक्त हुये थे जिनका कर्तव्य तथा उत्तर दायित्व उस पद के सम्बन्धित है जिस पद के लिये ये अब अभ्यर्थी है और अपनी नियुक्ति के समय उपरोक्त पद के लिये निर्धारित शैक्षिक योग्यता रखते थे, तो यह समझा जायेगा कि वे वर्तमान पद के लिये निर्धारित शैक्षिक अर्हता पूर्ण करते हैं ।

4. ए0टी0एल0 के अधिकारी / कर्मचारी के लिये सरकारी सेवा में पद

विशेष पर लागू अधिकतम आयु सीमा का प्रतिबन्ध लागू नहीं होगा ।

5. सेवा में लिये जाने के दिनांक से राज्य कर्मचारियों पर लागू समस्त नियम जैसे भविष्य निर्वाह निधि, अवकाश, पेंशन आदि उन पर स्वतः लागू होंगे ।

6. ए0टी0एल0 की सेवा में कार्मिकों को आहरित अन्तिम वेतन को संरक्षण प्रदान किया जायेगा जिसके विषय में वित्त विभाग की सहमति से प्रशासनिक विभाग द्वारा पृथक से आदेश जारी किये जायेंगे ।

7. उक्त आमेलन सीधी भर्ती के उपलब्ध पदों के विरूद्ध ही किया जायेगा तथा सम्बन्धित पद पर सीधी भर्ती से नियुक्त कार्मिकों की ज्येष्ठता निर्धारित रहने विषयक लागू नीति के अनुसार उक्त आमेलन की तिथि से ज्येष्ठता प्रदान की जायेगी ।

8. ए0टी0एल0 में तैनात समूह ''ग'' तथा ''घ'' के जिन कर्मचारियों की सेवायें समाप्त की जायेगी उन सभी के नाम सम्बन्धित आमेलन कार्यालयों में एक अलग पूल में ए0टी0एल0 में उनकी वरिष्ठता क्रम में, व्यवस्थित किये जायेंगे और सेवायोजकों से मांग प्राप्त होने पर तद्नुसार

नाम प्रेषित किये जायेंगे ।

9. यह नियुक्तियां करते समय आरक्षण सम्बन्धी नियमों का अनुपालन किया जायेगा ।

10. मितव्ययिता के दृष्टिकोण से 5 प्रतिशत पद रिक्त रखे जाने सम्बन्धी प्राविधान इन पर लागू न होंगे ।

11. उपरोक्त दिशा निर्देशों के अतिरिक्त यह भी कहना प्रासंगिक न होगा कि ए0टी0एल0 के कर्मचारियों के संदर्भ में समय-समय पर जो माननीय न्यायालयों के आदेश हुये हैं उनका समादर करते हुये अग्रसर कार्यवाही की जाये।

भवदीय

ह0 अपठनीय

(कालिका प्रसाद)

सचिव।"

शासनादेश में एटीएल के पुनः छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के आमेलन की पात्रता और अनुमेयता का उल्लेख है। शासनादेश के पैरा 1 में उल्लेख किया गया है कि केवल ऐसे कर्मचारी ही आमेलन के लिए पात्र होंगे जो 01.10.1986 को या उससे पहले एटीएल की सेवा में नियुक्त हुए थे। यह तिथि 1991 के नियमों में निहित छंटनी वाले कर्मचारियों की परिभाषा में उल्लिखित तिथि के अनुरूप है। शासनादेश के पैरा 2 के अनुसार, सरकारी सेवा में नियुक्ति के लिए ऐसे छंटनीग्रस्त कर्मचारियों की

पात्रता उनकी फिटनेस/उपयोगिता के आधार पर निर्धारित की जाएगी तथा संबंधित विभाग के सेवा नियमों को ऐसी नियुक्ति के प्रयोजनों के लिए शिथिल माना जाएगा।, जहां उन्हें नियुक्त किया जाना है। ऐसी नियुक्ति के लिए उनकी

पात्रता के बारे में यह 1991 के नियमों को संदर्भित करता है। अब, 1991 के आमेलन नियम की बात करते हैं, इसलिए, 11.11.1993 के शासनादेश को भी ऐसे आमेलन के लिए प्रक्रिया निर्धारित करने के रूप में समझा जाना चाहिए जो 1991 के नियमों के संदर्भ में है। उक्त शासनादेश दिनांक 11.11.1993 के पैरा 3 में भी 'आमेलन ' शब्द का उल्लेख है। प्रत्यक्ष रूप से इस तरह का आमेलन सीधी भर्ती के पद के सापेक्ष किया जाना प्रस्तावित था। उक्त शासनादेश के पैरा 5 में उल्लेख है कि सरकारी सेवा में लिए जाने की तिथि से सरकारी कर्मचारियों पर लागू सभी नियम जैसे जीपीएफ, छुट्टी, पेंशन आदि स्वचालित रूप से ऐसे छंटनीग्रस्त कर्मचारियों पर लागू होंगे। शासनादेश के पैरा 6 के अनुसार, एटीएल में ऐसे कर्मचारियों द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन संरक्षित माना जाएगा और इस संबंध में एक अलग शासनादेश जारी किया जाएगा। उक्त शासनादेश के पैरा 7 के अनुसार, सीधी भर्ती के पद पर आमेलित किए गए उक्त छंटनीग्रस्त कर्मचारियों को उनके आमेलन की तिथि से सीधी भर्ती किए गए कर्मचारियों के समान वरिष्ठता दी जाएगी, जिसका अर्थ यह है कि एटीएल में उनके द्वारा दी गई पिछली सेवाओं का लाभ सरकारी विभाग में उनकी वरिष्ठता निर्धारित करने के प्रयोजनार्थ नहीं गिना जाएगा। आमेलन के समय आरक्षण के नियम भी लागू होने थे। दोनों पक्षों के बीच इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि यह शासनादेश ही है जिसने उनके आमेलन की शर्तों को नियंत्रित किया है।

याचिकाकर्ता का दावा है कि सरकार में काम करते समय उसकी सेवानिवृत्ति पर पेंशन के प्रयोजनार्थ अर्हकारी सेवा की गणना करने के लिए एटीएल में उसके द्वारा की गई पिछली सेवाओं को शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि यह दावा 10.07.1998 के शासनादेश और इस न्यायालय के कुछ निर्णयों के आधार पर किया गया है, जिनमें उक्त लाभ दिया गया है।

दिनांक 10.07.1998 का यह शासनादेश ही एकमात्र दस्तावेज है जिस पर याचिकाकर्ता ने अपने दावे के समर्थन में विश्वास किया है और 1991 के नियमों में ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, जब तक कि हम यह न पाएं कि दिनांक 10.07.1998 का शासनादेश नियम 3 के संदर्भ में है या यदि यह उसके अनुसार अधिसूचित आदेश नहीं भी है तो भी हम इसे मामले के तथ्यों पर उसी प्रकार लागू पाते हैं जिस प्रकार दिनांक 11.11.1993 का शासनादेश लागू है।

याचिकाकर्ता द्वारा विस्वास किये गए निर्णयों पर हम निश्चित रूप से बाद में विचार करेंगे, लेकिन सबसे पहले हमें 10.07.1998 के शासनादेश की प्रयोज्यता पर विचार करना होगा। शासनादेश दिनांक 11.11.1993, निम्नानुसार है:

"संख्या सा-3-728/दस-98-901-98

प्रेषक,

श्री आलोक रंजन ,

सचिव,

उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

समस्त विभागाध्यक्ष/प्रमुख कार्यालयाध्यक्ष, उत्तर प्रदेश।

लखनऊः 10 जुलाई, 1998

विषयः- राज्य सरकारों के अधीन स्वायत्तशासी निकायों में संविलियन मांगने वाले केन्द्रीय सरकारी तथा केन्द्रीय स्वायत्त निकायों के कर्मचारियों तथा केन्द्रीय सरकार के तथा केन्द्रीय स्वायत्त निकायों में

संविलियन मांगने वाले राज्य सरकार के कर्मचारियों की पेंशन के प्रयोजन से सेवा का गिना जाना।

महोदय,

उपर्युक्त विषय पर मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि इस राज्य सरकार में यह व्यवस्था विद्यमान है कि केन्द्र सरकार का कर्मचारी राज्य सरकार में सेवा स्थानान्तरण के आधार पर आता है या उन्हीं परिस्थितियों में राज्य सरकार का कर्मचारी भारत सरकार के कार्यालय में जाता है, तो जहाँ से वह सेवानिवृत्त होगा वही सरकार उसके नैवृत्तिक लाभों का भुगतान करेगी । काफी समय से यह मांग की जा रही है कि केन्द्र सरकार के स्वायत्तशासी निकाय का कर्मचारी राज्य सरकार के स्वायत्तशासी निकाय में राज्य सरकार में प्रतिनियुक्ति पर आए या सीधे सेवा ग्रहण करें या उन्हीं परिस्थितियों में केन्द्र सरकार के स्वायत्तशासी निकाय का कर्मचारी भारत सरकार के स्वायत्तशासी निकाय में प्रतिनियुक्ति पर या सीधी भर्ती से जाये तो उसकी सम्पूर्ण सेवा अवधि के आधार पर नैवृत्तिक लाभ दिये जायें । इसके अतिरिक्त **राज्य सरकार के अन्तर्गत ही राज्य सरकार का कर्मचारी राज्य सरकार के ऐसे उपक्रम / निगम में स्थानान्तरण / सीधी भर्ती / प्रतिनियुक्ति के आधार पर जाता है या उन्हीं परिस्थितियों में राज्य सरकार के उपक्रम / निगम का कर्मचारी राज्य सरकार में आता है तो प्रश्नगत सुविधा उन्हें भी उपलब्ध करायी जाये ।**

2- शासन द्वारा सम्यक विचारोपरान्त निम्नलिखित शर्तों के अधीन यह निर्णय लिया गया है कि राज्य सरकार का कर्मचारी भारत सरकार के उपक्रम / निगम में स्थानान्तरण / प्रतिनियुक्ति के आधार पर जाता है और संविलीन हो जाता है या उसी परिस्थति में भारत सरकार का कर्मचारी राज्य सरकार के उपक्रम / निगम में आता है और संविलीन हो जाता है तो यदि दोनों पद पेंशनेबुल हैं तो उसके द्वारा दोनों पदों पर की गई अर्ह सेवा के योग पर नैवृत्तिक लाभ अनुमनय होंगे । **इसके अतिरिक्त राज्य सरकार के अन्तर्गत ही राज्य सरकार का कर्मचारी राज्य सरकार के उपक्रम / निगम में स्थानान्तरण / सीधी भर्ती / प्रतिनियुक्ति के आधार पर जाता है या राज्य सरकार में आता है,**

जहाँ राज्य सरकार के संबंधित उपक्रम / निगम में पेंशन की सुविधा उपलब्ध हो एवं संबंधित कर्मचारी का संविलियन सेवानिवृत्त होने वाले उपक्रम / निगम / सरकार में हो गया हो, तो यदि दोनों ही पद पेंशनेबुल हों, तो उसके द्वारा दोनों पदों पर की गई अर्ह सेवा पर नैवृत्तिक लाभ अनुमन्य होंगे और दोनों अवधियों को जोड़कर सेवा नैवृत्तिक लाभों का भुगतान उसी संस्थान / सरकार द्वारा किया जायेगा जहाँ से वह अन्तिम रूप से सेवानिवृत्त हो रहा है । इस प्रकार के मामलों में कर्मचारी पर वही पेंशन नियम लागू होंगे जैसी कि उस सरकार/उपक्रम/निगम में लागू होंगे ।

(1). जब किसी पेंशनयुक्त संगठन में कार्य कर रहे राज्य सरकार के किसी कर्मचारी को किसी स्वायत्त निकाय में संविलियन की अनुमति दी जाती है तो उसके द्वारा सरकार के अधीन की गयी सेवा को स्वायत्त निकाय के अधीन पेंशन के लिए आगणित कराने की अनुमति होगी चाहे उक्त कर्मचारी सरकार में अस्थायी रहा हो अथवा स्थायी । किन्तु पेंशन संबंधी सुविधायें केवल तभी मिलेंगी जबकि अस्थायी सेवा के बाद उनका स्थायीकरण हो गया हो । यदि वह स्वायत्तशासी निकाय में अस्थायी कर्मचारी के रूप में सेवानिवृत्त हो जाता है तो उसे सेवान्त प्रसुविधायें उसी प्रकार मिलेंगी जो सामान्यतः सरकार के अधीन अस्थायी कर्मचारियों को उपलब्ध हैं । स्वायत्त निकायों के जो कर्मचारी राज्य सरकार के अधीन स्थायी तौर पर संविलीन हो जाते हैं उनके मामलों में भी वही क्रियाविधि लागू होगी ।

स्वायत्त निकाय / सरकार में जैसा भी मामला जो संविलियन की तारीख तक की सेवा के लिए अनुपातिक दरों पर पेंशन /सेवा उपादान / सेवान्त उपादान तथा मृत्यु और सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं का भुगतान करके सरकार / स्वायत्त निकाय अपने पेंशन दायित्व को पूरा करेगी। अनुपातिक दरों पर पेंशन की राशि समय पर यथा संशोधित शासनादेशों को ध्यान में रखकर निश्चित की जायेगी।

2. अंशदायी भविष्य निधि प्रसुविधाओं का हकदार कर्मचारी यह विकल्प देगा कि यह या तो स्वायत्तशासी निकाय से मिलने वाली अंशदायी भविष्य निधि प्रसुविधायें प्राप्त करेगा अथवा उसे राज्य सरकार के राजकोष में जमा करेगा और राज्य सरकार में पेंशन के लिए अर्ह सेवा के रूप में गिने जाने का विकल्प देगा । इसी प्रकार से सरकारी सेवक स्वायत्त निकाय की सेवा में योगदान करने पर शासन के अधीन सामान्य भविष्य निधि खाते में जमा धनराश संबंधित स्वायत्त निकाय को

भुगतान कर दी जायेगी । ऐसा विकल्प संविलियन की तारीख से एक वर्ष के भीतर दिया जा सकेगा । यदि निर्धारित अवधि के भीतर विकल्प

नहीं दिया जाता है तो यह मान लिया जायेगा कि कर्मचारी ने अंशदायी

भविष्य निधि / सामानय भविष्य निधि प्रसुविधायें प्राप्त करने के लिए विकल्प दे दिया है । एक बार दिया गया विकल्प अन्तिम होगा।

3. जब किसी स्वायत्तशासी निकाय के किसी कर्मचारी को केन्द्रीय सरकार / राज्य सरकार के अधीन स्थायी तौर पर संविलीन कर दिया जाता है तो उसके सामने दो विकल्प रहेंगे अर्थात् या तो यह स्वायत्तशासी निकाय द्वारा देय अंशदायी भविष्य निधि प्रसुविधायें प्राप्त कर लें और सरकार में नये सिरे से नौकरी शुरू करे या अंशदायी भविष्य निधि में नियोक्ता के अंशदान और उस देय ब्याज सहित, सम्पूर्ण राशि राज्य सरकार के खाते में जमा कर दें और सरकार के अधीन पेंशन प्रयोजनों हेतु अर्ह सेवा के रूप में जुड़वाने का विकल्प दे दे। यह विकल्प संविलियन की तारीख से एक वर्ष के भीतर दिया जायेगा। यदि निर्धारित अवधि के भीतर कोई विकल्प नहीं दिया जाता है तो यह समझ लिया जायेगा कर्मचारी ने अंशदायी भविष्य निधि/ सामान्य भविष्य निधि प्रसुविधायें प्राप्त करने का विकल्प दिया है । एक बाद दिया गया विकल्प अन्तिम होगा।

3. राज्य सरकार के अधीन भारत सरकार द्वारा निर्गत आदेश दिनांक 7-2-1986 से प्रभावी माने जायेंगे।

भवदीय,
आलोक रंजन,
सचिव, वित्त।"

दिनांक 10-07-1998 के उपर्युक्त शासनादेश को दिनांक 28-12-2001 के उत्तरवर्ती शासनादेश द्वारा संशोधित/संशोधित किया गया था और यह स्पष्ट किया गया था कि दिनांक 10-07-1998 का शासनादेश स्वायत्त निकायों पर लागू था और दिनांक 10-07-1998 के शासनादेश में गैर-संचालन/निगम शब्द का गलत उल्लेख किया गया था। तदनुसार, दिनांक 10.07.1998 के शासनादेश को स्पष्ट/संशोधित किया गया, जिसका अर्थ है कि इसमें 'उपक्रमों/निगमों' के संदर्भ को स्वायत्त निकायों के संदर्भ के रूप में समझा जाना चाहिए। इसके अलावा, 'स्वायत्त निकाय' शब्द का अर्थ ऐसे निकायों से था जो पूर्ण रूप से सरकार द्वारा वित्तपोषित थे या जिनके 50% व्यय सरकार द्वारा वहन किए जाते थे और ऐसे निकायों के अधीन सेवाएं पेंशन योग्य थी। याचिकाकर्ता का दावा है कि एटीएल पूरी तरह से राज्य सरकार के स्वामित्व में है, लेकिन उसने यह साबित नहीं किया है कि एटीएल में उसकी सेवाएं पेंशन योग्य थीं।

उपर्युक्त उद्धृत शासनादेश के विषय का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है

कि इसमें केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों तथा केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणाधीन स्वायत्त निकायों के कर्मचारियों की मांग के साथ-साथ राज्य सरकार के कर्मचारियों की मांग पर भी विचार किया जाना था, जो अपनी सेवाओं की गणना के लिए केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणाधीन स्वायत्त निकायों में आमेलन चाहते हैं, तथापि जब हम शासनादेश के मुख्य भाग का अवलोकन करते हैं, तो पाते हैं कि इसमें स्वायत्त निकायों के ऐसे कर्मचारियों के दावों पर भी विचार किया गया है, जिन्हें राज्य सरकार में आमेलित किया जा सकता है।

उक्त शासनादेश दिनांक 10.07.1998 में पूर्ववर्ती विभाग/स्वायत्त निकायों में प्रदान की गई पूर्व सेवाओं की गणना के लिए एक चेतावनी है, अर्थात् दोनों प्रतिष्ठानों में की गई सेवाएं पेंशन योग्य होनी चाहिए, तभी स्वायत्त निकाय के अंतर्गत की गई पूर्व सेवाएं पेंशन लाभ के लिए गणना

योग्य होंगी। इस मामले में रिट याचिका के पैरा 7 में यह स्पष्ट दावा किया गया है कि एटीएल में सेवाएं पेंशन योग्य थीं, लेकिन इसके समर्थन में कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। वास्तव में, 22.02.2026 के पूरक शपथपत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ 7 की तीसरी पंक्ति और रिट याचिका के ग्राउंड (डी) की तीसरी पंक्ति में अपने गलत कथन को महसूस करते हुए निम्नलिखित कहा है:

"आगे यह भी कहा गया है कि रिट याचिका के पैराग्राफ 7 की तीसरी पंक्ति और रिट याचिका के आधार (डी) की तीसरी पंक्ति में यह गलत कहा गया है कि याचिकाकर्ता जिस पद पर तत्कालीन ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड में काम कर रहा था, वह पेंशन योग्य था। उक्त गलती जानबूझकर नहीं की गई थी, बल्कि कुछ असावधानी के कारण हुई थी। यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता का तत्कालीन ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड में पद पेंशन योग्य नहीं था।"

रिट याचिका में पारित प्रश्नगत आदेश में याचिकाकर्ता द्वारा पेंशन लाभ के लिए एटीएल में प्रदान की गई पिछली सेवाओं की गणना को भी सम्मिलित किये जाने का दावा किया गया है । इसमें यह भी कहा गया है कि एटीएल में दी गई सेवाएं पेंशन योग्य नहीं थीं, इसलिए 10.07.1998

का शासनादेश लागू नहीं था। राज्य के प्रति शपथपत्र के पैरा 3(ए) में भी यही बात कही गई है, जिसका याचिकाकर्ता ने अपने प्रत्युत्तर शपथपत्र में प्रमाण के समर्थन के बिना स्पष्ट रूप से खंडन किया है। इस प्रकार, एटीएल में याचिकाकर्ता की सेवाएं पेंशन योग्य नहीं थीं।

<u>सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हम पाते हैं कि शासनादेश स्वायत्त निकायों के केवल ऐसे कर्मचारियों पर लागू होता है जो स्थानांतरण/सीधी भर्ती/प्रतिनियुक्ति के माध्यम से सरकार की सेवा में आए थे और उसके बाद अपनी सेवानिवृत्ति से पहले ही आमेलित हो गए थे। इस प्रकार, उक्त</u>

<u>शासनादेश दिनांक 10.07.1998 के अंतर्गत आने के लिए, कर्मचारी को स्थानांतरण या सीधी भर्ती या प्रतिनियुक्ति के माध्यम से</u>

सरकारी सेवा में आना चाहिए और उसके बाद उसे आमेलित किया जाना चाहिए। जब तक यह शर्त पूरी नहीं होती, तब तक उसके प्रकरण में दिनांक 10.07.1998 का शासनादेश लागू नहीं होगा।

इस मामले में याचिकाकर्ता न तो स्थानांतरण या सीधी भर्ती के माध्यम से सरकार की सेवा में सम्मिलित हुआ था और न ही वह प्रतिनियुक्ति पर आया था। वह तत्कालीन एटीएल का छंटनी किया गया कर्मचारी था और इसी आधार पर उसे आमेलित किया गया था।

एटीएल को 20.11.1990 को बंद कर दिया गया था और जैसा कि छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के समायोजन पर विचार किया जाना था, लेकिन उस समय कोई प्रावधान नहीं था, इसलिए सरकार के अन्दर एक प्रकोष्ठ बनाया गया, जिसमें ऐसे कर्मचारियों को सम्मिलित होने की अनुमति दी गई। इस प्रकार, 21.11.1990 से 06.03.1998 तक की यह नियुक्ति भी एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों

के लिए अलग से बनाए गए एक प्रकोष्ठ में थी और ऐसा नहीं था कि याचिकाकर्ता को सेवा स्थानांतरण या सीधी भर्ती या प्रतिनियुक्ति के माध्यम से सरकारी सेवा में नियुक्त किया गया था। पिछड़ा वर्ग कल्याण में नियमितीकरण से पहले, उक्त प्रकोष्ठ में काम करते समय याचिकाकर्ता सरकार के किसी भी विभाग में सेवा का सदस्य नहीं था। यह केवल एक अंतरिम व्यवस्था थी, इसलिए, उक्त अवधि सरकार के अधीन प्रदान की गई कोई मौलिक सेवा नहीं थी। यह व्यवस्था केवल याचिकाकर्ता और उसके जैसे अन्य छंटनी वाले कर्मचारियों के विशेष आमेलन की सुविधा के लिए की गई थी।

याचिकाकर्ता का 07.03.1998 को पिछड़ा वर्ग कल्याण निदेशालय में आमेलन 1991 के नियमों और ऊपर उल्लिखित 11.11.1993 के शासनादेश के अनुसार हुआ था। 1991 के नियम और 11.11.1993 के शासनादेश दोनों ही छंटनीग्रस्त कर्मचारियों के आमेलन के संबंध में थे। वे उन कर्मचारियों के आमेलन के संबंध में नहीं थे जो सेवा के स्थानांतरण या सीधी भर्ती या प्रतिनियुक्ति के आधार पर सरकारी सेवा में सम्मिलित हुए हैं। एटीएल में याचिकाकर्ता की सेवाएं पेंशन योग्य नहीं थीं, जबकि शासनादेश दिनांक 10.07.1998 के अनुसार दोनों प्रतिष्ठानों में सेवाएं/पद पेंशन योग्य थे। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता को सीधी भर्ती के पद पर आमेलित किया गया था, दिनांक 10.07.1998 के शासनादेश की प्रयोज्यता के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता और एटीएल के अन्य छंटनीग्रस्त कर्मचारी जो आमेलित किए गए थे, वे दिनांक 10.07.1998 और 28.12.2001 के सरकारी आदेशों द्वारा शासित लोगों की तुलना में एक अलग वर्ग बनाते हैं। दिनांक 11.11.1993 के शासनादेश में ही उल्लेख किया गया है कि आमेलन मानवीय आधार पर किया जा रहा था। याचिकाकर्ता को छंटनीग्रस्त कर्मचारी के रूप में आमेलित किया गया था। इस प्रकार, प्रथम दृष्टया, 10.07.1998 का शासनादेश उसके प्रकरण में लागू नहीं होता है।

हमने 1991 के नियमों का अवलोकन किया है और उक्त नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो याचिकाकर्ता द्वारा एटीएल में की गई पिछली सेवाओं को, उसके द्वारा सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त होने के बाद सरकार द्वारा देय पेंशन लाभों के लिए उसकी अर्हक सेवा की गणना करने के प्रयोजनार्थ एटीएल में उसकी सेवा की गणना करने की अनुमति दे सके। हमने 11.11.1993 के शासनादेश का भी अवलोकन किया है और हमें उसमें उक्त लाभ की अनुमति देने वाला कोई प्रावधान नहीं मिला।

दिनांक 11.11.1993 के शासनादेश का पैराग्राफ 7 भी याचिकाकर्ता द्वारा ए.टी.एल. में प्रदान की गई सेवाओं को सम्मिलित विभाग में सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों की तुलना में उसकी वरिष्ठता निर्धारित करने के प्रयोजनार्थ गणना करने की अनुमति नहीं देता है।

दिनांक 11.11.1993 के शासनादेश के पैरा 5 में केवल इतना कहा गया है कि सरकारी कर्मचारियों पर लागू सभी नियम ऐसे छंटनीग्रस्त कर्मचारियों पर उनके सरकारी सेवा में प्रवेश की तारीख से लागू होंगे।

अब, इस संदर्भ में, हम पाते हैं कि सरकारी कर्मचारियों की पेंशन संबंधी पात्रता, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 (जिसे आगे '1961 नियमावली' कहा जाएगा) और सिविल सेवा विनियमावली (जिसे आगे 'सीएसआर' कहा जाएगा) के नाम से ज्ञात नियमों द्वारा विनियमित होती हैं, जहां तक कि वे पूर्वोक्त 1961 नियमावली से असंगत न हों। ये नियम राज्यपाल की नियम बना

ने की शक्ति के अंतर्गत आने वाले सभी कार्यालयों पर लागू होंगे, सिवाय उनके जो उक्त नियमों के लागू होने की तारीख से पहले सेवानिवृत्त हो गए हों। नियम 2 के उप-नियम (2) में कहा गया है कि सीएसआर में निहित पेंशन प्रावधान इन नियमों द्वारा शासित अधिकारियों पर लागू होते रहेंगे, सिवाय इसके कि वे इन नियमों के किसी भी प्रावधान के साथ असंगत हों। 1961 के नियम 3 (8) में 'अर्हकारी सेवा' शब्द को परिभाषित किया गया है, जिसकी गणना पेंशन लाभों के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए की जानी है और यह निम्नानुसार है:

"3 (8) अर्हकारी सेवा से तात्पर्य ऐसी सेवा से है जो सिविल सेवा विनियमावली के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह हो:

बशर्ते कि <u>उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन</u> निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के बाद उसी या किसी अन्य पद पर बिना किसी रुकावट के स्थायीकरण किया गया हो, सिवाय इसके कि

(i) किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; तथा

(iii) आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि भी अर्हक सेवा के रूप में

गिनी जाएगी।

नोट: यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिक व्यय से भुगतान

प्राप्त पद पर की गई सेवा, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो इसे सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा।"

सीएसआर का विनियमन 368 निम्नानुसार है:

"368. सेवा तब तक योग्य नहीं मानी जाएगी जब तक अधिकारी किसी स्थायी प्रतिष्ठान में कोई महत्वपूर्ण पद धारण नहीं करता । "

नियम 3(8) के प्रावधान में अन्य बातों के साथ-साथ यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि सरकार के अधीन की गई सेवा अर्हक सेवा मानी जाएगी। इस संदर्भ में हम विनियमन 361 का संदर्भ ले सकते हैं जो निम्नानुसार है:

"361. <u>किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं मानी जाएगी जब तक कि वह निम्नलिखित तीन शर्तों को पूरा न करे-</u>

<u>पहली- सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।</u>

दूसरी- रोजगार मौलिक और स्थायी होना चाहिए।

तीसरी- सेवा का भुगतान सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित खंड में पूरी तरह स्पष्ट किया गया है।"

उपरोक्त तीनों शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार, सीएसआर के उपरोक्त प्रावधान के अनुसार भी इस तथ्य के अतिरिक्त कि रोजगार मौलिक और स्थायी होना चाहिए, किसी अधिकारी की सेवा पेंशन के लिए तभी योग्य होगी जब वह सेवा सरकार के अधीन हो और उसका भुगतान सरकार द्वारा किया जाता हो । याचिकाकर्ता द्वारा एटीएल में दी गई सेवाएं सरकार के अधीन सेवा नहीं थी और न ही सरकार द्वारा उसका भुगतान किया गया था और इसके विपरीत सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। एटीएल एक सरकारी कंपनी थी, जो कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित एक सरकारी कंपनी के रूप में अलग इकाई थी। इस प्रकार, सरकार में लागू पेंशन नियमों के अनुसार, पेंशन संबंधी लाभों के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए और सरकार द्वारा भुगतान भी किया जाना चाहिए, जो कि याचिकाकर्ता के प्रकरण में ऐसा नहीं था, इसलिए, इन नियमों के दृष्टिगत भी, इसे पूर्वोक्त उद्देश्य के लिए नहीं गिना जा सकता है।

जहां तक हमारे समक्ष प्रश्नों का संबंध है, उत्तर प्रदेश पेंशन एवं विधिमान्यकरण अर्हक सेवा अधिनियम, 2021 द्वारा नियम 1961 के

नियम 3(8) में परिभाषित अर्हक सेवा में संशोधन से, विधिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रकार, इस संबंध में लागू सरकार के नियम भी

सरकार द्वारा पेंशन लाभ प्रदान करने के प्रयोजनार्थ ए.टी.एल. में प्रदान की गई सेवाओं की गणना के याचिकाकर्ता के दावे का समर्थन नहीं करते हैं।

इस प्रकार, हम नियमों या 1991 के नियमों से संबंधित किसी शासनादेश में ऐसा कोई प्रावधान नहीं पाते हैं, जो एटीएल के किसी छंटनीग्रस्त कर्मचारी को सरकार द्वारा पेंशन संबंधी लाभ प्रदान करने के लिए उक्त प्रतिष्ठान में दी गई उसकी सेवाओं की गणना करने का अधिकार दे सके।

हम इस स्तर पर इस न्यायालय के ***रिट ए 49126/2016 (पूरन सिंह मनराल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)*** में दिया गया दिनांक 06.10.2016 के डिवीजन बेंच के निर्णय का सन्दर्भ दे सकते हैं, जिसमें समान दृष्टिकोण लिया गया था और जिसे हम इस विषय पर विधि को सही ढंग से निर्धारित करने के रूप में पाते हैं, यधपि यह किसी अन्य निगम के कर्मचारी द्वारा किसी अन्य विभाग में आमेलित किए जाने के दावे के संदर्भ में था लेकिन, उक्त प्रकरण में भी दिनांक 11.11.1993 के शासनादेश के समान ही शासनादेश और 1991 के उन्हीं नियमों, पर विचार किया गया।

1991 के नियमों को बाद में सरकारी सेवा में सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनी किये गये कर्मचारियों (नियमों का निरसन), 2003 द्वारा निरस्त कर दिया गया था। उक्त नियमों द्वारा, 1991 के नियमों को 08.04.2003 से निरस्त कर दिया गया था। केवल दो चीजों को संरक्षित किया गया था; एक तो पहले से दिए गए आमेलन का लाभ और दूसरा; इसी संदर्भ में अंतिम वेतन संरक्षण। निस्संदेह पहले से ही प्रदान किये गए लाभ के अधीन, नियम 3 से संबंधित सभी शासना

देश भी 08.04.2003 से निरस्त कर दिए गए । इसके अलावा, जिन छंटनीग्रस्त कर्मचारियों की सेवाएं उक्त नियमावली के लागू होने तक यानी 08.04.2003 तक आमेलित नहीं की गई थीं, उन्हें उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के परिधि से बाहर समूह 'ग' और 'घ' के पदों पर पुनः भर्ती के लिए आयु में छूट दी गई। इसके बाद, सरकारी सेवा में सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनीग्रस्त कर्मचारी (नियमों का निरसन) अधिनियम, 2009 के नाम से एक विधायी अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा 1991 के नियमों को 09.05.1991 से निरस्त कर दिया गया, अर्थात उसी तिथि से जब वे प्रख्यापित किए गए थे। इस प्रकार, इस अधिनियम ने 09.05.1991 से नियम 1991 के निरसन को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया। उक्त नियमावली को दिनांक 09.05.1991 से भूतलक्षी प्रभाव से निरस्त करते हुए पुनः दो बातों को संरक्षित किया गया, एक तो दिनांक 08.04.2003 से पूर्व प्रदान किया जा चुका आमेलन का लाभ तथा दूसरा ऐसे छंटनीकृत कर्मचारी द्वारा आहरित अंतिम वेतन, जिसका आमेलन किया गया हो। इसके अतिरिक्त यह भी प्रावधान किया गया कि जिन छंटनीकृत कर्मचारियों का आमेलन दिनांक 08.04.2003 तक नहीं हुआ है, उन्हें ऐसे समूह 'ग' तथा 'घ' पदों पर सीधी

भर्ती के लिए ऊपरी आयु सीमा में उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के परिधि से बाहर, इस सीमा तक छूट दी जाएगी जहा तक उन्होंने संबंधित सरकारी विभाग अथवा सार्वजनिक निगमों/कंपनियों में मौलिक क्षमता में निरन्तर अपनी सेवा दी हो । इस प्रकार, 2003 और 2009 के ये नियम भी पेंशन लाभ के लिए सरकारी सेवा में आमेलन के बाद एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों द्वारा प्रदान की गई पिछली सेवाओं की गणना का प्रावधान नहीं करते हैं।

अब हम इस विषय पर दिए गए निर्णयों तथा इस न्यायालय की विभिन्न खंडपीठों द्वारा व्यक्त किए गए परस्पर विरोधी विचारों पर आते हैं।

जहां तक ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 410 (एसबी) वर्ष 2010)*** के वाद में पारित दिनांक 04.04.2012 के निर्णय का संबंध है, हमने जो प्रश्न संख्या 2 विरचित किया है, वह उसमें सम्मिलित ही नहीं था, न ही उस पर बहस की गई और न ही उस पर विचार किया गया। इसमें एकमात्र प्रश्न वेतन संरक्षण के प्रयोजनों के लिए पिछली सेवाओं की गणना का था और चूंकि 11.11.1993 के शासनादेश ने स्वयं अंतिम आहरित वेतन को संरक्षित किया था, इसलिए ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव*** (उपरोक्त) में किये गए दावे के विषय में कोई संदेह नहीं हो सकता था, लेकिन जहां तक हमारे समक्ष प्रश्न का संबंध है, उक्त निर्णय को किसी स्थापित दृष्टान्त के रूप में नहीं समझा जा सकता है। है। अन्यथा भी, हमारे द्वारा ऊपर वर्णित विधि के प्रवर्तन के दृष्टिगत व्यक्त किये गए मंतव्य से विरत कोई भी मंतव्य मान्य विधि नहीं है।

इस संदर्भ में एक पक्ष है जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है और वह है खंडपीठ द्वारा ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव*** (उपरोक्त) में हृदयेश दयाल श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत की गई पूर्व याचिका में दिए गए निर्णय के विरूद्ध राज्य सरकार द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका में राज्य सरकार के पक्ष पर विस्वास करना। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष राज्य सरकार का पक्ष केवल इस संबंध में था कि छंटनीग्रस्त कर्मचारियों की पूर्व सेवाएं किसी अन्य रोजगार में उनके वेतनमान के निर्धारण के प्रयोजनार्थ गिनी जाने योग्य हैं और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई कथन नहीं था कि पेंशन लाभों के लिए उनकी पूर्व सेवाएं गिनी जाने योग्य हैं। इसलिए, ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव*** (उपरोक्त) में खंडपीठ ने उक्त पक्ष को गलत तरीके से पढ़कर गलती की और अन्य लाभों के लिए भी उक्त सेवाओं की गणना करने के प्रयोजनों के लिए अपने निर्णय को इस पर आधारित किया, भले ही, अप्रकट रूप से इसलिए, उक्त निर्णय 1991 के नियमों के तहत छंटनीग्रस्त कर्मचारियों को पेंशन लाभ के प्रयोजनों के लिए पिछली सेवाओं का लाभ देने का अधिकार नहीं देता है।

राज्य सरकार द्वारा ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव*** (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के विरुद्ध एसएलपी संख्या सीसी संख्या 22538-22539/2015 प्रस्तुत की गई थी और इसे 22.01.2016 को समय सीमा में निरस्त कर दिया गया था, जिससे विधि का प्रश्न निरुत्तर रह गया, इसलिए एसएलपी की यह निरस्तता

भी हमें किसी अन्य तरीके से संदर्भ का उत्तर देने के लिए प्रेरित नहीं करती है, क्योंकि विधि का प्रश्न निरुत्तर रह गया था, जिस पर अब हमारे द्वारा विचार किया गया है।

केशव राम पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 65 (एसबी)/2011) में पारित दिनांक 26.04.2013 के डिवीजन बेंच के निर्णय के संबंध में, इसने केवल ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव*** (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया और स्वयं प्रासंगिक नियमों और सरकारी आदेशों पर विचार नहीं किया। इसलिए, यह विधि के किसी सिद्धांत को निर्धारित नहीं करता है और इसका कोई पूर्ववर्ती मूल्य नहीं है। अन्यथा, हमारे द्वारा प्रतिपादित विधि से विपरीत होने के कारण भी इसे एक मान्य विधि या आबद्धकर द्रष्टान्त नहीं कहा जा सकता है। यह तथ्य कि ***केशव राम पांडे*** (उपरोक्त) में उक्त निर्णय के विरूद्ध एसएलपी को समय सीमा में निरस्त कर दिया गया था, यह भी विधि की स्थिति का कोई बदलाव नहीं करता है ।

जहां तक ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य बनाम शंकटा प्रसाद मिश्रा (विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 645/2016)*** में 25.10.2016 को पारित खंडपीठ के निर्णय का संबंध है, यह तथ्य कि ***शंकटा प्रसाद मिश्रा*** (उपरोक्त) के उक्त निर्णय के विरुद्ध एसएलपी को समय सीमा में निरस्त कर दिया गया था, यह भी विधि की स्थिति का कोई बदलाव नहीं करता है। जैसा की हमारे द्वारा यहाँ ऊपर इसकी चर्चा की गई है क्योंकि यह ***शंकटा प्रसाद मिश्रा*** (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय की पुष्टि नह करता है। हमारे द्वारा उपरोक्त वैधानिक प्रतिपादन के दृष्टिगत, उक्त निर्णय विधि को सही तरीके से निर्धारित नहीं करता है और यह 11.11.1993 के शासनादेश की गलत व्याख्या पर आधारित है। इसलिए, यह एक मान्य विधि नहीं है। उसी तारीख यानी 25.10.2016 को, उसी खंडपीठ ने ***यू.पी. राज्य और अन्य बनाम अमर पाल सिंह (विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 646/2016)*** के एक अन्य वाद वही कारण देते निर्णित किया, इसलिए, यह भी एक मान्य विधि नहीं है।

नरेन्द्र नारायण मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य में खण्डपीठ द्वारा दिनांक 13.02.2018 को दिए गए एक अन्य निर्णय के संबंध में, हम पाते हैं कि उक्त निर्णय में भी यह माना गया है कि दिनांक 10.07.1998 का शासनादेश लागू नहीं होता है, तथापि अन्य कारणों से याचिका को अनुमति दी गई थी, लेकिन हमारे द्वारा इस विषय पर विधि के स्पष्टीकरण के दृष्टिगत उक्त निर्णय दिनांक 10.07.1998 के शासनादेश की अप्रयोज्यता से विरत अन्य विषयो पर विधि को सही रूप से निर्धारित नहीं करता है और इस सीमा तक यह मान्य विधि नहीं है।

जहां तक खंडपीठ द्वारा ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मिर्तुनजय प्रताप सिंह (विशेष अपील संख्या 121/2015)*** में 06.11.2017 को पारित निर्णय का सन्दर्भ है, खंडपीठ ने भी विषय के प्रासंगिक पहलुओं पर विचार नहीं किया है, जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है।, बल्कि, केवल समन्वय पीठों द्वारा पारित पूर्व निर्णयों का संदर्भ दिया गया है और तदनुसार पेंशन लाभ के लिए पिछली सेवाओं का लाभ प्रदान किया गया था। उपरोक्त

जिसकी चर्चा की जा चुकी है, उसके दृष्टिगत , इस तथ्य से विरत कि इसमें प्रासंगिक पहलुओं पर कोई चर्चा नहीं है, इसे मान्य विधि के रूप में नहीं माना जा सकता है ।

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राम शंकर गुप्ता (विशेष अपील दोष-पूर्ण संख्या 553/2015) के वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 27.11.2015 के निर्णय एवं आदेश के अनुसार 1991 के नियमों के प्रावधानों पर विचार किया और स्पष्ट रूप से कहा कि उक्त नियमों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे पेंशन लाभ के प्रयोजनों के लिए पूर्ववर्ती विभाग में छंटनी किये गये कर्मचारी की सेवा अवधि की गणना की जा सके। इसलिए, नियमों में किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में, न्यायालय का यह विचार था कि ऐसा कोई लाभ प्रदान नहीं किया जा सकता है। तदनुसार न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड, प्रतापगढ़ में 01.10.1980 से 20.11.1990 तक की गई अपनी पिछली सेवाओं को पेंशन लाभ के लिए गणना करने के लिए मांगी गई सहायत को अस्वीकार कर दिया और तदनुसार विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को इस सीमा तक संशोधित किया।

यह तथ्य कि उक्त निर्णय में ***राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य बनाम सुनील कुमार वर्मा एवं अन्य; 2010 (10) एडीजे 125 (डीबी)*** के वाद में दिए गए समन्वय पीठ के एक अन्य निर्णय का सन्दर्भ दिया गया था, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने ***(2016) 1 एससीसी 397 सुनील कुमार वर्मा एवं अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य***, में दिए गए निर्णय से अपास्त कर दिया था। जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दावा किया है, यह ज्यादा प्रासंगिकता नहीं रखता है, इस तथ्य के दृष्टिगत कि नियम 2003 और 2009 के लागू होने के बाद इसमें अन्तर्निहित विषय आमेलन के अधिकार के संबंध में था जबकि हमारे समक्ष प्रश्न अलग हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि ***राम शंकर गुप्ता*** (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय में दिनांक 11.11.1993

और 10.07.1998 के सरकारी आदेशों पर विचार नहीं किया गया था, लेकिन, यह विचरण न करने से इसमें व्यक्त किये गए विचार प्रभावित नहीं होते है क्योंकि यह हमारे द्वारा बताए गए उपरोक्त विचारों के अनुरूप है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह भी तर्क था कि एटीएल के अन्य छंटनीग्रस्त कर्मचारियों को अन्य विभाग में पिछली सेवाओं का लाभ दिया गया है, अर्थात उन विभागों के अलावा जहां याचिकाकर्ता को आमेलित किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता को उक्त लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा। हम इस तर्क से सहमत नहीं हैं क्योंकि हमने इस विषय पर विधि को स्पष्ट किया है। यह पूर्ण रूप से स्थापित है कि केवल इसलिए कि किसी और को गलत तरीके से लाभ दिया गया है, इसे समान लाभ का दावा करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। अवैधता में समानता का कोई प्रश्न ही नहीं है। हम इस संबंध में ***आर. मुथुकुमार और अन्य बनाम चेयरमैन और प्रबंध निदेशक टैंगेडको और अन्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी***

151 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दे सकते हैं। यह पता लगाना राज्य सरकार का काम है कि इस तरह के लाभ दूसरों को कैसे दिए गए, अगर उन्हें दिया गया था।

उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, हम अपने द्वारा पुनः परिभाषित प्रश्नों के उत्तर निम्नानुसार देते हैं:

(i) शंकटा प्रसाद मिश्रा (उपरोक्त); हृदयेश दयाल श्रीवास्तव (उपरोक्त); मिर्तुयंजय प्रसाद सिंह (उपरोक्त); केशव राम पांडे (उपरोक्त) और उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अमर पाल सिंह के वाद में खंडपीठ के निर्णय, राज्य सरकार द्वारा देय सेवानिवृत्ति बकाया की गणना हेतु अर्हक सेवा के प्रयोजनों के लिए एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों जिन्हें बाद में सरकारी सेवा में सम्मिलित

किया गया है, द्वारा प्रदान की गई पिछली सेवाओं की गणना के प्रश्न पर विधि को सही ढंग से निर्धारित नहीं करते हैं। वे मान्य विधि नहीं हैं।

(ii) याचिकाकर्ता जैसे एटीएल के छंटनीग्रस्त कर्मचारी, जो उत्तर प्रदेश सरकारी या सार्वजनिक निगमों के छंटनीग्रस्त कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियमावली, 1991 के अंतर्गत बाद में सरकारी सेवा में आमेलित हुए, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 और अन्य सहायक नियमों तथा इस संबंध में सरकारी आदेशों के अंतर्गत सेवानिवृत्ति लाभों के प्रयोजनों के लिए अर्हक सेवा की गणना के लिए अपने पूर्ववर्ती नियोक्ता यानी ऑटो ट्रैक्टर्स लिमिटेड के अधीन की गई अपनी पिछली सेवाओं की गणना के पात्र नहीं हैं, साथ ही शासनादेश दिनांक 11.1.1993 और वास्तव में शासनादेश दिनांक 10.07.1998, जिसे 28.12.2001 को संशोधित किया गया था, ऐसे कर्मचारियों पर लागू नहीं होता है।

(iii) ***राम शंकर गुप्ता*** (उपरोक्त) के वाद में खंडपीठ का निर्णय, ***संकठा प्रसाद मिश्रा*** (उपरोक्त); ***हृदयेश दयाल श्रीवास्तव*** (उपरोक्त); ***मिर्तुयंजय प्रसाद सिंह*** (उपरोक्त); ***केशव राम पांडे*** (उपरोक्त) और ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अमर पाल सिंह*** के मामलों में समन्वय पीठों द्वारा पहले दिए गए निर्णयों से विपरीत है। यह ***राम शंकर गुप्ता*** (उपरोक्त) का निर्णय है जो विधि को सही रूप से निर्धारित करता और इसी कारणों से इनपे पहले से ही विचार किया गया है, अन्य निर्णय प्रश्न संख्या (ii) के संबंध में विधि को सही रूप से निर्धारित नहीं करते हैं।

संदर्भ का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

सामान्यतः हमारे समक्ष विद्दमान प्रश्नों के उत्तर देने के बाद, हम विषय को वापस रिट कोर्ट में भेज देते हैं, लेकिन, इस वाद के तथ्यों को देखते हुए यह एक निरर्थक प्रयास होगा, क्योंकि रिट कोर्ट द्वारा आगे के निर्णय के लिए कुछ भी शेष नहीं बचा है। याचिकाकर्ता के दावे का आधार तथ्यों और विधि के आधार पर अस्तित्वहीन पाया गया है, इसलिए हम यह विचार नहीं कर पा रहे हैं कि हमें अंतिम आदेश पारित करने के लिए विषय को वापस

रिट कोर्ट में क्यों भेजना चाहिए। हमारे विचार से, जैसा की सभी विवाधक पहले ही हमारे द्वारा निर्णित किए जा चुके हैं, इसलिए हम रिट याचिका को निरस्त करते हैं।

(2023) 5 ILRA 1809

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I,

सिविल पुनरीक्षण संख्या 114 / 2022

श्रीमती लक्ष्मी देवी एवं अन्य.. पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: प्रभाष पांडे, विष्णु शंकर जैन, श्री प्रदीप कुमार शर्मा, श्री हरि शंकर जैन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी: सी.एस.सी., अमिताभ त्रिवेदी, फातिमा अंजुम, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री सौरभ तिवारी, श्री सैयद अहमद, श्री विनीत संकल्प, श्री जहीर, श्री सैयद अहमद फैजान, श्री सैयद फरमान अहमद नकवी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल विधि- सिविल पुनरीक्षण - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- ढाँचे (शिवलिंगम के आकार में) की वैज्ञानिक जांच की मांग करने वाले आवेदन को खारिज करने का आदेश - चुनौती दी गई - वैज्ञानिक जांच की व्यवहार्यता के संबंध में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण से रिपोर्ट मांगी गई - विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, पुरातत्वविदों की सहायता से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के सक्षम मार्गदर्शन में शिवलिंगम / स्थल की वैज्ञानिक जांच आसानी से की जा सकती है , बशर्ते कि संबंधित स्थल / शिवलिंग को नुकसान न पहुंचे और इसे अपने वर्तमान आकार में संरक्षित और संरक्षित रखा जाए - रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री को छोड़कर केवल तर्क के आधार पर विवादित आदेश - मनमाना और त्रुटिपूर्ण - कायम नहीं रखा जा सकता - विचारण न्यायाधीश / जनपद न्यायाधीश, वाराणसी मामले को आगे बढ़ाएंगे और स्थल / शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्वावधान और मार्गदर्शन में करने का निर्देश दिया जाएगा। - पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (पैरा 20, 21, 23, 26 और 27)

अभिनिर्धारितः

अब जहां तक वैज्ञानिक जांच करने के लिए जारी किए जा रहे निर्देश के संबंध में जनपद न्यायाधीश, वाराणसी की उपरोक्त टिप्पणी का संबंध है, यह स्वीकार किया जाता है कि आदेश पारित करने से पहले (14.10.2022), जनपद न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा उचित परिश्रम नहीं किया गया था, इस विशिष्ट कारण से कि जनपद न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा विवादित संरचना को होने वाले नुकसान के संबंध में जो निष्कर्ष निकाला गया था, वह काल्पनिक और प्रकल्पित है और यह रिकॉर्ड पर किसी भी प्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं है, जो रिकॉर्ड द्वारा समर्थित नहीं है। यदि विचारण न्यायाधीश को साइट की वैज्ञानिक जांच के निर्देश दिए जाने की स्थिति में साइट को होने वाले नुकसान की कोई आशंका थी, तो उनके लिए इस तरह के उद्यमों को करने में पारंगत व्यक्तियों की विशेषज्ञ राय लेना अनिवार्य था। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने सक्षम एजेंसी से विशिष्ट डेटा/सामग्री एकत्र किए बिना ही इस निष्कर्ष पर पहुंच गए कि यदि साइट/

शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच करने का निर्देश दिया जाता है, तो सभी संभावना में साइट/ शिवलिंगम को ही नष्ट कर दिया जाएगा। (पैरा 20)

इस न्यायालय को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि एएसआई सारनाथ सर्किल, सारनाथ, वाराणसी के अधीक्षण पुरातत्वविद् द्वारा भेजी गई रिपोर्ट से यह संभव और सुविधाजनक हो जाएगा कि विवादित स्थल/ शिवलिंग को नुकसान पहुंचाए बिना वैज्ञानिक जांच की जा सके। इस तरह, जो प्राकृतिक आधार होगा, वह इस विषय पर आगे बढ़ेगा कि शिवलिंग का वास्तविक स्थल संरक्षित और संरक्षित रहेगा। यह एक वास्तविक वास्तविकता है, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की तकनीकी और वैज्ञानिक रिपोर्ट ने विवादित संरचना को कोई नुकसान पहुंचाए बिना स्थल/ शिवलिंग की वैज्ञानिक जांच करने के रास्ते खोल दिए हैं। (पैरा 21)

उपरोक्त कारणों से, जनपद न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 का आक्षेपित आदेश, योग्यता के बिना पाया जाता है, क्योंकि यह निष्कर्ष कि किसी भी वैज्ञानिक जांच से संरचना को नुकसान पहुंचने का प्रभाव होगा, एक ऐसा निष्कर्ष है जो रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री द्वारा समर्थित नहीं है। (पैरा 23)

यह सामान्य कानून है कि न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष को अभिलेख पर मौजूद प्रासंगिक सामग्री द्वारा समर्थित होना चाहिए, जबकि न्यायालय द्वारा केवल तर्क के आधार पर दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद प्रासंगिक सामग्री के बिना मनमाना और त्रुटिपूर्ण होगा। इसलिए, दिनांक 14.10.2022 के आदेश द्वारा दर्ज जनपद न्यायाधीश, वाराणसी का उपरोक्त निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण होने के कारण कायम नहीं रखा जा सकता। (पैरा 24)

यह निर्देश दिया जाता है कि विचारण न्यायाधीश/जनपद न्यायाधीश, वाराणसी मामले को आगे बढ़ाएंगे और साइट/ शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्वावधान और मार्गदर्शन में इस आदेश में ऊपर उल्लिखित सीमा और महत्व तक करने का निर्देश दिया जाएगा और पूरी प्रक्रिया विचारण कोर्ट के निर्देश और पर्यवेक्षण में की जाएगी और उसके द्वारा इस संबंध में सभी परिणामी आवश्यक निर्देश पारित/जारी किए जाएंगे। (पैरा 27)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I द्वारा प्रदत्त)

1. इस न्यायालय के दिनांक 04.11.2022 22 के आ के आदेश के अनुसरण में महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली को इस बिंदु पर राय व्यक्त करने के लिए निर्देशित किया गया था कि क्या साइट पर पाए गए 'संरचना' की वैज्ञानिक जांच मूल वाद संख्या 18/2022 की विषय वस्तु, कार्बन डेटिंग, ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर), उत्खनन और अन्य वैज्ञानिक तरीकों के माध्यम से इसकी आयु, प्रकृति और अन्य प्रासंगिक जानकारी निर्धारित करने के लिए इसे

नुकसान पहुंचाए बिना किया जा सकता है?

2. इस संबंध में, भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री शशि प्रकाश सिंह द्वारा विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार सिंह की सहायता से रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है।

3. उल्लेखनीय है कि उक्त रिपोर्ट भारत के अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा न्यायालय के अवलोकन के लिए 11.05.2023 को एक सीलबंद लिफाफे में प्रस्तुत की गई थी, जिसके बाद न्यायालय में सीलबंद लिफाफा खोला गया और रिपोर्ट की प्रति पुनरीक्षणकर्तागण के साथ-साथ विपक्षी विपक्षीगण के अधिवक्ता को उपलब्ध कराने की मांग की गई, जिसके बाद प्रति उन्हें प्रदान की गई ताकि पक्षकारों को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, सारनाथ क्षेत्र, सारनाथ, वाराणसी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के सार और सामग्री के बारे में पता चल सके। इस मोड़ पर दोनों पक्षों को रिपोर्ट की प्रति का अवलोकन करने और अपना-अपना रुख बताने के लिए कम से कम एक दिन का समय देना उचित समझा गया ताकि मामले को निस्तारण के लिए अंतिम रूप से विचार किया जा सके और इस मामले की कार्यवाही अगले दिन यानी 12.05.2023 के लिए स्थगित कर दी गई।

4. इस न्यायालय ने मूल रिपोर्ट का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, जिसे अधीक्षण पुरातत्वविद, एएसआई, सारनाथ क्षेत्र, सारनाथ, वाराणसी के दिनांक 17.04.2023 के कवरिंग पत्र द्वारा इस न्यायालय को प्रस्तुत किया गया है, इस प्रकार इस न्यायालय को रिपोर्ट के बारे में सूचित किया गया है जो 52 पृष्ठों में है और भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने इस रिपोर्ट की विभिन्न सामग्री और पहलुओं को समझाया है जैसा कि प्रस्तुत किया गया है।

5. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने रिपोर्ट का सारांश देते हुए कहा कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की राय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित विभिन्न प्रतिष्ठित आईआईटी (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों) के विचारों/रायों पर आधारित है, साथ ही यह स्थल पर प्रश्नगत संरचना का सर्वेक्षण करने के लिए अपनाए जाने वाले विभिन्न तरीकों और दृष्टिकोण के वैज्ञानिक विश्लेषण पर भी आधारित है।

6. वर्चुअल मोड के माध्यम से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरि शंकर जैन को सुना, जिनकी सहायता के लिए श्री विष्णु शंकर जैन, श्री प्रभाश पाण्डेय रहे, हाइब्रिड मोड के माध्यम से पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रदीप कुमार शर्मा, भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री शशि प्रकाश सिंह को सुना, जिनकी सहायता के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के लिए उपस्थित अधिवक्ता श्री मनोज कुमार सिंह, श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी, विद्वान अतिरिक्त

महाधिवक्ता द्वारा की गई, जिनकी सहायता श्री बिपिन बिहारी पाण्डेय, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री रामंजय सिंह, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अंकित गौड, श्री श्रवण कुमार दुबे, श्री जानेंद्र सिंह, श्री हरे राम त्रिपाठी, विपक्षी संख्या 1,2 और 3 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने की। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सैयद फरमान अहमद नकवी, जिनकी सहायता सैय्यद अहमद फैजान ने विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता के तौर पर, बार बार बुलाए जाने बावजूद विपक्षी संख्या 6 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, उपलब्ध सामग्री का भी अवलोकन किया गया।

7. इस तात्कालिक पुनरीक्षण के माध्यम से, मूल वाद संख्या 18/2022 राखी सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य में ट्रायल जज/जिला जज, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत वादी-पुनरीक्षण कर्ता द्वारा दायर आवेदन संख्या 250 सी और आपत्ति 255 सी और 262 सी पर विचार किया गया और उपरोक्त आवेदन को इस अवलोकन के साथ खारिज कर दिया गया कि संरचना (शिवलिंगम के आकार में) की वैज्ञानिक जांच के लिए की गई प्रार्थना का आदेश नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.05.2022 के आदेश का उल्लंघन होगा, जिसमें स्थल/ शिवलिंगम को संरक्षित और सुरक्षित रखने का निर्देश दिया गया था। विचारण न्यायालय ने यह भी देखा कि उपरोक्त के मद्देनजर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण से कोई रिपोर्ट मंगाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

8. पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने ओरदार ढंग से दावा किया है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा साइट की वैज्ञानिक जांच के लिए मुद्दे पर पूरी रिपोर्ट को ध्यान में रखने पर यह अभिव्यक्त और निहित अर्थ प्रतिबिंबित होगा कि साइट / शिवलिंगम का वैज्ञानिक सर्वेक्षण प्रबंधित किया जा सकता है और संबंधित साइट को नुकसान पहुंचाए बिना किया जा सकता है। अपने दावे के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान उक्त रिपोर्ट के विभिन्न पृष्ठों, विशेष रूप से पृष्ठ संख्या 1, 6, 8, 17, 18, 19, 21 की ओर आकर्षित किया है और दावा किया है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा प्रस्तुत राय । रिपोर्ट में साइट के वैज्ञानिक सर्वेक्षण के संचालन के लिए सभी उपलब्ध विकल्प हैं, जिसमें वैज्ञानिक जांच के संभावित परिणाम शामिल हैं और यह उन तरीकों को विस्तृत करता है जिन्हें अपनाकर साइट की आयु / साइट की कार्बन डेटिंग के बारे में कुछ डेटा साइट को नुकसान पहुंचाए बिना किया जा

सकता है और उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न आईआईटी के वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत राय इस मामले में लागू की जाने वाली 'कार्यप्रणाली' के वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी सुझाव दिया कि जिन तरीकों को अपनाने से स्थल को नुकसान पहुंच सकता है, उन्हें त्याग दिया जाना चाहिए तथा जिस तरीके से स्थल को नुकसान पहुंचाए बिना वैज्ञानिक जांच/सर्वेक्षण करने में मदद मिलती है, उसे अपनाया जाना चाहिए तथा इस न्यायालय द्वारा उसे हरी झंडी दी जानी चाहिए, ताकि शिवलिंगम स्थल की वास्तविक आयु का पता लगाया जा सके।

9. सर्वप्रथम, विपक्षी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.05.2022 के आदेश के मद्देनजर इस न्यायालय की कार्यवाही के संबंध में प्रारंभिक आपति उठाई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों को पढ़कर सुनाया है कि विवादित संरचना को सुरक्षित/संरक्षित किया जाना आवश्यक है, इसलिए, इसे बाधित नहीं किया जा सकता है और साइट का सर्वेक्षण या वैज्ञानिक जांच करने के लिए पारित कोई भी आदेश उपरोक्त आदेश का उल्लंघन होगा।

10. पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने हस्तक्षेप किया और उपरोक्त तर्क के जवाब में प्रस्तुत किया कि जहां तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.05.2022 के आदेश का संबंध है, वह इस न्यायालय को वैज्ञानिक जांच के पहलू पर विचार करने से नहीं रोकेगा, जिसे इस तरह से किया जाना चाहिए कि यह संबंधित स्थल को नुकसान न को नुकसान पहुंचाए बिना किया जाए और स्थल संरक्षित और परिरक्षित रहे।

11. अपने निवेदन के समर्थन में पुनरीक्षणकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री विष्णु शंकर जैन ने इस न्यायालय का ध्यान माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.05.2022 के आदेश की और आकर्षित किया और उसे पूरा पढ़ा और दावा किया कि आदेश में ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रायल जज/जिला जज, वाराणसी को सहायक मामले को छूते हुए ट्रायल को आगे बढ़ाने का निर्देश दिया है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस विचाराधीन मुकदमे की कार्यवाही के दौरान, आवेदन 250 सी (वादी-पुनरीक्षणकर्ता द्वारा) पेश किया गया था जिसमें स्थल की वैज्ञानिक जांच करने की मांग की गई थी, जिसे गुण-दोष के बजाय तकनीकी आधार पर अधिक माना गया और दिनांक 17.05.2022 के उपरोक्त आदेश की आड़ में

आवेदन को औपचारिक रूप से खारिज कर दिया कि स्थल / शिवलिंग को सुरक्षित और संरक्षित करने का निर्देश दिया गया है इसलिए ट्रायल जज की राय थी कि शिवलिंग की आयु, प्रकृति और संरचना उन्होंने अपना दावा दोहराया कि संबंधित स्थल की आयु निर्धारित करने के लिए वैज्ञानिक जांच से स्थल / शिवलिंग को किसी भी तरह की क्षति या विनाश होने की संभावना नहीं है और न ही इसकी वर्तमान प्रकृति में कोई परिवर्तन होगा।

12. इस स्तर पर, विपक्षी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सैयद फरमान अहमद नकवी से विशिष्ट प्रश्न पूछा गया कि क्या भारत के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट में इस बात का स्पष्ट संकेत है कि यदि साइट/ शिवलिंगम की किसी भी वैज्ञानिक जांच का आदेश दिया जाता है, तो इसका प्रभाव साइट के विनाश के रूप में होगा, तब विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उक्त रिपोर्ट के पृष्ठ संख्या 4 की सामग्री को पढ़कर कुछ बिंदुओं पर जोर देने की कोशिश की। हालांकि, पुनरीक्षण वादियों के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त रिपोर्ट के पृष्ठ संख्या 6 और 8 की सामग्री को पढ़कर तथ्यात्मक स्थिति को स्पष्ट करके उन्हें रोक दिया, जिसका विपक्षी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा स्पष्ट रूप से विरोध नहीं किया गया। यह देखा जा सकता है कि विपक्षी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा पूछे गए विशिष्ट प्रश्न के बिंदु पर कोई जवाब नहीं दिया कि किसी भी प्रकार की वैज्ञानिक जांच से संरचना को नुकसान पहुंचने की पूरी संभावना है।

13. जैसे ही न्यायालय आगे बढ़ा और भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल, श्री शशि प्रकाश सिंह (श्री मनोज कुमार सिंह की सहायता से) से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की उपरोक्त रिपोर्ट से उभरने वाले स्पष्ट और निहित अर्थों के बारे में अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहा, जिस पर उन्होंने रिपोर्ट के विभिन्न विवरणों को विस्तार से बताया और इस न्यायालय के ध्यान में लाया कि ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार तकनीक विधि, यदि कोई हो, तो साइट पर दफन प्राचीन संरचनाओं के अवशेषों की पहचान करने में सहायक होगी और उन्होंने आगे बताया कि सलाह और विभिन्न राय के अनुसार उपसतह स्ट्रेटीग्राफिक अनुभाग साइट पर विभिन्न संस्कृति स्तर का अध्ययन करने के लिए आदर्श होगा। उन्होंने दावा किया कि आईआईटी कानपुर के पास उस संबंध में इस बिंदु पर विशिष्ट सुझाव है। भारतीय

पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट में सुझाए गए विभिन्न तरीकों पर काफी चर्चा के बाद, विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने सुझाव दिया उन्होंने यह दावा करते हुए कोई लापरवाही नहीं बरती कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के समय अध्ययन से यह बात सामने नहीं आती कि शिवलिंगम स्थल की किसी भी वैज्ञानिक जांच से उसे नुकसान पहुंचेगा।

14. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी ने भी भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा दिए गए तर्क और सुझाव को दोहराया और दावा किया कि पूरी रिपोर्ट में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे शिवलिंगम । स्थल को नुकसान हो सकता है यदि साइट की वैज्ञानिक जांच करने का निर्देश दिया जाता है। इसलिए, यह दावा करना कि वैज्ञानिक जांच के मामले में साइट। शिवलिंगम की संपति की प्रकृति सुरक्षित/संरक्षित नहीं होगी, बिना किसी तर्क के निराधार तर्क है।

15. उपर्युक्त चर्चित प्रतिद्वंद्वी विवादों और भारत के अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आलोक में तथ्यात्मक स्थिति के मद्देनजर, इस न्यायालय के विचारार्थ एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या स्थल / शिवलिंग को नुकसान पहुंचाए बिना, स्थल/ शिवलिंग की वैज्ञानिक जांच का निर्देश दिया जा सकता है या नहीं?

16. मामले में आगे बढ़ते हुए और उस कोण से चीजों को देखते हुए, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट के सावधानीपूर्वक अध्ययन से जो समग्र धारणा सामने आती है, वह सभी इरादों और उद्द्देश्यों से इंगित करती है कि साइट। शिवलिंग को नुकसान पहुंचाए बिना साइट की वैज्ञानिक जांच उपयुक्त रूप से की जा सकती है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साइट / शिवलिंगम की आयु, प्रकृति और स्थिति निर्धारित करने के लिए वैज्ञानिक जांच किए जाने के बाद भी शिवलिंगम / साइट सुरक्षित और संरक्षित रहेगी। वैज्ञानिक संस्थानों की विभिन्न रिपोर्ट उसी आशय की ओर संकेत करती हैं कि साइट / शिवलिंगम को नुकसान पहुंचाए बिना वैज्ञानिक जांच की जा सकती है। चूंकि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा प्रस्तुत पूरी रिपोर्ट को इस मामले के रिकॉर्ड का हिस्सा बना दिया गया है, इसलिए रिपोर्ट में निहित इन रिपोर्टो / राय के विभिन्न अंशों का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

17. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि शिवलिंगम / स्थल की वैज्ञानिक जांच, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के कुशल मार्गदर्शन में, विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, पुरातत्ववेताओं की सहायता से, इस

शर्त के अधीन की जा सकती है कि संबंधित स्थल / शिवलिंगम को क्षति नहीं पहुंचाई जाएगी तथा इसे इसके वर्तमान स्वरूप में संरक्षित एवं सुरक्षित रखा जाएगा।

18. इस समय, जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 के आदेश की विधिक एवं तथ्यात्मक दोनों पहलुओं पर उचित जांच की आवश्यकता है।

19. जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 को पारित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि वादी-पुनरीक्षण कर्ताओं द्वारा आदेश 26 नियम 10 ए के साथ 151 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत 250 सी क्रमांक का एक आवेदन इस प्रार्थना के साथ पेश किया गया था कि एडवोकेट कमिश्नर (साइट के) द्वारा किए गए सर्वेक्षण में 16.05.2022 को साइट पर खोजे गए शिवलिंग की प्रकृति, आयु और स्थिति की कार्बन डेटिंग के लिए वैज्ञानिक तकनीकों और तकनीक का सहारा लेकर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा वैज्ञानिक रूप से जांच करने का निर्देश दिया जाए। आरोपित आदेश की सामग्री मूल वाद संख्या 18/2022 की पृष्ठभूमि के विस्तार के साथ आगे बढ़ती है और इस तथ्य पर ध्यान देती है कि साइट का सर्वेक्षण करते समय एडवोकेट कमिश्नर को शिवलिंग के आकार की कुछ संरचना मिली थी इसके अलावा विपक्षी पक्ष द्वारा दाखिल आपति 255 सी पर भी विचार किया गया तथा उसकी विषय-वस्तु पर चर्चा की गई। मामले के तथ्यात्मक पहलू पर चर्चा करने के बाद विचारण न्यायाधीश का विचार था कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 17.05.2022 के तहत निर्देश दिया है कि सर्वेक्षण आयोग में मौके पर पाए गए शिवलिंग को संरक्षित और संरक्षित किया जाना चाहिए और यदि कार्बन डेटिंग तकनीक या ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार का उपयोग करने का कोई निर्देश दिया जाता है तो शिवलिंग को ही नुकसान पहुंचने की संभावना है और यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.05.2022 के आदेश का उल्लंघन होगा। इसके अलावा इससे आम जनता की धार्मिक भावना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए वादी-पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उपरोक्त आवेदन में की गई प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया। परिणामस्वरूप आवेदन क्रमांक 250 सी को अस्वीकार कर दिया गया।

20. अब जहां तक वैज्ञानिक जांच करने के निर्देश के संबंध में जिला न्यायाधीश, वाराणसी के उपरोक्त अवलोकन का संबंध है, यह स्वीकार किया जाने वाला तथ्य है कि आदेश पारित करने से पहले (14.10.2022), जिला

न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा उचित परिश्रम नहीं किया गया था, इस विशिष्ट कारण से कि जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा मुद्दे में संरचना को होने वाले नुकसान के बारे में जो निष्कर्ष निकाला गया है वह अनुमानात्मक और प्रकल्पित है और यह रिकॉर्ड पर किसी भी प्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं है, इसलिए रिकॉर्ड द्वारा समर्थित नहीं है। यदि ट्रायल न्यायाधीश को साइट की वैज्ञानिक जांच के निर्देश दिए जाने की स्थिति में साइट को होने वाले नुकसान की कोई आशंका थी, तो उनके लिए इस तरह के उद्यमों को करने में पारंगत व्यक्तियों की विशेषज्ञ राय लेना अनिवार्य था। विद्वान ट्रायल जज ने सक्षम एजेंसी से विशिष्ट डेटा/सामग्री एकत्र किए बिना इस निष्कर्ष पर पहुंच गए कि यदि साइट। शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच करने का निर्देश दिया जाता है, तो सभी संभावना में साइट/ शिवलिंगम को ही नष्ट कर दिया जाएगा।

21. इस न्यायालय को यह देखने में कोई संकोच नहीं है कि एएसआई सारनाथ क्षेत्र, सारनाथ, वाराणसी के अधीक्षण पुरातत्वविद् द्वारा भेजी गई रिपोर्ट से यह संभव और सुविधाजनक हो जाएगा कि विवादित स्थल / शिवलिंगम को नुकसान पहुंचाए बिना वैज्ञानिक जांच की जा सकती है। इस तरह, जो प्राकृतिक आधार होगा, वह इस विषय पर आगे बढ़ेगा कि शिवलिंगम का वास्तविक स्थल संरक्षित और सुरक्षित रहेगा। यह एक वास्तविक वास्तविकता है, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की तकनीकी और वैज्ञानिक रिपोर्ट ने विवादित संरचना को कोई नुकसान पहुंचाए बिना स्थल / शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच करने के रास्ते खोल दिए हैं।

22. चूंकि यह जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 के आदेश के विरुद्ध सिविल पुनरीक्षण है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा मूल मुकदमे के गुण-दोष पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

23. उपरोक्त कारणों से, जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 का विवादित आदेश योग्यता विहीन पाया जाता है, इस कारण से कि यह निष्कर्ष कि किसी भी वैज्ञानिक जांच से संरचना को नुकसान पहुंचने का प्रभाव होगा, एक ऐसा निष्कर्ष है जो रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री द्वारा समर्थित नहीं है।

24. यह सामान्य कानून है कि न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष को अभिलेख पर मौजूद प्रासंगिक

सामग्री द्वारा समर्थित होना चाहिए, जबकि न्यायालय द्वारा केवल तर्क के आधार पर दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद प्रासंगिक सामग्री के बिना मनमाना और गलत (निष्कर्ष) होगा। इसलिए, जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा दिनांक 14.10.2022 के आदेश द्वारा दर्ज किया गया उपरोक्त निष्कर्ष गलत होने के कारण कायम नहीं रखा जा सकता।

25. परिणामस्वरूप, मूल वाद संख्या 18/2022 राखी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य में जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 14.10.2022 के आदेश को अपास्त किया जाता है।

26. इसलिए, वादी-पुनरीक्षणकर्ता द्वारा विचारण न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत आवेदन क्रमांक 250 सी को इस आशय से स्वीकार किया जाता है कि स्थल / शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच स्थल / शिवलिंगम को नुकसान पहुंचाए बिना की जाएगी और इसे इसके वर्तमान स्वरूप में संरक्षित रखा जाएगा। उपरोक्त आवेदन 250 सी के खिलाफ प्रस्तुत सभी आपतियों को अस्वीकार किया जाता है।

27. यह निर्देश दिया जाता है कि ट्रायल जज/जिला न्यायाधीश, वाराणसी मामले को आगे बढ़ाएंगे और साइट / शिवलिंगम की वैज्ञानिक जांच भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्वावधान और मार्गदर्शन में इस आदेश में ऊपर बताए गए सीमा और महत्व तक करने का निर्देश दिया जाएगा और पूरी प्रक्रिया विचारण न्यायालय के निर्देश और पर्यवेक्षण में की जाएगी और उसके द्वारा इस संबंध में सभी परिणामी आवश्यक निर्देश पारित/जारी किए जाएंगे।

28. मूल वाद संख्या 18/2022 राखी सिंह बनाम 30प्र0 राज्य और अन्य से संबंधित वाराणसी की विचारण अदालत द्वारा आगे की कार्रवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए, भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संबंधित प्राधिकारी को 22.05.2023 को विचारण न्यायाधीश/जिला न्यायाधीश, वाराणसी के समक्ष उपस्थित होने के लिए उपयुक्त निर्देश जारी करने का निर्देश दिया जाता है, और इस प्रकार उपस्थित प्राधिकारी जिला न्यायाधीश, वाराणसी की अदालत से उपयुक्त निर्देश प्राप्त करने के बाद विचारण न्यायाधीश को सहायता प्रदान करेंगे और इस आदेश में की गई टिप्पणियों के आलोक में संरचना की वैज्ञानिक जांच करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करेंगे। इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित दोनों

पक्षों को भी इस विशिष्ट तिथि से अवगत करा दिया गया है और सभी ने इसका पालन करने पर सहमति व्यक्त की है। इसलिए, पक्षों को 22.05.2023 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना आवश्यक है।

29. निर्देशानुसार उचित वैज्ञानिक जांच सुनिश्चित करने के लिए, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की पूरी रिपोर्ट की एक प्रति तत्काल ट्रायल जज/जिला जज, वाराणसी को प्रेषित की जाए। यह स्पष्ट किया जाता है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की यह रिपोर्ट जो अधीक्षण पुरातत्वविद, एएसआई, सारनाथ क्षेत्र, सारनाथ, वाराणसी द्वारा भेजी गई 52 पृष्ठों की है, मुकदमे का हिस्सा रिकॉर्ड बनेगी।

30. यह पुनरीक्षण पूर्वोक्त शर्तों के अंतर्गत स्वीकृत की जाती है।

31. निर्णय देने से पहले, यह न्यायालय भारत के अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री शशि प्रकाश सिंह द्वारा प्रदान की गई बहुमूल्य सहायता के लिए बहुत-बहुत आभार व्यक्त करता है, जिन्हें भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की ओर से श्री मनोज कुमार सिंह ने सहायता प्रदान की, जिन्होंने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट की विभिन्न सामग्री को व्याख्यायित करने में बहुत मेहनत की, इस प्रकार इस मामले के निस्तारण में न्यायालय की बहुत सहायता की। इसी तरह, यह न्यायालय इस वाद के निस्तारण में विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी उत्तर प्रदेश राज्य - और विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री बिपिन बिहारी पाण्डेय द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए भी आभार व्यक्त करता है। विपक्षी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सैयद फरमान अहमद नकवी और उनके सहायक अधिवक्ता भी इस वाद के निस्तारण में इस न्यायालय को उपयोगी सहायता प्रदान करने के लिए प्रशंसा के पात्र हैं।

32. उपरोक्तानुसार अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए इस आदेश की एक प्रति तत्काल विचारण न्यायाधीश/जनपद न्यायाधीश, वाराणसी को प्रेषित की जाए।

33. लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 5 ILRA 1817

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

सिविल पुनरीक्षण संख्या 126 / 2022

शेषनाथ सिंह ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

देवेन्द्र प्रताप सिंह ...विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह, श्री अशोक कुमार उपाध्याय

अधिवक्ता विपक्षी: श्री तेजभान सिंह, श्री मेराज अहमद खान

सिविल कानून - चुनौती के तहत एक सारांश मुकदमे में बचाव के लिए अनुमति के लिए प्रतिवादी पुनरीक्षणकर्ता के आवेदन को खारिज

करने का आदेश-सिविल पुनरीक्षण - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - संहिता के आदेश XXXVII के अंतर्गत संक्षिप्त वाद - संहिता के आदेश XXXVII के नियम 2 और 3 - समन की तामील के पश्चात संक्षिप्त वाद की प्रक्रिया नियम 3(5) में यह प्रावधान है कि बचाव के लिए अनुमति किस प्रकार प्रदान की जाएगी - बचाव के लिए अनुमति प्रतिवादी द्वारा उस समय नहीं मांगी जा सकती जब वह समन के प्रत्युत्तर में उपस्थित होता है - अगला कदम वादी द्वारा उठाया जाना चाहिए - निर्णय के लिए समन प्राप्त करें - अत: बचाव के लिए अनुमति के लिए प्रतिवादी का आवेदन अपरिपक्व था - विद्वान परीक्षण न्यायाधीश द्वारा बचाव के लिए अनुमति के लिए आवेदन को गुण-दोष के आधार पर खारिज करने के आदेश को अपरिपक्व के रूप में खारिज करने के आदेश द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए - बचाव के लिए अनुमति के लिए आवेदन पर पुनरीक्षण की अनुमति के लिए पुनः विचार किया जाना चाहिए। (पैरा 8, 9, 10, 11, 12 और 13)

अभिनिर्धारित:

संहिता के आदेश XXXVII के नियम 3 को पढ़ने से पता चलता है कि जब प्रतिवादी संहिता के परिशिष्ट बी के फॉर्म 4 में जारी समन के जवाब में उपस्थित होता है, तो प्रतिवादी द्वारा वादी के अधिवक्ता को उपस्थिति की सूचना दी जानी चाहिए, या यदि वादी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होता है, तो वादी को स्वयं, वादी के अधिवक्ता या वादी के पते पर, जैसा भी मामला हो, भेजे गए प्रीपेड पत्र द्वारा या दिए गए नोटिस द्वारा। संहिता के आदेश XXXVII के नियम 3 के उप-नियम (4) में कहा गया है कि प्रतिवादी के उपस्थित होने के बाद, वादी प्रतिवादी को संहिता के परिशिष्ट बी में निर्धारित फॉर्म 4ए में निर्णय के लिए समन की तामील करने के लिए बाध्य है। निर्णय के लिए समन, तामील की तारीख से दस दिन से कम समय में वापस करने योग्य नहीं होने चाहिए। कानून में वादी से यह भी अपेक्षा की गई है कि वह यह विश्वास करे कि मुकदमे में कोई बचाव नहीं है। निर्णय के लिए उक्त समन की तामील के बाद ही प्रतिवादी दस दिनों की समयावधि के भीतर मुकदमे का बचाव करने की अनुमति के लिए आवेदन कर सकता है। नियम 3 के उप-नियम (5) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा न्यायालय द्वारा दी जाने वाली अनुमति बिना शर्त या ऐसी शर्तों पर है, जिन्हें न्यायालय उचित समझे। उप-नियम (5) में जोड़े गए दो प्रावधान न्यायालय को इस मामले में आगे मार्गदर्शन प्रदान करते हैं कि अनुमति कैसे दी जानी है और किन शर्तों के अधीन। वे प्रावधान इस पुनरीक्षण में विचारणीय विषय नहीं हैं। (पैरा 8)

यहाँ मुद्दे का सार यह प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने प्रतिवादी द्वारा बचाव की अनुमति के लिए किए गए आवेदन को उस समय अस्वीकार कर दिया जब उस तरह के आवेदन के लिए मंच अभी तक नहीं आया था। ऐसा इसलिए है क्योंकि वादी ने निर्णय के लिए कोई समन नहीं लिया था। संहिता के आदेश XXXVII के नियम 3 के उप-नियम (4) और उप-नियम (5) को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि बचाव की अनुमति के लिए आवेदन प्रतिवादी द्वारा तभी किया जा सकता है जब वादी संहिता के आदेश XXXVII

के नियम 3 के उप-नियम (4) की शर्तों का पालन करते हुए निर्णय के लिए समन ले। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादी द्वारा उस चरण में बचाव की अनुमति नहीं मांगी जा सकती जब वह उपस्थिति के लिए समन के जवाब में उपस्थित होता है। अगला कदम वादी द्वारा निर्णय के लिए समन प्राप्त करके उठाया जाना है। इसके बाद, प्रतिवादी अनुमेय समय के भीतर और निर्धारित तरीके से बचाव की अनुमति के लिए आवेदन कर सकता है। इसलिए, इस मामले में बचाव पक्ष की ओर से बचाव के लिए अनुमति का आवेदन समय से पहले किया गया था। (पैरा 9)

विद्वान विचारण न्यायाधीश ने बचाव की अनुमति देने से इनकार करते हुए अधिकार क्षेत्र के बाहर काम किया। अगर बचाव पक्ष की ओर से उस समय बचाव की अनुमति के लिए आवेदन किया गया होता, तो उसे समय से पहले खारिज कर दिया जाना चाहिए था, न कि गुण-दोष के आधार पर, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया। (पैरा 10)

इसलिए, इस न्यायालय की राय में, विद्वान विचारण न्यायाधीश का आक्षेपित आदेश, इस हद तक कि उसने गुण-दोष के आधार पर मुकदमे की रक्षा करने की अनुमति के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, टिकने योग्य नहीं है। इस न्यायालय की राय में, गुण-दोष के आधार पर बचाव करने की अनुमति के लिए आवेदन को अस्वीकार करने वाले विद्वान विचारण न्यायाधीश के आदेश को, उस आवेदन को समय से पहले खारिज करने वाले आदेश द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। (पैरा 13)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

सेवा राम बनाम फर्म मोडाराम तुलसीराम, 2001 एससीसी ऑनलाइन राज 424

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह सिविल रिवीजन सुश्री दीक्षा श्री, विद्वान अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन) -03, इलाहाबाद के एक आदेश दिनांक 21.11.2022 के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें एक सारांश वाद में बचाव की अनुमति के लिए प्रत्यर्थी-पुनरीक्षणवादी के आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

2. पुनरीक्षणवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार उपाध्याय और वादी- प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री तेज भान सिंह को सुना गया।

3. यहां सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में, 'संहिता') के आदेश X X X V II के तहत शुरू किया गया सारांश वाद उन कई चेकों पर देय धन की वसूली के लिए है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे वादी के पक्ष में प्रत्यर्थी द्वारा जारी किए गए थे, जो प्रस्तुत करने पर अनादरित हो गए थे। संक्षिप्त वाद 13.09.2022 को संस्थित किया गया था। 14.09.2022 को, प्रत्यर्थी को उपस्थित होने के लिए संहिता के परिशिष्ट बी के फॉर्म 4 में समन जारी किया गया था। समन 29.09.2022 को वापस करने योग्य बना दिया गया।

4. आदेश पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि 29.09.2022 को पीठासीन अधिकारी उपलब्ध नहीं थीं क्योंकि वह प्रशिक्षण पर थीं। अगली तारीख यानी 10.10.2022 को पीठासीन अधिकारी छुट्टी पर थे। 17.10.2022 को, वादी ने एक हलफनामे के साथ पोस्टल ट्रैक की एक प्रति दायर की, जिसमें दिखाया गया कि प्रत्यर्थी को 23.09.2022 को समन भेजा गया था। दिनांक 17.10.2022 के आदेश द्वारा मुकदमे की सुनवाई 29.10.2022 को करने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 29.10.2022 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी को नोटिस की तामील को पर्याप्त माना गया और मुकदमा 07.11.2022 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। बाद में, 29.10.2022 को, प्रत्यर्थी अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ और कागज़ संख्या 11सी के साथ एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया कि विद्वान अधिवक्ता को उसके मुवक्किल से टेलीफोन पर जानकारी मिली थी, जिसमें उसे वर्तमान मुकदमे में निर्देश दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि उन्हें वादपत्र की एक प्रति चाहिए, ताकि वह जवाब दाखिल कर सकें इसके बाद 29.10.2022 को पारित आदेश द्वारा मुकदमे को 01.11.2022 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। 01.11.2022 को, प्रत्यर्थी ने एक शपथ पत्र 13सी के साथ कागज संख्या 12सी के रूप में चिह्नित एक आवेदन दायर किया, जिसमें प्रत्यर्थी की ओर से एक वकालतनामा संलग्न किया गया था, जिसमें विद्वान अधिवक्ता को उपस्थित होने और बचाव करने के लिए अधिकृत किया गया था। आवेदन 12सी में मुकदमे का बचाव करने के लिए अनुमति मांगी गई थी। जिन आधारों पर छुट्टी मांगी गई थी, उसका उल्लेख संलग्न शपथपत्र पत्र संख्या 13सी में किया गया था। हलफनामे में मुख्य रूप से इस तथ्य का खुलासा किया गया कि प्रत्यर्थी का जिला अस्पताल, मऊ में इलाज चल रहा था और उसे आराम की सलाह दी गई थी। शपथ पत्र के साथ इलाज से संबंधित कुछ कागजात संलग्न किये गये थे। प्रत्यर्थी ने अपने पते पर सम्मन तामील कराने से इनकार कर दिया और कहा कि इस मुकदमे की स्थापना के बारे में पता चलने के बाद, उसने अपने विद्वान अधिवक्ता को सूचित किया था, जिसके आधार पर विद्वान अधिवक्ता ने जिस दिन वह उपस्थित हुए थे, उस दिन कागज संख्या 11सी के साथ आवेदन दायर किया था।

5. हलफनामे में आगे कहा गया कि प्रत्यर्थी मऊ से इलाहाबाद आया और बचाव के लिए छुट्टी की मांग करते हुए कागज संख्या 12सी वाला आवेदन दिया। वादी ने कागज संख्या 11सी और 12सी वाले दोनों आवेदनों पर आपत्ति जताई। यह बताया गया कि प्रत्यर्थी को 23.09.2022 को समन भेजा गया था। वादी ने आग्रह किया कि 29.10.2022 को, प्रत्यर्थी उपस्थिति के लिए समन की तामील के दस दिन से भी अधिक समय बाद उपस्थित हुआ था, और इसलिए, मुकदमे पर फैसला सुनाया जाना चाहिए। यह भी कहा गया कि आवेदन पत्र संख्या 11सी वकालतनामा के बिना और दस दिनों की वैधानिक अवधि से परे दायर किया गया था, जिससे इसे खारिज कर दिया जा सकता है। मुकदमा 01.11.2022 को 07.11.2022 तक स्थगित कर दिया गया था और यही वह तारीख है जब प्रत्यर्थी ने बचाव

की अनुमति के लिए आवेदन किया था। वादी ने यह भी कहा कि हलफनामे में बचाव की अनुमति के लिए किसी भी आधार का खुलासा नहीं किया गया है। प्रत्यर्थी ने उस चेक के मुद्दे से इनकार नहीं किया है जो मुकदमे का आधार है। इसलिए, प्रार्थना यह थी कि किसी भी मामले में बचाव की अनुमति का आवेदन खारिज कर दिया जाना चाहिए।

6. प्रत्यर्थी के आवेदन 11सी और 12सी से निपटते समय विद्वान विचारण न्यायाधीश ने माना कि प्रत्यर्थी ने अपने आवेदन 12सी में बचाव की अनुमति के लिए आधार का खुलासा नहीं किया था, न ही वादी के दावे की योग्यता के बारे में कुछ भी कहा गया था। यह खुलासा नहीं किया गया कि वादी के दावे के लिए पर्याप्त बचाव क्या था, जिसके आधार पर बचाव की अनुमति दी जा सकती थी। आवेदन 12सी के समर्थन में दायर हलफनामे में प्रत्यर्थी की अनुपस्थिति का मामला बनाया गया। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायाधीश ने आवेदन 11 सी में प्रार्थना पर विचार करते हुए, उपस्थिति के लिए सम्मन के जवाब में मुकदमे में उपस्थित होने की अनुमति मांगी, उपस्थिति के मामले में देरी को माफ करने के लिए आदेश X X X V II के नियम 3 के उप-नियम (7) के तहत प्रदत्त विवेक का प्रयोग करने का निर्णय लिया और प्रत्यर्थी को उपस्थित होने की अनुमति दी। हालाँकि, विद्वान विचारण न्यायाधीश ने पाया कि आवेदन 12सी के समर्थन में दायर हलफनामे 13सी में कोई भरोसेमंद कारण नहीं दर्शाया गया था, इसे खारिज कर दिया और प्रत्यर्थी को बचाव की अनुमति देने से इनकार कर दिया। यह बचाव की अनुमति देने से इनकार करने वाले आदेश के विरुद्ध है कि प्रत्यर्थी-पुनरीक्षणवादी सामने आया है।

7. संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 से पता चलता है कि संहिता के आदेश X X X V II के नियम 2 के तहत उपस्थिति के लिए समन जारी होने के बाद एक सारांश मुकदमा क्या लेता है। संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 में लिखा है:

> *"3. प्रत्यर्थी की उपस्थिति के लिए प्रक्रिया- (1) जिस मुकदमे में यह आदेश लागू होता है, वादी, नियम 2 के तहत सम्मन के साथ, प्रत्यर्थी को वादपत्र और उसके अनुलग्नकों की एक प्रति देगा और प्रत्यार्थि, ऐसी सेवा के दस दिनों के भीतर किसी भी समय, व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा उपस्थिति दर्ज करें और, किसी भी मामले में, वह न्यायालय में नोटिस की तामील के लिए एक पता दाखिल करेगा।*
>
> *(2) जब तक अन्यथा आदेश न दिया जाए, सभी समन प्रत्यर्थी को तामील किए जाने के लिए आवश्यक नोटिस और अन्य न्यायिक प्रक्रियाएं, यदि ऐसी तामील के लिए उसके द्वारा दिए गए पते पर छोड़ दी जाती हैं, तो उसे विधिवत तामील माना जाएगा।*
>
> *(3) उपस्थिति में प्रवेश के दिन, ऐसी उपस्थिति की सूचना प्रत्यर्थी द्वारा वादी के अधिवक्ता को दी जाएगी, या, यदि वादी व्यक्तिगत रूप से मुकदमा करता है, तो स्वयं वादी को, जैसा भी*

मामला हो, वादी के अधिवक्ता या वादी के पते पर निर्देशित प्री-पेड पत्र द्वारा या तो दिए गए नोटिस द्वारा या भेजा गया।

(4) यदि प्रत्यर्थी उपस्थित होता है, इसके बाद वादी प्रत्यर्थी को परिशिष्ट बी में फॉर्म नंबर 4 ए या समय-समय पर निर्धारित किए गए ऐसे अन्य फॉर्म में निर्णय के लिए एक सम्मन देगा, कार्रवाई के कारण और दावा की गई राशि की पुष्टि करने वाले एक हलफनामे के साथ सेवा की तारीख से कम से कम दस दिन बाद वापस किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि उनके विश्वास में मुकदमे में कोई बचाव नहीं है।

(5) प्रत्यर्थी, फैसले के लिए ऐसे समन की तामील से दस दिनों के भीतर किसी भी समय, हलफनामे द्वारा या अन्यथा ऐसे तथ्यों का खुलासा कर सकता है जो उसे बचाव का अधिकार देने के लिए पर्याप्त समझे जाएं, ऐसे समन पर ऐसे मुकदमे की रक्षा के लिए अनुमति के लिए आवेदन करें, और बचाव की अनुमति उसे बिना शर्त या ऐसी शर्तों पर दी जा सकती है जो न्यायालय या न्यायाधीश को उचित लगें:

बशर्ते कि बचाव की अनुमति तब तक अस्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो जाए कि प्रत्यर्थी द्वारा प्रकट किए गए तथ्य यह नहीं दर्शाते हैं कि उसके पास उठाने के लिए पर्याप्त बचाव है या प्रत्यर्थी द्वारा किया जाने वाला बचाव तुच्छ या कष्टप्रद है:

बशर्ते कि, जहां वादी द्वारा दावा की गई राशि का एक हिस्सा प्रत्यर्थी द्वारा उसे देय माना जाता है, तो मुकदमे की रक्षा के लिए अनुमति तब तक नहीं दी जाएगी जब तक कि देय मानी गई राशि प्रत्यर्थी द्वारा न्यायालय में जमा नहीं कर दी जाती है।

(6) निर्णय के लिए ऐसे समन की सुनवाई पर;-

(ए) यदि प्रत्यर्थी ने बचाव के लिए छुट्टी के लिए आवेदन नहीं किया है, या यदि ऐसा आवेदन किया गया है और अस्वीकार कर दिया गया है, तो वादी तुरंत निर्णय का हकदार होगा; या

(बी) यदि प्रत्यर्थी को पूरे दावे या उसके किसी हिस्से का बचाव करने की अनुमति है, तो न्यायालय या न्यायाधीश उसे ऐसी सुरक्षा देने का निर्देश दे सकता है और ऐसे समय के भीतर जो न्यायालय या न्यायाधीश द्वारा तय किया जा सकता है और वह, न्यायालय या न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट समय के भीतर ऐसी सुरक्षा देने में विफलता पर या न्यायालय या न्यायाधीश द्वारा दिए गए ऐसे अन्य निर्देशों का पालन करने के लिए, वादी तुरंत निर्णय का हकदार होगा।

(7) न्यायालय या न्यायाधीश, प्रत्यर्थी द्वारा दिखाए गए पर्याप्त कारण के लिए, प्रत्यर्थी की उपस्थिति में प्रवेश

करने या मुकदमे की रक्षा के लिए छुट्टी के लिए आवेदन करने में हुई देरी को माफ कर सकता है।

8. संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 को पढ़ने से पता चलता है कि एक बार जब प्रत्यर्थी संहिता के परिशिष्ट बी के फॉर्म 4 में जारी सम्मन के जवाब में उपस्थित होता है, तो प्रत्यर्थी द्वारा वादी के अधिवक्ता को उपस्थिति की सूचना दी जानी है, या यदि वादी व्यक्तिगत रूप से वादी के समक्ष उपस्थित होता है, या तो नोटिस द्वारा या प्रीपेड पत्र द्वारा भेजा जाता है, जो वादी के अधिवक्ता या वादी के पते पर निर्देशित होता है, जैसा भी मामला हो संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 के उप-नियम (4) में कहा गया है कि प्रत्यर्थी के उपस्थित होने के बाद, वादी प्रत्यर्थी को संहिता के परिशिष्ट बी में निर्धारित फॉर्म 4 ए में निर्णय के लिए समन देने के लिए बाध्य है निर्णय के लिए सम्मन को सेवा की तारीख से कम से कम दस दिन बाद वापस किया जाना चाहिए। फैसले के लिए समन को हलफनामे द्वारा समर्थित किया जाना आवश्यक है, जिसमें कार्रवाई के कारण और प्रत्यर्थी से देय होने का दावा की गई राशि की पुष्टि की जानी चाहिए। क़ानून में वादी को यह बताने की भी आवश्यकता है कि उसके विश्वास में, मुकदमे में कोई बचाव नहीं है। निर्णय के लिए उक्त सम्मन की तामील पर दस दिनों की समयावधि के भीतर, प्रत्यर्थी मुकदमे की रक्षा के लिए छुट्टी के लिए आवेदन कर सकता है। नियम 3 का उप-नियम (5) कहता है कि प्रत्यर्थी द्वारा न्यायालय द्वारा दी जाने वाली प्रार्थना बिना शर्त या ऐसी शर्तों पर है जिसे न्यायालय उचित समझे। उप-नियम (5) से जुड़े दो प्रावधान न्यायालय को इस मामले में आगे मार्गदर्शन देते हैं कि अनुमति कैसे दी जानी है और किन शर्तों के अधीन है। वे प्रावधान इस संशोधन में विचार का विषय नहीं हैं।

9. यहां मुद्दे की जड़ यह प्रतीत होती है कि विद्वान ट्रायल न्यायाधीश ने बचाव की अनुमति के लिए प्रत्यर्थी द्वारा उस समय दिए गए आवेदन को अस्वीकार कर दिया जब उस तरह के आवेदन के लिए मंच अभी तक नहीं आया था। ऐसा इसलिए है क्योंकि वादी ने फैसले के लिए कोई सम्मन नहीं निकाला था। संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 के उप-नियम (4) और उप-नियम (5) को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी द्वारा बचाव की अनुमति के लिए आवेदन केवल तभी किया जा सकता है जब वादी निर्णय के लिए सम्मन निकालता है, संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 के उप-नियम (4) की शर्तों का अनुपालन। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रत्यर्थी द्वारा उस चरण में बचाव की अनुमति नहीं मांगी जा सकती जब वह उपस्थिति के लिए बुलावे के जवाब में उपस्थित होता है। अगला कदम वादी को फैसले के लिए सम्मन प्राप्त करके उठाना है। इसके बाद, प्रत्यार्थि, अनुमेय समय के भीतर और निर्धारित तरीके से, बचाव के लिए छुट्टी के लिए आवेदन कर सकता है। इसलिए, इस मामले में बचाव की अनुमति के लिए प्रत्यर्थी का आवेदन समय से पहले था।

10. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने बचाव की अनुमति देने से इनकार करते हुए अधिकार क्षेत्र के बिना काम किया। यदि बचाव की अनुमति

के लिए प्रत्यर्थी द्वारा उस स्तर पर कोई आवेदन किया गया था, तो इसे गुण-दोष के बजाय समय से पहले खारिज कर दिया जाना चाहिए था, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है।

11. यह मुद्दा ***सेवा राम बनाम फर्म मोडाराम तुलसीराम, 2001 एससीसी ऑनलाइन राज 424*** में राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया, जहां यह देखा गया है:

"11 इस प्रकार, इस भाषा को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि परिकल्पित प्रक्रिया का एक हिस्सा नियम 2 के तहत है जिसमें उपस्थिति के लिए सम्मन प्राप्त होने के बाद प्रत्यर्थी मुकदमे का बचाव नहीं करेगा जब तक कि वह उपस्थित न हो जाए और उसके उपस्थित न होने की स्थिति में वादपत्र में लगाए गए आरोप स्वीकार किए गए माने जाएंगे और वादी डिक्री का हकदार है। मामले के इस दृष्टिकोण में यदि प्रत्यर्थी आदेश 37 नियम 2 के अनुसार उपस्थित होता है, तो वादी का डिक्री का हकदार होने का यह एक चरण समाप्त हो जाता है जाहिर है, इसलिए, इसके बाद वादी को आगे बढ़ना होगा और प्रत्यर्थी के उपस्थित होने के बाद, वादी को प्रत्यर्थी को फैसले के लिए एक समन भेजना होता है जिसे एक विशेष अवधि के बाद वापस करना होता है, इसे हलफनामे द्वारा समर्थित किया जाना होता है, कार्रवाई के कारण को सत्यापित करना होता है, और दावा की गई राशि, और यह भी बता रहा है कि यह उसकी है विश्वास है कि मुक़दमे का कोई बचाव नहीं है। <u>यह केवल और केवल वादी द्वारा यह सब करने के बाद ही होता है, कि प्रत्यर्थी बचाव के लिए छुट्टी के लिए आवेदन करने के लिए किसी दायित्व को आकर्षित करता है। अन्यथा निर्णय के लिए सम्मन की ऐसी किसी भी सेवा के अभाव में, चीजों की योजना में, प्रत्यर्थी मुकदमे के बारे में भूलने और चुपचाप झूठ बोलने का हकदार है। इतना ही नहीं मेरी राय में जब तक प्रत्यर्थी को आदेश 37 नियम 3(4) के अनुसार निर्णय के लिए सम्मन नहीं दिया जाता है। प्रत्यर्थी को बचाव के लिए छुट्टी के लिए आवेदन करने का भी कोई अधिकार नहीं मिलता है, विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा ऐसे आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर तो बिल्कुल भी विचार नहीं किया जा सकता है। जब तक प्रत्यर्थी को कार्रवाई के कारण और दावा की गई राशि की पुष्टि करने वाले वादी के हलफनामे सहित आवश्यक कागजात नहीं दिए जाते हैं और यह भी बयान दिया जाता है कि उसके विश्वास में मुकदमे में कोई बचाव नहीं है, तब तक प्रत्यर्थी की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वह हकदार भी नहीं है, बचाव के लिए अनुमति के लिए आवेदन करना, क्योंकि जब तक यह सब नहीं हो जाता, तब तक चीजों की व्यवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी को किसी भी कार्रवाई का बचाव करना भी चाहिए।</u>

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

12. इस स्तर पर यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि आदेश X X X V II एक हितकारी प्रक्रिया है जो बहुत अधिक टालने योग्य अपराधिक मुकदमेबाजी को कम कर सकती है और जहां आवश्यक हो, त्वरित न्याय ला सकती है। हालाँकि, उत्तर प्रदेश राज्य में किसी कारण से, इस प्रक्रिया का ऐतिहासिक रूप से कम उपयोग किया गया है, और, यदि यह न्यायालय कहने का साहस कर सकता है, तो शायद ही कभी इसका उपयोग किया गया हो। यही कारण है कि अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारी और

बार के सदस्य प्रक्रिया की कुछ बुनियादी तकनीकीताओं से बहुत अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, जो आदेश X X X V II के तहत लागू होते हैं। यह मामला दोनों पक्षों में उस परिचय की कमी का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

13. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, विद्वान विचारण न्यायाधीश का आक्षेपित आदेश, इस हद तक कि वह गुण-दोष के आधार पर मुकदमे का बचाव करने की अनुमति के लिए आवेदन को अस्वीकार करने के लिए आगे बढ़ी है, टिकाऊ नहीं है। इस न्यायालय की राय में, गुण-दोष के आधार पर बचाव की अनुमति के लिए आवेदन को खारिज करने वाले विद्वान विचारण न्यायाधीश के आदेश को उस आवेदन को समय से पहले खारिज करने वाले आदेश द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

14. इस न्यायालय को सूचित किया जाता है कि वादी ने फैसले के लिए सम्मन के लिए पहले ही आवेदन कर दिया है, जिसकी तामील 02.12.2022 को कर दी गई है, जिसके संबंध में उसने 03.12.2022 को पंजीकृत डाक के माध्यम से तामील के लिए कदम उठाए हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को भी विचारण न्यायालय के समक्ष फॉर्म 4ए में निर्णय के लिए समन भेजा गया है।

15. इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने बार में एक बयान दिया है कि प्रत्यर्थी को निर्णय के लिए सम्मन भेजा गया है। तदनुसार, प्रत्यर्थी के पास बचाव की अनुमति के लिए आवेदन करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दस दिन का समय होगा।

16. बचाव की अनुमति के लिए आवेदन, जब ऊपर निर्देशित किया जाता है, तो संहिता के आदेश X X X V II के नियम 3 के उप-नियम (5) के प्रावधानों के अनुसार, विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा सुना और निपटाया जाएगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अनुमति के लिए आवेदन, यदि किया जाता है, तो पूरी तत्परता से निर्णय लिया जाएगा और मुकदमा किसी भी बहाने से स्थगित नहीं किया जाएगा। दिनांक 21.11.2022 का आक्षेपित आदेश इस सीमा तक रद्द किया जाता है कि इसमें बचाव के लिए अनुमति देने से इनकार कर दिया गया है और इसे यहां ऊपर बताई गई शर्तों के अनुसार आदेश दिया गया है।

17. इस पुनरीक्षण को **अनुमति** दी जाती है। कॉस्ट ईज़ी।

(2023) 5 ILRA 1823

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 55033 / 2022

साहिल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री इंद्रपाल सिंह तोमर, अंजलि सिंह तोमर, श्री गौरव सिंह तोमर

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 328, 341, 363, 376 और 506 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(5)- पीड़िता और उसकी मां ने मुकदमे के दौरान पक्षद्रोही घोषित किया- पीड़िता ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 के तहत अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया- साक्ष्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद- समग्रता में साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष या अनुमान निकाला जाएगा- बलात्कार, हत्या आदि जघन्य अपराधों में पीड़िता की जिरह में उसका पक्षद्रोही होना- जमानत का कोई आधार नहीं- जमानत अर्जी खारिज।

अभिनिर्धारित: यह अच्छी तरह से स्थापित है कि गवाह के साक्ष्य से निष्कर्ष या अनुमान उसके मुख्य परीक्षण , जिरह और साथ ही मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में उसकी संपूर्णता में पुनः परीक्षण पर विचार करके निकाला जाना चाहिए, न कि यहाँ-वहाँ से एक या दो वाक्य उठाकर। यह न्यायालय धारा 439 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए , चल रहे मुकदमे के इस मध्य चरण में पीड़िता और अन्य अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विस्तार से चर्चा और मूल्यांकन करना उचित नहीं समझता है क्योंकि आरोपी-आवेदक के आरोप और बचाव अभी भी ट्रायल कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए खुले हैं। हालाँकि, इस न्यायालय का मानना है कि बलात्कार, हत्या आदि जैसे जघन्य अपराधों में जिरह के दौरान पीड़िता का शत्रुतापूर्ण व्यवहार जमानत का कोई आधार नहीं है।

जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्र पाल सिंह तोमर और राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री वीरेंद्र कुमार मौर्य को सुना गया। कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 21.02.2023 के अनुसार, इस न्यायालय के दिनांक 24.01.2023 के आदेश द्वारा जारी नोटिस पीड़िता और बाल कल्याण समिति को दिया गया है, लेकिन उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के तहत इस आवेदन के माध्यम से , आवेदक शाहिल, जो मुकदमा अपराध संख्या 341/2021, धारा 328, 341, 363, 376, 506 आईपीसी, धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम और धारा 3(2)(5) एससी/एसटी अधिनियम, थाना भोजपुर , जिला गाजियाबाद में शामिल है, मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान जमानत पर विस्तार की मांग करता है।

अभियोजन पक्ष के अनुसार, संक्षेप में, पीड़िता ने 07.06.2021 को धारा 341, 506 आईपीसी के तहत वर्तमान आवेदक शाहिल और उसके माता-पिता इस्माइल और नूरी के खिलाफ इस आरोप के साथ एक प्राथमिकी दर्ज की कि वे उसे अपहरण के लिए धमकी देते थे। जांच के दौरान, 14.09.2021 को, एफआईआर के चार महीने बाद, धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पीड़िता का बयान दर्ज किया गया,

जिसमें उसने अन्य बातों के साथ कहा है कि 05.05.2021 को शाम 06:45 बजे, जब वह अपने खेत से लौट रही थी, तो दो व्यक्ति जिनमें से एक वर्तमान आवेदक शाहिल था, वहां आया और उसे कुछ नशीला पदार्थ सुंघाकर जंगल में ले गए जहां उन्होंने उसके साथ बलात्कार किया। उस समय उसे दर्द हो रहा था, लेकिन वह नशे की हालत में थी। इसके बाद, आवेदक उसे पैदल कलछीना स्थित एक स्कूल में ले गया। दूसरा लड़का मोटरसाइकिल को धीरे-धीरे चला रहा था। रास्ते में उन्हें देखकर गांव के कुछ लड़कों ने हंगामा किया और वीडियो भी बनाया। ग्रामीणों ने आवेदक के साथ मारपीट भी की तब उसने अपने माता-पिता को सूचित किया जिस पर उसके परिवार के सदस्य वहां पहुंचे और वे आवेदक के साथ-साथ पीड़िता को भी थाने ले गए जहां शाहिल को गिरफ्तार कर लिया गया और पीड़िता को उसके घर जाने दिया गया। आगे यह प्रस्तुत किया गया कि पीड़िता का धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान 04 महीने 22 दिनों के बाद 27.05.2021 को दर्ज किया गया था, जिसमें भी उसने वही कहानी सुनाई है। जांच के समापन के बाद, आवेदक के खिलाफ ही धारा 328, 341, 363, 376 और 506 आईपीसी, धारा 3/4 पोक्सो एक्ट और धारा 3(2)(5) एससी/एसटी एक्ट के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष पीड़िता और उसकी मां के बयान क्रमशः 22.05.2022 और 15.03.2023 को पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के रूप में दर्ज किए गए हैं, लेकिन उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया है। पीड़िता के बयान के संबंध में, यह तर्क देकर बहुत जोर दिया गया है कि पीड़िता ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 के तहत अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है, फिर अभियोजन पक्ष ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 के तहत पीड़िता से फिर से पूछताछ की, जिसमें पीड़िता द्वारा वही कहानी सुनाई गई है, इसलिए, पीड़िता को पक्षद्रोही घोषित किया जाना चाहिए । आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 21.10.2021 से जेल में बंद है, इसलिए, आवेदक को जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक की जमानत की प्रार्थना का पुरजोर विरोध करते हुए तर्क दिया कि पीड़िता की जन्म तिथि 27.02.2005 है और घटना के दिन वह नाबालिग बच्ची थी। पीड़िता ने धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता और 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयानों में आवेदक के खिलाफ बलात्कार का आरोप लगाया है। आवेदक की जमानत याचिका को ट्रायल कोर्ट द्वारा 15.11.2021 और 18.01.2022 को दो बार खारिज किया जा चुका है। इसके बाद आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील संख्या 2519/2022 दायर की, लेकिन आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कुछ तर्क के बाद अपील पर जोर नहीं दिया और उसके अनुरोध पर, इसे दिनांक 11.11.2022 के आदेश के तहत वापस ले लिया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता को विचारण न्यायलय द्वारा

पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है और इस संबंध में, यह बताया गया है कि पीड़िता का मुख्य परीक्षण आंशिक रूप से 26.05.2022 को दर्ज किया गया था, जिसमें उसने आवेदक के खिलाफ बलात्कार का आरोप लगाया है, उसके बाद 21.07.2022 को उसकी फिर से परीक्षा हुई, जिसमें उसने धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपना बयान साबित कर दिया है। जिसे प्रदर्श का-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया था, उसके बाद उसकी जिरह पांच महीने बाद 01.03.2023 को की गई है, जिसमें उसने विरोधाभासी बयान दिया है। ऐसी परिस्थितियों में, पीड़िता की मुख्य परीक्षा और जिरह के बीच पांच महीने के लंबे अंतराल के कारण, आरोपी पक्ष से पीड़िता को जीतने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जिन मामलों में बलात्कार पीड़िता अपनी मुख्य परीक्षा के बाद लंबे अंतराल के बाद अपनी जिरह में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करती है, उसके पीछे कई रहस्य छिपे होते हैं। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया कि मामले के तथ्यों के तहत, ऐसे जघन्य अपराध में आवेदक की जमानत अर्जी खारिज किये जाने योग्य है।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले की समग्रता में जांच करने के बाद, मुझे विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के इस तर्क में दम लगता है कि पीड़िता ने अपने मुख्य परीक्षण में आवेदक के खिलाफ स्पष्ट रूप से बलात्कार का आरोप लगाया है और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत अपने बयान को भी साबित किया है और उसे अदालत द्वारा पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है। मामले की शुरुआत से लेकर पीड़िता के मुख्य परीक्षण के पूरा होने तक उसका रुख बरकरार रहा लेकिन बाद में जब उसकी मुख्य परीक्षण के लगभग पांच महीने बाद उससे जिरह की गई और फिर से जांच की गई तो उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। इसके बाद पीड़िता की मां, जिसकी 15.03.2023 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष पीडब्लू-2 के रूप में जांच की गई थी, को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। ये परिस्थितियां प्रथम दृष्टया पीड़िता पर बाहरी प्रभावों को इंगित करती हैं।

यह अच्छी तरह से स्थापित है कि गवाह के साक्ष्य से निष्कर्ष या अनुमान उसके मुख्य परीक्षण, जिरह और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में उसकी संपूर्णता में पुनः परीक्षण पर विचार करके निकाला जाना चाहिए, न कि यहाँ-वहाँ से एक या दो वाक्य उठाकर। यह न्यायालय धारा 439 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, चल रहे मुकदमे के इस मध्य चरण में पीड़िता और अन्य अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विस्तार से चर्चा और मूल्यांकन करना उचित नहीं समझता है क्योंकि आरोपी-आवेदक के आरोप और बचाव अभी भी विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए खुले हैं। हालांकि, इस न्यायालय का मानना है कि बलात्कार, हत्या आदि जैसे जघन्य अपराधों में पीड़िता द्वारा जिरह के दौरान शत्रुतापूर्ण व्यवहार जमानत का आधार नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के

साथ-साथ पक्षों की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्कों, अपराध की गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और सजा की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं दिखता है।

तदनुसार, जमानत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

यह स्पष्ट किया जाता है कि वर्तमान आदेश में निहित अवलोकन जमानत के मुद्दे तक ही सीमित है और इससे मुकदमे की योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ट्रायल कोर्ट से अपेक्षा की जाती है कि वह किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन दिए बिना आवेदक के मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करे।

इस आदेश की एक प्रति बाल कल्याण समिति, गाजियाबाद के माध्यम से पीड़िता को तथा दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय को भी सूचनार्थ भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 1826

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

आपराधिक विविध ।। जमानत आवेदन संख्या 53377 / 2022

राजकरन पटेल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री राम औतार वर्मा, श्री विवेक मिश्रा, श्री अमरजीत सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री सुखवीर सिंह, श्री विनोद कुमार साहू

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439 - द्वितीय जमानत आवेदन भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 366, 376, 354-ए, 328, 323, 504 एवं 506 - अभियुक्त का द्वितीय जमानत आवेदन वर्जित नहीं है तथा पोषणीय है - द्वितीय जमानत आवेदन पर सदैव विचार किया जाता है - जमानत आवेदन खारिज होने के पश्चात अभियुक्त के पास उपलब्ध नए आधारों पर - द्वितीय जमानत आवेदन में नए तर्क की अनुमति नहीं - यदि प्रथम जमानत आवेदन प्रस्तुत करने एवं खारिज करने के समय उपलब्ध थे - वर्तमान द्वितीय जमानत आवेदन में कोई नया एवं ताजा आधार उपलब्ध नहीं है - जहां तक मामले के गुण-दोष का प्रश्न है, परिस्थिति में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है - जमानत आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा 13, 16, 17, 19 एवं 24)

अभिनिर्धारित: यद्यपि अभियुक्त की ओर से दूसरी जमानत याचिका पर रोक नहीं है और वह स्वीकार्य है, लेकिन जमानत के आधारों पर विचार करना इसमें ध्यान में रखने योग्य कारक हैं । पहली जमानत याचिका खारिज होने के बाद अभियुक्त के पास उपलब्ध नए और नए आधारों पर हमेशा दूसरी जमानत याचिका पर विचार किया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि दूसरी जमानत याचिका स्वीकार्य नहीं होगी। ऐसी जमानत याचिका स्वीकार्य है, लेकिन जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार नए और नए आधारों की उपलब्धता के अधीन है, जो उपलब्ध न होने पर जमानत

याचिका खारिज करने के पहले के आदेश की समीक्षा करने जैसा होगा। बाबू सिंह (पूर्वोक्त) के मामले में, न्यायालय एक अभियुक्त की जमानत याचिका पर विचार कर रहा था, जिसे सत्र न्यायालय ने बरी कर दिया था, जिसके खिलाफ सत्र न्यायालय ने बरी किए जाने के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील दायर की थी, जो सफल रही और सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों को पलट दिया गया, जिसमें अभियुक्तों को दोषी ठहराया गया और उन्हें अपराधों के लिए सजा सुनाई गई। उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय और आदेश के खिलाफ, सर्वोच्च न्यायालय में एक वैधानिक अपील की गई। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष, एक दूसरी जमानत याचिका दायर की गई थी, जिस पर विचार करते हुए उक्त निर्णय और आदेश पारित किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने दूसरी जमानत याचिका की स्थिरता के संबंध में माना कि जमानत के लिए आवेदन को अस्वीकार करने वाला आदेश जरूरी नहीं कि बाद में किसी अन्य अवसर पर अधिक सामग्री, आगे के घटनाक्रम और विभिन्न विचारों को देखते हुए दूसरी जमानत याचिका को रोक दे। (पैरा 13)

जहाँ तक दूसरी जमानत अर्जी की स्थिरता का सवाल है, यह अब और महत्वपूर्ण नहीं है कि वह स्थिरता योग्य हो। सवाल यह उठता है कि क्या किसी नई और बदली हुई परिस्थिति के बिना, न्यायालय को पिछली जमानत अर्जी को खारिज करने के अपने पिछले आदेश को नज़रअंदाज़ करते हुए दूसरी जमानत अर्जी पर विचार करना चाहिए या नहीं। (पैरा 16)

न्यायालय की राय में, ऐसा करना संभव नहीं होगा। बाद में जमानत आवेदन स्वीकार्य है, लेकिन जमानत की प्रार्थना पर विचार इस तथ्य पर निर्भर करेगा कि क्या नए और नए आधार प्रस्तुत किए गए हैं और उपलब्ध हैं या नहीं। (पैरा 17)

पक्षों के विद्वान वकीलों की दलीलों पर विचार करते हुए, अभिलेखों और मुद्दे पर कानून का अध्ययन करते हुए, वर्तमान दूसरी जमानत याचिका में कोई नया और नया आधार उपलब्ध नहीं है। इस न्यायालय को मामले की योग्यता के संबंध में परिस्थितियों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं दिखता है। यह न्यायालय इसे जमानत के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता। (पैरा 19)

जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. बाबू सिंह व अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य : एआईआर 1978 एससी 527
2. दाल चंद व अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य : 2000 आपराधिक एलजे 4579
3. महाराष्ट्र राज्य बनाम बुद्धिकोटा सुभा राव: 1989 पूरक (2) एससीसी 605
4. सत्य पाल बनाम उ0प्र0 रज्य: 1998 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1224: (1998) 37 एसीसी 287
5. म0प्र0 राज्य बनाम कजाद : (2001) 7 एससीसी 673
6. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन: (2005) 2 एससीसी 42

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल द्वारा पारित)

1. संशोधित सूची।
2. आवेदक के अधिवक्ता श्रीराम औतार वर्मा, विवेक मिश्रा और अमरजीत सिंह, उच्च विधिक सेवा समिति के विद्वान पैनल अधिवक्ता श्री

विनोद कुमार साहू और उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री यूपी सिंह को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

3. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 के तहत यह दूसरी जमानत याचिका आवेदक राजकरण पटेल द्वारा दायर की गई है, जिसमें धारा 366, 376, 354-ए, 328, 323, 504, 506 के तहत थाना-सिविल लाइंस, जिला: प्रयागराज के मामले केस अपराध संख्या-198 वर्ष 2021 से उद्भूत सत्र परीक्षण संख्या-31 वर्ष 2022 (राज्य बनाम राजकरण पटेल और अन्य) अपर सत्र न्यायाधीश-II/एफटीसी, इलाहाबाद के न्यायालय में लंबित मुकदमे के संबंध में विचारण के दौरान जमानत पर छोड़ने की मांग की गई है।

4. आवेदक की पहली जमानत अर्जी इस न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-48511 वर्ष 2021 (राजकरण पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश दिनांक 26.05.2022 के माध्यम से खारिज कर दी गई थी।

5. आवेदक के अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि वर्तमान दूसरी जमानत याचिका हालांकि परिस्थितियों में किसी भी बदलाव के बिना आवेदक की ओर से दायर की गई है, लेकिन नए और ताज़ा आधार हैं जो प्रस्तुत किए गए हैं और जिन पर बहस की जानी है। यह प्रस्तुत किया गया है कि बाबू सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 527 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर और दल चंद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2000 सीआरआई एलजे 4579 के मामले में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले को ध्यान में रखते हुए एक दूसरी जमानत याचिका सुनवाई योग्य है। यह प्रस्तुत किया गया है कि शीर्ष अदालत ने माना है कि बाद के अवसर पर एक दूसरी जमानत याचिका अधिक सामग्री, आगे के विकास और विभिन्न विचारों को देखते हुए पोषणीय होगी। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने बाबू सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय का पालन करते हुए इसे संदर्भित एक प्रश्न का उत्तर देते हुए इसे अवधारित किया है।

6. जमानत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के पैरा-20(क्यू) को रखते हुए यह तर्क दिया गया है कि आवेदक को प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है। झूठे फंसाने का कारण एक वैवाहिक विवाद है जो अनुपात से बाहर जाकर वर्तमान विवाद में बदल गया है। पीड़िता के पिता करुणापति पटेल अपने क्षेत्र के मामलों को हाईकोर्ट में दर्ज कराने के लिए आवेदक के पास लाते थे। धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान के अनुसार पीड़िता ने कहा है कि वह पहली बार 03.01.2020 को छोटा बघाड़ा, प्रयागराज में आवेदक के कक्ष में आई है ताकि वह एलएलबी की डिग्री प्राप्त करने के बाद अपनी कानूनी प्रैक्टिस शुरू कर सके। 28.12.2020 को प्रथम वर्ष में प्रवेश के बाद, पीड़िता ने आवेदक पर आवेदक के बेटे शिवराज पटेल से शादी करने और उसे अपने जूनियर के रूप में रखने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया, जिसके बाद वह एक अधिवक्ता के रूप में उच्च न्यायालय में भाग लेगी, भले ही उसके पास डिग्री नहीं थी और बार काउंसिल में

पंजीकृत नहीं थी, जिससे आवेदक सहमत नहीं था और जहां तक विवाह के प्रस्ताव का संबंध है, आवेदक द्वारा अपनी पत्नी और उसके बेटे के साथ इस पर चर्चा की गई थी जिसके बाद इसे अस्वीकार कर दिया गया जिससे उसके और पीड़िता और उसके पिता के बीच संबंधों में कड़वाहट आ गई थी, जिसके बाद उसके पिता ने एक अन्य अधिवक्ता को नियुक्त करने के लिए उससे सभी पेशागत फाइलों को वापस करने के लिए कहा, जिसका प्रबंधन पीड़िता के माध्यम से किया गया था, जिसे आवेदक ने यह कहते हुए मना कर दिया कि वह उन्हें केवल ग्राहकों की सहमति के बाद वापस करेगी। उसके पिता ने आवेदक को आपराधिक मामलों में झूठे फंसाने सहित गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी और इस तरह आवेदक को प्रस्तुत मामले में फंसाया गया।

7. आगे यह तर्क दिया गया है कि जहां तक सह-अभियुक्त सिपाहीलाल शुक्ला, एडवोकेट का संबंध है, उसे भी प्रस्तुत मामले में इस तथ्य के कारण झूठा फंसाया गया है कि उसने पीड़िता और उसके पिता को इस तरह के छोटे मामले में इस तरह के चरम कदम नहीं उठाने के लिए मनाने की कोशिश की थी, लेकिन उसका अनुनय बहरे कानों पर पड़ा (उसने नहीं माना)। मामले का निपटारा नहीं हो सका जिसके बाद आवेदक और सिपाहीलाल शुक्ला के खिलाफ झूठे आरोपों के साथ 07.04.2021 को वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई।

8. इसके अलावा, आवेदक के अधिवक्ताओं ने जमानत याचिका के समर्थन में हलफनामे के पैराग्राफ संख्या-21 से 24 को रखते हुए तर्क दिया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में पीड़िता द्वारा सुनाई गई कहानी एक झूठी और मनगढ़ंत कहानी है क्योंकि यह कहा गया है कि उसे जहर दिया गया था, लेकिन जहर देना वास्तव में जुलाई, 2020 के महीने में था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जहां तक आवेदक के अवैध कृत्यों के कारण पीड़िता के गर्भवती होने और गर्भपात के लिए दवा दिए जाने के आरोपों का संबंध है, वही झूठी और मनगढ़ंत कहानी है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि एक कु. राखी को एक व्यक्ति बताया गया है जिसने, जब वह 29.06.2021 को उससे मिली थी, पीड़िता की मदद की थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता और राखी ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अधिवक्ताओं का एक गिरोह बनाया है और लोगों से पैसे वसूलने के लिए फर्जी मामलों में फंसा रहे हैं। यह तर्क दिया जाता है कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 18.08.2022 के आदेश के तहत 482 आवेदन में पारित हलफनामे के अनुलग्नक 20 के रूप में संलग्न किया है, जो सीआरएल प्रकीर्ण आवेदन धारा 482 संख्या-20438 वर्ष 2022 (निक्की देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) है जिसमें न्यायालय ने सीबीआई को उक्त आदेश के पैरा-12 में निहित निर्देशों के अनुसार 47 मामलों में प्रारंभिक जांच करने का निर्देश दिया है।

9. अधिवक्ताओं ने आगे विचारण न्यायालय की 12.01.2022 से 02.01.2023 तक की आदेश पत्रक की प्रति रखते हुए, जो 16.01.2023 के पूरक हलफनामे के अनुलग्नक एसए-1 रखकर प्रस्तुत किया कि मामला 12.01.2022 को सत्र न्यायालय को उपार्पित

किया गया था, लेकिन आज तक मामले में आरोप तय नहीं किए गए हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक 25.09.2021 से जेल में है। आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाए।

10. इसके विपरीत, पीड़ित की ओर से उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति की ओर से पेश विद्वान पैनल अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक की पहली जमानत याचिका को इस न्यायालय ने दिनांक 26.05.2022 के आदेश के तहत योग्यता के आधार पर खारिज कर दिया है। जमानत याचिका के समर्थन में हलफनामे के पैरा-29 को रखते हुए यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त पैराग्राफ में पूरी तरह से झूठे और निराधार आरोप लगाए गए हैं कि पीड़िता ने आवेदक से कहा है कि वह विचारण न्यायालय में उसके पक्ष में अपनी गवाही देगी, जिसके लिए उसने 10 लाख रुपये की मांग की, जिस पर आवेदक ने इसे पूरा करने में असमर्थता दिखाई। यह प्रस्तुत किया गया है कि इसके विपरीत पीड़ित को आवेदक की ओर से विभिन्न व्यक्तियों द्वारा धमकी दी जा रही है, इस तथ्य के बावजूद कि आवेदक जेल में है। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान जमानत आवेदन, जो दूसरी जमानत याचिका है, बिना किसी नए और ताज़ा आधार के दायर की गई है। यह तर्क दिया जाता है कि पहली जमानत याचिका की सुनवाई के समय सभी आधार उपलब्ध थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि पहली जमानत याचिका की अस्वीकृति के बाद कोई ऐसा विकास नहीं हुआ है जो आवेदक को दूसरी जमानत याचिका दायर करने का हकदार बनाए। यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता का बयान अभियोजन पक्ष के संस्करण की पूरी तरह से पुष्टि करता है। केवल यह कहकर कि उसमें लगाए गए आरोप झूठे और गलत हैं, इस स्तर पर आवेदक को जमानत देने का अधिकार नहीं देता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि पहली जमानत याचिका पर फैसला करते समय इस न्यायालय द्वारा पीड़िता के उक्त बयान पर विस्तार से विचार किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जहां तक पीड़िता के संस्करण का संबंध है, वह उसके द्वारा चिकित्सा अधिकारी को दिए गए कथन से भी पुष्टि करता है, जिसने 02.07.2021 को उसकी चिकित्सा परीक्षा की थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक एक पेशागत है और एक अधिवक्ता होने के एक गौरवशाली पेशे की प्रैक्टिस कर रहा है। वह एक ऐसे कृत्य में लिप्त है वह भी एक लड़की के साथ जो इस महान पेशे में शामिल होने की इच्छुक है। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान जमानत आवेदन किसी भी योग्यता से रहित है और खारिज होने के योग्य है।

11. राज्य के अधिवक्ता ने भी पीड़िता की ओर से उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति के विद्वान पैनल अधिवक्ता के तर्कों को अपनाकर जमानत के लिए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया। आगे यह तर्क दिया गया है कि मामले में आरोप पत्र आवेदक के खिलाफ 19.11.2021 को प्रस्तुत किया गया है। जांच के दौरान एकत्र की गई सभी सामग्री पर विचार करते हुए आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद आवेदक की पहली जमानत याचिका पर निर्णय लिया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान दूसरी जमानत याचिका में कोई नया

और ताज़ा आधार नहीं है। आवेदक की पहली जमानत याचिका इस न्यायालय द्वारा एक विस्तृत आदेश द्वारा योग्यता के आधार पर खारिज कर दी गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान दूसरी जमानत याचिका खारिज कर दी जाए।

12. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि यह दूसरी जमानत याचिका है। आवेदक की पहली जमानत अर्जी इस न्यायालय ने दिनांक 26.05.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दी थी। वही यहां निम्नवत है: -

"1. आवेदक के अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला, उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति के विद्वान पैनल अधिवक्ता श्री सुखबीर सिंह और राज्य के अधिवक्ता श्री बीबी उपाध्याय को सुना और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया।

2. आवेदक राजकरण पटेल द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के तहत यह जमानत आवेदन दायर किया गया है, जिसमें थाना-सिविल लाइंस, जिला: प्रयागराज में दर्ज धारा 366, 376, 354-ए, 328, 323, 504, 506 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-198 वर्ष 2021 के संबंध में मुकदमे के दौरान जमानत पर छूट की मांग की गई है।

3. प्रस्तुत मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट 07.04.2021 को 00:32 बजे करुणापति पटेल द्वारा धारा 366 भ०द०वि० के तहत आवेदक और सिपाही लाल शुक्ला के खिलाफ 06.04.2021 को 13:30 बजे हुई एक घटना के संबंध में दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि पहला सूचनाकर्ता गांव कौंद्रू थाना-सराय इनायत, जिला: प्रयागराज का निवासी है। उनकी बेटी, जिसकी आयु लगभग 20 वर्ष है, एल.एल.बी की छात्रा है और राजकरण पटेल (वर्तमान आवेदक) के साथ उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस कर रही थी, जो ग्राम सोहाशा, थाना-मुंगरा, बादशाहपुर, जिला: जौनपुर का निवासी है, जो उच्च न्यायालय में एक अधिवक्ता है। घटना के दिन दोपहर करीब 1:30 बजे आलिया लॉ एजेंसी के पास से दोनों आरोपियों ने उसकी बेटी को बहला-फुसलाकर भगा लिया है। उनकी पुत्री की जन्म तिथि 15.11.2000 है। इस प्रकार प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाती है।

4. आवेदक के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आवेदक को प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत पीड़िता से पूछताछ की गई थी और धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान भी दर्ज किया गया था। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान की प्रति जमानत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के अनुलग्नक-5 के रूप में संलग्न है, जबकि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज उसके बयान की प्रमाणित प्रति 28.04.2022 के दूसरे पूरक हलफनामे के अनुलग्नक-एसए-1 के रूप में संलग्न है। अधिवक्ता ने अदालत के समक्ष दोनों बयान रखे हैं और तर्क दिया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज उसके बयान में अभियोक्ता द्वारा सुधार हुआ है, जैसा कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज उसके बयान में हुआ है। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में पीड़िता ने घटना के बारे में नहीं बताया है

जैसा कि लंबे समय से जारी बताया गया था, लेकिन वास्तविक तारीख और समय का उल्लेख नहीं किया है कि कबसे उसे आवेदक द्वारा यौन उत्पीड़न का शिकार बनाया गया था। यह तर्क दिया गया है कि जब पीड़िता को उसकी चिकित्सा जांच के लिए डॉक्टर के सामने लाया गया था, तो उसने हालांकि पूरी घटना के बारे में विस्तार से बताया था, लेकिन उसमें भी उसके बयान में भिन्नता है, जैसा कि उसने धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों में कहा है। आगे यह तर्क दिया गया है कि अभियोक्ता की चिकित्सा परीक्षा 02.07.2021 को आयोजित की गई थी, जबकि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज उसके बयान में बताए गए उसके संस्करण के अनुसार, उच्च न्यायालय के गेट संख्या-5 के सामने 29.06.2021 को उसके साथ मारपीट की गई थी, लेकिन डॉक्टर ने हालांकि उसके स्तन पर एक 'भरा हुआ ज़ख्म' और उसके बाएं हाथ पर एक खरोंच पाया है, लेकिन उसने कहा था कि कोई ताजा चोट नहीं है। यह तर्क दिया जाता है कि उक्त चोट को वर्तमान घटना से जोड़ना अभियोक्ता के संस्करण के पक्ष में बिल्कुल नहीं होगा जैसा कि उसके द्वारा कहा गया है।

5. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अभियोक्ता ने कहा है कि उसने चार बार अपनी गर्भावस्था का गर्भपात किया था, लेकिन उक्त आरोप के बारे में कोई सबूत नहीं है और इसे उसके द्वारा दिया गया एक अतिरंजित संस्करण कहा जा सकता है और इस तरह धारा 313 भ०द०वि० को छोड़ दिया गया था? आवेदक को दिनांक 17.12.2021 के आदेश के तहत उक्त धारा के तहत रिमांड पर नहीं लिया गया था, जिसकी प्रति दिनांक 08.04.2022 के पूरक हलफनामे के साथ संलग्नक-एसए-1 के रूप में संलग्न है। यह तर्क दिया जाता है कि अभियोक्ता ने अपने बयानों में कहा है कि वह 29.06.2021 को सुश्री राखी से मिली थी, लेकिन उक्त व्यक्ति को प्रस्तुत मामले में गवाह के रूप में नहीं बनाया गया है, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने संस्करण के अनुसार अभियोक्ता की मदद की थी। जमानत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के पैराग्राफ-23 को उक्त तर्क को पुष्ट करने के लिए रखा गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में अभियोजन पक्ष ने कहा है कि 05.04.2021 को जब वह उच्च न्यायालय गई थी, तो आरोपी व्यक्ति उच्च न्यायालय के पास एक चौराहे पर उससे मिले थे, सह-आरोपी सिपाही लाल ने उसके साथ मारपीट की और उस समय उसका मोबाइल उसके पिता से कनेक्ट था जो भी इसे सुन रहे थे। यह तर्क दिया जाता है कि उक्त तथ्य भी गलत और झूठ है क्योंकि वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट में इसके बारे में कोई संदर्भ नहीं है जो उसकी पिटाई की कथित घटना के 02 दिनों के बाद दर्ज की गई है। यह तर्क दिया जाता है कि अभियोक्ता एक वयस्क लड़की है। वह अपने स्वयं के संस्करण के अनुसार एक अधिवक्ता के साथ उच्च न्यायालय आती थी और उसके साथ काम कर रही थी और इस तरह कानूनी कार्यवाही के ज्ञान में थी। वह अपने संस्करण को बदलती और सुधारती रही। आवेदक का एक मामले का आपराधिक इतिहास है, जिसका खुलासा हलफनामे के पैराग्राफ 15 में किया गया है, लेकिन उक्त मामले में आज तक हालांकि यह

वर्ष 2019 का है, उसे पुलिस या किसी अदालत से कोई समन या कोई नोटिस नहीं मिला है। आवेदक 25.09.2021 से जेल में है।

6. इसके विपरीत, उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति के विद्वान पैनल अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता ने जमानत के लिए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया है और तर्क दिया है कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है। शिकायतकर्ता ने धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयानों में आवेदक का नाम लिया है और उसे विशिष्ट भूमिका सौंपी है। यह तर्क दिया जाता है कि इस आरोप से इनकार नहीं किया जाता है कि अभियोक्ता अपने कार्यालय में उच्च न्यायालय में आवेदक के साथ काम कर रहा था। यहां तक कि इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जाता है कि वह उसे जानती थी। यह तर्क दिया जाता है कि प्रस्तुत मामला ऐसा है जिसमें एक अधिवक्ता ने एक लड़की का जो कानून की छात्रा थी, कानूनी प्रशिक्षण देने के बहाने अपने कार्यालय और अदालतों के माध्यम से उसका शोषण किया है। तर्क दिया जाता है कि आवेदक पर गंभीर आरोप हैं। अभियोक्ता ने कहा है कि आवेदक ने प्रारंभिक चरण में उसका शोषण किया और फिर उसका यौन उत्पीड़न किया। उसने उन परिस्थितियों को समझाया है जिनके तहत उसे धमकी दी जा रही थी और उसका शोषण जारी रखा गया था। जहां तक शारीरिक हमले का सवाल है, डॉक्टर ने उसके शरीर पर चोटें पाई हैं जो उसके संस्करण की पुष्टि करती हैं। आगे यह तर्क दिया गया है कि जांच के दौरान, पुलिस ने शिवराज पटेल, धीरेंद्र कुमार सरोज और सरोज देवी को आरोपी के रूप में जोड़ा, लेकिन अब तक आरोप पत्र संख्या-01 दिनांक 18.11.2021 को केवल शिवराज पटेल और वर्तमान आवेदक के खिलाफ दायर की गई है, लेकिन जहां तक अन्य आरोपी व्यक्तियों के संबंध में जांच का संबंध है, वह लंबित है। आगे यह तर्क दिया गया है कि चूंकि आवेदक एक अधिवक्ता है, अगर उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो सबूतों के साथ उसके छेड़छाड़ की संभावना है और जांच को प्रभावित कर सकता है क्योंकि अन्य आरोपी व्यक्तियों की जांच लंबित है। इस प्रकार जमानत की प्रार्थना खारिज की जाए।

7. उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने अदालत को आगे सूचित किया है कि आवेदक एक अन्य मामले में शामिल है जो केस अपराध संख्या-193 वर्ष 2021, थाना-सिविल लाइंस, जिला: इलाहाबाद है, जिसका खुलासा नहीं किया गया है और जमानत आवेदन में समझाया गया है। जहां तक आवेदक के एक आपराधिक इतिहास के बारे में हलफनामे के पैराग्राफ 15 में प्रकटीकरण का संबंध है, उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट की फोटोकॉपी पेश करके यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक का नाम चार अन्य अज्ञात व्यक्तियों के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट में है।

8. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में, धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अभियोक्ता के बयानों में है। आवेदक का नाम और उसे सौंपी गई भूमिका पूरे समय सुसंगत है। आरोप पीड़िता पर यौन उत्पीड़न और शारीरिक हमले के हैं जो काफी लंबे समय तक जारी रहे। अभियोक्ता आवेदक

के कार्यालय में कनिष्ठ था। आरोप क़ानूनी प्रैक्टिस करने वाले एक व्यक्ति के खिलाफ हैं और एक वर्दीधारी व्यक्ति है जो एक महान पेशे में अभ्यासरत है। एक अधिवक्ता का पद न्यायालयों से कम सम्मानित नहीं है। आवेदक के खिलाफ उसके द्वारा शिकायत किए गए कृत्य को उसके द्वारा धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए उसके बयानों में विस्तार से बताया गया है। आवेदक को झूठा क्यों फंसाया जा रहा है, इसका कोई कारण नहीं बताया गया है। अन्य अभियुक्तों के लिए जांच लंबित है और आवेदक के राज्य के अधिवक्ताओं और उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति के पैनल अधिवक्ता के जांच को प्रभावित करने और सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की स्थिति में होने की आशंका से इस स्तर पर इनकार नहीं किया जा सकता है।

9. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मुझे यह जमानत के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता, इसलिए, जमानत आवेदन खारिज कर दिया जाता है।

10. इस न्यायालय ने दिनांक 08.04.2022 के आदेश के तहत जिला एवं सत्र न्यायाधीश, प्रयागराज को निर्देश दिया है कि वे धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अभियोक्ता का बयान संबंधित न्यायालय से भेजें। दिनांक 25.4.2022 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, आदेश का अनुपालन किया गया है और एक सीलबंद लिफाफा प्राप्त हुआ है। उक्त लिफाफा दलीलों के दौरान बेंच सचिव द्वारा अदालत के निर्देश पर खोला गया था।

11. तर्कों के समापन के बाद, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के बेंच सचिव को उसको सील करने का निर्देश दिया जिसे तदनुसार सील कर दिया गया है। रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश दिया जाता है कि वह उक्त सीलबंद लिफाफे को आज से तीन दिनों के भीतर प्रयागराज के जिला एवं सत्र न्यायाधीश को वापस भेज दें, जो इसे उचित स्थान पर रखेंगे।

13. यद्यपि अभियुक्त की ओर से दूसरी जमानत याचिका वर्जित नहीं है और बनाए रखने योग्य है, लेकिन जमानत के आधार पर विचार करने वाले कारक हैं जिन्हें इसमें ध्यान में रखा जाना चाहिए। पहली जमानत याचिका खारिज होने के बाद आरोपी के लिए उपलब्ध नए और ताज़ा आधारों पर दूसरी जमानत याचिका पर हमेशा विचार किया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि दूसरी जमानत याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी। इस तरह के जमानत आवेदन की विचारणीयता है, लेकिन जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार नए और ताज़ा आधारों की उपलब्धता के अधीन है, जो उपलब्ध नहीं होने पर जमानत आवेदन को खारिज करने वाले पहले के आदेश की समीक्षा करेंगे। बाबू सिंह (उपरोक्त) के मामले में, न्यायालय एक अभियुक्त की जमानत याचिका पर विचार कर रहा था, जिसे सत्र न्यायालय ने बरी कर दिया था, जिसके खिलाफ राज्य ने उच्च न्यायालय में बरी होने के खिलाफ अपील दायर की थी जो सफल रही और सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों को उलट दिया गया था, जिसमें आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराया गया और उन्हें अपराधों के लिए सजा सुनाई गई थी। उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय और आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में एक सांविधिक अपील की गई। सर्वोच्च न्यायालय

के समक्ष एक दूसरी जमानत याचिका दायर की गई थी जिस पर विचार किया गया था जिसमें उक्त निर्णय और आदेश पारित किया गया था। दूसरी जमानत याचिका की विचारणीयता के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जमानत के लिए आवेदन को अस्वीकार करने वाला आदेश जरूरी नहीं कि बाद के अवसर पर, अधिक सामग्री, आगे के विकास और विभिन्न विचार देने से दूसरे को रोकता है।

14. दल चंद (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा किए गए संदर्भ का निर्णय ले रही थी कि क्या लंबित अपील में दोषी अभियुक्त के उदाहरण पर दूसरी जमानत याचिका सुनवाई योग्य है या नहीं।

15. उक्त निर्णय और आदेश के तहत डिवीजन बेंच ने संदर्भ का जवाब देते हुए और बाबू सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि एक दोषी अभियुक्त के उदाहरण पर जमानत के लिए दूसरा आवेदन, एक आपराधिक अपील में बनाए रखने योग्य है।

16. जहां तक दूसरी जमानत याचिका की विचारणीयता के हिस्से का संबंध है, यह अब और अधिक एकीकृत नहीं है कि यह बनाए रखने योग्य है। सवाल यह उठता है कि क्या बिना किसी नई और बदली हुई परिस्थितियों के, अदालत को पिछली जमानत याचिका को खारिज करने के अपने पिछले आदेश की अनदेखी करते हुए बाद की जमानत याचिका पर विचार करना चाहिए या नहीं।

17. न्यायालय की राय में, यह संभव नहीं होगा। बाद में जमानत याचिका सुनवाई योग्य है लेकिन जमानत की प्रार्थना पर विचार तथ्यों पर निर्भर करेगा कि क्या नए और ताज़ा आधार दिए गए हैं और उपलब्ध हैं या नहीं।

18. महाराष्ट्र राज्य बनाम बुद्धिकोटा सुभा राव: 1989 पूरक (2) एस.सी.सी. 605 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि एक बार जमानत आवेदन खारिज होने के बाद इसी तरह की प्रार्थना देने का कोई सवाल ही नहीं था। इसे प्रदान करना तथ्य-स्थिति में बदलाव के बिना पहले के निर्णय को लगभग खारिज कर देगा। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन वह है जिसका पहले के निर्णय पर सीधा प्रभाव पड़ता है और केवल कॉस्मेटिक (बनावटी) परिवर्तन नहीं होते हैं जो बहुत कम या कोई परिणाम नहीं होते हैं। यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

7. स्वतंत्रता हमारे सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में गर्व का स्थान रखती है, और हमारे संविधान के संस्थापकों से अधिक स्वतंत्रता का मूल्य कौन जानता था, जिनकी स्वतंत्रता को औपनिवेशिक शासकों द्वारा कठोर कानूनों के तहत बार-बार दबाया गया था। इसीलिए उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 21 में यह प्रावधान किया है कि किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। इसलिए यह इस प्रकार है कि किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया द्वारा रोका जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ऐसा ही एक प्रक्रियात्मक कानून है। यह कानून असामाजिक और राष्ट्र विरोधी तत्वों की

स्वतंत्रता को कम करने की अनुमति देता है। अनुच्छेद 22 समाज या राष्ट्र के खिलाफ अपराध के गठन के आरोपी व्यक्ति की गिरफ्तारी की स्थिति में अधिकारियों पर कुछ दायित्व डालता है। किसी अपराध या अपराध के गठन के आरोप वाले विचाराधीन कैदियों के मामलों में, अदालत को आम तौर पर यह तय करने के लिए कहा जाता है कि उसे जमानत पर रिहा किया जाए या उसे जेल में डाल दिया जाए। यह निर्णय मुख्य रूप से गैर-जमानती मामलों में, अपराध की प्रकृति, जिन परिस्थितियों में यह किया गया था, अभियुक्त की पृष्ठभूमि, उसकी जमानत से भागने की संभावना, अभियोजन पक्ष के गवाहों पर उसकी रिहाई का प्रभाव, समाज पर इसका प्रभाव और प्रतिशोध की संभावना आदि को ध्यान में रखते हुए किया जाना है। प्रस्तुत मामले में, प्रतिवादी द्वारा दायर किए गए क्रमिक जमानत आवेदनों को कथित रूप से किए गए अपराध की गंभीरता के संबंध में योग्यता के आधार पर खारिज कर दिया गया था। ऐसा ही एक आवेदन संख्या-36 वर्ष 1989 स्वयं जस्टिस सुरेश ने खारिज कर दिया था। अविचलित प्रतिवादी जमानत के लिए लगातार आवेदनों को दायर करता रहा। ऐसे सभी लंबित जमानत आवेदनों को न्यायमूर्ति पुराणिक ने 6-6-1989 को एक संयुक्त आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। दुर्भाग्य से, न्यायमूर्ति पुराणिक को एक और जमानत याचिका संख्या-995 वर्ष 1989 के लंबित होने की जानकारी नहीं थी, अन्यथा उन्होंने उसी सामान्य आदेश द्वारा इसका निपटारा कर दिया होता। न्यायमूर्ति पुराणिक के आदेश पर स्याही सूखने से पहले, इसे आक्षेपित आदेश द्वारा उलट दिया गया था। ऐसा नहीं है कि आक्षेपित आदेश पारित करने वाली अदालत को न्यायमूर्ति पुराणिक के फैसले के बारे में पता नहीं था; वास्तव में आक्षेपित आदेश में उसी का संदर्भ है। क्या नए तथ्यों और बदली हुई परिस्थितियों के अभाव में ऐसा किया जा सकता है? यह महसूस करना महत्वपूर्ण है कि आपराधिक आवेदन संख्या-375 वर्ष 1989 में, प्रतिवादी ने एक समान अनुरोध किया था जैसा कि उसमें की गई प्रार्थनाओं (पहले उद्धृत) में से एक से स्पष्ट है। एक बार जब उस आवेदन को खारिज कर दिया गया तो इसी तरह की प्रार्थना देने का कोई सवाल ही नहीं था। यह तथ्य-स्थिति में बदलाव के बिना पहले के निर्णय को वस्तुतः खारिज कर रहा है। और, जब हम परिवर्तन की बात करते हैं, तो हमारा तात्पर्य उस सारभूत परिवर्तन से है जिसका पहले के निर्णय पर सीधा प्रभाव पड़ता है न कि केवल दिखावटी परिवर्तन जिनका बहुत कम या कोई परिणाम नहीं होता है। दो आदेशों के बीच केवल दो दिनों का अंतर था और यह किसी का मामला नहीं है कि इन दो दिनों के दौरान भारी बदलाव हुए थे, जिससे प्रतिवादी को जमानत पर रिहा करना आवश्यक हो गया था। न्यायिक अनुशासन, औचित्य और सौहार्द ने मांग की कि तथ्य-स्थिति में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं होने के कारण, न्यायमूर्ति पुराणिक द्वारा केवल कुछ दिन पहले दिए गए आदेश सहित पहले के सभी आदेशों को उलटते हुए आक्षेपित आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए था। ऐसे मामलों में संयम और सावधानी के साथ कार्य करना आवश्यक है ताकि अदालत की प्रक्रिया का वादी द्वारा दुरुपयोग न किया जाए और यह धारणा न बने कि वादी ने या तो एक

न्यायाधीश को सफलतापूर्वक टाल दिया है या एक ऐसे आदेश को प्राप्त करने के लिए दूसरे मौके को चुना है जो अब तक उससे दूर था। ऐसी स्थिति में, हम सोचते हैं कि उचित तरीका यह निर्देश देना है कि मामले को उसी विद्वान न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए जिन्होंने पहले के आवेदनों का निपटान किया था। इस तरह की प्रथा या परंपरा अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकेगी क्योंकि यह एक धारणा को बनाए जाने से रोकेगी कि एक वादी अपनी पसंद के आदेश को प्राप्त करने के लिए अदालत से बच रहा है या उसका चयन कर रहा है। इस तरह की प्रथा परिस्थितियों में बदलाव के बिना लगातार जमानत याचिकाएं दायर करने को हतोत्साहित करेगी। यदि इस तरह की प्रथा को अपनाया जाता है तो यह न्यायिक अनुशासन के लिए अनुकूल होगा और अदालत के समय की भी बचत करेगा क्योंकि तथ्यों से परिचित न्यायाधीश प्रेषण के साथ बाद के आवेदन का निपटान करने में सक्षम होगा। इससे निरंतरता भी आएगी। उनके विचार में कि हम शहजाद हसन खान बनाम इश्तियाक हसन खान [(1987) 2 एस.सी.सी. 684] में फैसले के पैरा 5 में इस न्यायालय की टिप्पणियों से दृढ़ हैं। उपरोक्त कारणों से हमारा विचार है कि तथ्य-स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन के अभाव में आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई औचित्य नहीं था। यही कारण है कि न्यायमूर्ति शेट्टी ने आक्षेपित आदेश को 'सामान्य से थोड़ा हटकर' के रूप में वर्णित करने के लिए प्रेरित किया। न्यायिक संयम की मांग है कि हम और न कहें।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

19. सत्य पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 1998 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 1224: (1998) 37 ए.सी.सी. 287 के मामले में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच एकल न्यायाधीश बेंच द्वारा संदर्भित एक प्रश्न का फैसला कर रही थी कि क्या एक नया तर्क जो पहले उपलब्ध था, उसे दूसरी जमानत याचिका में आगे बढ़ाने की अनुमति दी जानी चाहिए। खण्ड न्यायपीठ के समक्ष प्रश्न इस प्रकार था:-

"1. निम्नलिखित प्रश्न इस न्यायालय द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट किया गया है:-

"क्या एक अभियुक्त के लिए दूसरी जमानत याचिका में एक नए तर्क को उन तथ्यों पर आगे बढ़ाने की अनुमति दी जानी चाहिए जो अभियुक्त को उपलब्ध थे, जबकि पहली जमानत याचिका दायर की गई थी और खारिज कर दी गई थी।

डिवीजन बेंच ने कहा कि दूसरी जमानत याचिका में एक नए तर्क को उन तथ्यों पर आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो पहली जमानत याचिका की सुनवाई और अस्वीकृति के समय अभियुक्त को उपलब्ध थे। संदर्भित प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है: -

"9. ..... तदनुसार, संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर यह है कि एक अभियुक्त के लिए दूसरी जमानत याचिका में नए तर्कों को उन तथ्यों पर आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो अभियुक्त को उपलब्ध थे, जबकि पहली जमानत याचिका दायर की गई थी और खारिज कर दी गई थी।

20. मध्य प्रदेश राज्य बनाम कजाद: (2001) 7 एस.सी.सी. 673 के मामले में सर्वोच्च

न्यायालय ने माना है कि हालांकि क्रमिक जमानत आवेदन स्वीकार्य हैं लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में ही। यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"8. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि 5-6-2000 को प्रकीर्ण केस संख्या-2052 वर्ष 2000 वाले अपने पहले जमानत आवेदन की अस्वीकृति के तथ्य को प्रतिवादी द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। यह सच है कि बदली हुई परिस्थितियों में एक के बाद एक जमानत याचिकाएं मंजूर हैं। लेकिन परिस्थितियों में बदलाव के बिना दूसरे आवेदन को पहले के फैसले की समीक्षा की मांग करना माना जाएगा जो आपराधिक कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा हरि सिंह मान बनाम हरभजन सिंह बाजवा [(2001) 1 एस.सी.सी. 169: 2001 एस.सी.सी. (सीआरआई) 113] और विभिन्न अन्य निर्णयों में अवधारित किया गया है।

21. इसके अलावा, कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन (2005) 2 एस.सी.सी. 42 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि बाद में जमानत याचिका दायर की जा सकती है यदि तथ्य स्थिति या कानून में कोई बदलाव होता है जो पिछले दृष्टिकोण को अप्रचलित कर देगा। अदालत ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि अदालतों द्वारा पहले ही खारिज किए गए आधार पर लगातार जमानत याचिका दायर की जा सकती है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होगा। यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"8. 23-9-2002 को अभियुक्त-प्रतिवादी ने आठवीं जमानत याचिका दायर की, जिसे उच्च न्यायालय ने 23-5-2003 के अपने आदेश द्वारा केवल इस आधार पर अनुमति दी कि अभियुक्त प्रतिवादी ने 3 साल की अवधि के लिए कैद में बिताया था और निकट भविष्य में मुकदमे के समाप्त होने की कोई संभावना नहीं थी और जमानत के उक्त अनुदान के खिलाफ दायर अपील की अनुमति दी गई थी [एड, कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन, ऑप सीआईटी एफ.एन 2, उपरोक्त] में इस आधार पर कि उच्च न्यायालय प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोप पर विचार किए बिना मुकदमे के समापन में देरी के एकमात्र आधार पर जमानत आवेदन की अनुमति नहीं दे सकता था, अपराध की गंभीरता, और जमानत पर होने पर धमकी और प्रलोभन द्वारा गवाह के साथ छेड़छाड़ का आरोप। इस न्यायालय ने [एड. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन, ऑप. सीआईटी एफ.एन 2, उपरोक्त] में कहा कि चूंकि उपरोक्त कारक जमानत मांगने के अभियुक्त के अधिकार की जड़ तक जाते हैं, इसलिए इस पर विचार न करना और केवल लंबी कैद के आधार पर जमानत देना उच्च न्यायालय के जमानत देने के आदेश को दूषित करता है। इस न्यायालय ने यह भी कहा कि हालांकि एक अभियुक्त को जमानत देने के लिए लगातार आवेदन करने का अधिकार था, लेकिन बाद में जमानत के ऐसे आवेदनों पर विचार करने वाली अदालत का कर्तव्य है कि वह उन कारणों और आधारों पर विचार करे जिन पर पहले जमानत आवेदनों को खारिज कर दिया गया था और ऐसे मामलों में अदालत का यह भी कर्तव्य है कि वह उन नए आधारों को रिकॉर्ड करे जिन्होंने उसे पहले के आवेदनों

में लिए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण लेने के लिए राजी किया। इस न्यायालय ने उस आदेश में उच्च न्यायालय को जमानत देते समय कोई नया आधार दर्ज नहीं करने और उस आधार पर विचार नहीं करने के लिए भी दोषी पाया, जिस पर पहले जमानत आवेदन खारिज कर दिए गए थे। न्यायालय ने उक्त आदेश में इस बात पर भी जोर दिया कि इस न्यायालय के पहले के आदेशों की अनदेखी समान पक्षों के बीच विवाद में दिए गए उच्चतर न्यायालय के निर्णयों की बाध्यकारी प्रकृति के सिद्धांत का उल्लंघन है, और ध्यान दिया कि उच्च न्यायालय का ऐसा दृष्टिकोण प्रभावी रूप से अनदेखी या अतिनिर्णय देने के बराबर है और इस प्रकार विशेष रूप से उच्चतर न्यायालयों के पहले के आदेशों में प्रतिपादित सिद्धांतों को अप्रभावी बनाता है। उस आधार पर, जमानत देने को चुनौती देने वाली शिकायतकर्ता की अपील को प्रतिवादी को दी गई जमानत को रद्द करने की अनुमति दी गई। इस न्यायालय के इस आदेश को कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन [(2004) 7 एस.सी.सी. 528: 2004 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1977] के रूप में रिपोर्ट किया गया है।

****

"20. एक उच्च मंच द्वारा दिए गए निर्णय, निस्संदेह, जमानत के मामलों में भी एक ही मुद्दे पर अधीनस्थ मंच पर बाध्यकारी हैं, जब तक कि निश्चित रूप से, तथ्य स्थिति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है जो एक अलग दृष्टिकोण लेने के लिए कहता है। इसलिए, भले ही उन मामलों में बाद में जमानत याचिका दायर करने की गुंजाइश है जहां पहले के आवेदनों को खारिज कर दिया गया है, वही किया जा सकता है यदि तथ्य की स्थिति या कानून में कोई बदलाव होता है जिसके लिए पहले के दृष्टिकोण में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता होती है या जहां पहले का निष्कर्ष अप्रचलित हो गया है। यह सीमित क्षेत्र है जिसमें एक अभियुक्त जिसे पहले जमानत देने से इनकार कर दिया गया है, बाद में आवेदन कर सकता है। इसलिए, हम आरोपी के अधिवक्ता के तर्क से सहमत नहीं हैं कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति को दी गई गारंटी के मद्देनजर, यह पीड़ित व्यक्ति के लिए लगातार जमानत आवेदन करने के लिए खुला है, यहां तक कि अदालतों द्वारा पहले से ही खारिज किए गए आधार पर भी, जिसमें देश की शीर्ष अदालत भी शामिल है। (महत्त्व सन्निविष्ट)"

22. अब प्रस्तुत मामले पर वापस लौटते हुए, हलफनामे के पैरा-20(क्यू) को रखते हुए झूठे निहितार्थ का कारण बताने का प्रयास किया गया है। यह केवल आरोपी आवेदक का एक संस्करण है। जहां तक धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता के बयान के मिथ्यात्व से संबंधित अन्य तर्कों का संबंध है, इसे जहर देने की घटना के साथ जोड़कर इस न्यायालय द्वारा उक्त बयान पर विचार किया गया है और इस तरह इस पर पुनर्विचार करने का कोई अवसर नहीं है। यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में दिए गए कथन के संबंध में इसमें कोई विरोधाभास है और साथ ही इसे बदनाम करने के लिए कोई तर्क दिया जा रहा है, तो साक्ष्य के बाद ही विचारण में निर्णय लिया जाना चाहिए।

23. कुमारी राखी के तर्क और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के दिनांक 18.08.2022 के आदेश के संबंध में, जिसमें सी.बी.आई द्वारा प्रारंभिक जांच किए जाने वाले कुछ मामलों का निर्देश दिया गया है, हालांकि पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में कुमारी राखी का उल्लेख किया है, लेकिन जैसा कि आवेदक की पहली जमानत याचिका को खारिज करने के आदेश में देखा गया है, आरोप पत्र के गवाहों की सूची में किसी भी हैसियत से राखी को गवाह के रूप में शामिल नहीं किया गया है, जिस पर अभियोजन पक्ष अपने मामले के लिए भरोसा करता है। यदि वह, उसका आचरण, उसकी स्थिति या उसके कार्य, यदि कोई हो, पर विचार किया जाना है, तो वह विचारण का विषय हो सकता है। जमानत पर विचार के चरण में, न्यायालय केवल जमानत देने के लिए प्रथम दृष्टया स्थापित मामले के प्रश्न पर जा सकता है। यह अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत गवाह की विश्वसनीयता और भरोसे के सवाल पर नहीं जा सकता है। गवाह की विश्वसनीयता और भरोसे के सवाल का परीक्षण केवल परीक्षण के दौरान किया जा सकता है। विचारण न्यायालय की आदेश पत्रक जो पूरक हलफनामे में है, हालांकि यह दर्शाता है कि मामला 12.01.2022 को सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया है, लेकिन यह आज तक लंबित है, लेकिन प्रस्तुत मामले में आरोप तय नहीं किया गया है, इसके बावजूद 07.05.2022 से आरोप तय किया जा रहा है, जैसा कि उक्त तिथि की आदेश पुस्तिका से स्पष्ट है।

24. पक्षकारों के अधिवक्ताओं की दलीलों को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे पर रिकॉर्ड और कानून का अवलोकन करते हुए, वर्तमान दूसरी जमानत याचिका में कोई नया और ताज़ा आधार उपलब्ध नहीं है। जहां तक मामले की योग्यता का संबंध है, इस न्यायालय को परिस्थिति में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं मिलता है। यह न्यायालय इसे जमानत के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता है।

25. तदनुसार जमानत अर्जी खारिज की जाती है।

26. हालांकि, विचारण न्यायालय विचारण ले सकता है और किसी भी कानूनी बाधा के अधीन धारा 309 द०प्र०स० के अनुसार इसके साथ आगे बढ़ सकता है।

आवेदक आज से दो सप्ताह के भीतर निचली अदालत में यह आदेश दायर कर सकता है।

(2023) 5 ILRA 1837

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023

और

08.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 3099/2023 (सीआरपीसी की धारा 438 के तहत)

मनोज कुमार बठला ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री प्रणव तिवारी, श्री याज्ञवल्क पांडे, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री आदेश कुमार, श्री सुशील शुक्ला

आपराधिक कानून - दं0प्र0सं0 की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र - अग्रिम जमानत को रद्द करने के आदेश को चुनौती दी गई - अग्रिम जमानत देने में और राहत मांगी गई। आईपीसी की धाराओं 406, 420, 467, 468, 471 के तहत एफआईआर दर्ज की गई - आवेदक द्वारा जमानत की शर्तों का उल्लंघन करने के कारण अग्रिम जमानत रद्द कर दी गई - आरोप पत्र पहले ही पेश किया जा चुका है - मुकदमा चल रहा है - रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि आवेदक ने अग्रिम जमानत दिए जाने के बाद कोई अपराध किया है - आपराधिक कार्यवाही से स्वतंत्र एनसीएलटी कार्यवाही, आपराधिक अदालत किसी अन्य फोरम के लिए निष्पादन अदालत के रूप में कार्य नहीं कर सकती - अग्रिम जमानत रद्द करने के आक्षेपित आदेश को दरकिनार कर दिया गया, इसके अलावा, आवेदक को मुकदमे के अंत तक अग्रिम जमानत दी गई।

अभिनिर्धारित:

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मामले में आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। आरोपित आदेश के एक भाग में, सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा आरोपी/आवेदक द्वारा शर्त संख्या 6 के कथित उल्लंघन के संबंध में विभिन्न टिप्पणियां की गई हैं और ऐसा करते समय संबंधित न्यायालय ने पक्षों के बीच विवाद के इतिहास में प्रवेश किया और घटनाओं की एक श्रृंखला का खाका तैयार किया गया है, लेकिन इसमें ठोस तर्क का अभाव है। इस न्यायालय को सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों में कोई औचित्य नहीं लगता है जो आरोपी/आवेदक को उक्त शर्त संख्या 6 के उल्लंघन के लिए उत्तरदायी ठहरा सके। क्या वर्तमान आरोपी/आवेदक के खिलाफ दिनांक 10.3.2022 के आदेश के बाद कोई आपराधिक मामला आरोप पत्र में परिणत हुआ, यह आरोपित आदेश से स्पष्ट नहीं है। वर्तमान मामले में आरोप पत्र पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है और अब संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष मुकदमा चल रहा है। इस प्रकार, यह मानना सही नहीं है कि दिनांक 10.3.2022 के आदेश द्वारा लगाई गई शर्त संख्या 6 का आरोपी/आवेदक द्वारा उल्लंघन किया गया था। इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि भविष्य में एनसीएलटी द्वारा क्या आदेश पारित किए जाने चाहिए, यह सत्र न्यायालय के लिए अग्रिम जमानत के मंच पर विचार करने का विषय नहीं है। एनसीएलटी को कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपने स्वयं के आदेशों को लागू करने का अधिकार है । अपने आदेशों के निष्पादन या शर्तों को पूरा करने के लिए एनसीएलटी, जहां उसके आदेशों का उल्लंघन किया जाता है, किसी अन्य मंच/न्यायालय पर निर्भर नहीं है और इस आकस्मिकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम है। साथ ही, आवेदक से सभी पिछले आदेशों का पालन करने के लिए कहना कोई वास्तविक शर्त नहीं थी, जो पहले ही एनसीएलटी द्वारा पारित किए जा चुके थे और जो किसी उच्चतर मंच में विचाराधीन हो सकते हैं।

उपर्युक्त स्थिति इस न्यायालय को इस बात पर विचार करने की दिशा में ले जाती है कि क्या कोई आपराधिक न्यायालय किसी अन्य

फोरम के लिए निष्पादन न्यायालय की तरह कार्य कर सकता है।

आक्षेपित आदेश इस बात पर स्पष्ट नहीं है कि संबंधित न्यायालय ने कैसे निष्कर्ष निकाला कि यदि अभियुक्त को मुकदमे के दौरान अग्रिम जमानत की स्वतंत्रता बनाए रखने की अनुमति दी जाती है तो निष्पक्ष सुनवाई संभव नहीं है। यह भी पता चलता है कि संबंधित न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर रिकॉर्ड से बाहर की सामग्रियों पर भरोसा किया जो उस चरण में प्रासंगिक नहीं थीं। संबंधित न्यायालय को कैसे यकीन था कि आवेदक मामले के गवाहों को जीतने की कोशिश कर रहा था और इस तरह से मामले की निष्पक्ष सुनवाई संभव नहीं थी, यह एक ऐसा मुद्दा है जो आक्षेपित आदेश में अस्पष्ट बना हुआ है। उपरोक्त चर्चाओं और इस विषय को नियंत्रित करने वाले कानून के मद्देनजर, न्यायालय का मानना है कि सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 10.3.2023 का आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि से टिकने योग्य नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। तदनुसार दिनांक 10.3.2023 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है।

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दिलीप सिंह बनाम म0प्र0 राज्य एवं अन्य, (2021) 2 एससीसी 779
2. उधो ठाकुर एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1712
3. सावित्री अग्रवाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2009) 8 एससीसी 325
4. दोलत राम व अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (1995)1 एससीसी 349
5. चारु सोनेजा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (आपराधिक एम.सी. 2050/2021), 3.1.2022 को निर्णीत
6. रघुबीर सिंह व अन्य बनाम बिहार राज्य, (1986) 4 एससीसी 481
7. सुशीला अग्रवाल व अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) व अन्य, (2020) 5 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव)

यह आवेदन आवेदक - मनोज कुमार बथला की ओर से सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 10.3.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है, जिसके तहत आवेदक को आदेश दिनांक 16.3.2022 के तहत दी गई अग्रिम जमानत रद्द कर दी गई है और आगे अपराध संख्या-0574 वर्ष 2019, आपराधिक मामला संख्या-23164 वर्ष 2021 धारा 406, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि०, थाना-मेडिकल कॉलेज, जिला संभल के तहत, में आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए दायर किया गया है।

श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता सर्वश्री प्रणव तिवारी और याज्ञवल्क्य पांडे द्वारा सहायता प्राप्त, आवेदक के अधिवक्ता, श्री सुशील शुक्ला, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलखों का अवलोकन किया।

अप्रमाणित

आवेदक की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 10.3.2023 का आदेश, जिसके द्वारा दिनांक 16.3.2022 के आदेश के तहत आवेदक को दी गई अग्रिम जमानत रद्द कर दी गई है, कानून की नजर में खराब है और वास्तव में आवेदक ने आवेदक को अग्रिम जमानत देते समय संबंधित न्यायालय द्वारा लगाई गई किसी भी शर्त का उल्लंघन नहीं किया। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 16.3.2022 के पूर्वोक्त आदेश के तहत अग्रिम जमानत देते समय आवेदक पर कुल आठ शर्तें लगाई गई थीं और उसने सभी शर्तों का पालन किया था। यह जोरदार रूप से प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 10.3.2023 का आक्षेपित आदेश, जिसके तहत आवेदक को दी गई अग्रिम जमानत रद्द कर दी गई है, यह दर्शाता है कि सत्र न्यायाधीश, मेरठ ने मुख्य रूप से उक्त आदेश द्वारा लगाई गई शर्त संख्या-8 का अनुपालन न करने पर जोर दिया है जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि आवेदक को इस आशय का एक वचन पत्र दाखिल करना होगा कि वह राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण (संक्षेप में 'एन.सी.एल.टी.') द्वारा पारित आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करेगा। इस मामले में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि दिनांक 16.3.2022 का आदेश पारित करने के बाद, एन.सी.एल.टी. द्वारा कोई और आदेश पारित नहीं किया गया था और इसलिए, आवेदक के लिए एन.सी.एल.टी. द्वारा पारित किसी भी अन्य आदेश का अनुपालन न करने का कोई अवसर नहीं था। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि सत्र न्यायाधीश, मेरठ ने दिनांक 16.3.2022 के आदेश पारित करने से पहले एन.सी.एल.टी. द्वारा पारित आदेशों पर जोर दिया है और उक्त पहले के आदेशों का पालन न करने को अग्रिम जमानत रद्द करने के लिए पर्याप्त आधार बनाया गया है। इस प्रकार, यह जोरदार रूप से प्रस्तुत किया गया है कि सत्र न्यायाधीश, मेरठ का उक्त दृष्टिकोण कानून में मान्य नहीं था, क्योंकि किसी भी आदेश को पूर्वव्यापी रूप से प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यदि एन.सी.एल.टी. द्वारा मुकदमेबाजी के पक्षों के बीच उसके समक्ष लंबित मामले में कुछ आदेश पारित किए गए थे, तो यह एन.सी.एल.टी. के लिए था कि वह उसके गैर-अनुपालन के संबंध में उचित कार्रवाई करे। एक आपराधिक अदालत को किसी अन्य मंच/प्राधिकरण द्वारा पारित आदेशों के निष्पादन के लिए एक निष्पादन अदालत नहीं कहा जा सकता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक ने किसी भी समान अपराध को दोहराया नहीं है, जैसा कि प्रस्तुत मामले की प्राथमिकी में उसके खिलाफ लगाया गया था और इस तरह, उसने दिनांक 16.3.2022 के आदेश के माध्यम से उस पर लगाई गई शर्त संख्या-6 का उल्लंघन नहीं किया है, जिसे पूर्वोक्त आदेश द्वारा संबंधित न्यायालय द्वारा आवेदक को दी गई अग्रिम जमानत को रद्द करने का आधार भी बनाया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि सत्र न्यायालय मेरठ द्वारा आवेदक को मुकदमे के समापन तक अग्रिम जमानत दी गई थी, इसलिए यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि संबंधित सत्र न्यायालय ने आवेदक के पक्ष में अपना विचार व्यक्त किया और मुकदमे के अंत तक उसे अग्रिम जमानत देने के लिए पर्याप्त और

उचित आधार पाया। अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि दिनांक 10.3.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए और आगे आवेदक को मुकदमे के अंत तक अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए।

इसके विपरीत, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के साथ-साथ अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 16.3.2022 का आदेश, जिसके तहत आवेदक को उस पर कुछ शर्तें लगाते हुए अग्रिम जमानत दी गई थी, यह दर्शाता है कि उस पर कुल आठ शर्तें लगाई गई थीं, जिनमें से शर्त संख्या-1 ने आवेदक को पांच करोड़ रुपये मूल्य की बैंक गारंटी प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था। चूंकि पांच करोड़ रुपये एक बड़ी राशि थी, इसलिए आवेदक द्वारा उक्त शर्त संख्या-1 का पालन करने के लिए छूट देने या बैंक गारंटी की राशि को कम करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 28.6.2022 के आदेश के तहत, संबंधित न्यायालय ने पांच करोड़ रुपये की बैंक गारंटी प्रस्तुत करने की शर्त संख्या-1 को रद्द कर दिया और आगे आवेदक को पांच करोड़ रुपये की राशि में एक उचित रूप से मुद्रांकित और नोटरीकृत क्षतिपूर्ति बांड प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि वह, उसके द्वारा धारित और क्षतिपूर्ति बांड में उल्लिखित किसी भी प्रकार की संपत्तियों में प्रभार, बंधक या कोई अन्य ग्रहणाधिकार, या तो अपने नाम पर या दूसरों के साथ संयुक्त रूप से, कोई तीसरा पक्ष अधिकार नहीं बनाएगा जब तक कि मामले का अंतिम रूप से निर्णय नहीं हो जाता। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 16.3.2022 के आदेश द्वारा लगाई गई अन्य शर्तों के लिए, आवेदक द्वारा इसे पूरा करने में कोई आपत्ति या असमर्थता नहीं दिखाई गई थी, बल्कि उसने उपरोक्त आदेश द्वारा लगाई गई सभी शर्तों के अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष एक वचन प्रस्तुत किया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 10.3.2023 के आक्षेपित आदेश में, सत्र न्यायाधीश, मेरठ ने आवेदक द्वारा किए गए धोखाधड़ी और आपराधिक कृत्यों के संबंध में कई तथ्य बताए हैं, जबकि उन्हें फिर से इसी तरह के अपराध को नहीं दोहराने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 10.3.2023 के आक्षेपित आदेश में कई उदाहरण शामिल हैं जो यह दर्शाते हैं कि आवेदक ने बार-बार एक ही अपराध किया है, जिसके कमीशन को संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 16.3.2022 के आदेश द्वारा लगाई गई शर्त संख्या-6 द्वारा निषिद्ध बना दिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश यह भी दर्शाता है कि एन.सी.एल.टी. के सभी आदेश, चाहे 16.3.2022 से पहले या उसके बाद पारित किए गए हों, आवेदक द्वारा अनुपालन किया जाना है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि आवेदक ने उक्त शर्त की अस्थिरता या अस्पष्टता के बारे में संबंधित न्यायालय के समक्ष कभी कोई सबमिशन नहीं दिया, इसलिए यह उसके खिलाफ एक एस्टोपेल था और वह उपरोक्त शर्त के साथ-साथ संबंधित न्यायालय द्वारा लगाई गई अन्य शर्तों का पालन करने के लिए बाध्य था। उपरोक्त दलीलों के आधार पर, प्रस्तुत अग्रिम जमानत याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की गई है।

मैंने पक्षकारों के वकीलों द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

इस मामले में, रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पता चलता है कि अग्रिम जमानत आवेदन संख्या-591 वर्ष 2022, अपराध संख्या-574 वर्ष 2019, धारा 406, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि०, थाना मेडिकल कॉलेज, जिला मेरठ के तहत आवेदक को सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.3.2022 के तहत अग्रिम जमानत दी गई थी, तथापि, आवेदक को अग्रिम जमानत देते समय उस पर कुछ शर्तें लगाई गई थीं। इसके बाद, सूचनाकर्ता द्वारा दायर एक आवेदन पर, उक्त अग्रिम जमानत को सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 10.3.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा कुछ शर्तों की अवहेलना के आधार पर रद्द कर दिया गया था, जो आवेदक को अग्रिम जमानत देते समय लगाई गई थीं।

शुरुआत में, यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या दिनांक 10.3.2023 का आदेश, जिसके तहत दिनांक 16.3.2022 के आदेश के तहत आवेदक को दी गई अग्रिम जमानत रद्द कर दी गई थी, कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता है या नहीं। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से, यह पाया गया है कि सत्र न्यायाधीश, मेरठ ने इस शर्त पर जोर दिया है कि आरोपी आवेदक न केवल सत्र न्यायालय, बल्कि एन.सी.एल.टी. के भी के आदेशों की अवहेलना कर रहा है, और इस अवलोकन के लिए, संबंधित न्यायालय ने मामले के कई तथ्यात्मक पहलुओं पर जोर दिया है। न्यायालय ने कहा है कि आवेदक जानबूझकर कोई रिकॉर्ड और खाता प्रदान नहीं कर रहा है और अभी भी शिकायतकर्ता के नुकसान के लिए कंपनी के बैंक खातों का दुरुपयोग कर रहा है। उक्त आदेश में यह भी उल्लेख किया गया है कि चूंकि आवेदक का पक्षकारों की कंपनी पर वास्तविक नियंत्रण है, इसलिए वह कंपनी की पुस्तकों को अपनी निजी फर्म की पुस्तकों के रूप में पारित कर रहा है और ऐसी पुस्तकों की बिक्री से प्राप्त धन को हड़प रहा है। उक्त आदेश में यह भी बताया गया है कि आवेदक को अग्रिम जमानत देने के बाद कंपनी जिसने लेखा सॉफ्टवेयर प्रदान किया था, ने कथित रूप से लाइसेंस रद्द कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप खाते दुर्गम हो गए और आरोपी के स्कूटर से भौतिक रिकॉर्ड खो गए, कर्मचारी असहयोगी हो गए और कंपनी के बैंक खाते का उपयोग आरोपी आवेदक द्वारा अपनी सुविधा के अनुसार किया जा रहा था। आक्षेपित आदेश में यह भी उल्लेख किया गया है कि यह स्पष्ट रूप से अभियुक्त का कार्य है कि वह उचित निर्णय के लिए खातों और रिकॉर्ड प्रदान करने से इनकार करे और इन परिस्थितियों में अदालत आरोपी द्वारा अग्रिम जमानत की स्वतंत्रता के निरंतर उल्लंघन और दुरुपयोग के बारे में अपनी आंखें बंद नहीं कर सकती है।

आक्षेपित आदेश दिनांक 10.3.2023 में, शर्त संख्या-6 और 8 को आरोपी आवेदक द्वारा अनुपालन न किए जाने पर जोर दिया गया है। उक्त शर्तें:

6- जो अभियोग आवेदक पर लगाया गया है वैसा ही अन्य कोई अपराध आवेदक कारित नहीं करेगा।

8- यह कि आवेदक इस आशय की अंडरटेकिंग प्रस्तुत करे कि एन.सी.एल.टी. द्वारा पारित आदेश

का पालन सुनिश्चित करता रहेगा।

जहां तक शर्त संख्या-6 का संबंध है, यह आवेदक द्वारा किए गए समान प्रकृति के किसी अन्य अपराध से संबंधित है।

यह विवाद में नहीं है कि मामले में आरोप पत्र दायर किया गया है। आक्षेपित आदेश के एक भाग में, सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा अभियुक्त/आवेदक द्वारा शर्त संख्या-6 के कथित उल्लंघन के संबंध में विभिन्न टिप्पणियां की गई हैं और ऐसा करते समय संबंधित न्यायालय ने पक्षों के बीच विवाद के इतिहास में प्रवेश किया है और घटनाओं की एक श्रृंखला को स्केच किया गया है, लेकिन इसमें एक ठोस तर्क का अभाव है। यह न्यायालय सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों में कोई औचित्य नहीं पाता है जो अभियुक्त/आवेदक को उपरोक्त शर्त संख्या-6 के उल्लंघन के लिए उत्तरदायी बनाने में सक्षम है। क्या वर्तमान आरोपी/आवेदक के खिलाफ दिनांक 10.3.2022 के आदेश के बाद कोई आपराधिक मामला आरोप-पत्र में बदल गया, यह आक्षेपित आदेश से स्पष्ट नहीं है। प्रस्तुत मामले में आरोप पत्र पहले ही दायर किया जा चुका है और अब संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष मुकदमा चल रहा है। इस प्रकार, यह मानना कि दिनांक 10.3.2022 के आदेश द्वारा लगाई गई शर्त संख्या-6 का अभियुक्त/आवेदक द्वारा उल्लंघन किया गया था, सही नहीं है।

जहां तक दिनांक 16.3.2022 के आदेश द्वारा लगाई गई शर्त संख्या-8 का संबंध है, रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पता चलता है कि दोनों पक्ष व्यावसायिक व्यक्ति हैं जिनकी साझेदारी फर्म के रूप में वाणिज्यिक कंपनी है और उनके बीच एन.सी.एल.टी. के समक्ष मुकदमे चल रहे हैं। उपरोक्त मामलों में एन.सी.एल.टी. द्वारा कई आदेश पारित किए गए हैं या पारित किए जाने हैं। आक्षेपित आदेश में, सत्र न्यायाधीश, मेरठ ने कहा है कि आरोपी आवेदक इस तरह से काम कर रहा है जिसके कारण कंपनी घाटे में जा रही है और आवेदक की ओर से सतर्कता और निष्क्रियता की कमी के कारण सभी कामकाजी परिस्थितियां बाधित हो गई हैं और वह लगातार एन.सी.एल.टी. के आदेशों का उल्लंघन कर रहा है। पक्षकारों के बीच इसके समक्ष लंबित मामले में पहले ही पारित हो चुका है।

इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि भविष्य में एन.सी.एल.टी. द्वारा पारित किए जाने वाले आदेश अग्रिम जमानत के मंच में बैठे सत्र न्यायालय से संबंधित विषय नहीं हैं। एन.सी.एल.टी. को कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपने स्वयं के आदेशों को लागू करने का अधिकार है। एन.सी.एल.टी. अपने आदेशों के निष्पादन या शर्तों को पूरा करने के लिए, जहां उसके आदेशों का उल्लंघन किया जाता है, किसी अन्य मंच/न्यायालय पर निर्भर नहीं है और इस आकस्मिकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम है। इसके अलावा, आवेदक को पिछले सभी आदेशों का पालन करने के लिए कहना एक वास्तविक शर्त नहीं थी, जो पहले से ही एन.सी.एल.टी. द्वारा

पारित किए गए थे और जिन्हें किसी भी उच्च मंच पर भी अधीन किया जा सकता था।

पूर्वोक्त स्थिति इस न्यायालय को इस बात पर विचार करने की दिशा में ले जाती है कि क्या एक आपराधिक न्यायालय किसी अन्य मंच के लिए निष्पादन न्यायालय की तरह कार्य कर सकता है।

दिलीप सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, (2021)2 एस.सी.सी. 779 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि:

'अग्रिम जमानत देने के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाली आपराधिक अदालत से शिकायतकर्ता के बकाये की वसूली के लिए, और वह भी बिना किसी मुकदमे के, वसूली एजेंट के रूप में कार्य करने की उम्मीद नहीं की जाती है।'

इस उधु ठाकुर और अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑन एस.सी. 1712 में इस उसूल को दोहराया गया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि:

"4. यहां तक कि अगर हम प्रतिवादी के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों को उसके अंकित मूल्य पर लेते हैं, तो हम स्पष्ट रूप से विचार करते हैं कि संक्षेप में, पूर्व-गिरफ्तारी जमानत की राहत की मांग करने वाली याचिकाएं धन वसूली कार्यवाही नहीं हैं और आमतौर पर, इस तरह के क्रम को अपनाने का कोई औचित्य नहीं है कि गिरफ्तारी पूर्व जमानत की रियायत दी जा रही है, गिरफ्तारी की आशंका से संबंधित व्यक्ति को भुगतान करना होगा।'

यह आगे अवधारित किया गया है कि:

"परिस्थितियों के संबंध में, हमारे विचार में, अग्रिम जमानत की राहत देने के उद्देश्य से 7,50,000 रुपये की राशि जमा करने की उक्त शर्त को मंजूरी नहीं दी जा सकती है और अन्यथा, जमानत देने का आदेश बनाए रखने योग्य है।

कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव के आलोक में, यह न्यायालय यह मानने में संकोच नहीं कर रहा है कि दिनांक 16.3.2022 के आदेश द्वारा लगाई गई शर्त संख्या-8 एक अस्पष्ट और अवास्तविक स्थिति है और इस तरह टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

अनेक मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने जमानत रद्द करने/अग्रिम जमानत रद्द करने से संबंधित मामलों से निपटने के लिए कतिपय मानदंड निर्धारित किए हैं।

सावित्री अग्रवाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2009)8 एस.सी.सी. 325 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि पहले से दी गई जमानत को रद्द करने का निदेश देने वाले आदेश के लिए बहुत ही ठोस और भारी परिस्थितियां आवश्यक हैं। यह आगे कहा गया है कि प्रारंभिक चरण में गैर-जमानती मामले में जमानत की अस्वीकृति और जमानत रद्द

करने पर विचार किया जाना चाहिए और अलग-अलग आधार पर निपटा जाना चाहिए।

दौलत राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (1995) 1 एस.सी.सी. 349 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि:

"4. प्रारंभिक चरण में गैर-जमानती मामले में जमानत की अस्वीकृति और इस प्रकार दी गई जमानत को रद्द करना, अलग-अलग आधार पर विचार और निपटाया जाना चाहिए। पहले से दी गई जमानत को रद्द करने का निर्देश देने वाले आदेश के लिए बहुत ही ठोस और भारी परिस्थितियां आवश्यक हैं। सामान्यतया, जमानत रद्द करने के आधार, मोटे तौर पर (उदाहरणात्मक और संपूर्ण नहीं) हैं: न्याय के प्रशासन के उचित क्रम में हस्तक्षेप करना या हस्तक्षेप करने का प्रयास या न्याय के उचित क्रम से बचने का प्रयास या किसी भी तरह से अभियुक्त को दी गई रियायत का दुरुपयोग। अभियुक्त के फरार होने की संभावना के रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के आधार पर अदालत की संतुष्टि जमानत रद्द करने को सही ठहराने का एक और कारण है। हालांकि, एक बार दी गई जमानत को इस बात पर विचार किए बिना यांत्रिक तरीके से रद्द नहीं किया जाना चाहिए कि क्या किसी भी पर्यवेक्षण परिस्थितियों ने आरोपी को मुकदमे के दौरान जमानत की रियायत का आनंद लेकर अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने की अनुमति देने के लिए निष्पक्ष सुनवाई के लिए अनुकूल नहीं बनाया है.....

इस विषय पर, चारू सोनेजा बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी) और अन्य (आपराधिक एम.सी 2050 वर्ष 2021) में दिल्ली हाई, 3.1.2022 को तय किया गया है:

"17. जमानत के लिए आवेदन को खारिज करने के आदेश और जमानत रद्द करने के आदेश के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। गैर-जमानती अपराधों में जमानत के लिए याचिका को खारिज करने का आदेश अदालत के विवेकाधीन डोमेन में है और इस तरह के मामले को विवरण में जाए बिना तय किया जा सकता है, इसे अपराध की गंभीरता और इस धारणा पर सरलता से खारिज किया जा सकता है कि स्वतंत्रता, यदि दी जाती है, तो उसका अभियुक्त द्वारा दुरुपयोग किया जाएगा। जबकि रद्द करने के मामले में, अदालत को उस स्वतंत्रता को खत्म करने के लिए कहा जाता है जो पहले दी गई है। एक न्यायालय को अत्यंत सावधानी के साथ चलना चाहिए, और केवल सही स्थिति और नए आकस्मिक तथ्यों की गहन जांच के बाद और पर्यवेक्षण परिस्थितियों और भारी सबूतों को खोजने पर कि अभियुक्त अदालत द्वारा उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहा है, अदालत को तब एक विचाराधीन अभियुक्त की स्वतंत्रता को जब्त करने में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए। जमानत देने वाले आदेश को रद्द करने में अदालत के अधिक चौकस होने का एक और कारण यह है कि, इसमें जमानत देने वाले एक सुविचारित, तर्कसंगत न्यायिक आदेश की समीक्षा शामिल है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता पोषित संवैधानिक स्वतंत्रताओं में से एक है। एक बार मुकदमे के पूरा होने तक एक अभियुक्त को दी जाने के बाद, इसे केवल गंभीर और सख्त परिस्थितियों में ही वापस

लिया जाना चाहिए। पहले से दी गई जमानत को चुनौती देने वाले पक्ष को सबूत और उदाहरण दिखाकर यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता है कि जमानत पर रिहा व्यक्ति पीड़ित को धमकी दे रहा है और परिणामस्वरूप पीड़ित या उसके परिवार को व्यक्तिगत नुकसान पहुंचा सकता है, सबूतों के साथ छेड़छाड़ कर रहा है या अभियोजन पक्ष के गवाहों को इस हद तक प्रभावित कर रहा है कि यह मुकदमे को खत्म कर देगा और न्याय की हत्या या हानि का कारण बन जाएगा।

न्यायालय ने इस मुद्दे पर रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य, (1986)4 एस.सी.सी. 481 में कुछ उदाहरण आधार पाए, जिसमें यह देखा गया था कि "यहां यह उल्लेख करना उचित है कि जमानत रद्द की जा सकती है जहां (i) अभियुक्त समान आपराधिक गतिविधि में लिप्त होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, (ii) जांच के दौरान हस्तक्षेप करता है, (iii) सबूतों या गवाहों के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास, (iv) गवाहों को धमकाना या इसी तरह की गतिविधियों में शामिल होना जो सुचारू जांच में बाधा उत्पन्न करेगा, (v) उसके दूसरे देश भागने की संभावना है, (vi) भूमिगत होकर या जांच एजेंसी के लिए अनुपलब्ध होकर खुद को दुर्लभ बनाने का प्रयास करना, (vii) खुद को उसकी जमानत की पहुंच से बाहर रखने का प्रयास आदि। उपरोक्त आधार उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि जमानत की अस्वीकृति एक आधार पर है लेकिन जमानत रद्द करना एक कठोर आदेश है क्योंकि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता है और इसलिए इसका हल्के ढंग से नहीं लिया जाना चाहिए।

आक्षेपित आदेश इस बिंदु पर स्पष्ट नहीं है कि संबंधित न्यायालय इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंचा कि यदि अभियुक्त को मुकदमे के दौरान अग्रिम जमानत की स्वतंत्रता को बनाए रखने की अनुमति दी जाती है तो निष्पक्ष सुनवाई संभव नहीं है। इससे यह भी पता चलता है कि संबंधित न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र से परे कार्य किया और रिकॉर्ड के बाहर की सामग्रियों पर भरोसा किया जो उस स्तर पर प्रासंगिक नहीं थे। संबंधित न्यायालय को कैसे यकीन था कि आवेदक मामले के गवाहों को जीतने की कोशिश कर रहा था और इस तरह मामले की निष्पक्ष सुनवाई संभव नहीं है; यह एक ऐसा मुद्दा है जो आक्षेपित आदेश में भ्रामक है।

उपरोक्त चर्चाओं और विषय को नियंत्रित करने वाले कानून के मद्देनजर, न्यायालय की राय है कि सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 10.3.2023 का आक्षेपित आदेश कानून में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है। तदनुसार दिनांक 10.3.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है।

जहां तक आवेदक को अग्रिम जमानत देने का सवाल है, रिकॉर्ड के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जांच के दौरान, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), मेरठ द्वारा दिनांक 30.7.2021 के आदेश के माध्यम से आवेदक को अग्रिम

जमानत दी गई थी। सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 16.3.2022 का आदेश भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि सक्षम न्यायालय के समक्ष धारा 173(2) द०प्र०स० के तहत पुलिस रिपोर्ट दायर करने तक आवेदक द्वारा उक्त स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया गया था। मामले में आरोप पत्र दायर करने के बाद, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आवेदक से हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है। पक्षों के बीच विवाद वित्तीय लेनदेन से संबंधित है, जो उनके बीच 'जीआर बथला पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड' के नाम से सूचनाकर्ता और आवेदक की कंपनी के संबंध में हुआ था और इस संबंध में आवेदक के खिलाफ 6.5 करोड़ रुपये के गबन के संबंध में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्राथमिकी में आरोप लगाया गया था कि कंपनी का पैसा आवेदक द्वारा अपने बेटों सुगम बथला और मधुर बाथला, पत्नी रचना बाथला के बैंक खातों में और अलग-अलग तारीखों को अपने बैंक खाते में अवैध रूप से जमा किया गया था। रिकॉर्ड के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि पक्षों के बीच विवाद अभी भी एन.सी.एल.टी. के समक्ष लंबित है और एन.सी.एल.टी. द्वारा इस मामले में पक्षकारों को कई निर्देश जारी किए गए हैं।

सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली एन.सी.टी) और अन्य, (2020)5 एस.सी.सी.1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत को सीमित अवधि की नहीं मानते हुए विवाद को अंततः सुलझा लिया है। उपयुक्त मामले में, यह परीक्षण के निष्कर्ष तक जारी रह सकता है। इसमें आगे यह कहा गया है कि आरोपी के आचरण और व्यवहार के आधार पर दी गई अग्रिम जमानत मुकदमे के अंत तक आरोप पत्र दायर करने के बाद जारी रह सकती है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी निर्णय दिया गया है कि अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, उसके द्वारा विवेचना की प्रक्रिया को प्रभावित करने की संभावना, या गवाहों को डराने-धमकाने सहित साक्ष्य के साथ छेड़छाड़, न्याय से भागने की संभावना, जैसे देश छोड़ने आदि को ध्यान में रखना चाहिए। आगे यह कहा गया है कि न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, जबकि यह विचार करते समय कि अग्रिम जमानत दी जाए या इसे अस्वीकार कर दिया जाए, अनुदान देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है।

अग्रिम जमानत, आरोप की प्रकृति, आवेदक की भूमिका और मामले के सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में कानून के स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, मामले के गुण-दोष के बारे में कोई राय व्यक्त किए बिना, मेरे विचार से, यह मुकदमे के अंत तक आवेदक को अग्रिम जमानत के लिए एक उपयुक्त मामला है।

आपराधिक मामला संख्या-23164 वर्ष 2021 में धारा 406, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि०, थाना-मेडिकल कॉलेज, जिला संभल के तहत आवेदक की गिरफ्तारी की स्थिति में,

उसे निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए 50,000/- रुपये के व्यक्तिगत बांड के साथ 50,000/- रुपये के व्यक्तिगत बांड के साथ अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा: -

(i) आवेदक मामले में निर्धारित तारीख को संबंधित न्यायालय के समक्ष स्वयं को उपलब्ध कराएगा और विचारण में सहयोग करेगा।

(ii) आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे अदालत या किसी पुलिस कार्यालय को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके।

(iii) आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा और यदि उसके पास पासपोर्ट है, तो उसे उसके द्वारा संबंधित एस.एस.पी/एस.पी. के समक्ष जमा किया जाएगा।

(iv) किसी भी शर्त के चूक के मामले में, आवेदक को प्रदान किए गए संरक्षण को रद्द करने का आधार हो सकता है।

उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, अग्रिम जमानत आवेदन तदनुसार निस्तारण किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1846

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 4560/2023 (सीआरपीसी की धारा 438 के अंतर्गत)

उदित आर्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री जीतेन्द्र प्रसाद, श्री सत्य प्रकाश राय, श्री सी.एल. पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अनिल मलिक

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए - 304-बी - ¾ दहेज प्रतिषेध अधिनियम- दहेज में कार और पैसे की मांग- भ्रूण का गर्भपात, मृतका की चोटों के कारण मौत- परिवार में कलह एक स्वीकार्य तथ्य था, मृतका काफी समय से अपने माता-पिता के घर रह रही थी- गर्भपात भी उसके माता-पिता के घर पर हुआ था, अभियोजन को हिसाब बराबर करने का अखाड़ा नहीं बनाया जा सकता- मृत्यु को "सामान्य परिस्थितियों में नहीं" नहीं कहा जा सकता- धारा 304-बी आईपीसी के तत्व- दहेज कानूनों का दुरुपयोग दं0प्र0सं0 की धारा 82 और 438 उद्घोषित अपराधी द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन दाखिल करने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाती हैं, जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है। (पैरा 13 से 19)

अभिनिर्धारित: यद्यपि अभियुक्त की ओर से दूसरी जमानत याचिका पर रोक नहीं है और वह स्वीकार्य है, लेकिन जमानत के आधारों पर विचार करना इसमें ध्यान में रखने योग्य कारक हैं । पहली जमानत याचिका खारिज होने के बाद अभियुक्त के पास उपलब्ध नए और नए आधारों पर हमेशा दूसरी जमानत

याचिका पर विचार किया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि दूसरी जमानत याचिका स्वीकार्य नहीं होगी। ऐसी जमानत याचिका स्वीकार्य है, लेकिन जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार नए और नए आधारों की उपलब्धता के अधीन है, जो उपलब्ध न होने पर जमानत याचिका खारिज करने के पहले के आदेश की समीक्षा करने जैसा होगा। बाबू सिंह (पूर्वोक्त) के मामले में, न्यायालय एक अभियुक्त की जमानत याचिका पर विचार कर रहा था, जिसे सत्र न्यायालय ने बरी कर दिया था, जिसके खिलाफ सत्र न्यायालय ने बरी किए जाने के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील दायर की थी, जो सफल रही और सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों को पलट दिया गया, जिसमें अभियुक्तों को दोषी ठहराया गया और उन्हें अपराधों के लिए सजा सुनाई गई। उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय और आदेश के खिलाफ, सर्वोच्च न्यायालय में एक वैधानिक अपील की गई। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष, एक दूसरी जमानत याचिका दायर की गई थी, जिस पर विचार करते हुए उक्त निर्णय और आदेश पारित किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने दूसरी जमानत याचिका की स्थिरता के संबंध में माना कि जमानत के लिए आवेदन को अस्वीकार करने वाला आदेश जरूरी नहीं कि बाद में किसी अन्य अवसर पर अधिक सामग्री, आगे के घटनाक्रम और विभिन्न विचारों को देखते हुए दूसरी जमानत याचिका को रोक दे। (पैरा 13)

जहाँ तक दूसरी जमानत अर्जी की स्थिरता का सवाल है, यह अब और महत्वपूर्ण नहीं है कि वह स्थिरता योग्य हो। सवाल यह उठता है कि क्या किसी नई और बदली हुई परिस्थिति के बिना, न्यायालय को पिछली जमानत अर्जी को खारिज करने के अपने पिछले आदेश को नज़रअंदाज़

करते हुए दूसरी जमानत अर्जी पर विचार करना चाहिए या नहीं। (पैरा 16)

न्यायालय की राय में, ऐसा करना संभव नहीं होगा। बाद में जमानत आवेदन स्वीकार्य है, लेकिन जमानत की प्रार्थना पर विचार इस तथ्य पर निर्भर करेगा कि क्या नए और नए आधार प्रस्तुत किए गए हैं और उपलब्ध हैं या नहीं। (पैरा 17)

पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की दलीलों पर विचार करते हुए, अभिलेखों और मुद्दे पर कानून का अध्ययन करते हुए, वर्तमान दूसरी जमानत याचिका में कोई नया और नया आधार उपलब्ध नहीं है। इस न्यायालय को मामले की योग्यता के संबंध में परिस्थितियों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं दिखता है। यह न्यायालय इसे जमानत के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता। (पैरा 19)

जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या-3532/2022
2. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, एआईआर 2021 एससी 5125 में प्रतिवेदित
3. लवेश बनाम सेंट (एनसीटी दिल्ली) [(2012) 8 एससीसी 730: एआईआरऑनलाइन 2012 एससी 323

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत्त)

1. सूची को पुनरीक्षित किया गया है।

2. आवेदक के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी.एल. पांडे, को विद्वान अधिवक्ता श्री जीतेंद्र प्रसाद की सहायता से, सूचनाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल मलिक, और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री वी. के. एस. परमार को सुना और साथ ही अभिलेख का अवलोकन किया।

3. वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र आवेदक की ओर से आईपीसी की धारा 498-ए, 304-बी दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 310/2022 पुलिस स्टेशन गंगा नगर, जिला मेरठ में उसे अग्रिम जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

अभियोजन कथन

4. आवेदक का विवाह 13.12.2021 को हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार सूचनाकर्ता की बेटी के साथ संपन्न हुआ था। बताया गया है कि आवेदक और उसके परिवार के अन्य सदस्यों ने दहेज के रूप में 60 लाख रुपये और एक कार की मांग के लिए उसके साथ क्रूरता की। बताया गया है कि सितंबर, 2022 के मध्य की अवधि में, मृतिका के गर्भ में पल रहे भ्रूण का गर्भपात हो गया था। बताया गया है कि दीपावली यानी 18.10.2022 को आवेदक सूचनाकर्ता की बेटी को अपने घर ले गया था। बताया गया है कि आवेदक और परिवार के अन्य सदस्यों ने सूचनाकर्ता की बेटी को पीटा था इसलिए सूचनाकर्ता उसे 21.10.2022 को अपने घर ले गया था। दिनांक 21.10.2022 को चोट लगने के कारण सूचनाकर्ता की बेटी की हालत खराब हो गई। बताया जाता है कि 22.10.2022 को अस्पताल ले जाते समय रास्ते में उसकी मौत हो गई।

विरोधी तर्क

(आवेदक की ओर से तर्क)

5. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने शुरू में मजबूती से तर्क दिया कि यह दहेज कानूनों का स्पष्ट दुरुपयोग है क्योंकि आवेदक के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। वर्तमान एफआईआर दर्ज होने से पहले आवेदक या परिवार के अन्य सदस्यों के खिलाफ शिकायत की कोई सुगबुगाहट नहीं है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि मृतिका बीमार थी और डेंगू से पीड़ित थी और यहां तक कि आवेदक ने 20.10.2022 को उसे रक्त भी आधान किया था, उक्त आधान प्रमाण पत्र जमानत अर्जी के साथ दायर शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 12 के रूप में दाखिल किया गया है।

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि मृतिका की प्लेटलेट्स गिनती बेहद कम होकर उस स्तर पर आ गई थी जहां रक्त आधान आवश्यक था इसलिए आवेदक ने स्वयं स्वेच्छा से ऐसा करने की पेशकश की थी।

अनुवादित

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने मृतिका की जांच रिपोर्ट पर भी काफी विश्वास दिखाया है, जो इंगित करता है कि मृतिका के शरीर पर कोई दृश्यमान चोट नहीं थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने मजबूती से तर्क देते हुए यह भी कहा कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु का कारण "कई अंगों की पुरानी बीमारी के कारण सेप्टीसीमिया" था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि मृत्यु का कारण उसकी बीमारी है, न कि आवेदक या परिवार के किसी अन्य सदस्य द्वारा कारित चोटें। इस आधार पर ही अभियोजन पक्ष की कहानी झूठी साबित होती है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि यदि ऐसी एफआईआर न्यायालय पर विचार करता है, तो नागरिक स्वतंत्रता बाधित होती है क्योंकि ऐसा आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने डॉ. गीतांजलि वोहरा के बयान पर भी विश्वास दिखाया है, जो सूचनाकर्ता की पारिवारिक डॉक्टर हैं, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि मृतिका को गर्भधारण के परिणामस्वरूप जटिलताएं हो गई थीं और छह माह की गर्भावस्था के बाद गर्भ में पल रहे भ्रूण की मौत हो गई थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी उक्त कथन पर काफी विश्वास दिखाया है। शब्द बाहुल्य से बचने के लिए डॉक्टर के बयान का उक्त विवरण यहां नहीं दिया जा रहा है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आवेदक और मृतिका के बीच विभिन्न व्हाट्सएप चैट पर भी विश्वास दिखाया है, जिससे पता चलता है कि वे खुशी से रह रहे थे।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने *सीआरपीसी की धारा 438 के अंतर्गत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत अर्जी संख्या 3532/2022*, में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भी बहुत विश्वास दिखाया है जिसमें संबद्ध अपराधी को इस आधार पर अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया कि धारा 82 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही अग्रिम जमानत अर्जी दाखिल करने के बाद शुरू की गई थी इसलिए आवेदक भी इस आधार पर जमानत का हकदार है क्योंकि सीआरपीसी की धारा 82 के तहत कार्यवाही विचारण न्यायालय में अग्रिम जमानत अर्जी दाखिल करने की तारीख, यानी 29.3.2023 को हुई थी। आवेदक की ओर से उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की मिथ्यता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य तर्क दिए गए हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आवेदक को गलत फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। आवेदक को अपनी गिरफ्तारी की आशंका है। आवेदक के अधिवक्ता ने कहा है कि उसने (आवेदक) अन्वेषण में सहयोग किया है और विचारण में भी ऐसा करने के लिए

तैयार है, ऐसा न करने पर राज्य अग्रिम जमानत रद्द करने के लिए उचित प्रार्थना पत्र दायर कर सकता है। अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) अभी दाखिल नहीं की गई है।

(सूचनाकर्ता/राज्य की ओर से तर्क)

10. इसके विपरीत, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर अग्रिम जमानत अर्जी का पुरजोर विरोध किया कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा दर्ज सूचनाकर्ता का बयान स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि उसके गर्भ में भ्रूण की मृत्यु हो गई थी और आवेदक और उसके परिवार के सदस्य द्वारा उसका उपचार नही कराया गया क्योंकि उक्त भ्रूण उसके गर्भ में दस दिनों की अवधि तक मृत रहा। उक्त लापरवाहीपूर्ण कृत्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आवेदक ने मृतिका के साथ क्रूरता की है।

11. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उक्त निर्णयज विधि वर्तमान मामले पर लागू नहीं होती है क्योंकि धारा 82 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही 24.3.2023 को पहले ही शुरू कर दी गई थी और जमानत अर्जी 29.3.2023 को दायर की गई थी। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि **एआईआर 2021 एससी 5125 में रिपोर्ट किए गए प्रेम शंकर प्रसाद बनाम विहार राज्य और अन्य** में पारित उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है, जिसमे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि अपराधी को उद्घोषित अपराधी घोषित कर दिया जाता है और सीआरपीसी की धारा 82 और 83 के तहत कार्यवाही पूरी हो चुकी है, तो वह अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है, ऐसे में वर्तमान अग्रिम जमानत अर्जी खारिज होने योग्य है।

12. विद्वान ए.जी.ए. ने भी अग्रिम जमानत अर्जी का विरोध किया है और सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को दोहराया है।

निष्कर्षः

13. यह उल्लेखनीय है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि परिवार में कलह थी क्योंकि मृतिका काफी समय से अपने माता-पिता के घर पर रह रही था, क्योंकि कथित गर्भपात उसके माता-पिता के घर पर ही हुआ था। विरोधी पक्षों द्वारा दाखिल की गई निर्णयज विधि के अवलोकन के बाद, मैं प्रेम शंकर प्रसाद (उपर्युक्त) में पारित निर्णय का उल्लेख करना चाहूंगा, जिसमें प्रस्तर 16 में लावेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) [2012) 8 एससीसी 730: एआईआर ऑनलाइन 2012 एससी 323)] में दिए गए निर्णय पर निम्नवतः बहुत अधिक विश्वास दिखाया गया है।

"16. हाल ही में, लावेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) [(2012) 8 एससीसी 730: एआईआरऑनलाइन 2012 एससी 323)] में, इस न्यायालय (जिसमें हम दोनों पक्षकार थे) ने धारा 438 के तहत किसी ऐसे व्यक्ति के संदर्भ में राहत देने की गुंजाइश पर विचार किया जिसे संहिता की धारा 82 के संदर्भ में फरारी या उदघोषित अपराधी घोषित किया गया था। प्रस्तर 12 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः (एससीसी पृष्ठ 733)

"12. इन सामग्रियों और सूचनाओं से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलकर्ता पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं था और उसे 'फरारी घोषित कर दिया गया था। आम तौर पर, जब आरोपी 'फरार' होता है और उसे उद्घोषित अपराधी' घोषित किया जाता है, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं होता है। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ वारंट जारी किया गया था और वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार है या खुद को छुपा रहा है और उसे संहिता की धारा 82 के संदर्भ में उदघोषित अपराधी घोषित किया गया है तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।"

14. यह सच है कि लवेश (उपर्युक्त) में पारित निर्णय में, उक्त आवेदक को अग्रिम जमानत पर नहीं रिहा किया गया क्योंकि धारा 82 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही पूरी हो चुकी थी। लवेश (उपर्युक्त) के मामले में अग्रिम जमानत प्रदान करने का कोई सवाल ही नहीं था। "सामान्य रूप से", जब आरोपी फरार था और उदघोषित भगोड़ा घोषित किया गया था, लवेश (उपर्युक्त) में निर्णय का सार "सामान्य रूप से" अभिव्यक्ति में था और जब आरोपी फरार हो गया था या वारंट के निष्पादन से बचने के लिए खुद को छुपा लिया था।

15. उद्घोषित अपराधी द्वारा अग्रिम जमानत अर्जी दाखिल करने पर न ही धारा 82 सी.आर.पी.सी. के तहत कार्यवाही और न ही धारा 438 सी.आर.पी.सी. कोई प्रतिबंध लगाती है। यहां तक कि लवेश (उपर्युक्त) में भी विधि स्थापित करते समय सर्वोच्च न्यायालय ने "सामान्य रूप से" शब्द का प्रयोग किया है।

16. सी.आर.पी.सी. की धारा 438 को संहिता में शामिल इसलिए किया गया था क्योंकि यह देखा गया था कि प्रभावशाली व्यक्ति अपने प्रतिद्वंदियों को कुछ समय के लिए जेल में बंद करके उन्हें अपमानित करने के उद्देश्य से झूठे मामलों में फंसाने की कोशिश करते हैं। यह सच है कि ऐसी शक्तियों का प्रयोग असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए। अभियोजन को हिसाब-किताब बराबर करने का क्षेत्र बनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

17. मृतक की मृत्यु "कई अंगों की पुरानी बीमारी के कारण सेप्टीसीमिया" के परिणामस्वरूप हुई है। इस प्रकार, मृत्यु को आईपीसी की धारा 304-बी के तहत यथापरिकल्पित "सामान्य परिस्थितियों में नहीं" नहीं कहा जा सकता है। धारा 304-बी आई.पी.सी. की अवयव पूरे नहीं होते हैं। यह मामला दहेज कानूनों के दुरुपयोग का प्रतीत होता है।

18. विरोधी तर्कों को सुनने के बाद, अभिलेख का अवलोकनकरते हुए, आरोपों की प्रकृति और आवेदक के पूर्ववृत्त पर विचार करते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मृत्यु का कारण कई अंगों की पुरानी बीमारी के कारण सेप्टीसीमिया माना गया है और यह भी कि मृतिका की मृत्यु से पहले आवेदक या उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ कोई शिकायत नहीं थी और यह भी कि मृतिका के शरीर पर आंतरिक या बाह्य रूप से कोई स्पष्ट चोट नहीं देखी गई है, आवेदक को "सुशीला अग्रवाल वनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2020) 5 एससीसी 1 मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर अग्रिम जमानत पर रिहा किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के अनुसार आवेदक को दी जाने वाली अग्रिम जमानत के संबंध में भविष्य की आकस्मिकताओं का भी ध्यान रखा जाएगा।

19. उपरोक्त के दृष्टिगत, आवेदक का अग्रिम जमानत अर्जी स्वीकार की जाती है। अभियुक्त-आवेदक उदित आर्य को उपरोक्त मुकदमा अपराध (उपर्युक्त) में निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि पर एक व्यक्तिगत और दो प्रतिभू समान राशि में प्रस्तुत करने पर मुकदमे के समापन तक अग्रिम जमानत पर तुरंत रिहा किया जाए।:-

(i) कि आवेदक आवश्यकता पड़ने पर स्वयं को पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा;

(ii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोकने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी नहीं देगा या वादा नहीं करेगा या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा:

(iii) कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत से बाहर नहीं जाएगा;

(iv) यदि आरोप-पत्र दाखिल किया जाता है तो आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा,

(v) कि आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाह पर दबाव नहीं डालेगा धमकी नहीं देगा;

(vi) कि आवेदक को प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना होगा जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो,

(vii) उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में अधीनस्थ न्यायालय को जमानत रद्द करने की स्वतंत्रता होगी।

20. यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियाँ अनन्य रूप से तत्काल अग्रिम जमानत अर्जी पर निर्णय लेने के लिए हैं और विचारण को प्रभावित नहीं करेंगी।

(2023) 5 ILRA 1850

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 12954 / 2022

(सीआरपीसी की धारा 438 के तहत)

शहजादी माही @ सहर नकवी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री सुजान सिंह, श्री अंजनी कुमार रघुवंशी, सुश्री राजकुमारी माही @ सहर नकवी (व्यक्तिगत रूप से)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अनिल कुमार पाल, श्री पंकज कुमार गुप्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420, 467, 468, 471 एवं 506 - आवेदक द्वारा सूचनाकर्ता की पत्नी को नौकरी में भर्ती कराने के लिए लिया गया धन - भूखंड की बिक्री के बदले में भी धन हस्तांतरित किया गया - आवेदक के खाते में धन हस्तांतरित किया गया - जमानत आवेदन खारिज किया गया। (पैरा 11 एवं 12)

अभिनिर्धारित:

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि 50 लाख रुपये की उक्त राशि आवेदक के खाते में सूचनाकर्ता द्वारा स्थानांतरित की गई है, जो कि चिपरा बिजनेस सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में निदेशक है। आवेदक एक वकील है और उसने व्यक्तिगत रूप से मामले पर बहस की है और अपने खाते में उक्त धनराशि के स्थानांतरण के तथ्य को भी स्वीकार किया है, लेकिन उसने कहा है कि वह ऐसा करने में असमर्थ है क्योंकि वह तेलंगाना में धारा 138 एनआई अधिनियम के तहत एक मामले का सामना कर रही है, इसलिए वह निश्चित नहीं है कि उसे उक्त राशि किसे वापस करनी है। (पैरा 11)

पक्षों को सुनने, रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों को देखने तथा इस तथ्य को ध्यान में रखने के बाद कि आवेदक के खाते में 50 लाख रुपये की बड़ी राशि स्थानांतरित की गई है, मैं इसे आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता। (पैरा 12)

जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल, द्वारा प्रदत्त)

1. सूची को पुनरीक्षित किया गया है।

2. स्वयं आवेदक द्वारा दाखिल अनुपूरक शपथपत्र को अभिलेख पर लिया जाता है।

3. स्वयं आवेदिका सुश्री प्रिन्सेज माही उर्फ साहेर नकवी, सूचना देने वाली के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता तथा राज्य के विद्वान अ०शा० अधि०। श्री वी० के० एस परमार को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया।

4. वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पुलिस थाना कर्नलगंज, जिला प्रयागराज में भा०द०सं० की धारा 420, 467, 468, 471 तथा 506 के अधीन मामला अपराध सं० 930 वर्ष 2019 में आवेदिका की ओर से इसे अग्रिम जमानत पर छोड़ने के के साथ दाखिल किया गया है।

अभियोजन कहानीः-

5. प्र०सू०रि० भूतपूर्व सैनिक राकेश कुमार द्वारा इस अभिकथन के साथ दर्ज कराया गया था। आवेदिका प्रिन्सेज माही उर्फ साहेर नकवी ने इसकी पत्नी को जूनियर हाईस्कूल में नौकरी दिलवाने के लिए वर्ष 2018 में इससे रु० 20 लाख लिया था, इसने इतिला देने वाले का परिचय बी०एस०ए० कार्यालय में राजीव त्रिपाठी से भी करवाया था। आवेदिका ने कथित तौर पर न तो धनराशि वापस किया है न ही उक्त नौकरी इसकी पत्नी को दिलवाया था तथा वह इसके साथ आगा पीछा करती रही थी। 1-1-2019 को आवेदिका ने कथित तौर पर दतिला देने वाले से एच०के०मुखर्जी मार्ग, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद के आराजी सं0 86 में 200 वर्गमीटर भूखण्ड के विक्रय के बदले में रू0 50 लाख लिया है। रू0 50 लाख के उक्त धनराशि का अन्तरण स्टेट बैंक, शाखा, सब एरिया, कैन्ट, प्रयागराज के क्षिप्रा बिजनेस साल्यूशन प्रा०लि० के खाता सं0 37438827327 से आवेदिका के बैंक खाता सं० 6177000100027382 में नेफ्ट के द्वारा किया गया था। बाद में यह मालूम हुआ कि उक्त भूखण्ड का दस्तावेज जाली है तथा उक्तं कूट रचना आवेदिका द्वारा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ षड्यंत्र में किया गया है। आवेदिका ने एक बहाने या दूसरे बहाने पर इतिला देने वाले को लूटा तथा मुर्ख बनाया था एवं इसे धमकी भी दिया था।

6. प्र०सू०रि० पुलिस थाना कर्नलगंज, प्रयागराज में 25-10-2019 को लगभग 01:12 बजे रात में संस्थित कराया गया था।

प्रतिद्वन्दी तर्कः-

(स्वयं आवेदिका का तर्क)

7. स्वयं आवेदिका ने निम्न आधारों पर अग्रिम जमानत पर बल दिया है:-

(i) यह कि इसे इस मामले में झूठे मूठे आलिप्त किया गया है तथा उक्त अपराध से कोई लेना देना नहीं है। रू0 20 लाख देने के संबंध में अभिकथन स्वतः झूठा है क्योंकि अभिलेख पर कुछ नहीं है जिससे यह पता चले कि किसी खाता से कोई धनराशि वापस लिया गया है या आवेदिका को अन्तरित किया गया है। उक्त संव्यवहार नकद में है, जो मिथ्या है।

(ii) यह कि पहले ही अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) पेश पेश किया गया है तथा विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है। प्र०सू०रि० मात्र इन्हें परेशान करने के लिए सभी परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दर्ज कराया गया है।

(iii) यह कि प्र०सू०रि० के पंजीकरण के बाद आवेदिका तथा सहअभियुक्त रिजवान अली (आवेदिका का पिता) दाण्डिक प्रकीर्ण रिट याचिका सं0 25063 वर्ष 2019 में इस न्यायालय में आया था, जिसमें आदेश दिनांक 29-1-2020 द्वारा इन्हें अंतरिम सुरक्षा दी गई थी। उक्त आदेश को जमानत आवेदन के साथ दाखिल शपथपत्र के उपाबंध सं0 2 के रूप में दाखिल किया गया है।

(iv) यह कि अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) प्रस्तुत करने के बाद, आवेदिका ने इसे द०प्र०सं० की धारा 482 के अधीन दाण्डिक प्रकीर्ण आवेदन सं0 18674 वर्ष 2022 दाखिल करते हुए चुनौती दिया था तथा समन करने वाले आदेश दिनांक 12-01-2022 सहित सम्पूर्ण आरोप पत्र के अभिखंडन हेतु अनुरोध किया था।

(v) यह कि वह नेकनीयत व्यक्ति है जैसा तथ्य से स्पष्ट है कि इसने भूखण्ड सं0 86/1, अधिमापन क्षेत्रफल 2.05 हेक्टेयर तथा भूखण्ड सं0 86/2 अधिमापन क्षेत्रफल 0.864 हेक्टेयर पर अवैध अतिक्रमण के संबंध में जिला मजिस्टेट प्रयागराज से परमादेश जारी करने के निदेश हेतु अनुरोध करते हुए सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं० 11906 वर्ष 2022 दाखिल किया था। उक्त रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष लंबित है।

(vi) यह कि इसके खाते में रू0 50 लाख का अन्तरण स्वीकृत है, लेकिन उक्त धनराशि का अन्तरण कंपनी क्षिप्रा बिजलेश साल्यूशन प्रा०लि० के खाते से किया गया है तथा मामला आवेदिका तथा उक्त कंपनी के बीच है, वह भी प्रकृति में सिविल है तथा इतिला देने वाला, जो उक्त संव्यवहार से अपरिचित है, इसे दाण्डिक मामले में बदल दिया है जो विधि की दृष्टि में टिकाऊ नहीं है।

(vii) यह कि आवेदिका तथा इतिला देने वाले के बीच समझौता नोटरीकृत दस्तावेज है तथा विधि की दृष्टि में पोषणीय नही है।

(viii) यह कि आवेदिका 2019 से उत्तर प्रदेश बार काउन्सिल में पंजीकृत अधिवक्ता है। इसने विस्तार से यह

तर्क भी दिया है कि जब आवेदिका ने इतिला देने वाले से रू0 20 लाख ठगा था, तब इतिला देने वाले के लिए इसके खाते में इस प्रकार के भारी धनराशि का अन्तरण करने की कोई गुंजाइश नहीं थी, इस प्रकार, प्र०सू०रि० में आरोपित अभिकथन मिथ्या है।

(ix) यह कि इतिला देने वाला न तो अभिकर्ता है न ही पदाधिकारी न ही कंपनी के प्रबंधन टीम में है इस प्रकार इसके पास प्र०सू०रि० दर्ज कराने का अधिकार नहीं है।

(x) यह कि वह प्र०सू०रि० में उल्लिखित आरटीजीएस के द्वारा पैसे के उक्त अन्तरण के संबंध में चेक के अनादर के विरुद्ध तेलंगाना में पर०लि० अधिनियम की धारा 138 के अधीन मामले को सामना कर रही है।

(xi) यह कि वर्तमान प्र०सू०रि० श्याम रेड्डी। तथा अन्य के विरुद्ध आवेदिका द्वारा पुलिस थाना कर्नलगंज में दर्ज प्र०सू०रि० सं० 1115 वर्ष 2019 की घोर निन्दा है।

(xii) यह कि वर्तमान प्र०सू०रि० के बाद में दर्ज कराया गया है, लेकिन घटना वर्तमान प्र०सू०रि० के दर्ज कराने के काफी पहले की है।

(xiii) यह कि इतिला देने वाले ने प्र०सू०रि० में सही तथ्यों को नहीं बताया है क्योंकि उक्त कंपनी ने उक्त भूखण्ड के संबंध में आवेदिका तथा इतिला देने वाले को रू0 65 लाख का ऋण दिया था तथा रू0 50 लाख का चेक दो बार अनादृत हुआ है।

(xiv) यह कि कंपनी द्वारा इसे नोटिस का जवाब दिया गया था तथा इतिला देने वाला अभियोजन कहानी को झूठा साबित करता है। इसने रू0 65 लाख के उक्त देने के संबंध में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को मामले की जानकारी भी दिया था क्योंकि इसे मानव दुव्यापार के इनके अवैध क्रियाकलापों में नाली के रूप में कार्य करने के लिए प्रपीडित किया जा रहा था।

(xv) यह कि अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण को समुचित तरीके से आगे नहीं बढ़ाया है तथा वर्तमान अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) केवल आवेदिका के खाते में रु0 50 लाख की उक्त धनराशि का अन्तरण करने के आधार पर दाखिल किया है।

(xvi) यह कि दो मामलों के सिवाय इसके नाम से कोई आपराधिक पूर्ववृत नहीं है जिसे एक ही घटना के संबंध में इसके विरुद्ध दर्ज कराया गया है। इसने कठोरता से बल दिया है कि इसे अधिवक्ता तथा महिला होने के नाते परेशान किया जा रहा है तथा इसे अग्रिम जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

(इत्तिला देने वाले का तर्क)

8. इत्तिला देने वाले के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि आवेदिका ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि इसे रू0 50

लाख की धनराशि अन्तरित की गई है तथा असली तथ्य का उल्लेख द०प्र०सं० की धारा 482 के अधीन दाण्डिक प्रकीर्ण आवेदन सं0 18674 वर्ष 2022 में पारित न्यायालय के आदेश में किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदिका ने अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) को चुनौती देते हुए द०प्र०सं० की धारा 482 के अधीन याचिका दाखिल करने के अतिरिक्त तुरन्त इसका बहाना लेते हुए न्यायालय के कार्यवाही का दुरुपयोग किया था, इसने इस न्यायालय के समक्ष दाण्डिक पुनरीक्षण भी दाखिल किया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदिका ने अग्रिम जमानत की मांग करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 वे के अधीन शीर्ष न्यायालय के समक्ष रिट याचिका (दाण्डिक) सं० 486 वर्ष 2022 भी दाखिल किया था, जिसे आवेदिका को प्राप्त वैकल्पिक उपचार के आधार पर खारिज किया गया था, यद्यपि इसके अग्रिम जमानत आवेदन को पहले ही सत्र न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा नामंजूर किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) पहले ही आवेदिका के विरुद्ध 30- 9-2022 को न्यायालय में दाखिल किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने यह कहते हुए सुभाष चन्द्र ersion, दिवाकर, लेखपाल, सदर, प्रयागराज द्वारा जारी सूचना को अभिलेख पर प्रस्तुत किया है कि उक्त भूमि आराजी सं० 86/1, 86/2 का शीर्षक म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा गाटा खेवट सं० 2 पर धृत है तथा उक्त सम्पति रिपोर्ट दिनांक 7-9-2022 द्वारा प्रिंसेज माही उर्फ साहेर नकवी के नाम में पंजीकृत नहीं है जिसे संक्षिप्त प्रति शपथ पत्र दिनांक 6-2-2023 के उपाबंध सं० 8 के रूप में संलग्न किया गया है।

10. विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि यह आवेदिका के संबंध में स्पष्ट मामला है तथा वह अग्रिम जमानत की हकदार नहीं है। इसने विशेष अनुमति याचिका (दा०) सं0 5412 वर्ष 2023 में आदेश दिनांक 3- 3-2023 को प्राप्त करने में शीर्ष न्यायालय को भी गुमराह किया है। अपने विरुद्ध प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) के तथ्य को इसके द्वारा शीर्ष न्यायालय में छिपाया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि इत्तिला देने वाला कंपनी क्षिप्रा विजिनेश साल्यूशन प्रा०लि० में निदेशक है जिसे भारतीय सेना से इसके सेवानिवृत्ति के बाद बनाया गया था। इतिला देने वाले के मेहनत से अर्जित धन को आवेदिका के विश्वासघात द्वारा बतौर अधिवक्ता व्यवसाय करने के अपने लाइसेन्स का दुरुपयोग करते हुए छीना गया है।

निष्कर्षः-

11. यह स्वीकृत तथ्य है कि रु0 50 लाख के उक्त धनराशि का अन्तरण आवेदिका के खाते में इतिला देने वाले द्वारा किया गया है, जो कंपनी क्षिप्रा बिजनेश साल्यूशन प्रा०लि० में निदेशक है। आवेदिका अधिवक्ता है तथा स्वयं मामले में बहस किया है

तथा अपने खाते में पैसे के उक्त अंतरण के तथ्य को भी स्वीकार किया है, लेकिन कहा है कि वह ऐसा करने में असमर्थ है क्योंकि वह तेलंगाना में धारा 138 पर०लि० अधिनियम के अधीन मामले का सामना कर इस प्रकार इसे पक्का विश्वास नहीं है कि किसे इसे उक्त धनराशि चुकता करना है।

12. पक्षकारों को सुनने के बाद, अभिलेख पर साक्ष्य का परिशीलन करते हुए तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि रू0 50 लाख के भारी धनराशि को आवेदिका के खाते में अन्तरित किया गया है, मैं आवेदिका को अग्रिम जमानत देने हेतु इसे उपयुक्त मामला नहीं पाता हूँ।

13. अग्रिम जमानत आवेदन गुण रहित पाया जाता है तथा तदनुसार नामंजूर किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1854

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 52326 / 2022

सूर्यांश खरबंदा ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री आलोक रंजन, श्री जी.एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री शिव कुमार पाल (जी.ए.), श्री ओ.पी. द्विवेदी (ए.जी.ए.), श्री रघुवंश मिश्र, श्री विदित अग्रवाल, श्री अश्वनी त्रिपाठी

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए, 323, 504, 506, 304-बी व 120-बी - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 - मृतका का प्रथम सूचनाकर्ता पिता - पति व अन्य परिजन - दहेज की मांग, मारपीट व मृतका को आत्महत्या के लिए उकसाना - फांसी लगाकर हत्या - विवाह के सात वर्ष के अंदर ही आत्महत्या में दहेज की मांग - आवेदक घटना के दिन घर पर नहीं था, शिकायतकर्ता पक्ष के साक्षियों के लिखित बयान पढ़ना - सीआरपीसी की धारा 161 के तहत बयान - प्राधिकार का प्रयोग कानून में दिए गए तरीके से किया जाना - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113-ए के तहत उपधारणा स्वत: लागू नहीं होगी - आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध - आत्महत्या के लिए उकसाना - उकसाना किसी व्यक्ति को अपराध करने के लिए उकसाना- शब्द "मृत्यु से ठीक पहले" धारा 304 बी आईपीसी-सापेक्ष और लचीले अर्थ में समझा जाना चाहिए-शब्दों को प्रत्येक मामले में यंत्रवत् लागू होने वाली कठोर समय अवधि निर्धारित करने के रूप में नहीं समझा जा सकता है- न्यायालय जमानत आवेदनों पर समग्र रूप से विचार करने के लिए बाध्य हैं-जमानत मंजूर- जमानत आवेदन स्वीकार-जांच में गड़बड़ी- स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए मामला डीजीपी, उत्तर प्रदेश पुलिस को

भेजा गया। (पैरा 26, 33, 38, 39,40, 41, 42, 44, 48, 50, 51 और 57)

अभिनिर्धारित:

केस डायरी में उपरोक्त प्रविष्टियों के साथ-साथ राधिका और किरण के बयानों से पता चलता है कि आवेदक ने 12.11.2021 को घर से आभूषण निकाल लिए थे, क्योंकि मृतक लॉकर में आग लगा रहा था और अपनी बहन के घर में रह रहा था और जिस दिन और समय पर मृतक ने आत्महत्या की, वह अपने घर पर नहीं था। (पैरा 26)

जहाँ तक शिकायतकर्ता पक्ष के कुछ गवाहों के लिखित बयानों को लेकर उसे सीआरपीसी की धारा 161 के तहत बयान मानने का सवाल है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यह एक सामान्य नियम है कि जब कोई क़ानून किसी प्राधिकरण को किसी विशेष तरीके से प्रयोग करने के लिए कुछ शक्ति प्रदान करता है, तो उक्त प्राधिकरण को इसे क़ानून में दिए गए तरीके से ही प्रयोग करना होता है। नियम के पीछे सिद्धांत यह है कि अगर ऐसा नहीं होता, तो वैधानिक प्रावधान को अधिनियमित ही नहीं किया जाता। (पैरा 33)

यह बात सर्वविदित है कि यदि विवाहित महिला अपने विवाह के सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या कर लेती है, तो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113-ए के तहत अनुमान स्वतः लागू नहीं होगा। "न्यायालय मामले की अन्य सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह मान सकता है कि ऐसी आत्महत्या उसके पति या उसके पति के ऐसे रिश्तेदार द्वारा उकसाई गई थी।" यह दर्शाता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए के तहत अनुमान विवेकाधीन है और न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए में "क्रूरता" शब्द के अर्थ को ध्यान में रखते हुए महिला के साथ हुई क्रूरता की प्रकृति पर विचार कर सकता है। "आत्महत्या के लिए उकसाना" भी उन व्यक्तियों के मामले तक ही सीमित है जो आत्महत्या करने में सहायता करते हैं या उकसाते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के तहत अपराध के मामले में, उकसाने को आईपीसी की धारा 107 में इसकी परिभाषा को आकर्षित करना चाहिए। किसी व्यक्ति को अपराध करने के लिए उकसाना या अपराध करने की साजिश में शामिल होना, सहायता करना या किसी व्यक्ति को अपराध करने में जानबूझकर सहायता करना, दुष्प्रेरण कहलाता है। (पैरा 38)

भारतीय दंड संहिता की धारा 304-बी में प्रयुक्त शब्द "मृत्यु से कुछ समय पहले" को सापेक्ष और लचीले अर्थ में समझा जाना चाहिए। उन शब्दों को प्रत्येक मामले में यंत्रवत् लागू की जाने वाली समयावधि निर्धारित करने के रूप में नहीं समझा जा सकता । (पैरा 40)

इस मामले में, आरोपी पति है और वह मुकदमा लंबित रहने तक जमानत की मांग कर रहा है। इस न्यायालय के समक्ष जो मुद्दा उठता है वह यह है कि यदि पत्नी ने अपनी शादी की तिथि से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या कर ली है, तो क्या साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए के तहत आत्महत्या के लिए उकसाने की प्रतिकूल धारणा या साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत दहेज हत्या की धारणा के आधार पर आरोपी-पति की जमानत याचिका को तुरंत खारिज किया जा सकता है? (पैरा 42)

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मुकदमा लंबित रहने के दौरान अभियुक्त की जमानत पर विचार करने और दोनों पक्षों द्वारा ट्रायल कोर्ट के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद अभियुक्त को दोषसिद्ध या दोषमुक्त करने के मापदंड अलग-अलग हैं। इस न्यायालय का मानना है कि प्रत्येक मामला अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। दो मामलों के तथ्यों में थोड़ा सा भी अंतर पूरे पहलू को बदल सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ए और 113बी के प्रावधानों के मद्देनजर ऐसा नहीं है कि न्यायालय जमानत आवेदनों पर विचार करते समय सभी मामलों में आंखें मूंद कर मूकदर्शक बने रहेंगे, न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे मामले के व्यापक पहलू पर विचार करें और आरोपों की प्रकृति के मद्देनजर, शिकायतकर्ता पक्ष या आरोपी पक्ष द्वारा अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए पेश की गई केस डायरी की प्रासंगिक सामग्री को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि जमानत के मामले भी आरोपी की बहुमूल्य स्वतंत्रता से जुड़े होते हैं। (पैरा 44)

जांच अधिकारी ने इस बात का कोई ठोस कारण नहीं बताया है कि उन्होंने निशा खरबंदा द्वारा 13.11.2021 को आयुक्त, यूपी पुलिस, महानगर, कानपुर को की गई शिकायत के संबंध में और साथ ही अभियुक्तों की ओर से उपलब्ध कराई गई उपरोक्त सामग्री के संबंध में मामले की जांच क्यों नहीं की है। जांच अधिकारी ने न तो अभियुक्तों की ओर से उपलब्ध कराई गई सामग्री (मृतका द्वारा आवेदक की पिटाई का वीडियो और मृतका और उसके पिता के बीच अश्लील टेलीफोनिक बातचीत जो पेन ड्राइव में उपलब्ध है, जिसे पेपर बुक के पेज नंबर 178 से 202 पर दाखिल किया गया है) को खोलकर देखने की जहमत उठाई और न ही केस डायरी में इसकी प्रतिलिपि दर्ज की। जांच अधिकारी ने पेन ड्राइव में उपलब्ध उक्त वीडियो और टेलीफोनिक बातचीत के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी के तहत स्रोत और प्रमाण पत्र के बारे में नवीन भाटिया से भी नहीं पूछा, जबकि उन्होंने, पत्र दिनांक 01.12.2021 के माध्यम से शिकायतकर्ता पवन ग्रोवर से पेन ड्राइव में उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री के संबंध में उत्पत्ति के स्रोत के बारे में पूछा था। (अनुच्छेद 48)

वर्तमान मामले में दोनों पक्षों द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध उत्पीड़न एवं क्रूरता का आरोप लगाया गया है। संत के विद्वान सरकारी अधिवक्ता ने मामले पर विस्तार से बहस करने के पश्चात अंततः यह स्वीकार किया है कि जांच अधिकारी द्वारा आरोपी पक्ष द्वारा उपलब्ध कराए गए भौतिक साक्ष्यों की जांच करने के लिए कोई ईमानदार प्रयास नहीं किया गया है, जबकि यह बात अभिलेख पर स्वीकार की गई है तथा सी.डी. संख्या 14 एवं 47 में उल्लेखित है। (पैरा 51)

अभियुक्त की ओर से उपलब्ध कराई गई सामग्री की जांच न करना और उसे केवल सी.डी. संख्या 14 और 47 का हिस्सा बनाना एक गंभीर मुद्दा है और यह जांच अधिकारी, जो पुलिस उपाधीक्षक के पद पर है, से अपवाद नहीं है। यह न्यायालय यह देख सकता है कि जांच अधिकारी ने अपने दायित्वों का पालन नहीं किया। (पैरा 57)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (2015) 6 एससीसी 332

2. माघवेंद्र प्रताप सिंह @ पंकज सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 486 एस.एमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आलोक रंजन, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री शिव कुमार पाल, शासकीय अधिवक्ता श्री ओम प्रकाश द्विवेदी, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और श्री रघुवंश मिश्रा, अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, के साथ पहले सूचनाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता श्री विदित अग्रवाल और श्री अश्विनी त्रिपाठी, को सुना।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के तहत इस आवेदन के माध्यम से आवेदक सूर्यांश खरबंदा, जो केस अपराध संख्या-162 वर्ष 2021 में धारा 498-ए, 323, 504, 506, 304-बी, 120-बी भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत थाना-नजीराबाद, जिला: कानपुर नगर, मुकदमे की पेंडेंसी के दौरान जमानत पर छूट की मांग करता है।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता पवन ग्रोवर, जो आंचल खरबंदा (इसके बाद 'मृतका' के रूप में संदर्भित) के पिता हैं, ने सूर्यांश (पति) निशा (सास) भरत ग्रोवर उर्फ काकू (फूफा), मीनाक्षी, अन्नू खुल्लर (बुआ) पुनीत कोटवानी (बहनोई) निकिता कोटवानी (नंद) और तान्या ग्रोवर के खिलाफ 19.11.2021 को हुई घटना के संबंध में 20.11.2021 को प्राथमिकी दर्ज की और आरोप लगाया कि उपरोक्त आरोपी व्यक्ति 70,00,000/- रुपये (सत्तर लाख रुपये) की मांग करते थे और उसकी बेटी के साथ लड़ाई (मारपीट) में शामिल होते थे और उसे आत्महत्या करने के लिए उकसाते थे। सूर्यांश और उसकी मां निशा बुरे चरित्र के हैं और वे पीड़ित को उस कुकर्म में भी घसीटना चाहते थे। 12.11.2021 को सभी आरोपियों ने सामान्य इरादे के अग्रसारण से पीड़िता को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया और शाम को पीड़िता के पति सूर्यांश ने उसकी पिटाई करने के बाद उसकी नकदी और गहने ले लिए। उक्त घटना की सूचना 112 और 181 डायल करके पुलिस को दी गई। प्राथमिकी में आगे आरोप लगाया गया है कि उसकी बेटी उसे दिन में कई बार फोन करती थी और उसे अपने परिवार के सदस्यों द्वारा किए गए उत्पीड़न और यातना के बारे में बताती थी। 19.11.2021 को जब पीड़िता ने कोई फोन नहीं किया तो उसने 181 डायल कर पुलिस को सूचना दी और जब वह पीड़िता के ससुराल गया तो उसने अपनी बेटी को पंखे से लटका हुआ पाया। उपरोक्त सभी आरोपियों ने अपनी बेटी की हत्या करने के बाद सामान्य इरादे से उसे पंखे से लटका दिया।

सूचना मिलने के बाद पुलिस मौके पर पहुंची और मृतका के शव का शव परीक्षण कराने के साथ ही शव परीक्षण भी कराया।

5. मृतका के शव का पंचनामा कार्यवाही 20.11.2021 को सुबह 8.30 बजे से 11.15

बजे के बीच की गई, जिसमें श्री जितेंद्र भल्ला (मृतका के मामा), श्री राजीव मदान, (मृतका के मौसा), श्री अरुण ग्रोवर (मृतका के चाचा), श्री अक्षय (मृतका के भाई) और श्रीमती रीता ग्रोवर (मृतका की चाची) पंचनामा कार्यवाही के गवाह थे।

6. शव का शव परीक्षण डॉक्टर सुनील कुमार द्वारा 20.11.2021 को दोपहर 12.55 बजे किया गया।

"लिगेचर मार्क गर्दन के चारों ओर 29 सेमी x 3.5 सेमी के अंतर के साथ गर्दन के दाईं ओर 7 सेमी के अंतर के साथ चिह्नित करता है। ठोड़ी से 5.5 सेमी नीचे, बाएं कान से 6 सेमी नीचे और दाएं कान से 1.5 सेमी नीचे की दूरी। विच्छेदन पर, सफेद, कठोर और चमकदार, संयुक्ताक्षर चिह्न के नीचे मौजूद चमड़े के नीचे के ऊतक।

7. श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी, आवेदक की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

7.1 मृतका को लगी चोटों को ध्यान में रखते हुए, यह फांसी लगाने का मामला है न कि गला घोंटने का।

7.2 मृतका के पिता द्वारा 24.11.2021 को पुलिस को दिए गए सुसाइड नोट में दहेज की मांग का कोई उल्लेख नहीं था।

7.3 रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि आवेदक ने कभी मृतका को आत्महत्या के लिए उकसाया या भड़काया हो।

7.4 घटना के समय, मृतका के आवेदक (पति) और उसकी मां (सास) दोनों लखनऊ में थे।

7.5 घटना उस तरीके से नहीं हुई है जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है।

76 विवेचनाधिकारी ने शिकायतकर्ता की मिलीभगत से एकतरफा जांच की है।

7.7 मृतका की प्रकृति और व्यवहार का वर्णन करते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि मृतका पूरी तरह से स्वतंत्र और बहुत दबंग महिला थी। वह अपना स्वतंत्र और शानदार जीवन जीती थी। उसे यह भी पसंद नहीं था कि कोई उसे किसी भी समय कहीं भी आने-जाने से रोके। पृष्ठ 443 से 450 पर दायर उसकी पारिवारिक तस्वीरों का हवाला देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि वह पति और ससुराल वालों के साथ अपनी पारिवारिक यात्रा का आनंद ले रही थी। 18.11.2020 और 02.4.2021 को मृतका सहित परिवार के सभी सदस्य और साथ ही उसकी दोनों नौकरानियां सुश्री राधिका कुमारी और सुश्री किरण कुमारी विमान से गोवा और बैंगलोर दौरे पर गई थीं, जो स्वयं प्रदर्शित करता है कि आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ उत्पीड़न आदि के अतिरंजित आरोप झूठे हैं।

7.8 यह आग्रह किया जाता है कि वास्तव में, मृतका ने आवेदक और उसकी मां को प्रताड़ित किया था, इसलिए आवेदक की मां निशा खरबंदा ने मृतका आंचल खरबंदा द्वारा उसके उत्पीड़न के बारे में पुलिस आयुक्त, कानपुर को दिनांक 13.11.2021 को एक लिखित शिकायत दी, जिस पर एस.आई प्रेम कुमारी ने जांच की और मृतका के खिलाफ आरोप दिनांक 13.11.2021 की जांच रिपोर्ट में सही पाए गए, जिसे सीडी संख्या-14 का हिस्सा बनाया गया है। उप-निरीक्षक प्रेम कुमारी ने अपनी दिनांक 13.11.2021 की रिपोर्ट के साथ एक पेन-ड्राइव प्रस्तुत किया था जिसमें मृतका द्वारा आवेदक की मां श्रीमती निशा खरबंदा के उत्पीड़न का

वीडियो था, लेकिन उक्त पेन-ड्राइव को विवेचनाधिकारी द्वारा रिकॉर्ड से हटा दिया गया है।

7.9 दिनांक 08.02.2022 को भी आवेदक के एक रिश्तेदार नवीन भाटिया ने कुछ तस्वीरों और पेन ड्राइव के साथ एडीसीपी (अपराध) को स्पीड पोस्ट द्वारा एक अभ्यावेदन भेजा, जिसमें अभ्यावेदन में दर्शाए गए मामले के कई पहलुओं की जांच के लिए मृतका आंचल खरबंदा और उसके पिता पवन ग्रोवर के बीच बहुत अश्लील और अपमानजनक बातचीत की रिकॉर्डिंग है। बातचीत की प्रतिलिपि पेपर बुक के पृष्ठ संख्या-178 से 202 पर दर्ज की गई है। यह बताया गया है कि उपरोक्त दस्तावेजों/साक्ष्यों का उल्लेख सीडी संख्या-47 में किया गया है, लेकिन विवेचनाधिकारी ने शिकायतकर्ता के साथ मिलकर सही परिप्रेक्ष्य में इसकी जांच करने का कष्ट नहीं उठाया।

8. आवेदक की जमानत के लिए प्रार्थना का विरोध करते हुए, श्री शिव कुमार पाल, शासकीय अधिवक्ता श्री ओम प्रकाश द्विवेदी, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और श्री रघुवंश मिश्रा, प्रथम सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:

8.1 आवेदक मृतका का पति है। मृतका के साथ आवेदक का विवाह 09.2.2019 को हुआ और उसने 20.11.2021 को आत्महत्या कर ली, यानी शादी के सात साल के भीतर और इसलिए, क्रमशः भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए और 113-बी के तहत उकसाने और दहेज हत्या का अनुमान आवेदक के खिलाफ लगाया जाएगा और आवेदक की जमानत याचिका अकेले इस आधार पर खारिज की जा सकती है।

8.2 मृतका 25 वर्ष की एक महिला थी और वह अपने बच्चे को पीछे छोड़ गई। प्रथम सूचना रिपोर्ट दो आवश्यक विवरण बोलती है, (ए) पति द्वारा दहेज की मांग (सूर्यांश के व्यापार के उद्देश्य से) (सूर्यांश के व्यापार हेतु)। (ख) मृतका के प्रति अभियुक्त द्वारा क्रूरता।

8.3 घटना से एक सप्ताह पहले, पुलिस हेल्पलाइन 112 और 181 से संपर्क किया गया था ताकि आवेदक द्वारा जबरन उत्पीड़न और गहने ले जाने की शिकायत की जा सके।

84 मृतका, उसके माता और पिता के मोबाइल फोन एकत्र किए गए और केस डायरी का हिस्सा बनाए गए। थाना के कंप्यूटर ऑपरेटर ने व्हाट्सएप चैट और बातचीत की प्रतिलिपि बनाई और इसकी वास्तविकता के बारे में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के तहत प्रमाण पत्र भी दिया।

85 मृतका द्वारा दहेज की मांग, क्रूरता और आत्महत्या के बीच समीपस्थ संबंध था।

8.6 पेपर बुक के पृष्ठ 271 से 272 पर दायर पेपर बुक के पृष्ठ 279 से 291 पर दायर मृतका और उसके पिता के बीच दिनांक 23.10.2021 की टेलीफोन बातचीत की प्रतिलेख और मृतका और उसकी मां के बीच दिनांक 16.10.2021 की व्हाट्सएप चैट का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि दहेज की मांग डिजिटल रिकॉर्ड द्वारा अच्छी तरह से स्थापित की गई है और पति मृतका के उत्पीड़न का स्रोत था।

9. प्रतिद्वंद्वी तर्कों और अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोपों के प्रकाश में और

मामले को उसके सही परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए, रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्रियों पर ध्यान देना आवश्यक माना जाता है।

10. प्रथम सूचनाकर्ता श्री पवन ग्रोवर ने विवेचना के दौरान दिनांक 24.11.2021 को पुलिस को मृतका द्वारा कथित रूप से लिखा गया सुसाइड नोट भी सौंपा है, जो एक बैग में रखी मृतका के पुत्र की जींस की जेब में पाया गया। सुसाइड नोट में लिखा है:

(आंचल खरबंदा) मेरा बेटा (यश खरबंदा) अगर हमें ज़रा सी भी खरोच या नुक्सान छुआ है तो उसके जिम्मेदार भारत ग्रोवर, मीनाक्षी ग्रोवर, सूर्यांश खरबंदा, निशा खरबंदा और निकिता कोटवानी और पुनीत कोटवानी मुझे बहुत यातना कर रहे हैं कि कुछ दिन से:

(1) पैसे, बिल आदि से इनकार करना।

(२) मुझे बाहर (घर के) जाने के लिए प्रतिबंधित किया।

(3) अगर मैंने बाहर जाने की हिम्मत की, तो वह मुझे अंदर नहीं जाने देगा।

(4) उसकी माँ हर समय मुझे गाली देती है।

(5) हर रात वह घर से बाहर रहता है।

11. सुसाइड नोट की सत्यता का पता लगाने के लिए इसे फोरेंसिक साइंस लेबोरेटरी, झांसी भेजा गया, जिसने पुष्टि की कि यह मृतका की लिखावट में था, लेकिन जहां तक सुसाइड नोट पर हस्ताक्षर का सवाल है, यह मृतका के हस्ताक्षर के अनुरूप नहीं है।

12. पहले सूचनाकर्ता का बयान 20.11.2021 को दर्ज किया गया था जिसमें उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में दिए गए संस्करणों को दोहराया था।

13. विवेचनाधिकारी ने मृतका के भाई अक्षय ग्रोवर का बयान 24.11.2021 को दर्ज किया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि उनकी बहन की शादी आवेदक के साथ 09.2.2019 को हुई थी। विवाह के बाद आवेदक का मृतका के प्रति व्यवहार बहुत क्रूर था। मृतका के गर्भवती होने के बाद, आवेदक ने उसे मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना शुरू कर दिया क्योंकि मृतका बच्चे को जन्म नहीं देना चाहती थी। दिनांक 08.04.2020 को मृतका ने उसे सूचित किया कि उसके पति ने उसे बेरहमी से पीटा है। जब उसके माता-पिता मृतका के ससुराल वालों को खुश करने के लिए गए, तो उन्होंने धमकी दी कि जब तक आवेदक के व्यवसाय के लिए उनके द्वारा 70,00,000/- (सत्तर लाख रुपये) नहीं दिए जाएंगे, वे मृतका को पीटेंगे। दिनांक 12.11.2021 को रात्रि लगभग 8.00 बजे आवेदक मृतका के सभी नकदी एवं आभूषण दो बैगों में भरकर ले गया, जिसकी जानकारी मृतका द्वारा 112 एवं 181 डायल करके पुलिस को दी गई थी। 19.11.2021 को शाम लगभग 6.00 बजे उन्होंने मृतका से बातचीत की। जब वह अपने माता-पिता के साथ लगभग 1.45 बजे मृतका के घर पहुंचा, तो उन्होंने मृतका को लटका पाया।

14. मृतका की मां श्रीमती रीना ग्रोवर का धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने के बजाय, विवेचनाधिकारी ने 25.11.2021 को उनका लिखित बयान लिया है जिसमें उन्होंने 70,00,000/- रुपये (सत्तर लाख रुपये) दहेज की मांग और मृतका को उसके ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित करने के आरोप लगाए हैं।

15. श्री जितेंद्र भल्ला (मृतका के मामा), श्री राजीव मदान, (मृतका के मौसा), श्री अरुण ग्रोवर (मृतका के चाचा), श्री अक्षय और श्रीमती रीता ग्रोवर (मृतका की चाची), जो जांच कार्यवाही के गवाह थे, ने अपने लिखित बयान दिए हैं।

16. गोपाल की पुत्री राधिका, जो प्रार्थी एवं मृतका के घर में कार्यरत है, का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया। उसने कहा कि वह पिछले लगभग दो वर्षों से उनके घर में काम कर रही है। करीब डेढ़ साल से वह आंचल (मृतका) के बेटे की देखभाल कर रही है। जब भी झगड़ा होता है आंचल, उसके पति और सास कमरे को अंदर से बंद कर देते हैं। प्रार्थी सूर्यांश मृतका को थप्पड़ मारता था। झगड़ा उनके बेटे के जन्म के बाद शुरू हुआ। आवेदक हुक्का पीता था। उसका दोस्त भी हुक्का पीने आता है। जब भी आवेदक घर के ऊपरी हिस्से पर काम करता है, तो निशा (सास) ने वहां नहीं जाने के लिए कहा। उसने इस बारे में मृतका को बताया। उन्होंने आगे कहा कि रात 19/20 के बीच रात 12.00 से 1.00 बजे के बीच मृतका बच्चे को किरण को देने के बाद अपने कमरे के लिए रवाना हो गया। दरवाजा खटखटाने पर जब दरवाजा नहीं खुला तो शीशे से देखा कि मृतका पंखे से लटकी हुई है। इस आशय की सूचना आवेदक को गार्ड के फोन से दी गई।

17. अपने दूसरे बयान में, जो 08.12.2021 को दर्ज किया गया था, गोपाल की बेटी राधिका ने कहा कि आंचल (मृतका) हमेशा सूर्यांश (आवेदक) के साथ झगड़ा करती थी। एक दिन आंचल (मृतका) ने प्रार्थी को झाड़ू से पीटा। आंचल के परिजन भी एक-दो बार घर आए थे। एक बार पिता की मौजूदगी में आंचल (मृतका) ने पति पर गिलास से हमला कर दिया। वह कहती थी कि वह अपने पति को छोड़ देगी। वह अपने बेटे की देखभाल नहीं करती है। उसने आगे कहा कि वह किरण के साथ मृतका के बेटे की देखभाल करती थी। मृतका के आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वह थोड़ी पागल थी। उसका इलाज मधुराज अस्पताल में चल रहा था और वह दवाइयां लेती थी। 12.11.2021 को झगड़ा हुआ और मृतका अराजकता में लिप्त थी और सभी सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार कर रहा थी। इसके बाद प्रार्थी अपनी मां निशा के साथ अपनी बहन के घर गया। वह शाम को वापस आया और गहने अपने साथ ले गया क्योंकि मृतका लॉकर में आग लगा रही थी। इसके बाद मृतका ने पुलिस को फोन किया। 13.11.2021 को फिर से पुलिस घर पर आई। आवेदक और निशा भी आ गए। मृतका को पुलिस ने भी बुलाया था। मौत से दो-तीन दिन पहले मृतका ने पिता से बात करते हुए कहा कि वह फांसी लगा लेगी। 19.11.2021 को किरण ने दुपट्टा (चुन्नी) को पंखे से लटका देखा, उसके बाद उसने उसे हटा दिया। रात करीब 12.00 बजे जब यह साक्षी राधिका और किरण डायपर लेने उसके कमरे में गई और दरवाजा खटखटाया तो उसने न तो दरवाजा खोला और न ही फोन रिसीव किया। जब वे बालकनी में गए, तो उन्होंने देखा कि वह बाथरूम पर खड़ी थी और उसकी गर्दन टेढ़ी थी। उसे उस मुद्रा में देखकर वे डर गए और गार्ड के फोन से आवेदक को सूचना दी।

18. सुरेश की पुत्री किरण का बयान, जो आवेदक के घर में भी कार्यरत है, दिनांक 20.11.2021 को दर्ज किया गया। उसने बताया कि वह करीब तीन महीने से घर में काम कर रही है। वह अयांश (मृतका का बेटा) के साथ थी। रात करीब 12.00 बजे उन्होंने राधिका के साथ मिलकर दरवाजा खटखटाया, लेकिन उन्होंने दरवाजा नहीं खोला। इसके बाद उसने गार्ड के फोन से आवेदक को सूचना दी।

19. किरण का दूसरा बयान 08.12.2021 को दर्ज किया गया, जिसमें उसने कहा कि मृतका अपने बच्चे की देखभाल नहीं करती है। मृतका के आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वह थोड़ी पागल थी। उसका इलाज मधुराज अस्पताल में चल रहा था और वह दवाइयां लेती थी। 12.11.2021 को झगड़ा हुआ और मृतका अराजकता में लिप्त थी और सभी सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार कर रहा था। इसके बाद प्रार्थी अपनी मां निशा के साथ अपनी बहन के घर गया। वह शाम को वापस आया और गहने अपने साथ ले गया क्योंकि मृतका लॉकर में आग लगा रही थी। इसके बाद मृतका ने पुलिस को फोन किया। 13.11.2021 को फिर से पुलिस घर पर आई। आवेदक और निशा भी आ गए। मृतका को पुलिस ने भी बुलाया था। वह हमेशा आवेदक और निशा (आवेदक की मां) से झगड़ा करती थी और घर का सामान तोड़ती थी।

20. राम प्रताप सिंह, जो मृतका और आवेदक के घर में गार्ड के रूप में काम कर रहे थे, का बयान 20.11.2021 को दर्ज किया गया था। उन्होंने कहा कि जब भी आवेदक और मृतका के बीच झगड़ा होता है, तो उनके रिश्तेदार उन्हें खुश करने के लिए आते हैं। 19/20.11.2021 की रात को दोनों लड़कियां (नौकरानी) उसके पास आईं और उसके मोबाइल से आवेदक से बात की। बच्चा भी उनके साथ था। कुछ देर बाद सूर्यांश (आवेदक) और उसके ससुराल वालों ने पुलिस के साथ वहां पहुंचकर कमरे का शीशा तोड़ा, उन्होंने मृतका को फांसी पर लटका पाया।

21. आवेदक के घर में गार्ड के रूप में काम करने वाले सतीश चंद्र विश्वकर्मा ने अपने बयान में यह भी कहा है कि 19/20.11.2021 को दोनों लड़कियां (नौकरानी) उनके पास आईं और कहा कि उन्हें आवेदक से बात करनी है। इसके बाद उन्होंने राम प्रताप के मोबाइल से प्रार्थी से बात की। बच्चा भी उनके साथ था।

22. राम नरेश उर्फ राम, जो भी आवेदक के घर में गार्ड के रूप में काम कर रहा था, का बयान 24.11.2021 को दर्ज किया गया था जिसमें उसने कहा है कि आवेदक और मृतका के बीच झगड़ा सामान्य क्रम था और एक महीने में कम से कम तीन-चार बार झगड़ा होता था।

23. राजा राम, जो आवेदक के घर में सुरक्षा गार्ड भी थे, का बयान 24.11.2021 को दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने कहा है कि आवेदक और मृतका के बीच झगड़ा सामान्य था।

24. अमित सिंह और विवेक यादव के बयान भी दर्ज किए गए, जो आवेदक के बाउंसर (व्यक्तिगत सुरक्षा गार्ड) के रूप में काम कर

रहे थे, जिन्होंने कहा है कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन और समय पर, आवेदक घर पर नहीं था, लेकिन वह अपनी मां के साथ अपनी बहन के घर में रह रहा था और 13.11.2021 से अशोक नगर में अपने घर नहीं आया था। आवेदक की मां निशा खरबंदा के ड्राइवर के रूप में काम करने वाले प्रेम चंद्र ने यह भी कहा कि वे घर पर नहीं थे और आर्य नगर में रह रहे थे।

25. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और मामले की संपूर्णता के साथ-साथ केस डायरी की जांच करने के बाद जिसमें राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत केस डायरी जो 1600 से अधिक पृष्ठ हैं, से मुझे पता चला है कि आवेदक के साथ मृतका का विवाह 09.2.2019 को हुआ था। मृतका का आवेदक का घर और पैतृक घर (मायका) जिला कानपुर में है। मृतका की उम्र करीब 25 साल थी और वह एक सक्षम महिला थी। दिनांक 03.01.2022 को तैयार केस डायरी संख्या-41 के विवरण के अनुसार, दिनांक 12.11.2021 को 22:15:05 बजे मृतका की माता श्रीमती रीना ग्रोवर के मोबाइल से 181 पर पुलिस को सूचित किया गया कि सूर्यांश (आवेदक) लॉकर से सारे पैसे और गहने ले गया और वर्तमान में वह अपनी बहन के घर में है। फिर से 13.11.2021 को 19:20:59 बजे रीना ग्रोवर के मोबाइल से 181 पर इस आशय का कॉल किया गया कि मृतका को उसके घर से निकाला जा रहा है और उसके पति (आवेदक) ने सभी गहने छीन लिए। दिनांक 15.11.2021 को दिनांक 08.49.08 को पुनः मृतका की माता रीना ग्रोवर के बुलावे पर जब पुलिस ने आवेदक से संपर्क किया तो उसने पुलिस को बताया कि मृतका से उसकी जान को खतरा है। 20.11.2021 को लगभग 01:27:46 बजे, मृतका की मां श्रीमती रीना ग्रोवर ने 181 पर फोन कर पुलिस को सूचित किया कि उनकी बेटी फोन नहीं उठा रही है और जब पुलिस मृतका के घर पहुंची, तो उन्हें पता चला कि मृतका की मृत्यु हो गई है। घर पर मृतका के मायके के लोग मौजूद थे, जबकि ससुराल का कोई व्यक्ति नहीं था। राधिका और किरण (नौकरानी) ने अपने बयानों में कहा कि 12.11.2021 को मृतका अराजकता में लिप्त थी और सभी सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार कर रही थी। इसके बाद प्रार्थी अपनी मां निशा के साथ अपनी बहन के घर गया। वह शाम को वापस आया और गहने अपने साथ ले गया क्योंकि मृतका लॉकर में आग लगा रही थी। इसके बाद मृतका ने पुलिस को फोन किया। 13.11.2021 को फिर से पुलिस घर आई और 20.11.2021 को जब राधिका और किरण डायपर लेने उसके कमरे में गईं और दरवाजा खटखटाया, तो उसने न तो दरवाजा खोला और न ही फोन लिया। जब वे बालकनी में गए, तो उन्होंने देखा कि वह बाथरूम पर खड़ी थी और उसकी गर्दन टेढ़ी थी। उसे उस मुद्रा में देखकर वे डर गए और गार्ड के फोन से आवेदक को सूचना दी। कुछ देर बाद पुलिस के साथ मृतका के मायके वाले वहां आए और शीशा तोड़कर कमरे में दाखिल हुए।

26. केस डायरी में उपरोक्त प्रविष्टियों के साथ-साथ राधिका और किरण के बयानों से पता चलता है कि आवेदक ने 12.11.2021 को घर से गहने हटा दिए थे क्योंकि मृतका लॉकर में आग लगा रही थी और अपनी बहन के घर

में रह रही थी और जिस दिन और समय पर मृतका ने आत्महत्या की वह अपने घर पर नहीं था।

27. जहां तक सुसाइड नोट जो आवेदक और मृतका के बच्चे की जींस की जेब में पाया गया था और सूचनाकर्ता द्वारा पुलिस को दिया गया था, का संबंध है, मुझे लगता है कि मृतका द्वारा उसके पति और उसके ससुराल वालों के खिलाफ दहेज की मांग का कोई आरोप नहीं लगाया गया था।

28. मुझे यह भी पता चला है कि शव परीक्षण जांच रिपोर्ट में, संयुक्ताक्षर चिह्न के अलावा, मृतका के शरीर पर कोई अन्य चोट नहीं पाई गई थी और विसरा को संरक्षित किया गया था और फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, झांसी की दिनांक 12.5.2022 की रिपोर्ट के अनुसार, विसरा में कोई जहर नहीं पाया गया था।

29. इसके अलावा, मृतका और उसके माता-पिता के बीच बातचीत में, उनके द्वारा दहेज की कोई विशिष्ट मांग का उल्लेख नहीं किया गया है। मैंने यह भी पाया कि घटना से पहले, न तो कॉल रिकॉर्डिंग में और न ही व्हाट्सएप चैट में, 70,00,000/- रुपये की कोई मांग थी और पहली बार, प्राथमिकी में इसका उल्लेख किया गया है।

30. चूंकि राधिका और किरण, जो इस मामले में प्रमुख गवाह हैं, क्योंकि वे हमेशा मृतका आंचल खरबंदा के साथ रहते थे और उसके बच्चे की देखभाल करते थे, ने अपने बयानों में मृतका के कृत्य और आचरण को उजागर किया है कि मृतका आवेदक को झाड़ू से पीटती थी, घर का सामान तोड़ती थी, उसकी बीमारी के लिए दवाएं लेती थी, हमेशा मारपीट में लिप्त रहती थी, लॉकर में आग लगा देती है और अपने बच्चे आदि की परवाह नहीं करती है, इसलिए, विवेचनाधिकारी ने आरोप पत्र के हिस्से के रूप में उक्त बयान नहीं दिया। इसके अलावा, विवेचनाधिकारी ने केस डायरी में राधिका और किरण के बयानों पर विचार नहीं करने और दिनांक 14.2.2022 को आरोप पत्र प्रस्तुत करते समय उन्हें गवाहों की सूची में शामिल नहीं करने का कोई ठोस कारण नहीं दिया है।

31. जमानत आवेदन के साथ कुछ तस्वीरें पृष्ठ 451 से 454 पर संलग्न की गई थीं। मैंने पाया कि कुछ तस्वीरों में मृतका को आवेदक की पिटाई करते हुए देखा गया था, जो राधिका और किरण के बयान से पुष्टि करते हैं, जबकि शिकायतकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि उक्त तस्वीरें वास्तविक नहीं हैं।

32. जहां तक अभियोजन पक्ष के मामले का संबंध है कि मृतका को मार दिया गया और फिर फांसी दे दी गई, शव परीक्षण रिपोर्ट से पुष्टि नहीं मिलती है, जिससे पता चलता है कि अतिरंजित आरोप लगाए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शादी के बाद, मृतका बच्चे को जन्म नहीं देना चाहती थी। यहां तक कि उसने अपने बच्चे की देखभाल भी नहीं की, इसलिए, वैवाहिक मुद्दों की टूट-फूट पैदा हो गई थी। मुझे यह भी पता चला है कि मृतका के खाते में 07.10.2021 को शेष राशि 1,07,365/- रुपये थी।

33. जहां तक शिकायतकर्ता पक्ष के कुछ गवाहों के लिखित बयान लेने और उन्हें धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान के रूप में मानने का संबंध है, यह अच्छी तरह से तय है कि यह निर्माण का एक सामान्य नियम है कि जब कोई क़ानून किसी विशेष तरीके से प्रयोग किए जाने वाले प्राधिकरण में कुछ शक्ति निहित करता है तो उक्त प्राधिकरण को केवल स्वयं क़ानून में प्रदान किए गए तरीके से इसका प्रयोग करना होगा। नियम के पीछे सिद्धांत यह है कि यदि ऐसा नहीं होता, तो वैधानिक प्रावधान भी अधिनियमित नहीं किया जा सकता था।

34. आठ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिनमें से पांच व्यक्तियों, मीनाक्षी, अन्नू खुल्लर, पुनीत कोटवानी, निकिता कोटवानी और तान्या ग्रोवर को जांच के बाद बरी कर दिया गया है और उनके पक्ष में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है।

35. श्रीमती निशा खरबंदा, इसी तरह के आरोप के साथ मृतका की सास और भरत ग्रोवर (काकू) को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-3398 वर्ष 2022 और 31590 वर्ष 2022 में दिनांक 27.5.2022 और 10.10.2022 के आदेश के तहत जमानत दी है, जिसे आवेदक के अधिवक्ता द्वारा सूचित सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है।

36. शिकायतकर्ता के अधिवक्ता श्री रघुवंश मिश्रा ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए पर बहुत भरोसा किया। दूसरी ओर श्री शिव कुमार पाल, शासकीय अधिवक्ता ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी पर जोर दिया। इस मुद्दे पर पार्टियों के अधिवक्ताओं की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, यहां साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113 ए और 113 बी के तहत वैधानिक अनुमान के बारे में चर्चा करना उचित होगा।

37. धारा 113A इस प्रकार है:

113क. जब प्रश्न यह है कि क्या किसी महिला द्वारा आत्महत्या करने का कृत्य उसके पति या उसके पति के किसी रिश्तेदार द्वारा किया गया था और यह दर्शाया जाता है कि उसने अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या कर ली थी और उसके पति या उसके पति के ऐसे रिश्तेदार ने उसके साथ क्रूरता की थी, न्यायालय मामले की अन्य सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह मान सकता है कि इस तरह की आत्महत्या उसके पति या उसके पति के ऐसे रिश्तेदार द्वारा की गई थी।

स्पष्टीकरण--इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "क्रूरता" का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 498क में है।

38. यह अच्छी तरह से तय है कि केवल तथ्य यह है कि यदि एक विवाहित महिला अपने विवाह के सात साल की अवधि के भीतर आत्महत्या करती है, तो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113-ए के तहत अनुमान स्वचालित रूप से लागू नहीं होगा। शब्द "न्यायालय मामले की अन्य सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह माना जा सकता है कि ऐसी आत्महत्या उसके पति द्वारा या

उसके पति के ऐसे रिश्तेदार द्वारा की गई थी। भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क में "क्रूरता" शब्द के अर्थ को ध्यान में रखते हुए। आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण उन व्यक्तियों के मामले तक ही सीमित है जो आत्महत्या करने में सहायता करते हैं अथवा इसके लिए प्रेरित करते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के तहत अपराध के मामले में, दुष्प्रेरण को धारा 107 भ०द०वि० में इसकी परिभाषा को लागू करना चाहिए। दुष्प्रेरण का गठन किसी व्यक्ति को अपराध करने के लिए उकसाने या किसी व्यक्ति को अपराध करने के लिए करने, सहायता करने या जानबूझकर सहायता करने की साजिश में शामिल होने से किया जाता है।

39. धारा 113B इस प्रकार है:

113ख. दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा- जब प्रश्न यह है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी महिला की दहेज हत्या की है और यह दर्शाया जाता है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले ऐसी महिला को ऐसे व्यक्ति द्वारा दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता या उत्पीड़न के अधीन किया गया था, तो न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज हत्या कारित की थी।

ख़ुलासा: इस धारा के प्रयोजनों के लिए, दहेज मृत्यु का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 304B में है।

40. भारतीय दंड संहिता की धारा 304-बी में आने वाले शब्द "उसकी मृत्यु से पहले" को एक सापेक्ष और लचीले अर्थ में समझा जाना चाहिए। उन शब्दों को प्रत्येक मामले में यंत्रवत् रूप से लागू होने के लिए समय की एक कठोर अवधि निर्धारित करने के रूप में नहीं माना जा सकता है।

41. भारतीय दंड संहिता की धारा 113ख के आलोक में, भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दोषसिद्धि के लिए, विचारण न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित आवश्यक तत्व स्थापित/सिद्ध किए जाने हैं:

"(ए) एक महिला की मृत्यु जलने या शारीरिक चोट या अन्यथा 'सामान्य परिस्थितियों' के तहत होनी चाहिए;

(ख) ऐसी मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हो जानी चाहिए थी;

(ग) उसे अपने पति या किसी रिश्तेदार या उसके पति द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न के अधीन किया गया होगा;

(घ) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में होना चाहिए; और

(ङ) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न महिला को उसकी मृत्यु से ठीक पहले किया गया दिखाया गया है।

42. विचाराधीन मामले में, आरोपी पति है और मुकदमे के लंबित रहने तक जमानत की मांग कर रहा है। इस न्यायालय के समक्ष जो मुद्दा उठता है वह यह है कि क्या यदि पत्नी ने अपनी शादी की तारीख से सात साल की अवधि के भीतर आत्महत्या कर ली है, तो अभियुक्त-पति की जमानत याचिका को केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए के तहत आत्महत्या के लिए उकसाने की प्रतिकूल धारणा या साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत दहेज हत्या की धारणा के आधार पर सीधे खारिज कर दिया जा सकता है?

43. उपर्युक्त मुद्दे के आलोक में, मामले की संक्षिप्त पृष्ठभूमि का उल्लेख करना प्रासंगिक है। प्रारंभ में प्राथमिकी में यह शिकायतकर्ता का मामला था कि मृतका को मार दिया गया था और फिर फांसी दे दी गई थी, लेकिन जांच में शव परीक्षण रिपोर्ट से पुष्टि नहीं मिलती है, क्योंकि मृतका की मौत का कारण फांसी लगाने के कारण पाया गया है। उसने अपने कमरे में आत्महत्या कर ली, जो अंदर से बंद था। माना कि घटना के दिन आरोपी-प्रार्थी (पति) और उसकी सास कानपुर स्थित घर में नहीं थे, लेकिन वे लखनऊ में थे। मृतका के पिता द्वारा पेश किए गए सुसाइड नोट में दहेज मांगने का कोई आरोप नहीं है। यह एक ऐसा मामला है जहां दोनों पक्षों द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ क्रूरता का आरोप लगाया गया है, लेकिन विवेचनाधिकारी ने एकतरफा जांच की है और 14.02.2022 को केस डायरी संख्या-46 दिनांक 14.02.2021 के माध्यम से, केवल अभियुक्त-आवेदक के पक्ष में अन्य सामग्रियों की अनदेखी करते हुए मृतका के परिवार के सदस्यों के बयानों पर भरोसा करते हुए, आवेदक के खिलाफ जल्दबाजी में आरोप पत्र प्रस्तुत किया है, जिस पर संबंधित न्यायालय ने 17.02.2022 को संज्ञान लिया। यहां तक कि मृतका और उसके पिता के बीच टेलीफोन पर हुई बातचीत की प्रतिलिपि, जिस पर शिकायतकर्ता के शासकीय अधिवक्ता और अधिवक्ता ने बहुत अधिक भरोसा किया था, को विवेचनाधिकारी द्वारा केस डायरी संख्या-57 दिनांक 28.03.2022 के माध्यम से आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र जमा करने और मामले का संज्ञान लेने के बाद रिकॉर्ड पर लाया गया है। हालांकि आरोपी की ओर से प्रदान किए गए भौतिक साक्ष्य केस डायरी संख्या-14 और 47 के माध्यम से रिकॉर्ड पर ले लिए गए हैं, लेकिन इस पर कोई जांच नहीं की गई है, जिसका कारण विवेचनाधिकारी को ही बेहतर पता है।

44. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि विचारण न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा सबूत पेश करने के बाद विचारण और दोषसिद्धि या अभियुक्त के बरी होने के लंबित मुकदमे के आरोपी की जमानत पर विचार करने के पैरामीटर अलग-अलग हैं। इस न्यायालय का विचार है कि प्रत्येक मामला अपने तथ्यों और परिस्थितियों को बदल देता है। यहां तक कि दो मामलों के तथ्यों के बीच थोड़ा सा अंतर, पूरे पहलू को बदल सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 113क और 113ख के अधीन उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा नहीं है कि जमानत आवेदनों पर विचार करते समय न्यायालय सभी मामलों में आंखें बंद कर लेंगे और मूक दर्शक के रूप में कार्य करेंगे, न्यायालय मामले के व्यापक पहलू पर विचार करने के लिए बाध्य हैं और आरोपों की प्रकृति के आलोक में, शिकायतकर्ता की ओर से या आरोपी की ओर से उसकी बेगुनाही साबित करने के लिए पेश की गई केस डायरी की प्रासंगिक सामग्री को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि जमानत के मामले भी आरोपी की बहुमूल्य स्वतंत्रता से संबंधित हैं।

45. मृतका की सास श्रीमती निशा खरबंदा द्वारा 13.11.2021 को आयुक्त, महानगर, कानपुर को मृतका के व्यवहार के बारे में एक शिकायत भी दर्ज कराई गई है, जिसमें अन्य

बातों के साथ-साथ कहा गया है कि उनके बेटे सूर्यांश खरबंद का विवाह पंजाबी संस्कार और अनुष्ठान के अनुसार 09.2.20219 को मृतका के साथ हुआ था। शादी के बाद उसे पता चला कि आंचल (मृतका) मानसिक रूप से विक्षिप्त है। हर दिन वह अराजकता, उपद्रव, पिटाई करती थी और झूठे मामलों में जेल भेजने की धमकी भी देती थी। शिकायत में आगे आरोप लगाया गया है कि वह अपने पति को भी पीटती थी। इस संबंध में आवेदक ने दिनांक 27.7.2020 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, कानपुर महानगर को लिखित शिकायत भी दी है। श्रीमती निशा खरबंदा द्वारा की गई शिकायत रिसेप्शन ऑफिसर, थाना-नजीराबाद, जिला: कानपुर नगर को 13.11.2021 को टोकन संख्या-166/102 के माध्यम से प्राप्त हुई है। उक्त शिकायत की प्रति यहां नीचे निकाली गई है:

प्रमुख समाजसेवी की पत्नी है एवम भवन सं० १११-ए/१०८ अशोक नगर, कानपुर की निवासिनी है, प्रार्थिनी के पति शहर के प्रतिष्ठित समाज सेवी थे, जिनकी समाज सेवा की ख्याति पुरे शहर में थी वर आर्ट ऑफ़ लिविंग/ रोटरी क्लब कानपुर (पश्चिम) के ममाध्यम से सेवा करते थे।

प्रार्थिनी के दो संताने हैं पुत्र भी सूर्यांश खरबंदा का विवाह (पूर्वनाम) आँचल ग्रोवर-वर्तमान नाम श्रीमती आँचल खरबन्दा पुत्री श्री पवन ग्रोवर के साथ दिनांक ०९ फ़रवरी २०१९ को कानपुर नगर में पंजाबी रीतिरिवाज के अनुसार हुआ था, विवाहोपरांत यह ज्ञात हुआ कि आँचल मानसिक रूप से अस्वस्थ है। किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा/ लोकलाज के भय से उसके अवगुणों को छिपाये रखा, जबकि आँचल खरबन्दा के अवगुण एवं दुष्ट चरित्र में दिन-दूनी रात चौगनी वृद्धि होती गई जिससे प्रताड़ित होकर प्रार्थिनी का स्वास्थ्य ख़राब होता गया, आँचल आये दिन बिना किसी कारण के अराजकता, मारपीट, धमकी जेल भेजना मुक़दमे इत्यादि की धमकी देती रही, मेरे पुत्र के साथ मारपीट करती रही, इस सम्बन्ध में मेरे पुत्र द्वारा दिनांक २७/७/२०२० को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक कानपूर महानगर के यहाँ लिखित सूचना देकर मदद की गुहार लगायी थी जिसकी प्रति संलग्न है।

प्रार्थिनी विधवा है, प्रार्थिनी के पुत्र के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है, कल आँचल द्वारा एक झूंठा आरोप कि मेरा पुत्र २८ माह के पुत्र के साथ मारपीट करने का आरोप लगाते हुए ११२ पर डायल कर दिया जिससे भयग्रस्त होकर प्रार्थिनी अपने इलाज एवं स्वास्थ लाभ हेतु अपनी पुत्री के यहाँ कल से शिफ्ट हो गई है पुलिस के आने पर उससे उसने मेरे पुत्र पर आरोप लगाया कि हम लोग घर का जेवरात लेकर चले गए हैं, उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए आपसे विनम्र प्रार्थना की जाती है कि प्रार्थिनी को जान माल की सुरक्षा प्रदान की जाये।

एवम श्रीमती आँचल खरबन्दा को उक्त निवास स्थान से बेदखल करने के निर्देश दिए जाये ताकि प्रार्थिनी अपने निवास में

शांति पूर्वक अपना बचा जीवन व्यतीत कर सके अन्यथा मानसिक विधित्त बहु के आचरण से पीड़ित होकर प्रार्थिनी के जीवन को खतरा है एवम आँचल भी मानसिक विधिमत्ता के कारण कोई भी गलत कदम उठाकर प्रार्थिनी अपने विरुद्ध कुछ भी कर सकती है।

अतः पुनः विनम्र निवेदन है कि सम्बन्धित थाने को आवश्यक निर्देश देने की कृपा करें।

ह० अप०
(निशा खरबन्दा)
पत्नी स्व० सुरेंद्र खरबंदा
निवासिनी- १११-ए/१०८,
अशोक नगर
कानपुर
मोब० ८४०००६८८८८"

46. ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त शिकायत पर प्रभारी निरीक्षक के निर्देश पर थाना नजीराबाद, जनपद कानपुर नगर में पदस्थ एस.आई. प्रेम कुमारी द्वारा जांच की गई। जांच के बाद एस.आई. प्रेम कुमारी ने जांच रिपोर्ट सौंपी। उसने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में उक्त तथ्य का भी खुलासा किया। यहां जांच रिपोर्ट को पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा:

"सेवा में,

श्रीमान प्रभारी निरीक्षक महोदय,
थाना नजीराबाद कानपुर नगर

विषय:- आवेदिका श्रीमती निशा खरबंदा पत्नी स्व० सुरेश खरबंदा नि० १११ए/१०८, अशोक नगर थाना नजीराबाद कानपुर नगर द्वारा दिए गए प्रार्थना पत्र की जाँच आख्या के सम्बन्ध में रिपोर्ट :-

महोदय,

सविनय निवेदन है कि आवेदिका श्रीमती निशा खरबंदा पत्नी स्व० सुरेश खरबंदा नि० १११ए/१०८, अशोक नगर थाना नजीराबाद कानपुर नगर द्वारा दिये गए प्रा० पत्र की जाँच में म०उ०नि० व हमराह म०का० ५०१० निशा यादव को साथ लेकर मौके पर उपस्थित आये मौके पर आवेदिका श्रीमती निशा खरबंदा व सूर्यांश खरबंदा व बहू अंचल खरबंदा मौजूद जिनसे घटना के सम्बन्ध में पूंछतांछ की जा रही है।

बयान आवेदिका ..... श्रीमती निशा खरबंदा पत्नी स्व० सुरेश खरबंदा उम्र ५४ वर्ष निवासी १११ए/१०८, अशोक नगर थाना नजीराबाद कानपुर नगर ने पूंछने पर बताया कि मेरे पति का देहांत ०५ वर्ष पहले हो गया था मेरे पति के एमडीएच मसाले का बिज़नेस था तब मेरा बीटा सूर्यांश छोटा था लेकिन फिर भी मेरे बेटे ने मेरे पति का बिज़नेस कड़ी मेहनत करके संभाल लिया मेरी बहू अंचल ग्रोवर पुत्री पवन ग्रोवर द्वारा संपत्ति को अपने नाम करवाने को लेकर मेरे बेटे सूर्यांश के साथ मारपीट करना एवं भद्दी-भद्दी गलियां देती है जानलेवा हमला करती है मेरी बहू के अवैध लोगों के साथ सम्बन्ध है उनका आना जाना है एवं मुझे व मेरे बेटे के खाने पिने पर भी प्रतिबन्ध लगाती

है और मेरा बीटा बाहर का खाना खाकर काम चलाते हैं मेरी बहू को मेरा बीटा हर संभव खुश रखने का प्रयास करता है मेरी बहू कीमती से कीमती चीजों को तोड़ देती है मेरी बहू आये दिन धमकी देती है कि जिस दिन मैं तुझे व तेरे बेटे सूर्यांश को मरवा दूंगी उस दिन मैं तेरी पूरी प्रॉपर्टी पर ऐश करुँगी। आवेदिका ने एक वीडियो दिखाया जिसमें बहू अंचल द्वारा अपने पति के साथ मारपीट कर रही है और अपनी मेरे साथ गन्दी-गन्दी गलियां दे रही है और जान से मारने की धमकी दे रही है। आवेदिका ने एक पेन ड्राइव में वीडियो लेकर अवलोकन कर संलग्न आख्या किया गया एवं आवेदिका द्वारा दिए गए अपने इलाज से सम्बन्धित मेडिकल प्रपत्र अवलोकन करने के पश्चात् संलग्न आख्या की गयी। जो बयान वो सत्य है।

बयान आवेदिका का पुत्र ..... सूर्यांश पुत्र स्व० सुरेश खरबंदा उम्र २५ वर्ष निवासी १११ए/१०८, अशोक नगर थाना नजीराबाद कानपुर नगर ने पूंछने पर बताया कि मेरा विवाह अंचल ग्रोवर पुत्री पवन ग्रोवर निवासी ११७/९/२०१८ तुलसी नगर काकादेव के साथ ०९ फ़रवरी २०१९ में हुआ था। मेरे पिता का देहांत ०५ वर्ष पहले हो गया था मेरे पिता का एमडीएच मसाले का बिज़नेस था तब मैं छोटा था और मुझे बिज़नेस के बारे में जानकारी नहीं थी अपने पिता के बिज़नेस को मैंने कड़ी मेहनत करके संभाला। और मैं हर संभव अपनी पत्नी को खुश रखने का प्रयास करता रहा हूँ मेरी पत्नी कीमती से कीमती चीजों को तोड़ देती है और मेरी पत्नी अंचल ग्रोवर द्वारा संपत्ति को अपने नाम करवाने को लेकर मेरी माँ पर दबाव बनने लगी तथा मेरी पत्नी अंचल का मेरे साथ मारपीट करना एवं भद्दी-भद्दी गलियां देती है व मेरे ऊपर जानलेवा हमला करती है मेरी पत्नी के अवैध लोगो के साथ सम्बन्द है और उनका आना जाना है एवं मेरी पत्नी कभीभी मेरी व मेरी माँ की हत्या करवा सकती है मुझे अपनी पत्नी से अपनी व अपनी माँ का जान खा खतरा है एवं मेरी माँ व मेरे खाने पिने पर भी प्रतिबन्ध लगाती है मैं और मेरी मां बाहर का खाना खाकर काम चलाते हैं व आये दिन धमकी देती है कि जिस दिन मैं तुझे व तेरी मां को मरवा दूंगी उस दिन मैं तेरी पूरी प्रॉपर्टी पर ऐश करुँगी। जो बयान दिया वो सत्य है।

बयान आवेदिका की पुत्र वधू ..... आंचल ग्रोवर पत्नी सूर्यांश खरबंदा नि० १११ए/१०८, अशोक नगर कानपुर नगर उम्र करीब २५ वर्ष ने पूंछने पर किसी भी बात का स्पष्ट जवाब नहीं दिया। और चुप रही।

तत्पश्चात आस पास के लोगों ने जानकारी करने का प्रयास किया गया

तो कुछ लोगों ने आपसी बुराई की वजह से पहचान न जाहिर करने की शर्त पर बताया कि निशा खरबंदा अक्सर हम लोगों ने अपनी प्रताड़ना की बात बताती रहती हैं एवं निशा खरबंदा की बहू अंचल ग्रोवर की सारी गतिविधियां हम लोग देखते भी हैं सिर्फ मनमाने तरीके से अपना एकाधिकार घर परिवार पर रखना चाहती है और अपनी सास निशा खरबंदा व पति सूर्यांश खरबंदा से अक्सर गली गलौच व विवाद करती रहती है कई बार हम लोगों ने भी समझने बुझाने का प्रयास किया लेकिन वो मानने को तैयार नहीं है यह सत्य है कि यह अंचल ग्रोवर अपने पुरे परिवार को प्रताड़ित कर रही है।

जांच में वाक्यात इस प्रकार पाये गये कि आवेदिका की बहू आंचल ग्रोवर पत्नी सूर्यांश खरबंदा नि० १११ए/१०८ अशोक नगर कानपुर नगर द्वारा अपनी सास (निशा खरबन्दा) एवं पति सूर्यांश खरबन्दा के साथ आये दिन मारपीट करना एवं पूर्ण संपत्ति के अपने नाम करवाने के लिए धमकाना एवं प्रताड़ित करना एवं मुकदमा करवाने व जेल भेजने की धमकी देना एवं आवेदिका तथा अपने पति सूर्यांश को जान से मरवाने की धमकी देना पाया गया। एवं आवेदिका कई गंभीर बिमारियों से ग्रसित है। आवेदिका ने एक वीडियो दिखाया जिसमे आवेदिका को बहू आंचल अपने पति के साथ मारपीट कर रही है एवं अपनी सास निशा खरबन्दा को गन्दी-गन्दी गलियां दे रही है। एवं अपनी सास को एवं अपने पति को जान से मारने की धमकी दे रही है। आवेदिका की बहू आँचल ने अपनी गलतियों को स्वीकार किया है। आवेदिका द्वारा दिए गए अपने इलाज से सम्बन्धित मेडिकल प्रपत्र एवं वीडियो की पेन ड्राइव अवलोकन करने के पश्चात् संलग्न आख्या की गयी।

श्रीमान जी उपरोक्त प्रा० पत्र के सम्बन्ध में जाँच से आवेदिका श्रीमती निशा खरबंदा उपरोक्त के प्रा० पत्र के आधार पर संपत्ति को लेकर आवेदिका की बहू श्रीमती अंचल ग्रोवर कोई भी अप्रिय घटना की जा सकती है या करवायी जा सकती है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता वादिनी की बहू श्रीमती आंचल द्वारा पुरे घर का उत्पीड़न किया जा रहा है। आवेदिका की उम्र ५५ वर्ष है पति का देहांत हो चुका है कई गंभीर पैरालाइसिस जैसी बिमारियों से ग्रसित है। इनका देखरेख की आवश्यकता है परन्तु बहू द्वारा किसी प्रकार की देखरेख न करके ऊपर से प्रताड़ित किया जा रहा है। उपरोक्त सभी जाँच के तथ्यों से श्रीमान एसएचओ महोदय थाना नजीराबाद कानपुर नगर को अवगत कराया जा रहा है।

ह० अप०
(प्रेम कुमारी)
(उ० नि०)
थाना नजीराबाद कानपुर नगर
दि० १३/११/२०२१

संलग्नक-
१- रिपोर्ट - ०१ वर्क
२- मेडिकल प्रपत्र की छायाप्रति - ०७ वर्क
३- पेन ड्राइव - ०१"

समावेश किया गया है प्रार्थना पत्र के साथ सूर्यांश खरबंदा, आँचल खरबंदा व निशा खरबंदा के फोटो व एक पेन ड्राइव भी संलग्न की गयी है। प्रार्थना पत्र मय संलग्नक सीडी किया जा रहा है।"

47. केस डायरी का अवलोकन करने के बाद, मुझे पता चला है कि श्रीमती निशा खरबंदा की उपरोक्त शिकायत दिनांक 13.11.2021 और उस पर एस.आई. प्रेम कुमारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट को सीडी संख्या-14 के संलग्नक के रूप में रिकॉर्ड पर रखा गया है। इसी तरह नवीन भाटिया (पेपर बुक के पेज संख्या-456-467 पर दायर), सीसीटीवी फुटेज वाले फोटो और पेन ड्राइव और मृतका अंचल खरबंदा और उसके पिता पवन ग्रोवर के बीच अश्लील टेलीफोन बातचीत (पेज संख्या-178 से 202 पर दायर) को केस डायरी संख्या-47 का हिस्सा बनाया गया है, लेकिन विवेचनाधिकारी ने मामले के उस पहलू की जांच करने का कोई प्रयास नहीं किया। सीडी संख्या-47 का प्रासंगिक उद्धरण नीचे दिया गया है:

"श्री नवीन भाटिया के द्वारा अभियोग में नामित अभियुक्तों की तरफ से मुकदमा उपरोक्त से सम्बन्धित एक प्रार्थना पत्र डीसीपी क्राइम महोदय को दिया गया है जो आज डाक पैड से प्राप्त हुआ। प्रार्थना पत्र में प्रथम सूचना रिपोर्ट मिथ्या होने के आधार के सम्बन्ध में १३ बिन्दु अंकित किये गये है तथा अभियुक्तों के बचाव में ०७ बिन्दु एवं अन्य अभियोजन साक्ष्य के संदेहास्पद होने के A से J तक आधार दिये है। प्रार्थना पत्र में कुल २६ बिन्दु का

48. विवेचनाधिकारी ने इस बात का कोई ठोस कारण नहीं बताया है कि उन्होंने निशा खरबंदा द्वारा 13.11.2021 को आयुक्त, उत्तर प्रदेश पुलिस, महानगर, कानपुर को की गई शिकायत के संबंध में और साथ ही आरोपी की ओर से प्रदान की गई उपरोक्त सामग्री के संबंध में मामले की जांच क्यों नहीं की। विवेचनाधिकारी ने न तो आरोपी की ओर से उपलब्ध कराई गई सामग्री (मृतका द्वारा आवेदक की पिटाई का वीडियो और मृतका और उसके पिता के बीच अश्लील टेलीफोन वार्तालाप, जो पेपर बुक के पृष्ठ संख्या-178 से 202 पर दर्ज की गई है) को खोलने और देखने के लिए न तो कष्ट उठाया और न ही केस डायरी में उसकी प्रतिलिपि दर्ज की। विवेचनाधिकारी ने नवीन भाटिया से पेन-ड्राइव में उपलब्ध उक्त वीडियो और टेलीफोन पर बातचीत के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी के तहत स्रोत और प्रमाण पत्र के बारे में भी नहीं पूछा, जबकि उन्होंने दिनांक 01.12.2021 के पत्र के माध्यम से शिकायतकर्ता पवन ग्रोवर से पेन-ड्राइव में उनके द्वारा प्रदान की गई सामग्री के संबंध में मूल स्रोत के बारे में पूछा था।

49. हालांकि, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के तहत प्रमाण पत्र के अभाव में, यह न्यायालय अभियुक्त पक्ष द्वारा पेन-ड्राइव में

प्रदान किए गए पूर्वोक्त साक्ष्य पर विचार करना उचित नहीं समझता है।

50. प्रस्तुत मामले में दोनों पक्षों द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ उत्पीड़न और क्रूरता का आरोप लगाया गया है। राज्य के शासकीय अधिवक्ता ने मामले पर विस्तार से बहस करने के बाद, अंत में स्वीकार किया है कि विवेचनाधिकारी द्वारा आरोपी पक्ष से प्रदान किए गए महत्वपूर्ण सबूतों की जांच करने के लिए कोई ईमानदार प्रयास नहीं किया गया है, जबकि इसे रिकॉर्ड पर स्वीकार किया गया है और सीडी संख्या-14 और 47 में उल्लेख किया गया है।

51. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही अपराध की प्रकृति, साक्ष्य, अभियुक्त की जटिलता और पक्षों के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है और उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय की राय है कि आवेदक ने जमानत के लिए मामला बनाया है। इसलिए, जमानत आवेदन को अनुमति दी जाती है।

52- आवेदक सूर्यांश खरबंदा को उपरोक्त मामले अपराध संख्या में एक व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए, जमानत पर रिहा किया जाए।

(i) कि आवेदक विचारण के शीघ्र निपटान में सहयोग करेगा और जब तक अपरिहार्य न हो नियमित रूप से न्यायालय में उपस्थित होगा।

(ii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे कि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या सबूतों के साथ छेड़छाड़ न की जा सके।

(iii) कि रिहाई के बाद आवेदक किसी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा।

(iv) आवेदक की रिहाई से पहले संबंधित न्यायालय द्वारा जमानतदारों की पहचान, स्थिति और आवासीय प्रमाण का सत्यापन किया जाएगा।

53. उपर्युक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, संबंधित न्यायालय आवेदक की जमानत रद्द करने के लिए स्वतंत्र होगा।

54. यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियां केवल इस जमानत आवेदन के निर्धारण की सीमा तक ही सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। विचारण न्यायालय आदेश में उल्लिखित किसी भी बात से प्रभावित हुए बिना साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

55. मामले से अलग होने से पहले, मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष जांच हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांत हैं और भारत के संविधान

के अनुच्छेद 20 और 21 में निहित संवैधानिक जनादेश के अनुरूप हैं। प्रत्येक जांच निष्पक्ष तरीके से और कानून के अनुसार होनी चाहिए। निष्पक्ष और उचित जांच विवेचनाधिकारी का प्राथमिक कर्तव्य है। प्रत्येक सभ्य समाज में, पुलिस को अपराधियों के लिए सजा सुनिश्चित करने के लिए अपराध की जांच की शक्तियों के साथ निवेश किया जाता है और यह समाज के हित में है कि जांच एजेंसी ईमानदारी और निष्पक्ष रूप से कार्य करे और विवेचनाधिकारी को रिकॉर्ड पर सामग्री की अनदेखी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इस तरह के कृत्य न केवल जांच एजेंसी में आम आदमी के विश्वास को हिलाते हैं, बल्कि आपराधिक न्याय के वितरण की प्रणाली में अंतिम विश्लेषण में, जहां कानून के तहत कड़े प्रावधान हैं, वहां उच्च जिम्मेदारी जांच एजेंसी पर ही है। विवेचनाधिकारी का कर्तव्य न केवल अभियोजन पक्ष के मामले को मजबूत करना है, बल्कि अप्रकाशित सत्य को सामने लाना है। नैतिक आचरण भी आवश्यक है और जांच आपत्तिजनक विशेषताओं या कानूनी कमजोरियों से मुक्त होनी चाहिए।

56. कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (2015) 6 एस.सी.सी. 332 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

एक जांच एजेंसी पर यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत अधिक जिम्मेदारी दी जाती है कि एक निर्दोष व्यक्ति आपराधिक मुकदमे के अधीन न हो। इस जिम्मेदारी को एक विवेचनाधिकारी या एक जांच एजेंसी के लिए आवश्यक नैतिक ईमानदारी के समान उच्च स्तर के साथ जोड़ा जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जांच बिना किसी पूर्वाग्रह के की जाती है और न केवल आरोपी व्यक्ति के लिए बल्कि किसी भी अपराध के पीड़ित के लिए भी सभी निष्पक्षता में अवधारित की जाती है, चाहे पीड़ित व्यक्ति हो या राज्य।

उपरोक्त निर्णय का पालन माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मघवेंद्र प्रताप सिंह उर्फ पंकज सिंह बनाम राज्य एफ छत्तीसगढ़, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 486 में किया है।

57. अभियुक्त की ओर से प्रदान की गई सामग्री की जांच नहीं करना और केवल सीडी संख्या-14 और 47 के हिस्से के रूप में इसे बनाना एक गंभीर मुद्दा है और इसे विवेचनाधिकारी से अलग नहीं किया जाता है, जो पुलिस उपाधीक्षक के पद पर है। यह न्यायालय यह देख सकता है कि विवेचनाधिकारी ने उन दायित्वों को पूरा नहीं किया, जिनके तहत वह था।

58. उपरोक्त के मद्देनजर, मामले को पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश लखनऊ को भेजा जाता है, जो दोषपूर्ण जांच से संबंधित पूर्ववर्ती पैराग्राफ संख्या-30, 45 से 50 और 55 से 57 में उल्लिखित इस न्यायालय की टिप्पणियों के आलोक में मामले को देखें और जांच एजेंसियों और साथ ही अदालतों पर भी जनता के विश्वास को बनाए रखने के लिए चार सप्ताह के भीतर सभी मामलों में निष्पक्ष जांच के संबंध में उपयुक्त दिशानिर्देश जारी करें।

(2023) 5 ILRA 1870

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 25182/2016

उत्तर प्रदेश राज्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, उ.प्र., बरेली एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एस.एम. इकबाल हसन, सअनि धनंजय सिंह (एस. सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री भूपेन्द्र नाथ सिंह, देवेन्द्र नाथ सिंह, श्री धर्मेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, श्री हरि प्रकाश मिश्र

ए. सिविल कानून - श्रम कानून - चुनौती के तहत प्रतिवादी-कर्मचारी के पक्ष में पारित अधिनिर्णय - प्रतिवादी कर्मकार ने अपनी सेवाओं की अचानक समाप्ति को चुनौती दी - उ0प्र0 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन और नियम 42 का उल्लंघन।

बी. सिंचाई विभाग पर 1947 अधिनियम की प्रयोज्यता-सिंचाई विभाग उद्योग की परिभाषा के अंतर्गत आता है- अधिनियम 1947 की धारा 2(जे)-याचिकाकर्ता की दलील खारिज। (पैरा 19, 20 और 21)

अभिनिर्धारित:

प्रतिवादी कर्मचारी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों में दम नज़र आता है, क्योंकि देस राज बनाम सेंट ऑफ पंजाब (पूर्वोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के ही विभिन्न पिछले निर्णयों में निर्धारित परीक्षणों पर विचार किया था, जिसकी परिणति बैंगलोर वाटर सप्लाई (पूर्वोक्त) के मामले में निर्णय के रूप में हुई और उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि सिंचाई विभाग औद्योगिक अधिनियम की धारा 2(जे) के अर्थ में उद्योग की परिभाषा के अंतर्गत आता है। यह माना गया कि देस राज के मामले में लिया गया दृष्टिकोण कानून के दृष्टिकोण से बेहतर था और इसलिए देस राज के मामले में लिया गया दृष्टिकोण ही वह दृष्टिकोण है जिसका पालन करने का निर्देश दिया गया। एक बार जब यह माना गया और यह भी कि पंजाब के सिंचाई विभाग का काम और सुप्रीम कोर्ट के सामने रखी गई सामग्री जिसमें संबंधित याचिकाकर्ताओं की ओर से दायर लिखित प्रस्तुतियाँ शामिल हैं कि महाराष्ट्र के सिंचाई विभाग पंजाब के सिंचाई विभाग के समान या समान कार्यों का निर्वहन कर रहा था , यह माना गया कि सिंचाई विभाग की परियोजनाएँ या महाराष्ट्र के राज्य से जुड़े कार्य , उन्हीं परीक्षणों के आधार पर जो सर्वोच्च न्यायालय ने देस राज के मामले में लागू किए थे, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(जे) के प्रयोजन के लिए एक उद्योग की परिभाषा के अंतर्गत आएंगे। (पैरा 20)

उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, एस.टी. का पहला तर्क कि सिंचाई विभाग "उद्योग" की परिभाषा में नहीं आता है या 1947 के अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं, कोई बल नहीं रखता है और इसे अस्वीकार किया जाता है। यहां तक कि, श्रम न्यायालय ने भी देस राज और आदि (पूर्वोक्त) और अन्य अधिकारियों के मामले में निर्णयों पर भरोसा

करने के बाद, आक्षेपित अधिनिर्णय में वही व्याख्या की है। मुझे इस संबंध में श्रम न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं दिखती। (पैरा 21)

सी. राज्य की दलील - याचिकाकर्ता - प्रतिवादी कर्मचारी को अंशकालिक आधार पर नियुक्त किया गया था - भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत उसकी सेवाएं स्वतः समाप्त हो गईं - न्यायालय अनुकूल और प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल सकता है - राज्य याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया - इसलिए, तर्क को अस्वीकार कर दिया गया। (पैरा 22 से 24)

अभिनिर्धारित:

इस संबंध में, मैं भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के प्रावधानों का संदर्भ देना उचित समझता हूं। यह एक ऐसा प्रावधान है जिसके तहत न्यायालय किसी भी कार्यवाही में निष्कर्ष निकाल सकता है जिसमें किसी भी पक्ष के लिए अनुकूल या प्रतिकूल (प्रतिकूल) निष्कर्ष शामिल हैं। (पैरा 23)

वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-कर्मचारी की सेवाओं की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए , प्रतिउत्तर हलफनामे के अनुलग्नक आरए-1 पर भरोसा किया गया है, हालांकि उक्त दस्तावेज श्रम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं था। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के प्रावधानों के मद्देनजर, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, उक्त दस्तावेज राज्य-याचिकाकर्ता को उत्प्रेषण रिट में कोई लाभ नहीं दे सकता है, जिसके द्वारा श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है, जो संबंधित पक्षों द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है। बेशक, प्रतिउत्तर हलफनामे के अनुलग्नक आरए-1, कार्यवाही के रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं था। इसलिए, प्रतिवादी की सेवा की प्रकृति के बारे में राज्य का दूसरा तर्क अस्वीकार किया जाता है। (पैरा 24)

डी. 16 वर्षों की भारी देरी के बाद संदर्भ दिया गया-प्रतिवादी कर्मचारी को कोई लाभप्रद रोजगार नहीं मिला-उसकी सेवाएं समाप्त होने के बाद-कोई बहाली नहीं दी गई-इसलिए संदर्भ में देरी के बारे में तर्क भी खारिज कर दिया गया-आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं है-अधिनिर्णय बरकरार रखा गया-रिट याचिका खारिज कर दी गई। (पैरा 43, 46, 47 और 49)

अभिनिर्धारित:

इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने कई मामलों में, जिनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया गया है, यह माना है कि यदि समाप्ति आदेश में एकमात्र दोष औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 एफ (या यूपीआईडी अधिनियम की धारा 6 एन) के अनुसार छंटनी मुआवजे का भुगतान न करना है, तो हमेशा पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाली का निर्देश देना आवश्यक नहीं है और ऐसी स्थिति में अधिकतर मामलों में उचित राहत समेकित क्षतिपूर्ति/मुआवजा प्रदान करना हो सकता है, विशेष रूप से तब जब नियोक्ता सरकार या सरकारी एजेंसी हो और नियुक्ति से पहले प्रासंगिक नियमों का पालन नहीं किया गया हो। (पैरा 43)

न्यायालय मामले के एक पहलू को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता। वर्तमान मामले में श्रम न्यायालय ने कामगार को उसकी सेवाओं में बहाल करने का निर्देश नहीं दिया है। यदि

कामगार को ऐसी राहत न दिए जाने से पीड़ा होती, तो वह अधिनिर्णय को चुनौती दे सकता था, लेकिन, निस्संदेह, उसने न तो उसे चुनौती दी है और न ही उसने बहाली की राहत का दावा किया है। बहस के दौरान भी , प्रतिवादी-कर्मचारी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस स्तर पर वह केवल उस अधिनिर्णय का समर्थन कर रहे हैं, जिसके तहत संदर्भ की तिथि से लेकर अधिनिर्णय के लागू होने तक केवल पिछला वेतन ही दिया गया है। इसलिए, यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि श्रम न्यायालय ने वर्ष 1990 से पिछला वेतन भी नहीं दिया , जब प्रतिवादी-कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं, बल्कि उसे संदर्भ की तिथि से ही दिया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में 15-16 वर्षों की देरी प्रतिवादी-कर्मचारी के दावे के लिए घातक नहीं है, जिसने बहाली का दावा किया था, लेकिन उसे इससे वंचित कर दिया गया। मैं नहीं समझता कि वर्ष 2005 के बाद से पिछला वेतन देने का निर्णय देरी के कारण विफल हो जाएगा, जो उन मामलों में एक कारक हो सकता है, जहां पिछला वेतन देने के साथ बहाली का आदेश दिया गया है, क्योंकि वर्तमान मामले में न तो निर्णय के तहत और न ही कर्मचारी द्वारा निर्णय को चुनौती दिए जाने की अनुपस्थिति में बहाली का कोई प्रश्न ही नहीं है। (पैरा 46)

यहां तक कि श्रम न्यायालय ने भी आक्षेपित निर्णय के ऑपरेटिव हिस्से के ठीक ऊपर स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि कर्मचारी ने कहा था कि उसने 15 साल की अवधि में काम नहीं किया है और उसने नियोक्ता से उसे काम पर रखने के लिए मौखिक अनुरोध किया था, लेकिन इस संबंध में कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया। इसलिए, श्रम न्यायालय ने यह विचार किया है कि कर्मचारी संदर्भ देने की तिथि तक पिछला वेतन पाने का हकदार नहीं था। चूंकि उक्त इनकार को कर्मचारी द्वारा रिट याचिका दायर करके या अन्यथा चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए मैं मामले के तथ्यों की समग्रता में उक्त निष्कर्षों की वैधता या अवैधता की जांच नहीं कर सकता। (पैरा 47)

इसलिए, संदर्भ देने में देरी के आधार पर राज्य याचिकाकर्ता के तीसरे तर्क में भी कोई बल नहीं है और इसे खारिज कर दिया जा सकता है। (पैरा 48)

जहां तक आक्षेपित निर्णय में दर्ज अन्य निष्कर्षों का सवाल है, मैं पाता हूं कि श्रम न्यायालय द्वारा लिया गया यह दृष्टिकोण कि प्रतिवादी-कर्मकार की सेवाओं की समाप्ति उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन के प्रावधानों के विपरीत थी, श्रम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अभिलेखों पर साक्ष्य के मद्देनजर किसी भी अवैधता या विकृति से ग्रस्त नहीं है। (पैरा 49)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. कार्यकारी अभियंता (कर्नाटक राज्य बनाम के सोमसेट्टी एवं अन्य, 1997 (5) सुप्रीम कोर्ट प्रकरण 434 में प्रतिवेदित
2. देस राज वगैरह बनाम पंजाब राज्य व अन्य, एआईआर 1988 सुप्रीम कोर्ट 1182 में प्रतिवेदित
3. बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए. राजप्पा और अन्य, 1978 (2) सुप्रीम कोर्ट प्रकरण 213 में प्रतिवेदित

4. उ0प्र0 राज्य जरिए सचिव सिंचाई बनाम मोहम्मद रईस, 2021 (169) एफएलआर 520 में प्रतिवेदित

5. उ0प्र0 राज्य एवं अन्य बनाम उत्तम सिंह, एआईआर 2021 सुप्रीम कोर्ट 3909 में प्रतिवेदित

6. अध्यक्ष, टाउन एरिया एवं अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य, 2013 (11) एडीजे 197 में प्रतिवेदित

7. कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम रवि कुमार 2009 (13) एससीसी 746 में प्रतिवेदित

8. हरियाणा स्टेट कोऑपरेशन लैंड डेवलपमेंट बैंक बनाम नीलम 2005 (5) एससीसी 91 में प्रतिवेदित

9. भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भूरूमल, 2014 (7) एससीसी 177 में प्रतिवेदित

10. सहायक अभियंता, राजस्थान स्टेट कृषि विपणन बोर्ड, उपमंडल, कोटा बनाम, मदन लाल, (2013) 14 एससीसी 543 में प्रतिवेदित

11. नगर महापालिका बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य, 2006 (5) एससीसी 127 में प्रतिवेदित

12. नगर परिषद, सुजानपुर बनाम सुरिंदर कुमार, 2006 (5) एससीसी 173 में प्रतिवेदित

13. हरियाणा स्टेट इलेक्ट्रॉनिक्स डेवलपमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम मामनी, 2006 (9) एससीसी 434 में प्रतिवेदित

14. उत्तरांचल वन विकास निगम बनाम एमसी जोशी, 2007 (9) एससीसी 353 में प्रतिवेदित

15. गाजियाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य, 2008 (4) एससीसी 261 में प्रतिवेदित

16. दूरसंचार जिला प्रबंधक बनाम केशव देब, 2008 (8) एससीसी 402 में प्रतिवेदित

17. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड 2009 (15) एससीसी 327 में प्रतिवेदित

18. उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता 2009 (16) एससीसी 562 में प्रतिवेदित

19. भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम मान सिंह, 2012 (1) एससीसी 558 में प्रतिवेदित

20. वरिष्ठ अधीक्षक टेलीग्राफ (यातायात), भोपाल बनाम संतोष कुमार सील एवं अन्य, 2010 (6) एससीसी 773 में प्रतिवेदित

21. सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम व अन्य बनाम गीतम सिंह, 2013 (5) एससीसी 136 में प्रतिवेदित

22. उ0प्र0 राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय एवं अन्य 2017 (7) एडीजे 393 में प्रतिवेदित

23. नगर महापालिका बनाम उ0प्र0 राज्य, एआईआर 2006 एससी 2113

24. सीता राम बनाम मोती लाल नेहरू किसान प्रशिक्षण संस्थान, एआईआर 2008 एससी 1955

25. वरिष्ठ अधीक्षक, टेलीग्राफ (यातायात) भोपाल बनाम संतोष कुमार सील एवं अन्य , एआईआर 2010 एससी 2140 में प्रतिवेदित

26. प्रभारी अधिकारी बनाम शंकर शेट्टी, जे.टी. 2010(9) एस.सी. 262 में प्रतिवेदित

27. मंडल इंजीनियर, दूरसंचार, झांसी बनाम पीठासीन अधिकारी एवं अन्य 2011 (4) एडीजे, 199

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, बरेली (इसके बाद "श्रम न्यायालय" के रूप में संदर्भित) द्वारा 04.11.2015 को प्रकाशित 2006 के एडजुडिकेशन केस संख्या-77 (कार्यकारी अभियंता बनाम कृष्ण मुरारी शर्मा) में पारित दिनांक 01.04.2015 के पंचाट/अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

<u>मामले के तथ्य</u>

2. मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी-कामगार को 27.02.1985 को ट्यूबवेल ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया था और उसे ट्यूबवेल संख्या-106 अधकाता, बरेली में ड्यूटी सौंपी गई थी। उन्हें सहायक अभियंता द्वारा जारी आदेश दिनांक 30.07.1985 के तहत उक्त ट्यूबवेल का प्रभार दिया गया था।

3. यह तर्क दिया जाता है कि कामगार ने अक्टूबर, 1990 तक कर्तव्यों का पालन किया, लेकिन अचानक, उसकी सेवाओं को नवंबर, 1990 में बिना किसी कारण का खुलासा किए और उसे छंटनी मुआवजा दिए बिना समाप्त कर दिया गया। कामगार ने इस मुद्दे को उठाया और अंततः, इस मामले को राज्य सरकार द्वारा श्रम न्यायालय, बरेली को भेज दिया गया, जहां इसे विवाद के निर्णय के लिए एडजुडिकेशन केस संख्या-77 वर्ष 2006 (कार्यकारी अभियंता बनाम कृष्ण मुरारी शर्मा) के रूप में पंजीकृत किया गया था कि क्या 23.11.1990 से कर्मकार कृष्ण मुरारी शर्मा की सेवाओं की समाप्ति कानूनी है और, यदि नहीं, तो कर्मकार किस राहत/लाभ/क्षतिपूत का हकदार है?

4. श्रम न्यायालय द्वारा प्रतिद्वंदी पक्षों को जारी नोटिसों के अनुसरण में कर्मकार ने अपना उत्तर दाखिल करते हुए कहा कि उसे कार्यालय आदेश संख्या-12/84/85 के तहत नियुक्त किया गया था, जिसे पत्र संख्या-944/1/u0l0o0/दिनांक 27.02.1985 के रूप में क्रमांकित किया गया था और प्रारंभ में उसे प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था और ट्यूबविल संख्या-106 अधकटा बरेली पर नियुक्त किया गया था। आगे यह भी कहा गया कि सहायक अभियंता द्वारा जारी आदेश संख्या-523, दिनांक 30.07.1985 और आगे पत्र संख्या-200, दिनांक 30.07.1985 के तहत कामगार को उपरोक्त ट्यूबवेल का पूरा प्रभार दिया गया था; उनकी सेवाएं प्रकृति में पूर्णकालिक थीं और उन्होंने अधिकारियों की पूर्ण संतुष्टि के साथ काम किया था। आगे यह तर्क दिया गया कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन और नियम 42 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए, वर्ष 1990 में कामगार की सेवाओं को अचानक समाप्त कर दिया गया था। तदनुसार, कामगार ने प्रार्थना की कि उसे पूर्ण पारिश्रमिक और सेवाओं में निरंतरता के साथ उसके पद पर बहाल किया जाए। कामगार ने लिखित दलीलें भी दायर कीं।

5. दूसरी ओर, नियोक्ता (अधिशासी अभियंता) ने श्रम न्यायालय के समक्ष अपना जवाब

प्रस्तुत करते हुए कहा कि कामगार को विशुद्ध रूप से अस्थायी आधार पर 299/- रुपये के मासिक मानदेय पर नियुक्त किया गया था, जिसका उल्लेख सेवा समझौते की शर्तों में ही किया गया था। अप्रैल, 1990 में सेवाओं की समाप्ति पर उत्तर में कोई विवाद नहीं था, और यह तर्क दिया गया था कि चूंकि सरकार ने अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के कैडर को एक मृत कैडर के रूप में घोषित किया था, इसलिए कामगार किसी भी राहत के लिए हकदार नहीं था। यह तर्क दिया गया था कि विभाग "उद्योग" की परिभाषा में नहीं आता था और इसलिए, यह मामला उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों द्वारा आच्छादित नहीं किया गया था।

श्रम न्यायालय के समक्ष साक्ष्य

6. पक्षों ने अपने संबंधित मामलों के समर्थन में साक्ष्य का नेतृत्व किया। रिट याचिका के साथ एक रोकड़ बही संलग्न की गई है जिससे पता चलता है कि कामगार को विभाग द्वारा नियुक्त किया गया था और उसे वेतन/मानदेय का भुगतान किया गया था। कामगार ब०सा०-1 के रूप में प्रकट हुआ और अपने मौखिक साक्ष्य में अपने रुख को दोहराया, साथ ही उसके द्वारा किए गए कार्यों और गतिविधियों की प्रकृति को भी समझाया। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी सेवाओं की समाप्ति के बाद से, वह बेरोजगार थे और अन्य व्यक्तियों पर निर्भर थे। उन्होंने रिकॉर्ड पर मौजूद दस्तावेजों को भी साबित किया, जिसमें वेतन रजिस्टर आदि शामिल थे।

7. एक सुशील शर्मा, सहायक अभियंता की विभाग द्वारा जांच की गई, जिन्होंने कहा कि समझौते के अनुसार कामगार की सेवाएं विशुद्ध रूप से अंशकालिक थीं, जिन्हें 30.09.1989 तक बढ़ाया गया था और उक्त समझौते को आगे नहीं बढ़ाया गया था। उक्त गवाह ने कर्मकार की सेवाएं समाप्त करने से पहले उसे नोटिस भेजने/तामील करने के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की थी। विभाग की ओर से लिखित तर्क भी दायर किए गए थे, जिसमें कहा गया था कि संदर्भ उनकी सेवाओं की समाप्ति के बाद वर्ष 2005 में 15 साल की लंबी देरी के बाद किया गया था; कि प्रतिपक्षी को कामगार नहीं माना जा सकता और सिंचाई विभाग "उद्योग" की परिभाषा में नहीं आता है और इसलिए, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधान लागू नहीं होते थे और परिणामस्वरूप, संदर्भ खारिज करने योग्य था।

पंचाट/अधिनिर्णय

8. श्रम न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार करने के बाद और संबंधित पक्षों को सुनने के बाद, दिनांक 01.04.2015 को आक्षेपित अधिनिर्णय पारित किया जिसमें कहा गया था कि 23.11.1990 से कामगार की सेवाओं की समाप्ति अनुचित और अवैध थी और कामगार को संदर्भ की तारीख से पंचाट/अधिनिर्णय के प्रवर्तन तक की अवधि के लिए पूरा वेतन प्राप्त करने का हकदार माना गया था।

रिट याचिका की मूल संरचना

9. रिट याचिका मूल रूप से इस दलील पर स्थापित की गई है कि सिंचाई विभाग कार्यकारी अभियंता (कर्नाटक राज्य बनाम के

सोमसेट्टी और अन्य) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार "उद्योग" नहीं है, जिसे 1997 में खारिज कर दिया गया था (5) सुप्रीम कोर्ट केस 434; संदर्भ 16 साल की देरी के बाद किया गया था; और, इसलिए, कामगार किसी भी राहत का हकदार नहीं है। श्रम न्यायालय ने सबूतों पर ठीक से विचार नहीं किया है; उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के अनुसार, कामगार की बहाली के मामले में मुआवजे का भुगतान आवश्यक परिणाम नहीं है और इसलिए कानून की नजर में बहाली का आदेश खराब/त्रुटिपूर्ण है। (बहाली की दलील पंचाट/अधिनिर्णय के विपरीत है क्योंकि पंचाट के तहत बहाली का आदेश नहीं दिया गया था)।

<u>जवाबी हलफनामा</u>

10. प्रतिवादी-कामगार की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि उसकी सेवाओं की समाप्ति उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों, विशेष रूप से धारा 6-एन के विपरीत थी; कि कामगार ने 240 दिनों से अधिक समय तक काम किया था और इसलिए, दावा की गई राहत का हकदार है। श्रम न्यायालय द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय पारित करते समय तथ्यों के निष्कर्षों को अभिलिखित किया गया है, जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। जहां तक सिंचाई विभाग के संबंध में "उद्योग" की परिभाषा के संबंध में रिट याचिका में भरोसा किए गए कानून का संबंध है, ए.आई.आर. 1988 उच्चतम न्यायालय 1182 और बैंगलोर वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा और अन्य में रिपोर्ट किए गए देस राज आदि बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2) उच्चतम न्यायालय के मामले 213 में रिपोर्ट किए गए, मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है,

<u>प्रत्युत्तर हलफनामा</u>

11. याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका में लिए गए रुख को दोहराते हुए एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें 29.07.1985 के आदेश की एक प्रति अनुलग्नक संख्या-आरए-1 के रूप में प्रत्युत्तर हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-आरए-1 के रूप में संलग्न है, जिसमें प्रतिवादी-कामगार की सेवाओं की शर्तों को सूचीबद्ध किया गया है, विशेष रूप से यह खुलासा करते हुए कि 30.09.1989 के बाद, कामगार की सेवाएं स्वतः समाप्त हो जाएंगी और यह विस्तार सेवाओं को 01.10.1988 से 30.09.1989 तक दिया गया था। 30.09.1988 को उनकी सेवाओं की समाप्ति के बाद से उन्हें अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में फिर से नियुक्त किया गया था।

12. मैंने याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य के स्थायी अधिवक्ता श्री धनंजय सिंह और प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र कुमार श्रीवास्तव को सुना है।

<u>याचिकाकर्ता की दलील</u>

13. याचिकाकर्ता की ओर से स्थायी अधिवक्ता का तर्क यह है कि चूंकि, सिंचाई विभाग "उद्योग" की परिभाषा के भीतर नहीं आता है, जैसा कि कार्यकारी अभियंता (कर्नाटक राज्य) (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय

द्वारा निर्धारित किया गया है, न केवल संदर्भ, बल्कि आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय भी अवैध है क्योंकि यह मामला उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के प्रावधानों द्वारा आच्छादित नहीं किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी-कामगार की सेवाएं विशुद्ध रूप से अंशकालिक प्रकृति की थीं, जो 1989 के बाद संचालित होना बंद हो गईं और इसलिए, सेवाओं की शर्तों के अनुसार समाप्ति एक स्वचालित परिणाम थी और इसलिए, प्रतिवादी-कामगार की सेवाओं को समाप्त करने में कोई अवैधता नहीं है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि संदर्भ बहुत देर से चरण में किया गया था, अर्थात 15-16 वर्षों की अवधि के बाद और इसलिए, कामगार किसी भी राहत के लिए हकदार नहीं है।

<u>प्रतिवादी-कामगार का तर्क</u>

14. विपरीतता: प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र कुमार श्रीवास्तव ने देस राज आदि (उपरोक्त) और बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड (उपरोक्त) के मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के अनुपात को विस्तृत रूप से समझाया है और उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में सचिव सिंचाई बनाम मोहम्मद अली खान के माध्यम से इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए विस्तार से बताया है। रईस, 2021 (169) एफएल.आर. 520 में रिपोर्ट किया गया के आधार पर उन्होंने तर्क दिया है कि सिंचाई विभाग एक उद्योग है या नहीं ताकि यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों को आकर्षित किया जा सके, इस मुद्दे को पहले ही पूर्वोक्त प्राधिकरणों में सुलझा लिया गया है और इसलिए, इसके विपरीत राज्य का तर्क अस्वीकार्य है।

<u>प्रतिद्वंद्वी तर्कों का विश्लेषण</u>

15. आगे बढ़ने से पहले, सिंचाई विभाग पर 1947 के अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता के बारे में विभिन्न प्राधिकरणों में निर्धारित कानून का उल्लेख करना आवश्यक है।

16. इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में सचिव सिंचाई बनाम मोहम्मद रईस के माध्यम से 2021 (169) एफएल.आर. 520 में पैराग्राफ 5, 7, 8, 9, 10 और 11 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"5. प्रतिपक्षी संख्या-1 की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण का खंडन करते हुए ए.आई.आर. 1988 उच्चतम न्यायालय 1182 में रिपोर्ट किए गए देस राज बनाम पंजाब राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है कि सिंचाई विभाग जैसे सरकारी विभाग को पहले ही 'उद्योग' शब्द के दायरे में आने के लिए अवधारित किया गया है, लेकिन बाद में के. सोमा सेट्टी (उपरोक्त) के मामले में दिया गया निर्णय उपरोक्त दो निर्णयों पर ध्यान दिए बिना पारित किया गया है, जो इसलिए प्रबल होना चाहिए। अधिवक्ता ने ए.आई.आर. 1986 उच्चतम न्यायालय 458 में रिपोर्ट किए गए अमेरिकन एक्सप्रेस इंटरनेशनल बैंकिंग कारपोरेशन के कामगार बनाम अमेरिकन एक्सप्रेस इंटरनेशनल बैंकिंग कारपोरेशन के प्रबंधन के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर

भी भरोसा किया है कि 240 दिनों की सेवा की गणना के प्रयोजनों के लिए, सप्ताहांतों और अन्य राजपत्रित अवकाशों को ध्यान में रखा जाना अपेक्षित है। अधिवक्ता ने गंगा सरन बनाम सिविल जज, हापुड़ में ए.आई.आर. 1991 इलाहाबाद 114 में दिए गए इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर भी भरोसा किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच संघर्ष के मामले में, जिसमें समान विधि निर्णय शामिल हैं, संबंधित उच्च न्यायालय को निर्णय का पालन करना चाहिए जो समय सीमा के बावजूद विस्तृत और सटीक रूप से कानून निर्धारित करता प्रतीत होता है। अधिवक्ता ने कार्यकारी अभियंता, यवंतमाल मध्यम परियोजना प्रभाग और अन्य बनाम भारत संघ में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एकल न्यायाधीश के फैसले पर भी भरोसा किया। माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय उच्चतम न्यायालय के विरोधाभासी निर्णयों पर विचार करने के बाद सिंचाई विभाग के एक 'उद्योग' होने के संबंध में देस राज (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का पालन किया है।

.....

7. जैसा कि ऊपर बताया गया है, देस राज (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विशेष सरकार का सिंचाई विभाग 1947 के अधिनियम के संदर्भ में एक उद्योग होगा। उक्त निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न अन्य निर्णयों को ध्यान में रखा गया है, विशेष रूप से बंगलौर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा में दिए गए संविधान पीठ के निर्णय को ध्यान में रखा गया है, जो (1978)2 एस.सी.सी. 213 में रिपोर्ट किया गया है। इसके विपरीत, के. सोमा सेट्टी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए बाद के निर्णय ने देस राज (उपरोक्त) और बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णयों का विज्ञापन नहीं किया है।

8. के. सोमा सेट्टी (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय की तुलना में देश राज (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि देश राज (उपरोक्त) के मामले में सिंचाई विभाग को उद्योग की परिभाषा के भीतर माना गया है जबकि के. सोमा सेट्टी का निर्णय अन्यथा है। इस प्रकार, दो निर्णयों में, जो समन्वय पीठ के हैं, स्पष्ट विरोधाभास है।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समन्वय शक्ति की पीठों द्वारा दिए गए परस्पर विरोधी निर्णयों में पालन किए जाने वाले कानून के प्रस्ताव पर गंगा सरन (उपरोक्त) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ में चर्चा की गई है। संबंधित पहलू पर विचार करने के बाद पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

7. निर्णय की एक पंक्ति यह है कि यदि उच्चतम न्यायालय के दो फैसलों में कोई टकराव है, तो जो निर्णय बाद के समय पर होगा, वह उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। निर्णयों की दूसरी पंक्ति यह है कि यदि समान प्राधिकरणों से युक्त सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच कोई संघर्ष होता है, तो समय की घटना एक प्रासंगिक कारक नहीं है

और उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करने के लिए प्रतीत होता है।

8. इसी तरह की स्थिति मेसर्स इंडो स्विस टाइम लिमिटेड, डूंडाहेड़ा बनाम उमराव, ए.आई.आर. 1981 पुंज एंड हर 213 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष उद्भूत हुई। उक्त मामले में पूर्ण पीठ ने जो कहा वह नीचे दिया गया है (आकाशवाणी के पीपी 219-220 पर):

अब यह तर्क कि एक समन्वय पीठ के नवीनतम निर्णय का यांत्रिक रूप से पालन किया जाना है और किसी अन्य विचार के बावजूद इसकी श्रेष्ठता होनी चाहिए, मेरे लिए खुद की सिफारिश नहीं करता है। जब उच्चतर न्यायालय के निर्णय समान न्यायपीठों के होते हैं और इसलिए, मिलान अधिकार के होते हैं, तो उनके वजन को अनिवार्य रूप से तर्क और बुद्धि द्वारा माना जाना चाहिए, न कि उस समय और तारीख की केवल आकस्मिक परिस्थितियों से, जिस पर उन्हें प्रदान किया गया था। यह स्पष्ट है कि जब उच्च न्यायालय और समान अधिकार के दो सीधे परस्पर विरोधी निर्णय मौजूद होते हैं तो वे दोनों निचली अदालतों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते हैं। अनिवार्य रूप से एक विकल्प, हालांकि एक मुश्किल है, ऐसी स्थिति में बनाया जाना है। सिद्धांत रूप में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो कानून को अधिक विस्तृत और सटीक रूप से निर्धारित करता प्रतीत होता है। समय की घटना मात्र कि क्या उच्चतर न्यायालय की सह-समान पीठों के निर्णय पहले बाद में हैं, एक विचार है जो मुझे शायद ही प्रासंगिक लगता है।

इस निर्णय का अनुसरण विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम नगर निगम, ए.आई.आर. 1988 बॉम्बे 9 के मामले में बॉम्बे हाईकोर्ट ने किया था। पूर्ण पीठ में अधिकांश न्यायाधीशों ने माना कि यदि समान पीठों के दो निर्णयों के बीच कोई विरोधाभास था, जो संभवतः सामंजस्य नहीं कर सकता है, तो अदालतों को उस निर्णय का पालन करना चाहिए जो उन्हें कानून को सटीक और विस्तृत रूप से बताता है। हम मैसर्स इंडो स्विस टाइम लिमिटेड बनाम भारत संघ और हरियाणा के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। उमराव, (ए.आई.आर. 1981 पुंज एंड हर 213) (उपरोक्त) खासकर जब उच्चतम न्यायालय ने कमरूद्दीन के मामले (1990 इला० डब्ल्यूसी 308) (उपरोक्त) का फैसला करते हुए यूपी संशोधन को एस.115, सीपीसी में यूपी संशोधन और उच्चतम न्यायालय के पहले के फैसले पर ध्यान नहीं दिया।

10. पूर्वोक्त पहलू पर बॉम्बे उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा भी विचार किया गया है जिसमें देस राज (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का पालन किया गया है:

"13. उद्योग की सभी अवधारणाओं पर विचार करने और विभिन्न परीक्षणों की समीक्षा

करने के बाद, जिन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि परीक्षण बैंगलोर जल आपूर्ति मामले (उपरोक्त) में निर्धारित किए गए थे। संप्रभु और शाही कार्य की अवधारणा को मुख्य वन संरक्षक (उपरोक्त) में समझाया गया था। शीर्ष न्यायालय ने पैरा-13 में विशेष रूप से इस तर्क को खारिज कर दिया कि कल्याणकारी गतिविधियां संप्रभु कार्यों में हिस्सा लेती हैं, इस आधार पर कि यदि ऐसा दृष्टिकोण लिया गया तो यह बैंगलोर जल आपूर्ति के मामले में उसके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को नष्ट कर देगा। यह देखते हुए कि कल्याणकारी गतिविधियाँ संप्रभु कार्यों में भाग लेती हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने सब-डिवीजनल इंस्पेक्टर ऑफ पोस्ट, वैकम और अन्य (उपरोक्त) में इस पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न उदाहरणों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून यह है कि कल्याणकारी गतिविधियां आवश्यक रूप से संप्रभु कार्यों में शामिल नहीं होती हैं। अधिशासी अभियंता, कर्णाटक राज्य में भारत संघ बनाम जय नारायण सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय पर भरोसा किया गया था। भारत संघ बनाम जय नारायण सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने केवल यह नोट किया है कि केन्द्रीय भूजल बोर्ड कोई उद्योग नहीं है। उस निर्णय से यह समझना संभव नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसा करने के क्या कारण थे। जिस अन्य निर्णय पर भरोसा किया गया वह हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम सुरेश कुमार वर्मा और अन्य (उपरोक्त) है। इस तथ्य और निर्धारित कानून के अवलोकन पर ऐसा नहीं लगता कि यह मुद्दा, कोई विशेष विभाग उद्योग था या नहीं, मुद्दा था। मुद्दा यह था कि क्या अस्थायी प्रकृति के कर्तव्य निभाने वाले कर्मचारियों को पदों पर नियुक्त किया गया था और उनकी नियुक्तियां किसी पद पर नियुक्ति में दैनिक वेतन के आधार पर की गई थीं। शीर्ष अदालत ने कहा कि ऐसी नियुक्तियां पदों पर नियुक्ति नहीं थीं और इसलिए उन्हें किसी भी काम में फिर से शामिल करने या मौजूदा रिक्तियों के लिए उन्हें नियुक्त करने का कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता था। इस प्रकार अधिशासी अभियंता, कर्नाटक राज्य (उपरोक्त) में निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जिन दो निर्णयों पर भरोसा किया गया था, उनमें कहीं भी यह परीक्षण नहीं किया गया है कि सिंचाई विभाग को उद्योग की परिभाषा से बाहर क्यों रखा जाए। जैसा कि पहले बताया गया है, यहां तक कि सब-डिविजनल इंस्पेक्टर ऑफ पोस्ट, वैकम और अन्य के मामले पर भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला में विचार किया गया था और निर्णय के पैराग्राफ 10 में इसकी व्याख्या की गई थी। उसके बाद, यह बैंगलोर जल आपूर्ति में निर्धारित परीक्षणों को लागू करने के लिए आगे बढ़ा, और उसने देस राज बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के पहले के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित परीक्षणों पर विचार किया था, जिसकी परिणति बैंगलोर जल आपूर्ति (उपरोक्त) के फैसले में हुई और उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सिंचाई विभाग आईडी अधिनियम की धारा 2(जे) के अर्थ के भीतर उद्योग की परिभाषा के भीतर आता है। इसलिए, मेरी सुविचारित राय है कि देशराज के मामले में निर्धारित दृष्टिकोण

कानून की दृष्टि से बेहतर है और इसलिए देस राज के मामले में यह दृष्टिकोण है जिसका पालन करना होगा। एक बार ऐसा हो जाने के बाद, और जैसा कि मैंने पहले ही निर्धारित किया है, पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग के काम और याचिकाकर्ताओं की ओर से दायर लिखित प्रस्तुतियों सहित इस न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री से पता चलता है कि महाराष्ट्र राज्य के सिंचाई विभाग द्वारा शुरू की गई परियोजनाएं पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग के समान या समान कार्यों का निर्वहन कर रही हैं। इसलिए, यह इस प्रकार है कि सिंचाई विभाग की परियोजनाएं या महाराष्ट्र राज्य से जुड़े कार्य, उसी परीक्षण पर जो देस राज के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लागू किए गए थे, आईडी अधिनियम की धारा 2 (जे) के उद्देश्य के लिए एक उद्योग की परिभाषा के भीतर आएंगे।

11. प्रस्तुत मामले में उक्त कारकों के लागू होने पर, यह स्पष्ट है कि देस राज (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है कि क्या सरकार का सिंचाई विभाग उद्योग की परिभाषा के भीतर आएगा या नहीं। बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड (उपरोक्त) में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ के फैसले पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच गया है कि सरकार का सिंचाई विभाग उद्योग की परिभाषा के भीतर आएगा।

17. उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम उत्तम सिंह के मामले में, ए.आई.आर. 2021 उच्चतम न्यायालय 3909 में पैराग्राफ 10 और 11 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"10. हमने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि अपने 13 लंबे वर्षों के रोजगार के दौरान और इससे पहले अपीलकर्ताओं को अपना बकाया पाने के लिए 6 साल की अवधि के लिए लड़ने के बाद, प्रतिवादी के पिता को भी एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया था, सामान्य रूप से एक पहलू जो उस व्यक्ति से जुड़ा होगा जिसके पास नियमित रोजगार था। सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यदि प्रतिवादी के पिता को नियमित नियुक्त व्यक्ति नहीं माना गया होता, तो विभाग के लिए चुनाव ड्यूटी करने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग को अपनी सेवाएं देने का कोई अवसर नहीं होता, जो केवल एक सरकारी कर्मचारी द्वारा ही किया जा सकता था, जैसा कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 की धारा 159 के तहत निर्दिष्ट है। ("कुछ अधिकारियों के कर्मचारियों को चुनाव कार्य के लिए उपलब्ध कराया जाना है")।

11. इस प्रकार प्रस्तुत मामला वह है जो अपने दिए गए तथ्यात्मक परिदृश्य में विशिष्ट है जिसकी हमने ऊपर चर्चा की है और इस प्रकार सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, यह एक नियमित रिक्ति के खिलाफ नियुक्ति का मामला है। प्रतिवादी के पिता को अपीलकर्ताओं के उपरोक्त आचरण द्वारा एक नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता था, भले ही

उन्हें पार्ट टाइम ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में लेबल किया गया था।

18. इस न्यायालय ने अध्यक्ष, टाउन एरिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में, 2013 (11) एडीजे 197 में पैराग्राफ 14 में निम्नानुसार रिपोर्ट किया:

"14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत परिभाषित अभिव्यक्ति 'उद्योग' के सही अर्थ और आयात के संबंध में, बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा और अन्य, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 548 में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की शुद्धता पर कॉयर बोर्ड में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संदेह किया गया है। एर्नाकुलम, कोचीन और अन्य बनाम इंदिरा देवी थाना-और अन्य, (1998) 3 एस.सी.सी. 259 और आगे उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जय बीर सिंह (2005) 5 एस.सी.सी. पृष्ठ 1 और बैंगलोर जल आपूर्ति मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को बड़ी बेंच को भेजा गया है। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय को इंगित नहीं कर सके इसलिए, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि शीर्ष न्यायालय द्वारा पहले लिया गया दृष्टिकोण अभी भी अच्छा कानून है और इसे अब तक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही आक्षेपित नहीं किया जा सका है। तदनुसार, इस संबंध में इस अदालत द्वारा कोई अलग राय नहीं दी जा सकती है।

19. इसलिए, प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण यह है कि एक बार उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने पहले ही पूर्वोक्त प्राधिकरणों में यह निर्णय दे दिया है कि सिंचाई विभाग और उक्त विभागों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के आधार पर समान प्रकृति के विभाग भी 'उद्योग' की परिभाषा के अंतर्गत आएंगे और, इसके अलावा, एक बार जब प्रतिवादी को याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में एक कर्मचारी के रूप में माना जाता था, तो श्रम न्यायालय द्वारा विवाद के निर्णय में कोई त्रुटि नहीं बताई जा सकती है और उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधान पूरी तरह से लागू थे।

20. मुझे प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों में सार मिलता है जैसा कि देस राज बनाम भारत संघ के मामले में है। पंजाब राज्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के पहले के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित परीक्षणों पर विचार किया था, जिसकी परिणति बैंगलोर जल आपूर्ति (उपरोक्त) के फैसले में हुई और उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सिंचाई विभाग आईडी अधिनियम की धारा 2 (जे) के अर्थ के भीतर उद्योग की परिभाषा के भीतर आता है। यह माना गया कि देस राज के मामले में लिया गया दृष्टिकोण कानून की दृष्टि से बेहतर था और इसलिए देस राज के मामले में यह दृष्टिकोण है जिसका पालन करने का निर्देश दिया गया था। एक बार यह माना गया था कि पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग का कार्य और संबंधित याचिकाकर्ताओं की ओर से दायर लिखित प्रस्तुतियों सहित सुप्रीम कोर्ट के समक्ष रखी गई सामग्री कि महाराष्ट्र राज्य का सिंचाई विभाग पंजाब राज्य के सिंचाई विभाग के समान या समान कार्यों का निर्वहन कर रहा था, यह माना गया कि सिंचाई विभाग की परियोजनाएं या महाराष्ट्र राज्य से जुड़े कार्य,

उन्हीं परीक्षणों पर जो देस राज के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लागू किए गए थे, आईडी अधिनियम की धारा 2 (जे) के उद्देश्य के लिए एक उद्योग की परिभाषा के भीतर आएंगे।

21. उपर्युक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, राज्य का पहला तर्क कि सिंचाई विभाग "उद्योग" की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है या 1947 के अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं, इसमें कोई बल नहीं है और एतद्द्वारा खारिज किया जाता है। यहां तक कि, श्रम न्यायालय ने भी आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय में देस राज और आदि (उपरोक्त) और अन्य विधि निर्णयों के मामले में निर्णयों पर भरोसा करने के बाद यही व्याख्या की है। मुझे इस संबंध में श्रम न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं लगती।

22. राज्य-याचिकाकर्ता के दूसरे तर्क के रूप में कि प्रतिवादी-कामगार को अंशकालिक आधार पर नियुक्त किया गया था और उसकी सेवाओं की स्वचालित समाप्ति हुई थी, मैंने रिट याचिका में आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय का अवलोकन किया है, और मुझे लगता है कि श्रम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता-विभाग द्वारा प्रतिवादी कामगार की सेवाओं की शर्तों को प्रदर्शित करने वाला कोई दस्तावेज दायर नहीं किया गया था। श्रम न्यायालय ने यह भी कहा है कि इस तथ्य के बावजूद कि कामगार ने विभाग से संबंधित दस्तावेज मंगवाए थे, बाद में उन्हें प्रस्तुत नहीं किया। इसलिए, ब०सा०-1 की मौखिक गवाही पर भरोसा करते हुए, जिसमें 523 दिनांक 30.07.1985 और 200 दिनांक 30.07.1985 के रूप में क्रमांकित नियुक्ति पत्रों/आदेशों का संदर्भ भी दिया गया था, प्रतिवादी-कामगार की सेवाओं की प्रकृति के बारे में याचिकाकर्ता-विभाग का तर्क स्वीकार नहीं किया गया था।

23. इस संबंध में, मैं भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के प्रावधानों का उल्लेख करना उचित समझता हूं। यह एक प्रावधान है जिसमें न्यायालय किसी भी कार्यवाही में निष्कर्ष निकाल सकता है जिसमें किसी भी पक्ष के अनुकूल या प्रतिकूल निष्कर्ष शामिल हैं। धारा 114 प्रासंगिक उदाहरण (जी) के साथ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"114. न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मान सकता है। - न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व को मान सकता है जो उसे लगता है कि होने की संभावना है, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में प्राकृतिक घटनाओं, मानव आचरण और सार्वजनिक और निजी व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम के संबंध में।

<u>व्याख्या:</u>

न्यायालय मान सकता है-

(क) से (च) .....

(छ) वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रस्तुत नहीं किया जाता है, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है;

24. प्रस्तुत मामले में, प्रतिवादी-कामगार की सेवाओं की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए, प्रत्युत्तर हलफनामे के अनुलग्नक आरए-1 पर भरोसा किया गया है, हालांकि उक्त दस्तावेज श्रम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के रिकॉर्ड

का हिस्सा नहीं था। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के प्रावधानों के मद्देनजर, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, उक्त दस्तावेज राज्य-याचिकाकर्ता को उत्प्रेषण रिट में कोई लाभ प्रदान नहीं कर सकता है, जिसके द्वारा श्रम न्यायालय के पंचाट/अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है, जो संबंधित पक्षों द्वारा पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है। जाहिर है, प्रत्युत्तर हलफनामे के लिए अनुलग्नक आरए-1, कार्यवाही के रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं था। इसलिए, प्रतिवादी की सेवा की प्रकृति के बारे में राज्य का दूसरा तर्क एतद्द्वारा खारिज किया है।

25. याचिकाकर्ता का तीसरा तर्क इस आशय का है कि चूंकि संदर्भ 16 साल की भारी देरी के बाद किया गया था और इसलिए, बकाया मजदूरी के साथ बहाली उचित नहीं थी, विशेष रूप से, जब यह इंगित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि कामगार कहीं भी लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था।

26. इस संबंध में, मैंने ब०सा०-1 की मौखिक गवाही का अवलोकन किया है, जिसने स्पष्ट रूप से कहा था कि उसकी सेवाओं की समाप्ति के बाद, वह कहीं भी नौकरी नहीं पा सकता था और पूरी तरह से बेरोजगार था और दूसरों पर निर्भर था। इसके अलावा, मैं पाता हूं कि प्रतिवादित अधिनिर्णय के अंतर्गत बहाली का आदेश नहीं दिया गया है और जो दिया गया है वह केवल कर्मकार को दिया गया पिछला वेतन/वेतन है। इसलिए, यह तर्क कि बहाली खराब है, प्रस्तुत मामले में पारित निर्णय के विपरीत है।

27. जहां तक लाभकारी रोजगार का संबंध है, कामगार के बयान पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वह लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था।

28. कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम रवि कुमार में 2009 (13) एस.सी.सी. 746 में रिपोर्ट किया गया, विवाद के संदर्भ की मांग में लंबे समय तक देरी ने संदर्भ को पुराना/बासी बना दिया और उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इसे श्रम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाना चाहिए था। उस मामले में चौदह साल बाद संदर्भ मांगा गया था।

29. हरियाणा राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक बनाम नीलम में 2005 (5) एस.सी.सी. 91 में रिपोर्ट किया गया, के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बहाली की राहत से इनकार करने के लिए श्रम न्यायालय से संपर्क करने में सात साल की देरी को प्रासंगिक कारक माना।

30. 2014 (7) एस.सी.सी. 177 में रिपोर्ट किए गए भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भुरूमल में, यह माना गया है कि पूर्ण बैक-वेज के साथ बहाली की राहत, जब समाप्ति अवैध पाई जाती है, सभी मामलों में यांत्रिक रूप से नहीं दी जानी चाहिए। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 25 एफ के उल्लंघन में किए गए दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी की बर्खास्तगी के मामले में यह माना गया था कि बैकवेज के साथ बहाली स्वचालित नहीं थी और इसके बजाय कामगार को मौद्रिक मुआवजा दिया जाना चाहिए।

अनुवादित

31. सहायक अभियंता, राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, उपमंडल, कोटा बनाम मदन लाल के मामले में उच्चतम न्यायालय (2013) 14 एस.सी.सी. 543 में रिपोर्ट किया गया, इस विषय पर कानून पर विचार करने के बाद, माना कि हालांकि सीमा अधिनियम ऐसे मामलों पर लागू नहीं होता है, फिर भी विवाद को उठाने में देरी एक महत्वपूर्ण परिस्थिति है और श्रम न्यायालय को विवेक का प्रयोग करने से पहले विचार करना चाहिए, भले ही दूसरी तरफ आपत्ति उठाई गई हो या नहीं उठाई गई हो।

32. इसके अलावा सहायक अभियंता, राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, उप-प्रभाग, कोटा बनाम मोहन लाल के मामले में (2013) 14 एस.सी.सी. 543 इसी तरह की परिस्थितियों में, एक सरकारी प्रतिष्ठान में एक मस्टर रोल कर्मचारी जो एक बारह कैलेंडर महीने की अवधि में उसकी नियुक्ति से पहले पाया गया था कि 286 दिनों के लिए काम किया है और जिसके मामले में औद्योगिक विवाद छह साल बाद उठाया गया था, जो पुन नियुक्ति का हकदार नहीं पाया गया था और केवल एक लाख रुपये क्षति पूर्ति दिया गया था।

33. नगर महापालिका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में 2006, (5) एस.सी.सी. 127 में, यह उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन के प्रावधानों का अनुपालन न करना (यह प्रावधान मोटे तौर पर धारा 25-एफ के साथ समरूप है), हालांकि, कामगार के पक्ष में पूर्ण बैक वेतन और सेवा की निरंतरता के साथ बहाली की राहत प्रदान करता है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि इस तरह की राहत स्वचालित रूप से या निश्चित रूप से दी जानी चाहिए। इस बात पर जोर दिया गया कि श्रम न्यायालय को राहत प्रदान करने में अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

34. नगर परिषद, सुजानपुर बनाम सुरिंदर कुमार में सर्वोच्च न्यायालय ने 2006 (5) एस.सी.सी. 173 में रिपोर्ट किया, उपरोक्त कानूनी स्थिति को दोहराया। यह एक ऐसा मामला था जिसमें श्रम न्यायालय ने कर्मकार को पूर्ण बकाया मजदूरी के साथ सेवा में बहाली प्रदान की थी क्योंकि सांविधिक उपबंधों का पालन नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा पंचाट/अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया गया था। हालांकि, अदालत ने बहाली के बदले मौद्रिक मुआवजा दिया।

35. हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम लिमिटेड में ममनी ने नगर महापालिका (उपरोक्त) के बाद 2006 (9) एस.सी.सी. 434 में रिपोर्ट की, उच्चतम न्यायालय ने माना कि धारा 25 एफ का उल्लंघन होने के कारण कामगार को दी गई बहाली उचित नहीं थी और यह निर्देश देकर बहाली के आदेश को संशोधित किया कि कामगार को बहाली के आदेश के बजाय

25,000 रुपये की राशि का भुगतान करके मुआवजा दिया जाएगा।

36. उत्तरांचल वन विकास निगम बनाम एमसी जोशी 2007 (9) एस.सी.सी. 353 में रिपोर्ट किया गया था, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 6-एन के प्रावधानों के उल्लंघन में 24.11.1991 को सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। उन्होंने समाप्ति के आदेश से पहले बारह महीने की अवधि में 240 दिनों का निरंतर कार्य पूरा किया था। कामगार ने दिनांक 02-09-1996 को अथवा उसके आसपास, अर्थात् लगभग पांच वर्षों की अवधि के बाद मध्यस्थता अधिकारी से संपर्क किया। श्रम न्यायालय ने कामगार एमसी जोशी को 50% वापस मजदूरी के साथ बहाली की राहत दी। निगम द्वारा दायर रिट याचिका में, बहाली की दिशा को बनाए रखा गया था लेकिन बैक वेज को 50% से घटाकर 25% कर दिया गया था। उच्चतम न्यायालय ने 75,000 रुपये की राशि के मुआवजे द्वारा बहाली के पंचाट/अधिनिर्णय को प्रतिस्थापित किया।

37. गाजियाबाद विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम अशोक कुमार और अन्य 2008(4) एस.सी.सी. 261] में, सर्वोच्च न्यायालय इस सवाल से चिंतित था कि क्या श्रम न्यायालय उस कामगार के पक्ष में बहाली की राहत देने में न्यायसंगत था जिसने दो साल तक दैनिक मजदूर के रूप में काम किया था। उनकी बर्खास्तगी को उ0प्र0 औद्योगिक विवाद अधिनियम का उल्लंघन माना गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि श्रम न्यायालय को सेवा में कामगार की बहाली का निर्देश नहीं देना चाहिए था और बहाली के आदेश के स्थान पर 50,000/- रुपये का मुआवजा देना चाहिए था

38. दूरसंचार जिला प्रबंधक बनाम केशब देब में, 2008 (8) एस.सी.सी. 402 में रिपोर्ट किया गया, दैनिक मजदूर की बर्खास्तगी को धारा 25-एफ के प्रावधानों के उल्लंघन सहित विभिन्न आधारों पर अवैध ठहराया गया था। न्यायालय ने बहाली के आदेश के स्थान पर 1,50,000/- रुपये का मुआवजा दिया।

39. जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड 2009 (15) एस.सी.सी. 327 में रिपोर्ट, कामगार ने 01.09.1995 से 18.07.1996 तक दैनिक मजदूर के रूप में काम किया था और उसे बकाया मजदूरी के साथ बहाली के बदले 50,000 रुपये का मुआवजा दिया गया था।

40. सर्वोच्च न्यायालय के बाद के तीन निर्णयों का उल्लेख करना भी आवश्यक है, अर्थात् उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम लक्ष्मी कांत गुप्ता 2009 में रिपोर्ट किया गया (16) एस.सी.सी. 562, भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम मान सिंह 2012 में रिपोर्ट किया गया (1) एस.सी.सी. 558 और वरिष्ठ अधीक्षक टेलीग्राफ (यातायात), भोपाल बनाम संतोष कुमार सील और अन्य, 2010 में रिपोर्ट किया गया (6)

एस.सी.सी. 773, जहां ऊपर चर्चा किए गए मामलों के अनुरूप दृष्टिकोण लिया गया है। संतोष कुमार सील (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध रूप से छंटनी किए गए प्रत्येक कामगार को 40,000 रुपये का मुआवजा दिया क्योंकि वे लगभग 25 साल पहले दैनिक मजदूरों के रूप में लगे हुए थे और मुश्किल से दो या तीन साल काम करते थे। यह माना गया कि बहाली की राहत को उचित नहीं कहा जा सकता है और इसके बजाय मौद्रिक मुआवजा दिया गया।

41. सहायक अभियंता, राजस्थान विकास निगम और अन्य बनाम गीतम सिंह के मामले में 2013 (5) एस.सी.सी. 136] में रिपोर्ट किया गया, उच्चतम न्यायालय ने ऊपर उद्धृत अधिकांश मामलों पर विचार करने पर श्रम न्यायालय द्वारा न्यायिक विवेक के प्रयोग के बारे में सिद्धांत को दोहराया, जहां कामगार की समाप्ति को अवैध माना जाता है, धारा 25-एफ के उल्लंघन में यह मानते हुए कि श्रम न्यायालय को नियुक्ति की विधि और तरीका, रोजगार की प्रकृति, सेवा अवधि, जिस आधार पर बर्खास्तगी को रद्द किया गया है और औद्योगिक में राहत प्रदान करने से पहले औद्योगिक विवाद को उठाने में विलंब सहित सभी संगत कारकों को ध्यान में रखना है।

42. उपरोक्त विधि निर्णयों पर इस न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय के मामले में अपने निर्णय में विचार किया गया है और 2017 (7) एडीजे 393 में रिपोर्ट किया गया है।

43. इसके अलावा, कई प्राधिकरणों में उच्चतम न्यायालय जिनमें से कुछ नीचे उल्लेख कर रहे हैं माना गया है कि यदि समाप्ति आदेश में एकमात्र दोष औद्योगिक विवाद अधिनियम (या यूपीआईडी अधिनियम की धारा 6 एन) की धारा 25 एफ द्वारा आवश्यक छंटनी मुआवजे का भुगतान नहीं करना है, तो हमेशा पूर्ण बैक मजदूरी के साथ बहाली का निर्देश देना आवश्यक नहीं है और ऐसी स्थिति में अधिक बार उचित राहत नहीं हो सकती है समेकित क्षतिपूर्ति/हर्जाना, विशेष रूप से जब नियोक्ता सरकारी या सरकारी एजेंसी हो और नियुक्ति से पहले प्रासंगिक नियमों का पालन नहीं किया गया हो।

- नगर महापालिका वि. उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2113
- हरियाणा राज्य इलेक्ट्रॉनिक्स विकास निगम मामनी, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2427
- सीता राम बनाम मोती लाल नेहरू किसान प्रशिक्षण संस्थान, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 1955
- जगबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड & अन्य, ए.आई.आर 2009-एससी 2004

44. ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 2140 में रिपोर्ट किए गए वरिष्ठ अधीक्षक, टेलीग्राफ (यातायात) भोपाल बनाम संतोष कुमार सील और अन्य में, यह माना गया है कि यदि दैनिक मजदूरों ने 2 या 3 साल तक काम किया था और उनकी सेवाओं को छंटनी मुआवजे के भुगतान के बिना समाप्त कर दिया गया था, तो उन्हें समेकित हर्जाना दिया जाना चाहिए (उक्त मामले में प्रत्येक कामगार को

40,000/ यह भी माना गया है कि दैनिक वेतन भोगी किसी पद पर नहीं है और उसे स्थायी कर्मचारी के बराबर नहीं माना जा सकता है। इस विचार को जेटी 2010 (9) एस.सी. 262 में रिपोर्ट किए गए प्रभारी अधिकारी बनाम शंकर शेट्टी में दोहराया गया है।

45. उपरोक्त अधिकारियों पर इस न्यायालय द्वारा 2011(4) एडीजे, 199: डिवीजनल इंजीनियर, टेलीकॉम, झांसी बनाम पीठासीन अधिकारी और अन्य में रिपोर्ट किए गए अपने फैसले में विचार किया गया है।

46. न्यायालय मामले के एक पहलू को नजरअंदाज नहीं कर सकता है। प्रस्तुत मामले में, श्रम न्यायालय ने कामगार को उसकी सेवाओं में बहाल करने का निर्देश नहीं दिया है। यदि कामगार ऐसी राहत देने से व्यथित था, तो वह पंचाट/अधिनिर्णय को चुनौती दे सकता था, लेकिन यह स्वीकार किया कि उसने इसे चुनौती नहीं दी और न ही उसने बहाली से राहत का दावा किया है। बहस के दौरान भी, प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस स्तर पर वह केवल पंचाट/अधिनिर्णय का समर्थन कर रहा है, जिसके तहत संदर्भ की तारीख से लेकर पंचाट/अधिनिर्णय के प्रवर्तन तक केवल बकाया मजदूरी प्रदान की गई है। इसलिए, यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि श्रम न्यायालय ने वर्ष 1990 से भी बकाया मजदूरी का पंचाट/अधिनिर्णय नहीं दिया, जब प्रतिवादी-कामगार की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं, लेकिन इसे संदर्भ की तारीख से प्रदान किया गया है। इसलिए, प्रस्तुत मामले में 15-16 साल की देरी, प्रतिवादी-कामगार, जिसने हालांकि बहाली का दावा किया, के दावे के लिए घातक नहीं है, लेकिन उसे इससे वंचित कर दिया गया है। मैं नहीं समझता कि वर्ष 2005 के बाद से बकाया मजदूरी का आवंटन विलंब से विफल हो जाएगा, जो उन मामलों में एक कारक हो सकता है, जहां बकाया मजदूरी के साथ बहाली का आदेश दिया गया है, क्योंकि प्रस्तुत मामले में न तो अधिनिर्णय के तहत या अधिनिर्णय के लिए कामगार द्वारा चुनौती दिए जाने के अभाव में बहाली का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

47. यहां तक कि श्रम न्यायालय ने आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय के ऑपरेटिव हिस्से के ठीक ऊपर स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि कामगार ने कहा था कि उसने 15 साल की अवधि में काम नहीं किया था और उसने नियोक्ता से मौखिक अनुरोध किया था कि उसे ड्यूटी पर ले जाए, लेकिन इस संबंध में कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया। इसलिए, श्रम न्यायालय ने यह विचार किया है कि कामगार संदर्भ देने की तारीख तक बकाया मजदूरी पाने का हकदार नहीं था। चूंकि उक्त इनकार को कामगार द्वारा रिट याचिका दायर करके या अन्यथा चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए मैं मामले के तथ्यों की समग्रता में उक्त निष्कर्षों की वैधता या अवैधता की जांच नहीं कर सकता।

48. इसलिए, संदर्भ बनाने में देरी के आधार पर राज्य-याचिकाकर्ता के तीसरे तर्क में भी कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

49. जहां तक आक्षेपित अधिनिर्णय में दर्ज अन्य निष्कर्षों का संबंध है, मुझे लगता है कि श्रम न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि प्रतिवादी-कामगार की सेवाओं की समाप्ति उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन के प्रावधानों के विपरीत थी, श्रम न्यायालय के समक्ष पेश किए गए रिकॉर्ड पर साक्ष्य के मद्देनजर किसी भी अवैधता या विकृति से ग्रस्त नहीं है।

50. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, मुझे आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय में कोई अवैधता या विकृति नहीं मिलती है। रिट याचिका विफल होती है और तदनुसार खारिज की जाती है।

51. प्रतिवादी-कामगार संदर्भ की तारीख से इस तरह के आवेदन को प्रस्तुत करने की तारीख तक प्रभावी रूप से आक्षेपित पंचाट/अधिनिर्णय के तहत दिए गए बैकवेज/वेतन की गणना देकर सक्षम न्यायालय/प्राधिकरण के समक्ष उचित आवेदन प्रस्तुत करेगा। न्यायालय/प्राधिकरण नियोक्ता को प्रतिवादी-कामगार को आक्षेपित अधिनिर्णय के तहत देय बकाया मजदूरी/वेतन की गणना/आंकलन प्रस्तुत करने के लिए कहेगा। इसकी गणना/आंकलन करते समय, पिछली मजदूरी/वेतन में सभी वेतनवृद्धियां, जो कामगार को हकदार होतीं, संदर्भ की तारीख से संपूर्ण बैक-मजदूरी/वेतन के पंचाट/अधिनिर्णय में भी जोड़ी जाएंगी।

52. प्रतिवादी कामगार द्वारा इस तरह के आवेदन को प्रस्तुत करने पर, न्यायालय/प्राधिकरण लाभ जारी करने का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित करेगा, इसलिए गणना की गई और प्रतिवादी-कामगार को इस तरह के आवेदन को प्रस्तुत करने की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर भुगतान किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 1885

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती. साधना रानी (ठाकुर),

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 45327/2019

ललित कुमार ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री सुरेश चंद्र पांडे

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री राम चन्द्र उत्तम, श्री विनय कुमार त्रिपाठी

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482.- धारा 406 आईपीसी के तहत संपूर्ण कार्यवाही चुनौती के अंतर्गत - आरोप - आवेदक ने बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया- न ही उसने पैसा वापस किया - जांच के बाद अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई - विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर विरोध याचिका- अनुमति दी गई - आगे की जांच-फिर से एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई - दूसरी विरोध याचिका को शिकायत के रूप में माना गया, आवेदक को धारा 406 आईपीसी के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया। बी. आवेदक ने धारा 468 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन प्रस्तुत किया। - 23.05.2011 की

घटना के संबंध में शिकायत 23.06.2014 को पंजीकृत की गई - 11.03.2016 को संज्ञान लिया गया - धारा 406 आईपीसी के तहत अधिकतम सजा - 3 वर्ष - शिकायत दर्ज करने के तीन साल बाद संज्ञान नहीं लिया जा सकता - शिकायत का पंजीकरण और संज्ञान का आदेश दोनों - समय पाबंद।

सी. धारा 473 दं0प्र0सं0 - इसमें वर्णित कुछ मामलों में सीमा की अवधि का विस्तार- अदालत को सीमा की अवधि की समाप्ति के बाद अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है- यदि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संतुष्ट है- देरी को ठीक से समझाया गया है या न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है- तत्काल मामले में एफआईआर समय के भीतर दर्ज की गई थी, विपक्षी सं। 2 लगातार उक्त मामले की कार्यवाही में व्यस्त था, उसकी ओर से कोई ढिलाई नहीं थी- विपक्षी सं. 2 धारा 473 दं0प्र0सं0 के आधार पर सीमा की अवधि के विस्तार के लाभ के लिए हकदार है- प्रार्थना पत्र खारिज।

अभिनिर्धारित:

दं0प्र0सं0 की धारा 468 के प्रावधानों को देखें तो यह धारा सीमा अवधि बीत जाने के बाद संज्ञान लेने पर रोक से संबंधित है। बेशक, आवेदक को धारा 406 आईपीसी के तहत अपराध के लिए ट्रायल का सामना करने के लिए बुलाया गया है, जिसमें अधिकतम सजा 3 साल की कैद या जुर्माना या दोनों है। इस धारा के अनुसार अपराध 3 साल तक की कैद से दंडनीय है और मामले में संज्ञान लेने की सीमा अवधि भी 3 साल है। केवल इस प्रावधान के आधार पर , आवेदक प्रार्थना करता है कि अपराध वर्ष 2011 का है, शिकायत 23.6.2014 को दर्ज की गई है और संज्ञान वर्ष 2016 में लिया गया है, इसलिए शिकायत और संज्ञान दोनों ही समय बीत चुके हैं।

दं0प्र0सं0 की धारा 473 को देखें तो यह उसमें वर्णित कुछ मामलों में सीमा अवधि के विस्तार से संबंधित है। दं0प्र0सं0 की इस धारा 473 के तहत न्यायालय को सीमा अवधि समाप्त होने के बाद अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है, यदि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संतुष्ट है कि देरी को उचित रूप से समझाया गया है या न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है। भारत दामोदर काले अन्य बनाम सेंट ऑफ आंध्र प्रदेश (2003) 8 एससीसी 559 के फैसले का हवाला देते हुए विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में 11.3.2016 को संज्ञान लिया गया था और पुनरीक्षण अदालत ने 15.7.2017 के आदेश द्वारा उक्त आदेश की पुष्टि की। दं0प्र0सं0 की धारा 473 यदि न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संतुष्ट है, तो सीमा अवधि के विस्तार का प्रावधान है। भारत दामोदर काले (पूर्वोक्त) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह सीमा केवल शिकायत दर्ज करने के लिए है, संज्ञान लेने के लिए नहीं। 23.5.2011 की कार्रवाई के कारण के संबंध में, धारा 156 (3) दं0प्र0सं0 के तहत एक आवेदन के आधार पर, 17.9.2011 को एफआईआर दर्ज की गई थी। इस प्रकार, यह माना जाएगा कि प्रक्रिया समय के भीतर शुरू की गई है, इसलिए, कार्यवाही को समय बाधित नहीं कहा जा सकता है।

अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि समय पर एफआईआर दर्ज कराने के बाद विपक्षी संख्या 2 को दो अंतिम रिपोर्ट का सामना करना पड़ा तथा उसके बाद दो विरोध याचिकाएं दाखिल करनी पड़ी। उनकी दूसरी विरोध याचिका 23.6.2014 को शिकायत के रूप में दर्ज की गई। उन्हें शिकायत में धारा 200 तथा 202 दं0प्र0सं0 के तहत साक्ष्य भी प्रस्तुत करने थे तथा अंततः न्यायालय ने 11.3.2016 के आदेश के तहत संज्ञान लिया। इससे पता चलता है कि विपक्षी संख्या 2 लगातार उक्त मामले की कार्यवाही में व्यस्त था। उसकी ओर से कोई ढिलाई नहीं बरती गई। न्यायालय की राय में विपक्षी संख्या 2 धारा 473 दं0प्र0सं0 के आधार पर सीमा अवधि विस्तार का लाभ पाने का हकदार है।

प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

भारत दामोदर काले एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2003) 8 एससीसी 559

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर) द्वारा प्रदत्त)

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता तथा विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

इस आवेदन को दायर करते हुए, विद्वान एसीजेएम, न्यायालय संख्या 4, मथुरा द्वारा अपराध संख्या 2171/2014, नंद किशोर बनाम ललित कुमार, के मामले में पारित आदेश दिनांक 24.12.2018 और 11.3.2016 तथा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 25/2019, ललित कुमार बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, मथुरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.9.2019 को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है। आईपीसी की धारा 406 के तहत मुकदमा संख्या 2171/2014, पुलिस स्टेशन हाईवे जिला मथुरा की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की भी प्रार्थना की गई है।

मामले के तथ्यों के अनुसार 17.9.2011 को विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा आवेदक ललित कुमार के खिलाफ आईपीसी की धारा 406 और 420 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि विपक्षी पक्षकार संख्या 2 और आवेदक ने मौखिक रूप से आवेदक के दो भूखंडों को विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को बेचने के लिए सहमति व्यक्त की थी। विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए दिनांक 23.5.2011 निर्धारित की गई थी। विक्रय विलेख के लिए निर्धारित की गई तिथि पर आवेदक को 2 लाख रुपए की पूरी राशि अग्रिम रूप से दे दी गई थी। सभी स्टाम्प पेपर आवेदक के नाम से खरीदे गए थे। उसी दिन दस्तावेज भी बनवाए गए और रजिस्ट्री ऑफिस में जमा भी करवाए गए। लेकिन रजिस्ट्री के समय आवेदक भाग गया। इस प्रकार, आरोप यह है कि उचित विचार करने और सभी दस्तावेज तैयार करने के बाद, आवेदक ने न तो बिक्री विलेख निष्पादित किया और न ही विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को पैसा वापस किया और इस प्रकार, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के साथ धोखाधड़ी की।

आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत

आवेदन के आधार पर, यह एफआईआर दिनांक 17.9.2011 को दर्ज हो सकी। जांच के बाद दिनांक 15.10.2021 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। विपक्षी पक्ष संख्या 2 की विरोध याचिका पर एफआईआर खारिज कर दी गई और आगे की जांच की गई लेकिन फिर से अंतिम रिपोर्ट दायर की गई। विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के दूसरी बार विरोध करने पर, इसे शिकायत माना गया और दिनांक 11.3.2016 के आदेश द्वारा आवेदक को आईपीसी की धारा 406 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया।

दिनांक 17.8.2017 को आवेदक ने सीआरपीसी की धारा 468 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया कि 23.5.2011 की घटना के बाद 23.6.2014 को शिकायत पंजीकृत की गई है, और 11.3.2016 को संज्ञान लिया गया है और आवेदक को केवल आईपीसी की धारा 406 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत अधिकतम सजा तीन वर्ष का साधारण कारावास है। इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के तीन साल बाद भी उनके मामले में संज्ञान नहीं लिया जा सका। शिकायत भी घटना के तीन वर्ष बाद दर्ज की गई है, इस प्रकार, शिकायत का पंजीकरण और संज्ञान का आदेश दोनों ही समयबद्ध हैं।

विद्वान ए.सी.जे.एम., न्यायालय संख्या 4, मथुरा द्वारा पारित दिनांक 11.3.2016 के आदेश के अनुसार, आवेदक को भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया था। आवेदक का आवेदन पत्र 13-बी अस्वीकृत कर दिया गया। उक्त आदेश के विरूद्ध ए.सी.जे.एम., न्यायालय संख्या 4, मथुरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.12.2018 के तहत पुनरीक्षण भी दिनांक 30.9.2019 को खारिज कर दिया गया। दोनों अदालतों ने गलत तरीके से उनके आवेदन/पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और सीआरपीसी की धारा 468 के तहत उनकी दलील पर विचार नहीं किया, इसलिए, उपर्युक्त तीनों आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

तथापि, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि दिनांक 23.5.2011 को विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था। दिनांक 23.5.2011 की घटना के सम्बन्ध में विपक्षी पक्षकार संख्या 2 ने दिनांक 26.7.2011 को सम्बन्धित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को प्रार्थना पत्र दिया था। बाद में, सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत इस आवेदन के आधार पर, दिनांक 17.9.2011 को एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

पुलिस द्वारा जांच के बाद दो बार अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गई और विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को दोनों अंतिम रिपोर्टों के खिलाफ विरोध याचिकाएं दायर करनी पड़ीं। उनकी दूसरी विरोध याचिका को शिकायत के रूप में पंजीकृत किया गया और केवल सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत बयान दर्ज करने के बाद, आवेदक के खिलाफ 11.3.2016 को संज्ञान लिया गया। इस प्रकार विपक्षी पक्षकार संख्या 2 लगातार मामले का विरोध कर रहा था। यदि प्रक्रिया में लंबा समय लगता है, तो आवेदक को इस देरी के लिए दंडित नहीं किया

जा सकता है, इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

यदि हम सीआरपीसी की धारा 468 के प्रावधानों पर गौर करें तो यह धारा सीमा अवधि बीत जाने के बाद संज्ञान लेने पर रोक से संबंधित है। निस्संदेह, आवेदक को भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है, जिसमें अधिकतम सजा 3 वर्ष कारावास या जुर्माना के साथ कारावास या दोनों है। इस धारा के अनुसार अपराध के लिए 3 वर्ष तक के कारावास का प्रावधान है तथा मामले में संज्ञान लेने की परिसीमा अवधि भी 3 वर्ष है। इस प्रावधान के आधार पर ही आवेदक ने प्रार्थना की है कि अपराध वर्ष 2011 का है, शिकायत दिनांक 23.6.2014 को पंजीकृत की गई तथा संज्ञान वर्ष 2016 में लिया गया है, अतः शिकायत और संज्ञान दोनों ही समयबाधित हैं।

यदि हम सीआरपीसी की धारा 473 को देखें तो यह इसमें उल्लिखित कुछ मामलों में सीमा अवधि के विस्तार से संबंधित है। सीआरपीसी की धारा 473 के तहत न्यायालय को सीमा अवधि की समाप्ति के बाद भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है, यदि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संतुष्ट है कि विलंब का उचित कारण बताया गया है या न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है। **भारत दामोदर काले अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2003) 8 एससीसी 559** के निर्णय का हवाला देते हुए, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में दिनांक 11.3.2016 को संज्ञान लिया गया तथा पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 15.7.2017 के आदेश द्वारा उक्त आदेश की पुष्टि की। यदि न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संतुष्ट हो तो सीआरपीसी की धारा 473 में सीमा अवधि के विस्तार का प्रावधान है। **भारत दामोदर काले** (उपरोक्त) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि यह सीमा केवल शिकायत दर्ज करने के लिए है, संज्ञान लेने के लिए नहीं। दिनांक 23.5.2011 के वाद के सम्बन्ध में, सीआरपीसी की धारा 156(3) के अन्तर्गत आवेदन के आधार पर, दिनांक 17.9.2011 को एफआईआर दर्ज की गई। इस प्रकार, यह माना जाएगा कि प्रक्रिया समय के भीतर शुरू की गई है, इसलिए कार्यवाही को समयबाधित नहीं कहा जा सकता।

रिकार्ड के अवलोकन से यह पता चलता है कि समय पर एफआईआर दर्ज कराने के बाद विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को दो अंतिम रिपोर्टों का सामना करना पड़ा तथा उसके बाद दो विरोध याचिकाएं दायर करनी पड़ीं। उनकी दूसरी विरोध याचिका 23.6.2014 को शिकायत के रूप में दर्ज की गई। उन्हें शिकायत में सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत साक्ष्य भी प्रस्तुत करने थे और अंततः अदालत ने 11.3.2016 के आदेश के तहत संज्ञान लिया। इससे पता चलता है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 2 लगातार उक्त मामले की कार्यवाही में व्यस्त था। उनकी ओर से कोई लापरवाही नहीं बरती गई। न्यायालय की राय में विपक्षी पक्षकार संख्या 2 सीआरपीसी की धारा 473 के आधार पर सीमा अवधि के विस्तार का लाभ पाने का हकदार है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान प्रेम लता एवं अन्य बनाम

राजस्थान राज्य एवं अन्य मामले में पारित निर्णय की ओर आकर्षित करते हुए सीआरपीसी की धारा 468 के आधार पर अपने तर्क का लाभ प्राप्त करने का दावा किया कि शिकायत दर्ज की गई थी और अपराध के कथित तौर पर घटित होने के 5 वर्ष से अधिक समय बाद शिकायत पर संज्ञान लिया गया था, लेकिन यदि हम इस निर्णय को देखें, तो यह पाया जाता है कि इस मामले के तथ्यों के अनुसार शिकायत दर्ज करने और संज्ञान लेने के बीच 12 वर्षों का विलंब हुआ था और इस विलंब के लिए शिकायतकर्ता को जिम्मेदार ठहराया गया था, जिसने अपनी विरोध याचिका के समर्थन में कोई गवाह पेश नहीं किया था, लेकिन वर्तमान मामले में स्थिति भिन्न है। यहां विलम्ब का कारण विपक्षी पक्षकार संख्या 2/शिकायतकर्ता को नहीं बताया जा रहा है, बल्कि यह विलम्ब इस लम्बी प्रक्रिया के कारण हुआ है, जो मामले की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण अपनाई गई थी, इसलिए आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को उनके द्वारा दायर इस निर्णय का लाभ नहीं मिल सकता है।

उपरोक्त आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रार्थना किए गए दिनांक 11.3.2016, 24.12.2018 और 30.9.2019 के आदेशों को रद्द करने का कोई आधार मौजूद नहीं है।

सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन में कोई मेरिट नहीं होने के कारण इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1889

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 41462/2022

ब्रिजेश कुमार तिवारी@पंकज ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: डॉ. सी.पी. उपाध्याय

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री दीपक दुबे

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन की स्थिरता के संबंध में आपत्ति -उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज करने के आदेश के खिलाफ - आवेदक ने दावा किया कि उपरोक्त मामले की पूरी कार्यवाही को चुनौती दी गई है-इसलिए धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन स्थिरता योग्य है-आम तौर पर, उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज करने के आदेश को आपराधिक पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी जाएगी - अपवादजनक मामले-ऐसे आदेशों को धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत भी चुनौती दी जा सकती है। - पूरी कार्यवाही को चुनौती दी गई है-इसलिए, धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन स्थिरता योग्य है। (पैरा 10)

अभिनिर्धारित:

उदाहरणों के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज करने के आदेश को आम तौर पर आपराधिक पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी जाएगी, लेकिन कुछ अपवादात्मक मामलों में ऐसे आदेशों को दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत भी चुनौती दी जा सकती है। जहां तक पूरी कार्यवाही को रद्द करने का सवाल है, इसे दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत चुनौती दी

जा सकती है, इस मामले में पूरी कार्यवाही को चुनौती दी गई है, जिसे आपराधिक पुनरीक्षण में नहीं देखा जा सकता है। एफआईआर के अनुसार, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है और आवेदक को आरोपी बनाया गया है और उसके खिलाफ आरोप पत्र पेश किया गया है। उन्मोचन प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया है और आरोप तय किया जाना है। आवेदक ने कई आधार लिए हैं कि उसका नाम केवल आरोपी मोहम्मद फारूक के इकबालिया बयान के आधार पर जांच के दौरान सामने आया है । शव/कंकाल घटना के तीन महीने बाद बरामद किया गया था। यह मृतक गोपाल से भी मेल नहीं खाता है। यह पता नहीं लगाया जा सका कि कंकाल पुरुष का था या महिला का। न तो कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य, न ही अंतिम बार देखा गया साक्ष्य और न ही पीएम रिपोर्ट उपलब्ध है। मोबाइल नंबर, मामले का आधार आवेदक के नाम पर नहीं है, जिसका फैसला केवल ट्रायल के दौरान ही किया जा सकता है और इसकी वैधता कुछ हद तक दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत देखी जा सकती है।

चूंकि आवेदक ने संबंधित आपराधिक मामले की संपूर्ण कार्यवाही की वैधता को भी चुनौती दी है, इसलिए यह आवेदन दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत विचारणीय है । (पैरा 10)

प्रार्थना को पोषणीय रखा गया। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र एवं अन्य मनु/एससी/0746/2012
2. गिरीश कुमार सुनेजा बनाम सीबीआई 2017 लॉ सूट (एससी) 685
3. विजय एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, मनु/एससी/1633/2016
4. शिला देवी बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य मनु/उ0प्र0/0649/2022
5. हरियाणा भूमि सुधार एवं विकास निगम लिमिटेड बनाम हरियाणा एवं अन्य 1990 एससीसी (आपराधिक) 515
6. संजय कुमार राय बनाम उ0प्र0 राज्य, और अन्य 2021 0 सुप्रीम (एससी) 242
7. एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीबीआई, (2018) 16 एससीसी 299
8. मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977) 4 एससीसी 551
9. होन्नाया टी.एच. बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2022 लॉ सूट (एससी) 950

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता डॉ. सी. पी. उपाध्याय, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता पंकज कुमार उपाध्याय को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. बहस की सुनवाई के समय इस याचिका की पोषणीयता के संबंध में एक आपत्ति अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा उठाई गई है कि चूंकि दिनांक 25.11.2022 के आदेश, जिसके द्वारा 19-बी डिस्चार्ज आवेदन को खारिज कर दिया गया है, को चुनौती दी गई है जो एक अंतिम आदेश है, इसलिए इस तरह के आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण दायर किया जा सकता है और धारा 482 द०प्र०स० के तहत याचिका पोषणीय नहीं है। इसके विपरीत अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि

चूंकि उपरोक्त मामले की पूरी कार्यवाही को भी चुनौती दी गई है, इसलिए 482 द०प्र०स० के तहत यह याचिका सुनवाई योग्य है। तर्क के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने निम्नलिखित उद्धरणों पर भरोसा किया है।

3. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर और अन्य मनु/एस.सी./0746/2012, पैरा-19 और 20 में, निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं: -

"19. इन दो प्रावधानों के तहत क्षेत्राधिकार के दायरे पर चर्चा करने के बाद, अर्थात, संहिता की धारा 397 और धारा 482 और क्षेत्राधिकार भेद की बारीक रेखा, अब हमारे लिए उन सिद्धांतों को सूचीबद्ध करना उचित होगा जिनके संदर्भ में अदालतों को इस तरह के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए। हालांकि, इस तरह के सिद्धांतों को सटीक रूप से बताना न केवल कठिन है, बल्कि स्वाभाविक रूप से असंभव है।

अधिक से अधिक और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण पर, हम क्षेत्राधिकार के उचित प्रयोग के लिए विचार किए जाने वाले कुछ सिद्धांतों को चुनने में सक्षम हैं, विशेष रूप से, संहिता की धारा 397 या धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में या एक साथ, जैसा भी मामला हो, आरोप को रद्द करने के संबंध में:

1) यद्यपि संहिता की धारा 482 के तहत न्यायालय की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, लेकिन इन शक्तियों को लागू करने में जितनी अधिक शक्ति, उतनी ही अधिक सावधानी और सतर्कता बरती जानी चाहिए। आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति, विशेष रूप से, संहिता की धारा 228 के संदर्भ में लगाए गए आरोप का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में।

2) न्यायालय को परीक्षण लागू करना चाहिए कि क्या मामले के रिकॉर्ड से किए गए अविवादित आरोप और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेज प्रथम दृष्टया अपराध को स्थापित करते हैं या नहीं। यदि आरोप इतने स्पष्ट रूप से बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है और जहां आपराधिक अपराध के मूल तत्व संतुष्ट नहीं हैं, तो अदालत हस्तक्षेप कर सकती है।

3) उच्च न्यायालय को अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस बात पर विचार करने के लिए साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता नहीं है कि क्या मामला आरोप तय करने या आरोप रद्द करने के चरण में दोषसिद्धि में समाप्त होगा या नहीं।

4) जहां न्याय की हानि को रोकने के लिए और कुछ गंभीर त्रुटि को ठीक करने के लिए इस तरह की शक्ति का प्रयोग नितांत आवश्यक है, जो ऐसे मामलों में भी अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा किया जा सकता है, उच्च न्यायालय को अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में अभियोजन पक्ष का गला घोंटने के लिए दहलीज पर हस्तक्षेप करने से घृणा करनी चाहिए।

5) जहां संहिता के किसी भी प्रावधान या किसी विशिष्ट कानून में ऐसी दीक्षा या संस्था के लिए एक स्पष्ट कानूनी रोक लागू है और ऐसी आपराधिक कार्यवाही जारी है, इस तरह के प्रतिबंध का उद्देश्य अभियुक्त को विशिष्ट सुरक्षा प्रदान करना है।

6) न्यायालय का कर्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और शिकायतकर्ता या अभियोजन पक्ष के अधिकार को अपराधी की जांच और मुकदमा चलाने के लिए संतुलित करे।

7) न्यायालय की प्रक्रिया को किसी परोक्ष या अंतिम/गुप्त उद्देश्य के लिए उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

8) जहां लगाए गए आरोप और जैसा कि वे रिकॉर्ड और दस्तावेजों से प्रकट होते हैं, मुख्य रूप से जन्म देते हैं और बिना किसी 'आपराधिकता के तत्व' के साथ एक 'सिविल गलत' का गठन करते हैं और आपराधिक अपराध के मूल अवयवों को संतुष्ट नहीं करते हैं, तो न्यायालय आरोप को रद्द करने में न्यायसंगत हो सकता है। ऐसे मामलों में भी, न्यायालय सबूतों के महत्वपूर्ण विश्लेषण पर जोर नहीं देगा।

9) एक और बहुत महत्वपूर्ण सावधानी जिसका न्यायालयों को पालन करना है, वह यह है कि यह निर्धारित करने के लिए रिकॉर्ड पर तथ्यों, सबूतों और सामग्रियों की जांच नहीं कर सकता है कि क्या पर्याप्त सामग्री है जिसके आधार पर मामला दोषसिद्धि में समाप्त होगा, न्यायालय मुख्य रूप से समग्र रूप से लिए गए आरोपों से संबंधित है कि क्या वे अपराध का गठन करेंगे और, यदि हां, तो क्या यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है जिससे अन्याय हुआ है।

10) यह न तो आवश्यक है और न ही अदालत को पूर्ण जांच करने या जांच एजेंसियों द्वारा एकत्र किए गए सबूतों की मूल्यांकन करने के लिए कहा जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि यह बरी होने या दोषसिद्धि का मामला है।

11) जहां आरोप एक नागरिक दावे को जन्म देते हैं और अपराध का कृत्य भी देते हैं, केवल इसलिए कि एक नागरिक दावा बनाए रखने योग्य है, इसका मतलब यह नहीं है कि एक आपराधिक शिकायत को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

धारा 228 और/या धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी अभियुक्त द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए दी गई बाहरी सामग्री पर विचार नहीं कर सकता है कि किसी अपराध का खुलासा नहीं किया गया था या उसके बरी होने की संभावना थी। अदालत को अभियोजन पक्ष द्वारा संलग्न रिकॉर्ड और दस्तावेजों पर विचार करना होगा।

13) एक आरोप को रद्द करना निरंतर अभियोजन के नियम का अपवाद है। जहां अपराध भी व्यापक रूप से संतुष्ट है, न्यायालय को उस प्रारंभिक चरण में रद्द करने के बजाय अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने के लिए अधिक इच्छुक होना चाहिए। न्यायालय से दस्तावेजों या अभिलेखों की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता तय करने की दृष्टि से अभिलेखों को मार्शल करने की उम्मीद नहीं है, लेकिन यह प्रथम दृष्टया बनाई गई राय है।

14) जहां संहिता की धारा 173(2) के तहत आरोप-पत्र, रिपोर्ट मौलिक कानूनी दोषों से ग्रस्त है, न्यायालय आरोप तय करने के लिए

अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर अच्छी तरह से हो सकता है।

15) उपरोक्त में से किसी एक या सभी के साथ युग्मित, जहां न्यायालय पाता है कि यह संहिता की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय का हित पक्षधर है, अन्यथा यह आरोप को रद्द कर सकता है। शक्ति का प्रयोग पूर्व न्यायोचित रूप से किया जाना है, अर्थात प्रशासन के लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए, जिसमें अकेले अदालतें मौजूद हैं।

{संदर्भ पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम स्वप्न कुमार गुहा और अन्य [ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 949]; माधवराव जीवाजी राव सिंधिया एवं अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे एवं अन्य [ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 709]; जनता दल बनाम एचएस चौधरी एवं अन्य [ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 892]; श्रीमती रूपन देओल बजाज और अन्य बनाम कंवर पाल सिंह गिल और अन्य [ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 309; जी सागर सूरी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 754]; अजय मित्रा बनाम मध्य प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 1069]; मेसर्स पेप्सी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य [ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 128]; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओपी शर्मा [(1996) 7 एस.सी.सी. 705]; गणेश नारायण हेगड़े बनाम एस। बंगारप्पा और अन्य [(1995) 4 एस.सी.सी. 41]; (क) क्या यह सच है कि भारत सरकार ने 10000 करोड़ रुपए के मामले में 10000 करोड़ रुपए की इक्कील। शरफुल हक एवं अन्य [ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 9]; मेसर्स मेडचल केमिकल्स एंड फार्मा (प्रा) लिमिटेड बनाम मेसर्स बायोलॉजिकल ई लिमिटेड और अन्य [ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 1869]; शेक्सन बेल्थिसर बनाम केरल राज्य और अन्य [(2009) 14 एस.सी.सी. 466]; वी.वी.एस. रामा शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य [(2009) 7 एस.सी.सी. 234]; चुंदरु शिव, राम कृष्ण और एक अन्य बनाम पेड्डी रवींद्र बाबू और एक अन्य [(2009) 11 एस.सी.सी. 203]; शिव नंदन पासवान बनाम बिहार राज्य और अन्य [ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 877]; बिहार राज्य और अन्य बनाम पीपी शर्मा और अन्य [ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1260]; लालमुनि देवी (श्रीमती) बनाम बिहार राज्य और अन्य [(2001) 2 एस.सी.सी. 17]; एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह और अन्य [(2001) 8 एस.सी.सी. 645]; सविता बनाम राजस्थान राज्य [(2005) 12 एस.सी.सी. 338]; और एसएम दत्ता बनाम गुजरात राज्य और अन्य [(2001) 7 एस.सी.सी. 659]}।

20. ये वे सिद्धांत हैं जिन्हें व्यक्तिगत रूप से और अधिमानतः संचयी रूप से (एक या अधिक) उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के तहत असाधारण और व्यापक पूर्णता और क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उपदेशों के रूप में माना जाता है। जहां किसी अपराध के लिए तथ्यात्मक आधार निर्धारित किया गया है, अदालतों को अनिच्छुक होना चाहिए और इस आधार पर भी कार्यवाही को रद्द करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए कि एक या दो

अवयवों का उल्लेख नहीं किया गया है या अपराध की आवश्यकताओं का पर्याप्त अनुपालन होने पर संतुष्ट नहीं हैं। इस स्तर पर, हम यह भी देख सकते हैं कि माधवराव जीवाजी राव सिंधिया (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत पर पुनर्विचार किया गया था और बिहार राज्य और अन्य बनाम श्री पी.पी शर्मा और अन्य [ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1260] और एम.एन दमानी बनाम एस.के सिन्हा और अन्य [ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 2037] के मामलों में इस न्यायालय के बाद के दो निर्णयों में समझाया गया था। बाद के फैसले में, न्यायालय ने कहा कि उस निर्णय ने सार्वभौमिक अनुप्रयोग के कानून की घोषणा नहीं की और आपराधिक इरादे के साथ या उसके बिना मुख्य रूप से नागरिक प्रकृति के मामलों से जुड़े विवादों से संबंधित सिद्धांत क्या था।"

4. गिरीश कुमार सुनेजा बनाम सीबीआई 2017 लॉ सूट (एस.सी.) 685, पैरा-28 और 29 से 34, 38 में:

28. हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि अपीलकर्ताओं के पास उनके लिए कोई उपाय उपलब्ध नहीं है। आदेश का पैराग्राफ-10 अपीलकर्ताओं को संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय से संपर्क करने से नहीं रोकता है। इसलिए जो कुछ हुआ है वह यह है कि अपीलकर्ताओं की शिकायत को व्यक्त करने का मंच उच्च न्यायालय से इस न्यायालय में स्थानांतरित हो गया है। एक अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि यह अपीलकर्ताओं के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह न्यायालय उच्च न्यायालय के विपरीत ऐसी याचिका को खारिज करते समय कारण बताने के लिए बाध्य नहीं है, जिसे पुनरीक्षण याचिका खारिज करने पर आवश्यक रूप से कारण बताना होगा। हमारी राय में, केवल यह तथ्य कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिका को बिना कारण बताए खारिज कर सकता है, जरूरी नहीं कि यह निष्कर्ष निकले कि कारण नहीं दिए जाएंगे या कुछ न्यायसंगत आदेश पारित नहीं किया जाएगा। अधिवक्ता की दलील का कोई आधार नहीं है और यह केवल एक अनुमान है कि यह न्यायालय क्या कर सकता है। हम एक ऐसी अधीनता को स्वीकार नहीं कर सकते हैं जिसकी नींव एक परिकल्पना पर आधारित हो।

29. यह हमें अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत करने के एक और पहलू की ओर ले जाता है कि जहां तक अपीलकर्ताओं का संबंध है, धारा 482 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही का अवसर भी वर्जित है। जैसा कि अमरनाथ मामले में कहा गया था और हम किस निष्कर्ष से सहमत हैं, यदि द०प्र०स० की धारा 397 (2) में निहित निषेध के कारण एक वादकालीन आदेश पुनरीक्षित नहीं है, तो सीआरएल अपील Nos._____/2017 आदि (@ एस.एल.पी (सी.आर.एल) संख्या-9503/2016 आदि) को धारा 482 द०प्र०स० का सहारा लेकर दरकिनार नहीं किया जा सकता है। इस प्रस्ताव पर शायद ही कोई गंभीर विवाद हो सकता है

34. एक चुनौती कितनी हास्यास्पद हो सकती है, इसका उदाहरण सेंटर फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया में दिया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने विशेष लोक अभियोजक या उसके सहायक अधिवक्ताओं की नियुक्ति को चुनौती देने के खिलाफ चेतावनी दी थी! जाहिर है, ये अभियुक्तों द्वारा मुकदमे में देरी करने के लिए नियोजित रणनीति हैं, जबकि संसद का प्रयास अभियुक्त को उत्पीड़न को रोकने के लिए सभी परीक्षणों में तेजी लाना है। इसने 14 (2012) 3 एस.सी.सी. 117 सी.आर.एल अपील Nos._____/2017 आदि (@ एस.एल.पी (सी.आर.एल) संख्या-9503/2016 आदि) में विषम स्थितियों को जन्म दिया है।

38. दण्ड प्रक्रिया संहिता निस्संदेह अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। जैसा कि हमारे द्वारा पहले ही चर्चा की जा चुकी है, धारा 397(2) द०प्र०स० के तहत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल अंतिम आदेशों और मध्यवर्ती आदेशों के संबंध में किया जाना है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग केवल दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत पारित आदेश को प्रभावी करने या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाना है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस शक्ति का प्रयोग केवल दुर्लभतम मामलों में ही किया जाना चाहिए और अन्यथा नहीं। यदि यह स्थिति है, और हमारा विचार है कि ऐसा है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 का सहारा लें। सीआरएल अपील Nos._____/2017 आदि (@ एसएलपी (सीआरएल) संख्या-9503/2016 आदि) शायद केवल सबसे असाधारण मामले में स्वीकार्य होगा। उच्च न्यायालय के संवैधानिक अधिकार क्षेत्र को लागू करने के लिए जब द०प्र०स० आरोपी व्यक्ति के लाभ के लिए निष्पक्ष और शीघ्र सुनवाई के हित में इसे प्रतिबंधित करता है, तो हमें इस प्रस्ताव को स्वीकार करना मुश्किल लगता है कि चूंकि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 एक आरोपी व्यक्ति के लिए उपलब्ध हैं, इसलिए इन प्रावधानों का सहारा उन मामलों में लिया जाना चाहिए जो दुर्लभतम से दुर्लभ नहीं हैं, लेकिन तुच्छ मुद्दों के लिए हैं।

5. विजय और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, मनु/एस.सी./1633/2016 में, यह धारा 420, 468, 506, 367 और 392 भ०द०वि० के तहत एक मामला था, जिसके पैरा-7 और 8 प्रासंगिक हैं, जो निम्नानुसार हैं: -

7. अधिवक्ता को सुनने के बाद और आक्षेपित आदेश का अवलोकन करने के बाद, हमारा यह सुविचारित विचार है कि प्रभु चावला [प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य, (2016) 16 एस.सी.सी. 30] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर उच्च न्यायालय के आदेश में कोई बल नहीं है। उपर्युक्त संदर्भित मामले में, धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड [धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 2 एस.सी.सी. 370: (2009)1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई) 806] और मोहित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [मोहित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2013)7

एस.सी.सी. 789: (2013)3 एस.सी.सी. (सीआरआई) 727] में इस न्यायालय की अलग-अलग राय को देखते हुए, इस मामले को इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखा गया था। तीन न्यायाधीशों की पीठ ने विचार किया कि धारा 482 द०प्र०स० एक 'गैर-बाधा खंड' के साथ शुरू होती है:

"482. उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का बचाना--इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश करने की अन्तर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हों।

चूंकि धारा 397 द०प्र०स० इंटरलोक्यूटरी के अलावा अन्य सभी आदेशों के खिलाफ लागू होती है, एक विपरीत दृष्टिकोण धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्तियों की उपलब्धता को केवल क्षुद्र वादकालीन आदेशों तक सीमित कर देगा! ऐसी स्थिति जो पूर्णतः अनुचित और अवांछनीय हो। तीन न्यायाधीशों की पीठ ने धारीवाल तंबाकू उत्पाद लिमिटेड [धारीवाल तंबाकू उत्पाद लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009)2 एस.सी.सी. 370: (2009)1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई)806] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की पुष्टि की है।

8. उपरोक्त स्थापित कानून के मद्देनजर, केवल वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता धारा 482 द०प्र०स० के तहत राहत को वंचित करने का आधार नहीं हो सकती है और इसके अलावा, हमें लगता है कि विद्वान न्यायाधीश ने किसी भी तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति की मूल्यांकन किए बिना, यांत्रिक तरीके से, आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है। तदनुसार, उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द किया जाता है और मामले को स्थापित कानूनी स्थिति के आलोक में पुनर्विचार के लिए उच्च न्यायालय को भेज दिया जाता है।

6. शिला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य मनु/यूपी/0649/2022 के मामले में निर्णय के पैरा-11 में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने माना है कि सत्र न्यायालय के पुनरीक्षण आदेश के विरुद्ध धारा 482 द०प्र०स० के तहत याचिका सुनवाई योग्य है।

7. उपरोक्त उद्धरणों के विपरीत प्रतिवादी के अधिवक्ता ने हरियाणा भूमि सुधार और विकास निगम लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य 1990 एस.सी.सी. (सीआरआई)515 पर भरोसा किया है, जिसमें यह माना गया है कि पुलिस रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्तों के निर्वहन का मजिस्ट्रेट का आदेश एक वादकालीन आदेश नहीं है। इसलिए इसे उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण द्वारा चुनौती दी जा सकती है।

अपर शासकीय अधिवक्ता ने निम्नलिखित उद्धरणों पर भरोसा किया है।

8. संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, और अन्य 2021 0 सुप्रीम (एस.सी.)242 में, इस मामले में आपराधिक पुनरीक्षण को उच्च

अप्रमाणित

न्यायालय द्वारा धारा 397 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र की कमी के आधार पर खारिज कर दिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि आरोप तय करने या निर्वहन से इनकार करने वाले आदेश न तो अंतःक्रियात्मक हैं और न ही अंतिम प्रकृति के हैं और धारा 397(2) द०प्र०स० के वर्जना से प्रभावित नहीं हैं। उच्च न्यायालय प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या व्यक्तिगत मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए अंतर्निहित क्षेत्राधिकार से ग्रस्त है। यह भी कहा गया कि डिस्चार्ज आवेदन पर विचार करते समय विचारण न्यायालय महज़ डाकघर के रूप में कार्य नहीं करेगा।

अदालत को यह पता लगाने के लिए सबूतों के माध्यम से छानबीन करनी पड़ती है कि संदिग्ध पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त आधार हैं या नहीं। न्यायालय को व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य और दस्तावेजों के कुल प्रभाव और मामले में दिखाई देने वाली बुनियादी कमजोरियों आदि पर विचार करना होगा। शीर्ष अदालत ने माना कि उच्च न्यायालय ने योग्यता के आधार पर पुनरीक्षण पर विचार न करके और इस तथ्य की अनदेखी करके कि "निर्वहन" अभियुक्त को प्रदान किया गया एक मूल्यवान अधिकार है, क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि की है। निर्णय के पैरा-12 और 13 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एशियन रिसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड बनाम सी.बी.आई, (2018) 16 एस.सी.सी. 299 और मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977) 4 एस.सी.सी. 551 के निर्णयों का उल्लेख किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 482 द०प्र०स० या भारत के संविधान का अनुच्छेद 227 असाधारण स्थिति में, आरोप तय करने के आदेश को धारा 397(2) के तहत चुनौती दी जा सकती है।

9. होनैया टी.एच बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य 2022 लॉ सूट (एस.सी.) 950 में, इस मामले में उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति पर चर्चा की गई है। इस मामले में परीक्षण के दौरान प्रदर्शन के निशान के बारे में सवाल उठा था, इसलिए यह निर्णय स्थिति के सम्मान के कारण लागू नहीं होता है।

10. पूर्वोक्त न्यायिक उदाहरणों के अवलोकन से यह बहुत स्पष्ट है कि निर्वहन आवेदन की अस्वीकृति के संबंध में एक आदेश को आम तौर पर आपराधिक पुनरीक्षण दायर करके चुनौती दी जाएगी, लेकिन कुछ असाधारण मामलों में ऐसे आदेशों को धारा 482 द०प्र०स० के तहत भी चुनौती दी जा सकती है। जहां तक पूरी कार्यवाही को रद्द करने का सवाल है, इसे धारा 482 द०प्र०स० के तहत चुनौती दी जा सकती है, इस मामले में पूरी कार्यवाही को चुनौती दी गई है, जिसे आपराधिक पुनरीक्षण में नहीं देखा जा सकता है। प्राथमिकी के अनुसार, मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है और आवेदक को आरोपी बनाया गया है और उसके खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। डिस्चार्ज आवेदन को खारिज कर दिया गया है और आरोप तय किया जाना है।

आवेदक ने कई आधार बनाए हैं कि जांच के दौरान उसका नाम केवल अभियुक्त

मोहम्मद फारूक के इकबालिया बयान के आधार पर सामने आया है। घटना के तीन महीने बाद शव बरामद हुआ और यह भी मृतक गोपाल से बेमेल है। यह पता नहीं लगाया जा सका है कि स्केल्टन मादा या पुरुष का था या नहीं। न तो कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य और न ही अंतिम बार देखा गया साक्ष्य और न ही शव परीक्षण रिपोर्ट उपलब्ध है। मोबाइल नंबर, मामले का आधार आवेदक के नाम पर नहीं है, जिसे केवल परीक्षण के दौरान तय किया जा सकता है और इसकी वैधता कुछ हद तक धारा 482 द०प्र०स० के तहत देखी जा सकती है।

चूंकि आवेदक ने संबंधित आपराधिक मामले की पूरी कार्यवाही की वैधता को भी चुनौती दी है, इसलिए यह आवेदन धारा 482 द०प्र०स० के तहत पोषणीय है।

आदेश

क) धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को पोषणीय माना जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने इस मामले की योग्यता को नहीं छुआ है।

ख) योग्यता के आधार पर सुनवाई के लिए उपयुक्त पीठ के समक्ष 08 मई, 2023 को सूचीबद्ध करें।

ग) 17.02.2023 को पारित अंतरिम स्थगन आदेश, लिस्टिंग की अगली तिथि तक जारी रहेगा.

(2023) 5 ILRA 1896

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 11742/2018

प्रशांत त्यागी और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री संजय सिंह, श्री अमरेन्द्र नाथ राय

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिनव गौरव, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री विभु राय

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - चुनौती के तहत धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत संपूर्ण कार्यवाही - आरोप - विपक्षी दलों ने शिकायतकर्ता के पक्ष में चेक जारी किया - चेक अनादरित हुआ आवेदकों ने चेक जारी होने की तारीख को निदेशक पद से इस्तीफा दे दिया था - न्याय को बढ़ावा देने या अन्याय या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अदालत उन सामग्रियों पर गौर कर सकती है जो प्रथम दृष्टया मामले पर महत्वपूर्ण असर डालती हैं - आवेदक संख्या 1 ने प्रश्नगत चेक जारी होने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे - चेक जारी होने की तारीख पर आवेदक कंपनी के केवल शेयरधारक थे - कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं - आवेदकों की भूमिका के बारे में भी शिकायत मौन है - व्यक्तियों को अभियोजन का सामना करने के लिए घसीटना न्याय का उपहास है - चेक जारी

करने या उसके अनादर होने से कोई संबंध नहीं है - समन आदेश रद्द- प्रार्थना पत्र स्वीकृत।

अभिनिर्धारित:

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया गया कि आवेदक संख्या 1 ने संबंधित चेक जारी होने से बहुत पहले ही कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। बेशक, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी होने की तिथि पर आवेदक कंपनी के केवल शेयरधारक थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरह से आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए प्रभारी या जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड में देखा गया है, कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में आवेदकों की भागीदारी नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि बचाव पक्ष साक्ष्य के समय देखा जाएगा, उन व्यक्तियों को अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी होने या उसके अनादर होने से किसी भी तरह से जुड़े नहीं हैं।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, आवेदकों को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाना, उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अधिदेश के विरुद्ध पाया गया है।

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. श्रीमती बी. देवी (बसंती देवी) बनाम उ0प्र0 राज्य, 2016 (94) एसीसी 90
2. सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम मेसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या 2022 [एसएलपी (आपराधिक) संख्या 10396/2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को निर्णीत
3. एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89
4. हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट प्रकरण 351
5. पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर) द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के लिए अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को स्थानांतरित करके, अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 25.11.2016 को धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत सी.सी संख्या-70/2016 में पारित सम्मन आदेश को रद्द करने और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-19 वर्ष 2017 में पारित आदेश दिनांक 22.02.2018 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

मामले के तथ्यों के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा 13.10.2016 को आवेदकों और छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ इस संस्करण के साथ शिकायत दर्ज की गई थी कि प्रतिपक्षी

संख्या-2 कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक लिमिटेड कंपनी थी और विजय कुमार पुत्र स्वर्गीय श्री सतपाल कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 खरीदने, बेचने और संपत्तियों के निर्माण के व्यवसाय में लिप्त था। प्रतिपक्षी संख्या-1 (शिकायत में) मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एक पंजीकृत कंपनी थी। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 इसके निदेशक और अधिकारी थे और प्रतिपक्षी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 9 सभी दिन-प्रतिदिन के कारोबार और प्रतिपक्षी संख्या-1, मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के लेनदेन के लिए जिम्मेदार थे।

प्रतिपक्षियों (शिकायत में) ने शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 को आश्वासन दिया था कि वे शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 को उचित मूल्य पर जमीन उपलब्ध कराएंगे। प्रतिपक्षियों में विश्वास करते हुए शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 16.08.2014 को प्रतिपक्षियों को 5,00,00,000/- रुपये का भुगतान किया, जो प्रतिपक्षियों द्वारा प्राप्त किए गए थे। जब उनके आश्वासन के अनुसार प्रतिपक्षी शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 के लिए भूमि की व्यवस्था नहीं कर सके और शिकायतकर्ता ने उन्हें प्राथमिकी दर्ज करने की धमकी दी, तो प्रतिपक्षियों ने ब्याज के साथ 5,00,00,000/- रुपये की मूल राशि के अनुसरण में 7,00,00,000/- रुपये का भुगतान करने का वादा किया। प्रतिपक्षियों ने शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में 1,00,00,000/- का चेक दिया। दिनांक 30.07.2016 को 1,00,00,000/- रुपये मूल्य का यह चेक संख्या-000285 अस्वीकृत हो गया, जबकि प्रतिपक्षियों ने इसे भुनाने का आश्वासन दिया था। जिसकी जानकारी शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 को 29.08.2016 को प्राप्त हुई थी और उचित प्रक्रिया के बाद, शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा कंपनी सहित नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 420 भ०द०वि० के तहत शिकायत दर्ज की गई थी।

धारा 200 द०प्र०स० और धारा 202 द०प्र०स० के तहत बयानों के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.11.2016 के आदेश के तहत सभी नौ आरोपियों को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट 1881 की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। दिनांक 25.11.2016 के इस आदेश के विरूद्ध, प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी नामक तीन पक्षों/वर्तमान आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे दिनांक 22.02.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 22.02.2018 से व्यथित महसूस करते हुए, वर्तमान आवेदन आवेदक प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी द्वारा केवल इस संस्करण के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1, जो पहले मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक थे, ने 26.09.2014 को, प्रतिपक्षी संख्या-2 को दिनांक 30.07.2016 को चेक संख्या-000285 जारी करने से बहुत पहले,

अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने इस आशय के लिए फॉर्म डीआईआर-12 (जिसे पहले फॉर्म 32 के नाम से जाना जाता था) की प्रमाणित प्रति दाखिल की है। उसने न तो चेक पर हस्ताक्षर किए थे और न ही उसके बैंक खाते में राशि प्राप्त हुई थी, इस प्रकार, आवेदक संख्या-1 आरोपी कंपनी में पूर्व निदेशक है। आवेदक संख्या-2 और 3 आवेदक संख्या-1 की मां और बहन हैं। उनका आरोपी कंपनी के कामकाज से किसी भी तरह से कोई संबंध नहीं था। वे कंपनी के आचरण और व्यवसाय के लिए प्रभारी और जिम्मेदार नहीं हो सकते थे। बिना किसी विशिष्ट कथन के कि उन्होंने आरोपी कंपनी के कामकाज और व्यवसाय में क्या भूमिका निभाई है, उन्हें धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए नहीं फंसाया जा सकता है। सम्मन आदेश एन.आई. अधिनियम की धारा 141 पर विचार किए बिना पारित किया गया है, इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की और से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ सभी आवेदक कंपनी के शेयरधारक हैं और एक ही परिवार से संबंधित हैं। वर्तमान आवेदक प्रशांत त्यागी राम सेवक त्यागी का पुत्र है, आवेदक संख्या-2 श्रीमती नीता त्यागी राम सेवक त्यागी की पत्नी है और आवेदक संख्या-3 श्रीमती श्वेता त्यागी, गौरव की पत्नी है/राम सेवक त्यागी और राम सेवक की पुत्री है, वह व्यक्ति है जो आरोपी कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है और उसने 30.07.2016 को शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में चेक जारी किया था। जब 30.08.2013 को वार्षिक आम बैठक बुलाई गई थी तो विवादित कंपनी के सभी शेयरधारकों के शेयर निम्नानुसार थे: -

राम सेवक त्यागी के पास 20000 शेयर थे, प्रशांत त्यागी आवेदक संख्या-1 के पास 25000 शेयर थे, श्रीमती नीता त्यागी के पास 20000 थे और श्रीमती श्वेता त्यागी के पास 10000 शेयर थे और राम किशन के पास 5000 शेयर थे, इस प्रकार, यहां सभी आवेदक आरोपी कंपनी के शेयरधारक हैं।

सभी आवेदक राम सेवक त्यागी के रक्त-संबंधी हैं और राम किशन राम सेवक का बहनोई है, जो उक्त धोखाधड़ी का मास्टर माइंड है। राम सेवक कंपनी के अन्य निदेशकों और शेयरधारकों के साथ कंपनी के वित्तीय और लेखा मामलों को संभाल रहे थे और निदेशकों, अधिकृत प्रतिनिधियों के साथ-साथ कंपनी के अन्य शेयरधारकों की ओर से कंपनी के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के प्रभारी हैं। निचली अदालत ने आवेदकों के पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया था। आवेदक संख्या-1 कंपनी का संयुक्त निदेशक है और अभी भी कंपनी का निदेशक है और बहुत कम समय के लिए वह निदेशक मंडल में नहीं था। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय/कार्यों की देखभाल करने वाले और कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि होने के नाते सभी आवेदक अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इसलिए, अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया है।

आवेदकों ने एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया जिसमें जवाबी हलफनामे के संस्करण से इनकार किया गया था और शिकायत के संस्करण को दोहराया गया था।

आवेदकों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने एन.आई. अधिनियम की धारा 141 का अध्ययन नहीं किया है, जो कंपनियों द्वारा अपराधों से संबंधित है। इस धारा को देखे बिना आक्षेपित आदेश को पूर्ण और भावात्मक आदेश नहीं कहा जा सकता है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1 ने 26.09.2014 को इस्तीफा दे दिया था, जबकि कहा जाता है कि चेक 30.07.2016 को जारी किया गया था। उनके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर-12 दाखिल किया गया है, जो एक सार्वजनिक दस्तावेज है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं और महिलाएं हैं। उनकी भागीदारी को कंपनी में सक्रिय नहीं कहा जा सकता है और शिकायत में यह स्पष्ट कथन है कि आरोपी संख्या-2 से 6 कंपनी के निदेशक और शेयरधारक होने के नाते आरोपी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 सहित आरोपी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार तीनों आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के सभी लेनदेन और समग्र व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन कोई विवरण या व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका, जिसे शिकायत में स्पष्ट किया जाना चाहिए, स्पष्ट नहीं किया गया है। जाहिर है कि चेक किसी भी आवेदक द्वारा जारी नहीं किया गया था। आवेदक संख्या-2, आवेदक संख्या-1 की मां एक वरिष्ठ नागरिक है। इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

जबकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदकों के अधिवक्ता के संस्करण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक कंपनी में शेयरधारक हैं और राम सेवक के परिवार के सदस्य हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विवादित चेक जारी किया है और चेक जारी करने वाले व्यक्ति की पत्नी, बेटे और बेटी होने के नाते सभी आवेदकों को राम सेवक त्यागी द्वारा किए गए कार्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिकायत में आरोपी संख्या-7 चूंकि पूरी धोखाधड़ी/छल आवेदकों की सहमति और मिलीभगत से की गई है, इसलिए एन.आई अधिनियम की धारा 141 की मदद से सभी आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे। सम्मन के इस चरण में आवेदकों के बचाव का निर्णय नहीं किया जा सकता है। आवेदकों की देयता केवल साक्ष्य के बाद ही तय की जा सकती है, क्योंकि अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 2 के अनुसार यदि अपराध आवेदकों की सहमति या मिलीभगत से किया गया साबित होता है तो वे भी इसके लिए उत्तरदायी होंगे और तदनुसार दंडित किए जाएंगे। इस प्रकार आवेदकों के अपराध को साबित करने के लिए पक्षकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हैं और इस प्रारंभिक अवस्था में आवेदकों की देयता तय नहीं की जा सकती है।

श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 (94) ए.सी.सी. 90 में इस

न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्तों को बुलाने के चरण में, बचाव जो वे बाद में जोड़ सकते हैं, नहीं देखा जा सकता क्योंकि इस तरह के संभावित बचाव को देखने का कोई अवसर नहीं था, जो तब आ सकता है जब आरोपी पेश होंगे और मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला रखेंगे। सम्मन जारी करने के चरण में न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध दिखाया गया है और उन अभियुक्त व्यक्तियों को तलब करने को न्यायोचित ठहराने के लिए उपयुक्त सामग्री आई है जिनके विरुद्ध शिकायत की गई है। आवेदकों को स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में सौंपी गई भूमिका को शिकायत के पैराग्राफ 4 में संदर्भित किया गया है, कि सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और कामकाज के लिए जिम्मेदार हैं।

इस निर्णय के आधार पर, यह आगे तर्क दिया गया है कि कंपनी के सभी अधिकारी कंपनी के नाम पर किए गए कृत्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन कृत्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाने की मांग की जाती है जिसके परिणामस्वरूप कंपनी के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई की जा रही है। इस प्रकार, यह दावा किया जाता है कि सभी आवेदक पूर्वोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

आवेदकों के अधिवक्ता ने सुनीता पलिता और अन्य बनाम मैसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या-2006 में दिए गए निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान आकषत किया। वर्ष 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या-10396 वर्ष 2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को फैसला किया गया और एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एस.सी.सी. 89 में निर्णय का उल्लेख किया गया है, जिसमें पैरा -10 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि-

कंपनी ने कहा, 'कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा। यह केवल वे व्यक्ति हैं जो अपराध के कमीशन के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार थे, जो आपराधिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी कंपनी का निदेशक जो प्रभारी नहीं था और प्रासंगिक समय पर कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार नहीं था, तो प्रावधान के तहत उत्तरदायी नहीं होगा। देयता प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने से उत्पन्न होती है जब अपराध किया गया था और केवल किसी कंपनी में पदनाम या कार्यालय रखने के आधार पर नहीं। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो किसी कंपनी में कोई कार्यालय या पदनाम नहीं रखता है, यदि वह प्रासंगिक समय पर किसी कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने की मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है, उत्तरदायी हो सकता है। देयता किसी कंपनी के मामलों में निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करती है न कि पदनाम या स्थिति पर।

न्यायालय का ध्यान आगे हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतीलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 351 में फैसले की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि शिकायतकर्ता बैंकर के माध्यम से चेक का अनादरण उसके इस्तीफे के बाद था, इसलिए आवेदक संख्या-1 को उस समय कंपनी के साथ कोई चिंता नहीं कहा जा सकता है।

आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि शिकायत में महज़ सादा कथन कि "आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए, वे किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी हैं" अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह कथन किसी भी विवरण से रहित है।

पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2014) 16 एस.सी.सी. के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 141 के तहत प्रत्यावर्ती दायित्व को बांधने के लिए, उस सुसंगत समय पर वह व्यक्ति कंपनी के मामलों के शीर्ष पर होगा, जो कंपनी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की सक्रिय रूप से देखभाल करता है और विशेष रूप से अपने व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार है। सिर्फ इसलिए कि एक व्यक्ति एक कंपनी का निदेशक है ..... कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा।

इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक संख्या-1 उस तारीख को कंपनी का निदेशक नहीं था जब चेक जारी किया गया था और उसके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर - 12 रिकॉर्ड पर रखा गया है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं। उन्हें कंपनी के कामकाज में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता का तर्क है कि इस संबंध में बहस के समय आवेदकों का बचाव देखा जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय ने हर्षेंद्र कुमार डी बनाम रेबटिलता कोले और अन्य (उपरोक्त) के फैसले में कहा कि यदि अभियुक्त द्वारा रखे गए दस्तावेजों के चेहरे पर, उसके खिलाफ आरोप टिक नहीं सकते, यह न्याय का उपहास होगा यदि आरोपी को मुकदमे में धकेल दिया जाता है और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बचाव साबित करने के लिए कहा जाता है। ऐसे मामले में, न्याय को बढ़ावा देने के लिए या प्रक्रिया के अन्याय या दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय उन सामग्रियों को देख सकता है जिनका प्रथम दृष्टया स्तर पर मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यदि हम श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा दिए गए फैसले को देखते हैं, तो उस मामले के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से अलग हैं, जिसमें उस मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता और अन्य निदेशकों की उपस्थिति में चेक जारी किए गए थे, जबकि प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता की उपस्थिति में चेक कभी जारी नहीं किए गए थे, बल्कि तब तक आवेदक

संख्या-1 ने कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जबकि श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों के अनुसार इस्तीफे के संबंध में दस्तावेजों को जाली दस्तावेज होने का आरोप लगाया गया था, लेकिन आवेदक संख्या-1 के इस्तीफे के मामले में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा ऊपर दिए गए विभिन्न सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की उपस्थिति में इस न्यायालय के फैसले का लाभ नहीं उठा सकते हैं।

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया जाता है कि आवेदक संख्या-1 ने चेक जारी करने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जाहिर है, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी करने की तारीख को आवेदक कंपनी के शेयरधारक मात्र थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरीके से प्रभारी थे या आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड के आधार पर, आवेदकों की भागीदारी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि साक्ष्य के समय बचाव को देखा जाएगा, अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए व्यक्तियों को घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके जारी करने से जिसको अस्वीकृत किया जा रहा है, किसी भी तरह से जुड़े नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए आवेदकों को समन करना उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के जनादेश के खिलाफ पाया गया है।

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित दिनांक 22.02.2018 के निर्णय को रद्द किया जाता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 5 ILRA 1902

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 7907 / 2022

शेखर राममूर्ति ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: पूर्णेंदु चक्रवर्ती, प्रांजल जैन

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., निलिश आनंद, राधिका सिंह

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 406, 420, 467, 468, 471 और 120-बी - पूरी कार्यवाही चुनौती दी गई आवेदक कंपनी का मात्र निदेशक था- कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 149/150 के तहत नियुक्त किया गया- धारा 305(2) दं0प्र0सं0 के कथित लेनदेन के आदेश में उसकी कोई भूमिका नहीं थी। धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत पालन नहीं किया गया । उच्च न्यायालय तथ्यों और आरोपों की जांच कर सकता है तथा उन पर ध्यान दे सकता है- आरोपित कार्यवाही की वास्तविकता का पता लगाने के लिए- प्रतिनिधि दायित्व तय किया जा सकता है- यदि आवेदक किसी भी समय कथित लेनदेन में शामिल था तो कंपनी के किसी अधिकारी, निदेशक, प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष को कंपनी के साथ आरोपी बनाया जा सकता है- केवल तभी जब उसकी सक्रिय भूमिका को साबित करने के लिए पर्याप्त सामग्री हो तथा आपराधिक इरादे भी हों, आवेदक के वकील द्वारा उठाए गए सभी तर्क तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हों- अवर न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह रिकॉर्ड में रखी गई सामग्री की विस्तार से जांच और आकलन करे- प्रक्रिया जारी करने के स्तर पर- आरोप पत्र, समन आदेश और पूरी कार्यवाही को रद्द करना भी केवल तभी किया जा सकता है जब यह किसी अपराध का खुलासा नहीं करता हो या यदि कोई कानूनी रोक हो जो इसके आधार पर कार्यवाही को प्रतिबंधित करती हो- रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया आवेदक को निर्वहन आवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया- आवेदन का निस्तारण किया गया। (पैरा 42,46, 49, 52, 53, 54 और 55)

अभिनिर्धारित:

दं0प्र0सं0 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्तियाँ सर्वविदित हैं। उच्च न्यायालय धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत अपनी शक्तियों के प्रयोग के चरण में तथ्यों के विवादित प्रश्नों के निर्धारण में प्रवेश नहीं कर सकता है, हालाँकि, न्यायालय तथ्यों और आरोपों की जांच कर सकता है और उन पर ध्यान दे सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या विवादित कार्यवाही न्यायालय और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और उनके जारी रहने से न्याय में चूक होगी या नहीं। (पैरा 42)

इस प्रकार, कंपनी के किसी अधिकारी, निदेशक, प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष को कंपनी के साथ-साथ तभी अभियुक्त बनाया जा सकता है, जब आपराधिक इरादे के साथ-साथ उनकी सक्रिय भूमिका को साबित करने के लिए पर्याप्त सामग्री हो। भारतीय दंड संहिता में प्रतिनिधि दायित्व के लिए कोई प्रावधान नहीं है। प्रबंध निदेशक या निदेशक को अभियुक्त बनाने और कंपनी की ओर से कथित रूप से किए गए अपराध में उनके निहितार्थ के लिए, जब अभियुक्त एक कंपनी है, तो शिकायत/एफआईआर या आरोप-पत्र में ऐसे व्यक्ति(यों) द्वारा अपराध किए जाने के अपेक्षित आरोप शामिल होने चाहिए। (पैरा 49)

इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि आवेदक के वकील द्वारा उठाए गए सभी तर्क तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं।

न्यायालय को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के साक्ष्य के महत्व का निर्णय करने तथा विद्वान अधिवक्ता द्वारा बताए गए तथ्यात्मक विवरणों की विभिन्न जटिलताओं के आधार पर उसका मूल्यांकन करने के लिए भी कहा गया है। अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत सामग्री की सत्यता और विश्वसनीयता पर सवाल उठाए गए हैं तथा गलत आरोप लगाए गए हैं। अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने की प्रक्रिया में, इस न्यायालय को वास्तविक सुनवाई शुरू होने से पहले पूर्व सुनवाई के लिए राजी नहीं किया जा सकता है । विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क तथ्यों के विशुद्ध प्रश्नों पर निर्णय लेने की मांग करते हैं, जिन पर केवल ट्रायल कोर्ट द्वारा ही पर्याप्त रूप से निर्णय लिया जा सकता है तथा ऐसा करते समय विधि के बिंदुओं पर किए गए तर्कों पर भी ट्रायल कोर्ट द्वारा इस मामले में अधिक उचित रूप से विचार किया जा सकता है। (पैरा 52)

उच्च न्यायालय की शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए इसका प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए, जिसके लिए न्यायालय ही मौजूद है। इसलिए अंतिम दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम है और आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है। एस.डब्लू. पलनकटकर और अन्य बनाम सेंट. ऑफ बिहार, 2002 (44) एसीसी 168 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना नियम के बजाय अपवाद है। धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ स्वयं तीन परिस्थितियों की परिकल्पना करती हैं जिनके तहत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है: - (i) संहिता के तहत आदेश को प्रभावी बनाना; (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना; (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना। (पैरा 54)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी आधार के अभाव में जो दिनांक 17.10.2022 के समन आदेश या परिणामी कार्यवाही को रद्द करने को उचित ठहरा सकता है, उसे रद्द करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है, क्योंकि मुझे न्यायालय की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग भी नहीं दिखता। अवर न्यायालय को आरोप तय करने के चरण से पहले ही अभियुक्त को बरी करने की पर्याप्त शक्तियाँ दी गई हैं, यदि दर्ज किए जाने वाले कारणों से वह आरोप को निराधार मानती है। (पैरा 55)

प्रार्थना पत्र निस्तारित। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला (2005) 8 एससीसी 89
2. चौधरी भजन लाल बनाम हरियाणा राज्य 1992 पूरक (1) एससीसी 335
3. सैयद वासिफ हुसैन रिज़वी बनाम हसन रज़ा खान और अन्य : 2016 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 175
4. माथु करुप्पन बनाम परिथी इलमवाझुथी (2011) 6 एससीसी 496

5. अमित आहूजा बनाम जियान प्रकाश भांबरी: 2010 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 4856

6. रामवीर उपाध्याय बनाम उ0प्र0 राज्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 484

7. सुनीता पलिता बनाम पंचमी पत्थर खदान (2022) 10 एससीसी 152

8. रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ: (2010) 14 एससीसी 38

9. रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य: (1998) 7 एससीसी 149

10. राज किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य: (1996) 4 एससीसी 495

11. किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य: (1993)2 एससीसी 16

12. पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एससीसी 749

13. सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई, (2015) 4 एससीसी 609

14. शिव कुमार जटिया बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य : (2019) 17 एससीसी 193

15. किशोरी सिंह व अन्य बनाम बिहार एवं अन्य : (2004) 13 एससीसी 11

16. मेसर्स इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य : (1989) 2 एससीसी 132

17. अभिनंदन झा बनाम दिनेश मिश्रा : एआईआर 1968 एससी 117

18. एच.एस. बैंस बनाम राज्य (चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश) : (1980) 4 एससीसी 631

19. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866

20. हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 एससीसी (आपराधिक)426

21. सैंट ऑफ बिहार बनाम पीपी शर्मा, 1992 एससीसी (आपराधिक)192

22. झंडू फार्मास्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक और अन्य, (पैरा-10) 2005 एससीसी (आपराधिक)283

23. एस.डब्ल्यू. पलनकटकर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 (44) एसीसी 168

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री पूर्णेन्दु चक्रवर्ती और सुश्री सौम्या चतुर्वेदी की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र मिश्रा को, राज्य-विपक्षी संख्या 1 की ओर से विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री अनुराग वर्मा को, विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता सुश्री राधिका सिंह और श्री निलीश आनंद की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चंद्रा को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आवेदक शेखर राममूर्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिसमें निम्नलिखित प्रार्थना की गई है: -

"इसलिए यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को कृपया अनुमति दी जाए और दिनांक 17.10.2022 के आदेश को निरस्त करने के साथ-साथ सभी परिणामी कार्यवाही और प्रभाव जो की प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 260/2018 यू/एस 406, 420, 467, 468, 471 और 120-बी भारतीय दण्ड

संहिता पुलिस स्टेशन - हुसैन गंज, जिला लखनऊ से उत्पन्न है, जो एसीजेएम - III के न्यायालय के समक्ष लंबित है, न्याय के हित के लिए सभी परिणामी कार्यवाही के साथ आवेदक के सन्दर्भ में कृपया निरस्त किया जाए।"

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि, वाद के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि यूनाइटेड ब्रेवरीज लिमिटेड (जिसे आगे "यूबीएल" कहा जाएगा) कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अंतर्गत पंजीकृत एक कंपनी है, जिसका पंजीकृत कार्यालय यू.बी. टॉवर वी.बी. सिटी 24, विट्टल माल्या रोड, बैंगलोर, कर्नाटक में है। कंपनी भारत और विश्व भर में बीयर और अन्य मादक पेय पदार्थों के निर्माण और बिक्री में लगी हुई है।

4. आवेदक यूबीएल में प्रबंध निदेशक के पद पर कार्यरत था और 16.09.2018 को सूचनाकर्ता श्री संजीव जायसवाल द्वारा एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी, जिसमें तीन व्यक्तियों, अखिल सारदा, हिमांशु तिवारी और अरविंद पाधी के विरूद्ध कुछ व्यापारिक विवादों के बारे में कुछ आरोप लगाए गए थे। समय के साथ आवेदक 31.07.2020 से अपनी सेवानिवृत्ति के बाद उक्त कंपनी का निदेशक नहीं रहा और कंपनी छोड़ने की सूचना कंपनी अधिनियम, 2013 के अंतर्गत जैसा की आवश्यक होता है, फॉर्म डीआईआर-12 में कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय के पास प्रस्तुत कर दी गई थी ।

5. विपक्षी संख्या 2 द्वारा पुलिस स्टेशन हुसैनगंज, लखनऊ में दिनांक 15.9.2018 को दी गई शिकायत पर दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट की विषय-वस्तु और केस सेटअप के अनुसार, शिकायतकर्ता ने दिनांक 07.09.2018 और 11.09.2018 को अखिल शारदा, शाखा प्रबंधक (सेल्स), उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड को ई-मेल के माध्यम से बीयर के तीन ट्रकों के लिए ऑर्डर दिया और दिनांक 7.9.2018 को रु. 65,66,152/- और दिनांक 11.9.2018 को रु. 27,32,750/- कुल धनराशि रु. 92,98,902/- का भुगतान उनके बैंकर, फेडरल बैंक लिमिटेड, कैंट रोड लखनऊ द्वारा किया। तीन ट्रक बीयर का भुगतान करने के बावजूद भी अखिल सारदा ने ऑर्डर की गई बीयर की आपूर्ति सुनिश्चित नहीं की और न ही उनके द्वारा कोई उचित जवाब दिया गया। शिकायतकर्ता को आशंका थी कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित तीनो कर्मचारियों का ऑर्डर की गई बीयर की आपूर्ति करने का कोई इरादा नहीं था और वे शिकायतकर्ता द्वारा भुगतान की गई राशि का दुरुपयोग करना चाहते थे और आबकारी नियमों के अनुसार, ऑर्डर के 72 घंटे के भीतर आपूर्ति की जानी थी।

6. विपक्षी पक्षकार संख्या 2 ने दिनांक 07.09.2018 को कम्पनी को दो ट्रक बीयर, कुल 2360 पेटी बीयर का डिमांड आर्डर ई-मेल के माध्यम से दिया। यह ई-मेल सहायक आबकारी आयुक्त वेब डिस्टलरी, अलीगढ़ को भी भेजा गया। चूंकि अगले दो दिन अर्थात् शनिवार और रविवार को अवकाश था, इसलिए विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा जिस माल का आर्डर दिया गया था, उसकी आपूर्ति की प्रक्रिया

दिनांक 10.9.2018 को शुरू की गई। विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत दिनांक 07.09.2018 के इंडेंट/डिमांड ऑर्डर के अनुपालन में, कंपनी ने अपने ट्रांसपोर्टर सिकल लॉजिस्टिक्स लिमिटेड को नोएडा स्थित अपने गोदाम से लखनऊ स्थित अनुज्ञप्तिधारी तक माल पहुंचाने के लिए वाहनों की व्यवस्था करने का निर्देश दिया। दिनांक 13.09.2018 तक बीयर की आपूर्ति के लिए संबंधित आबकारी अधिकारी द्वारा दिनांक 11.9.2018 को परिवहन परमिट (फॉर्म एफएल-36) जारी किया गया। बीयर की खेप को दिनांक11.9.2018 को ट्रक संख्या यूपी32 एचएन 3209 और यूपी 32 एफएन 8048 द्वारा कंपनी के ट्रांसपोर्टर के माध्यम से अग्रिम उत्पाद शुल्क का भुगतान करने के बाद लखनऊ स्तिथ अनुज्ञप्तिधारी को डिलीवरी के लिए भेजा गया था।

7. उक्त दोनों ट्रकों को दिनांक13.9.2018 को गंतव्य स्थान पर पहुंचना था। दिनांक 13.9.2018 को दोनों ट्रकों की लोकेशन जीपीएस के माध्यम से लखनऊ शहर की बाहरी सीमा तक ट्रैक की गई, जो कि विपक्षी नं. 2 के होटल रमाडा पैलेस से लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर पर थी तथा तत्पश्चात दिनांक 13.09.2018 को 11.41 बजे के पश्चात दोनों ट्रकों के जीपीएस उपकरण का संपर्क जीपीएस ट्रैकर एजेंसी अर्थात क्यूटीएस सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड से टूट गया। क्यूटीएस सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड ने दिनांक 14.9.2018 को अपराह्न 4.15 बजे ई-मेल के माध्यम से कम्पनी के डिपो इंचार्ज श्री धर्म चंद को संदेश भेजा।

8. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अशोक कुमार जायसवाल, जो विपक्षी संख्या 2 का व्यवसाय प्रबंधित करते हैं, बानी जुनाबगंज, बंथरा, लखनऊ के पास होटल रमाडा, भी चलाते हैं, जो उस स्थान से 1.5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है जहां से बीयर से भरे ट्रक गायब हुए थे और यह वही स्थान है जहां से ट्रकों में लगे जीपीएस ने 13.09.2018 को दोनों ट्रकों का पता देना बंद कर दिया था।

9. डिपो प्रभारी ने ट्रकों के खो जाने की सूचना कम्पनी के अधिकारियों के साथ-साथ ट्रांसपोर्टर, सिकल लॉजिस्टिक्स लिमिटेड को भी दी। कम्पनी के अधिकारियों ने विपक्षी पक्ष संख्या 2 से भी दूरभाष के माध्यम से ट्रकों के स्थान के बारे में जानकारी ली, परन्तु विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने कम्पनी को बताया कि ट्रक अभी तक निर्धारित स्थान अर्थात् 18, स्टेशन रोड, लखनऊ पर नहीं पहुंचे हैं।

10. आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि कम्पनी के डिपो से बीयर से भरे ट्रक के गायब होने की बात जिला आबकारी अधिकारी के संज्ञान में लाई गई, जिन्होंने कम्पनी को दिनांक 14.9.2018 को पुलिस स्टेशन बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश दिया। जब ट्रकों का पता नहीं चला तो 21.9.2018 को कंपनी ने अनुज्ञप्तिधारी, विपक्षी पार्टी नंबर 2 से ई-मेल के माध्यम से 07.09.2018 के आर्डर के निमित्त बीयर की पुनः आपूर्ति के लिए सहमति मांगी, क्योंकि परिवहन परमिट (एफएल-36) को नए सिरे से जारी करने के लिए सहमति आवश्यक थी। पुनः आपूर्ति के लिए विपक्षी

संख्या 2 द्वारा 22.9.2018 को ई-मेल के माध्यम से सहमति दी गई। अनुज्ञप्तिधारी ने कंपनी को यह भी सूचित किया कि बीयर की आपूर्ति न करने के संबंध में पुलिस स्टेशन हुसैनगंज, लखनऊ में आपराधिक कार्यवाही पहले ही शुरू की जा चुकी है और उठाये गए नुकसान के लिए सिविल कार्यवाही शुरू की जाएगी। आबकारी अधिकारी द्वारा दिनांक 22.09.2018 को ही नवीन फार्म एफ.एल.-36 जारी किया गया तथा कम्पनी के ट्रांसपोर्टर के माध्यम से अग्रिम आबकारी शुल्क का भुगतान करने के उपरान्त दिनांक 07.09.2018 के आदेश के सापेक्ष दिनांक 22.09.2018 को बीयर की आपूर्ति की गयी। दिनांक 24.09.2018 को लखनऊ में अनुज्ञप्तिधारी के पते पर माल/बीयर की आपूर्ति की गयी, जिसे अनुज्ञापी द्वारा स्वीकार कर लिया गया परन्तु माल की प्राप्ति के बाद भी अनुज्ञप्तिधारी द्वारा पावती नहीं दी गयी। चूंकि अनुज्ञप्तिधारी ने माल की डिलीवरी की अभिस्वीकृति नहीं की, इसलिए ट्रकों के ड्राइवरों ने आबकारी विभाग से संपर्क किया और बीयर की डिलीवरी की पुष्टि करने के लिए आबकारी निरीक्षक को नियुक्त किया गया। संबंधित आबकारी अधिकारी ने अनुज्ञप्तिधारी के स्थान का निरीक्षण किया और 27.9.2018 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, कि ऑर्डर की गई बीयर अनुज्ञप्तिधारी द्वारा उसके परिसर में विधिवत प्राप्त कर ली गई थी।

11. आगे यह भी कहा गया कि अनुज्ञप्तिधारी ने 11.09.2018 को रात्रि 8:30 बजे ई-मेल के माध्यम से वाराणसी में 1180 पेटी बीयर की डिलीवरी के लिए एक और ऑर्डर दिया था। चूंकि बीयर को वाराणसी ले जाने के लिए वाहनों की व्यवस्था नहीं हो सकी और परिवहन फॉर्म एफएल-36 निर्गत नहीं किया जा सका, इसलिए अनुज्ञप्तिधारी ने 15.09.2018 को ई-मेल के माध्यम से अपने मूल आर्डर 11.09.2018 को संशोधित करते हुए निर्देशित किया कि ऑर्डर की गई बीयर को वाराणसी के बजाय लखनऊ में डिलीवर किया जाए। दिनांक 15.09.2018 को परिवर्तित स्थान सहित संशोधित आर्डर प्राप्त होने के उपरान्त वाहन की व्यवस्था की गई तथा दिनांक 17.09.2018 को सम्बन्धित आबकारी अधिकारी द्वारा फार्म एफ.एल.-36 जारी किया गया तथा उसी दिन आबकारी शुल्क का अग्रिम भुगतान कर बियर की खेप कम्पनी के ट्रांसपोर्टर बुलन्द लाजिस्टिक लिमिटेड के माध्यम से ट्रक संख्या यू.पी.81 बी.टी. 5285 द्वारा अलीगढ़ से लखनऊ के लिए रवाना की गई तथा दिनांक 19.09.2018 को बियर की खेप की आपूर्ति की गई तथा अनुज्ञप्तिधारी द्वारा प्राप्त कर ली गई। यह प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 7.09.2018 एवं 11.09.2018 के आदेशानुसार माल की सुपुर्दगी विधिवत् की गई।

<u>आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क</u>

12. आवेदक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि कथित अपराध में आवेदक की किसी भी तरह की संलिप्तता को दर्शाने वाला कोई साक्ष्य अभिलेख में उपलब्ध नहीं है। आपराधिक दायित्व केवल इस आरोप के आधार पर तय नहीं किया जा सकता कि आरोपी व्यक्ति कथित घटना के समय कंपनी का निदेशक था, जबकि सम्पूर्ण लेन-देन में ऐसे

व्यक्ति की कोई भूमिका नहीं बताई गई है, जो अपराध का हिस्सा है और प्रथम सूचना रिपार्ट तथा आरोप-पत्र की विषय वस्तु है। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक के विरुद्ध की गई कार्यवाही विधि की प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग है तथा स्पष्टतः अन्यायपूर्ण और अवैध है। जांच भी बंद कर दी गई है, तथा अपराध में आगे कोई जांच लंबित नहीं है तथा आवेदक के विरूद्ध कार्यवाही जारी रखने से उसका कथित अपराधों के लिए और अधिक उत्पीड़न किया जाएगा, जो उसके विरूद्ध नहीं बनते हैं, क्योंकि कथित अपराधों में किसी भी तरह से उसकी संलिप्तता को दर्शाने वाला कोई साक्ष्य नहीं है।

13. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे बताया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (मामला अपराध संख्या **260/2018**, पी.एस. हुसैन गंज, लखनऊ) के अनुसरण में जांच अधिकारी ने चार आरोपी व्यक्तियों अर्थात् (i) अखिल सारदा, (ii) हिमांशु तिवारी, (iii) अरविंद पढई और (iv) यूनाइटेड ब्रेवरीज लिमिटेड के विरूद्ध दिनांक **10.02.2019** को आरोप पत्र दाखिल किया था। तत्पश्चात, तत्कालीन प्रबंध निदेशक शेखर राममूर्ति के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने के लिए दिनांक 13.02.2019 के आदेश के अंतर्गत उक्त आरोप पत्र पर संज्ञान लिया गया तथा उक्त आरोप पत्र और आदेश में उनके नाम के बारे में कोई चर्चा नहीं है।

14. यह भी प्रस्तुत किया गया कि इसके बाद जांच आगे बढ़ी और जांच अधिकारी द्वारा कंपनी के नौ निदेशकों और कंपनी सचिव के विरूद्ध एक और आरोप पत्र संख्या 03 दायर किया गया। दिनांक **03.04.2019** के आदेश के अंतर्गत अधीनस्थ न्यायालय ने उक्त पूरक आरोप पत्र पर संज्ञान लिया था, उसके बाद जांच जारी रही और अंतिम आरोप पत्र संख्या 04 दिनांक **27.06.2019** को अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष दायर किया गया, जिस पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा **04.07.2019** को संज्ञान लिया गया। अंतिम आरोपपत्र में अभियुक्त के नाम के कॉलम में क्रमांक4 पर केवल कंपनी का नाम, अर्थात यूनाइटेड ब्रेवरीज लिमिटेड का उल्लेख किया गया है और आवेदक शेखर राममूर्ति, प्रबंध निदेशक के नाम का उल्लेख किसी भी आरोपपत्र में नहीं किया गया है। इस प्रकार आवेदक के विरुद्ध आरम्भ की गई सम्पूर्ण कार्यवाही विधि की प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग है।

15. आगे तर्क दिया गया कि दिनांक 17-10-2022 के समन आदेश में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है कि इससे पहले दिनांक 25.03.2019 के आदेश के अंतर्गत सभी आरोपी व्यक्तियों के विरूद्ध गैर जमानती वारंट जारी किए गए थे। इस मामले की ऑर्डर शीट से पता चलता है कि आरोप पत्र 10.02.2019 को दायर किया गया था और 13.02.2019 को केवल कंपनी यूबीएल और अन्य तीन व्यक्तिगत व्यक्तियों, अर्थात् (i) अखिल सारदा, (ii) हिमांशु तिवारी, (iii) अरविंद पढई के विरूद्ध संज्ञान लिया गया था। यह तर्क दिया गया कि आवेदक का नाम सम्मन आदेश में उल्लेखित नहीं किया गया था और अन्य व्यक्तियों को सम्मन जारी कर उपस्थिति के लिए अगली तारीख 05.03.2019 तय की गई थी। इसके बाद, 15.03.2019 को

मामला दर्ज किया गया और सम्मन पर सेवा रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत की गई, उसके बाद अधीनस्थ न्यायालय द्वारा तीन व्यक्तियों और यूबीएल के विरूद्ध एक कंपनी के रूप में 10,000 रुपये के जमानती वारंट जारी किए गए। वर्तमान आवेदक शेखर राममूर्ति के विरूद्ध न तो समन जारी किया गया और न ही जमानती वारंट जारी किए गए तथा केवल कंपनी के विरूद्ध कार्यवाही जारी की गई। तत्पश्चात, 25.03.2019 की तिथि तय की गई जैसा कि आदेश पत्र में दर्शाया गया है क्योंकि यह उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त के लिए वकालतनामा दायर किया गया था। इसके बाद, दिनांक 25.03.2019 के आदेश के अंतर्गत तीन व्यक्तियों और एक कंपनी के रूप में यूबीएल के विरूद्ध गैर जमानती वारंट जारी किए गए।

16. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र मिश्रा ने आगे प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त आदेश पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि गैर जमानती वारंट केवल उपरोक्त तीन व्यक्तियों के संबंध में जारी किए गए थे, जिनका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में था और आरोप पत्र दाखिल किया गया था। गैर-जमानती वारंट किसी न्यायिक व्यक्ति के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता, जो इस मामले में यूबीएल कंपनी है। इन आदेश पत्रों से कोई अन्यथा अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि किसी भी समय अधीनस्थ न्यायालय ने आवेदक शेखर राममूर्ति के विरूद्ध किसी भी प्रकार की गैर जमानती वारंट सहित कोई भी प्रक्रिया जारी की थी।

17. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने आरोपित सम्मन आदेश में पूर्व के आदेश पत्र में अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के विवरण में जाए बिना ही दिनांक 25.03.2019 के पहले के आदेश का यंत्रवत पालन किया है, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि वर्तमान आवेदक के विरूद्ध कभी भी कोई प्रक्रिया शुरू नहीं की गई है और न ही वह व्यक्तिगत रूप से आरोपी है।

18. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोप पत्र दाखिल करने और दिनांक 13.02.2019 के आदेश के अंतर्गत संज्ञान लेने के बाद, सूचक संजीव जायसवाल, विपरीत पक्ष संख्या 2 ने तत्कालीन प्रबंध निदेशक शेखर राममूर्ति के विरूद्ध जमानती वारंट जारी करने के लिए दिनांक 07.03.2019 को एक आवेदन दायर किया था, जिस पर विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने आवेदन पर ही आदेश पारित किया कि जांच अधिकारी तय तारीख को उपस्थित रहेंगे और उन्हें अपना जवाब दाखिल करने का भी निर्देश दिया, और आवेदन 25.03.2019 के लिए तय किया गया था और उसी तारीख07.03.2019 को जांच अधिकारी ने भी निचली विद्वान न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दिया, जिसमें कहा गया कि दिनांक 07.03.2019 के आदेश के अंतर्गत विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने निदेशक के नाम के स्थान पर प्रबंध निदेशक शेखर राममूर्ति के माध्यम से यूबीएल को एक आरोपी के रूप में शामिल किया है तथा शेष शेयरधारकों/निदेशकों के लिए अनुपूरक आरोपपत्र दाखिल किया जाएगा, क्योंकि जांच जारी है।

19. यह भी प्रस्तुत किया गया कि इसके बाद आरोप पत्र संख्या 2 में आवेदक का नाम

हस्तलिखित रूप में डाला गया है, लेकिन 20.02.2019 को जारी उक्त आरोप पत्र की प्रमाणित प्रति में यह उपलब्ध नहीं है। प्रमाणित प्रतिलिपि फोलियो संख्या77 (अत्यावश्यक) दिनांक 20.02.2019 के माध्यम से आवेदन की गई और उसी दिन जारी कर दी गई। यह प्रमाणित प्रतिलिपि इस न्यायालय के समक्ष अन्य नामित अभियुक्तों द्वारा, जिसमें कंपनी भी एक पक्षकार के रूप में शामिल है, अनुलग्नक संख्या 01 के रूप में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आपराधिक् विविध आवेदन संख्या 2005/2019, अखिल शारदा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य में दायर की गई थी और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उपरोक्त आवेदन संख्या 2005/2019 को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 06.03.2020 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। इसके बाद, उत्तर प्रदेश राज्य और शिकायतकर्ता ने अपने-अपने एसएलपी (सीआरएल) संख्या 5577/2020 और एसएलपी (सीआरएल) 5899/220 दायर करके माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 06.03.2020 के उपरोक्त आदेश को अलग-अलग चुनौती दी थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.7.2022 के आदेश के अंतर्गत तीन आरोपी व्यक्तियों और कंपनी के विरूद्ध शुरू की गई कार्यवाही को बहाल कर दिया था, जबकि इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.03.2020 के आदेश को कुछ निर्देशों के साथ निरस्त कर दिया था। विपक्षीगण अर्थात् उत्तर प्रदेश राज्य और सूचक ने कभी भी माननीय उच्च न्यायालय को यह तर्क नहीं दिया या सूचित नहीं किया कि आवेदक का नाम किसी भी बाद की तारीख में हस्तलिखित रूप में डाला गया है या यदि नाम डाला गया है / शामिल किया गया है, जब उक्त आदेश कंपनी के साथ एक अभियुक्त के रूप में आवेदक का नाम शामिल करने के संबंध में विद्वान न्यायालय द्वारा पारित किया गया था।यद्यपि उपरोक्त एसएलपी में राज्य या सूचक द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आवेदक का नाम पक्षकार के रूप में नहीं रखा गया था।

20. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे बताया कि 25.03.2019 तक आवेदक के विरुद्ध न तो संज्ञान लिया गया और न ही आवेदक के विरुद्ध कोई गैर जमानती वारंट जारी किया गया तथा 25.03.2019 का गैर जमानती वारंट केवल तीन व्यक्तियों और कंपनी के विरुद्ध जारी किया गया, वर्तमान आवेदक के विरुद्ध नहीं।

21. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया कि आवेदक का नाम न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में था और न ही आरोप पत्र में, बल्कि उसका नाम संबंधित न्यायालय के समक्ष जांच अधिकारी की ओर से प्रस्तुत आवेदन के बाद ही प्रकाश में आया, जिसके बाद अधीनस्थ न्यायालय ने बिना कानूनी प्रक्रिया के आवेदक का नाम डाला और दिनांक 17.10.2022 के आदेश के अंतर्गत प्रक्रिया जारी की।

22. यह भी कहा गया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 305 के अंतर्गत कंपनी की ओर से दायर आवेदन पर, विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने गैर जमानती वारंट जारी किया है

और इस प्रकार इस आधार पर स्पष्ट अवैधता का कारण बना है कि कंपनी के लिए और उसकी ओर से आपराधिक अभियोजन में भाग लेने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 305 के अंतर्गत अपने प्रतिनिधि / अधिकृत व्यक्ति को नियुक्त करना कंपनी का विशेषाधिकार है और उक्त व्यक्ति उक्त कंपनी का प्रतिनिधि होगा।

23. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया कि विद्वान विचारणीय न्यायालय को कंपनी की ओर से अभियोजन के लिए किसी विशेष व्यक्ति को नाम और पदनाम सहित नामित करने का कोई अधिकार नहीं है। विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि जब भी किसी कंपनी का नाम किसी अभियोजन में आता है तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 305(2) के प्रावधानों के अनुसार कंपनी जांच या परीक्षण के उद्देश्य से एक प्रतिनिधि नियुक्त कर सकती है और ऐसी नियुक्ति निगम की मुहर के अंतर्गत होने की आवश्यकता नहीं है और अधिवक्ता ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 305 के प्रावधान को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया है: -

305. जब निगम या पंजीकृत सोसाइटी अभियुक्त हो, तब प्रक्रिया (1) इस धारा में, "निगम" से कोई निगमित कम्पनी या अन्य निगमित निकाय अभिप्रेत है, और इसके अन्तर्गत सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी भी है।

(2) जहां कोई निगम किसी जांच या विचारण में अभियुक्त व्यक्ति या अभियुक्त व्यक्तियों में से एक है। वहां वह ऐसी जांच या विचारण के प्रयोजनार्थ एक प्रतिनिधि नियुक्त कर सकता है और ऐसी नियुक्ति निगम की मुद्रा के अधीन करना आवश्यक नहीं होगा।

(3) जहां निगम का कोई प्रतिनिधि हाजिर होता है, वहां इस संहिता की इस अपेक्षा का कि कोई बात अभियुक्त की हाजिरी में की जाएगी या अभियुक्त को पढ़ कर सुनाई जाएगी या बताई जाएगी या समझायी जाएगी, इस अपेक्षा के रूप में अर्थ लगाया जायगा कि वह बात प्रतिनिधि की हाजिरी में की जाएगी, प्रतिनिधि को पढ़ कर सुनाई जाएगी या बताई जायगी या समझायी जाएगी और किसी ऐसी अपेक्षा का कि अभियुक्त की परीक्षा की जाएगी, इस अपेक्षा के रूप में अर्थ लगाया जाएगा कि प्रतिनिधि की परीक्षा की जाएगी।

(4) जहां निगम का कोई प्रतिनिधि हाजिर नहीं होता है, वहां कोई ऐसी अपेक्षा, जो उपधारा (3) में निर्दिष्ट है, लागू नहीं होगी।

(5) जहां निगम के प्रबंध निदेशक द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा (वह चाहे जिस नाम से पुकारा जाता हो) जो निगम के कार्यकलाप का प्रबंध करता है या प्रबंध करने वाले व्यक्तियों में से एक है, हस्ताक्षर किया गया तात्पर्यित इस भाव का लिखित कथन फाइल किया जाता है कि कथन में नामित व्यक्ति को इस धारा के प्रयोजनों के लिए निगम के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया है, वहां न्यायालय, जब तक इसके प्रतिकूल साबित नहीं किया जाता है, यह उपधारणा करेगा कि ऐसा व्यक्ति इस प्रकार नियुक्त किया गया है।

(6) यदि यह प्रश्न उठता है कि न्यायालय के समक्ष किसी जांच या विचारण में निगम के प्रतिनिधि के रूप में हाजिर होने वाला कोई व्यक्ति ऐसा प्रतिनिधि है या नहीं, तो उस प्रश्न का अवधारण न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

24. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि कंपनी का निदेशक जो प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी या जिम्मेदार नहीं था, उन प्रावधानों के अंतर्गत उत्तरदायी नहीं होगा। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला (2005) 8 एससीसी 89*** में माना है, प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:

> *"अधिनियम की धारा 141 यह नहीं कहती है कि कंपनी का निदेशक कंपनी की ओर से किए गए किसी अपराध के लिए स्वतः ही उत्तरदायी होगा। आवश्यक यह है कि यह दर्शाने के लिए पर्याप्त कथन किए जाएं कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध कंपनी द्वारा किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी होने के आधार पर कार्यवाही की जानी है, वह कंपनी का प्रभारी होना चाहिए तथा कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए भी उत्तरदायी होना चाहिए।"*

25. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दायित्व कंपनी के मामलों में व्यक्ति की भूमिका पर निर्भर करता है, न कि केवल पदनाम या स्थिति पर और वे ***एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला (उपरोक्त)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का संदर्भ देना चाहते हैं।

26. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और इस बात से संतुष्ट होने के बाद कि आवेदक के विरूद्ध आईपीसी की धारा 406, 420 के तत्व नहीं बनते हैं और मामला इस माननीय न्यायालय द्वारा **चौधरी भजन लाल बनाम हरियाणा राज्य 1992 SUPP (1) एससीसी 335** के मामले में निर्धारित मापदंडों के अंतर्गत आता है, जिन्हें आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करते समय विचार किया जाना आवश्यक है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट है कि आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों या कंपनी के संचालन में शामिल नहीं है, इस प्रकार, वह प्रार्थना करते हैं कि जहां तक वर्तमान आवेदक का संबंध है, यह दिनांक 17.10.2022 के आरोपित आदेश और मामले की सभी परिणामी कार्यवाहियों को निरस्त करने के लिए एक उपयुक्त मामला है।

27. इसके विपरीत, राज्य-विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अनुराग वर्मा ने प्रस्तुत किया है कि अधीनस्थ न्यायालय ने आवेदक सहित अन्य आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध गैर जमानती वारंट आदेश दिनांक 17.10.2022 जारी करने में कोई त्रुटि या अवैधता नहीं की है और वर्तमान आवेदन खारिज किये जाने योग्य है क्योंकि सभी तथ्यात्मक पहलुओं पर बहस हो चुकी है।

<u>प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता के तर्क</u>

28. शिकायतकर्ता/ विपक्षी संख्या 2 की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चंद्रा विद्वान अधिवक्ता तथा उनकी सहायिका सुश्री राधिका सिंह विद्वान ने यह कहते हुए प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन स्वीकार्य नहीं है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही माननीय उच्च न्यायालय के आदेश को निरस्त कर दिया है और जांच अधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र को बहाल कर दिया है और मामले में आगे बढ़ने के लिए अधीनस्थ न्यायालय को निर्देश दिया है।

29. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक की ओर से तथ्यों को छुपाया गया है और आवेदक इस माननीय न्यायालय के समक्ष साफ हाथों से नहीं आया है और आवेदक के विरूद्ध 25.03.2019 को जारी किए गए पहले गैर जमानती वारंट को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत इस तत्काल आवेदन में चुनौती नहीं दी गई है।

30. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन आवेदक द्वारा दायर किया गया है, लेकिन इसके समर्थन में शपथपत्र उसके अधिवक्ता द्वारा दिया गया है, जो कि पोषणीय नहीं है। विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत शेष दलीलों को भी अस्वीकृत कर दिया तथा प्रार्थना की कि आवेदक द्वारा प्रस्तुत वर्तमान आवेदन को निरस्त कर दिया जाए।

31. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष् संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **सैयद वासिफ हुसैन रिजवी बनाम हसन रजा खान और 6 अन्य: 2016 एससीसी ऑनलाइन सभी 175** में इस माननीय न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है, और निर्णय के प्रस्तर-25 पर विस्वास प्रकट किया है जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की हैः-

25. ऐसा मानते हुए, हमें उसी समय इस बात पर जोर देना चाहिए कि जहां पावर ऑफ अटॉर्नी के धारक के माध्यम से रिट याचिका दायर की जाती है, वहां पर्याप्त सुरक्षा उपायों का पालन करना आवश्यक है। इन सुरक्षा उपायों में अनिवार्य रूप से निम्नलिखित शामिल होने चाहिए:

(1) पावर ऑफ अटॉर्नी जिसके द्वारा दाता दान प्राप्तकर्ता को अधिकृत करता है, उसे रिकॉर्ड पर लाया जाना चाहिए और याचिका/आवेदन के साथ दाखिल किया जाना चाहिए;

(2) पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा निष्पादित शपथपत्र में यह कथन होना चाहिए कि दाता जीवित है और शपथपत्र पर शपथ लेने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहने में दाता की असमर्थता के कारणों का उल्लेख होना चाहिए; तथा

(3) दान प्राप्तकर्ता को उन कार्यों तक ही सीमित रहना होगा जिनके निष्पादन के लिए उसे पावर ऑफ अटॉर्नी द्वारा प्राधिकृत किया गया है।

32. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि न्यायालय के नियमों के अंतर्गत, अध्याय IV के अंतर्गत , किसी भी आवेदन या हलफनामे के समर्थन में शपथ पत्र देने वाले व्यक्ति को अपने बारे में सटीक और पर्याप्त विशिष्टता के साथ विवरण देना होगा और उसे अपने द्वारा दायर हलफनामे में बताए गए तथ्यों की भी जानकारी होनी चाहिए। लापरवाही से दायर किए गए असंगत हलफनामों और रिकॉर्ड पर सही और उचित तथ्य न लाने को झूठा हलफनामा माना जा सकता है। परिणामस्वरूप शपथ-पत्र देने वाला व्यक्ति आपराधिक अवमानना के लिए उत्तरदायी है। चूंकि यह माननीय न्यायालय शपथ-पत्र के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्य के आधार पर मामलों का फैसला करता है, और झूठे शपथ-पत्र दाखिल करना एक गंभीर मामला है और इसके लिए कड़ी सजा की आवश्यकता है। यह एक बड़ी आपदा होगी यदि कोई व्यक्ति झूठा हलफनामा दाखिल करके या झूठा बयान देकर और विधि की न्यायालय में झूठे सबूत गढ़कर न्याय के स्रोत को जहर देने की अनुमति देता है। इसके अलावा यह प्रस्तुत किया गया कि **माथु करुप्पन बनाम परिथी इलमवझुथी (2011) 6 एससीसी 496** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि झूठा हलफनामा दाखिल करने पर सख्त रूप से प्रभावी ढंग से अंकुश लगाया जाना चाहिए।

33. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया कि किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह पदानुक्रम में कितना भी उच्च क्यों न हो, न्याय के मार्ग में बाधा डालने और इस माननीय न्यायालय की गरिमा और महिमा का उपहास करने का अधिकार नहीं है और बार-बार झूठे हलफनामे दाखिल करने पर कड़ी सजा की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इस तरह की नापाक गतिविधियों को शुरू में ही खत्म कर दिया जाए और इस माननीय न्यायालय की गरिमा और महिमा का उपहास और खतरे में न पड़े।

34. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया कि आवेदक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर चतुराई से मसौदा तैयार करने में लिप्त है। मामले से संबंधित प्रासंगिक तथ्यों को छिपाने के अलावा, महत्वपूर्ण तथ्यों और दस्तावेजों को भी उचित विचार-विमर्श के साथ रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है और आवेदक सहित अन्य आरोपियों के विरूद्ध शुरू किए गए आपराधिक मामले आपस में जुड़े हुए हैं और मुख्य साजिश का हिस्सा हैं।

35. शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **अमित आहूजा बनाम ज्ञान प्रकाश भांबरी: 2010 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 4856** के मामले में दिए गए फैसले

पर भरोसा किया है, और पैरा 6 से 9 पर भरोसा किया है, जिसमें यह कहा गया है:

"6. दूसरी ओर, प्रतिवादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दायर याचिका, विचारणीय नहीं है। उन्होंने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई शेष दलीलों को भी खारिज कर दिया।

*7. पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए प्रतिद्वंदी तर्कों पर विचार करने के बाद, मेरी राय में, याचिका खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि यह निम्नलिखित कारणों से सुनवाई योग्य नहीं है। निःसन्देह, उपरोक्त शिकायत याचिकाकर्ता और उसके सह-याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध भारत की अदालतों में दायर की गई थी। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता अमित आहूजा दुबई में रह रहे हैं। **जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी, जे.टी. 1991 (3) एस.सी. 497** में यह निम्नानुसार माना गया था:–*

"यदि किसी विशिष्ट आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध दर्ज आपराधिक मामले में विधि के लाखों प्रश्न हों, जिन पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए तथा जांच की जानी चाहिए, तो भी ऐसे सभी प्रश्न उठाना तथा उनके विरुद्ध शुरू की गई कार्यवाही को उचित समय पर उचित मंच के समक्ष चुनौती देना केवल उन्हीं का काम है, न कि जनहित याचिकाकर्ताओं की आड़ में किसी तीसरे पक्ष का। यह भी माना गया कि उस मामले में याचिकाकर्ता (एच.एस. चौधरी) के पास दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करने का कोई अधिकार नहीं था, जिससे न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने की दलील पर एफआईआ और उससे उत्पन्न होने वाली अन्य सभी कार्यवाही को निरस्त किया जा सके।

उपर्युक्त मामले में आरोपी व्यक्ति जीवित थे और खुद का बचाव करने और अपने हितों की रक्षा करने में सक्षम थे और यह भी नहीं दिखाया गया कि याचिकाकर्ता श्री एच.एस. चौधरी का आरोपी व्यक्तियों में कोई निश्चित या विशेष हित था।"

(8) **सिमरनजीत सिंह मान बनाम भारत संघ: 2 एआईआर 1993 एससी 280** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:–

"सामान्यतः, किसी आदेश से प्रभावित पीड़ित पक्ष को आदेश की कानूनी वैधता या शुद्धता पर प्रश्न उठाकर निवारण प्राप्त करने का अधिकार है, जब तक कि वह पक्ष नाबालिग, पागल व्यक्ति न हो या किसी अन्य विकलांगता से पीड़ित न हो, जिसे विधि में किसी अन्य व्यक्ति (जैसे कि निकटतम मित्र) को उसकी ओर से न्यायालय में जाने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त माना गया हो। यह भी माना गया कि यदि कोई अभिभावक या कोई मित्र ऐसे विकलांग पीड़ित पक्ष के

लिए कार्यवाही शुरू करता है, तो यह वास्तव में पीड़ित पक्ष द्वारा शुरू की गई कार्यवाही है, न कि किसी अजनबी द्वारा, जिसका इसके परिणाम में कोई प्रत्यक्ष व्यक्तिगत हित नहीं है। उपर्युक्त मामले में, एक राजनीतिक दल के नेता ने जनरल वैद्य के हत्यारों की दोषसिद्धि और सजा को चुनौती देते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय की शरण ली। दोनों दोषी जीवित थे लेकिन उन्होंने दोषसिद्धि और सजा के विरूद्ध कोई अपील दायर नहीं की। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उस मामले में याचिकाकर्ता के पास संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने का अधिकार था।"

(9) उपर्युक्त मामलों में निर्धारित विधि के अनुपात को स्पष्ट रूप से पढ़ने से पता चलता है कि केवल आरोपी व्यक्ति, जिसके विरूद्ध आपराधिक मामला दर्ज किया गया है या आपराधिक शिकायत दर्ज की गई है, शिकायत, समन आदेश और/या बाद की कार्यवाही, यदि कोई हो, को निरस्त करने के लिए उच्च न्यायालय में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत याचिका दायर कर सकता है, और कोई तीसरा व्यक्ति जनहित याचिकाकर्ता की आड़ में उसकी ओर से छद्म युद्ध नहीं लड़ सकता है। किसी आदेश से प्रभावित पीड़ित पक्ष को अपनी शिकायत का निवारण करने के लिए, उसकी कानूनी वैधता या शुद्धता पर सवाल उठाने की आवश्यकता होती है। यह दूसरी बात है, यदि पीड़ित पक्ष किसी अक्षमता से पीड़ित है, अर्थात, जब तक कि ऐसा पक्ष नाबालिग या पागल व्यक्ति न हो, या किसी अन्य अक्षमता से पीड़ित न हो, किसी अन्य व्यक्ति, जैसे कि पड़ोसी मित्र, को विधि की नजर में उसकी ओर से न्यायालय में जाने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त माना जाता है। नाबालिग या पागल व्यक्ति की ओर से, यदि कोई अभिभावक या मित्र, उसके विरुद्ध पारित आदेश की वैधता और वैधता को चुनौती देने के लिए कार्यवाही शुरू करता है, तथा शिकायत के निवारण की मांग करता है, तो विधि के अनुसार, ऐसा विकलांग व्यक्ति, अभिभावक या मित्र के माध्यम से ही याचिका दायर करने के लिए सक्षम माना जा सकता है। वर्तमान मामले में, रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ता अमित आहूजा विधि के प्रावधानों द्वारा मान्यता प्राप्त किसी विकलांगता से पीड़ित है। वह उपरोक्त शिकायत में आरोपी है। वह शिकायत और सम्मन आदेश से व्यथित है। वह ही है जो विधि के प्रावधानों के अंतर्गत उपलब्ध किसी भी आधार पर इसे चुनौती दे सकता है। यदि, आपराधिक मामलों में, जब तक और जहां तक किसी व्यक्ति को छद्म युद्ध लड़ने की अनुमति नहीं दी जाती, तब तक आपराधिक न्याय प्रणाली का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। इस स्थिति में, न्यायालयों में जनहित याचिकाओं

की बाढ़ आ जाएगी। इस मामले के दृष्टिगत , याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दायर की गई वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। केवल इसी आधार पर इसे खारिज किया जाना चाहिए।"

36. शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि जमानतीय और गैर जमानतीय वारंट जारी होने के बावजूद आवेदक जानबूझकर और सचेत रूप से सम्मन से बच रहा है और विधि की प्रक्रिया को दरकिनार कर रहा है। कई निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को शुरू में ही रोका नहीं जा सकता है। हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 484** के मामले में निर्णय दिया और पैरा 39 पर भरोसा किया जो इस प्रकार है:

"39 हमारी सुविचारित राय में आपराधिक कार्यवाही को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके केवल इसलिए नहीं रोका जा सकता क्योंकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा दर्ज की गई है। यह संभव है कि किसी राजनीतिक विरोधी के कहने पर झूठी शिकायत दर्ज कराई गई हो। हालांकि, ऐसी संभावना आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा482 के अंतर्गत हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहराएगी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पहले के आपराधिक मामले के बंद होने के बाद, कथित कृत्यों द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। शिकायत में लगाए गए आरोप अत्याचार अधिनियम के अंतर्गत अपराध का गठन करते हैं। आरोप सही हैं या गलत, यह मुकदमे में तय किया जाना चाहिए। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी शिकायत में आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय उन असाधारण दुर्लभ मामलों के जहां यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। शिकायत मामला संख्या 19/2018 ऐसा मामला नहीं है जिसे बिना किसी और सुनवाई के शुरू में ही खारिज कर दिया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया।"

37. शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि इस माननीय न्यायालय के समक्ष वर्तमान आवेदक मेसर्स यूनाइटेड ब्रेवरीज लिमिटेड का प्रबंध निदेशक था और वह कथित घटना के समय उक्त कंपनी का प्रबंध निदेशक बना रहा और उक्त आवेदक ने वर्ष 2020 में इस्तीफा दे दिया, इसलिए वह मामले की कार्यवाही का सामना करने के लिए उत्तरदायी है।

38. शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि शिकायत में यह दावा करना आवश्यक नहीं है कि आवेदक प्रभारी है, और कंपनी के व्यवसाय के संचालन

के लिए कंपनी के प्रति जिम्मेदार है। ऐसा इसलिए है क्योंकि शब्द "निदेशक" में उपसर्ग "प्रबंधन" यह स्पष्ट करता है कि निदेशक कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी के प्रभारी और जिम्मेदार थे, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सुनीता पलिता बनाम पंचमी स्टोन क्वारी में (2022) 10 एससीसी 152** में माना है।

39. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि हाल ही **में रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ :(2010) 14 एससीसी 38** में इस विषय पर विधि वाद पर चर्चा की गई थी, जिसमें यह माना गया था कि यदि कोई वादी स्वच्छ प्रवृत्ति से न्यायालय में नहीं आता है, तो वह सुनवाई का हकदार नहीं है और वास्तव में ऐसा व्यक्ति किसी भी न्यायिक मंच से किसी भी राहत का हकदार नहीं है और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 21 पर विश्वास व्यक्त किया गया है जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"21. यह सिद्धांत कि जो व्यक्ति न्यायालय में स्वच्छ प्रवृत्ति के साथ नहीं आता है, वह अपनी शिकायत के गुण-दोष के आधार पर सुनवाई का हकदार नहीं है और किसी भी मामले में ऐसा व्यक्ति किसी राहत का हकदार नहीं है, यह सिद्धांत न केवल संविधान के अनुच्छेद 32, 226 और 136 के अंतर्गत दायर याचिकाओं पर लागू होता है, बल्कि अन्य न्यायालयों और न्यायिक मंचों में संस्थित मामलों पर भी लागू होता है।"

40. शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य: (1998) 7 एससीसी 149** में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए, जहां तीन न्यायाधीशों की पीठ इस मुद्दे पर विचार कर रही थी कि क्या सत्र न्यायालय किसी भी साक्ष्य को इकट्ठा करने से पहले के चरण में उसके समक्ष लंबित मामले में अभियुक्तों की सूची में एक नया व्यक्ति जोड़ सकता है, तीन न्यायाधीशों की पीठ उक्त मुद्दे पर उसी तरह से विचार कर रही थी जैसे **राज किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य: (1996) 4 एससीसी 495 में किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य: (1993) 2 एससीसी 16** में निर्धारित अनुपात के संबंध में खंडपीठ द्वारा आपत्तियां व्यक्त की गई थीं। **रणजीत सिंह (उपरोक्त)** में दर्ज निष्कर्ष इस प्रकार है: -

"19. अतः सत्र न्यायालय द्वारा सुपुर्दगी के चरण से लेकर धारा 230 में निर्दिष्ट चरण तक पहुंचने तक, वह न्यायालय केवल संहिता की धारा 209 में निर्दिष्ट अभियुक्तों के साथ ही व्यवहार कर सकता है। तब तक सत्र न्यायालय के लिए अभियुक्तों की सूची में किसी अन्य व्यक्ति को शामिल करने के लिए कोई मध्यवर्ती चरण नहीं है।

20. इस प्रकार, जब सत्र न्यायालय ने प्रतिबद्ध आदेश के अनुसार अपराध का संज्ञान ले लिया, तो एकमात्र अन्य चरण जब न्यायालय को अभियुक्तों की कतार में किसी अन्य व्यक्ति को जोड़ने का अधिकार है, वह साक्ष्य संग्रह तक पहुंचने के बाद है जब संहिता की धारा 319 के अंतर्गत शक्तियों का इस्तेमाल किया जा सकता है। हम सत्र न्यायालय के लिए अभियुक्तों की कतार में नए व्यक्ति या व्यक्तियों को जोड़ने की

अनुमति देने के लिए कोई अन्य शक्ति नहीं पा सके। निःसन्देह न्यायालय के लिए उक्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए पूरे साक्ष्य एकत्र होने तक प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है।"

<u>न्यायालय की टिप्पणियां</u>

41. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रतिद्वंद्वी दलीलों और उपर्युक्त निर्णयों पर विचार किया है तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री और आवेदक द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दाखिल वर्तमान आवेदन में की गई प्रार्थना का भी अवलोकन किया है।

42. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की उच्च न्यायालय की शक्तियाँ सर्वविदित हैं। उच्च न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपनी शक्तियों के प्रयोग के चरण में तथ्यों के विवादित प्रश्नों के निर्धारण में प्रवेश नहीं कर सकता है, हालाँकि, न्यायालय तथ्यों और आरोपों की जाँच कर सकता है और उन पर ध्यान दे सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या विवादित कार्यवाही न्यायालय और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और उनके जारी रहने से न्याय में चूक होगी या नहीं।

43. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तथ्य विवाद में नहीं हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट और चार्जशीट से पता चलता है कि आवेदक किस तरह और किस तरह से कंपनी के दैनिक व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार था या अन्यथा इसके दैनिक कामकाज के लिए जिम्मेदार था।

44. वर्तमान मामले में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या आवेदक किसी अपराध के लिए उत्तरदायी है, भले ही प्रथम सूचना रिपोर्ट और आरोप-पत्र में लगाए गए आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर पूरी तरह से सही माना जाए। कंपनी, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत निगमित निकाय है। इसके निदेशकों और शेयरधारकों पर प्रतिरूपी आपराधिक दायित्व उत्पन्न होगा, बशर्ते कि विधि में इस संबंध में कोई प्रावधान मौजूद हो। संविधि में ऐसे प्रतिनिधिक दायित्व को निर्धारित करने का प्रावधान होना चाहिए। यहां तक कि उक्त प्रयोजन के लिए भी, शिकायतकर्ता और जांच एजेंसी के लिए अपेक्षित आरोप लगाना और उसके समर्थन में साक्ष्य एकत्र करना अनिवार्य होगा, जिसके लिए प्रतिनिधिक दायित्व के प्रावधान लागू होंगे।

45. वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह विवाद का विषय नहीं है कि शिकायतकर्ता/विपक्षी संख्या 2 द्वारा बीयर की आपूर्ति का ऑर्डर अखिल सारदा, डिपो मैनेजर के माध्यम से दिया गया था। आवेदक प्रबंध निदेशक था, जिसे उसकी योग्यता, विशेषज्ञता आदि को ध्यान में रखते हुए कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 149/150 के प्रावधानों के अंतर्गत नियुक्त किया गया है। यदि आवेदक किसी भी समय कथित लेनदेन में शामिल था, तो आवेदक पर प्रतिरूपी आपराधिक दायित्व तय किया जा सकता है।

46. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एससीसी 749** के मामले में माना है कि आपराधिक मामले में अभियुक्त को सम्मन भेजना एक गंभीर मामला है। कथित अपराधों के लिए आपराधिक विधि को सामान्य बात के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है और उपरोक्त निर्णय के पैरा-28 में यह टिप्पणी की गई है जो इस प्रकार है:-

"28. आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर मामला है। आपराधिक विधि को स्वाभाविक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक विधि को लागू करने के लिए शिकायत में अपने आरोपों का समर्थन करने के लिए केवल दो गवाहों को लाना होगा। अभियुक्त को समन करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों और उस पर लागू विधि पर अपना दिमाग लगाया है। उसे शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति और उनके समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों की जांच करनी होगी और क्या यह शिकायतकर्ता के लिए अभियुक्त को आरोप साबित करने में सफल होने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को समन करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के समय मजिस्ट्रेट मूक दर्शक हो। मजिस्ट्रेट को रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी और वह स्वयं भी शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछ सकता है और फिर जांच कर सकता है कि क्या सभी या किसी भी अभियुक्त द्वारा प्रथम दृष्टया कोई अपराध किया गया है।"

47. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी **सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई, (2015) 4 एससीसी 609** के मामले में कंपनी के अधिकारियों, निदेशकों, प्रबंध निदेशकों, अध्यक्ष के प्रतिनिधिक दायित्व के मुद्दे पर विचार करते हुए उपरोक्त निर्णय के पैरा 42 से 44 और 48 से 50 में निम्नलिखित अवलोकन किया:-

"42. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक कॉर्पोरेट इकाई एक कृत्रिम व्यक्ति है जो अपने अधिकारियों, निदेशकों, प्रबंध निदेशक, अध्यक्ष आदि के माध्यम से कार्य करता है। यदि ऐसी कंपनी दोषी मन से जुड़ा कोई अपराध करती है, तो यह आमतौर पर उस व्यक्ति की मंशा और कार्रवाई होगी जो कंपनी की ओर से कार्य करेगा। यह तब और भी अधिक होगा, जब आपराधिक कृत्य साजिश का हो। हालांकि, साथ ही, यह आपराधिक न्यायशास्त्र का प्रमुख सिद्धांत है कि जब तक विधि विशेष रूप से ऐसा प्रावधान नहीं करता है, तब तक कोई प्रतिनिधिक दायित्व नहीं है।

43. इस प्रकार, किसी व्यक्ति जिसने किसी कंपनी की ओर से अपराध किया है, उसे कंपनी के साथ-साथ अभियुक्त बनाया जा सकता है, यदि उसके आपराधिक इरादे के साथ-साथ उसकी सक्रिय भूमिका के पर्याप्त सबूत हैं। दूसरी स्थिति जिसमें उसे

फंसाया जा सकता है, वह उन मामलों में विशेष रूप से ऐसे प्रावधान को शामिल करके जहाँ वैधानिक व्यवस्था स्वयं प्रतिनिधि दायित्व के सिद्धांत को आकर्षित करती है।

44. जब कंपनी ही अपराधी है, तो इस संबंध में किसी वैधानिक प्रावधान के अभाव में निदेशकों पर प्रतिनिधिक दायित्व स्वतः नहीं लगाया जा सकता।इसका एक उदाहरण परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 141 है। अनीता हाडा [अनीता हाडा बनाम गॉडफादर ट्रैवल्स एंड टूर्स (पी) लिमिटेड, (2012) 5 एससीसी 661: (2012) 3 एससीसी (सिविल) 350: (2012) 3 एससीसी (क्रि) 241] में, न्यायालय ने टिप्पणी की कि यदि कंपनी के व्यवसाय का मार्गदर्शन करने वाले व्यक्तियों का समूह आपराधिक इरादा रखता है, तो इसका आरोप कॉर्पोरेट निकाय पर लगाया जाएगा और इसी पृष्ठभूमि में परक्राम्य लिखत अधिनियम कीधारा 141 को समझना होगा। अतः ऐसी स्थिति वैधानिक मंशा के कारण है, जो इसे एक काल्पनिक बात बनाती है। यहां भी, "अल्टर ईगो" के सिद्धांत को केवल एक ही दिशा में लागू किया गया था, अर्थात्, जहां व्यवसाय का मार्गदर्शन करने वाले व्यक्तियों के समूह का आपराधिक इरादा था, तो इसे निगमित निकाय पर आरोपित किया जाना चाहिए, न कि इसके परस्पर विपरीत। अन्यथा, निदेशक या कंपनी के नियंत्रण और प्रबंधन में कथित रूप से शामिल किसी अन्य व्यक्ति को एक विशिष्ट कार्य के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए, जिससे यह पता चले कि ऐसा व्यक्ति कंपनी द्वारा या उसकी ओर से किए गए कार्यों के लिए जिम्मेदार था।"

48. अपराध का संज्ञान लेने के लिए अनिवार्य शर्त मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक का प्रयोग तथा उसका यह संतोष है कि यदि आरोप सिद्ध हो जाते हैं तो वे अपराध बनेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि शिकायत या पुलिस रिपोर्ट पर मजिस्ट्रेट इस प्रश्न पर विचार करने के लिए बाध्य है कि क्या यह किसी अपराध के होने का खुलासा करता है तथा उसे इस संबंध में ऐसी राय बनाने की आवश्यकता है। जब वह ऐसा करता है तथा प्रक्रिया जारी करने का निर्णय लेता है, तो उसे संज्ञान लेने वाला कहा जाएगा। संज्ञान लेने के चरण में, न्यायालय के समक्ष एकमात्र विचार यह विवेकपूर्ण ढंग से विचार करना रह जाता है कि अभियोजन पक्ष जिस सामग्री के आधार पर अभियुक्त पर मुकदमा चलाने का प्रस्ताव करता है, वह प्रथम दृष्टया मामला सामने लाती है या नहीं।

49. किसी अपराध का संज्ञान लेना और अपराधी पर मुकदमा चलाना दो अलग-अलग बातें हैं। संहिता की धारा 190 में अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार दिया गया है, न कि अपराधियों से निपटने का। इसलिए, शिकायत दर्ज होने या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर अपराधी का नाम न होने या उसका पता न होने पर भी संज्ञान लिया जा सकता है। जांच के दौरान या उसके बाद उनके नाम सामने आ सकते हैं।

50. जो व्यक्ति आरोप-पत्र में अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं हुआ है, उसे संहिता की धारा 190 के अंतर्गत संज्ञान लेने के चरण में बुलाया जा सकता है। इस चरण में

संहिता की धारा 319 के लागू होने का कोई सवाल ही नहीं है (देखें SWIL Ltd. बनाम दिल्ली राज्य [(2001) 6 SCC 670: 2001 SCC (Cri) 1205])। यह भी सामान्य बात है कि भले ही पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट में किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में नामित न किया गया हो, फिर भी न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लेना और अभियुक्त को बुलाना न्यायसंगत होगा यदि उसे लगता है कि जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य और सामग्री अभियुक्त के अभियोजन को उचित ठहराती है (देखें यूनियन ऑफ इंडिया बनाम प्रकाश पी. हिंदुजा [(2003) 6 SCC 195: 2003 SCC (Cri) 1314])। इस प्रकार, मजिस्ट्रेट को किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध प्रक्रिया जारी करने का अधिकार है, जिसके विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है, लेकिन पुलिस रिपोर्ट में उसकी संलिप्तता को दर्शाने वाली पर्याप्त सामग्री होनी चाहिए। उस मामले में, मजिस्ट्रेट को जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज करने और जांच से उभरने वाले तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपना विचार लागू करने और मामले का संज्ञान लेने का अधिकार है। साथ ही, इस स्तर पर जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के अलावा किसी अन्य सामग्री पर विचार करने की अनुमति नहीं है।"

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **शिव कुमार जटिया बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य: (2019) 17 एससीसी 193** के मामले में कंपनी के प्रबंध निदेशक की प्रतिनिधिक देयता से निपटते समय पैरा-21 और 22 में निम्नानुसार अवलोकन किया: -

"21. सुनील भारती मित्तल [सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई, (2015) 4 एससीसी 609: (2015) 2 एससीसी (क्रि) 687] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को लागू करने से यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को निदेशक या कंपनी के प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष के रूप में कंपनी के साथ-साथ तभी आरोपी बनाया जा सकता है, जब आपराधिक इरादे के साथ उसकी सक्रिय भूमिका साबित करने के लिए पर्याप्त सामग्री हो। इसके अलावा आरोपित आपराधिक इरादे का आरोपी के साथ सीधा संबंध होना चाहिए। इसके अलावा मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य [मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य, (2008) 5 एससीसी 668: (2008) 2 एससीसी (क्रि) 692] में इस न्यायालय ने कंपनी के विरूद्ध लगाए गए आरोपों के लिए निदेशकों की प्रतिनिधिक देयता की जांच की है। उपर्युक्त निर्णय में इस न्यायालय ने माना है कि दंड संहिता में निदेशक की ओर से प्रतिनिधिक देयता संलग्न करने का कोई प्रावधान नहीं है। कंपनी के प्रबंध निदेशक या निदेशक, जब अभियुक्त एक कंपनी है। यह माना जाता है कि प्रबंध निदेशक और निदेशक की प्रतिनिधिक देयता उत्पन्न होगी, बशर्ते कि क़ानून में उस संबंध में कोई प्रावधान मौजूद हो। यह भी माना जाता है कि क़ानून में निर्विवाद रूप से ऐसे प्रतिनिधिक दायित्व को तय करने का प्रावधान होना चाहिए। यह भी माना जाता है कि, उक्त उद्देश्य के लिए भी, शिकायतकर्ता की

ओर से अपेक्षित आरोप लगाना अनिवार्य है, जो प्रतिनिधिक दायित्व का गठन करने वाले प्रावधानों को आकर्षित करेगा।

22. शरद कुमार सांघी बनाम संगीता राणे [शरद कुमार सांघी बनाम संगीता राणे, (2015) 12 एससीसी 781: (2016) 1 एससीसी (क्रि) 159] में इस न्यायालय के फैसले में एक कंपनी के प्रबंध निदेशक के विरूद्ध लगाए गए आरोपों की जांच करते समय, जिसमें कंपनी को पक्ष नहीं बनाया गया था, इस न्यायालय ने माना है कि जब प्रबंध निदेशक के विरूद्ध लगाए गए आरोप अस्पष्ट प्रकृति के हैं, तो वही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत कार्यवाही को निरस्त करने का आधार हो सकता है। इस मामले में मुख्य रूप से आरोप पहली आरोपी कंपनी के विरूद्ध लगाए गए हैं जो होटल हयात रीजेंसी चलाती है। साथ ही, ऐसी कंपनी का प्रबंध निदेशक जो आरोपी 2 है, यह अस्पष्ट आरोप लगाकर पक्षकार है कि वह कंपनी की सभी बैठकों में भाग ले रहा था और उसके हस्ताक्षरों के अंतर्गत विभिन्न निर्णय लिए जा रहे थे। उपरोक्त मामलों में निर्धारित अनुपात को लागू करने पर यह स्पष्ट है कि मुख्य रूप से आरोप केवल कंपनी और अन्य स्टाफ सदस्यों के विरूद्ध लगाए गए हैं जो कंपनी के दिन-प्रतिदिन के मामलों के प्रभारी हैं। कंपनी के प्रबंध निदेशक के विरूद्ध विशिष्ट आरोपों की अनुपस्थिति में और लगाए गए आरोपों की प्रकृति को देखते हुए जो कि अस्पष्ट प्रकृति के हैं, हमारा मानना है कि जहां तक प्रबंध निदेशक का संबंध है, यह कार्यवाही को निरस्त करने के लिए एक उपयुक्त मामला है।"

49. इस प्रकार, कंपनी के किसी अधिकारी, निदेशक, प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष को कंपनी के साथ-साथ तभी अभियुक्त बनाया जा सकता है, जब आपराधिक इरादे के साथ-साथ उनकी सक्रिय भूमिका को साबित करने के लिए पर्याप्त सामग्री हो। भारतीय दंड संहिता में प्रतिनिधि दायित्व के लिए कोई प्रावधान नहीं है। प्रबंध निदेशक या निदेशक को अभियुक्त बनाने और कंपनी की ओर से कथित रूप से किए गए अपराध में उनके निहितार्थ के लिए, जब अभियुक्त एक कंपनी है, तो शिकायत/प्रथम सूचना रिपोर्ट या आरोप-पत्र में ऐसे व्यक्ति(व्यक्तियों) द्वारा अपराध किए जाने के अपेक्षित आरोप शामिल होने चाहिए।

50. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **किशोरी सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य: (2004) 13 एससीसी 11** के मामले में इस मुद्दे पर विचार करते हुए कि क्या जब परीक्षण के दौरान कुछ साक्ष्य या सामग्री रिकॉर्ड पर लाई जाती है तो व्यक्ति को "आरोपी व्यक्ति" के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है और पैरा-10 में निम्नलिखित टिप्पणी की: -

"10. जहां तक उन व्यक्तियों का सवाल है जिनके विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है, उन्हें धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में "आरोपी व्यक्ति" के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है जब परीक्षण के दौरान कुछ साक्ष्य या सामग्री

रिकॉर्ड पर लाई जाती है या उन्हें केवल तभी "आरोपी व्यक्ति" के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है जब या तो मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिबद्धता का आदेश पारित करते समय या विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा उच्च न्यायालय को संदर्भ दिया जाता है और उच्च न्यायालय, सामग्री की जांच करने पर, इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उनके विरूद्ध पर्याप्त सामग्री मौजूद है, भले ही पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल न किया हो, जैसा कि बाद के तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में स्पष्ट किया गया है।इस मामले में कोई भी आकस्मिक स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है।"

51. मेसर्स इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य: (1989) 2 एससीसी 132 में, माननीय न्यायालय ने संहिता के प्रावधानों का विश्लेषण करने के बाद, अभिनंदन झा बनाम दिनेश मिश्रा: एआईआर 1968 एससी 117 और एचएस बैंस बनाम राज्य (चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश): (1980) 4 एससीसी 631 में दिए गए निर्णयों का संदर्भ दिया और अंततः निम्नलिखित टिप्पणी की:

16. "इसलिए, अब स्थिति यह है कि धारा 173(2) के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(बी) के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस आशय की हो कि आरोपी के विरूद्ध कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा जांचे गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का आदेश दे सकता है। धारा 190(1)(बी) यह निर्धारित नहीं करती है कि मजिस्ट्रेट तभी अपराध का संज्ञान ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच में आरोपी के विरूद्ध मामला बना है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और जांच से उभरे तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगा सकता है और धारा 190(1)(बी) के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए मामले का संज्ञान ले सकता है

52. इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सभी तर्क तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं। न्यायालय को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के साक्ष्य के महत्व का निर्णय करने तथा विद्वान अधिवक्ता द्वारा बताए गए तथ्यात्मक विवरणों की विभिन्न जटिलताओं के आधार पर उसका मूल्यांकन करने के लिए भी कहा गया है। अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत सामग्री की सत्यता और विश्वसनीयता पर सवाल उठाया गया है तथा गलत आरोप लगाए गए हैं। अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने की प्रक्रिया में, इस न्यायालय को वास्तविक सुनवाई शुरू होने से पहले पूर्व सुनवाई के लिए राजी नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क तथ्यों के विशुद्ध प्रश्नों पर निर्णय लेने की मांग करते हैं, जिन पर केवल विचारण न्यायालय द्वारा ही पर्याप्त रूप से निर्णय लिया जा सकता है तथा ऐसा करते समय विधि के बिंदुओं पर किए गए तर्कों पर भी विचारण न्यायालय द्वारा इस मामले में

अधिक उचित रूप से विचार किया जा सकता है।

53. जारी करने की प्रक्रिया के इस चरण में अधीनस्थ न्यायालय से रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री की विस्तार से जांच और आकलन करने की उम्मीद नहीं की जाती है, केवल यह देखना होता है कि प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा हुआ है या नहीं। आरोप पत्र, समन आदेश और पूरी कार्यवाही को निरस्त भी तभी किया जा सकता है जब इससे कोई अपराध का खुलासा न हो या कोई कानूनी रोक हो जो इसके आधार पर कार्यवाही को प्रतिबंधित करती हो। सर्वोच्च न्यायालय ने दिशानिर्देश भी निर्धारित किए हैं जहां निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप और उसे निरस्त किया जा सकता है और इस संबंध में विधि की स्थिति स्पष्ट की है:-(i) आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एस.सी. 866, (ii) हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 एससीसी (सीआरएल.)426, (iii) बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 एससीसी (सीआरएल.)192 और (iv) झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम। मोहम्मद सराफुल हक और अन्य, (पैरा-10) 2005 एससीसी (क्रि.)283.

53. जारी करने की प्रक्रिया के इस चरण में अधीनस्थ न्यायालय से रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री की विस्तार से जांच और आकलन करने की उम्मीद नहीं की जाती है, केवल यह देखना होता है कि प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा हुआ है या नहीं। आरोप पत्र, समन आदेश और पूरी कार्यवाही को निरस्त भी तभी किया जा सकता है जब इससे कोई अपराध का खुलासा न हो या कोई कानूनी रोक हो जो इसके आधार पर कार्यवाही को प्रतिबंधित करती हो। सर्वोच्च न्यायालय ने दिशानिर्देश भी निर्धारित किए हैं जहां निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप और उसे निरस्त किया जा सकता है और इस संबंध में विधि की स्थिति स्पष्ट की है:-**(i) आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एस.सी. 866, (ii) हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 एससीसी (सीआरएल.)426, (iii) बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 एससीसी (सीआरएल.)192 और (iv) झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम। मोहम्मद सराफुल हक और अन्य, (पैरा-10) 2005 एससीसी (क्रि.)283.**

54. उच्च न्यायालय की शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए इसका प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए, जिसके लिए न्यायालय का ही मात्र अस्तित्व है। इसलिए अंतिम दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम है और आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है। **एस.डब्ल्यू. पलनकटकर और अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 (44) एसीसी 168** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करना नियम से ज़्यादा अपवाद है। धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ स्वयं तीन परिस्थितियों की

परिकल्पना करती हैं जिनके अंतर्गत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है: - (i) संहिता के अंतर्गत आदेश को प्रभावी बनाना; (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना; (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना।

55. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी आधार के अभाव में जो दिनांक 17.10.2022 के समन आदेश या परिणामी कार्यवाही को निरस्त करने को उचित ठहरा सकता है, उसे **निरस्त करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है,** क्योंकि मुझे न्यायालय की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग भी नहीं दिखता है। अधीनस्थ न्यायालय को आरोप तय करने के चरण से पहले ही अभियुक्त को बरी करने के लिए पर्याप्त शक्तियाँ दी गई हैं, यदि दर्ज किए जाने वाले कारणों से वह आरोप को निराधार मानती है।

56. तथापि, उपर्युक्त चर्चाओं और टिप्पणियों के दृष्टिगत, यह निर्देश दिया जाता है कि आवेदक आज से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर संबंधित अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा और उन्मोचन का दावा करते हुए एक आवेदन प्रस्तुत करेगा। संबंधित अधीनस्थ न्यायालय पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, आज से तीन महीने की अवधि से अधिक नहीं की अवधि के भीतर विधि के अनुसार गुण-दोष के आधार पर उपरोक्त उन्मोचन आवेदन पर निर्णय करेगी, जब तक कि कोई विधिक बाधा न हो या जब तक कि मामले की कार्यवाही पर रोक लगाने वाला उच्च न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित न किया जाए।

57. यह भी निर्देश दिया जाता है कि उपरोक्त डिस्चार्ज आवेदन के निपटारे तक आवेदक के विरुद्ध कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

58. उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आवेदक द्वारा अधियाचित अनुतोष् के लिये दायर यह आवेदन **निस्तारित किया जाता** है।

(2023) 5 ILRA 1920

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर),

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 11669/2018

प्रशांत त्यागी और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री संजय सिंह, श्री अमरेन्द्र नाथ राय

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री अभिनव गौरव, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री विभु राय

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - चुनौती के तहत धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत संपूर्ण कार्यवाही - आरोप - विपक्षीगण ने

शिकायतकर्ता के पक्ष में चेक जारी किया - चेक अनादरित हुआ आवेदकों ने चेक जारी होने की तारीख को निदेशक पद से इस्तीफा दे दिया था - न्याय को बढ़ावा देने या अन्याय या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अदालत उन सामग्रियों पर गौर कर सकती है जो प्रथम दृष्टया मामले पर महत्वपूर्ण असर डालती हैं - आवेदक संख्या 1 ने प्रश्नगत चेक जारी होने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे - चेक जारी होने की तारीख पर आवेदक कंपनी के केवल शेयरधारक थे - कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं - आवेदकों की भूमिका के बारे में भी शिकायत मौन है - व्यक्तियों को अभियोजन का सामना करने के लिए घसीटना न्याय का उपहास है - चेक जारी करने या उसके अनादर होने से कोई संबंध नहीं है - समन आदेश रद्द- प्रार्थना पत्र स्वीकृत।

अभिनिर्धारित:

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया गया कि आवेदक संख्या 1 ने संबंधित चेक जारी होने से बहुत पहले ही कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। बेशक, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी होने की तिथि पर आवेदक कंपनी के केवल शेयरधारक थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरह से आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए प्रभारी या जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड में देखा गया है, कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में आवेदकों की भागीदारी नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि बचाव पक्ष साक्ष्य के समय देखा जाएगा, उन व्यक्तियों को अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी होने या उसके अनादर होने से किसी भी तरह से जुड़े नहीं हैं।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, आवेदकों को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाना, उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अधिदेश के विरुद्ध पाया गया है।

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. श्रीमती बी. देवी (बसंती देवी) बनाम उ0प्र0 राज्य, 2016 (94) एसीसी 90
2. सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम मेसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या 2022 [एसएलपी (आपराधिक) संख्या 10396/2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को निर्णीत
3. एस.एम.एस. फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89
4. हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट प्रकरण 351
5. पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर) द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के लिए अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को स्थानांतरित करके, अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 25.11.2016 को धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत सी.सी संख्या-70/2016 में पारित सम्मन आदेश को रद्द करने और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-19 वर्ष 2017 में पारित आदेश दिनांक 22.02.2018 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

मामले के तथ्यों के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा 13.10.2016 को आवेदकों और छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ इस संस्करण के साथ शिकायत दर्ज की गई थी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक लिमिटेड कंपनी थी और विजय कुमार पुत्र स्वर्गीय श्री सतपाल कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 खरीदने, बेचने और संपत्तियों के निर्माण के व्यवसाय में लिप्त था। प्रतिपक्षी संख्या-1 (शिकायत में) मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एक पंजीकृत कंपनी थी। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 इसके निदेशक और अधिकारी थे और प्रतिपक्षी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 9 सभी दिन-प्रतिदिन के कारोबार और प्रतिपक्षी संख्या-1, मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के लेनदेन के लिए जिम्मेदार थे।

प्रतिपक्षियों (शिकायत में) ने शिकायतकर्ता /प्रतिपक्षी संख्या-2 को आश्वासन दिया था कि वे शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को उचित मूल्य पर जमीन उपलब्ध कराएंगे। प्रतिपक्षियों में विश्वास करते हुए शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 16.08.2014 को प्रतिपक्षियों को 5,00,00,000/- रुपये का भुगतान किया, जो प्रतिपक्षियों द्वारा प्राप्त किए गए थे। जब उनके आश्वासन के अनुसार प्रतिपक्षी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के लिए भूमि की व्यवस्था नहीं कर सके और शिकायतकर्ता ने उन्हें प्राथमिकी दर्ज करने की धमकी दी, तो प्रतिपक्षियों ने ब्याज के साथ 5,00,00,000/- रुपये की मूल राशि के अनुसरण में 7,00,00,000/- रुपये का भुगतान करने का वादा किया। प्रतिपक्षियों ने शिकायतकर्ता /प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में 1,00,00,000/- का चेक दिया। दिनांक 30.07.2016 को 1,00,00,000/- रुपये मूल्य का यह चेक संख्या-000285 अस्वीकृत हो गया, जबकि प्रतिपक्षियों ने इसे भुनाने का आश्वासन दिया था। जिसकी जानकारी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को 29.08.2016 को प्राप्त हुई थी और उचित प्रक्रिया के बाद, शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा कंपनी सहित नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 420 भ०द०वि० के तहत शिकायत दर्ज की गई थी।

धारा 200 द०प्र०स० और धारा 202 द०प्र०स० के तहत बयानों के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.11.2016 के आदेश के तहत सभी नौ आरोपियों को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट 1881 की धारा 138 के तहत मुकदमे का

सामना करने के लिए बुलाया। दिनांक 25.11.2016 के इस आदेश के विरूद्ध, प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी नामक तीन पक्षों/वर्तमान आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे दिनांक 22.02.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 22.02.2018 से व्यथित महसूस करते हुए, वर्तमान आवेदन आवेदक प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी द्वारा केवल इस संस्करण के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1, जो पहले मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक थे, ने 26.09.2014 को, प्रतिपक्षी संख्या-2 को दिनांक 30.07.2016 को चेक संख्या-000285 जारी करने से बहुत पहले, अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने इस आशय के लिए फॉर्म डीआईआर-12 (जिसे पहले फॉर्म 32 के नाम से जाना जाता था) की प्रमाणित प्रति दाखिल की है। उसने न तो चेक पर हस्ताक्षर किए थे और न ही उसके बैंक खाते में राशि प्राप्त हुई थी, इस प्रकार, आवेदक संख्या-1 आरोपी कंपनी में पूर्व निदेशक है। आवेदक संख्या-2 और 3 आवेदक संख्या-1 की मां और बहन हैं। उनका आरोपी कंपनी के कामकाज से किसी भी तरह से कोई संबंध नहीं था। वे कंपनी के आचरण और व्यवसाय के लिए प्रभारी और जिम्मेदार नहीं हो सकते थे। बिना किसी विशिष्ट कथन के कि उन्होंने आरोपी कंपनी के कामकाज और व्यवसाय में क्या भूमिका निभाई है, उन्हें धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए नहीं फंसाया जा सकता है। सम्मन आदेश एन.आई. अधिनियम की धारा 141 पर विचार किए बिना पारित किया गया है, इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ सभी आवेदक कंपनी के शेयरधारक हैं और एक ही परिवार से संबंधित हैं। वर्तमान आवेदक प्रशांत त्यागी राम सेवक त्यागी का पुत्र है, आवेदक संख्या-2 श्रीमती नीता त्यागी राम सेवक त्यागी की पत्नी है और आवेदक संख्या-3 श्रीमती श्वेता त्यागी, गौरव की पत्नी है/राम सेवक त्यागी और राम सेवक की पुत्री है, वह व्यक्ति है जो आरोपी कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है और उसने 30.07.2016 को शिकायतकर्ता/ प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में चेक जारी किया था। जब 30.08.2013 को वार्षिक आम बैठक बुलाई गई थी तो विवादित कंपनी के सभी शेयरधारकों के शेयर निम्नानुसार थे: -
राम सेवक त्यागी के पास 20000 शेयर थे, प्रशांत त्यागी आवेदक संख्या-1 के पास 25000 शेयर थे, श्रीमती नीता त्यागी के पास 20000 थे और श्रीमती श्वेता त्यागी के पास 10000 शेयर थे और राम किशन के पास 5000 शेयर थे, इस प्रकार, यहां सभी आवेदक आरोपी कंपनी के शेयरधारक हैं।

सभी आवेदक राम सेवक त्यागी के रक्त-संबंधी हैं और राम किशन राम सेवक का बहनोई है, जो उक्त धोखाधड़ी का मास्टर माइंड है। राम

सेवक कंपनी के अन्य निदेशकों और शेयरधारकों के साथ कंपनी के वित्तीय और लेखा मामलों को संभाल रहे थे और निदेशकों, अधिकृत प्रतिनिधियों के साथ-साथ कंपनी के अन्य शेयरधारकों की ओर से कंपनी के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के प्रभारी हैं। निचली अदालत ने आवेदकों के पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया था। आवेदक संख्या-1 कंपनी का संयुक्त निदेशक है और अभी भी कंपनी का निदेशक है और बहुत कम समय के लिए वह निदेशक मंडल में नहीं था। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय/कार्यों की देखभाल करने वाले और कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि होने के नाते सभी आवेदक अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इसलिए, अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया है।

आवेदकों ने एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया जिसमें जवाबी हलफनामे के संस्करण से इनकार किया गया था और शिकायत के संस्करण को दोहराया गया था।

आवेदकों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने एन.आई. अधिनियम की धारा 141 का अध्ययन नहीं किया है, जो कंपनियों द्वारा अपराधों से संबंधित है। इस धारा को देखे बिना आक्षेपित आदेश को पूर्ण और भावात्मक आदेश नहीं कहा जा सकता है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1 ने 26.09.2014 को इस्तीफा दे दिया था, जबकि कहा जाता है कि चेक 30.07.2016 को जारी किया गया था। उनके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर-12 दाखिल किया गया है, जो एक सार्वजनिक दस्तावेज है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं और महिलाएं हैं। उनकी भागीदारी को कंपनी में सक्रिय नहीं कहा जा सकता है और शिकायत में यह स्पष्ट कथन है कि आरोपी संख्या-2 से 6 कंपनी के निदेशक और शेयरधारक होने के नाते आरोपी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 सहित आरोपी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार तीनों आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के सभी लेनदेन और समग्र व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन कोई विवरण या व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका, जिसे शिकायत में स्पष्ट किया जाना चाहिए, स्पष्ट नहीं किया गया है। जाहिर है कि चेक किसी भी आवेदक द्वारा जारी नहीं किया गया था। आवेदक संख्या-2, आवेदक संख्या-1 की मां एक वरिष्ठ नागरिक है। इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

जबकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदकों के अधिवक्ता के संस्करण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक कंपनी में शेयरधारक हैं और राम सेवक के परिवार के सदस्य हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विवादित चेक जारी किया है और चेक जारी करने वाले व्यक्ति की पत्नी, बेटे और बेटी होने के नाते सभी आवेदकों को राम सेवक त्यागी द्वारा किए गए कार्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिकायत में आरोपी संख्या-7 चूंकि पूरी धोखाधड़ी/छल आवेदकों की सहमति और मिलीभगत से की गई है, इसलिए एन.आई अधिनियम की धारा 141 की मदद से सभी

आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे। सम्मन के इस चरण में आवेदकों के बचाव का निर्णय नहीं किया जा सकता है। आवेदकों की देयता केवल साक्ष्य के बाद ही तय की जा सकती है, क्योंकि अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 2 के अनुसार यदि अपराध आवेदकों की सहमति या मिलीभगत से किया गया साबित होता है तो वे भी इसके लिए उत्तरदायी होंगे और तदनुसार दंडित किए जाएंगे। इस प्रकार आवेदकों के अपराध को साबित करने के लिए पक्षकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हैं और इस प्रारंभिक अवस्था में आवेदकों की देयता तय नहीं की जा सकती है।

श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 (94) ए.सी.सी. 90 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्तों को बुलाने के चरण में, बचाव जो वे बाद में जोड़ सकते हैं, नहीं देखा जा सकता क्योंकि इस तरह के संभावित बचाव को देखने का कोई अवसर नहीं था, जो तब आ सकता है जब आरोपी पेश होंगे और मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला रखेंगे। सम्मन जारी करने के चरण में न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध दिखाया गया है और उन अभियुक्त व्यक्तियों को तलब करने को न्यायोचित ठहराने के लिए उपयुक्त सामग्री आई है जिनके विरुद्ध शिकायत की गई है। आवेदकों को स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में सौंपी गई भूमिका को शिकायत के पैराग्राफ 4 में संदर्भित किया गया है, कि सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और कामकाज के लिए जिम्मेदार हैं।

इस निर्णय के आधार पर, यह आगे तर्क दिया गया है कि कंपनी के सभी अधिकारी कंपनी के नाम पर किए गए कृत्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन कृत्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाने की मांग की जाती है जिसके परिणामस्वरूप कंपनी के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई की जा रही है। इस प्रकार, यह दावा किया जाता है कि सभी आवेदक पूर्वोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

आवेदकों के अधिवक्ता ने सुनीता पलिता और अन्य बनाम मैसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या-2006 में दिए गए निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान आकषत किया। वर्ष 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या-10396 वर्ष 2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को फैसला किया गया और एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एस.सी.सी. 89 में निर्णय का उल्लेख किया गया है, जिसमें पैरा - 10 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि-

कंपनी ने कहा, 'कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा। यह केवल वे व्यक्ति हैं जो अपराध के कमीशन के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार थे, जो आपराधिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी कंपनी का निदेशक जो प्रभारी नहीं था और प्रासंगिक समय पर

कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार नहीं था, तो प्रावधान के तहत उत्तरदायी नहीं होगा। देयता प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने से उत्पन्न होती है जब अपराध किया गया था और केवल किसी कंपनी में पदनाम या कार्यालय रखने के आधार पर नहीं। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो किसी कंपनी में कोई कार्यालय या पदनाम नहीं रखता है, यदि वह प्रासंगिक समय पर किसी कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने की मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है, उत्तरदायी हो सकता है। देयता किसी कंपनी के मामलों में निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करती है न कि पदनाम या स्थिति पर।

न्यायालय का ध्यान आगे हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतीलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 351 में फैसले की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि शिकायतकर्ता बैंकर के माध्यम से चेक का अनादरण उसके इस्तीफे के बाद था, इसलिए आवेदक संख्या-1 को उस समय कंपनी के साथ कोई चिंता नहीं कहा जा सकता है।

आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि शिकायत में महज़ सादा कथन कि "आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए, वे किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी हैं" अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह कथन किसी भी विवरण से रहित है।

पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2014) 16 एस.सी.सी. के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 141 के तहत प्रत्यावर्ती दायित्व को बांधने के लिए, उस सुसंगत समय पर वह व्यक्ति कंपनी के मामलों के शीर्ष पर होगा, जो कंपनी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की सक्रिय रूप से देखभाल करता है और विशेष रूप से अपने व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार है। सिर्फ इसलिए कि एक व्यक्ति एक कंपनी का निदेशक है ..... कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा।

इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक संख्या-1 उस तारीख को कंपनी का निदेशक नहीं था जब चेक जारी किया गया था और उसके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर - 12 रिकॉर्ड पर रखा गया है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं। उन्हें कंपनी के कामकाज में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता का तर्क है कि इस संबंध में बहस के समय आवेदकों का बचाव देखा जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय ने हर्षेंद्र कुमार डी बनाम रेबटिलता कोले और अन्य (उपरोक्त) के फैसले में कहा कि यदि अभियुक्त द्वारा रखे गए दस्तावेजों के चेहरे पर, उसके खिलाफ आरोप टिक नहीं सकते, यह न्याय का उपहास होगा यदि आरोपी को मुकदमे में धकेल दिया जाता है और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बचाव साबित करने के लिए कहा जाता है। ऐसे

मामले में, न्याय को बढ़ावा देने के लिए या प्रक्रिया के अन्याय या दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय उन सामग्रियों को देख सकता है जिनका प्रथम दृष्टया स्तर पर मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यदि हम श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा दिए गए फैसले को देखते हैं, तो उस मामले के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से अलग हैं, जिसमें उस मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता और अन्य निदेशकों की उपस्थिति में चेक जारी किए गए थे, जबकि प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता की उपस्थिति में चेक कभी जारी नहीं किए गए थे, बल्कि तब तक आवेदक संख्या-1 ने कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जबकि श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों के अनुसार इस्तीफे के संबंध में दस्तावेजों को जाली दस्तावेज होने का आरोप लगाया गया था, लेकिन आवेदक संख्या-1 के इस्तीफे के मामले में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा ऊपर दिए गए विभिन्न सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की उपस्थिति में इस न्यायालय के फैसले का लाभ नहीं उठा सकते हैं।

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया जाता है कि आवेदक संख्या-1 ने चेक जारी करने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जाहिर है, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी करने की तारीख को आवेदक कंपनी के शेयरधारक मात्र थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरीके से प्रभारी थे या आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड के आधार पर, आवेदकों की भागीदारी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि साक्ष्य के समय बचाव को देखा जाएगा, अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए व्यक्तियों को घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या उसके जारी करने से जिसको अस्वीकृत किया जा रहा है, किसी भी तरह से जुड़े नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए आवेदकों को समन करना उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के जनादेश के खिलाफ पाया गया है।

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित दिनांक 22.02.2018 के निर्णय को रद्द किया जाता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 5 ILRA 1926

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 21849/ 2021

जय बाजपेयी @ जयकांत बाजपेयी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री दीपक सिंह, श्री शिव कांत दीक्षित, श्री एन.आई. जाफरी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439 दं0प्र0सं0 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420, 467, 468, 471 एवं 120-बी - आवेदक के पास प्रश्नगत अपराध में प्रयुक्त वाहन का वास्तविक कब्जा है - सचिवालय का जाली गेट पास - केस डायरी के बयानों से पता चलता है कि आवेदक ने गैंगस्टर विकास दुबे की मदद की थी - मृतक का बयान - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(3) के अंतर्गत विधिक प्रभाव - घटना डकैती अधिनियम के अंतर्गत अधिसूचित क्षेत्र में हुई - उत्तर प्रदेश डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम की धारा 10 - षड्यंत्र संगठित अपराध का अभिन्न अंग है - अपराध जघन्य प्रकृति का है - मुकदमे में तेजी लाई गई - जमानत अर्जी खारिज। (पैरा 24, 25, 26, 33,34, 42, 43 एवं 45)

अभिनिर्धारित:

उपरोक्त के अवलोकन से पता चलता है कि आरोपी आवेदक ने निश्चित रूप से विकास दुबे की मदद की और विकास दुबे के गिरोह की आपराधिक गतिविधियों के प्रति हमेशा अपनी आँखें बंद रखीं। घटना के दौरान उसने दूरी बनाए रखी। ऐसे संगठित अपराध के मामले में जहां पुलिस बल के सदस्य भी गैंगस्टर और उसके समूह की सहायता कर रहे थे, प्रत्यक्ष साक्ष्य होना संभव नहीं है। इसके अलावा, साजिश के मामले में प्रत्यक्ष साक्ष्य की कोई संभावना नहीं है। जो साक्ष्य उपलब्ध हो सकते हैं वे केवल परिस्थितिजन्य प्रकृति के हैं और आरोपी आवेदक की ओर से निष्क्रियता के रूप में हो सकते हैं, जिसने आरोपियों की सहायता करने के अपने प्रयास में खुद को तस्वीर से बाहर रखा। इसलिए, मामले की परिस्थितियों और इस स्थिति से साजिश का निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि आवेदक एक आपराधिक मानसिकता वाला व्यक्ति था जो गैंगस्टर विकास दुबे और उसके गिरोह की सहायता करने में लिप्त था, और सभी कागजी कार्रवाई आवेदक की सहायता से की गई थी। (पैरा 24)

धारा 32(3) को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि मृत व्यक्ति के कथन को कानूनी रूप से मान्यता दी गई है और साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया गया है, भले ही वह उसकी मृत्यु के कारण से संबंधित न हो। हालाँकि, इस चरण में अंतिम राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस पर ट्रायल कोर्ट द्वारा विचार किया जाएगा, फिर भी, यह स्पष्ट है कि कथन मृत व्यक्ति का है और साक्ष्य अधिनियम के

प्रावधान के मद्देनजर इसकी कानूनी प्रासंगिकता है। (पैरा 34)

अपराध, भ्रष्टाचार और जनसंख्या तीन प्रमुख समस्याएं हैं जिनका समाज वर्तमान में सामना कर रहा है। अपराध और भ्रष्टाचार के विरुद्ध, विशेष रूप से जब यह संगठित अपराध और भ्रष्टाचार हो, तो इन पर अधिकतम सीमा तक प्रतिबंध लगाने और न्यूनतम करने के लिए सख्त कार्रवाई और हस्तक्षेप आवश्यक है, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण के लिए कानूनी कदम और रणनीति की आवश्यकता है जिसमें प्रेरणा, शिक्षा और जागरूकता का प्रसार और परिवार नियोजन अपनाने वालों को कुछ सकारात्मक प्रोत्साहन शामिल हो। अपराध और भ्रष्टाचार के विरुद्ध, राज्य को शून्य सहनशीलता की नीति जारी रखनी चाहिए। राजनीतिक दलों को "अपना आदमी" और "हमारा आदमी" के विचार से प्रभावित हुए बिना अपराध और भ्रष्टाचार के विरुद्ध ऊपर उठना चाहिए क्योंकि यह दृष्टिकोण न केवल कानून के शासन को कमजोर करेगा बल्कि राष्ट्र के लोकतांत्रिक ढांचे को भी नुकसान पहुंचाएगा। (पैरा 42) जीवन, स्वतंत्रता और शांति की खोज में अपराध से मुक्ति भी शामिल है। राज्य का सबसे बड़ा कर्तव्य प्रत्येक नागरिक को ये मूल अधिकार प्रदान करना है। आपराधिक न्याय प्रणाली की सफलता केवल इस बात से मापी जा सकती है कि यह इन अधिकारों को शब्द और भावना में सुनिश्चित करने में कितनी सफल है। इन अधिकारों की किस हद तक सफलतापूर्वक रक्षा की जाती है, यह इस प्रणाली में जनता के विश्वास में परिलक्षित होगा। संगठित अपराध को पारंपरिक व्यक्तिगत अपराध से अलग तरीके से देखा जाना चाहिए। षड्यंत्र संगठित अपराध का एक अभिन्न अंग है। ऐसे मामलों में षड्यंत्र का कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं हो सकता है और कानून को संगठित अपराध से व्यक्तिगत या पारंपरिक अपराध से अलग तरीके से निपटना होगा, जहाँ तक साक्ष्य की स्वीकार्यता और प्रशंसा का सवाल है। (पैरा 43)

उपर्युक्त चर्चा से निश्चित रूप से यह पता चलता है कि अपराध की प्रकृति और दोष की मात्रा गंभीर, जघन्य, चौंकाने वाली और अभूतपूर्व है। (पैरा 44)

जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दाताराम सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य, (2018) 2 एससीसी 22 में प्रतिवेदित
2. विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, 2015 (3) एससीसी 220 में प्रतिवेदित
3. हुसैन एवं अन्य बनाम भारत संघ; 2017 (5) एससीसी 702

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

दिनांक 28.3.2023 के आदेश के अनुसार संबंधित पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दायर लिखित तर्क रिकॉर्ड में लिए जाते हैं।

1. श्री एन.आई. जाफरी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री शिवकांत दीक्षित, आवेदक के अधिवक्ता और श्री अभिजीत मुखर्जी, श्री डी.पी.एस चौहान और श्री मिथिलेश कुमार, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान जमानत आवेदन अभियुक्त-आवेदक जय बाजपेयी @ जय कांत बाजपेयी द्वारा केस अपराध संख्या-238 वर्ष 2020 में धारा 420, 467, 468, 471, 120-बी भ०द०वि०,

थाना- काकदेव, जिला- कानपुर नगर के तहत जमानत पर रिहा करने के लिए दायर किया गया है।

3. घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट उपनिरीक्षक रविशंकर पाण्डेय द्वारा दिनांक 22.7.2020 को धारा 420, 467, 468, 471, 120-बी भ०द०वि०, थाना-काकादेव, जिला कानपुर नगर के अंतर्गत केस अपराध क्रमांक 238 वर्ष 2020 के रूप में दर्ज की गई। पहले सूचनाकर्ता का संस्करण यह है कि आवेदक के पास ग्राम टिकुरी, थाना-चौबेपुर, जिला कानपुर नगर में दिनांक 4/5.7.2020 को प्रश्न में अपराध में प्रयुक्त वाहनों का आभासी कब्जा है।

4. धारा 161 द०प्र०स० के तहत पहले सूचनाकर्ता का बयान 24.7.2020 को दर्ज किया गया था जिसमें उसने कहा था कि आरोपी/आवेदक अपराध में इस्तेमाल किए गए वाहन का आभासी मालिक है, लेकिन मौखिक को छोड़कर कोई सबूत पेश नहीं कर सका। विवेचनाधिकारी ने वाहनों के मालिकों के कथित बयानों को भी नोट किया, जिन्होंने कहा है कि वे उस वाहन के मालिक हैं जिसका उपयोग आवेदक द्वारा किया गया था, उन्होंने आगे जांच की कि लखनऊ में सचिवालय का प्रवेश पास जाली है। वाहनों को कथित तौर पर 5.7.2020 को बरामद किया गया था, लेकिन पहली सूचना रिपोर्ट 22.7.2020 को दर्ज की गई थी, जिसमें असाधारण वर्ष 17 दिन की देरी थी। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार आवेदक ऑडी कार, फॉर्च्यूनर कार और हुंडई कार का मालिक नहीं है। ऑडी कार और हुंडई वर्मा कार प्रमोद कुमार वर्मा और कपिल सिंह चौहान की है जो प्रस्तुत मामले में आरोपी नहीं हैं, जबकि फॉर्च्यूनर कार राहुल सिंह की है (जिन्हें आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-40006 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 1.12.2021 के माध्यम से इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है। उक्त आदेश की एक प्रति आवेदक के अधिवक्ता द्वारा पेश की गई है, जिसे रिकॉर्ड में लिया गया) जिस पर लखनऊ में सचिवालय का फर्जी प्रवेश पास चस्पा किया गया था, जो सह-आरोपी है। हालांकि, अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार उपरोक्त सभी मालिकों ने स्वेच्छा से गवाही दी कि उपरोक्त कारों का उपयोग आवेदक द्वारा किया गया था। यहां यह उल्लेख करने योग्य है कि आवेदक न तो उपरोक्त वाहनों का मालिक है और न ही उसने किसी भी समय इसका उपयोग किया था और न ही उपरोक्त कारों को आवेदक के कब्जे से बरामद किया गया था। उपरोक्त सभी वाहन एक ही स्थान से बरामद किए गए थे और आवेदक विचाराधीन वाहनों में मौजूद नहीं था, लेकिन पुलिस ने दुर्भावनापूर्ण इरादे से आवेदक की हिरासत से कुछ जाली नंबर प्लेटों की बरामदगी दिखाई है, इस तथ्य के बावजूद कि आवेदक 20.7.2020 से जेल में था और प्रस्तुत अपराध में प्राथमिकी 22.7.2020 को दर्ज की गई थी।

5. आवेदक के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि व्यवसायी होने और कुछ स्थानीय उच्च स्तर के राजनेताओं के साथ केवल राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता होने के कारण, आवेदक को झूठे और तुच्छ दस्तावेजों और गवाहों को गढ़कर

उक्त अपराध के साथ फंसाया गया है, रिकॉर्ड पर यह दिखाने के लिए कुछ भी उपलब्ध नहीं है कि कथित प्रवेश पास वाहन संख्या-1 के विंड शील्ड पर चिपकाया गया है। न तो यूपी 78 ईडब्ल्यू 7070 आवेदक द्वारा तैयार किया गया था और न ही कोई सबूत या गवाह है जिसने दावा किया है कि आवेदक ने सचिवालय के नकली गेट पास को वाहन नं. यू.पी. 78 एफसी 7070 और यूपी 78 एफआई 9595 किसी भी समय आवेदक से संबंधित नहीं हैं और वाहन के मालिक द्वारा दिया गया बयान कि आवेदक वाहन का मालिक है, पूरी तरह से गलत है और इसका कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है। इसके अलावा, जो व्यक्ति वाहन नं यूपी 78 ईडब्ल्यू 7070 का पंजीकृत मालिक है उस पर कथित स्टिकर का दायित्व है जो पुलिस द्वारा आवेदक के झूठे और मनगढ़ंत अभियोजन के लिए साजिश के तहत तैयार किया गया था। वाहन मालिक श्री कपिल सिंह और राहुल विश्वकर्मा को आवेदक की कीमत पर छोड़ दिया गया है, जबकि यह स्पष्ट है कि यह लिखने के बावजूद कि वाहन उनके नाम पर पंजीकृत थे, लेकिन उनके द्वारा इसका उपयोग नहीं किया गया था, इसका कोई तार्किक स्पष्टीकरण नहीं है जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आवेदक को उपरोक्त अपराध में झूठा फंसाया गया है।

6. यह कहा गया है कि जांच स्वतंत्र, तटस्थ और निष्पक्ष नहीं है और आवेदक पुलिस के अवैध कृत्य और आचरण का शिकार हुआ है क्योंकि पुलिस प्रतिद्वंद्वी तरीके से काम कर रही है और राजनेताओं का राजनीतिक दबाव है जो केवल व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता का बदला लेने के लिए आवेदक के पूरे जीवन को बर्बाद करना चाहते हैं। यह अभियोजन का स्व-स्वीकृत मामला है कि आवेदक की केस अपराध संख्या-192 वर्ष 2020 में कोई प्रत्यक्ष भूमिका या भागीदारी नहीं है। जैसा कि कार्यवाही पैराग्राफ में कहा गया है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार आवेदक ऑडी कार, फॉर्च्यूनर कार और हुंडई वरना कार का मालिक नहीं है। ऑडी कार और हुंडई वरना कार प्रमोद कुमार वर्मा और कपिल सिंह चौहान की हैं, जो प्रस्तुत मामले में आरोपी नहीं हैं, जबकि फॉर्च्यूनर कार राहुल सिंह की है, जिस पर सचिवालय का नकली प्रवेश पास चिपकाया गया था, जो प्रस्तुत मामले में सह-आरोपी है और अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार उपरोक्त सभी मालिकों ने स्वेच्छा से गवाही दी कि उपरोक्त कारों का उपयोग आवेदक द्वारा किया गया था। वाहन मालिक का उपरोक्त बयान स्वीकार्य नहीं है, आगे विवेचनाधिकारी द्वारा जांच नहीं की जाती है कि सचिवालय द्वारा जारी फर्जी गेट पास का लाभार्थी कौन है। कानून तय है कि किसी भी अपराध का दायित्व मालिक पर जाता है न कि उपयोगकर्ता पर और यह रिकॉर्ड से स्थापित होता है कि सीरियल संख्या-828 वाला नकली गेट पास यूपी 78 ईडब्ल्यू 7070 के विंड शील्ड पर चिपका दिया गया था, इसलिए इस मालिक के वाहन को यह स्थापित करना चाहिए कि वह सीरियल संख्या-828 वाले नकली गेट पास का लाभार्थी नहीं था जो दर्शाता है कि जांच दोषपूर्ण है और केवल आवेदक को आरोपित करने के उद्देश्य से आयोजित की गई है।

7. आगे यह कहा गया है कि न तो आवेदक उक्त वाहनों का मालिक है और न ही उसकी ओर इशारा करने से ऐसी कोई बरामदगी की

गई थी, पुलिस द्वारा स्थापित पूरी कहानी बिल्कुल झूठी है और रिकॉर्ड देखने पर मनगढ़ंत है।

8. यह आगे कहा गया है कि न तो आवेदक ने अपना अपराध कबूल किया है और न ही उसकी संलिप्तता पुलिस द्वारा साबित की गई है, लेकिन चूंकि आवेदक एक आम आदमी है और राज्य की शक्ति रखने वाली पुलिस ने राजनेताओं के इशारे पर आवेदक को झूठा फंसाया।

9. आगे यह कहा गया है कि अभियोजन की पूरी कहानी आवेदक के स्वामित्व पर आधारित है, इसलिए वाहन के मालिक द्वारा दायर रिहाई आवेदन प्रभावी रूप से निर्णय को प्रभावित करेगा।

10. यह आगे कहा गया है कि जबरन वाहन मालिक राहुल सिंह को छोड़कर रिकॉर्ड पर कोई सबूत उपलब्ध नहीं है, जिन्होंने आरोप लगाया कि आवेदक टोयोटा फॉर्च्यूनर का उपयोग कर रहा था, आगे यह बहुत आश्चर्यजनक है कि विवेचनाधिकारी ने राहुल सिंह को छुए बिना, प्रस्तुत मामले में सीधे आवेदक को बिना किसी सबूत के जोड़ा था।

11. यह आगे कहा गया है कि आवेदक ने जमानत आवेदन के समर्थन में शपथ पत्र पर विशेष रूप से अपने आपराधिक पूर्ववृत्त की व्याख्या की है। यह आरोप लगाना पूरी तरह से गलत है कि आवेदक की अपराध संख्या-192 वर्ष 2020 में कोई भूमिका है और न ही रिकॉर्ड पर कोई सबूत उपलब्ध है जो उक्त मामले में आवेदक की जटिलता साबित कर सके। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी उपलब्ध नहीं है कि आवेदक विकास दुबे से जुड़ा हुआ है और न ही आवेदक की संलिप्तता दिखाने के लिए कोई सबूत है कि उसने सक्रिय रूप से प्रत्यक्ष और शारीरिक रूप से अपराध किया है। आगे की जांच विश्वसनीय नहीं है और विश्वसनीय साक्ष्य के साथ समर्थित नहीं है। आवेदक को किसी भी हिस्ट्रीशीटर से कोई सरोकार नहीं है।

12. आगे यह कहा गया है कि न तो आवेदक हिस्ट्रीशीटर विकास दुबे का करीबी सहयोगी था और न ही किसी भी समय उसके साथ बातचीत की थी और न ही पैराग्राफ का जवाब देने में किए गए कथन के बारे में कोई सबूत है, विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य, गढ़े गए साक्ष्य हैं और आवेदक की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त या विश्वसनीय नहीं हैं।

13. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यह साधारण अपराध का मामला नहीं है। आवेदक ने सचिवालय, उत्तर प्रदेश राज्य के जाली प्रवेश का उपयोग किया है, जिसे संख्या-यूपी 78 - ईडब्ल्यू 7070 वाले वाहन पर चिपका दिया गया है। इस वाहन का उपयोग आवेदक द्वारा मारे गए डकैत विकास दुबे को सुरक्षित मार्ग प्रदान करने के लिए किया गया था, जो बिकरू नरसंहार का योजनकर्ता था, जिसमें विकास दुबे और उसके गिरोह द्वारा कई पुलिस कर्मियों पर हमला किया गया था, जिसके बाद उक्त पुलिस कर्मियों को निर्दयतापूर्वक वर्ष 2/3.7.2020 की

रात को मौत के घाट उतार दिया गया था। यह ध्यान रखना उचित है कि उक्त बिकरू नरसंहार के लिए आवेदक के खिलाफ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के प्रावधान पहले ही सार्वजनिक व्यवस्था के आधार पर लगाए जा चुके हैं और आवेदक पर 4.9.2021 से 1.9.2022 तक एनएसए लगाया गया था और आवेदक का आपराधिक इतिहास वर्ष 14 मामले हैं।

14. विवेचना के क्रम में केस अपराध क्रमांक 192 वर्ष 2020, थाना-चौबेपुर, जनपद कानपुर नगर में यह बात सामने आई कि बैठक में जयकांत बाजपेयी मौजूद थे, जिसमें यह प्लान किया गया था कि बिकरू हत्याकांड के बाद पुलिस कर्मियों की हत्या कर विकास दुबे को सुरक्षित कैसे बचाया जाए और उसी के लिए जयकांत बाजपेयी ने मारे गए गैंगस्टर विकास दुबे को कारों के साथ पैसे और गोला-बारूद मुहैया कराए थे। यह जानकारी विकास दुबे द्वारा थी जब उसे उज्जैन में गिरफ्तार किया गया था, तब प्रदान की गई और पारगमन के दौरान उसका बयान दर्ज किया गया था जिसे बाद में केस डायरी, पर्चा संख्या-10 दिनांक 17.10.2020 का हिस्सा बनाया गया था, जो विकास दुबे का बयान है जिसमें जय कांत बाजपेयी के साथ उसकी निकटता और उसके भागने की योजना बनाने की योजना है, जिसका प्रासंगिक हिस्सा नीचे दिया गया है: -

"..... मैंने अपने नजदीकी घर की औरतों रेखा अग्निहोत्री, क्षमा पत्नी संजय दुबे उर्फ़ संजू, ख़ुशी पत्नी अमर दुबे शांति देवी पत्नी रमेश को पुलिस को चोर डकैत कहकर चिल्लाने व गांव वालों को इकठ्ठा करने के लिये लगा रखा था। मेरे मामा की बहु मनु पाण्डेय पत्नी सोनू पाण्डेय को भी प्लानिंग की पूरी जानकारी थी तथा फ़ोन से सबको सजग कराने व सूचना देने के लिए मैंने बता रखा था। इसके बाद मैं भागकर शिवली चला गया था इस दौरान मेरे अति नजदीकी जयकांत उर्फ़ जय बाजपेयी पुत्र लक्ष्मीकान्त बाजपेयी नि० ब्रह्मानगर और प्रशांत शुक्ल उर्फ़ डब्बू नि० आर्य नगर कोहना ने गाड़ी व पैसा देकर मेरी मदद की उन्हें भी मेरी प्लानिंग की कुछ कुछ जानकारी थी। जय बाजपेई से मैंने कारतूस भी लिया था। वहां से फिर बचते बचाते उज्जैन महाकाल मंदिर आ गया था। सड़क पर जेसीबी लगाकर जाम करने के लिए मैंने सुल्तान अहमद नि० क़स्बा चौबेपुर की जेसीबी जो मेरे यहाँ करीब डेढ़ माह को रात में करीब १२ बजे अपने मामा राजाराम उर्फ़ रामकुमार पांडेय को भेजकर ड्राइवर राहुल पाल से मंगवाया था और सड़क पर खड़ी करके सड़क अवरुद्ध करा दिया था ताकि पुलिस एकाएक हमारे घर तक ना आ सके।"

15. इसके अलावा उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-192 वर्ष 2020 के सीडी परचा संख्या-19 की ओर आकर्षित किया है, जो इस प्रकार है:

"**ब्यान अभियुक्त जयकान्त बाजपेयी पुत्र स्व० लक्ष्मीकान्त बाजपेयी** निवासी १११/४७८ ब्रह्मा नगर थाना नजीराबाद जनपद कानपुर नगर उम्र करीब ३७ वर्ष ने पूंछने पर बताया कि हम ०५ भाई हैं मेरे

माता पिता का स्वर्गवास हो गया है मेरा मो० नं० ९३३६२४९७९३ है मेरे पास रिवॉल्वर का लाइसेंस है जो मैंने २००८ में लिया था। मेरे पिता जी के हिस्से में ०६ भीघा जमीन आती है। पहले मैं टायर पेन्चर की दुकान करता था वर्ष २०१३ में मेरी मुलाकात प्रशांत शुक्ला उर्फ़ डब्लू के माध्यम विकास दुबे से हो गई थी विकास दुबे ने मुझे कुछ पैसा देकर ब्याज पर पैसे देने का काम शुरू करा दिया था, विकास दुबे को मैं ३ प्रतिशत पर ब्याज देता था तथा लोगों से १० प्रतिशत का ब्याज लेता था इसके बाद मैंने कमेटी डालनी शुरू कर दी जिसमे मेरा काम ठीक ठाक चल निकला जिसमें मैंने ०४ मकान अशोक नगर में ख़रीदे तथा जिसके अलावा मेरे करीब ५६ प्लाट है जो करीब डेढ़ करोड़ की कीमत से ज्यादा के हैं उसके बाद मेरा विकास दुबे से लगातार मिलना जुलना रहा हम लोग फ़ोन से भी आपस में बात करते थे परन्तु व्हाट्सएप या चैट से ज्यादा बाते करते थे दिनांक ०१-०७-२०२० को विकास दुबे का मेरे पास फ़ोन आया कि कुछ पैसे व कारतूस लेकर मेरे पास आ जाओ मैं दिनांक ०२-०७-२०२० को प्रशान्त शुक्ला उर्फ़ डब्लू के साथ ग्राम विकरू गया था जहाँ पर विकास दुबे हमें मिला विकास दुबे ने हमें बताया कि पुलिस मुझे बहुत परेशान कर रही है मुझे पुलिस का काम तमाम करना है तो हमने कहा कि ठीक रहेगा। एक बार पुलिस से भिड़ गए तो फिर हमारी दबंगई पुरे जिले में चलेगी। तो मैंने विकास दूबे को २ लाख रुपये नकद व २५ कारतूस रिवॉल्वर के दिए थे उसी दौरान विकास दुबे ने मुझे व डब्लू को बताया था कि आप दोनों बाद जब भी मैं सूचना भेजूंगा अपनी गाड़ी भेजनी होगी ताकि हम सुरक्षित निकल सके मेरे पास एक गाडी ऑडी जिसका नंबर यूपी ७८ एफवाई ९५५५ जो मैंने प्रमोद कुमार पुत्र कन्हैया लाल विश्वकर्मा निवासी १६/१८ नई ईदगाह कॉलोनी थाना नवाबगंज के नाम से निकाली थी तथा दूसरी गाड़ी फार्च्यूनर नं० यूपी ७८ ईडब्लू ७०७० हैं जो मैंने राहुल पुत्र इंद्रपाल नि० १९३/२४३ सकरपुर चक (किसान नगर) थाना सचेंडी कानपुर नगर के नाम से निकाली थी तथा तीसरी गाड़ी वार्ना जिसका नंबर यूपी ७८ एफसी ७०७० है जो मैंने कपिल सिंह चौहान पुत्र चंद्रभान सिंह नि० ११ए/२४ अशोक नगर थाना नजीराबाद के नाम से निकाली थी तीनों गाड़ियों की किश्त मैं स्वयं भरता हूँ तथा तीनों मेरे पास ही रहती हैं। इन गाड़ियों से विकास दुबे अक्सर घटना में जाया करता था घटना के बाद दिनांक ०४-०७-२०२० को डब्लू के माध्यम से मेरे पास सूचना आई थी कि विकास दुबे व उसके साथियों को शिवली से दिल्ली तक छोड़ना है जिसके कारण मैं इन गाड़ियों को चलवाकर विकास दुबे के पास ले जा रहा था कि पुलिस की सक्रियता देखकर मैं घबरा गया तथा जल्दबाजी में मैंने तीनों गाड़ियों को काकादेव क्षेत्र में विजय नगर चौराहा के पास नंबर प्लेट पलट करके लगा दी थी ताकि कोई गाड़ियों को पहचान न पाए साहब मुझे इस घटना की पूरी जानकारी थी मैंने इस कार्य में विकास दुबे की मदद की है मुझसे गलती हो गयी है।

ब्यान अभियुक्त प्रशान्त शुक्ला उर्फ़ डब्लू पुत्र श्रीकृष्ण कान्त शुक्ला निवासी ८/११९ आर्य नगर थाना कोहना कानपुर नगर उम्र करीब ४७ वर्ष ने पूंछने पर बताया कि साहब वर्ष २००५ में मेरी शादी ग्राम विकरू में ओम प्रकाश दुबे की पुत्री रंजना दुबे से हुई तभी से मेरी जान पहचान विकास दुबे से हो गयी थी क्योंकि विकास दुबे मेरी पत्नी के परिवार का ही है विकास दुबे कई बार जेल गया तो मैंने इसकी मदद की दिनांक ०२-०७-२०२० को व्हाट्सएप्प काल द्वारा विकास दुबे ने मुझे बताया कि मुझे पुलिस वालों को ठिकाने लगाना है तुम मेरी मदद करो तथा जयकांत वाजपेयी को अपने साथ लेकर मेरे गांव आ जाओ तो मैं जयकांत बाजपेयी को लेकर दिनांक ०२-०७-२०२० को शाम के समय ग्राम विकरु गया था वहां पर जयकांत बाजपेयी ने विकास दुबे को २ लाख रुपये व २५ कारतूस दिये थे मैंने भी अपने पास से ५० हजार रुपये विकास दुबे को दिये थे ताकि जरुरत पड़ने पर मुकदमा आदि में अधिवक्ता काम आ सके, विकास दुबे ने हमें बताया था कि पुलिस वालों ने प्लान बनाया है परन्तु जैसे ही पुलिस वाले मेरे घर पर आएंगे मैं उनको मौत की नींद सुला दूंगा एक को भी जिन्दा नहीं जाने दूंगा तब मैंने कहा था कि ठीक रहेगा हमसे जो मदद होगी हम करेंगे तो विकास दुबे ने कहा कि जब मैं खबर भेजूंगा तो जयकांत बाजपेयी की तीनों गाड़ियां लेकर जहाँ मैं बताऊंगा वहां आ जाना हमने कहा कि ठीक है हम आ जायेंगे। इसके बाद हम लोग वहां से चले आये थे। अगले दिन सुबह खबर मिली थी कि विकास दुबे ने ८ पुलिस वालों को मौत को घाट उतार दिया है उसके बाद दिनांक ४-७-२०२० को मुझे सूचना मिली थी विकास दुबे ने जयकांत बाजपेयी की गाड़ियां शिवकली में मंगाई तो मैंने जयकांत बाजपेयी को पूरी बात बताई जयकांत बाजपेयी गाड़िया लेकर विकास दुबे व उसके गैंग को लेने जा रहा था कि पुलिस की सक्रियता के चलते वह गाड़ी कानपुर नगर से बहार नहीं ले जा पाया तथा गाड़ियों को डर मारे काकादेव क्षेत्र में छोड़कर चला आया था साहब मुझसे गलती हो गई जो मैंने विकास दुबे का षड़यंत्र में साथ दिया।"

16. उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-192 वर्ष 2020 के सीडी पर्चा संख्या-107 की ओर आकर्षित किया है, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"अभियुक्त विपुल दुबे पुत्र स्व० अतुल दुबे नि० ग्राम बिकरू थाना चौबेपुर जनपद कानपुर नगर उम्र २३ वर्ष पूंछने पर बता रहा है विकास दुबे हमारे खानदान के थे।

.

मीटिंग में तय योजना के अनुसार विकास दुबे ने असलाह कारतूस व बमों की व्यवस्था की व हम सभी लोगों को असलाह कारतूस उपलब्ध कराये गए मैंने विकास दुबे से मिलते हुए व कारतूस असलाह व पैसे देते हुए विकास पण्डित जी के परिचित जयकान्त बाजपेयी, प्रशांत शुक्ल, अरविन्द त्रिवेदी उर्फ़ गुड्डन व सुशील तिवारी योजना में शामिल रहे। असलाह व पैसे व कारतूस उपलब्ध कराये तथा भविष्य में भी पूरी सहायता करने का वचन

दिया। अक्सर जयकांत बाजपेयी, प्रशान्त शुक्ला, अरविन्द त्रिवेदी उर्फ़ गुड्डन व सुशील तिवारी विकास दुबे के पास आया करते थे तथा यह चारों लोग विकास दुबे के रुपयों को ब्याज पर लोगों को दिया करते थे। इन चारों लोगों की विकास दुबे से बहुत अधिक घनिष्ठता थी। यह चारों लोग उस समय मौजूद नहीं थे जब हम लोगों द्वारा पुलिस वालों पर फायरिंग की जा रही थी।"

17. उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी पर्चा संख्या-8 की ओर आकर्षित किया है, जो आवेदक द्वारा गढ़े गए दस्तावेजों के आधार पर खरीदी और इस्तेमाल की गई कार की घटना से संबंधित है, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"श्रीमानजी मुकदमा उपरोक्त में पर्चा नं ७ दिनांक २९-७-२०२० को किता कर सेवा में प्रेषित किया जा चुका है आज मैं विवेचक पुनः कार्य सरकार से फुर्सत पाकर मसरूफ विवेचना होकर सन्नी मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड के शोरूम फूलबाग आया जहाँ पर शोरूम के मैनेजर पियूष शुक्ला मिले उनके द्वारा वाहन क्रय किये जाने हेतु दिए गए वाहन स्वामी राहुल सिंह का पैन कार्ड नं० सिवीपीएस ०९०बी, आधार कार्ड नं० ४२८७९५६३२०९३, यूनियन बैंक द्वारा सन्नी मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड एनएच २ रूम ई० एरिया के सर्विस सेन्टर द्वारा दि० ०९-०३-२०२० का वाहन सं० यूपी ७८ ईडब्लू ७०७० फॉर्च्यूनर की सर्विस की डिटेल जो कि नामित अभियुक्त जयकान्त बाजपेयी के सगे भाई शोभित बाजपेयी जिसका मो० नं० ८९५३६५५५७४ है। के द्वारा सर्विस कराया जाना प्राप्त कराया गया कि उपरोक्त वाहन की सर्विस शोभित बाजपेयी द्वारा ही कराये जाते थे सर्विस सेन्टर पर उसी के मो० नं० सर्विस लेने वाले दिन अंकित है। बाद अवलोकन उपरोक्त प्रपत्र संलग्न सीडी किया जा रहा है। तब पश्चात् थाना हाजा आया वहां पर थाना कार्यालय से प्राप्त यूनियन बैंक ऑफ़ इण्डिया सिविल लाइन ब्रांच के खाता संख्या ६८६८०४०१०००००००९ जो कि राहुल सिंह के नाम है जिसके उपरोक्त एकाउण्ट से भी उपरोक्त वाहन फॉर्च्यून के लिए गये लोन के एकाउण्ट में पैसे ट्रांसफर किये गए है का डिटेल प्राप्त हुआ जिसमें दिनांक १५-०७-२०१७ को रूपया २००००० नरायन सिंह तथा इसी दिन २००००० रुपये अवधेश सिंह के एकाउण्ट से ट्रांसफर आया है तथा दि० ३०-०१-२०१८ को १००००० अवधेश सिंह तथा दि० २९-०१-२०१८ को कैश १००००० रुपया जमा किया गया है तथा दि० ३१-०१-२०१८ को अनुश्का इंटरप्राइजेज से ५५००० रुपये आया है। तथा दि० २९-०५-२०१८ को ७५००००० एकाउण्ट नं० ६८६८०३०३०००२०३ से एफडी का ट्रांसफर आया है। तथा दि० २९-०९-२०१८ श्रेष्ठ बिल्डर प्रा० लि० से ४४१५५०० रुपया

उपरोक्त एकाउण्ट में आया है। तथा उसी दिन अनुश्का इंटरप्राइजेज से उपरोक्त ४४१५५०० रुपया ट्रांसफर किया गया है।"

18. वह आगे इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी परचा संख्या-09 की ओर आकर्षित करते हैं, जो कार की डिलीवरी से संबंधित प्रस्तुत आवेदक जय कांत बाजपेयी द्वारा प्राप्त किया गया था, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"श्रीमानजी मुकदमा उपरोक्त में पर्चा नं० ८ दिनांक ३-८-२०२० को किता कर प्रेषित किया जा चुका है आज मैं विवेचक पुनः कार्य सरकार से फुर्सत पाकर मसरूफ विवेचना हुआ थाना कार्यालय से आडी कम्पनी से दिनांक ०४-०८-२०२० का नोटिस अंतर्गत धारा ९१ सीआरपीसी का जवाब प्राप्त हुआ जिसके अनुसार रुपया नौ लाख पचास हजार रूपये प्रमोद कुमार विश्वकर्मा के द्वारा नेफ्ट आरटीजीएस आईसीआईसी आर ५२०१९१०२५००६७९८२७ कंपनी को की गयी है। डिलीवरी चालान पर प्रमोद विश्वकर्मा के हस्ताक्षर है वाहन की चाबी जय बाजपेयी को दी गयी है। तथा डिलीवरी के बाद दिनांक १५-०६-२०२० को जय बाजपेयी के भाई शोभित वाजपेयी जिसका मो० न० ८९५३६५५५७४ है के द्वारा सर्विस सेन्टर पर आडी का सर्विस कराया गया है तथा रुपया ५५००/- शोभित वाजपेयी द्वारा क्रेडिट/डेबिट कार्ड जिसके अंत में ८४०७ है से भुगतान किया गया है। वाद अवलोकन उपरोक्त प्रपत्र संलग्न सीडी किया जा रहा है। ..... थाना कार्यालय से वाहन संख्या यूपी ७८ एफसी ७०७० हुंडई वरना के लोन हेतु लिए गए ८८३०३४ रु० एकाउण्ट नंबर ४१३९०८४११०००१५० विजय बैंक (वर्तमान बैंक ऑफ़ बड़ौदा) अशोक नगर द्वारा भेजा गया स्टेटमेंट के अवलोकन से कपिल सिंह चौहान के दूसरे सेविंग एकाउण्ट ७१३९०१०११००११८७ से उपरोक्त क़िस्त का रुपया १०४६०/- रुपये लोन की कटौती होती है। जिसका वाद अवलोकन संलग्न सीडी किया जाता है। विधान सभा सचिवालय उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक ३० जुलाई २०२० का पत्र संख्या ९३५/वि.स. /प.का. /०२(प)/२० प्राप्त हुआ जिसे बाद अवलोकन संलग्न सीडी किया जाता है।"

19. वह आगे इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी पर्चा संख्या-31 की ओर आकर्षित करते हैं, जिसमें प्रस्तुत आवेदक जय कांत बाजपेयी का बयान है, जिसमें कहा गया है कि उसने सचिवालय के गढ़े दस्तावेजों के साथ वाहन का इस्तेमाल किया था, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"**बयान अभियुक्त ..... जय वाजपेयी उर्फ़ जयकान्त बाजपेयी पुत्र लक्ष्मी कान्त बाजपेयी** नि० ११/४७८ ब्रह्मनगर थाना नजीराबाद जनपद कानपुर नगर अस्थाई पता ग्राम दिलीप नगर थाना शिवली कानपुर देहा उम्र ३७ वर्ष ने पूछने पर बताया कि मैं कुल पांच भाई तथा बहने १ मधु २ नेहा है शोभित के अलावा सभी की शादी हो गयी है। मैं जमीन जायदात व

ब्याज पर पैसे देने का कार्य करता हूँ लक्ष्मी इलेक्ट्रिक की दुकान मेरी ही है। टोयोटा कंपनी का फॉर्च्यूनर जिसका नंबर यूपी ७८ ई डब्ल्यू ७०७० है पर विधायक विधानसभा सचिवालय का कूटरचित पास प्रयोग किये जाने के सम्बन्ध में पूंछा गया तो उसने और कहा कि अब हमसे जो गलती हो गयी सो हो गयी और अपनी गलती की माफ़ी मांगते हुये इधर उधर की बाते करने लगा। उपरोक्त विधानसभा पास के विषय में पूंछा गया तो उसने बताया कि मैं व राहुल सिंह लखनऊ में विधानसभा के पास गए थे वहां पर हम लोगों ने विधानसभा पास स्कैन कर लिया था स्कैन करने के बाद मैं विधानसभा पास हूबहू बनाकर उस पर फॉर्च्यूनर का नंबर लिख दिया था। जिससे कही आने जाने पर रोका टोकी न हो व बैरियर आदि से बिना रोक टोक के आ जा सके व पैसा भी न देना पड़े।.....”

20. उन्होंने फिर से इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी पर्चा संख्या-36 की ओर आकर्षित किया है, जो दर्शाता है कि जय कांत बाजपेयी वर्ष 10 के आधार पर की गई बरामदगी कारों की गढ़ी हुई नंबर प्लेटों को बरामदगी के बीच में किया गया है, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

”श्रीमानजी मुकदमा उपरोक्त में पर्चा नं० ३५ दिनांक २९-१०-२०२० को किता कर सेवा में प्रेषित किया जा चुका है आज मैं विवेचक पुनः कार्य सरकार से फुर्सत पाकर मसरूफ विवेचना होकर माननीय न्याया० सीएमएम कानपुर के आदेश से अभि० जयकान्त वाजपेयी की पुलिस कस्टडी हेतु जिला जेल माटी आया नियमानुसार समय ०८.३५ बजे अपनी कस्टडी में लेकर थाना हाजा उपस्थित आया व पूंछतांछ के बाद बाउम्मीद बरामदगी थाना हाजा से रपट नं० २३ समय ९.४० बजे प्रस्थान कर विजय नगर रोशनी चश्मे के सामने दूसरी पट्टी मासेठ किराना स्टोर के सामने आया जहाँ पर पीसीआर बन्दी उपरोक्त ने गाड़ी रोकने का इशारा किया तो टाटा सूमो सरकारी रोकी गयी। पीसीआर बंदी उपरोक्त को हमराह गण की निगरानी में नीचे उतरा गया। मौके पर जनता के काफी लोग आ गए जिन्हे मकसद बताकर उनके कर्तव्यों का बोध कराते हुए गवाही को कहा गया तो विनोद मिश्रा पुत्र स्व० रामदुलारे नि० २०३/८ विजय नगर काकादेव कानपुर नगर तैयार हैं। हम पुलिस वालों ने आपस में एक दूसरे व गवाह की जामा तलाशी ले देकर विश्वास किया कि किसी के भी पास बरामदगी से सम्बंधित कोई वस्तु नहीं है। पीसीआर बन्दी उपरोक्त आगे आगे चलकर दिवाईडर के अंदर ग्रीन बेल्ट पर मौजूद झाड़ियों के अंदर जहाँ पर कूड़ा पड़ा है। को हटाकर एक काले रंग की प्लास्टिक की पन्नी निकालकर जिनके अंदर रखी कुल १० अदद कूटरचित नंबर प्लेट जिनमे से एक पर कोई नंबर नहीं है। तथा कुछ पर फर्जी व कूटरचित नंबर जो कि पूर्व से दाखिल गाड़ियों के नहीं हैं। निकालकर देते हुए बताया कि साहब गाड़ी खड़ी करने के बाद

पुलिस के डर से छिपा दिया था इसमें फॉर्च्यूनरऔर ऑडी के नंबर हैं बाकी सभी पर कूटरचित फर्जी नंबर अंकित हैं। को मुझ विवेचक व हमराहीगण तथा गवाह को दिखाया गया तो बरामद नंबर फोटो का विवरण निम्नवत है। १. वाहन संख्या यूपी ७८ ईडब्लू ७०७० जिसके पीछे फॉर्च्यूनर लिखा है। २ अदद २. वाहन संख्या यूपी एफवाई ९५५५ जिसके पीछे ऑडी ए ३ लिखा है १ अदद तथा ३. बिना नंबर की प्लेट जिसके पीछे ऑडी ए ३ लिखा है। १ अदद तथा कूटरचित प्लेट ४. वाहन संख्या यूपी ७८ डीवाई ११८८ सफ़ेद रंग २ अदद ५. वाहन संख्या यूपी ३२ एफटी १४४४ सफ़ेद रंग की २ अदद, ६. वाहन संख्या यूपी ३२ एफक्यू १६३२ सफ़ेद रंग १ अदद तथा ७. वाहन संख्या यूपी ३एफक्यू ६३२ सफ़ेद रंग जिसके दो अंक मिटाये गए हैं १ अदद उपरोक्त सभी प्लेटों की लम्बाई २ बालिस्त ३ अंगुल तथा चौड़ाई ७ अंगुल है। पीसीआर बन्दी द्वारा बरामद कराये गए सभी नंबर प्लेटों को उसी काली पन्नी में रखकर सफ़ेद कपडा में सील सर्व मोहर कर नमूना मोहर तैयार किया गया। दौरान कार्यवाही व बरामदगी सर्वोच्च न्यायालय व मानवाधिकार आयोग के आदेश निर्देशों का अनुपालन किया गया फर्द बरामदगी मौके पर लिखकर पढ़कर सुनाई सर्व सम्बंधित व गवाही के अलामात बनवाये गए। उपरोक्त नम्बर प्लेट समय करीब सुबह १०.०० बजे कब्ज़ा पुलिस में लिया गया। तत्पश्चात अभियुक्त को थाने के लॉकअप में नियमानुसार लेकर बाद मेडिकल मा० न्यायालय उपस्थित आया अभियुक्त की आज न्यायायिक अभिरक्षा रिमांड की भी तिथि है मुकदमा उपरोक्त में साक्ष्य संकलन हुआ अन्य अभियुक्त की गिरफ़्तारी शेष है। अतः मा० न्यायालय से अनुरोध है कि अभियुक्त का १४ दिवस का न्यायिक अभिरक्षा रिमांड प्रदान करने की कृपा करें।"

21. वह आगे इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी पर्चा संख्या-46 की ओर आकर्षित करता है, जो स्वतंत्र गवाहों का बयान है जिसमें कहा गया है कि उसने आवेदक को फॉर्च्यूनर कार का उपयोग करते हुए देखा था, जिस पर सचिवालय का प्रवेश पास चिपकाया गया था, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"**बयान गवाह हे० का० ९३४ फूलन सिंह पाल थाना काकादेव कानपुर** ने पूंछने पर बताया कि मेरी दिनांक ०४/५ जुलाई २०२० को रात्रि अधिकारी की डियूटी थी को सुबह लगभग ०७.५५ बजे डायल ११२ की सूचना पर हम सभी लोग विजय नगर तिराहा पर स्टार हाउस के सामने पहुंचा तो वहां पर श्रीमती ऊषा जुनेजा व उनके पति विनय जुनेजा मौजूद थे। काले रंग की तीन नंबर की वाहन क्रमशः हुंडई वरना, ऑडी तथा टोयटा की फॉर्च्यूनर खड़ी थी। फॉर्च्यूनर पर विधान सभा सचिवालय लखनऊ का पास लगा था। कुछ देर बाद चौकी प्रभारी शास्त्रीनगर मय हमराह भी मौके पर आ गये। उसके बाद हम सब वापस थाना हाजा आ गया। इस प्रकार बयान दिये।

बयान गवाह का० १६१३ सुभाष चाँद थाना काकादेव कानपुर नगर ने पूंछने पर बताया कि मेरी दिनांक १४/५ जुलाई २०२० को सरकारी वहां चलाने की डियूटी थी तो सुबह लगभग ०७.५५ बजे डायल ११२ की सूचना पर हम सभी लोग विजय नगर तिराहा पर स्टार हाउस के सामने पहुंचा तो वहां पर श्रीमती ऊषा जुनेजा व उनके पति विनय जुनेजा मौजूद थे। काले रंग की तीन बिना नंबर की वहाँ क्रमशः हुंडई वरना, ऑडी तथा टोयटा की फॉर्च्यूनर खड़ी थी। फॉर्चूनर पर विधानसभा सचिवालय लखनऊ का पास लगा था। कुछ देर बाद चौकी प्रभारी शास्त्रीनगर मय हमराह भी मौके पर आ गये। उसके बाद हम सब वापस थाना हाजा आ गया। इस प्रकार बयान दिये।"

22. वह आगे इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी पर्चा संख्या-50 की ओर आकर्षित करते हैं, जो समीक्षा अधिकारी, विधानसभा सचिवालय का बयान है, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"**बयान श्री आशीष सोनकर समीक्षा अधिकारी विधान सभी सचिवालय उ० प्र० लखनऊ** पटल कार्यालय ने पूंछने पर उपरोक्त वाहन की पास की जांच पत्रांक सं० ९३२/वि०स०/प०का०/०२(प)/२० दि० २२-०७-२०२० को जारी श्री बृजभूषण दुबे विशेष सचिव विधान सभा सचिवालय उ० प्र० पटल कार्यालय लखनऊ द्वारा हस्ताक्षर कर जारी किया गया है। जिसकी मूल प्रति मैंने आपको प्राप्त करा दी है। <u>उपरोक्त वाहन के सम्बन्ध में विधान सभा सचिवालय से कोई पास जारी नहीं किया गया था।</u>"

23. वह आगे इस न्यायालय का ध्यान केस अपराध संख्या-0238 वर्ष 2020 के सीडी परचा संख्या-63 की ओर आकर्षित करते हैं, जो राहुल सिंह का बयान है, जिसमें कहा गया है कि उनका कार से कोई लेना-देना नहीं था और यह भी कि जय कांत बाजपेयी ने कार खरीदी थी और उसी का उपयोग कर रहे थे, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है :-

"बयान अभियुक्त: राहुल सिंह उर्फ़ डिपी पुत्र इंदपाल सिंह निवासी १९/२४६ चकरपुर थाना सचेडी जनपद कानपुर नगर हाल पता शिव धाम अपार्टमेंट फ्लैट नंबर २०३ थाना पनकी कानपुर नगर उम्र लगभग ४६ वर्ष ने पूंछने पर बताया कि मैं तीन भाई बहन हूँ सबसे बड़ा मैं हूँ तथा मैं एक स्कूल सचेन्दी में चलाता हूँ तथा प्रॉपर्टी तथा चिटफंड का व्यापार करता हूँ मेरे परिचित अशोक शुक्ला जो मेरे साथ प्रॉपर्टी का व्यापार करते हैं तथा पनकी में रहते हैं उन्होंने मुझे जयकान्त वाजपेयी से मिलाया था तथा बताया था कि जय कान्त बाजपेयी को दे दिया जयकान्त मेरा साला है तथा ब्याज पर पैसा चलाता है इसके पास बहुत पैसे हैं जो हम लोगों के काम आएगा तथा यह गाड़ी लेना चाहता है तो मैंने अपने नाम पर गाड़ी २०१७ में लेकर जयकांत बाजपेयी को दे दिया जयकांत ने स्वयं शोरूम में जाकर गाड़ी रिसीव की थी जयकांत कभी कभी मुझसे मिलता था जो गाड़ी पर विधान सभा सचिवालय की कूट

अतिरिक्त

रचित पास थी वह पास जयकांत बाजपेयी ने बनवाया था गाड़ी क़िस्त पर थी क़िस्त का पैसा मेरे यूनियन बैंक अकाउंट से कटता था दिनांक ०५/०७/२०२० को जब जयकांत वाजपेयी की ३ गाड़ियां विजयनगर राहुल स्वीट के पास से काकादेव पुलिस लेकर थाने पर गयी थी और पंजीकृत गाड़ी मालिक को पूंछतांछ के लिए बुला रही थी तो मुझे मालूम था कि मेरे नाम की फॉर्च्यूनर गाड़ी पर कूट रचित फर्जी पास लगा है इसलिए पुलिस मुझे गिरफ्तार करके जेल भेज न दे मैं थाने पर नहीं आया था और पुलिस से बचने के लिए लुक छिप कर स्थान बदल बदल कर रह रहा था जब पुलिस मेरे घर पर जाकर डुगडुगी आदि बजाई तथा मेरे पिता से पूरे घर की कुर्की करने की बात कही तब मैं न्यायालय में आकर हाजिर हो गया कूट रचित पास कहाँ से बना जब यह पूंछा गया तो राहुल सिंह चुप रहा और बोला कि मुझे नहीं मालूम पास जयकांत ने ही बनवाया था और कहा था इसका बहुत लाभ है और हम लोगों का भावकाल भी रहेगा साहब मुझसे गलती हो गई मैं पैसे के लालच में आ गया था मुझे माफ़ कर दीजिये इस प्रकार बयान दिया। अभियुक्त का बयान लेने के बाद अस्थाई जेल चौबेपुर के जीडी नंबर ४४ समय १९.१५ बजे नियमानुसार रवानगी दर्ज कराया गया।"

24. उपरोक्त के अवलोकन से पता चलता है कि आरोपी आवेदक ने निश्चित रूप से विकास दुबे की मदद की और हमेशा विकास दुबे के गिरोह की आपराधिक गतिविधियों के प्रति अपनी आँखें बंद कर लीं। घटना के दौरान उसने दूरी बनाए रखी। ऐसे संगठित अपराध के मामले में जहां पुलिस बल के सदस्य भी गैंगस्टर और उसके समूह की सहायता कर रहे थे, प्रत्यक्ष सबूत होना संभव नहीं है। इसके अलावा, साजिश के मामले में, प्रत्यक्ष साक्ष्य की कोई संभावना नहीं है। जो सबूत उपलब्ध हो सकते हैं वे प्रकृति में केवल परिस्थितिजन्य हैं और आरोपी आवेदक की ओर से निष्क्रियता के रूप में हो सकते हैं, जिसने आरोपी व्यक्तियों की सहायता करने के अपने प्रयास में, खुद को तस्वीर से बाहर रखा। इसलिए, साजिश का निष्कर्ष मामले की परिस्थितियों और स्थिति से निकाला जाना है कि आवेदक एक आपराधिक दिमाग वाला व्यक्ति होने के नाते गैंगस्टर विकास दुबे और उसके गिरोह की सहायता करने में लिप्त था, और सभी कागजी कार्रवाई आवेदक की सहायता से की गई थी।

25. इसके अलावा, राज्य की ओर से यह भी बताया गया है कि, गिरफ्तार होने पर, गैंगस्टर विकास दुबे ने विवेचनाधिकारी को बयान दिया कि आरोपी आवेदक गैंगस्टर विकास दुबे को पैसे और गोला-बारूद प्रदान करके उसकी सहायता करता था। गैंगस्टर की मौत हो चुकी है और पुलिस को दिया गया उसका बयान कानूनी रूप से स्वीकार्य है क्योंकि यह एक मृत व्यक्ति का बयान है। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, दोष बड़ा है और आरोपी आवेदक जमानत पर रिहा होने के लायक नहीं हैं।

26. यह मामला कुछ गंभीर प्रश्न उठाता है जो संगठित अपराध और अपराधियों के संदर्भ में

देश में आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रशासन और समस्या का मुकाबला करने में पुलिस बल की भूमिका और दक्षता से संबंधित हैं। पुलिस बल बड़ी क्षमता वाले सबसे महत्वपूर्ण बलों में से एक है, जो आपराधिक गलत और कानून और व्यवस्था की समस्या का सामना करने वाले लोगों के लिए आसानी से सुलभ है और आपराधिक न्याय प्रणाली का सबसे अधिक दिखाई देने वाला घटक है। अन्य विभागों की तरह, पुलिस बल के कार्यकरण के स्तर में भी सामान्य गिरावट और गिरावट आई है। समय के साथ यह देखा गया है कि पुलिस बल, अगर सम्पूर्ण रूप से न सही तो आंशिक रूप से नैतिक और व्यावसायिक गिरावट के दौर से गुजर रहा है। पुलिस बल में काली भेड़ें भी हैं और वे पूरे विभाग पर प्रभाव डालती हैं जिसके कारण चिंता बढ़ रही है। इस स्थिति को सुधारने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। इस दिशा में, पिछले कुछ वर्ष विशेष रूप से घटनापूर्ण रहे हैं, समस्या के समाधान की दिशा में कई सकारात्मक विकास हुए हैं और राज्य ने संगठित अपराध और अपराधियों के प्रति शून्य सहिष्णुता की नीति का पालन किया है। गैंगस्टरों के वित्तीय नेटवर्क को तोड़ने और ध्वस्त करने के लिए सख्त और कठोर कदम उठाए गए हैं। भविष्य में, यह निश्चित रूप से आपराधिक गतिविधियों और संगठित अपराध को प्रतिबंधित करने की दिशा में अधिक से अधिक सकारात्मक परिणाम लाएगा।

27. संगठित अपराध किसी एक राज्य, या किसी एक देश तक सीमित नहीं है और उनके व्यापक प्रसार नेटवर्क को देखते हुए एक अंतरराष्ट्रीय समस्या बन गया है और कभी-कभी वे आतंकवादी समूहों के स्वाभाविक रूप से भी पाए गए हैं। संगठित अपराध हत्या, अपहरण, जुआ, आगजनी, डकैती, चोरी, जबरन बरामदगी या नशीले पदार्थों या खतरनाक दवाओं और अन्य अपराध से जुड़े खतरे का कार्य है। संगठित अपराध की बुनियादी विशेषताओं में व्यक्तियों का एक समूह शामिल है जो संरचित, परिष्कृत और व्यापक रूप से राष्ट्रों में फैला हुआ है। यह समाज का एक वर्ग है जो लोगों और सरकार के नियंत्रण से बाहर काम करना चाहता है और यह भय और भ्रष्टाचार का उपयोग करके और कानून से सुरक्षा की मांग करते हुए, लाभ और शक्ति के लिए एक आत्म-स्थायी, निरंतर आपराधिक साजिश है। संगठित अपराध के फोकस क्षेत्र तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी, महिलाओं और बच्चों का अवैध व्यापार, हथियारों का व्यापार, हवाला, जाली मुद्रा का परिचालन, जबरन बरामदगी और सुपारी देकर हत्या करना है। वित्तीय एकजुटता के साथ, इन अपराधियों ने फिल्म वित्तपोषण, होटल व्यवसाय, गृह निर्माण, सरकारी अनुबंध और इस तरह के व्यवसाय में प्रवेश किया है। गैंगस्टरों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है, अर्थात्, शार्प शूटर, मनी कलेक्टर और संपर्क एजेंट। संपर्क एजेंट कानूनी समस्याओं को हल करने और गैंगस्टरों को आसान जमानत सुनिश्चित करने के लिए अधिवक्ताओं और कानून प्रवर्तन अधिकारियों से निपटते हैं।

28. पुलिस बल संगठित अपराध और आपराधिक गतिविधियों के साथ मुकाबला करने में कुछ वास्तविक कठिनाई का सामना करता है। पुलिस कर्मियों को अधिकांशत उस प्रकार के

अत्याधुनिक हथियार उपलब्ध नहीं कराए जाते हैं जो गैंगस्टरों और उनके गिरोह के सदस्यों को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। थाना बहुधा कम हैं और आबादी की तुलना में पुलिस बल की ताकत उल्लेखनीय रूप से कम है। पुलिस को कानूनी मानदंडों के अनुसार कार्य करना होता है और ऐसा करते समय, उन्हें किसी भी ज्यादती और मानवाधिकारों के उल्लंघन से बचने की आवश्यकता होती है। उन्हें कानून के शासन को बनाए रखने के लिए सक्रिय और सार्वजनिक सुरक्षा और सेवा की भावना से प्रेरित एक अनुशासित बल की तरह व्यवहार करना होगा। बल को कुछ पुलिस कर्मियों की समस्या का भी सामना करना पड़ता है जो स्थानीय माफिया के निकट हो सकते हैं और उनकी मिलीभगत हो सकती है। वे कार्रवाई करने और गैंगस्टरों को गिरफ्तार करने के लिए छापेमारी करने के लिए पुलिस की गोपनीय सूचनाओं और रणनीति को लीक कर सकते हैं। इसके विपरीत, संगठित अपराधी अपने साथ सभी प्रकार के अत्याधुनिक हथियार रखते हैं। वे उसी का अंधाधुंध उपयोग करते हैं और वे मानव जीवन और संपत्ति को किसी भी मात्रा में नुकसान पहुंचा सकते हैं। जहां उन्हें पुलिस बल के कुछ सदस्यों का समर्थन मिल रहा है, वहाँ उनकी आपराधिक कृत्य को अंजाम देने की क्षमता पर्याप्त रूप से बढ़ जाती है।

29. पुलिस सुधारों के लिए सिफारिशें करने के लिए नियुक्त किए गए कई विधि आयोगों द्वारा पुलिस बल की समस्याओं को समय-समय पर उजागर किया गया है और यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि समय-समय पर कई सिफारिशों का सुझाव दिया गया है। देश में पुलिस को अत्यधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और बढ़ती बेरोजगारी, शैक्षिक वातावरण में गिरावट, सामाजिक-आर्थिक घटकों के परस्पर विरोधी दावों, राजनीतिक व्यवस्था में उतार-चढ़ाव, व्याप्त भ्रष्टाचार आदि जैसे कई कारणों से अत्यधिक दबाव में कार्य करती है। प्रतिकूल पदों या स्थानों पर बार-बार स्थानान्तरण का पुलिस बल पर मनोबल गिराने वाला प्रभाव पड़ता है और यह पुलिस के लिए एक या दूसरे राजनीतिक व्यक्ति के साथ घनिष्ठ संबंध रखने की एक जीवित तकनीक बन जाती है।

30. उपर्युक्त चर्चा का उद्देश्य उन प्रचलित परिस्थितियों को दिखाना है जिनमें पुलिस को कानून और व्यवस्था सुनिश्चित करने, सुरक्षा और शांति बनाए रखने, अपराध को रोकने और अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई करने और उनकी गिरफ्तारी करने का जटिल और कठिन काम करना पड़ता है। इन सभी के लिए होमवर्क और टीम वर्क की आवश्यकता होती है और यदि पुलिस बल का कोई भी सदस्य पुलिस रणनीति के बारे में सुराग देना और लीक करना शुरू कर देता है, तो रणनीतियों का विफल होना तय है और निश्चित रूप से कभी-कभी परिणाम लाएंगी, खासकर जब पुलिस संगठित अपराध और अपराधियों के खिलाफ विनाशकारी स्थिति में सामना कर रही है, जैसा कि इस मामले में हुआ है। ऐसी स्थिति में, ऐसे पुलिस कर्मियों की पुलिसिंग एक बड़ा काम है और इसके लिए ऐसी काली भेड़ों (असमाजिक तत्वों) की शीघ्र पहचान, उनके आचरण की निगरानी, उन्हें अलग करना और उनके खिलाफ तत्काल सख्त अनुशासनात्मक कार्रवाई करने की आवश्यकता है।

31. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हैं। आरोपी-आवेदक के खिलाफ आरोप यह है कि उसके गैंगस्टर विकास दुबे के साथ घनिष्ठ संबंध थे, जिसने सचिवालय, उत्तर प्रदेश राज्य के जाली प्रवेश का इस्तेमाल किया था, जिसे संख्या यूपी 78 ईडब्ल्यू 7070 वाले वाहन पर चिपका दिया गया था; इस वाहन का उपयोग आवेदक द्वारा मारे गए डकैत विकास दुबे को सुरक्षित मार्ग प्रदान करने के लिए किया गया था, जो बिकरू नरसंहार के योजनकर्ता था।

32. इस संबंध में अभियुक्त-आवेदक की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि विकास दुबे का बयान आरोपी-आवेदक के खिलाफ प्रासंगिक नहीं है।

33. राज्य की ओर से, यह तर्क दिया गया है कि विकास दुबे का बयान एक मृत व्यक्ति का बयान है और इसका भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(3) के तहत कानूनी प्रभाव है और इसलिए, बयान को आवेदक के खिलाफ अच्छी तरह से माना जा सकता है। धारा 32(3) निम्नानुसार प्रदान करती है:

"32 मामले जिनमें व्यक्ति द्वारा प्रासंगिक तथ्य का बयान जो मर चुका है या नहीं पाया जा सकता है, आदि, प्रासंगिक है। - किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए प्रासंगिक तथ्यों के लिखित या मौखिक, जो मृत है, या जो नहीं मिल सकता है, या जो साक्ष्य देने में असमर्थ हो गया है, या जिसकी उपस्थिति देरी या व्यय की राशि के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती है, जो मामले की परिस्थितियों में, न्यायालय को अनुचित प्रतीत होती है, निम्नलिखित मामलों में स्वयं प्रासंगिक तथ्य हैं: (3) या निर्माता के हित के खिलाफ। - जब बयान इसे बनाने वाले व्यक्ति के आर्थिक या मालिकाना हित के खिलाफ है, या जब, यदि सच है, तो यह उसे उजागर करेगा या उसे आपराधिक अभियोजन या नुकसान के लिए एक मुकदमे के लिए उजागर करेगा।

34. धारा 32(3) के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि एक मृत व्यक्ति के बयान को कानूनी रूप से मान्यता दी गई है और साक्ष्य में इस्तेमाल किया गया है, भले ही वह उसकी मृत्यु के कारण से संबंधित न हो। हालांकि, इस स्तर पर एक अंतिम विचार व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया जाएगा, फिर भी, यह बहुत स्पष्ट है कि बयान एक मृत व्यक्ति का है और साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान को देखते हुए इसकी कानूनी प्रासंगिकता है।

35. गैंगस्टर के साथ आरोपी-आवेदकों के संबंध को दिखाने के लिए अदालत के ध्यान को सीडी परचा की तरफ आकर्षित किया गया है।

36. राज्य की ओर से यह भी बताया गया है कि यह घटना यूपी डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम के तहत अधिसूचित क्षेत्र में हुई थी और अधिनियम की धारा 10 के तहत प्रदान किए गए कानून पर उचित ध्यान देने की आवश्यकता है। धारा 10 का प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:

"10. जमानत के संबंध में विशेष उपबंध। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी, अनुसूचित अपराध के अभियुक्त या

सिद्धदोष किसी व्यक्ति को, यदि हिरासत में है, जमानत पर या अपने स्वयं के बंधपत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक-
(क) अभियोजन पक्ष को जमानत के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया है, और
(ख) जहां अभियोजन पक्ष जमानत के लिए आवेदन का विरोध करता है, न्यायालय का समाधान हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है: ...

37. प्रस्तुत करना यह है कि जांच के बाद, पर्याप्त सबूत मिलने के बाद, पुलिस द्वारा पहले ही आरोप पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है और इस स्तर पर यह मानने का कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त - आवेदक निर्दोष है।

38. अभियुक्त-आवेदक की ओर से, यह बताया गया है कि गवाहों द्वारा ज्यादातर उनके बयानों के अंतिम भाग में आरोप लगाए गए हैं और इसे पढ़ने से पता चलता है कि इस्तेमाल किए गए शब्द और अभिव्यक्ति एक जैसे और समान हैं जो कि, यदि गवाहों द्वारा व्यक्तिगत रूप से और अलग-अलग बयान दिए गए हैं, तो संभव नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस तर्क का कोई वजन नहीं है क्योंकि राज्य की ओर से यह सही बताया गया है कि सभी बयान सीडी का हिस्सा हैं और इस स्तर पर एक विचार रिकॉर्ड पर सभी सामग्री पर उचित विचार करने के बाद लिया जाना है।

39. आरोपी-आवेदक की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि जांच पूरी हो चुकी है और इस मामले में आरोप पत्र पहले ही दायर की जा चुकी है। आवेदक पिछले दो साल से अधिक समय से जेल में हैं। इतनी लंबी अवधि के लिए उनकी पूर्व-परीक्षण नजरबंदी के परिणामस्वरूप स्वतंत्रता और स्वाधीनता के उनके अधिकार से वंचित हो रहा है। आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के बड़े जनादेश, दाताराम सिंह बनाम भारत के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश(?) उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2018) 2 एस.सी.सी. 22 में रिपोर्ट किया गया। इसलिए, यह अनुरोध किया गया है कि, समग्र परिस्थितियों और आवेदक को जेल में रहने की लंबी अवधि को ध्यान में रखते हुए, अदालत को सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए और आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए।

40. यह अदालत इस तथ्य से बेखबर नहीं है कि जमानत पर रिहाई अभियुक्त के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि पूर्व-परीक्षण निरोध के परिणाम गंभीर हैं। यदि अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने से इनकार किया जाता है, तो इसका मतलब यह होगा कि हालांकि उसे तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि अपराध उचित संदेह से परे साबित नहीं हो जाता, उसे जेल जीवन के मनोवैज्ञानिक और शारीरिक अभाव के अधीन किया जाएगा। जेल में बंद अभियुक्त अपनी नौकरी खो देता है और उसे अपने बचाव की तैयारी में प्रभावी ढंग से योगदान करने से रोका जाता है। समान रूप से महत्वपूर्ण, उनकी हिरासत का बोझ अक्सर उनके परिवार के निर्दोष सदस्यों पर भारी पड़ता है। लेकिन, यदि अभियुक्त किसी खूंखार

अपराधी द्वारा जघन्य अपराध करने की साजिश में शामिल है, तो जमानत पर उसकी रिहाई उसे फरार होने या गवाहों के साथ छेड़छाड़ करने का अवसर देगी। ऐसे अपराधों के खिलाफ सामाजिक प्रतिक्रिया भी तेज होती है। इसलिए, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की आवश्यकता, जो बहुत महत्वपूर्ण है और संगठित अपराध के दुस्साहस के संपर्क में आने के खतरों से बचने के लिए समाज की आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाए रखना होगा।

41. आपराधिक न्याय प्रणाली अक्सर अभियुक्त के प्रति अपने सक्रिय दृष्टिकोण के लिए आलोचना की है। अभियुक्तों के अधिकारों की रक्षा न केवल विचारण के दौरान बल्कि जांच के दौरान और निर्णय देने के बाद भी की जाती है, विशेष रूप से जब मामले में दोषसिद्धि हुई हो। अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस हिरासत में नहीं रखा जा सकता है और यह भी उसकी गिरफ्तारी के पहले पंद्रह दिनों के भीतर ही संभव है। जमानत के प्रावधान उदार हैं और अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए विवेचनाधिकारी द्वारा प्रथम दृष्टया साक्ष्य एकत्र किए जाने चाहिए। उन्हें अग्रिम जमानत पर भी रिहा किया जा सकता है। आरोपी के साथ किसी भी स्तर पर क्रूर या अमानवीय व्यवहार नहीं किया जा सकता। अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता का एक मजबूत अनुमान है और इसके परिणामस्वरूप, यह उचित संदेह की किसी भी छाया से परे अपराध स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर भारी बोझ पैदा करता है। आरोपी को आत्म-उत्पीड़न के खिलाफ संवैधानिक संरक्षण दिया गया है और उसे पूरे समय चुप रहने का अधिकार है और उसकी चुप्पी उसके खिलाफ प्रतिकूल नहीं ली जाएगी। इसके अलावा, वह अपने निष्पक्ष परीक्षण के दावे से जुड़े सभी अधिकारों का आनंद लेता है जिसमें मुफ्त कानूनी सहायता और निष्पक्ष न्याय वितरण शामिल है। इस प्रकार, अभियुक्त के अधिकारों का संरक्षण लोकतंत्र की स्वाभाविक विशेषता है जो सरल कारण के लिए प्रदान की जाती है कि आपराधिक कानून मशीनरी राज्य द्वारा नियंत्रित होती है।

42. अपराध, भ्रष्टाचार और जनसंख्या, तीन प्रमुख समस्याएं हैं जिनका समाज वर्तमान में सामना कर रहा है। जबकि अपराध और भ्रष्टाचार के खिलाफ, विशेष रूप से जब यह संगठित अपराध और भ्रष्टाचार है, तो इसे अधिकतम सीमा तक प्रतिबंधित और कम करने के लिए राज्य की सख्त कार्रवाई और हस्तक्षेप आवश्यक है। जनसंख्या-वृद्धि पर नियंत्रण के लिए कानूनी कदम और रणनीति की आवश्यकता होती है जिसमें प्रेरणा, शिक्षा और जागरूकता का प्रसार और परिवार नियोजन का विकल्प चुनने वालों के लिए कुछ सकारात्मक प्रोत्साहन शामिल हैं। अपराध और भ्रष्टाचार के खिलाफ, राज्य को शून्य सहिष्णुता की नीति के साथ जारी रखना चाहिए। राजनीतिक दलों को 'अपने आदमी' और 'हमारे आदमी' के विचारों से प्रभावित हुए बिना अपराध और भ्रष्टाचार के खिलाफ बोर्ड से ऊपर उठना चाहिए क्योंकि यह दृष्टिकोण न केवल कानून के शासन को कमजोर करेगा, बल्कि राष्ट्र के लोकतांत्रिक ढांचे को भी नुकसान पहुंचाएगा।

43. जीवन, स्वतंत्रता और शांति की खोज में अपराध से स्वतंत्रता शामिल है। राज्य का सबसे बड़ा कर्तव्य प्रत्येक नागरिक को ये मूल अधिकार प्रदान करना है। एक आपराधिक न्याय प्रणाली की सफलता केवल इस बात से मापी जा सकती है कि यह शब्द और भावना में इन अधिकारों को सुनिश्चित करने में कितना सफल है। इन अधिकारों की सफलतापूर्वक रक्षा किस हद तक की जाती है, यह व्यवस्था में जनता के विश्वास में परिलक्षित होगा। संगठित अपराध को पारंपरिक व्यक्तिगत आपराधिकता से अलग तरीके से व्यवहार किया जाना चाहिए। षड्यंत्र संगठित अपराध का एक अभिन्न पहलू है। ऐसे मामलों में षड्यंत्र का प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं हो सकता है और जहां तक साक्ष्य की स्वीकार्यता और मूल्यांकन का संबंध है, कानून को संगठित अपराध से व्यक्तिगत या पारंपरिक अपराध से अलग आधार पर निपटना होगा।

44. पूर्वोक्त चर्चा निश्चित रूप से कि पता चलता है कि अपराध की प्रकृति और दोष की मात्रा गंभीर, जघन्य, चौंकाने वाला और अभूतपूर्व है।

45. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, अपराध की गंभीर और जघन्य प्रकृति, साजिश में अभियुक्त-आवेदक की जटिलता और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मुझे जमानत आवेदन की अनुमति देने के लिए पर्याप्त कारण नहीं मिलता है। इसलिए, आरोपी आवेदक जय बाजपेयी @ जय कांत बाजपेयी की जमानत याचिका खारिज की जाती है।

46. हालांकि, यह निर्देश दिया जाता है कि संबंधित न्यायालय के समक्ष लंबित पूर्वोक्त मामले का, अगर कोई कानूनी बाधा नहीं हो तो विचारण शीघ्रता से, अधिमानतः एक वर्ष के भीतर धारा 309 द०प्र०स० के अनुसार और सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए समाप्त किया जाए जैसा कि विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य ने 2015 में रिपोर्ट की एस.सी.सी. 220 और हुसैन और अन्य; 2017 (5) एस.सी.सी. 702 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले में निर्धारित किया गया है।

47. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में इस न्यायालय की किसी भी टिप्पणी का विचारण न्यायालय पर कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं पड़ेगा और मामले का फैसला विचारण के दौरान पेश किए गए सबूतों के आधार पर किया जाएगा।

(2023) 5 ILRA 1940

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.07.2019

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

रिट-सी संख्या 62905/2014

अन्य संबंधित वाद

मेसर्स विश्वलीला स्टील ट्यूब इंडस्ट्रीज, गाजियाबाद ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री मयंक अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून - स्टाम्प ड्यूटी की कमी के साथ-साथ जुर्माना और 1.5% प्रति वर्ष की दर से ब्याज भी - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए - जैसा कि यूपी के सेंट में

अनुवादित

लागू है - याचिकाकर्ताओं की शिकायत - स्टाम्प ड्यूटी के भुगतान से छूट देने वाले जीओएस के लाभ से इनकार - भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 (1) ए के तहत विशेष क़ानून प्रभावी वैकल्पिक उपाय - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और कानून के प्रश्न दोनों पर विचार किया जा सकता है याचिकाकर्ताओं को अपील के वैकल्पिक उपाय के लिए भेजा गया - याचिका निस्तारित। (पैरा 10, 18, 19, 26, 29, 31, 33, 34 और 35)

अभिनिर्धारित:

इस प्रकार, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत स्टाम्प मामलों में अपील का उपाय न केवल अपीलीय प्राधिकारी द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप मामले का निर्णय लेने का पूरा ध्यान रखता है, बल्कि प्राधिकारी को वसूली की जाने वाली राशि का 1/3 हिस्सा जमा करने के अधीन वसूली की राशि को रोकने का अधिकार भी देता है। धारा के तहत प्रावधान के अनुसार और अपीलीय प्राधिकारी को शक्ति प्रदान करने से विधानमंडल की मंशा स्पष्ट रूप से स्पष्ट होती है कि अपील का उपाय मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अधिनियम के तहत प्रदान किया गया एक मूल उपाय है और कोई भी तथ्यात्मक और कानूनी त्रुटि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील में सुधार / सुधार के लिए उत्तरदायी है। (पैरा 18)

इस प्रकार, यदि कोई तर्क है, तो प्रभावकारी उपाय की अनुपलब्धता के संबंध में निश्चित रूप से गलत है और आगे तर्क यह है कि चूंकि कानून का प्रश्न शामिल है, इसलिए ऐसे उपाय को दरकिनार किया जा सकता है, मेरे विचार से, यह न तो विधायिका की मंशा है और न ही, इस न्यायालय के लिए केवल इसलिए नियमित तरीके से रिट याचिका पर विचार करना उचित है क्योंकि इसमें कानून का प्रश्न शामिल है। अपील का मंच न केवल तथ्यात्मक विवाद के संबंध में है, बल्कि किसी मामले में शामिल कानूनी मुद्दों से निपटने के लिए एक उपयुक्त और सक्षम मंच भी है। सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के अधिकारियों के माध्यम से अब तक जो कानून सामने आया है, वह यह है कि उच्च न्यायालय के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका पर विचार करने से इनकार करने या अनिवार्य रूप से अपील का वैधानिक उपाय होने के बावजूद याचिका पर विचार करने और उस पर निर्णय लेने का कोई पूर्ण नियम नहीं है। यह सब एक स्व-लगाई गई सीमा है, जिसे उच्च न्यायालय ने खुद पर थोपा है और अपवादात्मक मामलों को छोड़कर, एक वादी को पहले वैकल्पिक उपाय, विशेष रूप से वैधानिक अपील का अनुसरण करने के लिए कहा जाना चाहिए। इसलिए सामान्य नियम यह है कि किसी व्यक्ति को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में जाने से पहले उपलब्ध वैकल्पिक वैधानिक उपाय आजमा लेने चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर कुछ मामलों में इस सामान्य नियम पर अपवाद व्यक्त किया है। (पैरा 19)

इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों से मुझे ऐसा नहीं लगता कि सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय तथा ऊपर उल्लिखित बाद के निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को किसी भी तरह से कमजोर नहीं किया गया है, इसलिए उक्त निर्णय अभी भी मान्य है। यह उल्लेखनीय है

कि न तो डॉ. बाल कृष्ण अग्रवाल के मामले में और न ही याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत धनी राम के मामले में उक्त निर्णय का संदर्भ दिया गया। (पैरा 26)

वर्तमान मामले में मुद्दा औद्योगिक पट्टों के मामलों में स्टाम्प ड्यूटी से छूट का लाभ उठाने के लिए आवंटी की परिभाषा से संबंधित है और एक बार जब धारा 47-ए के तहत काम करने वाले अधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ मामले का फैसला कर दिया था, तो वह अपनी शिकायत को उठाने के लिए आसानी से अपील कर सकता था और विवादित राशि का केवल 1/3 हिस्सा जमा करके समान रूप से स्थगन आदेश प्राप्त कर सकता था। करों के क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले कानून में, न्यायालय को उठाए गए वित्तीय उपायों के पीछे की भावना का सम्मान करना चाहिए और उचित न्यायनिर्णयन के बाद निर्णय लेना चाहिए, जब तक कि संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले न हों और संवैधानिक न्यायालय ऐसे अधिकारों की रक्षा के लिए संरक्षक हैं। अपनाए गए ऐसे उपायों और उनके तहत लाभ उठाने से उत्पन्न होने वाले मुद्दे पर न्यायनिर्णयन से जुड़े आक्षेपित प्रश्नों को हमेशा ऐसे क़ानून के तहत बनाए गए मंच के लिए खुला छोड़ दिया जाना चाहिए। (पैरा 33)

याचिका निस्तारित। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. धनी राम बनाम मुख्य अभियंता एवं अन्य, (2013) 6 एडब्ल्यूसी 5705
2. डॉ. बाल कृष्ण अग्रवाल बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य (1995) 1 एससीसी 614
3. सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय व अन्य (2003) 6 एससीसी 675
4. आंध्र प्रदेश सरकार व अन्य बनाम पी. लक्ष्मी देवी (श्रीमती) (2008) 4 एससीसी 720
5. सिसिली कल्लाराकल बनाम व्हीकल फैक्ट्री (2012) 8 एससीसी 524
6. यूनियन ऑफ इंडिया व अन्य बनाम मेसर्स कॉटेज आर्ट्स एम्पोरियम व अन्य 1991 पूरक (2) एससीसी 723
7. थानसिंह नाथमल एवं अन्य बनाम कर अधीक्षक, धुबरी एवं अन्य एआईआर 1964 एससी 1419
8. एम. नैना मोहम्मद बनाम केए नटराजन और अन्य। (1975) 2 एससीसी 352
9. घनश्याम दास गुप्ता और अन्य बनाम अनंत कुमार सिन्हा और अन्य (1991) 4 एससीसी 379
10. उ0प्र0 राज्य एवं अन्य बनाम लाभ चंद (1993) 2 एससीसी 495
11. भारत संघ एवं अन्य बनाम मेसर्स कॉटेज आर्ट्स एम्पोरियम एवं अन्य, 1991 पूरक (2) एससीसी 723
12. सिसिली कल्लाराकल बनाम व्हीकल फैक्ट्री (2012) 8 एससीसी 524
13. मोहम्मद स्वालेह बनाम अपर जिला न्यायाधीश, मेरठ (1988) 1 एससीसी 40: एआईआर 1980 एससी 94
14. एच. इम्मतलाल हरिलाल मेहता बनाम म0प्र0 राज्य एवं अन्य, एआईआर 1954 एससी 403

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री मयंक अग्रवाल और उत्तरदाताओं के स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. रिट याचिकाओं के इस समूह में, संबंधित रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य में लागू भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत शक्ति के कथित प्रयोग में सहायक आयुक्त (स्टाम्प), गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश के खिलाफ व्यथित हैं, जिसके तहत, जुर्माना और ब्याज @ 1.5% प्रति वर्ष के साथ कमी लगाई गई है और जिसे वसूलने का निर्देश दिया गया है। इन रिट याचिकाओं में कमी और जुर्माना अलग-अलग होता है लेकिन हर मामले में जुर्माने के रूप में स्टाम्प में कमी के रूप में 10 लाख रुपये से अधिक है।

3. याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाई गई शिकायत यह है कि उन्हें दिनांक 12.06.2009, 26.10.2009 और 30.09.2010 के सरकारी आदेशों/अधिसूचनाओं के लाभ से अवैध रूप से वंचित किया गया है, जिसके तहत, पट्टे के ऐसे प्रत्येक साधन में निर्धारित प्रतिफल पर प्रभार्य शुल्क की राशि पर स्टाम्प शुल्क के भुगतान से छूट की प्रार्थना की गई है। याचिकाकर्ता मूल आवंटियों से लीज धारक और द्वितीय हस्तांतरिती हैं और यूपी राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड द्वारा भी हैं।

4. जबकि रिट याचिका को उच्च न्यायालय के दिनांक 24.11.2014 के आदेश द्वारा इस तथ्य के बावजूद स्वीकार किया गया था कि याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य में लागू भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56-ए के तहत अपील के वैधानिक उपाय का लाभ नहीं उठाया था, न्यायालय ने याचिका को स्वीकार नहीं किया, लेकिन इस निर्देश के अधीन इसे स्वीकार कर लिया कि याचिकाकर्ता कम स्टाम्प शुल्क की पूरी राशि जमा करेगा न्यायालय द्वारा क्रमशः याचिकाओं में आदेश पारित किए जाने की तारीख से चार सप्ताह अर्थात 24.11.2014 और 26.11.2014। दो अलग-अलग तारीखों पर पारित आदेश समान हैं। दिनांक 24.11.2014 के आदेश को यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"प्रतिवादियों को जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया जाता है। प्रत्युत्तर हलफनामा, यदि कोई हो, उसके बाद दो सप्ताह के भीतर दायर किया जा सकता है।

इसके बाद सूचीबद्ध करें।"

याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या-2, सहायक आयुक्त (स्टाम्प), जिला गाजियाबाद द्वारा स्टाम्प केस संख्या-40 वर्ष 2013-14 में पारित दिनांक 27.09.2014 के आदेश को चुनौती देते हुए इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है।

याचिकाकर्ता ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 के तहत मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण से संपर्क नहीं किया है और जिन अधिसूचनाओं पर भरोसा किया गया है, उनकी गलत व्याख्या की गई है और मामला अधिसूचना के तहत आता है। तथ्य का कोई विवादित प्रश्न नहीं है।

अपने सबमिशन के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आंध्र प्रदेश सरकार और एक

अन्य बनाम पी लक्ष्मी देवी, 2008 (4) एस.सी.सी. 720 और रिट याचिका संख्या 17213 वर्ष 2013, कृष्ण पाल वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पारित निर्णय दिनांक 21.02.2014 पर भरोसा किया है।

प्रस्तुतियों पर विचार की आवश्यकता है।
याचिकाकर्ता द्वारा आज से चार सप्ताह के भीतर कमी स्टाम्प शुल्क की पूरी राशि जमा करने के अधीन, स्टाम्प केस संख्या-40 वर्ष 2013-14 में प्रतिवादी संख्या-2, सहायक आयुक्त (स्टाम्प), जिला गाजियाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 27.09.2014 का प्रभाव और संचालन, लिस्टिंग की अगली तारीख तक रोक रहेगा। स्टांप शुल्क की कमी के लिए याचिकाकर्ता द्वारा पहले से जमा की गई किसी भी राशि को समायोजित किया जाएगा।

यह स्पष्ट किया जाता है कि चूक के मामले में, अंतरिम आदेश स्वतः रद्द हो जाएगा।
(महत्व सन्निविष्ट)
5. रिकॉर्ड से ऐसा कुछ भी नहीं पता चलता है कि इस न्यायालय के दिनांक 24.11.2014 के पूर्वोक्त आदेश का कभी अनुपालन किया गया था और इसके बजाय, 10.12.2014 को एक प्रकीर्ण आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसका संख्या-408394 वर्ष 2014 था, जिसमें निम्नलिखित प्रार्थना की गई थी:

> "इसलिए, यह विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय रजिस्ट्री को किसी विशेष तारीख पर मामले/पूर्वोक्त/तत्काल रिट याचिका को सूचीबद्ध करने का निर्देश दे ताकि गैर-ट्रैवर्स के सिद्धांत को लागू करते हुए, रिट को योग्यता के आधार पर सुना जा सके और याचिकाकर्ता को 24.12.14 के अंतरिम आदेश के अनुसार पूर्व-जमा की शर्त से पीड़ित नहीं किया जा सके और/या इस माननीय न्यायालय के रूप में इस तरह के अन्य और अगले आदेश पारित किए जा सकें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में फिट समझा जा सकता है।

6. दिनांक 10.12.2014 के इस उपरोक्त आवेदन को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.12.2014 के आदेश द्वारा शीघ्र ही पिछले कागजात के साथ सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया था। इसके बाद, मामले को 12.01.2015 को सूचीबद्ध किया गया था जिसमें राज्य को रिट याचिका पर जवाबी हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया गया था और अंतरिम आदेश को बढ़ा दिया गया था और फिर 09.02.2016 को याचिकाकर्ता को प्रत्युत्तर हलफनामा दायर करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया गया था और मामले को 02.03.2016 को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया था और तब तक अंतरिम आदेश बढ़ाया गया था।

7. 24.05.2019 को रिट याचिकाओं के इस समूह को रिट याचिका संख्या 62910 वर्ष 2014 वाले प्रमुख मामले के साथ सूचीबद्ध किया गया था। अपील के प्रभावी वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के संबंध में स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाई जा रही प्रारंभिक

आपत्ति के अग्रणी मामले में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, जिनके पास उक्त मामले में निर्देश थे, ने इसका विरोध नहीं किया और तर्क को स्वीकार कर लिया और तदनुसार इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया और रिट याचिकाओं के इस समूह को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुरोध पर अलग कर दिया गया और 27.05.2019 को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया प्रस्तुत रिट याचिका संख्या 62905 वर्ष 2014 में अलग आदेश पारित करना। रिट सी संख्या 62910 वर्ष 2014 में पारित आदेश को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता मयंक अग्रवाल ने कहा कि उन्हें इस मामले में कोई निर्देश नहीं मिला है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सुमित डागा को सुना।

यह रिट याचिका भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत दिनांक 27.09.2014 के आदेश के खिलाफ निर्देशित है।

स्थायी अधिवक्ता ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 के तहत प्रदान की गई अपील का एक प्रभावी उपाय है और याचिकाकर्ता ने अपील के वैधानिक उपाय की उपलब्धता के बावजूद सीधे इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, उसे केवल अपील के उपाय के लिए आरोपित किया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता विवाद नहीं करते हैं।

उपर्युक्त के मद्देनजर, इस स्तर पर रिट याचिका पर दिनांक 27.09.2014 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत उपलब्ध प्रभावी वैकल्पिक उपाय के आधार पर विचार नहीं किया जाता है।

यह स्पष्ट किया जाता है कि चूंकि रिट याचिका लंबे समय से लंबित है, यदि अपील आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर की जाती है, तो उस पर विचार किया जाएगा और मामले के गुण-दोष के आधार पर अधिमानतः अपील की प्रस्तुति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ निर्णय लिया जाएगा।

इस प्रकार रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

8. सभी संबंधित मामलों में आदेश पत्र, इस बंच में, काउंटर और रिज्वाइंडर हलफनामों के समान निर्देश शामिल हैं और किसी भी समय याचिकाकर्ता द्वारा दोषपूर्ण स्टाम्प ड्यूटी जमा करने से छूट देने के लिए दायर प्रकीर्ण आवेदन की अनुमति नहीं दी गई थी।

9. इस प्रकार, याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.11.2014 के निर्देशों का अनुपालन नहीं किया है, 24.11.2014 का अंतरिम आदेश दिनांक 24.11.2014 के आदेश के ऑपरेटिव भाग के संदर्भ में खाली हो गया है, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है।

10. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपाय न्यायसंगत उपाय है। जो कोई वैधानिक उपाय

अनुवादित

को दरकिनार करते हुए इस असाधारण राहत के लिए दरवाजा खटखटाता है, उसे पहले अपनी सदाशयता दिखानी चाहिए, और फिर यह प्रदर्शित करना चाहिए कि अधिनियम के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील का उपाय प्रभावी नहीं है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रस्तुत मामले में शामिल कानूनी बिंदु और तथ्य का कोई विवादित प्रश्न नहीं होने के कारण, यह न्यायालय धानी राम बनाम मुख्य अभियंता और अन्य (2013) 6 एडब्ल्यूसी 5705 के मामले में डिवीजन बेंच के फैसले और डॉ बाल कृष्ण अग्रवाल बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1995)1 एस.सी.सी. 614 के आलोक में याचिकाकर्ता को अपील के वैकल्पिक उपाय के लिए प्रत्यायोजित नहीं कर सकता है।

11. याचिकाकर्ता के अनुसार, एक बार जब रिट याचिका पर विचार किया गया है और काउंटर और रिज्वाइंडर हलफनामों का आदान-प्रदान किया गया है, तो याचिका को योग्यता के आधार पर तय किया जाना चाहिए और अपील के वैकल्पिक उपाय को सौंपने के लिए कोई भी निर्देश याचिकाकर्ता के इस न्यायालय से संपर्क करने के अधिकार को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा जहां कानून का कोई भी बिंदु शामिल है।

12. प्रति विरोधाभास, स्थायी अधिवक्ता ने सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय और अन्य (2003)6 एस.सी.सी. 675; आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम पी लक्ष्मी देवी (श्रीमती) (2008)4 एस.सी.सी. 720; सिसिली कल्लारैकल बनाम वाहन कारखाना (2012) 8 एस.सी.सी. 524; और भारत संघ और अन्य बनाम मैसर्स कॉटेज आर्ट्स एम्पोरियम और अन्य 1991 पूरक (2) एस.सी.सी. 723। स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश संशोधन 56(1)ए के माध्यम से अपील का वैधानिक उपाय एक खाली औपचारिकता नहीं है और याचिकाकर्ता द्वारा दावा/उठाए गए मुद्दों को प्राधिकरण के समक्ष उठाया जा सकता था। स्थायी अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता ने सीधे इस न्यायालय से केवल इसलिए संपर्क किया था क्योंकि उसे धारा 56(1)ए के पहले परंतुक के तहत अपील में स्थगन के उपाय की मांग के लिए वैधानिक जमा करने की आवश्यकता थी, लेकिन चूंकि इस न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के तहत स्टांप शुल्क की कमी की राशि जमा करने का भी निर्देश दिया था, याचिकाकर्ता ने इस आदेश का पालन करने के बजाय, स्थगन प्राप्त करने के बाद, जमा से छूट की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया और फिर केवल इस तरह के प्रकीर्ण आवेदन के आधार पर वह इस मामले पर टिका रहा और प्रत्युत्तर हलफनामा दायर करने से परहेज किया और अंततः जब रिट सी संख्या-62909 वर्ष 2014 में ऐसे ही एक जुड़े मामले में लागत लगाई गई तो वह प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया। इसलिए, उनका तर्क है कि याचिकाकर्ता का इरादा मुद्दों को हल करना नहीं है, बल्कि इरादा हमेशा उचित स्टांप शुल्क के भुगतान से बचना था और इसलिए, उन्होंने सही तथ्यों के साथ इस न्यायालय से संपर्क नहीं किया और वैधानिक जमा करने से बचने के लिए केवल स्थगन आदेश प्राप्त करने के लिए अपील के उपाय को दरकिनार कर दिया।

13. पक्षकारों के वकीलों और उनके तर्कों को बार में सुनने के बाद और संबंधित पक्षों द्वारा उठाई गई दलीलों के साथ-साथ आक्षेपित आदेश को ध्यान से देखने के बाद, मुझे उत्तर प्रदेश के राज्य संशोधन (संक्षेप में 'यूपी') के संदर्भ में भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना आवश्यक लगता है, वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के बिंदु पर तर्कों से निपटने के लिए और इस न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले विवेक से निपटने के लिए जब एक याचिकाकर्ता इस तरह के उपाय को दरकिनार करते हुए इस न्यायालय से संपर्क करता है।

14. प्रस्तुत मामले में पट्टेदारों से आपत्ति आमंत्रित करने के बाद सहायक आयुक्त (स्टाम्प), गाजियाबाद ने यह कहते हुए आदेश पारित किया कि भुगतान किए गए स्टांप शुल्क में कमी है और तदनुसार कम राशि के भुगतान के लिए निर्देशित किया गया और ब्याज की साधारण दर @ 1.5% प्रति वर्ष जुर्माना भी लगाया गया है। इस शक्ति का प्रयोग संबंधित अधिकारी द्वारा उत्तर प्रदेश संशोधन के अन्तर्गत अन्तःस्थापित धारा 47-क के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 22 वर्ष 1998 (01.09.1998 से) के अन्तर्गत अन्तःस्थापित किया गया है तथा निम्नानुसार है:

"47-ए. साधन का अंडर-वैल्यूएशन- [(1) (ए) यदि किसी भी संपत्ति का बाजार मूल्य जो किसी भी उपकरण के अधीन है, जिस पर इस तरह के उपकरण में निर्धारित संपत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य है, इस अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार निर्धारित न्यूनतम मूल्य से भी कम है। पंजीकरण अधिनियम, 1908 के तहत नियुक्त पंजीकरण अधिकारी, उक्त अधिनियम में निहित किसी भी चीज के बावजूद, इस तरह के उपकरण की प्रस्तुति के तुरंत बाद, और पंजीकरण के लिए इसे स्वीकार करने और उक्त अधिनियम की धारा 52 के तहत कोई कार्रवाई करने से पहले, धारा 29 के तहत स्टांप शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को उक्त नियमों और वापसी के अनुसार निर्धारित न्यूनतम मूल्य के आधार पर गणना के अनुसार घाटे के स्टांप शुल्क का भुगतान पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 23 के अनुसार फिर से प्रस्तुत करने के लिए लिखत, करने की आवश्यकता होगी

(बी) जब खंड (ए) के तहत भुगतान किए जाने वाले घाटे के स्टाम्प शुल्क का भुगतान किसी भी उपकरण के संबंध में किया जाता है और पंजीकरण के लिए उपकरण फिर से प्रस्तुत किया जाता है, तो पंजीकरण अधिकारी उस पर पृष्ठांकन द्वारा प्रमाणित करेगा, कि घाटे के स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया है उसके संबंध में और नाम और निवास उन्हें भुगतान करने वाले व्यक्ति का नाम और निवास और उसी को पंजीकृत करें।

(ग) इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधानों में निहित किसी भी बात के बावजूद, घाटे के स्टाम्प शुल्क का भुगतान खंड (ए) के तहत प्रभावित

टिकटों के रूप में किया जा सकता है जिसमें ऐसी घोषणा शामिल है जो निर्धारित की जा सकती है।

(घ) यदि कोई व्यक्ति खंड (ए) में निर्दिष्ट आदेश प्राप्त करने के बाद घाटे के स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं करता है और पंजीकरण के लिए फिर से उपकरण प्रस्तुत करता है, तो पंजीकरण अधिकारी, साधन को पंजीकृत करने से पहले, संपत्ति के बाजार मूल्य और उस पर देय उचित शुल्क के निर्धारण के लिए कलेक्टर को संदर्भित करेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन संदर्भ प्राप्त होने पर, कलेक्टर, पक्षकारों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् और ऐसी रीति से जांच करने के पश्चात्, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए, उस संपत्ति का बाजार मूल्य जो ऐसे लिखत का विषय है, और उस पर संदेय उचित शुल्क अवधारित करेगा।

(3) कलेक्टर, स्वप्रेरणा से, या किसी न्यायालय से या स्टाम्प आयुक्त या स्टाम्प के अपर आयुक्त या स्टाम्प के उपायुक्त या स्टाम्प के सहायक आयुक्त या राज्य सरकार द्वारा अधिकृत किसी अधिकारी से संदर्भ पर, उस लिखत के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से चार वर्ष के भीतर, जिस पर उस संपत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य है जो पहले से निर्दिष्ट नहीं है उप-धारा (1) के तहत, संपत्ति के बाजार मूल्य की शुद्धता के रूप में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से साधन को कॉल करें और जांच करें, जो इस तरह के उपकरण और उस पर देय कर्तव्य का विषय है, और यदि इस तरह की परीक्षा के बाद उसके पास विश्वास करने का कारण है कि इस तरह की संपत्ति का बाजार मूल्य वास्तव में इस तरह के उपकरण में निर्धारित नहीं किया गया है, वह ऐसी संपत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क निर्धारित कर सकता है:

बशर्ते कि राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से इस उप-धारा के तहत कार्रवाई चार साल की अवधि के बाद की जा सकती है, लेकिन उस लिखत के पंजीकरण की तारीख से आठ साल की अवधि से पहले, जिस पर संपत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य है।

स्पष्टीकरण - उप-धारा (1) के तहत पंजीकरण अधिकारी के किसी भी आदेश के तहत किसी भी व्यक्ति द्वारा घाटे के स्टाम्प शुल्क का भुगतान कलेक्टर को उपधारा (3) के तहत किसी भी उपकरण पर कार्यवाही शुरू करने से नहीं रोकेगा।

(4) यदि उप-धारा (2) के तहत पूछताछ और उप-धारा (3) के तहत परीक्षा पर, कलेक्टर संपत्ति का बाजार मूल्य पाता है -

(i) सही मायने में निर्धारित और विधिवत मुहर लगी लिखत, वह समर्थन

को प्रमाणित करेगा कि यह विधिवत मुहर लगी है और इसे उस व्यक्ति को वापस कर देगा जिसने संदर्भ दिया है:

(ii) सही मायने में निर्धारित नहीं किया गया है और साधन पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है, उसे उचित शुल्क के भुगतान या उसी में कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक राशि की आवश्यकता होगी, साथ ही उचित शुल्क की राशि या उसके कम हिस्से की राशि का चार गुना से अधिक नहीं होगा।

(4-क) कलेक्टर को उप-धारा (4) के खंड (ii) के तहत भुगतान किए जाने वाले घाटे के स्टांप शुल्क या दंड के साथ, घाटे के स्टाम्प शुल्क की राशि पर डेढ़ प्रतिशत प्रति माह की दर से साधारण ब्याज के भुगतान की भी आवश्यकता होगी।

बशर्ते कि इस उप-धारा के तहत ब्याज की राशि की पुनर्गणना की जाएगी यदि घाटे की स्टाम्प ड्यूटी की राशि अपील या संशोधन या सक्षम न्यायालय या प्राधिकरण के किसी आदेश पर भिन्न होती है।

(4-बी) उप-धारा (4-ए) के तहत देय ब्याज की राशि को देय राशि में जोड़ा जाएगा और सभी उद्देश्यों के लिए भुगतान की जाने वाली राशि का हिस्सा माना जाएगा।

(4-सी) जहां घाटे की स्टाम्प ड्यूटी की वसूली प्राधिकरण के किसी भी न्यायालय के किसी भी आदेश द्वारा रोक दी गई है और स्थगन का ऐसा आदेश बाद में रद्द कर दिया गया है, उप-धारा (4-ए) में निर्दिष्ट ब्याज किसी भी अवधि के लिए भी, जिसके दौरान रहने का ऐसा आदेश संचालन में रहा, देय होगा।

(4-डी) इस अधिनियम के प्रावधान के तहत किसी व्यक्ति द्वारा भुगतान या जमा की गई या वसूली, या वापस की जाने योग्य राशि, पहले उसके खिलाफ बकाया स्टाम्प शुल्क या दंड के लिए समायोजित की जाएगी और अतिरिक्त यदि कोई हो, तो ब्याज के लिए समायोजित किया जाएगा, यदि कोई हो।

(5) उप-धारा (2) के तहत या उप-धारा (3) के तहत कलेक्टर के समक्ष पेश किए गए उपकरण को उसके कार्यों के प्रदर्शन में उसके सामने आने वाला माना जाएगा।

(6) यदि कलेक्टर द्वारा निर्दिष्ट अवधि के भीतर उपकरण का उत्पादन नहीं किया जाता है, तो उसे उप-धारा (2) और (4)] में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार उपकरण की प्रति पर दंड के साथ घाटे के स्टाम्प शुल्क, यदि कोई हो, के भुगतान की आवश्यकता हो सकती है।

15. अधिनियम की धारा 48 कर्तव्यों और शास्तियों की वसूली के लिए प्रदान करती है जो निम्नानुसार है:

"48.--शुल्कों और शास्तियों की वसूली--इस अध्याय के अधीन संदाय किए जाने के लिए

अपेक्षित सभी शुल्कों, शास्तियों और अन्य राशियों की वसूली कलेक्टर द्वारा उस व्यक्ति की चल संपत्ति की संकट और बिक्री से, जिससे वह देय है, या भू-राजस्व के बकायों की वसूली के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य प्रक्रिया द्वारा वसूल की जा सकेगी।

16. उ0प्र0 अधिनियम सं0 38 वर्ष 2001 से पूर्व केन्द्रीय अधिनियम की धारा 56 में केवल पुनरीक्षण में संदर्भ का प्रावधान किया गया था, किन्तु उ0प्र0 संशोधन के अधीन केन्द्रीय अधिनियम की धारा 56 में उपधारा 1(क) के अंतस्थापन से स्टाम्प अधिनियम के अध्याय IV एवं V के अधीन कलेक्टर द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील के वैधानिक उपाय का उपबंध प्रतीत होता है। धारा 47-क अध्याय IV के अंतर्गत असत्य है जो उस उपकरण से संबंधित है जिस पर विधिवत मुहर नहीं लगी है, जबकि अध्याय V कुछ मामलों में स्टाम्प के भत्तों से संबंधित है। उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 द्वारा उत्तर प्रदेश संशोधन के बाद स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 निम्नानुसार है:

56. नियंत्रण, और मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी को मामले का बयान - (1) अध्याय IV और अध्याय V के तहत और खंड (क) के तहत एक कलेक्टर द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियां धारा 26 के पहले परंतुक के सभी मामलों में मुख्य नियंत्रण राजस्व प्राधिकरण के नियंत्रण के अधीन होंगी।

(1-क) इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधानों में निहित किसी भी बात के बावजूद, अध्याय IV, अध्याय V के तहत कलेक्टर के आदेश से व्यथित सरकार सहित कोई भी व्यक्ति या धारा 26 के पहले परंतुक के खंड (क) के तहत, इस तरह के आदेश की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों के भीतर, मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी को इस तरह के आदेश के खिलाफ अपील कर सकता है, जो पक्षकारों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् मामले पर विचार करेगा और उस पर ऐसा आदेश पारित करेगा जो वह उचित और न्यायसंगत समझे और इस प्रकार पारित आदेश अंतिम होगा।

बशर्ते कि ब्याज या जुर्माना सहित स्टांप शुल्क की किसी भी विवादित राशि की वसूली पर रोक लगाने के लिए कोई आवेदन तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि आवेदक ने ऐसी विवादित राशि के एक तिहाई से कम के भुगतान का संतोषजनक प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया हो। बशर्ते कि जहां मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण किसी भी स्टांप शुल्क, उस पर ब्याज या जुर्माना की वसूली के लिए या अपील किए गए किसी भी आदेश के संचालन के रहने के लिए एक आदेश पारित करता है, और इस तरह के आदेश के परिणामस्वरूप किसी भी स्टांप शुल्क, उस पर ब्याज, या जुर्माना की वसूली पर रोक लग जाती है, ऐसा स्थगन आदेश तीस दिनों से अधिक समय तक लागू नहीं रहेगा जब तक कि बकाया राशि के भुगतान के लिए संबंधित कलेक्टर की संतुष्टि अपीलकर्ता को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान नहीं करता।

(2) यदि कोई कलेक्टर, धारा 31, धारा 40 या धारा 41 के तहत कार्य कर रहा है, तो कर्तव्य की राशि के बारे में संदेह महसूस करता है जिसके साथ कोई उपकरण प्रभार्य है, वह

मामले का एक विवरण तैयार कर सकता है, और इसे संदर्भित कर सकता है, उस पर अपनी राय के साथ, मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण के निर्णय के लिए।

(3) ऐसा प्राधिकारी मामले पर विचार करेगा और कलेक्टर को उसके निर्णय की एक प्रति देगा जो इस तरह के निर्णय के अनुरूप कर्तव्य (यदि कोई हो) का आकलन और चार्ज करने के लिए आगे बढ़ेगा। (महत्व दिया)

17. ऊपर उद्धृत प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलीय प्राधिकारी अपील में मामले पर विचार करेगा और ऐसा आदेश पारित करेगा जो वह, और वह भी उस उद्देश्य के लिए सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद उचित और न्यायसंगत समझे। परंतुक द्वारा एकमात्र राइडर वह है जहां एक पक्ष प्रस्तुत मामले में सहायक आयुक्त (स्टाम्प) के रूप में नियंत्रित राजस्व प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश पर रोक लगाने पर जोर देता है, और विवादित राशि की वसूली पर रोक चाहता है, ऐसे व्यक्ति को विवादित राशि का 1/3 जमा करना आवश्यक है।

18. इस प्रकार, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत स्टाम्प मामलों में अपील का उपाय न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप मामले का निर्णय करने वाले अपीलीय प्राधिकारी का पूरा ध्यान रखता है, बल्कि प्राधिकरण को वसूली के लिए निर्देशित वर्ष 1/3 राशि जमा करने के अधीन वसूली की राशि को रोकने का अधिकार भी देता है। धारा के तहत शब्दबद्ध प्रावधान और अपीलीय प्राधिकारी को शक्ति देने वाला प्रावधान स्पष्ट रूप से विधायिका के इरादे को बताता है कि अपील का उपाय मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अधिनियम के तहत प्रदान किया गया एक महत्वपूर्ण उपाय है और किसी भी तथ्यात्मक और कानूनी त्रुटि को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील में ठीक किया जा सकता है।

19. इस प्रकार, प्रभावोत्पादक उपचार की अनुपलब्धता के संबंध में तर्क, यदि कोई हो, निश्चित रूप से गलत है और आगे यह तर्क कि चूंकि कानून का प्रश्न शामिल है, इसलिए इस तरह के उपाय को दरकिनार किया जा सकता है, मेरी सुविचारित राय में, यह न तो विधायिका का इरादा है और न ही, औचित्य इस न्यायालय के लिए एक रिट याचिका को नियमित तरीके से स्वीकार करने की मांग करता है क्योंकि कानून का प्रश्न शामिल है। अपील का मंच न केवल तथ्यात्मक विवाद के संबंध में है बल्कि किसी मामले में शामिल कानूनी मुद्दों से निपटने के लिए एक उपयुक्त और सक्षम मंच भी है। जैसा कि अब तक सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के प्राधिकारियों के माध्यम से उभरा है, यह कानून यह है कि उच्च न्यायालय के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका पर विचार करने से इनकार करने या आवश्यक रूप से याचिका पर विचार करने और अपील का वैधानिक उपाय होने के बावजूद उस पर फैसला करने का कोई पूर्ण नियम नहीं है। यह सब एक स्व-अधिरोपित सीमा है जिसके साथ उच्च न्यायालय ने खुद को अवधारित किया है और असाधारण मामलों को छोड़कर,

एक वादी को एक नियम के रूप में पहले वैकल्पिक उपाय, विशेष रूप से वैधानिक अपील को आगे बढ़ाने के लिए कहा जाना चाहिए। इसलिए सामान्य नियम यह है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने से पहले उपलब्ध वैकल्पिक वैधानिक उपाय का उपयोग करना चाहिए। शीर्ष न्यायालय ने समय-समय पर कुछ मामलों में इस सामान्य नियम पर आपत्ति जताई है।

20. थानसिंह नाथमल और अन्य बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ, कर अधीक्षक, धुबरी और अन्य. ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1419 ने माना है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय अपील में नहीं बैठता है और ऐसा होने के नाते, आमतौर पर यदि विधायिका द्वारा बनाए गए क़ानून के तहत कोई वैकल्पिक उपाय है, तो वादी को पहले इसे समाप्त करने के लिए कहा जाना चाहिए। निर्णय के पैरा 7 के अनुसार, न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

> "7. आयुक्त के आदेश के खिलाफ संदर्भ के लिए एक आदेश का दावा किया जा सकता था यदि अपीलकर्ताओं ने आयुक्त या उच्च न्यायालय को संतुष्ट किया कि आदेश से कानून का सवाल उठता है। लेकिन उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने के लिए अधिनियम द्वारा प्रदान की गई प्रक्रिया को दरकिनार कर दिया गया था, अपीलकर्ताओं ने बिक्री की

अवधारणा का विस्तार करने के लिए प्रांतीय विधानमंडल की क्षमता को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय का रुख किया, और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार को लागू किया और तथ्य के सवालों पर कर अधिकारियों के निर्णय को फिर से खोलने की मांग की। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र व्यापक शब्दों में निहित है और इसका प्रयोग अनुच्छेद में स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए क्षेत्रीय प्रतिबंधों को छोड़कर किसी भी प्रतिबंध के अधीन नहीं है। लेकिन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग विवेकाधीन है; इसका प्रयोग केवल इसलिए नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसा करना वैध है। क्षेत्राधिकार के बहुत आयाम की मांग है कि यह आमतौर पर कुछ स्व-लगाए गए सीमाओं के अधीन प्रयोग किया जाएगा। उस क्षेत्राधिकार का सहारा राहत के लिए एक वैकल्पिक उपाय के रूप में अभिप्रेत नहीं है जो क़ानून द्वारा निर्धारित एक सूट या अन्य मोड में प्राप्त किया जा सकता है। आमतौर पर न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट के लिए एक याचिका पर विचार नहीं करेगा, जहां याचिकाकर्ता के पास एक वैकल्पिक उपाय है, जो अनावश्यक रूप से कठोर होने के बिना, एक समान रूप से प्रभावोत्पादक उपाय प्रदान करता है। फिर से, उच्च न्यायालय आम तौर पर उन सवालों के निर्धारण

पर प्रवेश नहीं करता है जो रिट का दावा करने के अधिकार को स्थापित करने के लिए साक्ष्य की विस्तृत परीक्षा की मांग करते हैं। इसलिए उच्च न्यायालय तथ्य की त्रुटियों को ठीक करने के लिए अदालत या न्यायाधिकरण के निर्णय के खिलाफ अपील की अदालत के रूप में कार्य नहीं करता है, और राहत प्राप्त करने के लिए क़ानून द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय पर अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र ग्रहण करके नहीं करता है। जहां पीड़ित याचिकाकर्ता के लिए यह खुला है कि वह किसी अन्य ट्रिब्यूनल में या यहां तक कि किसी अन्य अधिकार क्षेत्र में किसी क़ानून द्वारा प्रदान किए गए तरीके से निवारण प्राप्त करने के लिए खुद को चलायमान कर सकता है, उच्च न्यायालय आमतौर पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका पर विचार करके, क़ानून के तहत बनाई गई मशीनरी को बाईपास करने की अनुमति नहीं देगा, और इस प्रकार स्थापित मशीनरी का सहारा लेने के लिए आवेदन करने वाले पक्ष को छोड़ देगा।

21. एम. नैना मोहम्मद बनाम केए नटराजन और अन्य (1975) 2 एस.सी.सी. 352 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने उक्त निर्णय के पैरा 2 के तहत स्पष्ट रूप से और काफी स्पष्ट रूप से निम्नानुसार आयोजित किया:

"2. अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की सीमाएं स्पष्ट रूप से और दृढ़ता से निर्मित हैं और न्यायिक भ्रम को जोखिम में डाले बिना इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता है [सर राम विलास सर्विस (पी) लिमिटेड बनाम सी चंद्रशेखरन, (1964) 5 एससीआर 869: ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 107। शक्ति प्रकृति में पर्यवेक्षी है, हालांकि दोनों स्तरों पर न्यायाधीश, प्रस्तुत मामले में, अनजाने में एक प्रकार की अपीलीय समीक्षा करने की सूक्ष्म, लेकिन घातक त्रुटि में फिसल गए हैं।

22. इसके अलावा घन श्याम दास गुप्ता और अन्य बनाम अनंत कुमार सिन्हा और अन्य (1991)4 एस.सी.सी. 379 के मामले में, पैरा 8 के तहत सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार आयोजित किया:

"8. उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के तहत अपने विशेष अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कब करना चाहिए और कब वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर ऐसा करने से इनकार करना चाहिए, इस सिद्धांत को मामलों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा सुलझाया गया है। अनुच्छेद 226 के तहत प्रदान किए गए उपाय का उद्देश्य सिविल कोर्ट के समक्ष राहत प्राप्त करने के तरीकों को खत्म करना या इस तरह के कार्यों में वैध रूप से खुले बचाव से इनकार करना नहीं है। जैसा कि आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चित्रा वेंकट राव [1976]1 एससीआर 521 में देखा गया था, उत्प्रेषण की रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र

प्रकृति में पर्यवेक्षी है और अपीलीय अदालत की तरह त्रुटियों को ठीक करने के लिए नहीं है।

23. फिर से उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम लाभ चंद (1993)2 एस.सी.सी. 495 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जब कुछ मामलों पर व्यक्तियों की निर्दिष्ट शिकायतों के निवारण के लिए एक वैधानिक मंच या ट्रिब्यूनल विशेष रूप से क़ानून द्वारा बनाया जाता है, तो उच्च न्यायालय को आम तौर पर ऐसे व्यक्तियों को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाओं पर विचार करके अपनी निर्दिष्ट शिकायतों को व्यक्त करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए, जो एक कानूनी स्थिति है जो बहुत अच्छी तरह से स्थापित है। उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने थानसिंह नाथमल (सुप्रा) के मामले में बड़ी बेंच के पहले के फैसले पर भी भरोसा किया था और फैसले के पैरा 16 के तहत इस प्रकार कहा था:

> *"16. प्रतिवादी ने तब से इलाहाबाद में न्यायिक उच्च न्यायालय में, अपनी पहली रिट याचिका, डब्ल्यूपी संख्या-1980 वर्ष 1990 दायर की थी, जिसमें राज्य सरकार के आदेश की वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसके द्वारा उसे सरकारी सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया था और राज्य सरकार के खिलाफ कई राहत का दावा किया गया था, हमें यह पता लगाना होगा कि क्या उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण से यहां प्रतिवादी द्वारा संपर्क किया गया था; यदि आवश्यक होता, तो रिट याचिका में चुनौती दिए गए आदेश को अमान्य नहीं कर सकता था और उसमें मांगी गई राहत नहीं दे सकता था। यदि हम अधिकरण का गठन करने वाले सदस्यों की उच्च स्थिति, ऐसे सदस्यों के पास उनके रोजगार के मामलों में कर्मचारियों के दावों पर विचार करने की विशेषज्ञता, व्यापक जांच करने और उनके रोजगार से संबंधित मामलों में पूर्ण राहत प्रदान करने के लिए उनमें निवेश की गई विशाल शक्तियों के संबंध में हैं, तो हम यह नहीं मान सकते कि यह अधिकरण लोक सेवकों को 1997 में पूर्ण राहत देने के लिए अधिनियम द्वारा सृजित उनके रोजगार के मामले, वह भी अभियान के साथ सर्वोच्च मंच है। रिट याचिका में किए गए दावे चूंकि विशुद्ध रूप से राज्य सरकार के अधीन प्रतिवादी के रोजगार से संबंधित मामलों से संबंधित हैं, इसलिए उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया कि यह उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण को दरकिनार करते हुए यहां प्रतिवादी द्वारा दायर की गई थी। जब खंडपीठ ने प्रतिवादी की रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया था, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, इस विचार पर कि प्रतिवादी अपनी शिकायतों के निवारण के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं कर सकता था, ऐसी शिकायतों के निवारण के लिए विशेष रूप से एक क़ानून द्वारा बनाए गए विशेष मंच को*

दरकिनार करते हुए, प्रभावी ढंग से और पर्याप्त रूप से, हमारे लिए यह सोचना संभव नहीं है कि विवेक का ऐसा प्रयोग अनुचित था, खासकर जब हम ऐसे मामलों को नियंत्रित करने वाली स्थापित कानूनी स्थिति का सम्मान करते हैं, जिसके लिए हम पहले ही विज्ञापित कर चुके हैं।

24. फिर से भारत संघ और अन्य बनाम मेसर्स कॉटेज आर्ट्स एम्पोरियम और अन्य, 1991 पूरक (2) एस.सी.सी. 723 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना है कि जहां कोई आदेश अधिनिर्णय कार्यवाही और उनकी झूठ वैधानिक अपील से उत्पन्न होता है, तो रिट उपाय अनुचित होगा और पीड़ित पक्ष को अपील के उपाय का लाभ उठाना चाहिए। आदेश के पैरा 4 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया है:

"4. इस बीच, विशेष अनुमति याचिका के लंबित रहने के दौरान इस न्यायालय द्वारा किए गए कुछ वादकालीन निर्देशों के अनुसरण में, सांविधिक प्राधिकरण ने निर्णय की कार्यवाही समाप्त कर दी है और 5-10-1990 को जब्ती, जुर्माना आदि का आदेश पारित किया है। अपीलकर्ताओं का कहना है कि इस अधिनिर्णय के बाद उच्च न्यायालय के समक्ष मुख्य रिट-याचिका जीवित नहीं रहती है क्योंकि उत्तरदाताओं के पास निर्णय के खिलाफ अपील के माध्यम से उनके वैधानिक उपाय हैं। उत्तरदाताओं का कहना है कि यह संदिग्ध है कि, निर्णय की कार्यवाही में पाए गए तथ्यों में, उत्तरदाताओं के पास ऐसा अधिकार है और सभी घटनाओं में यह प्रस्तुत मामले के तथ्यों में समान रूप से प्रभावी उपाय नहीं हो सकता है। अपीलकर्ता इस बात पर विवाद नहीं करते हैं कि यदि प्रतिवादी अधिनिर्णय के परिणाम से खुद को व्यथित मानते हैं तो वे उस निर्णय के खिलाफ अपील करने के हकदार हैं। इन घटनाक्रमों को देखते हुए, हमें लगता है कि रिट याचिका के माध्यम से उपाय अब अनुचित हो गया है।

25. सिसिली कल्लारैकल बनाम वाहन कारखाना (2012)8 एस.सी.सी. 524 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के एक अन्य निर्णय में कहा गया है कि जहां विधायिका ने वैधानिक अपील के लिए प्रावधान किया है, उच्च न्यायालय ऐसी वैधानिक अपील को दरकिनार नहीं कर सकता है। उक्त निर्णय में न्यायालय ने मोहम्मद अली खान के मामले में उच्चतम न्यायालय के पूर्व निर्णय पर विचार किया। स्वालेह बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, मेरठ (1988)1 एस.सी.सी. 40: ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 94, जिसमें न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय एक अवैध और अनुचित आदेश को रद्द करने में न्यायसंगत है, जहां जिला न्यायाधीश को निर्धारित प्राधिकारी के निर्णय के खिलाफ कोई अपील नहीं थी और इसलिए, न्यायालय ने कहा कि एक आदेश को रद्द

करना, यदि यह पाया जाता है कि एक प्राधिकरण पारित किया गया है या न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, हमेशा आवश्यक नहीं था। पैरा 3 और 4 के तहत सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया है:

"3. जहां तक अधिकार क्षेत्र के मुद्दे का सवाल है, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता सही हैं कि उच्च न्यायालय के पास आयोग के आदेश के खिलाफ मामले से निपटने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। हालांकि, इसी तरह के मुद्दे से निपटने के दौरान यह न्यायालय मोहम्मद स्वालेह और अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, मेरठ और अन्य, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 94 में कहा:

"7. उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि निर्धारित प्राधिकारी के निर्णय से जिला न्यायाधीश को कोई अपील नहीं की जाती है। हाईकोर्ट ने इस दलील को स्वीकार कर लिया। (इस प्रकार कोई अपील नहीं की जा सकती)। उस आधार पर उच्च न्यायालय ने विद्वान जिला न्यायाधीश के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। यह सच है कि कुछ तकनीकी उल्लंघन हुआ है क्योंकि यदि विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील में विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई योग्य कोई अपील नहीं की जाती है, तो उसे रद्द नहीं किया जा सकता है। लेकिन उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा था। उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि निर्धारित प्राधिकारी का आदेश अमान्य और अनुचित था। उच्च न्यायालय स्वयं इसे रद्द कर सकता था। इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय किया गया है, जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, तकनीकी रूप से अपीलकर्ता का एक बिंदु था कि जिला न्यायाधीश का आदेश अवैध और अनुचित था। यदि हम उच्च न्यायालय के आदेश को दोहराते हैं क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में निर्धारित प्राधिकारी के आदेश को रद्द कर रहा है तो कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है। जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, न्याय किया गया है और जैसा कि निर्धारित प्राधिकारी के अनुचित आदेश को रद्द किया गया है, कोई आपत्ति नहीं ली जा सकती है।

(महत्व दिया)

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, किसी ऐसे प्राधिकारी/न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को रद्द करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है जिसका कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।

4. इसके बावजूद, हम निरपेक्ष शब्दों में यह कहे बिना नहीं रह सकते कि उच्च न्यायालयों के लिए आयोग द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिकाओं पर विचार करना उचित नहीं है, क्योंकि एक वैधानिक अपील प्रदान की जाती है और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रावधानों के तहत इस न्यायालय में निहित है। एक बार

विधायिका ने उच्च न्यायालय में वैधानिक अपील के लिए प्रावधान कर दिया है, तो पक्षकारों को ऐसे उच्च न्यायालय में वैधानिक अपील को दरकिनार करने और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए याचिकाओं पर विचार करने की अनुमति देने के लिए क्षेत्राधिकार का उचित प्रयोग नहीं हो सकता है। प्रस्तुत मामले में भी, उच्च न्यायालय ने कानून के अनुसार अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं किया है। मामला अधिकार क्षेत्र के अनुचित प्रयोग का है। हमसे इस मुद्दे से अधिक विस्तार से निपटने की उम्मीद नहीं है क्योंकि हम इस याचिका को अन्य आधारों पर खारिज कर रहे हैं।

26. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों से, मुझे नहीं लगता कि सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय और ऊपर संदर्भित बाद के निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को किसी भी तरह से कमजोर नहीं किया गया है और इसलिए, उक्त निर्णय अभी भी मैदान में है। यह उल्लेखनीय है कि न तो डॉ. बाल कृष्ण अग्रवाल के मामले में और न ही धनी राम के मामले में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत उक्त निर्णय का उल्लेख किया गया था।

27. डॉ. बाल कृष्ण अग्रवाल के मामले में, एक शुद्ध कानूनी मुद्दा यह था कि क्या सीधे भर्ती किए गए प्रोफेसर को सीधे या पदोन्नति नियमों के तहत नियुक्त माना जाएगा, हालांकि सीधी भर्ती के लिए चयन समिति का सामना करने के समय पदोन्नति नियम लागू नहीं हुए थे और चयन समिति की सिफारिश कार्यकारी परिषद द्वारा अनुमोदित की गई थी। यह मुद्दा उठाया गया था कि उक्त मामले में उस याचिकाकर्ता का नाम भी पदोन्नति नियमों के तहत विचाराधीन था। कोर्ट ने कहा कि चूंकि पदोन्नति नियम जब याचिकाकर्ता को चयन का सामना करना पड़ा और नियुक्त किया गया था, उस समय लागू नहीं हुए थे; इसलिए उसे चयन समिति के सामने चयन की सीधी भर्ती के तहत नियुक्त किया गया माना जाएगा। इसलिए वस्तुतः विश्वविद्यालय के अंत में इस तरह का कोई निर्णय नहीं था।

28. धनी राम (सुप्रा) के मामले में, फिर से सवाल यह था कि क्या किसी को श्रम कानूनों के उपाय के लिए आरोपित किया जाना चाहिए या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाला न्यायालय कर्मचारी की शिकायत पर विचार कर सकता है। यह एक ऐसा मामला था जहां अभी तक अधिनिर्णय नहीं हुआ था।

29. एक मामले में जहां अधिनिर्णय एक विशेष क़ानून के तहत स्थापित एक कार्यवाही के आधार पर जगह लेता है और अपील का एक मंच के लिए प्रदान की जाती है में यह ध्यान रखना चाहिए, पहला कोर्स यह होना चाहिए कि पक्ष अधिनिर्णय के खिलाफ अपील दायर करना चाहिए। जब मामला ऐसा होता है कि अधिनिर्णय में प्राधिकार की कमी के कारण न्याय की गंभीर निष्कासन होता है तभी

संविधान के अनुच्छेद 226 के उपाय की अनुमति दी जानी चाहिए।

30. ऐसे मामले में जहां किसी व्यक्ति को श्रम कानूनों के तहत एक नई कार्यवाही शुरू करनी होती है और यदि उसने पहले ही रिट के लिए आवेदन कर दिया है, तो ऐसा मामला उन मामलों से काफी अलग है जहां कार्यवाही पहले मंच पर शुरू की जाती है जिसका आदेश स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत यहां लागू होता है।

31. हालांकि, यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता के पास स्टाम्प अधिनियम, 1899 में यूपी संशोधन के माध्यम से अपील का एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय है, मैं अपने कर्तव्य में विफल रहूंगा यदि मैं हिम्मतलाल हरिलाल मेहता बनाम भारत संघ मामले में दूसरी संविधान पीठ के फैसले का उल्लेख नहीं करता हूं। मध्य प्रदेश राज्य और अन्य ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 403 जो प्रस्तुत निर्णय के काफी करीब मामला है, हालांकि, तथ्यों पर एकमात्र विशिष्ट विशेषता यह है कि उक्त मामले में न्यायालय ने वैकल्पिक उपाय को इस आधार पर कठिन और बोझिल माना कि वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाने के लिए मांगी गई कर की पूरी राशि जमा करने की आवश्यकता है और फिर न्यायालय ने कहा कि इस तरह के प्रावधान का वर्णन पर्याप्त वैकल्पिक उपाय के रूप में शायद ही किया जाएगा। प्रस्तुत मामले में, जिस पक्ष को स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए अवधारित किया गया है, उसे अपील के उपाय का लाभ उठाने के लिए पूरी राशि का भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है और केवल उस स्थिति में यदि ऐसा पक्ष उस आदेश पर रोक लगाना चाहता है जिसके द्वारा उसे स्टाम्प ड्यूटी को अच्छा बनाने के लिए कहा गया है, एक विवादित राशि, शर्त के रूप में राशि का केवल 1/3 जमा करना आवश्यक है।

32. हिम्मतलाल हरिलाल मेहता (सुप्रा) के मामले में, न्यायालय ने देखा था कि वैकल्पिक वैधानिक उपचार का लाभ उठाने के सामान्य नियम का एकमात्र अपवाद है, जहां मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है। अदालत ने काफी स्पष्ट रूप से माना कि यह सिद्धांत कि एक पर्याप्त वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने पर एक अदालत एक विशेषाधिकार रिट जारी नहीं करेगी, लागू नहीं हो सकती है जहां एक पक्ष अदालत में इस आरोप के साथ आया था कि उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया गया था और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत मांगी गई थी।

33. प्रस्तुत मामले में मुद्दा औद्योगिक पट्टों के मामलों में स्टाम्प शुल्क से छूट का लाभ उठाने के लिए आवंटी की परिभाषा से संबंधित है और एक बार धारा 47-ए के तहत कार्य करने वाले प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के खिलाफ मामले का फैसला किया था, वह अपनी शिकायत उठाने के लिए आसानी से अपील को दायर कर सकता था और विवादित राशि का केवल 1/3 जमा करके समान रूप से स्थगन आदेश प्राप्त कर सकता था। करों के क्षेत्र को शासित करने वाले कानून में, न्यायालय को किए गए भौतिक उपायों के पीछे की भावना का सम्मान करना चाहिए और उचित फ़ैसले के बाद निर्णय लिया जाता है,

जब तक कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले न हों जिनकी संविधान के तहत गारंटी दी गई है और संवैधानिक न्यायालय ऐसे अधिकारों की रक्षा के लिए अभिभावक हैं। अपनाए गए ऐसे उपायों से उत्पन्न मुद्दे पर अधिनिर्णय से संबंधित विवादित प्रश्नों और उनके अंतर्गत लाभ प्राप्त करने को ऐसे संविधि के अंतर्गत सृजित मंच के लिए हमेशा खुला छोड़ दिया जाना चाहिए जिस पर निर्णय दिया जा सके।

34. प्रस्तुत मामले में, जबकि मैं मानता हूं कि संबंधित रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के पास अपील का प्रभावी वैकल्पिक उपाय है, मेरे पास इस उपाय के लिए उन्हें प्रत्यायोजित करने का एक और कारण है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने अपील के उपाय का लाभ उठाते हुए सामान्य रूप से 1/3 राशि जमा की होगी। प्रस्तुत मामले में, 24.11.2014 को रिट याचिका पर विचार करते हुए, न्यायालय ने उन्हें संबंधित याचिकाओं में आक्षेपित आदेशों के तहत स्टाम्प की कमी के लिए भुगतान की गई पूरी राशि जमा करने का निर्देश दिया था, लेकिन यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि उक्त आदेश का अनुपालन किया गया है और न ही कोई हलफनामा दायर किया गया है। याचिकाकर्ताओं को वैकल्पिक उपाय के लिए फिर से आरोपित करने का एक और कारण है और वह यह है कि प्रमुख रिट याचिका रिट सी संख्या-62910 वर्ष 2014 है, जिसके साथ इन सभी रिट याचिकाओं को टैग किया गया था, पहले ही याचिकाकर्ता को निर्देश दिया गया है कि वह 24.05.2019 के आदेश के तहत स्टाम्प अधिनियम के तहत अपील दायर करे और तीन महीने की अवधि के भीतर इसे निपटाने के लिए आगे निर्देश जारी किया गया है। इन सभी याचिकाओं में अंतर्वलित विधिक मुद्दे और तथ्य के मुद्दे सामान्य हैं और इसलिए, यदि निदेश जारी किया जाता है तो अपीलीय प्राधिकारी इन मामलों में भी आदेश पारित कर सकता है।

35. इसलिए, उपरोक्त के मद्देनजर, मैं उत्तर प्रदेश संशोधन के माध्यम से स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 56 (1-ए) के तहत याचिकाकर्ताओं को अपील के प्रभावी वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर मामले के गुण-दोष के आधार पर मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं। यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि इस आदेश की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर अपील दायर की जाती है, तो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अतिरिक्त अवधि के भीतर कानून के अनुसार, योग्यता के आधार पर उस पर विचार किया जाएगा और उसका निपटान किया जाएगा।

36. आगे यह प्रदान किया जाता है कि चूंकि संबंधित रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा 24.11.2014 और 26.11.2014 को आक्षेपित आदेशों पर शुरू में रोक लगा दी गई थी और स्थगन आदेश इस शर्त के अधीन थे कि याचिकाकर्ता, जो उसके तहत भुगतान करने का आदेश दिया गया था, पूरी राशि जमा करेंगे, लेकिन यह प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि उक्त जमा किया गया है या नहीं; एतद्द्वारा यह प्रदान किया जाता

है कि यदि याचिकाकर्ताओं ने शुरू में पारित इस न्यायालय के आदेश के तहत जमा नहीं किया है और याचिकाकर्ता अपील के लंबित रहने के दौरान स्टाम्प प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश पर अंतरिम रोक चाहते हैं, तो वे प्रावधानों के तहत प्रदान की गई विवादगत राशि का 1/3 जमा कर सकते हैं और यदि वे इस आदेश की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर उक्त राशि जमा करते हैं, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उनके स्थगन आवेदन पर दो सप्ताह की अतिरिक्त अवधि के भीतर उचित आदेश पारित किया जाएगा।

37. पूर्वोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ सभी रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।

(2023) 5 ILRA 1955

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 3982 / 2021

कफील ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी

अधिवक्ता आवेदक: श्री राहुल श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के तहत संपूर्ण कार्यवाही-चुनौती दी गई - उत्तर प्रदेश गोवध निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 3, 5 और 8 के तहत दर्ज एफआईआर - आरोपी आवेदक को उस समय पकड़ा गया जब वह खड़ा था और उसके दाहिने हाथ में 2 किलो मांस थामे हुए था - पूरे अभियोजन मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि कथित अपराध अनुचित आर्थिक लाभ कमाने, कोई आतंक फैलाने या ऐसी कोई आपराधिक गतिविधि जारी रखने के लिए किया गया है जो कुल मिलाकर समाज की सुरक्षा के लिए हानिकारक है - गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) - अधिनियम की धारा 2(बी) में प्रयुक्त गैंगवर्ड "अन्यथा" की परिभाषा - पूरी की गई-सम्पूर्ण कार्यवाही और आरोपपत्र निरस्त किया गया। प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (पैरा 10, 11, 12, 13 और 14)

अभिनिर्धारित:

अभियोजन पक्ष का यह स्वीकार किया गया मामला है कि आरोपी आवेदक को उस समय पकड़ा गया जब वह खड़ा था और उसके दाहिने हाथ में 2 किलो मांस था। मुख्य आरोपी शाहनवाज उर्फ शानू बेशक एक लाइसेंसधारी कसाई है और इलाके में उसकी एक दुकान है। पूरे अभियोजन पक्ष के मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि कथित अपराध अनुचित आर्थिक लाभ कमाने, किसी तरह का आतंक फैलाने या ऐसी कोई आपराधिक गतिविधि जारी रखने के लिए किया गया है जो कुल मिलाकर समाज की सुरक्षा और संरक्षा के लिए हानिकारक है। (पैरा 10)

गिरोह की परिभाषा का अध्ययन करने से पता चलता है कि यह व्यक्तियों का एक समूह है, जो हिंसा या हिंसा का प्रदर्शन, धमकी या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक

व्यवस्था को बिगाड़ने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित लौकिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करता है। (पैरा 11)

अभियोजन पक्ष के सम्पूर्ण मामले के अवलोकन से यह पता चलता है कि अभियोजन पक्ष का यह मामला नहीं है कि अभियुक्त ने लोक व्यवस्था को बिगाड़ने के उद्देश्य से कोई हिंसा की है, या कोई धमकी दी है या डराया-धमकाया है या जबरदस्ती की है या यह अपराध स्वयं के लिए या गैंगस्टर्स एक्ट की धारा 2(बी)(1) में परिभाषित असामाजिक गतिविधियों में लिप्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित लौकिक आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए किया गया है। अधिनियम की धारा 2(बी) में प्रयुक्त शब्द या अन्यथा की व्याख्या हिंसा, धमकी, हिंसा का प्रदर्शन, धमकी या जबरदस्ती जैसे पूर्ववर्ती शब्दों के संदर्भ में की जानी चाहिए, गैंगस्टर्स एक्ट लगाने के लिए इसका सामान्य अर्थ नहीं लगाया जा सकता है। हाथ में आए मामले में गैंगस्टर लगाने के लिए यह देखना होगा कि अपराध का उद्देश्य या उसके पीछे का मकसद क्या था अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र की गई सामग्री से यह नहीं कहा जा सकता कि अभियुक्त के पास अधिनियम की धारा 2(डी) में प्रयुक्त सामान्य शब्द अर्थात 'अन्य लाभ' की व्याख्या करने का उपरोक्त उद्देश्य था। 'एजुस्डेम जेनेरिस' के नियम को लागू किया जाना चाहिए । (पैरा 12)

यह स्थापित है कि किसी एक मामले में, यदि अपराध अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित किसी असामाजिक गतिविधि के लिए किया गया पाया जाता है, तो आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ गैंगस्टर लगाया जा सकता है। यहां ऐसा नहीं है। वर्तमान मामले में, रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह सुझाव दे कि अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधि के लिए आरोप पत्र दायर किया गया है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। आरोपी इस तरह का अपराध सिर्फ एक बार कर सकता है या वह कई अपराध कर सकता है और उस संबंध में एक से अधिक एफआईआर का सामना कर सकता है, एफआईआर की संख्या अप्रासंगिक है। किसी दिए गए मामले में गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधान को लागू किया जा सकता है या नहीं, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपराध के पीछे के मकसद और उद्देश्य को देखा जाना चाहिए। मकसद और उद्देश्य स्पष्ट रूप से गायब हैं, इसलिए, मामला अधिनियम के प्रावधान के तहत नहीं लाया जा सकता था। (पैरा 14)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. श्रद्धा गुप्ता बनाम उ0प्र0 राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 514

2. सहायक केन्द्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर बनाम रामदेव तंबाकू कंपनी, (1991) 2 एससीसी 119

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा प्रदत्त)

1. इस याचिका के द्वारा, याचिकाकर्ता ने सी.एन.आर. संख्या UPJB010048152019 (राज्य बनाम शाहनवाज उर्फ शानू और अन्य) जो सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट-11, अमरोहा के समक्ष लंबित है, जिसमें चार्जशीट

संख्या 01/2019 दिनांक 11.09.2019 शामिल है, जिसे विवेचनाधिकारी द्वारा सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट-11, अमरोहा के समक्ष उत्तर प्रदेश गैंगस्टर एवं असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 थाना-अमरोहा शहर, जिला ज्योतिबा फुले नगर की धारा 3(1) के तहत मामला अपराध संख्या 0193/2019 में प्रस्तुत किया गया था, और अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, अमरोहा द्वारा सी.एन.आर. संख्या 27.09.2019 में पारित संज्ञान का आदेश UPJB010048152019 (राज्य बनाम शाहनवाज उर्फ शानू और अन्य) और साथ साथ ही आवेदक के खिलाफ अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-4, अमरोहा द्वारा जारी दिनांक 28.08.2020, 21.10.2020 और 10.12.2020 के गैर-जमानती वारंट, की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की है। इसके अलावा जिला मजिस्ट्रेट, अमरोहा द्वारा पारित दिनांक 19.03.2019 के अनुमोदन आदेश, जहां तक यह आवेदक से संबंधित है, जिसकी सिफारिश पुलिस अधीक्षक, अमरोहा द्वारा 19.03.2019 को की गई है, को रद्द करने के लिए भी प्रार्थना की गई है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश गोहत्या निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 3, 5 और 8 के तहत थाना-अमरोहा सिटी, जिला ज्योतिबा फुले नगर में दिनांक 13.08.2018 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसे केस अपराध संख्या-0492/2018 के रूप में दर्ज किया गया था। दिनांक 13.08.2018 की प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित अभियोजन संस्करण का अंग्रेजी में अनुवाद किया जा रहा है और निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है: -

पुलिस दल अपनी नियमित जांच और गश्त में काकर सरल मोड़ पर पहुंचा, जहां एक टिप मिली कि मोहल्ला मोती शाह में शाहनावा, अल्लास शानू पुत्र शफीक और अन्य लोग गाय का मांस काटने के बाद बेच रहे हैं। अगर वे तुरंत पहुंचते हैं, तो आरोपी को पकड़ा जा सकता है। कोई भी अभियोजन पक्ष का गवाह बनने के लिए सहमत नहीं हुआ और इसलिए पुलिस पार्टी शाहनवाज उर्फ शानू के घर पहुंची। यह दो मंजिला घर था। टिप में बताया गया कि शाहनवाज उर्फ शानू गाय का वध कर उसका मांस बेच रहा था; इसके बाद मुखबिर चला गया। तीन लोगों को गिरफ्तार किया गया; उनमें से एक ने अपनी पहचान शाहनवाज उर्फ शानू के रूप में बताई, जिसके पास से चाकू बरामद किया गया। नईम नाम के एक अन्य व्यक्ति को भी गिरफ्तार किया गया था, जिसके पास से एक और चाकू बरामद हुआ था। कफील (आवेदक) नाम के तीसरे व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया, जिसके पास से उसके दाहिने हाथ से पॉलिथीन बैग में दो किलोग्राम गाय का मांस बरामद किया गया। फर्श पर 60 किलो गाय का मांस पड़ा था। शाहनवाज और नईम ने बताया कि उन्होंने एक अन्य आरोपी रफी अहमद की मदद से गाय का मांस खरीदा है। वेटरनरी डॉक्टर से फोन पर संपर्क किया गया, जो अपराध सीन पर पहुंचे। पशु चिकित्सक ने प्रथम दृष्टया फर्श पर पड़े

मांस के निरीक्षण पर गाय के मांस के बारे में अपनी राय व्यक्त की। दो चाकू, दो गंडासा और लोहे का हुक, एक बड़ी सुई और एक लकड़ी का तख्ता बरामद किया गया।

3. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सह-अभियुक्त शाहनवाज @ शानू के पास भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण के तहत वध लाइसेंस है जो याचिका के अनुलग्नक संख्या-7 के रूप में रिकॉर्ड पर है।

4. आवेदक की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया है कि लाइसेंस के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि शाहनवाज @ शानू एक वैध लाइसेंस धारक है और एक लाइसेंस प्राप्त कसाई है जिसकी शाहनवाज भैंस मांस की दुकान के नाम और शैली में एक दुकान है। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, शाहनवाज @ शानू के कब्जे से चाकू बरामद किए गए थे। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि वह लाइसेंसी कसाई है, इसलिए, उसके पास से दिखाए गए चाकू की बरामदगी एक 'पुलिस वीर' के अलावा और कुछ नहीं है। विवेचनाधिकारी ने मामले की विवेचना की और गवाहों के बयान दर्ज किए गए हैं जो अनुलग्नक संख्या-8 के रूप में रिकॉर्ड पर हैं। वह आगे प्रस्तुत करता है कि बयानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि घटना का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। उपरोक्त अपराध संख्या-0492/2018 में सी.जे.एम., अमरोहा के समक्ष 11.10.2018 को आवेदक सहित चार नामित आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था, जिस पर 12.10.2018 को संज्ञान लिया गया था और आरोपी व्यक्तियों को विचारण न्यायालय के समक्ष तलब किया गया था।

5. आवेदक की ओर से आगे प्रस्तुत किया गया है कि पुलिस रिपोर्ट में अभियोजन पक्ष के मामले से, यह स्पष्ट है कि आवेदक के खिलाफ एकमात्र आरोप यह है कि वह पॉलीथिन में अपने दाहिने हाथ में 2 किलो मांस के साथ पकड़ा गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कथित अपराध की गवाही देने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है क्योंकि प्राथमिकी स्पष्ट रूप से कहती है कि कोई भी उक्त छापे का गवाह बनने के लिए तैयार नहीं था। अभियोजन पक्ष के सभी गवाह पुलिस पार्टी के सदस्य हैं जिन्होंने शाहनवाज @ शानू के घर पर छापा मारा जो एक लाइसेंस प्राप्त कसाई है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक से 2 किलो मांस की कथित बरामदगी की गई है।

6. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि गैंगस्टर अधिनियम को लागू करने के लिए विवेचनाधिकारी द्वारा कोई सामग्री एकत्र नहीं की गई है। गैंग चार्ट साइक्लोस्टाइल तरीके से तैयार किया गया है जो दिमाग के पूर्ण गैर-उपयोग को दर्शाता है। गैंग चार्ट में गोकशी का सिर्फ एक मामला दिखाया गया है। आवेदक का एकमात्र मामला यानी केस अपराध संख्या-492/2018, यूपी गोहत्या निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 3/5/8 के अलावा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। पुलिस रिपोर्ट में कोई इनपुट नहीं है और इस अपराध को गिरोह की परिभाषा के तहत लाने के लिए कोई

सामग्री नहीं है। जिला मजिस्ट्रेट, अमरोहा द्वारा कोई व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है। गैंग चार्ट को विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा बहुत कम समय में यांत्रिक तरीके से बिना किसी व्यक्तिपरक संतुष्टि के तैयार और अनुशंसित किया गया है।

7. आवेदक की ओर से आगे प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी पशु चिकित्सक की कोई रिपोर्ट नहीं है और कथित बरामद मांस का कोई नमूना फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला के लिए नहीं भेजा गया है। अधिनियम की धारा 2 (डी) को लागू करने के लिए सामग्री अनुपस्थित हैं। अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने तेज सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आवेदन यू/एस 482 संख्या-3239/2005 में, अर्जुन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 की रिट याचिका संख्या-642 में और पंकज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-5707/2021 के मामले में पारित इस उच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

8. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने याचिका का विरोध करते हुए कहा है कि एक अकेले मामले के आधार पर, गैंगस्टर को लागू किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने "श्रद्धा गुप्ता बनाम भारत सरकार" उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 514 के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

9. आवेदक के लिए अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

10. अभियोजन पक्ष का यह स्वीकृत मामला है कि अभियुक्त-आवेदक को तब पकड़ा गया जब वह खड़ा था और अपने दाहिने हाथ में 2 किलो मांस पकड़े हुए था। मुख्य आरोपी शाहनवाज @ शानू एक लाइसेंसी कसाई है और इलाके में उसकी दुकान थी। अभियोजन के पूरे मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि कथित अपराध अनुचित आर्थिक लाभ लेने, कुछ आतंक फैलाने या ऐसी आपराधिक गतिविधियों को जारी रखने के लिए किया गया है जो मोटे तौर पर समाज की सुरक्षा और शांति के लिए हानिकारक हैं। गैंगस्टरों की परिभाषा गैंगस्टर एक्ट की धारा 2 (बी) के तहत दी गई है जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

..... 2. परिभाषाएँ। - इस अधिनियम में, -

(ए) "कोड" का अर्थ है दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम संख्या-2)

(ख) "गैंग" से व्यक्तियों का ऐसा समूह अभिप्रेत है जो लोक व्यवस्था को भंग करने के उद्देश्य से या स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अकेले या सामूहिक रूप से हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन या धमकी या जबरदस्ती या अन्यथा कार्य करता है, अर्थात्

(i) भारतीय दंड संहिता के अध्याय XVI या अध्याय XVII या अध्याय XXII (1860 का अधिनियम संख्या-45) के तहत दंडनीय अपराध, या

(ii) उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 (1910 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-4) या स्वापक औषधि और मनप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1910 के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन करते हुए आसवन या विनिर्माण या

भंडारण या परिवहन या आयात या निर्यात या विक्रय या किसी पादप की खेती करना, (1985 का अधिनियम संख्या-61), या उस समय के लिए लागू कोई अन्य कानून, या

(iii) विधि के अनुसार स्थावर संपत्ति पर कब्जा करना, या स्थावर संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे के लिए झूठे दावे स्थापित करना, चाहे वह स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति में हो, या

(iv) किसी लोक सेवक या किसी साक्षी को उसके विधिपूर्ण कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकना या निवारित करना, या

(v) महिलाओं और लड़कियों में अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम संख्या-104) के तहत दंडनीय अपराध, या

(vi) सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 (1867 का अधिनियम संख्या-3) की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध, या

(vii) किसी व्यक्ति को किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से विधिपूर्वक आमंत्रित नीलामी या निविदा में किसी पट्टे या अधिकार या माल या कार्य की आपूर्ति के लिए विधिपूर्वक आमंत्रित बोलियों की पेशकश करने से रोकना, या

(viii) किसी व्यक्ति द्वारा अपने विधिपूर्ण व्यवसाय, व्यवसाय, व्यापार या नियोजन या उससे संबंधित किसी अन्य विधिपूर्ण गतिविधि के सुचारू संचालन को रोकना या उसमें बाधा डालना, या

(ix) भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम सं० 45) की धारा 171-ङ के अधीन दंडनीय अपराध, या मतदाता को उसके निर्वाचन अधिकारों का प्रयोग करने से भौतिक रूप से रोककर विधिपूर्वक कराए जा रहे किसी लोक निर्वाचन को रोकना या उसमें बाधा डालना, या

(x) साम्प्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने के लिए दूसरों को हिंसा का सहारा लेने के लिए उकसाना, या

(xi) सार्वजनिक रूप से आतंक, अलार्म या आतंक पैदा करना, या

(xii) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या स्वामियों या अधिभोगियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी संपत्तियों के संबंध में शरारत कारित करना, या

(xiii) किसी व्यक्ति को मिथ्या अभ्यावेदन पर विदेश जाने के लिए प्रलोभन देना या प्रलोभन देना कि ऐसे विदेशी देश में उसे कोई रोजगार, व्यापार या पेशा प्रदान किया जाएगा, या

(xiv) फिरौती वसूलने के इरादे से किसी व्यक्ति का अपहरण या व्यपहरण, या

(xv) किसी विमान या सार्वजनिक परिवहन यान को उसके निर्धारित मार्ग का अनुसरण करने से विपथित करना या अन्यथा निवारना;

[(xvi) साहूकार विनियमन अधिनियम, 1976 के अधीन दंडनीय अपराध;

(xvii) गोपशुओं का अवैध रूप से परिवहन करना और/या तस्करी करना और गोवध निवारण अधिनियम, 1955 और पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 के उपबंधों के उल्लंघन में संलिप्त होना;

(xviii) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ मजदूरी, बाल श्रम, यौन शोषण, अंग निकालने और अवैध व्यापार, भिक्षावृत्ति और इसी प्रकार के कार्यकलापों के प्रयोजनार्थ मानव दुर्व्यवहार।

(xix) विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1966 के अंतर्गत दंडनीय अपराध:

(xx) जाली भारतीय करेंसी नोटों का मुद्रण, परिवहन और परिचालन;

(xxi) नकली औषधों के उत्पादन, बिक्री और वितरण में शामिल होना;

(xxii) आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 5, 7 और 12 के उल्लंघन में हथियारों और गोलाबारूद के निर्माण, बिक्री और परिवहन में शामिल होना;

(xxiii) आथक लाभ के लिए कटाई या हत्या, भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 का उल्लंघन करते हुए उत्पादों की तस्करी;

(xxiv) मनोरंजन और सट्टेबाजी कर अधिनियम, 1979 के तहत दंडनीय अपराध;

(xvv) ऐसे अपराधों में लिप्त होना जो राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और यहां तक कि जीवन की गति को भी प्रभावित करते हैं।

(ग) "गैंगस्टर" से किसी गिरोह का सदस्य या नेता या आयोजक अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति है जो खण्ड (ख) में प्रगणित किसी गिरोह की गतिविधियों में दुष्प्रेरित करता है या सहायता करता है, चाहे वह ऐसी गतिविधियों के किए जाने से पहले हो या बाद में या ऐसी गतिविधियों में लिप्त किसी व्यक्ति को शरण देता हो;

(घ) "लोक सेवक" से भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम सं० 45) की धारा 21 में यथा परिभाषित लोक सेवक या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि से अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो इस अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के अन्वेषण या अभियोजन या दंड में राज्य की पुलिस या अन्य प्राधिकारियों की विधिपूर्वक सहायता करता है, चाहे ऐसे अपराध या अपराधी से संबंधित जानकारी या सबूत देकर या किसी अन्य तरीके से;

(ङ) "लोक सेवक के परिवार का सदस्य" से उसके माता-पिता या पति/पत्नी और भाई, बहन, पुत्री, पौत्र, पौत्री या उनमें से किसी के पति/पत्नी अभिप्रेत हैं और इसके अंतर्गत लोक सेवक पर निर्भर या उसके साथ रहने वाला व्यक्ति और कलमकार भी है जिसके कल्याण में लोक सेवक की रुचि है;

(च) ऐसे शब्दों और वाक्यांशों का अर्थ होगा जो इस अधिनियम में प्रयुक्त नहीं हैं और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 या भारतीय दंड संहिता में परिभाषित हैं और ऐसे संहिताओं में क्रमशः उन्हें सौंपे गए हैं।

11. गिरोह की परिभाषा के अवलोकन से पता चलता है कि यह व्यक्तियों का एक समूह है, जो हिंसा या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती, या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक, सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करता है।

12. पूरे अभियोजन मामले के अवलोकन से पता चलता है कि यह अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि अभियुक्त ने कोई हिंसा की है, या किसी को धमकी दिया गया है या डराया है या सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने के उद्देश्य से जबरदस्ती की है या, या तो खुद के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए जो धारा

1 में परिभाषित हैं, अपराध किसी भी अनुचित अस्थायी आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए किया गया है। गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 (बी) (1) अधिनियम की धारा 2 (बी) में प्रयुक्त शब्द या अन्यथा की व्याख्या हिंसा, धमकी, हिंसा का प्रदर्शन, धमकी या जबरदस्ती जैसे पूर्ववर्ती शब्दों के संदर्भ में की जानी चाहिए, इसे गैंगस्टर अधिनियम को लागू करने के लिए सामान्य अर्थ नहीं दिया जा सकता है। मामले में गैंगस्टर को आरोपित करने के लिए, यह देखना होगा कि अपराध का उद्देश्य क्या था या इसके पीछे का मकसद क्या था। यदि मकसद अनुचित अस्थायी आर्थिक या भौतिक लाभ प्राप्त करना था, तो मामला अलग है। अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र की गई सामग्री से, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त का अधिनियम की धारा 2 (डी) में प्रयुक्त सामान्य शब्द यानी 'अन्य लाभ' की व्याख्या करने का पूर्वोक्त मकसद था। एजुस्डेम जेनेरिस के नियम को लागू करना होगा। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए उच्चतम न्यायालय के मामले में पारित निर्णय पर भरोसा करते हुए 2006-07 के मामले में निर्णय दिया था। कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज बनाम रामदेव टोबैको कं, (1991) 2 एस.सी.सी. 119 और एजुसडेम जेनेरिस के नियम का आह्वान करते हुए अन्य लाभ शब्द की व्याख्या की है जो अधिनियम की धारा 2 में जगह पाता है और यह माना है कि वाक्यांश 'अन्य लाभ' को साथ में दिए गए शब्दों से अपना रंग लेना चाहिए जो तुरंत पहले होते हैं और जिनका अर्हक प्रभाव होता है। तेज सिंह (उपरोक्त) के फैसले का प्रासंगिक हिस्सा नीचे दिया गया है: -

रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, यह न्यायालय आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों से सहमत है कि हालांकि अभियुक्तों पर हत्या करने का आरोप है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने अपराध किया क्योंकि वे गैंगस्टर थे। कोई गलत आर्थिक लाभ उठाने का कोई मकसद नहीं था। यह न्यायालय ऐसी कोई सामग्री भी नहीं देखता है जिसके आधार पर यह माना जा सकता है कि अपराध करने के पीछे मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ना था। जब भी कोई गंभीर अपराध किया जाता है तो यह हमेशा समाज में किसी प्रकार की अशांति का परिणाम होता है। समाज में इस तरह की सामान्य गड़बड़ी और सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ना या आतंक या खौफ़ पैदा करना अलग-अलग प्रजातियां हैं। कानून और व्यवस्था की साधारण समस्याओं को लोक व्यवस्था भंग होने की घटना के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। प्रश्नगत अपराध ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह अपराध स्वयं के लिए या असामाजिक गतिविधियों में लिप्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक या अन्य समान लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया प्रतीत नहीं होता है।

यहाँ इस संदर्भ में यह भी देखा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा-2 (बी) के तहत प्रदान की गई 'गैंग' की परिभाषा में अपने या किसी अन्य व्यक्ति के

लिए 'कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक, सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करना' शब्दों का संदर्भ दिया गया है। कोई यह तर्क दे सकता है कि 'अन्य लाभ' शब्द एक सर्वसमावेशी शब्द है और सभी प्रकार और लाभ की श्रेणियां इसके शीर्षक के अंतर्गत आएंगी, और इसलिए, मामले के तथ्यों को एक अच्छे वर्ग के साथ देखने की शायद ही कोई आवश्यकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि गिरोह का उद्देश्य अनुचित अस्थायी लाभ प्राप्त करना है या नहीं, आर्थिक और भौतिक लाभ। यदि की गई हिंसा या अपराध स्वयं के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी भी प्रकार का लाभ प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया गया था, तो अधिनियम द्वारा प्रदान की गई परिभाषा का पत्र संतुष्ट होगा। लेकिन इस न्यायालय की सुविचारित राय में इस तरह के दृष्टिकोण से क़ानून की पूरी तरह से गलत व्याख्या होगी। यदि विधानमंडल ने अपने विवेक से असामाजिक गतिविधि के संबंध में कई अर्हक शब्दों का प्रयोग किया है जैसा कि अधिनियम में संदर्भित और चिंतन किया गया है, तो परिभाषा में प्रयुक्त 'अन्य लाभ' शब्दों को ऐसा व्यापक अर्थ प्रदान करके उसका संपूर्ण उद्देश्य विफल हो जाएगा। यदि 'अन्य लाभ' शब्द का अर्थ सभी लाभों को शामिल करना था या किसी भी प्रकार के लाभ को शामिल करना था, तो 'लौकिक, आर्थिक और सामग्री' जैसे विभिन्न अन्य परिभाषित शब्दों का उपयोग करने की आवश्यकता थी, जो तुरंत 'या अन्य लाभ' शब्दों से पहले आते हैं! यह स्वतः स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती शब्दों के उपयोग का एक योग्यता प्रभाव है और बाद में इस्तेमाल किए गए शब्दों 'अन्य लाभ' के लिए इसके रंग को उधार देते हुए देखा जाना चाहिए। 'अन्य लाभ' शब्द को संदर्भ और परिप्रेक्ष्य में और पूर्ववर्ती पूर्वोक्त शब्दों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए और उसी प्रकाश में समझा जाना चाहिए। जिस तरह एक आदमी को अक्सर उस कंपनी द्वारा जाना जाता है जिसे वह रखता है, क़ानून में शब्दों के आयात को भी अक्सर उन शब्दों की कंपनी द्वारा देखा और समझा जाता है जिनमें वे दिखाई देते हैं। इस संबंध में यह न्यायालय 'एजुस्डेम जेनरिस' के नियम को परिप्रेक्ष्य में रखना उचित समझता है ताकि क़ानून में प्रयुक्त उपरोक्त विशिष्ट शब्दों का पालन करने वाले सामान्य शब्दों के दायरे और वास्तविक दायरे की सही ढंग से मूल्यांकन किया जा सके। न्यायालय का विचार है कि पूर्वोक्त पूर्ववर्ती शब्द 'लौकिक, आर्थिक और सामग्री' एक जीनस का गठन कर रहे हैं और 'अन्य लाभ' शब्द को उसी की प्रजाति के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। यद्यपि साधारणतया सामान्य शब्दों को उनके स्वाभाविक और व्यापक अर्थ को धारण करने के लिए प्रदान किया जाना चाहिए, लेकिन उन्हें एजुस्डेम जेनेरिस को उन चीजों के वर्ग तक सीमित रखना होगा जो पहले कुछ विशिष्ट शब्दों द्वारा परिगणित थे, क्योंकि क़ानून के इरादे को स्पष्ट रूप से देखना मुश्किल नहीं है जिसे यह एक विशिष्ट वर्ग और योग्यता शब्दों की श्रेणी का उपयोग करके बताता है। यह न्यायालय कारणों को देखता है और इसलिए सामान्य शब्दों 'अन्य लाभ' के अर्थ के दायरे को सीमित करने के लिए राजी महसूस करता है क्योंकि यदि हम इसे एक बड़ा सभी को लगने वाला अर्थ प्रदान करते हैं तो इससे बेतुका और अप्रत्याशित परिणाम होने की संभावना है। सामान्य

अभिव्यक्ति को उसी तरह की चीजों को इंगित करने के लिए पढ़ा जाना चाहिए जिन्हें एक जीनस बनाने वाली चीजों के पूर्ववर्ती विशिष्ट वर्ग द्वारा संदर्भित किया गया है। यदि हम इस नियम का पालन नहीं करते हैं और पूर्ववर्ती शब्दों के आलोक में सामान्य शब्दों के लिए विशिष्ट रंग नहीं लगाते हैं, तो इसका खुल्लम-खुल्ला दुरुपयोग और स्पष्ट बेतुकापन यह होगा कि प्रशासनिक अधिकारी और पुलिस इस अधिनियम के उपबंधों को किसी भी व्यक्ति पर थोपने के लिए स्वतंत्र महसूस करेंगे जो किसी भी प्रकार का अपराध या कानून का उल्लंघन करने के आरोप का सामना कर रहा है, चाहे वह किसी भी प्रकार का अपराध या कानून का उल्लंघन करने का आरोप झेल रहा हो। यह ग़लत है क्योंकि शायद ही कोई हिंसा या धमकी या जबरदस्ती का प्रदर्शन स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी प्रकार का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य के बिना किया जाता है। 'लाभ' शब्द का एक व्यापक प्राकृतिक अर्थ है और इसमें भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार के फायदे शामिल हो सकते हैं। इस मामले को देखते हुए 'अन्य लाभ' शब्दों के प्रयोग से सब कुछ अपनी शरारत में आ जाएगा। इसलिए इन शब्दों को सही परिप्रेक्ष्य में पढ़ना और उन्हें क़ानून द्वारा पहले से बताई गई चीजों या शब्दों के साथ पढ़ना बहुत शीघ्रता से आवश्यक है। अपने दृष्टिकोण को साबित करने के लिए इस न्यायालय को केंद्रीय उत्पाद शुल्क के सहायक कलेक्टर, गुंटूर बनाम रामदेव तंबाकू कंपनी, 1991 एआईआर (एस.सी.) 506 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले से ताकत मिलती है। इस मामले में एजुसडेम जेनेरिस के सिद्धांत को कुछ लंबाई में विस्तारित किया गया था और उस मामले में शामिल मुद्दों की व्याख्या देते हुए भी लागू किया गया था जिसके साथ यह काम कर रहा था। घोषणा के प्रासंगिक हिस्से को निकालना लाभदायक होगा जो निम्नानुसार है: -

"5. लेकिन सवाल यह है कि क्या कारण बताओ नोटिस जारी करने और परिणामी अधिनिर्णय कार्यवाही शुरू करने को अधिनियम की धारा 40 की उप-धारा (2) के अर्थ के भीतर 'अन्य कानूनी कार्यवाही' के रूप में वर्णित किया जा सकता है? यदि उक्त विभागीय कार्रवाई 'अन्य कानूनी कार्यवाही' अभिव्यक्ति के अंतर्गत आती है, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि कार्रवाई को रोक दिया जाएगा क्योंकि यह निर्विवाद रूप से कारण कार्रवाई के प्रोद्भवन के छह महीने बाद शुरू किया गया था। इसलिए महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या 30 अगस्त, 1972 को कारण बताओ नोटिस जारी करना और उससे निकलने वाली न्यायिक कार्यवाही में आक्षेपित आदेश पारित करना अधिनियम की धारा 40 (2) के अर्थ के भीतर 'अन्य कानूनी कार्यवाही' का गठन करता है, जो उस उप-धारा की शरारत के भीतर आती है जो कार्रवाई के कारण के प्रोद्भवन से छह महीने की अवधि के बाद शुरू होने पर ऐसी कार्यवाही को रोकती है। अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने प्रस्तुत किया कि अभिव्यक्ति 'अन्य कानूनी कार्यवाही' को पूर्ववर्ती अभिव्यक्ति 'सूट' और 'अभियोजन' के साथ पढ़ा जाना चाहिए और यदि ऐसा पढ़ा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विभाग की कार्रवाई 'अन्य कानूनी कार्यवाही' के दायरे में नहीं आ सकती है। यह तर्क कितना वैध है,

यह प्रश्न हमें प्रस्तुत अपील में उत्तर देने के लिए कहा गया है।

6. एजुस्डेम जेनेरिस का नियम आम तौर पर लागू किया जाता है जहां सामान्य शब्दों का दायरा जो कुछ विशिष्ट शब्दों का पालन करते हैं (जिनमें कुछ सामान्य विशेषता होती है और एक जीनस का गठन होता है) निर्धारित किया जाना आवश्यक है। इस नियम के आवेदन से सामान्य शब्दों का दायरा जो एक जीनस का गठन करने वाले कुछ विशिष्ट शब्दों का पालन करते हैं, उन चीजों तक ही सीमित है जो उनसे पहले के लोगों के साथ जेनेरिस हैं, जब तक कि संदर्भ की अन्यथा आवश्यकता न हो। सामान्य शब्दों को आमतौर पर उनके प्राकृतिक और बड़े अर्थ को सहन करना चाहिए और उन्हें पहले से गणना की गई चीजों तक सीमित नहीं होना चाहिए जब तक कि क़ानून की भाषा उस प्रभाव का इरादा नहीं बताती है। न्यायालयों ने उन मामलों में सामान्य शब्दों के दायरे को भी सीमित कर दिया है जहां एक बड़े अर्थ से बेतुका और अप्रत्याशित परिणाम होने की संभावना है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, सामान्य अभिव्यक्ति को उसी तरह की चीजों को समझने के लिए पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि एक जीनस बनाने वाली पूर्ववर्ती विशिष्ट चीजों द्वारा संदर्भित किया गया है, जब तक कि निश्चित रूप से क़ानून की भाषा से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि सामान्य शब्द इतने सीमित होने का इरादा नहीं रखते थे और यदि उन्हें अपना प्राकृतिक अर्थ लेने की अनुमति दी जाती है तो कोई बेतुकापन या अनपेक्षित और अप्रत्याशित जटिलता होने की संभावना नहीं है। व्याख्या का कार्डिनल नियम सामान्य शब्दों को उनके प्राकृतिक व्यापक अर्थ लेने की अनुमति देना है जब तक कि क़ानून की भाषा एक अलग संकेत नहीं देती है या इस तरह के अर्थ से बेतुके परिणाम होने की संभावना है, जिस स्थिति में उनके अर्थ को इस नियम के आवेदन से प्रतिबंधित किया जा सकता है और उन्हें पूर्ववर्ती शब्दों द्वारा निर्दिष्ट विशिष्ट चीजों के अनुरूप होने की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन जब तक कोई जीनस नहीं है जिसे पिछले शब्दों से समझा जा सकता है, तब तक इस नियम को लागू करने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। न ही इस नियम का कोई अनुप्रयोग हो सकता है जहां सामान्य शब्द विशिष्ट शब्दों से पहले हों।

7. इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'अन्य कानूनी कार्यवाही' शब्द अधिनियम के तहत अधिनिर्णय और दंड की कार्यवाही को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं। यहां तक कि अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने भी इसके विपरीत तर्क नहीं दिया, लेकिन उन्होंने जो कहा वह यह था कि चूंकि यह व्यापक अभिव्यक्ति एक निश्चित जीनस के विशेष शब्दों से पहले होती है, अर्थात्, केवल अदालतों में की गई कार्यवाही के संदर्भ को इंगित करने वाले शब्द, व्यापक शब्द उन चीजों तक सीमित होने चाहिए जो जेनेरिस हैं और पूर्ववर्ती शब्दों से रंग लेना चाहिए इसलिए, प्रश्न में प्रकार की कार्यवाही को बाहर करने के लिए एक सीमित अर्थ प्राप्त करें। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि 'वाद' या 'अभियोजन' वे न्यायिक या कानूनी कार्यवाही हैं जो कानून की अदालत में दर्ज की जाती हैं और किसी कार्यकारी प्राधिकारी के समक्ष नहीं, भले ही वह वैधानिक हो। धारा 40(2) में 'स्थापित' अभिव्यक्ति का

प्रयोग इस विश्वास को मजबूत करता है। चूंकि इस उप-धारा को इस न्यायालय द्वारा राजू के मामले (उपरोक्त) में केवल सरकारी कर्मचारियों तक ही सीमित नहीं माना गया है, बल्कि निर्धारिती सहित अन्य लोगों तक विस्तारित किया गया है और चूंकि 'इस अधिनियम के तहत किए गए या किए जाने वाले आदेश के लिए' शब्द गैर-अनुपालन या चूक के कृत्यों को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक पाए जाते हैं जो अधिनियम और नियम में शामिल हैं, धारा 40(2) द्वारा निर्धारित सीमा निस्संदेह अधिनिर्णय और दंड की कार्यवाही को प्रभावित करेगी जब तक कि अभिव्यक्ति 'अन्य कानूनी कार्यवाही' को कानून की अदालत में शुरू की गई कानूनी कार्यवाही तक सीमित करने के लिए पढ़ा नहीं जाता है।

8. राजू के मामले के अनुसरण में अपने संशोधन से पहले धारा 40 (2) का दायरा यूनिवर्सल केबल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश भारत संघ, [1977 टैक्स एल.आर. 1825]: 1977 ईएलटी (जे 92) उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विचार के लिए आया था। जिसमें निर्धारण के लिए उठाया गया प्रश्न यह था कि क्या शुल्क के भुगतान से बचने के उद्देश्य से नियम 173 सी के उल्लंघन के लिए नियम 173 क्यू के तहत की गई दंड कार्यवाही उक्त उप-धारा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'अन्य कानूनी कार्यवाही' के भीतर आती है। उच्च न्यायालय ने माना कि अभिव्यक्ति जब अलगाव में पढ़ी जाती है तो कानून के अनुसार की गई किसी भी कार्यवाही को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक होती है, चाहे वह कानून की अदालत में या किसी प्राधिकरण या न्यायाधिकरण के समक्ष की गई हो, लेकिन जब पूर्ववर्ती शब्दों 'सूट' या 'अभियोजन' के साथ पढ़ा जाता है तो इसे एक प्रतिबंधित अर्थ दिया जाना चाहिए। इस प्रकार उच्च न्यायालय ने पृष्ठ जे 106 (पृष्ठ 1838 अल आर पर) पर स्वयं को व्यक्त किया।

"अब धारा 40 (2) की भाषा है: 'कोई मुकदमा, अभियोजन या अन्य कानूनी कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी'। वाद और अभियोजन, जो अन्य विधिक कार्यवाही अभिव्यक्ति से पहले है, केवल न्यायालय में ही लिया जा सकता है। अमर चन्द्र बनाम आबकारी कलेक्टर, त्रिपुरा, आकाशवाणी में वर्णित एजुस्डेम जेनेरिस नियम के विस्तार को बताने के बाद, 1972 एस.सी. 1863 1868 (सदरलैंड, वॉल्यूम 2 पेज 399-400) में उच्च न्यायालय ने कहा कि उक्त उप-धारा में या अधिनियम में कहीं और कोई संकेत नहीं था कि उक्त सामान्य शब्दों का उद्देश्य उनके व्यापक अर्थ प्राप्त करना था और उन्हें सीमित अर्थों में नहीं लगाया जाना था एजुस्डेम जेनेरिस नियम की सहायता से। इसलिए, दंड की कार्यवाही जैसी विभागीय कार्यवाही को उक्त उपधारा के दायरे से बाहर रखा गया था। इस विचार को सी.सी. इंडस्ट्रीज एंड अदर्स बनाम एचएन रे, 1980 ईएलटी 442 एट 453 में बॉम्बे हाईकोर्ट के एकल न्यायाधीश द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। इसलिए, ये दोनों मामले अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा हमारे समक्ष रखे गए दृष्टिकोण का स्पष्ट रूप से समर्थन करते हैं।

9. हमने अपीलकर्ता की ओर से किए गए सबमिशन पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, जो पूर्वोक्त दो निर्णयों में व्यक्त दृष्टिकोण से

प्रबलित है। अभिव्यक्ति 'अन्य कानूनी कार्यवाही' के दायरे पर विचार करते हुए हमने खुद को 1973 के अधिनियम 22 द्वारा संशोधन से पहले अधिनियम की धारा 40 की उप-धारा (2) की भाषा तक सीमित कर लिया है और संशोधित प्रावधान पर कोई विचार व्यक्त करने के लिए नहीं समझा जाना चाहिए। सावधानीपूर्वक विचार करने पर हम पूर्वोक्त निर्णयों में व्यक्त दृष्टिकोण के साथ सम्मानपूर्वक सहमत हैं कि व्यापक अभिव्यक्ति 'अन्य कानूनी कार्यवाही' को पूर्ववर्ती शब्दों 'सूट' और 'अभियोजन' के साथ पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि वे एक जीनस का गठन करते हैं। इस मामले के मद्देनजर हमें अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल के इस तर्क को बरकरार रखना चाहिए कि विचाराधीन जुर्माना और अधिनिर्णय की कार्यवाही अधिनियम की धारा 40(2) में नियोजित अभिव्यक्ति 'अन्य कानूनी कार्यवाही' के भीतर नहीं आती है क्योंकि यह 1973 के अधिनियम 22 द्वारा इसके संशोधन से पहले थी और इसलिए, उक्त कार्यवाही उक्त उपधारा द्वारा निर्धारित सीमा के अधीन नहीं थी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए पूर्वोक्त दृष्टिकोण से प्रकाश डालते हुए, यह न्यायालय यह मानने का अच्छा कारण देखता है कि वाक्यांश 'अन्य लाभ' का उपयोग, जैसा कि इसे अधिनियम में जगह मिलती है, को साथ में उन शब्दों से अपना रंग लेना चाहिए जो तुरंत पहले आते हैं और जिनका अर्हक प्रभाव होता है।

13. इस प्रकार, हिंसा के आरोप, धमकी या हिंसा के प्रदर्शन या धमकी या जबरदस्ती या अन्यथा के अभाव में, मेरा विचार है कि अधिनियम की धारा 3(1) के तहत आवेदक के खिलाफ दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट को कायम नहीं रखा जा सकता है। इसके अलावा, अधिनियम की धारा 2(बी) के पहले भाग में प्रयुक्त शब्द "या अन्यथा", पूर्ववर्ती शब्दों से अपना अर्थ प्राप्त करेंगे और इसमें अधिनियम की धारा 2(बी) के प्रयोजन के लिए सभी सामान्य अधिनियम/अपराध शामिल नहीं होंगे जो प्रकृति में तुच्छ हैं। जहां तक अपर शासकीय अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि एक अकेले मामले में, गैंगस्टरों को बुलाया जा सकता है, इस बिंदु पर कोई झगड़ा नहीं है। कानून तय हो गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने श्रद्धा गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में विवाद को पहले ही सुलझा लिया है, जिसमें पैरा-10 में यह माना गया है कि अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधियों के लिए एक ही अपराध/प्राथमिकी/आरोप पत्र के मामले में भी किसी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा चलाया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसी असामाजिक गतिविधि हिंसा या धमकी या हिंसा या धमकी के प्रदर्शन से हो या सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी अनुचित अस्थायी आर्थिक सामग्री या लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से जबरदस्ती या अन्यथा। प्रस्तुत मामले में, यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता को उसके दाहिने हाथ में 2 किलो मांस के साथ पकड़ा गया था। अधिनियम की धारा 2 में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधियों जैसे हिंसा, धमकी, हिंसा का प्रदर्शन, धमकी, जबरदस्ती आदि का कोई आरोप नहीं है, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि उक्त अपराध आवेदक द्वारा

सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए अनुचित अस्थायी आर्थिक सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया था।

14. यह तय किया गया है कि यदि अपराध अधिनियम की धारा 2 (बी) में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधि के लिए किया गया पाया जाता है, एक अकेले मामले के लिए, गैंगस्टर को आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ लगाया जा सकता है। यहां ऐसा नहीं है। प्रस्तुत मामले में, रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चलता हो कि अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधियों के लिए आरोप पत्र दायर किया गया है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। अभियुक्त इस तरह का अपराध सिर्फ एक बार कर सकता है या वह कई अपराध कर सकता है और उस संबंध में एक से अधिक प्राथमिकी का सामना कर सकता है, प्राथमिकी की संख्या अप्रासंगिक है। अपराध के पीछे का मकसद और उद्देश्य इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए देखा जाना चाहिए कि किसी दिए गए मामले में गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधान को लागू किया जा सकता है या नहीं। मकसद और उद्देश्य स्पष्ट रूप से गायब हैं, इस प्रकार, मामले को अधिनियम के प्रावधान के तहत नहीं लाया जा सकता था।

15. पूर्वोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम के तहत पूरी आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ आरोप पत्र के साथ-साथ परिणामी कार्यवाही को रद्द कर दिया जाता है। आवेदन की अनुमति है।

इस आदेश की प्रति विद्वान विचारण न्यायालय को तुरंत भेजी जाए।

(2023) 5 ILRA 1965

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

शासकीय अपील संख्या 1624/2004

और

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 221/2004

उत्तर प्रदेश राज्य ...अपीलकर्ता

बनाम

अजय मिश्रा @ टैनी एवं अन्य

...अभियुक्त-प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: ए.एच. रिजवी, अवनींद्र सिंह परिहार, शास. अधिवक्ता, नागेन्द्र मोहन, सुशील कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: एस.के. शुक्ला, अरमेन्द्र प्रताप सिंह, बृजमोहन सहाय, प्रदीप चौरसिया, परनेन्दु चक्रवर्ती, सलिल कुमार श्रीवास्तव, सुमित कुमार सिंह

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - वास्तव में शिकायतकर्ता ने सीआरपीसी के तहत धारा 397 आर / डब्ल्यू 401 के तहत संशोधन को प्राथमिकता दी है । चारों आरोपियों को बरी करने के आदेश के खिलाफ- आईपीसी की धारा 302, 302/34 के तहत सत्र परीक्षण- प्रभात गुप्ता उर्फ राजू की हत्या- पिता द्वारा दर्ज कराई गई

एफआईआर- राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और दुश्मनी की पृष्ठभूमि में घटना की संभावना- अपराध का होना और अपराधियों की मिलीभगत दो अलग-अलग वास्तविकताएं हैं- अपीलीय न्यायालय द्वारा बरी करने के आदेश में हल्के में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है- किसी आरोपी को बरी करने से उसकी निर्दोषता की धारणा और मजबूत होती है- यदि मामले में पेश किए गए सबूतों पर दो राय संभव हैं- तो आरोपी के पक्ष में राय अपनाई जानी चाहिए- सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अदालत द्वारा प्रतिकूल गवाह के बयान की जांच की जा सकती है- मुख्य गवाह पीडब्लू-3 के बयान को सही नहीं माना जा सकता- पीडब्लू-10 का बयान दर्ज करने में अत्यधिक देरी अस्पष्ट है- एफआईआर पूर्व-समय पर दर्ज की गई है- बंदूक की गोली दूर से चलाई गई- एक कदम की दूरी से नहीं- मृतक के शरीर पर कोई कालापन या जलन नहीं मृतक-घटना स्थल पर प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति संदिग्ध- विचारण न्यायालय का निर्णय बरकरार - अपील खारिज। (पैरा 20,21,23, 43, 59,61, 62, 66, 70, 72, 74 और 75)

अभिनिर्धारित:

इस मामले पर विचार करते समय यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि अपराध का होना और अपराधियों की सहभागिता दो अलग-अलग वास्तविकताएँ हैं। किसी अपराधी की सहभागिता को आरोपित अपराध के होने से जोड़कर सिद्ध किया जाना चाहिए, तभी न्यायालय को दोषसिद्धि का परिणाम निकालने की अनुमति है, अन्यथा दोषमुक्ति का नियम है। (पैरा 20)

कानून में यह निर्धारित है कि किसी भी बरी करने के आदेश में अपीलीय न्यायालय द्वारा हल्के में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, हालांकि इस न्यायालय के पास साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए व्यापक अधिकार हैं। हालांकि, अनुमति देने की शक्ति का प्रयोग सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए क्योंकि किसी अभियुक्त के बरी होने से निर्दोष होने की धारणा और मजबूत हो जाती है। (पैरा 21)

इसके अलावा, यह आपराधिक न्यायशास्त्र का एक प्रमुख सिद्धांत है कि अभियुक्त का अपराध सभी उचित संदेह से परे साबित होना चाहिए। अपने मामले को सभी उचित संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है और यह कभी नहीं बदलता है। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के जाल में एक और सुनहरा धागा यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्य पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, जिनमें से एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में जो दृष्टिकोण हो उसे अपनाया जाना चाहिए। (पैरा 23)

अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर, हम यह नहीं पाते हैं कि मुख्य गवाह पीडब्लू-3 द्वारा पीडब्लू-2 के उसके घर पर मिलने के बारे में दिए गए बयान को सच माना जा सकता है, इसलिए पीडब्लू-3 द्वारा मृतक के घर पर मिलने और भोजन करने के बाद पीडब्लू-2 के साथ मृतक के पीछे जाने की गवाही संदिग्ध बनी हुई है। पीडब्लू-2 की सूचना देने वाले के घर पर मौजूदगी को स्वाभाविक बनाने के लिए धरने के तथ्य पेश किए गए थे, लेकिन मामले की सच्चाई यह है कि 08.07.2000 को ऐसा कोई धरना नहीं बुलाया गया था, जैसा कि पीडब्लू-8 के बयान से पुष्टि होती है। (पैरा 59)

इसके अलावा, यह साक्ष्य में आया है कि मृतक के शरीर के अंदर एक गोली पाई गई थी। यदि गोली शरीर से होकर नहीं गुजर सकी, तो इससे पता चलता है कि गोली का वेग बहुत अधिक नहीं था। इससे यह भी पता चलता है कि एक कदम की दूरी से या 3-4 कदम की दूरी से ऐसी चोट पहुँचाना संभव नहीं था। जाहिर है, यदि एक कदम की नज़दीकी सीमा से गोली चलाई जाती है, तो प्रवेश घाव बड़ा होगा जबकि दूर से की गई गोली से घाव का आकार छोटा होगा। वर्तमान मामले में, पीडब्लू 9 के कथन के अनुसार , प्रवेश घाव दो श्रेणियों का है, एक 0.5 x 0.5 सेमी और दूसरा 1 सेमी x 1 सेमी आकार का है जो दर्शाता है कि केवल एक कदम की दूरी से गोली चलाने की कहानी बेहद असंभाव्य और असंभव है। नज़दीकी सीमा से गोली लगने के घाव के बारे में परीक्षण निर्णयों की श्रृंखला में माना गया था। (पैरा 66)

इस मामले में मृतक के घाव पर कोई कालापन नहीं दिखाई देता है, डॉक्टर ने कहा था कि गोली दूर से मारी गई होगी। अगर हम सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए विश्लेषण के आधार पर इस निष्कर्ष की जांच करते हैं , तो हम अभियोजन पक्ष की इस कहानी पर भरोसा नहीं कर पाएंगे कि गोली लगने से चोट केवल एक कदम की दूरी से लगी थी। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों और डॉक्टर की राय को ध्यान में रखते हुए , गोली छह फीट से अधिक की दूरी से मारी गई होगी। (पैरा 70)

इस न्यायालय ने पाया कि विचारण न्यायालय ने उपरोक्त सभी पहलुओं पर बहुत ही बारीकी से विचार किया है। वर्तमान मामले में दर्ज किए गए साक्ष्य को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखा गया है और विचारण न्यायालय ने कभी भी मामले की गंभीरता को नहीं समझा। इस प्रकार, हमें विचारण न्यायालय द्वारा पारित बरी करने के आदेश में कोई विकृति नहीं दिखती है और किसी भी मामले में, कानून विचारण न्यायालय द्वारा उचित निर्णय के बाद अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा

मानता है। इसके अलावा, उपरोक्त निष्कर्षों को दर्ज करने पर, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष घटनाओं की श्रृंखला को स्थापित करने में पूरी तरह से विफल रहा है, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि यह केवल एक और एकमात्र निष्कर्ष, यानी अभियुक्त व्यक्तियों के अपराध की ओर ले जाता है। मामले के उस दृष्टिकोण से, हम पाते हैं कि विद्वान सत्र न्यायाधीश का निर्णय और आदेश एक प्रशंसनीय और टिकाऊ दृष्टिकोण है, खासकर जब विचारण न्यायालय को गवाहों के व्यवहार को देखने और उसका आकलन करने का लाभ था। (पैरा 74)

इस न्यायालय ने भी अपनी स्वतंत्र जांच दर्ज की है और अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत यह सिद्धांत कि चारों आरोपी व्यक्ति मृतक की मृत्यु के लिए उत्तरदायी थे, अविश्वसनीय है और इसमें संदेह से परे कोई साक्ष्य नहीं है। (पैरा 75)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. चन्द्रप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2007) 4 एससीसी 415

2. रवि शर्मा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार और अन्य (2022 एससीसी ऑनलाइन 859)

3. मोहन @ श्रीनिवास @ सीना @ तायलोर सीना बनाम कर्नाटक राज्य (2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1233)

4. एन. विजयकुमार बनाम तमिलनाडु राज्य (2021) 3 एससीसी 687

5. काली राम बनाम हिमांचल प्रदेश, (1973) 2 एससीसी 808

6. उपेंद्र प्रधान बनाम उड़ीसा राज्य, (2015) 11 एससीसी 124

7. गोलबार हुसैन एवं अन्य बनाम असम राज्य एवं अन्य , (2015) 11 एससीसी 242

8. राजेश यादव एवं अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 150 में प्रतिवेदित

9. अर्जुन एवं अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2017) 3 एससीसी 247 में प्रतिवेदित

10. मसल्टी बनाम उ0प्र0 राज्य, एआईआर 1965 एससी 202

11. बालाका सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1975 एससी 1962

12. उगर अहीर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1965 एससी 277

13. अरविंद कुमार @ नेमीचंद व अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1099

14. (1971) 3 एससीसी 192 (बालकृष्ण स्वैन बनाम उड़ीसा राज्य)

15. (1976) 4 एससीसी 288 (उड़ीसा राज्य बनाम श्री ब्रह्मानंद नंदा)

16. (1978) 4 एससीसी 371 (गणेश भवन पटेल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य)

17. (2016) 16 एससीसी 418 (हरबीर सिंह व अन्य बनाम शीशपाल व अन्य)

18. नूर खान बनाम राजस्थान राज्य (1964) 4 एससीआर 521

19. जनक सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य (1973) 3 एससीसी 50

20. ए.एन. चंद्रा बनाम उ0प्र0 राज्य (1990, पूरक एससीसी 717)

21. स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य (2000) 5 एससीसी 668

22. आपराधिक अपील संख्या 25/2012 (राम निवास बनाम हरियाणा राज्य)

23. कृष्णगौणा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2017) 13 एससीसी 98

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी द्वारा प्रदत्त)

1. राज्य और वास्तविक शिकायतकर्ता दोनों इस न्यायालय के समक्ष हैं जिन्होने सत्र परीक्षण संख्या 518/2001 अंतर्गत धारा 302, 302/34 भा॰दं॰सं॰ में विचारण न्यायालय द्वारा चारों अभियुक्तों/प्रतिवादियों के दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती दी है जिसमें विचारण न्यायालय ने इन अभियुक्त व्यक्तियों को सभी आरोपों से दोषमुक्त करते हुए आदेश दिनांक 29.03.2004 द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह निष्कर्ष दिया:

"123. उपरोक्त प्रयासपूर्ण विमर्श के आधार पर, अभियोजन पक्ष अपने मामले को सिद्ध करने में पूर्ण रूप से विफल रहा है और यह किसी भी प्रकार का विश्वास उत्पन्न नहीं करता है। घटनास्थल पर प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति सिद्ध नहीं हुई है और अभियोजन पक्ष की कहानी को रंग देने के लिए चरण दर चरण विकसित किया गया है। अभियोजन पक्ष की कहानी चिकित्सीय साक्ष्य से असंगत है और जो अभियोजन पक्ष की कहानी बाद में सामने आई है, वह प्राथमिकी के समर्थन में नहीं है और इन कारणों से, मेरा यह मत है कि अभियोजन पक्ष की कहानी और उसके समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्य बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं हैं और इस मामले में सभी आरोपियों को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया जाना चाहिए।"

जबकि राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अंतर्गत दांडिक अपील संख्या 1624/2004 दायर की है, वहीं वास्तविक शिकायतकर्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 सह पठित धारा 401 के अंतर्गत दांडिक पुनरीक्षण संख्या 221/2004 दायर की है।

चूंकि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दोनों कार्यवाहियाँ उसी आक्षेपित आदेश से उत्पन्न हुई हैं और उन्हीं तथ्यों और परिस्थितियों से संबंधित हैं, अतः इनका निस्तारण इसी उभयनिष्ठ निर्णय के माध्यम से किया जा रहा है।

बी. <u>वाद के तथ्य</u>

2. राज्य द्वारा दं॰प्र॰सं॰ की धारा 378 के अंतर्गत दायर की गई वर्तमान अपील प्रभात गुप्ता उर्फ राजू की हत्या से संबंधित है, जिसकी प्राथमिकी संतोष गुप्ता (पिता) ने तिकोनिया पुलिस थाना, जिला लखीमपुर खीरी में 8.7.2000 को दोपहर 3.30 बजे दर्ज कराई थी। प्राथमिकी को जन्म देने वाली सुनी-सुनाई जानकारी प्राथमिकी में उल्लिखित घटना के समय चार अपराधियों की उपस्थिति को दर्शाती है, जिनकी पहचान उसमें नामित दो प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा की गई थी। जानकारी में बताया गया है कि मृतक दिनांक 8.7.2000 को दोपहर 3 बजे दुकान जाने के लिए सूचनाकर्ता के घर से निकला था। मुख्य सड़क पर पहुंचते ही दोनों नामित अपराधियों ने मृतक को मौत के घाट उतार दिया और उसकी मौत घटनास्थल पर ही हो गयी।

3. प्राथमिकी में प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा घटना को दिनदहाड़े देखा जाना बताया गया था, जो कि सूचनाकर्ता के अनुसार, किसी राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और दुश्मनी की पृष्ठभूमि में संभावित था। लिपिक श्री कृष्ण (एचएम-53) द्वारा 8.7.2000 को दोपहर 3.30 बजे प्राथमिकी दर्ज करने के साथ ही विधि तंत्र का कार्य प्रारम्भ हो गया।

4. प्राथमिकी दर्ज करने के तुरंत बाद की गई कार्रवाई में जांच अधिकारी द्वारा घटनास्थल का दौरा किया गया और शव के संदर्भ में स्थल नक्शा तैयार किया गया, जिसमें दो खाली कारतूस, एक जोड़ी जूते सहित कुछ सामान की बरामदगी दिखाई गई और तत्पश्चात दोपहर 3.40 बजे से शाम 5 बजे तक पंचों की मौजूदगी में पंचनामा तैयार किया गया। पंचनामा में मृत शरीर पर चोटों का महत्वपूर्ण रूप से संज्ञान लिया गया है और स्थल नक्शा का उल्लेख किया गया है जहां से दो खाली कारतूस आदि बरामद किए गए थे। रिसते खून और दाएँ से बाएँ आग्नेयास्त्र की चोटों की दिशा का भी उल्लेख किया गया था। पंचनामा में मृत्यु का कारण निर्धारित करने के लिए पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट प्राप्त करने हेतु 8.7.2000 को शाम 5 बजे सीलबंद शव को दो पुलिस कर्मियों को सौंपने का उल्लेख किया गया है, जो पंचों के अनुसार आग्नेयास्त्र की चोटों के कारण हुई थी।

5. पोस्टमार्टम 9 जुलाई 2000 को प्रातः 11 बजे किया गया और तदनुसार आख्या तैयार की गई। मृतक के शरीर पर दो गोलियों के प्रवेश के घाव और केवल एक गोली के निकास

का घाव पाया गया। मृतक के अलावा, जिसने अपने प्राण गँवाए, कोई भी घायल नहीं हुआ।

6. चिकित्सक के अनुसार, मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण मृत्यु हुई और मृत शरीर से एक गोली बरामद हुई।

7. मामले की जांच अलग-अलग अधिकारियों द्वारा टुकड़ों में की गई। सब इंस्पेक्टर टी.बी. सिंह ने 8.7.2000 से 15.7.2000 तक मामले की जांच की और 16.7.2000 से 18.7.2000 तक जांच महानिरीक्षक जोन के आदेश के अंतर्गत गठित टीम द्वारा की गई थी तथा जांच का नेतृत्व बलवीर सिंह एसआईएस (सुरक्षा और जांच सेवाएं) द्वारा किया गया था। एसआईएस टीम द्वारा जांच का कार्यभार संभालने के बाद, एक दिन अर्थात 19.7.2000 को जांच हेमंत सिंह, टीम के सदस्य द्वारा की गई थी, हालांकि, 20.7.2000 से 28.9.2000 तक जांच सीबीसीआईडी के आर.पी. तिवारी द्वारा की गई। इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेख से 28.9.2000 से 6.11.2000 के मध्य की गई जांच की कार्यवाही, यदि कोई हो, स्पष्ट नहीं है। हालांकि अभिलेख से यह स्पष्ट है कि 6.11.2000 से 13.12.2000 तक एक अन्य आर.पी. तिवारी, जो एसआईएस के थे, ने साक्ष्य जुटाने के पश्चात अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल करने के साथ जांच समाप्त कर दी।

8. जांच के चरण तक कई पहलू सामान्य विवेक को झकझोर देते हैं जैसे कि अगर प्राथमिकी का समय इतना त्वरित था तो पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट एक दिन बाद क्यों तैयार की गई और सीआरपीसी की धारा 161 के अंतर्गत बयान दर्ज करने में देरी क्यों हुई।

9. अभियुक्तों की गिरफ्तारी में देरी और जांच का एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी को हस्तांतरित करना ये गंभीर मामले हैं। जांच अधिकारी ने घटनास्थल के मामले में सटीकता लाने के उद्देश्य से 26.11.2000 को दूसरा स्थल नक्शा तैयार किया, लेकिन बरामदगी का उपयोग सच्चाई का पता लगाने के लिए नहीं किया गया क्योंकि बरामद दो कारतूसों और एक गोली की किसी बैलिस्टिक रिपोर्ट हेतु जांच नहीं की गई। सूचनाकर्ता के घर से घटनास्थल तक की दूरी दोनों स्थल नक्शों में अलग-अलग है और दिशात्मक मार्ग भी भिन्न है।

10. संज्ञान लेने के पश्चात, जब सत्र न्यायालय के समक्ष आरोप तय करने का चरण आया, तो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत मात्र उन दो अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध साधारण आरोप तय किया गया, जिन्हें आग्नेयास्त्रों से चोट पहुंचाने की भूमिका बताई गई थी, जबकि अन्य दो व्यक्तियों पर उसी अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 34 की सहायता से मुकदमा चलाया गया। आरोपपत्र में घटनास्थल को तिकोनिया कस्बे की सीमा के भीतर बताया गया है, किन्तु यह दोनों स्थल नक्शों में से किसी के भी दायरे में परिसीमित नहीं है।

11. आरोपियों ने अपना अपराध अस्वीकार कर दिया और मुकदमे का सामना करना स्वीकार किया। इसके पश्चात मामले को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 4 में स्थानांतरित कर दिया गया और इस न्यायालय

द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.2.2004 के अंतर्गत, मुकदमे को सत्र न्यायाधीश के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया, जहां दिन-प्रतिदिन सुनवाई हुई और दिनांक 24.3.2004 को इसका समापन हुआ।

12. अपराध सिद्ध करने हेतु अभियोजन पक्ष ने कुल 12 साक्षियों का परीक्षण किया है। मृतक के पिता सूचनाकर्ता संतोष गुप्ता (पीडबल्यू-1), प्राथमिकी में उल्लिखित प्रत्यक्षदर्शी विनोद गुप्ता (पीडबल्यू-2) और संजीव गुप्ता (मृतक के भाई अर्थात् पीडबल्यू-3)। जांच के दौरान पाए गए अन्य प्रत्यक्षदर्शी शिव कुमार (पीडबल्यू-4) और जगदीश प्रसाद यादव (पीडबल्यू-10); गोपाल वर्मा (पीडबल्यू-5) और अतुल गुप्ता (पीडबल्यू-6) की पंचायतनामा के साक्षियों के रूप में परीक्षण किया गया। डॉ. एस.के. मनेर (पीडबल्यू-7) जिन्होंने पोस्टमार्टम किया, हेड कांस्टेबल 53 श्री कृष्ण (पीडबल्यू-8) जिन्होंने चिक तैयार किया, टी.बी. सिंह (पीडबल्यू-9) जांच अधिकारी, आर.पी. तिवारी-1 (पीडबल्यू-11) जांच अधिकारी और एक अन्य आर.पी. तिवारी (पीडबल्यू-12) जिन्होंने मामले की जांच भी की, उनका आधिकारिक साक्षियों के रूप में परीक्षण किया गया।

13. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज कराए गए अपने बयानों में, अभियुक्त प्रतिवादियों ने हत्या के आरोपों से इनकार करते हुए कहा है कि उन्हें राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और पंचायत चुनाव के कारण पैदा हुई दुश्मनी के कारण फंसाया गया है। उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का खंडन किया और कहा कि साक्षियों ने उन्हें मामले में फंसाने के लिए झूठे बयान दिए हैं।

14. जैसा कि पहले ही कहा गया है, बचाव पक्ष द्वारा आरोपों के न्यूनीकरण हेतु रखा गया मामला यह है कि अभियुक्त-प्रतिवादियों को झूठे तौर पर मामले में फंसाया गया है। हालांकि, उन्होंने अपने बचाव के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

सी. <u>अपील / पुनरीक्षण</u>

15. सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्यों की जांच और मूल्यांकन के पश्चात, अभियुक्त-प्रतिवादियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह पठित धारा 34 के अंतर्गत आरोपों से दोषमुक्त करने का निर्णय सुनाया, जिसके कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अंतर्गत राज्य द्वारा यह अपील दायर की गई है, जिसे आदेश दिनांक 3.2.2005 द्वारा अनुमति प्रदान करते हुए दाखिल कर लिया गया था।

16. राज्य की ओर से इस अपील में श्री उमेश चन्द्र वर्मा, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने बहस की है जबकि शिकायतकर्ता, जिसने उसी निर्णय के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण संख्या 221/2004 संस्थित किया था तथा जिसकी मृत्यु दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान हो गई थी, को उसके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा बतौर पीड़ित सुना गया। यह अवसर 13.2.2023 को संयोजित दांडिक पुनरीक्षण में एक आदेश पारित करके प्रदान किया गया था और उस का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

".....हालांकि, वर्तमान मामले में, उसी निर्णय के विरुद्ध राज्य द्वारा दायर एक संयोजित अपील अर्थात दांडिक अपील संख्या 1624 / 2004 लंबित है, इसलिए, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका के उपशमन होने का परिणाम अप्रासंगिक है और यह पुनरीक्षणकर्ता के विधिक उत्तराधिकारियों को उपचारहीन नहीं छोड़ता है। पुनरीक्षणकर्ता के विधिक उत्तराधिकारियों को राज्य द्वारा पीड़ित के रूप में दायर लंबित दांडिक अपील में भाग लेने का अवसर है, जिसके लिए आवेदकों द्वारा संयोजित दांडिक अपील में एक समान आवेदन किया गया है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 सह पठित धारा 401 और धारा 394 के दृष्टिगत, हम इस आवेदन को इस अनुमति साथ निस्तारित करते हैं कि विधिक उत्तराधिकारियों अथवा उनमे से कोई भी पीड़ित की ओर से संयोजित दांडिक अपील में भाग ले सकता है, जिस पर अभियुक्त प्रतिवादियों को कोई आपत्ति नहीं है।"

17. राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अभिलेख पर मौजूद सामग्री के माध्यम से हमें अवगत कराते हुए बड़ी कुशलता से मामले में तर्क दिया और, विचारण न्यायालय की इस बात पर निंदा की है कि वह मामले में सही दृष्टिकोण लेकर आगे नहीं बढ़ा। अभियोजन पक्ष के अनुसार साक्ष्य का मूल्यांकन गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण होने के कारण, अभियुक्त प्रतिवादियों को दोषमुक्त करना अवैध और विकृत है।

18. राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह दिनदहाड़े हत्या का मामला था, जिसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा विधिवत रूप से देखा गया था और अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य को पूर्णत: विश्वसनीय सिद्ध कर दिया गया था। अतः विचारण न्यायालय द्वारा अभिलखित दोषमुक्ति का निर्णय साक्ष्य के महत्व के विरुद्ध है।

हालांकि, अभियोजन पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया कि विधि की प्रक्रिया द्वारा दोषमुक्त होना निर्दोषिता की उपधारणा को सुदृढ़ करता है और दोषसिद्धि हेतु मामला बनाने के लिए अभियोजन पक्ष इस बात के लिए कर्तव्यबद्ध है कि वह तर्कसंगत संदेह से परे अपना पक्ष सिद्ध करे और यह दर्शाये कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया दोषमुक्ति का फैसला एक संभावित दृष्टिकोण नहीं था।

19. अभियोजन पक्ष के मामले की रूप रेखा मृतक के भाई अहम-गवाह संजीव गुप्ता (पीडबल्यू-3) की गवाही पर निर्धारित किया गया है, यह तर्क दिया गया है कि संपोषक साक्ष्य को सही ढंग से पढ़ने पर अभियोजन पक्ष के मामले के क्रमिक विकास पर कोई संदेह नहीं रह जाता है और मामले के किसी भी दृष्टिकोण में परिणामी राय कुछ और नहीं बल्कि घटना स्थल पर पाये गए अपराधियों की दोषसिद्धि है, अतः, विचारण न्यायालय का निर्णय पलटने योग्य है।

20. मृतक के सगे भाई संजीव गुप्ता (पीडब्लू-3) के मूलभूत साक्ष्य पर विस्तार से चर्चा करते हुए, यह तर्क दिया गया कि उनकी मौखिक गवाही स्वाभाविक होने के कारण पूरी तरह से विश्वसनीय थी और संपोषक साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का पूरी तरह से समर्थन करता है।

यह न्यायालय मामले का निपटारा करते समय इस तथ्य से अवगत है कि अपराध का होना और अपराधियों की सहभागिता दो अलग-अलग वास्तविकताएं हैं। आरोपित अपराध के कारित होने के संबंध में अपराधी की संलिप्तता प्रमाणिक रूप से स्थापित होनी चाहिए,तभी किसी न्यायालय के लिए दोषसिद्धि का निष्कर्ष निकालना अनुमत है, अन्यथा दोषमुक्त होना नियम है।

डी. <u>साक्ष्यों का विश्लेषण</u>

21. यह स्थापित विधि है कि किसी भी दोषमुक्ति के आदेश में अपीलीय न्यायालय द्वारा आसानी से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, हालांकि इस न्यायालय के पास साक्ष्यों की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने की व्यापक शक्तियां हैं। हालांकि, अनुमति प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए क्योंकि अभियुक्त की दोषमुक्ति से निर्दोष होने की उपधारणा को और बल मिलता है। उच्चतम न्यायालय ने **<u>चन्द्रप्पा व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य</u> (2007) 4 SCC 415** के मामले में यह निर्धारित किया:

"(1) एक अपीलीय न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है, जिन पर दोषमुक्ति का आदेश आधारित है।

(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 इस तरह की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है और अपने समक्ष उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर एक अपीलीय न्यायालय तथ्य और विधि दोनों के प्रश्नों पर अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंच सकता है।

(3) विभिन्न शब्दावलियाँ, जैसे "महत्वपूर्ण और बाध्यकारी कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत प्रबल परिस्थितियां", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियाँ", आदि का उद्देश्य दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में एक अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करना नहीं है। ऐसी पदावलियां "भाषा के अलंकरण" के स्वरूप में अधिक है, जो एक अपीलीय न्यायालय के दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करने की अनिच्छा पर जोर देने के लिए है, न कि न्यायालय द्वारा साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने की शक्ति को कम करने के लिए।

(4) हालांकि, एक अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि दोषमुक्ति के मामले में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी उपधारणा होती है। पहला, निर्दोष होने की उपधारणा उसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के अंतर्गत उपलब्ध है, जिसके अनुसार हर व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी सिद्ध नहीं कर दिया जाता है। दूसरा, अभियुक्त द्वारा अपनी

दोषमुक्ति सुरक्षित कर लेने के पश्चात, उसकी निर्दोषता की उपधारणा को विचारण न्यायालय द्वारा और मजबूती, पुष्टि और बल मिल जाता है।

(5) यदि अभिलेख में मौजूद साक्ष्यों के आधार पर दो युक्तिसंगत निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय में दखल नहीं देना चाहिए।"

22. माननीय उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में **रवि शर्मा बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) व अन्य (2022 SCC Online 859)** तथा **जफरुधीन व अन्य बनाम केरल राज्य (2022 SCC Online SC 495)** के मामलों में, जिसे पूर्ववर्ती नजीरों के अनुसरण में पारित किया गया था यथा (i) **मोहन उर्फ श्रीनिवास उर्फ सीना उर्फ टेलर सीना बनाम कर्नाटक राज्य (2021 SCC Online SC 1233)**, (ii) **एन. विजयकुमार बनाम तमिलनाडु राज्य (2021) 3 SCC 687)**, उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार के दौरान दांडिक प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के दायरे को निम्न शब्दों में दोहराया:

"25. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अंतर्गत दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय, अपीलीय न्यायालय को यह विचार करना चाहिए कि क्या विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण को संभव माना जा सकता है, विशेषकर तब जब अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण किया गया हो। इसका कारण यह है कि दोषमुक्ति का आदेश अभियुक्त के पक्ष में निर्दोष होने की उपधारणा को और प्रबल करता है। अतः, अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दोषमुक्ति के आदेश को पलटने में अपेक्षाकृत सावधान रहना चाहिए। अतः अभियुक्त के पक्ष में उपधारणा कमजोर नहीं होती बल्कि और प्रबल होती है। अभियुक्त के पक्ष में ऐसी दोहरी उपधारणा स्वीकृत विधिक मानकों पर गहन जांच द्वारा ही बाधित की जा सकती है।"

23. इसके अतिरिक्त, यह आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मूलभूत सिद्धांत है कि अभियुक्त का अपराध संदेह से परे सिद्ध होना चाहिए। अभियोजन पक्ष पर अपने मामले को संदेह से परे सिद्ध करने का दायित्व होता है और यह दायित्व कभी नहीं हटता। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के ताने-बाने में एक और सुनहरा सूत्र यह है कि यदि मामले में पेश किए गए साक्ष्य पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, जिनमें से एक अभियुक्त के अपराध की ओर संकेत करता है और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो वह दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त के लिए अनुकूल हो। [द्वारा ***काली राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (1973) 2 SCC 808; राजस्थान राज्य बनाम राजा राम, (2003) 8 SCC 180; चन्द्रप्पा व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 SCC 415; उपेंद्र प्रधान बनाम उड़ीसा राज्य, (2015) 11***

SCC 124 तथा गोल्बर हुसैन व अन्य बनाम असम राज्य व अन्य, (2015) 11 SCC 242].

24. विधि की उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, हम पक्षों द्वारा प्रस्तुत तर्कों के साथ-साथ अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य और सामग्री की भी जांच करेंगे और देखेंगे कि क्या अभियुक्तों द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध की प्रकृति को देखते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा तथ्यों के बारे में निकाले गए निष्कर्ष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हस्तक्षेप की मांग करते हैं।

25. अब वर्तमान मामले की बात करें तो यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि घटनास्थल पर अभियुक्तों की मिलीभगत सिद्ध करने के लिए प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति की शुरुआत ही सूचनाकर्ता के निवास स्थल से होती है। अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, मुख्य साक्षी (पीडबल्यू-3) विनोद गुप्ता (पीडबल्यू-2) के साथ अपने पिता के आवास पर उपस्थित था और मृतक प्रभात गुप्ता उर्फ राजू का पीछा कर रहा था, जो लगभग उसी समय दोपहर में भोजन करने के पश्चात दुकान के लिए निकला था। घटनास्थल से कुछ ही दूर पर उन्होंने चारों अभियुक्तों को छोटे हथियारों से लैस पाया और उनमें से दो को 8.7.2000 को दिन के 3 बजे मृतक के शरीर पर गोली चलाते हुए देखा। इन दो प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति को सिद्ध करने हेतु, अभियोजन पक्ष पर न केवल यह सिद्ध करने का दायित्व है कि ये दोनों साक्षी घटनास्थल पर मौजूद थे, वरन यह भी कि वे सूचनाकर्ता के आवास पर भी उपस्थित थे जहां वे एक साथ शामिल हुए। प्राथमिकी में दो साक्षियों के साथ होने के निश्चित अभिकथन हैं और पीडबल्यू-3 के मुख्य परीक्षण के साथ पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि वे दोनों सूचनकर्ता के घर से एक साथ निकले थे और मृतक का पीछा घटनास्थल तक करते रहे, जब उन्होंने देखा कि दो नामजद अभियुक्तों द्वारा मृतक को गोली मार दी गई और उसके बाद अपने हथियारों को लहराते हुए दो अन्य ज्ञात अभियुक्तों के साथ पश्चिम दिशा में पुरानी कोतवाली की ओर भाग गए। यह गौर करने वाली बात है कि जब ये दोनों प्रत्यक्षदर्शी मृतक के पास पहुंचे तो उन्होंने उसे मृत पाया।

26. पीडबल्यू-3 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहीं भी यह नहीं बताया कि घटना का कोई अन्य प्रत्यक्षदर्शी था और न ही ऐसा कोई व्यक्ति नामित किया गया था।

27. अभियुक्त व्यक्तियों की मिलीभगत की पूरी कहानी पीडबल्यू-1, पीडबल्यू-2, पीडबल्यू-3, पीडबल्यू-4 और पीडबल्यू-10 के मौखिक साक्ष्य के इर्द-गिर्द घूमती है, जो चारों अभियुक्तों की मिलीभगत को स्थापित करने के तथ्यों के साक्षी हैं। शेष साक्ष्य संपोषक साक्ष्य हैं।

28. घटना की तिथि पर सूचनाकर्ता (पीडबल्यू-1), प्रत्यक्षदर्शी (पीडबल्यू-3) और मृतक का एक ही घर में रहना स्वाभाविक है क्योंकि वे सभी एक ही घर में रहते थे। किन्तु, एक बार यह कह दिया जाए कि पीडबल्यू-3 ने विनोद गुप्ता (पीडबल्यू-2) के साथ उसी घर से घटनास्थल तक उनका साथ दिया, तो अभियोजन पक्ष पर सिद्ध करने का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है तथा पीडबल्यू-2 की गवाही को भी उतना ही महत्व दिया जाता है।

29. सर्वप्रथम, सूचनाकर्ता ने अपने मुख्य परीक्षण में मृतक के बाहर जाने के उद्देश्य के बारे में अपना संस्करण बदल दिया। दुकान जाने के बयान को बदल दिया गया और दुकान के बजाय *'धरना'* में शामिल होने का बयान जोड़ा गया, किन्तु इस तरह के बदलाव की जांच की जानी चाहिए और इसके उद्देश्य को समझने की जरूरत है। यह बदलाव पीडबल्यू-2 की उपस्थिति को स्थापित करने के लिए किया गया था, जिसकी उपस्थिति सूचनाकर्ता के घर पर अन्यथा अस्वाभाविक थी। 8.7.2000 को अपने घर पर पीडबल्यू-2 की उपस्थिति की व्याख्या करने हेतु सूचनाकर्ता ने इस तथ्य को समाविष्ट किया, जिसका पीडबल्यू-3 ने अपनी गवाही में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। विरोधाभास को सही ठहराने के लिए ही सूचनाकर्ता ने प्राथमिकी में बताए गए कथन के विपरीत एक नया संस्करण पेश किया था। 'धरना' में जाने की बात को सिद्ध करना आवश्यक था ताकि गवाही को असत्य सिद्ध होने से बचाया जा सके। इस विरोधाभास का साक्षियों पीडबल्यू-2 और पीडबल्यू-3 के एक साथ आने-जाने और उपस्थिति पर असर पड़ता है, जो पीडबल्यू-1 और पीडबल्यू-3 दोनों की गवाही की सत्यता पर संदेह पैदा करता है। पीडबल्यू-3 की मौखिक गवाही का गहराई से विश्लेषण करने पर पीडबल्यू-2 सूचनाकर्ता के स्थान पर कैसे पहुंचा और दोनों साक्षी उस दिन मृतक का पीछा करने के लिए कब एक साथ शामिल हुए, इसके बारे में कोई सुराग नहीं मिलता है।

30. अभियोजन पक्ष के अनुसार, पीडबल्यू-4 और पीडबल्यू-10 के बयान अपराध सिद्ध करने के लिए महत्वपूर्ण थे, किन्तु इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज करने से पूर्व उक्त साक्षियों की पहचान का प्रकटीकरण करने से प्राथमिकी में नामित प्रत्यक्षदर्शियों को किस बात ने रोका था और उन्हें उस समय समाविष्ट किया गया जब, प्रथम दृष्टया अभियोजन को ऐसा प्रतीत हुआ कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य अभियुक्तों को दोषी सिद्ध करने हेतु पर्याप्त मजबूत नहीं थे। यह सर्वविदित है कि प्रत्यक्षदर्शी का नाम जरूरी नहीं कि प्राथमिकी में हो, किन्तु जिन परिस्थितियों में इन दो साक्षियों को पेश किया गया है, वह जांच की प्रक्रिया पर सवालिया निशान लगाता है और इससे यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन साक्षियों को अभियोजन पक्ष के मामले को प्रबल बनाने के लिए लाया गया था, जो अन्यथा उनके द्वारा बनाई गई कहानी को कमजोर कर सकता था और यह अभियुक्तों को फंसाने और उन्हें दोषी ठहराने में कोई मदद नहीं कर सकता था। इस तरह के कृत्य को नैसर्गिक रूप से प्रामाणिक तरीके से उठाया हुआ कदम नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह जांच की खामियों को भरने के इरादे से मामले की जड़ तक जाता है।

31. उपरोक्त तथ्यों पर ध्यान केंद्रित करने के पश्चात, यह अत्यंत संदिग्ध है कि कथित प्रत्यक्षदर्शियों ने या तो घटना को देखा है या घटनास्थल पर उपस्थित थे।

32. मृतक का भाई संजीव गुप्ता (पीडबल्यू-3) जो मुख्य साक्षी है और जिसके बयान के साथ-साथ पीडबल्यू-1 और पीडबल्यू-10 के बयान पर अभियोजन पक्ष ने अत्यधिक विश्वास

व्यक्त किया है, उसने अपने बयान में कहा कि घटना की तिथि अर्थात 8.7.2000 को एक राजनीतिक पार्टी (समाजवादी पार्टी) द्वारा व्यापार मंडल के साथ मिलकर 'धरना' का आयोजन किया गया था और वह अपने मृतक भाई (प्रभात गुप्ता) के साथ दोपहर का भोजन करने के पश्चात लगभग 3 बजे घर से निकला। मृतक अपनी दुकान की ओर आगे चल रहा था, जबकि वह विनोद गुप्ता के साथ बातचीत करते हुए पीछे चल रहा था। जब मृतक गली से मुख्य सड़क पर पहुंचा, तो अचानक उसने देखा कि चारों अभियुक्त वहां मौजूद हैं। उन सभी के हाथों में छोटे हथियार थे जो या तो रिवॉल्वर या पिस्तौल थे। उसी क्षण अजय मिश्रा टेनी ने मृतक के सिर के पास गोली चला दी। इसके तुरंत बाद सुभाष उर्फ मामा ने कोख (पेट और छाती के बीच) पर गोली चला दी। मृतक दो गोलियां लगने के पश्चात गिर गया और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। राकेश उर्फ डालु, शशिभूषण उर्फ पिंकी अपने हथियार दिखाते हुए बोले, प्रभात को मत छोड़ो और अगर कोई बीच में आए तो उस पर भी गोली चलाओ। हमलावर पुरानी कोतवाली की तरफ भाग गए। जब वह और विनोद गुप्ता मृतक के पास पहुंचे, तो वह पहले ही मर चुका था। इसके पश्चात वह विनोद गुप्ता के साथ अपने घर वापस आया और अपने पिता को बताया कि प्रभात को टेनी ने मार डाला है और अपने पिता के साथ घटनास्थल पर गया और रास्ते में उसे पूरी घटना बताई।

33. उसने यह भी बताया कि घटना के दिन उसकी दुकान धरना के कारण बंद थी। हालांकि, उसने यह स्वीकार किया कि व्यापार मंडल द्वारा बाजार बंद करने का कोई आह्वान नहीं किया गया था। उसने यह भी बताया कि उसने इस तथ्य की जानकारी जांच अधिकारी टी.बी. सिंह को दी थी, किन्तु इस तथ्य का उल्लेख उसके बयान में क्यों नहीं किया गया, इस बात की कोई जानकारी उसके पास नहीं है। यद्यपि घटना के दिन धरना होना एक महत्वपूर्ण तथ्य था, उसने यह बताया कि उसे याद नहीं है कि सीबीसीआईडी अधिकारियों के समक्ष, जिन्होंने बाद में जांच अपने हाथ में ले ली थी, उसने इस तथ्य का जिक्र किया था अथवा नहीं। उसने इस बात के लिए भी अपनी असमर्थता जताई कि उसे यह याद नहीं है कि उसने सीबीसीआईडी अधिकारी को यह बताया था कि उसकी दुकान उस दिन बंद थी और वह अपने घर से प्रदर्शन स्थल की ओर जा रहा था। घटना के दिन विनोद गुप्ता की उसके घर पर उपस्थिति के संबंध में उसने बताया कि विनोद गुप्ता दोपहर 1-2 बजे उसके घर आया था तथा भोजन करने के बाद वह, विनोद गुप्ता तथा मृतक प्रभात एक साथ चले गये थे। विनोद गुप्ता लखीमपुर शहर में रहता था और घटना की तारीख से पहले विनोद गुप्ता से उसकी मुलाकात नहीं हुई थी।

34. न्यायालय द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए पीडब्लू-3 ने कहा कि धरना स्थल उस जगह से 40-50 कदम की दूरी पर था जहां गोली चलाई गई थी और धरना स्थल गोली चलाये जाने की जगह से आंशिक रूप से दिखाई दे रहा था। उसने आगे कहा कि विरोध स्थल पर 100-150 लोग मौजूद थे। बंदूक की गोली की श्रव्यता के संबंध में उसने विवेकपूर्वक

कहा कि गोली की आवाज न तो बहुत तेज थी और न ही कम। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए कि गोली की आवाज धरना स्थल तक नहीं पहुंच सकती थी, उसने अपने बयान में यह भी कहा कि गोलीबारी के तुरंत बाद सभी हमलावर घटनास्थल छोड़कर एक ही दिशा की ओर भाग गए और किसी ने भी उनका पीछा नहीं किया। ऐसा कहीं उल्लेख नहीं किया गया है कि किसी भी व्यक्ति ने शोर मचाकर धरना स्थल तक चेतावनी पहुँचाने की कोशिश की हो, जहां पीडब्लू-3 के स्वयं के बयान के अनुसार,100-150 लोग मौजूद थे और 40-50 कदम की दूरी पर थे, विशेषतौर पर तब जब अधिकांश ये सभी व्यक्ति उसी राजनीतिक दल से संबंधित थे जिसका मृतक पदधारक था। यहां तक कि एक सामान्य विवेकशील व्यक्ति भी कुछ लोगों को इकट्ठा करने और अपना बचाव करने के लिए शोर मचाकर चेतावनी दे सकता था, विशेषतौर पर जब, जैसा कि अभियोजन पक्ष ने बताया है, बहुत कम दूरी पर बड़ी संख्या में लोगों द्वारा धरना दिया जा रहा हो। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, घटना की तिथि को धरना आयोजित किए जाने पर ही संदेह खड़ा हो जाता है। धरना आयोजित किए जाने का तथ्य भी पीडबल्यू-8 हेड कांस्टेबल 53 श्री कृष्ण के बयान से स्पष्ट रूप से खारिज हो जाता है, जिसकी चर्चा आगे की गई है।

35. यह स्पष्ट है कि पीडबल्यू-3 ने न्यायालय के प्रश्न का उत्तर देते समय बताया कि वह घटनास्थल से 40-50 कदम दूर था, जबकि प्रति परीक्षा के दौरान उसने कहा कि वह घटनास्थल से 20-25 कदम दूर था, भले ही इसे मामूली विसंगति माना जा सकता है, किन्तु चूंकि दोनों संस्करण एक ही दिन और लगातार बयान के दौरान दर्ज किए गए थे, अतः ऐसी विसंगति अनुमान का स्वाभाविक बदलाव नहीं हो सकती है, बल्कि यह अपने मामले को सिद्ध करने हेतु बयान देने के दबाव और उत्साह के कारण हो सकती है।

36. इसी प्रकार, हेड कांस्टेबल 53 श्री कृष्ण का बयान भी, जिसने चिक तैयार की थी, जटिल साक्ष्यों को सुलझाने और सत्य को सामने लाने में प्रासंगिक हो सकता है। पीडब्ल्यू-8 ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि 8.7.2000 यानी घटना की तिथि को वह थाना तिकोनिया में प्रधान मोहर्रिर के रूप में तैनात था और उसी दिन उसने संतोष गुप्ता की लिखित शिकायत के आधार पर आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध चिक एफआईआर मुकदमा अपराध संख्या 41-200 अंतर्गत धारा 302 के रूप में दर्ज किया था किन्तु उसने घटना के दिन किसी विरोध प्रदर्शन या धरना के आयोजन के बारे में कुछ नहीं बताया। हालांकि, प्रति परीक्षा के दौरान उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि तिकोनिया रेलवे स्टेशन पर घटना से एक दिन पहले अर्थात 7.7.2000 को रेल रोको धरना (विरोध प्रदर्शन) आहूत किया गया था तथा विधि और व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु, उपनिरीक्षक आर.एन. सिंह, उपनिरीक्षक सी.पी. बहुगुणा, मनोज पांडे आदि को विरोध प्रदर्शन स्थल पर ड्यूटी के लिए तैनात किया गया था। अपने बयान को पुष्ट करने के लिए, उसने कहा है कि यह तथ्य उसके द्वारा 7.7.2000 को 10.05 बजे दर्ज

की गई आख्या संख्या 12 को विधिवत सत्यापित करने और जांचने के बाद बताया गया है, जो मूल जीडी का हिस्सा है। वह आगे परिदृश्य को स्पष्ट करते हुए क़हता है कि तिकोनिया रेलवे स्टेशन पर विरोध प्रदर्शन समाप्त होने के पश्चात, उसने उसी दिन अर्थात 7.7.2000 को आख्या संख्या 19 में शाम 6:30 बजे अपनी वापसी दर्ज कराई थी। उसने इस तर्क का खंडन किया कि प्राथमिकी लंबे अंतराल के बाद दर्ज की गई थी और उसमें संशोधन करने के पश्चात दिखाई गई थी।

37. अभियोजन पक्ष के साक्षी का उपरोक्त बयान, जो दस्तावेजी साक्ष्यों से सिद्ध है, घटना के दिन धरना आयोजित किए जाने के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित पूरी कहानी को प्रबल संदेह के दायरे में ले आता है।

38. अब पीडबल्यू-1 की गवाही पर आते हैं, अगर यह माना जाए कि पंचनामा 8.7.2000 को शाम 5 बजे बनाया गया था जिसके पश्चात शव को दो पुलिस आरक्षियों को सौंप दिया गया था, जो उक्त साक्षी के साथ ट्रैक्टर से 80 किमी दूर जिला अस्पताल पहुंचने के लिए रवाना हुए थे, तो प्रति परीक्षण में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में साक्षी ने सत्य से ज्यादा चौंकाने वाली बातें बताई हैं।

39. जब हम पक्षद्रोही साक्षियों अर्थात् पीडबल्यू-2, पीडबल्यू-4 तथा पंचनामा साक्षियों के बयानों को देखते हैं, तो असत्यता कई गुना बढ़ जाती है।

40. पीडबल्यू-2 विनोद गुप्ता, पक्षद्रोही साक्षी ने अपने बयान में बताया है कि वह विचाराधीन घटना घटने से पूर्व अभियुक्त अजय मिश्रा उर्फ टेनी, सुभाष उर्फ मामा, डालू और पिंकी को जानता था। उसने कहा कि अजय मिश्रा भारतीय जनता पार्टी का कार्यकर्ता था और अन्य तीन व्यक्ति तिकोनिया में व्यापार करते थे। अजय मिश्रा का घर तिकोनिया में स्थित था और उसकी मिल (कारखाना) बनवीरपुर गांव में स्थित थी। घटना से पहले वह समाजवादी युवाजन सभा का राज्य सचिव था और मृतक प्रभात गुप्ता उसकी अपनी पार्टी का राज्य सचिव था।

41. घटना का वर्णन करते हुए उसने कहा कि वह दोपहर 3 बजे अपने व्यवसाय के सिलसिले में तिकोनिया गया था, लेकिन उसने अपना विचार बदल दिया और मृतक प्रभात गुप्ता से मिलने का फैसला किया, जो उसे अपने घर से दुकान जाते समय ही रास्ते में मिला था और वह भी मृतक से मिलने के लिए उसके घर की ओर जा रहा था। उसने आगे बताया कि मृतक से मिलने से पूर्व, उसने अभियुक्तों को स्टेट बैंक के पास घूमते हुए देखा था। जैसे ही प्रभात सड़क पर आया, अभियुक्तों ने उसे गाली देना शुरू कर दिया और सभी ने उसे मारने का आह्वान किया। उसके अनुसार सभी अभियुक्त आग्नेयास्त्र धारण किए हुए थे। अब, बयान, जिसने पहली नज़र में अभियोजन पक्ष को उसे पक्षद्रोही घोषित करने हेतु प्रेरित किया था, यह है कि उसने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सुभाष उर्फ मामा द्वारा मृतक पर दो गोलियां चलाई गईं, जबकि अन्य गाली दे रहे थे और मृतक को खत्म करने का आह्वान कर रहे थे। उसके अनुसार अभियुक्त-हमलावर ने उसे भी गाली दी थी और जान से मारने की धमकी दी थी।

उसने कहा कि गोली लगने के पश्चात प्रभात वहीं गिर गया, तभी चार हमलावरों में से दो एक तरफ और दो दूसरी तरफ भाग गए।

42. उक्त बयान को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि पीडब्ल्यू-2, जो कथित तौर पर अभियोजन पक्ष का प्रत्यक्षदर्शी है, उसने यह कहा है कि सुभाष मामा ने ही मृतक पर दोनों गोलियां चलाईं, जिससे उसे प्राणघातक चोट पहुंची और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। अभियोजन पक्ष के पूरे मामले में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा चलाई गई किसी तीसरी गोली का कोई उल्लेख नहीं है, हालांकि यह बताया गया है कि सभी हमलावर हथियारों से लैस थे। वहीं दूसरी ओर, सूचनाकर्ता, जो निस्संदेह प्रत्यक्षदर्शी नहीं था, उसने अपने बयान में कहा कि पहली गोली अजय मिश्रा उर्फ टेनी ने मृतक के सिर पर चलाई थी जबकि दूसरी सुभाष उर्फ मामा ने। यह बयान संजीव (पीडब्ल्यू-3) और विनोद (पीडब्ल्यू-2) से मिली जानकारी पर आधारित था। अब, जैसा कि उपरोक्त विनोद गुप्ता (पीडब्ल्यू-2), प्रत्यक्षदर्शी जिसने कथित तौर पर घटना की जानकारी स्वयं पीडब्ल्यू-1 को दी थी, उसने यह कहा है कि दोनों गोलियां सुभाष मामा द्वारा चलाई गई थीं और अभियोजन पक्ष द्वारा पीडब्ल्यू-2 को पक्षद्रोही घोषित करके इस तथ्य को बहुत आसानी से खारिज कर दिया गया है। अतः, इन दोनों नामित प्रत्यक्षदर्शियों की गवाही में महत्वपूर्ण विसंगतियां प्रतीत होती हैं, चाहे वह अभियुक्तों की संख्या, गोली चलाने वालों की पहचान अथवा उनके भागने के तरीके और दिशा के संदर्भ में हो।

43. हाल ही में ***2022 SCC OnLine SC 150*** में प्रतिवेदित ***राजेश यादव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*** के मामले में दिये गए निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने 'पक्षद्रोही साक्षी' शब्द पर विचार किया है और विशेषतौर पर यह अवलोकन किया है कि एक न्यायालय के पास मामले का मूल्यांकन करने हेतु उचित शक्तियां होती हैं, जिसमें सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक पक्षद्रोही साक्षी का बयान भी शामिल है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 21 और 22 निम्नवत हैं:

"21. भारतीय साक्ष्य अधिनियम में "पक्षद्रोही साक्षी" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसका प्रयोग उस साक्षी के बयान हेतु किया जाता है जो विरोधी पक्षकार के पक्ष में गवाही देने लगता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि एक साक्षी उस पक्ष के पक्ष में गवाही दे सकता है जिसके पक्ष में उसे मुख्य परीक्षण के माध्यम से गवाही देनी है, जबकि बाद में वह अपना विचार बदलकर विरोधी पक्षकार के पक्ष में जा सकता है। इसी प्रकार, ऐसे मामले भी होंगे जहां कोई साक्षी मुख्य परीक्षण के आरंभ से ही पक्षकार का समर्थन नहीं करता है। न्यायालय को इस वर्गीकरण को ध्यान में रखना चाहिए। पहली श्रेणी के संबंध में, न्यायालय ऐसे साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने की अपनी शक्ति से वंचित नहीं है। यहां तक कि मुख्य परीक्षण को भी साक्ष्य माना जा सकता है। ऐसा साक्ष्य प्रति परीक्षण के पश्चात पूरा हो जाएगा। एक बार साक्ष्य पूरा हो जाने के पश्चात, पूरी गवाही को न्यायालय द्वारा तथ्य के रूप में आंकने और समझने के लिए माना जाता है।

इसलिए, न केवल उस विशिष्ट भाग पर विचार किया जा सकता है जिसमें साक्षी पक्षद्रोही हो गया है, वरन उन परिस्थितियों पर भी विचार किया जा सकता है जिनके अंतर्गत ऐसा हुआ, विशेषतौर पर ऐसी स्थिति में जहां मुख्य परीक्षण पूरा हो गया था और बाद के बयान के पीछे के कारणों को इंगित करने वाली परिस्थितियां थीं, जिन्हें न्यायालय समझ सकता था। अपने समक्ष यह मामला होने के नाते मूल्यांकन करना और सही निष्कर्ष पर पहुंचना न्यायालय की शक्तियों के अंतर्गत आता है।

22. किसी मुद्दे पर साक्षी की गवाही पर विचार करने हेतु निर्धारित विधि के विषय में, हम इस न्यायालय के सी॰ मुनिअप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2010) 9 SCC 567 के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करना चाहेंगे:

"81. यह निर्धारित विधिक प्रस्थापना है कि:

"6. .... अभियोजन पक्ष के गवाह के साक्ष्य को मात्र इसलिए पूर्ण रूप से खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही मानकर प्रति परीक्षण किया है। ऐसे गवाहों के साक्ष्य को पूर्ण रूप से अभिलेख से मिटाया या समाप्त नहीं किया जा सकता है, बल्कि उसके बयान के उस हिस्से को स्वीकार किया जा सकता है जिसे सावधानीपूर्वक जांच के बाद विश्वसनीय पाया जाए।" (द्वारा भगवान सिंह बनाम हरयाणा राज्य, (1976) 1 SCC 389, रबीन्द्र कुमार डे बनाम उड़ीसा राज्य, (1976) 4 SCC 233, सैयद अकबर बनाम कर्नाटक राज्य, (1980) 1 SCC 30 तथा खुज्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1991) 3 SCC 627, SCC p. 635, प्रस्तर 6)

82. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा [(1996) 10 SCC 360: 1996 SCC (Cri) 1278] के मामले में इस न्यायालय ने निर्धारित किया (SCC का पृष्ठ 363, प्रस्तर 7) कि पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य को अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में बोले जाने पर भी पूर्ण रूप से खारिज नहीं किया जाएगा, किन्तु उसकी गहन जांच की आवश्यकता होगी और साक्ष्य के उस हिस्से पर विश्वास किया जा सकता है जो अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के मामले के अनुरूप हो। इसी प्रकार का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा ***बालू सोनबा शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2002) 7 SCC 543: 2003 SCC (Cri) 112], गगन कनोजिया बनाम पंजाब राज्य [(2006) 13 SCC 516: (2008) 1 SCC (Cri) 109], राधा मोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2006) 2 SCC 450: (2006) 1 SCC (Cri) 661], सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दारोगा सिंह [(2007) 13 SCC 360: (2009) 1 SCC (Cri) 188] तथा सुब्बु सिंह बनाम राज्य [(2009) 6 SCC 462: (2009) 2 SCC (Cri) 1106]*** *के मामलों में भी दोहराया गया है।*

83. इस प्रकार, विधि को संक्षेप में इस तरह बताया जा सकता है कि पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, और उसके प्रासंगिक हिस्सों, जो विधिक रूप से स्वीकार्य हैं, का उपयोग

अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा किया जा सकता है।"

44. इसी प्रकार ***(2017) 3 SCC 247*** में प्रतिवेदित ***अर्जुन व अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य*** के मामले में दिये गए निर्णय के प्रस्तर 15 व 16 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई हैं:

"15. यद्यपि प्रत्यक्षदर्शियों पीडबल्यू 1, 2, 7 और 8 को अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही माना गया था, फिर भी उनकी गवाही घटनास्थल और घटनास्थल पर अभियुक्तों की उपस्थिति तथा पेड़ों को काटने के बारे में पूछताछ करने और दो अभियुक्तों द्वारा हथियारों सहित मृतक को घेरने के संबंध में विवादित नहीं है। विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने भी पीडबल्यू 1, 2, 7 और 8 के साक्ष्य पर उपरोक्त सीमा तक पीडबल्यू-6 शिवप्रसाद के साक्ष्य की पुष्टि हेतु उचित तौर पर विश्वास व्यक्त किया है। मात्र इसलिए कि साक्षी आंशिक रूप से पक्षद्रोही हो गए हैं, उनके साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है। ऐसे साक्षियों के साक्ष्य को पूर्ण रूप से मिटाया नहीं जा सकता है, बल्कि उसे उस हद तक स्वीकार किया जा सकता है जहां तक उसका बयान विश्वसनीय पाया जाता है और न्यायालय को यह पता लगाने के लिए अधिक सतर्कता से जांच करनी चाहिए कि उसने किस हद तक अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

16. परमजीत सिंह उर्फ **पम्मा बनाम उत्तराखंड राज्य (2010) 10 SCC 439** के मामले में निम्नलिखित निर्धारण किया गया था:

"16. यह तथ्य कि साक्षी को लोक अभियोजक के कहने पर पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था और उसे अन्य साक्षी के साथ प्रति परीक्षण करने की अनुमति दे दी गई थी, साक्षी के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने का कोई औचित्य प्रदान नहीं करता है। हालांकि, न्यायालय को अत्यधिक सावधान रहने की अवश्यकता है, क्योंकि प्रथम दृष्टया, जो साक्षी अलग-अलग समय पर अलग-अलग बयान देता है, उसकी सत्य के प्रति कोई निष्ठा नहीं होती। उसके साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ा और माना जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि उसे कोई महत्व दिया जाना चाहिए अथवा नहीं। न्यायालय को ऐसे साक्षी की गवाही पर कार्रवाई करने में सावधानी बरतनी चाहिए; आम तौर पर, उसकी गवाही के समर्थन में संपोषक साक्ष्य देखे जाने चाहिए। (द्वारा राजस्थान राज्य बनाम भवानी (2003) 7 SCC 291)

17. राधा मोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2006) 2 SCC 450 के मामले को निर्णीत करने के दौरान इस न्यायालय ने निम्न टिप्पणी दी: (SCC पृष्ठ 457, प्रस्तर 7) "7. ... यह सर्वमान्य है कि अभियोजन पक्ष के साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही के रूप में माना और उसकी प्रति परीक्षा की। ऐसे साक्षी के साक्ष्य को पूर्णतः मिटा हुआ अथवा अभिलेख से हटा हुआ नहीं माना जा सकता है, किन्तु उसे उसी सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है, जहाँ तक उसके संस्करण को सावधानीपूर्वक जांच के पश्चात विश्वसनीय पाया जाता है।"

18. महेश बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 13 SCC 271 के मामले में, इस न्यायालय ने पक्षद्रोही साक्षी के बयान की महत्ता पर विचार किया और निम्नलिखित टिप्पणी दी: (SCC पृष्ठ 289, प्रस्तर 49) "49. ... यदि पीडबल्यू1 शिकायतकर्ता ने अपनी शिकायत में दिये गए बयान और जांच के दौरान दर्ज कराए गए बयान की संपुष्टि कराने से इनकार कर दिया है, और ऐसा करने का कोई स्पष्ट व युक्तिसंगत कारण भी नहीं दर्ज कराया है, तो इस तरह के साक्षी का आचरण जांच अधिकारी की गवाही पर संदेह पैदा कर सकता है, जिसने पूरे मामले की ईमानदारी और निष्ठा से जांच की थी। ऐसी परिस्थितियों में, हमारा मानना है कि पीडबल्यू1 ने केवल अपीलार्थी को बचाने और संरक्षण के उद्देश्य से, जिसके कारणों के बारे में साक्षी ही जानता है, न्यायालय से महत्वपूर्ण सत्य छिपाने का प्रयास किया है, अतः, अभियोजन पक्ष के इस साक्षी के प्रतिकूल आचरण का लाभ अपीलार्थी को नहीं दिया जा सकता है।"

19. राजेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2009) 13 SCC 480 के मामले में इस न्यायालय ने टिप्पणी दी कि मात्र इसलिए कि कोई साक्षी प्राथमिकी में दिए अपने बयान से विचलित हो जाता है, उसके साक्ष्य को पूर्णतः अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। यही दृष्टिकोण इस न्यायालय ने गोविंदप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (2010) 6 SCC 533 के मामले में भी दोहराया था जिसमे यह टिप्पणी दी गई कि पक्षद्रोही साक्षी के बयान पर उस सीमा तक विश्वास किया जा सकता है जहां तक उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया।

20. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति का साक्ष्य केवल इसलिए अभिलेख से मिटाया नहीं जा सकता क्योंकि वह पक्षद्रोही हो गया है और उसके बयान की अधिक सतर्कता से जांच की जानी चाहिए ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि उसने अभियोजन पक्ष के मामले का किस हद तक समर्थन किया है।" यही समान दृष्टिकोण मृणाल दस व अन्य बनाम त्रिपुरा राज्य (2011) 9 SCC 479 के प्रस्तर (67) तथा खाचर दिपु उर्फ दिलीपभाई नाकुभाई बनाम गुजरात राज्य (2013) 4 SCC 322 के प्रस्तर (17) में भी दोहराया गया है।"

45. 'छोटे हथियारों' शब्द का प्रयोग भी अस्पष्ट और सोचा-समझा हुआ लगता है, संभवतः पीडबल्यू-1 और पीडबल्यू-4 के बयानों के बीच संपुष्टि और आग्नेयास्त्र के नाम व विवरण के विषय में अज्ञानता दिखाने हेतु ऐसा किया गया है। यद्यपि पीडबल्यू-4 ने कहा है कि आग्नेयास्त्र रिवॉल्वर या पिस्टल हो सकता है, किन्तु हथियार की पहचान के संबंध में पीडबल्यू-2 के बयान में उसने केवल 'पिस्टल' शब्द का इस्तेमाल किया है। जहाँ तक गोली चलाने वाले व्यक्तियों की पहचान का प्रश्न है, पीडबल्यू-2 को पक्षद्रोही घोषित करना भी इस तथ्य के आलोक में संदेह पैदा करता है कि घटनास्थल से बरामद खाली कारतूसों को फॉरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया था, जिससे यह ज्ञात हो सकता था कि वे किस आग्नेयास्त्र से दागे गए थे। अब पीडबल्यू-1 और पीडबल्यू-3 द्वारा छोटा हथियार शब्द का प्रयोग और अधिक पेचीदा हो जाता है क्योंकि आग्नेयास्त्र की पहचान के मामले में, छोटा

हथियार शब्द या आग्नेयास्त्र के प्रकार के बारे में अनिश्चितता व्यक्त करना आख्या के खंडन में मदद कर सकता था, किन्तु पीडबल्यू-2 द्वारा एक नियत सीमा तक निश्चितता के साथ पिस्टल के उल्लेख करने से मामला और जटिल हो गया है। यद्यपि पीडबल्यू-2 ने कहा कि सुभाष मामा ने दो पिस्टल शॉट दागे थे, किन्तु निश्चित तौर पर उक्त सुभाष मामा से या किसी अन्य आरोपी व्यक्ति से कोई आग्नेयास्त्र बरामद नहीं हुआ है। हमें इस पहलू पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है कि किसी भी अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने हेतु हथियार की बरामदगी अनिवार्य नहीं है, किन्तु तथ्य यह है कि मौखिक गवाहों के संस्करण में भारी विरोधाभास है कि क्या गोलीबारी हेतु एक आरोपी अथवा दो आरोपियों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, निस्संदेह, घटनास्थल पर दो खाली कारतूस पाए गए थे और इस बिंदु पर कोई जांच नहीं की गई थी कि क्या वे एक ही हथियार से अथवा अलग-अलग हथियार से दागे गए थे। जहां तक अभियोजन पक्ष की कहानी का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि एक बैलिस्टिक रिपोर्ट उस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती थी, हालांकि यह प्राप्त नहीं की गई और इसका एकमात्र स्पष्टीकरण पीडबल्यू-9 से आता है, कि जांच उनसे लेकर किसी अन्य जांचकर्ता के पास स्थानांतरित कर दी गई थी।

46. घटना की तिथि को आयोजित किए गए धरना/प्रदर्शन के संबंध में, पीडबल्यू-2 ने यह विशेष रूप से कहा है कि 8.7.2000 अर्थात् घटना की तिथि को ऐसा कोई प्रदर्शन नहीं हुआ था और जो विरोध प्रदर्शन कई दिनों से चल रहा था, वह 7.7.2000 को ही समाप्त हो गया था और उसी दिन वह और जिलों से आए विभिन्न पदाधिकारी वहां पहुंचे और रात में लखीमपुर लौट गए। पीडबल्यू-2 द्वारा बताया गया एक और तथ्य पीडबल्यू-3 के बयान का खंडन करता है, जहां पीडबल्यू-3 ने अपने बयान में बताया था कि मृतक की हत्या करने के पश्चात सभी आरोपी हमलावर एक ही दिशा में भागे थे, जबकि पीडबल्यू-2 के बयान के अनुसार चार हमलावरों में से दो एक दिशा में और दो अन्य दिशा में भाग गए थे।

47. पीडबल्यू-1 ने अपने बयान में यह भी कहा है कि उसने सीआईडी इंस्पेक्टर को सूचित किया था कि अनुराग पटेल और विनोद गुप्ता 8.7.2000 को धरना में भाग लेने आए थे और अगर टी.बी. सिंह और टी.बी. सिंह के बाद नियुक्त किए गए जांच अधिकारी ने अपने बयान में 8.7.2000 को रेल रोको धरना के संबंध में तथ्य का उल्लेख नहीं किया है, तो वह इसका कारण नहीं बता सकते। इससे प्रतीत होता है कि धरना 8.7.2000 को नहीं बल्कि 7.7.2000 को बुलाया गया था और यह सत्य उनके मुख से एक मिनट बाद ही निकला, जब उन्होंने कहा कि अनुराग पटेल और विनोद गुप्ता **8.7.2000** को धरना में भाग लेने आए थे।

48. इस तथ्य की पुष्टि निर्णय के पूर्व भाग में चर्चित जांच अधिकारी टी.बी. सिंह के बयान के साथ-साथ पूर्वोक्त पीडबल्यू-2 के बयान से भी होती है।

49. पीडबल्यू-4 शिवकुमार जिसने दं॰प्र॰सं॰ की धारा 161 के अंतर्गत अपने बयान को पढ़ कर

सुनाए जाने के पश्चात स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया है कि उसने ऐसा कोई बयान दिया है और इस तरह के बयान को दर्ज करने और अभिलेख पर रखने के कारण से अनभिज्ञता व्यक्त की है। हालांकि दं॰प्र॰सं॰ की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किया गया पीडबल्यू-4 का बयान, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया था, वह हमारे समक्ष अभिलेख पर नहीं है और न ही इस चूक के बारे में कोई स्पष्टीकरण है। इससे भी संदेह पैदा होता है क्योंकि दं॰प्र॰सं॰ की धारा 161 के अंतर्गत बयान के अभाव में यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि पीडबल्यू-4 ने शुरू में क्या बयान दिया था और उसने प्रति परीक्षण में किन तथ्यों से इनकार किया था।

50. न्यायालय के समक्ष अपने बयान में उसने कहा है कि वह अभियुक्त अजय मिश्रा उर्फ टेनी, सुभाष उर्फ मामा, राकेश उर्फ डालु और शशिभूषण उर्फ पिंकी को जानता था, किन्तु उसने किसी भी अभियुक्त को मृतक की हत्या करते हुए देखने से इनकार किया है। उसने कहा कि घटना के समय वह अपने होटल में उपस्थित था। उसने बयान दिया कि उसने हत्या के बारे में सुना था किन्तु मृतक को कोई गोली लगते नहीं देखा था।

51. मृतक के शव का पोस्टमार्टम कराने के लिए ट्रैक्टर ट्रॉली से 90 किलोमीटर की दूरी 12 घंटे का लंबा सफर तय कर लखीमपुर पहुंचने की कहानी पर पर्दा डालने के लिए, पीडबल्यू-1 ने यह बयान दिया कि शव को ट्रैक्टर ट्रॉली पर शाम 5 बजे के बाद लादने के पश्चात वह शव के साथ आया और सुबह 5 बजे लखीमपुर पहुंचा और पीडबल्यू-1 ने इसका कारण ये बताया कि ट्रैक्टर का ड्राइवर पूरे दिन खेतों में काम किया था, इसलिए उसने आराम करना शुरू कर दिया। ट्रैक्टर पर शव लदे होने के बावजूद रास्ते में ड्राइवर द्वारा आराम करने के कारण देरी होने के संबंध में दिया गया बयान विश्वसनीय नहीं लगता है, यह और भी दिलचस्प है कि जब पीडबल्यू-1 ने कहा कि उसे यह नहीं पता था कि ट्रैक्टर ट्रॉली चलाने वाला कौन था। उसने इस तथ्य से भी अनभिज्ञता जताई कि चालक तिकोनिया या किसी अन्य गांव का रहने वाला था। उसे यह भी नहीं पता था कि ट्रैक्टर किराए पर लाया गया था या नहीं। उसने कहा कि ट्रैक्टर उसके बेटे द्वारा लाया गया था, हालांकि, न तो उसके बेटे को और न ही शव के साथ आए सिपाही को पेश किया गया या उनका परीक्षण किया गया। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने इस तथ्य को किसी को नहीं बताया और न ही किसी ने इसके बारे में पूछा। पीडबल्यू-1 का उपरोक्त कथन पीडबल्यू-2 के कथन से भी खंडित होता है, जिसने कहा था कि गुप्ता (मृतक) के शव को पोस्टमार्टम के लिए डीसीएम या मैजदा मिनी ट्रक पर लखीमपुर भेजा गया था, जैसा कि दोनों पंचायतनामा साक्षियों (पीडबल्यू-5 व पीडबल्यू-6) के बयान से भी समर्थित होता है।

52. उपरोक्त से स्पष्ट है कि लखीमपुर की यात्रा के दौरान रास्ते में काफी समय व्यतीत हुआ और इस दौरान साक्षियों ने अपने बयानों का खाका खींचा ताकि कोई विरोधाभास न हो और आरोपी अजय मिश्रा @ टेनी को फंसाने के लिए एक ठोस मामला बनाया जा सके किन्तु उनकी आशा के विपरीत, पीडबल्यू-2 ने सच उजागर कर दिया और पीडबल्यू-2 के साथ

उनकी झुंझलाहट के कारण उसे पक्षद्रोही साक्षी घोषित कर दिया गया।

53. पक्षद्रोही साक्षियों पीडबल्यू-2 और पीडबल्यू-4 के बयानों के परीक्षण और मूल्यांकन से ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षद्रोही साक्षियों द्वारा बताए गए वे तथ्य जो अन्य साक्षियों के बयान और अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित मामले के अनुरूप नहीं थे, सभी संभावनाओं में, दोषी प्रतिवादी अजय मिश्रा उर्फ टेनी के निहितार्थ को कमजोर कर सकते थे और इस आशंका को दूर करने हेतु इन दो प्रमुख साक्षियों को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया।

54. पक्षद्रोही साक्षी पीडबल्यू-4 जो घटनास्थल के पास एक होटल चलाने वाला बताया जाता है, ने अपने बयान को पूरी तरह से बदल दिया और यहां तक कि इस तथ्य से भी इनकार कर दिया कि धारा 161 के अंतर्गत उसका कभी कोई बयान दर्ज भी किया गया था। उसने ऐसा किसी धमकी के कारण अथवा बड़े राजनीतिक दलों से जुड़े हत्या के मामले से स्वयं को दूर रखने के लिए किया होगा।

55. उपरोक्त परिदृश्य में, ***मसाल्ती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 1965 SC 202*** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख करना उपयुक्त होगा, जिसमें न्यायालय ने निम्न टिप्पणी दी थी:

"...भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत, एक विश्वसनीय साक्षी द्वारा दिया गया साक्ष्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराने हेतु पर्याप्त होता है, जबकि आधा दर्जन साक्षियों द्वारा दिया गया साक्ष्य जो विश्वसनीय नहीं है, वह दोषसिद्धि को बनाए रखने हेतु पर्याप्त नहीं होगा। यह बात निस्संदेह सत्य है; किन्तु जहां किसी दांडिक न्यायालय को बड़ी संख्या में अपराधियों और पीड़ितों से जुड़े अपराध के कारित होने से संबंधित साक्ष्य पर विचार करना होता है, वहां यह परीक्षण अपनाना आम है कि दोषसिद्धि तभी बनी रह सकती है जब वह दो या तीन या उससे अधिक साक्षियों द्वारा समर्थित हो जो घटना का एक सुसंगत विवरण दें। एक मायने में, परीक्षण को यांत्रिक माना जा सकता है; किन्तु यह देखना मुश्किल है कि इसे तर्कहीन या अनुचित कैसे माना जा सकता है।"

56. इसी तरह ***बलाका सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 1975 SC 1962*** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्न टिप्पणी दी थी:

"यह सत्य है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ज़िंगली एरियल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, AIR 1954 SC 15, और उसके बाद के अन्य मामलों में निर्धारित किया गया है, न्यायालय को भूसे से अनाज, सत्य को असत्य से अलग करने का प्रयास करना चाहिए, फिर भी यह तभी संभव है जब सत्य असत्य से पृथक्करणीय हो। जहाँ अनाज को भूसे से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि अनाज और भूसा इतने गहरे रूप से मिले हुए हैं कि पृथक्करण की प्रक्रिया में न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आवश्यक विवरणों को पूरी तरह उस संदर्भ और पृष्ठभूमि, जिसके सापेक्ष वे बनाए गए हैं, से अलग करते हुए अभियोजन पक्ष के लिए एक बिल्कुल नया मामला बनाना होगा, तब यह सिद्धांत लागू नहीं होगा।"

57. एक अन्य मामले यथा ***उगर अहीर व अन्य बनाम बिहार राज्य, AIR 1965 SC 277***, में उच्चतम न्यायालय ने "*एक बात में झूठ, हर बात में झूठ*" के सिद्धान्त पर विचार करते हुए निम्न टिप्पणी की है:

"एक बात में झूठ, हर बात में झूठ का सिद्धान्त न तो विधि का कोई ठोस नियम है और न ही अभ्यास का नियम। विरले ही ऐसा कोई साक्षी मिलता है जिसके साक्ष्य में असत्य का थोड़ा अंश विद्यमान न हो या अतिशयोक्ति, कढ़ाई अथवा अलंकरण के कुछ अंश न हो। अतः, न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करे और, उपयुक्त रूपक के अनुसार, अनाज को भूसे से अलग करे। किन्तु, यह स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं कर सकता कि अभियोजन पक्ष के मामले की बुनियाद या साक्ष्य के महत्वपूर्ण भागों पर अविश्वास करे और बाकी के आधार पर अपनी एक स्वयं की कहानी का पुनर्निर्माण करे।"

58. इसी आशय का एक हालिया निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ***अरविंद कुमार @ नेमीचंद व अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2021 SCC Online SC 1099)*** के मामले में पारित किया गया था, जिसमें न्यायमूर्ति एम.एम. सुंदरेश ने पीठ की ओर से इस सिद्धांत को इस प्रकार स्पष्ट किया:

"49. यह सिद्धान्त कि जब एक साक्षी द्वारा झूठ बोलने पर, उसके पूरे साक्ष्य को खारिज कर दिया जाना चाहिए, हमारे देश के आपराधिक विधिशास्त्र में सख्ती से लागू नहीं होता है। अनाज को भूसे से अलग करना के सिद्धांत को लागू करना चाहिए। हालांकि, जब साक्ष्य एक दूसरे से अपृथक्करणीय हो और ऐसा प्रयास या तो असंभव हो या साक्ष्य को अस्वीकार्य बना दे, तो उसे टाल देना चाहिए। उक्त सिद्धांत को विधि का दर्जा नहीं प्राप्त हुआ है और यह मात्र सावधानी के नियम के रूप में ही बना हुआ है। किसी विशेष मामले में विसंगतियों की प्रकृति को देखा जाना चाहिए। जब विसंगतियां बहुत महत्वपूर्ण होती हैं और साक्षी की विश्वसनीयता को ही डिगा देती हैं, जिससे न्यायालय के मन में यह निष्कर्ष निकलता है कि न तो इसे अलग करना संभव है और न ही उस पर विश्वास किया जा सकता है, तो यह उक्त न्यायालय के ऊपर है कि वह इसे स्वीकार करे अथवा खारिज करे।"

ई. **<u>परिणाम</u>**

59. अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों के सावधानीपूर्वक विश्लेषण के आधार पर, हम यह नहीं पाते हैं कि मुख्य साक्षी पीडब्ल्यू-3 का पीडब्ल्यू-2 से उनके घर पर मुलाकात करने संबंधी कथन सत्य माना जा सकता है, अतः, भोजन करने के पश्चात, घर पर मिलने और पीडब्ल्यू-2 के साथ मृतक का पीछा करने संबंधी पीडब्ल्यू-3 की गवाही संदिग्ध है। पीडब्ल्यू-2 की सूचनाकर्ता के घर उपस्थिति को नैसर्गिक दिखाने के लिए धरना के तथ्यों को शामिल किया गया था, किन्तु सत्य यह है कि 8.7.2000 को कोई भी धरना नहीं दिया गया था जिसकी पुष्टि पीडबल्यू-8 के बयान से भी होती है।

60. इसके अतिरिक्त, प्राथमिकी दर्ज कराते समय पीडबल्यू-3 सूचनाकर्ता/पीडबल्यू-1 के

साथ मौजूद था और इस तथ्य को जीडी में दर्ज किया गया है, हालांकि उसका बयान उस समय दर्ज नहीं किया गया, वरन 10.07.2000 को दर्ज किया गया था। यद्यपि प्रत्यक्षदर्शी के बयान को दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष की कहानी के लिए घातक नहीं हो सकती है, फिर भी उसके बयान को दर्ज करने में देरी को अन्य महत्वपूर्ण कारकों के मद्देनजर सतर्कता से देखा जाना चाहिए था, जैसे कि प्राथमिकी में नामित एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी पीडबल्यू-2 का बयान, जो पीडबल्यू-3 की गवाही से बिल्कुल भिन्न है। इन दोनों प्रत्यक्षदर्शियों के बयान में गोलीबारी के संबंध में एक दूसरे से विरोधाभास है, क्योंकि पीडबल्यू-3 ने अजय मिश्रा उर्फ टेनी और सुभाष मामा दोनों को हमलावर के रूप में नामित किया है, जबकि पीडबल्यू-2 ने केवल सुभाष मामा को हमलावर के रूप में नामित किया है। इसके अतिरिक्त, इन अभियुक्त व्यक्तियों के घटनास्थल से भागने के तरीके के बारे में भी महत्वपूर्ण विसंगतियां हैं। पीडबल्यू-3 का कहना है कि चारों अभियुक्त व्यक्ति पुरानी कोतवाली की तरफ भागे थे, जबकि पीडबल्यू-2 का कहना है कि दो अभियुक्त एक तरफ भागे और अन्य दो विपरीत दिशा में भाग गए। पीडबल्यू-2 के साक्ष्य से यह भी ज्ञात हुआ है कि यह वही था जिसने इस घटना के बारे में पीडबल्यू-3 को अवगत कराया था और मृतक पीडबल्यू-3 मृतक की मृत्यु के पश्चात घटनास्थल पर पहुंचा था। इसके अतिरिक्त, पीडबल्यू-3 ने दावा किया कि उसने मृतक और पीडबल्यू-2 के साथ मिलकर मृतक के घर भोजन किया था, जबकि पीडबल्यू-2 का कथन है कि वह घटनास्थल पर मृतक से मिला था और भोजन के लिए कभी मृतक के घर नहीं गया था। यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकता है कि पीडबल्यू-3 और पीडबल्यू-1 द्वारा भोजन करने की कहानी भी पीडबल्यू-8 की गवाही और पोस्टमार्टम रिपोर्ट से भिन्न है, जिसमें कहा गया है कि मृतक के पेट में कुछ नहीं पाया गया था और यह बताया गया था कि मृतक ने प्राणघातक चोट लगने से कम से कम 5-6 घंटे पहले भोजन किया होगा। इस प्रकार, पीडबल्यू-2 और पीडबल्यू-3 द्वारा मृतक के साथ पीडबल्यू-1 के घर भोजन करने की कहानी भी काफी असंभावित है।

61. इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार पीडबल्यू-3 और पीडबल्यू-2 के अलावा घटना का अन्य प्रत्यक्षदर्शी पीडबल्यू-10 बताया गया है। निश्चित रूप से, पीडबल्यू-10 को प्राथमिकी में प्रत्यक्षदर्शी के रूप में नामित नहीं किया गया है, जबकि प्राथमिकी दर्ज कराने के पहले से ही सूचनाकर्ता को उसका नाम ज्ञात था। पीडबल्यू-1 की गवाही में यह तथ्य आया है कि घटना स्थल पर शिव कुमार (पीडबल्यू-4) और जगदीश प्रसाद (पीडबल्यू-10) सहित कुछ लोगों ने उसे उक्त घटना के बारे में बताया। स्पष्ट रूप से, पीडबल्यू-1 के बयान से पीडबल्यू-4 और पीडबल्यू-10 दोनों ही घटना के प्रत्यक्षदर्शी बनते हैं, किन्तु दोनों को प्राथमिकी में न तो प्रत्यक्षदर्शी के रूप में नामित किया गया और न ही उनके बयान तुरंत दर्ज किए गए। पीडबल्यू-4 ने अपने बयान में कहा कि वह घटना स्थल पर 20 मिनट बाद पहुँचा और अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया और इसलिए उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया, जबकि पीडबल्यू-10, जो सूचनाकर्ता के सगे

साले की दुकान पर पिछले 20 वर्षों से काम कर रहा था, ने अभियोजन के मामले का समर्थन किया। हालाँकि, पीडबल्यू-4 और पीडबल्यू-10 दोनों के बयान दो महीने बाद 03.09.2000 को ही दर्ज किए गए। उक्त देरी अव्याख्येय है और यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि पीडबल्यू-10 को प्राथमिकी में प्रयक्षदर्शी के रूप में क्यों नामित नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त, पीडबल्यू-10 अपने बयान में कहता है कि उसने पीडबल्यू-3 को एक अन्य व्यक्ति के साथ घटना स्थल पर आते हुए देखा और गोली चलते ही वे अपने घर की ओर भाग गए, जबकि पीडबल्यू-3 ने बयान दिया कि गोली चलने के बाद वह मौके पर पहुँचा और देखा कि उसके भाई की मृत्यु हो चुकी है और फिर वह सूचनाकर्ता (पीडबल्यू-1) को बताने के लिए अपने घर की ओर भागा। इस प्रकार, साक्षियों की गवाही में स्पष्ट अंतर है। ये सभी तथ्य पीडबल्यू-10 के बयान में कोई विश्वास उत्पन्न नहीं करते हैं, जिससे यह भी परिलक्षित होता है कि वह घटना के समय उपस्थित नहीं था। उसके बयान दर्ज करने में अत्यधिक देरी जाँच को बाधित करती है और उसके बयान की सत्यता पर गंभीर संदेह उत्पन्न करती है। इस मामले में **(1971) 3 SCC 192 (बालकृष्ण स्वैन बनाम उड़ीसा राज्य), (1976) 4 SCC 288 (उड़ीसा राज्य बनाम श्री ब्रह्मानंद नंदा), (1978) 4 SCC 371 (गणेश भवन पटेल व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य), (2016) 16 SCC 418 (हरबीर सिंह व अन्य बनाम शीशपाल व अन्य)** पर विश्वास व्यक्त किया गया है।

62. स्पष्ट रूप से, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राथमिकी ठोस कारणों से पूर्व-निर्धारित है। प्राथमिकी के लेखनकर्ता अनुराग पटेल और पीडबल्यू-2, दोनों लखीमपुर के निवासी हैं, जो घटना स्थल से 80 किलोमीटर की दूरी पर है। 08.07.2000 को धरना प्रदर्शन की कहानी को अभियोजन पक्ष सिद्ध नहीं कर सका। अनुराग पटेल और पीडबल्यू-2 की उपस्थिति धरना प्रदर्शन के कारण ही मानी जा सकती है, अन्यथा उनकी घटना स्थल पर उपस्थिति अत्यधिक असंभावित होती। इस प्रकार, जब धरना प्रदर्शन की कहानी असफल हो गई, तो स्पष्ट रूप से पीडबल्यू-2 और अनुराग पटेल को घटना के पश्चात, अर्थात 3 बजे के बाद, लखीमपुर से बुलाया गया होगा। अतः, प्राथमिकी को दोपहर 3:30 बजे दर्ज नहीं किया जा सकता था, जिसके लेखनकर्ता अनुराग पटेल हैं।

63. और यह भी कि, दोनों पंचायतनामा साक्षियों अर्थात् पीडबल्यू-5 और पीडबल्यू-6 ने अपने बयान में कहा है कि पंचायतनामा रात 11 बजे गैस की रोशनी में तैयार किया गया था क्योंकि सूचनाकर्ता कहीं बाहर था। पीडबल्यू-6 ने भी यही कहानी दोहराई है और इसके अतिरिक्त यह बताया है कि पंचायतनामा के समय लखीमपुर खीरी के विधायक कौशल किशोर और पीडबल्यू-2 सहित कई अन्य नेता लखीमपुर से पहुंचे थे। उसने यह भी बताया कि पंचायतनामा के पश्चात मृतक के शव को पोस्टमार्टम के लिए एक वाहन पर ले जाया गया, जो मृतक का ही था। स्पष्ट रूप से, यह अभिलेख पर आ चुका है कि शव का पोस्टमार्टम के लिए लखीमपुर पहुंचने

का समय 09.07.2000 को प्रातः 5 बजे था। हालांकि, जब पीडबल्यू-1 से शव को पोस्टमार्टम के लिए ले जाने के विषय में पूछा गया, तो यद्यपि उसने बताया कि शव को पंचायतनामा के पश्चात लगभग 5 बजे शाम को ट्रैक्टर पर ले जाया गया था, किन्तु वह न तो उस वाहन का नाम बता सका और न ही यह बता सका कि शव को ले जाने हेतु उक्त वाहन को किस प्रकार लाया गया। यहाँ तक कि यह तथ्य भी पीडबल्यू-1 की गढ़ी हुई कहानी लगता है क्योंकि पहली बात तो यह कि पीडबल्यू-5 और पीडबल्यू-6 दोनों ने कहा है कि पीडबल्यू-1 कहीं बाहर था और पीडबल्यू-1 तथा कुछ राजनेताओं के लखीमपुर से आगमन में देरी के कारण पंचायतनामा में देरी हुई थी। दूसरी बात, घटनास्थल और लखीमपुर की दूरी 80 किमी है और पीडबल्यू-1 यह नहीं स्पष्ट कर सका कि कैसे और किस तरीके से ट्रैक्टर 80 किमी की थोड़ी दूरी तय करने में 12 घंटे ले सकता था, वह भी एक मृत शरीर के साथ। पीडबल्यू-5 और पीडबल्यू-6 के बयान पर विश्वास न करने का कोई ठोस कारण नहीं है।

64. इसके अतिरिक्त, पीडबल्यू-5 और पीडबल्यू-6 के बयान से घटनास्थल पर पीडबल्यू-2 की उपस्थिति भी अत्यधिक असंभव हो जाती है क्योंकि यह साक्ष्य में आया है कि पीडबल्यू-2 लखीमपुर में स्थित एक राजनीतिज्ञ है और उसे घटनास्थल पर उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन कोई कार्य नहीं था, विशेषतौर पर तब जब उस विशेष दिन कोई धरना प्रदर्शन नहीं हुआ था। सारे तथ्य स्पष्ट रूप से एक गढ़ी हुई कहानी लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पीडबल्यू-2 को साक्षी के रूप में पेश किया गया था और यही कारण है कि धरना प्रदर्शन की कहानी को सामने लाया गया, जो पूरी तरह से विफल रही। दुर्भाग्यवश, यद्यपि पीडबल्यू-2 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया, किन्तु उसने पहले ही सारी जानकारी दे दी है और उसने अपने साक्ष्य में कहा है कि पीडबल्यू-3 घटनास्थल पर नहीं था, वरन घटनास्थल पर पहुंचने पर उसने ही पीडबल्यू-3 को घटना के बारे में बताया था। जब पीडबल्यू-2 की उपस्थिति ही संदिग्ध हो जाती है तो अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी, जो पीडबल्यू-3 और पीडबल्यू-1 के सुने-सुनाए साक्ष्य पर आधारित है, भी टूट कर बिखर जाती है।

65. इसके अतिरिक्त, स्थल-नक्शे के अनुसार, अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा गोलीबारी घटनास्थल से एक कदम की दूरी के भीतर से की गई थी। यदि इसे सही माना जाए, तो निश्चित रूप से मृतक पर कालिखपन और झुलसने के निशान होने चाहिए थे, किन्तु पोस्टमार्टम रिपोर्ट में इस तरह के किसी भी कालिखपन या झुलसने का उल्लेख नहीं है। पीडबल्यू-7 के अनुसार, गोलियां नजदीक से नहीं चलाई गईं थी क्योंकि घावों के आसपास कोई कालिखपन और झुलसने के निशान नहीं थे। उसके अनुसार, गोली शायद थोड़ी दूरी से चलाई गई होगी। इस प्रकार, गोलीबारी से संबंधित पीडबल्यू-2, पीडबल्यू-3 और पीडबल्यू-10 के बयान असंगत हैं क्योंकि वे वैज्ञानिक रिपोर्ट से भिन्न हैं।

66. इसके अतिरिक्त, यह साक्ष्य के रूप में सामने आया है कि मृतक के शरीर के अंदर

एक गोली मिली थी। यदि गोली शरीर को भेदते हुए नहीं गुजर सकी, तो यह दर्शाता है कि गोली का वेग बहुत अधिक नहीं था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि 1 कदम या 3-4 कदम की दूरी से ऐसी चोट लगना संभव नहीं था। स्पष्टतः, यदि एक कदम की निकट दूरी से गोली चलाई जाती है, तो प्रवेश घाव बड़ा होगा, जबकि दूर से गोली चलाने पर घाव छोटा होगा। वर्तमान मामले में, पीडब्ल्यू-9 के बयान के अनुसार, प्रवेश घाव दो श्रेणियों का है, एक 0.5 x 0.5 सेमी और दूसरा 1 सेमी x 1 सेमी आकार का है, जो दर्शाता है कि केवल एक कदम की दूरी से गोली चलाने की कहानी काफी असंभव है। निकट से गोली चलाने पर होने वाले घाव के परीक्षण पर विचार कई निर्णयों में किया गया था। **नूर खान बनाम राजस्थान राज्य (1964) 4 SCR 521** के मामले में यह निर्धारित किया गया था:-

"10. नूर खान द्वारा चलाई गई घातक गोली की दूरी के संबंध में साक्षियों द्वारा दिए गए अनुमानों में विसंगति है। साक्षियों ने इस दूरी का अनुमान 8 से 15 पौंड के बीच लगाया है, जहाँ प्रत्येक पौंड एक कदम या दो फीट के बराबर होता है। यद्यपि, घाव की उपस्थिति, विशेष रूप से प्रवेश द्वार के झुलसने और कालिखपन से ऐसा प्रतीत होता है कि बंदूक की नाल 3 या 4 फीट से अधिक की दूरी पर नहीं रही होगी।"

67. इसी तरह, **जनक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1973) 3 SCC 50** के मामले में निम्न अभिमत दिया गया था:

"13. तीसरा तर्क वह था जिसका श्री दीक्षित ने विस्तार से वर्णन किया। उनका सुझाव था कि चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शियों के संस्करण का खंडन करता है और वह विरोधाभास उनके बयान को अस्वीकार्य बनाता है। डॉ. घोष के साक्ष्य के अनुसार, तीनों प्रवेश घावों में से किसी में भी कालापन या गोदना नहीं दिखा। जाहिर है, इसलिए, गोलीबारी बहुत निकट से नहीं बल्कि कम से कम कुछ दूरी से हुई थी। निस्संदेह, तीनों प्रत्यक्षदर्शियों ने दो से छह पेस तक की अलग-अलग दूरी बताई। किन्तु उनसे यह उम्मीद करना कठिन था कि वे उस समय उस व्यक्ति से सटीक दूरी को चिन्हित कर लें, जो आग्नेयास्त्र चला रहा था। उन्होंने इसलिए, उस दूरी का अनुमान दिया जिस पर वह पीड़ित से था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि जो दूरी उन्होंने बताई उसमें भिन्नता थी। अतः ऐसी भिन्नता पर कुछ नहीं टिक सकता।"

68. ए.एन. चन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1990, Supp SCC 717) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि:-

"8....यदि बंदूक इतने निकट से चलाई गई होती, तो कालापन और गोदना होना चाहिए था, किन्तु डॉक्टर ने चोटों के आसपास ऐसा कोई लक्षण नहीं पाया है। इसके अतिरिक्त, चोटों की दिशा ऊपर से नीचे की ओर थी और घावों में फैलाव था। यदि बंदूक को निकट से चलाया जाता, तो घावों में ऐसा फैलाव नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त, हम यह समझ नहीं पा रहे हैं कि बंदूक पहले से ही भरी हुई क्यों रखी गई थी।"

69. *स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य (2000) 5 SCC 668* के मामले में प्रस्तर 25 में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि:-

"पीडब्ल्यू 1 के साक्ष्य और पोस्टमार्टम रिपोर्टों के अनुसार, शमशेर सिंह की छाती के दाहिनी ओर एक व अमर सिंह पर कई घाव काले पड़े हुए थे। *"काला पड़ना धुएं के जमाव के कारण होता है। धुएं के कण हल्के होते हैं। वे दूर तक नहीं जाते हैं। इसलिए, धुएं का जमाव, यानी काला पड़ना, एक छोटी सीमा तक सीमित रहता है।"* [देखें फॉरेंसिक साइंस इन क्रिमिनल इन्वेस्टीगेशन एंड ट्रायल्स (तीसरा संस्करण), पृष्ठ 280; फिशर, स्वेन्सन, और वेंडल की क्राइम सीन इन्वेस्टीगेशन की तकनीक (चौथा संस्करण, पृष्ठ 296)]...."

70. वर्तमान मामले में, मृतक के घाव के प्रवेश द्वार पर कोई कालापन नहीं दिखाई देता है, डॉक्टर ने यह अभिमत प्रस्तुत किया कि गोलीबारी दूर से की गई होगी। यदि हम इस निष्कर्ष की जांच उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विश्लेषण के आधार पर करते हैं, तो हम अभियोजन पक्ष की उस कहानी को विश्वसनीय नहीं ठहरा पाएंगे कि गोली की चोट केवल एक कदम की दूरी से लगी थी। अतः उच्चतम न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों को डॉक्टर के अभिमत के साथ देखा जाए तो गोलीबारी छह फीट से अधिक की दूरी से की गई होगी।

71. स्पष्ट तौर पर, यह भी अभिलेख पर आया है कि धरना प्रदर्शन को केवल अनुराग पटेल और विनोद गुप्ता (पीडब्ल्यू-2) की उपस्थिति दिखाने हेतु बाद के चरण में समाविष्ट किया गया था। पीडबल्यू-3 संजीव गुप्ता ने बताया था कि धरना प्रदर्शन के कारण दुकान नहीं खोली गई थी। इसलिए, प्राथमिकी का यह मामला कि मृतक दुकान पर जा रहा था, असत्य हो जाता है और चूंकि धरना प्रदर्शन की घटना भी सिद्ध नहीं हुई है, इसलिए घटनास्थल पर मृतक के साथ दोनों प्रत्यक्षदर्शियों पीडबल्यू-3 संजीव गुप्ता और पीडबल्यू-2 विनोद गुप्ता की उपस्थिति सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि जिस तरीके से उनकी उपस्थिति बताई गई है, वह सिद्ध नहीं हुई है।

72. इसलिये, पीडबल्यू-3 संजीव गुप्ता और पीडबल्यू-2 विनोद गुप्ता दोनों साक्षियों की घटनास्थल पर उपस्थिति संदिग्ध है और सिद्ध नहीं होती है। इसलिए, उनके बयान को शायद ही विचारण में लिया जा सकता है। मृतक की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार, जो सिद्धांत सामने आया है वह यह है कि कुछ अज्ञात हमलावर आए और मोटर साइकिल पर मृतक की हत्या करने के पश्चात भाग गए, जैसा कि पीडबल्यू-9 के साक्ष्य में आया है और पीडबल्यू-4 और पीडबल्यू-10 द्वारा भी यही बताया गया है और जैसा कि पंचायतनामा के समय पीडबल्यू-1 के बयान में आया है, यह एक संभावित कहानी प्रतीत होती है और आरोपी व्यक्तियों को रंजिश (दुश्मनी) के कारण फंसाया जा सकता है और यह भी संदेह है कि इन आरोपी व्यक्तियों का हत्या में हाथ हो सकता है। हालाँकि, संदेह साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता। हाल ही में, दिनांक 11.08.2022 के निर्णय के माध्यम से, न्यायमूर्ति बी आर गवई और पी एस नरसिम्हा की एक पीठ ने **क्रिमिनल अपील संख्या 25 / 2012 (राम निवास बनाम हरियाणा राज्य)** के मामले में यह निर्धारित किया कि *"यह स्थापित विधि है कि संदेह, चाहे वह कितना भी प्रबल क्यों न हो, उचित संदेह से परे साक्ष्य*

का स्थान नहीं ले सकता। किसी आरोपी को केवल संदेह के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता, चाहे वह कितना भी प्रबल क्यों न हो। एक आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उचित संदेह से परे दोषी सिद्ध न हो जाए।"

73. इस प्रकार, अभियोजन पक्ष की कहानी को विश्वसनीय न मानते हुए विचारण न्यायालय ने सभी आरोपियों को दोषमुक्त कर दिया है। यहाँ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कृशनगौड़ा व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2017) 13 SCC 98** के मामले में दिए गए निर्णय का उल्लेख करना लाभप्रद होगा, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया:

"32. गौर करने वाली बात यह है कि सभी प्रत्यक्षदर्शी रिश्तेदार थे और अभियोजन पक्ष सार्वजनिक सड़क पर दिनदहाड़े हुई घटना के लिए स्वतंत्र गवाहों के विश्वसनीय साक्ष्य पेश करने में विफल रहा। यद्यपि ऐसा कोई पूर्ण नियम नहीं है कि संबंधित गवाहों के साक्ष्य की स्वतंत्र गवाहों के साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाना चाहिए, किन्तु जब संबंधित प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य अविश्वसनीय और विश्वास करने योग्य नहीं पाए जाते हैं, तो स्वतंत्र गवाहों का होना विधिक रूप से महत्वपूर्ण होता है। प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य में मामूली भिन्नताएं और विरोधाभास अभियुक्त के पक्ष में संदेह का लाभ नहीं दिलाएंगे, किन्तु जब अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य में विरोधाभास अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक साबित हो तो वे विरोधाभास मामले की जड़ तक जाते हैं और ऐसे मामलों में अभियुक्त को संदेह का लाभ मिल जाता है।

33. न्यायालय का यह दायित्व है कि वह अभिलेख में दर्ज साक्ष्य की विश्वसनीयता पर विचार करे। जैसा कि बेन्थम ने कहा है, "साक्षी न्याय के आँख और कान होते हैं।" प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर, हमें लगता है कि इन साक्षियों के साक्ष्य विसंगतियों, विरोधाभासों और असंभावित वर्णनों से भरे हुए हैं, जो हमें इस अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि इन साक्षियों का साक्ष्य अभियुक्तों को दोषी ठहराने का आधार नहीं हो सकता है।"

<u>निष्कर्ष:</u>

74. इस न्यायालय का यह मानना है कि उपरोक्त सभी पहलुओं पर विचारण न्यायालय द्वारा विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। वर्तमान मामले में दर्ज साक्ष्यों का मूल्यांकन सही दृष्टिकोण से किया गया है और विचारण न्यायालय ने किसी भी समय मुख्य बिन्दुओं को नजरंदाज नहीं किया है। अतः, हम विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश में कोई विकृति नहीं पाते हैं और किसी भी मामले में, विचारण न्यायालय द्वारा विधिवत निर्णय के पश्चात विधि अभियुक्त के पक्ष में दोहरी संभावना उपधारित करती है। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त के अनुसार निष्कर्ष अभिलिखित करने पर, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष घटनाओं की उस श्रृंखला को स्थापित करने में पूरी तरह विफल रहा है जो विशेष रूप से केवल एक और एकमात्र निष्कर्ष की ओर ले जाए, अर्थात् अभियुक्तों की दोषसिद्धि। इस दृष्टिकोण से, हम पाते हैं कि विद्वान सत्र न्यायाधीश का निर्णय और आदेश एक स्वीकार्य और टिकाऊ दृष्टिकोण है, विशेषतौर पर तब जब विचारण न्यायालय को साक्षियों का व्यवहार देखने और मूल्यांकन करने का लाभ मिला था।

75. इस न्यायालय ने अपना स्वतंत्र निष्कर्ष भी अभिलिखित किया है और यह निर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत कि चारों अभियुक्त व्यक्ति मृतक की मृत्यु हेतु उत्तरदायी थे, अविश्वसनीय है और संदेह से परे सिद्ध साक्ष्यों से रहित है।

76. उपरोक्त के परिणामस्वरूप, अपील और साथ ही साथ पुनरीक्षण खारिज किया जाता है। सत्र न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 518/2001, अंतर्गत धारा 302, 302/34 भा॰द॰सं॰, थाना तिकुनिया, जिला लखीमपुर खीरी में पारित दोषमुक्ति का आदेश दिनांक 29.03.2004 जिसके द्वारा अभियुक्त/प्रतिवादी संख्या 1 अजय मिश्रा उर्फ टेनी और अभियुक्त/प्रतिवादी संख्या 2 सुभाष उर्फ मामा को भा॰द॰सं॰ की धारा 302 के अंतर्गत तथा अभियुक्त-प्रतिवादी संख्या 3 राकेश उर्फ डालु और अभियुक्त-प्रतिवादी संख्या 4 शशि भूषण को भा॰द॰सं॰ की धारा 302 सह पठित धारा 34 के अंतर्गत अपराध से दोषमुक्त किया गया, उक्त निर्णय और आदेश को उपरोक्त विचार-विमर्श और निष्कर्षों के आलोक में यथावत रखा जाता है। जमानत पत्र, यदि कोई हो तो, रद्द माने जाएंगे।

(2023) 5 ILRA 1988

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 3037/2023

(सीआरपीसी की धारा 438 के तहत)

सोवरन सिंह आढ़ती एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक: श्री राम बदन मौर्य

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 दं0प्र0सं0 - धारा 147, 148, 149, 307, 435, 436, 332, 353, 427, 341 व 186 - सार्वजनिक संपत्ति अधिनियम, 1984 - धारा 3/4 - दंड विधि संशोधन अधिनियम, 2013 - धारा 7 - घटना में भारी भीड़ शामिल - तोड़फोड़ व पथराव - 64 लोगों के खिलाफ आरोप पत्र - धारा 82 व 83 दं0प्र0सं0 के तहत आरोपी आवेदकों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए ट्रायल कोर्ट द्वारा जारी प्रक्रियाएं - घोषित अपराधी - प्रारंभिक आपत्ति - आरोपी व्यक्ति जमानत के हकदार नहीं - घोषित अपराधी घोषित होने के बाद - यदि अग्रिम जमानत मांगने वाला व्यक्ति स्वयं ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है कि उसकी गिरफ्तारी अपरिहार्य हो जाती है - वह धारा 438 दं0प्र0सं0 के संरक्षण क्षेत्र से बाहर निकल जाता है - न्यायालय के आदेश का उल्लंघन कर फरार होना गंभीर उल्लंघन व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन। जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (पैरा 7, 9, 10, 13, 15, 16 और 17)

अभिनिर्धारित:

इसमें आगे कहा गया है कि अग्रिम जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि अग्रिम जमानत देने के लिए प्रार्थना पत्र पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच को प्रभावित करने या गवाहों को डराने-धमकाने सहित साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करने की संभावना, न्याय से भागने की संभावना, जैसे देश छोड़कर भाग जाना आदि पर विचार करना चाहिए। आगे कहा गया है कि न्यायालयों को अग्रिम जमानत देने या न देने पर विचार करते समय आम तौर पर अपराध की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों से निर्देशित होना चाहिए। जमानत देना या न देना विवेक का विषय है। (पैरा 7)

आवेदकों का आचरण माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 955 में प्रख्यापित कानून के दायरे में आता है। उपरोक्त मामले के तथ्यों में, आरोपी के खिलाफ धारा 406, 420 आईपीसी के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था और इस प्रकार यह स्पष्ट था कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था। रिकॉर्ड से पता चला कि आरोपी के खिलाफ मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था और उसके बाद मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में धारा 82, 83 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी। उसके बाद ही आरोपी ने अग्रिम जमानत के लिए निचली अदालत में आवेदन दिया, जिसे सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया। (पैरा 9)

दरअसल यही कारण है कि किसी व्यक्ति को गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, जिसके कारण व्यक्ति को अग्रिम जमानत के लिए विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है, लेकिन यदि ऐसा व्यक्ति स्वयं ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे, जिससे उसकी गिरफ्तारी अपरिहार्य हो जाए, तो वह धारा 438 दं0प्र0सं0 के संरक्षण क्षेत्र से बाहर हो जाता है। धारा 82/83 दं0प्र0सं0 के तहत प्रक्रिया जारी करना यह दर्शाता है कि अभियुक्त ने ट्रायल कोर्ट द्वारा जारी की गई पूर्व प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया तथा उसने इसके प्रति अनादर प्रदर्शित करते हुए इसे व्यर्थ जाने दिया। सामान्य परिस्थितियों में न्यायालय धारा 82 तथा 83 दं0प्र0सं0 के तहत प्रक्रिया शुरू नहीं करता है। सबसे पहले अभियुक्त को समन जारी किया जाता है तथा उसके बाद बढ़ते क्रम में जमानती वारंट, गैर-जमानती वारंट जारी किए जाते हैं तथा यदि इसके बाद भी अभियुक्त फरार रहता है, तो वह उद्घोषित अपराधी बन जाता है तथा उसके विरुद्ध धारा 82 तथा तत्पश्चात धारा 83 दं0प्र0सं0 के तहत प्रक्रिया जारी की जाती है। (पैरा 10)

सिब्बिया प्रकरण (पूर्वोक्त) में, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय को अग्रिम जमानत की अवधारणा के दायरे और दायरे से व्यापक रूप से निपटने का अवसर मिला था, यह देखा गया था कि धारा 438 दं0प्र0सं0 एक असाधारण प्रावधान है, जहां अभियुक्त को गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, उसे गिरफ्तारी की आशंका में जमानत दी जा सकती है, जो निस्संदेह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है, लेकिन इस तरह के विवेक का प्रयोग मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर उचित सावधानी,

सतर्कता और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। निस्संदेह इसे चार्जशीट दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रखा जा सकता है। (पैरा 15)

अग्रिम जमानत का विचार किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धांत को मजबूत करता है लेकिन अगर अदालत के सामने यह स्पष्ट है कि ऐसा व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर सकता है या कर चुका है, तो ऐसे व्यक्ति को अग्रिम जमानत देने से इनकार करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं है। न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करके फरार होना व्यक्तिगत स्वतंत्रता का गंभीर दुरुपयोग है और इसीलिए, "अगर धारा 82 दं0प्र0सं0 के तहत किसी को भगोड़ा/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है।" जैसा कि एम.पी. राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (2014) 2 एससीसी 171 में कहा गया है, "वह अग्रिम जमानत पाने का हकदार नहीं है।" (पैरा 16)

जमानत प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य, (2020) 5 एससीसी 1
2. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 955
3. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 565
4. सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 1 एससीसी 694
5. लवलेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2012) 8 एससीसी 730

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. यह आवेदन आवेदक सोवरण सिंह अध्याती, शिवानंद शाक्य, बृजेश कुमार, संतोष, टीआर शाक्य @ तुलसीदास और श्याम सुंदर की ओर से धारा 147, 148, 149, 307, 435, 436, 332, 353, 427, 341, 186 भ०द०वि०, धारा 3/4 सार्वजनिक संपत्ति अधिनियम और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत केस अपराध संख्या-231 वर्ष 2006 (केस संख्या-6183 वर्ष 2011) थाना- भोगांव, जिला- मैनपुरी में अग्रिम जमानत के लिए दायर किया गया है।

2. आवेदक के लिए अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

3. प्राथमिकी के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि इस मामले में कई व्यक्तियों की भारी भीड़ नारे लगा रही थी और धारा 376 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-226 वर्ष 2006 में वांछित कुछ आरोपियों की गिरफ्तारी की मांग करते हुए सड़कों को जाम कर दिया गया था और जब पुलिस बल मौके पर आया था, तो वर्तमान आरोपी आवेदकों सहित कई व्यक्ति, उत्तेजित होकर पुलिस बल पर पथराव शुरू कर दिया और कुछ लोगों ने जान से मारने के इरादे से पुलिस पर गोलियां भी चलाईं। रोडवेज बस न- UP75-B-9429, UP14- W-9707 और UP84-C-9487 और UP84-C-9171 क्षतिग्रस्त हो गए और उनमें आग लगा दी गई और सार्वजनिक व्यवस्था पूरी तरह से गड़बड़ा गई। पुलिस ने भीड़ को

तितर-बितर करने के उद्देश्य से बल प्रयोग किया और बचाव में भी जवाबी कार्रवाई की और कुछ उपद्रवियों को मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया गया। प्राथमिकी दर्ज कर जांच शुरू कर दी गई। जांच के बाद 64 नामजद आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल की गई। वर्तमान आरोपी-आवेदकों सहित अभियुक्तों को उपस्थित होने के लिए न्यायालय द्वारा प्रक्रियाएं जारी की गईं, लेकिन वे अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं हुए और आरोपी-आवेदकों की उपस्थिति प्राप्त करने के लिए विचारण न्यायालय ने धारा 82 और 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रियाएं जारी कीं और उन्हें भगोड़ा घोषित कर दिया गया।

4. विद्वान राज्य के अधिवक्ता द्वारा प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि यदि अभियुक्त-आवेदकों को घोषित अपराधी घोषित किया गया है, तो वे अग्रिम जमानत के लाभ के हकदार नहीं हैं।

5. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आवेदक निर्दोष हैं और उन्हें उपर्युक्त मामले में उनकी गिरफ्तारी की आशंका है, जबकि उनके खिलाफ कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है। आवेदकों पर लगाए गए आरोप झूठे हैं। जांच पूरी होने के बाद, आरोप पत्र दायर कर दिया गया है और संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि आवेदकों को अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेंगे और जमानत की सभी शर्तों का पालन करेंगे।

6. अपर शासकीय अधिवक्ता ने अग्रिम जमानत के लिए प्रार्थना का विरोध किया।

7. इस मामले में, यह पता चलता है कि जांच पूरी होने के बाद, आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान भी लिया गया है। आरोपी-आवेदकों को समन जारी किए गए। चूंकि आरोपी-आवेदक संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए, इसलिए तमीला के बावजूद, उनके खिलाफ जबरदस्ती की गई क्योंकि वे फरार थे। सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली एनसीटी) और अन्य, (2020) 5 एस.सी.सी. 1 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत को सीमित अवधि की नहीं मानते हुए विवाद को अंततः सुलझा लिया है। उपयुक्त मामले में, यह परीक्षण के निष्कर्ष तक जारी रह सकता है।

इसमें आगे यह कहा गया है कि आरोपी के आचरण और व्यवहार के आधार पर दी गई अग्रिम जमानत मुकदमे के अंत तक आरोप पत्र दायर करने के बाद जारी रह सकती है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी निर्णय दिया गया है कि अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, उसके द्वारा जांच के दौरान को प्रभावित करने की संभावना, या गवाहों को डराने-धमकाने सहित साक्ष्य के साथ छेड़छाड़, न्याय से भागने की संभावना, जैसे देश छोड़ने, आदि पर विचार करना है। यह आगे कहा गया है कि न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, जबकि यह विचार करते समय कि अग्रिम जमानत दी जाए या इसे अस्वीकार कर दिया जाए। अनुदान देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है।

8. हालांकि, मौजूदा मामले में, आरोपी-आवेदकों के खिलाफ धारा 82 और 83 द०प्र०स० के

तहत प्रक्रिया जारी की गई है। सत्र न्यायाधीश, मैनपुरी का दिनांक 19.12.2022 का अस्वीकृति आदेश भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।

9. आवेदकों का आचरण प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 955 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रख्यापित कानून के दायरे में आता है। उपरोक्त मामले के तथ्यों में, अभियुक्त के खिलाफ धारा 406, 420 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था और इस प्रकार यह स्पष्ट था कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था। रिकॉर्ड से, यह पता चला कि मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपी के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था और उसके बाद मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के अनुसार धारा 82, 83 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी। इसके बाद ही आरोपी ने अग्रिम जमानत के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदन दिया, जिसे सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया। तथापि, बाद में उच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त अभियुक्त को अग्रिम जमानत प्रदान की गई थी और जब मामला माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया तो यह इस प्रकार देखा गया।

"19. योग्यता के आधार पर उपरोक्त टिप्पणियों के बावजूद और इस तथ्य के बावजूद कि यह उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था कि प्रतिवादी संख्या-2 अभियुक्त फरार है और यहां तक कि धारा 82-83 द०प्र०स०के तहत कार्यवाही 10.01.2019 को शुरू की गई है, उच्च न्यायालय ने उपरोक्त प्रासंगिक पहलुओं की अनदेखी की है और प्रतिवादी संख्या-2 को अग्रिम जमानत दी है। आरोप की प्रकृति को देखते हुए जो एक व्यापार लेनदेन से उत्पन्न होता है, धोखाधड़ी आदि के विशिष्ट आरोपों, जिन पर अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया था, पर उच्च न्यायालय द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है। यहां तक कि उच्च न्यायालय ने भी द०प्र०स० की धारा 82-83 के तहत कार्यवाही शुरू करने के तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है, बस यह देखते हुए कि "जैसा भी हो"। अग्रिम जमानत देने के उपरोक्त प्रासंगिक पहलू को उच्च न्यायालय द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए था और उच्च न्यायालय द्वारा बहुत गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए था न कि लापरवाही से।

20. मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय द्वारा यह देखा और माना जाता है कि यदि किसी को धारा 82 द०प्र०स० के संदर्भ में भगोड़ा/प्रख्यात अपराधी घोषित किया जाता है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।

10. वास्तव में यह विश्वास करने का कारण है कि किसी को गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, जो किसी व्यक्ति को अग्रिम जमानत की एक विशिष्ट सुरक्षा की मांग करने के लिए लाता है, लेकिन यदि ऐसा व्यक्ति स्वयं ऐसी स्थिति पैदा करता है जो उसे ऐसी स्थिति में रखता है जहां उसकी गिरफ्तारी अपरिहार्य हो जाती है, तो वह धारा 438 द०प्र०स० के संरक्षण क्षेत्र से

बाहर निकल जाता है। धारा 82/83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया जारी करना दर्शाता है कि आरोपी विचारण न्यायालय द्वारा जारी की गई पहले की प्रक्रिया का पालन नहीं कर रहा था और उसने इसके प्रति अपना अनादर दिखाते हुए इसे व्यर्थ जाने दिया। सामान्य परिस्थितियों में, एक अदालत धारा 82 और 83 द०प्र०स० के तहत प्रक्रिया के साथ शुरू नहीं करती है, सबसे पहले अभियुक्त को समन जारी किए जाते हैं और फिर एक आरोही आदेश में जमानती वारंट, गैर-जमानती वारंट जारी किए जाते हैं और यदि तब भी आरोपी फरार रहता है तो वह एक घोषित अपराधी बन जाता है और धारा 82 के तहत और बाद में धारा 83 द०प्र०स० के तहत उसके खिलाफ प्रक्रिया जारी की जाती है।

11. संविधान निस्संदेह किसी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है और यह गारंटी भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित है, जो घोषणा करता है कि:

21. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण- विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

12. किसी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर किसी भी अतिक्रमण की रोकथाम अनुच्छेद 21 का लक्ष्य है और इसमें सन्निहित नियम लोगों के अधिकारों की मान्यता, सम्मान और प्रवर्तनीयता सुनिश्चित करने के लिए है और इसे सही अर्थों में सामाजिक न्याय के अंतिम उद्देश्य के साथ निरंतर परमादेश के रूप में माना जाना चाहिए और जमानत के प्रावधान इस दर्शन को स्वीकार करने के लिए अर्थपूर्ण हैं लेकिन जमानत का सवाल तभी उठता है जब व्यक्ति हिरासत में है। किसी व्यक्ति की हिरासत तब शुरू होती है जब किसी अपराध का आरोपी होने के कारण उसे गिरफ्तार किया जाता है और अदालत के समक्ष लाया जाता है या आत्मसमर्पण किया जाता है और इस तरह उसे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित कर दिया जाता है; लेकिन यह अभाव अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त शब्दों के दायरे में आता है यानी "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर"।

13. उसी समय, जब हम 'अग्रिम जमानत' के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो हम पाते हैं कि उक्त शब्द का उपयोग धारा 438 द०प्र०स० के तहत नहीं किया गया है, जो सक्षम प्रावधान का प्रतीक है। इसे गिरफ्तार होने की प्रत्याशा के रूप में लिया जा सकता है। गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य (1980)2 एस.सी.सी. 565 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के ऐतिहासिक फैसले में, यह था कि "अग्रिम जमानत मांगने वाला व्यक्ति अभी भी एक स्वतंत्र व्यक्ति है जो निर्दोषता की धारणा का हकदार है। वह अपनी स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों और शर्तों को प्रस्तुत करने के लिए तैयार है, शर्तों की स्वीकृति के द्वारा, जिसे अदालत लगाने के लिए उपयुक्त समझ सकती है, इस आश्वासन पर विचार करते हुए कि यदि गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे जमानत पर छोड़ा जाएगा।

अनुवादित

14. सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 1 एस.सी.सी. 694 के मामले में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: "

14. उद्देश्यों और कारणों के कथन से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 438 को शामिल करने का उद्देश्य एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के महत्व को पहचानना था। जब हम इस धारा का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते हैं, तो विधायिका का ज्ञान काफी प्रकट और स्पष्ट हो जाता है कि विधायिका व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए सम्मान सुनिश्चित करने के लिए उत्सुक थी और सदियों पुराने सिद्धांत को भी बल दिया कि एक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि वह अदालत द्वारा दोषी नहीं पाया जाता है।

15. सिब्बिया मामले (उपरोक्त) में जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास अग्रिम जमानत की अवधारणा के सीमा और दायरे से व्यापक रूप से निपटने का अवसर था, यह देखा गया कि धारा 438 द०प्र०स० एक असाधारण प्रावधान है जहां गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में अपनी गिरफ्तारी की आशंका रखने वाले अभियुक्त को गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत दी जा सकती है, जो निस्संदेह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है लेकिन इस तरह के विवेक का प्रयोग मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर उचित सावधानी, सतर्कता और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आरोप पत्र दायर करने के बाद मुकदमे के अंत तक इसे जारी रखा जा सकता है।

16. अग्रिम जमानत का विचार किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धांत को मजबूत करता है, लेकिन अगर न्यायालय के समक्ष यह स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति द्वारा अन्यथा दुरुपयोग करने की संभावना है या उसने अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया है, तो ऐसे व्यक्ति को अग्रिम जमानत देने से इनकार करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं है। न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करते हुए फरार होना व्यक्तिगत स्वतंत्रता का गंभीर दुरुपयोग है और इसीलिए, "यदि किसी को धारा 82 द०प्र०स० के संदर्भ में भगोड़ा/प्रख्यात अपराधी घोषित किया जाता है", जैसा कि मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (2014) 2 एस.सी.सी. 171 में कहा गया है, "वह अग्रिम जमानत देने का हकदार नहीं है।

17. लावेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)(2012) 8 एस.सी.सी. 730 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए कानूनी स्थिति स्पष्ट की है कि "12 ..... आम तौर पर, जब अभियुक्त "फरार" होता है और "घोषित अपराधी" के रूप में घोषित किया जाता है, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं है। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ वारंट जारी किया गया था और वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार या खुद को छुपा रहा है और संहिता की धारा 82 के संदर्भ में घोषित अपराधी के रूप में घोषित किया गया है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।

18. इसलिए, वर्तमान आरोपी-आवेदकों को कोई
अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती है।

19. अग्रिम जमानत याचिका एतद्द्वारा
खारिज की जाती है।

अनुवादित